विनय पिटक

विनय पिटक

विनय पिटक, त्रिपिटक का पहला भाग है, जो बौद्ध भिक्षु समुदाय (संघ) का अनुशासनात्मक ढांचा है। इसमें न केवल प्रत्येक थेरवाद भिक्षु और भिक्षुणी के जीवन को नियंत्रित करने वाले नियम शामिल हैं, बल्कि शिष्टाचार की अनेक प्रक्रियाएं और परंपराएं भी शामिल हैं जो भिक्षुओं के बीच और उनके गृहस्थ अनुयायियों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देती हैं, जिन पर वे अपनी सभी भौतिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं।

विनय पिटक के पहले भाग को पतिमोक्खा कहा जाता है। यह विभिन्न खंडों में सूचीबद्ध अनुशासनात्मक नियमों की एक सूची है और इसका उद्देश्य पश्चाताप करना है।

जब बुद्ध ने संघ की स्थापना की, तो आरंभ में समुदाय बिना किसी निर्धारित आचरण नियम के सद्भावपूर्वक रहता था। जैसे-जैसे संघ की संख्या बढ़ती गई और यह एक अधिक जटिल समाज में विकसित हुआ, वैसे-वैसे ऐसे अवसर अवश्य उत्पन्न हुए जब किसी सदस्य ने अनुचित व्यवहार किया। जब भी ऐसा कोई मामला बुद्ध के ध्यान में लाया जाता, तो वे भविष्य में दुराचार को रोकने के लिए उस अपराध के लिए उचित दंड निर्धारित करते। इनका उल्लेख महावग्ग और चुलवग्ग में मिलता है।

विनय पिटाका, टिपिटाका का पहला एबटेइलुंग, रहमान का अनुशासन है, बौद्ध मोन्चसगेमिंसचाफ्ट (संघ) का दूसरा भाग है। यह एक नियम के रूप में नहीं है, थेरवाद भिक्खु (मोंचे) और भिक्खुनिस (नॉन) के शासनकाल के दौरान, एक वर्ष से अधिक समय तक वेरफारेन और कॉन्वेंशन डेर एटिकेट, हारमोनिस्चे बेज़ीहुंगेन सवोह्ल ज़्विसचेन डेन मोंचेन अल औच मोंचेन और इह्नेन लाईन अनटरस्टुटज़ेन एन्हेंगर के अनुसार, एक वर्ष से अधिक समय तक अपने सभी मटेरियल का उपयोग करें।

विनय पिटक के सबसे पहले पतिमोक्खा थे। यह एक सूची है जो डिस्प्लिनर्रेगेलन से संबंधित है, एक वर्ष से अधिक समय तक एक वर्ष से अधिक समय तक समाप्त होती है।

संघ के नेतृत्व में बुद्ध को शामिल करने के अलावा, हार्मोनी में जेमिन्सचाफ्ट को शामिल करने के लिए, आपको जो भी कोड प्राप्त करने की आवश्यकता है, उसे प्राप्त करें। एक संघ के सभी सदस्यों को एक जटिल उद्यम के रूप में जाना जाता है, जो एक वर्ष से अधिक समय तक रहता है, वे एक वर्ष से अधिक समय तक काम करते हैं। एक वर्ष से अधिक समय से भगवान बुद्ध को एक वर्ष से अधिक समय से सम्मानित किया जा रहा है, लेकिन एक रीगल उत्सव में एक वर्ष से अधिक समय तक चलने वाले उत्सव में एक और संगीत कार्यक्रम शामिल है। ये चीजें महावग्गा में और चुलवग्गा में थीं।

अंतर्वस्तु

- 1पतिमोक्खा (अनुशासन और स्वीकारोक्ति)
- 2भिक्षुओं के लिए पतिमोक्खा
  - 2.1पाराजिका धम्म (निष्कासन, सभा, ज़ब्ती आदि के नियम)
    - 2.1.11. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
    - 2.1.22. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
    - 2.1.33. अनियता धम्म (अनिश्चित)
    - 2.1.44. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (जब्ती)
  - 2.2पाचित्तीय धम्म (स्वीकारोक्ति, प्रायश्चित, प्रशिक्षुओं और विवादों के नियम)
    - 2.2.15. पचितिया धम्म (स्वीकारोक्ति और तपस्या)
    - 2.2.26. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकृति के लिए)
    - 2.2.37. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के लिए)
    - 2.2.48. अधिकरण समथ (विवादों के लिए)
- 3भिक्कुनियों (ननों) के लिए पतिमोक्खा

- 3.1पतिमोक्खा अध्याय (ननों के लिए)
  - 3.1.11. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
  - 3.1.22. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
  - 3.1.33. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित)
  - 3.1.44. पचितिया धम्म (प्रायश्चित)
  - 3.1.55. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकारोक्ति)
  - 3.1.66. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
  - 3.1.77. अधिकरण समथ धम्म (विवादों का निपटारा)
- 4खंडाका
  - 4.1महावग्ग (प्रमुख अधिनियम खंड)
    - 4.1.1प्रथम खंडका (व्यवस्था का गठन)
    - 4.1.2दूसरा खंडका (उपोसथ और पतिमोक्खा)
    - 4.1.3तीसरा खंडका (वास्सा, रेन्स रिट्रीट)
    - 4.1.4चतुर्थ खण्डका (पवर्णा समारोह)
    - 4.1.5पांचवां खंडाका (पैर, वस्त्र, सीटें, वाहन आदि)
    - 4.1.6छठा खंडाका (औषधियाँ)
    - 4.1.7सातवां खंडका (कथिना समारोह)
    - 4.1.8आठवां खंडाका (पोशाक)
    - 4.1.9नौवां खंडका (अधिनियमों की वैधता)
    - 4.1.10दसवां खंडक (विभाजन)
  - 4.2चुलवग्गा (लघु अपराध धारा)
    - 4.2.1प्रथम खंडका (फटकार, अधीनता, निर्वासन, सुलह, निलंबन)
    - 4.2.2द्वितीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 1)
    - 4.2.3तृतीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 2)
    - 4.2.4चौथा खंडका (विवाद)
    - 4.2.5पांचवां खंडका (दैनिक जीवन)
    - 4.2.6छठा खंडका (आवास और फर्नीचर)
    - 4.2.7सातवां खंडक (विवाद)
    - 4.2.8आठवां खंडक (एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)
    - 4.2.9नौवां खंडका (पतिमोक्खा विधानसभा से बहिष्कार)
    - 4.2.10दसवां खंडका (भिक्षुणियों के कर्तव्य)
    - 4.2.11ग्यारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद राजगृह परिषद)
    - 4.2.12बारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद वेशालि परिषद)
- 5परिवार
- 6अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
- 7मूल पाली संस्करण

पतिमोक्खा (अनुशासन और स्वीकारोक्ति)
(अनुशासन और स्वीकारोक्ति के नियम)

'पतिमोक्खम' यह आरंभ है, यह मुख (मुखम) है, यह परोपकारी/धार्मिक (कुसलानम) मार्ग/नियमों (धम्मनम) का मूल (पामुखम) है; इसलिए इसे 'पतिमोक्खम' कहा जाता है। - बुद्ध (एमवी-ख2-अध्याय3-श्लोक4)।

ये भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए आचरण के बुनियादी नियम हैं। संघ की स्थापना का मूल उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था बनाना था जो मानव चेतना को उच्च स्तर तक विकसित करने में सहायक हो, जिससे आत्मज्ञान, आत्म-साक्षात्कार और अंततः निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त हो सके। संघ में शामिल होने वाले नए शिष्यों के दृष्टिकोण, विचार और आचरण में कई कमियाँ होती हैं जो अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा बन सकती हैं, इसलिए अनुशासनात्मक नियमों का पालन करना आवश्यक है ताकि भावनाओं, वासनाओं, इच्छाओं और

आसक्तियों को शांत किया जा सके और आंतरिक शांति प्राप्त की जा सके, जो बौद्ध ध्यान के माध्यम से किसी भी प्रकार की प्रगति के लिए पूर्व शर्त है।

पतिमोक्खा के नियम प्रत्येक उपवास दिवस (उपोसथा) पर पढ़े जाते थे, जो पूर्णिमा और अमावस्या (वास्तव में चंद्रविहीन) को यानी हर छह महीने में एक बार आयोजित किया जाता था। प्रत्येक भाग के पाठ के बाद भिक्षुओं से उनकी गलतियों (यदि कोई हो) को स्वीकार करने और प्रायश्चित/दंड के लिए तैयार रहने को कहा जाता था। मूलतः यह आत्म-शुद्धि (पवित्रता) की ओर ले जाने वाली स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित की एक प्रणाली है।

भिक्षुओं के लिए पतिमोक्खा

पाराजिका धम्म (निष्कासन, सभा, ज़ब्ती आदि के नियम)

निदान : पतिमोक्खा के परिचय/आरंभ का पाठ।
1. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
अक्षम्य त्रुटियों के लिए संघ से निष्कासन के नियम। (भिक्षुओं के लिए 4, भिक्षुणियों के लिए 8)

2. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
गंभीर गलतियों के लिए नियम, जिनके लिए संघ की बैठक आवश्यक है। बैठक भी दो भागों में विभाजित है: पहला और दूसरा। (भिक्षुओं के लिए 13, भिक्षुणियों के लिए 17)

3. अनियता धम्म (अनिश्चित)
अनिश्चितकालीन नियम. (भिक्खुओ के लिए 2)

4. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (जब्ती)
दंड, स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित के नियम। (भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों के लिए 30)

पाचित्तीय धम्म (स्वीकारोक्ति, प्रायश्चित, प्रशिक्षुओं और विवादों के नियम)

---

5. पचितिया धम्म (स्वीकारोक्ति और तपस्या)
पाप स्वीकार करने और प्रायश्चित करने के नियम। (भिक्षुओं के लिए 92, भिक्षुणियों के लिए 166)

6. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकृति के लिए)
शिक्षा के विरुद्ध मामलों के लिए नियम और स्वीकारोक्ति/स्वीकारोक्ति आवश्यक है। (भिक्षुओं के लिए 4, भिक्षुणियों के लिए 8)

7. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के लिए)
प्रशिक्षुओं के लिए नियम। (भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों के लिए 75)

8. अधिकरण समथ (विवादों के लिए)
विवादों के निपटारे और सद्भाव बनाए रखने के नियम। (भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों के लिए 7 नियम।)

भिक्कुनियों (ननों) के लिए पतिमोक्खा
भिक्खुनी पतिमोक्खा : भिक्खुनी पतिमोक्खा में 311 नियम हैं। इनमें से 181 भिक्खु पातिमोक्खा के साथ साझा किए गए हैं।
पतिमोक्खा अध्याय (ननों के लिए)

---

1. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
2. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
3. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित)

4. पचितिया धम्म (प्रायश्चित)
5. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकारोक्ति)
6. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
7. अधिकरण समथ धम्म (विवादों का निपटारा)

खंडाका

महावग्ग और चुलवग्ग के निम्नलिखित खंडों में अनेक घटनाओं का वर्णन है, जिनके आधार पर बुद्ध ने अनुशासन के विभिन्न नियम बनाए।

महावग्ग (प्रमुख अधिनियम खंड)
(मुख्य भाग)

संघ के आचरण और शिष्टाचार के नियमों के अलावा, इस खंड में कई महत्वपूर्ण सूत्र-जैसे ग्रंथ शामिल हैं, जिनमें बुद्ध के ज्ञानोदय के तुरंत बाद की अवधि का विवरण, पांच भिक्षुओं के समूह को दिए गए उनके पहले उपदेश और उनके कुछ महान शिष्यों के संघ में शामिल होने और स्वयं ज्ञानोदय प्राप्त करने की कहानियां शामिल हैं।

महावग्ग में 10 अध्याय (या *खंडक*) *हैं:*
प्रथम खंडका (व्यवस्था का गठन)
(भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1.1 अध्याय 1: बोधि वृक्ष के नीचे कारण-कार्य श्रृंखला का ज्ञान।
1.2 अध्याय 2: अजापाल बरगद के वृक्ष के नीचे बुद्ध की एक पुजारी से मुलाकात।
1.3 अध्याय 3: मुचलिंडा वृक्ष के नीचे नाग द्वारा बुद्ध की रक्षा।
1.4 अध्याय 4: राजयतन वृक्ष के नीचे बुद्ध की अपने पहले शिष्यों, दो व्यापारियों से मुलाकात।
1.5 अध्याय 5: ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहंपति द्वारा अमरता के मार्ग का प्रचार करने का अनुरोध।
1.6 अध्याय 6: बुद्ध ने अपने पूर्व पांच सहयोगियों को धम्म का उपदेश दिया।
1.7 अध्याय 7: बुद्ध ने एक धनी व्यक्ति के पुत्र यासा को दीक्षा दी।
1.8 अध्याय 8: बुद्ध ने यासा की माता, पहली महिला गृहस्थ शिष्या को दीक्षा दी।
1.9 अध्याय 9: यासा के चार मित्रों, उनके दीक्षा संस्कार की कथा।
1.10 अध्याय 10: यासा के मित्र पचास गृहस्थों के दीक्षा संस्कार की कथा।
1.11 अध्याय 11: मारा (मृत्यु के देवता) के दु:ख की कथा।
1.12 अध्याय 12: बुद्ध ने अन्य भिक्षुओं को दीक्षा देने की अनुमति दी।
1.13 अध्याय 13: मारा (मृत्यु के देवता) का एक और दु:ख।
1.14 अध्याय 14: तीस धनी युवा साथियों का दीक्षा संस्कार। 1.15
अध्याय 15: पहला चमत्कार - बुद्ध ने कश्यप के आश्रम में एक भयंकर सर्प को वश में किया।
1.16 अध्याय 16: दूसरा चमत्कार - चार स्वर्गिक राजाओं ने बुद्ध से मुलाकात की।
1.17 अध्याय 17: तीसरा चमत्कार - इंद्र (स्वर्ग के राजा) ने बुद्ध से मुलाकात की।
1.18 अध्याय 18: चौथा चमत्कार-ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति फिर से बुद्ध के पास आते हैं
1.19 अध्याय 19: पाँचवाँ चमत्कार-बुद्ध कश्यप के विचारों को समझते हैं।
1.20 अध्याय 20: सैकड़ों भिक्षुओं के दीक्षा संस्कार की ओर ले जाने वाले कई अन्य चमत्कार
1.21 अध्याय 21: सब कुछ जल रहा है - गयासिसा में एक हजार भिक्षुओं को शिक्षा देना
1.22 अध्याय 22: संघ का नेतृत्व स्वर्ग के स्वामी सक्का द्वारा राजा बिमिसार के भोज में किया जाता है
1.23 अध्याय 23: सारिपुत्र को भिक्षु अस्सजी से मार्ग का ज्ञान प्राप्त होता है
1.24 अध्याय 24: सारिपुत्त और मोग्गलाना 250 अनुयायियों के साथ संघ में शामिल होते हैं
1.25 अध्याय 25: शिष्यों के लिए प्रशिक्षकों (उपज्जया) की नियुक्ति और उनके कर्तव्य

1.26 अध्याय 26: अपने शिष्यों के प्रति प्रशिक्षकों के कर्तव्य
1.27 अध्याय 27: शिष्यों को विमुख करना और उन्हें क्षमा करना
1.28 अध्याय 28: एक चम्मच दान के लिए भी दीक्षा; दीक्षा नियमों का संशोधन।
1.29 अध्याय 29: दीक्षा केवल अनुरोध किए जाने पर ही दी जाएगी
1.30 अध्याय 30: एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसने केवल पेट भरने के लिए दीक्षा ली
1.31 अध्याय 31: दस वर्ष पूर्ण कर चुके विद्वान भिक्षुओं द्वारा दीक्षा दी जाएगी
1.32 अध्याय 32: आचार्यों (शिक्षकों) की नियुक्ति
1.33 अध्याय 33: आचार्यों के लिए कठोर आचरण
1.34 अध्याय 34: शिष्यों के लिए उचित आचरण
1.35 अध्याय 35: केवल विद्वान और योग्य भिक्षुओं को ही शिष्य रखने की अनुमति होगी
1.36 अध्याय 36: शिष्यत्व का समापन; केवल सिद्ध पुरुष ही दीक्षा प्रदान कर सकते हैं
1.37 अध्याय 37: स्वीकार्यता
1.38 अध्याय 38: दीक्षा - वे जो अन्य स्कूलों से संबंधित थे और वे जिन्होंने अवज्ञा की।
अध्याय 39: पाँच रोगों से ग्रसित लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 40: राजसेवा या सेना में कार्यरत लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 41: हत्यारों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 42: जेल तोड़ने वालों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 43: लुटेरों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 44: कोड़े मारने से दंडित लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 45: दागने से दंडित लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 46: ऋणग्रस्त लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 47: दासों को दीक्षा नहीं दी जाएगी
। अध्याय 48: संघ द्वारा नवगठित व्यक्ति का सिर मुंडवाने की अनुमति दी जाएगी
। अध्याय 49: 20 वर्ष से कम आयु के लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी । अध्याय
50: 15 वर्ष से कम आयु के लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।
51: 15 वर्ष से कम आयु के अनाथों को दीक्षा की अनुमति
1.52 अध्याय 52: समलैंगिकों को दीक्षा नहीं
1.53 अध्याय 53: बुद्ध दक्षिणागिरि जाते हैं
1.54 अध्याय 54: बुद्ध अपने गृह नगर जाते हैं और उत्तराधिकार मांगे जाने पर अपने पुत्र राहुल को दीक्षा देते हैं
1.55 अध्याय 55: बुद्ध दो नौसिखियों को दीक्षा की अनुमति देते हैं
1.56 अध्याय 56: नौसिखियों के लिए दस उपदेशों की स्थापना
1.57 अध्याय 57: नौसिखियों के लिए दंड
1.58 अध्याय 58: अपने प्रशिक्षकों की सहमति के बिना नौसिखियों को प्रतिबंधित न करना
1.59 अध्याय 59: अन्य भिक्षुओं के अनुयायियों को आकर्षित न करना
1.60 अध्याय 60: नौसिखियों के निष्कासन के नियम; यौन संबंध
1.61 अध्याय 61: हिजड़ों के निष्कासन के नियम; यौन संबंध
1.62 अध्याय 62: स्वयंभू भिक्षुओं का निष्कासन
1.63 अध्याय 63: पशु को दीक्षा न देना
1.64 अध्याय 64: माता की हत्या करने वाले को दीक्षा न देना
1.65 अध्याय 65: पिता की हत्या करने वाले को दीक्षा न देना
1.66 अध्याय 66: प्रबुद्ध अर्हतों की हत्या करने वालों को दीक्षा न देना और निष्कासन
1.67 अध्याय 67: भिक्षुणियों के साथ दुर्व्यवहार, फूट डालने और बुद्ध का रक्त बहाने वालों के लिए दीक्षा न देने और निष्कासन के नियम
1.68 अध्याय 68: नपुंसकों के लिए दीक्षा न देना और निष्कासन
1.69 अध्याय 69: दीक्षा न देने और निष्कासन के अनेक नियम
1.70 अध्याय 70: बिना कुंड और वस्त्र के या उधार लिए हुए वस्त्रों से दीक्षा लेने का अपराध
1.71 अध्याय 71: गंभीर रूप से पीड़ित लोगों का दीक्षा संस्कार
1.72 अध्याय 72: निर्लज्ज भिक्षुओं के साथ न रहना

1.73 अध्याय 73: गुरु के बिना रहने की शर्तें
1.74 अध्याय 74: एक साथ दो या तीन लोगों का दीक्षा संस्कार
1.75 अध्याय 75: जन्म से पहले गर्भाधान से दीक्षा संस्कार की अनुमति देना
1.76 अध्याय 76: नवागंतुकों के लिए प्रश्नावली की स्थापना और केवल विद्वान भिक्षुओं द्वारा दीक्षा
1.77 अध्याय 77: नवागंतुकों को दीक्षा नियमों का उल्लेख
1.78 अध्याय 78: एक भिक्षु ने अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध बनाया और उसे नियमों के बारे में बताया गया
1.79 अध्याय 79: निष्कासित भिक्षु की पुनः स्वीकृति

दूसरा खंडका (उपोसथ और पतिमोक्खा)

(उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

2.1 अध्याय 1: राजा बिम्बिसार ने बुद्ध से प्रत्येक अर्धमाह के 14वें, 15वें और 8वें दिन भिक्षुओं की सभा आयोजित करने का अनुरोध किया।
2.2 अध्याय 2: भिक्षुओं द्वारा प्रत्येक अर्धमाह के 14वें, 15वें और 8वें दिन धम्म का पाठ करना।
2.3 अध्याय 3: बुद्ध ने पतिमोक्ख पाठ के प्रारंभ का विधान किया।
2.4 अध्याय 4: बुद्ध ने प्रत्येक अर्धमाह में एक बार उपवास के दिन (उपोसथ) पतिमोक्ख पाठ का आदेश दिया।
2.5 अध्याय 5: एक ही मठ में अर्हंतों सहित पूर्ण उपस्थिति में पतिमोक्ख पाठ करना।
2.6 अध्याय 6: पतिमोक्ख पाठ के लिए प्रत्येक निवास की सीमा के रूप में सीमाचिह्नों की स्थापना।
2.7 अध्याय 7: उपोसथा और पतिमोक्खा (उपवास और स्वीकारोक्ति) के लिए सीमा का उचित निर्धारण
2.8 अध्याय 8: स्वीकारोक्ति (पतिमोक्खा) के लिए एक ही स्थान की स्थापना और उसकी घोषणा
2.9 अध्याय 9: सुनने की दूरी के भीतर पतिमोक्खा (स्वीकारोक्ति) के लिए एक स्थान की स्थापना
2.10 अध्याय 10: पतिमोक्खा (स्वीकारोक्ति) समारोह के लिए थेरा (बुजुर्गों) को पहले एकत्रित होना चाहिए
2.11 अध्याय 11: उपोसथा एक ही स्थान पर पूर्ण मंडली द्वारा आयोजित की जानी चाहिए
2.12 अध्याय 12: सीमा का उन्मूलन और पुनर्निर्धारण
2.13 अध्याय 13: सीमाएँ अतिव्यापी नहीं होनी चाहिए
2.14 अध्याय 14: केवल वही उपोसथा आयोजित की जानी चाहिए जो वैध और पूर्ण हो
2.15 अध्याय 15: पाठ के 5 तरीके, संकट के समय पाठ, और केवल नियुक्त व्यक्तियों को ही उत्तर देना चाहिए
। अध्याय 16: पाठ केवल नियुक्त व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए, न कि गृहस्थों के समक्ष
। अध्याय 17: पाठ केवल विद्वान भिक्षुओं द्वारा ही किया जाना चाहिए
। अध्याय 18: भिक्षुओं को दिनों और भिक्षुओं की संख्या का हिसाब रखना चाहिए
। अध्याय 19: उपोसथा दिवस की घोषणा एक थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) द्वारा की जानी चाहिए
। अध्याय 20: भिक्षुओं को उपोसथा हॉल की सफाई करनी चाहिए, बैठने की व्यवस्था, दीपक, भोजन और पानी उपलब्ध कराना चाहिए।
अध्याय 21: यात्रा अनुमति से ही की जानी चाहिए और प्रत्येक निवास में विद्वान भिक्षु होने चाहिए।
अध्याय 22: समारोह के दौरान बीमारी और अन्य अक्षमताएं।
2.23 अध्याय-23: समारोह के दौरान बीमारी - II
2.24 अध्याय-24: जब भिक्षु को रिश्तेदारों आदि द्वारा रोका जाता है
2.25 अध्याय-25: पागल का अवकाश
2.26 अध्याय-26: समारोह चार, तीन, दो और एक अकेले भिक्षु द्वारा भी किया जा सकता है, लेकिन उस स्थान पर रहने वाले सभी भिक्षुओं द्वारा।
2.27 अध्याय-27: सामूहिक स्वीकारोक्ति और सामूहिक स्वीकारोक्ति वर्जित; संपूर्ण संघ दोषी आदि।
2.28 अध्याय-28: अपूर्णता से अनभिज्ञ होने पर भी अपराध न करने के मामले।
2.29 अध्याय-29: भिक्षुओं को अपनी संख्या की अपूर्णता का ज्ञान होने पर भी मामले।
2.30 अध्याय-30: भिक्षुओं को अपनी अपूर्णता का ज्ञान होने पर भी संदेह होने पर मामले।
2.31 अध्याय-31: वे मामले जब भिक्षु अपनी अपूर्णता से अवगत होते हैं लेकिन उनमें आत्मविश्वास होता है।
2.32 अध्याय-32: वे परिस्थितियाँ जब भिक्षु अपनी अपूर्णता से अवगत होते हैं, परन्तु उनकी कोई परवाह नहीं होती।
2.33 अध्याय-33: विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ।

2.34 अध्याय-34: नए और निवासी भिक्षुओं की परिस्थितियाँ और दिनों की गणना।
2.35 अध्याय-35: उपोसथ दिवस पर न जाना।
2.36 अध्याय-36: कब पाठ न करना।

तीसरा खंडका (वास्सा, रेन्स रिट्रीट)

(वर्षा ऋतु के दौरान निवास स्थान)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

3.1 अध्याय-1: वर्षा प्रणाली की उत्पत्ति।
3.2 अध्याय-2: वर्षा में प्रवेश के लिए दो अवधियों की स्थापना।
3.3 अध्याय-3: वर्षा के दौरान यात्रा निषेध।
3.4 अध्याय-4: वर्षा के दौरान जिले से बाहर न जाना; राजा का पालन करना।
3.5 अध्याय-5: वर्षा के दौरान सात दिनों के भीतर दान के लिए और किसके लिए यात्रा करना।
3.6 अध्याय-6: भिक्षु/भिक्षुनी की बीमारी, संदेह, झूठे सिद्धांत, अपराध, दंड आदि के लिए सात दिन की यात्रा।
3.7 अध्याय-7: भिक्षु की माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदार और परिचित व्यक्ति की बीमारी के लिए यात्रा की अनुमति।
3.8 अध्याय-8: मरम्मत और संघ के अन्य कार्यों के लिए लकड़ी लाने के लिए यात्रा की अनुमति।
3.9 अध्याय-9: पशु, सांप, लुटेरे, राक्षस, आग, भोजन की कमी और बाढ़ के कारण गांव छोड़ना।
3.10 अध्याय-10: जब ग्रामीण गांव छोड़ दें।
3.11 अध्याय-11: भोजन या दवा की कमी के कारण गांव छोड़ना। वेश्या, हिजड़ा, राजा, रिश्तेदार आदि द्वारा धन, सोना, संपत्ति, सुख आदि के लिए बहकाए जाने पर गांव छोड़ना।
3.12 अध्याय-12: पशु-बाड़ा, कारवां, जहाज की अनुमति है। पेड़ का खोखला भाग और शाखा, खुली हवा, कब्रिस्तान आदि की अनुमति नहीं है।
3.13 अध्याय-13: वर्षावास के दौरान दीक्षा न लेने का कोई समझौता नहीं करना।
3.14 अध्याय-14: राजा की अवज्ञा न करना; अनेक स्थानों पर वर्षावास न करना; वादे न तोड़ना।

चतुर्थ खण्डका (पवर्णा समारोह)

(वर्षा ऋतु के अंत में होने वाला पवाराना समारोह)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

4.1 अध्याय-1: पवारना की घोषणा और सामंजस्यपूर्वक करने का तरीका।
4.2 अध्याय-2: विनम्रता का अभ्यास।
4.3 अध्याय-3: पवारना के दिनों की संख्या और सेवाओं की संख्या; बीमारों के लिए पवारना।
4.4 अध्याय-4: यदि रिश्तेदार भिक्षु को रोकते हैं।
4.5 अध्याय 5: सभी भिक्षुओं को ऐसा करना चाहिए; अनुमत संख्या 4, 3, 2 और 1 भी हो सकती है।
अध्याय 6: पवाराना (पावराना) सभी भिक्षुओं द्वारा आयोजित किया जाना चाहिए, जिसमें दोषी भी शामिल हैं
। अध्याय 7-13: जब उपस्थित भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओं से अनभिज्ञ हों
। अध्याय 14: भिक्षुणी के समक्ष नहीं और कुछ अपवादों के साथ केवल पवाराना दिवस पर आयोजित किया जाना चाहिए
। अध्याय 15: आग, लुटेरों, जानवरों आदि के खतरे की स्थिति में
। अध्याय 16: दोषी के साथ कैसा व्यवहार किया जाए
। अध्याय 17: झगड़ालू, विवादशील और बीमार भिक्षुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाए
। अध्याय 18: निवास और अन्य मुद्दे।

पांचवां खंडाका (पैर, वस्त्र, सीटें, वाहन आदि)

(पैरों के वस्त्र, सीटों, वाहनों आदि के लिए नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

5.1 अध्याय 1: एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोना कोलिविसा को अर्हत पद प्राप्त होता है; बुद्ध जूते पहनने की अनुमति देते हैं
5.2 अध्याय 2: बुद्ध तपस्या के लिए फैंसी जूते पहनने की मनाही करते हैं 5.3 अध्याय 3:
बुद्ध अस्तर वाले पुराने जूते
पहनने की अनुमति देते हैं 5.4 अध्याय 4: जब वरिष्ठ नागरिक जूते न पहनें तो जूते न पहनें 5.5 अध्याय 5:
बीमार पैरों वाले लोगों के लिए पैरों को ढकने की अनुमति
5.6 अध्याय 6: कुर्सियों पर बैठने के लिए पैरों को ढकने की अनुमति; लकड़ी के जूते न पहनें
5.7 अध्याय 7: ताड़ या बांस के पत्तों से बने जूते न पहनें
5.8 अध्याय 8: सजावटी जूते न पहनें
5.9 अध्याय 9: जानवरों के प्रति क्रूर न हों; वाहनों का उपयोग न करें
5.10 अध्याय 10: सजावटी कुशन/कालीन का उपयोग न करें; जानवरों की खाल का उपयोग न करें; जानवरों को न मारें; बीमारों को वाहन ले जाने की अनुमति है
(अध्याय 11): वस्तुओं को बांधने के लिए चमड़े का उपयोग करने की अनुमति है
(अध्याय 12): भिक्षुओं को जूते पहनकर गांवों में जाने की अनुमति नहीं है, लेकिन बीमारों को अनुमति है
(अध्याय 13): सीमावर्ती देशों में चार भिक्षुओं द्वारा दीक्षा, जूते, नियमित स्नान, चमड़े के वस्त्र, भिक्षु को वस्त्रों का दान करने की अनुमति है।

छठा खंडाका (औषधियाँ)

(दवाइयों के बारे में)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

6.1 अध्याय 1: बुद्ध ने पाँच चीजों को औषधि के रूप में अनुमति दी है - घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़।
6.2 अध्याय 2: बुद्ध ने पशुओं की चर्बी को औषधि के रूप में अनुमति दी है।
6.3 अध्याय 3: औषधि के रूप में अनुमत जड़ों की सूची
। 6.4 अध्याय 4: कसैले काढ़े अनुमत हैं।
6.5 अध्याय 5: औषधि के रूप में अनुमत पत्तियों की
सूची। 6.6 अध्याय 6: औषधि के रूप में अनुमत फलों की सूची। 6.7
अध्याय 7: औषधि के लिए गोंद। 6.8
अध्याय 8: औषधि के लिए नमक। 6.9
अध्याय 9: त्वचा के लिए औषधि के रूप में चूना, सूखा गोबर और मिट्टी।
6.10 अध्याय 10: औषधि के लिए छाना हुआ चूना, कच्चा मांस और रक्त।
6.11 अध्याय 11: औषधि के रूप में नेत्र मरहम और इत्र अनुमत हैं।
6.12 अध्याय 12: औषधियों को ले जाने के लिए साधारण डिब्बा अनुमत है।
6.13 अध्याय 13: सिरदर्द के लिए तेल, नाक-चम्मच, सुगंध पाइप से सुगंध सूंघना अनुमत है
6.14 अध्याय 14: विभिन्न रोगों के लिए विभिन्न पदार्थ औषधियों के रूप में
6.15 अध्याय 15: एक चिकित्सक किसी वस्तु को सोने में रूपांतरित करने का चमत्कार दिखाता है; सात दिनों से अधिक समय तक दवाइयाँ संग्रहित न करें
6.16 अध्याय 16: सेम, गुड़ और नमकीन खट्टी दलिया खाने की अनुमति है
6.17 अध्याय 17: भिक्षु को नियमित रूप से खाना नहीं पकाना चाहिए, बल्कि केवल कठिन समय में ही खाना चाहिए। साथ ही, बिना मालिक वाले पेड़ों से फल तोड़ना भी अनुमत है
6.18 अध्याय 18: एक भूलने वाला ब्राह्मण बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित करता है
6.19 अध्याय 19: अकाल के समय भोजन स्वीकार करना
6.20 अध्याय 20: अकाल के समय जंगलों और तालाबों में मिलने वाले खाद्य पदार्थ अनुमत हैं
6.21 अध्याय 21: पेड़ों से फल तोड़ना तब अनुमत है जब कोई इसे अनुमत न बना सके
6.22 अध्याय 22: गुदा पर शल्यक्रिया वर्जित है
6.23 अध्याय 23: एक धर्मनिष्ठ महिला अपनी जांघ का मांस एक भिक्षु को दान करती है, बुद्ध उसके घाव को भरते हैं, फिर उस मांस को खाने से मना करते हैं मनुष्य, हाथी, घोड़ा, कुत्ता, साँप, शेर, बाघ, तेंदुआ, लकड़बग्घा

6.24 अध्याय 24: बुद्ध शाकाहारी भोजन की प्रशंसा करते हैं, चावल-दूध और शहद के टुकड़े खाते हैं
6.25 अध्याय 25: बुद्ध भोज से पहले भोजन करने वाले भिक्षुओं को फटकारते हैं
6.26 अध्याय 26: एक व्यापारी अपनी चीनी की सभी गाड़ियाँ दान कर देता है, शिष्य बन जाता है और दिव्य अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है
6.27 अध्याय 27: बुद्ध मीठा पानी पीने की अनुमति देते हैं
6.28 अध्याय 28: बुद्ध पाटलिगामा (पाटलिपुत्र/पटना) में एक नए शहर के बारे में भविष्यवाणी करते हैं, अपने सभी शिष्यों के साथ चमत्कारिक रूप से गंगा नदी पार करते हैं
6.29 अध्याय 29: कोटिगामा में चार आर्य सत्य - दुख, उसका कारण, उसका निवारण और मार्ग
6.30 अध्याय 30: वेश्या अंबपाली भोजन दान करती है बुद्ध और उनके भिक्षुओं के लिए एक मठ
6.31 अध्याय 31: सेनापति सिहा, शिष्य बनते हैं; बुद्ध भिक्षुओं के भोजन के लिए पशुओं को मारने की मनाही करते हैं
6.32 अध्याय 32: जब प्रचुरता हो, तो पूर्व नियम (केवल भिक्षा) लागू होंगे, इसलिए खाना पकाना मना है
अध्याय 33: बुद्ध ने मठ में गृहस्थों के लिए भोजन और औषधियाँ रखने की अनुमति दी।
अध्याय 34: एक चमत्कारिक पुरुष मेंडका ने बुद्ध के शिष्य बनकर संघ को भोजन कराया। रेगिस्तानी मार्गों के लिए बुद्ध ने भोजन ले जाने की अनुमति दी, लेकिन सोना स्वीकार करने से मना किया
। अध्याय 35: केन्या से दान में प्राप्त भोजन; बुद्ध ने विभिन्न फलों के रस की अनुमति दी
। अध्याय 36: बुद्ध ने कुसिनारा का दौरा किया; रोजा मल्ल ने बुद्ध के शिष्य बनकर भोजन दान किया। बुद्ध ने सब्जियाँ ले जाने की अनुमति दी
। अध्याय 37: बुद्ध ने अतुमा का दौरा किया और एक नाई ने उन्हें भोजन कराया, जिसके पहले सेवक थे। बुद्ध ने पहले सेवक रखने पर रोक लगाई
। अध्याय 38: बुद्ध ने फलों के रूप में ठोस भोजन की अनुमति दी
। अध्याय 39: निजी मालिकों के साथ पौधों की पौध साझा करना
। अध्याय 40: वैध भोजन क्या है?

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

(कथीना समारोह)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

7.1 अध्याय 1: कथिना समारोह का प्रारंभ
7.2 अध्याय 2: भिक्षुओं के कथिना विशेषाधिकारों का निलंबन
7.3 अध्याय 3
7.4 अध्याय 4
7.5 अध्याय 5
7.6 अध्याय 6
7.7 अध्याय 7
7.8 अध्याय 8: निलंबन पर अधिक जानकारी
7.9 अध्याय 9: निलंबन पर अधिक जानकारी
7.10 अध्याय 10
7.11 अध्याय 11: वस्त्रों का हिस्सा
7.12 अध्याय 12
7.13 अध्याय 13: वस्त्रों पर दावा खोने की शर्तें

आठवां खंडाका (पोशाक)

(भिक्षुओं का वस्त्र)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

8.1 अध्याय 1 : राजचिकित्सक जीवक की कहानी; बुद्ध गृहस्थों से वस्त्रों का दान स्वीकार करते हैं
8.2 अध्याय 2: बुद्ध ऊनी वस्त्रों की अनुमति देते हैं

8.3 अध्याय 3: बुद्ध छह प्रकार के वस्त्रों और पामसकुल (फटे-पुराने) वस्त्रों की अनुमति देते हैं
8.4 अध्याय 4: फटे-पुराने वस्त्रों का साझाकरण
8.5 अध्याय 5: दान किए गए वस्त्रों को स्वीकार करने के लिए एक भिक्षु की नियुक्ति
8.6 अध्याय 6: दान किए गए वस्त्रों की देखभाल के लिए एक भिक्षु की नियुक्ति
8.7 अध्याय 7: दान किए गए वस्त्रों के लिए एक भंडारगृह की नियुक्ति
8.8 अध्याय 8: दान किए गए वस्त्रों के लिए एक भिक्षु को भंडारगृह प्रभारी नियुक्त करना
8.9 अध्याय 9: लॉटरी द्वारा वस्त्रों का वितरण
8.10 अध्याय 10: वस्त्रों को रंगने के लिए रंगों, उपकरणों और प्रक्रिया की सूची
8.11 अध्याय 11: वस्त्रों की रंगाई का कार्य
8.12 अध्याय 12: फटे हुए टुकड़ों का उपयोग वस्त्र
8.13 अध्याय 13: केवल तीन वस्त्रों की अनुमति
8.14 अध्याय 14: फटे हुए वस्त्र को पकड़ने के लिए कपड़े की पट्टियों का उपयोग करने की अनुमति
8.15 अध्याय 15: विशाखा के दान के महान वरदान; बुद्ध संघ को वर्षा ऋतु का सामना करने के बारे में बताते हैं क्योंकि यह अंतिम जन्म है
। अध्याय 16: बुद्ध सोने के लिए चटाई और आवरण की अनुमति देते हैं
। अध्याय 17: बुद्ध त्वचा की समस्याओं के लिए खुजली वाले कपड़े की अनुमति देते हैं
। अध्याय 18: चेहरा पोंछने के लिए कपड़े की अनुमति है
। अध्याय 19: विश्वास पर वस्तुएँ लेने की अनुमति है
। अध्याय 20: पानी छानने वाले कपड़े और कटोरे आदि के लिए थैलों की अनुमति है।
अध्याय 21: फटे हुए टुकड़ों का उपयोग करके पूरे वस्त्र सिलने की
अनुमति है। अध्याय 22: माता-पिता को वस्त्र दान करने की अनुमति है
। अध्याय 23: वस्त्र त्यागने के पाँच कारण।
अध्याय 24: वस्त्रों का बंटवारा
। अध्याय 25: बहुत सारे वस्त्र चाहने वाले लालची भिक्षुओं के लिए
। अध्याय 26: भिक्षुओं को चाहिए अन्य बीमार भिक्षुओं की सहायता करें
8.27 अध्याय 27: मृत भिक्षु के कटोरे और वस्त्र उन लोगों को दिए जाएं जिन्होंने उनकी देखभाल की
8.28 अध्याय 28: नग्नता वर्जित है। वर्जित वस्त्रों की सूची (खाल, बाल, छाल, पंख आदि)
8.29 अध्याय 29: आकर्षक रंगीन वस्त्र वर्जित हैं
8.30 अध्याय 30: अत्यंत गंभीर मामलों में वस्त्रों का स्वामित्व
8.31 अध्याय 31: जब किसी अन्य भिक्षु के लिए भेजा गया वस्त्र वाहक द्वारा ले लिया जाए
8.32 अध्याय 32: वस्त्रों का उपहार प्राप्त करने के आठ आधार

नौवां खंडका (अधिनियमों की वैधता)

(संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

9.1 अध्याय 1: केवल बहुमत से निर्दोष भिक्षु को निष्कासित करना अनुमत नहीं है।
9.2 अध्याय 2: अधिनियम पारित करने के लिए पूर्ण संघ की उपस्थिति आवश्यक है।
9.3 अध्याय 3: छह प्रकार के आधिकारिक अधिनियम।
9.4 अध्याय 4: पाँच प्रकार के संघ।
9.5 अध्याय 5: जब आरोपी भिक्षु अपराध स्वीकार करने से इनकार करता है।
9.6 अध्याय 6: संघ (मंडली) द्वारा अतिक्रमण, भले ही वह पूर्ण हो।
9.7 अध्याय 7: अज्ञानी और गलती करने वाले भिक्षुओं के विरुद्ध कार्रवाई करने की शर्तें।

दसवां खंडक (विभाजन)

(संघ के भीतर विभाजन)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

10.1 अध्याय 1: जब किसी भिक्षु को संघ के एक वर्ग द्वारा गलत और दूसरे वर्ग द्वारा सही माना जाता है
10.2 अध्याय 2: कोसंबी भिक्षुओं के बीच शत्रुता और कलह; बुद्ध उन्हें राजा दिघीति की एक पुरानी कहानी सुनाते हैं, लेकिन कोई लाभ नहीं होता; बुद्ध असंतुष्ट होते हैं
10.3 अध्याय 3: बुद्ध कोसंबी में कलह को शांत करने पर प्रवचन देते हैं
10.4 अध्याय 4: बुद्ध कोसंबी संघ छोड़कर स्थान-स्थान पर भिक्षुओं को उपदेश देते हैं, फिर एकांत में एक जंगल में चले जाते हैं जहाँ एक हाथी उन्हें भोजन और पानी परोसता है
10.5 अध्याय 5: बुद्ध सावत्थी लौटते हैं, कोसंबी के लोग वहाँ भिक्षुओं की उपेक्षा करते हैं; कोसंबी भिक्षु सावत्थी आते हैं, क्षमा मांगते हैं और सद्भाव स्थापित होता है
10.6 अध्याय 6: सद्भाव की पुनर्स्थापना की घोषणा की वैधता के लिए शर्तें; नेतृत्व गुण

चुलवग्गा (लघु अपराध धारा)
(लघु खंड)
भिक्षुओं के शिष्टाचार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन, साथ ही संघ के भीतर किए जा सकने वाले अपराधों से निपटने के नियमों और प्रक्रियाओं का वर्णन।

चुलवग्ग में 12 अध्याय (या *खंडक*) *हैं:*
प्रथम खंडका (फटकार, अधीनता, निर्वासन, सुलह, निलंबन)
I. तज्जनिया कम्मा (निंदा का कार्य)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1.1 अध्याय 1: झगड़ालू भिक्षुओं के लिए प्रस्ताव, पांडुक और लोहितक के अनुयायी
1.2 अध्याय 2: तज्जनीय कर्म के लिए तीन विचार और उसकी विभिन्न शर्तें
1.3 अध्याय 3
1.4 अध्याय 4: भिक्षुओं के तीन प्रकार, उनके दायित्व, उनकी विफलताएँ आदि
1.5 अध्याय 5: दंडित भिक्षुओं के लिए 18 निषिद्ध कर्तव्य
1.6 अध्याय 6: पांडुक और लोहितक के अनुयायियों के लिए दंड निरस्तीकरण; निरस्तीकरण न होने की शर्तें
1.7 अध्याय 7
1.8 अध्याय 8: दंड निरस्तीकरण की प्रक्रिया
द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य) 1.9 अध्याय 9: मूर्ख भिक्षु सेय्यासक के गलत कार्य के लिए उसके विरुद्ध कार्रवाई; अधीनता में रखा गया
1.10 अध्याय 10
1.11 अध्याय 11: भिक्षु सेय्यासक ने स्वयं को सुधारा और रिहाई की मांग की; शर्तें वही हैं जो तज्जनिया कर्म में हैं
1.12 अध्याय 12
III. पब्बजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य) 1.13 अध्याय 13: कुकर्म के विरुद्ध प्रस्ताव आरंभ किया गया भिक्षु, असाजी के अनुयायी और किता हॉल के पुनाबासु
1.14 अध्याय 14: प्रस्ताव आरंभ करने की शर्तें
1.15 अध्याय 15
1.16 अध्याय 16: किता हॉल के भिक्षुओं द्वारा दंड का विरोध, निरस्तीकरण न करना
1.17 अध्याय 17
IV. पतिसरनिया-कर्म (मेल-मिलाप का कार्य) 1.18 अध्याय 18: भिक्षु सुधम्म को बुद्ध ने चित्त गृहस्थ से उनके मतभेद के लिए क्षमा मांगने को कहा
1.19 अध्याय 19
1.20 अध्याय 20: गृहस्थ अनुयायियों के प्रति किए गए गलत कार्यों के लिए
1.21 अध्याय 21

1.22 अध्याय 22: भिक्षु सुधम्म को चित्त गृहस्थ अनुयायी से क्षमा कैसे मांगनी चाहिए
1.23 अध्याय 23: चित्त गृहस्थ अनुयायी द्वारा भिक्षु सुधम्म को क्षमा किया गया
1.24 अध्याय 24
V. उक्खेपनिया-कम्मास (निलंबन के अधिनियम) 1.25 अध्याय 25: गलतियों को स्वीकार न करने पर चन्ना का निलंबन
1.26 अध्याय 26
1.27 अध्याय 27: निलंबन का प्रवर्तन
1.28 अध्याय 28: चन्ना का अधिकार बहाल हुआ और उसने निरस्तीकरण के लिए आवेदन किया
1.29 अध्याय 29
1.30 अध्याय 30
1.31 अध्याय 31: चन्ना के विरुद्ध पुनः कार्रवाई
VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण) 1.32 अध्याय 32: गलत सिद्धांत मानने के कारण भिक्षु अरित्था (पूर्व गिद्ध सताने वाला) के विरुद्ध कार्रवाई शुरू की गई
1.33 अध्याय 33
1.34 अध्याय 34: भिक्षु अरित्था को दंडित किया गया, संघ छोड़ दिया; लेकिन पुनः बहाल किया गया
1.35 अध्याय 35
द्वितीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 1)
(परिवीक्षा और प्रायश्चित)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

2.1 अध्याय 1: परिवीक्षा और तपस्या पर रहने वाले भिक्षुओं का आचरण
2.2 अध्याय 2: परिवीक्षा अवधि में व्यवधान
2.3 अध्याय 3: परिवीक्षा को स्थगित करना
2.4 अध्याय 4
2.5 अध्याय 5
2.6 अध्याय 6: परिवीक्षा पर रहने वाले भिक्षु द्वारा प्रतिदिन इस तथ्य की घोषणा करना
2.7 अध्याय 7: परिवीक्षा/अनुशासन में व्यवधान के चार तरीके
2.8 अध्याय 8
2.9 अध्याय 9
तृतीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 2)
(परिवीक्षा और प्रायश्चित - जारी)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

3.1 अध्याय 1: भिक्षु उदयी द्वारा अपराध (हस्तमैथुन का); स्वीकारोक्ति की विधि एवं प्रायश्चित
3.2 अध्याय 2: भिक्षु उदयी का पुनर्वास (हस्तमैथुन के अपराध के लिए)
3.3 अध्याय 3: भिक्षु उदयी द्वारा पुनः प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन का)
3.4 अध्याय 4
3.5 अध्याय 5: भिक्षु उदयी का पुनर्वास (हस्तमैथुन के अपराध के लिए)
3.6 अध्याय 6: भिक्षु उदयी द्वारा बार-बार अपराध (हस्तमैथुन का) करना, परन्तु 2-3-4-5 दिन छुपाना
3.7 अध्याय 7: भिक्षु उदयी द्वारा परिवीक्षा के दौरान पुनः अपराध (हस्तमैथुन का) करना; उनकी परिवीक्षा पुनः शुरू हुई
3.8 अध्याय 8: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - परिवीक्षा पुनः शुरू हुई
3.9 अध्याय 9
3.10 अध्याय 10: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - प्रायश्चित पुनः शुरू हुआ
3.11 अध्याय 11: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - प्रायश्चित पुनः शुरू हुआ
3.12 अध्याय 12: भिक्षु उदयी का पुनर्वास

3.13 अध्याय 13: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया, इसे एक महीने तक छिपाया - एक महीने की परिवीक्षा
3.14 अध्याय 14: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - 5 दिनों तक छिपाया - परिवीक्षा पुनः शुरू हुई
3.15 अध्याय 15: भिक्षु उदयी ने फिर से प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - 5 दिनों तक छिपे रहे - परिवीक्षा पुनः शुरू हुई और बढ़ाई गई
3.16 अध्याय 16
3.17 अध्याय 17: भिक्षु उदयी ने फिर से प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - चार दिनों तक छिपे रहे - बढ़ी हुई परिवीक्षा और प्रायश्चित पुनः शुरू हुआ
3.18 अध्याय 18: भिक्षु उदयी ने फिर से प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - पाँच दिनों तक छिपे रहे - बढ़ी हुई परिवीक्षा और प्रायश्चित पुनः शुरू हुआ
3.19 अध्याय 19: प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) के लिए भिक्षु उदयी का पुनर्वास
3.20 अध्याय 20: अनेक अपराधों के लिए योगात्मक परिवीक्षा
3.21 अध्याय 21: अनेक गुप्त अपराधों के लिए सबसे लंबी अवधि
3.22 अध्याय 22: लंबे समय तक छिपाना लंबी परिवीक्षा
3.23 अध्याय 23: अपराधों को छुपाना, स्मरण न होना, फिर याद आना
3.24 अध्याय 24: किसी अन्य अपराध के लिए अतिरिक्त परिवीक्षा
3.25 अध्याय 25: अपराधों को छुपाना, स्मरण न होना, फिर याद आना
3.26 अध्याय 26: अपराधों की डिग्री और अवधि के बारे में अनभिज्ञ होना, स्मरण न होना
3.27 अध्याय 27: परिवीक्षा के दौरान आदेश छोड़ना, मानसिक रूप से विक्षिप्त होना, रोगग्रस्त होना आदि और पुनः शामिल होने पर परिवीक्षा जारी रखना आवश्यक है
3.28 अध्याय 28: परिवीक्षा के दौरान अपराध करना
3.29 अध्याय 29: आदेश छोड़ने के बाद पुनः शामिल होना, छुपाना, छुपाना नहीं
3.30 अध्याय 30
3.31 अध्याय 31: आदेश छोड़ना, छुपाना इत्यादि। परिवीक्षा अवधि के दौरान
3.32 अध्याय 32: मठ त्यागना, छिपाव आदि, मन्नत पर रहते हुए अनेक अपराध
3.33 अध्याय 33: निश्चित, गैर-छिपा हुआ, समान, असमान, संबंधित आदि
3.34 अध्याय 34: दो भिक्षुओं के अपराध
3.35 अध्याय 35: गैरकानूनी कार्यवाही द्वारा पुनर्वास
3.36 अध्याय 36: कानूनी कार्यवाही द्वारा पुनर्वास

चौथा खंडका (विवाद)

(भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

4.1 अध्याय 1: आरोपी की अनुपस्थिति में सजा देना अनुमत नहीं है
4.2 अध्याय 2: जब किसी मामले को झूठा सही माना जाता है
4.3 अध्याय 3
4.4 अध्याय 4: प्रबुद्ध अरिहंत भिक्षु दब्बा मल्लियन पर व्यभिचार का गलत आरोप लगाया गया, बरी किया गया; दोषमुक्ति की शर्तें
4.5 अध्याय 5: पागलपन के दौरान किए गए अपराधों पर विचार नहीं किया जाएगा
4.6 अध्याय 6: अमान्य दोषमुक्ति
4.7 अध्याय 7: गैर-स्वीकारोक्ति के लिए कोई अधिनियम नहीं
4.8 अध्याय 8: दोषी स्वीकार किए जाने पर कृत्यों की अमान्यता
4.9 अध्याय 9: मतदान द्वारा लोकतांत्रिक रूप से निर्णयों का निपटारा
4.10 अध्याय 10: वैध और अवैध वोटों के 10 मामले
4.11 अध्याय 11: जब एक भिक्षु इनकार करता है और झूठ बोलता है
4.12 अध्याय 12: निर्लज्ज और अपवित्र भिक्षुओं के लिए तसपपीयसिका-कम्म की शर्तें

4.13 अध्याय 13: तिनवत्थरका (घास से ढकना) के मामले
4.14 अध्याय 14: विवादों का विस्तृत निपटारा, जूरी की नियुक्ति और मतदान के तरीके

पांचवां खंडका (दैनिक जीवन)

(भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

5.1 अध्याय 1: स्नान करते समय, लकड़ी या खंभे से रगड़ना मना है। केवल बहुत बूढ़े लोगों को ही रगड़ने की अनुमति है।
5.2 अध्याय 2: मेकअप न करें, हार न पहनें, चूड़ियाँ न पहनें, अंगूठियाँ न पहनें, चेहरे पर रंग न लगाएँ, लंबे बाल न रखें, शीशा न लगाएँ, नृत्य/गायन न देखें।
5.3 अध्याय 3: धम्म गायन मना है, मंत्रोच्चार मना है।
5.4 अध्याय 4: ऊनी वस्त्र और लंबे ऊनी कपड़े पहनना मना है।
5.5 अध्याय 5: भिक्षुओं द्वारा तोड़े गए आम; आम वर्जित हैं; फिर फल ग्रहण करने के 5 तरीके अनुमत हैं।
5.6 अध्याय 6: साँप के काटने से निकले खून को निकालना अनुमत है। सभी विचित्र प्राणियों के प्रति करुणा फैलाने के लिए
5.7 अध्याय 7: बधियाकरण निषिद्ध
5.8 अध्याय 8: पिंडोला भारद्वाज ने वायु में आरोहण और कटोरा लेकर चमत्कार दिखाया; बुद्ध ने जादुई शक्तियों के सार्वजनिक प्रदर्शन की मनाही की
5.9 अध्याय 9: सोने, चांदी आदि महंगी सामग्रियों के कटोरे निषिद्ध हैं, केवल मिट्टी और लोहे के कटोरे ही अनुमत हैं; कटोरे की देखभाल
5.10 अध्याय 10: भिक्षा के लिए पानी के पात्र न ले जाएं, खोपड़ी को कटोरे के रूप में इस्तेमाल न करें, अपशिष्ट के लिए कटोरे का उपयोग न करें
5.11 अध्याय 11: वस्त्रों की सिलाई; कपड़ा काटने के लिए केवल साधारण ब्लेड का उपयोग, सुई का उपयोग अनुमत है
5.12 अध्याय 12: सुई, दवाइयाँ आदि ले जाने के लिए थैलों का उपयोग अनुमत है
5.13 अध्याय 13: पानी छानने वाले यंत्र और मच्छरदानी का उपयोग
5.14 अध्याय 14: बंद स्नानघर और स्नानघर का उपयोग, उनका विवरण
5.15 अध्याय 15: स्नानघर: स्नान करते समय नग्न अवस्था में निषिद्ध कार्य
5.16 अध्याय 16 स्नानघर: कपड़े टांगने के लिए खंभे और रस्सी का उपयोग अनुमत है; कुआँ अनुमत है
5.17 अध्याय 17: स्नान के लिए पूल और टैंक का उपयोग
5.18 अध्याय 18: फूलों पर सोना निषिद्ध है; इत्र और फूल केवल अभिवादन के लिए अनुमत हैं, पहनने के लिए नहीं
5.19 अध्याय 19: सजावटी दीवान निषिद्ध हैं; कई भिक्षुओं को एक ही कटोरा, एक ही बिस्तर, एक ही चटाई का उपयोग नहीं करना चाहिए
5.20 अध्याय 20: प्रबुद्ध भिक्षु डब्बा पर एक गृहस्थ अनुयायी की पत्नी के साथ व्यभिचार का झूठा आरोप लगाया गया; बरी; बुद्ध ने गृहस्थ के लिए कटोरा नीचे किया; फिर स्वीकारोक्ति करने पर सीधा किया गया
5.21 अध्याय 21: राजा द्वारा बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित किया गया; गलत प्रथा के रूप में कपड़ों पर चलने से इनकार किया; कुछ शर्तें अनुमत हैं
5.22 अध्याय 22: छोटे जार, झाड़ू अनुमत; मिट्टी के पैर रगड़ने वाले निषिद्ध; पैर रगड़ने वाले, पंखे, फूलदान की अनुमत सूची
5.23 अध्याय 23: मच्छर पंखा अनुमत है; चूमारा मक्खी भगाने वाला निषिद्ध। बीमार के लिए धूप से बचाव की अनुमति है
5.24 अध्याय 24: भिक्षु को छड़ी नहीं रखनी चाहिए; केवल बीमार भिक्षु ही कर सकते हैं
5.25 अध्याय 25: चिंतनशील
5.26 अध्याय 26: भोजन करते समय भोजन न गिराएं
5.27 अध्याय 27: एक महिला एक भिक्षु (लंबे नाखूनों वाले) से यौन संबंध बनाने का अनुरोध करती है; इनकार किया जाता है; खुद को खरोंचती है; पकड़ी जाती है; लंबे नाखून वर्जित, बाल हटाना; स्वच्छता
5.28 अध्याय 28: संचय न करें
5.29 अध्याय 29: भिक्षुओं को उचित वस्त्र धारण करना चाहिए
अध्याय 30: दोहरा पिंगो (जुए जैसा) वर्जित है
। अध्याय 31: टूथब्रश/छड़ी की अनुमति है
। अध्याय 32: जंगल में आग लगाना मना है; जवाबी आग की अनुमति है; पेड़ों पर चढ़ना, कूदना खतरे की स्थिति को छोड़कर वर्जित है

। अध्याय 33: संस्कृत वर्जित है; केवल लोगों की अपनी बोली की अनुमति है; निम्न कलाएँ, जैसे कि भविष्यवाणियाँ, मंत्र, शगुन, ज्योतिष, देवताओं को बलि देना, जादू टोना आदि वर्जित हैं
। अध्याय 34: दवा के रूप में उपयोग को छोड़कर प्याज खाना वर्जित है
। अध्याय 35: पेशाब करने के लिए अलग स्थान निर्धारित करना आवश्यक है
। अध्याय
36: पीतल के बर्तन हथियारों को छोड़कर वर्जित हैं; मिट्टी के बर्तन वर्जित हैं।

छठा खंडका (आवास और फर्नीचर)

(आवासों और फर्नीचर पर)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

6.1 अध्याय 1: एक धनी व्यक्ति भिक्षुओं के लिए आवास बनाता है; अनुमत आवासों की सूची
6.2 अध्याय 2: अनुमत खिड़कियाँ, कीड़ों से बचाव के लिए पर्दे; विभिन्न प्रकार के फर्नीचर की अनुमति
6.3 अध्याय 3: दीवारों पर प्लास्टर करना, सफेदी करना, रंगाई करना, सेवा कक्ष, भंडार कक्ष, अग्नि स्थान, बाड़ लगाना, छत बनाना
6.4 अध्याय 4: अनाथपिंडिका शिष्य बनता है - संघ के लिए सोने के मूल्य से भरा निवास खरीदता है
6.5 अध्याय 5: वैशाली में आवासों
का निर्माण 6.6 अध्याय 6: सावत्थी में आवासों पर कब्जा
6.7 अध्याय 7: अस्थायी स्थानों का उपयोग
6.8 अध्याय 8: गृहस्थों के घरों में बैठने के लिए गद्देदार सोफे और कुर्सियों की अनुमति
6.9 अध्याय 9: संघ को जेतवन मठ का समर्पण
6.10 अध्याय 10: भोजन समाप्त होने से पहले भिक्षु को उठने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए
6.11 अध्याय 11: आवास स्थानों का आवंटन; भिक्षुओं को बलपूर्वक निष्कासित न किया जाए
6.12 अध्याय 12: एक भिक्षु एक से अधिक आवास स्थान न ले
6.13 अध्याय 13: लंबी चौकी पर बैठना
6.14 अध्याय 14
6.15 अध्याय 15: भिक्षुओं द्वारा सोने के स्थानों पर कब्जा करना; पाँच अहस्तांतरणीय संपत्तियाँ
6.16 अध्याय 16: किता हॉल में भिक्षुओं द्वारा रहने के स्थानों पर कब्जा करना; पाँच अहस्तांतरणीय संपत्तियाँ
6.17 अध्याय 17: आवासों का आवंटन
6.18 अध्याय 18: गृहस्थ शिष्यों की वस्तुओं का उपयोग
6.19 अध्याय 19: अनुमत फर्नीचर के बदले महंगी वस्तुओं का आदान-प्रदान
6.20 अध्याय 20: गीले पैरों से चटाई पर चलना, फर्श पर थूकना, फर्श को ढकना वर्जित है
6.21 अध्याय 21: अकाल के समय भोजन का राशनिंग

सातवां खंडक (विवाद)

(विधानसभा में मतभेद)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

7.1 अध्याय 1: राजा भद्दिया, अनुरुद्ध, देवदत्त आदि बुद्ध के कुलीन परिवार से (भाई/चचेरे भाई) अपने नाई उपाली के साथ संघ में शामिल होते हैं।
7.2 अध्याय 2: भिक्षु देवदत्त (बुद्ध के भाई) स्वार्थ और सम्मान के लिए राजकुमार अजातसत्तु को जादू से प्रभावित करते हैं।
7.3 अध्याय 3: देवदत्त राजकुमार अजातसत्तु को अपने पिता, राजा की हत्या करने के लिए प्रेरित करते हैं; असफल; बुद्ध को कई तरीकों से मारने का प्रयास करते हैं; असफल;
7.4 अध्याय 4: देवदत्त विभाजन पैदा करते हैं और 500 भिक्षुओं को अपने साथ ले जाते हैं; सारिपुत्त और मोगल्लाना उन भिक्षुओं को वापस लाते हैं।
7.5 अध्याय 5: उपाली को संघ में फूट और विभाजन के बारे में उपदेश देना।

आठवां खंडक (एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

(भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

8.1 अध्याय 1: नए भिक्षुओं का आचरण
8.2 अध्याय 2: नए भिक्षुओं के प्रति निवासी भिक्षुओं का आचरण
8.3 अध्याय 3: जाने वाले भिक्षुओं का आचरण
8.4 अध्याय 4: भोजन, सैर और भिक्षा के समय भिक्षुओं का आचरण
8.5 अध्याय 5: भिक्षा मांगते हुए एक भिक्षु ने एक नग्न स्त्री को देखा; घरों में प्रवेश करते समय और भिक्षा मांगते समय भिक्षुओं का आचरण
8.6 अध्याय 6: वन में रहने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण नियम
8.7 अध्याय 7: भिक्षुओं के लिए आवास नियमों
8.8 अध्याय 8: गर्म स्नान के लिए आचरण नियम
8.9-8.14 अध्याय 9-14

नौवां खंडका (पतिमोक्खा विधानसभा से बहिष्कार)

(पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार के संबंध में)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

9.1 अध्याय 1: बुद्ध अपवित्र सभा को समझते हैं; मोगल्लाना मन पढ़कर गलत व्यक्ति को सभा से निकालते हैं; पश्चात्ताप पर महान प्रवचन
9.2 अध्याय 2: केवल शुद्ध सभा से पहले पतिमोक्खा
9.3 अध्याय 3: पतिमोक्खा के लिए दस प्रकार के निषेध
9.4 अध्याय 4: उपाली को; किसी भी मामले का संचालन करने की 5 शर्तें
9.5 अध्याय 5: उपाली को; अन्य भिक्षुओं को चेतावनी देने के विषय

दसवां खंडका (भिक्षुणियों के कर्तव्य)

(भिक्खुनियों के कर्तव्य)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

10.1 अध्याय 1: रानी, गौतम बुद्ध की पालक माता, गौतमी ने त्याग किया; अपने और महिलाओं के लिए शिष्यत्व की विनती की
10.2 अध्याय 2: रानी माता गौतमी और अन्य कुलीन महिलाओं को शिष्य के रूप में पुष्ट किया गया
10.3 अध्याय 3: बुद्ध ने महिला शिष्यों के समक्ष भिक्षुओं के प्रणाम करने की अनुमति नहीं दी
10.4 अध्याय 4: रानी माता गौतमी ने गौतम बुद्ध से भिक्षुओं के नियमों की भिक्षुणियों पर प्रयोज्यता के बारे में पूछा
10.5 अध्याय 5: रानी माता गौतमी ने गौतम बुद्ध से संक्षेप में धम्म के बारे में पूछा
10.6 अध्याय 6: भिक्षुणियों के अनुशासन, पतिमोक्खा, स्वीकारोक्ति और उपवास की प्रक्रियाएँ निर्धारित की गईं
10.7 अध्याय 7: भिक्षुणियों में कलह और समाधान की विधि
10.8 अध्याय 8: भिक्षु भिक्षुणियों को विनय सिखा सकते हैं
10.9 अध्याय 9: आकर्षण और प्रलोभन की अनुमति नहीं; दंड; प्रवचनों में भाग लेना
10.10 अध्याय 10: निषिद्ध वस्त्र; ननों की मालिश निषिद्ध; ननों के लिए मेकअप, मलहम, रंग लगाना निषिद्ध; गायन, नृत्य आदि भी निषिद्ध
10.11 अध्याय 11: मृत्यु के बाद नन की वस्तुएं नन संघ को जानी चाहिए
10.12 अध्याय 12: नन द्वारा भिक्षु पर हमला/आक्रमण न करना
10.13 अध्याय 13: नन द्वारा महिला के भ्रूण को ले जाना निषिद्ध
10.14 अध्याय 14

10.15 अध्याय 15: भोजन साझा करना
10.16 अध्याय 16: पाठ्यक्रम वाली ननों के लिए वस्त्र
10.17 अध्याय 17: ननों को दीक्षा देने के लिए प्रश्नावली; उनकी अयोग्यताएं; स्वीकारोक्ति
10.18 अध्याय 18: भोजन कक्ष में ननों के लिए बैठने की व्यवस्था
10.19 अध्याय 19: ननों को पवाराना का भी पालन करना होगा
10.20 अध्याय 20: ननों को भिक्षुओं को अनुशासित नहीं करना चाहिए
10.21 अध्याय 21: वाहन वर्जित हैं; केवल बीमारों के लिए अनुमत हैं
10.22 अध्याय 22: नन का दीक्षा संस्कार केवल अनुभवी नन द्वारा दूत के रूप में अनुमत है
10.23 अध्याय 23: वन में ननों का उल्लंघन; ननों के लिए वन जीवन वर्जित है
10.24 अध्याय 24: ननों के लिए निवास स्थान
10.25 अध्याय 25: गर्भवती महिला दीक्षा के लिए आई; प्रसव के बाद, उनकी देखभाल के लिए एक नन को नियुक्त किया जाएगा
10.26 अध्याय 26: भगोड़ों को वापस नहीं लिया जा सकता
10.27 अध्याय 27: ननों के लिए स्नान और अन्य अनुशासन नियम
ग्यारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद राजगृह परिषद)
(राजगृह परिषद पर)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

11.1 अध्याय 1: बुद्ध का संसार त्याग; महा कस्सपा द्वारा सभा का आह्वान; उपली और आनंद से प्रश्नोत्तर; अभिलेख एवं स्मरण के लिए सूत्रों का पाठ
बारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद वेशालि परिषद)
(वैशाली की परिषद पर)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

12.1 अध्याय 1: बुद्ध के निधन के सौ वर्ष बाद; नियमों का उल्लंघन; सोना-चांदी का लेन-देन; यासा द्वारा निषिद्ध प्रथाओं का निषेध
12.2 अध्याय 2: वैशाली के पूर्वी भिक्षु सोना-चांदी स्वीकार करने जैसी गलत प्रथाओं को स्वीकार्य बनाने का प्रयास

टिपिटक >> विनय पिटक >> **निदान**

यह अनुवाद टी.डब्ल्यू.आर.हिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किया गया है।

परम पवित्र और पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान बुद्ध को प्रणाम।

पतिमोक्खा

1. निदान (परिचय)

हे आदरणीय महोदय, कृपया मेरी बात सुनें!

आज पूर्णिमा या अमावस्या का पवित्र दिन है, अर्धमाह का पंद्रहवाँ दिन। यदि चैप्टर को उचित लगे, तो वह उपोसथा का आयोजन करे और पतिमोक्खा का पाठ करे। संघ की बैठक की पूर्व-प्राधि के संबंध में क्या स्थिति है? आदरणीय भाई अपनी पवित्रता की घोषणा करें, और मैं पतिमोक्खा का पाठ करूँगा! हम सब सहर्ष ध्यानपूर्वक सुनेंगे और सुनेंगे!

जिसने भी कोई गलती की हो, वह उसे स्वीकार करे! यदि कोई गलती न हुई हो तो चुप रहना ही उचित है!

हे पूज्यवर, आपके मौन से ही मुझे पता चलेगा कि आप शुद्ध हैं या नहीं। जैसे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अवश्य होता है, वैसे ही इस सभा में प्रत्येक प्रश्न तीन बार पूछा जाता है। यदि कोई भिक्षु तीन बार प्रश्न पूछे जाने के बाद जानबूझकर अपने द्वारा किए गए किसी दोष को स्वीकार न करे, तो वह जानबूझकर झूठ बोलने का दोषी है। हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध ने जानबूझकर झूठ बोलना आध्यात्मिक प्रगति के लिए हानिकारक बताया है। इसलिए, यदि कोई दोष हो, तो उसे उस भिक्षु को स्वीकार करना चाहिए जो उसे याद रखता है और उससे मुक्ति पाना चाहता है। क्योंकि दोष स्वीकार करने पर वह उसके लिए दंड बन जाता है।

आदरणीय महोदय, अब प्रस्तावना का पाठ किया जाता है।

अत: मैं आप आदरणीय महोदय से यह प्रश्न पूछता हूँ, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैं आपसे दूसरी बार पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैं तीसरी बार आपसे पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

इस मामले में आदरणीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

निदान (प्रस्तावना) का पाठ यहीं समाप्त होता है।

टिपिटक >> विनय पिटक >> **पारजिका धम्म**

थानिसारो भिक्कू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 11. पारजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
  - 1.1भिक्षुओं के नियम
    - 1.1.1पराजिका ने स्कैन किया 1
    - 1.1.2पराजिका ने स्कैन किया 2
    - 1.1.3पराजिका ने 3 स्कैन किए
    - 1.1.4पराजिका ने 4 स्कैन किए
    - 1.1.5पराज़िका सारांश
  - 1.2भिक्खुनी दिवालियापन का सारांश

1. पारजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
संघ से निष्कासन के नियम

Bhikkus Rules

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

विस्तृत परजिका: फ़ाइल:वीएन-पीएम-पराजिका-एम 1.पीडीएफ , फ़ाइल:वीएन-पीएम-पराजिका-एम 2.पीडीएफ

पराजिका ने स्कैन किया 1

स्कैन की गई पराजिका 1 का लिंक

पराजिका ने स्कैन किया 2

स्कैन की गई पराजिका 2 का लिंक

पराजिका ने 3 स्कैन किए

स्कैन की गई परजिका 3 का लिंक

पराजिका ने 4 स्कैन किए

स्कैन की गई परजिका 4 का लिंक

पराजिका सारांश
यहां पर उन चार नियमों का पाठ किया जाता है, जो उन कृत्यों से संबंधित हैं जो पराजय का कारण बनते हैं और निष्कासन की आवश्यकता होती है।

1. यदि कोई भिक्षु—भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका में भाग लेते हुए, प्रशिक्षण का त्याग किए बिना, अपनी कमजोरी को स्वीकार किए बिना—यौन संबंध में संलग्न होता है, यहाँ तक कि किसी मादा पशु के साथ भी, तो वह पराजित हो जाता है और अब भिक्षु संघ से संबद्ध नहीं रहता।

2. यदि कोई भिक्षु, चोरी माने जाने वाले कार्य में, किसी आबादी वाले क्षेत्र या जंगल से कोई ऐसी वस्तु ले ले जो उसे नहीं दी गई हो — ठीक वैसे ही जैसे कोई राजा किसी अपराधी को पकड़कर उसे कोड़े मारता, कैद करता या देश निकाला देता है और कहता है, "तुम लुटेरे हो, तुम मूर्ख हो, तुम अज्ञानी हो, तुम चोर हो" — तो वही भिक्षु भी ऐसी वस्तु लेने पर पराजित हो जाता है और उसका भिक्षु संघ से संबंध समाप्त हो जाता है।

3. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी मनुष्य को जीवन से वंचित करे, या उसके लिए हत्यारा ढूंढे, या मृत्यु के लाभों का गुणगान करे, या उसे मरने के लिए उकसाए (यह कहते हुए): "हे मेरे भले मनुष्य, इस दुष्ट, दयनीय जीवन का तुम्हारे लिए क्या उपयोग है? जीवन से मृत्यु तुम्हारे लिए बेहतर होगी," या इस विचार या उद्देश्य से विभिन्न तरीकों से मृत्यु के लाभों का गुणगान करे या उसे मरने के लिए उकसाए, तो वह भी पराजित हो जाता है और भिक्षु संघ से विमुख हो जाता है।

4. यदि कोई भिक्षु प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना, अपने भीतर श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, सच्चे श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि का दावा करते हुए कहे, "मैं इस प्रकार जानता हूँ; मैं इस प्रकार देखता हूँ," और चाहे बाद में उससे पूछताछ की जाए या न की जाए, वह पश्चाताप करते हुए और शुद्धि की इच्छा रखते हुए कह सकता है, "मित्रों, न जानते हुए भी मैंने कहा कि मैं जानता हूँ; न देखते हुए भी मैंने कहा कि मैं देखता हूँ - व्यर्थ, झूठ, व्यर्थ ही," जब तक कि यह अतिशयोक्ति के कारण न हो, वह भी पराजित हो जाता है और अब भिक्षु संघ से संबद्ध नहीं रहता।

आदरणीय महोदय, पराजय की चार अवस्थाओं का पाठ किया जा चुका है, जिनमें से किसी एक अवस्था में भी भिक्षु के अपंग हो जाने पर उसे अन्य भिक्षुओं के साथ सहवास करने की अनुमति नहीं रहती। पहले जैसा था, वैसा ही पराजय प्राप्त है; वह भिक्षुओं के साथ सहवास में नहीं रह सकता।

उनके संबंध में मैं आदरणीय व्यक्तियों से पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

इस मामले में आदरणीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

यहां पर पराजिका नियमों का पाठ समाप्त होता है, जो पराजय का कारण बनते हैं और निष्कासन की मांग करते हैं।

भिक्खुनी नियमों का सारांश
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

भिक्कुनि परजिका: फ़ाइल: परजिका-एफ.पीडीएफ

---

1. यदि कोई भिक्षुणी स्वेच्छा से यौन संबंध बनाती है, भले ही वह नर पशु के साथ हो, तो वह पराजित हो जाती है और अब भिक्षुणी संघ से बाहर हो जाती है।

2. यदि कोई भिक्षुणी, चोरी माने जाने वाले कार्य में, किसी आबादी वाले क्षेत्र या जंगल से कोई ऐसी वस्तु ले ले जो उसे नहीं दी गई हो — ठीक वैसे ही जैसे कोई भिक्षुणी किसी ऐसी वस्तु को लेने पर, जिसे उसे नहीं दी गई हो, उसे कोड़े मारती, कैद करती या देश निकाला देती है, यह कहते हुए, "तुम लुटेरी हो, तुम मूर्ख हो, तुम अज्ञानी हो, तुम चोर हो" — तो उसी प्रकार कोई भिक्षुणी जो उसे नहीं दी गई हो, वह पराजित हो जाती है और भिक्षुणी संघ से विमुख हो जाती है।

3. यदि कोई भिक्षुणी जानबूझकर किसी मनुष्य को मृत्युदंड दे, या उसके लिए हत्यारा ढूंढे, या मृत्यु के लाभों का गुणगान करे, या उसे यह कहकर मरने के लिए उकसाए, "हे मेरे भले मनुष्य, इस दुष्ट, दुखमय जीवन का तुम्हारे लिए क्या उपयोग है? जीवन से मृत्यु तुम्हारे लिए बेहतर होगी," या इस तरह के विचार या उद्देश्य से विभिन्न तरीकों से मृत्यु के लाभों का गुणगान करे या उसे मरने के लिए उकसाए, तो वह भी पराजित हो जाती है और भिक्षुणी से संबंध समाप्त हो जाता है।

4. यदि कोई भिक्षुणी प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना, अपने भीतर श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, सच्चे श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि का दावा करते हुए कहे, "मैं इस प्रकार जानती हूँ; मैं इस प्रकार देखती हूँ," और बाद में चाहे उससे पूछताछ की जाए या न की जाए, पश्चाताप और शुद्धि की इच्छा से वह कहे, "देवियों, न जानते हुए भी मैंने कहा कि मैं जानती हूँ; न देखते हुए भी मैंने कहा कि मैं देखती हूँ - व्यर्थ, झूठ, व्यर्थ ही," जब तक कि यह अतिशयोक्ति के कारण न हो, वह भी पराजित हो जाती है और अब भिक्षुणी नहीं रह जाती।

5. यदि कोई भिक्षुणी, कामुक अवस्था में, किसी कामुक पुरुष द्वारा कॉलरबोन के नीचे और घुटनों के घेरे के ऊपर रगड़ने, छूने, पकड़ने, स्पर्श करने या सहलाने की अनुमति देती है, तो वह भी पराजित हो जाती है और "घुटनों के घेरे के ऊपर" होने के कारण अब भिक्षुणी संघ से बाहर हो जाती है।

6. यदि कोई भिक्षुणी, यह जानते हुए कि (दूसरी) भिक्षुणी ने कोई ऐसा कार्य किया है जिससे उसे हार का सामना करना पड़ा है, न तो स्वयं उस पर आरोप लगाए और न ही समूह को सूचित करे, और फिर—चाहे वह (दूसरी भिक्षुणी) जीवित हो या मर गई हो, निष्कासित हो गई हो या किसी अन्य संप्रदाय में चली गई हो—वह (यह भिक्षुणी) कहे, "हे देवियों, मुझे पहले से ही इस भिक्षुणी के बारे में पता था कि 'यह बहन इस प्रकार की है,' और मैंने स्वयं उस पर आरोप नहीं लगाया और न ही समूह को सूचित किया," तो वह भी पराजित हो जाती है और "दोष छिपाने वाली" होने के कारण अब समूह से संबद्ध नहीं रहती।

7. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसे भिक्षु का अनुसरण करे जिसे धर्म, विनय और गुरु के निर्देशों के अनुसार संयुक्त भिक्षु समुदाय द्वारा निलंबित कर दिया गया हो, और जो अनादरपूर्ण व्यवहार करता हो, जिसने अपने पापों का प्रायश्चित न किया हो, और भिक्षुओं से मित्रता तोड़ ली हो, तो भिक्षुणियाँ उसे इस प्रकार समझाएँ: "हे देवी, उस भिक्षु को धर्म, विनय और गुरु के निर्देशों के अनुसार संयुक्त भिक्षु

समुदाय द्वारा निलंबित कर दिया गया है। वह अनादरपूर्ण व्यवहार करता है, उसने अपने पापों का प्रायश्चित नहीं किया है, और उसने भिक्षुओं से मित्रता तोड़ ली है। हे देवी, उसका अनुसरण न करें।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण पर अड़ी रहती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती, तो वह भी पराजित हो जाती है और "निलंबित (भिक्षु) की अनुयायी" होने के कारण अब भिक्षुणी संघ से बाहर हो जाती है।

8. यदि कोई भिक्षुणी, कामवासना में लीन होकर, किसी कामवासना में लीन पुरुष को अपना हाथ पकड़ने या अपने वस्त्र के किनारे को छूने की अनुमति दे, या उसके साथ खड़ी हो, उससे बातचीत करे, या उसके साथ किसी गुप्त स्थान में जाए, या उसके पास आने की अनुमति दे, या उसके साथ किसी गुप्त स्थान में प्रवेश करे, या उस अधार्मिक कार्य (शारीरिक संपर्क) के उद्देश्य से अपना शरीर उसे सौंप दे, तो वह भी पराजित हो जाती है और आठों कारणों से भिक्षुणी से संबंध समाप्त हो जाता है।

तिपिटक >> विनय पिटक >> **संघादिसेसा धम्म**

यह पाठ थानिसारो भिक्खू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित किया गया है।

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 12. संघदिशेष धम्म
  - 1.1भिक्षुओं के नियम
    - 1.1.1संघदिसेसा स्कैन की गई पुस्तक
    - 1.1.2संघदिसेसा सारांश
  - 1.2भिक्कुनी नियम

2. संघदिशेष धम्म
(गंभीर गलतियों के लिए नियम जिनके लिए संगठन की प्रारंभिक और बाद की बैठकों की आवश्यकता होती है)

भिक्षुओं के नियम

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

विस्तृत पाठ: फ़ाइल:VN-PM-Sanghadidesa-M.pdf

संघदिसेसा स्कैन की गई पुस्तक

स्कैन की गई संघदिसेसा पुस्तक का लिंक

संघदिसेसा सारांश

हे आदरणीय महोदय, यहाँ तेरह विषय और वे नियम प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो संघ की प्रारंभिक और बाद की बैठकों के लिए आवश्यक हैं।

1. सपने में वीर्यपात करने के अलावा, जानबूझकर वीर्यपात करने पर समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें होती हैं।

2. यदि कोई भिक्षु कामवासना से ग्रस्त होकर, परिवर्तित मन से, किसी स्त्री के साथ शारीरिक संपर्क स्थापित करे, या उसका हाथ पकड़े, उसके बालों की लट पकड़े, या उसके किसी अंग को स्पर्श करे, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना अनिवार्य है।

3. यदि कोई भिक्षु कामवासना से ग्रस्त होकर, विकृत मन से, किसी स्त्री से यौन संबंध का संकेत देते हुए, युवकों द्वारा युवतियों से कहे जाने वाले अश्लील शब्दों का प्रयोग करे, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें अनिवार्य होंगी।

4. यदि कोई भिक्षु, कामवासना से ग्रस्त होकर, विकृत मन से, किसी स्त्री की उपस्थिति में अपनी कामुकता को संतुष्ट करने की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार बोले: "बहन, यही सर्वोत्कृष्ट सेवा है, जो मेरे जैसे गुणी, उत्तम स्वभाव वाले ब्रह्मचारी अनुयायी की इस कार्य से सेवा करना है" - यौन संबंध का संकेत देते हुए - तो इससे समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें रद्द हो जाएंगी।

5. यदि कोई भिक्षु किसी पुरुष के इरादे किसी स्त्री को या किसी स्त्री के इरादे किसी पुरुष को बताता है, विवाह या प्रेम संबंध का प्रस्ताव रखता है - भले ही वह क्षणिक संबंध के लिए ही क्यों न हो - तो इसमें समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें शामिल होती हैं।

6. जब कोई भिक्षु अपने स्वयं के भीख मांगने से अर्जित धन से, बिना किसी संरक्षक के और अपने लिए ही, कुटिया बनवा रहा हो, तो उसे मानक माप के अनुसार बनवाना चाहिए। यहाँ मानक माप यह है: सुगत स्पैन की लंबाई (बाहरी माप) बारह स्पैन और आंतरिक चौड़ाई (आंतरिक माप) सात स्पैन। भिक्षुओं को एकत्रित होकर स्थान निर्धारित करना चाहिए। भिक्षुओं द्वारा निर्धारित स्थान अशांति रहित और पर्याप्त स्थान वाला होना चाहिए। यदि भिक्षु अपने ही भीख मांगने से अर्जित धन से अशांति वाले और अपर्याप्त स्थान वाले स्थान पर कुटिया बनवाता है, या यदि वह स्थान निर्धारित करने के लिए भिक्षुओं को एकत्रित नहीं करता है, या यदि वह मानक माप का उल्लंघन करता है, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और अनुवर्ती बैठकें आयोजित करनी होंगी।

7. जब कोई भिक्षु किसी बड़े निवास का निर्माण करवा रहा हो—जिसका कोई प्रायोजक हो और जो उसके स्वयं के लिए नियत हो—तो उसे भिक्षुओं को एकत्रित करके स्थान का निर्धारण करना चाहिए। भिक्षुओं द्वारा निर्धारित स्थान अशांति रहित और पर्याप्त स्थान वाला होना चाहिए। यदि भिक्षु अशांतियुक्त और अपर्याप्त स्थान वाले स्थान पर बड़ा निवास बनवाता है, या यदि वह भिक्षुओं को एकत्रित करके स्थान का निर्धारण नहीं करता है, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और अनुवर्ती बैठकें आयोजित करनी होंगी।

8. यदि कोई भिक्षु—भ्रष्ट, द्वेषी, असंतुष्ट—किसी भिक्षु पर निराधार आरोप लगाकर उसे पराजित करने का प्रयास करे, (यह सोचकर), "शायद मैं उसे इस ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख कर दूँ," तो चाहे बाद में उससे पूछताछ की जाए या न की जाए, यदि आरोप निराधार है और भिक्षु अपना द्वेष स्वीकार करता है, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी।

9. यदि कोई भिक्षु—भ्रष्ट, द्वेषी, असंतुष्ट—किसी मुद्दे के किसी अन्य पहलू का मात्र बहाना बनाकर, किसी भिक्षु पर ऐसा मुकदमा चलाता है जिससे उसकी हार निश्चित हो, (यह सोचकर), "शायद मैं उसे इस ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख कर दूँ," तो चाहे बाद में उससे पूछताछ की जाए या न की जाए, यदि मुद्दा अन्यथा प्रासंगिक है, और वह पहलू मात्र बहाना है, और भिक्षु अपनी द्वेष भावना स्वीकार करता है, तो इसके परिणामस्वरूप समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें होंगी।

10. यदि कोई भिक्षु एकजुट समुदाय में फूट डालने का प्रयास करे, या फूट उत्पन्न करने वाले किसी मुद्दे को उठाने पर अड़ा रहे, तो भिक्षुओं को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे पूज्यवर, एकजुट समुदाय में फूट डालने का प्रयास न करें और न ही फूट उत्पन्न करने वाले किसी मुद्दे को उठाने पर अड़े रहें। पूज्यवर समुदाय से मेल-मिलाप कर लें, क्योंकि एक एकजुट समुदाय सौहार्दपूर्ण संबंधों के साथ, बिना किसी विवाद के, एक साथ पाठ करते हुए शांति से निवास करता है।"

और यदि भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी वह भिक्षु पहले की तरह ही अपने आचरण पर अडिग रहे, तो भिक्षुओं को उसे तीन बार तक फटकार लगानी चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार लगने के बाद भी वह रुक जाए, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकता है, तो इसके परिणामस्वरूप समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें होंगी।

11. यदि कोई भिक्षु—एक, दो या तीन—जो उस भिक्षु के अनुयायी और समर्थक हों, कहें, “हे आदरणीय महोदय, उस भिक्षु को किसी भी प्रकार से फटकार न लगाएँ। वह धम्म का उपदेशक है। वह विनय का उपदेशक है। वह हमारी सहमति और स्वीकृति से कार्य करता

है। वह जानता है, वह हमारी ओर से बोलता है, और यह हमें प्रसन्न करता है," तो भिक्षुओं को उन्हें इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे आदरणीय महोदय, ऐसा न कहें। वह भिक्षु न तो धम्म का उपदेशक है और न ही विनय का उपदेशक। हे आदरणीय महोदय, समुदाय में फूट का समर्थन न करें। आदरणीय व्यक्तियों का मन समुदाय के साथ सामंजस्य स्थापित करे, क्योंकि सौहार्दपूर्ण संबंधों वाला, बिना किसी विवाद के, एक समान पाठ के साथ एकजुट समुदाय शांति से निवास करता है।"

और यदि भिक्षुओं द्वारा चेतावनी दिए जाने के बावजूद वे पहले की तरह ही अपना आचरण जारी रखते हैं, तो भिक्षुओं को उन्हें तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वे रुक जाएँ। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वे रुक जाते हैं, तो यह अच्छी बात है। यदि वे नहीं रुकते हैं, तो इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी।

12. यदि कोई भिक्षु स्वभाव से उपदेश देने में कठिन हो—जो भिक्षुओं द्वारा (पाटिमोक्खा) पाठ में शामिल प्रशिक्षण नियमों के संदर्भ में उचित उपदेश दिए जाने पर, स्वयं को उपदेश के लिए अनुपयुक्त बना ले, (यह कहते हुए) "हे पूज्यवरों, मुझसे कुछ भी अच्छा या बुरा न कहें; और मैं भी पूज्यवरों से कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं कहूंगा। हे पूज्यवरों, मुझे उपदेश देना बंद करें"—तो भिक्षुओं को उसे इस प्रकार उपदेश देना चाहिए: "हे पूज्यवर स्वयं को उपदेश के लिए अनुपयुक्त न बनाएं। हे पूज्यवर स्वयं को उपदेश के लिए उपयुक्त बनाएं। हे पूज्यवर भिक्षुओं को उचित उपदेश दें, और भिक्षु हे पूज्यवर को उचित उपदेश दें; क्योंकि इसी प्रकार भगवान बुद्ध के अनुयायियों का पोषण होता है: पारस्परिक उपदेश और पारस्परिक पुनर्वास के माध्यम से।"

और यदि भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी वह भिक्षु पहले की तरह ही अपने आचरण पर अडिग रहे, तो भिक्षुओं को उसे तीन बार तक फटकार लगानी चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार लगने के बाद भी वह रुक जाए, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकता है, तो इसके परिणामस्वरूप समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें होंगी।

13. यदि कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर रहकर परिवारों को भ्रष्ट करता है, भ्रष्ट आचरण करता है—जिसका भ्रष्ट आचरण सबके सामने है और जिन परिवारों को उसने भ्रष्ट किया है, वे भी सबके सामने हैं—तो भिक्षुओं को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे पूज्यवर, आप परिवारों को भ्रष्ट करते हैं, भ्रष्ट आचरण करते हैं। आपका भ्रष्ट आचरण सबके सामने है और जिन परिवारों को आपने भ्रष्ट किया है, वे भी सबके सामने हैं। हे पूज्यवर, इस मठ को छोड़ दीजिए। आपका यहाँ रहना अब और नहीं चलेगा।"

और यदि वह भिक्षु, भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर, भिक्षुओं के बारे में कहे, "भिक्षु पक्षपात करते हैं, घृणा करते हैं, भ्रम में रहते हैं, भय में रहते हैं, क्योंकि इस प्रकार के अपराध के लिए वे कुछ को निष्कासित करते हैं और दूसरों को नहीं," तो भिक्षु उसे इस प्रकार चेतावनी दें: "हे पूज्यवर, ऐसा न कहें। भिक्षु पक्षपात नहीं करते, घृणा नहीं करते, भ्रम में नहीं रहते, भय में नहीं रहते। हे पूज्यवर, आप परिवारों को भ्रष्ट करने वाले, भ्रष्ट आचरण वाले व्यक्ति हैं। आपका भ्रष्ट आचरण सबके सामने है, और जिन परिवारों को आपने भ्रष्ट किया है, वे भी सबके सामने हैं। हे पूज्यवर, इस मठ को छोड़ दें। आपका यहाँ रहना अब और नहीं चलेगा।"

और यदि भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी वह भिक्षु पहले की तरह ही अपने आचरण पर अडिग रहे, तो भिक्षुओं को उसे तीन बार तक फटकार लगानी चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार लगने के बाद भी वह रुक जाए, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकता है, तो इसके परिणामस्वरूप समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें होंगी।

आदरणीय महोदय, तेरह ऐसे मामले जिनका प्रारंभिक और परवर्ती दोनों चरणों में संघ की औपचारिक बैठकों की आवश्यकता होती है, उनका उल्लेख किया जा चुका है; नौ ऐसे मामले जो तुरंत अपराध बन जाते हैं, और चार ऐसे मामले जो तीसरी चेतावनी तक पूरे नहीं होते।

यदि किसी भिक्षु ने इनमें से कोई भी अपराध किया हो, तो जितने दिन वह जानबूझकर अपने पाप को छुपाता है, उतने दिनों तक उसे, अपनी इच्छा के विरुद्ध भी, परीक्षा में रहना होगा। परीक्षा समाप्त होने पर, उस भिक्षु को छह और दिनों तक मनत्ता (तपस्या) करनी होगी। तपस्या समाप्त होने पर, उस भिक्षु को ऐसे स्थान पर पुनः स्थापित किया जाना चाहिए जहाँ भिक्षुओं का समुदाय बीस सदस्यों का हो। यदि बीस से कम सदस्यों वाले भिक्षुओं का समुदाय, एक भी कम सदस्य होने पर भी, उस भिक्षु को पुनः स्थापित कर दे, तो उसे पुनः स्थापित नहीं किया जाएगा और वह समुदाय निंदनीय होगा। ऐसी स्थिति में यही उचित प्रक्रिया है।

उनके संबंध में मैं आदरणीय व्यक्तियों से पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

इस मामले में आदरणीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

संघदिशेषों के नियमों का पाठ यहीं समाप्त होता है, जो संघ की प्रारंभिक और बाद की बैठकों के लिए आवश्यक हैं।

भिक्कुनी नियम
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

भिक्कुनी संघादिसेसा: फ़ाइल: संघदिसेसा-एफ.पीडीएफ

---

1. यदि कोई भिक्षुणी किसी गृहस्थ, गृहस्थ के पुत्र, दास, श्रमिक या यहाँ तक कि किसी ध्यानमग्न भिक्षु के विरुद्ध मुकदमा शुरू करती है, तो ऐसी भिक्षुणी को अपराध के पहले कृत्य में पड़ते ही (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित की जाएंगी।

2. यदि कोई भिक्षुणी राजा, समुदाय, शासी परिषद, शासी समिति या शासी संघ से अनुमति प्राप्त किए बिना जानबूझकर मृत्युदंड प्राप्त किसी महिला चोर को उपसंपदा देती है (जब तक कि वह महिला अनुमेय न हो (अर्थात, पहले से ही किसी अन्य संप्रदाय में या अन्य भिक्षुणियों के साथ दीक्षित न हो) - तो ऐसी भिक्षुणी को भी, अपराध के पहले कृत्य में दोषी पाए जाने के तुरंत बाद (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित की जाएंगी।

3. यदि कोई भिक्षुणी अकेले गांवों में जाए, या अकेले नदी के दूसरे किनारे पर जाए, या अकेले रात बिताए, या अकेले अपने साथियों से पीछे रह जाए, तो ऐसी भिक्षुणी को भी, जैसे ही वह पहला अपराध करती है, (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी।

4. यदि कोई भिक्षुणी, उस समुदाय से अनुमति प्राप्त किए बिना जिसने यह कार्य किया है, और समुदाय की इच्छा जाने बिना, किसी ऐसी भिक्षुणी को पुनर्स्थापित करती है जिसे धम्म, विनय और गुरु के निर्देशों के अनुरूप सद्भावपूर्वक कार्य करने वाले समुदाय ने निलंबित कर दिया है: तो ऐसी भिक्षुणी को भी, प्रथम अपराध करते ही, (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें अनिवार्य होंगी।

5. यदि कोई भिक्षुणी कामुक अवस्था में किसी कामुक पुरुष के हाथ से मुख्य या गैर-मुख्य भोजन प्राप्त करके उसका सेवन या चबाती है, तो ऐसी भिक्षुणी को भी, अपराध के पहले कार्य में पड़ते ही, (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसमें समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें शामिल होंगी।

6. यदि कोई भिक्षुणी कहे, "तुम्हें क्या फर्क पड़ता है कि यह पुरुष कामुक है या नहीं, जब तुम कामुक नहीं हो? हे देवी, कृपया जो कुछ भी यह पुरुष दे रहा है - चाहे वह मुख्य भोजन हो या गौण भोजन - उसे अपने हाथ से ग्रहण करो और खाओ या चबाओ": तो ऐसी भिक्षुणी को भी, अपराध के पहले ही कार्य में पड़कर, (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना होगा।

7 [5]. यदि कोई भिक्षुणी किसी पुरुष के इरादे किसी स्त्री को या किसी स्त्री के इरादे किसी पुरुष को विवाह या प्रेम का प्रस्ताव देते हुए बताती है—भले ही क्षणिक संबंध के लिए ही क्यों न हो: तो ऐसी भिक्षुणी को भी, अपराध के पहले कृत्य में पड़ते ही (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसमें समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें शामिल होंगी।

8. यदि कोई भिक्षुणी—भ्रष्ट, द्वेषी, असंतुष्ट—किसी भिक्षुणी पर निराधार आरोप लगाकर उसे पराजित करे, (यह सोचकर), "शायद मैं उसे इस ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख कर दूँ," तो चाहे बाद में उससे पूछताछ की जाए या न की जाए, यदि आरोप निराधार है और भिक्षुणी अपनी घृणा स्वीकार करती है: तो ऐसी भिक्षुणी को भी, अपराध के पहले कृत्य में पड़ते ही, (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसमें समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें शामिल होंगी।

9 [9]. यदि कोई भिक्षुणी— भ्रष्ट, घृणास्पद, असंतुष्ट— किसी मुद्दे के किसी अन्य पहलू का मात्र एक चाल के रूप में उपयोग करते हुए, किसी भिक्षुणी पर हार का कारण बनने वाला मुकदमा चलाती है, (यह सोचकर), "शायद मैं उसे इस ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख कर दूँ,"

तो चाहे बाद में उससे जिरह की जाए या न की जाए, यदि मुद्दा अन्यथा प्रासंगिक है, और वह पहलू मात्र एक चाल के रूप में उपयोग किया गया है, और भिक्षुणी अपनी घृणा स्वीकार करती है: तो यह भिक्षुणी भी, जैसे ही वह अपराध के पहले कृत्य में पड़ जाती है, उसे (अस्थायी रूप से) निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसमें समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें शामिल होंगी।

10. यदि कोई भिक्षुणी क्रोधित और असंतुष्ट होकर कहे, "मैं बुद्ध का त्याग करती हूँ, मैं धम्म का त्याग करती हूँ, मैं संघ का त्याग करती हूँ, मैं प्रशिक्षण का त्याग करती हूँ। शाक्य पुत्री साध्वी कब से एकमात्र साध्वी हो गईं? अन्य साध्वी भी हैं जो विवेकशील, ईमानदार और प्रशिक्षण की इच्छुक हैं। मैं उनके साथ रहकर पवित्र जीवन का अभ्यास करूँगी," तो भिक्षुणियों को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे देवी, क्रोधित और असंतुष्ट होकर ऐसा मत कहो, 'मैं बुद्ध का त्याग करती हूँ, मैं धम्म का त्याग करती हूँ, मैं संघ का त्याग करती हूँ, मैं प्रशिक्षण का त्याग करती हूँ। शाक्य पुत्री साध्वी कब से एकमात्र साध्वी हो गईं? अन्य साध्वी भी हैं जो विवेकशील, ईमानदार और प्रशिक्षण की इच्छुक हैं। मैं उनके साथ रहकर पवित्र जीवन का अभ्यास करूँगी।'" आनंदित होइए, हे महिला। धम्म का भली-भांति वर्णन किया गया है। दुखों के उचित निवारण के लिए पवित्र जीवन का अनुसरण कीजिए।

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है।

11. यदि कोई भिक्षुणी किसी मामूली बात पर भी क्रोधित होकर, नाराज़ और असंतुष्ट होकर कहे, "भिक्षुणियाँ पक्षपात, घृणा, भ्रम और भय के कारण पक्षपात करती हैं," तो भिक्षुणियाँ उसे इस प्रकार समझाएँ: "हे देवी, मामूली बात पर भी क्रोधित होकर, नाराज़ और असंतुष्ट होकर ऐसा न कहें, 'भिक्षुणियाँ पक्षपात, घृणा, भ्रम और भय के कारण पक्षपात करती हैं। हो सकता है कि आप स्वयं पक्षपात, घृणा, भ्रम और भय के कारण पक्षपात करती हों।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है।

12. यदि भिक्षुणियाँ आपस में बंधी हुई हों, उनका आचरण भ्रष्ट हो, उनकी प्रतिष्ठा भ्रष्ट हो, उनकी बदनामी हो (उनकी आजीविका भ्रष्ट हो), वे भिक्षुणी समुदाय को परेशान कर रही हों, और एक-दूसरे के दोषों को छुपा रही हों, तो भिक्षुणियों को उन्हें इस प्रकार चेतावनी देनी चाहिए: "बहनें आपस में बंधी हुई हैं, उनका आचरण भ्रष्ट है, उनकी प्रतिष्ठा भ्रष्ट है, उनकी बदनामी भ्रष्ट है। हे देवियों, (अपना समूह) अलग हो जाओ। समुदाय बहनों के लिए कठोर एकांतवास की अनुशंसा करता है।"

और यदि वे भिक्षुणियाँ, भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपना अपराध जारी रखें, तो भिक्षुणियाँ उन्हें तीन बार तक फटकारेंगी ताकि वे रुक जाएँ। यदि भिक्षुणियों द्वारा तीन बार फटकारे जाने पर भी वे रुक जाएँ, तो यह अच्छा है। यदि वे न रुकें, तो ये भिक्षुणियाँ भी, जैसे ही वे तीसरी बार अपराध करें, (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दी जाएँगी, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी। (§¶)

13. यदि कोई भिक्षुणी (पूर्ववर्ती मामले में आलोचना की गई भिक्षुणियों से) कहे, "हे देवियों, आपस में बंधी रहो। अलग मत रहो। समुदाय में अन्य भिक्षुणियाँ भी हैं जिनका आचरण, प्रतिष्ठा और बदनामी तुम्हारे जैसी ही है, जो भिक्षुणी समुदाय को परेशान करती हैं, एक-दूसरे के दोषों को छुपाती हैं, लेकिन समुदाय उन्हें कुछ नहीं कहता। तुम्हारी कमजोरी (पक्षपाती न होने) के कारण ही समुदाय - तिरस्कार, उपहास, असहिष्णुता और धमकियों के साथ - कहता है, 'बहनें आपस में बंधी हुई हैं, उनका आचरण भ्रष्ट है, उनकी प्रतिष्ठा भ्रष्ट है, उनकी बदनामी भ्रष्ट है। हे देवियों, (अपना समूह) तोड़ लो। समुदाय बहनों के लिए कठोर एकांतवास की अनुशंसा करता है,' तो भिक्षुणियों को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे देवी, ऐसा मत कहो, 'हे देवियों, आपस में बंधी रहो। अलग मत रहो। अन्य भिक्षुणियाँ भी हैं। एक ही आचरण, एक ही प्रतिष्ठा और एक ही बदनामी वाली भिक्षुणियाँ समुदाय में एक दूसरे को परेशान कर रही हैं, एक दूसरे की गलतियों को छुपा रही हैं, लेकिन समुदाय उन्हें कुछ नहीं कहता। तुम्हारी कमजोरी के कारण ही समुदाय - तिरस्कार, घृणा, असहिष्णुता और धमकियों के साथ - कहता है, "बहनें आपस में उलझी हुई हैं, उनका आचरण भ्रष्ट है, उनकी प्रतिष्ठा भ्रष्ट है, उनकी बदनामी भ्रष्ट है। देवियों, अपना समूह तोड़ लो। समुदाय बहनों के लिए सख्त एकांतवास की सिफारिश करता है।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियाँ उसे तीन बार तक फटकारेंगी ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार दिए जाने पर भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छा

है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाएगा, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी। (§•)

14 [10]. यदि कोई भिक्षुणी एक संयुक्त समुदाय में फूट डालने का प्रयास करे, या फूट उत्पन्न करने वाले किसी मुद्दे को उठाने पर अड़ी रहे, तो भिक्षुणियों को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे देवी, एक संयुक्त समुदाय में फूट डालने का प्रयास न करें और न ही फूट उत्पन्न करने वाले किसी मुद्दे को उठाने पर अड़ी रहें। कृपया समुदाय से मेल-मिलाप कर लें, क्योंकि एक संयुक्त समुदाय सौहार्दपूर्ण संबंधों के साथ, बिना किसी विवाद के, एक साथ पाठ करते हुए शांति से निवास करता है।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है।

15 [11]. यदि उस भिक्षुणी की अनुयायी और समर्थक एक, दो या तीन भिक्षुणियाँ कहें, "हे देवियों, उस भिक्षुणी को किसी भी प्रकार से फटकार न लगाएँ। वह धम्म की प्रतिपादक हैं, वह विनय की प्रतिपादक हैं। वह हमारी सहमति और अनुमोदन से कार्य करती हैं। वह जानती हैं, वह हमारे लिए बोलती हैं, और यह हमें प्रसन्न करता है," तो भिक्षुणियों को उन्हें इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे देवियों, ऐसा न कहें। वह भिक्षुणी न तो धम्म की प्रतिपादक हैं और न ही विनय की प्रतिपादक हैं। हे देवियों, समुदाय में फूट का समर्थन न करें। देवियों के मन समुदाय के साथ मेल-मिलाप करें, क्योंकि सौहार्दपूर्ण संबंधों वाला, बिना किसी विवाद के, एक समान पाठ के साथ एकजुट समुदाय शांति से निवास करता है।"

और यदि वे भिक्षुणियाँ, भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपना अपराध जारी रखती हैं, तो भिक्षुणियाँ उन्हें तीन बार तक फटकारेंगी ताकि वे रुक जाएँ। यदि भिक्षुणियों द्वारा तीन बार फटकारे जाने पर भी वे रुक जाएँ, तो यह अच्छी बात है। यदि वे नहीं रुकतीं, तो ये भिक्षुणियाँ भी, जैसे ही वे तीसरी बार अपराध करती हैं, (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दी जाएँगी, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकें आयोजित करनी होंगी।

16 [12]. यदि कोई भिक्षुणी स्वभाव से उपदेश देने में कठिन हो—जो (पाटिमोक्खा) पाठ में शामिल प्रशिक्षण नियमों के संदर्भ में भिक्षुणियों द्वारा उचित रूप से उपदेश दिए जाने पर, स्वयं को उपदेश के लिए अनुपयुक्त बना ले, (यह कहते हुए) "हे देवियों, मुझसे कुछ भी अच्छा या बुरा न कहें; और मैं भी देवियों से कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं कहूँगी। हे देवियों, मुझे उपदेश देना बंद करें"—तो भिक्षुणियों को उसे इस प्रकार उपदेश देना चाहिए: "वह स्वयं को उपदेश के लिए अनुपयुक्त न बनाए। वह स्वयं को उपदेश के लिए उपयुक्त बनाए। वह भिक्षुणियों को उचित उपदेश दे, और भिक्षुणियाँ भी उसे उचित उपदेश दें; क्योंकि इसी प्रकार भगवान बुद्ध के अनुयायियों का पोषण होता है: पारस्परिक उपदेश और पारस्परिक पुनर्वास के माध्यम से।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है।

17 [13]. यदि किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर रहने वाली कोई भिक्षुणी परिवारों को भ्रष्ट करने वाली, दुराचारी स्त्री हो—जिसका दुराचार सबके सामने हो और जिन परिवारों को उसने भ्रष्ट किया है, वे भी सबके सामने हों—तो भिक्षुणियों को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे देवी, तुम परिवारों को भ्रष्ट करने वाली, दुराचारी स्त्री हो। तुम्हारा दुराचार सबके सामने हो और जिन परिवारों को तुमने भ्रष्ट किया है, वे भी सबके सामने हों। हे देवी, इस मठ को छोड़ दो। यहाँ तुम्हारा रहना अब बस करो।"

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार उपदेशित किए जाने पर, भिक्षुणियों के बारे में कहे, “भिक्षुणियाँ पक्षपात करती हैं, घृणा करती हैं, भ्रम में रहती हैं, भय में रहती हैं, क्योंकि इस प्रकार के अपराध के लिए वे कुछ को निष्कासित करती हैं और कुछ को नहीं,” तो भिक्षुणियाँ उसे इस प्रकार उपदेश देंगी: “ऐसा मत कहो, हे देवी। भिक्षुणियाँ न तो पक्षपात करती हैं, न घृणा में रहती हैं, न भ्रम में रहती हैं, न भय में रहती हैं। हे देवी, तुम परिवारों को भ्रष्ट करने वाली, भ्रष्ट आचरण वाली स्त्री हो। तुम्हारा भ्रष्ट आचरण सबके सामने है, और जिन परिवारों को तुमने भ्रष्ट किया है, उनके बारे में भी सब जानते हैं। हे देवी, इस मठ को छोड़ दो। तुम्हारा यहाँ रहना अब और नहीं चलेगा।”

और यदि वह भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी, पहले की तरह ही अपने आचरण को जारी रखती है, तो भिक्षुणियों को उसे तीन बार तक फटकारना चाहिए ताकि वह रुक जाए। यदि तीन बार फटकार सुनने के बाद भी वह रुक जाती है, तो यह अच्छी बात है। यदि वह नहीं रुकती है, तो जैसे ही वह तीसरी बार अपराध करती है, उसे (अस्थायी रूप से) समुदाय से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए, और इसके लिए समुदाय की प्रारंभिक और बाद की बैठकों में भाग लेना आवश्यक है।

टिपिटक >> विनय पिटक >> **अनियता धम्म**

थानिसारो भिक्कू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पतिमोक्खा

---

3. अनियता धम्म
(अनिश्चित मामलों से संबंधित नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

विस्तृत पाठ: फ़ाइल:VN-PM-Aniata-M.pdf

महोदय महोदय, अब अनिश्चित मामलों से संबंधित दो नियमों का पाठ किया जाएगा।

1. यदि कोई भिक्षु किसी स्त्री के साथ एकांत में, यौन संबंध के लिए उपयुक्त स्थान पर बैठे, और कोई विश्वसनीय स्त्री अनुयायी उन्हें देखकर यह बताए कि यह तीन स्थितियों में से कोई एक है—हार, सामूहिक सभा या पश्चात्ताप—तो भिक्षु, यह स्वीकार करते हुए कि वह वहाँ बैठा था, इन तीनों स्थितियों में से किसी एक के अनुसार उसके साथ व्यवहार किया जा सकता है—हार, सामूहिक सभा या पश्चात्ताप—या फिर उसके साथ उस स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जा सकता है जिसका वर्णन विश्वसनीय स्त्री अनुयायी ने किया है। यह स्थिति अनिश्चित है।

2. यदि कोई आसन यौन संबंध के लिए पर्याप्त रूप से एकांत में न हो, परन्तु किसी स्त्री से अश्लील शब्द कहने के लिए पर्याप्त रूप से एकांत में हो, और कोई भिक्षु किसी स्त्री के साथ एकांत में ऐसे आसन पर बैठे, और कोई विश्वसनीय स्त्री अनुयायी उन्हें देखकर यह वर्णन करे कि यह दो स्थितियों में से एक है—सामूहिक सभा या पश्चात्ताप—तो भिक्षु, यह स्वीकार करते हुए कि वह वहाँ बैठा था, उसके साथ दोनों स्थितियों में से किसी एक के अनुसार व्यवहार किया जा सकता है—सामूहिक सभा या पश्चात्ताप—या उसके साथ उस स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाएगा जिसका वर्णन विश्वसनीय स्त्री अनुयायी ने किया है। यह स्थिति भी अनिश्चित है।

आदरणीय महोदय, अनिश्चित काल से संबंधित दोनों नियम पढ़े जा चुके हैं।

उनके संबंध में मैं आदरणीय व्यक्तियों से पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

इस मामले में आदरणीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

यहां अनियता (अनिश्चित मामलों के नियम) का पाठ समाप्त होता है।

टिपिटका >> विनय पिटक >> **निस्सागिया पचित्तिया धम्म**

थानिसारो भिक्कू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 14. निस्सग्गिय पच्चिटय धम्म
  - 1.1निस्सागिया स्कैन की पुस्तक
  - 1.2भाग एक: वस्त्रों से संबंधित नियम
  - 1.3भाग दो: रेशम से संबंधित नियम
  - 1.4भाग तीन: बाउल्स से संबंधित नियम

4. निस्सग्गिय पचिट्टिय धम्म
(जब्ती, स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित से संबंधित नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

विस्तृत पाठ: फ़ाइल:VN-PM-Nissaggiya-M 1.pdf , फ़ाइल:VN-PM-Nissaggiya-M 2.pdf , फ़ाइल:VN-PM-Nissaggiya-M 3.pdf

---

निस्सागिया स्कैन की गई पुस्तक

स्कैन की गई निस्सागिया पुस्तक का लिंक

हे आदरणीय महोदय, यहाँ ज़ब्ती से संबंधित तीस नियम सुनाए जाते हैं।

भाग एक: वस्त्र के कपड़े से संबंधित नियम

---

1. जब कोई भिक्षु अपना वस्त्र धारण कर लेता है और वस्त्र का ढांचा हटा दिया जाता है (उसके कथिना विशेषाधिकार समाप्त हो जाते हैं), तो उसे अतिरिक्त वस्त्र अधिकतम दस दिनों तक अपने पास रखना चाहिए। इससे अधिक समय तक रखने पर वह वस्त्र जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

2. जब कोई भिक्षु अपना वस्त्र धारण कर लेता है और वस्त्र का ढाँचा हटा दिया जाता है (उसके कथिना विशेषाधिकार समाप्त हो जाते हैं): यदि वह भिक्षुओं द्वारा अधिकृत किए बिना एक रात के लिए भी अपने तीनों वस्त्रों में से किसी एक से अलग रहता है, तो यह पाप दंड और स्वीकारोक्ति का विषय होगा।

3. जब किसी भिक्षु का वस्त्र पूर्ण हो जाता है और वस्त्र का ढाँचा हटा दिया जाता है (उसके कथिना विशेषाधिकार समाप्त हो जाते हैं): यदि उसे असमय वस्त्र प्राप्त होता है, तो वह इच्छा अनुसार उसे ग्रहण कर सकता है। ग्रहण करने के बाद, उसे तुरंत उससे आवश्यक वस्त्र बना लेना चाहिए। यदि वह पर्याप्त न हो, तो वह उसे अधिकतम एक माह के लिए अलग रख सकता है, जब तक कि उसे कमी पूरी करने की आशा न हो। यदि वह उसे इससे अधिक समय तक अपने पास रखता है, भले ही उसे (और वस्त्र की) आशा हो, तो उसे वह वस्त्र त्यागना होगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

4. यदि कोई भिक्षु अपने से असंबंधित किसी भिक्षुणी से प्रयुक्त वस्त्र धुलवाता, रंगवाता या पिटवाता है, तो वह वस्त्र जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

5. यदि कोई भिक्षु अपने से असंबंधित भिक्षुणी के हाथ से वस्त्र स्वीकार करता है - सिवाय विनिमय के - तो वह वस्त्र त्याग दिया जाएगा और उसका पश्चात्ताप किया जाएगा।

6. यदि कोई भिक्षु किसी ऐसे गृहस्थ पुरुष या स्त्री से, जिसका उससे कोई संबंध न हो, उचित अवसर के अतिरिक्त वस्त्र मांगे, तो वह वस्त्र व्यर्थ माना जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा। यहाँ उचित अवसर यह है: भिक्षु का वस्त्र छीन लिया गया हो या नष्ट हो गया हो। यही उचित अवसर है।

7. यदि कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री भिक्षु को अनेक वस्त्र भेंट करे, तो भिक्षु को अधिक से अधिक एक ऊपरी और एक निचला वस्त्र ही स्वीकार करना चाहिए। यदि वह इससे अधिक स्वीकार करे, तो वह वस्त्र त्याग दिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

8. यदि कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री, जो भिक्षु से संबंधित नहीं है, किसी भिक्षु के लिए वस्त्र निधि तैयार करता है, यह सोचकर कि "इस वस्त्र निधि से वस्त्र खरीदकर मैं अमुक भिक्षु को वस्त्र पहनाऊँगा": यदि भिक्षु, जिसे पहले आमंत्रित नहीं किया गया है, गृहस्थ के पास जाकर वस्त्र के संबंध में यह शर्त रखता है कि "हे महोदय, यदि आप इस वस्त्र निधि से अमुक प्रकार का वस्त्र खरीदकर मुझे वस्त्र पहना दें तो यह वास्तव में अच्छा होगा" — किसी उत्तम वस्तु की इच्छा से प्रेरित होकर — तो यह त्याग और स्वीकारोक्ति आवश्यक है।

9. यदि दो गृहस्थ—पुरुष या स्त्री—जो भिक्षु से संबंधित न हों, किसी भिक्षु के लिए अलग-अलग वस्त्र निधि तैयार करें और यह सोचें, "इन निधियों से अलग-अलग वस्त्र खरीदकर हम अमुक भिक्षु को वस्त्र पहनाएंगे": यदि भिक्षु, जिसे पहले आमंत्रित न किया गया हो, उनके पास जाकर वस्त्र के संबंध में यह शर्त रखे, "महोदय, यदि आप मुझे इन निधियों से अमुक प्रकार का वस्त्र खरीदकर एक वस्त्र पहना दें, तो यह वास्तव में अच्छा होगा"— किसी उत्तम वस्तु की लालसा से प्रेरित होकर—तो यह त्याग और स्वीकारोक्ति का विषय होगा।

10. यदि कोई राजा, राजाधिकारी, ब्राह्मण या गृहस्थ किसी भिक्षु के लिए दूत द्वारा वस्त्र निधि भेजता है और कहता है, "इस वस्त्र निधि से वस्त्र खरीदकर अमुक भिक्षु को वस्त्र पहनाइए": यदि दूत भिक्षु के पास जाकर कहे, "यह वस्त्र निधि आदरणीय भिक्षु के लिए भेजी जा रही है। आदरणीय भिक्षु इसे स्वीकार करें," तो भिक्षु दूत से कहेगा, "हे मित्र, हम वस्त्र निधि स्वीकार नहीं करते। हम ऋतु के अनुसार उचित वस्त्र स्वीकार करते हैं।"

यदि दूत भिक्षु से पूछे, "क्या पूज्य भिक्षु का कोई सेवक है?" तो भिक्षुओं, यदि भिक्षु को वस्त्र चाहिए, तो वह किसी सेवक की ओर इशारा कर सकता है—चाहे वह मठ का सेवक हो या कोई गृहस्थ अनुयायी—(यह कहते हुए), "हे मेरे मित्र, वह भिक्षुओं का सेवक है।"

यदि दूत प्रबंधक को निर्देश देकर भिक्षु के पास जाए और कहे, "मैंने प्रबंधक को आदरणीय गुरु का संदेश दे दिया है। आदरणीय गुरु उनके पास जाएँ और वे आपको समय पर वस्त्र पहना देंगे," तो भिक्षु वस्त्र की इच्छा से प्रबंधक के पास जाकर दो-तीन बार कह सकता है, "मुझे वस्त्र की आवश्यकता है।" यदि प्रबंधक दो-तीन बार कहने और याद दिलाने पर वस्त्र उपलब्ध करा दे, तो यह अच्छा है।

यदि वह वस्त्र न प्रस्तुत करे, तो भिक्षु को इस उद्देश्य से चार बार, पाँच बार या अधिकतम छह बार मौन खड़ा रहना चाहिए। यदि भिक्षु के चार बार, पाँच बार या अधिकतम छह बार मौन खड़े रहने के बाद सेवक वस्त्र प्रस्तुत करे, तो यह अच्छा है।

यदि वह (उस समय) वस्त्र प्रस्तुत नहीं करता है, और यदि वह (भिक्षु द्वारा) आगे प्रयास करने के बाद वस्त्र प्रस्तुत करता है, तो वह वस्त्र जब्त कर लिया जाएगा और उसे स्वीकार करना होगा।

यदि वह (वस्त्र) प्रस्तुत न करे, तो भिक्षु को स्वयं उस स्थान पर जाना चाहिए जहाँ से वस्त्र निधि भेजी गई थी, या किसी दूत को भेजकर यह कहना चाहिए, “हे पूज्यवरों, आपने भिक्षु के लिए जो वस्त्र निधि भेजी थी, उससे भिक्षु को कोई लाभ नहीं हुआ है। आपका अपने आप से मिलन हो। आपका अपना खोना न हो।” यही उचित उपाय है।

यहां पहला खंड, 'वस्त्र-खंड' समाप्त होता है।

भाग दो: रेशम से संबंधित नियम

11. यदि किसी भिक्षु के पास रेशम के मिश्रण से बना हुआ फेल्ट (कंबल/कालीन) हो, तो उसे जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित किया जाएगा।

12. यदि किसी भिक्षु के पास शुद्ध काले ऊन से बना कोई फेल्ट (कंबल/कालीन) हो, तो उसे जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित किया जाएगा।

13. जब कोई भिक्षु नया कंबल (कंबल/कालीन) बनवा रहा हो, तो उसमें शुद्ध काले ऊन के दो भाग, सफेद ऊन का एक तिहाई भाग और भूरे ऊन का एक चौथाई भाग मिलाना चाहिए। यदि कोई भिक्षु शुद्ध काले ऊन के दो भाग, सफेद ऊन का एक तिहाई भाग और भूरे ऊन का एक चौथाई भाग मिलाए बिना नया कंबल (कंबल/कालीन) बनवाए, तो वह कंबल/कंबल व्यर्थ हो जाएगा और उसे पश्चाताप करना होगा।

14. जब कोई भिक्षु नया फेल्ट (कंबल/कालीन) बनवाता है, तो उसे कम से कम छह साल तक अपने पास रखना चाहिए। यदि छह साल से कम समय में वह दूसरा नया फेल्ट (कंबल/कालीन) बनवाता है, चाहे उसने पहला कंबल हटाया हो या नहीं, तो भिक्षुओं द्वारा अधिकृत न होने पर वह कंबल/कंबल जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

15. जब कोई भिक्षु बैठने के लिए मखमली चटाई बनवा रहा हो, तो उसे रंगहीन करने के उद्देश्य से प्रत्येक तरफ 25 सेंटीमीटर (सुगत स्पैन) पुराने मखमली चटाई का एक टुकड़ा लगाना चाहिए। यदि कोई भिक्षु प्रत्येक तरफ 25 सेंटीमीटर (सुगत स्पैन) पुराने मखमली चटाई का टुकड़ा लगाए बिना नई मखमली चटाई बनवाता है, तो वह चटाई व्यर्थ हो जाएगी और उसे पश्चाताप करना होगा।

16. यदि किसी भिक्षु को यात्रा के दौरान ऊन प्राप्त हो जाए, तो वह चाहे तो उसे स्वीकार कर सकता है। स्वीकार करने के बाद, यदि कोई और उसे ले जाने वाला न हो, तो वह उसे अधिकतम तीन लीग (48 किमी = 30 मील) तक स्वयं ले जा सकता है। यदि वह इससे अधिक दूरी तक ऊन ले जाए, भले ही कोई और उसे ले जाने वाला न हो, तो ऊन का त्याग करना होगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

17. यदि कोई भिक्षु अपने से असंबंधित भिक्षुणी से ऊन धुलवाता, रंगवाता या कंघी करवाता है, तो यह अपराध जब्त कर लिया जाएगा और इसका प्रायश्चित किया जाएगा।

18. यदि कोई भिक्षु सोना और चांदी स्वीकार करे, या स्वीकार करवाए, या उसे (अपने पास) जमा करने की सहमति दे, तो वह जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित किया जाएगा।

19. यदि कोई भिक्षु विभिन्न प्रकार के मौद्रिक लेन-देन में संलग्न होता है, तो वह (आय) जब्त कर ली जाएगी और उसका स्वीकारोक्ति की जाएगी।

20. यदि कोई भिक्षु विभिन्न प्रकार के व्यापार में संलग्न होता है, तो वह (प्राप्त वस्तु) जब्त कर ली जाएगी और उसका स्वीकारोक्ति की जाएगी।

भाग तीन: बाउल्स से संबंधित नियम

---

21. एक अतिरिक्त भिक्षापात्र अधिकतम दस दिनों तक रखा जा सकता है। उसके बाद, उसे जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

22. यदि कोई भिक्षु भिक्षापात्र में पाँच से कम सुधार होने पर दूसरा नया भिक्षापात्र माँगे, तो वह भिक्षापात्र ज़ब्त कर लिया जाएगा और उसे अपने किए का प्रायश्चित करना होगा। भिक्षु को वह भिक्षापात्र भिक्षुओं के समूह को सौंप देना होगा। भिक्षुओं के समूह का अंतिम भिक्षापात्र उस भिक्षु को देते हुए कहना होगा, "हे भिक्षु, यह तुम्हारा भिक्षापात्र है। इसे तब तक संभाल कर रखना जब तक यह टूट न जाए।" यही उचित विधि है।

23. बीमार भिक्षुओं के लिए ये औषधियाँ हैं: घी, ताजा मक्खन, तेल, शहद, चीनी/गुड़। इन्हें प्राप्त करने के बाद, भंडारण से अधिकतम सात दिनों के भीतर ही उपयोग करना चाहिए। इसके बाद, इनका उपयोग न करने पर त्यागपत्र देना होगा और पश्चाताप करना होगा।

24. जब ग्रीष्म ऋतु में एक माह शेष हो, तो भिक्षु वर्षा ऋतु में स्नान करने के लिए वस्त्र प्राप्त कर सकता है। जब ग्रीष्म ऋतु में आधा माह शेष हो, तो वस्त्र तैयार होने पर उसे धारण किया जा सकता है। यदि ग्रीष्म ऋतु में एक माह से अधिक समय शेष हो और वह वर्षा ऋतु में स्नान करने के लिए वस्त्र प्राप्त करे, या आधा माह से अधिक समय शेष होने पर तैयार वस्त्र को धारण करे, तो वह वस्त्र व्यर्थ हो जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

25. यदि कोई भिक्षु स्वयं किसी अन्य भिक्षु को वस्त्र दे दे और फिर क्रोधित होकर उसे वापस छीन ले या किसी और द्वारा छीन लिया जाए, तो वह वस्त्र जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित किया जाएगा।

26. यदि कोई भिक्षु, धागे का अनुरोध करके, बुनकरों द्वारा बुना हुआ वस्त्र प्राप्त कर ले, तो वह वस्त्र जब्त कर लिया जाएगा और उसका प्रायश्चित किया जाएगा।

27. यदि कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री, जो भिक्षु से संबंधित न हो, किसी भिक्षु के लिए बुनकरों से वस्त्र बुनवाए, और यदि भिक्षु, गृहस्थ द्वारा पूर्व आमंत्रित न किया गया हो, बुनकरों के पास जाकर वस्त्र के संबंध में यह शर्त रखे, "मित्रों, यह वस्त्र मेरे लिए बुना जा रहा है। इसे लंबा, चौड़ा, कसकर बुना हुआ, अच्छी तरह फैला हुआ, अच्छी तरह खुरचा हुआ और चिकना बनाइए, और शायद मैं आपको थोड़ा सा उपहार दे सकूँ"; और यदि भिक्षु ऐसा कहकर उन्हें थोड़ा सा उपहार दे दे, चाहे वह भिक्षा के रूप में ही क्यों न हो, तो वह वस्त्र त्याग दिया जाएगा और इसका प्रायश्चित किया जाएगा।

28. तीसरे माह की कत्तिका पूर्णिमा से दस दिन पहले, यदि किसी भिक्षु को अत्यावश्यक रूप से दान किया हुआ वस्त्र प्राप्त हो, तो वह उसे स्वीकार कर ले, यदि वह उसे अत्यावश्यक समझे। एक बार स्वीकार करने के बाद, वह उसे वस्त्र धारण करने की पूरी अवधि तक अपने पास रख सकता है। उसके बाद, उसे त्याग देना होगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

29. कुछ वनवास स्थल संदिग्ध और जोखिम भरे माने जाते हैं। ऐसे स्थलों में रहने वाला भिक्षु, कत्तिका पूर्णिमा का व्रत करने के बाद, यदि चाहे तो अपने तीन वस्त्रों में से कोई एक वस्त्र गाँव में रख सकता है। यदि उसे किसी कारणवश वस्त्र से विमुख रहना पड़े, तो वह अधिकतम छह रातों तक ही रह सकता है। यदि वह इससे अधिक समय तक वस्त्र से विमुख रहता है—जब तक कि भिक्षुओं द्वारा अनुमति न दी गई हो—तो वस्त्र त्याग दिया जाएगा और उसका प्रायश्चित करना होगा।

30. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी समुदाय के लिए आवंटित लाभों को अपने लिए उपयोग में ले लेता है, तो वे लाभ जब्त कर लिए जाएंगे और उनका प्रायश्चित किया जाएगा।

यहां तीसरा खंड, 'बाउल-खंड' समाप्त होता है।

आदरणीय महोदय, ज़ब्ती से संबंधित तीस पचितीय नियमों का पाठ किया जा चुका है।

उनके संबंध में मैं आदरणीय व्यक्तियों से पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

इस मामले में आदरणीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

यहां निस्सागियास-नियमों का पाठ समाप्त होता है, जिसमें जुर्माने और स्वीकारोक्ति का प्रावधान है।

तिपिटक >> विनय पिटक >> **पचित्तीय धम्म**

यह अनुवाद टी.डब्ल्यू.आर.हिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किया गया है।

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 15. पचित्तिय धम्म
  - 1.1पचीतिया स्कैन की पुस्तक
  - 1.2पचितिया शोरूम
    - 1.2.1भाग एक: कथा अध्याय
    - 1.2.2भाग 2: भूतगामा - जीवित पौधा अध्याय
    - 1.2.3भाग तीन: भिक्खुनोवा - उपदेश अध्याय
    - 1.2.4भाग चार: भोजन - भोजन अध्याय
    - 1.2.5भाग पाँच: अकेलाका - नग्न तपस्वी अध्याय
    - 1.2.6भाग छह: सुरपना - पेय पेय अध्याय
    - 1.2.7भाग सात: सप्पनाका - पशु अध्याय
    - 1.2.8भाग आठ: सहधम्मिका - नियम के अनुसार अध्याय
    - 1.2.9भाग नौ: रत्ना - स्तोत्र का अध्याय

5. पचित्तीय धम्म
(पाप स्वीकार करने और प्रायश्चित करने संबंधी नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

विस्तृत पाठ: फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-1.pdf , फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-2.pdf , फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-3.pdf , फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-4.pdf , फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-5.pdf , फ़ाइल:Vin-PM-Paccitiya-M-6.pdf

---

पचितिया स्कैन की गई पुस्तक

स्कैन की गई पचितिया पुस्तक का लिंक

पचितिया सारांश

अब, आदरणीय महोदय, पचितीय नियमों के बानवे भाग सुनाए जाने शुरू होते हैं।

भाग एक: झूठ अध्याय

---

1. जानबूझकर बोले गए झूठ को स्वीकार करना चाहिए।

2. अपमान स्वीकार करना आवश्यक है।

3. भिक्षुओं के बीच फूट डालने वाली चुगली करने का पाप स्वीकार करना होगा।

4. यदि कोई भिक्षु किसी गैर-दीक्षित व्यक्ति से अपने साथ धम्म का पंक्ति-दर-पंक्ति पाठ करवाए, तो उसे स्वीकार करना होगा।

5. यदि कोई भिक्षु किसी गैर-दीक्षित व्यक्ति के साथ लगातार दो या तीन रातों से अधिक समय तक एक ही घर में सोता है, तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

6. यदि कोई भिक्षु किसी स्त्री के साथ (एक ही घर में) सोता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

7. यदि कोई भिक्षु किसी स्त्री को धम्म के पाँच या छह वाक्यों से अधिक सिखाता है, जब तक कि कोई ज्ञानी पुरुष उपस्थित न हो, तो उसे स्वीकार करना होगा।

8. यदि कोई भिक्षु किसी गैर-दीक्षित व्यक्ति को अपनी श्रेष्ठ मानवीय स्थिति के बारे में बताए, और वह तथ्यात्मक हो, तो उसे स्वीकार करना होगा।

9. यदि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु के गंभीर अपराध की सूचना किसी गैर-दीक्षित व्यक्ति को देता है - जब तक कि भिक्षुओं द्वारा अधिकृत न किया गया हो - तो उसे स्वीकार करना होगा।

10. यदि कोई भिक्षु मिट्टी खोदे या खुदवाए, तो उसे स्वीकार करना होगा।

यहां पहला खंड, 'झूठ खंड' समाप्त होता है।

भाग दो: भूतागामा - जीवित पौधा अध्याय

---

11. किसी जीवित पौधे को नुकसान पहुँचाने का अपराध स्वीकार करना होगा।

12. टालमटोल भरी बातें करना और निराशा पैदा करना स्वीकार किया जाना चाहिए।

13. किसी सामुदायिक अधिकारी की आलोचना करना या उसके बारे में शिकायत करना स्वीकारोक्ति है।

14. यदि कोई भिक्षु समुदाय से संबंधित पलंग, बेंच, गद्दा या स्टूल खुले में रख दे - या रखवा दे - और फिर जाते समय उसे न तो हटाए और न ही हटवाए, या बिना अनुमति लिए चला जाए, तो यह पाप स्वीकार करना होगा।

15. यदि कोई भिक्षु समुदाय से संबंधित किसी आवास में बिस्तर बिछाता है - या बिछवाता है - और फिर जाते समय उसे न तो हटाता है और न ही हटवाता है, या बिना अनुमति लिए चला जाता है, तो यह पाप स्वीकार करना होगा।

16. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर समुदाय से संबंधित किसी आवास में इस प्रकार लेट जाए कि वह वहाँ पहले से मौजूद भिक्षु को परेशान करे, (यह सोचकर), "जिसे भी यह बंधनकारी लगेगा वह चला जाएगा" - और ऐसा केवल इसी कारण से करे, किसी अन्य कारण से नहीं - तो इसका प्रायश्चित करना होगा।

17. यदि कोई भिक्षु क्रोधित और असंतुष्ट होकर किसी भिक्षु को समुदाय के किसी आवास से निकाल दे — या निकलवा दे — तो इसका प्रायश्चित करना होगा।

18. यदि कोई भिक्षु समुदाय से संबंधित किसी आवास में (बिना तख्तों वाली) मचान पर अलग किए जा सकने वाले पैरों वाले पलंग या बेंच पर बैठता या लेटता है, तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

19. जब कोई भिक्षु कोई बड़ा घर बनवा रहा हो, तो वह खिड़की के फ्रेम के चारों ओर और दरवाजे के फ्रेम के चारों ओर (दरवाजे की चौड़ाई के बराबर) दो या तीन परतों का प्लास्टर चढ़ाने और उसे मजबूत करने का काम ऐसी जगह खड़े होकर देख सकता है जहाँ कोई फसल न हो। यदि वह इससे अधिक काम देखे, भले ही वह ऐसी जगह खड़ा हो जहाँ कोई फसल न हो, तो उसका प्रायश्चित करना होगा।

20. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर जीवित प्राणियों से युक्त जल घास या मिट्टी पर डाले — या डलवाए — तो उसे स्वीकार करना होगा।

यहां दूसरा खंड, 'भूतागामा: जीवित पौधे-खंड' समाप्त होता है।

भाग तीन: भिक्खुनोवादा - उपदेश अध्याय

21. यदि कोई भिक्षु अनाधिकृत रूप से भिक्षुणियों को उपदेश दे, तो उसे स्वीकार करना होगा।

22. यदि कोई भिक्षु, अधिकृत होने पर भी, सूर्यास्त के बाद भिक्षुणियों को उपदेश दे, तो उसे स्वीकार करना होगा।

23. यदि कोई भिक्षु, भिक्षुणियों के निवास स्थान पर जाकर, उचित अवसर के अलावा किसी अन्य समय पर भिक्षुणियों को उपदेश दे, तो यह पाप स्वीकार करना होगा। यहाँ उचित अवसर यह है: एक भिक्षुणी बीमार है। यही उचित अवसर है।

24. यदि कोई भिक्षु यह कहे कि भिक्षु सांसारिक लाभ के लिए भिक्षुणियों को उपदेश देते हैं, तो यह स्वीकार करना होगा।

25. यदि कोई भिक्षु अपने से असंबंधित भिक्षुणी को, विनिमय के अलावा, वस्त्र देता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

26. यदि कोई भिक्षु किसी ऐसे भिक्षुणी के लिए वस्त्र सिलता है या सिलवाता है जिसका उससे कोई संबंध नहीं है, तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

27. यदि कोई भिक्षु, किसी समझौते के तहत, किसी भिक्षुणी के साथ एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच की दूरी के लिए भी उचित अवसर के अतिरिक्त यात्रा करे, तो इसका प्रायश्चित करना होगा। यहाँ उचित अवसर यह है: यह मार्ग कारवां द्वारा तय किया जाता है और संदिग्ध एवं जोखिम भरा माना जाता है। यही यहाँ उचित अवसर है।

28. यदि कोई भिक्षु, व्यवस्था के अनुसार, किसी भिक्षुणी के साथ नदी के ऊपर या नीचे की ओर जाने वाली नाव में सवार हो जाए - सिवाय दूसरे किनारे पर जाने के - तो यह स्वीकारोक्ति होगी।

29. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी भिक्षुणी के कहने पर दान किया हुआ भिक्षा भोजन खा ले, सिवाय उस भोजन के जो गृहस्थों ने उसके कहने से पहले ही उसके लिए रखा हो, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा।

30. यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षुणी के साथ एकांत में बैठे तो उसे स्वीकार करना होगा।

यहां तीसरा खंड, 'भिक्खुनोवदा: उपदेश खंड' समाप्त होता है।

भाग चार: भोजन - खाद्य अध्याय

31. जो भिक्षु अस्वस्थ है, वह सार्वजनिक भिक्षागृह में एक बार भोजन कर सकता है। यदि वह इससे अधिक भोजन करे, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा।

32. उचित अवसरों को छोड़कर सामूहिक भोजन करना पाप स्वीकार करना होगा। यहाँ उचित अवसर ये हैं: बीमारी का समय, वस्त्र दान करने का समय, वस्त्र बनाने का समय, यात्रा पर जाने का समय, नाव पर सवार होने का समय, कोई बड़ा अवसर, और वह समय जब भोजन ध्यानमग्न व्यक्तियों द्वारा प्रदान किया जाता है। ये यहाँ उचित अवसर हैं।

33. उचित अवसरों को छोड़कर, समय से पहले भोजन करना पाप स्वीकार करना होगा। यहाँ उचित अवसर ये हैं: बीमारी का समय, वस्त्र दान करने का समय, वस्त्र बनाने का समय। ये यहाँ उचित अवसर हैं।

34. यदि कोई भिक्षु किसी परिवार के निवास पर पहुंचे और उसे रोटी या पका हुआ अनाज दिया जाए, तो वह इच्छा अनुसार दो या तीन कटोरी ग्रहण कर सकता है। यदि वह इससे अधिक ग्रहण करे, तो उसे स्वीकार करना होगा। दो या तीन कटोरी ग्रहण करने के बाद, उसे वहां से ले जाकर अन्य भिक्षुओं में बांट देना चाहिए। यही उचित तरीका है।

35. यदि कोई भिक्षु भोजन करने के बाद (और भोजन की पेशकश को) ठुकरा दे, तो बचे हुए भोजन के अलावा किसी अन्य मुख्य या गैर-मुख्य भोजन को चबाए या खाए तो यह पाप स्वीकार करना होगा।

36. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर और दोष ढूंढने की इच्छा से, किसी ऐसे भिक्षु को मुख्य या गैर-मुख्य भोजन प्रस्तुत करे, जिसने भोजन कर लिया हो और आगे भोजन का प्रस्ताव ठुकरा दिया हो, और कहे, "लो भिक्षु, इसे चबाओ या खा लो" - तो जब वह भोजन खा लिया जाए, तो उसका प्रायश्चित करना होगा।

37. यदि कोई भिक्षु गलत समय पर मुख्य या गैर-मुख्य भोजन चबाता या ग्रहण करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

38. यदि कोई भिक्षु संचित मुख्य या गैर-मुख्य भोजन चबाता या खाता है, तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

39. ये उत्तम खाद्य पदार्थ हैं: घी, ताजा मक्खन, तेल, शहद, चीनी/गुड़, मछली, मांस, दूध और दही। यदि कोई भिक्षु, जो बीमार नहीं है, अपने लिए इन उत्तम खाद्य पदार्थों का अनुरोध करे और फिर भी इनका सेवन करे, तो उसे प्रायश्चित करना होगा।

40. यदि कोई भिक्षु बिना दिए कोई खाद्य पदार्थ अपने मुँह में ले ले — जल और दाँत साफ करने वाली लकड़ियों को छोड़कर — तो उसे स्वीकार करना होगा।

यहां चौथा खंड, 'भोजन: खाद्य खंड' समाप्त होता है।

भाग पाँच: अकेलाका - नग्न तपस्वी अध्याय

---

41. यदि कोई भिक्षु अपने हाथ से किसी नग्न तपस्वी, पुरुष यात्री या स्त्री यात्री को मुख्य या गैर-मुख्य भोजन देता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

42. यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु से कहे, "आओ, मेरे मित्र, चलो गाँव या शहर में भिक्षा मांगने चलें," और फिर—चाहे उसे भोजन दिया गया हो या नहीं—उसे यह कहकर विदा कर दे, "चले जाओ, मेरे मित्र। मुझे तुम्हारे साथ बैठना या बात करना अच्छा नहीं लगता। मुझे अकेले बैठना या बात करना अच्छा लगता है"—और ऐसा केवल इसी कारण से करे—तो यह पाप स्वीकार करना होगा।

43. यदि कोई भिक्षु किसी परिवार के भोजन में हड़बड़ी करते हुए बैठ जाए, तो उसे स्वीकार करना होगा।

44. यदि कोई भिक्षु किसी स्त्री के साथ एकांत स्थान पर अकेले बैठे तो उसे स्वीकार करना होगा।

45. यदि कोई भिक्षु किसी स्त्री के साथ एकांत में बैठे तो उसे स्वीकार करना होगा।

46. यदि कोई भिक्षु भोजन के लिए आमंत्रित होने पर, किसी उपलब्ध भिक्षु से अनुमति लिए बिना, उचित अवसरों को छोड़कर, भोजन से पहले या बाद में परिवारों से मिलने जाता है, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा। यहाँ उचित अवसर ये हैं: वस्त्र दान करने का समय, वस्त्र बनाने का समय।

47. जो भिक्षु अस्वस्थ है, वह आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए चार माह के निमंत्रण का लाभ उठा सकता है। यदि वह इससे अधिक समय तक इसका लाभ उठाता है—जब तक कि निमंत्रण नवीनीकृत न हो या स्थायी न हो—तो उसे पश्चात्ताप करना होगा।

48. यदि कोई भिक्षु सक्रिय ड्यूटी पर तैनात सेना को देखने जाता है, तो उचित कारण न होने पर उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

49. किसी कारणवश यदि किसी भिक्षु को सेना में जाना पड़े, तो वह सेना के साथ दो या तीन (लगातार) रातें रह सकता है। यदि वह इससे अधिक समय तक रहे, तो इसका प्रायश्चित करना होगा।

50. यदि कोई भिक्षु किसी सेना के साथ दो या तीन रातें बिताता है और युद्धक्षेत्र में जाता है, तो उसे रोल कॉल, युद्ध संरचना में सैनिकों को देखने या (युद्ध) इकाइयों की समीक्षा देखने जाना चाहिए।

पांचवें खंड का अंत, 'अकेलाका: नग्न तपस्वी खंड।'

भाग छह: सुरपना - मादक पेय अध्याय

51. शराब या किण्वित पेय का सेवन स्वीकार करना होगा।

52. उंगलियों से गुदगुदी करना स्वीकारोक्ति के अधीन है।

53. पानी में खेलने के कार्य को स्वीकार करना होगा।

54. अनादर को स्वीकार करना होगा।

55. यदि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु को डराने का प्रयास करे, तो उसे स्वीकार करना होगा।

56. यदि कोई भिक्षु, जो बीमार नहीं है, अपने आप को गर्म करने के लिए आग जलाता है या जलवाता है - जब तक कि कोई उचित कारण न हो - तो इसका प्रायश्चित करना होगा।

57. यदि कोई भिक्षु उचित अवसरों को छोड़कर आधे महीने से कम अंतराल पर स्नान करे, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा। यहाँ उचित अवसर ये हैं: ग्रीष्म ऋतु का अंतिम डेढ़ महीना, वर्षा ऋतु का पहला महीना; ये ढाई महीने भीषण गर्मी और बुखार का समय होते हैं; (साथ ही) बीमारी का समय; काम का समय; यात्रा का समय; हवा या बारिश का समय। ये यहाँ उचित अवसर हैं।

58. जब किसी भिक्षु को नया वस्त्र प्राप्त होता है, तो उसे रंगहीन करने के लिए तीन तरीकों में से कोई एक तरीका अपनाना चाहिए: हरा, भूरा या काला। यदि कोई भिक्षु वस्त्र को रंगहीन करने के इन तीन तरीकों में से किसी का भी प्रयोग किए बिना नए वस्त्र का उपयोग करता है, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा।

59. यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु, भिक्षुणी, महिला प्रशिक्षु, पुरुष नौसिखिया या महिला नौसिखिया के साथ साझा स्वामित्व (विकप्पन) में वस्त्र रखकर, साझा स्वामित्व को रद्द किए बिना उस वस्त्र का उपयोग करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

60. यदि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु का कटोरा, वस्त्र, बैठने का कपड़ा, सुई की पेटी या कमरबंद छिपा दे — या उसे छिपा दे — चाहे मजाक में ही क्यों न हो, तो उसका पाप स्वीकार करना होगा।

छठे खंड, 'सुरपना-मादक पेय खंड' का अंत।

भाग सात: सप्पनाका - पशु अध्याय

61. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी जानवर को जीवन से वंचित करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

62. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर जीवित प्राणियों से युक्त जल का उपयोग करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

63. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी ऐसे मुद्दे को पुनर्जीवित करने के लिए आंदोलन करता है जिसका उचित रूप से समाधान हो चुका है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

64. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी अन्य भिक्षु के गंभीर अपराध को छुपाता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

65. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर बीस वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को पूर्ण दीक्षा (दीक्षा) देता है, तो वह व्यक्ति स्वीकृत नहीं होता और भिक्षु दोषी होते हैं; और जहाँ तक उसका (गुरु का) सवाल है, उसे स्वीकार करना होगा।

66. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर और व्यवस्था के अनुसार चोरों के कारवां के साथ यात्रा करे, भले ही एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच की दूरी के लिए ही क्यों न हो, तो उसे स्वीकार करना होगा।

67. यदि कोई भिक्षु किसी व्यवस्था के तहत किसी स्त्री के साथ एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच की दूरी के लिए भी यात्रा करे, तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

68. यदि कोई भिक्षु यह कहे कि: "जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, भगवान बुद्ध जिन कार्यों को बाधक कहते हैं, वे वास्तव में बाधक नहीं होते," तो भिक्षुओं को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे आदरणीय, ऐसा न कहें। भगवान बुद्ध का गलत अर्थ न निकालें, क्योंकि उनका गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ऐसा कभी नहीं कहेंगे। हे मित्र, भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और उन्हें करने पर वे वास्तव में बाधक होते हैं।"

और यदि भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने पर भी वह भिक्षु पहले की तरह ही अपने आचरण पर अडिग रहे, तो भिक्षु उसे उस पद को त्यागने के लिए तीन बार तक फटकारें। यदि वह तीन बार फटकार सुनने के बाद भी उस पद को त्याग दे, तो यह अच्छा है। यदि वह उस पद को नहीं त्यागता, तो उसे स्वीकार करना होगा।

69. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर ऐसे भिक्षु के साथ संगति करे, संबंध स्थापित करे या एक ही घर में सोए, जिसने नियम का पालन नहीं किया है, जिसने उस मत का त्याग नहीं किया है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

70. यदि कोई नौसिखिया यह कहे कि: "जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, भगवान बुद्ध जिन कार्यों को बाधक कहते हैं, वे वास्तव में बाधक नहीं हैं," तो भिक्षुओं को उसे इस प्रकार समझाना चाहिए: "हे नौसिखिए, ऐसा मत कहो। भगवान बुद्ध का गलत अर्थ मत निकालो, क्योंकि उनका गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ऐसा कुछ नहीं कहेंगे। हे मित्र, भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और उन्हें करने पर वे वास्तव में बाधक होते हैं।"

और यदि वह नौसिखिया भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बावजूद पहले की तरह ही व्यवहार करता रहे, तो भिक्षु उसे इस प्रकार चेतावनी दें: "हे मेरे नौसिखिए, आज से तुम भगवान बुद्ध को अपना गुरु नहीं मानोगे, और न ही तुम्हें अन्य नौसिखियों की तरह भिक्षुओं के साथ दो-तीन रातें बिताने का अवसर मिलेगा। चले जाओ! दफ़ा हो जाओ!"

यदि कोई भिक्षु जानबूझकर निष्कासित किए गए किसी नौसिखिए से मित्रता करता है, उससे सेवाएँ प्राप्त करता है, उसके साथ संवाद करता है या उसके साथ एक ही घर में सोता है, तो उसे इसका पश्चात्ताप करना होगा।

सातवें खंड, 'सप्पनाका खंड - पशु अध्याय' का समापन।

भाग आठ: सहधम्मिका - नियम के अनुसार अध्याय

---

71. यदि कोई भिक्षु, किसी नियम के अनुसार अन्य भिक्षुओं द्वारा अनुज्ञित किए जाने पर, कहे, "मित्रों, मैं इस प्रशिक्षण नियम के अंतर्गत तब तक प्रशिक्षण नहीं लूँगा जब तक मैं इस विषय में किसी योग्य और विद्वान भिक्षु से प्रश्न न कर लूँ," तो यह स्वीकारोक्ति है। भिक्षुओं, प्रशिक्षण प्राप्त भिक्षु को समझना चाहिए, प्रश्न पूछना चाहिए, चिंतन करना चाहिए। यही उचित मार्ग है।

72. यदि कोई भिक्षु, जब पतिमोक्खा का पाठ हो रहा हो, कहे, "ये छोटे और मामूली प्रशिक्षण नियम क्यों पढ़े जाते हैं जबकि इनसे केवल चिंता, परेशानी और भ्रम ही उत्पन्न होता है?" तो प्रशिक्षण नियमों की आलोचना स्वीकारोक्ति होगी।

73. यदि कोई भिक्षु, जब प्रति पंचमासिक पतिमोक्ख का पाठ हो रहा हो, कहे, "अभी-अभी मुझे पता चला है कि यह मामला भी पतिमोक्ख में वर्णित है, पतिमोक्ख में शामिल है, और प्रति पंचमासिक पाठ के लिए आता है"; और यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो, "वह भिक्षु पहले ही दो या तीन बार पतिमोक्ख का पाठ कर चुका है, इससे अधिक बार भी," तो अज्ञानता के कारण उसे छूट नहीं दी जाएगी। उसने जो भी अपराध किया हो, उसके साथ नियम के अनुसार व्यवहार किया जाएगा; और इसके अतिरिक्त, उसके छल का पर्दाफाश किया जाएगा: "हे मित्र, पतिमोक्ख का पाठ होते समय ध्यान न देना, यह अनुचित है।" छल (§) के लिए, उसे स्वीकार करना होगा।

74. यदि कोई भिक्षु क्रोधित और असंतुष्ट होकर किसी दूसरे भिक्षु को मार डाले, तो उसका पाप स्वीकार करना होगा।

75. यदि कोई भिक्षु क्रोधित और असंतुष्ट होकर किसी दूसरे भिक्षु के विरुद्ध हाथ की हथेली उठाए, तो उसे स्वीकार करना होगा।

76. यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु पर निराधार संघीशेष (अपराध) का आरोप लगाए, तो उसे स्वीकार करना होगा।

77. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी दूसरे भिक्षु में चिंता उत्पन्न करे, (यह सोचकर कि) "इस तरह, एक पल के लिए भी, उसे शांति नहीं मिलेगी" — और ऐसा केवल इसी कारण से करे, किसी और कारण से नहीं — तो इसका प्रायश्चित करना होगा।

78. यदि कोई भिक्षु अन्य भिक्षुओं की बहस, झगड़े और विवाद करते समय छिपकर उनकी बातें सुनता है, यह सोचकर कि "मैं उनकी बातें सुन लूँगा" - और ऐसा केवल इसी कारण से करता है, किसी और कारण से नहीं - तो यह स्वीकारोक्ति है।

79. यदि कोई भिक्षु, नियम के अनुसार किए गए किसी लेन-देन के लिए (प्रतिनिधि के रूप में) सहमति देने के बाद, बाद में (कार्य के बारे में) शिकायत करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

80. यदि कोई भिक्षु, जब समुदाय में विचार-विमर्श चल रहा हो, अपनी सीट से उठकर बिना सहमति दिए चला जाए, तो यह स्वीकारोक्ति होगी।

81. यदि कोई भिक्षु, (संयुक्त समुदाय के एक भाग के रूप में कार्य करते हुए) किसी भिक्षु को वस्त्र दे और बाद में शिकायत करे, "भिक्षु मित्रता के अनुसार समुदाय के लाभों का आवंटन करते हैं," तो यह स्वीकारोक्ति होगी।

82. यदि कोई भिक्षु जानबूझकर किसी समुदाय के लिए आवंटित लाभों को व्यक्तिगत रूप से हस्तांतरित करता है, तो उसे स्वीकार करना होगा।

यहां आठवां खंड, 'सहधम्मिका: नियम के अनुसार खंड' समाप्त होता है।

भाग नौ: रत्ना - खजाने का अध्याय

---

83. यदि कोई भिक्षु, बिना पूर्व सूचना दिए, किसी पवित्र कुलीन राजा के (शरण कक्ष) की दहलीज पार कर जाए, जहाँ से राजा नहीं निकला हो, जहाँ से मूल्यवान (रानी) नहीं निकली हो, तो उसे स्वीकार करना होगा।

84. यदि कोई भिक्षु किसी मूल्यवान वस्तु या मूल्यवान समझी जाने वाली वस्तु को, मठ या घर के अलावा किसी अन्य स्थान पर उठाता है या किसी और से उठवाता है, तो उसे पश्चात्ताप करना होगा। परन्तु यदि किसी भिक्षु ने किसी मूल्यवान वस्तु या मूल्यवान समझी जाने वाली वस्तु को, जो मठ या घर में छोड़ी गई हो, उठा लिया हो या किसी और से उठवा लिया हो, तो उसे उसे अपने पास रखना चाहिए, यह सोचते हुए कि "जिसका भी यह है, वह आकर इसे ले जाएगा।" यही उचित मार्ग है।

85. यदि कोई भिक्षु, किसी उपलब्ध भिक्षु से अनुमति लिए बिना, गलत समय पर किसी गाँव में प्रवेश करता है - जब तक कि कोई उपयुक्त आपात स्थिति न हो - तो उसे स्वीकारोक्ति करनी होगी।

86. यदि किसी भिक्षु के पास हड्डी, हाथीदांत या सींग से बनी सुई की पेटी हो, तो उसे तोड़कर स्वीकार करना होगा।

87. जब कोई भिक्षु नया पलंग या बेंच बनवा रहा हो, तो उसके पैर (अधिकतम) आठ उंगलियों की लंबाई के होने चाहिए - सुगत उंगलियों की लंबाई का उपयोग करते हुए - फ्रेम के निचले किनारे को छोड़कर। इससे अधिक होने पर उसे काटकर पश्चाताप करना चाहिए।

88. यदि किसी भिक्षु के बिस्तर या बेंच पर गद्दी लगी हो, तो उसे (गद्दी को) फाड़कर स्वीकार करना होगा।

89. जब कोई भिक्षु बैठने के लिए वस्त्र बनवा रहा हो, तो उसे मानक माप के अनुसार बनवाना चाहिए। यहाँ मानक माप यह है: लंबाई में दो हाथ (सुगत हाथ का उपयोग करते हुए), चौड़ाई में डेढ़ हाथ और किनारी एक हाथ। इससे अधिक होने पर उसे काटकर त्याग देना चाहिए।

90. जब कोई भिक्षु त्वचा पर दाने निकलने पर ओढ़ने वाला वस्त्र बनवा रहा हो, तो उसे मानक माप के अनुसार बनवाना चाहिए। यहाँ मानक माप यह है: लंबाई में चार हाथ (सुगत हाथ का प्रयोग करते हुए) और चौड़ाई में दो हाथ। इससे अधिक होने पर, उसे काटकर त्याग देना चाहिए।

91. जब कोई भिक्षु वर्षा स्नान वस्त्र बनवा रहा हो, तो उसे मानक माप के अनुसार बनवाना चाहिए। यहाँ मानक माप यह है: लंबाई में छह हाथ (सुगत हाथ का प्रयोग करते हुए) और चौड़ाई में ढाई हाथ। इससे अधिक होने पर वस्त्र को काटकर त्याग देना चाहिए।

92. यदि किसी भिक्षु के पास सुगत वस्त्र के माप का या उससे बड़ा वस्त्र हो, तो उसे छोटा करके स्वीकार करना होगा। यहाँ, सुगत वस्त्र का माप इस प्रकार है: लंबाई में नौ हाथ (सुगत हाथ के अनुसार) और चौड़ाई में छह हाथ। यही सुगत वस्त्र का माप है।

नौवें खंड, 'रत्न: खजाना खंड' का अंत।

आदरणीय महोदय, पाप स्वीकार करने से संबंधित बानवे नियम पढ़े जा चुके हैं।

उनके संबंध में मैं आदरणीय व्यक्तियों से पूछता हूं, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

यहां पूजनीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

यहां पश्चात्तियों के नियमों का पाठ समाप्त होता है, जो स्वीकारोक्ति से संबंधित हैं।

तिपिटक >> विनय पिटक >> **पतिदेशनीय धम्म**

थानिसारो भिक्कू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पतिमोक्खा

---

6. पतिदेसानिया धम्मा
(स्वीकृति अनिवार्य करने वाले नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाटिदेसानिया स्कैन की गई पुस्तक

पटिदेसनिया पुस्तक की स्कैन की गई लिंक

पटिदेसानिया सारांश

हे आदरणीय महोदय, यहाँ उन चार नियमों का पाठ किया जाता है जो स्वीकारोक्ति से संबंधित हैं।

1. यदि कोई भिक्षु किसी आबादी वाले क्षेत्र में किसी अपरिचित भिक्षुणी के हाथ से प्राप्त मुख्य या गैर-मुख्य भोजन को अपने हाथ से चबाकर खाए, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: "मित्रों, मैंने एक निंदनीय, अनुचित कार्य किया है जिसे स्वीकार करना आवश्यक है। मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।"

2. यदि भिक्षुओं को आमंत्रित करके उनके परिवार के घरों में भोजन कराया जा रहा हो, और कोई भिक्षुणी वहाँ निर्देश देते हुए खड़ी हो, जैसे कह रही हो, "यहाँ करी दो, यहाँ चावल दो," तो भिक्षुओं को उसे यह कहकर विदा करना चाहिए: "बहन, जब तक भिक्षु भोजन कर रहे हैं, तब तक चली जाओ।" यदि कोई भी भिक्षु उसे यह कहकर विदा न करे, "बहन, जब तक भिक्षु भोजन कर रहे हैं, तब तक चली जाओ," तो भिक्षुओं को इसे स्वीकार करना चाहिए: "मित्रों, हमने एक निंदनीय, अनुचित कार्य किया है जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए। हम इसे स्वीकार करते हैं।"

3. कुछ परिवार प्रशिक्षण के लिए नामित किए गए हैं। यदि कोई भिक्षु, यदि वह अस्वस्थ न हो और बिना पूर्व आमंत्रण के, प्रशिक्षण के लिए नामित परिवारों के निवास पर प्राप्त मुख्य या गैर-मुख्य भोजन को चबाए या ग्रहण करे, तो उसे यह स्वीकार करना होगा: "मित्रों, मैंने एक निंदनीय, अनुचित कार्य किया है जिसे स्वीकार करना आवश्यक है। मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।"

4. जंगल में कुछ ऐसे आवास होते हैं जिन्हें संदिग्ध और जोखिम भरा माना जाता है। यदि कोई भिक्षु, जो बीमार न हो, ऐसे आवासों में रहते हुए, बिना पूर्व सूचना के प्राप्त किसी भी प्रकार के मुख्य या गैर-मुख्य भोजन को अपने हाथों से चबाकर खा ले, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: "मित्रों, मैंने एक निंदनीय और अनुचित कार्य किया है जिसे मुझे स्वीकार करना चाहिए। मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।"

यहां पातिदेसानिया समाप्त होते हैं।

आदरणीय महोदय, उन मामलों के संबंध में चार नियम जिनकी आवश्यकता होती है

स्वीकारोक्ति पढ़ी जा चुकी है।

उनके संबंध में मैं पूज्यजनों से पूछता हूँ, 'क्या आप पवित्र हैं?'

यह मामला?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय लोगों से पूछा, 'क्या आप इसमें पवित्र हैं?'

मामला?'

तीसरी बार मैंने पूजनीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इसमें पवित्र हैं?'

मामला?'

पूजनीय लोग इसमें पवित्र हैं। इसलिए वे इसे बनाए रखते हैं।

मौन। इस प्रकार मैं समझता हूँ।

यहां पातिदेसानिया का पाठ समाप्त होता है।

टिपिटक >> विनय पिटक >> **सेखिया धम्म**

पाली भाषा से टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स द्वारा अनुवादित (1881)

अंतर्वस्तु

- 17. सेखिया धम्मा
- 2सेखिया स्कैन की गई किताब
- 3सेखिया सारांश
- 4प्रथम खंड
- 5दूसरा खंड
- 6तीसरा खंड
- 7चौथा खंड
- 8पांचवां खंड
- 9छठा खंड

- 10सातवां खंड
- 11आठवां खंड

पतिमोक्खा

---

7. सेखिया धम्मा
(प्रशिक्षार्थियों के नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाठ: फ़ाइल:VN-PM-Sekhiya-M.pdf

सेखिया स्कैन की गई किताब

स्कैन की गई सेखिया पुस्तक का लिंक

सेखिया सारांश

महोदय महोदय, अब अनुशासन से संबंधित नियमों का पाठ किया जा रहा है।

प्रथम खंड

1. 'मैं अपने पूरे शरीर पर अंतर्वस्त्र पहनूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
2. 'मैं अपने पूरे शरीर पर अपना वस्त्र धारण करूँगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
3. 'मैं उचित वस्त्र पहनकर घरों के बीच जाऊंगा। यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।'
4. 'मैं उचित वस्त्र पहनकर घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
5. '(अपने शरीर को) उचित नियंत्रण में रखते हुए मैं घरों के बीच जाऊंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
6. '(अपने शरीर को) उचित नियंत्रण में रखते हुए मैं घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
7. 'मैं दृष्टि झुकाए घरों के बीच चलूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
8. 'मैं दृष्टि झुकाकर घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
9. 'मैं अपने वस्त्र ऊपर नहीं खींचे हुए घरों के बीच जाऊँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।
10. 'मैं अपने वस्त्र ऊपर उठाए बिना घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

पहले भाग का अंत।

दूसरा खंड

11. 'मैं जोर-जोर से हंसते हुए घरों के बीच नहीं जाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

12. 'मैं जोर-जोर से हंसते हुए घरों के बीच नहीं बैठूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

13. 'मैं घरों के बीच से ज़रा सी आवाज़ करते हुए ही जाऊँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

14. 'मैं बहुत कम आवाज़ करते हुए घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

15. 'मैं अपने शरीर को हिलाए बिना घरों के बीच से गुजरूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

16. 'मैं अपने शरीर को हिलाए बिना घरों के बीच में बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

17. 'मैं अपने हाथों को हिलाए बिना घरों के बीच जाऊंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

18. 'मैं अपने हाथों को हिलाए बिना घरों के बीच में बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

19. 'मैं सिर हिलाए बिना घरों के बीच से गुजरूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

20. 'मैं सिर हिलाए बिना घरों के बीच में बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

दूसरे भाग का अंत।

तीसरा खंड

21. 'मैं अपनी भुजाएँ कमर पर रखे बिना घरों के बीच जाऊँगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

22. 'मैं अपनी भुजाएँ कमर पर रखे बिना घरों के बीच में बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

23. 'मैं अपना सिर ढके बिना घरों के बीच जाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

24. 'मैं अपना सिर ढके बिना घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

25. 'मैं अपने पैरों की एड़ियों या पंजों पर चले बिना (पैर की उंगलियों के बल) घरों के बीच से गुजरूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

26. 'बिना आलस किए मैं घरों के बीच बैठूंगा।' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

27. 'मैं सचेत मन से भिक्षा ग्रहण करूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

28. 'अपने कटोरे पर ध्यान देने से मुझे भिक्षा प्राप्त होगी।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

29. 'मैं बराबर करी के साथ भिक्षा ग्रहण करूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

30. 'मैं भिक्षा को समान रूप से ग्रहण करूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

तीसरे खंड का अंत।

चौथा खंड

31. 'मैं सचेत मन से अपने कटोरे में रखा हुआ भिक्षा ग्रहण करूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

32. 'मैं अपने कटोरे पर ध्यान देते हुए अपने कटोरे में रखी हुई भिक्षा खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

33. 'मैं घर-घर जाकर भीख मांगते हुए अपने कटोरे में रखी हुई भिक्षा खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

34. 'मैं अपने कटोरे में रखी हुई भिक्षा को बराबर मात्रा में खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

35. 'मैं अपने कटोरे में रखी हुई भिक्षा को ऊपर से दबाए बिना खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

36. 'मैं चावल को स्वादिष्ट बनाने की चाह में न तो करी को और न ही मसाले को चावल से ढकूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

37. 'मैं अपने निजी उपयोग के लिए न तो करी मांगूंगा और न ही चावल, जब तक कि मैं बीमार न होऊं।' यह वह अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

38. 'मैं दूसरों के कटोरे ईर्ष्या भरी नज़रों से नहीं देखूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

39. 'मैं अपने भोजन को बहुत बड़े-बड़े गोलों में नहीं बनाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

40. 'मैं अपने भोजन को गोल-गोल निवालों में बाँटूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

चौथे खंड का अंत।

पांचवां खंड

41. 'जब तक गेंद मेरे करीब न आ जाए, मैं अपने मुंह का दरवाजा नहीं खोलूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

42. 'खाना खाते समय मैं अपना पूरा हाथ मुंह में नहीं डालूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

43. 'जब मेरे मुंह में खाना होगा तो मैं बात नहीं करूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

44. 'मैं भोजन को मुंह में डाले बिना नहीं खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

45. 'मैं भोजन के टुकड़ों को कुतरते हुए ही खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

46. 'मैं अपने गाल फुलाए बिना खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

47. 'मैं अपने हाथों को हिलाए बिना ही भोजन करूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

48. 'उबले हुए चावल के टुकड़ों को बिखेरे बिना मैं खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

49. 'मैं अपनी जीभ बाहर निकाले बिना भोजन नहीं करूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

50. 'मैं अपने होंठों को चटकाए बिना खाना खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

पांचवें खंड का अंत।

छठा खंड

51. 'मैं फुफकारने की आवाज किए बिना खाऊंगा,' यह एक अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

52. 'मैं अपनी उंगलियां चाटे बिना खाना नहीं खाऊंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

53. 'मैं अपने कटोरे को चाटे बिना भोजन नहीं करूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

54. 'मैं अपने होंठ चाटे बिना भोजन नहीं करूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

55. 'मैं भोजन से सने हाथ से पानी का घड़ा नहीं पकड़ूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

56. 'उबले हुए चावल के टुकड़ों से सने कटोरे के पानी को मैं भीतरी प्रांगण में नहीं फेंकूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

57. 'मैं किसी ऐसे व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा जिसके हाथ में धूप से बचाव का चश्मा हो, जब तक कि वह बीमार न हो।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

58. 'मैं हाथ में लाठी लिए किसी व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

59. 'मैं किसी ऐसे व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा जिसके हाथ में तलवार हो, सिवाय इसके कि वह बीमार हो।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

60. 'मैं किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके हाथ में हथियार हो, धर्म का उपदेश नहीं दूंगा, जब तक कि वह बीमार न हो।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

छठे खंड का अंत।

सातवां खंड

61. 'मैं बीमार व्यक्ति को छोड़कर चप्पल पहने हुए व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

62. 'मैं बीमार व्यक्ति को छोड़कर किसी भी ऐसे व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा जिसने चप्पल पहनी हो।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

63. 'मैं बीमार व्यक्ति को छोड़कर किसी रथ में बैठे व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

64. 'मैं बीमार व्यक्ति को छोड़कर, सोफे पर लेटे हुए व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

65. 'मैं किसी आलसी व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

66. 'मैं सिर पर पगड़ी बांधे हुए व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

67. 'मैं सिर ढके हुए व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

68. 'मैं, पृथ्वी पर बैठा हुआ, किसी बीमार व्यक्ति को छोड़कर, आसन पर बैठे हुए व्यक्ति को धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

69. 'मैं, जो ऊँची कुर्सी पर बैठा हूँ, बीमार होने पर ही धम्म का उपदेश दूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

70. 'मैं बैठे हुए व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, खड़े होकर धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

सातवें खंड का अंत।

आठवां खंड

71. 'मैं अपने आगे चलने वाले व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, पीछे चलते हुए धम्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

72. 'मैं किसी मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को, जब तक वह बीमार न हो, मार्ग के किनारे चलते हुए धर्म का उपदेश नहीं दूंगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

73. 'मैं खड़े होकर शौच नहीं करूंगा, जब तक कि मैं बीमार न हो जाऊं।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

74. 'मैं उगती हुई घास पर शौच नहीं करूँगा और न ही थूकूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

75. 'मैं पानी में शौच नहीं करूँगा और न ही थूकूँगा।' यह एक ऐसा अनुशासन है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

आदरणीय महोदय, अनुशासन संबंधी नियमों का पाठ किया जा चुका है।

उनके सम्मान में मैं पूज्यजनों से पूछता हूँ, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'

मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'

यहां पूजनीय लोग पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम) का पाठ यहीं समाप्त होता है।

तिपिटक >> विनय पिटक >> **अधिकरण समथा**

थानिसारो भिक्कू, टीडब्ल्यूआरहिस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पतिमोक्खा

8.अधिकरण-समथा धम्म
(विवादों का निपटारा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अधिकारण-समथा सारांश
महोदय, यहाँ मुकदमों के निपटारे से संबंधित सात नियम सुनाए जाते हैं।

1. आमने-सामने फैसला सुनाया जाना चाहिए: इसका अर्थ है कि मुद्दे को सुलझाने की औपचारिक कार्रवाई समुदाय की उपस्थिति में, व्यक्तियों की उपस्थिति में और धम्म और विनय की उपस्थिति में की जानी चाहिए।

2. सचेतता का फैसला दिया जा सकता है: यह किसी आरोप में दी गई निर्दोषता का फैसला है, जो इस तथ्य पर आधारित है कि आरोपी को पूरी तरह से याद है कि उसने विचाराधीन अपराध नहीं किया है।

3. अतीत में पागलपन का फैसला दिया जा सकता है: यह किसी आरोप में दी गई निर्दोषता का एक और फैसला है, जो इस तथ्य पर आधारित है कि आरोपी ने जब अपराध किया था तब वह मानसिक रूप से अस्वस्थ था और इसलिए उसे इसके लिए किसी भी जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया जाता है।

4. स्वीकारोक्ति के अनुसार कार्य करना: यह अपराधों की सामान्य स्वीकारोक्ति को संदर्भित करता है, जिसमें कोई औपचारिक पूछताछ शामिल नहीं होती है। स्वीकारोक्ति तभी मान्य होती है जब वह तथ्यों के अनुरूप हो, उदाहरण के लिए, एक भिक्षु वास्तव में एक पचित्त्य अपराध करता है और फिर उसे उसी रूप में स्वीकार करता है, न कि किसी गंभीर या कम गंभीर अपराध के रूप में। यदि वह इसे दुक्कात या संघादिशेष के रूप में स्वीकार करता है, तो वह अमान्य होगा।

5. बहुमत के अनुसार कार्य करना: यह उन मामलों को संदर्भित करता है जिनमें भिक्षु सभी उचित प्रक्रियाओं का पालन करने के बाद भी सर्वसम्मति से विवाद का निपटारा करने में असमर्थ होते हैं, और - धर्मग्रंथ के शब्दों में - "एक दूसरे को ज़ुबान के हथियार से घायल कर रहे होते हैं।" ऐसे मामलों में, बहुमत के मत से निर्णय लिया जा सकता है।

6. अभियुक्त को आगे की सजा देना: यह उन मामलों को संदर्भित करता है जहां एक भिक्षु औपचारिक पूछताछ के बाद ही अपराध स्वीकार करता है। इसके बाद उसे उसके कार्यों के लिए फटकारा जाता है, अपराध याद दिलाया जाता है और उसे स्वीकारोक्ति करने के लिए कहा जाता है। इसके बाद, समुदाय द्वारा उसे एक सामुदायिक अनुबंध के रूप में आगे की सजा दी जाती है, जिसके तहत उसे एक भिक्षु के रूप में अपने सामान्य अधिकारों की एक लंबी सूची को एक निश्चित अवधि के लिए त्यागना पड़ता है, जब तक कि समुदाय को यह विश्वास न हो जाए कि उसने सबक को दिल से समझ लिया है।

7. घास से ढकना: यह उन स्थितियों को संदर्भित करता है जिनमें विवाद के दोनों पक्ष यह महसूस करते हैं कि अपने विवाद के दौरान उन्होंने ऐसा बहुत कुछ किया है जो ध्यान के योग्य नहीं है। यदि वे अपने अपराधों के लिए एक-दूसरे से निपटें, तो इसका एकमात्र परिणाम और अधिक विभाजन होगा। इसलिए यदि दोनों पक्ष सहमत हों, तो सभी भिक्षु एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। (टीका के अनुसार, इसका अर्थ है कि सीमा में उपस्थित सभी भिक्षुओं को उपस्थित होना चाहिए। किसी को भी अपनी सहमति नहीं भेजनी चाहिए, और यहां तक कि बीमार भिक्षुओं को भी जाना चाहिए।) पूरे समूह के समक्ष एक प्रस्ताव रखा जाता है कि इस प्रक्रिया का पालन किया जाएगा। फिर प्रत्येक पक्ष का एक सदस्य अपने गुट के सदस्यों के समक्ष औपचारिक प्रस्ताव रखता है कि वह उनके लिए पश्चात्ताप करेगा। जब दोनों पक्ष तैयार हो जाते हैं, तो प्रत्येक पक्ष का प्रतिनिधि पूरे समूह को संबोधित करता है और एक प्रस्ताव और एक घोषणा (नत्ति-दुतिया-कम्म) के रूप में सामूहिक पश्चात्ताप करता है।

> आदरणीय महोदय, मुकदमों के निपटारे से संबंधित सात नियम सुनाए जा चुके हैं।
>
> उनके आदर में मैं पूज्यजनों से पूछता हूँ, 'क्या आप इस मामले में शुद्ध हैं?'
>
> मैंने दूसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'
>
> मैंने तीसरी बार आदरणीय व्यक्तियों से पूछा, 'क्या आप इस मामले में पवित्र हैं?'
>
> पूजनीय लोग इस मामले में पवित्र हैं। इसीलिए वे मौन रहते हैं। मैं यही समझता हूँ।

अधिकरण-समाथों का पाठ यहीं समाप्त होता है।

आदरणीय महोदय! यह निदान (प्रस्तावना) का पाठ है।

यहां चार पाराजिक नियमों का पाठ किया गया है।

संघदिशेष के तेरह नियम सुनाए जाते हैं।

यहां अनियता के दो नियम सुनाए गए हैं।

यहां तीस निसग्गीय-पाचितीय नियमों का पाठ किया गया है।

यहां बानवे पाचित्टीय नियमों का पाठ किया गया है।

यहां पातिदेसानिया के चार नियम सुनाए गए हैं।

यहां सेखिया के नियम पढ़े जा रहे हैं।

सात अधिकरण-समथ नियम का पाठ किया जाता है।

सूत्रों में संकलित और समाहित भगवान बुद्ध के इतने सारे वचन प्रत्येक छह महीने में पाठ के लिए आते हैं। इसलिए सभी को सामंजस्य, प्रसन्नता और बिना किसी विवाद के उसी के अनुरूप अभ्यास करना आवश्यक है!

भिक्षुओं के उपयोग के लिए पातिमोक्खा का पाठ यहीं समाप्त होता है।

टिपिटका >> विनय पिटक >> **भिक्खुनि पतिमोक्खा**

पाली संस्करण : नीचे दिए गए पाठों में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

पतिमोक्खा

☐

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनी पतिमोक्खा
  - 1.1पतिमोक्खा अध्याय
    - 1.1.11. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
    - 1.1.22. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
    - 1.1.33. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित)
    - 1.1.44. पचितिया धम्म (प्रायश्चित)
    - 1.1.55. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकारोक्ति)
    - 1.1.66. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
    - 1.1.77. अधिकरण समथ धम्म (विवादों का निपटारा)

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

विस्तृत पाठ: फ़ाइल: पतिमोक्खा-एफ.पीडीएफ

नोट: भिक्खुनी पाटीमोक्खा में 311 नियम हैं। इनमें से 181 नियम भिक्खु पाटीमोक्खा के साथ साझा किए गए हैं।

इन अतिरिक्त नियमों में से एक तिहाई से अधिक नियम भिक्षुणियों को अन्य भिक्षुणियों के दुर्व्यवहार या लापरवाही भरे व्यवहार का प्रत्यक्ष शिकार होने से बचाने के लिए बनाए गए थे।

दो अतिरिक्त नियम (पाचित्त 6 और 44) भिक्षुणियों को भिक्षुओं या गृहस्थ लोगों की सेवा करने की स्थिति में खुद को रखने से रोकते हैं।

नियमों की उत्पत्ति की कहानियों के अनुसार, अतिरिक्त नियमों (पाचित्तिया 59, 94 और 95) में से तीन को छोड़कर बाकी सभी नियम तभी बनाए गए थे जब भिक्षुणियों ने भिक्षुओं से किसी पथभ्रष्ट भिक्षुणी (भिक्षुणी) के व्यवहार के बारे में शिकायत की थी।

भिक्षुणियों के चार प्रारंभिक कार्य

1. जगह की सफाई करना,
2. दीपक जलाना,
3. पानी पिलाना और
4. सीटों को फैलाना।

पाँच कार्य

1. ब्याज,
2. शुद्धता,
3. (विवेकपूर्वक) उपयुक्त समय,
4. भिक्षुणियों की संख्या और
5. सलाह

उपयुक्त होने के लिए चार विशेषताएं

1. पूर्णिमा का दिन,
2. सभी पराजित भिक्षुणियाँ,
3. समुदाय से बहिष्कृत लोग उपस्थित नहीं हैं और
4. पराजित भिक्षुणियाँ दूर हैं

प्रारंभिक चार कार्यों, पांच कार्यों और उपयुक्तता की चार विशेषताओं के पूर्ण हो जाने पर, हम उन भिक्षुणियों को आमंत्रित करते हैं जिन्हें भिक्षुणी संघ की सहमति प्राप्त हो चुकी है, ताकि वे उच्च संघ के नियमों का पाठ कर सकें।

निदान (परिचय) (प्रस्तावना)

हे परम पूज्य देवियों, ध्यान दें, आज पूर्णिमा का पंद्रहवाँ दिन है, भिक्षुणियों का समुदाय उचित रूप से भिक्षुणियों के नियमों का पाठ कर सकता है।

क्या कार्य हैं? हे परम पूज्य देवियों, अपनी पवित्रता का ध्यान रखें। मैं उच्च कोटि के नियमों का पाठ करूंगा। सभी उपस्थित, ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से सुनें। जिनके मन में कोई धार्मिक अपराध हो, वे उसे प्रकट करें। जिनके मन में कोई अपराध न हो, वे मौन रहें; उनके मौन से ही मैं उनकी पवित्रता जान पाऊंगा। इस प्रकार की सभा में, इसे तीसरी बार तक सुनना चाहिए। तीसरी बार तक सुनते समय, यदि आपको कोई अपराध याद आए, तो उसे प्रकट करें। यदि कोई भिक्षुणी तीसरी बार तक सुनते समय अपने द्वारा प्रकट किए गए किसी

अपराध को प्रकट न करे, तो यह जानबूझकर झूठ बोलने के समान है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि जानबूझकर झूठ बोलना एक बाधा है। इसलिए, जिन्हें अपने अपराध याद आ रहे हों, उन्हें उन्हें प्रकट करना चाहिए; यह उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

हे प्रतिष्ठित महिलाओं, मूल पाठ सुनाया जा रहा है, आपकी पवित्रता कैसी है? मैं दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ, आपकी पवित्रता कैसी है? प्रतिष्ठित महिलाएं पवित्र हैं, इसलिए वे चुप रहती हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

निदान (परिचय) का समापन

पतिमोक्खा अध्याय

---

1. परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
2. संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
3. निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित)
4. पचितिया धम्म (प्रायश्चित)
5. पतिदेसानिया धम्म (स्वीकारोक्ति)
6. सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
7. अधिकरण समथ धम्म (विवादों का निपटारा)

हे परम पूज्य महिलाओं, निदान (प्रस्तावना) का पाठ किया जाता है। इसमें आठ गंभीर अपराध, सत्रह गंभीर अपराध जिनके लिए बहिष्कार का दंड दिया जाता है, तीस नियम जो पतन और बहिष्कार का कारण बनते हैं, आठ अपराध जिनके लिए पश्चात्ताप करना आवश्यक है, प्रशिक्षु के लिए नियम और अनुशासन स्थापित करने के सात तरीके बताए गए हैं। ये सभी भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्राप्त हुए हैं और इनका पाठ पखवाड़े में एक बार करना चाहिए। सभी को एकजुट होकर और बिना किसी विवाद के इनका अभ्यास करना चाहिए।

विस्तृत व्याख्या का अंत।

भिक्षुणियों के लिए पतिमोक्खा के नियमों का अंत।

टिपिटका >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **परजिका धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनि पतिमोक्खा
  - 1.1परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
    - 1.1.1पराज़िका सारांश
    - 1.1.2पैराज़िका स्कैन की पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

परजिका धम्म (पराजय और निष्कासन)
(वे अपराध जिनके लिए बहिष्कार उचित है)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अब आठों अपराधों का वर्णन किया जाता है।

यौन संबंधी चीजों के लिए प्रशिक्षण सिद्धांत

1. यदि कोई भिक्षुणी यौन क्रियाओं में रुचि रखती है और पशु के रूप में उनका अभ्यास करती है, तो यह बहिष्कार के योग्य अपराध है।

चोरी करने के लिए प्रशिक्षण का नियम।

2. यदि कोई भिक्षुणी गाँव या जंगल से कोई ऐसी वस्तु चुराती है जो उसे दी नहीं गई हो, और यदि यह चोरी की श्रेणी में आती है जिसके लिए राजा गिरफ्तार कर सकता है, फाँसी दे सकता है, कैद कर सकता है या देश निकाला दे सकता है, तो वह ऐसा अपराध करती है जिसके लिए उसे समाज से बहिष्कृत किया जा सकता है।

मानव जीवन को छीनने का प्रशिक्षण सिद्धांत।

3. यदि कोई भिक्षुणी जानबूझकर किसी को हथियार मुहैया कराकर, मृत्यु की प्रशंसा करके, या किसी को यह कहकर मरने के लिए उकसाकर कि, 'हे मनुष्य, इस दुष्ट और अप्रिय जीवन का क्या लाभ, जीना से मरना बेहतर है", किसी मनुष्य के जीवन को छीनती है, तो मृत्यु का गुणगान करना अपराध है, जिसके लिए भिक्षुणी का बहिष्कार किया जा सकता है।

मानवीय स्तर से ऊपर की उपलब्धियों के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत।

4. एक भिक्षुणी, जो स्वयं उन उपलब्धियों को प्राप्त किए बिना ही दूसरों को अपने उच्चतर गुणों का आभास कराती है, कहती है, 'मैं उच्चतर उपलब्धियों और दिव्य दृष्टियों को जानती और देखती हूँ।' बाद में, जब उससे पूछताछ की जाती है या बिना पूछताछ के भी, अपने अपराध को पहचानकर और पवित्रता की तलाश में वह कहती है, 'हे परम पूज्य, अनजाने में मैंने कहा कि मैं जानती और देखती हूँ, मैंने ये व्यर्थ के झूठ अहंकार में बोले।' यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिए भिक्षुणी को बहिष्कृत किया जा सकता है।

घुटने के ऊपरी भाग पर किया जाने वाला प्रशिक्षण सिद्धांत।

5. यदि कोई भिक्षुणी इच्छा से प्रेरित होकर किसी पुरुष के स्पर्श, मालिश, पकड़ने, छूने या घुटनों के ऊपर दबाने के लिए सहमति देती है, तो यह बहिष्कृत किए जाने योग्य अपराध है।

अपराध को छिपाने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत।

6. यदि कोई भिक्षुणी जानती है कि दूसरी भिक्षुणी ने कोई अपराध किया है, तो वह उसके जीवित रहते हुए न तो उस पर आरोप लगाएगी और न ही समुदाय को इसकी सूचना देगी। बाद में वह कहेगी: 'मुझे पहले से ही पता था कि वह बहन ऐसे व्यवहार की है।' भिक्षुणी पर स्वयं आरोप न लगाना और न ही समुदाय को इसकी सूचना देना, बहिष्कृत किए जाने योग्य अपराध है।

बहिष्कृत भिक्षु के साथ संगति करने के लिए प्रशिक्षण संबंधी नियम।

7. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसे भिक्षु के साथ संगति करती है जिसे गुरु के अनुशासन के अनुसार अनादरपूर्ण व्यवहार के कारण बहिष्कृत कर दिया गया है और जिसे सुधारा नहीं जा सकता, तो भिक्षुणियों द्वारा उसे तीसरी बार तक यह सलाह दी जानी चाहिए: 'हे परम पूज्य, इस भिक्षु को गुरु के अनुशासन के अनुसार अनादरपूर्ण व्यवहार के कारण बहिष्कृत कर दिया गया है और जिसे सुधारा नहीं जा सकता, कृपया इसके साथ संगति न करें।' यदि वह संगति छोड़ देती है तो यह अच्छा है; अन्यथा, यह बहिष्करण के योग्य अपराध है।

आठ प्रकार के दुराचार के लिए प्रशिक्षण नियम

8. यदि कोई भिक्षुणी, जो वासना से ग्रस्त है, किसी पुरुष के हाथ पकड़ने, वस्त्र के किनारे को छूने, निकट खड़े होने, बातचीत करने या विचारों का आदान-प्रदान करने, या उसके साथ एकांतवास में जाने, या ऐसे इरादों से शरीर का प्रदर्शन करने जैसे प्रस्तावों को सहन करती है, तो यह कुकर्म बहिष्कृत किए जाने योग्य अपराध है।

पराजिका धम्म (वे अपराध जिनके लिए बहिष्कार उचित है) का अंत।

हे परम पूज्य देवियों, बहिष्कार के आठ अपराध बताए जा रहे हैं। इन अपराधों में से किसी एक का भी दोषी भिक्षुणी बहिष्कृत होने के योग्य है। हे परम पूज्य देवियों, मैं आपसे पूछता हूँ, आपकी पवित्रता कैसी है? मैं आपसे दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ, आपकी पवित्रता कैसी है? परम पूज्य देवियाँ पवित्र हैं, इसलिए वे मौन हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

[टिपिटक]] >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **संघादिसेसा धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनि पतिमोक्खा
  - 1.1संघदेश धम्म (व्यवस्था की बैठक)
    - 1.1.1संघदिसेसा फ्रॉम
    - 1.1.2संघदिसेसा स्कैन की पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

संघदिशेष धम्म (व्यवस्था की बैठक)
(बीस से अधिक भिक्षुओं और भिक्षुणियों की सामुदायिक बैठक द्वारा क्षमा किए जाने वाले अपराध)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

संघदिसेसा सारांश

हे सम्मानित महिलाओं, अब सत्रह गंभीर अपराधों का पाठ किया जाएगा।

झगड़े के लिए उपदेश

1. झगड़ालू जीवन जीने वाली भिक्षुणी, जो किसी गृहस्थ, उसके पुत्र, नौकर, मजदूर या कम से कम किसी घुमंतू तपस्वी से झगड़ा करती है, वह पहले अपराध से ही गिर जाती है और गंभीर अपराध से तो वह असहाय हो जाती है।

कपटी स्त्री के साथ संगति करने के लिए नियम।

2. एक भिक्षुणी यह जानते हुए भी कि कोई स्त्री कपटी है, इस तथ्य को अनदेखा करते हुए और राजा, समुदाय, समूह, संघ या सेना के साथ उचित व्यवस्था किए बिना, उसके साथ संगति करती है और प्रथम अपराध करती है तथा गंभीर अपराध के लिए असहाय हो जाती है।

गांव में अकेले घूमने के लिए नियम।

3. कोई भिक्षुणी, गाँव में अकेले विचरण करते हुए, या अकेले नदी पार करते हुए, या अकेले रात बिताते हुए, या भिक्षुणियों के समुदाय को छोड़कर, प्रथम अपराध से ही गिर जाती है और गंभीर अपराध से असहाय हो जाती है।

बहिष्कृत व्यक्ति को वापस समाज में लाने का नियम।

4. यदि कोई भिक्षुणी, शिक्षक के निर्देशों के अनुसार, भिक्षुणी समुदाय द्वारा विधिवत बहिष्कृत किसी अन्य भिक्षुणी को कार्य समिति के निर्णयों और बहुमत से किए गए बहिष्करण की अवहेलना करते हुए, पुनः भस्म कर देती है, तो वह प्रथम अपराध के लिए दोषी है और गंभीर अपराध के लिए असहाय हो जाता है।

भोजन ग्रहण करने का नियम।

5. किसी भिक्षुणी द्वारा वासना से ग्रस्त पुरुष के हाथों से खाने-पीने की वस्तुएँ ग्रहण करने पर वह प्रथम अपराध के साथ ही पतित हो जाती है और गंभीर अपराध के साथ असहाय हो जाती है।

भोजन ग्रहण करने का दूसरा नियम।

6. एक भिक्षुणी कहती है: 'हे परम पूज्य, इससे क्या फर्क पड़ता है कि यह पुरुष कामवासना से ग्रस्त है या नहीं; आप निर्जलित हैं, इसलिए आप स्वयं भोजन और पेय पदार्थ ग्रहण करें।' यहाँ वह प्रथम अपराध से ही गिर जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए प्रशिक्षण सिद्धांत।

7. कोई भिक्षुणी जो किसी पुरुष को स्त्री का इरादा या किसी स्त्री को पुरुष का इरादा बताती है, या कम से कम अस्थायी संबंध के लिए ऐसा करती है, वह पहले अपराध से ही गिर जाती है और गंभीर अपराध से तो वह असहाय हो जाती है।

दुष्ट क्रोध के लिए प्रशिक्षण सिद्धांत।

8. एक भिक्षुणी क्रोधित और असंतुष्ट होकर दूसरी भिक्षुणी पर आरोप लगाती है कि वह पूर्णतः बहिष्कृत होने की पात्र है, 'इस पवित्र जीवन का क्या लाभ, वस्त्र त्याग दो।' बाद में, पूछताछ करने पर, या बिना पूछताछ के, या पूर्ण जाँच के बाद, आरोप गलत सिद्ध होता है और यह पाया जाता है कि भिक्षुणी क्रोधित थी। यह भिक्षुणी पहले अपराध में ही अपंग हो जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

एक नियम के लिए, दूसरे खंड में।

9. एक क्रोधित और असंतुष्ट भिक्षुणी एक छोटी सी बात पर दूसरी भिक्षुणी पर अप्रासंगिक अपराधों का आरोप लगाती है और कहती है कि वह पूर्णतः बहिष्कृत होने की पात्र है, 'इस पवित्र जीवन का क्या लाभ, वस्त्र त्याग दो।' बाद में जब उससे पूछताछ की जाती है, या नहीं की जाती है, या दूसरे प्रकार के अपराधों की पूरी जांच के बाद, आरोप गलत साबित होता है और पता चलता है कि भिक्षुणी क्रोधित थी। यह भिक्षुणी पहले अपराध के कारण ही गिर जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

प्रशिक्षण छोड़ने का नियम।

10. एक भिक्षुणी क्रोधित और असंतुष्ट होकर कहती है, 'मैं स्वयं को ज्ञान से, शिक्षा से, समुदाय से और प्रशिक्षण से विमुख हो जाती हूँ। मैं शाक्यों पुत्रियों से बहुत पीछे हूँ। अन्य भिक्षुणियाँ हैं, जो संकोची और प्रशिक्षण के प्रति सजग हैं, मैं उनके अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करूँगी।' अन्य भिक्षुणियों द्वारा उस भिक्षुणी को इस प्रकार सलाह दी जानी चाहिए: 'हे परम पूज्य, क्रोधित और असंतुष्ट भिक्षुणी, ऐसा मत कहो कि मैं स्वयं को ज्ञान से, शिक्षा से, समुदाय से और प्रशिक्षण से विमुख हो जाती हूँ। मैं शाक्यों पुत्रियों से बहुत पीछे हूँ। अन्य भिक्षुणियाँ हैं, जो संकोची और प्रशिक्षण के प्रति सजग हैं, मैं उनके अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करूँगी। शिक्षा का अच्छा प्रचार हुआ है, पवित्र जीवन व्यतीत करो, उसमें आनंद लो और अप्रियता का उचित अंत करो।' यदि सलाह देने के बाद भी वह इस विचार पर अड़ी रहती है, तो उसे तीसरी बार तक सलाह दी जानी चाहिए। अगर वह इसे छोड़ देती है तो यह अच्छी बात है, अन्यथा वह बार-बार चेतावनी न मानने के अपराध में तीसरी बार तक दोषी पाई जाएगी और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाएगी।

किसी वैध निर्णय पर क्रोधित होने का नियम

11. यदि कोई भिक्षुणी किसी उचित निर्णय पर क्रोधित और असंतुष्ट होकर कहे, 'भिक्षुणियाँ स्वार्थ, क्रोध, मोह और भय से प्रेरित होती हैं,' तो अन्य भिक्षुणियों द्वारा उसे यह कहकर समझाया जाना चाहिए: 'हे परम पूज्य, किसी उचित निर्णय पर क्रोधित और असंतुष्ट भिक्षुणी, ऐसा न कहिए कि भिक्षुणियाँ स्वार्थ, क्रोध, मोह और भय से प्रेरित होती हैं। हे परम पूज्य, आप स्वयं स्वार्थ, क्रोध, मोह और भय से प्रेरित हो सकती हैं।' भिक्षुणियों को तीसरी बार तक उसे यह विचार त्यागने के लिए समझाना चाहिए। यदि वह इसे त्याग देती है, तो

अच्छा है; अन्यथा वह तीसरी बार तक बार-बार चेतावनी न मानने के कारण अपराध करती है और गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

बुरे आचरण का पहला नियम।

12. यदि भिक्षुणियाँ गलत आचरण, गलत आस्था और गलत सद्‌गुणों का अभ्यास करती हैं, तो एक-दूसरे की गलतियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय में चिंता उत्पन्न होती है। भिक्षुणियों को उन्हें यह समझाना चाहिए: 'बहनो, तुम गलत आचरण, गलत आस्था और गलत सद्‌गुणों का अभ्यास करती हो, एक-दूसरे की गलतियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय में चिंता उत्पन्न करती हो।'

हे सम्मानित महिलाओं, समुदाय खुलेपन की सराहना करता है। यदि वे लगातार गलत व्यवहार करती हैं, तो उन्हें तीसरी बार तक चेतावनी दी जानी चाहिए। यदि वे अपना गलत व्यवहार छोड़ देती हैं तो यह अच्छी बात है, अन्यथा वे तीसरी बार तक बार-बार चेतावनी न मानने के अपराध में फंस जाती हैं और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती हैं।

बुरे आचरण के लिए दूसरा नियम।

13. यदि कोई भिक्षुणी कहती है: 'हे श्रेष्ठ देवियों, एकांतवास करो, परन्तु अनेक प्रकार के आचरणों में भली-भांति व्यवहार करो। इस समुदाय में अन्य भिक्षुणियाँ भी हैं जिनका आचरण, आस्था और गुण ऐसे ही हैं, जो एक-दूसरे की कमियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय को चिंतित करती हैं। भिक्षुणियों के समुदाय ने उन्हें कुछ नहीं कहा। वे तुम्हें नापसंद करती हैं, तुम्हारे बारे में कानाफूसी करती हैं और तुम्हारी कमजोरी के कारण कहती हैं: 'बहनो, तुम गलत आचरण, गलत आस्था और गलत गुणों का पालन करती हो, एक-दूसरे की कमियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय को चिंतित करती हो। हे श्रेष्ठ देवियों, समुदाय खुलेपन की प्रशंसा करता है।' तो उस भिक्षुणी को इस प्रकार समझाया जाना चाहिए: 'हे श्रेष्ठ देवियों, ऐसा मत कहो: 'हे श्रेष्ठ देवियों, एकांतवास करो, परन्तु अनेक प्रकार के आचरणों में भली-भांति व्यवहार करो। इस समुदाय में अन्य भिक्षुणियाँ भी हैं जिनका आचरण, आस्था और गुण ऐसे ही हैं, जो एक-दूसरे की कमियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय को चिंतित करती हैं। भिक्षुणियों के समुदाय ने उन्हें कुछ नहीं कहा।' आपको नापसंद करने वाले, आपके बारे में कानाफूसी करने वाले और आपकी कमजोरी के कारण कहते हैं: 'बहनो, तुम गलत आचरण, गलत आस्था, गलत गुणों का पालन करती हो, एक-दूसरे की गलतियों को छुपाकर भिक्षुणियों के समुदाय को चिंतित करती हो। हे श्रेष्ठ महिलाओं, समुदाय खुलेपन की प्रशंसा करता है।' यदि वह लगातार ऐसा व्यवहार करती है, तो उसे तीसरी बार तक चेतावनी दी जानी चाहिए। यदि वह इस व्यवहार को छोड़ देती है तो अच्छा है, अन्यथा वह बार-बार, तीसरी बार तक चेतावनी न मानने के अपराध में फंस जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

समुदाय में फूट डालने का नियम।

14. यदि कोई भिक्षुणी एकता में संपन्न समुदाय में फूट डालती है, या किसी ऐसे विवाद को जारी रखती है जिसका समाधान फूट उत्पन्न कर सकता है, तो भिक्षुणियों द्वारा उसे यह चेतावनी दी जानी चाहिए: ‘हे परम पूज्य, एकता में संपन्न समुदाय में फूट न डालें, किसी ऐसे विवाद को जारी न रखें जिसका समाधान फूट उत्पन्न कर सकता है। हे परम पूज्य, समुदाय की एकता का सम्मान करें। एक एकता में संपन्न, सुखद समुदाय जो एक ही पाठ करता है, अच्छा है।’ यदि वह अपने प्रयास में लगी रहती है, तो उसे तीसरी बार तक चेतावनी दी जानी चाहिए। यदि वह इसे छोड़ देती है तो अच्छा है, अन्यथा वह तीसरी बार तक बार-बार चेतावनी न मानने के अपराध में फँस जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

षड्यंत्रकारियों को एकजुट करने का सिद्धांत

15. एक ही भिक्षुणी के बारे में एक, दो या तीन भिक्षुणियाँ कहती हैं: “हे देवियों, इस भिक्षुणी से कुछ मत कहिए, यह विधि के अनुसार उचित बात कह रही है। मैं भी इसके हितों और पसंद से सहमत हूँ। यह जानती है कि वह क्या कह रही है, मैं भी इसके शब्दों से सहमत हूँ।” भिक्षुणियों को इन भिक्षुणियों को समझाना चाहिए: “हे देवियों, ऐसा मत कहिए, यह भिक्षुणी विधि के अनुसार उचित बात नहीं कह रही है। आपको समुदाय में फूट डालने के लिए अपना समर्थन नहीं देना चाहिए। हे देवियों, समुदाय के साथ सद्‌भाव से रहिए। एक ही पाठ करने वाला एकतापूर्ण और सुखद समुदाय अच्छा है।” यदि वे अपने प्रयास में लगी रहती हैं, तो उन्हें तीसरी बार तक समझाया जाना चाहिए। यदि वे इसे छोड़ देती हैं तो अच्छा है, अन्यथा वे तीसरी बार तक बार-बार समझाए जाने पर अनसुना करने के अपराध में फँस जाती हैं और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती हैं।

अनुशासनहीनता के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत।

16. एक अनियंत्रित स्वभाव की भिक्षुणी, भिक्षुणियों द्वारा उचित उपदेश दिए जाने पर भी नहीं सुनती थी। वह कहती थी, "हे श्रेष्ठ देवियों, मुझे अच्छे-बुरे के विषय में उपदेश न दीजिए। मैं भी श्रेष्ठ देवियों को अच्छे-बुरे के विषय में उपदेश नहीं देती।" भिक्षुणियों को उसे समझाना चाहिए: "हे श्रेष्ठ देविका, उपदेश से परे मत बनो। उपदेश के लिए स्वयं को उपलब्ध कराओ और तुम भी भिक्षुणियों को उचित उपदेश दो। भगवान बुद्ध की सभा एक-दूसरे को उपदेश देने और सुधार करने से बढ़ती है। इस प्रकार उपदेश देने पर भी यदि वह सुधरती नहीं है, तो उसे तीसरी बार तक उपदेश देना चाहिए। यदि वह अपना अनियंत्रित स्वभाव त्याग देती है, तो अच्छा है; अन्यथा वह तीसरी बार तक बार-बार उपदेश न मानने के कारण अपराध करती है और गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।"

किसी परिवार को बदनाम करने का दंड।

17. एक भिक्षुणी किसी गाँव या बस्ती में रहती है। उसे अक्सर एक परिवार के यहाँ आते-जाते देखा और सुना जाता है। वह परिवार भी उसके बुरे आचरण को जानता और समझता है। अन्य भिक्षुणियों को उसे समझाना चाहिए: 'हे स्वामिनी, तुम्हें अक्सर एक परिवार के यहाँ आते-जाते देखा और सुना जाता है। वह परिवार भी तुम्हारे इस बुरे आचरण को पसंद नहीं करता। हे स्वामिनी, इस घर को छोड़ दो, यही तुम्हारे भले के लिए है।' वह भिक्षुणी शायद जवाब दे: 'भिक्षुणियाँ स्वार्थ, क्रोध, भ्रम और भय से प्रेरित होती हैं; ऐसे अपराध के कारण एक को निकाल दिया जाता है और दूसरी को नहीं निकाला जाता।' अन्य भिक्षुणियों को उस भिक्षुणी को समझाना चाहिए: 'हे स्वामिनी, यह मत कहो कि भिक्षुणियाँ स्वार्थ, क्रोध, भ्रम और भय से प्रेरित होती हैं। तुम्हें अक्सर एक परिवार के यहाँ आते-जाते देखा और सुना जाता है और वह परिवार तुम्हारे इस आचरण को पसंद नहीं करता। तुम्हें इस घर को छोड़ देना चाहिए, यही तुम्हारे भले के लिए है।' यदि वह तीसरी बार तक चेतावनी देने के बाद गलत व्यवहार छोड़ देती है, तो यह अच्छा है; अन्यथा, बार-बार तीसरी बार तक चेतावनी न मानने के कारण वह अपराध की श्रेणी में आ जाती है और एक गंभीर अपराध के कारण असहाय हो जाती है।

हे परम पूज्य महिलाओं, सत्रह गंभीर अपराधों का वर्णन किया जाता है, जिनमें नौ प्राथमिक अपराध और तीसरी बार दी गई चेतावनी का उल्लंघन करने के आठ अपराध शामिल हैं। इन अपराधों में से किसी एक का दोषी भिक्षुणी को दोनों समुदायों के समक्ष क्षमा मांगनी पड़ती है। उसके अहंकार को कम करने के लिए, भिक्षुणी को ऐसे स्थान पर पुनर्वासित किया जाना चाहिए जहाँ बीस भिक्षुणियों का समुदाय हो। यदि संख्या बीस से कम हो, तो उसे पुनर्वासित नहीं किया जाता और वे भिक्षुणियाँ निंदनीय होती हैं। यही उचित मार्ग है। हे परम पूज्य महिलाओं, मैं आपसे पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? मैं आपसे दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? परम पूज्य महिलाएं पवित्र हैं, इसलिए वे मौन हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

संघदिशेष धम्म का अंत (ऐसे अपराध जिनके लिए बीस से अधिक भिक्षुओं और भिक्षुणियों की बड़ी सामुदायिक बैठक की आवश्यकता होती है)।

[टिपिटक]] >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **निस्सागिया धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनि पतिमोक्खा
  - 1.1निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्विकारोक्ति और प्रियश्चित)
    - 1.1.1निस्सागिया स्टोमी
    - 1.1.2निस्सागिया स्कैन की पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

निस्सागिया पचित्तिया धम्म (स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित)
(अपराध स्वीकार करना और प्रायश्चित करना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

हे प्रतिष्ठित महिलाओं, उन तीस अपराधों का पाठ किया जाता है जिनके लिए प्रायश्चित करना होगा।

<u>कटोरे पर अनुभाग</u>

कटोरे जमा करने का नियम

1. यदि कोई भिक्षुणी कटोरे जमा करती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

असमय वस्त्र सामग्री के लिए नियम

2. यदि कोई भिक्षुणी गलत समय पर प्राप्त वस्त्र सामग्री को 'सही समय पर प्राप्त' मान लेती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

वस्त्रों के आदान-प्रदान का नियम

3. यदि कोई भिक्षुणी किसी दूसरी भिक्षुणी से वस्त्रों का आदान-प्रदान करने के बाद कहती है: 'हे परम पूज्य, यह आपका वस्त्र है, इसे ले लीजिए और मेरा वस्त्र लौटा दीजिए, यह मेरा है।' और वह अपना वस्त्र फाड़ देती है, या किसी दूसरी को ऐसा करने के लिए उकसाती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

दूसरों को सिखाने का उपदेश

4. यदि कोई भिक्षुणी एक को शिक्षा न देकर किसी दूसरे को शिक्षा दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वस्तुओं के आदान-प्रदान का नियम

5. यदि कोई भिक्षुणी किसी एक के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान करती है और दूसरे के साथ नहीं, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

समुदाय की वस्तुओं को दान करने का पहला नियम।

6. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य उद्देश्य के लिए अभिप्रेत संघ की आवश्यक वस्तुओं को दान कर देती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

समुदाय की वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए दूसरा नियम।

7. यदि कोई भिक्षुणी कुशलतापूर्वक किसी अन्य उद्देश्य के लिए अभिप्रेत संघ की आवश्यक वस्तुओं का किसी अन्य वस्तु से आदान-प्रदान करती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

समुदाय की वस्तुओं को लोगों में बांटने का पहला नियम

8. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य उद्देश्य के लिए अभिप्रेत समुदाय के खाद्य पदार्थों को लोगों को देती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

समुदाय की संपत्ति लोगों को देने का दूसरा नियम

9. यदि कोई भिक्षुणी कुशलतापूर्वक समुदाय के उन खाद्य पदार्थों का आदान-प्रदान करती है जो किसी अन्य उद्देश्य के लिए अभिप्रेत हैं, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

किसी व्यक्ति के साथ समुदाय की वस्तुओं का आदान-प्रदान करने का नियम

10. यदि कोई भिक्षुणी कुशलतापूर्वक किसी अन्य उद्देश्य के लिए अभिप्रेत समुदाय के खाद्य पदार्थों का किसी व्यक्ति के साथ आदान-प्रदान करती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

कटोरे पर पहला भाग

<u>वस्त्रों से संबंधित अनुभाग</u>

महत्वपूर्ण वस्त्र के संबंध में नियम

11. महत्वपूर्ण वस्त्र पर सौदेबाजी करने वाली भिक्षुणी अधिकतम चार तांबे के सिक्कों तक ऐसा कर सकती है, यदि वह इससे अधिक करती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

महत्वपूर्ण वस्त्र 'गरुपावुरा' यह वह वस्त्र है जो वर्षा ऋतुओं का पालन करने वाली भिक्षुणी को वर्षा ऋतुओं का पालन करने के स्थान पर 'भिक्खुनी नियमों' के पाठ के बाद अर्पित किया जाता है।

एक साधारण वस्त्र के संबंध में उपदेश

12. एक भिक्षुणी किसी मामूली वस्त्र के लिए मोलभाव करते समय अधिकतम साढ़े तीन तांबे के सिक्कों तक ही मोलभाव कर सकती है; यदि वह इससे अधिक मोलभाव करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

महत्वहीन वस्त्र 'लहुपावुरा◌ॅआ' यह कोई अन्य वस्त्र है जो वर्षा ऋतु में भिक्षुणियों द्वारा किए गए अनुष्ठान के पाठ के बाद उन्हें अर्पित किया जाता है।

वर्षा ऋतु के समारोह के लिए वस्त्र बनाने हेतु अर्पित की जाने वाली सामग्री के लिए नियम।

13. जिस समय वस्त्र सिले जाते हैं और वस्त्र सामग्री वितरित की जाती है, उस समय एक भिक्षुणी दस दिनों तक अतिरिक्त वस्त्र अपने पास रख सकती है; यदि वह उस अवधि से अधिक रखती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

गलतियों की कोई गुंजाइश न छोड़ने का सिद्धांत

14. जब वस्त्र सिले जा रहे हों और वस्त्र सामग्री वितरित की जा रही हो, तो भिक्षुणी को अपनी तीनों वस्त्रों में से किसी एक को एक रात के लिए भी अलग नहीं रखना चाहिए, जब तक कि भिक्षुणियों की सहमति न हो; अन्यथा, यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

मौसम के बाहर वस्त्र पहनने का नियम।

15. जब वस्त्र सिले जा रहे हों और वस्त्र सामग्री वितरित की जा रही हो, तब किसी भिक्षुणी को वस्त्र की आवश्यकता हो सकती है। यदि वह चाहे, तो वस्त्र सामग्री स्वीकार करके शीघ्र ही वस्त्र बना सकती है। उसे अधिकतम एक महीने या एक सप्ताह के भीतर वस्त्र पूरा कर लेना चाहिए; यदि वह समय सीमा से अधिक समय लेती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी अज्ञात व्यक्ति से वस्त्र सामग्री मांगने का नियम।

16. यदि कोई भिक्षुणी बिना किसी कारण के किसी अनजान गृहस्थ या गृहस्थ की पत्नी से वस्त्र सामग्री मांगती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है। यहाँ कारण यह है कि उसका वस्त्र चोरी हो गया है या नष्ट हो गया है।

इसके अतिरिक्त पूर्व नियम के लिए।

17. यदि उक्त पुरुष या स्त्री ने वस्त्रों के लिए आवश्यकता से अधिक सामग्री भेंट की हो, जिससे भिक्षुणी अपनी आवश्यकता से अधिक सामग्री से अपना वस्त्र तैयार कर सके, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

कृपा करने का पहला नियम।

18 किसी भिक्षुणी के लिए, कोई अज्ञात गृहस्थ या उसकी पत्नी कुछ धन एकत्रित करके यह विचार कर सकती है: 'एकत्रित धन से मैं वस्त्र सामग्री खरीदूँगी, वस्त्र तैयार करूँगी और उस नाम की भिक्षुणी को वस्त्र प्रदान करूँगी।' वर्षा ऋतु के आरंभिक समारोह से पहले,

वह भिक्षुणी उस गृहस्थ के पास जाकर एक वैकल्पिक सुझाव दे सकती है: 'महोदय, यदि आप एकत्रित धन से यह सामग्री खरीद लें और करुणावश मुझे इस प्रकार का वस्त्र भेंट कर दें तो अच्छा होगा।' यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

कृपा करने का दूसरा नियम।

19 किसी भिक्षुणी के लिए, दो अज्ञात गृहस्थ या दो अज्ञात गृहस्थों की पत्नियाँ कुछ धन एकत्रित करती हैं और व्यक्तिगत रूप से मनन करती हैं: 'एकत्रित धन से मैं वस्त्र सामग्री खरीदूँगी, वस्त्र तैयार करूँगी और उस नाम की भिक्षुणी को एक वस्त्र प्रदान करूँगी।' वर्षा ऋतु के आरंभिक समारोह से पहले, वह भिक्षुणी उन गृहस्थों के पास जाकर एक वैकल्पिक सुझाव दे सकती है: 'महोदय, अच्छा होगा यदि आप एकत्रित धन से यह सामग्री खरीद लें और मुझे इस प्रकार का एक वस्त्र भेंट करें, दोनों करुणावश।' यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

राजपरिवार के लिए नियम।

20. किसी भिक्षुणी के पास राजा, राजपरिवार का कोई सदस्य, ब्राह्मण या गृहस्थ एक दूत भेजता है और कहता है: 'इस धन से आवश्यक वस्त्र सामग्री खरीदकर उस भिक्षुणी को वस्त्र प्रदान करें।' दूत भिक्षुणी के पास जाकर कहता है: 'हे परम पूज्य, यह धन स्वीकार कीजिए, यह आपके लिए वस्त्र तैयार करने हेतु भेजा गया है।' यदि भिक्षुणी को वस्त्र की आवश्यकता हो तो वह दूत को इस प्रकार उत्तर देती है: 'महोदय, मैं वस्त्र तैयार करने के लिए धन नहीं लेती, मैं उचित समय पर उपयुक्त वस्त्र स्वीकार करती हूँ।' तब दूत पूछता है: 'क्या इस परम पूज्य भिक्षुणी की कोई परिचारिका है?' भिक्षुणी मठ में किसी महिला या गृहस्थ महिला का नाम बता सकती है। दूत नामित परिचारिका के पास जाकर उसे धन और संदेश देता है और भिक्षुणी के पास जाकर कहता है: 'हे परम पूज्य, हमने परिचारिका को सूचित कर दिया है, उचित समय पर उससे संपर्क कीजिए और अपने लिए प्रस्तावित वस्त्र प्राप्त कीजिए।' वस्त्र तैयार करवाने के लिए भिक्षुणी को परिचारिका से दो-तीन बार संपर्क करके उसे याद दिलाना चाहिए और कहना चाहिए, "मुझे वस्त्र चाहिए।" यदि दो-तीन बार याद दिलाने पर वस्त्र तैयार हो जाए तो अच्छा है। चौथी, पाँचवीं और छठी बार तक मौन सूचना देनी चाहिए। यदि तब तक वस्त्र तैयार हो जाए और भेंट कर दिया जाए तो अच्छा है। यदि वह वस्त्र प्राप्त करने के लिए कोई अन्य प्रयास करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है। यदि वस्त्र तैयार न हो, तो भिक्षुणी को स्वयं जाना चाहिए या वस्त्र सामग्री भेजने वालों के पास एक दूत भेजना चाहिए और कहना चाहिए, "महोदय, वस्त्र सामग्री के लिए आपने जो धन भेजा था, उसमें से भिक्षुणी को कुछ नहीं मिला। इस पर आगे कार्रवाई न करें, इस पर क्रोधित न हों।" यही उचित प्रक्रिया है।

वस्त्रों से संबंधित खंड दूसरा है।

<u>सोने से संबंधित अनुभाग</u>

सोने के लिए उपदेश।

21. यदि कोई भिक्षुणी सोना, चांदी या सिक्के उठाती है, या किसी और से उठवाती है, या उन्हें सावधानीपूर्वक रखती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

धन के लेन-देन से संबंधित सिद्धांत।

22. यदि कोई भिक्षुणी विभिन्न तरीकों से धन के लेन-देन में संलग्न होती है,

यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

खरीद-बिक्री का सिद्धांत।

23. यदि कोई भिक्षुणी विभिन्न वस्तुओं की खरीद-फरोख्त में संलग्न होती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

पांच से कम मरम्मतों के लिए नियम

24. यदि कोई भिक्षुणी पाँच से कम सुधार वाले पात्र से नया पात्र खरीदती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है। उस भिक्षुणी को अपना नया पात्र भिक्षुणियों के समुदाय के सामने त्याग देना चाहिए, और सभी भिक्षुणियों द्वारा पात्र चुनने के बाद बचे हुए अंतिम पात्र को धारण करना चाहिए। उसे कहा जाएगा: 'भिक्षुणी, यह पात्र तब तक तुम्हारा है जब तक यह टूट न जाए।' यही प्रक्रिया है।

औषधीय आवश्यकताओं के लिए सिद्धांत

25. बीमार भिक्षुणियां घी, ताजा मक्खन, तेल, शहद और गुड़ जैसी औषधीय सामग्री ग्रहण कर सकती हैं और उनका सेवन कर सकती हैं, बशर्ते वे उन्हें सात दिनों तक अपने पास रखें। यदि कोई व्यक्ति उन्हें इस अवधि से अधिक समय तक अपने पास रखता है, तो यह प्रायश्चित का पात्र अपराध है।

वस्त्र फाड़ने का नियम।

26. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी को वस्त्र देती है और बाद में क्रोधित और अप्रसन्न होकर उसे छीन लेती है या किसी अन्य से छीनवा लेती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

धागा बनाने का आदेश देने का नियम।

27. यदि कोई भिक्षुणी स्वयं बुनकरों को कपड़ा बनाने और वस्त्र बुनने के लिए सूचित करे, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

बुनकरों के लिए प्रमुख सिद्धांत

28. यदि कोई गृहस्थ या गृहस्थ की पत्नी, बुनकरों को किसी गैर-रिश्तेदार भिक्षुणी के लिए विशेष वस्त्र बुनने का आदेश दे, और वर्षा ऋतु से पहले वह भिक्षुणी बुनकर के पास जाकर कहे, "महोदय, क्या यह वस्त्र मेरे लिए बुना गया है? अच्छा होगा यदि आप इसे लंबा और चौड़ा बनाएँ, अच्छी तरह बुनें, बढ़िया फिनिशिंग दें और ब्रश से पॉलिश करें। इस काम के लिए हम आपको थोड़ा सा इनाम देंगे।" यदि वह भिक्षुणी बाद में बुनकर को कम से कम अपने कटोरे में कुछ दान देकर इनाम देती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

अतिरिक्त वस्त्र के लिए नियम

29. वर्षा के तीन महीने और अंतिम दस दिन सफलतापूर्वक संपन्न करने वाली भिक्षुणी को एक अतिरिक्त वस्त्र प्राप्त होता है। भिक्षुणी को इस तथ्य से अवगत रहते हुए इसे स्वीकार करना चाहिए और समारोह समाप्त होने तक इसे अपने पास रखना चाहिए। यदि वह इसे इससे अधिक समय तक अपने पास रखती है, तो यह प्रायश्चित का पात्र अपराध है।

एक व्यक्ति के लिए उपदेश, जो पूरी तरह से जानता हो

30. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए भी कि वह समुदाय की ही देन है, समुदाय की देन का उपयोग स्वयं के लिए कर लेती है, तो वह ऐसा अपराध करती है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

सोने पर तीसरा खंड

हे देवियों, प्रायश्चित के योग्य तीस अपराधों का पाठ किया गया है, अब मैं पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? मैं दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? देवियाँ पवित्र हैं, इसलिए वे मौन हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

निस्सागीय पचितीय धम्म (पाप जिनके लिए स्वीकारोक्ति और प्रायश्चित आवश्यक है) का अंत।

[टिपिटक]] >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **पचित्तिया धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनी पतिमोक्खा
  - 1.1पचितीय धम्म (प्रायश्चित)
    - 1.1.1पचितिया स्कैन की गई पुस्तक
    - 1.1.2पचितिया सारांश
    - 1.1.3स्कैन की गई पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

पचितीय धम्म (प्रायश्चित)
(शुद्ध प्रायश्चित)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पचितिया स्कैन की गई पुस्तक
फ़ाइल:Pacittiya-F.pdf
पचितिया स्कैन की गई पुस्तक का लिंक

पचितिया सारांश

हे सम्मानित महिलाओं, अब उन एक सौ छियासठ अपराधों का पाठ किया जाएगा जिनके लिए प्रायश्चित की आवश्यकता है।

लहसुन खाने का नियम।

1. यदि कोई भिक्षुणी लहसुन खाती है, तो यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

शरीर पर मौजूद अवरोधक बालों को हटाने का नुस्खा

2. यदि कोई भिक्षुणी अपने शरीर पर बाधा उत्पन्न करने वाले बालों को मुंडवाती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

हथेलियों पर थप्पड़ मारने का नियम

3. यदि कोई भिक्षुणी हथेलियों पर थप्पड़ मारती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

वार्निश लगाने का नियम

4. यदि कोई भिक्षुणी वार्निश लगाती है, तो यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

जल से शुद्धिकरण का नियम

5. स्नान करने की इच्छुक भिक्षुणी को पात्र से दो इंच की ऊंचाई तक पानी लेना चाहिए; यदि वह इससे अधिक पानी लेती है, तो यह एक अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना होगा।

उपस्थिति पर नियम

6. यदि कोई भिक्षुणी भोजन कर रहे भिक्षु को जल पिलाती है या पंखा करती है, तो यह एक अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

कच्चे अनाज को ग्रहण करने का नियम।

7. यदि कोई भिक्षुणी कच्चे अनाज की भीख मांगती है, उसे भूनती है, कूटती है, या पकाकर खाती है, या किसी और से ऐसा करवाकर खाती है, तो यह एक अपराध है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

मल त्यागने का नियम

8. यदि कोई भिक्षुणी मल, मूत्र, कूड़ा या बासी भोजन दीवार या बाड़ के ऊपर से फेंकती है, या किसी और से ऐसा करवाती है, तो वह ऐसा अपराध करती है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

मल त्यागने का दूसरा नियम

9. यदि कोई भिक्षुणी वनस्पति पर मल, मूत्र, कूड़ा या बासी भोजन फेंकती है या किसी और से ऐसा करवाती है, तो वह ऐसा अपराध करती है जिसके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है।

नृत्य और गायन के लिए नियम

10. यदि कोई भिक्षुणी नृत्य, गायन या संगीत प्रदर्शन देखने जाती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

लहसुन का पहला भाग

2. रात के अंधेरे के लिए अनुभाग

रात के अंधेरे के लिए उपदेश

11. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी के बिना, किसी पुरुष के पास खड़ी होकर अंधेरे में, बिना रोशनी के उससे बात करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी बाड़े में रहने का नियम

12. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी के बिना किसी पुरुष के निकट खड़ी होकर किसी एकांत स्थान में उससे बात करे तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

खुले में बात करने का नियम

13. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी के बिना, खुले स्थान में किसी पुरुष के पास खड़ी होकर उससे बात करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

परिचारक को विदा करने का नियम

14. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी के बिना, सार्वजनिक सड़क पर, किसी निर्धारित स्थान पर, या चौराहे पर किसी पुरुष के निकट खड़ी होकर उससे बात करे, या उसके कान में फुसफुसाए, या साथ वाली भिक्षुणी को विदा करे, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

बिना सूचना दिए चले जाने का नियम

15. यदि कोई भिक्षुणी दोपहर के भोजन से पहले किसी परिवार के पास जाकर बैठ जाए और घर की मालकिन को बिना बताए चली जाए, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

बिना बुलाए बैठने का नियम

16. यदि कोई भिक्षुणी दोपहर के भोजन के बाद किसी परिवार के पास जाती है, बिना बुलाए बैठ जाती है, या वहाँ ऊंघ जाती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

बिना सूचना दिए झूठ बोलने का नियम

17 यदि कोई भिक्षुणी समय से पहले किसी परिवार के पास जाए, चादर बिछाए और स्वामिनी की अनुमति के बिना वहाँ बैठे या सोए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

दूसरे को नीचा दिखाने का नियम

18. यदि कोई भिक्षुणी किसी गलतफहमी के कारण दूसरी भिक्षुणी का अपमान करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

दूसरे को गाली देने का नियम

19. यदि कोई भिक्षुणी पवित्र जीवन या नरक के विषय में स्वयं को या किसी अन्य को श्राप देती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

विलाप के लिए उपदेश

20. यदि कोई भिक्षुणी बार-बार विलाप करके स्वयं को चोट पहुँचाती है, तो यह प्रायश्चित का पात्र अपराध है।

रात का अंधेरा दूसरा है।

<u>नग्नता संबंधी अनुभाग</u>

नग्नता के लिए नियम

21. यदि कोई भिक्षुणी नग्न स्नान करे, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

स्नान वस्त्र के लिए नियम

22. भिक्षुणी के स्नान वस्त्र की लंबाई चार बिन्दु और चौड़ाई दो बिन्दु होनी चाहिए, जो कि उस साध्वी के माप के अनुसार हो। यदि यह इससे अधिक हो, तो प्रायश्चित का भागी माना जाएगा।

अच्छी तरह से गुजरा हुआ व्यक्ति प्रबुद्ध व्यक्ति का पर्यायवाची है।

वस्त्र सिलने का नियम।

23 यदि कोई भिक्षुणी किसी वस्त्र के सिले हुए टाँके खोलकर उसे बिना सिले और बिना सिलवाने का प्रयास किए चार-पाँच दिन के लिए छोड़ दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

ऊपरी वस्त्र के लिए नियम

24. यदि कोई भिक्षुणी लगातार पाँच दिनों तक ऊपरी वस्त्र न पहने तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

उधार लिए गए ऊपरी वस्त्र के लिए नियम

25. यदि कोई भिक्षुणी उधार लिया हुआ ऊपरी वस्त्र पहनती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

अनेक उच्च वस्त्रों की प्राप्ति के लिए उपदेश

26. यदि कोई भिक्षुणी बहुतों को वस्त्र प्राप्त करने में बाधा डालती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वस्त्र सामग्री को रोके रखने का नियम

27. यदि कोई भिक्षुणी वस्त्र सामग्री का उचित भाग रोकती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

वस्त्र अर्पित करने का नियम

28. यदि कोई भिक्षुणी किसी गृहस्थ, किसी भ्रमणशील तपस्वी या किसी महिला भ्रमणशील तपस्वी को किसी संन्यासी का वस्त्र भेंट करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वस्त्रों के मौसम को बीतने देने का नियम

29. यदि कोई भिक्षुणी वस्त्र सामग्री की कमजोर अपेक्षाओं के कारण वस्त्रों का मौसम बीतने देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वस्त्रों के मौसम के विशेषाधिकारों के लिए नियम

30. यदि कोई भिक्षुणी वस्त्र ऋतु के उचित विशेषाधिकारों का आनंद लेने से पीछे हटती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

नग्नता से संबंधित खंड तीसरा है।

<u>साझा करने संबंधी अनुभाग</u>

एक ही बिस्तर साझा करने का नियम।

31. दो भिक्षुणियों का एक ही बिस्तर साझा करना प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

एक ही आवरण साझा करने का नियम

32. यदि दो भिक्षुणियाँ एक ही आवरण साझा करती हैं, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

असुविधा उत्पन्न करने का नियम

33. यदि कोई भिक्षुणी जानबूझकर किसी अन्य भिक्षुणी को असुविधा पहुँचाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

नर्सिंग के लिए सिद्धांत

34. यदि कोई भिक्षुणी अपने साथ रहने वाली किसी बीमार महिला की देखभाल न करे या किसी और से उसकी देखभाल न करवाए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बाहर निकालने का नियम

35. यदि कोई भिक्षुणी किसी भिक्षुणी को अपने घर में ठहराती है और क्रोधित होकर उसे बाहर निकाल देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

संघों के लिए सिद्धांत

36. यदि कोई भिक्षुणी किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के साथ संगति करे, तो भिक्षुणियों द्वारा उसे यह उपदेश दिया जाना चाहिए: 'हे स्वामिनी, गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के साथ संगति न करो। एकांतवास करो। भिक्षुणियों का समुदाय एकांतवास की प्रशंसा करता है।' यदि उपदेश दिए जाने के बावजूद भिक्षुणी ऐसा व्यवहार न करे, तो उसे तीसरी बार तक उपदेश दिया जाना चाहिए। यदि वह संगति त्याग दे, तो अच्छा है; अन्यथा, यह प्रायश्चित का अपराध है।

देश के भीतर का सिद्धांत

37. किसी भिक्षुणी का देश के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में असुरक्षित रूप से यात्रा करना जिसे खतरनाक और भयपूर्ण माना जाता है, प्रायश्चित का अपराध है।

देश के बाहर का उपदेश

38. यदि कोई भिक्षुणी देश से बाहर यात्रा पर जाती है और उसे खतरनाक, भयभीत और असुरक्षित माना जाता है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बरसात के मौसम के लिए नियम

39. वर्षा ऋतु के दौरान भिक्षुणी का भ्रमण करना प्रायश्चित का अपराध है।

यात्रा पर न जाने का नियम

40. वर्षा ऋतु समाप्त होने पर भिक्षुणी का कम से कम पैंतीस से बयालीस मील की यात्रा पर न जाना प्रायश्चित का अपराध है।

साझाकरण संबंधी अनुभाग चौथा है।

<u>रंगीन घरों के लिए अनुभाग</u>

राजमहल के लिए नियम

41. यदि कोई भिक्षुणी किसी राजमहल, सजे-धजे घर, वन आश्रम, बाग या सुंदर तालाब की सैर पर जाती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

आरामकुर्सी के उपयोग का नियम

42. यदि कोई भिक्षुणी आरामकुर्सी या सोफे का उपयोग करती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

सूत कातने का नियम

43. यदि कोई भिक्षुणी सूत कातती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

घरेलू काम करने का नियम

44. यदि कोई भिक्षुणी गृहस्थी कार्य करती है तो प्रायश्चित के लिए यह एक अपराध है।

किसी कानूनी मामले को निपटाने का सिद्धांत

45. एक भिक्षुणी ने कहा, हे आदरणीय महिला, इस कानूनी मामले को सुलझाओ, और भिक्षुणी द्वारा इसे सुलझाने के लिए स्वीकार करने के बावजूद, इसे न तो सुलझाया जाए और न ही किसी अन्य माध्यम से इसे सुलझाने का प्रयास किया जाए, यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

भोजन वितरण का नियम

46. किसी भिक्षुणी द्वारा अपने हाथों से किसी गृहस्थ, किसी भ्रमणशील तपस्वी या किसी महिला भ्रमणशील तपस्वी को भोजन सामग्री वितरित करना प्रायश्चित का अपराध है।

घरेलू वस्त्रों के लिए नियम

47. यदि कोई भिक्षुणी अपने गृहस्थ वस्त्रों का त्याग किए बिना उनका उपयोग करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

आवास के बारे में उपदेश

48. यदि कोई भिक्षुणी अपना निवास छोड़े बिना यात्रा पर जाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

छद्म विज्ञान सीखने के बारे में उपदेश

49. यदि कोई भिक्षुणी छद्म विज्ञान सीखती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

छद्म विज्ञानों के पाठ के लिए उपदेश

50. यदि कोई भिक्षुणी छद्म विज्ञान का पाठ करती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

<u>मठों पर अनुभाग</u>

मठ में प्रवेश करने का नियम

51. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि वहाँ भिक्षु हैं, बिना अनुमति के किसी मठ में प्रवेश करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षु को डांटने का नियम

52. यदि कोई भिक्षुणी किसी भिक्षु को अपशब्द कहे और गाली दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी समूह का दुरुपयोग करने का नियम

53. यदि कोई भिक्षुणी किसी समूह का अपमान करने का साहस करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

संतोष का सिद्धांत

54. यदि कोई भिक्षुणी, जिसने तृप्तिपूर्वक भोजन कर लिया हो, फिर से भोजन या पोषण ग्रहण करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

परिवार के प्रति स्नेह रखने का उपदेश

55. यदि कोई भिक्षुणी अपने परिवार से स्नेह रखती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षुओं की अनुपस्थिति के लिए नियम

56. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसे मठ में वर्षा का अवलोकन करती है जहाँ कोई भिक्षु नहीं हैं, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

संतुष्ट करने में विफल रहने का सिद्धांत

57. यदि वर्षाकालीन व्रत पूरा करने वाली भिक्षुणी, भिक्षुओं को उनके दर्शन, उनसे वाणी और शंकाओं को दूर करने के तीन तरीकों से संतुष्ट नहीं करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

उपदेश के लिए उपदेश

58. यदि कोई भिक्षुणी भिक्षुओं से मिलने नहीं जाती है, या उनसे उपदेश नहीं लेती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

चेतावनी के लिए आने का नियम

59 प्रत्येक पखवाड़े में एक भिक्षुणी को भिक्षुओं के समुदाय से दो बातों के लिए मिलना चाहिए: नियमों के पाठ के बारे में पूछताछ करना और उपदेश प्राप्त करना। यदि वह इससे अधिक समय तक ऐसा करती है, तो यह प्रायश्चित का पात्र अपराध है।

छोटे अंग में फोड़े के लिए नुस्खा

60. यदि किसी भिक्षुणी के किसी छोटे अंग में फोड़ा हो जाए, तो उसे उसका उपचार किसी पुरुष से करवाना चाहिए।

समुदाय को, या यहां तक कि देखने वाले लोगों के समूह को भी सूचित न करना, प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

मठों के लिए छठा खंड

<u>कारावास अनुभाग</u>

कारावास के लिए नियम

61. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसी स्त्री को दीक्षा देती है जो एकांतवास में है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बच्चे को दूध पिलाते समय बरती जाने वाली विधि

62. यदि कोई भिक्षुणी किसी स्त्री को, जो बच्चे को दूध पिला रही हो, दीक्षा दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

प्रशिक्षु के लिए पहला सिद्धांत

63. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसी स्त्री को दीक्षा देती है जिसने दो वर्षाओं में छह नियमों का पालन नहीं किया है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

प्रशिक्षु के लिए दूसरा सिद्धांत

64. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसी स्त्री को, जिसने दो वर्षाओं में छह नियमों का पालन किया हो, उसकी सहमति के बिना दीक्षा दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी पुरुष के साथ जाने वाली स्त्री के लिए पहला नियम

65. यदि कोई भिक्षुणी किसी पुरुष के साथ गई स्त्री को बारह वर्ष पूरे होने से पहले दीक्षा दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी पुरुष के साथ गई स्त्री के लिए दूसरा नियम

66. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसी स्त्री को दीक्षा दे जो किसी पुरुष के साथ रही हो और पूरे बारह वर्ष व्यतीत कर चुकी हो, परन्तु दो वर्षाओं में छह नियमों का पालन न किया हो, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी पुरुष के साथ गई स्त्री के लिए तीसरा नियम

67. यदि कोई भिक्षुणी किसी पुरुष के साथ गई हुई स्त्री को, जिसने बारह वर्ष और दो वर्षाओं में छह नियमों का पालन किया हो, भिक्षुणी समुदाय की सहमति के बिना दीक्षा दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षुणी के साथ रहने वाले व्यक्ति के लिए पहला नियम

68. यदि कोई भिक्षुणी अपने साथ रहने वाली किसी स्त्री को दीक्षा दे देती है और उसके विकास का ध्यान नहीं रखती या किसी और से ऐसा नहीं करवाती, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

शिक्षक का अनुसरण न करने का नियम

69. यदि कोई भिक्षुणी दो वर्षों तक अपने गुरु का अनुसरण नहीं करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षुणी के साथ रहने वाले व्यक्ति के लिए दूसरा नियम

70. यदि कोई भिक्षुणी अपने साथ रहने वाली किसी महिला को दीक्षा दे दे और उसे अकेला छोड़कर कम से कम बयालीस से पेंतीस मील दूर चली जाए, या उसके लिए ऐसी व्यवस्था करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

कारावास संबंधी खंड सातवां है।

<u>नाबालिग लड़कियों के लिए अनुभाग।</u>

नाबालिग लड़कियों के लिए पहला नियम

71. यदि कोई भिक्षुणी बीस वर्ष से कम आयु की लड़की को दीक्षा देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

नाबालिग लड़कियों के लिए दूसरा नियम

72. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसी लड़की को दीक्षा देती है जिसने बीस वर्ष पूरे कर लिए हैं लेकिन छह नियमों का पालन करते हुए दो वर्ष नहीं बिताए हैं, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

नाबालिग लड़कियों के लिए तीसरा नियम

73. यदि कोई भिक्षुणी बीस वर्ष पूर्ण कर चुकी और दो वर्ष तक छह नियमों का पालन कर चुकी किसी कन्या को भिक्षुणी समुदाय की सहमति के बिना दीक्षा दे, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

बारह वर्ष से कम उम्र की लड़कियों के लिए नियम

74. यदि कोई भिक्षुणी बारह वर्ष से कम आयु की लड़की को दीक्षा देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बारह वर्ष के बच्चों के लिए नियम

75. यदि कोई भिक्षुणी भिक्षुणियों के समुदाय की सहमति के बिना बारह वर्ष की किसी लड़की को दीक्षा देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

क्रोध करने का नियम।

76 यदि किसी भिक्षुणी से कहा जाए कि उसने जो दीक्षाएँ पहले ही प्राप्त कर ली हैं वे पर्याप्त हैं, तो वह पहले तो सहमत होगी और बाद में क्रोधित हो जाएगी; यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

प्रशिक्षु को दीक्षा न देने का पहला सिद्धांत

77. यदि कोई भिक्षुणी किसी प्रशिक्षु को वस्त्र भेंट करने पर दीक्षा देने का वादा करती है, और बाद में न तो उसे दीक्षा देती है और न ही दीक्षा की व्यवस्था करती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

प्रशिक्षु को दीक्षा न देने का दूसरा नियम

78. यदि कोई भिक्षुणी किसी प्रशिक्षु को दो वर्ष तक अपने साथ रहने की शर्त पर दीक्षा देने का वादा करती है, और बाद में न तो उसे दीक्षा देती है और न ही दीक्षा की व्यवस्था करती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

कष्टदायी जीवन जीने का उपदेश

79. यदि कोई भिक्षुणी किसी दुस्साहसी स्त्री को दीक्षा दे, जो पुरुषों और लड़कों के साथ संगति करती हो और शोकग्रस्त जीवन जीती हो, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

अनुमति न मिलने पर नियम लागू होता है

80. यदि कोई भिक्षुणी माता-पिता या पति की अनुमति के बिना किसी प्रशिक्षु को दीक्षा देती है, तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

परिवीक्षाधीन व्यक्तियों के लिए नियम

81. यदि कोई भिक्षुणी किसी प्रशिक्षु को प्रोबेशन के तहत दीक्षा देती है, तो यह पक्षपात दिखाने के लिए प्रायश्चित का अपराध है।

वार्षिक दीक्षा के लिए नियम

82. यदि कोई भिक्षुणी प्रतिवर्ष दीक्षा लेती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

एक वर्ष में अभिषेक के लिए नियम

83. यदि कोई भिक्षुणी एक वर्ष में दो भिक्षुओं को दीक्षा देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

नाबालिग लड़कियों के लिए अनुभाग आठवां है

<u>छातों और सैंडल से संबंधित अनुभाग</u>

छतरियों और चप्पलों के लिए नियम

84. यदि कोई भिक्षुणी जो बीमार नहीं है, छाता और चप्पल का उपयोग करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

परिवहन के लिए नियम

85. यदि कोई भिक्षुणी जो बीमार नहीं है, परिवहन के किसी साधन का उपयोग करती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

लंगोटी पहनने का नियम

86. यदि कोई भिक्षुणी लंगोटी पहनती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

आभूषण पहनने का नियम

87. यदि कोई भिक्षुणी आभूषण पहनती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

इत्र और रंग से स्नान करने का नियम

88. यदि कोई भिक्षुणी इत्र और रंग से स्नान करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

सुगंधित तिल से स्नान करने का नियम

89. यदि कोई भिक्षुणी सुगंधित तिल से स्नान करे तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

एक भिक्खुनी ब्रश से दूसरी भिक्खुनी बनाने का सिद्धांत

90. यदि कोई भिक्षुणी किसी अन्य भिक्षुणी को ऊपर या नीचे की ओर छूती है तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

प्रशिक्षु को भिक्षुणी का वस्त्र पहनाने का उपदेश

91. यदि कोई प्रशिक्षु किसी भिक्षुणी को ऊपर या नीचे की ओर छूता है तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

एक नौसिखिया को भिक्षुणी बनाने का उपदेश

92. यदि कोई नौसिखिया किसी भिक्षुणी को ऊपर या नीचे की ओर छूता है तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

एक गृहस्थ महिला को भिक्षुणी की योनि की सफाई कराने का नियम

93. यदि कोई गृहस्थ महिला किसी भिक्षुणी को ऊपर या नीचे की ओर छूती है तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षु के सामने बिना अनुमति के बैठने का नियम

94. किसी भिक्षु के सामने बिना अनुमति के भिक्षुणी का बैठना प्रायश्चित का अपराध है।

भिक्षु की खुदाई के लिए उपदेश

95. यदि कोई भिक्षुणी किसी भिक्षु से ऐसा प्रश्न पूछे जिससे वह असहज हो जाए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बनियान न पहनने का नियम

96. यदि कोई भिक्षुणी गाँव में बाहर जाते समय बनियान नहीं पहनती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

छतरियों और सैंडल का अनुभाग नौवां है।

झूठ बोलने वाला अनुभाग

झूठ बोलने का नियम।

97. जानबूझकर झूठ बोलना प्रायश्चित का अपराध है।

दुर्व्यवहार के लिए उपदेश

98. अपशब्दों का प्रयोग करना प्रायश्चित का अपराध है।

निंदा करने का नियम

99. मानहानि करना प्रायश्चित का अपराध है।

जो व्यक्ति पूर्णतः दीक्षित नहीं है, उसके साथ शिक्षा को दोहराने का नियम

100. किसी भिक्षुणी द्वारा पूर्णतः दीक्षित न हुए व्यक्ति के साथ उपदेश दोहराना प्रायश्चित का अपराध है।

जो व्यक्ति पूर्णतः दीक्षित नहीं है, उसके साथ सोने का नियम

101. किसी भिक्षुणी का पूर्णतः दीक्षित न हुए व्यक्ति के साथ सोना प्रायश्चित का अपराध है।

किसी पुरुष के साथ सोने का दूसरा नियम

102. किसी भिक्षुणी का पुरुष के साथ सोना प्रायश्चित का अपराध है।

शिक्षण के लिए सिद्धांत

103. किसी बुद्धिमान महिला के साथ बातचीत किए बिना किसी पुरुष को पाँच या छह वाक्यों से अधिक शिक्षण देने वाली भिक्षुणी प्रायश्चित के लिए अपराध है।

उपलब्धियों की जानकारी देने का सिद्धांत

104. यदि कोई भिक्षुणी अपने मानव से परे की उपलब्धियों के बारे में किसी ऐसे व्यक्ति को सूचित करे जो पूर्णतः दीक्षित न हो, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

अपराधों की सूचना देने का नियम

105. यदि कोई भिक्षुणी, समुदाय की सहमति के बिना, किसी अपूर्ण रूप से दीक्षित भिक्षुणी के अपराधों की सूचना देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

मिट्टी खोदने का नियम

106. किसी भिक्षुणी द्वारा पृथ्वी खोदना या किसी अन्य से पृथ्वी खुदवाना प्रायश्चित का अपराध है।

दसवां खंड झूठ बोलने के लिए है।

वनस्पति संबंधी अनुभाग

वनस्पति के लिए सिद्धांत

107. वनस्पति का विनाश प्रायश्चित का अपराध है।

अलग दृष्टिकोण रखने वालों के लिए उपदेश

108. अलग राय रखने वालों को परेशान करना प्रायश्चित का अपराध है।

उत्तेजित करने का उपदेश

109. क्रोध भड़काना और उकसाना प्रायश्चित का अपराध है।

आवास के लिए पहला नियम

110. यदि कोई भिक्षुणी समुदाय से संबंधित पलंग, कुर्सी, तकिया या कुशन ले जाती है, उसका उपयोग करती है और उसे लौटाए बिना या किसी और से लौटाए बिना या इसके बारे में सूचित किए बिना चली जाती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

आवास के लिए दूसरा नियम

111. यदि कोई भिक्षुणी समुदाय से संबंधित पलंग बिछाकर उसका उपयोग करे और उसे वापस लौटाए बिना या किसी और से ऐसा करवाए बिना या इसके बारे में सूचित किए बिना चली जाए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

अतिक्रमण के लिए नियम

112. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि उससे पहले कोई भिक्षुणी मठ में आ चुकी है, अपने बिस्तर को उसके बिस्तर पर अतिक्रमण करते हुए बिछाती है, यह सोचकर कि यदि उसे असुविधा होगी तो वह स्थान छोड़ देगी, तो यदि यही एकमात्र कारण है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

भगाने का नियम

113. यदि कोई भिक्षुणी क्रोधित और असंतुष्ट होकर किसी अन्य भिक्षुणी को समुदाय से संबंधित मठ से निकाल देती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

महत्वपूर्ण कमरे के लिए नियम

114. यदि कोई भिक्षुणी समुदाय से संबंधित मठ के मुख्य कक्ष के प्रवेश द्वार को अवरुद्ध करते हुए बैठती या सोती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

एक विशाल मठ के लिए नियम

115. एक भिक्षुणी जो विशाल मठ का निर्माण कर रही है, उसे मठ के प्रवेश द्वार की सुरक्षा और प्रकाश लाने के उद्देश्य से वनस्पति को साफ करने का इरादा रखना चाहिए। यदि वह इससे आगे वनस्पति को साफ करने का इरादा रखती है, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

जीवित प्राणियों के लिए उपदेश

116. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि किसी जल में सजीव वस्तुएँ हैं, उसे घास या मिट्टी पर फेंक दे, या किसी और से ऐसा करवाए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वनस्पति संबंधी अनुभाग ग्यारहवां है।

भोजन संबंधी अनुभाग

घरों में दान-भोजन रखने के नियम के अनुसार

117. एक भिक्षुणी जो बीमार नहीं है, उसे एक ही घर में भिक्षा भोजन स्वीकार करना चाहिए, यदि वह इससे अधिक करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

किसी समूह में भोजन करने का नियम

118. किसी कारण के बिना किसी समूह में भोजन करना प्रायश्चित के योग्य अपराध है। कारण हैं: बीमार होना, वस्त्र दान करना, यात्रा पर जाना, जहाज पर सवार होना या तपस्वियों के लिए कोई बड़ा बलिदान।

नेत्रहीन माँ के लिए उपदेश

119. चावल के पकौड़े या दूध-चावल से तृप्त होकर किसी परिवार में जाने वाली भिक्षुणी चाहे तो दो कटोरी भरकर ले सकती है; इससे अधिक लेना प्रायश्चित का अपराध है। उसे मठ में लाकर अन्य भिक्षुणियों में बाँट देना चाहिए। यही विधि होनी चाहिए।

असमय भोजन के लिए नियम

120. भिक्षुणी द्वारा असमय भोजन या पोषण ग्रहण करना प्रायश्चित का अपराध है।

संचय के लिए उपदेश

121. भिक्षुणी द्वारा संचित खाद्य पदार्थों या पोषण का सेवन करना प्रायश्चित का अपराध है।

टूथपिक के लिए नियम

122. यदि कोई भिक्षुणी पानी और टूथपिक के अलावा, बिना अर्पित किया हुआ भोजन मुंह में ले जाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बर्खास्त करने का नियम

123. यदि कोई भिक्षुणी दूसरी भिक्षुणी को यह कहकर आमंत्रित करे: 'आओ, हे स्वामधिक, हम गाँव या बस्ती में भिक्षा मांगने चलें।' यदि वह बिना यह पूछे कि उसे कुछ मिला या नहीं, भिक्षा मांगने चली जाती है, तो उसे यह कहकर विदा कर दिया जाता है: 'जाओ, स्वामधिक, तुमसे बात करना या तुम्हारे साथ बैठना अच्छा नहीं लगता। मुझे अकेले रहना शांति देता है।' केवल इसी कारण से ऐसा करना प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

भोजन के लिए नियम

124. यदि कोई भिक्षुणी किसी ऐसे परिवार में अतिक्रमण करके बैठ जाए जहाँ भोजन साझा किया जाता है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

ढके हुए, गुप्त रूप से बैठने का नियम

125. यदि कोई भिक्षुणी किसी पुरुष के साथ छुपकर और गुप्त रूप से बैठती है तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

गुप्त रूप से बैठने का नियम

126. यदि कोई भिक्षुणी दूसरों से दूर किसी पुरुष के साथ गुप्त रूप से बैठती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

बारहवां भाग भोजन से संबंधित है।

<u>शिष्टाचार संबंधी अनुभाग</u>

शिष्टाचार का नियम

127. यदि भिक्षा के लिए आमंत्रित कोई भिक्षुणी, अन्य भिक्षुणियों को सूचित किए बिना, भोजन से पहले या बाद में उस परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत शुरू कर दे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है, जब तक कि कोई कारण न हो।

इसके कारण यह हो सकते हैं कि यह वस्त्र भेंट करने का समय है या वस्त्र सिलने का समय है।

महानामा का सिद्धांत

128. एक स्वस्थ भिक्षुणी को चार महीने के अंत में वर्षा ऋतु के समापन समारोह में भाग लेना चाहिए, जब तक कि समापन समारोह दोबारा आयोजित न किया जाए या हमेशा के लिए समापन समारोह आयोजित न किया जाए। यदि वह वर्षा ऋतु के समापन समारोह को लंबा खींचती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

युद्ध में सेना के लिए उपदेश

129. यदि कोई भिक्षुणी उचित कारण के बिना सेना को युद्ध में देखने जाती है,

यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

सेना के साथ रहने का नियम

130. यदि भिक्षुणी किसी कारणवश सेना से मिलने जाती है, तो वह सेना के साथ दो या तीन रातें रह सकती है; यदि वह इससे अधिक समय तक रहती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

युद्ध देखने का उपदेश

131. जब भिक्षुणी दो या तीन रातों के लिए सेना के साथ रह रही हो, तो यदि वह किसी युद्ध, सीमा, युद्धक्षेत्र या सेना को कार्रवाई में देखने जाती है, तो यह प्रायश्चित के लिए एक अपराध है।

नशीले पदार्थों के सेवन के लिए नियम।

132. मादक पदार्थों का सेवन करना प्रायश्चित का अपराध है।

उंगली से कुरेदने का नियम

133. किसी को उंगली से छूना प्रायश्चित का अपराध है।

हंसने का उपदेश

134. पानी में खेलकूद करना प्रायश्चित का अपराध है।

असंवेदनशील होने का नियम

135. असंवेदनशील होना प्रायश्चित का अपराध है।

डराने के लिए सिद्धांत

136. यदि कोई भिक्षुणी दूसरी भिक्षुणी को डराए तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

शिष्टाचार पर तेरहवाँ खंड

<u>आग की चपेट में आया हुआ हिस्सा</u>

आग के लिए उपदेश

137. यदि कोई भिक्षुणी बिना उचित कारण के आग जलाती है, या किसी और से गर्म होने के लिए आग जलवाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

स्नान के लिए नियम

138. यदि कोई भिक्षुणी उचित कारण के बिना दो सप्ताह के अंतराल में दो बार स्नान करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

इसका उपयुक्त कारण डेढ़ महीने तक चलने वाली भीषण गर्मी, उसके बाद बरसात के मौसम का पहला महीना, कुल मिलाकर ढाई महीने तक चलने वाली भीषण गर्मी, जिससे त्वचा झुलसती है, या बीमारी की अवधि, या काम करने की अवधि, या यात्रा पर निकलने की अवधि, या तेज हवा और बारिश की अवधि हो सकती है।

रंग हटाने का सिद्धांत

139. नई पोशाक प्राप्त करने वाली भिक्षुणी को उस पर नीले, गहरे भूरे या काले रंग में से किसी एक रंग का चिह्न लगाना चाहिए। यदि वह चिह्न लगाए बिना पोशाक का उपयोग करती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

विनिमय के लिए नियम

140. यदि कोई भिक्षुणी जिसने अपना ऊपरी वस्त्र किसी भिक्षु, भिक्षुणी, पुरुष नौसिखिए या महिला नौसिखिए को अर्पित किया हो, अस्वीकृत वस्त्र का उपयोग करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

छिपने का नियम

141. यदि कोई भिक्षुणी मजाक में भी किसी भिक्षुणी का कटोरा, वस्त्र, बैठने की चटाई, सुई का डिब्बा या कमरबंद छिपाती है या किसी अन्य भिक्षुणी से छिपाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

जागरूकता के लिए उपदेश

142. यदि कोई भिक्षुणी सचेतन होकर किसी सजीव प्राणी का प्राण ले ले, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

जीवित प्राणियों के लिए उपदेश

143. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि जल में सजीव वस्तुएँ हैं, उसका सेवन करे, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

आंदोलन के लिए उपदेश

144. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि उचित मुकदमे का फैसला हो चुका है, आगे आंदोलन करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

चोरों के काफिले के लिए नियम

145. यदि कोई भिक्षुणी कम से कम दो गांवों के बीच चोरों के कारवां में यात्रा करने की व्यवस्था करे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

जिस हिस्से में आग लगी है वह चौदहवां हिस्सा है।

<u>विचारों पर अनुभाग</u>

अरिन्हा का उपदेश

146. यदि कोई भिक्षुणी कहे, "जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को समझती हूँ, 'भगवान बुद्ध द्वारा जिन चीजों को बाधक बताया गया है, वे वास्तव में उनका पालन करने वाले के लिए बाधक नहीं हैं।' तो भिक्षुणियों द्वारा उसे यह समझाना चाहिए: 'हे परम पूज्य, ऐसा मत कहो, भगवान बुद्ध के शब्दों का गलत अर्थ मत निकालो, उपदेश का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से समझाया है कि बाधक चीजें खतरनाक हैं और वास्तव में उनका पालन करने वाले संकट में पड़ जाते हैं।' यदि भिक्षुणी समझाने के बाद भी अपने विचार पर अड़ी रहती है, तो उसे तीसरी बार तक समझाया जाना चाहिए। तीसरी बार समझाने के बाद, यदि वह उस विचार को त्याग देती है, तो यह अच्छा है। यदि नहीं, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

उपरोक्त दृष्टिकोण से जुड़ने और साथ रहने का सिद्धांत

147. यदि कोई भिक्षुणी, उस मत की भिक्षुणी को जानते हुए, उसके साथ संगति करे, भोजन करे और उसके साथ रहे, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

कांटे का उपदेश

148. यहां तक कि एक नवोदित भिक्षुणी भी कहती है: 'भगवान बुद्ध द्वारा जिन चीजों को बाधा बताया गया है, वे वास्तव में उनका पालन करने वाले के लिए बाधा नहीं हैं।' भिक्षुणियों को नवोदित भिक्षुणी को समझाना चाहिए: 'हे पूज्य, भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है, भगवान बुद्ध के शब्दों का गलत अर्थ न निकालें। शिक्षा का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से समझाया है कि बाधा उत्पन्न करने वाली चीजें खतरनाक हैं और वास्तव में उनका पालन करने वाले संकट में पड़ जाते हैं।' यदि भिक्षुणियों द्वारा समझाए जाने पर भी नवोदित भिक्षुणी इस विचार पर अड़ी रहती है, तो यह कहना चाहिए: 'हे पूज्य, आज से भगवान बुद्ध आपके गुरु नहीं हैं, मैं इसकी साक्षी हूं। अन्य नवोदित भिक्षुणियों को विशेष कृपा प्राप्त है और वे भिक्षुणियों के साथ रह सकती हैं।'

दो-तीन रातों के लिए, यह कृपा तुम्हारे लिए नहीं है। अब जाओ और स्वयं को नष्ट कर लो। यदि कोई भिक्षुणी, इस प्रकार नष्ट हुई ननदी को जानते हुए भी, उससे बात करे, उसके साथ भोजन करे और उसके साथ रहे, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

धार्मिकता का सिद्धांत

149. यदि कोई भिक्षुणी अन्य भिक्षुणियों द्वारा उचित रूप से कही गई बात पर इस प्रकार कहे: 'हे देवियों, मैं इस नियम का पालन तब तक नहीं करूंगी जब तक कि मैं इसे किसी विद्वान अनुशासक से स्पष्ट न करवा लूं।' तो यह प्रायश्चित योग्य अपराध है।

भिक्षुओं, नौसिखियों को भिक्षुणियों से सीखना चाहिए, उनसे प्रश्न पूछना चाहिए और बार-बार प्रश्न पूछना चाहिए, यही सही तरीका है।

उपदेशों के प्रति व्याकुलता व्यक्त करना

150. जब उच्च कोटि के नियमों का पाठ किया जाता है, यदि कोई भिक्षुणी कहती है: 'इन संबंधित उपदेशों का पाठ करने का क्या लाभ है, ये संदेह, चिंता और घबराहट उत्पन्न करते हैं।' उपदेशों की निंदा करना प्रायश्चित का पात्र अपराध है।

भ्रमित होने का उपदेश

151. जब उच्च कोटि के नियमों का पाठ पखवाड़े में एक बार किया जाता है, यदि कोई भिक्षुणी कहती है: 'हे देवियों, अब मुझे पता चल गया है, तो इसे प्रवचनों में शामिल किया जाता है।' अन्य भिक्षुणियों ने उसे उच्च कोटि के नियमों का पाठ दो-तीन बार, निस्संदेह इससे भी अधिक बार, सुनते हुए देखा होगा। यह संभव नहीं है कि वह अनभिज्ञता जताकर बच जाए। यदि उसने कोई अपराध किया है, तो उसे उसके लिए और भ्रम में छिपने के लिए उचित दंड दिया जाना चाहिए: 'हे देवियों, इससे आपको कोई लाभ नहीं है, यह एक दुर्लभ अवसर है जो आपको उच्च कोटि के नियमों का पाठ ध्यानपूर्वक सुनने को मिलता है।' वह भ्रम प्रायश्चित का पात्र है।

प्रहार करने का नियम।

152. यदि कोई भिक्षुणी क्रोधित और अप्रसन्न होकर किसी भिक्षुणी को मारती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

मारने की मुद्रा दिखाने का नियम

153. यदि कोई भिक्षुणी क्रोधित और अप्रसन्न होकर किसी भिक्षुणी को मारने के भाव से हथेली उठाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

झूठे आरोप के लिए नियम

154. यदि कोई भिक्षुणी किसी भिक्षुणी पर गंभीर अपराध का झूठा आरोप लगाती है, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

निराधार आरोप के लिए सिद्धांत

155. यदि कोई भिक्षुणी किसी भिक्षुणी के बारे में संदेह उत्पन्न करती है, उसे क्षण भर के लिए दुखी करने के इरादे से, जब कोई अन्य कारण न हो, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

156. यदि कोई भिक्षुणी गुप्त रूप से भिक्षुणियों की बातें सुनती है, जब वे पक्ष लेती हैं, विवाद करती हैं और लड़ती हैं, छुपकर सुनने के उद्देश्य से, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

विचारों से संबंधित खंड पंद्रहवाँ है।

धार्मिकता पर अनुभाग

हैरानी का सिद्धांत।

157. किसी वैध मामले को निपटाने के लिए अपना प्रतिनिधि मत देने वाली भिक्षुणी का बाद में क्रोधित होना प्रायश्चित का अपराध है।

बिना वोट डाले चले जाने का नियम।

158. किसी कानूनी मामले का निपटारा करते समय, यदि कोई भिक्षुणी अपने स्थान से उठकर बिना अपना वोट दिए चली जाए, तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

शक्तिहीनता के लिए उपदेश।

159. यदि कोई भिक्षुणी, भिक्षुणियों के समुदाय के साथ सामंजस्य में रहते हुए, किसी भिक्षुणी को वस्त्र भेंट करे और बाद में यह कहते हुए पछताए कि: 'भिक्षुणियाँ अपनी इच्छा के अनुसार समुदाय के लाभ भेंट करती हैं।' तो यह प्रायश्चित का अपराध है।

वस्त्र भेंट करने का नियम

160. यदि कोई भिक्षुणी यह जानते हुए कि यह समुदाय के लिए लाभ है, किसी वृद्ध व्यक्ति को वस्त्र भेंट करे, तो यह प्रायश्चित के योग्य अपराध है।

रत्नों के लिए उपदेश

161. यदि कोई भिक्षुणी किसी रत्न या रत्न के समान किसी वस्तु को स्वयं उठाए या किसी अन्य से उठवाए, तो यह प्रायश्चित का पात्र अपराध है। जब कोई रत्न या रत्न के समान कोई वस्तु उठाई जाए, तो उसे यह सोचकर सुरक्षित रख देना चाहिए कि 'यह उसके स्वामी को मिल जाए।'

सुई के मामले के लिए उपदेश

162. यदि किसी भिक्षुणी के पास हड्डियों, दांतों या सींगों से बना सुई का खोल हो, तो उसके टूटने पर प्रायश्चित का अपराध होता है।

बिस्तरों और कुर्सियों के लिए नियम

163. कोई भिक्षुणी जब नया पलंग या कुर्सी बना रही हो, तो उसे नीचे के स्टैंड को अनदेखा करते हुए, उसकी ऊँचाई आठ उंगलियों के बराबर रखनी चाहिए। यदि ऊँचाई इससे अधिक हो, तो यह प्रायश्चित का अपराध है, जिसके कारण पलंग या कुर्सी टूट जाती है।

रुई से भरने का नियम

164. यदि कोई भिक्षुणी पलंग या कुर्सी में रुई भर दे, तो उसे उतारते समय प्रायश्चित का अपराध माना जाएगा।

खुजली छुपाने का नुस्खा

165. त्वचा रोग को छुपाने के लिए वस्त्र बनाते समय भिक्षुणी को निम्नलिखित मापों का पालन करना चाहिए: चार लंबाई के लिए दो चौड़ाई होनी चाहिए। यदि माप अधिक हो और वस्त्र फट जाए, तो प्रायश्चित का दंड मिलेगा।

नंदा के लिए उपदेश

166. जो भिक्षुणी मोक्ष प्राप्त भिक्षुणी के नाप के अनुसार ऊपरी वस्त्र बना रही हो, उसे काट देना चाहिए; ऐसा करना प्रायश्चित का अपराध है। मोक्ष प्राप्त भिक्षुणी के वस्त्र का नाप नौ लंबाई और छह चौड़ाई है।

सोलहवाँ खंड विचारों से संबंधित है।

हे देवियों, प्रायश्चित के योग्य एक सौ छियासठ अपराधों का उल्लेख किया गया है, अब मैं पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? मैं दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? देवियों, आप पवित्र हैं, इसलिए वे मौन हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

पचितीय धम्म (प्रायश्चित योग्य अपराध) का अंत।

[टिपिटक]] >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **पतिदेसानिया धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनि पतिमोक्खा
  - 1.1पतिदेसानिया धम्म (स्विकारोक्ति)
    - 1.1.1पटिडेसानिया स्टोअर
    - 1.1.2पाटीदेसानिया स्कैन की गई पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

पतिदेसानिया धम्म (स्वीकारोक्ति)
(वे अपराध जिन्हें स्वीकार करना चाहिए)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पटिदेसानिया सारांश

हे सम्मानित महिलाओं, अब उन आठ अपराधों का पाठ किया जाएगा जिन्हें स्वीकार करना आवश्यक है।

घी (स्पष्ट मक्खन) मांगने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत

1. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न हो और घी मांगकर उसका सेवन करे, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

तेल मांगने के प्रशिक्षण का सिद्धांत

2. यदि कोई भिक्षुणी बीमार न हो और तेल मांगकर उसका सेवन करे, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

शहद मांगने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत

3. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न हो और शहद मांगकर उसका सेवन करे, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

गुड़ मांगने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत

4. यदि कोई भिक्षुणी बीमार न हो और गुड़ मांगकर उसका सेवन कर ले, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

मछली से सवाल पूछने के प्रशिक्षण का सिद्धांत

5. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न होकर मछली मांगकर खा ले, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

मांस मांगने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत

1. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न होते हुए भी मांस मांगकर खा ले, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

दूध मांगने के प्रशिक्षण का सिद्धांत

7. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न हो और दूध मांगकर उसका सेवन करे, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

दही मांगने के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत

8. यदि कोई भिक्षुणी अस्वस्थ न हो और दही मांगकर उसका सेवन करे, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए: 'हे देवियों, मैंने एक अनुचित अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करती हूँ।'

हे देवियों, जिन आठ अपराधों का प्रायश्चित करना आवश्यक है, उनका पाठ किया गया है। अब मैं आपसे पूछता हूँ, आपकी पवित्रता कैसी है? मैं आपसे दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ, आपकी पवित्रता कैसी है? देवियाँ पवित्र हैं, इसलिए वे मौन हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

पतिदेशीय धम्म (स्वीकार किए जाने वाले अपराध) का अंत।

[टिपिटक]] >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **सेखिया धम्म**

पतिमोक्खा

अंतर्वस्तु

- 1भिक्कुनी पतिमोक्खा
  - 1.1सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
    - 1.1.1सेखिया सारांश
    - 1.1.2सेखिया स्कैन की गई पुस्तक

भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम)
(प्रशिक्षुओं के लिए नियम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अब पूजनीय व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण संबंधी उपदेशों का पाठ किया जाएगा।

पूर्णता के लिए अनुभाग

1. मैं हर तरह से पहनने के लिए प्रशिक्षण लेता हूँ।

2. मैं हर क्षेत्र में निपुण होने के लिए प्रशिक्षण लेता हूँ।

3. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, अच्छी तरह से ढके हुए घर में प्रवेश करूँगा।

4. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, अच्छी तरह से ढके हुए घर के अंदर बैठूंगा।

5. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, अच्छी तरह से नियंत्रित घर में प्रवेश करूँगा।

6. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, घर के अंदर अच्छी तरह से संयमित होकर बैठूंगा।

7. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, घर में आँखें नीचे करके प्रवेश करूँगा।

8 मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, घर के अंदर आँखें झुकाकर बैठूँगा।

9 मैं प्रशिक्षण देता हूँ, मैं शव को उठाने वाले घर में प्रवेश नहीं करूँगा।

10. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर बैठकर शरीर को ऊपर नहीं उठाता।

11. मैं प्रशिक्षित हूं, बिना उपहासपूर्ण हावभाव के घर में प्रवेश करूंगा।

12. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, बिना किसी उपहासपूर्ण हावभाव के घर के अंदर बैठूंगा।

13. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बिना शोर किए घर में प्रवेश करूँगा।

14. मैं अभ्यास करता हूँ, घर के अंदर बिना शोर किए बैठूंगा।

15 मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, और बिना शरीर हिलाए घर में प्रवेश करूँगा।

16. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर बिना शरीर हिलाए बैठूंगा।

17. मैं अभ्यास करता हूँ, बिना अपने कंधों को हिलाए घर में प्रवेश करूँगा।

18. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर बिना कंधे हिलाए बैठूंगा।

19. मैं अभ्यास करता हूँ, बिना सिर हिलाए घर में प्रवेश करूँगा।

20. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर बिना सिर हिलाए बैठूंगा।

21 मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, और हाथ कमर पर रखकर किसी घर में प्रवेश नहीं करूँगा।

22. मैं अभ्यास करता हूँ, घर के अंदर हाथ कमर पर रखकर नहीं बैठूंगा।

23. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, सिर ढककर घर में प्रवेश नहीं करूँगा।

24. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर सिर ढककर नहीं बैठूंगा।

25. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, किसी घर में अवैध रूप से कब्जा करके प्रवेश नहीं करूँगा।

26. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, घर के अंदर उकड़ू नहीं बैठूंगा।

ये छब्बीस उचित बातें हैं।

27. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, भिक्षा भोजन को सावधानीपूर्वक ग्रहण करूँगा।

28. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, भिक्षा ग्रहण करते समय कटोरे पर ध्यान रखूँगा।

29. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, चावल के अनुपात में सूप और करी स्वीकार करूँगा।

30. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, कटोरे की क्षमता के अनुसार भिक्षा ग्रहण करूँगा।

31. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, भिक्षा का भोजन सावधानीपूर्वक ग्रहण करूँगा।

32. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, कटोरे पर ध्यान देते हुए भिक्षा का भोजन ग्रहण करूँगा।

33 मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, बिना चुने भिक्षा भोजन ग्रहण करूँगा।

34. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, चावल के अनुपात में सूप और करी का सेवन करूँगा।

35. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, ऊपर से कुचले हुए भोजन का सेवन नहीं करूँगा।

36. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, अधिक सूप और करी प्राप्त करने के लिए सूप या करी को चावल से नहीं ढकूँगा।

37. मैं प्रशिक्षण लेता हूँ, मैं बीमार न होने पर सूप या चावल नहीं माँगूँगा और उन्हें ग्रहण नहीं करूँगा।

38. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, दूसरे के कटोरे को चिढ़कर नहीं देखूंगा।

39. मैं अभ्यास करता हूँ, चावल के बड़े-बड़े निवाले नहीं लूँगा।

40. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, एक गोल निवाला बनाऊँगा।

41. मैं प्रशिक्षित करता हूँ, निवाला पहुँचने से पहले मुँह नहीं खोलूँगा।

42. मैं अभ्यास करता हूँ कि निवाला लेते समय सभी उंगलियाँ मुँह में न डालूँ।

43. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, मुँह में भोजन रहते हुए बात नहीं करूँगा।

44. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, मुँह में खाना फेंककर नहीं खाऊँगा।

45. मैं अभ्यास करता हूँ, भोजन को बहुत ज्यादा चबाकर नहीं खाता।

46. मैं अभ्यास करता हूँ, मुँह में बहुत अधिक भोजन नहीं ठूँसूँगा।

47. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, हाथ मिलाकर भोजन नहीं करूँगा।

48. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, बिखरा हुआ भोजन नहीं खाऊँगा।

49. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, खाने के लिए जीभ बाहर नहीं निकालूँगा।

50. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, मैं 'कपुकपु' की आवाज़ करते हुए नहीं खाऊँगा।

51. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, `सुरुसुरु' की आवाज़ करते हुए भोजन नहीं करूँगा।

52. मैं अभ्यास करता हूँ, खाना खाते समय अपनी उंगलियाँ नहीं चाटूँगा।

53. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, कटोरा खुरच कर नहीं खाऊँगा।

54. मैं प्रशिक्षण करता हूँ, होंठ चाटकर नहीं खाऊँगा।

55. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, गंदे हाथों से पानी नहीं पीऊँगा।

56. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, घर के अंदर भोजन के कणों के साथ पानी नहीं गिराऊँगा।

भोजन करते समय तीस नियम।

57. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी को हाथ में छाता लेकर प्रशिक्षण नहीं दूंगा।

58. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी को हाथ में छड़ी लेकर नहीं सिखाऊँगा।

59. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी को हाथ में चाकू लेकर प्रशिक्षण नहीं दूंगा।

60. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी को हाथ में हथियार लेकर प्रशिक्षण नहीं दूंगा।

61 मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी अन्य समय जूते पहने हुए किसी को प्रशिक्षण नहीं दूंगा।

62. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, किसी को वाहन में प्रशिक्षण नहीं दूंगा, सिवाय बीमार होने की स्थिति में।

63. मैं प्रशिक्षण देता/देती हूँ, लेकिन किसी बीमार व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति को वाहन में यात्रा करना नहीं सिखाऊँगा/सिखाऊँगी।

64. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर, बिस्तर पर लेटे हुए किसी को प्रशिक्षण नहीं दूंगा।

65. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर, किसी को आरामकुर्सी पर नहीं बिठाकर सिखाऊँगा।

66. मैं प्रशिक्षण देता/देती हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर, सिर पर टोपी पहने हुए किसी व्यक्ति को प्रशिक्षण नहीं दूँगा/दूँगी।

67. मैं प्रशिक्षण देता/देती हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर, सिर ढके हुए किसी व्यक्ति को प्रशिक्षण नहीं दूँगा/दूँगी।

68. मैं प्रशिक्षण देता/देती हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर, किसी को भी जमीन पर बैठे हुए आसन पर प्रशिक्षण नहीं दूँगा/दूँगी।

69. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, मैं किसी को ऊँची कुर्सी पर या नीची कुर्सी पर बैठाकर प्रशिक्षण नहीं दूँगा, सिवाय बीमार होने की स्थिति में।

70. मैं प्रशिक्षण देता/देती हूँ, बीमार होने की स्थिति को छोड़कर किसी को भी खड़े होकर नहीं सिखाऊँगा/सिखाऊँगी।

71. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी को आगे चलने के लिए नहीं सिखाऊँगा।

शिक्षण से संबंधित सोलह नियम सुनाए गए।

73. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा पानी खाली नहीं करूँगा या जमा नहीं करूँगा।

74. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी भी स्थिति में खाली नहीं कराऊंगा, पानी नहीं बहाऊंगा या वनस्पति पर थूकूंगा नहीं।

75. मैं प्रशिक्षण देता हूँ, बीमार होने के अलावा किसी अन्य स्थिति में पेशाब नहीं करूँगा, पेशाब नहीं करूँगा या पानी में थूकूँगा नहीं।

तीन विविध नियम बताए गए हैं

हे देवियों, प्रशिक्षुओं के लिए नियम सुना दिए गए हैं, अब मैं पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? मैं दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? देवियों, आप पवित्र हैं, इसलिए वे चुप हैं, और मैं इसे दर्ज कर लेता हूँ।

सेखिया धम्म (प्रशिक्षार्थियों के नियम) का समापन।

टिपिटका >> विनय पिटक >> भिक्खुनि पतिमोक्खा >> **अधिकरण समथ धम्म**

पतिमोक्खा
भिक्कुनी पतिमोक्खा
भिक्कुनियों (नन) के लिए अनुशासनात्मक नियम

अधिकरण समथ धम्म (विवादों का निपटारा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अधिकरण समाथा सारांश

हे सम्मानित महिलाओं, अब उत्पन्न हुए कानूनी मामले को निपटाने के सात तरीके बताए जाएंगे।

1. अनुशासन का निर्धारण टकराव की स्थिति में ही होना चाहिए।

2. अनुशासन को स्मृति को याद करके स्थापित किया जाना चाहिए।

3. यह सिद्ध करके अनुशासन स्थापित किया जाना चाहिए कि भिक्षुणी मानसिक रूप से विक्षिप्त थी।

4. वादा करके।

5. बहुमत से कानूनी मामले का निपटारा करना।

6. मामले की दुर्भावनापूर्ण प्रकृति को दर्शाकर कानूनी मामले का निपटारा करना।

7. पूरे मामले को छुपाकर।

हे देवियों, अनुशासन स्थापित करने के सात तरीके बताए जा चुके हैं, अब मैं आपसे पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? मैं आपसे दूसरी और तीसरी बार पूछता हूँ कि आपकी पवित्रता कैसी है? देवियाँ पवित्र हैं, इसलिए वे चुप हैं, और मैं इसे इसी रूप में दर्ज करता हूँ।

अधिकरण समथ धम्म (अनुशासन स्थापित करने के तरीके) का अंत।

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.1

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला। अगला (1.2) >>>>

महावग्ग

परम पवित्र, पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान बुद्ध को प्रणाम।

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-1: बोधि वृक्ष के नीचे कारण-कार्य श्रृंखला को जानना।

1. उस समय, बुद्ध नेरंजारा नदी के तट पर, बोधगया के बोधि वृक्ष की तलहटी में उरुवेला में निवास किया, जब वे संबुद्ध (पूर्णतः प्रबुद्ध) हो चुके थे। बुद्ध सात दिनों तक निरंतर बोधि वृक्ष की तलहटी में पालथी मारकर बैठे रहे और ज्ञानोदय के आनंद का अनुभव करते रहे (समाधि अवस्था में)।

2. पटिचसमुप्पदा (कारणों की श्रृंखला)

फिर भगवान बुद्ध ने (इन सात दिनों के अंत में) रात्रि के पहले पहर में प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में कारण-कार्य श्रृंखला (पटिच्चसमुप्पदम) पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

अविज्जा पचाय संखरा,
संखार पचाय विनाणं,
विन्यान पचाय नामरूपम,
नामरूप पचाय संखायातनं,
साशायतन पचाय फस्सो,
फस्सा पकाया वेदना,
वेदाना पकाया तन्हा,
तन्हा पकाया उपादानं,
उपादान पकाया भावो,
भव पकाया जाति,
जाति पकाया जरा मरणं सोका परिदेव दुक्खा डोमनासुपायसा संभवन्ति — एवमेतस्सा केवलस्सा दुक्खक्खनधास्सा समुदयो होति।

ज्ञानहीनता (ज्ञानोदय/सम्मोहन अवस्था का) संस्कारों (गलत आदतों/प्रवृत्तियों) का कारण बनती है।
संस्कार सामान्य चेतना का कारण बनते हैं,
चेतना नामरूपम (मन और शरीर की क्रिया) का कारण बनती है,
नामरूपम छह इंद्रियों (मन, स्पर्श, दृष्टि, कान, नाक, जीभ) की क्रिया का कारण बनता है, छह इंद्रियां (
इंद्रिय विषयों के साथ) संपर्क का कारण बनती हैं, संपर्क (
शरीर के भीतर) संवेदना का कारण बनता है, संवेदना
(या इच्छा) लालसा (या इच्छा) का कारण बनती है,
लालसा (इंद्रिय विषयों, लोगों आदि के साथ) आसक्ति (इंद्रिय विषयों, लोगों आदि के साथ)
का कारण बनती है, आसक्ति (जैसे, खिंचाव बल) का कारण बनती है,
बनने का अस्तित्व (या मृत्यु के बाद पुनर्जन्म) की ओर ले जाता है, जन्म
(या मृत्यु की ओर) वृद्धावस्था (रोग) और मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और हताशा का कारण बनता है।
यही इस संपूर्ण दुख के समूह की उत्पत्ति है।

अविज्जायत्वेव असेसविराग निरोध निरोधो,
संखरा निरोध विनाश निरोधो, विनाश निरोध
नामरूप निरोधो,
नामरूप निरोध संशयतन निरोधो,
संयम निरोधो चरण निरोधो,
चरण निरोध वेदना निरोधो,
वेदना निरोध तन्हा निरोधो,
तन्हा निरोध उपादान निरोधो,
उपादान निरोधा भव निरोधो,
भव निरोध जाति निरोधो,
जाति निरोध जरामरण सोकापरिदेवदुक्खदोमनसुपायसा निरुज्जन्ति — एवमेतस्सा केवलस्सा दुक्खक्खनधस्सा निरोधो होति''ति।

अज्ञान (ज्ञानोदय/सम्मोहन अवस्था) के निवारण से, जिसमें कामवासना (इच्छाओं) का पूर्ण अभाव होता है, संस्कार (आदतें/प्रवृत्तियाँ) रुक जाते हैं;
संस्कारों के रुकने से (सामान्य) चेतना रुक जाती है;
चेतना के रुकने से नामरूप (मन और शरीर की जागरूकता) रुक जाती है;
नामरूप के रुकने से छह इंद्रियाँ (इंद्रिय जागरूकता) रुक जाती हैं;
छह इंद्रियों के रुकने से (इंद्रिय विषयों से) संपर्क रुक जाता है;
संपर्क के रुकने से (शरीर के भीतर) संवेदना रुक जाती है;
संवेदना के रुकने से (इच्छा) रुक जाती है;
चाहत के रुकने से (इंद्रिय विषयों, लोगों आदि से) आसक्ति रुक जाती है;
आसक्ति के रुकने से (अस्तित्व का कारण) रुक जाता है;
अस्तित्व के रुकने से, जन्म रुक जाता है
। जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और हताशा का अंत हो जाता है।
इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का अंत हो जाता है।

---

3. यह जानकर भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:

जब गहन ध्यानमग्न ब्राह्मण (ज्ञानी) को धम्म (वस्तुओं/घटनाओं का वास्तविक स्वरूप) स्पष्ट हो जाता है,
तो उसके सभी संदेह दूर हो जाते हैं,
क्योंकि वह लाभकारी धम्म (स्वरूप और उसके कारण) को जान लेता है।

4. तब भगवान बुद्ध ने रात के मध्य पहर में कारण-कार्य श्रृंखला पर ध्यान केंद्रित किया, प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में: 'अज्ञान संस्कारों का कारण बनता है, इत्यादि। यही इस समस्त दुख का उद्गम है, इत्यादि। यही इस समस्त दुख का निवारण है।'

5. यह जानकर भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:

जब धम्म (वस्तुओं/घटनाओं का वास्तविक स्वरूप)
गहन ध्यानमग्न ब्राह्मण (ज्ञानी) को स्पष्ट हो जाता है,
तो उसके सभी संदेह दूर हो जाते हैं,
क्योंकि वह कारण-कार्य के अंत को समझ लेता है
जो संवेदनाओं से परे की अवस्था (आनंदमय समाधि अवस्था) की ओर ले जाता है।

6. तब भगवान बुद्ध ने रात्रि के तीसरे पहर में कारण-कार्य श्रृंखला पर प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में ध्यान केंद्रित किया: 'अज्ञान संस्कारों का कारण बनता है, इत्यादि। यही इस समस्त दुख का उद्गम है, इत्यादि। यही इस समस्त दुख का निवारण है।' इत्यादि।

7. यह जानकर भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:

जब धम्म (वस्तुओं/घटनाओं का वास्तविक स्वरूप)
गहन ध्यानमग्न ब्राह्मण (ज्ञानी व्यक्ति) को स्पष्ट हो जाता है, तो वह सूर्य की तरह आकाश को प्रकाशित करते हुए
, मार (मृत्यु, रोग, अज्ञान के स्वामी) की सेनाओं को विमुख कर देता है ।

बोधि वृक्ष के नीचे घटी घटनाओं का वृत्तांत यहीं समाप्त होता है।

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.1) । अगला(1.3) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-2: बुद्ध अजापाल बरगद के वृक्ष के नीचे एक पुजारी से मिलते हैं।

1. फिर उन सात दिनों के अंत में, भगवान बुद्ध ध्यान की उस अवस्था से उठे और बोधि वृक्ष की तलहटी से अजपाल बरगद (बकरी चराने वालों का बरगद) की ओर गए। वहाँ पहुँचकर वे सात दिनों तक लगातार अजपाल बरगद की तलहटी में पालथी मारकर बैठे रहे और मोक्ष के आनंद का अनुभव करते रहे।

2. अब एक अहंकारी ब्राह्मण (पुजारी) उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया; प्रणाम और विनम्र शब्दों का आदान-प्रदान करने के बाद वह उनके निकट खड़ा हो गया; फिर उनके निकट खड़े होकर उस ब्राह्मण (पुजारी) ने भगवान बुद्ध से कहा, 'गौतम, किस प्रकार कोई ब्राह्मण बनता है, और वे कौन से गुण हैं जो किसी व्यक्ति को ब्राह्मण बनाते हैं?'

3. यह सुनकर भगवान बुद्ध ने इस अवसर पर यह गंभीर कथन किया: 'वह ब्राह्मण जिसने अपने आप से सभी पापों को दूर कर लिया है, जो अहंकार से मुक्त है, जो अपवित्रता से मुक्त है, जो आत्मसंयमित है, जो ज्ञान का सिद्ध स्वामी है, जिसने पवित्रता के कर्तव्यों का पालन किया है, ऐसा ब्राह्मण अपने आप को ब्राह्मण कहलाने का औचित्य रखता है, जिसका आचरण संसार में किसी से कम नहीं है।'

अजापाला वृक्ष के नीचे घटी घटनाओं का वृत्तांत यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.1) । अगला(1.3) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.2) । अगला(1.4) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-3: मुचलिंडा वृक्ष के नीचे नाग द्वारा संरक्षित बुद्ध।

1. फिर उन सात दिनों के अंत में, भगवान बुद्ध ध्यान की उस अवस्था से उठे और अजपाल बरगद के वृक्ष की तलहटी से मुचलिंडा वृक्ष की ओर गए। वहाँ पहुँचकर वे सात दिनों तक निरंतर मुचलिंडा वृक्ष की तलहटी में पालथी मारकर बैठे रहे और विमुक्ति/निर्वाण अवस्था का आनंद लेते रहे।

2. उस समय अचानक एक बड़ा बादल छा गया, सात दिनों तक लगातार बारिश हुई, ठंड पड़ी, आंधी आई और अंधेरा छा गया। नागों के राजा मुचलिन्द अपने निवास से निकले और भगवान बुद्ध के शरीर को सात बार अपने कुंडलियों से घेर लिया, और अपना बड़ा फन उनके सिर पर फैलाए रहे, मन ही मन सोचते हुए: 'भगवान बुद्ध को कोई ठंड न लगे! भगवान बुद्ध को कोई गर्मी न लगे! भगवान बुद्ध को मक्खियों, मच्छरों, आंधी, धूप और सरीसृपों से कोई कष्ट न हो!'

3. और उन सात दिनों के अंत में, जब नाग राजा मुचलिंडा ने खुला, बादल रहित आकाश देखा, तो उसने भगवान बुद्ध के शरीर से अपने लबादे खोल दिए, अपना स्वरूप गायब कर दिया, एक युवक का रूप धारण किया, और भगवान बुद्ध के सामने खड़े होकर, हाथ जोड़कर, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया।

4. और भगवान बुद्ध ने यह जानकर इस अवसर पर यह गंभीर कथन कहा: 'आनंद से परिपूर्ण, सत्य को जानने वाले, सत्य को देखने वाले का एकांत सुखमय है। इस संसार में द्वेष से मुक्ति, सभी सजीव प्राणियों के प्रति आत्मसंयम, इस संसार में कामवासना से मुक्ति, सभी इच्छाओं से परे जाना, और "मैं हूँ!" के विचार से उत्पन्न अहंकार को त्यागना सुखमय है। यही वास्तव में सर्वोच्च सुख है!'

मुचलिंडा वृक्ष के नीचे घटी घटनाओं का वृत्तांत यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.2) । अगला(1.4) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.3) । अगला(1.5) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-4: बुद्ध की राजायतन वृक्ष के नीचे दो व्यापारियों से पहली मुलाकात।

1. फिर उन सात दिनों के अंत में, भगवान बुद्ध ध्यान की उस अवस्था से उठे और मुचलिंडा वृक्ष की तलहटी से राजायतन वृक्ष की ओर गए; वहाँ पहुँचकर वे सात दिनों तक लगातार राजायतन वृक्ष की तलहटी में पालथी मारकर बैठे रहे और विमुक्ति/निर्वाण अवस्था/समाधि का आनंद लेते रहे।

2. उस समय दो व्यापारी, तपस्सा और भल्लिका, उक्काला (उड़ीसा) से उस स्थान की ओर यात्रा कर रहे थे। तब एक देवता, जो (पिछले जन्म में) व्यापारी तपस्सा और भल्लिका के रक्त संबंधी थे, ने उनसे कहा: 'हे मेरे मित्रों, राजयतन वृक्ष की चरणों में भगवान बुद्ध विराजमान हैं, जो अभी-अभी सम्बुद्ध बने हैं। जाओ और भगवान बुद्ध को चावल के केक और शहद के टुकड़े अर्पित करके अपना आदर प्रकट करो। यह तुम्हारे लिए दीर्घकाल तक कल्याणकारी और आशीर्वाददायी होगा।'

3. व्यापारी तपस्सा और भल्लिका चावल के केक और शहद के टुकड़े लेकर भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट खड़े हो गए; उनके पास खड़े होकर तपस्सा और भल्लिका ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध हमारे इन चावल के केक और शहद के टुकड़ों को स्वीकार करें, ताकि ये हमारे लिए दीर्घकाल तक कल्याणकारी और आशीर्वादमय रहें!'

4. तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'तथागत हाथों से भोजन ग्रहण नहीं करते। अब मैं चावल की रोटी और शहद के टुकड़े किससे ग्रहण करूँ?' तब चारों महाराजा देवताओं ने, अपनी बुद्धि से, भगवान बुद्ध के मन में उठे विचार को समझकर, चारों दिशाओं से भगवान बुद्ध को पत्थर के चार कटोरे भेंट किए और कहा, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध चावल की रोटी और शहद के टुकड़े स्वीकार करें!' भगवान बुद्ध ने उन नए पत्थर के कटोरे स्वीकार किए; और उनमें उन्हें चावल की रोटी और शहद के टुकड़े मिले, और उन्हें ग्रहण करके उन्होंने खा लिया।

5. और जब तपस्सा और भल्लिका नामक व्यापारियों ने देखा कि भगवान बुद्ध ने अपना कुंड और हाथ धो लिए हैं, तो वे श्रद्धापूर्वक भगवान बुद्ध के चरणों में झुक गए और उनसे इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, हम भगवान बुद्ध और धम्म की शरण लेते हैं; भगवान बुद्ध हमें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने आज से अपने जीवन भर उनकी शरण ली है।' ये संसार में पहले व्यक्ति थे जिन्होंने केवल द्वैत युक्त सूत्र द्वारा (बुद्ध के) गृहस्थ शिष्य बने।

(इसके बाद वे दोनों व्यापारी शिक्षा का प्रसार करने के लिए बर्मा (म्यांमार) चले गए।)

राजयतना वृक्ष के नीचे घटी घटनाओं का वृत्तांत यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.3) | अगला(1.5) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.4) | अगला(1.6) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-5: ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति द्वारा अमरता के मार्ग का प्रचार करने का अनुरोध।

1. फिर उन सात दिनों के अंत में, भगवान बुद्ध ध्यान की उस अवस्था से उठे और राजयतन वृक्ष की तलहटी से अजपाल बरगद वृक्ष की ओर गए। और वहाँ पहुँचकर, भगवान बुद्ध अजपाल बरगद वृक्ष की तलहटी में ठहर गए।

2. तब अकेले एकांत में विलीन भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया: 'मैंने इस गहन, समझने में कठिन, हृदय को शांत करने वाले, उच्च कोटि के, तर्क से अप्राप्य, गूढ़ और केवल बुद्धिमानों को बोध कराने वाले सिद्धांत को प्राप्त कर लिया है। दूसरी ओर, यह जनमानस भोगने वाला, इच्छाओं में लीन और उनमें आनंद लेने वाला है। अत:, इस जनमानस के लिए, जो इच्छाओं में लीन, इच्छाओं में लीन और उनमें आनंद लेने वाला है, कारण-कार्य का नियम और कारण-कार्य श्रृंखला समझना कठिन होगा; उनके लिए सभी संस्कारों (पापों) का नाश, सभी आधारों (अस्तित्व के) से मुक्ति, इच्छाओं का नाश, वासना का अभाव, हृदय की शांति और निर्वाण को समझना अत्यंत कठिन होगा! अब यदि मैं इस सिद्धांत का प्रचार करू और अन्य लोग मेरे उपदेश को न समझ पाएं, तो इससे मुझे केवल अरुचि और झुंझलाहट ही होगी।'

3. और फिर भगवान बुद्ध के मन में निम्नलिखित श्लोक आए, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे: 'मैंने इसे बड़ी मेहनत से प्राप्त किया है। बस! अब मैं इसका प्रचार क्यों करूँ? यह सिद्धांत उन प्राणियों को आसानी से समझ में नहीं आएगा जो कामवासना और घृणा में डूबे हुए हैं।'

'वासना में लिप्त, घोर अंधकार से घिरे होने के कारण, वे उस चीज़ को नहीं देख पाएंगे जो (उनके मन को) घृणित, गूढ़, गहन, समझने में कठिन और सूक्ष्म है।'

4. जब भगवान बुद्ध इस विषय पर विचार कर रहे थे, तो उनका मन शांत रहने और उपदेश न देने की ओर झुका। तब ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने मन की शक्ति से भगवान बुद्ध के मन में उठे विचार को समझकर सोचा, 'हाय! संसार का नाश हो रहा है! हाय! संसार का विनाश हो रहा है! यदि तथागत (बुद्ध), पवित्र, परम संबुद्ध का मन शांत रहने और उपदेश न देने की ओर झुका रहे।'

5. फिर ब्रह्मा सहमपति ब्रह्मा के लोक से विलीन हो गए और भगवान बुद्ध के सामने (उतनी ही तेजी से) प्रकट हुए जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस खींच सकता है।

6. ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार समायोजित किया कि उसका एक कंधा ढक जाए, और अपना दाहिना घुटना जमीन पर रखकर, अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान बुद्ध की ओर उठाकर उनसे कहा: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस उपदेश का प्रचार करें! सिद्ध पुरुष इस उपदेश का प्रचार करें! ऐसे प्राणी हैं जिनके मानसिक नेत्र लगभग धूल से भी धुंधले हैं; परन्तु यदि वे उपदेश न सुनें, तो उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। ये उपदेश को समझेंगे।'

7. ब्रह्मा सहमपति ने ऐसा कहा; और ऐसा कहने के बाद उन्होंने आगे कहा: 'मगध देश में अब तक जो धर्म प्रकट हुआ है, वह अशुद्ध है, दूषित मनुष्यों द्वारा प्रतिपादित है। परन्तु अब आप अमरता का द्वार खोलें; उन्हें निष्कलंक पुरुष द्वारा प्रकट किए गए सिद्धांत को सुनने दें!'

जैसे कोई व्यक्ति पहाड़ की चोटी पर चट्टान पर खड़ा होकर अपने चारों ओर के लोगों को देख सकता है, वैसे ही, हे ज्ञानी, सत्य के सर्वोच्च महल में आरोहण करके, हे सर्वदर्शी, दुख में डूबे हुए, जन्म और मृत्यु के वश में लोगों पर दृष्टि डालें, - आप, जिन्होंने स्वयं को दुख से मुक्त कर लिया है!

'उठो, हे महानुभाव; हे विजयी! हे तीर्थयात्रियों के समूह के नेता, जो स्वयं ऋणमुक्त हैं, संसार में विचरण करो। भगवान बुद्ध इस सिद्धांत का प्रचार करें; ऐसे लोग अवश्य होंगे जो इसे समझ सकेंगे!'

8. इस प्रकार कहने के बाद, भगवान बुद्ध ने ब्रह्मा सहमपति से कहा: "हे ब्रह्मा, मेरे मन में यह विचार आया है: 'मैंने इस सिद्धांत को भलीभांति समझ लिया है, ... (आदि, अनुच्छेद 2)' और हे ब्रह्मा, मेरे मन में निम्नलिखित श्लोक भी आ गए हैं, जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे: 'अत्यंत परिश्रम से, ... (आदि, अनुच्छेद 3 के अंत तक)' हे ब्रह्मा, जब मैंने इस विषय पर विचार किया, तो मेरा मन शांत रहने की ओर झुका, और इस सिद्धांत का प्रचार न करने की ओर प्रेरित हुआ।"

9. और दूसरी बार ब्रह्म सहमपति ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस सिद्धांत का प्रचार करें, ... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 6, 7 में है)।' और दूसरी बार भगवान बुद्ध ने ब्रह्म सहमपति से कहा: 'निम्नलिखित विचार . . . . (आदि, जैसा कि पहले था)।'

10. और तीसरी बार ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस सिद्धांत का प्रचार करें, ... (आदि, जैसा पहले था)।'

तब भगवान बुद्ध ने ब्रह्मा का निवेदन सुनकर, सभी प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण होकर, बुद्ध की सर्वदर्शी दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी मानसिक दृष्टि न के बराबर धुंधली थी, और ऐसे प्राणियों को भी जिनकी दृष्टि अत्यधिक धुंधली थी, कुछ बुद्धिमान थे और कुछ कम बुद्धिमान, कुछ अच्छे स्वभाव के थे और कुछ बुरे स्वभाव के, कुछ को उपदेश देना आसान था और कुछ को उपदेश देना कठिन, और उनमें से कुछ भविष्य के जीवन और पाप के खतरों को देख रहे थे।

11. जैसे नीले कमलों, जल-गुलाबों या सफेद कमलों से भरे एक तालाब में, कुछ नीले कमल, जल-गुलाबों या सफेद कमल, जो जल में उत्पन्न हुए और जल में ही पले-बढ़े, जल के ऊपर नहीं निकलते, बल्कि जल के नीचे छिपे रहते हैं; और कुछ नीले कमल, जल-गुलाबों या सफेद कमल, जो जल में उत्पन्न हुए और जल में ही पले-बढ़े, जल की सतह तक पहुँच जाते हैं; और कुछ नीले कमल, जल-गुलाबों या सफेद कमल, जो जल में उत्पन्न हुए और जल में ही पले-बढ़े, जल से बाहर निकले खड़े रहते हैं, और जल उन्हें स्पर्श नहीं करता,--

12. इस प्रकार भगवान बुद्ध ने बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी मानसिक दृष्टि अंधकारमय थी, ... (आदि, पाठ में अनुच्छेद 10 दोहराया गया है); और जब उन्होंने उन्हें इस प्रकार देखा, तो उन्होंने ब्रह्मा सहमपति को निम्नलिखित श्लोक में संबोधित किया: 'अमरता का द्वार उन सभी के लिए खुला है जिनके पास सुनने के लिए कान हैं; वे आस्था ग्रहण करें। हे ब्रह्मा, मैंने इस कठिन कार्य से निराश होकर मनुष्यों को मधुर और उत्तम धम्म का उपदेश नहीं दिया।'

13. तब ब्रह्मा सहमपति समझ गए: 'भगवान बुद्ध ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है कि वे उपदेश दें।' और उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया, और अपनी दाहिनी ओर से उनकी परिक्रमा की; और फिर वे तुरंत अंतर्धान हो गए।

ब्रह्मा के अनुरोध की कहानी यहीं समाप्त होती है।

<<<< पिछला(1.4) | अगला(1.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.5) | अगला(1.7) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-6: बुद्ध अपने पूर्व पांच सहयोगियों को धम्म की शिक्षा देते हैं।

1. अब भगवान बुद्ध ने सोचा: 'मैं सबसे पहले किसे उपदेश दूं? कौन इस उपदेश को आसानी से समझ पाएगा?' और फिर उन्होंने सोचा: 'अलारा कलामा हैं; वे चतुर, बुद्धिमान और विद्वान हैं; उनके मन की आंखें बहुत समय से धुंधली नहीं हुई हैं। क्या होगा यदि मैं सबसे पहले अलारा कलामा को उपदेश दूं? वे इस उपदेश को आसानी से समझ जाएंगे।'

2. तब एक अदृश्य देवता ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, अलारा कलामा का निधन सात दिन पहले हो गया है।' और भगवान बुद्ध के मन में यह ज्ञान उत्पन्न हुआ कि अलारा कलामा का निधन सात दिन पहले हो गया था। और भगवान बुद्ध ने सोचा, 'अलारा कलामा अत्यंत महान थे। यदि उन्होंने मेरा उपदेश सुना होता, तो वे इसे आसानी से समझ लेते।'

3. तब भगवान बुद्ध ने सोचा: 'मैं सबसे पहले किसे उपदेश दूं? कौन इस उपदेश को आसानी से समझ पाएगा?' और फिर भगवान बुद्ध ने सोचा: 'उद्दक रामपुत्त हैं; वे चतुर, बुद्धिमान और विद्वान हैं; उनकी आंखें या मन बहुत समय से अंधकारमय नहीं हुए हैं। क्या होगा यदि मैं सबसे पहले उद्दक रामपुत्त को उपदेश दूं? वे इस उपदेश को आसानी से समझ जाएंगे।'

4. तब एक अदृश्य देवता ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, उद्दक रामपुत्त का निधन कल शाम को हो गया।' तब भगवान बुद्ध के मन में यह ज्ञान उत्पन्न हुआ कि उद्दक रामपुत्त का निधन पिछली शाम को ही हो गया था। तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'उद्दक रामपुत्त अत्यंत महान थे। यदि उन्होंने मेरा उपदेश सुना होता, तो वे इसे आसानी से समझ लेते।'

5. तब भगवान बुद्ध ने सोचा: 'मैं सबसे पहले किसे उपदेश दूं? कौन इस उपदेश को आसानी से समझ पाएगा?' और फिर भगवान बुद्ध ने सोचा: 'पांच भिक्षुओं ने मेरी बहुत सेवा की है; उन्होंने मेरी तपस्या के दौरान मेरी सेवा की (पवित्रता प्राप्त करने के लिए)। क्या होगा यदि मैं सबसे पहले पांच भिक्षुओं को उपदेश दूं?'

6. अब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'वे पाँच भिक्षु अब कहाँ निवास करते हैं?' और भगवान बुद्ध ने अपनी दिव्य, स्पष्ट दृष्टि से, जो मनुष्यों की दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है, देखा कि वे पाँच भिक्षु बनारस के इसिपताना हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। और भगवान बुद्ध ने उरुवेला में यथासंभव समय व्यतीत करने के बाद बनारस की यात्रा की।

7. अब उपक, जो आजीवक संप्रदाय (अर्थात नग्न तपस्वियों के संप्रदाय) से संबंधित था, ने भगवान बुद्ध को गया और बोधि वृक्ष के बीच के मार्ग पर यात्रा करते देखा; और उन्हें देखकर उसने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे मित्र, आपका चेहरा शांत है; आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। हे मित्र, आपने किसके नाम पर संसार त्याग दिया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किसके सिद्धांत का पालन करते हैं?'

8. जब उपका अजीवक ने ऐसा कहा, तो भगवान बुद्ध ने उनसे निम्नलिखित श्लोकों में कहा: 'मैंने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है; मैंने सभी ज्ञान प्राप्त कर लिया है; मैं हर तरह से दोषमुक्त हूँ; मैंने सब कुछ त्याग दिया है; और इच्छाओं के नाश से मुक्ति प्राप्त कर ली है। जब मैंने स्वयं ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु कहूँ? मेरा कोई गुरु नहीं है; कोई मेरे समान नहीं है; मनुष्य और देवता के संसार में कोई भी मेरे समान नहीं है। मैं इस संसार का परम पूज्य हूँ, मैं सर्वोच्च गुरु हूँ, मैं ही एकमात्र परम संबुद्ध हूँ; मैंने (सभी वासनाओं के नाश से) शांति प्राप्त कर ली है और निर्वाण प्राप्त कर लिया है। सत्य के राज्य की स्थापना के लिए मैं काशियों के नगर (बनारस) जा रहा हूँ; मैं इस संसार के अंधकार में अमरता का ढोल बजाऊँगा।'

9. (उपक ने उत्तर दिया): 'तो फिर, मित्र, तुम स्वयं को पवित्र, परम जिन होने का दावा करते हो।'

(बुद्ध ने कहा): 'मेरे समान ही वे सभी जिन हैं जिन्होंने आसवों का निर्वाह कर लिया है; मैंने पाप की सभी अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर ली है; इसलिए, उपका, मैं ही जिन हूँ।'

जब उसने ऐसा कहा, तो आजीवक उपका ने उत्तर दिया: 'हो सकता है, मित्र;' उसने अपना सिर हिलाया, दूसरा रास्ता पकड़ा और चला गया।

10. भगवान बुद्ध स्थान-स्थान घूमते हुए बनारस के इसिपताना हिरण उद्यान में आए, जहाँ पाँच भिक्षु ठहरे हुए थे। पाँचों भिक्षुओं ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; उन्हें देखकर वे आपस में कहने लगे, 'हे मित्रों, देखो समना गौतम (बुद्ध) आ रहे हैं, जो समृद्धि में रहते हैं, जिन्होंने परिश्रम त्याग दिया है और समृद्धि का मार्ग अपना लिया है। हमें उन्हें प्रणाम नहीं करना चाहिए; उनके आने पर अपनी सीटों से नहीं उठना चाहिए; उनके हाथों से उनका पान और वस्त्र नहीं लेना चाहिए। बल्कि हमें वहाँ एक आसन लगाना चाहिए; यदि वे चाहें तो बैठ सकते हैं।'

11. परन्तु जब भगवान बुद्ध धीरे-धीरे उन पाँच भिक्षुओं के पास पहुँचे, तो वे पाँचों भिक्षुओं ने अपना वादा नहीं तोड़ा। वे भगवान बुद्ध से मिलने के लिए आगे बढ़े; एक ने उनका कुंड और वस्त्र लिया, दूसरे ने आसन तैयार किया, तीसरे ने पैर धोने के लिए जल, एक चौकी और एक तौलिया लाया। तब भगवान बुद्ध उनके द्वारा तैयार किए गए आसन पर बैठ गए; और बैठते ही उन्होंने अपने पैर धोए। अब उन्होंने भगवान बुद्ध को उनके नाम से और 'मित्र' कहकर पुकारा।

12. जब उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा, तो भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं से कहा: “हे भिक्षुओं, तथागत बुद्ध को उनके नाम से और ‘मित्र’ कहकर संबोधित न करो। हे भिक्षुओं, तथागत बुद्ध पवित्र, परम संबुद्ध हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान से सुनो! मैंने अमरता (अम्रता/अमृत) प्राप्त कर ली है; मैं तुम्हें सिखाऊँगा; मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। यदि तुम मेरे दिखाए मार्ग पर चलोगे, तो शीघ्र ही तुम सत्य को जान लोगे और उसे प्रत्यक्ष रूप से देख लोगे; और तुम उस सर्वोच्च लक्ष्य, पवित्र जीवन को प्राप्त करोगे, जिसके लिए श्रेष्ठ युवक संसार का पूर्ण त्याग कर गृहस्थी त्याग देते हैं।”

13. जब उन्होंने ऐसा कहा, तो पाँच भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, उन नियमों, उन अभ्यासों, उन तपस्याओं से आप मनुष्यों से परे शक्ति, और पूर्ण एवं पवित्र ज्ञान एवं अंतर्दृष्टि की श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सके। अब, आप समृद्धि में रहते हुए, परिश्रम त्यागकर, और समृद्ध जीवन की ओर मुड़ कर, मनुष्यों से परे शक्ति तथा पूर्ण एवं पवित्र ज्ञान एवं अंतर्दृष्टि की श्रेष्ठता कैसे प्राप्त कर सकेंगे?”

14. जब उन्होंने ऐसा कहा, तब भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) विलासिता में नहीं रहते, उन्होंने परिश्रम का त्याग नहीं किया है, उन्होंने विलासितापूर्ण जीवन की ओर रुख नहीं किया है। हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) पवित्र, परम संबुद्ध हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान से सुनो; मैंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है; मैं तुम्हें सिखाऊँगा, तुम्हें उपदेश दूँगा। यदि तुम मेरे दिखाए मार्ग पर चलोगे, तो शीघ्र ही तुम सत्य को जान लोगे और उसे प्रत्यक्ष रूप से देख लोगे; और तुम उस सर्वोच्च लक्ष्य, पवित्र जीवन को प्राप्त करोगे, जिसके लिए श्रेष्ठ युवक संसार का पूर्णतः त्याग कर गृहस्थी त्याग देते हैं (अर्थात भिक्षुत्व ग्रहण करते हैं)।'

15. और पाँच भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से दूसरी बार (ऊपर बताए अनुसार) कहा। और भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं से दूसरी बार (ऊपर बताए अनुसार) कहा। और पाँच भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से तीसरी बार (ऊपर बताए अनुसार) कहा।

16. जब उन्होंने इस प्रकार कहा, तो भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, क्या तुम स्वीकार करते हो कि मैंने आज से पहले कभी तुमसे इस प्रकार बात नहीं की है?'

'आपने ऐसा कभी नहीं कहा, प्रभु।'

'हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) पवित्र, परम संबुद्ध हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान से सुनो, इत्यादि (जैसा ऊपर बताया गया है)।'

और भगवान बुद्ध पाँच भिक्षुओं को समझाने में सफल रहे; और पाँचों भिक्षुओं ने फिर से स्वेच्छा से भगवान बुद्ध की बात सुनी; उन्होंने ध्यान से सुना और अपना मन उस ज्ञान पर केंद्रित किया (जो बुद्ध ने उन्हें बताया था)।

17. तब भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: “हे भिक्षुओं, संसार का त्याग करने वाले को दो चरम सीमाओं से बचना चाहिए। ये दो चरम सीमाएँ क्या हैं? एक जीवन जो सुखों और वासनाओं में लिप्त है: यह नीच, कामुक, अश्लील, घृणित और निष्फल है; और दूसरा जीवन जो तपस्या में व्यतीत है: यह कष्टदायी, घृणित और निष्फल है। हे भिक्षुओं, इन दो चरम सीमाओं से बचकर तथागत बुद्ध ने मध्य मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है, जो अंतर्दृष्टि की ओर ले जाता है, जो ज्ञान की ओर ले जाता है, जो शांति, ज्ञान, संबोधि और निर्वाण की ओर ले जाता है।”

18. हे भिक्षुओं, यह कौन सा मध्य मार्ग है जिसका ज्ञान तथागत (बुद्ध) ने प्राप्त किया है, जो अंतर्दृष्टि की ओर ले जाता है, जो ज्ञान की ओर ले जाता है, जो शांति, ज्ञान, सम्बोधि और निर्वाण की ओर ले जाता है? यह पवित्र अष्टांगिक मार्ग है, अर्थात्, सही विश्वास, सही आकांक्षा, सही वाणी, सही आचरण, आजीविका के सही साधन, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि। हे भिक्षुओं, यही वह मध्य मार्ग है जिसका ज्ञान तथागत (बुद्ध) ने प्राप्त किया है, जो अंतर्दृष्टि की ओर ले जाता है, जो ज्ञान की ओर ले जाता है, जो शांति, ज्ञान, सम्बोधि और निर्वाण की ओर ले जाता है।

19. हे भिक्षुओं, यही दुख का आर्य सत्य है: जन्म दुख है; क्षय दुख है; रोग दुख है; मृत्यु दुख है। जिन वस्तुओं से हमें घृणा होती है, उनका उपस्थित होना दुख है; जिन वस्तुओं से हमें प्रेम होता है, उनसे वियोग दुख है; जो हम चाहते हैं, वह प्राप्त न होना दुख है। संक्षेप में, पांच प्रकार का अस्तित्व से आसक्ति दुख है।

20. हे भिक्षुओं, यही दुख के कारण का आर्य सत्य है: वह प्यास जो पुनर्जन्म की ओर ले जाती है, सुख और कामवासना से युक्त होती है, और इधर-उधर अपना आनंद पाती है। (यह प्यास तीन प्रकार की होती है), अर्थात्, सुख की प्यास, अस्तित्व की प्यास और समृद्धि की प्यास।

21. हे भिक्षुओं, यही दुख के निवारण का आर्य सत्य है: (यह) इस प्यास के पूर्ण निवारण के साथ समाप्त होता है, एक ऐसा निवारण जिसमें प्रत्येक वासना का अभाव होता है, इस प्यास के त्याग के साथ, इसके निवारण के साथ, इससे मुक्ति के साथ, इच्छा के नाश के साथ।

22. 'हे भिक्षुओं, यही दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य है: वह पवित्र अष्टांगिक मार्ग, अर्थात् सही विश्वास, सही आकांक्षा, सही वाणी, सही आचरण, आजीविका के सही साधन, सही प्रयास, सही स्मृति, सही ध्यान।'

23. "यह दुख का आर्य सत्य है;" - हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत के बारे में, जो पहले कभी सुना नहीं गया था, मैंने अंतर्दृष्टि, ज्ञान, समझ, बुद्धि और अंतर्ज्ञान प्राप्त किया है। "दुख के इस आर्य सत्य को समझना चाहिए," हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत के बारे में... (अंतरात्मा तक)। "दुख के इस आर्य सत्य को मैंने समझ लिया है," हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत के बारे में... (अंतरात्मा तक)।

24. "यह दुख के कारण का आर्य सत्य है," हे भिक्षुओं (आदि) "दुख के कारण के इस आर्य सत्य का त्याग मैंने कर दिया है," हे भिक्षुओं (आदि)

25. "यह दुखों के निवारण का आर्य सत्य है," हे भिक्षुओं (आदि) "दुखों के निवारण के इस आर्य सत्य को प्रत्यक्ष रूप से देखना चाहिए... मैंने इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा है," हे भिक्षुओं (आदि)

26. "यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य है," हे भिक्षुओं (आदि), "दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले इस आर्य सत्य को मैंने जान लिया है," हे भिक्षुओं (आदि)

27. 'हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन चार आर्य सत्यों का, उनके तीन रूपांतरणों और बारह घटकों (4x3) सहित, पूर्ण शुद्धता के साथ सच्चा ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं हुई, तब तक, हे भिक्षुओं, मैं जानता था कि मैंने मनुष्य और देवता के संसार में, मार और ब्रह्मा के संसार में, सभी प्राणियों, समनों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के बीच सर्वोच्च, पूर्ण संबोधि प्राप्त नहीं की थी।

28. 'परन्तु हे भिक्षुओं, जब मैंने पूर्ण पवित्रता के साथ इन चार आर्य सत्यों का, उनके तीन रूपांतरणों और उनके बारह घटकों (4x3) सहित, सच्चा ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली, तब मुझे पता चला, हे भिक्षुओं, कि मैंने मनुष्य और देवता जगत में सर्वोच्च, सार्वभौमिक संबोधि प्राप्त कर ली है, ... (आदि, जैसा कि § 27 में है)।

29. 'और मेरे मन में यह ज्ञान और अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: "मेरे मन की मुक्ति खो नहीं सकती; यह मेरा अंतिम जन्म है; इसलिए मैं फिर से जन्म नहीं लूंगा!"'

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा। पाँच भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान बुद्ध के वचनों से आनंदित हुए। जब यह व्याख्या प्रस्तुत की गई, तो पूज्य कोंडन्ना को सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (अंतिम समाधि अवस्था की दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त हुई: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह समाप्ति की स्थिति के भी अधीन है।'

30. और जब भगवान बुद्ध ने (चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन करके) सत्य के मार्ग की स्थापना की, तो पृथ्वी पर रहने वाले देवताओं ने उद्घोष किया: 'सचमुच भगवान बुद्ध ने बनारस के हिरण उद्यान इसिपताना में सत्य के सर्वोच्च राज्य की स्थापना की है, जिसका विरोध न तो कोई भिक्षु कर सकता है, न कोई ब्राह्मण, न कोई देवता, न कोई राक्षस, न कोई ब्रह्मा, और न ही संसार का कोई प्राणी।'

पृथ्वी पर निवास करने वाले देवताओं की जयजयकार सुनकर, कटुमहरगिक देवताओं (चार दिव्य महाराजाओं के लोक से संबंधित देवता) ने जयजयकार किया, ... (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है)। कटुमहरगिक देवताओं की जयजयकार सुनकर, तावतिंसा देवताओं, यम देवताओं, तुषिता देवताओं, निम्मनारति देवताओं, परनिम्मितवासवत्ती देवताओं और ब्रह्मकायिक देवताओं ने जयजयकार किया: 'सचमुच भगवान बुद्ध, ...' (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है)।

31. इस प्रकार उसी क्षण, उसी पल, उसी सेकंड में वह आवाज ब्रह्म जगत तक पहुँची; और दस हजार लोकों की यह पूरी व्यवस्था काँप उठी, हिल गई और थरथरा उठी; और संसार में एक अनंत, शक्तिशाली प्रकाश प्रकट हुआ, जो देवताओं की दिव्य शक्ति से उत्पन्न होने वाले प्रकाश से कहीं अधिक था।

और भगवान बुद्ध ने यह गंभीर कथन किया: 'सचमुच कोंडन्ना ने इसे जान लिया है ("अन्नासी"), सचमुच कोंडन्ना ने इसे जान लिया है!' अतः पूज्य कोंडन्ना को अन्नतकोंडन्ना (सिद्धांत को जानने वाले कोंडन्ना) नाम मिला।

32. और पूज्य अन्नतकोंदन्ना ने सत्य को देखकर, सत्य में महारत हासिल करके, सत्य को समझकर, सत्य में मर्मस्पर्शी होकर, अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करके, सभी शंकाओं को दूर करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, गुरु के सिद्धांत के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहते हुए, भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मुझे भगवान बुद्ध से दीक्षा और उपसम्पदा प्राप्त करने दें।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षु, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।' इस प्रकार इस पूजनीय व्यक्ति ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की।

33. भगवान बुद्ध ने अन्य भिक्षुओं को धर्म संबंधी प्रवचनों द्वारा उपदेश और शिक्षा दी। और पूज्य वप्पा और पूज्य भद्दिया ने जब भगवान बुद्ध से धर्म संबंधी प्रवचनों द्वारा ऐसा उपदेश और शिक्षा प्राप्त की, तो उन्हें सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त हुई: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह समाप्ति की स्थिति के भी अधीन है।'

34. और सत्य को देखकर, सत्य में महारत हासिल करके, ... (आदि, जैसा कि § 32 में है), उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, हमें भगवान बुद्ध से पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षाएँ प्राप्त करने दें।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षुओं, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।' इस प्रकार इन पूजनीय व्यक्तियों ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की।

35. और भगवान बुद्ध भिक्षुओं द्वारा लाए गए भोजन पर जीवन यापन करते हुए, अन्य भिक्षुओं को धम्म से संबंधित प्रवचनों द्वारा उपदेश और शिक्षा प्रदान करते थे; इस प्रकार वे छह व्यक्ति उन तीन भिक्षुओं द्वारा भिक्षायात्रा से लाए गए भोजन पर जीवन यापन करते थे।

36, 37. और पूज्य महानामा और पूज्य अस्सजी ने जब भगवान बुद्ध से प्राप्त किया, ... (आदि, जैसा कि §§ 33, 34 से आगे तक है)। इस प्रकार इन पूज्य व्यक्तियों ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की।

38. तब भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं से कहा: "हे भिक्षुओं, शरीर (रूप) आत्मा नहीं है। यदि शरीर ही आत्मा होता, तो वह रोगग्रस्त न होता, और हम यह कह पाते: "मेरा शरीर ऐसा हो, मेरा शरीर ऐसा न हो।" परन्तु हे भिक्षुओं, क्योंकि शरीर आत्मा नहीं है, इसलिए वह रोगग्रस्त है, और हम यह नहीं कह पाते: "मेरा शरीर ऐसा हो, मेरा शरीर ऐसा न हो।"

39-41. 'हे भिक्षुओं, वेदना (संवेदना) आत्मा नहीं है, ... (आदि)। बोध (सन्ना) आत्मा नहीं है, ... संस्कार (कर्म/पाप/आदतें) आत्मा नहीं हैं, ... चेतना (विन्नान) आत्मा नहीं है, ... (आदि)।'

42. 'अब आप क्या सोचते हैं, हे भिक्षुओं, शरीर स्थायी है या नाशवान?'

'हे प्रभु, यह नाशवान है।'

और जो नाशवान है, क्या वह दुख का कारण बनता है या आनंद का?

'हे प्रभु, इससे पीड़ा होती है।'

और जो नाशवान, पीड़ादायक और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना संभव है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्म है?'

'यह असंभव है, प्रभु।'

43. 'क्या संवेदना स्थायी है या क्षणभंगुर?' . . . . (आदि)

44. 'अत:, हे भिक्षुओं, चाहे कोई भी शरीर रहा हो, होगा या अभी है, चाहे वह किसी भी सजीव प्राणी का हो, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, वह सब शरीर मेरा नहीं है, मैं नहीं हूँ, मेरा आत्म नहीं है: सत्य के अनुसार उचित ज्ञान द्वारा इस प्रकार विचार किया जाना चाहिए।

45. 'जो भी अनुभूति हो, ... (आदि)

46. हे भिक्षुओं, इस पर विचार करते हुए, एक विद्वान, श्रेष्ठ श्रोता शरीर से, इंद्रियों से, बोध से, संस्कारों से, चेतना से विरक्त हो जाता है। इन सबसे विरक्त होकर वह वासना से मुक्त हो जाता है; वासना के अभाव से वह मुक्त हो जाता है; मुक्त होने पर उसे अपने मुक्त होने का ज्ञान हो जाता है; और वह यह जान लेता है कि पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो गया है; पवित्रता पूर्ण हो गई है; कर्तव्य पूर्ण हो गया है; और इस संसार में अब कोई पुनरावृति नहीं है।

47. इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा; पाँच भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान बुद्ध के वचनों से आनंदित हुए। और जब यह व्याख्या पूरी हो गई, तो पाँच भिक्षुओं का मन संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया और वे आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) से मुक्त हो गए।

उस समय ये छह ही विश्व में एकमात्र छह अरहत (पूर्ण पवित्रता/पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति) थे।

प्रथम भानवरा का समापन।

<<<< पिछला(1.5) । अगला(1.7) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.6) । अगला(1.8) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-7: बुद्ध ने एक धनी व्यक्ति के पुत्र यासा को त्रिरत्न से दीक्षा दी।

1. उस समय बनारस में यसा नाम का एक कुलीन युवक रहता था, जो एक धनी व्यापारी का पुत्र था और बड़े ही सुखमय परिवार में पला-बढ़ा था। उसके तीन महल थे, एक शीतकाल के लिए, एक ग्रीष्मकाल के लिए और एक बरसात के मौसम के लिए। वह बरसात के महल में चारों महीने रहता था, जहाँ उसके चारों ओर महिला संगीतकार रहती थीं, जिनमें कोई पुरुष नहीं होता था, और वह उस महल से नीचे नहीं उतरता था। एक दिन यसा, जो पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण था, उन महिला संगीतकारों की सेवा में रहते हुए सामान्य से जल्दी सो गया; और उसके बाद उसकी परिचारिकाएँ भी सो गईं। रात भर एक तेल का दीपक जलता रहा।

2. और यशा, वह महान युवक, सामान्य से जल्दी जाग उठा; और उसने अपने सेवकों को सोते हुए देखा; एक ने अपना वीणा बगल में टिका रखा था; एक ने अपना ढोल गर्दन से टिका रखा था; एक के बाल बिखरे हुए थे; एक के मुँह से लार बह रही थी; और वे नींद में बड़बड़ा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो कोई कब्रिस्तान में गिर गया हो। यह देखकर उसे अपने जीवन की बुराइयाँ स्पष्ट हो गईं; उसका

मन सांसारिक सुखों से विरक्ति करने लगा। और यशा, उस महान युवक ने गंभीर स्वर में कहा, 'हाय! कितना कष्ट; हाय! कितना खतरा!'

3. और यसा, वह श्रेष्ठ युवक, अपने सोने के जूते पहनकर अपने घर के द्वार पर गया। किसी अन्य प्राणी ने द्वार खोल दिया, ताकि कोई भी यसा को संसार छोड़कर निर्जन जीवन (अर्थात भिक्षु जीवन) में जाने से न रोक सके। और यसा, वह श्रेष्ठ युवक, नगर के द्वार पर गया। किसी अन्य प्राणी ने द्वार खोल दिया, ताकि कोई भी यसा को संसार छोड़कर निर्जन जीवन में जाने से न रोक सके। और यसा, वह श्रेष्ठ युवक, इसिपताना के हिरण उद्यान में गया।

4. उस समय भगवान बुद्ध रात्रि में उठकर भोर में खुले में टहल रहे थे। तभी उन्होंने दूर से यसा नामक युवक को आते देखा। उसे देखकर वे अपने चलने का स्थान छोड़कर उसके लिए बिछाई गई चौकी पर बैठ गए। यसा ने भगवान बुद्ध के पास आकर गंभीर स्वर में कहा, "हाय! कितना कष्ट है; हाय! कितना खतरा है!" भगवान बुद्ध ने यसा से कहा, "यसा, यहाँ कोई कष्ट नहीं है, कोई खतरा नहीं है। यसा, यहाँ आओ, बैठो; मैं तुम्हें सत्य (धम्म) सिखाऊँगा।"

5. जब यशा, उस श्रेष्ठ युवक ने सुना कि कोई संकट या खतरा नहीं है, तो वह प्रसन्न और आनंदित हुआ; उसने अपनी सोने की चप्पलें उतार दीं और उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गया। जब यशा, उस श्रेष्ठ युवक के पास बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उसे उचित समय पर उपदेश दिया: अर्थात् उन्होंने दान देने के पुण्य, नैतिकता के कर्तव्य, स्वर्ग, इच्छाओं की बुराइयों, व्यर्थता और पापमयता तथा इच्छाओं के त्याग के आशीर्वाद के बारे में बताया।

6. जब भगवान बुद्ध ने देखा कि यसा नामक उस श्रेष्ठ युवक का मन तैयार, ग्रहणशील, सत्य को समझने में बाधाओं से मुक्त, प्रसन्न और विश्वासी है, तब उन्होंने बुद्धों के प्रमुख सिद्धांत, अर्थात् दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण और मार्ग का उपदेश दिया। जिस प्रकार एक साफ, बिना दाग वाला कपड़ा रंग को ठीक से सोख लेता है, उसी प्रकार यसा नामक उस श्रेष्ठ युवक ने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त कर ली: 'जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह निवारण के भी अधीन है।'

7. अब यशा, उस कुलीन युवक की माता, अपने महल में गई, तो उसे यशा, उस कुलीन युवक को न पाकर, वह अपने गृहस्थ (सेठी) के पास गई और उससे कहा, "हे गृहस्थ, आपका पुत्र यशा, लापता हो गया है।" तब गृहस्थ ने घोड़े पर सवार दूतों को चारों दिशाओं में भेजा और स्वयं इसिपताना के हिरण उद्यान में गया। तब गृहस्थ ने जमीन पर सोने की चप्पलों के निशान देखे और उन्हें देखकर उनका पीछा किया।

8. भगवान बुद्ध ने दूर से सेत्थी (गृहस्थ) को आते देखा। उन्हें देखकर उन्होंने सोचा, 'यदि मैं ऐसी चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग करूँ कि यहाँ बैठे सेत्थी (गृहस्थ) को यहाँ बैठे हुए यशा (युवक) का दर्शन न हो।' और भगवान बुद्ध ने अपनी चमत्कारिक शक्ति का ऐसा ही प्रयोग किया।

9. और सेठी, गृहस्थ, उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध ने यशा, उस श्रेष्ठ युवक को देखा है?'

'अच्छा, गृहस्थ, बैठ जाइए। शायद, यहाँ बैठे-बैठे आपको यसा, वह कुलीन युवक भी यहाँ बैठा हुआ दिखाई दे।'

और सेठी (धनी व्यापारी), गृहस्थ, जिसने सोचा: 'यद्यपि, यहाँ बैठे-बैठे मैं यश, उस महान युवक को भी यहाँ बैठे देख पाऊँगा,' यह सोचकर प्रसन्न और आनंदित हो गया, और भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके पास बैठ गया।

10. जब सेठी (गृहस्थ) उनके पास बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उन्हें उचित समय पर उपदेश दिया; अर्थात् उन्होंने दान देने से प्राप्त होने वाले पुण्यों के बारे में बताया, ... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 5 के अंत में है)। सत्य को देखकर, सत्य में पारंगत होकर, सत्य को गहराई से समझकर, अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करके, सभी शंकाओं को दूर करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, गुरु के उपदेश के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न होकर, सेठी (गृहस्थ) ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु! हे प्रभु! जैसे कोई उलटी हुई चीज को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई चीज को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जला दे, ताकि देखने वाले दृश्य देख सकें, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से उपदेश दिया है।' हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध की शरण लेता हूँ, धम्म की शरण लेता हूँ और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ; भगवान बुद्ध मुझे आज से अपने जीवन भर एक ऐसे शिष्य के रूप में स्वीकार करें जिसने उनकी शरण ली है।

यह विश्व का पहला व्यक्ति था जो पवित्र त्रिमूर्ति (तीन रत्न - त्रिरत्न - बुद्ध, धम्म और संघ) का गृहस्थ शिष्य बना।

11. और जब बुद्ध अपने पिता को शिक्षा दे रहे थे, तब यसा नामक उस श्रेष्ठ युवक ने उस ज्ञान की अवस्था का चिंतन किया जिसे उसने अपने मन से देखा और समझा था; और उसका मन संसार के आसक्ति से मुक्त हो गया और वह आसवों से मुक्त हो गया। तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'यसा नामक उस श्रेष्ठ युवक ने, जब अपने पिता को शिक्षा दी जा रही थी, उस ज्ञान की अवस्था का चिंतन किया जिसे उसने अपने मन से देखा और समझा था; और उसका मन संसार के आसक्ति से मुक्त हो गया और वह आसवों से मुक्त हो गया। यह असंभव है कि यसा नामक श्रेष्ठ युवक संसार में लौटकर पहले की तरह अपने घर में रहते हुए सुखों का आनंद ले। यदि मैं अब अपनी उस चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग समाप्त कर दूं तो क्या होगा?' और भगवान बुद्ध ने अपनी उस चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग समाप्त कर दिया।

12. तब गृहस्थ सेठी ने यशा को वहाँ बैठे देखा। उसे देखकर उसने यशा से कहा, 'हे मेरे पुत्र यशा, तेरी माता विलाप और शोक में लीन है; अपनी माता को जीवनदान दे।'

13. तब यशा, जो एक श्रेष्ठ युवक थे, ने भगवान बुद्ध की ओर देखा। भगवान बुद्ध ने गृहस्थ सेठी से कहा, 'हे गृहस्थ, तो फिर तुम क्या सोचते हो? क्या यशा ने (पहले) सत्य के ज्ञान और अंतर्दृष्टि की अपूर्ण अवस्था ही प्राप्त की है, जैसा कि तुमने स्वयं की है? या फिर वह उस ज्ञान की अवस्था का चिंतन कर रहे थे जिसे उन्होंने अपने मन से देखा और समझा था; और इस प्रकार उनका मन संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया और आसवों से मुक्त हो गया? हे गृहस्थ, क्या अब यह संभव है कि यशा संसार में लौटकर पहले की तरह अपने गृहस्थ जीवन में सुखों का आनंद लें?'

'ऐसा नहीं है, प्रभु।' 'हे गृहस्थ, श्रेष्ठ युवक यासा ने भी (पहले) आपकी ही तरह अपूर्ण ज्ञान और सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त की थी। परन्तु जब वह उस ज्ञान की अवस्था का चिंतन कर रहा था जिसे उसने अपने मन से देखा और समझा था, तब उसका मन संसार के आसक्ति से मुक्त हो गया और आसवों से मुक्त हो गया। हे गृहस्थ, यह असंभव है कि श्रेष्ठ युवक यासा संसार में लौटकर पहले की तरह अपने गृहस्थ जीवन में सुखों का आनंद ले।'

14. 'हे प्रभु, यसा, जो एक श्रेष्ठ युवक है, के लिए यह सर्वथा लाभ है; हे प्रभु, यसा, जो एक श्रेष्ठ युवक है, के लिए यह परम आनंद है कि यसा, जो एक श्रेष्ठ युवक है, का मन संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया है और वह आसवों से मुक्त हो गया है। हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध आज मेरे साथ यसा, जो एक श्रेष्ठ युवक है, को अपने सेवक के रूप में लेकर भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब सेठी (धनी व्यापारी), जो गृहस्थ था, जब उसे समझ आया कि भगवान बुद्ध ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वह अपने आसन से उठा, आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से परिक्रमा करते हुए वहां से चला गया।

15. और यशा, जो एक कुलीन युवक था, सेठी (गृहस्थ) के चले जाने के तुरंत बाद भगवान बुद्ध से बोला, 'हे प्रभु, मुझे भगवान बुद्ध से पब्बज्जा (दीक्षा) और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने दीजिए।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षु, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।'

इस प्रकार उस पूजनीय व्यक्ति को उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त हुई। उस समय ये विश्व के सात अरहत (पूर्णतः प्रबुद्ध) थे।

यासा के दीक्षा संस्कार (पब्बज्जा) की कहानी का अंत।

<<<< पिछला(1.6) | अगला(1.8) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.7) | अगला(1.9) >>>>

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-8: बुद्ध ने यासा की माता को प्रथम महिला गृहस्थ शिष्या के रूप में दीक्षा दी।

1. दोपहर के समय भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और किवार धारण किए हुए, आदरणीय यासा के साथ गृहस्थ सेठी के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिए बिछाई गई चौकी पर बैठ गए। फिर आदरणीय यासा की माता और पूर्व पत्नी भगवान बुद्ध के पास आईं; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गईं।

2. तब भगवान बुद्ध ने उन्हें उचित समय पर उपदेश दिया; अर्थात् उन्होंने दान देने से प्राप्त होने वाले पुण्यों के बारे में बताया, ... (अध्याय 7.5, 6 से आगे तक, जैसा कि आगे भी बताया गया है); इस प्रकार उन्होंने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (अर्थात दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर ली: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह समाप्ति की स्थिति के भी अधीन है।'

3. सत्य को देखकर, ... (आदि, जैसा कि ऊपर, अनुच्छेद 5, 6 से आगे तक), गुरु के उपदेश के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहते हुए, उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, महिमावान! हे प्रभु, महिमावान! मानो कोई स्थापित कर रहा हो' (आदि, जैसा कि अध्याय 7, 10 से आगे तक है)। हे प्रभु, हम भगवान बुद्ध, धम्म और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेते हैं; भगवान बुद्ध हमें आज से, हमारे जीवन भर, उन शिष्यों के रूप में स्वीकार करें जिन्होंने उनकी शरण ली है।'

ये विश्व की पहली महिलाएं थीं जिन्होंने पवित्र त्रिमूर्ति (त्रिरत्न - तीन रत्न - बुद्ध, धम्म और संघ) के सूत्र द्वारा गृहस्थ शिष्या का रूप धारण किया।

4. पूज्य यासा के माता-पिता और पूर्व पत्नी ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध और पूज्य यासा को उत्तम भोजन परोसा, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन थे। जब भगवान बुद्ध ने भोजन समाप्त कर लिया और अपने कटोरे और हाथों को साफ कर लिया, तो वे उनके पास बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा पूज्य यासा के माता-पिता और पूर्व पत्नी को उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया; फिर वे अपने आसन से उठे और चले गए।

<<<< पिछला(1.7) | अगला(1.9) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.8) | अगला(1.10) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-9: यासा के मित्र, चार गृहस्थों के दीक्षा संस्कार की कहानी।

1. अब बनारस के सेठी परिवारों से संबंधित और सेठी परिवारों के बाद सर्वोच्च परिवार से ताल्लुक रखने वाले, पूज्य यासा के चार मित्र, विमला, सुबाहु, पुन्नगी और गवमपति ने सुना: 'यशायाह युवक ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली है, पीले वस्त्र धारण कर लिए हैं, संसार का त्याग कर घर-बार त्याग दिया है।' यह सुनकर उन्होंने सोचा: 'यह कोई सामान्य सिद्धांत और अनुशासन नहीं हो सकता, यह संसार का सामान्य त्याग नहीं हो सकता, यदि यशा, जो एक श्रेष्ठ युवक हैं, ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली है, पीले वस्त्र धारण कर लिए हैं, संसार का त्याग कर घर-बार त्याग दिया है।'

2. वे चारों व्यक्ति उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य यासा विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके पास खड़े हो गए। फिर पूज्य यासा अपने चार मित्रों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठकर पूज्य यासा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, ये मेरे चार मित्र हैं, जो बनारस के सेठी (धनी व्यापारी) परिवारों से हैं और सेठी परिवारों के बाद सर्वोच्च परिवार से हैं; इनके नाम विमला, सुबाहु, पुन्नगी और गवम्पति हैं। भगवान बुद्ध इन चारों को उपदेश और शिक्षा प्रदान करें।'

3. तब भगवान बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया, ... (आदि, जैसा कि अध्याय 8.2 में है)।

4. और सत्य को देखकर, ... (आदि, आगे तक:) गुरु के सिद्धांत के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहते हुए, उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, हमें भगवान बुद्ध से दीक्षा और उपसम्पदा प्राप्त करने दें।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षुओं, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।'

इस प्रकार इन पूजनीय व्यक्तियों को उपसंपदा दीक्षा प्राप्त हुई। भगवान बुद्ध ने इन भिक्षुओं को धर्म विषय पर प्रवचन द्वारा उपदेश और शिक्षा प्रदान की। धर्म विषय पर प्रवचन द्वारा भगवान बुद्ध से उपदेश और शिक्षा प्राप्त करते हुए, उनका मन संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया और वे आसवों से मुक्त हो गए।

उस समय विश्व में ये ग्यारह अरहत थे।

यहां चार गृहस्थों के दीक्षा समारोह की कहानी समाप्त होती है।

<<<< पिछला(1.8) | अगला(1.10) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.9) | अगला(1.11) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-10: पचास गृहस्थों, यासा के मित्रों के दीक्षा समारोह की कहानी।

अब पचास गृहस्थ, पूज्य यासा के मित्र, जो देश के सर्वोच्च परिवारों और उनसे कुछ कम सर्वोच्च परिवारों से संबंधित थे, ने सुना, ... (अध्याय 9, अनुच्छेद 1, 2, 3, 4 से आगे तक, आदि)। जब उन्होंने धम्म से संबंधित प्रवचन द्वारा भगवान बुद्ध से उपदेश और शिक्षा प्राप्त की, तो उनका मन संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया और वे आसवों से मुक्त हो गए।

उस समय दुनिया में इकसठ अरहत थे।

<<<< पिछला(1.9) | अगला(1.11) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.10) | अगला(1.12) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-11: मारा (मृत्युदेव) की निराशा की कहानी।

1. भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं सभी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गया हूँ। हे भिक्षुओं, तुम भी सभी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गए हो। अब जाओ, हे भिक्षुओं, और अनेकों के लाभ के लिए, अनेकों के कल्याण के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के भले, लाभ और कल्याण के लिए भ्रमण करो। तुममें से दो एक ही मार्ग पर न चलें। हे भिक्षुओं, उस सिद्धांत का प्रचार करो जो आरंभ में, मध्य में और अंत में गौरवशाली है, आत्मा और अक्षर दोनों में; पूर्ण, परिपूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करो। ऐसे प्राणी हैं जिनके मानसिक नेत्र लगभग धूल से ढके नहीं हैं, परन्तु यदि उन्हें सिद्धांत का उपदेश न दिया जाए, तो वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। वे सिद्धांत को समझ लेंगे।' और मैं भी, हे भिक्षुओं, उरुवेला के सेनानिनिगामा में जाकर धर्म का प्रचार करूंगा।

2. दुष्ट मारा उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को निम्नलिखित श्लोक में संबोधित किया: 'आप सभी मानवीय और दिव्य बंधनों से बंधे हुए हैं। आप मजबूत बंधनों से बंधे हुए हैं। हे समना (भिक्षु)! आप मुझसे मुक्त नहीं हो सकते।'

बुद्ध ने उत्तर दिया: 'मैं सभी बंधनों से मुक्त हूँ, मानवीय और दैवीय। मैं मजबूत बंधनों से मुक्त हूँ। हे मृत्यु, तुम पराजित हो।'

(मारा ने कहा): 'वह बंधन जो आकाश में व्याप्त है, जिससे मन बंधा हुआ है, उसी बंधन से मैं तुम्हें बांधूंगा। हे समना (भिक्षु) तुम मुझसे मुक्त नहीं हो पाओगे।'

(बुद्ध ने उत्तर दिया): 'इंद्रियों को प्रसन्न करने वाले सभी रूप, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद या स्पर्श, मेरे भीतर उनके प्रति कोई इच्छा नहीं रह गई है। हे मृत्यु, तुम पराजित हो।'

तब दुष्ट मारा को समझ आया: 'भगवान बुद्ध मुझे जानते हैं, पूर्ण पुरुष मुझे जानते हैं,' और दुखी और पीड़ित होकर वह गायब हो गया।

यहां मारा (मृत्युदेव) की कहानी समाप्त होती है।

<<<< पिछला(1.10) | अगला(1.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.12

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.11) | अगला(1.13) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-12: बुद्ध अन्य भिक्षुओं द्वारा दीक्षा की अनुमति देते हैं।

1. उस समय भिक्षु विभिन्न क्षेत्रों और देशों से उन व्यक्तियों को (बुद्ध के पास) लाए जो पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते थे, यह सोचकर कि 'भगवान बुद्ध उन्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करेंगे।' इस प्रकार भिक्षु और वे दोनों ही (यात्रा से) थक गए जो पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते थे। अब जब भगवान बुद्ध अकेले थे और एकांत में चले गए थे, तो उनके मन में यह विचार आया: 'भिक्षु अब विभिन्न क्षेत्रों और देशों से उन व्यक्तियों को मेरे पास लाते हैं जो पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, यह सोचकर कि "भगवान बुद्ध उन्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करेंगे।" अब भिक्षु और वे दोनों ही (पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं) थक गए हैं। यदि मैं भिक्षुओं को यह अनुमति देते हुए कहूँ: "हे भिक्षुओं, अब से विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न देशों में, जो लोग पब्बज्जा और उपसम्पदा दीक्षाएँ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें आप स्वयं दीक्षाएँ प्रदान करें, तो क्या होगा?"

2. और भगवान बुद्ध ने उस समय संध्याकाल में एकांतवास छोड़कर, इस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद, भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'जब मैं एक भिक्षु के रूप में एकांत में था और एकांतवास में गया था, तब मैंने निम्नलिखित बातों पर विचार किया, इत्यादि। यदि मैं अनुमति दे दूँ, तो क्या होगा, ...' (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)।

3. हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यह अनुमति देता हूँ: अब से विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न देशों में तुम स्वयं (जो लोग दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं) उन्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करो। और हे भिक्षुओं, तुम्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा इस प्रकार प्रदान करनी चाहिए: जो दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह पहले अपने बाल और दाढ़ी कटवा ले; पीले वस्त्र धारण करे, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, भिक्षुओं के चरणों को (सिर झुकाकर) प्रणाम करे और उकडू बैठ जाए; फिर अपने हाथ जोड़कर उसे यह कहने को कहा जाए:

4. "मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, मैं धम्म की शरण लेता हूँ, मैं संघ की शरण लेता हूँ। और दूसरी बार मैं संघ की शरण लेता हूँ। और तीसरी बार मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, और तीसरी बार मैं धम्म की शरण लेता हूँ, और तीसरी बार मैं संघ की शरण लेता हूँ।"

'मैं भिक्षुओं को पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षाओं का निर्देश देता हूँ, जिनमें तीन बार (पवित्र त्रिरत्न - तीन रत्नों - की शरण लेने की) घोषणा करना शामिल है।'

शरण लेने की त्रिविध घोषणा द्वारा उपसम्पदा दीक्षा के वृत्तांत का समापन।

<<<< पिछला(1.11) | अगला(1.13) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.12) | अगला(1.14) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-13: मारा (मृत्युदेव) की एक और निराशा।

1. वर्षा ऋतु में निवास करने के बाद, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, बुद्धिमानीपूर्ण ध्यान और बुद्धिमानीपूर्ण परिश्रम से मैंने सर्वोच्च मोक्ष प्राप्त किया है, सर्वोच्च मोक्ष का अनुभव किया है। हे भिक्षुओं, तुम भी बुद्धिमानीपूर्ण ध्यान और बुद्धिमानीपूर्ण परिश्रम से सर्वोच्च मोक्ष प्राप्त करो, सर्वोच्च मोक्ष का अनुभव करो।'

2. दुष्ट मारा उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को निम्नलिखित श्लोक से संबोधित किया: 'आप मारा के बंधनों में जकड़े हुए हैं, मानवीय और दिव्य दोनों। आप मजबूत बंधनों में जकड़े हुए हैं। हे समना (भिक्षु)! आप मुझसे मुक्त नहीं होंगे।'

(बुद्ध ने उत्तर दिया): 'मैं मारा के बंधनों से मुक्त हो गया हूँ, चाहे वे मानवीय हों या दिव्य। मैं उन मजबूत बंधनों से मुक्त हो गया हूँ। हे मृत्यु, तुम पराजित हो।'

तब दुष्ट मारा को समझ आया: 'भगवान बुद्ध मुझे जानते हैं, पूर्ण पुरुष मुझे जानते हैं;' और दुखी और पीड़ित होकर वह गायब हो गया।

<<<< पिछला(1.12) | अगला(1.14) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.13) | अगला(1.15) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-14: तीस धनी युवा साथियों के दीक्षा संस्कार की कहानी।

1. भगवान बुद्ध ने बनारस में कुछ समय निवास करने के बाद उरुवेला की ओर प्रस्थान किया। वहाँ जाकर वे मार्ग छोड़कर एक उपवन में गए; वहाँ प्रवेश करके वे एक वृक्ष के चरणों में बैठ गए। उस समय वहाँ तीस धनी युवकों का एक समूह अपनी पत्नियों के साथ खेल रहा था। उनमें से एक की पत्नी नहीं थी; उसके लिए उन्होंने एक वेश्या का प्रबंध किया था। जब वे ध्यान नहीं दे रहे थे और अपने खेल में मग्न थे, तब उस वेश्या ने उनका सामान उठाया और भाग गई।

2. तब वे सहाबी अपने मित्र की सेवा करते हुए उस स्त्री की खोज में निकल पड़े; और उस उपवन में घूमते हुए उन्होंने भगवान बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। उन्हें देखकर वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध ने किसी स्त्री को यहाँ से गुजरते देखा है?'

'युवकों, तुम्हारा उस स्त्री से क्या लेना-देना है?'

'हे प्रभु, हम इस उपवन में तीस धनी युवकों सहित अपने-अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे। हममें से एक की पत्नी नहीं थी; उसके लिए हमने एक वेश्या का प्रबंध किया था। हे प्रभु, जब हम ध्यान नहीं दे रहे थे और खेल में मग्न थे, तब उस वेश्या ने हमारी वस्तुएँ उठाकर भाग गई। इसलिए, हे प्रभु, हम साथी अपने मित्र की सेवा करते हुए उस स्त्री की खोज में इस उपवन में छानबीन करें।'

3. 'अब तुम क्या सोचते हो, नौजवानों? तुम्हारे लिए क्या बेहतर होगा; कि तुम किसी स्त्री की खोज में जाओ, या कि तुम स्वयं की खोज में जाओ?'

'हे प्रभु, हमारे लिए यही बेहतर होगा कि हम स्वयं की खोज में निकलें।'

'यदि ऐसा है, तो नौजवानों, बैठ जाओ, मैं तुम्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दूंगा।'

धनी युवक साथियों ने उत्तर दिया: 'जी प्रभु,' और आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके पास बैठ गए।

4. तब भगवान बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया, ... (आदि, जैसा कि अध्याय 8. 2 या 9. 3 में है)।

5. और सत्य को देखकर, ... (आदि, जैसा कि अध्याय 9.4 से आगे तक है)। इस प्रकार इन पूजनीय व्यक्तियों ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की।

तीस धनी युवा साथियों की कहानी यहीं समाप्त होती है।

दूसरे भानवरा का समापन।

<<<< पिछला(1.13) | अगला(1.15) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.14) | अगला(1.16) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-15: पहला चमत्कार-बुद्ध ने कश्यप के आश्रम में एक भयंकर सर्प को वश में किया

1. भगवान बुद्ध स्थान-स्थान भटकते हुए उरुवेला आए। उस समय उरुवेला में तीन जटिल (लंबे बालों वाले संन्यासी) निवास करते थे: उरुवेला कस्सपा, नदी कस्सपा (नेरंजारा नदी के कस्सपा) और गया कस्सपा (गया गाँव के कस्सपा)। इनमें से जटिल उरुवेला कस्सपा पाँच सौ जटिलों के मुखिया, नेता, प्रमुख और सर्वोच्च थे; नदी कस्सपा तीन सौ जटिलों के मुखिया थे (आदि, सर्वोच्च तक) और गया कस्सपा दो सौ जटिलों के मुखिया थे (आदि, सर्वोच्च तक)।

2. और भगवान बुद्ध जटिला उरुवेला कस्सपा के आश्रम में गए; वहाँ पहुँचकर उन्होंने जटिला उरुवेला कस्सपा से कहा: 'यदि आपको कोई आपत्ति न हो, कस्सपा, तो मुझे उस कमरे में एक रात बिताने दें जहाँ आपकी (पवित्र) अग्नि रखी जाती है।'

'हे महान समना (बुद्ध), मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन एक भयंकर नाग राजा है जिसके पास अपार जादुई शक्ति है, वह एक बेहद विषैला सर्प है; कृपया उसे आपको कोई हानि न पहुँचाने दें।'

और दूसरी बार भगवान बुद्ध ने जटिला उरुवेला कस्सपा से कहा: 'यदि यह अप्रिय न हो,' इत्यादि।

'यह अप्रिय नहीं है,' इत्यादि।

और तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा: 'यदि यह अप्रिय न हो,' इत्यादि।

'यह अप्रिय नहीं है,' इत्यादि।

'उससे मुझे कोई नुकसान होने की संभावना नहीं है। हे कस्सपा, कृपया मुझे उस कमरे में जगह दें जहाँ आपकी अग्नि रखी जाती है।'

'हे महान समना (बुद्ध), आप अपनी इच्छा अनुसार वहीं ठहरिए।'

3. तब भगवान बुद्ध उस कमरे में गए जहाँ अग्नि रखी थी, उन्होंने घास का पलंग बनाया और पालथी मारकर बैठ गए, शरीर को सीधा रखते हुए और मन को सचेत रखते हुए। नाग ने देखा कि भगवान बुद्ध अंदर आ गए हैं; यह देखकर वह क्रोधित और चिढ़ गया और धुएँ का बादल छोड़ दिया। तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'यदि मैं इस नाग की खाल, मांस, स्नायुबंधन, हड्डियाँ और मज्जा को अक्षुण्ण छोड़ दूँ, परन्तु जो अग्नि यह छोड़ेगा उसे अपनी अग्नि से पराजित कर दूँ तो क्या होगा?'

4. भगवान बुद्ध ने चमत्कारिक शक्ति का उचित प्रयोग करते हुए धुएँ का बादल उत्पन्न किया। तब नाग, जो अपने क्रोध पर काबू नहीं रख सका, ने ज्वालाएँ उत्पन्न कीं। और भगवान बुद्ध ने अपने शरीर को अग्नि में परिवर्तित करके ज्वालाएँ उत्पन्न कीं। जब दोनों अपनी ज्वालाओं से प्रज्वलित हुए, तो अग्नि कक्ष ऐसा प्रतीत हुआ मानो जल रहा हो, जैसे सब कुछ लपटों में घिरा हो। और अग्नि कक्ष के चारों ओर स्थित जटिलों ने कहा: 'सचमुच, महान समना (बुद्ध) का मुख सुंदर है, परन्तु नाग उन्हें हानि पहुँचाएगा।'

5. उस रात के बीत जाने पर, भगवान बुद्ध ने उस नाग की खाल, मांस, स्नायुओं, हड्डियों और मज्जा को अक्षुण्ण रखते हुए, अपनी अग्नि से नाग की अग्नि पर विजय प्राप्त कर, उसे अपने भिक्षापात्र में डाल दिया और उसे जटिला उरुवेला कस्सपा को दिखाते हुए कहा, 'देखो, कस्सपा; मेरी अग्नि ने उसकी अग्नि पर विजय प्राप्त कर ली है।' तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा, 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियाँ और महान क्षमताएँ हैं, क्योंकि वे अपनी अग्नि से उस क्रूर नाग राजा की अग्नि पर विजय प्राप्त करने में सक्षम हैं, जो जादुई शक्ति से युक्त है, वह भयानक विषैला सर्प है। परन्तु वे मेरी तरह पवित्र (अरह) नहीं हैं।'

6. नेरंजारा नदी के पास भगवान बुद्ध ने जटिला उरुवेला कस्सपा से कहा: 'यदि आपको कोई आपत्ति न हो, कस्सपा, तो मुझे इस चांदनी रात में आपके अग्नि कक्ष में रहने दें।'

'हे महान समना (बुद्ध), मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन आपकी भलाई के लिए मैं आपको चेतावनी देता हूँ। वहाँ एक क्रूर नागराज है जिसके पास जादुई शक्तियाँ हैं, एक भयानक विषैला सर्प; उसे आपको कोई हानि न पहुँचाने दें।'

'उससे मुझे कोई नुकसान होने की संभावना नहीं है; हे कस्सपा, कृपया मुझे अपने अग्नि कक्ष में स्थान दें।'

जब उन्होंने देखा कि कश्यप ने अनुमति दे दी है, तो निर्भीक होकर, जिन्होंने सभी भय पर विजय प्राप्त कर ली थी, उन्होंने प्रवेश किया। जब नागों के मुखिया ने ऋषि को प्रवेश करते देखा, तो वह क्रोधित हो गया और उसने धुएं का बादल छोड़ दिया। तब मनुष्यों के मुखिया ने भी प्रसन्न और शांत भाव से धुएं का बादल छोड़ दिया। अपने क्रोध पर काबू न रख पाने के कारण, नागों के मुखिया ने जलती हुई आग

के समान लपटें छोड़ीं। तब अग्नि तत्व के पूर्ण स्वामी, मनुष्यों के मुखिया ने भी लपटें छोड़ीं। जब दोनों अपनी लपटों से चमक उठे, तो जटिलों ने अग्नि कक्ष की ओर देखकर कहा, 'सचमुच महान समना (बुद्ध) का चेहरा सुंदर है, परन्तु नाग उन्हें हानि पहुँचाएगा।'

7. और जब वह रात बीत गई, तो नाग की ज्वालाएँ बुझ गईं, परन्तु जादुई शक्तियों से युक्त उस व्यक्ति की विभिन्न रंगों की ज्वालाएँ बनी रहीं। अंगिरस (बुद्ध) के शरीर पर गहरे नीले और लाल, हल्के लाल, पीले और विभिन्न रंगों की क्रिस्टलीय ज्वालाएँ प्रकट हुईं। नागों के सरदार को अपने भिक्षापात्र में डालकर उन्होंने ब्राह्मण को दिखाया और कहा, 'देखो, कस्सपा, नाग; उसकी अग्नि मेरी अग्नि से पराजित हो गई है।'

और इस चमत्कार के फलस्वरूप, जटिला उरुवेला कस्सपा को भगवान बुद्ध से स्नेह उत्पन्न हुआ और उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे महान समना (बुद्ध), मेरे साथ रहिए, मैं आपको प्रतिदिन भोजन प्रदान करूंगा।'

पहले चमत्कार का अंत।

<<<< पिछला(1.14) | अगला(1.16) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.16

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.15) | अगला(1.17) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-16: दूसरा चमत्कार-चार स्वर्गिक राजाओं का बुद्ध से मिलना

1. भगवान बुद्ध जटिला उरुवेला कस्सपा के आश्रम के पास एक वनक्षेत्र में निवास करते थे। एक सुंदर रात्रि को चारों महाराजा (महान राजा) अपने तेज रंग से पूरे वनक्षेत्र को प्रकाश से भरते हुए भगवान बुद्ध के स्थान पर गए; उनके पास पहुंचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके वे चारों दिशाओं में विशाल मशालों की तरह खड़े हो गए।

2. और जब वह रात बीत गई, तो जटिला उरुवेला कस्सपा उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे महान समना (बुद्ध), भोजन तैयार है। हे महान समना, वे कौन थे जो इस सुंदर रात में, अपने तेज रंग से पूरे उपवन को प्रकाश से भरते हुए, आपके पास आए और आपके पास आकर आदरपूर्वक प्रणाम किया और चारों दिशाओं में बड़ी-बड़ी मशालों की तरह खड़े हो गए?'

'वे चार महाराजा (महान राजा), कश्यप थे, जो मेरे उपदेश सुनने के लिए मेरे पास आए थे।'

तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियां और महान प्रतिभाएं हैं, क्योंकि चारों महाराज (महान राजा) भी उनके उपदेश सुनने आते हैं। हालांकि, वे मेरी तरह पवित्र नहीं हैं।'

और भगवान बुद्ध ने जटिला उरुवेला कस्सपा द्वारा अर्पित भोजन ग्रहण किया और उसी उपवन में ठहरे रहे।

दूसरे चमत्कार का अंत।

<<<< पिछला(1.15) | अगला(1.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.17

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.16) । अगला(1.18) >>>>

महावग्गा

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-17: तीसरा चमत्कार-सक्रा (इंद्र, स्वर्ग के राजा) बुद्ध से मिलने आते हैं।

1. और एक सुंदर रात को, देवों के राजा सक्का (सक्र या इंद्र), अपने तेज रंग से पूरे उपवन को प्रकाश से भरते हुए, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम करके, वे एक विशाल मशाल की तरह उनके निकट खड़े हो गए, जो सौंदर्य और चमक में पूर्व के सभी रूपों की भव्यता को पार कर गए।

2. और जब वह रात बीत गई (आदि, जैसा कि अध्याय 16.2 में है)।

तीसरे चमत्कार का अंत।

<<<< पिछला(1.16) । अगला(1.18) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.17) । अगला(1.19) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-18: चौथा चमत्कार-ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने बुद्ध से पुनः मुलाकात की

और एक खूबसूरत रात में ब्रह्मा सहमपति (आदि, जैसा कि अध्याय 17 में है)।

चौथे अजूबे का अंत।

<<<< पिछला(1.17) । अगला(1.19) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.18) । अगला(1.20) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-19: पांचवां चमत्कार-बुद्ध कश्यप के विचारों को समझते हैं।

1. उस समय, जटिला उरुवेला कस्सपा द्वारा आयोजित एक महान यज्ञ निकट आ रहा था, और अंग और मगध के सभी लोग प्रचुर मात्रा में भोजन (कठोर और नरम दोनों प्रकार का) लेकर उस यज्ञ में जाना चाहते थे। अब जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'मेरा महान यज्ञ निकट आ रहा है, और अंग और मगध के सभी लोग आएंगे और अपने साथ प्रचुर मात्रा में भोजन (कठोर और नरम दोनों प्रकार का) लाएंगे। यदि महान समना (बुद्ध) उस विशाल सभा के समक्ष कोई चमत्कार कर दें, तो महान समना (बुद्ध) का लाभ और सम्मान बढ़ेगा, और मेरा लाभ और सम्मान घटेगा। अच्छा, महान समना (बुद्ध) कल यहाँ प्रकट न हों।'

2. तब भगवान बुद्ध ने अपने मन की शक्ति से जटिला उरुवेला कस्सपा के मन में उठे इस विचार को समझकर उत्तरा कुरु गए; वहाँ भिक्षा माँगकर उन्होंने प्राप्त भोजन को अनोत्तट्टा झील पर ले गए; वहाँ उन्होंने भोजन किया और दिन की भीषण गर्मी में वहीं विश्राम किया।

और जब रात बीत गई, तो जटिला उरुवेला कस्सपा उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे महान समना (बुद्ध), भोजन तैयार है। हे महान समना (बुद्ध), आप कल क्यों नहीं आए? हमने आपके बारे में सोचा था: "हे महान समना (बुद्ध) क्यों नहीं आए?" और आपके लिए कठोर और नरम दोनों प्रकार के भोजन परोसे गए थे।'

3. (बुद्ध ने उत्तर दिया): 'क्या तुमने नहीं सोचा, कश्यप: "अभी मेरा महान यज्ञ (आदि, जैसा ऊपर नीचे तक है)। खैर, महान समना (बुद्ध) कल यहाँ प्रकट नहीं होंगे?"

4. 'हे कस्सपा, अब मैं अपने मन की शक्ति से तुम्हारे मन में उठे इस विचार को समझ गया और उत्तरा कुरु गया; वहाँ भिक्षा माँगकर मैंने भोजन अनोटत्ता झील पर ले गया; वहाँ मैंने भोजन किया और दिन की भीषण गर्मी में वहीं विश्राम किया।'

तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियाँ और महान क्षमताएँ हैं, क्योंकि वे अपने मन की शक्ति से अन्य लोगों के विचारों को समझ सकते हैं। हालाँकि, वे मेरे समान पवित्र नहीं हैं।' और भगवान बुद्ध ने भोजन किया (आदि, जैसा कि अध्याय 16, 2 में है)।

पांचवें चमत्कार का अंत।

<<<< पिछला(1.18) | अगला(1.20) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.19) | अगला(1.21) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-20: सैकड़ों भिक्षुओं के दीक्षा संस्कार का मार्ग प्रशस्त करने वाले अनेक अन्य चमत्कार

1. उस समय भगवान बुद्ध ने कूड़े के ढेर से कुछ चिथड़े उठाए (जिनसे वे अपने लिए वस्त्र बनाने वाले थे)। तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'मैं इन चिथड़ों को कहाँ धोऊँ?' तब देवताओं के राजा सक्का ने भगवान बुद्ध के मन में उठे विचार को समझकर अपने हाथों से एक तालाब खुदवाया और भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध इन चिथड़ों को यहाँ धो सकते हैं?'

और भगवान बुद्ध ने सोचा, 'मैं इन चिथड़ों को किस पर रगड़ूँ?' तब देवताओं के राजा सक्का ने यह समझकर, इत्यादि, वहाँ एक बड़ा पत्थर रख दिया और कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध इस पत्थर पर इन चिथड़ों को रगड़ सकते हैं?'

2. तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'तालाब से ऊपर जाते समय मुझे क्या पकड़ना चाहिए?' तब एक देवता, जो काकुधा वृक्ष में निवास करते थे, ने समझकर, एक शाखा झुकाई और कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध तालाब से ऊपर जाते समय इस शाखा को पकड़ सकते हैं?'

और भगवान बुद्ध ने सोचा, 'मैं इन चिथड़ों को सुखाने के लिए किस पर रखूँ?' तब देवताओं के राजा सक्का ने यह समझकर, इत्यादि, वहाँ एक बड़ा पत्थर रखा और कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध इन चिथड़ों को इस पत्थर पर रख सकते हैं?'

3. जब वह रात बीत गई, तो जटिला उरुवेला कस्सपा उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे महान समना (बुद्ध), भोजन तैयार है। हे महान समना (बुद्ध), यह क्या है? पहले यहाँ कोई तालाब नहीं था, और अब यह तालाब है। पहले यहाँ कोई पत्थर नहीं रखा गया था; यह पत्थर किसने रखा है? पहले यह ककुधा वृक्ष अपनी शाखाएँ नहीं झुकाता था, और अब यह शाखा झुकी हुई है।'

4. 'मैंने कशप, कूड़े के ढेर से कुछ चिथड़े उठाए थे; और मैंने सोचा, कशप: "मैं इन चिथड़ों को कहाँ धोऊँ?" तब, कशप, देवताओं के राजा सक्का ने मेरे मन में उठे विचार को समझकर अपने हाथ से एक कुंड खोदा और मुझसे कहा: "हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध इन चिथड़ों को यहाँ धोएँगे?" इस प्रकार यह कुंड एक अमानवीय प्राणी के हाथों से खोदा गया है।'

और मैंने सोचा, कश्यप: "मैं इन चिथड़ों को किस पर रगड़ूँ?" फिर, कश्यप, सक्का, इत्यादि। इस प्रकार इस पत्थर को यहाँ किसी अमानवीय प्राणी ने रखा है।

5. 'और मैंने सोचा, कश्यप: "तालाब से ऊपर जाते समय मैं क्या पकड़ूँ?" तब, कश्यप, एक देवता, इत्यादि। इस प्रकार यह ककुधा वृक्ष मेरे हाथ के लिए सहारे का काम करता है।'

और मैंने सोचा, कश्यप: "मैं इन चिथड़ों को सुखाने के लिए कहाँ रखूँ?" फिर, कश्यप, सक्का, इत्यादि। इस प्रकार इस पत्थर को यहाँ किसी अमानवीय प्राणी ने रखा है।'

6. तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियां और महान क्षमताएं हैं, क्योंकि देवों के राजा सक्का उनकी सेवा करते हैं। हालांकि, वे मेरी तरह पवित्र नहीं हैं।'

और भगवान बुद्ध ने खाया (आदि, जैसा कि अध्याय 16.2 में है)।

7. और जब वह रात बीत गई, तो जटिला उरुवेला कस्सपा उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को यह कहते हुए सूचित किया कि समय हो गया है, 'हे महान समना (बुद्ध), भोजन तैयार है।'

(बुद्ध ने उत्तर दिया): 'जाओ, कस्सपा; मैं तुम्हारे पीछे आऊंगा।'

इस प्रकार जटिला उरुवेला कस्सपा को विदा करने के बाद, वह जंबू के पेड़ से एक फल तोड़ने गया, जिसके नाम पर जंबूद्वीप (जंबू द्वीप, या भारत) नामक इस महाद्वीप का नाम रखा गया है; फिर कस्सपा के सामने पहुँचकर वह उस कमरे में बैठ गया जहाँ कस्सपा की (पवित्र) अग्नि रखी जाती थी।

8. तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने भगवान बुद्ध को अग्नि कक्ष में बैठे हुए देखा; उन्हें देखकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे महान समना (बुद्ध) आप किस मार्ग से आए हैं? मैं आपसे पहले चला गया और आप मुझसे पहले आकर अग्नि कक्ष में बैठे हैं।'

9. 'जब मैंने तुम्हें विदा किया, कस्सपा, तो मैं जंबू के पेड़ से एक फल तोड़ने गया, जिसके नाम पर जंबूद्वीप नामक इस महाद्वीप का नाम पड़ा है; फिर मैं तुम्हारे सामने आया और अग्नि-कक्ष में बैठ गया। यह रहा जंबू का फल, कस्सपा, यह सुंदर, सुगंधित और स्वाद से भरपूर है; यदि तुम चाहो तो इसे खा सकते हो।'

'नहीं, हे महान समना (बुद्ध), इसे खाना केवल आपके लिए ही उचित है; आप इसे स्वयं खा लें।'

और जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियां और महान क्षमताएं हैं, क्योंकि वे मुझे अपने से पहले भेजकर, उस जंबू वृक्ष से फल तोड़कर, जिसके नाम पर जंबूद्वीप महाद्वीप का नाम पड़ा है, मेरे सामने आकर अग्नि कक्ष में बैठ गए। हालांकि, वे मेरे समान पवित्र नहीं हैं।'

और भगवान बुद्ध ने खाया (आदि, जैसा कि अध्याय 16.2 में है)।

10. और जब वह रात बीत गई (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 7 में नीचे तक है)। इस प्रकार जटिला उरुवेला कस्सपा को विदा करके, वह जंबू वृक्ष के पास उगने वाले आम के पेड़ से एक फल तोड़ने गया, जिसके नाम पर जंबूद्वीप नामक इस महाद्वीप का नाम रखा गया है, आदि। वह जंबू वृक्ष के पास उगने वाले पीले मायरोबलन के पेड़ से एक फल तोड़ने गया, आदि। वह तावतिंसा स्वर्ग में परिक्खत्तक (या परिगतक) फूल तोड़ने गया; फिर कस्सपा के सामने पहुँचकर वह अग्नि कक्ष में बैठ गया। तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने देखा (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 8 में है)।

11. 'जब मैंने तुम्हें विदा किया, कस्सपा, मैं तावतिंसा स्वर्ग में परिक्खत्तक फूल तोड़ने गया; फिर मैं तुम्हारे सामने आया और अग्नि कक्ष में बैठ गया। यह परिक्खत्तक फूल है, कस्सपा; यह सुंदर और सुगंधित है; यदि तुम चाहो तो इसे ले सकते हो।'

'नहीं, हे महान समना (बुद्ध), इसे अपने पास रखना केवल आपके लिए ही उचित है; इसे स्वयं अपने पास रखें।'

और जटिला (आदि, जैसा कि § 9 में है)। 'वह, हालांकि, मेरे समान पवित्र नहीं है।'

12. उस समय एक दिन, जोतील अपने पवित्र अग्नि की सेवा करना चाहते थे, वे लकड़ियाँ काटने में सफल नहीं हो सके। तब उन जोतीलों ने सोचा:

'निःसंदेह यह महान समना (बुद्ध) की जादुई शक्ति और उच्च क्षमता है कि हम लकड़ी को चीरने में सफल नहीं हो पा रहे हैं।' तब भगवान बुद्ध ने जटिला उरुवेला कस्सपा से कहा: 'क्या लकड़ी चीर दी जाए, कस्सपा?'

'हे महान समना (बुद्ध) इसे विभाजित होने दो।'

फिर पल भर में ही पाँच सौ लकड़ियाँ फट गईं। और जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियाँ और अद्भुत क्षमताएँ हैं, क्योंकि उनकी आज्ञा से लकड़ियाँ भी स्वतः फट जाती हैं। लेकिन वे मेरी तरह पवित्र नहीं हैं।'

13. उस समय जो जटिलाएँ अपनी पवित्र अग्नि की सेवा करना चाहती थीं, वे अग्नि प्रज्वलित करने में सफल नहीं हो सकीं (आदि, जैसा कि पिछली कहानी में है)।

14. उस समय जाटिलाओं ने अपनी पवित्र अग्नि की देखभाल करने के बाद भी आग बुझाने में सफलता नहीं पाई (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है)।

15. उस समय, शीत ऋतु की ठंडी रातों में, अष्टक पर्वों के बीच, जब बर्फ गिरती थी, तब जटिलाएँ नेरंजारा नदी में डुबकी लगातीं और फिर बाहर निकलतीं, और बार-बार ऐसा करतीं। तब भगवान बुद्ध ने जलती हुई अग्नि से पाँच सौ पात्र बनाए; नदी से बाहर आने वाली जटिलाओं ने उन पात्रों से खुद को गर्म किया। जटिलाओं ने सोचा, 'निस्संदेह यह महान समना (बुद्ध) की जादुई शक्ति और उच्च क्षमता का ही परिणाम है कि अग्नि से भरे ये पात्र यहाँ प्रकट हुए हैं।' जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा, 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियाँ और महान क्षमताएँ हैं, क्योंकि वे अग्नि से इतने बड़े पात्र बना सकते हैं। परन्तु वे मेरे समान पवित्र नहीं हैं।'

16. उस समय असमय भारी वर्षा हुई और भयंकर बाढ़ आ गई। भगवान बुद्ध जहाँ रहते थे, वह स्थान जलमग्न हो गया। तब भगवान बुद्ध ने सोचा, 'यदि मैं चारों ओर से जल को पीछे हटा दूँ और जल के बीचोंबीच धूल से ढकी किसी जगह पर इधर-उधर चलूँ तो क्या होगा?' और भगवान बुद्ध ने चारों ओर से जल को पीछे हटा दिया और वे जल के बीचोंबीच धूल से ढकी किसी जगह पर इधर-उधर चलने लगे।

और जटिला उरुवेला कस्सपा, जिन्हें डर था कि कहीं जल बुद्ध को बहाकर न ले जाए, अनेक जटिलाओं के साथ नाव में बैठकर उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध निवास करते थे। तब जटिला उरुवेला कस्सपा ने भगवान बुद्ध को देखा, जिन्होंने चारों ओर जल को पीछे हटा दिया था, और वे धूल से ढके एक स्थान पर जल के बीचोंबीच चल रहे थे। उन्हें देखकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'क्या आप वहाँ हैं, हे महान समना (बुद्ध)?'

'मैं यहाँ हूँ, कश्यप,' भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, और वे हवा में उठे और नाव में बैठ गए।

और जटिला उरुवेला कस्सपा ने सोचा: 'सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियां और महान क्षमताएं हैं, क्योंकि पानी उन्हें बहाकर नहीं ले जाता। हालांकि, वे मेरी तरह पवित्र नहीं हैं।'

17. तब भगवान बुद्ध ने सोचा: 'यह मूर्ख व्यक्ति लंबे समय तक यही सोचता रहेगा: "सचमुच महान समना (बुद्ध) के पास उच्च जादुई शक्तियां और महान क्षमताएं हैं; फिर भी वे मेरे समान पवित्र नहीं हैं।" यदि मैं इस जटिला का मन बदल दूं (ताकि उसे अपनी श्रेष्ठता दिखा सकूं) तो क्या होगा?'

और भगवान बुद्ध ने जटिला उरुवेला कस्सपा से कहा: 'हे कस्सपा, तुम न तो पवित्र (अरह) हो, न ही तुमने अरहतत्व के मार्ग में प्रवेश किया है, और न ही तुम ऐसा कोई अभ्यास करते हो जो तुम्हें अरहतत्व की ओर ले जाए।'

तब जटिला उरुवेला में कस्सपा ने भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मुझे भगवान बुद्ध से दीक्षा और उपसम्पदा प्राप्त करने की कृपा करें।'

18. (बुद्ध ने उत्तर दिया): 'हे कस्सपा, तुम पाँच सौ जटिलों के मुखिया, नेता, अग्रणी, प्रथम और सर्वोच्च हो; पहले जाओ और उन्हें अपने इरादे से अवगत कराओ, और उन्हें वह करने दो जो वे उचित समझें।'

तब जटिला उरुवेला कस्सपा उन जटिलाओं के पास गए; उनके पास जाकर उन्होंने उन जटिलाओं से कहा: 'हे महोदय, मैं महान समना (बुद्ध) के मार्गदर्शन में धर्ममय जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ; आप जो चाहें कर सकते हैं।'

(जटिलों ने उत्तर दिया): 'हे महोदय, हमें महान समना (बुद्ध) के प्रति बहुत पहले से स्नेह है; यदि आप महान समना के मार्गदर्शन में धर्ममय जीवन का नेतृत्व करेंगे, तो हम सभी महान समना के मार्गदर्शन में धर्ममय जीवन व्यतीत करेंगे।'

19. तब जाटिलाओं ने अपने बाल, अपनी चोटियाँ, अपना भोजन और अग्निहोत्र यज्ञ की सामग्री नदी में बहा दी और भगवान बुद्ध के पास गईं; उनके पास पहुँचकर और उनके चरणों में सिर झुकाकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, हमें भगवान बुद्ध से पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षाएँ प्राप्त करने की अनुमति दें।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षुओं, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।'

इस प्रकार इन पूजनीय व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त हुई।

20. जटिला नदी कस्सपा ने नदी के साथ बहकर आए हुए केले, चोटियाँ, रसद और अग्निहोत्र यज्ञ की सामग्री देखी; यह देखकर उन्हें भय हुआ कि कहीं उनके भाई पर कोई विपत्ति न आ पड़ी हो। उन्होंने कुछ जटिलाओं को यह कहकर भेजा, 'जाओ और मेरे भाई की देखभाल करो,' और स्वयं अपने तीन सौ जटिलाओं के साथ पूज्य उरुवेला कस्सपा के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने पूज्य उरुवेला कस्सपा से कहा, 'अब, कस्सपा, क्या यह आनंद है?'

(उरुवेला कस्सपा ने उत्तर दिया): 'हाँ, मित्र, यही तो परमानंद है।'

21. और जाटिला (जो नादि कस्सपा के साथ आए थे) (आदि, जैसा कि § 19 में है)।

22. और जटिल गया कस्सपा ने देखा (आदि, जैसा कि § 20 में है); यह देखकर उसे डर लगा कि कहीं उसके भाइयों पर कोई विपत्ति न आ पड़ी हो। उसने कुछ जटिलों को यह कहकर भेजा, 'जाओ और मेरे भाइयों की देखभाल करो,' और स्वयं अपने दो सौ जटिलों के साथ पूज्य उरुवेला कस्सपा के पास गया (आदि, जैसा कि ऊपर है)।

23. और जटिला (जो गया कस्सपा के साथ आए थे) (आदि, जैसा कि § 19 में है)।

24. भगवान बुद्ध के आदेश पर पाँच सौ लकड़ियाँ जो फट नहीं रही थीं, फट गईं; आग जो जल नहीं रही थी, जल उठी; बुझ नहीं रही थी, बुझ गई; इसके अलावा उन्होंने आग से पाँच सौ बर्तन बनाए। इस प्रकार इन चमत्कारों की संख्या तीन हज़ार पाँच सौ है।

<<<< पिछला(1.19) | अगला(1.21) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.21

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.20) । अगला(1.22) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-21: सब कुछ जल रहा है - गयासिसा में एक हजार भिक्षुओं को उपदेश देना।

1. भगवान बुद्ध ने उरुवेला में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद, बड़ी संख्या में भिक्षुओं, एक हजार भिक्षुओं (जो सभी पूर्व में जटिल थे) के साथ गयासिसा के लिए प्रस्थान किया। वहाँ गया के निकट, गयासिसा में, भगवान बुद्ध उन हजार भिक्षुओं के साथ निवास करने लगे।

2. वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, सब कुछ जल रहा है। और हे भिक्षुओं, सब कुछ कैसे जल रहा है?'

'हे भिक्षुओं, आँख जल रही है;'

दिखाई देने वाली चीजें जल रही हैं;

आंखों के माध्यम से बनने वाली मानसिक छापें तीव्र होती हैं;

(दृश्यमान वस्तुओं के साथ) आंखों का संपर्क जलन पैदा करता है;

आंख के (दृश्यमान वस्तुओं के संपर्क में आने से) उत्पन्न होने वाली अनुभूति, चाहे वह सुखद हो, चाहे पीड़ादायक हो, चाहे न सुखद हो और न पीड़ादायक हो, वह भी जलन ही है।

यह किस आग से जल रहा है?

मैं तुमसे कहता हूँ कि यह कामवासना की आग से जल रहा है।

घृणा की आग से,

अज्ञान की आग से;

यह जन्म, क्षय, मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और हताशा की चिंताओं से जल रहा है।

3. 'कान जल रहे हैं, आवाज़ें चुभ रही हैं, इत्यादि...।'

नाक में जलन हो रही है, गंध से जलन हो रही है, इत्यादि।

जीभ जल रही है, स्वाद में जलन हो रही है, इत्यादि...

शरीर जल रहा है, संपर्क में आने वाली वस्तुएँ जल रही हैं, इत्यादि।

मन जल रहा है, विचार जल रहे हैं, इत्यादि...

4. हे भिक्षुओं, इस पर विचार करते हुए, शास्त्रों में पारंगत शिष्य, श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हुए, आँख से, प्रत्यक्ष वस्तुओं से, आँख पर आधारित मानसिक छापों से, प्रत्यक्ष वस्तुओं के संपर्क से, और प्रत्यक्ष वस्तुओं के संपर्क से उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं से, चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो, या न सुखद हो और न दुखदायी हो, थक जाता है। वह कान से भी थक जाता है (आदि, यहाँ तक कि विचारों से भी)। इन सबसे थककर वह अपने आप को वासना से मुक्त कर लेता है; वासना के अभाव से वह मुक्त हो जाता है; मुक्त होने पर उसे अपनी मुक्ति का अहसास होता है; और वह यह जान लेता है कि पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो गया है; पवित्रता पूर्ण हो गई है; कर्तव्य पूर्ण हो गया है; और इस संसार में अब कोई पुनरावृति नहीं है।

जब इस व्याख्या का प्रतिपादन हुआ, तो उन हजार भिक्षुओं के मन संसार के प्रति आसक्ति से मुक्त हो गए और आसवों (लालसाओं) से छुटकारा पा लिया।

'द बर्निंग' पर उपदेश यहीं समाप्त होता है।

उरुवेला में हुए चमत्कारों से संबंधित तीसरे भानवर का समापन।

<<<< पिछला(1.20) | अगला(1.22) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.22
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.21) | अगला(1.23) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-22: संघ को स्वर्ग के स्वामी सक्का द्वारा राजा बिम्बिसार के भोज में ले जाया जाता है।

1. भगवान बुद्ध ने गयासिसा में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद, बड़ी संख्या में भिक्षुओं, जिनमें एक हजार भिक्षु पूर्व में जटिला रहे थे, के साथ राजगृह की ओर प्रस्थान किया। भगवान बुद्ध स्थान-स्थान भटकते हुए राजगृह पहुंचे। वहां भगवान बुद्ध राजगृह के निकट, लत्थिवन उद्यान में, सुपतित्त के पवित्र मंदिर के पास निवास करने लगे।

2. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सुना: 'शाक्य वंश के तपस्वी समना गौतम (बुद्ध) शाक्यपुत्त अभी-अभी राजगृह पहुंचे हैं और राजगृह के पास, सुपतित्था के पवित्र मंदिर के निकट लत्थिवना आनंद उद्यान में ठहरे हुए हैं। दयालु गौतम (बुद्ध) की ऐसी महिमामय प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है: "सचमुच वे दयालु, पवित्र, परम संबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, परम सुखी, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वोच्च, जो बैल को सारथी की तरह मार्गदर्शित करते हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, महान बुद्ध। वे उस सत्य का ज्ञान स्वयं प्रकट करते हैं और प्रत्यक्ष रूप से उसे देखते हैं, इस संसार को, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं; समस्त प्राणियों, समन और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों को; वे उस सत्य (धम्म) का उपदेश देते हैं जो आरंभ में महिमामय, मध्य में महिमामय और अंत में महिमामय, भाव और अक्षर दोनों में; वे एक परिपूर्ण, शुद्ध और पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं।" ऐसे पवित्र पुरुषों (अरहतों) के दर्शन प्राप्त करना सौभाग्य की बात है।

3. मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार, बारह करोड़ मगध ब्राह्मणों और गृहस्थों से घिरे हुए, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उन बारह करोड़ मगध ब्राह्मणों (पुजारियों) और गृहस्थों में से कुछ ने भी आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए; कुछ ने भगवान बुद्ध से अभिवादन किया और उनके साथ विनम्र शब्दों का आदान-प्रदान करके उनके निकट बैठ गए; कुछ ने अपने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध के निकट बैठ गए; कुछ ने भगवान बुद्ध के समक्ष अपना नाम और परिवार का नाम पुकारा और उनके निकट बैठ गए; कुछ चुपचाप उनके निकट बैठ गए।

4. अब मगध के उन बारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों ने सोचा, 'यह क्या हो रहा है? क्या महान समना (बुद्ध) ने स्वयं को उरुवेला कस्सपा के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखा है, या उरुवेला कस्सपा ने स्वयं को महान समना (बुद्ध) के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखा है?'

और भगवान बुद्ध, जिन्होंने मगध के उन बारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों के मन में उठे विचार को भलीभांति समझ लिया था, ने पूज्य उरुवेला कस्सपा को इस श्लोक में संबोधित करते हुए कहा, 'हे उरुवेला निवासी, आपने ऐसा कौन सा ज्ञान प्राप्त किया है जिसने आपको, जो अपनी तपस्याओं के लिए प्रसिद्ध थे, अपने पवित्र अग्नि का त्याग करने के लिए प्रेरित किया है? मैं आपसे, कस्सपा, यह प्रश्न पूछता हूँ: आपका अग्नि यज्ञ क्यों त्याग दिया गया है?'

(कस्सापा ने उत्तर दिया): 'बलिदान दृश्य वस्तुओं, ध्वनियों, स्वादों, सुखों और स्त्रीत्व की बात करते हैं; क्योंकि मैं समझ गया था कि अस्तित्व से संबंधित सब कुछ मैल है, इसलिए मैंने बलिदानों और चढ़ावों में आनंद लेना छोड़ दिया।'

5. 'परन्तु यदि हे कश्यप (भगवान बुद्ध ने कहा), तुम्हारा मन वहाँ किसी भी दृश्य वस्तु, ध्वनि या स्वाद में आनंद नहीं पाता, तो हे कश्यप, मनुष्य या देवता के संसार में ऐसी कौन सी बात है जिसमें तुम्हारा मन अब आनंद पाता है? मुझे वह बताओ।'

(कस्साप ने उत्तर दिया): 'मैंने शांति की वह अवस्था (अर्थात निर्वाण) देखी है जिसमें अस्तित्व का आधार (उपाधि) और पूर्णता के मार्ग में आने वाली बाधाएँ (किंकना) समाप्त हो जाती हैं, जो इंद्रिय सुख से मुक्त होती है, जो किसी अन्य अवस्था में परिवर्तित नहीं हो सकती, जिसे किसी अन्य अवस्था में ले जाया नहीं जा सकता; इसलिए मैंने यज्ञों और आहुतियों में आनंद लेना छोड़ दिया।'

6. तब पूज्य उरुवेला कस्सपा अपने आसन से उठे, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार समायोजित किया कि उसका एक कंधा ढक जाए, भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मेरे गुरु भगवान बुद्ध हैं, मैं उनका शिष्य हूँ; हे प्रभु, मेरे गुरु भगवान बुद्ध हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।' तब मगध के उन बारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों ने समझा: 'उरुवेला कस्सपा ने स्वयं को महान समन (बुद्ध) के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में समर्पित कर दिया है।'

7, 8. और भगवान बुद्ध, जिन्होंने मगध के उन बारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों के मन में उठे विचार को अपने मन में समझ लिया था, ने उन्हें उचित समय पर उपदेश दिया (आदि, जैसा कि अध्याय 7, अनुच्छेद 5, 6 से आगे तक है)। जिस प्रकार एक साफ, बिना दाग वाला कपड़ा रंग को ठीक से सोख लेता है, उसी प्रकार बिम्बिसार के नेतृत्व में बैठे हुए उन ग्यारह करोड़ मगध ब्राह्मणों और गृहस्थों ने सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त की: 'जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह समाप्ति के भी अधीन है।' एक करोड़ ने गृहस्थ शिष्य बनने की घोषणा की।

9. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सत्य को (आदि...) गुरु के उपदेश के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न देखकर भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, पूर्वकाल में जब मैं राजकुमार था, तब मेरी पाँच इच्छाएँ थीं; वे अब पूरी हो गई हैं। हे प्रभु, पूर्वकाल में जब मैं राजकुमार था, तब मेरी यह इच्छा थी: "हे प्रभु, मुझे राजा बनाया जाए।" यह मेरी पहली इच्छा थी; यह अब पूरी हो गई है। "और तब परम पवित्र, पूर्ण संबुद्ध मेरे राज्य में आएँ।" यह मेरी दूसरी इच्छा थी, हे प्रभु; यह अब पूरी हो गई है।'

10. "और क्या मैं भगवान बुद्ध को प्रणाम कर सकता हूँ?" हे प्रभु, यह मेरी तीसरी इच्छा थी; यह अब पूरी हो गई है। "और क्या भगवान बुद्ध मुझे अपना धर्म (धम्म) सिखा सकते हैं?" हे प्रभु, यह मेरी चौथी इच्छा थी; यह अब पूरी हो गई है। "और क्या मैं भगवान बुद्ध के धर्म को समझ सकता हूँ?" हे प्रभु, यह मेरी पाँचवीं इच्छा थी; यह अब पूरी हो गई है। हे प्रभु, ये पाँचों इच्छाएँ थीं जो मैंने पूर्व दिनों में, जब मैं राजकुमार था, तब की थीं; ये अब पूरी हो गई हैं।

11. 'हे महिमावान प्रभु! (आदि, जैसा कि अध्याय 7, 10 से आगे तक है:) जिन्होंने उनकी शरण ली है। और हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ मेरे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

12. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने जब यह जाना कि भगवान बुद्ध ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा करते हुए चले गए। रात्रि होने पर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, तैयार करने का आदेश दिया और भगवान बुद्ध को भोजन का समय इस प्रकार सूचित किया: 'हे प्रभु, भोजन का समय हो गया है, भोजन तैयार है।' दोपहर होते ही भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और अपने किवार धारण किए हुए राजगृह नगर में प्रवेश किया। उनके साथ बड़ी संख्या में भिक्षु थे, जिनमें एक हजार भिक्षु (जो सभी पूर्व में जटिल थे) थे।

13. उस समय देवों के राजा सक्का ने एक युवा ब्राह्मण का रूप धारण करके, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय के आगे चलते हुए निम्नलिखित श्लोक गाए: 'स्व-संयमितों के साथ संयमित, पूर्व जाटिलों के साथ, मुक्तों के साथ मुक्त, भगवान बुद्ध, सिंगी सोने के आभूषण के समान स्वर्ण रंग के, राजगृह में प्रवेश कर चुके हैं।'

'मुक्त व्यक्ति मुक्त व्यक्तियों के साथ, पूर्व जाटिलों के साथ, इत्यादि।'

'जो पूर्व जाटिलों के साथ (जमोद के सागर को) पार कर चुका है, मुक्त हो चुका है, मुक्त हो चुका है, भगवान बुद्ध, जो सिंहदेव के आभूषण के समान स्वर्ण रंग के हैं, राजगृह में प्रवेश कर चुके हैं।'

'जो दस श्रेष्ठ अवस्थाओं और दस शक्तियों से युक्त है, जो कर्म के दस मार्गों को समझता है और दस (अरहतत्व के गुणों) से परिपूर्ण है, भगवान बुद्ध दस सौ अनुयायियों से घिरे हुए राजगृह में प्रवेश कर चुके हैं।'

14. जब लोगों ने देवों के राजा सक्का को देखा, तो वे कहने लगे, 'यह युवक सचमुच सुंदर है; इसका रूप सचमुच मनमोहक है; यह युवक सचमुच आकर्षक है। यह युवक किसका सेवक हो सकता है?'

जब वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, तब देवों के राजा सक्का ने उन लोगों को इस श्लोक में संबोधित किया: 'जो बुद्धिमान हैं, पूर्णतः आत्मसंयमित हैं, अद्वितीय बुद्ध हैं, अरहत हैं, पृथ्वी पर सबसे सुखी हैं: मैं उनका सेवक हूँ।'

15. भगवान बुद्ध मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के महल में गए। वहाँ पहुँचकर वे अपने साथ आए भिक्षुओं के साथ उनके लिए लगाई गई सीटों पर बैठ गए। फिर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, परोसा; और जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा और हाथ धो लिए, तो वे उनके पास बैठ गए।

16. उनके पास बैठे मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सोचा: 'भगवान बुद्ध के रहने के लिए मुझे कौन सा स्थान मिल सकता है, जो शहर से न तो बहुत दूर हो और न ही बहुत पास, आने-जाने के लिए उपयुक्त हो, उन सभी लोगों के लिए आसानी से सुलभ हो जो (उन्हें देखना चाहते हैं), दिन में बहुत भीड़भाड़ वाला न हो, रात में बहुत शोर और भय से मुक्त हो, लोगों की गंध से मुक्त हो, पुरुषों से छिपा हुआ हो, और एकांत जीवन के लिए उपयुक्त हो?'

17. और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सोचा: 'मेरा आनंद उद्यान, वेलुवन, नगर से न तो बहुत दूर है और न ही बहुत पास, आने-जाने के लिए उपयुक्त है, (आदि, एकांत जीवन के लिए)। क्या होगा यदि मैं वेलुवन आनंद उद्यान को बुद्ध को प्रमुख मानकर भिक्षु समुदाय को दान कर दूं?'

18. मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने एक सोने का पात्र (जिसमें पानी भरा था, जिसे बुद्ध के हाथ पर उंडेला जाना था) लिया और (यह कहते हुए) (उद्यान को) भगवान बुद्ध को समर्पित किया, 'हे प्रभु, मैं इस वेलुवन आनंद उद्यान को बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को समर्पित करता हूँ।' भगवान बुद्ध ने विश्राम (उद्यान/मठ) स्वीकार कर लिया। फिर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, और फिर अपने आसन से उठकर चले गए।

और इस घटना के फलस्वरूप, भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें विश्राम (पार्क/मठ) का दान स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(1.21) | अगला(1.23) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.23
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.22) | अगला(1.24) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-23: सारिपुत्र को भिक्षु असाजी से मार्ग का परिचय प्राप्त होता है।

1. उस समय संजय, जो एक परिब्बाजक (भ्रमणशील तपस्वी) थे, राजगृह में अपने दो सौ पचास परिब्बाजकों के विशाल दल के साथ निवास करते थे। उस समय सारिपुत्त और मोग्गलाना (दो युवा ब्राह्मण (पुजारी)) संजय परिब्बाजक के अनुयायी के रूप में धर्ममय जीवन व्यतीत करते थे; उन्होंने आपस में वचन दिया था: 'जो पहले अमर (अर्थात निर्वाण) प्राप्त करेगा, वह दूसरे को सूचित करेगा।'

2. एक दिन दोपहर के समय पूज्य असाजी ने अपने अंतर्वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र लेकर और किवार धारण करके राजगृह नगर में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उनका चलना, पीछे मुड़कर देखना, अवलोकन करना, भुजाओं को पीछे खींचना और फैलाना शालीनतापूर्ण था; उन्होंने अपनी दृष्टि जमीन पर टिका रखी थी और उनका आचरण गरिमामय था। परिब्बजक सारिपुत्त ने राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए जा रहे पूज्य असाजी को देखा, जिनका चलना आदि विनम्र था, जिन्होंने अपनी दृष्टि जमीन पर टिका रखी थी और

जिनका रूप गरिमामय था। उन्हें देखकर उन्होंने सोचा, 'यह व्यक्ति वास्तव में उन भिक्षुओं में से एक है जो संसार में अर्हत हैं या जिन्होंने अर्हतत्व के मार्ग में प्रवेश किया है।' यदि मैं इस भिक्षु के पास जाकर उनसे पूछूं: "मित्र, आपने किसके नाम पर संसार त्याग दिया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किसके सिद्धांत का पालन करते हैं?"

3. अब परिब्बाजक सारिपुत्त ने सोचा: 'यह भिक्षु से पूछने का समय नहीं है; वह भिक्षा मांगने के लिए घर के भीतरी आंगन में चले गए हैं। यदि मैं इस भिक्षु का कदम-दर-कदम अनुसरण करूँ, उस मार्ग के अनुसार जो कुछ पाने की चाह रखने वालों द्वारा मान्यता प्राप्त है, तो क्या होगा?'

और पूज्य असाजी ने राजगृह में अपनी भिक्षायात्रा पूरी करके प्राप्त भोजन लेकर वापस आ गए। तब परिब्बजक सारिपुत्त उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य असाजी थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने असाजी को प्रणाम किया; अभिवादन और विनम्र शब्दों का आदान-प्रदान करने के बाद वे उनके पास बैठ गए; उनके पास खड़े होकर परिब्बजक सारिपुत्त ने पूज्य असाजी से कहा, 'हे मित्र, आपका रूप शांत है; आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। हे मित्र, आपने किसके नाम पर संसार त्यागा है? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?'

4. (अस्साजी ने उत्तर दिया): 'हे मित्र, महान समना शाक्यपुत्त (बुद्ध) हैं, जो शाक्य वंश के एक तपस्वी हैं; मैंने भगवान बुद्ध के नाम पर संसार त्याग दिया है; भगवान बुद्ध मेरे गुरु हैं; और मैं उन्हीं के सिद्धांतों का पालन करता हूँ।'

'और महोदय, आपके शिक्षक किस सिद्धांत को मानते हैं और आपको किस सिद्धांत का उपदेश देते हैं?'

'मित्र, मैं तो अभी एक युवा शिष्य हूँ; मैंने अभी हाल ही में दीक्षा प्राप्त की है; और मैंने अभी-अभी इस सिद्धांत और अनुशासन को अपनाया है। मैं आपको इस सिद्धांत को विस्तार से नहीं समझा सकता; लेकिन संक्षेप में इसका अर्थ बता सकता हूँ।'

तब परिब्बजक सारिपुत्त ने पूज्य असाजी से कहा, 'मित्र, आप मुझे जितना चाहें उतना बताएँ, लेकिन मुझे (सिद्धांत का) सार अवश्य बताएँ; मुझे केवल सार चाहिए; आप शब्दों पर इतना जोर क्यों देते हैं?'

5. तब पूज्य असाजी ने परिब्बजक सारिपुत्त को धम्म का निम्नलिखित पाठ सुनाया: 'उन सभी वस्तुओं का जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं, तथागत (बुद्ध) ने कारण और उनके निवारण दोनों की व्याख्या की है; यही महान समना (बुद्ध) का सिद्धांत है।'

और परिब्बजक सारिपुत्त ने यह पाठ सुनकर सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त की: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह समाप्ति की स्थिति के भी अधीन है।' (और उन्होंने कहा): 'यदि केवल यही सिद्धांत (धम्म) है, तो अब आप उस अवस्था तक पहुँच चुके हैं जहाँ समस्त दुःख समाप्त हो जाते हैं (अर्थात निर्वाण), (वह अवस्था) जो अतीत के असंख्य कल्पों (विश्व-चक्रों) में अदृश्य रही है।'

6. तब परिब्बजक सारिपुत्त उस स्थान पर गए जहाँ परिब्बजक मोग्गलाना थे। परिब्बजक मोग्गलाना ने परिब्बजक सारिपुत्त को दूर से आते देखा; उन्हें देखकर उन्होंने परिब्बजक सारिपुत्त से कहा, 'हे मित्र, आपका रूप शांत है; आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। क्या आप सचमुच अमरत्व को प्राप्त कर चुके हैं, मित्र?'

'हां, मित्र, मैंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है।'

'और दोस्त, तुमने ऐसा कैसे किया?'

7-9. 'मैंने देखा, मित्र, भिक्षु असाजी जो राजगृह से भिक्षा मांगने गए थे (आदि, नीचे तक:); "लेकिन मैं आपको संक्षेप में बताऊंगा कि इसका क्या अर्थ है।"

"आप मुझे जितना चाहें उतना बता सकते हैं, लेकिन मुझे (सिद्धांत की) भावना अवश्य बताएं; मुझे केवल भावना चाहिए; आप शब्दों पर इतना जोर क्यों देते हैं?"

10. 'तब, मित्र, भिक्षु अस्सजी ने निम्नलिखित धम्म वाक्य कहा: "उन सभी वस्तुओं का जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं, तथागत (बुद्ध) ने कारण और उनके निवारण दोनों की व्याख्या की है; यही महान समना (बुद्ध) का सिद्धांत है।"'

और परिब्बजक मोग्गलाना ने इस पाठ को सुनकर सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त की: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह समाप्ति की स्थिति के भी अधीन है।' (और उन्होंने कहा): (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 5 में अंत तक है)।

<<<< पिछला(1.22) | अगला(1.24) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.24
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.23) | अगला(1.25) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-24: सारिपुत्त और मोग्गलाना 250 अनुयायियों के साथ संघ में शामिल होते हैं।

1. तब परिब्बजक मोग्गलाना ने परिब्बजक सारिपुत्त से कहा: 'चलो, मित्र, भगवान बुद्ध के पास चलें; ताकि भगवान बुद्ध हमारे गुरु बन सकें।'

(सारिपुत्त ने उत्तर दिया): 'हे मित्र, ये ढाई सौ परिब्बजक यहाँ (संजय के अनुयायियों के रूप में) हमारे कारण ही निवास करते हैं, और वे हमारा आदर करते हैं; पहले हम उन्हें भी अपने इरादे से अवगत करा दें; फिर वे जो चाहें कर सकते हैं।'

तब सारिपुत्त और मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ वे परिब्बजक थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने परिब्बजकों से कहा: 'मित्रों, हम भगवान बुद्ध से जुड़ने जा रहे हैं; ताकि भगवान बुद्ध हमारे गुरु बनें।'

(परिबजकों ने उत्तर दिया): 'हे महोदय, हम यहाँ आपके कारण ही निवास करते हैं, और हम आपका आदर करते हैं; यदि आप, महोदय, स्वयं को महान समना (बुद्ध) के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखने वाले हैं, तो हम सभी स्वयं को महान समना के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखेंगे।'

2. तब सारिपुत्त और मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ परिब्बजक संजय थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने परिब्बजक संजय से कहा: 'मित्र, हम भगवान बुद्ध से जुड़ने जा रहे हैं; ताकि भगवान बुद्ध हमारे गुरु बनें।'

(संजय ने उत्तर दिया): 'नहीं, मित्रों, मत जाओ; हम तीनों मिलकर इस शिष्यों के समूह का नेतृत्व करेंगे।'

और दूसरी बार सारिपुत्त और मोग्गलाना ने कहा, इत्यादि। और तीसरी बार सारिपुत्त और मोग्गलाना ने कहा, इत्यादि। (और तीसरी बार उन्होंने उत्तर दिया): 'नहीं, मित्रों, मत जाओ; हम तीनों मिलकर इस शिष्यों के समूह का नेतृत्व करें।'

3. लेकिन सारिपुत्त और मोग्गलाना उन ढाई सौ परिब्बजकों को अपने साथ लेकर वेलुवन गए। लेकिन परिब्बजक संजय ने वहीं अपने मुँह से गर्म खून उगलना शुरू कर दिया।

और भगवान बुद्ध ने सारिपुत्त और मोग्गलाना को दूर से आते देखा; उन्हें देखकर उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, कोलिता और उपतिस्सा, दो साथी आ रहे हैं; ये सच्चे शिष्य होंगे, एक अत्यंत विशिष्ट, शुभ जोड़ी।'

जब (सारिपुत्त और मोग्गलाना), जिन्होंने (अस्तित्व के) पूर्ण विनाश में मुक्ति प्राप्त कर ली थी, जो कि केवल ज्ञान के माध्यम से ही सुलभ एक गहन विषय है, वेलुवन में आए, तो गुरु (बुद्ध), जिन्होंने उन्हें देखा, ने उनके बारे में भविष्यवाणी की: 'ये दो साथी जो अब आ रहे हैं - कोलिता और उपतिस्सा - ये (सच्चे) शिष्यों की एक जोड़ी होंगे, एक अत्यंत विशिष्ट, शुभ जोड़ी।'

4. तब सारिपुत्त और मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने प्रणाम किया, अपने सिर भगवान बुद्ध के चरणों में झुकाए और भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, हमें भगवान बुद्ध से पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षाएँ प्राप्त करने की अनुमति दें।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'हे भिक्षुओं, आओ, यह सिद्धांत भली-भांति सिखाया गया है; दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।' इस प्रकार इन पूजनीय व्यक्तियों ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की।

5. उस समय कई प्रतिष्ठित युवा मगध के रईस भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धम्म जीवन व्यतीत कर रहे थे। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए (कहते हुए), 'समना गौतम (बुद्ध) पिताओं को पुत्र उत्पन्न नहीं होने देते; समना गौतम (बुद्ध) पत्नियों को विधवा बना देते हैं; समना गौतम (बुद्ध) परिवारों को नष्ट कर देते हैं। अब उन्होंने एक हजार जटिलों को दीक्षा दी है, और उन्होंने संजय के अनुयायी इन ढाई सौ परिब्बजकों को दीक्षा दी है; और ये कई प्रतिष्ठित युवा मगध के रईस अब समना गौतम (बुद्ध) के मार्गदर्शन में धम्म जीवन व्यतीत कर रहे हैं।' और इसके अलावा, जब उन्होंने भिक्षुओं को देखा, तो उन्होंने निम्नलिखित श्लोक में उनकी निंदा की: 'महान समना मगध के गिरिब्बज (अर्थात राजगृह) में संजय के सभी अनुयायियों को लेकर आए हैं; अगला नेतृत्व कौन करेगा?'

6. कुछ भिक्षुओं ने उन लोगों को नाराज़, बड़बड़ाते और क्रोधित होते सुना; इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। (उन्होंने उत्तर दिया): 'हे भिक्षुओं, यह शोरगुल अधिक समय तक नहीं चलेगा; यह केवल सात दिनों तक रहेगा; सात दिनों के बाद यह समाप्त हो जाएगा। और यदि वे इस श्लोक में तुम्हारा अपमान करें, "महान समन आ गए हैं, इत्यादि," तो तुम्हें अगले श्लोक में उनका उत्तर देना चाहिए: "महान तथागत सच्चे उपदेश के द्वारा ही मनुष्यों का मार्गदर्शन करते हैं। सत्य की शक्ति से मनुष्यों का मार्गदर्शन करने वाले बुद्धिमानों का अपमान कौन करेगा?'

7. उस समय लोगों ने भिक्षुओं को देखकर निम्नलिखित श्लोकों में उनका अपमान किया: 'महान समना आ गए हैं, इत्यादि।' तब भिक्षुओं ने अपमान करने वालों को निम्नलिखित श्लोकों में उत्तर दिया: 'यह सच्चे उपदेश के माध्यम से है, इत्यादि।'

तब लोगों को समझ आया: 'शाक्यपुत्रीय समना (भिक्षु) सत्य के द्वारा मनुष्यों का मार्गदर्शन करते हैं, न कि अधर्म के द्वारा;' और इस प्रकार वह शोर केवल सात दिनों तक चला, और सात दिनों के बाद वह समाप्त हो गया।

यहां सारिपुत्त और मोग्गलाना के दीक्षा समारोह का वर्णन समाप्त होता है।

चौथे भानवरा का समापन।

(नोट: बाद में सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रमुख शिष्य बने)

<<<< पिछला(1.23) | अगला(1.25) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.25
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.24) | अगला(1.26) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-25: विद्यार्थियों के लिए प्रशिक्षकों (उपाज्जयों) की नियुक्ति एवं उनके कर्तव्य।

1. उस समय कुछ भिक्षु, जिनके पास कोई उपज्याद (गुरु) नहीं थे और जिन्हें कोई उपदेश या शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी, अनुचित अंतर्वस्त्र और आच्छादित वस्त्रों में भिक्षा मांगने के लिए निकलते थे। जब लोग भोजन कर रहे होते थे, तो वे अपने भिक्षापात्रों में बचा हुआ भोजन कठोर भोजन (जो लोग खा रहे थे) के ऊपर, नरम भोजन के ऊपर, स्वादिष्ट भोजन के ऊपर और पेय पदार्थों के ऊपर फैला देते थे। वे स्वयं सूप और उबले हुए चावल मांगते और खाते थे; वे भोजन कक्षों में बहुत शोर मचाते थे।

2. लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए (कहते हुए), 'शाक्यपुत्रीय समन अनुचित अंतर्वस्त्र और आच्छादित वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने कैसे जा सकते हैं? (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है, पेय पदार्थों तक)? वे भोजन कक्षों में इतना शोर कैसे मचा सकते हैं? वे अपने लिए आयोजित भोजों में ब्राह्मणों (पुजारियों) की तरह व्यवहार करते हैं।'

3. कुछ भिक्षुओं ने उन लोगों को नाराज़ होते, बड़बड़ाते और क्रोधित होते सुना। जो भिक्षु संयमी, मितव्ययी, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और साधना के प्रति उत्सुक थे, वे भी नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'भिक्षु अनुचित अंतर्वस्त्र और आच्छादित वस्त्र आदि पहनकर भिक्षा मांगने कैसे जा सकते हैं? वे भोजन कक्ष में इतना शोर कैसे मचा सकते हैं?'

4. इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने भिक्षु समुदाय को एकत्रित होने का आदेश देकर भिक्षुओं से प्रश्न किया: 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि कुछ भिक्षु अपने भ्रमण के दौरान भोजन कक्षों में बहुत शोर मचाते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

5. तब महान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, इन मूर्ख व्यक्तियों का यह कार्य अनुचित है; यह अशोभनीय, अभद्र, संन्यासियों के लिए अनुपयुक्त, अस्वीकार्य और इससे बचना चाहिए। हे भिक्षुओं, ये मूर्ख व्यक्ति अपने भ्रमण आदि कैसे कर सकते हैं? वे भोजन कक्षों में इतना शोर कैसे मचा सकते हैं? हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को धर्म परिवर्तन कराने और धर्म परिवर्तन करने वालों की संख्या बढ़ाने के लिए उचित नहीं है; बल्कि, हे भिक्षुओं, इसका परिणाम यह होगा कि अधर्मी धर्म से विमुख हो जाएंगे और बहुत से धर्म परिवर्तन करने वाले धर्म से विमुख हो जाएंगे।'

6. भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को अनेक प्रकार से फटकारा; उन्होंने कंजूसी, दुर्भावना, अतिभोग, लालच, समाज में आनंद लेने और आलस्य के विरुद्ध बात की; और अनेक प्रकार से मितव्ययिता, अच्छे स्वभाव, संयमी, संतुष्ट, पापमुक्त, दयालु, आदरणीय और ऊर्जावान भिक्षुओं की प्रशंसा की। इन विषयों के अनुरूप और इनके अनुसार भिक्षुओं को धर्म प्रवचन देते हुए उन्होंने इस प्रकार भिक्षुओं को संबोधित किया:

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि युवा भिक्षु एक उपज्झाय (या गुरु) का चयन करें।'

हे भिक्षुओं, उपज्झाय को साध्वी विहारिक (अर्थात शिष्य) को पुत्र के समान समझना चाहिए; साध्वी विहारिक को उपज्झाय को पिता के समान समझना चाहिए। इस प्रकार ये दोनों, आपसी आदर, विश्वास और जीवन के सहभागिता से जुड़कर, इस सिद्धांत और अनुशासन में प्रगति करेंगे, उन्नति करेंगे और उच्च स्तर तक पहुंचेंगे।

7. हे भिक्षुओं, वे इस प्रकार उपज्झाय का चुनाव करें: उपज्झाय का चुनाव करने वाला व्यक्ति अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, इच्छित उपज्झाय के चरणों को प्रणाम करे, उकड़ू बैठकर अपने हाथ जोड़कर कहे: “हे आदरणीय महोदय, आप ही मेरे उपज्झाय बनें; हे आदरणीय महोदय, आप ही मेरे उपज्झाय बनें; हे आदरणीय महोदय, आप ही मेरे उपज्झाय बनें।” (यदि दूसरा व्यक्ति उत्तर दे): “अच्छा,” या, “ज़रूर,” या, “अच्छा,” या, “ठीक है,” या, “मेरे प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार करते रहें,” या वह इसे हावभाव (यानी अपने शरीर) से व्यक्त करे, या शब्दों से, या हावभाव और शब्दों दोनों से, तो उपज्झाय का चुनाव हो गया है। यदि वह इसे हावभाव से, न शब्दों से, न हावभाव और शब्दों दोनों से व्यक्त करे, तो उपज्झाय का चुनाव नहीं हुआ है।

8. हे भिक्षुओं, सद्धिविहारिक को अपने उपज्झाय के प्रति कठोर आचरण करना चाहिए। उसके आचरण के नियम इस प्रकार हैं: उसे सुबह जल्दी उठना चाहिए, अपने जूते उतारकर और अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करके कि उसका एक कंधा ढका रहे, उपज्झाय को दांत साफ करने वाला पदार्थ और कुल्ला करने के लिए पानी देना चाहिए। फिर उसे उपज्झाय के लिए आसन तैयार करना चाहिए। यदि चावल का दूध उपलब्ध हो, तो उसे घड़े को धोकर उपज्झाय को अर्पित करना चाहिए। जब उपज्झाय उसे पी ले, तो उसे पानी देना चाहिए, घड़ा उठाकर उसे नीचे रखकर अच्छी तरह से बिना रगड़े धोकर रख देना चाहिए। जब उपज्झाय उठ जाए, तो उसे आसन हटा देना चाहिए। यदि स्थान गंदा हो, तो उसे साफ करना चाहिए।

9. यदि उपज्झाय गाँव जाना चाहता है, तो (सद्धिविहारिका) उसे अपना अंतर्वस्त्र दे, उससे उसका दूसरा अंतर्वस्त्र (अर्थात उसका गृह वस्त्र?) ले, उसकी कमरबंद दे, दोनों ऊपरी वस्त्रों को एक दूसरे के ऊपर रखकर उपज्झाय को दे, भिक्षापात्र को धोकर उसमें थोड़ा पानी भरकर उसे दे। यदि उपज्झाय किसी भिक्षु सेवक के साथ जाना चाहता है, तो वह अंतर्वस्त्र इस प्रकार पहने कि नाभि और दोनों घुटने ढके रहें और शरीर चारों ओर से ढका रहे; फिर वह कमरबंद पहने, दोनों ऊपरी वस्त्रों को एक दूसरे के ऊपर रखकर पहने, गांठें बांधे, अपना

भिक्षापात्र धोकर ले और उपज्झाय के सेवक के रूप में उसके पीछे चले। वह उपज्झाय से न तो बहुत दूर जाए और न ही बहुत पास। उसे (उपज्जया से) उतना ही लेने दो जितना उसके भिक्षापात्र में डाला गया है।

10. जब उपज्झाय बोलें, तो (सद्धिविहारिका) उन्हें न रोकें। यदि उपज्झाय के शब्दों से कोई अपराध होने का खतरा हो, तो (सद्धिविहारिका) उन्हें रोकें। जब (उज्झाय) भिक्षायात्रा से लौटें, तो सद्धिविहारिका (उज्झाय से पहले) विहार (मठ) लौटें, आसन तैयार करें, उनके पैर धोने के लिए जल, एक पायदान और एक तौलिया लाएँ; फिर उपज्झाय से मिलने जाएँ, उनका भिक्षापात्र और उनका वस्त्र लें, उन्हें उनका दूसरा अंतर्वस्त्र (उनका गृह वस्त्र?) दें और उनका अंतर्वस्त्र ले लें। यदि (उज्झाय का) वस्त्र पसीने से भीगा हो, तो उसे थोड़ी देर के लिए गर्म स्थान पर सुखाएँ, लेकिन वस्त्र को गर्म स्थान पर न छोड़ें। वस्त्र को मोड़कर रख दें। वस्त्र को तह करते समय, उसे इस प्रकार तह करना चाहिए कि कोनों से प्रतिदिन चार इंच (पिछले दिन से अधिक) लटका रहे, ताकि बीच में कोई तह न पड़े। कमरबंद को भी तह करें। यदि भिक्षापात्र में कोई भोजन हो और उपज्झाय उसे खाना चाहे, तो उसे जल पिलाकर फिर भोजन दें।

11. 'उद्धाय को जल पिलाओ। जब उपजाय भोजन कर ले, तो (सद्धिविहारिका) उसे जल पिलाओ, उसका भिक्षापात्र लो, उसे नीचे रखो, बिना रगड़े अच्छी तरह से धो लो, जल निकाल दो और भिक्षापात्र को किसी गर्म स्थान पर थोड़ी देर सुखाओ, लेकिन भिक्षापात्र को गर्म स्थान पर न छोड़ो। भिक्षापात्र और वस्त्र को रख दो। भिक्षापात्र रखते समय, उसे एक हाथ से भिक्षापात्र पकड़े रहना चाहिए और दूसरे हाथ से पलंग या कुर्सी के नीचे (जहाँ वह भिक्षापात्र रखने जा रहा है) टटोल लेना चाहिए, और भिक्षापात्र को नंगी ज़मीन पर न रखो। जब वह वस्त्र टांगे, तो एक हाथ से वस्त्र को पकड़ें और दूसरे हाथ से उस बांस की खूंटी या रस्सी पर थपथपाएं जिस पर वस्त्र टांगा जाना है, और वस्त्र को इस प्रकार टांगें कि उसका किनारा उससे दूर (दीवार की ओर) हो और तह उसकी ओर हो। जब उपाज्जया उठ जाए, तो आसन हटा दें और पैर धोने का पानी, पायदान और तौलिया हटा दें। यदि स्थान गंदा हो, तो उसे झाड़ू से साफ कर दें।

12. यदि उपज्झाय स्नान करना चाहता है, तो वह स्नान तैयार करे। यदि उसे ठंडा पानी चाहिए, तो उसे ठंडा पानी मिले; यदि उसे गर्म पानी चाहिए, तो उसे गर्म पानी मिले। यदि उपज्झाय घंटाघर जाना चाहता है, तो (सद्धिविहारिका) चूर्ण को गूंथे, मिट्टी को गीला करे, घंटाघर की कुर्सी उठाए, उपज्झाय के पीछे-पीछे चले, उसे कुर्सी दे, उसका वस्त्र लेकर एक तरफ रख दे, उसे चूर्ण और मिट्टी दे। यदि वह सक्षम है, तो वह भी घंटाघर में प्रवेश करे। घंटाघर में प्रवेश करते समय, वह अपने चेहरे पर मिट्टी मल ले, आगे और पीछे से अपने शरीर को ढक ले, और इस प्रकार घंटाघर में प्रवेश करे।

13. वह वरिष्ठ भिक्षुओं के स्थान पर अतिक्रमण करते हुए न बैठे, न ही कनिष्ठ भिक्षुओं को उनके स्थान से हटाए। वह घंटाघर में उपज्झाय की सेवा करे। जब वह घंटाघर से निकलने लगे, तो घंटाघर की कुर्सी पर बैठे, आगे और पीछे से अपने आप को ढक ले, और इस प्रकार घंटाघर से निकल जाए। वह जल में भी उपज्झाय की सेवा करे। जब वह स्नान कर ले, तो (सद्धिविहारिका) पहले जल से बाहर आए, अपने शरीर को सुखाए, अपने वस्त्र पहने, फिर उपज्झाय के शरीर से जल पोंछे, उसे अपना अंतर्वस्त्र और आच्छादक दे, घंटाघर की कुर्सी पर बैठे, उपज्झाय के आगे जाए, उसके लिए आसन तैयार करे, और उसके पैर धोने के लिए जल, एक पायदान और एक तौलिया लाए। वह उपज्झाय को पीने के लिए जल अर्पित करे।

14. यदि (उपाज्जयाय को) प्रवचन देने के लिए आमंत्रित किया जाना पसंद है, तो वह (उपाज्जयाय को) ऐसा करने के लिए आमंत्रित करे। यदि (उपाज्जयाय को) प्रश्न पूछे जाना पसंद है, तो वह (उपाज्जयाय से) प्रश्न पूछे।

यदि वह विहार (मठ), जिसमें उपज्झाय निवास करता है, गंदा हो, तो यदि वह सक्षम हो तो उस विहार को साफ करे। विहार की सफाई करते समय, वह सबसे पहले भिक्षापात्र और (उज्झाय का) वस्त्र हटाकर अलग रख दे। वह चटाई और चादर हटाकर अलग रख दे। वह गद्दा और तकिया हटाकर अलग रख दे।

15. पलंग को ठीक से समेटकर, उसे फर्श पर घसीटे बिना और दरवाजे या चौखट से टकराए बिना सही ढंग से उठाकर एक तरफ रख दें। कुर्सी को भी ठीक से समेटकर, फर्श पर घसीटे बिना और दरवाजे या चौखट से टकराए बिना सही ढंग से उठाकर एक तरफ रख दें। पलंग के सहारे हटाकर एक तरफ रख दें। थूकदान हटाकर एक तरफ रख दें। बैठने का तख्ता हटाकर एक तरफ रख दें। कालीन को बिछाकर ध्यान से देखने के बाद उसे हटाकर एक तरफ रख दें। यदि विहार में मकड़ी के जाले हों, तो देखते ही उन्हें हटा दें। कमरे की खिड़कियों और कोनों को साफ कर दें। यदि लाल चूने से रंगी हुई दीवार गंदी हो, तो पोछे को गीला करके निचोड़ लें और उससे दीवार को साफ कर दें। यदि फर्श पर कालिख जमी हो और वह गंदा हो, तो पोछे को गीला करके निचोड़ लें और उससे फर्श को साफ करें। यदि फर्श पर कालिख न जमी हो, तो उस पर पानी छिड़ककर उसे रगड़कर साफ करें ताकि विहार (मठ) में धूल न जमे। झाड़ू से इकट्ठा की गई गंदगी को एक जगह इकट्ठा करके फेंक दें।

16. कालीन को धूप में सुखाओ, उसे साफ करो, झाड़-पोंछ कर धूल झाड़ो, वापस ले आओ और पहले की तरह बिछा दो। पलंग के सहारे धूप में रखो, उन्हें पोंछकर वापस ले आओ और अपनी जगह पर रख दो। पलंग को धूप में रखो, उसे साफ करो, झाड़-पोंछ कर

धूल झाड़ो, उसे ठीक से समेटो, बिना रगड़े (फर्श पर) और बिना दरवाजे या चौखट से टकराए, और अपनी जगह पर रख दो। कुर्सी को धूप में रखो, इत्यादि। गद्दे और तकिए को धूप में रखो, उन्हें साफ करो, झाड़-पोंछ कर धूल झाड़ो, वापस ले आओ और पहले की तरह बिछा दो। चटाई और चादर को धूप में रखो, इत्यादि। थूकदान को धूप में रखो, उसे पोंछकर वापस ले आओ और अपनी जगह पर रख दो। लेटने के तख्ते को धूप में रखो, इत्यादि।

17. 'वह भिक्षापात्र और वस्त्र को हटा दे। जब वह उन्हें हटा दे (आदि, जैसा कि धारा 11 में नीचे तक है), तो वस्त्र को इस प्रकार टांग दे कि किनारा उससे दूर हो और तह उसकी ओर हो।

18. यदि पूर्व से धूल भरी हवाएँ चलें, तो पूर्व की खिड़कियाँ बंद कर लें। यदि पश्चिम से धूल भरी हवाएँ चलें, तो पश्चिम की खिड़कियाँ बंद कर लें, इत्यादि। यदि सर्दी का मौसम हो, तो दिन में खिड़कियाँ खोल दें और रात में बंद कर दें। यदि गर्मी का मौसम हो, तो दिन में खिड़कियाँ बंद कर दें और रात में खोल दें।

19. यदि कोठरी गंदी हो, तो उसे झाड़ू लगाओ। यदि भंडारगृह गंदा हो, तो उसे झाड़ू लगाओ। यदि भोजन कक्ष, आदि गंदा हो। यदि चूल्हा, आदि गंदा हो। यदि शौचालय गंदा हो, तो उसे झाड़ू लगाओ। यदि पीने योग्य पानी न हो, तो पीने योग्य पानी उपलब्ध कराओ। यदि भोजन न हो, तो भोजन उपलब्ध कराओ। यदि मुँह धोने के बर्तन में पानी न हो, तो उसमें पानी डालो।

20. यदि उपज्झाय के हृदय में असंतोष उत्पन्न हो गया हो, तो सद्धिविहारिका उसे शांत करे, या किसी अन्य के द्वारा शांत करवाए, तथा धर्म प्रवचन द्वारा उसे संतुष्ट करे। यदि उपज्झाय के मन में दुविधा उत्पन्न हो गई हो, तो सद्धिविहारिका उसे दूर करे, या किसी अन्य के द्वारा शांत करवाए, तथा धर्म प्रवचन द्वारा उसे संतुष्ट करे। यदि उपज्झाय किसी झूठे सिद्धांत को अपना ले, तो सद्धिविहारिका उस पर चर्चा करे, या किसी अन्य से चर्चा करवाए, या धर्म प्रवचन द्वारा (उप्झाय को) संतुष्ट करे।

21. यदि उपज्झाय किसी गंभीर अपराध का दोषी है और उसे परिवास अनुशासन की सजा दी जानी चाहिए, तो सद्धिविहारिका यह सुनिश्चित करे कि संघ उपज्झाय को परिवास अनुशासन की सजा दे। यदि उपज्झाय को अपने दंडात्मक अनुशासन को पुनः प्रारंभ करने की सजा दी जानी चाहिए, तो सद्धिविहारिका यह सुनिश्चित करे कि संघ उपज्झाय को अपने दंडात्मक अनुशासन को पुनः प्रारंभ करने का आदेश दे। यदि उपज्झाय पर मनत्त अनुशासन लागू किया जाना चाहिए, तो सद्धिविहारिका यह सुनिश्चित करे कि संघ उपज्झाय पर मनत्त अनुशासन लागू करे। यदि उपज्झाय का पुनर्वास किया जाना है (जब उसका दंडात्मक अनुशासन विधिवत रूप से संपन्न हो चुका हो), तो सद्धिविहारिका यह सुनिश्चित करे कि संघ उपज्झाय का पुनर्वास करे।

22. यदि संघ उपज्झय के विरुद्ध तज्जनीयकम्मा, निस्साय, पब्बजनीयकम्मा, पतिसरनीयकम्मा या उक्खेपनीयकम्मा द्वारा कार्यवाही करना चाहे, तो सद्धिविहारिका वह सभी प्रयास करे जिससे संघ उपज्झय के विरुद्ध कार्यवाही न करे या कार्यवाही को कम कर दे। या यदि संघ ने उसके, तज्जनीयकम्मा आदि, या उक्खेपनीयकम्मा के विरुद्ध कार्यवाही शुरू कर दी है, तो सद्धिविहारिका वह सभी प्रयास करे जिससे उपज्झय सुचारु व्यवहार करे, विनम्रता से जीवन व्यतीत करे और तपस्या से मुक्ति पाने की आकांक्षा रखे, और संघ अपना निर्णय वापस ले ले।

23. यदि उपज्झाय का वस्त्र धोना आवश्यक हो, तो सद्धिविहारिका उसे धोए या यह सुनिश्चित करे कि उपज्झाय का वस्त्र धुल जाए। यदि उपज्झाय के लिए वस्त्र बनवाना आवश्यक हो, तो सद्धिविहारिका उसे बनवाए या यह सुनिश्चित करे कि उपज्झाय का वस्त्र बन जाए। यदि उपज्झाय के लिए रंग उबालना आवश्यक हो, इत्यादि। यदि उपज्झाय का वस्त्र रंगना आवश्यक हो, इत्यादि। जब वह वस्त्र रंगे, तो उसे ठीक से रंगे और आवश्यकतानुसार उसे पलटता रहे, और रंग टपकना बंद होने से पहले वहां से न जाए।

24. वह अपने उपज्झाय की अनुमति के बिना किसी को भी अपना भिक्षापात्र न दे। वह अपने उपज्झाय की अनुमति के बिना किसी और से भिक्षापात्र स्वीकार न करे। वह अपना वस्त्र किसी और को न दे, इत्यादि। वह किसी और से वस्त्र स्वीकार न करे; वह किसी और को (भिक्षु के लिए आवश्यक) वस्तुएँ न दे; वह किसी और से (ऐसी) वस्तुएँ स्वीकार न करे; वह किसी और के बाल न मुंडवाए; वह किसी और से अपने बाल न मुंडवाए; वह किसी और की सेवा न करे; वह किसी और से सेवा न करवाए; वह किसी और के लिए कार्य न करे; वह किसी और से कार्य न करवाए; वह किसी और के साथ परिचारक के रूप में न जाए; वह किसी और को अपने साथ परिचारक के रूप में न ले जाए; वह किसी के द्वारा भिक्षा में प्राप्त भोजन को विहार (मठ) में न ले जाए; उसे अपने उपज्झाय की अनुमति के बिना किसी के द्वारा विहार में लाए गए भिक्षापात्र का सेवन नहीं करना चाहिए। उसे अपने उपज्झाय की अनुमति के बिना गाँव में प्रवेश नहीं करना चाहिए, न ही श्मशान जाना चाहिए और न ही विदेश यात्रा पर जाना चाहिए। यदि उसका उपज्झाय बीमार हो, तो उसे जीवन भर उसकी सेवा करनी चाहिए और उसके स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।

उपज्या के प्रति कर्तव्यों का अंत।

<<<< पिछला(1.24) । अगला(1.26) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.26

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.25) । अगला(1.27) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-26: विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों के कर्तव्य।

1. हे भिक्षुओं, उपज्झाय को अपने सद्धिविहारिक के प्रति कठोर आचरण करना चाहिए। उसके आचरण के नियम इस प्रकार हैं: हे भिक्षुओं, उपज्झाय को अपने सद्धिविहारिक को शिक्षा देकर, प्रश्न पूछकर, उपदेश देकर और निर्देश देकर आध्यात्मिक सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। यदि उपज्झाय के पास भिक्षापात्र हो और सद्धिविहारिक के पास न हो, तो उपज्झाय को सद्धिविहारिक को भिक्षापात्र देना चाहिए या यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सद्धिविहारिक को भिक्षापात्र मिल जाए। यदि उपज्झाय के पास वस्त्र हो और सद्धिविहारिक के पास न हो, तो उपज्झाय को वस्त्र देना चाहिए, इत्यादि। यदि उपज्झाय के पास भिक्षु के लिए आवश्यक वस्तुएँ हों और सद्धिविहारिक के पास न हों, इत्यादि।

2-6. यदि सद्धिविहारिका बीमार हो, तो (उपाज्जया) सुबह जल्दी उठकर उसे दांत साफ करने वाला डिटर्जेंट और कुल्ला करने के लिए पानी दे। फिर उसके लिए आसन तैयार करे। यदि चावल का दूध उपलब्ध हो (अध्याय 25. 8, 9 से आगे तक के अनुसार), तो उसमें थोड़ा पानी मिलाकर उसे दे। जब उसे लगे कि वह अब लौटने वाला है, तो आसन तैयार करे, उसके पैर धोने के लिए पानी लाए (अध्याय 25. 10-131 से आगे तक के अनुसार)। सद्धिविहारिका को पीने के लिए पानी दे।

7-10. 'यदि वह विहार (मठ) जिसमें सद्धिविहारिका निवास करता है, गंदा है . . . . (आदि, जैसा कि अध्याय 25. 14-22 में है)।

11. यदि सद्धिविहारिक का वस्त्र धोना आवश्यक हो, तो उपज्झाय सद्धिविहारिक से कहे, "आपको अपना वस्त्र इस प्रकार धोना चाहिए," या यह सुनिश्चित करे कि सद्धिविहारिक का वस्त्र धुल जाए। यदि सद्धिविहारिक के लिए वस्त्र बनवाना आवश्यक हो, तो उपज्झाय सद्धिविहारिक से कहे, "आपको वस्त्र इस प्रकार बनवाना चाहिए," या यह सुनिश्चित करे कि सद्धिविहारिक का वस्त्र बन जाए। यदि सद्धिविहारिक के लिए रंग उबालना आवश्यक हो, इत्यादि। यदि सद्धिविहारिक का वस्त्र रंगना आवश्यक हो, तो उपज्झाय बताए, इत्यादि। वस्त्र रंगते समय, उसे ठीक से रंगे, आवश्यकतानुसार पलटता रहे, और रंग टपकना बंद होने से पहले वहां से न जाए। यदि सद्धिविहारिक बीमार हो, तो उसकी जीवन भर देखभाल करे और उसके ठीक होने तक प्रतीक्षा करे।

सद्धिविहारिका के प्रति कर्तव्यों का अंत।

<<<< पिछला(1.25) । अगला(1.27) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.27

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.26) । अगला(1.28) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-27: विद्यार्थियों को वापस भेजना और उनकी क्षमा।

1. उस समय सद्धिविहारिक भिक्षुओं ने अपने उपाज्जाओं के प्रति उचित आचरण नहीं किया। मध्यम भिक्षु व्यथित हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित होकर बोले, 'सद्धिविहारिक भिक्षु अपने उपाज्जाओं के प्रति उचित आचरण क्यों नहीं करते?' इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

(तब बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा: 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि सद्धिविहारिक अपने उपज्झायों के प्रति उचित आचरण नहीं करते?' (उन्होंने उत्तर दिया): 'जी, यह सच है।' तब महान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, सद्धिविहारिक अपने उपज्झायों के प्रति उचित आचरण कैसे नहीं कर सकते?' उन्हें फटकारने और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, सद्धिविहारिक को अपने उपज्झायों के प्रति उचित आचरण करना चाहिए। जो इसका पालन नहीं करता, वह दुक्कत अपराध का दोषी है।'

2. इसके बावजूद उन्होंने उचित आचरण नहीं किया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि जो साध्वी उचित आचरण का पालन नहीं करता, उसे विमुख कर दिया जाए। हे भिक्षुओं, उसे इस प्रकार विमुख किया जाना चाहिए: (उपाज्जया इस प्रकार है): "मैं तुम्हें विमुख करता हूँ," या, "यहाँ वापस मत आना," या, "अपना भिक्षापात्र और वस्त्र ले जाओ," या, "मैं अब तुम्हारी सेवा नहीं लूँगा।" चाहे वह इसे हावभाव से व्यक्त करे, या शब्दों से, या हावभाव और शब्दों दोनों से, साध्वी विहारी को विमुख कर दिया गया है। यदि वह इसे न तो हावभाव से, न शब्दों से, न हावभाव और शब्दों दोनों से व्यक्त करता है, तो साध्वी विहारी को विमुख नहीं किया गया है।

3. उस समय जिन सद्धिविहारिकों को निष्कासित कर दिया गया था, उन्होंने (अपने उपज्झयों के लिए) क्षमा नहीं मांगी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि (जिस सद्धिविहारिक को अस्वीकार कर दिया गया हो) उसे (अपने उपज्जय के लिए) क्षमा मांगनी चाहिए।'

तब भी उन्होंने क्षमा नहीं मांगी। उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि (सद्धिविहारिक) जिसे निष्कासित कर दिया गया हो, वह (अपने उपज्जय के लिए) क्षमा मांगे। यदि वह क्षमा नहीं मांगता, तो यह दुक्कत अपराध है।'

4. उस समय उपज्झायों ने, जब सद्धिविहारिकों ने क्षमा मांगी, तो उन्हें क्षमा नहीं किया। उन्होंने कहा, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, मैं क्षमा करने का निर्देश देता हूँ।'

इसके बावजूद उन्होंने क्षमा नहीं की। सद्धिविहारिक या तो चले गए, या संसार में लौट गए, या दूसरे संप्रदायों में शामिल हो गए। उन्होंने बताया, इत्यादि।

जो क्षमा मांगे, उसे क्षमा करने से इनकार नहीं करना चाहिए। जो क्षमा नहीं करता, वह दुक्कटा अपराध का दोषी है।

5. उस समय उपज्झाय उचित आचरण करने वाले (सद्धिविहारिक) को दूर भगा देते थे, और जो आचरण नहीं करता था उसे दूर नहीं भगाते थे। वे कहते थे, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, जो उचित आचरण का पालन करते हैं, उन्हें न तो विमुख किया जाए। जो उन्हें विमुख करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है। और हे भिक्षुओं, जो उचित आचरण का पालन नहीं करते, उन्हें न तो विमुख किया जाए। जो उन्हें विमुख नहीं करता, वह दुक्कता का अपराध करता है।

6. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक से विमुख हो जाना चाहिए: जब उसे अपने उपज्या के प्रति गहरा स्नेह, उसके प्रति गहरी रुचि, लज्जा, आदर और भक्ति का भाव न हो। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक से विमुख हो जाना चाहिए।

हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक को विमुख नहीं करना चाहिए: जब वह अपने उपज्झाय के प्रति अत्यधिक स्नेह रखता हो, उसके प्रति अत्यधिक झुकाव रखता हो, इत्यादि। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक को विमुख नहीं करना चाहिए।

7. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक को विमुख करना उचित है: जब वह अत्यधिक स्नेह न रखता हो, इत्यादि। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में सद्धिविहारिक को विमुख करना उचित है।

'हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में यह उचित नहीं है, इत्यादि।'

8. हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में, जो उपज्या सद्धिविहारिक को विमुख नहीं करता, वह (कानून का) उल्लंघन करता है, और जो उपज्या उसे विमुख करता है, वह उल्लंघन नहीं करता: जब उसे अत्यधिक स्नेह न हो, इत्यादि। इन पाँच मामलों में, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में, जो उपज्या किसी सद्धिविहारिक को विमुख कर देता है, वह (कानून का) उल्लंघन करता है, और जो उपज्या उसे विमुख नहीं करता, वह उल्लंघन नहीं करता, इत्यादि।'

<<<< पिछला(1.26) | अगला(1.28) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.28

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.27) | अगला(1.29) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-28: एक चम्मच दान के बदले भी दीक्षा; दीक्षा नियमों का संशोधन।

1. उस समय एक ब्राह्मण (पुजारी) भिक्षुओं के पास आया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा देने का अनुरोध किया। भिक्षु उसे दीक्षा देने के लिए तैयार नहीं थे। भिक्षुओं से पब्बज्ज दीक्षा न मिलने के कारण वह दुर्बल, दुबला-पतला, बदरंग और अधिक से अधिक पीला पड़ने लगा, और उसके पूरे शरीर पर नसें दिखाई देने लगीं।

और भगवान बुद्ध ने उस ब्राह्मण को देखा, जो दुबला-पतला हो गया था। जब उन्होंने उसे देखा, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, यह ब्राह्मण इतना दुबला-पतला क्यों हो गया है?'

'हे भगवान, यह ब्राह्मण भिक्षुओं के पास आया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा (आदि, जैसा ऊपर है, नीचे तक) मांगी, और उसके पूरे शरीर पर नसें दिखाई देने लगीं।'

2. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, इस ब्राह्मण के बारे में किसे कुछ याद है?'

जब उन्होंने ऐसा कहा, तब पूज्य सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मुझे इस ब्राह्मण (पुजारी) के बारे में कुछ याद आ रहा है।'

'और सारिपुत्त, तुम्हें इस ब्राह्मण के बारे में क्या याद है?'

'हे प्रभु, एक दिन जब मैं राजगृह से भिक्षा मांगने गया, तो उस ब्राह्मण ने मुझे एक चम्मच भोजन देने का आदेश दिया; हे प्रभु, मुझे उस ब्राह्मण के बारे में यही याद है।'

3. 'अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त; हे सारिपुत्त, पुण्य पुरुष कृतज्ञ होते हैं और अपने प्रति किए गए कार्यों को याद रखते हैं। इसलिए, हे सारिपुत्त, उस ब्राह्मण को पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करें।'

'हे प्रभु, मैं इस ब्राह्मण को पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षाएँ कैसे प्रदान करूँ?'

तब भगवान बुद्ध ने इस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं आज से शरण लेने की त्रिविध घोषणा द्वारा दी जाने वाली उपसम्पदा दीक्षा को समाप्त करता हूँ, जिसे मैंने निर्धारित किया था। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्धारित करता हूँ कि आप संघ की एक औपचारिक विधि द्वारा उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करें, जिसमें घोषणा (नट्टी) के बाद तीन प्रश्न पूछे जाते हैं।'

4. हे भिक्षुओं, आपको उपसम्पदा दीक्षा इस प्रकार प्रदान करनी चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नट्टी (प्रस्ताव) की घोषणा करे:

'हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। यह व्यक्ति एनएन, आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है (अर्थात आदरणीय एनएन को अपना उपज्झाय बनाकर)। यदि संघ तैयार है, तो संघ एनएन को उपज्झाय बनाकर उपसंपदा दीक्षा प्रदान करे। यही प्रस्ताव है।'

5, 6. 'हे आदरणीय महोदय, संघ के सभी सदस्यों से निवेदन है कि वे मेरी बात सुनें। यह व्यक्ति एनएन आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। संघ एनएन को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करता है, जिसमें एनएन उपज्झाय होंगे। आदरणीय भाइयों में से जो भी एनएन को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करने के पक्ष में हैं, वे मौन रहें, और जो इसके पक्ष में नहीं हैं, वे बोलें।'

और मैं दूसरी बार तुमसे इस प्रकार कहता हूँ: संघ (आदि, पहले की तरह) को रहने दो।

और मैं तीसरी बार तुमसे यही कहता हूँ: संघ, इत्यादि।

'एनएन को संघ से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त हुई है, जिसमें एनएन उपज्झाय हैं। संघ इसके पक्ष में है, इसलिए वह मौन है। मेरी समझ यही है।'

<<<< पिछला(1.27) | अगला(1.29) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.29

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.28) | अगला (1.30) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-29: दीक्षा केवल अनुरोध किए जाने पर ही दी जानी चाहिए।

1. उस समय एक भिक्षु ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद दुराचार का सहारा लिया। भिक्षुओं ने उससे कहा: 'मित्र, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए; यह उचित नहीं है।'

उन्होंने उत्तर दिया: 'मैंने आपसे कभी यह नहीं कहा, महोदय, कि "मुझे उपसंपदा दीक्षा प्रदान करें।" आपने बिना पूछे मुझे दीक्षा क्यों दी?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, जब तक किसी से ऐसा करने का अनुरोध न किया जाए, तब तक उसे दीक्षा न दें। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप केवल अनुरोध किए जाने के बाद ही दीक्षा दें।

2. और (भिक्षु से) इस प्रकार प्रार्थना की जानी चाहिए: जो उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह संघ में जाए, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार धारण करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, भिक्षुओं के चरणों को सिर झुकाकर प्रणाम करे, उकड़ू बैठकर, हाथ जोड़कर कहे: "हे पूज्यवरों, मैं संघ से उपसंपदा दीक्षा के लिए प्रार्थना करता/करती हूँ; हे पूज्यवरों, कृपा करके संघ मुझे (पापमय संसार से) बाहर निकाल दे।" और फिर दूसरी बार, इत्यादि; और तीसरी बार भी, इत्यादि प्रार्थना करे।

3. 'तब एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें। यह व्यक्ति एनएन आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है; एनएन संघ से उपसंपदा दीक्षा के लिए निवेदन करता है, जिसमें एनएन उपज्झाय हो। यदि संघ तैयार है, इत्यादि।"

<<<< पिछला (1.28) | अगला (1.30) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.30

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.29) | अगला(1.31) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-30: एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसने केवल पेट भरने के लिए संगठन में प्रवेश किया; चार संसाधन।

1. उस समय राजगृह में यह व्यवस्था थी कि भिक्षुओं को विभिन्न धनी उपासकों के घरों में बारी-बारी से उत्तम भोजन प्राप्त होगा। अब (एक दिन) एक ब्राह्मण ने सोचा: 'सचमुच, इन शाक्यपुत्र भिक्षुओं के नियम और उनका जीवन कितना सुखमय है; उन्हें अच्छा भोजन मिलता है और वे हवा से सुरक्षित पलंगों पर सोते हैं। यदि मैं शाक्यपुत्र भिक्षुओं के बीच धम्म जीवन अपना लूँ तो क्या होगा?' तब यह ब्राह्मण (पुजारी) भिक्षुओं के पास गया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा देने का अनुरोध किया; भिक्षुओं ने उसे पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की।

2. जब उनका दीक्षा संस्कार हो गया, तो (धनी उपासकों के साथ) लगातार भोजन करने का सिलसिला समाप्त हो गया। भिक्षुओं ने उनसे कहा: 'आओ, मित्र, अब हम भिक्षा मांगने चलें।'

उन्होंने उत्तर दिया: 'मैंने भिक्षा मांगने के उद्देश्य से धम्म जीवन नहीं अपनाया है; यदि आप मुझे (भोजन) देंगे, तो मैं खाऊंगा; यदि आप नहीं देंगे, तो मैं संसार में लौट जाऊंगा।'

(भिक्षुओं ने कहा): 'क्या, मित्र! क्या तुमने सचमुच अपने पेट की खातिर धम्म जीवन को अपनाया है?'

'हां दोस्तों।'

3. मध्यम भिक्षु नाराज हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: 'इतने सुशिक्षित सिद्धांत और अनुशासन में कोई भिक्षु अपने पेट भरने के लिए धम्म जीवन को कैसे अपना सकता है?'

इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

(बुद्ध ने कहा): 'हे भिक्षु, क्या यह सच है कि तुमने अपने पेट की खातिर धम्म जीवन को अपनाया है?'

(उसने उत्तर दिया): 'यह सच है, प्रभु।'

तब महान बुद्ध ने उस भिक्षु को फटकारा: 'हे मूर्ख, तुम अपने पेट भरने के लिए इतने सुशिक्षित सिद्धांत और अनुशासन में धम्म जीवन को कैसे अपना सकते हो? हे मूर्ख, यह न तो धर्मान्तरितों को धर्मान्तरित करने और न ही धर्मान्तरितों की संख्या बढ़ाने के लिए उचित है।'

उसे फटकार लगाने और धर्मोपदेश देने के बाद, उसने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

4. 'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि जो कोई (भिक्षु को) उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करे, वह उसे चारों संसाधनों के बारे में बताए।

'धम्ममय जीवन का आधार भिक्षा में प्राप्त भोजन के अंश हैं। इसलिए आपको जीवन भर इसी प्रकार जीने का प्रयास करना चाहिए। संघ को दिया जाने वाला भोजन, कुछ व्यक्तियों को दिया जाने वाला भोजन, निमंत्रणों पर दिया जाने वाला भोजन, टिकट द्वारा वितरित भोजन, प्रत्येक पखवाड़े, प्रत्येक उपोसथ दिवस (अर्थात प्रत्येक पखवाड़े का अंतिम दिन) या प्रत्येक पखवाड़े के पहले दिन दिया जाने वाला भोजन अतिरिक्त भत्ते हैं।'

'धम्ममय जीवन का वस्त्र कूड़े के ढेर से उठाए गए चिथड़ों से बना होता है। इसलिए आपको जीवन भर इसी प्रकार जीने का प्रयास करना चाहिए। लिनन, सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, मोटा कपड़ा, भांग का कपड़ा अतिरिक्त उपयोग हैं।'

'धम्ममय जीवन का मूल आधार वृक्ष की गोद में निवास करना है। इसलिए आपको जीवन भर इसी तरह जीने का प्रयास करना चाहिए। विहार (मठ), अद्धयोग, बहुमंजिला आवास, अटारी, गुफाएँ अतिरिक्त सुविधाएं हैं।'

'धम्ममय जीवन में मूत्र का अपघटन औषधि के रूप में होता है। इसलिए आपको जीवन भर इसे जीने का प्रयास करना चाहिए। घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़ अतिरिक्त उपयोग हैं।'

यहां पांचवां भानवर समाप्त होता है, जिसमें उपज्याओं के प्रति कर्तव्यों का वर्णन है।

<<<< पिछला(1.29) । अगला(1.31) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.31

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.30) । अगला(1.32) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-31: दस वर्ष पूर्ण कर चुके विद्वान भिक्षुओं द्वारा दी जाने वाली दीक्षा।

1. उस समय एक युवक भिक्षुओं के पास आया और उनसे दीक्षा लेने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने दीक्षा से पहले ही उसे (चार) संसाधनों के बारे में बताया। तब उसने कहा, 'हे पूज्यवर, यदि आपने मुझे दीक्षा के बाद संसाधनों के बारे में बताया होता, तो मैं धर्म जीवन में दृढ़ रहता; परन्तु अब, हे पूज्यवर, मैं दीक्षा नहीं लूंगा; संसाधन मुझे घृणित और अप्रिय लगते हैं।'

भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, दीक्षा से पहले उम्मीदवारों को संसाधन नहीं बताने चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप नवदीक्षित भिक्षुओं को उनकी उपसम्पदा के तुरंत बाद संसाधन बताएँ।'

2. उस समय कुछ भिक्षुओं ने दो या तीन भिक्षुओं के एक अध्याय के साथ उपसम्पदा सेवा की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, दस से कम भिक्षुओं के समूह के समक्ष उपसम्पदा दीक्षा ग्रहण न करें। जो कम भिक्षुओं के साथ उपसम्पदा सेवा करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं आपको दस या दस से अधिक भिक्षुओं के समूह के साथ उपसम्पदा सेवा करने का निर्देश देता हूँ।

3. उस समय कुछ भिक्षु अपने सद्धिविहारिकों को अपनी उपसम्पदा के एक या दो वर्ष बाद उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करते थे। इसी प्रकार पूज्य उपसेना वांगंतपुत्त ने भी अपनी उपसम्पदा के एक वर्ष बाद अपने एक सद्धिविहारिक को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की। जब उन्होंने वर्षावास का निवास समाप्त किया, अपनी उपसम्पदा के दो वर्ष बाद, वे अपने सद्धिविहारिक के साथ, जिसने अपनी उपसम्पदा के बाद

एक वर्ष पूरा कर लिया था, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए।

4. अब महान बुद्धों की यह प्रथा है कि वे आने वाले भिक्षुओं का अभिवादन करते हैं। भगवान बुद्ध ने आदरणीय उपसेना वांगंतपुत्त से कहा, 'हे भिक्षु, क्या आपका जीवन कुशल मंगल है? क्या आपको जीवनयापन के लिए पर्याप्त धन मिल रहा है? क्या आपने अपनी यात्रा बिना अधिक थके पूरी की है?'

'हे प्रभु, हमारी स्थिति भली-भांति है; हमें जीवनयापन के लिए पर्याप्त धन-संपत्ति प्राप्त हो रही है, और हमने अपनी यात्रा बिना अधिक परिश्रम के पूरी कर ली है।' तथागत कभी-कभी अपने ज्ञान के विषय में प्रश्न पूछते हैं; कभी-कभी वे अपने ज्ञान के विषय में प्रश्न नहीं पूछते। वे सही समय पर प्रश्न पूछना जानते हैं और सही समय पर प्रश्न न पूछना भी जानते हैं। तथागत अर्थपूर्ण प्रश्न पूछते हैं, निरर्थक नहीं; निरर्थक प्रश्नों के लिए तथागत अनुत्तरदायी होते हैं। महान बुद्ध भिक्षुओं से दो उद्देश्यों से प्रश्न पूछते हैं: एक जब वे उपदेश देना चाहते हैं, और दूसरा जब वे अपने शिष्यों के लिए आचरण नियम स्थापित करना चाहते हैं।

5. और भगवान बुद्ध ने पूज्य उपनंद वांगंतपुत्त से कहा: 'हे भिक्षु, आपने अपनी उपसम्पदा के बाद कितने वर्ष पूरे कर लिए हैं?'

'दो साल, प्रभु।'

'और इस भिक्षु ने कितने वर्ष पूरे किए हैं?'

'एक साल, प्रभु।'

'इस भिक्षु का आपसे क्या संबंध है?'

'हे प्रभु, वही मेरे सद्धिविहारिका हैं।'

तब महान बुद्ध ने उसे फटकारा: 'हे मूर्ख, यह अनुचित है, अशोभनीय है, अनुपयुक्त है, एक भिक्षु के योग्य नहीं है, अस्वीकार्य है और इससे बचना चाहिए। हे मूर्ख, जो दूसरों से उपदेश और शिक्षा प्राप्त करने के योग्य है, वह स्वयं को दूसरे भिक्षु को उपदेश और शिक्षा देने के योग्य कैसे समझता है? हे मूर्ख, तुमने बहुत जल्दी अनुयायी एकत्र करने की महत्वाकांक्षा पाल ली है। यह उचित नहीं है (आदि: जैसा कि अध्याय 30.3 में है)। हे भिक्षुओं, दस वर्ष पूर्ण किए बिना कोई भी उपसम्पदा दीक्षा न दे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि केवल वही व्यक्ति उपसम्पदा दीक्षा दे सकता है जिसने दस वर्ष या उससे अधिक पूर्ण किए हों।'

6. उस समय अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु (जो कहते थे), 'हमने उपसंपदा प्राप्त किए दस वर्ष पूरे कर लिए हैं, हमने दस वर्ष पूरे कर लिए हैं,' उपसंपदा दीक्षा प्रदान करते थे; (इस प्रकार) अज्ञानी उपज्झा और चतुर सद्धिविहारिक पाए गए; अनपढ़ उपज्झा और विद्वान सद्धिविहारिक पाए गए; अल्पज्ञान वाले उपज्झा और महानज्ञान वाले सद्धिविहारिक पाए गए; मूर्ख उपज्झा और ज्ञानी सद्धिविहारिक पाए गए। और एक भिक्षु जो पहले एक तित्तीय संप्रदाय का था, जब उसके उपज्झा ने धम्म के अनुसार (कुछ अपराधों पर) उससे आपत्ति जताई, तो उसने अपने उपज्झा को (तर्क से) चुप करा दिया और उसी तित्तीय संप्रदाय में लौट गया।

7. मध्यम भिक्षु नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'ये अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु उपसम्पदा दीक्षा कैसे दे सकते हैं (यह कहते हुए); "हमने दस वर्ष पूरे कर लिए हैं, हमने दस वर्ष पूरे कर लिए हैं?" (इस प्रकार) अज्ञानी उपज्झय और चतुर सद्धिविहारिक पाए जाते हैं (आदि), मूर्ख उपज्झय और बुद्धिमान सद्धिविहारिक पाए जाते हैं।'

इन भिक्षुओं ने बताया, इत्यादि।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, इत्यादि?'

'यह सच है, प्रभु।'

8. तब महान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग उपसम्पदा दीक्षा कैसे दे सकते हैं, यह कहते हुए कि "हमारे पास है, इत्यादि?" (इस प्रकार) अज्ञानी उपज्झय पाए जाते हैं, इत्यादि। हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने और परिवर्तितों की संख्या बढ़ाने के लिए उचित नहीं है।'

उन भिक्षुओं को फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, कोई भी अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु उपसम्पदा दीक्षा न दे। यदि वह ऐसा करता है, तो वह दुक्कत अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि केवल एक विद्वान, योग्य भिक्षु, जिसने दस वर्ष या उससे अधिक का अनुभव किया हो, उपसम्पदा दीक्षा दे सकता है।'

<<<< पिछला(1.30) । अगला(1.32) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.32
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.31) । अगला(1.33) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-32: आचार्यों (शिक्षकों) की नियुक्ति।

1. उस समय कुछ भिक्षु जिनके उपज्हय चले गए थे, या संसार में लौट आए थे, या मर गए थे, या किसी (विद्रोही) गुट में शामिल हो गए थे, क्योंकि उनके पास कोई आचार्य (शिक्षक) नहीं थे और उन्हें कोई उपदेश और निर्देश प्राप्त नहीं हुआ था, वे अनुचित अंतर्वस्त्र और आच्छादित वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते थे (आदि, जैसा कि अध्याय 25. 1-6 में नीचे दिया गया है): इस प्रकार उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया: 'मैं यह निर्देश देता हूँ, हे भिक्षुओं, (कि युवा भिक्षु) एक आचार्य (शिक्षक) का चयन करें।

हे भिक्षुओं, आचार्य (शिक्षक) को अपने शिष्य को पुत्र के समान समझना चाहिए; और शिष्य को आचार्य (शिक्षक) को पिता के समान समझना चाहिए। इस प्रकार, ये दोनों परस्पर आदर, विश्वास और जीवन के सहभागिता से जुड़कर इस सिद्धांत और अनुशासन में प्रगति करेंगे, उन्नति करेंगे और उच्च स्तर तक पहुंचेंगे।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम (पहले) दस वर्ष आचार्य (शिक्षक) पर निर्भर रहकर जीवन व्यतीत करो; जो अपना दसवाँ वर्ष पूरा कर ले वह स्वयं उपदेश दे सकता है।'

2. हे भिक्षुओं, अंतेवासिका को अपने आचार्य का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए: उन्हें अपना ऊपरी वस्त्र इस प्रकार धारण करना चाहिए कि एक कंधा ढका रहे, आचार्य के चरणों को प्रणाम करना चाहिए, उकड़ू बैठकर अपने हाथ जोड़कर कहना चाहिए: "हे आदरणीय गुरु, आप ही मेरे आचार्य बनें, मैं आप पर निर्भर रहूंगा।" (यह सूत्र तीन बार दोहराया जाता है।)

(यदि दूसरे उत्तर): "ठीक है" (आदि, जैसा कि अध्याय 25.7 में है)।

3. 'अंतवासिका, हे भिक्षुओं, अपने आचार्य (शिक्षक) के प्रति कठोर आचरण का पालन करना चाहिए' (आदि, जैसा कि अध्याय 25. 8-24 में है)।

आचार्य (शिक्षक) के प्रति कर्तव्यों की समाप्ति।

<<<< पिछला(1.31) । अगला(1.33) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.33
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.32) । अगला(1.34) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-33: आचार्यों के लिए कठोर आचरण।

'आचार्य (शिक्षक), हे भिक्षुओं, अपने अंतिवसिका के प्रति कठोर आचरण का पालन करना चाहिए' (आदि, जैसा कि अध्याय 26 में है)।

अंतेवासिका के प्रति कर्तव्यों का अंत।

छठे भानवरा का समापन।

<<<< पिछला(1.32) | अगला(1.34) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.34
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.33) | अगला(1.35) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-34: शिष्यों के लिए उचित आचरण।

उस समय अंतेवासिकाओं ने अपने आचार्यों (शिक्षकों) के प्रति उचित आचरण नहीं किया (आदि, जैसा कि अध्याय 27. 1-8 में है)।

<<<< पिछला(1.33) | अगला(1.35) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.35
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.34) | अगला(1.36) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-35: केवल विद्वान और योग्य भिक्षुओं को ही शिष्य रखने चाहिए।

1, 2. उस समय अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षुओं ने (जिन्होंने कहा), 'हमने (अपनी उपसम्पदा के बाद) दस वर्ष पूरे कर लिए हैं, हमने दस वर्ष पूरे कर लिए हैं,' निस्साया (अर्थात उन्होंने युवा भिक्षुओं को अपने अंतिवसिक के रूप में स्वीकार किया); (इस प्रकार) अज्ञानी आचार्य (शिक्षक) और चतुर अंतिवसिक पाए गए; अनपढ़ आचार्य (शिक्षक) और विद्वान अंतिवसिक पाए गए; कम ज्ञान वाले आचार्य (शिक्षक) और अधिक ज्ञान वाले अंतिवसिक पाए गए; मूर्ख आचार्य (शिक्षक) और ज्ञानी अंतिवसिक पाए गए। मध्यम भिक्षु नाराज हो गए (आदि, जैसा कि अध्याय 31, 7, 8 में है)।

हे भिक्षुओं, अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु को निस्साय नहीं देना चाहिए। ऐसा करने पर वह दुक्कत अपराध का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि केवल दस वर्ष या उससे अधिक का अनुभव रखने वाला विद्वान, योग्य भिक्षु ही निस्साय दे सकता है।

<<<< पिछला(1.34) | अगला(1.36) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.36
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.35) | अगला(1.37) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-36: शिष्यत्व का अंत; केवल सिद्ध पुरुष ही दीक्षा प्रदान कर सकते हैं

1. उस समय जिन भिक्षुओं के आचार्य (शिक्षक) और उपज्झाय चले गए थे, या संसार में लौट गए थे, या मर गए थे, या किसी (विद्रोही) गुट में शामिल हो गए थे, वे अपने निस्सयों के समापन के नियमों से परिचित नहीं थे। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, (सद्धिविहारिक और) उपज्झय के बीच निस्साय के समाप्त होने के पाँच कारण हैं: जब उपज्झय चला जाता है, या संसार में लौट जाता है, या मर जाता है, या किसी (विद्रोही) गुट में शामिल हो जाता है; पाँचवाँ कारण उपज्झय द्वारा सद्धिविहारिक को दिया गया आदेश है। हे भिक्षुओं, ये (सद्धिविहारिक और) उपज्झय के बीच निस्साय के समाप्त होने के पाँच कारण हैं।

हे भिक्षुओं, अंतेवासिका और आचार्य (गुरु) के बीच निस्साय के समाप्त होने के छह कारण हैं: आचार्य (गुरु) के चले जाने पर, इत्यादि; पाँचवाँ कारण आचार्य (गुरु) द्वारा अंतेवासिका को दिए गए आदेश का है; या (छठा) जब आचार्य (गुरु) और उपज्झाय एक ही स्थान पर एकत्रित होते हैं। हे भिक्षुओं, ये अंतेवासिका और आचार्य (गुरु) के बीच निस्साय के समाप्त होने के छह कारण हैं।

2. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में भिक्षु को उपसम्पदा दीक्षा नहीं देनी चाहिए, न ही निस्साया देना चाहिए और न ही किसी नौसिखिए को दीक्षा देनी चाहिए: जब वह नैतिक आचरण में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले; या आत्म-एकाग्रता में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले; या ज्ञान में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले; या मोक्ष में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले; या मोक्ष के ज्ञान और अंतर्दृष्टि में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में भिक्षु को उपसम्पदा दीक्षा नहीं देनी चाहिए, न ही निस्साया देना चाहिए और न ही किसी नौसिखिए को दीक्षा देनी चाहिए।

3. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में एक भिक्षु उपसम्पदा दीक्षा प्रदान कर सकता है, निस्सय दे सकता है और किसी नौसिखिए को दीक्षा दे सकता है: जब वह नैतिक आचरण आदि से संबंधित सभी मामलों में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में एक भिक्षु ऐसा कर सकता है, आदि।

4. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच मामलों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह स्वयं नैतिक आचरणों में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले और दूसरों को नैतिक आचरणों में पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने में सहायता न कर सके; या जब वह स्वयं आत्म-एकाग्रता में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले और दूसरों को आत्म-एकाग्रता में पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने में सहायता न कर सके, इत्यादि।

5. 'हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में एक भिक्षु परामर्श दे सकता है, इत्यादि: जब वह स्वयं नैतिक आचरणों में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है और दूसरों को भी पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने में सहायता करने में सक्षम होता है, इत्यादि।

6. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच स्थितियों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह अविश्वासी हो, निर्लज्ज हो, पाप से भयभीत न हो, आलसी हो, और विस्मृत हो। इन पाँच स्थितियों में, इत्यादि।

7. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में भिक्षु परामर्श कर सकता है, इत्यादि: जब वह विश्वासी हो, विनम्र हो, पाप से भयभीत हो, परिश्रमी हो और उसकी स्मृति प्रबल हो। इन पाँच स्थितियों में, इत्यादि।

8. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच मामलों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए: जब वह नैतिक आचरण में दोषी हो; या जब वह आचरण के नियमों में उल्लंघन करता हो; या जब वह विधर्म में दोषी हो; या जब वह अज्ञानी हो; या जब वह मूर्ख हो। इन पाँच मामलों में, आदि।

9. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में भिक्षु परामर्श कर सकता है: जब नैतिक आचरण के संबंध में वह नैतिक अपराधों का दोषी न हो; जब वह विद्वान हो; और जब वह बुद्धिमान हो। इन पाँच स्थितियों में, आदि।

10. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच स्थितियों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह किसी बीमार अंतिवसिक या सद्धिविहारिक की देखभाल करने या करवाने में असमर्थ हो; जब उसके मन में धम्म जीवन से असंतोष उत्पन्न हो गया हो; जब उसके मन में उत्पन्न अंतरात्मा के संदेहों को धम्म के अनुसार दूर करने या दूर करवाने के लिए; जब वह अपराध का ज्ञान न रखता हो; या अपराध के प्रायश्चित का तरीका न जानता हो। इन पाँच स्थितियों में, इत्यादि।

11. हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में भिक्षु परामर्श कर सकता है, इत्यादि: जब वह सक्षम हो (आदि, तक): जब वह जानता हो कि अपराध क्या है; और जानता हो कि अपराध का प्रायश्चित कैसे किया जाता है। इन पाँच मामलों में, इत्यादि।

12. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच मामलों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह किसी अंतवासिक या सद्धिविहारिक को उचित आचरण के उपदेशों में प्रशिक्षित करने, नैतिकता के मूल तत्वों में शिक्षित करने, धम्म के विषयों में निर्देश देने, विनय के विषयों में निर्देश देने, या किसी गलत मत पर धम्म के अनुसार चर्चा करने या किसी अन्य से चर्चा करवाने में सक्षम न हो। इन पाँच मामलों में, इत्यादि।

13. 'हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में भिक्षु परामर्श कर सकता है, इत्यादि: जब वह सक्षम हो, इत्यादि।

14. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच मामलों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह यह न जानता हो कि अपराध क्या है; या यह न जानता हो कि अपराध क्या नहीं है; या यह न जानता हो कि हल्का अपराध क्या है; या यह न जानता हो कि गंभीर अपराध क्या है; जब दोनों पतिमोक्खों का संपूर्ण ज्ञान, उनके सभी विभाजनों और उनके संपूर्ण क्रम सहित, और प्रत्येक नियम के अनुसार और प्रत्येक नियम के प्रत्येक भाग के अनुसार संपूर्ण विवेचना सहित, उसे पूर्णतः ज्ञात न हो। इन पाँच मामलों में, इत्यादि।

15. 'हे भिक्षुओं, पाँच मामलों में एक भिक्षु परामर्श कर सकता है, इत्यादि: जब वह जानता हो, इत्यादि।

16. हे भिक्षुओं, अन्य पाँच मामलों में भी भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि: जब वह यह न जानता हो कि अपराध क्या है; या यह न जानता हो कि अपराध क्या नहीं है; या यह न जानता हो कि हल्का अपराध क्या है; या यह न जानता हो कि गंभीर अपराध क्या है; या जब उसने (उपसंपदा के बाद) दसवाँ वर्ष पूरा न किया हो। इन पाँच मामलों में, इत्यादि।

17. 'हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में भिक्षु परामर्श कर सकता है, इत्यादि: जब वह जानता हो (आदि, यहाँ तक); जब उसने दस वर्ष या दस वर्ष से अधिक (अपनी उपसंपदा के बाद) पूर्ण कर लिए हों। इन पाँच स्थितियों में, इत्यादि।'

उपसम्पदा की स्वीकार्यता से संबंधित सोलह गुना पांच मामलों का अंत।

<<<< पिछला(1.35) | अगला(1.37) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.37
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.36) | अगला(1.38) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-37: स्वीकार्यता।

'हे भिक्षुओं, छह मामलों में भिक्षु को परामर्श नहीं करना चाहिए, इत्यादि।'

उपसम्पदा की स्वीकार्यता से संबंधित सोलह गुना छह मामलों का अंत।

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-38: दीक्षा - वे जो अन्य स्कूलों से संबंधित थे और वे जिन्होंने अवज्ञा की।

1. उस समय वह भिक्षु, जो पहले एक तित्तीय संप्रदाय का था, जिसने अपने उपज्जय को (तर्क से) चुप करा दिया था, जब उसने धम्म के अनुसार अवज्ञा और विरोध किया था, और उसी तित्तीय संप्रदाय में लौट आया था, फिर वापस आया और भिक्षुओं से उपसंपदा दीक्षा के लिए अनुरोध किया। भिक्षुओं ने बताया, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, वह भिक्षु जो पूर्व में तित्तीय संप्रदाय का सदस्य था और जिसने धर्म के अनुसार अवज्ञा और विरोध करने पर अपना उपज्जया त्याग दिया और उसी तित्तीय संप्रदाय में लौट आया है, उसे उपसंपदा दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। हे भिक्षुओं, अन्य व्यक्तियों पर, जो पूर्व में तित्तीय संप्रदाय के सदस्य रहे हैं और इस सिद्धांत और अनुशासन में पब्बज्जा और उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, आपको चार महीने का परिवास (परीक्षण अवधि) लगाना चाहिए।

2. हे भिक्षुओं, आपको यह नियम इस प्रकार लागू करना चाहिए: जो दीक्षा लेना चाहता है, वह पहले अपने बाल और दाढ़ी कटवा ले; पीले वस्त्र धारण करे, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, भिक्षुओं के चरणों को (सिर झुकाकर) प्रणाम करे और उकड़ू बैठ जाए; फिर अपने हाथ जोड़कर कहे: "मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, मैं धम्म की शरण लेता हूँ, मैं संघ की शरण लेता हूँ। और दूसरी बार, इत्यादि। और तीसरी बार मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, तीसरी बार मैं धम्म की शरण लेता हूँ, तीसरी बार मैं संघ की शरण लेता हूँ।"

3. हे भिक्षुओं, जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय के रहे हों, वे संघ के पास आएं, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार धारण करें कि एक कंधा ढका रहे, भिक्षुओं के चरणों को (सिर झुकाकर) प्रणाम करें, उकड़ू बैठकर, हाथ जोड़कर कहें: "मैं, आदरणीय भिक्षुओं, जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय के रहे हों, इस सिद्धांत और अनुशासन में उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता/चाहती हूं, और संघ से, आदरणीय भिक्षुओं, चार माह के प्रवास का अनुरोध करता/करती हूं।" वे इस प्रकार दूसरी बार भी अनुरोध करें। वे इस प्रकार तीसरी बार भी अनुरोध करें।

तब एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें, यह व्यक्ति एन, एन, जो पूर्व में एक तित्तीय संप्रदाय से संबंधित था, इस सिद्धांत और अनुशासन में उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। वह संघ से चार महीने के परिवास का अनुरोध करता है। यदि संघ तैयार है, तो संघ पूर्व में एक तित्तीय संप्रदाय से संबंधित एन एन पर चार महीने का परिवास लागू करे। यही नत्ति (प्रस्ताव) है।"

4. "हे आदरणीय महोदय, संघ के सभी सदस्यों से निवेदन है कि यह व्यक्ति एनएन, जिसके पास आदि हैं, संघ से चार महीने के परिवास का अनुरोध करता है। संघ एनएन पर, जो पूर्व में एक तित्तीय संप्रदाय से संबंधित था, चार महीने का परिवास लागू करता है। आदरणीय भाइयों में से जो भी एनएन पर, जो पूर्व में एक तित्तीय संप्रदाय से संबंधित था, चार महीने का परिवास लागू करने के पक्ष में हो, वह मौन रहे, और जो इसके पक्ष में न हो, वह बोले। संघ ने एनएन पर, जो पूर्व में एक तित्तीय संप्रदाय से संबंधित था, चार महीने का परिवास लागू कर दिया है। संघ इसके पक्ष में है, इसलिए वह मौन है। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

5. और हे भिक्षुओं, यही वह तरीका है जिससे पूर्व में तित्तिया संप्रदाय से संबंधित व्यक्ति (भिक्षुओं को संतुष्ट करने और परीक्षा अवधि समाप्त होने पर उपसंपदा प्राप्त करने में) सफल या असफल होता है।

'हे भिक्षु, वह कौन सा तरीका है जिससे पूर्व में तित्तिया संप्रदाय से संबंधित व्यक्ति (भिक्षुओं को) संतुष्ट करने में विफल रहता है?'

'हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पहले तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो, गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करता है और विहार में बहुत देर से लौटता है, तो हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति जो पहले तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो, भिक्षुओं को संतुष्ट करने में विफल रहता है।'

और हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पहले तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो, वेश्याओं, विधवाओं, व्यभिचारियों, नपुंसकों या भिक्षुणियों की संगति में रहता है, तो हे भिक्षुओं, तित्तीय संप्रदाय का पूर्व सदस्य रहा व्यक्ति (भिक्षुओं को) संतुष्ट करने में असफल रहता है।

6. और हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय का सदस्य रहा हो, अपने साथी भिक्षुओं को सौंपे गए विभिन्न कार्यों में निपुणता प्रदर्शित न करे, परिश्रमी न हो, उन कार्यों को करने के तरीके पर विचार करने में सक्षम न हो, स्वयं कार्य करने में सक्षम न हो, दूसरों को निर्देश देने में सक्षम न हो, तो भी, हे भिक्षुओं, इत्यादि।

और आगे, हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय का सदस्य रहा हो, उपदेश दिए जाने पर या नैतिकता, चिंतन और ज्ञान से संबंधित प्रश्नों के पूछे जाने पर तीव्र उत्साह न दिखाए, तो भी, हे भिक्षुओं, यही कारण है कि...

7. हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पहले तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो, अपने पूर्व संप्रदाय के शिक्षक, विश्वास, मत, विचार और पंथ के विरुद्ध बोलने पर क्रोधित, अप्रसन्न और असंतुष्ट हो जाता है; और बुद्ध, धम्म और संघ के विरुद्ध बोलने पर प्रसन्न, प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है; या शिक्षक की प्रशंसा करने पर प्रसन्न, प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है, इत्यादि; और बुद्ध, धम्म और संघ की प्रशंसा करने पर क्रोधित, अप्रसन्न और असंतुष्ट हो जाता है; तो हे भिक्षुओं, यह तित्तीय संप्रदाय के पूर्व सदस्य के लिए संघ में प्रवेश प्राप्त करने में विफलता का निर्णायक क्षण है।

हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति पूर्व में तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो, वह भिक्षुओं को संतुष्ट करने में विफल रहता है। हे भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति आता है जो पूर्व में तित्तीय संप्रदाय का सदस्य रहा हो और इस प्रकार भिक्षुओं को संतुष्ट करने में विफल रहा हो, तो उसे उपसम्पदा दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए।

8-10. 'हे भिक्षुओं, वह कौन सा तरीका है जिससे पूर्व में तित्तिया संप्रदाय से संबंधित व्यक्ति (भिक्षुओं को) संतुष्ट करने में सफल होता है?'

'हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो पहले तित्तिया संप्रदाय से संबंधित रहा हो, गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश न करे (आदि, पिछले कथन के ठीक विपरीत)।'

'हे भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति आता है जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय का सदस्य रहा हो और इस प्रकार भिक्षुओं को संतुष्ट करने में सफल रहा हो, तो उसे उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की जानी चाहिए।'

11. हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति, जो पूर्व में तित्तिया संप्रदाय का सदस्य रहा हो, नग्न अवस्था में (भिक्षुओं के पास) आता है, तो उसके उपाज्जा का यह कर्तव्य है कि वह उसके लिए वस्त्र की व्यवस्था करे। यदि वह बिना दाढ़ी बनवाए आता है, तो उसके बाल मुंडवाने के लिए संघ से अनुमति लेनी चाहिए।

हे भिक्षुओं, यदि अग्नि उपासक और जटिला आपके पास आते हैं, तो उन्हें (प्रत्यक्ष रूप से) उपसम्पदा दीक्षा दी जानी चाहिए, उन पर कोई परिवास नहीं थोपा जाना चाहिए। और इसका क्या कारण है? हे भिक्षुओं, ये इस सिद्धांत का पालन करते हैं कि कर्मों का फल मिलता है, और हमारे कर्मों का परिणाम (उनके नैतिक गुणों के अनुसार) होता है।

हे भिक्षुओं, यदि जन्म से शाक्य, जो तित्तिया संप्रदाय से संबंधित हो, आपके पास आता है, तो उसे उपसम्पदा दीक्षा (प्रत्यक्ष रूप से) प्राप्त करनी चाहिए, और उस पर कोई परिवास नहीं थोपा जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, यह विशेष विशेषाधिकार मैं अपने सगे संबंधियों को प्रदान करता हूँ।

यहां तित्तिया संप्रदायों से पूर्व में संबंधित व्यक्तियों के दीक्षा संस्कार पर व्याख्या समाप्त होती है।

सातवें भानवर का समापन।

<<<< पिछला(1.37) | अगला(1.39) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.39

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.38) | अगला(1.40) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-39: पाँच रोगों से ग्रसित लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

1. उस समय मगध के लोगों में ये पाँच रोग फैले हुए थे: कुष्ठ रोग, फोड़े, शुष्क कुष्ठ रोग, क्षय रोग और दौरे। इन पाँच रोगों से पीड़ित लोग जीवक कोमरभक्का के पास गए और बोले, 'हे चिकित्सक, कृपया हमें ठीक कर दीजिए।'

महोदय, मेरे पास बहुत सारे कर्तव्य हैं और मैं बहुत व्यस्त हूँ। मुझे मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार, राजमहल और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय का उपचार करना है। मैं आपका उपचार नहीं कर सकता।

'हमारी सारी संपत्ति आपकी होगी, चिकित्सक जी, और हम आपके दास होंगे; कृपया, चिकित्सक जी, हमारा इलाज कीजिए।'

'मेरे पास बहुत सारे कर्तव्य हैं, महोदय, इत्यादि; मैं आपका इलाज नहीं कर सकता।'

2. अब उन लोगों ने सोचा, 'सचमुच, इन शाक्यपुत्री भिक्षुओं द्वारा पालन किए जाने वाले नियम और उनका जीवन कितना सुखमय है; उन्हें अच्छा भोजन मिलता है और वे हवा से सुरक्षित पलंगों पर सोते हैं। अगर हम भी शाक्यपुत्री भिक्षुओं के बीच धम्म जीवन अपना लें, तो भिक्षु हमारी देखभाल करेंगे और जीवक कुमारभक्क हमारा इलाज करेंगे।'

इस प्रकार ये व्यक्ति भिक्षुओं के पास गए और उनसे पब्बज्ज दीक्षा मांगी; भिक्षुओं ने उन्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की; और भिक्षुओं ने उनकी देखभाल की, और जीवक कोमरभक्क ने उन्हें ठीक कर दिया।

3. उस समय, कई बीमार भिक्षुओं की सेवा करने वाले भिक्षुओं ने (गृहस्थों से) अनेक माँगें और निवेदन करना शुरू कर दिया: 'बीमारों के लिए भोजन दीजिए; बीमारों की देखभाल करने वालों के लिए भोजन दीजिए; बीमारों के लिए दवाइयाँ दीजिए।' और कई बीमार भिक्षुओं का इलाज करने वाले जीवक कोमरभक्क ने भी राजा के प्रति अपने कुछ कर्तव्यों की उपेक्षा की।

4. अब एक दिन पाँचों रोगों से पीड़ित एक व्यक्ति जीवक कोमरभक्का के पास गया और बोला: 'हे चिकित्सक, कृपया मुझे ठीक कर दीजिए।'

'महोदय, मेरे पास बहुत सारे कर्तव्य हैं और मैं बहुत व्यस्त हूँ; मुझे मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार, राजमहल और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय का इलाज करना है; मैं आपका इलाज नहीं कर सकता।'

'हे चिकित्सक, मेरी सारी संपत्ति आपकी होगी और मैं आपका दास बनूंगा; कृपया चिकित्सक, मुझे ठीक कर दीजिए।'

'मेरे पास बहुत सारे कर्तव्य हैं, महोदय, इत्यादि; मैं आपका इलाज नहीं कर सकता।'

5. अब उस व्यक्ति ने सोचा: 'सचमुच, शाक्यपुत्रीय समनों द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों का पालन करने पर (आदि, आगे तक): भिक्षु मेरी देखभाल करेंगे और जीवक कुमारभक्क मुझे ठीक करेंगे। जब मैं रोगमुक्त हो जाऊंगा, तब मैं संसार में लौट जाऊंगा।'

इस प्रकार वह व्यक्ति भिक्षुओं के पास गया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा का अनुरोध किया; भिक्षुओं ने उसे पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की; भिक्षुओं ने उसकी देखभाल की और जीवक कोमरभक्क ने उसे स्वस्थ किया। जब वह रोगमुक्त हो गया, तो वह संसार में लौट आया। अब जीवक कोमरभक्क ने संसार में लौटे उस व्यक्ति को देखा; और उसे देखकर उन्होंने उससे पूछा: 'हे महोदय, क्या आपने भिक्षुओं के बीच धम्म जीवन नहीं अपनाया था?'

'जी हां, डॉक्टर।'

'और आपने ऐसा रास्ता क्यों अपनाया है, महोदय?'

तब उस व्यक्ति ने जीवक कोमरभक्का को पूरी बात बताई।

6. तब जीवक कोमरभक्का नाराज हो गए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'आदरणीय बंधुओं को पांचों रोगों से ग्रसित व्यक्ति को पब्बज्ज दीक्षा कैसे प्रदान कर सकते हैं?'

जीवक कोमरभक्क भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर और उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर जीवक कोमरभक्क ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, प्रार्थना है कि पाँचों रोगों से ग्रसित व्यक्तियों को उनकी श्रद्धा से पापज्ज दीक्षा प्राप्त न हो जाए।'

7. तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा जीवक कोमरभक्क को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया; और जीवक कोमरभक्क, भगवान बुद्ध द्वारा धर्म प्रवचन से शिक्षा प्राप्त करने और प्रसन्न होने के बाद, अपने स्थान से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुड़कर उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चले गए।

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, जो पाँच रोगों से ग्रसित हो, उसे पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को पब्बज्ज दीक्षा देता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी होता है।'

<<<< पिछला(1.38) | अगला(1.40) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.40

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.39) | अगला(1.41) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-40: राजसेवा या सेना में कार्यरत लोगों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

1. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के राज्य के सीमावर्ती प्रांतों में अशांति फैली हुई थी। तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सेना के प्रमुख अधिकारियों को आदेश दिया: 'अब जाओ और सीमावर्ती प्रांतों की छानबीन करो।' सेना के प्रमुख अधिकारियों ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के आदेश का पालन करते हुए कहा, 'जी महाराज।'

2. अब कई प्रख्यात योद्धा सोचने लगे, 'हम जो युद्ध में जाते हैं और लड़ने में आनंद पाते हैं, बुराई करते हैं और बड़ा पाप उत्पन्न करते हैं। अब हम क्या करें कि हम बुराई से विमुख होकर भलाई करें?'

तब उन योद्धाओं ने सोचा, 'ये शाक्यपुत्रीय समना सचमुच सदाचारी, शांत और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं; वे सत्य बोलते हैं; वे नैतिकता के नियमों का पालन करते हैं और सभी सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं। यदि हमें शाक्यपुत्रीय समनाओं के साथ पब्बज्जा प्राप्त हो जाए, तो हम बुराई से विमुख होकर भलाई करेंगे।'

इस प्रकार ये योद्धा भिक्षुओं के पास गए और उनसे पब्बज्ज दीक्षा मांगी; भिक्षुओं ने उन्हें पब्बज्ज और उपासनीपाद दीक्षा प्रदान की।

3. सेना के प्रमुख अधिकारियों ने शाही सैनिकों से पूछा: 'क्यों, ऐसा कैसे हो सकता है कि योद्धा एनएन और एनएन कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे हैं?'

'देवताओं, योद्धा एनएन और एनएन ने भिक्षुओं के बीच धम्म जीवन को अपना लिया है।'

तब सेना के प्रमुख अधिकारी नाराज हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: 'शाक्यपुत्रीय समनास राजसेवा में व्यक्तियों को कैसे नियुक्त कर सकते हैं?'

सेना के प्रमुख अधिकारियों ने यह बात मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को बताई। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने न्याय अधिकारियों से पूछा, 'हे महोदय, मुझे बताइए, जो व्यक्ति किसी को राजसेवा में नियुक्त करता है, उसे क्या दंड मिलना चाहिए?'

'हे महाराज, उपज्झाय का सिर कलम कर दिया जाए; जो (कम्मवक) का पाठ करता है, उसकी जीभ काट दी जाए; जो अध्याय बनाते हैं, उनकी आधी पसलियां तोड़ दी जाएं।'

4. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, कुछ अविश्वासी राजा हैं जो धर्म के प्रति उदासीन हैं; ये भिक्षुओं को छोटी-छोटी बातों पर भी परेशान कर सकते हैं। हे प्रभु, प्रार्थना है कि उनकी श्रद्धा से राजसेवकों को भिक्षु दीक्षा प्राप्त न हो।'

तब भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया (आदि, अध्याय 39.7 से आगे देखें), भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, जो राजसेवा में हैं, उन्हें पब्बज्ज दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति (ऐसे व्यक्ति को) पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.39) | अगला(1.41) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.41

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.40) | अगला(1.42) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-41: हत्यारों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

उस समय डाकू अंगुलिमाला ने भिक्षुओं के बीच धम्म जीवन अपना लिया था। जब लोगों ने यह देखा, तो वे भयभीत और आतंकित हो गए; वे भाग गए, दूसरी जगहों पर चले गए, अपना सिर फेर लिया और अपने दरवाजे बंद कर लिए। लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'शाक्यपुत्र समना (भिक्षु) एक ऐसे डाकू को कैसे दीक्षा दे सकते हैं जो खुलेआम अपने कर्मों के प्रतीक धारण करता है?'

कुछ भिक्षुओं ने उन लोगों को सुना जो नाराज थे, बड़बड़ा रहे थे और क्रोधित हो गए थे; इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, जो अपने कर्मों के प्रतीक धारण करते हैं, उन्हें पापज्ज दीक्षा प्राप्त न करने दें। जो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को पापज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.40) | अगला(1.42) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.42
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.41) | अगला(1.43) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-42: जेल तोड़ने वालों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

1. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने यह फरमान जारी किया था: 'शाक्यपुत्रीय समनों में दीक्षित लोगों को कोई हानि न पहुँचाए; उनका उपदेश सर्वथा सुशिक्षित है; वे दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करें।'

उस समय एक व्यक्ति, जिसने डकैती की थी, जेल में बंद था। वह जेल से भाग निकला, फरार हो गया और भिक्षुओं के साथ पब्बज्ज दीक्षा प्राप्त कर ली।

2. जिन लोगों ने उसे देखा, उन्होंने कहा: 'देखो, यह वही डाकू है जो जेल से भाग निकला है; चलो, हम इसे (अधिकारियों के सामने) ले चलें।'

लेकिन कुछ लोगों ने उत्तर दिया: 'ऐसा मत कहिए, महोदय। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने एक फरमान जारी किया है: 'किसी को भी उन लोगों को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए जिन्हें दीक्षा दी गई है, इत्यादि।'

लोग नाराज़ हो गए, आपस में कानाफूसी करने लगे और क्रोधित हो गए, यह सोचकर कि: 'ये शाक्यपुत्रीय समना तो हर चीज़ से सुरक्षित हैं; उन्हें किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाना मना है। वे जेल से भागे हुए लुटेरे को कैसे सम्मान दे सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जेल से भागे हुए किसी भी लुटेरे को पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कटा अपराध का दोषी होता है।'

<<<< पिछला(1.41) | अगला(1.43) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.43
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.42) | अगला(1.44) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-43: लुटेरों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

उस समय एक व्यक्ति, जिसने डकैती की थी, भाग गया था और भिक्षुओं के साथ दीक्षा ले ली थी। राजमहल में एक घोषणा लिखी गई: 'जहाँ भी वह दिखाई दे, उसे मार डाला जाए।'

जिन लोगों ने उसे देखा, उन्होंने कहा: 'यह घोषित लुटेरा है; आओ, हम इसे मार डालें' (आदि, जैसा कि अध्याय 42 में है)।

'हे भिक्षुओं, किसी भी घोषित लुटेरे को पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो कोई ऐसे लुटेरे को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कटा अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.42) | अगला(1.44) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.44
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.43) | अगला(1.45) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-44: कोड़े मारने की सजा पाए लोगों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

उस समय कोड़े मारने की सजा पाए एक व्यक्ति को भिक्षुओं के साथ दीक्षा दी गई थी। लोग नाराज थे, इत्यादि: 'ये शाक्यपुत्र समन ऐसे व्यक्ति को कैसे दीक्षा दे सकते हैं जिसे कोड़े मारने की सजा मिली हो?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कोड़े मारने की सजा पाए किसी भी व्यक्ति को पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी होता है।'

<<<< पिछला(1.43) | अगला(1.45) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.45
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.44) | अगला(1.46) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-45: दागने की सजा पाए लोगों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

उस समय एक निश्चित व्यक्ति जिसे दागने की सजा दी गई थी (आदि, जैसा कि अध्याय 44 में अंत तक है)।

<<<< पिछला(1.44) | अगला(1.46) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.46

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.45) | अगला(1.47) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-46: देनदारों के लिए कोई अध्यादेश नहीं।

उस समय एक कर्जदार व्यक्ति भाग गया और भिक्षुओं के साथ दीक्षा ले ली। जब उसके कर्जदारों ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा, 'यह रहा हमारा कर्जदार; आइए, हम इसे (कारावास) ले चलें।' लेकिन कुछ लोगों ने उत्तर दिया, 'ऐसा न कहें, महोदय। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने एक फरमान जारी किया है: 'जो लोग शाक्यपुत्रीय समनों के साथ दीक्षा ले चुके हैं, उन्हें कोई हानि न पहुँचाए; उनका उपदेश उत्तम है; उन्हें दुखों के पूर्ण निवारण के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए।'

लोग नाराज़ हो गए, आपस में कानाफूसी करने लगे और क्रोधित हो गए: 'ये शाक्यपुत्रीय समना तो हर चीज़ से सुरक्षित हैं; उनके साथ कुछ भी करना मना है। वे किसी ऋणी को कैसे आदेश दे सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भी ऋणी को पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो कोई ऋणी को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.45) | अगला(1.47) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.47

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.46) | अगला(1.48) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-47: दासों के लिए कोई दीक्षा नहीं।

उस समय एक दास भाग गया और भिक्षुओं के साथ दीक्षा ले ली। जब उसके स्वामियों ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा: 'देखो, हमारा दास है; आओ, हम उसे अपने घर ले चलें,' (आदि, जैसा कि अध्याय 46 में है)।

'हे भिक्षुओं, किसी भी दास को पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जो कोई दास को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी होता है।'

<<<< पिछला(1.46) | अगला(1.48) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.48

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.47) | अगला(1.49) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-48: संघों द्वारा नवागंतुक का सिर मुंडवाने की अनुमति।

1. उस समय एक गंजे सिर वाला लोहार अपने माता-पिता से झगड़ा होने के बाद आराम (मठ) चला गया और भिक्षुओं से दीक्षा प्राप्त की। अब उस गंजे सिर वाले लोहार के माता-पिता उसकी तलाश में आराम (मठ) आए और भिक्षुओं से पूछा: 'हे पूज्यवर, क्या आपने फलां लड़के को देखा है?'

जो भिक्षु उन्हें नहीं जानते थे, उन्होंने कहा: 'हम उन्हें नहीं जानते;' क्योंकि उन्होंने उन्हें नहीं देखा था, इसलिए उन्होंने कहा: 'हमने उन्हें नहीं देखा है।'

2. अब उस गंजे लोहार के माता-पिता उसे ढूंढते हुए भिक्षुओं के साथ दीक्षा लिए हुए पाए गए; वे क्रोधित हुए, इत्यादि: 'ये शाक्यपुत्र समन निर्लज्ज, दुष्ट और झूठे हैं। वे उसे जानते थे और कहते थे: "हम उसे नहीं जानते;" उन्होंने उसे देखा था और कहते थे: "हमने उसे नहीं देखा।" इस लड़के ने भिक्षुओं के साथ दीक्षा ले ली है।'

अब कुछ भिक्षुओं ने उस गंजे लोहार के माता-पिता को नाराज़ होते हुए सुना, इत्यादि। उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि (नए आने वाले भिक्षुओं के) बाल मुंडवाने के लिए संघ की अनुमति ली जाए।'

<<<< पिछला(1.47) | अगला(1.49) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.49

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.48) | अगला (1.50) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-49: 20 वर्ष से कम आयु वालों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

1. उस समय राजगृह में सत्रह लड़कों का एक समूह था, जो आपस में मित्र थे; उनमें उपाली सबसे आगे था। अब उपाली के माता-पिता सोचने लगे, 'हमारी मृत्यु के बाद उपाली सुखमय और कष्टमुक्त जीवन कैसे व्यतीत करेगा?' फिर उपाली के माता-पिता ने मन ही मन कहा, 'यदि उपाली लिखना सीख ले, तो हमारी मृत्यु के बाद वह सुखमय और कष्टमुक्त जीवन व्यतीत करेगा।' लेकिन फिर उपाली के माता-पिता ने दोबारा सोचा, 'यदि उपाली लिखना सीखेगा, तो उसकी उंगलियां दुखने लगेंगी। परन्तु यदि उपाली गणित सीख ले, तो हमारी मृत्यु के बाद वह सुखमय और कष्टमुक्त जीवन व्यतीत करेगा।'

2. लेकिन फिर उपाली के माता-पिता ने दोबारा सोचा: 'यदि उपाली गणित सीखेगा, तो उसकी छाती में रोग लग जाएगा। लेकिन यदि उपाली मुद्रा विनिमय सीख ले, तो हमारी मृत्यु के बाद वह सुख-सुविधाओं से भरा और कष्टमुक्त जीवन व्यतीत करेगा।' फिर उपाली के माता-पिता ने मन ही मन कहा: 'यदि उपाली मुद्रा विनिमय सीखेगा, तो उसकी आँखों में कष्ट होगा। यहाँ शाक्यपुत्र साधु हैं, जो सुखमय नियमों का पालन करते हैं और सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं; उन्हें अच्छा भोजन मिलता है और वे हवा से सुरक्षित पलंगों पर सोते हैं। यदि उपाली को शाक्यपुत्र साधुओं के साथ दीक्षा मिल जाए, तो हमारी मृत्यु के बाद वह सुख-सुविधाओं से भरा और कष्टमुक्त जीवन व्यतीत करेगा।'

3. अब युवा उपाली ने अपने माता-पिता को इस प्रकार बात करते सुना। तब युवा उपाली अन्य लड़कों के पास गया; उनके पास पहुँचकर उसने उनसे कहा, 'आओ, महाराज, हम शाक्यपुत्रीय समना दीक्षा लें।' (उन्होंने उत्तर दिया): 'यदि आप दीक्षा लेंगे, महाराज, तो हम भी दीक्षा लेंगे।' तब वे लड़के अपने-अपने माता-पिता के पास गए और उनसे कहा, 'मुझे संसार छोड़कर गृहस्थ जीवन (अर्थात भिक्षुत्व) में जाने की अनुमति दें।' तब उन लड़कों के माता-पिता ने, यह सोचकर कि 'ये सभी लड़के एकमत होकर जो इच्छा कर रहे हैं वह अच्छी बात है", अपनी सहमति दे दी। वे भिक्षुओं के पास गए और उनसे पब्बज्ज दीक्षा देने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उन्हें पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की।

4. रात को, भोर होते ही, वे उठे और पुकारने लगे, 'हमें चावल का दूध दो, हमें नरम भोजन दो, हमें कठोर भोजन दो!' भिक्षुओं ने कहा, 'मित्रों, दिन होने तक प्रतीक्षा करो। यदि चावल का दूध हो, तो पी लो; यदि भोजन हो, चाहे नरम हो या कठोर, तो खा लो; यदि चावल का दूध न हो और भोजन न हो, चाहे नरम हो या कठोर, तो भिक्षा मांगने जाओ, और तब तुम खाओगे।'

लेकिन जब दूसरे भिक्षुओं ने उनसे इस प्रकार बात की, तो उन भिक्षुओं ने अपने बिस्तर इधर-उधर फेंक दिए और उसे गीला कर दिया, और चिल्लाकर कहा: 'हमें चावल का दूध दो, हमें नरम भोजन दो, हमें कठोर भोजन दो!'

5. फिर भोर होते ही भगवान बुद्ध रात में उठे और उन्होंने उन लड़कों का शोर सुना; यह सुनकर उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: 'आनंद, यह लड़कों का कैसा शोर है?'

तब पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि भिक्षु जानबूझकर बीस वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, वे मूर्ख व्यक्ति जानबूझकर बीस वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा कैसे दे सकते हैं?'

6. हे भिक्षुओं, बीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति शीतलता और गर्मी, भूख और प्यास, मक्खियों और मच्छरों से होने वाली परेशानी, तूफान और धूप की गर्मी, और सरीसृपों से होने वाली परेशानी को सहन नहीं कर सकता; वह अपशब्द और गाली-गलौज सहन नहीं कर सकता; वह गंभीर, तीव्र, कष्टदायक, अप्रिय और जीवनदायिनी शारीरिक पीड़ाओं को सहन नहीं कर सकता; जबकि हे भिक्षुओं, बीस वर्ष की आयु का व्यक्ति शीतलता आदि सहन कर सकता है। हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने और परिवर्तितों की संख्या बढ़ाने के लिए उपयुक्त नहीं है।

उन भिक्षुओं को फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, कोई भी जानबूझकर बीस वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को उपसम्पदा दीक्षा न दे। जो ऐसा करेगा, उसके साथ विधिवत व्यवहार किया जाएगा।'

<<<< पिछला (1.48) | अगला (1.50) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.50
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.49) | अगला(1.51) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-50: 15 वर्ष से कम आयु वालों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

उस समय एक परिवार महामारी से मर गया था; केवल पिता और पुत्र ही बचे थे; उन्होंने भिक्षुओं के साथ दीक्षा ली और साथ में भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े। अब जब उसके पिता को भोजन दिया गया, तो वह लड़का दौड़कर उनके पास गया और बोला, 'पिताजी, मुझे भी थोड़ा दीजिए; पिताजी, मुझे भी थोड़ा दीजिए।'

लोग नाराज़ थे, इत्यादि: 'ये शाक्यपुत्रीय समना अपवित्र जीवन जीते हैं; यह लड़का एक भिक्षुणी का पुत्र है।'

कुछ भिक्षुओं ने सुना, इत्यादि।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध आदि को बताई। 'हे भिक्षुओं, पंद्रह वर्ष से कम आयु के किसी भी लड़के को पब्बज्ज दीक्षा न दें। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.49) | अगला(1.51) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.51
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.50) | अगला(1.52) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-51: 15 वर्ष से कम आयु के अनाथों को दीक्षा देने की अनुमति।

उस समय एक धर्मनिष्ठ, नेक परिवार, जो पूज्य आनंद की विशेष सेवा में समर्पित था, महामारी से मर गया। केवल दो लड़के बचे थे; उन्होंने भिक्षुओं को देखकर अपनी पुरानी प्रथा के अनुसार उनके पास दौड़े, लेकिन भिक्षुओं ने उन्हें लौटा दिया। भिक्षुओं द्वारा लौटाए जाने पर वे रोने लगे। तब पूज्य आनंद ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने हमें पंद्रह वर्ष से कम आयु के लड़के को पब्बज्ज दीक्षा देने से मना किया है, और ये लड़के पंद्रह वर्ष से कम आयु के हैं। इन लड़कों को मरने से बचाने के लिए क्या किया जा सकता है?' और पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'आनंदा, क्या ये लड़के कौवों को डरा सकते हैं?'

'हे प्रभु, वे हैं।'

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पंद्रह वर्ष से कम आयु के लड़कों को भी पब्बज्ज दीक्षा देने की अनुमति देता हूँ, यदि वे कौवों को डरा सकें।'

<<<< पिछला(1.50) | अगला(1.52) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.51) | अगला(1.53) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-52: समलैंगिकों को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

उस समय शाक्य वंश के पूज्य उपनंद भिक्षु के दो शिष्य थे, कंदक और महाक; इन दोनों ने आपस में अप्राकृतिक यौन संबंध बनाए। भिक्षु बहुत क्रोधित हुए, इत्यादि: 'शिष्य ऐसे बुरे आचरण में कैसे लिप्त हो सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, कोई भी दो नौसिखियों को दीक्षा न दे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.51) | अगला(1.53) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.52) | अगला(1.54) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-53: बुद्ध का दक्षिणागिरी जाना।

1. उस समय भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु में राजगृह में निवास करते थे और शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में भी वहीं रहते थे। लोग नाराज़ थे, इत्यादि: 'चारों लोक... शाक्यपुत्र समनों के लिए अंधकार से ढके हुए हैं; वे चारों लोकों को नहीं देख सकते।' कुछ भिक्षुओं ने यह सुना, इत्यादि।

2. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: 'जाओ, आनंद, एक चाबी लेकर प्रत्येक कुटिया में बैठे भिक्षुओं को बताओ: "मित्रों, भगवान बुद्ध दक्षिणागिरि जाना चाहते हैं। पूज्य भिक्षुओं में से जो भी उचित समझे, उनके पास आ जाए।"'

आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए), 'जी प्रभु,' एक चाबी ली और प्रत्येक कुटिया में भिक्षुओं से कहा: 'मित्रों, भगवान बुद्ध,' इत्यादि।

3. भिक्षुओं ने उत्तर दिया: 'मित्र आनंद, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि भिक्षुओं को पहले दस वर्ष अपने आचार्यों और उपाज्जियों पर निर्भर रहकर जीवन व्यतीत करना चाहिए, और जो भिक्षु अपना दसवां वर्ष पूरा कर ले, वह स्वयं निस्साय दे सकता है। अब यदि हम वहाँ जाएँगे, तो हमें वहाँ निस्साय देना अनिवार्य होगा; फिर हम वहाँ थोड़े समय के लिए ठहरेंगे, उसके बाद हमें वापस आकर एक नया निस्साय देना होगा। यदि हमारे आचार्य और उपाज्जी जाएँगे, तो हम भी जाएँगे; यदि हमारे आचार्य और उपाज्जी नहीं जाएँगे, तो हम भी नहीं जाएँगे। अन्यथा, मित्र आनंद, हमारा हल्का मन प्रकट हो जाएगा।'

4. इस प्रकार भगवान बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ दक्षिणागिरि के लिए प्रस्थान कर गए। और भगवान बुद्ध ने दक्षिणागिरि में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद राजगृह लौट आए।

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'आनंद, ऐसा कैसे हो सकता है कि पूर्ण पुरुष इतने कम भिक्षुओं के साथ दक्षिणागिरि चले गए?'

तब पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि एक विद्वान, योग्य भिक्षु पाँच वर्ष तक अपने आचार्य और उपजा पर निर्भर रहकर जीवन व्यतीत करे, जबकि एक अनपढ़ भिक्षु जीवन भर ऐसा ही करे।'

5. हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में भिक्षु को निस्साया (अर्थात आचार्य और उपज्याया से स्वतंत्र) के बिना नहीं रहना चाहिए: जब वह नैतिक आचरणों आदि में पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर ले (जैसा कि अध्याय 36.2 में है)। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में भिक्षु को निस्साया के बिना नहीं रहना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, पाँच स्थितियों में एक भिक्षु निस्साया के बिना रह सकता है: जब वह नैतिक आचरणों से संबंधित सभी बातों में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है (आदि, जैसा कि अध्याय 36.3 में है)। हे भिक्षुओं, इन पाँच स्थितियों में एक भिक्षु निस्साया के बिना रह सकता है।

6-13. 'और अन्य पाँच मामलों में भी, इत्यादि।'

आठवें भानवर का समापन, जिसे अभयुवर भानवर कहा जाता है।

<<<< पिछला(1.52) | अगला(1.54) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.54
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.53) | अगला(1.55) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-54: बुद्ध अपने गृह नगर जाते हैं और उत्तराधिकार मांगे जाने पर अपने पुत्र राहुल को दीक्षा देते हैं।

1. फिर भगवान बुद्ध ने राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे कपिलवस्तु पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध कपिलवस्तु के निकट सक्का देश में, निग्रोधरम (बरगद के वन) में निवास करने लगे।

और दोपहर के समय भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र लेकर और किवार धारण करके सक्का सुद्धोदन (अपने पिता) के निवास पर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिए बिछाई गई आसन पर बैठ गए।

तब राजकुमारी (बुद्ध की पत्नी), जो राहुल (पुत्र) की माता थीं, ने युवा राहुल से कहा: 'यह तुम्हारे पिता हैं, राहुल; जाओ और उनसे अपनी विरासत मांगो।'

2. तब युवा राहुल उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर वे भगवान बुद्ध के सामने खड़े हो गए (और बोले): 'हे समना, आपकी छाया आनंद का स्थान है।'

तब भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे और चले गए, और युवा राहुल उनके पीछे-पीछे चलते हुए बोले: 'मुझे मेरा उत्तराधिकार दे दीजिए, समना; मुझे मेरा उत्तराधिकार दे दीजिए, समना।'

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: 'अच्छा, सारिपुत्त, युवा राहुल को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान कीजिए।' (सारिपुत्त ने उत्तर दिया): 'हे प्रभु, मैं युवा राहुल को पब्बज्ज दीक्षा कैसे प्रदान करूँ?'

3. इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, मैं नौसिखियों के लिए शरण लेने की त्रिविध घोषणा द्वारा दीक्षा का विधान करता हूँ।

हे भिक्षुओं, नौसिखिए को इस प्रकार दीक्षा देनी चाहिए: सर्वप्रथम उसके बाल और दाढ़ी मुंडवा दें; उसे पीले वस्त्र पहनाएँ, ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि उसका एक कंधा ढका रहे, भिक्षुओं के चरणों को प्रणाम करें और उकड़ू बैठ जाएँ; फिर उसे हाथ जोड़कर यह कहने को कहें: "मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, मैं धम्म की शरण लेता हूँ, मैं संघ की शरण लेता हूँ। और फिर दूसरी बार, इत्यादि। और फिर तीसरी बार, इत्यादि।"

'हे भिक्षुओं, मैं नौसिखियों के लिए शरण लेने की इस त्रिविध घोषणा द्वारा पब्बज्ज दीक्षा का विधान करता हूँ।'

इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त ने युवा राहुल को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान की।

4. तब शाक्य शुद्धोदन (बुद्ध के पिता) उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठे शाक्य शुद्धोदन ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध से एक वरदान माँगता हूँ।' (बुद्ध ने उत्तर दिया): 'हे गौतम, सिद्ध पुरुष वरदान देने से परे हैं (जब तक वे यह नहीं जान लेते कि वरदान क्या हैं)।' (शुद्धोदन ने कहा): 'हे प्रभु, यह एक उचित और निर्विवाद माँग है।' 'बोलिए, गौतम।'

5. 'हे प्रभु, जब भगवान बुद्ध ने संसार त्यागा, तो मुझे बहुत पीड़ा हुई; नंदा के ऐसा करने पर भी ऐसा ही हुआ; राहुल के ऐसा करने पर मेरी पीड़ा और भी बढ़ गई। हे प्रभु, पुत्र प्रेम त्वचा को भेदता है; त्वचा को भेदकर वह खाल को भेदता है; खाल को भेदकर वह मांस को भेदता है, ...स्नायुबंधन को भेदता है, ...हड्डियों को भेदता है; हड्डियों को भेदकर वह मज्जा तक पहुँचता है और मज्जा में निवास करता है। हे प्रभु, प्रार्थना है कि उनके ऋषि-मुनि माता-पिता की अनुमति के बिना किसी पुत्र को पब्बज्ज दीक्षा न दें।'

तब भगवान बुद्ध ने सक्का शुद्धोदन (आदि, अध्याय 39.7 देखें) का उपदेश दिया।

'हे भिक्षुओं, किसी भी पुत्र को अपने माता-पिता की अनुमति के बिना पब्बज्ज दीक्षा ग्रहण न करनी चाहिए। जो कोई भी (बिना अनुमति के) पुत्र को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(1.53) | अगला(1.55) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.55
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.54) | अगला(1.56) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-55: बुद्ध ने दो नौसिखियों को दीक्षा देने की अनुमति दी।

फिर भगवान बुद्ध ने कपिलवस्तु में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद सावत्थी की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध ने सावत्थी के जेतवन, अनाथपिंडिका के विश्राम (मठ) में निवास किया।

उस समय, एक परिवार जो पूज्य सारिपुत्त की विशेष सेवा में समर्पित था, ने एक बालक को पूज्य सारिपुत्त के पास यह संदेश देकर भेजा: 'क्या थेरा इस बालक को पब्बज्ज दीक्षा प्रदान कर सकते हैं?' अब पूज्य सारिपुत्त ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने नियम स्थापित किया है कि कोई भी दो शिष्यों को दीक्षा नहीं दे सकता, और मेरे पास पहले से ही एक शिष्य, राहुल है। अब मैं क्या करूँ?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक विद्वान, योग्य भिक्षु को दो नौसिखियों को दीक्षा देने की अनुमति देता हूँ, या उतने नौसिखियों को दीक्षा देने की अनुमति देता हूँ जितने को वह उपदेश और शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हो।'

<<<< पिछला(1.54) | अगला(1.56) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.56
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.55) | अगला(1.57) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-56: नौसिखियों के लिए दस उपदेशों की स्थापना।

अब नौसिखियों ने सोचा: 'हमारे लिए कितने नियम हैं, और हमें किन नियमों का पालन करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं नौसिखियों के लिए दस नियम निर्धारित करता हूँ और उन्हें इन नियमों का पालन करना चाहिए, अर्थात् जीव संहार से बचना; चोरी से बचना; अशुद्धता से बचना; झूठ से बचना; शराब, मादक पेय पदार्थों से बचना, जो धर्म के प्रति उदासीनता उत्पन्न करते हैं; वर्जित समय में भोजन से बचना; नृत्य, गायन, संगीत और तमाशा देखने से बचना; माला, सुगंध, मलहम, आभूषण और कीमती वस्त्रों से बचना; ऊँचे या चौड़े पलंगों के उपयोग से बचना; सोना या चाँदी ग्रहण करने से बचना। हे भिक्षुओं, मैं नौसिखियों के लिए ये दस नियम निर्धारित करता हूँ और उन्हें इन नियमों का पालन करना चाहिए।

<<<< पिछला(1.55) | अगला(1.57) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.57
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.56) | अगला(1.58) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-57: नौसिखियों के लिए दंड।

1. उस समय नौसिखिए भिक्षुओं के प्रति आदर और विश्वास नहीं दिखाते थे, और उनके साथ सामंजस्य में नहीं रहते थे। भिक्षु नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: 'नौसिखिए भिक्षुओं के प्रति आदर और विश्वास क्यों नहीं दिखाते, और उनके साथ सामंजस्य में क्यों नहीं रहते?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि नौसिखियों को पाँच मामलों में दंडित किया जाए: जब वह भिक्षुओं को भिक्षा न देने का इरादा रखता हो; जब वह भिक्षुओं पर विपत्ति लाने का इरादा रखता हो; जब वह भिक्षुओं को आवास न मिलने का इरादा रखता हो; जब वह भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता हो; जब वह भिक्षुओं के बीच फूट डालता हो। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि इन पाँच मामलों में नौसिखियों को दंडित किया जाए।

2. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'हमें क्या दंड देना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप उन्हें (कुछ स्थानों, उदाहरण के लिए, उनके अपने निवास स्थानों) में जाने से मना करें।'

उस समय भिक्षुओं ने नौसिखियों को संपूर्ण संघाराम में प्रवेश करने से प्रतिबंधित कर दिया था। जिन नौसिखियों को संघाराम में प्रवेश नहीं मिला, वे या तो चले गए, या संसार में लौट गए, या तित्तिया विद्यालयों में चले गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, उन्हें (नवदीक्षितों को) संपूर्ण संघराम में आने से मना न करें। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि (भिक्षुओं को) उस स्थान पर (नवदीक्षितों को) आने से मना किया जाए जहाँ वह रहता है या जहाँ वह अक्सर जाता है।'

3. उस समय भिक्षुओं ने नौसिखियों को मुख से ग्रहण किए जाने वाले (कुछ प्रकार के) भोजन के उपयोग से मना किया था। जब लोग संघ के लिए चावल का दूध या भोजन तैयार करते थे, तो वे नौसिखियों से कहते थे:

'आओ, पूज्यवरों, चावल का दूध पियो; आओ, पूज्यवरों, भोजन करो।' नौसिखियों ने उत्तर दिया: 'यह असंभव है, मित्रों; भिक्षुओं ने हमें पहले ही चेतावनी दे दी है।' लोग नाराज़ हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए, यह सोचकर कि 'उनके पूज्य नौसिखियों को मुँह से ग्रहण किए जाने वाले सभी खाद्य पदार्थों के उपयोग से कैसे मना कर सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, उन्हें (नवदीक्षितों को) मुख से ग्रहण किए जाने वाले भोजन से मना न करें। ऐसा करने वाला दुक्कता अपराध करता है।'

नौसिखियों को दी जाने वाली सजा से संबंधित अनुभाग का अंत।

<<<< पिछला(1.56) | अगला(1.58) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.58
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.57) | अगला(1.59) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-58: प्रशिक्षकों की सहमति के बिना नौसिखियों पर प्रतिबंध न लगाना।

उस समय छब्बाग्य भिक्षुओं ने नौसिखियों के उपाज्जयों की सहमति के बिना उन पर प्रतिबंध लगा दिया। उपाज्जयों ने उनकी खोज की और सोचने लगे, 'हमारे नौसिखिए कहाँ गायब हो गए?' भिक्षुओं ने कहा, 'हे मित्रों, छब्बाग्य भिक्षुओं ने उन पर प्रतिबंध लगा दिया है।' उपाज्जय नाराज हो गए और कहने लगे, 'छब्बाग्य भिक्षु हमारी सहमति के बिना हमारे नौसिखियों पर प्रतिबंध कैसे लगा सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, उपाज्जयों की सहमति के बिना कोई भी (नवसिखियों पर) प्रतिबंध न लगाए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला(1.57) । अगला(1.59) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.59
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.58) । अगला (1.60) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-59: अन्य भिक्षुओं के अनुयायियों को आकर्षित न करना।

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षुओं के शिष्यों को अपने पास बुला लिया। थेरों को अपने दांत साफ करने के लिए डिटर्जेंट और कुल्ला करने के लिए पानी की व्यवस्था करनी पड़ी, जिससे वे थक गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी को भी दूसरे भिक्षु के अनुयायियों को अपने साथ नहीं मिलाना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है।'

<<<< पिछला (1.58) । अगला (1.60) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.60
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.59) । अगला(1.61) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-60: नौसिखियों के निष्कासन के नियम; यौन संबंध।

उस समय उपनंद शाक्यपुत्तो के अनुयायी कंदका नामक एक नवोदित भिक्षु ने कंदका नामक एक भिक्षुणी के साथ यौन संबंध स्थापित किया। भिक्षुओं को यह देखकर गुस्सा आया, इत्यादि: 'एक नवोदित भिक्षु ऐसे आचरण में कैसे लिप्त हो सकता है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि निम्नलिखित दस स्थितियों में किसी नौसिखिए को संघ से निष्कासित कर दिया जाए: जब वह जीवन नष्ट करे; जब वह चोरी करे; जब वह अपवित्रता का कार्य करे; जब वह झूठ बोले; जब वह मादक पेय पिए; जब वह बुद्ध के विरुद्ध बोले; जब वह धम्म के विरुद्ध बोले; जब वह संघ के विरुद्ध बोले; जब वह झूठे सिद्धांत रखे; जब वह भिक्षुणियों के साथ यौन संबंध रखे। हे भिक्षुओं, इन दस स्थितियों में मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप नौसिखिए को संघ से निष्कासित कर दें।

<<<< पिछला(1.59) | अगला(1.61) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.61
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.60) | अगला(1.62) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-61: हिजड़ों को निष्कासित करने के नियम; यौन संबंध।

उस समय एक हिजड़ा..., इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, जिस नपुंसक ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त नहीं की है, उसे यह दीक्षा न दी जाए; यदि उसने यह दीक्षा प्राप्त कर ली है, तो उसे (भिक्षुता से) निष्कासित कर दिया जाए।'

<<<< पिछला(1.60) | अगला(1.62) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.62
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.61) | अगला(1.63) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-62: स्वयंभू भिक्षुओं का निष्कासन।

1. उस समय एक वृद्ध परिवार का एक व्यक्ति था, जिसके रिश्तेदार गुजर चुके थे; उसका पालन-पोषण बड़ी नाजुकता से हुआ था। अब उस वृद्ध व्यक्ति ने, जिसके रिश्तेदार गुजर चुके थे, सोचा: 'मेरा पालन-पोषण बड़ी नाजुकता से हुआ है; मैं न तो नई दौलत अर्जित कर सकता हूँ और न ही अपनी मौजूदा दौलत को बढ़ा सकता हूँ। मैं क्या करूँ जिससे मैं सुखमय और कष्टमुक्त जीवन जी सकूँ?'

तब एक वृद्ध परिवार के उस व्यक्ति ने, जिसके रिश्तेदार गुजर चुके थे, अपने मन में यह उत्तर दिया: 'शाक्यपुत्रीय समन (भिक्षु) हैं, जो सुखदायक नियमों का पालन करते हैं और सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं; उन्हें अच्छा भोजन मिलता है और वे हवा से सुरक्षित पलंगों पर सोते हैं। यदि मैं अपने खर्च पर भिक्षापात्र और वस्त्र खरीद लूँ, अपने बाल और दाढ़ी कटवा लूँ, पीले वस्त्र पहन लूँ, आराम (मठ) जाऊँ और वहाँ भिक्षुओं के साथ रहूँ तो क्या होगा?'

2. तब एक वृद्ध परिवार के उस व्यक्ति ने, जिसके रिश्तेदार गुजर चुके थे, अपने खर्च पर भिक्षापात्र और वस्त्र प्राप्त किए, अपने बाल और दाढ़ी कटवाए, पीले वस्त्र धारण किए, आराम (मठ) गए और भिक्षुओं को आदरपूर्वक प्रणाम किया। भिक्षुओं ने उनसे कहा, 'हे मित्र, आपकी उपसम्पदा को कितने वर्ष बीत चुके हैं?'

'मित्रों, "उपसम्पदा के बाद बीते वर्षों" का क्या अर्थ है?'

'और तुम्हारा उपज्झया कौन है, मित्र?'

'दोस्तों, उपज्झया शब्द का क्या अर्थ है?'

भिक्षुओं ने आदरणीय उपाली से कहा: 'हे मित्र उपाली, कृपया इस तपस्वी की परीक्षा लें।'

3. तब एक वृद्ध परिवार के उस व्यक्ति ने, जिसके रिश्तेदार गुजर चुके थे, जब पूज्य उपली ने उससे पूछताछ की, तो उसे सारी बात बताई। पूज्य उपली ने यह बात भिक्षुओं को बताई; भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति गुप्त रूप से संघ से जुड़ गया है, यदि उसने उपसंपदा दीक्षा प्राप्त नहीं की है, तो उसे वह दीक्षा न दी जाए; यदि उसने वह दीक्षा प्राप्त कर ली है, तो उसे संघ से निष्कासित कर दिया जाए।'

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति तित्तियाओं की ओर चला गया है' (आदि, जैसा कि अध्याय 61 में है)।

<<<< पिछला(1.61) | अगला(1.63) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.63

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.62) | अगला(1.64) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-63: किसी पशु को कोई धार्मिक उपाधि नहीं दी जाएगी।

1. उस समय एक सर्प था जो सर्प के रूप में जन्म लेने से दुखी, लज्जित और घृणाग्रस्त था। अब उस सर्प ने सोचा, 'मैं सर्प होने से कैसे मुक्त हो सकता हूँ और शीघ्र ही मनुष्य स्वरूप प्राप्त कर सकता हूँ?' तब उस सर्प ने स्वयं को यह उत्तर दिया: 'ये शाक्यपुत्र समण वास्तव में सदाचारी, शांत और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं; वे सत्य बोलते हैं; वे नैतिकता के नियमों का पालन करते हैं और सभी सद्गुणों से परिपूर्ण हैं। यदि मैं शाक्यपुत्र समणों के साथ पब्बज्जा प्राप्त कर लूँ, तो मैं सर्प होने से मुक्त हो जाऊँगा और शीघ्र ही मनुष्य स्वरूप प्राप्त कर लूँगा।'

2. तब वह सर्प, एक युवक के रूप में, भिक्षुओं के पास गया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा मांगी; भिक्षुओं ने उसे पब्बज्ज और उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की।

उस समय वह सर्प एक भिक्षु के साथ अंतिम विहार (जेतवन की चारदीवारी के पास) में रहता था। वह भिक्षु रात में, भोर होते ही, उठकर खुले में इधर-उधर टहल रहा था। जब वह भिक्षु विहार से चला गया, तो वह सर्प, जो स्वयं को सुरक्षित समझ रहा था, अपने स्वाभाविक रूप में सो गया। पूरा विहार सर्प के शरीर से भर गया; उसके कुंडल खिड़की से बाहर निकले हुए थे।

3. तब उस भिक्षु ने सोचा, 'मैं विहार (मठ) वापस जाऊँगा,' और दरवाजा खोलकर देखा कि पूरा विहार साँप के शरीर से भरा हुआ है, जिसकी कुंडलियाँ खिड़की से बाहर निकली हुई हैं। यह देखकर वह भयभीत हो गया और चिल्ला उठा। भिक्षु दौड़कर आए और उस भिक्षु से बोले, 'मित्र, तुम क्यों चिल्लाए?' उसने कहा, 'मित्रों, यह पूरा विहार साँप के शरीर से भरा हुआ है; उसकी कुंडलियाँ खिड़की से बाहर निकली हुई हैं।'

तब उस शोर से वह सर्प जाग उठा और अपने आसन पर बैठ गया। भिक्षुओं ने उससे पूछा, 'मित्र, तुम कौन हो?' 'मैं एक सर्प हूँ, पूज्यवर।' 'मित्र, तुमने ऐसा क्यों किया?' तब उस नाग ने भिक्षुओं को सारी बात बताई; भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

4. इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के समुदाय को एकत्रित होने का आदेश देकर उस सर्प से कहा: 'हे सर्प, तुम इस सिद्धांत और अनुशासन में (आध्यात्मिक) उन्नति के योग्य नहीं हो। परन्तु हे सर्प, प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन उपवास करो; इस प्रकार तुम सर्प होने से मुक्त हो जाओगे और शीघ्र ही मनुष्य स्वरूप प्राप्त कर लोगे।'

तब वह सर्प, जिसने सोचा, 'मैं इस सिद्धांत और अनुशासन में (आध्यात्मिक) उन्नति करने में सक्षम नहीं हूं,' दुखी और शोकाकुल हो गया, आंसू बहाने लगा, विलाप करने लगा और चला गया।

5. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, दो ऐसे अवसर होते हैं जब सर्प (मनुष्य रूप धारण करके) अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है: जब वह अपनी ही प्रजाति की मादा के साथ संभोग करता है, और जब वह स्वयं को सुरक्षित समझकर सो जाता है। हे भिक्षुओं, ये दो ऐसे अवसर हैं जब सर्प अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है।

'हे भिक्षुओं, जिस पशु ने उपसंपदा दीक्षा प्राप्त नहीं की है, उसे यह दीक्षा प्राप्त न करने दें; यदि उसने यह दीक्षा प्राप्त कर ली है, तो उसे (भिक्षुता से) निष्कासित कर दें।'

<<<< पिछला(1.62) | अगला(1.64) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.64

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.63) | अगला(1.65) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-64: जिसने अपनी माँ की हत्या की, उसे दीक्षा नहीं दी जाएगी।

1. उस समय एक युवक ने अपनी माता का वध कर दिया। वह दुखी, लज्जित और अपने इस पाप से घृणा करता था। अब उस युवक ने सोचा, 'मैं अपने इस पाप से कैसे मुक्ति पाऊं?' तब उस युवक ने स्वयं को यह उत्तर दिया: 'ये शाक्यपुत्रीय समण वास्तव में सदाचारी, शांत और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। यदि मैं शाक्यपुत्रीय समणों के साथ पब्बज्ज प्राप्त कर लूं, तो शायद मैं अपने पाप से मुक्त हो जाऊं।'

2. तब वह युवक भिक्षुओं के पास गया और उनसे पब्बज्ज दीक्षा देने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने पूज्य उपली से कहा, 'हे मित्र उपली, पूर्व में एक सर्प ने युवक के रूप में भिक्षुओं से पब्बज्ज दीक्षा प्राप्त की थी; हे मित्र उपली, कृपया इस युवक की परीक्षा लें।' तब पूज्य

उपली द्वारा परीक्षा लिए जाने पर उस युवक ने उन्हें सारी बात बताई। पूज्य उपली ने यह बात भिक्षुओं को बताई; भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति माता की हत्या का दोषी है, यदि उसने उपसंपदा दीक्षा प्राप्त नहीं की है, तो उसे वह दीक्षा न दी जाए; यदि उसने वह दीक्षा प्राप्त कर ली है, तो उसे (भिक्षुता से) निष्कासित कर दिया जाए।'

<<<< पिछला(1.63) | अगला(1.65) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.65
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.64) | अगला(1.66) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-65: अपने पिता की हत्या करने वाले को दीक्षा नहीं दी जाएगी।

उस समय एक युवक ने अपने पिता की जान ले ली (आदि, जैसा कि अध्याय 64 में है)।

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति पितृहत्या आदि का दोषी हो, उसे दंडित किया जाए।'

<<<< पिछला(1.64) | अगला(1.66) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.66
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.65) | अगला(1.67) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-66: प्रबुद्ध अर्हतों की हत्या करने वालों का दीक्षा न होना और निष्कासन।

1. उस समय कई भिक्षु साकेत से सावत्थी जाने वाले मार्ग पर यात्रा कर रहे थे। रास्ते में लुटेरों ने हमला किया, कुछ भिक्षुओं को लूट लिया और कुछ की हत्या कर दी। तब सावत्थी से राजसैनिक आए और कुछ लुटेरों को पकड़ लिया; बाकी भाग गए। जो भाग गए थे, उन्होंने भिक्षुओं के साथ दीक्षा ली; जो पकड़े गए थे, उन्हें मृत्युदंड दिया गया।

2. तब दीक्षित भिक्षुओं ने उन डाकुओं को मृत्युदंड के लिए ले जाते हुए देखा; उन्हें देखकर उन्होंने कहा, 'अच्छा हुआ कि हम बच गए; यदि हम पकड़े जाते, तो हमें भी इसी प्रकार मार डाला जाता।' भिक्षुओं ने उनसे कहा, 'अरे, तुमने क्या किया है, मित्रों?' तब दीक्षित भिक्षुओं ने भिक्षुओं को सारी बात बताई। भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, वे भिक्षु अरहत थे। हे भिक्षुओं, जिसने किसी अरहत की हत्या की हो, यदि उसने उपसंपदा दीक्षा प्राप्त नहीं की है, तो उसे दीक्षा न दी जाए; यदि उसने दीक्षा प्राप्त कर ली है, तो उसे (भिक्षुता से) निष्कासित कर दिया जाए।'

<<<< पिछला(1.65) | अगला(1.67) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.67
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.66) | अगला(1.68) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-67: भिक्षुणियों के साथ दुर्व्यवहार, फूट डालने और बुद्ध का रक्त बहाने वालों के लिए दीक्षा न लेने और निष्कासन के नियम।

उस समय कई भिक्षुणियाँ साकेत से सावत्थी जाने वाले मार्ग पर यात्रा कर रही थीं। रास्ते में लुटेरों ने हमला किया, कुछ भिक्षुणियों को लूट लिया और कुछ का बलात्कार किया। फिर शाही सैनिक (आदि, जैसा कि अध्याय 66 में वर्णित है)।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति किसी भिक्षुणी का उल्लंघन करता है (या किसी भिक्षुणी के साथ यौन संबंध बनाता है), (आदि, जैसा कि अध्याय 66 में है)।

'हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति संघ में फूट उत्पन्न करता है, आदि।'

'हे भिक्षुओं, जिसने (बुद्ध का) रक्त बहाया हो,' इत्यादि।

<<<< पिछला(1.66) | अगला(1.68) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.68
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.67) | अगला(1.69) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-68: नपुंसकों के लिए दीक्षा न होना और निष्कासन।

उस समय एक हिजड़े ने भिक्षुओं के साथ पब्बज्जा प्राप्त की थी; इसलिए करोति पि करापेति पि (हिजड़े के विशिष्ट हावभाव)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, एक हिजड़े को,' इत्यादि।

<<<< पिछला(1.67) । अगला(1.69) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.69
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.68) । अगला (1.70) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-69: दीक्षा न लेने और निष्कासन के अनेक नियम।

1. उस समय भिक्षुओं ने ऐसे व्यक्ति को उपसंपदा दीक्षा प्रदान की, जिसमें उपज्झयता नहीं थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जिस व्यक्ति में उपज्झाय न हो, उसे उपसम्पदा दीक्षा न दी जाए। जो व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

2. उस समय भिक्षुओं ने उपसम्पदा दीक्षा संघ को उपज्या के रूप में प्रदान की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'किसी को भी उपाज्जयाय के रूप में संघ के साथ उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। जो कोई भी (इस प्रकार) उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

3. उस समय भिक्षुओं ने कई भिक्षुओं को उपज्झय (आदि, पहले की तरह) के रूप में उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की।

4. उस समय भिक्षु उपसम्पदा दीक्षा देते थे, जिसमें वे नपुंसक को उपज्झाय, गुप्त रूप से संघ से जुड़े व्यक्ति को उपज्झाय, तित्तियों में परिवर्तित व्यक्ति को उपज्झाय, पशु को उपज्झाय, मातृहत्या के दोषी व्यक्ति को उपज्झाय, पितृहत्या के दोषी व्यक्ति को उपज्झाय, अरहत की हत्या करने वाले व्यक्ति को उपज्झाय, भिक्षुणी का अपमान करने वाले व्यक्ति को उपज्झाय, संघ में फूट डालने वाले व्यक्ति को उपज्झाय, बुद्ध का रक्त बहाने वाले व्यक्ति को उपज्झाय और नपुंसक को उपज्झाय दीक्षा देते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'किसी को भी अनुमति न दें,' इत्यादि (जैसा कि पहले खंड में है)।

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.70
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.69) । अगला(1.71) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-70: बिना कटोरे और वस्त्रों के या उधार के वस्त्रों के साथ दीक्षा देने का अपराध।

1. उस समय भिक्षुओं ने उन लोगों को उपसम्पदा दीक्षा दी जिनके पास भिक्षापात्र नहीं था। उन्होंने हाथों से भिक्षा ग्रहण की। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'तीठ्ठियों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षापात्र के बिना उपसम्पदा दीक्षा ग्रहण न करो। जो व्यक्ति उपसम्पदा दीक्षा (बिना भिक्षापात्र वाले व्यक्ति को) प्रदान करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

2. उस समय भिक्षुओं ने उन लोगों को उपसम्पदा दीक्षा दी जिनके पास वस्त्र नहीं थे। वे नग्न अवस्था में भिक्षा मांगने निकले। लोग नाराज़ थे (आदि, जैसा कि § 1 में है)।

3. उस समय भिक्षुओं ने उन लोगों को उपसम्पदा दीक्षा दी जिनके पास न तो भिक्षापात्र था और न ही वस्त्र। वे नग्न अवस्था में भिक्षा मांगने जाते थे और हाथों से भिक्षा ग्रहण करते थे। लोग नाराज़ थे (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)।

4. उस समय भिक्षुओं ने भिक्षापात्र उधार लेने वाले व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद (भिक्षापात्रों के मालिकों ने) अपने भिक्षापात्र वापस कर दिए; (भिक्षुओं ने) हाथों से भिक्षा ग्रहण की। लोग नाराज़ थे (आदि): 'तित्तियों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षापात्र उधार लेने वाले को उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। जो दान देता है,' इत्यादि (जैसा कि पहले खंड में है)।

5. उस समय भिक्षुओं ने उधार लिए हुए वस्त्रों को उपसम्पदा दीक्षा दी। दीक्षा के बाद (वस्त्र धारकों ने) अपने वस्त्र वापस कर दिए; (भिक्षु) नग्न अवस्था में भिक्षा मांगने निकल गए। लोग नाराज़ हो गए (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से अंत तक है)।

6. उस समय भिक्षुओं ने भिक्षापात्र और वस्त्र आदि उधार लेने वाले व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की।

यहां उन बीस मामलों का अंत होता है जिनमें उपसम्पदा निषिद्ध है।

<<<< पिछला(1.69) । अगला(1.71) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.71
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.70) । अगला(1.72) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-71: गंभीर रूप से पीड़ित व्यक्ति को धार्मिक अनुष्ठान करने का अपराध।

1. उस समय भिक्षुओं ने पब्बज्ज दीक्षा ऐसे व्यक्ति को दी जिसके हाथ कटे हुए थे, जिसके पैर कटे हुए थे, जिसके हाथ और पैर कटे हुए थे, जिसके कान कटे हुए थे, जिसकी नाक कटी हुई थी, जिसके कान और नाक कटे हुए थे, जिसकी उंगलियां कटी हुई थीं, जिसके अंगूठे कटे हुए थे, जिसके पैरों की नसें कटी हुई थीं, जिसके हाथ सांप के फन जैसे थे, जो कुबड़ा था, या बौना था, या जिसे घेंघा रोग था, जिसे दागा गया था, जिसे कोड़े मारे गए थे, एक घोषित लुटेरे को, हाथीपांव से पीड़ित व्यक्ति को, जो किसी गंभीर बीमारी से पीड़ित था, जो (किसी भी विकृति से) देखने वालों को आपत्ति दिलाता था, एक आंख वाले व्यक्ति को, टेढ़े अंग वाले व्यक्ति को, लंगड़े व्यक्ति को, एक तरफ से लकवाग्रस्त व्यक्ति को, अपंग व्यक्ति को, वृद्धावस्था से कमजोर व्यक्ति को, अंधे व्यक्ति को, गूंगे व्यक्ति को, बहरे व्यक्ति

को, अंधे व्यक्ति को और एक गूंगे आदमी पर, एक अंधे और बहरे आदमी पर, एक बहरे और गूंगे आदमी पर, एक अंधे, बहरे और गूंगे आदमी पर।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जिनके हाथ कटे हुए हों, उन्हें पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए। जिनके पैर कटे हुए हों, उन्हें पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए, इत्यादि (उपरोक्त प्रत्येक मामले को यहाँ दोहराया गया है)। जो व्यक्ति (ऐसे व्यक्तियों को) पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है।'

यहां उन बत्तीस मामलों का अंत होता है जिनमें पब्बज्जा निषिद्ध है।

नौवें भानवर का समापन।

<<<< पिछला(1.70) | अगला(1.72) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.72
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.71) | अगला(1.73) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-72: निर्लज्ज भिक्षुओं के साथ न रहना।

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने निर्लज्ज भिक्षुओं को निस्साया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, निर्लज्ज भिक्षुओं को निस्साया न दें। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है।'

उस समय कुछ भिक्षु निर्लज्ज भिक्षुओं पर निर्भर रहते थे (अर्थात उन्हें उनसे निस्साय प्राप्त होता था, वे उन्हें अपने उपज्झाय या आचार्य (शिक्षक) के रूप में चुनते थे); शीघ्र ही वे भी निर्लज्ज, बुरे भिक्षु बन गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी को भी निर्लज्ज भिक्षुओं पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि हम निर्लज्ज भिक्षुओं को निस्साय न दें और न ही निर्लज्ज भिक्षुओं पर निर्भर रहें। अब हम विनम्र और निर्लज्ज व्यक्तियों में कैसे अंतर करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप पहले चार-पाँच दिन प्रतीक्षा करें और यह देख लें कि एक भिक्षु दूसरे भिक्षुओं के साथ कैसा व्यवहार करता है।'

<<<< पिछला(1.71) । अगला(1.73) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.73

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.72) । अगला(1.74) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-73: बिना प्रशिक्षक के जीवन यापन करने की शर्तें।

1. उस समय एक भिक्षु कोसल देश में यात्रा कर रहा था। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि हमें बिना आचार्य और उपज्या के नहीं रहना चाहिए; अब मुझे आचार्य की आवश्यकता है, लेकिन मैं यात्रा कर रहा हूँ। मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं उस भ्रमणशील भिक्षु को, जिसे कोई निस्य प्राप्त नहीं हो सकता, बिना निस्य के रहने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय दो भिक्षु कोसल देश में यात्रा कर रहे थे। वे एक निवास स्थान पर पहुँचे; वहाँ उनमें से एक भिक्षु बीमार पड़ गया। अब उस बीमार भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि हमें निस्साय के बिना नहीं रहना चाहिए; अब मुझे निस्साय की आवश्यकता है, लेकिन मैं बीमार हूँ। मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक बीमार भिक्षु को, जिसे निस्साय प्राप्त नहीं हो सकता, निस्साय के बिना रहने की अनुमति देता हूँ।'

3. अब दूसरे भिक्षु, जो उस बीमार भिक्षु की सेवा कर रहे थे, सोचने लगे: 'भगवान बुद्ध ने नियम बताए हैं, इत्यादि; अब मुझे निस्साय चाहिए, लेकिन यह भिक्षु बीमार है। मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं उस भिक्षु को अनुमति देता हूँ जो किसी बीमार भिक्षु की सेवा कर रहा हो, यदि उसे कोई निस्साय न मिले और बीमार भिक्षु उससे (उसके साथ रहने का) अनुरोध करे, तो वह निस्साय के बिना रह सकता है।'

4. उस समय वन में एक भिक्षु रहता था; उसका एक निवास स्थान था जहाँ वह सुखपूर्वक रहता था। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने नियम बताए हैं, इत्यादि; अब मुझे निश्चय चाहिए, परन्तु मैं वन में रहता हूँ और मेरा एक निवास स्थान है जहाँ मैं सुखपूर्वक रहता हूँ। मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं वन में रहने वाले उस भिक्षु को अनुमति देता हूँ जिसे रहने के लिए सुखद स्थान मिल जाए और जिसे वहाँ कोई निस्साय न मिले, वह निस्साय के बिना रह सकता है (मन ही मन कहते हुए): "यदि मुझे निस्साय देने वाला कोई योग्य व्यक्ति यहाँ आए, तो मैं उस व्यक्ति से निस्साय ग्रहण करूँगा।"

<<<< पिछला(1.72) । अगला(1.74) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.74

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.73) | अगला (1.75) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-74: एक साथ दो या तीन लोगों के लिए दीक्षा समारोह।

1. उस समय एक व्यक्ति आदरणीय महाकस्सपा से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता था। तब आदरणीय महाकस्सपा ने आदरणीय आनंद के पास एक दूत भेजा: 'आनंद, आइए और इस व्यक्ति के लिए उपसंपदा की घोषणा कीजिए।' आदरणीय आनंद ने कहा: 'मैं थेरा (अर्थात महाकस्सपा) का नाम नहीं ले सकता; थेरा मुझसे कहीं अधिक आदरणीय हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें घोषणा में उपाज्जया के पारिवारिक नाम (उनके उचित नाम के स्थान पर) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय दो व्यक्ति पूज्य महाकस्सपा से उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते थे। वे आपस में झगड़ पड़े। (एक ने कहा): 'मैं पहले उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करूँगा।' (दूसरे ने कहा): 'नहीं, मैं पहले प्राप्त करूँगा।' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक ही घोषणा द्वारा दो व्यक्तियों को दीक्षा देने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय कुछ व्यक्ति अलग-अलग थेरों से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते थे। वे आपस में झगड़ पड़े। (एक ने कहा): 'मैं पहले उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करूँगा।' (दूसरे ने कहा): 'नहीं, मैं पहले प्राप्त करूँगा।' थेरों ने कहा: 'ठीक है मित्रों, आइए हम एक ही घोषणा द्वारा इन सभी को एक साथ दीक्षा दे दें।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक ही घोषणा द्वारा दो या तीन व्यक्तियों को दीक्षा देने की अनुमति देता हूँ, बशर्ते कि उनकी उपज्या एक ही हो, लेकिन यदि उनकी उपज्या भिन्न-भिन्न हो तो नहीं।'

<<<< पिछला (1.73) | अगला (1.75) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.75
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.74) | अगला (1.76) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-75: जन्म से पहले गर्भाधान से दीक्षा की अनुमति देना।

उस समय पूज्य कुमारकस्सपा ने गर्भाधान के बीस वर्ष पूरे होने पर उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की थी (जन्म से नहीं)। अब पूज्य कुमारकस्सपा ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने हमें बीस वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा देने से मना किया है, और मैंने गर्भाधान के बीस वर्ष ही पूरे किए हैं। तो क्या मैंने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की है या नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जब गर्भ में (नवजात शिशु में) प्रथम विचार उत्पन्न होता है, प्रथम चेतना प्रकट होती है, उसी के अनुसार (सच्चा) जन्म माना जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, मैं आपको केवल उन्हीं व्यक्तियों को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करने की अनुमति देता हूँ जिन्होंने गर्भाधान के बीस वर्ष पूरे कर लिए हों।'

<<<< पिछला (1.74) | अगला (1.76) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.76

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (1.75) | अगला (1.77) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-76: नवागंतुकों के लिए प्रश्नावली की स्थापना और केवल विद्वान भिक्षुओं द्वारा दीक्षा।

1. उस समय ऐसे दीक्षित भिक्षु देखे गए जो कुष्ठ रोग, फोड़े, शुष्क कुष्ठ रोग, क्षय रोग और दौरे से पीड़ित थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करने वाला व्यक्ति दीक्षा ग्रहण करने के लिए अयोग्यताओं के बारे में पूछे। और हे भिक्षुओं, वह इस प्रकार पूछे:

क्या आप निम्नलिखित बीमारियों से पीड़ित हैं: कुष्ठ रोग, फोड़े, शुष्क कुष्ठ रोग, क्षय रोग और दौरे?

'क्या आप पुरुष हैं?

'क्या आप पुरुष हैं?'

क्या आप स्वतंत्र व्यक्ति हैं?

क्या आप पर कोई कर्ज नहीं है?

क्या आप राजपरिवार में नहीं हैं?

क्या आपके माता-पिता ने अपनी सहमति दे दी है?

'क्या आपकी उम्र पूरे बीस साल हो गई है?'

'क्या आपका भिक्षापात्र और आपके वस्त्र उचित स्थिति में हैं?'

'आपका क्या नाम है?

'तुम्हारी उपज्झाया का नाम क्या है?'

2. उस समय भिक्षुओं ने उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों से पूर्व निर्देश दिए बिना ही अपाप्यताओं के बारे में पूछा (कि उन्हें कैसे उत्तर देना है)। दीक्षा प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति व्याकुल और भ्रमित हो गए और उत्तर नहीं दे सके।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप पहले (दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्तियों को) शिक्षा दें, और फिर उनसे अपात्रताओं के बारे में पूछें।'

3. फिर उन्होंने सभा के बीच में (उम्मीदवारों को) निर्देश दिए; अभिषेक पाने के इच्छुक लोग व्याकुल, भ्रमित हो गए और फिर भी उत्तर नहीं दे सके।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप उन्हें अलग से उपदेश दें और सभा के समक्ष उनसे अपात्रता के बारे में पूछें। हे भिक्षुओं, आपको उन्हें इस प्रकार उपदेश देना चाहिए: सबसे पहले उन्हें एक उपज्झाय चुनने के लिए कहें; जब वे उपज्झाय चुन लें, तो उन्हें उनका भिक्षापात्र और वस्त्र दिखाते हुए कहें, "यह आपका भिक्षापात्र है, यह आपकी संघटी है, यह आपका ऊपरी वस्त्र है, यह आपका अंतर्वस्त्र है; आइए और यहाँ बैठ जाइए।"

4. अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षुओं ने उन्हें शिक्षा दी; दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति, यद्यपि उन्हें शिक्षा दी गई थी, विचलित, भ्रमित हो गए और उत्तर नहीं दे सके।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अज्ञानी और अनपढ़ भिक्षुओं को इन्हें शिक्षा न देने दें। ऐसा करने पर वे दुक्कटा अपराध करेंगे। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि एक विद्वान और योग्य भिक्षु ही इन्हें शिक्षा दे।'

5. उस समय उन्हें निर्देश देने वाले व्यक्ति वे थे जिन्हें उस पद पर नियुक्त नहीं किया गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, बिना नियुक्त हुए कोई भी उन्हें उपदेश न दे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि एक नियुक्त भिक्षु ही उन्हें उपदेश दे। और (इस भिक्षु की) नियुक्ति इस प्रकार की जानी चाहिए: कोई स्वयं को नियुक्त कर सकता है, या किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। और (एक भिक्षु) स्वयं को कैसे नियुक्त करेगा? एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित निवेदन करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। NN आदरणीय NN से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। यदि संघ तैयार है, तो मैं NN को उपदेश दूंगा।" इस प्रकार कोई स्वयं को नियुक्त कर सकता है।

6. और (भिक्षु) किसी दूसरे व्यक्ति को कैसे नियुक्त कर सकता है? एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करे: "संघ, आदि, आदरणीय भिक्षु से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। यदि संघ तैयार है, तो भिक्षु भिक्षु को निर्देश दें।" इस प्रकार किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है।

7. 'फिर नियुक्त भिक्षु दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति के पास जाकर उससे इस प्रकार कहें: "हे भिक्षु, क्या तुम सुन रहे हो? यही समय है सत्य बोलने का, और जो है वही कहने का। जब मैं सभा के समक्ष तुमसे सत्य के बारे में पूछूँ, तो यदि सत्य हो, तो उत्तर देना: 'यहाँ सत्य है;' यदि सत्य न हो, तो उत्तर देना: 'यहाँ सत्य नहीं है। विचलित मत हो, व्याकुल मत हो। मैं तुमसे इस प्रकार पूछूँगा: 'क्या तुम निम्नलिखित रोगों आदि से पीड़ित हो?'"

8. (निर्देश के बाद, प्रशिक्षक और उम्मीदवार) सभा के सामने एक साथ उपस्थित हुए।

उन्हें एक साथ उपस्थित न होने दें। प्रशिक्षक पहले आएं और संघ के समक्ष निम्नलिखित घोषणा करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ, मेरी बात सुनें। एनएन आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं; मैंने उन्हें शिक्षा दी है। यदि संघ तैयार है, तो एनएन आएं।" फिर उन्हें कहा जाए: "आओ।" उन्हें अपना ऊपरी वस्त्र ठीक करने (आदि, अध्याय 29.2 देखें), अपने हाथ जोड़कर उठाने और उपसंपदा दीक्षा के लिए संघ से प्रार्थना करने को कहा जाए (यह कहते हुए), "हे आदरणीय महोदय, मैं संघ से उपसंपदा दीक्षा के लिए प्रार्थना करता/करती हूं; हे आदरणीय महोदय, मुझ पर दया करके संघ मुझे (पापपूर्ण संसार से) बाहर निकाल दे। और दूसरी बार, हे आदरणीय महोदय, मैं प्रार्थना करता/करती हूं, इत्यादि। और तीसरी बार, हे आदरणीय महोदय, मैं प्रार्थना करता/करती हूं, इत्यादि।"

9. 'तब एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ती की घोषणा करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें। यह व्यक्ति एनएन आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। यदि संघ तैयार है, तो मैं एनएन से अयोग्यताओं के बारे में पूछूंगा।'

"क्या तुम सुन रहे हो, एनएन? यही वह समय है जब तुम्हें (आदि, अनुच्छेद 7 देखें, नीचे तक) उत्तर देना चाहिए: 'ऐसा नहीं है।'"

"क्या आप निम्नलिखित बीमारियों आदि से पीड़ित हैं?"

10. 'तब एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। यह व्यक्ति, एनएन, आदरणीय एनएन से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है; वह अयोग्यताओं से मुक्त है; उसका भिक्षापात्र और वस्त्र उचित अवस्था में हैं। एनएन संघ से उपसंपदा दीक्षा का अनुरोध करता है, जिसमें एनएन उपज्झाय होगा। यदि संघ तैयार है, इत्यादि।"'

उपसम्पदा दीक्षा के नियमों का समापन।

<<<< पिछला (1.75) | अगला (1.77) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खण्डक >> 1.77

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.76) | अगला(1.78) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-77: नवागंतुकों को दीक्षा नियमों का हवाला देना।

'फिर उन्हें छाया मापने दो, (नवदीक्षित भिक्षु को) बताओ कि कौन सा मौसम है और कौन सी तिथि है, दिन का कौन सा भाग है, पूरा सूत्र बताओ और चारों संसाधनों के बारे में बताओ: "धम्म जीवन का संसाधन भिक्षा में प्राप्त भोजन के टुकड़े हैं (आदि, जैसा कि अध्याय 30.4 में है)।"'

चारों संसाधनों का अंत।

<<<< पिछला(1.76) | अगला(1.78) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.78

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.77) | अगला(1.79) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-78: एक भिक्षु ने पत्नी के साथ यौन संबंध बनाया और उसे नियम बताए गए।

1. उस समय भिक्षुओं ने एक भिक्षु को उपसम्पदा दीक्षा देने के बाद उसे अकेला छोड़कर चले गए। बाद में, जब वह अकेले (आराम (मठ) जा रहा था, तो रास्ते में उसकी मुलाकात अपनी पूर्व पत्नी से हुई। उसने उससे पूछा, 'क्या तुमने अब धम्म जीवन अपना लिया है?' (उसने उत्तर दिया): 'हाँ, मैंने धम्म जीवन अपना लिया है।' 'धम्म जीवन अपनाने वालों के लिए यौन संबंध बनाना कठिन होता है; आओ, हम संभोग करें।' उसने उसके साथ संभोग किया, और परिणामस्वरूप (आराम (मठ) देर से पहुँचा। भिक्षुओं ने पूछा, 'हे मित्र, इतनी देर क्यों हो गई?'

2. तब उस भिक्षु ने सारी बात अन्य भिक्षुओं को बताई। भिक्षुओं ने वह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि आप नवदीक्षित भिक्षु को एक साथी दें और उसे चारों निषेधों के बारे में बताएँ।

“उपसंपदा दीक्षा प्राप्त भिक्षु को पशु सहित किसी भी प्रकार के यौन संबंध से बचना चाहिए। यौन संबंध बनाने वाला भिक्षु न तो समन (भिक्षु) है और न ही शाक्यपुत्त का अनुयायी। जैसे सिर कटा हुआ व्यक्ति केवल धड़ के सहारे जीवित नहीं रह सकता, वैसे ही यौन संबंध बनाने वाला भिक्षु न तो समन (भिक्षु) है और न ही शाक्यपुत्त का अनुयायी। जीवन भर इससे दूर रहो।”

3. “उपसंपदा दीक्षा प्राप्त भिक्षु को वह सब कुछ लेने से बचना चाहिए जो उसे नहीं दिया गया है, और चोरी से भी बचना चाहिए, यहाँ तक कि घास के एक तिनके की भी नहीं। जो भिक्षु वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है, या यदि वह एक पद (अर्थात कर्शपना का एक चौथाई भाग) है, या एक पद के मूल्य का है या उससे अधिक मूल्य का है, तो वह समन (भिक्षु) नहीं है और शाक्यपुत्त का अनुयायी नहीं है। जैसे सूखी पत्ती डंठल से अलग होने पर फिर से हरी नहीं हो सकती, वैसे ही जो भिक्षु कुछ लेता है, आदि। अपने जीवन भर ऐसा करने से बचें।”

4. “उपसंपदा दीक्षा प्राप्त भिक्षु को किसी भी प्राणी, यहाँ तक कि कीड़े या चींटी का भी, जानबूझकर वध नहीं करना चाहिए। जो भिक्षु जानबूझकर किसी मनुष्य की हत्या करता है, यहाँ तक कि गर्भपात भी करवाता है, वह न तो समन है और न ही शाक्यपुत्त का अनुयायी। जैसे एक बड़ा पत्थर दो टुकड़ों में टूट जाए तो उसे फिर से जोड़ा नहीं जा सकता, वैसे ही जो भिक्षु जानबूझकर ऐसा करता है, आदि। अपने जीवन भर ऐसा करने से बचें।”

5. "उपसंपदा दीक्षा प्राप्त भिक्षु को स्वयं को कोई अलौकिक स्थिति नहीं देनी चाहिए, और न ही यह कहना चाहिए: 'मुझे किसी खाली जगह में रहने में आनंद आता है।'" जो भिक्षु बुरे इरादे से और लोभवश स्वयं को ऐसी अलौकिक अवस्था का आभास कराता है, जो उसके पास न तो है और न ही वह उससे संपन्न है, जैसे कि ध्यान (रहस्यमय ध्यान/सम्मोहन की अवस्था), या विमोक्षों में से कोई एक, या समाधि (आत्म-एकाग्रता की अवस्था), या समापत्ति (चारों घनों और आठ विमोक्षों में से चार की प्राप्ति), या मोक्ष के मार्ग, या उसके फलों में से कोई एक, वह न तो समन है और न ही शाक्यपुत्त का अनुयायी। जैसे ताड़ के पेड़ की ऊपरी शाखा काट देने पर वह दोबारा नहीं उग सकती, वैसे ही जो भिक्षु बुरे इरादे से ऐसा करता है, आदि। जीवन भर ऐसा करने से बचें।

चारों निषेधाज्ञाओं का अंत।

<<<< पिछला(1.77) | अगला(1.79) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> प्रथम खंडक >> 1.79

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.78) | अगला(2.1) >>>>

महावग्ग

प्रथम खंडक (भिक्षुओं के संघ की स्थापना)

अध्याय-79: निष्कासित भिक्षु की पुनः प्रवेश योग्यता।

1. उस समय एक भिक्षु, जिसे अपने द्वारा किए गए अपराध को देखने से इनकार करने के कारण निष्कासित कर दिया गया था, संसार में लौट आया। बाद में वह भिक्षुओं के पास वापस आया और उनसे उपसंपदा दीक्षा का अनुरोध किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, जिसे अपने द्वारा किए गए अपराध को देखने से इनकार करने के कारण निष्कासित कर दिया गया हो, संसार में लौट आता है और बाद में भिक्षुओं के पास आकर उपसम्पदा दीक्षा मांगता है, तो उससे यह पूछें: "क्या तुम वह अपराध देखना चाहते हो?" यदि वह उत्तर दे: "मैं देखूंगा," तो उसे पब्बज्ज दीक्षा दी जाए; यदि वह उत्तर दे: "मैं नहीं देखूंगा," तो उसे पब्बज्ज दीक्षा न दी जाए।

2. जब उसे पब्बज्ज दीक्षा मिल जाए, तो उससे कहा जाए: "क्या तुम वह अपराध देखोगे?" यदि वह कहे: "मैं देखूंगा," तो उसे उपसंपदा दीक्षा दी जाए; यदि वह कहे: "मैं नहीं देखूंगा," तो उसे उपसंपदा दीक्षा न दी जाए।

जब उसे उपसम्पदा दीक्षा (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) प्राप्त हो जाए। यदि वह कहे: "मैं इसे देखूंगा," तो उसे बहाल किया जाए; यदि वह कहे: "मैं इसे नहीं देखूंगा," तो उसे बहाल न किया जाए।

जब उसे बहाल कर दिया जाए, तो उससे कहें: "क्या तुम्हें वह अपराध दिखाई देता है?" यदि उसे वह दिखाई देता है, तो अच्छा है; यदि उसे वह दिखाई नहीं देता है, तो उसे फिर से निष्कासित कर दें, यदि निष्कासन के निर्णय पर बिरादरी में सर्वसम्मति संभव हो; यदि यह असंभव है, तो ऐसे भिक्षु के साथ रहना और निवास करना कोई अपराध नहीं है।

3. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु को उसके द्वारा किए गए अपराध के प्रायश्चित से इनकार करने के कारण निष्कासित कर दिया गया हो, तो उसे पुनः प्रवेश देने पर उससे कहा जाए: "अब उस अपराध का प्रायश्चित करो।" यदि वह प्रायश्चित कर ले, तो अच्छा है, इत्यादि।

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु को किसी झूठे सिद्धांत आदि का त्याग करने से इनकार करने के कारण निष्कासित कर दिया गया हो, तो उसे पुनः प्रवेश दे दिया जाए, तो उससे कहा जाए: "अब उस झूठे सिद्धांत का त्याग करो।" यदि वह उसका त्याग कर दे, तो अच्छा है, इत्यादि।

प्रथम खंडक का अंत, जिसे महान खंडक कहा जाता है।

<<<< पिछला(1.78) । अगला(2.1) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> दूसरा खंडक >> 2.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.79) । अगला(2.2) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा।)

अध्याय-1: राजा बिम्बिसार ने बुद्ध से प्रत्येक अर्ध माह के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को भिक्षुओं की सभा आयोजित करने का अनुरोध किया।

1. उस समय महान बुद्ध राजगृह के निकट, गिज्जकुटा पर्वत ('गिद्ध शिखर') पर निवास करते थे। उस समय तिथि संप्रदायों के परिभजक प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन एकत्रित होकर अपने उपदेश देते थे। लोग उपदेश सुनने के लिए उनके पास जाते थे। वे तिथि संप्रदायों के परिभजकों के प्रति स्नेह और आस्था से भर जाते थे; तिथि संप्रदायों के परिभजकों को अनुयायी प्राप्त होते थे।

2. जब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार अकेले थे और एकांतवास में चले गए थे, तब उनके मन में यह विचार आया: 'तित्तीय संप्रदायों के परिब्बाजक प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को एकत्रित होकर अपना उपदेश देते हैं। लोग उनका उपदेश सुनने

के लिए उनके पास जाते हैं। वे तित्तीय संप्रदायों के परिब्बाजकों के प्रति स्नेह और आस्था से भर जाते हैं; तित्तीय संप्रदायों के परिब्बाजकों को अनुयायी मिलते हैं। यदि पूज्य भिक्षु (बौद्ध भिक्षु) भी प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को एकत्रित हों तो क्या होगा?'

3. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, जब मैं एकांत में था और एकांतवास में गया था, तब मेरे मन में यह विचार आया: "परिबजक आदि; यदि प्रत्येक पंचमाह के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन भी पूज्य लोग एकत्रित हों तो क्या होगा?" हे प्रभु, पूज्य लोग प्रत्येक पंचमाह के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन भी एकत्रित हों।

4. तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया; और भगवान बुद्ध द्वारा धर्म प्रवचन से शिक्षा प्राप्त और प्रसन्न होकर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की और चले गए।

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप प्रत्येक माह की चौदहवीं, पंद्रहवीं और अष्टम तिथि को एकत्रित हों।'

<<<< पिछला(1.79) | अगला(2.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.1) | अगला(2.3) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-2: भिक्षुओं द्वारा प्रत्येक अर्ध माह के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को धम्म का पाठ करना।

उस समय भिक्षुओं ने यह जानते हुए कि भगवान बुद्ध ने उन्हें प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें दिन आदि को एकत्रित होने का आदेश दिया है, प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें दिन आदि को एकत्रित होकर मौन बैठे रहे। लोग धर्म का पाठ सुनने के लिए उनके पास गए। वे नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'शाक्यपुत्र समन प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें दिन आदि को एकत्रित होकर मूक या सूअरों की तरह मौन कैसे बैठ सकते हैं? क्या उन्हें एकत्रित होकर धर्म का पाठ नहीं करना चाहिए?' कुछ भिक्षुओं ने उन नाराज़, बड़बड़ाते और क्रोधित लोगों को सुना; इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम प्रत्येक पखवाड़े के चौदहवें दिन आदि को एकत्रित होकर धर्म का पाठ करो।' प्रत्येक आधे महीने के दिन।

<<<< पिछला(2.1) | अगला(2.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> दूसरा खंडक >> 2.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.2) | अगला(2.4) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-3: बुद्ध ने पतिमोक्खा पाठ की शुरुआत का निर्देश दिया।

1. अब जब भगवान बुद्ध अकेले थे और एकांतवास में चले गए थे, तब उनके मन में यह विचार आया: 'यदि मैं भिक्षुओं को यह निर्देश दूं कि वे पतिमोक्खा के रूप में उन उपदेशों का पाठ करें जो मैंने उन्हें दिए हैं; तो यही उनकी उपोसथा सेवा (उपवास के दिन की सेवा) होगी।'

2. और भगवान बुद्ध ने उस समय और उस अवसर पर संध्याकाल में एकांतवास छोड़कर, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, जब मैं एकांत में था और एकांतवास में गया था, तब मैंने निम्नलिखित विचार आदि किए, यही उनकी उपोसथ सेवा होगी। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पतिमोक्खा का पाठ करने का विधान करता हूँ।'

3. हे भिक्षुओं, आपको इसका पाठ इस प्रकार करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन की घोषणा करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। आज उपोसथ है, पंद्रहवाँ (अर्धमाके का)। यदि संघ तैयार हो, तो संघ उपोसथ सेवा करे और पतिमोक्ख का पाठ करे। संघ को सर्वप्रथम क्या करना चाहिए? हे महोदय, परिशुद्धि की घोषणा कीजिए। मैं पतिमोक्ख का पाठ करूँगा।"

"हम इसे ध्यान से सुनते हैं और हम सभी इस पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं।"

“जिसने कोई अपराध किया हो, वह उसे स्वीकार कर सकता है; यदि कोई अपराध न हो, तो चुप रहना चाहिए; आपके चुप रहने से मैं समझूंगा कि आदरणीय भिक्षु (अपराधों से मुक्त) हैं। जैसे किसी एक व्यक्ति से जब कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उसका उत्तर देता है, उसी प्रकार यदि इस प्रकार की सभा के समक्ष कोई प्रश्न तीन बार विधिपूर्वक पूछा जाए, तो यदि कोई भिक्षु तीन बार पूछे जाने के बाद भी अपने द्वारा याद किए गए अपराध को स्वीकार नहीं करता है, तो वह जानबूझकर झूठ बोलता है। आदरणीय भिक्षुओं, जानबूझकर झूठ बोलना भगवान बुद्ध द्वारा एक बाधा घोषित किया गया है। इसलिए, जिस भिक्षु ने (अपराध किया हो), उसे याद हो, और वह शुद्ध होना चाहता हो, तो उसे अपने द्वारा किए गए अपराध को स्वीकार करना चाहिए; क्योंकि स्वीकार करने पर उसका उचित उपचार हो जाता है।”

4. 'पतिमोक्खम': यह आरंभ है, यह मुख (मुखम) है, यह धर्मपरायण मार्ग/नियमों (धम्मनम) का मूल (पामुखम) है; इसलिए इसे 'पतिमोक्खम' कहा जाता है।

'अयस्मान्तो': यह शब्द 'अयस्मान्तो' मित्रता की अभिव्यक्ति है, सम्मान की अभिव्यक्ति है, एक ऐसा नाम है जो आदर और श्रद्धा का भाव व्यक्त करता है।

'उद्दिसिसामि:' मैं उच्चारण करूँगा, मैं दिखाऊँगा, मैं घोषणा करूँगा, मैं स्थापित करूँगा, मैं पर्दा हटाऊँगा, मैं भेद करूँगा, मैं स्पष्ट करूँगा, मैं बताऊँगा।

'ताम' (यह): यह पतिमोक्खा को संदर्भित करता है।

'सब्बे वा संता' (हम सभी): उस सभा में जितने भी लोग उपस्थित हैं, वृद्ध, युवा और मध्यम आयु वर्ग के (भिक्षु), उन सभी को 'सब्बे वा संता' से दर्शाया गया है।

'साधुकम सुनोमा' (हम इसे अच्छी तरह सुनते हैं): इसके अधिकार को स्वीकार करते हुए, अपना ध्यान इस पर केंद्रित करते हुए, हम इसे अपने विचारों में पूरी तरह दोहराते हैं।

'मनसिकरोमा' (हम अपना ध्यान इस पर केंद्रित करते हैं): हम इसे एकाग्रता से सुनते हैं, न कि भ्रमित या विचलित विचारों के साथ।

5. 'यस्सा सिया अपात्ति' (वह जिसने अपराध किया है): वह, चाहे वह वृद्ध हो, युवा हो या मध्यम आयु का भिक्षु हो, जिसने पाँच प्रकार के अपराधों या सात प्रकार के जुर्मों में से कोई अपराध किया हो।

'सो अविकरेय्या:' वह इसे दिखा सकता है, इसका अनावरण कर सकता है, इसे स्पष्ट कर सकता है, इसे संघ (भिक्षुओं के पूरे अध्याय) के सामने, या एक छोटी संख्या के सामने, या एक व्यक्ति के सामने घोषित कर सकता है।

'असन्ती अपात्ती' (एक गैर-मौजूद अपराध): एक ऐसा अपराध जो न किया गया हो, या जो किया गया हो और जिसका प्रायश्चित किया जा चुका हो।

'तुन्ही भवितब्बम' (उसे चुप रहना चाहिए): उसे (बिना कोई उत्तर दिए पतिमोक्खा का पाठ) स्वीकार करना चाहिए, उसे कुछ भी नहीं बोलना चाहिए।

'परिसुद्धा 'ति वेदिस्सामि' (मैं समझूंगा कि वे शुद्ध हैं): मैं अनुमान लगाऊंगा, मैं जानूंगा।

6. 'यथा खो पाना पक्केकपुत्थस्स वेय्याकरणम् होती' (जैसे कोई व्यक्ति किसी प्रश्न का उत्तर देता है): जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देता है, उसी प्रकार उस सभा में उपस्थित लोगों को यह समझना चाहिए: 'वह मुझसे पूछता है।' 'एवरूप परिसा' (इस प्रकार की सभा): यह भिक्षुओं की सभा को संदर्भित करता है।

'यवततियम अनुस्सवितम होति' (इसकी तीन बार विधिवत घोषणा की गई है): इसकी एक बार, दूसरी बार और तीसरी बार विधिवत घोषणा की गई है।

'सरमानो' (इसे याद रखना): इसे जानना, इसके प्रति सचेत रहना।

'सन्ती अपात्ती' (एक मौजूदा अपराध): एक ऐसा अपराध जो किया जा चुका है, या जो किया जा चुका है और जिसका प्रायश्चित नहीं किया गया है।

'नविकारेय्या': वह इसे प्रकट नहीं करता, वह इसका पर्दाफाश नहीं करता, वह इसे स्पष्ट नहीं करता, वह इसे संघ के समक्ष, या किसी छोटे अध्याय के समक्ष, या किसी एक व्यक्ति के समक्ष घोषित नहीं करता।

7. 'संपजानमुसवद' अस्स होती' (वह जानबूझकर झूठ बोलता है): जानबूझकर झूठ बोलना क्या है? यह एक पाप है।

'अंतरायिको धम्मो वुत्तो भगवता' (इसे भगवान बुद्ध ने बाधा घोषित किया है): किसमें बाधा? प्रथम घन की प्राप्ति में बाधा, द्वितीय... तृतीय... चतुर्थ घन की प्राप्ति में बाधा, घनों, विमोक्षों, समाधियों (आत्म-एकाग्रता की अवस्थाओं), समापत्तियों (चार घनों की आठ उपलब्धियाँ और आठ विमोक्षों में से चार) की प्राप्ति में बाधा, त्याग की अवस्था, संसार से मुक्ति की अवस्था, एकांतवास की अवस्था, और सभी अच्छे गुणों की प्राप्ति में बाधा।

'तस्मा:' इसी कारण से।

'सरमनेना' (उसके द्वारा जो इसे याद रखता है): उसके द्वारा जो इसे जानता है और इसके प्रति सचेत है।

'विशुद्धपेक्खेना' (जो शुद्ध होना चाहता है): जो इसका प्रायश्चित करना चाहता है और स्वयं को इससे शुद्ध करना चाहता है।

8. 'संति अपाति' । . . (§ 6 देखें)।

'अविकतब्बा' (स्वीकारोक्ति करनी है): संघ के समक्ष, या किसी छोटे अध्याय के समक्ष, या किसी एक व्यक्ति के समक्ष स्वीकारोक्ति करनी है।'

'Avikata hi 'ssa phasu hoti' (क्योंकि यदि स्वीकार किया गया है, तो उसके साथ विधिवत व्यवहार किया जाता है): विधिवत किस उद्देश्य से? प्रथम घाना (और इसी प्रकार, जैसा कि § 7 में है, नीचे तक:) सभी अच्छे गुणों की प्राप्ति के लिए उचित तरीके से।

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.3) | अगला(2.5) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-4: बुद्ध ने प्रत्येक छह महीने में एक बार उपवास के दिन (उपोसथ) पतिमोक्खा पाठ करने का आदेश दिया।

1. उस समय भिक्षु यह मानते हुए कि पतिमोक्ख पाठ भगवान बुद्ध द्वारा स्थापित किया गया था, प्रतिदिन पतिमोक्ख पाठ करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, पतिमोक्खा का पाठ प्रतिदिन नहीं करना चाहिए। जो इसका पाठ प्रतिदिन करता है, वह दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं उपोसथ दिवस पर ही पतिमोक्खा का पाठ करने का आदेश देता हूँ।'

2. उस समय भिक्षुओं ने यह मानते हुए कि भगवान बुद्ध ने उपोसथ दिवस पर पतिमोक्खा का पाठ करने का विधान किया था, प्रत्येक अर्धमाह के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन तीन बार पतिमोक्खा का पाठ किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, पतिमोक्खा का पाठ प्रत्येक पखवाड़े में तीन बार नहीं करना चाहिए। जो इसका पाठ (तीन बार) करता है, वह दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप प्रत्येक पखवाड़े में एक बार, चौदहवें या पंद्रहवें दिन पतिमोक्खा का पाठ करें।'

<<<< पिछला(2.3) | अगला(2.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.4) | अगला(2.6) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-5: एक ही मठ के भीतर अर्हंतों सहित सभी उपस्थित लोगों द्वारा पतिमोक्खा का पाठ किया जाना।

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु अपने-अपने साथियों के सामने, आपस में रहते हुए, पतिमोक्खा का पाठ करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, पतिमोक्खा का पाठ भिक्षुओं के आपसी मिलन के तरीके से, यानी प्रत्येक भिक्षु द्वारा अपने साथियों के सामने नहीं किया जाना चाहिए। जो इसका पाठ इस प्रकार करता है, वह दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि उपोसथा सेवा संपूर्ण भिक्षु समुदाय द्वारा की जानी चाहिए।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने यह निर्धारित किया है कि उपोसथा सेवा संपूर्ण भिक्षु समुदाय द्वारा की जानी चाहिए। पूर्णता का विस्तार कहाँ तक है, क्या यह एक निवास (या एक मठ) तक सीमित है, या पूरी पृथ्वी पर?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि पूर्णता एक निवास स्थान तक ही सीमित होनी चाहिए।'

3. उस समय पूज्य महा कप्पिना राजगृह के पास, मद्दकुक्खी के हिरण उद्यान में निवास करते थे। एक दिन जब पूज्य महा कप्पिना अकेले थे और एकांत में विश्राम कर रहे थे, तब उनके मन में यह विचार आया: 'क्या मुझे उपोसथ सेवा में जाना चाहिए या नहीं? क्या मुझे संघ के कार्यक्रमों में जाना चाहिए या नहीं? वास्तव में मैं सर्वोच्च पवित्रता से शुद्ध हो चुका हूँ (अर्थात मैं अरहतत्व या निर्वाण प्राप्त कर चुका हूँ)।'

4. तब भगवान बुद्ध ने अपनी बुद्धि की शक्ति से महा कप्पिना के मन में उठे विचार को समझकर, गिज्जकुटा पर्वत से अंतर्धान होकर मद्दकुक्खी के हिरण उद्यान में पूज्य महा कप्पिना के समक्ष (तत्काल) प्रकट हुए, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस खींचता है। भगवान बुद्ध अपने लिए बिछाई गई आसन पर बैठ गए, और पूज्य महा कप्पिना ने भी भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करके उनके पास बैठ गए।

5. जब पूज्य महा कप्पिना उनके पास बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा: 'जब आप अकेले थे, कप्पिना, और एकांत में चले गए थे, तो क्या आपके मन में यह विचार नहीं आया: "क्या मैं सर्वोच्च पवित्रता के मार्ग से जाऊं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 3 में नीचे दिया गया है):'

'फिर भी, प्रभु।'

'यदि तुम ब्राह्मण उपोसथा का आदर, सम्मान, आदर, श्रद्धा नहीं करोगे, तो फिर उपोसथा का आदर, सम्मान, श्रद्धा, श्रद्धा कौन करेगा? हे ब्राह्मण, उपोसथा के पास जाओ, जाने में लापरवाही मत करो; संघ के समारोहों में जाओ, जाने में लापरवाही मत करो।' पूज्य महा कप्पिना ने भगवान बुद्ध को ऐसा करने का वचन देते हुए कहा, 'हे प्रभु, ऐसा ही हो।'

6. फिर, पूज्य महा कप्पिना को धर्म प्रवचन द्वारा शिक्षा, प्रोत्साहन, उत्साह और प्रसन्नता प्रदान करने के बाद, भगवान बुद्ध मद्दकुक्खी के हिरण पार्क से, पूज्य महा कप्पिना की उपस्थिति से ओझल हो गए और गिज्जकुटा पर्वत पर (उतनी ही तेजी से) प्रकट हुए, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस खींच सकता है।

<<<< पिछला(2.4) | अगला(2.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.5) | अगला(2.7) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-6: पतिमोक्खा पाठ के लिए प्रत्येक निवास की सीमा के रूप में स्थलों की स्थापना।

अब भिक्षुओं ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने यह निर्धारित किया है कि (समीक्षित समुदाय की) पूर्णता एक निवास स्थान तक ही सीमित है। तो एक निवास स्थान कितनी दूर तक सीमित होता है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप एक सीमा निर्धारित करें। और हे भिक्षुओं, यह सीमा इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए: सर्वप्रथम सीमा चिह्नों की घोषणा की जाए: एक सीमा चिह्न जिसमें पर्वत, चट्टान, वन, वृक्ष, मार्ग, दीमक का टीला, नदी या जल निकाय शामिल हों। सीमा चिह्नों की घोषणा हो जाने के बाद, एक विद्वान और योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन की घोषणा करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें। यदि संघ तैयार है, तो संघ, जैसा कि चारों ओर सीमा चिह्नों की घोषणा की गई है, इन सीमा चिह्नों के आधार पर उपोसथ के सामान्य निवास और सहभागिता के लिए सीमा निर्धारित करे। यही कथन है। हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें। संघ सीमा निर्धारित करे (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

<<<< पिछला(2.5) | अगला(2.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.6) | अगला(2.8) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-7: उपोसथा और पतिमोक्खा (उपवास और स्वीकारोक्ति) के लिए सीमा का उचित निर्धारण।

1. उस समय छब्बाग्य भिक्षुओं ने यह मानते हुए कि सीमाएँ निर्धारित करना भगवान बुद्ध द्वारा निर्धारित किया गया था, अत्यधिक विस्तारित सीमाएँ निर्धारित कीं, जो चार योजन, पाँच योजन, छह योजन की थीं। उपोसथ में आने वाले भिक्षु या तो पतिमोक्ख का पाठ चल रहा होता था या उसका पाठ अभी-अभी समाप्त हुआ होता था, या फिर उन्हें रास्ते में रात बितानी पड़ती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, चार, पाँच या छह योजन से अधिक लंबी सीमा का निर्धारण न करो। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम अधिकतम तीन योजन की सीमा का ही निर्धारण करो।

2. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने एक सीमा निर्धारित की जो नदी के दूसरी ओर तक फैली हुई थी। उपोसथा में आने वाले भिक्षु नदी के बहाव में बह गए, और उनके भिक्षापात्र और वस्त्र भी बह गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, नदी के दूसरे छोर तक फैली सीमा का निर्धारण न करो। ऐसा करने वाला दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, यदि नौका या बांध द्वारा नियमित आवागमन हो, तो ऐसे स्थानों पर नदी के दूसरे छोर तक फैली सीमा का निर्धारण करने की अनुमति है।

<<<< पिछला(2.6) | अगला(2.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.8

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.7) | अगला(2.9) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-8: पाप स्वीकार करने के लिए एक ही स्थान की स्थापना (पतिमोक्खा) और उसकी घोषणा।

1. उस समय भिक्षु अपने-अपने कोठरियों में बिना कोई निश्चित स्थान निर्धारित किए पतिमोक्खा का पाठ करते थे। दूर-दूर से आए भिक्षुओं को यह नहीं पता था कि उस दिन उपोसथ कहाँ आयोजित किया जाएगा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, कोई भी व्यक्ति बिना किसी निश्चित स्थान के लगातार कोठरियों में पतिमोक्खा का पाठ न करे। जो इस प्रकार पाठ करता है, वह दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि उपोसथ सभा के लिए संघ की इच्छानुसार कोई भी स्थान निर्धारित कर लिया जाए, चाहे वह विहार हो, मठ हो, अड्ढयोग हो, बहुमंजिला इमारत हो, घर हो या गुफा हो। उपोसथ सभा इस प्रकार आयोजित की जानी चाहिए:

2. 'एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नट्टी की घोषणा करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार है, तो संघ एनएन नामक विहार को हमारा उपोसथ हॉल नियुक्त करे। यही नट्टी (प्रस्ताव) है। हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। संघ नियुक्त करता है, इत्यादि। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

3. उस समय एक विशेष निवास (या जिले) में दो उपोसथ हॉल निर्धारित थे। भिक्षु दोनों स्थानों पर एकत्रित होते थे, क्योंकि (उनमें से कुछ) सोचते थे, 'उपोसथ यहाँ आयोजित होगा;' (और कुछ), 'यह वहाँ आयोजित होगा।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, एक ही जिले में दो उपोसथ आश्रम न स्थापित करें। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं आदेश देता हूँ कि उनमें से एक को समाप्त कर दिया जाए और केवल एक ही स्थान पर उपोसथ आश्रम आयोजित किया जाए।

4. 'और हे भिक्षुओं, आपको इसे इस प्रकार समाप्त करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन की घोषणा करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनो। यदि संघ तैयार है, तो संघ उपोसथ हॉल जिसे एनएन कहा जाता है, को समाप्त कर सकता है। यह कथन है। संघ, इत्यादि। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"'

<<<< पिछला(2.7) | अगला(2.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> दूसरा खंडक >> 2.9

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.8) | अगला(2.10) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-9: सुनने की दूरी के भीतर पतिमोक्खा (स्वीकारोक्ति) के लिए एक स्थान की स्थापना।

1. उस समय एक विशेष जिले में एक छोटा सा उपोसथा हॉल नियुक्त किया गया था। उपोसथा के दिन भिक्षुओं की एक बड़ी सभा एकत्रित हुई। भिक्षुओं ने निर्धारित स्थान के बाहर बैठकर पतिमोक्खा का पाठ सुना। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह

उपदेश दिया है कि उपोसथा हॉल नियुक्त होने के बाद ही उपोसथा का आयोजन किया जाना चाहिए, और हमने निर्धारित स्थान के बाहर बैठकर पतिमोक्खा का पाठ सुना है। तो क्या हमने विधिपूर्वक उपोसथा का आयोजन किया है या नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'चाहे (भिक्षु) निर्धारित स्थान के अंदर बैठे हों या बाहर, बशर्ते कि वह पतिमोक्खा को सुन लें, उपोसथा उनके द्वारा विधिवत धारण की गई है।'

2. 'अतः, हे भिक्षुओं, संघ अपनी इच्छा अनुसार उपोसथा-मुख का निर्धारण करे। और हे भिक्षुओं, इसका निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए: सर्वप्रथम सीमांकित की जाएँ। सीमांकित होने के बाद, एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन का उच्चारण करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार है, तो संघ, जैसा कि चारों ओर सीमांकित की गई हैं, इन सीमांकितों के आधार पर एक उपोसथा-मुख का निर्धारण करे। यही कथन है। संघ, इत्यादि। इस प्रकार मैं समझता/समझती हूँ।"'

<<<< पिछला(2.8) | अगला(2.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.9) | अगला(2.11) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-10: पतिमोक्खा (स्वीकारोक्ति) समारोह के लिए सबसे पहले थेरा (बुजुर्गों) को एकत्रित होना चाहिए।

उस समय एक विशेष जिले में उपोसथा के दिन, सबसे पहले एकत्रित हुए युवा भिक्षुओं ने सोचा, 'थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) अभी नहीं आए हैं,' और वे चले गए। उपोसथा सेवा उचित समय के बाद आयोजित की गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि उपोसथ दिवस पर सबसे पहले थेरों को एकत्रित होना चाहिए।'

<<<< पिछला(2.9) | अगला(2.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.10) | अगला(2.12) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-11: उपोसथा का आयोजन पूर्ण मंडली द्वारा एक ही स्थान पर किया जाएगा।

उस समय राजगृह में एक ही सीमा के भीतर कई भिक्षु निवास थे। अब भिक्षु आपस में झगड़ पड़े: (उनमें से कुछ ने कहा), 'उपोसथा हमारे निवास में आयोजित की जाएगी;' (अन्य ने कहा), 'यह हमारे निवास में आयोजित की जाएगी।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, एक ही सीमा के भीतर अनेक भिक्षु निवास हैं; अब भिक्षु आपस में झगड़ते हैं: (उनमें से कुछ कहते हैं), "उपोसथ हमारे निवास में आयोजित किया जाएगा;" (अन्य कहते हैं), "यह हमारे निवास में आयोजित किया जाएगा।" हे भिक्षुओं, वे सभी भिक्षु एक स्थान पर एकत्रित होकर उपोसथ आयोजित करें, या वे उस स्थान पर एकत्रित हों जहाँ वरिष्ठ भिक्षु निवास करते हैं और वहाँ उपोसथ आयोजित करें। परन्तु किसी भी स्थिति में अपूर्ण मंडली द्वारा उपोसथ आयोजित नहीं किया जाना चाहिए। जो (इस प्रकार) उपोसथ आयोजित करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।

<<<< पिछला(2.10) | अगला(2.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> दूसरा खंडक >> 2.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.11) | अगला(2.13) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-12: सीमा का उन्मूलन और पुनर्निर्धारण।

1. उस समय पूज्य महा कस्सपा, अंधकविन्द से राजगृह होते हुए उपोसथ जा रहे थे और रास्ते में एक नदी पार कर रहे थे, तभी नदी उन्हें लगभग बहा ले गई और उनके वस्त्र भीग गए। भिक्षुओं ने पूज्य महा कस्सपा से पूछा, 'हे मित्र, आपके वस्त्र कैसे भीग गए?' (उन्होंने उत्तर दिया): 'हे मित्रों, जब मैं अंधकविन्द से राजगृह होते हुए उपोसथ जा रहा था और रास्ते में एक नदी पार कर रहा था, तभी नदी मुझे लगभग बहा ले गई; इस प्रकार मेरे वस्त्र भीग गए।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उपोसथ के सामान्य निवास और संवाद के लिए निर्धारित सीमा को तिकिवरेना अविप्पवास का स्वरूप प्रदान करे।'

2. हे भिक्षुओं, आपको इसे इस प्रकार यह स्वरूप प्रदान करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ती (प्रस्ताव) की घोषणा करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार है, तो संघ उस सीमा को, जिसे संघ ने सामान्य निवास और उपोसथ के मिलन के लिए निर्धारित किया है, टिकीवरेना अविप्पवास का स्वरूप प्रदान करे। यह नत्ती है। संघ (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

3. उस समय भिक्षुओं ने यह समझते हुए कि भगवान बुद्ध ने सीमावर्ती क्षेत्रों में तिकिवरेण अविप्पवसा का गुण प्रदान करने का आदेश दिया था, अपने वस्त्र एक घर में रख दिए। वे वस्त्र खो गए, जल गए या चूहों ने खा लिए; भिक्षुओं के वस्त्र फटे-पुराने और खुरदुरे हो गए थे। (अन्य) भिक्षुओं ने कहा: 'हे मित्रों, ऐसा क्यों है कि आपके वस्त्र फटे-पुराने और खुरदुरे हैं?' (उन्होंने उत्तर दिया): 'हे मित्रों, यह समझते हुए कि भगवान बुद्ध ने सीमावर्ती क्षेत्रों में तिकिवरेण अविप्पवसा का गुण प्रदान करने का आदेश दिया था, हमने अपने वस्त्र एक घर में रख दिए थे; वे वस्त्र खो गए, जल गए या चूहों ने खा लिए; इसलिए हमारे वस्त्र फटे-पुराने और खुरदुरे हो गए हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उपोसथा के सामान्य निवास और संवाद के लिए निर्धारित सीमा को गांवों और गांवों के आसपास के क्षेत्रों को छोड़कर, टिकीवरेना अविप्पवास का स्वरूप प्रदान करे।'

4. 'और हे भिक्षुओं, तुम्हें इसे इस प्रकार यह विशेषता प्रदान करनी चाहिए, इत्यादि।'

5. हे भिक्षुओं, जो सीमा निर्धारण करता है, वह सर्वप्रथम सामान्य निवास और उपोसथ के साथ सहभागिता के लिए सीमा निर्धारित करे, और उसके बाद तिकिवरेना अविप्पवास के संबंध में आदेश जारी करे। हे भिक्षुओं, जो सीमा निरस्त करता है, वह सर्वप्रथम तिकिवरेना अविप्पवास के संबंध में आदेश निरस्त करे, और उसके बाद सामान्य निवास और उपोसथ के साथ सहभागिता के लिए सीमा निरस्त करे।

हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार तिकिवरेना अविप्पवास का उन्मूलन करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन की घोषणा करे: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनो। यदि संघ तैयार है, तो संघ तिकिवरेना अविप्पवास का उन्मूलन करे, जिसका संघ ने निर्णय लिया है। यही कथन है। संघ, इत्यादि।"

6. हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार सीमा समाप्त करनी चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव की घोषणा करे: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनो। यदि संघ तैयार है, तो वह सामान्य निवास और उपोसथ के मिलन के लिए निर्धारित सीमा को समाप्त कर दे। यही प्रस्ताव है। संघ, इत्यादि।"

7. हे भिक्षुओं, यदि कोई सीमा निर्धारित या तय नहीं है, तो उस गाँव की सीमा या उस निगम (बाजार नगर) की सीमा, जिसके पास कोई भिक्षु निवास करता है, को ही सामान्य निवास और उपोसथ के मिलन की सीमा माना जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, यदि वह किसी ऐसे वन में रहता है जहाँ कोई गाँव नहीं हैं, तो निवास और उपोसथ का समुदाय चारों ओर सात अभंतर की दूरी तक फैला होता है। हे भिक्षुओं, नदी सीमा नहीं हो सकती, समुद्र सीमा नहीं हो सकता, प्राकृतिक झील सीमा नहीं हो सकती। हे भिक्षुओं, नदी में, समुद्र में या प्राकृतिक झील में, निवास और उपोसथ का समुदाय उतनी दूर तक फैला होता है जितनी दूर तक एक औसत व्यक्ति चारों ओर पानी फैला सकता है।

<<<< पिछला(2.11) | अगला(2.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.12) | अगला(2.14) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-13: सीमाएँ अतिव्यापी नहीं होनी चाहिए।

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने एक सीमा को दूसरी सीमा के ऊपर इस प्रकार बनाया (जिसे पहले अन्य भिक्षुओं द्वारा निर्धारित किया गया था)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

जिन भिक्षुओं ने पहले अपनी सीमा निर्धारित की है, उनका कार्य वैध, उचित और दोषरहित है। जिन भिक्षुओं ने बाद में अपनी सीमा निर्धारित की है, उनका कार्य अवैध, आपत्तिजनक और अमान्य है। हे भिक्षुओं, कोई भी एक सीमा को दूसरी सीमा से अतिरेक न करे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है।

2. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने एक सीमा को दूसरी सीमा में समाहित कर लिया (जिसे पहले अन्य भिक्षुओं द्वारा निर्धारित किया गया था)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'उन आदि के कर्म (धारा 1 देखें)। हे भिक्षुओं, कोई भी एक सीमा को दूसरी सीमा पर अतिव्यापी न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि जो कोई सीमा निर्धारित करे, वह इस प्रकार निर्धारित करे कि सीमाओं के बीच एक अंतराल रहे।'

<<<< पिछला(2.12) | अगला(2.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.14

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.13) | अगला(2.15) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-14: केवल वही उपोसथ आयोजित किया जाना चाहिए जो वैध और पूर्ण हो।

1. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'उपोसथ (दिनों) की संख्या कितनी है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, महीने के चौदहवें और पंद्रहवें दो उपोसथ (दिन) हैं; हे भिक्षुओं, यही दो उपोसथ (दिन) हैं।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'उपोसथ सेवाएँ कितनी हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

भिक्षुओं, निम्नलिखित चार उपोसथा सेवाएँ हैं: अपूर्ण मंडली द्वारा अवैध रूप से आयोजित उपोसथा सेवा, पूर्ण मंडली द्वारा अवैध रूप से आयोजित उपोसथा सेवा, अपूर्ण मंडली द्वारा विधिवत आयोजित उपोसथा सेवा, और पूर्ण मंडली द्वारा विधिवत आयोजित उपोसथा सेवा।

3. हे भिक्षुओं, जो उपोसथ सेवा अपूर्ण मंडली द्वारा अवैध रूप से आयोजित की जाती है, ऐसी उपोसथ सेवा, हे भिक्षुओं, आयोजित नहीं की जानी चाहिए, और न ही ऐसी उपोसथ सेवा मेरे द्वारा अनुमत है। हे भिक्षुओं, जो उपोसथ सेवा पूर्ण मंडली द्वारा अवैध रूप से आयोजित की जाती है, ऐसी उपोसथ सेवा, हे भिक्षुओं, आयोजित नहीं की जानी चाहिए, और न ही ऐसी उपोसथ सेवा मेरे द्वारा अनुमत है। हे भिक्षुओं, जो उपोसथ सेवा अपूर्ण मंडली द्वारा विधिवत आयोजित की जाती है, ऐसी उपोसथ सेवा, हे भिक्षुओं, आयोजित नहीं की जानी चाहिए, और न ही ऐसी उपोसथ सेवा मेरे द्वारा अनुमत है। हे भिक्षुओं, जो उपोसथ सेवा पूर्ण मंडली द्वारा विधिवत आयोजित की जाती है, वैसी ही उपोसथ सेवा आयोजित की जानी चाहिए, और ऐसी उपोसथ सेवा की अनुमति मुझे प्राप्त है। अत:, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: "जो उपोसथ सेवा पूर्ण मंडली द्वारा विधिवत आयोजित की जाती है, वैसी ही उपोसथ सेवा हम आयोजित करेंगे।"

<<<< पिछला(2.13) | अगला(2.15) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.15

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-15: पाठ करने के 5 तरीके, खतरे के समय पाठ करना, और केवल नियुक्त व्यक्तियों को ही उत्तर देना चाहिए।

1. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'पतिमोक्खा का पाठ करने के कितने तरीके हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

पतिमोक्खा का पाठ करने के निम्नलिखित पाँच तरीके हैं: प्रस्तावना का पाठ हो जाने के बाद, शेष के बारे में यह घोषणा की जा सकती है: "ऐसे-ऐसे नियम (समुदाय को) ज्ञात हैं।" यह पतिमोक्खा का पाठ करने का पहला तरीका है। प्रस्तावना का पाठ हो जाने के बाद, चार पराजिका धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, शेष के बारे में यह घोषणा की जा सकती है: "ऐसे-ऐसे नियम (समुदाय को) ज्ञात हैं।" यह पतिमोक्खा का पाठ करने का दूसरा तरीका है। प्रस्तावना का पाठ हो जाने के बाद, चार पराजिका धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, तेरह संघीशेष धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, ... प्रस्तावना का पाठ हो जाने के बाद, चारों पराजिका धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, तेरह संघीशेष धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, दो अनियता धम्मों का पाठ हो जाने के बाद, शेष के बारे में यह घोषित किया जा सकता है: "ऐसे-ऐसे नियम (भिक्षुओं को) ज्ञात हैं।" यह पतिमोक्खा के पाठ का चौथा तरीका है। पाँचवाँ तरीका (इसका) पूर्ण रूप से पाठ करना है। हे भिक्षुओं, ये पतिमोक्खा के पाठ के पाँच तरीके हैं।

2. उस समय भिक्षु यह मानते हुए कि भगवान बुद्ध ने पतिमोक्खा का पाठ भागों में करने की अनुमति दी थी, वे हमेशा पतिमोक्खा का पाठ भागों में ही करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको पतिमोक्खा का पाठ टुकड़ों में नहीं करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

3. उस समय उपोसथ पर्व के दिन कोसल देश में भिक्षुओं के एक निवास स्थान पर बर्बर लोगों ने आक्रमण कर दिया। भिक्षु पतिमोक्खा का पूर्ण पाठ करने में असमर्थ थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें संकट की स्थिति में पतिमोक्खा का आंशिक पाठ करने की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय छब्बागिया भिक्षु खतरे के अभाव में भी पतिमोक्खा का पाठ करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि कोई खतरा न हो तो पतिमोक्खा का अंशों में पाठ न करें। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, खतरे की स्थिति में ही पतिमोक्खा का अंशों में पाठ करने की अनुमति है। खतरे की स्थितियाँ इस प्रकार हैं: राजाओं से खतरा, लुटेरों से खतरा, आग से खतरा, पानी से खतरा, मनुष्यों से खतरा, परजीवियों से खतरा, शिकारी जानवरों से खतरा, रेंगने वाले जीवों से खतरा, जीवन का खतरा, ब्रह्मचर्य के विरुद्ध खतरा। हे भिक्षुओं, ऐसे खतरे की स्थितियों में पतिमोक्खा का अंशों में पाठ करना उचित है; यदि कोई खतरा न हो तो पूर्ण रूप से पाठ करें।

5. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने (थेरा द्वारा) बुलाए बिना ही संघ के समक्ष धम्म का उपदेश दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, बिना बुलाए कोई भी संघ के समक्ष धम्म का उपदेश न दे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि थेरा या तो स्वयं धम्म का उपदेश दे या किसी अन्य भिक्षु को ऐसा करने के लिए बुलाए।

6. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने संघ में नियुक्त न होते हुए भी विनय के बारे में प्रश्न संघ के समक्ष रखे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, कोई भी व्यक्ति बिना नियुक्त हुए संघ के समक्ष विनय के विषय में प्रश्न न पूछे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि संघ के समक्ष विनय के विषय में प्रश्न पूछने के लिए एक नियुक्त भिक्षु ही उपयुक्त हो। और इस भिक्षु की नियुक्ति इस प्रकार की जानी चाहिए: या तो कोई स्वयं को नियुक्त कर सकता है, या किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है।

7. और एक भिक्षु स्वयं को कैसे नियुक्त कर सकता है? एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार हो, तो मैं अन्य भिक्षुओं से विनय के विषय में प्रश्न पूछूंगा।" इस प्रकार वह स्वयं को नियुक्त कर सकता है। और एक भिक्षु दूसरे व्यक्ति को कैसे नियुक्त कर सकता है? एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति की घोषणा करे: "संघ, इत्यादि। यदि संघ तैयार हो, तो अन्य भिक्षुओं से विनय के विषय में प्रश्न पूछिए।" इस प्रकार वह दूसरे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है।

8. उस समय, चतुर भिक्षुओं ने संघ के समक्ष विनय के बारे में प्रश्न रखे; छब्बग्य भिक्षुओं को उन भिक्षुओं पर क्रोध आया, असंतोष हुआ और उन्होंने उन्हें मार-पीट की धमकी दी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यह निर्देश देता हूँ कि नियुक्त व्यक्ति भी सभा को देखे बिना और उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति का मनन किए बिना संघ के समक्ष विनय के विषय में प्रश्न न पूछे।'

9, 10. उस समय छब्बागिया भिक्षु संघ के समक्ष विनय के बारे में प्रश्नों के उत्तर देते थे, जबकि उन्हें इसके लिए नियुक्त नहीं किया गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, संघ के समक्ष विनय से संबंधित प्रश्नों का उत्तर बिना नियुक्त हुए न दें। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि संघ के समक्ष विनय से संबंधित प्रश्नों का उत्तर केवल नियुक्त भिक्षु द्वारा ही दिया जाना चाहिए। और (इस भिक्षु की) नियुक्ति की जानी चाहिए, इत्यादि।

11. उस समय नियुक्त बुद्धिमान भिक्षुओं ने संघ के समक्ष विनय के विषय में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दिए। छब्बगीय भिक्षु आदि।

<<<< पिछला(2.14) । अगला(2.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.16
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.15) । अगला(2.17) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-16: पाठ केवल नियुक्त व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए, न कि आम लोगों के समक्ष।

1. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने एक भिक्षु को बिना अनुमति दिए अपराध करने के लिए फटकारा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

1. हे भिक्षुओं, बिना अनुमति लिए किसी भिक्षु को अपराध के लिए फटकारा नहीं जा सकता। जो ऐसे भिक्षु को फटकारता है, वह दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप भिक्षुओं को अपराध के लिए तभी फटकारें जब आप अनुमति लेकर यह कहें, "हे आदरणीय भाई, मुझे अनुमति दीजिए; मैं आपसे बात करना चाहता हूँ।"

2. उस समय चतुर भिक्षुओं ने छब्बाग्य भिक्षुओं को अनुमति मांगने के बाद एक अपराध के लिए फटकारा। छब्बाग्य भिक्षुओं को उन भिक्षुओं पर क्रोध आया, असंतोष हुआ और उन्होंने उन्हें मारने की धमकी दी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप किसी भिक्षु को उसके अपराध के लिए, भले ही उसने अनुमति दी हो, तब तक फटकार न लगाएँ जब तक आप संबंधित व्यक्ति के बारे में विचार न कर लें।'

3. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने सोचा: 'अन्यथा चतुर भिक्षु हमसे छुट्टी मांग सकते हैं (और हमें किसी अपराध के लिए फटकार सकते हैं),' इसलिए उन्होंने स्वयं पहले से ही उन शुद्ध भिक्षुओं से छुट्टी मांग ली जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया था, बिना किसी उद्देश्य और कारण के।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, किसी भी शुद्ध भिक्षु से, जिसने कोई अपराध नहीं किया है, बिना किसी उद्देश्य और कारण के छुट्टी न माँगी जाए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप संबंधित व्यक्ति के बारे में विचार किए बिना छुट्टी न माँगें।

4. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने संघ के समक्ष एक गैरकानूनी आधिकारिक कार्य किया।

उन्होंने यह बात धन्य व्यक्ति को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ के समक्ष कोई भी अवैध कार्य न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

फिर भी उन्होंने गैरकानूनी कृत्य किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि यदि कोई गैरकानूनी कार्य किया जा रहा हो तो तुम्हें उसका विरोध करना चाहिए।'

5. उस समय चतुर भिक्षुओं ने छब्बाग्य भिक्षुओं द्वारा किए जा रहे एक गैरकानूनी कृत्य का विरोध किया। छब्बाग्य भिक्षु क्रोधित और असंतुष्ट हो गए और उन्होंने (उन भिक्षुओं को) मारने की धमकी दी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको केवल अपनी राय व्यक्त करने की अनुमति देता हूँ (औपचारिक रूप से विरोध करने के बजाय)।'

उन्होंने उक्त (भिक्षुओं) की उपस्थिति में अपनी राय व्यक्त की। छब्बाग्य भिक्षु क्रोधित और असंतुष्ट हो गए और उन्होंने उन्हें मारने की धमकी दी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि चार या पाँच व्यक्ति विरोध कर सकते हैं, दो या तीन व्यक्ति अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं, और एक व्यक्ति (अपने मन में) यह निर्णय ले सकता है: "मैं इसे सही नहीं समझता।"'

6. उस समय छब्बागिया भिक्षु संघ के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ करते समय जानबूझकर उसका पाठ इस प्रकार करते थे कि वह सुनाई न दे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जो पतिमोक्खा का पाठ करने वाला हो, वह जानबूझकर ऐसा पाठ न करे जिससे वह सुनाई न दे। ऐसा करने वाला दुक्कता अपराध करता है।'

7. उस समय कौवे जैसी कर्कश आवाज वाले पूज्य उदयि को संघ के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ करने का दायित्व सौंपा गया था। अब पूज्य उदयि ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि जो भी पतिमोक्खा का पाठ करे, उसे इस प्रकार पाठ करना चाहिए कि वह सुनाई दे; परन्तु मेरी आवाज तो कौवे जैसी कर्कश है। भला मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि जो व्यक्ति पतिमोक्ख का पाठ करने वाला हो, वह उसे स्पष्ट रूप से पढ़ने का प्रयास करे। यदि वह ऐसा प्रयास करे, तो वह अपराध से मुक्त हो जाएगा।'

8. उस समय देवदत्त ने एक सभा के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ किया जिसमें आम लोग उपस्थित थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भी व्यक्ति को गृहस्थों की उपस्थिति में पतिमोक्खा का पाठ नहीं करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

9. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने थेरा द्वारा बुलाए बिना ही संघ के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बिना बुलाए कोई भी संघ के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि पतिमोक्खा का स्वामी थेरा ही है।'

अन्नतिथ्यों के भानवर का अंत।

<<<< पिछला(2.15) | अगला(2.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.16) | अगला(2.18) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-17: केवल विद्वान भिक्षुओं द्वारा पाठ।

1. तब भगवान बुद्ध ने राजगृह के पास यथासंभव समय व्यतीत करने के बाद कोदनावत्थु की तीर्थयात्रा पर प्रस्थान किया। तीर्थयात्रा के दौरान स्थान-स्थान घूमते हुए वे कोदनावत्थु पहुँचे। उस समय एक निवास में अनेक भिक्षु निवास करते थे, जिनमें सबसे वरिष्ठ अज्ञानी और अनपढ़ थे: उन्हें न तो उपोसथ का ज्ञान था, न उपोसथ विधि का, न पतिमोक्ख का, और न ही पतिमोक्ख के पाठ का।

2. अब उन भिक्षुओं ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने यह निर्धारित किया है कि सबसे वरिष्ठ भिक्षु पतिमोक्ख का स्वामी होता है, और यहाँ हममें से सबसे वरिष्ठ एक अज्ञानी, अनपढ़ व्यक्ति है: वह न तो उपोसथ को जानता है... न ही पतिमोक्ख का पाठ। तो हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि (ऐसे मामले में) जो भिक्षु सबसे अधिक विद्वान और योग्य हो, उसे पतिमोक्खा का स्वामी बनाया जाए।'

3. उस समय उपोसथा के दिन एक निवास स्थान में बहुत से अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु निवास कर रहे थे। वे न तो उपोसथा को जानते थे और न ही पतिमोक्ख का पाठ। उन्होंने थेरा से प्रार्थना की: "हे पूज्यवर, कृपया पतिमोक्ख का पाठ करें।" थेरा ने उत्तर दिया: "मैं ऐसा करने में सक्षम नहीं हूँ।" उन्होंने उनसे बड़े भिक्षु को बुलाया, इत्यादि। उन्होंने भी यही उत्तर दिया। उन्होंने उनसे तीसरे बड़े भिक्षु को बुलाया, इत्यादि। इसी प्रकार उन्होंने सबसे छोटे भिक्षु तक सभी भिक्षुओं से प्रार्थना की: "हे पूज्यवर, कृपया पतिमोक्ख का पाठ करें।" उन्होंने भी यही उत्तर दिया: "हे पूज्यवर, मैं ऐसा करने में सक्षम नहीं हूँ।"

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

4, 5. 'हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी निवास स्थान आदि में हो, तो हे भिक्षुओं, उस स्थिति में, ये भिक्षु तुरंत एक भिक्षु को पड़ोसी निवास स्थान (भिक्षुओं के निवास स्थान) में भेजें: "जाओ, मित्र, और तब लौट आना जब तुम पतिमोक्खा का संक्षिप्त या पूर्ण पाठ सीख लो।"'

6. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'इस भिक्षु को किसके द्वारा भेजा जाएगा?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि थेरा को एक युवा भिक्षु को दीक्षा देनी चाहिए।'

थेरा से वह आदेश प्राप्त करने के बाद, युवा भिक्षु नहीं गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'थेरा द्वारा आदेशित किसी भी व्यक्ति को जाने से इनकार नहीं करना चाहिए, सिवाय इसके कि वह बीमार हो। जो नहीं जाता, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

<<<< पिछला(2.16) | अगला(2.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.17) | अगला(2.19) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-18: भिक्षुओं द्वारा दिनों की गिनती और भिक्षुओं की संख्या का हिसाब रखना।

1. फिर भगवान बुद्ध कोदनावत्थु में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद राजगृह लौट आए। उस समय लोगों ने भिक्षा मांगने वाले भिक्षुओं से पूछा, "हे पूज्यवर, यह अर्धमाह का कौन सा दिन है?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "हमें नहीं पता।" लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए, "ये शाक्यपुत्र समण तो अर्धमाह के दिनों की गिनती भी नहीं जानते; भला ये भला क्या जानेंगे?"

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि तुम अर्ध माह के दिनों की गणना करना सीखो।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा, 'अर्ध माह के दिनों की गिनती करना किसे सीखना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि तुम सब अर्ध माह के दिनों की गणना करना सीख लो।'

3. उस समय लोगों ने भिक्षा मांगने वाले भिक्षुओं से पूछा, “हे पूज्यवर, कितने भिक्षु हैं?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “मित्रों, हमें नहीं पता।” लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए, “ये शाक्यपुत्र भिक्षु आपस में भी नहीं जानते; भला भला इन्हें कौन सी अच्छी बातें पता होंगी?”

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि तुम भिक्षुओं की गिनती करो।'

4. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'हमें भिक्षुओं की गिनती किस समय करनी चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप उपोसथ दिवस पर भिक्षुओं की गिनती करें, या तो सभा में शामिल सैनिकों की अलग-अलग गिनती करके, या आप में से प्रत्येक एक टिकट लेकर उसकी गिनती करें।'

<<<< पिछला(2.17) । अगला(2.19) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.18) । अगला(2.20) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-19: उपोसथा दिवस की घोषणा एक थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) द्वारा की जाएगी।

उस समय, जिन भिक्षुओं को उपोसथ दिवस का ज्ञान नहीं था, वे दूर के एक गाँव में भिक्षा मांगने गए। वे तब लौटे जब पतिमोक्खा का पाठ हो रहा था, या जब उसका पाठ अभी-अभी समाप्त हुआ था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि तुम घोषणा करो: "आज उपोसथ है।"'

अब भिक्षुओं ने सोचा: 'ऐसा प्रचार करने का अधिकार किसे है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि थेरा उचित समय पर (उपोसथा दिवस की) घोषणा करें।'

उस समय एक थेरा ने इस बारे में समय रहते नहीं सोचा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भोजन के समय भी इसका प्रचार करने की अनुमति देता हूँ।'

(थेरा) ने भोजन के समय भी इसके बारे में नहीं सोचा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं अनुमति देता हूँ कि जब भी (थेरा) को इसका विचार आए, मैं इसकी घोषणा करूँ।'

<<<< पिछला(2.18) | अगला(2.20) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.19) | अगला(2.21) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-20: भिक्षुओं द्वारा उपोसथा हॉल की सफाई करना, बैठने की व्यवस्था करना, दीपक, भोजन और पानी उपलब्ध कराना।

1. उस समय एक निवास स्थान में उपोसथा हॉल झाड़ू से भरा हुआ था। वहाँ पहुँचे भिक्षु नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'भिक्षु उपोसथा हॉल की सफाई करना कैसे भूल सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि तुम उपोसथ हॉल की सफाई करो।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'अच्छा, उपोसथ हॉल की सफाई कौन करेगा?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि थेरा एक युवा भिक्षु को उपोसथ हॉल की सफाई करने का आदेश दें। थेरा से आदेश प्राप्त करने के बावजूद युवा भिक्षुओं ने सफाई नहीं की।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'थेरा द्वारा आदेशित व्यक्ति को झाड़ू लगाने से इनकार नहीं करना चाहिए, सिवाय इसके कि वह बीमार हो। जो व्यक्ति झाड़ू नहीं लगाता, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

3. उस समय उपोसथा हॉल में बैठने की कोई व्यवस्था नहीं थी। भिक्षु जमीन पर बैठ गए। उनके शरीर और वस्त्र धूल से भर गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि आप उपोसथ हॉल में बैठने की व्यवस्था करें।'

अब भिक्षुओं ने सोचा, इत्यादि (देखें अनुच्छेद 2)।

'जो व्यक्ति (आसन) तैयार नहीं करता, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

4. उस समय उपोसथा हॉल में कोई दीपक नहीं था। भिक्षु अंधेरे में एक-दूसरे के शरीर और वस्त्रों पर चलते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि आप उपोसथा हॉल में एक दीपक प्रज्वलित करें।'

अब भिक्षुओं ने सोचा, इत्यादि (देखें अनुच्छेद 2)।

'जो दीपक नहीं जलाता, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

5. उस समय एक विशेष आश्रम में रहने वाले भिक्षुओं ने न तो पीने का पानी दिया और न ही भोजन। नए आए भिक्षु नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और कहने लगे, 'ये भिक्षु पीने और खाने की व्यवस्था करने में कैसे लापरवाही कर सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि तुम भोजन और पेय पदार्थ उपलब्ध कराओ।'

अब भिक्षुओं ने सोचा, इत्यादि (देखें अनुच्छेद 2)।

'जो इसके लिए व्यवस्था नहीं करता, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

<<<< पिछला(2.19) । अगला(2.21) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.21

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.20) । अगला(2.22) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-21: अनुमति से यात्रा और प्रत्येक निवास में विद्वान भिक्षुओं का होना।

1. उस समय बहुत से अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु जो (दुनिया के) चारों दिशाओं में यात्रा करते थे, वे (जाते समय) अपने आचार्यों (शिक्षकों) और उपज्झायों से अनुमति नहीं लेते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि बहुत से अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु अपने आचार्यों और उपाज्जयों से अनुमति लिए बिना चारों दिशाओं की यात्रा करते हैं, तो ऐसे भिक्षुओं से उनके आचार्यों और उपाज्जयों को पूछना चाहिए: "तुम कहाँ जाओगे? किसके साथ जाओगे?" यदि वे अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु अन्य अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षुओं का नाम लेते हैं, तो उनके आचार्यों और उपाज्जयों को उन्हें (जाने की) अनुमति नहीं देनी चाहिए; यदि वे अनुमति देते हैं, तो वे दुक्कत अपराध करते हैं। यदि वे अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु अपने आचार्यों और उपाज्जयों की अनुमति के बिना जाते हैं, तो वे दुक्कत अपराध करते हैं।

2. हे भिक्षुओं, यदि किसी निवास में बहुत से अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु निवास करते हों, जो न उपोसथ, न उपोसथ सेवा, न पतिमोक्ख, न पतिमोक्ख पाठ जानते हों; तभी (उस स्थान पर) एक विद्वान भिक्षु आता है, जिसने आगमों (अर्थात सूत्रों के संग्रह) का अध्ययन किया है,

जो धम्म, विनय, मतिका को जानता है, जो बुद्धिमान, ज्ञानी, समझदार, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और प्रशिक्षण के लिए उत्सुक है; तो हे भिक्षुओं, वे भिक्षु उस भिक्षु का सहर्ष स्वागत करें, उसका ध्यान रखें, उससे मैत्रीपूर्ण संवाद करें, उसे पाउडर, मिट्टी, दंत शोधक और कुल्ला करने के लिए पानी दें। यदि वे उसका आदरपूर्वक स्वागत नहीं करते, या उस पर ध्यान नहीं देते, या उससे (मैत्रीपूर्ण) शब्द नहीं करते, या उसे चूर्ण, मिट्टी, दांत साफ करने वाला पदार्थ और कुल्ला करने के लिए पानी नहीं देते, तो वे दुक्कटा अपराध करते हैं।

3. हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ पर्व के दिन किसी निवास में अनेक अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु निवास करें, जो न तो उपोसथ को जानते हों और न ही पतिमोक्ख का पाठ करते हों; तो हे भिक्षुओं, वे तुरंत एक भिक्षु को पास के निवास में भेजें और कहें, "मित्र, जाओ और पतिमोक्ख का कुछ अंश या पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके लौट आना।" यदि वे ऐसा करने में सफल हों, तो अच्छा है। यदि वे सफल न हों, तो हे भिक्षुओं, वे सभी भिक्षु किसी ऐसे निवास में चले जाएं जहां वे (वहां के भिक्षु) उपोसथ, उपोसथ सेवा, पतिमोक्ख या पतिमोक्ख का पाठ जानते हों। यदि वे नहीं जाते हैं, तो वे दुक्कत अपराध करते हैं।

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी निवास में अनेक अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु वर्षावास करते हैं, जो ज्ञानहीन हैं, इत्यादि। यदि वे इसमें सफल होते हैं, तो अच्छा है। यदि वे सफल नहीं होते, तो उन्हें एक भिक्षु को सात दिनों के लिए यह कहकर विदा कर देना चाहिए, "मित्र, जाओ और पतिमोक्खा का संक्षिप्त या पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके लौट आना।" यदि वे इसमें सफल होते हैं, तो अच्छा है। यदि वे सफल नहीं होते, तो हे भिक्षुओं, उन भिक्षुओं को उस निवास में वर्षावास नहीं करना चाहिए। यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे दुक्कता अपराध करते हैं।

<<<< पिछला(2.20) | अगला(2.22) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.22

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.21) | अगला(2.23) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-22: समारोह के दौरान बीमारी और अन्य अक्षमताएं।

1. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, एकत्रित हो जाओ, संघ उपोसथ का आयोजन करेगा।' जब उन्होंने ऐसा कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, एक बीमार भिक्षु है जो उपस्थित नहीं है।'

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि बीमार भिक्षु को अपनी परिशुद्धता की घोषणा करनी चाहिए। और हे भिक्षुओं, इस प्रकार घोषणा की जानी चाहिए: बीमार भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु के पास जाए, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, उकड़ू बैठकर अपने हाथ जोड़कर कहे: "मैं अपनी परिशुद्धता की घोषणा करता हूँ, मेरी परिशुद्धता ग्रहण करो, मेरी परिशुद्धता की घोषणा (भिक्षुओं के सामने) करो।" चाहे वह इसे हावभाव से (यानी अपने शरीर से), शब्दों से, या हावभाव और शब्दों दोनों से व्यक्त करे, परिशुद्धता की घोषणा हो गई है। यदि वह इसे हावभाव आदि से व्यक्त नहीं करता है, तो परिशुद्धता की घोषणा नहीं हुई है।

2. यदि (बीमार भिक्षु) ऐसा करने में सफल हो जाए, तो अच्छा है। यदि वह सफल न हो, तो हे भिक्षुओं, उस बीमार भिक्षु को उसके पलंग या कुर्सी पर ही सभा में ले जाएं और (तब) उपोसथा धारण करें। हे भिक्षुओं, यदि बीमार की देखभाल करने वाले भिक्षु यह सोचें कि "यदि हम इस बीमार व्यक्ति को उसके स्थान से हटाएंगे, तो रोग बढ़ जाएगा या वह मर जाएगा," तो हे भिक्षुओं, बीमार को उसके स्थान से न हटाएं; संघ वहां जाए और वहां उपोसथा धारण करे। परन्तु किसी भी स्थिति में अपूर्ण सभा के साथ उपोसथा धारण न करें। यदि (कोई भिक्षु) ऐसा करता है, तो वह दुक्कत अपराध करता है।

3. हे भिक्षुओं, यदि परिशुद्धि (पवित्रता) का भार जिसे सौंपा गया है, परिशुद्धि सौंपे जाने के तुरंत बाद स्थान छोड़ देता है, तो परिशुद्धि की घोषणा किसी अन्य को कर देनी चाहिए। हे भिक्षुओं, यदि परिशुद्धि का भार जिसे सौंपा गया है, परिशुद्धि सौंपे जाने के तुरंत बाद संसार में लौट आता है; या मर जाता है; या स्वीकार करता है कि वह समनेर है; या उसने नियमों का त्याग कर दिया है; या वह किसी घोर अपराध

का दोषी हो गया है; या वह पागल है; या उसका मन विक्षिप्त है; या वह शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त है; या उसके द्वारा किए गए किसी अपराध को देखने से इनकार करने पर, या ऐसे अपराध के प्रायश्चित से इनकार करने पर, या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने पर, या वह नपुंसक है; या वह गुप्त रूप से संघ से जुड़ गया है; या वह तित्तियों में विलीन हो गया है; या वह पशु है; या वह माता की हत्या का दोषी है; या वह पिता की हत्या का दोषी है; या उसने किसी अरहत की हत्या की है; या उसने किसी भिक्षुणी का अपमान किया है; या उसने संघ में फूट डाली है; या उसने (किसी बुद्ध का) रक्त बहाया है; या वह नपुंसक है: (इन मामलों में) परिशुद्धि किसी दूसरे को सौंप दी जानी चाहिए।

4. हे भिक्षुओं, यदि परिशुद्धि का दायित्व ग्रहण करने वाला व्यक्ति परिशुद्धि सौंपे जाने के बाद (सभा में जाते समय) उस स्थान को छोड़ दे, या संसार में लौट जाए, या मर जाए, या स्वीकार करे कि वह समनेर है, आदि, या स्वीकार करे कि वह नपुंसक है, तो परिशुद्धि संघ को नहीं पहुंचाई गई। हे भिक्षुओं, यदि परिशुद्धि का दायित्व ग्रहण करने वाला व्यक्ति परिशुद्धि सौंपे जाने के बाद, संघ में पहुंचने के बाद, उस स्थान को छोड़ दे, या मर जाए, आदि, तो परिशुद्धि पहुंचा दी गई। हे भिक्षुओं, यदि परिशुद्धि का दायित्व सौंपे जाने के बाद, सभा में पहुँचने पर भी वह (परिशुद्धि का) प्रचार नहीं करता, चाहे वह सो गया हो, लापरवाही से हो, या समाधि (ध्यान) में लीन हो गया हो, तो परिशुद्धि का संचार हो चुका है और परिशुद्धि का दायित्व सौंपे गए व्यक्ति का कोई अपराध नहीं है। यदि परिशुद्धि का दायित्व सौंपे गए व्यक्ति, इत्यादि, जानबूझकर (परिशुद्धि का) प्रचार नहीं करता है, तो परिशुद्धि का संचार तो हो चुका है, परन्तु परिशुद्धि का दायित्व सौंपे गए व्यक्ति को दुक्कत अपराध का दोषी है।

<<<< पिछला(2.21) | अगला(2.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> दूसरा खंडक >> 2.23
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.22) | अगला(2.24) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-23: समारोह के दौरान बीमारी - II

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, एकत्रित हो जाओ, संघ एक (आधिकारिक) अनुष्ठान करेगा।' जब उन्होंने ऐसा कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, एक बीमार भिक्षु है जो उपस्थित नहीं है।'

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि बीमार भिक्षु को (किए जाने वाले कार्य के लिए) अपनी सहमति देनी चाहिए, इत्यादि। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि उपोसथ के दिन जो व्यक्ति परिशुद्धता की घोषणा करता है, उसे (अंततः किए जाने वाले आधिकारिक कार्यों के लिए) भी अपनी सहमति देनी चाहिए, क्योंकि संघ (और उसके कार्यों की वैधता) के लिए (दोनों घोषणाएँ) आवश्यक हैं।

<<<< पिछला(2.22) | अगला(2.24) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.24
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.23) | अगला(2.25) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-24: जब किसी भिक्षु को रिश्तेदारों आदि द्वारा रोका जाता है

1. उस समय उपोसथ के दिन एक भिक्षु के रिश्तेदारों ने उसे पकड़ लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ के दिन किसी भिक्षु को उसके रिश्तेदार पकड़ लें, तो भिक्षु उन रिश्तेदारों से कहें: "मित्रों, कृपया इस भिक्षु को कुछ समय के लिए तब तक मुक्त कर दें जब तक कि यह उपोसथ का अभ्यास न कर ले।"

2. यदि वे इस प्रकार सफल होते हैं, तो अच्छा है। यदि वे सफल नहीं होते हैं, तो भिक्षु अपने संबंधियों से कहें: "मित्रों, कृपया कुछ क्षण के लिए अलग खड़े रहें, जब तक कि यह भिक्षु अपनी परिशुद्धि (पवित्रता) की घोषणा न कर दे।" यदि वे सफल होते हैं, तो अच्छा है। यदि वे सफल नहीं होते हैं, तो भिक्षु अपने संबंधियों से कहें: "मित्रों, कृपया इस भिक्षु को कुछ क्षण के लिए संघ के बाहर ले जाएं, जब तक कि संघ उपोसथ न हो जाए।" यदि वे सफल होते हैं, तो अच्छा है। यदि वे सफल नहीं होते हैं, तो किसी भी स्थिति में अपूर्ण सभा द्वारा उपोसथ नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है, तो (सभा में प्रत्येक भिक्षु) दुक्कत अपराध का दोषी होगा।

3. 'हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ के दिन किसी भिक्षु को राजाओं, लुटेरों, बदमाशों, शत्रु भिक्षुओं आदि द्वारा पकड़ लिया जाए तो...'

<<<< पिछला(2.23) | अगला(2.25) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.25
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.24) | अगला(2.26) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-25: पागल की छुट्टी।

1. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, एकत्रित हो जाओ, संघ के कुछ कर्तव्य (आधिकारिक कार्य) हैं जिन्हें पूरा करना है।' जब उन्होंने ऐसा कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, जन्जा नामक एक पागल भिक्षु है, जो उपस्थित नहीं है।' 'हे भिक्षुओं, दो प्रकार के पागल होते हैं: एक पागल भिक्षु है जो कभी उपोसथ को याद करता है, कभी नहीं करता, जो कभी संघ के आधिकारिक कार्यों को याद करता है, कभी नहीं करता, और एक (दूसरा) पागल भिक्षु है जो उन्हें याद नहीं करता; एक जो कभी उपोसथ जाता है, कभी नहीं जाता, एक जो आधिकारिक कार्यों में जाता है, कभी नहीं जाता, और एक और जो नहीं जाता।'

2. 'हे भिक्षुओं, अब वह पागल जो अब स्मरण करता है, इत्यादि, जो अब जाता है, इत्यादि, ऐसे पागल को मैं यह निर्देश देता हूँ कि तुम उम्मत्तकसम्मुति (अर्थात पागल की अनुमति) प्रदान करो।

3. हे भिक्षुओं, आपको इसे इस प्रकार प्रदान करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। जन्जा, एक पागल भिक्षु, कभी उपोसथ को याद करता है, कभी याद नहीं करता, इत्यादि, कभी जाता है, इत्यादि; यदि संघ तैयार है, तो संघ पागल भिक्षु जन्जा को उम्मत्तकसम्मुति प्रदान करे: भिक्षु जन्जा उपोसथ को याद करे या न करे, संघ के आधिकारिक कार्यों को याद करे या न करे, उपोसथ जाए या न जाए, आधिकारिक कार्यों में जाए या न जाए: (हर स्थिति में) संघ जन्जा के साथ और उसके बिना भी उपोसथ को आयोजित करने और आधिकारिक कार्यों को करने के लिए स्वतंत्र हो सकता है। यही नत्ति है।"

4. "संघ, इत्यादि; जन्जा, एक पागल भिक्षु, इत्यादि; संघ अनुमति देता है, इत्यादि। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

<<<< पिछला(2.24) | अगला(2.26) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.26

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.25) | अगला(2.27) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-26: अनुष्ठान चार, तीन, दो और एक भिक्षु द्वारा भी किया जा सकता है, लेकिन उस स्थान पर रहने वाले सभी भिक्षुओं द्वारा किया जाना चाहिए।

1. उस समय उपोसथा के दिन चार भिक्षु एक विशेष निवास में रह रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने उपोसथा धारण करने का विधान किया है, और हम (केवल) चार व्यक्ति हैं। भला हम उपोसथा कैसे धारण करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि चार (भिक्षु) पतिमोक्खा का पाठ करें।'

2. उस समय उपोसथ के दिन तीन भिक्षु एक विशेष निवास में निवास कर रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने चार (भिक्षुओं) को पतिमोक्खा का पाठ करने का विधान दिया है, और हम (केवल) तीन व्यक्ति हैं: इत्यादि।' 'हे भिक्षुओं, मैं विधान करता हूँ कि तीन भिक्षु परिशुद्धि-उपोसथ का आयोजन करें।'

3. और यह इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु अन्य भिक्षुओं के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करें: "आदरणीय भाइयों, कृपया मेरी बात सुनें। आज उपोसथ है, पंद्रहवाँ (अर्धमाके का दिन)। यदि आदरणीय भाइयों को अनुमति हो, तो आइए हम एक दूसरे के साथ परिशुद्धि-उपोसथ करें।" वरिष्ठ भिक्षु अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि एक कंधा ढका रहे, उकड़ू बैठें, अपने हाथ जोड़कर उठाएँ और उन भिक्षुओं से कहें: "मैं शुद्ध हूँ, मित्रों, समझें कि मैं शुद्ध हूँ, इत्यादि।"

4. 'प्रत्येक छोटा भिक्षु अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, उकड़ू बैठकर अपने हाथ जोड़कर उन भिक्षुओं से कहे: "मैं पवित्र हूँ, आदरणीय महोदय, इत्यादि।"'

5. उस समय उपोसथ के दिन दो भिक्षु एक विशेष निवास में निवास कर रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने चार (भिक्षुओं) को पतिमोक्खा का पाठ करने का, तीन (भिक्षुओं) को परिशुद्धि-उपोसथ धारण करने का विधान दिया है, और हम (केवल) दो व्यक्ति हैं,' इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि दो व्यक्ति परिशुद्धि-उपोसथ धारण कर सकते हैं।'

6, 7. 'और इसे इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए: वरिष्ठ भिक्षु, आदि।'

8. उस समय उपोसथ के दिन एक विशेष निवास में एक अकेला भिक्षु रहता था। अब उस भिक्षु ने सोचा, इत्यादि।

9. हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ के दिन किसी निवास स्थान में केवल एक भिक्षु निवास करे, तो वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं के बैठने के स्थान, भोजन कक्ष, मुख्य हॉल या वृक्ष के नीचे स्थित स्थान की सफाई करे; फिर जल-भोजन की व्यवस्था करे, आसन तैयार करे, दीपक जलाए

और बैठ जाए। यदि अन्य भिक्षु आएं, तो वह उनके साथ उपोसथ मनाए; यदि वे न आएं, तो वह इस विचार पर ध्यान केंद्रित करे: "आज मेरा उपोसथ है।" यदि वह इस विचार पर ध्यान केंद्रित नहीं करता, तो वह दुक्कत अपराध करता है।

10. हे भिक्षुओं, जहाँ चार भिक्षु एक साथ निवास करते हैं, वहाँ उन्हें किसी एक भिक्षु की परिशुद्धि को अपनी सभा में नहीं ले जाना चाहिए और तीन द्वारा पतिमोक्खा का पाठ नहीं करना चाहिए; यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे दुक्कता अपराध करते हैं।

हे भिक्षुओं, जहाँ तीन भिक्षु एक साथ निवास करते हैं, वहाँ उन्हें एक भिक्षु की परिशुद्धि को अपनी सभा में नहीं ले जाना चाहिए और दो भिक्षुओं द्वारा परिशुद्धि-उपोसथ नहीं करना चाहिए। यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे दुक्कत अपराध करते हैं।

'हे भिक्षुओं, जहाँ दो भिक्षु निवास करते हैं, वहाँ उनमें से एक को दूसरे की परिशुद्धता का संचार नहीं करना चाहिए और केवल उपोसथ पर ही अपना ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो वह दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला(2.25) | अगला(2.27) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.27

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.26) | अगला(2.28) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-27: सामूहिक स्वीकारोक्ति एवं सामूहिक स्वीकृति; स्वीकारोक्ति निषिद्ध; संपूर्ण संघ दोषी आदि।

1. उस समय एक भिक्षु उपोसथ दिवस पर एक अपराध का दोषी था। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि "अपराध का दोषी भिक्षु उपोसथ दिवस नहीं मनाए।" अब मैं अपराध का दोषी हूँ। मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ पर्व के दिन कोई भिक्षु किसी अपराध का दोषी हो, तो वह भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु के पास जाकर, उसके ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, फिर वह उकडू बैठकर, हाथ जोड़कर कहे: "हे मित्र, मैंने फलां अपराध किया है; मैं उस अपराध को स्वीकार करता/करती हूँ।" दूसरा भिक्षु कहे: "क्या तुम इसे देख रहे हो?" "हाँ, मैं देख रहा/रही हूँ।" "भविष्य में ऐसा न करो।"

2. हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ पर्व के दिन कोई भिक्षु किसी अपराध के संबंध में संशय महसूस करे, तो हे भिक्षुओं, वह किसी अन्य भिक्षु के पास जाए (§ 1), और कहे: "हे मित्र, मुझे अमुक अपराध के संबंध में संशय है। जब मेरा संशय दूर हो जाएगा, तब मैं उस अपराध का प्रायश्चित करूँगा।" ऐसा कहकर वह उपोसथ को धारण करे और पतिमोक्खा सुने। परन्तु किसी भी स्थिति में उपोसथ को धारण करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने सामूहिक रूप से एक अपराध (जो उन सभी ने साझा किया था) स्वीकार किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें सामूहिक रूप से अपराध स्वीकार नहीं करना चाहिए; जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने एक अपराध की सामूहिक स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया (जो कई भिक्षुओं द्वारा साझा की गई थी)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको किसी अपराध के सामूहिक इकबालिया बयान को स्वीकार नहीं करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

4. उस समय पतिमोक्खा का पाठ हो रहा था, तभी एक भिक्षु को अपने एक अपराध की याद आई। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने नियम दिया है: "अपराध करने वाले भिक्षु को उपोसथा धारण नहीं करना चाहिए।" अब मैं अपराध का दोषी हूँ। मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि पतिमोक्ख पाठ के दौरान किसी भिक्षु को कोई अपराध याद आ जाए, तो हे भिक्षुओं, वह अपने पड़ोसी भिक्षु से कहे, "हे मित्र, मैंने फलां अपराध किया है; जब मैं इस सभा से उठूंगा, तो उस अपराध का प्रायश्चित करूंगा।" ऐसा कहकर, इत्यादि। (§ 2)

5. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पतिमोक्खा का पाठ करते समय किसी अपराध के संबंध में संदेह महसूस करे, तो (धारा 2, 4)।'

6. उस समय उपोसथ दिवस पर एक विशेष निवास में स्थित संपूर्ण संघ एक सामान्य अपराध का दोषी था। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि अनेक भिक्षुओं द्वारा किए गए अपराधों को सामूहिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, और ऐसे अपराधों की सामूहिक स्वीकारोक्ति को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। अब यह संपूर्ण संघ एक सामान्य अपराध का दोषी है। हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ दिवस पर किसी निवास में स्थित संपूर्ण संघ किसी सामान्य अपराध का दोषी हो, तो हे भिक्षुओं, वे तुरंत एक भिक्षु को पास के भिक्षुओं के निवास पर भेजें और कहें, "जाओ, मित्र, और अपने अपराध का प्रायश्चित करके वापस आना; तब हम तुम्हारे समक्ष उस अपराध का प्रायश्चित करेंगे।"

7. यदि वे इस प्रकार सफल हो जाएं, तो अच्छा है। यदि वे सफल न हों, तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनो। यह संपूर्ण संघ एक सामान्य अपराध का दोषी है। जब यह किसी अन्य शुद्ध, निर्दोष भिक्षु को देखेगा, तो उसके समक्ष अपने अपराध का प्रायश्चित करेगा।" (भिक्षुओं में से एक) ऐसा कहने के बाद, वे उपोसथ धारण करें और पतिमोक्ख का पाठ करें। परन्तु किसी भी स्थिति में उपोसथ धारण करने में इस कारण से कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

8. हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ दिवस पर किसी निवास स्थान में स्थित संपूर्ण संघ किसी सामान्य अपराध के संबंध में संशय में हो, तो (इस स्थिति में) एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनो। यह संपूर्ण संघ एक सामान्य अपराध के संबंध में संशय में है। जब यह संशय से मुक्त हो जाएगा, तब यह उस अपराध का प्रायश्चित करेगा।" (भिक्षुओं में से एक) इस प्रकार कहकर, इत्यादि।

9. हे भिक्षुओं, यदि किसी निवास में वर्षा के दौरान प्रवेश करने वाला संघ किसी सामान्य अपराध का दोषी हो, तो हे भिक्षुओं, उन भिक्षुओं को तुरंत, इत्यादि (धारा 6, 7) दंडित किया जाना चाहिए। यदि वे सफल न हों, तो वे एक भिक्षु को सात दिनों के लिए यह कहकर विदा करें: "हे मित्र, जाओ और अपने लिए उस अपराध का प्रायश्चित करके लौट आओ; तब हम तुम्हारे समक्ष उस अपराध का प्रायश्चित करेंगे।"

10. उस समय एक विशेष निवास में संपूर्ण संघ एक सामान्य अपराध का दोषी था, और उन्हें उस अपराध का नाम या वर्ग ज्ञात नहीं था। तभी एक अन्य भिक्षु (अध्याय 21.2 देखें) प्रशिक्षण की इच्छा से वहाँ आया। एक भिक्षु उस भिक्षु के पास गया और उससे कहा, 'हे मित्र, जो ऐसा-ऐसा करता है, वह किस प्रकार का अपराध करता है?'

11. उन्होंने उत्तर दिया: 'हे मित्र, जो ऐसा काम करता है, वह ऐसा अपराध करता है। यदि तुमने ऐसा अपराध किया है, तो हे मित्र, उस अपराध का प्रायश्चित करो।' दूसरे ने उत्तर दिया: 'हे मित्र, केवल मैं ही उस अपराध का दोषी नहीं हूँ; यह पूरा संघ उस अपराध का दोषी है।' उन्होंने कहा: 'हे मित्र, तुम्हें इससे क्या लेना-देना कि दूसरा दोषी है या निर्दोष? आओ, हे मित्र, अपने अपराध का प्रायश्चित करो।'

12. अब उस भिक्षु ने उस भिक्षु की सलाह पर उस अपराध का प्रायश्चित करने के बाद, उन भिक्षुओं (अपने उन भाइयों के पास जिन्होंने वही अपराध किया था) के पास जाकर कहा, 'हे मित्रों, जो ऐसा करता है, वह ऐसा अपराध करता है। हे मित्रों, क्योंकि तुमने ऐसा अपराध

किया है, इसलिए तुम भी उस अपराध का प्रायश्चित करो।' अब उन भिक्षुओं ने उस भिक्षु की सलाह पर उस अपराध का प्रायश्चित करने से इनकार कर दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

13, 14. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी निवास स्थान में संपूर्ण संघ किसी सामान्य अपराध का दोषी हो, इत्यादि। (धारा 10, 11)--

15. 'हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु उस भिक्षु की सलाह से उस अपराध का प्रायश्चित करने के बाद उन भिक्षुओं के पास जाता है, और उनके पास जाकर उनसे कहता है, "जो ऐसा करता है, इत्यादि," और यदि वे भिक्षु, हे भिक्षुओं, उस भिक्षु की सलाह से उस अपराध का प्रायश्चित कर लेते हैं, तो यह अच्छी बात है; यदि वे प्रायश्चित नहीं करते हैं, तो हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु को पसंद नहीं है, तो उसे उन भिक्षुओं से (आगे) कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।'

कोडानावत्थु पर भंवरा का अंत।

<<<< पिछला(2.26) | अगला(2.28) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.28

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.27) | अगला(2.29) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-28: अपूर्णता से अनभिज्ञ रहते हुए अपराध न करने के मामले।

1. उस समय उपोसथा के दिन एक भिक्षु निवास में चार या अधिक भिक्षु एकत्रित हुए। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि कुछ अन्य भिक्षु अनुपस्थित हैं। धर्म और विनय के अनुसार कार्य करने के इरादे से, स्वयं को पूर्ण समझते हुए, जबकि वास्तव में वे अपूर्ण थे, उन्होंने उपोसथा धारण की और पतिमोक्खा का पाठ किया। जब वे पतिमोक्खा का पाठ कर रहे थे, तभी पहले से अधिक संख्या में अन्य भिक्षु वहाँ आ गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ आदि के दिन किसी निवास स्थान पर लोग एकत्रित हों (§ 1); और वे पतिमोक्ख का पाठ कर रहे हों, तभी अधिक संख्या में अन्य निवासी भिक्षु आ जाएँ; तो हे भिक्षुओं, वे भिक्षु फिर से पतिमोक्ख का पाठ करें; जिन्होंने इसका पाठ किया है, वे दोषमुक्त हैं।

3. हे भिक्षुओं, यदि वहाँ सभा हो रही हो, इत्यादि; और जब वे पतिमोक्खा का पाठ कर रहे हों, तभी उतने ही अन्य भिक्षु (पहले वालों के बराबर) आ जाएँ; तो उस स्थिति में (पतिमोक्खा का वह भाग) जो पहले ही पढ़ा जा चुका है, सही ढंग से पढ़ा गया है; जो (देर से आए हैं) वे शेष भाग सुन लें; जिन्होंने इसे पढ़ लिया है, वे दोषमुक्त हैं।

'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ लोग एकत्रित हों, इत्यादि; जब वे पतिमोक्खा का पाठ कर रहे हों, तभी कुछ अन्य निवासी भिक्षु, जिनकी संख्या कम हो, वहाँ आ जाएँ, इत्यादि।'

4. 'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ लोग एकत्रित हों, इत्यादि; जब वे पतिमोक्खा का पाठ समाप्त कर लें, तो अन्य निवासी भिक्षु, इत्यादि।

5. 'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ लोग एकत्रित हों, इत्यादि; जब वे पतिमोक्खा का पाठ समाप्त कर चुके हों और सभा अभी उठी न हो, तो अन्य निवासी भिक्षु, इत्यादि।

6. 'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ लोग एकत्रित हों, इत्यादि; जब वे पतिमोक्खा का पाठ समाप्त कर चुके हों, और सभा का एक भाग उठ गया हो, इत्यादि।

7. 'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ लोग एकत्रित हों, इत्यादि; जब वे पतिमोक्खा का पाठ पूरा कर लें, और पूरी सभा उठ खड़ी हो जाए, इत्यादि।'

उन पंद्रह मामलों का अंत जिनमें कोई अपराध नहीं है।

<<<< पिछला(2.27) | अगला(2.29) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.29
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.28) | अगला(2.30) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-29: वे मामले जब भिक्षुओं को अपनी संख्या की अपूर्णता का ज्ञान होता है।

'हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ के दिन किसी निवास स्थान पर चार या अधिक निवासी भिक्षु एकत्रित हों; और वे जानते हों कि अन्य निवासी भिक्षु अनुपस्थित हैं; वे धर्म और विनय के अनुसार अपूर्ण रूप से कार्य करने का इरादा रखते हुए, अपनी अपूर्णता के प्रति सचेत होकर, उपोसथ धारण करते हैं और पतिमोक्खा आदि का पाठ करते हैं।'

अपूर्ण रूप से एकत्रित हुए पंद्रह भिक्षुओं के मामलों का अंत, जो अपनी अपूर्णता के प्रति सचेत हैं।

<<<< पिछला(2.28) | अगला(2.30) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.30
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.29) | अगला(2.31) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-30: वे मामले जब भिक्षु अपनी अपूर्णता से अवगत होते हैं लेकिन उनके मन में संदेह होता है।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई समूह एकत्रित हो, तो उन्हें पता चलता है कि कुछ अन्य भिक्षु अनुपस्थित हैं। उपोसथ धारण करने की योग्यता के बारे में संशय होने पर, वे उपोसथ धारण करते हैं और पतिमोक्खा आदि का पाठ करते हैं।'

संदेह महसूस करने वाले भिक्षुओं के पंद्रह मामलों का अंत।

<<<< पिछला(2.29) | अगला(2.31) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.31
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.30) | अगला(2.32) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-31: वे मामले जब भिक्षु अपनी अपूर्णता से अवगत होते हैं लेकिन उनमें आत्मविश्वास होता है।

'हे भिक्षुओं, यदि वहाँ कोई एकत्रित हो जाए, इत्यादि; और उन्हें पता चले कि कुछ अन्य भिक्षु अनुपस्थित हैं, तो वे (सोचते हुए): "हम उपोसथा धारण करने में सक्षम हैं, हम अक्षम नहीं हैं," वे दुराचार में लिप्त होकर उपोसथा धारण करते हैं और पतिमोक्खा का पाठ करते हैं, इत्यादि।'

भिक्षुओं द्वारा दुराचार में लिप्त होने के पंद्रह मामलों का अंत।

<<<< पिछला(2.30) | अगला(2.32) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.32
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.31) | अगला(2.33) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-32: वे मामले जिनमें भिक्षु अपनी अपूर्णता से अवगत होते हैं लेकिन उन्हें कोई परवाह नहीं होती।

हे भिक्षुओं, यदि कोई समूह इकट्ठा हो, आदि; और उन्हें पता चले कि कुछ अन्य भिक्षु अनुपस्थित हैं, तो वे यह कहते हुए नष्ट हो जाते हैं और बर्बाद हो जाते हैं, "वे लोग हमारे लिए क्या मायने रखते हैं?" और (भिक्षुता में) फूट का जोखिम उठाते हुए, वे उपोसथ धारण करते हैं और पतिमोक्खा आदि का पाठ करते हैं।

भिक्षुओं द्वारा फूट डालने के जोखिम से जुड़े पंद्रह मामलों का अंत।

पचहत्तर मामलों का अंत।

<<<< पिछला(2.31) | अगला(2.33) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.33

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.32) | अगला(2.34) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-33: परिस्थितियों के अनेक संयोजन।

हे भिक्षुओं, यदि उपोसथ पर्व के दिन किसी निवास स्थान पर चार या अधिक भिक्षु एकत्रित हों; और उन्हें यह जानकारी हो कि अन्य भिक्षु सीमा में प्रवेश करने वाले हैं। उन्हें यह भी जानकारी हो कि अन्य भिक्षु सीमा में प्रवेश कर चुके हैं। वे अन्य भिक्षुओं को प्रवेश करते हुए देखते हैं, इत्यादि, जो सीमा में प्रवेश कर चुके हैं। वे यह सुनते हैं कि अन्य भिक्षु प्रवेश करने वाले हैं, इत्यादि, जो सीमा में प्रवेश कर चुके हैं।

इस प्रकार, निवासी और निवासी भिक्षुओं से संबंधित त्रय की एक सौ पचहत्तर प्रणालियाँ उत्पन्न होती हैं। (फिर) निवासी और नए भिक्षुओं, नए और निवासी भिक्षुओं, नए और नए भिक्षुओं के संबंध में भी यही स्थितियाँ आती हैं। इन शब्दों को (क्रमशः) पेय्यल में रखने से सात सौ त्रय उत्पन्न होते हैं।

<<<< पिछला(2.32) | अगला(2.34) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.34

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.33) | अगला(2.35) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-34: आगमन और निवासी भिक्षुओं की शर्तें और दिनों की गणना।

1. हे भिक्षुओं, यदि निवास करने वाले भिक्षु उस दिन को चौदहवाँ (पक्खा) मानें, और आने वाले भिक्षु पंद्रहवाँ मानें; यदि निवास करने वाले भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो आने वाले भिक्षुओं को निवास करने वाले भिक्षुओं के साथ रहना चाहिए। यदि उनकी संख्या बराबर हो, तो आने वाले भिक्षुओं को निवास करने वाले भिक्षुओं के साथ रहना चाहिए। यदि आने वाले भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो निवास करने वाले भिक्षुओं को आने वाले भिक्षुओं के साथ रहना चाहिए।

2. 'हे भिक्षुओं, यदि निवासी भिक्षु उस दिन को पंद्रहवाँ मानें, तो आने वाले भिक्षु उस दिन को चौदहवाँ मानें; यदि, इत्यादि (§ 1)।

3. हे भिक्षुओं, यदि निवास करने वाले भिक्षु दिन को पहले पक्खा (अर्ध) के रूप में गिनें, और आने वाले भिक्षुओं को पंद्रहवें पक्खा (पिछले पक्खा) के रूप में गिनें; यदि निवास करने वाले भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो यदि वे न चाहें तो आने वाले भिक्षुओं को अपने समूह में शामिल न करें; आने वाले भिक्षु सीमा के बाहर जाकर उपोसथ करें। यदि उनकी संख्या बराबर हो, इत्यादि (जैसा कि

पिछले मामले में है)। यदि आने वाले भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो निवास करने वाले भिक्षु या तो आने वाले भिक्षुओं को अपने समूह में शामिल कर लें या सीमा के बाहर चले जाएं।

4. हे भिक्षुओं, यदि निवासी भिक्षु उस दिन को पंद्रहवाँ और आगमन भिक्षुओं को (अगले पक्ष का) पहला दिन मानें; यदि निवासी भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो आगमन भिक्षु या तो निवासी भिक्षुओं को अपने समूह में शामिल कर लें या सीमा से बाहर चले जाएँ। यदि उनकी संख्या बराबर हो, इत्यादि (जैसा कि पिछले मामले में है)। यदि आगमन भिक्षुओं की संख्या अधिक हो, तो आगमन भिक्षु यदि चाहें तो निवासी भिक्षुओं को अपने समूह में शामिल न करें; निवासी भिक्षु सीमा से बाहर जाकर उपोसथ (वहाँ) आयोजित करें।

5. हे भिक्षुओं, यदि आने वाले भिक्षु यहाँ के निवासियों के संकेत, चिह्न, लक्षण, विशेषताएँ, सुव्यवस्थित पलंग, कुर्सियाँ, चटाइयाँ और तकिए, पर्याप्त भोजन और जल की व्यवस्था, और स्वच्छ कक्ष देखें, तो यह संदेह करने लगें: "क्या यहाँ कोई निवासी भिक्षु हैं या नहीं?"

6. संदेह में रहकर वे खोज नहीं करते, खोज न करने पर उपोसथा धारण करते हैं: यह दुक्कत अपराध है। संदेह में रहकर वे खोज करते हैं, खोज करने पर भी वे उन्हें नहीं पाते, न देखकर भी वे उपोसथा धारण करते हैं: (इस स्थिति में) वे अपराध से मुक्त हैं। संदेह में रहकर वे खोज करते हैं, खोज करने पर वे उन्हें पाते हैं, देखकर भी वे उपोसथा धारण करते हैं: (इस स्थिति में) वे अपराध से मुक्त हैं। संदेह में रहकर वे खोज करते हैं, खोज करने पर वे उन्हें पाते हैं, देखकर भी वे उपोसथा धारण करते हैं: यह दुक्कत अपराध है। संदेह में रहकर वे खोज करते हैं, खोज करने पर वे उन्हें पाते हैं, देखकर वे नष्ट हो जाते हैं और बर्बाद हो जाते हैं, यह कहते हुए, "वे लोग हमारे लिए क्या हैं?" और फूट का जोखिम उठाते हुए, वे उपोसथा धारण करते हैं: यह तुलकया (बड़ा/गंभीर) अपराध है।

7. हे भिक्षुओं, यदि आने वाले भिक्षु निवासी भिक्षुओं के संकेतों आदि को सुनें, जैसे कि उनके चलने पर उनके कदमों की आवाज, उनके धम्म पाठ की आवाज, उनके गले को साफ करने और छींकने की आवाज; तो यह सुनकर वे संदेह करने लगें, इत्यादि। (§§ 5, 6)।

8. हे भिक्षुओं, यदि निवासी भिक्षु आने वाले भिक्षुओं के संकेत आदि देखें, जैसे कि अज्ञात कटोरे, अज्ञात वस्त्र, अज्ञात आसन, पैर धोने के निशान, पानी का छिड़काव आदि; तो यह देखकर वे संदेह करने लगें, इत्यादि।

9. हे भिक्षुओं, यदि निवासी भिक्षु आने वाले भिक्षुओं के संकेतों आदि को सुनें, जैसे उनके आगमन पर उनके कदमों की आहट, उनके जूते झाड़ने की आवाज़, गला साफ करने की आवाज़ और छींकने की आवाज़; यह सब सुनकर...

10. हे भिक्षुओं, यदि आने वाले भिक्षु किसी अन्य जिले के निवासी भिक्षुओं को अपने जिले का समझते हुए देखें; और उन्हें अपने जिले का समझकर प्रश्न न पूछें; प्रश्न न पूछने पर वे उपोसथ को एक साथ रखते हैं: (इस स्थिति में) वे अपराध से मुक्त हैं। वे प्रश्न पूछें; प्रश्न पूछने के बाद भी वे विषय पर विचार न करें; विषय पर विचार न करने पर वे उपोसथ को एक साथ रखते हैं: यह दुक्कत अपराध है। वे प्रश्न पूछें, इत्यादि (जैसा कि पिछले मामले में), और उपोसथ को अलग रखें: (इस स्थिति में) वे अपराध से मुक्त हैं।

11. हे भिक्षुओं, यदि आने वाले भिक्षु उन्हें उसी जिले के निवासी भिक्षुओं को देखकर उन्हें किसी दूसरे जिले का समझ लें; और उन्हें साथ लेकर, इत्यादि, वे कोई प्रश्न न पूछें; बिना पूछे वे उपोसथ को एक साथ रखते हैं: यह दुक्कत अपराध है। वे प्रश्न पूछें; प्रश्न पूछने के बाद वे मामले की जाँच करें; मामले की जाँच करने के बाद वे उपोसथ को अलग रखें: यह दुक्कत अपराध है। वे प्रश्न पूछें, इत्यादि (जैसा कि पिछले मामले में), और उपोसथ को एक साथ रखें: (इस मामले में) वे अपराध से मुक्त हैं।

12. 'यदि हे भिक्षुओं, निवासी भिक्षु किसी अन्य जिले आदि से आने वाले भिक्षुओं को देखें (धारा 10 देखें)।

13. 'यदि हे भिक्षुओं, निवासी भिक्षुओं को उसी जिले आदि के आने वाले भिक्षु दिखाई दें (धारा 11 देखें)।'

<<<< पिछला(2.33) | अगला(2.35) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.35

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.34) | अगला(2.36) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-35: उपोसथा दिवस पर हिलना-डुलना नहीं।

1. हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन भिक्षुओं वाले निवास स्थान से ऐसे निवास स्थान पर न जाएं जहां भिक्षु न हों, सिवाय संघ के साथ या किसी संकट की स्थिति में। हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन भिक्षुओं वाले निवास स्थान से ऐसे निवास स्थान पर न जाएं जहां भिक्षु न हों, सिवाय इसके कि... इत्यादि। हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन भिक्षुओं वाले निवास स्थान से ऐसे निवास स्थान या निवास स्थान पर न जाएं जहां भिक्षु न हों, सिवाय इसके कि... इत्यादि।

2. 'हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन आपको किसी ऐसे निवास स्थान से, जिसमें भिक्षु हों, किसी निवास स्थान आदि पर, किसी ऐसे निवास स्थान आदि पर, या किसी ऐसे निवास स्थान या निवास स्थान आदि पर नहीं जाना चाहिए, जिसमें कोई भिक्षु न हों, सिवाय इसके कि...

3. 'हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन आपको किसी ऐसे निवास स्थान या गैर-निवास स्थान से, जिसमें भिक्षु हों, किसी निवास स्थान आदि पर, किसी गैर-निवास स्थान आदि पर, किसी ऐसे निवास स्थान या गैर-निवास स्थान आदि पर नहीं जाना चाहिए, जिसमें कोई भिक्षु न हों, सिवाय इसके कि...

4. 'हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन, यदि भिक्षु किसी दूसरे जिले के हों, तो ऐसे निवास स्थान से, जिसमें भिक्षु हों, किसी दूसरे निवास स्थान पर न जाओ, सिवाय इसके कि, इत्यादि।'

5. 'हे भिक्षुओं, उपोसथा के दिन आप ऐसे निवास स्थान से, जहाँ भिक्षु रहते हों, ऐसे निवास स्थान पर जा सकते हैं, यदि वे भिक्षु एक ही जिले के हों, और यदि आप जानते हों: "मैं आज उस स्थान पर पहुँच सकता हूँ।" आप जा सकते हैं, इत्यादि।'

<<<< पिछला(2.34) | अगला(2.36) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> द्वितीय खण्डक >> 2.36

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.35) | अगला(3.1) >>>>

महावग्ग

दूसरा खंडका (उपोसथ समारोह, और पतिमोक्खा)

अध्याय-36: कब पाठ नहीं करना चाहिए।

1. हे भिक्षुओं, कोई भी भिक्षुणी के समक्ष भिक्षुओं की सभा में पतिमोक्खा का पाठ न करे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, कोई भी भिक्षुणी, समनेरा, समनेरी, धर्म नियमों का उल्लंघन करने वाले या घोर अपराध करने वाले के समक्ष भिक्षुओं की सभा में पतिमोक्खा का पाठ न करे। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है।

2. हे भिक्षुओं, किसी भी भिक्षु की सभा में, किसी ऐसे भिक्षु के समक्ष पतिमोक्खा का पाठ न करो जिसे अपने द्वारा किए गए अपराध को देखने से इनकार करने पर, या ऐसे अपराध के प्रायश्चित से इनकार करने पर, या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने पर निष्कासित किया गया हो। जो ऐसा करता है, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।

3. हे भिक्षुओं, कोई भी भिक्षुओं की सभा में, किसी हिजड़े के सामने, गुप्त रूप से संघ से जुड़े व्यक्ति के सामने, आदि के सामने पतिमोक्खा का पाठ न करे। (अध्याय 22.3 देखें)। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है।

4. हे भिक्षुओं, परिवासिका द्वारा परिशुद्धि की घोषणा को स्वीकार करके उपोसत्बा का आयोजन न करें, सिवाय उस स्थिति में जब परिशुद्धि की घोषणा के समय सभा अभी तक उठी न हो। और हे भिक्षुओं, उपोसत्बा के दिन के अलावा किसी अन्य दिन उपोसत्बा का आयोजन न करें, सिवाय संघ में सद्भाव की पुनर्स्थापना की घोषणा के लिए।

उपोसथखण्डका में तृतीय भँवर का समापन।

<<<< पिछला(2.35) । अगला(3.1) >>>>

तीसरा खंडका (वास्सा, रेन्स रिट्रीट)
(वर्षा ऋतु के दौरान निवास स्थान)

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.36) । अगला(3.2) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-1: वासा प्रणाली की उत्पत्ति।

1. उस समय भगवान बुद्ध राजगृह में, वेलुवन में, कलांदकनिवाप में निवास करते थे। उस समय भिक्षुओं के लिए वर्षा ऋतु में एकांतवास की प्रथा भगवान बुद्ध द्वारा स्थापित नहीं की गई थी। इसलिए भिक्षु शीत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु में एक समान यात्रा करते थे।

2. लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्री साधु सर्दी, गर्मी और बरसात के मौसम में एक समान यात्रा कैसे कर सकते हैं? वे हरी जड़ी-बूटियों को कुचलते हैं, वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाते हैं और अनेक छोटे जीवों का जीवन नष्ट करते हैं। क्या तित्तीय संप्रदायों के वे तपस्वी, जिनका उपदेश कुप्रचारित है, बरसात के मौसम में विश्राम करेंगे और अपने रहने के लिए स्थान बनाएंगे? क्या पक्षी वृक्षों की चोटियों पर घोंसले बनाएंगे और बरसात के मौसम में विश्राम करेंगे और अपने रहने के लिए स्थान बनाएंगे; और फिर भी शाक्यपुत्री साधु (भिक्षु) सर्दी, गर्मी और बरसात के मौसम में एक समान यात्रा करते हैं, हरी जड़ी-बूटियों को कुचलते हैं, वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाते हैं और अनेक छोटे जीवों का जीवन नष्ट करते हैं?'

3. अब कुछ भिक्षुओं ने उन लोगों को सुना जो नाराज़, बड़बड़ा रहे थे और क्रोधित हो गए थे। इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, मैं आपको वर्षा ऋतु में प्रवेश करने की सलाह देता हूँ।'

<<<< पिछला(2.36) । अगला(3.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.1) । अगला(3.3) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-2: वासा में प्रवेश के लिए दो अवधियों की स्थापना।

1. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'हम वर्षा (बारिश) में कब प्रवेश करेंगे?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप वर्षा ऋतु में वर्षावास में प्रवेश करें।'

2. तब भिक्षुओं ने सोचा: 'वर्षा (बारिश) में प्रवेश करने के कितने काल होते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, वर्षा ऋतु में प्रवेश करने के दो समय होते हैं, पहला और दूसरा। पहला समय आषाढ़ (जून-जुलाई) की पूर्णिमा के अगले दिन से होता है; दूसरा समय आषाढ़ की पूर्णिमा के एक महीने बाद से होता है। हे भिक्षुओं, वर्षा ऋतु में प्रवेश करने के ये दो समय हैं।

<<<< पिछला(3.1) । अगला(3.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.2) । अगला(3.4) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-3: वासा के दौरान कोई यात्रा नहीं।

1. उस समय छब्बाग्य भिक्षु वर्षा ऋतु में प्रवेश कर गए और वर्षा ऋतु के दौरान यात्रा पर निकल पड़े। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए (कहते हुए), 'शाक्यपुत्र समण शीत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु में एक समान यात्रा कैसे कर सकते हैं, ... (अध्याय 1.2 से आगे तक, जैसा कि आगे बताया गया है) और अनेक छोटे जीवों का जीवन नष्ट कर सकते हैं?'

2. अब कुछ भिक्षुओं ने उन लोगों को नाराज़ होते, बड़बड़ाते और क्रोधित होते सुना। संयमी भिक्षु भी नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए (यह कहते हुए), 'छाबग्य भिक्षु वर्षा ऋतु में प्रवेश कर चुके हैं, तो वे वर्षा ऋतु में यात्रा कैसे कर सकते हैं?'

इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

इसके फलस्वरूप और इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे भिक्षुओं, वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाला कोई भी व्यक्ति, वर्षा ऋतु के पहले या बाद के तीन महीनों में वर्षा ऋतु का पालन किए बिना यात्रा पर न जाए। ऐसा करने वाला व्यक्ति दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला(3.2) | अगला(3.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.3) | अगला(3.5) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-4: वर्षावास के दौरान जिले को न छोड़ना; राजा की आज्ञा का पालन करना।

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु वर्षावास (वर्षा ऋतु में एकांतवास) में प्रवेश करने के इच्छुक नहीं थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, वर्षा में प्रवेश करने से कोई इनकार न करे। जो वर्षा में प्रवेश नहीं करता, वह दुक्कत अपराध करता है।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु, जो निर्धारित दिन वर्षा में प्रवेश करने के इच्छुक नहीं थे, जानबूझकर उस जिले को छोड़कर चले गए (जहाँ वे रह रहे थे)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कोई भी जानबूझकर उस क्षेत्र को न छोड़े जहाँ वह रह रहा है, क्योंकि वह निर्धारित दिन वर्षा में प्रवेश करने को तैयार नहीं है। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

3. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार, जो वर्षा ऋतु को स्थगित करना चाहते थे, ने भिक्षुओं के पास एक दूत भेजा: 'यदि वे अगले पूर्णिमा के दिन वर्षा ऋतु में प्रवेश करें तो क्या होगा?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि तुम राजाओं की आज्ञा का पालन करो।'

<<<< पिछला(3.3) | अगला(3.5) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.4) | अगला(3.6) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-5: वर्षावास के दौरान सात दिनों के भीतर उपहारों के लिए और किसके लिए यात्रा करें।

1. भगवान बुद्ध ने राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद सावत्थी की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ सावत्थी में, भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में निवास करने लगे।

उस समय कोसल देश में उदेना नामक एक उपासक (गृहस्थ भक्त) ने संघ के लिए एक विहार (मठ) बनवाया। उन्होंने भिक्षुओं के पास एक दूत भेजा और कहा, 'कृपापूर्वक यहाँ आएँ; मैं संघ को दान देना चाहता हूँ, धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ और भिक्षुओं से मिलना चाहता हूँ।'

2. भिक्षुओं ने उत्तर दिया: 'हे मित्र, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाला कोई भी व्यक्ति, वर्षा ऋतु के पहले या बाद के तीन महीनों में वर्षा ऋतु पूरी किए बिना यात्रा पर न जाए। उपासक उदेना तब तक प्रतीक्षा करें जब तक भिक्षु वर्षा ऋतु में निवास करते रहें; वर्षा ऋतु समाप्त होने पर वे यात्रा करेंगे। परन्तु यदि कोई अत्यावश्यक आवश्यकता हो, तो वे वहाँ निवास करने वाले भिक्षुओं की उपस्थिति में विहार का समर्पण करें।'

3. उपासक उदेना नाराज़ होकर बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर बोले, 'जब मैं उन्हें बुलाता हूँ, तो वे आने से इनकार कैसे कर सकते हैं? मैं दान देने वाला और कर्म करने वाला (अच्छे कर्म करने वाला) हूँ, और भिक्षु समुदाय की सेवा करता हूँ।' कुछ भिक्षुओं ने नाराज़ उपासक उदेना की बातें सुनीं, इत्यादि।

इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

4. इसके फलस्वरूप भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (वर्षा ऋतु में भी) जाने की अनुमति देता हूँ, यदि तुम्हारा कार्य सात दिनों में पूरा हो सके और तुम्हें निम्नलिखित सात श्रेणियों में से किसी एक व्यक्ति द्वारा बुलाया गया हो, अन्यथा नहीं। भिक्षु, भिक्षुणियाँ, शिक्खर्णन, समनेर, समनेरी, गृहस्थ भक्त और स्त्री गृहस्थ भक्त। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ, यदि तुम्हारा कार्य सात दिनों में पूरा हो सके और तुम्हें इन सात श्रेणियों में से किसी एक व्यक्ति द्वारा बुलाया गया हो, अन्यथा नहीं। सात दिनों के भीतर तुम्हें लौट आना चाहिए।

5. हे भिक्षुओं, यदि किसी उपासक ने संघ के लिए विहार बनवाया हो, और वह भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे, "कृपापूर्वक यहाँ आएँ; मैं उन्हें दान देना चाहता हूँ, धर्म सुनना चाहता हूँ और भिक्षुओं से मिलना चाहता हूँ," तो हे भिक्षुओं, यदि आपका कार्य सात दिनों में पूरा हो सके, और यदि वह आपको बुलाए, तो अवश्य जाएँ; अन्यथा न जाएँ। सात दिनों के भीतर लौट आएँ।

6. हे भिक्षुओं, यदि किसी उपासक ने संघ के लिए अद्धयोग का निर्माण किया हो, कोई बहुमंजिला मकान बनाया हो, कोई अटारी बनाई हो, कोई गुफा बनाई हो, कोई कोठरी बनाई हो, कोई भंडारगृह बनाया हो, कोई भोजनालय बनाया हो, कोई अग्नि-कक्ष बनाया हो, कोई गोदाम बनाया हो, कोई शौचालय बनाया हो, कोई टहलने का स्थान बनाया हो, कोई टहलने का घर बनाया हो, कोई कुआँ बनाया हो, कोई कुएँ का घर बनाया हो, कोई घंटाघर बनाया हो, कोई घंटाघर कक्ष बनाया हो, कोई कमल-तालाब बनाया हो, कोई मंडप बनाया हो, कोई उद्यान बनाया हो, या किसी उद्यान के लिए स्थान तैयार किया हो। यदि वह भिक्षुओं के पास कोई दूत भेजता है, तो... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 5 में, खंड के अंत तक दिया गया है)।

7. हे भिक्षुओं, यदि किसी उपासक ने अनेक भिक्षुओं के लिए अद्धयोग (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 6 से अंत तक है) का निर्माण किया हो, तो एक भिक्षु के लिए विहार, अद्धयोग, बहुमंजिला मकान (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 6 से अंत तक है) का निर्माण किया हो।

8. 'मामले में, हे भिक्खुओं (भिक्षुओं), एक उपासक ने भिक्खुनिस की बहन के लिए, आदि, कई भिक्खुनी के लिए, एक भिक्खुनी के लिए, कई सिखमानों के लिए, एक सिखमना के लिए, कई समानेरा के लिए, एक समानेरा के लिए, कई समानेरी के लिए, एक समानेरी के लिए एक विहार (मठ) आदि का निर्माण किया है। यदि वह भिक्खुओं के पास एक दूत भेजता है, आदि।

9. हे भिक्षुओं, यदि किसी उपासक ने अपने उपयोग के लिए निवास, विश्राम कक्ष, अस्तबल, मीनार, एक शिखर वाली इमारत, दुकान, बुटीक, बहुमंजिला मकान, अटारी, गुफा, कोठरी, भंडारगृह, भोजन कक्ष, अग्नि-कक्ष, रसोई, शौचालय, टहलने का स्थान, टहलने के लिए घर, कुआँ, कुएँ का घर, घंटाघर, घंटाघर कक्ष, कमल-तालाब, मंडप, उद्यान बनवाया हो, या उद्यान के लिए स्थान तैयार किया हो; या उसका पुत्र जीवनसाथी का चुनाव करने वाला हो; या उसकी पुत्री जीवनसाथी का चुनाव करने वाली हो; या वह बीमार हो; या वह

किसी प्रसिद्ध सूत्र का पाठ करना जानता हो। यदि वह भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे, "कृपापूर्वक आएँ और इस सूत्र का अध्ययन करें; अन्यथा यह सूत्र विस्मृति में चला जाएगा;"—या यदि उसका कोई अन्य कार्य हो या कोई और काम करना हो; और यदि वह भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे, "कृपापूर्वक आएँ" (आदि), तो आपको जाना चाहिए (आदि, जैसा कि § 5 में है, नीचे तक): आपको लौटना चाहिए।

10-12. 'यदि हे भिक्षुओं, किसी उपासिक ने संघ के लिए विहार (मठ) का निर्माण किया हो (आदि, जैसा कि §§ 5-91 में है)।

13. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने संघ के लिए, अनेक भिक्षुओं के लिए, एक भिक्षु के लिए, भिक्षुणियों के समूह के लिए, एक समनेरी के लिए, अपने स्वयं के उपयोग के लिए विहार आदि का निर्माण किया हो।'

<<<< पिछला(3.4) । अगला(3.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.5) । अगला(3.7) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-6: भिक्षु/भिक्षुनी की बीमारी, शंकाओं, झूठे सिद्धांतों, अपराधों, दंड आदि के लिए सात दिवसीय यात्रा।

1. उस समय एक भिक्षु बीमार था। उसने भिक्षुओं के पास एक दूत भेजा (यह कहते हुए), 'मैं बीमार हूँ; क्या भिक्षु मेरे पास आ सकते हैं; मुझे भिक्षुओं के आने की बहुत इच्छा है।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (वर्षा ऋतु में भी) जाने की अनुमति देता हूँ, यदि तुम्हारा कार्य सात दिनों में पूरा हो सके, चाहे तुम्हें किसी ने न बुलाया हो, और यदि तुम्हें इन पाँच श्रेणियों में से किसी एक के व्यक्ति ने बुलाया हो तो और भी अधिक अनुमति देता हूँ: भिक्षु, भिक्षुणी, सिखमान, समनेर और समनेरी। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ, यदि तुम्हारा कार्य सात दिनों में पूरा हो सके, चाहे तुम्हें किसी ने न बुलाया हो, और यदि तुम्हें इन पाँच श्रेणियों में से किसी एक के व्यक्ति ने बुलाया हो तो और भी अधिक अनुमति देता हूँ। तुम्हें सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु बीमार हो जाए और वह अन्य भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे, "मैं बीमार हूँ; क्या भिक्षु मेरे पास आ सकते हैं; मुझे भिक्षुओं के आने की बहुत इच्छा है," तो हे भिक्षुओं, यदि सात दिनों के भीतर कार्य पूरा हो सके, तो आपको अवश्य जाना चाहिए, भले ही उसने आपको न बुलाया हो, और यदि उसने भेजा हो (आपस में कहते हुए): "मैं बीमार के लिए भोजन, या बीमार की देखभाल करने वाले के लिए भोजन, या बीमार के लिए दवा लाने का प्रयास करूँगा, या मैं उससे (धर्म से संबंधित प्रश्न) पूछूँगा, या उसकी सेवा करूँगा।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

3. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु को आंतरिक संघर्ष हो जाए, और वह भिक्षुओं को संदेश भेजकर कहे, "मुझे आंतरिक संघर्ष हो रहा है; कृपया भिक्षु मेरे पास आएं; मैं भिक्षुओं के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ," तो आपको जाना चाहिए... (जैसा कि अनुच्छेद 2 में नीचे दिया गया है); (आपस में कहते हुए): "मैं इन संघर्षों को शांत करने का प्रयास करूँगा, या किसी अन्य के द्वारा इन्हें शांत करवाऊँगा, या धर्म प्रवचन द्वारा उसे शांत करूँगा।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु के मन में अंतरात्मा संबंधी संदेह उत्पन्न हो जाए, तो आप . . . . (अतः अनुच्छेद 3 में दिए गए अनुसार): (आपस में कहते हुए): "मैं इन संदेहों को दूर करने का प्रयास करूंगा, या उन्हें दूर करवाऊंगा, या धर्म प्रवचन द्वारा उसे शांत करूंगा।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

5. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु किसी गलत मत को अपना ले, तो वह . . . . (आदि, नीचे) को भेजे: (आपस में कहते हुए): "मैं उस गलत मत पर चर्चा करूँगा, या किसी और से चर्चा करवाऊँगा, या धर्म प्रवचन द्वारा (उस भिक्षु को) सुधारूँगा।" सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

6. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु गंभीर अपराध का दोषी पाया जाता है और उसे परिवास की सजा दी जानी चाहिए, तो यदि वह . . . . (आदि, नीचे तक) को भेजता है: (आपस में कहते हुए): "मैं यह सुनिश्चित करूँगा कि उसे परिवास की सजा दी जाए, या मैं (सभा में) प्रस्ताव रखूँगा, या मैं (परिवास की सजा देने के लिए आवश्यक) कोरम पूरा करने में मदद करूँगा:" तो आपको सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

7. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु दंडात्मक अनुशासन पुनः प्रारंभ करने की सजा पाता है, तो उसे . . . . (आदि, जैसा कि धारा 6 में, खंड के अंत तक) भेजा जाना चाहिए।'

8. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु पर मनत्ता अनुशासन लागू किया जाए, तो उस पर . . . . (आदि) जैसा कि धारा 6 में, खंड के अंत तक वर्णित है।'

9. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (दंडात्मक अनुशासन का विधिवत पालन करने के बाद) पुनर्वासित किया जाना चाहिए, तो यदि वह भेजता है... (आदि, जैसा कि § 6 में है)।

10. हे भिक्षुओं, यदि संघ किसी भिक्षु के विरुद्ध तज्जनीयकम्मा, निस्साय, पब्बनीयकम्मा, पतिसरनीयकम्मा या उक्खेपनीयकम्मा द्वारा कार्यवाही करने वाला हो, तो यदि वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं को दूत भेजकर कहे, “संघ मेरे विरुद्ध कार्यवाही करने वाला है; कृपया भिक्षु मेरे पास आएं; मैं भिक्षुओं के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूं,” तो आपको जाकर (जैसा कि अनुच्छेद 2 में नीचे दिया गया है): (आपस में कहते हुए): “संघ उस भिक्षु के विरुद्ध कार्यवाही न करे या कार्यवाही को कम करने के लिए क्या किया जा सकता है?” सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

11. 'या संघ ने उसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू की है, तज्जनीयकम्मा . . . . (आदि, नीचे तक): . . . . या उक्खेपनीयकम्मा; यदि वह भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे: "संघ ने मेरे विरुद्ध कार्यवाही शुरू की है; क्या भिक्षु मेरे पास आ सकते हैं; मैं भिक्षुओं के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ," तो आपको जाना चाहिए . . . . (आदि, जैसा कि § 3 में है, नीचे तक): (आपस में कहते हुए): "ऐसा क्या किया जा सकता है जिससे यह भिक्षु उचित व्यवहार करे, विनम्रता से जीवन व्यतीत करे और अपनी तपस्या से मुक्ति पाने की आकांक्षा रखे, और संघ अपना निर्णय वापस ले ले?" आपको सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

12-15. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षुणी बीमार हो, इत्यादि।

16. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षुणी गंभीर अपराध की दोषी पाई जाती है और उसे मनत्ता अनुशासन की सजा दी जानी चाहिए, तो यदि वह संदेश भेजती है... (जैसा कि अनुच्छेद 3 में नीचे दिया गया है): ... (आपस में कहते हुए): "मैं यह सुनिश्चित करूँगा कि उसे मनत्ता अनुशासन की सजा दी जाए।" तो आपको सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

17. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षुणी को दंडात्मक अनुशासन पुनः प्रारंभ करने की सजा दी जाए तो... (आदि, जैसा कि धारा 7 में है)।

18. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षुणी पुनर्वासित की जानी हो... (आदि, जैसा कि धारा 9 में है)।

19. 'हे भिक्षुओं, यदि संघ किसी भिक्षुणी के विरुद्ध तज्जनीयकम्मा द्वारा कार्यवाही करने जा रहा हो... (आदि, जैसा कि धारा 10 में है)।

20. 'या संघ ने उसके विरुद्ध कार्यवाही शुरू की है . . . . (आदि, जैसा कि § 11 में है)।

21, 22. 'यदि हे भिक्षुओ, कोई सिखमण बीमार है। . . . (&c., §§ 2-5 देखें)।

हे भिक्षुओं, यदि कोई विद्यार्थी अपने प्रशिक्षण के नियमों का उल्लंघन करे, तो वह . . . . (जैसा कि अनुच्छेद 3 में नीचे दिया गया है): (आपस में कहते हुए): "मैं ध्यान रखूंगा कि वह नियमों का पुनः पालन करे।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

23. हे भिक्षुओं, यदि कोई विद्यार्थी उपसम्पदा दीक्षा ग्रहण करना चाहे, तो यदि वह किसी को भेजे, इत्यादि, तो आप (मन में यह कहते हुए) जाएं: "मैं यह सुनिश्चित करूंगा कि उसे उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त हो जाए, या मैं सभा के समक्ष दीक्षा का सूत्र घोषित करूंगा, या मैं कोरम पूरा करने में सहायता करूंगा।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

24, 25. हे भिक्षुओं, यदि कोई समनेर बीमार हो (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 2-5 में वर्णित है)... और वह वर्षा के विषय में पूछना चाहे, तो उसे सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

26. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई समनेर उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है (आदि, धारा 23 देखें)।

27, 28. 'यदि हे भिक्षुओं, कोई समनेरी बीमार हो (आदि, देखें §§ 24-25)।

29. हे भिक्षुओं, यदि कोई समनेरी दीक्षा ग्रहण करना चाहे, तो यदि वह . . . . आदि को भेजे, तो आप (मन में यह कहते हुए) जाएं: "मैं ध्यान रखूंगा कि वह दीक्षा ग्रहण कर ले।" सात दिनों के भीतर आपको लौट आना चाहिए।

<<<< पिछला(3.5) । अगला(3.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.6) । अगला(3.8) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-7: भिक्षु की माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदार और परिचित व्यक्ति की बीमारी के लिए यात्रा की अनुमति है।

1. उस समय एक भिक्षु की माता बीमार थीं। उन्होंने अपने पुत्र के पास दूत भेजा और कहा, 'मैं बीमार हूँ; क्या मेरा पुत्र मेरे पास आ सकता है? मुझे अपने पुत्र के आने की बहुत प्रतीक्षा है।' अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने भिक्षु को जाने की अनुमति दी है, यदि जिस कार्य के लिए वह जा रहा है वह सात दिनों के भीतर पूरा हो जाए, और यदि उसे सात श्रेणियों में से किसी एक के व्यक्ति द्वारा बुलवाया जाए, लेकिन यदि उसे बुलवाया न जाए तो अनुमति नहीं है; (और उन्होंने यह भी अनुमति दी है), यदि जिस कार्य के लिए वह जा रहा है वह सात दिनों के भीतर पूरा हो जाए, भले ही उसे बुलवाया न जाए, और यदि उसे बुलवाया जाए तो पाँच श्रेणियों में से किसी एक के व्यक्ति द्वारा तो और भी अधिक। अब मेरी माता बीमार हैं; वह गृहस्थ भक्त (उपासिका) नहीं हैं। इसलिए मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (वर्षा ऋतु में भी) जाने की अनुमति देता हूँ, यदि तुम्हारा कार्य सात दिनों के भीतर पूरा हो सके, चाहे तुम्हें किसी ने न बुलाया हो, और यदि तुम्हें निम्नलिखित सात श्रेणियों में से किसी एक के द्वारा बुलाया गया हो तो और भी अधिक। तुम्हें सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

3. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु की माता बीमार हो जाए, तो वह अपने पुत्र को दूत भेजकर कहे, "मैं बीमार हूँ; क्या मेरा पुत्र मेरे पास आ सकता है? मुझे अपने पुत्र के आने की बहुत प्रतीक्षा है (आदि, अध्याय 6.2 देखें)।"

4. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का पिता बीमार हो . . . . (आदि, जैसा कि § 3 में है)।

5. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का भाई बीमार हो जाए, तो यदि वह अपने भाई को दूत भेजकर कहे, "मैं बीमार हूँ; क्या मेरा भाई मेरे पास आ सकता है; मुझे अपने भाई के आने की बहुत प्रतीक्षा है," तो हे भिक्षुओं, यदि सात दिनों के भीतर कार्य संपन्न हो सके, और यदि वह उसे बुलवाए, तो उसे अवश्य जाना चाहिए, अन्यथा नहीं। उसे सात दिनों के भीतर लौट आना चाहिए।

6. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु की बहन बीमार हो... (आदि, धारा 5 देखें)।

7. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का कोई संबंधी बीमार हो जाए, तो वह उस भिक्षु के पास दूत भेजकर कहे, "मैं बीमार हूँ; कृपया मेरी प्रार्थना सुनिए"... (आदि, जैसा कि § 5 में है)।

8. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति जो भिक्षुओं के साथ रहता था, बीमार हो जाए, तो वह भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहे, "मैं बीमार हूँ; क्या भिक्षु मेरे पास आ सकते हैं?" . . . (आदि, जैसा कि § 5 में है)।'

<<<< पिछला(3.6) | अगला(3.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.7) | अगला(3.9) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-8: मरम्मत और संघ के अन्य कार्यों के लिए लकड़ी लाने हेतु यात्रा की अनुमति है।

उस समय संघ का एक विहार (मठ) खंडहर हो गया। एक उपासक ने जंगल से लकड़ी कटवाई। उसने भिक्षुओं के पास एक दूत भेजा और कहा, 'यदि वे वह लकड़ी लाएंगे, तो मैं उन्हें दे दूंगा।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें संघ के कार्य के लिए बाहर जाने की अनुमति देता हूँ। तुम्हें सात दिनों के भीतर वापस लौट आना चाहिए।'

वर्षा ऋतु के निवास के बारे में पहले भानवर का समापन।

<<<< पिछला(3.7) | अगला(3.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.8) | अगला(3.10) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-9: जानवरों, सांपों, लुटेरों, राक्षसों, आग, भोजन की कमी और बाढ़ के कारण पलायन।

1. उस समय कोसल देश के एक जिले के भिक्षु, जो वर्षा ऋतु में प्रवेश कर चुके थे, जंगली जानवरों से परेशान थे; जानवर उन्हें उठाकर ले गए और मार डाला।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं को जंगली जानवरों द्वारा परेशान किया जाता है, और वे जानवर उन्हें उठाकर मार डालते हैं, तो इसे खतरे की स्थिति माना जाना चाहिए, और उन्हें वह निवास स्थान छोड़ देना चाहिए। वे वर्षा ऋतु में व्यवधान के दोषी नहीं हैं।

'हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं पर साँपों का आक्रमण हो जाए, तो वे उन्हें काटकर मार डालते हैं। इसे खतरे की स्थिति माना जाना चाहिए, ... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है) . . . . वर्षा।'

2. 'हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं को लुटेरे परेशान करें; लुटेरे उन्हें लूट लें और पीटें। इस पर विचार किया जाना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है)... वर्षा।'

हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षु राक्षसों से परेशान हों, तो राक्षस उनमें प्रवेश कर उनकी शक्ति छीन लेते हैं। इस पर विचार किया जाना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है)... वर्षा।

3. हे भिक्षुओं, यदि वह गाँव जिसके निकट भिक्षु वर्षावास में गए हैं, आग से नष्ट हो जाए, तो भिक्षुओं को भोजन की कमी का सामना करना पड़ेगा। इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है)... वर्षावास।

हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं के विश्राम स्थल अग्नि से नष्ट हो जाते हैं, तो भिक्षुओं को विश्राम स्थल न होने का कष्ट सहना पड़ता है। इस पर विचार किया जाना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है)... वर्षा।

4. 'हे भिक्षुओं, यदि वह गाँव जिसके निकट भिक्षु वर्षा के दौरान प्रवेश कर चुके हैं, जलभराव से नष्ट हो जाए; भिक्षुओं को भोजन की कमी हो जाए, ... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है) . . . . वर्षा।

'हे भिक्षुओं, यदि वर्षावास में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं के विश्राम स्थल जल से नष्ट हो जाते हैं, तो भिक्षुओं को विश्राम स्थल न होने के कारण कष्ट भोगना पड़ता है, ... (इत्यादि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है) . . . . वर्षावास।'

<<<< पिछला(3.8) | अगला(3.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.10

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.9) | अगला(3.11) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-10: जब ग्रामीण अपना गाँव छोड़ देते हैं।

उस समय, जिस गाँव के पास एक विशेष जिले के भिक्षुओं ने वस्सा में प्रवेश किया था, उसे लुटेरों के डर से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह निर्देश देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम उस गाँव की ओर जाओ।'

गांव के लोग दो भागों में बंट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह सलाह देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम वहाँ जाओ जहाँ अधिकांश भाग है।'

इनमें से अधिकतर लोग अविश्वासी और धर्म परिवर्तन न करने वाले थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप वहाँ जाएँ जहाँ विश्वासी, परिवर्तित लोग हों।'

<<<< पिछला(3.9) । अगला(3.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.11

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.10) । अगला(3.12) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-11: भोजन या दवा की कमी के कारण पलायन करना। वेश्या, हिजड़ा, राजा, रिश्तेदार आदि द्वारा धन, सोना, संपत्ति, सुख आदि के लिए बहकाए जाने पर पलायन करना।

1. उस समय कोसल काउंटी के एक जिले के भिक्षु, जो वर्षा (बारिश) में प्रवेश कर चुके थे, वहाँ आवश्यकतानुसार न तो मोटा भोजन और न ही उत्तम भोजन प्राप्त कर सके।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि वर्षावास में प्रवेश कर चुके भिक्षुओं को आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में मोटा या उत्तम भोजन न मिले, तो इसे संकट का कारण माना जाना चाहिए और यदि वे उस निवास को छोड़ने का विचार करें, तो वे वर्षावास भंग करने के दोषी नहीं हैं।

'हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश कर चुके भिक्षुओं को आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में मोटा या महीन भोजन मिल जाए, परन्तु उन्हें पोषण देने वाला भोजन न मिले, तो इसे . . . . (इत्यादि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है) . . . . वर्षा ऋतु माना जाना चाहिए।'

2. 'हे भिक्षुओं, यदि वर्षा ऋतु में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं को आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में मोटा या महीन भोजन मिल जाए, तो उन्हें पोषण तो मिल जाता है, लेकिन उचित औषधि नहीं मिल पाती। इसे ध्यान में रखना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है)... वर्षा।'

'यदि हे भिक्षुओं, भिक्षुओं को . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है) . . . . भोजन तो मिल जाता है, और उन्हें लाभकारी औषधि भी मिल जाती है, परन्तु उन्हें सेवा करने के लिए उपयुक्त गृहस्थ नहीं मिलते। इस पर विचार किया जाना चाहिए . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है) . . . . वस्सा।'

3. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और कोई स्त्री उससे यह प्रस्ताव रखे: "आदरणीय भिक्षु, मैं आपको सोना, या सोने, या खेत, या घर या बगीचे के लिए जगह, या बैल, या गाय, या दास, या दासी, या अपनी पुत्री को आपकी पत्नी के रूप में दूंगी, या मैं आपकी पत्नी बनूंगी, या मैं आपके लिए दूसरी पत्नी लाऊंगी।" ऐसी स्थिति में, यदि भिक्षु यह सोचे: "भगवान बुद्ध ने कहा है कि मनुष्य का मन आसानी से बदल जाता है; मेरे जीवन की पवित्रता खतरे में पड़ सकती है," तो उसे उस स्थान से चले जाना चाहिए। वह वर्षावास भंग करने का दोषी नहीं है।

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने वर्षावास में प्रवेश किया हो, और उसे कोई वेश्या, कोई युवती, कोई हिजड़ा, कोई रिश्तेदार, कोई राजा, कोई डाकू, कोई बदमाश प्रस्ताव दे, तो (इन शब्दों में): "आदरणीय महोदय, आइए, हम आपको सोना देते हैं, ... (आदि, आगे तक) ... या हम अपनी पुत्री को आपकी पत्नी के रूप में देते हैं, या हम आपके लिए दूसरी पत्नी लाते हैं।" उस स्थिति में, ... (जैसा कि अनुच्छेद 3 में है) ... वर्षावास।

हे भिक्षुओं, यदि वर्षा में प्रवेश करने वाले किसी भिक्षु को कोई अज्ञात खजाना मिल जाए, तो ऐसी स्थिति में... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 3 से आगे तक है)... वर्षा।

5. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर रहा हो और देखे कि अनेक भिक्षु संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं, तो यदि वह भिक्षु सोचे, "भगवान बुद्ध ने कहा है कि संघ में फूट डालना घोर पाप है; मेरी उपस्थिति में संघ में कोई फूट न पड़े," तो वह वहां से चला जाए। वह वर्षावास भंग करने का दोषी नहीं है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले कि “कुछ भिक्षु संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं,” तो ऐसी स्थिति में... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 5 से आगे तक है)... वर्षावास।

6. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले कि "अमुक जिले में अनेक भिक्षु संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं।" यदि वह भिक्षु सोचे, "वे भिक्षु मेरे मित्र हैं; मैं उनसे कहूँगा, 'हे मेरे मित्रों, भगवान बुद्ध ने कहा है कि संघ में फूट डालना घोर पाप है; हे सज्जनों, संघ में फूट न डालें;' तो वे मेरी बात मानेंगे, मेरी आज्ञा का पालन करेंगे और मेरी बात सुनेंगे," तो वह उस स्थान पर जा सकता है। वह वर्षावास भंग करने का दोषी नहीं है।

7. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले कि "अमुक जिले में अनेक भिक्षु संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं।" यदि वह भिक्षु सोचे कि "वे भिक्षु मेरे मित्र नहीं हैं, परन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं; तो मैं उनसे कहूँगा, और वे अपने मित्रों से कहेंगे: 'भगवान बुद्ध, ... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 6 से आगे तक है) . . . . वर्षावास।

8. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले कि "अमुक जिले में अनेक भिक्षुओं के कारण संघ में विभाजन हो गया है।" यदि वह भिक्षु . . . . (इत्यादि, जैसा कि अनुच्छेद 6 से आगे तक है) . . . . वर्षावास।

9. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले: "अमुक जिले में अनेक भिक्षुओं के कारण संघ में विभाजन हो गया है।" यदि वह भिक्षु . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 7 से आगे तक है) . . . . वर्षावास।

10-13. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षावास में प्रवेश कर चुका हो और उसे यह पता चले: "अमुक जिले में कई भिक्षुणियां संघ में फूट डालने का प्रयास कर रही हैं... (आदि)'

<<<< पिछला(3.10) | अगला(3.12) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.11) | अगला(3.13) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-12: पशु बाड़ा, कारवां और जहाज की अनुमति है। पेड़ का खोखला भाग और शाखा, खुली हवा, कब्रिस्तान आदि की अनुमति नहीं है।

1. उस समय एक भिक्षु ने पशुशाला में वर्षा (बारिश) में प्रवेश करने की इच्छा व्यक्त की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पशुओं के बाड़े में बैठकर वर्षा पर्वत में प्रवेश करने की अनुमति देता हूँ: पशुओं का बाड़ा अपने स्थान से हटा दिया गया था।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पशुओं के बाड़े के साथ जाने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय एक भिक्षु, जब वर्षावास में प्रवेश करने का समय निकट आया, तो उसने कारवां के साथ यात्रा पर जाने की इच्छा व्यक्त की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें वर्षा ऋतु में कारवां के साथ प्रवेश करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय, जब वर्षावास में प्रवेश करने का समय निकट आया, तो एक भिक्षु ने जहाज से यात्रा करने की इच्छा व्यक्त की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जहाज से वस्सा में प्रवेश करने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय कुछ भिक्षु वर्षा के लिए एक खोखले पेड़ में चले गए। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: '(ये भिक्षु) भूतों की तरह व्यवहार करते हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कोई भी खोखले पेड़ में छिपकर वर्षा में प्रवेश न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

4. उस समय कुछ भिक्षु एक पेड़ की शाखा पर वर्षा करने के लिए बैठ गए। लोग नाराज़ हो गए, इत्यादि: '(ये भिक्षु) शिकारियों की तरह व्यवहार करते हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कोई भी वृक्ष की शाखा पर बैठकर वर्षा में प्रवेश न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

5. उस समय कुछ भिक्षु खुले में वर्षा करने के लिए निकले। जब बारिश शुरू हुई, तो वे किसी पेड़ की तलहटी में या नीम के पेड़ के खोखले तने में चले गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, खुले में वर्षावास में प्रवेश न करो। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

6. उस समय कुछ भिक्षु बिना विश्राम स्थल के वर्षा में चले गए। उन्हें ठंड और गर्मी दोनों का सामना करना पड़ा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, विश्राम स्थल की व्यवस्था किए बिना कोई भी वर्षावास में प्रवेश न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

7. उस समय कुछ भिक्षु शव रखने वाले एक घर में वर्षा (वर्षा) के लिए प्रवेश कर गए। लोग नाराज़ हो गए, इत्यादि: '(ये भिक्षु) शव जलाने वालों के समान हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, शव रखने वाले घर में वर्षावास में प्रवेश न करो। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है।'

8. उस समय कुछ भिक्षु धूप से बचने के लिए छांव में वर्षा करने चले गए। लोग नाराज़ हो गए, इत्यादि: 'जैसे ग्वाले।'

उन्होंने यह कथा भगवान बुद्ध को सुनाई।

'हे भिक्षुओं, कोई भी धूप से बचने के लिए छांव में बैठकर वर्षावन में प्रवेश न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

9. उस समय कुछ भिक्षु मिट्टी के बर्तन के नीचे वर्षा में प्रवेश कर गए। लोग नाराज़ हो गए, इत्यादि: 'तित्तियों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मिट्टी के बर्तन में बैठकर वर्षावास में प्रवेश न करो। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

<<<< पिछला(3.11) | अगला(3.13) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.12) | अगला(3.14) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-13: वर्षावास के दौरान गैर-दीक्षा के लिए कोई समझौता नहीं किया जाएगा।

1. उस समय सावत्थी के संघ ने यह समझौता किया था कि वर्षा ऋतु में किसी को भी पब्बज्ज दीक्षा नहीं दी जाएगी। विशाखा मिगारमाता के एक पोते ने भिक्षुओं के पास जाकर पब्बज्ज दीक्षा देने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उनसे कहा: 'मित्र, संघ ने यह समझौता किया है कि वर्षा ऋतु में किसी को भी पब्बज्ज दीक्षा नहीं दी जाएगी। मित्र, प्रतीक्षा करो, जब तक भिक्षु वर्षा का पालन करते रहेंगे; वर्षा समाप्त होने पर वे तुम्हें पब्बज्ज दीक्षा प्रदान करेंगे।'

जब उन भिक्षुओं ने वर्षावास का निवास समाप्त कर लिया, तो उन्होंने विशाखा मिगारमाता के पोते से कहा: 'अब आओ, मित्र, तुम पब्बज्ज दीक्षा ग्रहण कर सकते हो।' उसने उत्तर दिया: 'यदि मैंने पहले ही पब्बज्ज दीक्षा ग्रहण कर ली होती, तो मैं (धर्म जीवन में) बना रहता, परन्तु अब, तो मैं पब्बज्ज दीक्षा ग्रहण नहीं करूँगा।'

2. विशाखा मिगारमाता नाराज होकर बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर बोले, 'महान लोग ऐसा समझौता कैसे कर सकते हैं कि बरसात के मौसम में किसी को भी दीक्षा न दी जाए? धम्म के कर्तव्यों का पालन किस समय नहीं किया जाना चाहिए?'

कुछ भिक्षुओं ने विशाखा मिगारमाता को सुना, जो नाराज होकर बड़बड़ा रहे थे और क्रोधित हो गए थे।

उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। 'हे भिक्षुओं, ऐसा समझौता नहीं किया जाना चाहिए कि वर्षा ऋतु में किसी को भी पब्बज्ज दीक्षा दी जाए। जो कोई भी ऐसा समझौता करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

<<<< पिछला(3.12) । अगला(3.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> तृतीय खण्डक >> 3.14

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.13) । अगला(4.1) >>>>

महावग्ग

तीसरा खंडका (बरसात के मौसम में निवास, वासा)

अध्याय-14: राजा की अवज्ञा न करना; अनेक स्थानों में वज़ा न रखना; वादे न तोड़ना।

1. उस समय पूज्य उपनंद शाक्यपुत्त ने कोसल के राजा पसेनदी को अपने साथ वर्षाकाल में रहने का वचन दिया था। जब वे उस जिले की ओर जा रहे थे जहाँ उन्होंने जाने का वचन दिया था, तो रास्ते में उन्हें दो ऐसे जिले दिखाई दिए जहाँ बहुत से वस्त्र थे। उन्होंने सोचा, 'यदि मैं इन दोनों जिलों में वर्षाकाल में रहूँ, तो मुझे बहुत से वस्त्र प्राप्त हो जाएँगे।' और उन्होंने उन्हीं दोनों जिलों में वर्षाकाल में रह लिया। कोसल के राजा पसेनदी को यह देखकर गुस्सा आया, वे बड़बड़ाए और क्रोधित होकर बोले, 'परमेश्वर उपनंद शाक्यपुत्त ने हमसे वर्षाकाल में रहने का वचन देकर अपना वचन कैसे तोड़ दिया? क्या भगवान बुद्ध ने अनेकों विधियों से असत्य की निंदा और असत्य से परहेज की प्रशंसा नहीं की है?'

2. कुछ भिक्षुओं ने कोसल के राजा पसेनदी को नाराज़ होते हुए सुना। अन्य भिक्षु भी नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए (कहते हुए): 'आदरणीय उपनंद शाक्यपुत्त ने कोसल के राजा पसेनदी से प्रतिज्ञा करने के बाद, क्या वह झूठ नहीं बोल सकते? (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)?'

3. उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

इसके फलस्वरूप, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के समुदाय को एकत्रित होने का आदेश देने के बाद पूज्य उपानंद शाक्यपुत्त से पूछा: 'क्या यह सच है, उपानंद, कि आपने कोसल के राजा पसेनदी से वर्षा ऋतु में उनके साथ निवास करने का वादा तोड़ दिया है?'

'क्या यह सच है, प्रभु?'

तब महान बुद्ध ने उसे फटकारा: 'हे मूर्ख, तुम वचन तोड़ कैसे सकते हो, जबकि तुमने वादा किया था, इत्यादि? क्या मैंने झूठ की निंदा नहीं की है और झूठ से दूर रहने की अनेक प्रकार से प्रशंसा नहीं की है? हे मूर्ख, यह अधर्मियों को धर्म परिवर्तन कराने और धर्म परिवर्तन करने वालों की संख्या बढ़ाने के लिए उचित नहीं है, बल्कि इसका परिणाम यह होगा कि अधर्मी धर्म से विमुख हो जाएंगे और बहुत से धर्म परिवर्तन करने वाले धर्म से विमुख हो जाएंगे।'

उन्हें फटकार लगाने और धर्मोपदेश देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने किसी गृहस्थ भक्त से पूर्वकाल में उसके साथ वर्षावास करने का वचन दिया हो, और जब वह उस क्षेत्र में जाए, तो रास्ते में उसे दो ऐसे क्षेत्र दिखाई दें जहाँ वस्त्रों की प्रचुरता हो, और वह सोचे, "यदि मैं इन दोनों क्षेत्रों में वर्षावास करूँ, तो मुझे बहुत से वस्त्र प्राप्त हो जाएँगे;" और वह उन दोनों क्षेत्रों में वर्षावास करता है, तो हे भिक्षुओं, इस भिक्षु का पूर्वकाल में वर्षावास करना वैध नहीं है, और उसने अपने वचन के विरुद्ध अपराध किया है।

5. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु किसी गृहस्थ भक्त से पूर्व अवधि में उसके साथ वर्षावास में निवास करने का वचन देता है, और उस क्षेत्र में जाते समय वह (अर्धमाके के अंतिम दिन) बाहर उपोसथ करता है, और (अगले अर्धमाके के) पहले दिन विहार जाता है, अपने लिए विश्राम स्थल तैयार करता है, पीने का पानी और भोजन प्राप्त करता है, कुटिया की सफाई करता है, और उसी दिन बिना कोई कार्य किए चला जाता है। इस भिक्षु का (वाषावास में प्रवेश करना) . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में नीचे दिया गया है) . . . . अपराध है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु प्रतिज्ञा करता है (आदि, जैसा कि पिछले मामले में है, आगे तक): और उसी दिन किसी काम से चला जाता है। इस भिक्षु का (वस्सा में प्रवेश करना) . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में है, आगे तक): अपराध है।

6. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु प्रतिज्ञा कर ले, इत्यादि, और वहाँ दो-तीन दिन रहने के बाद बिना किसी कार्य के चला जाए, इत्यादि; यदि वह कार्य लेकर चला जाए, तो इस भिक्षु का (वास में प्रवेश करना) . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में नीचे दिया गया है) . . . . अपराध है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु प्रतिज्ञा कर ले, इत्यादि, और वहाँ दो-तीन दिन रहने के बाद किसी ऐसे कार्य के लिए चला जाए जिसे सात दिनों के भीतर पूरा किया जा सकता है; और वह सात दिनों से अधिक अनुपस्थित रहता है, तो इस भिक्षु का (वास में प्रवेश करना) . . . . (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में नीचे दिया गया है) . . . . अपराध है।

'हे भिक्षुओं, यदि वह उन सात दिनों के भीतर लौट आता है, तो हे भिक्षुओं, उस भिक्षु का (वर्षा में प्रवेश करना) वैध है, और उसने अपने वचन के संबंध में कोई अपराध नहीं किया है।'

7. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वचन देकर, इत्यादि, पवारन के कार्य से सात दिन पहले चला जाता है, तो हे भिक्षुओं, चाहे वह भिक्षु उस क्षेत्र में वापस आए या न आए, उसका प्रवेश, इत्यादि, वैध है, और अपने वचन के संबंध में उसने कोई अपराध नहीं किया है।

8-10. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु प्रतिज्ञा करता है, इत्यादि, और उस जिले में जाकर वहाँ उपोसथ धारण करता है (अर्धमाके के अंतिम दिन), और पहले दिन (अगले अर्धमाके के) विहार जाता है, इत्यादि।

11. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने (किसी गृहस्थ भक्त से) बाद में उसके साथ वर्षावास में रहने का वचन दिया हो, और उस जिले में जाते समय वह उपोसथ बाहर आयोजित करता हो, इत्यादि।'

तीसरे खंडक का अंत, जिसमें वर्षा (बारिश) में प्रवेश करने का वर्णन है।

<<<< पिछला(3.13) । अगला(4.1) >>>>

चतुर्थ खण्डका (पवर्णा समारोह)
(वर्षा ऋतु के अंत में होने वाला पवाराना समारोह)

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.14) । अगला(4.2) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में होने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-1: पवाराना की घोषणा और कॉनकॉर्ड में प्रदर्शन करने का तरीका।

1. उस समय बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु, जो आपस में सहचर और मित्र थे, कोसल देश के एक जिले में वर्षावास के लिए निकले। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'हम क्या करें जिससे हम वर्षावास को भली-भांति, एकता और सद्भाव से, बिना किसी कलह के संपन्न कर सकें और हमें भोजन की कमी न हो?'

2. तब उन भिक्षुओं ने सोचा: 'यदि हम आपस में बात न करें, यदि जो गाँव से, अपनी भिक्षायात्रा से सबसे पहले लौटता है, वह आसन तैयार करे, पैर धोने के लिए पानी, एक चौकी और एक तौलिया लाए, कूड़ेदान को साफ करके तैयार करे और उसमें पीने और खाने का पानी रखे, तो क्या होगा?'

3. और यदि वह भिक्षुण-यात्रा से अंत में लौटने वाला भिक्षु, अन्य भिक्षुओं के भोजन में बचे हुए भोजन को खाना चाहे, और यदि वह खाना चाहे, तो उसे खाए; और यदि वह न खाना चाहे, तो उसे घास रहित स्थान पर फेंक दे, या ऐसे जल में डाल दे जिसमें कोई जीव-जंतु न हों; पैर धोने का पानी, पाँव रखने की चौकी और तौलिया अलग रख दे; कूड़ेदान को साफ करके अलग रख दे, पानी और भोजन को अलग रख दे, और भोजन कक्ष में झाड़ू लगा दे,--

4. 'और यदि कोई व्यक्ति किसी खाली बर्तन, भोजन के कटोरे या शौच के पात्र को देखता है और उसे उसके उचित स्थान पर रख देता है, और यदि वह अकेले ऐसा करने में असमर्थ होता है, तो किसी और को बुलाकर बिना कुछ बोले उनके संयुक्त प्रयास से उसे सही स्थान पर रख देता है, तो इस प्रकार हम वासा को एकता, सद्भाव और बिना किसी कलह के सुचारू रूप से रखेंगे और भोजन की कमी से पीड़ित नहीं होंगे।'

5-7. और वे भिक्षु आपस में बात नहीं करते थे। जो भिक्षुण-यात्रा से गाँव से सबसे पहले लौटा, उसने बिना कुछ बोले आसन तैयार किए (आदि, जैसा कि ऊपर, § 4 से नीचे तक)।

8. वर्षा ऋतु समाप्त कर चुके भिक्षुओं की यह प्रथा है कि वे भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए जाते हैं। इस प्रकार, वर्षा ऋतु समाप्त कर और तीन माह बीत जाने पर, उन भिक्षुओं ने अपने विश्राम स्थलों को व्यवस्थित किया, भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और श्रावस्ती की ओर चल पड़े। स्थान-स्थान भटकते हुए वे श्रावस्ती, जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे; भगवान बुद्ध के पास पहुँचकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए।

9. अब महान बुद्धों की यह प्रथा है कि वे आने वाले भिक्षुओं का अभिवादन करते हैं। भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, क्या आप सब ठीक हैं? क्या आपको अपना भरण-पोषण पर्याप्त मिलता है? क्या आपने वर्षा का अच्छी तरह पालन किया है, एकता और सद्भाव में रहते हुए और बिना किसी कलह के? और क्या आपको भोजन की कमी नहीं हुई?'

'हे प्रभु, हमारी स्थिति काफी अच्छी है; हमें अपना भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त धन मिलता है; हमने वासा को एकता, सद्भाव और बिना किसी कलह के अच्छी तरह से संभाला है; और हमें भोजन की कमी का सामना नहीं करना पड़ा है।'

10. तथागत कभी-कभी अपने ज्ञान के बारे में पूछते हैं; कभी-कभी वे अपने ज्ञान के बारे में नहीं पूछते। वे सही समय पर प्रश्न पूछना जानते हैं और सही समय पर प्रश्न न पूछना भी जानते हैं। तथागत अर्थपूर्ण प्रश्न पूछते हैं, निरर्थक नहीं; निरर्थक प्रश्नों के लिए तथागत (बुद्ध) मार्ग प्रशस्त नहीं करते। महान बुद्ध भिक्षुओं से दो उद्देश्यों से प्रश्न पूछते हैं: जब वे उपदेश देना चाहते हैं या जब वे अपने शिष्यों के लिए आचरण नियम स्थापित करना चाहते हैं।

11. और भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, तुमने वर्षा ऋतुओं का भला कैसे किया, एकता और सद्भाव में रहकर, बिना किसी कलह के, और भोजन की कमी से पीड़ित हुए बिना?'

हे प्रभु, हम अनेक भिक्षुओं, सहचरों और मित्रों ने कोसल देश के एक विशेष जिले में वर्षावास में प्रवेश किया। हे प्रभु, हमने सोचा, "हम क्या करें?" फिर हमने सोचा, हे प्रभु, "यदि हम न बोलें, जैसा कि अनुच्छेद 2-4 में है।" इस प्रकार, हे प्रभु, हमने एक दूसरे से एक शब्द भी

बोले बिना बात नहीं की। इस प्रकार, हे प्रभु, हमने एकता, सद्भाव और बिना कलह के वर्षावास का भला किया; और हमें भोजन की कमी नहीं हुई।

12. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग जो वर्षा का भला करने का दावा करते हैं, उन्होंने वास्तव में वर्षा का भला नहीं किया है; हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग जो वर्षा का भला करने का दावा करते हैं, उन्होंने वास्तव में वर्षा को पशुओं के झुंड के समान रखा है; वास्तव में उन्होंने इसे भेड़ों के झुंड के समान रखा है; वास्तव में उन्होंने इसे आलसी लोगों के समूह के समान रखा है। हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग तिथियों की तरह मौन व्रत कैसे धारण कर सकते हैं?'

13. 'हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है (आदि, जैसा कि पुस्तक III, अध्याय 14, अनुच्छेद 3 में है)।' और जब उन्होंने उन्हें फटकारा और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे भिक्षुओं, कोई भी तित्तिय भिक्षुओं की तरह मौन व्रत न धारण करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि वर्षावास समाप्त होने के बाद भिक्षु एक दूसरे के साथ तीन प्रकार से पवाराना करें: जो देखा गया हो, जो सुना गया हो, और जो संदेह हो। इससे यह सिद्ध होगा कि आप एक दूसरे के साथ सामंजस्य में रहेंगे, अपने किए गए अपराधों का प्रायश्चित करेंगे और अनुशासन के नियमों का पालन करेंगे।

14. हे भिक्षुओं, तुम्हें पवाराना इस प्रकार धारण करना चाहिए:

'एक विद्वान, सक्षम भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ती (प्रस्ताव) की घोषणा करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें। आज पवाराना दिवस है। यदि संघ तैयार है, तो पवाराना आयोजित करें।"

फिर वरिष्ठ भिक्षु अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि उसका एक कंधा ढका रहे, उकडू बैठकर, हाथ जोड़कर कहें: "हे मित्रों, मैं संघ के समक्ष अपना पवारना घोषित करता हूँ, जो कुछ देखा है, जो कुछ सुना है, या जो कुछ संदेह है, उसके आधार पर; हे सज्जनों, मुझ पर दया करके मुझसे बात करें; यदि मैं (कोई अपराध) देखूँ, तो मैं उसका प्रायश्चित करूँगा। और दूसरी बार, इत्यादि। और तीसरी बार मैं अपना पवारना घोषित करता हूँ (अतः, इसी प्रकार) यदि मैं (कोई अपराध) देखूँ, तो मैं उसका प्रायश्चित करूँगा।"

'फिर प्रत्येक छोटे भिक्षु को अपना ऊपरी वस्त्र ठीक करना चाहिए... (आदि)'

<<<< पिछला(3.14) । अगला(4.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.1) । अगला(4.3) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-2: विनम्रता का अभ्यास।

1. उस समय छब्बाग्य भिक्षु, जबकि वरिष्ठ भिक्षु प्रणाम कर अपना पवाराना कर रहे थे, अपनी सीटों पर बैठे रहे। मध्यम भिक्षु नाराज हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: 'वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रणाम करने और पवाराना करने के दौरान छब्बाग्य भिक्षु अपनी सीटों पर कैसे बैठे रह सकते हैं?'

उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, कि छब्बग्गिया भिक्षु, इत्यादि?'

'यह सच है, हे प्रभु।'

तब महान बुद्ध ने उन्हें फटकारा: 'हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग अपनी सीटों पर कैसे बैठे रह सकते हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)? हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है (जैसा कि अध्याय 1, अनुच्छेद 13 में बताया गया है)।'

उन्हें फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, वरिष्ठ भिक्षुओं के पदावन करते समय कोई भी अपनी सीट पर न बैठा रहे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि पदावन करते समय आप सभी पदावन करें।'

2. उसी समय एक वृद्ध भिक्षु, जो सभी भिक्षुओं के पवाराना समाप्त होने तक झुककर प्रतीक्षा कर रहा था, बेहोश होकर गिर पड़ा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि (प्रत्येक भिक्षु) अपना पवाराना पूरा करने तक पूरे समय नीचे बैठा रहे और पवाराना पूरा करने के बाद अपनी सीट पर बैठ जाए।'

<<<< पिछला(4.1) । अगला(4.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.2) । अगला(4.4) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-3: पवारना दिवसों की संख्या एवं सेवाओं की संख्या; बीमारों के लिए पवारना।

1. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'पावरना (दिनों) की संख्या कितनी है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ये दो पवारना (दिन) हैं: चौदहवां और पंद्रहवां (अर्धमाका); ये दो पवारना (दिन) हैं, हे भिक्षुओं।'

2. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'पावराना सेवाएं कितनी हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'निम्नलिखित चार पवाराना सेवाएँ हैं। हे भिक्षुओं, इत्यादि।'

3. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, एकत्रित हो जाओ, संघ पवाराना आयोजित करेगा।' जब उन्होंने ऐसा कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, एक बीमार भिक्षु उपस्थित नहीं हैं।'

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि बीमार भिक्षु को अपना पवार्ना घोषित करना चाहिए। और हे भिक्षुओं, उसे इस प्रकार घोषित करना चाहिए: बीमार भिक्षु किसी भिक्षु के पास जाए, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि उसका एक कंधा ढका रहे, उकड़ू

बैठकर, हाथ जोड़कर कहे: "मैं अपना पवार्ना घोषित करता हूँ, मेरा पवार्ना ग्रहण करो, मेरे लिए पवार्ना करो।" यदि वह इसे हावभाव से, या शब्दों से, या हावभाव और शब्दों दोनों से व्यक्त करता है, तो पवार्ना घोषित हो गया है। यदि वह इसे हावभाव आदि से व्यक्त नहीं करता है, तो पवार्ना घोषित नहीं हुआ है।

4-5. 'यदि (बीमार भिक्षु) ऐसा करने में सफल हो जाए, तो अच्छा है। यदि वह सफल न हो, तो हे भिक्षुओं, उस बीमार भिक्षु को उसके पलंग या कुर्सी पर ही सभा में ले जाया जाए, इत्यादि।'

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि पवारना दिवस पर जो व्यक्ति पवारना की घोषणा करता है, उसे संघ द्वारा अंततः किए जाने वाले कार्यों के लिए अपनी सहमति भी घोषित करनी चाहिए, क्योंकि संघ (और उसके कार्यों की वैधता) के लिए (दोनों घोषणाएँ) आवश्यक हैं।'

<<<< पिछला(4.2) | अगला(4.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.3) | अगला(4.5) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-4: यदि रिश्तेदार भिक्षु को रोकते हैं।

उस समय एक भिक्षु के रिश्तेदारों ने पवाराना आदि के दिन उसे रोक लिया था।

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.4) | अगला(4.6) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-5: सभी भिक्षुओं को यह करना है; अनुमत संख्याएँ 4, 3, 2 और 1 भी हो सकती हैं।

1. उस समय पवाराना के दिन एक निश्चित जिले (या भिक्षुओं के एक निश्चित निवास) में पाँच भिक्षु निवास कर रहे थे।

अब इन भिक्षुओं ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने संघ द्वारा पवाराना धारण करने का विधान किया है, और हम (केवल) पाँच व्यक्ति हैं। तो हम पवाराना कैसे धारण करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि पाँच भिक्षुओं को एक (नियमित) अध्याय में पवाराना करना चाहिए।'

2. उस समय पवाराना के दिन एक विशेष जिले में चार भिक्षु निवास कर रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि पवाराना का नियमित अध्याय पाँच भिक्षुओं द्वारा आयोजित किया जाना चाहिए, और हम तो केवल चार ही हैं। भला हम पवाराना कैसे आयोजित करेंगे?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि चार भिक्षुओं को एक दूसरे के साथ पवाराना धारण करना चाहिए।'

3. हे भिक्षुओं, उन्हें इस प्रकार पवाराना धारण करने दो: एक विद्वान, योग्य भिक्षु उन भिक्षुओं के समक्ष निम्नलिखित नट्टी (प्रस्ताव) की घोषणा करे:

"कृपया मेरी बात सुनिए। आज पवाराना दिवस है। यदि आप तैयार हैं, तो आइए हम सब मिलकर पवाराना मनाएं।"

तब वरिष्ठ भिक्षु अपनी पीठ की ऊपरी पीठ को ठीक से समायोजित करें और अन्य भिक्षुओं से कहें: "हे मित्रों, मैं आप सबके समक्ष अपने पवाराना की घोषणा करता हूँ, जो मैंने देखा है, जो मैंने सुना है, या जो मुझे संदेह है, उसके आधार पर; हे सज्जनों, मुझ पर दया करके मुझसे बात करें; यदि मैं कोई अपराध देखूँ, तो मैं उसका प्रायश्चित करूँगा। और दूसरी बार भी, इत्यादि; और तीसरी बार भी, इत्यादि।"

'तो फिर प्रत्येक छोटे भिक्षु, इत्यादि को ऐसा करने दो।'

4. उस समय पवाराना के दिन एक विशेष क्षेत्र में तीन भिक्षु निवास कर रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि पांच भिक्षु नियमित रूप से पवाराना का अध्याय करें, चार भिक्षु आपस में पवाराना का अध्याय करें, और हम तो केवल तीन ही हैं। भला हम पवाराना का अध्याय कैसे करें?'

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तीन भिक्षु एक दूसरे के साथ पवाराना करें। और उन्हें पवाराना करना चाहिए (आदि, देखें अनुच्छेद 3)।'

5. उस समय पवाराना दिवस पर दो भिक्षु एक विशेष क्षेत्र में निवास कर रहे थे। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं, चार भिक्षुओं, तीन भिक्षुओं आदि का विधान किया है, और हम (केवल) दो व्यक्ति हैं। भला हम पवाराना दिवस कैसे मनाएँगे?'

'मैं यह नियम निर्धारित करता हूँ, हे भिक्षुओं, कि दो भिक्षुओं को एक दूसरे के साथ पवाराना करना चाहिए।'

6. हे भिक्षुओं, उन्हें इस प्रकार पवारना धारण करने दो: वरिष्ठ भिक्षु अपने ऊपरी रोहे आदि को समायोजित करे और कनिष्ठ भिक्षु से कहे: "मैं अपना पवारना घोषित करता हूँ, मित्र, इत्यादि।"

'तो कनिष्ठ भिक्षु आदि को अनुमति दें।'

7. उस समय पवाराना दिवस पर एक विशेष जिले में एक अकेला भिक्षु निवास कर रहा था। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं आदि का विधान किया है, और मैं तो केवल एक ही हूँ। भला मैं पवाराना दिवस कैसे मनाऊँगा?'

8. हे भिक्षुओं, यदि पवारना के दिन किसी क्षेत्र में एक अकेला भिक्षु निवास करे, तो वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं के आच्छादित स्थान—भोजन कक्ष, या मुख्य हॉल, या वृक्ष के नीचे स्थित स्थान—की सफाई करे; फिर जल और भोजन की व्यवस्था करे, आसन तैयार करे, दीपक जलाए और बैठ जाए। यदि अन्य भिक्षु आएं, तो वह उनके साथ पवारना करे; यदि वे न आएं, तो वह इस विचार पर अपना ध्यान केंद्रित करे: "आज मेरा पवारना है।" यदि वह इस विचार पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं करता है, तो वह दुक्कत अपराध करता है।

9. हे भिक्षुओं, जहाँ पाँच भिक्षु एक साथ निवास करते हैं, वहाँ उन्हें किसी एक भिक्षु का पवारना (अपनी सभा में) नहीं ले जाना चाहिए और चार भिक्षुओं द्वारा नियमित अध्याय में पवारना नहीं करना चाहिए। यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे दुक्कता अपराध करते हैं।

हे भिक्षुओं, जहाँ चार भिक्षु एक साथ निवास करते हैं, वहाँ उन्हें किसी एक भिक्षु का पवारना (अपने समूह में) नहीं ले जाना चाहिए और तीन के समूह में एक दूसरे के साथ पवारना नहीं करना चाहिए। यदि वे ऐसा करते हैं, तो वे दुक्कता अपराध करते हैं।

'अब, हे भिक्षुओं, जहाँ तीन भिक्षु (आदि, जैसा कि अंतिम खंड में है)।

'हे भिक्षुओं, जहाँ दो भिक्षु निवास करते हैं, वहाँ उनमें से एक को दूसरे के पवारना का प्रचार नहीं करना चाहिए और केवल पवारना पर ही अपना ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो वह दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला(4.4) | अगला(4.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.5) | अगला(4.7) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-6: सभी भिक्षुओं द्वारा, यहाँ तक कि दोषी भिक्षुओं द्वारा भी, पवाराना किया जाना चाहिए।

1. उस समय पवाराना दिवस पर एक भिक्षु ने कोई अपराध किया था। अब उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने नियम दिया है: "जो भिक्षु किसी अपराध का दोषी हो, उसे पवाराना दिवस नहीं मनाना चाहिए।" अब मैं एक अपराध का दोषी हूँ। मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना के दिन किसी अपराध का दोषी हो (जैसा कि द्वितीय, 27, 1, 2 से आगे तक में वर्णित है): "जब मुझे कोई संदेह नहीं रहेगा, तब मैं उस अपराध का प्रायश्चित करूँगा।" ऐसा कहकर वह पवारना करे। परन्तु किसी भी स्थिति में ऐसे कारण से पवारना करने में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए।

2-3. उस समय एक भिक्षु को एक अपराध याद आया, जबकि पवाराना को रखा गया था (आदि, देखें II, 27. 4-8)।

प्रथम भानवरा का समापन।

<<<< पिछला(4.5) | अगला(4.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.7-4.13

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.6) | अगला(4.14) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय 7 से 13: जब उपस्थित भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओं से अनभिज्ञ होते हैं।

1. उस समय पवाराना के दिन एक विशेष निवास (या जिले) में पाँच या अधिक निवासी भिक्षु एकत्रित हुए। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि कुछ अन्य निवासी भिक्षु अनुपस्थित हैं। धर्म और विनय के अनुसार कार्य करने के इरादे से, स्वयं को पूर्ण समझते हुए, जबकि वास्तव में वे अपूर्ण थे, उन्होंने पवाराना का आयोजन किया। जब वे पवाराना का आयोजन कर रहे थे, तभी अन्य निवासी भिक्षु (पहले वालों से अधिक संख्या में) वहाँ आ गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. हे भिक्षुओं, यदि पवारना के दिन किसी निवास स्थान पर कोई समूह एकत्रित हो (जैसा कि अनुच्छेद 1 में वर्णित है), तो वे पवारना करें। जब वे पवारना कर रहे हों, तभी अधिक संख्या में अन्य भिक्षु वहाँ आ जाएँ। हे भिक्षुओं, उन सभी भिक्षुओं को पुनः पवारना करना चाहिए; जिन्होंने पवारना किया है, वे दोषमुक्त हैं।

3. 'यदि वहाँ कोई समूह इकट्ठा हो जाए, इत्यादि। जब वे पवाराना धारण कर रहे हों, तभी ठीक उतनी ही संख्या में अन्य निवासी भिक्षु (पहले वालों के बराबर) आ जाएँ। जिन्होंने पवाराना धारण किया है, उन्होंने सही ढंग से किया है; बाकी भिक्षु पवाराना धारण करें; जिन्होंने पवाराना धारण किया है, वे दोषमुक्त हैं।'

<<<< पिछला(4.6) | अगला(4.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (4.7-4.13) | अगला (4.15) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-14: भिक्षुणी के समक्ष नहीं और केवल पवाराना दिवस पर ही आयोजित किया जाना चाहिए, कुछ अपवादों के साथ।

1-3. 'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी के समक्ष भिक्षुओं की सभा में पवाराना न करो, (आदि)'

4. हे भिक्षुओं, किसी भी परिवासिका द्वारा पवारना की घोषणा को स्वीकार करके पवारना का आयोजन न करें, सिवाय उस समय जब पवारना की घोषणा के समय सभा अभी तक उठी न हो। और हे भिक्षुओं, पवारना के दिन के अलावा किसी अन्य दिन पवारना का आयोजन न करें, सिवाय संघ में एकता बनाए रखने के लिए।

<<<< पिछला (4.7-4.13) | अगला (4.15) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.14) | अगला(4.16) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-15: आग, लुटेरों, जंगली जानवरों आदि के खतरों की स्थिति में।

1. उस समय कोसल देश में (भिक्षुओं के) एक निवास स्थान पर पवाराना के दिन बर्बर लोगों ने हमला कर दिया। भिक्षु त्रिविध विधि से पवाराना करने में असमर्थ थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें द्विविध विधि से पवाराना करने की अनुमति देता हूँ।'

बर्बर लोगों से खतरा और भी गंभीर हो गया। भिक्षु दोहरे सूत्र के साथ पवाराना करने में असमर्थ थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक सूत्र के साथ पवाराना करने की अनुमति देता हूँ।'

बर्बर लोगों से खतरा और भी गंभीर हो गया। भिक्षु एक ही विधि से पवाराना करने में असमर्थ थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं अनुमति देता हूँ कि वे सभी भिक्षु जिन्होंने एक साथ वर्षा का पालन किया है, पवाराना (एक सामान्य घोषणा द्वारा) करें।'

2. उस समय एक विशेष जिले में पवाराना के दिन रात का अधिकांश समय बीत चुका था और लोग भिक्षुओं को दान दे रहे थे। अब भिक्षुओं ने सोचा, 'दान देते-देते रात का अधिकांश समय बीत चुका है। यदि संघ तीन विधि से पवाराना करे, तो सूर्योदय होने तक पवाराना पूरा नहीं होगा। अब हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. हे भिक्षुओं, यदि किसी जिले में पवाराना के दिन रात का अधिकांश समय बीत चुका हो और लोग भिक्षुओं को दान दे रहे हों, तो यदि वे भिक्षु सोचें कि "दिन निकलने तक रात का अधिकांश समय बीत चुका है," तो एक विद्वान और योग्य भिक्षु संघ के समक्ष यह कथन करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। लोगों द्वारा दान देने के दौरान रात का अधिकांश समय बीत चुका है। यदि संघ त्रिविध विधि से पवाराना करे, तो दिन निकलने तक पवाराना पूरा नहीं होगा। यदि संघ तैयार हो, तो वह द्विविध विधि से, या एकविध विधि से, या वर्षावास करने वाले सभी भिक्षुओं की संयुक्त घोषणा से पवाराना करे।"

4. हे भिक्षुओं, यदि किसी जिले में पवाराना के दिन रात का अधिकांश समय बीत चुका हो और भिक्षु असमंजस में हों: भिक्षु धम्म का पाठ कर रहे हों, सूत्र के ज्ञाता सूत्र का प्रतिपादन कर रहे हों, विनय के ज्ञाता विनय पर चर्चा कर रहे हों और धम्म प्रचारक धम्म पर चर्चा कर रहे हों। अब यदि वे भिक्षु सोचें: "अधिकांश समय बीत चुका है और भिक्षु असमंजस में हैं। यदि संघ तीन प्रकार के विधि से पवाराना करे, तो सूर्योदय होने तक पवाराना पूरा नहीं होगा," तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित कथन करें: "संघ, आदि। अधिकांश समय बीत चुका है और भिक्षु असमंजस में हैं। यदि संघ पवाराना करे (जैसा कि अनुच्छेद 3 में है)"

5. उस समय कोसल देश के एक जिले में पवाराना के दिन भिक्षुओं की एक बड़ी सभा एकत्रित हुई थी। वहाँ बारिश से बचने के लिए एक छोटा सा स्थान ही बचा था और आकाश में घना बादल छाया हुआ था। भिक्षुओं ने सोचा, 'यहाँ भिक्षुओं की एक बड़ी सभा एकत्रित हुई है, और बारिश से बचने के लिए एक छोटा सा स्थान ही बचा है, और आकाश में घना बादल छाया हुआ है। यदि संघ तीन प्रकार के विधि से पवाराना करे, तो पवाराना पूरा होने से पहले ही यह बादल बारिश शुरू कर देगा। अब हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

6. हे भिक्षुओं, मान लीजिए किसी जिले में पवाराना के दिन भिक्षुओं की एक बड़ी सभा हुई है, और बारिश से सुरक्षित केवल एक छोटी सी जगह है, और आकाश में एक बड़ा बादल छाया हुआ है। अब यदि वे भिक्षु सोचते हैं कि... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 3 से अंत तक है)।

7. हे भिक्षुओं, यदि किसी क्षेत्र में पवारना के दिन राजाओं से, लुटेरों से, आग से, पानी से, मनुष्यों से, अमानवों से, शिकारी जानवरों से, रेंगने वाले जीवों से, जीवन से और ब्रह्मचर्य के विरुद्ध खतरा उत्पन्न हो जाए, तो यदि वे भिक्षु सोचें कि "यहाँ हमारे ब्रह्मचर्य के लिए खतरा है। यदि संघ तीन प्रकार के विधि से पवारना करे, तो पवारना पूरा होने से पहले ही ब्रह्मचर्य के लिए यह खतरा उत्पन्न हो जाएगा," तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु... (आदि, अनुच्छेद 3 से अंत तक)।

<<<< पिछला(4.14) । अगला(4.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.16

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (4.15) । अगला (4.17) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-16: दोषियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए।

1. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने पवाराना को अपराध का दोषी माना।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कोई भी पवारना को अपराध का दोषी न ठहराए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप पवारना को अपराध का दोषी ठहराने वाले भिक्षु से अनुमति लेकर उसे उस अपराध के लिए फटकारें।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं से जब छुट्टी मांगी गई, तो वे (उन भिक्षुओं को जो उन्हें किसी अपराध के लिए फटकार लगाने जा रहे थे) छुट्टी देने को तैयार नहीं थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि जो भिक्षु अनुमति न दे, उसका पवारान (पवरान) रोक दिया जाए। हे भिक्षुओं, आप इसे इस प्रकार रोकें: पवारान के दिन, चौदहवें या पंद्रहवें दिन (अर्धमाके के), उस व्यक्ति की उपस्थिति में, एकत्रित संघ के समक्ष, भिक्षु यह कहे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। फलाँ व्यक्ति ने अपराध किया है; मैं उसका पवारान रोकता हूँ; उसकी उपस्थिति में पवारान नहीं होना चाहिए।" इस प्रकार उसका पवारान रोका जाता है।

3. उस समय खब्बागिया भिक्षुओं ने, जिन्होंने सोचा: 'अन्यथा अच्छे भिक्षु हमारे पवारना में बाधा डाल सकते हैं,' स्वयं बिना किसी उद्देश्य और कारण के, उन शुद्ध भिक्षुओं के पवारना में पूर्वदेय बाधा डाली जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया था, और उन्होंने उन भिक्षुओं के पवारना में भी बाधा डाली जिन्होंने पहले ही अपना पवारना पूरा कर लिया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, बिना किसी उद्देश्य और कारण के उन शुद्ध भिक्षुओं के पर्वरण में कोई बाधा न डाले जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है। और हे भिक्षुओं, उन भिक्षुओं के पर्वरण में भी कोई बाधा न डाले जिन्होंने अपना पर्वरण पूरा कर लिया है। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है।

4. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, (आप यह जान सकते हैं कि) पवाराना (उचित रूप से) संयमित है या नहीं।

हे भिक्षुओं, किन परिस्थितियों में पवारना बाधित नहीं होता? हे भिक्षुओं, जब पवारना का उच्चारण, घोषणा और समापन त्रिविध सूत्र से किया जाता है, और यदि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु के पवारना को बाधित करता है, तो पवारना बाधित नहीं होता। हे भिक्षुओं, जब पवारना का उच्चारण, घोषणा और समापन द्विविध सूत्र से, एकविध सूत्र से, और सभी वर्षावास करने वाले भिक्षुओं की संयुक्त घोषणा से किया जाता है, और यदि कोई भिक्षु इसे बाधित करता है (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)। इन परिस्थितियों में, हे भिक्षुओं, पवारना बाधित नहीं होता।

5. हे भिक्षुओं, किन परिस्थितियों में पवारना बाधित होता है? हे भिक्षुओं, जब पवारना का उच्चारण किया जाता है, घोषित किया जाता है, लेकिन त्रिविध सूत्र के साथ पूरा नहीं किया जाता है, और यदि (कोई भिक्षु) किसी अन्य भिक्षु के पवारना को बाधित करता है, तो पवारना बाधित होता है, (आदि)। हे भिक्षुओं, इन परिस्थितियों में पवारना बाधित होता है।

6. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना के दिन किसी अन्य भिक्षु के पवारना को रोक दे, तो यदि अन्य भिक्षुओं को उस (पर्वत करने वाले) भिक्षु के विषय में यह ज्ञात हो कि “यह आदरणीय भाई अपने कर्मों, वचनों और आजीविका के साधनों में शुद्ध आचरण का नहीं है; वह अज्ञानी, अनपढ़ है और प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर देने में असमर्थ है,” तो (वे उससे कहें): “नहीं, मित्र, झगड़ा, कलह, विवाद न हो,” और इस प्रकार उसे चुप कराकर संघ पवारना करे।

7-9. 'यदि ऐसा हो; हे भिक्षुओं, इत्यादि।

10. हे भिक्षुओं, यदि पवारना दिवस पर कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु के पवारना में बाधा डालता है, तो यदि अन्य भिक्षु उस (बाधा डालने वाले) भिक्षु के विषय में यह जानते हैं कि: "यह आदरणीय भाई अपने कर्मों और वचनों में शुद्ध आचरण वाला है, और अपनी आजीविका के मामले में चतुर, विद्वान और प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर देने में सक्षम है," तो वे उससे कहें: "हे मित्र, यदि तुम इस भिक्षु के पवारना में बाधा डालते हो, तो किस कारण से डालते हो, नैतिक उल्लंघन के कारण, या आचरण के नियमों के उल्लंघन के कारण, या विधर्म के कारण?"

11. यदि वह उत्तर दे: "मैं इसे नैतिक उल्लंघन के कारण रोकता हूँ, मैं इसे आचरण नियमों के उल्लंघन के कारण रोकता हूँ, मैं इसे विधर्म के कारण रोकता हूँ," तो उनसे कहें: "अच्छा, महोदय, क्या आप जानते हैं कि नैतिक उल्लंघन क्या होता है, आचरण नियमों का उल्लंघन क्या होता है, विधर्म क्या होता है?" यदि वह उत्तर दे: "मैं जानता हूँ, मित्रों, नैतिक उल्लंघन क्या होता है, इत्यादि," तो उनसे कहें: "और मित्र, नैतिक उल्लंघन क्या होता है, इत्यादि?"

12. यदि वह उत्तर दे: "चार पराजिका अपराध और तेरह संघीशेष अपराध नैतिक उल्लंघन हैं; तुलकाय (बड़े/गंभीर) अपराध, पचितीय अपराध, पतिदेशीय अपराध, दुक्कत अपराध और दुष्ट भाषा आचरण के नियमों के विरुद्ध उल्लंघन हैं; झूठा सिद्धांत और... सिद्धांत विधर्म हैं," तो वे उससे कहें: "हे मित्र, यदि तुम इस भिक्षु के पवारना को रोकते हो, तो क्या तुम इसे अपने देखे हुए, सुने हुए या संदेह के कारण रोकते हो?"

13. यदि वह उत्तर दे: "मैंने जो देखा है, या जो सुना है, या जो मुझे संदेह है, उसके कारण मैं इसका विरोध करता हूँ," तो उससे कहें: "मित्र, यदि तुम अपने देखे हुए के कारण इस भिक्षु के पवारना का विरोध करते हो, तो तुमने क्या देखा है? तुमने क्या देखा है? कब देखा है? कहाँ देखा है? क्या तुमने उसे पराजिका अपराध करते देखा है? क्या तुमने उसे संघदिशेष अपराध करते देखा है? क्या तुमने उसे थुल्लक्का या अपराध, पचित्तीय अपराध, पतिदेशीय अपराध, दुक्कत अपराध करते देखा है, या उसे अपशब्दों का प्रयोग करते देखा है? और तुम कहाँ थे? और यह भिक्षु कहाँ था? और तुमने क्या किया? और इस भिक्षु ने क्या किया?"

14. यदि वह उत्तर दे: "मित्रों, मैंने जो देखा है उसके कारण मैं इस भिक्षु के पवारना का निषेध नहीं करता, परन्तु मैंने जो सुना है उसके कारण करता हूँ," तो उनसे कहें: "यदि हे मित्र, आपने जो सुना है उसके कारण आप इस भिक्षु के पवारना का निषेध करते हैं, तो आपने क्या सुना है? आपने क्या सुना है? कब सुना है? कहाँ सुना है? क्या आपने सुना है कि उसने कोई परजिक अपराध किया है (आदि) या उसने अपशब्दों का प्रयोग किया है? क्या आपने यह किसी भिक्षु से सुना है? क्या आपने यह किसी भिक्षुणी से सुना है? क्या आपने यह किसी विद्यार्थी, समनेरा, समनेरी, उपासक, उपासिका, राजाओं, राजाधिकारियों, तित्तियों, तित्तियों के शिष्यों से सुना है?"

15. यदि वह उत्तर दे: "मित्रों, मैं सुनी-सुनाई बातों के कारण इस भिक्षु के पवारना का निषेध नहीं करता, बल्कि अपने संदेह के कारण करता हूँ," तो उनसे कहें: "यदि आप, मित्रो, अपने संदेह के कारण इस भिक्षु के पवारना का निषेध करते हैं, तो आपका संदेह क्या है? आपका संदेह क्या है? आपको कब संदेह हुआ? आपको कहाँ संदेह हुआ? क्या आपको संदेह है कि उसने कोई परजिका अपराध किया है, (आदि, जैसे कि) अपशब्दों का प्रयोग? क्या आपका संदेह किसी भिक्षु से सुनी बातों पर आधारित है, (आदि, जैसे कि) तित्तिया शिष्यों से?

16. यदि वह उत्तर दे: "हे भिक्षुओं, मैं अपने संदेह के कारण इस भिक्षु के पवारना में बाधा नहीं डालता; मुझे नहीं पता कि मैं इस भिक्षु के पवारना में बाधा क्यों डालता हूँ," और यदि वह भिक्षु, हे भिक्षुओं, जो (दूसरे भिक्षु को) फटकारता है, बुद्धिमान साथी भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर उनके मन को संतुष्ट नहीं कर पाता, तो आप यह कहने में सही हैं कि ऐसी स्थिति में फटकारा गया भिक्षु निर्दोष है। परन्तु यदि वह भिक्षु, हे भिक्षुओं, जो (दूसरे भिक्षु को) फटकारता है, बुद्धिमान साथी भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर उनके मन को संतुष्ट कर लेता है, तो आप यह कहने में सही हैं कि ऐसी स्थिति में फटकारा गया भिक्षु निंदनीय है।

17. 'हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु जो (दूसरे भिक्षु को) फटकारता है, यह स्वीकार करता है कि उसने उस पर निराधार रूप से पराजिका अपराध का आरोप लगाया है, तो संघ (आरोपकर्ता के विरुद्ध) संघीशेष कार्यवाही में प्रवेश करे और फिर पवाराना आयोजित करे।

'हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु जो (दूसरे भिक्षु को) फटकारता है, यह स्वीकार करता है कि उसने उस पर संघीशेष अपराध का निराधार आरोप लगाया है, तो संघ (आरोपकर्ता) के साथ कानून के अनुसार व्यवहार करे और फिर पवाराना आयोजित करे।'

'हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु जो किसी दूसरे भिक्षु को फटकारता है, यह स्वीकार करता है कि उसने उस पर निराधार रूप से थुलकाय (बड़ा/गंभीर) अपराध, या पचितीय अपराध, या पतिदेशीय अपराध, या दुक्कत अपराध, या दुष्ट भाषा का प्रयोग करने का आरोप लगाया है, तो संघ को (आरोप लगाने वाले के साथ) विधि के अनुसार व्यवहार करना चाहिए और फिर पवाराना आयोजित करना चाहिए।'

18. 'हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु, जिसे फटकार लगाई गई है, यह स्वीकार करता है कि उसने पराजिका अपराध किया है, तो संघ उसे निष्कासित कर दे और फिर पवाराना को प्रोत्साहित करे।

'यदि वह भिक्षु आदि यह स्वीकार करता है कि उसने संघीशेष अपराध किया है, तो संघ उसके विरुद्ध संघीशेष कार्यवाही शुरू करे और फिर पवाराना आयोजित करे।'

'यदि वह भिक्षु, इत्यादि, यह स्वीकार करता है कि उसने कोई बड़ा/गंभीर अपराध या पचित्तीय अपराध किया है, ... (इत्यादि, यहाँ तक कि) . . . . दुष्ट भाषा का प्रयोग किया है, तो संघ उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार करे और फिर पवाराना आयोजित करे।'

19. हे भिक्षुओं, यदि पवारना के दिन कोई भिक्षु तुलकाय (गंभीर) अपराध का दोषी हो। कुछ भिक्षु इसे तुलकाय अपराध मानते हैं, जबकि अन्य भिक्षु इसे संघीशेष अपराध मानते हैं। ऐसी स्थिति में, हे भिक्षुओं, जो इसे तुलकाय (गंभीर) अपराध मानते हैं, वे उस भिक्षु को अलग ले जाकर, विधि के अनुसार उसके साथ व्यवहार करें, संघ में लौटकर कहें: “हे भिक्षुओं, इस भिक्षु ने जो अपराध किया है, उसने विधि के अनुसार उसका प्रायश्चित कर लिया है। यदि संघ तैयार हो, तो पवारना आयोजित करें।”

20. हे भिक्षुओं, यदि पवाराना के दिन कोई भिक्षु थुलकाया (गंभीर अपराध) का दोषी हो। कुछ भिक्षुओं का मानना है कि यह थुलकाया (गंभीर अपराध) है, जबकि अन्य भिक्षुओं का मानना है कि यह पचितीय अपराध है। कुछ भिक्षुओं का मानना है कि यह थुलक्कया अपराध है, जबकि अन्य भिक्षुओं का मानना है कि यह पतिदेशीय अपराध है; थुलकाया (गंभीर अपराध) अपराध; दुक्कत अपराध; थुलक्कया अपराध, दुष्ट भाषा द्वारा किया गया अपराध। ऐसी स्थिति में (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 19 में अंत तक वर्णित है)।

21, 22. हे भिक्षुओं, यदि पवाराना के दिन कोई भिक्षु पचितीय अपराध, पतिदेशीय अपराध, दुक्कात अपराध, या दुष्ट भाषा द्वारा किए गए अपराध का दोषी हो। कुछ भिक्षु मानते हैं कि यह दुष्ट भाषा द्वारा किया गया अपराध है, अन्य भिक्षु मानते हैं कि यह संघीशेष अपराध है, इत्यादि। उस स्थिति में, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु इसे दुष्ट भाषा द्वारा किया गया अपराध मानते हैं, वे उस भिक्षु को अलग ले जाएं (आदि, धारा 19 देखें)।

23. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना दिवस पर सभा के समक्ष इस प्रकार कहे: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। मुझे यह कर्म ज्ञात है, परन्तु दोषी व्यक्ति का नाम ज्ञात नहीं। यदि संघ तैयार हो, तो इस कर्म को छोड़कर पवारना आयोजित करें," तो भिक्षुओं को उत्तर देना चाहिए: "हे मित्र, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि पवारना आयोजित करने वालों को शुद्ध होना चाहिए। यदि कोई कर्म ज्ञात हो, परन्तु दोषी व्यक्ति का नाम ज्ञात न हो, तो हमें अभी सूचित कीजिए।"

24. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना दिवस पर सभा के समक्ष इस प्रकार कहे: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। यहाँ एक व्यक्ति (मुझे दोषी) ज्ञात है, परन्तु उसका कर्म ज्ञात नहीं। यदि संघ तैयार हो, तो संघ इस व्यक्ति को छोड़कर पवारना करे," तो भिक्षुओं को उत्तर देना चाहिए: "हे मित्र, भगवान बुद्ध ने यह विधान किया है कि पवारना करने वालों को पूर्ण होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति (आपको दोषी) ज्ञात है, परन्तु उसका कर्म ज्ञात नहीं, तो हमें अभी सूचित कीजिए।"

25. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना दिवस पर सभा के समक्ष इस प्रकार कहे: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। मुझे एक कर्म और उसके दोषी व्यक्ति का ज्ञान है। यदि संघ तैयार हो, तो इस कर्म और उस व्यक्ति को छोड़कर पवारना आयोजित करें," तो भिक्षुओं को उत्तर देना चाहिए: "हे मित्र, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि पवारना आयोजित करने वालों को शुद्ध और पूर्ण होना चाहिए। यदि आपको कर्म और दोषी व्यक्ति का ज्ञान है, तो हमें अभी सूचित कीजिए।"

26. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई कर्म पवारना के समक्ष ज्ञात हो जाए, और (दोषी) व्यक्ति पवारना के बाद ज्ञात हो जाए, तो उसे (तब) सामने लाना उचित है।

'हे भिक्षुओं, यदि (दोषी) व्यक्ति पवाराना के समक्ष ज्ञात हो जाए, और उसके कर्म बाद में ज्ञात हों, तो उसे (तब) सामने लाना उचित है।'

'हे भिक्षुओं, यदि पवारना के समक्ष कर्म और (दोषी) व्यक्ति दोनों का पता चल जाए, और यदि (कोई भिक्षु) पवारना के बाद उस मामले को फिर से उठाता है, तो वह (निर्णयित मामले को) उठाने के लिए पचित्त्य अपराध का दोषी हो जाता है।'

<<<< पिछला (4.15) | अगला (4.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.16) | अगला(4.18) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-17: झगड़ालू, विवादशील और बीमार भिक्षुओं का इलाज कैसे करें।

1. उस समय कोसल देश के एक जिले में कई भिक्षु, जो आपस में सहचर और मित्र थे, वर्षावास में प्रवेश कर गए। उनके पड़ोस में अन्य भिक्षु, जो विवाद करने वाले, झगड़ालू और बहस करने वाले थे और संघ के समक्ष प्रश्न उठाते थे, वर्षावास में प्रवेश कर गए। उनका इरादा वर्षावास समाप्त होने के बाद पवाराना के दिन उनके पवाराना में उन्हें ठहराने का था। तभी उन भिक्षुओं ने सुना, 'हमारे पड़ोस में अन्य भिक्षु, इत्यादि, हैं। भला हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. हे भिक्षुओं, यदि किसी क्षेत्र में अनेक भिक्षु, जो एक-दूसरे के मित्र और साथी हों, वर्षावास में प्रवेश करें। उनके आस-पास अन्य भिक्षु भी हों, ... (आदि, धारा 1)। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि वे भिक्षु अर्धमाह के चौदहवें दिन दो या तीन बार उपोसथ करें, ताकि वे उन (अन्य) भिक्षुओं के समक्ष पवारना कर सकें। यदि वे झगड़ालू, कलह करने वाले, ... (आदि, धारा 1) भिक्षु उस क्षेत्र में आएँ, तो हे भिक्षुओं, वहाँ के भिक्षुओं को शीघ्र एकत्रित होकर पवारना करना चाहिए; पवारना करने के बाद, उन्हें उनसे कहना चाहिए: "हे मित्रों, हमने पवारना कर लिया है; आप अपनी इच्छानुसार करें।"

3. यदि वे वाद-विवाद करने वाले भिक्षु (आदि, § 1) अचानक उस निवास पर आ जाएँ, तो हे भिक्षुओं, वहाँ के निवासी भिक्षु उनके लिए आसन तैयार करें, उनके पैर धोने के लिए जल, पायदान और तौलिये लाएँ, फिर उनसे मिलने जाएँ, उनके प्याले और वस्त्र ले जाएँ और उन्हें पीने के लिए जल दें; इस प्रकार उन भिक्षुओं की सेवा करने के बाद, वे सीमा के बाहर जाकर पवाराना करें; पवाराना करने के बाद, वे कहें: "हे मित्रों, हमने पवाराना कर लिया है; हे महोदय, आप जैसा चाहें वैसा करें।"

4. यदि वे इस प्रकार सफल होते हैं, तो अच्छी बात है; यदि वे सफल नहीं होते हैं, तो एक विद्वान, योग्य, निवासी भिक्षु अन्य निवासी भिक्षुओं के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखें: "हे निवासी भिक्षुओं, कृपया मेरी बात सुनें। यदि आप तैयार हैं, तो आइए अब हम उपोसथा का पाठ करें और पतिमोक्खा का पाठ करें, और अगली अमावस्या को पवाराना करें।" हे भिक्षुओं, यदि विवाद करने वाले भिक्षु उन

भिक्षुओं से कहें: "हे मित्रों, अब हमारे साथ पवाराना करें," तो वे उत्तर दें: "हे मित्रों, आप हमारे पवाराना के स्वामी नहीं हैं; हम अभी पवाराना नहीं करेंगे।"

5. 'हे भिक्षुओं, यदि वे वाद-विवाद करने वाले भिक्षु (आदि, § 1) अमावस्या तक वहाँ ठहरते हैं, तो एक विद्वान, योग्य, निवासी भिक्षु, . . .

6. 'हे भिक्षुओं, यदि वे वाद-विवाद करने वाले भिक्षु, ... (आदि, § 1) उस पूर्णिमा तक वहाँ ठहरे रहें, तो हे भिक्षुओं, उन सभी भिक्षुओं को, चाहे वे चाहें या न चाहें, अगली पूर्णिमा को, कोमुदी कटुमासिनी के दिन, पवाराना करना चाहिए।

7. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु पवारना करते हैं, और कोई बीमार भिक्षु किसी स्वस्थ भिक्षु की पवारना में बाधा डालता है, तो वे (बाधा डालने वाले भिक्षु से) कहें: "हे स्वामी, आप बीमार हैं, और भगवान बुद्ध ने कहा है कि बीमार व्यक्ति प्रश्न-उत्तर सहन नहीं कर सकता। मित्र, अपने स्वास्थ्य के ठीक होने तक प्रतीक्षा कीजिए; ठीक होने के बाद, यदि आप चाहें तो आप उसे डांट सकते हैं।" यदि वे उससे इस प्रकार कहें, और वह (उस भिक्षु को) डांटता है, तो वह पचित्त्य अपराध, अवहेलना का दोषी हो जाता है।

8. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु पवारना करते हैं, और कोई स्वस्थ भिक्षु किसी बीमार भिक्षु की पवारना में बाधा डालता है, तो वे (पवरना में बाधा डालने वाले भिक्षु से) कहें: "मित्र, यह भिक्षु बीमार है, और भगवान बुद्ध ने कहा है कि बीमार व्यक्ति प्रश्नोत्तर सहन नहीं कर सकता। मित्र, इस भिक्षु के ठीक होने तक प्रतीक्षा करो; जब वह ठीक हो जाए, तो तुम चाहो तो उसे डांट सकते हो।" यदि वे उससे इस प्रकार कहें, ... (आदि, जैसा कि § 7 में है)।

9. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु पवारना करते हैं, और कोई बीमार भिक्षु किसी अन्य बीमार भिक्षु की पवारना में बाधा डालता है, तो वे (बाधा डालने वाले भिक्षु से) कहें: "आप बीमार हैं, महोदय, और भगवान बुद्ध ने कहा है कि बीमार व्यक्ति प्रश्न-उत्तर सहन नहीं कर सकता। मित्र, अपने स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा करें; जब वह स्वस्थ हो जाए तो आप चाहें तो उसे फटकार सकते हैं।" यदि वे उससे इस प्रकार कहें, ... (आदि, जैसा कि § 7 में है)।

10. 'हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु पवारना धारण करते हैं, और एक स्वस्थ भिक्षु दूसरे स्वस्थ भिक्षु के पवारना में बाधा डालता है, तो संघ उन दोनों से पूछताछ करे और उनकी जांच करे तथा विधि के अनुसार उनके साथ व्यवहार करे, और फिर पवारना धारण करे।'

<<<< पिछला(4.16) । अगला(4.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> चौथा खंडक >> 4.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.17) । अगला(5.1) >>>>

महावग्ग

चौथा खंडका (वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु)

अध्याय-18: आवास और अन्य मुद्दे।

1. उस समय कई भिक्षु, जो आपस में सहपाठी और मित्र थे, कोसल देश के एक जिले में वर्षावास के लिए निकले। एकता और सद्भाव से रहते हुए, और बिना किसी कलह के, इन भिक्षुओं ने रहने के लिए एक सुखदायक स्थान पाया। अब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'एकता आदि से रहते हुए, हमें रहने के लिए एक सुखदायक स्थान मिल गया है। यदि हम अब पवारान धारण करते हैं, तो (अन्य भिक्षु) अपना पवारान धारण करके यात्रा पर आ सकते हैं (और इस स्थान पर कब्जा कर सकते हैं); इस प्रकार हम इस सुखदायक निवास स्थान को खो देंगे। अब हम क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. 'हे भिक्षुओं, यदि अनेक भिक्षु, जो एक दूसरे के साथी और मित्र हैं, किसी जिले में वर्षावास में प्रवेश कर चुके हों, तो ये भिक्षु, ... (आदि, धारा 1)

'यदि ये भिक्षु सोचते हैं: "एकता में रहते हुए, ... (आदि, § 1, नीचे तक:) इस प्रकार हम इस आरामदायक निवास स्थान को खो देंगे," तो हे भिक्षुओं, मैं इन भिक्षुओं को पवारनसम्गहा पर सहमत होने की अनुमति देता हूँ।

3. हे भिक्षुओं, आप सभी को इस प्रकार सहमत होना चाहिए: सभी एकत्रित हों। जब वे एकत्रित हो जाएँ, तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनें।"

एकता में रहते हुए, ... (आदि, अनुच्छेद 1, नीचे तक:) इस प्रकार हम इस आरामदायक निवास स्थान को खो देंगे। यदि संघ तैयार है, तो संघ पवारनासंगह पर सहमत हो; अब उपोसथ का आयोजन करे और पतिमोक्खा का पाठ करे, और संघ अगले कोमुदी कटुमासिनी दिवस पर पवारना का आयोजन करे। यही नत्ती (गति) है।"

4. "संघ, इत्यादि।"

5. हे भिक्षुओं, यदि अन्य भिक्षुओं के पवारनासंग्रह पर सहमत होने के बाद कोई भिक्षु कहे, "मित्रों, मैं देश-यात्रा पर जाना चाहता/चाहती हूँ; मुझे देश में कुछ काम है," तो वे उसे उत्तर दें, "अच्छा मित्र, पवारना धारण करो; और जाओ।" हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु पवारना धारण करते समय किसी अन्य भिक्षु के पवारना में बाधा उत्पन्न करे, तो वह (दूसरा भिक्षु) उससे कहे, "मित्र, तुम मेरे पवारना के स्वामी नहीं हो; मैं अभी पवारना धारण नहीं करूँगा/करूँगी।"

'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पवारना धारण करता है और दूसरा भिक्षु पवारना में बाधा डालता है, तो संघ उन दोनों से पूछताछ करे और उनकी जांच करे तथा उनके साथ विधि के अनुसार व्यवहार करे।'

6. हे भिक्षुओं, यदि वह भिक्षु देश में अपना कार्य समाप्त करके कोमुदी कटुमासिनी दिवस से पहले उस जिले में लौट आता है, और हे भिक्षुओं, जब भिक्षुओं का पवारना होता है, तो कोई भिक्षु (जो अनुपस्थित रहा हो) के पवारना में हस्तक्षेप करता है, तो वह हस्तक्षेप करने वाले भिक्षु से कहे: "हे मित्र, तुम मेरे पवारना के स्वामी नहीं हो; मैंने अपना पवारना संपन्न कर लिया है।"

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षुओं के पवारना करते समय कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु के पवारना में बाधा डालता है, तो संघ उन दोनों से पूछताछ करे और उनकी जांच करे तथा विधि के अनुसार उनके साथ व्यवहार करे, और फिर पवारना करे।'

पवरण-खंडका का अंत।

<<<< पिछला(4.17) । अगला(5.1) >>>>

पांचवां खंडाका (पैर, वस्त्र, सीटें, वाहन आदि)
(पैरों के वस्त्र, सीटों, वाहनों आदि के लिए नियम)

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.18) । अगला(5.2) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-1: एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोना कोलिविसा को अर्हत पद प्राप्त होता है; बुद्ध जूते पहनने की अनुमति देते हैं।

1. उस समय महान बुद्ध गिद्ध शिखर पर स्थित राजगृह में निवास करते थे।

उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार का अस्सी हजार नगरों पर शासन और प्रभुत्व था। उस समय चंपा में सोना कोलिविसा नाम का एक धनी व्यापारी का पुत्र रहता था, जो अत्यंत सुगठित था और जिसके पैरों के तलवों पर बाल उग आए थे।

अब जब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार उन नगरों के अस्सी हजार निरीक्षकों की सभा बुला रहे थे, तो उन्होंने किसी व्यावसायिक मामले पर सोना कोलिविसा को संदेश भेजा और कहा, 'सोना यहाँ आएँ। मैं सोना की उपस्थिति चाहता हूँ!'

2. तब सोना कोलिविसा के माता-पिता ने उससे कहा, "हे सोना, राजा तुम्हारे चरण देखना चाहते हैं। परन्तु हे सोना, राजा की ओर अपने चरण मत फैलाओ। राजा के सामने पालथी मारकर बैठो, ताकि राजा तुम्हारे चरण देख सकें।" और वे सोना कोलिविसा को पालकी में बिठाकर राजगृह ले गए।

सोना कोलिविसा मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को प्रणाम किया और उनके सामने पालथी मारकर बैठ गए। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने देखा कि सोना कोलिविसा के पैरों के तलवों पर बाल उग आए थे।

3. अब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने उन नगरों के अस्सी हजार निरीक्षकों को संसारिक विषयों का उपदेश देने के बाद उनसे कहा, 'तुमने मुझसे संसारिक विषयों का उपदेश प्राप्त कर लिया है। अब जाओ और भगवान बुद्ध की सेवा करो। स्वयं भगवान बुद्ध तुम्हें शाश्वत विषयों का उपदेश देंगे।'

फिर उन कस्बों के अस्सी हजार निरीक्षक गिद्ध शिखर की ओर चल पड़े।

4. उस समय पूज्य सगत भगवान बुद्ध के सेवक थे। उन नगरों के अस्सी हजार निरीक्षक उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य सगत थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सगत से इस प्रकार कहा:

नगरों के अस्सी हजार निरीक्षक भगवान बुद्ध के दर्शन करने यहाँ आए हैं, महोदय। यह सौभाग्य की बात होगी, महोदय, कि हमें भी भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर प्राप्त हो।

तो फिर, महोदय, आप यहाँ थोड़ी देर रुकिए, जब तक मैं भगवान बुद्ध को सूचित कर देता हूँ।'

5. तब पूज्य सगत उन कस्बों के अस्सी हजार निरीक्षकों की आँखों के सामने से सीढ़ियों से नीचे उतर गए और भगवान बुद्ध के सामने प्रकट हुए, और भगवान बुद्ध से बोले:

'हे प्रभु, नगरों के अस्सी हजार निरीक्षक भगवान बुद्ध से मिलने यहाँ आए हैं। भगवान बुद्ध जो उचित समझें, वही करें।'

तो फिर, हे सागाता, घर की छाया में एक आसन तैयार कर दो।'

6. 'जी प्रभु, ऐसा ही हो!' पूज्य सगत ने भगवान बुद्ध की सहमति में कहा। और एक कुर्सी लेकर वे भगवान बुद्ध के सामने से विलीन हो गए और उन कस्बों के अस्सी हजार निरीक्षकों की आँखों के सामने सीढ़ियों से ऊपर प्रकट हुए और घर की छाया में बैठने की व्यवस्था की।

और भगवान बुद्ध घर से बाहर आए और उस छायादार स्थान पर बने आसन पर बैठ गए।

7. तब नगरों के वे अस्सी हजार निरीक्षक उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। परन्तु नगरों के उन अस्सी हजार निरीक्षकों ने भगवान बुद्ध की अपेक्षा पूज्य सगत को अधिक आदर दिया।

और भगवान बुद्ध ने अपने मन से उन अस्सी हजार नगरों के निरीक्षकों के मन के विचारों को जान लिया; और उन्होंने पूज्य सगत को संबोधित करते हुए कहा: 'सगत, अब उन्हें एक और भी बड़ा चमत्कार दिखाओ, जो मनुष्यों की क्षमता से परे हो।'

'जी प्रभु!' पूज्य सगत ने भगवान बुद्ध की सहमति में कहा। फिर वे आकाश में उठे, चले, खड़े हुए, बैठे और लेट गए, और धुआँ और आग निकालते हुए आकाश में विलीन हो गए।

8. तब पूज्य सगत ने खुले आकाश में मनुष्यों की सामर्थ्य से परे अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाकर भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर उनसे कहा:

हे प्रभु, मेरे गुरु भगवान बुद्ध हैं; और मैं उनका शिष्य हूँ। हे प्रभु, मेरे गुरु भगवान बुद्ध हैं; और मैं उनका शिष्य हूँ।

तब उन अस्सी हजार नगरों के निरीक्षकों ने यह सोचकर, 'यह कितना अद्भुत है, कितना चमत्कारी है! यदि शिष्य भी इतना शक्तिशाली और बलवान हो सकता है, तो गुरु कितना अधिक शक्तिशाली होगा!' अपने हृदय में आदरणीय सगत की अपेक्षा भगवान बुद्ध के प्रति अधिक आदर व्यक्त किया।

9. तब भगवान बुद्ध ने अपने मन से उन अस्सी हजार नगर निरीक्षकों के मन के विचार जान लिए और उन्हें विधिवत प्रवचन दिया; अर्थात् उन्होंने उन्हें दान, धर्म, स्वर्ग, वासनाओं के खतरे, निरर्थकता, दुराचार और त्याग के लाभों के विषय में बताया। और जब भगवान बुद्ध ने देखा कि वे विनम्र, कोमल, निष्पक्ष, उन्नत और विश्वासशील हो गए हैं, तब उन्होंने बुद्धों के विशिष्ट उपदेशों की घोषणा की; (अर्थात) दुख, उसका कारण, उसका निवारण और उसका मार्ग।

जैसे एक साफ कपड़ा, जिससे सारे दाग धुल गए हों, आसानी से रंग सोख लेता है, ठीक उसी तरह उन अस्सी हजार नगरों के निरीक्षकों ने भी, वहीं बैठे-बैठे ही, सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त कर ली थी। जिस भी चीज का आरंभ होता है, उसमें अंत/विनाश की अनिवार्यता भी अंतर्निहित होती है।

10. सत्य को देखकर, सत्य में महारत हासिल करके, सत्य को समझकर, सत्य में मर्मस्पर्शी होकर, अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करके, सभी शंकाओं को दूर करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, गुरु के उपदेश के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहकर, उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु! हे प्रभु! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जला दे ताकि देखने वाले दृश्य देख सकें, वैसे ही भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से उपदेश दिया है। हे प्रभु, हम भगवान बुद्ध, धम्म और भिक्षु समुदाय की शरण लेते हैं; भगवान बुद्ध हमें आज से अपने जीवन भर अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने उनकी शरण ली है।'

11. और सोना कोलिविसा ने सोचा: भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धम्म के अनुसार, गृहस्थ जीवन जीने वाले व्यक्ति के लिए पूर्णतः परिपूर्ण, पवित्र और संपूर्ण पवित्र जीवन व्यतीत करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी काट लूँ, पीले वस्त्र धारण कर लूँ, संसार का त्याग कर दूँ और गृहस्थी त्याग दूँ (अर्थात भिक्षु जीवन व्यतीत करूँ) तो क्या होगा?

और नगरों के वे अस्सी हजार निरीक्षक, भगवान बुद्ध के वचनों पर अपनी प्रसन्नता और आनंद व्यक्त करते हुए, अपने स्थानों से उठे, आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुख करके उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चले गए।

12. अस्सी हज़ार नगरों के निरीक्षकों के चले जाने के तुरंत बाद, सोना कोलिविसा भगवान बुद्ध के स्थान पर गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए सोना कोलिविसा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा प्रचारित धम्म को समझता हूँ (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 11 में आगे बताया गया है), और गृहस्थ जीवन (अर्थात भिक्षुत्व) ग्रहण करना चाहता हूँ। हे प्रभु, मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, संसार का त्याग करके गृहस्थ जीवन ग्रहण करना चाहता हूँ। हे प्रभु, मुझे ऐसा करने का आदेश दें।'

इस प्रकार सोना कोलिविसा को भगवान बुद्ध से पब्बज्जा और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त हुई। और आदरणीय सोना, अपनी उपसम्पदा के तुरंत बाद, सीतावन उपवन में रहने लगे।

13. जब वह उत्सुकतापूर्वक दृढ़ संकल्प के साथ वहाँ इधर-उधर चल रहा था, तो उसके पैर घायल हो गए और वह स्थान जहाँ वह चला, रक्त से लथपथ हो गया, मानो बैलों का वधशाला हो। तब ध्यान में लीन हुए पूज्य सोना के मन में यह विचार आया:

यद्यपि मैं भगवान बुद्ध के उन शिष्यों में से एक हो गया हूँ जो कठोर संकल्प के अभ्यास में जीवन व्यतीत करते हैं, फिर भी मेरी तृष्णा के अभाव के कारण मेरा मन आसवों से मुक्त नहीं हो पाया है। और मेरे घर में बहुत धन संचित है। उस धन का आनंद लेना और अच्छे कर्म करना दोनों ही संभव है। अतः अब मैं निम्नतम अवस्था में लौटकर अपने धन का आनंद लूँ और अच्छे कर्म करूँ।

14. अब भगवान बुद्ध के मन में पूज्य सोना का आभास हुआ; और जैसे बलवान पुरुष शीघ्रता से अपना हाथ फैला सकता है या फैलाकर वापस खींच सकता है, वैसे ही वे गिद्ध शिखर की पहाड़ी से लुप्त हो गए और सीतावन वन में प्रकट हुए। और भगवान बुद्ध भिक्षुओं के विश्राम स्थलों से गुजरते हुए, अनेक भिक्षुओं के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पूज्य सोना आवारा घूमे थे।

जब भगवान बुद्ध ने देखा कि जिस स्थान पर पूज्य सोना आए-गए थे, वह रक्त से लथपथ है, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, यह किसका आने-जाने का स्थान है, जो बैलों के वधशाला की तरह रक्त से सना हुआ है?'

'हे भगवान, जब आदरणीय सोना यहाँ उत्सुकतापूर्वक इधर-उधर चल रहे थे, तो उनके पैर घायल हो गए; और इसलिए यह स्थान रक्त से लथपथ हो गया है, जैसे बैलों का वधशाला हो।'

15. फिर भगवान बुद्ध पूज्य सोना के घर गए और उनके लिए तैयार की गई आसन पर बैठ गए। पूज्य सोना ने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठ गए, तो भगवान बुद्ध ने पूज्य सोना को संबोधित करते हुए कहा, 'क्या यह सच नहीं है, सोना, कि जब आप एकांत में ध्यान में लीन थे, तो आपके मन में यह विचार आया: "यद्यपि मैं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 13 में अंत तक है) बन गया हूँ?"'

'फिर भी, प्रभु!'

'अब तुम क्या सोचती हो, सोना,—जब तुम पहले संसार में रहती थी, तब तुम वीणा वादन में निपुण थी, है ना?'

'यह बिल्कुल सच था, प्रभु!'

'अब तुम क्या सोचती हो, सोना, जब तुम्हारे वीणा के तार बहुत ज्यादा खिंचे हुए थे, तब क्या तुम्हारी वीणा से कोई ध्वनि निकल रही थी, क्या वह बजाने योग्य स्थिति में थी?'

'ऐसा नहीं है, प्रभु!'

16. 'अब तुम क्या सोचती हो, सोना, जब तुम्हारे वीणा के तार ढीले थे, तब क्या तुम्हारी वीणा से कोई ध्वनि निकलती थी, क्या वह बजाने योग्य थी?' 'नहीं, प्रभु!'

अब तुम क्या सोचती हो, सोना,—जब तुम्हारे वीणा के तार न तो बहुत खिंचे हुए थे और न ही बहुत ढीले, बल्कि समान अनुपात में स्थिर थे, तब क्या तुम्हारी वीणा बजती थी? क्या तब वह बजाने योग्य अवस्था में थी?

हाँ प्रभु!'

'और ठीक इसी तरह, सोना, अत्यधिक दृढ़ संकल्प आत्म-धार्मिकता को जन्म देता है, और बहुत कमजोर दृढ़ संकल्प आलस्य की ओर ले जाता है।'

17. हे सोना, तुम अपने संकल्प में एकरूपता बनाए रखो, अपनी मानसिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करो। यही तुम्हारा चिंतन का विषय होना चाहिए!

फिर भी, प्रभु!' आदरणीय सोना ने कहा और भगवान बुद्ध के वचन को ध्यान से सुना।

और जब भगवान बुद्ध ने पूज्य सोना को यह उपदेश दिया, तो एक बलवान व्यक्ति जितनी शीघ्रता से अपना हाथ फैला सकता है या फैलाकर वापस खींच सकता है, उतनी ही शीघ्रता से वे सीतावन उपवन में पूज्य सोना के समक्ष से लुप्त हो गए और गिद्ध शिखर की पहाड़ी पर पुनः प्रकट हुए।

18. तब से पूज्य सोना दृढ़ संकल्प में स्थिर रहे, उन्होंने अपनी मानसिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित किया और उसी को अपने चिंतन का विषय बनाया। पूज्य सोना एकांत में रहकर, गंभीर, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, शीघ्र ही उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए श्रेष्ठ युवक गृहस्थी लाभ और सुख-सुविधाओं को त्यागकर बेघर होकर विचरण करते हैं—जी हाँ, उन्होंने स्वयं ही, इस दृश्य संसार में रहते हुए, उस सर्वोच्च लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त किया, उसे निरंतर अनुभव किया और प्रत्यक्ष रूप से देखा! और उन्हें यह अहसास हुआ कि पुनर्जन्म का अंत हो गया है, कि उच्च जीवन पूर्ण हो गया है, कि जो कुछ करना था वह पूरा हो चुका है, और इस जीवन के बाद कोई परलोक नहीं है!

इस प्रकार आदरणीय सोना भी अरहतों में से एक बन गए।

19. अब जब पूज्य सोना ने अरहतत्व प्राप्त कर लिया, तो उनके मन में यह विचार आया: 'अब मैं भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अपनी अंतर्दृष्टि प्रकट करूं!'

तब पूज्य सोना भगवान बुद्ध के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठने के बाद पूज्य सोना ने भगवान बुद्ध से कहा:

20. हे प्रभु, जो भी भिक्षु अरहत है, जिसके आसव जड़ से उखड़ गए हैं, जिसने जीवन जीया है, जिसने कार्य पूर्ण किया है, जिसने हर बोझ को त्याग दिया है, जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जिसने (भविष्य के) अस्तित्व की लालसा के बंधन को पूरी तरह तोड़ दिया है, जो अंतर्दृष्टि से पूर्णतः मुक्त हो गया है, वह छह चीजों तक पहुँचता है - त्याग, एकांत प्रेम, दया, लालसा का नाश, प्यास का नाश, और भ्रमों से मुक्ति।

21. हे प्रभु, हो सकता है कि इस विषय में किसी भिक्षु के मन में यह विचार आए: "इस भिक्षु ने केवल आस्था के कारण ही वैराग्य प्राप्त किया है।" परन्तु हे प्रभु, इस विषय को इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। क्योंकि जिस भिक्षु में आसव जड़ से उखड़ जाते हैं, जिसने जीवन व्यतीत किया है, जिसने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है, वह अपने आप को ऐसा नहीं समझता कि उसे अभी कुछ करना बाकी है या अपने पिछले परिश्रम का फल इकट्ठा करना बाकी है; बल्कि वह कामवासना के नाश से, कामवासना के अभाव से ही वैराग्य प्राप्त करता है; वह द्वेष के नाश से, द्वेष के अभाव से ही वैराग्य प्राप्त करता है; वह भ्रमों के नाश से, भ्रमों के अभाव से ही वैराग्य प्राप्त करता है।

22. हे प्रभु, हो सकता है कि इस विषय में किसी भाई के मन में यह विचार आए: "लाभ, आतिथ्य सत्कार और प्रसिद्धि की खोज में इस भाई ने एकांतवास का प्रेम प्राप्त कर लिया।" परन्तु इस प्रकार नहीं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 21 में अंत तक है, "त्याग" के स्थान पर "एकांतवास" शब्द का प्रयोग किया गया है)।

23. हे प्रभु, हो सकता है कि इस विषय में किसी भाई के मन में यह विचार आए: "वास्तव में कर्मों पर निर्भरता की ओर लौटकर, मानो वही (आध्यात्मिक कल्याण का) सच्चा सार हो, इस भाई ने दयालु हृदय प्राप्त कर लिया है।" परन्तु इस प्रकार नहीं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 21 में अंत तक है, "त्याग" के स्थान पर "दयालुता" शब्द का प्रयोग किया गया है)।

24. वह कामवासना के नाश द्वारा लालसा का नाश प्राप्त करता है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 21 में अंत तक वर्णित है, "त्याग" के स्थान पर "लालसा का अभाव" शब्द का प्रयोग करते हुए)। वह प्यास का अभाव प्राप्त करता है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 21 में वर्णित है)। वह भ्रम का अभाव प्राप्त करता है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 21 में अंत तक वर्णित है)।

25. हे प्रभु, जब कोई भिक्षु इस प्रकार हृदय से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, तो चाहे कितनी ही वस्तुएँ उसकी दृष्टि के मार्ग में प्रवेश कर जाएँ, वे उसके मन पर अधिकार नहीं जमातीं: उसका मन निर्मल, दृढ़ और अविचल होता है; और वह उस प्रभाव के लुप्त होने का ज्ञान प्राप्त कर लेता है—चाहे कितनी ही वस्तुएँ जो कानों को सुनाई दें, नाक से सूंघी जा सकें, जीभ से चखी जा सकें, शरीर द्वारा स्पर्श की जा सकें, बुद्धि को बोध हो सकें, वे उसके मन, नाक, जीभ, त्वचा और बुद्धि के मार्ग में प्रवेश कर जाएँ, फिर भी वे उसके मन पर अधिकार नहीं जमातीं: उसका मन निर्मल, दृढ़ और अविचल होता है, और वह उस प्रभाव के लुप्त होने का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

26. हे प्रभु, मान लीजिए कि एक अविभाजित, ठोस, एक ही पिंड का पर्वत है, और उस पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण दिशा से बहुत हवा और बारिश हो, फिर भी वह हिले नहीं, कांपे नहीं, कांपे नहीं; ठीक उसी प्रकार, हे प्रभु, जब कोई भिक्षु हृदय से पूर्णतः मुक्त हो जाता है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 25 में अंत तक है)।

27. 'जिसने वैराग्य, एकांतवास, दयालुता और लालसा के उन्मूलन को प्राप्त कर लिया है,

'जिसने प्यास को जड़ से उखाड़ फेंका हो, मन से भ्रमों को दूर कर लिया हो, वह संवेदनाओं के स्रोत को देख लेता है, उसका मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।'

'ऐसे भिक्षु के लिए, जो इतने मुक्त हैं और जिनके हृदय में शांति है, किए गए कार्यों का कोई संचय नहीं होता, कुछ भी करना शेष नहीं रहता।'

जैसे एक ठोस चट्टान हवा के झोंकों से नहीं हिलती, ठीक उसी तरह आकार, स्वाद, ध्वनि, गंध और स्पर्श—ये सभी चीजें कभी नहीं हिल सकतीं।

चाही हुई बातें, अनचाही बातें—ये सब उसे व्याकुल कर देती हैं। उसका मन दृढ़ है, मुक्त है। वह अंत तक देख सकता है।

28. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भाइयों, योग्य युवक इसी प्रकार अपनी अंतर्दृष्टि प्रकट करते हैं। सत्य का उच्चारण किया जाता है, और अहंकार का प्रयोग नहीं किया जाता। परन्तु यहाँ कुछ मूर्ख, मुझे लगता है, अपनी अंतर्दृष्टि को हास्यास्पद बना देते हैं, और परिणामस्वरूप वे पराजित हो जाते हैं!'

29. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य सोना से कहा, 'सोना, तुम्हारा पालन-पोषण बड़ी कोमलता से हुआ है। सोना, मैं तुम्हें एक अस्तर वाले जूते पहनने की अनुमति देता हूँ।'

हे प्रभु, मैंने संसार छोड़कर, अस्सी बैलगाड़ियों का सोना और सात हाथियों का दल त्यागकर, निर्जन जीवन (अर्थात भिक्षु जीवन) ग्रहण कर लिया है। इस कारण मेरे विरुद्ध यह कहा जाएगा: "सोना कोलीविसा ने अस्सी बैलगाड़ियों का सोना और सात हाथियों का दल त्यागकर संसार छोड़कर निर्जन जीवन ग्रहण किया; परन्तु वही व्यक्ति अब अस्तर वाले जूते पहनने का अभ्यस्त हो गया है।"

30. यदि भगवान बुद्ध भिक्षु संघ को इनका उपयोग करने की अनुमति देंगे, तो मैं भी इनका उपयोग करूंगा। यदि भगवान बुद्ध भिक्षु संघ को इनका उपयोग करने की अनुमति नहीं देंगे, तो मैं भी इनका उपयोग नहीं करूंगा।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देते हुए भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक अस्तर वाले जूते पहनने की अनुमति देता हूँ। हे भिक्षुओं, दोहरे अस्तर वाले जूते, तिहरे अस्तर वाले जूते, या अनेक अस्तर वाले जूते न पहनें। जो कोई भी ऐसे जूते पहनेगा, वह दुक्कटा अपराध का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(4.18) | अगला(5.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.1) | अगला(5.3) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-2: बुद्ध ने तपस्या के लिए फैंसी जूते पहनने की मनाही की।

1. उस समय छब्बागीय भिक्षु नीले, पीले, लाल, भूरे, काले, नारंगी या पीले रंग की चप्पलें पहनते थे। लोग नाराज़ होकर आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'ये तो संसार के सुखों में लिप्त लोगों की तरह व्यवहार करते हैं।' भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, नीले, पीले, लाल, भूरे, काले, नारंगी या पीले रंग के जूते न पहनें। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु नीले, पीले, लाल, भूरे, काले, नारंगी या पीले रंग के किनारों वाले जूते पहनने के आदी थे।

लोग नाराज़ हो गए, आपस में कानाफूसी करने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'ये तो संसार के सुखों में लिप्त लोगों की तरह व्यवहार करते हैं।' भाइयों ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, नीले, पीले, लाल, भूरे, काले, नारंगी या पीले रंग के किनारों वाले जूते न पहनें। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

3. उस समय छब्बागिया भिक्षु एड़ी ढकने वाले जूते; मोकासिन; फीते वाले जूते; सूती अस्तर वाले जूते; तोरी के पंखों जैसे विभिन्न रंगों के जूते; मेढ़ों और बकरियों के सींगों से नुकीले जूते; बिच्छुओं की पूंछों से सजे जूते; मोर के पंखों से सिले हुए जूते; या सभी प्रकार के रंगों के जूते पहनने के आदी थे।

लोग नाराज़ थे (आदि, जैसा कि § 2 में है, नीचे तक:) ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, एड़ी ढकने वाले जूते (और इसी प्रकार, जैसा कि अनुच्छेद 3 में वर्णित है) और सभी रंगों के जूते न पहनें। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

4. उस समय छब्बागिया भिक्षु शेर की खाल, बाघ की खाल, तेंदुआ की खाल, हिरण की खाल, ऊदबिलाव की खाल, बिल्ली की खाल, गिलहरी की खाल और उल्लू की खाल से सजे जूते पहनने की आदत रखते थे।

लोग नाराज़ थे (और इसी तरह, जैसा कि धारा 3 में अंत तक है, 'एड़ी के आवरण वाले जूते, आदि' के स्थान पर 'शेर की खाल से सजे जूते, आदि' प्रतिस्थापित किए गए हैं)।

<<<< पिछला(5.1) | अगला(5.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.2) | अगला(5.4) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-3: बुद्ध अस्तर वाले पुराने जूते पहनने की अनुमति देते हैं।

1. अब भगवान बुद्ध सुबह जल्दी तैयार होकर, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर, एक भिक्षु को अपने साथी के रूप में साथ लेकर राजगृह गए। वह भिक्षु लंगड़ाते हुए धीरे-धीरे भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे चल रहा था।

अब एक गृहस्थ शिष्य, जिसने कई अस्तर वाले जूते पहने हुए थे, ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा। उन्हें देखकर उसने अपने जूते उतार दिए और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया; फिर उस भिक्षु के पास जाकर उसे प्रणाम किया और कहा:

2. 'महामहिम लंगड़ाकर क्यों चलते हैं?'

मेरे पैरों में छाले पड़ गए हैं, दोस्त।

'लेकिन महोदय, ये रहे जूते।'

'बस करो, मेरे दोस्त! भगवान बुद्ध ने अस्तर वाले जूते पहनने से मना किया है।'

'हे भिक्षु, जूते ले लो!'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दूसरों द्वारा त्यागे गए अस्तर वाले जूते पहनने की अनुमति देता हूँ। परन्तु अस्तर वाले नए जूते नहीं पहनने चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कटा अपराध का दोषी होगा।

<<<< पिछला(5.2) | अगला(5.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.3) | अगला(5.5) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-4: जब वरिष्ठ नागरिक जूते न पहनें तो जूते न पहनें।

1. उस समय भगवान बुद्ध खुले में बिना जूते पहने इधर-उधर टहल रहे थे। यह देखकर कि 'गुरुजी बिना जूते पहने टहल रहे हैं,' वरिष्ठ भिक्षु (थेरा भिक्षु) भी बिना जूते पहने टहलने लगे। परन्तु गुरुजी और थेरा भिक्षुओं के बिना जूते पहने टहल रहे थे, जबकि छब्बाग्य भिक्षु पैरों में वस्त्र पहने टहल रहे थे।

संयमी भिक्षु नाराज हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'जब गुरु और थेरा भिक्षु बिना जूते के चलते हैं, तो ये छब्बागिया भिक्षु जूते पहनकर कैसे चल सकते हैं?'

2. तब उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, कि छब्बाग्य भिक्षु जूते पहनकर चलते हैं, जबकि गुरु और वरिष्ठ भिक्षु नंगे चलते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा,

हे भिक्षुओं, ये मूर्ख व्यक्ति जूते पहनकर कैसे चल सकते हैं, जबकि (जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 में है) ऐसा नहीं है। हे भिक्षुओं, यहाँ तक कि वे गृहस्थ भी, जो किसी शिल्प के लिए सफेद वस्त्र धारण करते हैं जिससे उनकी जीविका चलती है, अपने गुरुओं के प्रति आदरपूर्ण, स्नेहपूर्ण और आतिथ्य सत्कारशील होते हैं। अतः हे भिक्षुओं, आप भी अपने प्रकाश को इस प्रकार चमकाएँ कि संसार को त्यागकर इतने सुशिक्षित सिद्धांत और अनुशासन में प्रवेश करने के बावजूद आप अपने गुरुओं (आचार्यों) और गुरुओं के प्रति आदरपूर्ण, स्नेहपूर्ण और आतिथ्य सत्कारशील हों। हे भिक्षुओं, इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या में वृद्धि होगी; बल्कि इससे अपरिवर्तित लोग धर्म से विमुख हो जाएंगे और बहुत से परिवर्तित लोग धर्म से विमुख हो जाएंगे। उन्हें इस प्रकार फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

हे भिक्षुओं, तुममें से कोई भी अपने गुरुओं या गुरुओं के पद पर आसीन व्यक्तियों, या अपने वरिष्ठों या वरिष्ठों के पद पर आसीन व्यक्तियों के बिना जूते पहने न चले। ऐसा करने वाला कोई भी व्यक्ति दुक्कता का दोषी होगा।

'और हे भिक्षुओं, तुममें से कोई भी खुले विश्राम (मठ) में जूते न पहने। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.3) | अगला(5.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.4) | अगला(5.6) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-5: बीमार पैरों वाले लोगों के लिए पैरों को ढकने की अनुमति।

1. उस समय एक भिक्षु के पैरों में दाने निकल आए थे। जब वह शौच करने जाता था, तो उसे उठाकर बाहर ले जाया जाता था। भगवान बुद्ध भिक्षुओं के विश्राम स्थलों से गुजरते हुए उन्हें ऐसा करते हुए देखा और उनके पास जाकर बोले:

2. 'हे भिक्षुओं, यह भिक्षु किस रोग से पीड़ित है?'

हे प्रभु, इस आदरणीय भाई के पैरों में दाने निकल आए हैं, और हम उन्हें शौच कराने के लिए बाहर ले जा रहे हैं।'

तब उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं पैरों को ढकने की अनुमति देता हूँ।'

जिसके पैरों में दर्द हो, छाले पड़ गए हों, या पैरों पर दाने निकल आए हों, उससे।

<<<< पिछला(5.4) | अगला(5.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.5) | अगला(5.7) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-6: कुर्सियों पर बैठने के लिए पैरों को ढकना अनुमत है; लकड़ी के जूते पहनना मना है।

1. उस समय भिक्षु बिना धुले पैरों से पलंगों या कुर्सियों पर चढ़ जाते थे; और वस्त्र और आसन गंदे हो जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जब आप में से कोई सोफे या कुर्सी पर चढ़ना चाहे तो मैं पैरों को ढकने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय जब भिक्षु अंधेरे में उपोसथ हॉल या सभा में जा रहे थे, तो वे खंभों या कांटों पर पैर रख देते थे, और उनके पैर घायल हो जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं खुले आराम (मठ) में पैरों को ढकने की अनुमति देता हूँ, और साथ ही मशाल या दीपक और छड़ी का उपयोग करने की भी अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय छब्बागीय भिक्षु रात में भोर होते समय उठ जाते थे; और लकड़ी के जूते पहनकर खुले में इधर-उधर घूमते हुए ऊँची, ऊँची और कर्कश आवाज़ में तरह-तरह की सांसारिक बातें करते थे—जैसे राजाओं, लुटेरों, राज्य मंत्रियों की कहानियाँ; सेनाओं, आतंक, युद्ध की कहानियाँ; मांस, पेय, वस्त्र, पलंग, मालाएँ, इत्र, रिश्ते, साज-सामान, गाँव, कस्बे, शहर, प्रांत, स्त्रियाँ, योद्धा और गलियों के विषय में बातें; दबे हुए खजानों की कहानियाँ, भूत-प्रेत की कहानियाँ; तरह-तरह की कहानियाँ; संसार पर चर्चाएँ; समुद्री आपदाएँ; जो है और जो नहीं है, उन सब पर बातें। ऐसा करते हुए वे हर तरह के कीड़ों को कुचलते और मार डालते थे, और भिक्षुओं की ध्यान साधना में खलल डालते थे।

4. मध्यम भिक्षु नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'छब्बागीय भिक्षु ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है' (&c., comp. chap. 4. 2)?

'यह सच है, प्रभु।'

उन्होंने उन्हें फटकारा और धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, लकड़ी के जूते नहीं पहनने चाहिए। जो कोई भी इन्हें पहनता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी होता है।"

<<<< पिछला(5.5) । अगला(5.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.6) । अगला(5.8) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-7: ताड़ या बांस के पत्तों से बने जूते न पहनें।

1. जब भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे बनारस की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। स्थान-स्थान भटकते हुए वे बनारस पहुँचे और वहाँ बनारस में भगवान बुद्ध इसिपताना नामक हिरण उद्यान में ठहरे।

उस समय छब्बाग्य भिक्षु, क्योंकि भगवान बुद्ध ने लकड़ी के जूते पहनने से मना किया था, ताड़ के छोटे-छोटे पेड़ तोड़कर उनके पत्तों से बने जूते पहनते थे। ताड़ के छोटे-छोटे पेड़ मुरझा जाते थे। लोग नाराज़ होकर बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्र भिक्षु ताड़ के छोटे-छोटे पेड़ तोड़कर उनके पत्तों से बने जूते कैसे पहन सकते हैं? ताड़ के छोटे-छोटे पेड़ मुरझा जाते हैं। (ऐसा करके) शाक्यपुत्र भिक्षु वनस्पति को नष्ट कर रहे हैं।'

2. भिक्षुओं ने उन लोगों को झुंझलाहट और आक्रोश में बड़बड़ाते हुए सुना; और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है' (&c., जैसा कि अध्याय 4.2 में है)?

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, वे मूर्ख लोग ऐसा कैसे कर सकते हैं? क्योंकि हे भिक्षुओं, लोग मानते हैं कि जीवन वृक्ष में निवास करता है। ऐसा आचरण विमुख होने की ओर नहीं ले जाएगा।'

हे भिक्षुओं, तालिपत के पत्तों से बने पैरों के आवरण पहनना उचित नहीं है। जो कोई भी इन्हें पहनता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी होता है।

3. उस समय छब्बागिया भिक्षु, क्योंकि भगवान बुद्ध ने तालिपत जूते पहनने से मना किया था, इसलिए वे छोटे बांस तोड़कर बांस के पत्तों से बने जूते पहनते थे (आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक बताया गया है, ताड़ के स्थान पर बांस का प्रयोग किया गया है)।

<<<< पिछला(5.6) | अगला(5.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.8

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.7) | अगला(5.9) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-8: सजावटी जूते न पहनना।

1. जब भगवान बुद्ध बनारस में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे भद्दिया की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। स्थान-स्थान भटकते हुए वे भद्दिया पहुँचे और वहाँ भद्दिया के वन में ठहरे।

उस समय भद्दिया के भिक्षु आभूषण के रूप में विभिन्न प्रकार के पैरों को ढकने वाले वस्त्रों का प्रयोग करते थे। वे बनाते थे,

या उन्होंने टीना घास, मुंजा घास, बब्बागा घास, खजूर के पत्तों, कमल घास और ऊन से अपने लिए पैरों के आवरण बना लिए थे। और उन्होंने शिक्षा, जिज्ञासा, नैतिकता, आत्म-एकाग्रता और ज्ञान की उपेक्षा की।

2. मध्यम भिक्षु नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए, यह सोचकर कि 'वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है' (&c., जैसा कि अध्याय 4.2 में है)?

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारा और कहा, 'वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?' इससे अलगाव नहीं होगा (आदि, जैसा कि अध्याय 4.2 में है)।

3. उन्हें इस प्रकार फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, टीना घास से बने जूते, न ही मुंजा घास से बने जूते, न ही बब्बा घास से बने जूते, न ही खजूर के पत्तों से बने जूते, न ही कमल घास से बने जूते, न ही ऊन से बने जूते, और न ही सोने, चांदी, मोती, बेरिल, क्रिस्टल, तांबे, कांच, टिन, सीसा या कांसे से सजे जूते। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

और हे भिक्षुओं, जो चप्पलें ले ली गई हों, उन्हें नहीं पहनना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के जूतों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ, जो जमीन से जुड़े होते हैं और जिन्हें हटाया नहीं जा सकता, शौचालय के जूते, मूत्रालय के जूते और कुल्ला करने के जूते।'

[<<<< पिछला(5.7)] | [अगला(5.9) >>>>]

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.9

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.8) | अगला(5.10) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-9: पशुओं के प्रति क्रूरता न करना; वाहनों का प्रयोग न करना।

1. जब भगवान बुद्ध भादीय में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे सावत्थी की ओर यात्रा पर निकल पड़े। स्थान-स्थान भटकते हुए वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध सावत्थी के जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन में निवास करने लगे।

2. उस समय छब्बाग्य भिक्षु अकिरावती नदी पार कर रही बछियों को उनके सींगों, कानों, गलफड़ों या पूंछों से पकड़ लेते थे, या उनकी पीठ पर उछल पड़ते थे, या कामुक विचारों से उनके गुप्तांगों को छूते थे; और वे बछड़ों को डुबोकर मार डालते थे। लोग नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्र भिक्षु ऐसा कैसे कर सकते हैं? यह तो ऐसा है जैसे मनुष्य अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हों।'

और भिक्षुओं ने उन्हें झुंझलाहट और आक्रोश में बड़बड़ाते हुए सुना; और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है' (आदि, अध्याय 4.2 देखें)?

'यह सच है, प्रभु।'

उन्होंने उन्हें फटकारा, और धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, बछियों को उनके सींगों, कानों, गलफड़ों या पूंछों से नहीं पकड़ना चाहिए। उनकी पीठ पर नहीं चढ़ना चाहिए। जो कोई उनकी पीठ पर चढ़ेगा, वह दुक्कत अपराध का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, उनके गुप्तांगों को कामुक विचारों से नहीं छूना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह तुलकाय (गंभीर) अपराध का दोषी होगा। और बछड़ों को नहीं मारना चाहिए। जो कोई उन्हें मारेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।

3. उस समय छब्बागीय भिक्षु ऐसे वाहनों में यात्रा करते थे जिनमें गायों को बीच में बैल के साथ जोता जाता था, या बैलों को बीच में गाय के साथ जोता जाता था। लोग नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'यह तो गंगा और माही के पर्व में किया जाता है।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, वाहनों में यात्रा न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कटा अपराध का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.8) | अगला(5.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.10

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.9) । अगला(5.11) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-10: सजावटी कुशन/कालीन का उपयोग न करें; जानवरों की खाल का उपयोग न करें; जानवरों को न मारें; बीमार व्यक्ति वाहनों का उपयोग कर सकते हैं।

1. उस समय एक भिक्षु कोसल देश से होते हुए भगवान बुद्ध से मिलने श्रावस्ती जा रहा था, तभी रास्ते में वह बीमार पड़ गया। वह भिक्षु मार्ग से हटकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गया।

जब लोगों ने उन्हें वहां बैठे देखा, तो उन्होंने कहा: 'आपकी श्रद्धा कहां जा रही है?'

'मित्रों, मैं भगवान बुद्ध के दर्शन करने श्रावस्ती जा रहा हूँ।'

2. 'चलिए, महोदय; हम साथ चलते हैं।'

'मैं नहीं कर सकता, दोस्तों। मैं बीमार हूँ।'

'तो फिर, महोदय, गाड़ी में बैठ जाइए।'

'बस करो, मित्रों! भगवान बुद्ध ने वाहनों के उपयोग को मना किया है।' और किसी को नाराज न करने के डर से, उन्होंने गाड़ी में बैठने से इनकार कर दिया।

और जब वह भिक्षु सावत्थी आया, तो उसने यह बात भिक्षुओं को बताई, और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, यदि आप बीमार हैं तो मैं आपको रथ का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

अब भिक्षुओं ने सोचा, 'क्या गाड़ियों को गायों से जोता जाए या बैलों से?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें बैलों द्वारा खींची जाने वाली या हाथों से खींची जाने वाली गाड़ी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु रथ के तेज झटकों से अत्यंत व्याकुल हो गया।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पालकी या सराय का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।

3. उस समय छब्बागिया भिक्षु विश्राम के लिए ऊँची और बड़ी वस्तुओं का उपयोग करते थे, अर्थात्: बड़े तकिए; दीवान; लंबे ऊन से ढके हुए आवरण; कई रंगों के चादर; ऊनी आवरण, सफेद या मोटे फूलों से सजे हुए; गद्दे; जानवरों की आकृतियों से रंगे हुए सूती आवरण; एक या दोनों तरफ लंबे बालों वाले गलीचे; सोने या रेशम से जड़े हुए कालीन; नाचने वाली लड़कियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले बड़े ऊनी कालीन; हाथी के लिए बने आलीशान बिस्तर, घोड़े के गलीचे या गाड़ी के गलीचे; पैंथर या हिरण की खाल; चंदवा से ढके हुए सोफे या दोनों सिरों पर लाल तकिए।

जब विहारों (मठों) में दर्शन करने गए लोगों ने ये सब देखा, तो वे नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए, यह सोचकर कि 'ऐसा लगता है मानो वे अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हों।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

4. हे भिक्षुओं, ऊँची और बड़ी वस्तुएँ जिन पर आराम किया जाता हो, जैसे कि बड़े तकिये (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 3 में वर्णित है, नीचे तक): दोनों सिरों पर गहरे लाल रंग के तकिये, उपयुक्त नहीं हैं।

इनका उपयोग किया जाता है। जो कोई भी इनका उपयोग करता है, वह दुक्कटा अपराध का दोषी है।'

5. उस समय छब्बाग्य भिक्षु, क्योंकि भगवान बुद्ध ने ऊँची और बड़ी वस्तुओं पर लेटने से मना किया था, शेर, बाघ और तेंदुआ जैसी उत्तम खालों का उपयोग करते थे। इन खालों को पलंगों और कुर्सियों के आकार के अनुसार काटा जाता था; और उन्हें पलंगों या कुर्सियों के अंदर या बाहर बिछाया जाता था।

विहारों में दर्शन करने गए लोगों ने जब ये सब देखा तो वे चिढ़ गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए, यह सोचकर कि 'ऐसा लगता है मानो वे अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हों।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

6. 'हे भिक्षुओं, शेर, बाघ और तेंदुआ जैसी उत्तम खालों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है।'

7. उस समय छब्बाग्य भिक्षुओं ने, क्योंकि भगवान बुद्ध ने उत्तम चमड़े के उपयोग पर रोक लगा दी थी, बैलों की खाल का उपयोग करना शुरू कर दिया। इन खालों को पलंगों या कुर्सियों के आकार में काटकर, उनके अंदर या बाहर बिछा दिया जाता था।

एक दुष्ट भिक्षु, एक दुष्ट भिक्षु के परिवार का मित्र था। एक सुबह, वह दुष्ट भिक्षु सजग होकर, वस्त्र धारण करके और पान का पात्र हाथ में लेकर उस दुष्ट शिष्य के घर गया और उसके लिए तैयार की गई चौकी पर बैठ गया। दुष्ट शिष्य उस दुष्ट भिक्षु के पास गया, उसे प्रणाम किया और उसके बगल में बैठ गया।

8. उस समय उस दुष्ट शिष्य के पास एक सुंदर, शांत और रंग-बिरंगा बैल था, जो किसी तेंदुआ के बच्चे जैसा था। वह दुष्ट भिक्षु उस बैल को बड़ी लालसा से निहार रहा था। उस दुष्ट शिष्य ने उस दुष्ट भिक्षु से कहा, 'हे प्रभु, आप उस बैल को इतनी लालसा से क्यों निहार रहे हैं?'

उसने कहा, 'मेरे दोस्त, मुझे उस बैल की खाल चाहिए।'

फिर उस दुष्ट शिष्य ने उस बैल को मारकर उसकी खाल उतारी और उस दुष्ट भिक्षु को दे दी। और वह दुष्ट भिक्षु उस खाल को अपने वस्त्र के नीचे छिपाकर चला गया।

9. अब गाय अपने बछड़े के लिए लालची होकर उस दुष्ट भिक्षु के पीछे-पीछे चलने लगी। भिक्षुओं ने कहा:

'दोस्त, ऐसा कैसे हो रहा है कि यह गाय तुम्हारे पीछे-पीछे इतनी दूर तक आती रहती है?'

'मुझे नहीं पता दोस्तों, यह मेरा पीछा क्यों करता रहता है।'

लेकिन उस दुष्ट भिक्षु का वस्त्र खून से सना हुआ था; और भिक्षुओं ने उससे पूछा,

'तुम्हारे इस वस्त्र पर खून के धब्बे कैसे लग गए?'

फिर उसने उन्हें पूरी बात बताई।

'यह कैसे हो सकता है, महोदय? आप किसी दूसरे को किसी जीवित प्राणी का जीवन छीनने के लिए उकसा रहे हैं!' 'हाँ, बिल्कुल।'

भिक्षुओं में से जो विनम्र थे, वे नाराज हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'यह भिक्षु किसी मनुष्य को किसी सजीव प्राणी का जीवन छीनने के लिए कैसे प्रेरित कर सकता है? क्या भगवान बुद्ध ने अनेक प्रवचनों में जीवन लेने की निंदा नहीं की है और उससे परहेज की प्रशंसा नहीं की है?'

और भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने इसी कारण भिक्षुओं की सभा बुलाई और उस दुष्ट भिक्षु से पूछा,

'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, कि हे भिक्षु, आप किसी दूसरे को किसी जीवित प्राणी को जीवन से वंचित करने के लिए उकसा रहे हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

लेकिन तुम इतनी मूर्खता कैसे कर सकते हो? क्या मैंने कई प्रवचनों में जीवन लेने की निंदा नहीं की है, हे मूर्ख, और उससे परहेज की प्रशंसा नहीं की है? हे मूर्ख, ऐसा आचरण नास्तिकों के धर्म परिवर्तन में सहायक नहीं होगा!

और इस प्रकार उसे फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उसने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

भिक्षुओं! किसी भी जीवित प्राणी को मृत्युदंड न दें। ऐसा करने वाले को विधि के अनुसार दंडित किया जाएगा। हे भिक्षुओं, बैल की खाल पहनना मना है। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध का दोषी है। और हे भिक्षुओं, किसी भी प्रकार की खाल का उपयोग करना भी मना है। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध का दोषी है।

<<<< पिछला(5.9) | अगला(5.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.10) | अगला (5.12) >>>>

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-11: वस्तुओं को बांधने के लिए चमड़े का उपयोग अनुमत है।

उस समय पुरुषों के पास चमड़े से ढके या बंधे हुए पलंग और कुर्सियाँ होती थीं। भिक्षु, किसी को नाराज करने के डर से, उन पर नहीं बैठते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गृहस्थों द्वारा व्यवस्थित आसनों पर बैठने की अनुमति देता हूँ, परन्तु उन पर लेटने की नहीं।'

उस समय विहार चमड़े की पट्टियों से बंधे होते थे। भिक्षु किसी को नाराज करने के डर से उन पर नहीं बैठते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (उन खालों पर) बैठने की अनुमति देता हूँ जिनका उपयोग केवल चीजों को बांधने के लिए किया जाता है।'

<<<< पिछला (5.10) | अगला (5.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

[<<<< पिछला (5.11)] | [अगला (5.13) >>>>]

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-12: भिक्षुओं को जूते पहनकर गांवों में जाने की अनुमति नहीं है, लेकिन बीमार भिक्षुओं को अनुमति है।

उस समय छब्बागिया भिक्षु जूते पहने हुए ही गांवों में जाया करते थे। लोग नाराज़ होते थे, आपस में कानाफूसी करते थे और क्रोधित होकर कहते थे, 'संसार के सुखों का आनंद लेने वाले लोग ऐसे ही व्यवहार करते हैं!'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम जूते पहने हुए गांवों में मत जाओ। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु बीमार था और बिना जूते पहने गाँव में नहीं जा सकता था। उसने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक बीमार भिक्षु को जूते पहने हुए गांव में जाने की अनुमति देता हूं।'

[<<<< पिछला (5.11)] | [अगला (5.13) >>>>]

टिपिटक >> विनय पिटक >> महावग्ग >> पांचवां खंडक >> 5.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

[<<<< पिछला(5.12)] | [अगला(6.1) >>>>]

महावग्ग

पांचवां खंडक (पैरों, वस्त्रों, सीटों, वाहनों आदि के नियम)

अध्याय-13: सीमावर्ती देशों में अनुमत हैं-चार भिक्षुओं द्वारा दीक्षा, जूते, नियमित स्नान, चमड़े के वस्त्र, भिक्षु को वस्त्रों का दान।

1. उस समय पूज्य महा कच्छायन कुरराघर के पास अवंती में स्थित 'प्रेसीच' नामक पहाड़ी पर ठहरे हुए थे। उस समय सोना कुटिकन्ना नामक उनका शिष्य पूज्य महा कच्छायन का निजी सेवक था।

और शिष्य सोना कुटिकन्ना उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य महा कच्छायन विराजमान थे, और उन्हें प्रणाम करके उनके पास बैठ गए। और जब वे इस प्रकार बैठे, तो उन्होंने पूज्य महा कच्छायन से कहा:

'जैसा कि मैं पूज्य महा कच्छायन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को समझता हूँ, गृहस्थ जीवन में रहने वाले व्यक्ति के लिए पूर्णतः उच्च जीवन जीना, उसकी पवित्रता को समझना और उसकी उज्ज्वल पूर्णता को प्राप्त करना कठिन है। इसलिए मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाना चाहता हूँ, नारंगी रंग के वस्त्र धारण करना चाहता हूँ और गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ जीवन (अर्थात भिक्षुत्व) में प्रवेश करना चाहता हूँ। पूज्य महा कच्छायन मुझे संसार त्यागने वालों के संघ में स्वीकार करें!'

2. 'हे सोना, क्या यह कठिन है कि तुम जीवन भर केवल एक पलंग पर सोकर और दिन में केवल एक बार भोजन करके उच्च जीवन व्यतीत करो? इसलिए, हे सोना, तुम गृहस्थ अवस्था में रहो और केवल एक पलंग पर सोकर और दिन में केवल एक बार भोजन करके बुद्धों के उपदेशों का पालन करते हुए उच्च जीवन का अभ्यास करो?'

तब शिष्य सोना कुटिकन्ना के मन में उत्पन्न हुई वैराग्य की इच्छा शांत हो गई।

दूसरी बार शिष्य सोना कुटिकन्ना ने [वही अनुरोध किया, और उसे वही उत्तर और वही परिणाम प्राप्त हुआ]।

और तीसरी बार सोना कुटिकन्ना ने वही निवेदन किया। तब पूज्य महा कच्छायन ने शिष्य सोना कुटिकन्ना को दीक्षा प्रदान की।

उस समय दक्षिणी देश और अवंती में भिक्षुओं की संख्या बहुत कम थी। तीन वर्ष बीतने के बाद, पूज्य महा कच्छायन ने बड़ी कठिनाई और परेशानी से संघ की एक सभा आयोजित की, जिसमें दस भिक्षु उपस्थित थे। तब उन्होंने पूज्य सोना को संघ के उच्च पद में प्रवेश दिया।

3. अब जब पूज्य सोना ने वर्षा ऋतु व्यतीत कर ली, तब एकांत ध्यान करते समय उनके मन में यह विचार आया:

मैंने सुना है कि भगवान बुद्ध फलां-फलां हैं। लेकिन मैंने अभी तक उन्हें आमने-सामने नहीं देखा है। यदि मेरे वरिष्ठ अधिकारी अनुमति दें तो मैं भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध के दर्शन करना चाहूंगा।

और संध्याकाल में पूज्य सोना ने अपना एकांत छोड़कर पूज्य महा कच्छायन के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके पास बैठ गए। इस प्रकार बैठने के बाद उन्होंने पूज्य महा कच्छायन से कहा:

4. 'हे पूज्यवर, जब मैं एकांत में ध्यान कर रहा था, तब मेरे मन में यह विचार आया, "मैंने (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है) सुना है।" अब मैं भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध के दर्शन करने जाऊंगा, यदि आप, मेरे वरिष्ठ होने के नाते, इसकी अनुमति दें।'

"यह अच्छा है, यह अच्छा है, सोना! तो जाओ, सोना, भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध के दर्शन करो। तुम देखोगे, सोना, कि भगवान बुद्ध कैसे श्रद्धा जगाते हैं, श्रद्धा के योग्य हैं, उनकी इंद्रियां शांत हैं, उनका मन शांत है, वे सर्वोच्च आत्म-संयम और शांति से परिपूर्ण हैं, मनुष्यों में हाथी के समान हैं, संयमित हैं, सतर्क हैं, और उनकी इंद्रियां उनके वश में हैं। इसलिए, सोम, मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करो और कहो, 'हे प्रभु! मेरे श्रेष्ठ, आदरणीय महा कच्छायन, भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करते हैं!'" और आगे कहते हैं, "हे प्रभु, दक्षिणी देश और अवंती में भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है। तीन वर्ष बीत जाने के बाद बड़ी कठिनाई और परेशानी से संघ की सभा आयोजित की गई, जिसमें दस सदस्य उपस्थित थे, और तब मुझे संघ के उच्च पद में प्रवेश दिया जा सका। अतः भगवान बुद्ध कृपा करें कि दक्षिणी देश और अवंती में कम सदस्यों की सभा से पहले उच्च दीक्षा की अनुमति दें। हे प्रभु, दक्षिणी देश और अवंती में मिट्टी ऊपर से काली, खुरदरी और पशुओं के पैरों से रौंदी हुई है। अतः भगवान बुद्ध कृपा करें कि दक्षिणी देश और अवंती में मोटी अस्तर वाले जूतों के उपयोग की अनुमति दें। हे प्रभु, दक्षिणी देश और अवंती में लोग स्नान को बहुत महत्व देते हैं और जल के उपयोग से शुद्ध होते हैं। हे प्रभु, दक्षिणी देश और अवंती में स्नान के निरंतर उपयोग की अनुमति दें। हे प्रभु, दक्षिणी देश और अवंती में भेड़ की खाल, बकरी की खाल आदि जैसी खालों का उपयोग किया जाता है। हिरण की खाल का इस्तेमाल चादर के रूप में किया जाता है। जिस प्रकार मध्य देश में एरागु, मोरागु, मगघरू और गंटू घास का उपयोग चादर के रूप में किया जाता है, उसी प्रकार दक्षिणी देश और अवंती में भेड़, बकरी और हिरण की खाल का उपयोग किया जाता है। भगवान बुद्ध कृपा करके वहां भी ऐसी चादरों के उपयोग की अनुमति दें।

7. हे प्रभु, आजकल लोग जिले से बाहर गए भिक्षुओं को यह कहकर वस्त्र भेंट करते हैं, 'हम यह वस्त्र फलां नाम के भिक्षु को भेंट कर रहे हैं।' जब वे लौटते हैं, तो भिक्षु उन्हें बताते हैं, 'आपको फलां नाम के व्यक्ति ने वस्त्र भेंट किए हैं।' परन्तु वे, कहीं उन्हें ठेस न पहुँच जाए, इसलिए वस्त्र स्वीकार नहीं करते और कहते हैं, 'हम निस्साग्य का अपराध न करें।' भगवान बुद्ध कृपया वस्त्रों के विषय में विस्तृत व्याख्या करें।

'हे प्रभु, ऐसा ही हो,' आदरणीय सोना ने आदरणीय महा कच्छायन की बात से सहमति जताते हुए कहा और अपने आसन से उठकर, अपना दाहिना भाग उनकी ओर रखते हुए, वहाँ से चले गए। अपना पलंग उठाकर, वे अपने वस्त्र पहने और हाथ में कुंड लिए सावत्थी की ओर चल पड़े।

8. और स्थान-स्थान भटकते हुए वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, जो कि सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका का उद्यान था। वहाँ पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया।

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: 'हे आनंद, अभी-अभी आए इस भिक्षु के लिए एक विश्राम स्थल तैयार कर दो।' और पूज्य आनंद ने सोचा:

'चूंकि भगवान बुद्ध ने मुझे अभी आए भिक्षु के लिए विश्राम स्थल तैयार करने का आदेश दिया है, इसलिए स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध उस भिक्षु के साथ एक ही विहार में रहना चाहते हैं, वे पूज्य सोना के साथ एक ही विहार में रहना चाहते हैं।' और उन्होंने भगवान बुद्ध के निवास स्थान पर पूज्य सोना के लिए विश्राम स्थल तैयार कर दिया।

9. फिर भगवान बुद्ध ने रात का अधिकांश समय खुले में बिताने के बाद विहार में प्रवेश किया। और पूज्य सोना ने भी रात का अधिकांश समय खुले में बिताने के बाद विहार में प्रवेश किया। भगवान बुद्ध सुबह तड़के, भोर के समय उठे और पूज्य सोना से निवेदन करते हुए कहा,

'धर्म आपको इस प्रकार स्पष्ट हो जाए कि आप बोल सकें।'

फिर भी, हे प्रभु!' पूज्य सोना ने भगवान बुद्ध की बात से सहमति जताते हुए कहा; और उन्होंने अष्टक-वग्गिकानी (अष्टक-वग्गिकानी) के सभी श्लोकों का पाठ किया।

और पूज्य सोना के पाठ के समापन पर, भगवान बुद्ध ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा,

हे भिक्षु, आप अत्यंत उत्कृष्ट हैं! आपने अष्टम तत्वों को भली-भांति ग्रहण कर लिया है, उन पर गहन चिंतन किया है और उन्हें अच्छी तरह से याद कर लिया है। आपकी वाणी सुरीली, विलक्षण और मधुर है, जिससे बातें स्पष्ट हो जाती हैं। आपको दीक्षा लिए हुए कितने वर्ष हो गए हैं?

'एक वर्ष, मेरे प्रभु!'

10. 'लेकिन आपने इसे इतने लंबे समय तक क्यों टाल दिया?'

''हे प्रभु, बहुत समय हो गया जब मैंने वासनाओं के खतरे को देखा था, लेकिन गृहस्थी का जीवन काम और चिंताओं से भरा रहता है।''

और जब भगवान बुद्ध ने वह बात सुनी, तो उन्होंने उस समय अपनी भावनाओं को व्यक्त किया।

जब उसने संसार के खतरे को देख लिया हो, जब उसने सत्य को समझ लिया हो, जब वह उपाधि से मुक्त हो गया हो,

'तीर्थयात्री को पाप में कोई आनंद नहीं मिलता, उसका आनंद सत्य और पवित्रता में है।'

11. तब पूज्य सोना ने सोचा, 'भगवान बुद्ध मुझसे प्रसन्न हैं। यही वह समय है जिसके बारे में मेरे वरिष्ठ ने बताया था।' और अपने आसन से उठकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर समेटकर, उन्होंने भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर कहा:

'हे प्रभु! मेरे श्रेष्ठ महा कच्छायन भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करते हैं। दक्षिणी देश में और अवंती में (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4-7 में, संदेश के अंत तक) हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'दक्षिणी देश और अवंती में भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है। मैं सीमावर्ती देशों में उपसंपदा (दीक्षा) केवल चार भिक्षुओं की बैठक में आयोजित करने की अनुमति देता हूँ, अध्यक्ष के अतिरिक्त, जो कि विनय-धर होना चाहिए।'

12. इस अनुच्छेद में निम्नलिखित सीमावर्ती क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है। पूर्व में कागांगल नगर है, और उसके आगे महासला है। उसके आगे सीमावर्ती क्षेत्र है; इसके इस ओर मध्य क्षेत्र है। दक्षिण-पूर्व में सलालावती नदी है। उसके आगे सीमावर्ती क्षेत्र है; इसके इस ओर मध्य क्षेत्र है। दक्षिण में सेतकन्निका नगर है। उसके आगे सीमावर्ती क्षेत्र है; इसके इस ओर मध्य क्षेत्र है। पश्चिम में थुना का ब्राह्मण (पुजारी) क्षेत्र है। उसके आगे सीमावर्ती क्षेत्र है; इसके इस ओर मध्य क्षेत्र है। उत्तर में उसिराधागा नामक पर्वत श्रृंखला है। उसके आगे सीमावर्ती क्षेत्र है; इसके इस ओर मध्य क्षेत्र है। हे भिक्षुओं, ऐसे सीमावर्ती क्षेत्रों में, मैं केवल चार भिक्षुओं की बैठक में उपसंपदा (दीक्षा) आयोजित करने की अनुमति देता हूँ, अध्यक्ष के अतिरिक्त, जो कि विनय-धर होना चाहिए।

13. 'हे भिक्षुओं, दक्षिणी देश और अवंती में मिट्टी ऊपर से काली और खुरदरी है, और पशुओं के पैरों से रौंदी हुई है। हे भिक्षुओं, मैं सभी सीमावर्ती देशों में मोटी परत वाले जूते पहनने की अनुमति देता हूँ।'

हे भिक्षुओं, दक्षिणी देश और अवंती में, लोग स्नान को बहुत महत्व देते हैं और जल के उपयोग से शुद्ध होते हैं। हे भिक्षुओं, मैं सभी सीमावर्ती देशों में निरंतर स्नान की अनुमति देता हूँ।

हे भिक्षुओं, दक्षिणी देश और अवंती में भेड़, बकरी और हिरण की खाल का उपयोग आवरण के रूप में किया जाता है। जिस प्रकार मध्य देश में एरागु, मोरागु, मगघरु और गंटू घास का उपयोग आवरण के रूप में किया जाता है, उसी प्रकार दक्षिणी देश और अवंती में भेड़, बकरी और हिरण की खाल का उपयोग किया जाता है। हे भिक्षुओं, मैं सभी सीमावर्ती देशों में भेड़, बकरी और हिरण की खाल का उपयोग आवरण के रूप में करने की अनुमति देता हूँ।

'हे भिक्षुओं, वहाँ भी यह प्रथा है कि जिले से चले गए भिक्षुओं को वस्त्रों का एक सेट देते हुए कहते हैं, "हम यह वस्त्र अमुक नाम के भिक्षु को देते हैं।" हे भिक्षुओं, मैं आपको ऐसे वस्त्र स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ। वस्त्रों का यह सेट उस व्यक्ति के हाथ में पहुँचने से पहले दस दिनों के नियम के अधीन नहीं होता, जिसके लिए यह दिया गया था।'

<<<< पिछला(5.12) । अगला(6.1) >>>>

छठा खंडाका (औषधियाँ)
(दवाइयों के बारे में)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.13) । अगला(6.2) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय तपती गर्मी के प्रकोप से पीड़ित भिक्षुओं ने पिया हुआ चावल का दूध और खाया हुआ भोजन उल्टी कर दिया। इसके परिणामस्वरूप वे दुबले-पतले, खुरदुरे, बदसूरत और पीले पड़ गए, और उनके अंगों पर नसें उभर आने लगीं।

और भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को दुबला-पतला, खुरदरा, बदसूरत, पीला और लगातार पीला होता जा रहा देखा, जिनके अंगों पर नसें उभरी हुई थीं। यह देखकर उन्होंने पूज्य आनंद से पूछा:

'आनंद, ऐसा क्यों है कि भिक्षु अब इतने दुबले-पतले, खुरदुरे आदि हो गए हैं?'

'हे प्रभु, इस समय भिक्षु गर्मी के मौसम के रोग से ग्रसित हैं; वे पिया हुआ चावल का दूध और खाया हुआ भोजन उल्टी कर देते हैं। तब से वे दुबले-पतले, खुरदुरे, बदसूरत, पीले और लगातार पीले होते जा रहे हैं, और उनके अंगों पर नसें उभरने लगी हैं।'

2. तब एकांत ध्यान करते समय भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया: 'इस समय भिक्षुओं (आदि, नीचे तक) के अंगों पर सूजन है। मैं अब भिक्षुओं के लिए कौन सी औषधियाँ लिखूँ, जो सामान्य औषधि के रूप में मान्य हों और शरीर में समाहित हो जाएँ, यद्यपि उन्हें

सामान्य भोजन न माना जाए?' और भगवान बुद्ध ने सोचा: 'ये पाँच औषधियाँ—अर्थात घी, मक्खन, तेल, शहद, गुड़—ऐसी ही औषधियाँ हैं। तो मैं इन्हें ऐसी औषधियों के रूप में लिखूँ जिन्हें भिक्षु उचित समय पर ग्रहण कर सकें और उचित समय पर उपयोग कर सकें।'

3. और शाम को, जब भगवान बुद्ध धर्म प्रवचन देने के बाद ध्यान से उठे, तो उन्होंने भिक्षुओं को इस विषय में संबोधित करते हुए कहा,

'हे भिक्षुओं, जब मैं एकांत में ध्यान कर रहा था, तब मेरे मन में यह विचार आया: "इस समय (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 2 में है, आगे तक:) भौतिक भोजन।" तब मैंने सोचा: "ये पाँच (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 2 में है, आगे तक:) उचित समय पर।" हे भिक्षुओं, मैं इन पाँच चीजों को उचित समय पर ग्रहण करने और उचित समय पर उपयोग करने के लिए औषधि के रूप में निर्धारित करता हूँ।'

4. उस समय भिक्षुओं ने उचित समय पर उन पाँचों चीजों को ग्रहण किया और उनका उचित उपयोग किया। फिर भी, जो भोजन सादा और खुरदरा था, वह भी वे पचा नहीं पाते थे, वसायुक्त भोजन तो बिलकुल भी नहीं। तब वे—गर्मी के मौसम के रोगों और भूख की कमी, दोनों से पीड़ित होकर—एक साथ और भी दुबले-पतले, खुरदुरे, बदसूरत, पीले और लगातार पीले होते गए, और उनके अंगों पर नसें उभरने लगीं।

और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को और भी दुबला-पतला देखा, इत्यादि। और जब उन्होंने यह देखा, तो उन्होंने पूज्य आनंद से पूछा: 'आनंद, ऐसा कैसे हो गया कि भिक्षु अब और भी दुबले-पतले हो गए हैं, इत्यादि?'

5. 'हे प्रभु, वर्तमान में ये भिक्षु, जो केवल उचित समय पर पाँच औषधियों का प्रयोग करते हैं, साधारण भोजन को भी नहीं पचा पाते, जो कि खुरदरा होता है, और तैलीय भोजन तो और भी अधिक। तब वे आक्रमण के शिकार होकर (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में नीचे तक है:) अपने अंगों पर खड़े हो जाते हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें न केवल उन पांच औषधियों को ग्रहण करने की अनुमति देता हूं, बल्कि उचित समय पर और अन्य समयों पर भी उनका उपयोग करने की अनुमति देता हूं।'

<<<< पिछला(5.13) | अगला(6.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.1) | अगला(6.3) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय दो

1. उस समय जो भिक्षु बीमार थे, उन्हें औषधि के रूप में वसायुक्त पदार्थों की आवश्यकता थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भालू, मछली, मगरमच्छ, सूअर और गधे की चर्बी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ, बशर्ते इसे सही समय पर प्राप्त किया जाए, सही समय पर पकाया जाए, सही समय पर मिलाया जाए और तेल के साथ ग्रहण किया जाए।'

2. 'हे भिक्षुओं, यदि वसा को अनुचित समय पर ग्रहण किया जाए, अनुचित समय पर पकाया जाए, अनुचित समय पर मिलाया जाए और फिर ग्रहण किया जाए, तो भिक्षु तीन दुक्कटा अपराधों का दोषी होता है।'

'हे भिक्षुओं, यदि इसे सही समय पर प्राप्त किया जाए, गलत समय पर पकाया जाए, गलत समय पर मिलाया जाए और फिर ग्रहण किया जाए, तो भिक्षु दो दुक्कटा अपराधों का दोषी होता है।'

'हे भिक्षुओं, यदि इसे सही समय पर प्राप्त किया जाए, सही समय पर पकाया जाए और गलत समय पर मिलाया जाए, और फिर ग्रहण किया जाए, तो भिक्षु दुक्कटा अपराध का दोषी होता है।'

'यदि इसे सही समय पर प्राप्त किया जाए, सही समय पर पकाया जाए, सही समय पर मिलाया जाए और फिर ग्रहण किया जाए, तो भिक्षु दोषी नहीं है।'

<<<< पिछला(6.1) | अगला(6.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.2) | अगला(6.4) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-3.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के लिए जड़ों की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें हल्दी, अदरक, उरिस की जड़, सफेद उरिस की जड़, अतिविसा, काला हेलेबोर, उशिरा की जड़, भद्दामुत्तक और अन्य सभी जड़ों का उपयोग औषधि के रूप में करने की अनुमति देता हूँ, जो कठोर या नरम भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं और जिन्हें बीमार भिक्षु अन्यथा नहीं खा सकते। इन्हें ग्रहण करके जीवन भर के लिए संग्रहित किया जा सकता है; और आवश्यकता पड़ने पर इनका सेवन किया जा सकता है। बिना आवश्यकता के इनका सेवन करने वाला भिक्षु दुक्कत अपराध का दोषी है।

2. उस समय बीमार भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार की जड़ों से बने आटे की औषधि की आवश्यकता थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चक्की का पत्थर और पीसने के लिए एक और पत्थर का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।

<<<< पिछला(6.2) | अगला(6.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.3) | अगला(6.5) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-4.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में कसैले काढ़े की आवश्यकता थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कसैले काढ़े औषधि के रूप में प्रयोग करने की अनुमति देता हूँ—नींबा, कुटगा, पक्कवा, नट्टमाला और अन्य सभी कसैली जड़ें जो औषधि के रूप में प्रयोग की जाती हैं, जो कठोर या नरम भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं, जिसे बीमार भिक्षु अन्यथा नहीं खा सकते। इन्हें ग्रहण करके जीवन भर के लिए संग्रहित किया जा सकता है; और आवश्यकता पड़ने पर इनका सेवन किया जा सकता है। बिना आवश्यकता के इनका सेवन करने वाला भिक्षु दुक्कटा अपराध का दोषी है।

<<<< पिछला(6.3) । अगला(6.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.4) । अगला(6.6) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-5.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में पत्तों की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधि के रूप में पत्तियों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—नींबू, कुटगा, पटोला, तुलसी, कप्पसिका और अन्य सभी पत्तियाँ जिनका उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है और जो कठोर या नरम भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं, जिसे बीमार भिक्षु अन्यथा नहीं खा सकते। इन्हें ग्रहण किया जा सकता है और संग्रहित किया जा सकता है (आदि, जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है, दुक्कटा अपराध के दोषी होने पर)।'

<<<< पिछला(6.4) । अगला(6.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.5) । अगला(6.7) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-6.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में फलों की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधि के रूप में फलों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—विलंग, पिप्पला और मारिका मिर्च; हरितक, विभीतक और आमलक मायरोबलन; गोठ फल; और अन्य सभी फल जो औषधि के रूप में उपयोग किए जाते हैं और भोजन को स्वादिष्ट बनाते हैं, चाहे वह कठोर हो या नरम, जिसे बीमार भिक्षु अन्यथा नहीं खा सकते। इन्हें ग्रहण और संग्रहित किया जा सकता है (आदि, जैसा कि अध्याय 4 में नीचे दिया गया है): दुक्कत अपराध का दोषी।'

<<<< पिछला(6.5) | अगला(6.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.6) | अगला(6.8) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय 7।

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में विभिन्न प्रकार के गोंद की आवश्यकता थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधि के रूप में गोंद का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—हिंगु (सुगंधित नमक), हिंगु लाख, सिपातिका, टका, टका-पत्ती, टका-पन्नी, सग्गुलसा, और अन्य सभी गोंद जिनका उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है, और इनका उपयोग करना (अध्याय 4 से आगे तक, जैसा कि इसमें वर्णित है) दुक्कटा अपराध है।'

<<<< पिछला(6.6) | अगला(6.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.7) | अगला(6.9) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-8.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में विभिन्न प्रकार के नमक की आवश्यकता थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधि के रूप में नमक का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—समुद्री नमक, काला नमक, सेंधा नमक, रसोई का नमक, लाल नमक, और अन्य सभी नमक जिनका उपयोग औषधि में किया जाता है (आदि, जैसा कि अध्याय 4 में नीचे दिया गया है): इनका उपयोग दुक्कता अपराध है।'

<<<< पिछला(6.7) | अगला(6.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.8) | अगला(6.10) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-9

1. उस समय पूज्य आनंद के वरिष्ठ शिष्य, पूज्य बेलात्थासिस को पपड़ीदार घावों का रोग हो गया था; और उस पपड़ी से निकलने वाले स्राव के कारण उनके वस्त्र उनके शरीर से चिपक गए थे। भिक्षुओं ने उन वस्त्रों को पानी से गीला करके उनके शरीर से अलग किया।

भगवान बुद्ध रात्रि के लिए ठहरने की जगह की तलाश में भटक रहे थे, तभी उन्होंने उन्हें ऐसा करते देखा और उनके पास जाकर उनसे पूछा:

'हे भिक्षुओं, इस भिक्षु को क्या हुआ है?'

'आदरणीय व्यक्ति को मोटी पपड़ीदार फुंसियों का रोग है; और उस पपड़ी से निकलने वाले स्राव के कारण उनके वस्त्र उनके शरीर से चिपक जाते हैं। इसलिए हम उन वस्त्रों को पानी से गीला करते हैं, और उन्हें (उनके शरीर से) अलग करते हैं।'

2. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, खुजली, फोड़े, स्राव, पपड़ी या दुर्गंधयुक्त शरीर वाले किसी भी व्यक्ति को औषधि के रूप में चूर्ण का उपयोग करने की अनुमति है, और स्वस्थ व्यक्तियों को सूखे गोबर, मिट्टी और रंगीन पदार्थों का उपयोग करने की अनुमति है। हे भिक्षुओं, मैं ओखली और मूसल के उपयोग की भी अनुमति देता हूँ।

<<<< पिछला(6.8) | अगला(6.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.9) | अगला(6.11) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-10.

1. उस समय बीमार भिक्षुओं को औषधि के रूप में छाने हुए चूने की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं चूने की छलनी के उपयोग की अनुमति देता हूँ।' (चूना = चूना पत्थर का चूर्ण)

उन्हें बहुत बारीक चूने की आवश्यकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं कपड़े की छलनी के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय एक भिक्षु को एक असामान्य बीमारी हो गई थी। उसके गुरु और वरिष्ठ ने उसकी देखभाल की, फिर भी वह ठीक नहीं हुआ। वह एक ऐसे स्थान पर गया जहाँ सूअर का वध किया जाता था, और उसने कच्चा मांस खाया और खून पिया। इससे उसकी बीमारी ठीक हो गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं अमानवीय रोग की स्थिति में कच्चे मांस और रक्त के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(6.9) | अगला(6.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.11

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.10) | अगला (6.12) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-11.

1. उस समय एक भिक्षु को आँखों की बीमारी हो गई थी। वे उसे शौच कराने के लिए बाहर ले जाया करते थे। भगवान बुद्ध भिक्षुओं के विश्राम कक्ष से गुजरते हुए उन्हें ऐसा करते हुए देख लिया। उन्हें देखकर वे उनके पास गए और उन भिक्षुओं से पूछा:

'हे भिक्षुओं, यह भिक्षु किस रोग से पीड़ित है?'

2. 'हे प्रभु, इस पूजनीय व्यक्ति को आँखों की बीमारी है। इसलिए हम उन्हें शौच कराने के लिए बाहर ले जा रहे हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं आंखों में लगाने वाले मलहमों के उपयोग की अनुमति देता हूँ; अर्थात् काला काजल, रस मलहम, सोता मलहम, गेरुका और कपाल।'

उन्हें मलहम बनाने के लिए सुगंधित पदार्थों की आवश्यकता थी जिन्हें वे पीसकर इस्तेमाल कर सकें।

'हे भिक्षुओ, मैं चंदन की लकड़ी, तगर, काली अनुसारी, कालिया और भद्दमुत्तक के उपयोग की अनुमति देता हूं।'

<<<< पिछला (6.10) | अगला (6.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.12

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.11) | अगला (6.13) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-12.

1. उस समय भिक्षु पिसी हुई मलहम को बर्तनों और तश्तरियों में रखते थे। वे जड़ी-बूटियों के पाउडर और धूल से ढक जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं मरहम रखने के लिए एक डिब्बे के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु विभिन्न प्रकार के मरहम रखने के डिब्बे - सोने के और चांदी के - अपने साथ लेकर चलते थे। लोग इससे नाराज़ होते, बड़बड़ाते और क्रोधित होकर कहते, 'ये तो संसार में रहने वालों की तरह हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार के मरहम रखने वाले डिब्बे, सोने के और चांदी के, प्रयोग के लिए वर्जित हैं। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कता का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं हड्डी, हाथी दांत, सींग, नल, बांस, लकड़ी, लाख, फलों के छिलके, पीतल या शंख के मध्य भाग से बने ऐसे डिब्बों के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।

2. उस समय मरहम के डिब्बों पर ढक्कन नहीं होते थे। (मरहम) पर जड़ी-बूटियों का पाउडर और धूल छिड़की जाती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं भिक्षुओं को ढक्कन के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

ढक्कन अक्सर गिर जाते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें धागे से ढक्कन बांधने और उसे डिब्बे पर कसने की अनुमति देता हूँ।'

बक्से गिरने लगते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें धागे से बक्सों को सिलने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय भिक्षु अपनी उंगलियों से मरहम मलते थे, जिससे आँखों में जलन होती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको मरहम लगाने के लिए छड़ी या धारक का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु कई प्रकार की मरहम-डंडियाँ रखते थे—सोने की और चाँदी की। लोग नाराज़ होते थे, बड़बड़ाते थे और क्रोधित होकर कहते थे, 'ये तो संसार में रहने वालों की तरह हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार के मरहम रखने वाले पात्रों का प्रयोग वर्जित है। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं हड्डी, हाथीदांत, सींग, नाला, बांस, लकड़ी, लाख, फल, पीतल या शंख से बने मरहम रखने वाले पात्रों के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय मरहम की छड़ें जमीन पर गिरकर खुरदरी हो जाती थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं मरहम की छड़ियों के लिए एक डिब्बे के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु अपने हाथों में मरहम की डिब्बियां और मरहम की छड़ियां लेकर घूमते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं मरहम की डिब्बी रखने के लिए थैली के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर बांधने वाला पट्टा नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको कंधे पर पट्टा (जिससे मरहम की पेटी ले जाई जा सके) या धागे (जिससे उसे सिला या बांधा जा सके) के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.11) । अगला (6.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.12) । अगला (6.14) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-13.

1. उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा को सिरदर्द था।

'हे भिक्षुओं, मैं सिर पर थोड़ा सा तेल लगाने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं नाक के माध्यम से (औषधि) ग्रहण करने की प्रथा की अनुमति देता हूँ।'

नाक बह रही थी।

'हे भिक्षुओं, मैं नाक में चम्मच डालने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं के पास सोने और चांदी से बने कई प्रकार के नाक के चम्मच थे। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'ये तो संसार में रहने वालों के समान हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार के नाक के चम्मचों का प्रयोग वर्जित है। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, मैं हड्डी (आदि, जैसा कि अध्याय 12 से आगे तक वर्णित है) या शंख से बने नाक के चम्मचों के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

2. नाक ने दवा को असमान मात्रा में अवशोषित किया।

'हे भिक्षुओं, मैं दो नाक वाले चम्मच के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस सुगंध को सूंघने की अनुमति देता हूँ।'

वे पहले मादक पदार्थों को बाती पर फैलाते थे और फिर उनकी सुगंध सूंघते थे, जिससे उनके गले जल जाते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं सुगंध फैलाने के लिए पाइप के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं के पास कई प्रकार की बांसुरी (आदि, जैसा कि ৪-1 के अंतिम खंडों में अंत तक है) थीं।

उस समय सुगंध नलिकाएं खुल गईं और कीड़े अंदर घुस गए।

हे भिक्षुओं, मैं आपको पाइपों पर ढक्कन लगाने की अनुमति देता हूँ।

उस समय भिक्षु अपने हाथों में बांसुरी लेकर घूमते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको सुगंधित पाइप ले जाने के लिए थैली का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

सुगंध नलिकाएं एक दूसरे से रगड़ खा रही थीं।

'हे भिक्षुओं, मैं दोहरे थैले के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर बांधने वाला पट्टा नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं कंधे पर पट्टा (जिससे दोहरी थैली ले जाई जा सके) या धागे (जिससे इसे सिला जा सके) के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.12) | अगला (6.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.13) | अगला (6.15) >>>>

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-14.

1. उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा को पेट में गैस की समस्या थी। चिकित्सकों ने उन्हें तेल पीने की सलाह दी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तेल का काढ़ा पीने की अनुमति देता हूँ।'

काढ़े में तेज पेय मिलाना आवश्यक था।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम तेल के काढ़े में तेज पेय मिला सको।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु औषधीय तेलों के काढ़े में बहुत अधिक मादक पेय मिला देते थे, जिससे वे नशे में धुत हो जाते थे।

'हे भिक्षुओं, जब तेल में अत्यधिक मादक पेय मिला दिया जाए तो उसे नहीं पीना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तेल से बने ऐसे काढ़े पीने की अनुमति देता हूँ जिनमें मादक पेय मिला हो, और जिनमें मादक पेय का न तो रंग, न ही गंध और न ही स्वाद प्रकट हो।'

2. उस समय भिक्षुओं के पास एक ऐसा काढ़ा था जिसमें बहुत अधिक मादक पेय मिला दिया गया था। तब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'इस तेल का क्या करें जिसमें बहुत अधिक मादक पेय मिला दिया गया है?'

'हे भिक्षुओं, मैं इसे मरहम के रूप में उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा के पास तेल का काढ़ा तो काफी मात्रा में था, लेकिन उसे रखने के लिए उनके पास कोई बर्तन नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के बर्तनों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ: पीतल के बर्तन, लकड़ी के बर्तन और फलों के छिलकों से बने बर्तन।'

3. उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा को गठिया हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पसीना बहाने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन जड़ी-बूटियों का उपयोग करके पसीना लाने की अनुमति देता हूँ जिनका यह प्रभाव होता है।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक विशाल भाप स्नान का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भांग के पानी (बैंग) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधीय जड़ी-बूटियों से भीगे हुए जल में गर्म स्नान करने की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा को रुक-रुक कर बुखार रहता था।

'मैं, हे भिक्षुओं, रक्त बहाने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, रक्त निकालने के लिए सींग का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा के पैरों में छाले पड़ गए थे।

'हे भिक्षुओं, मैं पैरों में मरहम लगाने की अनुमति देता हूँ।'

(बीमारी में) कोई सुधार नहीं हुआ।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यात्रियों के पैर धोने के लिए जल तैयार रखने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु को फोड़े हो गए थे।

'मैं भिक्षुओं, लांस के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

कसैली जड़ी-बूटियों के काढ़े की आवश्यकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं कसैली जड़ी-बूटियों के काढ़े की अनुमति देता हूँ।'

तिल की मरहम की आवश्यकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तिल के लेप के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

5. कंप्रेस की आवश्यकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको कंप्रेस के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

घाव को कपड़े से बांधना आवश्यक था।

'हे भिक्षुओं, मैं घावों को बांधने के लिए पट्टियों के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

घाव में खुजली हो रही थी।

'हे भिक्षुओं, मैं घाव पर सरसों का पाउडर छिड़कने की अनुमति देता हूँ।'

घाव नम हो गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (घाव पर) धूनी देने की अनुमति देता हूँ।'

घाव पर मांस का एक उभरा हुआ टुकड़ा बन गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (अहंकारी शरीर को) छुरी से काटने की अनुमति देता हूँ।'

घाव भर नहीं रहा था।

'हे भिक्षुओं, मैं घावों पर तेल लगाने की अनुमति देता हूँ।'

तेल बह कर बाहर निकल गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं उत्तम वस्त्रों के प्रयोग और घावों के उपचार के सभी प्रकार के तरीकों की अनुमति देता हूँ।'

6. उस समय एक भिक्षु को सांप ने काट लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं चारों प्रकार की अशुद्धियों - गोबर, मूत्र, राख और मिट्टी - को स्वीकार करता हूँ।'

अब भिक्षुओं ने सोचा: 'क्या ये वस्तुएँ उन वस्तुओं में से हैं जिन्हें दूसरों द्वारा भेंट किए बिना भी लिया जा सकता है, या उन वस्तुओं में से हैं जिन्हें भेंट किए बिना नहीं लिया जा सकता?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं इन वस्तुओं को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ यदि कोई इन्हें अर्पित करने के लिए उपस्थित हो, और यदि कोई उपस्थित न हो, तो आप स्वयं इन्हें ले लें और इनका उपयोग करें।'

उस समय एक भिक्षु ने विष पी लिया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गोबर का काढ़ा (उल्टी कराने के लिए) देने की अनुमति देता हूँ।'

तब भिक्षुओं ने सोचा: 'क्या यह उन चीजों में से है जिन्हें दूसरों द्वारा भेंट किए बिना भी लिया जा सकता है, या यह उन चीजों में से है जिन्हें भेंट किए बिना नहीं लिया जा सकता?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि उचित ग्रहण वही होता है जब कोई व्यक्ति स्वयं द्वारा निर्मित वस्तु ग्रहण करता है; और

कि ऐसी चीज दूसरों से दोबारा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है।'

7. उस समय एक भिक्षु घरा-दिनक रोग से पीड़ित था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम उसे हल से खोदी गई मिट्टी का काढ़ा पिलाओ।'

उस समय एक भिक्षु को कब्ज हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उसे जले हुए चावल की राख का काढ़ा पिलाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु को पीलिया हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गाय के मूत्र से बना काढ़ा पिलाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु को त्वचा रोग हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं सुगंधित तेलों से अभिषेक की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु के शरीर में रसों की अधिकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दस्त लगाने की अनुमति देता हूँ।'

स्पष्ट दलिया की आवश्यकता थी।

'हे भिक्षुओं, मैं शुद्ध दलिया के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

प्राकृतिक रस की आवश्यकता थी।

'मैं भिक्षुओं, प्राकृतिक रस के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

कृत्रिम और प्राकृतिक जूस दोनों की आवश्यकता थी।

हे भिक्षुओं, मैं कृत्रिम और प्राकृतिक रस के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

मांस का शोरबा आवश्यक था।

'हे भिक्षुओं, मैं मांस के शोरबे के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.13) | अगला (6.15) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.15

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.14) | अगला(6.16) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-15.

1. उस समय पूज्य पिलिनदावक्खा ने राजगृह में एक पर्वतीय गुफा को साफ करवाया, ताकि उसे एक गुफा निवास स्थान बनाया जा सके। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य पिलिनदावक्खा थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य पिलिनदावक्खा को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

और जब वह इस प्रकार बैठे थे, तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने पूज्य पिलिनदावक्खा से कहा, 'मेरे स्वामी, थेरा, क्या करवा रहे हैं?'

'मैं एक गुफा को साफ करवा रहा हूं, ताकि उसे गुफानुमा आवास में परिवर्तित कर सकूं।'

'तो क्या आपको, महोदय, एक अरमिका (पार्क-कीपर) की आवश्यकता है?'

'ऐसा नहीं है, महाराज! भगवान बुद्ध ने उद्यान रक्षक की नियुक्ति का आदेश नहीं दिया है।'

'तो फिर, महोदय, आप भगवान बुद्ध से (इस मामले के बारे में) जानकारी लें और मुझे बता दें।'

'बहुत अच्छा, हे राजा!' आदरणीय पिलिन्दवक्खा ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार की बात पर सहमति जताते हुए कहा।

2. तब पूज्य पिलिनदावक्खा ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। धर्म प्रवचन आदि से शिक्षा प्राप्त करने के बाद मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार अपने आसन से उठे और पूज्य पिलिनदावक्खा के समक्ष प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा करते हुए वहां से चले गए।

तब पूज्य पिलिनदावक्खा ने भगवान बुद्ध को संदेश भेजा, 'हे प्रभु! मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार मुझे एक उद्यान रक्षक भेंट करना चाहते हैं। हे प्रभु, मुझे क्या करना चाहिए?'

तब भगवान बुद्ध ने इस विषय में धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उद्यान रक्षक के रूप में पद स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।'

3. फिर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार दूसरी बार उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य पिलिनदावक्ख थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य पिलिनदावक्ख को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

और जब वह इस प्रकार बैठे थे, तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने पूज्य पिलिनदावक्खा से कहा, 'क्या भगवान बुद्ध ने किसी उद्यान-रक्षक को अनुमति दी है?'

'जी हां, हे राजा!'

तब, महोदय, मैं आपको एक पार्क-कीपर से मिलवाऊंगा।'

अब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने आदरणीय पिलिनदावक्खा को एक उद्यान रक्षक देने का वादा करने के बाद उसे भुला दिया। और कुछ समय बाद उसने

उसे यह बात याद आ गई, और उसने सामान्य मामलों के प्रभारी एक मंत्री से कहा: 'जिस उद्यान रक्षक को मैंने आदरणीय व्यक्ति को सौंपने का वादा किया था, क्या उसे उन्हें सौंप दिया गया है?'

नहीं, महाराज!

'तो फिर, महोदय, यह निर्णय लिए हुए कितना समय हो गया है?'

4. तब उस मंत्री ने रातों की गिनती करते हुए मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा, 'महाराज, पाँच सौ रातें।'

'तो फिर, मेरे भले महोदय, आदरणीय व्यक्ति को पाँच सौ उद्यान रक्षक दे दीजिए!'

“महाराज के आदेशानुसार,” मंत्री ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार की सहमति में कहा; और उन्होंने पूज्य पिलिन्दवक्खा को पाँच सौ उद्यान रक्षक सौंप दिए, और उनके उपयोग के लिए एक अलग गाँव बसाया गया। उन्होंने उसका नाम अरमिका-गामा रखा, और उसे पिलिन्द-गामा भी कहा। तब से पूज्य पिलिन्दवक्खा उस गाँव में रहने वाले परिवारों से भिक्षा आदि के लिए आश्रित थे। पूज्य पिलिन्दवक्खा सुबह जल्दी उठकर वस्त्र धारण करते और भिक्षा मांगने के लिए पिलिन्द-गामा में प्रवेश करते थे।

5. उस समय उस गाँव में एक उत्सव चल रहा था और बच्चे आभूषणों से सजे और मालाओं से लदे हुए उत्सव मना रहे थे। पूज्य पिलिनदावक्खा भिक्षा माँगते हुए घर-घर गए और एक उद्यान रक्षक के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिए तैयार की गई एक आसन पर बैठ गए।

और उसी समय उस उद्यान-रक्षक की पत्नी की बेटी ने अन्य बच्चों को आभूषणों और मालाओं से सजे हुए देखकर, ...

रोते हुए (कहते हुए), 'मुझे भी एक माला दो, मुझे एक आभूषण दो!'

और आदरणीय पिलिन्दवक्खा ने उस उद्यान-रक्षक की पत्नी से कहा: 'वह लड़की क्यों रो रही है?'

'हे आदरणीय महोदय, यह बच्ची अन्य बच्चों को आभूषणों और मालाओं से सजे देखकर रो रही है (और कह रही है), "मुझे भी एक माला दीजिए, मुझे भी एक आभूषण दीजिए!" लेकिन हम जैसे गरीब लोगों को ये मालाएँ या आभूषण कहाँ से मिलेंगे?'

6. तब पूज्य पिलिन्दवक्खा ने घास का एक चुम्बत लिया और उद्यान-रक्षक की पत्नी से कहा: 'कृपा करके इस घास के चुम्बत को बच्चे के सिर पर बांध दीजिए।'

और उद्यान के रखवाले की पत्नी ने घास की बनी माला ली और उसे लड़की के सिर पर बाँध दिया। और वह सोने की एक सुंदर, मनमोहक और आकर्षक माला बन गई, ऐसी माला जो राजा के हरम में कहीं और नहीं थी।

और लोगों ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा, 'महाराज, फलां उद्यान रक्षक के घर में सोने की एक माला है, वैसी सोने की माला राजा के हरम में नहीं है। वह गरीब होकर ऐसी माला कैसे प्राप्त कर सकता है? उसने इसे निश्चित रूप से चोरी से ही प्राप्त किया होगा।'

तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने उस उद्यान रक्षक के पूरे परिवार को गुलामी में बंधवा दिया।

7. अब पूज्य पिलिन्दवक्खा ने सुबह सवेरे वस्त्र धारण किए और विधिवत वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए पिलिन्दगाम गए। भिक्षा मांगते हुए वे घर-घर घूमते हुए उस उद्यान-रक्षक के निवास पर पहुँचे; और

जब वह वहां पहुंचा तो उसने पड़ोसियों से पूछा, 'इस पार्क के रखवाले का परिवार कहां चला गया है?'

'महाराज ने उस सोने की माला के कारण उन्हें कैद में डाल दिया है।'

फिर पूज्य पिलिन्दवक्खा मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के निवास पर गए; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य पिलिन्दवक्खा थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य पिलिन्दवक्खा के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठने के बाद पूज्य पिलिन्दवक्खा ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा:

8. 'हे राजा, पार्क के रखवाले के परिवार को क्यों जंजीरों में जकड़ दिया गया है?'

'महोदय, उस उद्यान-रक्षक के घर में सोने की एक ऐसी माला है, जैसी राजा के हरम में कहीं नहीं है। वह इतना गरीब होकर भी ऐसी माला कहाँ से लाया होगा? निश्चित रूप से उसने इसे चोरी से ही प्राप्त किया होगा।'

तब पूज्य पिलिनदावक्खा ने निश्चय किया कि मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार का महल सोने का होना चाहिए। और वह महल पूरी तरह से सोने का बन गया।

'महाराज, आपके पास इतनी बड़ी मात्रा में सोना कहाँ से आया?'

'मैं समझ गया, प्रभु। यह आपकी चमत्कारिक शक्ति है' (राजा ने कहा)। और ऐसा कहते हुए उसने उस पार्क-कीपर के परिवार को मुक्त कर दिया।

9. जब लोगों ने प्रसन्नता और संतोष से भरकर देखा कि पूज्य पिलिनदावक्खा ने राजा और उनके राजकक्षों को इतना बड़ा चमत्कार दिखाया है, तो वे पूज्य पिलिनदावक्खा के पास पाँच प्रकार की औषधियाँ लेकर आए, अर्थात्...

जैसे, घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़। अब (इसके अलावा) पूज्य पिलिन्दवक्खा पाँच प्रकार की औषधियाँ ग्रहण करते थे; और जो कुछ भी उन्हें प्राप्त होता, वे उसे अपने सेवकों (भिक्षुओं) में बाँट देते थे। इस प्रकार उनके अनुयायी उस औषधि से समृद्ध हो गए, और जैसे ही उन्हें वह प्राप्त होती, वे उसे बर्तनों और घड़ों में भरकर अलग रख देते; और पानी छानने वाली प्लेटों और थैलियों को उससे भरकर खिड़कियों में रख देते, और वे वहाँ आपस में चिपकी रहतीं, और चूहों के कुतरने से विहार उन औषधियों से भर गए। यह देखकर लोग विहारों के चारों ओर घूमकर नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित होकर बोले, 'ये शाक्यपुत्र भिक्षु मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार की तरह सामग्री जमा करने वाले बन रहे हैं।'

भिक्षुओं ने लोगों को इस प्रकार बड़बड़ाते हुए सुना, इत्यादि। और जो भिक्षु संयमी थे, वे क्रोधित होकर कहने लगे, इत्यादि।

'भिक्षु इतनी प्रचुरता के बारे में कैसे सोच सकते हैं?'

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, भिक्षुओं, जैसा कि वे कहते हैं, कि भिक्षु इतनी प्रचुरता के बारे में सोचते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

भगवान बुद्ध ने उन्हें फटकारा और धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित किया:

'बीमार भिक्षुओं के लिए जो भी औषधियाँ उपयुक्त हों—अर्थात घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़—उन्हें प्राप्त होने पर सात दिनों के भीतर उपयोग कर लेना चाहिए, इस दौरान उन्हें संग्रहित भी किया जा सकता है।

उस सीमा का उल्लंघन करने पर कानून के अनुसार कार्रवाई की जाएगी।

औषधियों के नियम पर प्रथम भानवर का समापन।

<<<< पिछला(6.14) | अगला(6.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.16
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.15) | अगला (6.17) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-16.

1. भगवान बुद्ध जब तक उचित समझे, सावत्थी में रहे, तब वे राजगृह की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में पूज्य कंख-रेवत ने एक चीनी कारखाना देखा और जब वे वहाँ गए, तो उन्होंने देखा कि लोग गुड़ में आटा और गन्ने का बुरादा मिला रहे थे। यह देखकर उन्होंने सोचा, 'भोजन में गुड़ मिलाना उचित नहीं है; दैनिक भोजन के समय के बाद इस प्रकार का गुड़ लेना मना है।' और किसी को नाराज न करने के डर से उन्होंने उसे नहीं खाया, न ही उनके साथ आए भिक्षुओं ने खाया, और न ही उन भिक्षुओं ने खाया जो उनकी बात सुनने के योग्य थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, वे गुड़ में आटा और गन्ने का चूरा क्यों मिलाते हैं?'

'हे प्रभु, इसे दृढ़ बनाने के लिए।'

'हे भिक्षुओं, यदि वे गुड़ को गाढ़ा करने के लिए उसमें आटा और गन्ने का चूरा मिलाते हैं, लेकिन फिर भी उसे गुड़ ही माना जाता है, तो हे भिक्षुओं, मैं आपको ऐसा गुड़ जितना चाहें उतना लेने की अनुमति देता हूँ।'

2. अब पूज्य कंख-रेवता ने रास्ते में गोबर के ढेर से उगती हुई राजमा देखी। और जब उन्होंने उसे देखा, तो उन्होंने सोचा: 'राजमा खाना हमारे लिए वर्जित है, क्योंकि राजमा पक कर तैयार हो जाती है: और

उसने किसी को नाराज करने के डर से भोजन नहीं किया, और उसके साथ रहने वाले भिक्षुओं ने भी भोजन नहीं किया, और जो लोग उसकी बात सुनने योग्य समझते थे, उन्होंने भी सेम नहीं खाए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'यद्यपि, भिक्षुओं, सेम (फलियां) पूरी तरह से पक कर तैयार रहती हैं, फिर भी मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, जितनी चाहो उतनी सेम खाने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय एक भिक्षु को पेट में गैस हो गई। उसने खट्टा नमकीन दलिया पिया और उससे उसकी बीमारी ठीक हो गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं बीमार व्यक्ति को नमकीन खट्टी दलिया खाने की अनुमति देता हूँ, और जो बीमार नहीं है उसे पानी में मिलाकर पेय के रूप में पीने की अनुमति देता हूँ।

<<<< पिछला (6.15) | अगला (6.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.17

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.16) | अगला(6.18) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-17.

1. अब भगवान बुद्ध उचित समय पर यात्रा करते हुए राजगृह पहुंचे। और राजगृह में भगवान बुद्ध वेलुवन में कलंदक-निवापा में ठहरे।

उस समय भगवान बुद्ध को पेट में गैस की समस्या थी। पूज्य आनंद ने यह सोचकर कि 'पहले जब भगवान बुद्ध को पेट में गैस होती थी तो टेकटुला दलिया से आराम मिलता था', उन्होंने अपनी इच्छा से तिल के बीज, चावल और सेम तैयार किए; और उन्हें खिलाते रहे।

उन्होंने उन्हें घर के अंदर ही पकाया और स्वयं ही घर के अंदर ही पकाकर भगवान बुद्ध को अर्पित करते हुए कहा, 'भगवान बुद्ध इस टेकटुला दलिया को पिएं।'

2. अब तथागत कभी-कभी अपने ज्ञान के बारे में पूछते हैं (आदि, हमेशा की तरह, जैसे, उदाहरण के लिए, I, 31, 5 में, अंत तक)।

और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'आनंद, यह दलिया कहाँ से आया है?'

तब पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'यह अनुचित है, आनंद, अशोभनीय, अनुपयुक्त, भिक्षुओं के लिए अनुपयुक्त, अस्वीकार्य और इससे बचना चाहिए। हे आनंद, तुम इतनी अधिकता के बारे में कैसे सोच सकते हो? हे आनंद, जो कुछ भी घर के अंदर रखा जाता है, वह वर्जित है; जो कुछ भी घर के अंदर पकाया जाता है, वह वर्जित है; और जो कुछ भी तुम अपनी इच्छा से पकाते हो, वह वर्जित है। हे आनंद, इससे अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा।'

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा: हे भिक्षुओं, जो कुछ भी घर के अंदर रखा गया हो, या घर के अंदर पकाया गया हो, या अपनी इच्छा से पकाया गया हो, उसे नहीं खाना चाहिए। जो कोई भी उसे खाएगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।

4. हे भिक्षुओं, यदि घर के अंदर रखा हुआ, या घर के अंदर पकाया हुआ, या स्वयं द्वारा पकाया हुआ भोजन हो, और कोई उसे खाए, तो वह तीन दुक्कता अपराधों का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि घर के अंदर रखा हुआ और घर के अंदर पकाया हुआ भोजन दूसरों द्वारा पकाया गया हो, और कोई उसे खाए, तो वह दो दुक्कता अपराधों का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि घर के अंदर रखा हुआ भोजन बाहर पकाया गया हो, और

यदि कोई व्यक्ति अपनी मर्जी से खाना पकाता है और उसे खा लेता है, तो वह दो दुक्कटा अपराधों का दोषी होता है।

5. 'हे भिक्षुओं, यदि बाहर रखा भोजन घर के अंदर स्वयं द्वारा पकाया गया हो और कोई उसे खा ले, तो वह दो दुक्कता अपराधों का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि घर के अंदर रखा भोजन बाहर दूसरों द्वारा पकाया गया हो और कोई उसे खा ले, तो वह एक दुक्कता अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि बाहर रखा भोजन घर के अंदर दूसरों द्वारा पकाया गया हो और कोई उसे खा ले, तो वह एक दुक्कता अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि बाहर रखा भोजन बाहर अपने द्वारा स्वयं पकाया गया हो और कोई उसे खा ले, तो वह एक दुक्कता अपराध का दोषी है। हे भिक्षुओं, यदि बाहर रखा भोजन बाहर दूसरों द्वारा पकाया गया हो और कोई उसे खा ले, तो वह दोषी नहीं है।'

6. उस समय भिक्षुओं ने यह सोचकर कि 'भगवान बुद्ध ने स्वयं द्वारा पकाए गए भोजन को मना किया है,' पहले से पकाए गए भोजन को दूसरी बार पकाकर उन्हें नाराज करने से डरने लगे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दूसरी बार भोजन पकाने की अनुमति देता हूँ।'

7. उस समय राजगृह में भोजन की कमी थी। लोग नमक, तेल, चावल और अन्य पौष्टिक भोजन आराम (पार्क/मठ) में लाते थे। भिक्षु इन्हें बाहर रखते थे; कीड़े-मकोड़े इन्हें खा जाते थे और चोर इन्हें चुरा ले जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, घर के अंदर भोजन रखने की अनुमति देता हूँ।'

जब वे इसे घर के अंदर रखते थे और बाहर पकाते थे, तो वे लोग जो चढ़ाए गए भोजन के अवशेषों पर जीवन यापन करके आत्म-यातना का अभ्यास करते थे, उनके चारों ओर जमा हो जाते थे; और भिक्षु भय के साथ भोजन करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, घर के अंदर खाना पकाने की अनुमति देता हूँ।'

अकाल के समय में, जो लोग (भिक्षुओं को भोजन दान करके, उन्हें अपने घरों में आमंत्रित करके, आदि) भिक्षुओं के लिए (भोजन ग्रहण करना या खाना) जायज़ ठहराते थे, वे अपने लिए अधिक लेते थे और भिक्षुओं को कम देते थे।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपनी इच्छा से खाना पकाने की अनुमति देता हूँ। मैं तुम्हें घर के अंदर खाना पकाने और घर के अंदर रखा हुआ भोजन अपनी इच्छा से पकाने की अनुमति देता हूँ।

8. उस समय, वर्षा ऋतु काशी देश में बिताने वाले कई भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए राजगृह जा रहे थे। उन्हें रास्ते में अपनी आवश्यकतानुसार मीठा-कड़वा भोजन नहीं मिला। फल तो बहुतायत में थे, पर उन्हें उपलब्ध कराने वाला कोई नहीं था। इसलिए वे भिक्षु थके-हारे राजगृह के वेलुवन में, कलंदक-निवाप में, जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

अब महान बुद्धों की यह प्रथा है कि वे आने वाले भिक्षुओं का विनम्रतापूर्वक अभिवादन करते हैं। और भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, क्या आपका जीवन कुशल मंगल है? क्या आपको अपना भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त मिल रहा है? क्या आपने बिना अधिक थके अपनी यात्रा पूरी कर ली है? और हे भिक्षुओं, आप कहाँ से आए हैं?'

9. हे प्रभु, हमारी कृपा भली-भांति है। हमने वर्षा ऋतु काशी देश में बिताई; और भगवान बुद्ध से मिलने राजगृह जाते समय हमें रास्ते में मीठे-कड़वे और कड़वे खाद्य पदार्थों की पर्याप्त आपूर्ति नहीं मिली, जितनी हमें आवश्यकता थी। फल तो बहुतायत में थे, पर उन्हें हमारे लिए उपलब्ध कराने वाला कोई नहीं था। इसलिए हम थके-हारे ही अपनी यात्रा पर निकले।

तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, जहाँ कहीं भी खाने योग्य फल दिखाई दे और उसे खाने योग्य बनाने वाला कोई न हो, तो आप उसे अपनी इच्छा से तोड़कर ले जा सकते हैं। और जब आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो उसे खाने योग्य बना सके, तो उसे जमीन पर रख दें और उसे पुनः प्राप्त करने के बाद ही खाएँ। हे भिक्षुओं, आप जो भी फल तोड़ें, उसे ले जा सकते हैं।'

<<<< पिछला(6.16) | अगला(6.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.17) | अगला (6.19) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-18.

1. उस समय एक ब्राह्मण (पुजारी) को कुछ ताजे तिल के बीज और ताजा शहद प्राप्त हुआ। तब उस ब्राह्मण के मन में विचार आया: 'यदि मैं ये ताजे तिल के बीज और ताजा शहद बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को दे दूं तो कैसा रहेगा?' और वह ब्राह्मण उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे, और वहाँ पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को शिष्टाचारपूर्वक प्रणाम किया। और भगवान बुद्ध को मित्रता और शिष्टाचार के अभिवादन और शुभकामनाएँ देने के बाद, वह एक तरफ खड़ा हो गया। और इस प्रकार खड़े होकर उस ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध से कहा:

'परमेश्वर गौतम मुझे यह वरदान दें कि वे कल भिक्षु संघ के साथ मेरे घर पर अपना भोजन ग्रहण करें।'

भगवान बुद्ध मौन रहकर सहमत हो गए। और जब उस ब्राह्मण को पता चला कि भगवान बुद्ध सहमत हो गए हैं, तो वह चला गया।

2. और उस ब्राह्मण ने उस रात के अंत में, जब उसने कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे भोजन तैयार कर लिए थे, तब भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी (इन शब्दों में), 'हे गौतम, समय हो गया है और भोजन तैयार है।'

और भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने अंतर्वस्त्र धारण करके विधिवत वस्त्र धारण कर उस ब्राह्मण के निवास पर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए, और उनके साथ भिक्षु संघ भी बैठ गया।

और उस ब्राह्मण ने, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को, सभी प्रकार के मीठे और मीठे भोजन से तृप्त किया और स्वयं उनकी सेवा की। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपने हाथ-मुँह धो लिए, तो ब्राह्मण एक तरफ बैठ गया। बैठे-बैठे ही भगवान बुद्ध ने उस ब्राह्मण को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया, फिर वे अपने आसन से उठे और चले गए।

3. भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद

उस ब्राह्मण के मन में यह विचार आया: 'जिन बातों के लिए मैंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को आमंत्रित किया था, यह सोचकर कि "मैं उन्हें ताजे तिल के बीज और ताजा शहद दूंगा," - वे बातें मैं देना भूल गया। क्या होगा यदि मैं अब ताजे तिल के बीज और ताजा शहद को बर्तनों में भरकर आराम (मठ) में भिजवा दूं!'

और उस ब्राह्मण ने ताजे तिल के बीज और ताजा शहद बर्तनों में भरकर उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे। वहाँ पहुँचकर वह एक तरफ खड़ा हो गया; और इस प्रकार खड़े होकर उस ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध से कहा:

4. 'जिन बातों के लिए मैंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को आमंत्रित किया था, यह सोचकर कि "मैं उन्हें ताजे तिल के बीज और ताजा शहद दूंगा," - वे बातें मैं देने में विफल रहा। आदरणीय गौतम मुझसे ताजे तिल के बीज और ताजा शहद ग्रहण करें।'

'अच्छा, तो फिर ब्राह्मण; इन्हें भिक्षुओं को दे दो।'

उस समय, जब अकाल पड़ा हुआ था, लोगों ने भिक्षुओं को एक छोटे से भोज के लिए आमंत्रित किया, और उन्होंने आमंत्रित लोगों की संख्या गिनकर निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। एक बार पूरे संघ को भी आमंत्रित किया गया था; लेकिन भिक्षुओं ने किसी को नाराज न करने के डर से निमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, इसे स्वीकार करो और खाओ। हे भिक्षुओं, मैं अनुमति देता हूँ कि जो भिक्षु भोजन कर चुका है और फिर भी दिया गया भोजन अस्वीकार कर देता है, वह फिर भी भोजन कर सकता है, यदि वह भीतर से लाया जाए, भले ही वह बचा हुआ न हो।'

<<<< पिछला (6.17) | अगला (6.19) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.19
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.18) | अगला (6.20) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-19.

1. उस समय शाक्य वंश के एक परिवार ने, जो पूज्य उपनंद के प्रति समर्पित था, संघ के लिए कठोर भोजन भेजा और कहा, 'यह विशेष रूप से पूज्य उपनंद के सम्मान में संघ को दिया जाना है।'

उस समय शाक्य वंश के पूज्य उपनंद भिक्षा मांगने के लिए गांव गए थे। वे लोग आराम (मठ) गए और भिक्षुओं से निवेदन किया:

'महोदय, आदरणीय उपनंद कहाँ हैं?'

'शाक्य वंश के पूजनीय उपनंद भिक्षा मांगने के लिए गांव गए हैं।'

'महोदय, यह कठोर भोजन संघ को, विशेष रूप से पूज्य उपनंद को समर्पित करके दिया जाना है।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'ऐसी स्थिति में, हे भिक्षुओं, इसे ग्रहण कर लो, और उपनंद के लौटने तक इसे अलग रख दो।'

2. और पूज्य उपनंद ने सुबह के समय परिवारों की सेवा करने के बाद, दिन के (बाद के) भाग में वापसी की।

उस समय, अकाल के दौरान, लोगों ने भिक्षुओं को एक संक्षिप्त भोजन के लिए आमंत्रित किया; और उन्होंने,

आमंत्रित लोगों में से जिन्होंने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया, उनकी संख्या गिनी गई। और संपूर्ण संघ को एक बार निमंत्रण दिया गया था; परन्तु भिक्षुओं ने किसी को नाराज न करने के भय से निमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, यह स्वीकार करो कि जो भिक्षु भोजन कर चुका है और जिसने आगे दिए गए भोजन को अस्वीकार कर दिया है, वह फिर भी भोजन कर सकता है, यदि वह भोजन के समय से पहले (सुबह के समय) प्राप्त हुआ हो, भले ही वह बचा हुआ न हो।'

<<<< पिछला (6.18) | अगला (6.20) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.19) | अगला (6.21) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-20.

1. भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे और फिर श्रावस्ती की ओर चल पड़े। वे स्थान-स्थान भटकते हुए श्रावस्ती पहुँचे। वहाँ श्रावस्ती में भगवान बुद्ध जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे।

उस समय पूज्य सारिपुत्त को बुखार हो गया था। पूज्य महा मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य सारिपुत्त थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा:

मित्र सारिपुत्त, तुम्हें हाल ही में बुखार आया था। यह कैसे ठीक हुआ?

'मेरे मित्र, विभिन्न प्रकार के कमल के डंठलों से होकर।'

फिर पूज्य महा मोग्गलाना, एक बलवान व्यक्ति के हाथ फैलाने या फैलाने के बाद उसे वापस समेटने की गति से ही, जेतवन से लुप्त हो गए और मंदाकिनी झील के किनारे प्रकट हुए।

2. और एक नाग ने आदरणीय महा को देखा।

मोग्गलाना दूर से आ रहे थे, और उन्हें देखकर उन्होंने पूज्य महा मोग्गलाना से कहा:

'हे प्रभु, आदरणीय महा मोग्गलाना, आपका स्वागत है। हे प्रभु, आदरणीय महा मोग्गलाना, आपको किस चीज की आवश्यकता है? मैं उन्हें क्या भेंट करूँ?'

मुझे विभिन्न प्रकार के कमलों के खाने योग्य डंठल चाहिए।

तब उस नाग ने दूसरे नाग को आदेश देते हुए कहा, 'अच्छा, मित्र, आदरणीय व्यक्ति को कमल के खाने योग्य डंठल दे दो।'

और वह नाग मंदाकिनी झील में कूद गया, और अपनी सूंड से कमल के खाने योग्य डंठल तोड़े, उन्हें अच्छी तरह धोया, और एक गठरी में बांधकर उस स्थान पर गया जहाँ पूज्य महा मोग्गलाना थे।

3. तब पूज्य महा मोग्गलाना धारा 1 में वर्णित अनुसार शीघ्र ही मंदाकिनी झील के किनारे से लुप्त हो गए और जेतवन में प्रकट हुए। फिर वह नाग भी मंदाकिनी झील के किनारे से लुप्त हो गया और जेतवन में प्रकट हुआ। और जब उस नाग ने पूज्य महा मोग्गलाना को कमल के वे खाद्य डंठल प्रदान किए, तो वह जेतवन से लुप्त हो गया और मंदाकिनी झील के किनारे प्रकट हुआ।

तब पूज्य महा मोग्गलाना ने पूज्य सारिपुत्त को कमल के वे खाद्य डंठल भेंट किए। जब पूज्य सारिपुत्त ने कमल के उन खाद्य डंठलों को खाया, तो उनका बुखार उतर गया। और उनमें से कई डंठल बच गए।

4. अब उस समय, कमी के दौरान (आदि, जैसा कि ऊपर, अध्याय-18 में, नीचे तक:) निमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, इसे स्वीकार करो और खाओ। मैं उस भिक्षु को अनुमति देता हूँ जिसने भोजन किया है और फिर भी भोजन से इनकार किया है।

'जंगलों और तालाबों में उगने वाली चीजें खाने की पेशकश की जाती है, भले ही वे भोजन करने वाले व्यक्ति के बचे हुए अवशेष न हों।'

<<<< पिछला (6.19) | अगला (6.21) >>>>

<<<< पिछला (6.20) | अगला (6.22) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-21.

1. उस समय श्रावस्ती में खाने योग्य फल बहुतायत में थे, परन्तु उन्हें खाने की अनुमति देने वाला कोई नहीं था। और भिक्षु, किसी को नाराज करने के डर से, उन्हें नहीं खाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऐसे फल खाने की अनुमति देता हूँ जिनमें अभी तक बीज नहीं आए हों, या जिनमें अब बीज न हों, भले ही वहाँ कोई इसे जायज़ ठहराने वाला न हो।'

<<<< पिछला (6.20) | अगला (6.22) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.22
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.21) | अगला(6.23) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-22.

1. जब भगवान बुद्ध ने सावत्थी में अपनी इच्छानुसार समय व्यतीत कर लिया, तब वे राजगृह की यात्रा पर निकल पड़े। सीधे चलते हुए वे राजगृह पहुँचे और वहाँ वे वेलुवन में कलंदक-निवापा में ठहरे।

उस समय एक भिक्षु को फिस्टुला (मुँहासा) हो गया था। चिकित्सक आकाशगोत्ता ने उसका ऑपरेशन किया। और जब भगवान बुद्ध ने उसे देखा,

वह सभी के सोने के स्थानों का चक्कर लगा रहा था और उस स्थान पर आया जहाँ वह भिक्षु रहता था।

2. चिकित्सक आकाश-गोत्त ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; और उन्हें देखकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय गौतम बुद्ध आकर इस भिक्षु के मुख को देखें; यह तो इगुआना के मुख जैसा है!' भगवान बुद्ध ने सोचा, 'यह मूर्ख मेरा मजाक उड़ा रहा है,' इसलिए वे चुप रहे और मुँह फेर लिया। इसी कारण उन्होंने भिक्षु संघ की सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा, 'हे भिक्षुओं, क्या उस विहार में कोई भिक्षु बीमार है?'

'हाँ, प्रभु।'

'हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को क्या हुआ है?'

'हे प्रभु, उस आदरणीय व्यक्ति को फिस्टुला हो गया है, और चिकित्सक अकासागोत्ता उसका चीरा लगा रहे हैं।'

3. महान बुद्ध ने (उस भिक्षु को) फटकारते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, यह उस मूर्ख के लिए अनुचित, अशोभनीय, भिक्षुओं के लिए अनुपयुक्त, अस्वीकार्य और नहीं किया जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, यह मूर्ख अपने शरीर के उस भाग पर शल्यक्रिया कैसे करवा सकता है? हे भिक्षुओं, वहाँ की त्वचा कोमल है, घाव का उपचार करना कठिन है, चाकू को चलाना मुश्किल है। हे भिक्षुओं, इससे अपरिवर्तित व्यक्ति का धर्म परिवर्तन नहीं होगा।'

और उसे फटकार लगाने के बाद, भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा: हे भिक्षुओं, तुम उस अंग पर शल्यक्रिया न होने दो।

अपने शरीरों का। जो कोई भी इसकी अनुमति देता है, वह थुलाकाया (बड़ा/गंभीर) अपराध का दोषी है।'

4. उस समय छब्बागिया भिक्षु, क्योंकि भगवान बुद्ध ने शल्यक्रिया को निषिद्ध कर दिया था, इसलिए वे एक एनीमा का प्रयोग करते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, हे भिक्षुओं, कि छब्बागीय भिक्षु कुदाल का प्रयोग करते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

उन्होंने उन्हें फटकारा और धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा: 'गुदा के चारों ओर दो इंच की दूरी के भीतर कोई शल्यक्रिया नहीं की जानी चाहिए, और न ही एनीमा का प्रयोग किया जाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह थुलकाया (गंभीर) अपराध का दोषी है।'

<<<< पिछला(6.21) | अगला(6.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.23
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.22) | अगला(6.24) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-23.

1. भगवान बुद्ध ने राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद बनारस की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे बनारस पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध बनारस के निकट, इसिपताना नामक हिरण उद्यान में निवास करने लगे।

उस समय बनारस में एक धर्मनिष्ठ गृहस्थ सुप्पिया और एक धर्मनिष्ठ गृहस्थ महिला सुप्पिया थीं, जिन्होंने दोनों तरह से अपनी आस्था प्रदर्शित की: वे दाता और कर्ता थीं, और उन्होंने स्वयं को बिरादरी की सेवा में समर्पित कर दिया था। गृहस्थ भक्त सुप्पिया आराम (मठ) गईं, और विहार- विहार और कुटिया-कुटिया में घूम-घूम कर उन्होंने प्रार्थना की।

भिक्षुओं ने पूछा: 'आदरणीय महोदय, कौन बीमार है? किसके लिए और मुझे क्या व्यवस्था करनी चाहिए?'

2. उस समय एक भिक्षु ने दस्त की दवा ली थी। उस भिक्षु ने गृहस्थ भक्त सुप्पिया से कहा: 'बहन, मैंने दस्त की दवा ली है और मुझे कुछ शोरबा चाहिए।'

(उसने उत्तर दिया): 'जी हाँ, आदरणीय महोदय, आपके लिए इसका इंतजाम कर दिया जाएगा,' और वह अपने घर गई और एक शिष्य को आदेश दिया: 'जाइए, मेरे भले महोदय, और देखिए कि क्या कोई मांस उपलब्ध है।'

उस व्यक्ति ने गृहस्थ साध्वी सुप्पिया का यह आदेश 'जी महोदया' कहकर स्वीकार किया और पूरे बनारस में खोजबीन की, पर उसे कहीं भी मांस नहीं मिला। तब वह व्यक्ति गृहस्थ साध्वी सुप्पिया के पास गया; उसके पास पहुँचकर उसने सुप्पिया से कहा: 'महोदय, मांस उपलब्ध नहीं है; आज पशुओं को मारना वर्जित है।'

3. तब गृहस्थ भक्त सुप्पिया ने सोचा, 'यदि उस बीमार भिक्षु को शोरबा नहीं मिला तो उसकी बीमारी बढ़ जाएगी या वह मर जाएगा। मेरे लिए किसी चीज़ का वादा करना और उसे पूरा न करना तो सरासर अनुचित होगा;' (ऐसा सोचते हुए) उसने एक चाकू लिया, अपनी जांघ से मांस का एक टुकड़ा काटा और अपनी दासी को देते हुए कहा, 'जाओ, मेरी बच्ची,

और इससे शक्ति प्राप्त करो। फलाँ विहार में एक बीमार भिक्षु है; इसे उस भिक्षु को दे दो। और यदि कोई मुझे बुलाए, तो उसे कहना कि मैं बीमार हूँ;'—(ऐसा कहते हुए), उसने अपने ऊपरी वस्त्र से अपनी जांघ ढकी, अपने भीतरी कमरे में गई और अपने पलंग पर लेट गई।

4. और सुप्पिया, जो एक गृहस्थ भक्त थी, उसके घर आई और नौकरानी से पूछा: 'सुप्पिया कहाँ है?'

'वह भीतरी कमरे में लेटी हैं, महोदय।' तब गृहस्थ भक्त सुप्पिया उस स्थान पर गए जहाँ सुप्पिया लेटी थीं; उनके पास पहुँचकर उन्होंने सुप्पिया से कहा: 'आप क्यों लेटी हैं?'

'मैं बीमार हूं।'

'तुम्हारे साथ क्या बात है?'

तब सुप्पिया नामक गृहस्थ भक्त ने सारी बात सुप्पिया नामक गृहस्थ भक्त को बताई। सुप्पिया ने कहा, "अरे वाह! अरे आश्चर्य की बात है! यह सुप्पिया कितनी विश्वासयोग्य और कितनी पवित्र है जो जरूरतमंदों को अपना शरीर तक दे देती है। भला ऐसी कौन सी चीज है जो वह न दे?" (ऐसा कहते हुए) प्रसन्न और उत्साहित होकर वह उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर, आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गया।

5. उनके पास बैठे हुए, गृहस्थ भक्त सुप्पिया ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ मेरे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब सुप्पिया नामक भक्त ने जब समझा कि भगवान बुद्ध ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वह अपने आसन से उठा, आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुँह करके उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चला गया।

रात बीत जाने पर, गृहस्थ भक्त सुप्पिया ने उत्तम भोजन, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन थे, तैयार करने का आदेश दिया और भगवान बुद्ध को भोजन का समय इस प्रकार सूचित किया: 'हे प्रभु, भोजन का समय हो गया है, भोजन तैयार है।' दोपहर होते ही भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और किवार धारण किए सुप्पिया के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे अपने साथ आए भिक्षुओं के साथ उनके लिए लगाई गई सीटों पर बैठ गए।

6. और सुप्पिया नामक गृहस्थ भक्त भगवान बुद्ध के पास गया; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके निकट खड़ा हो गया। जब वह उनके पास खड़ा था, तब भगवान बुद्ध ने सुप्पिया नामक गृहस्थ भक्त से कहा, 'सुप्पिया कहाँ है?'

'वह बीमार है, प्रभु।'

'ठीक है, उसे यहाँ आने दो।'

'हे प्रभु, वह ऐसा करने में सक्षम नहीं है।'

'तो फिर तुम्हें उसे ले जाकर मेरे पास लाना होगा।'

तब गृहस्थ भक्त सुप्पिया ने उसे (बुद्ध के पास) ले जाकर रखा। और जैसे ही भगवान बुद्ध ने उसे देखा, वह बड़ा घाव ठीक हो गया; और वहाँ की त्वचा फिर से स्वस्थ हो गई, जिस पर छोटे-छोटे बाल थे।

7. और सुप्पिया, जो एक गृहस्थ भक्त था, (सोचा): 'अरे अद्भुत! अरे आश्चर्यजनक! तथागत (बुद्ध) के पास कितनी उच्च शक्ति और महान क्षमताएं हैं, कि जिस क्षण भगवान बुद्ध ने (सुप्पिया को) देखा, वह बड़ा घाव ठीक हो गया; और वहाँ की त्वचा अच्छी हो गई।'

उस पर मौजूद नन्हे-मुन्ने बालों के साथ; (ऐसा सोचते हुए) प्रसन्न और उत्साहित होकर उन्होंने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को उत्तम प्रकार का भोजन परोसा, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के भोजन शामिल थे। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा और हाथ धो लिए, तो वे उनके पास बैठ गए। भगवान बुद्ध ने गृहस्थ भक्त सुप्पिया को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, और सुप्पिया गृहस्थ भक्त अपने आसन से उठकर चले गए।

8. इसके फलस्वरूप, और इस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के समुदाय को एकत्रित होने का आदेश देकर भिक्षुओं से प्रश्न किया: 'हे भिक्षुओं, वह कौन था जिसने गृहस्थ भक्त सुप्पिया से मांस माँगा?'

जब उसने ऐसा कहा, तो उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मैंने ही गृहस्थ भक्त सुप्पिया से मांस माँगा था।'

'क्या यह आपके पास लाया गया है, हे भिक्षु?'

'हे प्रभु, इसे लाया जा चुका है।'

'क्या तुमने इसे खा लिया है, हे भिक्षु?'

'मैंने इसे खा लिया है, प्रभु।'

'और क्या तुमने, हे भिक्षुओं, यह पूछा कि वह कौन सा मांस था?'

'हे प्रभु! मैंने उस बारे में पूछताछ नहीं की थी।'

9. तब महान बुद्ध ने उसे फटकारा: 'हे मूर्ख, तुम बिना यह जाने कि मांस क्या है, उसे कैसे खा सकते हो? हे मूर्ख, तुमने मनुष्य का मांस खाया है। हे मूर्ख, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है।' (आदि)

उसे फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, विश्वासी और धर्मनिष्ठ लोग ऐसे भी हैं जो अपना शरीर भी त्याग देते हैं। हे भिक्षुओं, मनुष्य का मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह थुलकाय (या गंभीर) अपराध करता है। और हे भिक्षुओं, बिना यह जाने कि मांस क्या है, मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

10. उस समय राजा के हाथी मर गए। अकाल के दौरान लोगों ने उन हाथियों का मांस खाया, और जब भिक्षु भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने उन्हें भी हाथी का मांस दे दिया। भिक्षुओं ने भी उस हाथी का मांस खा लिया। लोग नाराज़ हुए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए: 'शाक्यपुत्र भिक्षु हाथी का मांस कैसे खा सकते हैं? हाथी राजसी शान की निशानी हैं। अगर राजा को यह पता चल जाए, तो वे उसकी कृपा के पात्र नहीं रहेंगे।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, हाथी का मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

11. उस समय राजा के घोड़े मर गए। अकाल के दौरान (आदि, जैसा कि §-10 में है, नीचे तक:)

'हे भिक्षुओं, घोड़े का मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

12. उस समय अकाल के दौरान लोगों ने कुत्ते का मांस खाया, और जब भिक्षु भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने उन्हें कुत्ते का मांस दिया। भिक्षुओं ने वह कुत्ते का मांस खाया। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए, 'शाक्यपुत्र भिक्षु कुत्ते का मांस कैसे खा सकते हैं? कुत्ते तो घृणित और नफ़रत करने लायक जानवर हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, कुत्ते का मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

13. उस समय अकाल के दौरान लोग साँपों का मांस खाते थे (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 12 में है, नीचे तक): 'यह कैसे संभव है?'

क्या शाक्यपुत्रीय समन (भिक्षु) सर्पों का मांस खाते हैं? सर्प तो घिनौने और घृणित जानवर होते हैं।

और सर्पराज सुपस्सा उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके, वह उनके निकट खड़ा हो गया। उनके निकट खड़े होकर सर्पराज सुपस्सा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, कुछ अविश्वासी सर्प हैं जो धर्म के प्रति उदासीन हैं; ये भिक्षुओं को तुच्छ बातों पर भी हानि पहुँचा सकते हैं। हे प्रभु, कृपया उनके भक्तों को सर्पों का मांस न खाने दें।' तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचनों द्वारा सर्पराज सुपस्सा को उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया (आदि, आगे तक), और अपनी दाहिनी ओर मुख करके उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चले गए।

परिणामस्वरूप, भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, कोई भी सर्प का मांस न खाए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

14. उस समय शिकारियों ने एक शेर को मारकर उसका मांस खाया था। जब भिक्षु भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने उन्हें शेर का मांस दे दिया। शेर का मांस खाने के बाद भिक्षु जंगल में रहने लगे। तब शेरों को शेर के मांस की गंध से आकर्षित होकर उन पर हमला कर दिया गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, शेर का मांस न खाओ। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता अपराध करता है।'

15. उस समय शिकारियों ने एक बाघ, आदि, एक तेंदुआ, आदि, एक भालू, आदि, एक लकड़बग्घा (आदि, जैसा कि §-14 में नीचे तक है) को मार डाला था।

'हे भिक्षुओं, किसी को भी लकड़बग्घे का मांस नहीं खाना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कटा अपराध करता है।'

<<<< पिछला(6.22) | अगला(6.24) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.24
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.23) | अगला (6.25) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-24.

1. भगवान बुद्ध ने बनारस में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद, बारह सौ पचास भिक्षुओं के साथ अंधकविन्द की ओर प्रस्थान किया। उस समय देश के लोगों ने अपनी गाड़ियों में बहुत सारा नमक, तेल, चावल और पौष्टिक भोजन लादकर, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह के पीछे-पीछे चलना शुरू किया (यह सोचते हुए कि जब हमारी बारी आएगी, तो हम उनके लिए भोजन बनाएंगे); और पाँच सौ लोगों ने भिक्षुओं के भोजन का बचा हुआ भाग खाकर उनके पीछे-पीछे प्रस्थान किया। और भगवान बुद्ध स्थान-स्थान भटकते हुए अंधकविन्द पहुँचे।

2. अब एक ब्राह्मण, जिसकी बारी नहीं आई थी, सोचने लगा: 'दो महीने बीत गए हैं और मैं बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह के साथ चल रहा हूँ, ताकि अपनी बारी आने पर उनके लिए भोजन बना सकूँ, पर मेरी बारी नहीं आई। मैं यहाँ अकेला हूँ, और मेरे कई घरेलू काम बिगड़ रहे हैं। अगर मैं राशन-कक्ष में देखूँ, और वहाँ मुझे जो कुछ न मिले, उसे (भिक्षुओं के लिए) कैसे तैयार करूँ!' तब उस ब्राह्मण ने राशन-कक्ष में देखा और वहाँ दो प्रकार के भोजन, चावल-दूध और शहद के टुकड़े, नहीं पाए।

3. और वह ब्राह्मण उस स्थान पर गया जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उसने पूज्य आनंद से कहा: "हे प्रिय आनंद, मेरी बारी न आने पर मैंने सोचा: "दो महीने बीत चुके हैं (आदि, आगे तक)। यदि मैं राशन-कक्ष में देख लूँ तो क्या होगा, और मुझे क्या नहीं देखना चाहिए।"

"तो हे मेरे प्रिय आनंद, मैंने राशन कक्ष में देखा और वहाँ मुझे दो प्रकार के भोजन, चावल-दूध और शहद के टुकड़े नहीं मिले। हे मेरे प्रिय आनंद, यदि मैं भिक्षुओं के लिए चावल-दूध और शहद के टुकड़े तैयार करूँ, तो क्या पूज्य गौतम इसे मुझसे स्वीकार करेंगे?"

'अच्छा, मेरे प्रिय ब्राह्मण, मैं भगवान बुद्ध से पूछूंगा।'

4. और पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'अच्छा, आनंद, उसे (ये व्यंजन) तैयार करने दो।'

'अच्छा, मेरे भले ब्राह्मण, आप (उन व्यंजनों को) तैयार कर सकते हैं।'

और जब रात बीत गई, तो उस ब्राह्मण ने प्रचुर मात्रा में चावल का दूध और शहद के टुकड़े तैयार करवाए और उन्हें भगवान बुद्ध को अर्पित करते हुए कहा: 'आदरणीय गौतम बुद्ध, कृपया मेरे इस चावल के दूध और शहद के टुकड़ों को स्वीकार करें।'

"हे मेरे श्रेष्ठ ब्राह्मण, इसे भिक्षुओं को दे दीजिए।" भिक्षुओं ने नाराज़गी के भय से इसे स्वीकार नहीं किया। "हे भिक्षुओं, इसे स्वीकार कीजिए और खा लीजिए।"

तब उस ब्राह्मण ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को प्रचुर मात्रा में चावल-दूध और शहद के टुकड़े परोसे; और जब भगवान बुद्ध ने अपने हाथ धो लिए, अपना कटोरा और हाथ साफ कर लिए, तो वे उनके पास बैठ गए।

5. जब भगवान बुद्ध उनके पास बैठे, तो उन्होंने उस ब्राह्मण से कहा: 'हे ब्राह्मण, चावल के दूध से दस गुना पुण्य प्राप्त होता है। यह दस गुना कैसे है? जो चावल का दूध देता है, वह जीवन देता है; वह रंग देता है; वह आनंद देता है; वह शक्ति देता है; वह मन की तत्परता देता है; चावल का दूध पीने से भूख मिटती है; प्यास बुझती है;

यह शरीर के दोषों को ठीक करता है; मूत्राशय को शुद्ध करता है; और पाचन क्रिया को बढ़ावा देता है। हे ब्राह्मण, चावल के दूध में ये दस गुना गुण निहित हैं।

6. 'जो व्यक्ति उचित समय पर ध्यानपूर्वक आत्मसंतुष्ट लोगों को, जो दूसरों द्वारा दी गई चीजों पर जीते हैं, चावल का दूध देता है, वह उन्हें दस प्रकार से लाभ पहुंचाएगा: जीवन और रंग, आनंद और शक्ति (वह उन्हें देता है);

इससे मन की तत्परता उत्पन्न होती है; यह भूख और प्यास को दूर करता है और शरीर के रसों को संतुलित करता है; यह मूत्राशय को शुद्ध करता है और भोजन को पचाने में सहायक होता है। पूर्ण पुरुष ने इसे औषधि के रूप में सराहा है।

इसलिए, जो व्यक्ति आनंद की लालसा रखता है, जो स्वर्गीय आनंद की इच्छा रखता है, या जो मानवीय समृद्धि की आकांक्षा रखता है, उसे निरंतर चावल का दूध देना चाहिए।

7. और भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों से उस ब्राह्मण को प्रसन्न करके अपने आसन से उठकर चले गए।

और इस घटना के फलस्वरूप, भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चावल का दूध और शहद के टुकड़े ग्रहण करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.23) | अगला (6.25) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.25

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.24) | अगला(6.26) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-25.

1. अब लोगों ने सुना, 'भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को चावल-दूध और शहद के टुकड़े ग्रहण करने की अनुमति दे दी है।' उन्होंने सुबह जल्दी ही चावल-दूध और शहद के टुकड़े तैयार कर लिए। भिक्षुओं ने जब उन्हें चावल-दूध और शहद से बनी ठोस रोटी से तृप्त किया, तो उन्होंने उसे खा लिया।

सुबह चावल के दूध और शहद के टुकड़ों से भोजन करने के बाद, (उसके बाद) भोजन कक्ष में भूख से भोजन नहीं किया। उसी समय एक मंत्री, जिसने अभी-अभी धर्म परिवर्तन किया था, ने अगले दिन बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को आमंत्रित किया था। अब उस नवधर्मी मंत्री ने सोचा: 'क्या होगा यदि मैं इन बारह सौ पचास भिक्षुओं के लिए बारह सौ पचास मांसाहारी व्यंजन तैयार करूँ और प्रत्येक भिक्षु को एक-एक व्यंजन दूँ!'

2. जब वह रात बीत गई, तो उस नवधर्मी मंत्री ने उत्तम भोजन, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन थे, तथा बारह सौ पचास मांसाहारी व्यंजन तैयार करने का आदेश दिया और भगवान बुद्ध को भोजन का समय इस प्रकार सूचित किया: 'हे प्रभु, भोजन तैयार है।' दोपहर होते ही भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और किवार धारण किए उस नवधर्मी मंत्री के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे अपने साथ आए भिक्षुओं के साथ उनके लिए लगाई गई सीटों पर बैठ गए।

3. फिर उस नव-धर्मांतरित मंत्री ने अपने भोजन कक्ष में भिक्षुओं की सेवा की। भिक्षुओं ने उससे कहा: 'मित्र, हमें थोड़ा दीजिए; मित्र, हमें थोड़ा दीजिए।'

'हे आदरणीय महोदय, कम मत लीजिए, क्योंकि आप सोचते हैं कि "यह भिक्षु अभी-अभी परिवर्तित हुआ है।" मैंने भरपूर भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, तथा बारह सौ पचास मांसाहारी व्यंजन तैयार किए हैं; मैं प्रत्येक भिक्षु को एक-एक व्यंजन मांसाहारी भेंट करूँगा। हे आदरणीय महोदय, आप जितना चाहें उतना ले लीजिए।'

'मित्र, यह वह कारण नहीं है जिसके लिए हम कम खाते हैं। बल्कि हमने सुबह चावल के दूध और शहद के टुकड़ों से अपना पेट भर लिया है; इसलिए हम कम खाते हैं।'

4. और वह नवधर्मी मंत्री नाराज़ होकर बड़बड़ाया और क्रोधित हो गया: 'मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, फिर भी वे अन्य लोगों के साथ चावल का दूध कैसे ग्रहण कर सकते हैं, मानो मैं उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार देने में असमर्थ हूँ।' (ऐसा सोचते हुए) वह क्रोधित, असंतुष्ट और आक्रामक स्वभाव से भिक्षुओं के कटोरे भरता हुआ (और कहता हुआ) घूम रहा था, 'खाओ या ले जाओ!' और उस नवधर्मी मंत्री ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, परोसा और अर्पित किया; और जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा और हाथ धो लिए, तो वे उसके पास बैठ गए। और भगवान बुद्ध ने अपने पास बैठे उस नवधर्मी मंत्री को धर्म प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रोत्साहन, उत्साह और प्रसन्नता प्रदान करने के बाद, अपने आसन से उठकर चले गए।

5. भगवान बुद्ध के चले जाने के तुरंत बाद, उस नव-धर्मांतरित मंत्री को शंका और पश्चाताप सताने लगा: 'हाय, यह मेरे लिए बुरा है, अच्छा नहीं! हाय, यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं कि मैं भिक्षुओं के बीच क्रोधित, असंतुष्ट और अपमानजनक स्वभाव से घूम-घूम कर उनके प्याले भरता रहा (और कहता रहा), "खाओ या ले जाओ!" इससे मुझे क्या लाभ हुआ, अधिक पुण्य या अधिक पाप?'

और वह नवधर्मी मंत्री उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गया। उनके निकट बैठे हुए उस नवधर्मी मंत्री ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद, मेरे मन में शंकाएँ और पश्चाताप उत्पन्न हो गए हैं: हाय, यह मेरे लिए कितना बड़ा पाप है।"

(और इसी तरह) अधिक पुण्य या अधिक पाप? हे प्रभु, मैंने इससे क्या अर्जित किया, अधिक पुण्य या अधिक पाप?

6. 'हे मित्र, जिस क्षण तुमने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को अगले दिन के लिए आमंत्रित किया, उसी क्षण तुमने बहुत पुण्य अर्जित किया। और जिस क्षण प्रत्येक भिक्षु ने तुमसे चावल का एक टुकड़ा ग्रहण किया, उसी क्षण तुमने बहुत पुण्य अर्जित किया। तुमने स्वर्ग का उत्तराधिकार प्राप्त किया।'

तब उस नवधर्मी मंत्री ने सोचा: 'अरे, यह तो मेरे लिए अच्छा है! अरे, यह तो मेरा लाभ है! मैंने बहुत पुण्य अर्जित किया है! मुझे स्वर्ग का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है!' और प्रसन्न और आनंदित होकर वह अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुड़कर उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चले गए।

7. इसके फलस्वरूप, और इस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने भिक्षु समुदाय को एकत्रित होने का आदेश देकर भिक्षुओं से प्रश्न किया: 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि भिक्षुओं को एक स्थान पर आमंत्रित करके अन्य व्यक्तियों के साथ ठोस चावल-दूध ग्रहण किया जाता है?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब महान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग एक स्थान पर आमंत्रित होकर अन्य लोगों के साथ चावल का दूध कैसे ग्रहण कर सकते हैं? हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है।' इत्यादि। उन्हें फटकारने और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, जब किसी को एक स्थान पर आमंत्रित किया जाए, तो वह अन्य लोगों के साथ चावल का दूध ग्रहण न करे। जो ऐसा करता है, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाना चाहिए।'

<<<< पिछला(6.24) | अगला(6.26) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.26
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.25) | अगला (6.27) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-26.

1. भगवान बुद्ध ने अंधकविन्द में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद, बारह सौ पचास भिक्षुओं के साथ राजगृह के लिए प्रस्थान किया। उस समय बेलत्था कक्कना राजगृह से अंधकविन्द जाने वाले मार्ग पर चीनी के घड़ों से भरी पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर यात्रा कर रहा था। भगवान बुद्ध ने दूर से बेलत्था कक्कना को आते देखा; उसे देखते ही वे मार्ग छोड़कर एक वृक्ष की गोद में बैठ गए।

2. बेलात्था कक्कना उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके निकट खड़े हो गए। उनके पास खड़े होकर बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मेरी इच्छा है कि मैं प्रत्येक भिक्षु को एक घड़ा चीनी भेंट करूँ।'

'अच्छा, कक्काना, यहाँ एक बर्तन चीनी ले आओ।'

बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए कि, 'जी प्रभु,') चीनी का एक बर्तन लिया और उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मैं चीनी का बर्तन यहाँ लाया हूँ; मुझे इसका क्या करना चाहिए?'

'अच्छा, कक्कना, भिक्षुओं को चीनी दे दो।'

3. बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए), 'जी प्रभु,' कहा और आगे

मैंने भिक्षुओं को चीनी दी और भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मैंने भिक्षुओं को चीनी दे दी है, लेकिन बहुत सी चीनी बच गई है; मैं इसका क्या करूँ, प्रभु?'

'अच्छा, कक्कना, भिक्षुओं को जितनी चीनी चाहिए उतनी दे दो।'

बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए कि, 'जी प्रभु,') भिक्षुओं को उनकी इच्छानुसार चीनी दी और भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मैंने भिक्षुओं को उनकी इच्छानुसार चीनी दे दी है, लेकिन बहुत सी चीनी बच गई है; मैं इसका क्या करूँ, प्रभु?'

'अच्छा, कक्कना, भिक्षुओं को जी भरकर चीनी खाने दो।'

बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को 'हां, प्रभु' कहकर स्वीकार किया और भिक्षुओं को जी भरकर चीनी खाने दिया; कुछ भिक्षुओं ने अपने कटोरे भर लिए और अपने पानी छानने वाले बर्तन और थैले भी चीनी से भर लिए।

4. और बेलात्था कक्कना ने भिक्षुओं को तृप्त चीनी खिलाकर, भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, भिक्षुओं ने तृप्त चीनी खा ली है, लेकिन बहुत सी चीनी बच गई है; मैं इसका क्या करूँ, प्रभु?'

'अच्छा, कक्कना, जो लोग भिक्षुओं के भोजन का अवशेष खाते हैं, उन्हें चीनी दे दो,' इत्यादि।

'अच्छा, कक्कना, भिक्षुओं के भोजन के अवशेष खाने वालों को जितनी चीनी चाहिए उतनी दे दो,' इत्यादि।

5. 'अच्छा, कक्कना, जो लोग भिक्षुओं के भोजन का बचा हुआ भाग खाते हैं, वे चीनी से जी भर लें' (आदि, नीचे तक); भिक्षुओं के भोजन का बचा हुआ भाग खाने वाले कुछ लोगों ने अपना पेट भर लिया

उन्होंने बर्तन और घड़े लिए, और अपनी टोकरियों और अपने कपड़ों की तहों को उससे भर दिया।

6. और बेलात्था कक्कना ने भिक्षुओं के भोजन के बचे हुए भाग को खाने वाले लोगों को चीनी से तृप्त कर देने के बाद भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, भिक्षुओं के भोजन के बचे हुए भाग को खाने वाले लोगों ने चीनी से तृप्त कर लिया है, लेकिन बहुत सी चीनी बच गई है; हे प्रभु, मैं इसका क्या करूँ?'

कक्कना, मनुष्यों और देवताओं के संसार में, मार और ब्रह्मा के संसार में, सभी प्राणियों में, समन (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों में, मुझे तथागत (बुद्ध) या तथागत के शिष्य के सिवा कोई ऐसा प्राणी नहीं दिखता जो उस चीनी को खाने के बाद पूरी तरह से आत्मसात कर सके। इसलिए, कक्कना, उस चीनी को घास रहित स्थान पर फेंक दो, या उसे ऐसे जल में विसर्जित कर दो जिसमें कोई जीव-जंतु न हों।

बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को (यह कहकर) स्वीकार किया, 'हां, प्रभु,' और उस चीनी को ऐसे पानी में डुबो दिया जिसमें कोई जीवित प्राणी नहीं थे।

7. और जब चीनी को पानी में डाला गया, तो वह फुफकारने लगी, बुलबुले उठने लगे, भाप निकलने लगी और धुआँ निकलने लगा। जैसे दिनभर गर्म किया हुआ हल पानी में डालने पर फुफकारने लगता है, बुलबुले उठने लगते हैं, भाप निकलने लगती है और धुआँ निकलने लगता है, वैसे ही चीनी को पानी में डालने पर फुफकारने लगी, बुलबुले उठने लगे, भाप निकलने लगी और धुआँ निकलने लगा। और बेलात्था कक्कना भयभीत होकर और डर से अपने बाल खड़े करके उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके पास बैठ गया।

8. जब बेलात्था कक्कना उसके पास बैठी थी,

भगवान बुद्ध ने उचित समय पर उन्हें उपदेश दिया; अर्थात् उन्होंने दान देने के पुण्य, नैतिकता के कर्तव्य, स्वर्ग, बुराइयों, व्यर्थता और कामवासनाओं के दूषित होने तथा कामवासनाओं के त्याग के आशीर्वादों के बारे में बताया। जब भगवान बुद्ध ने देखा कि बेलात्था कक्कना का मन तैयार, ग्रहणशील, सत्य को समझने में बाधाओं से मुक्त, प्रसन्न और विश्वासी है, तब उन्होंने बुद्धों के प्रमुख सिद्धांत, अर्थात् दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण और मार्ग का उपदेश दिया। जिस प्रकार एक साफ, बिना दाग वाला कपड़ा रंग को ठीक से सोख लेता है, उसी प्रकार बेलात्था कक्कना ने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त कर ली: 'जो कुछ भी उत्पत्ति की स्थिति के अधीन है, वह निवारण की स्थिति के भी अधीन है।'

9. सत्य को देखकर, सत्य में महारत हासिल करके, सत्य को समझकर, सत्य में मर्मस्पर्शी होकर, अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करके, सभी शंकाओं को दूर करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, गुरु के उपदेश के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहकर, बेलात्था कक्कना ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु! हे प्रभु! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जला दे ताकि देखने वाले दृश्य देख सकें, वैसे ही भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से उपदेश दिया है। हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध, धम्म और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ;

भगवान बुद्ध मुझे आज से मेरे जीवन भर के लिए एक शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिसने उनकी शरण ली है।

<<<< पिछला (6.25) । अगला (6.27) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.27
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.26) । अगला(6.28) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-27.

और भगवान बुद्ध स्थान-स्थान घूमते हुए राजगृह पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध राजगृह के पास वेलुवन में कलांदकनिवापा में निवास करने लगे। उस समय राजगृह के भिक्षुओं के पास चीनी प्रचुर मात्रा में थी। भिक्षुओं को भय था कि कहीं वे भगवान बुद्ध को नाराज न कर दें (और उन्होंने सोचा): 'भगवान बुद्ध ने चीनी खाने की अनुमति केवल बीमारों को दी है, स्वस्थों को नहीं,' इसलिए उन्होंने चीनी नहीं खाई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं बीमारों को चीनी खाने की और स्वस्थों को चीनी का पानी पीने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(6.26) । अगला(6.28) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.27) | अगला(6.29) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-28.

1. भगवान बुद्ध ने राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद, बारह सौ पचास भिक्षुओं के साथ पाटलिगमा की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए भगवान बुद्ध पाटलिगमा पहुँचे।

तब पाटालिगमा के गृहस्थ भक्तों ने सुना, 'भगवान बुद्ध पाटालिगमा आ गए हैं।' और पाटालिगमा के गृहस्थ भक्त उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। जब वे उनके निकट बैठे, तो भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा पाटालिगमा के गृहस्थ भक्तों को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया।

2. पाटालिगमा के गृहस्थ भक्त, भगवान बुद्ध द्वारा धर्म प्रवचन से शिक्षित, प्रोत्साहित, प्रेरित और प्रसन्न होकर, भगवान बुद्ध से कहने लगे, "हे प्रभु, क्या आप भिक्षु समुदाय के साथ हमारे विश्रामगृह में आने की कृपा करेंगे?" भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब पाटालिगमा के गृहस्थ भक्त, जब उन्हें समझ आया कि भगवान बुद्ध ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसनों से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा करते हुए विश्रामगृह की ओर चल दिए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने विश्रामगृह के पूरे फर्श पर चटाई बिछाई, आसन लगाए, एक जलपात्र रखा और एक तेल का दीपक जलाया। फिर वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट आसीन हो गए।

3. उनके पास खड़े पाटलिपुत्त के गृहस्थ भक्तों ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, हमने विश्रामगृह के पूरे फर्श पर (रेत) बिछा दी है, हमने उसमें आसन लगाए हैं, एक जलपात्र स्थापित किया है, और

मैंने तेल का दीपक जलाया। हे भगवान, अब वे जो चाहें करें।

दोपहर के समय भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और किवार धारण किए हुए अपने पीछे आने वाले भिक्षुओं के साथ विश्रामगृह की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पैर धोए, विश्रामगृह में प्रवेश किया और मध्य स्तंभ के पास पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए। भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोए, विश्रामगृह में प्रवेश किया और पश्चिम की दीवार के पास पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए, उनके मुख भगवान बुद्ध के सामने थे। पाटालिगमा के गृहस्थ भक्तों ने भी अपने पैर धोए, विश्रामगृह में प्रवेश किया और पूर्व की दीवार के पास पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बैठ गए, उनके मुख भगवान बुद्ध के सामने थे।

4. तब भगवान बुद्ध ने पाटालिगमा के गृहस्थ भक्तों को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे गृहस्थों, दुराचारी को उसके अधर्म के कारण पाँच प्रकार की हानि होती है। और ये पाँच प्रकार की हानियाँ क्या हैं? हे गृहस्थों, पहली हानि यह है कि अधर्मी दुराचारी आलस्य के कारण घोर दरिद्र हो जाता है; यह दुराचारी की अधर्मता के कारण होने वाली पहली हानि है। फिर, हे गृहस्थों, अधर्मी दुराचारी की बदनामी दूर-दूर तक फैल जाती है; यह दूसरी हानि है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों, अधर्मी दुराचारी जिस भी समाज में प्रवेश करता है—चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों के मुखियाओं का हो या समनों का—वह संकोच और भ्रम में प्रवेश करता है; यह तीसरी हानि है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों, अधर्मी दुराचारी मरते समय चिंता से भरा रहता है; यह चौथी हानि है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों,

हे गृहस्थों, निर्गुण कर्म करने वाला व्यक्ति, मृत्यु के बाद अपने शरीर के नष्ट होने पर, किसी कष्ट और दंड की अवस्था में, दुख और नरक की अवस्था में पुनर्जन्म लेता है; यह पाँचवाँ दंड है।

5. हे गृहस्थों, सदाचार के अभ्यास से सद्गुणी को पाँच प्रकार का लाभ होता है। और यह पाँच प्रकार का लाभ क्या है? हे गृहस्थों, प्रथम स्थान पर, सदाचार में दृढ़ सद्गुणी अपने परिश्रम से अपार धन अर्जित करता है; यह सदाचार के अभ्यास से सद्गुणी का प्रथम लाभ है। फिर, हे गृहस्थों, सदाचार में दृढ़ सद्गुणी के बारे में अच्छी ख्याति दूर-दूर तक फैलती है; यह द्वितीय लाभ है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों, सदाचार में दृढ़ सद्गुणी जिस भी समाज में प्रवेश करता है—चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों के मुखियाओं का हो या सामंतों का—वह आत्मविश्वास और आत्मसंयम के साथ प्रवेश करता है; यह तृतीय लाभ है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों, सदाचार में दृढ़ सद्गुणी चिंतामुक्त होकर प्राण त्यागता है; यह चतुर्थ लाभ है, इत्यादि। फिर, हे गृहस्थों, सदाचार में दृढ़ सद्गुणी अपने शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, स्वर्ग में किसी सुखी अवस्था में पुनर्जन्म लेता है; यह पाँचवाँ है, इत्यादि। हे गृहस्थों, यह नेक कर्म करने वाले को उसके धार्मिक आचरण के द्वारा प्राप्त होने वाला पाँच गुना लाभ है।

6. जब भगवान बुद्ध ने इस प्रकार रात भर पाटलिगमा के गृहस्थ भक्तों को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, तो उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया, 'हे गृहस्थों, रात काफी बीत चुकी है। अब आप जो उचित समझें, वह करें।' पाटलिगमा के गृहस्थ भक्तों ने भगवान बुद्ध की बात को 'जी प्रभु' कहकर स्वीकार किया और अपने आसन से उठ खड़े हुए।

कुछ लोगों ने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुंह करके उनके चारों ओर चक्कर लगाते हुए चले गए।

7. और पाटालिगमा के गृहस्थ भक्तों के वहां से चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान बुद्ध ध्यान में लीन होने के लिए एक सुनसान जगह पर चले गए।

उस समय मगध के दो मंत्री, सुनीधा और वस्सकारा, वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटलिगमा में एक किलेबंद नगर का निर्माण कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने भोर के समय, सुबह जल्दी उठकर, अपनी दिव्य और स्पष्ट दृष्टि से, जो सामान्य मनुष्यों की दृष्टि से कहीं अधिक थी, पाटलिगमा की भूमि पर विचरण करने वाली असंख्य परियों को देखा। अब, जहाँ कहीं भी शक्तिशाली परियाँ निवास करती हैं, वे शक्तिशाली राजाओं और मंत्रियों के हृदय को वहाँ निवास स्थान बनाने के लिए प्रेरित करती हैं। जहाँ कहीं भी मध्यम शक्ति वाली परियाँ निवास करती हैं, वहाँ मध्यम शक्ति वाले राजाओं और मंत्रियों के हृदय को वहाँ निवास स्थान बनाने के लिए प्रेरित करती हैं।

8. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: 'आनंद, पाटालिगमा में नगर का निर्माण कौन कर रहे हैं?'

'हे प्रभु, मगध के दो मंत्री सुनीधा और वासकारा, वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटलिगामा में एक नगर का निर्माण कर रहे हैं।'

"मानो, उन्होंने तावतिंसा देवताओं से परामर्श किया हो, इसलिए (सही जगह पर), आनंद, मगध के मंत्री सुनीधा और वस्सकारा ने वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटलिगामा में इस नगर का निर्माण किया। जब मैं भोर में उठा, आनंद, तो मैंने अपनी दिव्य और स्पष्ट दृष्टि से देखा (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 7 में है, आगे तक): कि वे निम्न राजाओं और मंत्रियों के हृदयों को वहाँ निवास स्थान बनाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। जहाँ तक आर्य लोग निवास करते हैं, जहाँ तक व्यापारी यात्रा करते हैं, यह प्रमुख नगर, पाटलिपुत्त का नगर बन जाएगा। परन्तु, आनंद, पाटलिपुत्त पर तीन प्रकार से विनाश का खतरा मंडराएगा: अग्नि से, जल से, या आंतरिक कलह से।"

9. मगध के मंत्री सुनीधा और वस्सकारा उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया; प्रणाम और विनम्र शब्दों का आदान-प्रदान करने के बाद वे उनके निकट खड़े हो गए; फिर उनके पास खड़े होकर मगध के मंत्री सुनीधा और वस्सकारा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'क्या पूज्य गौतम आज भिक्षुओं के साथ हमारे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब मगध के मंत्री सुनीधा और वस्सकारा, जब उन्हें समझ आया कि भगवान बुद्ध ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे चले गए।

10. और मगध के मंत्रियों सुनीधा और वासकारा ने उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, तैयार करने का आदेश दिया, और उनके लिए लगाए गए आसनों पर भोजन का समय घोषित करवाया। मगध के मंत्रियों सुनीधा और वासकारा ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, परोसा और भेंट किया; और जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा और हाथ धो लिए, तो वे उनके पास बैठ गए। जब वे उनके पास बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों से मगध के मंत्रियों सुनीधा और वासकारा को प्रसन्न किया:

11. 'जहाँ कहीं भी विवेकशील व्यक्ति अपना निवास स्थान बनाए, वहाँ वह अच्छे और ईमानदार, आत्मसंयमित पुरुषों का समर्थन करे।

'वह वहां विराजमान सभी देवताओं को भेंट चढ़ाए। उनका आदर किया जाएगा, वे उसका आदर करेंगे; उनका सम्मान किया जाएगा, वे भी उसका सम्मान करेंगे;'

'उसके प्रति वैसे ही दयालु रहो जैसे एक माँ अपने गर्भ के पुत्र के प्रति होती है। और जिस मनुष्य पर देवताओं की कृपा होती है, वह सौभाग्यशाली होता है।'

और भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों से मगध के मंत्रियों सुनीधा और वस्सकारा को प्रसन्न करके अपने आसन से उठकर चले गए।

12. और मगध के मंत्री सुनीधा और वस्सकरा भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे चलते हुए कहने लगे, "आज जिस द्वार से समना गौतम (बुद्ध) बाहर जाएंगे, उसका नाम गौतम द्वार होगा, और जिस घाट से वे गंगा नदी पार करेंगे, उसका नाम गौतम घाट होगा।" और जिस द्वार से भगवान बुद्ध बाहर गए,

उस द्वार को गौतम द्वार कहा जाता था। और भगवान बुद्ध नदी की ओर चल पड़े। उस समय गंगा नदी उफान पर थी; और दूसरे किनारे पर जाने की इच्छा से, कुछ लोग नावों की तलाश करने लगे, कुछ लकड़ी के बेड़ों की, जबकि कुछ ने टोकरियों से बेड़े बनाए।

13. भगवान बुद्ध ने उन लोगों को देखा जो गंगा के दूसरे किनारे पर जाना चाहते थे, कुछ नावों की तलाश में थे, कुछ लकड़ी के बेड़ों की, और कुछ टोकरियों से बेड़े बना रहे थे। उन्हें देखकर वे इतनी जल्दी गायब हो गए जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाकर या समेटकर फुर्ती से गंगा के इस किनारे से गायब हो जाता है, और भिक्षुओं के साथ दूसरे किनारे पर खड़े हो गए।

और भगवान बुद्ध ने यह सब देखकर इस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:

'जो लोग समुद्र की बाढ़ को पार करते हुए तालाबों के पार एक ठोस मार्ग बनाते हैं--'

'जबकि व्यर्थ संसार अपनी नावों को बांधता है: ये ही बुद्धिमान हैं, यही वास्तव में उद्धार पाए हुए हैं।'

<<<< पिछला(6.27) । अगला(6.29) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.29

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.28) । अगला (6.30) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-29.

1. और भगवान बुद्ध कोटिगामा गए। वहाँ कोटिगामा में भगवान बुद्ध निवास करने लगे। और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

हे भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों को न समझने और न ग्रहण करने के कारण ही हम दोनों को इस जन्म-जन्म के थकाऊ मार्ग पर इतनी लंबी दौड़ लगानी पड़ी है, इतना लंबा भटकना पड़ा है। और ये चार सत्य क्या हैं? हे भिक्षुओं, दुख के आर्य सत्य को न समझने और न ग्रहण करने के कारण; दुख के कारण के आर्य सत्य को न समझने और न ग्रहण करने के कारण; दुख के निवारण के आर्य सत्य को न समझने और न ग्रहण करने के कारण; दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के आर्य सत्य को न समझने और न ग्रहण करने के कारण ही हम दोनों को इस जन्म-जन्म के थकाऊ मार्ग पर इतनी लंबी दौड़ लगानी पड़ी है, इतना लंबा भटकना पड़ा है।

2. “हे भिक्षुओं, अब दुख के आर्य सत्य को समझ लिया गया है और ग्रहण कर लिया गया है; दुख के कारण, दुख के निवारण आदि, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग आदि के आर्य सत्य को समझ लिया गया है और ग्रहण कर लिया गया है। जीवन की लालसा जड़ से उखड़ गई है; जो पुनर्जन्म की ओर ले जाता है वह नष्ट हो गया है; और अब कोई जन्म नहीं है!”

'चार आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में न देखने के कारण, अनेक जन्मों के कष्ट से भरा लंबा मार्ग तय करना पड़ता है।'

'अब ये बातें समझ में आ गई हैं; जन्म का कारण दूर हो गया है, दुख की जड़ जड़ से उखाड़ दी गई है, और अब कोई जन्म नहीं होता।'

<<<< पिछला (6.28) | अगला (6.30) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.30

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.29) | अगला (6.31) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-30.

1. अब वेश्या अंबपाली ने सुना कि भगवान बुद्ध कोटिगामा आ गए हैं। अंबपाली ने कई भव्य वाहन तैयार करने का आदेश दिया, उनमें से एक वाहन पर सवार हुई और भगवान बुद्ध से मिलने के लिए वैशाली को उसके भव्य वाहन के साथ छोड़कर चली गई। वह रथ में बैठकर उतनी दूर तक गई जहाँ तक रथों का आवागमन संभव था; वहाँ वह उतर गई; और पैदल चलकर उस स्थान पर पहुँची जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गई।

2. जब वह उनके पास बैठी थीं, तब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा वेश्या अंबपाली को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। और धर्म प्रवचन द्वारा भगवान बुद्ध से शिक्षा आदि प्राप्त करने के बाद वेश्या अंबपाली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, क्या आप कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ मेरे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

तब जब वेश्या अंबपाली को यह समझ आया कि भगवान बुद्ध ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वह अपने स्थान से उठी, आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अपनी दाहिनी ओर उनकी ओर करके उनके चारों ओर घूमकर चली गई।

3. वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि भगवान बुद्ध कोटिगामा आ गए हैं। उन्होंने अनेक भव्य वाहन तैयार करवाए, उन पर सवार हुए और भगवान बुद्ध से मिलने के लिए वैशाली से निकल पड़े। कुछ लिच्छवी सांवले रंग के थे और उन्होंने काले वस्त्र और आभूषण पहने थे; कुछ गोरे रंग के थे और उन्होंने हल्के वस्त्र और आभूषण पहने थे; कुछ लाल रंग के थे और उन्होंने लाल वस्त्र और आभूषण पहने थे; कुछ गोरे रंग के थे और उन्होंने सफेद वस्त्र और आभूषण पहने थे। और वेश्या अंबपाली उन युवा लिच्छवियों के सामने, एक-दूसरे से सटकर, कंधे से कंधे, जुआ से जुआ, पहिया से पहिया, धुरी से धुरी तक, दौड़ती हुई आई। उन लिच्छवियों ने वेश्या अंबपाली से कहा, 'अंबपाली, तुम उन युवा लिच्छवियों के सामने इस तरह क्यों दौड़ती हो?'

मेरे स्वामियों, मैंने अभी-अभी भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के समुदाय को कल के भोज के लिए आमंत्रित किया है।'

'अंबापाली! एक लाख के बदले यह भोजन हमें दे दो।'

'मेरे स्वामियों, यदि आप वैशाली और उसके अधीन पूरे क्षेत्र को मुझे सौंप दें, तो भी मैं यह भोजन नहीं छोड़ूँगी।' तब लिच्छवियों ने उंगलियां चटकाते हुए कहा, 'हम इस स्त्री से हार गए! हम इस स्त्री से कहीं आगे निकल गए!'

4. तब लिच्छवी उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे। भगवान बुद्ध ने दूर से लिच्छवियों को आते देखा; उन्हें देखकर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, जिन भिक्षुओं ने तावतिंसा देवताओं के दर्शन नहीं किए हैं, वे लिच्छवियों के इस समूह को देखें, इस समूह की तुलना तावतिंसा देवताओं के समूह से करें!' और लिच्छवी रथों में बैठकर वहाँ तक गए जहाँ तक रथों का आवागमन संभव था (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1, 2 में है, आगे:) 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध कल भिक्षु समुदाय के साथ हमारे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

'हे लिच्छवी, मैंने वादा किया है कि कल मैं वेश्या अंबपाली के साथ भोजन करूंगा।'

5. भगवान बुद्ध ने कोटिगामा में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद नातिका चले गए। वहाँ भगवान बुद्ध नातिका के ईंट-पत्थर वाले मठ (गिंगकवासथा) में रहने लगे। रात्रि होने पर, वेश्या अंबपाली ने अपने उद्यान में उत्तम भोजन का प्रबंध किया (जैसा कि अध्याय 28, 10, 1 से आगे तक वर्णित है)। वह उनके पास बैठ गई। उनके पास बैठी अंबपाली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, मैं यह अंबपाली उपवन भिक्षुओं के समुदाय को समर्पित करती हूँ, जिसके मुखिया बुद्ध हों।' भगवान बुद्ध ने आराम (मठ) स्वीकार कर लिया। फिर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा वेश्या अंबपाली को शिक्षा, प्रोत्साहन, उत्साह और प्रसन्नता प्रदान करने के बाद, अपने आसन से उठकर महावन चले गए। वहाँ भगवान बुद्ध वैशाली में महावन के कुटगारा-शाला में रहने लगे।

लिच्छवि भंवरा का अंत।

<<<< पिछला (6.29) | अगला (6.31) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.31
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.30) | अगला (6.32) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-31.

1. उस समय कई प्रतिष्ठित लिक्वी नगर भवन में एकत्रित होकर बैठे थे और बुद्ध, धम्म और संघ की अनेक प्रकार से प्रशंसा कर रहे थे। उस समय निगंथ संप्रदाय के शिष्य, लिक्वी संप्रदाय के सेनापति सिहा भी उस सभा में उपस्थित थे। सेनापति सिहा ने सोचा, 'निश्चित रूप से भगवान बुद्ध ही अरहत बुद्ध हैं, क्योंकि नगर भवन में एकत्रित होकर बैठे ये अनेक प्रतिष्ठित लिक्वी बुद्ध, धम्म और संघ की इतनी अनेक प्रकार से प्रशंसा कर रहे हैं। क्या होगा यदि मैं जाकर अरहत बुद्ध से मिलूँ?'

2. और सेनापति सिहा उस स्थान पर गया जहाँ निगंथ नटपुत्त (जैन संप्रदाय के महावीर) थे; उनके पास पहुँचकर उसने निगंथ नटपुत्त से कहा: 'हे प्रभु, मैं समना गौतम (बुद्ध) के दर्शन करने जाना चाहता हूँ।'

'हे सिहा, तुम कर्मों के फल में विश्वास रखते हो (उनके नैतिक गुणों के अनुसार), तो फिर तुम समना गौतम (बुद्ध) के पास क्यों जाते हो, जो कर्मों के फल का खंडन करते हैं? क्योंकि समना गौतम, हे सिहा, कर्मों के फल का खंडन करते हैं; वे निरालापन का सिद्धांत सिखाते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।'

तब सेनापति सिहा के मन में भगवान बुद्ध के दर्शन करने की जो इच्छा उत्पन्न हुई थी, वह शांत हो गई।

3. और दूसरी बार कई प्रतिष्ठित लिक्खावी एक साथ बैठे थे (आदि, जैसा कि §§-1, 2 में अंत तक है)।

और तीसरी बार कई प्रतिष्ठित लिक्वी एक साथ बैठे थे, इत्यादि। और तीसरी बार सेनापति सिहा ने सोचा: 'निश्चित रूप से, भगवान बुद्ध ही अरहत बुद्ध होंगे, क्योंकि नगर सभागार में एकत्रित होकर बैठे ये अनेक प्रतिष्ठित लिक्वी बुद्ध, धम्म और संघ की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। निगंथों का मुझसे क्या संबंध है, चाहे वे अपनी सहमति दें या न दें? यदि मैं निगंथों की अनुमति लिए बिना ही भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध से मिलने चला जाऊं तो क्या होगा?'

4. और सेनापति सिहा, भगवान बुद्ध से मिलने के लिए दिनदहाड़े पाँच सौ रथों के साथ वैशाली से निकले। वे रथ में वहाँ तक गए जहाँ तक रथों का आवागमन संभव था; वहाँ वे रथ से उतरे और पैदल चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर, उन्होंने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठकर सेनापति सिहा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, मैंने सुना है कि समना गौतम (बुद्ध) कर्मों के फल का खंडन करते हैं; वे निरंकुशता का उपदेश देते हैं और इसी सिद्धांत में अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं। हे प्रभु, जो लोग इस प्रकार कहते हैं, "समना गौतम (बुद्ध) कर्मों के फल का खंडन करते हैं," इत्यादि—क्या वे भगवान बुद्ध के सत्य का उल्लेख करते हैं, और क्या वे भगवान बुद्ध के विरुद्ध झूठी गवाही नहीं देते और किसी नकली धर्म को आपका धर्म बताकर उसका प्रचार नहीं करते? और धर्म के विषय में इस प्रकार की चर्चा और वाद-विवाद में कोई निंदनीय बात नहीं है।" क्योंकि हे प्रभु, हमारा यही उद्देश्य है कि हम भगवान बुद्ध पर झूठे आरोप न लगाएं।

5. 'हे सिहा, एक ऐसा तरीका है जिससे सत्यवादी मेरे बारे में कह सकता है: "समना गौतम (बुद्ध) कर्म का त्याग करते हैं; वे अकर्म के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।"

और फिर, सिहा, एक ऐसा तरीका है जिससे कोई सत्यवादी मेरे बारे में कह सकता है: "समना गौतम कर्म का पालन करते हैं; वे कर्म के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।"

और फिर, सिहा, एक ऐसा तरीका है जिससे सच बोलने वाला मेरे बारे में कह सकता है: "समना गौतम विनाश का सिद्धांत मानते हैं; वे विनाश के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।"

और फिर, सिहा, एक ऐसा तरीका है जिससे सच बोलने वाला मेरे बारे में कह सकता है: "समना गौतम तुच्छता का प्रचार करते हैं; वे तुच्छता का सिद्धांत सिखाते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।"

और फिर, इत्यादि: "समना गौतम विनय का प्रचार करते हैं; वे विनय के सिद्धांत का शिक्षण करते हैं; और इस सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं।"

और फिर, इत्यादि: "समना गौतम (बुद्ध) तपस आदि का प्रचार करते हैं।"

और फिर, इत्यादि: "समना गौतम अपगब्भ हैं; वे अपगब्भत का सिद्धांत सिखाते हैं, इत्यादि।"

और फिर, इत्यादि: "समान गौतम आत्मविश्वासी हैं; वे आत्मविश्वास का सिद्धांत सिखाते हैं, इत्यादि।"

6. "हे सिहा, यह किस प्रकार है कि सत्य बोलने वाला मेरे बारे में कह सकता है: 'समना गौतम कर्म का त्याग करते हैं; वे अकर्म के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं?' हे सिहा, मैं सिखाता हूँ कि कर्म, वचन या विचार से अधार्मिक कर्मों का त्याग करना चाहिए; मैं सिखाता हूँ कि हृदय की अनेक प्रकार की बुरी और अशुभ अवस्थाओं को उत्पन्न न करना चाहिए। इस प्रकार, हे सिहा, सत्य बोलने वाला मेरे बारे में कह सकता है: 'समना गौतम (बुद्ध), इत्यादि।'"

"हे सिहा, ऐसा कैसे संभव है कि कोई सत्यवादी मेरे विषय में यह कह सके: 'समना गौतम (बुद्ध) कर्म का पालन करते हैं; वे कर्म के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं?' हे सिहा, मैं कर्म, वचन और विचार द्वारा धर्मपरायण कर्मों का पालन करना सिखाता हूँ; मैं हृदय की उन अनेक अवस्थाओं को उत्पन्न करना सिखाता हूँ जो अच्छी हैं, बुरी नहीं। इस प्रकार, इत्यादि।"

7. "हे सिहा, यह किस प्रकार संभव है कि सत्य बोलने वाला मेरे विषय में यह कह सके: 'समना गौतम विनाश का पालन करते हैं; वे विनाश के सिद्धांत का उपदेश देते हैं; और इसी सिद्धांत में वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं?' हे सिहा, मैं कामवासना, द्वेष और भ्रम के विनाश की घोषणा करता हूँ; मैं हृदय की उन अनेक अवस्थाओं के विनाश की घोषणा करता हूँ जो बुरी हैं, अच्छी नहीं। इस प्रकार, इत्यादि।"

और हे सिहा, किस प्रकार सत्यवादी मेरे विषय में यह कह सकता है कि "समन गौतम तुच्छता का उपदेश देते हैं, इत्यादि?" हे सिहा, मैं अधर्मी कर्मों को तुच्छ मानता हूँ, चाहे वे कर्म से किए गए हों, वचन से या विचार से; मैं उन अनेक प्रकार की बुरी अवस्थाओं में पड़ने की तुच्छता का उपदेश देता हूँ जो अच्छी नहीं हैं। इस प्रकार, इत्यादि।

8. "हे सिहा, यह किस प्रकार है कि सत्य बोलने वाला मेरे विषय में यह कह सकता है: 'समना गौतम विनय आदि का प्रचार करते हैं?' हे सिहा, मैं कामवासना, द्वेष और भ्रम का निवारण करना सिखाता हूँ; मैं हृदय की उन अनेक अवस्थाओं का निवारण करना सिखाता हूँ जो बुरी हैं, भली नहीं। इस प्रकार, इत्यादि।"

और हे सिहा, यह किस प्रकार से है कि सत्य बोलने वाला मेरे विषय में यह कह सकता है: "समना गौतम तपस्या का उपदेश देते हैं, इत्यादि?" हे सिहा, मैं सिखाता हूँ कि हृदय की वे सभी अवस्थाएँ जो बुरी हैं, अच्छी नहीं हैं, कर्म, वचन और विचार से किए गए अधार्मिक कर्म, सब कुछ भस्म हो जाना चाहिए। हे सिहा, जिसने अपने आप को हृदय की उन सभी बुरी अवस्थाओं से मुक्त कर लिया है, जिन्हें भस्म हो जाना चाहिए, जिसने उन्हें जड़ से उखाड़ दिया है, और उन्हें उसी प्रकार नष्ट कर दिया है जैसे ताड़ के पेड़ को जड़ से उखाड़ दिया जाता है, ताकि वे नष्ट हो जाएँ और फिर से न उग सकें—ऐसे व्यक्ति को मैं तप में सिद्ध कहता हूँ। अब हे सिहा, तथागत (बुद्ध) ने अपने आप को उन सभी अवस्थाओं से मुक्त कर लिया है, इत्यादि। इस प्रकार, इत्यादि।

9. "हे सिहा, यह किस प्रकार है कि सत्य बोलने वाला मेरे विषय में यह कह सकता है: 'समना गौतम अपगब्भ (अस्थिर) हैं, इत्यादि?' हे सिहा, जिसने भविष्य में माता के गर्भ में लौटने और नए जन्म लेने की बाध्यता से स्वयं को मुक्त कर लिया है, जिसने पुनर्जन्म के बंधन को जड़ से उखाड़ दिया है, और उसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया है जैसे ताड़ के पेड़ को जड़ से उखाड़ दिया जाता है, जिससे वह नष्ट हो जाता है और पुनः नहीं उग सकता—ऐसे व्यक्ति को मैं अपगब्भ कहता हूँ। अब तथागत, हे सिहा, ने स्वयं को मुक्त कर लिया है, इत्यादि। इस प्रकार, इत्यादि।"

'और हे सिहा, किस प्रकार सत्यवादी मेरे विषय में यह कह सकता है: "समना गौतम आश्वस्त हैं, इत्यादि?" हे सिहा, मैं सर्वोच्च आश्वस्त हूँ; और इसी प्रकार मैं आश्वस्तता का सिद्धांत सिखाता हूँ और अपने शिष्यों को इसमें प्रशिक्षित करता हूँ। इस प्रकार, इत्यादि।'

10. जब उसने ऐसा कहा, तो सेनापति सिहा ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु! हे प्रभु! (अध्याय 26, 9 से आगे तक, जैसा कि इसमें लिखा है:) भगवान बुद्ध मुझे आज से अपने जीवन भर के लिए अपने शिष्य के रूप में शरण दें, जिसने उनकी शरण ली है।'

'सिहा, पहले सोचो कि तुम क्या कर रही हो। यह आम बात हो गई है कि तुम्हारे जैसे जाने-माने लोगों को बिना सोचे-समझे कुछ भी नहीं करना चाहिए।'

हे प्रभु, इससे मेरी खुशी और भगवान बुद्ध में मेरी आस्था और भी बढ़ गई है, क्योंकि भगवान बुद्ध मुझसे कहते हैं: "पहले विचार करो, इत्यादि।" हे प्रभु, यदि अन्य तित्तिया शिक्षकों ने मुझे अपना शिष्य बना लिया होता, तो वे वैशाली के पूरे क्षेत्र में अपने झंडे लहराते हुए चिल्लाते: "सेनापति सिहा हमारा शिष्य बन गया है!" परन्तु भगवान बुद्ध मुझसे कहते हैं: "पहले विचार करो, इत्यादि।" हे प्रभु, मैं दूसरी बार भगवान बुद्ध, धम्म और भिक्षु संघ की शरण लेता हूँ: भगवान बुद्ध मुझे आज से अपने जीवन भर अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिसने उनकी शरण ली है।

11. 'हे सिहा, तुम्हारे घर में निगंथों को बहुत समय से पेय पदार्थ दिए जाते रहे हैं। इसलिए तुम्हें यह उचित समझना चाहिए कि भविष्य में भी जब वे (भिक्षा मांगने के लिए) तुम्हारे पास आएं तो उन्हें भोजन दिया जाए।'

हे प्रभु, इससे मेरी खुशी और भगवान बुद्ध में मेरी आस्था और भी बढ़ गई है, क्योंकि भगवान बुद्ध मुझसे कहते हैं: "बहुत समय तक, इत्यादि।" मुझे बताया गया है, हे प्रभु: "समना गौतम (बुद्ध) कहते हैं: 'केवल मुझे ही दान देना चाहिए; किसी और को नहीं। केवल मेरे शिष्यों को ही दान देना चाहिए; किसी और के शिष्यों को नहीं। केवल मुझे दिया गया दान ही महान फलदायी है; दूसरों को दिया गया दान महान फलदायी नहीं है। केवल मेरे शिष्यों को दिया गया दान ही महान फलदायी है; दूसरों के शिष्यों को दिया गया दान महान फलदायी नहीं है।' लेकिन भगवान बुद्ध मुझे निगंथों को भी दान देने के लिए प्रेरित करते हैं। खैर, हे प्रभु, हम देखेंगे कि क्या उचित होगा।

हे प्रभु, मैं तीसरी बार भगवान बुद्ध की शरण लेता हूँ, इत्यादि।

12. और भगवान बुद्ध ने समय आने पर सेनापति सिंह को उपदेश दिया; अर्थात् उन्होंने दान देने से प्राप्त होने वाले पुण्यों, नैतिकता के कर्तव्यों आदि के बारे में सामान्य ढंग से बात की (उदाहरण के लिए, 1, 8, 2, 3 से आगे देखें): गुरु के उपदेशों के ज्ञान के लिए किसी

और पर निर्भर न रहते हुए, उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ मेरे साथ भोजन करने की कृपा करेंगे?'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब सेनापति सिहा ने जब समझा कि भगवान बुद्ध ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वह अपने आसन से उठा, आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर मुंह करके उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए चला गया।

और सेनापति सिहा ने अपने अधीनस्थों में से एक व्यक्ति को आदेश दिया, 'जाओ मेरे मित्र, और देखो कि क्या कोई मांस उपलब्ध है।' और जब वह रात बीत गई, तो सेनापति सिहा ने उत्तम भोजन का आदेश दिया (आदि, जैसा कि अध्याय 23.5 में अंत तक है)।

13. उस समय वैशाली में बड़ी संख्या में निगंथ (पुरुष) सड़क से सड़क और चौराहे से चौराहे तक बाहें फैलाकर चिल्ला रहे थे: 'आज सेनापति सिहा ने एक विशाल बैल को मारकर समना गौतम (बुद्ध) के लिए भोजन बनाया है; समना गौतम जानबूझकर उस जानवर का मांस खा रहे हैं जिसे इसी उद्देश्य से मारा गया था, और इस प्रकार वे वस्तुतः उस कृत्य (जानवर को मारने के) के कर्ता बन गए हैं!'

फिर एक व्यक्ति उस स्थान पर गया जहाँ सेनापति सिहा था। उसके पास पहुँचकर उसने सेनापति सिहा के कान में कहा, 'हे प्रभु, क्या आपने ध्यान दिया है कि वैशाली आदि में बड़ी संख्या में निगंथाएँ बह रही हैं?'

'इस बात की परवाह मत कीजिए, मेरे प्रिय महोदय। बहुत समय से वे आदरणीय भाई बुद्ध, धम्म और संघ को बदनाम करने का प्रयास कर रहे हैं; और वे आदरणीय भाई भगवान बुद्ध के बारे में झूठे, व्यर्थ और निरर्थक झूठ फैलाने से नहीं थकते। हम अपने जीवन में कभी भी जानबूझकर किसी जीवित प्राणी की हत्या नहीं करेंगे।'

14. और सेनापति सिहा ने अपने हाथों से भिक्षुओं के समुदाय को, जिसके मुखिया बुद्ध थे, उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, परोसा और भेंट किया; और जब भगवान बुद्ध (आदि, जैसा कि अध्याय 23.7 में अंत तक है)।

इसके फलस्वरूप भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देते हुए भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा:

हे भिक्षुओं, कोई भी जानबूझकर उस उद्देश्य से मारे गए जानवर का मांस न खाए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध का दोषी है।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि मछली तीन स्थितियों में आपके लिए शुद्ध है: यदि आप उसे न देखें, यदि आपने उसके बारे में न सुना हो, और यदि आपको संदेह न हो (कि उसे विशेष रूप से आपको देने के लिए पकड़ा गया है)।'

<<<< पिछला (6.30) । अगला (6.32) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.32
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.31) । अगला (6.33) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-32.

1. उस समय वैशाली में भोजन की अच्छी व्यवस्था थी, फसल अच्छी थी, दान आसानी से मिल जाता था, कोई भी आसानी से अनाज इकट्ठा करके या कृपा करके जीविका कमा सकता था।

और जब भगवान बुद्ध एकांतवास में चले गए, तो उनके मन में यह विचार आया: 'जो बातें मैंने भिक्षुओं के लिए अकाल के समय में, जब फसल खराब हो और भिक्षा प्राप्त करना कठिन हो, तब निर्धारित की हैं - भोजन घर के अंदर रखना, घर के अंदर पकाना, अपनी इच्छा से पकाना, जो कुछ भी वे उठा सकें उसे लेना, घर के अंदर से लाया गया भोजन खाना या भोजन के समय से पहले प्राप्त भोजन खाना, जंगलों या तालाबों में पाई जाने वाली चीजों को खाना - ये सभी चीजें भिक्षु अब भी आनंदित कर सकते हैं।'

और भगवान बुद्ध ने संध्याकाल में, जब वे अपने एकांतवास से बाहर आए, तो पूज्य आनंद से कहा: 'जो वस्तुएँ (आदि, जैसा कि ऊपर से नीचे तक) या तालाबों में पाई जाती हैं—क्या भिक्षु अब भी उन वस्तुओं का आनंद लेते हैं?'

'हे प्रभु, वे इनका आनंद लेते हैं।'

2. तब भगवान बुद्ध ने उस संदर्भ में और उस कारणवश, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा:

जिन चीजों का मैंने विधान किया है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 से आगे तक है): या जो तालाबों में पाई जाती हैं—उनकी अनुमति मैं आज से नहीं देता। हे भिक्षुओं, घर के अंदर रखा हुआ, घर के अंदर पकाया हुआ, या अपनी इच्छा से पकाया हुआ भोजन न खाओ; न ही अपने द्वारा उठाई गई चीजें (खाने के लिए) लो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा। और हे भिक्षुओं, भोजन करने के बाद, और फिर भी अर्पित किए गए भोजन को अस्वीकार करने के बाद, घर के अंदर से लाया गया, भोजन के समय से पहले प्राप्त किया गया, या जंगलों या तालाबों में पाया गया भोजन न खाओ, भले ही वह भोजन किसी आमंत्रित व्यक्ति के भोजन का बचा हुआ न हो। जो कोई ऐसा भोजन करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।

<<<< पिछला (6.31) | अगला (6.33) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.33

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.32) | अगला (6.34) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-33.

1. उस समय देशवासियों ने अपनी गाड़ियों पर बहुत सारा नमक, तेल, चावल और अन्य खाद्य सामग्री लाद ली और आराम (मठ) के बाहरी परिसर में डेरा डालकर वहाँ प्रतीक्षा करने लगे, और कहने लगे, 'जब हमारी बारी आएगी, तो हम भोजन की व्यवस्था करेंगे।' तभी एक भयंकर तूफानी बादल छा गया। तब वे लोग उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: 'हमने अपनी गाड़ियों पर बहुत सारा नमक, तेल, चावल और अन्य खाद्य सामग्री लाद ली है; और वे वहाँ खड़ी हैं। अब एक भयंकर तूफानी बादल छा गया है। हे आनंद, अब हम इनका क्या करें?'

तब पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. 'ऐसी स्थिति में, आनंद, संघ किसी बाहरी भवन को कप्पियाभूमि (अर्थात्, वास्तविक निवास के बाहर एक ऐसा स्थान, जहाँ पिछले अध्याय में निर्धारित नियम का उल्लंघन किए बिना भोजन सामग्री रखी या पकाई जा सके) के रूप में चुन ले और संघ द्वारा चुने गए किसी भी आकार के भवन (जैसे विहार, अड्ढयोग, पसदा, हम्मिया, गुहा) में भंडार रखे।'

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इस पर निर्णय लिया जाना चाहिए। एक विवेकशील और योग्य भिक्षु को संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव की घोषणा करनी चाहिए: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार है, तो संघ एनएन नामक विहार को हमारी कप्पिया-भूमि नियुक्त करे। यही प्रस्ताव है। हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए।"

संघ ने एनएन नामक विहार को हमारी कप्पीय-भूमि नियुक्त किया है। आदरणीय भाइयों में से जो भी इस विहार को नियुक्त करने के पक्ष में हैं, कृपया इस पर अपनी राय दें (आदि, आगे तक): मैं समझता हूँ।

3. उस समय उस स्थान पर (संघ के संकल्प द्वारा विधिवत चयनित कप्पिया-भूमि में) लोग दलिया, चावल, करी, मांस, और लकड़ियाँ उबाल रहे थे। जब रात ढलने लगी और भगवान बुद्ध उठे, तो उन्होंने कौवों के कांव-कांव जैसी तेज़ आवाज़ सुनी। यह सुनकर उन्होंने पूज्य आनंद से पूछा, 'हे आनंद, कौवों के कांव-कांव जैसी यह तेज़ आवाज़ क्या है?'

4. 'हे प्रभु, संघ के संकल्प द्वारा विधिवत चयनित उस कप्पीय भूमि में, लोग दलिया उबाल रहे हैं, चावल उबाल रहे हैं, करी मिला रहे हैं, मांस काट रहे हैं और लकड़ियाँ चीर रहे हैं। हे प्रभु, वहीं से कौवों के कांव-कांव जैसी तेज़ और ज़ोरदार आवाज़ आ रही है।'

तब भगवान बुद्ध ने उस संदर्भ में और उस कारणवश, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा

हे भिक्षुओं, विधिवत चुनी गई कप्पीय भूमि का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई भी इसका उपयोग करेगा, वह दुक्कत अपराध का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की कप्पीय भूमि की अनुमति देता हूँ, जिनमें से एक घोषणा के माध्यम से कप्पीय भूमि बनी हो।

एक बैल-शाला और आम लोगों से संबंधित एक इमारत।'

5. उस समय पूज्य यशोगा बीमार थे, और उनके उपयोग के लिए औषधियाँ लाई गईं, जिन्हें भिक्षुओं ने बाहर रख दिया। कीड़े-मकोड़ों ने उन्हें खा लिया और चोर उन्हें चुरा ले गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें विधिवत चुनी हुई कप्पीय भूमि (औषधियों को रखने के लिए) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चार प्रकार की कप्पीय भूमि का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ: एक जो घोषणा द्वारा कप्पीय भूमि बनी हो, एक बैल-शाला, गृहस्थों का भवन और एक विधिवत चुनी हुई कप्पीय भूमि।'

चौबीसवें भानवर का समापन।

<<<< पिछला (6.32) | अगला (6.34) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.34

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.33) | अगला (6.35) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-34.

1. उस समय भद्दियानगर में मेंदक (बकरा) नाम का एक गृहस्थ रहता था, जिसके पास यह चमत्कारिक शक्ति थी: जब वह अपना सिर धो लेता और अपने अन्न भंडार की सफाई करवा लेता, तो वह बाहर बैठकर ही अन्न भंडार भर सकता था।

आकाश से अनाज की वर्षा करवाकर। उनकी पत्नी के पास यह चमत्कारी शक्ति थी: जब वह एक पिंट के बर्तन और करी एवं चटनी के पात्र के पास बैठती, तो वह सेवकों को भोजन परोस सकती थी; और जब तक वह उठती नहीं, भोजन समाप्त नहीं होता था। उनके पुत्र के पास यह चमत्कारी शक्ति थी: वह एक हजार से भरा थैला लेकर प्रत्येक सेवक को छह महीने की मजदूरी दे सकता था; और जब तक वह थैला उसके हाथ में रहता, वह मजदूरी समाप्त नहीं होती थी।

2. उनकी बहू में यह चमत्कारिक शक्ति थी: जब वह चार बोरी की टोकरी के पास बैठती थी, तो वह नौकरों को छह महीने का चावल दे सकती थी; और जब तक वह उठती नहीं थी, टोकरी खाली नहीं होती थी। उनके दास में यह चमत्कारिक शक्ति थी: जब वह एक हल से हल चलाता था, तो सात हल की लकीरें बन जाती थीं।

3, 4. अब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने सुना: 'हमारे राज्य के भद्दियानगर में, कहते हैं, मेंडक नाम का एक गृहस्थ रहता है, जो प्रेतबाधित है (आदि, जैसा कि §§-1, 2 से अंत तक है)।'

5. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने अपने एक मंत्री से, जो गृहस्थी का प्रभारी था, कहा: 'हे महाराज, लोग कहते हैं कि भद्दियानगर (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है) में यह बात है। जाइए, महाराज, और इसके बारे में पता लगाइए। जब आप इसे देख लेंगे, तो यह वैसा ही होगा मानो मैंने स्वयं इसे देखा हो।'

'जी, ऐसा ही हो,' उस मंत्री ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से सहमति जताते हुए कहा और वह अपने चार सैनिकों के साथ भद्दियानगर के लिए रवाना हो गया।

6. और सीधे आगे बढ़ते हुए वह भद्दियानगर पहुँचा, और उस स्थान पर पहुँचा जहाँ गृहस्थ रहता था।

मेंडका एक गृहस्थ था; मेंडका ने राजा से आदेश प्राप्त किया, "वे कहते हैं, हे स्वामी (आदि, जैसा कि ऊपर, श्लोक 5 में है)।" हे गृहस्थ, हमें आपकी चमत्कारी शक्ति देखने दीजिए।'

तब गृहस्थ मेंदका ने अपना सिर धोया, अपने अन्न भंडार की सफाई करवाई और उसके बाहर बैठ गया। तभी आकाश से अन्न की वर्षा हुई और अन्न भंडार भर गया।

'हे गृहस्थ, मैंने तुम्हारी चमत्कारिक शक्ति देखी है। हमें तुम्हारी पत्नी की शक्ति भी देखने दो।'

7. तब गृहस्थ मेंदका ने अपनी पत्नी को आज्ञा दी, 'चारों सेनाओं को भोजन परोसो।'

और गृहस्थ मेंदका की पत्नी एक पिंट के बर्तन और चटनी और करी के पात्र के पास बैठ गई, और चारों मेहमानों को भोजन परोसा; और जब तक वह उठी नहीं, तब तक भोजन समाप्त नहीं हुआ था।

'हे गृहस्थ, मैंने तुम्हारी पत्नी की चमत्कारिक शक्ति देखी है। चलो, तुम्हारे पुत्र की शक्ति भी देखें।'

8. तब गृहस्थ मेंदका ने अपने पुत्र को आज्ञा दी, 'हे मेरे प्रिय पुत्र, चार सेनाओं को छह महीने का वेतन दे दो।'

और गृहस्थ मेंदका के पुत्र ने एक हजार सिक्कों से भरा एक थैला लिया और उससे चार गुना सेना को छह महीने का वेतन दे दिया। और जब तक वह थैला उसके हाथ में रहा, तब तक वह खाली नहीं हुआ।

'हे गृहस्थ, मैंने तुम्हारे पुत्र की चमत्कारिक शक्ति देखी है। चलो तुम्हारी बहू की शक्ति भी देखें।'

9. तब गृहस्थ मेंदका ने अपनी बहू को आदेश दिया, 'तो फिर चारों सेनाओं को छह महीने का चावल दो।'

और गृहस्थ मेंदका की बहू

वह चार बोरी वाली एक टोकरी के पास बैठ गई और उसने चार लोगों के लिए छह महीने का चावल परोसा। और जब तक वह उठी नहीं, तब तक टोकरी खाली नहीं हुई।

'हे गृहस्थ, मैंने तुम्हारी बहू की चमत्कारिक शक्ति देखी है। चलो, तुम्हारी दासी की शक्ति भी देखें।'

'मेरे दास की चमत्कारी शक्ति, महोदय, युद्ध के मैदान में अवश्य देखी जानी चाहिए।'

'बस इतना ही काफी है, हे गृहस्थ। मैंने आपके दास की चमत्कारिक शक्ति देख ली है।'

तब वह मंत्री अपने चार सैनिकों के साथ राजगृह लौट आया और उस स्थान पर गया जहाँ मगध का राजा सेनिया बिम्बिसार था, और वहाँ पहुँचकर उसने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को यह बात बताई।

10. भगवान बुद्ध वैशाली में अपनी इच्छानुसार कुछ समय रहने के बाद, एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ भद्दिया के लिए रवाना हुए। सीधे चलते हुए भगवान बुद्ध भद्दिया पहुँचे। वहाँ उन्होंने गतियवन में निवास किया।

11. और गृहस्थ मेंडक ने सुना: 'देखो, शाक्य कुल के समना गौतम (बुद्ध), जिन्होंने शाक्य कुल छोड़कर धर्म का मार्ग अपनाया, भद्दिया में आ गए हैं और गतियवन में ठहरे हुए हैं। उस पूज्य गौतम के विषय में यह उच्च प्रतिष्ठा फैली हुई है कि वे पूर्णतः प्रबुद्ध, परोपकारी, योग्य, ज्ञान और अच्छाई से परिपूर्ण, सुखी, संसार के ज्ञान से परिपूर्ण, अद्वितीय, मनुष्यों का मार्गदर्शन करने वाले जैसे सारथी बैल को नियंत्रित करता है, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, एक महान बुद्ध हैं। वे स्वयं ही सर्वथा समझते और देखते हैं।

जब अरहत इस ब्रह्मांड, इसके देवों, ब्रह्माओं, मारों और सभी प्राणियों, समनों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के आमने-सामने होते हैं, तब वे उस ज्ञान को दूसरों को प्रकट करते हैं। वे सत्य को, उसकी उत्पत्ति में सुंदर, उसके विकास में सुंदर और उसकी पूर्णता में सुंदर, प्रकट करते हैं। वे उच्चतर जीवन की घोषणा करते हैं, उसकी संपूर्ण पवित्रता और संपूर्ण पूर्णता के साथ। ऐसे अरहतों का दर्शन अत्यंत दयालु होता है।

12. तब गृहस्थ मेंदक ने कई शानदार रथ तैयार करवाए और उनमें से एक पर सवार होकर वह भव्य रथों के काफिले के साथ भगवान बुद्ध से मिलने के लिए भद्दिया से रवाना हुआ।

और बहुत से तित्तियों ने मेंडक गृहस्थ को दूर से आते हुए देखा; और जब उन्होंने उसे देखा, तो उन्होंने मेंडक गृहस्थ से कहा:

'हे गृहस्थ, तुम कहाँ जा रहे हो?'

'महोदय, मैं भगवान बुद्ध, समना गौतम (बुद्ध) के दर्शन करने जा रहा हूँ।'

लेकिन हे गृहस्थ, तुम क्रिया-वाद होते हुए भी भगवान बुद्ध से मिलने क्यों जाते हो, जो स्वयं भी क्रिया-वाद हैं? क्योंकि हे गृहस्थ, समना गौतम, जो स्वयं क्रिया-वाद हैं, कर्म के सिद्धांत के बिना धर्म का उपदेश देते हैं और इसी धर्म में वे अपने श्रोताओं को शिक्षा प्रदान करते हैं।

13. तब गृहस्थ मेंदक ने सोचा, 'निश्चित रूप से भगवान बुद्ध अर्हत बुद्ध ही होंगे, क्योंकि ये तित्तिय उनसे इतने ईर्ष्यालु हैं।' और वह रथ में बैठकर भगवान बुद्ध के स्थान की ओर चल पड़ा।

क्योंकि रास्ता रथों के लिए उपयुक्त था, इसलिए उन्होंने रथ से उतरकर पैदल चलना शुरू किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

और जब वे इस प्रकार बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया (आदि, हमेशा की तरह, उदाहरण के लिए, 1, 8, 2; 3, नीचे तक:) 'उसमें शरण ली।'

'भगवान बुद्ध कल भिक्षु संघ सहित मेरे घर पर भोजन करने की कृपा करें।'

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दी।

14. तब गृहस्थ मेंदक ने जब देखा कि भगवान बुद्ध सहमत हो गए हैं (आदि, हमेशा की तरह, देखें VI, 18, 1, 2, नीचे तक:) तो वह अपने लिए तैयार की गई सीट पर बैठ गया।

15. तब गृहस्थ मेंदक की पत्नी, पुत्र, बहू और दास उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

और भगवान बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 13 में है, नीचे तक): 'उन्होंने उसमें शरण ली।'

16. तब गृहस्थ मेंदका, जो बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ की सेवा कर रहा था (आदि, हमेशा की तरह, नीचे तक:), एक तरफ बैठ गया।

और जब वह इस प्रकार बैठे थे, तब गृहस्थ मेंडक ने भगवान बुद्ध से कहा: 'जब तक भगवान बुद्ध भद्दिया में रहेंगे, तब तक मैं बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को प्रतिदिन भोजन प्रदान करता रहूंगा।'

तब भगवान बुद्ध प्रसन्न हुए (आदि, हमेशा की तरह, आगे तक:) भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे और चले गए।

17. अब जब भगवान बुद्ध शेष रह गए थे

भद्दिया में वह जितनी देर तक उचित समझता रहा, उतनी देर तक रुका रहा, और फिर गृहस्थ मेंडक को बिना बताए, एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ अंगुत्तरपा चला गया।

गृहस्थ मेंदक ने सुना, "लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध भिक्षुओं के साथ अंगुत्तरपा गए हैं।" गृहस्थ मेंदक ने अपने दासों और सेवकों को आदेश दिया, "हे मेरे सेवकों, नमक, तेल, चावल और पौष्टिक भोजन लादकर आओ; और एक हजार दो सौ पचास गौपालकों को एक हजार दो सौ पचास गायों के साथ लाओ। जहाँ कहीं भी हमें भगवान बुद्ध मिलेंगे, हम उन्हें ताजा दूध देंगे।"

18. और गृहस्थ मेंदक रास्ते में एक सुनसान जगह पर भगवान बुद्ध से मिले। गृहस्थ मेंदक उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर वे एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर गृहस्थ मेंदक ने भगवान बुद्ध से कहा, 'क्या भगवान बुद्ध भोजन ग्रहण करने की अनुमति देंगे? (आदि, हमेशा की तरह) समय आ गया है, और भोजन तैयार है।'

19. और भगवान बुद्ध सुबह सवेरे (आदि, नीचे तक:) उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए।

तब गृहस्थ मेंदक ने उन एक हजार दो सौ पचास गौपालकों को आदेश दिया: 'हे मेरे सेवकों, तुममें से प्रत्येक एक-एक गाय ले लो, और तुममें से प्रत्येक एक भिक्षु की सेवा करो, और उसे ताजा दूध उपलब्ध कराओ।'

और गृहस्थ मेंडका ने स्वयं अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ की सेवा की और उन्हें मीठे, कठोर और नरम भोजन तथा ताजे दूध से तृप्त किया।

भिक्षुओं को नाराज करने के डर से वे दूध नहीं लेते थे।

'भिक्षुओं, इसे लो और पी लो।'

20. और जब गृहस्थ मेंदक ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ की स्वयं सेवा की और उन्हें मीठे, कठोर और नरम भोजन तथा ताजे दूध से तृप्त किया; और जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपने हाथ और कटोरा धो लिया, तो वे एक तरफ बैठ गए।

तब बैठे-बैठे गृहस्थ मेंडक ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, यहाँ रेगिस्तानी रास्ते हैं, जहाँ पानी और भोजन नहीं है, और यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री के बिना यात्रा करना आसान नहीं है। यदि भगवान बुद्ध भिक्षुओं को अपने साथ सामग्री ले जाने की अनुमति दें तो यह अच्छा होगा।'

तब भगवान बुद्ध प्रसन्न हुए (और हमेशा की तरह, आगे भी:) अपने आसन से उठे और चले गए।

21. और इस संदर्भ में, और इसी कारण से, भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गाय के पाँच उत्पाद—दूध, दही, घी, छाछ और मक्खन—उपलब्ध कराता हूँ। हे भिक्षुओं, कुछ मार्ग ऐसे भी हैं जहाँ जल और भोजन नहीं है, और यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री के बिना यात्रा करना कठिन है। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री स्वयं एकत्र करने की अनुमति देता हूँ—चावल चाहने वाले के लिए चावल, दाल चाहने वाले के लिए दाल, नमक चाहने वाले के लिए नमक, गुड़ चाहने वाले के लिए गुड़, तेल चाहने वाले के लिए तेल, घी चाहने वाले के लिए घी। हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे विश्वासयोग्य और धर्मांतरित पुरुष भी हैं जो कप्पिया-कारक के पास सोना जमा कराते हुए कहते हैं, "इस भिक्षु के लिए जो भी उचित हो, वह प्रदान करें।" हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जो भी उचित हो, उसे स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ। परन्तु हे भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि तुम किसी भी बहाने से सोना स्वीकार करो या उसकी खोज करो।

<<<< पिछला (6.33) । अगला (6.35) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.35

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.34) । अगला(6.36) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-35.

1. अब भगवान बुद्ध सीधे अपनी भिक्षायात्रा पर अपाना के लिए रवाना हुए। वहाँ तपस्वी केनिया ने यह सुना, 'देखो! शाक्य वंश में जन्मे और शाक्य वंश छोड़कर धर्म जीवन अपनाने वाले समना गौतम अपाना पहुँच गए हैं और वहीं ठहरे हुए हैं। उस पूज्य गौतम के विषय में यह विख्यात है कि वे पूर्णतः प्रबुद्ध, परोपकारी और गुणवान, ज्ञान और अच्छाई से परिपूर्ण, सुखी, संसार के ज्ञान में अद्वितीय, मनुष्यों का मार्गदर्शन करने वाले जैसे सारथी बैल को नियंत्रित करता है, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, एक महान बुद्ध हैं। वे स्वयं इस ब्रह्मांड को, इसके देवों, ब्रह्माओं, मारों और सभी प्राणियों, समनों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों को भली-भांति समझते और देखते हैं; और फिर वे अपना ज्ञान दूसरों को भी देते हैं।' वह सत्य को आत्मा और अक्षर दोनों में प्रकट करता है:

अपनी उत्पत्ति में सुंदर, अपनी प्रगति में सुंदर, अपनी पूर्णता में सुंदर। वह अपने संपूर्ण पवित्रता और पूर्णता में उच्चतर जीवन की घोषणा करता है। ऐसे अरहतों का दर्शन धन्य है!' और तपस्वी केनिया ने सोचा: 'अब मुझे समना गौतम (बुद्ध) के पास क्या ले जाना चाहिए था?'

2. और तपस्वी केनिया ने सोचा: 'जो प्राचीन ब्राह्मण ऋषि हैं, पवित्र श्लोकों के रचयिता हैं, पवित्र श्लोकों के उद्घोषक हैं, जिनके प्राचीन शब्द स्वरूपों का उच्चारण, जप या रचना आज के ब्राह्मण (पुजारी) उसी प्रकार दोहराते हैं और पुनरावृति करते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे उनका उच्चारण या पाठ किया गया था - अर्थात् अत्तक, वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगिरस, भारद्वग, वसेत्थ और भगु - वे रात्रि में भोजन नहीं करते थे और न ही समय पर भोजन करते थे, फिर भी वे पेय पदार्थ ग्रहण करते थे। (3.) अब समना गौतम भी रात्रि में भोजन नहीं करते हैं और न ही समय पर भोजन करते हैं। उनके लिए भी पेय पदार्थ ग्रहण करना उचित होगा।' जब उसने पर्याप्त मात्रा में पेय पदार्थ तैयार कर लिए, तो उसने उन्हें पिंगो (छोटी नाव) पर लादकर भगवान बुद्ध के पास गया। वहाँ पहुँचकर उसने बुद्ध को प्रणाम किया; और मित्रता और शिष्टाचार का अभिवादन करने के बाद वह एक तरफ खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर तपस्वी केनिया ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'भगवान बुद्ध मेरे हाथों से इन पेय पदार्थों को स्वीकार करें।'

'बहुत अच्छा, केनिया; इन्हें भिक्षुओं को दे दो।'

भिक्षु उन्हें नाराज करने के डर से स्वीकार नहीं करते थे।

'हे भिक्षुओं, इन्हें ग्रहण करो और इनका उपयोग करो।'

4. तब तपस्वी केनिया ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को इतने पेय पदार्थ पिलाए कि उन्होंने और पीने से मना कर दिया। जब भगवान बुद्ध ने अपने हाथ धो लिए और कटोरा एक तरफ रख दिया, तब वे बैठ गए। जब वे बैठ गए, तब भगवान बुद्ध ने धम्म प्रवचन द्वारा तपस्वी केनिया को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। जब भगवान बुद्ध ने धम्म प्रवचन द्वारा केनिया को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, तब तपस्वी ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'आदरणीय गौतम मुझे भिक्षुओं के साथ उनके लिए कल का भोजन तैयार करने का सौभाग्य प्रदान करें।'

5. 'हे केनिया, भिक्षुओं का समूह महान है। भिक्षुओं की संख्या ढाई सौ है। और आप ब्राह्मणों के प्रति अत्यंत समर्पित हैं।'

फिर एक बार तपस्वी केनिया ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

हे गौतम, चाहे भिक्षुओं का समूह कितना भी बड़ा हो; और चाहे भिक्षुओं की संख्या ढाई सौ ही क्यों न हो, हे पूज्य गौतम, मुझे कल उनके और उनके समूह के लिए भोजन की व्यवस्था करने का सौभाग्य प्रदान करें।

'महान, हे केनिया (और इसी तरह, पहले की तरह)।'

फिर तीसरी बार तपस्वी केनिया ने पूज्य गौतम से इस प्रकार कहा:

'भिक्षुओं की संगति (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)'

तब भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति दे दी। जब तपस्वी केनिया को यह पता चला कि भगवान बुद्ध ने अपनी सहमति दे दी है, तो वह अपने आसन से उठकर वहां से चले गए।

6. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आठ प्रकार के पेय पदार्थ पीने की अनुमति देता हूँ: आम का सिरप, जामुन का सिरप, केले का सिरप, मोका का सिरप, शहद, और

अंगूर का रस, कमल की खाद्य जड़ से बना सिरप और फरुसक सिरप। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सभी फलों का रस पीने की अनुमति देता हूँ, सिवाय मक्के के रस के। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सभी पत्तों से बने पेय पीने की अनुमति देता हूँ, सिवाय जड़ी-बूटियों से बने पेय के। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सभी फूलों से बने पेय पीने की अनुमति देता हूँ, सिवाय मुलेठी के रस के। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गन्ने के रस का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।

7. और तपस्वी केनिया ने रात के अंत में अपने आश्रम में कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे भोजन तैयार करवाए; और उन्होंने भगवान बुद्ध को समय की सूचना देते हुए कहा, 'हे गौतम, समय हो गया है और भोजन तैयार है।'

और भगवान बुद्ध ने सुबह जल्दी अपने अंतर्वस्त्र धारण करके, विधिवत वस्त्र धारण करके, तपस्वी केनिया के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे अपने लिए बिछाई गई आसन पर बैठ गए, और उनके साथ भिक्षुओं का समूह भी था। फिर

तपस्वी केनिया ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को भोजन अर्पित किया और उन्हें मीठे, कठोर और नरम दोनों प्रकार के भोजन से तृप्त किया। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपने हाथ और कुंड धो लिए, तो केनिया एक तरफ बैठ गए।

8. और जब वे इस प्रकार बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने तपस्वी केनिया को इन श्लोकों में आशीर्वाद दिया:

'अर्पण में अग्नि यज्ञ प्रमुख है, पवित्र श्लोकों में सावित्री प्रमुख है;'

मनुष्यों में राजा सर्वोपरि है; और जल में सागर सर्वोपरि है।

नक्षत्रों में चंद्रमा सर्वोपरि है, और ऊष्मा प्रदान करने वालों में सूर्य।

लेकिन उनमें से, जो विजयी हैं और कल्याण की कामना करते हैं, संघ निस्संदेह सर्वोपरि है।

और जब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में तपस्वी केनिया को आशीर्वाद दिया, तो वे अपने आसन से उठे और वहां से चले गए।

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.35) | अगला (6.37) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-36.

1. जब भगवान बुद्ध ने अपाना में अपनी इच्छानुसार समय व्यतीत कर लिया, तो वे अपने साथ एक विशाल समूह को लेकर कुशीनार की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े।

भिक्षुओं का एक समूह, जिसमें ढाई सौ भिक्षु थे, कुशीनाड़ा के मल्लों ने सुना, "कहते हैं कि भगवान बुद्ध ढाई सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ कुशीनाड़ा आ रहे हैं।" उन्होंने यह समझौता किया कि जो कोई भी भगवान बुद्ध का स्वागत करने नहीं जाएगा, उसे पाँच सौ (पैसे) का जुर्माना देना होगा।

उस समय रोजा नाम का एक मल्ल था, जो पूज्य आनंद का मित्र था। भगवान बुद्ध अपनी तीर्थयात्रा जारी रखते हुए कुशीनारा पहुंचे।

2. तब कुशीनार के मल्ल भगवान बुद्ध का स्वागत करने के लिए निकले। रोजा मल्ल, भगवान बुद्ध का स्वागत करने के बाद, उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य आनंद को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। इस प्रकार खड़े होकर पूज्य आनंद ने उनसे इस प्रकार कहा:

'हे मित्र रोजा, यह अत्यंत उत्कृष्ट कार्य है कि तुम भगवान बुद्ध का स्वागत करने के लिए आगे आए हो!'

हे आनंद, बुद्ध, धम्म या संघ से मैं इतना विचलित नहीं हूँ। बल्कि कुलवासियों के बीच यह समझौता हुआ था कि जो कोई भी भगवान बुद्ध का स्वागत करने नहीं जाएगा, उसे पाँच सौ (पैसे) का जुर्माना देना होगा। ऐसा जुर्माने के डर से ही हुआ।

मेरे कुलवासियों ने मुझे भी भगवान बुद्ध का स्वागत करने के लिए प्रेरित किया।'

तब पूज्य आनंद दु:ख से भर गए और सोचने लगे, 'मल्ल रोजा इस प्रकार कैसे बोल सकती है?'

3. और पूज्य आनंद उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, और इस प्रकार बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'हे भगवान, यह रोजा मल्ला एक अत्यंत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनके जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा इस सिद्धांत और अनुशासन का पालन करने से महान प्रभाव पड़ेगा। भगवान बुद्ध कृपा करें कि रोजा मल्ला इस सिद्धांत और अनुशासन के प्रति समर्पित हो जाएं।'

'आनंद, यह तथागत (बुद्ध) के लिए कोई कठिन बात नहीं है—इसलिए रोजा मल्ल को इस सिद्धांत और अनुशासन के प्रति समर्पित होना चाहिए।'

4. तब भगवान बुद्ध ने रोजा मल्ल को अपने प्रेम से भर दिया, और अपने आसन से उठकर अपने निवास स्थान में प्रवेश किया। और रोजा मल्ल, भगवान बुद्ध के प्रेम से अभिभूत होकर, जैसे एक छोटा बछड़ा गायों का अनुसरण करता है, वैसे ही वह निवास स्थान से निवास स्थान और कमरे से कमरे में भिक्षुओं से पूछता हुआ चला गया:

'तो फिर, महोदय, अब वह भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध, कहाँ निवास कर रहे हैं? क्योंकि हम उस भगवान बुद्ध, अरहत बुद्ध के दर्शन करना चाहते हैं।'

'हे मित्र, यह उनका निवास स्थान है, जिसका द्वार बंद है। इसलिए चुपचाप ऊपर जाओ, और दहलीज पार किए बिना बरामदे में प्रवेश करो, और चौखट पर दस्तक दो। भगवान बुद्ध तुम्हारे लिए द्वार खोल देंगे।'

5. तब रोजा मल्ल ने ऐसा ही किया, और भगवान बुद्ध ने द्वार खोल दिया। रोजा मल्ल निवास में प्रवेश कर गए और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे रोजा मल्ल को भगवान बुद्ध ने उचित उपदेश दिया; अर्थात् उन्होंने उन्हें दान, नैतिक आचरण, स्वर्ग, अभिमान के खतरे, कामवासनाओं के भ्रष्टाचार और त्याग के लाभों के बारे में बताया। जब भगवान बुद्ध ने देखा कि रोजा मल्ल का मन तैयार है, ग्रहणशील है, सत्य को समझने में बाधाओं से मुक्त है, प्रसन्न है और विश्वास से भरा है, तब उन्होंने बुद्धों के प्रमुख सिद्धांत, अर्थात् दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण और मार्ग का उपदेश दिया। और जैसे एक साफ, काले धब्बों से रहित कपड़ा रंग को ठीक से सोख लेता है, वैसे ही रोजा मल्ल ने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त कर ली, 'जो कुछ भी आरंभ के अधीन है, वह अंत के भी अधीन है।' और रोजा मल्ल ने सत्य को देखकर, सत्य में महारत हासिल करके, सत्य को समझकर, सत्य में मर्मस्पर्शी होकर, अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करके, सभी शंकाओं को दूर करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, गुरु के सिद्धांत के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर न रहते हुए, भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

हे प्रभु, आदरणीय ईश्वर, कृपा करें।

संघ की आवश्यक वस्तुएँ, अर्थात् वस्त्र, भोजन, निवास स्थान और बीमारों के लिए दवाइयाँ, केवल मुझसे ही प्राप्त करें, दूसरों से नहीं।

'हे रोजा, जिस किसी ने भी शिष्य के ज्ञान और शिष्य की अंतर्दृष्टि से सत्य को उसी प्रकार ग्रहण किया है, जैसे आपने किया है, वे भी सोचेंगे, "काश, पूज्यजन केवल मुझसे ही संघ की आवश्यक वस्तुएँ ग्रहण करना चाहें, न कि दूसरों से।" अतः, हे रोजा, वे उन्हें आपसे ही नहीं, बल्कि दूसरों से भी प्राप्त करेंगे।'

6. उस समय कुसिनारा के निवासियों के लिए एक निश्चित क्रम निर्धारित किया गया था, जिसके अनुसार वे बारी-बारी से संघ के लिए भोजन उपलब्ध कराते थे। रोजा मल्ल, जिसे इस क्रम में स्थान नहीं मिला था, के मन में यह विचार आया: 'यदि मैं संघ के भंडारगृह का निरीक्षण करूँ और उसमें जो भी कमी पाऊँ, उसे उपलब्ध कराऊँ तो कैसा रहेगा?' और भंडारगृह का निरीक्षण करने पर उसने पाया कि वहाँ न तो साग-सब्जी है और न ही आटा।

तब रोजा मल्ल उस स्थान पर गया जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे, और वहाँ पहुँचकर उसने पूज्य आनंद से इस प्रकार कहा:

'मेरे मन में यह विचार आया (और पहले की तरह, नीचे तक:) और कोई भोजन नहीं। हे आनंद, यदि मैं सब्जियां और आटा प्रदान करूं, तो क्या भगवान बुद्ध उन्हें मेरे हाथों से स्वीकार करेंगे?'

7. पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'बहुत बढ़िया, आनंद। उसे ही इन्हें उपलब्ध कराने दो।'

'बहुत बढ़िया, रोजा। उन्हें उसी हिसाब से व्यवस्था करो।'

फिर रात के अंत में रोजा मल्ल ने पर्याप्त मात्रा में सब्जियां और आटा तैयार करवाकर भगवान बुद्ध को अर्पित किया और कहा, 'भगवान बुद्ध मेरे हाथों से इन सब्जियों और आटे को स्वीकार करें।'

'बहुत बढ़िया, रोजा। इन्हें भिक्षुओं के सामने पेश करो।'

भिक्षुओं ने, कहीं वे नाराज न हो जाएं, इसलिए उन्हें स्वीकार नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, इन्हें स्वीकार करो और इनका उपयोग करो।'

8. तब रोजा मल्ल ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को जड़ी-बूटियाँ और भोजन भेंट किया और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान बुद्ध ने भोजन समाप्त कर लिया और अपने हाथ और कटोरा धो लिया, तब रोजा एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठे, तब भगवान बुद्ध ने रोजा मल्ल को उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, उनसे बातचीत की और धर्म प्रवचन से उन्हें प्रसन्न किया। जब रोजा मल्ल ने उपदेश आदि प्राप्त कर लिया, तब वे अपने स्थान से उठे और वहाँ से चले गए।

और उस अवसर पर, और उस संदर्भ में, जब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सभी प्रकार की सब्जियाँ और सभी प्रकार का भोजन खाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.35) | अगला (6.37) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.37
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.36) | अगला (6.38) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-37.

1. भगवान बुद्ध ने कुशीनारा में अपनी इच्छानुसार जितना समय व्यतीत किया, उसके बाद वे ढाई सौ भिक्षुओं के एक विशाल समूह के साथ अतुमा की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। उस समय अतुमा में एक व्यक्ति निवास कर रहा था, जिसने वृद्धावस्था में संघ में प्रवेश किया था और जो पहले एक नाई था। उसके दो पुत्र थे, सुंदर, प्रवचन में कुशल, योग्य और अपने गुरुओं द्वारा सिखाई गई नाई की कलाओं में पूर्णतः प्रशिक्षित थे।

2. अब इस बूढ़े ने यह खबर सुनी: 'लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध अतुमा के पास आ रहे हैं।'

भिक्षुओं का एक बड़ा समूह, जिसमें ढाई सौ भिक्षु होंगे।' तब उस वृद्ध ने अपने पुत्रों से कहा: 'मेरे बच्चों, लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध ढाई सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ अतुमा आ रहे हैं। इसलिए, मेरे बच्चों, जाओ और अपने नाई के लड़के को साथ लेकर घर-घर जाकर बड़े-बड़े बर्तनों में नमक, तेल, चावल और आटा इकट्ठा करो। और जब भगवान बुद्ध आएंगे, तो हम उनके लिए दलिया तैयार करेंगे।'

3. "बहुत अच्छा, पिताजी," उन्होंने कहा और वैसा ही किया। जब लोगों ने उन सुंदर दिखने वाले और वाक्पटु युवकों को ऐसा करते देखा, तो वे भी जो इस कार्य में शामिल होने के इच्छुक नहीं थे, इसमें शामिल हो गए; और प्रेरित होकर उन्होंने भरपूर दान दिया। इस प्रकार उन युवकों ने बड़ी मात्रा में नमक, तेल, चावल और आटा एकत्र किया।

4. और भगवान बुद्ध उचित समय पर अपनी यात्रा के दौरान अतुमा पहुंचे; और वहां अतुमा में भगवान बुद्ध खलिहान में ठहरे। और उस वृद्ध ने, जब रात काफी बीत चुकी थी, बहुत सारा दलिया तैयार करवाया और उसे भगवान बुद्ध को अर्पित करते हुए कहा, 'भगवान बुद्ध मेरे हाथों से दलिया स्वीकार करें।'

तथागत कभी-कभी अपने ज्ञान के बारे में पूछते हैं; कभी-कभी नहीं पूछते। वे सही समय पर पूछना जानते हैं और सही समय पर नहीं पूछना जानते। तथागत अर्थपूर्ण प्रश्न पूछते हैं, निरर्थक नहीं: निरर्थक प्रश्नों के लिए तथागतों का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। महान बुद्ध भिक्षुओं से दो उद्देश्यों से प्रश्न पूछते हैं—एक जब वे सत्य का उपदेश देना चाहते हैं, और दूसरा जब वे अपने शिष्यों के लिए आचरण नियम स्थापित करना चाहते हैं। और भगवान बुद्ध ने उस वृद्ध से कहा, 'हे भिक्षु, यह दलिया कहाँ से आया है?'

तब उस वृद्धजन ने भगवान बुद्ध को सारी बात बता दी।

5. महान बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा, 'हे मूर्ख, यह अनुचित है, नियम के अनुसार नहीं है, अनुपयुक्त है, एक भिक्षु के योग्य नहीं है, अशोभनीय है और नहीं किया जाना चाहिए। हे मूर्ख, तुम संसार से निकलकर संघ में कैसे आ सकते हो, जो गैरकानूनी है? हे मूर्ख, इससे अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा।'

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, जो भिक्षु बन चुका है उसे दूसरों को किसी कुकर्म के लिए उकसाना नहीं चाहिए। जो भी ऐसा करता है, वह दुक्कता का दोषी है। और हे भिक्षुओं, जो पहले नाई रह चुका है, उसे नाई का नौकर नहीं रखना चाहिए। जो भी ऐसा करता है, वह दुक्कता का दोषी है।'

<<<< पिछला (6.36) । अगला (6.38) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.38

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.37) । अगला(6.39) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-38.

1. और जब भगवान बुद्ध ने अतुमा में अपनी इच्छानुसार कुछ समय व्यतीत कर लिया, तो वे अपने आगे बढ़ गए।

सावत्थी की यात्रा। और उचित समय पर, सीधे यात्रा करते हुए, वे सावत्थी पहुँचे, और वहाँ, सावत्थी में, भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के आराम (मठ) में ठहरे।

उस समय श्रावस्ती में फलों के रूप में ठोस भोजन की प्रचुरता थी। तब भिक्षुओं के बीच यह प्रश्न उठा, 'क्या भगवान बुद्ध ने फलों को ठोस भोजन के रूप में उपयोग करने की अनुमति दी है या नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें फलों के रूप में सभी ठोस भोजन की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(6.37) । अगला(6.39) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.39

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.38) । अगला (6.40) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-39.

1. उस समय संघ के पौधे निजी भूमि पर उगते थे, और निजी व्यक्तियों के पौधे संघ की संपत्ति वाली भूमि पर उगते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, निजी भूमि पर उगाए गए संघ के पौधों की आधी उपज आप तब प्राप्त कर सकते हैं जब आपने उसका एक हिस्सा निजी स्वामी को दे दिया हो। संघ की संपत्ति वाली भूमि पर उगाए गए किसी निजी व्यक्ति के पौधों का उपयोग आप तब कर सकते हैं जब आपने उसका एक हिस्सा निजी स्वामी को दे दिया हो।'

<<<< पिछला (6.38) । अगला (6.40) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> छठा खंडक >> 6.40

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.39) । अगला(7.1) >>>>

महावग्गा

छठा खंडका (औषधियों पर)

अध्याय-40.

1. उस समय भिक्षुओं में यह भय उत्पन्न होता था कि कहीं वे किसी प्रकार का अपराध न कर बैठें।

किसी न किसी बात को लेकर वे सोचते हैं, 'क्या भगवान बुद्ध ने इसकी अनुमति दी है या नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, जो कुछ भी मैंने "यह तुम्हें शोभा नहीं देता" कहकर मना नहीं किया है, यदि वह वस्तु अवैध के अनुरूप है और वैध के विपरीत है, तो वह वैध नहीं है। जो कुछ भी मैंने "यह तुम्हें शोभा नहीं देता" कहकर मना नहीं किया है, यदि वह वस्तु वैध के अनुरूप है और अवैध के विपरीत है, तो वह वैध है।

और हे भिक्षुओं, जो कुछ भी मैंने "यह तुम्हें उचित लगे" कहकर अनुमति नहीं दी है, यदि वह चीज वैध के अनुरूप है और अवैध के विपरीत है, तो वह वैध नहीं है। जो कुछ भी मैंने "यह तुम्हें उचित लगे" कहकर अनुमति नहीं दी है, यदि वह चीज वैध के अनुरूप है और अवैध के विपरीत है, तो वह वैध है।

2. तब भिक्षुओं ने सोचा: 'क्या रात के पहले पहर तक खाया जा सकने वाला भोजन, उसी दिन दोपहर से पहले खाए जाने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाना जायज़ है या नहीं? क्या सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, उसी दिन दोपहर से पहले खाए जाने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाना जायज़ है या नहीं? क्या जीवनकाल में किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, उसी दिन दोपहर से पहले खाए जाने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाना जायज़ है या नहीं?'

क्या उसी दिन दोपहर से पहले? क्या सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाए जा सकने वाले भोजन को, जीवन भर किसी भी समय खाए जा सकने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाना वैध है या नहीं? क्या जीवन भर किसी भी समय खाए जा सकने वाले भोजन को, सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाए जा सकने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाना वैध है या नहीं?

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. हे भिक्षुओं, रात के पहले पहर तक खाया जा सकने वाला भोजन, या सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, या जीवनकाल में किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, उसी दिन दोपहर से पहले खाए जाने वाले भोजन के साथ मिलाकर दोपहर तक वैध है, और दोपहर के बाद वैध नहीं है। हे भिक्षुओं, सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, या जीवनकाल में किसी भी समय खाया जा सकने वाला भोजन, रात के पहले पहर तक खाए जा सकने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाए जाने पर वैध है, और रात के पहले पहर के बाद वैध नहीं है। हे भिक्षुओं, जीवनकाल में किसी भी समय खाया जा सकने

वाला भोजन, सात दिनों के भीतर किसी भी समय खाए जा सकने वाले भोजन के साथ मिलाकर खाए जाने पर वैध है, और सात दिनों के बाद वैध नहीं है।

यहां औषधियों पर छठा खंडका समाप्त होता है।

<<<< पिछला(6.39) । अगला(7.1) >>>>

सातवां खंडका (कथिना समारोह)
(कथीना समारोह)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.40) । अगला(7.2) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में स्थित जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे हुए थे। उस समय लगभग तीस पथेय्यक भिक्षु भी वहीं थे।

वे सभी वनवासी थे, भिक्षा पर जीवन यापन करते थे, कूड़े के ढेर से फटे-पुराने वस्त्र पहनते थे, और उनके पास केवल तीन-तीन वस्त्र थे। जब वे भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी जा रहे थे, उस समय वर्षा ऋतु का समय निकट था, वे समय पर सावत्थी नहीं पहुँच पाए और वर्षा ऋतु के मार्ग में साकेत में ठहर गए। उन्होंने वर्षा ऋतु असुविधा में बिताई, यह सोचते हुए कि 'हमारे भगवान बुद्ध हमसे छह खण्ड दूर, हमारे निकट ही निवास कर रहे हैं, और हम उनके दर्शन नहीं कर पा रहे हैं।'

तीन महीने बाद जब उन भिक्षुओं ने वर्षावास का निवास पूरा कर लिया और पवाराना संपन्न कर लिया, तो वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, श्रावस्ती में स्थित जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन में। उस समय वर्षा हो रही थी, जलभराव हो रहा था, दलदल बन रहा था, उनके वस्त्र पूरी तरह भीग चुके थे और वे थक चुके थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

2. महान बुद्धों की यह प्रथा है कि वे अभी-अभी आए हुए दयालु भिक्षुओं का स्वागत करते हैं। और भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, क्या आप सब ठीक चल रहा है?

क्या आपको अपना गुजारा चलाने के लिए पर्याप्त मिलता है? क्या आपने वर्षा का अच्छी तरह से पालन-पोषण किया है, एकता और सद्भाव से, बिना किसी झगड़े के, और क्या आपको भोजन की कमी का सामना नहीं करना पड़ा है?

'हे प्रभु, हमारा भला हो रहा है; हमें जीवनयापन के लिए पर्याप्त भोजन मिल रहा है; हे प्रभु, हमने वर्षावास एकता, सद्भाव और बिना किसी कलह के संपन्न किया है और हमें भोजन की कमी नहीं हुई है। हे प्रभु, जब हम लगभग तीस पथेय्यक भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी जा रहे थे, तब हम समय पर सावत्थी नहीं पहुँच पाए (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। और जब तीन महीने बाद, हे प्रभु, हमने वर्षावास संपन्न कर लिया और पवाराना संपन्न कर लिया, तब हम वर्षा के दौरान, जलभराव और दलदल के निर्माण के बीच, आगे बढ़े; हमारे वस्त्र पूरी तरह भीग गए थे; और हम थक गए थे।'

3. तब भगवान बुद्ध ने इस विषय में धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम निर्धारित करता हूँ कि कथिना समारोह भिक्षुओं द्वारा तब संपन्न किया जाएगा जब...'

उन्होंने अपना वर्षावास पूरा कर लिया है। और हे भिक्षुओं, कथिना समारोह के बाद तुम पाँच बातें कर सकते हो—बिना आमंत्रित किए लोगों के घरों में भिक्षा मांगने जाना,

सामान्य तीन वस्त्रों का सेट पहने बिना भिक्षा मांगने जाना, चार या दो से अधिक लोगों के समूह में भिक्षा मांगने जाना, जितने वस्त्रों की आवश्यकता हो उतने वस्त्र धारण करना, और जितने वस्त्र हाथ में आ जाएं, वे उनके होंगे (अर्थात, उन भिक्षुओं के होंगे जो निवास और अन्य कारणों से वितरण में भाग लेने के हकदार हैं)।

'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, कथिना समर्पित की जानी चाहिए।'

4. 'एक विद्वान, योग्य भिक्षु को घोषणा करने दो'

संघ के समक्ष निम्नलिखित निवेदन (प्रस्ताव) प्रस्तुत किया गया: "यह कठोरा वस्त्र संघ की संपत्ति बन गया है। यदि संघ तैयार है, तो वह कठोरा वस्त्र को फलां भिक्षु को कठोरा बिछाने के लिए सौंप दे। यही निवेदन है। हे पूज्यवरों, संघ मेरी बात सुनिए। यह कठोरा वस्त्र संघ की संपत्ति बन गया है। संघ इसे फलां भिक्षु को कठोरा बिछाने के लिए सौंपता है। यदि संघ कठोरा को फलां भिक्षु को सौंपने से सहमत है, तो वह मौन रहे। संघ इससे सहमत है। अतः वह मौन रहता है। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

5. 'हे भिक्षुओं, इस प्रकार कथिना समारोह विधिवत संपन्न हुआ है; और इस प्रकार विधिवत संपन्न नहीं हुआ है।'

हे भिक्षुओं, ऐसा कब नहीं हुआ है जब इसे विधिवत रूप से आयोजित किया गया हो?

कथीना समारोह विधिवत रूप से आयोजित नहीं किया गया है जब सामग्री को केवल (माप के उद्देश्य से) चिह्नित किया गया हो: जब इसे केवल धोया गया हो: जब इसकी केवल गणना की गई हो (यह देखने के लिए कि इससे कितने वस्त्र बनेंगे): जब इसे केवल काटा गया हो: जब इसे केवल टुकड़ों में जोड़ा गया हो: जब इसे केवल लंबाई में सिला गया हो: जब इसे केवल चिह्नित किया गया हो: जब इसे केवल (जोड़ों में) मजबूत किया गया हो: जब इसे केवल

जब वस्त्र को चोटी से या पीठ पर बांधकर, या भागों में दोहरा करके मजबूत किया गया हो: जब उसे केवल रंग में डाला गया हो: जब (अध्यक्ष भिक्षु द्वारा, कि वह अपने लिए कौन से वस्त्र ग्रहण करेगा) निर्णय लिया गया हो (लेकिन उसका पालन नहीं किया गया हो): जब (संघ को वस्त्र भेंट करने से प्राप्त पुण्य के बारे में) चर्चा हुई हो, और दाता ने उदारता दिखाने के लिए उसे प्रेरित किया हो): जब दान केवल अस्थायी हो: जब समारोह स्थगित कर दिया गया हो।

जब समारोह को रद्द करना पड़ा हो (क्योंकि यह रात भर चलता रहा हो): जब समारोह किसी अन्य कारण से विफल हो गया हो: जब (अध्यक्ष भिक्षु द्वारा औपचारिक चयन में) ऊपरी वस्त्र, भीतरी वस्त्र या कमरबंद छूट गए हों: जब वस्त्र के पाँचों भागों में से कोई एक भाग काट-छाँट कर छोड़ दिया गया हो: जब समारोह की अध्यक्षता एक से अधिक भिक्षुओं ने की हो। और यहाँ तक कि जब कथिना समारोह सामान्य रूप से संपन्न हो गया हो, यदि वितरण की पुष्टि करने वाला संघ सीमा के भीतर रहने वाले (संपूर्ण संघ) से भिन्न हो, तो भी कथिना समारोह विधिवत संपन्न नहीं हुआ माना जाएगा।

'हे भिक्षुओं, इन मामलों में कथिना समारोह विधिवत आयोजित नहीं किया गया है।'

6. 'हे भिक्षुओं, कथिना समारोह विधिवत कब आयोजित किया गया था?'

'जब वस्त्र नए कपड़े से बन जाएंगे'

सूती वस्त्र, या लगभग नया, या कपड़े से बना, या कूड़े के ढेर से उठाए गए (चिथड़ों से) बना, या बाज़ार से उठाए गए टुकड़ों से बना: जब (अध्यक्ष भिक्षु द्वारा अपने लिए कौन से वस्त्र ग्रहण करने का) निर्णय (केवल) लिया नहीं गया हो (बल्कि उस पर अमल भी किया गया हो): जब (कठिना अर्पित करने से प्राप्त पुण्य के बारे में) कोई चर्चा न हुई हो: जब दान केवल अस्थायी न हो: जब समारोह स्थगित न किया गया हो: जब समारोह को छोड़ना आवश्यक न हो: जब समारोह विफल न हुआ हो: जब (अध्यक्ष भिक्षु द्वारा किए गए चुनाव में) ऊपरी वस्त्र, भीतरी वस्त्र, और कमरबंद न छोड़े गए हों: जब वस्त्र के पाँचों भागों में से कोई भी भाग काटते समय न छूटा हो: जब (समारोह

की अध्यक्षता) एक ही भिक्षु ने की हो। और जब कथिना समारोह (अन्यथा) सामान्य रूप से संपन्न हो जाने के बाद, सीमा के भीतर रहने वाले (संपूर्ण संघ) द्वारा इसकी पुष्टि कर दी गई हो।

'हे भिक्षुओं, इन मामलों में कथिना समारोह विधिवत संपन्न हो चुका है।'

<<<< पिछला(6.40) | अगला(7.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.1) | अगला(7.3) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय दो।

1. हे भिक्षुओं, कथिना (अर्थात कथिना समारोह के बाद मिलने वाले विशेषाधिकार) कब निलंबित किए जाते हैं?

हे भिक्षुओं, कथिना (विशेषाधिकारों) के निलंबन के ये आठ कारण हैं—भिक्षुओं का चले जाना, उनका वस्त्र तैयार हो जाना, उनका वस्त्र तैयार न करवाना, उनका वस्त्र नष्ट हो जाना, उन्हें (संपूर्ण संघ के विशेषाधिकारों के सामान्य निलंबन की सूचना मिलना), उन्हें वस्त्र का विशेष उपहार मिलने की अपेक्षा का समाप्त हो जाना, उनका (जिस संघ को कथिना दिया गया था उसकी) सीमा से बाहर चले जाना, और संपूर्ण संघ के कथिना विशेषाधिकारों का सामान्य निलंबन।

2. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु पहनने के लिए तैयार वस्त्र लेकर यह सोचते हुए चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।"

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार उसके चले जाने के कारण निलंबित कर दिए गए हैं।'

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर लेता है तो वह सोचता है, "मैं यहीं वस्त्र बनवा लूँगा और कभी वापस नहीं लौटूँगा।" और वह वस्त्र बनवा लेता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उसके पास पहनने के लिए एक वस्त्र तैयार है।'

कथिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु वस्त्र धारण करके चला जाता है। और जब वह सीमा के पार पहुँच जाता है तो वह सोचता है, "मैं न तो वस्त्र बनवाऊँगा और न ही वापस लौटूँगा।"

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार उनके इस निर्णय के आधार पर निलंबित किए जाते हैं।'

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र लेकर चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर लेता है तो कहता है, "मैं यहीं वस्त्र सिलवाऊंगा और कभी वापस नहीं जाऊंगा।" और वह वस्त्र सिलवा लेता है। और जब वस्त्र उसके लिए सिलवाया जा रहा होता है, तभी वह खराब हो जाता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उनका वस्त्र इतना दूषित हो गया है।'

2. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके यह सोचकर चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" सीमा पार करने के बाद वह उस वस्त्र को फिर से बनवाता है। वस्त्र बन जाने के बाद वह यह समाचार लेकर आता है, "कहते हैं कि उस जिले में कठिना समारोह स्थगित कर दिया गया है।"

उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उसने वह समाचार सुन लिया था।

कथिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके यह सोचते हुए चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह उस वस्त्र को सिलवाता है। फिर, वस्त्र सिलवाने के बाद, वह विशेषाधिकारों के सामान्य निलंबन के समाप्त होने तक अपनी वापसी स्थगित कर देता है।

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि वह सीमा से बाहर है।'

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके यह सोचते हुए चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह उस वस्त्र को सिलवाता है। और फिर, जब वह वस्त्र सिल जाता है, तो वह अपनी वापसी को उस क्षण तक स्थगित कर देता है जब विशेषाधिकारों का (सामान्य) निलंबन होता है।'

'संपूर्ण संघ के विशेषाधिकारों के सामान्य निलंबन के आधार पर उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार निलंबित कर दिए गए हैं।'

अदाय-सत्तक नामक खंड का अंत।

<<<< पिछला(7.1) | अगला(7.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.2) | अगला(7.4) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-3.

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु पहनने के लिए तैयार वस्त्र लेकर चला जाता है, इत्यादि। (बाकी पहले जैसा ही)'

<<<< पिछला(7.2) | अगला(7.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.3) | अगला(7.5) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-4.

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक अधूरी पोशाक लेकर चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर जाता है तो वह सोचता है, "मैं यहीं पोशाक बनवा लूँगा और कभी वापस नहीं लौटूँगा;" और वह पोशाक बनवा लेता है, इत्यादि। (बाकी पहले जैसा ही)'

आदया-खक्का शीर्षक वाले अनुभाग का अंत।

<<<< पिछला(7.3) | अगला(7.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.4) | अगला(7.6) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-5.

कथिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु अधूरी पोशाक लेकर चला जाता है, इत्यादि।

समदया-खक्का नामक अनुभाग का अंत।

<<<< पिछला(7.4) | अगला(7.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.5) | अगला(7.7) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-6.

1. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर जाता है तो वह सोचता है, "मैं यहीं वस्त्र बनवा लूँगा और कभी वापस नहीं लौटूँगा।" और वह वस्त्र बनवा लेता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उसके पास पहनने के लिए वस्त्र तैयार है, इत्यादि।'

2. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र लेकर यह सोचते हुए चला जाता है, "मैं कभी वापस नहीं आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है तो वह सोचता है, "मैं यहीं वस्त्र बनवा लूंगा।" और वह वस्त्र बनवा लेता है, इत्यादि।

3. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु बिना कोई संकल्प लिए वस्त्र धारण करके चला जाता है; वह न तो सोचता है "मैं वापस आऊंगा," और न ही सोचता है "मैं वापस नहीं आऊंगा।" और जब वह सीमा से आगे निकल जाता है, इत्यादि।

4. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु एक वस्त्र धारण करके यह सोचते हुए चला जाता है,

मैं वापस आऊंगा। और जब वह सीमा पार कर जाएगा, इत्यादि।

<<<< पिछला(7.5) | अगला(7.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.6) | अगला(7.8) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय 7।

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु अपना वस्त्र लेकर चला जाता है, इत्यादि।'

अद्य ('दूर ले जाने') भानवर का अंत।

<<<< पिछला(7.6) | अगला(7.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.8

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.7) | अगला(7.9) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-8.

1. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु वस्त्र भेंट किए जाने की उम्मीद से चला जाता है। जब वह सीमा से बाहर निकल जाता है, तो वह ऐसा कार्य करता है जिससे उसकी अपेक्षा पूरी हो सके। परन्तु उसे वस्त्र वहाँ प्राप्त होता है जहाँ उसने अपेक्षा नहीं की थी, और वहाँ नहीं जहाँ उसने अपेक्षा की थी। वह सोचता है, "मैं वस्त्र यहीं बनवा लूँगा और कभी वापस नहीं जाऊँगा।" और वह वस्त्र बनवा लेता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उसके पास पहनने के लिए एक वस्त्र तैयार है।'

'कठिना समारोह के बाद एक भिक्षु...'

आयोजित किया गया (आदि, जैसा कि पिछले मामले में था)। और वह सोचता है, "मैं न तो चोगा सिलवाऊंगा और न ही वापस जाऊंगा।"

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार उनके इस निर्णय के आधार पर निलंबित किए जाते हैं।'

'कठिना समारोह आदि संपन्न होने के बाद एक भिक्षु सोचता है, "मैं यहीं अपना वस्त्र सिलवा लूँगा और कभी वापस नहीं जाऊँगा।" और वह वस्त्र सिलवा लेता है। और जब उसके लिए वस्त्र सिल रहा होता है, तभी वह बिगड़ जाता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उनका वस्त्र इतना दूषित हो गया है।'

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु वस्त्र भेंट किए जाने की उम्मीद से चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह सोचता है, "मैं यहाँ ऐसा कार्य करूँगा जिससे मेरी अपेक्षा पूरी हो जाए, और मैं कभी वापस नहीं लौटूँगा।" और वह उस अपेक्षित उपहार को प्राप्त करने में स्वयं को समर्पित कर देता है, लेकिन उसकी अपेक्षा व्यर्थ हो जाती है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार उस अपेक्षा के समाप्त होने के कारण निलंबित कर दिए गए हैं।'

अनासा-दोलासाका शीर्षक वाले अनुभाग का अंत।

<<<< पिछला(7.7) | अगला(7.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.8) | अगला(7.10) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-9.

1. 'कठिना समारोह के बाद एक भिक्षु इस उम्मीद के साथ चला जाता है कि उसे कुछ मिलेगा'

एक वस्त्र भेंट किया गया, और वह सोचता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह अपनी अपेक्षा की पूर्ति में जुट जाता है, और उसे वह वस्त्र वहीं मिलता है जहाँ उसने अपेक्षा की थी, और जहाँ उसने अपेक्षा नहीं की थी वहाँ नहीं मिलता। और वह सोचता है, "मैं यहीं वस्त्र बनवा लूंगा, और कभी वापस नहीं जाऊंगा," इत्यादि।

2. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु वस्त्र भेंट किए जाने की उम्मीद में यह सोचकर चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो उसे यह खबर मिलती है: "कहते हैं कि उस जिले में कठिना समारोह स्थगित कर दिया गया है।" और वह सोचता है, "चूंकि उस जिले में कठिना समारोह स्थगित कर दिया गया है, इसलिए मैं यहीं पर अपने अपेक्षित उपहार को प्राप्त करने के लिए स्वयं को समर्पित कर दूंगा।" और वह अपनी अपेक्षा की पूर्ति के लिए ऐसे कार्य करता है, और उसे उस स्थान पर वस्त्र प्राप्त होता है जहां उसने इसकी अपेक्षा की थी, और जहां उसने इसकी अपेक्षा नहीं की थी वहां उसे वस्त्र प्राप्त नहीं होता है। और वह सोचता है, "मैं यहीं पर वस्त्र बनवा लूंगा, और कभी वापस नहीं जाऊंगा," इत्यादि।

3. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु वस्त्र (उपहार में प्राप्त करने) की अपेक्षा लेकर यह सोचकर चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह ऐसा कार्य करता है जिससे उसकी अपेक्षा पूरी हो सके, और उसे उस स्थान पर वस्त्र प्राप्त होता है जहाँ उसने अपेक्षा की थी, और जहाँ उसने अपेक्षा नहीं की थी वहाँ वस्त्र प्राप्त नहीं होता, और वह उस वस्त्र को बनवा लेता है।

जब वह चोगा इस प्रकार तैयार हो गया, तभी उसे यह खबर मिली, "कहते हैं कि उस जिले में कथीना को निलंबित कर दिया गया है।"

उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि उसने वह समाचार सुन लिया था।

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु वस्त्र प्राप्त करने की उम्मीद में यह सोचकर चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह सोचता है, "मैं उस अपेक्षित उपहार को प्राप्त करने के लिए स्वयं को समर्पित कर दूंगा, और कभी वापस नहीं लौटूंगा।" और वह उस अपेक्षित उपहार की परवाह करता है, लेकिन उसकी उम्मीदें चकनाचूर हो जाती हैं।'

उस अपेक्षा के समाप्त होने के कारण भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार निलंबित कर दिए गए हैं।

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु वस्त्र प्राप्त करने की अपेक्षा से यह सोचकर चला जाता है, "मैं वापस आऊंगा।" और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह अपनी अपेक्षा की पूर्ति में तल्लीन हो जाता है, और उसे उस स्थान पर वस्त्र प्राप्त हो जाता है जहाँ उसने अपेक्षा की थी, और जहाँ अपेक्षा नहीं की थी वहाँ नहीं मिलता, और वह उस वस्त्र को सिलवा लेता है। फिर, वस्त्र सिलवाने के बाद, वह विशेषाधिकारों के (सामान्य) निलंबन के समाप्त होने तक अपनी वापसी स्थगित कर देता है।'

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार इस आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं कि वह सीमा से बाहर है।'

'एक भिक्षु, कथिना समारोह संपन्न होने के बाद (आदि, जैसा कि पिछले मामले में है, तक): और फिर, इसकी भरपाई हो जाने के बाद, वह विशेषाधिकारों के (सामान्य) निलंबन के क्षण तक अपनी वापसी को स्थगित कर देता है।

'उस भिक्षु के कथिना विशेषाधिकार सामान्य निलंबन के आधार पर निलंबित कर दिए गए हैं।'

आसा-डोलासाका शीर्षक वाले अनुभाग का अंत।

<<<< पिछला(7.8) । अगला(7.10) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.9) । अगला(7.11) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-10.

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु किसी कार्य से चला जाता है। और जब वह सीमा पार कर लेता है, तो उसे वस्त्र भेंट किए जाने की आशा होती है। वह अपनी इस आशा की पूर्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर देता है, और उसे वस्त्र प्राप्त हो जाता है, इत्यादि।'

करणीय-दोलासाका का अंत।

<<<< पिछला(7.9) । अगला(7.11) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (7.10) । अगला (7.12) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-11.

1. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु अपने वस्त्रों में अपने हिस्से के दावे की रक्षा करते हुए (दुनिया के) चारों दिशाओं में यात्रा पर निकल जाता है। जब वह यात्रा कर रहा होता है, तो भिक्षु उससे पूछते हैं: "हे मित्र, तुमने वस्स कहाँ रखा है, और वस्त्रों में तुम्हारा हिस्सा कहाँ है?"

वह जवाब देता है: "मैंने फलां-फलां में वर्षा (वस्सा) रखी है।"

एक निवास स्थान, और वहाँ मुझे वस्त्रों में मेरा हिस्सा मिलता है।"

उन्होंने उससे कहा: "जाओ, मित्र, और अपना वस्त्र यहाँ ले आओ; हम इसे तुम्हारे लिए यहीं बना देंगे।"

और वह उस निवास पर जाकर भिक्षुओं से पूछता है: "मित्रों, मेरे हिस्से के वस्त्र कहाँ हैं?"

वे जवाब देते हैं: "यह रहा दोस्त; तुम कहाँ जा रहे हो?"

वह कहता है: "मैं फलां-फलां निवास पर जाऊंगा; वहां भिक्षु मेरे लिए वस्त्र तैयार करेंगे।"

उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं, मित्र, मत जाओ; हम तुम्हारे लिए यहीं पर वस्त्र बना देंगे।"

और वह सोचता है, "मैं यहीं पर चोगा सिलवा लूंगा, और वापस (उस दूसरी जगह) नहीं जाऊंगा," इत्यादि।

2. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु यात्रा पर निकल पड़ता है (आदि, जैसा कि 1 में नीचे तक बताया गया है): "यह रहा, मित्र।" और वह वह वस्त्र धारण करके उस निवास स्थान के लिए चल पड़ता है। रास्ते में कुछ भिक्षु उससे पूछते हैं: "मित्र, तुम कहाँ जा रहे हो?"

वह कहता है: "मैं फलां-फलां निवास पर जाने का इरादा रखता हूं; वहां भिक्षु मेरे लिए वस्त्र तैयार कर देंगे।"

उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं, मित्र, मत जाओ; हम तुम्हारे लिए यहीं पर वस्त्र बना देंगे।"

और वह सोचता है, "मैं यहीं पर चोगा सिलवा लूंगा, और वापस (उस दूसरी जगह) नहीं जाऊंगा," इत्यादि।

3. 'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद एक भिक्षु यात्रा पर निकल पड़ता है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में नीचे तक बताया गया है): "यह रहा, मित्र।" और वह वह वस्त्र धारण करके उस निवास स्थान के लिए निकल पड़ता है। और जब वह जा रहा होता है

वह उस निवास स्थान के बारे में सोचता है, "मैं यहीं पर अपना वस्त्र सिलवा लूँगा और वापस उस जगह नहीं जाऊँगा," इत्यादि।

अपकिनाना-नवक का अंत।

<<<< पिछला (7.10) | अगला (7.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (7.11) | अगला (7.13) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-12.

'कठिना समारोह संपन्न होने के बाद, एक भिक्षु रहने के लिए एक आरामदायक स्थान की तलाश में, एक वस्त्र धारण करता है और यह सोचते हुए चला जाता है, "मैं फलां निवास स्थान पर जाऊंगा; यदि वह आरामदायक होगा, तो मैं वहीं रहूंगा; यदि नहीं होगा, तो मैं फलां निवास स्थान पर जाऊंगा; यदि वह आरामदायक होगा, तो मैं वहीं रहूंगा; यदि नहीं होगा, तो मैं फलां निवास स्थान पर जाऊंगा; यदि वह आरामदायक होगा, तो मैं वहीं रहूंगा; यदि नहीं होगा, तो मैं वापस चला जाऊंगा।"

'जब वह सीमा पार कर लेता है, तो वह सोचता है, "मैं यहीं पर अपना वस्त्र सिलवा लूंगा, और कभी वापस नहीं जाऊंगा," इत्यादि।'

विश्राम की चाह रखने वाले भिक्षु के पाँचों मामलों का अंत।

<<<< पिछला (7.11) | अगला (7.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> सातवाँ खंडक >> 7.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.12) | अगला(8.1) >>>>

महावग्गा

सातवां खंडका (कथिना समारोह)

अध्याय-13.

1. 'हे भिक्षुओं, दो शर्तों पर, वितरण में भाग के लिए भिक्षु का दावा

कथीना का अस्तित्व बना रहेगा, और इन दो शर्तों के विफल होने पर ही इसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

और हे भिक्षुओं, उस दावे के निरंतर अस्तित्व के लिए वे दो शर्तें कौन सी हैं? निवास से संबंधित शर्त और वस्त्र से संबंधित शर्त।

हे भिक्षुओं, निवास के संबंध में कौन सी शर्त है? हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु बारिश या आंधी के दौरान निवास स्थान पर लौटने के इरादे से कुछ समय के लिए कहीं चला जाता है, तो हे भिक्षुओं, निवास के संबंध में शर्त पूरी हो जाती है। हे भिक्षुओं, वस्त्र के संबंध में कौन सी शर्त है? हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का वस्त्र बना हुआ नहीं है, या तैयार नहीं है, या वस्त्र प्राप्त करने की उसकी अपेक्षा समाप्त हो गई है, तो हे भिक्षुओं, वस्त्र के संबंध में शर्त पूरी हो जाती है। हे भिक्षुओं, ये दो शर्तें दावे के निरंतर अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं।

2. हे भिक्षुओं, किन दो शर्तों में से किस एक शर्त के उल्लंघन से दावा समाप्त हो जाता है? निवास संबंधी शर्त का उल्लंघन और वस्त्र संबंधी शर्त का उल्लंघन।

और हे भिक्षुओं, किस स्थिति में निवास संबंधी शर्त पूरी नहीं होती?

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु निवास स्थान को त्यागकर, तिरस्कारपूर्वक उससे मुंह मोड़कर, उसे छोड़कर, न लौटने के इरादे से चला जाता है, तो हे भिक्षुओं, निवास स्थान संबंधी शर्त पूरी नहीं होती। ऐसे में, हे भिक्षुओं, वस्त्र संबंधी शर्त पूरी नहीं होती।

क्या भिक्षु का वस्त्र समाप्त हो गया है? हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु का वस्त्र बन गया है, या बिगड़ गया है, या खो गया है, या जल गया है, या वस्त्र प्राप्त करने की उसकी आशा समाप्त हो गई है। हे भिक्षुओं, इन परिस्थितियों में वस्त्र संबंधी शर्त समाप्त हो जाती है। हे भिक्षुओं, यही दो शर्तें समाप्त होने का कारण है, जिससे दावा समाप्त हो जाता है।

सातवें खंडका का अंत, कथिना-खंडका।

<<<< पिछला(7.12) । अगला(8.1) >>>>

आठवां खंडाका (पोशाक)
(भिक्षुओं का वस्त्र)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.13) । अगला(8.2) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय 1।

1. उस समय बुद्ध राजगृह में, वेलुवन में, कालंदक-निवापा में निवास करते थे। उस समय वैशाली एक समृद्ध, समृद्ध नगर था, जहाँ बहुत आबादी थी, भोजन की प्रचुरता थी; वहाँ सात हज़ार सात सौ सात मंजिला इमारतें, सात हज़ार सात सौ सात शिखर वाली इमारतें, सात हज़ार सात सौ सात रमणस्थल और सात हज़ार सात सौ सात कमल-कुंड थे। वहाँ अम्बापालिका नाम की एक वेश्या भी थी, जो सुंदर, आकर्षक और अत्यंत सुंदर थी, उसे नृत्य, गायन और वीणा वादन का अच्छा ज्ञान था और लोग उससे मिलने के लिए अक्सर आते थे। वह एक रात के लिए पचास कहपना (कांस्य के सिक्के) माँगती थी। उस महिला के कारण वैशाली की समृद्धि बढ़ती ही गई।

2. राजगृह का एक व्यापारी किसी काम से वैशाली गया। उस व्यापारी ने देखा कि वैशाली कितना समृद्ध और खुशहाल नगर था, कितना आबादी वाला, लोगों से भरा हुआ और भोजन की प्रचुरता वाला, और सात हज़ार सात सौ सात मंज़िला इमारतें... और सुंदर वेश्या अंबपाली... जिसके कारण वैशाली और भी समृद्ध होता जा रहा था। वैशाली में अपना काम निपटाने के बाद वह व्यापारी राजगृह लौट आया और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गया। उनके पास पहुँचकर उसने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा, 'महाराज, वैशाली एक समृद्ध और खुशहाल नगर है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में आगे बताया गया है)। उस महिला के कारण वैशाली और भी समृद्ध होता जा रहा है। महाराज, कृपा करके हमें भी एक वेश्या स्थापित करने की अनुमति दें।'

(राजा ने उत्तर दिया), 'अच्छा, महाराज, ऐसी लड़की की तलाश कीजिए जिसे आप वेश्या के रूप में स्थापित कर सकें।'

3. उस समय राजगृह में सलवती नाम की एक लड़की रहती थी, जो सुंदर, आकर्षक, मनमोहक और बेहद खूबसूरत थी। राजगृह के व्यापारी ने उस लड़की सलवती को अपनी रखैल बना लिया। कुछ ही समय में सलवती नाच-गाना और वीणा बजाना सीख गई और उसके पास बहुत से लोग आने लगे। वह एक रात के लिए सौ (कांस्य के सिक्के) मांगती थी। कुछ ही समय में सलवती गर्भवती हो गई। अब सलवती सोचने लगी, 'पुरुष गर्भवती स्त्री को पसंद नहीं करते। अगर किसी को पता चल जाए कि सलवती गर्भवती है, तो मेरी सारी प्रतिष्ठा छिन जाएगी। अगर लोग कह दें कि मैं बीमार हूँ, तो क्या होगा?'

और वेश्या सलावती ने द्वारपाल को आदेश देते हुए कहा, 'हे द्वारपाल, यहाँ किसी को प्रवेश न करने देना, और यदि कोई मुझे बुलाए, तो उसे कहना कि मैं बीमार हूँ।' द्वारपाल ने वेश्या सलावती की बात मानते हुए कहा, 'जी महोदया।'

4. जब वेश्या सलावती के गर्भ में पल रहा बच्चा परिपक्व हो गया, तो उसने एक लड़के को जन्म दिया। वेश्या सलावती ने अपनी दासी को आदेश दिया, "जाओ, मेरी दासी, इस लड़के को एक पुरानी सूप की टोकरी में डालो, उसे ले जाओ और कूड़े के ढेर पर फेंक दो।" दासी ने वेश्या सलावती का यह आदेश मानते हुए कहा, "जी महोदया," और उस लड़के को एक पुरानी सूप की टोकरी में डालकर ले गई और कूड़े के ढेर पर फेंक दिया।

उस समय अभय नाम का एक राजकुमार राजा की सेवा में सुबह-सुबह गया और उसने उस लड़के को देखा जिसके चारों ओर कौवे जमा हो रहे थे। यह देखकर उसने लोगों से पूछा, 'हे सज्जनों, यह क्या है जिसके चारों ओर कौवे जमा हो रहे हैं?'

महाराज, यह एक लड़का है।

'क्या वह जीवित है, महोदय?'

'वह जीवित हैं, महाराज।'

'ठीक है, मेरे सज्जनों, उस लड़के को हमारे महल में ले आइए और उसे नर्सों को सौंप दीजिए ताकि वे उसका पालन-पोषण कर सकें।'

और उन लोगों ने राजकुमार अभय के उस आदेश को स्वीकार करते हुए कहा, 'जी महाराज,' और उस लड़के को राजकुमार अभय के महल में ले आए और उसे नर्सों को सौंप दिया।

'इस लड़के का पोषण करो।'

क्योंकि (लोगों ने अभय से इस लड़के के बारे में कहा था), 'वह जीवित है' (जीवती), इसलिए उन्होंने उसका नाम जीवक रखा; क्योंकि उसका पालन-पोषण राजकुमार द्वारा कराया गया था (कुमारेन पोसापितो), इसलिए उन्होंने उसका नाम कोमरभक्का रखा।

5. कुछ समय बाद जीवक कोमरभक्क समझदार हो गए। जीवक कोमरभक्क राजकुमार अभय के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने राजकुमार अभय से कहा: 'हे महाराज, मेरी माता कौन हैं और मेरे पिता कौन हैं?'

'हे मेरे भले जीवक, मैं तुम्हारी माँ को नहीं जानता, परन्तु मैं तुम्हारा पिता हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हारा पालन-पोषण किया है।'

अब जीवक कोमरभक्का ने सोचा: 'इन राजपरिवारों में कला का ज्ञान रखे बिना जीविका कमाना आसान नहीं है। अगर मैं कोई कला सीख लूं तो क्या होगा?'

6. उस समय तक्सिला (इस्लामाबाद के पास तक्षशिला) में एक विश्वप्रसिद्ध चिकित्सक रहते थे। जीवक कोमरभक्का राजकुमार अभय से अनुमति लिए बिना ही तक्सिला के लिए निकल पड़े। जगह-जगह भटकते हुए वे तक्सिला पहुँचे और उस चिकित्सक के पास गए। उनके पास जाकर उन्होंने चिकित्सक से कहा, 'हे चिकित्सक, मैं आपकी कला सीखना चाहता हूँ।'

'अच्छा, मित्र जीवका, इसे सीख लो।'

जीवक कोमरभक्क ने बहुत कुछ सीखा, आसानी से सीखा, अच्छी तरह समझा और जो सीखा उसे भूला नहीं। सात वर्ष बीत जाने पर जीवक कोमरभक्क ने सोचा, 'मैं बहुत कुछ सीखता हूँ, आसानी से सीखता हूँ, अच्छी तरह समझता हूँ और जो सीखा है उसे भूलता नहीं हूँ। मैंने सात वर्ष अध्ययन किया है और मुझे इस कला का अंत नहीं दिखता। आखिर इस कला का अंत कब होगा?'

7. जीवक कुमारभक्क उस वैद्य के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने वैद्य से कहा, "हे वैद्य, मैं बहुत कुछ सीखता हूँ और आसानी से सीख लेता हूँ; मैं अच्छी तरह समझता हूँ और जो कुछ सीखता हूँ उसे भूलता नहीं हूँ। मैंने अब सात वर्ष अध्ययन किया है और मुझे इस कला का अंत नहीं दिखता। मुझे इस कला का अंत कब दिखेगा?"

'बहुत खूब, मेरे प्रिय जीवक, यह फावड़ा लो, और तक्कसिला के चारों ओर हर तरफ एक योगाना बनाओ, और जो भी (पौधा) तुम्हें औषधीय न लगे, उसे मेरे पास ले आओ।'

जीवक कोमरभक्क ने उस चिकित्सक का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, 'जी, चिकित्सक जी,' और एक कुदाल लेकर तक्कशिला के चारों ओर योगाना चक्कर लगाया, परन्तु उन्हें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं मिली जो औषधीय न हो। तब जीवक कोमरभक्क उस स्थान पर गए जहाँ वह चिकित्सक थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने कहा, 'हे चिकित्सक जी, मैंने तक्कशिला के चारों ओर योगाना चक्कर लगाया है, परन्तु मुझे कोई भी ऐसी वस्तु नहीं मिली जो औषधीय न हो।'

(चिकित्सक ने उत्तर दिया), 'हे जीवक, तुमने अपनी विद्या पूरी कर ली है; इससे तुम्हारी जीविका का प्रबंध हो जाएगा।' ऐसा कहकर उसने जीवक कोमरभक्का को घर वापसी की यात्रा के लिए थोड़ा पैसा दिया।

8. जीवक कोमरभक्क ने यात्रा के लिए मिले थोड़े से पैसे लेकर राजगृह के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में सकेत में जीवक कोमरभक्क के वो थोड़े से पैसे खर्च हो गए। अब जीवक कोमरभक्क सोचने लगे, 'ये रास्ते तो सुनसान हैं, पानी और भोजन भी बहुत कम है; बिना पैसे के यहाँ यात्रा करना मुश्किल है। अगर मैं यात्रा के लिए कुछ पैसे जुटाने की कोशिश करूँ तो क्या होगा?'

उस समय सकेता में सेठी (धनी व्यापारी) की पत्नी सात वर्षों से सिर की बीमारी से पीड़ित थी; कई महान और विश्वप्रसिद्ध चिकित्सक आए, लेकिन वे उसे स्वस्थ नहीं कर सके; उन्होंने बहुत सारा सोना लिया और चले गए।

और जब जीवक कोमरभक्का साकेत में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने लोगों से पूछा: 'यहाँ कौन बीमार है, मेरे सज्जनों? मैं किसका इलाज करूँ?'

'हे चिकित्सक, उस सेठी की पत्नी सात वर्षों से सिर की बीमारी से पीड़ित है; जाइए, चिकित्सक, और उस सेठी की पत्नी का इलाज कीजिए।'

9. तब जीवक कोमरभक्का उस गृहस्थ, सेठी के घर गया; और वहाँ पहुँचकर उसने द्वारपाल को आदेश दिया, 'हे मेरे भले द्वारपाल, जा और सेठी की पत्नी से कह दे: "महोदया, एक वैद्य आए हैं, जो आपसे मिलना चाहते हैं।"'

उस द्वारपाल ने जीवक कोमरभक्का का यह आदेश स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए कि, 'जी डॉक्टर," सेठी की पत्नी के पास जाकर, उसके पास पहुँचकर उससे कहा: 'महोदया, एक चिकित्सक आए हैं, जो आपसे मिलना चाहते हैं।'

'वह चिकित्सक किस तरह का आदमी है, मेरे भले द्वारपाल?'

'वह एक युवक है, महोदया।'

'हे मेरे भले द्वारपाल, एक युवा चिकित्सक मेरी क्या सहायता कर सकता है? कई महान और विश्वप्रसिद्ध चिकित्सक आए हैं, लेकिन वे मुझे स्वस्थ नहीं कर पाए; उन्होंने बहुत सारा सोना लिया और चले गए।'

10. इस प्रकार वह द्वारपाल जीवक कोमरभक्का के पास गया; उसके पास पहुँचकर उसने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'हे चिकित्सक, सेठी की पत्नी ने कहा है: "नहीं, मेरे भले द्वारपाल (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 9 में है)।"'

(जीवका ने उत्तर दिया), 'जाओ, मेरे भले द्वारपाल, और सेठी की पत्नी से कहो: "हे महोदया, वैद्य कहते हैं: 'मुझे पहले से कुछ मत दीजिए, जब आप स्वस्थ हो जाएँगी, तब आप मुझे जो चाहें दे सकती हैं।"

द्वारपाल ने जीवक कोमरभक्का का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, 'जी डॉक्टर,' और सेठी की पत्नी के पास जाकर उससे कहा: 'महोदया, चिकित्सक कहते हैं (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है)।'

'अच्छा, मेरे भले द्वारपाल, चिकित्सक को अंदर आने दीजिए।'

द्वारपाल ने सेठी की पत्नी का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, 'जी महोदया,' और जीवक कोमरभक्का के पास जाकर उनसे कहा, 'सेठी की पत्नी आपको बुला रही हैं, डॉक्टर।'

11. तब जीवक कोमरभक्का सेठी की पत्नी के पास गए; उनके पास पहुँचकर और उनकी सूरत में आए बदलाव को ध्यान से देखकर उन्होंने पत्नी से कहा, 'महोदया, हमें एक पाषाण घी चाहिए।' तब सेठी की पत्नी ने जीवक कोमरभक्का को एक पाषाण घी देने का आदेश दिया। जीवक कोमरभक्का ने उस पाषाण घी को विभिन्न औषधियों के साथ उबाला, सेठी की पत्नी को पलंग पर पीठ के बल लेटने का आदेश दिया और उन्हें नाक के रास्ते घी पिलाया। नाक के रास्ते दिया गया घी मुँह से बाहर आ गया। सेठी की पत्नी ने उसे थूकदान में थूक दिया और नौकरानी से कहा, 'आओ, मेरी बच्ची, इस घी को रुई से उठा लो।'

12. तब जीवक कोमरभक्क ने सोचा, 'यह गृहिणी कितनी कंजूस है, यह देखकर आश्चर्य होता है कि उसने घी, जिसे फेंक देना चाहिए था, रुई के टुकड़े से उठा रखा है। मैंने उसे कई बहुमूल्य औषधियाँ दी हैं। बदले में वह मुझे क्या देगी?'

और सेठी की पत्नी ने जब जीवक कोमरभक्का के व्यवहार में बदलाव देखा, तो उसने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'आप क्यों परेशान हैं, डॉक्टर?'

मैंने सोचा: "यह आश्चर्यजनक है, इत्यादि।"

'हे डॉक्टर, हम जैसे गृहस्थ जानते हैं कि इस तरह बचत करना क्यों जरूरी है; यह घी नौकरों या कामगारों के पैरों पर लगाने के लिए काफी होगा, या इसे दीपक में डाला जा सकता है। चिंता न करें, डॉक्टर, आपकी फीस नहीं कटेगी।'

13. जीवक कोमरभक्का ने सेठी की पत्नी के सिर की बीमारी, जो सात वर्षों से चली आ रही थी, को नाक के रास्ते दवा देकर दूर कर दिया। तब स्वस्थ हो चुकी सेठी की पत्नी ने जीवक कोमरभक्का को चार हज़ार (कांस्य के सिक्के) दिए; उसके पुत्र ने (यह सोचकर कि मेरी माता स्वस्थ हो गई हैं) उसे चार हज़ार दिए; उसकी बहू ने (यह सोचकर कि मेरी सास स्वस्थ हो गई हैं) उसे चार हज़ार दिए; गृहस्थ सेठी ने (यह सोचकर कि मेरी पत्नी स्वस्थ हो गई हैं) उसे चार हज़ार और एक नौकर, एक नौकरानी और घोड़ों के साथ एक गाड़ी भेंट की।

तब जीवक कोमरभक्का उन सोलह हजार (कांस्य के सिक्के) और एक नौकर, एक नौकरानी और घोड़ों सहित रथ लेकर राजगृह के लिए निकल पड़ा। कुछ समय बाद वह राजगृह पहुँचा और उस स्थान पर पहुँचा जहाँ राजकुमार अभय विराजमान थे; उनके पास जाकर उसने राजकुमार अभय से कहा, 'हे महाराज, मैंने अपने पहले कार्य के फलस्वरूप सोलह हजार, एक नौकरानी, एक नौकरानी और घोड़ों सहित रथ प्राप्त किए हैं; कृपया इसे मेरे पालन-पोषण के प्रतिफल के रूप में स्वीकार करें।'

'नहीं, मेरे प्रिय जीवक, इसे अपने पास रखो, लेकिन हमारे निवास के अलावा कहीं और अपना निवास स्थान मत बनाओ।'

जीवक कोमरभक्का ने राजकुमार अभय के इस आदेश को स्वीकार करते हुए कहा, 'जी हां, महाराज,' और राजकुमार अभय के निवास में अपने लिए एक घर प्राप्त कर लिया।

14. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को फिस्टुला हो गया था; उनके वस्त्र खून से सने हुए थे। जब रानियों ने यह देखा,

उन्होंने राजा का उपहास करते हुए कहा, 'महाराज को मासिक धर्म हो रहा है। महाराज को प्रसव पीड़ा होने वाली है!' राजा को यह सुनकर क्रोध आया। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने राजकुमार अभय से कहा, 'हे अभय, मैं एक ऐसे रोग से पीड़ित हूँ कि मेरे वस्त्र रक्त से सने हुए हैं; और रानियाँ जब इसे देखती हैं, तो मेरा उपहास करते हुए कहती हैं, "महाराज को प्रसव पीड़ा हो रही है, इत्यादि।" हे अभय, कृपया मेरे लिए एक चिकित्सक खोजें जो मुझे ठीक कर सके।'

'हे महाराज, जीवक, हमारे ये उत्तम युवा चिकित्सक आपकी चिकित्सा करेंगे।'

'तो हे मेरे प्रिय अभय, कृपया चिकित्सक जीवक को आदेश दीजिए, और वह मेरा इलाज कर देंगे।'

15. तब राजकुमार अभय ने जीवक कोमरभक्का को आदेश देते हुए कहा, 'हे मेरे प्रिय जीवक, जाओ और राजा का इलाज करो।'

जीवक कोमरभक्का ने राजकुमार अभय के इस आदेश को स्वीकार करते हुए कहा, 'जी महाराज,' उन्होंने अपने नाखून में कुछ औषधि ली और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गए। उनके पास पहुँचकर उन्होंने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा, 'महाराज, हमें आपका रोग दिखा दीजिए।' और जीवक कोमरभक्का ने एक ही बार में मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार की फुंसी को ठीक कर दिया।

फिर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार स्वस्थ होकर अपनी पाँच सौ पत्नियों को अपने सारे आभूषण पहनने का आदेश दिया; फिर उन्हें अपने आभूषण उतारकर ढेर लगाने का आदेश दिया और जीवक कोमरभक्क से कहा: 'हे जीवक, मेरी पाँच सौ पत्नियों के ये सारे आभूषण तुम्हारे होंगे।'

'नहीं, महाराज, कृपया मेरे पद को याद रखें।'

'बहुत खूब, मेरे प्रिय जीवक, तुम मेरी और मेरे हरम की तथा बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय की सेवा कर सकते हो।'

जीवक कोमरभक्क ने मगध राजा सेनिया बिम्बिसार के इस आदेश को (यह कहकर) स्वीकार कर लिया, 'हाँ, महाराज।'

16. उस समय राजगृह में रहने वाला सेठी (धनी व्यापारी) सात वर्षों से सिर की बीमारी से पीड़ित था। कई महान और विश्वप्रसिद्ध चिकित्सक आए, लेकिन वे उसे स्वस्थ नहीं कर सके; उन्होंने बहुत सारा सोना लिया और चले गए। चिकित्सकों ने उसके बारे में भविष्यवाणी की थी, अर्थात्: कुछ चिकित्सकों ने कहा: 'गृहस्थ सेठी पाँचवें दिन मर जाएगा;' जबकि अन्य चिकित्सकों ने कहा: 'गृहस्थ सेठी सातवें दिन मर जाएगा।'

अब (राजगृह के एक व्यापारी ने) सोचा: 'यह सेत्थी, यह गृहस्थ, राजा और व्यापारियों के संघ दोनों की अच्छी सेवा करता है। चिकित्सकों ने उसके बारे में भविष्यवाणी की है (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। यहाँ राजचिकित्सक जीवक है, जो एक उत्कृष्ट युवा चिकित्सक है। क्या होगा यदि हम राजा से उनके चिकित्सक जीवक को इस सेत्थी, गृहस्थ का इलाज करने के लिए कहें?'

17. राजगृह व्यापारी मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गया; वहाँ पहुँचकर उसने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार से कहा, "हे महाराज, वह गृहस्थ सेत्थी आपकी और व्यापारियों के संघ दोनों की अच्छी सेवा करता है। चिकित्सकों ने उसके बारे में भविष्यवाणी की है, इत्यादि। हे महाराज, कृपया चिकित्सक जीवक को उस गृहस्थ सेत्थी का उपचार करने का आदेश दें।"

तब मगध राजा सेनिया बिम्बिसार ने दिया

जीवक कोमरभक्का ने जीवक को आदेश देते हुए कहा, 'जाओ, मेरे प्रिय जीवक, और सेत्थी, गृहस्थ का उपचार करो।'

जीवक कोमरभक्क ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए, 'जी महाराज,') उस स्थान पर गए जहाँ सेत्थी, गृहस्थ था, और उसके पास पहुँचकर, उसके रूप में आए परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखकर, उन्होंने सेत्थी, गृहस्थ से कहा, 'हे मेरे भले गृहस्थ, यदि मैं आपको स्वस्थ कर दूं, तो आप मुझे क्या शुल्क देंगे?'

'मेरी सारी संपत्ति आपकी होगी, चिकित्सक, और मैं आपका दास बनूंगा।'

18. 'अच्छा, मेरे भले गृहस्थ, क्या आप सात महीने तक एक करवट लेट सकेंगे?'

'डॉक्टर साहब, मैं सात महीने तक एक करवट लेटने में सक्षम रहूंगा।'

'और क्या आप, मेरे भले गृहस्थ, सात महीने तक दूसरी तरफ लेटने में सक्षम होंगे?'

'डॉक्टर साहब, मैं सात महीने तक दूसरी तरफ लेटने में सक्षम रहूंगा।'

'और क्या आप, मेरे भले गृहस्थ, सात महीने तक अपनी पीठ के बल लेट सकेंगे?'

'डॉक्टर साहब, मैं सात महीने तक पीठ के बल लेट पाऊंगा।'

तब जीवक कोमरभक्का ने सेत्थी (गृहस्थ) को उसके पलंग पर लेटने का आदेश दिया, उसे पलंग से कसकर बांध दिया, सिर की चमड़ी चीर दी, चीरे के दोनों ओर का मांस अलग किया, घाव से दो कीड़े निकाले और लोगों को दिखाते हुए कहा, 'देखिए, महोदय, ये दो कीड़े, एक छोटा और एक बड़ा। जिन चिकित्सकों ने कहा था, "पांचवें दिन सेत्थी (धनी व्यापारी), गृहस्थ, मर जाएगा," उन्होंने इस बड़े कीड़े को देखा है, और यह भी देखा है कि यह पांचवें दिन सेत्थी (गृहस्थ) के मस्तिष्क में कैसे प्रवेश करेगा, और मस्तिष्क में प्रवेश करते ही सेत्थी (गृहस्थ) मर जाएगा। उन चिकित्सकों ने बिल्कुल सही कहा था।' और जिन चिकित्सकों ने कहा था, "सातवें दिन गृहस्थ की मृत्यु हो जाएगी," उन्होंने इस छोटे से कीड़े को देखा था, और यह भी देखा था कि कैसे यह सातवें दिन गृहस्थ के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है, और मस्तिष्क में प्रवेश करने के बाद गृहस्थ की मृत्यु हो जाती है। उन चिकित्सकों ने बिल्कुल सही कहा था। (ऐसा कहते हुए) उन्होंने घाव के किनारों को बंद कर दिया, सिर की त्वचा पर टांके लगा दिए और उस पर मरहम लगा दिया।

19. और जब सात दिन बीत गए, तो गृहस्थ सेत्थी ने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'हे चिकित्सक, मैं सात महीने तक एक करवट लेटने में असमर्थ हूँ।'

'क्या आपने मुझे नहीं बताया था, मेरे भले गृहस्वामी: "मैं, चिकित्सक जी, सात महीने तक एक करवट लेट सकता हूँ?"'

'यह सच है, डॉक्टर, मैंने आपको पहले ही बताया था, लेकिन अगर मैं ऐसा करती हूं तो मेरी मृत्यु हो जाएगी; मैं सात महीने तक एक करवट नहीं लेट सकती।'

'अच्छा, मेरे भले गृहस्थ, तो फिर आपको सात महीने तक दूसरी तरफ लेटना होगा।'

और जब सात दिन बीत गए, तो गृहस्थ सेठी ने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'हे चिकित्सक, मैं सात महीने तक दूसरी तरफ लेटने में असमर्थ हूँ।'

'क्या तुमने मुझे नहीं बताया, इत्यादि।'

यह सच है, डॉक्टर, मैंने आपको पहले ही बताया था, इत्यादि।

'अच्छा, मेरे भले गृहस्थ, तो फिर आपको सात महीने तक पीठ के बल लेटना होगा।'

और जब सात दिन बीत गए, तो गृहस्थ सेठी ने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'मैं हूँ

डॉक्टर साहब, मैं सात महीने तक पीठ के बल लेटने में असमर्थ हूं।'

क्या तुमने मुझे नहीं बताया, इत्यादि?

यह सच है, डॉक्टर, मैंने आपको पहले ही बताया था, इत्यादि।

20. "हे मेरे भले गृहस्थ, यदि मैंने तुमसे ऐसा न कहा होता, तो तुम इतनी देर तक लेटे न रहते। परन्तु मुझे पहले से ही पता था, 'सात दिनों के तीन बार के बाद गृहस्थ स्वस्थ हो जाएगा।' उठो, हे मेरे भले गृहस्थ, तुम स्वस्थ हो गए हो; देखो मुझे क्या प्रतिफल देते हो।"

'मेरी सारी संपत्ति आपकी होगी, चिकित्सक, और मैं आपका दास बनूंगा।'

'नहीं, मेरे भले गृहस्थ, मुझे अपनी सारी संपत्ति मत दो, और मेरे दास मत बनो; राजा को एक लाख (कांस्य के सिक्के) दो, और मुझे भी एक लाख दो।'

तब गृहस्थ सेत्थी ने स्वस्थ होकर राजा को एक लाख (कहपन/कांस्य के सिक्के) और जीवक कोमरभक्का को एक लाख (कहपन/कांस्य के सिक्के) दिए।

21. उस समय बनारस में सेठी के पुत्र, जो मनोरंजन के लिए कलाबाजी (मोक्खकिका) करता था, की आंतें उलझ गईं, जिसके परिणामस्वरूप वह न तो चावल का दूध पचा पाता था, न ही भोजन कर पाता था, और न ही सामान्य रूप से शौच कर पाता था। इसके परिणामस्वरूप वह दुबला हो गया, उसका चेहरा बदसूरत और बदरंग हो गया, उसका रंग पीला पड़ने लगा और उसकी त्वचा पर नसें उभरने लगीं।

अब बनारस के सेठी ने सोचा: 'मेरा बेटा फलां-फलां बीमारी से पीड़ित है: वह जो चावल का दूध पीता है उसे पचा नहीं पाता (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है, नीचे तक): और उसकी त्वचा पर नसें उभरी हुई हैं। क्या होगा अगर मैं राजगृह जाकर राजा से अपने चिकित्सक जीवक को मेरे बेटे का इलाज करने के लिए कहूँ?'

बनारस का सेठी राजगृह गया और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास पहुँचा; उनके पास पहुँचकर उसने कहा, "महाराज, मेरा पुत्र फलाँ रोग से पीड़ित है: वह चावल का दूध पचा नहीं पाता (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है, नीचे तक): और उसकी त्वचा पर नसें उभरी हुई हैं। महाराज, कृपया वैद्य जीवक को मेरे पुत्र का उपचार करने का आदेश दें।"

22. तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने जीवक कोमरभक्का को आदेश दिया (यह कहते हुए), 'हे मेरे प्रिय जीवक, जाइए बनारस जाइए और बनारस में सेठी के पुत्र का इलाज कीजिए।'

जीवक कोमरभक्क ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, 'जी महाराज,' और बनारस गए। वहाँ वे बनारस के सेठी के पुत्र के पास पहुँचे; उनके पास जाकर और उनके रूप में आए परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखकर, उन्होंने लोगों को कमरे से बाहर जाने का आदेश दिया, पर्दा हटाया, उन्हें एक खंभे से बाँध दिया, उनकी पत्नी को उनके सामने खड़ा किया, पेट की चमड़ी को चीरकर मुड़ी हुई आँतों को बाहर निकाला और उनकी पत्नी को दिखाते हुए कहा, 'देखो, तुम्हारे पति को क्या बीमारी थी। यही कारण है कि वे न तो चावल का दूध पचा पाते हैं, न ही भोजन पचा पाते हैं, न ही सामान्य रूप से शौच कर पाते हैं, और इसीलिए वे दुबले-पतले हो गए हैं, उनका चेहरा विकृत और बदरंग हो गया है, और उनका रंग दिन-ब-दिन पीला होता जा रहा है, और उनकी त्वचा पर नसें उभर आई हैं।' (ऐसा कहते हुए) उसने मुड़ी हुई आंतों को सीधा किया, उन्हें वापस सही जगह पर रखा, त्वचा को सिल दिया और उस पर मरहम लगाया। और कुछ ही समय में बनारस के सेठी का बेटा स्वस्थ हो गया।

तब बनारस के सेठी ने (मन ही मन कहते हुए), 'मेरा पुत्र स्वस्थ होकर यहाँ खड़ा है,' जीवक कोमरभक्का को सोलह हजार (कहपन/कांस्य के सिक्के) दिए। जीवक कोमरभक्का ने वे सोलह हजार (कहपन/कांस्य के सिक्के) लिए और राजगृह लौट गए।

23. उस समय उज्जैन के राजा पज्जोत पीलिया से पीड़ित थे। कई महान और विश्वप्रसिद्ध चिकित्सक आए, लेकिन वे उन्हें स्वस्थ नहीं कर सके; उन्होंने बहुत सारा सोना लिया और चले गए। तब राजा पज्जोत ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास एक दूत भेजा (यह संदेश लेकर): 'मैं फलां रोग से पीड़ित हूँ; महाराज, कृपया वैद्य जीवक को आदेश दीजिए; वह मुझे ठीक कर देंगे।' तब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने जीवक कोमरभक्क को आदेश दिया (यह कहते हुए), 'हे मेरे प्रिय जीवक, उज्जैन जाइए और राजा पज्जोत का इलाज कीजिए।'

जीवक कोमरभक्क ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के इस आदेश को स्वीकार करते हुए (यह कहते हुए), 'जी महाराज,' उज्जैनी गए और उस स्थान पर पहुँचे जहाँ राजा पज्जोत थे, और उनके पास पहुँचकर, उनके रूप में आए परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखकर, उन्होंने राजा पज्जोत से कहा:

24. 'महाराज, मैं थोड़ा घी उबालूँगा, जिसे आपको पीना होगा।'

'नहीं, मेरे भले जीवक; मुझे घी दिए बिना मुझे ठीक करने के लिए जो कुछ भी कर सकते हो करो; मुझे घी से घृणा और अरुचि है।'

तब जीवक कोमरभक्क ने सोचा: 'इस राजा का रोग ऐसा है कि घी के बिना इसका इलाज संभव नहीं है। क्या होगा यदि मैं घी को उबालकर उसका रंग, गंध और स्वाद कसैले काढ़े जैसा बना दूं?'

तब जीवक कोमरभक्क ने घी में कई औषधियाँ मिलाकर उबाला ताकि उसका रंग, गंध और स्वाद कसैले काढ़े जैसा हो जाए। जीवक कोमरभक्क ने सोचा, 'जब यह राजा घी खाकर पचा लेगा, तो उसे उल्टी हो जाएगी। यह राजा क्रूर है; हो सकता है वह मुझे मरवा दे। अगर मैं यहाँ से चला जाऊँ तो क्या होगा?'

हाथ।' और जीवक कोमरभक्क उस स्थान पर गया जहाँ राजा पज्जोत था; उसके पास पहुँचकर उसने राजा पज्जोत से कहा:

25. 'हे महाराज, हम चिकित्सक इस समय जड़ें निकालते हैं और औषधीय औषधियाँ एकत्र करते हैं। आपकी कृपा से (शाही) अस्तबलों और (नगर के) द्वारों पर निम्नलिखित आदेश भेजें: "जीवका जिस भी पशु पर चाहे सवार होकर निकले; जिस द्वार से चाहे (नगर से) निकले; जिस समय चाहे निकले; और जिस समय चाहे पुनः प्रवेश करे।"'

और राजा पज्जोत ने (शाही) अस्तबलों और (नगर के) द्वारों पर निम्नलिखित आदेश भेजा: 'जीवक जिस भी जानवर पर चाहे सवारी करे, इत्यादि।'

उस समय राजा पज्जोत के पास भद्दावतीका नामक एक हथिनी थी, जो एक दिन में पचास योगाना की दूरी तय कर सकती थी। जीवक कोमरभक्क ने राजा पज्जोत को घी देते हुए कहा, 'महाराज, कृपया यह काढ़ा पिएं।' फिर राजा पज्जोत को घी पिलाने के बाद, जीवक कोमरभक्क हथिनी के अस्तबल में गए और हथिनी भद्दावतीका पर सवार होकर शहर से तेजी से निकल गए।

26. जब राजा पज्जोत ने वह घी पी लिया और उसे पचाने लगा, तो उसे उल्टी हो गई। तब राजा पज्जोत ने अपने सेवकों से कहा, 'हे सज्जनों, उस दुष्ट जीवक ने मुझे घी पिला दिया है। हे सज्जनों, जाइए और वैद्य जीवक से मिलिए।'

(सेवकों ने उत्तर दिया), 'वह हाथी भाद्दावतीका पर सवार होकर शहर से भाग गया है।'

उस समय राजा पज्जोत के पास काका नाम का एक दास था, जो एक दिन में साठ योगाना की यात्रा कर सकता था। वह एक अमानवीय प्राणी का पुत्र था। राजा पज्जोत ने उस दास काका को आदेश दिया: "हे मेरे भले काका, जाओ और वैद्य जीवक को वापस बुलाओ (यह कहते हुए), 'हे वैद्य, महाराज आपको वापस बुला रहे हैं।' परन्तु हे मेरे भले काका, वे वैद्य बड़े धूर्त हैं; उनसे कुछ मत लेना।"

27. दास काका ने कोसंबी में जीवक कोमरभक्का को नाश्ता करते समय रास्ते में रोक लिया। दास काका ने जीवक कोमरभक्का से कहा, 'हे डॉक्टर, राजा ने आपको वापस लौटने का आदेश दिया है।'

(जीवका ने उत्तर दिया), 'प्रती कीजिए, मेरे प्यारे काका, जब तक हम भोजन न कर लें; लीजिए, मेरे प्यारे काका, भोजन कीजिए।'

(काका ने कहा), 'नहीं, चिकित्सक, राजा ने मुझसे कहा है, "हे मेरे प्रिय काका, वे चिकित्सक धूर्त लोग हैं; उनसे कुछ भी मत लेना।"'

उस समय जीवक कोमरभक्का, जिसने अपने नाखून से कुछ औषधि काट ली थी, एक मायरोबालन फल खा रहा था और पानी पी रहा था। जीवक कोमरभक्का ने दास काका से कहा, 'हे मेरे भले काका, यह मायरोबालन फल खाओ और थोड़ा पानी पियो।'

28. तब दास काका ने सोचा, 'यह वैद्य मरुबल का मांस खाता है और पानी पीता है; इससे कोई नुकसान नहीं हो सकता;' इसलिए उसने आधा मरुबल खाया और थोड़ा पानी पिया। और वह आधा मरुबल जो (जीवका) ने उसे खाने को दिया था, उसे खाकर उसने तुरंत शौच कर दिया।

तब दास काका ने जीवक कोमरभक्का से कहा: 'क्या मेरी जान बचाई जा सकती है, चिकित्सक?'

(जीवका ने उत्तर दिया), 'मेरे भले काका, डरो मत, तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे। लेकिन राजा क्रूर है; वह मुझे मरवा सकता है; इसलिए मैं वापस नहीं लौटता।'

ऐसा कहकर उसने भादवाटिका नामक हथिनी को काका को सौंप दिया और राजगृह के लिए चल पड़ा। समय रहते राजगृह पहुँचकर वह मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गया; वहाँ पहुँचकर उसने सारी बात मगध के राजा बिम्बिसार को बता दी।

(बिम्बिसार ने कहा), 'हे मेरे भले जीवक, तुमने सही किया कि तुम वापस नहीं लौटे; वह राजा क्रूर है; वह तुम्हें मरवा सकता था।'

29. और राजा पज्जोत स्वस्थ होकर जीवक कोमरभक्का के पास एक दूत भेजा (यह संदेश लेकर), 'जीवक मेरे पास आए; मैं उसे वरदान दूंगा।'

(जीवका ने उत्तर दिया), 'नहीं, महाराज, कृपया मेरे कर्तव्य को याद रखें।'

उस समय राजा पज्जोत के पास शिवेय्यक वस्त्र का एक सूट था, जो अनेक वस्त्रों, सैकड़ों वस्त्रों, हजारों वस्त्रों और लाखों वस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ, उत्तम, प्रथम, बहुमूल्य और श्रेष्ठ था। राजा पज्जोत ने यह शिवेय्यक वस्त्र जीवक कोमरभक्क को भेजा। तब जीवक कोमरभक्क ने सोचा, 'राजा पज्जोत द्वारा भेजा गया यह शिवेय्यक वस्त्र सर्वश्रेष्ठ और उत्तम है (आदि, आगे भी): लाखों वस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। इसे प्राप्त करने के योग्य केवल दयालु, परिपूर्ण अरहत-बुद्ध या मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ही हैं।'

30. उस समय भगवान बुद्ध के शरीर में रसों का असंतुलन हो गया था। तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'हे आनंद, तथागत के शरीर में रसों का असंतुलन हो गया है; तथागत विरेचक औषधि लेना चाहते हैं।' तब पूज्य आनंद जीवक कोमरभक्क के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने जीवक कोमरभक्क से कहा:

'हे मेरे प्रिय जीवक, तथागत के शरीर में रसों का असंतुलन हो गया है; तथागत विरेचक लेना चाहते हैं।'

(जीवक ने उत्तर दिया), 'अच्छा, आदरणीय आनंद, आपको कुछ दिनों तक भगवान बुद्ध के शरीर पर चर्बी मलनी चाहिए।'

और पूज्य आनंद ने कुछ दिनों तक भगवान बुद्ध के शरीर पर चर्बी मलने के बाद जीवक कोमरभक्क के पास जाकर कहा: 'हे जीवक, मैंने तथागत के शरीर पर चर्बी मल दी है; अब आप जो उचित समझें, करें।'

31. तब जीवक कुमारभक्क ने सोचा, 'भगवान बुद्ध को तेज दस्तकारी देना उचित नहीं है।' (ऐसा सोचकर), उन्होंने तीन मुट्ठी नीले कमलों में विभिन्न औषधियाँ मिलाईं और उन्हें लेकर भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को एक मुट्ठी कमल भेंट करते हुए कहा, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस पहली मुट्ठी कमलों को सूंघें; इससे भगवान बुद्ध दस गुना शुद्ध हो जाएंगे।' इसी प्रकार उन्होंने भगवान बुद्ध को दूसरी मुट्ठी कमल भी भेंट करते हुए कहा, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस दूसरी मुट्ठी कमलों को सूंघें;

'इससे भगवान बुद्ध दस बार शुद्ध हो जाएँगे।' इस प्रकार उन्होंने भगवान बुद्ध को कमलों की तीसरी मुट्ठी भी भेंट की (और कहा), 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस तीसरी मुट्ठी कमलों को सूंघें; इससे भगवान बुद्ध दस बार शुद्ध हो जाएँगे। इस प्रकार भगवान बुद्ध तीस बार शुद्ध हो जाएँगे।' और जीवक कोमरभक्का ने भगवान बुद्ध को तीस बार शुद्ध करने वाला पदार्थ देकर, उनके सामने प्रणाम किया, और अपनी दाहिनी ओर मुख करके उनके चारों ओर परिक्रमा की, और चले गए।

32. जीवक कुमारभक्क जब बाहर थे, तो उन्होंने सोचा, 'मैंने भगवान बुद्ध को तीस बार के लिए पर्याप्त रेचक दिया है, परन्तु तथागत के शरीर के द्रव्यों में गड़बड़ी के कारण यह भगवान बुद्ध को तीस बार पूरी तरह से शुद्ध नहीं करेगा; यह भगवान बुद्ध को केवल उनतीस बार ही शुद्ध करेगा। परन्तु भगवान बुद्ध शुद्ध होने के बाद स्नान करेंगे; स्नान से भगवान बुद्ध एक बार शुद्ध हो जाएंगे; इस प्रकार भगवान बुद्ध तीस बार पूरी तरह से शुद्ध हो जाएंगे।'

और भगवान बुद्ध, जिन्होंने अपनी बुद्धि की शक्ति से जीवक कोमरभक्क के इस विचार को समझ लिया, उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: 'जीवक कोमरभक्क, आनंद, जब बाहर थे, तो उन्होंने सोचा: "मैंने वास्तव में (आदि, जैसा ऊपर है, नीचे तक) इस प्रकार भगवान बुद्ध तीस बार शुद्ध हो जाएँगे।" अच्छा, आनंद, गर्म पानी तैयार रखो।'

आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध के इस आदेश को स्वीकार करते हुए कहा, 'जी प्रभु,' और गर्म पानी तैयार करवाया।

33. जीवक कोमरभक्क उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। जीवक कोमरभक्क ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, क्या भगवान बुद्ध ने शुद्धि कर ली है?" (बुद्ध ने उत्तर दिया), "जीवक, मैंने शुद्धि कर ली है।" (जीवक ने कहा), "हे प्रभु, जब मैं बाहर था, तब मैंने सोचा: 'मैंने सचमुच दान दिया है, इत्यादि।' हे प्रभु, भगवान बुद्ध स्नान करें, हे सुखी बुद्ध स्नान करें।" तब भगवान बुद्ध ने उस गर्म जल में स्नान किया; स्नान से भगवान बुद्ध एक बार शुद्ध हो गए; इस प्रकार भगवान बुद्ध तीस बार शुद्ध हुए।

तब जीवक कुमारभक्क ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, जब तक भगवान बुद्ध का शरीर पूरी तरह से ठीक न हो जाए, तब तक तरल भोजन से परहेज करना बेहतर होगा।" और कुछ ही समय में भगवान बुद्ध का शरीर पूरी तरह से ठीक हो गया।

34. तब जीवक कोमरभक्क ने शिवेय्यक वस्त्र धारण किया और भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर, आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर जीवक कोमरभक्क ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध से एक वरदान माँगता हूँ।' (बुद्ध ने उत्तर दिया), 'हे जीवक, तथागत वरदान देने से परे हैं (जब तक वे यह नहीं जान लेते कि वरदान क्या हैं)।' (जीवक ने कहा), 'हे प्रभु, यह एक उचित और निर्विवाद माँग है।' - 'बोलिए, जीवक।'

हे प्रभु, भगवान बुद्ध केवल पामसकुल वस्त्र (कब्रिस्तान या कब्रिस्तान से लिए गए चिथड़ों से बने वस्त्र) धारण करते हैं, और भिक्षु समुदाय भी ऐसा ही करता है। हे प्रभु, यह शिवेय्यक वस्त्र मुझे राजा पज्जोत ने भेजा है, जो अनेक वस्त्रों, सैकड़ों वस्त्रों, हजारों वस्त्रों और लाखों वस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ, उत्तम, प्रथम, बहुमूल्य और श्रेष्ठ है। हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस शिवेय्यक वस्त्र को स्वीकार करें और भिक्षु समुदाय को गृहस्थ वस्त्र धारण करने की अनुमति दें।

भगवान बुद्ध ने शिवेय्यक वस्त्र धारण किया। भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन द्वारा जीवक कोमरभक्क को शिक्षा दी, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। भगवान बुद्ध द्वारा धर्म प्रवचन से शिक्षा प्राप्त करने, प्रोत्साहित होने, प्रेरित होने और प्रसन्न होने पर जीवक कोमरभक्क अपने स्थान से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया, उनके सामने दाहिनी ओर से परिक्रमा की और चले गए।

35. इसके फलस्वरूप भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गृहस्थ वस्त्र धारण करने की अनुमति देता हूँ। जिसे पसंद हो वह पामसकुल वस्त्र धारण कर सकता है; जिसे पसंद हो वह गृहस्थ वस्त्र स्वीकार कर सकता है। चाहे तुम किसी भी प्रकार के वस्त्र से प्रसन्न हो या न हो, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।'

राजगृह में लोगों ने सुना, 'भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को गृहस्थ वस्त्र धारण करने की अनुमति दे दी है।' तब वे लोग प्रसन्न और प्रसन्न हुए (क्योंकि उन्होंने सोचा), 'अब हम भिक्षुओं को दान देंगे और अच्छे कर्म करके पुण्य अर्जित करेंगे, क्योंकि भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को गृहस्थ वस्त्र धारण करने की अनुमति दे दी है।' और एक ही दिन में राजगृह में हजारों वस्त्र भिक्षुओं को भेंट किए गए।

और देश के लोगों ने सुना, 'भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को गृहस्थ वस्त्र धारण करने की अनुमति दे दी है।' तब वे लोग प्रसन्न हुए (आदि, जैसा ऊपर है, नीचे तक): और एक ही दिन में देश भर में हजारों वस्त्र भिक्षुओं को भेंट किए गए।

36. उस समय संघ को एक आवरण प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चादर ओढ़ने की अनुमति देता हूँ।'

उन्हें रेशम का एक लबादा मिला था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें रेशमी चादर पहनने की अनुमति देता हूँ।'

उन्हें ऊनी चादर मिल गई थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऊनी चादर का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

प्रथम भानवरा का समापन।

<<<< पिछला(7.13) | अगला(8.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.1) | अगला(8.3) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय दो।

उस समय काशी के राजा ने जीवक कोमरभक्क को बनारस के आधे कपड़े से बना एक ऊनी वस्त्र भेजा। तब जीवक कोमरभक्क ने वह ऊनी वस्त्र लेकर भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर, आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर जीवक कोमरभक्क ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, बनारस के आधे कपड़े से बना यह ऊनी वस्त्र मुझे काशी के राजा ने भेजा है। हे प्रभु, इस ऊनी वस्त्र को स्वीकार करें, जो मेरे लिए दीर्घकाल तक कल्याणकारी और आशीर्वाददायी हो।' भगवान बुद्ध ने वह ऊनी वस्त्र स्वीकार कर लिया।

और भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया (आदि, जैसा कि अध्याय-1, 34, से आगे तक है:) और चले गए।

और इसके फलस्वरूप भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, ऊनी वस्त्र पहनने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(8.1) | अगला(8.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.2) | अगला(8.4) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-3.

1. उस समय भिक्षु समुदाय को अनेक प्रकार के वस्त्र प्राप्त हुए। अब भिक्षु सोचने लगे: 'भगवान बुद्ध द्वारा हमें कौन से वस्त्र धारण करने की अनुमति है और कौन से वस्त्र धारण करने की अनुमति नहीं है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छह प्रकार के वस्त्र धारण करने की अनुमति देता हूँ, अर्थात्...'

जो लिनन, कपास, रेशम, ऊन, मोटे कपड़े और भांग के कपड़े से बने हों।

2. उस समय भिक्षुओं ने गृहस्थ वस्त्र तो स्वीकार कर लिए, लेकिन पम्सुकुला वस्त्र नहीं धारण किए, क्योंकि उनके मन में संशय था (और वे सोचते थे): 'भगवान बुद्ध ने हमें केवल एक प्रकार के वस्त्र धारण करने की अनुमति दी है, दोनों प्रकार के नहीं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं अनुमति देता हूँ कि जो व्यक्ति गृहस्थ वस्त्र धारण करता है, वह पमसुकुल वस्त्र भी धारण कर सकता है। यदि आप दोनों प्रकार के वस्त्रों से प्रसन्न हैं, तो मैं उसे भी स्वीकार करता हूँ।'

<<<< पिछला(8.2) | अगला(8.4) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-4.

1. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। इनमें से कुछ भिक्षु अपने लिए पाम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए श्मशान घाट चले गए; कुछ भिक्षु नहीं रुके। जो भिक्षु पाम्सुकुला वस्त्र लेने श्मशान घाट गए थे, उन्होंने पाम्सुकुला वस्त्र प्राप्त कर लिए; जो भिक्षु नहीं रुके थे, उन्होंने उनसे कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पाम्सुकुला वस्त्रों का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आप क्यों नहीं रुके?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि आप उन भिक्षुओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भाग देने के लिए बाध्य नहीं हैं जिन्होंने प्रतीक्षा नहीं की है।'

2. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। उनमें से कुछ

इनमें से कुछ भिक्षु अपने लिए पम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए कब्रिस्तान चले गए; कुछ अन्य भिक्षु उनका इंतजार करते रहे। जो भिक्षु पम्सुकुला वस्त्र लेने कब्रिस्तान गए थे, उन्होंने पम्सुकुला वस्त्र प्राप्त कर लिए; जो भिक्षु इंतजार कर रहे थे, उन्होंने उनसे कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पम्सुकुला वस्त्रों का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आप भी कब्रिस्तान क्यों नहीं गए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप अपनी इच्छा के विरुद्ध भी प्रतीक्षा कर रहे भिक्षुओं को एक भाग दें।'

3. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। इनमें से कुछ भिक्षु पहले ही पम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए श्मशान घाट चले गए; कुछ अन्य भिक्षु बाद में गए। जो भिक्षु पहले श्मशान घाट गए थे, उन्हें पम्सुकुला वस्त्र मिल गए; जो भिक्षु बाद में गए थे, उन्हें कुछ नहीं मिला और उन्होंने (अन्य भिक्षुओं से) कहा, 'मित्रों, हमें भी कुछ दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको कुछ नहीं देंगे; आप हमारे बाद (श्मशान घाट) क्यों गए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप उन भिक्षुओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भाग देने के लिए बाध्य नहीं हैं जो आपसे बाद में (कब्रिस्तान) गए हैं।'

4. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। वे सब मिलकर पमसुकुल वस्त्र प्राप्त करने के लिए एक श्मशान में गए; कुछ भिक्षुओं को पमसुकुल वस्त्र मिल गए, जबकि अन्य को नहीं मिले।

कुछ भी प्राप्त न कर पाने वाले भिक्षुओं ने कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पम्सुकुलाओं का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आपने स्वयं क्यों नहीं प्राप्त किया?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम अपनी इच्छा के विरुद्ध भी अपने साथ (शमशान) गए भिक्षुओं को एक हिस्सा दे दो।'

5. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। वे आपस में पाम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए एक श्मशान में गए (रास्ते से हटकर)। उन्होंने पाम्सुकुला वस्त्रों के बंटवारे के बारे में आपस में समझौता कर लिया था। कुछ भिक्षुओं को पाम्सुकुला वस्त्र मिल गए, जबकि कुछ को कुछ नहीं मिला। जिन भिक्षुओं को कुछ नहीं मिला था, उन्होंने कहा, 'मित्रों, हमें भी पाम्सुकुला वस्त्रों का एक हिस्सा दे दीजिए।' पाम्सुकुला वस्त्रों ने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको हिस्सा नहीं देंगे; आपने स्वयं क्यों नहीं प्राप्त किए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप अपनी इच्छा के विरुद्ध भी, उन भिक्षुओं को एक भाग दें जो आपके साथ (पमसुकुलों के वितरण के संबंध में) समझौता करने के बाद (आपके साथ श्मशान गए हैं)।'

<<<< पिछला(8.3) | अगला(8.5) >>>>
टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.3) | अगला(8.5) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-4.

1. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। इनमें से कुछ भिक्षु अपने लिए पाम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए श्मशान घाट चले गए; कुछ भिक्षु नहीं रुके। जो भिक्षु पाम्सुकुला वस्त्र लेने श्मशान घाट गए थे, उन्होंने पाम्सुकुला वस्त्र प्राप्त कर लिए; जो भिक्षु नहीं रुके थे, उन्होंने उनसे कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पाम्सुकुला वस्त्रों का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आप क्यों नहीं रुके?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि आप उन भिक्षुओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भाग देने के लिए बाध्य नहीं हैं जिन्होंने प्रतीक्षा नहीं की है।'

2. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। उनमें से कुछ

इनमें से कुछ भिक्षु अपने लिए पम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए कब्रिस्तान चले गए; कुछ अन्य भिक्षु उनका इंतजार करते रहे। जो भिक्षु पम्सुकुला वस्त्र लेने कब्रिस्तान गए थे, उन्होंने पम्सुकुला वस्त्र प्राप्त कर लिए; जो भिक्षु इंतजार कर रहे थे, उन्होंने उनसे कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पम्सुकुला वस्त्रों का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आप भी कब्रिस्तान क्यों नहीं गए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप अपनी इच्छा के विरुद्ध भी प्रतीक्षा कर रहे भिक्षुओं को एक भाग दें।'

3. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। इनमें से कुछ भिक्षु पहले ही पम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए श्मशान घाट चले गए; कुछ अन्य भिक्षु बाद में गए। जो भिक्षु पहले श्मशान घाट गए थे, उन्हें पम्सुकुला वस्त्र मिल गए; जो भिक्षु बाद में गए थे, उन्हें कुछ नहीं

मिला और उन्होंने (अन्य भिक्षुओं से) कहा, 'मित्रों, हमें भी कुछ दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको कुछ नहीं देंगे; आप हमारे बाद (श्मशान घाट) क्यों गए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप उन भिक्षुओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भाग देने के लिए बाध्य नहीं हैं जो आपसे बाद में (कब्रिस्तान) गए हैं।'

4. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। वे सब मिलकर पमसुकुल वस्त्र प्राप्त करने के लिए एक श्मशान में गए; कुछ भिक्षुओं को पमसुकुल वस्त्र मिल गए, जबकि अन्य को नहीं मिले।

कुछ भी प्राप्त न कर पाने वाले भिक्षुओं ने कहा, 'मित्रों, हमें भी अपने पम्सुकुलाओं का एक भाग दे दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको भाग नहीं देंगे; आपने स्वयं क्यों नहीं प्राप्त किया?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम अपनी इच्छा के विरुद्ध भी अपने साथ (शमशान) गए भिक्षुओं को एक हिस्सा दे दो।'

5. उस समय कोसल देश में कई भिक्षु यात्रा कर रहे थे। वे आपस में पाम्सुकुला वस्त्र लेने के लिए एक श्मशान में गए (रास्ते से हटकर)। उन्होंने पाम्सुकुला वस्त्रों के बंटवारे के बारे में आपस में समझौता कर लिया था। कुछ भिक्षुओं को पाम्सुकुला वस्त्र मिल गए, जबकि कुछ को कुछ नहीं मिला। जिन भिक्षुओं को कुछ नहीं मिला था, उन्होंने कहा, 'मित्रों, हमें भी पाम्सुकुला वस्त्रों का एक हिस्सा दे दीजिए।' पाम्सुकुला वस्त्रों ने उत्तर दिया, 'मित्रों, हम आपको हिस्सा नहीं देंगे; आपने स्वयं क्यों नहीं प्राप्त किए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप अपनी इच्छा के विरुद्ध भी, उन भिक्षुओं को एक भाग दें जो आपके साथ (पमसुकुलों के वितरण के संबंध में) समझौता करने के बाद (आपके साथ श्मशान गए हैं)।'

<<<< पिछला(8.3) | अगला(8.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> महावग्ग >> आठवां खंडका >> 8.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.4) | अगला(8.6) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-5.

1. उस समय लोग भिक्षुओं को भेंट करने के इरादे से वस्त्र लेकर अरमा (मठ) गए। उन्हें वहाँ कोई भिक्षु नहीं मिला जो वस्त्र ग्रहण कर सके; इसलिए वे वस्त्र वापस ले आए। (इसके परिणामस्वरूप) भिक्षुओं को बहुत कम वस्त्र दिए गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप निम्नलिखित पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को (भिक्षुओं को भेंट किए गए) वस्त्र ग्रहण करने के लिए नियुक्त करें: (ऐसा व्यक्ति) जो कामवासना के बुरे मार्ग पर न चलता हो, घृणा के बुरे मार्ग पर न चलता हो, भ्रम के बुरे मार्ग पर न चलता हो, भय के बुरे मार्ग पर न चलता हो, और जो जानता हो कि क्या प्राप्त हुआ है और क्या नहीं।

2. 'और हे भिक्षुओं, तुम्हें (ऐसे भिक्षु को) इस प्रकार नियुक्त करना चाहिए: सबसे पहले, उस भिक्षु से (उस कार्य को स्वीकार करने के लिए) अनुरोध किया जाना चाहिए। जब उनसे पूछा जाए, तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नट्टी का उच्चारण करें: "हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार है, तो संघ भिक्षु एन. एन. को (भिक्षुओं को भेंट किए गए) वस्त्र ग्रहण करने के लिए नियुक्त करे। यह नट्टी है। हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। संघ भिक्षु एन. एन. को (भेंट किए गए) वस्त्र ग्रहण करने के लिए नियुक्त करता है। आदरणीय भाइयों में से जो भी भिक्षु एन. एन. को (भेंट किए गए) वस्त्र ग्रहण करने के लिए नियुक्त करने के पक्ष में हैं, वे मौन रहें, और जो इसके पक्ष में नहीं हैं, वे बोलें। भिक्षु एन. एन. को संघ द्वारा (भेंट किए गए) वस्त्र ग्रहण करने के लिए नियुक्त किया गया है। संघ इसके पक्ष में है, इसलिए आप मौन रहें; ऐसा मैं समझता हूँ।"

<<<< पिछला(8.4) । अगला(8.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.5) । अगला(8.7) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-6.

1. उस समय जिन भिक्षुओं को (उपहार में दिए गए) वस्त्र प्राप्त करने थे, उन्होंने उन्हें प्राप्त करने के बाद वहीं (विहारों में) छोड़ दिया और चले गए; वस्त्र नष्ट हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप निम्नलिखित पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को वस्त्र त्यागने के लिए नियुक्त करें: (ऐसा व्यक्ति) जो कामवासना के बुरे मार्ग पर न चलता हो, घृणा के बुरे मार्ग पर न चलता हो, भ्रम के बुरे मार्ग पर न चलता हो, भय के बुरे मार्ग पर न चलता हो, और जो जानता हो कि क्या त्यागा जाना चाहिए और क्या नहीं।'

2. 'और हे भिक्षुओं, तुम्हें (आदि, अध्याय-5, §-2 देखें) नियुक्त करना चाहिए।'

<<<< पिछला(8.5) । अगला(8.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.6) । अगला(8.8) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय 7।

उस समय वस्त्रों को रखने के लिए नियुक्त भिक्षु उन्हें खुले हॉल में, या किसी पेड़ की तलहटी में, या नीम के पेड़ के खोखले तने में रख देते थे; इस प्रकार उन्हें चूहों और दीमकों ने खा लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि संघ जो चाहे, जैसे विहार (मठ), अद्धयोग, बहुमंजिला इमारत, अटारी या गुफा, उसे संघ का भंडारगृह नियुक्त करें।

और हे भिक्षुओं, आपको इसे इस प्रकार नियुक्त करना चाहिए: एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नत्ति (प्रस्ताव) की घोषणा करे: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। यदि संघ तैयार हो, तो संघ 'एन.एन.' नामक विहार को संघ का भंडारगृह नियुक्त करे (आदि, नात्तिदुतिया कर्म का सामान्य सूत्र)।"

<<<< पिछला(8.6) । अगला(8.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.7) । अगला(8.9) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-8.

1. उस समय संघ के भंडारगृह में रखा कपड़ा (बारिश, चूहों आदि से) सुरक्षित नहीं था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप निम्नलिखित पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को भंडारगृह का प्रभार सौंपें: (ऐसा व्यक्ति) जो कामवासना के बुरे मार्ग पर न चलता हो (आदि, जैसा कि अध्याय-5, अनुच्छेद-1 में है), और जो जानता हो कि क्या सुरक्षित है और क्या नहीं।

और हे भिक्षुओं, तुम्हें नियुक्त करना चाहिए (आदि, अध्याय-5, §-2 देखें):

2. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने एक भिक्षु को, जो भंडारगृह का प्रभारी था, उसके पद से निष्कासित कर दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भंडारगृह के प्रभारी भिक्षु को उसके स्थान से निष्कासित न करो। ऐसा करने वाला दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला(8.7) । अगला(8.9) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-9.

1. उस समय संघ का भंडारगृह कपड़ों से भरा हुआ था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि इन्हें एकत्रित संघ द्वारा वितरित किया जाए।'

उस समय, वस्त्र बांटते समय, पूरे संघ में हलचल मच गई थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप वस्त्रों का वितरण करने के लिए निम्नलिखित पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को नियुक्त करें: (ऐसा व्यक्ति) जो कामवासना के बुरे मार्ग पर न चलता हो... और जो जानता हो कि क्या वितरित किया जाता है और क्या नहीं।'

और हे भिक्षुओं, तुम्हें नियुक्त करना चाहिए (आदि, अध्याय-5, अनुच्छेद-2 देखें)।

2. अब वस्त्र बांटने के लिए नियुक्त भिक्षुओं ने सोचा: 'हम वस्त्र किस प्रकार बांटें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप पहले वस्त्रों को छाँटें, उनका मूल्यांकन करें, उनके उच्च या निम्न मूल्य के अनुसार उन्हें आपस में बाँटें, फिर भिक्षुओं की गिनती करें, उन्हें समूहों में विभाजित करें और वस्त्रों के हिस्से (तदनुसार) बाँटें।'

अब वस्त्र बांटने वाले भिक्षु सोचने लगे: 'सामनेरों को वस्त्र का कितना भाग दिया जाए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि तुम समनेरों को आधा भाग दो।'

3. उस समय एक भिक्षु अपने हिस्से के साथ (नदी या रेगिस्तान) पार जाना चाहता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप किसी भिक्षु को, जो (नदी या रेगिस्तान) पार कर रहा हो, उसका उचित हिस्सा दें।'

उस समय एक भिक्षु अपने हिस्से से अधिक कपड़ा लेकर (नदी या रेगिस्तान) पार जाना चाहता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि यदि कोई भिक्षु क्षतिपूर्ति करे तो आप उसे उसके उचित भाग से अधिक दें।'

4. अब वस्त्र वितरित करने वाले भिक्षुओं ने सोचा: 'हम वस्त्रों का हिस्सा (एक-एक भिक्षु को) कैसे आवंटित करें, बारी-बारी से उनके आने पर (और वस्त्र मांगने पर) या उनकी आयु के अनुसार (अर्थात उनके दीक्षा ग्रहण के बाद बीते समय के अनुसार)?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि घास की पत्तियों से बनी पर्ची निकालो, और फिर प्रत्येक दोषपूर्ण भाग को बराबर कर लो।'

<<<< पिछला(8.8) | अगला(8.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.10

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.9) | अगला(8.11) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-10.

1. उस समय भिक्षु गोबर या पीली मिट्टी से कपड़े रंगते थे। वस्त्रों का रंग खराब होता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको निम्नलिखित छह प्रकार के रंगों का प्रयोग करने की सलाह देता हूँ, अर्थात् जड़ों से बना रंग, वृक्षों के तनों से बना रंग, छाल से बना रंग, पत्तियों से बना रंग, फूलों से बना रंग और फलों से बना रंग।'

2. उस समय भिक्षु बिना उबाले हुए रंग से कपड़े रंगते थे; कपड़ा दुर्गंधयुक्त हो जाता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप रंग को उबालें (और) छोटे रंग के बर्तनों का प्रयोग करें।'

उन्होंने रंग गिरा दिया।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप (रंगदानों के नीचे) बर्तन रखें ताकि गिरा हुआ (रंग) उसमें इकट्ठा हो जाए।'

उस समय भिक्षुओं को यह नहीं पता था कि रंग को उबाला गया था या नहीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप रंग की एक बूंद पानी में या अपने नाखून पर गिरने दें (यह जांचने के लिए कि रंग ठीक से उबाला गया है या नहीं)।'

3. उस समय भिक्षु जब बर्तन से रंग उंडेल रहे थे, तो बर्तन उलट गया; बर्तन टूट गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप रंगने वाले चम्मच या लंबे हैंडल वाले फावड़े का प्रयोग करें।'

उस समय भिक्षुओं के पास रंग रखने के लिए बर्तन नहीं थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप रंग रखने के लिए कलश और कटोरे प्राप्त करें।'

उस समय भिक्षुओं ने कपड़े को उन बर्तनों और कटोरों से रगड़ा जिनमें वे उसे रंगते थे; कपड़ा फट गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, यह नियम बनाओ कि कपड़े रंगने के लिए एक (बड़ा) कुंड प्रयोग करो।'

<<<< पिछला(8.9) । अगला(8.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.10) । अगला (8.12) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-11.

1. उस समय भिक्षुओं ने (रंगने के बाद) कपड़े को फर्श पर फैला दिया; कपड़ा धूल से भर गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि तुम घास बिछाओ (और उस पर कपड़ा रखो)।'

उन्होंने जो घास लगाई थी, उसे दीमक खा गए। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप कपड़े को टांगने के लिए बांस की खूंटी या रस्सी का इंतजाम करें।'

उन्होंने इसे बीच में लटका दिया; रंग दोनों तरफ टपक गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप इसे कोने पर कसकर बाँध लें।'

कोना घिस गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं कपड़े सुखाने के लिए रस्सी का उपयोग करने की सलाह देता हूँ।'

रंग एक तरफ गिर गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि रंगाई करते समय, जब भी आवश्यकता हो, कपड़े को पलटते रहो और रंग टपकना बंद होने से पहले वहाँ से न जाओ।'

2. उस समय कपड़ा कड़ा हो गया था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप (कपड़े को) पानी में डुबोकर अतिरिक्त रंग निकाल दें।' उस समय कपड़ा खुरदुरा हो गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह सलाह देता हूँ कि आप इसे अपने हाथों से पीटकर चिकना करें।'

उस समय भिक्षुओं के पास हाथीदांत के समान पीले रंग के अक्खिन्नक वस्त्र थे। लोग नाराज़ हुए, आपस में कानाफूसी करने लगे और क्रोधित हो गए: '(भिक्षु) उन लोगों की तरह वस्त्र पहनते हैं जो अभी भी संसार के सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें अक्खिन्नक वस्त्र धारण नहीं करने चाहिए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

<<<< पिछला (8.10) | अगला (8.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.12

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.11) | अगला (8.13) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-12.

1. जब भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे दक्षिणागिरि (दक्षिणी पहाड़ियों) की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। और भगवान बुद्ध ने देखा कि मगध के धान के खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे हुए थे।

और पंक्तियों में, और बाहरी सीमाओं (या टीलों) द्वारा, और आड़ी सीमाओं द्वारा।

यह देखकर भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'क्या तुम समझते हो, आनंद, कि मगध के धान के खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में, पंक्तियों में, बाहरी सीमाओं से और आड़ी सीमाओं से किस प्रकार विभाजित हैं?'

'फिर भी, प्रभु।'

'आनंद, क्या आप भिक्षुओं के लिए भी इसी तरह के वस्त्र उपलब्ध करा सकते हैं?'

'मैं कर सकता हूँ, प्रभु।'

अब जब भगवान बुद्ध दक्षिणी पहाड़ियों में अपनी इच्छानुसार समय बिता चुके थे, तब वे राजगृह लौट आए।

तब आनंद ने अनेक भिक्षुओं के लिए एक समान वस्त्र प्रदान किए; और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा: 'कृपा करके भगवान बुद्ध मेरे द्वारा प्रदान किए गए वस्त्रों को देखें।'

2. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, योग्य पुरुष आनंद है; हे भिक्षुओं, महान ज्ञान वाला आनंद है, क्योंकि जो कुछ मैंने संक्षेप में कहा है, वह उसे पूर्णतः समझ सकता है, और वह चौखट, मध्य चौखट, बड़े वृत्त, छोटे वृत्त, मोड़, मोड़ की अस्तर, कॉलर, घुटने और कोहनी का वस्त्र बना सकता है। और यह फटे हुए टुकड़ों से बना होना चाहिए, मोटे तौर पर सिला हुआ, एक भिक्षु के लिए उपयुक्त, ऐसी वस्तु जिस पर उसके शत्रु लालच न कर सकें। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें फटे हुए टुकड़ों से बने अंतर्वस्त्र, फटे हुए टुकड़ों से बने अंतर्वस्त्र और फटे हुए टुकड़ों से बने कमरबंद का उपयोग करने का आदेश देता हूँ।'

<<<< पिछला (8.11) | अगला (8.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.12) | अगला (8.14) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-13.

1. जब भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे वैशाली की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। राजगृह और वैशाली के बीच के राजमार्ग पर चलते हुए उन्होंने अनेक भिक्षुओं को वस्त्रों में लिपटे हुए देखा। वे अपने सिर, पीठ या कमर पर वस्त्र लपेटे हुए चल रहे थे। उन्हें देखकर भगवान बुद्ध ने सोचा, 'इन मूर्खों ने वस्त्रों के मामले में अत्यधिक फिजूलखर्ची कर ली है। यह अच्छा होगा यदि मैं भिक्षुओं के वस्त्रों को सीमित कर दूं और उनकी सीमा निर्धारित कर दूं।'

2. भगवान बुद्ध वैशाली की ओर अपनी यात्रा पर समयपूर्वक आगे बढ़ते हुए उस स्थान पर पहुँचे। वहाँ वैशाली में, भगवान बुद्ध गौतमक मंदिर में ठहरे। उस समय, शीत ऋतु की ठंडी रातों में, अष्टक पर्वों के बीच के समय में जब हिमपात होता है, भगवान बुद्ध रात में खुले में केवल एक वस्त्र धारण करके बैठे रहे, और उन्हें ठंड नहीं लगी। जब रात का पहला पहर समाप्त होने वाला था, तब भगवान बुद्ध को ठंड लगी; और उन्होंने दूसरा वस्त्र धारण किया, और उन्हें ठंड नहीं लगी। जब रात का मध्य पहर समाप्त होने वाला था, तब भगवान बुद्ध को ठंड लगी; और उन्होंने तीसरा वस्त्र धारण किया, और उन्हें ठंड नहीं लगी। जब रात का अंतिम पहर समाप्त होने वाला था, जब भोर हो रही थी और रात काफी बीत चुकी थी, तब भगवान बुद्ध को ठंड लगी; और उन्होंने चौथा वस्त्र धारण किया, और उन्हें ठंड नहीं लगी।

3. तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया: 'इस धर्म और अनुशासन में अच्छे कुल के वे पुरुष जो सर्दी से प्रभावित होते हैं और सर्दी से डरते हैं, वे तीन वस्त्र धारण कर सकते हैं। यदि भिक्षुओं के वस्त्रों को सीमित करते हुए और उस पर एक सीमा निर्धारित करते हुए, मैं उन्हें तीन वस्त्र धारण करने की अनुमति दे दूं तो यह अच्छा होगा।' और उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

4, 5. 'जब मैं मुख्य मार्ग पर था, इत्यादि... मैंने देखा, इत्यादि... और मैंने सोचा, इत्यादि... (पूरा अध्याय "... मैं तीन वस्त्रों के उपयोग की अनुमति देता/देती हूँ" तक दोहराया गया है)। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन वस्त्रों के उपयोग की अनुमति देता/देती हूँ, (अर्थात) दोहरी कमरबंद, एक ऊपरी वस्त्र और एक अंतर्वस्त्र।'

6. उस समय छब्बाग्य भिक्षु, इस आधार पर कि भगवान बुद्ध ने तीन वस्त्र धारण करने की अनुमति दी थी, एक वस्त्र पहनकर गाँव में आते-जाते थे, दूसरे वस्त्र पहनकर वे आराम करते थे और तीसरे वस्त्र से स्नान करते थे। तब जो भिक्षु लज्जित थे, वे नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'छब्बाग्य भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र कैसे धारण कर सकते हैं?'

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर, जब वे धर्म प्रवचन दे रहे थे, भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, अतिरिक्त वस्त्र धारण करना मना है। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।

7. उस समय पूज्य आनंद के पास वस्त्रों का एक अतिरिक्त जोड़ा आ गया था, और वे उसे पूज्य सारिपुत्त को देना चाहते थे, परन्तु सारिपुत्त साकेत में ठहरे हुए थे। तब पूज्य आनंद ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने नियम बनाया है कि हमें वस्त्रों का अतिरिक्त जोड़ा नहीं रखना चाहिए। अब मुझे एक अतिरिक्त जोड़ा मिल गया है, और मैं उसे पूज्य सारिपुत्त को देना चाहता हूँ; परन्तु वे साकेत में ठहरे हुए हैं। अब मैं क्या करूँ?'

और पूज्य आनंद ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'आनंद, आदरणीय सारिपुत्त के लौटने में कितना समय लगेगा?'

'हे प्रभु, वह आज से नौवें या दसवें दिन वापस आएगा।'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दसवें दिन तक एक अतिरिक्त वस्त्र रखने की अनुमति देता हूँ।'

8. उस समय भिक्षुओं को अतिरिक्त वस्त्र दिए जाते थे। और ये भिक्षु सोचने लगे: 'अब इन अतिरिक्त वस्त्रों का क्या करें?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम वस्त्रों का एक अतिरिक्त जोड़ा (उन अन्य भिक्षुओं को) दे दो जिनके पास वस्त्र नहीं हैं।'

<<<< पिछला (8.12) | अगला (8.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.13) | अगला (8.15) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-14.

1. जब भगवान बुद्ध वैशाली में अपनी इच्छानुसार समय बिता चुके, तब वे बनारस की ओर अपनी यात्रा पर आगे बढ़े। उचित समय पर वे बनारस पहुँचे और वहाँ मिगदया में स्थित आश्रम में ठहरे।

उस समय एक भिक्षु का अंतर्वस्त्र फट गया। उस भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने तीन वस्त्रों के उपयोग का विधान किया है: दोहरी कमरबंद, एक ऊपरी वस्त्र और एक अंतर्वस्त्र। मेरा यह अंतर्वस्त्र फट गया है। यदि मैं इसमें कपड़े का एक टुकड़ा लगा दूं, तो यह चारों ओर से दोहरा और मध्य में एक हो जाएगा।'

2. तब भिक्षु ने कपड़े का एक टुकड़ा अंदर रख दिया। और भगवान बुद्ध जब विश्राम कक्षों का चक्कर लगा रहे थे, तब उन्होंने उसे ऐसा करते देखा, और उसके पास जाकर उससे कहा:

'हे भिक्षु, आप क्या कर रहे हैं?'

'हे प्रभु, मैं कपड़े का एक टुकड़ा डाल रहा हूँ।'

'यह बहुत अच्छा है, हे भिक्षु। हे भिक्षु, आपने कपड़े का एक टुकड़ा डाला, यह बिल्कुल सही है।'

और उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें नए या लगभग नए कपड़ों से बना दोहरा कमरबंद, एक ही ऊपरी वस्त्र और एक ही अंतर्वस्त्र पहनने की अनुमति देता हूँ; और पुराने कपड़ों से बना चार गुना कमरबंद, दोहरा ऊपरी वस्त्र और दोहरा अंतर्वस्त्र पहनने की भी अनुमति देता हूँ। कूड़े के ढेर से या बाज़ार से उठाए गए चिथड़ों से पर्याप्त सामग्री प्राप्त करने का प्रयास करो। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें फटे हुए वस्त्र को थान की तरह बांधने के लिए कपड़े के टुकड़े लगाने की अनुमति देता हूँ।

साथ में, पैच, रंधर और कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़े सिलकर निशान बनाए गए थे, या फिर चोगे को मजबूत किया गया था।

<<<< पिछला (8.13) | अगला (8.15) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.14) | अगला (8.16) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-15.

1. जब भगवान बुद्ध बनारस में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे सावत्थी की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। उचित समय पर सीधे यात्रा करते हुए वे सावत्थी पहुँचे; और वहाँ सावत्थी में वे अनाथपिंडिका के जेतवन (मठ) में ठहरे। मिगारा की माता विशाखा भगवान बुद्ध के पास गईं; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। भगवान बुद्ध ने इस प्रकार बैठी हुई मिगारा की माता विशाखा को उपदेश दिया; और धर्म प्रवचन से उन्हें प्रोत्साहित, प्रेरित और प्रसन्न किया। इस प्रकार उपदेश प्राप्त करने के बाद, मिगारा की माता विशाखा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'क्या मेरे प्रभु भगवान बुद्ध भिक्षुओं के साथ कल का भोजन मेरे हाथों ग्रहण करने के लिए सहमत होंगे?' भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति दी; और मिगारा की माता विशाखा ने जब यह देखा कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वह अपने स्थान से उठीं और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर रहते हुए वहां से चली गईं।

2. उस समय, जब रात ढल चुकी थी, तब समस्त संसार में भयंकर वर्षा हुई। तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, जिस प्रकार जेतवन में वर्षा हो रही है, उसी प्रकार समस्त विश्व में वर्षा हो रही है। हे भिक्षुओं, आप भी वर्षा में भीग जाइए, क्योंकि यह अंतिम बार होगा जब समस्त विश्व में इतनी भीषण वर्षा होगी।'

'हे प्रभु, ऐसा ही हो,' उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा; और अपने वस्त्र उतारकर उन्होंने स्वयं को वर्षा के लिए छोड़ दिया।

3. और मिगारा की माता विशाखा ने मीठा भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, तैयार करके एक दासी को आज्ञा दी, और कहा,

'आप अरमा (मठ) जाइए; और जब आप वहाँ पहुँचें, तो समय की घोषणा करते हुए कहें, "महोदय, समय आ गया है, और भोजन तैयार है।"'

'जी, ऐसा ही हो,' दासी ने मिगारा की माता विशाखा की बात मानते हुए सहमति व्यक्त की; और आराम (मठ) जाकर उसने वहाँ भिक्षुओं को अपने वस्त्र उतारकर वर्षा होने दी। तब उसने सोचा, 'ये आराम में भिक्षु नहीं हैं, ये तो नग्न तपस्वी हैं जो वर्षा को अपने ऊपर गिरने दे रहे हैं,' और वह मिगारा की माता विशाखा के पास लौट आई और उनसे कहा:

आराम (मठ) में कोई भिक्षु नहीं हैं; वहाँ नग्न तपस्वी हैं, जो अपने ऊपर वर्षा होने देते हैं।'

तब मिगारा की माता विशाखा—जो विद्वान, कुशल और बुद्धिमान थीं—के मन में यह विचार आया, 'निश्चित रूप से पूजनीय लोगों ने अपने वस्त्र उतार दिए होंगे ताकि वे वर्षा का आनंद ले सकें, और यह मूर्ख लड़की इसलिए सोचती है कि आराम में कोई भिक्षु नहीं हैं, बल्कि केवल नग्न तपस्वी हैं जो वर्षा का आनंद ले रहे हैं।' और उन्होंने फिर दासी को आदेश देते हुए कहा,

'आप अरमा जाइए; और जब आप वहां पहुंचें, तो समय की घोषणा करते हुए कहें, "महोदय, समय आ गया है, और भोजन तैयार है।"'

4. अब भिक्षुओं ने अपने अंगों को ठंडा करके और शरीर को तरोताज़ा करके अपने वस्त्र धारण किए और अपने-अपने कक्ष में प्रवेश किया। जब दासी विश्राम कक्ष में आई, तो उसने वहाँ किसी भिक्षु को न देखकर सोचा, 'विश्राम कक्ष में कोई भिक्षु नहीं है। विश्राम कक्ष खाली है।' और मिगारा की माता विशाखा के पास लौटकर उसने यही बात कही।

तब मिगारा की माता विशाखा—जो विद्वान, कुशल और बुद्धिमान थीं—के मन में यह विचार आया, 'निश्चित रूप से पूजनीय व्यक्तियों ने अपने अंगों को ठंडा करके और शरीर को तरोताज़ा करके अपने वस्त्र धारण किए होंगे और अपने-अपने कक्ष में प्रवेश किया होगा।' और उन्होंने फिर दासी को आदेश देते हुए कहा,

'आप अरमा जाइए; और वहाँ पहुँचकर समय की घोषणा करते हुए कहिए, "महोदय, समय आ गया है और भोजन तैयार है।"'

5. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, पानपात्र और वस्त्र लेकर तैयार हो जाओ; भोजन का समय आ गया है।'

'हे प्रभु, ऐसा ही हो,' भिक्षुओं ने सहमति जताते हुए कहा।

भगवान बुद्ध। और सुबह भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण कर, विधिवत स्नान और वस्त्र धारण करके जेतवन से उतनी ही शीघ्रता से विलीन हो गए, जितनी शीघ्रता से कोई बलवान व्यक्ति अपनी बांह को सिकोड़कर फिर से सिकोड़ लेता है, और मिगार की माता विशाखा के महल में प्रकट हुए। और भगवान बुद्ध अपने लिए बिछाए गए आसन पर विलीन हो गए, और उनके साथ भिक्षुओं का समूह भी था।

6. तब मिगारा की माता विशाखा ने कहा, "तथागत (बुद्ध) की शक्ति और सामर्थ्य अत्यंत अद्‌भुत और चमत्कारी है, क्योंकि चाहे बाढ़ घुटनों तक गहरी हो या कमर तक, फिर भी एक भी भिक्षु अपने पैरों या वस्त्रों तक नहीं भीगा।" प्रसन्न और प्रसन्न हृदय से उन्होंने अपने हाथों से भिक्षुओं के समूह को, जिनके मुखिया बुद्ध थे, कठोर और नरम दोनों प्रकार का मीठा भोजन परोसा। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और अपने हाथों और कटोरे को साफ कर लिया, तो वे एक तरफ बैठ गईं। और इस प्रकार बैठकर उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध से आठ वरदान मांगता हूँ।'

'हे विशाखा, तथागत वरदान देने से परे हैं (जब तक कि वे यह न जान लें कि वरदान क्या हैं)।'

'हे प्रभु, मैं जो वरदान मांगता हूँ, वे उचित और निर्विवाद हैं।'

'तो बोलो, हे विशाखा।'

7. 'हे प्रभु, मेरी यही इच्छा है कि मैं अपने जीवन भर वस्त्र प्रदान करूँ।'

संघ के लिए बरसात के मौसम में भोजन, आने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, जाने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, बीमारों के लिए भोजन, बीमारों की सेवा करने वालों के लिए भोजन, बीमारों के लिए दवा, दलिया की निरंतर आपूर्ति और भिक्षुणियों के लिए स्नान वस्त्र।

लेकिन हे विशाखा, तथागत (बुद्ध) से ये आठ वरदान मांगने के पीछे आपकी क्या मंशा है?

हे प्रभु, मैंने अपनी दासी को आज्ञा दी, "तुम आराम (मठ) जाओ; और वहाँ पहुँचकर समय की सूचना देते हुए कहना, 'महोदय, समय आ गया है और भोजन तैयार है।'" और दासी, हे प्रभु, आराम गई; परन्तु जब उसने वहाँ भिक्षुओं को अपने वस्त्र उतारकर वर्षा में भीगते देखा, तो उसने सोचा, "ये आराम में भिक्षु नहीं हैं, ये तो नग्न तपस्वी हैं जो वर्षा में भीग रहे हैं," और वह मेरे पास लौटकर आई और मुझे यही सूचना दी। हे प्रभु, नग्नता अपवित्र और घृणित है। हे प्रभु, इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को वर्षा ऋतु में उपयोग के लिए विशेष वस्त्र प्रदान करने की इच्छा की।

8. हे प्रभु, एक नया भिक्षु सीधे मार्ग न मिलने और भोजन के स्रोत न जानने के कारण भिक्षा माँगते-माँगते थक जाता है। परन्तु जब वह उस भोजन को ग्रहण कर लेता है जो मैंने नए भिक्षुओं के लिए उपलब्ध कराया है, तो वह भिक्षा माँगते-माँगते थके बिना सीधे मार्ग से और भोजन के स्रोत जानते हुए अपने मार्ग पर चल पड़ेगा। यही कारण था।

मैंने जीवन भर संघ को नए भिक्षुओं के लिए भोजन उपलब्ध कराने की इच्छा रखते हुए यही बात ध्यान में रखी थी।

हे प्रभु, भिक्षा मांगने के दौरान कोई भिक्षु प्रस्थान करते समय काफिले से पीछे छूट सकता है, या अपने गंतव्य पर देर से पहुँच सकता है और थका हुआ ही यात्रा पर निकल सकता है। परन्तु जब वह मेरे द्वारा प्रस्थान करने वाले भिक्षुओं के लिए उपलब्ध कराए गए भोजन का सेवन कर लेगा, तो वह काफिले से पीछे नहीं छूटेगा; वह समय पर अपने गंतव्य पर पहुँच जाएगा और बिना थके यात्रा पर निकल पड़ेगा। हे प्रभु, इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को प्रस्थान करने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन उपलब्ध कराने की इच्छा की थी।

9. हे प्रभु, यदि किसी बीमार भिक्षु को उचित भोजन न मिले तो उसकी बीमारी बढ़ सकती है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है। परन्तु यदि कोई भिक्षु मेरे द्वारा बीमारों के लिए उपलब्ध कराए गए आहार का सेवन करे तो न तो उसकी बीमारी बढ़ेगी और न ही उसकी मृत्यु होगी। हे प्रभु, इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को बीमारों के लिए आहार उपलब्ध कराने की इच्छा की थी।

'हे प्रभु, यदि कोई भिक्षु किसी बीमार की सेवा कर रहा हो और उसे अपने लिए भोजन की तलाश करनी पड़े, तो वह सूर्य के काफी ऊपर पहुँचने के बाद ही भोजन लेकर आएगा, जिससे उसका समय बर्बाद हो जाएगा।

भोजन ग्रहण करने का अवसर खोना नहीं चाहिए। परन्तु जब वह उस भोजन को ग्रहण कर लेगा जो मैंने बीमारों की सेवा करने वालों के लिए उपलब्ध कराया है, तो वह उचित समय पर बीमारों के लिए भोजन लाएगा और इस प्रकार भोजन ग्रहण करने का अवसर नहीं खोएगा। हे प्रभु, यही वह बात थी जिसे ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को बीमारों की सेवा करने वालों के लिए भोजन उपलब्ध कराने की इच्छा की।

10. हे प्रभु, यदि किसी बीमार भिक्षु को उचित औषधियाँ न मिलें तो उसकी बीमारी बढ़ सकती है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है। परन्तु यदि भिक्षु ने वे औषधियाँ ग्रहण कर ली हों जो मैं बीमारों के लिए उपलब्ध कराऊँगा, तो न तो उसकी बीमारी बढ़ेगी और न ही उसकी मृत्यु होगी। हे प्रभु, इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को बीमारों के लिए औषधियाँ उपलब्ध कराने की इच्छा की थी।

'हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने अंधकविन्द में रहते हुए, वहाँ के दस लाभों को ध्यान में रखते हुए, दलिया के उपयोग की अनुमति दी थी। हे प्रभु, इन्हीं लाभों को ध्यान में रखते हुए मैंने जीवन भर संघ को दलिया की निरंतर आपूर्ति प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की है।'

11. हे प्रभु, भिक्षुणियाँ अकिरावती नदी में वेश्याओं के साथ एक ही स्थान पर नग्न अवस्था में स्नान करती हैं। हे प्रभु, वेश्याओं ने भिक्षुणियों का उपहास करते हुए कहा, "हे देवियों, जब आप युवा हैं तो पवित्रता बनाए रखने का क्या लाभ है? क्या ऐसा नहीं है कि..."

क्या वासनाओं में लिप्त होना उचित है? जब तुम वृद्ध हो जाओ, तब भी ब्रह्मचर्य का पालन करना; इस प्रकार तुम दोनों लक्ष्यों को प्राप्त कर सकोगी। तब, हे प्रभु, जब वेश्याओं ने इस प्रकार उनका उपहास किया, तो भिक्षुणियाँ भ्रमित हो गईं। हे प्रभु, स्त्री के लिए नग्नता अपवित्र है, घृणित और अरुचिकर है। हे प्रभु, इसी कारण मैंने भिक्षुणी संघ को जीवन भर स्नान करने के लिए वस्त्र प्रदान करने की इच्छा की थी।

12. 'हे विशाखा, तथागत से ये आठ वरदान मांगने में तुम्हारा क्या लाभ था?'

हे प्रभु, वर्षा ऋतुओं में विभिन्न स्थानों पर समय बिताने वाले भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन करने के लिए सावत्थी आएंगे। भगवान बुद्ध के पास आकर वे पूछेंगे, "हे प्रभु, फलां भिक्षु का निधन हो गया है। उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ है और उनका क्या भाग्य है?" तब भगवान बुद्ध उन्हें समझाएंगे कि उन्होंने धर्म परिवर्तन के फल, या सकदगामिन की अवस्था, या अनगामिन की अवस्था, या अरहतत्व की अवस्था प्राप्त कर ली है। और मैं उनके पास जाकर पूछूंगा, "हे महोदय, क्या वह भिक्षु पहले सावत्थी में रहने वालों में से एक थे?"

13. यदि वे मुझे उत्तर दें, "वह पहले सावत्थी में था," तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचूँगा, "निश्चित रूप से उस भाई ने या तो बरसात के मौसम के वस्त्र, या आने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, या जाने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, या बीमारों के लिए भोजन, या बीमारों की सेवा करने वालों के लिए भोजन, या...

"बीमारों के लिए औषधि, या दलिया की निरंतर आपूर्ति।" तब यह स्मरण करते ही मेरे भीतर प्रसन्नता का संचार होगा; और इस प्रकार प्रसन्नता से मेरा सारा शरीर शांत हो जाएगा; और इस प्रकार शांत होकर मैं संतोष की आनंदमय अनुभूति का अनुभव करूंगा; और उस आनंद में मेरा हृदय शांत होगा; और यह मेरे लिए मेरी नैतिक चेतना का अभ्यास होगा, मेरी नैतिक शक्तियों का अभ्यास होगा, सात प्रकार के ज्ञान का अभ्यास होगा! हे प्रभु, भगवान बुद्ध से ये आठ वरदान मांगने का मेरा यही उद्देश्य था।

14. 'यह अच्छा है, यह अच्छा है, विशाखा। तुमने तथागत (बुद्ध) से आठ वरदान माँगकर अच्छा किया है, ऐसे लाभों को ध्यान में रखते हुए।'

और भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में मिगारा की माता विशाखा को धन्यवाद दिया;

'जो भी स्त्री, अपने जीवन में सदाचारी, परम सुखी की शिष्या, प्रसन्न मन से और लोभ पर विजय प्राप्त करके भोजन और पेय दोनों दान करती है—वह एक दिव्य दान है, जो दु:खों का नाश करके आनंद उत्पन्न करता है,—'

वह उस मार्ग पर चलकर दिव्य जीवन प्राप्त करती है जो भ्रष्टाचार और अपवित्रता से मुक्त है।

'अच्छाई का लक्ष्य रखने से वह सुखी हो जाती है, रोगमुक्त हो जाती है और दिव्य शरीर में लंबे समय तक आनंदित रहती है।'

और जब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में मिगारा की माता विशाखा को धन्यवाद दिया, तो वे अपने आसन से उठे और वहां से चले गए।

15. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें वर्षा ऋतु के वस्त्र, आने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, जाने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, बीमारों के लिए आहार, बीमारों की सेवा करने वालों के लिए भोजन, बीमारों के लिए दवा, दलिया की निरंतर आपूर्ति और भिक्षुणियों के लिए स्नान वस्त्र प्रदान करता हूँ।

विशाखाभनावर नामक अध्याय यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला (8.14) | अगला (8.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.16
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.15) | अगला (8.17) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-16.

1, 2. उस समय मीठे भोजन का सेवन करने वाले भिक्षु बेसुध और उदासीन होकर सो गए। और जो इस प्रकार सो गए थे, उन्होंने स्वप्न देखा...

3. हे भिक्षुओं, मैं शरीर, वस्त्र और विश्राम स्थल की सुरक्षा के लिए चटाई के उपयोग की अनुमति देता हूँ।

4. उस समय चटाई छोटी होने के कारण सोने की पूरी जगह को ढक नहीं पाती थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपनी इच्छानुसार बड़े आकार का आवरण बनवाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (8.15) | अगला (8.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.16) | अगला(8.18) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-17.

1. उस समय पूज्य आनंद के वरिष्ठ शिष्य, पूज्य बेलात्थासिस को पपड़ीदार घावों का रोग हो गया था; और उस पपड़ी से निकलने वाले स्राव के कारण उनके वस्त्र उनके शरीर से चिपक गए थे। भिक्षुओं ने उन वस्त्रों को पानी से गीला करके उनके शरीर से अलग किया।

भगवान बुद्ध जब विश्रामगृहों का चक्कर लगा रहे थे, तब उन्होंने उन्हें ऐसा करते देखा और उनके पास जाकर उनसे पूछा:

'हे भिक्षुओं, इस भिक्षु को क्या हुआ है?'

'आदरणीय व्यक्ति को मोटी पपड़ीदार फुंसियों का रोग है; और उसके कारण निकलने वाले स्राव से उनके वस्त्र उनके शरीर से चिपक गए हैं। इसलिए हम उन वस्त्रों को पानी से अच्छी तरह गीला कर रहे हैं, ताकि वे उनके शरीर से अलग हो जाएं।'

2. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं उन सभी को खुजली, फोड़े, स्राव या पपड़ी से पीड़ित व्यक्ति को खुजली पोंछने के लिए कपड़े का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(8.16) | अगला(8.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.18
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.17) | अगला (8.19) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-18.

1. फिर मिगारा की माता विशाखा ने चेहरा पोंछने के लिए एक कपड़ा लिया और भगवान बुद्ध के पास गईं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। इस प्रकार बैठकर मिगारा की माता विशाखा ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'भगवान बुद्ध कृपा करके मेरे इस चेहरे को पोंछने वाले कपड़े को स्वीकार करें, ताकि यह मेरे लिए दीर्घकाल तक आशीर्वाद और कल्याण का स्रोत बना रहे।'

भगवान बुद्ध ने चेहरा पोंछने के लिए कपड़ा स्वीकार किया। उन्होंने मिगारा की माता विशाखा को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। इस प्रकार उपदेश आदि ग्रहण करके वह अपने आसन से उठीं, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से गुजरकर वहां से चली गईं।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपना चेहरा पोंछने के लिए एक कपड़ा देता हूँ।'

<<<< पिछला (8.17) | अगला (8.19) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.19
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.18) | अगला (8.20) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-19.

1. उस समय रोजा मल्ला पूज्य आनंद के मित्र थे। रोजा मल्ला का एक सूती कपड़ा पूज्य आनंद के पास रखा हुआ था; और पूज्य आनंद को सूती कपड़े की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें किसी वस्तु को भरोसे पर लेने की अनुमति देता हूँ (यह सोचकर कि वह तुम्हें दी जाएगी) जब वह वस्तु ऐसे व्यक्ति की हो जिसमें ये पाँच गुण हों—वह घनिष्ठ और परिचित मित्र होना चाहिए जिससे (उसके बारे में) बात की गई हो और जो जीवित हो, (और वस्तु लेने वाले भिक्षु को) यह ज्ञात होना चाहिए कि "वस्तु लेने के बाद वह मुझसे प्रसन्न रहेगा।" हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें किसी वस्तु को भरोसे पर लेने की अनुमति देता हूँ (यह सोचकर कि वह तुम्हें दी जाएगी) जब वह वस्तु ऐसे व्यक्ति की हो जिसमें ये पाँच गुण हों।

<<<< पिछला (8.18) | अगला (8.20) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.19) | अगला (8.21) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-20.

1. उस समय भिक्षुओं के पास तीनों वस्त्र पूर्णतः उपलब्ध थे, परन्तु उन्हें जल छानने वाले बर्तनों और थैलों (अपने कुंड और अन्य सामान ले जाने के लिए) की आवश्यकता थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन उद्देश्यों के लिए आवश्यक वस्त्र के टुकड़े उपलब्ध कराता हूँ।'

2. तब भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: 'भगवान बुद्ध द्वारा स्वीकृत वस्तुएँ—तीन वस्त्र, वर्षा ऋतु के वस्त्र, चटाई, पलंग, फोड़े-फुंसियों को ढकने का कपड़ा, चेहरा पोंछने का कपड़ा, और आवश्यक वस्तुएँ (पानी छानने और थैलों के लिए)—क्या ये सभी वस्तुएँ हमें अपने पास ही रखनी चाहिए, या इन्हें समय-समय पर एक भिक्षु द्वारा दूसरे भिक्षु को सौंप देना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीनों वस्त्र अपने पास रखने और उन्हें किसी और को न सौंपने की अनुमति देता हूँ—वर्षा ऋतु के चार महीनों के दौरान वर्षा ऋतु के वस्त्र अपने पास रखो, लेकिन उसके बाद उन्हें सौंप दो—चटाई और पलंग अपने पास रखो, और उन्हें किसी और को न सौंपो—खुजली आदि के लिए वस्त्र अपने पास रखो, जब तक रोग रहे, लेकिन उसके बाद उन्हें सौंप दो—चेहरा पोंछने के लिए कपड़े और जल छानने और थैलों के लिए आवश्यक कपड़े अपने पास रखो, और उन्हें किसी और को न सौंपो।'

<<<< पिछला (8.19) | अगला (8.21) >>>>

..

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.21
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.20) | अगला(8.22) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-21.

1. अब भिक्षुओं ने सोचा: 'एक भिक्षु को सौंपने के लिए वस्त्र के आकार की सीमा क्या होनी चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम निर्धारित करता हूँ कि स्वीकृत इंच के अनुसार आठ इंच लंबाई का कोई भी वस्त्र मुझे सौंप दिया जाए।'

उस समय पूज्य महा कस्सपा का एक वस्त्र, जो पुराने कपड़ों के टुकड़ों से बना था, (उसमें जोड़े गए नए टुकड़ों के वजन के कारण) भारी हो गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इसे धागे से मोटे तौर पर जोड़ने की अनुमति देता हूँ।'

अंत में यह असमान रहा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस असंतुलन को दूर करने की अनुमति देता हूँ।'

धागे उखड़ गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें किनारे पर या उसके चारों ओर एक बुनाई या बंधन लगाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय अंतर्वस्त्र के रिबन टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आठ पैरों वाला प्राणी बनाने की अनुमति देता हूँ...'

2. उस समय जब किसी भिक्षु के लिए वस्त्रों का एक सेट बनाया जा रहा था, तो उसे पूरी तरह से फटे हुए कपड़े के टुकड़ों से बनाना असंभव था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें फटे हुए कपड़े के टुकड़ों से बने दो वस्त्र और बिना फटे कपड़े का एक वस्त्र रखने की अनुमति देता हूँ।'

फटे हुए कपड़े के टुकड़ों से दो वस्त्र बनाना और एक बिना फटे कपड़े से एक वस्त्र बनाना असंभव था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस सेट में से दो वस्त्र बिना फटे हुए टुकड़ों से और एक वस्त्र फटे हुए टुकड़ों से बनाने की अनुमति देता हूँ।'

यह भी असंभव था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (प्रत्येक वस्त्र को) आधा (फटे हुए टुकड़ों से) और आधा (बिना फटे हुए टुकड़ों से) बनाने की अनुमति देता हूँ। परन्तु बिना फटे हुए टुकड़ों से बना वस्त्रों का समूह धारण नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई भी (इस प्रकार बने वस्त्रों का समूह) धारण करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(8.20) । अगला(8.22) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.22

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.21) । अगला(8.23) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-22.

1. उस समय एक भिक्षु के पास बहुत सारे वस्त्र आ गए थे, और वह उन वस्त्रों को अपने माता-पिता को देना चाहता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'चूंकि वे उसके माता-पिता हैं, हे भिक्षुओं, हम क्या कह सकते हैं, भले ही वह उन्हें वस्त्र दे दे। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम (इस स्थिति में) अपने माता-पिता को वस्त्र दे दो। और आस्था का दान व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। जो कोई भी इसे व्यर्थ करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(8.21) | अगला(8.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.23

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.22) | अगला (8.24) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-23.

1. उस समय एक भिक्षु, जिसने अपने वस्त्र अंधवन में रखे थे, ने प्रवेश किया।

वह भिक्षु भिक्षा मांगने गांव गया (केवल कमरबंद और अधोवस्त्र पहने हुए)। चोर उसका वस्त्र चुरा ले गए। वह भिक्षु फटेहाल और बदहाल हो गया।

भिक्षुओं ने इस प्रकार कहा, 'हे मित्र, तुम फटे-पुराने वस्त्र कैसे धारण कर बैठे हो?'

'मैंने अपना वस्त्र अंधावना में जमा कर दिया था और कमरबंद और निचले वस्त्र में ही गाँव में प्रवेश किया था। चोर मेरा वह वस्त्र चुरा ले गए। तब से मैं फटे-पुराने कपड़ों में हूँ।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, केवल कमरबंद और अधोवस्त्र पहने हुए गाँव में प्रवेश न करें। जो कोई भी ऐसा करेगा वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय पूज्य आनंद अनमने ढंग से कमरबंद और अधोवस्त्र पहने हुए ही भिक्षा मांगने के लिए गांव में चले गए।

भिक्षुओं ने उससे कहा, 'क्या भगवान बुद्ध ने यह नियम नहीं बनाया है कि हमें कमरबंद और अधोवस्त्र पहनकर गांव में प्रवेश नहीं करना चाहिए? हे मित्र, तुम इस तरह गांव में क्यों चले गए?'

'यह सच है, मेरे मित्रों, कि भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि हमें इस तरह गांव में प्रवेश नहीं करना चाहिए, लेकिन मैंने यह अविवेकी रूप से किया।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. हे भिक्षुओं, त्याग करने के पाँच कारण हैं।

भिक्षु को वस्त्र त्यागने के पाँच कारण हैं—जब वह (भिक्षु) बीमार हो, जब वर्षा ऋतु का समय हो, जब नदी के उस पार जाना आवश्यक हो, जब विहार को कुंडी से अच्छी तरह बंद कर दिया गया हो, और जब कथिना समारोह संपन्न हो गया हो। हे भिक्षुओं, ये पाँच कारण हैं जिनके लिए वस्त्र त्यागा जाता है (संघति)।

हे भिक्षुओं, कमर का वस्त्र और अधोवस्त्र त्यागने के पाँच कारण हैं। [ये कारण पिछले अनुच्छेद में बताए गए कारणों के समान ही हैं।] हे भिक्षुओं, ये पाँच कारण हैं, इत्यादि।

बरसात के मौसम में पहनने के लिए वस्त्र अलग रखने के पाँच कारण हैं—जब व्यक्ति बीमार हो, जब सीमा से बाहर जाना आवश्यक हो, जब नदी के उस पार जाना आवश्यक हो, जब विहार को कुंडी से अच्छी तरह बंद कर दिया गया हो, और जब बरसात के मौसम में पहनने के लिए वस्त्र अलग रख दिया गया हो।

या तो सीजन बनाया ही नहीं गया है, या फिर अधूरा छोड़ दिया गया है।

'हे भिक्षुओं, ये पाँच कारण हैं,' इत्यादि।

<<<< पिछला (8.22) । अगला (8.24) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.24

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.23) । अगला(8.25) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-24.

1. उस समय एक भिक्षु अकेले वर्षावास करते थे। तब लोगों ने उन्हें वस्त्र देते हुए कहा, 'हम इन्हें संघ को देते हैं।'

तब उस भिक्षु ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने यह निर्धारित किया है कि संघ की न्यूनतम संख्या चार है। अब मैं अकेला हूँ, और इन लोगों ने ये वस्त्र देते हुए कहा है, "हम इन्हें संघ को देते हैं।" बेहतर होगा कि मैं इन वस्त्रों को, जो संघ की संपत्ति हैं, सावत्थी को दे दूँ।'

तब भिक्षु ने ऐसा ही किया और भगवान बुद्ध को यह बात बताई।

'हे भिक्षु, कथिना समारोह संपन्न होने तक ये वस्त्र आपके ही हैं।'

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अकेले वर्षा करे और उस स्थान के लोग उसे वर्षा का मौसम दें, तो

मैंने उन्हें वे वस्त्र दिए हैं, जो संघ के लिए हैं, - हे भिक्षुओं, मैं यह आदेश देता हूँ कि वे वस्त्र कथिना समारोह संपन्न होने तक उनके पास ही रहेंगे।

3. उस समय एक भिक्षु वर्ष के शेष समय (वर्षा ऋतु को छोड़कर) अकेले बिताता था। वहाँ के लोग (आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद 24.1 के पहले पैराग्राफ में अंत तक बताया गया है)।

तब उस भिक्षु ने ऐसा ही किया और यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप वहाँ उपस्थित संघ (चाहे संख्या में बड़ा हो या छोटा) के साथ ऐसे वस्त्र बाँट लें।'

4. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्ष के शेष समय (वर्षा ऋतु को छोड़कर) एकांतवास में बिताए, और उस स्थान के लोग उसे संघ के लिए वस्त्र दें, तो हे भिक्षुओं, मैं अनुमति देता हूँ कि वह भिक्षु उन वस्त्रों को अपने लिए धारण कर ले और कहे, "ये वस्त्र मेरे लिए हैं।" यदि कोई अन्य भिक्षु उन वस्त्रों के उस भिक्षु को दिए जाने से पहले आ जाए, तो उसे भी बराबर हिस्सा दिया जाए। यदि वस्त्रों का बंटवारा करते समय और पर्ची डालने से पहले कोई अन्य भिक्षु आ जाए, तो उसे भी बराबर हिस्सा दिया जाए। यदि वस्त्रों का बंटवारा करते समय और पर्ची डालने के बाद कोई अन्य भिक्षु आ जाए...

यदि वे आ जाएं, तो बराबर हिस्सा देना जरूरी नहीं है, यदि वे ऐसा नहीं चाहते हैं, तो उन्हें दिया जाए।'

5. उस समय दो तेरा, जो भाई थे, पूज्य इसिदासा और पूज्य इसिभट्ट, वर्षा ऋतु सावत्थी में बिताने के बाद एक गाँव में रहने चले गए। वहाँ के लोगों ने यह सोचकर कि 'इन थेराओं को यहाँ आए हुए बहुत समय हो गया है', उन्हें भोजन और वस्त्र दोनों भेंट किए।

वहाँ निवास करने वाले भिक्षुओं ने थेरों से पूछा, 'हे महोदय, ये वस्त्र संघ की संपत्ति हैं और थेरों के आगमन के कारण हमें प्राप्त हुए हैं। क्या थेरे इनमें से कुछ हिस्सा स्वीकार करेंगे?'

थेरों ने उत्तर दिया: 'जैसा कि हम भगवान बुद्ध द्वारा निर्धारित नियम को समझते हैं, कामिना समारोह संपन्न होने तक ये वस्त्र केवल आपके ही हैं।'

6. उस समय तीन भिक्षुओं ने वर्षा ऋतु राजगृह में बिताई। वहाँ के लोगों ने उन्हें वस्त्र भेंट किए और कहा, 'हम इन्हें संघ को देते हैं।'

तब उन भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि सबसे छोटा संघ चार व्यक्तियों का होना चाहिए, और हम तो केवल तीन हैं, और इन लोगों ने संघ को देने के इरादे से वस्त्र दान किए हैं। अब हमें इनका क्या करना चाहिए?'

उस समय वे पाटलिपुत्त में रह रहे थे।

कुक्कुतराम में कई थेरेपिस्ट - पूज्य नीलावासी, पूज्य सनवासी, पूज्य गोपाक, पूज्य भागू और पूज्य फालिका-संदना - उपस्थित थे। वे भिक्षु पाटलिपुत्त के पास गए और थेरेपिस्टों से पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए।

थेरों ने उत्तर दिया: 'जैसा कि हम भगवान बुद्ध द्वारा निर्धारित नियम को समझते हैं, कथिना समारोह संपन्न होने तक ये वस्त्र केवल आपके ही हैं।'

<<<< पिछला(8.23) | अगला(8.25) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.25
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.24) | अगला (8.26) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-25.

1. उस समय शाक्य वंश के पूज्य उपनंद भिक्षु वर्षा ऋतु सावत्थी में व्यतीत करके एक गाँव में निवास करने चले गए। वहाँ के भिक्षु वस्त्रों का बँटवारा करने के लिए एकत्रित हुए। उन्होंने उपनंद से कहा, “

'मित्र, ये वस्त्र संघ की संपत्ति हैं और इनका बंटवारा होने वाला है। क्या आप इनमें से कुछ हिस्सा स्वीकार करेंगे?'

'जी हां, मित्रों, मैं करूंगा,' उसने कहा; और अपना हिस्सा लेकर वहां से चला गया और कहीं और रहने लगा।

[वहाँ भी वही हुआ, और] वह वहाँ से चला गया और कहीं और रहने लगा।

[वहाँ भी वही हुआ, और इसलिए] वह वस्त्रों का एक बड़ा गट्ठा लेकर सावत्थी लौट आया।

2. भिक्षुओं ने उससे कहा: 'कितना पुण्यवान है!'

क्या ये वस्त्र शाक्य वंश के उपनंद को सौंपे जाएं?

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, उस मूर्ख को केवल एक ही भाग दो। हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षा ऋतु में दो निवासों में एकाकी रहकर अनेक वस्त्र प्राप्त करने की सोचे, तो यदि उसने ठीक आधा समय एक स्थान पर और आधा समय दूसरे स्थान पर बिताया हो, तो उसे देय वस्त्रों का आधा भाग एक स्थान पर और आधा भाग दूसरे स्थान पर दिया जाएगा; परन्तु दोनों स्थानों में से जिस स्थान पर उसने वर्षा ऋतु का अधिक समय बिताया हो, वहीं से उसे देय वस्त्र दिए जाएंगे।

<<<< पिछला (8.24) | अगला (8.26) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.26
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.25) | अगला (8.27) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-26.

1. उस समय एक भिक्षु को शौच की समस्या हुई और वह मल त्याग करते हुए लेटा रहा। भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ विश्राम स्थलों का भ्रमण करते हुए उस भिक्षु के आश्रम में पहुँचे और उसे इस अवस्था में देखा। वे उसके पास गए और उससे पूछा, 'हे भिक्षु, क्या हुआ है?'

'हे प्रभु, मेरे पेट में गड़बड़ी है।'

'तो क्या हे भिक्षु, आपकी सेवा करने वाला कोई है?'

'नहीं, प्रभु।'

'भिक्षु आपकी सेवा क्यों नहीं करते?'

'हे प्रभु, मैं भिक्षुओं की किसी भी प्रकार से सेवा नहीं कर सकता।'

2. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य से कहा

आनंद: 'जाओ, आनंद, और थोड़ा पानी ले आओ। चलो इस भिक्षु को स्नान कराते हैं।'

'जी प्रभु, ऐसा ही हो,' पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और जल ले आए। भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु पर जल डाला और पूज्य आनंद ने उसे पोंछा। भगवान बुद्ध ने उसका सिर पकड़ा और पूज्य आनंद ने उसके पैर पकड़े, फिर उसे उठाया और उसके पलंग पर लिटा दिया।

3. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा, 'हे भिक्षुओं, क्या फलां-फलां कमरे में कोई बीमार भिक्षु है?'

'हाँ, प्रभु।'

'तो फिर, हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को क्या समस्या है?'

'हे प्रभु, उसके पेट में गड़बड़ी है।'

'और हे भिक्षुओं, क्या कोई ऐसा है जो उनकी सेवा कर सके?'

'नहीं, प्रभु।'

तो फिर भिक्षु उनकी सेवा क्यों नहीं करते?

'हे प्रभु, वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं के किसी काम का नहीं है; इसलिए वे उसकी सेवा न करें।'

हे भिक्षुओं, तुम्हारे पास न तो माता-पिता हैं जो तुम्हारी सेवा करें! हे भिक्षुओं, यदि तुम एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे, तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा? हे भिक्षुओं, जो मेरी सेवा करना चाहे, वह बीमारों की सेवा करे।

4. यदि उसका कोई उपज्झाय हो, तो उसका उपज्झाय जीवन भर उसकी सेवा करे और उसके स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा करे; और यही बात उसके आचार्य (शिक्षक), साध्वी विहारी, अंतेवासिका, या किसी अन्य साथी के लिए भी लागू होती है।

साद्धि-विहारिका, या कोई साथी अंतेवासिका। और यदि उसके पास इनमें से कोई भी गुण न हो, तो संघ को उसकी सेवा करनी चाहिए; और जो कोई ऐसा नहीं करता, वह दुक्कत का दोषी होगा।

5. हे भिक्षुओं, पाँच ऐसे गुण हैं, जिनके होने पर किसी बीमार व्यक्ति की सेवा करना कठिन हो जाता है—जब वह अपने लिए उचित कार्य नहीं करता; जब उसे अपने लिए उचित भोजन की सीमा का ज्ञान नहीं होता; जब वह अपनी दवा नहीं लेता; जब वह अपनी भलाई चाहने वाली दाई को अपनी बीमारी के बारे में नहीं बताता, या जब बीमारी बढ़ रही होती है तो यह नहीं बताता, या जब बीमारी ठीक हो रही होती है तो यह नहीं बताता, या जब बीमारी स्थिर होती है तो यह नहीं बताता; और जब वह गंभीर, तीव्र, कष्टदायक, अप्रिय और जीवनदायिनी शारीरिक पीड़ाओं को सहन करने में असमर्थ हो जाता है। हे भिक्षुओं, ये पाँच गुण हैं, जिनके होने पर किसी बीमार व्यक्ति की सेवा करना कठिन हो जाता है।

6. 'हे भिक्षुओं, पाँच गुण हैं, जो किसी बीमार व्यक्ति में होने पर उसकी सेवा करना आसान होता है—जब वह ऐसा करता है' (आदि, पिछले खंड के विपरीत)।

7. हे भिक्षुओं, पाँच गुण हैं, जो बीमारों की सेवा करने वाले व्यक्ति में होने पर उसे इस कार्य के लिए अयोग्य बनाते हैं—जब वह औषधियाँ निर्धारित करने में सक्षम नहीं होता; जब वह यह नहीं जानता कि रोगी के लिए क्या अच्छा है और क्या नहीं, और वह उसके लिए जो अच्छा है उसे परोसता है और जो अच्छा है उसे नहीं परोसता; जब वह बीमारों की सेवा करता है

जब वह प्रेम के बजाय लोभ से प्रेरित हो; जब वह मल-मूत्र, लार या उल्टी को साफ करने से कतराता हो; जब वह समय-समय पर धर्म प्रवचन द्वारा रोगी को शिक्षा देने, प्रेरित करने, जागृत करने और प्रसन्न करने में सक्षम न हो। हे भिक्षुओं, ये पाँच गुण हैं, जो बीमार की सेवा करने वाले व्यक्ति में पाए जाने पर उसे इस कार्य के लिए अयोग्य बनाते हैं।

8. 'हे भिक्षुओं, पाँच गुण हैं जो बीमारों की सेवा करने वाले व्यक्ति में होते हैं, जब वह इस कार्य के लिए सक्षम होता है' (आदि, पिछले खंड के विपरीत)।

<<<< पिछला (8.25) । अगला (8.27) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.27

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.26) । अगला(8.28) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-27.

1. उस समय दो भिक्षु कोसल देश के एक ऊंचे मार्ग पर यात्रा कर रहे थे। वे एक निवास स्थान पर पहुँचे, और वहाँ उनमें से एक बीमार पड़ गया। तब भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने बीमारों की सेवा करने की बहुत प्रशंसा की है। इसलिए, हे मित्रों, हमें भी इस भिक्षु की सेवा करनी चाहिए।' और उन्होंने उसकी सेवा की, और जब तक वे उसकी देखभाल कर रहे थे, तब तक उसका प्राण थम गया। तब उन भिक्षुओं ने उस भिक्षु का कुंड और वस्त्र लेकर श्रावस्ती गए और भगवान बुद्ध को यह बात बताई।

हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु की मृत्यु होने पर संघ उसके भिक्षापात्र और वस्त्रों का स्वामी हो जाता है। परन्तु, जो बीमारों की सेवा करते हैं, वे अत्यंत सेवायोग्य होते हैं। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि बीमारों की सेवा करने वालों को संघ द्वारा भिक्षापात्र और वस्त्र सौंपे जाएँ। हे भिक्षुओं, इस प्रकार वे सौंपे जाने चाहिए। बीमारों की सेवा करने वाले भिक्षु को संघ के समक्ष जाकर यह कहना चाहिए: "हे सज्जनों, फलाँ भिक्षु ने अपना भिक्षापात्र पूरा कर लिया है। ये उनके वस्त्र और भिक्षापात्र हैं।" तब एक विवेकशील और योग्य भिक्षु को संघ के समक्ष यह प्रस्ताव रखना चाहिए, "संघ मेरी बात सुने। फलां भिक्षु ने अपना कार्यकाल पूरा कर लिया है। ये उनके वस्त्र और उनका भिक्षापात्र हैं। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ इन वस्त्रों और भिक्षापात्र को उन लोगों को सौंप दे जिन्होंने बीमारों की सेवा की है।" यही नत्ती (प्रस्ताव) है। [यहाँ एक कर्मवक के सामान्य औपचारिक शब्द आते हैं।]

3. उस समय समनेरा नाम के एक व्यक्ति ने अपना समय पूरा कर लिया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

[निर्णय और कम्मावका वही हैं जो धारा 2 में हैं।]

4. उस समय एक भिक्षु और एक समनेर एक बीमार भिक्षु की सेवा कर रहे थे; और उनकी सेवा करते-करते ही बीमार भिक्षु का समय पूरा हो गया। बीमार भिक्षु की सेवा करने वाले भिक्षु ने सोचा, 'अब बीमार भिक्षु की सेवा करने वाले समनेर को उसके वस्त्रों का उचित हिस्सा कैसे दिया जाए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि आप बीमारों की सेवा करने वाले समनेरा को भी बराबर हिस्सा दें।'

5. उस समय एक भिक्षु जो

बहुत सारी संपत्ति और भिक्षु की आवश्यक वस्तुओं की प्रचुर आपूर्ति से युक्त होकर, उन्होंने अपना समय पूरा किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु की मृत्यु होने पर संघ उसके भिक्षापात्र और वस्त्रों का स्वामी हो जाता है। परन्तु, जो बीमारों की सेवा करते हैं, वे अत्यंत सेवायोग्य होते हैं। हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि वस्त्र और भिक्षापात्र संघ द्वारा बीमारों की सेवा करने वालों को सौंप दिए जाएँ। और भिक्षु की जो भी थोड़ी-बहुत संपत्ति और आवश्यक सामग्री हो, वह वहाँ उपस्थित संघ द्वारा आपस में बाँट ली जाए; परन्तु

भिक्षु की जो भी अधिक संपत्ति और आवश्यक सामग्री हो, वह दान न की जाए और न ही बाँटी जाए, बल्कि चारों दिशाओं के संघ की हो, चाहे वे संघ में आए हों या न आए हों।

<<<< पिछला(8.26) । अगला(8.28) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.28

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.27) । अगला (8.29) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-28.

1. उस समय एक भिक्षु नग्न अवस्था में उस स्थान पर आया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और उसने कहा:

हे भगवान, भगवान बुद्ध ने संयमी और संतुष्ट व्यक्ति की अनेक प्रकार से प्रशंसा की है, जिसने बुराई का नाश किया है, जिसने अपनी वासनाओं को त्याग दिया है, जो दयालु, श्रद्धावान और ऊर्जावान है। हे भगवान, यह नग्नता संयम और संतोष, बुराई के नाश, वासनाओं के दमन, दयालुता, श्रद्धा और उत्साह के लिए अनेक प्रकार से प्रभावी है। हे भगवान, यदि भगवान बुद्ध भिक्षुओं को नग्नता का आदेश दें तो यह अच्छा होगा।

महान बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा, 'हे मूर्ख, यह अनुचित, कुटिल, अनुपयुक्त, समन के लिए अशोभनीय और अशोभनीय है, और इसे नहीं किया जाना चाहिए। हे मूर्ख, तुम तित्तिय्यों की तरह नग्नता कैसे अपना सकते हो? हे मूर्ख, इससे अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा।'

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, तित्तियों की तरह नग्नता धारण न करें। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह गंभीर अपराध (थुलकाया) का दोषी होगा।'

2. [यह पूरा खंड क्रमशः घास के वस्त्र, छाल के वस्त्र, फलक वस्त्र, बालों के वस्त्र, जंगली जानवर की खाल, उल्लू के पंख और हिरण की खाल (जिसमें खुर लगे हों) के वस्त्र पहने भिक्षु के मामले में दोहराया गया है। लेकिन 'तिथ्यियों की तरह नग्नता अपनाना' के स्थान पर क्रमशः 'घास आदि का वस्त्र पहनना, जो तिथ्यियों का प्रतीक है' प्रतिस्थापित करें।]

3. उसी समय एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया, जो अक्का पौधे की डंडियों से बने वस्त्र पहने हुए था।

[धारा-1 में पहले की तरह ही, नीचे तक:]

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, अक्का पौधे की डंठलों से वस्त्र धारण न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

[इसके बाद मकाकी रेशे से बने वस्त्र पहने भिक्षु के बारे में धारा 3 को दोहराया जाता है।]

<<<< पिछला (8.27) | अगला (8.29) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.29
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.28) | अगला (8.30) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-29.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु नीले, हल्के पीले, गहरे लाल, भूरे, काले, भूरे-पीले या गहरे पीले रंग के वस्त्र पहनते थे; वे ऐसे वस्त्र पहनते थे जिनमें स्कर्ट होती थी, जो फटे हुए कपड़े के टुकड़ों से बनी नहीं होती थी, न ही लंबी होती थी, न ही उस पर फूल होते थे, न ही नाग का फन होता था; वे तिरितक पौधे से बनी जैकेट, वस्त्र और पगड़ी पहनते थे।

लोग आक्रोशित हुए, आपस में बड़बड़ाने लगे और चिढ़कर कहने लगे, 'यह उन लोगों जैसा है जो अभी भी दुनियावी सुख-सुविधाओं में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'पूरी तरह से नीले रंग के वस्त्र [आदि; पहले अनुच्छेद में उल्लिखित सभी बातें यहाँ दोहराई गई हैं] नहीं पहनने चाहिए। जो कोई भी उन्हें पहनेगा वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (8.28) | अगला (8.30) >>>>

तिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.30
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.29) | अगला (8.31) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-30.

1. उस समय भिक्षु वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, संघ को वस्त्रों का दान प्राप्त होने से पहले ही, उस स्थान से चले गए; संघ छोड़ दिया; मर गए; स्वीकार किया कि वे समनेरा थे; या उन्होंने नियमों का त्याग कर दिया था; या उन्होंने किसी घोर अपराध का दोषी हो गए थे; या वे पागल हो गए थे; या उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था; या वे शारीरिक पीड़ा से पीड़ित थे; या उनके द्वारा किए गए किसी अपराध को स्वीकार करने, या ऐसे अपराध के लिए प्रायश्चित करने, या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने के कारण उनके विरुद्ध निलंबन घोषित किया गया था; या वे नपुंसक थे; या वे गुप्त रूप से संघ से जुड़ गए थे; या वे तित्तिय धर्म में विमुख हो गए थे; या वे पशु थे; या वे माता या पिता की हत्या के दोषी थे; या उन्होंने किसी अरहत की हत्या कर दी थी; या उन्होंने किसी भिक्षुणी का अपमान किया था; या उन्होंने संघ में फूट डाल दी थी। या फिर उन्होंने (बुद्ध का) रक्त बहाया था; या फिर वे उभयलिंगी थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद संघ को वस्त्रों का दान मिलने से पहले चला जाता है, तो भी यदि कोई व्यक्ति उसकी ओर से उन्हें ग्रहण करने के लिए उचित रूप से उपस्थित हो, तो उसे वस्त्र आवंटित किए जाएंगे।

इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, और संघ को वस्त्रों का दान प्राप्त होने से पहले, संघ छोड़ देता है, या मर जाता है, या स्वीकार करता है कि वह समनेर हो गया है, या उसने नियमों का त्याग कर दिया है, या अंत में वह किसी घोर अपराध का दोषी हो गया है, तो संघ उस वस्त्र के अंश का स्वामी हो जाता है जो उसे प्राप्त होना चाहिए था।

इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, और संघ को वस्त्रों का दान प्राप्त होने से पहले, यह स्वीकार करता है कि वह पागल हो गया है, या उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया है, या वह शारीरिक पीड़ा में है, या उसने अपने द्वारा किए गए किसी अपराध को स्वीकार करने से इनकार करने, या ऐसे अपराध के लिए प्रायश्चित करने से इनकार करने, या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने के कारण उसे निलंबित कर दिया गया है—तो भी (उसके वस्त्रों का हिस्सा) उसे आवंटित किया जाएगा यदि उसकी ओर से उन्हें ग्रहण करने के लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति उपस्थित हो।

इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, और संघ को वस्त्रों का दान प्राप्त होने से पहले, यह स्वीकार करता है कि वह नपुंसक है, या उसने गुप्त रूप से संघ में प्रवेश किया है, या वह तित्तिय संप्रदाय में शामिल हो गया है, या वह पशु है, या उसने माता की हत्या की है, या पितृहत्या की है, या उसने किसी अरहत की हत्या की है, या उसने किसी भिक्षुणी का अपमान किया है, या उसने संघ में फूट डाली है, या उसने किसी बुद्ध का रक्त बहाया है, या वह नपुंसक है—तो संघ उस वस्त्र के अंश का स्वामी हो जाता है जो उसे प्राप्त होना चाहिए था।

3. '[धारा-2 के समान नियम, यदि वह संघ को वस्त्र भेंट किए जाने के बाद, लेकिन वर्षा ऋतु में जिस स्थान पर उसने वस्त्र बिताए थे, उस स्थान के संघ के व्यक्तिगत सदस्यों के बीच वस्त्रों का विभाजन होने से पहले चला गया हो, आदि।]

4. हे भिक्षुओं, यदि भिक्षुओं के वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, किसी भी भिक्षु को वस्त्र प्राप्त होने से पहले संघ में विभाजन उत्पन्न हो जाए, और वहाँ के लोग एक पक्ष को जल और दूसरे पक्ष को वस्त्र यह सोचकर दे दें कि "हम संघ को दे रहे हैं"—तो वे वस्त्र (संपूर्ण) संघ की संपत्ति हैं।

वहां के लोग भेंट का जल एक पक्ष को देते हैं और वस्त्र भी उसी पक्ष को देते हैं, यह सोचकर कि "हम संघ को दे रहे हैं" - तब वे वस्त्र पूरे संघ की संपत्ति बन जाते हैं।

5. '[उन्हीं दो मामलों में, यदि लोग केवल एक पक्ष को ही वस्त्र देना चाहते हैं, तो वस्त्र उसी पक्ष की संपत्ति होंगे।]

6. 'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षुओं द्वारा वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद, संघ को वस्त्र दान किए जाने के बाद, लेकिन वस्त्रों का व्यक्तिगत सदस्यों में विभाजन होने से पहले, संघ में विभाजन उत्पन्न हो जाए, तो विभाजन के समय सभी को समान भाग दिया जाना चाहिए।'

<<<< पिछला (8.29) | अगला (8.31) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.31

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.30) | अगला (8.32) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-31.

1. उस समय पूज्य रेवता ने एक भिक्षु के अधीन पूज्य सारिपुत्त को एक वस्त्र भेजा और कहा, 'यह वस्त्र थेरा को दे दो।' परन्तु वह भिक्षु रास्ते में ही पूज्य रेवता के भरोसे वह वस्त्र अपने साथ ले गया।

अब पूज्य रेवता ने पूज्य सारिपुत्त से मिलकर उनसे पूछा, 'मैंने पूज्य थेरा को एक वस्त्र भेजा था। क्या वह वस्त्र उनके हाथों में पहुंचा?'

'दोस्त, मुझे उस वस्त्र के बारे में कुछ नहीं पता।'

तब पूज्य रेवता ने उस भिक्षु से कहा: 'मेरे मित्र, मैंने एक वस्त्र तुम्हारे हवाले करके थेरा के पास भेजा था। वह वस्त्र कहाँ है?'

'हे प्रभु, मैंने आप पर भरोसा रखते हुए स्वयं यह वस्त्र धारण किया।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु को वस्त्र सौंपकर यह कहे कि "यह वस्त्र फलां भिक्षु को दे दो", और वह भिक्षु रास्ते में स्वयं ही भेजने वाले के वश में उसे ले ले, तो यह सही है। परन्तु यदि वह स्वयं ही भेजने वाले के वश में उसे ले ले, तो यह गलत है।

'[वही दोहराया गया, बाद वाला मामला पहले और पहले वाला मामला अंत में रखा गया।]

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु को वस्त्र सौंपकर यह कहे कि "यह वस्त्र फलां भिक्षु को दे दो" और वह मार्ग में यह सुने कि वस्त्र भेजने वाला भिक्षु मर गया है; तो यदि वह उस वस्त्र को स्वयं मृत भिक्षु का वस्त्र समझकर रख ले, तो वह उचित है; यदि वह उसे स्वयं उस भिक्षु के पास धरोहर मानकर ले ले, तो वह अनुचित है।

'[इसी स्थिति में], यदि वह रास्ते में यह सुनता है कि जिस भिक्षु को यह भेजा गया था, उसकी मृत्यु हो गई है—तो यदि वह स्वयं उस वस्त्र को मृत भिक्षु के वस्त्र के रूप में रखता है, तो यह गलत है; यदि वह इसे भेजने वाले पर धरोहर के रूप में स्वयं ले लेता है, तो यह सही है।'

[इसी स्थिति में, यदि उसे रास्ते में पता चलता है कि दोनों की मृत्यु हो गई है—तो यदि वह उसे स्वयं किसी मृत भिक्षु के वस्त्र के रूप में रखता है, अर्थात् जिसने उसे भेजा था, तो उसे रखना उचित है; यदि वह उसे स्वयं किसी मृत भिक्षु की संपत्ति के रूप में रखता है, अर्थात् जिसे वह भेजा गया था, तो उसे रखना अनुचित है।]

3. 'इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु को वस्त्र सौंपते हुए कहे, "मैं यह वस्त्र फलां भिक्षु को देता हूँ"—तो [धारा 2 में दिए गए सभी मामलों में निर्णय उलट दिया जाता है]।'

<<<< पिछला (8.30) | अगला (8.32) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> आठवां खंडक >> 8.32
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.31) | अगला(9.1) >>>>

महावग्गा

आठवां खंडका (भिक्षुओं का वस्त्र)

अध्याय-32.

1. हे भिक्षुओं, वस्त्रों का दान प्राप्त करने के ये आठ आधार हैं—जब वह सीमावर्ती क्षेत्र को वस्त्र देता है, जब वह (अन्य संघों के साथ) समझौते के तहत (संघ को) वस्त्र देता है, जब वह भिक्षा की घोषणा पर वस्त्र देता है, जब वह संघ को वस्त्र देता है, जब वह दोनों संघों को वस्त्र देता है, जब वह उस संघ को वस्त्र देता है जिसने वर्षा ऋतु (उस स्थान पर) बिताई है, जब वह एक निश्चित संख्या को वस्त्र देता है, और जब वह एक ही भिक्षु को वस्त्र देता है।

जब वह इसे सीमा के भीतर देता है, तो इसे उन सभी भिक्षुओं में विभाजित किया जाना चाहिए जो सीमा के भीतर आए हैं।

जब वह इसे किसी ऐसे संघ को देता है जो समझौते के अधीन है, तो कई निवास स्थान होते हैं जो उन्हें जो कुछ भी मिलता है उसे साझा करते हैं, और जो एक निवास स्थान में दिया जाता है वह सभी में दिया जाता है।

'जब वह इसे दान की घोषणा पर देता है (अर्थात जब दान देने वाले कहते हैं), "हम इसे उस स्थान पर देते हैं जहाँ संघ के लिए दान की निरंतर आपूर्ति की जाती है।"

जब वह इसे संघ को देता है, तो इसे वहां उपस्थित संघ के सदस्यों के बीच विभाजित किया जाना चाहिए।

जब वह इसे दोनों संघों को देता है, तो भले ही कई भिक्षु हों और केवल एक भिक्षुणी हो, दोनों संघों को बराबर आधा-आधा दिया जाना चाहिए, और भले ही कई भिक्षुणियां हों और केवल एक भिक्षु हो, दोनों संघों को बराबर आधा-आधा दिया जाना चाहिए।

जब वह इसे उस संघ को देता है जिसने वर्षा ऋतु बिताई है, तो इसे उतने भिक्षुओं में विभाजित किया जाना चाहिए जितने भिक्षुओं ने उस विशेष निवास स्थान पर वर्षा ऋतु बिताई है।

जब वह इसे एक निर्दिष्ट संख्या को देता है, तो यह दलिया देते समय उपस्थित लोगों की संख्या होती है, या

चावल, या ठोस भोजन, या वस्त्र, या बिस्तर, या दवा।

जब वह इसे किसी एक भिक्षु को देता है, तो वह कहता है, "मैं अमुक व्यक्ति को वस्त्रों का एक सेट देता हूं।"

<<<< पिछला(8.31) । अगला(9.1) >>>>

नौवां खंडका (अधिनियमों की वैधता)
(संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.32) । अगला(9.2) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय 1।

1. उस समय बुद्ध कंपा में, गग्गरा कमल-कुंड के किनारे निवास करते थे। उस समय काशी देश में वासभा-गामा नामक एक गाँव था। वहाँ कस्सपा-गोत्ता नामक एक भिक्षु रहते थे, जो वहाँ किए जाने वाले धर्म कर्तव्यों के बंधन से बंधे हुए थे, और उन्होंने इस उद्देश्य से परिश्रम किया कि दूर-दूर से बुद्धिमान भिक्षु वहाँ आएँ, और वहाँ के बुद्धिमान भिक्षु सुखी रहें, और उस निवास स्थान पर धर्म जीवन में प्रगति हो, उन्नति हो और वह उच्च अवस्था को प्राप्त करे।

उस समय काशी देश में तीर्थयात्रा कर रहे कई भिक्षु वासभा-गाम आए। भिक्षु कस्सपा-गोत्ता ने उन्हें दूर से आते देखा; उन्हें देखते ही उन्होंने उनके लिए आसन तैयार किए, उनके पैर धोने के लिए जल, एक चौकी और एक तौलिया मंगवाया।

फिर वह उनसे मिलने गया, उनके कटोरे और उनके वस्त्र लिए, उन्हें पीने के लिए पानी दिया, उनके लिए स्नान की व्यवस्था की, और चावल का दूध और कठोर और नरम भोजन भी प्रदान किया।

अब उन परदेसी भिक्षुओं ने सोचा, 'हे मित्रों, यहाँ रहने वाला भिक्षु सचमुच दयालु है; वह हमें स्नान कराता है और चावल का दूध, तथा कठोर एवं नरम भोजन भी प्रदान करता है। हे मित्रों, यदि हम वासभा-गामा में ही ठहरें तो कैसा रहेगा?' इस प्रकार वे परदेसी भिक्षु वासभा-गामा में ठहर गए।

2. अब भिक्षु कस्सपा-गोत्ता ने सोचा, 'ये अजनबी भिक्षु अब अपनी यात्रा की थकान से विश्राम कर चुके हैं; वे पहले यहाँ का मार्ग नहीं जानते थे, परन्तु अब वे मार्ग जानते हैं। जीवन भर उन लोगों की सेवा में व्यस्त रहना वास्तव में कष्टदायक है जो स्वयं से संबंधित नहीं हैं, और लोगों से अनुरोध किया जाना अप्रिय है। यदि मैं इन भिक्षुओं को चावल-दूध और कठोर एवं नरम भोजन देना बंद कर दूं तो क्या होगा?' अतः उन्होंने उन्हें चावल-दूध और कठोर एवं नरम भोजन देना बंद कर दिया।

तब उन परदेसी भिक्षुओं ने सोचा: 'हे मित्रों, पहले यह भिक्षु हमें स्नान कराया करता था, साथ ही चावल का दूध और पौष्टिक एवं पौष्टिक भोजन भी देता था। परन्तु अब वह हमें चावल का दूध और पौष्टिक एवं पौष्टिक भोजन नहीं देता। हे मित्रों, यह भिक्षु अब हमसे क्रोधित है। इसलिए, हे मित्रों, हमें इस भिक्षु को निष्कासित कर देना चाहिए।'

3. तब वे परदेसी भिक्षु एकत्रित हुए और भिक्षु कस्सपा-गोत्ता से बोले: 'हे मित्र, पहले आप हमें स्नान कराते थे, चावल का दूध पिलाते थे और पौष्टिक एवं पौष्टिक भोजन भी देते थे। परन्तु अब आप चावल का दूध और पौष्टिक भोजन नहीं देते। हे मित्र, आपने पाप किया है; क्या आप वह पाप देख पा रहे हैं?'

'दोस्तों, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं दिख रही है।'

तब उन पराये भिक्षुओं ने भिक्षु कस्सपा-गोत्ता को उस (कथित) अपराध को देखने से इनकार करने के कारण निष्कासित कर दिया। तब भिक्षु कस्सपा-गोत्ता ने सोचा: 'मैं वास्तव में नहीं जानता कि यह अपराध है या नहीं, और क्या मैंने स्वयं कोई अपराध किया है या नहीं, और क्या मुझे निष्कासित किया गया है या नहीं, और क्या यह निर्णय वैध है या अवैध, आपत्तिजनक है या नहीं, वैध है या अवैध। क्या होगा यदि मैं कम्पा जाकर भगवान बुद्ध से इस मामले के बारे में पूछूँ?'

4. भिक्षु कस्सपा-गोत्ता ने अपने विश्राम स्थल को व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र उठाया और कम्पा की ओर चल पड़े; और उचित समय पर वे कम्पा पहुंचे और उस स्थान पर पहुंचे जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए।

अब महान बुद्धों की यह परंपरा है कि वे आने वाले भिक्षुओं का अभिवादन करते हैं। भगवान बुद्ध ने भिक्षु कस्सपा-गोत्ता से कहा, 'हे भिक्षु, क्या आप कुशल मंगल हैं? क्या आप अपना जीवन यापन कर रहे हैं? क्या आपने अपनी यात्रा बिना अधिक थके पूरी की? और हे भिक्षु, आप किस परिवार से आए हैं?'

'सब ठीक है, प्रभु; मुझे मेरी आजीविका मिल गई है, प्रभु; मैंने बिना अधिक थकावट के यात्रा पूरी कर ली है, प्रभु।'

5. 'हे प्रभु, काशी देश में वासभगामा नामक एक गाँव है। हे प्रभु, मैं वहीं निवास करता था (आदि, आगे तक): फिर वे

हे प्रभु, पराये भिक्षुओं ने उस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण मुझे निष्कासित करने का फरमान सुनाया। तब मैंने सोचा, हे प्रभु: "मैं वास्तव में नहीं जानता कि यह अपराध है या नहीं, और क्या मैंने स्वयं कोई अपराध किया है या नहीं, और क्या मुझे निष्कासित किया गया है या नहीं, और क्या यह फैसला वैध है या अवैध, आपत्तिजनक है या नहीं, वैध है या अवैध। क्या होगा यदि मैं कम्पा जाकर भगवान बुद्ध से इस विषय पर पूछ लूँ?" इसलिए मैं यहाँ आया हूँ, हे प्रभु।

6. (बुद्ध ने उत्तर दिया): 'हे भिक्षु, यह कोई अपराध नहीं है; यह कोई अपराध नहीं है। आप निर्दोष हैं; आपने कोई अपराध नहीं किया है। आपको निष्कासित नहीं किया गया है, और न ही कभी निष्कासित किया गया था; जिस दंड से आपको निष्कासित किया गया है वह गैरकानूनी, आपत्तिजनक और अमान्य है। हे भिक्षु, जाइए और वासभगम में पुनः निवास कीजिए।'

भिक्षु कस्सपा-गोत्ता ने भगवान बुद्ध के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा, 'जी प्रभु,' वे अपनी सीट से उठे और भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करके उनके चारों ओर दाहिनी ओर मुंह करके परिक्रमा करते हुए वासभा-गामा की ओर चल दिए।

7. अब (वसभा-गामा में) वे परदेसी भिक्षु संकोच और पश्चाताप से ग्रस्त हो गए:

यह तो हमारे लिए पूरी तरह से हानि है, लाभ नहीं; हमारा बुरा हाल होगा, भला नहीं होगा, क्योंकि हमने उस शुद्ध, निर्दोष भिक्षु को बिना किसी कारण के निष्कासित कर दिया। तो चलिए, कम्पा चलते हैं और वहाँ भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अपने पाप को पूरी गंभीरता से स्वीकार करते हैं।

और उन परदेसी भिक्षुओं ने अपने विश्राम स्थलों को व्यवस्थित किया, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र उठाए और कम्पा की ओर चल पड़े। उचित समय पर वे कम्पा पहुंचे और उस स्थान पर पहुंचे जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए। अब महान बुद्धों (आदि) की यह प्रथा है कि: 'हे प्रभु, सब ठीक है; हमें हमारी आजीविका मिल गई है; हमने बिना अधिक परिश्रम किए यात्रा पूरी कर ली है। हे प्रभु, काशी देश में वासभगामा नामक एक गाँव है; हम वहीं से आए हैं।'

8. 'तो क्या तुम भी, हे भिक्षुओं, वही हो जिन्होंने वहाँ रहने वाले भिक्षु को निष्कासित कर दिया है?'

'हम हैं, प्रभु।'

'इसका क्या कारण है, हे भिक्षुओं, और किस वजह से?'

'हे प्रभु, बिना किसी कारण या वजह के।'

तब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, यह अनुचित है; यह अशोभनीय, अशोभनीय, समन के योग्य नहीं, अस्वीकार्य और इससे बचना चाहिए। हे मूर्खों, तुम बिना किसी कारण के एक शुद्ध और निर्दोष भिक्षु को कैसे निष्कासित कर सकते हो? हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है।' उन्हें फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, कोई भी बिना कारण के एक शुद्ध और निर्दोष भिक्षु को निष्कासित न करे। जो ऐसा करता है, वह दुक्कत अपराध करता है।'

9. तब वे भिक्षु अपने स्थानों से उठे और अपने ऊपरी वस्त्रों को इस प्रकार समायोजित किया कि उनमें से एक को ढक लिया।

वे कंधे झुकाकर भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रार्थना करने लगे, और भगवान बुद्ध से बोले, "हे प्रभु, हमने मूर्खों, भटके हुओं, और दुखी लोगों की तरह पाप किया है, क्योंकि हमने एक शुद्ध, निर्दोष भिक्षु को बिना किसी कारण के निष्कासित कर दिया है। हे प्रभु, भगवान बुद्ध हमारे पाप को उसकी गंभीरता सहित स्वीकार करें, और हम भविष्य में ऐसा करने से बचेंगे।"

हे भिक्षुओं, सचमुच, तुम मूर्खों, भटके हुओं और दुखी लोगों की तरह पाप में डूब गए हो, क्योंकि तुमने एक शुद्ध, निर्दोष भिक्षु को बिना किसी कारण के निष्कासित कर दिया है। परन्तु हे भिक्षुओं, क्योंकि तुम अपने पाप को उसकी गंभीरता में देख रहे हो और उसका प्रायश्चित कर रहे हो, इसलिए हम इसे तुमसे स्वीकार करते हैं। हे भिक्षुओं, यही श्रेष्ठ साधना में प्रगति कहलाता है, यदि कोई अपने पाप को उसकी गंभीरता में देखे, उसका प्रायश्चित करे और भविष्य में उससे दूर रहे।

<<<< पिछला(8.32) । अगला(9.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (9.1) । अगला (9.3) >>>>

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय दो।

1. उस समय कम्पा के भिक्षुओं ने निम्नलिखित प्रकार से आधिकारिक कार्य किए: उन्होंने अपूर्ण मंडली के समक्ष अवैध कार्य किए; उन्होंने पूर्ण मंडली के समक्ष अवैध कार्य किए; उन्होंने अपूर्ण मंडली के समक्ष वैध कार्य किए; उन्होंने अपूर्ण मंडली के समक्ष वैध प्रतीत होने वाले कार्य किए; उन्होंने पूर्ण मंडली के समक्ष वैध प्रतीत होने वाले कार्य किए; एक भिक्षु ने एक भिक्षु के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा की; एक भिक्षु ने दो भिक्षुओं के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा की; एक भिक्षु ने...

कई भिक्षुओं के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा; एक भिक्षु द्वारा संघ के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा; दो भिक्षुओं द्वारा एक भिक्षु के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा... दो भिक्षुओं के विरुद्ध... कई भिक्षुओं के विरुद्ध... संघ के विरुद्ध; कई भिक्षुओं द्वारा एक भिक्षु के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा... दो भिक्षुओं के विरुद्ध... अन्य कई भिक्षुओं के विरुद्ध... संघ के विरुद्ध; एक संघ द्वारा दूसरे संघ के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा

2. जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और क्रोधित हो गए: 'कम्पा के भिक्षु निम्न प्रकार से आधिकारिक कार्य कैसे कर सकते हैं: अपूर्ण सभा के समक्ष गैरकानूनी कार्य करना (आदि, यहाँ तक कि:) एक संघ दूसरे संघ के विरुद्ध निष्कासन की घोषणा कैसे कर सकता है?'

इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, हे भिक्षुओं, कि कम्पा के भिक्षु निम्नलिखित तरीकों से आधिकारिक कार्य करते हैं, इत्यादि?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब महान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकारा: 'हे भिक्षुओं, इन मूर्ख व्यक्तियों का यह कार्य अनुचित है; यह अशोभनीय, अभद्र, समन के योग्य नहीं, अस्वीकार्य और इससे बचना चाहिए। हे भिक्षुओं, ये मूर्ख व्यक्ति निम्न प्रकार से आधिकारिक कार्य कैसे कर सकते हैं? हे भिक्षुओं, यह अधर्मियों को परिवर्तित करने के लिए उचित नहीं है।' इस प्रकार उन्हें फटकारने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

3. 'यदि कोई आधिकारिक कार्य, हे भिक्षुओं, किया जाता है

अपूर्ण मंडली द्वारा गैरकानूनी रूप से किया गया कोई भी आधिकारिक कार्य वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए। पूर्ण मंडली द्वारा गैरकानूनी रूप से किया गया कोई भी आधिकारिक कार्य वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। पूर्ण मंडली के समक्ष किया गया कोई भी प्रतीत होने वाला वैध कार्य वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई एक भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को निष्कासित करता है, तो यह वास्तविक कार्य नहीं है और इसे नहीं किया जाना चाहिए (आदि, जैसा कि अनुच्छेद में है)। यदि कोई संघ दूसरे संघ को निष्कासित करता है, तो यह वास्तविक कार्य नहीं है और इसे नहीं किया जाना चाहिए।

4. हे भिक्षुओं, संघ द्वारा किए जाने वाले चार प्रकार के आधिकारिक कार्य होते हैं: अपूर्ण मंडली द्वारा किया गया अवैध कार्य, पूर्ण मंडली द्वारा किया गया अवैध कार्य, अपूर्ण मंडली द्वारा किया गया वैध कार्य और पूर्ण मंडली द्वारा किया गया वैध कार्य।

हे भिक्षुओं, यदि कोई कार्य अवैध हो और अपूर्ण मंडली द्वारा किया जाए, तो हे भिक्षुओं, ऐसा कार्य उसकी अवैधता और अपूर्ण मंडली के कारण आपत्तिजनक और अमान्य है। हे भिक्षुओं, ऐसा कार्य नहीं किया जाना चाहिए, और न ही मैं ऐसे कार्य की अनुमति देता हूँ।

हे भिक्षुओं, यदि कोई कार्य अवैध हो और उसे पूर्ण मंडली द्वारा किया जाए, तो हे भिक्षुओं, ऐसा कार्य अपनी अवैधता के कारण आपत्तिजनक और अमान्य है। ऐसा कार्य, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, यदि कोई कार्य वैध होते हुए भी अपूर्ण मंडली द्वारा किया जाए तो ऐसा कार्य, हे भिक्षुओं, निम्नलिखित कारणों से आपत्तिजनक और अमान्य है:

मंडली की अपूर्णता। ऐसा कार्य, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, यदि कोई कार्य वैध हो और पूर्ण मंडली द्वारा किया जाए, तो हे भिक्षुओं, ऐसा कार्य उसकी वैधता और मंडली की पूर्णता के कारण निर्विवाद और वैध है। हे भिक्षुओं, ऐसा कार्य किया जाना चाहिए, और मैं ऐसे कार्य की अनुमति देता हूँ।

अत: हे भिक्षुओं, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: "जो विधिक कार्य पूर्ण मंडली द्वारा किए जाते हैं, हम भी वही कार्य करेंगे।"

<<<< पिछला (9.1) । अगला (9.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.2) । अगला(9.4) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय-3.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने निम्नलिखित प्रकार से आधिकारिक कार्य किए: उन्होंने अपूर्ण सभा के समक्ष अवैध कार्य किए (आदि, जैसा कि अध्याय-2, अनुच्छेद-1 से आगे तक है); उन्होंने पूर्ण सभा के समक्ष प्रतीत होने वाले वैध कार्य किए; उन्होंने बिना नत्ती (गति) के और (कम्मवक की) घोषणा के साथ कार्य किए; उन्होंने बिना नत्ती (गति) के और (कम्मवक की) घोषणा के साथ कार्य किए; उन्होंने बिना नत्ती (गति) के और (कम्मवक की) घोषणा के बिना कार्य किए; उन्होंने धम्म के विपरीत कार्य किए; उन्होंने विनय के विपरीत कार्य किए; उन्होंने गुरु के सिद्धांत के विपरीत कार्य किए; और उन्होंने ऐसे कार्य किए जिनका (उपस्थित भिक्षुओं ने) विरोध किया, जो अवैध, आपत्तिजनक और अमान्य थे।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज हो गए, इत्यादि। इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, हे भिक्षुओं, कि छब्बंगिया भिक्षु, इत्यादि?'

यह सच है, प्रभु, इत्यादि।

उन्हें फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई आधिकारिक कार्य अपूर्ण मंडली द्वारा अवैध रूप से किया जाता है, तो वह वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए (आदि, आगे तक)। हे भिक्षुओं, यदि कोई आधिकारिक कार्य किया जाता है जिसके विरुद्ध (उपस्थित भिक्षु) विरोध करते हैं, जो अवैध, आपत्तिजनक और अमान्य है, तो वह वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए।

3. हे भिक्षुओं, संघ द्वारा किए जा सकने वाले छह प्रकार के आधिकारिक कार्य हैं: एक गैरकानूनी कार्य, अपूर्ण मंडली द्वारा किया गया कार्य, पूर्ण मंडली द्वारा किया गया कार्य, अपूर्ण मंडली द्वारा किया गया प्रतीतिक रूप से वैध कार्य, पूर्ण मंडली द्वारा किया गया प्रतीतिक रूप से वैध कार्य, पूर्ण मंडली द्वारा किया गया वैध कार्य।

हे भिक्षुओं, कौन सा कार्य अवैध है? हे भिक्षुओं, यदि कोई एक नट्टी के साथ नट्टीदुतिया कर्म करे और कम्मवक का उच्चारण न करे, तो ऐसा कर्म अवैध है। हे भिक्षुओं, यदि कोई दो नट्टी के साथ नट्टीदुतिया कर्म करे और कम्मवक का उच्चारण न करे... एक कम्मवक के साथ नट्टी (गति) का प्रस्ताव न करे... दो कम्मवकों के साथ नट्टी (गति) का प्रस्ताव न करे, तो ऐसा कर्म अवैध है।

4. हे भिक्षुओं, यदि कोई एक नट्टी (गति) के साथ नट्टिकतुत्था क्रिया करता है और कम्मवक का उच्चारण नहीं करता है, तो ऐसा कार्य अवैध है। हे भिक्षुओं, यदि कोई दो (...तीन, ...चार) नट्टियों के साथ नट्टिकतुत्था क्रिया करता है और कम्मवक का उच्चारण नहीं करता

है, तो ऐसा कार्य अवैध है। हे भिक्षुओं, यदि कोई एक कम्मवक (...दो, ...तीन, ...चार कम्मवकों के साथ) के साथ नट्टिकतुत्था क्रिया करता है और नट्टी (गति) का प्रस्ताव नहीं करता है, तो ऐसा कार्य अवैध है। हे भिक्षुओं, ऐसे कार्यों को अवैध कार्य कहा जाता है।

5. 'और हे भिक्षुओं, अपूर्ण संगति का कार्य कौन सा है?'

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नात्तिदुतिया अनुष्ठान में मतदान के पात्र सभी भिक्षु उपस्थित न हों, यदि जिन भिक्षुओं को अपना खंड घोषित करना है उनका खंड (सभा को) सूचित न किया गया हो, और यदि उपस्थित भिक्षु विरोध करें, तो ऐसा अनुष्ठान अपूर्ण सभा द्वारा संपन्न किया जाता है।'

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नत्तिदुतिया अनुष्ठान में मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु उपस्थित हों, परन्तु यदि जिन भिक्षुओं को अपना खंडा घोषित करना है, उनका खंडा (सभा को) सूचित न किया गया हो, और यदि उपस्थित भिक्षु इसका विरोध करें, तो ऐसा अनुष्ठान अपूर्ण सभा द्वारा संपन्न किया जाता है।'

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नत्तिदुतिया अनुष्ठान में मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु उपस्थित हों, और यदि जिन भिक्षुओं को अपना खंड घोषित करना है, उनका खंड बता दिया गया हो, लेकिन यदि उपस्थित भिक्षु विरोध करें, तो ऐसा अनुष्ठान अपूर्ण मंडली द्वारा संपन्न किया जाता है।'

'यदि, हे भिक्षुओं, किसी नट्टिकतुत्थ क्रिया आदि पर।

'ऐ भिक्षुओं, ऐसे कर्म अपूर्ण सभाओं द्वारा किए गए कर्म कहलाते हैं।'

6. हे भिक्षुओं, पूर्ण सभा का कार्य कौन सा है?

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नत्तिदुतिया अनुष्ठान में मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु उपस्थित हों, यदि जिन भिक्षुओं को अपना खंड घोषित करना है उनका खंड सभा को बता दिया गया हो, और यदि उपस्थित भिक्षु विरोध न करें, तो ऐसा अनुष्ठान पूर्ण सभा द्वारा संपन्न किया जाता है।'

हे भिक्षुओं, यदि किसी नट्टिकतुत्था क्रिया (आदि, जैसा कि पिछले खंड में है) पर।

हे भिक्षुओं, ऐसे कार्यों को पूर्ण मंडली द्वारा किए गए कार्य कहा जाता है।

7. हे भिक्षुओं, अपूर्ण मंडली द्वारा किया गया कौन सा कार्य देखने में वैध प्रतीत होता है?

हे भिक्षुओं, यदि किसी नत्तिदुतिया अनुष्ठान में पहले कम्मावक की घोषणा की जाए और बाद में नत्ति का प्रस्ताव रखा जाए, तो यदि सभी भिक्षु उपस्थित न हों, तो जितने भी मतदान के पात्र हों, वे उपस्थित हों, इत्यादि।

8. हे भिक्षुओं, कौन सा ऐसा कार्य है जो पूर्ण मंडली द्वारा किया गया प्रतीततः वैध कार्य है?

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नत्तिदुतिया अनुष्ठान में पहले कम्मावक की घोषणा की जाए और उसके बाद नत्ति का प्रस्ताव रखा जाए, और यदि मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु उपस्थित हों, आदि।'

9. हे भिक्षुओं, पूर्ण मंडली द्वारा किया जाने वाला कौन सा कार्य वैध है?

हे भिक्षुओं, यदि किसी नात्तिदुतिया अनुष्ठान में पहले नात्ति प्रस्तावित की जाए और उसके बाद एक कर्मवक के साथ अनुष्ठान किया जाए, यदि मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु उपस्थित हों, यदि जिन भिक्षुओं को अपना खंड घोषित करना है उनका खंड सभा को बता दिया गया हो, और यदि उपस्थित भिक्षु विरोध न करें, तो ऐसा अनुष्ठान वैध है और पूर्ण सभा द्वारा संपन्न किया जाता है।

'हे भिक्षुओं, यदि किसी नट्टिकतुत्थ अनुष्ठान में पहले नट्टी का प्रस्ताव रखा जाए और उसके बाद तीन कम्मवकों के साथ अनुष्ठान किया जाए, और यदि मतदान के पात्र भिक्षुओं की संख्या के बराबर भिक्षु हों, तो ऐसा अनुष्ठान वैध है और पूर्ण मंडली द्वारा संपन्न किया जाता है।'

<<<< पिछला(9.2) । अगला(9.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.3) । अगला(9.5) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय-4.

1. 'संघ पाँच प्रकार के होते हैं: चार व्यक्तियों का भिक्षु संघ, पाँच व्यक्तियों का भिक्षु संघ... दस व्यक्तियों का भिक्षु संघ... बीस व्यक्तियों का भिक्षु संघ... बीस से अधिक व्यक्तियों का भिक्षु संघ।'

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु संघ में चार व्यक्ति हों, और वह विधिपूर्वक कार्य करे, और पूर्ण हो, तो वह उपसम्पदा दीक्षा, पवाराना और आभना को छोड़कर सभी आधिकारिक कार्य करने का हकदार है।'

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु संघ में पाँच व्यक्ति हों, और वह विधिपूर्वक कार्य करे, और पूर्ण हो, तो वह सभी आधिकारिक कार्यों को करने का हकदार है, सिवाय इसके कि

दो क्रियाएं, अर्थात् मध्य देशों में उपसम्पदा दीक्षा और आभना।

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु संघ में दस व्यक्ति हों, और वह विधिपूर्वक कार्य करे, और पूर्ण हो, तो वह आभना को छोड़कर सभी आधिकारिक कार्य करने का हकदार है।'

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु संघ में बीस व्यक्ति हों, और वह विधिपूर्वक कार्य करे, और पूर्ण हो, तो वह सभी आधिकारिक कार्य करने का हकदार है।'

'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु संघ में बीस से अधिक व्यक्ति हों, और वह विधिपूर्वक कार्य करे, और पूर्ण हो, तो वह सभी आधिकारिक कार्य करने का हकदार है।'

2. हे भिक्षुओं, कोई भी आधिकारिक कार्य जिसमें चार व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक हो, यदि किसी ऐसे समूह द्वारा किया जाए जिसमें चौथी भिक्षुणी (भिक्षुणी) हो, तो वह वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, कोई भी आधिकारिक कार्य जिसमें चार व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक हो, यदि किसी ऐसे समूह द्वारा किया जाए जिसमें चौथा भिक्षुणी हो, ... जिसमें चौथा भिक्षुणी हो, ... जिसमें चौथा भिक्षुणी हो, ... जिसमें चौथा भिक्षुणी किसी अन्य समुदाय का हो, ... जिसमें चौथा भिक्षुणी किसी अन्य सीमा के भीतर रहने वाला हो, ... जिसमें अलौकिक शक्ति द्वारा वायु में स्थिर किया गया व्यक्ति हो...

चौथा, ... जिसमें संघ द्वारा कार्यवाही शुरू किया गया व्यक्ति चौथा होता है—वह कोई वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए।'

चार व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले कृत्यों से संबंधित विनियमों का अंत।

3-5. 'हे भिक्षुओं, कोई भी आधिकारिक कार्य, जिसमें पाँच (...दस, ...बीस) व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक हो, यदि किसी ऐसे समूह द्वारा किया जाता है जिसमें भिक्षुणी आदि पाँचवीं (...दसवीं, ...बीसवीं) हो, तो वह वास्तविक कार्य नहीं है और उसे नहीं किया जाना चाहिए।'

पांच (दस, बीस) व्यक्तियों द्वारा किए गए कृत्यों के संबंध में विनियमों का अंत।

---

6. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी ऐसे समुदाय में, जिसमें परिवास अनुशासन की सजा प्राप्त व्यक्ति चौथा हो, परिवास, मूलय पतिकसन और मनत्ता की कार्यवाही शुरू की जाती है, या यदि किसी ऐसे समुदाय में, जिसमें ऐसा व्यक्ति बीसवां हो, आभना प्रदान की जाती है, तो यह कोई वास्तविक कार्य नहीं है और इसे नहीं किया जाना चाहिए।

'यदि, हे भिक्षुओं, किसी सभा में कोई व्यक्ति जिसे मूलय पतिकस्सन की सजा मिलनी चाहिए... जिसे मनत्त की सजा मिलनी चाहिए... जो मनत्त अनुशासन के अधीन है...

जिस पर अभना की सजा दी जानी चाहिए, वह परिवास, मूलय पतिकस्सना और मनत्ता की कार्यवाही शुरू करता है, या यदि कोई सभा जिसमें ऐसा व्यक्ति बीसवां है, अभना प्रदान करती है, तो यह कोई वास्तविक कार्य नहीं है और इसे नहीं किया जाना चाहिए।

7. हे भिक्षुओं, सभा में उठाया गया विरोध कुछ लोगों के लिए प्रभावी होता है, कुछ लोगों के लिए अप्रभावी होता है।

'हे भिक्षुओं, वे कौन से व्यक्ति हैं जिनका विरोध सभा में व्यर्थ हो जाता है?'

हे भिक्षुओं, सभा में किसी भिक्षुणी द्वारा उठाया गया विरोध निष्प्रभावी होता है। हे भिक्षुओं, सभा में किसी विद्यार्थी आदि द्वारा उठाया गया विरोध, और संघ द्वारा जिसके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है, वह भी निष्प्रभावी होता है। हे भिक्षुओं, ये वे व्यक्ति हैं जिनका विरोध सभा में उठाने पर निष्प्रभावी होता है।

8. हे भिक्षुओं, वे कौन से व्यक्ति हैं जिनकी सभा में उठाई गई आपत्ति प्रभावी होती है?

हे भिक्षुओं, स्वस्थ मन वाले, एक ही समुदाय के सदस्य, एक ही सीमा के भीतर रहने वाले भिक्षु का विरोध भी

यदि उसने ऐसा पाप किया हो जिसका सीधा दंड नरक में मिलता हो, तो सभा में उसका विरोध करना प्रभावी होता है। हे भिक्षुओं, यही वह व्यक्ति है जिसका विरोध सभा में किया जाता है।

9. हे भिक्षुओं, निष्कासन (किसी व्यक्ति के विरुद्ध घोषित) के दो मामले होते हैं। हे भिक्षुओं, यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध निष्कासन (पूर्व में) घोषित न किया गया हो, और संघ उसके विरुद्ध निष्कासन घोषित करता है, तो कुछ ऐसे हैं जिनके विरुद्ध ऐसा निष्कासन विधिवत घोषित किया गया है, और अन्य ऐसे हैं जिनके विरुद्ध यह अनुचित रूप से घोषित किया गया है।

हे भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जिसके विरुद्ध यदि पहले निष्कासन की घोषणा न की गई हो और संघ उसके विरुद्ध निष्कासन की घोषणा करता है, तो निष्कासन अनुचित माना जाता है? हे भिक्षुओं, यदि कोई शुद्ध, निर्दोष भिक्षु हो, और संघ उसके विरुद्ध निष्कासन की घोषणा करता है, तो निष्कासन अनुचित माना जाता है। हे भिक्षुओं, ऐसे व्यक्ति को वह व्यक्ति कहा जाता है जिसके विरुद्ध यदि पहले निष्कासन की घोषणा न की गई हो और संघ उसके विरुद्ध निष्कासन की घोषणा करता है, तो निष्कासन अनुचित माना जाता है।

हे भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जिसके विरुद्ध विधिवत निष्कासन घोषित किया गया है? हे भिक्षुओं, यदि कोई अज्ञानी, अनपढ़ भिक्षु हो, जो लगातार अपराध करता हो, जो अपराध को पहचानने में असमर्थ हो, और जो अनुचित रूप से गृहस्थ समाज में रहता हो...

यदि कोई व्यक्ति गृहस्थों के साथ संगति करता है, तो संघ द्वारा निष्कासन की घोषणा करना विधिवत सिद्ध हो जाता है। हे भिक्षुओं, इसे ही गृहस्थ कहा जाता है।

10. हे भिक्षुओं, निष्कासित भिक्षु की पुनःस्थापन के दो मामले हैं। हे भिक्षुओं, यदि किसी व्यक्ति को पहले पुनःस्थापन नहीं दिया गया था, और संघ उसे पुनःस्थापन देता है, तो कुछ ऐसे हैं जिन्हें विधिवत पुनःस्थापन दिया गया होगा, और कुछ ऐसे हैं जिन्हें अनुचित रूप से पुनःस्थापन दिया गया होगा।

हे भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जिसे अनुचित रूप से पुनःस्थापन दिया गया है? हे भिक्षुओं, वह नपुंसक जिसे पहले पुनःस्थापन नहीं दिया गया था और जिसे संघ पुनःस्थापन देता है, उसे अनुचित रूप से पुनःस्थापन दिया गया है। वह व्यक्ति जो गुप्त रूप से संघ से जुड़ गया है, आदि, जिसे पहले पुनःस्थापन नहीं दिया गया था और जिसे संघ पुनःस्थापन देता है, उसे अनुचित रूप से पुनःस्थापन दिया गया है।

'हे भिक्षुओं, इसे वह व्यक्ति कहा जाता है जिसे अनुचित रूप से पुनर्स्थापन प्रदान किया गया है। हे भिक्षुओं, इन्हें वे व्यक्ति कहा जाता है जिन्हें विधिवत रूप से पुनर्स्थापन प्रदान किया गया है।'

11. 'हे भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जिसे विधिवत रूप से पुनर्स्थापन प्रदान किया गया है?'

वासभा-गम भानवर कहे जाने वाले पहले भानवर का समापन।

<<<< पिछला(9.3) | अगला(9.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.4) | अगला(9.6) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय-5.

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा अपराध न हो जिसे कोई भिक्षु देखे (या स्वयं द्वारा किए गए अपराध के रूप में स्वीकार करे), और यदि संघ, या कई भिक्षु, या कोई एक व्यक्ति उसे फटकारें (और कहें): "हे मित्र, तुमने अपराध किया है; क्या तुम वह अपराध देखते हो?" और वह उत्तर दे: "हे मित्रों, ऐसा कोई अपराध नहीं है जिसे मैं देख सकूँ," और संघ उस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण उसके निष्कासन की घोषणा करे, तो यह एक गैरकानूनी कार्य है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा अपराध न हो जिसके लिए भिक्षु को प्रायश्चित करना पड़े, इत्यादि।

'यदि हे भिक्षुओं, कोई ऐसा झूठा सिद्धांत न हो जिसका भिक्षु को त्याग करना पड़े, इत्यादि।'

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा अपराध न हो जिसे भिक्षु को देखना चाहिए, और न ही कोई ऐसा अपराध हो जिसका उसे प्रायश्चित करना चाहिए, और यदि संघ, या कई भिक्षु, या कोई एक व्यक्ति उसे डांटे (और कहे): "हे मित्र, तुमने अपराध किया है; क्या तुम वह अपराध देखते हो? उस अपराध का प्रायश्चित करो,"—और वह उत्तर दे: "हे मित्रों, ऐसा कोई अपराध नहीं है जिसे मुझे देखना चाहिए; कोई अपराध नहीं है,"

मित्रों, जिसके लिए मुझे प्रायश्चित करना चाहिए," और संघ उस अपराध को देखने से इनकार करने या उस अपराध के लिए प्रायश्चित करने से इनकार करने के लिए उसके खिलाफ निष्कासन की घोषणा करता है, - यह एक गैरकानूनी कार्य है।

6-7. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु कोई अपराध देखे, और यदि संघ, या कई भिक्षु, या कोई अकेला व्यक्ति उसे डांटे (और कहे): "हे मित्र, तुमने अपराध किया है; क्या तुम वह अपराध देखते हो?" और वह उत्तर दे: "हाँ, मित्रों, मैं देखता हूँ," और संघ उस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण उसे निष्कासित कर दे, तो यह एक गैरकानूनी कार्य है।

'यदि हे भिक्षुओं, कोई ऐसा अपराध हो जिसके लिए किसी भिक्षु को प्रायश्चित करना पड़े, इत्यादि।'

8-9. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा अपराध हो जिसे कोई भिक्षु देखे, और यदि संघ, या कई भिक्षु, या कोई अकेला व्यक्ति उसे फटकारें (और कहें): "हे मित्र, तुमने अपराध किया है; क्या तुम वह अपराध देखते हो?"—और वह उत्तर दे: "हे मित्रों, ऐसा कोई अपराध नहीं है जिसे मैं देख सकूँ," और संघ उस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण उसके निष्कासन की घोषणा करे,—तो यह एक वैध कार्य है।'

<<<< पिछला(9.4) | अगला(9.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.5) | अगला(9.7) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय-6.

1. और पूज्य उपली उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठकर पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, यदि पूर्ण मंडली किसी ऐसे कार्य को करे जिसमें (आरोपी भिक्षु की) उपस्थिति आवश्यक हो, और वह भी उनकी अनुपस्थिति में, तो क्या यह कार्य, हे प्रभु, धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न है?"

'यह कार्य, उपली, धम्म और विनय के विरुद्ध गैरकानूनी रूप से किया जाता है।'

2. हे प्रभु, यदि पूर्ण मंडली ऐसा कार्य करे जिसमें (आरोपी भिक्षु से) उत्तर मांगा जाना चाहिए, और उससे उत्तर न मांगे—यदि वह ऐसा कार्य करे जिसमें (अपराधी का) इकबालिया बयान आवश्यक हो, और उससे इकबालिया बयान न ले—यदि वह ऐसे भिक्षु को, जिसे सतिविनय दिया जाना चाहिए, अमुलहविनय प्रदान करे—यदि वह ऐसे भिक्षु के विरुद्ध, जिसे अमुलहविनय दिया जाना चाहिए, तसपपिय्यसिककम्म की कार्यवाही करे—यदि वह ऐसे भिक्षु के विरुद्ध, जिसके विरुद्ध तसपपिय्यसिककम्म की कार्यवाही करे—यदि वह ऐसे भिक्षु के विरुद्ध, जिसके विरुद्ध तसपपिय्यसिककम्म की कार्यवाही करे, निस्यकम्म की कार्यवाही करे—यदि वह ऐसे भिक्षु के विरुद्ध, जिसके विरुद्ध निस्यकम्म की कार्यवाही करे, यदि किसी भिक्षु के विरुद्ध पब्बागनियाकम्मा के साथ कार्यवाही की जाती है, तो पतिसरनियाकम्मा के साथ कार्यवाही की जाती है, तो उक्खेपनियाकम्मा के साथ कार्यवाही की जाती है, तो उक्खेपनियाकम्मा के साथ कार्यवाही की जाती है, तो उस भिक्षु को परिवास की सजा दी जाती है, जिसे परिवास की सजा दी जानी चाहिए, तो उसे मूलय पतिकस्सना की सजा दी जाती है, और यदि किसी भिक्षु को मूलय पतिकस्सना की सजा दी जाती है, तो उसे मनत्त की सजा दी जाती है, और यदि किसी भिक्षु को मनत्त की सजा दी जानी चाहिए, तो उसे आभना का आदेश दिया जाता है, और यदि किसी भिक्षु को आभना प्रदान किया जाना चाहिए, तो उसे उपसम्पदा प्रदान की जाती है। दीक्षा, क्या यह कार्य, हे प्रभु, धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न किया गया है?

3. 'हे उपली, यह धम्म और विनय के विरुद्ध गैरकानूनी कार्य है। यदि कोई पूर्ण मंडली, हे उपली, ऐसा कार्य करती है जिसमें (आरोपी भिक्षु की) उपस्थिति आवश्यक हो, और उसकी अनुपस्थिति में (आदि, आगे तक) किसी ऐसे भिक्षु को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करती है

जिसे आभना प्रदान किया जाना चाहिए, तो हे उपली, यह कार्य धम्म और विनय के विरुद्ध गैरकानूनी है, और इस प्रकार यह संघ कानून का उल्लंघन करता है।'

4. 'हे प्रभु, यदि पूर्ण मंडली ऐसा कोई कार्य करती है जिसमें (आरोपी भिक्षु की) उपस्थिति आवश्यक हो, और उसकी उपस्थिति में (आदि, आगे तक) उस व्यक्ति को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करती है, जिसे उपसंपदा दीक्षा प्रदान की जानी चाहिए, तो क्या यह कार्य, हे प्रभु, धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न है?'

उपाली, यह कार्य धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न है। यदि कोई पूर्ण मंडली उपसंपदा दीक्षा सहित कोई कार्य संपन्न करती है, तो उपाली, इस स्थिति में यह कार्य धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न होता है, और इस स्थिति में यह संघ विधि का उल्लंघन नहीं करता है।

5. 'हे प्रभु, यदि पूर्ण मंडली किसी ऐसे भिक्षु को, जिसे सतिविनय दिया जाना चाहिए, अमुलहविनय प्रदान करती है, और ऐसे भिक्षु को, जिसे अमुलहविनय दिया जाना चाहिए, सतिविनय प्रदान करती है (आदि, आगे तक), और ऐसे भिक्षु को, जिसे आभान दिया जाना चाहिए, उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करती है, और ऐसे व्यक्ति को, जिसे उपसम्पदा दीक्षा दी जानी चाहिए, आभान का आदेश देती है, तो क्या यह कार्य, हे प्रभु, धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न है?'

6. 'हे उपली, यह धम्म और विनय के विरुद्ध अवैध कार्य है। यदि पूर्ण संघ किसी भिक्षु आदि को यह वरदान देता है, तो हे उपली, इस स्थिति में यह कार्य धम्म और विनय के विरुद्ध अवैध है, और ऐसी स्थिति में यह संघ विधि का उल्लंघन करता है।'

7. 'हे प्रभु, यदि पूर्ण मंडली किसी ऐसे भिक्षु को सतिविनय प्रदान करती है जिसे सतिविनय प्रदान किया जाना चाहिए, और किसी ऐसे भिक्षु को मूलविनय प्रदान करती है जिसे मूलविनय प्रदान किया जाना चाहिए (आदि, आगे तक), किसी ऐसे भिक्षु को आभान प्रदान करती है जिसे आभान प्रदान किया जाना चाहिए, और किसी ऐसे व्यक्ति को उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करती है जिसे उपसम्पदा दीक्षा प्रदान की जानी चाहिए, तो क्या यह कार्य, हे प्रभु, धम्म और विनय के अनुसार विधिवत संपन्न है?'

8. 'यह विधि, उपली, धम्म और विनय (आदि, आगे तक) के अनुसार विधिवत संपन्न की जाती है, और ऐसे में यह संघ कानून का उल्लंघन नहीं करता।'

9. भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, यदि पूर्ण संघ किसी ऐसे भिक्षु को, जिसे सतिविनय दिया जाना चाहिए, अमूलविनय प्रदान करता है, तो हे भिक्षुओं, यह कार्य धर्म और विनय के विरुद्ध अवैध है, और इस प्रकार संघ कानून का उल्लंघन करता है। हे भिक्षुओं, यदि पूर्ण संघ किसी ऐसे भिक्षु के विरुद्ध, जिसे सतिविनय दिया जाना चाहिए, तसपपिय्यसिककम्मा (आदि, आगे तक) स्थापित करता है, और उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त व्यक्ति को आभना का आदेश देता है, तो हे भिक्षुओं, यह कार्य धर्म और विनय के विरुद्ध अवैध है, और इस प्रकार संघ कानून का उल्लंघन करता है।'

दूसरे भानवर का अंत, जिसमें उपाली के प्रश्न शामिल हैं।

<<<< पिछला(9.5) | अगला(9.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> नौवां खंडक >> 9.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.6) | अगला(10.1) >>>>

महावग्गा

नौवां खंडक (संघ के औपचारिक कार्यों की वैधता और अवैधता)

अध्याय 7।

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु विवाद करने वाला, झगड़ालू, कलह करने वाला और संघ के समक्ष लगातार प्रश्न उठाता रहे, और अन्य भिक्षु आपस में कहें, "हे मित्रों, यह भिक्षु वास्तव में विवाद करने वाला, झगड़ालू आदि है; तो चलो हम इसके विरुद्ध तज्जनीयकम्मा से कार्यवाही करें।" और वे अपूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से तज्जनीयकम्मा से इसके विरुद्ध कार्यवाही करते हैं, और फिर वह उस जिले से दूसरे जिले में चला जाता है। वहाँ भिक्षु आपस में कहते हैं, "हे मित्रों, संघ ने अपूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से तज्जनीयकम्मा से इस भिक्षु के विरुद्ध कार्यवाही की है; तो चलो हम इसके विरुद्ध तज्जनीयकम्मा से कार्यवाही करें।" और वे पूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से तज्जनीयकम्मा से इसके विरुद्ध कार्यवाही करते हैं, और फिर वह उस जिले से फिर दूसरे जिले में चला जाता है। और वहाँ भिक्षु फिर आपस में कहते हैं (आदि, नीचे तक:) और वे अपूर्ण मंडली के साथ विधिवत रूप से तज्जनीयकम्मा लेकर उसके विरुद्ध आगे बढ़ते हैं... प्रतीततः विधिवत रूप से मंडली के साथ... प्रतीततः विधिवत रूप से पूर्ण मंडली के साथ।

2-5. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वाद-विवाद करने वाला हो, इत्यादि।

6. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अज्ञानी, अनपढ़, लगातार अपराध करने वाला, अपराध को पहचानने में असमर्थ और गृहस्थ समाज में अनुचित रूप से गृहस्थों के साथ संगति करने वाला हो, और अन्य भिक्षु आपस में कहें, "हे मित्रों, यह भिक्षु वास्तव में अज्ञानी, अनपढ़ आदि है; तो चलो हम इसके विरुद्ध निस्सायकम्म से कार्रवाई करें," और वे अपूर्ण मंडली आदि के साथ अवैध रूप से इसके विरुद्ध निस्सायकम्म से कार्रवाई करते हैं।

7. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु गृहस्थों के लिए हानिकारक जीवन व्यतीत करता है और बुराई में लिप्त रहता है, और अन्य भिक्षु आपस में कहते हैं, "हे मित्रों, यह भिक्षु गृहस्थों के लिए हानिकारक जीवन व्यतीत करता है और बुराई में लिप्त रहता है; तो चलो हम उसके विरुद्ध पब्बागनियाकम्मा से कार्यवाही करें," इत्यादि।

8. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु गृहस्थों को अपशब्द कहे और गाली दे, और दूसरे भिक्षु आपस में कहें, "हे मित्रों, यह भिक्षु गृहस्थों को अपशब्द कहता है; तो चलो हम उसके विरुद्ध पतिसरणियकम्मा लेकर आगे बढ़ें," इत्यादि।

9-11. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अपराध करके उस अपराध को देखने से इनकार कर दे, और दूसरे भिक्षु आपस में कहें, "हे मित्रों, इस भिक्षु ने अपराध किया है और वह उस अपराध को देखने से इनकार कर रहा है; तो चलो, उसके इस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण उसे निष्कासित कर देते हैं," इत्यादि।

12-13. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, जिसके विरुद्ध संघ ने तज्जनियाकम्मा की कार्यवाही की है, उचित आचरण करता है, संयमी जीवन जीता है, तपस्या से मुक्ति पाने की इच्छा रखता है, और तज्जनियाकम्मा के दंड को निरस्त करने का निवेदन करता है, तो अन्य भिक्षु आपस में कहते हैं, "हे मित्रों, यह भिक्षु, जिसके विरुद्ध संघ ने तज्जनियाकम्मा की कार्यवाही की है, वास्तव में उचित आचरण करता है; संयमी जीवन जीता है, इत्यादि; तो आइए, हम उसके विरुद्ध सुनाया गया तज्जनियाकम्मा का दंड निरस्त कर दें।" और वे अपूर्ण सभा के साथ अवैध रूप से उसके विरुद्ध सुनाया गया तज्जनियाकम्मा का दंड निरस्त कर देते हैं। फिर वह उस जिले से दूसरे जिले में जाता है। वहाँ भिक्षु आपस में कहते हैं, "हे मित्रों, इस भिक्षु के विरुद्ध सुनाया गया तज्जनियाकम्मा का दंड संघ द्वारा अपूर्ण सभा के साथ अवैध रूप से निरस्त कर दिया गया है," इत्यादि।

14. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, जिसके विरुद्ध संघ ने निस्सायकम्मा . . . . पब्बागनियाकम्मा . . . . पतिसरनियाकम्मा . . . . जिसके विरुद्ध संघ ने किसी अपराध को देखने से इनकार करने . . . . किसी अपराध के प्रायश्चित से इनकार करने . . . . किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने के कारण निष्कासन की घोषणा की है, उचित आचरण करता है, इत्यादि।

15. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु विवाद करने वाला, झगड़ालू, कलह करने वाला और संघ के समक्ष लगातार प्रश्न उठाता रहे, और दूसरे भिक्षु आपस में कहें, “हे मित्रों, यह भिक्षु वास्तव में विवाद करने वाला, झगड़ालू आदि है; तो चलो हम उसके विरुद्ध तज्जनीयकम्मा से कार्यवाही करें।” और वे अपूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से तज्जनीयकम्मा से उसके विरुद्ध कार्यवाही करते हैं। अब उस क्षेत्र में रहने वाले संघ में यह विवाद उत्पन्न होता है कि क्या यह अपूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से किया गया कार्य है, या पूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से किया गया कार्य है, या अपूर्ण मंडली के साथ विधिपूर्वक किया गया कार्य है, या अपूर्ण मंडली के साथ विधिपूर्वक किया गया कार्य है जो विधिपूर्वक प्रतीत होता है, या पूर्ण मंडली के साथ विधिपूर्वक किया गया कार्य है जो विधिपूर्वक प्रतीत होता है, या ऐसा कार्य है जो किया ही नहीं गया है, या गलत तरीके से किया गया है, और जिसे पुनः किया जाना है। इस मामले में, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु कहते हैं: "यह अपूर्ण मंडली के साथ किया गया एक अवैध कार्य है"—और जो भिक्षु कहते हैं: "यह एक ऐसा कार्य है जो किया ही नहीं गया, खराब तरीके से किया गया, जिसे फिर से किया जाना है"—ये भिक्षु इस मामले में सही हैं।

16. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु वाद-विवाद में लिप्त हो (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 15 में नीचे दिया गया है): और वे उसके विरुद्ध पूर्ण मंडली के साथ अवैध रूप से तज्जनीयकम्मा लेकर कार्यवाही करें... अपूर्ण मंडली के साथ विधिवत रूप से... अपूर्ण मंडली के साथ प्रतीततः विधिवत रूप से... पूर्ण मंडली के साथ प्रतीततः विधिवत रूप से। अब उस जिले में निवास करने वाले संघ के बीच (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 15 में दिया गया है)।

17-20. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अज्ञानी, अनपढ़ हो,' इत्यादि।

नौवें खंडक का अंत, जिसमें कम्पा में घटी घटनाओं का वर्णन है।

<<<< पिछला(9.6) । अगला(10.1) >>>>

दसवां खंडक (विभाजन)
(संघ के भीतर विभाजन)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.7) । अगला(10.2) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय 1।

1. उस समय महान बुद्ध कोसंबी में घोषिताराम में निवास करते थे।

उस समय एक भिक्षु ने एक अपराध किया था जिसे वह स्वयं अपराध मानता था, जबकि अन्य भिक्षु उसे अपराध नहीं मानते थे। बाद में उसने उस अपराध को अपराध मानना बंद कर दिया और अन्य भिक्षुओं ने उसे अपराध मान लिया।

तब उन भिक्षुओं ने उस भिक्षु से कहा: 'मित्र, तुमने अपराध किया है; क्या तुम्हें वह अपराध दिखाई देता है?'

(उन्होंने उत्तर दिया): 'मित्रों, मुझे कोई अपराध दिखाई नहीं देता।'

तब उन भिक्षुओं ने (अपने निर्णय के लिए बिरादरी की सर्वसम्मति प्राप्त करके) उस भिक्षु को उस अपराध को देखने से इनकार करने के कारण निष्कासन की घोषणा की।

2. अब वह भिक्षु विद्वान था; उसने आगमों का अध्ययन किया था; वह धम्म, विनय, मतिका को जानता था; वह बुद्धिमान, ज्ञानी, समझदार, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और प्रशिक्षण के लिए उत्सुक था।

और वह भिक्षु अपने साथियों और भिक्षुओं में से मित्रों के पास गया और उनसे कहा: 'यह कोई अपराध नहीं है, मित्रों; यह कोई अपराध नहीं है।'

मैं निर्दोष हूँ; मैंने कोई अपराध नहीं किया है; मुझे निष्कासित नहीं किया गया है; जिस दंड से मुझे निष्कासित किया गया है वह गैरकानूनी, आपत्तिजनक और अमान्य है। धम्म और विनय के अनुसार, आदरणीय लोग मेरे पक्षधर बनें।

इस प्रकार उस भिक्षु ने अपने साथियों और मित्रों को भिक्षुओं के बीच अपने पक्ष में कर लिया।

और उन्होंने समस्त देश के भिक्षुओं में अपने साथियों और मित्रों के पास एक दूत भेजा (इस संदेश के साथ): 'यह कोई अपराध नहीं है, मित्रों; यह कोई अपराध नहीं है (आदि, आगे तक)। आदरणीय भिक्षु धम्म और विनय के अनुसार मेरे समर्थक बनें।'

इस प्रकार उस भिक्षु ने पूरे देश के भिक्षुओं में से अपने साथियों और मित्रों को भी अपने पक्ष में कर लिया।

3. अब वे भिक्षु जो निष्कासित भिक्षु के समर्थक थे, उस स्थान पर गए जहाँ उसे निष्कासित करने वाले थे। उनके पास पहुँचकर उन्होंने निष्कासित भिक्षुओं से कहा, "यह कोई अपराध नहीं है, मित्रों; यह कोई अपराध नहीं है। यह भिक्षु निर्दोष है; यह भिक्षु किसी अपराध का दोषी नहीं है। यह भिक्षु निष्कासित नहीं है; इस भिक्षु को निष्कासित नहीं किया गया है। जिस दंड से इसे निष्कासित किया गया है वह गैरकानूनी, आपत्तिजनक और अमान्य है।"

जब उन्होंने ऐसा कहा, तो उस भिक्षु को निष्कासित करने वाले भिक्षुओं ने निष्कासित भिक्षु के समर्थकों से कहा: 'यह अपराध है, मित्रों; यह कोई मामूली अपराध नहीं है। यह भिक्षु अपराधी है; यह भिक्षु निर्दोष नहीं है। यह भिक्षु निष्कासित है; यह भिक्षु निष्कासित नहीं है। जिस दंड से इसे निष्कासित किया गया है, वह उचित, निर्विवाद और वैध है। हे पूज्यजनों, इस निष्कासित भिक्षु का पक्ष न लें; उसका अनुसरण न करें।'

लेकिन निष्कासित भिक्षु के समर्थकों ने, यद्यपि उन्हें निष्कासित करने वाले भिक्षुओं ने उनसे ऐसा कहा था, फिर भी उस निष्कासित भिक्षु का पक्ष लेते हुए उसका अनुसरण किया।

4. एक भिक्षु उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गया। उनके निकट बैठकर उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, एक भिक्षु ने एक अपराध किया है जिसे वह अपराध मानते हैं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1-3 में आगे बताया गया है)। परन्तु हे प्रभु, निष्कासित भिक्षु के समर्थकों ने, यद्यपि निष्कासित भिक्षुओं ने उन्हें ऐसा कहा था, फिर भी उस निष्कासित भिक्षु का पक्ष लिया और उसका अनुसरण किया।'

5. तब भगवान बुद्ध ने कहा: 'भिक्षु संघ विभाजित हो गया है! भिक्षु संघ विभाजित हो गया है!' और वे अपने आसन से उठकर उन भिक्षुओं के पास गए जिन्होंने निष्कासन का फैसला सुनाया था। उनके पास पहुँचकर वे उस आसन पर बैठ गए जो उन्होंने तैयार किया था। वहाँ बैठकर भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु के निष्कासन का फैसला सुनाने वाले भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, यह मत सोचो कि चाहे कुछ भी हो जाए, किसी भिक्षु को यह कहकर निष्कासित कर दो कि "ऐसा करना हमारे मन में आया; ऐसा करना हमारे मन में आया।"'

6. हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने कोई ऐसा अपराध किया हो जिसे वह स्वयं अपराध न मानता हो, जबकि अन्य भिक्षु उसे अपराध मानते हों—यदि हे भिक्षुओं, वे भिक्षु उस भिक्षु के विषय में यह जानते हों: "यह आदरणीय भाई विद्वान हैं; उन्होंने आगमों का अध्ययन किया है; वे धम्म, विनय, मतिका के ज्ञाता हैं; वे बुद्धिमान, ज्ञानी, समझदार, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और प्रशिक्षण के प्रति सजग हैं। यदि हम उस भिक्षु को उस अपराध को न देखने के कारण निष्कासित कर दें, और उस भिक्षु के साथ उपोसथ न करें, बल्कि उसके बिना उपोसथ करें, तो यह बात संघ में कलह, विवाद, मतभेद, झगड़े, विभाजन, फूट, वियोग और फूट का कारण बनेगी,"—तो हे भिक्षुओं, ऐसे भिक्षुओं को, जो इस प्रकार के अपराध का कारण बनने से भयभीत हों, संघ में कलह, कलह, मतभेद, विभाजन, फूट और विभाजन का कारण बनना चाहिए। उस भिक्षु के अपराध को स्वीकार करने से इनकार करने के कारण, उसके निष्कासन की घोषणा न की जाए।

7. 'यदि हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु ने (आदि, ऊपर दिए गए अनुसार, नीचे तक) अपराध किया हो।' क्या हमें उस भिक्षु को उस अपराध को देखने से इनकार करने के लिए निष्कासित कर देना चाहिए, और क्या हमें उस भिक्षु के साथ पवाराना नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके बिना पवाराना करना चाहिए, और उस भिक्षु के साथ आधिकारिक कार्य नहीं करने चाहिए, बल्कि उसके बिना आधिकारिक कार्य करने चाहिए, और उस भिक्षु के साथ अपनी सीटों पर नहीं बैठना चाहिए, बल्कि उसके बिना अपनी सीटों पर बैठना चाहिए, और उस भिक्षु के साथ चावल का दूध नहीं पीना चाहिए, बल्कि उसके बिना चावल का दूध पीना चाहिए, और उस भिक्षु के साथ भोजन कक्ष में नहीं बैठना चाहिए, बल्कि उसके बिना भोजन कक्ष में बैठना चाहिए, और उस भिक्षु के साथ एक छत के नीचे नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसके बिना एक छत के नीचे रहना चाहिए, और उस भिक्षु के साथ वरिष्ठता के अनुसार एक दूसरे को आदरपूर्वक प्रणाम करने, अपनी सीटों से उठने, एक दूसरे के सामने हाथ जोड़ने और सभी उचित कर्तव्यों का पालन नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके बिना करना चाहिए? वरिष्ठता, कर्तव्य आदि—यह मामला संघ में विवाद का कारण बनेगा (जैसा कि अनुच्छेद 6 में अंत तक बताया गया है)।

8. और भगवान बुद्ध ने निष्कासन का फैसला सुनाने वाले भिक्षुओं से इस प्रकार बात करने के बाद, अपने आसन से उठकर निष्कासित भिक्षु के समर्थकों के पास गए। उनके पास पहुँचकर वे उनके द्वारा तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठकर भगवान बुद्ध ने निष्कासित भिक्षु के समर्थकों से कहा: 'हे भिक्षुओं, यह मत सोचो कि यदि तुमने कोई अपराध किया है, तो तुम्हें उस अपराध के लिए प्रायश्चित करने की आवश्यकता नहीं है, (अपने मन में यह कहते हुए): "हम निर्दोष हैं।"' हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने कोई ऐसा अपराध किया हो जिसे वह स्वयं अपराध न मानता हो, जबकि अन्य भिक्षु उसे अपराध मानते हों—यदि, हे भिक्षुओं, वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं के विषय में यह जानता हो: "ये पूजनीय भाई विद्वान हैं (आदि, आगे तक): प्रशिक्षण के लिए उत्सुक हैं। यह असंभव है कि वे मेरे कारण, या किसी अन्य के कारण, लालसा, द्वेष, भ्रम, भय में लिप्त हो जाएँ। यदि ये भिक्षु उस अपराध को न देखने के कारण मुझे संघ से निष्कासित कर दें, और मेरे साथ उपोसथ न करें, बल्कि मेरे बिना उपोसथ करें, और मेरे साथ पवारण न करें, बल्कि मेरे बिना पवारण करें (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 7 में है), तो यह मामला संघ में फूट का कारण बनेगा,"—ऐसी स्थिति में, हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को फूट उत्पन्न करने के भय से, अपने भाइयों के अधिकार पर उस अपराध को स्वीकार करो।' और भगवान बुद्ध ने निष्कासित भिक्षु के समर्थकों से इस प्रकार कहकर अपने आसन से उठकर चले गए।

9. उस समय निष्कासित भिक्षु के समर्थक भिक्षुओं ने उपोसथ को पकड़कर सीमा के भीतर उसी स्थान पर आधिकारिक कार्य किए। वहीं दूसरी ओर, जिन भिक्षुओं ने उसे निष्कासित किया था, वे सीमा के बाहर गए और वहाँ उपोसथ को पकड़कर आधिकारिक कार्य किए।

अब उस भिक्षु को निष्कासित करने वालों में से एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गया; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वह उनके निकट बैठ गया। उनके निकट बैठे हुए उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, उस निष्कासित भिक्षु के पक्षधर भिक्षु उसी स्थान पर, सीमा के भीतर, उपोसथ धारण करते हैं और धार्मिक कार्य करते हैं। दूसरी ओर, हम, जिन्होंने उसे निष्कासित किया है, सीमा के बाहर जाकर वहाँ उपोसथ धारण करते हैं और धार्मिक कार्य करते हैं।"

(बुद्ध ने उत्तर दिया): 'हे भिक्षु, यदि वे भिक्षु, जो उस निष्कासित भिक्षु के पक्षधर हैं, उसी स्थान पर, सीमा के भीतर, मेरे द्वारा निर्धारित नत्ती और अनुसवना के नियमों के अनुसार उपोसथा धारण करें और आधिकारिक कार्य करें, तो उनके द्वारा किए गए ये आधिकारिक कार्य वैध, निर्विवाद और मान्य होंगे। और यदि आप, हे भिक्षुओं, जिन्होंने उस भिक्षु को निष्कासित किया है, उसी स्थान पर, सीमा के भीतर (आदि, नीचे तक): उपोसथा धारण करें और आधिकारिक कार्य करें, तो वे वैध होंगे।'

10. 'और ऐसा क्यों है? ये भिक्षु उस संप्रदाय से संबंधित नहीं हैं जिससे आप संबंधित हैं, और आप उस संप्रदाय से संबंधित नहीं हैं जिससे वे संबंधित हैं।'

हे भिक्षु, दो स्थितियाँ हैं जिनमें एक भिक्षु (यद्यपि वह एक ही सीमा के भीतर रहता हो) दूसरे संप्रदाय का माना जाता है: या तो वह स्वयं किसी दूसरे संप्रदाय का सदस्य बन जाता है, या संघ की पूर्ण सभा उसके द्वारा स्वयं किए गए अपराध को देखने, प्रायश्चित करने या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने पर उसे निष्कासित कर देती है। हे भिक्षु, ये दो स्थितियाँ हैं जिनमें एक भिक्षु को दूसरे संप्रदाय का माना जाता है।

हे भिक्षु, दो स्थितियाँ हैं जिनमें एक भिक्षु (उपरोक्त श्रेणियों में से किसी एक का) उसी समुदाय (उसी सीमा के भीतर अपने भाइयों के साथ) का पुनः सदस्य बन जाता है; या तो वह स्वयं उस समुदाय का पुनः सदस्य बन जाता है, या संघ, उसे किसी अपराध को देखने से इनकार करने, प्रायश्चित करने से इनकार करने, या किसी झूठे सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने के कारण निष्कासित करने के बाद, उसे पूर्ण समुदाय में पुनः शामिल कर लेता है। हे भिक्षु, ये दो स्थितियाँ हैं जिनमें एक भिक्षु उसी समुदाय का पुनः सदस्य बन जाता है।

<<<< पिछला(9.7) । अगला(10.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.1) । अगला (10.3) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय दो।

1. उस समय भिक्षुओं के बीच, जिनके बीच भोजन कक्ष में और घरों के बीच कहासुनी, विवाद और झगड़े उत्पन्न हो गए थे, उन्होंने हावभाव और शब्दों में एक-दूसरे के प्रति अनुचित व्यवहार किया और मारपीट करने लगे।

लोग नाराज़ हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए (कहते हुए), 'ये शाक्यपुत्रीय भिक्षु कैसे ऐसा कर सकते हैं, जब उनके बीच कहा-सुनी, विवाद और झगड़े हुए हैं, और वे मारपीट तक पहुँच गए हैं?' कुछ भिक्षुओं ने उन नाराज़, बड़बड़ाते और क्रोधित लोगों को सुना। संयमी भिक्षु भी नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित हो गए (कहते हुए), 'भिक्षु कैसे ऐसा कर सकते हैं, जब उनके बीच कहा-सुनी हुई है?'

इन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, इत्यादि?'

'यह सच है, प्रभु।'

उन्हें फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे भिक्षुओं, जब संघ में फूट पड़ गई हो, और भिक्षुओं के बीच अनैतिक आचरण और शत्रुता व्याप्त हो, तब तुम्हें अपने-अपने स्थानों पर (अलग-अलग) बैठकर मन ही मन कहना चाहिए: "कम से कम हम एक-दूसरे के प्रति हावभाव या शब्दों में अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे, और आपस में हाथापाई नहीं करेंगे।" हे भिक्षुओं, जब संघ में फूट पड़ गई हो, और भिक्षुओं के बीच उचित आचरण और मित्रता व्याप्त हो, तब तुम एक-एक करके दोनों ओर से (एक साथ) बैठ सकते हो।'

उस समय भिक्षुओं के बीच मतभेद, विवाद और झगड़े उत्पन्न हो गए थे, और वे सभाओं में एक-दूसरे को तीखे शब्दों से आहत करते थे, और उस प्रश्न का समाधान करने में असमर्थ थे।

फिर एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट खड़े हो गए। उनके पास खड़े होकर उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, जिन भिक्षुओं के बीच कलह, विवाद और झगड़े उत्पन्न हो गए हैं, वे सभाओं में एक-दूसरे को कटु शब्दों से आहत करते हैं और इस समस्या का समाधान नहीं कर पाते। हे प्रभु, कृपा करके भगवान बुद्ध उन भिक्षुओं के पास करुणावश जाएँ।”

और भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

तब भगवान बुद्ध उन भिक्षुओं के पास गए; उनके पास पहुँचकर वे उस आसन पर बैठ गए जो उन्होंने तैयार किया था। वहाँ बैठकर भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'बस करो, हे भिक्षुओं, कोई विवाद नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई कलह नहीं!'

जब उन्होंने ऐसा कहा, तो गलत पक्ष के अनुयायी एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, सत्य के राजा भगवान बुद्ध धैर्य रखें! हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस जीवन में प्राप्त आनंद का शांतिपूर्वक आनंद लें! इन विवादों, कलह, इस फूट और झगड़े की जिम्मेदारी केवल हमारी ही है।”

और दूसरी बार भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'बस करो, हे भिक्षुओं, इत्यादि।' और दूसरी बार उस भिक्षु ने, जो गलत पक्ष में था, भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध, इत्यादि।' तब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से इस प्रकार कहा:

3. हे भिक्षुओं, पुराने समय में बनारस में काशी का एक राजा रहता था, जिसका नाम ब्रह्मदत्त था। वह धनी, धनी, राजस्वी, सेना और वाहनों से संपन्न एक विशाल राज्य का स्वामी था, जिसके खजाने और भंडारगृह भरे हुए थे। वहीं कोसल का एक राजा भी था, जिसका नाम दिघीति था। वह धनी नहीं था, धनी, राजस्वी, सेना और वाहनों से रहित एक छोटे राज्य का स्वामी था, जिसके खजाने और भंडारगृह खाली थे।

'और हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी सेना की चारों टुकड़ियों को पंक्तिबद्ध करके कोसल के राजा दिघिति से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया।'

कोसल के राजा दिघिति ने हे भिक्षुओं, यह सुना: "काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी सेना की चारों टुकड़ियों को तैयार करके मुझसे युद्ध करने के लिए निकल पड़े हैं।" तब कोसल के राजा दिघिति ने सोचा, हे भिक्षुओं: "काशी के राजा ब्रह्मदत्त धनी और समृद्ध हैं; और मैं धनहीन और गरीब हूँ। मैं काशी के राजा ब्रह्मदत्त के एक आक्रमण का भी सामना नहीं कर सकता। यदि मैं पहले ही नगर छोड़कर भाग जाऊँ तो क्या होगा?"

'और कोसल के राजा दिघिति, हे भिक्षुओं, अपनी रानी को साथ लेकर नगर से पहले ही भाग गए थे।'

तब काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने, हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति की सेनाओं और वाहनों, राज्य, खजानों और भंडारगृहों पर विजय प्राप्त की और उन पर अधिकार कर लिया।

हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति अपनी पत्नी के साथ बनारस के लिए निकले। स्थान-स्थान भटकते हुए वे बनारस पहुँचे, और हे भिक्षुओं, बनारस में कोसल के राजा दिघिति अपनी पत्नी के साथ नगर के निकट एक स्थान पर कुम्हार के घर में एक घुमंतू तपस्वी के वेश में रहने लगे।

4. हे भिक्षुओं, कुछ ही समय बाद कोसल के राजा दिघिति की रानी गर्भवती हो गई। उसे गर्भवती स्त्रियों की तीव्र इच्छा हुई; और सूर्योदय के समय उसने शुभ भूमि पर कवचधारी, चार सेनाओं से सुसज्जित सेना को देखने और तलवारों को धोने वाले जल को पीने की इच्छा की।

और हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति की रानी ने कोसल के राजा दिघिति से कहा: "हे प्रभु, मैं गर्भवती हूँ और मुझे गर्भाधान की तीव्र इच्छा हो रही है; और सूर्योदय के समय, आदि।"

(राजा ने उत्तर दिया): "हे रानी, हम जैसे संकटग्रस्त लोगों के लिए, कवचधारी, सुसज्जित, शुभ भूमि पर खड़ी, और तलवारों को धोने वाले जल से युक्त, चार सेनाओं वाली सेना कहाँ से आएगी?"

(रानी ने कहा): "यदि मुझे यह प्राप्त नहीं हुआ, हे स्वामी, तो मैं मर जाऊंगी।"

5. हे भिक्षुओं, उस समय काशी के राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थी पुरोहित ब्राह्मण, कोसल के राजा दिघिति के मित्र थे। हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति उस स्थान पर गए जहाँ काशी के राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थी पुरोहित ब्राह्मण थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थी पुरोहित ब्राह्मण से कहा: "मेरी प्रियतम, आपकी सहेली गर्भवती है, और उसे गर्भ धारण करने की तीव्र इच्छा हो रही है; और वह (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है)"

(ब्राह्मण ने उत्तर दिया): "अच्छा, हे राजा, चलिए रानी को भी देख लेते हैं।"

'फिर, हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति की रानी उस स्थान पर गईं जहाँ राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थ पुरोहित ब्राह्मण उपस्थित थे।'

काशी में, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थ पुरोहित उस ब्राह्मण ने कोसल के राजा दिघिति की रानी को दूर से आते देखा। उन्हें देखते ही वह अपने आसन से उठे, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार समायोजित किया कि एक कंधा ढक जाए, अपने हाथ जोड़कर कोसल के राजा दिघिति की रानी की ओर तीन बार यह उद्घोषणा की: "यद्यपि कोसल का राजा तुम्हारे गर्भ में निवास करता है! निश्चय ही कोसल का राजा तुम्हारे गर्भ में निवास करता है!" (और आगे उन्होंने कहा): "हे रानी, निराश मत हो, सूर्योदय के समय तुम्हें चार सेनाओं वाली, कवचधारी, शुभ भूमि पर खड़ी सेना के दर्शन होंगे, और तुम्हें तलवारों को धोने वाले जल का पान प्राप्त होगा।"

6. हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त के गृहस्थ पुरोहित ब्राह्मण, काशी के राजा ब्रह्मदत्त के पास गए। उनके पास पहुँचकर उन्होंने काशी के राजा ब्रह्मदत्त से कहा, "हे प्रभु, जो संकेत प्रकट हो रहे हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि कल सूर्योदय के समय, चार सेनाओं वाली एक सेना, कवचधारी होकर, शुभ भूमि पर डेरा डालेगी और तलवारें धोई जाएंगी।"

तब, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने सेवकों को आदेश दिया: "मेरे मित्रों, मेरे गृहस्थ पुजारी ब्राह्मण जो तुमसे कहें, वही करो।"

'इस प्रकार, हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति की रानी ने सूर्योदय आदि के दर्शन प्राप्त किए और उस जल का सेवन किया जिसमें तलवारें धोई गई थीं।'

और, हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति की रानी ने जब अपने गर्भ में पल रहे बच्चे को परिपक्व होते देखा, तो एक बालक को जन्म दिया। उन्होंने उसका नाम रखा

उसे दिघावु ("लोंगेवल") कहा गया। और हे भिक्षुओं, शीघ्र ही युवा दिघावु विवेकशील हो गया।

7. हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति ने सोचा, "काशी के इस राजा ब्रह्मदत्त ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है। उसने हमारे सैनिकों और वाहनों, हमारे राज्य, हमारे खजाने और भंडारगृहों को लूट लिया है। यदि वह हमें यहाँ पा ले, तो वह हम तीनों को मरवा देगा। यदि मैं युवा दिघवु को नगर के बाहर ठहरा दूँ तो क्या होगा?"

तब कोसल के राजा दिघिति ने, हे भिक्षुओं, युवा दिघवु को नगर के बाहर रहने के लिए कहा। और हे भिक्षुओं, नगर के बाहर रहते हुए युवा दिघवु ने शीघ्र ही सभी कलाएँ सीख लीं।

8. हे भिक्षुओं, उस समय कोसल के राजा दिघिति का नाई काशी के राजा ब्रह्मदत्त के दरबार में रहता था। हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति के इस नाई ने कोसल के राजा दिघिति को अपनी पत्नी के साथ बनारस में, नगर के पास एक कुम्हार के घर में, एक घुमंतू तपस्वी के वेश में रहते हुए देखा। जब उसने उन्हें देखा, तो वह उस स्थान पर गया जहाँ काशी के राजा ब्रह्मदत्त थे, और उनके पास पहुँचकर उसने काशी के राजा ब्रह्मदत्त से कहा, "महाराज, कोसल के राजा दिघिति अपनी पत्नी के साथ बनारस में, नगर के पास एक कुम्हार के घर में, एक घुमंतू तपस्वी के वेश में रहते हैं।"

9. तब, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने सेवकों को आदेश दिया: "ठीक है, मेरे मित्रों, कोसल के राजा दिघिति और उनकी पत्नी को मेरे सामने लाओ।"

और हे भिक्षुओं, उन लोगों ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के इस आदेश को यह कहकर स्वीकार किया,

"जी महाराज," और उन्होंने कोसल के राजा दिघीति और उनकी पत्नी को उनके सामने पेश किया।

तब, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने सेवकों को आदेश दिया: "हे मेरे मित्रों, कोसल के राजा दिघिति और उनकी पत्नी को मजबूत रस्सियों से कसकर बांध दो, उनके हाथ उनकी पीठ से बांध दो, उनके बाल मुंडवा दो, ढोल की तेज थाप के साथ उन्हें एक सड़क से दूसरी सड़क और एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक घुमाओ, फिर उन्हें दक्षिणी द्वार से शहर से बाहर ले जाओ, शहर के दक्षिण में उनके चार टुकड़े कर दो, और उन टुकड़ों को चारों दिशाओं में फेंक दो।"

और हे भिक्षुओं, उन लोगों ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के इस आदेश को "जी महाराज" कहकर स्वीकार किया, और कोसल के राजा दिघिति और उनकी पत्नी को मजबूत रस्सियों से कसकर बांध दिया, उनके हाथ उनकी पीठ से बांध दिए, उनके बाल मुंडवा दिए, और ढोल की तेज थाप के साथ उन्हें एक सड़क से दूसरी सड़क और एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक घुमाया।

10. हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने सोचा, "मैंने बहुत समय से अपने माता-पिता को नहीं देखा है। क्या होगा यदि मैं जाकर अपने माता-पिता को देख लूँ?" और हे भिक्षुओं, युवा दिघावु बनारस में प्रवेश किया और उसने अपने माता-पिता को मजबूत रस्सियों से कसकर बंधे हुए, उनकी भुजाएँ पीठ से बंधी हुई, मुंडे हुए, और ढोल की तेज़ थाप के साथ एक गली से दूसरी गली और एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक ले जाते हुए देखा। यह देखकर वह अपने माता-पिता के पास गया।

कोसल के राजा दिघिति ने, हे भिक्षुओं, दूर से युवा दिघवु को आते देखा; युवा दिघवु को देखकर उन्होंने उससे कहा: "हे मेरे प्रिय दिघवु, न अधिक देर तक देखो, न ही कम देर तक देखो। क्योंकि हे मेरे प्रिय दिघवु, घृणा से घृणा शांत नहीं होती; हे मेरे प्रिय दिघवु, घृणा का निर्वाह करने से घृणा शांत होती है।"

11. "हे भिक्षुओं, जब उन्होंने ऐसा कहा, तो लोगों ने कोसल के राजा दिघिति से कहा, 'कोसल का यह राजा दिघिति पागल है और बड़बड़ाता है। इस दिघ्वु से उसका क्या लेना-देना है? वह कौन है जिससे वह कहता है: देर तक मत देखो, इत्यादि?'" (दिघिति ने उत्तर दिया): "हे मेरे मित्रों, मैं पागल नहीं हूँ, न ही मैं बड़बड़ाता हूँ। जो बुद्धिमान है वह इसे समझ जाएगा।"

और दूसरी बार, इत्यादि। और तीसरी बार, हे भिक्षुओं, कोसल के राजा दिघिति ने युवा दिघावु से कहा, इत्यादि। और तीसरी बार लोगों ने कहा (आदि, नीचे तक): "जो चतुर है वह इसे समझ जाएगा।"

'फिर हे भिक्षुओं, उन लोगों ने कोसल के राजा दिघिति और उनकी पत्नी को एक मार्ग से दूसरे मार्ग और एक चौराहे से दूसरे चौराहे तक घुमाया, उन्हें दक्षिणी द्वार से शहर से बाहर निकाला, शहर के दक्षिण में उनके चार टुकड़े किए, टुकड़ों को चारों दिशाओं में फेंक दिया, वहां सैनिकों की एक टुकड़ी तैनात की और चले गए।'

12. हे भिक्षुओं, तब युवा दिघावु बनारस गया, वहाँ से उसने मादक पेय लिया और उन सैनिकों को पिलाया। जब वे नशे में चूर होकर गिर पड़े, तो उसने (दोनों शवों के) टुकड़े इकट्ठा किए, चिता बनाई, अपने पिता और माता के शवों को उस चिता पर रखा, उसे आग लगा दी और हाथ जोड़कर तीन बार चिता की परिक्रमा की।

हे भिक्षुओं, उस समय काशी के राजा ब्रह्मदत्त अपने भव्य महल की छत पर चढ़ गए थे। हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने युवा दिघावु को देखा, जो हाथ जोड़कर चिता की तीन परिक्रमा कर रहा था। यह देखकर उन्होंने सोचा, "निःसंदेह यह व्यक्ति कोसल के राजा दिघिति का कोई रिश्तेदार या संबंधी है। हाय, मेरा दुर्भाग्य है कि कोई मुझे इसका अर्थ नहीं बता रहा है!"

13. हे भिक्षुओं, युवा दिघावु वन में गया। वहाँ वह जी भर रोया। फिर उसने अपने आँसू पोंछे, बनारस नगर में प्रवेश किया, राजमहल के पास स्थित हाथी के अस्तबल में गया और हाथी प्रशिक्षक से कहा: "हे गुरु, मैं आपकी कला सीखना चाहता हूँ।"

"अच्छा, मेरे प्यारे नौजवान, इसे सीख लो।"

हे भिक्षुओं, युवा दिघावु रात में, भोर के समय उठे और हाथी के अस्तबल में मधुर स्वर में गीत गाते और वीणा बजाते रहे। हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने रात में, भोर के समय उठकर हाथी के अस्तबल में उस मधुर गायन और वीणा की ध्वनि सुनी। यह सुनकर उन्होंने अपने सेवकों से पूछा, "हे मेरे मित्रों, रात में, भोर के समय कौन उठा है और हाथी के अस्तबल में इतने मधुर स्वर में गीत गा रहा है और वीणा बजा रहा है?"

14. (परिचारकों ने उत्तर दिया): "महाराज, फलां हाथी प्रशिक्षक का एक युवा शिष्य रात में, भोर में उठा और उसने हाथी के अस्तबल में बहुत ही सुंदर स्वर में गीत गाया और वीणा बजाई।"

(राजा ने कहा): "ठीक है, मेरे मित्रों, उस युवक को मेरे पास लाओ।"

'हे भिक्षुओं, उन लोगों ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के उस आदेश को "जी महाराज" कहकर स्वीकार किया और युवा दिघावु को उनके पास ले आए।'

"क्या तुम ही हो, मेरे भले नौजवान, जो रात में उठे हो, इत्यादि?"

"जी हां, महाराज।"

"अच्छा, मेरे प्यारे नौजवान, मेरे सामने गाओ और वीणा बजाओ।"

'हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के इस आदेश को "जी महाराज" कहकर स्वीकार किया और राजा की कृपा पाने के लिए उसने सुरीली आवाज में गीत गाए और वीणा बजाई।'

और काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने, हे भिक्षुओं, युवा दिघावु से कहा: "मेरे भले युवक, मेरे सेवक बनो।"

हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के इस आदेश को "जी महाराज" कहकर स्वीकार किया। हे भिक्षुओं, युवा दिघावु काशी के राजा ब्रह्मदत्त का सेवक बन गया; वह उनके सामने उठता, उनके पीछे लेटता, उनकी सभी आज्ञाओं का सहर्ष पालन करता, उनके आचरण में प्रसन्नता और उनके वचनों में मधुरता का प्रयोग करता। हे भिक्षुओं, शीघ्र ही काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने युवा दिघावु को घनिष्ठ विश्वास का पद प्रदान किया।

15. हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने युवा दिघावु से कहा, "हे मेरे मित्र, रथ में घोड़े लगाओ; हम शिकार पर चलते हैं।" हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, "जी महाराज," और रथ में घोड़े लगाकर काशी के राजा ब्रह्मदत्त से कहा, "महाराज, आपके रथ में घोड़े लगा दिए गए हैं; अब आप जो चाहें कर सकते हैं।"

'हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त रथ पर सवार हुए, और युवा दिघावु ने रथ चलाया: और उसने रथ को इस प्रकार चलाया कि राजकक्ष एक दिशा में गया और रथ दूसरी दिशा में चला गया।'

और लंबी यात्रा के बाद, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने युवा दिघावु से कहा: "अच्छा, मेरे युवा मित्र, अब रथ रोक दो। मैं थक गया हूँ; मैं लेटना चाहता हूँ।"

हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त का यह आदेश स्वीकार करते हुए कहा, "जी महाराज," और रथ रोककर पालथी मारकर जमीन पर बैठ गए। हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त भी युवा दिघावु की गोद में सिर रखकर लेट गए; और थकान के कारण वे पल भर में सो गए।

16. हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने सोचा, "काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है। उसने हमारे सैनिकों और वाहनों, हमारे राज्य, हमारे खजाने और भंडारगृहों को लूट लिया है। उसने मेरे माता-पिता को मार डाला है। अब समय आ गया है कि मैं अपने क्रोध को शांत करूँ।" (ऐसा सोचते हुए) उसने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली। फिर, हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने सोचा, "मेरे पिता ने अपनी मृत्यु के समय मुझसे कहा था: 'हे मेरे प्रिय दिघावु, देर तक मत देखो, न ही जल्दी देखो। क्योंकि हे मेरे प्रिय दिघावु, क्रोध घृणा से शांत नहीं होता; हे मेरे प्रिय दिघावु, घृणा का निर्वाह करने से ही क्रोध शांत होता है।' अपने पिता के वचन का उल्लंघन करना मुझे उचित नहीं होगा।" (ऐसा सोचते हुए) उसने अपनी तलवार रख दी।

और दूसरी बार... और तीसरी बार युवा दिघावु ने सोचा, हे भिक्षुओं: "काशी के इस राजा ब्रह्मदत्त ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है" (आदि, नीचे तक:)--(ऐसा सोचते हुए) उसने अपनी तलवार रख दी।

हे भिक्षुओं, उसी क्षण काशी के राजा ब्रह्मदत्त भयभीत, आतंकित, व्यथित और घबराए हुए अचानक उठ खड़े हुए।

और हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने राजा से कहा

काशी के ब्रह्मदत्त ने पूछा, "हे राजा, आप अचानक भयभीत, आतंकित, व्यथित और घबराए हुए क्यों उठ खड़े हुए हैं?"

(राजा ने उत्तर दिया): "मेरे युवा मित्र, मैंने स्वप्न देखा कि कोसल के राजा दिघिति के पुत्र युवा दिघावु अपनी तलवार लेकर मुझ पर आक्रमण करने आए; इसलिए मैं अचानक भयभीत, आतंकित, व्यथित और चिंतित होकर उठ खड़ा हुआ हूँ।"

17. तब, हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के सिर को अपने बाएं हाथ से सहलाते हुए और अपने दाहिने हाथ से तलवार निकालते हुए काशी के राजा ब्रह्मदत्त से कहा, "हे राजा, मैं वही युवा दिघावु हूँ, जो कोसल के राजा दिघिति का पुत्र हूँ। आपने हमें बहुत हानि पहुँचाई है। आपने हमारे सैनिकों और वाहनों, हमारे राज्य, हमारे खजाने और भंडारगृहों को लूट लिया है। और आपने मेरे माता-पिता को मार डाला है। अब समय आ गया है कि मैं अपने प्रतिशोध को शांत करूँ।"

तब, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त युवा दिघावु के सामने गिर पड़े, उनके चरणों में सिर झुकाकर उनसे कहा: "हे मेरे प्रिय दिघावु, मुझे मेरा जीवनदान दे! हे मेरे प्रिय दिघावु, मुझे मेरा जीवनदान दे!"

"हे राजा, मैं आपको आपका जीवन कैसे प्रदान कर सकता हूँ? हे राजा, यह तो आप ही हैं जो मुझे मेरा जीवन प्रदान करें!"

"अच्छा, मेरे प्रिय दिघावु, तो मुझे मेरा जीवनदान दे दो, और मैं तुम्हें तुम्हारा जीवनदान दे दूंगा।"

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त और युवा दिघावु ने एक दूसरे को अपने प्राणों का बलिदान दिया और एक दूसरे का हाथ पकड़कर शपथ ली कि वे एक दूसरे को कोई हानि नहीं पहुंचाएंगे।

और काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने, हे भिक्षुओं, युवा दिघावु से कहा: "अच्छा, मेरे प्रिय दिघावु, अब रथ में घोड़े लगाओ; हम चलेंगे।"

और हे भिक्षुओं, युवा दिघावु ने काशी के राजा ब्रह्मदत्त के इस आदेश को स्वीकार करते हुए कहा, "जी महाराज," और रथ में घोड़े लगा दिए, और काशी के राजा ब्रह्मदत्त से कहा: "हे महाराज, आपके रथ में घोड़े लगा दिए गए हैं; अब आप जो चाहें कर सकते हैं।"

'हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त रथ पर सवार हुए, और युवा दिघावु ने रथ चलाया; और उसने रथ को इस प्रकार चलाया कि वे शीघ्र ही राजकक्षों के पास पहुँच गए।'

18. हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने बनारस में प्रवेश करके अपने मंत्रियों और सलाहकारों को बुलाया और उनसे कहा: "हे सज्जनों, यदि आप कोसल के राजा दिघिति के पुत्र युवा दिघवु को देख लें, तो आप उसके साथ क्या करेंगे?"

कुछ मंत्रियों ने उत्तर दिया: "महाराज, हम उसके हाथ काट देंगे;" (अन्य ने कहा): "हम उसके पैर काट देंगे"--"हम उसके हाथ और पैर काट देंगे"--"हम उसके कान काट देंगे"--"हम उसकी नाक काट देंगे"--"हम उसके कान और नाक काट देंगे"--"हम उसका सिर काट देंगे।"

"यह युवा दिघावु है, श्रीमान, कोसल के राजा दिघिति का पुत्र। उसके साथ कुछ भी करना मना है; उसने मुझे मेरा जीवनदान दिया है, और मैंने उसे उसका जीवनदान दिया है।"

19. हे भिक्षुओं, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने युवा दिघावु से कहा, "मृत्यु के समय तुम्हारे पिता ने तुमसे क्यों कहा था: 'देर तक मत देखना, इत्यादि' - तुम्हारे पिता का इससे क्या तात्पर्य था?"

'मेरे पिता ने अपनी मृत्यु के समय जो कहा, हे राजा, 'अधिक समय तक नहीं'—(अर्थ): 'अपनी घृणा को अधिक समय तक न चलने दो;' मेरे पिता का यही अर्थ था जब उन्होंने अपनी मृत्यु के समय कहा: 'अधिक समय तक नहीं।'

हे राजा, मेरे पिता ने अपनी मृत्यु के समय जो कहा: 'जल्दी मत करो'—(अर्थ): 'अपने मित्रों से जल्दी झगड़ा मत करो;' मृत्यु के समय 'जल्दी मत करो' कहकर मेरे पिता का यही अर्थ था। और हे राजा, मेरे पिता ने अपनी मृत्यु के समय जो कहा: 'हे मेरे प्रिय दिघावु, घृणा से घृणा शांत नहीं होती; हे मेरे प्रिय दिघावु, घृणा का निर्वाह करने से घृणा शांत होती है'—(अर्थ यह है): 'हे राजा, तुमने मेरे माता-पिता को मार डाला है। इसलिए, हे राजा, यदि मैं तुम्हें जीवन से वंचित कर दूँ, तो हे राजा, तुम्हारे समर्थक मुझे जीवन से वंचित कर देंगे; फिर मेरे समर्थक उन्हें जीवन से वंचित कर देंगे। इस प्रकार घृणा से वह घृणा शांत नहीं होगी। परन्तु अब, हे राजा, तुमने मुझे जीवनदान दिया है, और मैंने, हे राजा, तुम्हें जीवनदान दिया है; इस प्रकार घृणा का निर्वाह करने से घृणा शांत हो गई है।' मेरे पिता ने अपनी मृत्यु के समय जो कहा था, उसका यही अर्थ था: 'घृणा आदि के कारण नहीं।'

20. हे भिक्षुओं, तब काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने सोचा, “हे अद्भुत! हे चमत्कारी! यह युवा दिघावु कितना बुद्धिमान है कि वह अपने पिता के संक्षिप्त शब्दों का पूर्ण अर्थ समझ गया है,” और उसने उसे उसके पिता की सेना और वाहन, उसका राज्य, उसके खजाने और भंडारगृह लौटा दिए, और उसने उसे अपनी पुत्री भी दे दी।

'हे भिक्षुओं, यदि राजदंड धारण करने वाले और तलवार चलाने वाले राजाओं में इतना धैर्य और सौम्यता होती है, तो हे भिक्षुओं, आपको भी संसार के समक्ष अपना प्रकाश इस प्रकार चमकाना चाहिए कि सुशिक्षित सिद्धांत और अनुशासन के अनुसार धर्म जीवन को अपनाने के कारण आप धैर्यवान और सौम्य दिखाई दें।'

और तीसरी बार भगवान बुद्ध ने इस प्रकार किया

उन्होंने उन भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'बस करो, हे भिक्षुओं, कोई विवाद नहीं, कोई कलह नहीं, कोई झगड़ा नहीं!'

और तीसरी बार उस भिक्षु ने, जो गलत पक्ष का अनुसरण कर रहा था, भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, सत्य के राजा भगवान बुद्ध धैर्य रखें! हे प्रभु, भगवान बुद्ध इस जीवन में प्राप्त आनंद का शांतिपूर्वक आनंद लें! इन झगड़ों, कलह और कलह का उत्तरदायित्व केवल हम पर है।” और भगवान बुद्ध ने सोचा, “ये मूर्ख सचमुच पागल हैं; इन्हें उपदेश देना आसान काम नहीं है,” और वे अपने आसन से उठे और चले गए।

पहले भानवर का अंत, जिसमें दिघावु की कहानी है।

<<<< पिछला (10.1) | अगला (10.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.2) | अगला (10.4) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय-3.

और दोपहर के समय भगवान बुद्ध ने अपने अंतर्वस्त्र धारण करके, अपना भिक्षापात्र और कीवर उठाया और भिक्षा मांगने के लिए कोसंबी नगर में प्रवेश किया। कोसंबी में भिक्षा एकत्र करने के बाद, भोजन करने के बाद, जब वे अपनी भिक्षायात्रा से लौटे, तो उन्होंने अपने विश्राम स्थल को व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और कीवर उठाया और सभा के बीच में खड़े होकर निम्नलिखित श्लोक कहे:

'आम लोगों का शोर बहुत बड़ा होता है। संघ में फूट पड़ने पर कोई भी खुद को मूर्ख नहीं समझता, न ही वे कभी किसी दूसरे व्यक्ति को खुद से श्रेष्ठ मानते हैं।'

'वाक्पटुता के धनी व्यक्ति के चतुर शब्द भी भ्रमित कर देते हैं। वे अपनी इच्छा अनुसार अपना मुंह खोलते हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं पता होता कि वे किसके द्वारा निर्देशित हो रहे हैं।'

"उसने मुझे अपमानित किया है, उसने मुझे पीटा है, उसने मुझ पर अत्याचार किया है, उसने मुझे लूटा है," - ऐसे विचार रखने वालों के मन में घृणा कभी शांत नहीं होगी।

"उसने मुझे अपमानित किया है, उसने मुझे पीटा है, उसने मुझ पर अत्याचार किया है, उसने मुझे लूटा है," - ऐसे विचार न रखने वालों में घृणा शांत हो जाती है।

'घृणा से घृणा शांत नहीं होती; घृणा न करने से ही घृणा शांत होती है; यह एक शाश्वत नियम है।'

'अन्य लोग यह नहीं जानते कि हमें यहां संयम बरतना चाहिए; लेकिन जो लोग यह जानते हैं, उनके झगड़े शांत हो जाते हैं।'

जिनके हड्डियां उनके शत्रुओं द्वारा तोड़ी जाती हैं, जो जीवन नष्ट करते हैं, जो गायों, घोड़ों और खजानों को लूटते हैं, जो राज्यों को तबाह करते हैं—उन्हें भी मेल-मिलाप मिल सकता है। तो तुम्हें यह क्यों नहीं मिलेगा?

यदि किसी व्यक्ति को कोई बुद्धिमान मित्र, कोई साथी मिल जाए, तो

जो व्यक्ति धार्मिक और निरंतर जीवन जीता है, वह उसके साथ चल सकता है, सभी खतरों पर विजय प्राप्त कर सकता है, प्रसन्न और सचेत रह सकता है।

'यदि उसे कोई बुद्धिमान मित्र न मिले, कोई ऐसा साथी न मिले जो धार्मिक जीवन जीता हो, कोई ऐसा स्थिर साथी न मिले, तो उसे अकेले ही चलना चाहिए, जैसे कोई राजा अपने जीते हुए राज्य को पीछे छोड़ जाता है, जैसे कोई हाथी हाथियों के जंगल में चला जाता है।'

'अकेले चलना बेहतर है; मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं होती। मनुष्य को अकेले चलना चाहिए; उसे कोई बुराई नहीं करनी चाहिए, चिंताओं से मुक्त होकर, हाथियों के जंगल में हाथी की तरह।'

<<<< पिछला (10.2) | अगला (10.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.3) | अगला (10.5) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय-4.

1. और भगवान बुद्ध ने सभा के बीच में खड़े होकर इन श्लोकों का उच्चारण किया और फिर बालकलोनकारा-गामा (अर्थात्, नमक बनाने वाले के गाँव बालका) की ओर चल दिए।

उस समय पूज्य भगु बालकालोंकार-गामा में निवास करते थे। पूज्य भगु ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; उन्हें देखकर उन्होंने आसन तैयार किया, उनके चरणों को धोने के लिए जल, एक पायदान और एक तौलिया लाए, उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े और अपना कुंड और वस्त्र ले आए। भगवान बुद्ध उनके द्वारा तैयार किए गए आसन पर बैठ गए; और

जब वे बैठ गए, तो भगवान बुद्ध ने उनके चरण धोए। आदरणीय भागु ने भी भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके पास बैठ गए। जब वे उनके पास बैठे, तो भगवान बुद्ध ने आदरणीय भागु से कहा: 'हे भिक्षु, क्या आप कुशल मंगल हैं? क्या आपकी आजीविका चल रही है? क्या आपको भोजन बिना किसी परेशानी के मिल रहा है?'

'हे प्रभु, मेरे लिए सब ठीक है; मुझे अपनी जीविका मिल जाती है, हे प्रभु; मुझे भोजन मिल जाता है, बिना किसी अधिक परेशानी के।'

और भगवान बुद्ध ने आदरणीय भगू को धम्म प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रोत्साहन, उत्साह और प्रसन्नता प्रदान करने के बाद, अपने आसन से उठकर पूर्वी बंबू उद्यान (पकिना-वंश-दया) की ओर प्रस्थान किया।

2. उस समय पूज्य अनुराधा, पूज्य नंदीय और पूज्य किंबिला पाकिना-वंश-दया में निवास कर रहे थे। उद्यान के रखवाले ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; उन्हें देखकर उसने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे समना, इस उद्यान में प्रवेश न करें; यहाँ तीन श्रेष्ठ युवक रहते हैं जो आराम और सुख के आदी हैं; आप उन्हें परेशान न करें।' पूज्य अनुराधा ने उद्यान के रखवाले की भगवान बुद्ध से कही गई बातें सुनीं; यह सुनकर उन्होंने उद्यान के रखवाले से कहा, 'हे मेरे अच्छे उद्यान के रखवाले, भगवान बुद्ध को मत रोकिए; हमारे गुरु, भगवान बुद्ध आ गए हैं।' पूज्य अनुराधा उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य नंदीय और पूज्य किंबिला थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने पूज्य नंदीय और पूज्य किंबिला से कहा, 'यहाँ आइए, मेरे पूज्य मित्रों! यहाँ आइए, मेरे पूज्य मित्रों! हमारे गुरु, भगवान बुद्ध आ गए हैं।'

3. और पूज्य अनुरुद्ध, पूज्य नंदीय और पूज्य किंबिला भगवान बुद्ध से मिलने के लिए निकले; एक ने कटोरा लिया और

एक ने भगवान बुद्ध का वस्त्र ओढ़ाया, दूसरे ने आसन तैयार किया, तीसरे ने उनके पैर धोने के लिए जल, एक पायदान और एक तौलिया लाया। तब भगवान बुद्ध उनके द्वारा तैयार किए गए आसन पर बैठ गए; और बैठते ही उन्होंने अपने पैर धोए। और वे सभी पूजनीय व्यक्ति भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करके उनके पास बैठ गए। जब पूजनीय अनुराधा उनके पास बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा:

'हे अनुरुद्धों, क्या तुम सब ठीक हो? क्या तुम्हें अपनी जीविका मिल रही है? क्या तुम्हें बिना ज्यादा परेशानी के भोजन मिल रहा है?'

'हे प्रभु, हमारे साथ सब ठीक है; हमें अपनी जीविका मिल जाती है, हे प्रभु; हमें भोजन मिल जाता है, बिना किसी अधिक परेशानी के।'

'हे अनुरुद्धों, क्या तुम एकता और सद्भाव में, बिना किसी झगड़े के, दूध और पानी की तरह (मिले हुए) रहते हो, और एक दूसरे को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखते हो?'

'निश्चित रूप से, प्रभु, हम एकता और सद्भाव में रहते हैं (आदि, नीचे तक): और एक दूसरे को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखते हैं।'

'और हे अनुरुद्धों, तुम किस प्रकार एकता और सद्भाव में रहते हो, इत्यादि?'

4. हे प्रभु, मैं सोचता हूँ: “मेरे लिए तो यही सर्वथा लाभ है, यही मेरे लिए परम आनंद है कि मैं इन जैसे भाइयों की संगति में रहूँ।” हे प्रभु, मैं इन आदरणीय भाइयों के प्रति अपने कार्यों में, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप से, मित्रता भाव प्रदर्शित करता हूँ; मैं अपने शब्दों और विचारों में, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप से, मित्रता भाव प्रदर्शित करता हूँ। और हे प्रभु, मैं यह भी सोचता हूँ: “यदि मैं अपनी इच्छा का त्याग कर केवल इन आदरणीय भाइयों की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करूँ तो क्या होगा?” हे प्रभु, मैं अपनी इच्छा का त्याग कर केवल इन आदरणीय भाइयों की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता हूँ। हे प्रभु, हमारे शरीर भिन्न हैं, परन्तु हमारे मन एक हो गए हैं।

और आदरणीय नंदिया . . . . और आदरणीय किम्बिला . . . . ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, मैं भी यही सोचता हूँ: "यह सब मेरे लिए लाभ है" (आदि, नीचे तक:) एक हो गए हैं।

'हे प्रभु, इस प्रकार हम एकता और सद्भाव में बिना किसी झगड़े के, दूध और पानी की तरह (एक साथ मिलकर) रहते हैं, और एक दूसरे को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखते हैं।'

5. 'हे अनुरुद्धों, क्या तुम गंभीरता, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ जीवन व्यतीत करते हो?'

'हे प्रभु, हम निःसंदेह गंभीरता, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ जीवन व्यतीत करते हैं।'

'और हे अनुरुद्धों, आप किस प्रकार गंभीरता, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ जीवन व्यतीत करते हैं?'

हे प्रभु, जो सबसे पहले गाँव से, अपनी भिक्षायात्रा से लौटता है, वह बैठने की व्यवस्था करता है, पैर धोने के लिए पानी, एक पायदान और एक तौलिया लाता है, कूड़ेदान को साफ करता है और उसे तैयार रखता है, और उसमें पीने और खाने का पानी रखता है। जो गाँव से, अपनी भिक्षायात्रा से, सबसे अंत में लौटता है, वह खाता है, यदि (दूसरों के भोजन से) कुछ बचा हो और यदि वह ऐसा करना चाहे; और यदि वह ऐसा करता है

खाने की इच्छा न होने पर, वह उसे घास रहित स्थान पर फेंक देता है, या ऐसे पानी में डाल देता है जिसमें कोई जीव-जंतु न हों; आसन हटा देता है, पैर धोने का पानी, प्याला और तौलिया हटा देता है, कूड़ेदान साफ करके रख देता है, पानी और भोजन हटा देता है, और भोजन कक्ष में झाड़ू लगाता है। जो कोई पानी का बर्तन, भोजन का कटोरा या आराम करने की कुर्सी खाली देखता है, उसे (उसके उचित स्थान पर) रख देता है, और यदि वह अकेले ऐसा करने में सक्षम नहीं होता है, तो वह किसी और को बुलाता है, और इस प्रकार हम सब मिलकर उसे (उसके स्थान पर) रख देते हैं, परन्तु हे प्रभु, इस कारण हम एक शब्द भी नहीं बोलते। और हे प्रभु, प्रत्येक पाँच दिन में, हम पूरी रात एक साथ बैठकर धर्म प्रवचन करते हैं। इस प्रकार, हे प्रभु, हम गंभीरता, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ जीवन व्यतीत करते हैं।

6. भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुरुद्ध, आदरणीय नंदीय और आदरणीय किंबिला को धर्म प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रोत्साहन, उत्साह और प्रसन्नता प्रदान करने के बाद, अपने आसन से उठकर परिलय्यक की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे परिलय्यक पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध परिलय्यक में, रक्खिता वन में, भद्दासला वृक्ष की तलहटी में निवास करने लगे। तब एकांत में एकांतवास में गए भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया: 'पहले मैं कोसंबी के उन विवादप्रिय, झगड़ालू, कलहकारी भिक्षुओं से व्याकुल रहता था, जो संघ के समक्ष निरंतर प्रश्न उठाते रहते थे।' लेकिन अब, अकेले और बिना किसी साथी के, मैं सुखपूर्वक और आराम से रहता हूँ, उन मुकदमेबाज, झगड़ालू, विवाद करने वाले कोसंबी भिक्षुओं से दूर, जो संघ के सामने लगातार प्रश्न उठाते रहते हैं।' और वहाँ

एक महान हाथी भी रहता था, जो हाथियों, मादा हाथियों, हाथी के बच्चों और युवा हाथियों के झुंड से घिरा हुआ था; वह जो घास खाता था, उसके सिरे टूटे हुए होते थे; वह जो डालियाँ तोड़ता था, उन्हें दूसरे हाथी खा जाते थे; वह जो पानी पीता था, वह गंदा होता था; और जब वह नदी में उतरता और डुबकी लगाता, तो मादा हाथी आकर अपने शरीर को उससे रगड़ती थीं। अब उस महान हाथी ने सोचा: 'मैं हाथियों के झुंड से घिरा हुआ हूँ और वे अपने शरीर को मुझसे रगड़ती हैं। अगर मैं इन झुंडों से दूर, अकेला रहूँ तो क्या होगा?'

7. और वह श्रेष्ठ हाथी अपने झुंड को छोड़कर परिलय्यक में, रक्खिता वन में, भद्दसला वृक्ष के नीचे, उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर उसने अपनी सूंड से भगवान बुद्ध को जल और भोजन दिया और उस स्थान से घास हटा दी। और उस श्रेष्ठ हाथी ने सोचा:

पहले मैं हाथियों के उस झुंड से घिरा हुआ, उनके शरीरों से रगड़ खाता हुआ, चैन से नहीं रहता था। लेकिन अब, अकेला और बिना किसी साथी के, मैं उन हाथियों, मादा हाथियों, हाथी के बच्चों और युवा हाथियों से दूर, सुखपूर्वक और आराम से रहता हूँ।

तब भगवान बुद्ध ने अपने एकांतवास को ध्यान में रखते हुए और उस महान हाथी के मन में उत्पन्न विचारों को अपनी बुद्धि से समझते हुए, इस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:

'इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष और श्रेष्ठ पुरुष, हाथी के दांत जो गाड़ी के डंडों के समान हैं (और मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष)—इन दोनों का मन इस बात में सामंजस्य स्थापित करता है कि वे जंगल में एकांतवास में आनंदित होते हैं।'

<<<< पिछला (10.3) | अगला (10.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.4) | अगला (10.6) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय-5.

1. भगवान बुद्ध परिलय्यक में अपनी इच्छानुसार कुछ समय निवास करने के बाद सावत्थी चले गए। स्थान-स्थान भटकते हुए वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ भगवान बुद्ध सावत्थी के जेतवन, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास करने लगे। कोसंबी के गृहस्थ भक्तों ने सोचा, 'कोसंबी के इन पूजनीय भिक्षुओं ने हम पर बहुत विपत्ति लाई है; इनके कारण चिंतित होकर भगवान बुद्ध चले गए। अच्छा, हमें न तो कोसंबी के पूजनीय भिक्षुओं को प्रणाम करना चाहिए, न उनके समक्ष अपनी सीटों से उठना चाहिए, न उनके सामने हाथ उठाना चाहिए, न उनके प्रति उचित कर्तव्य निभाना चाहिए, न उनका आदर, सम्मान, आदर और समर्थन करना चाहिए, न ही भिक्षा मांगने आने पर उन्हें भोजन देना चाहिए; इस प्रकार, जब हम उनका आदर, सम्मान, आदर, समर्थन और आतिथ्य सत्कार नहीं करेंगे, तो वे चले जाएँगे, या संसार में लौट जाएँगे, या भगवान बुद्ध को प्रसन्न करेंगे।'

2. इस प्रकार कोसंबी के गृहस्थ भक्त कोसंबी के भिक्षुओं को प्रणाम नहीं करते थे, न ही उनके सामने अपनी सीटों से उठते थे, और न ही भिक्षा मांगने आने पर उन्हें भोजन देते थे।

फिर कोसंबी के भिक्षुओं को जब और अधिक सम्मान नहीं दिया गया (आदि, नीचे तक:) और उन्होंने आतिथ्य सत्कार किया

कोसंबी के गृहस्थ भक्तों ने जब उनसे मुलाकात की, तो उन्होंने आपस में कहा, 'चलो, हम सावत्थी चलते हैं और वहाँ भगवान बुद्ध के समक्ष इस प्रश्न का समाधान करते हैं।' और कोसंबी के भिक्षुओं ने अपने विश्राम स्थलों को व्यवस्थित किया, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र उठाए और सावत्थी की ओर चल पड़े।

3. और पूज्य सारिपुत्त ने सुना: "कोसंबी के वे झगड़ालू, विवादशील, कलहलूम भिक्षु, जो संघ के समक्ष निरंतर प्रश्न उठाते रहते हैं, सावत्थी आ रहे हैं।" पूज्य सारिपुत्त उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठकर सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, वे झगड़ालू, विवादशील (आदि) सावत्थी आ रहे हैं। हे प्रभु, मुझे उन भिक्षुओं के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए?"

'खैर, सारिपुत्त, तुम्हें उन्हीं का साथ देना चाहिए जो धम्म के अनुसार सही हैं।'

'पर हे प्रभु, मैं कैसे जानूँ कि क्या सही है और क्या गलत?'

4. 'सारिपुत्त, अठारह ऐसी बातें हैं जिनसे तुम यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार गलत है।' यदि हे सारिपुत्त, कोई भिक्षु, अधर्म को धर्म घोषित करे, या धर्म को धर्म न बताए, या विनय को विनय न बताए, या विनय को विनय न बताए, या तथागत

(बुद्ध) द्वारा न सिखाई और न बोली गई बात को तथागत द्वारा सिखाई और न बोली गई बात घोषित करे, या तथागत द्वारा सिखाई और न बोली गई बात को तथागत द्वारा न सिखाई और न बोली गई बात घोषित करे, या तथागत द्वारा अभ्यास न की गई बात को तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास की गई बात को तथागत द्वारा अभ्यास न की गई बात घोषित करे, या तथागत द्वारा आदेशित न की गई बात को तथागत (बुद्ध) द्वारा आदेशित न की गई बात घोषित करे, तो... तथागत, जो किसी बात को अपराध घोषित करता है, या किसी अपराध को अपराध नहीं बताता, या किसी मामूली अपराध को गंभीर अपराध घोषित करता है, या किसी गंभीर अपराध को मामूली अपराध घोषित करता है, या किसी ऐसे अपराध के संबंध में नियम को अपवाद रहित घोषित करता है जिसमें अपवाद है, या किसी ऐसे अपराध के संबंध में नियम को अपवादों से युक्त घोषित करता है जिसमें कोई अपवाद नहीं है, या किसी गंभीर अपराध को गंभीर अपराध नहीं बताता, या किसी ऐसे अपराध को गंभीर अपराध घोषित करता है जो गंभीर नहीं है—हे सारिपुत्त, ये अठारह बातें हैं जिनसे आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार गलत है।

5. 'हे सारिपुत्त, अठारह ऐसी बातें हैं जिनसे तुम यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार सही है। हे सारिपुत्त, यदि कोई भिक्षु अधार्मिक बात को अधार्मिक घोषित करे, या धार्मिक बात को धम्मिक घोषित करे (आदि, आगे तक), या किसी गंभीर अपराध को गंभीर अपराध घोषित करे, या किसी मामूली अपराध को मामूली अपराध घोषित करे, तो हे सारिपुत्त, ये अठारह बातें हैं जिनसे तुम यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार सही है।'

6. और पूज्य महामोग्गलाना ने सुना (आदि, जैसा कि §-3-5 में है)--और पूज्य महाकस्सपा ने सुना, आदि--और पूज्य महाकक्कना ने सुना, आदि--और पूज्य महाकोत्थिता ने सुना, आदि--और पूज्य महाकप्पिना ने सुना, आदि--और पूज्य महाकुंडा ने सुना, आदि--और पूज्य अनुरुद्ध ने सुना, आदि--और पूज्य रेवता ने सुना, आदि--और पूज्य उपली ने सुना, आदि--और पूज्य आनंद ने सुना, आदि--और पूज्य राहुल ने सुना (आदि, जैसा कि ऊपर है)।

7. और महाप्रजापति गौतमी ने सुना, 'कोसंबी के वे झगड़ालू, विवाद करने वाले, कलह करने वाले और बहस करने वाले भिक्षु (भिक्षु) जो संघ के समक्ष निरंतर प्रश्न उठाते रहते हैं, सावत्थी आ रहे हैं।' तब महाप्रजापति गौतमी उस स्थान पर गईं जहाँ भगवान बुद्ध थे; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके, वे उनके निकट खड़ी हो गईं। उनके निकट खड़े होकर महाप्रजापति गौतमी ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, वे झगड़ालू, विवाद करने वाले (आदि) सावत्थी आ रहे हैं। हे प्रभु, मुझे उन भिक्षुओं के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए?'

'गौतमी, दोनों पक्षों के धर्म को सुनो। जब तुम दोनों पक्षों के धर्म को सुन लो, तो उन भिक्षुओं के मत, विश्वास, सिद्धांत और कारण को स्वीकार करो जो धर्म के अनुसार सही हैं; और भिक्षु संघ को भिक्षु संघ से जो भी निवेदन करना हो, वह सब तुम सही पक्ष के भिक्षुओं से करो।'

8. और गृहस्थ अनाथपिंडिका ने सुना (आदि, जैसा कि 3 में है, नीचे तक): 'हे प्रभु, मुझे उन भिक्षुओं के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए?'

'हे गृहस्थ, दोनों पक्षों को दान दो; दोनों पक्षों को दान देने के बाद, दोनों पक्षों का धर्म सुनो। दोनों पक्षों का धर्म सुनने के बाद, उन भिक्षुओं के मत, विश्वास, सिद्धांत और विचार को स्वीकार करो जो धर्म के अनुसार सही हैं।'

9. और विशाखा मिगरामाता ने सुना, और सी।

10. कुछ समय बाद कोसंबी के भिक्षु सावत्थी आ गए। पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठकर सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, संघ के समक्ष निरंतर प्रश्न उठाने वाले कोसंबी के वे विवादशील, झगड़ालू और बहस करने वाले भिक्षु सावत्थी आ गए हैं। हे प्रभु, हम उनके निवास की व्यवस्था कैसे करें?"

'अच्छा, सारिपुत्त, उनके लिए अलग-अलग आवास आवंटित कर दो।'

और यदि अलग-अलग रहने के स्थान न हों, तो हे प्रभु, हम क्या करें?

'तो, सारिपुत्त, तुम्हें (कुछ निवास स्थानों को शेष से) अलग करना होगा और फिर उन्हें (उन भिक्षुओं को) सौंपना होगा। लेकिन, सारिपुत्त, मैं किसी भी प्रकार से यह नहीं कहता कि किसी वरिष्ठ भिक्षु का निवास स्थान उससे छीन लिया जाए। जो ऐसा करता है, वह दुक्कता का अपराध करता है।'

'हे प्रभु, भौतिक उपहारों के वितरण के संबंध में हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए?'

'सारिपुत्त, भौतिक उपहारों का वितरण सभी में समान रूप से किया जाना चाहिए।'

11. और जिस भिक्षु को निष्कासित किया गया था, उसने धम्म और विनय दोनों पर विचार करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला: 'यह एक अपराध है; यह अपराध न करना नहीं है। मैं अपराधी हूँ; मैं निर्दोष नहीं हूँ। मुझे निष्कासित किया गया है; मुझे निष्कासित नहीं किया गया है। जिस दंड से मुझे निष्कासित किया गया है, वह उचित, आपत्तिरहित और वैध है।' तब वह निष्कासित भिक्षु निष्कासित भिक्षु के अनुयायियों के पास गया; उनके पास पहुँचकर उसने निष्कासित भिक्षु के अनुयायियों से कहा: 'यह एक अपराध है, मित्रों; यह अपराध न करना नहीं है, इत्यादि। अब आओ, मेरे आदरणीय भाइयों, और मुझे पुनर्स्थापित करो।'

12. तब उस निष्कासित भिक्षु के समर्थकों ने उसे अपने साथ लेकर भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उनके पास पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके पास बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, जिस भिक्षु को निष्कासित किया गया है, वह कहता है, 'यह एक अपराध है, मित्रों (आदि, आगे तक) और मुझे पुनः प्रवेश दें।' हे प्रभु, हमें यहाँ क्या करना चाहिए?"

हे भिक्षुओं, यह एक अपराध है; यह अपराध न करना नहीं है। यह भिक्षु अपराधी है; यह भिक्षु निर्दोष नहीं है। इस भिक्षु को निष्कासित किया गया है; इसे निष्कासित नहीं किया गया है; जिस दंड से इसे निष्कासित किया गया है वह वैध, उचित और मान्य है। परन्तु हे भिक्षुओं, इस भिक्षु ने अपराध किया है और निष्कासन का दंड प्राप्त किया है, और वह (अपने अपराध को) देख रहा है, इसलिए हे भिक्षुओं, अब इस भिक्षु को वापस लौटा दो।

13. और उस निष्कासित भिक्षु के समर्थकों ने उसे पुनः संघ में शामिल कर लिया और फिर उन भिक्षुओं के पास गए जिन्होंने उसे निष्कासित किया था। उनके पास पहुँचकर उन्होंने उन भिक्षुओं से कहा जिन्होंने यह निर्णय सुनाया था: "हे मित्रों, उस मामले के विषय में, जिसके कारण संघ में कलह, मतभेद, कलह, विभाजन, फूट, अलगाव और मतभेद उत्पन्न हुए थे, उस भिक्षु (जो उस मामले से संबंधित था) ने अपराध किया था और निष्कासन की सजा पाई थी, उसने (अपने अपराध का) फल देखा है और उसे संघ में पुनः शामिल कर लिया गया है। हे मित्रों, आइए अब हम संघ में एकता की पुनः स्थापना की घोषणा करें ताकि उस मामले का अंत हो सके।"

फिर निष्कासन का फैसला सुनाने वाले भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए; उनके पास पहुँचकर और आदरपूर्वक प्रणाम करके वे उनके निकट बैठ गए; उनके पास बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, निष्कासित भिक्षु के समर्थकों ने हमसे कहा है: "उस मामले को समाप्त करने के लिए (आदि, आगे तक): हमें यहाँ क्या करना चाहिए, प्रभु?'

14. 'हे भिक्षुओं, इस भिक्षु ने अपराध किया था और निष्कासन की सजा भुगती थी, फिर भी उसने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है और उसे पुनः संघ में शामिल कर लिया गया है, इसलिए हे भिक्षुओं, संघ में सद्भाव की पुनः स्थापना की घोषणा करो ताकि इस मामले का अंत हो सके। और यह घोषणा इस प्रकार की जानी चाहिए: सभी भाई, बीमार और स्वस्थ, एकत्रित हों; किसी को भी खंड की घोषणा भेजने (और अनुपस्थित रहने) की अनुमति नहीं है।' जब आप सब एकत्रित हो जाएँ, तो एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष निम्नलिखित नट्टी का पाठ करें: "हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए। उस विषय के संबंध में, जिसके कारण संघ में कलह, मतभेद, कलह, विभाजन, फूट, अलगाव और मतभेद उत्पन्न हुए, उस विषय से संबंधित भिक्षु ने अपराध किया था और निष्कासन की सजा पाने के बाद, उसने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है और उसे संघ में पुनः शामिल कर लिया गया है। यदि संघ तैयार हो, तो संघ उस विषय को समाप्त करने के लिए सामंजस्य की पुनर्स्थापना की घोषणा करे। यही नट्टी (प्रस्ताव) है। हे संघ, आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए (आदि, आगे तक): उस विषय को समाप्त करने के लिए सामंजस्य की पुनर्स्थापना की घोषणा संघ द्वारा कर दी गई है; संघ में व्याप्त विभाजन का समाधान हो गया है; संघ में व्याप्त फूट समाप्त हो गई है। संघ इस घोषणा के पक्ष में है; इसलिए आप चुप हैं; मैं यही समझता हूँ। फिर संघ उपोसथा का आयोजन करे और पतिमोक्खा की घोषणा करे।

<<<< पिछला (10.4) | अगला (10.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> महावग्ग >> दसवाँ खंडक >> 10.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(10.5) | अगला चुलवग्गा(1.1) >>>>

महावग्गा

दसवां खंडका (संघ के बीच मतभेद)

अध्याय-6.

1. और पूज्य उपली उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। उनके पास पहुँचकर उन्होंने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके निकट बैठ गए। उनके निकट बैठकर पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, यदि संघ किसी ऐसे मामले के विषय में, जिसके कारण संघ में कलह (अत्यंत मतभेद और विभाजन) उत्पन्न हुए हैं, बिना उस मामले की जाँच किए और बिना उसकी तह तक पहुँचे, एकता की पुनर्स्थापना की घोषणा कर दे, तो क्या यह घोषणा, हे प्रभु, उचित है?”

'यदि संघ, उपली, किसी मामले के संबंध में (आदि, आगे तक) उस मामले की जांच किए बिना और उसकी तह तक पहुंचे बिना, सद्भाव की पुनर्स्थापना की घोषणा करता है, तो यह घोषणा, उपली, गैरकानूनी है।'

लेकिन यदि संघ, हे प्रभु, किसी मामले के संबंध में (आदि, आगे तक): उस मामले की जांच-पड़ताल करने और उसकी तह तक पहुंचने के बाद, सद्भाव की पुनर्स्थापना की घोषणा करता है, तो क्या यह घोषणा, हे प्रभु, वैध है?

'यदि संघ, उपली, (आदि, नीचे तक:) जांच करने के बाद सद्भाव की पुनः स्थापना की घोषणा करता है

उस मामले की पूरी जांच-पड़ताल करने के बाद, उपाली, यह घोषणा वैध है।'

2. 'हे प्रभु, संघ में सद्भाव की पुनर्स्थापना के कितने प्रकार हैं?'

'उपली, संघ में सामंजस्य की पुनर्स्थापना के दो प्रकार हैं: सामंजस्य को शाब्दिक रूप से तो पुनर्स्थापित किया जा सकता है, लेकिन भावना में नहीं, और सामंजस्य को भावना और शाब्दिक दोनों में पुनर्स्थापित किया जा सकता है।'

और किस स्थिति में, उपाली, सामंजस्य अक्षरशः तो स्थापित हो जाता है, पर भाव से नहीं? यदि संघ, उपाली, (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है) उस मामले की जाँच किए बिना और उसकी तह तक पहुँचे बिना सामंजस्य की पुनः स्थापना की घोषणा कर देता है, तो इस स्थिति में, उपाली, यह कहा जाता है कि सामंजस्य अक्षरशः तो स्थापित हो गया है, पर भाव से नहीं।

'उपली, किस स्थिति में सद्भाव भावना और शाब्दिक अर्थ दोनों में पुनः स्थापित होता है? यदि संघ (उपली, जैसा कि ऊपर बताया गया है) उस मामले की जांच-पड़ताल करने और उसकी तह तक पहुंचने के बाद सद्भाव की पुनः स्थापना की घोषणा करता है, तो उपली, इस स्थिति में सद्भाव भावना और शाब्दिक अर्थ दोनों में पुनः स्थापित माना जाता है। उपली, संघ में सद्भाव की पुनः स्थापना के ये दो प्रकार हैं।'

3. और पूज्य उपाली अपने आसन से उठे, अपने ऊपरी वस्त्र को इस प्रकार समायोजित किया कि उसका एक कंधा ढका रहे, अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान बुद्ध की ओर झुकाया और भगवान बुद्ध को निम्नलिखित श्लोकों में संबोधित किया:

'संघ के मामलों और उसकी सलाह-मशविरे में, उत्पन्न होने वाले कार्यों और परीक्षाओं में, किस प्रकार के व्यक्ति की सबसे अधिक आवश्यकता होती है? कौन सा भिक्षु नेतृत्व के लिए सबसे अधिक योग्य होता है?'

'सर्वोच्च वह व्यक्ति जो अपने नैतिक आचरण में निर्दोष है, जो अपने व्यवहार पर नजर रखता है, जिसकी इंद्रियां अच्छी तरह से नियंत्रित हैं, जिसे उसके प्रतिद्वंद्वी कानून के अनुसार फटकार नहीं लगाते, क्योंकि ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिए वे उसकी आलोचना कर सकें।'

'ऐसा व्यक्ति, जो निष्कलंक आचरण में स्थिर रहता है, धर्म का भली-भांति ज्ञाता होता है, और उसके वचन शक्तिशाली होते हैं। वह सभा में प्रवेश करते समय न तो विचलित होता है और न ही भयभीत होता है। वह व्यर्थ की बातों से अपने उद्देश्य को धूमिल नहीं करता।'

इसी प्रकार जब सभाओं में उससे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वह संकोच नहीं करता और विचलित नहीं होता। अपने समयोचित उत्तरों से, जो प्रश्नों का हल निकाल देते हैं, चतुर व्यक्ति बुद्धिमानों की सभा को प्रसन्न कर देता है।

'वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण, अपने गुरु द्वारा सिखाई गई शिक्षाओं में पारंगत, सत्य को जानने में सक्षम, वाणी का उस्ताद और अपने प्रतिद्वंद्वियों को पराजित करने में कुशल।'

'जिसके द्वारा उसके प्रतिद्वंद्वी नष्ट हो जाते हैं, जिससे बहुत से लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह अपने द्वारा उठाए गए कार्य को नहीं छोड़ता, (और न ही वह थकता है) दूसरों को चोट पहुंचाए बिना प्रश्नों का उत्तर देने और प्रश्न पूछने से;

यदि उन्हें कोई मिशन सौंपा जाता है, तो वे उसे ठीक से निभाते हैं, और संघ के कार्यों में वे वही करते हैं जो उन्हें बताया जाता है; जब कई भिक्षु उन्हें (कहीं) भेजते हैं, तो वे आज्ञा का पालन करते हैं।

उनके आदेश पर, लेकिन वह यह नहीं सोचता, "यह मैं ही कर रहा हूँ;"

भिक्षु किन परिस्थितियों में अपराध करता है, अपराध क्या है और उसका प्रायश्चित कैसे किया जाता है, इन दोनों बातों की व्याख्या उसे भली-भांति ज्ञात है; वह अपराध और प्रायश्चित के नियमों से भली-भांति परिचित है;--

'भिक्षु किन कर्मों से अपने ऊपर निष्कासन आमंत्रित करता है, किन मामलों में उसे निष्कासित किया गया है, और तपस्या करने वाले व्यक्ति का पुनर्वास कैसे होता है—यह सब वह विभंगों का भली-भांति ज्ञात होने के कारण जानता है;--

'वरिष्ठ भिक्षुओं, युवाओं, थेरों और मध्यम आयु वर्ग के भिक्षुओं के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण, अनेक लोगों का कल्याण करने वाला, चतुर भिक्षु—ऐसा भिक्षु ही नेतृत्व के योग्य होता है।'

दसवें खंडक का अंत, जिसमें कोसंबी के भिक्षुओं की कहानी है।

महावग्ग का अंत।

<<<< पिछला(10.5) । अगला चुलवग्गा(1.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु अपराध धारा)
(लघु खंड)
भिक्षुओं के शिष्टाचार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन, साथ ही संघ के भीतर किए जा सकने वाले अपराधों से निपटने के नियमों और प्रक्रियाओं का वर्णन।

चुलवग्ग में 12 अध्याय (या *खंडक*) *हैं:*
प्रथम खंडका (फटकार, अधीनता, निर्वासन, सुलह, निलंबन)
I. तज्जनिया कम्मा (निंदा का कार्य)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (महावग्ग 10.6) । अगला चुलवग्ग (1.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध जेतवन में, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे हुए थे।

उस समय पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षु—जो स्वयं संघ में कलह पैदा करने वाले, झगड़ालू, विवाद करने वाले, व्यर्थ की बातें करने वाले और कानूनी प्रश्न उठाने वाले थे—अन्य ऐसे ही भिक्षुओं के पास जाकर कहते थे, "हे आदरणीय महोदय, ऐसे व्यक्ति को आपको पीछे हटने न दें। खुलकर और देर तक चर्चा करें। आप वास्तव में उनसे अधिक चतुर, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार और अधिक सक्षम हैं।"

तुम्हारे विरोधी हैं) और तुम उनसे डरो मत। हम भी तुम्हारे साथ रहेंगे।' इससे ऐसे विवाद उत्पन्न हुए जो पहले नहीं हुए थे; और जो विवाद पहले से उत्पन्न थे वे और भी तीव्र हो गए।

2. वे भिक्षु जो विनम्र थे, नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षु ऐसा कैसे कर सकते हैं?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा: 'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, भिक्षुओं, कि वे भिक्षु जो पांडुक और लोहितक के अनुयायी हैं, - जो स्वयं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में अंत तक है)?'

'यह सच है, प्रभु!'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, यह उन मूर्ख व्यक्तियों के लिए अनुचित है, नियम के अनुसार नहीं है, अनुपयुक्त है, समन के योग्य नहीं है, अशोभनीय है और नहीं किया जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, ये मूर्ख व्यक्ति, जो स्वयं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में अंत तक है) ऐसा कैसे कर सकते हैं? हे भिक्षुओं, इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्मांतरण होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या में वृद्धि होगी; बल्कि इससे जो परिवर्तित नहीं हुए हैं वे परिवर्तित नहीं होंगे और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे वापस लौट जाएंगे।'

3. और जब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार से फटकारा, - भरण-पोषण के मामले में संतुष्ट न होने, अधिक इच्छा रखने, असंतोष, समाज प्रेम और आलस्य के दुष्परिणामों के बारे में बताते हुए; और भरण-पोषण के मामले में आसानी से संतुष्ट होने, कम इच्छा रखने आदि की प्रशंसा करते हुए,

वह संतुष्ट व्यक्ति जिसने (अपने मन से बुराइयों का) नाश कर लिया है, अपनी भावनाओं को वश में कर लिया है, और जो आस्था, श्रद्धा और उत्साह से परिपूर्ण है, जब उसने भिक्षुओं को इस संबंध में उचित और उपयुक्त बातों पर धर्म प्रवचन दिया, तो उसने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'अतः, हे भिक्षुओं, संघ उन भिक्षुओं के विरुद्ध तज्जनीय-कम्म (निंदा का कार्य) करे।'

4. हे भिक्षुओं, अब इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम पांडुक के अनुयायी भिक्षुओं को...

<<<< पिछला (महावग्ग 10.6) । अगला चुलवग्ग (1.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.1) । अगला(1.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय दो।

1. हे भिक्षुओं, तीन बातें हैं जिनसे तज्जनीय कर्म की विशेषता यह है कि वह धम्म और विनय के विरुद्ध है और उसका निपटारा कठिन है; (अर्थात्) जब वह विधि और न्याय के अनुसार, विधिवत योग्य व्यक्तियों की पूर्ण सभा में और मुकदमे के पक्षकारों की उपस्थिति में न किया गया हो—जब वह आरोपी व्यक्ति को सुने बिना किया गया हो—जब वह आरोपी व्यक्ति द्वारा अपना अपराध स्वीकार किए बिना किया गया हो। हे भिक्षुओं, तज्जनीय कर्म की विशेषता यह है कि...

इन तीनों बातों से धर्म और विनय दोनों का उल्लंघन होता है और इनका समाधान करना कठिन है।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य बातें भी हैं जिनसे तज्जनीय कर्म का निर्धारण होने पर वह धम्म और विनय के विरुद्ध होता है और उसका निवारण करना कठिन होता है; (अर्थात्) जब वह कर्म बिना किसी दोष के किया गया हो—जब वह पराजिका या संघदिशेष अपराध के लिए किया गया हो—जब वह अपराध स्वीकार करने के बावजूद किया गया हो। हे भिक्षुओं, तज्जनीय कर्म का निर्धारण (जैसा कि पहले बताया गया है) हो जाता है।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य बातें भी हैं जिनसे तज्जनीय कर्म का निर्धारण होने पर वह धम्म और विनय के विरुद्ध होता है और उसका निवारण कठिन होता है; (अर्थात्) जब यह कर्म अभियुक्त को चेतावनी दिए बिना किया गया हो—जब यह कर्म अभियुक्त को यह याद दिलाए बिना किया गया हो कि उसने अपराध किया है या नहीं—जब यह कर्म अभियुक्त को दोषी ठहराए बिना किया गया हो। हे भिक्षुओं, तज्जनीय कर्म का निर्धारण होने पर (जैसा कि पहले बताया गया है) उसका निवारण हो जाता है।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य बातें भी हैं जिनसे तज्जनीय कर्म का निर्धारण होने पर वह धम्म और विनय के विरुद्ध होता है और उसका निवारण कठिन होता है; (अर्थात्) जब वह विधिवत गठित सभा में विधिवत संचालित न किया गया हो—जब वह

जब किसी विशेष क्षेत्र के सभी भिक्षुओं की उपस्थिति और स्वीकृति के बिना कोई कार्य किया गया हो, तो वह न्यायरहित माना जाएगा। हे भिक्षुओं, इन तीन विशेषताओं से युक्त एक तज्जनीय-कम्म (आदि, पहले की तरह) स्थापित किया जाता है।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य बातें भी हैं जिनसे तज्जनीय कर्म का निष्पादन धम्म और विनय के विरुद्ध होता है और उसका निपटारा कठिन होता है; (अर्थात्) जब यह अभियोजित व्यक्ति की सुनवाई के बिना किया गया हो—जब यह न्याय के विरुद्ध किया गया हो—जब यह मंडल के सभी भिक्षुओं की उपस्थिति और स्वीकृति के बिना किया गया हो। हे भिक्षुओं, इन तीन बातों से चिह्नित तज्जनीय कर्म का निपटारा हो जाता है (आदि, पहले की तरह)।

'अन्य तीन बातें भी हैं (और इसी प्रकार, जैसा कि पहले बताया गया है), अर्थात्, जब यह अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराए बिना किया गया हो—जब यह न्याय के बिना किया गया हो—जब यह सर्किट से संबंधित सभी भिक्षुओं की उपस्थिति और अनुमोदन के बिना किया गया हो।'

[और इसी प्रकार, इस खंड के अनुच्छेदों में उल्लिखित तीनों बातें, अनुच्छेद 4, 5 और 6 में दोहराई गई दो बातों के साथ मिलकर, ऐसे छह और मामले बनाती हैं जिनमें तज्जनीय कर्म को धम्म और विनय के विरुद्ध घोषित किया जाता है, और जिसे निरस्त करना कठिन होता है।]

यहां उन बारह मामलों का अंत होता है जिनमें कानून के विरुद्ध कार्यवाही (कम्मा) की बात की गई है।

<<<< पिछला(1.1) । अगला(1.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.2) । अगला(1.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय-3.

1. हे भिक्षुओं, तीन बातें हैं जिनसे तज्जनीय कर्म की विशेषता यह है कि यह धम्म के अनुसार, विनय के अनुसार और आसानी से निपटाया जा सकता है; (अर्थात्) जब यह योग्य व्यक्तियों की पूर्ण सभा में, विधि के अनुसार और मुकदमे के पक्षकारों की उपस्थिति में किया गया हो—जब यह आरोपी व्यक्ति की सुनवाई के बाद किया गया हो—जब यह आरोपी व्यक्ति द्वारा अपना अपराध स्वीकार करने के बाद किया गया हो। हे भिक्षुओं, इन तीन विशेषताओं से युक्त तज्जनीय कर्म धम्म के अनुसार, विनय के अनुसार और आसानी से निपटाया जा सकता है।

[और इसी प्रकार पिछले खंड में उल्लिखित बारह प्रस्तावों में से प्रत्येक का विपरीत कथन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।]

यहां विधि के अनुसार की जाने वाली कार्यवाही (कम्मा) के बारह मामले समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.2) । अगला(1.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.3) । अगला(1.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय-4.

1. हे भिक्षुओं, तीन बातें हैं जो किसी भिक्षु में पाई जाती हैं, और यदि संघ चाहे तो उसके विरुद्ध तज्जनीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) जब वह कलह उत्पन्न करने वाला, झगड़ालू, विवाद करने वाला, व्यर्थ की बातों में लिप्त और संघ में विधिक प्रश्न उठाने वाला हो—जब वह मंदबुद्धि, मूर्ख, दोषों से भरा और पुण्यहीन हो—जब वह गृहस्थ समाज में, अवैध आचरण में रह रहा हो।

संसार से संबंध। हे भिक्षुओं, तीन बातें हैं, जब संघ को उसके विरुद्ध संदेह होता है (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)।

हे भिक्षुओं, उसके विरुद्ध तीन और बातें हैं; (अर्थात्), जब वह नैतिक मामलों में नैतिकता में विफल हो जाता है, जब वह अपराध के मामलों में आचरण में विफल हो जाता है, जब वह मत के प्रमुख मामलों में मत में विफल हो जाता है। हे भिक्षुओं, उसके विरुद्ध तीन बातें हैं। (अर्थात्, पहले की तरह)।

हे भिक्षुओं, उसके विरुद्ध तीन और बातें हैं; (अर्थात्), जब वह बुद्ध की निंदा करता है—जब वह धम्म की निंदा करता है—जब वह संघ की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, उसके विरुद्ध ये तीन बातें हैं। (अर्थात्, पहले की तरह)

2. हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के भिक्षु हैं, जिनके विरुद्ध संघ चाहे तो तज्जनीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) वह जो संघ में कलह उत्पन्न करता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है, संघ में विधिक प्रश्न उठाता है), वह जो मंदबुद्धि, मूर्ख, दोषों से भरा और पुण्यहीन है, और वह जो सांसारिक समाज में अवैध संगति में रहता है। हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के भिक्षु हैं, जिनके विरुद्ध तज्जनीय कर्म किया जाता है।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य प्रकार के भिक्षु भी हैं, जिनके विरुद्ध संघ चाहे तो तज्जनीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) वह जो नैतिक मामलों में नैतिकता में विफल रहा हो—वह जो आचरण में विफल रहा हो।

उल्लंघन के संदर्भ में—वह व्यक्ति जिसने मत के प्रमुख मामलों के संबंध में मत में विफलता पाई है। हे भिक्षुओं (और इसी प्रकार, पहले की तरह, तज्जनीय-कम्म तक) तीन प्रकार के भिक्षु होते हैं।

'हे भिक्षुओं, तीन अन्य प्रकार के भिक्षु भी हैं, जिनके विरुद्ध संघ चाहे तो तज्जनीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) जो बुद्ध की निंदा करता है, जो धम्म की निंदा करता है, और जो संघ की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के भिक्षु हैं (और इसी प्रकार, पहले की तरह, तज्जनीय कर्म तक)।'

यहां ताजनिया-कम्मा के छह अनुमेय मामले समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.3) | अगला(1.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.4) | अगला(1.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय-5.

1. जिस भिक्षु के विरुद्ध तज्जनीय कर्म किया गया हो, उसे उचित आचरण करना चाहिए। और यही उचित आचरण है: उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिए, उसे निस्साया नहीं करना चाहिए, उसे प्रदान नहीं करना चाहिए।

यदि वह स्वयं समनेरा धारण कर ले, तो उसे भिक्षुणियों को उपदेश देने का पद स्वीकार नहीं करना चाहिए—और यदि उसने पद स्वीकार कर लिया है, तो उसे भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहिए—उसे वह अपराध नहीं करना चाहिए जिसके लिए संघ द्वारा उसके विरुद्ध तज्जनिया-कम्मा की गई है—न ही इसी प्रकार का कोई अपराध—न ही कोई और गंभीर अपराध—उसे अपने विरुद्ध की गई कार्यवाही पर—न ही उसे करने वाले भिक्षुओं पर—आलोचना नहीं करनी चाहिए—उसे किसी नियमित भिक्षु के उपोसथ समारोह—या पवाराना समारोह—में भाग लेने पर आपत्ति नहीं उठानी चाहिए—उसे किसी कनिष्ठ भिक्षु को सीमा से बाहर जाने से रोकने या बड़ों के समक्ष आने का आदेश नहीं देना चाहिए—उसे किसी अन्य भिक्षु के विरुद्ध निंदा नहीं करनी चाहिए—उसे किसी अन्य भिक्षु से उसे निंदा करने के लिए नहीं कहना चाहिए (उस भिक्षु को फटकारने के लिए) उसे नहीं छोड़ना चाहिए; (किसी अन्य भिक्षु को, जिसके बारे में उसे लगता है कि वह अपराध कर रहा है) चेतावनी नहीं देनी चाहिए; उसे चाहिए

किसी अन्य भिक्षु को यह याद दिलाने के लिए न कहें (कि उसने अपराध किया है या नहीं)—और उसे भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करनी चाहिए।'

यहां ताजनिया-कम्मा के बाद आने वाले अठारह कर्तव्य समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.4) । अगला(1.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.5) । अगला(1.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय-6.

1. इस प्रकार संघ ने पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षुओं के विरुद्ध तज्जनिया-कर्म किया। जब संघ ने उन्हें तज्जनिया-कर्म के अधीन कर दिया और वे उसके अनुसार उचित आचरण कर रहे थे, तो वे वश में हो गए और उन्होंने मुक्ति की मांग की; और भिक्षुओं के पास जाकर उन्होंने इस प्रकार कहा, 'हे महोदय, संघ ने हमें तज्जनिया-कर्म आदि के अधीन कर दिया है और अब हमें मुक्ति मिल गई है। अब हमें क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर, हे भिक्षुओं, संघ पांडुक और लोहितक के अनुयायियों के विरुद्ध किए गए तज्जनिया-कम्मा को रद्द कर दे।'

2. हे भिक्षुओं, पाँच ऐसी बातें हैं जिनके द्वारा,

जब किसी भिक्षु का अभिमंत्रण हो जाता है, तो उसके लिए तज्जनीय कर्म निरस्त नहीं किया जाना चाहिए; (अर्थात्), जब वह उपसम्पदा प्रदान करता है—जब वह निस्साय देता है—जब वह समनेर धारण करता है—जब वह भिक्षुणियों को उपदेश देने का कार्यभार ग्रहण करता है—और जब उस कार्यभार को ग्रहण करने के बाद वह भिक्षुणियों को उपदेश देता है। हे भिक्षुओं (आदि, पहले की तरह) ये पाँच बातें उसके लिए निरस्त कर दी जाती हैं।

हे भिक्षुओं, पाँच अन्य बातें हैं जिनके द्वारा किसी भिक्षु की पहचान होने पर उसके लिए तज्जनीय-कम्मा निरस्त नहीं की जानी चाहिए; (अर्थात्) जब वह उस अपराध का प्रायश्चित करता है जिसके लिए संघ द्वारा उसके विरुद्ध तज्जनीय-कम्मा निष्पादित की गई है—या इसी प्रकार का कोई अन्य अपराध—या कोई और भी गंभीर अपराध—जब वह अपने विरुद्ध की गई कार्यवाही—या उसे निष्पादित करने वाले भिक्षुओं—पर दोष लगाता है। हे भिक्षुओं, ये पाँच बातें उसके लिए निरस्त कर दी जाती हैं।

हे भिक्षुओं, आठ ऐसी बातें हैं जिनके द्वारा किसी भिक्षु का चरित्र निर्धारण होने पर उसके लिए तज्जनीय कर्म रद्द नहीं किया जाना चाहिए; (अर्थात्) जब वह किसी नियमित भिक्षु के उपोसथ समारोह—या पवाराना समारोह—में भाग लेने पर आपत्ति उठाता है—जब वह किसी कनिष्ठ भिक्षु को सीमा से बाहर जाने से रोकता है—जब वह किसी अन्य भिक्षु के विरुद्ध निंदा करता है—जब वह किसी अन्य भिक्षु से कुछ देने का अनुरोध करता है

उसे उस भिक्षु को फटकारने से रोका जाता है—जब वह किसी दूसरे भिक्षु को चेतावनी देता है जिसे वह अपराध कर रहा मानता है—जब वह किसी दूसरे भिक्षु को उस नियम की याद दिलाता है जिसका वह उल्लंघन कर रहा मानता है—जब वह भिक्षुओं के साथ संगति करता है। हे भिक्षुओं, ये आठ बातें उसके लिए वर्जित हैं।

यहां उन अठारह मामलों का अंत होता है जिनमें (ताज्जनिया-कम्मा का) निरसन नहीं होना चाहिए।

<<<< पिछला(1.5) | अगला(1.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.6) | अगला(1.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय 7।

[यह अध्याय पिछले अध्याय का ठीक विपरीत है।]

यहां उन अठारह मामलों का अंत होता है जिनमें (ताज्जनिया-कम्मा को) निरस्त किया जाना चाहिए।

<<<< पिछला(1.6) | अगला(1.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.7) | अगला(1.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका I. तज्जनिया कम्मा (फटकार के कार्य)

अध्याय-8.

1. हे भिक्षुओं, इस प्रकार पश्चात्ताप किया जाना चाहिए। पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षु संघ के समक्ष अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर उपस्थित हों और वरिष्ठ भिक्षुओं के चरणों में प्रणाम करें, तथा घुटने टेककर हथेलियों को जोड़कर इस प्रकार कहें: "हे महोदय, संघ ने हमें तज्जनीय कर्म के अधीन कर दिया है, और हम उसके अनुसार उचित आचरण कर रहे हैं; हम वश में हो गए हैं, और हम मुक्ति चाहते हैं, और तज्जनीय कर्म को पश्चात्ताप करने की विनती करते हैं।"

और दूसरी बार उन्हें [उसी शब्दों में] विनती करनी चाहिए। और तीसरी बार उन्हें [उसी शब्दों में] विनती करनी चाहिए। तब एक विवेकशील और योग्य भिक्षु को यह मामला संघ के समक्ष रखना चाहिए।

2. "आदरणीय संघ मेरी बात सुनो। ये भिक्षु जो पांडुक और लोहितक के अनुयायी हैं, पहले की तरह अधीन हैं (आदि), और वे पहले की तरह आचरण कर रहे हैं (आदि), और वे भीख मांग रहे हैं (आदि)।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुने। ये भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले की तरह) तज्जनीय कर्म को निरस्त करने की विनती करते हैं। संघ पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षुओं के लिए तज्जनीय कर्म निरस्त करता है। जो भी आदरणीय भिक्षु पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षुओं के लिए तज्जनीय कर्म निरस्त करने का समर्थन करते हैं, वे मौन रहें। जो इसका समर्थन नहीं करते, वे बोलें।"

"और मैं दूसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (और पहले की तरह) उन्हें बोलने दें।"

"और मैं तीसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (और पहले की तरह) उन्हें बोलने दें।"

"संघ ने पांडुक और लोहितक के अनुयायी भिक्षुओं के लिए ताजनिया-कम्मा को निरस्त कर दिया है। संघ इसका अनुमोदन करता है; इसलिए वह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

यहां प्रथम (कम्मा), ताजनिया-कम्मा समाप्त होती है।

<<<< पिछला(1.7) | अगला(1.9) >>>>

द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.8) | अगला(1.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडक द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य)

अध्याय-9.

1. उस समय पूज्य सेय्यासक मूर्ख, अविवेकी, दोषों से परिपूर्ण और पुण्यहीन थे, और सांसारिक संगति में अवैतनिक रूप से गृहस्थी में रह रहे थे। स्थिति इतनी गंभीर थी कि भिक्षु उन्हें परख पर रखने, परख की शुरुआत में वापस भेजने, मनत्त अनुशासन का पालन कराने और उनका पुनर्वास करने से थक चुके थे। संयमी भिक्षु नाराज होकर बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'पूज्य सेय्यासक इतने मूर्ख कैसे हो सकते हैं कि भिक्षु पहले की तरह थक चुके हैं?'

तब उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

और उस अवसर पर, और उस संदर्भ में, भगवान बुद्ध ने भिक्षुसंघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा, 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि पूज्य सेय्यासक का पुनर्वास करना मूर्खता है (आदि, जैसा कि पहले कहा गया है)?'

'यह सच है, प्रभु!'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारा (यह कहते हुए), 'यह अनुचित है' (आदि, हमेशा की तरह, तुलना करें 1, 2, 3, आगे तक), और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'इसलिए, हे भिक्षुओं, संघ आदरणीय सेय्यासक के विरुद्ध निस्साय-कर्म (अधीनता का कार्य) करे: "तुम्हें दूसरों की देखरेख में रहना चाहिए।"

2. हे भिक्षुओं, अब इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम भिक्षु सेय्यासक को चेतावनी दी जानी चाहिए; चेतावनी दिए जाने पर उन्हें स्मरण कराया जाना चाहिए; स्मरण कराए जाने पर उन पर अपराध का आरोप लगाया जाना चाहिए; अपराध का आरोप लगाए जाने पर किसी विवेकशील और सक्षम भिक्षु को संघ के समक्ष यह मामला रखते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुने (आदि, हमेशा की तरह; ऊपर अध्याय 1, 4 और 8, 2 देखें)।"

<<<< पिछला(1.8) | अगला(1.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.9) | अगला(1.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडक द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य)

अध्याय-10.

[अध्याय 2-5 को यहाँ विस्तार से दोहराया गया है, जिसमें ताजनिया-कम्मा के स्थान पर निस्साया-कम्मा का प्रयोग किया गया है।]

<<<< पिछला(1.9) | अगला(1.11) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.10) | अगला(1.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडक द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य)

अध्याय-11.

1. इसलिए संघ ने भिक्षु सेय्यासक के विरुद्ध निस्साय-कर्म किया (यह कहते हुए), 'तुम्हें दूसरों की देखरेख में रहना चाहिए।'

और जब संघ द्वारा उन्हें निस्सय-कर्म के अधीन किया गया, तो उन्होंने अच्छे साथियों से संपर्क साधकर, उनसे संगति करके, उनसे धम्म का वर्णन करवाकर और उनसे प्रश्न पूछकर परंपराओं में ज्ञान प्राप्त किया; वे निकाय परंपरा के ज्ञाता बन गए; वे धम्म, विनय और मतिकाओं के पाठकर्ता बन गए; वे चतुर, विवेकशील, बुद्धिमान, विनम्र, पश्चात्ताप से परिपूर्ण और आज्ञाकारी थे; उन्होंने सही आचरण किया, वे वश में हो गए, उन्होंने मुक्ति की खोज की और भिक्षुओं के पास जाकर इस प्रकार कहा:

'महोदय, संघ द्वारा निस्सय-कर्म के अधीन किए जाने के बाद, मैं सही आचरण कर रहा हूँ और वश में हो गया हूँ, और मैं मुक्ति चाहता हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर, हे भिक्खुओ, संघ को भिक्खु सेय्यसाका के लिए निस्साय-कम्मा को रद्द करने दें।

2. 'हे भिक्षुओं, पाँच बातें हैं (आदि, जैसा कि अध्याय 6.2 में है, अध्याय 7 के अंत तक, तज्जनीय-कम्मा के स्थान पर निस्साय-कम्मा पढ़ते हुए)।'

<<<< पिछला(1.10) | अगला(1.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.11) | अगला(1.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडक द्वितीय. निस्साया-कर्म (अधीनता का कार्य)

अध्याय-12.

[इस अध्याय में कर्म-वका द्वारा निरस्तीकरण की विधि का ठीक उसी प्रकार वर्णन किया गया है जैसा कि ऊपर अध्याय-8 में किया गया है।]

यहां दूसरा (कर्म), निस्साय-कर्म समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.11) | अगला(1.13) >>>>

III. पब्बजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)
टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.12) | अगला(1.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खण्डका तृतीय। पब्बाजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)

अध्याय-13.

1. उस समय असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षु किता पर्वत पर निवास करते थे, वे दुष्ट और निर्लज्ज भिक्षु थे। वे निम्नलिखित बुरे कार्य करते थे: वे फूलों की कलम लगाते और उन्हें रोपते थे; वे फूलों को पानी देते और उन्हें पानी देते थे; वे उन्हें इकट्ठा करते और उन्हें इकट्ठा करवाते थे; वे फूलों के गुलदस्ते बनाते और उन्हें बनवाते थे; वे फूलों की मालाएँ बनाते और बनवाते थे, जिनमें डंठलों को

एक साथ बांधकर, डंठलों को अलग-अलग बांधकर, मंगारिका, विधुटिका, वातंसक, अवेला और उरक्खड़ा जैसी कई तरह की मालाएँ बनाई जाती थीं; और फिर वे इन सभी प्रकार की मालाओं को सम्मानित परिवारों की पत्नियों, बेटियों, युवतियों, भाभीयों और दासियों को देते या भेजते थे; और वे सम्मानित परिवारों की पत्नियों, बेटियों, युवतियों, भाभीयों और दासियों के साथ एक ही थाली में खाते, एक ही बर्तन में पीते, एक ही आसन पर बैठते, एक ही चटाई पर लेटते, एक ही चादर ओढ़ते; और वे गलत समय पर भोजन करते, शराब पीते, मालाएँ, सुगंध और मलहम लगाते; और वे नाचते, गाते, संगीत बजाते और मौज-मस्ती करते, और ये सब एक साथ करते थे। संयोजन।

2. और वे आठ और दस मोहरों वाले खेल खेलकर, और उछालकर, जमीन पर बनी आकृतियों पर कूदकर, और बिना हिलाए ढेर से पदार्थ निकालकर अपना मनोरंजन करते थे; और पासे और ट्रैप-बॉल के खेल खेलकर भी मनोरंजन करते थे; और वे भद्दी आकृतियाँ बनाते, गेंद उछालते, तुरही बजाते, नकली हल से जुताई के मुकाबले खेलते, कलाबाज़ी करते, नकली पवनचक्कियाँ बनाते, ताल का अनुमान लगाते, रथ दौड़ लगाते, तीरंदाजी करते, उंगलियों से कंचे चलाते, दूसरों के मन की बात समझते और उनके कामों की नकल करते थे;—और वे हाथी की सवारी, घोड़े की सवारी, रथ चलाना, तीरंदाजी और तलवारबाजी का अभ्यास करते थे;—और वे हाथियों, घोड़ों और रथों के आगे-पीछे दौड़ते, क्रोध के भाव दिखाते, हाथ मलते, कुश्ती करते और मुक्केबाजी करते थे;—और अपने वस्त्रों को मंच की तरह बिछाकर वे नाचने वाली लड़कियों को बुलाते और कहते, 'बहन, यहाँ नाचो!' और तालियों से उनका स्वागत करते थे। इस प्रकार वे अनेक प्रकार के बुरे जीवन जीते थे।

3. उस समय एक भिक्षु, जिसने वर्षा ऋतु काशी देश में बिताई थी और भगवान बुद्ध से मिलने जा रहा था, कीता पर्वत पर पहुँचा। वह भिक्षु सुबह सवेरे अपने अंतर्वस्त्र पहनकर, विधिवत वस्त्र धारण करके, कीता पर्वत पर भिक्षा मांगने गया। वह पूर्णतः गरिमामय था, उसकी आँखें झुकी हुई थीं और उसका रूप-रंग आकर्षक था, चाहे वह प्रवेश कर रहा हो या बाहर जा रहा हो।

बाहर आने में, देखने में या निहारने में, अपनी बांह मोड़ने में या उसे आगे बढ़ाने में।

तब लोगों ने उस भिक्षु को देखकर कहा, 'यह मूर्खों का सरदार, मूर्खों का सरदार या मूर्खों का सरदार कौन है? भला कौन इसके पास आकर भीख मांगेगा? हमारे गुरु, असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायी, तो विनम्र, मित्रवत, मधुर वाणी वाले, हंसमुख, बिल्कुल मूर्ख नहीं, बल्कि खुले दिल के और सबसे पहले बोलने वाले हैं। ऐसे लोगों को ही तो भीख देना उचित है!'

और एक गृहस्थ शिष्य ने उस भिक्षु को किता पर्वत पर भिक्षा मांगने जाते हुए देखा। उसे देखकर वह उसके पास गया; और वहाँ पहुँचकर उसने उस भिक्षु से कहा:

'क्या आपके आदरणीय महोदय ने कोई भिक्षा ग्रहण की है?'

'नहीं, मेरे मित्र, मुझे कोई भिक्षा नहीं मिली है!'

'आह्वय, पूज्यवर! चलिए मेरे घर चलते हैं!' तब उस गृहस्थ शिष्य ने भिक्षु को अपने घर ले जाकर भोजन कराया और पूछा: 'तो फिर आप कहाँ जा रहे हैं?'

'मैं भगवान बुद्ध के दर्शन करने के लिए सावत्थी जा रहा हूँ, मेरे मित्र।'

तब हे आदरणीय, मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करें और कहें, "हे प्रभु, किता पर्वत पर स्थित निवास स्थान दूषित हो गया है। असजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षु किता पर्वत पर निवास कर रहे हैं, वे दुष्ट और निर्लज्ज भिक्षु हैं। ऐसे ही भिक्षु..."

वे जो बुरे आचरण अपनाते हैं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1, 2 से अंत तक में है)। और हे प्रभु, जो लोग पहले विश्वासी और आस्थावान थे, वे अब अविश्वासी और आस्थाहीन हो गए हैं; संघ के लिए पहले जो भिक्षा के अवसर खुले थे, वे अब नष्ट हो गए हैं; योग्य भिक्षु त्याग कर रहे हैं, और दुष्ट भिक्षु उस स्थान पर निवास कर रहे हैं। हे प्रभु, भगवान बुद्ध कृपा करें कि वे किता पर्वत पर (अन्य) भिक्षुओं को भेजें ताकि वहाँ निवास स्थान पुनः स्थापित हो सके।

5. भिक्षु ने अपने मित्र की बात मानते हुए कहा, 'बहुत खूब, मेरे मित्र।' और अपने आसन से उठकर वह सावत्थी के लिए चल पड़ा और सीधे अनाथपिंडिका के उपवन, सावत्थी के जेतवन, उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध ठहरे हुए थे। वहाँ पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।

अब महान बुद्धों की यह परंपरा है कि वे आने वाले भिक्षुओं का अभिवादन करते हैं। भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु से कहा, 'हे भिक्षु, क्या सब ठीक चल रहा है? क्या आपके पास पर्याप्त संसाधन हैं? क्या आपने अपनी यात्रा बिना अधिक थके पूरी कर ली है? और हे भिक्षु, आप कहाँ से आए हैं?'

'हे प्रभु, सब कुछ मेरे साथ अच्छा चल रहा है। मेरे पास अपने भरण-पोषण के लिए पर्याप्त साधन हैं। और मैंने अपनी यात्रा बिना अधिक थके पूरी कर ली है। हे प्रभु, मैंने वर्षा ऋतु काशी देश में बिताई; और भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए श्रावस्ती जाते समय मैं किता पर्वत पर पहुँचा। और सुबह जल्दी तैयार होकर, हे प्रभु, मैं विधिवत वस्त्र धारण करके किता पर्वत पर भिक्षा मांगने गया। और एक गृहस्थ शिष्य ने मुझे देखा (आदि, जैसा ऊपर, अनुच्छेद 4 के अंत तक, आवश्यक परिवर्तनों के साथ)।

(भाषण का वर्णनात्मक रूप)। हे प्रभु, मैं वहीं से आया हूँ।

6. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा:

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षु, जो किता पर्वत पर निवास करते हैं, दुष्ट और निर्लज्ज भिक्षु हैं; और वे ऐसे बुरे आचरणों का पालन करते हैं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 4 में अंत तक है)?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, ये मूर्ख लोग इस प्रकार की प्रथाओं का पालन कैसे कर सकते हैं (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1, 2 से अंत तक है)? हे भिक्षुओं, इससे अपरिवर्तितों का धर्मांतरण नहीं होगा (आदि, हमेशा की तरह। अध्याय 1, अनुच्छेद 2 से अंत तक तुलना करें)।'

और जब महान बुद्ध ने उन्हें फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना को संबोधित करते हुए कहा, 'अब जाओ, सारिपुत्त और मोग्गलाना, किता पर्वत पर। और वहाँ पहुँचकर उन भिक्षुओं के विरुद्ध पब्बजनीय-कम्म (निर्वासन का कार्य) करो जो अस्सजी और पुनब्बासु के अनुयायी हैं, ताकि वे तुम्हारे सद्धि-विहारिक बन जाएँ।'

'हे प्रभु, हम असजी और पुनब्बासु के अनुयायी भिक्षुओं के विरुद्ध पब्बजनीयकम्मा कैसे कर सकते हैं; क्योंकि वे तो आवेशपूर्ण और हिंसक स्वभाव के हैं?'

'तो फिर आप लोग जाइए, सारिपुत्त और मोग्गलाना, साथ में कई भिक्षु भी।'

'ऐसा ही हो, प्रभु!' सारिपुत्त और मोग्गलाना ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए सहमति व्यक्त की।

7. हे भिक्षुओं, अब इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम, असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षुओं को चेतावनी दी जानी चाहिए: चेतावनी देने के बाद, उन्हें (पतिमोक्खा के उस नियम की याद दिलाई जानी चाहिए जिसका उन्होंने उल्लंघन किया है); याद दिलाने के बाद, उन पर अपराध का आरोप लगाया जाना चाहिए; आरोप लगाए जाने के बाद, किसी विवेकशील और सक्षम भिक्षु को संघ के समक्ष यह मामला रखते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनो। असजी और पुनाबस्सु के अनुयायी ये भिक्षु दुष्ट और निर्लज्ज हैं। उनके बुरे कर्म सबके सामने हैं, और यह भी देखा और सुना जा चुका है कि उनके द्वारा प्रतिष्ठित परिवारों को भी गुमराह किया गया है। यदि संघ के लिए समय उपयुक्त हो, तो संघ असजी और पुनाबस्सु के अनुयायियों के विरुद्ध पब्बजनीयकम्मा करे, जिसका अर्थ यह हो कि उनके अनुयायियों के विरुद्ध

असाजी और पुनाबासु को किता पहाड़ी पर नहीं रहना चाहिए।

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनो। ये भिक्षु जो असजी और पुनाबसु के अनुयायी हैं, दुष्ट और निर्लज्ज भिक्षु हैं। उनके बुरे कर्म (जैसा कि पहले बताया गया है) देखे और सुने भी गए हैं। संघ इसके द्वारा उनके विरुद्ध पब्बजनीय कर्म करता है, जिसका अर्थ यह है कि असजी और पुनाबसु के अनुयायी भिक्षु किता पर्वत पर निवास न करें। जो भी आदरणीय भिक्षु इन अनुयायियों के विरुद्ध पब्बजनीय कर्म करने का समर्थन करते हैं, वे मौन रहें। जो इसका समर्थन नहीं करते, वे बोलें।"

मैं दूसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (आदि, पहले की तरह)। मैं तीसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (आदि, पहले की तरह)।

"संगठन ने असजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षुओं के विरुद्ध पब्बजनीय-कम्म का आदेश दिया है कि असजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षु किता पर्वत पर निवास न करें। संघ इसका समर्थन करता है। इसलिए वह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

<<<< पिछला(1.12) | अगला(1.14) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.13) | अगला(1.15) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खण्डका तृतीय। पब्बाजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)

अध्याय-14.

1. [यहाँ बारह ऐसे मामले दिए गए हैं जिनमें पब्बजनीय-कम्मा को क्रमशः विधि के विरुद्ध और विधि के अनुसार घोषित किया गया है, अध्याय 2 और 3 के सटीक शब्दों में, जहाँ ताजजनीय के स्थान पर पब्बजनीय पढ़ा गया है। इसके बाद अध्याय 4 के सटीक शब्दों में अनुमेय निलंबन के छह मामले दिए गए हैं, लेकिन ताजजनीय-कम्मा के लिए वहाँ दिए गए मामलों के अतिरिक्त, इस अध्याय के अनुच्छेद 1 और 2 को क्रमशः उस अध्याय के अनुच्छेद 1 और 2 के अंत में जोड़ा गया है।]

1. हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन तीन बातों से युक्त हो, तो संघ चाहे तो उसके विरुद्ध पब्बजनीयकम्मा कर सकता है; (अर्थात्) जब वह कर्मों में तुच्छता से युक्त हो—जब वह वाणी में तुच्छता से युक्त हो—जब वह कर्म और वाणी दोनों में तुच्छता से युक्त हो। हे भिक्षुओं, ये तीन बातें उसके विरुद्ध हैं (आदि, पहले की तरह)।

हे भिक्षुओं, तीन अन्य बातें भी हैं, जो किसी भिक्षु में पाई जाती हैं, तो संघ चाहे तो उसके विरुद्ध पब्बजनीयकम्मा कर सकता है; (अर्थात्) जब वह कर्म में सही कर्म का अभाव दिखाता है—जब वह वाणी में सही कर्म का अभाव दिखाता है—जब वह कर्म और वाणी दोनों में सही कर्म का अभाव दिखाता है। हे भिक्षुओं, ये तीन अन्य बातें हैं (आदि, पहले की तरह, आगे तक) उसके विरुद्ध।

'अन्य तीन बातें भी हैं (आदि, जैसा कि पिछले प्रत्येक अनुच्छेद में है; यहाँ तीन बातें हैं उसके द्वारा कर्म, वाणी और कर्म एवं वाणी दोनों में दूसरों को पहुँचाई गई हानि, जो कि संप्रदाय के उपदेशों और प्रथाओं में उसके स्वयं के प्रशिक्षण की कमी के कारण है)।

'अन्य तीन चीजें भी हैं (आदि, जैसा कि पिछले प्रत्येक अनुच्छेद में है, यहाँ तीन चीजें हैं कर्म में, वाणी में और कर्म और वाणी दोनों में जीवन की बुराई)।

2. हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के भिक्षु होते हैं, जिनके विरुद्ध संघ चाहे तो पब्बजनीयकम्म कर सकता है; (अर्थात्) कर्म में चंचल, वाणी में चंचल और कर्म और वाणी दोनों में चंचल। ये तीन प्रकार के भिक्षु हैं (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है, पब्बजनीयकम्म तक)।

भिक्षुओं के तीन अन्य प्रकार भी हैं (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में है, पहले, सही कर्म का अभाव - दूसरे, दूसरों को हानि पहुँचाना - और तीसरे, कर्म, वाणी और कर्म एवं वाणी दोनों में जीवन की बुराई को प्रतिस्थापित करते हुए)।

<<<< पिछला(1.13) | अगला(1.15) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.14) | अगला(1.16) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खण्डका तृतीय। पब्बाजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)

अध्याय-15.

[यह अध्याय अध्याय-5 के समान है, जिसमें ताजजिया के स्थान पर पब्बजिया पढ़ा गया है।]

<<<< पिछला(1.14) | अगला(1.16) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.15) | अगला(1.17) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खण्डका तृतीय। पब्बाजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)

अध्याय-16.

1. अतः सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षु संघ किता पर्वत की ओर अग्रसर हुआ और वहाँ उन्होंने अपने अनुयायियों भिक्षुओं के विरुद्ध पब्बजनीयकम्मा का क्रियान्वयन किया।

असाजी और पुनाबस्सु ने ऐसा इसलिए किया ताकि वे भिक्षु किता पर्वत पर न रहें। और जब संघ ने उन्हें पब्बजनीय-कर्म के अधीन किया, तो उन्होंने उचित आचरण नहीं किया, वे शांत नहीं हुए, उन्होंने मुक्ति की प्रार्थना नहीं की, उन्होंने भिक्षुओं से क्षमा नहीं मांगी, बल्कि उन्होंने उनका अपमान किया, उनमें दोष निकाला और कहा कि वे पक्षपात, दुर्भावना, मूर्खता और भय के कारण अपराध कर रहे हैं; और वे न केवल उस स्थान से चले गए, बल्कि संघ भी छोड़ दिया।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'जो भिक्षु अस्सजी और पुनब्बासु के अनुयायी हैं, संघ द्वारा पब्बजनीय-कर्म के अधीन किए जाने के बाद भी, वे सही आचरण करने से इनकार कैसे कर सकते हैं (और इसी प्रकार, पहले की तरह) संघ छोड़ सकते हैं?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षुसंघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा:

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि अस्सजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षु, संघ द्वारा पब्बजनीय-कर्म के अधीन किए जाने के बाद, संघ छोड़ने से इनकार कर देते हैं (आदि, पहले की तरह)?'

'यह सच है, प्रभु!'

'वे भिक्षु जो (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) संघ छोड़ सकते हैं? हे भिक्षुओं, इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या में वृद्धि होगी; बल्कि इससे अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे वापस लौट जाएंगे।' और जब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार से फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

तो फिर, हे भिक्षुओं, संघ पब्बजनीय-कर्म का निरस्तीकरण न करे। हे भिक्षुओं, पाँच बातें हैं (आदि, जैसा कि पहले अध्याय-6, §-2 से अध्याय-7 के अंत तक, तज्जनिया के स्थान पर पब्बजनीय पढ़ते हुए):

यहां उन अठारह मामलों का अंत होता है जिनमें (पब्बजनीय-कम्मा को) निरस्त किया जाना चाहिए।

<<<< पिछला(1.15) | अगला(1.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.16) | अगला(1.18) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खण्डका तृतीय। पब्बाजनीय-कम्मा (निर्वासन का कार्य)

अध्याय-17.

1. 'हे भिक्षुओं, अब इस प्रकार निरस्तीकरण किया जाना चाहिए। जिस भिक्षु पर पब्बजनीय-कम्म लागू किया गया है, उसे संघ के समक्ष जाना चाहिए (आदि, जैसा कि अध्याय-8, अनुच्छेद-1, 2 से अंत तक पहले बताया गया है)।'

यहां तीसरा (कम्मा), पब्बजनीय-कम्मा समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.16) | अगला(1.18) >>>>

IV. पतिसरनिया-कर्म (मेल-मिलाप का कार्य)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.18
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.17) | अगला(1.19) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-18.

1. उस समय पूज्य सुधम्म मक्खिकासंडा में चित्त गृहस्थ के अधीन निवास कर रहे थे, उनके द्वारा निर्मित नए भवनों की देखरेख करते थे और चित्त से नियमित रूप से भोजन प्राप्त करते थे। जब भी चित्त संघ को, या चार-पाँच भिक्षुओं को, या किसी एक को आमंत्रित करना चाहते थे, तो वे पूज्य सुधम्म का विशेष उल्लेख किए बिना आमंत्रित नहीं करते थे।

उस समय कई थेरा भिक्षु, जिनमें पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य महा कक्कना, पूज्य महा कोत्थिता, पूज्य महा कप्पिना और पूज्य महा कुंडा आदि शामिल थे, उपस्थित थे।

आदरणीय अनुरुद्ध, आदरणीय रेवता, आदरणीय उपली, आदरणीय आनंद और आदरणीय राहुल काशी देश से होते हुए मक्खिकासंडा पहुंचे। वहां गृहस्थ चित्त ने यह समाचार सुना कि थेरा भिक्षु मक्खिकासंडा पहुंच गए हैं।

तब गृहस्थ चित्त थेरा भिक्षुओं के स्थान पर गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने थेरा भिक्षुओं को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठे तो पूज्य सारिपुत्त ने गृहस्थ चित्त को उपदेश दिया, उनका प्रोत्साहन किया, उन्हें प्रेरित किया और धर्म प्रवचन से उन्हें प्रसन्न किया। इस प्रकार उपदेश, प्रोत्साहन, प्रोत्साहन और धर्म प्रवचन से प्रसन्न होकर गृहस्थ चित्त ने थेरा भिक्षुओं से कहा, 'पूज्य थेरा भिक्षु कल मेरे घर में भिक्षु के रूप में भोजन करने की अनुमति दें।' थेरा भिक्षुओं ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

2. तब यह देखकर कि थेरा भिक्षुओं ने अपनी सहमति दे दी है, गृहस्थ चित्त अपने आसन से उठे और थेरा भिक्षुओं के सामने प्रणाम किया, और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए उनके पास से गुजरे और उस स्थान की ओर चल पड़े जहाँ पूज्य सुधम्म विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सुधम्म को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। इस प्रकार खड़े होकर गृहस्थ चित्त ने पूज्य सुधम्म से कहा, 'कृपापूर्वक सुधम्म कल का भोजन मेरे घर में थेरा भिक्षुओं के साथ करने की अनुमति दें।'

लेकिन पूज्य सुधम्म ने यह सोचते हुए कि, 'पहले तो यह चित्त गृहस्थ था, जब भी वह संघ को निमंत्रण देना चाहता था, या

चार-पाँच भिक्षुओं को, या उनमें से किसी एक को भी, वह मेरा विशेष उल्लेख किए बिना आमंत्रित नहीं करता था; परन्तु अब उसने मेरा उल्लेख किए बिना ही थेरा भिक्षुओं को आमंत्रित कर दिया है। यह चित्त गृहस्थ अब मुझसे क्रोधित है, मुझसे शत्रुता रखता है, और अब मुझसे प्रसन्न नहीं होता।' और ऐसा सोचकर उसने मना कर दिया, 'हे गृहस्थ, बस करो।'

और दूसरी बार गृहस्थ चित्त ने पूज्य सुधम्म से कहा (और इसी तरह, पहले की तरह, वही परिणाम निकला)। और तीसरी बार (और इसी तरह, पहले की तरह, वही परिणाम निकला)।

तब गृहस्थ चित्त ने यह सोचकर कि 'आदरणीय सुधम्म मेरे विरुद्ध क्या कर सकते हैं, चाहे वे सहमत हों या असहमत,' आदरणीय सुधम्म को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहाँ से चले गए।

3. रात के अंत में, गृहस्थ चित्त ने थेरा भिक्षुओं के लिए मीठे व्यंजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार के, तैयार किए। आदरणीय सुधम्म ने सोचा, 'मैं भी जाकर देख लूँ कि गृहस्थ चित्त ने थेरा भिक्षुओं के लिए क्या तैयार किया है,' और सुबह जल्दी ही वस्त्र धारण करके चित्त के निवास स्थान पर गए; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने लिए बिछाई गई चटाई पर आसन ग्रहण किया।

तब गृहस्थ चित्त उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य सुधम्म विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सुधम्म को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठ गए तो पूज्य सुधम्म ने गृहस्थ चित्त से कहा: 'हे गृहस्थ, यद्यपि तुमने यह भरपूर मात्रा में मीठे व्यंजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार के, तैयार कर दिए हैं, फिर भी एक चीज की कमी है, अर्थात् तिल की खली।'

हे महाराज, बुद्धों के संरक्षण में इतना खजाना है, फिर भी पूज्य सुधम्म केवल एक ही चीज का जिक्र करते हैं, और वह है तिल की खली। बहुत समय पहले, हे महाराज, दक्षिणपथ के कुछ व्यापारी अपने व्यापार के लिए पूर्व देश गए और वहाँ से एक मुर्गी लाए। हे महाराज, उस मुर्गी का एक कौवे से मिलन हुआ और उसने एक चूजे को जन्म दिया। हे महाराज, जब भी वह चूजा मुर्गे की आवाज निकालने की कोशिश करता, तो उसकी आवाज "कांव" होती, और जब भी वह कौवे की आवाज निकालने की कोशिश करता, तो उसकी आवाज "कुकड़ू" होती। ठीक इसी प्रकार, हे महाराज, बुद्धों के संरक्षण में इतना खजाना होने के बावजूद, जब भी पूज्य सुधम्म बोलते हैं, तो उनकी आवाज "तिल की खली" ही होती है।

4. 'हे गृहस्थ, तुम मेरा अपमान कर रहे हो। तुम मुझमें दोष निकाल रहे हो। हे गृहस्थ, यह स्थान तुम्हारा है। मुझे यहाँ से जाना होगा,' पूज्य सुधम्म ने कहा।

'हे महोदय, मेरा इरादा पूज्य सुधम्म का अपमान करने या उनकी आलोचना करने का नहीं है। महोदय, पूज्य सुधम्म मक्खिकासंडा में ही निवास करें। यह बेर के वृक्षों का उपवन रमणीय है, और मैं पूज्य सुधम्म को वे सभी चीजें उपलब्ध कराने का पूरा ध्यान रखूंगा जिनकी एक संन्यासी को आवश्यकता होती है—अर्थात वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर दवा।'

और दूसरी बार पूज्य सुधम्म ने कहा: तुम मुझे गाली दे रहे हो (आदि, पहले की तरह, उसी उत्तर के साथ)। और तीसरी बार पूज्य सुधम्म ने कहा: 'तुम मुझे गाली दे रहे हो (आदि, पहले की तरह), मुझे इससे दूर जाना होगा।'

'तो फिर, महाराज, आदरणीय सुधम्मा कहाँ जाएँगे?'

'हे गृहस्थ, मैं भगवान बुद्ध के दर्शन करने के लिए सावत्थी जाऊंगा।'

'तो फिर, महाराज, आपने जो कहा है और मैंने जो कहा है, वह सब भगवान बुद्ध को बता दीजिए। और महाराज, यदि पूज्य सुधम्म मक्खिकासंडा में भी पुनः लौट आएं तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।'

5. तब पूज्य सुधम्म ने अपनी चटाई समेटी और अपने कुंड और वस्त्र के साथ श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया। वे सीधे श्रावस्ती, जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठने के बाद पूज्य सुधम्म ने भगवान बुद्ध को अपने और गृहस्थ चित्त के सभी वचन बताए।

महान बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा, “हे मूर्ख, यह अनुचित था, नियम के अनुसार नहीं था, अनुपयुक्त था, एक भिक्षु के योग्य नहीं था, और ऐसा नहीं किया जाना चाहिए था। हे मूर्ख, तुम कैसे चित्त जैसे गृहस्थ को, जो एक आस्थावान व्यक्ति, विश्वासी शिष्य, दानदाता, प्रदाता और संघ का समर्थक था, अपने निंदा से नीचा दिखा सकते हो? हे मूर्ख, इससे न तो अपवर्तितों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या बढ़ेगी; बल्कि इससे अपवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे विमुख हो जाएंगे।”

परिवर्तित हो गया।' और उसे फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उसने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'अतः हे भिक्षुओं, संघ भिक्षु सुधम्म के विरुद्ध पतिसराणीय-कर्म (संयम का कार्य) करे, और कहे, "तुम्हें गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगनी है और क्षमा प्राप्त करनी है।"'

6. हे भिक्षुओं, अब इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम भिक्षु सुधम्म को चेतावनी दी जानी चाहिए: चेतावनी दिए जाने के बाद, उन्हें (पतिमोक्खा के उस नियम की याद दिलाई जानी चाहिए जिसका उन्होंने उल्लंघन किया है); याद दिलाए जाने के बाद, उन पर अपराध का आरोप लगाया जाना चाहिए; अपराध का आरोप लगाए जाने के बाद, किसी विवेकशील और सक्षम भिक्षु को संघ के समक्ष यह मामला रखते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनो। इस भिक्षु सुधम्म ने चित्त नामक गृहस्थ, जो एक धर्मनिष्ठ, निष्ठावान शिष्य, दानदाता, संघ का पालनहार और समर्थक है, का अपमान किया है और निंदा की है। यदि संघ के लिए समय उपयुक्त हो, तो संघ भिक्षु सुधम्म के विरुद्ध पतिसराणीय कर्म करे।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। यह भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले की तरह) संघ का समर्थक है। संघ इसके द्वारा भिक्षु सुधम्म के विरुद्ध पतिसारणीय कर्म करता है, जिसमें कहा जाता है, 'तुम्हें गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगनी है और क्षमा प्राप्त करनी है।' आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी सुधम्म भिक्षु के विरुद्ध पतिसारणीय कर्म करने का समर्थन करता है, वह मौन रहे। जो भी इसका समर्थन नहीं करता, वह बोले।"

मैं दूसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (आदि, पहले की तरह)। मैं तीसरी बार वही बात कहता हूँ। आदरणीय संघ (आदि, पहले की तरह)।

"भिक्षु सुधम्म के विरुद्ध पतिसराणीय-कर्म इस प्रकार किया गया है, 'तुम्हें गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगनी है और क्षमा प्राप्त करनी है।' संघ इस प्रस्ताव का समर्थन करता है। इसलिए यह मौन है। मेरा यही अर्थ है।"

<<<< पिछला(1.17) | अगला(1.19) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.18) | अगला(1.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-19.

[यहाँ पतिसरानिया-कम्मा के बारह मामलों और विधि के अनुसार कार्यवाही के बारह मामलों को तज्जनिया-कम्मा के अध्याय 2 और 3 के शब्दों में दोहराया गया है।]

<<<< पिछला(1.18) | अगला(1.20) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.20

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.19) | अगला(1.21) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-20.

1. हे भिक्षुओं, पाँच बातें ऐसी हैं जो किसी भिक्षु में पाई जाती हैं, तो संघ चाहे तो उसके विरुद्ध पतिसराणीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) जब वह गृहस्थों को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है—जब वह गृहस्थों को उनके आवासों से वंचित करने का प्रयास करता है—जब वह गृहस्थों की निंदा करता है और उनमें दोष निकालता है—जब वह गृहस्थों में फूट डालता है। हे भिक्षुओं, ये पाँच बातें उसके विरुद्ध (ऊपर दिए गए कथनों के अनुसार) की जाती हैं।

हे भिक्षुओं, पाँच अन्य बातें हैं, जो किसी भिक्षु में पाई जाती हैं, तो संघ चाहे तो उसके विरुद्ध पतिसराणीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) जब वह गृहस्थों से बुद्ध की निंदा करता है—जब वह गृहस्थों से धम्म की निंदा करता है—जब वह गृहस्थों से संघ की निंदा करता है—जब वह गृहस्थों को नीचा दिखाता है और निंदा करके उनका अपमान करता है—जब वह गृहस्थों से नियमों के अनुसार किए गए वचन का पालन नहीं करता है। हे भिक्षुओं, ये पाँच अन्य बातें हैं, जो उसके विरुद्ध की जाती हैं। (अतः पहले की तरह, आगे भी)।

'हे भिक्षुओं, पाँच प्रकार के भिक्षु होते हैं, जिनके विरुद्ध संघ चाहे तो पतिसराणीय कर्म कर सकता है; (अर्थात्) वह जो गृहस्थों को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है (आदि, जैसा कि अंतिम अनुच्छेद में अंत तक है)।'

यहां चार गुना पांच संदेह के मामले समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.19) | अगला(1.21) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.21

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.20) | अगला(1.22) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-21.

[अध्याय-5, जिसमें तज्जनिया-कम्मा के अधीन भिक्षु के उचित आचरण का वर्णन है, को दोहराया गया है, जिसमें तज्जनिया के स्थान पर पतिसरानिया पढ़ा गया है।]

यहां पतिसरानिया-कम्मा के अंतर्गत आने वाले अठारह कर्तव्य समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.20) | अगला(1.22) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.22

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.21) | अगला(1.23) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-22.

1. अतः संघ ने भिक्षु सुधम्म के विरुद्ध पतिसरनियाकम्म का निष्पादन करते हुए कहा, 'तुम्हें गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगकर क्षमा प्राप्त करनी है।' संघ द्वारा पतिसरनियाकम्म के अधीन किए जाने के बाद, यद्यपि वह मक्किकासंडा गया, परन्तु मन में अत्यधिक व्याकुलता के कारण वह गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगकर क्षमा प्राप्त करने में असमर्थ रहा, और सावत्थी लौट आया।

तब भिक्षुओं ने उससे पूछा, 'क्या आपने गृहस्थ चित्त को मनाकर उससे क्षमा प्राप्त की है?'

'वास्तव में, यद्यपि मैं मक्किकासंडा गया था, फिर भी मन में अत्यधिक व्याकुलता के कारण मैं गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगने और प्राप्त करने में असमर्थ रहा।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. 'हे भिक्षुओं, संघ सुधम्म भिक्षु के पास एक दूत नियुक्त करे, ताकि वह गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगे और प्राप्त करे।

हे भिक्षु, अब दूत की नियुक्ति इस प्रकार की जानी चाहिए। सर्वप्रथम, भेजे जाने वाले भिक्षु से पूछा जाए कि क्या वह जाने के लिए इच्छुक है। पूछने के बाद, किसी विवेकशील और योग्य भिक्षु द्वारा संघ के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए:

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। यदि आदरणीय संघ को समय उपयुक्त लगे, तो संघ अमुक भिक्षु को सुधम्म भिक्षु के साथ दूत नियुक्त करे, ताकि वह गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगे और प्राप्त करे।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुने। संघ इसके द्वारा अमुक भिक्षु को सुधम्म भिक्षु का सह-संदेशवाहक नियुक्त करता है, ताकि वह गृहस्थ चित्त से क्षमा मांगे और प्राप्त करे। आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी अमुक भिक्षु को सुधम्म भिक्षु का सह-संदेशवाहक नियुक्त किए जाने का समर्थन करता है, वह मौन रहे। जो भी इसका समर्थन नहीं करता, वह बोले।"

"संघ द्वारा फलां भिक्षु नियुक्त किया गया है। (आदि, जैसा पहले बताया गया है)। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए वह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

3. "तो, हे भिक्षुओं, सुधम्म भिक्षु को अपने सह-संदेशवाहक भिक्षु के साथ मक्खिकासंडा जाकर चित्त गृहस्थ से क्षमा मांगने को कहो, 'हे गृहस्थ, मुझे क्षमा कर दीजिए; मैं एक बार फिर आपकी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ।' यदि वह ऐसा कहने पर उन्हें क्षमा कर दे, तो अच्छा है। यदि वह उन्हें क्षमा न करे, तो सह-संदेशवाहक भिक्षु को कहना चाहिए, 'हे गृहस्थ, उन्हें क्षमा कर दीजिए; वे एक बार फिर आपकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं।' यदि वह ऐसा कहने पर उन्हें क्षमा कर दे, तो अच्छा है। यदि वह उन्हें क्षमा न करे, तो सह-संदेशवाहक भिक्षु को कहना चाहिए, 'हे गृहस्थ, उन्हें क्षमा कर दीजिए; मैं आपकी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ। यदि वह ऐसा कहते हुए उसे क्षमा कर दे, तो अच्छा है। यदि वह क्षमा न करे, तो सह-संदेशवाहक भिक्षु को कहना चाहिए, "हे गृहस्थ, संघ के नाम पर इस भिक्षु को क्षमा कर दीजिए (मैं आपसे विनती करता हूँ)।" (आदि, पहले की तरह)। यदि वह क्षमा न करे, तो सह-संदेशवाहक भिक्षु—गृहस्थ चित्त की दृष्टि और श्रवण शक्ति से ओझल हुए बिना—सुधम्म भिक्षु को अपना वस्त्र एक कंधे पर व्यवस्थित करने और एड़ियों के बल बैठकर दोनों हाथों की हथेलियाँ जोड़कर अपने दोष को स्वीकार करने के लिए कहना चाहिए।

<<<< पिछला(1.21) | अगला(1.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.23

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.22) | अगला(1.24) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-23.

1. अतः पूज्य सुधम्म एक अन्य भिक्षु को दूत बनाकर मक्खिकासंडा गए और गृहस्थ चित्त से क्षमा प्राप्त की। चित्त ने सही आचरण किया, शांत हुआ और मुक्ति की प्रार्थना की (अतः, अध्याय 6, 7 से अंत तक)।

यहां उन अठारह मामलों का अंत होता है जिनमें पतिसरानिया-कम्मा को निरस्त किया जाना चाहिए।

<<<< पिछला(1.22) | अगला(1.24) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.24

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.23) | अगला(1.25) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका चतुर्थ. पतिसारनिया-कर्म (सुलह का कार्य)

अध्याय-24.

[इस अध्याय में पतिसरानिया-कम्म के निरसन का कम्मवक अध्याय 8 और 12 के समान शब्दों में दिया गया है।]

यहां चौथा (कम्मा), पतिसरनिया-कम्मा समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.23) | अगला(1.25) >>>>

V. उक्खेपनिया-कम्मास (निलंबन के अधिनियम) .

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.25

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.24) | अगला(1.26) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-25.

1. उस समय भगवान बुद्ध कोसंबी में घोषिता आश्रम में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य चन्ना ने एक गलती की थी, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। संयमी भिक्षुओं को यह देखकर गुस्सा आया, वे आपस में बड़बड़ाने लगे और कहने लगे, 'पूज्य चन्ना ऐसा कैसे कर सकते हैं?' उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, भिक्षु संघ की सभा बुलाकर भिक्षुओं से पूछा:

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि वे कहते हैं कि चन्ना

जब उसने कोई गलती की हो, तो वह उस गलती को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता?

'यह सच है, प्रभु!'

महान बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, वह मूर्ख ऐसा कैसे कर सकता है? इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या बढ़ेगी; बल्कि इससे न परिवर्तित लोग परिवर्तित ही नहीं होंगे और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे फिर से विमुख हो जाएंगे।'

और जब भगवान बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार फटकारा और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'अतः हे भिक्षुओं, संघ, भिक्षु चन्ना के विरुद्ध अपत्तिया अदस्साने उक्खेपनिया-कम्म (दोष स्वीकार न करने पर होने वाला निलंबन) करे, ताकि वह संघ के साथ न तो भोजन करे और न ही निवास करे।'

'अब, हे भिक्षुओं, इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए।' [यहाँ अध्याय-1, 4 के अनुसार कम्मवक के औपचारिक शब्द दिए गए हैं, जिनमें दोष और उसके बाद आने वाले कर्म के अंतर के कारण आवश्यक परिवर्तन किए गए हैं। और कम्मवक के अंत में ('इस प्रकार मैं समझता हूँ' शब्दों के बाद) निम्नलिखित वाक्य जोड़ा गया है।]

'हे भिक्षुओं, घर-घर जाकर यह घोषणा भेजो कि "भिक्षु चन्ना को संघ द्वारा उक्खेपनीय-कम्मा के अधीन कर दिया गया है क्योंकि उसने अपनी गलती स्वीकार नहीं की।"'

<<<< पिछला(1.24) | अगला(1.26) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.26
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.25) | अगला(1.27) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-26.

[यहाँ बारह ऐसे मामले दिए गए हैं जिनमें कर्म विधि के विरुद्ध है, और बारह ऐसे मामले जिनमें यह विधि के अनुसार है; और साथ ही वे छह अनुमेय मामले भी दिए गए हैं जिनमें संघ चाहे तो इसे अध्याय 2, 3 और 4 के अनुसार ही किया जा सकता है।]

<<<< पिछला(1.25) | अगला(1.27) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.27
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.26) | अगला(1.28) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के अधिनियम)

अध्याय-27

1. 'जिस भिक्षु के विरुद्ध किसी गलती को स्वीकार न करने पर उक्खेपनियकम्मा का पालन किया गया हो, उसे सही आचरण करना चाहिए। और इसमें, यही उचित आचरण है: उसे उपसम्पदा प्रदान नहीं करनी चाहिए—उसे निस्साया नहीं देना चाहिए—उसे स्वयं को समनेरा प्रदान नहीं करना चाहिए—उसे भिक्षुणियों को उपदेश देने का पद स्वीकार नहीं करना चाहिए—यदि उसने वह पद स्वीकार कर लिया है, तो उसे भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहिए—उसे वह अपराध नहीं करना चाहिए जिसके लिए उसके विरुद्ध दोष स्वीकार न करने के बाद आने वाला उक्खेपनीय-कम्म किया गया है—न ही इसी प्रकार का कोई अपराध—न ही कोई और गंभीर अपराध—उसे अपने विरुद्ध की गई कार्यवाही में दोष नहीं निकालना चाहिए—न ही उन भिक्षुओं में जिन्होंने इसे अंजाम दिया है—उसे किसी नियमित भिक्षु से आदर, सेवा, अभिवादन या सम्मान स्वीकार नहीं करना चाहिए, न ही उसे बैठने की जगह, सोने की जगह, पैरों के लिए जल या कुछ और प्रदान करने देना चाहिए। उसके लिए पाँव रखने की चौकी या पाँव पोंछने का काम नहीं करना चाहिए, न ही उसका कटोरा या वस्त्र उठाना चाहिए, न ही उसके बाल धोने चाहिए—उसे किसी नियमित भिक्षु को इस शिकायत से परेशान नहीं करना चाहिए कि वह नैतिकता, आचरण, सिद्धांत या जीविका कमाने के तरीके में असफल रहा है—उसे किसी भिक्षु और भिक्षुओं के बीच फूट नहीं डालनी चाहिए—उसे गृहस्थ होने या किसी अन्य मत का अनुयायी होने के बाहरी लक्षण नहीं दिखाने चाहिए—उसे अन्य मतों के उपदेशकों का अनुसरण नहीं करना चाहिए—उसे भिक्षुओं का अनुसरण करना चाहिए—उसे भिक्षुओं के प्रशिक्षण में स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए—उसे किसी नियमित भिक्षु के साथ एक ही छत के नीचे नहीं रहना चाहिए, चाहे वह स्थान औपचारिक रूप से निवास घोषित किया गया हो, या निवास न हो, या ऐसा स्थान हो जो न तो निवास हो और न ही निवास—किसी नियमित भिक्षु को देखकर उसे अपनी सीट से उठ जाना चाहिए—वह किसी भी भिक्षु को निवास के अंदर या बाहर स्पर्श नहीं करना चाहिए—उसे किसी भिक्षु के उपोसथा समारोह या पवाराना समारोह में भाग लेने पर आपत्ति नहीं उठानी चाहिए—उसे किसी कनिष्ठ भिक्षु को आदेश नहीं देना चाहिए (उसे सीमा से बाहर जाने से रोकना या उसे बड़ों के सामने पेश होने के लिए बुलाना)—उसे किसी अन्य भिक्षु के विरुद्ध निंदा नहीं करनी चाहिए—उसे किसी अन्य भिक्षु से (उस भिक्षु को फटकार लगाने के लिए) अनुमति नहीं मांगनी चाहिए—उसे (किसी अन्य भिक्षु को, जिसके बारे में उसे लगता है कि वह अपराध कर रहा है) चेतावनी नहीं देनी चाहिए—उसे (किसी अन्य भिक्षु को, जिसके बारे में उसे लगता है कि वह अपराध कर रहा है) याद नहीं दिलाना चाहिए—और उसे भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करनी चाहिए।

यहां उन तैंतालीस कर्तव्यों का अंत होता है जो किसी गलती को स्वीकार न करने पर उक्खेपनिया-कम्मा के बाद आते हैं।

<<<< पिछला(1.26) | अगला(1.28) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.28
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.27) | अगला(1.29) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-28.

1. इसलिए संघ ने भिक्षु चन्ना के विरुद्ध उक्खेपनीय-कम्मा का दंड दिया क्योंकि उन्होंने अपना दोष स्वीकार नहीं किया था, जिसके अनुसार उन्हें संघ के साथ नहीं रहना चाहिए। और जब संघ ने उन्हें अपना दोष स्वीकार न करने के कारण उक्खेपनीय-कम्मा का दंड दिया, तो वे उस निवास से दूसरे निवास में चले गए। वहाँ के भिक्षुओं ने उनका आदर नहीं किया, न ही वे उनका स्वागत करने के लिए अपनी सीटों से उठे, न ही उनकी सेवा की, न ही उन्हें प्रणाम किया, न ही उन्हें सम्मान दिया, न ही उन्हें आतिथ्य सत्कार दिया, न ही उनका आदर किया, न ही उन्हें सम्मान दिया, न ही उनका समर्थन किया। और जब उन्हें भिक्षुओं से न तो आतिथ्य सत्कार, न ही स्वागत, न ही आदर, न ही सम्मान प्राप्त हुआ, तो उन्होंने

समर्थन मिलने पर, वह उस निवास से दूसरे निवास में चले गए। वहाँ के भिक्षुओं ने उनका आदर नहीं किया, न ही उनका स्वागत करने के लिए अपनी सीटों से उठे, न ही उनकी सेवा की (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)। जब उन्हें कोई आतिथ्य सत्कार नहीं मिला, तो वे वापस कोसंबी लौट आए। तब उन्होंने उचित आचरण किया, और वे शांत हो गए, और उन्होंने मुक्ति की कामना की, और भिक्षुओं के पास जाकर उन्होंने इस प्रकार कहा: 'हे महोदय, संघ द्वारा उक्खेपनियकम्मा के अधीन किए जाने के बाद, मैं उसके अनुसार उचित आचरण कर रहा हूँ, और मैं शांत हो गया हूँ, और मैं मुक्ति की कामना करता हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर, हे भिक्षुओं, संघ को चन्ना भिक्षु के विरुद्ध किए गए अपने दोष को स्वीकार न करने के लिए उक्खेपनीय-कम्मा को रद्द कर देना चाहिए।'

2. 'हे भिक्षुओं, पाँच बातें हैं, [आदि, इस खंड का शेष भाग पिछले भाग से वही संबंध रखता है जो अध्याय-6, §-2, अध्याय-5 से रखता है।]'

यहां उन तैंतालीस मामलों का अंत होता है [जिनमें गलती स्वीकार न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा को रद्द नहीं किया जाना है]।

<<<< पिछला(1.27) | अगला(1.29) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.29
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.28) | अगला(1.30) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-29.

'हे भिक्षुओं, पाँच बातें हैं, [आदि, जैसा कि अध्याय-7 में है। यह अध्याय अध्याय-28 का ठीक विपरीत है।]

यहां उन तैंतालीस मामलों का अंत होता है [जिनमें गलती स्वीकार न करने के लिए जारी किए गए उक्खेपनिया-कम्मा को रद्द किया जाना चाहिए]।

<<<< पिछला(1.28) | अगला(1.30) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.29 | अगला(1.31) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-30

'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, निरस्तीकरण किया जाना चाहिए [आदि, जैसा कि पहले अध्याय 8, 12, आदि में बताया गया है]'

यहां पांचवां कर्म समाप्त होता है, अर्थात्, गलती स्वीकार न करने का उक्खेपनीय-कर्म।

<<<< पिछला(1.29 | अगला(1.31) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.31

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.30) | अगला(1.32) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

V. अपराध को स्वीकार न करने या उसका प्रायश्चित न करने के लिए उक्खेपनिया-कम्मा (निलंबन के कार्य)

अध्याय-31

उस समय महान बुद्ध कोसंबी में घोषिता आराम (मठ) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य चन्ना ने जब कोई गलती की थी, तो वे उस गलती का प्रायश्चित करने को तैयार नहीं थे [आदि, इस मामले में कार्यवाही वही है, और उसी शब्दों में बताई गई है जैसे पिछले मामले में, अध्याय 25-30]।

यहां छठा कर्म समाप्त होता है; अर्थात्, दोष के लिए प्रायश्चित न करने संबंधी उक्खेपनीय-कर्म।

<<<< पिछला(1.30) | अगला(1.32) >>>>

VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण)

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.31) | अगला(1.33) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण)

अध्याय-32

1. उस समय भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे हुए थे। उस समय अरित्थ नामक एक भिक्षु, जो पहले गिद्धों को सताने वाला था, इस प्रकार के पापपूर्ण विश्वास में पड़ गया था; (अर्थात्), 'भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित धम्म को मैं इस प्रकार समझता हूँ कि जो व्यक्ति उन चीजों का अभ्यास करता है जिन्हें भगवान बुद्ध ने बाधक घोषित किया है,

ऐसी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी जो उसे आध्यात्मिक वरदान प्राप्त करने से रोक सके।

अब कई भिक्षुओं ने सुना कि अरित्थ, जो पहले भी (जैसा कि पहले बताया गया है) आध्यात्मिक वरदानों में बाधक रहा था, वहाँ गया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अरित्थ से पूछा, 'हे मित्र अरित्थ, क्या यह सच है कि तुम पापी विश्वास में पड़ गए हो (जैसा कि ऊपर बताया गया है)?'

'बिल्कुल! मैं भगवान बुद्ध द्वारा प्रचारित धम्म को अच्छी तरह समझता हूँ (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है):

2. 'ऐसा मत कहो, मित्र अरित्थ। भगवान बुद्ध के विरुद्ध झूठी गवाही मत दो। क्योंकि न तो भगवान बुद्ध पर झूठा आरोप लगाना उचित है, और न ही भगवान बुद्ध ऐसा कह सकते थे। मित्र अरित्थ, भगवान बुद्ध ने अनेक दृष्टांतों के द्वारा उन चीजों को बाधा बताया है जो आध्यात्मिक वरदानों को प्राप्त करने में बाधक हैं, और यह भी कहा है कि जो व्यक्ति उनका पालन-पोषण करता है, उसे ये बाधाएँ प्राप्त होने से रोकती हैं। भगवान बुद्ध ने कामवासनाओं को अल्पस्राव वाली, पीड़ादायक और निराशा से भरी हुई, अत्यंत खतरनाक वस्तुएँ बताया है। भगवान बुद्ध ने कामवासनाओं को कंकाल की हड्डियों के समान, पीड़ादायक और निराशा से भरी हुई, अत्यंत खतरनाक वस्तुएँ बताया है। भगवान बुद्ध ने कामवासनाओं को कच्चे मांस के टुकड़ों के समान, अत्यंत कष्टदायक बताया है। भगवान बुद्ध ने कामवासनाओं को भूसे से बनी मशालों के समान बताया है...' जैसे जलते हुए अंगारों से भरा गड्ढा... जैसे सपने के दृश्य... जैसे भिखारी का हिस्सा... जैसे पेड़ों के फल... जैसे तलवार और कसाईखाना... जैसे तीर और लाठी... जैसे सांप और रेंगने वाले जीव, दर्द और निराशा से भरे हुए, ऐसी चीजें जिनमें खतरा बहुत बड़ा है।

फिर भी, इसके बावजूद कि भिक्षु अरित्थ, जो पहले गिद्ध की तरह कष्ट देने वाले थे, जब भिक्षुओं ने उन्हें इस प्रकार संबोधित किया, तो वे दृढ़तापूर्वक उसी प्रकार और हिंसा के साथ उस पापी सिद्धांत का पालन करते रहे, और घोषणा की, 'मैं भगवान बुद्ध द्वारा प्रचारित धम्म को इसी प्रकार समझता हूँ (आदि, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 1 में है)।'

3. फिर जब वे भिक्षु अरित्थ भिक्षु को, जो पहले गिद्धों की तरह कष्ट देता था, उस पापी सिद्धांत से विचलित नहीं कर पाए, तो वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को यह बात बताई।

और उस अवसर पर, और उस संदर्भ में, भगवान बुद्ध ने भिक्षुसंघ की एक सभा बुलाई और अरित्थ भिक्षु से, जो पहले गिद्धों को सताने वाला था, पूछा, 'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, अरित्थ, कि तुम इस प्रकार के पापी सिद्धांत में पड़ गए हो (आदि, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 1 में)?'

'निश्चित रूप से, प्रभु! मैं इसे समझ गया हूँ (आदि, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 1 में है)।'

हे मूर्ख, तू मेरे द्वारा प्रचारित धम्म को इतनी अच्छी तरह कैसे समझ सकता है? क्या मैंने अनेक दृष्टांतों के द्वारा यह नहीं बताया है कि कौन सी चीजें बाधाएँ हैं, और जो उनका पालन करता है वह आध्यात्मिक वरदानों की प्राप्ति से वंचित रह जाता है? क्या मैंने कामवासनाओं को अल्पस्खलनशील (आदि, जैसा ऊपर बताया गया है) साँपों और रेंगने वाले जीवों के समान, खतरनाक, निराशाजनक और अत्यंत जोखिमपूर्ण नहीं बताया है? फिर भी, हे मूर्ख, तूने उस सिद्धांत को गलत समझा है, और इस प्रकार तू न केवल हमारे विरुद्ध झूठी गवाही दे रहा है, बल्कि तू स्वयं को जड़ से उखाड़ रहा है और बहुत से पापों को जन्म दे रहा है, जो तेरे लिए दीर्घकाल तक दु:ख और कष्ट का कारण बनेंगे। हे मूर्ख, इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या बढ़ेगी; बल्कि इससे अपरिवर्तितों का धर्म परिवर्तन नहीं होगा और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे विमुख हो जाएँगे।

इस प्रकार उसे फटकार लगाने और धर्म प्रवचन देने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "अत: हे भिक्षुओं, संघ अरित्थ भिक्षु के विरुद्ध, जो पूर्व में गिद्धों को सताने वाला था, उक्खेपनियकम्मा दंड का फल दे, क्योंकि उसने पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग नहीं किया, और इस प्रकार उसे संघ के साथ न तो भोजन करने दिया जाए और न ही निवास करने दिया जाए।"

4. हे भिक्षुओं, अब इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम भिक्षु अरित्थ को...

चेतावनी दी जानी चाहिए [आदि, जैसा कि अध्याय-25 में कम्मवक के अंत तक, उद्घोषणा के संबंध में पूरक वाक्य सहित]।

<<<< पिछला(1.31) । अगला(1.33) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.33
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.32) । अगला(1.34) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण)

अध्याय-33

[यहाँ बारह ऐसे मामले दिए गए हैं जिनमें कर्म विधि के विरुद्ध है, बारह ऐसे मामले जिनमें यह विधि के अनुसार है, छह ऐसे अनुमेय मामले जिनमें संघ चाहे तो कर्म किया जा सकता है, और दोषी भिक्षु के लिए उचित आचरण के अठारह भाग दिए गए हैं, ठीक वैसे ही जैसे अध्याय 2, 3, 4 और 5 में हैं, 'तज्जनिया-कर्म' के स्थान पर 'पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के लिए उक्खेपनिया-कर्म' पढ़ा गया है।]

<<<< पिछला(1.32) । अगला(1.34) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> प्रथम खंडका >> 1.34
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.33) । अगला(1.35) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण)

अध्याय-34

1. अतः संघ ने अरित्थ भिक्षु के विरुद्ध, जो पूर्व में गिद्धों को सताने वाला भिक्षु था, पापी सिद्धांत का त्याग न करने के कारण उक्खेपनीय-कम्मा का दंड दिया, ताकि वह संघ के साथ न तो भोजन करे और न ही निवास करे। जब संघ ने पापी सिद्धांत का त्याग न करने के कारण उसे उक्खेपनीय-कम्मा का दंड दिया, तो उसने संघ छोड़ दिया।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'भिक्षु अरित्थ को, संघ द्वारा उक्खेपनीय-कम्म के अधीन किए जाने के बावजूद, ऐसा कैसे हो सकता है?'

'पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग करके संघ छोड़ दो?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा, 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि अरित्त भिक्षु, अधीन होने के बाद (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) संघ छोड़ गए?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'भिक्षु अरित्थ (और इसी प्रकार आगे भी) संघ को कैसे छोड़ सकते हैं? इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्मांतरण होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या में वृद्धि होगी; बल्कि इससे न परिवर्तितों का धर्मांतरण रुक जाएगा और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे विमुख हो जाएंगे।'

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, संघ को अरित्थ भिक्षु के विरुद्ध किए गए पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के लिए उक्खेपनीय-कम्म को रद्द कर देना चाहिए।'

'हे भिक्षुओं, पाँच बातें हैं, [आदि, जैसा कि पहले अध्याय 6 और 7 में, अंत तक बताया गया है।]'

यहां उन अठारह मामलों का अंत होता है जिनमें पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने पर उक्खेपनीय-कम्मा को निरस्त किया जाना चाहिए।

<<<< पिछला(1.33) | अगला(1.35) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> प्रथम खन्धक >> 1.35

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.34) | अगला(2.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

प्रथम खंडका

VI. उक्खेपनीय-कम्मा (पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के कारण)

अध्याय-35.

'अब, हे भिक्षुओं, इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए,' इत्यादि। [यहाँ अध्याय-8 के अनुसार, आवश्यक परिवर्तनों के साथ, कर्म के निरस्तीकरण के लिए कम्मवक दिया गया है।]

यहां सातवां (कम्मा), उक्खेपनीय-कम्मा समाप्त होता है, जो पापपूर्ण सिद्धांत का त्याग न करने के बारे में है।

यहां प्रथम खंडका, कम्मास पर खंडका समाप्त होता है।

<<<< पिछला(1.34 | अगला(2.1) >>>>

द्वितीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 1)
(परिवीक्षा और प्रायश्चित)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(1.35) | अगला(2.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय 1।

1. उस समय बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे हुए थे। उस समय, नियमित भिक्षुओं से, जो प्रशिक्षण पर रखे गए थे, वे आदर, सेवा, प्रणाम और सम्मान स्वीकार करते थे; और उन्हें बैठने, सोने, पैर धोने, प्याला रखने या प्याला ओढ़ाने की अनुमति देते थे; उनका कुंड या वस्त्र उठाते थे और उनके शंख धोते थे।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'परीक्षण पर रखे गए भिक्षु कैसे अपने शैंपू करने जैसी श्रद्धा (आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है) स्वीकार कर सकते हैं?'

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षुसंघ की एक सभा बुलाई और भिक्षुओं से पूछा: 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि जो भिक्षु परीक्षा पर रखे गए हैं वे श्रद्धापूर्वक अपने शरीर में शैंपू करते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'वे भिक्षु (और इसी तरह, पहले की तरह) अपने बालों में शैंपू कैसे कर सकते हैं? हे भिक्षुओं (और इसी तरह, हमेशा की तरह) इससे धर्मांतरित लोगों का वापस लौटना संभव नहीं होगा।'

और जब उन्होंने उन्हें फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'जो भिक्षु परिवीक्षा पर रखे गए हैं, उन्हें शैंपू करने जैसी श्रद्धा स्वीकार नहीं करनी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षुओं को उनकी वरिष्ठता के अनुसार एक-दूसरे के प्रति (ऊपर उल्लिखित सभी शिष्टाचार, कर्तव्य और सेवाएँ) करने का निर्देश देता हूँ। हे भिक्षुओं, मैं परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षुओं के लिए पाँच बातें (अनुमत) निर्धारित करता हूँ।

उनकी वरिष्ठता के अनुसार; (अर्थात्) उपोसथा समारोह, पवाराना समारोह, वर्षा ऋतु के लिए वस्त्रों में हिस्सेदारी, संघ को समर्पित वस्तुओं में हिस्सेदारी और भोजन में हिस्सेदारी।

2. अतः, हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम बताता हूँ जिन्हें परीक्षा पर रखा गया है, जिसके अनुसार उन्हें सही आचरण करना चाहिए। और यही सही आचरण है। उसे उपसम्पदा प्रदान नहीं करनी चाहिए (आदि, जैसा कि ऊपर, अध्याय 1, 5 से अंत तक)।

ए. हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को नियमित भिक्षु के आगे नहीं चलना चाहिए और न ही उसके आगे बैठना चाहिए। उस भिक्षु समूह में से जो भी बैठने की सबसे खराब जगह, सोने की सबसे खराब जगह या सबसे खराब कमरा होगा, वह उस भिक्षु को दे दिया जाएगा, और वहाँ-

उसे उसी से संतुष्ट रहना चाहिए। हे भिक्षुओं, जिस भिक्षु को परीक्षा के लिए रखा गया है, उसे नियमित भिक्षु के परिवारों के पास नहीं जाना चाहिए (ऐसा करने के लिए नियमित भिक्षु के आगे या पीछे के साथी के रूप में कार्य करके) - उसे वनवास नहीं करना चाहिए - उसे स्वयं भिक्षा पर जीवन यापन नहीं करना चाहिए - उसे परीक्षा अवधि के विस्तार से बचने के उद्देश्य से भिक्षा नहीं मंगवानी चाहिए, यह सोचकर कि "वे मुझे पहचान न पाएं" (कि मुझे परीक्षा के लिए रखा गया है)।

'हे भिक्षुओं, जिस भिक्षु को परिवीक्षा पर रखा गया है, उसे किसी निवास स्थान पर नए भिक्षु के रूप में आगमन पर अपनी परिवीक्षा की घोषणा करनी चाहिए—उसे किसी नए भिक्षु को इसकी सूचना देनी चाहिए—उसे उपोसथ सभा में इसकी सूचना देनी चाहिए—उसे पवारना सभा में इसकी सूचना देनी चाहिए—और यदि वह बीमार हो, तो उसे किसी दूत के माध्यम से ऐसी सभाओं में इसकी सूचना देनी चाहिए।'

3. हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को किसी ऐसे निवास स्थान से, जहाँ भिक्षु रहते हों, किसी ऐसे निवास स्थान पर नहीं जाना चाहिए जहाँ कोई भिक्षु न रहता हो, सिवाय किसी नियमित भिक्षु के साथ या संकट के समय। हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को किसी ऐसे निवास स्थान से, जहाँ भिक्षु रहते हों, किसी ऐसे स्थान पर नहीं जाना चाहिए जो निवास स्थान न हो और जहाँ कोई भिक्षु न रहता हो, सिवाय किसी नियमित भिक्षु के साथ या संकट के समय। भिक्षु (आदि, जैसा पहले) को किसी ऐसे निवास स्थान से, जहाँ भिक्षु रहते हों, न तो किसी निवास स्थान पर और न ही किसी ऐसे स्थान पर जाना चाहिए जो निवास स्थान न हो और जहाँ भिक्षु न रहते हों, सिवाय (आदि, जैसा पहले)... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान नहीं है, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हैं, किसी ऐसे स्थान तक जो निवास स्थान है, लेकिन जहाँ भिक्षु नहीं रहते... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान नहीं है, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हैं, किसी ऐसे स्थान तक जो निवास स्थान भी नहीं है और जहाँ भिक्षु नहीं रहते... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान नहीं है, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हैं, या तो किसी ऐसे स्थान तक जो निवास स्थान नहीं है या किसी ऐसे निवास स्थान तक जहाँ कोई भिक्षु नहीं रहते... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान हो भी सकता है और नहीं भी, किसी ऐसे स्थान तक जो निवास स्थान है, लेकिन जहाँ भिक्षु नहीं रहते... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हैं, किसी ऐसे स्थान तक

जो निवास स्थान नहीं है और जहाँ कोई भिक्षु नहीं रहते हैं... किसी ऐसे स्थान से जो निवास स्थान हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हैं, किसी ऐसे स्थान पर जो निवास स्थान हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन जहाँ कोई भिक्षु नहीं रहते हैं, सिवाय किसी नियमित भिक्षु के साथ या खतरे के समय।

हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को ऐसे निवास स्थान से, जहाँ भिक्षु रहते हों, ऐसे निवास स्थान पर नहीं जाना चाहिए जहाँ भिक्षु तो रहते हों, लेकिन जहाँ उसके अपने समुदाय से भिन्न समुदाय के भिक्षु हों (जब तक कि पहले की तरह अपवाद न हो)। [पिछली श्रृंखला के समान ही इस निषेध पर भी लागू होते हैं, यहाँ तक कि] ... ऐसे स्थान से, जो निवास स्थान हो या न हो, लेकिन जहाँ भिक्षु रहते हों, ऐसे स्थान पर नहीं जाना चाहिए जो निवास स्थान हो या न हो, और जहाँ भिक्षु रहते हों, लेकिन जहाँ उसके अपने समुदाय से भिन्न समुदाय के भिक्षु हों (जब तक कि पहले की तरह अपवाद न हो)।

'हे भिक्षुओं, जिस भिक्षु को परीक्षा पर रखा गया है, उसे भिक्षुओं के निवास स्थान से ऐसे निवास स्थान पर जाना चाहिए जहाँ भिक्षु रहते हों और जहाँ उसी समुदाय के भिक्षु हों, यदि वह जानता हो, "आज ही मैं वहाँ जा सकता हूँ।" [यहाँ भी वही क्रमपरिवर्तन और संयोजन लागू होते हैं जो पिछली दो श्रृंखलाओं में थे।]

4. हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को किसी नियमित भिक्षु के साथ एक ही छत के नीचे एक ही निवास में नहीं रहना चाहिए—न ही ऐसे स्थान पर जो एक ही छत के नीचे निवास हो—न ही ऐसे स्थान पर जो निवास हो या न हो। किसी नियमित भिक्षु को देखकर वह

उसे अपनी सीट से उठ जाना चाहिए; और उसे अपना आसन किसी नियमित भिक्षु को देना चाहिए। उसे किसी नियमित भिक्षु के साथ एक ही आसन पर नहीं बैठना चाहिए; जब कोई नियमित भिक्षु नीची सीट पर बैठा हो तो उसे ऊँची सीट पर नहीं बैठना चाहिए; जब कोई नियमित भिक्षु ज़मीन पर बैठा हो तो उसे किसी आसन पर नहीं बैठना चाहिए; उसे किसी नियमित भिक्षु के साथ उसी आसन पर इधर-

उधर नहीं चलना चाहिए; जब कोई नियमित भिक्षु नीची सीट पर इधर-उधर चल रहा हो तो उसे ऊँची सीट पर इधर-उधर नहीं चलना चाहिए; जब कोई नियमित भिक्षु ज़मीन पर इधर-उधर चल रहा हो तो उसे (ठीक से तैयार की गई) सीट पर इधर-उधर नहीं चलना चाहिए।

हे भिक्षुओं, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु को अपने से वरिष्ठ परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु के साथ नहीं रहना चाहिए... न ही उस भिक्षु के साथ रहना चाहिए जिसे परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दिया गया हो... न ही उस भिक्षु के साथ रहना चाहिए जिसने मनत्त अनुशासन के लिए स्वयं को उत्तरदायी बना लिया हो... न ही उस भिक्षु के साथ रहना चाहिए जो मनत्त अनुशासन से गुजर रहा हो... न ही उस भिक्षु के साथ रहना चाहिए जो पुनर्वास प्राप्त करने की स्थिति में हो।

यदि चार भिक्षुओं की एक सभा हो, जिनमें से एक

यदि कोई परिवीक्षाधीन भिक्षु किसी भिक्षु को परिवीक्षा पर रखे, या उसे उसकी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दे, या उसे मनत्ता अनुशासन के अधीन कर दे—या यदि बीस भिक्षुओं की सभा, जिनमें से एक परिवीक्षाधीन हो, किसी भिक्षु का पुनर्वास करे, तो हे भिक्षुओं, यह एक अमान्य कार्य है और इसका पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

यहां परिवीक्षाधीन व्यक्ति पर लागू होने वाले चौरानवे कर्तव्य समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला(1.35) । अगला(2.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.1) । अगला(2.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय दो।

1. अब पूज्य उपली उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, किस स्थिति में किसी भिक्षु की परीक्षा अवधि में व्यवधान आ सकता है जिसे परीक्षा पर रखा गया हो?'

हे उपाली, किसी भिक्षु को जब परिवीक्षा पर रखा जाता है, तो उसकी परिवीक्षा अवधि में व्यवधान उत्पन्न करने के तीन तरीके हैं; (अर्थात्) साथ रहना, अकेले रहना और घोषणा न करना।

'हे उपाली, परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षु की परिवीक्षा अवधि में व्यवधान उत्पन्न करने के ये तीन तरीके हैं।'

<<<< पिछला(2.1) । अगला(2.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.2) । अगला(2.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-3.

1. उस समय, चूंकि सावत्थी में भिक्षुओं का एक बड़ा समूह एकत्रित था, इसलिए जिन भिक्षुओं को परीक्षा के लिए रखा गया था, वे अपनी परीक्षा को सही ढंग से पूरा करना नहीं जानते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि तुम अपनी परीक्षा विधिपूर्वक पूरी करो। हे भिक्षुओं, तुम इस प्रकार परीक्षा स्थगित कर सकते हो। जिस भिक्षु को परीक्षा पर रखा गया है, वह किसी एक भिक्षु के पास जाकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, एड़ियों पर बैठकर, हथेलियों को जोड़कर हाथ फैलाकर कहे: "मैं अपनी परीक्षा स्थगित करता हूँ।" तब परीक्षा स्थगित हो जाती है। या वह इस प्रकार कहे: "मैं अपनी परीक्षा स्थगित करता हूँ।"

(अर्थात परिवीक्षाधीन व्यक्ति के) कर्तव्य।" तब भी परिवीक्षा स्थगित कर दी जाती है।'

2. उस समय सावत्थी में रहने वाले भिक्षु इधर-उधर चले गए, और जिन भिक्षुओं को परीक्षा के लिए रखा गया था, वे अपनी परीक्षा ठीक से पूरी नहीं कर पाए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि तुम (स्थगित की गई) परीक्षा अवधि को पुनः ग्रहण करो। हे भिक्षुओं, तुम्हें इसे इस प्रकार पुनः ग्रहण करना चाहिए। जिस भिक्षु को परीक्षा अवधि में रखा गया है, वह किसी एक भिक्षु के पास जाए, अपने वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करे, एड़ियों पर बैठे और हथेलियों को जोड़कर हाथ फैलाए, और कहे: "मैं अपनी परीक्षा अवधि पुनः ग्रहण करता हूँ।" तब परीक्षा अवधि पुनः शुरू हो जाती है। या वह कहे: "मैं (प्रशिक्षु के) कर्तव्यों को पुनः ग्रहण करता हूँ।" तब भी परीक्षा अवधि पुनः शुरू हो जाती है।

परिवीक्षाधीन व्यक्ति के कर्तव्यों का अंत यहीं होता है।

<<<< पिछला(2.2) । अगला(2.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.3) । अगला(2.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-4.

1. उस समय भिक्षु, जो अपने आप को (अपने परीक्षा पाठ्यक्रम के प्रारंभ में) वापस भेजे जाने के योग्य बना लेते थे, आदर स्वीकार करते थे [आदि, जैसा कि अध्याय-1 में पहले बताया गया है, पूरे पाठ में 'अपने परीक्षा पाठ्यक्रम के प्रारंभ में वापस भेजे जाने के योग्य भिक्षु' के स्थान पर 'वे भिक्षु जिन्हें परीक्षा में रखा गया था' पढ़ा गया है; और अध्याय-2 में हमारे नोट में उल्लिखित घोषणाओं को छोड़ दिया गया है]।

<<<< पिछला(2.3) । अगला(2.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.4) । अगला(2.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-5.

[इस अध्याय में पिछले अध्याय के समान ही नियम शब्दशः लिखे गए हैं, जिनमें 'भिक्षुओं को उनकी परीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेजे जाने की संभावना' और 'भिक्षुओं को मनत्ता अनुशासन के अधीन किए जाने की संभावना' शामिल हैं।]

<<<< पिछला(2.4) । अगला(2.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.5) । अगला(2.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-6.

इस अध्याय में, अध्याय 1, अनुच्छेद 1, 2, 3 और 4 में परिवीक्षा के लिए दिए गए नियमों के समान ही, मनत्ता या तपस्या के नियम शब्दशः दिए गए हैं, और 'परिवीक्षा पर रखे गए भिक्षुओं' के स्थान पर 'मनत्ता अनुशासन से गुजर रहे भिक्षुओं' का प्रयोग किया गया है। हालांकि, एक-दो मामूली अंतर हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. घोषणाओं के अंत में (अध्याय-1, §-2) यह निर्देश जोड़ा गया है, 'उसे हर दिन इस तथ्य की घोषणा करनी चाहिए।'

2. एक निवास से दूसरे निवास में जाने के बारे में लिखे गए अंशों में (अध्याय-1, अनुच्छेद-3) 'नियमित भिक्षु के साथ होने पर ही सही' के स्थान पर 'संघ के साथ होने पर ही सही सही' पढ़ें।

<<<< पिछला(2.5) | अगला(2.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.6) | अगला(2.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय 7।

1. अब पूज्य उपली भगवान बुद्ध के स्थान पर गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, मनत्ता साधना कर रहे भिक्षु की मनत्ता साधना में किस स्थिति में व्यवधान आ सकता है?'

हे उपली, मनत्ता साधना कर रहे भिक्षु के मनत्ता साधना में बाधा डालने के चार तरीके हैं: साथ रहना, अकेले रहना, घोषणा न करना और चार से कम भिक्षुओं के साथ रहना। यही वे चार तरीके हैं (जैसा कि पहले बताया गया है, आगे भी) जो मनत्ता साधना को जारी रखने में सहायक होते हैं।

<<<< पिछला(2.6) | अगला(2.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दूसरा खन्धक >> 2.8

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.7) | अगला(2.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-8.

[इस अध्याय में मनत्ता तपस्या को स्थगित करने और पुनः प्रारंभ करने के साधन, अध्याय 3 के समान ही, शब्दशः बताए गए हैं, जिसमें 'परीक्षा पर रखे गए भिक्षुओं' के स्थान पर 'मनत्ता अनुशासन का पालन कर रहे भिक्षुओं' का पाठ किया गया है।]

<<<< पिछला(2.7) | अगला(2.9) >>>>

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.8) | अगला(3.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दूसरा खंडका (परिवीक्षा और तपस्या)

अध्याय-9.

[यह अध्याय अध्याय-1 के समान ही है, जिसमें 'भिक्षु जिन्हें परिवीक्षा पर रखा गया है' के स्थान पर 'भिक्षु जिन्होंने पुनर्वास प्राप्त करने के योग्य स्वयं को सिद्ध कर लिया है' लिखा गया है।]

यहां द्वितीय खंडक का समापन होता है, जिसे परिवीक्षाधीन व्यक्तियों आदि पर खंडक कहा जाता है।

<<<< पिछला(2.8) | अगला(3.1) >>>>

तृतीय खंडका (परिवीक्षा एवं तपस्या 2)
(परिवीक्षा और प्रायश्चित - जारी)

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(2.9) | अगला(3.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-1: भिक्षु उदयी द्वारा किया गया अपराध (हस्तमैथुन का); स्वीकारोक्ति की विधि एवं प्रायश्चित।

1. उस समय बुद्ध श्रावस्ती में स्थित जेतवन, अनाथपिंडिका के उपवन में ठहरे हुए थे। उसी समय पूज्य उदय ने संघदिशेष का पहला अपराध (हस्तमैथुन) किया और उसे छुपाया नहीं। उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने संघदिशेष का पहला अपराध (हस्तमैथुन) किया है और उसे छुपाया नहीं है। अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर, हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु पर उस अपराध—प्रथम संघदिशेष—के कारण छह दिनों के लिए मनत्ता दंड लगाए, जिसे उसने छिपाया नहीं है।'

2. हे भिक्षुओं, अब इस प्रकार उसे उस पर रखा जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, भिक्षु को संघ के सामने जाना चाहिए; और अपने वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करके, उसे वरिष्ठ भिक्षुओं के चरणों में प्रणाम करना चाहिए, और अपनी एड़ियों पर बैठकर, हथेलियों को जोड़कर अपने हाथों को फैलाकर इस प्रकार कहना चाहिए:

"हे आदरणीय महोदय, मैंने प्रथम संघदिशेष के रूप में एक अपराध किया है, जिसे मैंने छिपाया नहीं है। मैं संघ से इस अपराध के कारण मुझ पर छह दिन का मनत्ता दंड लगाने का अनुरोध करता हूँ।"

पहला संघदिशेष अपराध—जिसे मैंने छिपाया नहीं है।'

[यह भाषण तीन बार दोहराया जाता है।]

3. 'तब किसी विवेकशील और योग्य भिक्षु को संघ के समक्ष निम्नलिखित विषय रखना चाहिए:

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। भिक्षु उदय ने एक अपराध किया है—संघदिशेष का पहला अपराध—जिसे उन्होंने छिपाया नहीं है। और वे उस अपराध—संघदिशेष के पहले अपराध—के कारण संघ से छह दिन के मनत्ता दंड की मांग करते हैं, जिसे उन्होंने छिपाया नहीं है।"

"यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ उस एक अपराध—पहले संघदिशेष अपराध—के लिए उदय भिक्षु पर छह दिनों की अवधि का मनत्ता लगाए, जिसे उसने छिपाया नहीं है।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"संघ इसके द्वारा उदय भिक्षु पर उस एक अपराध के लिए छह दिनों का मनत्ता लगाता है - पहला संघदिशेष अपराध - जिसे उसने छिपाया नहीं है।"

"जो भी पूजनीय व्यक्ति किसी छिपे हुए न होने वाले मनत्ता (आदि, जैसा कि अंतिम अनुच्छेद में वर्णित है) के अधिरोपण का समर्थन करता है, वह चुप रहे। जो इसका समर्थन नहीं करता, वह बोले।"

"दूसरी बार मैं वही बात कहता हूँ (आदि, जैसा कि पिछले दो पैराग्राफ में कहा गया है)। तीसरी बार मैं वही बात कहता हूँ (आदि, जैसा कि पहले कहा गया है)।"

"संघ ने छह दिनों की अवधि का मनत्ता लगाया है (आदि, जैसा कि पहले प्रस्ताव के शब्दों में कहा गया है) जिसे छिपाया नहीं गया है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए वह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

<<<< पिछला(2.9) | अगला(3.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.1) | अगला(3.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-2: भिक्षु उदयी का पुनर्वास (हस्तमैथुन के अपराध के लिए)।

1. मनत्ता संपन्न करने के बाद उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मित्रों, मैंने एक अपराध किया है—संघदिशेष का पहला अपराध—जिसे मैंने छुपाया नहीं था। मैंने संघ से उस अपराध—संघदिशेष के पहले अपराध—के लिए छह दिन की मनत्ता मांगी थी। संघ ने मुझ पर एक मनत्ता लगाई (आदि, पहले की तरह) जिसे मैंने छुपाया नहीं था। अब मैंने वह मनत्ता पूर्ण कर ली है। अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर, हे भिक्खुओ, संघ को उदयी भिक्खु का पुनर्वास करने दीजिए।

2. 'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उसका पुनर्वास किया जाना चाहिए।

'उदयी भिक्षु को ऊपर जाना चाहिए (आदि, जैसा कि अध्याय-1, §-2 में है, नीचे तक) उसे इस प्रकार कहना चाहिए:

"मैंने, आदरणीय महोदय, एक अपराध किया है—संघदिशेष का पहला अपराध (हस्तमैथुन)—जिसे मैंने छुपाया नहीं। मैंने संघ से उस अपराध—संघदिशेष के पहले अपराध—के लिए छह दिन की मन्नत लगाने का अनुरोध किया, जिसे मैंने छुपाया नहीं था। संघ ने मुझे . . . . के लिए . . . . की मन्नत लगाई . . . . जिसे छुपाया नहीं गया था। मैंने वह मन्नत पूरी कर ली है, इसलिए मैं संघ से पुनर्वास का अनुरोध करता/करती हूँ।"

[यह भाषण तीन बार दोहराया जाता है।]

3. 'फिर कोई विवेकशील और योग्य भिक्षु [आदि, जैसा कि अध्याय-1, §-2 में पहले बताया गया है, शेष कम्मावक याचिका के साथ वही संबंध रखता है जैसा कि वहाँ है]।'

<<<< पिछला(3.1) | अगला(3.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.2) | अगला(3.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-3: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन का अपराध) किया।

1. उस समय पूज्य उदय ने एक अपराध किया था - पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन) - जिसे उन्होंने एक दिन के लिए छिपाया था।

उन्होंने भिक्षुओं से (और इसी तरह, पहले की तरह) कहा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो, हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु पर एक दिन की परिवीक्षा लगाए, उस अपराध के लिए (आदि, जैसा कि इस खंड के पहले पैराग्राफ में नीचे दिया गया है) जिसे छिपाया गया है।

2. 'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इसे लागू किया जाना चाहिए--।'

[यहाँ कम्मावका ठीक उसी प्रकार दिया गया है जैसा कि अध्याय-1, धारा-2 और 3 में है, शब्दों में आवश्यक परिवर्तन के साथ, क. अपराध का, ख. दंड का।]

<<<< पिछला(3.2) । अगला(3.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.3) । अगला(3.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-4

1. जब उन्होंने परीक्षा अवधि पूरी कर ली, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मित्रों, मैंने एक अपराध किया है—प्रथम संघदिशेष—जिसे मैंने एक दिन के लिए छुपाया था। मैंने संघ से उस अपराध के लिए मुझ पर एक दिन की परीक्षा लगाने का अनुरोध किया था... जिसे मैंने छुपाया था। संघ ने परीक्षा अवधि पूरी कर ली है। अब मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो संघ उदय भिक्षु पर छह दिनों की अवधि का मनत्ता लगाए।'

2, 3. [यहाँ अध्याय-1, खंड-2, 3 से अंत तक कम्मवका दिया गया है।]

<<<< पिछला(3.3) । अगला(3.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.4) । अगला(3.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-5: भिक्षु उदयी का पुनर्वास (हस्तमैथुन के अपराध के लिए)।

1. जब उन्होंने मनत्त पूर्ण कर लिया, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने एक दिन के लिए गुप्त रूप से (अत:, जैसा कि 4.1 में वर्णित है) किया। मैंने प्रार्थना की, इत्यादि... संघ ने परीक्षा ली, इत्यादि... जब मैंने वह परीक्षा पूरी कर ली, तो संघ ने मुझे इत्यादि के लिए मनत्त दिया... इत्यादि... मैंने वह मनत्त पूर्ण कर लिया है। अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो संघ, हे भिक्खु, उदयी भिक्खु का पुनर्वास करें।'

2, 3. [यहाँ अध्याय-2, 2, 3 से अंत तक कम्मवका दिया गया है।]

<<<< पिछला(3.4) | अगला(3.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.5) | अगला(3.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-6: भिक्षु उदयी बार-बार अपराध (हस्तमैथुन का) करता है, लेकिन 2-3-4-5 दिनों तक छिपाता है।

[यह अध्याय अध्याय 3 के समान है, जिसमें 'दो-तीन-चार-पांच दिनों तक, गुप्त रूप से' और 'दो-तीन-चार-पांच दिनों की परिवीक्षा' लिखा है।]

<<<< पिछला(3.5) | अगला(3.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.6) | अगला(3.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-7: भिक्षु उदयी ने परिवीक्षा अवधि के दौरान फिर से अपराध (हस्तमैथुन का) किया; उनकी परिवीक्षा अवधि पुनः शुरू की गई।

1. जब वह उस परिवीक्षा अवधि से गुजर रहा था, तब उसने एक अपराध किया—पहला, इत्यादि—जिसे उसने छिपाया नहीं।

उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने अपराध किया, इत्यादि... मैंने संघ से पूछा, इत्यादि... संघ ने मुझ पर दो-तीन-चार-पांच दिनों की परीक्षा अवधि लगाई। उस परीक्षा अवधि के दौरान मैंने अपराध किया, इत्यादि...'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु को उसके प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के प्रारंभ में वापस भेज दे।'

2, 3. [यहाँ अध्याय-1 के अनुसार आवश्यक परिवर्तनों के साथ कम्मवक दिया गया है।]

<<<< पिछला(3.6) | अगला(3.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.7) | अगला(3.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-8: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - परिवीक्षा पुनः शुरू हुई।

1. जब उन्होंने (भिक्षु उदयि ने) वह परिवीक्षा अवधि पूरी कर ली थी और वे मनत्ता के लिए उत्तरदायी थे, तब उन्होंने एक अपराध किया - पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन) - जिसे उन्होंने छिपाया नहीं।

उन्होंने भिक्षुओं से कहा, इत्यादि।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु को उसके प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के प्रारंभ में वापस भेज दे।'

2, 3. [यहाँ कम्मवक उसी रूप में दिया गया है जैसा अध्याय-1 में दिया गया है।]

<<<< पिछला(3.7) | अगला(3.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.8) | अगला(3.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-9.

1. जब उसने वह परीक्षा अवधि पूरी कर ली, तो उसने बताया, इत्यादि।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु पर इन अपराधों के लिए छह दिन की परिवीक्षा का दंड लगाए।

2, 3. [पहले की तरह कम्मावक।]

<<<< पिछला(3.8) | अगला(3.10) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.10

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.9) | अगला(3.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-10: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - प्रायश्चित का पुनः आरंभ।

1. जब वह मनत्ता कर रहा था, तब उसने एक अपराध किया—पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन), जिसे उसने छिपाया नहीं।

उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने अपराध किया, इत्यादि... मैंने संघ से पूछा... संघ ने [आदि, इस अध्याय के पहले पैराग्राफ के अंत तक जो कुछ हुआ था उसका वर्णन करते हुए]।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु पर छह दिनों की मन्ट थोप दे, और उसे (उसकी मन्ट के प्रारंभ में) वापस भेज दे।'

[पहले की तरह कम्मावक।]

<<<< पिछला(3.9) | अगला(3.11) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.11

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.10) | अगला(3.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-11: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - तपस्या का पुनः आरंभ।

1. जब उसने वह मनत्ता पूरी कर ली, और जब वह पुनर्वास के योग्य था, तब उसने एक अपराध किया—पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन)—जिसे उसने छिपाया नहीं।

उन्होंने भिक्षुओं को अध्याय 6 से लेकर इस अंतिम अपराध तक की सारी बातें बताईं। उन्होंने बताया, इत्यादि।

हे भिक्षुओं, संघ उदय भिक्षु पर छह दिनों की मन्ट लगाए, क्योंकि उसने (आदि, जैसा कि पहले पैराग्राफ में नीचे तक है) छिपाया नहीं था, उसे (उसकी मन्ट के प्रारंभ में) वापस भेज दिया गया।

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ पहले की तरह कम्मावक आता है।]

<<<< पिछला(3.10) | अगला(3.12) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.12

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.11) | अगला(3.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-12: भिक्षु उदयी का पुनर्वास।

1. जब उसने वह मनत्ता पूरी कर ली, तो उसने भिक्षुओं को [जो कुछ हुआ था] बताया।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'तो फिर संघ, हे भिक्खुओ, उदयी भिक्खु का पुनर्वास करें।

अब इस प्रकार [यहाँ पहले की तरह कम्मावक आता है]।

<<<< पिछला(3.11) | अगला(3.13) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.13

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.12) | अगला(3.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-13: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया, इसे एक महीने तक छिपाया - एक महीने की परिवीक्षा।

1. उस समय पूज्य उदय ने एक अपराध किया—प्रथम संघदिशेष (हस्तमैथुन)—और आधे महीने तक उन्होंने इसे छुपाए रखा।

[इस अध्याय का शेष भाग अध्याय 3 के समान ही है, बस 'एक दिन के लिए' के स्थान पर 'आधे महीने के लिए' लिखा है।]

<<<< पिछला(3.12) | अगला(3.14) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.14

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.13) | अगला(3.15) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-14: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - 5 दिनों तक छिपा रहा - परिवीक्षा पुनः शुरू हुई।

1. परिवीक्षा अवधि के दौरान उसने एक अपराध किया—प्रथम संघदिशेष (हस्तमैथुन)—जिसे उसने पाँच दिनों तक छिपाए रखा।

उन्होंने कहा, इत्यादि... 'मैंने अपराध किया, इत्यादि... मैंने पूछा, इत्यादि... संघ ने आधे महीने की परिवीक्षा लगाई, इत्यादि... जब मैं परिवीक्षा पर था, इत्यादि... अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, संघ उस समय के लिए (आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद में है) भिक्षु उदयी को उसकी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दे, और उस पर पूर्व अपराध के साथ एक समावेशी परिवीक्षा (उसके नए अपराध को भी शामिल करते हुए) लागू करे।'

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ दो कम्मवक दिए गए हैं, एक वापसी के लिए और दूसरा अतिरिक्त परीक्षा के लिए, प्रत्येक अध्याय-1 के समान।]'

<<<< पिछला(3.13) | अगला(3.15) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.14) | अगला(3.16) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-15: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - 5 दिनों तक छिपा रहा - परिवीक्षा पुनः शुरू की गई और बढ़ा दी गई।

1. जब उसने वह परिवीक्षा अवधि पूरी कर ली थी, और जब वह मनत्ता के लिए उत्तरदायी था, तब उसने एक अपराध किया - पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन) - जिसे उसने पाँच दिनों तक छिपाए रखा।

उन्होंने बताया, इत्यादि... [अध्याय 13 से आगे जो कुछ भी हुआ]।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, संघ को यह उचित होगा कि जब उसने (आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद में है) उदय भिक्षु को उसकी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दिया जाए, और उस पर (इस अपराध के लिए) और पूर्व अपराध के लिए एक समावेशी परिवीक्षा लगाई जाए।

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ पिछले अध्याय की तरह दो कम्मवक दिए गए हैं।]

<<<< पिछला(3.14) | अगला(3.16) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.16

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.15) | अगला(3.17) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-16

1. जब उसने वह परीक्षा अवधि पूरी कर ली, तो उसने भिक्षुओं आदि को [अध्याय-13 के बाद से जो कुछ हुआ था] सब कुछ बताया।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, संघ को इन अपराधों के लिए भिक्षु उदयि पर छह दिनों की अवधि का मनत्ता लगाना चाहिए।'

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ अध्याय-1 में दिए गए रूप में एक कम्मवक आता है।]'

<<<< पिछला(3.15) | अगला(3.17) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.17

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.16) | अगला(3.18) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-17: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - चार दिनों तक छिपते रहे - परिवीक्षा अवधि बढ़ाई गई और प्रायश्चित पुनः शुरू किया गया।

1. जब वह उस मनत्ता का पालन कर रहा था, तब उसने एक अपराध किया - पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन का) जिसे उसने चार दिनों तक छिपाए रखा।

उन्होंने बताया, इत्यादि... [अध्याय 13 से आगे जो कुछ भी हुआ था]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उस समय के लिए (जैसा कि पहले अनुच्छेद में है) उदय भिक्षु को (उस परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में) वापस भेज दे जो वह पहले ही पूरी कर चुका था, और उस पर (इस ओर) पहले अपराध के लिए एक व्यापक परिवीक्षा और छह दिनों की अवधि का मनत्ता भी लगाए।'

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ तीन कम्मवक दिए गए हैं, एक वापसी के लिए, एक व्यापक परीक्षा के लिए, और एक नए मनत्ता के लिए, प्रत्येक का स्वरूप अध्याय-आर में दिए गए स्वरूप के समान है।]'

<<<< पिछला(3.16) | अगला(3.18) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.18
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.17) | अगला(3.19) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-18: भिक्षु उदयी ने फिर से पहला संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) किया - पाँच दिनों तक छिपते रहे - परिवीक्षा अवधि बढ़ाई गई और प्रायश्चित पुनः शुरू किया गया

1. जब उसने वह मनत्ता पूरी कर ली, और जब वह पुनर्वास के योग्य था, तब उसने एक अपराध किया—पहला संघदिशेष (हस्तमैथुन)—जिसे उसने पाँच दिनों तक छिपाए रखा।

उन्होंने बताया, इत्यादि [अध्याय 13 से आगे जो कुछ भी हुआ]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, संघ को इस बात के लिए कि उसने (आदि, जैसा कि पहले पैराग्राफ में है) उदय भिक्षु को (उस परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में) वापस भेज देना चाहिए जो वह पहले ही भुगत चुका था और उस पर इस और पहले अपराध के लिए एक व्यापक परिवीक्षा और छह दिनों की अवधि का मनत्ता लगाना चाहिए।

'अब इस प्रकार, इत्यादि... [यहाँ अध्याय-17 के अनुसार तीन कम्मवक दिए गए हैं।]'

<<<< पिछला(3.17) | अगला(3.19) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.19
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.18) | अगला(3.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-19: प्रथम संघदिशेष अपराध (हस्तमैथुन) के लिए भिक्षु उदयी का पुनर्वास।

1. जब उन्होंने मनत्ता पूरी कर ली, तो उन्होंने भिक्षुओं को [अध्याय 13 से आगे जो कुछ भी हुआ] बताया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'तो फिर संघ को उदयी भिक्खु का पुनर्वास करना चाहिए।

'अब इस प्रकार, हे भिक्षुओं, [यहाँ अध्याय-5 के अनुसार कम्मावक आता है।]'

प्रथम संघदिशेष के उल्लंघन पर कार्यवाही यहीं समाप्त होती है।

<<<< पिछला(3.18) | अगला(3.20) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.19) | अगला(3.21) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-20: अनेक अपराधों के लिए योगात्मक परिवीक्षा।

1. उस समय एक भिक्षु ने अनेक संघादिशेष अपराध किए थे, जिनमें से एक को उसने एक दिन, एक को दो दिन, एक को तीन दिन, [और इसी तरह आगे भी] और एक को दस दिन तक छिपाया था।

उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने दस दिनों के लिए (पहले की तरह) एक प्रतिज्ञा ली है। अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संघ उस भिक्षु पर उन अपराधों में से किसी एक के अनुसार दस दिनों की पूर्ण परीक्षा लगाए, जिन्हें उसने छिपाकर रखा है।'

'अब, हे भिक्षुओं, इस प्रकार यह दंड लगाया जाना चाहिए।'

[यहाँ अध्याय-1, खंड-2, 3 से अंत तक दिए गए रूप में कम्मवका दिया गया है।]

<<<< पिछला(3.19) | अगला(3.21) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.21
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.20) | अगला(3.22) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-21: अनेक गुप्त अपराधों के लिए सबसे लंबी सजा की अवधि।

1. उस समय एक भिक्षु ने अनेक संघदिशेष अपराध किए थे, जिनमें से एक को उसने एक दिन के लिए, दो को दो दिनों के लिए, तीन को तीन दिनों के लिए, [और इसी तरह आगे भी] दस दिनों के लिए छिपाया था।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

उन्होंने बताया, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, संघ उस भिक्षु पर उतनी ही अवधि का व्यापक परीक्षण लगाए, जितनी अवधि तक उसने उन अपराधों में से किसी एक या अधिक को छुपाया है।'

[इसके बाद पहले की तरह कम्मवक आता है।]

<<<< पिछला(3.20) | अगला(3.22) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.22
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.21) | अगला(3.23) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-22: जितना अधिक छिपाव, उतनी ही अधिक परिवीक्षा अवधि

1. उस समय एक भिक्षु ने संघ के दो अगुवा अपराध किए थे, जिन्हें उसने दो महीने तक छुपाए रखा था। उसे यह विचार आया, 'देखो! मैंने संघ के दो अगुवा अपराध किए हैं, जिन्हें मैंने दो महीने तक छुपाए रखा है। अब मैं संघ से दो महीने के परिवीक्षा का अनुरोध करूं, उस एक अपराध के लिए जिसे मैंने दो महीने तक छुपाए रखा था।' उसने संघ से दो महीने के परिवीक्षा का अनुरोध किया। संघ ने उस पर दो महीने की परिवीक्षा लगा दी (जैसा कि पहले बताया गया है)। जब वह परिवीक्षा पर था, तो उसे लज्जा हुई क्योंकि उसने सोचा, 'मैंने अपराध किया है, आदि... और मुझे यह विचार आया, आदि... और मैंने अनुरोध किया, आदि... और संघ ने परिवीक्षा लगाई... और जब मैं दो महीने की परिवीक्षा पर था... (जैसा कि पहले बताया गया है)।'

'अब मैं संघ से दो महीने तक छुपाए गए दूसरे अपराध के लिए दो महीने की परिवीक्षा का अनुरोध करता हूं।'

2. उसने भिक्षुओं को [जो कुछ हुआ था] सब कुछ बताया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. 'हे भिक्षुओं, संघ उस भिक्षु पर दो महीने तक छुपाए गए उस दूसरे अपराध के लिए दो महीने की परिवीक्षा लगाए।'

[यहाँ पहले की तरह कम्मावक दिया गया है।]

'हे भिक्षुओं, तब उस भिक्षु को उस तिथि से दो महीने की परीक्षा से गुजरना चाहिए।'

<<<< पिछला(3.21) | अगला(3.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.23

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.22) | अगला(3.24) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-23: अपराधों को छुपाना, उन्हें याद न करना, फिर उन्हें याद करना।

1. हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि किसी भिक्षु ने दो संघदिशेष अपराध किए हैं [आदि, जैसा कि पिछले अध्याय के पहले अनुच्छेद में अंत तक बताया गया है]। और वह दो माह तक छुपाए गए उस दूसरे अपराध के लिए संघ से दो माह की परिवीक्षा मांगता है। और संघ उस पर दो माह तक छुपाए गए उस दूसरे अपराध के लिए दो माह की परिवीक्षा लगाता है। हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस तिथि से दो माह की परिवीक्षा पर रहना चाहिए।

2. हे भिक्षुओं, मान लीजिए किसी भिक्षु ने संघ के दो अपराध किए हैं, जिन्हें उसने दो महीने तक छिपाए रखा है। उसे एक अपराध का ज्ञान है, लेकिन दूसरे अपराध का ज्ञान नहीं है। वह संघ से उस अपराध के लिए दो महीने की परिवीक्षा मांगता है, जिसके बारे में उसे जानकारी है और जिसे उसने दो महीने तक छिपाए रखा है। संघ उसे दो महीने तक छिपाए गए अपराध के लिए दो महीने की परिवीक्षा देता है। परिवीक्षा के दौरान उसे दूसरे अपराध का ज्ञान हो जाता है। तब उसे यह बात सूझती है,

देखो! मैंने संघदिशेष के दो अपराध किए हैं (आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में बताया गया है) मुझे दूसरे अपराध का पता चल गया है। अब मैं संघ से उस दूसरे अपराध के लिए दो महीने की परिवीक्षा चाहता हूँ जिसे मैंने दो महीने तक छिपाए रखा।

और वह संघ से उस दूसरे अपराध के लिए, जिसे उसने दो महीने तक छुपाए रखा था, दो महीने की परिवीक्षा मांगता है। और संघ उस पर इसी प्रकार की परिवीक्षा लगाता है... इसी प्रकार के लिए... हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस तिथि से दो महीने तक परिवीक्षा पर रहना चाहिए।

3. हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई भिक्षु दो संघदिशेष अपराध करता है, जिन्हें वह दो महीने तक छुपाता है; और एक अपराध उसे याद रहता है, परन्तु दूसरा अपराध उसे याद नहीं रहता। और वह संघ से पूछता है (आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक है, "याद रखना" के स्थान पर "याद रखना")।

4. हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई भिक्षु दो संघदिशेष अपराध करता है, जिन्हें वह दो महीने तक छुपाता है; और एक अपराध के बारे में उसे कोई संदेह नहीं है, परन्तु दूसरे अपराध के बारे में उसे संदेह है। और वह संघ से पूछता है (आदि, जैसा कि पिछले खंड में है, "संदेह है" के स्थान पर "याद नहीं है")।

5. हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई भिक्षु संघ के दो अपराध करता है, जिन्हें वह दो माह तक छुपाता है; एक अपराध वह जानबूझकर छुपाता है, परन्तु दूसरा अनजाने में छुपाता है। और वह संघ से उन दो अपराधों के लिए दो माह की परिवीक्षा मांगता है जिन्हें उसने दो माह तक छुपाया था। और संघ उसे उन दो अपराधों के लिए दो माह की परिवीक्षा देता है जिन्हें उसने दो माह तक छुपाया था। और जब वह उस परिवीक्षा से गुजर रहा होता है, तभी एक भिक्षु आता है जो परंपराओं में पारंगत है, परंपरा से परिचित है, धम्म, विनय और मतिकाओं का संरक्षक है, चतुर, विवेकशील, बुद्धिमान, विनम्र, संवेदनशील और सीखने के लिए इच्छुक है। और वह इस प्रकार कहता है:

"हे मित्रों, इस भिक्षु ने क्या अपराध किया है, और वह परिवीक्षा पर क्यों है?"

और वे उत्तर देते हैं: "हे मित्र, इस भिक्षु ने संघदिशेष के दो अपराध किए हैं, जिन्हें उसने दो महीने तक छिपाए रखा; एक अपराध उसने जानबूझकर छिपाया और दूसरा अनजाने में। उसने संघ से उन दो अपराधों के लिए दो महीने की परिवीक्षा मांगी, जिन्हें उसने दो महीने तक छिपाए रखा था। संघ ने उसे उन दो अपराधों के लिए दो महीने की परिवीक्षा दी, जिन्हें उसने दो महीने तक छिपाए रखा था। हे मित्र, इस मामले में यह भिक्षु दोषी है, और इसलिए वह परिवीक्षा पर है।"

और वह उत्तर देते हैं: "हे मित्रों, जिस अपराध को उसने जानबूझकर छिपाया है, उसके लिए परिवीक्षा वैध है और इसी वैधता के कारण वह प्रभावी होती है। परन्तु जिस अपराध को उसने अनजाने में छिपाया है, हे मित्रों, उसके लिए परिवीक्षा अवैध है और इसी अवैधता के कारण वह प्रभावी नहीं होती। हे मित्रों, इस अपराध के लिए भिक्षु मनत्ता का भागी है।"

6. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु दो संघदिशेष अपराध करता है, जिन्हें वह दो महीने तक छुपाता है। और एक अपराध को वह याद रखते हुए छुपाता है, परन्तु दूसरे अपराध को वह बिना याद किए छुपाता है।'

[यहाँ पिछले खंड की ही टिप्पणियाँ अंत तक लागू होती हैं, जिसमें 'जानबूझकर' के स्थान पर 'इसे याद करते हुए' का प्रयोग किया गया है।]

<<<< पिछला(3.22) । अगला(3.24) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.24

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.23) । अगला(3.25) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-24: दूसरे अपराध के लिए अतिरिक्त परिवीक्षा।

1. उस समय एक भिक्षु ने संघ के दो अगुवा अपराध किए, जिन्हें उसने दो महीने तक छुपाए रखा। फिर उसे यह बात सूझी, "देखो! मैंने तो दो महीने तक ये अपराध किए हैं... अब मैं संघ से एक महीने की परिवीक्षा मांग लूं..." उसने संघ से एक महीने की परिवीक्षा मांगी। संघ ने उसे एक महीने की परिवीक्षा दी... जब वह परिवीक्षा पर था, तो उसे अपने किए पर लज्जा हुई। "अब मैं संघ से दो महीने तक छुपाए गए संघ के दो अगुवा अपराधों के लिए एक महीने की और परिवीक्षा मांग लूं।"

2. उसने भिक्षुओं को [जो कुछ हुआ था, अनुच्छेद 1 के शब्दों में, बताया और उनसे पूछा], 'अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

3. 'हे भिक्षुओं, संघ उस भिक्षु पर दो माह तक छुपाए गए उन दो संघदिशेष अपराधों के लिए एक और माह की परिवीक्षा लगाए।'

[यहाँ अध्याय-1, खंड-2, 3 में दिए गए रूप में कम्मवका दिया गया है।]

'इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस तिथि से दो महीने की परीक्षा से गुजरना चाहिए।'

<<<< पिछला(3.23) । अगला(3.25) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.25

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.24) | अगला(3.26) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-25: अपराधों को छुपाना, उन्हें याद न करना, फिर उन्हें याद करना।

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु दो संघादिशेष अपराध करता है और उन्हें दो माह तक छुपाए रखता है, और उसे इसका अहसास होता है (जैसा कि पिछले अध्याय में वर्णित है)... और वह पूछता है... और संघ उस पर दंड लगाता है... और जब वह उस परीक्षा की अवधि से गुजर रहा होता है, तो उसे लज्जा होती है... और वह संघ से उन दो संघादिशेष अपराधों के लिए एक और माह की परीक्षा मांगता है जिन्हें उसने दो माह तक छुपाए रखा था। और संघ उस पर एक और परीक्षा लगाता है... तब, हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस तिथि से उन दो संघादिशेष अपराधों के लिए एक और माह की परीक्षा से गुजरना चाहिए जिन्हें उसने दो माह तक छुपाए रखा था।

2, 3. 'अब मान लीजिए, हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु ने दो संघदिशेष अपराध किए हों, जिन्हें वह दो महीने तक छुपाए रखता है। एक महीने का उसे ज्ञान है, परन्तु दूसरे महीने का उसे ज्ञान नहीं है... एक महीने का उसे स्मरण है, परन्तु दूसरे महीने का उसे स्मरण नहीं है... एक महीने का वह जानबूझकर छुपाता है, परन्तु दूसरे महीने का वह अनजाने में छुपाता है।'

[यह अध्याय अध्याय 23 के शब्दशः समान है, बस 'अपराध' के स्थान पर 'माह' लिखा है।]

<<<< पिछला(3.24) | अगला(3.26) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.26

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.25) | अगला(3.27) >>>>

ए (लघु अनुभाग)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-26.

1. उस समय एक भिक्षु ने अनेक संघादिशेष अपराध किए थे; परन्तु उसे अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि का ज्ञान नहीं था; या उसे अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि याद नहीं थी; या वह अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि के बारे में अनिश्चित था।

उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'मैंने अपराध किया है, इत्यादि... लेकिन मुझे इसका एहसास नहीं है, इत्यादि... मुझे याद नहीं है, इत्यादि... मैं अनिश्चित हूँ, इत्यादि... अब मैं क्या करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब, हे भिक्षुओं, संघ उस भिक्षु पर पूर्ण शुद्धि की परीक्षा लागू करे।

(अर्थात, उनकी उपसम्पदा की तिथि से जितने दिन बीत चुके हैं, उतने दिनों की परिवीक्षा अवधि)।

2. हे भिक्षुओं, अब इस प्रकार यह नियम लागू किया जाना चाहिए।

[यहाँ कम्मवका को उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसा कि अध्याय-1 में दिया गया है।]

3. हे भिक्षुओं, निम्नलिखित मामलों में पूर्ण शुद्धि का प्रायश्चित लगाया जाता है; और निम्नलिखित मामलों में (साधारण) प्रायश्चित लगाया जाता है। अब किन मामलों में पूर्ण शुद्धि का प्रायश्चित लगाया जाता है? जब वह अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि से अवगत न हो; जब वह अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि को याद न कर पाए; और जब वह अपराधों की गंभीरता और उनकी अवधि के बारे में निश्चित न हो—तब पूर्ण शुद्धि का प्रायश्चित लगाया जाता है।

जब उसे अपराधों की गंभीरता का ज्ञान हो, परन्तु उनकी अवधि का नहीं; जब उसे अपराधों की गंभीरता याद हो, परन्तु उनकी अवधि याद न हो; जब उसे अपराधों की गंभीरता का तो यकीन हो, परन्तु उनकी अवधि का नहीं—तब उस पर पूर्ण शुद्धि की परिवीक्षा लगाई जानी चाहिए।

जब वह जागरूक हो...याद करे...कुछ अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित हो, लेकिन अन्य के बारे में नहीं, और जागरूक न हो...याद न करे...समय की अवधि के बारे में निश्चित न हो—तब इत्यादि।

जब वह अनजान होता है... उसे याद नहीं आता...

अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित नहीं है... और जानता है... याद करता है... कुछ के समय के बारे में निश्चित है, लेकिन दूसरों के समय के बारे में नहीं—तो, इत्यादि।

जब वह जागरूक हो...याद करे...अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित हो, और जागरूक हो...याद करे...कुछ अपराधों के समय के बारे में निश्चित हो, लेकिन दूसरों के समय के बारे में नहीं—तब, इत्यादि।

जब वह जागरूक होता है...याद करता है...कुछ अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित होता है, लेकिन दूसरों के बारे में नहीं; और जागरूक होता है...याद करता है...कुछ अपराधों के समय के बारे में निश्चित होता है, लेकिन दूसरों के समय के बारे में नहीं—तब, इत्यादि।

'हे भिक्षुओं, इन मामलों में पूर्ण शुद्धि की परीक्षा लागू की जानी चाहिए।'

4. हे भिक्षुओं, किन परिस्थितियों में (सामान्य) परिवीक्षा अवधि लगाई जानी चाहिए? जब वह सचेत हो... स्मरण करता हो... अपराधों की गंभीरता से अवगत हो, परन्तु सचेत न हो... स्मरण न करता हो... समय अवधि से अवगत न हो—तब (सामान्य) परिवीक्षा अवधि लगाई जानी चाहिए।

जब वह अनभिज्ञ है...याद नहीं कर पा रहा है...अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित नहीं है, लेकिन जागरूक है...याद कर पा रहा है...समय की अवधि के बारे में निश्चित है—तब इत्यादि...

जब वह जागरूक होता है...याद करता है...कुछ अपराधों की गंभीरता के बारे में निश्चित होता है, लेकिन दूसरों के बारे में नहीं; और जागरूक होता है...याद करता है...समय की अवधि के बारे में निश्चित होता है—तब इत्यादि...।

'ऐसे मामलों में, हे भिक्षुओं, सामान्य परिवीक्षा अवधि लागू की जानी चाहिए।'

यहीं परिवीक्षा अवधि समाप्त होती है।

<<<< पिछला(3.25) | अगला(3.27) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्ग >> तीसरा खन्धक >> 3.27

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-27.

1. उस समय एक भिक्षु ने, जो उस समय प्रशिक्षण में था, अपने वस्त्र त्याग दिए। बाद में वह वापस आया और भिक्षुओं से उपसंपदा माँगी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (भिक्षु) परीक्षा अवधि के दौरान वस्त्र त्याग देता है, तो संघ से बाहर रहने तक उसकी कोई परीक्षा नहीं हो सकती। यदि वह बाद में उपसंपदा ग्रहण कर लेता है, तो उस पर पहले से लगाई गई परीक्षा अनिवार्य बनी रहती है। एक बार लगाई गई परीक्षा स्थायी होती है; एक बार पूरी की गई परीक्षा स्थायी होती है; यदि कोई (समय) शेष रह जाता है, तो परीक्षा फिर से (शुरू से) पूरी करनी होगी।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, परीक्षा के दौरान, समनेर बन जाता है, तो समनेर रहते हुए उसकी परीक्षा नहीं हो सकती। हे भिक्षुओं, यदि वह बाद में उपसम्पदा (आदि, जैसा कि अंतिम अनुच्छेद में अंत तक वर्णित है) प्राप्त कर लेता है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, परीक्षा के दौरान, अपना मानसिक संतुलन खो दे... मानसिक रूप से कमजोर हो जाए... अपनी इंद्रियों में रोगग्रस्त हो जाए... और किसी बात को न मानने के कारण निलंबित कर दिया जाए तो...

अपराध... किसी अपराध का प्रायश्चित न करने के कारण... किसी पापी सिद्धांत का त्याग न करने के कारण—हे भिक्षुओं, जब तक वह अपने मानसिक संतुलन से बाहर है... मानसिक रूप से कमजोर है... निलंबित है, आदि, तब तक उसे कोई परिवीक्षा नहीं मिल सकती। यदि बाद में वह अपने मानसिक संतुलन से बाहर आ जाता है... मानसिक रूप से कमजोर नहीं रहता... निलंबन से मुक्त हो जाता है, तो भी उस पर मूल परिवीक्षा अनिवार्य है। एक बार लगाई गई परिवीक्षा (आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद में अंत तक है)।

2. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, जबकि उसे उसकी परीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेजे जाने का जोखिम हो, अपने वस्त्रों को त्याग देता है (आदि, जैसा कि इस खंड के सभी अनुच्छेदों में "वापस भेजे जाने का जोखिम" के स्थान पर "परीक्षा अवधि से गुजर रहा है")।'

3. [वही बात उस भिक्षु पर भी लागू होती है जो वस्त्र त्याग देता है, या निर्दिष्ट सात चीजों में से कोई भी बन जाता है, जबकि वह मनत्ता अनुशासन के अधीन होने के लिए उत्तरदायी होता है;

4. या मनट्टा अनुशासन से गुजर रहा हो;

5. या पुनर्वास के योग्य है।]

यहां उन चालीस मामलों का अंत होता है (जिनमें किसी व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन के कारण प्रमुख अनुशासनात्मक कार्यवाही में रुकावट आई हो)।

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.27) | अगला(3.29) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-28.

1. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु परीक्षा के दौरान अनेक संघादिशेष कर दे तो...'

अपराध, निश्चित 1, लेकिन छिपा हुआ नहीं, कि भिक्षु को उसकी परिवीक्षा की शुरुआत में वापस भेज दिया जाएगा।

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु परीक्षा के दौरान अनेक संघादिशेष अपराध करता है, जो निश्चित और गुप्त हों, तो उस भिक्षु को उसकी परीक्षा के प्रारंभ में वापस भेज दिया जाएगा; और उस पर उन अपराधों की अवधि के अनुसार एक व्यापक परीक्षा लगाई जाएगी, जिन्हें उसने इस प्रकार छिपाया है।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु परीक्षा के दौरान अनेक संघादिशेष अपराध करता है, जिनमें से कुछ गुप्त हों और कुछ गुप्त न हों, तो उस भिक्षु को (अंतिम अनुच्छेद से अंत तक) ऐसा करना चाहिए।'

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु परीक्षा के दौरान अनेक संघादिशेष अपराध करे, जो स्पष्ट और गुप्त न हों... स्पष्ट और गुप्त न हों... गंभीर न हों, और उनमें से कुछ गुप्त हों, कुछ गुप्त न हों... कुछ स्पष्ट हों, कुछ अस्पष्ट और गुप्त न हों... कुछ स्पष्ट हों, कुछ अस्पष्ट और (सभी) गुप्त हों... कुछ स्पष्ट हों, कुछ अस्पष्ट हों, कुछ गुप्त हों, कुछ गुप्त न हों—तो उस भिक्षु को वापस संघ में मिला दिया जाएगा, और उस पर परीक्षा की अवधि के अनुसार एक व्यापक परीक्षा लगाई जाएगी।

'उसने जिन अपराधों को छिपाया था, उनमें से पहले अपराध के बाद से अब तक का समय।'

[यही स्थिति तब भी लागू होती है जब अपराध उस समय किए जाते हैं जब वह मनट्टा अनुशासन के लिए उत्तरदायी हो, या मनट्टा अनुशासन से गुजर रहा हो, या उसका पुनर्वास लंबित हो।]

यहां उन छत्तीस मामलों का अंत होता है (जिनमें परिवीक्षा अवधि के दौरान नए अपराध किए गए थे)।

<<<< पिछला(3.27) | अगला(3.29) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.29
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (3.28) | अगला (3.30) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-29.

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघदिशेष अपराध करे, और उन्हें छुपाए नहीं, तो वह अपने वस्त्र त्याग दे, और बाद में उपसम्पदा ग्रहण करने के बाद भी उन्हें छुपाए नहीं। हे भिक्षुओं, यदि ऐसा हो तो उस भिक्षु पर मनत्ता लगाई जाएगी।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले बताए गए अनुसार) वस्त्र त्याग दे, और उपसम्पदा पुनः प्राप्त करने के बाद उन्हें छुपा ले, तो हे भिक्षुओं, उस भिक्षु पर उस अवधि के बराबर परिवीक्षा लगाई जाएगी, जिस अवधि के दौरान उसने किसी अपराध को छुपाया हो; और उसके बाद मनत्ता लगाई जाएगी।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघदिशेष अपराध करके उन्हें छुपाता है, और फिर से उपसम्पदा प्राप्त करने के बाद उन्हें नहीं छुपाता है, तो हे भिक्षुओं, उस भिक्षु पर उतने समय के लिए परिवीक्षा लगाई जाएगी जितने समय तक उसने पहले छुपाए गए अपराधों के समूह में से किसी अपराध को छुपाया है; और उसके बाद उस पर मनत्ता लगाई जाएगी।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघदिशेष अपराध करके उन्हें छुपाता है, और फिर वस्त्र त्यागकर उपसम्पदा ग्रहण करने के बाद भी उन्हें छुपाता है, तो हे भिक्षुओं, उस भिक्षु पर उस अवधि के बराबर परिवीक्षा लगाई जाएगी, जिस अवधि के दौरान उसने पहले अपराध या बाद में छुपाए गए अपराधों के समूह में से किसी एक अपराध को छुपाया है; और उसके बाद उस पर मनत्ता लगाई जाएगी।

22. '[हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने अपराध किया हो]
संघदिशेष के अनेक अपराध हैं, जिनमें से कुछ अपराध उसने छिपाए हैं और कुछ नहीं छिपाए हैं; और यदि वह भिक्षु वस्त्र त्यागकर पुनः उपसम्पदा ग्रहण कर लेता है और बाद में उन अपराधों को नहीं छिपाता जिन्हें उसने पहले छिपाया था, और न ही उन अपराधों को छिपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छिपाया था, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, अनुच्छेद 4 के समान दंड लागू होगा]।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु [आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में नीचे दिया गया है] उन अपराधों को बाद में नहीं छुपाता है जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, पैराग्राफ 4 के समान दंड होगा]।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में नीचे दिया गया है) उन अपराधों को बाद में छुपाता है जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और उन अपराधों को बाद में नहीं छुपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, पैराग्राफ 4 के समान दंड होगा]।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में नीचे तक बताया गया है) उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, पैराग्राफ 4 के समान दंड होगा]।

3. 'हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने अनेक संघादिशेष अपराध किए हों, और उनमें से कुछ

वह उनमें से कुछ के बारे में जानता है, लेकिन कुछ के बारे में नहीं जानता; और वह उन अपराधों को छुपाता है जिनके बारे में वह जानता है, लेकिन उन अपराधों को नहीं छुपाता जिनके बारे में वह नहीं जानता; वस्त्र त्यागने और फिर से उपसम्पदा ग्रहण करने के बाद, जिन अपराधों के बारे में वह पहले जानता था और जिन्हें उसने तब छुपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी जानता है और उन्हें नहीं छुपाता; और जिन अपराधों के बारे में वह पहले नहीं जानता था और जिन्हें उसने तब नहीं छुपाया था, उनके बारे में वह बाद में जान जाता है और उन्हें नहीं छुपाता, उस भिक्षु पर [धारा 1, अनुच्छेद 3 के समान दंड लागू होगा]।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में वर्णित है) फिर से उपसम्पदा प्राप्त कर लेता है, तो जिन अपराधों के बारे में वह पहले से अवगत था और जिन्हें उसने तब छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी अवगत रहता है और उन्हें नहीं छिपाता; और जिन अपराधों के बारे में वह पहले से अवगत नहीं था और जिन्हें उसने तब नहीं छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में अवगत हो जाता है और उन्हें छिपाता है, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, अनुच्छेद 4 के समान दंड लागू होगा]।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में वर्णित है) उन अपराधों को छिपाता है जिन्हें उसने पहले छिपाया था, और बाद में भी वह उनसे अवगत रहता है, और उन्हें छिपाता नहीं है, और उन अपराधों के बारे में जो पहले उसे ज्ञात नहीं थे, और जिन्हें उसने तब नहीं छिपाया था, बाद में वह उनसे अवगत हो जाता है, और उन्हें नहीं छिपाता है, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, अनुच्छेद 4 के समान दंड लागू होगा]।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में बताया गया है) जिसे उसने तब छिपाया था, तो वह बाद में भी उनसे अवगत रहता है और उन्हें छिपाता रहता है।

और उन अपराधों के बारे में, जिनके बारे में वह पहले से अनजान था और जिन्हें उसने तब छिपाया नहीं था, बाद में उसे पता चलता है और वह उन्हें छिपाता है, तो उस भिक्षु पर [धारा 1, अनुच्छेद 4 के समान दंड लागू होगा]।

4. [यह खंड पिछले खंड के समान है, जिसमें 'वह अवगत है' के स्थान पर 'वह याद करता है' और 'वह अवगत नहीं है' के स्थान पर 'वह याद नहीं करता' पढ़ा गया है।]

5. [यह खंड फिर से खंड 3 के समान है, जिसमें 'वह जानता है' के स्थान पर 'वह निश्चित है' और 'वह नहीं जानता है' के स्थान पर 'वह निश्चित नहीं है' लिखा गया है।]

<<<< पिछला (3.28) | अगला (3.30) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.30

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.29) | अगला(3.31) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-30.

1. [पिछले अध्याय का पूरा भाग एक ऐसे भिक्षु के मामले में दोहराया गया है, जिसने अपराध किए हैं, जो समनेर बन जाता है, अपना मानसिक संतुलन खो देता है, या मानसिक रूप से कमजोर हो जाता है, और पाठ आगे कहता है] 'वह अपनी इंद्रियों में रोगग्रस्त हो जाता है। उसके कुछ अपराध छिपे हुए होते हैं, कुछ छिपे हुए नहीं होते। कुछ अपराधों के बारे में वह जानता है, कुछ के बारे में नहीं। कुछ अपराधों को वह याद रखता है, कुछ को याद नहीं रखता। कुछ अपराधों के बारे में वह निश्चित होता है, कुछ के बारे में वह निश्चित नहीं होता। जिन अपराधों के बारे में वह निश्चित नहीं था, उन्हें वह छिपाता है; जिन अपराधों के बारे में वह निश्चित था, उन्हें वह नहीं छिपाता। तब वह अपनी इंद्रियों में रोगग्रस्त हो जाता है। जब वह अपनी इंद्रियों पर फिर से नियंत्रण पा लेता है, तो जिन अपराधों के बारे में वह पहले निश्चित था और उन्हें छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी निश्चित रहता है, लेकिन उन्हें नहीं छिपाता; और जिन अपराधों के बारे में वह पहले निश्चित नहीं था,

जिन अपराधों के बारे में वह अनिश्चित था और जिन्हें उसने छिपाया नहीं था, उनके बारे में वह बाद में भी निश्चित रहा और उन्हें छिपाया नहीं। जिन अपराधों के बारे में वह पहले निश्चित था और उन्हें छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी निश्चित रहा और उन्हें छिपाया नहीं, जबकि जिन अपराधों के बारे में वह पहले अनिश्चित था और उन्हें छिपाया नहीं था, उनके बारे में वह बाद में निश्चित हो गया और उन्हें छिपा दिया। जिन अपराधों के बारे में वह पहले निश्चित था और उन्हें छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी निश्चित रहा और उन्हें छिपा दिया; जबकि जिन अपराधों के बारे में वह पहले अनिश्चित था और उन्हें छिपाया नहीं था, उनके बारे में वह बाद में निश्चित हो गया और उन्हें छिपाया नहीं। जिन अपराधों के बारे में वह पहले निश्चित था और उन्हें छिपाया था, उनके बारे में वह बाद में भी निश्चित रहा और उन्हें छिपा दिया; जबकि जिन अपराधों के बारे में वह पहले अनिश्चित था और उन्हें छिपाया नहीं था, उनके बारे में वह बाद में निश्चित हो गया और उन्हें छिपा दिया, - हे भिक्षुओं, उस भिक्षु पर [अध्याय 29, खंड 1, अनुच्छेद 4 में उल्लिखित दंड लागू किया जाएगा।]

यहां उन सौ मामलों का अंत होता है जिनमें दोषी भिक्षु की अवस्था में परिवर्तन के बाद मनत्ता (लागू की जानी है)।

<<<< पिछला(3.29) | अगला(3.31) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.31
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.30) | अगला(3.32) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-31.

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु जो परिवीक्षा पर है, इस बीच अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी हो जाता है, और उन्हें छुपाए बिना अपने वस्त्र त्याग देता है, और जब उसे पुनः उपसम्पदा प्राप्त हो जाती है, तो वह उन अपराधों को छुपाता नहीं है, तो उस भिक्षु को परिवीक्षा की शुरुआत में वापस भेज दिया जाना चाहिए।

और हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) उपसम्पदा पुनः प्राप्त करने के बाद उन अपराधों को छुपाता है, तो उस भिक्षु को (उसकी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में) वापस भेज दिया जाना चाहिए, और उस पर उन अपराधों में से पहले अपराध के लिए (जितना समय बीत चुका है) एक व्यापक परिवीक्षा लगाई जानी चाहिए, जिसे उसने छुपाया है।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु जो परीक्षा दे रहा हो, इस बीच संघदिशेष के अनेक अपराधों का दोषी हो और उन्हें छुपाकर भिक्षु वस्त्र त्याग दे; और उपसम्पदा प्राप्त करने के बाद वह उन अपराधों को न छुपाए—तो उस भिक्षु को उसकी परीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दिया जाना चाहिए और उस पर उन अपराधों में से पहले अपराध के लिए (जितनी अवधि बीत चुकी है) एक पूर्ण परीक्षा लगाई जानी चाहिए, जिसे उसने छुपाया था।'

[यदि उसने वस्त्र त्यागने से पहले और उपसम्पदा पुनः प्राप्त करने के बाद भी अपराधों को छिपाया है, तो भी वही निर्णय लागू होगा।]

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु जो परीक्षा दे रहा हो, इस बीच संघदिशेष के अनेक अपराधों का दोषी हो, और उनमें से कुछ को उसने छिपाया हो और कुछ को नहीं छिपाया हो; और जब वह वस्त्र त्यागकर पुनः उपसम्पदा ग्रहण कर लेता है, तो वह उन अपराधों को नहीं छिपाता जिन्हें उसने पहले छिपाया था, और न ही उन अपराधों को छिपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छिपाया था—[निर्णय वही होगा जो अनुच्छेद 1 के अंतिम अनुच्छेद में है।]

[इसी मामले में आगे भी] वह उन अपराधों को बाद में नहीं छुपाता जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और वह उन अपराधों को बाद में छुपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था [निर्णय वही रहता है]।

[इसी मामले में, वह बाद में उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और वह बाद में उन अपराधों को नहीं छुपाता जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था]।

[इसी मामले में, वह बाद में उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले छुपाया था, और वह बाद में उन अपराधों को छुपाता है जिन्हें उसने पहले नहीं छुपाया था [निर्णय वही है]।

3. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु जो परीक्षा दे रहा हो, इस बीच अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी हो, और वह उनमें से कुछ अपराधों से अवगत हो, और अन्य से अनभिज्ञ हो; और वह उन अपराधों को छुपाए जिनसे वह अवगत है, परन्तु उन अपराधों को न छुपाए जिनसे वह अनभिज्ञ है।

अज्ञान है। वस्त्र त्यागने और पुनः उपसम्पदा ग्रहण करने के बाद, उन अपराधों के लिए जो उसने पहले [अध्याय-29, खंड 3 से आगे तक] उस भिक्षु पर किए थे [दंड वही है जो अंतिम खंड, अध्याय-31, धारा-2 में है]।

[इस अध्याय का शेष भाग अध्याय 29, धारा 4, 5 और अध्याय 30 के बिल्कुल अनुरूप है; दंड हमेशा एक ही रहता है।]

<<<< पिछला(3.30) । अगला(3.32) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.32
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.31) । अगला(3.33) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-32.

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, जिसने मनत्त अनुशासन के लिए स्वयं को उत्तरदायी बना लिया है, या मनत्त अनुशासन का पालन कर रहा है, या पुनर्वास के योग्य है, इस बीच अनेक संघदिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है जिन्हें वह छुपाता नहीं है; और फिर वह वस्त्र त्याग देता है और पुनः उपसम्पदा ग्रहण करता है, तो ऐसे भिक्षु के संबंध में, जो मनत्त अनुशासन के लिए उत्तरदायी है, या मनत्त अनुशासन का पालन कर रहा है, या पुनर्वास के योग्य है, वही नियम लागू होंगे जो परिवीक्षा अवधि के दौरान ऐसा करने वाले भिक्षु के मामले में लागू होते हैं।

और हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पुनर्वास के योग्य होते हुए भी संघदिशेष के अनेक अपराधों का दोषी पाया जाता है, जिन्हें वह छुपाता नहीं है; और फिर वह समनेर हो जाता है, अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है, मानसिक रूप से कमजोर हो जाता है, या उसकी इंद्रियाँ रोगग्रस्त हो जाती हैं; तो उसके कुछ अपराध निम्नलिखित हैं:

कुछ छिपे हुए हैं, कुछ छिपे हुए नहीं हैं... [और इसी तरह, अध्याय 30 की तरह अंत तक, सिवाय इसके कि यहाँ दंड वही है जो पिछले अध्याय 31 और 32 में है।]

<<<< पिछला(3.31) । अगला(3.33) >>>>
टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.33
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.32) । अगला(3.34) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-33.

1. 'और हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघदिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है, चाहे वे निश्चित हों और छिपे हुए न हों, अनिश्चित हों और छिपे हुए न हों, एक ही प्रकार के हों और छिपे हुए न हों, अनेक प्रकार के हों और छिपे हुए न हों, समान हों और छिपे हुए न हों, भिन्न हों और छिपे हुए न हों, और फिर वह भिक्षु वस्त्र त्याग देता है।' . . .

<<<< पिछला(3.32) । अगला(3.34) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.34

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.33) । अगला(3.35) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-34.

1. 'दो भिक्षु संघदिशेष अपराध के दोषी पाए गए हैं, और उस संघदिशेष अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह संघदिशेष अपराध है। उनमें से एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। जिसने इसे छुपाया है, उसे दुक्कता अपराध का दोषी स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए, और उसे छुपाने की अवधि के बराबर परिवीक्षा अवधि दी जानी चाहिए, और उन दोनों पर मनत्ता लगाई जानी चाहिए।'

'दो भिक्षु संघदिशेष अपराध के दोषी पाए गए हैं, और उस संघदिशेष अपराध के संबंध में वे संदेह में हैं। उनमें से एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। [दंड समान है।]

'दो भिक्षु संघदिशेष अपराध के दोषी पाए गए हैं, और उस संघदिशेष अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह मिश्रित अपराध है। उनमें से एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। [दंड समान है।]

'दो भिक्षु मिश्रित अपराध के दोषी पाए गए हैं, और उस मिश्रित अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह संघदिशेष अपराध है। उनमें से एक

एक व्यक्ति इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। [सजा समान है।]

'दो भिक्षु मिश्रित अपराध के दोषी हैं, और उस मिश्रित अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह मिश्रित अपराध है। उनमें से एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। [दंड समान है।]

दो भिक्षुओं ने एक छोटा अपराध किया है; और उस छोटे अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह संघदिशेष अपराध है। उनमें से एक ने इसे छिपाया है, दूसरे ने नहीं छिपाया है। जिसने इसे छिपाया है, उसे दुक्कत अपराध का दोषी स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए, और दोनों के साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाना चाहिए।

दो भिक्षुओं ने एक छोटा अपराध किया है, और उस छोटे अपराध के बारे में उनका मत है कि यह एक छोटा अपराध है। उनमें से एक ने इसे छिपाया है, दूसरे ने नहीं छिपाया है। जिसने इसे छिपाया है, उसे दुक्कता अपराध का दोषी होने की बात स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए, और दोनों के साथ कानून के अनुसार व्यवहार किया जाना चाहिए।

2. दो भिक्षु संघादिशेष अपराध के दोषी हैं, और उस संघादिशेष अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह संघादिशेष है। उनमें से एक सोचता है: "मैं (संघ को) बता दूंगा।" दूसरा सोचता है: "मैं (संघ को) नहीं बताऊंगा।" और रात के पहले पहर में वह इसे छुपाता है, फिर

रात के दूसरे पहर में छुपाता है, और फिर रात के तीसरे पहर में छुपाता है। सूर्योदय के बाद यह अपराध छुपा हुआ माना जाएगा। जिसने इसे छुपाया है [आदि; दंड वही है जो धारा 1, अनुच्छेद 1 में दिया गया है]।

दो भिक्षु संघादिशेष अपराध के दोषी हैं, और वे इस संघादिशेष अपराध के संबंध में यह मत रखते हैं कि यह संघादिशेष अपराध है। वे संघ को इसके बारे में बताने के इरादे से निकल पड़े। रास्ते में उनमें से एक के मन में इसे छिपाने की इच्छा उत्पन्न हुई; और रात के पहले पहर में उसने इसे छिपाया, फिर दूसरे पहर में और फिर तीसरे पहर में। सूर्योदय के बाद यह अपराध छिपा हुआ माना जाएगा। जिसने इसे छिपाया है, उसे पहले जैसा ही दंड मिलेगा।

दो भिक्षु संघदिशेष अपराध के दोषी हैं, और उस संघदिशेष अपराध के संबंध में उनका मत है कि यह संघदिशेष अपराध है। वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं; और बाद में जब उन्हें होश आता है तो उनमें से एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। जिसने इसे छुपाया है [आदि; दंड पहले जैसा ही है]।

दो भिक्षु संघदिशेष अपराध के दोषी पाए गए हैं। जब पतिमोक्ख का पाठ हो रहा था, तब उन्होंने कहा: "अब हमें यह समझ में आया है; क्योंकि वे कहते हैं कि यह नियम सूत्रों में लिखा गया है, सूत्रों में निहित है, और प्रत्येक छह महीने में इसका पाठ किया जाता है।" संघदिशेष अपराध के संदर्भ में, वे (इस प्रकार) दोषी पाए गए।

यह मत है कि यह संघदिशेष अपराध है। एक इसे छुपाता है, दूसरा नहीं छुपाता। जिसने इसे छुपाया है [आदि; दंड पहले जैसा ही है]।

<<<< पिछला(3.33) | अगला(3.35) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> तीसरा खंडका >> 3.35

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.34) | अगला(3.36) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-35.

1. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी हो—निश्चित और अनिश्चित—एक ही प्रकार के और अनेक प्रकार के—एक दूसरे से मिलते-जुलते और भिन्न—आपस में जुड़े हुए और अलग-अलग। वह उन अपराधों के कारण संघ से पूर्ण परिवीक्षा की मांग करता है। संघ उन अपराधों के कारण उस पर पूर्ण परिवीक्षा लगाता है। परिवीक्षा के दौरान वह अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी हो जाता है, जो निश्चित होते हैं और जिन्हें वह छुपाता नहीं है। वह संघ से उन बीच के अपराधों के कारण उसे परिवीक्षा की शुरुआत में वापस भेजने का अनुरोध करता है। संघ एक विधिवत कार्यवाही द्वारा ऐसा करता है जिसे रद्द नहीं किया जा सकता और जो उस स्थिति के लिए उपयुक्त है; और वह उस पर एक मनत्ता भी लगाता है, लेकिन एक विधिवत कार्यवाही द्वारा, और फिर एक विधिवत कार्यवाही द्वारा उसका पुनर्वास करता है। हे भिक्षुओं, वह भिक्षु उन अपराधों से मुक्त नहीं हुआ है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है—निश्चित और अनिश्चित, एक ही प्रकार के और अनेक प्रकार के—एक दूसरे से मिलते-जुलते और भिन्न, एक दूसरे से जुड़े और अलग। और वह उन अपराधों के कारण संघ से पूर्ण परिवीक्षा की मांग करता है। संघ उन अपराधों के कारण उस पर पूर्ण परिवीक्षा लगाता है। परिवीक्षा के दौरान वह अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है, जो निश्चित होते हैं और जिन्हें वह छुपाता है। वह संघ से उन बीच के अपराधों के कारण उसे परिवीक्षा की शुरुआत में वापस भेजने का अनुरोध करता है। संघ एक विधिवत कार्यवाही द्वारा ऐसा करता है जिसे रद्द नहीं किया जा सकता और जो उस स्थिति के लिए उपयुक्त है; और यह विधिवत कार्यवाही द्वारा उस पर व्यापक परिवीक्षा भी लगाता है, और विधिवत कार्यवाही द्वारा उस पर मनत्ता भी लगाता है, और विधिवत कार्यवाही द्वारा उसका पुनर्वास करता है। हे भिक्षुओं, वह भिक्षु इन अपराधों से शुद्ध नहीं होता।

[यही निर्णय तब भी दिया जाता है जब बीच में हुए सभी अपराध, जो कि निश्चित हैं, में से कुछ को छिपाया गया हो और कुछ को नहीं छिपाया गया हो।]

2. [यही स्थिति तब भी लागू होती है जब बीच के अपराध स्पष्ट और छिपे हुए न हों, या स्पष्ट और छिपे हुए न हों, या सभी स्पष्ट न हों लेकिन कुछ छिपे हुए हों और कुछ स्पष्ट न हों, या सभी छिपे हुए न हों लेकिन कुछ स्पष्ट और कुछ स्पष्ट न हों, या सभी छिपे हुए हों।]

परन्तु कुछ निश्चित और कुछ अनिश्चित, या कुछ निश्चित और कुछ अनिश्चित, और कुछ छिपे हुए और कुछ स्पष्ट।]

यहां उन नौ प्रमुख मामलों का अंत होता है (जो अगले अध्याय में विभिन्नताओं का आधार बनते हैं) जिनमें एक भिक्षु (परीक्षण अवधि से गुजरकर) शुद्ध नहीं होता है।

<<<< पिछला(3.34) । अगला(3.36) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 3.36
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.35) । अगला(4.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

तीसरा खंडक (परीक्षा एवं प्रायश्चित - जारी)

अध्याय-36.

1. [वापस फेंकने के वही नौ मामले गैरकानूनी कार्यवाही द्वारा चलाए जाते हैं, जबकि मनत्ता और पुनर्वास कानूनी कार्यवाही द्वारा किए जाते हैं।]

2. हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है—निश्चित और अनिश्चित—एक ही प्रकार के और अनेक प्रकार के—एक दूसरे से मिलते-जुलते और भिन्न—एक दूसरे से जुड़े और अलग। वह इन अपराधों के कारण संघ से पूर्ण परिवीक्षा की प्रार्थना करता है। संघ उसे इन अपराधों के कारण अतिरिक्त परिवीक्षा देता है। परिवीक्षा के दौरान वह अनेक संघादिशेष अपराधों का दोषी पाया जाता है, जो निश्चित होते हैं और जिन्हें वह छुपाता है। वह संघ से उसे वापस संघ में शामिल करने की प्रार्थना करता है।

परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ होने से पहले हुए अन्य अपराधों के संबंध में संघ उसे एक अवैध कार्यवाही द्वारा दंडित करता है, जो निरस्त किए जाने योग्य और इस अवसर के लिए अनुपयुक्त है; और वह उस पर एक व्यापक परिवीक्षा भी थोपता है, वह भी एक अवैध कार्यवाही द्वारा। वह यह सोचकर कि "मैं परिवीक्षा अवधि से गुजर रहा हूँ," इस बीच कई संघदिशेष अपराधों का दोषी होता है, जिन्हें वह छुपाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर उसे पहले अपराधों के दौरान किए गए अन्य अपराध और बाद के अपराधों के दौरान किए गए अन्य अपराध याद आते हैं।

तब उसे यह विचार आया, "मैं अनेक संघदिशेष अपराधों का दोषी रहा हूँ (आदि, जैसा कि इस खंड के प्रारंभ से लेकर अंतिम अनुच्छेद के अंत तक में वर्णित है) और मुझे वे अन्य अपराध भी याद आ गए जो मैंने इन अपराधों के दौरान किए थे। अब मैं संघ से निवेदन करता हूँ कि पूर्व अपराधों और बाद के अपराधों के दौरान किए गए उन अपराधों के कारण मुझे एक वैध कार्यवाही द्वारा, जिसे रद्द नहीं किया जा सकता और जो इस अवसर के लिए उपयुक्त है, मेरी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेज दिया जाए; और मैं एक वैध

कार्यवाही द्वारा एक व्यापक परिवीक्षा, एक वैध कार्यवाही द्वारा एक मनत्ता और फिर एक वैध कार्यवाही द्वारा पुनर्वास के लिए निवेदन करता हूँ।"

और वह संघ से [तदनुसार] पूछता है, और संघ [ऐसा करता है]। हे भिक्षुओं, वह भिक्षु उन अपराधों से शुद्ध हो जाता है।

[यही स्थिति तब भी लागू होती है जब प्रत्येक मामले में कुछ अपराध छिपाए गए हों और कुछ नहीं छिपाए गए हों।]

3, 4. [भिक्षु पिछले खंड में निर्दिष्ट ऐसे मध्यवर्ती और स्मरण किए गए अपराधों से शुद्ध नहीं होता है, यदि संघ ने इस अध्याय के पहले खंड में वर्णित अनुसार, गैरकानूनी कार्यवाही की हो।]

अपराधों के संचय पर आधारित तीसरा खंडक यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(3.35) | अगला(4.1) >>>>

चौथा खंडका (विवाद)
(भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(3.36) | अगला(4.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय 1।

1. उस समय महान बुद्ध सावत्थी में अनाथपिंडिका के आराम (मठ) में निवास कर रहे थे। उस समय छब्बगीय भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओं के विरुद्ध औपचारिक अनुष्ठान - तज्जनिया, निस्सया, पब्बजिया, पतिसरानिया और उक्खेपनिया - करते थे।

तब वे नम्र भिक्षु नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'छब्बग्गिया भिक्षु ऐसा कैसे कर सकते हैं?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि छब्बागीय भिक्षु उन भिक्षुओं के विरुद्ध (उपरोक्त) औपचारिक कार्य करते हैं जो उपस्थित नहीं होते?'

'यह सच है, प्रभु!'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'यह अनुचित है (आदि, जैसा कि 1, 2 से अंत तक है)।' और जब उन्होंने उन्हें इस प्रकार फटकारा, और

धर्म प्रवचन देते हुए उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा: 'हे भिक्षुओं, औपचारिक कर्म, तज्जनीय, निस्साय, पब्बनीय, पतिसराणीय और उक्खेपनीय कर्म उन भिक्षुओं के विरुद्ध नहीं किए जाने चाहिए जो उपस्थित नहीं हैं। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता अपराध का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(3.36) । अगला(4.2) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.1) । अगला(4.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-2: जब किसी बात को असत्य रूप से सही माना जाता है

1. वह अकेला भिक्षु जो उचित वचन के अनुसार नहीं बोलता, वे अनेक भिक्षु जो उचित वचन के अनुसार नहीं बोलते, वह संघ जो उचित वचन के अनुसार नहीं बोलता। वह अकेला भिक्षु जो उचित वचन के अनुसार बोलता है, वे अनेक भिक्षु जो उचित वचन के अनुसार बोलते हैं, वह संघ जो उचित वचन के अनुसार बोलता है।

अब (ऐसा हो सकता है कि) जो भिक्षु उचित मार्ग के विपरीत बोलता है, वह उचित मार्ग बोलने वाले किसी भिक्षु को उचित मार्ग बता दे, या उसे समझा दे, या उसे उस दृष्टिकोण से मामले को देखने या विचार करने के लिए प्रेरित करे, या उसे सिखाए या निर्देश दे, यह कहते हुए, 'यह धम्म है, यह विनय है, यह गुरु का उपदेश है। इसे स्वीकार करो और इसका अनुमोदन करो।' यदि विवाद का निपटारा इस प्रकार किया जाता है, तो वह धम्म के विरुद्ध और विनय के नियम की मात्र नकल के साथ किया जाता है (कि विवाद के मामलों का निपटारा संघ की विधिवत गठित बैठक में और आरोपी व्यक्ति की उपस्थिति में किया जाना चाहिए)।

[और इसी प्रकार, यदि वह उन अनेकों या संघ को उपदेश दे जो उचित मार्ग पर चलते हैं; या यदि वे अनेक या संघ जो उचित मार्ग पर नहीं चलते, उस एक व्यक्ति या अनेकों या संघ को उपदेश दें जो उचित मार्ग पर चलते हैं; तो विवाद धम्म के विरुद्ध हल हो जाता है (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)।]

उन नौ मामलों का अंत जिनमें गलत पक्ष ने फैसला सुनाया।

<<<< पिछला(4.1) । अगला(4.3) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.2) । अगला(4.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-3.

[यह अध्याय पिछले अध्याय के विपरीत है; इसमें वे मामले बताए गए हैं जिनमें अध्याय-2 के पहले अनुच्छेद में मतिका के अंतिम तीन सदस्य पहले तीन सदस्यों को निर्देश देते हैं, इत्यादि।]

उन नौ मामलों का अंत जिनमें सही पक्ष ने फैसला सुनाया।

<<<< पिछला(4.2) | अगला(4.4) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.3) | अगला(4.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-4.

1. उस समय महान बुद्ध राजगृह में, कलंदक निवापा में, बांस के जंगल में ठहरे हुए थे।

उस समय पूज्य दब्बा मल्लियन, जिन्होंने सात वर्ष की आयु में ही अरहतत्व प्राप्त कर लिया था, शिष्य को प्राप्त होने वाले सभी आध्यात्मिक वरदानों से परिपूर्ण हो चुके थे; उनके लिए अब कुछ भी शेष नहीं था, न ही उनके पिछले परिश्रम का कोई फल शेष था। और जब पूज्य दब्बा मल्लियन एकांत में चले गए और चिंतन में लीन हो गए, तो उनके मन में यह विचार आया: 'क्या मैंने अरहतत्व प्राप्त कर लिया है?'

मैंने सात वर्ष की आयु में ही सब कुछ प्राप्त कर लिया था। एक शिक्षार्थी जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह सब मैंने प्राप्त कर लिया है। अब मेरे लिए करने को कुछ नहीं बचा है, मैंने जो कुछ किया है, उसका फल समेटने के लिए कुछ नहीं बचा है। संघ के लिए मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?' तब पूज्य मलियान दब्बा के मन में यह विचार आया: 'संघ के लिए आवास व्यवस्था करना और भोजन का आवंटन करना मेरे लिए अच्छा रहेगा।'

2. और जब संध्याकाल में पूज्य मल्लियन दुब्बा अपनी ध्यान साधना से उठे, तो वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; और इस प्रकार बैठते हुए पूज्य मल्लियन दुब्बा ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'हे प्रभु, जब मैं एकांत में जाकर चिंतन में लीन हो गया, तब मेरे मन में निम्नलिखित विचार आया (जैसा कि पहले भी कहा गया है): संघ के लिए आवास व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना और भोजन का राशन बाँटना मेरे लिए अच्छा होगा। हे प्रभु, मैं ऐसा करना चाहता हूँ।'

'बहुत बढ़िया, डब्बा। तो क्या आप संघ के लिए आवास व्यवस्था और भोजन का आवंटन भी करते हैं!'

'यह ठीक है, प्रभु,' आदरणीय डब्बा मल्लियन ने भगवान बुद्ध के वचन को स्वीकार करते हुए कहा।

3. उस अवसर पर और उस संदर्भ में, जब भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, संघ डब्बा मल्लियन को आवास-स्थानों का नियामक और राशन का बंटवारा करने वाला नियुक्त करे। और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, नियुक्ति की जानी चाहिए।'

'सर्वप्रथम दब्बा से पूछा जाना चाहिए (कि क्या वह पदभार ग्रहण करने के लिए इच्छुक है)। जब उससे पूछ लिया जाए, तो किसी योग्य और विवेकशील भिक्षु को संघ के समक्ष यह संकल्प रखना चाहिए, और कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले।"

"यदि संघ को उचित लगे, तो संघ मल्लियन दब्बा को आवास-स्थानों का नियामक और राशन का बंटवारा करने वाला नियुक्त करे।" यह संकल्प (नट्टी) है।

"आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले।"

संघ ने आदरणीय मल्लियन दब्बा को आवास स्थलों का नियामक और राशन का वितरणकर्ता नियुक्त किया है। जो भी आदरणीय इस बात से सहमत हैं कि दब्बा को इस पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए, वे मौन रहें; जो असहमत हैं, वे बोलें। आदरणीय दब्बा को संघ द्वारा आवास स्थलों का नियामक और राशन का वितरणकर्ता नियुक्त किया गया है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए इस पर मौन है। मैं यही समझता हूँ।

4. और पूज्य मल्लियन भिक्षु दब्बा ने, इस प्रकार चुने जाने पर, एक ही स्थान पर एक ही विभाग के भिक्षुओं के लिए एक ही आवास नियुक्त किया। उन भिक्षुओं के लिए जो सुत्तंतों का जाप करते थे, उन्होंने एक साथ आवास नियुक्त किया, यह सोचकर कि 'वे एक दूसरे को सुत्तंतों का पाठ कर सकेंगे।' उन भिक्षुओं के लिए जो विनय के प्रभारी थे, उन्होंने एक साथ आवास नियुक्त किया, यह सोचकर कि 'वे एक दूसरे से विनय पर चर्चा कर सकेंगे।' उन भिक्षुओं के लिए जो धम्म के प्रचारक थे, उन्होंने एक साथ आवास नियुक्त किया, यह सोचकर कि 'वे एक दूसरे से धम्म पर चर्चा कर सकेंगे।' उन भिक्षुओं के लिए जो ध्यान में लीन थे, उन्होंने एक साथ आवास नियुक्त किया, यह सोचकर कि 'वे एक दूसरे को परेशान नहीं करेंगे।' सांसारिक ज्ञान में निपुण और शारीरिक शक्ति से परिपूर्ण भिक्षुओं के लिए उन्होंने एक ही स्थान पर सामूहिक रूप से निवास किया, यह सोचकर कि 'ये पूजनीय भिक्षु भी इसी प्रकार अपनी इच्छा अनुसार निवास कर सकेंगे।' और जो भिक्षु देर से आए, उनके लिए उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की और उसकी लौ के प्रकाश में उन्हें निवास स्थान का मार्ग दिखाया।

यहां तक कि दृढ़ निश्चयी भिक्षु देर से आते थे, यह सोचकर कि 'इस प्रकार हम पूज्य मल्लियन दब्बा की इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) के दर्शन करेंगे।' और वे पूज्य मल्लियन दब्बा के पास जाकर कहते थे: 'हे पूज्य दब्बा, हमारे लिए एक आवास की व्यवस्था कीजिए।'

और आदरणीय मलीय दब्बा उनसे इस प्रकार कहते थे: 'आदरणीय लोग कहाँ विश्राम करना चाहते हैं? मैं उनके लिए कौन सा स्थान निर्धारित करूँ?'

और वे दृढ़ निश्चयी लोग दूर किसी स्थान को चुनते हुए कहते, 'आदरणीय डब्बा हमें गिद्ध शिखर पर ठहरने की जगह दें; आदरणीय हमें लुटेरे की चट्टान पर ठहरने की जगह दें; आदरणीय हमें इसिगिली दर्रे पर काली चट्टान पर ठहरने की जगह दें; आदरणीय हमें वेभारा दर्रे पर ठहरने की जगह दें; आदरणीय हमें सत्तपन्नी गुफा में ठहरने की जगह दें;

हे पूज्यवर, सीता वन में स्थित सर्प कुंड की पर्वतीय गुफा में हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, गोमाता गुफा में हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, तिन्दुका वृक्ष की गुफा में हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, तपोदा घाट पर हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, तपोदा विश्राम में हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, जीवक के आम के बाग में हमें निवास स्थान प्रदान करें; हे पूज्यवर, मद्दकुक्खी के हिरण उद्यान में हमें निवास स्थान प्रदान करें।

और पूज्य मलीय दब्बा अचानक ज्वाला में घिर जाते और जलती हुई उंगली लिए उनके आगे-आगे चलते, और वे उस ज्वाला के प्रकाश में पूज्य मलीय दब्बा के पीछे-पीछे चलते। और पूज्य मलीय दब्बा उन्हें एक विश्राम स्थल बताते हुए कहते, 'यह पलंग है, यह स्टूल है, यह चटाई है, यह तकिया है, यह शौचालय है, यह पीने का पानी है, यह धोने का पानी है, यह लाठी है, और यह संघ के परामर्श का प्रारूप है, कि अमुक समय पर आपको इसमें प्रवेश करना है और अमुक समय पर आपको यहाँ से प्रस्थान करना है।' और जब

आदरणीय मल्लियन डब्बा ने उनके लिए इस प्रकार आवास नियुक्त किया था, वह फिर से बांस के जंगल में लौट जाएगा।

5. उस समय मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं को संघ में हाल ही में प्रवेश मिला था और वे पुण्यहीन थे, और संघ से संबंधित आवासों में से जो निम्न श्रेणी के थे, वे उनके हिस्से में आए और उन्हें निम्न श्रेणी का राशन मिला।

उस समय राजगृह के लोग थेरा भिक्षुओं को इच्छा-भेंट भेंट के रूप में घी, तेल और स्वादिष्ट व्यंजन देना चाहते थे; जबकि मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं को वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार साधारण भेंट देते थे, अर्थात् भोजन के टुकड़े और खट्टी दलिया।

भिक्षा प्राप्त करने के बाद जब वे वापस लौटे और भोजन कर लिया, तो उन्होंने थेरा भिक्षुओं से पूछा, 'महोदय, आपको भिक्षा स्थान पर क्या मिला? आपको क्या मिला?'

कुछ थेरों ने उत्तर दिया, "महोदय; हमारे पास घी था, तेल था, और स्वादिष्ट व्यंजन थे।"

मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने उत्तर दिया: 'हमें कुछ भी नहीं मिला, महोदय; बस एक साधारण सा दान जो वे दे सके, भोजन के टुकड़े और उसके साथ खट्टा दलिया।'

6. उस समय एक गृहस्थ, जिसके पास पर्याप्त धन-संपत्ति थी, संघ को नियमित रूप से चार भिक्षुओं के लिए भोजन दान करता था। वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ दान स्थल पर खड़ा होकर सेवा करता था; और कुछ भिक्षुओं को उबले हुए चावल, कुछ को दलिया, कुछ को तेल और कुछ स्वादिष्ट व्यंजन भेंट करता था।

उस समय मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं के लिए अगले दिन इस समृद्ध व्यक्ति के घर पर भोजन का आयोजन किया गया था।

गृहस्थ। 'और वह समृद्ध गृहस्थ किसी काम से अरमा (मठ) गया और वहाँ पहुँचा जहाँ पूज्य मल्लियन दब्बा विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उसने पूज्य मल्लियन दब्बा को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसे पूज्य दब्बा ने धर्म प्रवचन से उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रसन्न किया और प्रोत्साहित किया।'

और जब उस समृद्ध गृहस्थ को आदरणीय डब्बा मल्लियन द्वारा इस प्रकार शिक्षा दी गई, प्रेरित किया गया, प्रसन्न किया गया और प्रोत्साहित किया गया, तो

धम्म प्रवचन के दौरान, उन्होंने आदरणीय डब्बा मल्लियन से कहा: 'महोदय, कल हमारे घर पर भोजन किसके लिए निर्धारित किया गया है?'

'मेरे मित्र, कल आपके घर पर मेत्तिया और भूमगका के अनुयायी भिक्षुओं के लिए भोज का आयोजन किया गया है।'

तब उस समृद्ध गृहस्थ को यह सोचकर बहुत प्रसन्नता हुई, 'हमारे घर में दुष्ट भिक्षु कैसे आनंद ले सकते हैं?' और घर जाकर उसने दासी को आदेश दिया: 'कल भोजन के लिए आने वालों के लिए प्रवेश कक्ष में चटाई बिछा दो और उन्हें भोजन के कुछ टुकड़े और साथ में खट्टी दलिया परोस दो!'

'जी हां, महाराज!' दासी ने गृहस्वामी की बात मानते हुए कहा।

7. तब मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षु आपस में बोले, "कल हमारे लिए एक समृद्ध गृहस्थ के घर भोजन का आयोजन किया गया था। कल वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ भिक्षागृह में हमारी सेवा करेगा। वह हममें से कुछ को उबले हुए चावल, कुछ को दलिया, कुछ को तेल और कुछ स्वादिष्ट व्यंजन देगा।" इस बात से प्रसन्न होकर वे उस रात बेचैनी से सोए।

फिर मेत्तिया और भूमगका के अनुयायी भिक्षुओं ने सुबह-सुबह वस्त्र धारण करके विधिवत वस्त्र धारण कर उस समृद्ध गृहस्थ के घर गए। और उस दासी ने उन भिक्षुओं को देखा जो अनुयायी थे।

दूर से मेत्तिया और भूमगाका को आते हुए देखकर, उसने प्रवेश कक्ष में चटाइयाँ बिछाते हुए उनसे कहा, 'आप लोग बैठ जाइए।'

और मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने सोचा: 'निश्चित रूप से भोजन अभी तैयार नहीं हो सकता, क्योंकि हमें प्रवेश द्वार पर बैठने के लिए कहा गया है।'

फिर दासी बचे हुए भोजन के टुकड़े और उसके साथ खट्टा दलिया लेकर आई और उनसे बोली, 'खाइए, सज्जनों!'

'बहन, हम उन लोगों में से हैं जिनके लिए निरंतर भोजन की व्यवस्था की जाती है।'

'मुझे पता है, महोदय, कि आप ऐसे ही हैं। लेकिन कल ही मुझे गृहस्वामी से आदेश मिला कि जो लोग कल भोजन के लिए आएंगे, उनके लिए मैं प्रवेश कक्ष में चटाइयाँ बिछा दूँ और उन्हें भोजन के कुछ टुकड़े और साथ में कुछ दलिया परोस दूँ। भोजन कीजिए, महोदय!'

तब मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने सोचा: 'कल ही वह गृहस्थ, जो समृद्ध था, मल्लियन दब्बा से मिलने आराम आया था। निश्चय ही मल्लियन दब्बा ने उस गृहस्थ को हमारे विरुद्ध भड़काया होगा।' और इस दुःख से वे बेचैनी से भोजन करने लगे। मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने भोजन समाप्त करने के बाद भिक्षा ग्रहण करके आराम में जाकर अपने पान-पात्र और वस्त्र एक तरफ रख दिए और आराम के बरामदे के बाहर कमरबंद के सहारे उकड़ू बैठ गए।

चुप, शर्मिंदा, टूटे हुए दिलों के साथ, धंसे हुए चेहरों के साथ, उदास और भ्रमित।

8. अब भिक्षुणी मेत्तिया उस स्थान पर आईं जहाँ मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षु थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे कहा: 'आप दोनों को मेरा प्रणाम!'

जब उसने ऐसा कहा तो मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने उससे बात नहीं की। इसलिए उसने दूसरी बार उनसे कहा: 'आपको मेरा प्रणाम, महोदय!' और वे फिर भी नहीं बोले। तीसरी बार भी उसने उनसे कहा: 'आपको मेरा प्रणाम, महोदय!' तीसरी बार भी मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी भिक्षुओं ने बात नहीं की। तब उसने कहा: 'मैंने आपको कैसे नाराज किया है, महोदय? आप मुझसे बात क्यों नहीं कर रहे हैं?'

'तो क्या तुम इतनी उदासीन हो, बहन, जब हमें मल्लियन डब्बा द्वारा सताया जा रहा है?'

'लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ, महोदय?'

'अगर आप चाहें, बहन, तो आप आज ही भगवान बुद्ध से आदरणीय डब्बा मल्लियन को निष्कासित करवा सकती हैं।'

'लेकिन मैं क्या करूँ, महोदय? मेरे बस में क्या है?'

'अब आओ, बहन; तुम उस स्थान पर जाओ जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान हैं, और वहाँ पहुँचकर इस प्रकार कहो: "हे प्रभु, यह न तो उचित है और न ही उपयुक्त कि स्वर्ग का वह भाग जो सुरक्षित, संरक्षित और खतरे से मुक्त होना चाहिए, उसी भाग से खतरा, विपत्ति और संकट आए—जहाँ शांति की अपेक्षा हो, वहाँ आंधी आए। मुझे लगता है जैसे जल में आग लग गई हो। हे प्रभु, मैं मल्लियन दब्बा द्वारा अपवित्र हो गया हूँ!'

'बहुत खूब, महोदय!' भिक्षुणी मेत्तिया ने मेत्तिया और भूमगका के अनुयायियों की बात मानकर कहा। और वह भगवान बुद्ध के पास गईं [और जैसा उन्हें निर्देश दिया गया था वैसा ही बोला]।

9. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में संघ की एक सभा बुलाई और पूज्य मल्लियन दब्बा से पूछा:

'क्या तुम इस बात से अवगत हो, डब्बा, कि तुमने ऐसा कुछ किया है जैसा कि यह भिक्षुणी कह रही है?'

'जैसे मेरे प्रभु, भगवान बुद्ध, मुझे जानते हैं।' [और दूसरी और तीसरी बार भगवान बुद्ध ने वही प्रश्न पूछा, और उन्हें वही उत्तर मिला।]

तब भगवान बुद्ध ने कहा: 'हे दब्बा, इस प्रकार खंडन मत करो। यदि तुमने ऐसा किया है, तो ऐसा कहो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया है, तो कहो कि तुमने ऐसा नहीं किया है।'

'हे प्रभु, जब से मेरा जन्म हुआ है, मुझे सपने में भी यौन संबंध बनाने की बात याद नहीं आती, जागते हुए तो बिल्कुल भी नहीं!'

और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी मेत्तिया को निष्कासित कर दो और इस बारे में उन भिक्षुओं से पूछताछ करो।' ऐसा कहकर वे अपने आसन से उठे और विहार (मठ) में प्रवेश कर गए।

तब उन भिक्षुओं ने भिक्षुणी मेत्तिया को निष्कासित कर दिया। परन्तु मेत्तिया और भूमगाक के अनुयायी भिक्षुओं ने उन भिक्षुओं से कहा: 'हे महोदय, भिक्षुणी मेत्तिया को निष्कासित न करें। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है। हमने क्रोध और कटुता से उनके पतन का कारण बनने के इरादे से उन्हें दंडित किया है।'

'तो फिर क्या हुआ, महोदय? क्या आप ही हैं जो आदरणीय डब्बा मल्लियन को निराधार आरोप और नैतिकता के उल्लंघन से इस प्रकार परेशान कर रहे हैं?'

'जी हां, महोदय।'

तब वे भिक्षु जो संयमी थे, क्रोधित और नाराज हो गए और शिकायत करते हुए बोले, 'मैत्तिया और भूमगाका के अनुयायी ये भिक्षु आदरणीय मल्लियन दब्बा को निराधार आरोप लगाकर कैसे परेशान कर सकते हैं?'

'नैतिकता?' और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं?'

'यह सच है, प्रभु।'

फिर उन्होंने उन्हें फटकारा, और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

इसलिए संघ, इस मामले में पूर्णतया निर्दोश विवेक वाले मल्लियन दब्बा को, जो इस संबंध में पूरी तरह से निर्दोश हैं, न्यायोचित कार्यवाही प्रदान करे।

10. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इसे स्वीकार किया जाना है।

'वह दुब्बा मल्लियन संघ के समक्ष उपस्थित हो, और अपने वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करके वरिष्ठ भिक्षुओं के चरणों में प्रणाम करे; और नीचे बैठकर, हथेलियों को जोड़कर हाथ फैलाए, और कहे, "हे भिक्षुओं, मेत्तिया और भूमगका के अनुयायी, मुझ पर अनैतिक आचरण का निराधार आरोप लगाकर मुझे परेशान कर रहे हैं। परन्तु हे भिक्षुओं, इस विषय में मेरा अंतरात्मा निर्मल है, और मैं संघ से निःसंदेह निर्दोषता का बोध रखने वालों को बरी करने का निवेदन करता हूँ।" तब कोई योग्य और विवेकशील भिक्षु संघ के समक्ष इस प्रकार संकल्प (नत्ति) प्रस्तुत करे। "आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। हे भिक्षुओं, मेत्तिया और भूमगाका के अनुयायी, आदरणीय दब्बा मल्लियन पर नैतिकता के उल्लंघन का निराधार आरोप लगाकर उन्हें परेशान कर रहे हैं। आदरणीय दब्बा मल्लियन का अंतरात्मा निर्मल है और वे संघ से अपने निर्दोष होने का निःसंकोच करने का अनुरोध करते हैं। यदि संघ के लिए समय अनुकूल हो, तो संघ आदरणीय दब्बा मल्लियन को उनके निर्दोष होने का निःसंकोच कर दे। यही संकल्प है। आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। ये भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले की तरह) संघ से अपने निर्दोष होने का निःसंकोच करते हैं। संघ आदरणीय दब्बा मल्लियन को उनके निर्दोष होने का निःसंकोच कर देता है। आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी दब्बा मल्लियन को निःसंकोच करने का समर्थन करे..." निर्दोषता के प्रति सचेत लोगों को बरी करने के संबंध में, वह चुप रहे। जो कोई इससे सहमत नहीं है, वह बोले। और मैं यही बात दूसरी बार दोहराता हूँ। और तीसरी बार भी यही बात दोहराता हूँ। आदरणीय संघ मेरी बात सुने। ये भिक्षु (आदि, पहले की तरह) बोलें। निर्दोषता के प्रति सचेत लोगों को संघ द्वारा मल्लियन दब्बा को बरी कर दिया गया है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए वह चुप है। मैं यही समझता हूँ।

11. 'पांच बातें हैं जो निर्दोषता के प्रति सचेत व्यक्तियों को दोषमुक्ति प्रदान करने को विधि के अनुसार बनाती हैं। भिक्षु का निर्दोष और अपराधरहित होना आवश्यक है, अन्य लोगों द्वारा उसकी आलोचना की गई हो, उसे निर्दोषता के प्रति सचेत रहते हुए संघ से दोषमुक्ति की विनती करनी चाहिए, संघ द्वारा दोषमुक्ति प्रदान की जानी चाहिए, और संघ विधिवत गठित और संचालित होना चाहिए। हे भिक्षुओं, यही वे पांच बातें हैं जो निर्दोषता के प्रति सचेत व्यक्तियों को दोषमुक्ति प्रदान करने को विधि के अनुसार बनाती हैं।'

<<<< पिछला(4.3) | अगला(4.5) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.4) | अगला(4.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-5.

1. उस समय भिक्षु जंजा पागल और विक्षिप्त थे; और उन्होंने उस विक्षिप्त अवस्था में, वाणी और कर्म दोनों में, कई ऐसे कार्य किए थे जो समना के लिए अशोभनीय थे। भिक्षुओं ने भिक्षु जंजा को उनके द्वारा विक्षिप्त अवस्था में किए गए एक अपराध के बारे में चेतावनी देते हुए कहा, 'क्या पूज्य भिक्षु को याद है कि उन्होंने ऐसा अपराध किया है?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरे मित्रों, मैं पागल और विक्षिप्त था। (निस्संदेह) जब मैं पागल और विक्षिप्त था, तब मैंने वाणी और कर्म दोनों ही दृष्टि से कई ऐसे कार्य किए होंगे जो एक समन के लिए अशोभनीय थे। परन्तु मुझे वे याद नहीं हैं। वे सब मैंने अपने पागलपन के कारण किए थे।'

लेकिन यद्यपि उन्हें उससे वह उत्तर मिल गया, फिर भी उन्होंने उसे चेतावनी देते हुए कहा, 'क्या आदरणीय व्यक्ति को याद है कि उसने फलां-फलां अपराध किया है?'

'जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, "ये भिक्षु, भिक्षु जंज्जा को ऐसे अपराध के बारे में चेतावनी कैसे दे सकते हैं?" और जब वह उत्तर देता है, "मेरे मित्रों, मैं पागल था... अपने पागलपन के कारण" - तो ये भिक्षु उसे ऐसे अपराध के बारे में चेतावनी कैसे दे सकते हैं?'

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि उन भिक्षुओं ने (पहले की तरह, इसी तरह) ऐसा-ऐसा अपराध किया है?'

'यह सच है, प्रभु।'

फिर उन्होंने उन्हें फटकारा, और धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'तो संघ जन्जा भिक्षु को, जो अब समझदार हो चुका है, उन लोगों के लिए छूट प्रदान करे जो अब पागल नहीं हैं।'

2. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

'भिक्खु जंजा को [यहाँ औपचारिक अनुरोध, संकल्प और संघ के निर्णय द्वारा अनुदान के शब्द ठीक उसी तरह आते हैं जैसे पिछले मामले में, अध्याय-4, §-10]।'

<<<< पिछला(4.4) | अगला(4.6) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.5) | अगला(4.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-6.

1. 'हे भिक्षुओं, तीन ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें जो लोग अब पागल नहीं हैं, उनके लिए क्षमादान मान्य नहीं है; और तीन ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें ऐसा क्षमादान मान्य है।

वे तीन मामले कौन से हैं जिनमें उन लोगों के लिए दी गई छूट वैध नहीं होती जो अब मानसिक रूप से बीमार नहीं हैं?

हे भिक्षुओं, सर्वप्रथम यदि किसी भिक्षु ने कोई अपराध किया हो, और संघ, अनेक भिक्षु, या केवल एक भिक्षु उसे चेतावनी देते हुए कहे, "क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उसने फलां-फलां अपराध किया है?" और वह, भले ही उसे याद हो, कहे, "महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने फलां-फलां अपराध किया है।" तब यदि संघ उसे उन भिक्षुओं के समान छूट प्रदान करे जो अब पागल नहीं हैं, तो वह छूट मान्य नहीं होगी।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले की तरह) और वह, भले ही उसे याद हो, कहता है, "मुझे याद तो है, लेकिन मानो सपने में।" तो यदि संघ उसे अनुमति दे

जो लोग अब पागल नहीं हैं, उन्हें दी जाने वाली छूट वैध नहीं है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु कोई अपराध कर बैठे, और संघ, अनेक भिक्षु, या कोई एक भिक्षु उसे चेतावनी देते हुए कहे, "क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उसने फलां-फलां अपराध किया है?" और वह, यद्यपि वह पागल नहीं है, फिर भी पागलों की तरह व्यवहार करते हुए कहे, "मैं ऐसा करता हूँ, और तुम भी ऐसा ही करो। यह मुझे शोभा देता है, और यह तुम्हें भी शोभा देता है।" तब यदि संघ उसे उन भिक्षुओं की छूट प्रदान करे जो अब पागल नहीं हैं, तो वह छूट मान्य नहीं होगी।

हे भिक्षुओं, ये वे तीन मामले हैं जिनमें उन लोगों को क्षमादान देना वैध नहीं है जो अब पागल नहीं हैं।

2. वे कौन से तीन मामले हैं जिनमें उन लोगों के लिए छूट प्रदान करना वैध है जो अब पागल नहीं हैं?

हे भिक्षुओं, सर्वप्रथम यदि कोई भिक्षु पागल हो और उसका मानसिक संतुलन बिगड़ा हुआ हो; और उसने इस अवस्था में, वाणी और कर्म दोनों में, समन के विरुद्ध अनेक कार्य किए हों। और संघ, या अनेक भिक्षु, या कोई एक भिक्षु, उसे इस विषय में चेतावनी देते हुए पूछे, "क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उसने ऐसा अपराध किया है?" और वह वास्तव में उसे याद न करते हुए उत्तर दे, "महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने ऐसा अपराध किया है।" तब यदि संघ उसे उन भिक्षुओं के लिए दी जाने वाली छूट प्रदान करता है जो अब पागल नहीं हैं, तो वह छूट वैध है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पागल हो जाए और उसका दिमाग खराब हो जाए (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है), और वह वास्तव में याद न रखते हुए उत्तर दे, "मुझे याद है, महोदय, लेकिन मानो सपने में देखा हो।" तो यदि संघ उसे उन लोगों के लिए दी जाने वाली छूट प्रदान करता है जो अब पागल नहीं हैं, तो वह छूट मान्य है।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पागल हो जाए और उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाए (जैसा कि पहले बताया गया है, यहाँ तक कि) "क्या आदरणीय भिक्षु को याद आता है कि उसने ऐसा अपराध किया है?" और वह अभी भी पागल होते हुए पागलों की तरह व्यवहार करे, यह कहते हुए, "मैं ऐसा करता हूँ, और तुम भी ऐसा ही करो। यह मुझे शोभा देता है, और यह तुम्हें भी शोभा देता है।" तब यदि संघ (बाद में) उसे उन लोगों के लिए दी जाने वाली छूट प्रदान करे जो अब पागल नहीं हैं, तो वह छूट मान्य होगी।

'हे भिक्षुओं, ये तीन मामले हैं जिनमें उन लोगों को क्षमादान देना वैध है जो अब पागल नहीं हैं।'

<<<< पिछला(4.5) | अगला(4.7) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.6) | अगला(4.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय 7।

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने उन भिक्षुओं के विरुद्ध आधिकारिक कार्रवाई की जिन्होंने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया था—जैसे तज्जनिया-कम्मा, या निस्सया-कम्मा, या पब्बजिया-कम्मा, या पतिसरानिया-कम्मा, या उक्खेपनिया-कम्मा।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'छब्बाग्य भिक्षु (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) ऐसा कैसे कर सकते हैं?' और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि छब्बागीय भिक्षु ऐसा करते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

फिर उन्होंने उन्हें फटकारा, और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, चाहे वह तज्जनीय कर्म हो, निस्साय कर्म हो, पब्बजनीय कर्म हो, पतिसराणीय कर्म हो या उक्खेपनीय कर्म हो, कोई भी आधिकारिक कार्य उन भिक्षुओं के विरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए जिन्होंने स्वयं को दोषी स्वीकार नहीं किया है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कत अपराध का दोषी होगा।

<<<< पिछला(4.6) | अगला(4.8) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.7) | अगला(4.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-8.

1. हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु के विरुद्ध, जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया हो, की गई आधिकारिक कार्रवाई निम्न प्रकार से अमान्य और निम्न प्रकार से मान्य होती है। और ऐसी आधिकारिक कार्रवाई अमान्य कैसे हो जाती है? यदि किसी भिक्षु ने पराजिका अपराध किया हो, और इस संबंध में संघ, या अनेक भिक्षुओं का समूह, या एक अकेला भिक्षु उसे चेतावनी देते हुए कहे, “आदरणीय भिक्षु पराजिका अपराध के दोषी हैं।” और वह उत्तर दे, “महोदय, मैं पराजिका अपराध का दोषी नहीं हूँ। मैं संघदिशेष का दोषी हूँ।” और इस संबंध में संघ उसके साथ संघदिशेष के रूप में व्यवहार करे, तो वह आधिकारिक कार्रवाई अमान्य हो जाती है।

[और इसी प्रकार, यदि उसे सात अपराधों में से किसी एक के बारे में चेतावनी दी जाती है और वह आरोपित अपराध से भिन्न किसी अन्य अपराध का दोषी होने की बात स्वीकार करता है, तो आधिकारिक कार्रवाई अमान्य हो जाती है।]

2. हे भिक्षुओं, ऐसा आधिकारिक कार्य कब वैध होता है? यदि किसी भिक्षु ने पराजिका अपराध किया हो, और संघ, या अनेक भिक्षु, या एक अकेला भिक्षु उसे चेतावनी देते हुए कहे, "आदरणीय भिक्षु ने पराजिका अपराध किया है।" और वह उत्तर दे, "जी हाँ, मैंने पराजिका अपराध किया है।" और संघ उसके साथ पराजिका के अनुसार व्यवहार करे, तो वह आधिकारिक कार्य वैध होता है।

[और इसी प्रकार धारा-1 में उल्लिखित अन्य सभी अपराधों के लिए, धारा-2 की पूरी धारा दोहराई जाती है।]

<<<< पिछला(4.7) | अगला(4.9) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.9

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.8) | अगला(4.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-9.

उस समय संघ में एकत्रित भिक्षु हिंसक, झगड़ालू और विवादशील हो गए थे, और एक-दूसरे को कटु शब्दों से चोट पहुँचाते रहते थे, इसलिए वे असमर्थ थे।

विवादित प्रश्न (जो उनके समक्ष लाया गया था) का निपटारा करने के लिए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस विवाद का निपटारा बहुमत के मत से करने की अनुमति देता हूँ। पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को मतदान पर्ची लेने वाला नियुक्त किया जाएगा—जो पक्षपात न करे, जो द्वेष न रखे, जो मूर्खता न करे, जो भय न रखे, और जो यह जानता हो कि कौन से (मत) लिए गए हैं और कौन से नहीं लिए गए हैं।'

और इस प्रकार उनकी नियुक्ति की जाएगी।

'सर्वप्रथम भिक्षु से यह निवेदन किया जाना चाहिए (कि क्या वह यह पदभार ग्रहण करेंगे)। फिर किसी योग्य और विवेकशील भिक्षु को यह मामला संघ के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुने। यदि संघ को समय उपयुक्त लगे, तो संघ अमुक नाम के भिक्षु को मतदान टिकट लेने वाला नियुक्त करे।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले। संघ अमुक नाम के भिक्षु को टिकट लेने वाला नियुक्त करता है। जो भी आदरणीय भिक्षु अमुक नाम के भिक्षु की नियुक्ति को स्वीकार करते हैं, वे टिकट ले सकते हैं।"

टिकटों के बारे में, उसे चुप रहना चाहिए। जो कोई भी इससे सहमत नहीं है, वह बोल सकता है। फलां नाम के भिक्षु को संघ द्वारा मतदान टिकट लेने वाला नियुक्त किया गया है। इसलिए इस पर चुप्पी साधी गई है। मैं यही समझता हूँ।

<<<< पिछला(4.8) | अगला(4.10) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.10

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.9) । अगला(4.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-10.

1. 'हे भिक्षुओं, दस ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें मतदान करना अमान्य है; और दस ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें मतदान करना मान्य है।'

वे कौन सी दस स्थितियाँ हैं जिनमें मतदान करना अमान्य है? जब विवाद का विषय तुच्छ हो—जब मामला अपनी अंतिम प्रक्रिया पूरी न कर चुका हो (अर्थात, जब मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यक प्रारंभिक प्रक्रियाएँ पूरी न की गई हों)—जब विवाद के विषय में भिक्षुओं ने औपचारिक रूप से अपराध को याद न किया हो, या उन्हें औपचारिक रूप से अपराध को याद करने के लिए न कहा गया हो—जब मतदान करने वाला जानता हो कि वे लोग बहुमत में होंगे जिनकी राय कानून के अनुसार नहीं है।

या शायद बहुमत में हो—जब उसे पता हो कि मतदान से संघ में फूट पड़ जाएगी—जब उसे संदेह हो कि मतदान से संघ में फूट पड़ेगी—जब वोट अनियमित रूप से डाले गए हों—जब सभी समान रूप से वोट न दें—और जब वे अपने वास्तविक मत के अनुसार वोट न दें। ये दस स्थितियाँ हैं जिनमें मतदान अमान्य होता है।

2. 'और वे दस मामले कौन से हैं जिनमें मतदान वैध है?'

[ये दस मामले अन्य दस मामलों के ठीक विपरीत हैं।]

<<<< पिछला(4.9) । अगला(4.11) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (4.10) । अगला (4.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-11.

1. उस समय भिक्षु उवाला से संघ के बीच में एक अपराध के संबंध में पूछताछ की गई, तो उसने पहले इनकार किया फिर स्वीकार किया, फिर स्वीकार किया फिर इनकार किया, प्रति-आरोप लगाए और झूठ बोला, जिसे वह जानता था कि झूठ है।

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज हो गए, बड़बड़ाने लगे और क्रोधित होकर कहने लगे, 'भिक्षु उवाला ऐसा कैसे कर सकते हैं?' और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, जैसा कि वे कहते हैं कि भिक्षु [आदि, जैसा कि पहले बताया गया है]।'

'यह सच है, प्रभु।'

फिर उन्होंने उसे फटकारा, और जब उन्होंने धर्म प्रवचन दे दिया तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'तो फिर, हे भिक्षुओं, संघ को तस्स-पापिय्यसिका-कम्म (हठपूर्वक गलत काम करने वाले के मामले में कार्यवाही) का पालन करना चाहिए।'

2. हे भिक्षुओं, इस प्रकार यह क्रिया संपन्न की जानी है। सर्वप्रथम भिक्षु उवला को चेतावनी दी जानी चाहिए; चेतावनी दिए जाने पर, उन्हें याद दिलाया जाना चाहिए (कि उन्होंने जानबूझकर अपराध किया है या नहीं); याद दिलाए जाने पर, उन्हें (अपराध के संबंध में परीक्षण के माध्यम से) अपने ऊपर एक नया दंड लाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

अपराध (अर्थात हठ या टालमटोल का); जब उसने स्वयं पर यह नया अपराध लाद लिया हो, तो किसी विवेकशील और सक्षम भिक्षु को संघ के समक्ष यह मामला रखते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ इस बात को सुने। भिक्षु उवला से संघ के बीच में एक अपराध के संबंध में पूछताछ की गई, जब उन्होंने इसे अस्वीकार किया तो फिर स्वीकार किया, फिर स्वीकार किया तो फिर इनकार किया, प्रति-आरोप लगाए और जानबूझकर झूठ बोला। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ भिक्षु उवला के विरुद्ध तस्सपपिय्यसिका-कर्म करे।"

"यह प्रस्ताव है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। यह भिक्षु उवला (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)। संघ भिक्षु उवला के विरुद्ध तस्स-पापिय्यसिका-कम्म कर रहा है। आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी उवला के विरुद्ध तस्स-पापिय्यसिका-कम्म करवाना उचित समझता है, वह मौन रहे। जो इसका विरोध करता है, वह बोले।"

"मैं दूसरी बार वही बात कहता हूँ। इस भिक्षु उवला (आदि, पहले की तरह) को बोलने दो। मैं तीसरी बार वही बात कहता हूँ (आदि, पहले की तरह) को बोलने दो।"

"तस्सा-पापिय्यसिका-कम्मा संघ द्वारा भिक्षु उवाला के विरुद्ध किया गया है। इसलिए यह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

<<<< पिछला (4.10) | अगला (4.12) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (4.11) | अगला (4.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-12.

1. हे भिक्षुओं, तस्सपपिय्यसिका-कम्म के वैध निष्पादन के लिए पाँच बातें आवश्यक हैं। अर्थात्—वह अपवित्र है, वह निर्लज्ज है—उसके विरुद्ध निंदा की गई है—संघ कर्म का निष्पादन करता है—वह इसे विधिपूर्वक और पूर्ण सभा में करता है।

2. हे भिक्षुओं, तीन बातें हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि जब कोई तस्स-पापिय्यसिका-कर्म धर्म और विनय के विरुद्ध होता है, तो उसका निपटारा कठिन होता है; (अर्थात्) जब वह विधि और न्याय के अनुसार, विधिवत योग्य व्यक्तियों की पूर्ण सभा में, तथा मुकदमे में

शामिल पक्षों की उपस्थिति में नहीं किया गया हो; जब वह आरोपी व्यक्ति को सुने बिना किया गया हो; जब वह आरोपी व्यक्ति द्वारा स्वयं को दोषी स्वीकार किए बिना किया गया हो।

'हे भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं जिनसे तस्स-पापिय्यसिका-कर्म की विशेषता यह है कि यह धम्म और विनय के विरुद्ध है और इसका समाधान करना कठिन है।'

तीन बातें हैं जिनसे (और जैसा कि पिछले पैराग्राफ में बताया गया है) यह धम्म और विनय के अनुरूप है और आसानी से स्थापित हो जाता है; (अर्थात्), जब यह स्थापित हो चुका हो [आदि, इस पैराग्राफ का शेष भाग पिछले पैराग्राफ का विपरीत है]।

3. [यह अनुच्छेद चुलवग्ग प्रथम, चतुर्थ, अनुच्छेद प्रथम से बिल्कुल मेल खाता है, जिसमें उन तीन मामलों का वर्णन है जिनमें संघ, यदि चाहे तो, किसी भिक्षु के विरुद्ध तस्स-पापिय्यसिका-कम्म कर सकता है।]

4. [इस अनुच्छेद में इस कर्म के अधीन भिक्षु के लिए 'सही आचरण' ठीक उसी प्रकार निर्धारित किया गया है जैसा कि 1, 5 में ताजनिया-कर्म के अधीन भिक्षु के लिए किया गया है।]

तब संघ ने उवला भिक्खु के विरुद्ध तस्सा-पापियासिका-कम्मा चलाया।

<<<< पिछला (4.11) | अगला (4.13) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.12) | अगला(4.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-13.

1. उस समय, जब भिक्षु आपस में झगड़े, कलह और विवाद करते रहे, तब वे वचन और कर्म दोनों में ही समन के लिए अनुपयुक्त अनेक कार्य कर चुके थे। भिक्षुओं के मन में यह विचार आया, 'जब हम ये सब करते रहे, तब हम वचन और कर्म दोनों में ही दोषी हो गए। यदि अब हम इन अपराधों के लिए एक-दूसरे से निपटें, तो हो सकता है कि इससे कठोरता, दुर्भावना और विभाजन उत्पन्न हो जाए। अब हम क्या करें?'

और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु अभ्यास करते समय, इत्यादि... वे वचन और कर्म दोनों में दोषी हों, इत्यादि... और उन्हें यह आशय हो, "जब हम अभ्यास कर रहे थे, इत्यादि... हम दोषी रहे हैं, इत्यादि... यदि अब हम व्यवहार करें, इत्यादि... तो अब कैसे...

हम इसे कैसे संभालेंगे? हे भिक्षुओं, मैं आप सभी को यह आदेश देता हूँ कि आप इस प्रकार के मामले को तिनवत्थरका (घास की तरह ढकने) द्वारा सुलझाएँ।

2. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इसका निर्णय किया जाना है। सभी को एक स्थान पर एकत्रित होना है। जब वे एकत्रित हो जाएं तो कोई योग्य और विवेकशील भिक्षु संघ के समक्ष इस विषय को रखते हुए कहे,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। जब हम आगे बढ़ रहे थे, इत्यादि... तब हम दोषी थे, इत्यादि... वचन और कर्म दोनों में। और हमें यह विचार आया (इत्यादि, आगे तक) कि यदि अब हम आपस में ऐसा व्यवहार करें, इत्यादि... तो इससे कठोरता, दुर्भावना और विभाजन

उत्पन्न हो सकता है। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ इस मामले को घास से ढककर सुलझा ले—केवल गंभीर अपराधों और उन मामलों को छोड़कर जिनमें गृहस्थ शामिल रहे हों।"

तब उस दल के भिक्षुओं में से कोई विवेकशील और योग्य भिक्षु इस मामले को अपने दल के समक्ष लाकर यह कहेगा,

"आदरणीय महोदय, मेरी प्रार्थना सुनिए। जब हम आगे बढ़ रहे थे, इत्यादि... तब हम दोषी थे, इत्यादि... वचन और कर्म दोनों में। और हमें यह बात समझ में आई, इत्यादि... (विभाजनों तक)। यदि आप आदरणीय महोदय, तो मैं संघ के बीच में, आप दोनों की ओर से, आदरणीय महोदय, और अपनी ओर से भी, आपके द्वारा किए गए अपराध और ऐसे अपराध को स्वीकार करता/करती हूँ।

जैसा कि मेरा अपना है, ताकि इसे घास से ढक दिया जाए, सिवाय गंभीर अपराधों के और उन चीजों के जिनमें आम लोग शामिल रहे हों।"

और दूसरे पक्ष के भिक्षुओं में से कोई विवेकशील और सक्षम भिक्षु इस मामले को अपने पक्ष के सामने रखते हुए कहेगा, "आदरणीय भिक्षु मेरी बात सुनें [आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में अंत तक है]।"

तब उस दल के भिक्षुओं में से विवेकशील और योग्य भिक्षु संघ के समक्ष यह मामला लाते हुए कहेंगे, "आदरणीय संघ मेरी प्रार्थना सुनिए। हम (आदि, पहले की तरह) समूहों में हैं। यदि संघ को समय उचित लगे, तो मैं संघ के बीच में, इन आदरणीय भिक्षुओं की ओर से और अपनी ओर से भी, उनके और अपने दोनों के अपराधों को स्वीकार करता/करती हूँ, ताकि वे घास की तरह ढक जाएँ, सिवाय गंभीर अपराधों के और उन बातों के जिनमें गृहस्थ शामिल रहे हों। यही प्रस्ताव है (पट्टी)। आदरणीय संघ मेरी प्रार्थना सुनिए। हम (आदि, पहले की तरह) समूहों में हैं। मैं (आदि, पहले की तरह) उन अपराधों को स्वीकार करता/करती हूँ जिनमें गृहस्थ शामिल रहे हों। आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी हमारे इन अपराधों को स्वीकार करने का समर्थन करे, ताकि वे घास की तरह ढक जाएँ, सिवाय पहले बताए गए मामलों के।" उसे चुप रहने दो। जो कोई इससे सहमत नहीं है, वह बोले। हमारे ये अपराध संघ के बीच में स्वीकार किए जाते हैं, ताकि वे घास की तरह ढक जाएं, सिवाय इसके कि

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए यह मौन है। मैं इसे इसी प्रकार समझता हूँ।

और दूसरे पक्ष के भिक्षुओं में से विवेकशील और योग्य भिक्षु को यह मामला संघ के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए और कहना चाहिए, "आदरणीय संघ मेरी बात सुने (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में अंत तक बताया गया है)।"

'तो हे भिक्षुओं, गंभीर अपराधों को छोड़कर, और गृहस्थों से संबंधित मामलों को छोड़कर, तथा उन लोगों को छोड़कर जो कार्यवाही पर अपनी असहमति व्यक्त करते हैं, या जो कार्यवाही में उपस्थित नहीं होते हैं, उन सभी को छोड़कर, वे भिक्षु उन अपराधों से मुक्त हो जाते हैं।'

<<<< पिछला(4.12) । अगला(4.14) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> चौथा खंडका >> 4.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.13) । अगला(5.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

चौथा खंडक (भाईचारे के बीच विवादों का निपटारा)

अध्याय-14.

1. उस समय भिक्षुओं का भिक्षुओं से और भिक्षुणियों का भिक्षुओं से विवाद होता था। भिक्षु चन्ना ने भिक्षुणियों के कमरों में जबरदस्ती घुसकर भिक्षुणियों का पक्ष लिया और भिक्षुओं से विवाद करने लगा।

वे भिक्षु जो संयमी थे, क्रोधित हो गए, इत्यादि... उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, इत्यादि... उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

2. 'हे भिक्षुओं, संघ द्वारा औपचारिक रूप से निपटारे की आवश्यकता वाले निम्नलिखित चार प्रकार के विधिक प्रश्न हैं; (अर्थात्) विवादों से उत्पन्न विधिक प्रश्न, निंदा से उत्पन्न विधिक प्रश्न, अपराधों से उत्पन्न विधिक प्रश्न, और व्यापार से उत्पन्न विधिक प्रश्न।

इनमें से विवाद से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न क्या है? हे भिक्षुओं, यह वह स्थिति है जब भिक्षु आपस में विवाद करते हुए कहते हैं, "यह धम्म है," या "यह धम्म नहीं है," या "यह विनय है," या "यह विनय नहीं है," या "यह तथागत (बुद्ध) द्वारा सिखाया और बोला गया है," या "यह तथागत द्वारा न तो सिखाया गया है और न ही बोला गया है," या "इसका अभ्यास तथागत द्वारा नहीं किया गया है," या "इसका अभ्यास तथागत द्वारा नहीं किया गया है," या "यह तथागत द्वारा निर्धारित किया गया है," या "यह तथागत द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है," या "यह एक अपराध है," या "यह अपराध नहीं है," या "यह एक मामूली अपराध है," या "यह एक गंभीर अपराध है," या "यह एक ऐसा अपराध है जिसे दूर किया जा सकता है," या "यह एक ऐसा अपराध है जिसे दूर नहीं किया जा सकता है," या "यह एक अत्यंत गंभीर अपराध है," या "यह अत्यंत गंभीर अपराध नहीं है।" किसी भी मामले पर जो भी झगड़ा, कलह, विवाद, मतभेद, विरोधाभास, विरोध, झगड़ा या विवाद हो, उसे विवाद से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न कहा जाता है।

और इनमें से निंदा से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न कौन सा है? हे भिक्षु, यह तब होता है जब भिक्षु दूसरे भिक्षु पर नैतिकता, आचरण, मत या आजीविका के साधन में दोष का आरोप लगाते हैं। कोई भी आरोप, निंदा, दोषारोपण, चेतावनी, स्पष्ट मत, किसी व्यक्ति के लिए बहाने बनाना या उसका उपहास करना, यही निंदा से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न कहलाता है।

और इनमें से, अपराध से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न क्या है? अपराधों के पाँच समूह अपराधों से संबंधित कानूनी प्रश्नों के विषय हैं, और अपराधों के सात समूह भी अपराधों से संबंधित कानूनी प्रश्नों के विषय हैं। इसी को अपराध से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न कहा जाता है।

और इनमें से, व्यवसाय का कानूनी प्रश्न क्या है? संघ के लिए जो भी कार्य करना आवश्यक है, कोई दायित्व है, कोई ऐसा मामला है जिसके लिए औपचारिक रूप से अनुमति मांगी जानी चाहिए, किसी प्रस्ताव का प्रस्ताव है, या किसी कार्यवाही का संचालन नट्टी-दुतिया-कम्मा या नट्टी-कतुत्था-कम्मा द्वारा किया जाता है, उसे व्यवसाय का कानूनी प्रश्न कहा जाता है।

3. 'वह क्या है जो विवाद के कानूनी प्रश्न को जन्म देता है? विवाद के छह कारण हैं जो विवाद के कानूनी प्रश्नों को जन्म देते हैं। और गलत कार्य के तीन कारण हैं जो विवाद के कानूनी प्रश्नों को जन्म देते हैं, और सही कार्य के तीन कारण हैं जो विवाद के कानूनी प्रश्नों को जन्म देते हैं। और ये छह कौन से हैं?'

हे भिक्षुओं, सर्वप्रथम एक प्रकार का भिक्षु होता है जो क्रोधित होता है और अपने हृदय में द्वेष रखता है। हे भिक्षुओं, ऐसा क्रोधित और द्वेषपूर्ण भिक्षु गुरु, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा और प्रसन्नता से रहित रहता है और शिष्य के सभी कर्तव्यों का पालन नहीं करता। और हे भिक्षुओं, ऐसा भिक्षु गुरु, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा और प्रसन्नता से रहित रहता है और शिष्य के सभी कर्तव्यों का पालन नहीं करता, वह संघ में विवाद उत्पन्न करता है, और ऐसा विवाद जनसमूह के लिए दु:ख, अभाव और विपत्ति का कारण बनता है, और देवताओं और मनुष्यों के लिए दु:ख और अभाव का कारण बनता है। अत:, हे भिक्षुओं, यदि आपको कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई दे जो आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के विवादों का मूल कारण हो, तो हे भिक्षुओं, उस दुष्ट व्यक्ति को, जो विवादों का मूल कारण है, अपने से दूर करने का प्रयास करें। हे भिक्षुओं, यदि आपको ऐसा कोई व्यक्ति न दिखाई दे, तो इस बात का ध्यान रखें कि भविष्य में आपके बीच ऐसा कोई दुष्ट व्यक्ति, जो विवादों का मूल कारण हो, उत्पन्न न हो। इस प्रकार, वह दुष्ट व्यक्ति, जो विवादों का मूल कारण है, आपके बीच दूर हो जाएगा और भविष्य में आपके बीच ऐसा कोई दुष्ट व्यक्ति, जो विवादों का मूल कारण हो, उत्पन्न नहीं होगा।

हे भिक्षुओं, एक ऐसा भिक्षु भी है जो पाखंडी है और अपने दोषों को छुपाता है; जो ईर्ष्यालु और जलनखोर है; जो धूर्त और कपटी है; जिसके मन में पापी इच्छाएँ और झूठे विश्वास हैं; जो सांसारिक लाभ के लोभ से कलंकित है, जो पाने और लेने में लगा रहता है, जिसके लिए किसी चीज का त्याग करना कठिन है। हे भिक्षुओं, जो भी भिक्षु इस प्रकार पाखंडी है और अपने दोषों को छुपाता है, वह ऐसा ही रहता है [आदि, जैसा पहले था, पिछले अनुच्छेद से अंत तक की पूरी बात यहाँ सूचीबद्ध प्रत्येक मामले में दोहराई गई है]।

4. और वे कौन से तीन कारण हैं जिनके कारण कानूनी विवाद उत्पन्न होते हैं?

हे भिक्षुओं, लालची मन वाले लोग, दुष्ट मन वाले लोग और मूर्ख मन वाले लोग आपस में वाद-विवाद करते हुए कहते हैं, "यह धम्म है," या "यह धम्म नहीं है" [आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद 2 में बताया गया है] या "यह कोई गंभीर अपराध नहीं है।" ये तीन कारण हैं जो कुकर्म के कारण कानूनी विवाद को जन्म देते हैं।

और वे कौन से तीन कारण हैं जो सही कार्य करने के कारण कानूनी विवाद के प्रश्न उत्पन्न करते हैं?

'सबसे पहले, हे भिक्षुओं, लोभी मन के न हों [आदि, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में है, "नहीं" शब्द जोड़कर]।

5. हे भिक्षुओं, वह क्या है जो निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देता है? निंदा के छह कारण हैं जो निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देते हैं। और कुकर्म के तीन कारण हैं जो निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देते हैं। और धर्मकर्म के तीन कारण हैं जो निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देते हैं। और शरीर निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देता है, और वाणी निंदा के विधिक प्रश्नों को जन्म देती है।

[ये छह शब्द पिछले खंड के समान ही हैं, जिनमें 'विवाद' के स्थान पर 'निंदा' शब्द का प्रयोग किया गया है।]

और वे कौन से तीन कारण हैं जिनके आधार पर निंदा संबंधी कानूनी प्रश्न उठते हैं?

हे भिक्षुओं, लालची मन वाले लोग निंदा करने में लगे रहते हैं, दुष्ट मन वाले लोग निंदा करने में लगे रहते हैं, मूर्ख मन वाले लोग निंदा करने में लगे रहते हैं, दूसरों पर नैतिकता के उल्लंघन, आचरण में त्रुटि, या आजीविका के गलत साधन अपनाने का आरोप लगाते हैं। ये तीन कारण हैं जो निंदा के कानूनी प्रश्नों को जन्म देते हैं।

[इसके बाद सही कर्म के तीन कारण दिए गए हैं, जिनमें 'लालची मन के न होने वाले मनुष्य' आदि शामिल हैं, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 4 के अंत में लिखा है।]

और शरीर किस प्रकार निंदा के कानूनी प्रश्न उत्पन्न करता है? यदि कोई व्यक्ति बदसूरत, कुरूप, बौना, बीमार, एक आँख से अंधा, लंगड़ा, कुबड़ा या अपंग हो, तो लोग इसी कारण से उसकी आलोचना करते हैं। इस प्रकार शरीर निंदा के कानूनी प्रश्न उत्पन्न करता है।

और वाणी किस प्रकार निंदा के कानूनी प्रश्न उत्पन्न करती है? यदि किसी व्यक्ति की आवाज खराब हो, या वह अस्पष्ट बोलता हो, या कठोर स्वर में बोलता हो, तो लोग इस कारण उसकी आलोचना करते हैं। इस प्रकार वाणी निंदा के कानूनी प्रश्न उत्पन्न करती है।

6. और अपराध के कानूनी प्रश्न किस बात से उत्पन्न होते हैं? अपराध के छह स्रोत हैं जिनसे अपराध के कानूनी प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक अपराध वह है जो कर्म से उत्पन्न होता है, न कि वचन या विचार से। एक अपराध वह है जो वचन से उत्पन्न होता है, न कि कर्म या विचार से। एक अपराध वह है जो कर्म और वचन दोनों से उत्पन्न होता है, न कि विचार से। एक अपराध वह है जो कर्म और विचार दोनों से उत्पन्न होता है, न कि वचन से। एक अपराध वह है जो वचन और विचार तीनों से उत्पन्न होता है, न कि कर्म से। एक अपराध वह है जो कर्म, वचन और विचार तीनों से उत्पन्न होता है। ये छह हैं (आदि)।

7. 'और वह क्या है जो व्यापार संबंधी कानूनी प्रश्नों को जन्म देता है? एक चीज है जो व्यापार संबंधी कानूनी प्रश्नों को जन्म देती है, अर्थात् संघ।'

8. 'विवाद के कानूनी प्रश्न। सही। गलत। अनिर्धारित।'

किसी विवाद से उत्पन्न कानूनी प्रश्न सही हो सकता है, गलत भी हो सकता है और अनिश्चित भी हो सकता है। इनमें से कौन सा कानूनी प्रश्न विवाद से उत्पन्न होने पर सही है?

हे भिक्षुओं, यदि कोई विवेकशील भिक्षु यह कहते हुए चर्चा करे कि "यह धम्म है," या "यह धम्म नहीं है" (आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद 2 में दिया गया है) या "यह कोई गंभीर अपराध नहीं है।" ऐसी चर्चा में जो भी कलह, विवाद, मतभेद, विरोधाभास, विरोध, झगड़ा या विवाद हो, उसे उचित विवाद से उत्पन्न होने वाला विधिक प्रश्न कहा जाता है।

[अत: जब भिक्षुओं का मन गलत या अनिश्चित होता है, तो ऐसे विवाद से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न क्रमशः गलत या अनिश्चित विवाद से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न होता है।]

9. 'निंदा के कानूनी प्रश्न। सही। गलत। अनिर्धारित।'

[यह तीनों में से कोई भी हो सकता है, इस आधार पर कि निंदा करने वाले भिक्षुओं (जैसा कि §-5 में है) का मन सही है, गलत है या अनिश्चित है। अनुच्छेद का स्वरूप पूरे पाठ में §-8 के अनुरूप है।]

10. 'अपराध के कानूनी प्रश्न। सही। गलत। अनिर्धारित।'

यह कानूनी प्रश्न हो सकता है कि क्या कोई अपराध गलत है, और यह कानूनी प्रश्न हो सकता है

किसी अपराध का निर्धारण नहीं हो सकता। किसी अपराध के सही होने या न होने का कोई कानूनी प्रश्न ही नहीं उठता।

इनमें से कौन सा कानूनी प्रश्न है कि क्या कोई अपराध गलत है? जानबूझकर, होशपूर्वक और सोच-समझकर किया गया कोई भी अपराध, कानूनी प्रश्न कहलाता है कि क्या वह अपराध गलत है।

और इनमें से कौन सा कानूनी प्रश्न है कि क्या कोई अपराध अनिर्धारित है? जो भी अपराध जानबूझकर, सचेत रूप से या इरादे से नहीं किया गया हो, उसे कानूनी प्रश्न कहा जाता है कि क्या कोई अपराध अनिर्धारित है।

11. 'व्यापार से संबंधित कानूनी प्रश्न। सही। गलत। अनिर्धारित।'

[यह तीनों हो सकते हैं, इस आधार पर कि धारा 2 में निर्दिष्ट कार्य करने वाले भिक्षु सही सोच वाले, गलत सोच वाले या अनिश्चित मन वाले हैं। पूरे पाठ में अनुच्छेद का स्वरूप धारा 8 के अनुसार ही रहेगा।]

12. 'विवाद, विवादों से उत्पन्न कानूनी प्रश्न। विवाद जो कानूनी प्रश्न नहीं है। कानूनी प्रश्न जो विवाद नहीं है। मामला जो कानूनी प्रश्न और विवाद दोनों है।'

ऐसा विवाद हो सकता है जो कानूनी प्रश्न हो। ऐसा विवाद हो सकता है जो कानूनी प्रश्न न हो। ऐसा कानूनी प्रश्न हो सकता है जो विवाद न हो। ऐसा कानूनी प्रश्न हो सकता है और साथ ही विवाद भी हो।

इनमें से कौन सा विवाद कानूनी विवाद का विषय है जिसके लिए औपचारिक निपटारे की आवश्यकता है? यदि भिक्षु आपस में चर्चा करते हुए कहें, "यह धम्म है" [आदि, जैसा कि पहले अनुच्छेद 2 में है], या "यह कोई गंभीर अपराध नहीं है।" तो ऐसे विषय पर जो भी कलह या विवाद हो, वह कानूनी विवाद का विषय है जिसके लिए औपचारिक निपटारे की आवश्यकता है।

और इनमें से कौन सा विवाद ऐसा है जो औपचारिक निपटारे की आवश्यकता वाला कानूनी प्रश्न नहीं है? जब कोई माँ अपने बेटे से, या कोई बेटा अपनी माँ से, या कोई पिता अपने बेटे से, या कोई बेटा अपने पिता से, या कोई भाई अपने भाई से, या कोई भाई अपनी बहन से, या कोई बहन अपने भाई से, या कोई मित्र अपने मित्र से विवाद करता है। ऐसा विवाद संघ द्वारा औपचारिक निपटारे की आवश्यकता वाला कानूनी प्रश्न नहीं है।

और इनमें से कौन सा कानूनी प्रश्न विवाद का विषय नहीं है? निंदा का कानूनी प्रश्न, अपराध का कानूनी प्रश्न या व्यापार का कानूनी प्रश्न। यह एक कानूनी प्रश्न है जो विवाद का विषय नहीं है।

और इनमें से कौन सा एक कानूनी प्रश्न है जिसके लिए औपचारिक निपटान की आवश्यकता है और जो एक विवाद भी है? संघ द्वारा औपचारिक निपटान की आवश्यकता वाला एक कानूनी प्रश्न या विवाद, दोनों ही प्रकार का होता है।

13. [निंदा और औपचारिक निपटान की आवश्यकता वाले निंदा के कानूनी प्रश्न के बीच वही अंतर किया गया है।]

14. 'अपराध। अपराध से उत्पन्न कानूनी प्रश्न। अपराध जो कानूनी प्रश्न का विषय नहीं है। कानूनी प्रश्न और कोई अपराध नहीं। कानूनी प्रश्न और अपराध भी।

ऐसा हो सकता है कि कोई अपराध हो जिस पर अपराध से संबंधित कानूनी प्रश्न उठता हो। ऐसा हो सकता है कि कोई अपराध हो और उस पर कोई कानूनी प्रश्न न हो। ऐसा हो सकता है कि कानूनी प्रश्न हो और कोई अपराध न हो। ऐसा भी हो सकता है कि कानूनी प्रश्न हो और अपराध भी हो।

इनमें से कौन सा अपराध कानूनी प्रश्न का विषय हो सकता है? अपराधों के पाँच समूह कानूनी प्रश्नों के विषय हैं; अपराधों के सात समूह कानूनी प्रश्नों के विषय हैं। ये वे अपराध हैं जो कानूनी प्रश्न का विषय हो सकते हैं।

और इनमें से कौन सा अपराध (अपात्ती) है जो विधिक प्रश्न का विषय नहीं है? धर्मांतरण, उच्चतर उपलब्धि (सोत-अपात्ती, सम-अपात्ती), ये वे अपात्ती हैं जो विधिक प्रश्न का विषय नहीं हैं।

और इनमें से, जहां कोई अपराध नहीं है, वहां कानूनी प्रश्न क्या है? आधिकारिक कर्तव्य का कानूनी प्रश्न, निंदा का कानूनी प्रश्न, विवाद का कानूनी प्रश्न। ये ऐसे कानूनी प्रश्न हैं जहां कोई अपराध नहीं हो सकता है।

और इनमें से कौन सा ऐसा मामला है जिसमें कानूनी प्रश्न और अपराध दोनों शामिल हैं? किसी अपराध से संबंधित कानूनी प्रश्न वह मामला है जिसमें कानूनी प्रश्न और अपराध दोनों शामिल होते हैं।

15. 'आधिकारिक कर्तव्य जो व्यवसाय के कानूनी प्रश्न का विषय है। कर्तव्य और कोई कानूनी प्रश्न नहीं। कानूनी प्रश्न और कोई कर्तव्य नहीं। कानूनी प्रश्न और कर्तव्य भी।'

'इन चारों में से प्रत्येक मौजूद हो सकता है।'

'इनमें से कौन सा आधिकारिक कर्तव्य है जो कानूनी प्रश्न का विषय है? संघ के लिए जो कुछ भी करना आवश्यक है, कोई दायित्व है, कोई ऐसा मामला है जिसके लिए औपचारिक रूप से अवकाश मांगा जाना चाहिए, किसी प्रस्ताव का प्रस्ताव है, नट्टी-दुतिया-कम्म या नट्टी-कतुत्थ-कम्म द्वारा कार्यवाही है, वही आधिकारिक कर्तव्य है जो कानूनी प्रश्न का विषय हो सकता है।'

और इनमें से कौन सा आधिकारिक कर्तव्य है जो कानूनी प्रश्न का विषय नहीं है? आचार्य (शिक्षक) का कर्तव्य, उपज्झाय का कर्तव्य, उसी उपज्झाय या आचार्य (शिक्षक) के अधीन सहपाठी का कर्तव्य, यह व्यवसाय है, लेकिन व्यवसाय के कानूनी प्रश्न का विषय नहीं है।

और इनमें से कौन सा प्रश्न कानूनी है लेकिन आधिकारिक कर्तव्य नहीं है? विवाद से उत्पन्न कानूनी प्रश्न, निंदा से उत्पन्न कानूनी प्रश्न, अपराध से उत्पन्न कानूनी प्रश्न। यह व्यवसाय का कानूनी प्रश्न है, लेकिन आधिकारिक कर्तव्य नहीं है।

और इनमें से कौन सा प्रश्न कानूनी प्रश्न होने के साथ-साथ आधिकारिक कर्तव्य भी है? आधिकारिक कामकाज से उत्पन्न होने वाला कानूनी प्रश्न कानूनी कार्य का प्रश्न होने के साथ-साथ आधिकारिक कर्तव्य भी है।

16. 'पर विवाद से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा किस प्रकार के निपटारे द्वारा किया जाता है? दो प्रकार के निपटारे द्वारा, संघ की उपस्थिति में कार्यवाही द्वारा, और संघ के बहुमत द्वारा कार्यवाही द्वारा।'

यदि कोई पूछे, "क्या यह संभव है कि किसी विवाद से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा, संघ के बहुमत द्वारा कार्यवाही (एक विधि) के माध्यम से किए बिना, दूसरे विधि, अर्थात् उपस्थिति में कार्यवाही (एक विधि) द्वारा किया जा सके?" तो उसे कहा जाना चाहिए, "हाँ, संभव है।" (यदि वह पूछे), "यह कैसे संभव है?" तो उत्तर इस प्रकार होना चाहिए: "जब भिक्षु यह कहते हुए विवाद करते हैं, 'यह धम्म है,' या 'यह धम्म नहीं है' (आदि, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 2 में, आगे तक), या 'यह कोई गंभीर अपराध नहीं है।' हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु अपने विवाद का निपटारा स्वयं कर लें, तो हे भिक्षुओं, उसे ही विवाद का निपटारा कहा जाता है।"

और इसका निपटारा कैसे हुआ? उपस्थिति में हुई कार्यवाही द्वारा।

'और ऐसी कार्यवाही में उपस्थिति में क्या होना चाहिए? संघ की उपस्थिति, धम्म की उपस्थिति, विनय की उपस्थिति और उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति होनी चाहिए।'

और इसमें संघ की उपस्थिति क्या है? कार्यवाही में भाग लेने में सक्षम जितने भिक्षु हों, वे सभी उपस्थित होने चाहिए। जो भिक्षु अपनी सहमति देने की स्थिति में हों, उनकी औपचारिक सहमति प्रस्तुत की जानी चाहिए। उपस्थित भिक्षुओं ने (कार्यवाही में भाग लेने के संबंध में) कोई आपत्ति नहीं दर्ज कराई होनी चाहिए। यही ऐसे मामले में संघ की "उपस्थिति" है।

और इनमें धम्म और विनय की उपस्थिति क्या है? धम्म, विनय और गुरु का उपदेश, जिसके द्वारा उस विधिक प्रश्न का समाधान होता है। यही उस मामले में धम्म और विनय की उपस्थिति है।

और इनमें से, विशेष की उपस्थिति क्या है?

क्या विवाद करने वाले व्यक्ति और विवाद करने वाले व्यक्ति—चाहे वे मित्र हों या शत्रु—को उपस्थित होना आवश्यक है। यही उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति है।

हे भिक्षुओं, जब कोई विधिक प्रश्न इस प्रकार तय हो जाता है, तो यदि कोई विवादकर्ता उस प्रश्न को पुनः उठाता है, तो प्रश्न को पुनः उठाना पचित्त्य है। यदि कोई व्यक्ति जिसने अपनी सहमति व्यक्त की है, निर्णय के विरुद्ध शिकायत करता है, तो ऐसी शिकायत भी पचित्त्य है।

17. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु अपने निवास स्थान (आवास) में विधिवत प्रश्न का हल न निकाल सकें, तो उन्हें किसी ऐसे निवास स्थान पर जाना चाहिए जहाँ अधिक भिक्षु हों। फिर यदि वे भिक्षु उस निवास स्थान की ओर जाते समय विधिवत प्रश्न का हल निकाल लें, तो उसे विधिवत प्रश्न का हल होना कहते हैं। और वह हल कैसे हुआ? (आदि, पिछले खंड के अंतिम अनुच्छेद से अंत तक।)

18. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु उस निवास स्थान की यात्रा के दौरान विधिक प्रश्न का निपटारा न कर सकें, तो उस निवास स्थान पर पहुँचने पर वे वहाँ के भिक्षुओं से इस प्रकार कहें: "हे भिक्षुओं, हमारे बीच ऐसा विधिक प्रश्न उठा है और इस प्रकार विवाद चल रहा है। हे भिक्षुओं, यदि आप धर्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार हमारे लिए उस विधिक प्रश्न का निपटारा कर दें, तो यह विधिक प्रश्न पूरी तरह से हल हो जाएगा।" यदि उस निवास स्थान में रहने वाले भिक्षु वरिष्ठ हों और आने वाले भिक्षु कनिष्ठ हों, तो हे भिक्षुओं, उस निवास स्थान में रहने वाले भिक्षु आने वाले भिक्षुओं से इस प्रकार कहें: "हे भिक्षुओं, कृपया कुछ क्षण के लिए अलग विश्राम करें, जब तक हम आपस में परामर्श न कर लें!" दूसरी ओर, यदि उस निवास में रहने वाले भिक्षु कनिष्ठ हों और आने वाले भिक्षु वरिष्ठ हों, तो हे भिक्षुओं, उस निवास में रहने वाले भिक्षु आने वाले भिक्षुओं से इस प्रकार कहें: "हे भिक्षुओं, कृपया कुछ क्षण यहाँ ठहरें, जब तक हम आपस में परामर्श न कर लें।" फिर, हे भिक्षुओं, यदि उस निवास में रहने वाले भिक्षु विचार करने पर यह सोचें कि "हम इस विधिक प्रश्न का हल धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार नहीं निकाल पाएंगे," तो यह विवाद उन्हें नहीं सौंपा जाना चाहिए। हे भिक्षुओं, यदि उस निवास में रहने वाले भिक्षु विचार करने पर यह सोचें कि "हम इस विधिक प्रश्न का हल धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार निकाल लेंगे," तो हे भिक्षुओं, उस निवास में रहने वाले भिक्षु आने वाले भिक्षुओं से इस प्रकार कहें: "यदि आप हमें इस विधिक प्रश्न के बारे में, यह कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे आगे बढ़ा, इसके बारे में बताएँ, और यदि आप इस बात से सहमत हों कि जिस प्रकार से हम इस विधिक प्रश्न का हल धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार निकाल सकते हैं, उसी प्रकार इसका हल निकाला जाएगा, तो हम इस विधिक प्रश्न को आपके हाथों से स्वीकार करेंगे। परन्तु यदि ऐसा नहीं है (आदि, पूरी बात दोहराई जाए), तो हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे।" हे भिक्षुओं, जब इस प्रकार विधिवत प्रश्न (विवादित मुद्दा) का उचित समाधान हो जाए, तो उस निवास में रहने वाले भिक्षुओं को उस विधिवत प्रश्न का समाधान करना चाहिए। फिर आने वाले भिक्षुओं को उस निवास में रहने वाले भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित करना चाहिए, "हे भिक्षुओं, हम आपको सूचित करते हैं कि यह विधिवत प्रश्न कैसे उत्पन्न हुआ और इसका समाधान कैसे हुआ। यदि आप, हे भिक्षुओं, अमुक समय में धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार इस विधिवत प्रश्न का समाधान करने में सक्षम हों, तो हम यह विधिवत प्रश्न आपको सौंप देंगे। परन्तु यदि आप, हे भिक्षुओं, ऐसा करने में सक्षम न हों,"तब हम स्वयं इस मामले की अभिरक्षा अपने पास रखेंगे। इस प्रकार, हे भिक्षुओं, आने वाले भिक्षुओं को उस निवास में रहने वाले भिक्षुओं को वह विधिवत प्रश्न सौंपना चाहिए और उनसे उसे स्वीकार करने का अनुरोध करना चाहिए। यदि वे भिक्षु, हे भिक्षुओं, मामले का निपटारा करने में सक्षम हों, तो, हे भिक्षुओं, उसे विधिवत प्रश्न का निपटारा कहा जाता है। और यह निपटारा कैसे हुआ? (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 16 के अंतिम अनुच्छेद में है, अंत तक।)

19. 'हे भिक्षुओं, यदि भिक्षुओं द्वारा मामले की जाँच करते समय निरर्थक बातें कही जाएँ और किसी भी कथन का अर्थ स्पष्ट न हो, तो मैं आप भिक्षुओं को आदेश देता हूँ कि आप मामले को (किसी जूरी या आयोग को) सौंपकर निपटाएँ।'

'ऐसे निर्णायक मंडल में चुने जाने वाले भिक्षु में दस गुण होने चाहिए - वह सदाचारी होना चाहिए - वह पतिमोक्खा के नियमों के संयम में रहना चाहिए - वह जीवन में ईमानदार होना चाहिए, उपदेशों के अनुसार प्रशिक्षित होना चाहिए, और जरा से भी उल्लंघन के खतरे को भांपते हुए उनका पालन करना चाहिए - वह परंपरा में पारंगत होना चाहिए, परंपरा का संरक्षक होना चाहिए, परंपरा का भंडार होना चाहिए - जो भी सत्य अपनी उत्पत्ति में सुंदर, अपनी प्रगति में सुंदर, अपनी पूर्णता में सुंदर हैं, जो उच्च जीवन को उसकी भावना और उसके शब्दों में, उसकी संपूर्ण पवित्रता और उसकी संपूर्ण पूर्णता में प्रस्तुत करते हैं, ऐसे सत्यों में वह भली-भांति पारंगत होना चाहिए, उनसे परिपूर्ण होना चाहिए, वे उसके शब्दों में समाहित होने चाहिए, और उसके हृदय में सही अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण होकर उनका चिंतन किया जाना चाहिए - दोनों पतिमोक्खाएं उसे पूर्ण रूप से सौंपी गई होनी चाहिए, उसने उन्हें अच्छी तरह से विभाजित किया होना चाहिए, उन्हें अच्छी तरह से स्थापित किया होना चाहिए।' उन्हें सूत्र-दर-सूत्र और हर बारीकी से अच्छी तरह से जांचा-परखा होना चाहिए—इसके अलावा, उन्हें विनय का विशेषज्ञ होना चाहिए, उसमें निर्विवाद होना चाहिए—उन्हें मित्रों और शत्रुओं दोनों को (सही मार्ग) बताने में सक्षम होना चाहिए, उन्हें किसी बात को समझाने, उसे देखने और पहचानने में सक्षम होना चाहिए, उन्हें शांत करने में सक्षम होना चाहिए—उन्हें विवादों के मूल और समाधान दोनों के बारे में निर्णय लेने में चतुर होना चाहिए—उन्हें कानूनी प्रश्नों को समझना चाहिए, उनका मूल, उनका अंत और उस अंत तक ले जाने वाला मार्ग।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम पर यह आदेश देता हूँ कि तुम निर्णायक मंडल में इन दस गुणों से युक्त भिक्षु को नियुक्त करो।'

20. हे भिक्षुओं, इस प्रकार उसकी नियुक्ति की जानी है। सर्वप्रथम भिक्षु से पूछा जाना चाहिए (कि क्या वह इस पद को ग्रहण करने के लिए इच्छुक है)। फिर किसी विवेकशील और योग्य भिक्षु को संघ को इस प्रकार संबोधित करना चाहिए:

"आदरणीय संघ मेरी प्रार्थना सुनिए। इस मामले की जांच के दौरान हमारे बीच निरर्थक भाषण दिए गए, और किसी भी बात का अर्थ स्पष्ट नहीं था। यदि आदरणीय संघ को उचित लगे, तो वह फलां नाम के भिक्षुओं और फलां नाम के भिक्षुओं को एक समिति में नियुक्त करे। यही प्रस्ताव है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुने। जबकि (आदि, ... तक) एक भी बात स्पष्ट नहीं थी।"

संघ इस मामले के निपटारे के लिए फलां-फलां नाम के भिक्षुओं को एक समिति में नियुक्त करता है। इस मामले के निपटारे के लिए गठित समिति में फलां-फलां भिक्षुओं की नियुक्ति से सहमत कोई भी पूज्य भिक्षु मौन रहे। असहमत भिक्षु अपनी राय व्यक्त करें।

"इस मामले के निपटारे के लिए गठित समिति में संघ द्वारा फलां भिक्षु को नियुक्त किया गया है। इसलिए समिति इस बारे में चुप है। मैं यही समझता हूँ।"

21. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु समिति के समक्ष मामले का निपटारा करने में सक्षम हों, तो हे भिक्षुओं, वह मामला निपटाया हुआ कहलाता है। और यह कैसे निपटाया जाता है? प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा। और प्रत्यक्ष कार्यवाही से क्या तात्पर्य है? धम्म का प्रतिनिधित्व, विनय का प्रतिनिधित्व और संबंधित व्यक्ति का प्रतिनिधित्व।

और इनमें धम्म की उपस्थिति क्या है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 16 में अंत तक है)।

'हे भिक्षुओं, यदि कोई विवाद इस प्रकार सुलझा लिया गया हो, तो यदि कोई विवादकर्ता उस प्रश्न को पुनः उठाता है, तो ऐसा पुनः उठाना पचितीय है।'

22. हे भिक्षुओं, यदि किसी मामले की जांच करते समय कोई भिक्षु धम्म का प्रचारक हो, परन्तु उसे न तो सूत्र प्राप्त हो और न ही सूत्र-विभंग, तथा वह मामले के सार को न समझते हुए शाब्दिक अर्थ को नकार दे, तो किसी विवेकशील और योग्य भिक्षु द्वारा उस मामले को उन भिक्षुओं के समक्ष इस प्रकार रखा जाना चाहिए:

"हे पूज्यजनों, कृपया मेरी बात सुनें। फलां नाम का यह भिक्षु धम्म का प्रचारक तो है, परन्तु न तो उसे सूत्र का ज्ञान प्राप्त हुआ है और न ही सूत्र-विभंग का। और वह मामले के सार को न समझते हुए, शाब्दिक अर्थ को नकार कर उसके बाहरी आवरण को महत्व दे रहा है। यदि पूज्यजनों को समय उचित लगे, तो वे फलां नाम के इस भिक्षु को विदा कर दें, और हम सब इस मामले को स्वयं सुलझा लें।"

'हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु उस भिक्षु को विदा करने के बाद मामले का निपटारा करने में सक्षम हों, तो वह मामला निपटाया हुआ कहलाता है। और यह कैसे निपटाया गया है? उपस्थिति में कार्यवाही द्वारा (आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक है)।'

23. (यदि सूत्र उसे सौंपा गया हो, लेकिन सूत्र-विभंग नहीं, तो भी यही निर्णय लागू होगा।)

24. हे भिक्षुओं, यदि वे भिक्षु समिति द्वारा उस मामले का निपटारा न कर सकें, तो हे भिक्षुओं, उन्हें वह मामला संघ को सौंप देना चाहिए और कहना चाहिए, "हम, महोदय, समिति द्वारा इस मामले का निपटारा नहीं कर सकते, संघ ही इसका निपटारा करे।" हे भिक्षुओं, मैं आप सभी को आदेश देता हूँ कि आप ऐसे मामले का निपटारा बहुमत के मत से करें (अध्याय 9 से अंत तक, जैसा कि मतपत्र लेने वाले की नियुक्ति के संबंध में बताया गया है)। उस भिक्षु द्वारा, जो मतपत्र लेने वाला है, मत एकत्र किए जाएंगे। और धम्म द्वारा निर्देशित भिक्षुओं की अधिक संख्या के अनुसार, मामले का निर्णय किया जाएगा। हे भिक्षुओं, इसे ही विधिवत निपटाया गया प्रश्न कहते हैं।

और इसका निर्णय कैसे हुआ? उपस्थिति में कार्यवाही द्वारा और बहुमत के मत द्वारा। और इसमें उपस्थिति में कार्यवाही से क्या तात्पर्य है? संघ की उपस्थिति, धम्म की उपस्थिति, विनय की उपस्थिति और उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति। और इनमें से संघ की उपस्थिति क्या है? (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 16 में है) वह उस विशेष व्यक्ति की ऐसी स्थिति में उपस्थिति है।

और इसमें बहुमत के मत से क्या तात्पर्य है? बहुमत के मत द्वारा आधिकारिक अधिनियम (कम्मा) का क्रियान्वयन, क्रियान्वयन, कार्यवाही, वचनबद्धता, स्वीकृति और शांति स्थापना। बहुमत के मत से यही तात्पर्य है।

'हे भिक्षुओं, जब कोई विधिक प्रश्न इस प्रकार तय हो जाए, तो यदि कोई विवादकर्ता उस प्रश्न को पुनः उठाता है, तो ऐसा पुनः उठाना पचितीय है। यदि कोई व्यक्ति जिसने अपनी सहमति दे दी है, निर्णय की शिकायत करता है, तो ऐसी शिकायत पचितीय है।'

25. उस समय सावत्थी में एक विधिक प्रश्न अमुक तरीके से उत्पन्न हुआ था और अमुक तरीके से आगे बढ़ा था। सावत्थी में संघ द्वारा मामले के निपटारे से वे भिक्षु असंतुष्ट थे। उन्होंने सुना कि एक निवास में अनेक थेरे निवास कर रहे थे जो परंपराओं में पारंगत थे; वे पुरुष जिन्हें आगम विरासत में मिले थे; वे धम्म, विनय और मतिका के पाठकर्ता थे; विद्वान, विवेकशील, बुद्धिमान, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और सीखने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने सोचा, 'यदि वे थेरे इस मामले का निपटारा धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार करें, तो यह मामला वास्तव में अच्छी तरह से सुलझ जाएगा।' अतः वे भिक्षु उस निवास में गए और उन थेरे से इस प्रकार कहा: 'महोदय, यह विधिक प्रश्न अमुक तरीके से उत्पन्न हुआ है और अमुक तरीके से आगे बढ़ा है। यह अच्छा होगा यदि पूज्य थेरा इस मामले का निपटारा धम्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार करें! तब उन थेराओं ने कहा, 'जिस प्रकार सावत्थी में संघ ने इस मामले का निपटारा किया है, उसी प्रकार यह निपटारा उचित है!' और उन्होंने उसी प्रकार मामले का निर्णय किया। तब सावत्थी में संघ के निर्णय से असंतुष्ट भिक्षुओं ने थेराओं के निर्णय से असंतुष्टि व्यक्त की।

[इस पैराग्राफ को तीन, दो और एक थेरा पर क्रमिक अनुप्रयोगों के आवश्यक परिवर्तनों के साथ दोहराया गया है, जिसका परिणाम समान है।]

तब वे भिक्षु, जो सावत्थी में संघ के निर्णय से असंतुष्ट थे, थेरों की संख्या के निर्णय से असंतुष्ट थे, तीन थेरों के निर्णय से असंतुष्ट थे, दो थेरों के निर्णय से असंतुष्ट थे और एक थेरे के निर्णय से असंतुष्ट थे, भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें यह बात बताई।

हे भिक्षुओं, यह मामला समाप्त हो चुका है; एक बार इसका निपटारा हो जाने के बाद, यह हमेशा के लिए समाप्त हो गया है।

26. 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऐसे भिक्षुओं को प्रसन्न करने के लिए मत लेने के तीन तरीके बताता हूँ—गुप्त विधि, फुसफुसाने की विधि और खुली विधि।

हे भिक्षुओं, मतपत्र लेने की गुप्त विधि क्या है? मतपत्रों की गिनती करने वाला भिक्षु अलग-अलग रंगों के मतपत्र बनाएगा, और जब कोई भिक्षु उसके पास आए, तो वह उससे इस प्रकार कहेगा: "यह इस मत वाले व्यक्ति के लिए है; यह इस मत वाले व्यक्ति के लिए है। जो आपको पसंद हो, ले लें।" जब वह चुन ले (तो वह आगे कहेगा), "इसे किसी को न दिखाएँ।" यदि वह यह सुनिश्चित कर ले कि धर्म के विरुद्ध मत रखने वाले बहुमत में हैं, तो वह मतपत्र को गलत मानकर अस्वीकार कर देगा। यदि वह यह सुनिश्चित कर ले कि धर्म के अनुसार मत रखने वाले बहुमत में हैं, तो वह मतपत्र को सही मानकर दर्ज करेगा। हे भिक्षुओं, यही मतपत्र लेने की गुप्त विधि है।

हे भिक्षुओं, मतपत्र लेने की फुसफुसाहट विधि क्या है? मतपत्रों की गिनती करने वाला भिक्षु प्रत्येक भिक्षु के कान में फुसफुसाएगा, "यह उन भिक्षुओं का मतपत्र है जिनकी राय इस प्रकार है; यह उन भिक्षुओं का मतपत्र है जिनकी राय इस प्रकार है। इनमें से जो भी आपको सही लगे, ले लीजिए।"

आपको जो पसंद हो।" जब वह चुन ले (तो उसे कहना है), "किसी को मत बताना (कि आपने किस तरफ वोट दिया है)।" यदि उसे पता चलता है कि धम्म के विरुद्ध मत रखने वाले बहुमत में हैं, तो उसे मत को गलत मानकर अस्वीकार कर देना चाहिए। यदि उसे पता चलता है कि धम्म के अनुसार मत रखने वाले बहुमत में हैं, तो उसे मत को सही मानकर सूचित करना चाहिए। इस प्रकार, हे भिक्षुओं, यह मत लेने की गुप्त विधि है।

हे भिक्षुओं, खुले तौर पर मतदान करने का तरीका क्या है? यदि वह (पहले से) यह सुनिश्चित कर ले कि धर्म के अनुरूप मत रखने वाले लोग बहुमत में हैं, तो मतदान बिना किसी छिपाव के, खुले तौर पर किया जाना चाहिए। इस प्रकार, हे भिक्षुओं, खुले तौर पर मतदान करने का तरीका यही है।

'हे भिक्षुओं, ये तीन विधियाँ हैं जिनसे मत मांगे जाते हैं।'

27. निंदा से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा कितने प्रकार के निपटारे द्वारा किया जाता है? निंदा से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा चार प्रकार के निपटारे द्वारा किया जा सकता है—उपस्थिति में कार्यवाही द्वारा—उन लोगों के लिए कार्यवाही द्वारा जो सचेत रूप से निर्दोष हैं—उन लोगों के लिए कार्यवाही द्वारा जो अब अपने मानसिक संतुलन में हैं—और उन लोगों के लिए कार्यवाही द्वारा जो हठी हैं।

यदि कोई पूछे, "क्या निंदा से उत्पन्न होने वाले किसी कानूनी प्रश्न का निपटारा दो प्रकार के निपटान के तरीकों का सहारा लिए बिना किया जा सकता है—अर्थात्, उन लोगों के लिए कार्यवाही जो अब मानसिक रूप से विक्षिप्त नहीं हैं, और

क्या हठी लोगों के लिए कार्यवाही को अन्य दो प्रकार के निपटारे से सुलझाया जा सकता है—अर्थात्, उपस्थिति में कार्यवाही और सचेत रूप से निर्दोष लोगों के लिए कार्यवाही? उसे बताया जाना चाहिए, "हाँ, ऐसा हो सकता है।" (यदि वह कहे), "यह कैसे संभव है?" तो उत्तर इस प्रकार होना चाहिए:

यदि भिक्षु किसी भिक्षु पर नैतिकता के उल्लंघन का निराधार आरोप लगाते हैं, तो हे भिक्षुओं, उस स्थिति में, जिस भिक्षु की स्मृति इस मामले में पूरी तरह से स्पष्ट है, उसे निर्दोषता का बोध कराने वाली कार्यवाही की जानी चाहिए।

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, प्रदान किया जाना है (आदि, जैसा कि अध्याय-4, §-10 में अंत तक है, किसी विशेष मामले के बजाय एक सामान्य नियम के लिए आवश्यक परिवर्तनों के साथ)।

हे भिक्षुओं, इसे एक विधिक प्रश्न कहा जाता है जिसका निपटारा हो चुका है। और कैसे निपटारा हुआ? उपस्थिति की प्रक्रिया द्वारा, और सचेतन रूप से निर्दोषों के लिए प्रक्रिया द्वारा। और उसमें उपस्थिति की प्रक्रिया से क्या संबंधित है? संघ की उपस्थिति, धम्म की उपस्थिति, विनय की उपस्थिति, और व्यक्ति विशेष की उपस्थिति। और उसमें संघ की उपस्थिति क्या है (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 16 में अंत तक है)? और उसमें सचेतन रूप से निर्दोषों के लिए प्रक्रिया से क्या संबंधित है? सचेतन रूप से निर्दोषों के लिए प्रक्रिया का निष्पादन, उसकी सिद्धि; उसके द्वारा कार्यवाही, उसका उपक्रम, उसका स्वीकार करना, उसका शांत करना। यही इसमें सचेतन रूप से निर्दोषों के लिए प्रक्रिया से संबंधित है।

28. [यह खंड अध्याय-5 से ठीक वही संबंध रखता है जो पिछला खंड अध्याय-4 से रखता है, दोनों खंडों का स्वरूप पूरी तरह से एक समान है।]

29. यदि कोई पूछे, "क्या निंदा से उत्पन्न कोई कानूनी प्रश्न, निपटारे के दो तरीकों—अर्थात्, जो लोग सचेत रूप से निर्दोष हैं उनके लिए कार्यवाही, और जो लोग अब मानसिक रूप से विक्षिप्त नहीं हैं उनके लिए कार्यवाही—का सहारा लिए बिना, निपटारे के अन्य दो तरीकों—अर्थात्, उपस्थिति में कार्यवाही, और जो लोग हठी हैं उनके लिए कार्यवाही—से हल किया जा सकता है?" तो उसे कहा जाना चाहिए, "हाँ, यह संभव है।" यदि वह कहे, "यह कैसे संभव है?" तो उत्तर इस प्रकार होना चाहिए:

यदि संघ के बीच में कोई भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को किसी गंभीर अपराध के बारे में चेतावनी दे और उससे यह याद करने को कहे कि क्या उसने वह अपराध किया है या नहीं, और पूछे, "क्या आदरणीय भिक्षु ने अमुक अपराध किया है—कोई पराजिका अपराध या पराजिका अपराध के समतुल्य अपराध?" और वह उत्तर दे, "महोदय, मुझे याद नहीं कि मैंने कोई अमुक अपराध किया है—कोई पराजिका अपराध या पराजिका अपराध के समतुल्य अपराध।" इस प्रकार इनकार करने पर दूसरा भिक्षु आग्रह करते हुए कहे, "महोदय, अब निश्चित रूप से पता लगाइए कि क्या आप अमुक अपराध—कोई पराजिका अपराध या पराजिका अपराध के समतुल्य अपराध—के दोषी होने के प्रति सचेत हैं।" और वह इस प्रकार उत्तर देता है: "महोदय, मुझे याद नहीं आ रहा कि मैंने अमुक अपराध—परजिका अपराध, या परजिका अपराध के समतुल्य कोई अपराध—किया है। परन्तु महोदय, मुझे याद है कि मैंने अमुक अपराध किया था।" उसके इस प्रकार इनकार करने पर दूसरा व्यक्ति (पहले की तरह) जोर देता है। और वह इस प्रकार उत्तर देता है: "चूंकि महोदय, आपने मुझसे पूछे बिना ही मैं उस अमुक अपराध का दोषी होने की बात स्वीकार करने को तैयार हूं, तो पूछे जाने पर मैं अमुक अपराध—परजिका अपराध, या परजिका अपराध के समतुल्य कोई अपराध—को क्यों न स्वीकार करूं?" और दूसरा व्यक्ति उत्तर देता है, "लेकिन महोदय, आप बिना पूछे उस मामूली अपराध को भी स्वीकार नहीं करते। बिना पूछे आप अमुक अपराध—परजिका अपराध, या परजिका अपराध के समकक्ष किसी अपराध—के बारे में कैसे स्वीकार करेंगे? महोदय, अब निश्चित रूप से बताइए कि क्या आप इस बात से अवगत हैं कि आपने अमुक अपराध—परजिका अपराध, या परजिका अपराध के समकक्ष किसी अपराध—का दोषी ठहराया है?" और वह उत्तर देता है, "जी हाँ, महोदय, मैं इस बात से अवगत हूँ कि मैंने अमुक अपराध—परजिका अपराध, या परजिका अपराध के समकक्ष किसी अपराध—का किया है। मैंने मज़ाक में, हंसी में कहा था कि मुझे इसका एहसास नहीं है।"

'तो फिर, हे भिक्षुओं, हठी भिक्षुओं के विरुद्ध वही कार्यवाही की जानी चाहिए।'

और इस प्रकार इसे निष्पादित किया जाना चाहिए (आदि, अध्याय-11, §-2 के अंत तक, "उपवला" के स्थान पर "अमुक भिक्षु" और "अपराध" के स्थान पर "गंभीर अपराध" पढ़ते हुए)।

हे भिक्षुओं, इसे विधिक प्रश्न कहा जाता है जिसका निपटारा हो चुका है। और इसका निपटारा कैसे हुआ है? संघ की उपस्थिति में की गई कार्यवाही द्वारा, और हठी लोगों के लिए की गई कार्यवाही द्वारा। और उस उपस्थिति में की गई कार्यवाही में क्या शामिल है? संघ की उपस्थिति (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 16 में है)। और उस हठी लोगों के लिए की गई कार्यवाही में क्या शामिल है? हठी लोगों के लिए की

गई कार्यवाही द्वारा आधिकारिक कार्य (कर्म) का निष्पादन, सिद्धि, कार्यवाही, उपक्रम, स्वीकृति और शांति। यही उस हठी लोगों के लिए की गई कार्यवाही का भाग है।

हे भिक्षुओं, जब कोई विधिक प्रश्न इस प्रकार तय हो जाए, तो यदि कोई विवादकर्ता उस प्रश्न को पुनः उठाता है, तो ऐसा पुनः उठाना पचितीय है। यदि कोई व्यक्ति जिसने अपनी सहमति दे दी है, निर्णय की शिकायत करता है, तो ऐसी शिकायत पचितीय है।

30. किसी अपराध से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा कितने तरीकों से किया जाता है? किसी अपराध से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा तीन तरीकों से किया जाता है—अर्थात, प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा, अपराध स्वीकारोक्ति पर कार्यवाही द्वारा, और घास से ढककर कार्यवाही द्वारा।

यदि कोई पूछे, "क्या ऐसा हो सकता है कि अपराध से उत्पन्न कोई कानूनी प्रश्न, निपटारे के एक तरीके—अर्थात्, मामले को घास से ढककर सुलझाने की कार्यवाही—का सहारा लिए बिना, अन्य दो तरीकों—अर्थात्, उपस्थिति में कार्यवाही और अपराध स्वीकारोक्ति पर कार्यवाही—से सुलझाया जा सके?" तो उसे कहा जाना चाहिए, "हाँ, ऐसा हो सकता है।" यदि वह पूछे, "यह कैसे संभव है?" तो उत्तर इस प्रकार होना चाहिए:

यदि कोई भिक्षु किसी छोटे अपराध का दोषी हो, तो हे भिक्षुओं, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु के पास जाकर, अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, एड़ियों के बल बैठकर, हथेलियों को जोड़कर हाथ फैलाकर इस प्रकार बोले: “हे भिक्षु, मैंने फलां-फलां अपराध किया है; और मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।” भिक्षु पूछेगा, “क्या तुम इसे स्वीकार करते हो?” “हाँ; मैं स्वीकार करता/करती हूँ।” “भविष्य में तुम संयम बरतो!”

हे भिक्षुओं, इसे विधिक प्रश्न कहा जाता है जिसका निपटारा हो चुका है। और इसका निपटारा कैसे हुआ है? प्रत्यक्ष उपस्थिति की कार्यवाही द्वारा, और पाप स्वीकारोक्ति की कार्यवाही द्वारा। और प्रत्यक्ष उपस्थिति की कार्यवाही में क्या शामिल है? धम्म की उपस्थिति, विनय की उपस्थिति, और उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति। और उसमें धम्म और विनय की उपस्थिति क्या है? धम्म, विनय, और गुरु का उपदेश, जिसकी सहायता से उस विधिक प्रश्न का निपटारा हुआ है। यही ऐसे मामले में धम्म और विनय की उपस्थिति है। और उसमें उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति क्या है? पाप स्वीकार करने वाला और जिसके समक्ष वह पाप स्वीकार करता है, दोनों उपस्थित होते हैं। यही ऐसी कार्यवाही में उस विशेष व्यक्ति की उपस्थिति है। और उसमें पाप स्वीकारोक्ति की कार्यवाही में क्या शामिल है? अपराध स्वीकारोक्ति की कार्यवाही द्वारा आधिकारिक कार्य (कम्मा) का निष्पादन, पूर्णता, कार्यवाही, निष्पादन, स्वीकृति और शांतिकरण। यही अपराध स्वीकारोक्ति की कार्यवाही के अंतर्गत आता है।

'हे भिक्षुओं, जब कोई कानूनी प्रश्न इस प्रकार तय हो जाता है, तो यदि कोई विवाद करने वाला उस प्रश्न को फिर से उठाता है, तो ऐसा फिर से उठाना पचितीय है।'

31. 'यदि वह इस प्रकार (पापमुक्ति) प्राप्त कर ले, तो अच्छा है। यदि वह पापमुक्ति प्राप्त न करे, तो हे भिक्षुओं, वह भिक्षु अनेक भिक्षुओं के पास जाकर, अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, वरिष्ठ भिक्षुओं के सामने प्रणाम करके, एड़ियों के बल बैठकर, दोनों हाथों की हथेलियों को जोड़कर इस प्रकार बोले: "हे सज्जनों, मैंने फलां अपराध किया है, और मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।" तब कोई विवेकशील और योग्य भिक्षु उन भिक्षुओं के समक्ष यह बात रखे और कहे, "आदरणीय भिक्षुओं, कृपया मेरी बात सुनें। फलां नाम का यह भिक्षु अपने अपराध के प्रति सचेत है; और वह इसे प्रकट करता/करती है, स्वीकार करता/करती है। यदि आदरणीय भिक्षुओं को समय उचित लगे, तो मैं इस भिक्षु के अपराध को क्षमा कर दूँगा/दूँगी।" और वह पूछेगा/पूछेगी, "क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?" "हाँ; मैं स्वीकार करता/करती हूँ।" "भविष्य में आप संयम बरतें!"

हे भिक्षुओं, इसे विधिक प्रश्न कहा जाता है जिसका निपटारा हो चुका है। और इसका निपटारा कैसे हुआ है? (आदि, पिछले खंड की तरह, अंत तक।)

32. 'यदि उसे इस प्रकार क्षमा मिल जाए, तो यह अच्छा है। यदि उसे क्षमा न मिले, तो हे भिक्षुओं, वह भिक्षु संघ के समक्ष जाए (आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक है, फिर आगे जोड़ते हुए): और यदि कोई व्यक्ति जिसने कार्यवाही के लिए अपनी सहमति दी है, उसके बाद इसकी शिकायत करे, तो वह पचितीय है।

33. यदि कोई पूछे, "क्या ऐसा हो सकता है कि अपराध से उत्पन्न कोई कानूनी प्रश्न, निपटारे के एक तरीके—अर्थात् अपराध स्वीकारोक्ति की कार्यवाही—का सहारा लिए बिना, अन्य दो तरीकों—अर्थात् प्रत्यक्ष कार्यवाही और घास से ढककर कार्यवाही—के

द्वारा हल किया जा सके?" तो उसे कहा जाना चाहिए, "हाँ, ऐसा हो सकता है।" यदि वह कहे, "यह कैसे संभव है?" तो उत्तर इस प्रकार होना चाहिए:

'यदि भिक्षु आपस में झगड़ते रहें (आदि, जैसा कि अध्याय-13, खंड-1, 2 और 3 से अंत तक में वर्णित है)।

'हे भिक्षुओं, इसे विधिक प्रश्न कहा जाता है जिसका निपटारा हो चुका है। और इसका निपटारा कैसे हुआ है? उपस्थिति में कार्यवाही द्वारा, और घास से ढककर कार्यवाही द्वारा।'

और उसमें 'उपस्थिति में कार्यवाही' से क्या संबंधित है? उपस्थिति (आदि, जैसा कि §-16 में नीचे है) और उसमें विशिष्ट व्यक्ति की उपस्थिति क्या है? जो व्यक्ति स्वीकारोक्ति करता है, और जिसके समक्ष स्वीकारोक्ति की जाती है, दोनों उपस्थित होते हैं। यही ऐसे मामले में विशिष्ट व्यक्ति की उपस्थिति है।

और उसमें घास से ढककर कार्यवाही करने का क्या अर्थ है? घास से ढककर कार्यवाही करने के द्वारा आधिकारिक कार्य (कम्मा) का निष्पादन, पूर्णता, कार्यवाही का निष्पादन, प्रदर्शन, स्वीकृति, और शांति प्रदान करना। यही घास से ढककर कार्यवाही करने का अर्थ है।

हे भिक्षुओं, जब कोई विधिक प्रश्न इस प्रकार तय हो जाए, तो यदि कोई विवादकर्ता उस प्रश्न को पुनः उठाता है, तो ऐसा पुनः उठाना पचितीय है। यदि कोई व्यक्ति जिसने अपनी सहमति दे दी है, निर्णय की शिकायत करता है, तो ऐसी शिकायत पचितीय है।

34. 'व्यापार से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा कितने तरीकों से किया जाता है? व्यापार से उत्पन्न कानूनी प्रश्न का निपटारा केवल एक ही तरीके से किया जाता है—अर्थात, उपस्थिति कार्यवाही द्वारा।'

=========
चौथे खंडक का समापन, विधि संबंधी प्रश्नों के निपटारे पर आधारित।

<<<< पिछला(4.13) । अगला(5.1) >>>>

पांचवां खंडका (दैनिक जीवन)
(भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(4.14) । अगला(5.2) >>>>

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के वन में, कालन्दक निवापा में ठहरे हुए थे। उस समय छब्बग्य भिक्षु स्नान करते समय अपने शरीर—जांघों, भुजाओं, छाती और पीठ—को लकड़ी से रगड़ते थे। लोग नाराज़ हो गए, बड़बड़ाने लगे और कहने लगे, 'शाक्यपुत्र भिक्षु पहलवानों, मुक्केबाजों या शैंपू करने वालों की तरह ऐसा कैसे कर सकते हैं?' भिक्षुओं ने लोगों की बड़बड़ाहट सुनी, और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाकर भिक्षुओं से पूछा: 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि छब्बाग्य भिक्षु स्नान करते समय पहले की तरह ही रगड़ते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'यह अनुचित है, हे भिक्षुओं (आदि, हमेशा की तरह, देखें 1, 2, अंत तक)।' और जब उन्होंने उन्हें फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'भिक्षुओं, स्नान करते समय भिक्षु को अपने शरीर को लकड़ी से नहीं रगड़ना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु स्नान करते समय अपने शरीर—जांघों, भुजाओं, छाती और पीठ—को खंभे से, दीवार से रगड़ते थे (आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक बताया गया है)।

3. उस समय छब्बागिया भिक्षु अट्टाना (एक प्रकार का शैम्पू स्टैंड) पर स्नान किया करते थे। लोग (आदि, पहले की तरह)। भिक्षु (आदि, पहले की तरह)। तब भगवान बुद्ध (आदि, पहले की तरह) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, तुम अट्टाना पर स्नान न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

[पिछले पैराग्राफ के समान ही अन्य पैराग्राफ भी इसी प्रकार आगे आते हैं]

स्नान करते समय गंधब्बा-हत्थक का उपयोग करना।

स्नान करते समय कुरुविन्दक-सुत्ती का उपयोग करना।

पानी के अंदर रहते हुए वे अपने शरीर को एक दूसरे से रगड़ते हैं।

स्नान करते समय मल्लाका का प्रयोग करना।

4. उस समय एक भिक्षु को खुजली हो गई थी, और वह मल्लका के बिना आराम से स्नान नहीं कर सकता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं बीमार व्यक्ति को कृत्रिम रूप से निर्मित न किए गए मल्लका का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय एक भिक्षु जो वृद्धावस्था के कारण कमजोर हो गया था, वह अपने शरीर को स्वयं साफ करने में असमर्थ था।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, उक्कासिका का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु (इन नियमों का उल्लंघन करने के भय से) एक दूसरे के शैम्पू करने से डरते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें हाथ से शैंपू करने की सामान्य विधि की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(4.14) । अगला(5.2) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.1) । अगला(5.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय दो।

1. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं

वह कान की बालियां, झुमके, गले में पहनने के लिए मोतियों की माला, मोतियों की कमरबंद, चूड़ियां, हार, कंगन और अंगूठियां पहनती थीं।

लोग आपस में फुसफुसाए, इत्यादि... भिक्षुओं ने सुना, इत्यादि... उन्होंने बताया कि भगवान बुद्ध (आदि, जैसा कि द्वितीय, प्रथम, प्रथम से आगे तक है) ने भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा:

'हे भिक्षुओं, तुम्हें इनमें से कोई भी वस्तु धारण नहीं करनी चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. [इसी तरह का एक पैराग्राफ समापन करते हुए]

'हे भिक्षुओं, आपको लंबे बाल नहीं रखने चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको दो महीने पुराने या दो इंच लंबे बाल रखने की अनुमति देता हूँ।'

3. [इसी तरह का पैराग्राफ समाप्त करते हुए]

'हे भिक्षुओं, अपने बालों को कंघी से, या सांप के फन के आकार के किसी उपकरण से, या हाथ से, या पोमेड से, या मोम के तेल से संवारना मना है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

4. [इसी तरह का पैराग्राफ समापन करता है]

'हे भिक्षुओं, तुम्हें दर्पण या जल के पात्र में अपने चेहरे की छवि नहीं देखनी चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु के चेहरे पर घाव हो गया था। उसने भिक्षुओं से पूछा कि उसे किस प्रकार का घाव हुआ है। भिक्षुओं ने उत्तर दिया, 'इस प्रकार का घाव।' उसे उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक बीमारी के कारण दर्पण में या जल के कटोरे में अपने चेहरे देखने की अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय छब्बागिया भिक्षु (आदि)

'हे भिक्षुओं, न तो अपने चेहरे पर लेप लगाना है, न ही अपने चेहरे पर (मरहम आदि) मलना है, न ही अपने चेहरे पर चूना लगाना है, न ही अपने चेहरे पर लाल आर्सेनिक मलना है, न ही अपने शरीर को रंगना है, न ही अपने चेहरे को रंगना है।'

उस समय एक भिक्षु की आँखों में रोग हो गया था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, रोग के कारण मैं तुम्हें अपने चेहरे पर तेल लगाने की अनुमति देता हूँ।'

6. उस समय राजगृह में पर्वत की चोटी पर एक उत्सव था; और छब्बागिया भिक्षु उसे देखने गए।

लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हो गए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्र समनाएँ उन लोगों की तरह नाच-गाना और संगीत देखने कैसे जा सकते हैं जो अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हैं?' और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, नाच-गाना या संगीत देखने मत जाओ। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.1) | अगला(5.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.2) | अगला(5.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-3.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु अचानक गीत-गायन के बदलावों के साथ धम्म का गायन करते थे।

लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हो गए और क्रोधित होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्रीय समना ऐसा कैसे कर सकते हैं?' भिक्षुओं ने यह सुना (आदि, हमेशा की तरह), उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा:

हे भिक्षुओं, जो धम्म का गायन अचानक लयबद्ध तरीके से करता है, उसे ये पाँच विपत्तियाँ आती हैं: वह स्वयं उस ध्वनि से मोहित हो जाता है। अन्य लोग भी उस ध्वनि से मोहित हो जाते हैं। गृहस्थ भयभीत हो जाते हैं। ध्वनि में शुद्धता का प्रयास करने वाले का ध्यान भंग हो जाता है। सामान्य लोग विधर्म में पड़ जाते हैं। हे भिक्षुओं, जो धम्म का गायन अचानक लयबद्ध तरीके से करता है, उसे ये पाँच विपत्तियाँ आती हैं। हे भिक्षुओं, धम्म का गायन इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कता का दोषी होगा।

2. उस समय भिक्षु जप करने से डरते थे। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, मंत्रोच्चार करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.2) | अगला(5.4) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.3) | अगला(5.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-4.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु ऊनी वस्त्र पहनते थे जिसमें लंबे ऊन लगे होते थे।

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे... (आदि, नीचे तक) उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऊनी वस्त्र, जिनमें लंबे रेशे लगे हों, पहनना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.3) | अगला(5.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.5
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.4) । अगला(5.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-5.

1. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के उद्यान में आम पक गए थे। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने आज्ञा दी थी, “आदरणीय भिक्षु जितना चाहें उतना फल खा सकते हैं।” तब छब्बग्गिया भिक्षुओं ने कच्चे आम भी तोड़कर खा लिए।

अब मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को एक आम चाहिए था; और उन्होंने आदेश दिया, 'जाओ,

मेरे सज्जनों, पार्क में जाओ और मेरे लिए एक आम ले आओ।'

'जी प्रभु,' उन लोगों ने मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार की बात मानकर सहमति जताई और वे उद्यान में गए तथा उद्यान के रखवालों से कहा, 'हे हमारे प्रिय मित्रों, हमारे स्वामी को एक आम की आवश्यकता है। हमें एक आम दीजिए!'

'महोदय, यहाँ आम नहीं हैं। भिक्षुओं ने छोटे-छोटे आम भी तोड़ लिए हैं और उन्हें खा गए हैं।'

तब उन लोगों ने यह बात मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को बताई, और उन्होंने कहा: 'हे सज्जनों, आदरणीय लोगों ने आमों का सदुपयोग किया है। फिर भी, भगवान बुद्ध ने संयम को ही श्रेष्ठ बताया है।'

लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, हैरान हुए और नाराज़ हो गए, आदि, कहने लगे, 'संयम न जानने वाले शाक्यपुत्रीय समन राजा के आम कैसे खा सकते हैं?' भिक्षुओं ने उन लोगों को बड़बड़ाते, हैरान होते और नाराज़ होते सुना। तब उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आम खाना मना है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय संघ के लिए भोजन तैयार करने की बारी एक निश्चित समूह की थी। करी में आम का छिलका डाला गया था। भिक्षुओं ने किसी को नाराज करने के डर से उसे ग्रहण नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, इसे लो और खाओ। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आम का छिलका खाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय कुछ लोगों की बारी थी कि वे संघ के लिए भोजन की व्यवस्था करें। उन्होंने छिलके से करी तो नहीं बनाई, लेकिन वे भोजन कक्ष में साबुत आम लेकर घूम रहे थे। भिक्षुओं ने उन्हें नाराज़ करने के डर से स्वीकार नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, इन्हें लो और खाओ। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन फलों को खाने की अनुमति देता हूँ जो इन पाँचों तरीकों में से किसी एक तरीके से समन भिक्षुओं के लिए अनुमेय हो गए हों—जब वे अग्नि से क्षतिग्रस्त हो गए हों—तलवार से—या कीलों से—जब उनमें अभी तक कोई बीज न हो—और पाँचवाँ तरीका यह है कि जब उनमें कोई बीज न रह गया हो। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन फलों को खाने की अनुमति देता हूँ जो इन पाँचों तरीकों में से किसी एक तरीके से समन भिक्षुओं के लिए अनुमेय हो गए हों।'

<<<< पिछला(5.4) । अगला(5.6) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> पांचवां खंडका >> 5.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.5) । अगला(5.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-6.

1. उस समय एक भिक्षु की सांप के काटने से मृत्यु हो गई। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, निश्चय ही उस भिक्षु ने चार राजसी सर्पों पर अपना प्रेम नहीं बरसाया होगा! यदि उसने ऐसा किया होता, तो वह सर्प के डंक से न मरता। और वे चार राजसी सर्प कौन से हैं? विरुपाक्ख एक राजसी सर्प हैं। एरापथ एक राजसी सर्प हैं। खब्यपुत्त एक राजसी सर्प हैं। कन्हगोतमक एक राजसी सर्प हैं। हे भिक्षुओं, निश्चय ही उस भिक्षु ने चार राजसी सर्पों पर अपना प्रेम नहीं बरसाया होगा! यदि उसने ऐसा किया होता, तो वह सर्प के डंक से न मरता। हे भिक्षुओं, मैं आपको अपनी सुरक्षा और संरक्षण के लिए एक उपाय करने की अनुमति देता हूँ, कि आप चार राजसी सर्पों पर अपना प्रेम बरसाएँ। और हे भिक्षुओं, आपको ऐसा ही करना है।

मुझे विरुपाक्खा बहुत पसंद हैं, मुझे एरापथ बहुत पसंद हैं।

मुझे खब्यपुत्त पसंद हैं, मुझे कन्हगोतमक पसंद हैं।

मुझे बिना पैरों वाले जीवित प्राणी बहुत पसंद हैं, दो पैरों वाले प्राणी भी मुझे बहुत पसंद हैं।

मुझे चार पैरों वाले प्राणी और कई पैरों वाली चीजें पसंद हैं।

"कोई भी बिना पैरों वाली वस्तु मुझे हानि न पहुंचाए, न ही कोई दो पैरों वाली वस्तु।"

"चार पैरों वाले किसी भी प्राणी को, न ही अनेक पैरों वाले किसी भी जीव को चोट पहुँचाने दो।"

"सभी प्राणियों को, सभी जीवित चीजों को, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों,

"सभी लोग सौभाग्यशाली हों और कोई भी पाप में न पड़े।"

बुद्ध अनंत हैं, सत्य अनंत है, व्यवस्था अनंत है। रेंगने वाले जीव सीमित हैं; सांप, बिच्छू और कनखजूरे, मकड़ियां और छिपकलियां, चूहे और गिलहरी।

"मैंने अपनी सुरक्षा बनाई है, मैंने अपना बचाव बनाया है। जीवित प्राणियों को पीछे हटना होगा।"

"मैं भगवान बुद्ध और सात सर्वोच्च बुद्धों का आदर करता हूँ।"

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, सांप के काटने से निकलने वाले रक्त को बहने देने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.5) । अगला(5.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.6) । अगला(5.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय 7।

1. उस समय एक भिक्षु, ध्यान आदि से विमुख होकर, अपने आप को नपुंसक बना लिया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'जब एक चीज को काटना जरूरी था, हे भिक्षुओं, उस मूर्ख ने दूसरी चीज काट दी! हे भिक्षुओं, तुम स्वयं को नपुंसक न बनाओ। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह थुलकाय (गंभीर अपराध) का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.6) । अगला(5.8) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.7) । अगला(5.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-8.

1. उस समय राजगृह के सेठी (धनी व्यापारी) ने चंदन की एक उत्तम किस्म की लकड़ी खरीदी। सेठी ने सोचा, 'क्या अच्छा होगा यदि मैं इस चंदन की लकड़ी से एक कटोरा बनवा लूँ, ताकि इसके टुकड़े मेरे पास रहें और मैं कटोरा किसी को दे सकूँ?' राजगृह के सेठी ने चंदन की उस लकड़ी से एक कटोरा बनवाया, उसे तराजू में रखा और एक बाँस के ऊपर रख दिया। उन्होंने बाँस को बाँसों की एक श्रृंखला के शीर्ष पर बाँधकर यह घोषणा की, 'यदि कोई समना (भिक्षु) या ब्राह्मण (पुजारी) अरहत हो और इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) से युक्त हो, तो वह इस कटोरे को नीचे उतार ले। यह उसके लिए एक भेंट है!'

तब पुराण कस्सपा राजगृह के सेठी के पास गए और उनसे कहा, 'हे गृहस्थ, मैं एक अरहत हूँ और इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) से युक्त हूँ। मुझे कटोरा दीजिए।'

'हे महाराज, यदि आप अरहत हैं और इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) से परिपूर्ण हैं, तो कृपया इस प्याले में उतरें!'

तब मक्खलि गोसाला, और अजिता केसा-कम्बली, और पकुधा कच्चायण, और संजय बेलाथिपुट्टा, और निगंथा नट-पुट्टा अलग-अलग राजगृह के सेट्ठी के पास गए, [और एक ही अनुरोध को प्राथमिकता दी, और एक ही उत्तर प्राप्त किया।]

उस समय पूज्य महा मोग्गलाना और पूज्य पिंडोला भारद्वगा सुबह सज-धज कर, विधिवत वस्त्र धारण किए हुए, राजगृह में भिक्षा मांगने गए। पूज्य पिंडोला भारद्वगा ने पूज्य महा मोग्गलाना से कहा, "पूज्य महा मोग्गलाना अरहत हैं और इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) से परिपूर्ण हैं। हे मित्र मोग्गलाना, जाइए और यह भिक्षापात्र ले आइए, क्योंकि यह भिक्षापात्र आपका है।"

'आदरणीय पिंडोला भारद्वगा भी अरहत हैं और इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) से परिपूर्ण हैं। जाओ, मित्र भारद्वगा, और कटोरा नीचे लाओ, क्योंकि यह कटोरा तुम्हारा है।'

तब पूज्य पिंडोला भारद्वगा वायु में उठकर, कटोरा लेकर राजगृह के तीन चक्कर लगाए। उस समय राजगृह के सेठी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अपने निवास स्थान पर खड़े थे और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोले, 'परमेश्वर भारद्वगा कृपा करके हमारे निवास स्थान पर अवतरित हों।' और परमेश्वर भारद्वगा उनके निवास स्थान पर अवतरित हुए। तब राजगृह के सेठी ने परमेश्वर भारद्वगा के हाथों से कटोरा लेकर उसे उत्तम भोजन से भरकर परमेश्वर भारद्वगा को भेंट किया।

आदरणीय भारद्वग ने कटोरा लिया और अपने विश्राम स्थल की ओर प्रस्थान किया।

2. अब लोगों ने सुना, 'आदरणीय पिंडोला भारद्वाज राजगृह सेठी का प्याला लेकर आए हैं।' और वे लोग जोर-जोर से चिल्लाते हुए पिंडोला भारद्वाज के पीछे-पीछे चल पड़े। भगवान बुद्ध ने उन जोर-जोर से चिल्लाहटों को सुना और उन्हें सुनकर आदरणीय आनंद से पूछा, 'आनंद, इस इतनी जोर से चिल्लाने का क्या अर्थ है?'

आदरणीय पिंडोला भारद्वगा, भगवान, ने राजगृह सेठी का कटोरा नीचे उतार दिया है; और वहाँ के लोग ऊँची-ऊँची आवाज़ें लगाते हुए उनके पदचिन्हों पर चल रहे हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और पिंडोला भारद्वगा से पूछा, 'क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि हे भारद्वगा, तुमने राजगृह सेठी का कटोरा प्राप्त कर लिया है?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'यह अनुचित है, भारद्वग, नियम के अनुसार नहीं, अनुपयुक्त, समन के योग्य नहीं, अशोभनीय और नहीं किया जाना चाहिए। भारद्वग, तुम एक तुच्छ लकड़ी के बर्तन के लिए आम लोगों के सामने अपनी चमत्कारी इद्धि शक्ति का प्रदर्शन कैसे कर सकते हो? भारद्वग, ठीक वैसे ही जैसे कोई स्त्री एक तुच्छ सिक्के के लिए अपना प्रदर्शन करती है, क्या तुम भी एक तुच्छ वस्तु के लिए ऐसा कर रहे हो?'

लकड़ी के बर्तन ने आम लोगों के सामने आपकी चमत्कारी इद्धि शक्ति के अलौकिक गुणों को प्रदर्शित किया। भारद्वग, इससे न तो अपरिवर्तितों का धर्मांतरण होगा और न ही परिवर्तितों की संख्या में वृद्धि होगी; बल्कि इससे अपरिवर्तित लोग अपरिवर्तित ही रहेंगे और जो परिवर्तित हो चुके हैं वे फिर से विमुख हो जाएंगे।

और जब उन्होंने उसे फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, तुम गृहस्थों के समक्ष इद्धि की अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, उस लकड़ी के कटोरे को तोड़ दो; और जब तुम उसे पीसकर चूर्ण बना लो, तो उसे भिक्षुओं को उनकी आंखों में लगाने के लिए इत्र के रूप में दे दो। और हे भिक्षुओं, तुम लकड़ी के कटोरे का प्रयोग न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.7) । अगला(5.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.8) । अगला(5.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-9.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु सोने और चांदी से बने विभिन्न प्रकार के कटोरे इस्तेमाल करते थे।

लोग हमेशा की तरह आपस में फुसफुसा रहे थे (और इसी तरह की बातें भी)। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको बने हुए कटोरे का प्रयोग नहीं करना चाहिए।'

सोने का बना हुआ, या चांदी का बना हुआ, या रत्नों से जड़ा हुआ, या बेरिल (वेलुरिया) का बना हुआ, या क्रिस्टल का बना हुआ, या तांबे का बना हुआ, या कांच का बना हुआ, या टिन का बना हुआ, या सीसे का बना हुआ। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दो प्रकार के कटोरे रखने की अनुमति देता हूँ - लोहे के बने हुए और मिट्टी के बने हुए।

2. उस समय कटोरे के निचले हिस्से में लगा सहारा घिस गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने प्यालों के आधार के रूप में वृत्ताकार (धातु के टुकड़ों) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपने कटोरे के लिए कई प्रकार के गोलाकार आधार इस्तेमाल करते थे—चांदी के और सोने के।

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे (आदि, नीचे तक)। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, आपको अपने कटोरे के लिए विभिन्न प्रकार के गोलाकार आधार नहीं रखने चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है

अतः, दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको अपने प्यालों के लिए दो प्रकार के गोलाकार आधारों की अनुमति देता हूँ—टिन के और सीसे के।

मोटे गोलाकार आधार नहीं लगाए जा सके। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इन्हें आकार देने की अनुमति देता हूँ (जब तक कि ये सही आकार के न हो जाएँ)।'

वे (?) में नहीं रुकेंगे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मगरमच्छ के दांतों के छोटे-छोटे टुकड़े करने की अनुमति देता हूँ (ताकि उन्हें फिट किया जा सके)।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने अपने कटोरे के तल पर गोलाकार रेखाएँ बनाई हुई थीं, जिन पर चित्रित आकृतियाँ बिखरी हुई थीं, या रंग के धब्बों में चित्रित की गई थीं, और वे उन्हें प्रदर्शित करने के लिए सड़कों पर घूमते थे।

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे (आदि, नीचे तक)। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको अपने प्यालों के तलों पर गोलाकार आधार चित्रित नहीं करने चाहिए, उन्हें ढकना नहीं चाहिए।'

आकृतियों से सजे और रंग के धब्बों से रंगे हुए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें केवल साधारण अस्तर लगाने की अनुमति देता हूँ।

3. उस समय भिक्षुओं ने अपने पानी से भरे कटोरे रख दिए, और वे कटोरे टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने जल से भरे प्यालों को रखना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि प्यालों को रखने से पहले उन्हें धूप में सुखा लें।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने कटोरे पानी से भरे हुए धूप में सुखाए; और वे कटोरे दुर्गंधयुक्त हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पानपात्रों को पानी से भरे हुए धूप में न सुखाएं। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको अनुमति देता हूं कि आप पानपात्रों से पानी निकाल दें और फिर उन्हें गर्म करके रख दें।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने कटोरे गर्म स्थान पर रख दिए; और इस कारण कटोरे का रंग खराब हो गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पानपात्रों को गर्म स्थान पर न रखें। ऐसा करने वाला दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको अपने पानपात्रों को थोड़े समय के लिए गर्म स्थान पर सुखाने और फिर उन्हें रख देने की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय कई कटोरे बिना सहारे के खुले में रखे हुए थे; और बवंडर के कारण वे कटोरे पलट गए और टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको अपने कटोरे (जब वे बाहर रखे हों) रखने के लिए सहारे का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने प्याले बरामदे में स्थित सोने की बेंचों के किनारे रख दिए, और प्याले गिरकर टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बरामदे में सोने की बेंचों के किनारे अपने पानदान न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने पानपात्र परिबन्ध के किनारे रख दिए, और वे पानपात्र नीचे गिरकर टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, परिबन्ध के किनारे अपने कुंड न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने कटोरे जमीन पर उल्टे रख दिए, जिससे उनके होंठ घिस गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें घास से बनी चटाई का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

घास की चटाई को दीमक खा गए थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक छोटे कपड़े का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस छोटे से कपड़े को दीमक खा गए। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक ऊंचे चबूतरे (?) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ (जिस पर तुम अपने कुंड रख सको)।'

चौकोर दीवार से कटोरे नीचे गिर गए और टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको बेंत से बने स्टैंड का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

बेंत से बने स्टैंड पर रखे कटोरे घिस गए। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने पानपात्र ले जाने के लिए थैलों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर बांधने वाली पट्टियाँ नहीं थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें थैली ले जाने के लिए कंधे पर टांगने वाली पट्टी या थैली बांधने के लिए डोरी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय भिक्षु अपने पानपात्रों को दीवारों में लगी पिनों या हुकों पर टांगते थे। पिन या हुक के गिरने से पानपात्र टूट जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पान-पात्रों को लटकाना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने प्याले पलंग या कुर्सी पर रख दिए; और लापरवाही से बैठते समय वे प्याले गिरा देते थे, जिससे प्याले टूट जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पानपात्र पलंग या कुर्सी पर न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने प्याले अपनी गोद में रखे हुए थे; और अनमने ढंग से उठते समय उन्होंने उन्हें गिरा दिया, जिससे प्याले टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पानपात्रों को अपनी गोद में न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने कटोरे एक छाते पर रख दिए; और बवंडर के कारण वह छाता ऊपर उठ गया, जिससे कटोरे लुढ़क गए और टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने पानपात्रों को धूप से बचने के लिए छांव पर न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने हाथों में कटोरे लिए हुए दरवाजा खोला। दरवाजा खुलते ही कटोरे टूट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने हाथों में पान के पात्र लेकर द्वार न खोलें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.8) | अगला(5.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.9) | अगला(5.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-10.

1. उस समय भिक्षु लौकी से बने जल के घड़े या पानी के पात्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते थे।

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे, हैरान थे और आक्रोशित होकर कह रहे थे, 'जैसा कि तित्तिया लोग करते हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम जल के घड़े या मटके लेकर भिक्षा मांगने के लिए यात्रा न करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय एक भिक्षु, जिसने कूड़े के ढेर या कब्रिस्तानों से प्राप्त वस्तुओं के अलावा कुछ भी न पहनने या उपयोग करने का व्रत लिया था, खोपड़ी से बना एक कटोरा लेकर भिक्षा मांगने निकला। एक स्त्री ने उसे देखा और भयभीत होकर चिल्लाई, 'हे भगवान! यह तो निश्चित रूप से एक शैतान है!'

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे, हैरान थे और आक्रोशित होकर कह रहे थे, 'शाक्यपुत्रीय समना (भिक्षु) खोपड़ियों से बने कटोरे कैसे अपने साथ लेकर घूम सकते हैं, जैसे शैतान की पूजा करने वाले करते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, खोपड़ियों से बने कटोरे का प्रयोग न करें। ऐसा करने वाला दुक्काता का दोषी होगा। और हे भिक्षुओं, कूड़े के ढेर या श्मशान से प्राप्त वस्तुओं के अलावा किसी और वस्तु को न पहनने या उपयोग करने का व्रत न लें। ऐसा करने वाला दुक्काता का दोषी होगा।

3. उस समय भिक्षु अपने कटोरे में कुछ टुकड़े, हड्डियाँ और गंदा पानी लेकर बाहर निकले।

लोग आपस में फुसफुसा रहे थे, हैरान थे और गुस्से में कह रहे थे, 'जिस पात्र से ये सब निकला है, वही पात्र

ये शाक्यपुत्रीय समनाएँ जो खाते हैं, उसे वे अपशिष्ट पात्र की तरह इस्तेमाल करते हैं!

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, अपने कटोरे में कूड़ा-कचरा, हड्डियाँ और गंदा पानी न ले जाओ। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपशिष्ट पात्र का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.9) । अगला(5.11) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.11
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.10) । अगला (5.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-11.

1. उस समय भिक्षुओं ने वस्त्रों को हाथों से फाड़कर आपस में सिलना शुरू किया; और वस्त्र खुरदरे हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें म्यान और (तलवार के लिए) म्यान का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ, जो म्यान के कपड़े से बना हो।'

उस समय संघ के अधिकार में एक मूठ सहित तलवार आ गई थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मूठ सहित तलवार का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपनी तलवारों में चांदी और सोने से बने विभिन्न प्रकार के लंबे हैंडल का उपयोग करते थे।

लोग हमेशा की तरह आपस में फुसफुसा रहे थे (और इसी तरह की बातें भी)। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, आप अपनी तलवारों में विभिन्न प्रकार के हैंडल का प्रयोग न करें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको अपनी तलवारों में हड्डी, हाथीदांत, सींग, ना ला सरकंडा, बांस, कठोर लकड़ी, लाख, फलों के छिलके, पीतल या शंख के मध्य भाग से बने हैंडल का प्रयोग करने की अनुमति देता हूँ।

2. उस समय भिक्षु अपने वस्त्रों को कलमों या बांस के छिलके के टुकड़ों से सिलते थे, और वस्त्र बुरी तरह से सिले होते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, सुई का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

सुइयां कुंद हो गईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें बांस से बने सुई रखने के पात्र का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

सुई रखने वाले डिब्बों में भी सुइयां कुंद हो गईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पात्रों को चूने से भरने की अनुमति देता हूँ।'

चूर्ण में भी सुइयां कुंद हो गईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जौ के आटे से पात्र भरने की अनुमति देता हूँ।'

जौ के आटे में भी सुइयां कुंद हो गईं।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, पिसे हुए पत्थर का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

यहां तक कि पिसे हुए पत्थर में भी सुइयां कुंद हो गईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (पाउडर को) मोम के साथ मिलाने की अनुमति देता हूँ।'

फिर भी पाउडर आपस में नहीं चिपका।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सिपातिका गोंद को पाउडर में मिलाने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय भिक्षुओं ने जगह-जगह खूंटे गाड़कर और डोरियों से जोड़कर अपने वस्त्रों को सिलना शुरू कर दिया। इससे वस्त्रों का आकार बिगड़ गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कथिना का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

और आपको जगह-जगह कथीना की डोरियाँ बाँधने के बाद वस्त्रों को एक साथ सिलना है।'

उन्होंने कथिना को ऊबड़-खाबड़ जमीन पर फैला दिया, और कथिना टुकड़े-टुकड़े हो गई।

'हे भिक्षुओं, तुम कथिना को असमान (भूमि) पर मत फैलाओ। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उन्होंने कथिना को जमीन पर फैला दिया, और कथिना गंदी हो गई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें घास की चटाई का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

कथीना के किनारे समय के साथ क्षत-विक्षत हो गए।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम इसे किनारे पर दोहरी परत चढ़ाकर या बांधकर मजबूत कर सकते हो।'

कथीना इतनी बड़ी नहीं थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दंड-कथीना, पिदलका, टिकट, बंधन डोरियों और बंधन धागों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ; और यह भी कि तुम इनसे अपने वस्त्रों को बांधने के बाद उन्हें आपस में सिल लो।'

धागों के बीच के अंतराल की लंबाई अनियमित हो गई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (तालिपोट ताड़ के पत्ते या इसी तरह की चीजों के) छोटे चिह्नों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

धागे टेढ़े हो गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (कपड़े पर बिछाए गए नकली धागों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ, जो यह दर्शाते हैं कि इसे कहाँ से काटना या सिलना है)।'

4. उस समय भिक्षु बिना धोए, गीले पैरों से या जूते पहने हुए कथिना पर चढ़ गए, जिससे कथिना पर गंदगी फैल गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बिना धोए, गीले पैरों से या जूते पहने हुए कथिना पर मत चढ़ो। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

5. उस समय भिक्षु जब सिलाई कर रहे थे

उन्होंने अपने वस्त्र उतारे, अपनी उंगलियों से सामान पकड़ा और उनकी उंगलियों में चोट लग गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, अंगुली पर पहनने वाली अंगुली की पट्टी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु कई प्रकार के अंगुलियों का प्रयोग करते थे; सोने की और चांदी की।

लोग आपस में फुसफुसाने लगे, इत्यादि। भिक्षुओं ने सुना, इत्यादि। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार के अंगुली के आवरणों का प्रयोग न करें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको अस्थि, हाथीदांत, सींग, ना ला सरकंडा, बांस, कठोर लकड़ी, लाख, फलों के छिलके, पीतल या शंख के केंद्र से बने अंगुली के आवरणों का प्रयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय सुइयां, कैंची और अंगुली की सुई खो गईं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कार्यशाला में किसी बक्से या दराज का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

वे सब कार्यशाला के डिब्बे में एक साथ जमा हो गए। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अंगुली की थैली (अंगुलियों को ले जाने के लिए) का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर टांगने वाली पट्टियाँ नहीं थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें थैलों को बांधने के लिए कंधे की पट्टी या डोरी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

6. उस समय भिक्षु खुले में अपने वस्त्र सिलते समय गर्मी और सर्दी से परेशान थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कथिना के लिए एक हॉल या एक झोपड़ी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

कथीना हॉल का तहखाना बहुत नीचा था, और वह पानी से भर गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऊँची तहखाना बनाने की अनुमति देता हूँ।'

तहखाने का अग्रभाग गिर गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तहखाने में तीन प्रकार की सामग्री लगाने की अनुमति देता हूँ—ईंट की परत, पत्थर की परत या लकड़ी की परत।'

उन्हें उसमें चढ़ने में कठिनाई हुई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की सीढ़ियों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—ईंट की सीढ़ियाँ, पत्थर की सीढ़ियाँ और लकड़ी की सीढ़ियाँ।'

ऊपर चढ़ते समय वे गिर गए।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, रेलिंग का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

कथिना-हॉल में (दीवारों और छत से) भूसा और प्लास्टर गिर गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पहले दीवारों और छत को चमड़े से ढकने और फिर उन्हें भीतर और बाहर से प्लास्टर करने की अनुमति देता हूँ। (और मैं अनुमति देता हूँ) सफेदी, काला रंग, लाल रंग, मालाओं की सजावट, लताओं की सजावट, हड्डियों के हुक, अलमारियाँ, वस्त्र टांगने के लिए बांस और वस्त्र टांगने के लिए डोरियों के उपयोग की।'

7. उस समय भिक्षुओं ने वस्त्र सिलने के बाद कथिना को वहीं छोड़कर चले गए; और वस्त्रों को चूहों और दीमकों ने खा लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कथिना को समेटने की अनुमति देता हूँ।'

कथीना जहाज टुकड़ों में बिखर गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कथिना को गाय की खाल में लपेटने की अनुमति देता हूँ (?).'

कथीना का पर्दाफाश हो गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे बांधने के लिए धागे का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु कथिना को दीवार या खंभे के सहारे रखकर चले गए; और कथिना गिरकर टूट गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, इसे दीवार के खंभे पर या हुक पर टांगने की।'

<<<< पिछला (5.10) | अगला (5.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.11) | अगला (5.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-12.

1. अब भगवान बुद्ध, राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय ठहरने के बाद, वैशाली की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े।

उस समय भिक्षु अपने कटोरे में सुई, कैंची और औषधियाँ लेकर साथ-साथ चलने लगे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें औषधियों को ले जाने के लिए थैली का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर टांगने वाली पट्टियाँ नहीं थीं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कंधे पर टांगने वाली पट्टी या थैली बांधने के लिए डोरी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षु ने अपनी पांव की पट्टियाँ बाँधीं और भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। एक उपासक ने उस भिक्षु को प्रणाम करते समय अपना सिर उनकी पांव की पट्टियों से टकरा दिया। भिक्षु क्रोधित हो गए; और जब वे आराम (मठ) लौट आए, तो उन्होंने यह बात भिक्षुओं को बताई। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपनी चप्पलें ले जाने के लिए थैली का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उनमें कंधे पर टांगने वाली पट्टियाँ नहीं थीं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कंधे पर टांगने वाली पट्टी या थैली बांधने के लिए डोरी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (5.11) | अगला (5.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.12) | अगला (5.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-13.

1. उस समय वे जिस पानी को पी रहे थे, उसे नियमों का उल्लंघन किए बिना नहीं पिया जा सकता था, क्योंकि उनके पास पानी छानने के लिए कोई छलनी नहीं थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छलनी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।' छलनी के रूप में इस्तेमाल किया गया छोटा कपड़ा (पूरे समूह के लिए पर्याप्त पानी छानने के लिए) पर्याप्त नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चम्मच पर लगी छलनी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

फिर भी वह छोटा सा कपड़ा इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मानक जलपात्र का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय दो भिक्षु कोसल देश के मुख्य मार्ग पर यात्रा कर रहे थे। उनमें से एक भिक्षु ने कोई पाप किया था। दूसरे ने उससे कहा, 'हे मेरे मित्र, ऐसा मत करो। यह उचित नहीं है।' पहले भिक्षु को उससे द्वेष हो गया। बाद में, प्यास से व्याकुल होकर दूसरे भिक्षु ने द्वेषी भिक्षु से कहा, 'हे मित्र, मुझे अपनी छलनी दे दो। मैं थोड़ा पानी पीने जा रहा हूँ।' द्वेषी भिक्षु ने उसे छलनी नहीं दी। दूसरे भिक्षु की प्यास से मृत्यु हो गई। तब वह भिक्षु विश्राम स्थल पर पहुँचकर उसने यह बात दूसरे भिक्षुओं को बताई।

'तो फिर क्या हुआ, महोदय? जब आपसे आपकी छलनी मांगी जाएगी, तो क्या आप उसे उधार नहीं देंगे?'

'जी हां, ऐसा ही है।'

जो भिक्षु संयमी थे, वे नाराज और परेशान हो गए और बड़बड़ाने लगे, 'एक भिक्षु अपनी छलनी मांगने पर उसे देने से कैसे इनकार कर सकता है?' और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में (आदि, हमेशा की तरह, उदाहरण के लिए चुलवग्ग प्रथम, 1, 2, आगे देखें) भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, यात्रा पर निकले भिक्षु को माँगे जाने पर छलनी देने से इनकार नहीं करना चाहिए। ऐसा करने वाला दुक्कात का दोषी होगा। और हे भिक्षुओं, जिसके पास छलनी न हो, उसे यात्रा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने वाला दुक्कात का दोषी होगा। यदि छलनी या निर्धारित जलपात्र न हो, तो पीने से पहले छानने के लिए ऊपरी वस्त्र के कोने का उपयोग करना चाहिए।

3. अब भगवान बुद्ध सीधे यात्रा करते हुए उचित समय पर वैशाली पहुंचे। और वैशाली में भगवान बुद्ध महावन में कुटगार हॉल में ठहरे।

उस समय भिक्षु भवन निर्माण में लगे हुए थे; और छलनी ने कोई काम नहीं किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं दोहरी छलनी के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

डबल स्ट्रेनर ने काम नहीं किया।

'हे भिक्षुओं, मैं फिल्टर के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु मच्छरों से परेशान थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं मच्छरदानी के पर्दे के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (5.12) | अगला (5.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.14

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.13) | अगला (5.15) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-14.

1. उस समय वैशाली में मीठे भोजन की नियमित व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी, जिसे गृहस्थ बारी-बारी से संपन्न करते थे। भिक्षु मीठे भोजन का सेवन करके शरीर में रसों की अधिकता के कारण बहुत बीमार हो गए।

अब जीवका कोमरभक्का वेशाली के पास गये

हे भिक्षुओं, मठ और स्नानागार के उपयोग का नियम बताओ।

2. उस समय भिक्षु ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर बने एक मठ में इधर-उधर चलते थे; और उनके पैरों में चोट लग जाती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे समतल करने की अनुमति देता हूँ।'

मठ का तहखाना बहुत नीचा था, और वह पानी से भर गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऊँची तहखाना बनाने की अनुमति देता हूँ।'

तहखाने की दीवार गिर गई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की आवरण सामग्री का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—ईंट की आवरण सामग्री, पत्थर की आवरण सामग्री और लकड़ी की आवरण सामग्री।'

उन्हें उसमें चढ़ने में कठिनाई हुई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की सीढ़ियों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ—ईंट की सीढ़ियाँ, पत्थर की सीढ़ियाँ और लकड़ी की सीढ़ियाँ।'

जब वे ऊपर चढ़ रहे थे, तभी वे गिर गए।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, रेलिंग का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु मठ में इधर-उधर चलते हुए गिर पड़े।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मठ के लिए रेलिंग बनाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु जब खुले में इधर-उधर चलते थे तो उन्हें गर्मी और सर्दी दोनों से परेशानी होती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, मठ के लिए एक हॉल का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

पुआल और प्लास्टर (दीवारों और छत से) गिरकर मठ के हॉल में जा गिरे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पहले दीवारों और छत को खाल से ढकने और फिर उन पर प्लास्टर करने की अनुमति देता हूँ। (और मैं तुम्हें) सफेदी, काला रंग, लाल रंग, मालाओं, लताओं, हड्डियों के हुक, अलमारियों, वस्त्र टांगने के लिए बांस और वस्त्र टांगने के लिए डोरियों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

3. [तहखाने से लेकर रेलिंग तक का पूरा विवरण गर्म स्नानघर की पुनरावृति है।]

स्नानघर में कोई दरवाजा नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें द्वार का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ, जिसमें द्वार के खंभे और चौखट हों, और जिसमें (द्वार के घूमने के लिए) मोर्टार के समान खोखले भाग हों, और आगे निकले हुए भाग हों।'

उन खोखले हिस्सों में घूमते हुए, दरवाजे पर छल्ले लगे होते हैं जिनमें बोल्ट काम करता है, दरवाजे के चौखट के किनारे पर लकड़ी का एक ब्लॉक लगा होता है जिसमें बोल्ट के लिए एक खांचा होता है (जिसे बंदर का सिर कहा जाता है), एक पिन (बोल्ट को सुरक्षित करने के लिए), एक जोड़ने वाला बोल्ट, एक चाबी का छेद, दरवाजे को बंद करने के लिए रस्सी का छेद, और उस उद्देश्य के लिए एक रस्सी।

बाथरूम की मिट्टी और लकड़ी से बनी दीवार का निचला हिस्सा (नमी के कारण) सड़ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दीवार के निचले आधे भाग (ईंटों से निर्मित) की ओर मुख करके खड़े होने की अनुमति देता हूँ।'

बाथरूम में चिमनी नहीं थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चिमनी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षुओं ने एक छोटे से स्नानागार के बीच में एक चूल्हा बना दिया था, और स्नान करने के लिए कोई जगह नहीं थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छोटे स्नानागार के एक तरफ और बड़े स्नानागार के बीच में चूल्हा बनाने की अनुमति देता हूँ।'

बाथरूम में लगी आग से उनके चेहरे झुलस गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने चेहरों पर मिट्टी लगाने की अनुमति देता हूँ।'

उन्होंने अपने हाथों में मिट्टी को गीला किया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मिट्टी को नम करने के लिए एक कुंड का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

मिट्टी से दुर्गंध आ रही थी।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इसकी सुगंध लेने की अनुमति देता हूँ।'

बाथरूम में लगी आग से उनके शरीर झुलस गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने ऊपर जल डालने की अनुमति देता हूँ।'

उन्होंने थालियों और भिक्षापात्रों से पानी उंडेल दिया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जल रखने के लिए एक स्टैंड और जल डालने के लिए तश्तरियाँ प्रदान करता हूँ।'

घास-फूस की छत वाले स्नानघर में पसीना नहीं आता था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें स्नानागार की छत को (चमड़ों से) ढकने और उसे भीतर और बाहर से प्लास्टर करने की अनुमति देता हूँ।'

बाथरूम दलदली हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के फर्श बिछाने की अनुमति देता हूँ—ईंट का फर्श, पत्थर का फर्श और लकड़ी का फर्श।'

फिर भी वह दलदली बन गया।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, फर्श धोने की अनुमति देता हूँ।'

पानी फर्श पर जम गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें जल निकासी के लिए नाली का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु स्नानागार में जमीन पर बैठे थे और उनके अंगों में झुनझुनी हो रही थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें स्नानघर में स्टूल का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय स्नानघर के चारों ओर कोई घेरा नहीं था।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इसे तीन प्रकार की दीवारों से घेरने की अनुमति देता हूँ—ईंट की दीवारें, पत्थर की दीवारें और लकड़ी की बाड़।'

4. वहां कोई प्रतीक्षाकक्ष नहीं था (जिसमें पानी रखा जा सके)।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, एक प्रतीक्षाकक्ष रखने की अनुमति देता हूँ।'

प्रवेश कक्ष का तहखाना बहुत नीचा था, और वह पानी से भर गया था [और इसी तरह, जैसा कि II. 6 में है, और अंतिम खंड में दरवाजे के वर्णन के अंत तक, उसके बाद II. 6 और §-2 के समापन शब्द 'पुआल और प्लास्टर गिर गया, आदि' से लेकर 'अलमारियों' तक]।

5. वह कोशिका दलदली हो गई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस पर बजरी बिछाने की अनुमति देता हूँ।'

वे कुछ भी हासिल करने में सफल नहीं हुए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे पत्थर से लेप करने की अनुमति देता हूँ।'

पानी फर्श पर जम गया।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इसमें से पानी निकालने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (5.13) | अगला (5.15) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.14) | अगला(5.16) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-15.

1. उस समय भिक्षु नग्न अवस्था में एक दूसरे को प्रणाम करते और प्रणाम ग्रहण करते थे; एक दूसरे की सेवा करते और सेवा ग्रहण करते थे; एक दूसरे को देते और लेते थे; कठोर और नरम दोनों प्रकार का भोजन करते थे; चखते और पीते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, नग्न अवस्था में पुरुष को न तो प्रणाम करना चाहिए और न ही प्रणाम ग्रहण करना चाहिए; न तो सेवा करनी चाहिए और न ही सेवा ग्रहण करनी चाहिए; न तो कुछ देना चाहिए और न ही कुछ लेना चाहिए; न तो कठोर भोजन खाना चाहिए और न ही नरम; न ही कुछ चखना चाहिए और न ही कुछ पीना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(5.14) | अगला(5.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.16
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.15) | अगला (5.17) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-16.

1. उस समय स्नानागार में भिक्षुओं ने अपने वस्त्र जमीन पर रख दिए, जिससे वे वस्त्र गंदे हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने वस्त्र टांगने के लिए बांस और रस्सी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

जब बारिश हुई, तो वह वस्त्रों के ऊपर गिरी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें स्नानागार तक जाने के लिए एक मार्ग की अनुमति देता हूँ।'

स्नानघर के हॉल का तहखाना बहुत नीचा था [आदि, जैसा कि 11. 6; 14. 2 में तहखाने, छत के सामने, सीढ़ियों और रेलिंग के बारे में है, इसके बाद 11. 6 और 14. 2 के समापन शब्द, अंत तक]।

2. उस समय भिक्षु स्नानघर और जल दोनों में एक दूसरे की सेवा करने से डरते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के आवरणों की अनुमति देता हूँ—स्नानघर का आवरण, जल का आवरण और वस्त्रों का आवरण।'

उस समय स्नानघर में पानी नहीं था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। हे भिक्षुओं, मैं एक कुआँ खोलने की अनुमति देता हूँ।

कुएं का मुख भाग धंस गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कुएँ में अस्तर लगाने की अनुमति देता हूँ।'

तीन प्रकार की बाहरी परतें—ईंट की बाहरी परत, पत्थर की बाहरी परत और लकड़ी की बाहरी परत।

[इसके बाद ऊंचे तहखाने, छत की दिशा, सीढ़ियों और रेलिंग से संबंधित अनुच्छेद आते हैं, जैसा कि 11.6; 14.2; और ऊपर, §-1 2 में है।]

उस समय भिक्षु जंगल की रस्सी या अपनी कमरबंद से पानी भरते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पानी निकालने के लिए रस्सी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

रस्सी से उनके हाथों में चोट लग गई थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उत्तोलक के रूप में संतुलित लंबे डंडे, बैलगाड़ी या पहिए और धुरी का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

कई बर्तन टूट गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के जलपात्रों की अनुमति देता हूँ—पीतल के पात्र, लकड़ी के पात्र और चमड़े के पात्र।'

उस समय भिक्षु खुले में पानी भरते समय गर्मी और सर्दी दोनों से पीड़ित होते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कुएँ के ऊपर एक झोपड़ी बनाने की अनुमति देता हूँ।'

कुएं के ऊपर बनी इमारत में भूसा और प्लास्टर गिर गया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कुटिया को खालों से ढकने और भीतर एवं बाहर से प्लास्टर करने की अनुमति देता हूँ; और मैं तुम्हें सफेदी, काला रंग, लाल रंग, मालाओं का काम, लताओं का काम, अलमारियाँ, वस्त्र टांगने के लिए बांस और वस्त्र टांगने के लिए डोरियों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

कुआँ खुला हुआ था और उस पर घास, प्लास्टर और मिट्टी बिखरी हुई थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कुएँ पर ढक्कन लगाने की अनुमति देता हूँ।'

जलयान अपर्याप्त पाए गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कुंडों और कुंडों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (5.15) | अगला (5.17) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.16) | अगला(5.18) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-17.

1. उस समय भिक्षु पूरे अरमा (मठ) में कहीं भी स्नान करते थे, और अरमा कीचड़ से भर गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आराम के प्रवेश द्वार पर) एक कुंड की अनुमति देता हूं।'

वह कुंड सार्वजनिक था, और भिक्षुओं को उसमें स्नान करने में शर्म आती थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे तीन प्रकार के घेरों से घेरने की अनुमति देता हूँ—ईंट की दीवारें, पत्थर की दीवारें और लकड़ी की बाड़।'

तालाब में कीचड़ भर गया।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इस पर तीन प्रकार के फर्श लगाने की अनुमति देता हूँ—ईंट का फर्श, पत्थर का फर्श या लकड़ी का फर्श।'

पानी स्थिर हो गया।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, एक नाली की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षुओं के अंग ठंडे पड़ गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तौलिये का उपयोग करने और कपड़े से पानी पोंछने की अनुमति देता हूं।'

2. उस समय एक उपासक संघ के उपयोग के लिए एक तालाब बनवाना चाहता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक तालाब की अनुमति देता हूं।'

टैंक के किनारे धंस गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तालाब की तीन प्रकार की सामग्री से प्रांगण बनाने की अनुमति देता हूँ—ईंट की प्रांगण, पत्थर की प्रांगण और लकड़ी की प्रांगण।'

उन्हें इसमें प्रवेश करने में कठिनाई हुई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की सीढ़ियों की अनुमति देता हूँ—ईंट की सीढ़ियाँ, पत्थर की सीढ़ियाँ और लकड़ी की सीढ़ियाँ।'

उन पर चढ़ते समय वे गिर गए।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, एक रेलिंग की अनुमति देता हूं।'

टंकी का पानी बासी हो गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पानी बिछाने और पानी निकालने के लिए पाइपों का उपयोग करने की अनुमति देता हूं।'

उस समय एक भिक्षु संघ के उपयोग के लिए नीलेखा की छत वाला स्नानागार बनवाना चाहता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इस प्रकार की छत वाला स्नानागार रखने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.16) | अगला(5.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.17) | अगला(5.19) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-18.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने उन चटाइयों से विमुख होकर अपना स्थान बदल लिया जिन पर वे चार महीने तक बैठे रहते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, चार महीने तक अपनी चटाई से अलग मत रहो।

नीचे। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु फूलों से सजी पलंगों पर सोने के लिए लेट गए।

विहारों में दर्शन के लिए आने वाले लोगों ने इसे देखा और बुदबुदाते हुए कहा, 'ऐसा लगता है जैसे वे लोग अभी भी सांसारिक सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें फूलों से सजी पलंगों पर नहीं सोना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय लोग आराम में इत्र और मालाएँ लेकर आते थे। भिक्षु उन्हें स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि इससे उन्हें ठेस पहुँचेगी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम सुगंध ग्रहण करो और उसे द्वार पर पाँच उंगलियों की चौड़ाई तक लगाओ; और फूल ग्रहण करो और उन्हें विहार में एक तरफ रख दो।'

<<<< पिछला(5.17) | अगला(5.19) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.18) । अगला (5.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-19.

1. उस समय संघ के पास फेल्ट का एक आवरण आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, एक आवरण प्रदान करता हूँ।'

भिक्षुओं ने विचार किया कि क्या आवरण ऐसी वस्तु है जिसे प्रत्येक भिक्षु अपने पास रख सकता है, या ऐसी वस्तु है जिसे समय-समय पर एक भिक्षु द्वारा दूसरे भिक्षु को सौंप दिया जाना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, आवरण न तो अपनाना चाहिए और न ही सौंपना चाहिए।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु सजे हुए दीवानों पर लेटकर भोजन किया करते थे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'जैसे कि वे अभी भी दुनियावी सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, सजे हुए दीवानों पर लेटकर भोजन न करें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु बीमार था, और भोजन करते समय वह अपने कटोरे को हाथ में पकड़ने में असमर्थ था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं कटोरे के लिए स्टैंड के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु एक ही थाली में भोजन करते थे, एक ही पात्र में पानी पीते थे और एक ही पलंग, एक ही चादर या एक ही चटाई पर लेटते थे।

लोग आपस में कानाफूसी करने लगे, इत्यादि।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें इनमें से कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (5.18) । अगला (5.20) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.19) । अगला(5.21) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-20.

1. उस समय वद्ध लिच्छवी मेत्तिया और भूमगाक के अनुयायी भिक्षुओं के मित्र थे। वद्ध लिच्छवी उन भिक्षुओं के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे कहा, 'आप दोनों को मेरा प्रणाम!' उनके ऐसा कहने पर मेत्तिया और भूमगाक के अनुयायी भिक्षुओं ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने दूसरी और तीसरी बार भी यही शब्द कहे, फिर भी उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला।

'मैंने आपको कैसे नाराज किया है, महोदय? आप मुझे कोई जवाब क्यों नहीं दे रहे हैं?'

'तुम, दोस्त, आराम से बैठे रहो जबकि डब्बा मल्लियन हमें परेशान कर रहा है।'

'लेकिन महोदय, मैं क्या कर सकता हूँ?'

'यदि तुम चाहो, मित्र, तो आज भगवान बुद्ध भी मल्लियन दब्बा को निष्कासित कर देते।'

'लेकिन मैं क्या करूँ, महोदय? मेरे बस में क्या है?'

"तो आओ, मित्र वद्धा। तुम उस स्थान पर जाओ जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान हैं, और वहाँ पहुँचकर इस प्रकार कहो: "हे प्रभु, यह उचित और शोभायमान नहीं है कि स्वर्ग का वह भाग जो सुरक्षित, संरक्षित और खतरे से मुक्त होना चाहिए,"

कि उसी दिशा से खतरा, विपत्ति और संकट उत्पन्न हो—कि जहाँ शांति की उम्मीद होनी चाहिए, वहीं आंधी आ जाए! मुझे लगता है कि पानी में आग लग गई है! मेरी पत्नी को मल्लियन डब्बा ने अपवित्र कर दिया है!

2. 'बहुत खूब, महोदय!' मेत्तिया और भूमगका के अनुयायियों की बात मानते हुए लिच्छवी वद्धा ने कहा। और वह भगवान बुद्ध के पास गया [और जैसा उसे निर्देश दिया गया था वैसा ही बोला]।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और पूज्य मल्लियन दब्बा से पूछा:

'क्या तुम्हें इस बात का एहसास है, डब्बा, कि तुमने ऐसा कुछ किया है जैसा कि यह वद्धा कह रहा है?'

'जैसा कि मेरे प्रभु, भगवान बुद्ध जानते हैं।'

[और दूसरी बार, और तीसरी बार, भगवान बुद्ध ने वही प्रश्न पूछा, और उन्हें वही उत्तर प्राप्त हुआ।]

'हे डब्बा, इस प्रकार इनकार मत करो। यदि तुमने ऐसा किया है, तो ऐसा कहो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया है, तो कहो कि तुमने ऐसा नहीं किया है।'

'हे प्रभु, जब से मेरा जन्म हुआ है, मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी यौन संबंध बनाए हों, सपने में भी नहीं, जागते हुए तो बिल्कुल भी नहीं!'

3. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, संघ लिच्छवी वद्ध के आदर में प्याला नीचे झुका दे।'

और उसे संघ को दान देने के अयोग्य बना दें।

हे भिक्षुओं, जब कोई उपासक इन आठ बातों से युक्त हो, तो उसके प्रति पार्थिव कुंड को अस्वीकृत कर देना चाहिए;—जब वह भिक्षुओं को दान हानि पहुँचाने का प्रयास करे, जब वह भिक्षुओं को हानि पहुँचाने का प्रयास करे, जब वह भिक्षुओं को निवास स्थान से वंचित करने का प्रयास करे, जब वह भिक्षुओं का अपमान करे या उन पर कलंक लगाए, जब वह भिक्षुओं में फूट डाले;—जब वह बुद्ध की निंदा करे;—जब वह धम्म की निंदा करे;—जब वह संघ की निंदा करे। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऐसे उपासक के प्रति पार्थिव कुंड को अस्वीकृत करने की अनुमति देता हूँ जिसमें ये आठ बातें पाई जाती हों।

4. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इस प्याले को नीचे झुकाना है। किसी योग्य और विवेकशील भिक्षु को संघ के समक्ष यह बात रखनी चाहिए, और कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। वद्धा लिच्छवी ने आदरणीय मल्लियन दब्बा पर नैतिकता भंग करने का निराधार आरोप लगाया है। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ वद्धा लिच्छवी के प्रति अपना प्रेम त्याग दे और उसे संघ से विमुख मान ले।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"लिच्छवी वद्ध ने मल्लियन दब्बा पर नैतिकता भंग करने का निराधार आरोप लगाया है। संघ लिच्छवी वद्ध के प्रति प्याला अस्वीकार करता है और उन्हें संघ से संबंधहीन घोषित करता है। जो भी पूज्य पुरुष लिच्छवी वद्ध के प्रति प्याला अस्वीकार करने और उन्हें संघ से संबंधहीन घोषित करने का समर्थन करते हैं, वे मौन रहें। जो इसका समर्थन नहीं करते, वे बोलें।"

"संघ ने वद्धा लिच्छवी के संबंध में कटोरा अस्वीकार कर दिया है, क्योंकि वे संघ से कोई संबंध नहीं रखते। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए संघ मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

5. तब पूज्य आनंद ने सुबह जल्दी वस्त्र धारण करके विधिवत वस्त्र धारण किए और लिच्छवी वद्ध के निवास पर गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने लिच्छवी वद्ध से कहा, 'हे मित्र वद्ध, संघ ने आपके प्रति तिरस्कारपूर्ण रुख अपनाया है और आप संघ से संबंधहीन माने जाते हैं।' यह सुनकर लिच्छवी वद्ध तुरंत बेहोश होकर गिर पड़े।

तब लिच्छवी वद्धा के मित्रों और साथियों तथा उनके रक्त संबंधियों ने उनसे कहा: 'बस करो, मित्र वद्धा। रोओ मत, विलाप मत करो। हम भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ के बीच सुलह करा देंगे।'

और वद्धा लिच्छवी, अपनी पत्नी, बच्चों, मित्रों, साथियों और अपने सगोत्रों के साथ भीगे वस्त्रों और बहते बालों के साथ, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर कहा: 'हे प्रभु, पाप ने मुझे पराजित कर दिया है—मेरी कमजोरी, मेरी मूर्खता और मेरे अधर्म के कारण—कि मैंने बिना किसी आधार के मल्लियन दब्बा पर नैतिकता भंग करने का आरोप लगाया। हे प्रभु, मेरे पाप की इस पापमयता को स्वीकार करें, ताकि मैं भविष्य में इससे विमुख हो सकूँ।'

हे मित्र वद्धा, वास्तव में पाप ने तुम पर विजय प्राप्त कर ली है—तुम्हारी कमजोरी, तुम्हारी मूर्खता और तुम्हारे अधर्म के अनुसार—क्योंकि तुमने मल्लियन डब्बा पर बिना किसी आधार के नैतिकता भंग करने का आरोप लगाया। परन्तु हे मित्र वद्धा, चूंकि तुम अपने पाप को पाप मानते हो और उसका उचित प्रायश्चित करते हो, इसलिए हम तुम्हारे इस पाप की स्वीकारोक्ति को स्वीकार करते हैं। हे मित्र वद्धा, यही लाभ है।

श्रेष्ठ व्यक्ति का अनुशासन यह है कि जो व्यक्ति अपने पाप को पाप मानता है और उचित प्रायश्चित करता है, वह भविष्य में स्वयं को उससे विवश करने में सक्षम हो जाता है।

6. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'तो संघ लिच्छवी वद्ध के संबंध में फिर से कटोरा उठाए और उसे संघ के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति के रूप में स्वीकार करे।'

हे भिक्षुओं, जब ये आठ बातें किसी उपासक का चरित्र दर्शाती हैं, तो उसके विषय में प्याला फिर से उलट देना चाहिए;—जब वह भिक्षुओं को दान की हानि न पहुँचाने का प्रयास न करे, जब वह भिक्षुओं को हानि न पहुँचाने का प्रयास न करे, जब वह भिक्षुओं को निवास स्थान से वंचित न करे, जब वह भिक्षुओं का अपमान या निंदा न करे, जब वह भिक्षुओं के बीच फूट न डाले;—जब वह बुद्ध की निंदा न करे;—जब वह धम्म की निंदा न करे;—जब वह संघ की निंदा न करे।

7. 'और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इस प्याले को ऊपर की ओर पलटना है। उस वद्ध लिच्छवी को संघ के आगे जाना चाहिए, अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, नीचे बैठकर, और उसे ऊपर उठाना चाहिए।

हथेलियों को आपस में जोड़कर, उसे इस प्रकार बोलना चाहिए:

"संगठन ने मेरे विरुद्ध कटोरा ठुकरा दिया है, महोदय, और मैं संघ से संबंधहीन व्यक्ति के समान हो गया हूँ। महोदय, मैं उसी के अनुरूप उचित आचरण कर रहा हूँ, और मेरा मन क्षत-विक्षत है, मैं मुक्ति चाहता हूँ; और मैं संघ से निवेदन करता हूँ कि कटोरा पुनः मेरे विरुद्ध कर दिया जाए।"

और दूसरी बार उसे वही अनुरोध करना है, और तीसरी बार उसे वही अनुरोध उन्हीं शब्दों में करना है।

तब किसी विवेकशील और योग्य भिक्षु को संघ के समक्ष यह मामला रखते हुए कहना चाहिए,

"आदरणीय संघ मेरी प्रार्थना सुनिए। संघ ने लिच्छवी वद्ध के विरुद्ध प्याला ठुकरा दिया है, और वह उसी के अनुरूप आचरण कर रहा है, तथा उसका मन क्षुब्ध है, वह मुक्ति चाहता है, और संघ से प्याला फिर से उठाने का निवेदन करता है। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ लिच्छवी वद्ध के संबंध में प्याला फिर से उठा दे, और उसे संघ के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति के समान मान ले।"

"यह गति (नट्टी) है।"

"आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले। पहले की तरह ही प्याला नीचे झुका दिया गया है (आदि), और वह पहले की तरह ही आचरण कर रहा है (आदि), और वह संघ से निवेदन करता है (आदि)। संघ लिच्छवी वद्ध के संबंध में प्याला फिर से ऊपर उठाता है और उसे संघ के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति के रूप में मानता है। आदरणीयों में से जो भी इसे स्वीकार करे, वह मौन रहे; जो भी इसे स्वीकार न करे, वह बोले।"

"संघ ने वद्धा लिच्छवी के संबंध में कटोरा फिर से ऊपर उठा दिया है, और वह संघ के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति के समान है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए यह मौन है। इस प्रकार मैं समझता हूँ।"

<<<< पिछला(5.19) | अगला(5.21) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.21
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.20) | अगला(5.22) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-21.

1. भगवान बुद्ध वैशाली में अपनी इच्छानुसार कुछ समय रहने के बाद भग्गा की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सीधे यात्रा करते हुए वे समय आने पर भग्गा पहुँचे। भग्गा में भगवान बुद्ध नाग पर्वत पर, भेषकला वन में स्थित आश्रम में रहने लगे।

उस समय राजा के पुत्र बोधि का महल, जिसे कोकनाड़ा कहा जाता था, अभी-अभी बनकर तैयार हुआ था और अभी तक न तो किसी भिक्षु, न ही किसी ब्राह्मण, और न ही किसी मनुष्य ने उसका उपयोग किया था। राजा के पुत्र बोधि ने संगिका स्त्री के पुत्र, युवा ब्राह्मण को आदेश दिया, 'आओ...'

अब, मेरे मित्र संगिका-पुत्त, तुम उस स्थान पर जाओ जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान हैं, और वहाँ पहुँचकर मेरी ओर से उनके चरणों में प्रणाम करो, और मेरे नाम से यह पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, और सुख-सुविधाओं और उत्तम स्वास्थ्य का आनंद ले रहे हैं, और कहो, "हे प्रभु, राजा के पुत्र बोधि आपके चरणों में प्रणाम करते हैं, और [जैसा मैंने कहा है] पूछते हैं, और निवेदन करते हैं: 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध कल का भोजन राजा के पुत्र बोधि के साथ, भिक्षुओं के संघ सहित, ग्रहण करने की कृपा करें।'"

“जी जी!” युवा ब्राह्मण संगिका-पुत्र ने राजा के पुत्र बोधि की बात मानते हुए कहा। फिर वह उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और वहाँ पहुँचकर उसने भगवान बुद्ध से मित्रता और शिष्टाचार का अभिवादन किया। इसके बाद वह एक तरफ बैठ गया और राजा के पुत्र के आदेशानुसार उन्हें संदेश दिया। भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति दी।

2. जब युवा ब्राह्मण संगीक-पुत्त को पता चला कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वह अपने आसन से उठकर उस स्थान पर गया जहाँ राजा का पुत्र बोधि था। वहाँ पहुँचकर उसने उससे कहा: 'हे महोदय, हमने आपकी ओर से उस आदरणीय गौतम से बात की है (आदि, जैसा पहले कहा गया था), और हमें समना गौतम (बुद्ध) की सहमति प्राप्त हो गई है।'

फिर अंत में राजा के पुत्र बोधि ने तैयारी की।

उस रात मीठे व्यंजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार के; तैयार करवाए और कोकनादा महल को प्रवेश द्वार पर सीढ़ियों के अंतिम तख्ते तक सफेद वस्त्रों से ढकवा दिया; और युवा ब्राह्मण संगिका-पुत्त को आदेश दिया, "अब आओ, मेरे मित्र संगिका-पुत्त, तुम उस स्थान पर जाओ जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान हैं; और वहाँ पहुँचकर समय की घोषणा करते हुए कहो, 'हे प्रभु, भोजन तैयार है, और समय आ गया है।'"

'फिर भी, प्रभु,' संगिका-पुत्त ने सहमति जताते हुए कहा [और भगवान बुद्ध के पास जाकर तदनुसार घोषणा की]।

भगवान बुद्ध ने सुबह जल्दी वस्त्र धारण करके, विधिवत वस्त्र पहनकर राजा के पुत्र बोधि के महल की ओर प्रस्थान किया। उस समय राजा का पुत्र बोधि बाहरी द्वार के बरामदे पर भगवान बुद्ध का स्वागत करने के लिए खड़ा था। उसने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; और उन्हें देखकर वह उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ा, और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके वह कोकनाड़ा महल में लौट आया।

अब भगवान बुद्ध प्रवेश द्वार पर सीढ़ियों के अंतिम तख्ते पर रुक गए। राजा के पुत्र बोधि ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध इन वस्त्रों पर चलें। हे सुखी, इन वस्त्रों पर चलें, ताकि मुझे भी लंबे समय तक सुख और आनंद प्राप्त हो।'

और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो भगवान बुद्ध चुप रहे। और दूसरी बार उन्होंने उसी निवेदन को उन्हीं शब्दों में उसी प्रकार दोहराया।

परिणाम]। और तीसरी बार उन्होंने [वही अनुरोध दोहराया]। तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद की ओर देखा।

और पूज्य आनंद ने राजा के पुत्र बोधि से कहा, 'हे राजकुमार, इन वस्त्रों को समेट लो। भगवान बुद्ध किसी भी अनुष्ठान के लिए बिछाए गए कपड़े के टुकड़े पर नहीं चलेंगे। तथागत (बुद्ध) तुच्छतम वस्तु पर भी दया करते हैं।'

3. तब राजा के पुत्र बोधि ने वस्त्र समेटे और कोकनाड़ा पर्वत की चोटी पर एक आसन बिछाया। भगवान बुद्ध कोकनाड़ा पर्वत पर आरोहित हुए और भिक्षु संघ के साथ वहाँ बिछे आसन पर बैठ गए। राजा के पुत्र बोधि ने अपने हाथों से भिक्षु संघ को, जिनके मुखिया बुद्ध थे, मीठे और नरम दोनों प्रकार के भोजन से तृप्त किया। जब भगवान बुद्ध ने अपना कुंड और हाथ धो लिए, तो बोधि एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें धर्म प्रवचन देते हुए उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया। जब उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया गया, प्रेरित किया गया, प्रोत्साहित किया गया और प्रसन्न किया गया...

धर्म प्रवचन के साथ, राजा का पुत्र बोधि अपने आसन से उठा और वहां से चला गया।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की सभा बुलाई, और धर्म प्रवचन देने के बाद उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, अनुष्ठान के लिए बिछाए गए वस्त्र पर चलना मना है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

4. उसी समय एक स्त्री, जिसका गर्भपात हो गया था और जिसने भिक्षुओं को आमंत्रित किया था तथा उनके सम्मान में वस्त्र बिछाए थे, ने उनसे कहा, 'महोदय, कृपया वस्त्र के ऊपर से कदम रखें।'

भिक्षु, किसी को नाराज करने के डर से, ऐसा नहीं करते थे।

'महोदय, कृपया इस कपड़े के ऊपर से कदम रखें, सौभाग्य के लिए।'

भिक्षु, किसी को नाराज करने के डर से, ऐसा नहीं करते थे।

तब उस महिला ने बुदबुदाते हुए, नाराज़गी जताते हुए और आक्रोशित होकर कहा, 'जब उनसे सौभाग्य के लिए कपड़े पर कदम रखने का अनुरोध किया जाता है, तो उनके आदरणीय लोग ऐसा करने से कैसे इनकार कर सकते हैं?'

भिक्षुओं ने उस स्त्री के बड़बड़ाने, नाराज़ होने और क्रोधित होने के बारे में सुना। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गृहस्थों के सौभाग्य के लिए अनुरोध किए जाने पर, अनुष्ठानिक प्रयोजनों के लिए बिछाए गए वस्त्र पर से गुजरने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु पैर पोंछने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली चटाई पर कदम रखने से डरते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पैर पोंछने के लिए इस्तेमाल होने वाली चटाई पर कदम रखने की अनुमति देता हूँ।'

यहां पाठ का दूसरा भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला(5.20) | अगला(5.22) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.22

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.21) | अगला(5.23) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-22.

1. जब भगवान बुद्ध भग्गा में अपनी इच्छानुसार समय बिता चुके, तब वे सावत्थी की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सीधे यात्रा करते हुए वे उचित समय पर सावत्थी पहुँचे और वहाँ सावत्थी में वे जेतवन में अनाथपिंडिका के आराम (मठ) में ठहरे।

मिगारा की माता विशाखा छोटे घड़े, मिट्टी के बने पैर साफ करने वाले और झाड़ू लेकर भगवान बुद्ध के पास गईं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। वहाँ बैठकर विशाखा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान बुद्ध, मेरे हाथों से ये वस्तुएँ स्वीकार करें, ताकि ये मेरे लिए दीर्घकाल तक आशीर्वाद और आनंद का स्रोत बनी रहें।" भगवान बुद्ध ने छोटे घड़े और झाड़ू स्वीकार कर लिए, परन्तु मिट्टी के बने पैर साफ करने वाले को स्वीकार नहीं किया।

तब भगवान बुद्ध ने निर्देश दिया (आदि, हमेशा की तरह, देखें 21.2, नीचे तक) और वह वहाँ से चली गईं। और भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छोटे घड़े और झाड़ू रखने की अनुमति देता हूँ। हे भिक्षुओं, मिट्टी के बने पैर साफ करने वाले यंत्रों का प्रयोग मत करो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पैर रगड़ने के लिए तीन प्रकार की वस्तुएँ रखने की अनुमति देता हूँ—अर्थात बलुआ पत्थर, कंकड़ और समुद्री झाग।'

2. [इसी तरह का पैराग्राफ समाप्त हो रहा है]

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पंखे और फूलदान इस्तेमाल करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.21) । अगला(5.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.23
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.22) । अगला(5.24) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-23.

1. उस समय संघ के पास मच्छर भगाने वाला पंखा आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मच्छर भगाने वाले पंखे का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

एक चुमारा (तिब्बती बैल की पूंछ, जिसे एक छड़ी पर लगाया जाता है, जिसका उपयोग किया जाता है)

मक्खियों को भगाने वाला एक सेवक संघ के कब्जे में आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, चामर का प्रयोग न करें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तीन प्रकार के चंवर की अनुमति देता हूँ - छाल से बने, उशीरा घास से बने और मोर की पूंछ (पंखों) से बने।'

2. [समान पैराग्राफ का अंत]

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें धूप से बचाव के लिए छाते का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बग्गिया भिक्षु धूप से बचने के लिए छाते लेकर घूम रहे थे। उसी समय एक उपासक अपने कुछ अनुयायियों (जो अजीवकों के अनुयायी थे) के साथ एक बगीचे में गए। अजीवकों के उन अनुयायियों ने दूर से छब्बग्गिया भिक्षुओं को धूप से बचने के लिए छाते लिए आते देखा; और उन्हें देखकर उन्होंने उस उपासक से कहा:

'क्या ये वही लोग हैं, महोदय, जिनका आप आदर करते हैं, जो राजकोष के स्वामी की तरह, अपने ऊपर धूप से बचाव के लिए छाता लिए हुए आ रहे हैं?'

'नहीं, महोदय। ये भिक्षु नहीं हैं; ये परिब्बाजक (भ्रमणशील भिक्षु) हैं।'

इसलिए उन्होंने शर्त लगाई कि वे भिक्षु हैं या नहीं। और जब उस उपासक ने उन्हें पहचान लिया, जब वे आए, तो वह बड़बड़ाया, नाराज़ हुआ और क्रोधित होकर बोला, 'ये ऋषि अपने ऊपर धूप से बचाव के लिए छाता लेकर कैसे घूम सकते हैं?'

भिक्षुओं ने उस उपासक के इस प्रकार बड़बड़ाने आदि के बारे में सुना।

और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, हे भिक्षुओं, जैसा कि वे कहते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

महान बुद्ध ने उन्हें फटकारा और कहा (आदि, हमेशा की तरह, देखें I, 1, 2, 3)। और जब उन्होंने उन्हें फटकारा और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, अपने ऊपर धूप से बचाव के लिए छाता न लगवाएं। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

3. उस समय एक भिक्षु बीमार था, और उसके ऊपर धूप से बचाव के लिए कोई छांव न होने के कारण वह बेचैन था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं बीमारों के लिए धूप से बचाव की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु यह सोचकर कि 'भगवान बुद्ध ने केवल बीमारों के लिए ही धूप से बचने के लिए छांव की अनुमति दी है, न कि स्वस्थ लोगों के लिए,' आराम में या आराम के परिसर में धूप से बचने के लिए छांव का उपयोग करने से डरते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं बीमार व्यक्ति को, या स्वस्थ व्यक्ति को भी, आराम में या आराम के परिसर में अपने ऊपर धूप से बचाव के लिए छाता रखने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.22) । अगला(5.24) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.24
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.23) । अगला(5.25) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-24.

1. उस समय एक भिक्षु ने अपने पानपात्र को रस्सी से बांधकर एक लाठी पर लटका दिया और दोपहर के बाद एक गाँव के द्वार से बाहर निकला। लोग चिल्लाते हुए बोले, 'देखो, चोर जा रहा है; उसकी तलवार चमक रही है!' और उसे पकड़ लिया। लेकिन पहचान कर उन्होंने उसे छोड़ दिया। वह भिक्षु आराम लौटकर अन्य भिक्षुओं को यह बात बताई।

'तो फिर, महोदय, आप अपने साथ रस्सी से बंधी हुई छड़ी क्यों रखते थे?'

'जी हां, ऐसा ही है।'

वे भिक्षु जो संयमी थे, उन्होंने बड़बड़ाया (आदि, हमेशा की तरह, देखें I, 1, 2, 3) . . . . भगवान बुद्ध से कहा . . . उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा:

'हे भिक्षुओं, तुम्हें रस्सी से बंधी हुई लाठी लेकर नहीं चलना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय एक भिक्षु बीमार था और वह बिना लाठी के इधर-उधर नहीं जा सकता था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें बीमार भिक्षु को लाठी का प्रयोग करने की अनुमति (इजाज़त) देने की अनुमति देता हूँ। और हे भिक्षुओं, इस प्रकार अनुमति दी जानी चाहिए। हे भिक्षुओं, उस बीमार भिक्षु को संघ में जाना चाहिए [यहाँ कम्मवक के शब्द ठीक वैसे ही हैं जैसे V, 20, 7 में हैं]'

3. [इसी तरह के अनुच्छेद जो कम्मवकस के साथ समाप्त होते हैं, कटोरे को रस्सी से उठाने और लाठी और रस्सी दोनों से उठाने की अनुमति देते हैं।]

<<<< पिछला(5.23) । अगला(5.25) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.25
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.24) । अगला(5.26) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-25.

1. उस समय एक भिक्षु जुगाली करता था, और वह लगातार जुगाली करते हुए अपने पशुओं के चारे को चबाता रहता था।

भिक्षु आपस में बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और क्रोधित होकर बोले, 'यह भिक्षु समय के बाहर भोजन करता है।' और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, यह भिक्षु कुछ ही समय पहले बैल की अवस्था से मुक्त हुआ है। हे भिक्षुओं, मैं जुगाली करने वाले पशुओं को जुगाली करने की अनुमति देता हूँ। परन्तु हे भिक्षुओं, मुख के द्वार से बाहर लाई गई किसी भी वस्तु को इस प्रकार चबाया नहीं जाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

<<<< पिछला(5.24) । अगला(5.26) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.26
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.25) । अगला(5.27) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-26.

1. उस समय एक निश्चित भीड़ थी

संघ को भोजन उपलब्ध कराने का विशेषाधिकार प्राप्त करने की व्यवस्था की गई थी, और भोजन कक्ष में चावल के कई टुकड़े गिरने दिए गए थे।

लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और आक्रोशित होकर कहने लगे, 'शाक्य-पुत्रीय भिक्षुओं को जब भोजन दिया जा रहा है, तो वे उसे इतनी लापरवाही से कैसे ग्रहण कर सकते हैं? चावल का प्रत्येक एक दाना सौ गुना परिश्रम का परिणाम है!'

भिक्षुओं ने लोगों को इस प्रकार बड़बड़ाते हुए सुना, और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि जो कुछ भी तुम्हें देते समय गिर जाए, उसे तुम स्वयं उठा लो और खा लो। हे भिक्षुओं, वह तुम्हें देने वालों द्वारा भेंट किया गया है।'

<<<< पिछला(5.25) । अगला(5.27) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.27
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.26) । अगला(5.28) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-27.

1. उस समय एक भिक्षु लंबे नाखूनों के साथ भिक्षा मांगने निकला। एक स्त्री ने उसे देखकर उस भिक्षु से कहा: 'श्रीमान, मेरे साथ आइए और मुझसे संबंध बनाइए।'

'नहीं, बहन, यह उचित नहीं है।'

'यदि आप ऐसा नहीं करते, महोदय, तो मैं तुरंत अपने नाखूनों से अपने अंगों को खरोंच लूंगा, और क्रोधित होने का नाटक करते हुए कहूंगा, "इस भिक्षु ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है।"'

'बहन, इस बात को अपने आप से सुलझा लो।'

उस स्त्री ने वैसा ही किया जैसा उसने कहा था, और लोग दौड़कर आए और उस भिक्षु को पकड़ लिया। फिर उन्होंने स्त्री के नाखूनों पर चमड़ी और खून देखा; और यह देखकर उन्होंने भिक्षु को यह कहते हुए छोड़ दिया, 'यही वह भिक्षु है।'

यह काम उस स्त्री ने स्वयं किया है। भिक्षु ने नहीं किया है।

तब वह भिक्षु आराम में लौटकर अन्य भिक्षुओं को यह बात बताई।

'तो फिर, महोदय, आप लंबे नाखून क्यों पहनते हैं?'

'जी हां, ऐसा ही है।'

जो भिक्षु संयमी थे, उन्होंने बुदबुदाते हुए (आदि...) यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें लंबे नाखून नहीं रखने चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय भिक्षुओं ने अपने नाखूनों को नाखूनों से नोंचकर, दांतों से काटकर या दीवार पर रगड़कर निकाल दिया; जिससे उनकी उंगलियों को चोट लगी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, नाखून काटने वालों।'

उन्होंने अपने नाखून खून निकलने तक काट लिए थे, और उनकी उंगलियों में चोट लग गई थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने नाखूनों को मांस की लंबाई के अनुसार काटने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपने हाथों और पैरों के सभी बीस नाखूनों को पॉलिश करवाते थे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'उन लोगों की तरह जो अभी भी दुनियावी सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें बीस नाखूनों को चमकाने की अनुमति नहीं है। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें केवल उन पर से मैल हटाने की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय भिक्षुओं के बाल लंबे हो गए थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या भिक्षु एक दूसरे के बाल हटा सकते हैं?'

'हे प्रभु, वे हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तरकश, तरकश को तेज करने के लिए धार, जंग से बचाने के लिए सिपातिका गोंद से तैयार पाउडर, तरकश को रखने के लिए म्यान और नाई के सभी उपकरणों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय छब्बागिया भिक्षु (हमेशा की तरह) ये वस्त्र पहनते थे।

हे भिक्षुओं, नाई से दाढ़ी न कटवाएं, न उसे लंबा बढ़ने दें, न उसे बकरी की दाढ़ी की तरह ठुड्डी पर लंबा रखें, न उसे इस प्रकार काटें कि उसके चार कोने हों, न छाती के बाल काटें, न पेट के बाल आकृति के रूप में काटें, न मूंछें रखें, न गुप्तांगों के बाल हटाएं। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।

उस समय एक भिक्षु को फिस्टुला हो गया था, और उस पर मरहम नहीं लग रहा था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, रोग के कारण मैं तुम्हें गुप्तांगों से बाल हटाने की अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय छब्बागिया भिक्षु (और इसी प्रकार, पहले की तरह)

'हे भिक्षुओं, तुम्हें अपने बाल चाकू से नहीं कटवाने चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु के सिर पर एक घाव था, और उस बाल को उस्तरे से भी नहीं हटाया जा सकता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, रोग के कारण मैं तुम्हें चाकू से अपने बाल कटवाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु अपनी नाक के बालों को लंबा रखते थे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'शैतान की पूजा करने वालों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, नथुनों के बाल लंबे न रखें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षु अपनी नाक के बालों को मिट्टी के बर्तन के टुकड़े या मोम से खींचकर निकालते थे; जिससे उनकी नाक में दर्द होता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, चिमटे का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

अब उस समय छब्बागिया भिक्षु (आदि; पहले की तरह, के साथ समाप्त)

'हे भिक्षुओं, अपने सिर के सफेद बाल न नोंचें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

6. उस समय एक भिक्षु के कान मोम से बंद थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कान से मोम निकालने के लिए एक उपकरण का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

[फिर महावग्ग VI, 6, 21; 12, 3; चुलवग्ग V, 5, 2; 29, 2, आदि के अनुसार, उन पदार्थों के बारे में एक अनुच्छेद, जिनसे इसे बनाया जा सकता है।]

<<<< पिछला(5.26) । अगला(5.28) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.28
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.27) । अगला(5.29) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-28.

1. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने पीतल और तांबे के बर्तनों का बहुत भंडार जमा किया।

विहारों में दर्शन के लिए आने वाले लोग इसे देखकर आपस में बड़बड़ाने लगे, इत्यादि, और कहने लगे, 'जैसे वे लोग तांबा (बेचने के लिए) फैलाते हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें पीतल और तांबे के बर्तनों का अधिक भंडार नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय भिक्षु आँखों में मरहम लगाने के लिए डिब्बों का उपयोग करने से, उसे लगाने के लिए छोटी चपटी छड़ियों का उपयोग करने से, कान से मोम निकालने के उपकरणों का उपयोग करने से और (रेज़र, डंडे आदि के लिए) हैंडल का उपयोग करने से डरते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इन वस्तुओं का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपनी कमर की चादरों (जिन्हें गद्दी की तरह बिछाया गया था) पर आराम से बैठ गए, और कमर की चादरों के किनारे घिस गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, इस प्रकार आलस्य मत करो। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु बीमार था, और कुछ हस्तशिल्प के बिना वह बेचैन था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें करघे, शटल, डोरी, टिकट और करघे से संबंधित सभी उपकरणों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.27) । अगला(5.29) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.29
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.28) । अगला (5.30) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-29.

1. उस समय एक भिक्षु बिना कमरबंद पहने भिक्षा मांगने के लिए गांव में दाखिल हुआ, और सड़क पर उसका कमरबंद गिर गया। लोगों ने शोर मचाया, और वह भिक्षु लज्जित हो गया।

आराम (मठ) में लौटने पर उस भिक्षु ने यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई, और भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बिना कमरबंद के गाँव में प्रवेश करना मना है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं कमरबंद पहनने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु (आदि, हमेशा की तरह, अंत में) धारण करते थे।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें विशेष कमरबंद नहीं पहनना है—वे कमरबंद जो अनेक डोरियों से बुने हुए होते हैं।'

एक साथ, वे कमरबंद जो जल-सम्मोहन के सिर के समान बने हों, जिन पर डफली लगी हो, जिन कमरबंदों पर मनके लगे हों (या जिन पर आभूषण लटके हों)। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दो प्रकार के कमरबंद पहनने की अनुमति देता हूँ - एक कपड़े की पट्टियों से बने हुए, और दूसरे...

कमरबंद के किनारे उम्र के साथ-साथ क्षीण होते चले गए।

'हे भिक्षुओं, मैं किनारों पर अधिक चमकीली सामग्री की परत चढ़ाने और सिरों को मजबूत करने की अनुमति देता हूँ।'

कमरबंद का वह सिरा जहां गांठ बंधी थी, समय के साथ गलने लगा।

'मैं भिक्षुओं को एक बकल लगाने की अनुमति देता हूँ।'

[इसमें जिन पदार्थों से इसे बनाया जा सकता है, उन पर एक अनुच्छेद, हमेशा की तरह, महावग्ग VI, 12, 3; चुलवग्ग V, 5, 2, आदि देखें]

अंत में 'और धागे से बना हुआ' जोड़ते हुए।

3. उस समय पूज्य आनंद हल्के वस्त्र पहने हुए भिक्षा मांगने गांव गए और उनके वस्त्र बवंडर से उड़ गए।

आदरणीय आनंद ने आराम लौटकर यह बात भिक्षुओं को बताई; और भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक पत्थर (वजन के रूप में प्रयोग करने के लिए) या एक जंजीर की अनुमति देता हूँ।'

[ऊपर दिए गए अनुच्छेद के समान ही, इस अनुच्छेद में उन पदार्थों का वर्णन है जिनसे ब्लॉक बनाया जा सकता है।]

उस समय भिक्षुओं ने तुरंत उस ब्लॉक या जंजीर को अपने वस्त्रों से बांध लिया; और वस्त्र फट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपको फलक वस्त्र का एक टुकड़ा रखने की अनुमति देता हूँ जिससे आप ब्लॉक या चेन को जोड़ सकें।'

उन्होंने ब्लॉक या चेन के लिए फलाका कपड़े को चोगे के किनारे पर बांध दिया; और कोना खुल गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम ब्लॉक के लिए फलक वस्त्र को वस्त्र के किनारे पर बाँध लो, और चेन के लिए फलक वस्त्र को वस्त्र से सात या आठ उंगल ऊपर बाँध लो।'

4. उस समय छब्बागिया भिक्षु (आदि, हमेशा की तरह, अंत में) धारण करते थे।

हे भिक्षुओं, गृहस्थों की तरह अंतर्वस्त्र न पहनें, न ही उन्हें हाथी की सूंड की तरह व्यवस्थित करें, न ही मछली पकड़ने के जाल की तरह, न ही चारों कोने खुले हुए, न ही फूलों की माला की तरह, न ही आभूषणों की पंक्तियों की तरह। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।

[इसी तरह का पैराग्राफ, अंत]

'हे भिक्षुओं, गृहस्थों की तरह ऊपरी वस्त्र न पहनें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

5. [इसी तरह का पैराग्राफ, अंत]

'हे भिक्षुओं, राजा के द्वारपालों की तरह अंतर्वस्त्र मत पहनो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (5.28) | अगला (5.30) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.30

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.29) | अगला(5.31) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-30.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षु दोहरा पिंगो (कंधों पर भार ढोने वाला जुआ) धारण करते थे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'राजा के द्वारपालों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, दो पिंगो ले जाना मना है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक पिंगो, दो भारवाहकों के लिए एक पिंगो, और अपने सिर पर, कंधों पर, कूल्हों के सहारे, और पीठ पर भार लटकाकर ले जाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.29) | अगला(5.31) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.31

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (5.30) | अगला (5.32) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-31.

1. उस समय भिक्षु दांत साफ करने वाली छड़ियों का प्रयोग नहीं करते थे, और उनके मुंह से दुर्गंध आने लगी थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, दाँत साफ करने वाली छड़ियों का उपयोग न करने के ये पाँच नुकसान हैं—यह आँखों के लिए हानिकारक है—मुँह से दुर्गंध आती है—भोजन के स्वाद के मार्ग शुद्ध नहीं होते—पित्त और कफ भोजन में मिल जाते हैं—और भोजन का स्वाद अच्छा नहीं लगता (जो इनका उपयोग नहीं करता)। हे भिक्षुओं, दाँत साफ करने वाली छड़ियों का उपयोग न करने के ये पाँच नुकसान हैं।

हे भिक्षुओं, इसके पाँच लाभ हैं (आदि, जो पिछले कथन का विलोम है)।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दांत साफ करने वाली छड़ें देता हूँ।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु लंबी दाँतों वाली छड़ियों का प्रयोग करते थे; और उनसे समनेरों को मारते भी थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें लंबी दाँतों वाली छड़ियों का प्रयोग नहीं करना है।'

जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आठ उंगलियों की लंबाई तक की दाँतों की छड़ें रखने की अनुमति देता हूँ। और समनेरों को उनसे नहीं मारा जाना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।

उस समय एक भिक्षु ने बहुत छोटी लकड़ी का इस्तेमाल किया, जो उसके गले में फंस गई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको बहुत छोटी दाँथनी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको कम से कम चार उँगली लंबी दाँथनी का प्रयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (5.30) | अगला (5.32) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.32

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.31) | अगला(5.33) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-32.

1. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने जंगल में आग लगा दी।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'जैसे कोयले जलाने वाले।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें लकड़ियों में आग नहीं लगानी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय विहार घास के घने आवरण में छिपे हुए थे, और जब जंगल में आग लगी तो विहार जल गए। भिक्षुओं ने किसी को नाराज करने के डर से अपनी सुरक्षा के लिए जवाबी आग नहीं जलाई।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, जब जंगल खुले हों।'

जवाबी कार्रवाई करने के लिए आग लगाओ, और इस प्रकार अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करो।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षु वृक्षों पर चढ़ गए और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदने लगे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'बंदरों की तरह।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, वृक्षों पर चढ़ना मना है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय कोसल देश में एक भिक्षु श्रावस्ती जा रहे थे, तभी रास्ते में एक हाथी उनका पीछा करने लगा। भिक्षु ने पेड़ की तलहटी में शरण ली, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं हाथी नाराज न हो जाए, इसलिए वे पेड़ पर नहीं चढ़े। हाथी दूसरे रास्ते से आगे बढ़ गया।

उस भिक्षु ने सावत्थी पहुंचकर यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई (और भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई)।

'हे भिक्षुओं, जब कोई कार्य करना हो तो मैं तुम्हें मनुष्य की ऊँचाई तक वृक्ष पर चढ़ने की अनुमति देता हूँ; और दुर्भाग्य की स्थिति में तुम जितनी ऊँचाई तक चाहो चढ़ सकते हो।'

<<<< पिछला(5.31) । अगला(5.33) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.33
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.32) । अगला(5.34) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-33.

1. उस समय यमेलु और टेकुला नाम के दो भिक्षु भाई थे, जो जन्म से ब्राह्मण (पुजारी) थे और वाणी एवं उच्चारण में निपुण थे। वे भगवान बुद्ध के स्थान पर गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'हे प्रभु, वर्तमान समय में नाम, वंश, जन्म और परिवार में भिन्नता वाले भिक्षु संसार से निकले हैं। ये अपनी-अपनी बोली में बुद्धों के वचन को दोहराकर उन्हें विकृत कर रहे हैं। हे प्रभु, आइए हम बुद्धों के वचन को छंदो (वर्तमान में संस्कृत) छंदों में पिरोएं।'

'हे मूर्ख लोगो, तुम ऐसा कैसे कह सकते हो, "हे प्रभु, आइए हम बुद्धों के वचनों को छंदों में पिरोएँ?" हे मूर्ख लोगो, इससे न तो अधर्मियों का धर्म परिवर्तन होगा और न ही धर्मान्तरितों की संख्या बढ़ेगी; बल्कि इससे अधर्मी लोग धर्मान्तरित ही रहेंगे और जो धर्मान्तरित हो चुके हैं वे विमुख हो जाएँगे।'

और जब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं को फटकार लगाई और धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, बुद्धों के वचनों को छंदो (वर्तमान में संस्कृत) पद्य में न ढालें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आप सभी को बुद्धों के वचनों को अपनी-अपनी बोली में सीखने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने लोकायत प्रणाली सीखी।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'उन लोगों की तरह जो अब भी दुनिया के सुखों का आनंद लेते हैं!'

भिक्षुओं ने लोगों को इस प्रकार बड़बड़ाते हुए सुना; और उन भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या लोकायत को मूल्यवान मानने वाला व्यक्ति इस सिद्धांत और अनुशासन का पूर्ण लाभ उठा सकता है, या इसमें पूर्ण विकास प्राप्त कर सकता है, या इसमें पूर्ण व्यापकता प्राप्त कर सकता है?'

'हे प्रभु, ऐसा नहीं हो सकता।'

'या क्या वह व्यक्ति जो इस सिद्धांत और अनुशासन को मूल्यवान मानता है, लोकायत प्रणाली सीख सकता है?'

'हे प्रभु, ऐसा नहीं हो सकता।'

'हे भिक्षुओं, तुम्हें लोकायत पद्धति का अध्ययन नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु लोकायत प्रणाली का शिक्षण करते थे।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'ये तो उन लोगों की तरह हैं जो अभी भी दुनिया के सुखों का आनंद ले रहे हैं!'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको लोकायत प्रणाली का शिक्षण नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा।'

[पिछले पैराग्राफ के समान, समापन पैराग्राफ]

'हे भिक्षुओं, तुम्हें निम्न स्तर की कलाओं (भविष्यवाणी, मंत्रोच्चार, शकुन, ज्योतिष, देवताओं को यज्ञ, जादू टोना और कुटिल चिकित्सा) को सीखना या सिखाना नहीं चाहिए।'

3. उस समय जब भगवान बुद्ध एक विशाल सभा से घिरे हुए धम्म का उपदेश दे रहे थे, तभी उन्हें छींक आ गई। भिक्षुओं ने एक ज़ोरदार जयजयकार किया, 'भगवान बुद्ध की जय हो! सुखी भगवान की जय हो!' और इस जयजयकार से प्रवचन बाधित हो गया। तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

'अब, हे भिक्षुओं, यदि किसी व्यक्ति के छींकने पर कोई उससे कहे, "तुम्हारी आयु दीर्घ हो," तो क्या वह उस कारण से जी सकता है या मर सकता है?'

'ऐसा नहीं है, प्रभु।'

'हे भिक्षुओं, छींक आने पर किसी को "आपकी आयु दीर्घायु हो" कहकर पुकारना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय जब भिक्षु छींकते थे, तो लोग उनसे कहते थे, 'आपकी आयु लंबी हो!' और भिक्षु, कहीं उन्हें ठेस न पहुँचे, इसलिए कोई उत्तर नहीं देते थे। लोग आपस में बड़बड़ाते, नाराज़ होते और क्रोधित होकर कहते, 'जब लोग कहते हैं, "आपकी आयु लंबी हो," तो शाक्य-पुत्र समन कैसे उत्तर देना भूल सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, गृहस्थ लोग शुभ वाक्य बोलने के आदी होते हैं। हे भिक्षुओं, मैं आपको यह अनुमति देता हूँ कि जो गृहस्थ आपसे कहें, "आपकी आयु दीर्घायु हो!", उन्हें आप उत्तर में कहें, "आपकी आयु दीर्घायु हो!"'

<<<< पिछला(5.32) | अगला(5.34) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खंडक >> 5.34
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.33) । अगला(5.35) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-34.

1. उस समय भगवान बुद्ध एक विशाल सभा से घिरे हुए धम्म का उपदेश दे रहे थे। तभी एक भिक्षु, जिसने प्याज खाया था, यह सोचते हुए अलग बैठ गया, 'भिक्षुओं को नाराज न होने दो!'

भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु को अलग बैठे देखा; और उसे देखकर उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, अब वह भिक्षु अलग क्यों बैठा है?'

'हे प्रभु, इस भिक्षु ने प्याज खा लिया है, और

भिक्षुओं को नाराज न करने के लिए वह अलग बैठ गया।

लेकिन क्या, हे भिक्षुओं, ऐसा कुछ भी खाया जाना चाहिए, जो खाने वाले को इस प्रकार के धम्म उपदेश से दूर रखे?

'जी नहीं, बिल्कुल नहीं, प्रभु।'

'हे भिक्षुओं, तुम्हें प्याज नहीं खाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

2. उस समय पूज्य सारिपुत्त के पेट में गैस हो गई थी। पूज्य महा मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य सारिपुत्त थे, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा:

'मित्र सारिपुत्त, पहले जब तुम्हारे पेट में गैस होती थी, तो तुम्हें कैसे राहत मिलती थी?'

'प्याज खाकर, मेरे दोस्त।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें रोग के कारण प्याज खाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(5.33) । अगला(5.35) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.35
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.34) । अगला(5.36) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-35.

1. फिर उसी समय भिक्षुओं ने आराम में इधर-उधर पेशाब कर दिया, जिससे आराम अपवित्र हो गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आराम के) एक तरफ जल करने की अनुमति देता हूँ।'

अरमा आक्रामक हो गया।

[इस अध्याय का शेष भाग अनुवाद के लिए लगभग असंभव है। इसमें कई भिक्षुओं के एक साथ रहने से उत्पन्न होने वाली विभिन्न स्वच्छता संबंधी समस्याओं का वर्णन किया गया है। ऐसी प्रत्येक समस्या को भगवान बुद्ध को अत्यंत गंभीरता से सूचित किया गया है, और उन्होंने इसका समाधान खोज निकाला है। कुल मिलाकर, शौचालय बनाने की विधि बताई गई है, और ऊपर अध्याय 14 में स्नानागार के संबंध में उल्लिखित सभी उपाय, जैसे कि आसन, द्वार, सीढ़ियाँ, प्लास्टर आदि, यहाँ शब्दशः दोहराए गए हैं।]

<<<< पिछला(5.34) । अगला(5.36) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.36
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.35) । अगला(5.37) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-36.

अब उस समय छब्बागिया भिक्षु इस प्रकार की बुरी प्रथाओं का पालन करते थे - वे [आदि, शब्दशः, जैसा कि 1, 13, 1, 2 पर लंबी सूची में अंत तक है] लगाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें अनेक प्रकार के बुरे कर्मकांडों का पालन नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

<<<< पिछला(5.35) । अगला(5.37) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> पाँचवाँ खन्धक >> 5.37
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.36) । अगला(6.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

पांचवां खंडक (भिक्षुओं के दैनिक जीवन पर)

अध्याय-37.

1. अब जब उरुवेला के पूज्य कस्सपा (संसार से) चले गए, तो संघ को पीतल, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों की बहुत सी संपत्ति प्राप्त हुई। और

भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने किस प्रकार के पीतल के बर्तन, लकड़ी की वस्तुएं और मिट्टी के बर्तनों की अनुमति दी है और किस प्रकार की अनुमति नहीं दी है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, जब उन्होंने धर्म प्रवचन दिया, भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सभी प्रकार के पीतल के बर्तन रखने की अनुमति देता हूँ, सिवाय शस्त्रों के—सभी प्रकार की लकड़ी की वस्तुएँ, सिवाय दीवानों, लंबी भुजाओं वाली कुर्सियों, कटोरे और जूतों के—और सभी प्रकार के मिट्टी के बर्तन, सिवाय कटक और बड़े मिट्टी के बर्तनों के जिनका उपयोग रहने के लिए झोपड़ियों के रूप में किया जाता है।'

=========
लघु विवरणों के साथ पांचवां खंडक यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(5.36) | अगला(6.1) >>>>

छठा खंडका (आवास और फर्नीचर)
(आवासों और फर्नीचर पर)

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(5.37) | अगला(6.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध राजगृह में वेलुवन में, कालंदक निवास में ठहरे हुए थे। उस समय भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को निवास के संबंध में कोई अनुमति नहीं दी थी। इसलिए भिक्षु कभी यहाँ, कभी वहाँ—जंगलों में, वृक्षों की तलहटी में, पहाड़ियों पर, गुफाओं में, पर्वतीय कंदराओं में, श्मशानों में, जंगलों में, खुले मैदानों में और भूसे के ढेरों में निवास करते थे। वे सुबह-सुबह यहाँ से वहाँ से—जंगलों से (जैसा कि पहले बताया गया है)—शालीन चाल-ढाल, इधर-उधर देखने, बाँहें फैलाने या पीछे खींचने में सलीके से चलते और मुड़ते हुए, दृष्टि झुकाए और गरिमापूर्ण आचरण के साथ आते थे।

2. उस समय राजगृह का सेठी (धनी व्यापारी) सुबह तड़के अपने बगीचे में गया। और राजगृह का सेठी

राजगाह ने उन भिक्षुओं को इधर-उधर से, जंगलों से (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 1 में अंत तक वर्णित है) आते देखा और उन्हें देखकर प्रसन्न हुआ। राजगाह का सेठी उन भिक्षुओं के पास गया और उनसे कहा:

'यदि, महोदय, मैं आपके लिए आवास बनवाऊं, तो क्या आप उन आवासों में निवास करेंगे?'

'ऐसा नहीं है, हे गृहस्थ। भगवान बुद्ध ने घर बनाने की अनुमति नहीं दी है।'

'तो महोदय, आप इस बारे में भगवान बुद्ध से पूछें और मुझे बताएं।'

"बहुत खूब, हे गृहस्थ," उन्होंने राजगृह के सेठी की प्रार्थना से सहमति जताते हुए कहा। फिर वे भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा:

'हे प्रभु, राजगृह के सेठी हमारे लिए आवास बनवाना चाहते हैं। हे प्रभु, हमें क्या करना चाहिए?'

तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, जब उन्होंने धर्म प्रवचन दिया, भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पाँच प्रकार के निवास स्थान प्रदान करता हूँ—विहार, अद्धयोग, बहुमंजिला आवास, अटारी, गुफाएँ।'

3. तब वे भिक्षु राजगृह के सेठी के पास गए और उनसे कहा, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने हमें निवास स्थान दिए हैं; इसलिए आप वही करें जो आपको उचित लगे।' और राजगृह के सेठी ने एक ही दिन में साठ निवास स्थान बनवा दिए।

4. और जब राजगृह के सेठी ने उन साठ आवासों का निर्माण पूरा कर लिया, तो वे उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध थे, और [उन्होंने उन्हें और भिक्षु संघ को अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया; और इसी तरह, हमेशा की तरह, उस समय तक जब भोजन के बाद, सेठी ने] भगवान बुद्ध से कहा:

हे प्रभु, मैंने पुण्य कर्म और स्वर्ग प्राप्ति के लिए ये साठ निवास स्थान बनवाए हैं। हे प्रभु, मुझे इनके संबंध में क्या करना चाहिए?

फिर, हे गृहस्थ, इन साठ निवासों को चारों दिशाओं के संघ को समर्पित करो, चाहे वे अभी उपस्थित हों या भविष्य में आएं।

'हे प्रभु!' राजगृह के सेठी ने भगवान बुद्ध की बात से सहमति जताते हुए कहा, और उन्होंने उन साठ निवास स्थानों को चारों दिशाओं के संघ के उपयोग के लिए समर्पित कर दिया, चाहे वे वर्तमान में हों या भविष्य में।

5. फिर भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में राजगृह के सेठी को धन्यवाद दिया:

वह सर्दी और गर्मी, दोनों को दूर रखता है, साथ ही शिकारी जानवरों, रेंगने वाले जीवों, मच्छरों और बरसाती मौसम में बारिश से भी बचाता है। और जब भयंकर गर्म हवाएँ चलती हैं, तो उन्हें भी दूर रखता है।

ख. संघ को विहार देना, सुरक्षा और शांति के लिए, ध्यान और चिंतन करने के लिए, बुद्ध इसे सर्वश्रेष्ठ उपहार कहते हैं।

ग. इसलिए, योग्य व्यक्ति अपने कल्याण को ध्यान में रखते हुए, सुंदर मठों का निर्माण करवाए और वहाँ विद्वानों को ठहराए।

घ. वह प्रसन्न मन से सीधे हृदय वालों को भोजन, पेय, वस्त्र और निवास स्थान प्रदान करे।

ई. तब वे उसे सत्य का उपदेश देंगे—वह सत्य जो हर दु:ख को दूर करता है, और जब मनुष्य उस सत्य को जान लेता है तो वह फिर कभी पाप नहीं करता और मर जाता है!

और जब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में राजगृह के सेठी को धन्यवाद दिया, तो वे अपने आसन से उठे और वहां से चले गए।

<<<< पिछला(5.37) । अगला(6.2) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.1) । अगला(6.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय दो।

1. लोगों ने सुना, 'भगवान बुद्ध ने विहारों की अनुमति दे दी है।' और उन्होंने उत्साहपूर्वक विहारों का निर्माण किया। उन विहारों में द्वार नहीं थे, और सांप, बिच्छू और कनखजूरे अंदर घुस आए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक द्वार की अनुमति देता हूँ।'

उन्होंने दीवार में छेद किए और दरवाजे को रस्सी या लताओं से बांध दिया। चूहों और दीमकों ने उन्हें कुतर दिया; और जब दरवाजे को बांधने वाली चीजें कुतर गईं, तो दरवाजे गिर गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं दरवाजे के चौखटों और चौखट को, जो गारे की तरह खोखले हों, ताकि दरवाजा उनमें घूम सके, और दरवाजे पर उभरे हुए हिस्सों को, जिन पर वह घूम सके, अनुमति देता हूँ।'

दरवाजे नहीं खुल रहे थे।

'हे भिक्षुओं, मैं द्वार को खींचने के लिए एक डोरी डालने हेतु एक छेद की अनुमति देता हूँ, और उस उद्देश्य के लिए एक डोरी भी प्रदान करता हूँ।'

दरवाजों को मजबूती से बंद नहीं किया जा सका।

'हे भिक्षुओं, मैं दरवाजे पर कुंडी लगाने के लिए छल्ले, दरवाजे के चौखट के किनारे पर लकड़ी के ब्लॉक जिनमें कुंडी के लिए एक खांचा हो, कुंडी को सुरक्षित करने के लिए एक पिन और एक कुंडी की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु दरवाजा खोलने में असमर्थ थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तीन प्रकार की कुंजियों और चाबियों की अनुमति देता हूँ—कांस्य की कुंजियाँ, कठोर लकड़ी की कुंजियाँ और सींग की कुंजियाँ।'

जब कोई भी उन्हें खोलकर अंदर प्रवेश करता था, तो विहार असुरक्षित हो जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक यंत्र और उसमें एक पिन लगाने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय विहार छप्पर से बने होते थे; शीत ऋतु में वे ठंडे होते थे, और ग्रीष्म ऋतु में गर्म।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इन्हें (खाल से) ढकने और भीतर एवं बाहर से लेप लगाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय विहारों में खिड़कियां नहीं थीं, और वे आंखों के लिए हानिकारक थीं, और उनमें अप्रिय गंध आती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तीन प्रकार की खिड़कियों की अनुमति देता हूँ—रेलिंग से बनी खिड़कियाँ, जाली से बनी खिड़कियाँ और लकड़ी की पट्टियों से बनी खिड़कियाँ।'

गिलहरी और चमगादड़ खिड़की के खुले हिस्से से अंदर घुस गए।

'हे भिक्षुओं, मैं खिड़की के पर्दों (या ब्लाइंड्स) की अनुमति देता हूँ।'

गिलहरी और चमगादड़ अब भी ब्लाइंड (और दीवार) के बीच की दरारों से अंदर घुस जाते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं रिक्त स्थानों को भरने के लिए शटर, रोल या बैग की अनुमति देता हूँ।'

3. उस समय भिक्षु ज़मीन पर सोते थे, और उनके अंग और वस्त्र दोनों ही गंदे हो गए थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं घास से बनी चटाइयों की अनुमति देता हूँ।'

चूहों और दीमकों ने चटाइयों को कुतर दिया था।

'हे भिक्षुओं, मैं कमरे की दीवार से सटाकर या बरामदे के नीचे घर की बाहरी दीवार से सटाकर बनाई गई ठोस बेंच या दीवान की अनुमति देता हूँ।'

ठोस बेंच पर बैठने से उनके अंगों में दर्द होने लगा।

'हे भिक्षुओं, मैं बांस की पट्टियों से बने पलंगों की अनुमति देता हूँ।'

अब उस समय एक अर्थी जैसा मसरका शयनकक्ष - एक मसरक कुर्सी - एक अर्थी जैसा बुंदिकाबद्ध शयनकक्ष - एक बुंदिकबद्धा कुर्सी - एक अर्थी जैसा कुलीरा-पडाका शयनकक्ष - एक कुलीरा-पडाका कुर्सी - एक अर्थी जैसा अहक्का-पडाका शयनकक्ष - एक अहक्का-पडाका कुर्सी - संघ के कब्जे में आ गया था।

उन्होंने (प्रत्येक मामले में) यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (इन सभी चीजों की) अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय संघ के पास एक आयताकार कुर्सी—एक आरामकुर्सी—एक सोफा—बाजूबंद सोफा—एक राजकीय कुर्सी—एक गद्दीदार कुर्सी—एक चबूतरे पर रखी कुर्सी—कई टांगों वाली कुर्सी—एक तख्ता (जिस पर लेटना हो)—एक बेंत की कुर्सी—एक भूसे की कुर्सी आ गई थी।

उन्होंने (प्रत्येक मामले में) यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (इन सभी चीजों की) अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय छब्बागिया भिक्षु ऊंचे पलंगों पर सोते थे।

विहार (मठ) में दर्शन के लिए आने वाले लोग जब उन्हें देखते थे, तो वे बुदबुदाते थे, इत्यादि, यह कहते हुए, 'ऐसा लगता है जैसे वे अभी भी सांसारिक सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें ऊंचे पलंगों पर नहीं सोना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु एक नीची चारपाई पर सो रहा था, तभी उसे एक सांप ने काट लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तुम्हारे पलंगों के लिए सहारा प्रदान करता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपने पलंगों के लिए ऊंचे सहारे का इस्तेमाल करते थे और इन सहारे के बल आगे-पीछे झूलते थे।

'हे भिक्षुओं, अपने पलंगों के लिए ऊंचे आधार का प्रयोग न करें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। मैं आपको आठ इंच तक की लंबाई वाले ऐसे आधारों की अनुमति देता हूं।'

6. उस समय संघ के पास काफी मात्रा में धागा आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पलंग पर (धागे की एक आकृति) बुनने की अनुमति देता हूँ।'

पलंग के किनारों के चारों ओर रस्सी लपेटने में काफी रस्सी खर्च हो गई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पलंग के किनारों को छेदने और इस प्रकार धागे को आर-पार बुनने की अनुमति देता हूँ।'

उनके कब्जे में एक कपड़ा आ गया था।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, इसे कालीन की तरह इस्तेमाल करने की अनुमति देता हूँ।'

उनके कब्जे में रुई से भरा एक गद्दा आ गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इन तीन प्रकारों में से किसी भी प्रकार की रुई को कंघी करके तकिए बनाने की अनुमति देता हूँ—वृक्षों पर उगने वाली रुई, लताओं पर उगने वाली रुई और पोटाकी घास से उगने वाली रुई।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु मनुष्य के शरीर के आधे आकार के तकियों का उपयोग करते थे।

विहारों में दर्शन के लिए आने वाले लोग इसे देखकर आपस में बड़बड़ाने लगे, इत्यादि, और कहने लगे, 'ऐसा लगता है जैसे वे अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हों।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, आपको मनुष्य के शरीर के आधे आकार के तकिये का उपयोग नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको मनुष्य के सिर के आकार के तकिये का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

7. उस समय राजगृह में एक ऊँचे स्थान पर उत्सव मनाया जा रहा था। लोगों ने उच्च अधिकारियों के लिए ऊन, सूती कपड़े, छाल, घास या पत्तों से भरे तकिये बनवाए थे। उत्सव समाप्त होने पर उन्होंने चमड़े के तकिये फाड़ दिए और उन्हें ले गए। भिक्षुओं ने देखा कि उत्सव स्थल पर बहुत सारा ऊन, सूती कपड़ा, छाल, घास और पत्ते फेंके पड़े थे; यह देखकर उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं पाँच प्रकार के तकियों की अनुमति देता हूँ—जो ऊन, सूती कपड़े, छाल, घास या तालिपोट के पत्तों से भरे होते हैं।'

उस समय संघ के पास एक पलंग आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम इससे तकिया ढक सको।'

उस समय भिक्षु पलंग के तकिये कुर्सियों पर और कुर्सी के तकिये पलंगों पर मोड़ कर रखते थे, और इस तरह तकिये टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गद्देदार कुशनों से ढकी कुर्सियाँ और पलंग उपलब्ध कराता हूँ।'

उन्होंने पलंगों और कुर्सियों को बिना नीचे कपड़ा बिछाए ही ढक दिया, जिसके परिणामस्वरूप नीचे से रुई बाहर निकल आई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें पहले पलंगों या कुर्सियों के नीचे कपड़ा बिछाने और फिर उन पर गद्दी लगाने की अनुमति देता हूँ।'

उन्होंने आवरण फाड़ दिए और उन्हें अपने साथ ले गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें (वस्त्रों पर रंग छिड़कने की) अनुमति देता हूँ।'

फिर भी वे उन्हें ले गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें धब्बेदार रंग वाले आवरणों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

फिर भी वे उन्हें ले गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें केवल मनुष्य के हाथ के आकार के धब्बों में ही आवरणों को रंगने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला(6.1) | अगला(6.3) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.2) | अगला(6.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-3.

1. उस समय तित्तियाओं के शयनकक्ष सफेदी से पुते हुए थे, उनके कमरों के फर्श काले रंग से रंगे हुए थे और दीवारें लाल चूने से रंगी हुई थीं। बहुत से लोग उनके शयनकक्षों को देखने जाते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपके विहारों में सफेदी, काले रंग और लाल रंग के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय खुरदरी दीवारों पर सफेदी ठीक से नहीं टिकती थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनाज के छिलकों से बनी छोटी-छोटी गोलियां लगाने की अनुमति देता हूं; और जब तुम अपने हाथों से असमानता दूर कर लो, तो सफेदी लगा दो।'

सफेदी चिपक नहीं रही थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें कोमल मिट्टी लगाने की अनुमति देता हूँ; और जब तुम अपने हाथों से असमानता दूर कर लो, तो सफेदी लगा दो।'

फिर भी सफेदी चिपक नहीं रही थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें वृक्षों के कीचड़ या पेस्ट का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय लाल चाक का रंग खुरदरी दीवारों पर नहीं टिकता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनाज के छिलकों से बनी छोटी-छोटी गोलियां लगाने की अनुमति देता हूं; और जब तुम अपने हाथों से असमानता दूर कर लो, तो लाल चाक का रंग लगाओ।'

लाल रंग चिपक नहीं रहा था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चावल के दानों पर छिलकों के नीचे चिपकी हुई लाल रंग की मिट्टी को उसमें मिलाकर लगाने की अनुमति देता हूँ; और जब तुम अपने हाथों से असमानता को हटा लो, तब लाल रंग का पदार्थ लगाओ।'

फिर भी लाल रंग का पदार्थ चिपक नहीं रहा था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सरसों के बीज से बने पेस्ट और मोम के तेल का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

यह दीवार पर बहुत अधिक मात्रा में, बड़ी-बड़ी बूंदों के रूप में जमा हुआ था।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, इसे कपड़े से पोंछ लो।'

उस समय खुरदरी जमीन पर काला रंग का पदार्थ नहीं पड़ा था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनाज के छिलके लगाने की अनुमति देता हूँ।'

छोटी-छोटी गोलियां बना लें; और जब आप अपने हाथों से असमानता को दूर कर लें, तो उस पर काला रंग लगा दें।'

काला रंग चिपकने वाला पदार्थ नहीं था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें केंचुओं के मल से मिश्रित मिट्टी लगाने की अनुमति देता हूँ; और जब तुम अपने हाथों से असमानता दूर कर लो, तो उस पर काला रंग लगाओ।'

फिर भी काला रंग चिपकने नहीं लगा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, कीचड़ और कसैले तरल पदार्थ का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने अपने विहारों पर कल्पनाशील चित्र बनवाए थे—पुरुषों की आकृतियाँ, और महिलाओं की आकृतियाँ।

विहारों के दर्शन के लिए जाते समय जब लोगों ने उन्हें देखा, तो वे बुदबुदाए, इत्यादि, यह कहते हुए, 'ऐसा लगता है जैसे वे अभी भी संसार के सुखों का आनंद ले रहे हों।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें मनुष्यों और पशुओं की काल्पनिक चित्रकारी नहीं करनी चाहिए।'

महिलाओं। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें मालाओं, लताओं, अस्थि-हुकड़ों और अलमारियों के चित्र बनाने की अनुमति देता हूँ।

3. अब उस समय विहारों का तहखाना बहुत नीचा था (आदि, जैसा कि वी, 11, 6 में छत, सीढ़ियों और रेलिंग के बारे में बताया गया है)।

उस समय विहार लोगों से खचाखच भरे रहते थे। भिक्षु सोने के लिए लेटने में शर्म महसूस करते थे।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, पर्दों का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

उन्होंने पर्दे उठाए और अंदर झांका।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें विहार की आधी ऊंचाई की लकड़ी और प्लास्टर की दीवार बनाने की अनुमति देता हूँ।'

वे इस आधी दीवार के ऊपर से देख रहे थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के आंतरिक कक्ष बनाने की अनुमति देता हूँ—पालकी के आकार के कक्ष, क्वार्ट माप के आकार के कक्ष और ऊपरी मंजिल पर कक्ष।'

उस समय भिक्षुओं ने छोटे विहारों के बीच में आंतरिक कक्ष बनाए थे, और उनमें घूमने-फिरने की जगह नहीं थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छोटे विहारों के एक तरफ और बड़े विहारों के बीच में भीतरी कक्ष बनाने की अनुमति देता हूँ।'

4. उस समय विहार की लकड़ी और प्लास्टर की दीवार का निचला हिस्सा जर्जर हो गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें लकड़ी के सहारे लगाने की अनुमति देता हूँ।'

विहार की लकड़ी और प्लास्टर की दीवार पर बारिश का पानी रिस रहा था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक सुरक्षात्मक व्यवस्था और बंधन प्रदान करता हूँ।'

उसी समय एक साँप छत से गिरकर एक भिक्षु की पीठ पर जा गिरा। वह भयभीत हो गया और चिल्लाने लगा। भिक्षु दौड़कर आए और उससे बोले, "हे भिक्षु, आप क्यों चिल्ला रहे हैं?" तब भिक्षु ने यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को सुनाई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें छत पर कपड़ा लगाने की अनुमति देता हूँ।'

5. उस समय भिक्षुओं ने अपने थैले पलंगों के चरणों में और कुर्सियों के चरणों में टांग दिए; और उन्हें चूहों और दीमकों ने कुतर दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दीवार में पिन और हड्डी के हुक लगाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षुओं ने अपने वस्त्र पलंगों और कुर्सियों पर रख दिए, और वे वस्त्र फट गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अपने वस्त्र टांगने के लिए बांस और अपने वस्त्र टांगने के लिए डोरियाँ प्रदान करता हूँ।'

उस समय विहारों में न तो बरामदे थे और न ही कोई सुरक्षा व्यवस्था थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें बरामदे, ढकी हुई छतें, भीतरी बरामदे और लटकती हुई छज्जे रखने की अनुमति देता हूँ।'

बरामदे बहुत ही सार्वजनिक थे; और भिक्षु उनमें सोने के लिए लेटने में शर्म महसूस करते थे।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक ऐसे पर्दे के रूप में व्यवस्था करने की अनुमति देता हूँ जिसे हटाया जा सकता है, या एक चल स्क्रीन के रूप में व्यवस्था करने की अनुमति देता हूँ।'

6. उस समय भिक्षु जब खुले में दोपहर का भोजन कर रहे थे, तो उन्हें सर्दी और गर्मी से परेशानी हो रही थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें, हे भिक्षुओं, एक सेवा कक्ष की अनुमति देता हूँ।'

सर्विस हॉल का तहखाना बहुत नीचा था (आदि, जैसा कि V, 11, 6 में अंत तक है)।

उस समय भिक्षुओं ने अपने वस्त्र खुले में जमीन पर फैला दिए, जिससे वे गंदे हो गए।

'हे भिक्षुओं, मैं खुले में वस्त्र टांगने के लिए बांस और वस्त्र टांगने के लिए डोरियों की अनुमति देता हूँ।'

7. पानी गर्म हो गया।

'हे भिक्षुओं, मैं जल-कक्ष और जल-विभाजक की अनुमति देता हूँ।'

जल-कक्ष का तहखाना बहुत नीचा था (आदि, जैसा कि V, 11, 6 में अंत तक है)।

पानी ले जाने के लिए कोई बर्तन नहीं थे।

'हे भिक्षुओं, मैं जल के लिए शंख और तश्तरियों की अनुमति देता हूँ।'

8. उस समय विहारों के चारों ओर कोई बाड़ नहीं थी।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इन्हें घेरने की अनुमति देता हूँ।'

तीन प्रकार की प्राचीरें (पकड़ा)—ईंट की दीवारें, पत्थर की दीवारें और लकड़ी की बाड़।

वहां कोई भंडारगृह नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं एक भंडारगृह की अनुमति देता हूँ।'

भंडारगृह का तहखाना बहुत नीचा था, और वह पानी से भर गया था।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऊँची तहखाना बनाने की अनुमति देता हूँ।'

भंडारगृह में कोई दरवाजा नहीं था।

'हे भिक्षुओं, मैं एक द्वार की अनुमति देता हूँ; जिसमें द्वार के खंभे और चौखट हों, द्वार के घूमने के लिए मोर्टार जैसी खोखली जगहें हों, उन खोखली जगहों में घूमने के लिए उभार हों, दरवाज़े पर बोल्ट के चलने के लिए छल्ले हों, द्वार के खंभे के किनारे में लकड़ी का एक ब्लॉक

लगा हो जिसमें बोल्ट के लिए एक खांचा हो (जिसे बंदर का सिर कहते हैं), बोल्ट को सुरक्षित करने के लिए एक पिन हो, एक जोड़ने वाला बोल्ट हो, एक चाबी का छेद हो, एक डोरी के लिए छेद हो जिससे द्वार बंद किया जा सके, और उस उद्देश्य के लिए एक डोरी हो।'

भंडारगृह से घास और प्लास्टर गिर पड़े।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं (आदि, जैसा कि श्लोक 14, 4 से श्लोक 14, 5 के अंत तक, छत, फर्श, नालियों आदि के संबंध में)।'

9. उस समय भिक्षुओं ने परिवेण में जगह-जगह अग्निगृह बनाए, और परिवेण अग्नि के अवशेषों से ढक गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक तरफ अग्नि के लिए एक अलग कमरा बनाने की अनुमति देता हूँ।'

फायर-रूम का तहखाना बहुत नीचा था (आदि, जैसा कि वी, 11, 6 में फर्श, सीढ़ियों और रेलिंग के बारे में बताया गया है, उसके बाद दरवाजे और मुखौटे के बारे में पैराग्राफ, जैसा कि वी, 14, 3, आदि में बताया गया है)।

10. उस समय अरमाओं (मठों) के चारों ओर कोई बाड़ नहीं थी, और बकरियों और मवेशियों ने बागानों को नुकसान पहुँचाया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार की बाड़ लगाने की अनुमति देता हूँ—बांस की बाड़, कांटेदार बाड़ और खाई।'

वहां कोई प्रवेश द्वार (कोटल्हाका) नहीं था, फिर भी बकरियों और मवेशियों ने बागानों को नुकसान पहुंचाया।

'हे भिक्षुओं, मैं एक द्वार की अनुमति देता हूँ, जिसके द्वार कंटीली झाड़ियों से गुंथे हुए खंभों से बने हों, द्वार के पार अक्का के पौधे से बनी बाड़ हो, द्वार के ऊपर सजावटी जाली हो और लोहे की छड़ें हों।'

[फिर वे अनुच्छेद जो इस कोत्थाका की छत आदि की अनुमति देते हैं, जैसा कि V, 11, 6 में है, और अरमा के लिए नालियों की अनुमति देते हैं, जैसा कि V, 14, 3 में है।]

11. उस समय मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार एक पसदा (निवास स्थान) बनवाना चाहते थे।

संघ के उपयोग के लिए सीमेंट और मिट्टी से ढकी हुई छत। तब भिक्षुओं के मन में यह प्रश्न उठा, 'भगवान बुद्ध ने किस प्रकार की छत की अनुमति दी है और किस प्रकार की छत की अनुमति नहीं दी है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं पाँच प्रकार की छतों की अनुमति देता हूँ—ईंट की छत, पत्थर की छत, सीमेंट की छत, भूसे की छत और पत्तों की छत।'

प्रथम भानवर (या पाठ के लिए भाग) का समापन।

<<<< पिछला(6.2) | अगला(6.4) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.3) | अगला(6.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-4.

1. उस समय गृहस्थ अनाथ पिंडिका, राजगृह के सेठी (धनी व्यापारी) की बहन के पति थे। अनाथ पिंडिका किसी काम से राजगृह गए थे। उस समय राजगृह के सेठी ने बुद्ध के नेतृत्व में संघ को कल के भोजन के लिए बुलाया था। राजगृह के सेठी ने अपने दासों और कामगारों को आदेश देते हुए कहा, 'हे मेरे सेवकों, सुबह जल्दी उठो और दलिया, चावल, करी और स्वादिष्ट व्यंजन बनाओ!'

और गृहस्थ अनाथ पिंडिका के मन में यह विचार आया, 'पहले तो जब मैं आता था, तो यह गृहस्थ अपने सारे काम छोड़कर मुझसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन करता था; परन्तु अब तो वह उत्तेजित प्रतीत हो रहा है और अपने दासों और कामगारों को आदेश दे रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है? क्या वह विवाह कर रहा है, या विवाह करवा रहा है, या उसने कोई बड़ा यज्ञ आरंभ किया है, या उसने मगध के सेनिया बिम्बिसार को अपने दल सहित कल के भोज के लिए आमंत्रित किया है?'

2. जब राजगृह के सेठी ने अपने दासों और कामगारों को आदेश दिया, तो वह उस स्थान पर गया जहाँ अनाथ पिंडिका गृहस्थ था, और उससे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया। जब वह बैठ गया, तो अनाथ पिंडिका ने उसे अपने मन के विचार बताए।

'हे गृहस्थ, मैं न तो विवाह ले रहा हूँ और न ही विवाह दे रहा हूँ,' (यह उत्तर था), 'और न ही मैंने मगध सेनिया बिम्बिसार को कल के भोज में आमंत्रित किया है। परन्तु मैंने एक महान यज्ञ प्रारंभ किया है, क्योंकि बुद्ध के नेतृत्व में संघ को कल मेरे घर भोज में आमंत्रित किया गया है।'

'क्या आपने, हे गृहस्थ, "बुद्ध" कहा?'

'हां, मैंने "बुद्ध" ही कहा था।'

[और वही प्रश्न तीन बार पूछा गया, और वही उत्तर दिया गया।]

'हे गृहस्थ, संसार में "बुद्ध, बुद्ध" की खबर मात्र से ही उनका नामोनिशान मिट जाना कितना कठिन है। क्या इस समय हमारे लिए उस भगवान बुद्ध, अरहत, साक्षात बुद्ध के दर्शन करना संभव होगा?'

'हे गृहस्थ, अभी भगवान बुद्ध के दर्शन करने का उचित समय नहीं है; परन्तु कल सुबह जल्दी जाकर उनके दर्शन करो।'

फिर अनाथ पिंडिका, अपनी आगामी यात्रा के बारे में विचार करते हुए, बुद्ध पर इतने केंद्रित विचारों के साथ सोने के लिए लेट गए कि रात में तीन बार वे यह सोचकर उठे कि दिन का उजाला हो गया है।

3. और गृहस्थ अनाथ पिंडिका सीतावन की ओर जाने वाले द्वार तक गए, और देवताओं ने द्वार खोल दिया। जैसे ही वे नगर से बाहर निकले, प्रकाश गायब हो गया और घना अंधकार छा गया, और उनके भीतर भय, कंपकंपी और घबराहट उत्पन्न हो गई, जिससे उनके मन में उस स्थान से वापस लौटने की इच्छा उत्पन्न हुई। परन्तु शिवक यक्ष, जो स्वयं अदृश्य थे, ने एक ध्वनि उत्पन्न की, और कहा:

'सौ हाथी, सौ घोड़े, खच्चरों के साथ सौ रथ,

'एक लाख कुंवारी लड़कियां, जिनके कानों में हीरे जड़े झुमके हैं,--

'हे गृहस्थ, ये एक कदम के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं।'

'आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, हे गृहस्थ! पीछे हटने के बजाय आगे बढ़ना ही तुम्हारे लिए लाभदायी होगा।'

तब गृहस्थ अनाथ पिंडिका के सामने से अंधकार छंट गया और एक तेज रोशनी उत्पन्न हुई, और उसके भीतर उत्पन्न भय, कंपकंपी और घबराहट शांत हो गई।

[और यही बात दूसरी और तीसरी बार भी घटी, वही शब्द सुनाई दिए, और वही परिणाम निकला।]

4. और अनाथ पिंडिका गृहस्थ सीतावन में पहुँचे; उस समय भगवान बुद्ध, जो भोर होते ही उठ गए थे, खुले में टहल रहे थे (ध्यान कर रहे थे)। दूर से आते हुए भगवान बुद्ध ने अनाथ पिंडिका को देखा; और भगवान बुद्ध जहाँ टहल रहे थे, वहीं से उठकर अपने लिए रखी हुई आसन पर बैठ गए। और जब वे बैठ गए, तो उन्होंने अनाथ पिंडिका को संबोधित करते हुए कहा:

'इधर आओ, सुदत्ता!'

तब अनाथ पिंडिका, भगवान बुद्ध द्वारा उन्हें उनके नाम से पुकारे जाने के विचार से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किया और कहा:

'मुझे विश्वास है कि भगवान बुद्ध शांति से सो रहे होंगे!'

'वह अरहत जो स्वतंत्र है, सदा शांति से सोता है।'

जो वासनाओं से अछूता हो, बल्कि शांत और पाप से मुक्त हो,

उसने (मन की स्वतंत्रता के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को) तोड़ दिया है, उसने अपने हृदय की पीड़ा को शांत कर दिया है।

'उसने अपने मन में शांति स्थापित कर ली है, और वह शांत होकर चैन से सोता है।'

5. तब भगवान बुद्ध ने गृहस्थ अनाथ पिंडिका को विधिवत उपदेश दिए; अर्थात् उन्होंने उन्हें दान, धर्म, स्वर्ग, कामवासनाओं के खतरे, व्यर्थता और अशुद्धता तथा त्याग के लाभों के विषय में बताया। जब भगवान बुद्ध ने देखा कि गृहस्थ अनाथ पिंडिका तैयार, कोमल, निष्पक्ष और विश्वास से परिपूर्ण हो गए हैं, तब उन्होंने बुद्धों के विशिष्ट उपदेशों की घोषणा की; अर्थात् दुख, उसका उद्गम, उसका निवारण और मार्ग। और जिस प्रकार एक साफ कपड़ा, जिस पर से सारे दाग धुल गए हों, आसानी से रंग सोख लेता है, ठीक उसी प्रकार गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने वहीं बैठे-बैठे ही सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त कर ली; जो कुछ भी आरंभ से है, उसमें उसका अंत भी अंतर्निहित है। इस प्रकार गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने सत्य को देखा, उस पर महारत हासिल की, उसे समझा और उसमें मर्मस्पर्शी हो गए; और उसने अनिश्चितता पर विजय प्राप्त की, सभी शंकाओं को दूर किया और पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया, और गुरु के सिद्धांत के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर नहीं रहा। और उसने भगवान बुद्ध को संबोधित करते हुए कहा:

हे प्रभु, आपके मुख से निकले शब्द अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई व्यक्ति गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए व्यक्ति को सही मार्ग दिखाता है, या अंधकार में प्रकाश डालता है ताकि देखने वाले बाहरी रूप देख सकें, ठीक उसी प्रकार, हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने अनेक रूपों में मुझे सत्य का ज्ञान कराया है। और मैं स्वयं, हे प्रभु, भगवान बुद्ध की शरण में, सत्य की शरण में और संघ की शरण में जाता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उनकी शरण ली है। और भगवान बुद्ध कल का भोजन अपने और अपने भिक्षु संघ के लिए मेरे हाथों से ग्रहण करने की कृपा करें।

तब भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति दे दी। जब गृहस्थ अनाथपिंडिका को यह पता चला कि उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है, तो वह अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर हाथ रखकर वहाँ से चला गया।

6. अब राजगृह के सेठी ने सुना कि बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया है। राजगृह के सेठी ने गृहस्थ अनाथ पिंडिका से कहा, 'हे गृहस्थ, लोग कहते हैं कि आपने बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया है, और आप तो यहाँ अजनबी हैं। हे गृहस्थ, मैं आपके लिए व्यवस्था करूँगा कि आप बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को भोजन उपलब्ध कराएँ।'

'यह आवश्यक नहीं है, हे गृहस्थ; मेरे पास इसके लिए पर्याप्त साधन हैं।'

[और राजगृह के नगरवासी और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने भी वही प्रस्ताव रखा और उन्हें वही उत्तर मिला।]

7. तब गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने, जब रात काफी बीत चुकी थी, राजगृह के सेठी के घर में कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे व्यंजन तैयार किए और भगवान बुद्ध को समय की सूचना देते हुए कहा, 'हे प्रभु, समय आ गया है; और भोजन तैयार है।'

और भगवान बुद्ध ने सुबह जल्दी वस्त्र धारण करने के बाद विधिवत रूप से तैयार होकर आगे बढ़े और

अनंत पिंडिका राजगृह के धनी व्यापारी के घर गए और भिक्षुओं के संघ के साथ उनके लिए बिछाई गई चौकी पर बैठ गए। गृहस्थ अनंत पिंडिका ने बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षुओं के संघ को अपने हाथों से भोजन परोसा और उन्हें हर प्रकार का मीठा भोजन दिया। जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और अपने हाथ और प्याला साफ कर लिया, तो अनंत पिंडिका एक तरफ बैठ गए और बैठे-बैठे भगवान बुद्ध से कहा, 'हे भगवान बुद्ध, क्या वे भिक्षुओं के संघ के साथ श्रावस्ती में वास् की वर्षा ऋतु व्यतीत करने की कृपा करेंगे?'

'हे गृहस्थ, तथागत एकांत में आनंदित होते हैं।'

'मैं समझ गया, हे भगवान बुद्ध; मैं समझ गया, हे सुखी' (यह उत्तर था)।

फिर भगवान बुद्ध ने गृहस्थ अनाथ पिंडिका को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया, और फिर वे अपने आसन से उठे और वहां से चले गए।

8. उस समय गृहस्थ अनाथ पिंडिका के बहुत से मित्र और व्यापक परिचित थे, और उनकी बात को बहुत महत्व दिया जाता था। जब वह

राजगृह में चल रहे अपने काम को पूरा करने के बाद, वे सावत्थी की ओर चल पड़े; और रास्ते में उन्होंने लोगों को आदेश देते हुए कहा, 'हे मेरे सज्जनों, आवास बनाओ, विश्रामगृह तैयार करो और उपहार तैयार रखो। एक बुद्ध संसार में प्रकट हुए हैं, और भगवान बुद्ध को मैंने आमंत्रित किया है, और वे इसी मार्ग से आएंगे।' और उन लोगों ने [जैसा उन्हें आदेश दिया गया था वैसा ही किया]।

और जब गृहस्थ अनाथ पिंडिका सावत्थी पहुंचे, तो उन्होंने उसके चारों ओर के पूरे क्षेत्र का निरीक्षण करते हुए कहा, 'अब मैं भगवान बुद्ध के रहने के लिए कौन सा स्थान चुनूं, जो शहर से न तो बहुत दूर हो और न ही बहुत पास, आने-जाने में सुविधाजनक हो, उनसे मिलने आने वाले सभी लोगों के लिए आसानी से सुलभ हो, दिन में बहुत भीड़भाड़ न हो, रात में बहुत शोर और भय न हो, हवा से सुरक्षित हो, लोगों से छिपा हुआ हो, और एकांत जीवन के लिए उपयुक्त हो?'

9. और गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने देखा कि कुमार जेत (राजकुमार) के बगीचे में ये सभी खूबियाँ थीं। यह देखकर वह कुमार जेत के पास गया और उनसे कहा, 'हे प्रभु, मुझे अपना बगीचा दे दीजिए ताकि मैं उस पर एक आरामगाह बना सकूँ।'

'यह बिक्री के लिए नहीं है, महोदय, भले ही इसकी कीमत इतनी अधिक हो कि यदि सिक्कों को एक साथ रखा जाए तो वे इसे ढकने के लिए पर्याप्त हों।'

'मान लीजिए, मैं इस बगीचे को इस कीमत पर ले लेता हूँ।'

'नहीं, हे गृहस्वामी, ऐसा कोई सौदा नहीं हुआ था।'

तब उन्होंने न्यायधीशों से पूछा कि क्या बिक्री का सौदा हुआ है या नहीं। और न्यायधीशों ने इस प्रकार निर्णय दिया: 'अराम को आपके द्वारा निर्धारित मूल्य पर ले लिया गया है, महोदय।'

और अनाथ पिंडिका नामक गृहस्थ ने रथों में सोना मंगवाया और जेतवन को सोने के टुकड़ों से ढक दिया, जिन्हें उसने एक के बाद एक करके रखा था।

10. अब जो सोना वह पहली बार लाया था, वह (बाकी बगीचे को ढकने के बाद) द्वार के पास की एक छोटी सी जगह को ढकने के लिए पर्याप्त नहीं था। इसलिए गृहस्वामी अनाथ पिंडिका ने अपने नौकरों को वापस जाकर और सोना लाने को कहा और बताया कि वह उस जगह को भी ढक देगा।

तब कुमार राजकुमार जेत ने सोचा, 'यह कोई साधारण बात नहीं हो सकती जिसके लिए यह गृहस्थ इतना सोना लुटाने को तैयार है!' और उसने अनाथ पिंडिका गृहस्थ से कहा, 'हे गृहस्थ, बस इतना ही काफी है। आपको उस स्थान को ढकने की आवश्यकता नहीं है। वह स्थान मुझे दे दीजिए, वह मेरी भेंट होगी।'

तब गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने सोचा, 'यह कुमार जेत (राजकुमार) बहुत ही प्रतिष्ठित और प्रख्यात व्यक्ति हैं। ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा इस सिद्धांत और अनुशासन का पालन करना अत्यंत लाभदायक होगा।' और उन्होंने वह स्थान कुमार जेत को दे दिया। और राजकुमार जेत ने उस स्थान पर एक द्वार और उसके ऊपर एक कमरा बनवाया।

और गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने निवास कक्ष, विश्राम कक्ष, भंडार कक्ष (द्वारों के ऊपर), सेवा कक्ष, चूल्हे वाले कक्ष, भंडारगृह (विहार के बाहर), कोठरी, गलियारे, व्यायाम कक्ष, कुएँ, कुएँ के लिए शेड, स्नानागार, स्नानागार से जुड़े कक्ष, तालाब और खुली छत वाले शेड बनवाए।

<<<< पिछला(6.3) । अगला(6.5) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.4) । अगला(6.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-5.

1. जब भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर गए, तब वे वैशाली की ओर चल पड़े; और सीधे यात्रा करते हुए वे समय आने पर वहाँ पहुँच गए। वैशाली में भगवान बुद्ध महावन के शिखर छत वाले हॉल में ठहरे।

उस समय लोग (आदेश के उपयोग के लिए) नए भवन बनाने में उत्साहपूर्वक लगे हुए थे, और उतनी ही उत्साहपूर्वक व्यवस्था भी कर रहे थे।

उन सभी भिक्षुओं को आवश्यक वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए दवा उपलब्ध कराई जानी चाहिए जो उनके कार्य की देखरेख करते थे।

अब एक गरीब दर्जी ने सोचा, 'यह कोई रोज़मर्रा का काम नहीं हो सकता जिस पर लोग इतनी लगन से काम कर रहे हैं। चलो मैं भी एक नई इमारत बनाने का काम शुरू करता हूँ।' और उस गरीब दर्जी ने खुद मिट्टी गूँथी, ईंटें लगाईं और दीवारें खड़ी कीं। लेकिन अनुभव की कमी के कारण ईंटें ठीक से नहीं लगीं और दीवार गिर गई। उसने दूसरी और तीसरी बार भी यही कोशिश की, और नतीजा वही रहा।

2. तब वह बेचारा दर्जी बड़बड़ाया, नाराज़ हुआ और क्रोधित होकर बोला, 'ये शाक्यपुत्रीय भिक्षु उन लोगों को उपदेश और शिक्षा देते हैं जो उन्हें आवश्यक वस्त्र, भोजन, आवास और दवाइयाँ उपलब्ध कराते हैं और उनके भवनों की देखरेख करते हैं। लेकिन मैं तो गरीब हूँ, और मुझे कोई उपदेश या शिक्षा नहीं देता, न ही मेरे भवन निर्माण में मेरी मदद करता है!'

भिक्षुओं ने उसे इस प्रकार बड़बड़ाते हुए सुना और यह बात भगवान बुद्ध को बताई। तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में धर्म प्रवचन दिया और भिक्षुओं को आदेश देते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें संघ के उपयोग के लिए निर्माणाधीन नए भवनों का प्रभार (किसी ऐसे भिक्षु को सौंपने की) अनुमति देता हूँ जो कार्य की देखरेख करेगा। और वह भिक्षु जो...'

पर्यवेक्षक यह सुनिश्चित करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करेगा कि विहार का काम शीघ्रता से पूरा हो जाए, और बाद में जहां भी इमारतें क्षतिग्रस्त या जर्जर हो गई हों, उनकी मरम्मत करवाएगा।

3. हे भिक्षुओं, इस प्रकार कार्य सौंपा जाना है। सर्वप्रथम किसी भिक्षु से पूछा जाना चाहिए (कि क्या वह यह कर्तव्य ग्रहण करेगा)। पूछे जाने पर, किसी योग्य और विवेकशील भिक्षु को संघ के समक्ष यह विषय रखते हुए कहना चाहिए, "आदरणीय संघ मेरी बात सुने। यदि

संघ को समय उचित लगे, तो संघ अमुक गृहस्थ के विहार को नवकम्मम के रूप में अमुक भिक्षु को सौंप दे। यही प्रस्ताव (नत्ति) है। आदरणीय संघ मेरी बात सुने। संघ इस प्रकार कार्यभार सौंपता है... (अतः पूर्वोक्त)। आदरणीय भिक्षुओं में से जो भी इसे स्वीकार करे, वह मौन रहे; जो भी इसे स्वीकार न करे, वह बोले। संघ ने कार्यभार सौंप दिया है... (अतः पूर्वोक्त)। अतः मौन है। मेरा यही अर्थ है।"

<<<< पिछला(6.4) | अगला(6.6) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.5) | अगला(6.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-6.

1. अब जब भगवान बुद्ध वैशाली में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर चुके थे, तब वे सावत्थी की ओर चल पड़े।

उस समय छब्बागीय भिक्षुओं के शिष्य बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ के आगे-आगे चल रहे थे और उन्होंने कमरों और विश्राम स्थलों पर कब्जा कर लिया, यह कहते हुए, 'यह हमारे वरिष्ठों (उपज्जयों) के लिए ठीक है, यह हमारे गुरुओं (आचार्यों) के लिए, और यह हमारे लिए।' और पूज्य सारिपुत्त, जो बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ के पीछे चल रहे थे, क्योंकि सभी कमरे और विश्राम स्थल भर चुके थे, उन्हें सोने के लिए कोई जगह नहीं मिली, और वे एक वृक्ष की तलहटी में बैठ गए।

भोर होते ही, भगवान बुद्ध ने उठकर खांसना शुरू किया। पूज्य सारिपुत्त ने भी खांसा।

'यह कौन है?' (भगवान बुद्ध ने कहा।)

'हे प्रभु, मैं ही सारिपुत्त हूँ।'

'सारिपुत्त, तुम यहाँ कैसे बैठे हो?'

तब पूज्य सारिपुत्त ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

2. तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और पूछा, 'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है, जैसा कि मुझे बताया गया है, कि छब्बागीय भिक्षुओं के शिष्यों ने (इस प्रकार कार्य किया है)?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब भगवान बुद्ध ने उन्हें फटकारा और कहा (हमेशा की तरह, चुलवग्ग I, 1, 2, 3 देखें), और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, वह कौन है जो सर्वश्रेष्ठ आसन, सर्वश्रेष्ठ जल और सर्वश्रेष्ठ भोजन के योग्य है?'

कुछ भिक्षुओं ने कहा, 'वह जो संघ में प्रवेश करने से पहले क्षत्रिय परिवार से संबंधित था।' अन्य भिक्षुओं ने कहा, 'वह जो संघ में प्रवेश करने से पहले ब्राह्मण परिवार से संबंधित था।' कुछ अन्य ने कहा, 'वह जो संघ में प्रवेश करने से पहले गृहपति परिवार से संबंधित था - सूत्रों में पारंगत - संघ के नियमों में पारंगत - धम्म का व्याख्याता - प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ घान प्राप्त कर चुका - प्रथम, द्वितीय, तृतीय पथ में प्रवेश कर चुका - अरहत - त्रिविध ज्ञान से युक्त - छह शक्तियों से युक्त।'

3. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'हे भिक्षुओं, बहुत समय पहले हिमालय पर्वतमाला की निचली ढलानों पर एक विशाल बरगद का वृक्ष था; और उसके पास तीन मित्र रहते थे—एक तीतर, एक बंदर और एक हाथी। वे एक-दूसरे के प्रति आदर, विश्वास और शिष्टाचार के बिना साथ रहते थे। तब, हे भिक्षुओं, उन मित्रों के मन में विचार आया, "चलो, हम पता लगाते हैं कि हममें से कौन जन्म से बड़ा है; और हम उसका आदर, सम्मान और समर्थन करने का निश्चय करते हैं, और उसकी सलाह का पालन करते हैं।" अतः, हे भिक्षुओं, तीतर और बंदर ने हाथी से पूछा,

"दोस्त, तुम्हें कितनी पुरानी बातें याद हैं?"

दोस्तों! जब मैं छोटा था तो मैं पैदल चलकर जाया करता था।

यह बरगद का पेड़, जिसे मैंने अपनी जांघों के बीच दबा रखा था, और इसकी सबसे ऊपरी टहनी मेरे पेट से छू रही थी। दोस्तों, मुझे बहुत पुरानी बातें याद हैं।

'फिर, हे भिक्षुओं, तीतर और हाथी ने बंदर से [वही प्रश्न] पूछा।'

"दोस्तों! जब मैं छोटा था, एक बार जमीन पर बैठा था, तब मैंने इस बरगद की सबसे ऊपरी टहनी को कुतरना शुरू कर दिया था। मुझे बहुत पहले की बात याद है।"

'फिर, हे भिक्षुओं, बंदर और हाथी ने तीतर से [एक ही प्रश्न] पूछा।'

"मित्रों! उस खुले मैदान में पहले एक विशाल बरगद का पेड़ था। एक दिन उसका एक फल खाने के बाद, मैंने उसका बीज यहाँ गिरा दिया; और उसी से यह बरगद का पेड़ उग आया। इसलिए मैं तुम दोनों से बड़ा होना चाहिए।"

इस पर, हे भिक्षुओं, हाथी और बंदर ने तीतर से कहा, "हे मित्र, तुम हम सब में सबसे बड़े हो। अब से हम तुम्हारा आदर, श्रद्धा, सम्मान और समर्थन करेंगे, और तुम्हारे उपदेशों का पालन करेंगे।"

तब से, हे भिक्षुओं, तीतर ने बंदर और हाथी को पंच नियमों का पालन कराया और स्वयं भी उनका अनुपालन किया। एक दूसरे के प्रति आदर, विश्वास और शिष्टाचार का भाव रखते हुए, शरीर के नष्ट होने पर वे स्वर्ग में एक सुखमय अवस्था में पुनर्जन्म लेकर लौटे। और उनका यह (परिपूर्ण जीवन) "तीतर का शुभ जीवन" कहलाया।

जो लोग बड़ों का आदर करते हैं, वही धर्म को जानते हैं, इस जीवन में प्रशंसा के पात्र हैं और आने वाले जीवन में सुखी होंगे। 4. हे भिक्षुओं, क्योंकि जब पशु भी एक दूसरे के प्रति आदर, विश्वास और शिष्टाचार से एक साथ रह सकते हैं, तो हे भिक्षुओं, आप भी अपने प्रकाश को इस प्रकार चमकाएँ कि आप, जिन्होंने इतने सुशिक्षित सिद्धांत और अनुशासन का पालन करने के लिए संसार को त्याग दिया है, उसी प्रकार एक साथ रहते हुए दिखाई दें। और जब उन्होंने धर्म प्रवचन दिया (जैसा कि 1, 3 में है), तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, मैं आप सभी को यह आदेश देता हूँ कि आदर करना, प्रणाम करना, अभिवादन करना, उचित सम्मान देना और सर्वोत्तम आसन, जल और भोजन का आवंटन वरिष्ठता के अनुसार होना चाहिए। परन्तु संघ की संपत्ति पर वरिष्ठता के आधार पर एकाधिकार नहीं होना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्काता का दोषी होगा।

5. 'हे भिक्षुओं, इन दस को प्रणाम नहीं करना चाहिए—वह भिक्षु जिसे पहले से दीक्षित भिक्षु द्वारा उच्च श्रेणी में दीक्षित किया गया हो—वह व्यक्ति जिसे दीक्षित नहीं किया गया हो—वह वरिष्ठ भिक्षु जो किसी अन्य समुदाय का हो और धर्म के अनुसार न बोलता हो—एक स्त्री—एक नपुंसक—वह भिक्षु जिसे परिवीक्षा पर रखा गया हो—वह व्यक्ति जिसे परिवीक्षा पर रखा गया हो,

वह व्यक्ति जिसे उसकी परिवीक्षा अवधि के प्रारंभ में वापस भेजा जा सकता है—वह व्यक्ति जिस पर प्रायश्चित (मनत्ता) लगाया जा सकता है—वह व्यक्ति जो प्रायश्चित कर रहा है—वह व्यक्ति जो प्रायश्चित करते हुए पुनर्वास के योग्य है।

'और हे भिक्षुओं, इन तीनों को प्रणाम करना चाहिए—एक जो पहले संघ के उच्चतर पद में प्रवेशित हुआ है, उसे बाद में प्रवेशित होने वाले को प्रणाम करना चाहिए—दूसरे समुदाय में वरिष्ठ व्यक्ति को जब वह धम्म के अनुसार बोलता है—और हे भिक्षुओं, मनुष्य और देवता, मार और ब्रह्मा के सभी लोकों में, सभी प्राणियों, समन (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों द्वारा, अरहत सम्मसंबुद्ध को प्रणाम करना चाहिए।'

<<<< पिछला(6.5) | अगला(6.7) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.6) | अगला(6.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय 7।

1. उस समय लोगों ने संघ के उपयोग के लिए मंडप, पलंग और कमरे उपलब्ध कराए। छब्बगीय भिक्षुओं के शिष्यों ने कहा, 'भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि जो कुछ भी पूरी तरह से संघ से संबंधित है, उसका उपयोग वरिष्ठता के अनुसार किया जाना चाहिए, न कि वह जो केवल संघ के अस्थायी उपयोग के लिए दिया गया है।' वे संघ के आगे-आगे चले और मंडपों, पलंगों और कमरों पर कब्जा कर लिया और कहने लगे, 'यह हमारे वरिष्ठों के लिए, यह हमारे गुरुओं के लिए और यह हमारे लिए है।'

और सारिपुत्त (आदि, जैसा कि पिछले अध्याय, अनुच्छेद 1, 2 से आगे तक में है) तब भगवान बुद्ध ने उन्हें फटकारा, इत्यादि, और भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, जो वस्तु संघ के अस्थायी उपयोग के लिए ही अलग रखी गई है, उसे भी वरिष्ठता के अनुसार अनन्य उपयोग के लिए आरक्षित नहीं किया जाना चाहिए।'

<<<< पिछला(6.6) | अगला(6.8) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.8

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.7) | अगला(6.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-8.

1. उस समय लोग अपने घरों के भोजन कक्षों या भीतरी आंगनों में ऊँचे और बड़े पलंग लगाते थे, जैसे [यहाँ महावग्ग V, 10, 4 में निषिद्ध वस्तुओं की सूची दी गई है]। भिक्षु, किसी को नाराज़ करने के डर से, उन पर नहीं बैठते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गृहस्थों द्वारा व्यवस्थित आसनों पर बैठने की अनुमति देता हूँ—तीन को छोड़कर (अर्थात्) बड़े तकिये, दीवान, गद्दे—पर तुम उन पर लेट नहीं सकते।'

उस समय लोग भोजन कक्षों या आंगनों में गद्देदार सोफे और गद्देदार कुर्सियाँ रखते थे। भिक्षु, किसी को नाराज करने के डर से, उन पर नहीं बैठते थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें गृहस्थों द्वारा व्यवस्थित की गई किसी भी वस्तु पर बैठने की अनुमति देता हूँ, परन्तु उन पर लेटने की नहीं।'

<<<< पिछला(6.7) | अगला(6.9) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.8) | अगला(6.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-9.

1. अब भगवान बुद्ध अपनी यात्रा पर आगे बढ़ते हुए उचित समय पर सावत्थी पहुंचे; और वहां।

श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में ठहरे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका ने [भगवान बुद्ध को अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया, और भोजन समाप्त होने पर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा]:

'हे प्रभु, मुझे जेतवन के संबंध में क्या करना चाहिए?'

हे गृहस्थ, आप इसे चारों दिशाओं के संघों के उपयोग हेतु समर्पित कर सकते हैं, चाहे वे अभी यहाँ उपस्थित हों या भविष्य में आएँ।

'जी प्रभु, ऐसा ही हो,' गृहस्थ अनाथ पिंडिका ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और उन्होंने वैसा ही किया।

2. फिर भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों में गृहस्थ अनाथ पिंडिका को धन्यवाद दिया। [यहाँ वही श्लोक दिए गए हैं जो ऊपर छठे, पहले और पाँचवें भाग में जेतवन के प्रस्तुतीकरण के संबंध में प्रयुक्त किए गए थे।]

<<<< पिछला(6.8) | अगला(6.10) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.9) | अगला(6.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-10.

1. उस समय यह तय हुआ था कि दरबार का एक उच्च अधिकारी, जो आजीवकों का अनुयायी था, संघ के लिए दिन का भोजन उपलब्ध कराएगा। आदरणीय शाक्य उपनंद भिक्षु देर से आए, लेकिन भोजन समाप्त होने से पहले ही उन्होंने अपने से कनिष्ठ भिक्षु से भोजन मंगवाया।

वह अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ; और भोजन कक्ष में अफरा-तफरी मच गई।

तब वह मंत्री क्रोधित हो गया, बड़बड़ाया और नाराज़ होकर बोला, 'शाक्यपुत्रीय समना ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं! क्या फिर किसी के लिए, बैठे बिना, अपनी इच्छानुसार भोजन करना वैध नहीं है?'

भिक्षुओं ने उसे बड़बड़ाते हुए सुना, इत्यादि। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है जैसा कि वे कहते हैं, इत्यादि?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब भगवान बुद्ध ने उसे फटकारा, इत्यादि, और भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, भोजन समाप्त होने से पहले किसी भिक्षु को उसके आसन से नहीं उठना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्काता का दोषी होगा। और यदि कोई किसी दूसरे को उठने के लिए मजबूर करे और फिर उसे भोजन में शामिल होने के लिए आमंत्रित करे, तो उसे पानी लाने का आदेश दिया जाएगा। यदि वह इस प्रकार आसन ग्रहण कर ले, तो अच्छा है; यदि नहीं, तो दूसरा पहले चावल निगलकर अपने वरिष्ठ को आसन दे देगा। परन्तु हे भिक्षुओं, मैं किसी भी स्थिति में यह नहीं कहता कि किसी वरिष्ठ भिक्षु का आसन (कनिष्ठ भिक्षु द्वारा) लिया जाए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्काता का दोषी होगा।'

2. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं ने बीमार भिक्षुओं को (उनकी सीटों से) उठने को कहा। बीमार भिक्षुओं ने कहा, 'हे महोदय, हम उठ नहीं सकते; क्योंकि हम बीमार हैं।'

उन्होंने कहा, 'हम चाहते हैं कि तुम उठो;' और उन्हें पकड़कर ऊपर खींचते हुए, खड़े-खड़े ही छोड़ दिया। जैसे ही बीमार लोगों को छोड़ा गया, वे गिर पड़े।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बीमार व्यक्ति को उठाना नहीं चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने यह कहते हुए कि 'हम बीमार हैं और हमें निकाला नहीं जा सकता,' सर्वोत्तम विश्राम स्थलों पर कब्जा कर लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि आप बीमार भिक्षुओं के लिए उपयुक्त विश्राम स्थल आवंटित करें।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने मामूली अस्वस्थता का बहाना बनाकर सोने के स्थानों पर एकाधिकार कर लिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऐसा करना उचित नहीं है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला(6.9) | अगला(6.11) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.11

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.10) । अगला (6.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-11.

1. उस समय सत्तरसा-वज्जिया भिक्षुओं ने आस-पास के एक बड़े विहार को निवास के लिए तैयार किया। जब छब्बाग्य भिक्षुओं ने उन्हें ऐसा करते देखा, तो उन्होंने कहा, 'ये पूजनीय सत्तरसा-वज्जिया भिक्षु विहार तैयार करवा रहे हैं; आइए, हम इन्हें यहाँ से निकाल दें।' उनमें से कुछ ने कहा, 'जब तक वे विहार तैयार न कर लें, हम यहीं ठहरेंगे और विहार तैयार होते ही इन्हें निकाल देंगे।' तब छब्बाग्य भिक्षुओं ने सत्तरसा-वज्जिया भिक्षुओं से कहा, 'आप जाइए; यह विहार हमें मिल गया है।'

'आपने पहले ऐसा क्यों नहीं कहा, महोदय; हम कोई दूसरा तैयार करवा लेते?'

तो क्या यह विहार संघ की साझा संपत्ति नहीं है?

जी हाँ, महोदय; यह सच है।

'तो फिर आप लोग प्रस्थान करें; क्योंकि विहार हमारे कब्जे में आ गया है।'

यह विहार बहुत बड़ा है, महोदय। आप भी इसमें रह सकते हैं और हम भी।

फिर क्रोध और नाराजगी से भरे हुए उन्होंने दोहराया, 'महोदय, यहाँ से चले जाइए; यह विहार हमारे हाथ लग गया है।' और उन्हें गला पकड़कर बाहर निकाल दिया। और बाकी लोग निकाले जाने पर रोने लगे।

भिक्षुओं ने पूछा, 'हे सज्जनों, आप क्यों रो रहे हैं?'

तब उन्होंने उन्हें बताया; और संयमी भिक्षुओं ने कुछ बुदबुदाया, इत्यादि, और यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'क्या यह सच है, जैसा कि वे कहते हैं, इत्यादि?'

'यह सच है, प्रभु।'

फिर उन्होंने उन्हें फटकारा; और जब उन्होंने धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु को संघ की साझा संपत्ति, विहार से क्रोधित होकर या नाराज़ होकर नहीं निकाला जाना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें संघ के साझा आवासों को (जरूरतमंदों को) आवंटित करने की अनुमति देता हूँ।

2. अब भिक्षुओं ने सोचा, 'फिर रहने की जगहें कैसे आवंटित की जाएँगी?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आवास स्थान आवंटित करने के लिए ऐसे भिक्षु को नियुक्त करने की अनुमति देता हूँ जो इन पाँच गुणों से युक्त हो—जो पक्षपात न करता हो, जो द्वेष न रखता हो, जो मूर्खता न करता हो, जो भय न रखता हो (और इसी प्रकार, जैसा कि खंडक चतुर्थ अध्याय-10 में कम्मवक के अंत तक वर्णित है)।'

3. अब आवास आवंटित करने वालों ने सोचा, 'तो फिर आवासों का आवंटन कैसे किया जाना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें सर्वप्रथम भिक्षुओं की गिनती करने, फिर विश्राम स्थलों की गिनती करने और फिर तदनुसार आवंटन करने की अनुमति देता हूँ।'

सोने की जगहों की संख्या के अनुसार आवंटन करते समय, कुछ जगहें बिना आवंटित रह गईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें विहारों की संख्या के अनुसार विभाजन करने की अनुमति देता हूँ।'

इस प्रकार आवंटन करते समय, कुछ विहार (अपार्टमेंट) बिना आवंटित रह गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भवनों (परिवेनों) की संख्या के अनुसार भाग-दौड़ करने की अनुमति देता हूँ।'

इस प्रकार आवंटन करते समय, कुछ भवन (परिवेना) बिना आवंटित रह गए।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रत्येक भिक्षु को पूरक हिस्सा देने की अनुमति देता हूँ।'

जब एक से अधिक हिस्से आवंटित किए जा चुके थे, तब एक और भिक्षु आ गया।

'उस स्थिति में, यदि भिक्षु ऐसा नहीं चाहते हैं तो उन्हें हिस्सा आवंटित करने की आवश्यकता नहीं है।'

उस समय उन्होंने उस भिक्षु को सोने की जगह आवंटित की जो उस समय (जिस जिले में वह इमारत स्थित थी) की सीमा के बाहर रह रहा था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऐसा करना उचित नहीं है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने आवास स्थान आवंटित होने के बाद, उन्हें हमेशा के लिए दूसरों से अलग रखते हुए अपने पास ही रखा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऐसा करना उचित नहीं है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। मैं तुम्हें वर्षा ऋतु के तीन महीनों तक इन्हें धारण करने की अनुमति देता हूँ, लेकिन शुष्क ऋतु में नहीं।'

4. तब भिक्षुओं ने सोचा, 'अब (वह क्या है जो) आवास स्थानों के आवंटन का आधार बनता है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के आवास आवंटित किए गए हैं—प्रारंभिक, परवर्ती और मध्यवर्ती। प्रथम आवास आषाढ़ (जून-जुलाई) की पूर्णिमा के अगले दिन आयोजित किया जाता है; परवर्ती आवास उस पूर्णिमा के एक महीने बाद आयोजित किया जाता है; मध्यवर्ती आवास (जिसमें बीच के समय में त्याग करना पड़ता है) पवाराना समारोह के अगले दिन, अगले वर्ष के वर्षा ऋतु के संदर्भ में आयोजित किया जाता है। हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के आवास आवंटित किए गए हैं।

यहां पाठ का दूसरा भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला (6.10) । अगला (6.12) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.12

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.11) | अगला (6.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-12.

1. अब आदरणीय शाक्य उपनंद को एक आवास आवंटित किए जाने के बाद,

सावत्थी एक ऐसे ग्रामीण इलाके में गए जहाँ संघ का एक समुदाय निवास करता था, और वहाँ उनके लिए एक आवास भी आवंटित किया गया। तब वहाँ के भिक्षुओं ने सोचा, 'यह भाई, शाक्य उपनंद, कलह पैदा करने वाला, झगड़ालू, विवाद करने वाला, व्यर्थ की बातें करने वाला और संघ में कानूनी प्रश्न उठाने वाला है। यदि वह वर्षा ऋतु यहाँ बिताएगा, तो हम सभी को असुविधा होगी। चलो, हम उससे प्रश्न करें।' और उन्होंने पूज्य शाक्य उपनंद से पूछा:

'क्या आपको, मित्र उपनंद, सावत्थी में रहने के लिए कोई आवास आवंटित नहीं किया गया है?'

जी हाँ, महोदय।

'तो फिर तुम, मित्र उपानंद, एक होते हुए भी दो (आवास स्थलों) पर अनन्य अधिकार क्यों जताते हो?'

'ठीक है, महोदय, अब मैं कर लेता हूँ, यहाँ का कमरा खाली कर दीजिए और वहाँ वाला कमरा ले लीजिए।'

जो भिक्षु संयमी थे, उन्होंने कुछ बुदबुदाया, इत्यादि, और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में भिक्षु संघ की एक सभा बुलाई और पूज्य शाक्य उपनंद से पूछा:

'क्या यह सच है, उपानंद, कि तुम एक होते हुए भी दो स्थानों पर अधिकार कर चुके हो?'

'यह सच है, प्रभु।'

तब भगवान बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा, 'हे मूर्ख, तू ऐसा कैसे कर सकता है? हे मूर्ख, तूने जो वहाँ से लिया, वह यहाँ खो गया; तूने जो यहाँ से लिया, वह वहाँ खो गया। अतः हे मूर्ख, तू दोनों से वंचित हो गया है।' और जब उन्होंने धर्म प्रवचन दिया, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति को दो स्थानों पर नहीं ठहरना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (6.11) | अगला (6.13) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.12) | अगला (6.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-13.

1. उस समय भगवान बुद्ध ने विनय के विषय में अनेक दृष्टांतों का प्रयोग किया, विनय की स्तुति की, विनय सीखने की प्रशंसा की, और बार-बार पूज्य उपली की प्रशंसा की। तब भिक्षुओं ने कहा, 'भगवान बुद्ध उपली से बात कर रहे हैं। आओ, हम पूज्य उपली से विनय सीखें।' और अनेक भिक्षु, वरिष्ठ और कनिष्ठ, तथा मध्यम स्तर के, पूज्य उपली से विनय सीखने गए। पूज्य उपली ने वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति आदर के कारण खड़े होकर उन्हें शिक्षा दी, और वरिष्ठ भिक्षुओं ने धर्म के प्रति आदर के कारण खड़े होकर उनकी शिक्षा सुनी; इससे वरिष्ठ भिक्षु और पूज्य उपली दोनों ही ऊब गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं कनिष्ठ भिक्षु को उपदेश देते समय विधि के प्रति आदर के कारण समान ऊँचाई या उससे ऊँची आसन पर बैठने की अनुमति देता हूँ; और वरिष्ठ भिक्षु को उपदेश ग्रहण करते समय आसन पर बैठने की अनुमति देता हूँ।

कानून के प्रति आदर के कारण, समान ऊंचाई या उससे कम ऊंचाई के।

2. उस समय कई भिक्षु उपाली के चारों ओर खड़े होकर बैठने की जगह की प्रतीक्षा कर रहे थे; और वे थक गए थे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन भाइयों के साथ बैठने की अनुमति देता हूँ जो समान ऊँचाई के आसनों पर बैठने के पात्र हैं।'

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'हममें से कितने लोग समान ऊंचाई वाली सीटों पर बैठने के हकदार हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन भिक्षुओं के साथ एक ही आसन पर बैठने की अनुमति देता हूँ जो वरिष्ठता में एक दूसरे से तीन वर्ष के भीतर हैं।'

उस समय कई भिक्षु, जिन्हें एक ही आसन पर बैठने का अधिकार था, एक पलंग पर बैठ गए और पलंग को तोड़ दिया; या एक कुर्सी पर बैठ गए और कुर्सी को तोड़ दिया।

'हे भिक्षुओं, मैं तीन व्यक्तियों के लिए पलंग या कुर्सी के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

यहां तक कि जब तीन लोग सोफे या कुर्सी पर बैठते थे, तब भी यह टूट जाता था।

'हे भिक्षुओं, मैं दो लोगों को पलंग या कुर्सी पर बैठने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय, समान ऊँचाई वाली सीटों पर बैठने के योग्य न होने के कारण, भिक्षुओं को डर था कि यदि वे एक लंबी सीट पर एक साथ बैठेंगे तो कहीं वे किसी को नाराज न कर दें। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन लोगों के साथ एक लंबी चौकी पर बैठने की अनुमति देता हूँ जो समान ऊँचाई की सीटों पर बैठने के योग्य नहीं हैं, सिवाय उन लोगों के जो स्त्रियाँ हों, या हिजड़े हों, या उभयलिंगी हों।'

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'लंबी आसन' शब्द के अंतर्गत लंबाई की सीमा क्या है?'

'हे भिक्षुओं, मैं तीन व्यक्तियों के बैठने के लिए पर्याप्त लंबी किसी भी आसन के लिए "लंबी आसन" शब्द के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.12) | अगला (6.14) >>>>

<<<< पिछला (6.13) | अगला (6.15) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-14.

1. उस समय मिगारा की माता विशाखा संघ के उपयोग के लिए हाथी के सिर के शीर्ष वाले स्तंभों पर टिकी एक बहुमंजिला इमारत (पासदा) बनवाना चाहती थीं, जिसमें एक बरामदा (अलिंडा) भी हो। तब भिक्षुओं ने सोचा, 'बहुमंजिला इमारत से संबंधित किन चीजों की अनुमति भगवान बुद्ध ने दी है और किनकी नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं बहुमंजिला इमारत के सभी सहायक उपकरणों के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

अब उस समय कोसला के पासेनादी की दादी का निधन हो गया था, और संघ के हाथों में कई अनधिकृत चीजें आ गई थीं, जैसे कि पलंग, दीवान (आदि, जैसा कि ऊपर अध्याय-8 और महावग्ग V, 10, 4 में है)।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम गद्दीदार पलंगों (असंदी) के पैर तोड़कर उनका उपयोग करो, और दीवानों (पल्लंका) से बाल हटा दो, और गद्दों के रुई को कंघी करके उससे तकिए बना लो, और शेष सभी को फर्श पर बिछाने के लिए उपयोग करो।'

<<<< पिछला (6.13) | अगला (6.15) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.14) | अगला(6.16) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-15.

1. उस समय, सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक ग्रामीण निवास में रहने वाले भिक्षु, ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले यात्रियों के लिए लगातार आवास की व्यवस्था करने से चिंतित थे। उन भिक्षुओं ने सोचा, 'यदि ऐसा हो, तो हम संघ की सारी आवास-व्यवस्था अपने में से किसी एक को सौंप दें और उसका उपयोग उसी के स्वामित्व में करें।' और उन्होंने ऐसा ही किया।

तब आने वाले भिक्षुओं ने उनसे कहा: 'महोदय, हमारे लिए सोने की व्यवस्था कीजिए।'

'महोदय, संघ के पास कोई बिस्तर नहीं है। हमने वे सभी अपने ही एक सदस्य को दे दिए हैं।'

'क्या, महोदय? क्या आपने संघ की संपत्ति हड़प ली है?'

'जी हां, महोदय।'

मध्यम भिक्षुओं ने कुछ बुदबुदाते हुए यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है जैसा कि कहा जाता है कि भिक्षु संघ की संपत्ति हड़प लेते हैं?'

'यह सच है, प्रभु।'

2. तब भगवान बुद्ध ने उन्हें फटकारा, इत्यादि, और भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, ये पाँच वस्तुएँ हस्तांतरणीय नहीं हैं; और इनका निपटान न तो संघ द्वारा, न दो या तीन भिक्षुओं के समूह (गण) द्वारा, और न ही किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। और वे पाँच वस्तुएँ क्या हैं? एक उद्यान (आराम), या उद्यान के लिए भूमि—यह पहली हस्तांतरणीय वस्तु है, जिसका निपटान न तो संघ द्वारा, न किसी गण द्वारा, और न ही किसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। यदि इसका निपटान किया जाता है, तो ऐसा निपटान व्यर्थ है; और जिसने भी इसका निपटान किया है, वह थुलकाय (गंभीर अपराध) का दोषी है। एक विहार, या विहार के लिए भूमि—यह दूसरी वस्तु है, इत्यादि (जैसा कि पहले बताया गया है)। एक पलंग, या कुर्सी, या तकिया, या तकिया—यह तीसरी वस्तु है, इत्यादि।' पीतल का बर्तन, या पीतल का घड़ा, या पीतल का प्याला, या पीतल का फूलदान, या उस्तरा, या कुल्हाड़ी, या हथौड़ा, या कुदाल, या फावड़ा—यह चौथा है, इत्यादि। लताएँ, या बाँस, या मूंगा, या बब्बागा घास, या सामान्य घास, या मिट्टी, या लकड़ी की बनी वस्तुएँ, या मिट्टी के बर्तन—यह पाँचवाँ है, इत्यादि। (पहले की तरह, थुलकाया (बड़ा/गंभीर अपराध) तक।

<<<< पिछला(6.14) | अगला(6.16) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.16

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.15) | अगला (6.17) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-16.

1. अब जब भगवान बुद्ध ने सावत्थी में अपनी इच्छानुसार समय व्यतीत कर लिया, तो वे भिक्षुओं की एक बड़ी भीड़ के साथ—अर्थात् लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, सारिपुत्त और मोग्गलाना के अतिरिक्त—किता पहाड़ी की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े।

और असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायी भिक्षुओं ने यह खबर सुनकर आपस में कहा, 'हे सज्जनों, आइए हम संघ के सभी विश्राम स्थलों को आपस में बाँट लें। सारिपुत्त और मोग्गलाना पापी इच्छाओं से ग्रस्त हैं और उनके प्रभाव में हैं। हम उनके लिए विश्राम स्थल उपलब्ध नहीं कराएँगे।' और उन्होंने ऐसा ही किया।

अब भगवान बुद्ध अपनी यात्रा पर आगे बढ़ते हुए किता पर्वत पर पहुँचे। उन्होंने कई भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, आप असाजी और पुनाबस्सु के अनुयायियों के पास जाकर उनसे कहें: 'हे भिक्षुओं, भगवान बुद्ध बड़ी संख्या में भिक्षुओं के साथ आए हैं—अर्थात लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, सारिपुत्त और मोग्गलाना भी हैं। हे भिक्षुओं, भगवान बुद्ध, भिक्षु संघ, सारिपुत्त और मोग्गलाना के लिए विश्राम स्थल तैयार कर दीजिए।'"

'जी प्रभु, ऐसा ही हो,' उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की बात से सहमति जताते हुए कहा और उन्होंने वैसा ही किया।

'संघ के लिए कोई सोने की जगह नहीं है। हमने सब कुछ आपस में बाँट लिया है' (यह उत्तर मिला)। 'भगवान बुद्ध का स्वागत है, महोदय, और वे जिस भी विहार में चाहें ठहर सकते हैं। लेकिन सारिपुत्त और मोग्गलाना पापी इच्छाओं से ग्रस्त हैं और उनके प्रभाव में हैं; उनके लिए हम सोने की कोई जगह नहीं देंगे।'

2. 'तो फिर क्या हुआ, महोदय? क्या आपने संघ की संपत्ति वाले सोने के आवास को आपस में बाँट लिया है?'

'जी हां, महोदय।'

संयमी भिक्षुओं ने धीरे-धीरे कहा, इत्यादि। (अंत में) भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, ये पाँच बातें अविभाज्य हैं और इन्हें न तो संघ, न ही गण, न ही किसी व्यक्ति द्वारा विभाजित किया जा सकता है। यदि इन्हें विभाजित किया जाए, तो विभाजन व्यर्थ है; और जो कोई भी ऐसा करेगा, वह थुलकाय (गंभीर अपराध) का दोषी होगा। और वे पाँच बातें क्या हैं (आदि, जैसा कि छठे, पंद्रहवें, दोवें भाग में है)?'

<<<< पिछला (6.15) | अगला (6.17) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.17
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.16) | अगला(6.18) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-17.

1. अब जब भगवान बुद्ध किता पहाड़ी पर अपनी इच्छानुसार समय बिता चुके थे, तब वे अलावी की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े; और उचित समय पर वे अलावी पहुँचे, और वहाँ अलावी में भगवान बुद्ध अग्गलावा मंदिर में ठहरे।

उस समय अलावी के भिक्षु नए भवन निर्माण कार्यों का प्रभार (अपने किसी एक साथी को) सौंपते थे, जैसे कि जब मिट्टी के ढेर लगाने हों, दीवार पर दोबारा प्लास्टर करना हो, दरवाजा बनाना हो, कुंडी के लिए सॉकेट बनाना हो, खिड़की पर कुछ बढ़ई का काम करना हो, सफेदी करनी हो, काला रंग चढ़ाना हो, या लाल रंग लगाना हो, छत का काम करना हो, बढ़ई का काम करना हो, या दरवाजे पर छड़ लगानी हो, दरारें या जीर्णता ठीक करनी हो, या फर्श पर दोबारा प्लास्टर करना हो; और वे यह कार्यभार एक-दूसरे को बीस या तीस वर्षों के लिए, या जीवन भर के लिए सौंपते थे; या वे पूरी तरह से तैयार विहार का प्रभार किसी भिक्षु को तब तक के लिए सौंपते थे जब तक कि (उस चिता से धुआं न उठने लगे जिस पर उसके शरीर को जलाया जाना था)।

संयमी भिक्षुओं ने धीरे-धीरे फुसफुसाया, इत्यादि। (हमेशा की तरह, अंत तक) भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

हे भिक्षुओं, जब मिट्टी को केवल ढेर में अलग रखना हो, तब भवन निर्माण निरीक्षक का पद किसी को न सौंपें... (जैसा कि पहले बताया गया है, अंत में) शरीर को जलाया जाएगा। जो कोई भी ऐसा पद सौंपेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको किसी ऐसे विहार का कार्यभार सौंपने की अनुमति देता हूँ जिसका निर्माण अभी शुरू नहीं हुआ है या जो अभी पूरा नहीं हुआ है, मानो वह नया भवन हो। और छोटे विहार के निर्माण कार्य के संदर्भ में, उसे नवकम्म के रूप में पाँच या छह वर्ष की अवधि के लिए, अद्धयोग के रूप में सात या आठ वर्ष की अवधि के लिए, और बड़े विहार या पसद के रूप में दस या बारह वर्ष की अवधि के लिए कार्यभार सौंपा जा सकता है।

2. उस समय भिक्षु एक विहार को नवकम्मा (एक भिक्षु को देखरेख के लिए) दे देते थे—या दो विहार एक भिक्षु को—या कार्यभार संभालने वाले भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को वहाँ रहने और कार्यभार संभालने के लिए नियुक्त कर लेते थे—या कार्यभार संभालने वाले भिक्षु...

संघ से संबंधित भवन पर विशेष अधिकार बनाए रखा जाता था - या भिक्षुओं द्वारा कार्य का प्रभार उस व्यक्ति को सौंप दिया जाता था जो उस समय सीमा के भीतर नहीं होता था - या जिन भिक्षुओं ने एक बार कार्यभार संभाल लिया था, वे उस पर हमेशा के लिए विशेष अधिकार बनाए रखते थे।

उन्होंने ये सारी बातें भगवान बुद्ध को बताईं।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें इनमें से कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। और प्रभारी भिक्षु वर्षा ऋतु के तीन महीनों के लिए एक उत्तम विश्राम स्थल अपने एकाधिकार में ले सकता है, लेकिन शुष्क ऋतु के दौरान नहीं।'

3. अब उस समय भवन निर्माण कार्यों का कार्यभार संभालने वाले भिक्षुओं ने वह स्थान छोड़ दिया [या अन्यथा अगले अनुच्छेद 2 में वर्णित तेईस तरीकों में से किसी एक या दूसरे तरीके से अक्षम हो गए]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि ऐसा हो जाए, तो जैसे ही वह पदभार ग्रहण कर ले, या भवन के पूर्ण होने से पहले, यह पद किसी अन्य को सौंप दिया जाए, अन्यथा संघ को हानि होगी। हे भिक्षुओं, यदि भवन पूर्ण हो जाए, और फिर वह स्थान छोड़ दे, तो भी यह (पद और इसके विशेषाधिकार) उसका ही रहेगा—यदि वह संसार में लौट जाए, या मर जाए, या स्वीकार करे कि वह समनेर है, या उसने नियमों का त्याग कर दिया है, या वह किसी घोर अपराध का दोषी हो गया है, तो संघ...

यदि वह यह स्वीकार करता है कि वह पागल है, या उसका दिमाग खराब है, या वह शारीरिक पीड़ा से पीड़ित है, या उसे किसी अपराध को स्वीकार करने से इनकार करने, या किसी अपराध का प्रायश्चित करने से इनकार करने, या किसी पापी सिद्धांत का त्याग करने से इनकार करने के कारण निलंबित कर दिया गया है, तब भी वह (पद और उसके विशेषाधिकार) उसका ही रहता है। यदि वह यह स्वीकार करता है कि वह नपुंसक है, या उसने गुप्त रूप से संघ में प्रवेश किया है, या वह तित्तिय संप्रदाय में शामिल हो गया है, या वह पशुवत है, या उसने अपनी माता, या अपने पिता, या किसी अरहत की हत्या की है, या उसने किसी भिक्षुणी का अपमान किया है, या उसने संघ में फूट डाली है, या उसने (किसी बुद्ध का) रक्त बहाया है, या वह नपुंसक है, तो संघ उसका स्वामी बन जाता है।

<<<< पिछला(6.16) | अगला(6.18) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.18

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.17) | अगला (6.19) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-18.

1. उस समय भिक्षुओं ने एक गृहस्थ शिष्य (उपासक) के विहार से जुड़े पलंगों का उपयोग अन्यत्र किया।

तब वह उपासक बड़बड़ाया, और सी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, एक स्थान से संबंधित वस्तुओं का प्रयोग दूसरे स्थान पर नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षु उपोसथ हॉल या सभा स्थल में भी बैठने की वस्तुएँ ले जाने पर आपत्ति जताने के डर से जमीन पर बैठ गए; और उनके पैर और वस्त्र गंदे हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें केवल एक निश्चित समय के लिए ही वस्तुएँ ले जाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय संघ का एक बड़ा विहार जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पहुँच गया। भिक्षुओं ने किसी को नाराज करने के डर से उसमें रखे बिस्तर नहीं हटाए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें विनाश से बचाने के लिए वस्तुओं को हटाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.17) | अगला (6.19) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> छठा खंडका >> 6.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (6.18) | अगला (6.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-19.

1. उस समय संघ के बिस्तर के सामान में एक बहुत ही कीमती कालीन और एक बहुत ही कीमती कपड़ा था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इनमें से किसी भी वस्तु का आदान-प्रदान करने की अनुमति देता हूँ ताकि विधिवत रूप से अनुमत फर्नीचर का भंडार बढ़ाया जा सके।'

उस समय संघ को एक

भालू की खाल, एक कक्काली गलीचा और एक कोलाका कपड़ा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इन्हें अपने पैर पोंछने के लिए चटाई के रूप में उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (6.18) | अगला (6.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-20.

1. उस समय भिक्षु सोने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली चटाइयों पर बिना धोए या गीले पैरों से या चप्पल पहने चलते थे; और चटाई गंदी हो जाती थी।

उन्होंने ये बातें भगवान बुद्ध को बताईं।

'हे भिक्षुओं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय भिक्षुओं ने नवनिर्मित फर्श पर थूका, जिससे उसका रंग बिगड़ गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऐसा करना मना है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं थूकदान के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय पलंगों और कुर्सियों के पैरों से नए तैयार किए गए फर्श पर खरोंचें पड़ रही थीं। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे फर्श के कपड़े से ढकने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु नवनिर्मित दीवारों से टिककर खड़े हो गए, जिससे दीवारों का रंग खराब हो गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, ऐसा करना मना है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं आपको सहारा लेने के लिए एक तख्ते का उपयोग करने की अनुमति देता हूं।'

तख्ते ने नीचे की तरफ फर्श को खरोंच दिया और ऊपर की दीवार को खराब कर दिया।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें इसे ऊपर और नीचे से कपड़े से ढकने की अनुमति देता हूं।'

उस समय, वे किसी को नाराज करने के डर से, उन स्थानों पर नहीं लेटते थे जिन पर धुले हुए पैरों से चलना जायज था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें ऐसी जगह पर लेटने की अनुमति देता हूं जहाँ तुमने कुछ बिछा दिया हो।'

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.20) | अगला(7.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

छठा खंडक (आवास और साज-सज्जा पर)

अध्याय-21.

1. जब भगवान बुद्ध अलावी में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे राजगृह की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सीधे आगे बढ़ते हुए वे उचित समय पर राजगृह पहुँचे। वहाँ राजगृह में, भगवान बुद्ध वेलुवन में कलंदक निवापा में ठहरे।

उस समय राजगृह में भोजन की कमी थी। लोग पूरे संघ के लिए भोजन की व्यवस्था करने में असमर्थ थे और वे विहार में भेजे जाने वाले भोजन की व्यवस्था करना चाहते थे, जो दानदाता द्वारा नामित किसी विशेष भिक्षु, दानदाता द्वारा अपने घर में आमंत्रित विशेष भिक्षुओं, संघ द्वारा जारी टिकट द्वारा नियुक्त एकल भिक्षुओं के लिए हो, या पखवाड़े भर के लिए, या उपोसथ पर्व पर उपलब्ध कराया जा सके।

दिनों (अर्थात, प्रत्येक पखवाड़े के अंतिम दिनों में) या प्रत्येक पखवाड़े के पहले दिनों में।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भोजन प्राप्त करने के तीनों तरीके अपनाने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने अपने लिए अच्छा भोजन प्राप्त कर लिया और फिर भी जो भोजन उन्हें मिला था, वह खराब था, जिसे उन्होंने अन्य भिक्षुओं को दे दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें राशन के बंटवारे के लिए ऐसे भिक्षु को नियुक्त करने की अनुमति देता हूँ जो निम्नलिखित पाँच योग्यताओं से युक्त हो--(आदि, जैसा कि IV, 9 में कम्मवक के अंत तक है)।

अब राशन बांटने वाले भिक्षुओं ने सोचा, 'तो फिर राशन कैसे बांटा जाए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि तुम भोजन को छोटे-छोटे ढेरों में व्यवस्थित करके और उन पर टिकट या चिह्न लगाकर उन्हें बाँट लो।'

2. उस समय संघ का कोई वितरक नहीं था।

आवास स्थलों का कोई निरीक्षक नहीं था—भंडारों का कोई निरीक्षक नहीं था—वस्त्रों का कोई प्राप्तकर्ता नहीं था—वस्त्रों, दलिया या फलों का कोई वितरक नहीं था—और सूखे खाद्य पदार्थों का कोई वितरक नहीं था, और वितरण न होने के कारण वह खराब हो गया।

उन्होंने ये सारी बातें भगवान बुद्ध को बताईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आवास-स्थानों आदि के वितरक के रूप में ऐसे भिक्षु (भिक्षु) को नियुक्त करने की अनुमति देता हूँ, जिसके पास (आदि, जैसा कि §-1 में कम्मवक के अंत तक है, पाँचवीं योग्यता में उपयुक्त भिन्नताओं को शामिल करते हुए)।

3. उस समय संघ के भंडारगृह में तुच्छ मूल्य की वस्तुएँ जमा हो गई थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यह अनुमति देता हूँ कि तुम तुच्छ वस्तुओं के निपटान के लिए ऐसे भिक्षु को नियुक्त करो जिसके पास (अतः पहले की तरह, कम्मवक के अंत तक) ये सभी वस्तुएँ हों। प्रत्येक सुई, कैंची, चप्पल, कमरबंद, ब्रेसेस, छानने वाला कपड़ा, छलनी, चोटी, आधी चोटी, गसेट, आधा गसेट, बाँटने वाला कपड़ा और बुनाई की वस्तुएँ दान कर दी जाएँ। यदि संघ के पास घी, तेल, शहद या गुड़ हो, तो वह उसे केवल अपने उपयोग के लिए ही दान करे, और यदि उसकी आवश्यकता हो, तो वह उसे दूसरी और तीसरी बार भी दान करे।

उस समय संघ में न तो अंतर्वस्त्रों का कोई प्राप्तकर्ता था, न ही कटोरे का, न ही मैदानों की देखरेख करने वालों (अरमिकों) का कोई अधीक्षक था, और अरमिकों की देखरेख न होने के कारण आवश्यक कार्य नहीं किए जाते थे, न ही समनेरों का कोई अधीक्षक था, और समनेरों की देखरेख न होने के कारण वे अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते थे।

उन्होंने ये सारी बातें भगवान बुद्ध को बताईं।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अंतर्वस्त्र आदि के प्राप्तकर्ता के रूप में ऐसे भिक्षु को नियुक्त करने की अनुमति देता हूँ जिसके पास (पहले की तरह, कम्मवक के अंत तक) हो।'

=========
छठे खंडक का समापन, सोने की व्यवस्था आदि पर।

<<<< पिछला(6.20) । अगला(7.1) >>>>

सातवां खंडक (विवाद)
(विधानसभा में मतभेद)

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> सातवाँ खंडका >> 7.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(6.21) । अगला(7.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

सातवां खंडक (संप्रदाय में मतभेद)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध अनुपिया में ठहरे हुए थे। अनुपिया मल्ल वंश का एक नगर था। उस समय शाक्य वंश के सबसे प्रतिष्ठित युवकों ने भगवान बुद्ध का अनुकरण करते हुए संसार का त्याग कर दिया था।

अब दो भाई थे, महानामा शाक्य और अनुरुद्ध शाक्य। अनुरुद्ध शाक्य का पालन-पोषण बहुत ही नाजुक तरीके से हुआ था; उनके पास तीन मंजिला आवास थे, एक शीत ऋतु के लिए, एक ग्रीष्म ऋतु के लिए और एक वर्षा ऋतु के लिए। चार महीने जो वे बिताते थे,

बरसात के मौसम में अपने निवास पर रहते हुए, संगीत बजाने वाली महिलाएं उनकी सेवा करती थीं, और वे अपने निवास की ऊपरी मंजिल से नीचे नहीं आते थे।

तब शाक्य वंश के महानामा ने सोचा, 'शाक्य वंश के सबसे प्रतिष्ठित युवकों ने भगवान बुद्ध का अनुकरण करते हुए संसार त्याग दिया है, परन्तु हमारे परिवार में से कोई भी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी नहीं बना है। अतः या तो मैं, या अनुराद्ध, संसार त्याग दें।' और वे शाक्य वंश के अनुराद्ध के पास गए और उनसे कहा, 'या तो आप संसार त्याग दें, या मैं त्याग दूंगा।'

'मैं नाजुक हूं। मेरे लिए गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ अवस्था (अर्थात भिक्षु जीवन) में जाना असंभव है। क्या आप ऐसा कर सकते हैं?'

2. "हे प्रिय अनुरुद्ध, अब मैं तुम्हें गृहस्थ जीवन के नियम बताता हूँ। सर्वप्रथम तुम्हें अपने खेतों की जुताई करनी होगी। जब यह हो जाए, तब तुम्हें उनमें बीज बोने होंगे। जब यह हो जाए, तब तुम्हें उनमें पानी डालना होगा। जब यह हो जाए, तब तुम्हें पानी निकालना होगा। जब यह हो जाए, तब तुम्हें खरपतवार उखाड़ने होंगे। जब यह हो जाए, तब तुम्हें फसल काटनी होगी। जब यह हो जाए, तब तुम्हें फसल को ले जाना होगा। जब यह हो जाए, तब तुम्हें उसे व्यवस्थित करना होगा।"

गट्ठों में बांधें। जब यह हो जाए, तो उसे रौंदना होगा। जब यह हो जाए, तो भूसा अलग करना होगा। जब यह हो जाए, तो भूसी निकालनी होगी। जब यह हो जाए, तो उसे फटकना होगा। जब यह हो जाए, तो फसल को इकट्ठा करना होगा। जब यह हो जाए, तो अगले साल भी यही प्रक्रिया दोहरानी होगी, और उसके अगले साल भी यही सब फिर से करना होगा।

'काम कभी खत्म नहीं होता: परिश्रम का अंत कभी नहीं दिखता। हे! हमारा काम कब खत्म होगा? हम अपने परिश्रम का अंत कब देखेंगे? हम कब अपनी पांचों इंद्रियों के सुखों को धारण करते हुए भी शांति से निवास करेंगे? जी हाँ! हे प्रिय अनुराद्ध, काम कभी खत्म नहीं होता; हमारे परिश्रम का कोई अंत नहीं दिखता। यहाँ तक कि जब हमारे पूर्वजों ने अपना जीवन पूरा कर लिया था, तब भी उनका काम अधूरा ही रहा था।'

'तो तुम गृहस्थी कर्तव्यों के बारे में सोचो। मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर घर-बार त्याग कर संन्यासी बन जाऊंगा।'

तब शाक्य पुरुष अनुरुद्ध अपनी माता के पास गए और उनसे कहा, 'हे माता, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बनना चाहता हूँ। कृपया मुझे इसकी अनुमति दें।'

और जब उसने ऐसा कहा, तो उसकी माँ ने उत्तर दिया

अनुरुद्ध शाक्य से कहा, 'हे प्रिय अनुरुद्ध, तुम दोनों मेरे इकलौते पुत्र हो, मुझे अत्यंत प्रिय हो, और मुझे तुममें कोई दोष नहीं दिखता। मृत्यु के कारण एक दिन, मेरी इच्छा के विरुद्ध, मुझे तुमसे वियोग करना पड़ेगा; परन्तु जब तक तुम जीवित हो, मैं कैसे यह स्वीकार कर सकती हूँ कि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बन जाओ?'

[और दूसरी बार शाक्य पुरुष अनुरुद्ध ने वही निवेदन किया और वही उत्तर प्राप्त किया। और तीसरी बार शाक्य पुरुष अनुरुद्ध ने अपनी माता से वही निवेदन किया।]

3. उस समय शाक्यों के राजा भद्दिया का शासन था; और वे शाक्य अनुरुद्ध के मित्र थे। अनुरुद्ध शाक्य की माता ने यह सोचकर कि ऐसा होने पर राजा संसार का त्याग नहीं कर पाएंगे, अपने पुत्र से कहा: 'हे प्रिय अनुरुद्ध, यदि शाक्य राजा भद्दिया संसार का त्याग कर दें, तो तुम भी गृहस्थी त्याग कर सकते हो।'

तब शाक्य वंश के अनुरुद्ध ने शाक्य राजा भद्दिया के पास जाकर उनसे कहा, 'हे मित्र, मेरे संसार त्याग में आप बाधक बन रहे हैं।'

'तो हे मेरे मित्र, उस बाधा को दूर कर दो। मैं भी तुम्हारी इच्छा के अनुसार संसार का त्याग कर दूंगा।'

'आओ, प्रिय मित्र, हम दोनों मिलकर संसार का त्याग कर दें!'

'प्रिय मित्र, मैं गृहस्थ जीवन त्यागने में सक्षम नहीं हूँ। आप मुझसे जो कुछ भी करने को कहें, मैं वह करूँगा। आप अकेले जाइए।'

'मेरे प्रिय मित्र, मेरी माता ने मुझसे कहा है कि यदि तुम ऐसा करोगे, तो मैं भी कर सकूँगी। और तुमने अभी-अभी कहा है, "यदि मेरे कारण तुम्हारा त्याग बाधित हो, तो उस बाधा को दूर कर दिया जाए। मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारी इच्छा के अनुसार संसार का त्याग कर दूँगी।" तो आओ, प्रिय मित्र, हम दोनों संसार का त्याग कर दें।'

उस समय लोग सत्य की बात करते थे और अपने वचन के पालनशील थे। शाक्य राजा भद्दिया ने शाक्य अनुरुद्ध से कहा, 'हे मित्र, सात वर्ष प्रतीक्षा करो। सात वर्ष पूरे होने पर हम दोनों मिलकर संसार का त्याग करेंगे।'

'सात साल बहुत लंबा समय है, प्रिय मित्र। मैं सात साल तक इंतजार नहीं कर सकता।'

[और यही प्रस्ताव लगातार छह साल से लेकर एक साल तक, सात महीने से लेकर एक महीने तक, और यहाँ तक कि पखवाड़े भर तक भी दिया गया, और फिर भी हर बार वही जवाब मिला। अंत में राजा ने कहा,]

'मेरे मित्र, सात दिन तक प्रतीक्षा करो, इस दौरान मैं राज्य को अपने पुत्रों और भाइयों को सौंप दूंगा।'

'सात दिन ज्यादा लंबा समय नहीं है। मैं अभी तक इंतजार कर लूंगा' (यह जवाब मिला)।

4. अतः शाक्य राजा भद्दिया, अनुरुद्ध, आनंद, भागु, किंबिला और देवदत्त—ठीक वैसे ही जैसे वे पहले भी कई बार गए थे।

वे चारों वस्त्रों के साथ आनंद-स्थल की ओर निकले—ठीक वैसे ही वे अब भी चारों वस्त्रों के साथ निकले, और नाई उपाली भी उनके साथ गया, इस प्रकार कुल सात लोग हो गए।

कुछ दूर जाने के बाद, उन्होंने अपने दल को वापस भेज दिया और पड़ोसी जिले में चले गए। उन्होंने अपने कीमती वस्त्र उतारकर उन्हें अपने वस्त्रों में लपेटकर एक गठरी बनाई और नाई उपाली से कहा, "हे उपाली, अब वापस लौट आओ। ये वस्त्र तुम्हारे जीवनयापन के लिए पर्याप्त होंगे।"

लेकिन लौटते समय नाई उपाली ने सोचा, 'शाक्यों बहुत क्रूर होते हैं। वे सोचेंगे कि मैंने इन युवकों को विनाश की ओर धकेल दिया है, और वे मुझे मार डालेंगे। लेकिन अब जब शाक्यों वंश के ये युवक गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बन सकते हैं, तो मैं क्यों न बनूँ?' और उसने अपनी पीठ से गठरी नीचे उतारी और उसे एक पेड़ पर टांग दिया, और कहा, 'जो भी इसे पाए, इसे उपहार के रूप में ले ले,' और उस स्थान पर लौट आया जहाँ शाक्यों युवक ठहरे हुए थे।

और शाक्य युवकों ने उसे दूर से आते देखा, और देखकर उससे कहा: 'हे भले उपाली, तुम किसलिए वापस आए हो?'

फिर उसने उन्हें बताया [कि उसने क्या सोचा था, उसने बंडल के साथ क्या किया था, और उसे वापस क्यों भेजा गया था]।

'तुमने अच्छा किया, हे उपली (यह उत्तर मिला), कि तुम वापस नहीं लौटे; क्योंकि शाक्यों क्रूर होते हैं, और वे तुम्हें मार सकते थे।'

और वे अपने साथ नाई उपाली को उस स्थान पर ले गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया, और

वे एक तरफ बैठ गए। और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, हम शाक्य अहंकारी हैं। और यह उपली नाई, हे प्रभु, लंबे समय से हमारा सेवक रहा है। भगवान बुद्ध कृपया उसे हमसे पहले संघ में शामिल करें, ताकि हम उसका आदर और श्रद्धा करें, और उसके सामने (अपने वरिष्ठ के रूप में) हाथ फैलाकर प्रणाम करें, और इस प्रकार हम शाक्यों का अहंकार चूर हो जाए।'

तब भगवान बुद्ध ने पहले उपली नाई को और बाद में शाक्य वंश के उन युवकों को संघ में शामिल किया। और उस वर्षा ऋतु के समाप्त होने से पहले ही पूज्य भद्दिया ने त्रिविध ज्ञान में महारत हासिल कर ली, पूज्य अनुराधा ने दिव्य दर्शन प्राप्त किया, पूज्य आनंद ने धारा में प्रवेश करने का फल अनुभव किया और देवदत्त ने उस प्रकार की इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की जो उन लोगों को भी प्राप्त होती है जिन्होंने उत्तम मार्ग पर प्रवेश नहीं किया है।

5. उस समय, पूज्य भद्दिया, जो वन में एक वृक्ष की तलहटी में एकांतवास में थे, बार-बार इस आनंदमय उद्घोषणा को दोहरा रहे थे: 'हे सुख! हे सुख!' अनेक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए और उनके समक्ष प्रणाम करके एक ओर बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने [भगवान बुद्ध को यह बात बताई] और आगे कहा, 'हे प्रभु, पूज्य भद्दिया अपने पवित्र जीवन से संतुष्ट नहीं हैं; बल्कि अपने पूर्व प्रभुत्व के सुख को याद करते हुए वे यह उद्घोषणा करते हैं।'

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षु, मेरे नाम से भद्दिया भिक्षु को पुकारो और कहो, 'आदरणीय गुरु भद्दिया तुम्हें बुला रहे हैं।'"

"जी प्रभु," उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा। फिर वह भद्दिया के पास गया और उसे [इन्हीं शब्दों में] पुकारा।

6. 'बहुत अच्छा,' आदरणीय भद्दिया ने कहा।

उस भिक्षु ने सहमति दी; और वह भगवान बुद्ध के पास आया, उनके सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। जब वह इस प्रकार बैठा, तो भगवान बुद्ध ने आदरणीय भद्दिया से कहा:

'क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि तुम भद्दिया, जब जंगल में एक वृक्ष की गोद में एकांत में एकांतवास करते थे, तो बार-बार इस आनंदमय उद्घोषणा को दोहराते थे, "हे खुशी! हे खुशी!" हे भद्दिया, ऐसी कौन सी परिस्थिति थी जिसके कारण तुमने ऐसा किया?'

'हे प्रभु, पहले जब मैं राजा था, तब मेरे निजी कक्षों के अंदर और बाहर, नगर के अंदर और बाहर, तथा मेरे देश की सीमाओं के भीतर, हर जगह मेरी पूरी सुरक्षा व्यवस्था थी। फिर भी, हे प्रभु, इतनी सुरक्षा और संरक्षण के बावजूद, मैं भयभीत, चिंतित, अविश्वासी और डरा हुआ रहता था। परन्तु अब, हे प्रभु, यहाँ तक कि जब मैं जंगल में, वृक्ष की तलहटी में, एकांत में होता हूँ, तब भी मैं भय या चिंता से मुक्त, आश्वस्त और निडर रहता हूँ; मैं शांत, संयमित और सुरक्षित रहता हूँ, मेरा मन हिरण के समान शांत होता है। हे प्रभु, इसी तथ्य को याद करते हुए, मैंने बार-बार यही पुकारा, "हे सुख! हे सुख!"'

तब भगवान बुद्ध ने यह सुनकर उस समय यह गीत गाया:

'जिस व्यक्ति के मन में कोई कठोर विचार नहीं होते, जो इस बात की परवाह नहीं करता कि चीजें कैसी हैं, उसकी आनंदमयी अवस्था, दु:ख और चिंता से मुक्ति की अवस्था को तो देवता भी नहीं देख पाते!'

<<<< पिछला(6.21) | अगला(7.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> सातवाँ खंडक >> 7.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.1) | अगला(7.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

सातवां खंडक (संप्रदाय में मतभेद)

अध्याय दो।

1. जब भगवान बुद्ध अनुपिया में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर गए, तब वे कोसंबी की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सीधे यात्रा करते हुए वे उचित समय पर कोसंबी पहुँचे और वहाँ उन्होंने घोषिता विश्राम (मठ) में विश्राम किया। जब देवदत्त एकांत में ध्यानमग्न हुए, तब उनके मन में यह विचार आया: 'अब मैं किसे अपने वश में करूँ, जिससे वह प्रसन्न होकर मुझे बहुत लाभ और सम्मान प्राप्त हो?' उनके मन में यह विचार आया, 'अब यह राजकुमार अजातसत्तु युवा है और उसका भविष्य उज्ज्वल है। तो मैं उसे अपने वश में कर लूँ; वह प्रसन्न होकर मुझे बहुत लाभ और सम्मान प्राप्त कराएगा।'

तब देवदत्त ने अपनी चटाई समेटी और पूरी तरह सजे-धजे वस्त्रों के साथ राजगृह के लिए प्रस्थान किया; और उचित समय पर वे राजगृह पहुँच गए। तब उन्होंने अपना रूप त्याग दिया और नागों की कमरबंद पहने एक बालक का रूप धारण कर लिया और राजकुमार अजातसत्तु की गोद में विलीन हो गए। तब

राजकुमार अजातसत्तु भयभीत, चौंक गया, चिंतित और घबरा गया।

और देवदत्त ने राजकुमार अजातसत्तु से कहा, 'क्या तुम मुझसे डरते हो, हे राजकुमार?'

'हां, मैं ही हूं। तुम कौन हो?'

'मैं देवदत्त हूं।'

'यदि आप, महोदय, वास्तव में योग्य देवदत्त हैं, तो कृपया अपने वास्तविक रूप में प्रकट हों।'

तब देवदत्त ने बालक का रूप त्यागकर, अपने भीतरी और बाह्य वस्त्र धारण किए हुए और हाथ में पान का पात्र लिए राजकुमार अजातसत्तु के समक्ष प्रकट हुए। देवदत्त की इस आध्यात्मिक शक्ति से राजकुमार अजातसत्तु अत्यंत प्रसन्न हुए और वे सुबह-शाम पाँच सौ रथों में उनकी सेवा करने जाते थे, तथा पाँच सौ थालियों में भोजन लाकर उनके समक्ष परोसा जाता था।

तब, धन, आतिथ्य और प्रसिद्धि के लालच में डूबे देवदत्त के मन में यह विचार आया: 'भिक्षु संघ का नेतृत्व मुझे ही करना चाहिए।' और जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, उसी क्षण देवदत्त अपनी आध्यात्मिक शक्ति से वंचित हो गए।

2. उस समय, काकुधा नामक एक कोलियन, जो मोग्गलाना का सेवक (भिक्षु के रूप में) था, का अभी-अभी निधन हुआ था और वह एक विशेष आध्यात्मिक शरीर में पुनर्जन्म लेकर प्रकट हुआ था। उसका व्यक्तित्व मगध के किसी गाँव के दो-तीन सामान्य धान के खेतों के बराबर विशाल था, फिर भी वह ऐसा था कि न तो स्वयं और न ही दूसरों के मार्ग में बाधा था। यह दिव्य प्राणी, काकुधा, पूज्य मोग्गलाना के पास गया और उनके समक्ष प्रणाम किया तथा एक ओर खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर उसने पूज्य मोग्गलाना को [देवदत्त के मन में उत्पन्न विचार और उसके परिणाम के बारे में] बताया। और यह बताने के बाद, उसने पूज्य मोग्गलाना के समक्ष प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए उनके पास से गुजरकर अंतर्धान हो गया।

और पूज्य मोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें [पूरी बात] बताई।

'तो फिर, मोग्गलाना, तुमने उस दिव्य प्राणी ककुधा के मन में इस प्रकार प्रवेश कैसे कर लिया है कि तुम जानते हो कि वह जो कुछ भी बोलेगा, वह उसी के अनुरूप होगा, अन्यथा नहीं?'

'जी प्रभु, मैंने कर लिया है।'

'मोग्गलाना, उस बात को गुप्त रखो; उस बात को गुप्त रखो। अभी भी वह मूर्ख व्यक्ति स्वयं ही प्रकट हो जाएगा।'

3. 'मोग्गलाना, इस दुनिया में पाँच प्रकार के शिक्षक मौजूद हैं। वे पाँच कौन से हैं?'

'सबसे पहले, मोग्गलाना, एक प्रकार का शिक्षक होता है जिसका आचरण शुद्ध न होते हुए भी, वह

वह यह प्रकट करते हैं कि उनका आचरण शुद्ध, निर्दोष और बेदाग है। उनके शिष्य यह जानते हैं, लेकिन वे सोचते हैं, "यदि हम यह बात आम लोगों को बता दें, तो उन्हें यह पसंद नहीं आएगा। और हम उनके प्रति ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उन्हें अप्रिय लगे? इसके अलावा, उन्हें आवश्यक वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए दवाइयों का उपहार देकर सम्मानित किया गया है। वे अपने कर्मों से ही जाने जाएंगे।" ऐसे गुरु, मोग्गलाना, के आचरण के संबंध में उनके शिष्य उनकी रक्षा करते हैं। और अपने स्वभाव के कारण, वे अपने आचरण के संबंध में अपने शिष्यों से भी यही अपेक्षा रखते हैं।

4. 'फिर, मोग्गलाना,' इत्यादि [पहले की तरह, क्रमशः 'आजीविका', 'धम्म का प्रचार', 'व्याख्या प्रणाली', 'ज्ञान से उत्पन्न अंतर्दृष्टि', 'आचरण' के लिए]। 'ये, मोग्गलाना, संसार में विद्यमान पाँच प्रकार के शिक्षक हैं। परन्तु मैं आचरण, आजीविका, धम्म के प्रचार, व्याख्या प्रणाली और ज्ञान से उत्पन्न अंतर्दृष्टि में शुद्ध होते हुए भी यह प्रकट करता हूँ कि मैं इन सब में शुद्ध, निर्दोष और बेदाग हूँ। न तो मेरे शिष्य मेरे आचरण के संबंध में मेरी रक्षा करते हैं, न ही मैं उनसे ऐसा करने की अपेक्षा करता हूँ।'

5. जब भगवान बुद्ध कोसंबी में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तब वे राजगृह की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सीधे चलते हुए वे उचित समय पर राजगृह पहुँचे; और वहाँ राजगृह में वे वेलुवन में कालंदक निवापा में ठहरे।

कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए, उनके सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा करने जाते हैं और उनके लिए पांच सौ थालियों में भोजन लाते और परोसते हैं।'

हे भिक्षुओं, देवदत्त के लाभ, आतिथ्य सत्कार और प्रसिद्धि से ईर्ष्या न करो। हे भिक्षुओं, जिस प्रकार अजातसत्तु उसकी सेवा करता है और उसे भिक्षा देता है, उसी प्रकार देवदत्त की समृद्धि न होकर उसके सद्‌गुणों में गिरावट आती रहेगी। हे भिक्षुओं, ठीक उसी प्रकार जैसे यदि तुम किसी हिंसक कुत्ते की नाक के सामने पित्ताशय फोड़ दो, तो कुत्ता और भी हिंसक हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार (जैसा पहले बताया गया है)। हे भिक्षुओं, यह लाभ, आतिथ्य सत्कार और प्रसिद्धि देवदत्त को अपने ही नुकसान और विनाश के लिए प्राप्त हुई है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार केला, बांस या नरकट अपने ही नुकसान और विनाश के लिए फल देता है, ठीक उसी प्रकार देवदत्त को भी नुकसान होगा (जैसा पहले बताया गया है)। जैसे एक जवान खच्चर अपने ही नुकसान और विनाश के लिए गर्भ धारण करती है, ठीक वैसे ही, हे भिक्षुओं, देवदत्त को अपने ही नुकसान के लिए यह लाभ मिला है, इत्यादि।

'इसका फल केले के पेड़ को नष्ट कर देता है; इसका फल बांस और नरकट को भी नष्ट कर देता है।'

'ईमानदारी बुरे आदमी का नाश कर देती है, ठीक वैसे ही जैसे उसका बच्चा जवान खच्चर का नाश कर देता है।'

यहां पाठ का पहला भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला(7.1) । अगला(7.3) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> सातवाँ खंडका >> 7.3

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.2) । अगला(7.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

सातवां खंडक (संप्रदाय में मतभेद)

अध्याय-3.

1. उस समय भगवान बुद्ध धर्म का उपदेश देते हुए बैठे थे और उनके चारों ओर राजा और उनके दल सहित एक विशाल जनसमूह था। देवदत्त अपने आसन से उठे और अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए, अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान बुद्ध की ओर फैलाकर उनसे कहा:

'हे प्रभु, भगवान बुद्ध अब वृद्ध हो गए हैं, वे उम्रदराज और पीड़ित हैं, उन्होंने एक लंबी यात्रा पूरी की है, और उनका जीवन काल लगभग समाप्त हो चुका है। अब भगवान बुद्ध इस संसार में भी प्राप्त सुख का आनंद लेते हुए विश्राम करें। भगवान बुद्ध भिक्षु संघ मुझे सौंप दें, मैं इसका नेता बनूंगा।'

'देवदत्त, तुमने बहुत कुछ कह दिया है। भिक्षु संघ का नेता बनने की इच्छा मत रखो।'

[और दूसरी बार देवदत्त ने वही अनुरोध किया, और उसे वही उत्तर मिला। और तीसरी बार देवदत्त ने वही अनुरोध किया।]

'देवदत्त, मैं भिक्षु संघ को सारिपुत्त और मोग्गलाना को भी नहीं सौंपूंगा, तो फिर तुम्हारे जैसे नीच और दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति को तो बिल्कुल नहीं।'

तब देवदत्त ने सोचा, 'राजा और उनके दल के सामने भगवान बुद्ध मेरा अपमान करते हुए मुझे "दुष्ट" कहते हैं और सारिपुत्त और मोग्गलाना की प्रशंसा करते हैं।' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिने हाथ पर रखते हुए वहां से चले गए।

यह पहली बार था जब देवदत्त ने भगवान बुद्ध के प्रति द्वेष भाव रखा।

2. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, संघ देवदत्त के विरुद्ध राजगृह में उद्घोषणा करे, कि देवदत्त का स्वभाव पहले एक प्रकार का था, अब वह दूसरे प्रकार का हो गया है, और वह शारीरिक या मौखिक रूप से जो कुछ भी करे, उसमें न तो बुद्ध की पहचान होगी, न धम्म की, न संघ की, बल्कि केवल देवदत्त की ही।'

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, अधिनियम का पालन किया जाएगा। कोई विवेकशील और योग्य भिक्षु (आदि)

(उसी रूप में जैसा कि I, I, 4 में कम्मवक के अंत तक है)।

और भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, 'तो हे सारिपुत्त, राजगृह में देवदत्त की घोषणा करो।'

'हे प्रभु, पुराने समय में मैंने राजगृह में देवदत्त की स्तुति गाई थी, यह कहते हुए, "गोधी के पुत्र की शक्ति (इद्धि) महान है! गोधी के पुत्र की सामर्थ्य महान है!" अब मैं राजगृह में उनकी स्तुति कैसे करूँ?'

'क्या तुमने सच नहीं कहा, सारिपुत्त, जब तुमने उसकी इतनी प्रशंसा की?'

'जी प्रभु!'

'फिर भी, सारिपुत्त, अब तुम सत्य बोलते हुए, राजगृह में देवदत्त का प्रचार करो।'

'जी प्रभु, ऐसा ही हो,' सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध की बात से सहमति जताते हुए कहा।

3. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

तो संघ, सारिपुत्त को राजगृह में देवदत्त की घोषणा करने का कार्य सौंपे, इस प्रकार (आदि, जैसा कि पहले, अनुच्छेद 2 में है)। और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उनकी नियुक्ति की जानी चाहिए। सर्वप्रथम, सारिपुत्त से पूछा जाना चाहिए, आदि (जैसा कि आधिकारिक नियुक्तियों में सामान्यतः होता है, कम्मवक के अंत तक)।

तब सारिपुत्त को जब यह आदेश दिया गया, तो वे अनेक भिक्षुओं के साथ राजगृह में प्रवेश कर गए और देवदत्त की घोषणा कर दी। इस पर अविश्वासी, भक्तिहीन और अंतर्दृष्टिहीन लोगों ने कहा, 'ये शाक्यपुत्र भिक्षु ईर्ष्यालु हैं! ये देवदत्त को मिलने वाले लाभ और आतिथ्य सत्कार से ईर्ष्या करते हैं!' परन्तु जो विश्वासी, भक्तिमय, योग्य और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण थे, उन्होंने कहा...

दृष्टि ने इस प्रकार कहा: 'यह कोई साधारण घटना नहीं हो सकती, क्योंकि भगवान बुद्ध ने राजगृह में देवदत्त की घोषणा करवाई है!'

4. देवदत्त राजकुमार अजातसत्तु के पास गया और उससे कहा, 'हे राजकुमार, पुराने समय में लोग दीर्घायु होते थे, परन्तु अब उनका जीवनकाल अल्प है। अतः यह संभव है कि आप राजकुमार रहते हुए ही अपना जीवनकाल पूरा कर लें। इसलिए, हे राजकुमार, आप अपने पिता को मार डालें और राजा बन जाएँ; और मैं भगवान बुद्ध को मार डालूँगा और बुद्ध बन जाऊँगा।'

और राजकुमार अजातसत्तु ने सोचा, 'इस योग्य देवदत्त के पास महान शक्ति और सामर्थ्य है; वह (सही) जानता होगा।' और अपनी जांघ पर कटार बांधकर, वह भयभीत, चिंतित, उत्तेजित और घबराया हुआ होते हुए भी, असामान्य समय पर और हिंसक रूप से राजकक्ष में प्रवेश कर गया। जब निजी कक्ष में उपस्थित मंत्रियों ने यह देखा, तो उन्होंने उसे पकड़ लिया। और जब उसकी तलाशी ली गई और उन्हें उसकी जांघ पर कटार बंधी मिली, तो उन्होंने उससे पूछा:

'हे राजकुमार, आप क्या करने वाले थे?'

'मैं अपने पिता को मारना चाहता था।'

'आपको ऐसा करने के लिए किसने उकसाया?'

'योग्य देवदत्त।'

तब कुछ मंत्रियों ने सलाह दी, 'राजकुमार, देवदत्त और सभी भिक्षुओं को मार डालना चाहिए।' उनमें से अन्य ने सलाह दी, 'भिक्षुओं को नहीं मारना चाहिए, क्योंकि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है;

लेकिन केवल राजकुमार और देवदत्त।' उनमें से अन्य लोगों ने फिर कहा, 'न तो राजकुमार को मारा जाना चाहिए, न देवदत्त को, न भिक्षुओं को। लेकिन राजा को इसकी सूचना दी जानी चाहिए, और हम राजा के आदेशानुसार कार्य करेंगे।'

5. इसलिए ये मंत्री राजकुमार को अपने साथ लेकर मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई।

'मेरे दोस्तों, मंत्रियों ने क्या सलाह दी?'

[जब उन्होंने उसे सब कुछ बता दिया (जैसा कि पहले बताया गया था) तो उसने कहा]: 'मेरे मित्रों, बुद्ध, संघ या धम्म का इससे क्या लेना-देना है? क्या भगवान बुद्ध ने राजगृह में देवदत्त के विषय में यह घोषणा नहीं करवाई है कि जहाँ उसका स्वभाव पहले एक प्रकार का था, वहीं अब दूसरे प्रकार का है; और वह शारीरिक या मौखिक रूप से जो कुछ भी करेगा, उसके लिए न तो बुद्ध, न धम्म, न संघ की आवश्यकता होगी, बल्कि केवल देवदत्त की ही आवश्यकता होगी?'

फिर उन मंत्रियों को, जिन्होंने राजकुमार, देवदत्त और सभी भिक्षुओं को मारने की सलाह दी थी, उसने पद से हटा दिया। और उन मंत्रियों को, जिन्होंने राजकुमार और देवदत्त को मारने की सलाह दी थी, उसने निचले पदों पर पदावनत कर दिया। लेकिन उन मंत्रियों को, जिन्होंने सलाह दी थी कि न तो राजकुमार, न देवदत्त और न ही भिक्षुओं को मारा जाए, बल्कि राजा को इसकी सूचना दी जाए और उसके आदेश का पालन किया जाए, उसने उच्च पदों पर पदोन्नत कर दिया।

और मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने राजकुमार अजातसत्तु से कहा: 'हे राजकुमार, तुम मुझे क्यों मारना चाहते थे?'

'हे राजा, मुझे एक राज्य चाहिए था!'

'यदि तुम फिर भी कोई राज्य चाहते हो, हे राजकुमार, तो यही राज्य तुम्हारा हो!' और उसने वह राज्य राजकुमार अजातसत्तु को सौंप दिया।

6. तब देवदत्त राजकुमार अजातसत्तु के पास गया और बोला, 'हे महाराज, अपने सैनिकों को ऐसा आदेश दीजिए कि मैं समना गौतम (बुद्ध) का प्राण छीन लूँ।' तब राजकुमार अजातसत्तु ने अपने सैनिकों को आदेश दिया: 'देवदत्त जो भी कहे, वही करो!'

फिर देवदत्त ने एक व्यक्ति को आदेश दिया: 'जाओ, मेरे मित्र, समर गौतम फलाँ स्थान पर ठहरे हुए हैं। उन्हें मार डालो और इस रास्ते से वापस आ जाओ।' फिर उन्होंने उस रास्ते पर दो और व्यक्तियों को तैनात किया और उनसे कहा, 'जो भी व्यक्ति इस रास्ते से अकेला आता हुआ दिखाई दे, उसे मार डालो और उसी रास्ते से लौट जाओ।' फिर उन्होंने उस रास्ते पर चार और व्यक्तियों को तैनात किया [और इसी प्रकार सोलह व्यक्तियों तक]।

7. और उस व्यक्ति ने अपनी तलवार और ढाल ली, और अपना धनुष और तरकश अपनी पीठ पर लटका लिया, और उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध थे, और जब वह भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर था,

भयभीत, चिंतित, उत्साहित और घबराया हुआ, वह एकदम स्थिर और अकड़ा हुआ खड़ा था।

जब भगवान बुद्ध ने उसे इस हालत में देखा, तो उन्होंने उस व्यक्ति से कहा: 'यहाँ आओ, मित्र, डरो मत।'

तब उस व्यक्ति ने अपनी तलवार और ढाल एक तरफ रख दी, अपना धनुष और तरकश उतार दिया और भगवान बुद्ध के पास जाकर उनके चरणों में गिरकर उनसे कहा, “हे प्रभु, मेरे पाप ने मुझे मेरी मूर्खता, मेरी नादानी और मेरे अधर्म के अनुसार ही पराजित कर दिया है, क्योंकि मैं यहाँ दुष्टता और हत्या के इरादे से आया हूँ। भगवान बुद्ध मेरे पाप की गंभीरता को स्वीकार करें, ताकि भविष्य में मैं उससे विमुख हो सकूँ!”

"सचमुच, मेरे मित्र, पाप ने तुम्हें इरादे तक पर काबू पा लिया है। लेकिन चूंकि, मेरे मित्र, तुम अपने पाप को पाप मानते हो और उसका प्रायश्चित करते हो, इसलिए हम तुम्हारी स्वीकारोक्ति को स्वीकार करते हैं। क्योंकि, हे मित्र, यही परमपिता के मार्गदर्शन में प्रगति है कि जिसने अपने पाप को पाप के रूप में पहचान लिया है, वह उसका उचित प्रायश्चित करे और भविष्य में उससे बचने में सक्षम हो जाए।"

तब भगवान बुद्ध ने उस व्यक्ति को विधिवत रूप से प्रवचन दिया, अर्थात् (जैसा कि धर्मांतरण में सामान्यतः होता है) भगवान बुद्ध मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उनकी शरण ली है।

और भगवान बुद्ध ने उस व्यक्ति से कहा, 'मेरे मित्र, उस रास्ते से मुझे छोड़कर मत जाओ। इस रास्ते से जाओ।' और इस प्रकार उसे दूसरे रास्ते से विदा कर दिया।

8. परन्तु उन दोनों पुरुषों ने सोचा, 'वह व्यक्ति जो अकेले आने वाला था, अब कहाँ है? वह बहुत देर कर रहा है।' और जब वे उससे मिलने जा रहे थे, तो उन्होंने भगवान बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए देखा। उन्हें देखकर वे उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें भी प्रवचन दिया, [और वे भी उस दूसरे व्यक्ति की तरह परिवर्तित हो गए, और उन्होंने उन्हें दूसरे मार्ग से वापस भेज दिया। और वही हुआ जो उन चार, आठ और सोलह पुरुषों के साथ हुआ था।]

9. तब वह व्यक्ति देवदत्त के पास लौटकर उनसे बोला, 'हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध को जीवन से वंचित नहीं कर सकता। भगवान बुद्ध की शक्ति (इद्धि) और सामर्थ्य महान है।'

'बस इतना ही काफी है, मित्र। तुम्हें ऐसा करने की जरूरत नहीं है। मैं स्वयं भगवान बुद्ध का वध कर दूंगा।'

उस समय भगवान बुद्ध गिद्ध शिखर नामक पर्वत की छाया में ध्यान कर रहे थे। देवदत्त गिद्ध शिखर पर चढ़ गया और भगवान बुद्ध को जान से मारने के इरादे से एक विशाल चट्टान नीचे फेंकी। लेकिन दो पर्वत शिखर आपस में टकरा गए और उस चट्टान को रोक दिया, जिससे केवल एक छोटा सा टुकड़ा गिरकर भगवान बुद्ध के पैर से खून बहा।

तब भगवान बुद्ध ने ऊपर की ओर देखते हुए देवदत्त से कहा: 'हे मूर्ख, तूने अपने ऊपर बहुत बड़ा पाप उत्पन्न किया है, क्योंकि तूने दुष्ट और हत्या के इरादे से तथागत का रक्त बहाया है।'

और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'यह पहली बार है कि देवदत्त ने अपने ऊपर ऐसा कर्म सृजित किया है जिसका फल उसे निकट भविष्य में भुगतना पड़ेगा, क्योंकि उसने दुष्ट और हत्यारी मंशा से तथागत का रक्त बहाया है।'

10. जब भिक्षुओं ने सुना कि देवदत्त भगवान बुद्ध की हत्या की योजना बना रहा है, तो वे भगवान बुद्ध की रक्षा और सुरक्षा के लिए विहार के चारों ओर चक्कर लगाते हुए ऊँची और ऊँची आवाज़ में मंत्रोच्चार करने लगे। यह आवाज़ सुनकर भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से पूछा कि यह क्या है। जब आनंद ने उन्हें बताया, तो भगवान बुद्ध ने कहा: 'आनंद, मेरे पास भिक्षुओं को बुलाओ।'

नाम लेकर कहा, "गुरुजी आदरणीय लोगों को बुलाते हैं।"

और उन्होंने ऐसा ही किया, और वे आए, और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और एक तरफ बैठ गए। जब वे इस प्रकार बैठ गए, तो भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, यह असंभव है, और ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई तथागत को हिंसा द्वारा मृत्यु दे। हे भिक्षुओं, तथागत स्वाभाविक रूप से मृत्यु को प्राप्त होते हैं।'

हे भिक्षुओं, संसार में पाँच प्रकार के गुरु विद्यमान हैं (आदि, जैसा कि अध्याय 7, 2, 3, 4 और अंत तक दिया गया है)। हे भिक्षुओं, यह असंभव है, और ऐसा होना असंभव है कि तथागत (बुद्ध) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कार्य से मारे जाएँ। हे भिक्षुओं, तथागत प्रकृति के नियमानुसार मृत्यु में निःसंदेह हो जाते हैं। अतः हे भिक्षुओं, आप सभी अपने-अपने विहार में जाइए, क्योंकि तथागतों को किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं है।

11. उस समय राजगृह में नलगिरी नाम का एक हाथी था, जो भयंकर और हत्यारा था। देवदत्त राजगृह में हाथी के अस्तबल में गया और हाथी पालकों से कहा, "हे मेरे मित्रों, मैं राजा का रिश्तेदार हूँ और निम्न पद पर आसीन व्यक्ति को उच्च्य पद पर पदोन्नत कर सकता हूँ, और उसके राशन या वेतन में वृद्धि का आदेश दे सकता हूँ। इसलिए, हे मेरे मित्रों, जब समना गौतम (बुद्ध) इस मार्ग पर पहुँचें, तो नलगिरी हाथी को खोलकर उसे इस मार्ग पर जाने दें।"

'फिर भी, महाराज,' देवदत्ता की बात से सहमत होते हुए उन हाथी पालकों ने कहा।

और जब भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे वस्त्र धारण कर लिए, तो वे विधिवत वस्त्र पहने हुए, कई भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश कर गए; और उस मार्ग पर चल पड़े। उन्हें देखकर हाथी पालकों ने नलगिरि हाथी को खोल दिया और उसे उस मार्ग पर छोड़ दिया। हाथी ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा; और देखते ही वह अपनी सूंड ऊपर उठाकर और पूंछ और कान सीधे करके भगवान बुद्ध की ओर दौड़ पड़ा।

जब उन भिक्षुओं ने दूर से नलगिरि हाथी को आते देखा, तो उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे भगवान, नलगिरि हाथी बहुत भयंकर और घातक है, और यह इस रास्ते पर आ गया है। हे भगवान, भगवान बुद्ध वापस लौट जाएं: हे सुखी बुद्ध वापस लौट जाएं।'

'आओ, हे भिक्षुओं। घबराओ मत। हे भिक्षुओं, ऐसी कोई संभावना नहीं है [आदि, जैसा कि पिछले खंड में अंत तक है]।'

[और भिक्षुओं ने दूसरी और तीसरी बार भी वही अपील की, और उन्हें वही उत्तर मिला।]

12. तब उस समय लोग घरों की ऊपरी मंजिलों, बालकनियों और छतों पर चढ़ गए। और उनमें से जो अविश्वासी और आस्थाहीन थे, उन्होंने कहा, 'सचमुच महान समना (बुद्ध) का चेहरा सुंदर है; लेकिन हाथी उन्हें चोट पहुँचाएगा।' परन्तु जो विश्वासी थे, वे पूर्ण रूप से

भक्ति, योग्यता और अंतर्दृष्टि से संपन्न व्यक्ति ने कहा, 'हाथी के लिए मनुष्य रूपी हाथी से लड़ना बहुत लंबा समय होगा!'

और भगवान बुद्ध ने अपने प्रेम का भाव नलगिरि हाथी में प्रवाहित किया; और उनके प्रेम से द्रवित होकर हाथी ने अपनी सूंड नीचे रख दी और भगवान बुद्ध के पास जाकर उनके सामने स्थिर हो गया। और भगवान बुद्ध ने अपने दाहिने हाथ से हाथी के माथे को सहलाते हुए उससे इन श्लोकों में बात की:

'हे हाथी, मनुष्यों के हाथी को मत छुओ; क्योंकि हे हाथी, ऐसा प्रहार दुखद है। हे हाथी, जो मनुष्य के हाथी को मारता है, उसके लिए यहाँ से चले जाने पर कोई आनंद नहीं रहता। इसलिए क्रोधित मत हो, और न ही लापरवाह बनो, क्योंकि लापरवाह आनंद की अवस्था में प्रवेश नहीं कर सकते। बल्कि तुम स्वयं ऐसा कर्म करो जिससे तुम आनंद की अवस्था में पहुँच सको।' तब नलगिरि हाथी ने अपनी सूंड से भगवान बुद्ध के चरणों की धूल उठाई और उसे अपने सिर पर छिड़का, और भगवान बुद्ध को निहारते हुए पीछे की ओर झुककर चला गया।

और नलगिरी नामक हाथी हाथी के अस्तबल में लौट आया और अपने नियत स्थान पर खड़ा हो गया, और

वह एक बार फिर शांत नालगिरि बन गया। और उस समय लोगों ने ये छंद गाए:

'इन्हें लाठी, अंकुश और चाबुक से वश में किया जा सकता है, परन्तु महान ऋषि ने इस हाथी को बिना किसी हथियार या लाठी के वश में कर लिया।' 13. लोग क्रोधित हुए, बड़बड़ाए और आक्रोशित होकर कहने लगे, 'यह देवदत्त कितना दुष्ट और नीच है कि वह इतने बलवान और शक्तिशाली समना गौतम का वध करने का प्रयास कर रहा है।' और देवदत्त का लाभ और मान-सम्मान घट गया, जबकि भगवान बुद्ध का मान-सम्मान बढ़ता गया।

उस समय जब देवदत्त का लाभ और सम्मान समाप्त हो गया था, तब वह भिक्षुओं से घिरे हुए लोगों के घरों में भिक्षा मांगने के लिए जाने लगे।

लोग क्रोधित हो गए, आपस में बड़बड़ाने लगे और नाराज़ होकर कहने लगे, 'शाक्यपुत्रीय समनाएँ दूसरों के घरों से माँगे हुए भोजन पर कैसे जीवित रह सकते हैं? भला किसे अच्छी तरह पका हुआ भोजन पसंद नहीं होता? किसे मीठी चीज़ें पसंद नहीं होतीं?'

भिक्षुओं ने सुना (और इसी प्रकार आगे भी) कि भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, 'इसलिए, हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं के लिए यह नियम बनाता हूँ कि तीन से अधिक भिक्षु एक साथ लोगों के घरों में भिक्षा ग्रहण न करें—और इसके तीन कारण हैं; पहला, दुष्टों को रोकने के लिए, और दूसरा, भले भिक्षुओं की सुविधा के लिए, ताकि बुरे इरादों वाले भिक्षु किसी विशेष समूह पर भरोसा करके संघ को भंग न कर दें, और तीसरा, गृहस्थों के प्रति करुणा के कारण। जो भिक्षु तीन से अधिक के समूह में भिक्षा ग्रहण करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

14. अब देवदत्त उस स्थान पर गया जहाँ कोकालिका, कटामोरक-तिस्सका, खंड-देवी का पुत्र और समुद्दा-दत्त थे, और उनसे कहा, 'आओ, महोदय, हम समना गौतम के संघ और उनके अनुयायियों के समूह में फूट डालें।'

जब उसने ऐसा कहा, तो कोकालिका ने देवदत्त से कहा, 'महोदय, समना गौतम (बुद्ध) महान और शक्तिशाली हैं। हम ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

''हे महोदय, आइए हम समना गौतम के पास चलें और उनसे निम्नलिखित पाँच माँगें करें, यह कहते हुए, 'हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने अनेक उदाहरणों में उस व्यक्ति के लाभों का वर्णन किया है जो कम इच्छा रखता है, जो जीविका और पोषण के मामले में सहज है, जिसने अपने

मन से बुराई को दूर कर दिया है, अपनी वासनाओं को शांत कर दिया है, और जो आस्था, श्रद्धा और उत्साह से परिपूर्ण है। हे प्रभु, निम्नलिखित पाँच बातें ऐसी स्थिति में सहायक होती हैं। हे प्रभु, यदि भिक्षु जीवन भर वनों में निवास करें तो यह अच्छा होगा - जो कोई भी गाँव के आसपास जाता है वह अपराध करता है। यदि वे जीवन भर भिक्षा माँगते रहें तो यह अच्छा होगा - जो कोई भी निमंत्रण स्वीकार करता है वह अपराध करता है। यदि वे जीवन भर पुराने वस्त्र धारण करें तो यह अच्छा होगा - जो कोई भी गृहस्थ से वस्त्रों का उपहार स्वीकार करता है वह अपराध करता है। अपराध। यह अच्छा होगा यदि वे जीवन भर वृक्षों के नीचे रहें—यदि कोई छत के नीचे सोए तो वह अपराध करेगा। यह अच्छा होगा यदि वे जीवन भर मछली से परहेज करें—यदि कोई

मछली खाना, ऐसा करने से अपराध होगा। समना गौतम इन चीजों की अनुमति नहीं देंगे। तब हम इसके द्वारा लोगों पर विजय प्राप्त करेंगे।

'हां; ऐसा करना संघ में और समना गौतम के दल में फूट डालने के लिए संभव हो सकता है। क्योंकि लोग कठोर उपायों में विश्वास करते हैं।'

15. और देवदत्त अपने मित्रों से घिरे हुए भगवान बुद्ध के पास गया और उसने ये मांगें रखीं [जैसा कि अभी बताया गया है]।

नहीं, देवदत्त। जो चाहे, वह जंगलों में रह सकता है; जो चाहे, वह गाँव के आस-पास रह सकता है। जो चाहे, वह भिक्षा मांग सकता है; जो चाहे, वह गृहस्थों के निमंत्रण स्वीकार कर सकता है। जो चाहे, वह फटे-पुराने कपड़े पहन सकता है; जो चाहे, वह गृहस्थों से वस्त्र भेंट स्वीकार कर सकता है। देवदत्त, मैंने वर्ष के आठ महीने पेड़ों के नीचे सोने की अनुमति दी है; और ऐसी मछली खाने की भी अनुमति है जो तीनों तरह से शुद्ध हो—अर्थात्, जिसे खाने वाले ने न तो देखा हो, न सुना हो, और न ही उसे संदेह हो कि उसे इस उद्देश्य से पकड़ा गया है।

देवदत्त, भगवान बुद्ध द्वारा पाँचों माँगों को अस्वीकार किए जाने से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, अपने आसन से उठे और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए अपने मित्रों के साथ वहाँ से चले गए। वे राजगृह में प्रवेश कर गए और वहाँ से लोगों को अपना विचार समझाते हुए कहा, 'हे महोदय, हमने समना गौतम (बुद्ध) से ऐसी-ऐसी बातें माँगी थीं। उन्होंने उन्हें स्वीकार नहीं किया, परन्तु हम उन्हीं के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं।'

16. तब अविश्वासी और अविचलित लोगों ने कहा, 'इन शाक्यपुत्रीय समनों ने बुराई का नाश कर दिया है।'

उन्होंने अपने मन से विलाप को दूर कर लिया है और अपनी भावनाओं को शांत कर लिया है, जबकि दूसरी ओर समना गौतम विलासी हैं और उनका मन समृद्धि में डूबा रहता है। लेकिन जो लोग विश्वासी थे और श्रद्धा एवं अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण थे, वे क्रोधित हो गए, परेशान हो गए और बड़बड़ाने लगे, 'देवदत्त भगवान बुद्ध के संघ और अपने अधीन दल में फूट डालने का प्रयास कैसे कर सकता है?'

भिक्षुओं ने उनकी इस प्रकार की बड़बड़ाहट सुनकर यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे देवदत्त, क्या यह सच है जैसा कि लोग कहते हैं कि तुम संघ में और मेरे अनुयायियों के समूह में फूट डालने का प्रयास कर रहे हो?'

'यह सच है, प्रभु।'

हे देवदत्त, तुम बहुत आगे बढ़ चुके हो। संघ में विभाजन को अपने लिए अच्छा मत समझो; ऐसा विभाजन अत्यंत कष्टदायी है। हे देवदत्त, जो कोई भी संघ को तब भंग करता है जब वह शांति में हो, वह एक कल्प तक रहने वाले दोष को जन्म देता है और एक कल्प तक निरय (नरक) में जलता है। परन्तु हे देवदत्त, जो कोई भी संघ में विभाजन होने पर शांति स्थापित करता है, वह सर्वोच्च पुण्य को जन्म देता है और एक कल्प तक स्वर्ग में सुखी रहता है। हे देवदत्त, तुम बहुत आगे बढ़ चुके हो। हे देवदत्त, संघ में विभाजन को अपने लिए अच्छा मत समझो। हे देवदत्त, ऐसा विभाजन अत्यंत कष्टदायी है।

17. अब पूज्य आनंद ने सुबह जल्दी वस्त्र धारण करके विधिवत वस्त्र धारण कर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। देवदत्त ने पूज्य आनंद को राजगृह से भिक्षा मांगने जाते हुए देखा। यह देखकर वह पूज्य आनंद के पास गया और उनसे कहा: 'हे मित्र आनंद, मैं आज से उपोसथ व्रत धारण करने और भिक्षु संघ या भगवान बुद्ध के बिना ही संघ की औपचारिक प्रक्रियाओं का पालन करने का निश्चय करता हूँ।'

और जब पूज्य आनंद राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद लौट आए और भोजन कर लिया, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने भगवान बुद्ध को देवदत्त की कही बातें बताईं और आगे कहा, 'हे प्रभु, आज ही के दिन देवदत्त संघ को तोड़ देगा।'

तब भगवान बुद्ध ने यह सुनकर तीव्र भाव व्यक्त करते हुए कहा:

'नेक लोगों के लिए अच्छा काम आसान होता है, दुष्टों के लिए अच्छा काम कठिन होता है।'

'बुराई करने वालों के लिए बुराई करना आसान है, लेकिन नेक लोगों के लिए बुराई करना कठिन है।'

यहां पाठ का दूसरा भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला(7.2) । अगला(7.4) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> सातवाँ खंडका >> 7.4

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.3) । अगला(7.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

सातवां खंडक (संप्रदाय में मतभेद)

अध्याय-4.

1. उस दिन, जो उपोसथ दिवस था, देवदत्त अपने आसन से उठे और मतदान टिकट बाँटते हुए बोले, 'महोदय, हम समना गौतम (बुद्ध) के पास गए और उनसे पंच सूत्र मांगे, यह कहते हुए (जैसा कि ऊपर 7, 3, 14 और 15 में वर्णित है)। समना गौतम इन्हें स्वीकार नहीं करते; परन्तु हम इनके अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। जो भी पूजनीय व्यक्ति इन पंच सूत्रों को स्वीकार करे, वह एक टिकट ले ले।'

उस समय देवदत्त संघ में पाँच सौ भिक्षु थे, जो वैशालियन और वज्जियन वंश के थे और हाल ही में संघ में शामिल हुए थे तथा देवदत्त के विचारों से अनभिज्ञ थे। इन सभी ने धर्म, विनय और गुरु के उपदेशों के अनुसार पंचसूत्रों को सही मानते हुए मतदान किया। इस प्रकार संघ में विभाजन करके देवदत्त उन पाँच सौ भिक्षुओं को अपने साथ लेकर गया-सिसा पर्वत पर चले गए।

तब सारिपुत्त और मोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास गए, उनके सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठ गए, तब सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओं को साथ लेकर गया-सिसा गए हैं।'

'सचमुच, सारिपुत्त और मोग्गलाना, आप दोनों में से उन युवा भिक्षुओं के प्रति दया भाव होना चाहिए। इसलिए, आप दोनों वहां से चले जाएं, इससे पहले कि वे पूरी तरह से नष्ट हो जाएं।'

'हे प्रभु, ऐसा ही हो,' सारिपुत्त और मोग्गलाना ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा। वे अपने आसनों से उठकर उनके सामने प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए गयासिस के लिए चल पड़े।

फिर उसी समय भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर खड़े एक भिक्षु रोने लगे। तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, 'हे भिक्षु, तुम क्यों रो रहे हो?'

'हे प्रभु, जो भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य हैं, सारिपुत्त और मोग्गलाना, वे भी देवदत्त के धर्म का समर्थन करते हुए देवदत्त के पक्ष में चले गए हैं।'

हे भिक्षु, यह असंभव होगा कि सारिपुत्त और मोग्गलाना उनकी शिक्षा को स्वीकार करें। वे तो केवल उन भिक्षुओं को पुनः प्राप्त करने के लिए ही गए हैं।

2. उस समय देवदत्त, बहुत से अनुयायियों से घिरे हुए, धम्म का उपदेश देते हुए बैठे थे। जब उन्होंने दूर से सारिपुत्त और मोग्गलाना को अपनी ओर आते देखा, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, देखो, मेरा उपदेश कितना प्रभावी होगा, क्योंकि समना गौतम (बुद्ध) के दो प्रमुख शिष्य—सारिपुत्त—भी मेरा उपदेश देते हैं।'

और मोग्गलाना—मेरे धर्म से प्रसन्न होकर मुझसे जुड़ने आ रहे हैं।'

जब कोकालिका ने ऐसा कहा, तो उसने देवदत्त से कहा: 'हे पूज्य देवदत्त, सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा मत करो, क्योंकि वे बुराई की ओर प्रवृत्त हैं और बुरी इच्छाओं के प्रभाव में हैं।'

'नहीं, मेरे मित्र, आइए हम उनका स्वागत करें क्योंकि वे मेरे उपदेश (धम्म) में आनंद लेते हैं।'

और देवदत्त ने सारिपुत्त को अपने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित करते हुए कहा, 'आओ, मित्र सारिपुत्त। यहाँ बैठो!'

'नहीं (इसकी कोई आवश्यकता नहीं है),' सारिपुत्त ने कहा; और दूसरी कुर्सी लेकर एक तरफ बैठ गए। देवदत्त ने रात भर भिक्षुओं को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रसन्न किया; फिर सारिपुत्त से निवेदन करते हुए कहा, 'हे मित्र सारिपुत्त, सभा अभी भी जागृत और अचेत है। क्या आप कृपया भिक्षुओं को संबोधित करने के लिए किसी धर्म प्रवचन का विचार करेंगे? मेरी कमर थक गई है, और मैं थोड़ा आराम करना चाहता हूँ।'

'फिर भी, मित्र,' आदरणीय सारिपुत्त ने देवदत्त की बात से सहमति जताते हुए कहा। देवदत्त ने अपनी कमर की चार तहों में बाँधी हुई धोती ज़मीन पर बिछाई और दाहिनी ओर करवट लेकर लेट गए। पल भर में ही उन्हें, जो थके हुए थे और अपनी चेतना और होश खो चुके थे, नींद आ गई।

3. तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को उपदेश के चमत्कारों पर धर्म प्रवचन दिया और उनका अभिनंदन किया, और पूज्य मोग्गलाना ने भिक्षुओं को इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) के चमत्कारों पर धर्म प्रवचन दिया और उनका अभिनंदन किया। जब वे इस प्रकार उपदेश और अभिनंदन प्राप्त कर रहे थे, तब उन भिक्षुओं को सत्य की शुद्ध और निर्मल दृष्टि (दिव्य अंतर्दृष्टि) प्राप्त हुई, जिसका कोई आरंभ नहीं है, उसमें भी निष्फल होने की अनिवार्यता निहित है। तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे मेरे मित्रों, आइए हम भगवान बुद्ध के पास चलें। जो कोई भी उनके धर्म (धार्म) को स्वीकार करता है, वह आए।'

और सारिपुत्त और मोग्गलाना उन पाँच सौ भिक्षुओं को अपने साथ लेकर वेलुवन लौट गए। परन्तु कोकालिका ने देवदत्त को जगाया और कहा: 'उठो, मित्र देवदत्त! तुम्हारे भिक्षुओं को सारिपुत्त और मोग्गलाना ले गए हैं। क्या मैंने तुम्हें नहीं कहा था, देवदत्त, कि सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा मत करो, क्योंकि वे बुराई की ओर झुके हुए हैं और बुरी इच्छाओं के प्रभाव में हैं?'

फिर देवदत्त के मुख से गर्म रक्त निकला।

4. लेकिन सारिपुत्त और मोग्गलाना उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। जब वे इस प्रकार बैठ गए, तब सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा:

'हे प्रभु, यह अच्छा होगा कि जो भिक्षु फूट डाल चुके हैं, उन्हें संघ के उच्चतर स्तर में पुनः ग्रहण कर लिया जाए।'

नहीं, सारिपुत्त, विद्रोही भिक्षुओं का पुन:दीक्षा करना तुम्हें अच्छा न लगे। बल्कि ऐसे भिक्षुओं से यह स्वीकार करवाओ कि उन्होंने तुलकाय (बड़ा/गंभीर अपराध) किया है। और, सारिपुत्त, देवदत्त ने तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया?

जब देवदत्त, भगवान, ने रात के काफी देर तक धर्म प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रसन्न किया, तब उन्होंने मुझसे निवेदन करते हुए कहा, "हे मित्र सारिपुत्त, सभा अभी भी जागृत और नींदहीन है। क्या आप, मित्र सारिपुत्त,

भिक्षुओं को संबोधित करने के लिए किसी धर्म प्रवचन के बारे में सोच सकते हैं? मेरी कमर थक गई है, और मैं थोड़ा आराम करना चाहता हूँ।" हे भगवान, देवदत्त ने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया।

5. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'एक समय की बात है, हे भिक्षुओं, एक वन क्षेत्र में एक बड़ा तालाब था। उसके किनारे कुछ हाथी रहते थे; वे तालाब में डुबकी लगाकर अपनी सूंड से कमल के पौधों की खाने योग्य डंठलें तोड़ते, उन्हें पूरी तरह साफ होने तक धोते, बिना किसी गंदगी के चबाते और खा जाते थे। इससे उनमें सुंदरता और शक्ति दोनों उत्पन्न हुईं, और इसी कारण वे न तो मृत्यु के शिकार हुए और न ही मृत्यु के समान किसी दुःख में पड़े। अब, हे भिक्षुओं, उन बड़े हाथियों के बीच हाथी के बच्चे भी थे, जिन्होंने भी दूसरों की नकल करते हुए उस तालाब में डुबकी लगाई और अपनी सूंड से कमल के पौधों की खाने योग्य डंठलें तोड़ीं; लेकिन उन्होंने उन्हें पूरी तरह साफ होने तक नहीं धोया, बल्कि गंदगी सहित चबाकर खा लिया। इससे उनमें सुंदरता और शक्ति दोनों उत्पन्न हुईं।

न तो सौंदर्य, न ही बल; और इसी कारण वे मृत्यु के सान्निध्य में, और मृत्यु के समान दुःखों में लीन हो गए। हे भिक्षुओं, ठीक इसी प्रकार देवदत्त का भी यही हाल होगा, जो हे बेचारा मेरा अनुकरण कर रहा है।

'जैसे हाथी का बच्चा उस विशालकाय जानवर की नकल करते हुए मिट्टी खाता है।'

जो धरती को हिला देता है, कमल के पौधे को खा जाता है, और रात भर जल के बीच पहरा देता है—

तो बेचारा, जो मेरी नकल करेगा, वही मरेगा।

6. हे भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त भिक्षु दूत का कार्य करने के योग्य है। वे आठ गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, भिक्षु को सुनने और दूसरों को सुनाने में सक्षम होना चाहिए, सीखने में सक्षम होना चाहिए, ध्यान रखने में सक्षम होना चाहिए, विवेक करने और दूसरों को विवेक कराने में सक्षम होना चाहिए, मित्रों और शत्रुओं से व्यवहार करने में कुशल होना चाहिए और झगड़ा न करने वाला होना चाहिए। ये आठ गुण हैं जिनसे युक्त होने पर भिक्षु, हे भिक्षुओं, दूत का कार्य करने के योग्य होता है।

'हे भिक्षुओं, सारिपुत्त आठ गुणों से युक्त होने के कारण दूत का कार्य करने के योग्य है। वे आठ गुण क्या हैं (आदि, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में है)?'

जो भिक्षु उग्र वाणी वाले समूह में प्रवेश करते समय भयभीत नहीं होता, एक भी शब्द नहीं छोड़ता, अपने संदेश को छुपाता नहीं, अपनी बात में स्पष्ट रहता है और प्रश्न पूछे जाने पर क्रोधित नहीं होता, वही भिक्षु निश्चय ही मिशन पर जाने के योग्य है।

7. हे भिक्षुओं, देवदत्त आठ बुरी स्थितियों से ग्रस्त होकर एक कल्प तक दुख और पीड़ा में रहने के लिए अप्रतिबंधित है। वे आठ स्थितियाँ क्या हैं? वह लाभ, लाभ की अरुचि, यश, यश की अरुचि, मान, मान की अरुचि, बुरी इच्छाओं और बुरे मित्रों से ग्रस्त है। हे भिक्षुओं, ये आठ बुरी स्थितियाँ हैं जिनसे देवदत्त ग्रस्त होकर एक कल्प तक दुख और पीड़ा में रहने के लिए अप्रतिबंधित है।

हे भिक्षुओं, यह अच्छा है कि भिक्षु किसी भी लाभ या हानि, यश या अपयश, मान या अपमान, बुरी इच्छा या बुरी मित्रता पर पूर्ण प्रभुत्व बनाए रखें। और इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, जो इन आठों चीजों पर पूर्ण प्रभुत्व बनाए नहीं रखता, उस पर कष्ट और पीड़ा से भरे बुरे प्रभाव (आसव) उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो ऐसा करता है, उस पर ऐसे प्रभाव उत्पन्न नहीं होते। यही कारण है, हे भिक्षुओं, कि यह अच्छा है (आदि, जैसा पहले बताया गया है)। इसलिए, हे भिक्षुओं, हमें किसी भी लाभ या हानि, यश या अपयश, मान या अपमान, बुरी इच्छा या बुरी मित्रता पर पूर्ण प्रभुत्व बनाए रखना चाहिए। और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, तीन बुरी स्थितियाँ हैं जिनसे देवदत्त पराजित होकर और उसका मन उनमें लीन होकर एक कल्प तक दुख और पीड़ा की अवस्था में रहने के लिए अप्रतिरोध्य हो जाता है। वे तीन स्थितियाँ क्या हैं? उसकी बुरी इच्छाएँ, उसके बुरे मित्र और किसी छोटी चीज़ को प्राप्त कर लेने के कारण (निर्वाण या अरहत्त्व के मार्ग में) उसका रुक जाना। ये तीन स्थितियाँ हैं (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है)।

8. "सचमुच! अपने भीतर किसी भी प्रकार की बुरी इच्छा न उठने दो! बल्कि इससे उसका परिणाम जानो। वह बुद्धिमान और सुशिक्षित माने जाते थे; देवदत्त यश से प्रज्वलित खड़े थे (मैंने ऐसा सुना है)। उन्होंने अपने आप को अहंकार में लिप्त कर लिया, तथागत (बुद्ध) पर आक्रमण किया: वे अविकि नरक में गिर पड़े, जो चौगुनी सुरक्षा से घिरा हुआ और भयानक है। जो भले ही अच्छे का नाश करे, जो निर्दोष है, उसे पाप व्याप्त कर लेता है, वह क्रूर हृदय वाला और प्रेमहीन व्यक्ति है। यदि कोई सोचे कि एक विषपात्र से सागर दूषित हो सकता है, तो भी वह उसे दूषित नहीं कर सकता, क्योंकि सागर भयानक और विशाल है; ठीक उसी प्रकार यदि कोई शब्दों से तथागत (बुद्ध) को चोट पहुँचाए, तो भी..."

वह परिपूर्ण, वह शांत हृदय वाला—उसके सामने शब्द व्यर्थ होंगे। बुद्धिमान भिक्षु को उसका मित्र बनाना चाहिए और उसकी शरण में जाना चाहिए, जिसके मार्ग का अनुसरण करके वह दु:खों से मुक्ति पाएगा!

<<<< पिछला(7.3) । अगला(7.5) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> सातवाँ खंडका >> 7.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.4) । अगला(8.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

सातवां खंडक (संप्रदाय में मतभेद)

अध्याय-5.

1. अब पूज्य उपली भगवान बुद्ध के पास गए, उनके सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, 'संघ में फूट' और 'संघ में विभाजन' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। हे प्रभु, संघ में कितनी फूट फूटने में सहायक होती है और कितनी फूट संघ में फूट और विभाजन दोनों उत्पन्न करने में सहायक होती है?"

'यदि एक व्यक्ति एक पक्ष में हो, उपाली, दो अन्य पक्ष में हों, और चौथा व्यक्ति औपचारिक प्रस्ताव रखे और उन्हें मतदान पत्र देते हुए कहे, "यह धम्म के अनुसार है, विनय के अनुसार है, और गुरु के उपदेशों के अनुसार है। यह (पत्र) लें और इस (राय) का समर्थन करें"—तो, उपाली, यह संघ में फूट है, विभाजन नहीं।'

उपाली, यदि दो एक तरफ हैं, और अन्य दो दूसरी तरफ हैं, और पाँचवाँ... (और इसी तरह आगे भी) और आठवाँ उन्हें कुछ बताते हैं (आदि, जैसा कि पहले बताया गया है) - तो, उपाली, यह संघ में फूट है, विभाजन नहीं।

'यदि, उपाली, चार एक तरफ हैं, और दूसरी तरफ चार'

दूसरी तरफ हैं, और नौवां उन्हें बताता है (आदि, जैसा कि पहले) - तो, उपली, यह संघ में फूट भी है और विभाजन भी है।

नौ उपालि का या नौ से अधिक का पृथक्करण संघ में फूट और विभाजन दोनों है।

'एक भिक्षुणी, उपली, विभाजन उत्पन्न नहीं कर सकती, यद्यपि वह विभाजन उत्पन्न करने में सहायक हो सकती है—न ही कोई महिला नवोदित भिक्षुणी, न कोई समनेर (पुरुष या स्त्री), न कोई गृहस्थ पुरुष, न कोई गृहस्थ स्त्री। केवल वही भिक्षु विभाजन उत्पन्न कर सकता है जो अपने सभी विशेषाधिकारों का पूर्ण अधिकार रखता हो, एक ही समुदाय का सदस्य हो और एक ही जिले में निवास करता हो।'

2. 'हे प्रभु, "संघ में फूट" की अभिव्यक्ति है। हे प्रभु, संघ में फूट उत्पन्न करने के लिए कितना कुछ आवश्यक है?'

'वे, उपली, जो धम्म नहीं है उसे धम्म के रूप में प्रस्तुत करते हैं, या जो धम्म है उसे धम्म नहीं बताते, या जो विनय नहीं है उसे विनय के रूप में प्रस्तुत करते हैं, या जो विनय है उसे विनय नहीं बताते, या जो तथागत (बुद्ध) द्वारा सिखाया और कहा नहीं गया है उसे उनके द्वारा सिखाया और कहा गया बताते हैं, या जो तथागत द्वारा सिखाया और कहा गया है उसे नहीं सिखाया गया बताते हैं।

और उनके द्वारा कही गई बात, या जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है उसे उनके द्वारा अभ्यास किया हुआ मानना, या जो तथागत द्वारा अभ्यास किया गया है उसे उनके द्वारा अभ्यास नहीं किया हुआ मानना, या जो तथागत द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है उसे उनके द्वारा निर्धारित किया हुआ मानना, या जो तथागत द्वारा निर्धारित किया गया है उसे उनके द्वारा निर्धारित नहीं किया हुआ मानना, या जो अपराध नहीं है उसे अपराध मानना, या जो अपराध है उसे अपराध नहीं मानना, या जो मामूली अपराध है उसे गंभीर अपराध मानना, या जो गंभीर अपराध है उसे मामूली अपराध मानना, या जो (नियम के संबंध में) किसी ऐसे अपराध को जिसके लिए प्रायश्चित है उसे

प्रायश्चित रहित मानना, या जो (नियम के संबंध में) किसी ऐसे अपराध को जिसके लिए प्रायश्चित नहीं है उसे प्रायश्चित योग्य मानना, या जो गंभीर अपराध है उसे गंभीर अपराध नहीं मानना, या जो गंभीर अपराध नहीं है उसे गंभीर अपराध मानना। इन अठारह बिंदुओं में वे अपने अनुयायियों को बाधा और गुमराह करते हैं, और स्वयं उपोसथा, पवाराना और संघ के (आधिकारिक) कार्यों का स्वतंत्र रूप से निष्पादन करते हैं। उपाली, संघ में फूट डालने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

3. 'हे प्रभु, एक अभिव्यक्ति है, "संघ में सामंजस्य।" हे प्रभु, संघ में सामंजस्य स्थापित करने के लिए क्या आवश्यक है?'

'उन्होंने, उपली, जो धम्म नहीं है उसे धम्म नहीं माना (और इसी तरह अठारह बिंदुओं के माध्यम से अंत तक)।'

24. हे प्रभु, इससे (कर्म का) क्या फल होता है?

वह कौन सा व्यक्ति है जो संघ में एकता की स्थिति में फूट उत्पन्न करता है?

'उपली, वह एक ऐसे दोष को जन्म देता है (जिसका परिणाम) एक कल्प तक रहता है, और एक कल्प तक वह निरय (नरक) में उबलता रहता है।'

"जो संघ को तोड़ता है, वह एक कल्प तक दुख और पीड़ा की अवस्था में रहने के लिए अभिशप्त है।"

जो गुटबाजी (झगड़े) में आनंद लेता है और धम्म का पालन नहीं करता, वह अरहतत्व से वंचित हो जाता है।

संघ को तब भंग करने के कारण जब वह शांति में था, उसे निरय (नरक) में एक कल्प के लिए उबाला गया।

'हे प्रभु, वह व्यक्ति किस कर्म फल को जन्म देता है जो संघ के विखंडित होने पर उसमें सुलह कराता है?'

'हे उपली, वह सर्वोच्च पुण्य उत्पन्न करता है, और एक कल्प के लिए वह स्वर्ग में सुखी है।'

संघ में सामंजस्य और शांति में रहने वालों का समर्थन करना लाभकारी है! जो शांति में प्रसन्न रहता है और धम्म का पालन करता है, वह अर्हतत्व से वंचित नहीं होता: जब संघ में कलह थी, तब उसका मेल-मिलाप कराने पर वह एक कल्प तक स्वर्ग में सुख पाता है। 5. 'हे प्रभु, क्या यह संभव है कि संघ को भंग करने वाला एक कल्प तक दुख और पीड़ा की अवस्था में रहने के लिए अप्रतिबंधित हो जाए?'

'हां, उपाली, ऐसा हो सकता है।'

'हे प्रभु, क्या ऐसा हो सकता है कि संघ को भंग करने वाला व्यक्ति दुख या पीड़ा की अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेने के लिए अभिशप्त न हो; कि वह एक कल्प तक ऐसी अवस्थाओं में रहने के लिए अभिशप्त न हो; और कि उसकी (उसकी स्थिति) अपरिवर्तनीय न हो?'

'हां, उपाली, ऐसा हो सकता है।'

'तो फिर, हे प्रभु, [पहले शीर्ष के अंतर्गत कौन आता है?]'

'हे उपाली, यदि कोई भिक्षु अधर्म को धर्म बताकर प्रचारित करे, अपने मत, अनुमोदन, प्रसन्नता और अभिलाषा को अपने कथन और कर्म में प्रकट करे; और यह विश्वास करते हुए कि उसका प्रतिपादन धर्म के विरुद्ध है, और उससे उत्पन्न विभाजन भी धर्म के विरुद्ध होगा; और उसका प्रचार करे, टिकट बाँटे और कहे, "यह (मतदान टिकट) लो: इस (मत) का अनुमोदन करो। यही धर्म है; यही विनय है; यही गुरु का उपदेश है,"—हे उपाली, जो इस प्रकार संघ को विभाजित करता है, वह एक कल्प तक दुख और पीड़ा की अवस्था में रहने के लिए अपूरणीय रूप से अभिशप्त होगा।'

[उपरोक्त अनुच्छेद को फिर पूर्णतः दोहराया जाता है, और 'इस विश्वास में कि (वह जो सिद्धांत प्रतिपादित करता है) वह धम्म के विरुद्ध है, और उससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा' के स्थान पर निम्नलिखित प्रत्येक खंड को क्रमानुसार पढ़ा जाता है:--]

(ख) ... इस विश्वास में कि यह सिद्धांत धम्म के विरुद्ध है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप होने वाला विभाजन धम्म के अनुरूप होगा...

(ग) . . . इस विश्वास में कि यह सिद्धांत धम्म के विरुद्ध है, लेकिन इस अनिश्चितता में कि इससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा या नहीं . . .

(घ) . . . इस विश्वास में कि सिद्धांत धम्म के अनुरूप है, लेकिन उससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा . . .

(ई) ... इस विश्वास में कि सिद्धांत धम्म के अनुरूप है, लेकिन इस अनिश्चितता में कि उससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा या नहीं...

(f) . . . इस अनिश्चितता में कि सिद्धांत धम्म के विरुद्ध है या नहीं, परन्तु इस विश्वास में कि उससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा . . .

(जी) ... इस अनिश्चितता में कि सिद्धांत धम्म के विरुद्ध है या नहीं, और इस विश्वास में कि उससे उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा...

(h) ... इस अनिश्चितता में कि क्या यह सिद्धांत धम्म के विरुद्ध होगा, और इस अनिश्चितता में कि क्या इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला विभाजन धम्म के विरुद्ध होगा या नहीं...]

[फिर पूरे अनुच्छेद को दोहराया जाता है, और 'जो धम्म नहीं है उसे धम्म के रूप में प्रकट करता है' के स्थान पर, VII, 5, 2 में पूर्ण रूप से दिए गए अठारह बिंदुओं में से प्रत्येक को क्रमानुसार पढ़ा जाता है।]

6. 'हे प्रभु, वह कौन है जो संघ को भंग करता है, और फिर भी दुख या पीड़ा की अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेने के लिए अभिशप्त नहीं है; जो एक कल्प तक ऐसी अवस्थाओं में रहने के लिए अभिशप्त नहीं है; और जो इस प्रकार अभिशप्त नहीं है कि उसकी स्थिति अपरिवर्तनीय हो जाए?'

'यदि उपाली, कोई भिक्षु बिना अपनी राय, स्वीकृति, प्रसन्नता और इरादे को उस ओर निर्देशित किए, और यह मानते हुए कि वह जो सिद्धांत प्रतिपादित कर रहा है वह धम्म के अनुरूप है, तो उससे उत्पन्न होने वाला मतभेद भी धम्म के अनुरूप होगा।'

यहां पाठ का तीसरा भाग समाप्त होता है।

=========
संघ में विभाजन पर आधारित सातवां खंडक यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(7.4) । अगला(8.1) >>>>

आठवां खंडक (एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)
(भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(7.5) । अगला(8.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध सावत्थी में, अनाथपिंडिका के विश्राम (पार्क/मठ) में ठहरे हुए थे।

उस समय नए भिक्षु अपने पदचिन्ह पहने हुए, या अपने ऊपर धूप से बचने के लिए छाता लगाए हुए, या अपने सिर को मथनी से ढके हुए, या अपने ऊपरी वस्त्र को सिर पर गड्डे हुए आराम (मठ) में प्रवेश करते थे; और वे पीने के पानी में अपने पैर धोते थे; और वे अपने से वरिष्ठ निवासी भिक्षुओं को प्रणाम नहीं करते थे, न ही उनसे पूछते थे कि उन्हें (नए आने वालों को) कहाँ सोना चाहिए।

और एक आने वाले भिक्षु ने एक खाली कमरे (विहार) की कुंडी खोलकर दरवाजा खोल दिया और जबरदस्ती अंदर घुस गया; और एक सांप गिर पड़ा

वह ऊपर की चौखट से पीठ के बल गिर पड़ा, और वह भयभीत हो गया और चीखने लगा।

भिक्षु दौड़कर आए और उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। उन्होंने उन्हें वह बात बताई। तब वे भिक्षु जो अपनी इच्छाओं में संयमी थे, व्यथित और क्रोधित हो गए और बड़बड़ाते हुए बोले, 'नए भिक्षु आराम में कैसे प्रवेश कर सकते हैं...? (और इसी तरह, पहले की तरह, नीचे तक)... जहाँ उन्हें सोना चाहिए।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई (आदि, हमेशा की तरह, 1, 2, 3, नीचे तक) उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा, 'इसलिए, हे भिक्षुओं, मैं आने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें व्यवहार करना चाहिए।

2. हे भिक्षुओं, जब कोई नया भिक्षु यह जान ले कि वह विश्राम में प्रवेश करने वाला है, तो उसे अपनी चप्पलें उतारकर उन्हें उल्टा करके, धूल झाड़ने के लिए उन्हें पीटना चाहिए और फिर उन्हें अपने हाथों में उठा लेना चाहिए।

उसने अपना हाथ रखा, अपनी धूप से बचने वाली टोपी नीचे रखी, अपना सिर ढका, अपनी ऊपरी पोशाक को अपनी पीठ पर व्यवस्थित किया, और फिर सावधानीपूर्वक और धीरे-धीरे अरमा में प्रवेश किया।

'जब वह विश्राम में प्रवेश करे तो उसे ध्यान देना चाहिए कि वहां रहने वाले भिक्षु कहां गए हैं; और वे जहां कहीं भी गए हों—चाहे सेवा कक्ष में हों, या मंडप में हों, या किसी वृक्ष की तलहटी में हों—उसे वहीं जाना चाहिए, और अपना भिक्षापात्र एक तरफ और अपना वस्त्र एक तरफ रखकर, उसे उपयुक्त स्थान पर बैठना चाहिए।'

उसे यह पूछना चाहिए कि पीने का पानी और धोने का पानी किसके लिए है और किसके लिए। यदि उसे पीने के पानी की आवश्यकता हो, तो उसे लाकर पीना चाहिए। यदि उसे धोने के पानी की आवश्यकता हो, तो उसे लाकर अपने पैर धोने चाहिए। पैर धोते समय उसे एक हाथ से पानी डालकर दूसरे हाथ से धोना चाहिए; उसे एक ही हाथ से पानी डालकर पैर नहीं धोने चाहिए।

उसे चप्पलों को साफ करने वाले कपड़े मांगकर अपनी चप्पलें साफ करनी चाहिए। चप्पलें साफ करते समय उसे पहले सूखे कपड़े से और फिर गीले कपड़े से पोंछना चाहिए; फिर उन कपड़ों को धोकर एक तरफ रख देना चाहिए।

यदि निवासी भिक्षु वरिष्ठ हो, तो उसे प्रणाम करना चाहिए; यदि कनिष्ठ हो, तो उसे (नए भिक्षु को) प्रणाम करने के लिए कहना चाहिए। नए भिक्षु को अपने हिस्से में आए आवास के बारे में और वह खाली है या भरा हुआ है, इसके बारे में पूछना चाहिए। उसे वैध और अवैध आवासों के बारे में और यह भी पूछना चाहिए कि किन परिवारों को आधिकारिक तौर पर जरूरतमंद घोषित किया गया है।

उसे विश्राम स्थलों के बारे में, (वे कहाँ स्थित हैं) और पीने के पानी के बारे में, धोने के पानी के बारे में, चलने के लिए लाठियों के बारे में, संघ की बैठकों के स्थान के बारे में, (और) उस समय के बारे में पूछना चाहिए जब उसे (उसमें) प्रवेश करना चाहिए और जब उसे उसे छोड़ना चाहिए।

3. 'यदि विहार खाली हो, तो उसे दरवाजे पर दस्तक देनी चाहिए, फिर एक मिनट इंतजार करना चाहिए, फिर कुंडी खोलकर दरवाजा खोलना चाहिए, और फिर भी बाहर खड़े रहकर अंदर देखना चाहिए।

यदि वह विहार धूल से ढका हो, या पलंग या कुर्सियाँ एक दूसरे के ऊपर ढेर लगी हों, और बिस्तर का सामान उनके ऊपर ढेर लगा हो, तो यदि

यदि वह ऐसा कर सकता है, तो उसे विहार की सफाई करनी चाहिए। विहार की सफाई करते समय, उसे फर्श पर बिछी चटाई, पलंग के सहारे, तकिए और बैठने वाली चटाई को एक तरफ रख देना चाहिए। पलंग और कुर्सियों को जमीन पर रखकर, फर्श पर खरोंच लगने या दरवाजे के चौखटों से टकराने से सावधानीपूर्वक बचाते हुए, उन्हें दरवाजे के बाहर ले जाकर एक तरफ रख देना चाहिए। थूकदान और सहारा लेने के लिए रखी तख्ती को भी बाहर निकालकर एक तरफ रख देना चाहिए।

यदि विहार मकड़ी के जालों से ढका हो, तो पहले उन्हें कपड़े से साफ कर देना चाहिए। खिड़कियों और खिड़कियों की धूल साफ कर देनी चाहिए, विशेषकर कोनों और जोड़ों की।

यदि प्लास्टर और लाली से पुती हुई दीवार या मिट्टी से बना काला रंगा हुआ फर्श कोनों से गंदा हो गया हो, तो उसे पहले गीले और निचोड़े हुए कपड़े से पोंछना चाहिए। यदि फर्श इस प्रकार तैयार नहीं किया गया हो, तो उस पर पानी छिड़ककर झाड़ू लगानी चाहिए, ताकि धूल से विहार अपवित्र न हो जाए। झाड़ू से निकले कचरे को इकट्ठा करके एक तरफ फेंक देना चाहिए।

4. फर्श पर बिछाई गई चादरों को धूप में सुखाकर, साफ करके, झाड़-झाड़ कर धूल झाड़ देनी चाहिए, फिर वापस ले जाकर उनके मूल स्थान पर बिछा देना चाहिए। पलंग के सहारे को धूप में सुखाकर, झाड़-झाड़ कर, वापस ले जाकर उनके मूल स्थान पर रख देना चाहिए। पलंग (मनका) और कुर्सियों (पीठा) को धूप में सुखाकर, साफ करके, झाड़-झाड़ कर धूल झाड़ देनी चाहिए, फिर उल्टा करके, सावधानी से फर्श पर खरोंच लगने या दरवाजे के चौखटों से टकराने से बचाते हुए, वापस ले जाकर उनके मूल स्थान पर रख देना चाहिए। तकिए और गद्दे, और

बैठने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली चटाइयों को धूप में सुखाकर, साफ करके, झाड़कर धूल झाड़ दें, वापस ले जाकर उनके मूल स्थान पर रख दें। इसी प्रकार, थूकदान और सहारा देने वाले तख्ते को भी धूप में सुखाकर, झाड़कर, वापस ले जाकर उनके मूल स्थान पर रख दें।

15. (तब नए भिक्षु को) अपना कुंड और वस्त्र रखना चाहिए। कुंड रखते समय, उसे एक हाथ में पकड़े रहना चाहिए और दूसरे हाथ से पलंग या कुर्सी के नीचे टटोलना चाहिए, फिर उसे रखना चाहिए; और उसे फर्श के उस हिस्से पर नहीं रखना चाहिए जो खाली छोड़ा गया हो। कुंड रखते समय, उसे एक हाथ में पकड़े रहना चाहिए और दूसरे हाथ से वस्त्र टांगने के लिए इस्तेमाल होने वाले बांस या रस्सी को टटोलना चाहिए; फिर उसे इस तरह टांगना चाहिए कि किनारा उससे दूर हो और तह उसकी ओर हो।

यदि धूल उड़ाती हुई हवाएँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण दिशा से चलें, तो उस दिशा की खिड़कियों को (शटर या जाली से) बंद कर देना चाहिए। यदि सर्दी का मौसम हो, तो दिन में जाली खोल देनी चाहिए और शाम को बंद कर देनी चाहिए।

रात: यदि मौसम गर्म हो, तो इन्हें दिन में बंद और रात में खोल देना चाहिए। यदि कोठरी, भंडारगृह, भोजन कक्ष, चूल्हा जलाने का कमरा या शौचालय धूल से ढका हो, तो उसे साफ कर देना चाहिए। यदि पीने का पानी या धोने का पानी न हो, तो उसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। यदि धोने के बर्तन में पानी न हो, तो उसमें पानी डाल देना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, यह नए भिक्षुओं के लिए आचरण का नियम है, जिसके अनुसार उन्हें व्यवहार करना चाहिए।'

<<<< पिछला(7.5) | अगला(8.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.1) | अगला(8.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय दो।

1. उस समय निवासी भिक्षु, आने वाले भिक्षुओं को देखकर, उनके लिए बैठने की व्यवस्था नहीं करते थे, न ही उनके लिए पानी, पादने की चौकी और पैर धोने के लिए तौलिये उपलब्ध कराते थे, न ही उनसे मिलने जाते थे और उनके कटोरे और वस्त्रों की जिम्मेदारी लेते थे, न ही उनसे पूछते थे कि क्या उन्हें पीने का पानी चाहिए, न ही आने वाले भिक्षुओं में से अपने वरिष्ठों को प्रणाम करते थे, और न ही उनके लिए बिस्तर तैयार करते थे।

संयमी भिक्षुओं ने आपस में कुछ बुदबुदाया, इत्यादि, और यह बात भगवान बुद्ध को बताई, इत्यादि, (अंत में) उन्होंने भिक्षुओं से कहा: 'अत:, हे भिक्षुओं,

क्या मैं निवासी भिक्षुओं के लिए आचरण का कोई नियम स्थापित करूं, जिसके अनुसार उन्हें व्यवहार करना चाहिए?

2. किसी वरिष्ठ भिक्षु को देखकर, जो वहीं रहता हो, उसे उसके लिए आसन तैयार करना चाहिए, जल, पाँव रखने की चौकी और पैर धोने के लिए तौलिया देना चाहिए; उससे मिलने जाना चाहिए, उसके वस्त्र और जलपात्र को अपने पास रखना चाहिए, उससे पूछना चाहिए कि क्या वह पानी पीना चाहता है, और यदि वह (इच्छा से) ऐसा कर सके, तो उसे उसकी पाँव की चप्पलें पोंछनी चाहिए। चप्पलें पोंछते समय, पहले उन्हें सूखे कपड़े से, फिर गीले कपड़े से पोंछना चाहिए, और फिर कपड़ों को धोकर अलग रख देना चाहिए।

नए भिक्षु का अभिवादन करना चाहिए। उनके लिए पलंग बिछाकर कहना चाहिए, "यह पलंग आपके लिए है।" उन्हें यह बताना चाहिए कि (शय्या) में कोई है या नहीं, कौन से स्थान वैध हैं और कौन से अवैध, और किन परिवारों को आधिकारिक तौर पर जरूरतमंद घोषित किया गया है। उन्हें विश्राम स्थल, पीने और धोने का पानी, लाठी, संघ की सभाओं का स्थान, और उनके प्रवेश और प्रस्थान का समय बताना चाहिए।

3. यदि (आगंतुक भिक्षु) उससे कनिष्ठ हो, तो (स्थायी भिक्षु) अपनी सीट पर बैठे-बैठे उसे बताए कि उसे अपना कुंड और वस्त्र कहाँ रखना है और किस चटाई पर बैठना है। नए भिक्षु को पीने और धोने का पानी और चप्पल साफ करने के कपड़े कहाँ हैं, इसकी जानकारी दी जानी चाहिए; उसे निवासी भिक्षु को प्रणाम करने की अनुमति दी जानी चाहिए; और उसे बताया जाना चाहिए

जहां उसका बिस्तर है, वहां यह कहते हुए कि, "वह बिस्तर आपके लिए है।" उसे यह सूचित किया जाना चाहिए कि (वह कमरा) खाली है या नहीं (और इसी तरह, पिछले पैराग्राफ की तरह, अंत तक)।

'हे भिक्षुओं, यह निवास करने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण का नियम है, जिसके अनुसार उन्हें व्यवहार करना चाहिए।'

<<<< पिछला(8.1) । अगला(8.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.2) । अगला(8.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय-3.

1. उस समय भिक्षु जाने की तैयारी में लकड़ी के सामान और बर्तनों को व्यवस्थित किए बिना, दरवाज़े और जाली खुले छोड़कर और सोने की जगहें किसी को सौंपे बिना ही चल पड़े। लकड़ी के सामान और बर्तन नष्ट हो गए और सोने की जगहें असुरक्षित रह गईं।

संयमी भिक्षुओं ने बड़बड़ाते हुए कहा, इत्यादि... भगवान बुद्ध से कहा, इत्यादि... (अंत में) उन्होंने भिक्षुओं से कहा: 'अत:, हे भिक्षुओं, मैं प्रस्थान करने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें व्यवहार करना चाहिए।'

2. हे भिक्षुओं, प्रस्थान करने वाले भिक्षु को लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों को व्यवस्थित करना चाहिए, द्वार और जाली बंद कर देनी चाहिए, सोने के स्थानों की जिम्मेदारी (किसी एक को) सौंप देनी चाहिए, तभी प्रस्थान करना चाहिए। यदि कोई भिक्षु शेष न हो, तो किसी समनेर को जिम्मेदारी सौंप देनी चाहिए। यदि कोई समनेर शेष न हो, तो परिसर की देखरेख करने वाले परिचारक को जिम्मेदारी सौंप देनी चाहिए।

वहाँ न तो भिक्षु हों, न समनेरा हों, न अरमिका हों; पलंग को चार पत्थरों पर रखना चाहिए, बाकी पलंगों को उसके ऊपर रखना चाहिए, कुर्सियों को एक के ऊपर एक रखना चाहिए, बिस्तर को एक गठरी में ऊपर रखना चाहिए, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों को क्रम से रखना चाहिए, और दरवाजों और जाली को बंद कर देना चाहिए, और फिर उसे व्यवस्थित करना चाहिए।

3. यदि विहार में रिसाव हो रहा हो, तो यदि संभव हो तो उसकी मरम्मत करा लें, या विहार की छत बनवाने का प्रयास करें। यदि इसमें सफलता मिल जाए तो अच्छा है। यदि न मिले, तो विहार के उस भाग में, जहाँ रिसाव न हो रहा हो, पलंग को चार पत्थरों पर रखें, और फिर दूसरा पलंग रखें (आदि, पिछले अनुच्छेद के अनुसार, अंत तक)। यदि पूरे विहार में रिसाव हो रहा हो, तो यदि संभव हो तो सारा बिस्तर गाँव ले जाएँ, या उसे वहाँ पहुँचाने का प्रयास करें। यदि सफलता मिल जाए, तो अच्छा है। यदि न मिले, तो खुले में चार पत्थरों पर एक पलंग रखें, उसके ऊपर बाकी पलंग रखें, कुर्सियाँ एक के ऊपर एक रखें, बिस्तर का ढेर लगा दें, लकड़ी और मिट्टी के बर्तन उनके पास क्रम से रखें, और पूरे को घास या पत्तों से ढक दें, ताकि कम से कम मुख्य फर्नीचर सुरक्षित रहे; और (केवल) तभी जाएँ।

हे भिक्षुओं, यही आचरण का नियम है।

भिक्षु जाने वाले हैं, इसलिए उन्हें उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

<<<< पिछला(8.2) | अगला(8.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.3) | अगला(8.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय-4.

1. उस समय भिक्षुओं ने भोजन के स्थान पर धन्यवाद नहीं दिया। लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, इत्यादि; भिक्षुओं ने सुना, इत्यादि; उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं धन्यवाद देने की अनुमति देता हूँ।'

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'धन्यवाद किसे देना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं उपस्थित वरिष्ठ भिक्षु को भोजन परोसे जाने वाले स्थान पर धन्यवाद देने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय संघ को भोजन कराने की बारी एक विशेष समूह की थी; और उस समूह में पूज्य सारिपुत्त वरिष्ठ भिक्षु थे। भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने वरिष्ठ भिक्षु को भोजन स्थल पर धन्यवाद देने की अनुमति दी है,' और वे पूज्य सारिपुत्त को वहीं छोड़कर चले गए। पूज्य सारिपुत्त ने उन लोगों को धन्यवाद दिया और फिर अकेले ही चले गए।

भगवान बुद्ध ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा; और उन्हें देखकर उन्होंने उनसे कहा: 'तो, सारिपुत्त, भोजन तो ठीक से संपन्न हुआ?'

'हे प्रभु, भोजन तो अच्छे से संपन्न हुआ। लेकिन भिक्षु चले गए और मुझे अकेला छोड़ दिया।'

तब भगवान बुद्ध ने इस विषय पर धर्म प्रवचन देते हुए उनसे कहा:

'हे भिक्षुओं, मैं अपने से वरिष्ठ या वरिष्ठों के बाद के चार या पाँच भिक्षुओं को प्रतीक्षा करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भोजन कक्ष में एक बुजुर्ग व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहा था, हालांकि वह जाना चाहता था, लेकिन खुद को रोकने के चक्कर में वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, यदि आवश्यकता उत्पन्न हो जाए तो मैं तुम्हें (जाने की इच्छा रखने वाले भिक्षु के ठीक बगल में बैठे भिक्षु को) सूचित करने के बाद हॉल छोड़ने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय छब्बाग्य भिक्षु भोजन के स्थान पर अनुचित ढंग से अंतर्वस्त्र या वस्त्र पहने हुए, और शालीनता से वस्त्र न पहने हुए गए; और वरिष्ठ भिक्षुओं के आगे धक्का देकर, उनके बैठने के स्थान पर अतिक्रमण कर लिया; और कनिष्ठ भिक्षुओं को अपनी सीटें छोड़ने के लिए विवश किया; और अपने ऊपरी वस्त्रों को चटाई की तरह बिछाकर वे घरों के बीच की जगह में बैठ गए।

संयमी भिक्षुओं ने बड़बड़ाते हुए कहा, इत्यादि... उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, इत्यादि... उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

अतः, हे भिक्षुओं, मैं भोजन के समय भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसका उन्हें पालन करना चाहिए।

33. जब विश्राम का समय हो जाए, तो भिक्षु को अपनी कमरबंद इस प्रकार पहननी चाहिए कि वह नाभि के ऊपर से घुटनों के नीचे तक चारों ओर से ढकी रहे, कमर पर बेल्ट बांधनी चाहिए, ऊपरी वस्त्रों को मोड़कर पहनना चाहिए, गद्दी लगानी चाहिए, हाथ धोने चाहिए, भिक्षापात्र लेना चाहिए, और फिर धीरे-धीरे और सावधानीपूर्वक गाँव की ओर बढ़ना चाहिए। उसे (सीधे मार्ग से) हटकर वरिष्ठ भिक्षुओं के आगे नहीं जाना चाहिए। उसे घरों के बीच से उचित वस्त्र पहनकर, अपने अंगों को नियंत्रित रखते हुए, दृष्टि एकाग्र रखते हुए, अपने वस्त्रों को ऊपर उठाए बिना, हँसते या ज़ोर से बोलते हुए नहीं, अपने शरीर, बाहों या सिर को हिलाते हुए नहीं, बाहों को कमर पर रखे बिना, या अपने वस्त्र को सिर पर डाले बिना, और एड़ियों पर चलते हुए नहीं जाना चाहिए। और उसे अपना

घरों के बीच में उचित वस्त्र पहने हुए बैठें (आदि, सब कुछ पहले जैसा ही), न तो अपनी बाहों को कमर पर रखे हुए, न ही अपने वस्त्रों को अपने सिर पर खींचे हुए, और न ही सुस्त होकर, और न ही वरिष्ठ भिक्षुओं के लिए निर्धारित स्थान पर अतिक्रमण करते हुए, न ही कनिष्ठ भिक्षुओं को सीटों से बेदखल करते हुए, और न ही अपने ऊपरी वस्त्र को चटाई की तरह फैलाते हुए।

4. भोजन से पहले जब जल दिया जा रहा हो, तो भिक्षु को अपने कटोरे को दोनों हाथों से पकड़ना चाहिए, उसमें जल ग्रहण करना चाहिए, कटोरे को सावधानीपूर्वक जमीन पर रखना चाहिए ताकि फर्श पर खरोंच न लगे, और फिर उसे धोना चाहिए। यदि वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका कर्तव्य प्रयुक्त जल को ले जाना हो, तो भिक्षु को अपने कटोरे को जमीन पर रखकर जल को अपशिष्ट पात्र में डालना चाहिए, इस बात का ध्यान रखते हुए कि उस व्यक्ति, आस-पास के भिक्षुओं या अपने वस्त्रों पर छींटे न पड़ें। यदि ऐसा कोई व्यक्ति न हो, तो भिक्षु को अपने कटोरे को जमीन पर रखकर जल को बहा देना चाहिए, इस बात का ध्यान रखते हुए कि आस-पास के भिक्षुओं या अपने वस्त्रों पर छींटे न पड़ें।

जब उबले हुए चावल बांटे जा रहे हों, तो भिक्षु को अपने कटोरे को दोनों हाथों से पकड़कर उसमें चावल ग्रहण करना चाहिए। करी के लिए जगह छोड़नी चाहिए। यदि घी, तेल या कोई अन्य व्यंजन हो, तो वरिष्ठ भिक्षु को कहना चाहिए, "सभी के लिए बराबर मात्रा में लाओ।" दान को सचेत मन से, कटोरे पर ध्यान देते हुए, बराबर करी के साथ और बराबर मात्रा में भरकर ग्रहण करना चाहिए। और वरिष्ठ भिक्षु को तब तक भोजन नहीं करना चाहिए जब तक कि सभी को उबले हुए चावल न परोस दिए जाएं।

15. दान में प्राप्त भोजन को सजग मन से, कटोरे पर ध्यान देते हुए, बराबर मात्रा में करी और बराबर मात्रा में भरकर खाना चाहिए; ऊपर से दबाना नहीं चाहिए; चावल को स्वादिष्ट बनाने की इच्छा से करी या मसाले को चावल से ढकना नहीं चाहिए; और भिक्षु को अपने निजी उपयोग के लिए चावल या करी नहीं मांगनी चाहिए, सिवाय तब जब वह बीमार हो। दूसरों के कटोरे को ईर्ष्या भरी नजरों से नहीं देखना चाहिए। भोजन को उंगलियों से गोल-गोल गोला बनाकर नहीं खाना चाहिए, बल्कि छोटे-छोटे निवाले लेने चाहिए। जब तक गोला मुंह के पास न लाया जाए, तब तक मुंह का द्वार नहीं खोलना चाहिए। भोजन करते समय पूरा हाथ मुंह में नहीं डालना चाहिए। उसे मुंह भरकर बात नहीं करनी चाहिए, न ही खाते समय भोजन को मुंह में उछालना चाहिए, न ही भोजन के गोलों को कुतरना चाहिए, न ही खाते समय गाल फुलाना चाहिए, न ही हाथों से भोजन के कण झाड़ने चाहिए, न ही चावल के टुकड़ों को इधर-उधर बिखेरना चाहिए, न ही जीभ बाहर निकालनी चाहिए, न ही होंठों को चटकाना चाहिए, न ही खाते समय फुफकारने की आवाज निकालनी चाहिए, न ही उंगलियों, कटोरे या होंठों को चाटना चाहिए। और पीने के पानी के घड़े को भोजन से सने हाथों से नहीं पकड़ना चाहिए।

6. वरिष्ठ भिक्षु को तब तक पानी नहीं लेना चाहिए (अपने बर्तन को धोने के लिए) जब तक कि सभी भिक्षु भोजन समाप्त न कर लें। जब भोजन के बाद पानी दिया जा रहा हो (जैसा कि अनुच्छेद 4 के पहले पैराग्राफ से अंत तक बताया गया है), तो बर्तन धोने के लिए इस्तेमाल किया गया पानी, उसमें मौजूद अवशेषों के साथ, भीतरी प्रांगण में नहीं फेंकना चाहिए।

लौटते समय, कनिष्ठ भिक्षुओं को पहले लौटना है, और उनके बाद वरिष्ठ भिक्षुओं को। प्रत्येक भिक्षु को घरों के बीच से उचित वस्त्र पहनकर गुजरना है... (आदि, जैसा कि ऊपर, अनुच्छेद 3 में बताया गया है) अपनी एड़ियों पर नहीं चलना है।

'हे भिक्षुओं, यह वह आचरण नियम है जो मैं भिक्षुओं के लिए भोजन के समय स्थापित करता हूँ, जिसका उन्हें वहाँ पालन करना है।'

यहां पाठ का पहला भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला(8.3) | अगला(8.5) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.4) | अगला(8.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय-5.

1. उस समय भिक्षु जो भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगा रहे थे, वे अपने अंतर्वस्त्र या वस्त्र ठीक से नहीं पहने हुए थे, और शालीनता से कपड़े नहीं पहने हुए थे; वे बिना सोचे-समझे घरों में प्रवेश करते थे और बिना सोचे-समझे ही उन्हें छोड़ देते थे; वे घरों में बेरुखी से प्रवेश करते थे और बेरुखी से ही उन्हें छोड़ देते थे; वे बहुत अधिक दूरी पर या बहुत पास खड़े रहते थे; वे बहुत देर तक खड़े रहते थे या बहुत जल्दी वापस मुड़ जाते थे।

एक भिक्षु भिक्षा मांगने के दौरान अनजाने में एक घर में प्रवेश कर गया। उसने एक द्वार को घर का मुख्य द्वार समझकर अंदर के कमरे में प्रवेश किया। उस कमरे में एक स्त्री नग्न अवस्था में पीठ के बल सो रही थी। जब भिक्षु ने उसे देखा, तो वह यह जानकर बाहर आ गया कि वह घर का मुख्य द्वार नहीं, बल्कि एक कमरा था। उस स्त्री के पति ने अपनी पत्नी को उस अवस्था में देखकर सोचा, 'मेरी पत्नी को उस भिक्षु ने अपवित्र कर दिया है।' और उसने भिक्षु को पकड़कर उसकी पिटाई की।

लेकिन शोर सुनकर जाग उठी महिला ने उस आदमी से कहा, 'हे महोदय, आप इस भिक्षु को क्यों पीट रहे हैं?'

'इस भिक्षु ने तुम्हें अपवित्र कर दिया है।'

'ऐसा नहीं है, श्रीमान। इस भिक्षु ने कुछ नहीं किया है' (उसने कहा), और भिक्षु को मुक्त करवा दिया।

तब भिक्षु आराम में जाकर भिक्षुओं को यह बात बताई... कुछ बुदबुदाया... भगवान बुद्ध को बताया... उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

अतः, हे भिक्षुओं, मैं भिक्षा मांगने के लिए यात्रा करने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसका उन्हें पालन करना चाहिए।

2. 'हे भिक्षुओं, जो भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए परिक्रमा करने का इरादा रखता है, उसे अपनी कमरबंद पहननी चाहिए (आदि, जैसा कि अध्याय-4, §-3, वाक्य 1 और 3 से अंत तक में है)।

जब वह किसी घर में प्रवेश करे, तो उसे ध्यान देना चाहिए (कि वह कहाँ जा रहा है, मन ही मन सोचते हुए), "मैं इस रास्ते से अंदर जाऊँगा और इस रास्ते से बाहर आऊँगा।" उसे जल्दबाजी में अंदर या बाहर नहीं जाना चाहिए। उसे बहुत दूर, बहुत पास या बहुत देर तक नहीं खड़ा रहना चाहिए; और उसे आसानी से पीछे नहीं मुड़ना चाहिए।

जब वह स्थिर खड़ा हो, तो उसे ध्यान देना चाहिए कि घर के लोग उसे भोजन देने के लिए इच्छुक हैं या नहीं। यदि वह अपना काम छोड़ दे, या अपनी सीट से उठ जाए, या चम्मच पोंछ दे, या कोई व्यंजन साफ करे या तैयार करे, तो उसे स्थिर खड़ा रहना चाहिए, यह समझते हुए कि वह भोजन देने के लिए इच्छुक प्रतीत होती है।

जब उसे भोजन दिया जा रहा हो, तो उसे अपने बाएं हाथ से अपना वस्त्र (संगहति) ऊपर उठाना चाहिए ताकि उसका कटोरा दिखाई दे, और कटोरे को अपने दोनों हाथों में लेना चाहिए।

और उसमें भोजन ग्रहण करो। और भोजन देने वाली स्त्री के चेहरे की ओर मत देखो।

उसे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि क्या वह करी देने के लिए इच्छुक प्रतीत होती है या नहीं। यदि वह चम्मच पोंछती है, या कोई बर्तन पोंछती है या एक तरफ रखती है, तो उसे वहीं खड़े रहना चाहिए, यह समझते हुए कि वह देने के लिए इच्छुक प्रतीत होती है।

भोजन परोसे जाने के बाद, उसे कटोरे को अपने वस्त्र से ढक देना चाहिए और धीरे-धीरे और सावधानीपूर्वक वापस लौटना चाहिए। उसे (वापसी के रास्ते) घरों से उचित वस्त्र पहनकर गुजरना चाहिए... (आदि, जैसा कि अनुच्छेद 3, वाक्य 3 से अंत तक है)।

3. 'जो व्यक्ति गाँव से भिक्षा मांगने के बाद सबसे पहले लौटता है, उसे बैठने की व्यवस्था करनी चाहिए, और पानी, पायदान और तौलिए तैयार रखने चाहिए ताकि लोग पैर धो सकें, और कूड़ेदान को साफ करके तैयार रखना चाहिए, और पीने का पानी और धोने का पानी तैयार रखना चाहिए।

जो भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद गांव से सबसे अंत में लौटता है, वह चाहे तो अन्य भिक्षुओं के भोजन में से बचा हुआ भोजन खा सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करना चाहता, तो वह बचे हुए भोजन को घास रहित स्थान पर फेंक दे या ऐसे जल में बहा दे जिसमें कोई जीव-जंतु न हों। उसे पानी, पाँव रखने की चौकी और पैर धोने के लिए इस्तेमाल किए गए तौलिये को हटा देना चाहिए, कूड़ेदान को साफ करके हटा देना चाहिए, पीने का पानी और अन्य पानी को भी हटा देना चाहिए।

धोने के लिए, और उस कमरे में झाड़ू लगाओ जहाँ भोजन किया गया था।

जो कोई भी पीने या धोने के पानी का बर्तन या सफाई का कोई बर्तन खाली देखे, उसे उसे उसके उचित स्थान पर रख देना चाहिए। यदि वह अकेले ऐसा करने में असमर्थ हो, तो उसे किसी और को बुलाना चाहिए और वे मिलकर उसे सही जगह पर रख दें, और इस कारण चुप्पी नहीं तोड़नी चाहिए।

'हे भिक्षुओं, यह आचरण का वह नियम है जो मैं भिक्षा मांगने वाले भिक्षुओं के लिए स्थापित करता हूँ, जिसका उन्हें पालन करना है।'

<<<< पिछला(8.4) | अगला(8.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.6
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.5) | अगला(8.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय-6.

1: उस समय बहुत से भिक्षु जंगल में रहते थे; और उनके पास न तो पीने का पानी था, न धोने का पानी, न आग जलाने के लिए लकड़ी, न आग जलाने के लिए ईंधन; न ही वे नक्षत्रों की स्थिति जानते थे, न ही आकाश की (दस) दिशाओं का विभाजन।

चोर वहां गए और भिक्षुओं से कहा, 'क्या आपके पास पीने का पानी है, महोदय?'

'नहीं दोस्तों, हमने ऐसा नहीं किया है।'

'क्या आपके पास धोने के लिए पानी है, महोदय?'

'नहीं दोस्तों, हमने ऐसा नहीं किया है।'

'क्या आपके पास आग जलाने के लिए कुछ है, महोदय?'

'नहीं दोस्तों, हमने ऐसा नहीं किया है।'

'क्या आपके पास आग जलाने के लिए लकड़ियाँ और सूखी बारूद हैं, महोदय?'

'नहीं दोस्तों, हमने ऐसा नहीं किया है।'

'चंद्रमा इस समय किस नक्षत्र के साथ युति में है?'

'दोस्तों, हमें यह नहीं पता।'

'यह किस दिशा में है?'

'दोस्तों, हमें यह नहीं पता।'

ये जवाब सुनकर चोरों ने कहा, 'ये तो चोर हैं। ये भिक्षु नहीं हैं।' और उन्होंने उन्हें पीटा और चले गए।

भिक्षुओं ने यह बात भिक्षुओं को बताई। भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। तब भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर और उस संदर्भ में, धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं से कहा...

अत:, हे भिक्षुओं, मैं वनों में निवास करने वाले भिक्षुओं के लिए आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें वहाँ व्यवहार करना चाहिए।

2. हे भिक्षुओं, जो भिक्षु वन में निवास करता है, उसे सुबह जल्दी उठकर अपना कुंड थैली में रखकर कंधे पर लटका लेना चाहिए, फिर अपना ऊपरी वस्त्र पीठ पर (दोनों कंधों पर) डालकर वस्त्र धारण कर लेना चाहिए।

उसने अपनी चप्पलें उतारीं, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों को व्यवस्थित किया, दरवाजा और जाली बंद की, और फिर अपने रहने की जगह से निकल गया।

जब उसे यह आभास हो कि वह किसी गाँव में प्रवेश करने वाला है, तो उसे अपनी चप्पलें उतार देनी चाहिए, उन्हें उल्टा करके पीटकर धूल झाड़ देनी चाहिए, उन्हें एक थैली में डालकर अपने कंधे पर लटका लेना चाहिए और अपनी कमरबंद पहन लेनी चाहिए [और इसी प्रकार जैसा कि ऊपर भिक्षा के लिए गाँव में प्रवेश करने वाले भिक्षु के लिए निर्धारित किया गया है, VIII, 5, 2, अनुच्छेद 1, अंत तक]।

3. 'गांव छोड़ते समय उसे कटोरे को उसके थैले में रखना चाहिए, उसे अपने कंधे पर लटकाना चाहिए, अपने वस्त्रों को लपेटकर अपने सिर पर रखना चाहिए, अपनी चप्पलें पहननी चाहिए और फिर जाना चाहिए।

वनों में रहने वाले भिक्षु को, हे भिक्षुओं, पीने का पानी, धोने का पानी, आग, लकड़ी, ज्वलनशील पदार्थ और लाठी तैयार रखनी चाहिए। उसे नक्षत्रों में चंद्रमा की स्थिति, चाहे पूर्ण रूप से हो या आंशिक रूप से, जाननी चाहिए और आकाश की दिशाओं का ज्ञान होना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, यह वह आचरण नियम है जो मैं वनों में रहने वाले भिक्षुओं के लिए निर्धारित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें वहाँ आचरण करना चाहिए।'

<<<< पिछला(8.5) | अगला(8.7) >>>>
टिपिटका >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.7
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.6) | अगला(8.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय 7।

1. उस समय कई भिक्षु खुले में वस्त्र बनाने का काम कर रहे थे। छब्बागिया भिक्षु अपने बिस्तरों को पीट-पीटकर सुखा रहे थे।

उनके सामने हवा की दिशा में खुले मैदान में धूल उड़ी और उसने (काम कर रहे) भिक्षुओं को धूल से ढक दिया।

संयमी भिक्षुओं ने बड़बड़ाते हुए कहा, इत्यादि... उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, इत्यादि... और उन्होंने भिक्षुओं से कहा:

अतः, हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं के लिए आवास स्थलों के संबंध में आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें उस संबंध में व्यवहार करना चाहिए।

2. वह जिस भी विहार में रह रहा हो, यदि वह विहार गंदा हो, तो उसे यथासंभव उसे साफ करना चाहिए। विहार की सफाई करते समय, उसे सबसे पहले अपना कटोरा, अपना वस्त्र, बैठने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली चटाई, तकिया और गद्दे निकालकर एक तरफ रख देने चाहिए। पलंग को उसके स्टैंड से उतारकर बाहर ले जाना चाहिए [और इसी प्रकार, अध्याय VIII, 1, 2 में दिए गए निर्देशों के अनुसार अंत तक]।

उसे भिक्षुओं के पास, विहार के पास, पीने के पानी के पास, धोने के पानी के पास, या विहार के सामने खुले स्थान पर, हवा की दिशा में या भिक्षुओं के पास बिस्तर को पीटकर धूल नहीं झाड़नी चाहिए, बल्कि हवा के विपरीत दिशा में पीटना चाहिए।

3. 'फर्श के आवरण को धूप में सुखाया जाना चाहिए [और इसी तरह VIII I, 4, और 5 में अंत तक, "जिस स्थान से यह संबंधित है" के स्थान पर "जिस स्थान पर यह खड़ा था (या पड़ा था)" पढ़ा जाएगा]।

4. यदि वह किसी वरिष्ठ (भिक्षु) के साथ एक ही विहार में रह रहा हो, तो वरिष्ठ की अनुमति के बिना न तो पाठ करना चाहिए, न परीक्षा लेनी चाहिए, न उपदेश देना चाहिए, न ही धर्मोपदेश देना चाहिए। न ही उनकी अनुमति के बिना दीपक जलाना या बुझाना चाहिए, न ही खिड़कियों को खोलना या बंद करना चाहिए।

यदि वह किसी बड़े (भिक्षु) के साथ उसी मार्ग पर चल रहा हो, तो उसे उसी स्थान पर वापस मुड़ जाना चाहिए जहाँ उसका वरिष्ठ वापस मुड़ता है; और उसे अपने वस्त्र के कोने से भी अपने वरिष्ठ को स्पर्श नहीं करना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, यह आचरण का नियम है, जो मैं भिक्षुओं के लिए आवास स्थलों के संबंध में निर्धारित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें वहाँ व्यवहार करना चाहिए।'

<<<< पिछला(8.6) । अगला(8.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.7) । अगला (8.9-8.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय-8.

1. उस समय छब्बागीय भिक्षुओं को वरिष्ठ भिक्षुओं द्वारा गर्म स्नानागार के उपयोग में बाधा डालने पर, क्रोधवश उन्होंने चूल्हे में बहुत सी लकड़ियाँ जमा कीं, उनमें आग लगा दी, द्वार बंद कर दिया और द्वार पर ही बैठ गए। गर्मी से झुलसे और बाहर निकलने का रास्ता न मिलने पर भिक्षु बेहोश होकर गिर पड़े।

शांत भिक्षुओं ने धीरे से कहा, इत्यादि... उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, इत्यादि... उन्होंने भिक्षुओं से कहा,

'हे भिक्षुओं, ऐसा कोई भी न करे। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. 'अतः, हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं के लिए गर्म स्नानागार के संबंध में आचरण का एक नियम स्थापित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें वहाँ व्यवहार करना चाहिए।'

जो भी व्यक्ति सबसे पहले स्नानघर में प्रवेश करे, यदि चूल्हे में राख जमा हो तो उसे बाहर फेंक देना चाहिए। यदि गर्म स्नानघर, या उसका तैयार फर्श, या कोठरी, या स्नानघर का अग्रकक्ष, या शीतलन कक्ष, या हॉल गंदा हो तो उसे साफ कर देना चाहिए। चूने को कूटकर, मिट्टी को पानी से गीला करके, पानी को पानी के बर्तन में डाल देना चाहिए।

गर्म स्नानागार में प्रवेश करते समय चेहरे पर मिट्टी मलनी चाहिए और प्रवेश करने से पहले व्यक्ति को आगे और पीछे से अच्छी तरह ढक लेना चाहिए। वरिष्ठ भिक्षुओं को परेशान करने के लिए आसन नहीं ग्रहण करना चाहिए और कनिष्ठ भिक्षुओं को उनके आसन से नहीं हटाना चाहिए। यदि संभव हो तो वरिष्ठ भिक्षुओं के लिए गर्म स्नानागार में शैंपू करना चाहिए।

गर्म स्नानागार से निकलते समय, (अग्नि के सामने बैठने के लिए इस्तेमाल की गई) कुर्सी को हटा देना चाहिए, और निकलने से पहले व्यक्ति को आगे और पीछे से अच्छी तरह ढक लेना चाहिए। यदि संभव हो, तो वरिष्ठ भिक्षुओं के लिए पानी में ही शैंपू करना चाहिए।

वरिष्ठ भिक्षुओं के सामने या उनसे ऊपर स्नान नहीं करना चाहिए। स्नान करने वाला व्यक्ति...

और (पानी से) बाहर निकलना, पानी में उतरने वाले व्यक्ति के लिए रास्ता बनाना है।

जो कोई भी गर्म स्नानागार से सबसे अंत में बाहर आता है, उसे यदि वह गंदा हो तो उसे धोना चाहिए; जिस बर्तन में मिट्टी रखी है उसे धोना चाहिए, गर्म स्नानागार में इस्तेमाल की गई कुर्सियों को व्यवस्थित करना चाहिए, आग बुझानी चाहिए, दरवाजे को बंद करना चाहिए और फिर बाहर आना चाहिए।

'हे भिक्षुओं, यह वह आचरण नियम है जो मैं भिक्षुओं के लिए गर्म स्नानागार के संबंध में निर्धारित करता हूँ, जिसके अनुसार उन्हें वहाँ व्यवहार करना चाहिए।'

<<<< पिछला (8.7) । अगला (8.9-8.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> आठवां खंडका >> 8.9-8.14
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(8.8) । अगला(9.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

आठवां खंडक (भिक्षुओं के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य)

अध्याय 9 और 10।

[ये अध्याय शौचालयों के उपयोग के तरीके और वी, 35 में वर्णित अन्य स्वच्छता व्यवस्थाओं से संबंधित हैं]

अध्याय 11, 12, 13 और 14।

[ये अध्याय महावग्ग प्रथम, 25, 14-24; प्रथम, 26, 1-11; प्रथम, 32, 3; और प्रथम, 33 को शब्दशः दोहराते हैं।]

=========
आचरण के नियमों को समेटे हुए आठवें खंडक का यहीं समापन होता है।

<<<< पिछला(8.8) । अगला(9.1) >>>>

नौवां खंडका (पतिमोक्खा विधानसभा से बहिष्कार)
(पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार के संबंध में)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> नौवां खंडका >> 9.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (8.9-8.14) । अगला (9.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

नौवां खंडका (पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार पर)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध पूर्वी आराम में स्थित श्रावस्ती में, मिगर की माता के निवास स्थान पर ठहरे हुए थे। उस समय उपोसथ दिवस था और भगवान बुद्ध भिक्षु संघ के बीच में विराजमान थे। जब रात्रि काफी बीत चुकी थी और पहला पहर समाप्त हो रहा था, तब पूज्य आनंद अपने आसन से उठे, अपना वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान बुद्ध की ओर हाथ फैलाकर उनसे कहा:

'हे प्रभु, रात्रि ढल चुकी है। पहला पहर बीत रहा है। भिक्षु संघ यहाँ बहुत समय से विराजमान है। हे प्रभु, भगवान बुद्ध भिक्षुओं को पतिमोक्खा का पाठ करें।'

जब उन्होंने ऐसा कहा, तो भगवान बुद्ध मौन रहे। फिर दूसरी बार, जब दूसरा पहर बीत रहा था, तब उन्होंने वही निवेदन किया और परिणाम वही रहा। फिर तीसरी बार, जब तीसरा पहर शुरू हो गया और भोर हो रही थी, तब उन्होंने वही निवेदन किया।

आनंद, यह सभा पवित्र नहीं है।

2. तब पूज्य महा मोग्गलाना ने सोचा, 'भगवान बुद्ध किस व्यक्ति का जिक्र कर रहे हैं जब वे कहते हैं, "आनंद, यह सभा शुद्ध नहीं है।"' पूज्य महा मोग्गलाना ने संपूर्ण भिक्षु संघ का चिंतन किया और उनके मन में अंतर्मन किया। तब पूज्य महा मोग्गलाना ने उस व्यक्ति को पहचाना - जो आचरण में दुष्ट, चरित्र में पापी, अपवित्र और संदिग्ध व्यवहार वाला, ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाला (अर्थात यौन रूप से सक्रिय), संन्यासी (भिक्षु) न होने के बावजूद संन्यासी, धर्म विद्यार्थी न होने के बावजूद धर्म विद्यार्थी, भीतर से दूषित, व्यथाओं से भरा हुआ, एक निकम्मा प्राणी - जिसने भिक्षु संघ में स्थान ग्रहण किया था। यह जानकर कि वह कौन है, वे उस व्यक्ति के पास गए और उससे कहा, 'उठो, महोदय! भगवान बुद्ध ने तुम्हें पहचान लिया है। तुम्हारे और भिक्षुओं के बीच कोई संगति नहीं हो सकती!'

जब उन्होंने ऐसा कहा, तो वह व्यक्ति चुप रहा। और पूज्य महा मोग्गलाना ने दूसरी और तीसरी बार भी उसे वही शब्द कहे [और परिणाम वही रहा]। तब पूज्य महा मोग्गलाना ने उस व्यक्ति का हाथ पकड़ा और उसे बरामदे के बाहर ले गए और दरवाजा बंद कर दिया।

और मैं भगवान बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, 'हे प्रभु, मैंने उस व्यक्ति को बाहर भेज दिया है। अब सभा पवित्र हो गई है। हे प्रभु, भगवान बुद्ध भिक्षुओं को पतिमोक्खा का पाठ करें।'

'यह कितनी आश्चर्यजनक और विचित्र बात है, मोग्गलाना, कि वह मूर्ख व्यक्ति ठीक उस समय तक इंतजार करता रहा जब उसे बांह पकड़कर ले जाना पड़ा।'

3. भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा: 'हे भिक्षुओं, विशाल सागर में आठ आश्चर्यजनक और अनोखे गुण हैं, जिनके निरंतर अवलोकन से महाशक्तिशाली प्राणी सागर में आनंदित होते हैं। वे आठ गुण क्या हैं?'

'हे भिक्षुओं, विशाल सागर धीरे-धीरे गहरा होता जाता है, ढलान के बाद ढलान, खोखले के बाद खोखला, और गिरावट अचानक नहीं होती। यह [ऐसे गुणों में से] पहला है।'

'हे भिक्षुओं, फिर भी विशाल सागर का स्वरूप वही रहता है और वह तट से आगे नहीं बढ़ता। यह दूसरा गुण है।'

हे भिक्षुओं, फिर भी, विशाल सागर किसी मृत शरीर के साथ संगति सहन नहीं करता। सागर में जो भी मृत शरीर होता है, वह उसे शीघ्रता से किनारे पर खींच लाता है और सूखी भूमि पर फेंक देता है। यह तीसरा गुण है।

हे भिक्षुओं, समस्त महान नदियाँ—अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभू और माही—जब वे महा सागर में गिरती हैं, तो अपने नाम और वंश का त्याग कर देती हैं, और तब से उन्हें महा सागर के रूप में गिना जाता है। यह चौथा गुण है।

हे भिक्षुओं, यद्यपि संसार की समस्त धाराएँ बहते हुए विशाल सागर तक पहुँचती हैं और आकाश का समस्त जल उसमें समा जाता है, तो भी क्या इससे सागर अधिक खाली या अधिक भरा हुआ प्रतीत नहीं होता? यह पाँचवाँ गुण है।

'हे भिक्षुओं, फिर से कहिए कि विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद है, नमक का स्वाद। यह छठा [गुण] है।'

हे भिक्षुओं, यह विशाल सागर अनेक प्रकार के रत्नों से भरा है; जिनमें ये रत्न भी शामिल हैं—अर्थात् मोती, हीरा, सीप, शंख, चट्टान, मूंगा, चांदी, सोना, माणिक और कार्नेलियन। यह सातवां गुण है।

हे भिक्षुओं, फिर से, विशाल सागर शक्तिशाली प्राणियों का निवास स्थान है, जिनमें ये शामिल हैं—अर्थात् तिमि, तिमिंगला, तिमितिमिंगला, असुर, नाग और गंधर्व। विशाल सागर में ऐसे प्राणी हैं जो एक से पाँच सौ मील तक फैले हुए हैं। यह इन गुणों में से आठवाँ गुण है।

4. हे भिक्षुओं, ठीक इसी प्रकार, इस सिद्धांत और अनुशासन में निरंतर अवलोकन से आठ अद्भुत और चमत्कारी गुण निहित हैं।

भिक्षु इस सिद्धांत और अनुशासन में आनंदित होते हैं। वे आठ कौन से हैं?

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर धीरे-धीरे गहरा होता जाता है, एक के बाद एक ढलानें और एक के बाद एक खोखले स्थान आते जाते हैं, और अंत में गिरावट अचानक नहीं होती, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत और अनुशासन में प्रशिक्षण क्रमिक है, एक के बाद एक कर्म और एक के बाद एक कदम; और (अरहतत्व की) अंतर्दृष्टि की प्राप्ति अचानक नहीं होती। यह (इन गुणों में) पहला गुण है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर अपने स्वरूप में स्थिर रहता है और तट से आगे नहीं बढ़ता, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने अपने वचन के श्रोताओं के लिए जो उपदेश स्थापित किए हैं, वे अपने जीवनकाल में भी उनसे आगे नहीं बढ़ते। यह दूसरा गुण है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर किसी मृत शरीर के साथ संगति नहीं रखता, परन्तु सागर में जो भी मृत शरीर हो, वह उसे शीघ्र ही किनारे पर खींचकर सूखी भूमि पर फेंक देता है, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति आचरण में दुष्ट, चरित्र में भ्रष्ट, अपवित्र और संदिग्ध व्यवहार वाला हो, चाहे उसने व्रत लिए हों या न लिए हों, चाहे उसने धर्म का विद्यार्थी ही क्यों न लिया हो, भीतर से दूषित हो, व्यथाओं से भरा हो, निकम्मा हो; तो संघ उससे संगति नहीं रखेगा, परन्तु अपने मिलन के समय उसे शीघ्र ही बाहर निकाल देगा। और यद्यपि वह व्यक्ति स्वयं भिक्षु-संघ के बीच में बैठा हो, निश्चय ही वह संघ से दूर है।

और संघ उनसे प्राप्त होता है। यह तीसरा गुण है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार महान नदियाँ—अर्थात गंगा, यमुना, अकिरावती, सरभू और माही—जब सागर में गिरती हैं, तो अपना नाम और वंश त्याग देती हैं और तब से सागर के समान गिनी जाती हैं, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ये चार जातियाँ—क्षत्रिय (योद्धा), ब्राह्मण (पुजारी), वेस्स (व्यापारी) और शुद्ध (मजदूर)—जब तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रचारित सिद्धांत और अनुशासन के तहत संसार से विदा होती हैं, तो अपना नाम और वंश त्याग देती हैं और शाक्यपुत्रीय समनों में प्रवेश करती हैं। यह चौथा गुण है।

हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि संसार की सभी धाराएँ बहते हुए विशाल सागर तक पहुँचती हैं और आकाश का सारा जल उसमें समा जाता है, तो भी क्या इससे संघ अधिक खाली या अधिक भरा हुआ प्रतीत नहीं होता? ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यद्यपि अनेक भिक्षु उस प्रकार के परलोक में पूर्णतः देह त्याग देते हैं जो अपने पीछे कोई निशान नहीं छोड़ता, तो भी क्या इससे संघ अधिक खाली या अधिक भरा हुआ प्रतीत नहीं होता? यह पाँचवाँ गुण है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद होता है, नमक का स्वाद, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत और अनुशासन का भी केवल एक ही स्वाद है, मुक्ति का स्वाद। यह छठा गुण है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर अनेक प्रकार के रत्नों से भरा है—अर्थात् मोती, हीरा, खसखस, शंख, चट्टान, मूंगा, चांदी, सोना, माणिक और कार्नेलियन—ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यह सिद्धांत और अनुशासन अनेक प्रकार के रत्नों से भरा है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

ये रत्न—अर्थात् चार गंभीर ध्यान, चार प्रकार का महा संघर्ष, इद्धि (आध्यात्मिक शक्ति) के चार मार्ग, पाँच नैतिक शक्तियाँ, पाँच नैतिक इंद्रियाँ, सात प्रकार की बुद्धि और श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग। यह इन गुणों में सातवाँ है।

हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर शक्तिशाली प्राणियों का निवास स्थान है, जिनमें तिमि, तिमिंगला, तिमितिमिंगला, असुर, नाग और गंधर्व हैं; जिस प्रकार विशाल सागर में एक से पाँच सौ मील तक फैले हुए जीव हैं—ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यह सिद्धांत और अनुशासन शक्तिशाली प्राणियों का आश्रय स्थल है, जिनमें प्रथम मार्ग में प्रवेश करने वाला (परिवर्तित व्यक्ति, सोतापन्नो) और उसका फल प्राप्त करने वाला, द्वितीय मार्ग में प्रवेश करने वाला (सकादगामिन) और उसका फल प्राप्त करने वाला, तृतीय मार्ग में प्रवेश करने

वाला (अनगामिन) और उसका फल प्राप्त करने वाला, अरहत और अरहतत्व का फल प्राप्त करने वाला शामिल हैं। यह आठवाँ गुण है।

'हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत और अनुशासन में ये आठ अद्‌भुत और चमत्कारी गुण हैं, जिनका निरंतर अवलोकन करने से भिक्षुओं को आनंद मिलता है।'

और भगवान बुद्ध ने उस पदार्थ को देखकर उस समय यह भावपूर्ण वाणी प्रकट की:

'जो ढका हुआ है उस पर भारी बारिश होती है, जो खुला हुआ है उस पर नहीं।'

इसलिए, जो तुमने छिपा रखा है, उसे प्रकट करो, और बारिश तुम्हें छू भी नहीं पाएगी।

<<<< पिछला (8.9-8.14) । अगला (9.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> नौवाँ खंडका >> 9.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (9.1) । अगला (9.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

नौवां खंडका (पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार पर)

अध्याय दो।

1. अब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, अब से मैं उपोसथ धारण नहीं करूँगा और न ही पतिमोक्खा का पाठ करूँगा; हे भिक्षुओं, तुम भी अब से उपोसथ धारण न करो और पतिमोक्खा का पाठ करो। हे भिक्षुओं, यह असंभव और अनुचित है कि तथागत (बुद्ध) किसी अपवित्र सभा के समक्ष उपोसथ धारण करें और पतिमोक्खा का पाठ करें। और हे भिक्षुओं, पतिमोक्खा का पाठ उस व्यक्ति को नहीं करना चाहिए जिसने कोई अपराध किया हो। जो कोई भी इसका पाठ करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें यह अनुमति देता हूँ कि जो कोई भी दोषी अवस्था में पतिमोक्खा का पाठ करे, उसके लिए पतिमोक्खा का पाठ वर्जित कर दो।'

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, इसका निषेध किया जाता है। उपोसथ के दिन, माह के चौदहवें या पंद्रहवें दिन, और उस समय जब वह व्यक्ति उपस्थित हो, संघ के बीच में इस प्रकार इसका प्रस्ताव रखा जाना चाहिए:

"आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। फलां व्यक्ति ने अपराध किया है। उसके लिए

क्या मैं पतिमोक्खा के पाठ पर यह प्रतिबंध लगाता हूँ कि उसके उपस्थित रहने पर इसका पाठ न किया जाए? तदनुसार पतिमोक्खा का पाठ प्रतिबंधित है।

<<<< पिछला (9.1) । अगला (9.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> नौवां खंडक >> 9.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.2) | अगला(9.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

नौवां खंडका (पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार पर)

अध्याय-3.

1. उस समय छब्बाग्य भिक्षु यह सोचकर कि 'किसी को नहीं पता कि हम दोषी हैं' पतिमोक्खा की बातें सुन रहे थे। अन्य भिक्षुओं के विचारों को समझने वाले थेरा भिक्षुओं ने भिक्षुओं से कहा, 'हे महोदय, फलां-फलां भिक्षु और फलां-फलां छब्बाग्य भिक्षु यह सोचकर कि "किसी को नहीं पता कि हम दोषी हैं," पतिमोक्खा की बातें सुन रहे हैं।'

जब छब्बागिया भिक्षुओं ने यह सुना, तो उन्होंने यह सोचकर कि 'अच्छे भिक्षु (अन्यथा) पहले हमें पतिमोक्खा से मना करेंगे,' शुद्ध और निर्दोष भिक्षुओं को पहले ही पतिमोक्खा से मना कर दिया (जब तक उनके पास ऐसा करने का समय नहीं था), और यह बिना किसी आधार और बिना किसी कारण के किया गया।

जो भिक्षु संयमी थे, उन्होंने (हमेशा की तरह) धीरे-धीरे बड़बड़ाते हुए यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, क्या यह सच है कि छब्बागीय भिक्षुओं ने [ऐसा किया है]?'

'यह सच है, प्रभु!'

फिर उन्होंने उन्हें फटकारा, और धर्म प्रवचन देने के बाद कहा: 'हे भिक्षुओं, बिना किसी आधार या कारण के शुद्ध और निर्दोष भिक्षुओं को पतिमोक्खा करने से मना नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. 'हे भिक्षुओं, पतिमोक्खा पर एक प्रकार का प्रतिबंध है जो अवैध है, और एक

जो वैध है। पतिमोक्खा के निषेध के दो..., तीन..., चार (आदि, तक) दस प्रकार हैं जो अवैध हैं, और एक, दो (आदि, तक) दस प्रकार हैं जो वैध हैं।

3. 'पतिमोक्खा पर किस प्रकार का प्रतिबंध अवैध है? जब कोई व्यक्ति बिना किसी आधार के नैतिकता के उल्लंघन के लिए पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाता है। यही वह प्रकार है, इत्यादि।'

और पतिमोक्खा पर किस प्रकार का प्रतिबंध वैध है? जब कोई व्यक्ति उचित कारण से नैतिकता के उल्लंघन के लिए पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाता है। यही वह प्रकार है, इत्यादि।

और पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाने के वे दो प्रकार कौन से हैं जो अवैध हैं? जब कोई नैतिकता के उल्लंघन या आचरण के विरुद्ध अपराध के लिए पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाता है, और वे दोनों ही निराधार हैं। ये दो प्रकार हैं, इत्यादि।

और पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाने के वे दो प्रकार कौन से हैं जो वैध हैं? जब कोई नैतिकता के उल्लंघन और आचरण के विरुद्ध अपराध के लिए पतिमोक्खा पर प्रतिबंध लगाता है, और दोनों के लिए उचित कारण हो। ये दो प्रकार हैं, इत्यादि।

और वे तीन प्रकार कौन से हैं, इत्यादि? [पिछले दो के समान, "सिद्धांत के विरुद्ध अपराध" जोड़ते हुए।]

और वे चार प्रकार कौन से हैं, इत्यादि? [जैसा कि अंत में जोड़ा गया है, "आजीविका के सही तरीके के विरुद्ध अपराध।"]

और पतिमोक्खा के निषेध के वे पाँच प्रकार कौन से हैं जो अवैध हैं? जब कोई व्यक्ति पराजिका, संघदिशेष, पचित्तिया, पतिदेशानिया या दुक्कत के लिए पतिमोक्खा का निषेध करता है, और वह भी बिना किसी आधार के। ये पाँच प्रकार हैं, इत्यादि।

और पतिमोक्खा के वे पाँच प्रकार कौन से हैं जो वैध हैं? [पिछले प्रश्न के समान, "उचित आधार के साथ।"]

और पतिमोक्खा पर किस प्रकार के छह निषेध अवैध हैं? जब कोई व्यक्ति नैतिकता, आचरण, सिद्धांत आदि के विरुद्ध अपराध के लिए बिना किसी आधार के पतिमोक्खा पर निषेध करता है, और वह अपराध चूक का होता है—जब कोई व्यक्ति नैतिकता, आचरण, सिद्धांत आदि के विरुद्ध अपराध के लिए बिना किसी आधार के पतिमोक्खा पर निषेध करता है, और वह अपराध जानबूझकर किया गया होता है। ये छह प्रकार के निषेध हैं, इत्यादि।

और पतिमोक्खा के वे छह प्रकार कौन से निषेध वैध हैं? [पिछले प्रश्न के समान, "उचित आधार के साथ।"]

और पतिमोक्खा के निषेध के वे सात प्रकार कौन से हैं जो अवैध हैं? जब कोई व्यक्ति पराजिका, संघदिशेष, तुलकाय (गंभीर अपराध), पचितीय, पतिदेशीय, दुक्कत या दुभसित अपराध के लिए पतिमोक्खा का निषेध करता है, और इनमें से प्रत्येक का कोई आधार नहीं होता। ये सात प्रकार हैं, इत्यादि।

और पतिमोक्खा के वे सात प्रकार कौन से निषेध वैध हैं? [पिछले प्रश्न के समान, "उचित आधार के साथ।"]

और पतिमोक्खा के वे आठ प्रकार कौन से निषेध हैं जो अवैध हैं? [वे छह प्रकार के ही हैं, साथ ही "आजीविका के सही साधनों के विरुद्ध अपराध" भी शामिल है।]

और पतिमोक्खा के नौ प्रकार के निषेध कौन से हैं जो अवैध हैं... कानूनी हैं? [छह प्रकार के समान, प्रत्येक प्रकार के अपराध के लिए यह जोड़ते हुए कि "अपराध चूक और कर्म दोनों का है।"]

और पतिमोक्खा के वे दस प्रकार कौन से निषेध हैं जो अवैध हैं? जब (कोई भिक्षु) जो पराजिका अपराध का दोषी है, उस सभा में नहीं बैठा हो, जब सभा में पराजिका अपराध (जो उस समय उपस्थित किसी भिक्षु द्वारा किया गया माना जाता है) के संबंध में कोई चर्चा नहीं चल रही हो, जब (कोई भिक्षु) जिसने नियमों का त्याग कर दिया है, उस सभा में नहीं बैठा हो, जब सभा में नियमों के त्याग के संबंध में कोई चर्चा नहीं चल रही हो, जब (आरोपित व्यक्ति) सभा के विधिवत निर्धारित सामंजस्य का पालन करता है, जब (आरोपित व्यक्ति) सभा के विधिवत निर्धारित सामंजस्य की अपनी स्वीकृति वापस नहीं लेता है, जब सभा में (किसी सदस्य द्वारा) सभा के विधिवत (निर्धारित) सामंजस्य की स्वीकृति वापस लेने के संबंध में कोई चर्चा नहीं चल रही हो, जब (आरोपित भिक्षु) पर नैतिकता के विरुद्ध अपराध का संदेह नहीं है, न ही उसे (ऐसा करते हुए) देखा गया है, और न ही (किसी अपराध को करने के बारे में) सुना है--. . . . आचरण के विरुद्ध अपराध का--. . . .

सिद्धांत के विरुद्ध अपराध। ये दस प्रकार के अपराध हैं, इत्यादि।

और पतिमोक्खा के दस प्रकार के निषेध कौन से हैं जो वैध हैं? [पिछले प्रश्न के समान, नकारात्मक के स्थान पर सकारात्मक।]

4. 'और यह कैसे (कानूनी रूप से कहा जा सकता है कि) एक भिक्षु (साधु) जो पराजिका अपराध का दोषी है, सभा में बैठा है?'

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु देखे कि कोई दूसरा भिक्षु उन साधनों, चिह्नों और संकेतों द्वारा पराजिका अपराध कर रहा है जिनसे पराजिका अपराध होता है, या यदि कोई भिक्षु स्वयं यह न देखे कि कोई दूसरा भिक्षु पराजिका अपराध कर रहा है, परन्तु कोई दूसरा भिक्षु पहले भिक्षु को सूचित करे, यह कहते हुए कि, "अमुक भिक्षु ने पराजिका अपराध किया है।" या यदि कोई भिक्षु स्वयं यह न देखे कि कोई दूसरा भिक्षु पराजिका अपराध कर रहा है, परन्तु वह स्वयं पहले भिक्षु को सूचित करे, यह कहते हुए कि, "मैंने पराजिका अपराध किया है।"

(इन दोनों ही मामलों में), हे भिक्षुओं, यदि वह ऐसा करता हुआ प्रतीत हो, तो भिक्षु अपने देखे, सुने और संदेह के आधार पर उपोसथ दिवस पर, माह के चौदहवें या पंद्रहवें दिन, उस समय जब वह व्यक्ति संघ के बीच में उपस्थित हो, निम्नलिखित संकल्प प्रस्तुत कर सकता है: "आदरणीय संघ मेरी बात सुने। फलां व्यक्ति ने पराजिका अपराध किया है। मैं उसके लिए पतिमोक्खा का पाठ वर्जित करता हूँ, इस आशय से कि जब वह उपस्थित हो तब पतिमोक्खा का पाठ न किया जाए।" यह पतिमोक्खा का कानूनी निषेध है।

'यदि, जब पतिमोक्खा को बाधित किया गया हो

यदि भिक्षु दस खतरों में से किसी एक के कारण सभा में उपस्थित हों—चाहे वह राजा से, चोरों से, आग से, पानी से, मनुष्यों से, परजीवियों से, शिकारी जानवरों से, रेंगने वाले जीवों से, जीवन के खतरे से, या पवित्रता के विरुद्ध खतरे से उत्पन्न हो—तो भिक्षु, यदि चाहें, तो अपने निवास स्थान के समूह में या किसी अन्य निवास स्थान के समूह में, जब वे सभा के बीच में उपस्थित हों, निम्नलिखित प्रस्ताव रख सकते हैं: "आदरणीय संघ मेरी बात सुनें। फलां व्यक्ति के पराजिका अपराध के संबंध में चर्चा प्रारंभ हुई थी, परन्तु उस मामले का निर्णय नहीं हो सका। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ उस मामले का निर्णय करे।" यदि वे इस प्रकार सफल होते हैं, तो

यह अच्छा है। यदि ऐसा न हो, तो उपोसथ दिवस पर, माह के चौदहवें या पंद्रहवें दिन, जब वह व्यक्ति संघ के बीच उपस्थित हो, तो वह निम्नलिखित प्रस्ताव रखे: "आदरणीय संघ मेरी बात सुने। फलां व्यक्ति के पराजिका अपराध के संबंध में चर्चा प्रारंभ हुई थी, परन्तु उस मामले का निर्णय नहीं हुआ। मैं उसके लिए पतिमोक्खा के पाठ पर प्रतिबंध लगाता हूँ कि जब वह उपस्थित हो तब पतिमोक्खा का पाठ न किया जाए।" यह पतिमोक्खा के पाठ पर कानूनी प्रतिबंध है।

5. 'और यह कैसे (कानूनी रूप से कहा जा सकता है कि) एक भिक्षु जिसने नियमों का त्याग कर दिया है, सभा में बैठा है?'

[पिछली बार की तरह ही, 'परजिका अपराध' आदि के स्थान पर 'उपदेशों का त्याग कर दिया' आदि पढ़ा गया है।]

6. और (कानूनी तौर पर यह कैसे कहा जा सकता है कि व्यक्ति)

आरोपित व्यक्ति (सभा की) कानूनी रूप से निर्धारित सहमति का पालन नहीं करता?

[पिछली बार की तरह ही, 'उपदेशों का त्याग करना' आदि के स्थान पर 'सभा की कानूनी रूप से (निर्धारित) सहमति के अधीन न होना' आदि पढ़ा गया है।]

7. 'और (कानूनी तौर पर यह कैसे कहा जा सकता है कि आरोपित व्यक्ति) सभा की कानूनी रूप से स्थापित सहमति को वापस ले लेता है?'

[पिछली बार की तरह ही, 'स्वीकृति वापस लेता है,' आदि के स्थान पर 'प्रस्तुत नहीं करता,' आदि पढ़ा जा रहा है।]

8. 'और यह कानूनी रूप से कैसे कहा जा सकता है कि आरोपित व्यक्ति को नैतिकता के विरुद्ध अपराध . . . . आचरण के विरुद्ध अपराध . . . . सिद्धांत के विरुद्ध अपराध करते हुए देखा गया है, सुना गया है या उस पर संदेह है?'

[संख्या 4 के समान, 'पराजिका अपराध' के स्थान पर 'नैतिकता के विरुद्ध अपराध' आदि पढ़ा गया है।]

ये दस प्रकार के पतिमोक्खा निषेध हैं जो कानूनी हैं।

यहां पाठ का पहला भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला(9.2) | अगला(9.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> नौवां खंडका >> 9.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.3) | अगला(9.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

नौवां खंडका (पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार पर)

अध्याय-4.

1. तब पूज्य उपली भगवान बुद्ध के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठने के बाद पूज्य उपली ने भगवान बुद्ध से कहा:

'हे प्रभु, जब कोई भिक्षु किसी मामले के निपटारे का दायित्व स्वयं लेने का इरादा रखता है, तो उसे किन परिस्थितियों में उस मामले का निपटारा स्वयं लेना चाहिए?'

'एक भिक्षु, उपली, जो किसी भी मामले के संचालन का दायित्व अपने ऊपर लेने का इरादा रखता है, उसे पांच शर्तों के तहत ऐसा संचालन अपने ऊपर लेना चाहिए।'

(सर्वोत्तम) उपली, जो भिक्षु किसी भी मामले का संचालन स्वयं अपने ऊपर लेने का इरादा रखता है, उसे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "जिस मामले का संचालन मैं स्वयं अपने ऊपर लेने का इरादा रखता हूँ, क्या अब उसका संचालन अपने ऊपर लेने का सही समय है या नहीं?" यदि उपली, ऐसा विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यह सही समय नहीं है, तो उपली, उसे उसका संचालन अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए।

(दूसरा) यदि वह भिक्षु, उपली, ऐसा विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह सही समय है, तो उसे आगे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "जिस मामले का दायित्व मैं स्वयं लेने जा रहा हूँ, उसका संचालन न्यायसंगत है या नहीं?" यदि वह भिक्षु, उपली, ऐसा विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह न्यायसंगत नहीं होगा, तो उसे इसका दायित्व नहीं लेना चाहिए।

(तीसरा) यदि वह भिक्षु, उपली, इस प्रकार विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह उचित होगा, तो उपली, उसे आगे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "जिस मामले को मैं अपने ऊपर लेने का इरादा रखता हूँ, उसका संचालन लाभप्रद होगा या नहीं?" यदि वह भिक्षु, उपली, इस प्रकार विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह लाभप्रद नहीं होगा, तो उपली, उसे इसका दायित्व नहीं लेना चाहिए।

(चौथा) यदि वह भिक्षु उपली, ऐसा विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इससे यह प्रवृत्ति होगी कि

लाभ की चिंता में, उपाली, उसे आगे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "जब मैं इस मामले का संचालन स्वयं अपने हाथ में ले रहा हूँ, तो क्या मुझे यह पता चलेगा कि मेरे घनिष्ठ मित्र और सहयोगी भिक्षु धम्म और विनय के अनुसार मेरे पक्ष में हैं या नहीं?" यदि वह भिक्षु, उपाली, इस प्रकार विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह मेरे पक्ष में नहीं है, तो उपाली, उसे इस मामले का दायित्व नहीं लेना चाहिए।

(पांचवां) यदि वह भिक्षु, उपाली, इस प्रकार विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसा होगा, तो उसे आगे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "जब मैं इस मामले का संचालन अपने ऊपर ले रहा हूँ, तो क्या इसके परिणामस्वरूप संघ में कलह, झगड़ा, विवाद या मतभेद उत्पन्न होगा, या संघ में फूट, संघ में विखंडन, संघ में विभिन्न पदों पर मतभेद, संघ में विभिन्न कर्मों का विभाजन होगा?" यदि वह भिक्षु, उपाली, इस प्रकार विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसा होगा, तो उसे इसका कार्यभार नहीं लेना चाहिए। परन्तु यदि वह भिक्षु, उपाली, इस प्रकार विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसा नहीं होगा, तो उसे इसका कार्यभार लेना चाहिए। उपाली, इन पांच शर्तों के अधीन किसी मामले का कार्यभार लेने से बाद में पश्चाताप का कारण नहीं बनेगा।

<<<< पिछला(9.3) । अगला(9.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> नौवां खंडका >> 9.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(9.4) । अगला(10.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

नौवां खंडका (पतिमोक्खा समारोह से बहिष्कार पर)

अध्याय-5.

1. 'हे प्रभु, जब कोई भिक्षु किसी दूसरे को चेतावनी देने का दायित्व ग्रहण करता है और ऐसा करने वाला होता है, तो उसे ऐसा करने से पहले अपने भीतर मौजूद कितने गुणों पर विचार करना चाहिए?'

(क) 'एक भिक्षु जो दूसरे को चेतावनी देता है, उसे उपली करना चाहिए,

जब वह ऐसा करने वाला हो, तो इस प्रकार विचार करो: "क्या मैं अपने शरीर के आचरण में शुद्ध हूँ; क्या मैं दोषरहित, कलंकरहित हूँ? क्या यह गुण मुझमें है या नहीं?" हे उपाली, यदि भिक्षु ऐसा नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "अब आओ, अपने आदर को शरीर से संबंधित मामलों में स्वयं को प्रशिक्षित करते रहने दो!"—वे ऐसा कहेंगे।

(ख) 'और आगे, हे उपली, जो भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को चेतावनी देता है, उसे ऐसा करने से पहले इस प्रकार विचार करना चाहिए: "क्या मैं अपने वाणी के आचरण में शुद्ध हूँ; क्या मैं दोषरहित, कलंकरहित हूँ? क्या यह गुण मुझमें है या नहीं?" हे उपली, यदि भिक्षु ऐसा नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "हे उपली, अब भी अपने आदरणीय वाणी संबंधी विषयों में स्वयं को प्रशिक्षित करते रहो!"—वे ऐसा कहेंगे।

(ग) 'और आगे, उपाली, जो भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को चेतावनी देता है, उसे इस प्रकार विचार करना चाहिए: "क्या मुझमें सदा दयालु मन रहता है, ऐसा मन जो धम्म जीवन में मेरे साथियों के प्रति क्रोध रहित हो? क्या यह गुण मुझमें है या नहीं?" उपाली, यदि उस भिक्षु में ऐसा मन नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "अब, अपने धम्म जीवन में अपने साथियों के प्रति मित्रता भाव विकसित करने के लिए श्रद्धा बनाए रखें!"—वे ऐसा कहेंगे।

(घ) 'और आगे, एक भिक्षु जो दूसरे भिक्षु को चेतावनी देता है, उसे उपली, इस प्रकार विचार करना चाहिए: "क्या मैं परंपरा में पारंगत व्यक्ति हूँ, परंपरा का संरक्षक हूँ, परंपरा का भंडार हूँ? जो भी सत्य, अपनी उत्पत्ति में सुंदर, अपनी प्रगति में सुंदर, अपनी पूर्णता में सुंदर, उच्च जीवन को, आत्मा और अक्षर दोनों में, और उसके सभी पहलुओं में, महिमा मंडित करते हैं,

क्या मैं इन सभी परिपूर्ण सत्यों में पारंगत हूँ, क्या मैं इनसे परिपूर्ण हूँ, क्या ये मेरे शब्दों में समाहित हैं, क्या ये मेरे हृदय में निवास करते हैं, क्या ये सही अंतर्दृष्टि से मेरे भीतर समाहित हैं? क्या यह गुण मुझमें पाया जाता है या नहीं? यदि वह भिक्षु, उपाली, ऐसा व्यक्ति नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "आइए, अब भी आप धर्म का अध्ययन जारी रखें!"—वे ऐसा कहेंगे।

(ई) 'और आगे, एक भिक्षु जो दूसरे भिक्षु को चेतावनी देता है, उसे उपाली, इस प्रकार विचार करना चाहिए: "क्या दोनों पतिमोक्ख मुझे पूर्ण रूप से सौंपे गए हैं; क्या मैंने उन्हें अच्छी तरह से विभाजित किया है, अच्छी तरह से स्थापित किया है, नियम दर नियम और प्रत्येक विवरण में अच्छी तरह से जांच की है? क्या यह गुण मुझमें पाया जाता है, या नहीं?" यदि, उपाली, ऐसा नहीं है, तो जब उससे पूछा जाएगा, "हे महोदय, भगवान बुद्ध ने यह कहाँ कहा है?" तो वह व्याख्या करने में सक्षम नहीं होगा, और कुछ लोग उससे कहेंगे: "आइए, अब आप विनय का अध्ययन जारी रखें!" - वे ऐसा कहेंगे।

उपली, ये पाँच गुण हैं जिनका विचार किसी भिक्षु को दूसरे भिक्षु को चेतावनी देने से पहले करना चाहिए, चाहे वे गुण स्वयं भिक्षु में हों या नहीं।

2. 'हे प्रभु, जब कोई भिक्षु किसी दूसरे को चेतावनी देने का दायित्व ग्रहण करता है और ऐसा करने वाला होता है, तो उसे ऐसा करने से पहले अपने भीतर कितने गुणों का आह्वान (स्थापना) करना चाहिए?'

उपली भिक्षु, जब किसी दूसरे को चेतावनी देने वाला हो, तो उसे ऐसा करने से पहले अपने भीतर पाँच गुणों का आह्वान करना चाहिए (मन में यह कहते हुए): "मैं उचित समय पर बोलूंगा, अनुचित समय पर नहीं। मैं सत्य बोलूंगा, असत्य नहीं। मैं सौम्यता से बोलूंगा, कठोरता से नहीं। मैं लाभ के लिए बोलूंगा, निरर्थक नहीं। मैं दयालु भाव से बोलूंगा, क्रोध से नहीं।"

'ये पांच हैं, उपली,' इत्यादि।

3. 'हे प्रभु, किसी भिक्षु को गलत तरीके से दूसरे भिक्षु को चेतावनी देने पर पश्चाताप कैसे समझाया जा सकता है?'

'हे उपली, पाँच तरीकों से उस भिक्षु को पश्चाताप का अनुभव कराया जा सकता है जिसने दूसरे भिक्षु को गलत तरीके से चेतावनी दी हो (अर्थात् उससे यह कहकर): "हे महोदय, आपने उसे गलत समय पर चेतावनी दी, सही समय पर नहीं: पश्चाताप की आवश्यकता है। हे महोदय, आपने उसे असत्य से चेतावनी दी, तथ्यों के अनुसार नहीं: पश्चाताप की आवश्यकता है। हे महोदय, आपने उसे कठोरता से

चेतावनी दी, कोमलता से नहीं: पश्चाताप की आवश्यकता है। हे महोदय, आपने उसे अविवेकी रूप से चेतावनी दी, लाभप्रद तरीके से नहीं: पश्चाताप की आवश्यकता है। हे महोदय, आपने उसे क्रोध में चेतावनी दी, दयालुता से नहीं: पश्चाताप की आवश्यकता है।"

'हे उपाली, इन पाँच तरीकों से उस भिक्षु को पश्चाताप का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए जिसने किसी दूसरे भिक्षु को गलत तरीके से चेतावनी दी हो। और क्यों? ताकि कोई दूसरा भिक्षु यह न सोचे कि चेतावनी तथ्यों के अनुसार नहीं दी जानी चाहिए।'

4. 'हे प्रभु, इसे कितने तरीकों से लाया जा सकता है?'

क्या उस भिक्षु को पश्चाताप का भाव नहीं दिलाया जा सकता जिसे गलत तरीके से चेतावनी दी गई हो?

'पांच तरीकों से, उपाली, (अर्थात्, उससे यह कहकर): "श्रीमान, आपको गलत समय पर चेतावनी दी गई थी, सही समय पर नहीं: पश्चाताप की कोई आवश्यकता नहीं है," [आदि, जैसा कि अनुच्छेद 2 में है, समान परिवर्तनों के साथ।]

5. 'हे प्रभु, पश्चाताप के विपरीत अर्थ को उन भिक्षुओं को कितनी तरह समझाया जा सकता है जिन्होंने दूसरे भिक्षु को सही चेतावनी दी है?'

[इसका उत्तर धारा 3 के ठीक विपरीत है।]

6. [यह खंड धारा 5 के विपरीत है।]

7. 'हे प्रभु, जब कोई भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को चेतावनी देने वाला हो, तो उसे ऐसा करने से पहले कितनी बातों का ध्यान रखना चाहिए?'

'उपली, ये पाँच बातें हैं—अर्थात् दया, दूसरों का भला चाहना, करुणा, अपराधों का त्याग और विनय के प्रति आदर। ये पाँच बातें हैं,' इत्यादि।

'हे प्रभु, जिस भिक्षु को चेतावनी दी गई हो, उसे कितने गुणों में दृढ़ रहना चाहिए?'

'उपली, दो बातों में—अर्थात् सत्य में और क्रोध से मुक्ति में।'

=========
पतिमोक्खा के निषेध पर नौवां खंडक यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(9.4) । अगला(10.1) >>>>

दसवां खंडका (भिक्षुणियों के कर्तव्य)
(भिक्खुनियों के कर्तव्य)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (9.5) । अगला (10.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय 1।

1. उस समय भगवान बुद्ध कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निग्रोधरम में ठहरे हुए थे। महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) उस स्थान पर गईं जहाँ भगवान बुद्ध थे, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी रहीं। खड़े-खड़े उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:

'हे प्रभु, यह अच्छा होगा यदि महिलाओं को तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के तहत अपने घर त्यागने और बेघर अवस्था में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए।'

'बस करो, हे गौतमी! तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।'

[और दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने उन्हीं शब्दों में वही निवेदन किया और वही उत्तर प्राप्त किया।]

तब महाप्रजापति गौतमी, इस बात से दुखी और शोकाकुल होकर कि भगवान बुद्ध महिलाओं को बेघर अवस्था में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देंगे, भगवान बुद्ध के सामने झुक गईं और उन्हें अपने दाहिने हाथ पर रखकर उनके पास से गुजरते हुए रोती-आँखों में आँसू लिए वहाँ से चली गईं।

2. जब भगवान बुद्ध कपिलवस्तु में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर गए, तब वे वैशाली की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े; और यात्रा करते हुए

वे उचित समय पर वहाँ पहुँच गए। और वहाँ वेशाली में, भगवान बुद्ध महावन में, कुटागारा हॉल में ठहरे।

और महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) ने अपने बाल कटवाए, नारंगी रंग के वस्त्र धारण किए और शाक्य वंश की कई स्त्रियों के साथ वैशाली की ओर चल पड़ीं; और उचित समय पर वे वैशाली में महावन, कुटागारा हॉल में पहुँचीं। और महाप्रजापति गौतमी, सूजे हुए पैरों और धूल से ढकी हुई, दुखी और शोकाकुल होकर, रोती-बिलखती हुई प्रवेश द्वार के बाहर खड़ी हो गईं।

और पूज्य आनंद ने उसे वहाँ इस प्रकार खड़े देखा, और उसे इस प्रकार देखकर उन्होंने महाप्रजापति से कहा: 'तुम वहाँ बरामदे के बाहर, सूजे हुए पैरों और धूल से ढकी हुई, दुखी और शोकाकुल होकर, रोती-बिलखती क्यों खड़ी हो?'

'हे आनंद, क्योंकि भगवान बुद्ध तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के तहत महिलाओं को अपने घर त्यागकर बेघर होने की अनुमति नहीं देते हैं।'

3. तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा:

'हे प्रभु, देखिए, महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की माता/चाची) प्रवेश द्वार के बाहर, सूजे हुए पैरों और धूल से सनी हुई, दुखी और शोकाकुल होकर, रोती हुई खड़ी हैं, क्योंकि भगवान बुद्ध अपने उपदेशों और नियमों के अनुसार महिलाओं को गृह त्याग कर बेघर होने की अनुमति नहीं देते। हे प्रभु, यदि महिलाओं को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की अनुमति दी जाए तो अच्छा होगा।'

बस करो, आनंद! तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।'

[और आनंद ने दूसरी और तीसरी बार भी वही अनुरोध किया, उन्हीं शब्दों में, और उसे वही उत्तर मिला।]

तब पूज्य आनंद ने सोचा, 'यदि भगवान बुद्ध अनुमति न दें, तो मैं किसी और आधार पर भगवान बुद्ध से विनती करूँ।' और पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा:

'हे प्रभु, क्या स्त्रीयां - जब वे गृहस्थ जीवन से निकलकर भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अधीन होकर गृहस्थ अवस्था में प्रवेश करती हैं - क्या वे धर्म परिवर्तन, द्वितीय मार्ग, तृतीय मार्ग या अरहतत्व के फल को प्राप्त करने में सक्षम होती हैं?'

'वे सक्षम हैं, आनंदा।'

'हे प्रभु, यदि वे ऐसा करने में सक्षम हैं, क्योंकि महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) ने स्वयं को भगवान बुद्ध की महान सेवा में सिद्ध किया है, जब उन्होंने मौसी और दाई के रूप में उनका पालन-पोषण किया और उन्हें दूध पिलाया, और उनकी माता के निधन पर

उन्हें अपने स्तन से दूध पिलाया, तो हे प्रभु, यह उचित होगा कि महिलाओं को तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित सिद्धांत और अनुशासन के तहत गृहस्थ जीवन से बाहर निकलने और गृहस्थ अवस्था में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए।'

4. 'यदि हे आनंद, महाप्रजापति गौतमी अष्टम नियमों का पालन करें, तो उसे ही उनका दीक्षा संस्कार माना जाए।'

[वे ये हैं]: (1) 'एक भिक्षुणी, चाहे वह सौ वर्ष की ही क्यों न हो, नवदीक्षित भिक्षु को प्रणाम करेगी, उसके समक्ष खड़ी होगी, उसके सामने नतमस्तक होगी और उसके प्रति सभी उचित कर्तव्यों का पालन करेगी। यह एक ऐसा नियम है जिसका आदर और सम्मान किया जाना चाहिए, जिसका आदर और पालन किया जाना चाहिए, और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(2) 'भिक्खुनी (भिक्षुणी) को वर्षा ऋतु (वस) ऐसे जिले में नहीं बितानी चाहिए जहाँ कोई भिक्षु न हो। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(3) 'प्रत्येक छह महीने में एक भिक्षुणी को भिक्षु-संघ से दो बातों की प्रतीक्षा करनी चाहिए: उपोसथा समारोह की तिथि के बारे में पूछना और भिक्षु द्वारा उपदेश देने का समय। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(4) वर्षा ऋतु (वस) के बाद, भिक्षुणी (भिक्षुणी) को दोनों संघों—भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संघ—के समक्ष तीन बातों के संबंध में पवाराना (यह पता लगाने के लिए कि क्या उस पर कोई दोष लगाया जा सकता है) करना चाहिए, अर्थात् जो देखा गया है, जो सुना गया है और जो संदेह है। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(5) 'एक भिक्षुणी जो किसी गंभीर अपराध की दोषी पाई जाती है, उसे संघों (भिक्षुओं और भिक्षुणियों) दोनों के प्रति मनत्ता अनुशासन का पालन करना होता है। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(6) 'जब कोई भिक्षुणी, नौसिखिया के रूप में, छह नियमों में दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेती है, तो उसे उपसम्पदा दीक्षा के लिए दोनों संघों (भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों के संघ) से अनुमति लेनी चाहिए। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(7) 'भिक्खुनी (भिक्षुणी) किसी भी बहाने से भिक्षु को अपशब्द या गाली नहीं दे सकती। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(8) 'अब से भिक्षुणियों द्वारा भिक्षुओं को आधिकारिक उपदेश देना निषिद्ध है, जबकि भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियों को आधिकारिक उपदेश देना निषिद्ध नहीं है। यह एक नियम है... जिसका कभी उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।'

'यदि हे आनंद, महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) इन आठ प्रमुख नियमों को ग्रहण कर लें, तो इसे ही उनका दीक्षा संस्कार माना जाए।'

5. तब पूज्य आनंद ने जब भगवान बुद्ध से इन आठ मुख्य नियमों को सीखा, तो वे महाप्रजापति गौतमी के पास गए और [उन्हें भगवान बुद्ध द्वारा कही गई सभी बातें बताईं]।

'हे आनंद, जिस प्रकार कोई पुरुष या स्त्री, जब युवा और नन्हे-मुन्ने होते हैं और स्वयं को सजाने-संवारने के आदी होते हैं, तो सिर धोने के बाद दोनों हाथों से कमल, चमेली या अतिमुत्तक के फूलों की माला ग्रहण करके अपने सिर पर रखते हैं; उसी प्रकार, हे आनंद, मैं भी इन आठ प्रमुख नियमों को जीवन भर कभी न तोड़ने का संकल्प लेता हूँ।'

6. तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास लौट आए, उनके सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे भगवान, महाप्रजापति गौतमी ने अष्टम नियमों का पालन किया है, भगवान बुद्ध की चाची ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की है।'

हे आनंद, यदि तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अनुसार स्त्रियों को गृहस्थ जीवन से बाहर निकलकर बेघर होने की अनुमति न मिली होती, तो हे आनंद, शुद्ध धर्म इतने लंबे समय तक कायम रहता, और यह धर्म हज़ार वर्षों तक स्थिर रहता। परन्तु हे आनंद, अब स्त्रियों को यह अनुमति मिल जाने के कारण, हे आनंद, शुद्ध धर्म इतने लंबे समय तक कायम नहीं रहेगा, और यह धर्म केवल पाँच सौ वर्षों तक ही स्थिर रहेगा। हे आनंद, जिस प्रकार जिन घरों में स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम होते हैं, उनमें चोर आसानी से सेंध लगा लेते हैं; ठीक उसी प्रकार, हे आनंद,

हे आनंद, चाहे किसी भी सिद्धांत और अनुशासन के तहत महिलाओं को गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर होने की अनुमति दी जाए, वह धर्म अधिक समय तक नहीं टिकेगा। और हे आनंद, जैसे जब अच्छी स्थिति में धान के खेत पर फफूंद लग जाती है, तो वह खेत अधिक समय तक नहीं टिकता; ठीक वैसे ही, हे आनंद, चाहे किसी भी सिद्धांत और अनुशासन के तहत महिलाओं को गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर होने की अनुमति दी जाए, वह धर्म अधिक समय तक नहीं टिकेगा। और हे आनंद, जैसे जब अच्छी स्थिति में गन्ने के खेत पर झुलसा रोग लग जाता है, तो वह खेत अधिक समय तक नहीं टिकता; ठीक वैसे ही, हे आनंद, चाहे किसी भी सिद्धांत और अनुशासन के तहत महिलाओं को गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर होने की अनुमति दी जाए, वह धर्म अधिक समय तक नहीं टिकेगा। और हे आनंद, जैसे कोई व्यक्ति पहले से ही एक बड़े जलाशय के लिए तटबंध बनाता है, जिसके आगे पानी न बहे; फिर भी, हे आनंद, मैंने भिक्षुणियों के लिए ये आठ मुख्य नियम पूर्वधारणा के आधार पर ही निर्धारित किए हैं, जिनका पालन उनके जीवनकाल से अधिक नहीं होना चाहिए।

यहां भिक्षुणियों के लिए आठ प्रमुख नियम समाप्त होते हैं।

<<<< पिछला (9.5) | अगला (10.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.2

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.1) | अगला (10.3) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय दो।

1. अब महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) उस स्थान पर गईं जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ आदरपूर्वक खड़ी हो गईं। इस प्रकार खड़े होकर महाप्रजापति गौतमी ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: 'हे प्रभु, क्या उपाय है?'

क्या मुझे शाक्य वंश की इन महिलाओं की ओर रुख करना चाहिए?'

तब भगवान बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी को शिक्षा दी, उन्हें प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और धर्म प्रवचन से प्रसन्न किया; और इस प्रकार शिक्षा प्राप्त, प्रोत्साहित, प्रेरित और प्रसन्न होकर उन्होंने भगवान बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिने हाथ पर रखते हुए वहां से प्रस्थान किया।

तब भगवान बुद्ध ने उस संदर्भ में धर्म प्रवचन दिया और भिक्षुओं से कहा, 'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को भिक्षुओं से उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने की अनुमति देता हूँ।'

2. तब उन भिक्षुणियों ने गौतमी महाप्रजापति से कहा: 'न तो आपने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की है, न ही हमने; क्योंकि भगवान बुद्ध ने यही नियम बनाया है: "भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियों को दीक्षा दी जानी चाहिए।"'

तब गौतमी महाप्रजापति पूज्य आनंद के पास गईं और उन्होंने [उनकी बातें उन्हें दोहराईं]। पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए और [उनकी बातें उन्हें दोहराईं]।

'आनंद, उस क्षण जब महाप्रजापति गौतमी ने अष्टम नियमों को अपने ऊपर ग्रहण किया, तो वह उनके लिए उपसम्पदा दीक्षा के समान था।'

<<<< पिछला (10.1) | अगला (10.3) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.3
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.2) | अगला (10.4) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-3.

1. अब महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की चाची/पालक माता) उस स्थान पर गईं जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे, और उनके सामने झुककर आदरपूर्वक एक तरफ खड़ी हो गईं।

और इस प्रकार खड़े होकर, गौतमी महाप्रजापति ने पूज्य आनंद से कहा: 'आनंद, मैं भगवान बुद्ध से एक बात पूछना चाहता हूँ। हे महोदय, यदि भगवान बुद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के बीच वरिष्ठता के अनुसार समान रूप से अभिवादन करने, दूसरे के समक्ष उठने, आदर करने और उचित कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति दें तो यह अच्छा होगा।'

और पूज्य आनंदा भगवान बुद्ध के पास गईं [और उन्होंने उनके शब्दों को दोहराया]।

'आनंद, यह असंभव और अस्वीकार्य है कि मैं ऐसा आदेश दूं। आनंद, यहां तक कि वे अन्य शिक्षक भी, जो कुरीतिशास्त्र के अनुयायी हैं, स्त्रियों के प्रति ऐसे आचरण की अनुमति नहीं देते; तो तथागत (बुद्ध) इसकी अनुमति कैसे दे सकते हैं?'

उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रवचन देते हुए भिक्षुओं को संबोधित किया और कहा: 'हे भिक्षुओं, तुम स्त्रियों के समक्ष न तो प्रणाम करो, न ही उनके समक्ष उठ खड़े हो, न ही उनके समक्ष हाथ जोड़कर प्रणाम करो, और न ही उनके प्रति वे कर्तव्य निभाओ जो (निम्न से श्रेष्ठ के प्रति) उचित हैं। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (10.2) | अगला (10.4) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.4
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.3) | अगला (10.5) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-4.

1. अब महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) उस स्थान पर गईं जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ आदरपूर्वक खड़ी हो गईं। इस प्रकार खड़े होकर महाप्रजापति गौतमी ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे प्रभु, भिक्षुणियों के लिए जो उपदेश हैं, वे भिक्षुओं पर भी लागू होते हैं, इसलिए हमें कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए?'

'गौतमी, तुम भी भिक्षुओं की तरह ही इस विषय में प्रशिक्षण लो।'

'हे प्रभु, भिक्षुणियों के लिए उन नियमों के संबंध में हमें क्या मार्ग अपनाना चाहिए जो भिक्षुओं पर लागू नहीं होते?'

'हे गौतमी, तुम उसमें निर्धारित नियमों के अनुसार ही प्रशिक्षण लो।'

<<<< पिछला (10.3) | अगला (10.5) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.5

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.4) | अगला (10.6) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-5.

1. अब महाप्रजापति गौतमी (बुद्ध की मौसी/पालक माता) भगवान बुद्ध के पास गईं [जैसा कि पहले बताया गया है], और बोलीं: 'भगवान बुद्ध मुझे धम्म (सत्य, सिद्धांत) का सार रूप में उपदेश दें; ताकि भगवान बुद्ध के उपदेश को सुनकर मैं एकांत में, एकांत में, गंभीर, उत्साही और दृढ़ संकल्पित रह सकूँ।'

'हे गौतमी, तुम जिन भी सिद्धांतों के प्रति सचेत रहो, जो तुम्हें शांति के बजाय वासना, श्रद्धा के बजाय अहंकार, थोड़ी सी इच्छा के बजाय अधिक पाने की लालसा, एकांतवास के बजाय समाजप्रेम, परिश्रम के बजाय आलस्य, और संतोष के बजाय असंतोषजनक स्वभाव की ओर ले जाते हैं, तो हे गौतमी, तुम उन्हें अवश्य ध्यान में रखो।'

वह धम्म नहीं है, वह विनय नहीं है, वह गुरु की शिक्षा नहीं है। परन्तु हे गौतमी, तुम जिन सिद्धांतों के प्रति सचेत रहो, जो शांति की ओर ले जाते हैं, न कि वासना की ओर, आदर की ओर ले जाते हैं, न कि अहंकार की ओर, अल्प इच्छा की ओर ले जाते हैं, न कि अधिक इच्छा की ओर, एकांत की ओर ले जाते हैं, न कि समाजप्रेम की ओर, उत्साह के अभ्यास की ओर ले जाते हैं, न कि आलस्य की ओर, संतोष की ओर ले जाते हैं, न कि संशय की ओर—तब तुम यह ध्यान रखना कि वही धम्म है, वही विनय है, और वही गुरु की शिक्षा है।

<<<< पिछला (10.4) | अगला (10.6) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दसवाँ खंडक >> 10.6

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.5) | अगला (10.7) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-6.

1. उस समय भिक्षुणियों को पतिमोक्खा नहीं सुनाया जाता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को पतिमोक्खा का पाठ करने की अनुमति देता हूँ।'

अब भिक्षुणियों के मन में यह विचार आया: 'भिक्षुओं को पतिमोक्खा का पाठ किसके द्वारा कराया जाना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओ, मैं भिक्खुओं द्वारा भिक्खुनिस को पतिमोक्ख सुनाने की अनुमति देता हूं।'

उस समय भिक्षु भिक्षुणियों के निवास पर गए और वहाँ की भिक्षुणियों को पतिमोक्खा का पाठ सुनाया। लोगों ने बड़बड़ाते हुए और आक्रोश जताते हुए कहा, 'यहाँ उनकी पत्नियाँ हैं, वहाँ उनकी रखैलें हैं; अब क्या वे आपस में भोग-विलास करेंगे?'

भिक्षुओं ने यह सुना और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणियों के निवास पर उन्हें पतिमोक्खा का पाठ न करने दें। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को पतिमोक्खा का पाठ करने की अनुमति देता हूँ।'

भिक्षुणियों को पतिमोक्खा का पाठ करना नहीं आता था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्खुओं को अनुमति देता हूं कि वे भिक्खुनिस को बताएं कि पतिमोक्खा का पाठ कैसे किया जाता है।'

2. उस समय भिक्षुणियों ने अपने किए हुए दोषों को स्वीकार नहीं किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को अपने दोष को स्वीकार किए बिना नहीं छोड़ना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

भिक्षुणियों को अपनी गलतियों को स्वीकार करने का तरीका नहीं पता था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को यह अनुमति देता हूँ कि वे उन्हें बताएँ कि उन्हें अपने दोषों को कैसे स्वीकार करना चाहिए।'

तब भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: 'भिक्षुणियों से दोष स्वीकारोक्ति किसके द्वारा स्वीकार की जानी चाहिए?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों से किसी दोष की स्वीकारोक्ति स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षुणियाँ, सड़क पर, या एक छोर से बंद गली में, या जहाँ चार चौराहे मिलते थे, किसी भिक्षु को देखकर अपना कुंड ज़मीन पर रख देतीं, और अपने वस्त्रों को एक कंधे पर समेटकर एड़ियों के बल बैठ जातीं, और अपने हाथ जोड़कर अपने किसी पाप का प्रायश्चित करतीं। लोग बड़बड़ाते, नाराज़ होते और शिकायत करते हुए कहते, 'यहाँ उनकी पत्नियाँ हैं, वहाँ उनकी रखैलें हैं; वे उनसे पूछ रहे हैं।'

रात भर उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करने के बाद अब उन्हें क्षमा कर दीजिए।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणियों से किसी दोष का स्वीकारोक्ति स्वीकारना भिक्षुओं को उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को भिक्षुणियों से किसी दोष का स्वीकारोक्ति स्वीकारने की अनुमति देता हूँ।'

भिक्षुणियों को यह नहीं पता था कि किसी गलती की स्वीकारोक्ति कैसे स्वीकार की जाए। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं को यह अनुमति देता हूँ कि वे भिक्षुणियों को यह बताएँ कि किसी गलती की स्वीकारोक्ति कैसे स्वीकार की जाए।'

3. उस समय भिक्षुणियों के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही (कम्मा) नहीं की जाती थी। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की अनुमति देता हूँ।'

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'भिक्षुणियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही किसके द्वारा की जानी चाहिए?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय अनुशासनात्मक कार्यवाही से गुज़र चुकी भिक्षुणियाँ, सड़क पर, या एक छोर से बंद गली में, या चारों चौराहों के संगम पर किसी भिक्षु को देखकर, अपने कुंड ज़मीन पर रख देतीं, और अपने वस्त्रों को एक कंधे पर समेटकर एड़ियों के बल बैठ जातीं, और अपने हाथ जोड़कर क्षमा माँगतीं, यह सोचकर कि यही क्षमा माँगने का उचित समय है। लोग आपस में फुसफुसाते रहे [आदि, जैसा पहले बताया गया है]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणियों के विरुद्ध भिक्षुणियां करना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।' हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को भिक्षुणियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की अनुमति देता हूँ।'

भिक्षुणियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का तरीका नहीं पता था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं को यह अनुमति देता हूँ कि वे भिक्षुणियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का तरीका बताएँ।'

<<<< पिछला (10.5) । अगला (10.7) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.7

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.6) । अगला (10.8) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय 7।

1. उस समय संघ में एकत्रित भिक्षुणियाँ आपस में कलह, कलह और विवाद में पड़ गईं, और आपस में हाथापाई करने लगीं, तथा विवाद का हल निकालने में असमर्थ रहीं। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को किसी विवादित मुद्दे पर भिक्षुणियों के साथ समझौता करने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भिक्षु भिक्षुणियों के लिए एक विवादित मुद्दे का निपटारा कर रहे थे, और जब विवादित मुद्दे की जाँच की जा रही थी, तो यह पाया गया कि दोनों भिक्षुणियाँ, जो किसी आधिकारिक कार्य में भाग लेने के लिए सक्षम थीं, और वे भिक्षुणियाँ जो किसी अपराध की दोषी थीं (उन्होंने उस आधिकारिक कार्य (कर्म) के दौरान संघ में भाग लिया था जिसमें विवादित मुद्दा उठा था)।

भिक्षुणियों ने कहा: 'यह अच्छा होगा यदि आप, महोदय, दोषी भिक्षुणियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करें या उनके अपराध को क्षमा कर दें: क्योंकि

भगवान बुद्ध ने यही नियम निर्धारित किया है: "भिक्षुओं को भिक्षुणियों के लिए किसी विवाद के मुद्दे का समाधान करना चाहिए।"

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं को भिक्षुणियों के लिए आधिकारिक कार्रवाई शुरू करने और फिर भिक्षुणियों को भिक्षुणियों के विरुद्ध उस आधिकारिक कार्रवाई को अंजाम देने का दायित्व सौंपने की अनुमति देता हूँ। और मैं भिक्षुओं को भिक्षुणियों के लिए किसी अपराध से निपटने की अनुमति देता हूँ और फिर भिक्षुणियों को उस अपराध की स्वीकारोक्ति स्वीकार करने का दायित्व सौंपता हूँ।'

<<<< पिछला (10.6) | अगला (10.8) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.8
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.7) | अगला (10.9) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-8.

1. उस समय एक भिक्षुणी, जो भिक्षुणी उप्पलावन्ना की शिष्या थी, सात वर्षों तक भगवान बुद्ध के साथ रहकर विनय का अध्ययन करती रही; परन्तु वह भूलने की प्रवृत्ति के कारण जितनी जल्दी सीखती थी उतनी ही जल्दी भूल भी जाती थी। तभी उस भिक्षुणी ने सुना कि भगवान बुद्ध श्रावस्ती जाने वाले हैं। तब उसने सोचा, 'सात वर्षों तक मैंने भगवान बुद्ध के साथ रहकर विनय का अध्ययन किया; और भूलने की प्रवृत्ति के कारण जितनी जल्दी सीखती थी उतनी ही जल्दी भूल भी जाती थी। जीवन भर भगवान बुद्ध का अनुसरण करना एक स्त्री के लिए कितना कठिन है। अब मैं क्या करूँ?'

और उस भिक्षुणी ने यह बात अन्य भिक्षुणियों को बताई, और उन्होंने यह बात भिक्षुओं को बताई, और भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुओं को भिक्षुणियों को विनय सिखाने की अनुमति देता हूँ।'

यहां पाठ का पहला भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला (10.7) । अगला (10.9) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.9
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.8) । अगला (10.10) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-9.

1. जब भगवान बुद्ध वैशाली में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर गए, तब वे सावत्थी की ओर चल पड़े; और सीधे चलते हुए वे समय आने पर वहाँ पहुँच गए। वहाँ सावत्थी में, भगवान बुद्ध जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में रहे।

उस समय छब्बागिया भिक्षुओं ने भिक्षुणियों पर गंदा पानी फेंका, शायद यह सोचकर कि वे उनसे प्रेम करने लगेंगी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु को किसी भिक्षुणी पर गंदा जल नहीं फेंकना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं उस भिक्षु पर दंड लगाने की अनुमति देता हूँ।

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'उसे क्या दंड दिया जाना चाहिए?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'उस भिक्षु को भिक्षुणी संघ द्वारा प्रणाम न किए जाने योग्य घोषित किया जाना चाहिए।'

उस समय छब्बागिया भिक्षु अपने शरीर, या अपनी जांघों, या अपने गुप्तांगों को नंगा करके भिक्षुणियों को दिखाते थे, या भिक्षुणियों को अपशब्द कहते थे, या भिक्षुणियों के साथ संगति करते थे, शायद यह सोचकर कि वे उनसे प्रेम करने लगेंगे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु को [इनमें से कोई भी कार्य] नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं उस भिक्षु पर दंड लगाने की अनुमति देता हूँ।'

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'उसे क्या दंड दिया जाना चाहिए?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'उस भिक्षु को भिक्षुणी संघ द्वारा प्रणाम न किए जाने योग्य घोषित किया जाना चाहिए।'

2. [चब्बागिया भिक्षुणियों के अंतिम खंड को दोहराया गया है, निर्णय वही है]

तब भिक्षुओं ने सोचा, 'उस पर क्या दंड लगाया जाना चाहिए?' उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उसे (विहार में प्रवेश करने से) रोकने की अनुमति देता हूँ।'

जब उन पर प्रतिबंध लगाया गया, तो उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन्हें उपदेश देने से रोकने की अनुमति देता हूँ।'

3. तब भिक्षुओं ने सोचा: 'क्या उपदेश से विवश की गई भिक्षुणी (भिक्षुणी) के साथ उपोसथा करना वैध है या नहीं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जब तक उसका मामला सुलझ नहीं जाता, तब तक उस भिक्षुणी के साथ उपोसथा मत करो जिसे उपदेश से वंचित रखा गया हो।'

उस समय पूज्य उदयि ने (एक या अधिक भिक्षुणियों को) उपदेश देने के बाद यात्रा पर प्रस्थान किया। भिक्षुणियाँ

वे आपस में बड़बड़ाए, नाराज हुए और शिकायत करते हुए बोले: 'आदरणीय उदयि ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, उपदेश का पालन किए बिना यात्रा पर न जाएं। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय मूर्ख और अयोग्य भिक्षुओं ने उपदेश में बाधा डाली।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, इस उपदेश का पालन किसी मूर्ख, अयोग्य भिक्षु द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। जब कोई ऐसा करता है, तो वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं ने बिना किसी आधार या कारण के उपदेश देना बंद कर दिया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, बिना किसी आधार या कारण के उपदेश को रोकना उचित नहीं है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय, जिन भिक्षुओं ने उपदेश पर रोक लगाई थी, वे उस मामले पर कोई निर्णय नहीं देते थे जिसके कारण यह रोक लगी थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जब आप उपदेश देने से हिचकते हैं, तो उस विषय पर निर्णय देने से पीछे न हटें जिसके कारण यह हिचक उत्पन्न हुई। ऐसा करने वाला कोई भी व्यक्ति दुक्कत का दोषी होगा।'

4. उस समय भिक्षुणियाँ प्रवचन में नहीं गईं। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को प्रवचन में भाग लेने से नहीं चूकना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, उसके साथ नियमानुसार व्यवहार किया जाएगा।'

उस समय समस्त भिक्षुणी संघ एक साथ प्रवचन में गया। लोग बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और शिकायत करने लगे, कहने लगे, 'यहाँ उनकी पत्नियाँ हैं, वहाँ उनकी रखैलें हैं; अब क्या वे एक साथ आनंद लेंगे?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, संपूर्ण भिक्षुणी संघ को प्रवचन में एक साथ नहीं जाना चाहिए। और यदि ऐसा किया जाए तो वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं चार या पाँच भिक्षुणियों को एक साथ जाने की अनुमति देता हूँ।'

[जब चार या पांच ने निर्णय समाप्त किया तब भी यही स्थिति थी,]

हे भिक्षुओं, मैं दो या तीन भिक्षुणियों को उपदेश सत्र में एक साथ जाने की अनुमति देता हूँ; वे किसी एक भिक्षु के पास जाकर अपने वस्त्रों को एक कंधे पर रखकर, एड़ियों के बल बैठकर, अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर उनसे इस प्रकार कहें: "भिक्षुणी संघ भिक्षु संघ के चरणों को प्रणाम करता है और उपदेश सत्र में आने की अनुमति मांगता है; कृपया भिक्षुणी संघ को अनुमति दी जाए।"

तब जिसे पतिमोक्खा के पाठ का दायित्व सौंपा गया है, उसे पूछना चाहिए: "क्या कोई ऐसा भिक्षु है जिसे भिक्षुणियों के उपदेश देने के लिए नियुक्त किया गया है?"

यदि किसी भिक्षु को इसके लिए नियुक्त किया गया है, तो पतिमोक्खा का पाठ करने वाला कहेगा: "अमुक भिक्षु को भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए नियुक्त किया गया है। भिक्षुणी संघ तदनुसार उनके पास आए।"

यदि उस कार्य के लिए कोई भिक्षु नियुक्त नहीं किया गया है, तो पतिमोक्खा का पाठ करने वाला यह कहेगा: "आदरणीय भिक्षुओं में से कौन उपदेश देने में सक्षम है?"

भिक्षुणियों के लिए? यदि कोई ऐसा करने में सक्षम हो और उसमें आठों योग्यताएँ हों, तो उसे उस पद पर नियुक्त किया जाए और कहा जाए: "अमुक भिक्षु को भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए नियुक्त किया जाता है। भिक्षुणी संघ उनके पास आए।"

यदि कोई ऐसा करने में सक्षम न हो, तो पतिमोक्खा का पाठ करने वाला यह कहे: "भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए कोई भिक्षु नियुक्त नहीं है। भिक्षुणी संघ शांतिपूर्वक अपनी मनोकामना पूरी करे।"

5. उस समय भिक्षुओं ने उपदेश देने का पद स्वीकार नहीं किया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, इस उपदेश को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। जो कोई इसे स्वीकार नहीं करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षु मूर्ख था। भिक्षुणियाँ उसके पास गईं और बोलीं: 'हे प्रभु, कृपया उपदेश देने का कर्तव्य स्वीकार करें।'

'बहन, मैं मूर्ख हूँ। मैं इस उपदेश को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?'

'आपको इसे स्वीकार करना चाहिए, महोदय; क्योंकि भगवान बुद्ध ने यही कहा है: "भिक्षुओं को भिक्षुणियों को उपदेश देने का कर्तव्य निभाना चाहिए।"'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मूर्खों को छोड़कर बाकी सभी को मैं उपदेश स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।'

[एक बीमार भिक्षु और यात्रा पर निकले भिक्षु का यही मामला दोहराया गया। जंगल में रहने वाले भिक्षु का भी यही मामला है। निर्णय यह है कि,]

'हे भिक्षुओं, मैं जंगल में रहने वाले भिक्षु को उपदेश स्वीकार करने और बैठक के लिए समय और स्थान निर्धारित करने की अनुमति देता हूँ, यह कहते हुए: "मैं वहाँ इसे संपन्न करूँगा।"'

उस समय भिक्षुओं ने उपदेश स्वीकार तो कर लिया, लेकिन उसका पालन नहीं किया। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, इस उपदेश की उपेक्षा न करें। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुणियां निर्धारित स्थान पर उपस्थित नहीं थीं। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को निर्धारित स्थान पर उपस्थित होने में चूक नहीं करनी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (10.8) | अगला (10.10) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.10
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.9) | अगला (10.11) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-10.

1. उस समय भिक्षुणियाँ लंबी कमरबंद पहनती थीं और उसमें से झालरें निकालती थीं। लोग बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और शिकायत करने लगे, कहने लगे, 'ये तो वैसी ही हैं जैसी संसार के सुखों में लिप्त रहने वाली स्त्रियाँ करती हैं!'

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को लंबी कमरबंद नहीं पहननी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणी को ऐसी कमरबंद पहनने की अनुमति देता हूँ जो शरीर के चारों ओर एक बार लपेटी जा सके, और उसमें झालर नहीं लगानी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुणियाँ बाँस के रेशे, चमड़े, सफेद सूती कपड़े, बुने हुए सूती कपड़े, झालरदार सूती कपड़े, सफेद बुने हुए या झालरदार कोला कपड़े, या धागे से बनी झालरों में झालरें सजाती थीं। लोग बड़बड़ाते, नाराज़ होते और शिकायत करते हुए कहते, 'जैसे संसार के सुखों का आनंद लेने वाली स्त्रियाँ करती हैं!'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को इनमें से कोई भी वस्तु धारण नहीं करनी चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

2. उस समय भिक्षुणियाँ बैल की हड्डी से अपनी पीठ रगड़वाती थीं, या बैल के जबड़े की हड्डी से थप्पड़ खाती थीं; और अपनी भुजाओं को भी रगड़वाती थीं।

और उनके हाथों के पिछले हिस्से, पिंडलियों, पैरों के ऊपरी भाग, जांघों, चेहरों और मसूड़ों पर ज़ोर से थप्पड़ मारे गए। लोग बड़बड़ाए, नाराज़ हुए और शिकायत करते हुए बोले, 'जैसे वे औरतें करती हैं जो अभी भी दुनिया के सुखों का आनंद ले रही हैं!'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को इनमें से कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

3. उस समय छब्बागिया भिक्षुणियाँ [आदि, नीचे तक]

हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को अपने चेहरे पर तेल नहीं लगाना चाहिए, न ही मलहम लगाना चाहिए, न ही चूर्ण लगाना चाहिए, न ही लाल आर्सेनिक लगाना चाहिए, न ही शरीर पर रंग लगाना चाहिए, न ही चेहरे पर रंग लगाना चाहिए, न ही शरीर और चेहरे दोनों पर रंग लगाना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।

4. [इसी तरह का पैराग्राफ समाप्त करते हुए,]

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को अपनी आँखों के कोनों पर या अपने गालों पर टैटू नहीं बनवाने चाहिए, न ही खिड़की से बाहर झाँकना चाहिए, न ही (आधे खुले दरवाजे की) रोशनी में खड़ा होना चाहिए, न ही नृत्य करवाना चाहिए, न ही वेश्याओं को रखना चाहिए, न ही शराबखाना चलाना चाहिए, न ही कसाईखाना चलाना चाहिए, न ही दुकान खोलनी चाहिए, न ही सूदखोरी करनी चाहिए, न ही पुरुष दासों या स्त्री दासों या पुरुष नौकरों या महिला नौकरानियों या जानवरों की आपूर्ति करनी चाहिए, न ही फूलवाले और बीजवाले का व्यवसाय करना चाहिए, न ही उस्तरे का डिब्बा लेकर चलना चाहिए।'

[इसी तरह का पैराग्राफ समाप्त करते हुए,]

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को नीले, हल्के पीले, गहरे लाल, काले, भूरे-पीले या गहरे पीले रंग के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए, न ही ऐसे वस्त्र पहनने चाहिए जिनकी स्कर्ट फटे हुए कपड़ों से न बनी हो, या लंबी हो, या जिस पर फूल या नाग का फन बना हो; न ही तिरितक पौधे के रेशों से बनी जैकेट या पोशाक पहननी चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (10.9) | अगला (10.11) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.11-10.15
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.10) | अगला (10.12) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-11.

1. उस समय एक भिक्षुणी अपनी मृत्युशय्या पर पड़ी हुई थी, उसने कहा, 'मेरे जाने के बाद, मेरी आवश्यक वस्तुएँ संघ की हो जाएँ।' तब भिक्षुओं और भिक्षुणियों में इस बात को लेकर विवाद हुआ, और वे कहने लगे, 'यह हमारा है; यह हमारा है।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षुणी या भिक्षु बनने का प्रशिक्षण ले रही कोई नवोदित भिक्षुणी (सिक्खमान) अपनी मृत्यु शैय्या पर लेटी हुई कहे, "मेरे जाने के बाद मेरी आवश्यक वस्तुएँ संघ की हो जाएँ," तो वे भिक्षुणी संघ की ही होंगी; भिक्षु संघ उनका स्वामी नहीं है। हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु या भिक्षु बनने का प्रशिक्षण ले रहा कोई नवोदित भिक्षु (सामनेर) अपनी मृत्यु शैय्या पर लेटा हुआ कहे, "मेरे जाने के बाद मेरी आवश्यक वस्तुएँ संघ की हो जाएँ," तो वे भिक्षु संघ की ही होंगी; भिक्षुणी संघ उनका स्वामी नहीं है।

अध्याय-12.

1. उस समय मल्ल वंश की एक स्त्री भिक्षुणी संघ में प्रवेश कर चुकी थी। उसने सड़क पर एक दुर्बल भिक्षु को देखकर अपने कंधे से उस पर प्रहार किया और उसे गिरा दिया। भिक्षु आपस में बड़बड़ाने लगे, क्रोधित हुए और शिकायत करते हुए बोले, 'एक भिक्षुणी किसी भिक्षु पर हमला कैसे कर सकती है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को किसी पर हमला नहीं करना चाहिए।

भिक्षु। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। मैं यह नियम बनाता हूँ कि, हे भिक्षुओं, एक भिक्षुणी किसी भिक्षु को देखकर दूर रहते हुए ही एक तरफ हट जाए और उसके लिए रास्ता बना दे।

अध्याय-13.

1. उस समय एक स्त्री अपने पति के यात्रा पर जाने के दौरान अपने प्रेमी से गर्भवती हो गई। उसका प्रसव समय से पहले हो गया, और उसने अपनी एक सहेली भिक्षुणी से गर्भ को अपने पात्र में ले जाने का अनुरोध किया। उस भिक्षुणी ने गर्भ को उसके पात्र में रखा और उसे अपने ऊपरी वस्त्र से ढककर चली गई।

उस समय एक भिक्षु, जो भिक्षायात्रा पर था, ने व्रत रखा था कि उसे जो पहला भोजन दिया जाएगा, वह उसे तब तक ग्रहण नहीं करेगा जब तक कि वह उसे किसी भिक्षु या भिक्षुणी को न दे दे। भिक्षुणी को देखकर उस भिक्षु ने कहा, 'आओ, बहन! थोड़ा भोजन कर लो।'

'नहीं, धन्यवाद महोदय।'

[भिक्षु ने दूसरी और तीसरी बार भी वही निवेदन किया और उन्हें वही उत्तर मिला। तब उन्होंने कहा,]

'बहन! मैंने प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो पहला भोजन दिया जाएगा, मैं उसे तब तक स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा जब तक कि मैं उसे किसी भिक्षु या भिक्षुणी को दान न कर दूँ। आओ, बहन! भोजन ग्रहण करो।'

तब भिक्षुणी ने भिक्षु के अत्यधिक आग्रह से अपना कुंड निकालकर उसमें रखी वस्तुएँ उसे दिखाईं। भिक्षु क्रोधित और नाराज़ होकर बोला, 'तुम ऐसा कैसे कर सकती हो?' उसने अन्य भिक्षुओं को यह बात बताई, वे भी क्रोधित हुए, इत्यादि, और उन्होंने भगवान बुद्ध को भी सूचित किया।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को अपने प्याले में भ्रूण ले जाना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणी को किसी भिक्षु को देखकर अपना प्याला निकालकर उसे दिखाने की अनुमति देता हूँ।'

अध्याय-14.

निम्नलिखित संक्षिप्त अंश का आधुनिक अंग्रेजी में अनुवाद करना शायद ही संभव हो।

अध्याय-15.

1. उस समय लोग भिक्षुओं को भोजन देते थे और भिक्षु भिक्षुणियों को भोजन देते थे। लोग बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और शिकायत करने लगे, "ये आदरणीय लोग दूसरों को वह चीज़ कैसे दे सकते हैं जो उन्हें दी गई थी—जैसे कि हमें दान देना नहीं आता?"

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षु को वह वस्तु दूसरों को नहीं देनी चाहिए जो स्वयं उनके लिए दी गई हो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं को कुछ भोजन प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, इसे संघ को देने की।'

उनके कब्जे में बहुत कुछ आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम वह सब कुछ दान कर दो जो विशेष व्यक्तियों को दिया गया था (और वह सब कुछ अपने पास रखो जो संपूर्ण संघ के अधिकार में आया था)।'

उस समय भिक्षुओं के लिए संचित भोजन उनके अधिकार में आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं भिक्षुणियों को संचित भोजन का आनंद लेने की अनुमति देता हूँ, जिसे भिक्षुओं द्वारा उन्हें सौंप दिए जाने के बाद ही ग्रहण किया जाता है।'

2. [यही दोहराया गया है, भिक्खु के स्थान पर भिक्खुनी और इसके विपरीत।]

<<<< पिछला (10.10) | अगला (10.12) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.12
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.11) | अगला (10.13) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-12: भिक्षुणी को भिक्षु पर हमला नहीं करना चाहिए

1. उस समय मल्ल वंश की एक स्त्री भिक्षुणी संघ में प्रवेश कर चुकी थी। उसने सड़क पर एक दुर्बल भिक्षु को देखकर अपने कंधे से उस पर प्रहार किया और उसे गिरा दिया। भिक्षु आपस में बड़बड़ाने लगे, क्रोधित हुए और शिकायत करते हुए बोले, 'एक भिक्षुणी किसी भिक्षु पर हमला कैसे कर सकती है?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को किसी भिक्षु पर आक्रमण नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। मैं यह नियम बनाता हूँ कि हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु को देखकर भिक्षुणी को कुछ दूरी पर ही एक तरफ हट जाना चाहिए और उसके लिए रास्ता बना देना चाहिए।'

<<<< पिछला (10.11) | अगला (10.13) >>>>

टिपिटका >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> तीसरा खन्धक >> 10.13
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.12) | अगला (10.14) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-13: एक नन द्वारा महिला के भ्रूण को गर्भ में धारण करना अस्वीकृत

1. उस समय एक स्त्री अपने पति के यात्रा पर जाने के दौरान अपने प्रेमी से गर्भवती हो गई। उसका प्रसव समय से पहले हो गया, और उसने अपनी एक सहेली भिक्षुणी से गर्भ को अपने पात्र में ले जाने का अनुरोध किया। उस भिक्षुणी ने गर्भ को उसके पात्र में रखा और उसे अपने ऊपरी वस्त्र से ढककर चली गई।

उस समय एक भिक्षु, जो भिक्षायात्रा पर था, ने व्रत रखा था कि उसे जो पहला भोजन दिया जाएगा, वह उसे तब तक ग्रहण नहीं करेगा जब तक कि वह उसे किसी भिक्षु या भिक्षुणी को न दे दे। भिक्षुणी को देखकर उस भिक्षु ने कहा, 'आओ, बहन! थोड़ा भोजन कर लो।'

'नहीं, धन्यवाद महोदय।'

[भिक्षु ने दूसरी और तीसरी बार भी वही निवेदन किया और उन्हें वही उत्तर मिला। तब उन्होंने कहा,]

'बहन! मैंने प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो पहला भोजन दिया जाएगा, मैं उसे तब तक स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा जब तक कि मैं उसे किसी भिक्षु या भिक्षुणी को दान न कर दूँ। आओ, बहन! भोजन ग्रहण करो।'

तब भिक्षुणी ने भिक्षु के अत्यधिक आग्रह से अपना कुंड निकालकर उसमें रखी वस्तुएँ उसे दिखाईं। भिक्षु क्रोधित और नाराज़ होकर बोला, 'तुम ऐसा कैसे कर सकती हो?' उसने अन्य भिक्षुओं को यह बात बताई, वे भी क्रोधित हुए, इत्यादि, और उन्होंने भगवान बुद्ध को भी सूचित किया।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को अपने प्याले में भ्रूण ले जाना उचित नहीं है। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणी को किसी भिक्षु को देखकर अपना प्याला निकालकर उसे दिखाने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (10.12) | अगला (10.14) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.14

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.13) | अगला (10.15) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-14.

निम्नलिखित संक्षिप्त अंश का आधुनिक अंग्रेजी में अनुवाद करना शायद ही संभव हो।

<<<< पिछला (10.13) | अगला (10.15) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दसवाँ खंडक >> 10.15

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.14) | अगला (10.16) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-15: भोजन का बंटवारा

1. उस समय लोग भिक्षुओं को भोजन देते थे और भिक्षु भिक्षुणियों को भोजन देते थे। लोग बड़बड़ाने लगे, नाराज़ हुए और शिकायत करने लगे, "ये आदरणीय लोग दूसरों को वह चीज़ कैसे दे सकते हैं जो उन्हें दी गई थी—जैसे कि हमें दान देना नहीं आता?"

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षु को वह वस्तु दूसरों को नहीं देनी चाहिए जो स्वयं उनके लिए दी गई हो। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कटा का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुओं को कुछ भोजन प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, इसे संघ को देने की।'

उनके कब्जे में बहुत कुछ आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम वह सब कुछ दान कर दो जो विशेष व्यक्तियों को दिया गया था (और वह सब कुछ अपने पास रखो जो संपूर्ण संघ के अधिकार में आया था)।'

उस समय भिक्षुओं के लिए संचित भोजन उनके अधिकार में आ गया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं भिक्षुणियों को संचित भोजन का आनंद लेने की अनुमति देता हूँ, जिसे भिक्षुओं द्वारा उन्हें सौंप दिए जाने के बाद ही ग्रहण किया जाता है।'

2. [यही दोहराया गया है, भिक्खु के स्थान पर भिक्खुनी और इसके विपरीत।]

<<<< पिछला (10.14) । अगला (10.16) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.16
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.15) । अगला (10.17) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-16.

1. उस समय भिक्षुओं के पास कुछ बिस्तर आ गए थे, जबकि भिक्षुणियों के पास कुछ भी नहीं था। भिक्षुणियों ने भिक्षुओं के पास एक दूत भेजा और कहा: 'यदि परम पूज्य भिक्षु हमें कुछ बिस्तर उधार दे दें तो अच्छा होगा।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें भिक्षुणियों को बिस्तर उधार देने की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय भिक्षुणियाँ अपने साधनाकाल में गद्देदार पलंगों और कुर्सियों पर बैठती या लेटती थीं, और वह गद्दा खून से सना हुआ था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को गद्देदार पलंग या कुर्सी पर बैठना या लेटना नहीं चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं घर के भीतर रहने वाले भिक्षु के वस्त्र के उपयोग की अनुमति देता हूँ।

अंदर रहने वाले व्यक्ति का वस्त्र गंदा हो गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं जांघों तक पहुंचने वाले वस्त्र (घुटने तक पहुंचने वाला वस्त्र) के उपयोग की अनुमति देता हूं।'

जांघों पर लिपटा कपड़ा नीचे सरक गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं इसे जांघ के चारों ओर बांधने के लिए धागे से बांधने की अनुमति देता हूँ।'

धागा टूट गया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं कमर पर लंगोटी और उसे ऊपर रखने के लिए कमर के चारों ओर एक डोरी बांधने की अनुमति देता हूँ।'

उस समय छब्बागीय भिक्षुणियाँ कमरबंद हमेशा पहनती थीं। लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहते थे, “ये तो उन स्त्रियों की तरह हैं जो संसार के सुखों का आनंद लेती हैं!” उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को कमरबंद निरंतर धारण करने की अनुमति नहीं है। मैं इसका उपयोग केवल उन्हीं को करने की अनुमति देता हूँ जो उनके साधना-पाठ में संलग्न हों।'

<<<< पिछला (10.15) | अगला (10.17) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> दसवाँ खन्धक >> 10.17

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.16) | अगला (10.18) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-17.

1. उस समय भिक्षुणियों में से कुछ ऐसी पाई गईं जो [ग्यारह प्रकार से विकृत थीं]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह नियम निर्धारित करता हूँ कि जिस स्त्री को उपसम्पदा दीक्षा दी जा रही हो, उससे चौबीस अपात्त्वों के विषय में प्रश्न पूछे जाएँ। और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उससे प्रश्न पूछे जाने चाहिए:

(1-11) "क्या आपमें ग्यारह विकृतियों में से कोई एक है [प्रत्येक को ऊपर बताए अनुसार दोहराया गया है]?"

(12-16) "क्या आपको निम्नलिखित में से कोई बीमारी है—कुष्ठ रोग, फोड़े, शुष्क कुष्ठ रोग, क्षय रोग, या दौरे?"

(17) "क्या तुम इंसान हो?"

(18) "क्या आप महिला हैं?"

(.19) "क्या तुम एक स्वतंत्र महिला हो?"

(20) "क्या आप ऋणों से मुक्त हैं?"

(21) "क्या तुम राजा की सेवा में नहीं हो?"

(22) "क्या आपके पिता और माता ने अपनी सहमति दे दी है?"

(23) "क्या आपकी आयु बीस वर्ष पूरी हो चुकी है?"

(24) "क्या आपको वस्त्र और भिक्षापात्र विधिवत उपलब्ध कराए गए हैं?"

"आपका क्या नाम है?"

"आपके प्रस्तावक का नाम क्या है?"

2. उस समय भिक्षुओं ने भिक्षुणियों से अपाप्यताओं के विषय में प्रश्न पूछे, और जो उपसम्पदा दीक्षा की तलाश में थीं, वे विचलित और भ्रमित हो गईं और उत्तर देने में असमर्थ रहीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम निर्धारित करता हूँ कि भिक्षु संघ में दीक्षा उस भिक्षुणी (भिक्षुणी) को दी जानी चाहिए जिसने एक ओर से भिक्षुणी संघ में दीक्षा प्राप्त कर ली हो और वहाँ स्वयं को (अयोग्यताओं से) मुक्त कर लिया हो।'

उस समय भिक्षुणियों ने उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों से अपाप्यताओं के बारे में प्रश्न पूछे, जबकि उन्हें पहले से उत्तर देने का तरीका नहीं बताया गया था। दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति व्याकुल और भ्रमित हो गए और उत्तर देने में असमर्थ रहे।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि आप पहले दीक्षा लेने वाली महिलाओं को (उत्तर देने का तरीका) सिखाएँ, और फिर उनसे अपात्रताओं के बारे में प्रश्न करें।'

फिर उन्होंने सभा के बीच में ही उम्मीदवारों को निर्देश दिए, लेकिन वे फिर भी विचलित हो गए और जवाब नहीं दे सके।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह नियम बनाता हूँ, हे भिक्षुओं, कि उन्हें अलग से उपदेश दिया जाए, और फिर सभा के बीच में उनसे प्रश्न पूछे जाएँ।'

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए:-- सर्वप्रथम उन्हें एक गुरु चुनने के लिए कहा जाना चाहिए; गुरु का चयन करने के बाद उन्हें उनके वस्त्र और भिक्षापात्र दिखाए जाने चाहिए: "यह तुम्हारा भिक्षापात्र है, यह तुम्हारी कमरबंद है, यह तुम्हारा ऊपरी वस्त्र है, यह तुम्हारा अंतर्वस्त्र है, यह तुम्हारी बनियान है, यह तुम्हारा स्नान वस्त्र है। जाओ और फलाँ स्थान पर खड़े हो जाओ।"

3. अज्ञानी और अयोग्य (भिक्खुनी) ने उन्हें उपदेश दिया, और वे विचलित, भ्रमित और उत्तर देने में असमर्थ हो गए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, इन्हें अज्ञानी और अयोग्य भिक्षुणियों द्वारा शिक्षा न दी जाए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं यह निर्देश देता हूँ कि इन्हें विद्वान और योग्य भिक्षुणियों द्वारा शिक्षा दी जाए।'

4. जिन भिक्षुणियों को (ऐसा करने के पद पर) नियुक्त नहीं किया गया था, उन्होंने उन्हें निर्देश दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, उन्हें बिना किसी को उपदेश दिए शिक्षा न दें।

उस पद पर नियुक्त होने के बाद, जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि उस पद पर नियुक्त भिक्षुणी उन्हें शिक्षा दे।

हे भिक्षुओं, इस प्रकार, उनका नियुक्ति कैसे की जानी चाहिए—कोई स्वयं को नियुक्त कर सकती है, या किसी अन्य द्वारा नियुक्त की जा सकती है। और एक भिक्षुणी स्वयं को कैसे नियुक्त कर सकती है? एक विद्वान, योग्य भिक्षुणी संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव (नत्ती) रखे: "हे संघ, आदरणीय देवियों, मेरी बात सुनिए। NN आदरणीय देवी MM से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहती है। यदि संघ को उचित लगे, तो मैं NN को दीक्षा दूंगी।" इस प्रकार एक भिक्षुणी स्वयं को नियुक्त कर सकती है।

और एक भिक्षुणी की नियुक्ति दूसरी भिक्षुणी द्वारा कैसे की जा सकती है? एक विद्वान, योग्य भिक्षुणी (भिक्षुणी) संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखे: "हे आदरणीय देवियों, संघ, मेरी बात सुनिए। मैं आदरणीय भिक्षुणी (भिक्षुणी) से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ। यदि संघ को उचित लगे, तो मैं (भिक्षुणी) मुझे निर्देश दें।" इस प्रकार एक भिक्षुणी की नियुक्ति दूसरी भिक्षुणी द्वारा की जा सकती है।

5. 'फिर नियुक्त भिक्षुणी दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति के पास जाकर उससे इस प्रकार कहे: "मेरी बात सुनो, भिक्षुणी। यह समय है सत्य बोलने का, जो है उसे बताने का। जब तुमसे संघ के समक्ष घटी घटनाओं के बारे में पूछा जाए, तो यदि वह घटित हुई हो, तो उत्तर दो: "यही है;" यदि वह घटित न हुई हो, तो उत्तर दो: "यही नहीं है।" विचलित मत हो, विचलित मत हो। मैं तुमसे इस प्रकार पूछूँगी: "क्या तुम विकृत हो (आदि, अनुच्छेद 1 में दिए गए छब्बीस प्रश्नों के अंत तक)?"'

(निर्देश समाप्त होने के बाद, प्रशिक्षक और उम्मीदवार) एक साथ सभा में लौट आए।

उन्हें एक साथ नहीं लौटना है। प्रशिक्षक पहले लौटें और संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखें: "हे आदरणीय देवियों, संघ से निवेदन है कि मेरी बात सुनें। एनएन आदरणीय महिला एमएमएम से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहती हैं; और मैंने उन्हें दीक्षा दी है। यदि संघ को उचित लगे, तो एनएन आगे आएं।" फिर उन्हें आगे आने के लिए कहा जाए। फिर उन्हें अपने ऊपरी वस्त्र को केवल एक कंधे पर समेटने, भिक्षुणियों के समक्ष प्रणाम करने, एड़ियों पर बैठने और अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर उपसंपदा दीक्षा का अनुरोध करते हुए कहने के लिए कहा जाए: "हे आदरणीय देवियों, मैं संघ से दीक्षा मांगती हूं। हे आदरणीय देवियों, संघ मुझ पर दया करके मुझे (सांसारिक जीवन से) ऊपर उठाएं।" और उन्हें यह अनुरोध दूसरी और तीसरी बार दोहराना है।

6. फिर एक विद्वान और योग्य भिक्षुणी संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखें: "हे संघ, आदरणीय देवियों, मेरी बात सुनिए। यह व्यक्ति, एनएन, एमएमएम से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहती हैं; और मैंने उन्हें निर्देश दिए हैं। यदि संघ को उचित लगे, तो मैं एनएन से अयोग्यता के विषय में प्रश्न पूछूँ। एनएन, मेरी बात ध्यान से सुनिए [पहले की तरह, प्रश्नों के अंत तक]।"

7. फिर एक विद्वान और योग्य भिक्षुणी संघ के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव रखे: "हे संघ, आदरणीय देवियों, मेरी बात सुनिए। यह व्यक्ति, एनएन, आदरणीय देवी एम.एम. से उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहता है। वह अपात्त्वों से मुक्त है और उसे भिक्षापात्र और वस्त्र प्रदान किए गए हैं। यह व्यक्ति, एनएन, संघ से उपसंपदा दीक्षा का अनुरोध करता है, आदरणीय

यदि संघ को उचित लगे तो आदरणीय महिला एमएम एनएन को उनकी प्रस्तावक के रूप में स्वीकार किया जाए। यही प्रस्ताव है।

"हे आदरणीय देवियों, संघ के सभी सदस्यों से निवेदन है कि मेरी बात सुनें। एनएन उपसंपदा ग्रहण करना चाहती हैं, और एम.एम. उनकी प्रस्तावक हैं। संघ एनएन को उपसंपदा प्रदान करता है, और एम.एम. उनकी प्रस्तावक हैं। आदरणीय देवियों में से जो भी इससे सहमत हों, वे मौन रहें; जो असहमत हों, वे बोलें। मैं यही बात दोबारा कहता हूँ।" [इस पूरे अनुच्छेद को दोहराया गया है।] और मैं यही बात तीसरी बार दोहराता हूँ। [अनुच्छेद दोहराया गया है।]

संघ ने उपसंपदा एनएन को प्रदान की है, और एमएमएम उनकी प्रस्तावक हैं। संघ इससे सहमत है। इसलिए संघ मौन है। मैं यही समझता हूँ।

8. फिर, उसे भिक्षु संघ के समक्ष ले जाया जाए और वहाँ उसे अपने वस्त्र को केवल एक कंधे पर रखने, भिक्षुओं के समक्ष प्रणाम करने और एड़ियों पर बैठकर, अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर यह कहने को कहा जाए: "हे महोदय, एनएन, जो एमएमएम से उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखती थी और संघ के एक पक्ष (भिक्षुओं से) से इसे प्राप्त कर चुकी हूँ और वहाँ (अयोग्यताओं से) मुक्त घोषित की गई हूँ, मैं इस प्रकार संघ से उपसम्पदा की प्रार्थना करती हूँ।" [शेष प्रक्रिया भिक्षुणी संघ के समक्ष की ही है।] "हे आदरणीय महोदय, संघ मुझ पर दया करके मुझे (सांसारिक जीवन से) ऊपर उठाएँ।" और दूसरी बार मैं इस प्रकार प्रार्थना करती हूँ [आदि, दोहराया गया]। और तीसरी बार मैं इस प्रकार प्रार्थना करती हूँ [वही दोहराया गया]।

[बाकी की कार्यवाही पिछले खंड 6 और 7 के समान ही है, बस 'भिक्खुनी' के स्थान पर 'भिक्खु' और 'आदरणीय देवियों' के स्थान पर 'आदरणीय महोदय' का प्रयोग किया गया है।]

फिर, भिक्षुओं को छाया नापने को कहें, (नई दीक्षित भिक्षुणी को) बताएं कि कौन सा मौसम है और कौन सी तिथि है, दिन का कौन सा समय है, पूरा नियम बताएं, और भिक्षुणियों से कहें: "तुम्हें उसे तीन अनुमत और आठ निषिद्ध बातें सिखानी हैं।"

<<<< पिछला (10.16) | अगला (10.18) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.18
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.17) | अगला (10.19) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-18.

उस समय भिक्षुणियां भोजन कक्ष में समय बर्बाद कर रही थीं, इस बात को लेकर दुविधा में थीं कि किसे कौन सी सीट पर बैठना चाहिए।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बनाता हूँ कि शीर्ष आठ भिक्षुणियाँ वरिष्ठता के अनुसार अपने-अपने स्थान ग्रहण करें, और शेष भिक्षुणियाँ जैसे-जैसे आती रहें, वैसे-वैसे ग्रहण करें।'

उस समय भिक्षुणियों ने, भगवान बुद्ध के आदेशानुसार, अन्य सभी स्थानों पर आठ वरिष्ठ भिक्षुणियों को कार्यभार संभालने के लिए कहा।

पहली आठ सीटों पर विशेष अधिकार था, और बाकी सीटें आने-जाने वालों ने खुद ही व्यवस्थित कर लीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं ऊपर बताए गए नियम को केवल भोजन कक्ष के लिए ही लागू करता हूँ। अन्य सभी स्थानों पर वरिष्ठता के आधार पर सीटों पर कोई अनन्य अधिकार नहीं होना चाहिए।'

<<<< पिछला (10.17) | अगला (10.19) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.19

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.18) | अगला (10.20) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-19.

1. उस समय भिक्षुणियाँ पवाराना नहीं करती थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को पवाराना धारण करना नहीं छोड़ना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

उस समय भिक्षुणियां स्वयं ही पवाराना करती थीं, न कि भिक्षु संघ में।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को पवारना को अलग नहीं रखना चाहिए, और न ही भिक्षु संघ में शामिल होना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

उस समय, भिक्षुणियों ने, जो केवल भिक्षुओं के साथ ही पवाराना कर रही थीं और स्वयं अलग से नहीं, भिक्षु संघ की सभा में खलल डाला।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को केवल भिक्षु संघ के साथ ही पवाराना नहीं चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कत का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुणियां अपना सारा समय व्यतीत करती थीं।

दोपहर से पहले पवाराना को पकड़े रहने के कारण [और इसलिए सुबह के भोजन के लिए समय नहीं बचा था]।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं यह नियम बताता हूँ कि वे दोपहर में पवाराना करें।'

दोपहर में पवाराना आयोजित करते समय, उनके पास [उस दिन अपना स्वयं का समारोह समाप्त करने और भिक्षुओं के समारोह में भाग लेने के लिए] पर्याप्त समय नहीं था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं उन्हें एक दिन अपना पवाराना करने की अनुमति देता हूँ, और अगले दिन वह पवाराना अन्य भिक्षुओं के साथ कर सकते हैं।'

2. उस समय, भिक्खुनी संघ की सभी सदस्यों ने, प्रत्येक ने स्वयं-अपने लिए, भिक्खुनी संघ के समक्ष अपना पवाराना घोषित करके (कार्यवाही) में बाधा उत्पन्न की।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं यह विधान करता हूँ कि भिक्षु संघ की ओर से किसी विद्वान और योग्य भिक्षुणी को भिक्षु संघ के समक्ष पवाराना निमंत्रण देने के लिए नियुक्त किया जाए। हे भिक्षुओं, इस प्रकार उसे नियुक्त किया जाना चाहिए:

सर्वप्रथम, भिक्षुणी से पूछा जाना चाहिए (कि क्या वह सेवा करने के लिए इच्छुक हैं)। जब यह हो जाए, तो एक विद्वान और विवेकशील भिक्षुणी संघ के समक्ष यह प्रस्ताव रखे: हे आदरणीय देवियों, संघ, मेरी बात सुनिए। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ भिक्षुणी संघ की ओर से भिक्षु संघ के समक्ष पवाराना निमंत्रण देने के लिए NN को नियुक्त करे। यही प्रस्ताव है।

"हे आदरणीय देवियों, संघ मेरी बात सुनिए। संघ भिक्षुणी संघ की ओर से भिक्षु संघ के समक्ष पवाराना निमंत्रण देने के लिए एनएन को नियुक्त करता है। आदरणीय देवियों में से जो भी मेरी बात सुनना चाहे, कृपया मेरी प्रार्थना सुनें।

जो लोग इससे सहमत हैं, उन्हें चुप रहना चाहिए। जो लोग इससे असहमत हैं, उन्हें बोलने की छूट है।

"एनएन को संघ द्वारा भिक्षुणी संघ की ओर से भिक्षु संघ के समक्ष पवाराना निमंत्रण देने के लिए नियुक्त किया गया है। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए यह मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

3. 'जब उस भिक्षुणी को नियुक्त किया जाता है, तो वह भिक्षुणी संघ के साथ भिक्षु संघ के सामने जाती है, अपने वस्त्र को एक कंधे पर रखती है, भिक्षुओं के सामने प्रणाम करती है, और अपनी एड़ियों पर बैठकर अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर कहती है: "भिक्खुनी संघ भिक्षु संघ को आमंत्रित करता है (कि वे उन्हें उनके द्वारा किए गए किसी भी दोष को बताएं) जो उन्होंने सुना हो, देखा हो या संदेह किया हो। भिक्षु संघ भिक्षुणी संघ से करुणापूर्वक बात करें (यदि उन्होंने किसी बात में अपराध किया हो)। तब वे, यदि वे अपराध को पहचान लें, तो उसे स्वीकार करेंगे। और दूसरी बार भिक्षुणी संघ... [पूरी बात दोहराई जाती है]। और तीसरी बार... [पूरी बात दोहराई जाती है]।"

<<<< पिछला (10.18) | अगला (10.20) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.20
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.19) | अगला (10.21) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-20.

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओं को उपोसथ, पवारना या उपदेश देने से रोकती थीं, या उन्हें आदेश जारी करती थीं, या उनसे उन्हें फटकारने की अनुमति मांगती थीं, या उन्हें किसी ऐसे अपराध के बारे में चेतावनी देती थीं जो उन्हें लगता था कि वे कर रहे हैं, या उनसे यह याद करने के लिए कहती थीं कि उन्होंने कोई अपराध किया है या नहीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को किसी भिक्षु के प्रति इनमें से कोई भी औपचारिक कार्य नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करती है, तो वह कार्य स्वयं ही अमान्य हो जाता है, और वह दुक्कता की दोषी होती है।'

उस समय भिक्षुओं ने भिक्षुणियों को रोका [और इसी तरह, पहले की तरह, विपरीत निर्णय देते हुए]।

<<<< पिछला (10.19) | अगला (10.21) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.21
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.20) | अगला (10.22) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-21.

उस समय छब्बागिया भिक्षुणियों ने स्वयं ऐसे वाहनों में यात्रा की जिनमें गायों के बीच बैल जुते हुए थे, या बैलों के बीच गाय जुते हुए थे। लोग नाराज़ हुए, बड़बड़ाए और आक्रोशित होकर कहने लगे, 'यह तो गंगा और माली के पर्वों में किया जाता है।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को वाहन में नहीं ले जाना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।'

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी और पैदल चलने में असमर्थ थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं एक बीमार (भिक्षुणी) को रथ का उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।'

अब भिक्षुणियों ने सोचा, 'क्या गाड़ियों को गायों से जोता जाए या बैलों से?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं गायों या बैलों से जुती हुई गाड़ी या हाथ से खींची जाने वाली गाड़ी की अनुमति देता हूँ।'

उस समय एक भिक्षुणी गाड़ी के हिलने-डुलने से बहुत परेशान थी।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं पालकी या पालकी के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (10.20) | अगला (10.22) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.22
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.21) | अगला (10.23) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-22.

1. उस समय अद्धकसी नाम की एक वेश्या ने भिक्षुणियों के मार्गदर्शन में धम्म जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया था और वह स्वयं भगवान बुद्ध से संघ की पूर्ण सदस्य बनने (उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करने) के लिए सावत्थी जाना चाहती थी। इस बात का बोध त्यागे हुए भिक्षुओं ने किया और वे मार्ग में जमा हो गए। जब अद्धकसी नामक वेश्या ने यह सुना, तो उसने भगवान बुद्ध के पास एक दूत भेजा और कहा, 'मैं उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ: मुझे क्या मार्ग अपनाना चाहिए?'

तब भगवान बुद्ध ने इस संदर्भ में धर्म प्रवचन देने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें दूत के माध्यम से भी (भिक्षुओं को) उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करने की अनुमति देता हूँ।'

2. उन्होंने एक भिक्षु को दूत बनाकर यह कार्य संपन्न कराया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, किसी भिक्षुणी को उपसम्पदा दीक्षा देने के लिए किसी भिक्षु को दूत बनाकर भेजना उचित नहीं है। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उन्होंने एक महिला छात्रा, एक पुरुष नौसिखिया, एक महिला नौसिखिया और एक अज्ञानी, अयोग्य भिक्षुणी को दूत बनाकर यह उपाधि प्रदान की।

[प्रत्येक मामले में समान निर्णय।]

'हे भिक्षुओं, मैं आपको एक विद्वान, योग्य भिक्षुणी को दूत के रूप में भेजकर उपसम्पदा दीक्षा प्रदान करने की अनुमति देता हूँ।'

3. वह भिक्षुणी दूत संघ के आगे जाकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर रखकर संघ के समक्ष प्रणाम करे, और एड़ियों पर बैठकर अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर कहे, "एन.एन., जो महिला एम.एम. (अपनी प्रस्तावक) से उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त करने की इच्छुक थीं, उन्होंने एक ओर भिक्षुणी संघ से दीक्षा प्राप्त कर ली है और वहाँ उन्हें (अपराधियों से) मुक्त घोषित किया गया है। परन्तु किसी कारणवश वे संघ के समक्ष (अपनी दीक्षा की पुष्टि कराने के लिए) उपस्थित नहीं हो पा रही हैं। एन.एन. संघ से दीक्षा का अनुरोध करती हैं। संघ उन पर दया करके उन्हें (सांसारिक जीवन से) ऊपर उठाए।" [तीन बार कहना है।]

तो फिर एक विद्वान, योग्य भिक्षु संघ के समक्ष यह प्रस्ताव रखें। "हे आदरणीय महोदय, संघ से निवेदन है कि NN, जो कि . . . . . [पहले की तरह तथ्य का विवरण] इच्छुक रही हैं, यदि संघ को उचित लगे तो NN को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करें, MM उनकी प्रस्तावक हैं। यही प्रस्ताव है।"

"हे आदरणीय महोदय, संघ मेरी बात सुनिए। एनएन, ... [पहले की तरह तथ्य का कथन]। संघ इसके द्वारा एनएन को उपसंपदा दीक्षा प्रदान करता है, एम.एम. उनके प्रस्तावक हैं। आदरणीय महोदयों में से जो भी इसे स्वीकार करते हैं, वे मौन रहें। जो भी इसे स्वीकार नहीं करते, वे बोलें। और मैं दूसरी बार यही बात कहता हूँ। एनएन, ... (आदि, नीचे तक) वे बोलें। और मैं तीसरी बार यही बात कहता हूँ। एनएन, ... (आदि, नीचे तक) वे बोलें।"

"संघ ने इसके द्वारा एनएन को उपसंपदा दीक्षा प्रदान की है, एम.एम. उनकी प्रस्तावक हैं। संघ इसे स्वीकार करता है। इसलिए इस पर मौन है। मैं यही समझता हूँ।"

फिर, भिक्षुओं को छाया नापने को कहें, (संदेशवाहक को बताएं ताकि वह नवदीक्षित भिक्षुणी को बता सके) कि कौन सा मौसम और कौन सी तिथि है, दिन का कौन सा भाग है, पूरा नियम बताएं; और भिक्षुणियों को कहें कि वे उसे तीन अनुमत और आठ निषिद्ध बातों का ज्ञान कराएं।

<<<< पिछला (10.21) | अगला (10.23) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.23

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.22) | अगला (10.24) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-23.

उस समय भिक्षुणियां वन में निवास करती थीं, और व्यभिचारी पुरुषों द्वारा उनका यौन शोषण किया जाता था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को वनवास नहीं अपनाना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

<<<< पिछला (10.22) | अगला (10.24) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.24

टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.23) | अगला (10.25) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-24.

1. उस समय एक गृहस्थ शिष्य ने भिक्षुणी संघ को रहने के लिए एक नौकरों का घर दान में दिया था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं अस्तबल के उपयोग की अनुमति देता हूँ।'

इससे उनकी इच्छाएं पूरी नहीं हुईं। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों के लिए एक अलग निवास की अनुमति देता हूँ।'

इससे उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों के लाभ के लिए भवन निर्माण कार्यों को जारी रखने की अनुमति देता हूँ।'

इससे उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को संघ के अलग-अलग सदस्यों के लिए रहने के लिए कुछ स्थान आवंटित करने की अनुमति देता हूँ।'

<<<< पिछला (10.23) | अगला (10.25) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.25
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.24) | अगला (10.26) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-25.

1. उस समय एक स्त्री, जो पहले से ही गर्भवती थी, लेकिन उसे इस बात का पता नहीं था, भिक्षुणियों के बीच संघ में शामिल हो गई। बाद में उसके गर्भ में हलचल हुई। तब उस भिक्षुणी ने सोचा: 'अब मैं इस बच्चे के प्रति कैसा व्यवहार करूँ?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं उसे अनुमति देता हूँ, हे भिक्षुओं, कि वह इसे तब तक पाले जब तक यह विवेकशील आयु प्राप्त न कर ले।'

तब भिक्षुणी ने सोचा: 'मेरे लिए अकेले रहना उचित नहीं है, और न ही किसी अन्य भिक्षुणी के लिए किसी पुरुष बच्चे के साथ रहना उचित है। मुझे क्या मार्ग अपनाना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को यह अनुमति देता हूँ कि वे किसी भी भिक्षुणी को नियुक्त करें और उसे उस (प्रथम उल्लेखित) भिक्षुणी की सहेली के रूप में दें।'

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उसकी नियुक्ति इस प्रकार की जानी चाहिए: सर्वप्रथम उस भिक्षुणी से पूछा जाना चाहिए (कि क्या वह इस कर्तव्य को निभाने के लिए इच्छुक है)। पूछे जाने के बाद, एक विद्वान और योग्य भिक्षुणी को संघ के समक्ष यह प्रस्ताव रखना चाहिए, और कहना चाहिए:

"हे आदरणीय देवियों, संघ मेरी बात सुनिए। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ एनएन को एमएमएम के सहचर के रूप में नियुक्त करे। यही प्रस्ताव है।"

"संघ को आगे बढ़ने दो," [और इसी प्रकार, हमेशा की तरह, कम्मवक के अंत तक।]

2. तब उस सहचरी भिक्षुणी ने सोचा: 'अब मुझे इस बच्चे के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं यह निर्देश देता हूँ कि हे भिक्षुओं, भिक्षुणियाँ उस बच्चे के साथ ठीक उसी प्रकार व्यवहार करें जैसे वे अन्य पुरुषों के साथ करती हैं, सिवाय इसके कि वे एक ही छत के नीचे नहीं सोतीं।'

3. उस समय एक भिक्षुणी, जिसने एक गंभीर अपराध किया था, मनत्ता तपस्या कर रही थी। तब उस भिक्षुणी ने सोचा, 'मेरे लिए अकेले रहना उचित नहीं है, और किसी अन्य भिक्षुणी का मेरे साथ रहना भी उचित नहीं है। अब मुझे क्या करना चाहिए?'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को यह अनुमति देता हूँ कि वे किसी भी भिक्षुणी को नियुक्त करें और उसे उस भिक्षुणी की सहेली बनाएँ। और इस प्रकार, हे भिक्षुओं,

उसे प्रतिनियुक्त किया जाना है [आदि, जैसा कि पिछले खंड से पहले वाले खंड में कम्मावक के अंत तक बताया गया है]।

<<<< पिछला (10.24) | अगला (10.26) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.26
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (10.25) | अगला (10.27) >>>>

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-26.

1. उस समय एक भिक्षुणी ने पहले नियमों का त्याग किया और फिर वस्त्र उतार फेंके। बाद में वह वापस लौटी और भिक्षुणियों से उसे पुनः संघ में शामिल करने का अनुरोध किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को नियमों का त्याग नहीं करना चाहिए। परन्तु वस्त्र त्याग देने से वह स्वतः ही भिक्षुणी होने के योग्य नहीं रह जाती।'

2. उस समय एक भिक्षुणी, यद्यपि वह अब भी नारंगी रंग का वस्त्र धारण किए हुए थी, तित्तिया संप्रदाय में शामिल हो गई। बाद में वह वापस आई और भिक्षुणियों से उसे पुनः संघ में शामिल करने का अनुरोध किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, जो भिक्षुणी नारंगी रंग का वस्त्र पहने हुए ही तित्तियों के पास चली जाती है, उसे पुनः स्वीकार नहीं किया जाता।'

<<<< पिछला (10.25) | अगला (10.27) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> दसवां खंडका >> 10.27
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

चुलवग्गा (लघु खंड)

दसवां खण्डका (भिक्खुनियों/भिक्षुणियों के कर्तव्यों पर)

अध्याय-27.

1. उस समय भिक्षुणियाँ, किसी को नाराज करने के डर से, पुरुषों को उन्हें प्रणाम करने, उनके बाल या नाखून काटने, या उनके घावों पर पट्टी बांधने नहीं देती थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'मैं उन्हें, हे भिक्षुओं, उन चीजों की अनुमति देता हूँ।'

2. उस समय भिक्षुणियाँ, जब दीवान पर बैठी होती थीं, तो वे (उस पर बैठे अन्य लोगों को) अपनी एड़ियों से उन्हें छूने की अनुमति देती थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को दीवान पर नहीं बैठना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी, और दीवान का उपयोग किए बिना उसे चैन नहीं मिल रहा था।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, मैं भिक्षुणियों को आधा दीवान इस्तेमाल करने की अनुमति देता हूँ।'

3. [शौचालयों के निर्माण संबंधी नियम।]

4. उस समय भिक्षुणियां स्नान करते समय चूने का प्रयोग करती थीं।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए कहने लगे, 'जैसा कि दुनिया भर की औरतें करती हैं!'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को स्नान करते समय चूने का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं मिट्टी और चावल के छिलकों के लाल चूर्ण के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

[इसी तरह का पैराग्राफ, अंत]

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को स्नान के समय सुगंधित मिट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा। हे भिक्षुओं, मैं साधारण मिट्टी के प्रयोग की अनुमति देता हूँ।'

उस समय भाप स्नान कक्ष में एक साथ स्नान कर रही भिक्षुणियों ने हंगामा मचा दिया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणियों को भाप स्नान नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय धारा के विपरीत दिशा में स्नान करने वाली भिक्षुणियां पानी के तेज बहाव को अपने ऊपर पड़ने देती थीं।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को धारा के विपरीत स्नान नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुणियां एक ऐसे स्थान पर स्नान करती थीं जो सामान्य स्नान स्थल नहीं था, और व्यभिचारी पुरुषों ने उनका यौन उत्पीड़न किया।

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को सामान्य स्नानस्थान के अलावा किसी अन्य स्थान पर स्नान नहीं करना चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, वह दुक्कता का दोषी होगा।'

उस समय भिक्षुणियां पुरुषों द्वारा उपयोग किए जाने वाले स्नानागार में स्नान करती थीं। लोग बड़बड़ाते, नाराज होते और शिकायत करते हुए कहते, 'जैसे वे स्त्रियां करती हैं जो अभी भी संसार के सुखों में लिप्त हैं।'

उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई।

'हे भिक्षुओं, भिक्षुणी को ऐसे स्नानस्थान में स्नान नहीं करना चाहिए जहाँ पुरुष भी स्नान करते हों। ऐसा करने वाला कोई भी व्यक्ति दुक्कत का दोषी होगा। हे भिक्षुणियों, मैं महिलाओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले स्नानस्थान में स्नान करने की अनुमति देता हूँ।'

पाठ के तीसरे भाग का समापन।

=========
दसवें खंडका, भिक्खुनी-खंडका का अंत।

<<<< पिछला(10.26) | अगला(11.1) >>>>

ग्यारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद राजगृह परिषद)
(राजगृह परिषद पर)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खन्धक >> चुलवग्गा >> ग्यारहवाँ खंडक >> 11.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(10.27) | अगला(12.1) >>>>

चुलवग्गा (लघु भाग)

ग्यारहवाँ खंडका (राजगृह परिषद पर)

अध्याय 1।

1. अब पूज्य महा कस्सपा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'एक बार मैं लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ पावा से कुसिनारा जाने वाले मार्ग पर यात्रा कर रहा था। और मैंने मुख्य मार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

ठीक उसी समय कुसिनारा में मंदारवा का फूल लेकर एक नग्न तपस्वी (जीवक) पावा की ओर जाने वाले रास्ते पर आ रहा था। मैंने उसे दूर से आते देखा और देखते ही उससे कहा:

"ओह, मित्र! तुम हमारे गुरु को अवश्य जानते हो?"

"हाँ, मित्र, मैं उसे जानता हूँ। आज समना गौतम (बुद्ध) के निधन को एक सप्ताह हो गया है। इसी कारण मुझे यह मंदारवा फूल प्राप्त हुआ।"

'तो, हे सज्जनों, उन भिक्षुओं में से जो अभी तक अपनी वासनाओं से मुक्त नहीं हुए थे, उनमें से कुछ ने अपने पैर फैला लिए।'

वे अपनी बाहों में हाथ डालकर रोने लगे; कुछ जमीन पर सिर के बल गिर पड़े; और कुछ इस विचार से व्यथित होकर इधर-उधर डगमगाने लगे: "भगवान बुद्ध का निधन बहुत जल्दी हो गया! सुखी व्यक्ति का देहांत बहुत जल्दी हो गया! संसार से प्रकाश बहुत जल्दी बुझ गया!"

लेकिन जो भिक्षु वासनाओं से मुक्त थे (अरहत), उन्होंने अपने दुःख को इस विचार से संयमित और स्थिर होकर सहन किया: "सभी घटक वस्तुएँ अनित्य हैं। यह कैसे संभव है [कि वे विलीन न हों]?"

तब मैंने भिक्षुओं से कहा, "बस करो, सज्जनों! रोओ मत, विलाप मत करो! क्या भगवान बुद्ध ने हमें पहले ही यह नहीं बताया है कि हमारे प्रिय सभी वस्तुओं का यही स्वभाव है कि हमें उनसे अलग होना, उन्हें छोड़ना, उनसे विमुख होना पड़ता है? तो फिर, सज्जनों, यह कैसे संभव है कि जब कोई भी वस्तु, चाहे वह जन्म ले, अस्तित्व में आए और संगठित हो, उसमें विघटन की अंतर्निहित आवश्यकता होती है, तो फिर यह कैसे संभव है कि ऐसी वस्तु का विघटन न हो? ऐसी कोई स्थिति हो ही नहीं सकती!"

'उस समय, हे महोदय, वृद्धावस्था में संसार से विदा हो चुके सुभद्दा भिक्षुओं के साथ वहाँ बैठे थे। और सुभद्दा, जो अभी-अभी दीक्षा प्राप्त कर चुके थे, ने भिक्षुओं से कहा, "बस करो, हे महोदय! रोओ मत, विलाप मत करो! हम महान समना (बुद्ध) से छुटकारा पाकर प्रसन्न हुए। हमें यह सुनकर बहुत कष्ट होता था कि 'यह तुम्हें शोभा देता है, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।' परन्तु अब हम जो चाहें कर सकेंगे; और जो हमें पसंद नहीं, वह हमें नहीं करना पड़ेगा।"

'आओ, सज्जनों, हम सब मिलकर धम्म और विनय का जप करें, इससे पहले कि जो धम्म नहीं है वह फैल जाए और जो धम्म है उसे दरकिनार कर दिया जाए; इससे पहले कि जो विनय नहीं है वह फैल जाए और जो विनय है उसे दरकिनार कर दिया जाए; इससे पहले कि धम्म के विरुद्ध तर्क करने वाले शक्तिशाली हो जाएं और जो धम्म को मानते हैं वे कमजोर हो जाएं; इससे पहले कि विनय के विरुद्ध तर्क करने वाले शक्तिशाली हो जाएं और जो विनय को मानते हैं वे कमजोर हो जाएं!'

2. 'तो आदरणीय थेरा भिक्षुओं का चयन करें।'

तब पूज्य महा कस्सपा ने पाँच सौ अरहतों में से एक को छोड़कर बाकी को चुना। भिक्षुओं ने पूज्य महा कस्सपा से कहा, 'हे प्रभु, यह पूज्य आनंद, यद्यपि अभी तक निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाए हैं, फिर भी वे पक्षपात, द्वेष, मूर्खता या भय के कारण किसी भी प्रकार की त्रुटि में नहीं पड़ सकते, और उन्होंने स्वयं भगवान बुद्ध से धम्म और विनय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अतः प्रभु, पूज्य आनंद को चुनें।' और पूज्य महा कस्सपा ने भी पूज्य आनंद को ही चुना।

3. तब थेरा भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: 'अब हम किस स्थान पर एक साथ धम्म और विनय का जप करें?' और फिर थेरा भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: 'राजगृह में भिक्षा प्रचुर मात्रा में है और रहने के लिए पर्याप्त स्थान हैं। अब क्या होगा यदि हम वर्षा ऋतु राजगृह में व्यतीत करें और वहाँ एक साथ धम्म और विनय का जप करें: और यदि वर्षा ऋतु के लिए कोई अन्य भिक्षु राजगृह न जाए?'

4. तब पूज्य महा कस्सपा ने रखा

संघ के समक्ष प्रस्ताव: 'आदरणीय संघ मेरी प्रार्थना सुनिए। यदि संघ को समय उचित लगे, तो संघ यह आदेश दे कि ये पाँच सौ भिक्षु वर्षा ऋतु में राजगृह में निवास करें, जहाँ वे मिलकर धम्म और विनय का पाठ करें, और वर्षा ऋतु में कोई अन्य भिक्षु राजगृह न जाएँ। यही प्रस्ताव है। आदरणीय संघ इसे सुनिए। संघ तदनुसार निर्णय लेता है। जो भी आदरणीय भिक्षु इससे सहमत हों, वे मौन रहें। जो असहमत हों, वे बोलें। संघ ने तदनुसार निर्णय लिया है। अतः यह मौन है। मेरा यही अर्थ है।'

5. अतः थेरा भिक्षु राजगृह गए और साथ मिलकर धम्म और विनय का पाठ करने लगे। थेरा भिक्षुओं ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने जीर्ण-शीर्ण भवनों के जीर्णोद्धार की प्रशंसा की है। इसलिए वर्षा ऋतु के पहले महीने में हम जीर्ण-शीर्ण भवनों का जीर्णोद्धार करें और मध्य माह में साथ मिलकर धम्म और विनय का पाठ करें।' और उन्होंने पहले माह में जीर्ण-शीर्ण भवनों का जीर्णोद्धार किया।

6. और पूज्य आनंद—यह सोचते हुए कि 'कल सभा है, अभी तो मुझे सभा में नहीं जाना चाहिए क्योंकि मैं अभी केवल अरहतत्व की राह पर ही हूँ'—पूरी रात सचेत मन से बिताई। और रात ढलते ही, भोर में लेटने के इरादे से, उन्होंने अपना शरीर झुकाया, लेकिन सिर तकिए तक पहुँचने से पहले ही, और पैर अभी ज़मीन से दूर ही थे कि उसी अंतराल में वे सो गए।

वह संसार से आसक्ति से मुक्त हो गया था, और उसका हृदय आसवों (अर्थात् कामुकता, वैयक्तिकता, भ्रम और अज्ञान) से मुक्त हो गया था।

7. और पूज्य महा कस्सपा ने संघ के समक्ष यह संकल्प रखा: 'यदि संघ को उचित समय लगे, तो मैं उपाली से विनय के विषय में प्रश्न करूँगा।' और पूज्य उपाली ने संघ के समक्ष यह संकल्प रखा: 'पूज्य संघ मेरी बात सुने। यदि संघ को उचित समय लगे, तो पूज्य महा कस्सपा द्वारा पूछे जाने पर मैं उत्तर दूँगा।'

तब पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य उपली से कहा: 'पूज्य उपली, प्रथम पराजिका कहाँ प्रकाशित हुई थी?'

'वेशाली में, महोदय।'

'यह किसके बारे में कहा गया था?'

'कलंदा के पुत्र सुदिन्ना के विषय में।'

'किस मामले के संबंध में?'

'संभोग।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य उपली से प्रथम पराजिका के विषय, अवसर, संबंधित व्यक्ति, (प्रधान) नियम, उप-नियम, कौन दोषी होगा और कौन निर्दोष होगा, के बारे में प्रश्न किया।

'हे आदरणीय उपाली, दूसरी पराजिका कहाँ प्रकाशित हुई थी?'

'राजगृह में, महोदय।'

'यह किसके बारे में कहा गया था?'

'धनिया, कुम्हार का पुत्र।'

'किस मामले के संबंध में?'

'वह चीज लेना जो दी नहीं गई थी।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य उपली से इस विषय, इस अवसर, संबंधित व्यक्ति, (प्रधान) नियम, उप-नियम, और इस बात पर प्रश्न किया कि दूसरे पराजिका के लिए कौन दोषी होगा और कौन निर्दोष होगा।

'हे आदरणीय उपाली, तीसरी पराजिका कहाँ प्रकाशित हुई थी?'

'वेशाली में, महोदय।'

'यह किसके बारे में कहा गया था?'

'कई भिक्षु।'

'किस मामले के संबंध में?'

'मनुष्य।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य उपली से तीसरे पराजिका के बारे में [पहले की तरह सभी विवरण] पूछे।

'हे आदरणीय उपाली, चौथी पराजिका कहाँ प्रकाशित हुई थी?'

'वेशाली में, महोदय।'

'यह किसके बारे में कहा गया था?'

'वाग्गुमुदा नदी के किनारे निवास करने वाले भिक्षु।'

'किस मामले के संबंध में?'

'असाधारण परिस्थितियाँ।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य उपली से चौथे पराजिका के सभी विवरणों के बारे में प्रश्न पूछे। उन्होंने दोनों विनय विधियों के माध्यम से भी प्रश्न पूछे; और जैसे-जैसे उनसे प्रश्न पूछे गए, उपली ने उत्तर दिए।

8. तब पूज्य महा कस्सपा ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा: 'पूज्य संघ मेरी बात सुने। यदि संघ को समय उपयुक्त लगे, तो मैं आनंद से धम्म के विषय में प्रश्न पूछूंगा।'

और पूज्य आनंद ने संघ के समक्ष एक संकल्प रखा: 'पूज्य संघ मेरी बात सुने। यदि संघ को समय उचित लगे, तो मैं, पूज्य महा कस्सपा द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर दूंगा।'

और पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य आनंद से कहा: 'हे पूज्य आनंद, ब्रह्मगल की बात कहाँ हुई थी?'

'राजगृह और नालंदा के बीच रास्ते में, अंबलथिका स्थित राजमहल में।'

'यह किसके बारे में कहा गया था?'

'सुप्पिया, घुमंतू तपस्वी, और ब्रह्मदत्त, युवा ब्राह्मण।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने प्रश्न किया

आदरणीय आनंद से ब्रह्मगल के अवसर और उन व्यक्तियों के बारे में पूछें जिनके बारे में यह कहा गया था।

'और फिर से, आदरणीय आनंद, समन्ना-फल की बात कहाँ हुई थी?'

'राजगृह में, महोदय; जीवक के आम के बाग में।'

और यह बात किससे कही गई थी?

'वेदेही के पुत्र अजातसत्तु के साथ।'

इस प्रकार पूज्य महा कस्सपा ने पूज्य आनंद से समन्ना-फल के अवसर और संबंधित व्यक्ति के बारे में प्रश्न पूछे। उन्होंने पाँचों निकायों के माध्यम से भी उनसे प्रश्न पूछे, और जैसे-जैसे उनसे प्रश्न पूछे गए, आनंद ने उत्तर दिए।

9. तब पूज्य आनंद ने थेरा भिक्षुओं से इस प्रकार कहा: 'हे सज्जनों, भगवान बुद्ध ने अपने परलोक जाते समय मुझसे कहा था, "मेरे जाने के बाद, हे आनंद, यदि संघ चाहे तो सभी छोटे-छोटे नियमों को निरस्त कर सकता है।"'

'तो क्या आपने, आदरणीय आनंद, भगवान बुद्ध से पूछा था कि लघु और गौण उपदेश कौन से हैं?'

'जी नहीं, महोदय।'

कुछ थेरों ने कहा कि चार पराजिकों को छोड़कर सभी नियम गौण और गौण हैं; कुछ ने कहा कि उन सभी नियमों के साथ-साथ तेरह संघदिशेष भी हैं; कुछ ने कहा कि उन सभी नियमों के साथ-साथ दो अनिय्यात भी हैं; कुछ ने कहा कि उन सभी नियमों के साथ-साथ तीस निस्साग्य भी हैं; कुछ ने कहा कि उन सभी नियमों के साथ-साथ बानवे पचित्तिय भी हैं; कुछ ने कहा कि उन सभी नियमों के साथ-साथ चार पतिदेशनीय भी हैं।

तब पूज्य महा कस्सपा ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा: 'पूज्य संघ, कृपया मेरी बात सुनें। हमारे कुछ नियम गृहस्थों से संबंधित हैं। गृहस्थ हमारे बारे में जानते हैं कि "ऐसी बातें शाक्यपुत्र भिक्षुओं के लिए उचित हैं और ऐसी बातें उचित नहीं हैं।" यदि हम इन छोटे-मोटे नियमों को निरस्त कर दें, तो हमसे कहा जाएगा: "शमन गौतम (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए नियमों का एक समूह निर्धारित किया था, जो उनकी चिता से धुआँ उठने तक कायम रहना था। जब तक उनके गुरु उनके साथ रहे, तब तक उन्होंने इन नियमों का अभ्यास किया। चूंकि उनके गुरु का देहांत हो गया है, इसलिए अब वे इन नियमों का अभ्यास नहीं करते हैं।"

यदि संघ को समय उचित लगे, तो वह किसी अनपेक्षित बात की घोषणा न करे और जो आदेश दिए गए हैं उन्हें निरस्त न करे, बल्कि निर्धारित नियमों के अनुसार स्वयं को उनके मार्ग पर चलाए। यही संकल्प है।

'आदरणीय संघ मेरी बात सुने। [इन बातों के कारण] संघ निर्धारित नियमों का पालन करता है। आदरणीयों में से जो भी इससे सहमत हो, वह मौन रहे। जो असहमत हो, वह बोले। संघ ने निर्धारित नियमों का पालन किया है, इसलिए वह मौन रहता है। मेरा यही अर्थ है।'

10. तब थेरा भिक्षुओं ने पूज्य आनंद से कहा: 'हे मित्र आनंद, तुमने यह पाप किया कि भगवान बुद्ध से लघु और गौण उपदेशों के बारे में नहीं पूछा। अपनी गलती स्वीकार करो।'

'महोदय, यह मेरी भूल थी कि मैंने भगवान बुद्ध से वह प्रश्न नहीं पूछा। मुझे इसमें कोई दोष नहीं दिखता। फिर भी, आप पर अपनी आस्था के कारण, मैं इसे एक दोष मानता हूँ।'

'हे मित्र आनंद, यह भी तुमने गलत किया है, क्योंकि तुमने भगवान बुद्ध के वर्षा ऋतु के वस्त्र को सिलते समय उस पर पैर रख दिया। अपनी गलती स्वीकार करो।'

'महोदय, मैंने ऐसा भगवान बुद्ध के प्रति अनादर के कारण नहीं किया। मुझे इसमें कोई दोष नहीं दिखता। फिर भी, आप पर अपनी आस्था के कारण, मैं इसे एक दोष के रूप में स्वीकार करता हूँ।'

'हे मित्र आनंद, यह भी तुमने गलत किया है, क्योंकि तुमने भगवान बुद्ध के शरीर को पहले स्त्रियों से प्रणाम करवाया, जिससे उनके रोने के कारण भगवान बुद्ध का शरीर आंसुओं से अपवित्र हो गया। इस गलती को स्वीकार करो।'

'महोदय, मैंने ऐसा इस इरादे से किया था कि उन्हें निर्धारित समय से अधिक समय तक न रखा जाए। मुझे इसमें कोई गलती नहीं दिखती। फिर भी, आप पर अपने विश्वास के कारण, मैं इसे एक गलती के रूप में स्वीकार करता हूँ।'

हे मित्र आनंद, यह भी तुमने अनुचित किया, क्योंकि जब भगवान बुद्ध ने तुम्हें इतना स्पष्ट सुझाव और इतना स्पष्ट संकेत दिया, तब भी तुमने उनसे यह विनती नहीं की, "भगवान बुद्ध एक कल्प तक जीवित रहें! हे सुखी बुद्ध, समस्त मानव जाति के कल्याण और सुख के लिए एक कल्प तक जीवित रहें।"

"दुनिया पर दया करके, देवताओं और मनुष्यों के भले, लाभ और कल्याण के लिए, बड़ी संख्या में लोग! उस गलती को स्वीकार करो।"

'हे मित्रों, जब मैंने उससे प्रार्थना करने से परहेज किया, तब मैं (शैतान के वश में) था। मुझे इसमें कोई दोष नहीं दिखता। फिर भी, आप पर अपने विश्वास के कारण, मैं इसे एक दोष मानता हूँ।'

'हे मित्र आनंद, तुमने यह भी अनुचित कार्य किया है कि तुम तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और विनय में महिलाओं को प्रवेश दिलाने का प्रयास करते हो। इस गलती को स्वीकार करो।'

'मैंने ऐसा इसलिए किया, मित्रों, क्योंकि मैं भगवान बुद्ध की माता की बहन महा प्रजापति गौतमी के बारे में सोच रहा था; उनकी धाय और दिलासा देने वाली, जिन्होंने उन्हें दूध पिलाया; कैसे उनकी माता के निधन के बाद उन्होंने स्वयं उन्हें माँ के दूध की तरह पिलाया। मुझे इसमें कोई दोष नहीं दिखता। फिर भी, आप पर अपनी आस्था के कारण, मैं इसे एक दोष मानता हूँ।'

11. उस समय पूज्य पुराण, पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ दक्षिणी पहाड़ियों में विचरण कर रहे थे। जब थेरा भिक्षुओं ने धम्म और विनय का एक साथ जप पूर्ण कर लिया, तो वे दक्षिणी पहाड़ियों में अपनी इच्छानुसार कुछ समय ठहरकर राजगृह के वेलुवन स्थित कालंदक निवास गए, जहाँ थेरा भिक्षु विराजमान थे। उन्होंने थेरा भिक्षुओं को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

जब वे इस प्रकार बैठ गए, तो थेरा भिक्षुओं ने उनसे कहा:

'हे मित्र पुराण, धम्म और विनय का पाठ थेरा भिक्षुओं द्वारा एक साथ किया गया है। इसलिए, आप भी उनके द्वारा पूर्वाभ्यास किए गए इस ग्रंथ को ध्यानपूर्वक ग्रहण करें और इसका अध्ययन करें।'

'हे सज्जनों, धम्म और विनय का तेरों द्वारा बहुत अच्छे से वर्णन किया गया है। फिर भी, जिस रूप में मैंने इसे सुना है और स्वयं भगवान बुद्ध के मुख से ग्रहण किया है, उसी रूप में मैं इसे अपने स्मरण में धारण रखूंगा।'

12. अब पूज्य आनंद ने थेरा भिक्षुओं से कहा: 'हे महोदय, भगवान बुद्ध ने अपनी मृत्यु के समय मुझसे कहा था: "हे आनंद, मेरे मरने के बाद संघ, भिक्षु चन्ना पर उच्चतर दंड लगाए।"

'तो क्या तुमने, मेरे मित्र आनंद, भगवान बुद्ध से पूछा था कि सबसे बड़ा दंड क्या है?'

'मैंने ऐसा किया, महोदय, (और उत्तर यह था): 'आनंद, भिक्षु चन्ना जो चाहे कह सकता है; लेकिन भिक्षुओं को न तो उससे बात करनी चाहिए, न ही उसे उपदेश देना चाहिए, न ही उसे चेतावनी देनी चाहिए।'

'तो फिर, हे मित्र आनंद, क्या तुम भिक्षु चन्ना को बता सकते हो कि उस पर कड़ी सजा लगाई गई है?'

'महोदय, मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? वह भिक्षु बहुत भावुक और कठोर है।'

'तो जाओ, मित्र आनंद, अन्य भिक्षुओं के साथ।'

'जी हां, महोदय,' आनंद ने थेरा भिक्षुओं की बात से सहमति जताते हुए कहा। और वह अपने साथ कई भिक्षुओं को ले गया।

पांच सौ भिक्षुओं का समूह एक नाव पर सवार होकर नदी के विपरीत दिशा में आगे बढ़ा और कोसंबी में उतरा, और राजा उदेना के उद्यान से कुछ ही दूरी पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

13. उस समय राजा उदेना अपने महल की स्त्रियों के साथ उद्यान में आनंद मना रहे थे। स्त्रियों ने सुना कि उनके गुरु, पूज्य आनंद, उद्यान से कुछ ही दूरी पर एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उन्होंने राजा उदेना से कहा:

'लोग कहते हैं कि हमारे गुरु, पूज्य आनंद, पार्क से कुछ ही दूरी पर एक पेड़ की तलहटी में बैठे हैं। हे प्रभु, हम उनसे मिलने जाना चाहते हैं।'

'तो जाओ, समना आनंद के दर्शन करो।' वे गए और पूज्य आनंद को प्रणाम किया, और एक तरफ बैठ गए। उन्होंने उन्हें धर्म प्रवचन से उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया। प्रवचन समाप्त होने पर, उन्होंने पूज्य आनंद को पाँच सौ वस्त्र भेंट किए, उनके प्रवचन के लिए उनकी प्रशंसा और धन्यवाद किया, और अपनी सीटों से उठकर उन्हें प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर चलते हुए वहाँ से चले गए।

14. और राजा उदेना ने दूर से आती हुई स्त्रियों को देखा। उन्हें देखकर उसने उनसे कहा:

'तो क्या आप समना आनंद के दर्शन करने में सफल रहे?'

'हमने उसे देखा, महाराज।'

'क्या आपने समना आनंद को कोई उपहार भेंट किया?'

'हे महाराज, हमने आदरणीय आनंद को पाँच सौ वस्त्र भेंट किए।'

तब राजा उदेना क्रोधित और परेशान हो गया, और गुस्से में आकर बोला:

'समान आनंद इतने सारे वस्त्र कैसे स्वीकार कर सकते हैं? क्या वे कपड़े बेचने का धंधा शुरू करेंगे, या कोई दुकान खोलेंगे?'

और राजा उदेना पूज्य आनंद के पास गए और उनसे मित्रता और शिष्टाचार का अभिवादन और शुभकामनाएँ करने के बाद उनके पास बैठ गए। और जब वे बैठ गए, तो उन्होंने उनसे कहा:

'क्या हमारी महिलाएं यहां आई थीं, आनंदा?'

'जी हां, महान राजा।'

'क्या उन्होंने आपके आदरणीय व्यक्ति को कुछ दिया?'

'उन्होंने मुझे, महान राजा, पाँच सौ वस्त्र दिए।'

'और आप उन पांच सौ वस्त्रों का क्या करने का इरादा रखते हैं?'

'हे महाराज, मैं इन्हें उन भिक्षुओं में बाँट दूँगा जिनके वस्त्र पुराने हो चुके हैं।'

'और हे आनंद, तुम इन पुराने वस्त्रों का क्या करोगे?'

'हे महाराज, हम इनसे चादरें बनाएंगे।'

'और तुम उन पुराने छज्जों का क्या करने का इरादा रखते हो, आनंदा?'

'हे महाराज, हम उनसे समर्थन के लिए आधार तैयार करेंगे।'

'और आनंद, तुम उन पुराने तकिए के कवरों का क्या करने का इरादा रखते हो?'

'हे महाराज, हम इनसे कालीन बनाएंगे।'

'और तुम इन पुराने कालीनों का क्या करने का इरादा रखते हो, आनंदा?'

'हे महाराज, हम इनसे पैर धोने के लिए तौलिए बनाएंगे।'

'और तुम इन पुराने तौलियों का क्या करने का इरादा रखते हो, आनंदा?'

'हे महाराज, हम इनसे धूल झाड़ेंगे।'

'और तुम उन पुराने डस्टरों का क्या करने का इरादा रखते हो, आनंदा?'

'हे महाराज, हम इन्हें टुकड़े-टुकड़े कर देंगे, मिट्टी से पीट-पीट कर मिट्टी का फर्श बनाने में इस्तेमाल करेंगे।'

तब राजा उदेना ने सोचा, 'ये शाक्यपुत्रीय सामन प्रत्येक वस्तु का विवेकपूर्ण उपयोग करते हैं और किसी भी वस्तु को अपना निजी स्वामित्व नहीं मानते।' और उन्होंने पूज्य आनंद को पाँच सौ और वस्त्र भेंट किए।

15. लेकिन आनंद घोसिता विश्राम (मठ) में गए और वहाँ उनके लिए बिछाई गई चौकी पर बैठ गए। पूज्य चन्ना उनके पास गए और उन्हें प्रणाम करके उनके बगल में बैठ गए। जब वे बैठ गए, तो आनंद ने उनसे कहा, “

'मित्र चन्ना, संघ ने तुम पर उच्चतर दंड लगाया है।'

'तो फिर, मेरे मित्र आनंद, सबसे बड़ा दंड क्या है?'

'हे मित्र चन्ना, तुम भिक्षुओं से जो चाहो कह सकते हो; परन्तु भिक्षुओं को न तो तुमसे बात करनी चाहिए, न तुम्हें उपदेश देना चाहिए, न ही तुम्हें चेतावनी देनी चाहिए।'

'क्या मैं एक मृत व्यक्ति नहीं बन जाऊंगा, मित्र आनंद, जब तक भिक्षु मुझसे बात नहीं करते, मुझे उपदेश नहीं देते, न ही मुझे सलाह देते हैं?' चन्ना ने कहा और वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

तब पूज्य चन्ना, व्यथित, दुखी और पश्चाताप से ग्रस्त होकर, एकांत में रहे, गंभीर, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर। शीघ्र ही उन्होंने उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए अच्छे परिवार के लोग भी घर-बार छोड़कर बेघर होकर जीवन व्यतीत करते हैं—जी हाँ, उन्होंने स्वयं ही, इस दृश्य संसार में रहते हुए, उस सर्वोच्च लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त किया, उसे निरंतर अनुभव किया और उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया! और उन्हें यह अहसास हुआ कि उनका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है, कि उन्होंने अपने जीवन की पूर्णता प्राप्त कर ली है, कि जो कुछ करना था वह पूरा हो चुका है, और इस जीवन के बाद कोई परलोक नहीं होगा!

इस प्रकार पूज्य चन्ना अरहतों में से एक बन गए। अरहत पद प्राप्त करने के बाद, पूज्य चन्ना पूज्य आनंद के पास गए और बोले:

'मेरे मित्र आनंद, अब मुझसे यह उच्चतर दंड हटा दो।'

'हे मित्र चन्ना, जिस क्षण तुमने अरहतत्व का अहसास किया, उसी क्षण से तुम पर से उच्चतर दंड हटा दिया गया।'

16. अब चूंकि पांच सौ भिक्षुओं ने बिना किसी चूक के, बिना किसी अतिरिक्त के, विनय के इस पाठ में भाग लिया, इसलिए विनय के उस पाठ को 'पांच सौ भिक्षुओं का पाठ' कहा जाता है।

=========
यहां पांच सौ लोगों द्वारा पाठ किए गए ग्यारहवें खंडक का समापन होता है।

<<<< पिछला(10.27) । अगला(12.1) >>>>

बारहवाँ खंडका (बुद्ध के बाद वेशालि परिषद)
(वैशाली की परिषद पर)

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> बारहवाँ खंडका >> 12.1
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला (11.1) । अगला (12.2) >>>>

चुलवग्गा (लघु भाग)

बारहवाँ खंडका (वेशाली की परिषद पर)

अध्याय 1।

1. उस समय, भगवान बुद्ध की मृत्यु के एक शताब्दी बाद, वैशाली के भिक्षुओं, वज्जीवादियों ने वैशाली में दस सिद्धांतों का प्रचार किया:--(1) कि नमक को सींग के बर्तन में रखना अनुमेय था; (2) कि दोपहर के बाद सूर्य की छाया दो उंगली की चौड़ाई तक दिखने पर दोपहर का भोजन किया जा सकता था; (3) कि जो व्यक्ति गाँव जाने का इरादा रखता है, वह एक बार भोजन छोड़ने के बाद फिर से शुरू कर सकता है; (4) कि एक ही सीमा के भीतर रहने वाले कई भिक्षु उपोसथ को अलग-अलग आयोजित कर सकते थे; (5) कि एक संघ जो स्वयं में एकता में नहीं है, वह भिक्षुओं को सूचित करने का वचन देते हुए कोई आधिकारिक कार्य कर सकता है; (6) कि भिक्षु के लिए अपने उपज्झय द्वारा अपनाई गई किसी भी प्रथा का पालन करना अनुमेय था; (7) कि दोपहर का भोजन समाप्त कर चुके व्यक्ति द्वारा दही खाया जा सकता था; (8) कि बिना किण्वित ताड़ी पीना अनुमेय था। (9) कि गलीचा या चटाई निर्धारित सीमित आकार की नहीं होनी चाहिए यदि उसमें झालर न हो; (10) कि सोना और चांदी प्राप्त करना अनुमेय था।

उस समय वज्जीय देश में विचरण करते हुए काकंदक के पुत्र पूज्य यासा वैशाली पहुंचे; और वहां पूज्य यासा महावन में कुटगारा हॉल में ठहरे।

उस समय वैशाली के वज्जीयन भिक्षुओं ने उपोसथ दिवस पर एक तांबे के बर्तन में पानी भरकर भिक्षु संघ के बीच में रख दिया और वहाँ आए वैशाली के अपने गृहस्थ शिष्यों से कहा: 'हे सज्जनों, संघ को एक कहपना, आधा कहपना, एक पद या एक मसक दान कीजिए। संघ को विभिन्न बर्तनों के लिए इसकी आवश्यकता होगी।'

जब उन्होंने ऐसा कहा, तब आदरणीय यासा, जो काकंदक के पुत्र थे, ने गृहस्थ शिष्यों से कहा, 'हे सज्जनों, ऐसा कुछ न करें। शाक्यपुत्रीय सामनों को सोने और चांदी का उपयोग करने की अनुमति नहीं है। शाक्यपुत्रीय सामन न तो इन्हें अपने पास लेने देते हैं और न ही इनका संरक्षण करते हैं। शाक्यपुत्रीय सामन वे पुरुष हैं जिन्होंने अपने रत्न और आभूषण त्याग दिए हैं, और जिनके पास चांदी और सोना नहीं है।'

यद्यपि वैशाली के गृहस्थ शिष्यों को काकंदक के पुत्र पूज्य यासा ने इस प्रकार संबोधित किया था, फिर भी उन्होंने संघ को धन दान दिया। और वैशाली के वंज्जियन भिक्षुओं ने रात्रि के अंत में, एक भाग अलग रखकर, उस धन को भिक्षुओं की संख्या के अनुसार बाँट लिया। और उन्होंने काकंदक के पुत्र पूज्य यासा से कहा:

'यासा, मेरे दोस्त, यह तुम्हारा हिस्सा है।'

'उस धन में मेरा कोई हिस्सा नहीं है। मैं किसी को भी मुझे कोई धन देने की अनुमति नहीं देता।'

2. तब वैशाली के वज्जीय भिक्षुओं ने आपस में कहा, "यह भाई, काकंदक का पुत्र यासा, निंदा और अपशब्दों का प्रयोग करता है और विश्वासी एवं निष्ठावान अनुयायियों को असंतुष्ट करता है। आओ, हम इसके विरुद्ध सुलह का कार्य करें।" और उन्होंने ऐसा ही किया।

तब आदरणीय काकंदक के पुत्र यासा ने उनसे कहा, 'हे महोदय, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है कि जिस भिक्षु के विरुद्ध सुलह का कार्य संपन्न हुआ हो, उसके साथ एक सहचर दूत नियुक्त किया जाए। हे महोदय, मेरे लिए एक भिक्षु को सहचर दूत नियुक्त कीजिए।' वैशाली के वज्जीय भिक्षुओं ने एक भिक्षु को इस कार्य के लिए नियुक्त किया और उसे आदरणीय यासा का सहचर दूत बना दिया।

और पूज्य यासा अपने साथी भिक्षु को साथ लेकर वैशाली में प्रवेश किया और वहाँ के विश्वासी गृहस्थों से कहा:

'महोदय, मुझ पर यह आरोप लगाया जाता है कि मैं निंदा और अपमान कर रहा हूँ और विश्वासी एवं निष्ठावान अनुयायियों को असंतुष्ट कर रहा हूँ, क्योंकि मैंने कहा है कि जो धम्म के विरुद्ध है वह धम्म के विरुद्ध है, और जो धम्म है वह धम्म है, और जो विनय के विरुद्ध है वह विनय के विरुद्ध है, और जो विनय है वह विनय है।'

3. हे महोदय, एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के आनंद-स्थल जेतवन में स्थित सावत्थी में ठहरे हुए थे। वहाँ, हे महोदय, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा:

हे भिक्षुओं, सूर्य और चंद्रमा के चार अवरोध हैं, जिनसे प्रभावित होने पर सूर्य और चंद्रमा न तो ऊष्मा देते हैं, न प्रकाश देते हैं और न ही उनकी महिमा समाप्त हो जाती है। वे चार क्या हैं? वे हैं बादल, कोहरा, धूल भरा धुआँ और राहु, जिनसे प्रभावित होने पर सूर्य और चंद्रमा न तो ऊष्मा देते हैं, न प्रकाश देते हैं और न ही चमकते हैं। ठीक इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, चार दोष हैं जिनसे प्रभावित होने पर भिक्षु और ब्राह्मण न तो ऊष्मा देते हैं, न प्रकाश देते हैं और न ही चमकते हैं। वे चार क्या हैं? कुछ भिक्षु और ब्राह्मण मादक पेय और नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, और उनसे परहेज नहीं करते। यह पहला दोष है। हे भिक्षुओं, कुछ भिक्षु और ब्राह्मण यौन संबंध बनाते हैं, और उससे परहेज नहीं करते। यह दूसरा दोष है। हे भिक्षुओं, कुछ भिक्षु और ब्राह्मण चांदी और सोना ग्रहण करते हैं, और उनसे परहेज नहीं करते। उसका उपयोग। यह इस प्रकार के तीसरे दोष है। और अंत में, हे भिक्षुओं, कुछ समन और ब्राह्मण ऐसे हैं जो निम्न कलाओं से जीविका कमाते हैं, ऐसे साधनों से परहेज नहीं करते। यह इस प्रकार के चौथे दोष है।

"हे सज्जनों, भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा: और जब भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, तो गुरु ने आगे कहा:

"कामवासना और द्वेष से दूषित, कुछ समना (भिक्षु) और ब्राह्मण (पुजारी)..."

अज्ञान से अंधे हुए लोग उन चीजों की प्रशंसा करते हैं जो आनंददायक प्रतीत होती हैं।

वे तेज शराब पीते हैं और उग्र स्वभाव के होते हैं, कामुक कृत्यों में लिप्त रहते हैं।

बुद्धिहीन होकर वे चांदी और सोना ले जाते हैं।

और कुछ समन और ब्राह्मण निम्न कलाओं के द्वारा अपना जीवन यापन करते हैं।

सूर्यवंशी बुद्ध द्वारा दाग कहे जाने वाले ऐसे कर्म हैं।

वे दाग—जिनसे कुछ समन और ब्राह्मण अपवित्र हो गए,

अशुद्ध और अपवित्र जानवर न तो गर्मी देते हैं और न ही प्रकाश।

अंधकार से घिरा हुआ, अंधा, लालसा और वासनाओं का गुलाम,

वे मृत्यु के दायरे को बढ़ाते हैं, और पुनर्जन्म से भयभीत हो जाते हैं।

'इस मत का समर्थन करने के कारण ही, महोदय, मुझ पर विश्वास करने वाले और निष्ठावान अनुयायियों को फटकारने, निंदा करने और असंतुष्ट करने का आरोप लगाया गया है, क्योंकि मैंने कहा है कि जो धम्म के विरुद्ध है वह धम्म के विरुद्ध है और जो धम्म है वह धम्म है; जो विनय के विरुद्ध है वह विनय के विरुद्ध है और जो विनय है वह विनय है।'

4. 'एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, वेलुवन में, कालंदक निवास में ठहरे हुए थे। उस समय महल में महिलाओं के कक्ष में बैठी शाही परिचारिकाओं के बीच यह बात सुनी गई: "शाक्यपुत्र भिक्षुओं को चांदी और सोना रखने की अनुमति है।"

शाक्यपुत्रीय समना इसे स्वीकार करते हैं और इसे अपने अधिकार में लेते हैं। उस समय ग्राम प्रधान मणिकुलक वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने वहाँ के लोगों से कहा, "ऐसा मत कहिए, महोदय। शाक्यपुत्रीय समनाओं को न तो चाँदी और सोना रखने की अनुमति है, न वे इसे स्वीकार करते हैं और न ही इसे अपने अधिकार में लेते हैं। शाक्यपुत्रीय समना वे लोग हैं जिन्होंने रत्न और आभूषण त्याग दिए हैं, और उनके पास चाँदी और सोना नहीं है।" इस प्रकार ग्राम प्रधान मणिकुलक उन्हें समझाने में सफल रहे।

तब मुखिया मणिकुलका उस स्थान पर गया जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। उसने भगवान बुद्ध को सारी बात बताई और कहा:

"हे प्रभु, क्या मैं अपने आचरण के अनुसार भगवान बुद्ध के वचनों के अनुसार बोलने वाला, भगवान बुद्ध का झूठा प्रतिरूपण न करने वाला, सच्चे धम्म के स्थान पर तुच्छ बातों को न रखने वाला व्यक्ति हूँ? और क्या इस प्रकार की चर्चा में, चाहे इधर-उधर की हो, संघ के नियमों के पालन के संबंध में कोई निंदा का कारण है?"

"निश्चित रूप से, मणिकुलक, इस प्रकार बोलने में आप मेरे वचन के अनुरूप हैं, और आप मेरा झूठा प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं, न ही छोटी-मोटी बातों को सच्चा धर्म बता रहे हैं। ऐसी चर्चाओं में निंदा का कोई कारण नहीं है। क्योंकि मणिकुलक, शाक्यपुत्रीय समनों के लिए सोना और चांदी वर्जित है, न ही उन्हें इसे स्वीकार करना चाहिए, न ही इसे अपने पास रखना चाहिए। जिन पुरुषों ने रत्न और आभूषण त्याग दिए हैं, वे ही शाक्यपुत्रीय समन हैं।"

जिन पुरुषों के पास चांदी और सोना नहीं है। क्योंकि, मणिकुलक, जिसे सोना और चांदी की अनुमति है, उसे पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों की भी अनुमति है। और जिसे इन पांच प्रकार के सुखों की अनुमति है, उसे आप निश्चित रूप से जान लें कि वह न तो सामनों के नियम का पालन कर रहा है और न ही शाक्य वंश के नियम का। यद्यपि, मणिकुलक, मैंने कहा है कि जिसे घास की आवश्यकता है वह घास की तलाश करे, जिसे लकड़ी की आवश्यकता है वह लकड़ी की तलाश करे, जिसे वाहन की आवश्यकता है वह वाहन की तलाश करे, और जिसे नौकर की आवश्यकता है वह नौकर की तलाश करे; फिर भी मैंने कभी भी किसी भी तरह से यह नहीं कहा है कि सोने या चांदी की तलाश की जाए या उसे स्वीकार किया जाए।

'इस मत को कायम रखने के कारण ही, महोदय, मुझ पर विश्वास करने वाले और निष्ठावान अनुयायियों को फटकारने, निंदा करने और असंतुष्ट करने का आरोप लगाया गया है, क्योंकि मैंने कहा है कि जो धम्म के विरुद्ध है वह धम्म के विरुद्ध है, और जो धम्म है वह धम्म है; जो विनय के विरुद्ध है वह विनय के विरुद्ध है, और जो विनय है वह विनय है।'

5. 'और एक बार, महोदय, भगवान बुद्ध ने उसी स्थान पर, राजगृह में, शाक्य उपनंद के मामले के अवसर पर, स्पष्ट रूप से एक उपदेश दिया था जिसके द्वारा सोने और चांदी को निषिद्ध किया गया था।

महोदय, इसी मत को बनाए रखने के कारण मुझ पर विश्वास करने वाले और निष्ठावान अनुयायियों को फटकारने, निंदा करने और असंतुष्ट करने का आरोप लगाया गया है, क्योंकि मैंने वह कहा है जो इसके विरुद्ध है।

धम्म, धम्म के विरुद्ध है, और जो धम्म है वह धम्म है; जो विनय के विरुद्ध है वह विनय के विरुद्ध है, और जो विनय है वह विनय है।

6. जब उन्होंने ऐसा कहा, तो गृहस्थ भाइयों ने काकंदक के पुत्र यासा से कहा, "हे महाराज, केवल एक ही शाक्यपुत्र समण हैं, हमारे गुरु यासा, जो काकंदक के पुत्र हैं। बाकी सभी न तो समण हैं और न ही शाक्यपुत्र। आदरणीय यासा, जो काकंदक के पुत्र हैं, हमारे बीच निवास करें। हम उन्हें वस्त्र, भोजन, औषधि और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने का भरसक प्रयास करेंगे।"

तब आदरणीय यासा, जो काकंदक के पुत्र थे, ने गृहस्थ भाइयों को अपने पक्ष में कर लिया और अपने साथी भिक्षु (भिक्षु) के साथ आराम लौट आए।

7. और वैशाली के वज्जीय भिक्षुओं ने साथी भिक्षु से पूछा: 'क्या काकंदक के पुत्र यासा ने गृहस्थ भाइयों से क्षमा प्राप्त की, महोदय?'

'महोदय, हम पर विपत्ति आई है। काकंदक के पुत्र यासा को ही शाक्यपुत्र समना घोषित किया गया है, और हम सब न तो समना हैं और न ही शाक्यपुत्र।'

तब वैशाली के वज्जियन भिक्षुओं ने कहा: 'आदरणीय यासा, काकंदक के पुत्र, ने हमारी ओर से नियुक्त किए बिना ही गृहस्थों के बीच (एक झूठा सिद्धांत) प्रचारित किया है। आओ, हम उसके विरुद्ध निलंबन की कार्रवाई करें।' और

वे ऐसा करने के इरादे से एकत्रित हुए थे।

लेकिन आदरणीय यासा, काकंदक के पुत्र, आकाश में उठे और कोसंबी में अवतरित हुए। उन्होंने पश्चिमी, अवंती और दक्षिणी देश के भिक्षुओं के पास दूत भेजे और कहा, 'हे आदरणीय! हमें इस विधिक प्रश्न को अपने हाथ में लेना चाहिए, इससे पहले कि अधार्मिक बातें फैल जाएँ और धर्म को त्याग दिया जाए; इससे पहले कि विनय के विरुद्ध तर्क देने वाले शक्तिशाली हो जाएँ और विनय के पक्ष में तर्क देने वाले कमजोर हो जाएँ; इससे पहले कि विनय के विरुद्ध तर्क देने वाले शक्तिशाली हो जाएँ और विनय के पक्ष में तर्क देने वाले कमजोर हो जाएँ।'

8. उस समय पूज्य संभूता सनवासी अहोगंगा पर्वत पर निवास कर रहे थे। वहाँ काकंदक के पुत्र पूज्य यासा गए; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य संभूता सनवासी को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; और इस प्रकार बैठकर उन्होंने उनसे कहा:

'भगवान्, ये वेशाली के वज्जियन भिक्षु हैं

'दस सिद्धांत प्रस्तुत करो।' और उन्होंने उन्हें बताया कि वे क्या थे, और आगे कहा: 'हे प्रभु, आइए अब हम इस अंतिम प्रश्न का समाधान कर लें, इससे पहले कि जो धम्म नहीं है वह फैल जाए और जो धम्म है उसे दरकिनार कर दिया जाए; इससे पहले कि जो विनय नहीं है वह फैल जाए और जो विनय है उसे दरकिनार कर दिया जाए; इससे पहले कि धम्म के विरुद्ध तर्क करने वाले शक्तिशाली हो जाएं और जो धम्म के पक्ष में तर्क करने वाले कमजोर हो जाएं; इससे पहले कि विनय के विरुद्ध तर्क करने वाले शक्तिशाली हो जाएं और जो विनय के पक्ष में तर्क करने वाले कमजोर हो जाएं।'

'फिर भी, भगवान,' आदरणीय संभूता सनवासी ने, आदरणीय यासा काकंदका-पुत्त की सहमति में कहा।

फिर पश्चिमी देश से लगभग साठ भिक्षु, जो सभी संन्यासी थे, सभी भिक्षा पर जीवन यापन करते थे, सभी त्यागे हुए वस्त्र पहनते थे, केवल तीन वस्त्र धारण करते थे और सभी अरहत थे, अहोगंगा पर्वत पर एकत्रित हुए। और अवंती और दक्षिणी देश से लगभग अस्सी-आठ भिक्षु, जिनमें से कुछ संन्यासी थे, कुछ भिक्षा पर जीवन यापन करते थे, कुछ त्यागे हुए वस्त्र पहनते थे और कुछ केवल तीन वस्त्र धारण करते थे, लेकिन सभी अरहत थे, अहोगंगा पर्वत पर उनसे मिले।

9. और थेरा भिक्षुओं ने आपस में विचार-विमर्श करके यह निष्कर्ष निकाला: 'यह विधिक प्रश्न कठिन और पेचीदा है। हम ऐसा समर्थन कैसे प्राप्त कर सकते हैं जिससे निर्णय लेते समय हमें अधिक शक्ति प्राप्त हो?'

उस समय पूज्य रेवता सोरेय्या में निवास कर रहे थे। वे परंपराओं के ज्ञाता थे, आगमों (चारों निकायों) के ज्ञाता थे, और धम्म, विनय और मतिकाओं के ज्ञाता थे; बुद्धिमान, विवेकशील, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और धर्मोपदेशकों के प्रति समर्पित थे। थेरा भिक्षुओं ने सोचा कि यदि वे उन्हें अपने पक्ष में कर लें, तो उनका उद्देश्य पूरा हो जाएगा।

और पूज्य रेवता ने, मनुष्यो की श्रेष्ठ और स्पष्ट दैवीय श्रवण शक्ति से, थेरा भिक्षुओं को आपस में परामर्श करते हुए सुना; और उन्होंने सोचा: 'यह विधि संबंधी प्रश्न कठिन और सूक्ष्म दोनों है, इससे पीछे हटना मेरे लिए उचित नहीं होगा। परन्तु अभी भी वे भिक्षु (वज्जी) आ रहे हैं। उनके साथ चलना मेरे लिए असुविधाजनक होगा। मुझे उनसे पहले ही चलना चाहिए।'

अतः पूज्य रेवता सोरेय्या से समकस्सा चले गए। जब थेरा भिक्षु सोरेय्या गए और पूछा, 'पूज्य रेवता कहाँ हैं?' तो उन्होंने कहा, 'वे समकस्सा गए हैं।'

अब पूज्य रेवता समकस्सा से कन्नकुज्जा चले गए थे। जब थेरा भिक्षु समकस्सा आए और पूछा, 'पूज्य रेवता कहाँ हैं?' तो उन्होंने कहा, 'वे कन्नकुज्जा चले गए हैं।' और वे उनके पीछे-पीछे वहाँ गए, फिर उदंबरा, फिर अग्गलपुरा, फिर सहगति, और वहाँ उनकी मुलाकात पूज्य रेवता से हुई।

10. तब पूज्य संभूता सनवासी ने काकंदक के पुत्र पूज्य यासा से कहा:

'मित्र, रेवता भाई परंपराओं में पारंगत हैं, उन्होंने आगमों का ज्ञान प्राप्त किया है, उन्हें धम्म, विनय और मतिकाएँ सर्वमान्य हैं, वे बुद्धिमान, विवेकशील और ज्ञानी हैं, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और उपदेशों के प्रति समर्पित हैं। यदि हम पूज्य रेवता से कोई पेचीदा प्रश्न पूछें, तो वे उस एक प्रश्न पर पूरी रात विचार कर सकते हैं। और अभी भी पूज्य रेवता अपने एक शिष्य, जो एक उपदेशक हैं, से मिलने आते हैं। इसलिए, जब भिक्षु अपना प्रवचन समाप्त कर लें, तो आप पूज्य रेवता के पास जाकर उनसे इन दस सिद्धांतों (बिंदुओं) के बारे में पूछें।'

'जी हां, महाराज,' आदरणीय संभूता सनवासी की बात से सहमत होते हुए आदरणीय काकंदक के पुत्र यासा ने कहा।

और पूज्य रेवता ने अपने शिष्य, मंत्रोच्चार करने वाले भिक्षु को बुलाया। जब भिक्षु ने अपना प्रवचन समाप्त कर लिया, तो काकंदक के पुत्र पूज्य यासा, पूज्य रेवता के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनके बगल में बैठ गए। और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने पूज्य रेवता से कहा:

'क्या हे प्रभु, सींग-नमक-लाइसेंस स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह सींग-नमक-लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि किसी सींग में नमक भरकर इस इरादे से ले जाया जाए कि उसे बिना नमक वाले भोजन में डाला जाएगा?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'क्या दो इंच की छूट, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'सर, यह दो इंच का लाइसेंस क्या है?'

हे प्रभु, क्या दोपहर का भोजन करना जायज़ है?

क्या उचित समय के बाद भी, केवल इस शर्त पर कि परछाई अभी दो इंच न बढ़ी हो?

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'क्या ग्राम भ्रमण का लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'यह ग्राम-यात्रा लाइसेंस क्या है, महोदय?'

'हे प्रभु, क्या यह उचित है कि जो व्यक्ति अपना भोजन समाप्त कर चुका है और आगे कुछ भी खाने से इनकार कर चुका है, वह बचे हुए भोजन को इस आधार पर खा ले कि वह गांव की ओर जाने वाला है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'क्या सर्किट लाइसेंस, लॉर्ड, स्वीकार्य है?'

'सर, यह सर्किट लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह उचित है कि एक ही परिसर में, एक ही सीमा के भीतर रहने वाले कई भिक्षु अलग-अलग उपोसथ आयोजित करें?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'क्या क्षतिपूर्ति लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह क्षतिपूर्ति लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह उचित है कि कोई संघ, जो विधिवत गठित नहीं है, इस आधार पर कोई आधिकारिक कार्य करे कि वे बाद में आने वाले भिक्षुओं की स्वीकृति प्राप्त कर लेंगे?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'क्या पूर्व उदाहरण के आधार पर दी गई छूट, हे प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह पूर्व-अनुमानित लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि मैं किसी काम को इस आधार पर करूँ कि "मेरे गुरु (उपाज्जया) ने यह किया है; या मेरे शिक्षक (आचार्य (शिक्षक)) ने वह किया है?"'

'कुछ मामलों में, महोदय, यह स्वीकार्य है, और कुछ में नहीं।'

'क्या मंथन का लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह मंथन लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि जो व्यक्ति अपना भोजन समाप्त कर चुका है और आगे कुछ भी खाने से इनकार कर चुका है, वह भोजन के बाद बचा हुआ दूध न पिए, इस आधार पर कि वह दूध की अवस्था से निकल चुका है और अभी तक दही की अवस्था तक नहीं पहुँचा है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'हे प्रभु, क्या ताड़ी पीना जायज़ है?'

'यह ताड़ी क्या है, महोदय?'

'हे प्रभु, क्या उन शराबों का सेवन करना जायज़ है जो शराब न होने की अवस्था से बाहर आ चुकी हैं, लेकिन फिर भी उनमें मादक गुण नहीं आ पाए हैं?'

'नहीं, महोदय, यह स्वीकार्य नहीं है?'

'हे प्रभु, क्या बिना झालर वाली चटाई या गलीचा (जब वह निर्धारित आकार से बड़ा हो) वैध है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'हे प्रभु, क्या सोना और चांदी स्वीकार्य हैं?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

हे प्रभु, ये वे दस प्रस्ताव हैं जो वैशाली के इन वज्जी भिक्षुओं ने रखे हैं। हे प्रभु, आइए, हम इस विधिक प्रश्न पर विचार करें, इससे पहले कि अधार्मिक बातें फैल जाएँ और धर्म का त्याग हो जाए; इससे पहले कि विनयहीन बातें फैल जाएँ और विनय का त्याग हो जाए; इससे पहले कि धर्म के विरुद्ध तर्क करने वाले शक्तिशाली हो जाएँ और

धम्म के पक्ष में तर्क देने वाले कमजोर हो जाते हैं; विनय के विरुद्ध तर्क देने वाले शक्तिशाली हो जाते हैं, और विनय के पक्ष में तर्क देने वाले कमजोर हो जाते हैं।

'जी हां, महाराज,' आदरणीय रेवता ने काकंदक के पुत्र आदरणीय यासा की बात से सहमति जताते हुए कहा।

यहां पाठ का पहला भाग समाप्त होता है।

<<<< पिछला (11.1) | अगला (12.2) >>>>

टिपिटक >> विनय पिटक >> खंडका >> चुलवग्गा >> बारहवाँ खंडका >> 12.2
टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स और हरमन ओल्डेनबर्ग के अनुवाद से रूपांतरित।

<<<< पिछला(12.1)

चुलवग्गा (लघु भाग)

बारहवाँ खंडका (वेशाली की परिषद पर)

अध्याय दो।

1. वैशाली के वज्जीय भिक्षुओं ने यह अफवाह सुनी: 'ककांडक के पुत्र यासा, इस विधिक प्रश्न को अपने हाथ में लेने की इच्छा से समर्थन की तलाश कर रहे हैं, और कहा जाता है कि उन्हें समर्थन मिल भी रहा है।' और उन्होंने सोचा: 'यह विधिक प्रश्न तो कठिन और पेचीदा है। हम ऐसा समर्थन कैसे प्राप्त कर सकते हैं जिससे इस मामले के निर्णय में हमें अधिक शक्ति प्राप्त हो?'

और उन्होंने सोचा: 'पूजनीय यासा, जो सोरय्या में निवास करते हैं, परंपराओं में पारंगत हैं, आगमों के ज्ञाता हैं, धम्म, विनय और मतिकाओं के ज्ञाता हैं, बुद्धिमान, विवेकशील और ज्ञानवान हैं, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और उपदेशों के प्रति समर्पित हैं। यदि हम उन्हें अपने पक्ष में कर लें, तो हम अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे।'

तब वैशाली के वज्जियन भिक्षुओं ने बहुत सी संपत्ति, आवश्यक वस्तुएँ और समनाओं (भिक्षुओं) के जीवन की अनेक वस्तुएँ एकत्र कीं—अर्थात् कटोरे, वस्त्र, कालीन, सुई के डिब्बे, कमरबंद, छलनी और मापन पात्र। और इस संपत्ति को लेकर

फिर वे नाव से नदी के विपरीत दिशा में सहगति तक गए और वहाँ उतरकर एक विशेष वृक्ष के नीचे भोजन किया।

2. अब पूज्य सलहा, जो एकांत में ध्यानमग्न थे, उनके मन में यह शंकालु प्रश्न उठा: 'क्या पूर्वी भिक्षु या पश्चिमी भिक्षु अपने मत के अनुसार धम्म के अधिक अनुरूप हैं?' धम्म और विनय का मनन करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'पूर्वी भिक्षु धम्म के अनुरूप नहीं हैं, जबकि पश्चिमी भिक्षु अपने मत के अनुसार धम्म के अनुरूप हैं।'

और पवित्र धाम में विराजमान देवताओं में से एक ने देखा कि पूज्य सलहा के मन में यह शंकालु प्रश्न कैसे उत्पन्न हुआ है, और जिस शीघ्रता से एक बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या फैलाकर वापस समेट सकता है, उसी शीघ्रता से वह देवता पवित्र धाम से लुप्त हो गए और पूज्य सलहा के समक्ष प्रकट हुए; उनसे कहा: 'सलहा, आप बिल्कुल सही हैं; पूर्वी भिक्षुओं के मत धम्म के विरुद्ध हैं, और पश्चिमी भिक्षुओं के मत धम्म के अनुरूप हैं। इसलिए, हे सलहा, जैसा धम्म है, वैसा ही अपना मत धारण करो!'

'हे देवता, पहले भी और अब भी, मैं धर्म के अनुरूप ही अपना रुख अपनाता हूँ। फिर भी, जब तक संघ मुझे इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिए नियुक्त नहीं कर देता, तब तक मैं अपनी राय प्रकट नहीं करूँगा।'

3. अब वैशाली के वज्जीय भिक्षु उपर्युक्त संपत्ति लेकर उस स्थान पर गए।

जहां पूज्य रेवता उपस्थित थे, वहां जाकर उन्होंने उनसे कहा: 'पूज्य थेरा को हमारे हाथों से समना के जीवन की ये आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने दें।'

लेकिन उन्होंने इसे लेने से इनकार कर दिया और कहा, 'ऐसा नहीं है, मेरे दोस्तों। मेरे पास वो सब कुछ है जो मैं चाहता हूं।'

उस समय, उत्तरा नाम का एक भिक्षु, जिसे संघ में प्रवेश किए हुए बीस वर्ष हो चुके थे, पूज्य रेवता का सेवक था। वैशाली के वज्जियन भिक्षु उसके पास गए और बोले: 'हे पूज्य, कृपया हमारे हाथों से समन जीवन की ये आवश्यक वस्तुएँ ग्रहण करें।'

लेकिन उन्होंने वही जवाब दिया।

फिर उन्होंने कहा: 'लोग भगवान बुद्ध को ऐसी वस्तुएँ अर्पित करते थे। यदि वे उन्हें ग्रहण कर लेते थे, तो वे प्रसन्न होते थे। यदि वे उन्हें ग्रहण नहीं करते थे, तो वे उन्हें पूज्य आनंद को अर्पित करते हुए कहते थे, "पूज्य थेरा को ये समना के जीवन की आवश्यक वस्तुएँ ग्रहण करने दीजिए: यह ऐसा ही होगा जैसे भगवान बुद्ध ने इन्हें ग्रहण किया हो। पूज्य उत्तरा को ये वस्तुएँ ग्रहण करने दीजिए: यह ऐसा ही होगा जैसे थेरा ने इन्हें ग्रहण किया हो।'

तब आदरणीय उत्तरा, वैशाली के वज्जीय भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार आग्रह किए जाने पर, एक वस्त्र स्वीकार करते हुए बोले, 'मित्रों, आप जो चाहें बता सकते हैं।'

आदरणीय उत्तरा, थेरा से हमारे लिए इतना कहें: "आदरणीय थेरा संघ की सभा में इतना कहें—'पूर्व के क्षेत्रों में ही बुद्ध, भगवान बुद्ध, जन्म लेते हैं। पूर्व के भिक्षु ही धम्म के अनुरूप मत रखते हैं, जबकि पश्चिम के भिक्षु ऐसा नहीं करते।'"

'जी हां, महाराज,' आदरणीय उत्तरा ने वैशाली के वज्जियन भिक्षुओं की बात से सहमति जताते हुए कहा। फिर वे रेवता के पास गए और उन्हें उनकी कही हुई बातें बताईं।

'हे भिक्षु, तुम मुझे धर्म के विरुद्ध कार्य करने के लिए उकसा रहे हो,' थेरा ने कहा और आदरणीय उत्तरा को विदा कर दिया।

और वैशाली के वज्जियन भिक्षुओं ने पूज्य उत्तरा से कहा: 'हे राक्षस उत्तरा, थेरा ने क्या कहा?'

'यह एक ऐसा पाप है जो आपने मुझ पर थोपा है, महोदय। थेरा ने मुझे यह कहकर विदा कर दिया है, "हे भिक्षु, तुम मुझे धर्म के विरुद्ध कार्य करने के लिए प्रेरित कर रहे हो।"'

'क्या आप, श्रीमान, बीस वर्ष (उपसम्पदा के बाद से) पूर्ण वयस्क नहीं हो गए हैं?'

'जी हां, महोदय, मैं हूं।'

'तो फिर हम आपके शिष्य बनकर आपके अधीन निस्सया ग्रहण करते हैं।'

4. अब संघ विधिक प्रश्न का निर्णय करने के उद्देश्य से एकत्रित हुआ। और पूज्य रेवता ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखते हुए कहा,

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। यदि हम इस प्रश्न का समाधान करें, तो हो सकता है कि जिन भिक्षुओं ने पहले इस मामले को अपने हाथ में लिया था, वे इसे फिर से उठा लें। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ इस प्रश्न का समाधान उसी स्थान पर करे जहाँ यह उत्पन्न हुआ था।'

तब थेरा भिक्षु इस मामले को सुलझाने के इरादे से वैशाली गए।

उस समय विश्व के सबसे वरिष्ठ थेरा, सब्बकामी नाम के व्यक्ति, जो उपसम्पदा की तिथि से एक सौ बीस वर्ष के थे और पूज्य आनंद के शिष्य थे, वैशाली में निवास कर रहे थे। पूज्य रेवता ने पूज्य संभूता सनवासी से कहा:

मैं उस विहार में जाऊँगा जहाँ थेरा सब्बकामी निवास करते हैं। आप भी आदरणीय सब्बकामी के पास शीघ्र जाइए और उनसे इन दस बिंदुओं के बारे में प्रश्न कीजिए।

'हे प्रभु, ऐसा ही हो,' आदरणीय संभूता सनवासी ने आदरणीय रेवता की बात से सहमति जताते हुए कहा।

और पूज्य रेवता उस विहार में आए जहाँ पूज्य सब्बकामी निवास करते थे; भीतरी कक्ष में रेवता के लिए और उसके सामने सब्बकामी के लिए सोने की व्यवस्था की गई। पूज्य रेवता ने यह सोचकर कि 'यह थेरा इतने वृद्ध होते हुए भी सोना नहीं चाहते,' विश्राम नहीं किया। और पूज्य सब्बकामी ने यह सोचकर कि 'यह भिक्षु यात्री और थका हुआ होते हुए भी सोना नहीं चाहते,' विश्राम नहीं किया।

5. फिर जब रात काफी बीत गई, तो पूज्य सब्बकामी ने पूज्य रेवता से कहा:

'प्रियजन, तुमने इन वर्षों में किस प्रकार का जीवन व्यतीत किया है?'

'प्रिय मित्र, प्रेम की भावना से प्रेरित होकर ही मैं इतने वर्षों तक निरंतर चलता रहा हूँ।'

'वे कहते हैं कि हे प्रिय, तुमने जीवन की सहजता से इस प्रकार निरंतरता बनाए रखी है: और वास्तव में, हे प्रिय, यही सहज जीवन है, (मेरा अर्थ है) प्रेम में निरंतर बने रहना।'

'बहुत समय पहले, महोदय, जब मैं एक साधारण व्यक्ति था, तब भी मेरे हृदय में बहुत प्रेम समाहित था, इसीलिए अब भी मैं प्रेम भाव से ही लीन रहता हूँ, और वास्तव में बहुत समय से अरहतत्व प्राप्त कर चुका हूँ। और आपने इन वर्षों में किस प्रकार का जीवन व्यतीत किया है?'

'प्रियतम, सांसारिक वस्तुओं के अभाव की भावना में बने रहकर ही मैंने इतने वर्ष व्यतीत किए हैं।'

'लोग कहते हैं कि आप, आदरणीय मित्र, महानता के लिए जन्मे व्यक्ति होने की भावना से प्रेरित होकर इस प्रकार आगे बढ़ते रहे हैं; और वास्तव में, आदरणीय मित्र, यह वही भावना है, (मेरा मतलब है) चीजों की शून्यता की भावना।'

'बहुत समय पहले, प्रियतम, जब मैं एक गृहस्थ था, तब भी मुझे चीजों की शून्यता का गहरा बोध था, इसलिए अब भी मैं उसी बोध में लीन रहता हूँ, और वास्तव में बहुत समय से मैंने अरहतत्व प्राप्त कर लिया है।'

6. थेरा भिक्षुओं के बीच यह बातचीत अभी समाप्त ही हुई थी कि पूज्य संभूता सनवासी वहाँ आ पहुँचे। वे पूज्य सब्बकामी के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनके बगल में बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने पूज्य सब्बकामी से कहा:

'वैशाली के इन वज्जियन भिक्षुओं ने वैशाली में ये दस बिंदु प्रतिपादित किए हैं;' और उन्होंने उन सभी से कहा, 'हे थेरा, अब आपने अपने गुरु के चरणों में धम्म और विनय में बहुत महारत हासिल कर ली है।'

तो फिर, हे थेरा, जब आप धम्म और विनय का चिंतन करते हैं, तो आप किस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं?—धर्म के अनुरूप किसका मत है, पूर्व के भिक्षुओं का या पश्चिम के भिक्षुओं का?

'हे महोदय, आपने भी अपने गुरु के चरणों में धम्म और विनय का बहुत ज्ञान प्राप्त किया है। तो फिर, हे महोदय, जब आप अपने मन में धम्म और विनय का चिंतन करते हैं, तो आप किस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं;—धर्म के अनुरूप किसका मत है, पूर्व के भिक्षुओं का या पश्चिम के भिक्षुओं का?'

हे प्रभु, धम्म और विनय का गहन अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पूर्वी भिक्षुओं का मत धम्म के अनुरूप नहीं है, जबकि पश्चिमी भिक्षुओं का मत धम्म के अनुरूप है। फिर भी, जब तक संघ मुझे इस विषय पर निर्णायक नियुक्त नहीं कर देता, तब तक मैं अपना मत प्रकट नहीं करना चाहता।

'हे महोदय, धम्म और विनय का गहन अध्ययन करने के बाद मैं भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पूर्वी भिक्षुओं का मत धम्म के अनुरूप नहीं है, जबकि पश्चिमी भिक्षुओं का मत धम्म के अनुरूप है। फिर भी, जब तक संघ मुझे इस विषय पर निर्णायक नियुक्त नहीं कर देता, तब तक मैं अपना मत प्रकट नहीं करना चाहता।'

7. तब संघ इस विधिक प्रश्न की जांच करने के उद्देश्य से एकत्रित हुआ। परन्तु जब वे इसकी जांच कर रहे थे, तब बहुत सी निरर्थक बातें हुईं और साथ ही यह भी पता चला कि

किसी भी भाषण में बात स्पष्ट नहीं थी। तब पूज्य रेवता ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा:

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। इस कानूनी प्रश्न पर चर्चा करते समय, बहुत सी बातें निरर्थक हैं और किसी भी बात का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ इस कानूनी प्रश्न को (न्यायालय को) सौंपकर इसका निपटारा करे।'

और उन्होंने पूर्व के चार भिक्षुओं और पश्चिम के चार भिक्षुओं को चुना—पूर्व के भिक्षुओं में से पूज्य सब्बकामी, पूज्य साल्हा, पूज्य खुग्गा-शोभिता और पूज्य वासभा-गामिका—और पश्चिम के भिक्षुओं में से पूज्य रेवता, पूज्य संभूता सनवासी, पूज्य काकंदक के पुत्र यासा और पूज्य सुमन। तब पूज्य रेवता ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा:

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। इस मामले की जांच के दौरान हमारे बीच बहुत सी व्यर्थ की बातें हुईं, और किसी भी बात का सार स्पष्ट नहीं है। यदि संघ को उचित लगे, तो संघ पूर्व के चार भिक्षुओं और पश्चिम के चार भिक्षुओं को इस प्रश्न का समाधान करने के लिए नियुक्त करे। यही संकल्प है।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले। इस मामले की जांच के दौरान हमारे बीच बहुत सी व्यर्थ की बातें हुई हैं, और किसी भी बात का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संघ पूर्व के चार भिक्षुओं और पश्चिम के चार भिक्षुओं को इस प्रश्न का समाधान करने के लिए नियुक्त करता है। जो कोई भी...'

यदि पूजनीय व्यक्तियों में से कोई इसे स्वीकार करता है, तो वह मौन रहे। जो इसे स्वीकार नहीं करता, वह बोले। प्रतिनिधिमंडल तदनुसार गठित किया जाता है। संघ इसे स्वीकार करता है, इसलिए यह मौन है। मैं इसे इसी प्रकार समझता हूँ।'

उस समय अजित नामक एक भिक्षु, जिन्हें दस वर्षों का अनुभव था, संघ को पतिमोक्खा सुनाते थे। संघ ने उन्हें थेरा भिक्षुओं के आसन नियामक के रूप में नियुक्त किया।

तब थेरा भिक्षुओं ने सोचा, 'अब हमें इस विधिक प्रश्न का निपटारा कहाँ करना चाहिए?' तभी उन्हें यह विचार आया: 'यह वालिका विश्राम एक सुखद, शांत और एकांत स्थान है। चलो इस मामले का निपटारा यहीं करते हैं।' और वहीं थेरा भिक्षुओं ने इस प्रश्न की छानबीन शुरू की।

8. तब पूज्य रेवता ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा: 'पूज्य संघ मेरी बात सुनिए। यदि संघ को उचित लगे, तो मैं पूज्य सब्बकामी से विनय के विषय में प्रश्न पूछूंगा।' और पूज्य सब्बकामी ने संघ के समक्ष एक प्रस्ताव रखा: 'यदि संघ को उचित लगे, तो रेवता द्वारा विनय के विषय में पूछे जाने पर मैं उत्तर दूंगा।'

और पूज्य रेवता ने पूज्य सब्बकामी से कहा: 'हे प्रभु, क्या सींग-नमक-लाभ की अनुमति दी जा सकती है?'

'महोदय, यह सींग-नमक-लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि किसी सींग में नमक भरकर इस इरादे से ले जाया जाए कि उसे बिना नमक वाले भोजन में डाला जाएगा?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहाँ खारिज किया गया था?'

'सावत्थी में, सुत्त विभंग में।'

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्त्य में, रखे हुए भोजन को खाने का चलन।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस प्रथम बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं प्रथम मत देता हूँ।'

'क्या दो इंच की छूट, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'सर, यह दो इंच का लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या दोपहर का भोजन उचित समय से आगे करना जायज़ है, बशर्ते कि सूर्य की छाया अभी दो इंच भी न बढ़ी हो?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहां खारिज किया गया है?'

'राजगृह में, सुत्त विभंग में।'

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्त्य के अनुसार, गलत समय पर भोजन करना।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस दूसरे बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं दूसरा मत देता हूँ।'

'क्या ग्राम भ्रमण का लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'यह ग्राम-यात्रा लाइसेंस क्या है, महोदय?'

'क्या यह जायज़ है कि जो व्यक्ति अपना भोजन समाप्त कर चुका है और आगे खाने से इनकार कर चुका है, वह बचे हुए भोजन को इस आधार पर खा ले कि वह गांव की ओर जाने वाला है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहाँ खारिज किया गया था?'

'सावत्थी में, सुत्त विभंग में।'

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्तिया का अर्थ है, बचा हुआ भोजन न खाने का अभ्यास करना।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस तीसरे बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं तीसरा मत देता हूँ।'

'क्या सर्किट लाइसेंस, लॉर्ड, स्वीकार्य है?'

'सर, यह सर्किट लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह उचित है कि एक ही परिसर में, एक ही सीमा के भीतर रहने वाले कई भिक्षु अलग-अलग उपोसथ आयोजित करें?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहाँ खारिज किया गया था?'

'राजगृह में, उपोसथ संयुत्त में'

'ऐसा करने वाला किस अपराध का दोषी है?' 'विनय का उल्लंघन करने का, दुक्कटा का।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा जांच किए जाने पर यह चौथा बिंदु झूठा धम्म और झूठा विनय पाया गया है, और यह गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं चौथा मत डालता हूँ।'

'क्या क्षतिपूर्ति लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह क्षतिपूर्ति लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह उचित है कि कोई संघ, जो विधिवत रूप से गठित नहीं है, इस आधार पर कोई आधिकारिक कार्य करे कि वे बाद में आने वाले भिक्षुओं की स्वीकृति प्राप्त कर लेंगे?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहाँ खारिज किया गया था?'

'कम्पेय्यक खंड में, विनय ग्रंथ के मुख्य भाग में।'

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'दुक्कटा द्वारा विनय की उपेक्षा करने के कारण।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस पाँचवें बिंदु की जाँच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना यह पाँचवाँ मत देता हूँ।'

'क्या पूर्व उदाहरण के आधार पर दी गई छूट, हे प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह पूर्व-अनुमानित लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि मैं किसी काम को इस आधार पर करूँ कि "मेरे गुरु (उपाज्जया) ने यह किया है," या "मेरे शिक्षक (आचार्य (शिक्षक)) ने वह किया है?"'

'कुछ मामलों में, महोदय, यह स्वीकार्य है, और कुछ में नहीं।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस छठे बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना छठा मत देता हूँ।'

'क्या मंथन का लाइसेंस, प्रभु, स्वीकार्य है?'

'महोदय, यह मंथन लाइसेंस क्या है?'

'हे प्रभु, क्या यह जायज़ है कि जो व्यक्ति अपना भोजन समाप्त कर चुका है और आगे कुछ भी खाने से इनकार कर चुका है, वह भोजन के बाद बचा हुआ दूध न पिए, इस आधार पर कि वह दूध की अवस्था से निकल चुका है और अभी तक दही की अवस्था तक नहीं पहुँचा है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'ऐसा दावा कहाँ खारिज किया गया था?'

'सावत्थी में, सुत्त विभंग में।'

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्तिया का अर्थ है, बचा हुआ भोजन न खाने का अभ्यास करना।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस सातवें बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना यह सातवां मत देता हूं।'

'हे प्रभु, क्या ताड़ी पीना जायज़ है?'

'यह ताड़ी क्या है, महोदय?'

'हे प्रभु, क्या उन शराबों का सेवन करना जायज़ है जो अभी तक शराब नहीं बनी हैं और जिनमें अभी तक मादक गुण नहीं आए हैं?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'इसे कहाँ अस्वीकार किया गया था?'

'कोसंबी में, सुत्त विभंग में:

'ऐसा करने वाला व्यक्ति किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्त्य में, किण्वित मादक पेय और मादक पेय का सेवन करना।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुन ले। संघ द्वारा जांच किए जाने पर पाया गया है कि आठवां बिंदु झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना आठवां मत देता हूँ।'

'हे प्रभु, क्या बिना झालर वाला आसन स्वीकार्य है?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'इसे कहाँ अस्वीकार किया गया है?'

'सावत्थी में, सुत्त विभंग में।'

'जो व्यक्ति इस प्रकार की सीट का उपयोग करता है, वह किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्त्य के संदर्भ में, किसी ऐसी वस्तु का उपयोग करना जिसे उचित आकार में काटा जाना चाहिए।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस नौवें बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना नौवां मत देता हूं।'

'हे प्रभु, क्या सोना और चांदी स्वीकार्य हैं?'

'नहीं महोदय, इसकी अनुमति नहीं है।'

'यह कहाँ प्रतिबंधित था?'

'राजगृह में, सुत्त विभंग में।'

'जो इसे लेता है, वह किस अपराध का दोषी है?'

'पचित्तियों द्वारा सोना और चांदी स्वीकार करने के कारण।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इस दसवें बिंदु की जांच करने पर यह पाया गया है कि यह झूठा धम्म और झूठा विनय है, और गुरु के उपदेशों में निहित नहीं है। अतः मैं अपना दसवां मत देता हूँ।'

'आदरणीय संघ मेरी बात सुनिए। संघ द्वारा इन दस बिंदुओं की जांच करने पर यह पाया गया है कि ये झूठे धम्म और झूठे विनय हैं, और गुरु की शिक्षाओं में निहित नहीं हैं।'

'यह कानूनी प्रश्न, महोदय, समाप्त हो चुका है; और इसका निपटारा हो जाने के बाद, यह हमेशा के लिए तय हो गया है। फिर भी, महोदय, क्या आप इन दस बिंदुओं पर संघ के बीच में भी मुझसे प्रश्न करेंगे, ताकि उन भिक्षुओं को समझाया जा सके?'

अतः पूज्य रेवता ने संघ के बीच में ही पूज्य सब्बकामी से दस बिंदुओं पर प्रश्न पूछे, और जब उनसे एक-एक करके प्रश्न पूछे गए, तो पूज्य सब्बकामी ने उत्तर दिए।

9. अब चूंकि विनय के इस पाठ में सात सौ भिक्षुओं ने बिना किसी अतिरिक्त भिक्षु की अनुपस्थिति के भाग लिया, इसलिए विनय के इस पाठ को 'सात सौ भिक्षुओं का पाठ' कहा जाता है।

=========
सात सौ शिष्यों द्वारा पाठ पर आधारित बारहवां खंडक यहीं समाप्त होता है।

<<<< पिछला(12.1)

दीघा निकया

संपादन करने के लिए लॉग इन करें

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> **दीघ निकाय**
दीघा **निकाय ("लंबे प्रवचनों का संग्रह")** सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से पहला है । दीघा निकाय के कुछ सबसे अधिक संदर्भित सूत्रों में महा-परिनिर्वाण सूत्र (DN 16) शामिल है, जिसमें बुद्ध के अंतिम दिनों और मृत्यु का वर्णन है; सिगालोवादा सूत्र (DN 31), जिसमें बुद्ध ने गृहस्थ अनुयायियों के लिए नैतिकता और प्रथाओं पर चर्चा की है; समञ्ञफल (DN 2) और ब्रह्मजल सूत्र (DN 1), जो ब्रह्मांड और समय (भूतकाल, वर्तमान और भविष्य) के बारे में भारत में बुद्ध और अन्य तपस्वियों के दृष्टिकोण का वर्णन और तुलना करते हैं; और पोत्थपाद सूत्र (DN 9), जो समाथा ध्यान (शांत ध्यान) के लाभों और अभ्यास का वर्णन करता है।

दीघा निकाय में 34 प्रवचन हैं, जिन्हें तीन समूहों में विभाजित किया गया है:

- 1 सिलखन्ध-वग्ग
- 2 महा-वग्ग
- 3 पटिका-वग्गा
- 4 अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
- 5 हिंदी संस्करण
- 6 मूल पाली संस्करण

सिलक्खंध-वग्ग
नैतिकता संबंधी विभाजन (13 सूत्र)

1. ब्रह्मजाल सूत्र (1) "महान जाल" या सार्वभौमिक जाल (विश्व का), जिसमें सभी प्राणी मछली की तरह फंसे हुए हैं और उस समय के अन्य शिक्षकों द्वारा सिखाए गए विश्व और स्वयं के बारे में अटकलों के 62 विधर्मी रूप।
2. समन्नाफल सूत्र (2) "सन्यासी जीवन के फल"। बुद्ध राजा अजातसत्तु को बौद्ध संघ में शामिल होने और सांसारिक जीवन का त्याग करने के लाभों के बारे में बताते हैं।
3. अंबत्था सूत्र (3) जन्म का अभिमान और उसका पतन। जाति पर अंबत्था के साथ संवाद। इसमें शाक्य वंश के पारंपरिक संस्थापक राजा ओक्काका की कथा का संदर्भ है।
4. सोनादंडा सूत्र (4) सच्चे ब्राह्मण के लक्षणों पर ब्राह्मण सोनादंडा के साथ संवाद ।56
5. कुटदंत सुत्त (5) पशु बलि की निंदा करते हुए ब्राह्मण कुटदंत के साथ संवाद। 66
6. महाली सूत्र (6) देव जैसी दृष्टि और श्रवण तथा पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति पर महाली के साथ संवाद। 74
7. जलिया सूत्र (7) शरीर की तुलना में जीवन सिद्धांत की प्रकृति पर। 78
8. कस्सपसिहनदा सुत्त (8) आत्म-यातना के विरुद्ध नग्न तपस्वी कस्सप के साथ संवाद। 80
9. पोत्थपाद सूत्र (9) आत्मा की प्रकृति पर पोत्थपाद के साथ एक चर्चा, जिसमें बुद्ध कहते हैं कि प्रश्न अप्रासंगिक है और ज्ञानोदय के लिए अनुकूल नहीं है। 90
10. सुभा सुत्त (दिग्ना निकाया) (10) आनंद को समर्पित आचरण, एकाग्रता और ज्ञान पर एक प्रवचन। 99
11. केवद्ध सूत्र (11) बुद्ध ने एक भिक्षु को चमत्कार करने की अनुमति नहीं दी। उस भिक्षु की कहानी जिसने देवताओं से प्रश्न पूछने के लिए उनके दर्शन किए। निर्वाण/मोक्ष की अवस्था का वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। 101
12. लोहिच्चा सूत्र (12) शिक्षण की नैतिकता पर ब्राह्मण लोहिच्चा के साथ संवाद। 118
13. तेविज्जा सूत्र (13) ब्रह्मा के साथ सहवास प्राप्त करने के साधन के रूप में वेदों के ज्ञान की निरर्थकता पर। 131

महा-वग्ग
बड़ा प्रभाग (10 सुत्त)

1. महा-पदना सूत्र (14) बुद्ध गौतम और उनके छह पूर्ववर्तियों की उदात्त कथा; बुद्ध विपस्सी पर प्रवचन भी; तुषिता स्वर्ग से उनके अवतरण से उनके मिशन की शुरुआत तक। 145
2. महा-निदान सूत्र (15) कारण-कार्य श्रृंखला और आत्मा के सिद्धांतों पर ।163
3. महा-परिनिर्वाण सूत्र (16) तथागत के परिनिर्वाण में प्रवेश के वृत्तांत का महान प्रवचन। 174

4. महा सुदस्सन सूत्र (17) महिमा के महान राजा। बुद्ध के पूर्व जन्म की कथा, राजा सुदस्सन के रूप में। बुद्ध द्वारा अपनी मृत्यु शैया पर सुनाई गई। 220
5. जनवसभा सुत्त (18) बुद्ध यक्ख जनवसभ की कहानी नादिका के लोगों से जोड़ते हैं। 229
6. महा गोविंदा सूत्र (19) स्वर्गिक संगीतकार पंचसिखा बुद्ध को महा गोविंदा की कहानी सुनाते हैं, जो कहते हैं कि वे स्वयं महा गोविंदा थे। 238
7. महा-समय सूत्र (20) शुद्ध धाम के देव और उनका विकास। 248
8. सक्कपन्हा सूत्र (21) देवों के स्वामी सक्का बुद्ध से मिलने आते हैं और उनसे सीखते हैं कि जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह विघटन के अधीन भी होता है। 252
9. महा-सतिपट्ठाना सूत्र (22) शरीर, भावनाओं, विचारों और मन की अवस्थाओं पर चार महान ध्यान पर प्रवचन। चार सत्यों पर एक टिप्पणी के साथ। 267
10. पयसी सूत्र (23) पयसी पुनर्जन्म/पुनर्जन्म और कर्मों के फल (कर्म/कर्म) पर विवाद करते हैं, लेकिन स्वयं इसका अनुभव करते हैं। 278

पटिका-वग्गा

पतिका प्रभाग (11 सुत्त)

1. पतिका सूत्र (24) उस शिष्य की कहानी जो अन्य शिक्षकों का अनुसरण करता है क्योंकि बुद्ध चमत्कार नहीं करते या चीजों की उत्पत्ति नहीं सिखाते। 280
2. उदुम्बरिकासिहानादा सुत्त (25) बुद्ध तपस्वी निग्रोध के साथ तपस्या पर चर्चा करते हैं। 291
3. चक्कवत्तिसिहनदा सुत्त (26) सार्वभौमिक राजा की कहानी, नैतिकता का भ्रष्टाचार और उनकी बहाली, और भविष्य के बुद्ध मेत्तेय का आगमन। 302
4. अग्गन्ना सुत्त (27) जाति पर चर्चा, और चीजों की उत्पत्ति पर एक व्याख्या (जैसा कि सुत्त 24 में है) चार जातियों की उत्पत्ति तक। 309
5. संपसादनिया सूत्र (28) बुद्ध और सारिपुत्त के बीच संवाद, जिसमें सारिपुत्त बुद्ध की शिक्षाओं का वर्णन करते हैं और उनमें अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। 316
6. पासादिका सूत्र (29) आनंदमय प्रवचन। पूर्ण और अपूर्ण शिक्षक पर बुद्ध का प्रवचन। 323
7. लक्खना सूत्र (30) एक महान व्यक्ति के 32 लक्षण। 335
8. सिगालोवादा सुत्त (31) गृहस्थ के छह वर्गों के व्यक्तियों के प्रति कर्तव्यों पर सिगाला उपदेश। 349
9. अतनातिया सूत्र (32) चार महान राजाओं और बुराई से बचाव के लिए उनके मंत्र पर। 359
10. संगीति सूत्र (33) सारिपुत्त ने दस संख्यात्मक समूहों में शिक्षा के सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत की है। 380
11. दसुत्तरा सुत्त (34) सारिपुत्त ने दस गुना श्रृंखला में सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत की है। 428

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.1: ब्रह्मजला सुत्त (डीएन 1)

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान बुद्ध राजगृह और नालंदा के बीच मुख्य मार्ग पर लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ यात्रा कर रहे थे। उसी मार्ग पर सुप्पिया नामक एक साधु भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ यात्रा कर रहा था। सुप्पिया बुद्ध, धम्म और संघ में अनेक प्रकार की कमियाँ निकाल रहा था, जबकि उसका शिष्य ब्रह्मदत्त उनकी प्रशंसा में विभिन्न प्रकार से बोल रहा था। इस प्रकार ये दोनों, गुरु और शिष्य, एक-दूसरे के तर्कों का सीधा विरोध करते हुए, भगवान बुद्ध और उनके भिक्षुओं के समूह के ठीक पीछे चल रहे थे।

फिर भगवान बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ अंबलत्थिका के राजमहल में एक रात्रि के लिए ठहरे। सुप्पिया भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ वहीं रात्रि के लिए रुके। सुप्पिया बुद्ध, धम्म और संघ की निंदा करते रहे, जबकि उनके शिष्य ब्रह्मदत्त ने उनका बचाव किया। इस प्रकार वाद-विवाद करते हुए वे बुद्ध और उनके भिक्षुओं के पीछे-पीछे चलने लगे।

अब सुबह तड़के कई भिक्षु उठकर गोल मंडप में एकत्रित हुए और उनकी बातचीत का विषय कुछ इस प्रकार था: "हे मित्रों, यह कितना अद्भुत है, कितना आश्चर्यजनक है कि परम पूज्य भगवान, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्तियों को जानते, देखते और स्पष्ट रूप से पहचानते हैं! क्योंकि यहाँ पर भिक्षु सुप्पिया बुद्ध, धम्म और संघ में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ निकाल रहे हैं, जबकि

उनके शिष्य ब्रह्मदत्त अनेक प्रकार से उनका बचाव कर रहे हैं। और, वाद-विवाद करते हुए, वे भगवान और उनके भिक्षुओं के संघ के पीछे-पीछे चल रहे हैं।"

तब भगवान ने भिक्षुओं की बातें सुनकर गोल मंडप में जाकर वहाँ बनी हुई आसन पर बैठ गए। फिर उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, अभी आपकी बातचीत का विषय क्या था? मैंने किस बात में बाधा डाली?" और उन्होंने उन्हें बताया।

"भिक्षुओं, यदि कोई मेरी, धम्म की या संघ की निंदा करे, तो उस पर क्रोधित, नाराज़ या परेशान न हों। यदि आप ऐसी निंदा पर क्रोधित या नाराज़ होंगे, तो यह केवल आपके लिए बाधा उत्पन्न करेगा। क्योंकि यदि दूसरे मेरी, धम्म की या संघ की निंदा करें और आप क्रोधित या नाराज़ हों, तो क्या आप यह पहचान सकते हैं कि वे जो कह रहे हैं वह सही है या गलत?" 'नहीं, भगवान।' "यदि दूसरे मेरी, धम्म की या संघ की निंदा करें, तो आपको यह समझाना होगा कि क्या गलत है, यह कहते हुए: 'यह गलत है, यह झूठ है, यह हमारा मार्ग नहीं है, यह हमारे बीच नहीं पाया जाता है।'"

लेकिन, भिक्षुओं, यदि दूसरे मेरी, धम्म की या संघ की प्रशंसा करें, तो इस कारण प्रसन्न, प्रसन्न या उत्साहित न हों। यदि आप ऐसी प्रशंसा से प्रसन्न, प्रसन्न या उत्साहित होंगे, तो यह आपके लिए केवल बाधा ही होगी। यदि दूसरे मेरी, धम्म की या संघ की प्रशंसा करें, तो आपको सत्य की सच्चाई को स्वीकार करते हुए कहना चाहिए: 'यह सही है, यह उचित है, यह हमारा मार्ग है, यह हमारे बीच पाया जाता है।'

"भिक्षुओं, सांसारिक मनुष्य तथागत (बुद्ध) की प्रशंसा नैतिक आचरण के बुनियादी, निम्नतर मामलों के लिए करते हैं। और वे बुनियादी, निम्नतर मामले क्या हैं जिनके लिए सांसारिक मनुष्य उनकी प्रशंसा करते हैं?"

नैतिकता पर संक्षिप्त खंड

"जीवन लेने का त्याग करके, तपस्वी गौतम बिना लाठी-तलवार के, जीवन लेने से परहेज करते हुए, संशयपूर्ण, करुणामय और समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए भयभीत होकर निवास करते हैं।" इस प्रकार सांसारिक व्यक्ति तथागत की प्रशंसा करता है। "अनावश्यक वस्तुओं को लेने का त्याग करके, तपस्वी गौतम शुद्ध जीवन व्यतीत करते हैं, जो कुछ प्राप्त होता है उसे स्वीकार करते हैं, जो कुछ प्राप्त होता है उसकी प्रतीक्षा करते हैं, और चोरी नहीं करते। अपवित्रता का त्याग करके, तपस्वी गौतम उससे दूर, ग्राम-कालीन यौन क्रियाओं से विरक्त होकर निवास करते हैं।"

"झूठे शब्दों का त्याग करके, तपस्वी गौतम सत्य का वाचाल, विश्वसनीय, भरोसेमंद और संसार को धोखा न देने वाला होता है। द्वेषपूर्ण शब्दों का त्याग करके, वह यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों के लिए हानिकारक बनाकर न तो दोहराता है और न ही वहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों के लिए हानिकारक बनाकर। इस प्रकार वह मतभेदियों के बीच सुलह कराने वाला और एकता में रहने वालों को प्रोत्साहित करने वाला होता है, शांति में आनंदित, उससे प्रेम करने वाला और शांति का समर्थक होता है। कठोर शब्दों का त्याग करके, वह उनसे दूर रहता है। वह निर्दोष, कानों को भाने वाले, हृदय को छूने वाले, शिष्ट और जनमानस को भाने वाले वचन बोलता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह उचित समय पर, सही और सटीक, धर्म और अनुशासन की बातें बोलता है। वह ऐसा वक्ता है जिसके शब्द अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सुस्पष्ट और लक्ष्य से जुड़े होते हैं।" इस प्रकार सांसारिक व्यक्ति तथागत की स्तुति करेगा।

"तपस्वी गौतम बीज और फसलों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करते हैं। वे दिन में एक बार भोजन करते हैं और रात में नहीं खाते, अनुचित समय पर भोजन करने से बचते हैं। वे नाच-गाना, संगीत और तमाशे देखने से परहेज करते हैं। वे माला, इत्र, सौंदर्य प्रसाधन, आभूषण और सजावट का उपयोग नहीं करते। वे ऊंचे या चौड़े पलंगों का उपयोग नहीं करते। वे सोना और चांदी स्वीकार नहीं करते। वे कच्चा अनाज या कच्चा मांस स्वीकार नहीं करते, वे स्त्रियों और युवतियों, पुरुष या स्त्री दासों, भेड़-बकरियों, मुर्गों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों, खेतों और भूखंडों को स्वीकार नहीं करते। वे छोटे-मोटे काम करने, खरीद-फरोख्त करने, गलत वजन और माप से धोखाधड़ी करने, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार, छल और बेईमानी से दूर रहते हैं, वे किसी को चोट पहुंचाने, हत्या करने, कैद करने, लूटपाट करने और जबरदस्ती भोजन छीनने से परहेज करते हैं।" इस प्रकार सांसारिक व्यक्ति तथागत की प्रशंसा करेगा।

मध्य भाग: नैतिकता

"जबकि, हे सज्जनों, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, भक्तों का भोजन ग्रहण करते हुए, जड़ों, तनों, जोड़ों, कलमों और बीजों से उत्पन्न होने वाले बीजों को नष्ट करने के आदी हैं, वहीं तपस्वी गौतम ऐसा विनाश नहीं करते।" इस प्रकार सांसारिक व्यक्ति तथागत (बुद्ध) की प्रशंसा करेगा।

"जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण भक्तों के भोजन पर निर्भर रहकर भोजन, पेय पदार्थ, वस्त्र, रथ, बिस्तर, इत्र, मांस जैसी संचित वस्तुओं के भोग में लिप्त रहते हैं, वहीं तपस्वी गौतम ऐसे भोग से परहेज करते हैं।"

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ... नृत्य, गायन, संगीत, प्रदर्शन, पाठ, हस्तसंगीत, झांझ और ढोल, परी-शो, [16] कलाबाजी और जादूगरी के करतब, हाथियों, भैंसों, बैलों, बकरियों, मेढ़ों, मुर्गों और बटेरों की लड़ाई, लाठियों से लड़ाई, मुक्केबाजी, कुश्ती, नकली लड़ाई, परेड, युद्धाभ्यास और सैन्य समीक्षा जैसे प्रदर्शनों में भाग लेने के आदी रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसे प्रदर्शनों में भाग लेने से परहेज करते हैं।

"जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आठ या दस पंक्तियों वाले शतरंज, हवा में शतरंज, हॉपस्कॉच, स्पिलिकिन्स, पासा खेलना, डंडे मारना, हस्तचित्र बनाना, गेंद के खेल, खिलौने वाली पाइपों से फूंक मारना, खिलौने वाले हल से खेलना, कलाबाजी करना, खिलौने वाली पवनचक्कियों से खेलना, नाप-तोल, रथ और धनुष से खेलना, अक्षरों का अनुमान लगाना, विचारों का अनुमान लगाना, विकृतियों की नकल करना जैसे खेलों और व्यर्थ के कामों में लगे रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसे व्यर्थ के कामों से दूर रहते हैं।"

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऊँचे और चौड़े पलंगों और लंबी कुर्सियों, जानवरों की आकृतियों से सजे सोफे, ऊनी या बहुरंगी चादरों, दोनों तरफ या एक तरफ बालों वाली चादरों, रत्नों से सजी या बिना रत्नों वाली रेशमी चादरों, हाथी, घोड़े या रथ की चटाईयों, हिरण की खाल से बने उत्तम चादरों, शामियाने वाले सोफे या दोनों सिरों पर लाल तकियों वाले सोफे के आदी रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसे ऊँचे और चौड़े पलंगों से परहेज करते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण शरीर पर इत्र मलने, मालिश करने, सुगंधित जल से स्नान करने, शैम्पू करने, दर्पण का उपयोग करने, मलहम, माला, सुगंध, सौंदर्य प्रसाधन, कंगन, सिर के पट्टे, सुंदर छड़ें, बोतलें, तलवारें, धूप से बचने के चश्मे, सजे हुए सैंडल, पगड़ी, रत्न, याक की पूंछ के पंखे, लंबे झालरदार सफेद वस्त्र जैसे आत्म-सजावट और अलंकरण के रूपों के आदी रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसे आत्म-सजावट से परहेज करते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण राजाओं, लूटपाट करने वाले मंत्रियों, सेनाओं, खतरों, युद्धों, भोजन, पेय, वस्त्र, बिस्तर, मालाओं, इत्रों, रिश्तेदारों, रथों, गांवों, कस्बों और शहरों, देशों, महिलाओं, वीरों, गली-गली की गपशप, दिवंगत आत्माओं की चर्चा, निरर्थक बातचीत, भूमि और समुद्र के बारे में अटकलें, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व के बारे में चर्चा जैसी निरर्थक बातों में लिप्त रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसी बातों से दूर रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण वाद-विवाद में लिप्त रहते हैं, जैसे कि:

'तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को नहीं समझते - मैं समझता हूँ!' 'तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को कैसे समझ सकते हो?' 'तुम्हारा तरीका पूरी तरह गलत है - मेरा सही है!' 'मैं सुसंगत हूँ - तुम नहीं!' 'तुमने वह बात सबसे आखिर में कही जो तुम्हें सबसे पहले कहनी चाहिए थी, और तुमने वह बात सबसे पहले कही जो तुम्हें सबसे आखिर में कहनी चाहिए थी!' 'जिस बात को सोचने में तुमने इतना समय लगाया, वह गलत साबित हो गई!' 'तुम्हारा तर्क धराशायी हो गया है, तुम हार गए!' 'जाओ, अपने सिद्धांत को बचाओ - अगर हो सके तो इससे बाहर निकलो!'

तपस्वी गौतम इस प्रकार के वाद-विवाद से दूर रहते हैं।

"जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण राजाओं, मंत्रियों, कुलीनों, ब्राह्मणों, गृहस्थों और युवकों के लिए संदेशवाहक और इधर-उधर जाने जैसे कामों में लगे रहते हैं, जो कहते हैं: 'यहाँ जाओ - वहाँ जाओ! इसे वहाँ ले जाओ, उसे वहाँ से लाओ!' वहीं तपस्वी गौतम ऐसे कामों से दूर रहते हैं।"

"जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण छल, चापलूसी, इशारेबाजी, अपमान करने और निरंतर लाभ की लालसा में लिप्त रहते हैं, तपस्वी गौतम ऐसे छल से दूर रहते हैं।" इस प्रकार सांसारिक व्यक्ति तथागत की प्रशंसा करेगा।

नैतिकता पर विस्तृत खंड

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण भक्तों के भोजन पर निर्भर रहकर हस्तरेखा शास्त्र, संकेतों, शकुनों, स्वप्नों, शरीर के चिह्नों, चूहे कुतरने, अग्नि आहुति, भूसी, चावल के पाउडर, चावल के दाने, घी या तेल से आहुति, मुख से या रक्त से आहुति, उंगलियों के निशान पढ़ना, घर और बगीचे का ज्ञान, मंत्रों में निपुणता, भूत-प्रेत का ज्ञान, मिट्टी के घर का ज्ञान, नागों का ज्ञान, विषों का ज्ञान, चूहों का ज्ञान, पक्षियों का ज्ञान, कौवों का ज्ञान, किसी व्यक्ति की आयु का पूर्वानुमान लगाना, बाणों से बचाव के मंत्र, पशुओं की आवाजों का ज्ञान

जैसी नीच कलाओं और आजीविका के ऐसे गलत साधनों से अपना जीवन यापन करते हैं, तपस्वी गौतम ऐसी नीच कलाओं और आजीविका के गलत साधनों से विरक्त रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण रत्नों, लाठियों, वस्त्रों, तलवारों, भालों, बाणों, हथियारों, स्त्रियों, पुरुषों, लड़कों, लड़कियों, पुरुष और महिला दासों, हाथियों, घोड़ों, भैंसों, बैलों, गायों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गों, बटेरों, इगुआना, बांस के चूहों, कछुओं, हिरणों के चिह्नों का मूल्यांकन करने जैसी नीच कलाओं से जीविका कमाते हैं, तपस्वी गौतम ऐसी नीच कलाओं से दूर रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण 'प्रमुख आगे बढ़ेंगे - प्रमुख वापस लौटेंगे', 'हमारे प्रमुख आगे बढ़ेंगे और दूसरे प्रमुख पीछे हटेंगे', 'हमारे प्रमुख जीतेंगे और दूसरे प्रमुख हारेंगे', 'दूसरे प्रमुख जीतेंगे और हमारे हारेंगे', 'इस प्रकार एक पक्ष की जीत होगी और दूसरे की हार होगी' जैसी नीच कलाओं से अपनी जीविका कमाते हैं, तपस्वी गौतम ऐसी नीच कलाओं से दूर रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण चंद्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, नक्षत्र ग्रहण की भविष्यवाणी करके जीविका कमाते हैं; यह भविष्यवाणी करते हैं कि सूर्य और चंद्रमा अपने सही मार्ग पर चलेंगे - लेकिन भटक जाएंगे; यह भविष्यवाणी करते हैं कि नक्षत्र पर उल्कापिंडों की वर्षा होगी, आकाश में आग भड़केगी, भूकंप आएगा, गरज होगी; चंद्रमा, सूर्य और तारों का उदय, अस्त, अंधकारमय होना, प्रकाशमान होना आदि की भविष्यवाणी करते हैं; और 'इन घटनाओं का यही परिणाम होगा', वहीं तपस्वी गौतम ऐसी नीच कलाओं और जीविका के गलत साधनों से दूर रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण अच्छी या बुरी बारिश, अच्छी या बुरी फसल, सुरक्षा, खतरा, बीमारी, स्वास्थ्य जैसी नीच कलाओं से अपना जीवन यापन करते हैं; या लेखांकन, गणना, काव्य रचना, दर्शनशास्त्र जैसी कलाओं से जीविका कमाते हैं, तपस्वी गौतम ऐसी नीच कलाओं और जीविका के गलत साधनों से दूर रहते हैं।

जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण विवाह, सगाई और तलाक की व्यवस्था करने, बचत और खर्च का समय निर्धारित करने, सौभाग्य या दुर्भाग्य लाने, गर्भपात कराने, जीभ बांधने, जबड़े को बांधने, हाथों को झटकने, बहरापन पैदा करने, दर्पण, स्त्री-माध्यम या देव से उत्तर प्राप्त करने, सूर्य या ब्रह्मा की पूजा करने, अग्नि-प्रवेश करने, भाग्य की देवी का आह्वान करने जैसे नीच कामों से जीविका कमाते हैं, वहीं तपस्वी गौतम ऐसे नीच कामों और जीविका के गलत साधनों से दूर रहते हैं।

"जबकि कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, भक्तों के भोजन पर निर्भर रहकर, ऐसे नीच कामों और आजीविका के ऐसे गलत साधनों से अपना जीवन यापन करते हैं जैसे कि देवताओं को प्रसन्न करना और उनके प्रति प्रतिज्ञाओं का प्रायश्चित करना, मिट्टी के घर बनाना, पौरुष या नपुंसकता पैदा करना, भवन निर्माण स्थलों को तैयार करना और पवित्र करना, अनुष्ठानिक स्नान कराना, यज्ञ करना, उल्टी कराने वाली दवाएँ, दस्त कराने वाली दवाएँ, कफ निस्सारक और कफनाशक दवाएँ देना, कान, आँख, नाक की दवा, मलहम और प्रतिमलहम देना, आँखों की सर्जरी, सर्जरी, बाल चिकित्सा, पिछले उपचारों के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए मलहम का उपयोग करना, तपस्वी गौतम ऐसे नीच कामों और आजीविका के गलत साधनों से दूर रहते हैं।" [31] हे भिक्षुओं, सांसारिक लोग तथागत (बुद्ध) की प्रशंसा नैतिक आचरण के ऐसे प्राथमिक, निम्नतर मामलों के लिए ही करते हैं।

"हे भिक्षुओं, कुछ अन्य विषय भी हैं, जो गहन, दृष्टि से कठिन, बोध से कठिन, शांतिपूर्ण, उत्कृष्ट, मात्र चिंतन से परे, सूक्ष्म और ज्ञानियों द्वारा अनुभव किए जाने योग्य हैं, जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही कहेंगे। और ये विषय क्या हैं?"

बासठ प्रकार के गलत विचार

"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो अतीत के बारे में अटकलें लगाते हैं, अतीत के बारे में उनके निश्चित विचार होते हैं, और वे अतीत के बारे में अठारह अलग-अलग तरीकों से विभिन्न काल्पनिक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। वे ऐसा किस आधार पर करते हैं?"

"कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो शाश्वतवादी हैं, जो चार तरीकों से आत्मा और संसार की शाश्वतता का बखान करते हैं। किस आधार पर?"

गलत धारणा संख्या 1 : "हे भिक्षुओं, यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने परिश्रम, लगन, परिश्रम, गंभीरता और उचित ध्यान के माध्यम से मानसिक एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि वह अपने पिछले जन्मों को याद करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस जन्म, सौ, हज़ार, एक लाख जन्म, कई सौ, कई हज़ार, कई लाख जन्म। 'वहाँ मेरा नाम फलां था, मेरा गोत्र फलां था, मेरी जाति फलां थी, मेरा भोजन फलां था, मैंने फलां सुख और दुख के अनुभवों का सामना किया, मैं इतने समय तक जीवित रहा। वहाँ से मृत्यु के बाद,

मैं वहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ मेरा नाम फलां था... और वहाँ से मृत्यु के बाद, मैं यहाँ उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वे अपने अनेक पूर्व जन्मों, उनकी परिस्थितियों और विवरणों को याद करते हैं। और वे कहते हैं: 'आत्मा और संसार शाश्वत हैं, पर्वत शिखर के समान निर्जीव, खंभे के समान दृढ़ता से स्थापित। ये प्राणी चक्कर लगाते हैं, घूमते हैं, मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, परन्तु आत्मा शाश्वत बनी रहती है। ऐसा क्यों? मैंने परिश्रम और लगन से ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त की है कि मुझे अपने अनेक पूर्व जन्म याद आ गए हैं। इसी प्रकार मैं जानता हूँ कि आत्मा और संसार शाश्वत हैं...' यही वह पहला तरीका है जिससे कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की शाश्वतता का बखान करते हैं।
गलत धारणा संख्या 2 : "और दूसरा तरीका क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने परिश्रम और लगन से ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त कर ली है कि वह संकुचन और विस्तार की एक अवधि, दो अवधियाँ, तीन, चार, पाँच, दस अवधियों को याद कर लेता है... 'यहाँ मेरा नाम फलां-फलां था...' यही दूसरा तरीका है जिससे कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की शाश्वतता का बखान करते हैं।"
तीसरा गलत दृष्टिकोण : "तीसरा तरीका क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने परिश्रम से ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त कर ली है कि वह संकुचन और विस्तार के दस, बीस, तीस, चालीस काल को याद करता है। 'वहाँ मेरा नाम फलां-फलां था...' यही वह तीसरा तरीका है जिससे कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की शाश्वतता का बखान करते हैं।"
गलत दृष्टिकोण संख्या 4 : "और चौथा तरीका क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण तर्कशास्त्री है। अपने विचार के आधार पर तर्क देते हुए वह कहता है: 'आत्मा और संसार शाश्वत हैं, पर्वत शिखर की तरह निर्जीव, खंभे की तरह दृढ़ता से स्थापित। ये प्राणी चक्कर लगाते हैं, घूमते हैं, नष्ट होते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, लेकिन यह हमेशा के लिए बना रहता है।' यही चौथा तरीका है जिससे कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की शाश्वतता का बखान करते हैं।"

"ये चार तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण शाश्वतवादी हैं और चार आधारों पर आत्मा और संसार की शाश्वतता का प्रचार करते हैं। और जो भी तपस्वी या ब्राह्मण शाश्वतवादी हैं और आत्मा और संसार की शाश्वतता का प्रचार करते हैं, वे इन्हीं चार आधारों में से किसी एक पर ऐसा करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) यह समझते हैं: इन विचारों को ग्रहण करने और इनका पालन करने से परलोक में अमुक-अमुक गंतव्य प्राप्त होंगे। तथागत यह जानते हैं, और इससे भी अधिक, परन्तु वे इस ज्ञान से आसक्त हैं। और इस प्रकार अनासक्त होकर उन्होंने स्वयं पूर्ण शांति का अनुभव किया है, और भावों के उत्पन्न होने और नष्ट होने, उनके आकर्षण, खतरे और उनसे मुक्ति को सही मायने में समझकर तथागत पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।"

"हे भिक्षुओं, कुछ अन्य विषय भी हैं, जो गहन, दृष्टि से कठिन, बोध से कठिन, शांतिपूर्ण, उत्कृष्ट, मात्र चिंतन से परे, सूक्ष्म और ज्ञानियों द्वारा अनुभव किए जाने योग्य हैं, जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही कहेंगे। और ये विषय क्या हैं?"

प्रथम पाठ-खंड का अंत
"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो आंशिक रूप से शाश्वतवादी और आंशिक रूप से गैर-शाश्वतवादी हैं, जो आत्मा और संसार की आंशिक शाश्वतता और आंशिक गैर-शाश्वतता की घोषणा चार तरीकों से करते हैं। किस आधार पर?"

"भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है, चाहे देर से ही सही, लंबे समय के बाद, जब यह संसार संकुचित होता है। संकुचन के समय, अधिकांश प्राणी आभासर ब्रह्म लोक में पुनर्जन्म लेते हैं। और वहाँ वे मन से निर्मित, आनंद में लिप्त, स्वयंप्रकाशित, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी रूप में निवास करते हैं - और वे बहुत लंबे समय तक इसी अवस्था में रहते हैं।"

गलत मत संख्या 5 : "परन्तु एक समय आता है, चाहे देर से ही सही, जब यह संसार फैलने लगता है। इस फैलते हुए संसार में ब्रह्मा का एक खाली महल प्रकट होता है। तब एक प्राणी, अपने जीवनकाल या अपने पुण्यों के समाप्त होने के कारण, आभासर लोक से गिरकर उस खाली ब्रह्मा-महल में आ जाता है। और वहाँ वह मन से विवश होकर, आनंद में लिप्त होकर, स्वयंप्रकाशित होकर, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी रूप में निवास करता है - और वह बहुत लंबे समय तक उसी अवस्था में रहता है।"

"तब इतने लंबे समय तक अकेले रहने वाले इस प्राणी में बेचैनी, असंतोष और चिंता उत्पन्न होती है, और वह सोचता है: 'काश, कुछ अन्य प्राणी यहाँ आ जाएँ!' और अन्य प्राणी, अपने जीवनकाल या अपने पुण्य कर्मों के समाप्त होने के कारण, आभासर लोक से गिरकर ब्रह्मलोक में इस प्राणी के साथी के रूप में आ जाते हैं। और वे वहाँ मनमग्न होकर निवास करते हैं... और वे बहुत लंबे समय तक उसी अवस्था में रहते हैं।"

और फिर, हे भिक्षुओं, जो प्राणी सबसे पहले वहाँ उत्पन्न हुआ, वह सोचता है: “मैं ब्रह्मा हूँ, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, भगवान, सृष्टिकर्ता, शासक, नियुक्तकर्ता और व्यवस्थापक, समस्त अस्तित्व का पिता। इन प्राणियों की रचना मैंने की है। ऐसा कैसे? क्योंकि सबसे पहले मेरे मन में यह विचार आया: ‘काश, कुछ अन्य प्राणी यहाँ आ जाएँ!’ यही मेरी इच्छा थी, और फिर ये प्राणी अस्तित्व में आए!” परन्तु जो प्राणी बाद में उत्पन्न हुए, वे सोचते हैं: “हे मित्रों, यह ब्रह्मा हैं, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, भगवान, सृष्टिकर्ता, शासक, नियुक्तकर्ता और व्यवस्थापक, समस्त अस्तित्व का पिता। ऐसा कैसे? हमने देखा है कि वे पहले यहाँ थे, और हम उनके बाद उत्पन्न हुए।”

और जो प्राणी सबसे पहले उत्पन्न हुआ, वह उनसे अधिक दीर्घायु, अधिक सुंदर और अधिक शक्तिशाली है। और ऐसा हो सकता है कि कोई प्राणी उस लोक से गिरकर इस संसार में आ जाए। इस संसार में आकर वह गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर जाता है। संन्यास लेने के बाद वह परिश्रम, लगन, परिश्रम और उचित ध्यान से ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि उसे अपना पिछला जन्म तो याद आ जाता है, पर उससे पहले का कोई जन्म याद नहीं आता। और वह सोचता है: 'वह ब्रह्मा, ... उसने हमें बनाया है, और वह स्थिर, अटल, शाश्वत, परिवर्तन से परे, सदा-सदा एक समान है। परन्तु हम, जिन्हें उस ब्रह्मा ने सृजित किया है, हम क्षणभंगुर, अस्थिर, अल्पायु, नाशवान हैं, और इस संसार में आए हैं।' यह पहला उदाहरण है जिससे कुछ तपस्वी और ब्राह्मण आंशिक रूप से शाश्वतवादी और आंशिक रूप से अनित्यवादी होते हैं।

गलत मत संख्या 6 : "और दूसरा तरीका क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे देव हैं जो भोग-विलास से भ्रष्ट कहलाते हैं। वे आनंद, खेल-कूद और मौज-मस्ती में अत्यधिक समय व्यतीत करते हैं, जिससे उनकी चेतना भंग हो जाती है, और चेतना भंग होने के कारण वे उस अवस्था से गिर जाते हैं।"

और ऐसा हो सकता है कि कोई प्राणी उस अवस्था से गिरकर इस संसार में जन्म ले। इस संसार में जन्म लेकर वह गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। संन्यास लेने के बाद वह प्रयास और परिश्रम से अपने पिछले जन्म को याद करता है, लेकिन उससे पहले के किसी जन्म को नहीं।

वह सोचता है: 'वे पूजनीय देव जो सुख-भोग से दूषित नहीं होते, वे आनंद, खेल-कूद और मौज-मस्ती में अत्यधिक समय व्यतीत नहीं करते। इसलिए उनकी चेतना भंग नहीं होती और वे उस अवस्था से नहीं गिरते। वे स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय और सदा-सदा एक समान होते हैं। परन्तु हम, जो आनंद से दूषित हैं, आनंद, खेल-कूद और मौज-मस्ती में अत्यधिक समय व्यतीत करते हैं। अतः चेतना भंग होने के कारण हम उस अवस्था से गिर गए हैं, हम क्षणभंगुर, अस्थिर, अल्पजीवनीय हैं और इस संसार में आ गए हैं।' यह दूसरा मामला है।

गलत मत संख्या 7 : "तीसरा तरीका क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे देव हैं जिन्हें भ्रष्ट मन वाला कहा जाता है। वे एक-दूसरे को ईर्ष्या से देखते हुए अत्यधिक समय व्यतीत करते हैं। इस कारण उनका मन भ्रष्ट हो जाता है। उनके भ्रष्ट मन के कारण वे शरीर और मन से थक जाते हैं और उस स्थान से गिर जाते हैं।"

और ऐसा हो सकता है कि कोई प्राणी उस अवस्था से गिरकर इस संसार में जन्म ले। उसे अपना पिछला जन्म तो याद रहता है, लेकिन उससे पहले का कोई जन्म याद नहीं रहता।

वह सोचता है: 'वे पूजनीय देव जिनका मन भ्रष्ट नहीं है, एक-दूसरे को ईर्ष्या से देखने में अधिक समय व्यतीत नहीं करते... उनका मन भ्रष्ट नहीं होता, न ही वे तन-मन से क्षीण होते हैं, और इसलिए वे उस अवस्था से नहीं गिरते। वे स्थायी, स्थिर, शाश्वत हैं... परन्तु हम, जिनका मन भ्रष्ट है, ... क्षणभंगुर, अस्थिर, अल्पजीवनित हैं, और हम इस संसार में आए हैं।' यह तीसरा मामला है।

गलत दृष्टिकोण संख्या 8 : "और चौथा तरीका क्या है? यहाँ, एक तपस्वी या ब्राह्मण एक तर्कशास्त्री, एक तर्कशास्त्री है। अपने स्वयं के विचार का अनुसरण करते हुए, वह तर्क के आधार पर कहता है: 'जो कुछ भी आँख, कान, नाक, जीभ या शरीर कहलाता है, वह क्षणभंगुर, अस्थिर, शाश्वत नहीं, परिवर्तनशील है। परन्तु जो कुछ भी विचार, मन या चेतना कहलाता है, वह एक ऐसा आत्म है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत है, परिवर्तन के अधीन नहीं है, सदा-सदा एक समान है!' यही चौथा मामला है।"

"ये चार तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण आंशिक रूप से शाश्वतवादी और आंशिक रूप से गैर-शाश्वतवादी हैं... तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की आंशिक शाश्वतता और आंशिक गैर-शाश्वतता की जो भी घोषणा करते हैं, वे इन्हीं चार आधारों में से किसी एक पर करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) यह समझते हैं: इन दृष्टिकोणों को ग्रहण करने और इनका पालन करने से परलोक में अमुक-अमुक गंतव्य प्राप्त होंगे। तथागत यह जानते हैं, और इससे भी अधिक, परन्तु वे इस ज्ञान से आसक्त हैं। और इस प्रकार अनासक्त होकर उन्होंने स्वयं

पूर्ण शांति का अनुभव किया है, और भावों के उत्पन्न होने और नष्ट होने, उनके आकर्षण, खतरे और उनसे मुक्ति को सही मायने में समझकर तथागत पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।"

हे भिक्षुओं, ये वे अन्य विषय हैं, जो गहन, दृष्टि से कठिन, समझ से कठिन, शांतिपूर्ण, उत्कृष्ट, मात्र विचार से परे, सूक्ष्म, ज्ञानियों द्वारा अनुभव किए जाने योग्य हैं, जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।

"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो परिमिततावादी और अनंततावादी हैं, और जो चार आधारों पर दुनिया की परिमितता और अनंतता की घोषणा करते हैं। वे क्या हैं?"

गलत दृष्टिकोण संख्या 9 : "यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने परिश्रम से ऐसी एकाग्रता की अवस्था प्राप्त कर ली है कि वह संसार को सीमित मानते हुए निवास करता है। वह सोचता है: 'यह संसार सीमित है और एक वृत्त से घिरा है। ऐसा क्यों? क्योंकि मैंने ऐसी एकाग्रता की अवस्था प्राप्त कर ली है कि मैं संसार को सीमित मानते हुए निवास करता हूँ। इसलिए मैं जानता हूँ कि यह संसार सीमित है और एक वृत्त से घिरा है।' यह पहला मामला है।"
गलत मत क्रमांक 10 : "दूसरा तरीका क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि वह संसार को अनंत रूप में देखता है। वह सोचता है: 'यह संसार अनंत और असीमित है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे सीमित और परिमित कहते हैं, वे गलत हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि मैंने एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि मैं संसार को अनंत रूप में देखता हूँ। इसलिए मैं जानता हूँ कि यह संसार अनंत और असीमित है।' यह दूसरा मामला है।"
गलत दृष्टिकोण क्रमांक 11 : "तीसरा तरीका क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण ने चेतना की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि वह संसार को ऊपर-नीचे परिमित और आर-पार अनंत के रूप में देखता है। वह सोचता है: 'संसार परिमित और अनंत है। जो तपस्वी और ब्राह्मण इसे परिमित कहते हैं वे गलत हैं, और जो इसे अनंत कहते हैं वे भी गलत हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि मैंने एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि मैं संसार को ऊपर-नीचे परिमित और आर-पार अनंत के रूप में देखता हूँ। इसलिए मैं जानता हूँ कि संसार परिमित और अनंत दोनों है।' यह तीसरा मामला है।"
गलत मत क्रमांक 12 : "और चौथा मामला क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण एक तर्कशास्त्री, एक तर्कशास्त्री है। तर्क के बल पर वह कहता है: 'यह संसार न तो परिमित है और न ही अनंत। जो इसे परिमित कहते हैं वे गलत हैं, और जो इसे अनंत कहते हैं वे भी गलत हैं, और जो इसे परिमित और अनंत दोनों कहते हैं वे भी गलत हैं। यह संसार न तो परिमित है और न ही अनंत।' यही चौथा मामला है।"

"ये वे चार तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण परिमिततावादी और अनंततावादी हैं, और चार आधारों पर संसार की परिमितता और अनंतता की घोषणा करते हैं। इसके अलावा कोई और तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं: इस प्रकार से ग्रहण किए गए और पालन किए गए ये दृष्टिकोण दूसरे लोक में अमुक-अमुक गंतव्यों की ओर ले जाएंगे..."

हे भिक्षुओं, ये वे अन्य विषय हैं, जो गहन, दृष्टि से कठिन, समझ से कठिन, शांतिपूर्ण, उत्कृष्ट, मात्र विचार से परे, सूक्ष्म, ज्ञानियों द्वारा अनुभव किए जाने योग्य हैं, जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।

"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जो मक्खी की तरह छटपटाते हैं। जब उनसे किसी विषय पर पूछा जाता है, तो वे टालमटोल भरे बयान देते हैं और चार आधारों पर मक्खी की तरह छटपटाते हैं। वे कौन से आधार हैं?"

गलत दृष्टिकोण क्रमांक 13 : "इस मामले में एक तपस्वी या ब्राह्मण है जिसे वास्तव में यह नहीं पता कि कोई चीज अच्छी है या बुरी। वह सोचता है: 'मुझे वास्तव में नहीं पता कि यह अच्छा है या बुरा। सही का ज्ञान न होने के कारण, मैं कह सकता हूँ: 'वह अच्छा है' या 'वह बुरा है", और यह झूठ हो सकता है, और इससे मुझे कष्ट होगा। और यदि मुझे कष्ट हुआ, तो यह मेरे लिए बाधा होगी।' इस प्रकार झूठ बोलने से डरते हुए, झूठ से घृणा करते हुए, वह किसी चीज को अच्छा या बुरा घोषित नहीं करता, लेकिन जब उससे इस या उस मामले के बारे में पूछा जाता है, तो वह टालमटोल वाले बयान देता है और मछली की तरह छटपटाता है: 'मैं यह नहीं कहता, मैं वह नहीं कहता। मैं यह नहीं कहता कि यह कुछ और है। मैं यह नहीं कहता कि यह नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि यह नहीं है।' यह पहला मामला है।"
गलत दृष्टिकोण क्रमांक 14 : "दूसरा तरीका क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण वास्तव में यह नहीं जानता कि कोई चीज अच्छी है या बुरी। वह सोचता है: 'मैं कह सकता हूँ: 'यह अच्छा है' या 'यह बुरा है', और मुझे इच्छा, वासना, घृणा या अरुचि महसूस हो सकती है। यदि मुझे इच्छा, वासना, घृणा या अरुचि महसूस होती है, तो यह मेरी ओर से आसक्ति होगी। यदि मुझे आसक्ति महसूस होती है, तो यह

मुझे दुखी करेगी, और यदि मैं दुखी हूँ, तो यह मेरे लिए बाधा होगी।" इस प्रकार, आसक्ति से डरते हुए, आसक्ति से घृणा करते हुए, वह टालमटोल वाले कथनों का सहारा लेता है... यह दूसरा मामला है।"

गलत दृष्टिकोण क्रमांक 15 : "तीसरा तरीका क्या है? यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण वास्तव में यह नहीं जानता कि कोई चीज अच्छी है या बुरी। वह सोचता है: 'मैं कह सकता हूँ: 'यह अच्छा है' या 'यह बुरा है', लेकिन ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो बुद्धिमान, कुशल, अनुभवी वाद-विवादकर्ता हैं, जैसे धनुर्धर बाल की भेद कर सकते हैं, जो अपनी बुद्धिमत्ता से दूसरों के विचारों को ध्वस्त करते फिरते हैं, और वे मुझसे तर्क-वितर्क कर सकते हैं। और मैं शायद उत्तर न दे पाऊँ। उत्तर न दे पाना मुझे व्यथित करेगा, और यदि मैं व्यथित हुआ, तो यह मेरे लिए एक बाधा होगी।' इस प्रकार, वाद-विवाद से भयभीत होकर, वाद-विवाद से घृणा करते हुए, वह टालमटोल वाले कथनों का सहारा लेता है। यही तीसरा मामला है।"

गलत दृष्टिकोण क्रमांक 16 : "चौथा मार्ग क्या है? यहाँ, एक तपस्वी या ब्राह्मण मंदबुद्धि और मूर्ख है। अपनी मंदबुद्धि और मूर्खता के कारण, जब उससे प्रश्न किया जाता है तो वह टालमटोल भरे कथन करता है और मछली की तरह छटपटाता है: "यदि आप मुझसे पूछें कि क्या कोई दूसरा लोक है - यदि मैं ऐसा मानता, तो मैं कहता कि दूसरा लोक है। लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता। और मैं इसके विपरीत भी नहीं कहता। और मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं है, और मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं है।" 'क्या कोई दूसरा लोक नहीं है? ...' "क्या दूसरा लोक है और दूसरा लोक नहीं भी है? ..." 'क्या कोई दूसरा लोक नहीं है और दूसरा लोक नहीं भी है? ...' "क्या स्वतः उत्पन्न होने वाले प्राणी हैं? ..." "क्या नहीं हैं...?" "दोनों ...?" "न तो ...?" "क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं? क्या वे मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं? क्या वे मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान भी नहीं हैं? क्या वे मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं?" ..."अगर मुझे ऐसा लगता, तो मैं ऐसा कहता... मैं यह नहीं कहता कि ऐसा नहीं है।' यह चौथा मामला है।"

"ये वे चार तरीके हैं जिनसे वे तपस्वी और ब्राह्मण जो चालाक होते हैं, टालमटोल भरे बयान देते हैं... इसके अलावा कोई और तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं: इस प्रकार ग्रहण किए गए और पालन किए गए ये दृष्टिकोण दूसरे लोक में अमुक-अमुक गंतव्यों की ओर ले जाएंगे..."

हे भिक्षुओं, ये वे अन्य गहन, समझने में कठिन विषय हैं... जिन्हें तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव कर घोषित किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।

"कुछ भिक्षु, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो संयोग-उत्पत्ति में विश्वास रखते हैं, और जो दो आधारों पर आत्मा और संसार की संयोग उत्पत्ति की घोषणा करते हैं। वे क्या हैं?"

गलत मत क्रमांक 17 : "हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे देव हैं जिन्हें अचेतन कहा जाता है। [49] जैसे ही उनमें कोई बोध उत्पन्न होता है, वे देव उस लोक से गिर जाते हैं। और ऐसा भी हो सकता है कि कोई प्राणी उस लोक से गिरकर इस संसार में आ जाए। वह... अपने पिछले जन्म को याद करता है, लेकिन उससे पहले के जन्म को नहीं। वह सोचता है: 'आत्मा और संसार संयोग से उत्पन्न हुए हैं। ऐसा कैसे? इससे पहले मेरा कोई अस्तित्व नहीं था। अब मैं अस्तित्वहीनता से अस्तित्व में आया हूँ।' यह पहला मामला है।"

गलत मत क्रमांक 18 : "दूसरा मामला क्या है? यहाँ, एक तपस्वी या ब्राह्मण एक तर्कशास्त्री, एक विचारक है। वह अपनी राय स्पष्ट करता है और घोषणा करता है: 'आत्मा और संसार संयोग से उत्पन्न हुए हैं।' यह दूसरा मामला है।"

"ये वे दो तरीके हैं जिनसे संयोग-उत्पत्ति में विश्वास रखने वाले तपस्वी और ब्राह्मण आत्मा और संसार की संयोग उत्पत्ति की घोषणा करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं...ये वे अन्य विषय हैं, गहन, जिन्हें समझना कठिन है...जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अहसास किया है और जिनका प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

"और ये, भिक्षुओं, वे अठारह तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण अतीत के बारे में चिंतन करते हैं... इसके अलावा कोई और तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं..."

कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण भविष्य के बारे में अटकलें लगाते हैं, भविष्य के बारे में उनके निश्चित विचार होते हैं, और वे भविष्य के बारे में चौवालीस अलग-अलग तरीकों से कई तरह के काल्पनिक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। वे ऐसा किस आधार पर करते हैं?

"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो मृत्यु के बाद चेतना के अस्तित्व का सिद्धांत प्रचारित करते हैं, और वे ऐसा सोलह अलग-अलग तरीकों से करते हैं। किस आधार पर?"

गलत दृष्टिकोण संख्या 19 - 34 : "वे घोषणा करते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा स्वस्थ और सचेत है और (1) भौतिक, (2) अभौतिक, (3) भौतिक और अभौतिक दोनों, (4) न तो भौतिक और न ही अभौतिक, (5) परिमित, (6) अनंत, (7) दोनों, (8) न ही, (9) एकसमान बोध वाली, (10) विविध बोध वाली, (11) सीमित बोध वाली, (12) असीमित बोध वाली, (13) पूर्णतः सुखी, (14) पूर्णतः दुखी, (15) दोनों, (16) न ही।"

"ये सोलह तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण सचेत मृत्योत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं...ये वे अन्य विषय हैं, गहन, जिन्हें समझना कठिन है...जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अहसास किया है और जिनका प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

दूसरे पाठ-खंड का अंत
"कुछ भिक्षु, तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो अचेतन मृत्यु के बाद जीवित रहने के सिद्धांत का प्रचार करते हैं, और वे ऐसा आठ तरीकों से करते हैं। किस आधार पर?"

गलत दृष्टिकोण 35 - 42 : "वे घोषणा करते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा स्वस्थ और अचेतन है और (1) भौतिक, (2) अभौतिक, (3) दोनों, (4) न तो, (5) परिमित, (6) अनंत, (7) दोनों, (8) न तो।"

"ये वे आठ तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण अचेतन मृत्योत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) इसे समझते हैं... हे भिक्षुओं, ये वे अन्य गहन और समझने में कठिन विषय हैं जिन्हें तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके घोषित किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

"कुछ तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो मृत्यु के बाद न तो चेतन और न ही अचेतन अस्तित्व के सिद्धांत की घोषणा करते हैं, और वे इसे आठ तरीकों से करते हैं। किस आधार पर?"

गलत दृष्टिकोण 43 - 50 : "वे घोषणा करते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा स्वस्थ है और न तो चेतन है और न ही अचेतन है और (1) भौतिक, (2) अभौतिक, (3) दोनों, (4) न तो, (5) परिमित, (6) अनंत, (7) दोनों, (8) न तो।"

"ये वे आठ तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण मृत्यु के बाद न तो चेतन और न ही अचेतन अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं... हे भिक्षुओं, ये वे अन्य विषय हैं, जो गहन हैं, जिन्हें समझना कठिन है... जिन्हें तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव कर घोषित किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

"कुछ भिक्षु, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो विनाशवादी हैं, जो प्राणियों के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, और वे ऐसा सात तरीकों से करते हैं। किस आधार पर?"

गलत मत 51 : "यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण यह मत व्यक्त करता है: 'चूँकि यह आत्मा भौतिक है, चार महा तत्वों से बनी है, माता-पिता की उपज है, शरीर के टूटने पर नष्ट हो जाती है और मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन हो जाती है। इस प्रकार यह आत्मा नष्ट हो जाती है।' कुछ लोग इसी प्रकार प्राणियों के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं।"
गलत मत 52 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: 'महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा एक आत्म है। मैं इसका खंडन नहीं करता। लेकिन वह आत्म पूरी तरह से नष्ट नहीं होता। क्योंकि एक और आत्म है, दिव्य, भौतिक, इंद्रिय-क्षेत्र से संबंधित, वास्तविक भोजन से पोषित। आप इसे नहीं जानते या देखते हैं, लेकिन मैं जानता हूँ। शरीर के टूटने पर यही आत्म नष्ट होता है...'
गलत मत 53 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा एक आत्मा है। मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन वह आत्मा पूरी तरह से नष्ट नहीं होती। क्योंकि एक और आत्मा है, दिव्य, भौतिक, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों से परिपूर्ण, किसी भी इंद्रिय अंग में दोषरहित... शरीर के टूटने पर यही आत्मा नष्ट होती है..."

गलत मत 54 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: "महोदय, जैसा आप कहते हैं, वैसा ही एक आत्म है... एक और आत्म है जो शारीरिक संवेदनाओं से पूरी तरह परे जाकर, सभी प्रतिरोध की भावना के लुप्त होने और विविधता की धारणा के प्रति अनासक्ति से, यह देखते हुए कि अंतरिक्ष अनंत है, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को जान लेता है। यही वह आत्म है जो शरीर के विखंडन के समय नष्ट हो जाता है..."
गलत मत 55 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: "एक अन्य आत्मा है जो अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र से पूर्णतः परे जाकर, यह देखकर कि चेतना अनंत है, अनंत चेतना के क्षेत्र को प्राप्त कर लेती है। शरीर के विखंडन के समय यही आत्मा नष्ट हो जाती है..."
गलत मत 56 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: "एक और आत्मा है जो अनंत चेतना के क्षेत्र से पूर्णतः परे जाकर, यह देखकर कि कुछ भी नहीं है, निराकारता के क्षेत्र को जान लेती है। शरीर के विखंडन के समय यही आत्मा नष्ट हो जाती है..."
गलत मत 57 : एक अन्य व्यक्ति उससे कहता है: "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा एक आत्मा है। मैं इसका खंडन नहीं करता। परन्तु वह आत्मा पूर्णतः नष्ट नहीं होती। क्योंकि एक अन्य आत्मा है जो निरर्थकता के क्षेत्र से पूर्णतः परे जाकर और यह देखकर कि 'यह शांत है, यह उदात्त है', न बोध-न अबोध के क्षेत्र को प्राप्त कर लेती है। आप इसे नहीं जानते या देखते, परन्तु मैं जानता हूँ। शरीर के विखंडन के समय यही आत्मा नष्ट हो जाती है और मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन हो जाती है। इस प्रकार आत्मा पूर्णतः नष्ट हो जाती है।" कुछ लोग इसी प्रकार प्राणियों के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता का प्रचार करते हैं।

"ये वे सात तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण प्राणियों के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता के सिद्धांत का प्रचार करते हैं... इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं... हे भिक्षुओं, ये वे अन्य गहन, समझने में कठिन विषय हैं, जिन्हें तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके घोषित किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

"कुछ भिक्षु, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो वर्तमान समय में निर्वाण के उद्घोषक हैं, और जो पांच तरीकों से किसी भी विद्यमान प्राणी के लिए वर्तमान समय में निर्वाण की घोषणा करते हैं। किस आधार पर?"

गलत मत 58 : "यहाँ एक तपस्वी या ब्राह्मण यह मत व्यक्त करता है: जब यह आत्मा, पंच प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर, उनमें लिप्त होती है, तभी आत्मा को यहीं और अभी सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं।"
गलत मत 59 : एक अन्य व्यक्ति उनसे कहता है, "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा आत्म है। मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन वह स्थान नहीं है जहाँ आत्म को यहीं और अभी सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है। ऐसा क्यों? क्योंकि, महाराज, इंद्रिय-इच्छाएँ क्षणभंगुर, पीड़ादायक और परिवर्तनशील होती हैं, और उनके परिवर्तन और रूपांतरण से दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और कष्ट उत्पन्न होते हैं। लेकिन जब यह आत्म, इंद्रिय-इच्छाओं से विरक्त होकर, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो चिंतन और मनन तथा वैराग्य से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से युक्त होता है, तभी आत्मा को यहीं और अभी सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है।"
गलत मत 60 : एक अन्य व्यक्ति उनसे कहता है, "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा ही एक आत्म होता है। लेकिन वह वह अवस्था नहीं है जब आत्म निर्वाण प्राप्त करता है। ऐसा क्यों? क्योंकि चिंतन और मनन के कारण वह अवस्था स्थूल मानी जाती है। परन्तु जब आत्म चिंतन और मनन के शांत होने से दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर हो जाता है, आंतरिक शांति और मन की एकता से युक्त, जो चिंतन और मनन से मुक्त होती है और एकाग्रता से उत्पन्न होती है, और आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होती है, तभी आत्म सर्वोच्च निर्वाण को यहीं और अभी प्राप्त करता है।"
गलत मत 61 : एक अन्य व्यक्ति उनसे कहता है: "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा ही एक आत्म है। लेकिन वह आत्म निर्वाण की प्राप्ति का समय नहीं है। ऐसा क्यों? क्योंकि आनंद की उपस्थिति के कारण मानसिक उल्लास होता है, और वह अवस्था स्थूल मानी जाती है। परन्तु जब आत्म, आनंद के कम होने के साथ, समभाव में, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, अपने शरीर में उस आनंद का अनुभव करता है जिसके विषय में ऋषियों ने कहा है: "सुखद है वह जो समभाव और सचेतनता रखता है, और इस प्रकार तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, तब आत्म सर्वोच्च निर्वाण को यहीं और अभी प्राप्त करता है।"
गलत मत क्रमांक 62 : एक अन्य व्यक्ति उनसे कहता है, "महोदय, जैसा आप कहते हैं वैसा आत्म है। मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन वह स्थान नहीं है जहाँ आत्म को वर्तमान क्षण में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है। ऐसा क्यों? क्योंकि मन में आनंद का विचार होता है, और वह अवस्था स्थूल मानी जाती है। परन्तु जब सुख-दुख का त्याग करके, पूर्व के सुख-दुख के लुप्त होने पर, व्यक्ति चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो समभाव और जागरूकता से शुद्ध होता है, वहीं पर आत्मा को वर्तमान क्षण में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है।" कुछ लोग इसी प्रकार किसी सजीव प्राणी के लिए वर्तमान क्षण में सर्वोच्च निर्वाण की घोषणा करते हैं।

"ये वे पाँच तरीके हैं जिनसे ये तपस्वी और ब्राह्मण यहीं और अभी निर्वाण के सिद्धांत का प्रचार करते हैं। इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) इसे समझते हैं..."

"भविष्य के बारे में निश्चित धारणा रखने वाले वे तपस्वी और ब्राह्मण, जो भविष्य के बारे में चिंतनशील हैं, इन चौवालीस तरीकों से भविष्य के बारे में विभिन्न काल्पनिक विचार प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा कोई और तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत इसे समझते हैं..."

"ये वे बासठ तरीके हैं जिनसे अतीत, भविष्य या दोनों के बारे में चिंतन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण इन विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा कोई और तरीका नहीं है।"

"हे भिक्षुओं, तथागत यह समझते हैं: इन दृष्टिकोणों को ग्रहण करके और इनका पालन करके परलोक में अमुक गंतव्य प्राप्त किया जा सकता है। तथागत यह जानते हैं, और इससे भी अधिक, परन्तु वे इस ज्ञान से आसक्त हैं। इस प्रकार अनासक्त होकर उन्होंने स्वयं पूर्ण शांति का अनुभव किया है, और भावों के उत्पन्न होने और नष्ट होने, उनके आकर्षण, खतरे और उनसे मुक्ति को सत्यतः समझकर तथागत पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।"

"ये, भिक्षुओं, वे अन्य विषय हैं, जो गहन, देखने में कठिन, समझने में कठिन, शांतिपूर्ण, उत्कृष्ट, मात्र विचार से परे, सूक्ष्म, ज्ञानियों द्वारा अनुभव किए जाने योग्य हैं, जिनका तथागत ने अपने अलौकिक ज्ञान से अनुभव करके प्रचार किया है, और जिनके बारे में तथागत की सच्ची प्रशंसा करने वाले उचित ही बोलेंगे।"

निष्कर्ष

गलत दृष्टिकोण 1-4 : "इस प्रकार, भिक्षुओं, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो शाश्वतवादी हैं, आत्मा और संसार की शाश्वतता को चार तरीकों से घोषित करते हैं, तो यह केवल उन लोगों की भावना है जो नहीं जानते और देखते हैं, लालसा में डूबे लोगों की चिंता और दुविधा है।"

गलत दृष्टिकोण 5 - 8 : "जब आंशिक रूप से शाश्वतवादी और आंशिक रूप से गैर-शाश्वतवादी लोग स्वयं और दुनिया की आंशिक शाश्वतता और आंशिक गैर-शाश्वतता की चार तरीकों से घोषणा करते हैं, तो यह केवल उन लोगों की भावना है जो जानते और देखते नहीं हैं..."

गलत दृष्टिकोण 9-12 : "जब परिमिततावादी और अनंततावादी चार आधारों पर दुनिया की परिमितता और अनंतता की घोषणा करते हैं, तो यह केवल उन लोगों की भावना है जो जानते और देखते नहीं हैं..."

गलत दृष्टिकोण 13 - 16 : "जब जो लोग ईल की तरह छटपटाते हैं वे चार आधारों पर टालमटोल भरे बयान देते हैं और ईल की तरह छटपटाते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 17 - 18 : "जब संयोग उत्पत्तिवादी दो आधारों पर स्वयं और दुनिया की संयोग उत्पत्ति की घोषणा करते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 1 - 18 : "जब अतीत के बारे में अटकलबाज़, अतीत के बारे में निश्चित विचार रखते हुए, अतीत के बारे में अठारह अलग-अलग तरीकों से विभिन्न काल्पनिक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं, तो यह केवल उन लोगों की भावना है जो नहीं जानते और देखते हैं, लालसा में डूबे लोगों की चिंता और दुविधा है।"

गलत दृष्टिकोण 19 - 34 : "जब चेतनापूर्ण मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करने वाले लोग सोलह अलग-अलग तरीकों से ऐसा करते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 35 - 42 : "जब अचेतन मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करने वाले लोग इसे आठ अलग-अलग तरीकों से करते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 43 - 50 : "जब वे लोग जो न तो सचेत और न ही अचेत मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करते हैं, ऐसा आठ तरीकों से करते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 51 - 57 : "जब विनाशवादी सात तरीकों से प्राणियों के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, तो यह केवल एक भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 58 - 62 : "जब निर्वाण के उद्घोषक यहाँ और अभी एक विद्यमान प्राणी के लिए पाँच आधारों पर निर्वाण की घोषणा करते हैं, तो वह केवल भावना है..."

गलत दृष्टिकोण 19 - 62 : "जब वे लोग जो भविष्य के बारे में चौवालीस अलग-अलग तरीकों से अटकलें लगाते हैं..."

गलत दृष्टिकोण 1 - 62 : "जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो अतीत, भविष्य या दोनों के बारे में अटकलें लगाते हैं, निश्चित दृष्टिकोण रखते हुए, बासठ अलग-अलग तरीकों से विचार प्रस्तुत करते हैं, तो यह केवल उन लोगों की भावना है जो नहीं जानते और नहीं देखते, लालसा में डूबे लोगों की चिंता और दुविधा है।"

"जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो शाश्वतवादी हैं, चार तरीकों से आत्मा और संसार की शाश्वतता की घोषणा करते हैं, तो वह संपर्क द्वारा निर्धारित होता है।"

"जब वे लोग जो आंशिक रूप से शाश्वतवादी और आंशिक रूप से गैर-शाश्वतवादी हैं... "जब वे लोग जो परिमितवादी और अनंतवादी हैं... "जब वे लोग जो ईल-रेगलर्स हैं... "जब वे लोग जो संयोग-उत्पत्तिवादी हैं... "जब वे लोग जो अठारह तरीकों से अतीत के बारे में अटकलें लगाते हैं... "जब वे लोग जो सचेत मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत की घोषणा करते हैं... "जब वे लोग जो अचेतन मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत की घोषणा करते हैं..."

"जब वे लोग जो न तो सचेत और न ही अचेत मृत्युोत्तर अस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार करते हैं..."

"जब वे लोग जो विनाशवादी हैं..." "जब वे लोग जो वर्तमान में और यहीं निर्वाण की घोषणा करते हैं..." "जब वे लोग जो भविष्य के बारे में अटकलें लगाते हैं..."

"जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो अतीत, भविष्य या दोनों के बारे में चिंतनशील होते हैं और जिनके निश्चित विचार होते हैं, बासठ अलग-अलग तरीकों से विचार प्रस्तुत करते हैं, तो यह संपर्क से प्रभावित होता है।"

"यह असंभव है कि ये सभी (शाश्वतवादी और बाकी सभी) बिना संपर्क के उस भावना का अनुभव करें।"

इन सभी के संबंध में..., वे छह इंद्रिय-आधारों के माध्यम से बार-बार संपर्क द्वारा इन भावनाओं का अनुभव करते हैं; भावनाएँ लालसा को जन्म देती हैं; लालसा आसक्ति को जन्म देती है; आसक्ति जन्म को जन्म देती है; जन्म वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, उदासी और पीड़ा को जन्म देता है। हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु संपर्क के छह आधारों के उदय और अस्त होने, उनके आकर्षण और खतरे, और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह उस ज्ञान को प्राप्त करता है जो इन सभी दृष्टियों से परे है।

"भूतकाल या भविष्य या दोनों के बारे में अटकलबाज़ी करने वाले जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस विषय पर अपने निश्चित मत रखते हैं और अटकलबाज़ी वाले विचार प्रस्तुत करते हैं, वे सभी बासठ भागों वाले जाल में फँसे हुए हैं, और जहाँ कहीं भी वे बाहर निकलने की कोशिश करते हैं, वे इस जाल में फँस जाते हैं और फंसे रहते हैं। जैसे एक कुशल मछुआरा या उसका शागिर्द पानी के एक छोटे से हिस्से को बारीक जाली वाले जाल से ढकते हुए सोचता है: 'इस पानी में चाहे जितने भी बड़े जीव हों, वे सभी जाल में फँस गए हैं, फँस गए हैं और फंसे हुए हैं', ठीक वैसे ही इन सभी के साथ है: वे इस जाल में फँस गए हैं और फंसे हुए हैं।"

भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) का शरीर उस बंधन के टूटने के साथ खड़ा है जो उन्हें अस्तित्व से बांधता था। जब तक शरीर विद्यमान रहेगा, देव और मनुष्य उन्हें दर्शन देंगे। परन्तु शरीर के विखंडन और जीवनकाल की समाप्ति पर, देव और मनुष्य उन्हें फिर कभी नहीं देख पाएंगे। भिक्षुओं, जैसे आमों के गुच्छे की डंडी कट जाने पर सारे आम उसके साथ गिर जाते हैं, ठीक वैसे ही तथागत का अस्तित्व से बंधन टूट गया है। जब तक शरीर विद्यमान रहेगा, देव और मनुष्य उन्हें दर्शन देंगे। परन्तु शरीर के विखंडन और जीवनकाल की समाप्ति पर, देव और मनुष्य उन्हें फिर कभी नहीं देख पाएंगे।

ये शब्द सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान से कहा, "हे भगवान, यह अद्भुत है, यह आश्चर्यजनक है। धम्म की इस व्याख्या का नाम क्या है?"

"आनंद, तुम्हें धम्म की यह व्याख्या लाभ के जाल, धम्म के जाल, सर्वोच्च जाल, विचारों के जाल, या युद्ध में अतुलनीय विजय के रूप में याद हो सकती है।"

इस प्रकार भगवान ने कहा, और भिक्षु उनके वचनों से प्रसन्न और आनंदित हुए। और जब यह व्याख्या सुनाई जा रही थी, तब दस हजार की विश्व-व्यवस्था कांप उठी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.2: समन्नाफला सुत्त (डीएन 2)

तर्वस्तु

1सेवा
2राजा का प्रश्न
3गैर-लॉस
4यात्रा के माध्यम से शुद्धि
5विनाश
6संबंध
7चौगुना संयम
8सेवा
9चिंतन जीवन का पहला प्रत्यक्ष फल
10दार्शनिक जीवन का दूसरा प्रत्यक्ष फल
11विचारधारा जीवन के स्कोप्स फल
12सद्गुण पर गुण खंड
13सदगुण पर मध्य खंड
14सद्गुण पर महान खंड
15इंद्रिय संयम
16जागरूकता और विश्लेषक
17संतोष
18बूढ़े को त्यागना
19(चार ध्यान)
20वास्तविक ज्ञान
21मन शरीर द्वारा निर्मित है
22अलौकिक शक्तियाँ
23क्लेयरऑडियन्स
24जानो, मन में क्या चल रहा है
25देवताओं के जन्म की यादें
26मछुआरे का देहांत और पुन: प्रकट होना
27मानसिक अनावरण-इलेक्ट्रॉनिक का अंत

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में जीवक कुमारभच्च के आम के बाग में, 1250 भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ ठहरे हुए थे। उस समय—वर्षा ऋतु के चौथे माह की पूर्णिमा की रात—मगध के राजा अजातसत्तु, जो रानी विदेह के पुत्र थे, अपने महल की छत पर अपने मंत्रियों से घिरे बैठे थे। तभी उन्हें प्रेरणा मिली और उन्होंने कहा, "यह चांदनी रात कितनी अद्भुत है! कितनी सुंदर... कितनी प्यारी... कितनी प्रेरणादायक... कितनी शुभ है यह चांदनी रात! आज रात हमें किस पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो हमारे मन को ज्ञान और शांति प्रदान कर सके?"

यह सुनकर मंत्रियों में से एक ने राजा से कहा, “महाराज, पुराण कस्सपा हैं, जो एक समुदाय के नेता, एक समूह के अगुवा, एक समूह के गुरु, सम्मानित और प्रसिद्ध, जनमानस द्वारा पवित्र माने जाने वाले व्यक्ति हैं। वे वृद्ध हैं, देहांत में जा चुके हैं, जीवन के अंतिम पड़ाव पर हैं। महाराज, आपको उनसे मिलना चाहिए। शायद, यदि आप उनसे मिलें, तो वे आपको ज्ञान प्रदान करें और आपके मन को शांति दें।”
यह सुनकर राजा चुप रहे।
तब एक अन्य मंत्री ने राजा से कहा, “महाराज, मक्खली गोसाला हैं... महाराज, अजित केसकंबलिन हैं... महाराज, पकुधा कच्चायना हैं... महाराज, संजय बेलत्थपुत्त हैं... महाराज, निगंथ नटपुत्त हैं, जो एक समुदाय के नेता, एक समूह के प्रमुख, एक समूह के शिक्षक, सम्मानित और प्रसिद्ध, जनमानस द्वारा पवित्र माने जाते हैं। वे वृद्ध हैं, देहांत में हैं, जीवन के अंतिम पड़ाव पर हैं। महाराज, आपको उनसे मिलना चाहिए। शायद, यदि आप उनसे मिलें, तो वे आपको ज्ञान प्रदान करें और आपके मन को शांति दें।”
यह सुनकर राजा चुप रहे।
इस पूरे समय जीवक कुमारभच्च राजा से कुछ दूरी पर चुपचाप बैठे रहे। तब राजा ने उनसे कहा, "मित्र जीवक, तुम चुप क्यों बैठे हो?"
महाराज, मेरे आम के बाग में एक विशाल भिक्षु समुदाय (कुल 1250 भिक्षु) के साथ, योग्य और पूर्णतः आत्मज्ञानी भगवान विराजमान हैं। इस भगवान के विषय में यह प्रशंसनीय ख्याति फैली हुई है: 'निःसंदेह, भगवान योग्य और पूर्णतः आत्मज्ञानी हैं, स्पष्ट ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुगठित हैं, ब्रह्मांड के ज्ञाता हैं, सरल लोगों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, मनुष्य और दिव्य प्राणियों के गुरु हैं, जागृत और धन्य हैं।' महाराज, आपको उनसे मिलना चाहिए। शायद, यदि आप उनसे मिलें, तो वे आपको ज्ञान प्रदान करें और आपके मन को शांति दें।
"तो फिर, मेरे मित्र जीवक, सवारी के लिए हाथी तैयार करवा लो।"
"जैसा आप कहें, महाराज" कहकर उत्तर देने के बाद, पाँच सौ मादा हाथियों के साथ-साथ राजा के निजी हाथी को भी तैयार करवाकर, जीवक ने राजा से कहा: "महाराज, आपके सवारी के हाथी तैयार हैं। अब आप जो चाहें करें।"
फिर राजा ने अपनी पाँच सौ स्त्रियों को पाँच सौ हाथियों पर सवार कराया—प्रत्येक पर एक—और अपने निजी हाथी पर सवार होकर, राजसी ठाठ-बाठ के साथ राजधानी से मशालें लिए सेवकों के साथ जीवक कोमरभच्च के आम के बाग की ओर प्रस्थान किया। परन्तु जब राजा आम के बाग से कुछ ही दूर था, तो वह भय और व्याकुल हो उठा, उसके रोंगटे खड़े हो गए। भयभीत, व्याकुल, रोंगटे खड़े हुए उसने जीवक कोमरभच्च से कहा, “मित्र जीवक, तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हो? तुम मुझे विश्वासघात तो नहीं कर रहे हो? तुम मुझे मेरे शत्रुओं के हवाले तो नहीं कर रहे हो? इतने बड़े भिक्षु समुदाय—कुल 1250—में छींकने की कोई आवाज नहीं, खाँसने की कोई आवाज नहीं, कोई आवाज नहीं कैसे हो सकती?”
"हे महाराज, भयभीत न हों। भयभीत न हों। मैं आपको धोखा नहीं दे रहा हूँ, न ही आपके साथ विश्वासघात कर रहा हूँ, और न ही आपको आपके शत्रुओं के हवाले कर रहा हूँ। आगे बढ़ें, महाराज, आगे बढ़ें! मंडप में जलते हुए दीपक हैं।"
फिर राजा अपने हाथी पर सवार होकर, जहाँ तक ज़मीन अनुमति देती थी, वहाँ तक गए, फिर घोड़े से उतरे और पैदल चलकर मंडप के द्वार तक पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जीवक से पूछा, "हे मित्र जीवक, भगवान कहाँ हैं?"
"वह भगवान बुद्ध हैं, महान राजा, जो मध्य स्तंभ के सहारे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठे हैं और भिक्षुओं के समुदाय से घिरे हुए हैं।"
तब राजा भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर, पूर्ण मौन में बैठे भिक्षुओं के समुदाय को देखकर, जो किसी झील की तरह शांत थे, उन्हें प्रेरणा मिली और उन्होंने कहा: "हे मेरे पुत्र, राजकुमार उदयिभद्दा, को भी वही शांति प्राप्त हो जो इस भिक्षुओं के समुदाय को प्राप्त है!"
[भगवान बुद्ध ने कहा:] "हे महान राजा, क्या आप अपनी भावनाओं के साथ आए हैं?"
हे भगवान, मेरे पुत्र, राजकुमार उदयिभद्दा, मुझे अत्यंत प्रिय हैं। ईश्वर करे कि उन्हें भी वही शांति प्राप्त हो जो इस भिक्षु समुदाय को वर्तमान में प्राप्त है!
फिर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करके और हृदय पर हाथ जोड़कर भिक्षुओं के समुदाय को प्रणाम करते हुए, वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "मैं भगवान बुद्ध से एक विषय के बारे में पूछना चाहता हूँ, यदि वे मुझे अपना प्रश्न समझाने का अवसर दें।"
"हे महाराज, जो चाहें मांगिए।"

राजा का प्रश्न

हे भगवान, यहाँ कई सामान्य शिल्पकार हैं: हाथी प्रशिक्षक, घोड़े प्रशिक्षक, रथ चालक, धनुर्धर, ध्वजवाहक, शिविर सेनापति, आपूर्ति दल के अधिकारी, उच्च राजसी अधिकारी, कमांडो, सैन्य वीर, कवचधारी योद्धा, चमड़े के वस्त्रधारी योद्धा, घरेलू दास, हलवाई, नाई, स्नानागार, रसोइया, माला बनाने वाले, धोबी, बुनकर, टोकरी बनाने वाले, कुम्हार, गणनाकार, लेखाकार और इसी प्रकार के अन्य शिल्पकार। वे अपने शिल्पों के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो इस समय और यहीं दिखाई देते हैं। वे स्वयं को, अपने माता-पिता, पत्नियों और बच्चों को, अपने मित्रों और सहकर्मियों को सुख और आनंद प्रदान करते हैं। वे पुरोहितों और ध्यानियों को उत्कृष्ट

भेंट अर्पित करते हैं, जो स्वर्ग की ओर ले जाती है, सुख प्रदान करती है और स्वर्गीय पुनर्जन्म के लिए सहायक होती है। हे भगवान, क्या इस समय और यहीं दिखाई देने वाले ध्यानमय जीवन के ऐसे ही किसी फल को दर्शाना संभव है?
"हे महाराज, क्या आपको याद है कि आपने कभी अन्य पुजारियों और ध्यानियों से यह प्रश्न पूछा था?"
"हा करता हु।"
"अगर इससे आपको कोई परेशानी नहीं है, तो उन्होंने क्या जवाब दिया?"
"नहीं, मुझे इससे कोई परेशानी नहीं है कि भगवान बुद्ध—या भगवान बुद्ध के समान कोई—कहीं भी बैठे हों।"
"तो फिर बोलिए, महान राजा।"

नॉन एक्शन
"हे भगवान, एक बार मैं पुराण कस्सपा के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय कस्सपा, ये साधारण शिल्पकार हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो इस समय और यहीं दिखाई देता है... क्या संभव है, आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही फल को बता सकते हैं, जो इस समय और यहीं दिखाई देता है?'"
जब यह कहा गया, तो पुराण कस्सपा ने मुझसे कहा, 'हे महाराज, स्वयं कार्य करने या दूसरों से कार्य करवाने में, अंग-भंग करने या दूसरों से अंग-भंग करवाने में, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में, दुःख पहुँचाने या दूसरों से दुःख दिलवाने में, पीड़ा पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा दिलवाने में, डराने या दूसरों से डराने-धमकाने में, जान लेने में, बिना माँगे वस्तु लेने में, घरों में सेंध लगाने में, धन लूटने में, चोरी करने में, राजमार्गों पर घात लगाने में, व्यभिचार करने में, झूठ बोलने में—कोई बुराई नहीं होती। यदि कोई तेज धार वाले चक्र से इस पृथ्वी पर सभी जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई गंगा के दाहिने किनारे पर चलते हुए हत्या करे और दूसरों से हत्या करवाए, अंग-भंग करे और दूसरों से अंग-भंग करवाए, यातना दे और दूसरों से यातना दिलवाए—तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई बाएं किनारे पर चलते हुए भी—तो भी कोई बुराई नहीं होगी। गंगा के दान में, दान देना और दूसरों से दान लेना, बलिदान करना और दूसरों से बलिदान करवाना, इससे कोई पुण्य नहीं होगा, न ही पुण्य प्राप्त होगा। उदारता, आत्मसंयम, संयम और सत्यवादी वाणी से भी कोई पुण्य नहीं होता, न ही पुण्य प्राप्त होता है।
इस प्रकार, जब पुराण कस्सपा से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने निष्क्रियता से उत्तर दिया। जैसे कोई व्यक्ति आम के बारे में पूछे जाने पर ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर आम का उत्तर दे: ठीक उसी प्रकार, जब पुराण कस्सपा से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने निष्क्रियता से उत्तर दिया। मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले एक पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति की निंदा करने के बारे में कैसे सोच सकता है?' फिर भी, न तो मुझे पुराण कस्सपा के शब्दों से प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। न प्रसन्नता हुई और न ही विरोध, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।

भ्रमण के माध्यम से शुद्धि
एक बार मैं मखली गोसाला के पास पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय गोसाला, ये साधारण कारीगर हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है... क्या आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही फल को बता सकते हैं, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो?'
जब यह कहा गया, तो मखली गोसला ने मुझसे कहा, 'हे महाराज, प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना किसी कारण, बिना किसी आवश्यक शर्त के अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना किसी कारण, बिना किसी आवश्यक शर्त के शुद्ध होते हैं। कुछ भी स्वयं के कारण नहीं है, कुछ भी अन्य के कारण नहीं है, कुछ भी मनुष्य के कारण नहीं है। न कोई शक्ति है, न कोई प्रयास है, न कोई मानवीय ऊर्जा है, न कोई मानवीय परिश्रम है। सभी जीवित प्राणी, सभी जीव, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं। भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख के प्रति संवेदनशील हैं।'
उत्पत्ति के 1,406,600 प्रमुख तरीके हैं। कर्म के 500 प्रकार हैं, पाँच प्रकार और तीन प्रकार; पूर्ण कर्म और अर्ध कर्म। 62 मार्ग, 62 उप-युग, जन्म के छह प्रमुख वर्ग, मनुष्य के आठ वर्ग, आजीविका के 4,900 तरीके, 4,900 प्रकार के घुमक्कड़, 4,900 नाग-निवास, 2,000 शक्तियाँ, 3,000 नरक, 36 मृदा लोक, बोधगम्य प्राणियों के सात क्षेत्र, अबोधगम्य प्राणियों के सात क्षेत्र, सात प्रकार के जोड़दार पौधे, सात प्रकार के देव, सात प्रकार के मनुष्य, सात प्रकार के राक्षस, सात महान झीलें, सात प्रमुख गांठें, सात छोटी गांठें, 700 प्रमुख चट्टानें,

700 छोटी चट्टानें, 700 प्रमुख स्वप्न, 700 छोटे स्वप्न, 84,000 महान युग हैं। इन सब से होकर गुजरते हुए, बुद्धिमान और मूर्ख दोनों ही समान रूप से पीड़ा का अंत करेंगे।

यद्यपि कोई यह सोच सकता है, “इस नैतिकता, इस अभ्यास, इस तपस्या या इस पवित्र जीवन के

से मैं अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व करूँगा और परिपक्व कर्मों को स्पर्श करते ही नष्ट कर दूँगा”—यह असंभव है। सुख और दुख मापे हुए हैं, जीवन का प्रवाह अपनी सीमाओं में स्थिर है। न तो यह घटता है, न बढ़ता है, न ही इसकी गति बढ़ती है, न ही घटती है। जैसे धागे का गोला फेंकने पर खुलते ही समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार, जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए, बुद्धिमान और मूर्ख दोनों ही दुखों का अंत कर देते हैं।

इस प्रकार, जब मखली गोसाला से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने भ्रमण के माध्यम से शुद्धि का उत्तर दिया। ठीक वैसे ही जैसे किसी व्यक्ति से आम के बारे में पूछे जाने पर वह ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर वह आम का उत्तर दे। उसी प्रकार, जब मखली गोसाला से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने भ्रमण के माध्यम से शुद्धि का उत्तर दिया। मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले एक पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति की निंदा करने के बारे में कैसे सोच सकता है?' फिर भी, न तो मुझे मखली गोसाला के शब्दों से प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। न प्रसन्नता हुई और न ही विरोध, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।

विनाश

एक बार मैं अजित केसकंबलिन के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय अजित, ये साधारण शिल्पकार हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है... क्या आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही फल को बता सकते हैं, जो वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो?'

जब यह कहा गया, तो अजित केसकंबलिन ने मुझसे कहा, 'हे महाराज, न कुछ दिया जाता है, न कुछ अर्पित किया जाता है, न कुछ बलिदान किया जाता है। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह लोक है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति जो उचित मार्ग अपनाकर और उचित अभ्यास करके इस लोक और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य चार प्राथमिक तत्वों का मिश्रण है। मृत्यु के समय, शरीर में स्थित पृथ्वी (शरीर के भीतर) पृथ्वी-पदार्थ में विलीन हो जाती है। अग्नि (शरीर के भीतर) अग्नि-पदार्थ में विलीन हो जाती है। द्रव (शरीर के भीतर) द्रव-पदार्थ में विलीन हो जाता है। वायु (शरीर के भीतर) वायु-पदार्थ में विलीन हो जाती है। इंद्रियां अंतरिक्ष में बिखर जाती हैं। चार पुरुष, जिनमें से पांचवां शववाहक होता है, शव को ले जाते हैं। शव की स्तुति केवल श्मशान भूमि तक ही सुनाई देती है। अस्थियां कबूतर के रंग की हो जाती हैं। चढ़ावे राख में विलीन हो जाते हैं।' उदारता का उपदेश मूर्ख देते हैं। मृत्यु के बाद अस्तित्व की बात करने वालों के शब्द झूठे और खोखले हैं। शरीर के नष्ट होने के साथ ही बुद्धिमान और मूर्ख, दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु के बाद उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता।

"इस प्रकार, जब अजित केसकंबलिन से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने निःसंयम का उत्तर दिया। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति आम के बारे में पूछे जाने पर ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर आम का उत्तर दे। उसी प्रकार, जब अजित केसकंबलिन से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने निःसंयम का उत्तर दिया। मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले एक पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति की निंदा करने के बारे में कैसे सोच सकता है?' फिर भी, न तो मुझे अजित केसकंबलिन के शब्दों से प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। न प्रसन्नता हुई और न ही विरोध, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।"

असंबंध

एक बार मैं पकुधा कच्चायना के पास पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय कच्चायना, ये साधारण शिल्पकार हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो इस पल में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है... क्या आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही किसी फल को बता सकते हैं, जो इस पल में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो?'

जब यह कहा गया, तो पकुधा कच्चयन ने मुझसे कहा, 'हे महाराज, ये सात पदार्थ हैं - अजन्मे, अविभाज्य, बिना सृष्टिकर्ता के, निर्जीव, पर्वत शिखर के समान स्थिर, स्तंभ के समान दृढ़ - जो न तो बदलते हैं, न एक दूसरे में हस्तक्षेप करते हैं, और न ही एक दूसरे को सुख, दुख या दोनों का कारण बन सकते हैं। वे कौन से सात पदार्थ हैं? पृथ्वी पदार्थ, द्रव पदार्थ, अग्नि पदार्थ, वायु पदार्थ, सुख, दुख, और आत्मा सातवां पदार्थ है। ये सात पदार्थ हैं - अजन्मे, अविभाज्य, अविभाज्य, बिना सृष्टिकर्ता के, निर्जीव, पर्वत शिखर के समान स्थिर,

स्तंभ के समान दृढ़ - जो न तो बदलते हैं, न एक दूसरे में हस्तक्षेप करते हैं, और न ही एक दूसरे को सुख, दुख या दोनों का कारण बन सकते हैं।'

"और उनमें न तो कोई हत्यारा है और न ही हत्या करवाने वाला, न कोई सुनने वाला है और न ही सुनने का कारण बनने वाला, न कोई जानने वाला है और न ही जानने का कारण बनने वाला। जब कोई किसी दूसरे व्यक्ति का सिर काटता है, तो उसमें किसी की जान लेने का कार्य नहीं होता। तलवार केवल सात पदार्थों के बीच से होकर गुजरती है।"

इस प्रकार, जब पाकुधा कच्चायना से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने अनासक्ति का भाव व्यक्त किया। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति आम के बारे में पूछे जाने पर ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर आम का उत्तर दे। उसी प्रकार, जब पाकुधा कच्चायना से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने अनासक्ति का भाव व्यक्त किया। मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति की निंदा कैसे कर सकता है?' फिर भी, न तो मुझे पाकुधा कच्चायना के शब्दों से प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। न प्रसन्नता हुई और न ही विरोध, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।

चौगुना संयम

एक बार मैं निगंथा नटपुत्त के पास पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय अग्गिवेसना, ये साधारण शिल्पकार हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है... क्या आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही किसी फल को बता सकते हैं, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो?'

जब यह कहा गया, तो निगंथ नटपुत्त ने मुझसे कहा, 'हे महाराज, एक ऐसी स्थिति है जिसमें निगंथ—जो गाँठ रहित है—चार प्रकार के संयम से बंधा होता है। और निगंथ को चार प्रकार के संयम से कैसे बांधा जाता है? एक ऐसी स्थिति है जिसमें निगंथ सभी जल से अवरुद्ध होता है, सभी जल से जुड़ा होता है, सभी जल से शुद्ध होता है, सभी जल से परिपूर्ण होता है। इस प्रकार निगंथ को चार प्रकार के संयम से बांधा जाता है। जब निगंथ—जो गाँठ रहित है—इस प्रकार के चार प्रकार के संयम से बंधा होता है, तो उसे गाँठ रहित (निगंथ), नट (नटपुत्त) का पुत्र, अपने आप को पूर्ण, अपने आप को नियंत्रित और अपने आप को स्थापित करने वाला कहा जाता है।'

इस प्रकार, जब निगंथ नटपुत्त से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने चार प्रकार के संयम से उत्तर दिया। जैसे कोई व्यक्ति आम के बारे में पूछे जाने पर ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर आम का उत्तर दे: उसी प्रकार, जब निगंथ नटपुत्त से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, तो उन्होंने चार प्रकार के संयम से उत्तर दिया। मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले एक पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति की निंदा करने के बारे में कैसे सोच सकता है?' फिर भी, न तो मुझे निगंथ नटपुत्त के शब्दों से प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। न प्रसन्नता हुई और न ही विरोध, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।

बचाव

एक बार मैं संजय बेलात्थपुत्त के पास पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे मैंने उनसे पूछा: 'आदरणीय संजय, ये साधारण शिल्पकार हैं... वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो इस पल में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है... क्या आदरणीय महोदय, आप चिंतनशील जीवन के ऐसे ही फल को इंगित कर सकते हैं, जो इस पल में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो?'

जब यह कहा गया, तो संजय बेलत्थपुत्त ने मुझसे कहा, 'यदि आप मुझसे पूछें कि क्या मृत्यु के बाद कोई दूसरा लोक है, यदि मैं मानता कि कोई दूसरा लोक है, तो क्या मैं आपको यह बताता? मुझे नहीं लगता। मैं उस तरह से नहीं सोचता। मैं इसके विपरीत नहीं सोचता। मैं नहीं सोचता। मैं नहीं सोचता कि कोई दूसरा लोक नहीं है। यदि आप मुझसे पूछें कि क्या कोई दूसरा लोक नहीं है... है भी और नहीं भी... न है भी और नहीं भी... क्या ऐसे प्राणी हैं जो जन्म-मृत्यु के बीच आते-जाते हैं... यदि नहीं हैं... है भी और नहीं भी... न हैं भी और नहीं भी... क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं... नहीं हैं भी... दोनों... न तो विद्यमान हैं और न ही मृत्यु के बाद विद्यमान हैं, क्या मैं आपको यह बताता? मुझे नहीं लगता। मैं उस तरह से नहीं सोचता। मैं इसके विपरीत नहीं सोचता। मैं नहीं सोचता कि कोई दूसरा लोक नहीं है। मैं नहीं सोचता कि कोई दूसरा लोक नहीं है।'

"इस प्रकार, जब संजय बेलात्थपुत्त से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तो उन्होंने टालमटोल भरा उत्तर दिया। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति आम के बारे में पूछे जाने पर ब्रेडफ्रूट का उत्तर दे; या ब्रेडफ्रूट के बारे में पूछे जाने पर आम का उत्तर दे: ठीक उसी प्रकार, जब संजय बेलात्थपुत्त से ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछा गया, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तो उन्होंने टालमटोल भरा उत्तर दिया। मेरे मन में यह विचार आया: 'इन पुरोहितों और ध्यानियों में यह

सबसे मूर्ख और भ्रमित है। ध्यानमग्न जीवन के फल के बारे में पूछे जाने पर, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, वह टालमटोल कैसे कर सकता है?' फिर भी मेरे मन में यह विचार आया: 'मुझ जैसा कोई व्यक्ति अपने क्षेत्र में रहने वाले किसी पुरोहित या ध्यानी की निंदा करने के बारे में कैसे सोच सकता है?'" फिर भी, संजय बेलत्थपुत्त के शब्दों से न तो मुझे प्रसन्नता हुई और न ही मैंने उनका विरोध किया। प्रसन्नता और विरोध दोनों ही नहीं, मैं असंतुष्ट था। असंतुष्टि व्यक्त किए बिना, उनकी शिक्षा को स्वीकार किए बिना, उसे अपनाए बिना, मैं अपनी सीट से उठा और चला गया।

चिंतनशील जीवन का पहला प्रत्यक्ष फल

हे भगवान, मैं भगवान से यह भी पूछता हूँ: यहाँ कुछ सामान्य शिल्पकार हैं: हाथी प्रशिक्षक, घोड़े प्रशिक्षक, रथ चालक, धनुर्धर, ध्वजवाहक, शिविर प्रमुख, आपूर्ति दल के अधिकारी, उच्च राजसी अधिकारी, कमांडो, सैन्य वीर, कवचधारी योद्धा, चमड़े के वस्त्रधारी योद्धा, घरेलू दास, हलवाई, नाई, स्नानागार, रसोइया, माला बनाने वाले, धोबी, बुनकर, टोकरी बनाने वाले, कुम्हार, गणनाकार, लेखाकार, और इसी प्रकार के अन्य शिल्पकार। वे अपने शिल्प के फल से अपना जीवन यापन करते हैं, जो इस समय और यहीं दिखाई देता है। वे स्वयं को, अपने माता-पिता, पत्नियों और बच्चों को, अपने मित्रों और सहकर्मियों को सुख और आनंद प्रदान करते हैं। वे पुरोहितों और ध्यानियों को उत्कृष्ट भेंट अर्पित करते हैं, जो स्वर्ग की ओर ले जाती है, जिससे सुख प्राप्त होता है और जो स्वर्गीय पुनर्जन्म के लिए सहायक होता है। हे भगवान, क्या इस समय और यहीं दिखाई देने वाले ध्यानमय जीवन के ऐसे ही किसी फल को इंगित करना संभव है?

"जी हाँ, महाराज। लेकिन पहले, इस संबंध में, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछूँगा। आप जैसे चाहें उत्तर दें। मान लीजिए कि आपका एक सेवक है: आपका दास, आपका कर्मचारी, जो सुबह आपसे पहले उठता है, शाम को आपके बाद ही सोता है, आपके हर आदेश का पालन करता है, हमेशा आपको प्रसन्न करने का प्रयास करता है, आपसे विनम्रता से बात करता है, और हमेशा आपके चेहरे के भावों पर नजर रखता है। उसके मन में यह विचार आएगा: 'क्या यह अद्भुत नहीं है? क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है? - पुण्य कर्मों का परिणाम, उनका अंजाम।' क्योंकि यह राजा अजातसत्तु एक मनुष्य है, और मैं भी एक मनुष्य हूँ, फिर भी राजा अजातसत्तु पाँचों इंद्रियों से परिपूर्ण होकर आनंद लेता है - मानो किसी देवता की तरह - जबकि मैं उसका दास, उसका कर्मचारी हूँ... हमेशा उसके चेहरे के भावों पर नजर रखता हूँ। मुझे भी पुण्य कर्म करने चाहिए। क्या होगा यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लूँ, गेरुए वस्त्र पहन लूँ, और बाहर निकल जाऊँ? गृहस्थ जीवन को संन्यासी जीवन में बदलना?

कुछ समय बाद वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार संन्यास लेने के बाद वह शरीर, वाणी और मन से संयमित रहता है, साधारण भोजन और आश्रय से संतुष्ट रहता है और एकांत में आनंदित होता है। मान लीजिए कि आपका कोई सेवक आपको सूचित करे: 'महाराज, आपको यह जानना चाहिए कि आपका वह सेवक—आपका दास, आपका कर्मचारी... जो सदा आपके चेहरे के भावों की प्रतीक्षा करता था... गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर गया है... साधारण भोजन और आश्रय से संतुष्ट रहता है और एकांत में आनंदित होता है।' क्या आप यह जानकर कहेंगे, 'उस सेवक को मेरे पास वापस लाओ। उसे फिर से मेरा दास, मेरा कर्मचारी बनाओ... जो सदा मेरे चेहरे के भावों की प्रतीक्षा करता रहे!'

"बिल्कुल नहीं, भगवान। बल्कि, मुझे ही उनके सामने नतमस्तक होना चाहिए, उनके आदर में उठ खड़ा होना चाहिए, उन्हें अपने आसन पर आमंत्रित करना चाहिए, उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियों का उपहार स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। और मैं ही उन्हें धार्मिक सुरक्षा, बचाव और संरक्षण प्रदान करूँगा।"

"तो हे महाराज, आपका क्या विचार है? ऐसी स्थिति में, क्या चिंतनशील जीवन का कोई प्रत्यक्ष फल होता है, या नहीं?"

"जी हां, भगवान। ऐसी स्थिति में, चिंतनशील जीवन का एक प्रत्यक्ष फल अवश्य ही दिखाई देता है।"

"हे महाराज, यह चिंतनशील जीवन का पहला फल है, जो वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, और मैं इसे आपको दिखा रहा हूँ।"

चिंतनशील जीवन का दूसरा प्रत्यक्ष फल

लेकिन क्या हे भगवान, चिंतनशील जीवन का एक और फल बताना संभव है, जो वर्तमान क्षण में ही दृश्यमान है?

"जी हाँ, महाराज। लेकिन पहले, इस संबंध में, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछूँगा। आप जैसे चाहें उत्तर दें। मान लीजिए कि आपका कोई व्यक्ति है: एक किसान, एक गृहस्थ, राजकोष में करदाता। उसके मन में यह विचार आएगा: 'क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है? क्या यह विस्मयकारी नहीं है? - पुण्य कर्मों का परिणाम, उनका अंजाम! क्योंकि यह राजा अजातसत्तु एक मनुष्य है, और मैं भी एक मनुष्य हूँ, फिर भी राजा अजातसत्तु पाँचों इंद्रियों से परिपूर्ण होकर आनंदित होते हैं - मानो किसी देवता की तरह - जबकि मैं एक किसान, एक गृहस्थ, राजकोष में करदाता हूँ। मुझे भी पुण्य कर्म करने चाहिए। क्या होगा यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लूँ, गेरुए वस्त्र धारण कर लूँ और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊँ?'"

कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटे हों या बड़े, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। इस प्रकार संन्यास लेने के बाद वह शरीर, वाणी और मन से संयमित जीवन जीता है, साधारण भोजन और आश्रय से संतुष्ट रहता है और एकांत में आनंदित होता है। मान लीजिए कि आपका कोई व्यक्ति आपको सूचित करे: 'महाराज, आपको यह जानना चाहिए कि आपका वह व्यक्ति - किसान, गृहस्थ, राजकोष में करदाता... गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला गया है... साधारण भोजन और आश्रय से संतुष्ट है और एकांत में आनंदित है।' क्या आप यह जानकर कहेंगे, 'उस व्यक्ति को मेरे पास वापस लाओ। उसे फिर से किसान, गृहस्थ, राजकोष में करदाता बना दो!'

"बिल्कुल नहीं, भगवान। बल्कि, मुझे ही उनके सामने नतमस्तक होना चाहिए, उनके आदर में उठ खड़ा होना चाहिए, उन्हें अपने आसन पर आमंत्रित करना चाहिए, उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियों का उपहार स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। और मैं ही उन्हें धार्मिक सुरक्षा, बचाव और संरक्षण प्रदान करूँगा।"

"तो हे महाराज, आपका क्या विचार है? ऐसी स्थिति में, क्या चिंतनशील जीवन का कोई प्रत्यक्ष फल होता है, या नहीं?"

"जी हां, भगवान। ऐसी स्थिति में, चिंतनशील जीवन का एक प्रत्यक्ष फल अवश्य ही दिखाई देता है।"

"हे महाराज, यह चिंतनशील जीवन का दूसरा फल है, जो वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, और मैं इसे ही आपको दिखा रहा हूँ।"

चिंतनशील जीवन के उच्चतर फल

लेकिन क्या हे भगवान, चिंतनशील जीवन का एक और फल बताना संभव है, जो वर्तमान क्षण में ही दृश्यमान है?

"जी हां, महाराज। सुनिए और ध्यान से सुनिए। मैं बोलूंगा।"

"हे महाराज, ऐसा मामला है जिसमें एक तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी और धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन खुले आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, पॉलिश किए हुए शंख के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

"जब वह इस प्रकार प्रस्थान कर लेता है, तो वह मठवासी नियमों से बंधे हुए जीवन व्यतीत करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। अपने सद्गुणों में परिपूर्ण, वह अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, सचेत और सतर्क रहता है, और संतुष्ट रहता है।"

सद्गुण पर संक्षिप्त खंड

और एक भिक्षु किस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण होता है? वह जीवन लेने का त्याग करके, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपने दंड को त्यागकर, अपने चाकू को त्यागकर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के प्रति सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है। यही उसके सद्गुण का अंश है।

"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और गांववासियों के रीति-रिवाज के अनुसार यौन क्रिया से परहेज करता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।

विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।

वह अपशब्दों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और सभी को प्रसन्न करते हैं। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
वह व्यर्थ की बातों का त्याग करके, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से जुड़ी बातें बोलता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।
वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।
वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।
वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।
वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।
वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।
वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।
वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।
वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।
"यह भी उनके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।"

सद्‌गुण पर मध्यवर्ती खंड

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, जड़ों, तनों, जोड़ों, कलियों और बीजों से उत्पन्न होने वाले इन जैसे हानिकारक बीजों और पौधों को नष्ट करने के आदी होते हैं, वह इन जैसे बीजों और पौधों को नष्ट करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, संचित वस्तुओं जैसे कि संचित भोजन, संचित पेय पदार्थ, संचित वस्त्र, संचित वाहन, संचित बिस्तर, संचित सुगंध और संचित मांस के उपभोग के आदी होते हैं, वह इन संचित वस्तुओं के उपभोग से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, नृत्य, गायन, वाद्य संगीत, नाटक, लोकगीत पाठ, ताली बजाना, झांझ और ढोल, मैजिक लैंटर्न के दृश्य, कलाबाजी और जादूगरी के करतब, हाथियों की लड़ाई, घोड़ों की लड़ाई, भैंसों की लड़ाई, बैलों की लड़ाई, बकरियों की लड़ाई, भेड़ों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई, बटेरों की लड़ाई; लाठियों से लड़ाई, मुक्केबाजी, कुश्ती, युद्ध-खेल, हाजिरी, युद्ध-प्रदर्शन और रेजिमेंटल परेड जैसे कार्यक्रमों को देखने के आदी होते हैं, वहीं वह इन कार्यक्रमों को देखने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, ऐसे व्यर्थ और आलस्यपूर्ण खेलों में लिप्त रहते हैं जैसे कि आठ पंक्तियों वाला शतरंज, दस पंक्तियों वाला शतरंज, हवा में शतरंज, हॉपस्कॉच, स्पिलिकिन्स, पासा, छड़ी के खेल, हस्तचित्र, गेंद के खेल, खिलौने की पाइपों से फूंक मारना, खिलौने के हल से खेलना, कलाबाजियां करना, खिलौने की पवनचक्कियों से खेलना, खिलौने के नाप, खिलौने के रथ, खिलौने के धनुष, हवा में खींचे गए अक्षरों का अनुमान लगाना, विचारों का अनुमान लगाना, विकृतियों की नकल करना - वह इन व्यर्थ और आलस्यपूर्ण खेलों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, इन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण साज-सामान के आदी होते हैं—बड़े आकार के सोफे, नक्काशीदार जानवरों से सजे सोफे, लंबे बालों वाले कंबल, बहुरंगी पैचवर्क कंबल, सफेद ऊनी कंबल, फूलों या जानवरों की आकृतियों से कढ़ी हुई ऊनी कंबल, गद्देदार रजाई, झालरदार कंबल, रत्नों से कढ़ी हुई रेशमी कंबल; बड़े ऊनी कालीन; हाथी, घोड़े और रथ के गलीचे, हिरण की खाल के गलीचे, बारहसिंगा की खाल के गलीचे; शामियाना वाले सोफे, सिर और पैरों के लिए लाल तकियों वाले सोफे—वह इन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण साज-सामान का उपयोग करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, सुगंध, सौंदर्य प्रसाधन और ऐसे अन्य सौंदर्य प्रसाधनों के आदी होते हैं जैसे शरीर पर पाउडर मलना, तेल से मालिश करना, सुगंधित जल से स्नान करना, अंगों को मलना, दर्पणों का उपयोग करना, मलहम, मालाएँ, सुगंध, क्रीम, चेहरे का पाउडर, कस्तूरी, कंगन, सिर के पट्टे, सजी हुई छड़ें, अलंकृत पानी की बोतलें, तलवारें, सुंदर धूप के चश्मे, सजी हुई चप्पलें, पगड़ी, रत्न, याक की पूंछ से बने झाड़ू, लंबी झालर वाले सफेद वस्त्र - वह इन सभी सुगंधों, सौंदर्य प्रसाधनों और सौंदर्य प्रसाधनों के उपयोग से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, राजाओं, लुटेरों, राज्य मंत्रियों; सेनाओं, चेतावनियों और युद्धों; भोजन और पेय; वस्त्र, फर्नीचर, मालाएँ और सुगंध; रिश्तेदारों; वाहनों; गाँवों, कस्बों, शहरों, ग्रामीण इलाकों; महिलाओं और नायकों; गली और कुएँ की गपशप; मृतकों की कहानियाँ; विविधता की कहानियाँ [अतीत और भविष्य की दार्शनिक चर्चाएँ], संसार और समुद्र की रचना, और वस्तुओं के अस्तित्व या न होने की चर्चाओं जैसे तुच्छ विषयों पर चर्चा करने के आदी होते हैं, वह इन तुच्छ विषयों पर चर्चा करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, इस प्रकार की बहसों में लिप्त रहते हैं — 'क्या आप इस सिद्धांत और अनुशासन को समझते हैं? मैं ही वह हूँ जो इस सिद्धांत और अनुशासन को समझता हूँ। आप इस सिद्धांत और अनुशासन को कैसे समझ सकते हैं? आप गलत तरीके से अभ्यास कर रहे हैं। मैं सही तरीके से अभ्यास कर रहा हूँ। मैं सुसंगत हूँ। आप नहीं। जो बात पहले कही जानी चाहिए थी, वह आपने अंत में कही। जो बात अंत में कही जानी चाहिए थी, वह आपने पहले कही। जिस बात पर आपने इतना समय विचार करने में लगाया, उसका खंडन हो गया है। आपका सिद्धांत ध्वस्त हो गया है। आप पराजित हो गए हैं। जाइए और अपने सिद्धांत को बचाने का प्रयास कीजिए; यदि संभव हो तो स्वयं को इस स्थिति से बाहर निकालिए!' — वह इस प्रकार की बहसों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन पर जीवन यापन करते हुए, राजाओं, राज्य मंत्रियों, कुलीन योद्धाओं, पुजारियों, गृहस्थों या युवकों जैसे लोगों के लिए संदेश पहुंचाने और काम करने के आदी होते हैं, जो कहते हैं, 'यहाँ जाओ, वहाँ जाओ, इसे वहाँ ले जाओ, उसे यहाँ से लाओ' - वह ऐसे लोगों के लिए संदेश पहुंचाने और काम करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के बदले दिए गए भोजन पर जीवन यापन करते हुए, षड्यंत्र रचते हैं, बहलाते हैं, इशारे करते हैं, नीचा दिखाते हैं और लाभ के बदले लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, वह इस प्रकार के षड्यंत्र और बहलाने-फुसलाने के अनुचित तरीकों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

सद्‌गुण पर महान खंड

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, निम्न स्तर की कलाओं जैसे कि: अंगों पर निशान पढ़ना [जैसे, हस्तरेखा विज्ञान]; शकुन और संकेतों को पढ़ना; खगोलीय घटनाओं की व्याख्या करना [टूटते तारे, धूमकेतु]; सपनों की व्याख्या करना; शरीर पर निशान पढ़ना [जैसे, मस्तिष्क विज्ञान]; चूहों द्वारा कुतरे गए कपड़ों पर निशान पढ़ना; अग्नि आहुति देना, करछुल से आहुति देना, भूसी, चावल का पाउडर, चावल के दाने, घी और तेल की आहुति देना; मुख से आहुति देना; रक्त-बलि देना; उंगलियों के निशान के आधार पर भविष्यवाणी करना; भूगर्भ विद्या; कब्रिस्तान में राक्षसों को दफनाना; आत्माओं पर जादू करना; घर की सुरक्षा के मंत्र पढ़ना; सांपों को वश में करना, विष विद्या, बिच्छू विद्या, चूहे विद्या, पक्षी विद्या, कौवे विद्या; दर्शन के आधार पर भविष्यवाणियां करना; सुरक्षात्मक ताबीज देना; पक्षियों और जानवरों की आवाजों की व्याख्या करना— वह गलत आजीविका से, इस प्रकार की नीच कलाओं से दूर रहता है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, गलत आजीविका से अपना गुजारा करते हैं, जैसे कि: शुभ और अशुभ रत्नों, वस्त्रों, लाठियों, तलवारों, भालों, तीरों, धनुषों और अन्य हथियारों का निर्धारण करना; स्त्रियों, लड़कों, लड़कियों, पुरुष दासों, महिला दासों; हाथियों, घोड़ों, भैंसों, बैलों, गायों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गियों, बटेरों, छिपकलियों, लंबे कान वाले कृन्तकों, कछुओं और अन्य जानवरों की पूजा करना — वह गलत आजीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, गलत आजीविका से, जैसे कि भविष्यवाणियाँ करने जैसी नीच कलाओं से अपना भरण-पोषण करते हैं: शासक आगे बढ़ेंगे; शासक आगे बढ़ेंगे और लौटेंगे; हमारे शासक आक्रमण करेंगे और उनके शासक पीछे हटेंगे; उनके शासक आक्रमण करेंगे और हमारे शासक पीछे हटेंगे; हमारे शासकों की विजय होगी और उनके शासकों की पराजय होगी; उनके शासकों की विजय होगी और हमारे शासकों की पराजय होगी; इस प्रकार विजय होगी, इस प्रकार पराजय होगी — वह गलत आजीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, गलत आजीविका से, जैसे कि भविष्यवाणियाँ करके अपना भरण-पोषण करते हैं: चंद्र ग्रहण होगा; सूर्य ग्रहण होगा; नक्षत्रों का आवरण होगा; सूर्य और चंद्रमा अपने सामान्य पथ पर चलेंगे; सूर्य और चंद्रमा भटक जाएँगे; नक्षत्र अपने सामान्य पथ पर चलेंगे; नक्षत्र भटक जाएँगे; उल्का वर्षा होगी; आकाश में अंधेरा छा जाएगा; भूकंप आएगा; साफ आकाश से गरज आएगी; सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों का उदय, अस्त, अंधकार और प्रकाश होगा; चंद्र ग्रहण का यही परिणाम होगा... सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों का उदय, अस्त, अंधकार और प्रकाश होगा — वह गलत आजीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, भविष्यवाणियाँ करने जैसी नीच कलाओं से अपना भरण-पोषण करते हैं: प्रचुर वर्षा होगी; सूखा पड़ेगा; समृद्धि होगी; अकाल पड़ेगा; आराम और सुरक्षा होगी;

खतरा होगा; बीमारी होगी; बीमारी से मुक्ति होगी; या वे गिनती, लेखा-जोखा, गणना, कविता रचना, या सुखवादी कलाओं और सिद्धांतों को सिखाकर अपना जीवन यापन करते हैं - वह इन नीच कलाओं से, इन गलत आजीविका से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, विवाह, सगाई, तलाक के लिए शुभ तिथियों की गणना करने; ऋण वसूलने या निवेश और ऋण देने; आकर्षक या अनाकर्षक होने; गर्भपात या गर्भस्राव से पीड़ित महिलाओं का इलाज करने; किसी पुरुष की जीभ बांधने, उसके जबड़े को लकवाग्रस्त करने, उसके हाथों पर नियंत्रण खोने या बहरापन लाने के लिए मंत्रों का जाप करने; दर्पण, किसी युवती या किसी तांत्रिक से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने; सूर्य की पूजा करने, ब्रह्मा की पूजा करने, मुख से ज्वाला निकालने, भाग्य की देवी का आह्वान करने जैसे निम्न स्तर के कार्यों से अपना जीवन यापन करते हैं, वह व्यक्ति ऐसे निम्न स्तर के कार्यों से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, निम्न स्तर के कार्यों से अपना भरण-पोषण करते हैं, जैसे: देवताओं को वरदान के बदले उपहार देने का वादा करना; ऐसे वादे पूरे करना; प्रेत विद्या; घर की सुरक्षा के मंत्र सिखाना; पौरुष और नपुंसकता उत्पन्न करना; निर्माण स्थलों का अभिषेक करना; औपचारिक मुख-स्नान और स्नान कराना; यज्ञ अग्नि अर्पित करना; उल्टी कराने वाली दवाएँ, दस्त की दवाएँ, ऊपर से दस्त की दवाएँ, नीचे से दस्त की दवाएँ, सिर की दस्त की दवाएँ देना; कान में तेल, आँखों में बूँदें, नाक से उपचार, मलहम और मलहम लगाना; आँखों की सर्जरी (या: दांत निकालने की सर्जरी), सामान्य सर्जरी, बाल चिकित्सा; जड़ी-बूटियों से बनी औषधियाँ देना — वह इन निम्न स्तर के कार्यों से, इन गलत आजीविका से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक भाग है।

"इस प्रकार सद्‌गुणों में परिपूर्ण भिक्षु को अपने सद्‌गुणों के कारण संयम से कोई खतरा नहीं दिखता। जिस प्रकार अपने शत्रुओं को परास्त करने वाला महापुरुष योद्धा अपने शत्रुओं से कोई खतरा नहीं देखता, उसी प्रकार सद्‌गुणों में परिपूर्ण भिक्षु को अपने सद्‌गुणों के कारण संयम से कोई खतरा नहीं दिखता। सद्‌गुणों के इस श्रेष्ठ समूह से युक्त होकर वह निर्दोष होने के सुख के प्रति आंतरिक रूप से संवेदनशील होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु सद्‌गुणों में परिपूर्ण होता है।"

इंद्रिय संयम

और एक भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? किसी आकृति को आँख से देखते समय, वह किसी भी विषय या विवरण पर ध्यान नहीं देता, जिससे—यदि वह आँख की शक्ति पर बिना संयम के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। किसी ध्वनि को कान से सुनते समय... किसी गंध को नाक से सूंघते समय... किसी स्वाद को जीभ से चखते समय... किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करते समय... किसी विचार को बुद्धि से समझते समय, वह किसी भी विषय या विवरण पर ध्यान नहीं देता, जिससे—यदि वह बुद्धि की शक्ति पर बिना संयम के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंक होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है। इस प्रकार एक भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है।

जागरूकता और सतर्कता

और एक भिक्षु में सजगता और सतर्कता कैसे होती है? आगे बढ़ते और लौटते समय, वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपने बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कुंड को ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय, वह सतर्कता से कार्य करता है। इस प्रकार एक भिक्षु में सजगता और सतर्कता होती है।

संतोष

और एक भिक्षु कैसे संतुष्ट रहता है? जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, केवल अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को ही साथ ले जाता है। यही एक भिक्षु का संतोष है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्‌गुणों के इस श्रेष्ठ समूह, इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम, इस श्रेष्ठ जागरूकता और सजगता तथा इस श्रेष्ठ संतोष से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: जंगल, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने से लौटकर, वह बैठ जाता है, पैर मोड़कर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है और जागरूकता को अपने ध्यान में लगाता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता

है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।
मान लीजिए कि एक व्यक्ति ऋण लेकर उसे अपने व्यवसाय में निवेश करता है। उसका व्यवसाय सफल होता है। वह अपने पुराने ऋण चुका देता है और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ऋण लेने से पहले मैंने उसे अपने व्यवसाय में निवेश किया था। अब मेरा व्यवसाय सफल हो गया है। मैंने अपने पुराने ऋण चुका दिए हैं और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच गया है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।
"मान लीजिए कि एक व्यक्ति बीमार पड़ जाता है - उसे बहुत दर्द होता है और वह गंभीर रूप से अस्वस्थ है। उसे भोजन करने में आनंद नहीं आता और उसके शरीर में कोई शक्ति नहीं है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस बीमारी से ठीक हो जाता है। अब वह भोजन का आनंद लेता है और उसके शरीर में शक्ति आ जाती है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं बीमार था... अब मैं उस बीमारी से ठीक हो गया हूँ। मैं भोजन का आनंद लेता हूँ और मेरे शरीर में शक्ति है।' इसी कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"
अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति जेल में बंद है। समय बीतने के साथ, अंततः वह उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं जेल में बंद था। अब मैं उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो गया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।
अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति गुलाम है, दूसरों के अधीन है, स्वयं के अधीन नहीं, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में असमर्थ है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस गुलामी से मुक्त हो जाता है, स्वयं के अधीन हो जाता है, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो जाता है, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं गुलाम था... अब मैं उस गुलामी से मुक्त हो गया हूँ, स्वयं के अधीन हूँ, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हूँ, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।
अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा था। अब मैं उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।
"इसी प्रकार, जब भिक्षु अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग नहीं करता, तो वह उन्हें ऋण, रोग, कारावास, दासता, वीरान देश का मार्ग समझता है। परन्तु जब वह अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग कर लेता है, तो वह उन्हें ऋणमुक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, कारावास से मुक्ति, स्वतंत्रता, सुरक्षा का स्थान समझता है। अपने भीतर इनका त्याग देखकर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर वह समाधि में लीन हो जाता है। समाधि में उसका शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर वह सुख के प्रति संवेदनशील हो जाता है। सुख का अनुभव करने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है।"

(चार ध्यान)
"इंद्रिय सुख से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित चिंतन और विश्लेषण से परिपूर्ण होता है। वह इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका पाउडर का गोला - संतृप्त, नमी से भरा, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी टपके नहीं; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।"
"यह चिंतनशील जीवन का फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और अधिक उदात्त है।"
इसके अतिरिक्त, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, वह द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में समा जाता है, उसे ठंडे जल से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे जल से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।
"यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पिछले फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

और इसके अलावा, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो पानी में पैदा होते हैं और बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी से बाहर नहीं निकलते, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक ठंडे पानी से भरे रहते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग परमानंद रहित आनंद से अछूता नहीं रहता।
"यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पिछले फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"
और इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न तनाव। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

अंतर्दृष्टि ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहाँ बंधी हुई है।' मान लीजिए कि शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है—आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण, और उसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा हो—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे अपने हाथ में लेकर इस प्रकार विचार करे: 'यह शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है, आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण। और इसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा है।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु उसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहीं बंधी हुई है।'
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

मन द्वारा निर्मित शरीर

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने मन को एक मन-निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक अन्य शरीर की रचना करता है, जो आकार से युक्त, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति म्यान से सरकंडा निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह म्यान है, यह सरकंडा है। म्यान एक चीज है, सरकंडा दूसरी, लेकिन सरकंडा म्यान से निकल गया है।' या जैसे कोई व्यक्ति म्यान से तलवार निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार एक चीज है, म्यान दूसरी, लेकिन तलवार म्यान से निकल गई है।' या यूं कहें कि कोई व्यक्ति सांप को उसके केंचुली से बाहर निकाल रहा हो। उसके मन में यह विचार आएगा: 'यह सांप है, यह उसकी केंचुली है। सांप एक चीज है, केंचुली दूसरी, लेकिन सांप को केंचुली से बाहर निकाल लिया गया है।' ठीक इसी प्रकार, जब भिक्षु का मन एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित हो जाता है, तो वह उसे मन से निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक और शरीर की रचना करता है, जो आकार से युक्त, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

अलौकिक शक्तियाँ

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह अनेक अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों के आर-पार ऐसे चला जाता

है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालता है। जैसे एक कुशल कुम्हार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार मिट्टी से अपनी पसंद का कोई भी बर्तन बना सकता है, या जैसे एक कुशल हाथीदांत तराशने वाला या उसका सहायक अपनी पसंद की मिट्टी से किसी भी प्रकार का बर्तन बना सकता है। वह अच्छी तरह से तैयार हाथीदांत से अपनी पसंद का कोई भी हाथीदांत का काम बना सकता है, या जैसे एक कुशल सुनार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार सोने से अपनी पसंद की कोई भी सोने की वस्तु बना सकता है; उसी प्रकार - अपने इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से - भिक्षु इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है... वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

क्लेयर ऑडियंस
"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह - शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे - दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट हों या दूर। ठीक वैसे ही जैसे यदि कोई व्यक्ति राजमार्ग पर यात्रा कर रहा हो और उसे ढोल, छोटे ढोल, शंख, झांझ और टॉम की आवाज़ें सुनाई दें, तो वह जान जाएगा, 'यह ढोल की आवाज़ है, यह छोटे ढोल की आवाज़ है, यह शंख की आवाज़ है, यह झांझ की आवाज़ है और यह टॉम की आवाज़ है।'" इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु उसे दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह—शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे दिव्य श्रवण शक्ति के माध्यम से—दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट की हों या दूर की।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

जानो, मन में क्या चल रहा है
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। अद्वितीय मन को अद्वितीय मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। जैसे कोई युवती या पुरुष, जो आभूषणों का शौकीन हो, किसी चमकदार दर्पण या स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखकर यह जान ले कि वह 'दोषपूर्ण' है या 'दोषरहित' है। उसी प्रकार, अपने इस एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से, भिक्षु इसे अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनून से भरे मन को जुनून से भरे मन के रूप में और बिना जुनून वाले मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है... मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और असंलग्न मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है। अप्रकाशित मन, अप्रकाशित मन के रूप में।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

बीते जन्मों की यादें
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों (यानी पूर्व जन्मों) के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग। वह स्मरण करता है, 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा

भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ।' उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। जीवन। उस अवस्था से गुजरकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद करता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने गाँव से दूसरे गाँव जाए, फिर उस गाँव से किसी और गाँव जाए, और फिर उस गाँव से वापस अपने गाँव आ जाए। उसके मन में यह विचार आएगा, 'मैं अपने गाँव से उस गाँव गया। वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं उस गाँव गया, और वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं वापस घर आ गया।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने पिछले जन्मों के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

प्राणियों का देहांत और पुन: प्रकट होना
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। जैसे कि किसी शहर के केंद्रीय चौक में एक ऊँची इमारत हो, और उस पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को घर में प्रवेश करते, घर से बाहर निकलते, सड़क पर चलते और केंद्रीय चौक में बैठते हुए देखे। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ये लोग घर में प्रवेश कर रहे हैं, घर से बाहर निकल रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं और केंद्रीय चौक में बैठ रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह—शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—प्राणित और पुनर्जन्मित प्राणियों को देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है।
"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का ही फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पहले के फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।"

मानसिक उथल-पुथल का अंत
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्‌गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्‌गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-वासना, कर्म-वासना और अज्ञान-वासना से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह समझ पाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' जैसे मान लीजिए कि किसी पहाड़ी घाटी में पानी का एक तालाब हो—साफ़, निर्मल और बेदाग—जहाँ किनारे पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर देख सके, और साथ ही मछलियों के झुंड तैरते और आराम करते हुए देख सके, और उसके मन में यह विचार आए, 'यह तालाब साफ़, निर्मल और निर्मल है। यहाँ ये सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर हैं, और साथ ही मछलियों के ये झुंड तैरते और आराम करते हुए हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्‌गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्‌गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझ जाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं बचा है।'

"हे महाराज, यह भी चिंतनशील जीवन का फल है, जो यहीं और अभी दिखाई देता है, और पिछले फलों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है। और चिंतनशील जीवन का इससे भी उच्चतर और उदात्त कोई अन्य प्रत्यक्ष फल नहीं है।"
यह सुनकर राजा अजातसत्तु ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, आप महान हैं! महान! जिस प्रकार कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, भटके हुए को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं भगवान बुद्ध की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"
हे भगवान, मुझसे एक पाप हो गया है, क्योंकि मैं इतना मूर्ख, इतना नासमझ और इतना अकुशल था कि मैंने अपने पिता—एक धर्मी पुरुष, एक धर्मी राजा—को सत्ता के लालच में मार डाला। ईश्वर मेरी इस पाप स्वीकारोक्ति को स्वीकार करें, ताकि मैं भविष्य में संयम बरत सकूँ।
"जी हाँ, महाराज, आपने एक अपराध किया है, क्योंकि आप इतने मूर्ख, इतने नासमझ और इतने अकुशल थे कि आपने अपने पिता—एक धर्मात्मा, एक धर्मात्मा राजा—को राजसत्ता के लिए मार डाला। लेकिन क्योंकि आप अपने अपराध को समझते हैं और धर्म के अनुसार प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम आपका पश्चाताप स्वीकार करते हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपने अपराध को पहचानकर धर्म के अनुसार प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तो यह धर्म और अनुशासन में वृद्धि का कारण बनता है।"
यह सुनकर राजा अजातसत्तु ने भगवान बुद्ध से कहा, "अच्छा, भगवान, अब मैं विदा लेता हूँ। मेरे बहुत से कर्तव्य हैं, बहुत सी जिम्मेदारियाँ हैं।"
"तो फिर, हे महान राजा, वही करो जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है।"
अतः राजा अजातसत्तु भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करने के बाद चले गए। राजा अजातसत्तु के जाने के कुछ ही समय बाद भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, राजा घायल हैं। राजा अक्षम हैं। यदि उन्होंने अपने पिता – उस धर्मात्मा, उस धर्मात्मा राजा – की हत्या न की होती, तो निष्कलंक, निष्कलंक धम्म दृष्टि उन्हें इसी आसन पर बैठे हुए दिखाई देती।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई। जब तक अन्यथा उल्लेख न किया जाए, सामुदायिक सामग्री CC-BY-SA लाइसेंस के तहत उपलब्ध है ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.3: अंबत्था सुत्त (डीएन 3)

सेटिंग
I. 1. मैंने ऐसा सुना है। भगवान बुद्ध एक बार लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ कोसल देश की यात्रा पर निकले और कोसल में इक्खानंकला नामक एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे; और वहाँ वे इक्खानंकला वन में ठहरे।

उस समय ब्राह्मण पोक्खरसादी उक्कत्था में निवास कर रहे थे, जो जीवन से भरपूर स्थान था, जहाँ बहुत सारे घास के मैदान, जंगल और अनाज थे, और यह एक शाही क्षेत्र था, जिसे कोसल के राजा पसेनदी (या प्रसेनजित) ने उन्हें शाही उपहार के रूप में दिया था, और उस पर उन्हें राजा के समान अधिकार प्राप्त थे।

2. अब ब्राह्मण पोक्खरसादी ने यह समाचार सुना: 'लोग कहते हैं कि शाक्य वंश के समना गौतम, जिन्होंने शाक्य परिवार छोड़कर धार्मिक जीवन अपनाया था, अपने संघ के कई भिक्षुओं के साथ इखानांकला पहुंचे हैं और वहां इखानांकला वन में ठहरे हुए हैं। उस पूज्य गौतम के बारे में यह उच्च प्रतिष्ठा दूर-दूर तक फैली हुई है:--वह भगवान अरहत हैं, पूर्णतः जागृत हैं, ज्ञान और सत्त्व से परिपूर्ण हैं, सुखी हैं, संसार के ज्ञान से परिपूर्ण हैं, मनुष्यों के लिए अद्वितीय मार्गदर्शक हैं, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, एक धन्य व्यक्ति हैं, एक बुद्ध हैं।' वह स्वयं ही इस ब्रह्मांड को भलीभांति जानता और देखता है, मानो देवताओं, ब्रह्माओं और मारों के स्वर्गलोक तथा इसलोक में संन्यासियों और ब्राह्मणों, राजकुमारों और प्रजाजनों का सर्वथा अवलोकन कर रहा हो। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद वह अपना ज्ञान दूसरों को भी प्रकट करता है। वह अपने उद्गम, अपने विकास और अपने समापन में सुंदर सत्य का आध्यात्मिक और शाब्दिक दोनों रूपों में प्रचार करता है; वह उच्चतर जीवन को उसकी संपूर्णता और उसकी पवित्रता में प्रकट करता है।

'और इस प्रकार अरहतों के दर्शन करना अच्छा है।'

3. उस समय एक युवा ब्राह्मण, अंबत्थ, पोक्खरसादी ब्राह्मण का शिष्य था। वह पवित्र मंत्रों का जाप करने वाला (या जप करने वाला) था, उसे रहस्यवादी श्लोक कंठस्थ थे, उसने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी, जिनमें सूचकांक, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान, व्याख्या (चौथा) और कथाएँ (पाँचवाँ) शामिल थीं। मुहावरों और व्याकरण में पारंगत, लोकायत के कुतर्क में पारंगत, और एक महान व्यक्ति के

शरीर पर चिन्हों के सिद्धांत में पारंगत, वह अपने गुरु द्वारा प्रतिपादित त्रिविध वैदिक ज्ञान प्रणाली में इतना प्राधिकारी था कि वह उनके बारे में कह सकता था: 'जो मैं जानता हूँ वह आप जानते हैं, और जो आप जानते हैं वह मैं जानता हूँ।'

4. और पोक्करासादी ने अंबत्था को यह खबर सुनाई और कहा: 'अब आओ, प्रिय अंबत्था, समना गौतम के पास जाओ और पता करो कि उनके बारे में दूर-दूर तक जो ख्याति फैली हुई है, वह तथ्यों के अनुरूप है या नहीं, समना गौतम वास्तव में वैसे ही हैं जैसा लोग कहते हैं या नहीं।'

5. 'लेकिन महोदय, मुझे कैसे पता चलेगा कि यह सच है या नहीं?'

अंबत्था, हमारे रहस्यवादी श्लोकों में एक महान पुरुष के बत्तीस शारीरिक लक्षणों का वर्णन किया गया है—ये लक्षण यदि किसी व्यक्ति में हों, तो वह दो में से एक ही होगा, और कोई दूसरा नहीं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह संसार का स्वामी, धर्मात्मा राजा, चारों महामहासागरों के तट तक शासन करने वाला, विजेता, अपनी प्रजा का रक्षक और सात राजसी रत्नों का स्वामी होगा। उसके पास ये सात रत्न होंगे—चक्र, हाथी, अश्व, रत्न, स्त्री, कोषाध्यक्ष और सातवाँ रत्न सलाहकार। उसके एक हजार से अधिक पुत्र होंगे, जो वीर और बलवान होंगे, शत्रु की सेनाओं को पराजित करेंगे। वह समुद्र से समुद्र तक फैली पृथ्वी पर पूर्ण भगवानत्व के साथ निवास करेगा, और बिना लाठी या तलवार के धर्मपूर्वक शासन करेगा। परन्तु यदि वह गृहस्थ जीवन त्यागकर निर्वासित हो जाए, तो वह बुद्ध बन जाएगा जो संसार के नेत्रों से पर्दा हटा देगा। अब मैं, अंबत्था, रहस्यवादी श्लोकों का दाता हूँ; तुमने इन्हें मुझसे प्राप्त किया है।'

6. 'बहुत अच्छा, महाराज,' अंबत्था ने उत्तर दिया; और अपने आसन से उठकर पोक्खरसादी को प्रणाम करते हुए, घोड़ियों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर सवार होकर युवा ब्राह्मणों के दल के साथ इक्खानंकला वन की ओर चल पड़े। जब वे रथ पर सवार होकर उस दूरी तक पहुँच गए जहाँ तक वाहनों के लिए मार्ग संभव था, तो वे नीचे उतर गए और पैदल ही वन में आगे बढ़ गए।

7. उस समय कुछ भाई खुले में इधर-उधर टहल रहे थे। अंबत्था उनके पास गया और बोला, 'आदरणीय गौतम गौतम इस समय कहाँ ठहरे हुए हैं? हम उनसे मिलने यहाँ आए हैं।'

8. तब भाइयों ने सोचा, 'यह युवा ब्राह्मण अंबत्था प्रतिष्ठित परिवार से है और प्रतिष्ठित ब्राह्मण पोक्खरसादी का शिष्य है। भगवान बुद्ध को ऐसे व्यक्ति से बातचीत करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।' और उन्होंने अंबत्था से कहा, 'अंबत्था, वह उनका निवास स्थान है, जहाँ दरवाजा बंद है। तुम चुपचाप ऊपर जाओ और धीरे से बरामदे में प्रवेश करो, खांसो और चौखट पर दस्तक दो। भगवान बुद्ध तुम्हारे लिए दरवाजा खोल देंगे।'

9. तब अंबत्था ने ऐसा ही किया। भगवान बुद्ध ने द्वार खोला और अंबत्था अंदर आ गए। अन्य युवा ब्राह्मण भी अंदर गए; उन्होंने भगवान बुद्ध से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन और प्रशंसा की और अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। लेकिन अंबत्था इधर-उधर घूमते हुए, कभी बेचैन होकर तो कभी खड़े होकर, वहाँ बैठे भगवान बुद्ध से कुछ न कुछ शिष्टाचारपूर्ण बातें कहते रहे।

10. और भगवान बुद्ध ने उससे कहा: 'हे अंबत्था, क्या यही वह तरीका है कि तुम वृद्ध गुरुओं और अपने गुरुओं के उन गुरुओं से, जो काफी उम्रदराज हो चुके हैं, इस तरह बातचीत करो, जैसे तुम अभी कर रहे हो, चलते-फिरते या खड़े रहते हुए, जबकि मैं इस प्रकार बैठा हूँ?'

11. 'बिल्कुल नहीं, गौतम। ब्राह्मण से चलते-चलते बात करना तभी उचित है जब ब्राह्मण स्वयं चल रहा हो, और खड़े ब्राह्मण से खड़े होकर, बैठे ब्राह्मण से बैठे ब्राह्मण से, या लेटे ब्राह्मण से। लेकिन मुंडे हुए बालों वाले, पाखंडी साधुओं, नीच काले लोगों, हमारे रिश्तेदारों की एड़ियों की मैल से भी मैं वैसे ही बात करूँगा जैसे अभी तुमसे कर रहा हूँ!'

लेकिन अंबत्था, तुम यहाँ कुछ तो चाह रहे होगे। बल्कि उस उद्देश्य पर ध्यान दो जिसके लिए तुम यहाँ आए थे। यह नौजवान ब्राह्मण अंबत्था बदतमीज़ है, हालाँकि वह अपनी संस्कृति पर गर्व करता है; ऐसा अभद्र व्यवहार प्रशिक्षण की कमी के अलावा और क्या हो सकता है?

12. तब अंबत्थ को भगवान बुद्ध द्वारा अभद्र कहे जाने पर क्रोध और नाराजगी हुई; और यह सोचकर कि भगवान बुद्ध उससे नाराज हैं, उसने उनका उपहास करते हुए कहा, "हे गौतम, ये शाक्य वंश के लोग बड़े ही कठोर और अभद्र हैं; ये शाक्य वंश के लोग बड़े ही

चिड़चिड़े और हिंसक हैं। ये तो केवल तुच्छ लोग हैं, न तो ब्राह्मणों का आदर करते हैं, न उन्हें महत्व देते हैं, न उनका सम्मान करते हैं, न उन्हें दान देते हैं, न उनका आदर करते हैं। हे गौतम, यह न तो उचित है, न ही शालीन है!"

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अंबत्था ने पहली बार शाक्यों पर नीच होने का आरोप लगाया।

13. 'लेकिन फिर, अंबत्था, शाक्यों ने किस बात में तुम्हें ठेस पहुंचाई है?'

'एक बार, गौतम, मुझे पोक्खरसादी के किसी काम से कपिलवस्तु जाना पड़ा और मैं शाक्यों सभा भवन में गया। उस समय कई शाक्यों, बूढ़े और जवान, भवन में भव्य आसनों पर बैठे थे, आपस में हंसी-मजाक कर रहे थे और एक-दूसरे को उंगलियों से इशारा कर रहे थे; और सच कहूँ तो, मुझे लगता है, मैं ही उनके मजाक का निशाना बना था; और उनमें से किसी ने भी मुझे बैठने के लिए जगह नहीं दी। गौतम, यह न तो उचित है और न ही शालीन है कि शाक्यों, जो कि केवल साधारण लोग हैं, ब्राह्मणों का आदर न करें, उन्हें महत्व न दें, उनका सम्मान न करें, उन्हें दान न दें और उनका आदर न करें।'

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अंबत्था ने दूसरी बार शाक्यों पर नीच होने का आरोप लगाया।

14. 'अंबत्था, भले ही वह एक छोटी मुर्गी हो, बटेर अपने घोंसले में जो चाहे कह सकती है। और शाक्य वहां कपिलवस्तु में अपने घर में हैं। इतनी तुच्छ बात पर नाराज़ होना आपके लिए उचित नहीं है।'

15. 'गौतम, ये चार श्रेणियाँ हैं—कुलीन, ब्राह्मण, व्यापारी और श्रमिक। और इन चारों में से तीन—कुलीन, व्यापारी और श्रमिक—वास्तव में ब्राह्मणों के सेवक मात्र हैं। अतः, गौतम, यह न तो उचित है और न ही सलीब है कि शाक्य, जो कि मात्र सेवक हैं, ब्राह्मणों का आदर करें, उन्हें महत्व दें, उनका सम्मान करें, उन्हें दान दें और उनका आदर करें।'

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अंबत्था ने तीसरी बार शाक्यों पर नीच होने का आरोप लगाया।

16. तब भगवान बुद्ध ने ऐसा सोचा, 'यह अंबत्थ अपने दास वंश के आरोप से शाक्यों को नीचा दिखाने पर तुला हुआ है। यदि मैं उससे उसके वंश के बारे में पूछ लूँ तो क्या होगा?' और उन्होंने उससे कहा:

'तो फिर, अंबत्था, तुम किस परिवार से संबंध रखती हो?'

मैं एक कन्हैयन हूँ।

'हाँ, लेकिन यदि कोई आपके प्राचीन नाम और वंश, अंबत्था, का पिता और माता दोनों ओर से पता लगाए, तो यह प्रतीत होता है कि शाक्यों कभी आपके स्वामी थे, और आप उनकी किसी दासी की संतान हैं। लेकिन शाक्यों अपना वंश राजा ओक्काका से जोड़ते हैं।'

बहुत समय पहले, राजा ओक्काका, अंबत्था ने अपनी प्रिय रानी के पुत्र के पक्ष में उत्तराधिकार मोड़ने की इच्छा से अपने बड़े बच्चों - ओक्कामुख, करांडा, हत्थिनिका और सिनीपुरा - को देश से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार निर्वासित होकर वे हिमालय की ढलानों पर, एक झील के किनारे बस गए जहाँ एक विशाल बलूत का वृक्ष उगता था। और अपने वंश की शुद्धता को ठेस पहुँचने के भय से उन्होंने अपनी बहनों से विवाह कर लिया।

'तब राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) ने अपने दरबार के मंत्रियों से पूछा: "महोदय, बच्चे अब कहाँ हैं?"'

'हे महाराज, हिमालय की ढलानों पर, एक झील के किनारे, एक स्थान है जहाँ एक विशाल बलूत (सको) वृक्ष उगता है। वे वहीं निवास करते हैं। और अपने वंश की शुद्धता को ठेस न पहुँचे इसलिए उन्होंने अपनी ही (सकाही) बहनों से विवाह किया है।'

तब राजा ओक्काका प्रशंसा से भर उठे: "ये नौजवान तो बलूत के हृदय (सक्या) के हैं! वे सचमुच अपनी रक्षा (परमसाक्या) बखूबी कर रहे हैं!"

"इसीलिए, अंबत्था, इन्हें शाक्य कहा जाता है। अब ओक्काका की एक दासी थी जिसका नाम दिसा था। उसने एक काले बच्चे को जन्म दिया। जन्म लेते ही उस नन्हे काले बच्चे ने कहा, "माँ, मुझे धो दो। मुझे नहला दो। माँ, मुझे इस गंदगी से मुक्त कर दो। तब मैं तुम्हारे काम आऊँगा।"

'अब, अंबत्था, जैसे आज लोग शैतानों को "शैतान" कहते हैं, वैसे ही तब भी लोग शैतानों को "काले प्राणी" (कन्हे) कहते थे। और वे कहते थे: "यह प्राणी जन्म लेते ही बोलने लगा। 'यह एक काला प्राणी (कन्हा) है जो पैदा हुआ है, एक शैतान पैदा हुआ है!' और यही अंबत्था, कन्हैयान वंश की उत्पत्ति है। वह कन्हैयान वंश के पूर्वज थे। और इस प्रकार, अंबत्था, यदि कोई आपके प्राचीन नाम और वंश का पता लगाए, पिता और माता दोनों की ओर से, तो यह पता चलता है कि शाक्य कभी आपके स्वामी थे, और आप उनकी दासियों में से एक की संतान हैं।'

17. जब उन्होंने ऐसा कहा, तो युवा ब्राह्मणों ने भगवान बुद्ध से कहा, “आदरणीय गौतम अंबत्था को दासी की संतान होने के इस अपमान से अधिक कठोर रूप से अपमानित न करें। हे गौतम, वह उच्च कुल का है और अच्छे परिवार से है; वह पवित्र भजनों का ज्ञाता है, कुशल पाठकर्ता है, विद्वान है। और वह इन मामलों में आदरणीय गौतम को उत्तर देने में सक्षम है।”

18. तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा: 'बिल्कुल सही। यदि आप अन्यथा सोचते, तो हमारी चर्चा को आगे बढ़ाना आपका काम होता। लेकिन जैसा कि आप सोचते हैं, अंबत्था को स्वयं बोलने दीजिए।'

19. 'हम ऐसा ही सोचते हैं; और हम चुप रहेंगे। अंबत्था इन मामलों में पूज्य गौतम को उत्तर देने में सक्षम हैं।'

20. तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण अंबत्थ से कहा: 'हे अंबत्थ, यह एक और प्रश्न उठता है, जो बहुत ही तर्कसंगत है और जिसका उत्तर तुम्हें अनिच्छा से ही सही, देना चाहिए। यदि तुम स्पष्ट उत्तर नहीं दोगे, या किसी अन्य मुद्दे पर चले जाओगे, या चुप रहोगे, या चले जाओगे, तो तुम्हारा सिर वहीं टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। तुमने क्या सुना है, जब वृद्ध और अनुभवी ब्राह्मण, तुम्हारे या उनके गुरु, आपस में चर्चा कर रहे थे कि कन्हैयान वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई और वे किस पूर्वज से जुड़े हैं?'

और जब उन्होंने ऐसा कहा तो अंबत्थ चुप रहे। तब भगवान ने उनसे वही प्रश्न दोबारा पूछा। फिर भी अंबत्थ चुप रहे। तब भगवान ने उनसे कहा: 'अंबत्थ, अब उत्तर देना बेहतर होगा। यह चुप रहने का समय नहीं है। क्योंकि अंबत्थ, जो कोई भी तथागत (सत्य को प्राप्त करने वाले) द्वारा पूछे गए उचित प्रश्न का उत्तर तीसरी बार पूछे जाने पर भी नहीं देता, उसका सिर मौके पर ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।'

21. उस समय वज्र धारण करने वाला प्राणी आकाश में अंबत्थ के ऊपर लोहे के एक विशालकाय पिंड के साथ खड़ा था, जो अग्निमय, तेजस्वी और दीप्तिमान था। उसका इरादा था कि यदि अंबत्थ उत्तर न दे तो वह उसका सिर वहीं टुकड़े-टुकड़े कर दे। भगवान बुद्ध ने वज्र धारण करने वाले प्राणी को देखा, और ब्राह्मण अंबत्थ ने भी। अंबत्थ को जब इसका ज्ञान हुआ, तो वह भयभीत, चौंक और व्याकुल होकर भगवान बुद्ध से सुरक्षा, संरक्षण और सहायता की प्रार्थना करते हुए उनके पास श्रद्धापूर्वक बैठ गया और बोला, 'भगवान बुद्ध ने क्या कहा? एक बार फिर कहिए!'

'अंबत्था, तुम्हारा क्या विचार है? तुमने क्या सुना है, जब वृद्ध और अनुभवी ब्राह्मण, तुम्हारे या उनके गुरु, आपस में चर्चा कर रहे थे कि कन्हैयान वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई और वे किस पूर्वज से जुड़े हैं?'

'जी गौतम, मैंने भी यही सुना है, जैसा कि पूज्य गौतम ने कहा है। यही कन्हायन वंश की उत्पत्ति है, और यही वह पूर्वज हैं जिनसे वे अपना वंश जोड़ते हैं।'

22. जब उसने ऐसा कहा तो युवा ब्राह्मण शोर-शराबा और उपद्रव मचाने लगे; और कहने लगे, 'वे कहते हैं कि ब्राह्मण अंबत्थ नीच कुल का है; उसका परिवार प्रतिष्ठित नहीं है; वह दासी का वंशज है; और शाक्य उसके स्वामी थे। हमने यह नहीं सोचा था कि समना गौतम, जिनके वचन स्वयं धर्म हैं, भरोसेमंद नहीं होंगे!'

23. और भगवान बुद्ध ने सोचा, 'ये ब्राह्मण अंबत्था को दासी की संतान कहकर उसकी निंदा करने में हद पार कर रहे हैं। मुझे उसे उनके अपमान से मुक्त करना चाहिए।' और उन्होंने उनसे कहा, 'अंबत्था ब्राह्मण की उसके वंश के आधार पर निंदा करने में अधिक कठोर मत बनो।' वह कान्हा एक महान ऋषि बन गया। वह दक्कन (दक्षिण भारत) गया, वहाँ उसने रहस्यवादी श्लोक सीखे, और राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) के पास लौटकर उसने उसकी पुत्री मद्दरूपी से विवाह की माँग की। राजा ने उत्तर में कहा, "यह कौन है जो मेरी दासी का पुत्र

होते हुए भी मेरी पुत्री से विवाह की माँग कर रहा है?" और क्रोधित होकर उसने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। परन्तु न तो वह बाण चला सका और न ही उसे वापस कमान से उतार सका।

तब मंत्री और दरबारी संत कान्हा के पास गए और बोले: "महाराज को सुरक्षित जाने दीजिए; राजा को सुरक्षित जाने दीजिए।"

"राजा को कोई हानि नहीं होगी। लेकिन यदि वह तीर नीचे की ओर चलाएगा, तो उसके राज्य की सीमा तक धरती सूख जाएगी।"

"महामहिम, राजा और देश दोनों सुरक्षित रहें।"

"राजा को कोई हानि नहीं होगी, न ही उसकी भूमि को। लेकिन यदि वह तीर ऊपर की ओर चलाएगा, तो देवता उसके राज्य के विस्तार क्षेत्र में सात वर्षों तक वर्षा नहीं करेंगे।"

"हे महाराज, राजा और देश दोनों की सुरक्षित यात्रा हो; और ईश्वर वर्षा करे।"

"राजा को कोई हानि नहीं होगी, न ही धरती को, और देवता वर्षा करेंगे। लेकिन यदि राजा अपने सबसे बड़े पुत्र पर तीर चलाए, तो राजकुमार को कोई हानि नहीं होगी, उसके एक बाल को भी स्पर्श नहीं होगा।"

तब, हे ब्राह्मणों, मंत्रियों ने यह बात ओक्काका को बताई और कहा, "राजा अपने बड़े पुत्र पर निशाना साधें। उन्हें न तो कोई हानि होगी और न ही कोई भय।" राजा ने वैसा ही किया, और कोई हानि नहीं हुई। परन्तु राजा, इस सीख से भयभीत होकर, अपनी पुत्री मद्दा-रूपी को उस व्यक्ति से विदा कर दिया। हे ब्राह्मणों, अंबत्था की दासी पूर्वज के मामले में उनकी निंदा करने में अति कठोर मत बनो। वह कान्हा एक महान ऋषि थे।

24. तब भगवान बुद्ध ने अंबत्थ से कहा, 'अंबत्थ, तुम क्या सोचते हो? मान लो कि एक क्षत्रिय युवक का किसी ब्राह्मण कन्या से संबंध हो और उनके संभोग से एक पुत्र का जन्म हो। तो क्या क्षत्रिय युवक के माध्यम से ब्राह्मण कन्या को प्राप्त हुआ वह पुत्र ब्राह्मणों से आदर के प्रतीक के रूप में आसन और जल ग्रहण करेगा?'

'हां, वो करेगा, गौतम।'

लेकिन क्या ब्राह्मण उसे मृतकों को अर्पित भोज, या दूध में उबले भोजन (2) या देवताओं को अर्पित प्रसाद, या उपहार के रूप में भेजे गए भोजन में भाग लेने की अनुमति देंगे?

'हां, वे ऐसा करेंगे, गौतम।'

लेकिन क्या ब्राह्मण उसे अपने श्लोक सिखाएंगे या नहीं?

'वे ऐसा करेंगे, गौतम।'

'लेकिन क्या वह उनकी महिलाओं से अलग-थलग रहेगा या नहीं?'

'उसे रोका नहीं जा सकता था।'

लेकिन क्या क्षत्रिय उन्हें क्षत्रिय दीक्षा समारोह में भाग लेने की अनुमति देंगे?

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

'क्यों नहीं वो?'

'क्योंकि वह मां की तरफ से शुद्ध वंश का नहीं है।'

25. 'तो फिर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? मान लो कि एक ब्राह्मण युवक का एक क्षत्रिय कन्या से संबंध हो और उनके संभोग से एक पुत्र का जन्म हो। तो क्या ब्राह्मण युवक के माध्यम से क्षत्रिय कन्या को प्राप्त हुआ पुत्र ब्राह्मणों से आदर के प्रतीक के रूप में आसन और जल ग्रहण करेगा?'

'हां, वो करेगा, गौतम।'

लेकिन क्या ब्राह्मण उसे मृतकों को अर्पित भोज, या दूध में उबले भोजन, या देवताओं को अर्पित प्रसाद, या उपहार के रूप में भेजे गए भोजन में भाग लेने की अनुमति देंगे?

'हां, वे ऐसा करेंगे, गौतम।'

लेकिन क्या ब्राह्मण उसे अपने श्लोक सिखाएंगे या नहीं?

'वे ऐसा करेंगे, गौतम।'

'लेकिन क्या वह उनकी महिलाओं से अलग-थलग रहेगा या नहीं?'

'वो ऐसा नहीं करेगा, गौतम।'

लेकिन क्या क्षत्रिय उन्हें क्षत्रिय दीक्षा समारोह में भाग लेने की अनुमति देंगे?

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

'क्यों नहीं वो?'

'क्योंकि वह पिता की तरफ से शुद्ध वंश का नहीं है।'

26. 'तो, अंबत्था, चाहे स्त्री की तुलना स्त्री से की जाए या पुरुष की तुलना पुरुष से, क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मण हीन हैं।

'और तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? मान लो कि ब्राह्मण किसी अपराध के कारण किसी ब्राह्मण को उसके बाल मुंडवाकर और उसके सिर पर राख डालकर देश से निकाल दें, उसे अपने देश या कस्बे से निर्वासित कर दें। क्या उसे ब्राह्मणों के बीच बैठने या पानी पीने को मिलेगा?'

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

'या क्या ब्राह्मण उसे मृतकों को अर्पित भोजन, या दूध में उबला भोजन, या देवताओं को अर्पित भोजन, या उपहार के रूप में भेजा गया भोजन ग्रहण करने की अनुमति देंगे?'

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

'या फिर ब्राह्मण उसे अपने श्लोक सिखाएंगे या नहीं?'

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

'और क्या उसे उनकी महिलाओं से अलग कर दिया जाएगा या नहीं?'

'उसे अलग-थलग कर दिया जाएगा।'

27. 'पर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? यदि क्षत्रियों ने भी उसी प्रकार किसी क्षत्रिय को बहिष्कृत कर दिया होता और उसे देश या नगर से निर्वासित कर दिया होता, तो क्या ब्राह्मणों के बीच उसे जल और आसन दिया जाता?'

'हां, वो करेगा, गौतम।'

और क्या उसे मृतकों को अर्पित भोजन, या दूध में उबला भोजन, या देवताओं को अर्पित भोजन, या उपहार के रूप में भेजा गया भोजन ग्रहण करने की अनुमति दी जाएगी?

'वो करेगा, गौतम।'

'और क्या ब्राह्मण उसे अपने श्लोक सिखाएंगे?'

'क्या वे ऐसा करेंगे, गौतम?'

'और क्या उसे उनकी महिलाओं से अलग कर दिया जाएगा या नहीं?'

'वो ऐसा नहीं करेगा, गौतम।'

लेकिन, अंबत्था, ऐसा करने पर क्षत्रिय घोर अपमानित हो जाता, उसका सिर मुंडा हुआ होता, राख से ढककर उसकी हत्या कर दी जाती, और उसे देश-नगर से निकाल दिया जाता। अतः, भले ही क्षत्रिय घोर अपमानित हो जाए, फिर भी यह सत्य है कि क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मण हीन हैं।

28. इसके अलावा, ब्रह्मा देवताओं में से एक, सनमकुमार (सनत्कुमार) ने इस श्लोक का उच्चारण किया था:

"वंश में विश्वास रखने वालों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है। परन्तु जो ज्ञान और धर्म में परिपूर्ण है, वही देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।"

"हे अंबत्थ, इस श्लोक का ब्रह्मा सनमकुमार ने सुंदर ढंग से गायन किया है, यह सुंदर कथन है, अर्थपूर्ण कथन है। मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ; हे अंबत्थ, मैं भी यही कहता हूँ।"

"वंश में विश्वास रखने वालों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है। परन्तु जो ज्ञान और धर्म में परिपूर्ण है, वही देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।"

यहां पाठ के लिए प्रथम भाग समाप्त होता है।
II. 1. 'पर हे गौतम, उस श्लोक में वर्णित धर्म और ज्ञान क्या है?'

'अंबत्था, ज्ञान और धर्म की सर्वोच्च पूर्णता में, न तो जन्म का प्रश्न है, न वंश का, और न ही उस अहंकार का जो कहता है: "तुम मेरे समान योग्य हो" या "तुम मेरे समान योग्य नहीं हो"। विवाह या विवाह कराने की बात होने पर ही ऐसी बातों का उल्लेख होता है। क्योंकि अंबत्था, जो कोई भी जन्म या वंश की धारणाओं, या सामाजिक स्थिति के अहंकार, या विवाह के बंधन में बंधा है, वह सर्वोत्तम ज्ञान और धर्म से बहुत दूर है। केवल इन सभी बंधनों से मुक्त होकर ही व्यक्ति स्वयं ज्ञान और आचरण की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।'

2. 'पर हे गौतम, वह आचरण क्या है और वह ज्ञान क्या है?'

'ऐसे व्यक्ति, अंबत्था, को ज्ञान में परिपूर्ण, आचरण में परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण दोनों में परिपूर्ण कहा जाता है। और ज्ञान और आचरण में इससे उच्चतर और मधुर कोई अन्य परिपूर्णता नहीं है।'

3. 'अब, अंबत्था, ज्ञान और अच्छाई की इस सर्वोच्च पूर्णता में [चार रिसाव हैं। और वे चार क्या हैं?'

"हे अंबत्था, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण, ज्ञान और आचरण में इस सर्वोच्च पूर्णता को पूर्णतः प्राप्त किए बिना, अपने कंधे पर बोझ (आग जलाने की लकड़ियाँ, पानी का घड़ा, सुइयाँ और भिक्षु के अन्य सामान) लेकर जंगल की गहराई में उतर जाए और स्वयं से प्रतिज्ञा करे: "मैं अब से केवल गिरे हुए फलों पर ही जीवित रहूँगा"—तो निःसंदेह, वह केवल उसी का सेवक बनने योग्य सिद्ध होता है जिसने ज्ञान और धर्म को प्राप्त कर लिया है।"

और फिर, अंबत्था, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण, ज्ञान और आचरण में इस सर्वोच्च पूर्णता को पूर्णतः प्राप्त किए बिना, और केवल स्वयं गिरे फलों पर जीवन यापन करने की अवस्था को प्राप्त किए बिना, कुदाल और टोकरी लेकर जंगल की गहराई में उतर जाए और स्वयं से यह प्रतिज्ञा करे: "मैं अब से केवल कंद, जड़ और फलों पर ही जीवन यापन करूंगा"—तो निःसंदेह, वह केवल उसी का सेवक बनने योग्य सिद्ध होता है जिसने ज्ञान और धर्म को प्राप्त कर लिया है।

और फिर, अंबत्था, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण, ज्ञान और आचरण में इस सर्वोच्च पूर्णता को पूर्णतः प्राप्त किए बिना, और केवल स्वयं गिरे हुए फलों पर जीवन यापन किए बिना, और केवल कंदों, जड़ों और फलों पर जीवन यापन किए बिना, किसी गाँव या कस्बे की सीमा के पास एक अग्नि-मंदिर का निर्माण करे और वहाँ अग्नि-देव की सेवा करते हुए निवास करे—तो निश्चय ही, वह केवल उसी का सेवक बनने योग्य सिद्ध होता है जिसने ज्ञान और धर्म को प्राप्त कर लिया हो।

और फिर, अंबत्था, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण, ज्ञान और आचरण में इस सर्वोच्च पूर्णता को पूर्णतः प्राप्त किए बिना, केवल अपने ही गिरे फलों पर जीवन यापन किए बिना, केवल कंदों, जड़ों और फलों पर जीवन यापन किए बिना, और अग्निदेव की सेवा किए बिना, चार मुख्य सड़कों के संगम पर चार द्वारों वाला भिक्षागृह बनवाए और वहाँ निवास करे, और मन ही मन कहे: "जो कोई भी, चाहे संन्यासी हो या ब्राह्मण, इन चारों दिशाओं में से किसी भी दिशा से यहाँ से गुजरेगा, मैं अपनी सामर्थ्य और क्षमता के अनुसार उसका सत्कार करूँगा"—तो निश्चय ही वह केवल उसी का सेवक बनने योग्य सिद्ध होता है जिसने ज्ञान और धर्म को प्राप्त कर लिया हो।

'ये चार रिसाव हैं, अंबत्था, जो धार्मिकता और आचरण में सर्वोच्च पूर्णता की ओर ले जाते हैं।'

4. 'अब तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? क्या तुम, एक ही शिक्षक के अधीन शिष्यों के एक समूह में से एक होने के नाते, ज्ञान और आचरण की इस सर्वोच्च पूर्णता में शिक्षित हुए हो?'

'ऐसा नहीं है, गौतम। मैंने कितना कम सीखा है! यह ज्ञान और आचरण की पूर्णता कितनी सर्वोच्च है! इसमें प्रशिक्षित होना तो मेरे बस की बात ही नहीं है।'

'तो फिर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? यद्यपि तुमने ज्ञान और अच्छाई की इस सर्वोच्च पूर्णता को पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया है, क्या तुम्हें इस बात का प्रशिक्षण दिया गया है कि तुम अपने कंधों पर बोझ उठाकर जंगल की गहराई में उतर जाओ, मानो कोई स्वयं गिरे हुए फलों पर ही जीवन यापन करने का व्रत निभाना चाहता हो?'

'वो भी नहीं, गौतम।'

'तो फिर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? यद्यपि तुमने ज्ञान और अच्छाई की इस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है, न ही तुम स्वयं गिरे फलों पर जीवन यापन करने में सक्षम हुए हो, क्या तुम्हें कुदाल और टोकरी लेकर जंगल की गहराई में उतरने का प्रशिक्षण दिया गया है, मानो तुम केवल कंद, जड़ और फलों पर जीवन यापन करने का व्रत निभाना चाहते हो?'

'वो भी नहीं, गौतम।'

'तो फिर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? यद्यपि तुमने ज्ञान और अच्छाई की इस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है, और स्वयं गिरे हुए फलों पर जीवन यापन करना नहीं सीखा है, और कंदों, जड़ों और फलों पर जीवन यापन करना नहीं सीखा है, तो क्या तुम्हें किसी गाँव या कस्बे की सीमा पर अपने लिए अग्नि-मंदिर बनाने और वहाँ अग्नि-देवता की सेवा करने वाले के रूप में निवास करने की शिक्षा दी गई है?'

'वो भी नहीं, गौतम।'

'तो फिर तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? यद्यपि तुमने ज्ञान और अच्छाई की इस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है, और स्वयं गिरे हुए फलों पर जीवन यापन करना नहीं सीखा है, और कंदों, जड़ों और फलों पर जीवन यापन करना नहीं सीखा है, और अग्निदेव की सेवा करना नहीं सीखा है, क्या तुम्हें यह सिखाया गया है कि तुम चार मुख्य सड़कों के चौराहे पर चार दरवाजों वाला भिक्षागृह बनाओ, और वहाँ ऐसे निवास करो जैसे तुम उस व्रत का पालन करना चाहते हो कि जो भी उस रास्ते से, किसी भी दिशा से आए, अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार उसका सत्कार करो?'

'वो भी नहीं, गौतम।'

5. 'तो फिर, अंबत्थ, शिष्य होने के नाते, तुम उचित प्रशिक्षण से वंचित रह गए हो, न केवल सर्वोच्च ज्ञान और आचरण में, बल्कि उन चार दोषों में से किसी एक में भी, जिनके कारण पूर्ण प्राप्ति बाधित होती है। और तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोक्खरसादी ने भी तुमसे यह कहा है: "ये कौन से गंजे, पाखंडी साधु, नीच काले लोग, हमारे रिश्तेदारों के पैरों की गंदगी हैं, जो तीन प्रकार के वैदिक ज्ञान में पारंगत ब्राह्मणों से बात करने का दावा करते हैं!" - स्वयं उन्होंने इन छोटे कर्तव्यों में से एक का भी पालन नहीं किया है (जो मनुष्यों को उच्च कर्तव्यों की उपेक्षा करने के लिए प्रेरित करते हैं)। देखो, अंबत्थ, तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोक्खरसादी ने तुम्हारे साथ कितना गहरा अन्याय किया है।'

6. "ब्रह्मन पोक्खरसादी, अंबत्थ, कोसल के राजा पसेनदी से अनुदान प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु राजा उन्हें अपने समक्ष आने की अनुमति नहीं देते। जब वे उनसे परामर्श करते हैं, तो वे उनसे केवल पर्दे के पीछे से ही बात करते हैं। हे अंबत्थ, यह कैसे हो सकता है कि जिस राजा से वे यह शुद्ध और वैध भरण-पोषण प्राप्त करते हैं, कोसल के राजा पसेनदी, वे ही उन्हें अपने समक्ष आने की अनुमति नहीं देते? देखो, अंबत्थ, तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोक्खरसादी ने इस मामले में तुम्हारे साथ कितना गहरा अन्याय किया है।"

7. 'अब अंबत्था, तुम क्या सोचते हो? मान लो कि कोई राजा अपने हाथी की गर्दन पर बैठा हो, या अपने घोड़े की पीठ पर, या अपने रथ के पायदान पर खड़ा हो, और अपने सरदारों या राजकुमारों के साथ राज्य के किसी निर्णय पर चर्चा कर रहा हो। और मान लो कि जैसे ही वह उस स्थान से उठकर एक तरफ कदम रखे, कोई कारीगर (शूद्र) या कारीगर का दास आकर वहाँ खड़ा हो जाए और इस विषय पर चर्चा करते हुए कहे: "राजा पसेनादि ने ऐसा कहा।" यद्यपि वह राजा की तरह बोले या राजा की तरह चर्चा करे, तो क्या वह राजा कहलाएगा या उसका कोई अधिकारी?'

'बिल्कुल नहीं, गौतम।'

8. 'परन्तु हे अंबत्था, वे प्राचीन ब्राह्मण कवि (ऋषि), जिन्होंने श्लोकों की रचना की, जिनके प्राचीन शब्द स्वरूपों का आज ब्राह्मण पुनरावलोकन करते हैं, उनका उच्चारण करते हैं या उन्हें रचित करते हैं—अर्थात अठक, वामक, वामदेव, वेस्सामित्त, यमतग्गी, अंगिरस, भारद्वग, वासेत्थ, कस्सप और भगु{1}—यद्यपि तुम कह सको: "मैं एक शिष्य होने के नाते उनके श्लोकों को कंठस्थ जानता हूँ," तो भी इस कारण ऋषि होना या ऋषि की अवस्था प्राप्त करना—ऐसी स्थिति का कोई अस्तित्व नहीं है!'

9. 'अब तुम क्या सोचते हो, अंबत्था? तुमने क्या सुना है जब ब्राह्मण, वृद्ध और अनुभवी, तुम्हारे गुरु या उनके गुरु आपस में बातें कर रहे थे—क्या वे प्राचीन ऋषि, जिनके श्लोक तुम बार-बार गाते और दोहराते हो, तुम्हारी और तुम्हारे गुरु की तरह सजे-धजे, सुगंधित, बाल-दाढ़ी संवारे, मालाओं और रत्नों से सजे, सफेद वस्त्र पहने, पाँचों इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए घूमते थे?'

'वो नहीं, गौतम।'

या फिर क्या वे अपने भोजन के रूप में सर्वोत्तम किस्म के उबले हुए चावल खाते थे, जिनमें से सभी काले धब्बे निकालकर अलग कर दिए जाते थे, और जिन्हें तरह-तरह की चटनी और करी के साथ मिलाकर खाया जाता था, जैसा कि आप और आपके शिक्षक भी अब करते हैं?

'वो नहीं, गौतम।'

'या फिर उनकी सेवा उन महिलाओं द्वारा की जाती थी जिनके कमर के चारों ओर झालर और लबादे होते थे, जैसा कि आप और आपके शिक्षक भी अब करते हैं?'

या फिर वे भी, जैसा कि आप और आपके शिक्षक अब करते हैं, गुंथी हुई अयाल और पूंछ वाली घोड़ियों द्वारा खींचे जाने वाले रथों को चलाते हुए, लंबी छड़ियों और अंकुशों का उपयोग करते हुए घूमते थे?

'वो नहीं, गौतम।'

या फिर क्या उन्होंने अपने चारों ओर खाई खोदकर और फाटकों के सामने लोहे की छड़ें लगाकर, लंबी तलवारों से लैस सैनिकों द्वारा किलेबंद शहरों में अपनी सुरक्षा की थी, जैसा कि आप और आपके शिक्षक भी अब करते हैं?

'वो नहीं, गौतम।'

10. 'तो फिर, अंबत्था, न तो तुम ऋषि हो, न ही अपने गुरु, और न ही तुम उन परिस्थितियों में रहते हो जिनमें ऋषि रहते थे। परन्तु अंबत्था, मेरे बारे में तुम्हारे मन में जो भी संदेह या उलझन हो, मुझसे पूछो। मैं उसे स्पष्ट कर दूंगा।'

11. फिर भगवान बुद्ध अपने कक्ष से बाहर निकले और इधर-उधर टहलने लगे। अंबत्थ ने भी ऐसा ही किया। जब वह भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे टहल रहा था, तो उसने एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों का अवलोकन किया कि क्या वे भगवान बुद्ध के शरीर पर प्रकट होते हैं या नहीं। उसने उनमें से दो को छोड़कर बाकी सभी को देखा। उन दो लक्षणों—छिपे हुए जननांग और जीभ की लंबाई—के संबंध में वह संशय और असमंजस में था, संतुष्ट नहीं था, निश्चित नहीं था।

12. और भगवान बुद्ध को पता था कि वह कितना असमंजस में है। उन्होंने अपनी अद्भुत वरदान से ऐसी व्यवस्था की कि ब्राह्मण अंबत्था ने देखा कि भगवान बुद्ध का वह भाग जो वस्त्रों से ढका होना चाहिए था, आवरण में लिपटा हुआ था। और भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ को इस प्रकार मोड़ा कि उन्होंने अपने दोनों कानों को छुआ और सहलाया, अपने दोनों नथुनों को छुआ और सहलाया, और अपने माथे के पूरे घेरे को अपनी जीभ से ढक लिया।

और युवा ब्राह्मण अंबत्था ने सोचा, 'समना गौतम में एक महान व्यक्ति के बत्तीस लक्षण हैं, वे सभी लक्षण हैं, न कि केवल कुछ।' और उसने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे गौतम, अब हम चलना चाहते हैं। हम व्यस्त हैं और हमें बहुत काम करना है।'

'अंबत्था, जो तुम्हें उचित लगे वही करो।'

और अंबत्था घोड़ियों द्वारा खींचे जाने वाले अपने रथ पर सवार होकर वहां से चला गया।

13. उस समय ब्राह्मण पोक्खरसादी ब्राह्मणों के एक बड़े दल के साथ उक्कत्था से निकले थे और अपने आरामगाह में अंबत्थ की प्रतीक्षा कर रहे थे। अंबत्थ भी वहाँ पहुँचे। जब वे अपने रथ में उस मार्ग तक आ गए जहाँ तक रथों का आना संभव था, तो वे रथ से उतर गए और पैदल चलकर पोक्खरसादी के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। जब वे बैठ गए, तो पोक्खरसादी ने उनसे कहा:

14. 'अच्छा, अंबत्था! क्या तुमने भगवान बुद्ध को देखा?'

'जी हां, सर, हमने उसे देखा था।'

'अच्छा! क्या पूज्य गौतम वाकई वैसे ही हैं जैसा उनके बारे में मैंने आपको बताया है; या अन्यथा। क्या वे वाकई वैसे ही हैं, या नहीं?'

'वह बिल्कुल वैसा ही है, महोदय, जैसा कि उसकी प्रतिष्ठा से प्रमाणित होता है, अन्यथा नहीं। वह ऐसा ही है, भिन्न नहीं। और वह एक महान व्यक्ति के बत्तीस लक्षणों से संपन्न है, उन सभी से, न कि केवल कुछ से।'

'और क्या तुमने समना गौतम से कोई बात की, अंबत्था?'

'जी हां, सर, मैंने किया था।'

'और बातचीत कैसी रही?'

तब अंबत्था ने ब्राह्मण पोक्खरासादी को भगवान बुद्ध से हुई सारी बातचीत बताई।

15. जब उसने ऐसा कहा, तो पोक्खरसादी ने उससे कहा, 'अरे! हे ज्ञानी! अरे! हे मूर्ख! अरे! हे हमारे तीन वैदिक ज्ञान के ज्ञाता! कहते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार अपना काम करता है, उसे मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर किसी भयानक दु:ख और पीड़ा में पुनर्जन्म लेना पड़ता है। तुम्हारे इन उद्दंड शब्दों का क्या अर्थ है, यदि वे पूज्य गौतम द्वारा प्रकट किए गए रहस्यों की ओर इशारा नहीं करते? हे ज्ञानी! हे मूर्ख! हे वैदिक ज्ञान के ज्ञाता!' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उसने पैर से प्रहार किया और अंबत्था को लुढ़का दिया। और वह उसी क्षण भगवान बुद्ध से मिलने जाना चाहता था।

16. परन्तु वहाँ के ब्राह्मणों ने पोक्खरसादी से इस प्रकार कहा: 'हे महोदय, आज समना गौतम से मिलने जाना बहुत देर हो चुकी है। आदरणीय पोक्खरसादी कल ऐसा कर सकते हैं।'

इसलिए पोक्खरसादी ने अपने घर पर मीठे व्यंजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार के, तैयार करवाए और मशालों की रोशनी में रथों पर लादकर उक्कत्था ले गए। फिर वे स्वयं अपने रथ में सवार होकर इखनांकला वन की ओर गए, जहाँ तक वाहनों के लिए मार्ग संभव था, और फिर पैदल चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। और जब उन्होंने भगवान बुद्ध से शिष्टाचार और विनम्रता के अभिवादन और शुभकामनाएँ दीं, तो वे एक तरफ बैठ गए और भगवान बुद्ध से कहा:

17. 'क्या हमारा शिष्य गौतम, युवा ब्राह्मण अंबत्था, यहाँ आया था?'

'हां, ब्राह्मण, उसके पास है।'

'और क्या तुमने, गौतम, उससे कोई बात की?'

'हां, ब्राह्मण, मेरे पास था:

और आपने उससे किस विषय पर बात की?

18. तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण पोक्खरसादी को सारी बातें बताईं। और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो पोक्खरसादी ने भगवान बुद्ध से कहा:

'गौतम, वह युवा ब्राह्मण अंबत्था नासमझ और मूर्ख है। गौतम, उसे क्षमा कर दीजिए।'

'हे ब्राह्मण, उस युवा ब्राह्मण अंबत्थ को पूर्णतः प्रसन्न रहने दो।'

19. ब्राह्मण पोक्खरसादी ने भगवान बुद्ध के शरीर पर एक महान प्राणी के बत्तीस लक्षणों का अवलोकन किया। उन्होंने दो को छोड़कर बाकी सभी को स्पष्ट रूप से देखा। उनमें से दो - आवरण में छिपा जननांग और विस्तृत जीभ - के बारे में वे अभी भी संशय में थे और निर्णय नहीं ले पा रहे थे। लेकिन भगवान बुद्ध ने पोक्खरसादी को वे लक्षण दिखाए, जैसे उन्होंने अंबत्था को दिखाए थे। पोक्खरसादी ने यह अनुभव किया कि भगवान बुद्ध एक महान प्राणी के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण थे, न कि केवल कुछ से। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय गौतम मुझे कल उनके साथ भोजन करने की कृपा करें, और संघ के सदस्यों को भी उनके साथ भोजन करने की कृपा करें।' भगवान बुद्ध ने मौन रहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

20. तब ब्राह्मण पोक्खरसादी ने देखा कि भगवान बुद्ध ने भोजन ग्रहण कर लिया है, तो उन्होंने अगले दिन उन्हें समय की सूचना दी: 'हे गौतम, भोजन तैयार है।' भगवान बुद्ध, जो सुबह जल्दी तैयार हो गए थे, उन्होंने अपना वस्त्र धारण किया और अपना कुंड लेकर भाइयों के साथ पोक्खरसादी के घर गए और उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। ब्राह्मण पोक्खरसादी ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध को मीठे और नरम दोनों प्रकार के भोजन से तब तक तृप्त किया जब तक कि उन्होंने और भोजन करने से मना नहीं किया, और संघ के युवा ब्राह्मणों ने भी ऐसा ही किया। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और कुंड और अपने हाथ धो लिए, तो पोक्खरसादी ने एक नीचा आसन ग्रहण किया और उनके बगल में बैठ गए।

21. तब भगवान बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार बैठे हुए विधिवत प्रवचन दिए; अर्थात् उन्होंने उन्हें उदारता, सही आचरण, स्वर्ग, कामवासनाओं के खतरे, व्यर्थता और अशुद्धता तथा त्याग के लाभों के विषय में बताया। और जब भगवान बुद्ध ने देखा कि ब्राह्मण पोक्खरसादी तैयार, कोमल, निष्पक्ष, उन्नत और विश्वासी हृदय वाले हो गए हैं, तब उन्होंने उस सिद्धांत का प्रचार किया जो केवल बुद्धों ने ही प्राप्त किया है; अर्थात् दुःख, उसके उद्भव, उसके निवारण और मार्ग का सिद्धांत। और जिस प्रकार एक साफ कपड़ा, जिससे सारे दाग धुल गए हों, आसानी से रंग सोख लेता है, ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण पोक्खरसादी ने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य के प्रति शुद्ध और निर्मल दृष्टि प्राप्त कर ली, और उन्होंने जाना: 'जिस किसी चीज का आरंभ होता है, उसमें विनाश की आवश्यकता भी अंतर्निहित होती है।'

22. तब ब्राह्मण पोक्खरसादी, जिन्होंने सत्य को देखा था, उस पर महारत हासिल की थी, उसे समझा था, उसमें गहराई तक उतर गए थे, जो संदेह से परे होकर उलझन को दूर कर पूर्ण विश्वास प्राप्त कर चुके थे, जो गुरु की शिक्षाओं के ज्ञान के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं थे, उन्होंने भगवान बुद्ध को संबोधित करते हुए कहा:

हे गौतम, आपके मुख के शब्द अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई व्यक्ति गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए व्यक्ति को सही मार्ग दिखाता है, या अंधकार में प्रकाश डालता है ताकि देखने वाले बाहरी रूप देख सकें, ठीक उसी प्रकार, हे भगवान, पूज्य गौतम ने अनेक उदाहरणों के माध्यम से मुझे सत्य का ज्ञान कराया है। हे गौतम, मैं अपने पुत्रों, पत्नी, लोगों और साथियों के साथ पूज्य गौतम को अपना मार्गदर्शक, सत्य का मार्ग और संघ का मार्ग मानता हूँ। पूज्य गौतम मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उन्हें अपना मार्गदर्शक माना है। और जिस प्रकार पूज्य गौतम उक्कत्था में अपने शिष्यों के परिवारों से मिलने जाते हैं, उसी प्रकार वे मेरे परिवार से भी मिलने आएं। वहाँ जो भी ब्राह्मण या उनकी पत्नियाँ हों, जो पूज्य गौतम को आदरपूर्वक प्रणाम करें, उनके समक्ष खड़े हों, उन्हें आसन या जल अर्पित करें, या उनमें प्रसन्नता ग्रहण करें, वह उनके लिए दीर्घकालिक कल्याण और आनंद का कारण बनेगा।

'हे ब्राह्मण, आपकी बात ठीक है।'

जब तक अन्यथा उल्लेख न किया जाए, सामुदायिक सामग्री CC-BY-SA लाइसेंस के तहत उपलब्ध है ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.4: **सोनदंड सुत्त** (डीएन 4)

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार जब भगवान बुद्ध अपने लगभग पाँच सौ भाइयों के साथ ऐगा देश की यात्रा पर निकले, तो वे कैम्पा पहुँचे। और वहाँ कैम्पा में उन्होंने गग्गारा झील के किनारे डेरा डाला।

उस समय ब्राह्मण सूनादाओ चंपा में निवास कर रहा था, जो जीवन से भरपूर स्थान था, जहाँ बहुत सारे घास के मैदान, जंगल, पानी और अनाज थे, और यह एक शाही जागीर थी जो उसे मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार द्वारा एक शाही जागीर के रूप में प्रदान की गई थी, जिस पर उसका अधिकार राजा के समान था।

2. अब चंपा के ब्राह्मणों और गृहस्थों ने यह समाचार सुना: "वे कहते हैं कि शाक्य कुल के समा॑आ गौतम, जिन्होंने शाक्य परिवार छोड़कर धार्मिक जीवन अपनाया था, अब अपने कई भाइयों के साथ चंपा पहुँच गए हैं और गग्गरा झील के किनारे ठहरे हुए हैं। उस पूज्य गौतम के विषय में यह उच्च प्रतिष्ठा दूर-दूर तक फैली हुई है कि वे अरहत हैं, पूर्णतः ज्ञानी हैं, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, सुखी हैं, संसार के ज्ञान से परिपूर्ण हैं, मनुष्यों के लिए अद्वितीय मार्गदर्शक हैं, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, एक धन्य व्यक्ति हैं, एक बुद्ध हैं।" वह स्वयं ही इस ब्रह्मांड को भलीभांति जानता और देखता है, मानो देवताओं, ब्रह्माओं और मारों के स्वर्गलोक तथा पाताल लोक, जिसमें संन्यासी और ब्राह्मण, राजकुमार और प्रजा शामिल हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद वह अपना ज्ञान दूसरों को भी प्रकट करता है। वह अपने उद्गम, अपने विकास और अपने समापन में सुंदर सत्य का आध्यात्मिक और शाब्दिक दोनों रूपों में प्रचार करता है; वह उच्चतर जीवन को उसकी संपूर्णता और उसकी पवित्रता में प्रकट करता है।

और इस प्रकार अरहतों के दर्शन करना अच्छा है।

और चंपा के ब्राह्मण और गृहस्थ प्रत्येक जिले से समूहों और टोलियों में चंपा छोड़कर गग्गरा झील की ओर जाने लगे, ताकि उनकी गिनती की जा सके।

3. उस समय ब्राह्मण सूनादाओ अपने घर की ऊपरी छत पर दोपहर की नींद के लिए चले गए थे, और लोगों को इस प्रकार जाते हुए देखकर उन्होंने अपने द्वारपाल से कहा: 'चंपा के लोग इस प्रकार गग्गरा झील की ओर क्यों जा रहे हैं?'

तब द्वारपाल ने उसे यह समाचार सुनाया। और उसने कहा: "हे अच्छे द्वारपाल, चंपा के ब्राह्मणों और गृहस्थों के पास जाओ और उनसे कहो: 'ब्राह्मण चाहते हैं कि वे प्रतीक्षा करें। वे स्वयं समागोता के दर्शन करने आएंगे।'"

'बहुत अच्छा, महोदय,' द्वारपाल ने कहा और उसने वैसा ही किया।

4. उस समय विभिन्न राज्यों से लगभग पाँच सौ ब्राह्मण किसी न किसी काम से चंपा में ठहरे हुए थे। जब उन्होंने सुना कि सूनादाओ, सामॅगौतम से मिलने की योजना बना रहे हैं, तो वे सूनादाओ के पास गए और उनसे पूछा कि क्या यह सच है।

'यही मेरा इरादा है, महोदय। मैं समाओ गौतम से मिलने का प्रस्ताव करता हूँ।'

'आदरणीय सून्धाओं को ऐसा नहीं करना चाहिए। उनके लिए ऐसा करना उचित नहीं है। यदि आदरणीय सून्धाओं स्वयं उनसे मिलने जाते, तो आदरणीय सून्धाओं की प्रतिष्ठा घट जाती और समा ॅगोतम की प्रतिष्ठा बढ़ जाती। यही मुख्य कारण है कि आप, महोदय, उनसे न मिलें, बल्कि वे आपसे मिलें।'

5. और उन्होंने सूआदा ब्राह्मण के समक्ष इसी प्रकार अन्य विचार भी रखे, अर्थात्:

कि वह दोनों तरफ से अच्छे कुल में जन्मा था, माता और पिता दोनों की ओर से सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश का था, उस पर जन्म के संबंध में कोई कलंक या निंदा नहीं थी।

वह समृद्ध, संपन्न और धनी था।

वह पवित्र शब्दों का बार-बार जाप करने वाला, रहस्यमय श्लोकों को कंठस्थ जानने वाला, तीनों वेदों में पारंगत, उनके सूचकांकों, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और व्याख्या (चौथे के रूप में) तथा कथाओं (पांचवें के रूप में) में पारंगत, शब्दों और व्याकरण में विद्वान, लोकायत (प्रकृति-ज्ञान) में पारंगत और एक महान व्यक्ति के शरीर पर मौजूद संकेतों के सिद्धांत में पारंगत था।

वह सुंदर, देखने में मनमोहक, विश्वास जगाने वाला, रंगत से परिपूर्ण, गोरा, आकर्षक व्यक्तित्व वाला और राजसी व्यक्तित्व वाला था।

वह गुणी था, उसके गुण बढ़ते गए, और वह ऐसे गुणों से संपन्न था जो बहुत अधिक विकसित हो गए थे।

उनकी आवाज सुरीली थी और बोलने का तरीका भी मनमोहक था, और वे शिष्टतापूर्ण भाषा में बात करने में निपुण थे, उनकी बोली स्पष्ट थी, कर्कश नहीं, और विषय को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए उपयुक्त थी।

वह अनेकों के गुरु थे, जिन्होंने तीन सौ ब्राह्मणों को रहस्यमय श्लोकों का पाठ करना सिखाया, और विभिन्न दिशाओं और विभिन्न क्षेत्रों से अनेक युवा ब्राह्मण, जो उन श्लोकों के लिए तरस रहे थे, उनके पास उन्हें कंठस्थ करने के लिए आए।

वह वृद्ध, उम्रदराज और काफी उम्रदराज थे, लंबी आयु वाले और जीवन से भरपूर व्यक्ति थे।

कि मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार द्वारा उन्हें सम्मानित, महत्ववान, योग्य, पूजनीय और आदरपूर्ण माना जाता था।

उस झूठ को ब्राह्मण पोक्खरसादी द्वारा सम्मानित, महत्वपूर्ण, योग्य, पूजनीय और आदरपूर्ण माना गया।

वह चंपा में निवास करता था, जो जीवन से भरपूर स्थान था, जिसमें बहुत सारे घास के मैदान, जंगल और अनाज थे, और यह एक शाही जागीर थी जो उसे मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार द्वारा एक शाही उपहार के रूप में प्रदान की गई थी, और उस पर उसका अधिकार ऐसा था मानो वह स्वयं राजा हो।

इन सभी कारणों से यह उचित नहीं था कि ब्राह्मण सूआदाओ, समोआ गौतम का आह्वान करें, बल्कि यह उचित था कि समोआ गौतम उनका आह्वान करें।

6. जब उन्होंने ऐसा कहा, तो सोआदाओआ ने उनसे कहा:

तो महोदय, सुनिए और समझिए कि यह क्यों उचित है कि मैं पूज्य गौतम से प्रार्थना करूं, न कि वे मुझसे प्रार्थना करें।

'सचमुच, महोदय, आदरणीय गौतम दोनों तरफ से उच्च कुल के हैं, माता और पिता दोनों की ओर से सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश के हैं, उन पर कोई कलंक नहीं है और जन्म के संबंध में कोई निंदा नहीं है।'

"सचमुच, महोदय, समाओ गौतम ने अपने रिश्तेदारों के महान कुल को त्यागकर (धार्मिक जीवन में) प्रस्थान किया है।"

"सचमुच, महोदय, समाओआ गौतम ने बहुत सारा धन और सोना, जमीन में दबे और जमीन के ऊपर मौजूद खजाना त्याग कर (धार्मिक जीवन में) प्रस्थान किया है।"

"सचमुच, महोदय, समाओआ गौतम, जब वे अभी युवा ही थे, उनके सिर पर एक भी सफेद बाल नहीं था, अपनी युवावस्था की सुंदरता में, गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में चले गए थे।"

"सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम, यद्यपि उनके माता-पिता अनिच्छुक थे और रोते हुए उनके गाल आंसुओं से भीग गए थे, फिर भी उन्होंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में चले गए।"

सचमुच, महोदय, समाओआ गौतम सुंदर हैं, देखने में मनभावन हैं, विश्वास जगाने वाले हैं, रंगत में बेहद खूबसूरत हैं, गोरे रंग के हैं, आकर्षक व्यक्तित्व वाले हैं और राजसी ढंग से देखे जा सकते हैं।

'सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम अरहतों के गुणों से परिपूर्ण, अच्छे और गुणी, अच्छाई और सद्‌गुण से संपन्न हैं।'

सचमुच, महोदय, समाओ गौतम की आवाज सुरीली है और उनका उच्चारण मधुर है; वे शिष्टतापूर्ण भाषा में निपुण हैं, उनकी आवाज स्पष्ट है, कर्कश नहीं है, और विषय को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए उपयुक्त है।

सचमुच, महोदय, समाओआ गौतम अनेक गुरुओं के गुरु हैं।

सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम में कामवासना का कोई वासना नहीं रह गया है, और उन्होंने मन की सभी चंचलता को त्याग दिया है।

सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम कर्म और कर्म में विश्वास करते हैं, [15] वे ब्राह्मण जाति को (अपने उपदेशों में) धर्म को सबसे आगे रखते हैं।

"सचमुच, महोदय, समाओ गौतम क्षत्रिय वंशों में प्राचीन और प्रतिष्ठित परिवार से थे।"

महोदय, यह सच है कि समाओआ गौतम एक समृद्ध, संपन्न और धनी परिवार से आए थे।

सचमुच, महोदय, लोग दूर-दूर के देशों से पूरे देश भर से समाओआ गौतम से प्रश्न पूछने आते हैं।

सचमुच, महोदय, असंख्य दिव्य प्राणी समाॅगोतम पर अपना विश्वास रखते हैं।

सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम के बारे में इतनी उच्च प्रतिष्ठा फैली हुई है कि उन्हें अरहत, उच्च कोटि का, पूर्णतः जागृत, ज्ञान और धर्म से परिपूर्ण, सुखी, संसार के ज्ञान से परिपूर्ण, एक धन्य पुरुष, एक बुद्ध कहा जाता है।

सचमुच, महोदय, समाॅआ गौतम में एक महान प्राणी के सभी बत्तीस शारीरिक लक्षण मौजूद हैं।

सचमुच, महोदय, समाओआ गौतम सभी मनुष्यों का स्वागत करते हैं, सौहार्दपूर्ण हैं, मेल-मिलाप करने वाले हैं, अभिमानी नहीं हैं, सभी के लिए सुलभ हैं, और बातचीत में संकोच नहीं करते हैं।

सचमुच, महोदय, समा॑आ गौतम को उनके अनुयायियों के चारों वर्गों (संघ के भाई-बहन, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं) द्वारा सम्मानित, महत्ववान, आदरणीय और पूजनीय माना जाता है।

सचमुच, महोदय, अनेक देवता और मनुष्य समाओआ गौतम में विश्वास करते हैं।

'सचमुच, महोदय, जिस भी गाँव या कस्बे में समाओआ गौतम निवास करते हैं, वहाँ के गैर-मानव, मनुष्यों को कोई हानि नहीं पहुँचाते।'

महोदय, यह सर्वविदित है कि समा॑त गौतम किसी संप्रदाय, किसी विद्यालय या विद्यालय के प्रमुख के रूप में, सभी संप्रदायों के संस्थापकों में सर्वमान्य रूप से श्रेष्ठ हैं। जबकि कुछ समा॑त और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार की तुच्छ बातों से ख्याति अर्जित की है, समा॑त गौतम ऐसे नहीं हैं। उनकी ख्याति उनके आचरण और धार्मिकता की पूर्णता से प्राप्त होती है।

सचमुच, महाराज, मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने अपने बच्चों और पत्नियों, अपनी प्रजा और अपने दरबारियों के साथ समा॑आ गौतम पर भरोसा रखा है।

"सचमुच, महोदय, कोसला के राजा पसेनादि ने अपने बच्चों और पत्नियों, अपनी प्रजा और अपने दरबारियों के साथ समाओआ गौतम पर भरोसा रखा है।"

"सचमुच, महोदय, ब्राह्मण पोक्खरसादी ने अपने बच्चों और पत्नियों, अपने लोगों और अपने करीबी लोगों के साथ समा॑आ गौतम पर भरोसा रखा है।"

"सचमुच, महोदय, समा॑आ गौतम को मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार, कोसल के राजा पसेनदी और ब्राह्मण पोक्खरासादी द्वारा समान रूप से सम्मानित, महत्ववान, आदरणीय और पूजनीय माना जाता है।"

महोदय, यह सच है कि समा॑आ गौतम अब कैम्पा पहुँच चुके हैं और गग्गरा झील के किनारे ठहरे हुए हैं। परन्तु हमारे गाँव की सीमा में आने वाले सभी समा॑आ और ब्राह्मण हमारे अतिथि हैं। और अतिथि होने के नाते हमें उनका आदर और सम्मान करना चाहिए, उनकी पूजा-अर्चना करनी चाहिए। और चूंकि वे अब आए हैं, इसलिए उनके साथ अतिथि जैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, यह उचित नहीं है कि समा॑ गौतम हमें पुकारें, बल्कि यह हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें पुकारें। और समा॑ गौतम के गुणों का ज्ञान मुझे अभी तक ही है, लेकिन ये सभी गुण नहीं हैं, क्योंकि उनके गुण अतुलनीय हैं।

7. जब उन्होंने ऐसा कहा, तो उन ब्राह्मणों ने उनसे कहा: ‘आदरणीय सून्धाळा ने समाळा गौतम की इतनी स्तुति की है कि यदि वे यहाँ से सौ मील दूर भी निवास करें, तो भी किसी विश्वासी व्यक्ति के लिए वहाँ जाकर उनके दर्शन करना पर्याप्त होगा, चाहे उसे यात्रा के लिए भोजन सामग्री का थैला ही क्यों न उठाना पड़े। तो आइए हम सब मिलकर समाळा गौतम के दर्शन करने चलें!’

इसलिए सोआदाओआ ब्राह्मण ब्राह्मणों के एक बड़े समूह के साथ गग्गरा झील की ओर रवाना हुए।

8. अब जंगल से गुजरते समय सोआदाओआ के मन में निम्नलिखित दुविधा उत्पन्न हुई: 'यदि मैं समाओआ गौतम से कोई प्रश्न पूछूँ, और वह कहे: 'प्रश्न इस प्रकार नहीं पूछा जाना चाहिए, प्रश्न को इस प्रकार से तैयार किया जाना चाहिए; "तब वे लोग मेरे बारे में अनादरपूर्वक कह सकते हैं: 'यह सूदआ ब्राह्मण मूर्ख और अकुशल है। यह तो सही प्रश्न भी नहीं पूछ सकता।' यदि वे ऐसा करते हैं, तो मेरी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी; और मेरी प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आय भी कम हो जाएगी, क्योंकि जो कुछ हमें प्राप्त है, वह हमारी प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है। लेकिन यदि समाआ गौतम मुझसे कोई प्रश्न पूछें, तो मैं समस्या की व्याख्या से उनकी स्वीकृति प्राप्त नहीं कर पाऊंगा। और यदि वे मुझसे कहें: 'प्रश्न का उत्तर इस प्रकार नहीं दिया जाना चाहिए; समस्या की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए;' तब वे लोग मेरे बारे में अनादरपूर्वक कह सकते हैं: 'यह सूदआ ब्राह्मण मूर्ख और अकुशल है। यह तो समस्या की व्याख्या से समाआ गौतम को भी संतुष्ट नहीं कर सकता।' लेकिन यदि वे ऐसा करते हैं, तो मेरी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी; और मेरी प्रतिष्ठा के साथ-

साथ मेरी आमदनी भी कम होती जाएगी, क्योंकि जो कुछ हमें प्राप्त होता है, वह हमारी प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है। लेकिन दूसरी ओर, यदि इतनी दूर आने के बाद मैं समा ॅत गौतम को दर्शन दिए बिना वापस लौट जाऊं, तो शायद मंडली मेरे बारे में अपमानजनक बातें कहे, जैसे: “यह सूदआद ब्राह्मण मूर्ख और अनुभवहीन है, और अभिमान से भरा होने के बावजूद इतना भयभीत है कि समा ॅत गौतम को दर्शन देने का साहस नहीं करता। इतनी दूर आने के बाद वह कैसे वापस लौट सकता है?” लेकिन यदि वे ऐसा करते हैं, तो मेरी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी; और मेरी प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आमदनी भी कम होती जाएगी। क्योंकि जो कुछ हमें प्राप्त होता है, वह हमारी प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है।

9. सो सोआदा ब्राह्मण भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को अभिवादन और शिष्टाचार का पाठ किया और एक तरफ बैठ गए। चंपा के ब्राह्मणों और गृहस्थों में से कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने अभिवादन और शिष्टाचार का पाठ किया और फिर एक तरफ बैठ गए; कुछ ने अपना नाम और परिवार का नाम पुकारा और फिर एक तरफ बैठ गए; और कुछ चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

10. अब जब सो ॅदा ॅव वहाँ बैठे थे, तो वे अभी भी दुविधा में थे, पहले की तरह ही सोच रहे थे; और उन्होंने मन ही मन कहा: 'काश! समा ॅगौतम मुझसे मेरे ही विषय, वैदिक विद्या के तीन रूपों पर कोई प्रश्न पूछ लें। तब तो मैं प्रश्न का उत्तर देकर उनकी स्वीकृति प्राप्त कर सकूँगा!'

11. अब भगवान बुद्ध ने अपने मन में सूरदॅ ...

12. तब सूआदा ने सोचा: 'मेरी यही कामना थी, यही इच्छा थी, यही मेरा सपना था और यही मेरी आशा थी कि समौआ गौतम मुझसे मेरे ही विषय, वैदिक विद्या के तीन रूपों पर कोई प्रश्न पूछें—और अब वे ऐसा कर रहे हैं। काश! मैं अपने व्याख्यान से उनके हृदय को तृप्त कर सकूँ!'

13. शरीर को सीधा करके और सभा की ओर देखते हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, ब्राह्मण उसे ब्राह्मण कहते हैं जो बिना झूठ बोले सही-सही कह सके कि “मैं ब्राह्मण हूँ”, और जिसमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण क्या हैं? हे भगवान, सर्वप्रथम, ब्राह्मण माता और पिता दोनों की ओर से उत्तम कुल का होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश का होता है, और जन्म के संबंध में उस पर कोई कलंक या निंदा नहीं होती।”

तब वह (पवित्र शब्दों का) दोहराने वाला, रहस्यवादी श्लोकों को कंठस्थ जानने वाला, तीनों वेदों में पारंगत, सूचकांकों, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और व्याख्या (चौथे के रूप में) तथा कथाओं (पांचवें के रूप में) में पारंगत, मुहावरों और व्याकरण में पारंगत, लोकायत के कुतर्क में निपुण और शरीर पर संकेतों के सिद्धांत में पारंगत महान व्यक्ति होता है।

फिर वह सुंदर है, देखने में मनभावन है, विश्वास जगाने वाला है, रंगत में बेहद खूबसूरत है, गोरा रंग है, आकर्षक व्यक्तित्व है, और देखने में राजसी है।

तब वह गुणी होता है, गुणों में वृद्धि करता है, और महान गुणों से संपन्न होता है।

'तब वह विद्वान और बुद्धिमान है, जो चम्मच आगे बढ़ाने वालों में पहला या शायद दूसरा है।'

14. परन्तु हे ब्रह्म, क्या इन पाँचों में से एक को छोड़ देना और उस व्यक्ति को ब्रह्म घोषित करना संभव है जिसके पास अन्य चार हैं, यानी वह व्यक्ति जो सत्यनिष्ठा से और असत्य में पड़े बिना ब्रह्म होने का दावा कर सकता है?

जी गौतम, ऐसा हो सकता है। हम रंग को छोड़ सकते हैं। रंग से क्या फर्क पड़ता है? अगर उसके पास बाकी चार गुण हों—शुभ जन्म, तकनीकी प्रशिक्षण, सद्गुण और ज्ञान, जैसा कि अभी बताया गया है—तो ब्राह्मण उसे ब्राह्मण ही मानेंगे; और वह बिना किसी झूठ के खतरे के, सही मायने में ब्राह्मण होने का दावा कर सकता है।

15. 'लेकिन हे ब्रह्म, इन चार चीजों में से क्या किसी एक को छोड़ना संभव है, और उस व्यक्ति को ब्रह्म घोषित करना संभव है जिसके पास अन्य तीन चीजें हों, जो सही मायने में और बिना झूठ बोले ब्रह्म होने का दावा कर सकता है?'

जी गौतम, ऐसा किया जा सकता है। हम श्लोकों को छोड़ सकते हैं। वैसे भी श्लोकों का क्या महत्व है? यदि उसके पास अन्य तीन गुण हों—शुभ जन्म, सद्गुण और ज्ञान—तो ब्राह्मण उसे ब्राह्मण ही कहेंगे; और वह बिना किसी असत्य के खतरे के, सही मायने में ब्राह्मण होने का दावा कर सकता है।

16. परन्तु हे ब्रह्म, क्या इन तीन चीजों में से एक को छोड़ देना और उस व्यक्ति को ब्रह्म घोषित करना संभव है जिसके पास अन्य दो चीजें हों, यानी वह व्यक्ति जो सत्यनिष्ठा से और असत्य में पड़े बिना ब्रह्म होने का दावा कर सके?

'जी, गौतम, ऐसा किया जा सकता है। हम जन्म को छोड़ सकते हैं। जन्म का क्या महत्व है? यदि उसमें अन्य दो गुण - सद्गुण और ज्ञान - हों, तो ब्राह्मण उसे ब्राह्मण ही कहेंगे; और वह बिना किसी झूठ के खतरे के, सही मायने में ब्राह्मण होने का दावा कर सकता है।'

17. और जब उसने ऐसा कहा तो अन्य ब्राह्मणों ने सूआदा से कहा:

'ऐसे मत कहिए आदरणीय सूआदा, ऐसा मत कहिए! वह न केवल हमारे रंग को, बल्कि हमारी कविताओं और हमारे जन्म को भी तुच्छ समझते हैं। निश्चय ही आदरणीय सूआदा, समा ॅ गौतम के मत का अनुसरण कर रहे हैं।'

18. तब भगवान बुद्ध ने उन ब्राह्मणों से कहा: "हे ब्राह्मणों, यदि तुम यह समझते हो कि सूदड़ अनपढ़ है, अनुचित ढंग से बोलता है, मूर्ख है, और इस विषय में मेरे साथ बहस करने में असमर्थ है, तो वह चुप रहे और मुझसे चर्चा करो। परन्तु यदि तुम उसे विद्वान, वाणी में निपुण, बुद्धिमान और बहस करने में सक्षम समझते हो, तो तुम चुप रहो और उसे मेरे साथ चर्चा करने दो।"

19. और जब उसने ऐसा कहा, तो सूआदा ब्राह्मण ने उन ब्राह्मणों से कहा:

आदरणीय लोगों को ऐसा न कहने दें। ऐसा न कहें, महोदय। मैं न तो हमारे रंग, न हमारी कविता, न ही हमारी जन्म-प्रतिभा को कमतर आंकता हूँ।

20. उस समय अंगका नामक एक युवक ब्राह्मण, जो ब्राह्मण सून्धादा का बहनोई पुत्र था, उस सभा में बैठा था। सून्धादा ने उन ब्राह्मणों से कहा, 'क्या आदरणीय लोगों ने हमारे भतीजे अंगका को देखा है?'

जी हाँ, हम उसे देख रहे हैं।

"अच्छा! हे महोदय, अंगका सुंदर, देखने में मनमोहक, विश्वास जगाने वाला, रंगत से परिपूर्ण, गोरा, उपस्थिति में आकर्षक और राजसी है... इस सभा में रंगत में उसके समान कोई नहीं है, सिवाय सामॅगौतम के।"

और हे महोदय, अंगका पवित्र शब्दों का दोहराने वाला, रहस्यमय श्लोकों का कंठस्थ ज्ञाता, तीनों वेदों का ज्ञाता, सूचकांकों, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और व्याख्या (चौथे के रूप में) तथा कथाओं (पांचवें के रूप में) का ज्ञाता, मुहावरों और व्याकरण का पारंगत, लोकायत (प्रकृति-ज्ञान) का ज्ञाता और शरीर पर चिन्हों के सिद्धांत का ज्ञाता है। वह एक महान पुरुष है। मैंने स्वयं उसे श्लोक सिखाए हैं।

और हे महोदय, अंगका दोनों ओर से, माता और पिता दोनों की ओर से, उत्तम कुल का है; सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश का है; उस पर कोई कलंक नहीं है, और जन्म के संबंध में कोई कलंक नहीं है। मैं स्वयं उसके पूर्वजों को जानता हूँ, माता और पिता दोनों की ओर से।

यदि अंगका, महोदय, जीवित प्राणियों की हत्या करे, बिना माँगे वस्तुएँ ले, व्यभिचारी का मार्ग अपनाए, झूठ बोले और मादक पेय पिए, तो महोदय, उसका रंग उसके किस काम आएगा? श्लोकों का क्या? उसके जन्म का क्या?

'महोदय, जिस हद तक एक ब्राह्मण गुणी होता है, गुणों में वृद्धि करता है, गुणों से परिपूर्ण होता है; जिस हद तक वह विद्वान और बुद्धिमान होता है, जो करछुल चलाने वालों में पहला या शायद दूसरा होता है, उसी हद तक ब्राह्मण उसे ब्राह्मण घोषित करते हैं, क्योंकि वह इन दो गुणों से संपन्न होता है, और वह व्यक्ति जो बिना झूठ बोले सही मायने में कह सकता है कि "मैं एक ब्राह्मण हूँ" ।'

21. परन्तु हे ब्रह्म, क्या इन दो बातों में से एक को छोड़ देना और दूसरी बात रखने वाले को ब्रह्म घोषित करना संभव है, क्या वही व्यक्ति ब्रह्म होने का सही और असत्य में पड़े बिना दावा कर सकता है?

हे गौतम, ऐसा नहीं! क्योंकि हे गौतम, बुद्धि सत्यनिष्ठा से शुद्ध होती है, और सत्यनिष्ठा बुद्धि से शुद्ध होती है। जहाँ सत्यनिष्ठा होती है, वहाँ बुद्धि होती है, और जहाँ बुद्धि होती है, वहाँ सत्यनिष्ठा होती है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति को बुद्धि मिलती है, बुद्धिवान व्यक्ति को सत्यनिष्ठा मिलती है, और बुद्धि और अच्छाई को संसार में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। हे गौतम, जैसे कोई हाथ से हाथ या पैर से पैर धोता है, ठीक उसी प्रकार, हे गौतम, बुद्धि सत्यनिष्ठा से शुद्ध होती है, और सत्यनिष्ठा बुद्धि से शुद्ध होती है। जहाँ सत्यनिष्ठा होती है, वहाँ बुद्धि होती है, और जहाँ बुद्धि होती है, वहाँ सत्यनिष्ठा होती है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति को बुद्धि मिलती है, बुद्धिवान व्यक्ति को सत्यनिष्ठा मिलती है, और बुद्धि और अच्छाई को संसार में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

22. 'यह बिलकुल सही है, हे ब्राह्मण। और मैं भी यही कहता हूँ। परन्तु फिर वह सत्य क्या है और वह ज्ञान क्या है?'

हे गौतम जी, हमें इस विषय में केवल सामान्य कथन ही ज्ञात है। आदरणीय गौतम जी, कृपया इस वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट करें।

'तो फिर, हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो और गंभीरता से सुनो, मैं बोलूंगा।'

23. 'बहुत अच्छा, महाराज,' सोआदाओआ ने भगवान की बात से सहमति जताते हुए कहा। और भगवान ने कहा:

हे ब्रह्म, यही वह धार्मिकता (सला) है।

'हे ब्रह्म, यही वह ज्ञान है।'

24. जब उसने ऐसा कहा, तो ब्राह्मण सूआदा ने भगवान से कहा:

हे गौतम, आपके मुख के शब्द अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई व्यक्ति गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए व्यक्ति को सही मार्ग दिखाता है, या अंधकार में प्रकाश डालता है ताकि देखने वाले बाहरी रूप देख सकें... ठीक उसी प्रकार, पूज्य गौतम ने अनेक रूपों में मुझे सत्य का ज्ञान कराया है। मैं भी पूज्य गौतम को अपना मार्गदर्शक, सत्य का मार्ग और संघ का मार्ग मानता हूँ। पूज्य गौतम मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उन्हें अपना मार्गदर्शक माना है। पूज्य गौतम मुझे कल का भोजन अपने साथ और संघ के सदस्यों के साथ करने की कृपा प्रदान करें।

तब भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। यह देखकर सोआदाओआ अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध के सामने प्रणाम किया, और दाहिना हाथ उनकी ओर करके उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए वहाँ से चले गए। भोर होते ही उन्होंने अपने घर में कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे व्यंजन तैयार किए और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी: 'हे गौतम, समय हो गया है और भोजन तैयार है।'

25. तब भगवान बुद्ध, जिन्होंने सुबह जल्दी वस्त्र धारण कर लिए थे, अपना वस्त्र पहनकर, अपना कुंड लेकर भाइयों के साथ सून्धा के घर गए और उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। ब्राह्मण सून्धा ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध और भाइयों को इतना भोजन कराया, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन थे, कि उन्होंने और खाने से मना कर दिया। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और कुंड और अपने हाथ धो लिए, तो सून्धा ने एक नीचा आसन लेकर उनके पास बैठ गए और कहा:

26. हे गौतम, यदि मैं सभा में प्रवेश करने के बाद अपने आसन से उठकर पूज्य गौतम के समक्ष प्रणाम करूँ, तो सभा मुझ पर दोष लगाएगी। जिस पर सभा दोष लगाएगी, उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी; और जो अपनी प्रतिष्ठा खो देगा, उसकी आमदनी कम हो जाएगी। क्योंकि जो सुख हमें प्राप्त है, वह हमारी प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है। इसलिए, यदि मैं सभा में बैठा हुआ अपने हाथ जोड़कर प्रणाम करूँ, तो पूज्य गौतम इसे मेरे आसन से उठने के रूप में स्वीकार करें। और यदि मैं सभा में बैठा हुआ अपनी पगड़ी उतार दूँ, तो पूज्य गौतम इसे मेरे सिर झुकाकर प्रणाम करने के रूप में स्वीकार करें। इसी प्रकार, यदि मैं अपने रथ में बैठा हुआ, रथ से उतरकर पूज्य गौतम को प्रणाम करूँ, तो आसपास के लोग मुझ पर दोष लगाएंगे। यदि मैं अपने रथ पर सवार होकर अंकुश को झुकाऊँ, तो पूज्य गौतम उसे ऐसे स्वीकार करें जैसे मैं नीचे उतर आया हूँ। और यदि मैं अपने रथ पर सवार होकर हाथ हिलाऊँ, तो पूज्य गौतम उसे ऐसे स्वीकार करें जैसे मैंने प्रणाम किया हो!

27. तब भगवान ने धार्मिक प्रवचन द्वारा ब्राह्मण सूदआदा को उपदेश दिया, उसे प्रेरित किया, उसे उत्साहित किया और उसे प्रसन्न किया, और फिर अपने स्थान से उठकर वहाँ से चले गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.5: कुटदंत सुत्त (डीएन 5)
मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान बुद्ध अपने लगभग पाँच सौ भाइयों के साथ मगध की यात्रा पर निकले और खानुमता नामक एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे। खानुमता में उन्होंने अंबलत्थिका आश्रम में विश्राम किया।

उस समय ब्राह्मण कूटदंत कनुमता में निवास कर रहे थे, जो जीवन से भरपूर स्थान था, जहाँ बहुत सारे घास के मैदान, जंगल, जल और अनाज थे, और यह एक शाही क्षेत्र था जो मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार द्वारा उन्हें शाही उपहार के रूप में दिया गया था, और उस पर उनका ऐसा अधिकार था मानो वे स्वयं राजा हों।

उसी समय ब्राह्मण कूटदंत की ओर से एक भव्य यज्ञ की तैयारी की जा रही थी। इस यज्ञ के लिए सौ बैल, सौ सांड, सौ बछिया, सौ बकरियां और सौ मेढ़े लाए गए थे।

खानुमता के ब्राह्मणों और गृहस्थों ने समना गौतम के आगमन की खबर सुनी। और वे समूहों में खानुमता छोड़कर अंबलत्थिका के रमणीय स्थल की ओर चल पड़े।

और ठीक उसी समय ब्राह्मण कूटदंत अपने घर की ऊपरी छत पर दोपहर की नींद लेने के लिए चले गए थे; और लोगों को इस तरह आते-जाते देखकर उन्होंने अपने द्वारपाल से कारण पूछा। और द्वारपाल ने उन्हें कारण बताया।

तब कूटदंत ने सोचा: 'मैंने सुना है कि समना गौतम यज्ञ के सफल संचालन की विधि, उसकी तीन विधियाँ और सोलह सहायक यंत्रों के बारे में जानते हैं। मुझे इन सब बातों का ज्ञान नहीं है, फिर भी मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। मेरे लिए समना गौतम के पास जाकर उनसे इस बारे में पूछना अच्छा रहेगा।'

इसलिए उन्होंने अपने द्वारपाल को खानुमता के ब्राह्मणों और गृहस्थों के पास भेजा, ताकि वे उनसे तब तक प्रतीक्षा करने का अनुरोध करें जब तक कि वह उनके साथ भगवान से मिलने न चले जाएं।

उस समय खानुमता में कई ब्राह्मण महान यज्ञ में भाग लेने के लिए ठहरे हुए थे। जब उन्हें यह बात पता चली, तो वे कूटदंत के पास गए और उन्हीं कारणों से, जो ब्राह्मणों ने सोनदंद के समक्ष रखे थे, उन्हें यज्ञ में न जाने के लिए राजी किया। लेकिन कूटदंत ने उन्हें उसी तरह उत्तर दिया जैसे सोनदंद ने उन ब्राह्मणों को दिया था। तब वे संतुष्ट हुए और उनके साथ भगवान बुद्ध से मिलने चले गए।

और जब वह वहाँ बैठा, तो ब्राह्मण कूटदंत ने भगवान को वह सब बताया जो उसने सुना था, और उनसे तीन प्रकार के यज्ञों और सोलह प्रकार की सहायक सामग्रियों के साथ सफलतापूर्वक संपन्न यज्ञ करने के बारे में बताने का अनुरोध किया।

'तो फिर, हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।'

'बहुत अच्छा, महाराज,' कूटदंत ने उत्तर दिया; और भगवान ने आगे कहा:--

हे ब्राह्मण, बहुत समय पहले महा विजिता नाम का एक शक्तिशाली राजा था, जो अपार धनवान और संपत्ति का मालिक था; उसके पास सोने-चाँदी, भोग-विलास की सामग्री, माल और अनाज का भंडार था; उसके खजाने और भंडार भरे हुए थे। एक बार जब महा विजिता राजा एकांत में ध्यान कर रहा था, तो उसे यह सोचकर चिंता हुई: "मेरे पास वे सभी सुख-सुविधाएँ प्रचुर मात्रा में हैं जिनका एक मनुष्य आनंद ले सकता है। पृथ्वी का सारा विशाल भाग मेरे अधिकार में है। यदि मैं कोई महान यज्ञ करूँ, तो यह अच्छा होगा, जिससे मुझे अनेक दिनों तक सुख-शांति प्राप्त हो सके।"

और उसने अपने पुरोहित ब्राह्मण को बुलवाया; और उसे अपने सारे विचार बताते हुए कहा: "हे ब्राह्मण, मैं एक महान यज्ञ करना चाहता हूँ - आदरणीय गुरु मुझे निर्देश दें कि कैसे - मेरे कल्याण और कई दिनों तक मेरे सुख के लिए।"

तब ब्राह्मण, जो राजा का पुरोहित था, ने राजा से कहा: “महाराज, आपका देश संकटग्रस्त है। बाहर डाकू घूम रहे हैं जो गांवों और कस्बों को लूट रहे हैं और सड़कों को असुरक्षित बना रहे हैं। यदि राजा इस स्थिति में कोई नया कर लगाते हैं, तो वे निश्चित रूप से अन्याय करेंगे। लेकिन शायद वे सोचें: 'मैं इन बदमाशों के खेल को जल्द ही पदच्युति, देश निकाला, जुर्माना, बंधुआ मजदूरी और मृत्युदंड देकर समाप्त कर दूंगा!'" लेकिन उनकी इस मनमानी को पूरी तरह से रोकना संभव नहीं है। बचे हुए लोग बिना सज़ा पाए राज्य को परेशान करते रहेंगे। अब इस अव्यवस्था को पूरी तरह से समाप्त करने का एक तरीका है। राजा के राज्य में जो भी लोग पशुपालन और खेती-बाड़ी में लगे हों, उन्हें महाराजा भोजन और अनाज दें। राजा के राज्य में जो भी लोग व्यापार में लगे हों, उन्हें महाराजा पूंजी दें। राजा के राज्य में जो भी लोग सरकारी सेवा में लगे हों, उन्हें महाराजा वेतन और भोजन दें। तब वे लोग, अपने-अपने काम में लगे रहकर, राज्य को परेशान करना बंद कर देंगे; राजा का राजस्व बढ़ जाएगा; देश शांत और अमन से रहेगा; और लोग एक-दूसरे से प्रसन्न और खुश होकर, अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचते हुए, खुले दिल से रहेंगे।

तब, हे ब्राह्मण, विशाल राज्य के राजा ने अपने पुरोहित की बात मान ली और वैसा ही किया जैसा उसने कहा था। और वे लोग, अपने-अपने काम में लगकर, राज्य को और परेशान नहीं करने लगे। और राजा का राजस्व बढ़ गया। और देश शांत और अमन से भर गया। और प्रजा, एक-दूसरे से प्रसन्न और खुश होकर, अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचते हुए, खुले दिल से रहने लगी।

तो राजा वाइड-रियल्म ने अपने पादरी को बुलवाया और कहा: "अव्यवस्था समाप्त हो गई है। देश में शांति है। मैं वह महान बलिदान अर्पित करना चाहता हूँ - हे पूज्य गुरु, मुझे निर्देश दें कि कैसे - मेरे कल्याण और सुख के लिए, अनेक दिनों तक।"

तब महाराज अपने राज्य में जितने भी क्षत्रिय हों, जो उनके सामंत हों (देश में या शहरों में), या उनके मंत्री एवं अधिकारी हों (देश में या शहरों में), या प्रतिष्ठित ब्राह्मण हों (देश में या शहरों में), या धनी गृहस्थ हों, उन सभी को निमंत्रण भेजें और कहें: "मैं एक महान यज्ञ करने का इरादा रखता/रखती हूँ। आदरणीय देवगण मुझे इस यज्ञ की स्वीकृति दें, जिससे मुझे अनेक दिनों तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा।"

तब, हे ब्राह्मण, राज्य के राजा ने अपने पुरोहित की बात मान ली और वैसा ही किया जैसा उसने कहा था। और उन सभी ने—क्षत्रिय, मंत्री, ब्राह्मण और गृहस्थों ने—एक समान उत्तर दिया: “महाराज, यज्ञ संपन्न हो। हे राजा, समय उपयुक्त है!”

इस प्रकार, आपसी सहमति से सहयोगी बने ये चारों लोग उस बलिदान को संपन्न करने का साधन बन गए।

'विशाल राज्य के राजा को निम्नलिखित आठ प्रकार से वरदान प्राप्त थे:-

'वह माता और पिता दोनों की ओर से उच्च कुल का था, सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश का था, और जन्म के संबंध में उस पर कोई कलंक या निंदा नहीं की गई थी।'

'वह सुंदर, मनमोहक रूप वाला, भरोसेमंद, बेहद खूबसूरत रंगत वाला, गोरा, आकर्षक व्यक्तित्व वाला और देखने में राजसी था।'

वह शक्तिशाली था, अपार धनवान, विशाल संपत्ति वाला, चांदी और सोने के भंडारों से युक्त, सुख-सुविधाओं के साधनों से युक्त, माल और अनाज से भरपूर, उसके खजाने और भंडार भरे हुए थे।

'वह शक्तिशाली था, एक सेना का नेतृत्व कर रहा था, वफादार और अनुशासित था, चार डिवीजनों (हाथियों, घुड़सवारों, रथों और धनुर्धारियों) में बंटा हुआ था, और मुझे लगता है कि वह अपनी महिमा से ही अपने शत्रुओं को जला रहा था।'

'वह एक विश्वासी, उदार, नेक दाता, हमेशा अपने घर के खुले रहने वाला, एक ऐसा स्रोत था जहाँ से समन और ब्राह्मण, गरीब और राहगीर, भिखारी और याचिकाकर्ता सभी को लाभ मिलता था, और वह अच्छे कर्म करने वाला था।'

उन्हें हर प्रकार का ज्ञान था।

वह कही गई बात का अर्थ जानता था और समझा सकता था: "इस कथन का ऐसा अर्थ है, और उस कथन का ऐसा अर्थ है" -

'वह बुद्धिमान, कुशल और समझदार थे, और वर्तमान, अतीत या भविष्य की बातों पर विचार करने में सक्षम थे।'

और उनके ये आठ उपहार भी उस बलिदान को संपन्न करने के साधन बन गए।

ब्राह्मण, जो उनके पुरोहित थे, निम्नलिखित चार प्रकार से प्रतिभाशाली थे:

'वह माता और पिता दोनों की ओर से उच्च कुल का था, सात पीढ़ियों तक शुद्ध वंश का था, उस पर कोई कलंक नहीं था और जन्म के संबंध में कोई कलंक नहीं था।'

वह एक ऐसे विद्यार्थी थे जिन्होंने परीक्षा में बार-बार भाग लिया था, जिन्हें रहस्यवादी श्लोक कंठस्थ थे, वे तीनों वेदों के ज्ञाता थे, जिनमें सूचकांक, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और व्याख्या (चौथे के रूप में) तथा कथाएँ (पाँचवें के रूप में) शामिल थीं, मुहावरों और व्याकरण के ज्ञाता थे, लोकायत (प्रकृति-ज्ञान) और एक महान व्यक्ति के शरीर पर स्थित तीस चिह्नों के ज्ञाता थे।

'वह गुणी था, सद्गुणों में स्थापित था, और महान सद्गुणों से संपन्न था।'

'वह बुद्धिमान, कुशल और समझदार था; चम्मच चलाने वालों में सबसे आगे, या अधिक से अधिक दूसरे स्थान पर था।'

इस प्रकार, उनके ये चारों उपहार भी उस बलिदान को संपन्न करने के साधन बन गए।

और हे ब्राह्मण, यज्ञ प्रारंभ होने से पहले पुरोहित ने राजा विशाल राज्य को तीन गुणों की व्याख्या की:

यदि महाराजा, महान यज्ञ प्रारंभ करने से पहले, ऐसा कोई खेद महसूस करें कि: "अफ़सोस, मेरी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा इसमें खर्च हो जाएगा," तो वे ऐसा खेद न रखें। यदि महाराजा, महान यज्ञ करते समय, ऐसा कोई खेद महसूस करें कि: "अफ़सोस, मेरी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा इसमें खर्च हो जाएगा," तो वे ऐसा खेद न रखें। यदि महाराजा, महान यज्ञ संपन्न होने के बाद, ऐसा कोई खेद महसूस करें कि: "अफ़सोस, मेरी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा इसमें खर्च हो गया है," तो वे ऐसा खेद न रखें।

'हे ब्राह्मण, यज्ञ प्रारंभ होने से पहले पुरोहित ने राजा विशाल राज्य को इस प्रकार तीन गुणों की व्याख्या की।'

हे ब्राह्मण, यज्ञ प्रारंभ होने से पहले पुरोहित ने, उसमें भाग लेने वालों के मन में दस प्रकार से उत्पन्न होने वाले किसी भी पश्चाताप को रोकने के लिए कहा: "हे महाराज, आपके यज्ञ में ऐसे मनुष्य आएंगे जो जीवित प्राणियों का नाश करते हैं और जो ऐसा नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो बिना दिए वस्तुएँ लेते हैं और जो ऐसा नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो वासनाओं के कारण बुरे कर्म करते हैं और जो ऐसा नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो झूठ बोलते हैं और जो झूठ नहीं बोलते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो निंदा करते हैं और जो निंदा नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो अभद्र भाषा बोलते हैं और जो अभद्र भाषा नहीं बोलते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो व्यर्थ की बातें करते हैं और जो ऐसा नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो लोभ करते हैं और जो लोभ नहीं करते; ऐसे मनुष्य आएंगे जो द्वेष रखते हैं और जो द्वेष नहीं रखते; ऐसे मनुष्य आएंगे जिनके विचार गलत हैं और जिनके विचार सही हैं। इनमें से जो बुरे कर्म करते हैं, उन्हें उनके बुरे कर्मों के साथ अकेला छोड़ दें। जो अच्छे कर्म करते हैं, उनके लिए हे महाराज, आप अनुष्ठान करें, और उनके लिए राजा व्यवस्था करें।" उन्हें संतुष्ट करो, उनमें तुम्हारे हृदय को शांति मिलेगी।

और हे ब्राह्मण, पुरोहित ने राजा के यज्ञ करते समय, सोलह प्रकार से उनके हृदय को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया: "यदि कोई राजा के यज्ञ करते समय यह कहे कि 'महाराज अपने चारों वर्गों की प्रजा को आमंत्रित किए बिना, स्वयं आठ वरदान धारण किए बिना, और चार वरदान धारण करने वाले ब्राह्मण की सहायता के बिना यज्ञ कर रहे हैं;' तो वे सत्य के अनुसार नहीं बोल रहे होंगे। क्योंकि चारों वर्गों की सहमति प्राप्त हो चुकी है, राजा के पास आठ वरदान हैं और उनके ब्राह्मण के पास चार वरदान हैं। इन सोलह शर्तों में से प्रत्येक के संबंध में राजा निश्चिंत हो सकते हैं कि वे पूर्ण हो गई हैं। वे यज्ञ कर सकते हैं, प्रसन्न हो सकते हैं और उनका हृदय शांत हो सकता है।"

हे ब्राह्मण, उस यज्ञ में न तो बैल मारे गए, न बकरियाँ, न मुर्गे, न मोटे सूअर, और न ही किसी भी प्रकार के जीवित प्राणी को मारा गया। खंभों के लिए न तो पेड़ काटे गए, न ही यज्ञ स्थल के चारों ओर बिखेरने के लिए घास काटी गई। और वहाँ कार्यरत लाठी-डंडे, दूत और कामगार न तो दंड से प्रेरित थे, न ही भयभीत थे, और न ही वे आँसू बहाते हुए अपना काम कर रहे थे। जिसने सहायता करना चाहा, उसने काम किया; जिसने सहायता न करना चाहा, उसने काम नहीं किया। प्रत्येक ने जो करना चाहा, उसने किया; जो नहीं करना चाहा, वह अधूरा रह गया। वह यज्ञ केवल घी, तेल, मक्खन, दूध, शहद और चीनी से ही संपन्न हुआ।

और फिर, हे ब्राह्मण, क्षत्रिय सामंत, मंत्री और अधिकारी, प्रतिष्ठित ब्राह्मण और धनी गृहस्थ, चाहे वे देश के हों या नगर के, बहुत सारा धन लेकर विशाल राज्य के राजा के पास गए और बोले: "हे महाराज, यह प्रचुर धन हम राजा के उपयोग के लिए लाए हैं। महाराज इसे हमारे हाथों से स्वीकार करें!"

"मेरे मित्रों, मैंने न्यायसंगत करों से प्राप्त पर्याप्त धन संचित कर लिया है। आप अपना धन अपने पास रखें और अपने साथ और अधिक ले जाएं!"

जब राजा ने उन्हें इस प्रकार मना कर दिया, तो वे एक तरफ चले गए और आपस में इस प्रकार विचार करने लगे: "अब हमारे लिए यह धन अपने-अपने घर ले जाना उचित नहीं होगा। राजा एक महान बलिदान दे रहे हैं। हमें भी एक बलिदान देना चाहिए!"

अत: क्षत्रियों ने राजा के यज्ञकुंड के पूर्व में निरंतर दान-पुण्य की व्यवस्था की, अधिकारियों ने उसके दक्षिण में, ब्राह्मणों ने उसके पश्चिम में और गृहस्थों ने उसके उत्तर में। और दान की गई वस्तुएँ और उनके दान का तरीका, सर्वथा राजा विश्वराज के महान यज्ञ के समान था।

हे ब्राह्मण, इस प्रकार चार प्रकार की सहभागिता हुई, और विशाल राज्य के राजा को आठ व्यक्तिगत वरदान प्राप्त हुए, और उनके सहायक ब्राह्मण को चार वरदान प्राप्त हुए। तथा उस यज्ञ को संपन्न करने के तीन तरीके थे। हे ब्राह्मण, यही यज्ञ को उसके तीन प्रकार के अनुष्ठान और सोलह प्रकार की सामग्री के साथ संपन्न करना कहलाता है!

और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो उन ब्राह्मणों ने शोर मचाते हुए कहा, 'यह यज्ञ कितना गौरवशाली है, इसकी सिद्धि कितनी पवित्र है!' परन्तु, ब्राह्मण कूटदंत वहाँ मौन बैठे रहे।

तब उन ब्राह्मणों ने कूटदंत से कहा: 'आप समना गौतम के अच्छे शब्दों को सही क्यों नहीं मानते?'

मैं इस बात से सहमत हूँ: क्योंकि जो समना गौतम के कहे को उत्तम नहीं मानता, उसका सिर दो टुकड़ों में बँट जाएगा। परन्तु मैं यह विचार कर रहा था कि समना गौतम यह नहीं कहते: "मैंने ऐसा सुना है," न ही "ऐसा होना उचित है," बल्कि केवल "तब ऐसा था," या "तब ऐसा ही था।" इसलिए मैंने सोचा: "निश्चित रूप से समना गौतम उस समय सर्वराज्य के राजा रहे होंगे, या वे ब्राह्मण रहे होंगे जिन्होंने उस यज्ञ में उनकी ओर से अनुष्ठान किया था। क्या पूज्य गौतम यह स्वीकार करते हैं कि जो व्यक्ति ऐसा यज्ञ करता है, या करवाता है, वह मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर स्वर्ग में किसी सुखमय अवस्था में पुनर्जन्म लेता है?"

'जी हां, हे ब्राह्मण, मैं यह स्वीकार करता हूं। और उस समय मैं वही ब्राह्मण था जिसने पुरोहित के रूप में वह यज्ञ संपन्न कराया था।'

'हे गौतम, क्या इस यज्ञ से कम कठिन, कम कष्टदायी, अधिक फलदायी और अधिक लाभ देने वाला कोई और यज्ञ है?'

'जी हां, हे ब्राह्मण, है।'

'और हे गौतम, वह क्या हो सकता है?'

'परिवार में निरंतर चली आ रही वे भेंटें जो विशेष रूप से गुणी संन्यासियों को दी जाती हैं।'

लेकिन हे गौतम, इसका कारण क्या है, और वह क्या वजह है कि सदाचारी संन्यासियों को ही निरंतर दान देना और उसे परिवार में ही जारी रखना, उस दूसरे यज्ञ की तुलना में कम कठिन और कष्टदायी, अधिक फलदायी और अधिक लाभदायी है, जिसमें तीन विधियाँ और सोलह प्रकार के सहायक यंत्र शामिल हैं?

'हे ब्राह्मण, दूसरे प्रकार के यज्ञ में न तो अरहत जाते हैं, न ही वे जो अरहत मार्ग पर चल पड़े हैं। और क्यों नहीं? क्योंकि उसमें लाठियों से पिटाई और गला पकड़ना होता है [42]। परन्तु वे पहले प्रकार के यज्ञ में जाते हैं, जहाँ ऐसी बातें नहीं होतीं। और इसीलिए ऐसे चिरस्थायी यज्ञ दूसरे प्रकार के यज्ञ से श्रेष्ठ हैं।'

24. 'हे गौतम, क्या इन दोनों यज्ञों से कम कठिन, कम कष्टदायी, अधिक फलदायी और अधिक लाभप्रद कोई अन्य यज्ञ है?'

'जी हां, हे ब्राह्मण, है।'

'और हे गौतम, वह क्या हो सकता है? 'संघ की ओर से चारों दिशाओं में एक निवास स्थान (विहार) का निर्माण।'

'हे गौतम, क्या इन तीनों यज्ञों से कम कठिन, कम कष्टदायी, अधिक फलदायी और अधिक लाभप्रद कोई अन्य यज्ञ है?'

'जी हां, हे ब्राह्मण, है।'

'और हे गौतम, वह क्या हो सकता है?'

जो व्यक्ति विश्वासपूर्ण हृदय से बुद्ध को अपना मार्गदर्शक मानता है, सत्य को अपनाता है और संघ का अनुसरण करता है, वह खुले दान से, निरंतर भिक्षा से और निवास स्थान दान करने से भी श्रेष्ठ बलिदान है।

'हे गौतम, क्या इन चारों यज्ञों से कम कठिन, कम कष्टदायक, अधिक फलदायी और अधिक लाभप्रद कोई अन्य यज्ञ है?'

जब कोई विश्वासशील हृदय वाला व्यक्ति जीवन को नष्ट करने से परहेज़, बिना माँगे ली गई चीज़ों को न लेने से परहेज़, बुराई से परहेज़, वासनाओं के प्रति सजग आचरण, झूठे शब्दों से परहेज़, मादक, मदहोश कर देने वाले पेय पदार्थों से परहेज़ (जो लापरवाही की जड़ हैं) का पालन करता है, तो यह खुले दान से, निरंतर भिक्षा से, आवास के दान से, और मार्गदर्शन स्वीकार करने से श्रेष्ठ बलिदान है।

'हे गौतम, क्या इन पाँचों यज्ञों से कम कठिन, कम कष्टदायी, अधिक फलदायी और अधिक लाभप्रद कोई अन्य यज्ञ है?'

'जी हां, हे ब्राह्मण, है।'

'और हे गौतम, वह क्या हो सकता है?'

'हे ब्राह्मण, यह यज्ञ पिछले यज्ञों की तुलना में कम कठिन और कम कष्टदायी है, तथा अधिक फलदायी और अधिक लाभप्रद है।'

** संन्यासी के जीवन के फल (डीएन2 देखें), प्रस्थान, सहजता से संतुष्ट और सदाचारी जीवन जीना, समाधि, रहस्यमय शक्तियां, अंतर्दृष्टि ज्ञान और अरहंतत्व प्राप्त करना - इन विषयों पर कई अनुच्छेद यहां अनुपलब्ध हैं, जिनके बिना अगला अनुच्छेद अर्थहीन है। (भिक्खु पेसला द्वारा संपादित)

'हे ब्राह्मण, मनुष्य द्वारा मनाया जाने वाला इससे श्रेष्ठ और मधुर कोई यज्ञ नहीं है।'

और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो ब्राह्मण कूटदंत ने भगवान से कहा।

हे गौतम, आपके मुख के वचन अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई व्यक्ति गिरी हुई वस्तु को उठा दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को सही मार्ग दिखा दे, या अंधकार में प्रकाश कर दे ताकि देखने वाले बाहरी रूप देख सकें, ठीक उसी प्रकार पूज्य गौतम ने अनेक उदाहरणों के माध्यम से मुझे सत्य का ज्ञान कराया है। मैं भी पूज्य गौतम को अपना मार्गदर्शक मानकर उनके धर्म और पंथ का पालन करता/करती हूँ। पूज्य गौतम मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उन्हें अपना मार्गदर्शक माना है। और हे गौतम, मैं स्वयं सात सौ बैल, सात सौ सांड, सात सौ बछिया, सात सौ बकरियों और सात सौ मेढ़ों को मुक्त कराऊँगा। मैं उन्हें जीवनदान देता/देती हूँ। उन्हें हरी घास खाने और ताजा पानी पीने दो, और उनके चारों ओर ठंडी हवाएं चलती रहें।'

तब भगवान बुद्ध ने कुटदंत ब्राह्मण को विधिपूर्वक प्रवचन दिए; अर्थात् उन्होंने उनसे उदारता, सही आचरण, स्वर्ग, कामवासनाओं के खतरे, व्यर्थता और अपशकुन तथा त्याग के लाभों के विषय में बात की। जब भगवान बुद्ध को यह ज्ञात हुआ कि कुटदंत ब्राह्मण तैयार, कोमल, निष्पक्ष, उन्नत और विश्वासी हो गए हैं, तब उन्होंने उस सिद्धांत का प्रचार किया जिसे केवल बुद्धों ने ही जीता है; अर्थात् दुःख, उसके उद्भव, उसके निवारण और मार्ग का सिद्धांत। और जैसे एक साफ कपड़ा, जिसके सारे दाग धुल गए हों, आसानी से रंग सोख लेता है, ठीक वैसे ही कुटदंत ब्राह्मण ने वहाँ बैठे-बैठे ही सत्य के लिए शुद्ध और निर्मल दृष्टि प्राप्त कर ली और वे जान गए: 'जिस किसी का भी आरंभ होता है, उसमें उसका अंत भी अंतर्निहित होता है।'

और फिर ब्राह्मण कूटदंत, जिन्होंने सत्य को देखा था, उस पर महारत हासिल की थी, उसे समझा था, उसमें गहराई तक उतर गए थे, जो संदेह से परे हो गए थे, उलझन को दूर कर पूर्ण विश्वास प्राप्त कर चुके थे, जो गुरु की शिक्षाओं के ज्ञान के लिए किसी और पर निर्भर नहीं थे, उन्होंने भगवान बुद्ध को संबोधित करते हुए कहा:

हे पूज्य गौतम, मुझे यह कृपा प्रदान करें कि मैं कल उनके साथ भोजन कर सकूँ और संघ के अन्य सदस्यों को भी उनके साथ भोजन करा सकूँ।

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर अपनी सहमति व्यक्त की। तब ब्राह्मण कूटदंत ने देखा कि भगवान बुद्ध ने स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठे और उनके सामने अपना दाहिना हाथ रखते हुए वहाँ से चले गए। भोर होते ही उन्होंने अपने यज्ञ के लिए तैयार किए गए कुंड में कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे भोजन तैयार करवाए और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी: 'हे गौतम, समय हो गया है; भोजन तैयार है।' भगवान बुद्ध, जो सुबह जल्दी ही वस्त्र धारण कर चुके थे, अपना वस्त्र पहनकर और अपना कुंड लेकर भाइयों के साथ कूटदंत के यज्ञ कुंड में गए और वहाँ अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। ब्राह्मण कूटदंत ने अपने हाथों से भाइयों को, जिनके मुखिया बुद्ध थे, तब तक मीठे और नरम दोनों प्रकार के भोजन से तृप्त किया जब तक कि उन्होंने और भोजन लेने से इनकार नहीं किया। जब भगवान बुद्ध ने भोजन समाप्त कर लिया और कटोरा एवं हाथ धो लिए, तब कुटदंत ब्राह्मण उनके पास बैठ गए। जब वे इस प्रकार बैठे, तब भगवान बुद्ध ने कुटदंत ब्राह्मण को धार्मिक प्रवचन देकर उपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया और प्रसन्न किया; फिर वे अपने आसन से उठकर वहाँ से चले गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.6: महली सुत्त (डीएन 6)

मैंने ऐसा सुना है। भगवान बुद्ध एक बार वैशाला में विशाल वन में स्थित गुंबददार हॉल में ठहरे हुए थे। उस समय कोसला और मगध से विभिन्न अत्यावश्यक कार्यों के लिए भेजे गए कई ब्राह्मण वैशाला में ठहरे हुए थे।

और उन्होंने यह समाचार सुना: "कहा जाता है कि शाक्य वंश के समना गौतम, जिन्होंने शाक्य परिवार छोड़कर धार्मिक जीवन अपनाया, अब वेशाला में विशाल वन में स्थित गैबल हॉल में ठहरे हुए हैं। उस पूज्य गौतम के विषय में यह उच्च प्रतिष्ठा दूर-दूर तक फैली हुई है: "वह भगवान अरहत हैं, पूर्णतः जागृत हैं, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, सुखी हैं, समस्त लोकों के ज्ञाता हैं, नश्वर मनुष्यों के लिए अद्वितीय मार्गदर्शक हैं, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, एक भगवान हैं, एक बुद्ध हैं। वे स्वयं ही इस ब्रह्मांड को भली-भांति जानते और देखते हैं, मानो आमने-सामने—जिसमें देवताओं, ब्रह्माओं और मारों का स्वर्गलोक और संन्यासियों और ब्राह्मणों, राजकुमारों और प्रजाओं सहित पाताल लोक शामिल है—और इसे जानकर वे अपना ज्ञान दूसरों को प्रकट करते हैं। सत्य, अपने उद्गम में सुंदर, अपने विकास में सुंदर, अपने विकास में सुंदर है।" वह इसकी पूर्णता की घोषणा करता है, आत्मा और अक्षर दोनों में, वह उच्च जीवन को उसकी संपूर्णता और पवित्रता में प्रकट करता है। और ऐसे अरहतों के दर्शन करना अच्छा है।

2. अतः कोसल और मगध के वे ब्राह्मण विशाल वन और गुंबददार हॉल में गए। उस समय पूज्य नागिता भगवान बुद्ध के निजी सेवक के रूप में सेवा कर रहे थे। वे उनके पास गए और बोले, "हे नागिता, पूज्य गौतम बुद्ध कहाँ ठहरे हुए हैं? हम उनसे मिलना चाहते हैं।"

"महोदय, भगवान बुद्ध से प्रार्थना करने का यह उचित समय नहीं है। वे एकांतवास में चले गए हैं।"

फिर वे चारों ओर बैठ गए और कहने लगे, "हम पूज्य गौतम के दर्शन किए बिना नहीं जाएंगे।"

3. और लिच्छवी हरे-होंठ भी अपने कुल के अनुयायियों के साथ महान वन और गैबल हॉल में आए; और पूज्य नागिता के पास जाकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया, और आदरपूर्वक अलग खड़े होकर उनसे कहा, "हे पूज्य नागिता, भगवान अर्हत, बुद्ध, इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं? हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।" और ऐसा ही उत्तर पाकर वे भी अलग बैठ गए और बोले, "मैं तब तक नहीं जाऊँगा जब तक में परम पूज्य अर्हत, बुद्ध के दर्शन न कर लूँ।"

4. परन्तु साहा नामक एक नवोदित भिक्षु आदरणीय नागिता के पास आया और उन्हें प्रणाम करते हुए, आदरपूर्वक एक तरफ खड़े होकर उनसे बोला, "हे कस्सप, कोसला और मगध से ब्राह्मणों के ये अनेक दूत भगवान बुद्ध के दर्शन करने आए हैं; और लिच्छवी हरेलिप भी

अपने कुल के अनुयायियों के साथ यही करने आया है। हे कस्सप, यही सर्वोत्तम होगा कि इन सभी को भगवान बुद्ध के दर्शन करने का अवसर मिले।"

"अच्छा, तो फिर साहा। तुम स्वयं भगवान को बता दो।"

“बहुत अच्छा, महाराज,” नवोदित सहा ने आदरणीय नागिता की बात मानते हुए कहा। फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया, और आदरपूर्वक अलग खड़े होकर उनसे वही बातें कहीं जो उन्होंने नागिता से कही थीं।

"बहुत खूब, साहा। घर के सामने छाया में मेरे लिए एक चटाई बिछा दो।"

5. और सहा ने ऐसा ही किया। और भगवान बुद्ध घर से बाहर आए और बैठ गए। कोसल और मगध के ब्राह्मणों ने उनसे शिष्टाचार और विनम्रता का अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। हरे-होंठ वाले लिच्छवी बुद्ध ने भी अपने कुल के अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। और जब वे इस प्रकार बैठ गए तो उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा:

"कुछ दिन पहले, महोदय, लिच्छवियों में से सुनक्खत्ता मेरे पास आया और बोला: 'हे महाली, मुझे भगवान बुद्ध की शरण में आए हुए केवल तीन वर्ष ही हुए हैं, और मैं दिव्य रूप देख सकता हूँ, जो देखने में मनभावन हैं, सभी इच्छाओं को तृप्त करने के योग्य हैं, हृदय में लालसा जगाते हैं। लेकिन मैं वैसी दिव्य ध्वनियाँ नहीं सुन सकता।' महोदय, क्या ऐसी कोई दिव्य ध्वनियाँ हैं जिन्हें वह नहीं सुन सका, या उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है?"

"वे दिव्य ध्वनियाँ वास्तविक हैं, सुखद हैं, इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए उपयुक्त हैं, हृदय में ऐसी लालसा जगाती हैं जिसे वह सुन नहीं सकता था। वे व्यर्थ की वस्तुएँ नहीं हैं।"

6. "लेकिन फिर वह निकटवर्ती और अंतिम कारण क्या है, जिसकी वजह से वह उन्हें सुन नहीं सका, जबकि वे वास्तविक थे और निरर्थक वस्तुएँ नहीं थीं?"

7. मान लीजिए कि एक संन्यासी, महाली, ने किसी एक दिशा में (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे या आर-पार) दिव्य रूपों को देखने के उद्देश्य से एकाग्र एकाग्रता का अभ्यास किया है, न कि दिव्य ध्वनियों को सुनने के उद्देश्य से। तो, चूंकि उन्होंने केवल एक ही उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एकाग्र एकाग्रता का अभ्यास किया है, इसलिए वे केवल दृश्य देखते हैं, ध्वनियाँ नहीं सुनते। और क्यों नहीं? क्योंकि उनकी समाधि (आत्म-एकाग्रता) का स्वरूप ही ऐसा है।

8, 9. "और इसी प्रकार, महाली, यदि वह किसी एक दिशा में दिव्य ध्वनियों को सुनने के उद्देश्य से एकाग्र एकाग्रता का अभ्यास करे, तो वह ध्वनियों को तो सुनेगा, पर दृश्यों को नहीं देख पाएगा।"

10, II. "लेकिन मान लीजिए, महाली, कि उसने किसी एक दिशा में दिव्य दृश्यों और दिव्य ध्वनियों को देखने और सुनने के दोहरे उद्देश्य से आत्म-एकाग्रता का अभ्यास किया है। तो, चूंकि उसने दोहरे उद्देश्य से आत्म-एकाग्रता का अभ्यास किया है, इसलिए वह दृश्यों को देखता भी है और ध्वनियों को सुनता भी है। और ऐसा क्यों? क्योंकि उसकी आत्म-एकाग्रता का स्वरूप ही ऐसा है।"

12. "तो, महोदय, क्या ऐसे आत्म-एकाग्रता के अभ्यास को प्राप्त करने के लिए ही बंधुओं ने भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत किया है?"

"नहीं, महाली। इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और मधुर चीजें हैं जिनके लिए वे ऐसा करते हैं।"

13. "और हे भगवान, वे अन्य बातें क्या हैं?" "प्रथम, महाली, तीनों बंधनों (स्वयं का भ्रम, संशय और अच्छे कर्मों और अनुष्ठानों की प्रभावशीलता पर विश्वास) के पूर्ण नाश से एक भाई परिवर्तित पुरुष बन जाता है, जो किसी भी दुःखपूर्ण अवस्था में पुनर्जन्म नहीं ले सकता और उसे अंतर्दृष्टि (उच्चतम अवस्थाओं की) प्राप्त होने का आश्वासन मिलता है। महाली, यही वह उच्चतर और मधुर अवस्था है जिसके लिए भाई मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।"

"और फिर आगे, महाली, जो तीनों बंधनों का पूर्णतः नाश करके और कामवासना, द्वेष और सुस्ती को न्यूनतम स्तर तक कम करके एक बार पुनरावर्ती बन जाता है, वह जो इस संसार में अपने पहले पुनरागमन पर दुःख का अंत करेगा। महाली, यह उससे भी उच्च और मधुर अवस्था है, जिसके लिए मेरे अधीन भाई धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।"

और फिर, महाली, जो इस संसार से मनुष्यों को बांधने वाले पांचों बंधनों के पूर्ण नाश से परम स्वर्ग का उत्तराधिकारी बन जाता है, वहीं पर विलीन होकर फिर कभी वापस नहीं आता। महाली, यह उससे भी कहीं अधिक उच्च और मधुर अवस्था है, जिसके लिए मेरे अनुयायी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।

"और फिर, महाली, जब कोई भाई घातक बाढ़ों (या मादक वासनाओं, व्यभिचारों, भ्रमों और अज्ञानों) के नाश द्वारा स्वयं ही उस मन की मुक्ति, उस हृदय की मुक्ति, जो अरहतत्व है, को जान और अनुभव कर लेता है और इस दृश्य संसार में निरंतर विद्यमान रहता है, तो महाली, वह एक और भी उच्च और मधुर अवस्था है, जिसके लिए भाई मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।"

"हे महाली, ये वे अवस्थाएँ हैं जो (स्वर्गीय दर्शन और स्वर्गीय ध्वनियाँ सुनने से भी अधिक) श्रेष्ठ और मधुर हैं, जिनके लिए मेरे अनुयायी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।"

14. "लेकिन क्या महोदय, इन शर्तों को साकार करने का कोई मार्ग या कोई विधि है?"

"हां, महाली, है।"

"और महोदय, वह मार्ग क्या हो सकता है, वह विधि क्या हो सकती है?"

"निःसंदेह, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है, अर्थात्: सही विचार, सही आकांक्षाएँ, सही वाणी, सही कर्म, आजीविका का सही साधन, सही प्रयास, सही जागरूकता और आत्म-एकाग्रता में सही परमानंद। हे महाली, यही मार्ग है और यही इन अवस्थाओं की प्राप्ति की विधि है।"

15. "एक दिन, महाली, मैं कोसंबा में, घोषिता ऋतु में ठहरी हुई थी। वहाँ दो संन्यासी, माओइसा (घूमने-फिरने वाला भिक्षु) और जालिया (दारुपट्टिका (लकड़ी के कटोरे वाले व्यक्ति) के शिष्य), मेरे पास आए और मुझसे शिष्टाचार और विनम्रता के अभिवादन और प्रशंसा का आदान-प्रदान किया और आदरपूर्वक अलग खड़े हो गए। और इस प्रकार खड़े होकर उन्होंने मुझसे कहा:

"हे पूज्य गौतम, फिर आत्मा और शरीर एक ही चीज कैसे हैं? या आत्मा एक चीज है और शरीर दूसरी?"

"तो महोदय, कृपया ध्यान से सुनें, फिर मैं बोलूंगा।"

"बहुत अच्छा, महोदय," उन दोनों भिक्षुओं ने सहमति जताते हुए कहा, और मैंने इस प्रकार कहा:

16. "तब कामवासनाओं से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से दूर होकर, वह प्रथम समाधि में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है— एक आनंद और सहजता की अवस्था, जो वैराग्य, तर्क और अन्वेषण से उत्पन्न होती है। अब, महोदय, जब एक भिक्षु इस प्रकार जानता और देखता है, तो क्या यह उसे इस विषय पर विचार करने के लिए तैयार करता है: "क्या आत्मा और शरीर एक ही वस्तु हैं, या आत्मा एक वस्तु है और शरीर दूसरी?"

"जी हां, ऐसा ही होगा, महोदय। लेकिन महोदय, मैं यह जानता हूं और यह देखता हूं। फिर भी मैं न तो यह कहता हूं और न ही वह।"

[17, 18. [इसके बाद उन भिक्षुओं के उदाहरण दिए गए हैं जिन्होंने द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ समाधि तथा अंतर्दृष्टि से उत्पन्न ज्ञान प्राप्त कर लिया है]

19. "इस प्रकार शांत हृदय से वह अपने मन को घातक बाढ़ों के विनाश के ज्ञान की ओर लगाता है। वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह पीड़ा है।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह पीड़ा का मूल है।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह पीड़ा का निवारण है।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह पीड़ा के निवारण का मार्ग है।' वह जानता है कि वे वास्तव में क्या हैं: 'ये घातक बाढ़ें हैं।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह घातक बाढ़ों का मूल है।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह

घातक बाढ़ों का निवारण है।' वह जानता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह घातक बाढ़ों के निवारण का मार्ग है।' इस प्रकार जानने और देखने से उसका हृदय कामवासनाओं के घातक कलंक से मुक्त हो जाता है, जन्म-जन्म के घातक दोष से मुक्त होकर, वह अज्ञान के घातक दोष से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मुक्त हुए व्यक्ति में अपनी मुक्ति का ज्ञान उत्पन्न होता है, और वह जानता है: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है। उच्चतर जीवन पूर्ण हो गया है। जो करना था वह पूरा हो गया है। इस वर्तमान जीवन के बाद कोई परलोक नहीं होगा!"

"जब कोई भिक्षु, महोदय, इस प्रकार जानता और मानता है, तो क्या वह इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हो जाता है: 'क्या आत्मा शरीर के समान है, या आत्मा एक चीज है और शरीर दूसरी?'"

"नहीं, महोदय, ऐसा नहीं होगा।"

"और मैं, महोदय, ऐसा जानता हूँ और ऐसा देखता हूँ। फिर भी मैं न तो यह कहता हूँ और न ही वह।"
भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा; और लिच्छवी (हरे होंठ वाले) ने प्रसन्न होकर भगवान बुद्ध के वचन की महिमा की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.7: जलिया सुत्त (डीएन 7)
मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान कोसंबी में, घोसीता उद्यान में ठहरे हुए थे। तभी दो यात्री, मंदीसा और जलिया, जो लकड़ी के कटोरे वाले तपस्वी के शिष्य थे, उनके पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए...

"एक बार, महाली, मैं कोसंबी में, घोसिता उद्यान में ठहरा हुआ था। दो यात्री, मंदीसा और जलिया, जो लकड़ी के कटोरे वाले तपस्वी के शिष्य थे, मेरे पास आए, मुझसे शिष्टाचार का आदान-प्रदान किया और एक तरफ बैठ गए। फिर उन्होंने कहा: "हे मित्र गौतम, क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं, या आत्मा एक है और शरीर दूसरी?" "अच्छा, मित्रों, आप सुनिए, ध्यान से सुनिए, मैं समझाता हूँ।" "जी मित्र," उन्होंने कहा, और मैं आगे बोला:

"मित्रों, संसार में तथागत का जन्म होता है, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, जो ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने वाले अतुलनीय प्रशिक्षक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। उन्होंने अपने अलौकिक ज्ञान से इस संसार को जान लिया है और वे इस संसार को इसके देवों, मारों और ब्रह्माओं, राजकुमारों और प्रजा सहित घोषित करते हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं, जो आरंभ में सुंदर, मध्य में सुंदर और अंत में सुंदर है, भाव और अक्षर दोनों में सुंदर है, और पूर्णतः सिद्ध और पवित्र जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।"

"एक शिष्य आगे बढ़ता है और नैतिकता का अभ्यास करता है।" अपनी नैतिकता के कारण, उसे कहीं कोई खतरा नहीं दिखता। वह स्वयं में आर्य नैतिकता का पालन करने से प्राप्त होने वाले निष्कलंक आनंद का अनुभव करता है। इस प्रकार, वह नैतिकता में परिपूर्ण हो जाता है... मानो वह ऋण, रोग, बंधन, दासता, रेगिस्तान के खतरों से मुक्त हो गया हो... इस प्रकार इंद्रिय-इच्छाओं से विरक्त होकर, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... और इस प्रकार अपने शरीर को इस वैराग्य से भर देता है, कि उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग इस वैराग्य से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से अछूता नहीं रहता। अब जो इस प्रकार जानता और देखता है, उसके बारे में क्या यह कहना उचित है: "आत्मा शरीर के समान है," या "आत्मा शरीर से भिन्न है?" "नहीं, मित्र।" "परन्तु मैं इस प्रकार जानता और देखता हूँ, और मैं यह नहीं कहता कि आत्मा शरीर के समान है, या उससे भिन्न है।"

"और यही बात दूसरे...तीसरे...चौथे ध्यान पर भी लागू होती है।" "मन ज्ञान और दृष्टि की ओर झुकता और प्रवृत्त होता है। अब, जो इस प्रकार जानता और देखता है, उसके बारे में क्या यह कहना उचित है: "आत्मा शरीर के समान है," या "आत्मा शरीर से भिन्न है?" "नहीं, मित्र।"

वह जानता है: "यहाँ इससे आगे कुछ नहीं है।" अब जो इस प्रकार जानता और देखता है, उसके बारे में क्या यह कहना उचित है: "आत्मा शरीर के समान है," या "आत्मा शरीर से भिन्न है?" "नहीं, मित्र।" "परन्तु मैं इस प्रकार जानता और देखता हूँ, और मैं यह नहीं कहता कि आत्मा शरीर के समान है या उससे भिन्न है।"

इस प्रकार भगवान ने कहा, और वे दोनों यात्री उनके शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.8: महासिहानाद सुत्त (डीएन 8)
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान उरुञ्आयं में, कंणकत्थले हिरण-वन में निवास कर रहे थे। तब कस्सपा नामक एक नग्न तपस्वी, भगवान के पास आया और उनसे शिष्टाचार और विनम्रता के अभिवादन और प्रशंसा का आदान-प्रदान किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हो गया। और इस प्रकार खड़े होकर उसने भगवान से कहा:

2. हे गौतम, मैंने सुना है कि समना गौतम सभी तपस्याओं की निंदा करते हैं; वे सचमुच हर तपस्वी, हर कठोर जीवन जीने वाले व्यक्ति की निंदा और दोषारोपण करते हैं। हे गौतम, जिन्होंने यह कहा, क्या वे गौतम के शब्दों को दोहरा रहे थे, या उनका झूठा प्रचार कर रहे थे? क्या वे उनके धर्म (उनकी प्रणाली) से निकली किसी बात को उनके एक छोटे से सिद्धांत के रूप में बता रहे हैं? क्या उनके इस मत में, जिसे उनकी प्रणाली से जुड़ा हुआ या उससे निकला हुआ बताया गया है, कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर आपत्ति की जा सके? क्योंकि हम पूज्य गौतम पर कोई झूठा आरोप नहीं लगाना चाहते।

3. नहीं, कस्सपा। ऐसा कहने वाले लोग मेरे शब्दों का अनुसरण नहीं कर रहे थे। इसके विपरीत, वे मेरे बारे में झूठी रिपोर्ट कर रहे थे, और तथ्यों से भिन्न बातें कह रहे थे।

हे कस्सपा, मैं अपनी उज्ज्वल और शुद्ध दृष्टि से, मनुष्यों की दृष्टि से परे जाकर, इस बात से अवगत रहता हूँ कि कैसे कुछ तपस्वी, कठिन जीवन व्यतीत करते हुए, शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद किसी दुखी, पतित, विवश अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं; जबकि अन्य, ठीक उसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए, किसी सुखी अवस्था में या स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। हे कस्सपा, मैं, जो इस प्रकार मनुष्यों की वास्तविक अवस्थाओं से अवगत हूँ कि वे कहाँ से आए हैं और कहाँ जाएँगे जब वे एक रूप से विलीन होकर दूसरे रूप में धारण करेंगे, तो मैं कैसे समस्त तपस्या की निंदा कर सकता हूँ? या फिर हर तपस्वी, हर उस व्यक्ति की खुलेआम निंदा करना और उसमें दोष निकालना जो कठिन जीवन जीता है?

4. हे कस्सप, कुछ ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो चतुर, सूक्ष्म, वाद-विवाद में निपुण और सूक्ष्म तर्क करने में माहिर हैं, और ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अपने विरोधियों की अटकलों को अपनी बुद्धि से चकनाचूर कर देते हैं। और जहाँ तक उनका और मेरा संबंध है, कुछ बातों पर सहमति है और कुछ पर असहमति। जिन बातों को वे स्वीकार करते हैं, हम भी उन्हें स्वीकार करते हैं। जिन बातों को वे अस्वीकार करते हैं, हम भी उन्हें अस्वीकार करते हैं। जिन बातों को वे अस्वीकार करते हैं, हम भी उन्हें स्वीकार करते हैं। और जिन बातों को हम स्वीकार करते हैं, वे भी उन्हें स्वीकार करते हैं। और जिन बातों को हम अस्वीकार करते हैं, वे भी उन्हें अस्वीकार करते हैं। और जिन बातों को हम स्वीकार करते हैं, वे भी उन्हें अस्वीकार करते हैं।

5. और मैं उनके पास गया और कहा: "हे मेरे मित्रों, जिन बातों पर हम सहमत नहीं हैं, उन्हें छोड़ दें। जिन बातों पर हम सहमत हैं, उन पर बुद्धिमान लोग प्रश्न करें, उनके कारण पूछें, अपने गुरु से, अपने साथी शिष्यों से, उन पर चर्चा करें और कहें: 'हे सज्जनों, हृदय की वे अवस्थाएँ जो आप में बुरी हैं या बुरी मानी जाती हैं, जो आप में निंदनीय मानी जाती हैं या ऐसी मानी जाती हैं, जो अरहतत्व प्राप्ति के लिए अपर्याप्त हैं या ऐसी मानी जाती हैं, जो भ्रष्ट हैं या ऐसी मानी जाती हैं... उन्हें अपने से पूर्णतः त्यागने वाला कौन है, समा गौतम या अन्य पूजनीय, विद्यालयों के शिक्षक?"

6. हे कस्सपा, तब यह संभव है कि ज्ञानी लोग आपस में प्रश्न पूछते हुए, कारण पूछते हुए, विषय पर चर्चा करते हुए कहें: "समा◌ॅ गौतम ने उन शर्तों को पूर्णतः त्याग दिया है; जबकि अन्य प्रतिष्ठित शिक्षक, यानी अन्य धर्मगुरुओं ने ऐसा केवल आंशिक रूप से किया है।" इस प्रकार, हे कस्सपा, ज्ञानी लोग आपस में प्रश्न पूछते हुए, कारण पूछते हुए, विषय पर चर्चा करते हुए, अधिकतर हमारी प्रशंसा करेंगे।

7. हे कस्सपा, फिर से, बुद्धिमान लोग आपस में प्रश्न पूछें, कारण पूछें, अपने गुरु से, अपने साथी शिष्यों से इस विषय पर चर्चा करें और कहें: "हे महोदय, हृदय की वे अवस्थाएँ जो आप में अच्छी मानी जाती हैं, जो निष्कलंक मानी जाती हैं, जो किसी व्यक्ति को अरहतत्व की ओर ले जाने के लिए पर्याप्त हैं, जो आप में पवित्र मानी जाती हैं—वह कौन है जिसने उन्हें पूर्णतः ग्रहण किया है, समा◌ॅ गौतम या अन्य पूजनीय गुरु, विद्यालयों के शिक्षक?"

8. हे कस्सपा, तब यह संभव है कि ज्ञानी लोग आपस में प्रश्न पूछते हुए, कारण पूछते हुए, विषय पर चर्चा करते हुए कहें: "समा◌ॅ गौतम ने इन शर्तों को पूर्णतः ग्रहण कर लिया है, जबकि अन्य प्रतिष्ठित शिक्षक, यानी अन्य धर्मगुरुओं ने ऐसा आंशिक रूप से ही किया है।" इस प्रकार, हे कस्सपा, ज्ञानी लोग आपस में प्रश्न पूछते हुए, कारण पूछते हुए, विषय पर चर्चा करते हुए, अधिकतर हमारी प्रशंसा करेंगे।

9-12. `[और इसके अलावा, हे कस्सपा, अधिकांश बुद्धिमान लोग यह स्वीकार करेंगे कि मेरे शिष्यों का समूह अन्य शिक्षकों के शिष्यों, यानी आदरणीय शिष्यों की तुलना में, सामान्यतः अच्छे माने जाने वाले कार्यों के प्रति अधिक आसक्त था और सामान्यतः बुरे माने जाने वाले कार्यों से अधिक पूर्णतः विरक्त था।]

13. हे कस्सपा, अब एक मार्ग है, एक विधि है जिसका अनुसरण करने से मनुष्य स्वयं ही यह देख और जान लेगा कि: "समा◌ॅगौतम वह है जो उचित समय पर बोलता है, जो सत्य है, जो लाभप्रद है, जो नियम (धम्म) है, जो आत्म-संयम का नियम (विनय) है।"

और हे कस्सपा, वह कौन सा मार्ग है, वह कौन सी विधि है, जिसका अनुसरण करने से मनुष्य स्वयं ही उसे जान और देख लेगा? निश्चय ही वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है, अर्थात्: सही विचार, सही आकांक्षाएँ, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही परमानंद।

"हे कस्सपा, यही वह मार्ग है, यही वह विधि है, जिसका अनुसरण करने से मनुष्य स्वयं ही जान और देख लेगा कि: 'समा◌ॅ गौतम वह है जो उचित समय पर बोलता है, जो सत्य है, जो लाभप्रद है, जो मानक है, जो आत्मसंयम का नियम है।'"

14. और जब उसने ऐसा कहा, तो नग्न तपस्वी कस्सपा ने परमेश्वर से कहा:

और इसी प्रकार, गौतम, कुछ समाओं और ब्राह्मणों के मत के अनुसार, निम्नलिखित तपस्वी प्रथाओं को भी समाधि और ब्रह्मधित्व के रूप में माना जाता है।

वह नग्न अवस्था में जाता है:

उसकी आदतें ढीली हैं (वह शारीरिक क्रियाएं और भोजन खड़े होकर करता है, न कि झुककर या बैठकर, जैसा कि सभ्य लोग करते हैं): वह अपने हाथों को चाटकर साफ करता है (खाने के बाद, दूसरों की तरह धोने के बजाय)।

(भिक्षा मांगने के दौरान, यदि उनसे विनम्रतापूर्वक पास आने या थोड़ी देर प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया जाता है ताकि उनके कटोरे में भोजन डाला जा सके), तो वे दृढ़ता से आगे बढ़ जाते हैं (कहीं वे दूसरे व्यक्ति की बात मानने के अपराध में न फंस जाएं)।

वह भिक्षा मांगने के अपने दैनिक भ्रमण पर निकलने से पहले उसके लिए लाया गया भोजन स्वीकार करने से इनकार कर देता है।

वह (खास तौर पर उसके लिए तैयार किया गया खाना) लेने से इनकार कर देता है।

वह किसी भी निमंत्रण को स्वीकार करने से इनकार कर देता है (चाहे वह अपने दौरों के दौरान किसी विशेष घर में जाने का हो, किसी विशेष गली से गुजरने का हो या किसी विशेष स्थान पर जाने का हो)।

वह (जिस बर्तन में खाना पकाया जाता है) उसके मुँह से (सीधे लिया गया भोजन) स्वीकार नहीं करेगा; ऐसा न हो कि उसके कारण चम्मच से उन बर्तनों पर खरोंच या निशान पड़ जाएँ।

वह दहलीज के भीतर रखा भोजन स्वीकार नहीं करेगा (ऐसा न हो कि वह भोजन विशेष रूप से उसके लिए ही रखा गया हो):

वह लकड़ियों के बीच रखा हुआ भोजन स्वीकार नहीं करेगा (कहीं ऐसा न हो कि वह भोजन विशेष रूप से उसके लिए ही रखा गया हो):

वह मूसल के बीच रखा हुआ भोजन स्वीकार नहीं करेगा (ऐसा न हो कि वह विशेष रूप से उसके लिए ही रखा गया हो)।

जब दो व्यक्ति एक साथ भोजन कर रहे हों, तो वह (उनके भोजन में से लिया गया भोजन, यदि केवल एक व्यक्ति द्वारा उसे दिया जाए) स्वीकार नहीं करेगा।

वह गर्भवती महिला से भोजन स्वीकार नहीं करेगा (कहीं बच्चा भूखा न रह जाए)।

वह दूध पिलाने वाली स्त्री से भोजन ग्रहण नहीं करेगा (कहीं ऐसा न हो कि दूध कम हो जाए): वह किसी पुरुष के साथ संभोग कर रही स्त्री से भोजन ग्रहण नहीं करेगा (कहीं ऐसा न हो कि उनका संभोग बाधित हो जाए)।

वह (सूखे के समय विश्वासियों द्वारा) एकत्रित भोजन स्वीकार नहीं करेगा।

वह उस स्थान पर भोजन स्वीकार नहीं करेगा जहां कोई कुत्ता खड़ा हो (कहीं ऐसा न हो कि कुत्ता अपना भोजन खो दे)।

वह ऐसी जगह भोजन ग्रहण नहीं करेगा जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों (कहीं मक्खियों को कष्ट न हो)।

वह न तो मछली, न मांस, न शराब, न मादक पदार्थ और न ही दलिया स्वीकार करेगा।

वह एक "एक घर में भीख मांगते ही वापस लौट जाता है", एक "एक निवाला भरकर खाने वाला" व्यक्ति है।

या फिर वह एक "दो घरों वाला" है, एक "दो मुँह भर खाने वाला आदमी" है।

या फिर वह एक 'सात घरों वाला' है, एक 'सात मुँह भर खाने वाला आदमी'।

वह केवल एक, या केवल दो, या इसी तरह सात भिक्षाओं से अपना गुजारा चलाता है।

वह दिन में केवल एक बार, या हर दो दिन में एक बार, या इसी तरह हर सात दिन में एक बार भोजन करता है। इस प्रकार वह नियमित अंतराल पर, नियमानुसार भोजन करने की आदत में लीन रहता है, जो लगभग आधे महीने तक भी जारी रह सकता है।

और इसी प्रकार, हे गौतम, कुछ समाओं और ब्राह्मणों के मत के अनुसार, निम्नलिखित तपस्वी प्रथाओं को भी समाधि और ब्रह्मधित्व के रूप में माना जाता है:

वह जड़ी-बूटियों, जंगली चावल, निवारा के बीजों, चमड़े के छिलकों, हाना नामक जलीय पौधे, चावल के दानों के छिलके के नीचे चिपके हुए बारीक पाउडर, चावल उबालने के बाद बचे हुए झाग, तिलहन के आटे, घास, गोबर, जंगल के फलों और जड़ों, और अपने आप गिरे हुए फलों को खाता है।

और इसी प्रकार, हे गौतम, कुछ समाओं और ब्राह्मणों के मत के अनुसार, निम्नलिखित तपस्वी प्रथाओं को भी समाधि और ब्रह्मधित्व के रूप में माना जाता है:

वह मोटे भांग के कपड़े पहनता है:

वह बुने हुए भांग और अन्य सामग्रियों से बने मोटे कपड़े पहनता है:

वह लाशों से उतारे गए और फेंके गए कपड़े पहनता है।

वह कूड़े के ढेर से उठाए गए चिथड़ों से बने कपड़े पहनता है:

वह तिराटका वृक्ष की छाल से बने वस्त्र पहनता है:

वह काले हिरण की प्राकृतिक खाल पहने हुए है:

वह काले हिरण की खाल की पट्टियों के जाल से बनी पोशाक पहनता है:

उन्होंने कुसा घास के रेशों से बनी पोशाक पहनी हुई है:

वह छाल का वस्त्र पहनता है:

वह लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों (शिंगल) को जोड़कर बनाया गया वस्त्र पहनता है।

वह वस्त्र के रूप में मानव बालों का कंबल ओढ़ता है।

वह घोड़ों की पूंछों से बनी चादर को वस्त्र के रूप में पहनता है।

वह उल्लू के पंखों से बनी चादर को वस्त्र के रूप में धारण करता है।

वह बाल और दाढ़ी नोचने का आदी है।

वह बैठने की जगह का उपयोग करने से इनकार करते हुए, "खड़े रहने वाले व्यक्ति" हैं।

वह एक "एड़ियों पर झुककर बैठने वाला" व्यक्ति है, जिसे एड़ियों पर झुककर बैठने के दौरान खुद को थकाने की आदत है।

वह कांटों की सेज पर सोने वाला व्यक्ति है, जो सोने के लिए इस्तेमाल होने वाली त्वचा के नीचे लोहे के कांटे या प्राकृतिक कांटे रखता है।

वह तख्तों से बने बिस्तर का इस्तेमाल करता है:

वह नंगी जमीन पर सोता है:

वह हमेशा एक ही करवट सोता है:

वह एक "धूल और मिट्टी से सना हुआ व्यक्ति" है (अपने शरीर पर तेल मलकर वह धूल के बादलों के बीच खड़ा हो जाता है और धूल को अपने शरीर पर चिपकने देता है)।

वह खुले आसमान के नीचे रहता और सोता है:

उसे जो भी आसन दिया जाए, वह उसे स्वीकार कर ले (इस बात से नाराज हुए बिना कि वह आसन पर्याप्त गरिमापूर्ण नहीं है):

वह एक 'गंदगी खाने वाला' है, जो चार प्रकार की गंदगी (गाय का गोबर, गाय का मूत्र, राख और मिट्टी) खाने का आदी है।

वह एक ‘नशेड़ी’ है, जिसे ठंडे पानी को कभी न पीने की आदत है (कहीं ऐसा न हो कि उसमें मौजूद आत्माओं को नुकसान पहुंचे)।

वह एक "शाम-तीसरे व्यक्ति" है, जो दिन में तीन बार पानी में उतरकर अपने पापों को धोने का आदी है।

15. हे कस्सपा, यदि कोई व्यक्ति नग्न रहे, व्यभिचारी हो, अपनी जीभ से हाथ चाटकर साफ करे, और वे सभी चीजें करे जिनका आपने विस्तार से वर्णन किया है, यहाँ तक कि नियमानुसार नियमित अंतराल पर, यहाँ तक कि आधे महीने तक भी, भोजन ग्रहण करने का आदी हो—यदि वह यह सब करे, और आचरण, हृदय और बुद्धि में आनंदमय प्राप्ति की अवस्था का अभ्यास न करे, उसे प्राप्त न हो, तो वह समाधि से दूर है, ब्रह्मत्व से दूर है। लेकिन हे कस्सपा, जिस समय से भिक्षु प्रेम का ऐसा हृदय विकसित कर लेता है जो क्रोध और द्वेष से रहित हो—जिस समय से घातक व्यसनों (शरीर की वासना, परलोक की वासना और भ्रम एवं अज्ञान के दोषों) के नाश द्वारा वह हृदय की उस मुक्ति और मन की उस मुक्ति में निवास करता है जो उन व्यसनों से मुक्त है, और जिसे वह इस दृश्य संसार में रहते हुए ही जान लेता है—उस समय से, हे कस्सपा, भिक्षु को समाह कहा जाता है, उसे ब्रह्मा कहा जाता है!

हे कस्सप, यदि कोई व्यक्ति जड़ी-बूटियों, जंगली चावल, निवारा के बीजों, या उन अन्य चीजों का सेवन करता है जिनका आपने विस्तार से वर्णन किया है, यहाँ तक कि उन फलों का भी जो स्वतः गिर गए हैं, और उसने आचरण, हृदय और बुद्धि में आनंदमय प्राप्ति की

अवस्था का अभ्यास नहीं किया है, तो वह समाधि से दूर है, ब्रह्मत्व से दूर है। परन्तु हे कस्सप, जब कोई भिक्षु प्रेममय हृदय का विकास करता है जो क्रोध और द्वेष से रहित है—जब घातक व्यसनों (शरीर की वासना, परलोक की वासना और भ्रम एवं अज्ञान के दोष) के नाश द्वारा वह हृदय की उस मुक्ति, मन की उस मुक्ति में निवास करता है जो उन व्यसनों से मुक्त है, और वह, जबकि अभी भी... इस दृश्य संसार में, यह अहसास और ज्ञान प्राप्त हुआ है... हे कस्सपा, उसी समय से भिक्षु को समाह कहा जाता है... ब्रह्म कहा जाता है!

और हे कस्सपा, यदि कोई व्यक्ति खुरदरे धूसर वस्त्र पहनता है, या आपके द्वारा विस्तार से बताई गई उन सभी या किसी भी अन्य प्रथाओं का पालन नहीं करता है, जिनमें दिन में तीन बार जल स्नान करना भी शामिल है, और आचरण, हृदय और बुद्धि में आनंदमय प्राप्ति की अवस्था का अभ्यास नहीं करता है, तो वह समाधित्व से दूर है, ब्रह्मत्व से दूर है। लेकिन हे कस्सपा, जिस समय से भिक्षु प्रेम का ऐसा हृदय विकसित कर लेता है जो क्रोध और द्वेष से रहित हो—जिस समय से घातक व्यसनों (शरीर की वासना, परलोक की लालसा और भ्रम एवं अज्ञान के दोषों) के नाश द्वारा वह हृदय की उस मुक्ति और मन की उस मुक्ति में निवास करता है जो इन व्यसनों से मुक्त हो, और जिसे वह इस दृश्य संसार में रहते हुए ही जान लेता है—उस समय से, हे कस्सपा, भिक्षु को समाह कहा जाता है, उसे ब्रह्मा कहा जाता है!

16. और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'तो फिर, गौतम, समाधि प्राप्त करना कितना कठिन होगा, ब्रह्मधित्व प्राप्त करना कितना कठिन होगा!'

'हे कस्सपा, संसार में यह आम कहावत है कि सामंत और ब्रह्मा का जीवन कठिन होता है। परन्तु यदि उस जीवन की कठिनाई, अत्यंत कठिनाई, केवल इस तपस्या पर, आपके द्वारा वर्णित किसी भी या सभी अभ्यासों के पालन पर निर्भर होती, तो यह कहना उचित नहीं होता कि सामंत या ब्रह्मा का जीवन कठिन है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या यहाँ तक कि जल-कलश ढोने वाली दासी भी, यह कह सकती थी: 'अब मैं नंगा हो जाऊँ, मैं नीच आदतों को अपना लूँ,' इत्यादि, और इसी प्रकार आपकी उन तीनों सूचियों के सभी बिंदुओं का पालन कर सकती थी। परन्तु हे कस्सपा, इन सब बातों से, सभी प्रकार की तपस्याओं से परे, जीवन कठिन है, अत्यंत कठिन है; इसलिए यह कहना उचित है: "समाजत्व प्राप्त करना कितना कठिन होगा, ब्रह्मत्व प्राप्त करना कितना कठिन होगा! क्योंकि हे कस्सपा, जिस समय से भिक्षु प्रेममय हृदय विकसित कर लेता है, जो क्रोध और द्वेष से रहित होता है—जिस समय से घातक व्यसनों (शरीर की वासना, परलोक की लालसा और भ्रम एवं अज्ञान के दोषों) के नाश द्वारा वह हृदय की उस मुक्ति और मन की उस मुक्ति में निवास करता है, जो उन व्यसनों से मुक्त होती है, और जिसे वह इस दृश्य संसार में रहते हुए ही जान लेता है—हे कस्सपा, उसी समय से भिक्षु को समाज और ब्रह्म कहा जाता है!"

17. और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे गौतम, यह जानना कठिन है कि कोई व्यक्ति समाधि पुरुष है या ब्रह्मा!'

'हे कस्सपा, संसार में यह आम कहावत है कि समा्य को पहचानना कठिन है, ब्राह्मण को पहचानना कठिन है। परन्तु यदि समा्य होना, यदि ब्राह्मण होना, केवल इस तपस्या पर, आपके द्वारा वर्णित किसी भी या सभी प्रथाओं के पालन पर निर्भर करता, तो यह कहना उचित नहीं होता कि समा्य को पहचानना कठिन है, ब्राह्मण को पहचानना कठिन है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या जल कलश ढोने वाली दासी तक, कोई भी यह जान सकता था: 'यह व्यक्ति नंगा रहता है, या इसकी आदतें सुधरती नहीं हैं, या यह अपनी उंगलियों को जीभ से चाटता है,' इत्यादि, आपकी उन तीनों सूचियों में उल्लिखित सभी बिंदुओं के आधार पर। लेकिन हे कस्सपा, इन सब बातों से अलग, सभी प्रकार की तपस्याओं से अलग, एक समा्क को पहचानना कठिन है, एक ब्रह्मा्क को पहचानना कठिन है, इसलिए यह कहना उचित है: "यह जानना कठिन है कि कोई व्यक्ति समा्क है या ब्रह्मा्क!" क्योंकि हे कस्सपा, जिस समय से एक भिक्षु प्रेम का हृदय विकसित कर लेता है जो क्रोध और द्वेष से रहित होता है—जिस समय से घातक व्यसनों (शरीर की वासना, परलोक की लालसा और भ्रम और अज्ञान के दोषों) के नाश द्वारा, वह हृदय की उस मुक्ति में, मन की उस मुक्ति में निवास करता है जो उन व्यसनों से मुक्त है, और जिसे वह इस दृश्य संसार में रहते हुए ही जान लेता है—उस समय से, हे कस्सपा, भिक्षु को समा्क कहा जाता है। ब्रह्मा!

18. जब उन्होंने ऐसा कहा, तब नग्न तपस्वी कश्यप कश्यप ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, आचरण, हृदय और मन में वह आनंदमय प्राप्ति क्या है?"

21. "हे कस्सपा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण आचरण पर बल देते हैं। वे विभिन्न प्रकार से नैतिकता की प्रशंसा करते हैं। परन्तु वास्तव में श्रेष्ठ, सर्वोच्च आचरण के विषय में, मुझे अपने समतुल्य, और श्रेष्ठ तो दूर की बात है, कोई ज्ञात नहीं। और इस मार्ग में, अर्थात् सर्वोच्च आचरण में, मैं ही सबसे आगे बढ़ा हूँ।"

"हे कस्सपा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो आत्म-यातना और दूसरों की सावधानीपूर्वक देखभाल पर ज़ोर देते हैं। वे आत्म-यातना और कठोर सावधानी की प्रशंसा में कई तरह से बोलते हैं। लेकिन जहाँ तक वास्तव में श्रेष्ठ, सर्वोच्च स्तर की आत्म-यातना और दूसरों के प्रति सावधानीपूर्वक सम्मान की बात है, तो मुझे अपने बराबर तो कोई और नहीं दिखता, श्रेष्ठ तो दूर की बात है। और इस मामले में मैं ही सबसे आगे बढ़ा हूँ; यानी दूसरों के प्रति सर्वोच्च स्तर की सावधानीपूर्वक सम्मान में।"

'हे कस्सपा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण बुद्धि पर बल देते हैं। वे विभिन्न तरीकों से बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। परन्तु वास्तव में श्रेष्ठ, सर्वोच्च बुद्धि की बात करें तो, मुझे अपने समतुल्य, और श्रेष्ठ तो दूर की बात है, कोई और ज्ञात नहीं। और मैं ही उस मार्ग की सर्वोच्च बुद्धि तक पहुँचा हूँ।'

'हे कस्सपा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो मोक्ष पर जोर देते हैं। वे विभिन्न तरीकों से मोक्ष की प्रशंसा करते हैं। लेकिन वास्तव में सर्वोच्च, उच्चतम मोक्ष के मामले में, मुझे अपने समान, और न ही अपने से श्रेष्ठ, कोई और ज्ञात नहीं है। और मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसने इस मार्ग में सबसे अधिक प्रगति की है; अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त किया है।'

22. "हे कस्सपा, यह संभव है कि विपरीत संप्रदायों के संन्यासी कहें: 'समा◌ॅ गौतम सिंह की गर्जना करते हैं; परन्तु वे एकांत में गर्जना करते हैं, न कि जहाँ मनुष्य एकत्रित होते हैं।' तब उन्हें उत्तर दिया जाना चाहिए: 'ऐसा मत कहो। समा◌ॅ गौतम सिंह की गर्जना करते हैं, और वह भी उन सभाओं में जहाँ मनुष्य एकत्रित होते हैं।'"

और यह भी संभव है, कस्सपा, कि विपरीत विचारधाराओं के संन्यासी इस प्रकार क्रमानुसार निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाएँ।

लेकिन वह पूरे आत्मविश्वास के साथ दहाड़ नहीं मारता:

लेकिन लोगों ने उससे कोई सवाल नहीं पूछा:

लेकिन पूछे जाने पर भी वह जवाब नहीं दे पाता: लेकिन जवाब देने पर भी वह समस्या के स्पष्टीकरण से संतोषजनक उत्तर नहीं देता।

लेकिन लोग उसकी राय को सुनने लायक नहीं समझते।

लेकिन जब लोग उसकी बात सुनते भी हैं, तो उन्हें उससे कोई दृढ़ विश्वास नहीं होता।

लेकिन जब लोग आश्वस्त हो जाते हैं, तब भी वे अपने विश्वास का कोई बाहरी संकेत नहीं देते हैं।

लेकिन जब वे इस तरह के बाहरी संकेत देते हैं, तब भी वे सत्य तक नहीं पहुँचते:

लेकिन सत्य तक पहुँचने पर भी वे उसका पालन नहीं कर पाते: "तो ऐसे प्रत्येक मामले में, हे कस्सपा, उन्हें पहले की तरह ही उत्तर देना चाहिए, जब तक कि उत्तर यह न आ जाए: ऐसा मत कहो। क्योंकि समा◌ॅगौतम सिंह की गर्जना करते हैं, और वह भी ऐसी सभाओं में जहाँ लोग एकत्रित होते हैं, और अपने दावे की सत्यता पर पूर्ण विश्वास रखते हुए, और लोग उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछते हैं, और प्रश्न पूछे जाने पर वे प्रश्न का उत्तर देते हैं, और उनके स्पष्टीकरण से उनके हृदय में संतोष उत्पन्न होता है, और वे उनके वचन को सुनना उचित समझते हैं, और उसे सुनकर उन्हें दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है, और दृढ़ विश्वास होने पर वे इसके बाहरी संकेत देते हैं, और वे सत्य तक पहुँच जाते हैं, और उसे समझकर वे सत्य का पालन करने में भी सक्षम हो जाते हैं!"

23. एक बार मैं, कस्सपा, राजगृह में, गिद्ध शिखर नामक पहाड़ी पर ठहरा हुआ था। वहाँ तुम्हारे ही समान जीवन शैली का पालन करने वाले निग्रोध नामक एक व्यक्ति ने मुझसे कठोर संयमपूर्ण जीवन के उच्च रूपों के बारे में एक प्रश्न पूछा। जब मुझसे यह प्रश्न पूछा गया, तो मैंने उसे समझाया। और जब मैंने उसके प्रश्न का उत्तर दे दिया, तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ, मानो उसे बहुत आनंद आया हो।

हे भगवान, परम पूज्य के उपदेश सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होगा? मैं भी, जिसने परम पूज्य के उपदेश सुने हैं, परम पूज्य के समान प्रसन्न हूँ। हे भगवान, आपके मुख के वचन अत्यंत उत्कृष्ट हैं, मानो कोई गिरी हुई वस्तु को उठा दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए को सही मार्ग दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि आँखों वाले बाहरी रूप देख सकें... हे भगवान, इसी प्रकार परम पूज्य ने

अनेक दृष्टांतों के द्वारा सत्य को मेरे दर्शन कराया है। और मैं भी परम पूज्य, उनके उपदेश और उनके संघ को अपना मार्गदर्शक मानता हूँ। हे भगवान, मैं परम पूज्य के अधीन संसार का त्याग करना चाहता हूँ; मैं उनके संघ में प्रवेश पाना चाहता हूँ।

24. 'हे कस्सपा, जो कोई भी पहले किसी अन्य संप्रदाय का सदस्य रहा हो और संसार का त्याग करके इस सिद्धांत और अनुशासन में दीक्षा लेना चाहता हो, वह चार महीने की परिवीक्षा अवधि में रहता है। और चार महीने की समाप्ति पर, उच्च आध्यात्मिक भिक्षु उसे दीक्षा देते हैं और संघ में शामिल करके उसे भिक्षु की अवस्था तक पहुंचाते हैं। परन्तु ऐसे मामलों में भी मैं व्यक्तियों के बीच अंतर को स्वीकार करता हूँ।'

हे भगवान, चूंकि चार महीने की परिवीक्षा अवधि नियमित प्रथा है, इसलिए मैं भी उतने ही समय तक परिवीक्षा में रहूंगा। फिर, हे उच्च कोटि के भाइयों, मुझे दीक्षा दें और मुझे भिक्षु की अवस्था में पदोन्नत करें।

इस प्रकार नग्न तपस्वी कस्सपा ने दीक्षा ग्रहण की और परम पूज्य के अधीन संघ में शामिल हो गए। दीक्षा ग्रहण के तुरंत बाद से पूज्य कस्सपा एकांत और एकांत में रहे, गंभीर, उत्साही और आत्म-नियंत्रित। शीघ्र ही उन्होंने उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में प्रवेश करते हैं: जी हाँ, उन्होंने स्वयं ही, इस दृश्य संसार में रहते हुए, उस सर्वोच्च लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त किया, उसे निरंतर अनुभव किया और उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया। उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है, कि उच्चतर जीवन पूर्ण हो गया है, कि जो कुछ करना था वह पूरा हो चुका है, और इस जीवन के बाद कोई परलोक नहीं है!

और इस प्रकार पूज्य कस्सपा भी अरहतों में से एक बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.9: पोत्थपाद सुत्त (डीएन 9)

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में ठहरे हुए थे। उस समय पोत्थपाद नाम का एक यात्री, रानी मल्लिका के एक कक्ष वाले उद्यान में, तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित विमर्श-कक्ष में, लगभग तीन सौ यात्रियों की एक बड़ी भीड़ के साथ उपस्थित था।

तब भगवान भोर में उठकर अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर सावत्थी के पास भिक्षा मांगने गए। परन्तु उनके मन में विचार आया, "सावत्थी के पास भिक्षा मांगने जाना अभी शीघ्र है। क्यों न मैं वाद-विवाद कक्ष में जाकर उस घुमक्कड़ पोत्थापदा से मिलूं?" और उन्होंने ऐसा ही किया।

वहाँ पोत्थापदा अपने घुमंतू साथियों के समूह के साथ बैठा था, सभी चिल्ला रहे थे और बहुत शोर मचा रहे थे, राजाओं, लुटेरों, मंत्रियों, सेनाओं, खतरों, युद्धों, भोजन, पेय, वस्त्र, बिस्तर, मालाओं, इत्रों, रिश्तेदारों, रथों, गांवों, कस्बों और शहरों, देशों, महिलाओं, नायकों, गली-गली और कुएँ की गपशप, मृतकों की बातें, बेतरतीब बातचीत, भूमि और समुद्र के बारे में अटकलें, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की बातें जैसी कई प्रकार की निरर्थक बातचीत में लिप्त थे।

लेकिन पोत्थपाद ने दूर से भगवान को आते देखा, इसलिए उसने अपने अनुयायियों को शांत रहने का आदेश देते हुए कहा: "शांत रहो, सज्जनों, शोर मत करो! वह तपस्वी गौतम आ रहे हैं, और उन्हें शांति पसंद है और वे शांति की प्रशंसा करते हैं। यदि वे देखेंगे कि यह समूह शांत है, तो वे शायद हमसे मिलने आना चाहेंगे।" यह सुनकर सभी साधक चुप हो गए।

तब भगवान पोत्थपदा के पास आए, जिसने कहा: "आह्वद भगवान, आपका स्वागत है! अंततः आह्वद भगवान यहाँ आने के लिए इतनी दूर चले आए हैं। कृपया बैठिए, भगवान, आपके लिए आसन तैयार है।"

भगवान तैयार आसन पर बैठ गए, और पोत्थपाद ने एक छोटी चौकी ली और एक तरफ बैठ गया। भगवान ने कहा, "पोत्थपाद, तुम सब क्या बातें कर रहे थे? मैंने किस बातचीत में बाधा डाली है?"

पोत्थपाद ने उत्तर दिया: "हे भगवान, अभी जो बातचीत हुई उसे भूल जाइए, भगवान को बाद में उसके बारे में सुनने में कोई कठिनाई नहीं होगी। हे भगवान, पिछले कुछ दिनों से विभिन्न संप्रदायों के तपस्वियों और ब्राह्मणों के बीच विमर्श-महल में बैठकर चेतना के उच्चतर निर्गमन और यह कैसे होता है, इस विषय पर चर्चा हो रही है। कुछ ने कहा: "मनुष्य की अनुभूतियाँ बिना किसी कारण या शर्त के उत्पन्न होती हैं और समाप्त हो जाती हैं। जब वे उत्पन्न होती हैं, तब मनुष्य सचेत होता है, जब वे समाप्त हो जाती हैं, तब मनुष्य अचेत हो जाता

है।" उन्होंने इसे इस प्रकार समझाया। लेकिन किसी अन्य ने कहा: "नहीं, ऐसा नहीं है। अनुभूतियाँ मनुष्य का आत्म हैं, जो आती-जाती रहती हैं। जब वे आती हैं, तब मनुष्य सचेत होता है, जब वे चली जाती हैं, तब मनुष्य अचेत हो जाता है।" एक अन्य ने कहा: "ऐसा नहीं है। महान शक्ति और महान प्रभाव वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं। वे मनुष्य में चेतना को उतारते हैं और फिर उसे वापस ले लेते हैं। जब वे उसे उतारते हैं, तब मनुष्य सचेत होता है, जब वे उसे वापस ले लेते हैं, तब वह अचेत हो जाता है।" और एक अन्य ने कहा: "नहीं, ऐसा नहीं है।" महान शक्तियों और व्यापक प्रभाव वाले देवता हैं। वे मनुष्य में चेतना का संचार करते हैं और उसे वापस ले लेते हैं। जब वे चेतना का संचार करते हैं, तो मनुष्य सचेत होता है, और जब वे उसे वापस ले लेते हैं, तो वह अचेत हो जाता है। इसी संदर्भ में मुझे भगवान का ख्याल आया: "अहा, हे भगवान, जो हर किसी की मदद करते हैं, वे इन मामलों में अत्यंत कुशल हैं! भगवान चेतना के उच्चतर अंत को भलीभांति समझते हैं।" तो हे भगवान, चेतना का यह उच्चतर अंत क्या है?

"इस मामले में, पोत्थपाद, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो कहते हैं कि किसी की धारणाएँ बिना किसी कारण या परिस्थिति के उत्पन्न और समाप्त होती हैं, पूरी तरह गलत हैं। ऐसा क्यों? किसी की धारणाएँ किसी कारण और परिस्थिति के कारण उत्पन्न और समाप्त होती हैं। कुछ धारणाएँ साधना से उत्पन्न होती हैं, और कुछ साधना से समाप्त हो जाती हैं।" "यह साधना क्या है?" भगवान ने कहा: "पोत्थपाद, इस संसार में तथागत, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, बुद्धि और आचरण से परिपूर्ण, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने वाले अतुलनीय प्रशिक्षक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य, प्रकट होते हैं। वे अपने अलौकिक ज्ञान से इस संसार का प्रचार करते हैं, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा, राजकुमार और प्रजा सभी शामिल हैं। वे उस धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में, भाव और अक्षर दोनों में सुंदर है, और पूर्णतः सिद्ध और पवित्र जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिष्य आगे बढ़कर नैतिकता का अभ्यास करता है। उसके लिए यही नैतिकता है।"

और फिर, पोट्टापदा, वह भिक्षु जो नैतिकता में परिपूर्ण है, उसे किसी भी तरफ से कोई खतरा नहीं दिखता... इस तरह वह नैतिकता में परिपूर्ण हो जाता है।

वह इंद्रियों आदि के द्वारों की रक्षा करता है। प्रथम ध्यान अवस्था में पहुँचकर वह उसी में स्थिर रहता है। और पहले से मौजूद कामवासना की सभी भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं। उस समय वैराग्य से उत्पन्न आनंद और सुख की एक सच्ची, परन्तु सूक्ष्म अनुभूति होती है, और वह इस आनंद और सुख के प्रति सजग हो जाता है। इस प्रकार कुछ अनुभूतियाँ साधना से उत्पन्न होती हैं, और कुछ साधना से लुप्त हो जाती हैं। और यही वह साधना है," भगवान ने कहा।

"फिर, जब कोई भिक्षु चिंतन और मनन के शांत होने से आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त कर लेता है, तो वह दूसरे ध्यान में पहुँच जाता है और उसमें स्थिर रहता है, जो चिंतन और मनन से मुक्त, एकाग्रता से उत्पन्न, आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। उसकी पूर्व की सच्ची, लेकिन सूक्ष्म, अनासक्ति से उत्पन्न आनंद और सुख की अनुभूति लुप्त हो जाती है। उस समय एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख की सच्ची, लेकिन सूक्ष्म अनुभूति उत्पन्न होती है, और वह इस आनंद और सुख के प्रति सचेत हो जाता है। इस प्रकार कुछ अनुभूतियाँ साधना से उत्पन्न होती हैं, और कुछ साधना से ही लुप्त हो जाती हैं।"

फिर, आनंद के लुप्त हो जाने के बाद, वह समभाव, सजगता और स्पष्ट जागरूकता में लीन हो जाता है, और अपने शरीर में उस सुखद अनुभूति का अनुभव करता है जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है: "समभाव और सजगता में रहने वाला मनुष्य सुखी होता है," और वह तीसरे ध्यान में पहुँचकर स्थिर हो जाता है। एकाग्रता से उत्पन्न उसका पूर्व का सच्चा, परन्तु सूक्ष्म आनंद और प्रसन्नता का भाव लुप्त हो जाता है, और उस समय समभाव और प्रसन्नता का सच्चा, परन्तु सूक्ष्म भाव उत्पन्न होता है, और वह इस सच्चे, परन्तु सूक्ष्म समभाव और प्रसन्नता के प्रति सचेत हो जाता है। इस प्रकार कुछ बोध साधना से उत्पन्न होते हैं, और कुछ साधना से लुप्त हो जाते हैं।

फिर, सुख और दुख के त्याग से, और पूर्व के सुख और दुःख के लुप्त होने से, वह चौथे ध्यान की अवस्था में पहुँचता है और उसमें स्थिर रहता है, जो सुख और दुःख से परे, समभाव और जागरूकता से शुद्ध अवस्था है। उसका पूर्व का सच्चा लेकिन सूक्ष्म समभाव और सुख का बोध लुप्त हो जाता है, और सुख और दुःख दोनों की सच्ची लेकिन सूक्ष्म अनुभूति उत्पन्न होती है, और वह इस सच्ची लेकिन सूक्ष्म अनुभूति के प्रति सचेत हो जाता है। इस प्रकार, कुछ अनुभूतियाँ अभ्यास से उत्पन्न होती हैं, और कुछ अभ्यास से ही लुप्त हो जाती हैं।

फिर, शारीरिक संवेदनाओं से पूरी तरह परे जाकर, प्रतिरोध की भावना के लुप्त होने और विविधता की अनुभूति के प्रति अनासक्ति से, यह देखकर कि अंतरिक्ष अनंत है, वह अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है। इस प्रकार कुछ अनुभूतियाँ अभ्यास से उत्पन्न होती हैं और कुछ अभ्यास से ही लुप्त हो जाती हैं।

फिर, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र से पूरी तरह परे जाकर, यह देखकर कि चेतना अनंत है, वह अनंत चेतना के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है। इस प्रकार, कुछ बोध प्रशिक्षण से उत्पन्न होते हैं और कुछ प्रशिक्षण से ही समाप्त हो जाते हैं।

फिर, अनंत चेतना के क्षेत्र से पूर्णतः परे जाकर, यह देखकर कि कुछ भी नहीं है, वह निरर्थकता के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है, और वह निरर्थकता के क्षेत्र की इस सच्ची परन्तु सूक्ष्म अनुभूति के प्रति सचेत हो जाता है। इस प्रकार, कुछ अनुभूतियाँ अभ्यास से उत्पन्न होती हैं, और कुछ अभ्यास से ही लुप्त हो जाती हैं। और यही वह अभ्यास है," भगवान ने कहा।

पोत्थपाद, जिस क्षण किसी भिक्षु को यह नियंत्रित बोध प्राप्त हो जाता है, वह एक-एक चरण पार करते हुए बोध की चरम सीमा तक पहुँच जाता है। जब वह बोध की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तो उसे यह विचार आता है: "मानसिक गतिविधि मेरे लिए हानिकारक है, मानसिक गतिविधि का अभाव बेहतर है। यदि मैं सोचूँ और कल्पना करूँ, तो ये बोध (जो मैंने प्राप्त किए हैं) समाप्त हो जाएँगे और मुझमें स्थूल बोध उत्पन्न हो जाएँगे। मान लीजिए कि मैं न सोचूँ और न कल्पना करूँ?" अतः वह न तो सोचता है और न ही कल्पना करता है। और तब, उसमें केवल यही बोध उत्पन्न होते हैं, अन्य स्थूल बोध उत्पन्न नहीं होते। वह बोध की समाप्ति प्राप्त कर लेता है। और पोत्थपाद, यही वह तरीका है जिससे क्रमिक चरणों के माध्यम से बोध की समाप्ति प्राप्त होती है।

"पोत्थपाद, आपका क्या विचार है? क्या आपने इसके बारे में पहले कभी सुना है?" "नहीं, भगवान। जैसा कि मैं समझता हूँ, भगवान ने कहा है: पोत्थपाद, जिस क्षण एक भिक्षु को यह नियंत्रित बोध प्राप्त हो जाता है, वह एक-एक चरण से आगे बढ़ता जाता है जब तक कि वह बोध की सीमा तक नहीं पहुँच जाता... उसे निश्चिंतता प्राप्त हो जाती है... और यही वह तरीका है जिससे क्रमिक चरणों के माध्यम से बोध की निश्चिंतता प्राप्त होती है।" "बिल्कुल सही, पोत्थपाद।"

"हे भगवान, क्या आप यह सिखाते हैं कि अनुभूति का शिखर केवल एक है, या अनेक हैं?" "मैं इसे एक और अनेक दोनों के रूप में सिखाता हूँ।" "हे भगवान, यह एक कैसे है और अनेक कैसे है?" "जैसे-जैसे व्यक्ति प्रत्येक अनुभूति की समाप्ति की ओर बढ़ता है, वैसे-वैसे मैं उस अनुभूति के शिखर के बारे में सिखाता हूँ: इस प्रकार मैं अनुभूति के एक शिखर के बारे में भी सिखाता हूँ और अनेक शिखरों के बारे में भी।"

हे भगवान, क्या ज्ञान से पहले बोध उत्पन्न होता है, या बोध से पहले ज्ञान उत्पन्न होता है, या दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं? "हे पोत्थपाद, पहले बोध उत्पन्न होता है, फिर ज्ञान, और बोध के उत्पन्न होने से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। और तब यह ज्ञात होता है: "इस प्रकार ज्ञान उत्पन्न होता है।" इस प्रकार आप देख सकते हैं कि कैसे पहले बोध उत्पन्न होता है, फिर ज्ञान, और बोध के उत्पन्न होने से ही ज्ञान उत्पन्न होता है।

"हे भगवान, क्या बोध ही व्यक्ति का आत्मा है, या बोध एक है और आत्मा दूसरी?" "अच्छा, पोत्थपाद, क्या तुम आत्मा की कल्पना करते हो?" "हे भगवान, मैं एक स्थूल, भौतिक आत्मा की कल्पना करता हूँ, जो चार तत्वों से बनी है और ठोस भोजन पर निर्भर है।" "परन्तु, पोत्थपाद, ऐसी स्थूल आत्मा के साथ बोध एक होगा और आत्मा दूसरी। तुम इसे इस प्रकार समझ सकते हो। ऐसी स्थूल आत्मा होने पर, व्यक्ति में कुछ बोध उत्पन्न होंगे और कुछ क्षीण हो जाएँगे। इस प्रकार तुम देख सकते हो कि बोध एक है और आत्मा दूसरी।"

"हे भगवान, मैं एक ऐसे मन-निर्मित स्व की कल्पना करता हूँ जो अपने सभी अंगों से परिपूर्ण है, और किसी भी इंद्रिय अंग में कोई दोष नहीं है।" "परन्तु ऐसे मन-निर्मित स्व में, बोध एक चीज होगी और स्व दूसरी..."

"हे भगवान, मैं एक निराकार आत्मा की कल्पना करता हूँ, जो बोध से बनी है।" "परन्तु ऐसी निराकार आत्मा में बोध एक चीज होगी और आत्मा दूसरी..."

"पर भगवान, क्या मेरे लिए यह जानना संभव है कि बोध ही व्यक्ति का आत्म है, या बोध एक चीज है और आत्म दूसरी?" "पोत्थपाद, अलग-अलग विचारों, अलग-अलग आस्थाओं, अलग-अलग प्रभावों, अलग-अलग उद्देश्यों और अलग-अलग शिक्षा वाले व्यक्ति के लिए यह जानना कठिन है कि ये दो अलग-अलग चीजें हैं या नहीं।"

"हे भगवान, यदि मेरे जैसे व्यक्ति के लिए स्वयं और धारणाओं का यह प्रश्न कठिन है, तो मुझे बताइए: क्या संसार शाश्वत है? क्या केवल यही सत्य है और विपरीत सत्य असत्य है?" "पोत्थपाद, मैंने यह नहीं कहा है कि संसार शाश्वत है और विपरीत मत असत्य है।" "हे भगवान, क्या संसार शाश्वत नहीं है?" "मैंने यह नहीं कहा है कि संसार शाश्वत नहीं है..." "हे भगवान, क्या संसार अनंत है... अनंत नहीं है..." "मैंने यह नहीं कहा है कि संसार अनंत नहीं है और विपरीत मत असत्य है।"

"हे भगवान, क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं? क्या आत्मा एक है और शरीर दूसरी?" "मैंने यह नहीं कहा है कि आत्मा एक है और शरीर दूसरी।"

"हे भगवान, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब असत्य?" "मैंने यह नहीं कहा है कि तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं।" "हे भगवान, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते... क्या वे विद्यमान भी हैं और नहीं भी... या न तो विद्यमान हैं और न ही अस्य?" "मैंने यह नहीं कहा है कि तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही अस्य, और बाकी सब असत्य है।"

"पर, भगवान, भगवान ने इन बातों का उल्लेख क्यों नहीं किया?" "पोत्थपाद, यह उद्देश्य के अनुकूल नहीं है, धम्म के अनुकूल नहीं है, पवित्र जीवन की राह पर चलने का मार्ग नहीं है; यह वैराग्य, वैराग्य, शांति, उच्च ज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। इसीलिए मैंने इसका उल्लेख नहीं किया है।"

"पर, भगवान, भगवान ने क्या कहा है?" "पोत्थपाद, मैंने कहा है: "यह दुख है, यह दुख का कारण है, यह दुख का निवारण है, और यह दुख निवारण का मार्ग है।"

"पर, भगवान, भगवान ने ऐसा क्यों कहा?" "क्योंकि, पोत्थपाद, यह उद्देश्य के लिए सहायक है, धम्म के लिए सहायक है, पवित्र जीवन की राह दिखाता है; यह वैराग्य, वैराग्य, शांति, उच्च ज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की ओर ले जाता है। इसीलिए मैंने ऐसा कहा है।"

"हे भगवान, ऐसा ही है, हे शुभचिंतक। अब भगवान के लिए अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने का समय आ गया है।" तब भगवान अपने आसन से उठे और चले गए।

भगवान के जाते ही, सभी भटकने वालों ने चारों ओर से पोत्थपाद का उपहास, उपहास और ताना मारना शुरू कर दिया और कहने लगे, "संन्यासी गौतम जो कुछ भी कहते हैं, पोत्थपाद उससे सहमत हो जाता है: 'हे भगवान, ऐसा ही है, हे शुभयात्री!' तपस्वी गौतम के पूरे प्रवचन का एक शब्द भी हमें समझ नहीं आया: 'क्या संसार शाश्वत है या नहीं? क्या यह सीमित है या अनंत? क्या आत्मा शरीर के समान है या भिन्न? क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं या नहीं, या दोनों, या दोनों में से कोई नहीं?'"

पोत्थपाद ने उत्तर दिया: "मुझे न तो यह समझ आता है कि संसार शाश्वत है या नहीं... न ही तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं या नहीं, या दोनों, या दोनों में से कोई भी नहीं। परन्तु तपस्वी गौतम साधना का एक सच्चा और वास्तविक मार्ग सिखाते हैं जो धम्म के अनुरूप और धम्म पर आधारित है। और मुझ जैसे व्यक्ति को तपस्वी गौतम द्वारा इतनी अच्छी तरह से सिखाई गई ऐसी सच्ची और वास्तविक साधना का समर्थन क्यों नहीं करना चाहिए?"

दो-तीन दिन बाद, हाथी प्रशिक्षक का पुत्र चित्त, पोत्थपाद के साथ भगवान के दर्शन करने गया। चित्त ने भगवान के सामने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। पोत्थपाद ने भी भगवान से अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गया और उन्हें सारी घटना बताई।

"पोत्थपाद, वे सभी यात्री अंधे और दृष्टिहीन हैं, उनमें से केवल आप ही दृष्टिहीन हैं। पोत्थपाद, मैंने कुछ बातें निश्चित बताई हैं और कुछ अनिश्चित। मैंने किन बातों को अनिश्चित बताया है?" "संसार शाश्वत है" मैंने अनिश्चित बताया है... "तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं..." क्यों? क्योंकि वे निर्वाण के अनुकूल नहीं हैं। इसीलिए मैंने उन्हें अनिश्चित बताया है।

लेकिन मैंने किन बातों को निश्चित बताया है? यह दुख है, यह दुख का कारण है, यह दुख का निवारण है, यह दुख निवारण का मार्ग है। क्यों? क्योंकि ये उद्देश्य के लिए सहायक हैं, धम्म के लिए सहायक हैं, पवित्र जीवन की राह दिखाते हैं; ये वैराग्य, वैराग्य, शांति, उच्च ज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की ओर ले जाते हैं। इसीलिए मैंने इन्हें निश्चित घोषित किया है।

"पोत्थपाद, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण यह घोषणा और विश्वास करते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा पूर्णतः सुखी और रोगमुक्त हो जाती है। मैंने उनसे संपर्क किया और पूछा कि क्या वास्तव में उनका यही कथन और विश्वास है, तो उन्होंने उत्तर दिया: "हाँ।" तब मैंने कहा: "मित्रों, क्या आप संसार में रहते हुए इसे पूर्णतः सुखी स्थान के रूप में जानते और देखते हैं?" तो उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं।" मैंने कहा: "क्या आपने कभी एक भी रात या दिन, या आधी रात या दिन, पूर्णतः सुखी अनुभव किया है?" तो उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं।" मैंने कहा: "क्या आप कोई ऐसा मार्ग या अभ्यास जानते हैं जिससे पूर्णतः सुखी संसार प्राप्त किया जा सके?" तो उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं।" मैंने

कहा: "क्या आपने उन देवताओं की वाणी सुनी है जो पूर्णतः सुखी संसार में पुनर्जन्म लेकर आए हैं, और कह रहे हैं: 'पूर्णतः सुखी संसार की प्राप्ति उचित और सही ढंग से हुई है, और हम, सज्जनों, ऐसे लोक में पुनर्जन्म लेकर आए हैं?' तो उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं।" पोत्थपाद, आपका क्या विचार है?" ऐसी स्थिति में, क्या उन तपस्वियों और ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण नहीं हो जातीं?

"यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति कहे: 'मैं देश की सबसे सुंदर लड़की को खोजकर उससे प्रेम करूंगा।' लोग उससे पूछें: 'अच्छा, इस देश की सबसे सुंदर लड़की के बारे में, क्या आप जानते हैं कि वह क्षत्रिय, ब्राह्मण, व्यापारी या कारीगर वर्ग से है?' और वह कहेगा: 'नहीं।' फिर लोग पूछें: 'अच्छा, क्या आप उसका नाम, उसका गोत्र, उसकी लंबाई, कद या मध्यम कद, सांवला रंग, गोरा रंग या पीलापन, या वह किस गांव, कस्बे या शहर से आती है, जानते हैं?' और वह कहेगा: 'नहीं।' और लोग पूछें: 'तो फिर, आप जिसे खोज रहे हैं और जिसकी इच्छा रखते हैं, उसे जानते या देखते नहीं हैं?' और वह कहेगा: 'नहीं।' क्या उस व्यक्ति की बात मूर्खतापूर्ण नहीं लगती?' 'बिल्कुल, भगवान।'"

और यही बात उन तपस्वियों और ब्राह्मणों पर भी लागू होती है जो यह घोषणा और विश्वास करते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा पूर्णतः सुखी और रोगमुक्त हो जाती है... क्या उनकी बातें मूर्खतापूर्ण नहीं लगतीं? "निश्चित रूप से, भगवान।"

"यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति चौराहे पर किसी महल के लिए सीढ़ी बना रहा हो। लोग उससे कह सकते हैं: "अच्छा, आप जिस महल के लिए सीढ़ी बना रहे हैं - क्या आप जानते हैं कि महल का मुख पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण की ओर होगा, या वह ऊँचा, नीचा या मध्यम ऊँचाई का होगा?" और वह कहेगा: "नहीं।" और वे कह सकते हैं: "तो फिर, आप नहीं जानते या नहीं देखते कि आप किस प्रकार के महल के लिए सीढ़ी बना रहे हैं?" और वह कहेगा: "नहीं।" क्या आपको नहीं लगता कि उस व्यक्ति की बात मूर्खतापूर्ण साबित होगी?" "बिल्कुल, भगवान।"

"पोत्थपाद, तीन प्रकार के 'अर्जित आत्म' होते हैं: स्थूल 'अर्जित आत्म', मन द्वारा निर्मित 'अर्जित आत्म' और निराकार आत्म। स्थूल 'अर्जित आत्म' क्या है? इसका स्वरूप होता है, यह चार महा तत्वों से बना होता है और भौतिक भोजन से पोषित होता है। मन द्वारा निर्मित 'आत्म' क्या है? इसका स्वरूप होता है, यह अपने सभी अंगों से परिपूर्ण होता है और किसी भी इंद्रिय में कोई दोष नहीं होता। निराकार 'अर्जित आत्म' क्या है? यह निराकार होता है और बोध से बना होता है।"

लेकिन मैं एक ऐसा सिद्धांत सिखाता हूँ जिससे स्थूल अर्जित अहंकार से मुक्ति मिलती है, जिससे अशुद्ध मानसिक अवस्थाएँ दूर हो जाती हैं और शुद्धिकरण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ प्रबल होती हैं, और व्यक्ति अपने ही अतिज्ञान से इस समय और यहीं ज्ञान की शुद्धता और पूर्णता को प्राप्त कर लेता है और उसमें बना रहता है। अब, पोत्थपाद, आप सोच सकते हैं: "शायद ये अशुद्ध मानसिक अवस्थाएँ दूर हो जाएँ...और फिर भी व्यक्ति दुखी रहे।" इसे इस तरह नहीं देखना चाहिए। यदि अशुद्ध अवस्थाएँ दूर हो जाएँ...तो केवल सुख और आनंद, शांति, सजगता और स्पष्ट जागरूकता ही उत्पन्न होती है - और यही सुखी अवस्था है।

मैं मन द्वारा निर्मित अर्जित अहंकार से छुटकारा पाने का सिद्धांत भी सिखाता हूँ...

मैं निराकार, अर्जित स्व से छुटकारा पाने का एक सिद्धांत भी सिखाता हूँ...

पोत्थपाद, यदि दूसरे हमसे पूछें: "मित्र, यह स्थूल अर्जित अहंकार क्या है जिसका त्याग करने का उपदेश तुम देते हो..." तो हमें उत्तर देना चाहिए: "यह वही स्थूल अर्जित अहंकार है जिससे छुटकारा पाने के लिए हम एक सिद्धांत सिखाते हैं..."

यदि दूसरे हमसे पूछें: "यह मन द्वारा निर्मित अर्जित स्व क्या है...?" यदि दूसरे हमसे पूछें: "यह निराकार अर्जित स्व क्या है...?"

"पोत्थापदा, आपका क्या विचार है? क्या वह कथन सही साबित नहीं होता?" "बिल्कुल, भगवान।"

"मानो कोई व्यक्ति किसी महल के लिए सीढ़ी बना रहा हो, जो महल के नीचे हो। लोग उससे कहें, 'अच्छा, आप जिस महल के लिए सीढ़ी बना रहे हैं, क्या आप जानते हैं कि महल का मुख पूर्व की ओर होगा या पश्चिम की ओर, या उत्तर की ओर या दक्षिण की ओर, या वह ऊँचा होगा, नीचा होगा या मध्यम ऊँचाई का होगा?' और वह कहेगा, 'यह सीढ़ी महल के ठीक नीचे है।' 'क्या आपको नहीं लगता कि उस व्यक्ति का कथन सही होगा?' 'बिल्कुल, भगवान।'"

"ठीक इसी प्रकार, पोत्थपाद, यदि दूसरे हमसे पूछें: "यह स्थूल अर्जित आत्म क्या है...?" "यह मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्म क्या है...?" "यह निराकार अर्जित आत्म क्या है...?" तो हम उत्तर देते हैं: "यह वही [स्थूल, मन द्वारा निर्मित, निराकार] अर्जित आत्म है जिससे छुटकारा पाने के लिए हम एक सिद्धांत सिखाते हैं, जिससे अशुद्ध मानसिक अवस्थाएँ दूर हो जाती हैं और शुद्धिकरण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ प्रबल होती हैं, और व्यक्ति अपने ही अतिज्ञान से इसे प्राप्त करके यहीं और इसी क्षण ज्ञान की शुद्धता और पूर्णता में प्राप्त होता है और बना रहता है।" "क्या आपको नहीं लगता कि यह कथन सही है?" "निश्चित रूप से, भगवान।"

इस पर हाथी प्रशिक्षक के पुत्र चित्त ने भगवान से कहा, "हे भगवान, जब भी स्थूल प्रदत्त आत्मा विद्यमान हो, तो क्या मन द्वारा निर्मित प्रदत्त आत्मा या निराकार प्रदत्त आत्मा का अस्तित्व मानना गलत होगा? क्या केवल स्थूल प्रदत्त आत्मा ही वास्तव में विद्यमान है? और इसी प्रकार मन द्वारा निर्मित प्रदत्त आत्मा और निराकार प्रदत्त आत्मा के बारे में भी?"

"चित्त, जब भी स्थूल अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, तब हम मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा की बात नहीं करते, न ही निराकार अर्जित आत्मा की। हम केवल स्थूल अर्जित आत्मा की बात करते हैं। [18] जब भी मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, तब हम केवल मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा की बात करते हैं, और जब भी निराकार अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, तब हम केवल निराकार अर्जित आत्मा की बात करते हैं।"

"सिट्टा, मान लो कि वे तुमसे पूछें: "क्या तुम अतीत में अस्तित्व में थे या नहीं, क्या तुम भविष्य में अस्तित्व में रहोगे या नहीं, क्या तुम अभी अस्तित्व में हो या नहीं?" तुम क्या उत्तर दोगे?"

हे भगवान, यदि मुझसे ऐसा प्रश्न पूछा जाए, तो मैं कहूँगा: "मैं अतीत में विद्यमान था, मैं विद्यमान नहीं था; मैं भविष्य में विद्यमान रहूँगा, मैं विद्यमान नहीं रहूँगा; मैं अभी विद्यमान हूँ, मैं विद्यमान नहीं हूँ।" "हे भगवान, यही मेरा उत्तर होगा।"

"लेकिन, चित्त, अगर वे पूछें: 'क्या अतीत में अर्जित तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा एकमात्र सच्चा स्वरूप है, और भविष्य और वर्तमान के स्वरूप झूठे हैं? या क्या भविष्य में जो तुम्हारा स्वरूप होगा वही एकमात्र सच्चा स्वरूप है, और अतीत और वर्तमान के स्वरूप झूठे हैं? या क्या तुम्हारा वर्तमान में अर्जित स्वरूप ही एकमात्र सच्चा स्वरूप है, और अतीत और भविष्य के स्वरूप झूठे हैं?' तो तुम क्या उत्तर दोगी?"

हे भगवान, यदि वे मुझसे ये बातें पूछें, तो मैं उत्तर दूँगा: "मेरे अतीत में अर्जित स्वरूप ही उस समय मेरा एकमात्र सच्चा स्वरूप था, भविष्य और वर्तमान स्वरूप झूठे थे। भविष्य में अर्जित स्वरूप ही तब एकमात्र सच्चा स्वरूप होगा; अतीत और वर्तमान स्वरूप झूठे होंगे। वर्तमान में अर्जित स्वरूप ही एकमात्र सच्चा स्वरूप है, अतीत और भविष्य स्वरूप झूठे हैं।" मैं इसी प्रकार उत्तर दूँगा।

"ठीक इसी प्रकार, चित्त, जब भी स्थूल अर्जित आत्मा उपस्थित होती है, तब हम मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा...[या] निराकार अर्जित आत्मा की बात नहीं करते हैं।"

"ठीक इसी प्रकार, चित्त, हम गाय का दुहते हैं, दूध से दही बनता है, दही से मक्खन बनता है, मक्खन से घी बनता है और घी से मलाई बनती है। और जब दूध होता है तो हम दही, मक्खन, घी या मलाई की बात नहीं करते, हम दूध की बात करते हैं; जब दही होता है तो हम मक्खन की बात नहीं करते... जब घी की मलाई होती है... तो हम मलाई की बात करते हैं।"

"इसी प्रकार, जब भी स्थूल अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, हम मन द्वारा निर्मित या निराकार अर्जित आत्मा की बात नहीं करते; जब भी मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, हम स्थूल या निराकार अर्जित आत्मा की बात नहीं करते; जब भी निराकार अर्जित आत्मा विद्यमान होती है, हम स्थूल अर्जित आत्मा या मन द्वारा निर्मित अर्जित आत्मा की बात नहीं करते, बल्कि निराकार अर्जित आत्मा की बात करते हैं। परन्तु, चित्त, ये तो केवल संसार में प्रचलित नाम, अभिव्यक्तियाँ, मुहावरे और पदनाम हैं, जिनका तथागत बिना किसी भ्रम के प्रयोग करते हैं।"

और ये शब्द सुनकर पोत्थपाद नामक यात्री ने भगवान से कहा, "उत्कृष्ट, भगवान, उत्कृष्ट! यह ऐसा है मानो किसी गिरी हुई चीज़ को खड़ा कर दिया गया हो, या किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखाया गया हो, या किसी अंधेरी जगह में तेल का दीपक जला दिया गया हो, ताकि देखने वाले वहाँ की चीज़ें देख सकें। ठीक इसी प्रकार भगवान ने विभिन्न तरीकों से धम्म की व्याख्या की है। भगवान, मैं भगवान, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ। भगवान मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें!"

लेकिन हाथी प्रशिक्षक के पुत्र चित्त ने भगवान से कहा, “उत्कृष्ट, भगवान, उत्कृष्ट! यह ऐसा है जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठा दे, या खोए हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरी जगह में तेल का दीपक जला दे ताकि देखने वाले वहाँ की चीज़ें देख सकें। ठीक इसी प्रकार भगवान ने विभिन्न तरीकों से धम्म की व्याख्या की है। हे भगवान, मैं भगवान, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ। हे भगवान, मुझे भगवान के हाथों दीक्षा प्राप्त हो, मुझे दीक्षा प्राप्त हो!”

और हाथी प्रशिक्षक के पुत्र चित्त ने भगवान के हाथों दीक्षा ग्रहण की। नवदीक्षित पूज्य चित्त ने एकांत में, एकांत में, अथक, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, थोड़े ही समय में उस परम सुख को प्राप्त कर लिया जिसके लिए अच्छे कुल के युवक गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, जो पवित्र जीवन की अद्वितीय पराकाष्ठा है। उन्होंने अपने अलौकिक ज्ञान से इसे यहीं और अभी अनुभव किया और उसमें निवास किया, यह जानते हुए कि: "जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब यहाँ कुछ भी शेष नहीं है।"

और आदरणीय चित्त, हाथी प्रशिक्षक के पुत्र, अरहंतों में से एक बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.10: सुभा सुत्त (डीएन 10)
1. 1. मैंने ऐसा सुना है। पूज्य आनंद एक बार अनाथपियोइक के निवास स्थान, जेतवन में स्थित सावत्थी में ठहरे हुए थे, भगवान के देहांत के कुछ समय बाद। उस समय तुडी के पुत्र युवा ब्राह्मण सुभा किसी काम से सावत्थी में रह रहे थे।

2. तब युवा ब्राह्मण सुभा ने एक युवक को संबोधित करते हुए कहा:

अब आओ, युवक। समा ॅआनंद के पास जाओ और मेरे नाम से पूछो कि क्या उनकी बीमारी और अस्वस्थता कम हो गई है, उनका स्वास्थ्य, शक्ति और सुख कैसा है; और कहो: “यह अच्छा होगा यदि आदरणीय आनंद कृपा करके तुड़ी के पुत्र, युवा ब्राह्मण सुभा से मिलने आएँ।”

3. “बहुत अच्छा, महोदय,” उस युवक ने उत्तर में कहा। और वह उस स्थान पर गया जहाँ पूज्य आनंद ठहरे हुए थे, और उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन और प्रशंसा का आदान-प्रदान किया, और अलग से बैठ गया। और इस प्रकार बैठकर उसने पूज्य आनंद को वह संदेश दिया जो उसे सौंपा गया था।

4. यह संदेश सुनकर पूज्य आनंद ने उनसे कहा:

'युवक, अभी यह समय मेरे लिए सुविधाजनक नहीं है, क्योंकि मैंने अभी-अभी दवा ली है। लेकिन शायद मैं कल जा सकूँ, यदि परिस्थितियाँ और अवसर अनुकूल हों।'

तब वह युवक अपनी सीट से उठा और सुभा के पास जाकर उसे सब कुछ बताया और आगे कहा:

अतः महोदय, मामला अब तक इस प्रकार संपन्न हो चुका है कि यदि परिस्थितियाँ और अवसर अनुकूल प्रतीत हों तो शायद पूज्य आनंद कल आ सकें।

5. और जब रात्रि बीत गई, तो पूज्य आनंद ने सुबह जल्दी वस्त्र धारण किए और अपने वस्त्रों में, भिक्षापात्र लिए हुए, चैतिया देश के एक भिक्षु को अपने सेवक के रूप में साथ लेकर सुभा के घर गए और उनके लिए बिछाई गई चटाई पर बैठ गए। और तुड़ी के पुत्र, युवा ब्राह्मण सुभा, उनके पास आए और पूज्य आनंद से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन और प्रशंसा करते हुए एक तरफ बैठ गए। और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने पूज्य आनंद से कहा:

हे महोदय, आपने पूज्य गौतम की लंबे समय तक सेवा की है, निरंतर उनके निकट रहे हैं, उनकी संगति में रहे हैं। हे महोदय, आप जानते होंगे कि पूज्य गौतम किन बातों की प्रशंसा करते थे; किन बातों के लिए वे लोगों को प्रेरित करते थे, किन बातों में उन्हें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे। वे क्या थीं, आनंद?

6. हे ब्रह्म, तीन प्रकार के सिद्धांत हैं जिनकी परमेश्वर अक्सर प्रशंसा करते थे; वे लोगों को इन सिद्धांतों के प्रति प्रेरित करते थे, उन्हें इनमें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे। वे तीन सिद्धांत क्या हैं? सही आचरण से संबंधित श्रेष्ठ सिद्धांत, आत्म-एकाग्रता से संबंधित श्रेष्ठ सिद्धांत और बुद्धि से संबंधित श्रेष्ठ सिद्धांत।

और हे आनंद, यह सही आचरण (साला) से संबंधित इतना महान सिद्धांत क्या है जिसकी प्रशंसा में पूज्य गौतम गौतम अक्सर बोलते थे; जिसके लिए वे लोगों को प्रेरित करते थे, जिसमें वे उन्हें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे?

7.

30. 'और इस प्रणाली के अनुसार अभी भी कुछ और किया जाना बाकी है।'

“आनंद, यह कितना अद्भुत और रहस्यमय है—कि आचरण का यह इतना श्रेष्ठ समूह पूर्ण है, अपूर्ण नहीं; और इस समुदाय के बाहर अन्य समाॅस और ब्रह्माॅस में मुझे इसके समान कोई दूसरा नहीं दिखता। और यदि वे भी अपने भीतर ऐसा पा लें, तो वे इतने से ही संतुष्ट हो जाएँगे और कहेंगे: “इतना ही काफी है। हमने इतना कर लिया है। हमारे समाॅसत्व का उद्देश्य पूरा हो गया है।” परन्तु आप, आनंद, दूसरी ओर कहते हैं: “आपकी पद्धति के अनुसार अभी और भी कुछ करना बाकी है।”

सुभा सूत्र में पाठ के लिए प्रथम भाग यहीं समाप्त होता है।
II. 1. 'और हे आनंद, आत्म-एकाग्रता (समाधि) के विषय में यह महान सिद्धांत क्या है जिसकी प्रशंसा में पूज्य गौतम गौतम अक्सर बोलते थे; जिसके लिए वे लोगों को प्रेरित करते थे, जिसमें वे उन्हें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे?'

20. हे आनंद, बुद्धि (पातत�) के विषय में यह महान उपदेश क्या है, जिसकी प्रशंसा में पूज्य गौतम गौतम अक्सर बोलते थे; जिसके प्रति वे लोगों को प्रेरित करते थे, जिसमें वे उन्हें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे?

27. 'हे युवा ब्राह्मण, यह बुद्धि से संबंधित वह महान सिद्धांत है, जिसकी प्रशंसा में वह परम पूज्य व्यक्ति अक्सर बोलते थे; जिसके प्रति वे लोगों को प्रेरित करते थे, जिसमें वे उन्हें स्थापित करते थे और उन्हें दृढ़ बनाते थे।'

'यह कितना अद्भुत और रहस्यमय है, आनंद, कि बुद्धि से संबंधित सिद्धांतों का यह महान समूह पूर्ण है, अपूर्ण नहीं; और यह कि इस समुदाय के बाहर अन्य सामंतों और ब्रह्माओं में मुझे इसके समान कोई दूसरा सिद्धांत नहीं दिखता।'

और इस विषय में इससे आगे कुछ भी करना बाकी नहीं है। हे आनंद, आपके मुख के वचन अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई व्यक्ति गिरी हुई वस्तु को उठा दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को सही मार्ग दिखा दे, या अंधकार में प्रकाश डाल दे ताकि देखने वाले बाहरी रूप देख सकें... ठीक उसी प्रकार, पूज्य आनंद ने अनेक रूपों में सत्य को मेरे दर्शन कराया है। और मैं, जी हाँ, पूज्य गौतम को अपना मार्गदर्शक, सत्य का मार्ग और संघ का मार्ग मानता हूँ। पूज्य आनंद मुझे अपना अनुयायी स्वीकार करें, उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन भर उन्हें अपना मार्गदर्शक माना है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.11: केवद्ध सुत्त (डीएन 11)

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2मानसिक शक्ति का चमत्कार
3टेलीपैथी का चमत्कार
4शिक्षा का चमत्कार
5सद्‌गुण पर संक्षिप्त खंड
6सद्‌गुण पर मध्यवर्ती खंड
7सद्‌गुण पर महान खंड
8इंद्रिय संयम
9जागरूकता और सतर्कता
10संतोष
11बाधाओं को त्यागना
12चार ध्यान
13अंतर्दृष्टि ज्ञान
14मन द्वारा निर्मित शरीर
15अलौकिक शक्तियाँ
16क्लेयरऑडियंस
17जानो, मन में क्या चल रहा है
18बीते जन्मों की यादें
19प्राणियों का देहांत और पुन: प्रकट होना
20मानसिक उथल-पुथल का अंत
21देवताओं के साथ बातचीत
21.1निर्वाण/मोक्ष अवस्था

सेटिंग

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध नालंदा में पवारिका के आम के बाग में ठहरे हुए थे। तब गृहस्थ केवट्टा भगवान बुद्ध के पास आए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, यह नालंदा शक्तिशाली, समृद्ध और घनी आबादी वाला है, और यहाँ भगवान बुद्ध पर आस्था रखने वाले लोग बहुतायत में हैं। यदि भगवान बुद्ध किसी भिक्षु को अपनी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था से कोई चमत्कार दिखाने का निर्देश दें, तो यह अच्छा होगा, ताकि नालंदा में भगवान बुद्ध पर आस्था और भी अधिक बढ़ जाए।”

जब यह कहा गया, तो भगवान बुद्ध ने गृहस्थ केवट्टा से कहा, "केवट्टा, मैं भिक्षुओं को इस प्रकार शिक्षा नहीं देता: 'आओ, भिक्षुओं, श्वेत वस्त्र पहने हुए गृहस्थों को मानसिक शक्ति का चमत्कार दिखाओ।'"

दूसरी बार... तीसरी बार, गृहस्थ केवट्टा ने भगवान बुद्ध से कहा: "मैं भगवान बुद्ध से बहस नहीं करूँगा, लेकिन मैं आपसे कहता हूँ: हे भगवान, यह नालंदा शक्तिशाली, समृद्ध और घनी आबादी वाला है, और भगवान बुद्ध में आस्था रखने वाले लोगों से भरा हुआ है। यह अच्छा होगा यदि भगवान बुद्ध किसी भिक्षु को अपनी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था से मानसिक शक्ति का चमत्कार दिखाने का निर्देश दें, ताकि नालंदा में भगवान बुद्ध में आस्था और भी अधिक बढ़ जाए।"

तीसरी बार, भगवान बुद्ध ने गृहस्थ केवट्टा से कहा, "केवट्टा, मैं भिक्षुओं को इस तरह से शिक्षा नहीं देता: 'आओ, भिक्षुओं, सफेद वस्त्र पहने हुए आम लोगों को मानसिक शक्ति का चमत्कार दिखाओ।'"

"केवट्टा, मैंने इन तीन चमत्कारों की घोषणा की है, जिन्हें मैंने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जाना और अनुभव किया है। वे तीन कौन से हैं? मानसिक शक्ति का चमत्कार, टेलीपैथी का चमत्कार और शिक्षा का चमत्कार।"

मानसिक शक्ति का चमत्कार

और मानसिक शक्ति का चमत्कार क्या है? एक ऐसा उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु अनेक मानसिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों के आर-पार ऐसे चला जाता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।

फिर, जिस व्यक्ति को उस पर आस्था और दृढ़ विश्वास है, वह उसे अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए देखता है... अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालते हुए। वह यह बात उस व्यक्ति को बताता है जिसे उस पर कोई आस्था और दृढ़ विश्वास नहीं है, और कहता है, 'यह कितना अद्‌भुत है। कितना आश्चर्यजनक है, इस ध्यानमग्न व्यक्ति की शक्ति, उसका कौशल कितना महान है। अभी-अभी मैंने उसे अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए देखा... अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालते हुए।'

"तब, आस्थाहीन, दृढ़ विश्वासहीन व्यक्ति, आस्थावान और दृढ़ विश्वासहीन व्यक्ति से कहेगा: 'महोदय, गांधारी मंत्र नामक एक मंत्र है, जिसके द्वारा भिक्षु अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते थे... अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालते थे।' केवट्टा, आपका क्या विचार है - क्या आस्थाहीन, दृढ़ विश्वासहीन व्यक्ति, आस्थावान और दृढ़ विश्वासहीन व्यक्ति से यही नहीं कहेगा?"

"जी हां, भगवान, वह बिल्कुल यही कहता।"

"मानसिक शक्ति के चमत्कार की इस कमी को देखकर, केवट्टा, मुझे मानसिक शक्ति के चमत्कार से भयभीत, अपमानित और घृणा महसूस होती है।"

टेलीपैथी का चमत्कार

"और टेलीपैथी का चमत्कार क्या है? एक ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों के मन, मानसिक घटनाओं, विचारों, चिंतन को पढ़ता है, [और कहता है,] 'यह आपका चिंतन है, यह आपका चिंतन है, यह आपका मन है।'"

फिर, जिस व्यक्ति को उस पर आस्था और विश्वास है, वह उसे अन्य प्राणियों के मन पढ़ते हुए देखता है... वह यह बात उस व्यक्ति को बताता है जिसे उस पर कोई आस्था और विश्वास नहीं है, और कहता है, 'यह कितना अद्‌भुत है। कितना आश्चर्यजनक है, इस ध्यानमग्न व्यक्ति की शक्ति, उसकी क्षमता कितनी महान है। अभी-अभी मैंने उसे अन्य प्राणियों के मन पढ़ते हुए देखा...'

"तब, बिना आस्था और दृढ़ विश्वास वाला व्यक्ति, आस्था और दृढ़ विश्वास वाले व्यक्ति से कहेगा: 'महोदय, एक मंत्र है जिसे मानिका मंत्र कहते हैं, जिसके द्वारा भिक्षु अन्य प्राणियों के मन को पढ़ सकते हैं...' केवट्टा, आपको क्या लगता है - क्या बिना आस्था और दृढ़ विश्वास वाला व्यक्ति, आस्था और दृढ़ विश्वास वाले व्यक्ति से यही नहीं कहेगा?"

"जी हां, भगवान, वह बिल्कुल यही कहता।"

"टेलीपैथी के चमत्कार की इस कमी को देखकर, केवट्टा, मुझे टेलीपैथी के चमत्कार से भयभीत, अपमानित और घृणा महसूस हो रही है।"

शिक्षा का चमत्कार

और उपदेश का चमत्कार क्या है? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु इस प्रकार उपदेश देता है: 'अपने विचारों को इस दिशा में निर्देशित करो, उस दिशा में निर्देशित मत करो। चीजों पर इस तरह ध्यान दो, उस तरह ध्यान मत दो। इसे छोड़ दो, उसमें प्रवेश करो और लीन रहो।' इसे ही केवट्टा कहते हैं, उपदेश का चमत्कार।

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी और धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन खुले आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, पॉलिश किए हुए शंख के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

"जब वह इस प्रकार प्रस्थान कर लेता है, तो वह मठवासी नियमों से बंधे हुए जीवन व्यतीत करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। अपने सद्‌गुणों में परिपूर्ण, वह अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, सचेत और सतर्क रहता है, और संतुष्ट रहता है।"

सद्‌गुण पर संक्षिप्त खंड
और एक भिक्षु किस प्रकार सद्‌गुणों में परिपूर्ण होता है? वह जीवन लेने का त्याग करके, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपने दंड को त्यागकर, अपने चाकू को त्यागकर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के प्रति सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है। यही उसके सद्‌गुण का अंश है।
"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।"
"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और गांववासियों के रीति-रिवाज के अनुसार यौन क्रिया से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।"
वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्‌भाव से प्रेम करता है, सद्‌भाव में आनंदित होता है, सद्‌भाव का अनुभव करता है और सद्‌भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
वह अपशब्दों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और सभी को प्रसन्न करते हैं। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
वह व्यर्थ की बातों का त्याग करके, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से जुड़ी बातें बोलता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।
वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।
वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।
वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।
वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।
वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।
वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।
वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।
वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।
"यह भी उनके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।"

सद्‌गुण पर मध्यवर्ती खंड
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, जड़ों, तनों, जोड़ों, कलियों और बीजों से उत्पन्न होने वाले इन जैसे हानिकारक बीजों और पौधों को नष्ट करने के आदी होते हैं, वह इन जैसे बीजों और पौधों को नष्ट करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, संचित वस्तुओं जैसे कि संचित भोजन, संचित पेय पदार्थ, संचित वस्त्र, संचित वाहन, संचित बिस्तर, संचित सुगंध और संचित मांस के उपभोग के आदी होते हैं, वह इन संचित वस्तुओं के उपभोग से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।
जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, नृत्य, गायन, वाद्य संगीत, नाटक, लोकगीत पाठ, ताली बजाना, झांझ और ढोल, मैजिक लैंटर्न के दृश्य, कलाबाजी और जादूगरी के करतब, हाथियों की लड़ाई, घोड़ों की लड़ाई, भैंसों की लड़ाई, बैलों की लड़ाई, बकरियों की लड़ाई, भेड़ों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई, बटेरों की लड़ाई; लाठियों से लड़ाई, मुक्केबाजी, कुश्ती, युद्ध-खेल, हाजिरी, युद्ध-प्रदर्शन और रेजिमेंटल परेड जैसे कार्यक्रमों को देखने के आदी होते हैं, वहीं वह इन कार्यक्रमों को देखने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, ऐसे व्यर्थ और आलस्यपूर्ण खेलों में लिप्त रहते हैं जैसे कि आठ पंक्तियों वाला शतरंज, दस पंक्तियों वाला शतरंज, हवा में शतरंज, हॉपस्कॉच, स्पिलिकिन्स, पासा, छड़ी के खेल, हस्तचित्र, गेंद के खेल, खिलौने की पाइपों से फूंक मारना, खिलौने के हल से खेलना, कलाबाजियां करना, खिलौने की पवनचक्कियों से खेलना, खिलौने के नाप, खिलौने के रथ, खिलौने के धनुष, हवा में खींचे गए अक्षरों का अनुमान लगाना, विचारों का अनुमान लगाना, विकृतियों की नकल करना - वह इन व्यर्थ और आलस्यपूर्ण खेलों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, इन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण साज-सामान के आदी होते हैं—बड़े आकार के सोफे, नक्काशीदार जानवरों से सजे सोफे, लंबे बालों वाले कंबल, बहुरंगी पैचवर्क कंबल, सफेद ऊनी कंबल, फूलों या जानवरों की आकृतियों से कढ़ी हुई ऊनी कंबल, गद्देदार रजाई, झालरदार कंबल, रत्नों से कढ़ी हुई रेशमी कंबल; बड़े ऊनी कालीन; हाथी, घोड़े और रथ के गलीचे, हिरण की खाल के गलीचे, बारहसिंगा की खाल के गलीचे; शामियाना वाले सोफे, सिर और पैरों के लिए लाल तकियों वाले सोफे—वह इन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण साज-सामान का उपयोग करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, सुगंध, सौंदर्य प्रसाधन और ऐसे अन्य सौंदर्य प्रसाधनों के आदी होते हैं जैसे शरीर पर पाउडर मलना, तेल से मालिश करना, सुगंधित जल से स्नान करना, अंगों को मलना, दर्पणों का उपयोग करना, मलहम, मालाएँ, सुगंध, क्रीम, चेहरे का पाउडर, कस्तूरी, कंगन, सिर के पट्टे, सजी हुई छड़ें, अलंकृत पानी की बोतलें, तलवारें, सुंदर धूप के चश्मे, सजी हुई चप्पलें, पगड़ी, रत्न, याक की पूंछ से बने झाड़ू, लंबी झालर वाले सफेद वस्त्र - वह इन सभी सुगंधों, सौंदर्य प्रसाधनों और सौंदर्य प्रसाधनों के उपयोग से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, राजाओं, लुटेरों, राज्य मंत्रियों; सेनाओं, चेतावनियों और युद्धों; भोजन और पेय; वस्त्र, फर्नीचर, मालाएँ और सुगंध; रिश्तेदारों; वाहनों; गाँवों, कस्बों, शहरों, ग्रामीण इलाकों; महिलाओं और नायकों; गली और कुएँ की गपशप; मृतकों की कहानियाँ; विविधता की कहानियाँ [अतीत और भविष्य की दार्शनिक चर्चाएँ], संसार और समुद्र की रचना, और वस्तुओं के अस्तित्व या न होने की चर्चाओं जैसे तुच्छ विषयों पर चर्चा करने के आदी होते हैं, वह इन तुच्छ विषयों पर चर्चा करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करते हुए, इस प्रकार की बहसों में लिप्त रहते हैं — 'क्या आप इस सिद्धांत और अनुशासन को समझते हैं? मैं ही वह हूँ जो इस सिद्धांत और अनुशासन को समझता हूँ। आप इस सिद्धांत और अनुशासन को कैसे समझ सकते हैं? आप गलत तरीके से अभ्यास कर रहे हैं। मैं सही तरीके से अभ्यास कर रहा हूँ। मैं सुसंगत हूँ। आप नहीं। जो बात पहले कही जानी चाहिए थी, वह आपने अंत में कही। जो बात अंत में कही जानी चाहिए थी, वह आपने पहले कही। जिस बात पर आपने इतना समय विचार करने में लगाया, उसका खंडन हो गया है। आपका सिद्धांत ध्वस्त हो गया है। आप पराजित हो गए हैं। जाइए और अपने सिद्धांत को बचाने का प्रयास कीजिए; यदि संभव हो तो स्वयं को इस स्थिति से बाहर निकालिए!' — वह इस प्रकार की बहसों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन पर जीवन यापन करते हुए, राजाओं, राज्य मंत्रियों, कुलीन योद्धाओं, पुजारियों, गृहस्थों या युवकों जैसे लोगों के लिए संदेश पहुंचाने और काम करने के आदी होते हैं, जो कहते हैं, 'यहाँ जाओ, वहाँ जाओ, इसे वहाँ ले जाओ, उसे यहाँ से लाओ' - वह ऐसे लोगों के लिए संदेश पहुंचाने और काम करने से परहेज करता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के बदले दिए गए भोजन पर जीवन यापन करते हुए, षड्यंत्र रचते हैं, बहलाते हैं, इशारे करते हैं, नीचा दिखाते हैं और लाभ के बदले लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, वह इस प्रकार के षड्यंत्र और बहलाने-फुसलाने के अनुचित तरीकों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्‌गुण का एक हिस्सा है।

सद्‌गुण पर महान खंड

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, निम्न स्तर की कलाओं जैसे कि गलत तरीकों से अपना गुजारा करते हैं:

हाथ-पैरों पर निशान पढ़ना [जैसे, हस्तरेखा शास्त्र]; शकुन और संकेतों को पढ़ना; खगोलीय घटनाओं की व्याख्या करना [टूटते तारे, धूमकेतु]; सपनों की व्याख्या करना; शरीर पर निशान पढ़ना [जैसे, मस्तिष्क विज्ञान]; चूहों द्वारा कुतरे गए कपड़ों पर निशान पढ़ना; अग्नि आहुति देना, करछुल से आहुति देना, भूसी, चावल का पाउडर, चावल के दाने, घी और तेल की आहुति देना; मुख से आहुति देना; रक्त-बलि देना; उंगलियों के निशान के आधार पर भविष्यवाणी करना; भूगर्भ विद्या; राक्षसों को कब्रिस्तान में दफनाना; आत्माओं पर जादू करना; घर की सुरक्षा के मंत्रों का जाप करना; सांपों को वश में करना, विष विद्या, बिच्छू विद्या, चूहे विद्या, पक्षी विद्या, कौवे विद्या; दर्शन के आधार पर भविष्यवाणियां करना; सुरक्षात्मक ताबीज देना; पक्षियों और जानवरों की आवाजों की व्याख्या करना — वह इन जैसे गलत आजीविका और नीच कलाओं से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, गलत आजीविका से अपना गुजारा करते हैं, जैसे कि: शुभ और अशुभ रत्नों, वस्त्रों, लाठियों, तलवारों, भालों, तीरों, धनुषों और अन्य हथियारों का निर्धारण करना; स्त्रियों, लड़कों, लड़कियों, पुरुष दासों, महिला दासों; हाथियों, घोड़ों, भैंसों, बैलों, गायों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गियों, बटेरों,

छिपकलियों, लंबे कान वाले कृन्तकों, कछुओं और अन्य जानवरों की पूजा करना — वह गलत आजीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, भविष्यवाणी जैसी नीच कलाओं द्वारा गलत तरीके से जीविका चलाते हैं:

शासक आगे बढ़ेंगे; शासक आगे बढ़ेंगे और लौटेंगे; हमारे शासक आक्रमण करेंगे और उनके शासक पीछे हटेंगे; उनके शासक आक्रमण करेंगे और हमारे शासक पीछे हटेंगे; हमारे शासकों की विजय होगी और उनके शासकों की पराजय होगी; उनके शासकों की विजय होगी और हमारे शासकों की पराजय होगी; इस प्रकार विजय होगी, इस प्रकार पराजय होगी — वह कुटिल जीविका से, इन जैसे नीच कामों से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, भविष्यवाणी जैसी नीच कलाओं द्वारा गलत तरीके से जीविका चलाते हैं:

चंद्र ग्रहण होगा; सूर्य ग्रहण होगा; नक्षत्रों का आवरण होगा; सूर्य और चंद्रमा अपने सामान्य पथ पर चलेंगे; सूर्य और चंद्रमा भटक जाएंगे; नक्षत्र अपने सामान्य पथ पर चलेंगे; नक्षत्र भटक जाएंगे; उल्का वर्षा होगी; आकाश में अंधेरा छा जाएगा; भूकंप आएगा; साफ आकाश से गरज सुनाई देगी; सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों का उदय, अस्त, अंधकार और प्रकाश होगा; चंद्र ग्रहण का यही परिणाम होगा... सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों का उदय, अस्त, अंधकार और प्रकाश - वह गलत आजीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, भविष्यवाणी जैसी नीच कलाओं द्वारा गलत तरीके से जीविका चलाते हैं:

खूब बारिश होगी; सूखा पड़ेगा; समृद्धि होगी; अकाल पड़ेगा; आराम और सुरक्षा होगी; खतरा होगा; बीमारी होगी; बीमारी से मुक्ति होगी; या वे गिनती, हिसाब-किताब, कविता रचना, या सुखवादी कलाओं और सिद्धांतों को सिखाकर जीविका कमाते हैं - वह गलत जीविका से, ऐसी नीच कलाओं से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, निम्न स्तर की कलाओं जैसे कि गलत तरीकों से अपना गुजारा करते हैं:

विवाह, सगाई, तलाक के लिए शुभ तिथियों की गणना करना; ऋण वसूलने या निवेश और ऋण लेने के लिए; आकर्षक या अनाकर्षक होने के लिए; गर्भपात या गर्भस्राव से पीड़ित महिलाओं का इलाज करने के लिए; किसी पुरुष की जीभ बांधने, उसके जबड़े को लकवाग्रस्त करने, उसके हाथों पर नियंत्रण खोने या बहरापन लाने के लिए मंत्रों का जाप करने के लिए; दर्पण, किसी युवती या किसी तांत्रिक से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए; सूर्य की पूजा करने, ब्रह्मा की पूजा करने, मुख से ज्वाला निकालने, भाग्य की देवी का आह्वान करने — वह इन सभी गलत आजीविकाओं और निम्न स्तर की कलाओं से दूर रहता है।

जबकि कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग, आस्था के आधार पर दिए गए भोजन से अपना जीवन यापन करते हुए, निम्न स्तर की कलाओं जैसे कि गलत तरीकों से अपना गुजारा करते हैं:

देवताओं को वरदान के बदले उपहार देने का वादा करना; ऐसे वादे पूरे करना; प्रेत विद्या का अध्ययन करना; घर की सुरक्षा के मंत्र सिखाना; पौरुष शक्ति और नपुंसकता उत्पन्न करना; निर्माण स्थलों का अभिषेक करना; विधिपूर्वक मुख स्नान कराना; यज्ञ की अग्नि अर्पित करना; उल्टी कराने वाली दवाएँ, दस्त की दवाएँ, कफ निस्सारक दवाएँ, मूत्रवर्धक दवाएँ, सिरदर्द की दवाएँ तैयार करना; कान का तेल, आँखों में डालने वाली बूँदें, नाक से उपचार के लिए तेल, काजल और अन्य औषधियाँ तैयार करना; मोतियाबिंद का इलाज करना, शल्य चिकित्सा करना, बच्चों के चिकित्सक के रूप में कार्य करना, दवाओं का प्रयोग करना और उनके दुष्प्रभावों का उपचार करना — वह इन सभी अनुचित आजीविकाओं और निम्न स्तर के कार्यों से दूर रहता है। यह भी उसके सद्गुण का एक भाग है।

"इस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण भिक्षु को अपने सद्गुणों के कारण संयम से कोई खतरा नहीं दिखता। जिस प्रकार अपने शत्रुओं को परास्त करने वाला महापुरुष योद्धा अपने शत्रुओं से कोई खतरा नहीं देखता, उसी प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण भिक्षु को अपने सद्गुणों के कारण संयम से कोई खतरा नहीं दिखता। सद्गुणों के इस श्रेष्ठ समूह से युक्त होकर वह निर्दोष होने के सुख के प्रति आंतरिक रूप से संवेदनशील होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु सद्गुणों में परिपूर्ण होता है।"

इंद्रिय संयम

और एक भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? किसी आकृति को आँख से देखते समय, वह किसी भी विषय या विवरण पर ध्यान नहीं देता, जिससे—यदि वह आँख की शक्ति पर बिना संयम के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। किसी ध्वनि को कान से सुनते समय... किसी गंध को नाक से सूंघते समय... किसी स्वाद को जीभ से चखते समय... किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करते समय... किसी विचार को बुद्धि से समझते समय, वह किसी भी विषय या विवरण पर ध्यान नहीं देता, जिससे—यदि वह बुद्धि की शक्ति पर बिना संयम के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंक होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है। इस प्रकार एक भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है।

जागरूकता और सतर्कता

और एक भिक्षु में सजगता और सतर्कता कैसे होती है? आगे बढ़ते और लौटते समय, वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपने बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कुंड को ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय, वह सतर्कता से कार्य करता है। इस प्रकार एक भिक्षु में सजगता और सतर्कता होती है।

संतोष

और एक भिक्षु कैसे संतुष्ट रहता है? जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, केवल अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को ही साथ ले जाता है। यही एक भिक्षु का संतोष है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्‌गुणों के इस श्रेष्ठ समूह, इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम, इस श्रेष्ठ जागरूकता और सजगता तथा इस श्रेष्ठ संतोष से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: जंगल, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने से लौटकर, वह बैठ जाता है, पैर मोड़कर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है और जागरूकता को अपने ध्यान में लगाता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति ऋण लेकर उसे अपने व्यवसाय में निवेश करता है। उसका व्यवसाय सफल होता है। वह अपने पुराने ऋण चुका देता है और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ऋण लेने से पहले मैंने उसे अपने व्यवसाय में निवेश किया था। अब मेरा व्यवसाय सफल हो गया है। मैंने अपने पुराने ऋण चुका दिए हैं और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच गया है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति बीमार पड़ जाता है - उसे बहुत दर्द होता है और वह गंभीर रूप से अस्वस्थ है। उसे भोजन करने में आनंद नहीं आता और उसके शरीर में कोई शक्ति नहीं है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस बीमारी से ठीक हो जाता है। अब वह भोजन का आनंद लेता है और उसके शरीर में शक्ति आ जाती है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं बीमार था... अब मैं उस बीमारी से ठीक हो गया हूँ। मैं भोजन का आनंद लेता हूँ और मेरे शरीर में शक्ति है।' इसी कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति जेल में बंद है। समय बीतने के साथ, अंततः वह उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं जेल में बंद था। अब मैं उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो गया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति गुलाम है, दूसरों के अधीन है, स्वयं के अधीन नहीं, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में असमर्थ है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस गुलामी से मुक्त हो जाता है, स्वयं के अधीन हो जाता है, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो जाता है, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं गुलाम था... अब मैं उस गुलामी से मुक्त हो गया हूँ, स्वयं के अधीन हूँ, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हूँ, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा था। अब मैं उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"इसी प्रकार, जब भिक्षु अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग नहीं करता, तो वह उन्हें ऋण, रोग, कारावास, दासता, वीरान देश का मार्ग समझता है। परन्तु जब वह अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग कर लेता है, तो वह उन्हें ऋणमुक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, कारावास से मुक्ति, स्वतंत्रता, सुरक्षा का स्थान समझता है। अपने भीतर इनका त्याग देखकर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर वह समाधि में लीन हो जाता है। समाधि में उसका शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर वह सुख के प्रति संवेदनशील हो जाता है। सुख का अनुभव करने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है।"

चार ध्यान

"इंद्रिय सुख से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित चिंतन और विश्लेषण से परिपूर्ण होता है। वह इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका पाउडर का गोला - संतृप्त, नमी से भरा, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी टपके नहीं; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।"

इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, वह द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में समा जाता है, उसे ठंडे जल से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे जल से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।

इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

और इसके अलावा, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो पानी में पैदा होते हैं और बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी से बाहर नहीं निकलते, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक ठंडे पानी से भरे रहते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग परमानंद रहित आनंद से अछूता नहीं रहता।

इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

और इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न तनाव। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता।

इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

अंतर्दृष्टि ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहाँ बंधी हुई है।' मान लीजिए कि शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है—आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण, और उसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा हो—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे अपने हाथ में लेकर इस प्रकार विचार करे: 'यह शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है, आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण। और इसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा है।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु उसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहीं बंधी हुई है।'

इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

मन द्वारा निर्मित शरीर

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने मन को एक मन-निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक अन्य शरीर की रचना करता है, जो आकार से युक्त, मन से निर्मित,

अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति म्यान से सरकंडा निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह म्यान है, यह सरकंडा है। म्यान एक चीज है, सरकंडा दूसरी, लेकिन सरकंडा म्यान से निकल गया है।' या जैसे कोई व्यक्ति म्यान से तलवार निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार एक चीज है, म्यान दूसरी, लेकिन तलवार म्यान से निकल गई है।' या यूं कहें कि कोई व्यक्ति सांप को उसके केंचुली से बाहर निकाल रहा हो। उसके मन में यह विचार आएगा: 'यह सांप है, यह उसकी केंचुली है। सांप एक चीज है, केंचुली दूसरी, लेकिन सांप को केंचुली से बाहर निकाल लिया गया है।' ठीक इसी प्रकार, जब भिक्षु का मन एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित हो जाता है, तो वह उसे मन से निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक और शरीर की रचना करता है, जो आकार से युक्त, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

अलौकिक शक्तियाँ
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह अनेक अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों के आर-पार ऐसे चला जाता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालता है। जैसे एक कुशल कुम्हार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार मिट्टी से अपनी पसंद का कोई भी बर्तन बना सकता है, या जैसे एक कुशल हाथीदांत तराशने वाला या उसका सहायक अपनी पसंद की मिट्टी से किसी भी प्रकार का बर्तन बना सकता है। वह अच्छी तरह से तैयार हाथीदांत से अपनी पसंद का कोई भी हाथीदांत का काम बना सकता है, या जैसे एक कुशल सुनार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार सोने से अपनी पसंद की कोई भी सोने की वस्तु बना सकता है; उसी प्रकार - अपने इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से - भिक्षु इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है... वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

क्लेयरऑडियंस
"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध और उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह - शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे - दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट हों या दूर। ठीक वैसे ही जैसे यदि कोई व्यक्ति राजमार्ग पर यात्रा कर रहा हो और उसे ढोल, छोटे ढोल, शंख, झांझ और टॉम की आवाज़ें सुनाई दें, तो वह जान जाएगा, 'यह ढोल की आवाज़ है, यह छोटे ढोल की आवाज़ है, यह शंख की आवाज़ है, यह झांझ की आवाज़ है और यह टॉम की आवाज़ है।'" इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु उसे दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह—शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे दिव्य श्रवण शक्ति के माध्यम से—दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट की हों या दूर की।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

जानो, मन में क्या चल रहा है
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। अद्वितीय मन को अद्वितीय मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। जैसे कोई युवती या पुरुष, जो आभूषणों का शौकीन हो, किसी चमकदार दर्पण या स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखकर यह जान ले कि वह 'दोषपूर्ण' है या 'दोषरहित' है। उसी प्रकार, अपने इस एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से, भिक्षु इसे अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य

व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनून से भरे मन को जुनून से भरे मन के रूप में और बिना जुनून वाले मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है... मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और असंलग्न मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है। अप्रकाशित मन, अप्रकाशित मन के रूप में।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

बीते जन्मों की यादें
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों (यानी पूर्व जन्मों) के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग। वह स्मरण करता है, 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ।' उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। जीवन। उस अवस्था से गुजरकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद करता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने गाँव से दूसरे गाँव जाए, फिर उस गाँव से किसी और गाँव जाए, और फिर उस गाँव से वापस अपने गाँव आ जाए। उसके मन में यह विचार आएगा, 'मैं अपने गाँव से उस गाँव गया। वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं उस गाँव गया, और वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं वापस घर आ गया।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने पिछले जन्मों के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

प्राणियों का देहांत और पुन: प्रकट होना
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले – शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार – दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है – वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। जैसे कि किसी शहर के केंद्रीय चौक में एक ऊँची इमारत हो, और उस पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को घर में प्रवेश करते, घर से बाहर निकलते, सड़क पर चलते और केंद्रीय चौक में बैठते हुए देखे। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ये लोग घर में प्रवेश कर रहे हैं, घर से बाहर निकल रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं और केंद्रीय चौक में बैठ रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह—शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—प्राणित और पुनर्जन्मित प्राणियों को देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है।
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।

मानसिक उथल-पुथल का अंत
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-वासना, कर्म-वासना और अज्ञान-वासना से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह समझ पाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' जैसे मान लीजिए कि किसी पहाड़ी घाटी में पानी का एक तालाब हो—साफ़, निर्मल और बेदाग—जहाँ किनारे पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर देख सके, और साथ ही मछलियों के झुंड तैरते और आराम करते हुए देख सके, और उसके मन में यह विचार आए,

'यह तालाब साफ़, निर्मल और निर्मल है। यहाँ ये सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर हैं, और साथ ही मछलियों के ये झुंड तैरते और आराम करते हुए हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझ जाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं बचा है।'
इसे भी शिक्षा का चमत्कार कहा जाता है।
"ये वे तीन चमत्कार हैं जिनकी मैं घोषणा करता हूँ, केवट्टा, क्योंकि मैंने स्वयं इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जाना और अनुभव किया है।"

देवताओं के साथ बातचीत
"एक बार, केवट्टा, इसी भिक्षु समुदाय के एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: 'ये चार महान तत्व - पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु - कहाँ जाकर समाप्त होते हैं?' तब उन्होंने एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त की कि उनके एकाग्र मन में देवताओं तक पहुँचने का मार्ग प्रकट हो गया। अतः वे चार महान राजाओं के अनुयायियों के देवताओं के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उनसे पूछा, 'मित्रों, ये चार महान तत्व - पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु - कहाँ जाकर समाप्त होते हैं?'"
जब यह कहा गया, तो चार महान राजाओं के अनुयायियों के देवताओं ने भिक्षु से कहा, 'हम भी नहीं जानते कि चार महान तत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के। लेकिन चार महान राजा हैं जो हमसे कहीं अधिक उच्च और श्रेष्ठ हैं। उन्हें अवश्य ही पता होना चाहिए कि चार महान तत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के।'
"तो भिक्षु ने चारों महान राजाओं से संपर्क किया और वहाँ पहुँचकर उनसे पूछा, 'मित्रों, ये चारों महान तत्व कहाँ जाकर बिना किसी अवशेष के समाप्त होते हैं?'"
जब यह कहा गया, तो चारों महान राजाओं ने भिक्षु से कहा, 'हम भी नहीं जानते कि चारों महान तत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं। लेकिन तैंतीस देवता हैं जो हमसे कहीं अधिक उच्च और महान हैं। उन्हें अवश्य ही पता होगा...'
इसलिए भिक्षु तैंतीस देवताओं के पास पहुंचा और वहां पहुंचकर उनसे पूछा, 'मित्रों, ये चार महान तत्व... बिना किसी अवशेष के कहां समाप्त होते हैं?'
जब यह कहा गया, तो तैंतीस देवताओं ने भिक्षु से कहा, 'हम भी नहीं जानते कि चारों महान तत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के। लेकिन देवताओं के स्वामी सक्का हैं, जो हमसे कहीं अधिक उच्च और महान हैं। उन्हें अवश्य ही पता होना चाहिए...'
"तो भिक्षु देवताओं के शासक सक्का के पास पहुंचा और वहां पहुंचकर उससे पूछा, 'मित्र, ये चार महान तत्व... बिना किसी अवशेष के कहां समाप्त होते हैं?'"
जब यह कहा गया, तो देवताओं के स्वामी सक्का ने भिक्षु से कहा, 'मुझे भी नहीं पता कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं। लेकिन यम देवता हैं जो मुझसे कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान हैं। उन्हें अवश्य पता होगा...'
यम देवताओं ने कहा, 'हमें भी नहीं पता... लेकिन सुयामा नाम का एक देवता है... उसे पता होना चाहिए...'
सुयामा ने कहा, 'मुझे भी नहीं पता... लेकिन संतुसिता नाम का एक देवता है... उसे पता होना चाहिए...'
"संतुशिता ने कहा, 'मुझे भी नहीं पता... लेकिन निम्मनारति देवता हैं... उन्हें पता होना चाहिए...'..."
"निमनारती देवताओं ने कहा, 'हमें भी नहीं पता... लेकिन सुनिमिता नाम का एक देवता है... उसे पता होना चाहिए...'..."
"सुनिमित्त ने कहा, 'मुझे भी नहीं पता... लेकिन परानिमित्तवासवत्ती देवता हैं... उन्हें तो पता होना चाहिए...'..."
"परनिम्मितवासवत्ती देवताओं ने कहा, 'हमें भी नहीं पता... लेकिन परनिम्मित वासवत्ती नाम के एक देवता हैं... उन्हें पता होना चाहिए...'..."
"तो भिक्षु वासवत्ती देवता के पास पहुंचा और वहां पहुंचकर उनसे पूछा, 'मित्र, ये चार महान तत्व... बिना किसी अवशेष के कहां समाप्त होते हैं?'"
जब यह कहा गया, तो वासवत्ती देवता ने भिक्षु से कहा, 'मुझे भी नहीं पता कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के। लेकिन ब्रह्मा के अनुयायी देवता मुझसे कहीं अधिक उच्च और श्रेष्ठ हैं। उन्हें अवश्य पता होगा कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं...'...
तब भिक्षु ने एकाग्रता की ऐसी अवस्था प्राप्त की कि ब्रह्मा के अनुयायियों के देवताओं तक जाने का मार्ग उनके एकाग्र मन में प्रकट हो गया। अतः वे ब्रह्मा के अनुयायियों के देवताओं के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उनसे पूछा, 'मित्रों, ये चार महान तत्व—पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु—अंत में कहाँ जाकर समाप्त होते हैं?'
जब यह कहा गया, तो ब्रह्मा के अनुयायियों के देवताओं ने भिक्षु से कहा, 'हम भी नहीं जानते कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के। लेकिन ब्रह्मा हैं, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, संभगवान स्वामी, सृष्टिकर्ता,

सृजनकर्ता, प्रधान, नियुक्तकर्ता और शासक, जो सभी के पिता हैं जो रहे हंह और जो होंगे। वे हमसे कहीं अधिक उच्च और श्रेष्ठ हैं। उन्हें ही पता होना चाहिए कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं... बिना किसी अवशेष के।'

"'लेकिन मित्रों, महान ब्रह्मा अब कहाँ हैं?'"

"'भिक्षु, हम भी नहीं जानते कि ब्रह्मा कहाँ हैं या किस रूप में हैं। लेकिन जब संकेत प्रकट होते हैं, प्रकाश चमकता है और एक तेज दिखाई देता है, तब ब्रह्मा प्रकट होंगे। क्योंकि ये ब्रह्मा के प्रकट होने के संकेत हैं: प्रकाश चमकता है और एक तेज दिखाई देता है।'"

फिर कुछ ही समय बाद ब्रह्मा प्रकट हुए।

"तो भिक्षु ने महान ब्रह्मा के पास जाकर कहा, 'मित्र, ये चार महान तत्व - पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु - कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त होते हैं?'"

जब यह कहा गया, तो महान ब्रह्मा ने भिक्षु से कहा, 'मैं, भिक्षु, ब्रह्मा हूँ, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, संभगवान स्वामी, निर्माता, सृजनकर्ता, प्रधान, नियुक्तकर्ता और शासक, जो कुछ भी रहा है और जो कुछ भी होगा, उसका पिता।'

दूसरी बार, भिक्षु ने महान ब्रह्मा से कहा, 'मित्र, मैंने आपसे यह नहीं पूछा कि आप ब्रह्मा हैं, महान ब्रह्मा हैं, विजेता हैं, अजेय हैं, सर्वदर्शी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, संभगवान स्वामी हैं, सृष्टिकर्ता हैं, निर्माता हैं, प्रधान हैं, नियुक्तकर्ता और शासक हैं, समस्त सृष्टि के पिता हैं। मैंने आपसे यह पूछा कि ये चार महान तत्व - पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु - कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त होते हैं।'

"दूसरी बार, महान ब्रह्मा ने भिक्षु से कहा, 'मैं, भिक्षु, ब्रह्मा हूँ, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, संभगवान स्वामी, निर्माता, सृजनकर्ता, प्रधान, नियुक्तकर्ता और शासक, जो कुछ भी रहा है और जो कुछ भी होगा, उसका पिता हूँ।'

"तीसरी बार, भिक्षु ने महान ब्रह्मा से कहा, 'मित्र, मैंने आपसे यह नहीं पूछा कि आप ब्रह्मा हैं, महान ब्रह्मा हैं, विजेता हैं, अजेय हैं, सर्वदर्शी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, संभगवान स्वामी हैं, निर्माता हैं, सृजनकर्ता हैं, प्रमुख हैं, नियुक्तकर्ता और शासक हैं, जो सभी के पिता हैं जो रहे हैं और जो होंगे। मैंने आपसे पूछा कि ये चार महान तत्व - पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु - कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त होते हैं।"

तब ब्रह्मा ने भिक्षु का हाथ पकड़कर उसे एक तरफ ले जाते हुए उससे कहा, "ब्रह्मा के अनुयायियों के ये देवता मानते हैं, 'ब्रह्मा को सब कुछ ज्ञात है। ब्रह्मा को सब कुछ दिखाई देता है। ब्रह्मा अनभिज्ञ हैं। ब्रह्मा ने सब कुछ जान लिया है।' इसीलिए मैंने उनके सामने यह नहीं कहा कि मुझे भी नहीं पता कि चारों महातत्व कहाँ जाकर समाप्त होते हैं। अतः तुमने इस प्रश्न का उत्तर कहीं और खोज कर भगवान ब्रह्मा को अनदेखा करके गलत कार्य किया है। सीधे भगवान ब्रह्मा के पास लौट जाओ और वहाँ पहुँचकर उनसे यह प्रश्न पूछो। उनका उत्तर चाहे जो भी हो, उसे तुम दिल से ग्रहण करो।"

फिर—जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को मोड़ता है—वैसे ही भिक्षु ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और तुरंत मेरे सामने प्रकट हुए। मुझे प्रणाम करके वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने मुझसे कहा, 'हे भगवान, ये चार महान तत्व—पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु—अंत में कहाँ जाकर समाप्त होते हैं?'

यह सुनकर मैंने उनसे कहा, 'एक बार, भिक्षु, कुछ समुद्री व्यापारी तट-दर्शन पक्षी लेकर अपने जहाज में सवार होकर रवाना हुए। जब उन्हें तट दिखाई नहीं दिया, तो उन्होंने उस पक्षी को छोड़ दिया। वह पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, सीधे ऊपर और सभी मध्य दिशाओं में उड़ गया। यदि उसे किसी भी दिशा में तट दिखाई दिया, तो वह वहाँ उड़ गया। यदि उसे किसी भी दिशा में तट दिखाई नहीं दिया, तो वह वापस जहाज पर लौट आया। उसी प्रकार, भिक्षु, अपने प्रश्न का उत्तर खोजते हुए ब्रह्मलोक तक जाकर, आप सीधे मेरे समक्ष आ गए हैं।'

"'आपका प्रश्न इस प्रकार नहीं होना चाहिए: ये चार महान तत्व - पृथ्वी गुण, द्रव गुण, अग्नि गुण और वायु गुण - कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त होते हैं? इसके बजाय, इसे इस प्रकार होना चाहिए:

"पानी, धरती, आग और हवा का कोई आधार कहाँ नहीं है?"

"लंबाई और छोटी, खुरदरी और महीन, सुंदर और बदसूरत, मन और रूप का अंत कहाँ होता है?"

और इसका उत्तर यह है:

निर्वाण/मोक्ष अवस्था

"बिना किसी विशेषता के, बिना किसी अंत के, चारों ओर प्रकाशमान चेतना (अर्थात् अवर्णनीय गुणों से रहित अनंत रूप से प्रज्वलित दिव्य चेतना):

यहां जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु का कोई आधार नहीं है (चार तत्व/धातु; अर्थात् तरलता, गुरुत्वाकर्षण, ऊष्मा और गैसीय गुण मौजूद नहीं हैं)।

यहां लंबा-छोटा, मोटा-पतला, सुंदर-बुरा, मन-रूप सब समाप्त हो जाते हैं। (अर्थात् यह सर्वत्र व्याप्त है, इसका कोई रूप नहीं है और न ही कोई विचार-मंथन है।)

शरीर-चेतना की गतिविधि के समाप्त होने के साथ ही प्रत्येक का अंत हो जाता है (स्थिरता)।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे गृहस्थ केवट्टा को भगवान बुद्ध के वचन बहुत प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.12: लोहिका सुत्त (डीएन 12)

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2बाधाओं को त्यागना
3चार ध्यान
4अंतर्दृष्टि ज्ञान
5मन द्वारा निर्मित शरीर
6अलौकिक शक्तियाँ
7क्लेयरऑडियंस
8जानो, मन में क्या चल रहा है
9बीते जन्मों की यादें
10प्राणियों का देहांत और पुन: प्रकट होना
11मानसिक उथल-पुथल का अंत

सेटिंग

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कोसल पर्वतमाला में लगभग 500 भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भ्रमण कर रहे थे और सलवाटिका पहुँचे। उस समय ब्राह्मण लोहिच्च सलवाटिका पर सामंती अधिकार के साथ शासन कर रहे थे - राजा पसेनदी कोसल द्वारा प्रदत्त एक शाही अनुदान के माध्यम से सलवाटिका की संपत्ति, घास, लकड़ी और अनाज पर उनका अधिकार था। उस समय उनके मन में एक बुरा विचार आया: "मान लीजिए कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति किसी कुशल सिद्धांत पर पहुँच जाए। कुशल सिद्धांत प्राप्त करने के बाद, उसे किसी और को नहीं बताना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बना ले। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा, लालची काम है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है?"

तब लोहिच्च ने सुना, "शाक्यों वंश के पुत्र, चिंतनशील गौतम, शाक्यों वंश से निकलकर लगभग 500 भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए सलावतिका पहुँचे हैं। और उस गुरु गौतम के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली है: 'वे वास्तव में एक धन्य, योग्य, और सही मायने में आत्म-जागृत, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुगठित, ब्रह्मांड के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मानव और दिव्य प्राणियों के गुरु, जागृत, धन्य हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा इस संसार को इसके देवों, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसकी पीढ़ियों को उनके चिंतनशील और पुरोहितों सहित, उनके शासकों और आम लोगों सहित ज्ञात कराया है; उन्होंने आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय धम्म की व्याख्या की है; उन्होंने पवित्र जीवन की बारीकियों और उसके परिणामों दोनों का विस्तार से वर्णन किया है। सार, पूर्णतः परिपूर्ण, अत्यंत शुद्ध। ऐसे योग्य व्यक्ति को देखना सुखद है।

तब लोहिच्च ने नाई रोसिका से कहा: "आओ, प्रिय रोसिका। ध्यानमग्न गौतम के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर उनसे पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। उनसे कहना, 'ब्राह्मण लोहिच्च, गुरु गौतम, आपसे पूछते हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' और फिर कहना, 'कृपा करके गुरु गौतम, भिक्षुओं के समुदाय सहित, कल ब्राह्मण लोहिच्च के साथ भोजन करने के लिए सहमत हों।'"

ब्राह्मण लोहिच्चा को "जैसा आप कहें, महाराज" कहकर उत्तर देते हुए, नाई रोसिका भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, ब्राह्मण लोहिच्चा पूछ रहे हैं कि क्या भगवान बुद्ध रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। और वे कहते हैं, 'भगवान बुद्ध, भिक्षुओं के समुदाय सहित, कल ब्राह्मण लोहिच्चा के साथ भोजन करने के लिए सहमत हों।'" भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दे दी।

तब नाई रोसिका ने भगवान की सहमति समझकर अपने आसन से उठकर भगवान को प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनकी परिक्रमा की और ब्राह्मण लोहिच्च के पास लौट आया। वहाँ पहुँचकर उसने लोहिच्च से कहा, "मैंने भगवान को आपके वचन सुना दिए हैं, [कि] 'हे भगवान, ब्राह्मण लोहिच्च ने पूछा है कि क्या भगवान रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' और उन्होंने कहा, 'भगवान, भिक्षुओं के समुदाय सहित, कल ब्राह्मण लोहिच्च के साथ भोजन करने के लिए सहमत हों।' और भगवान सहमत हो गए हैं।"

फिर, जैसे ही रात ढलने लगी, ब्राह्मण लोहिच्च ने अपने घर में उत्तम प्रकार के मुख्य और गैर-मुख्य भोजन तैयार करवाए और फिर नाई रोसिका से कहा, "आओ, प्रिय रोसिका। ध्यानमग्न गौतम के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर समय की सूचना दो, [कहते हुए], 'हे गुरु गौतम, समय हो गया है। भोजन तैयार है।'"

ब्राह्मण लोहिक्का को "जैसा आप कहें, महाराज" कहकर उत्तर देते हुए नाई रोसिका भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। वहाँ खड़े-खड़े उसने समय की घोषणा करते हुए कहा, "हे भगवान, समय हो गया है। भोजन तैयार है।"

फिर भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लेकर भिक्षुओं के एक समुदाय के साथ सालावटिका की ओर प्रस्थान किया। इस बीच, नाई रोसिका भगवान बुद्ध के ठीक पीछे चल रहा था और उसने उनसे कहा, "हे भगवान,

ब्राह्मण लोहिच्च के मन में एक कुटिल विचार उत्पन्न हो गया है: ‘मान लीजिए कि कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति किसी निपुण सिद्धांत पर पहुँच जाए। निपुण सिद्धांत प्राप्त करने के बाद, उसे किसी और को नहीं बताना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बना दे। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा और लोभपूर्ण कार्य है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है?’ यदि भगवान बुद्ध ब्राह्मण लोहिच्च को इस कुटिल विचार से मुक्त कर दें तो यह अच्छा होगा।”

"शायद ऐसा ही होगा, रोसिका। शायद ऐसा ही होगा।"

फिर भगवान बुद्ध ब्राह्मण लोहिच्च के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। ब्राह्मण लोहिच्च ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के समुदाय को उत्तम भोजन परोसा और सभी प्रकार के पौष्टिक व्यंजन परोसे। जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और कटोरे से हाथ हटा लिया, तो ब्राह्मण लोहिच्च एक नीचा आसन लेकर एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “लोहिच्च, क्या यह सच है कि तुम्हारे मन में यह बुरा विचार आया है: ‘मान लो कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति किसी निपुण सिद्धांत पर पहुँच जाए। निपुण सिद्धांत प्राप्त करने के बाद, उसे किसी और को नहीं बताना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बना ले। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा और लालच भरा काम है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है?’”

"जी हां, गुरु गौतम।"

"लोहिक्का, तुम क्या सोचते हो? क्या तुम सलावतिका पर राज नहीं करते?"

"जी हां, गुरु गौतम।"

"अब मान लीजिए कोई कहे, 'सलावतिका पर ब्राह्मण लोहिच्च का राज है। सलावतिका के फल और राजस्व का उपभोग केवल वही करे, न कि दूसरों के साथ साझा करे।' क्या इस तरह बोलने वाला व्यक्ति आपकी प्रजा के लिए बाधा उत्पन्न करने वाला होगा, या नहीं?"

"वह बाधाओं का निर्माता होगा, गुरु गौतम।"

और, बाधाओं का निर्माता होने के नाते, क्या वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेगा या नहीं?

"हे गौतम गुरु, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाएगा।"

और जो व्यक्ति उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं रखता, क्या उसका मन उनके प्रति सद्भावना से भरा होगा या शत्रुता से?

"शत्रुता में, गुरु गौतम।"

"जब मन में द्वेष की भावना प्रबल हो जाती है, तो क्या कोई दृष्टिकोण गलत होता है या सही?"

"गलत विचार, गुरु गौतम।"

"अब, लोहिक्का, जो गलत मत रखता है, मैं तुमसे कहता हूँ, उसके लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ।"

"लोहिक्का, तुम्हारा क्या विचार है? क्या राजा पसेनादि कोसला काशी और कोसला पर शासन नहीं करते?"

"जी हां, गुरु गौतम।"

"अब मान लीजिए कोई कहे, 'काशी और कोसला पर राजा पसेनादि कोसला का राज है। काशी और कोसला के फल और राजस्व का उपभोग केवल उन्हें ही करना चाहिए, न कि दूसरों के साथ साझा करना चाहिए।' क्या इस तरह बोलने वाला व्यक्ति राजा पसेनादि की प्रजा - आप और अन्य - के लिए बाधाएँ उत्पन्न करने वाला होगा या नहीं?"

"वह बाधाओं का निर्माता होगा, गुरु गौतम।"

और, बाधाओं का निर्माता होने के नाते, क्या वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेगा या नहीं?

"हे गौतम गुरु, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाएगा।"

और जो व्यक्ति उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं रखता, क्या उसका मन उनके प्रति सद्भावना से भरा होगा या शत्रुता से?

"शत्रुता में, गुरु गौतम।"

"जब मन में द्वेष की भावना प्रबल हो जाती है, तो क्या कोई दृष्टिकोण गलत होता है या सही?"

"गलत विचार, गुरु गौतम।"

"अब, लोहिक्का, जो गलत मत रखता है, मैं तुमसे कहता हूँ, उसके लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ।"

"तो फिर, लोहिच्चा, यदि कोई कहे, 'ब्राह्मण लोहिच्चा सलावतिका पर राज करता है। सलावतिका के फल और राजस्व का उपभोग केवल वही करे, और उन्हें दूसरों के साथ साझा न करे,' तो ऐसा कहने वाला व्यक्ति आपकी प्रजा के लिए बाधाएँ उत्पन्न करेगा। बाधाएँ उत्पन्न करने वाला होने के कारण, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूतिहीन होगा। उनके कल्याण के प्रति सहानुभूतिहीन व्यक्ति के मन में उनके प्रति द्वेष स्थापित हो जाएगा। जब मन द्वेष से ग्रस्त हो जाता है, तो गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। मैं तुमसे कहता हूँ, गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ। इसी प्रकार, यदि कोई कहे, 'मान लीजिए कि एक पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति किसी निपुण सिद्धांत पर पहुँच जाए। निपुण सिद्धांत पर पहुँचने के बाद, उसे किसी और को नहीं बताना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बना ले। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुराई है, एक लालच है..." 'कर्म, भला एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है?' - इस प्रकार बोलने वाला व्यक्ति उन अच्छे परिवार के बच्चों के लिए बाधा उत्पन्न करेगा जो तथागत द्वारा प्रकट किए गए सिद्धांत और अनुशासन को अपनाकर

उस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त करते हैं जहाँ वे जलप्रवेश, एक बार लौटकर आने का फल, अनाप-प्रवेश का फल और अर्हंतत्व का फल प्राप्त करते हैं; और उन लोगों के लिए भी जो देव अवस्था प्राप्त करने के लिए देव गर्भ को परिपक्व करते हैं। बाधा उत्पन्न करने वाला होने के कारण, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं रखेगा। उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति न रखने वाले व्यक्ति का मन उनके प्रति द्वेष से भर जाएगा। जब मन द्वेष से भर जाता है, तो गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, मैं तुमसे कहता हूँ, दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ।

और यदि कोई कहे, 'काशी और कोसल पर राजा पसेनादि कोसल का राज है। काशी और कोसल के फल और राजस्व का उपभोग केवल वही करे, और दूसरों के साथ साझा न करे,' तो ऐसा कहने वाला राजा पसेनादि की प्रजा—आप और अन्य—के लिए बाधा उत्पन्न करने वाला होगा। बाधा उत्पन्न करने वाला होने के कारण, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूतिहीन होगा। उनके कल्याण के प्रति सहानुभूतिहीन व्यक्ति के मन में उनके प्रति द्वेष स्थापित हो जाएगा। जब मन में द्वेष स्थापित हो जाता है, तो गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, मैं तुमसे कहता हूँ, दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ। इसी प्रकार, यदि कोई कहे, 'मान लीजिए कि एक पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति किसी कुशल सिद्धांत पर पहुँच जाए। कुशल सिद्धांत पर पहुँचने के बाद, उसे किसी और को नहीं बताना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह ठीक वैसा ही होगा जैसे किसी पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बनाना। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना...' 'यह एक बुरा, लालच भरा कर्म है, भला एक व्यक्ति दूसरे का भला क्या कर सकता है?' - इस प्रकार बोलने वाला व्यक्ति उन अच्छे परिवार के बच्चों के लिए बाधा उत्पन्न करेगा जो तथागत द्वारा प्रकट किए गए सिद्धांत और अनुशासन को अपनाकर उस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त करते हैं जहाँ वे जलप्रवेश, एक बार लौटकर आने का फल, अनाप-प्रवेश का फल और अर्हंतत्व का फल प्राप्त करते हैं; और उन लोगों के लिए भी जो देव अवस्था प्राप्त करने के लिए देव गर्भ को परिपक्व करते हैं। बाधा उत्पन्न करने वाला होने के कारण, वह उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं रखेगा। जो उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति नहीं रखता, उसका मन उनके प्रति द्वेष से भर जाता है। जब मन द्वेष से भर जाता है, तो गलत दृष्टि उत्पन्न होती है। गलत दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, मैं तुमसे कहता हूँ, दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशु गर्भ।

लोहिक्का, संसार में तीन प्रकार के शिक्षक हैं जिनकी आलोचना करना उचित है, और जब कोई इन प्रकार के शिक्षकों की आलोचना करता है, तो वह आलोचना सत्य, तथ्यात्मक, न्यायसंगत और निंदनीय होती है। वे तीन कौन से हैं?

एक ऐसा मामला है जहाँ एक शिक्षक चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाए हैं जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाता है। चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने के कारण वे अपने शिष्यों को यह शिक्षा देते हैं, 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है। यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं, न ही ज्ञान प्राप्त करने का इरादा रखते हैं। वे शिक्षक के निर्देशों से भटककर अभ्यास करते हैं। उनकी आलोचना इस प्रकार की जानी चाहिए, 'हे पूज्यवर, आपने चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाता है। चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने के कारण आप अपने शिष्यों को यह शिक्षा देते हैं, 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है।' यह तुम्हारी खुशी के लिए है। तुम्हारे शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं, न ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, और गुरु के निर्देशों से भटककर अभ्यास करते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पुरुष किसी स्त्री का पीछा करे जो उससे दूर भागती है, या किसी स्त्री को गले लगाए जो उससे मुंह मोड़ लेती है। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा, लालच भरा काम है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह संसार का पहला ऐसा गुरु है जो आलोचना के योग्य है, और जब कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करता है, तो वह आलोचना सत्य, तथ्यात्मक, न्यायसंगत और निर्दोष होती है।

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक शिक्षक चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाया है जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाता है। चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने के कारण वह अपने शिष्यों को सिखाता है, 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है। यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उसके शिष्य सुनते हैं, ध्यान से सुनते हैं, ज्ञान प्राप्त करने का इरादा रखते हैं और शिक्षक के निर्देशों से विचलित हुए बिना अभ्यास करते हैं। उसकी आलोचना इस प्रकार की जानी चाहिए, 'हे पूज्यवर, आपने चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाता है। चिंतनशील जीवन के उस लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने के कारण आप अपने शिष्यों को सिखाते हैं, 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है।' यह तुम्हारी खुशी के लिए है। तुम्हारे शिष्य सुनो, ध्यान से सुनो, ज्ञान प्राप्त करने का इरादा रखो और गुरु के निर्देशों से विचलित हुए बिना अभ्यास करो। यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति अपने खेत की उपेक्षा करते हुए दूसरे के खेत में निराई-गुड़ाई करने की कल्पना करे। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा, लालच भरा काम है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह संसार में आलोचना के योग्य दूसरा गुरु है, और जब कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करता है, तो वह आलोचना सत्य, तथ्यात्मक, न्यायसंगत और निर्दोष होती है।

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक शिक्षक ने चिंतनशील जीवन का वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है। चिंतनशील जीवन का वह लक्ष्य प्राप्त करने के बाद, वह अपने शिष्यों को सिखाता है, 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है। यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उसके शिष्य उसकी बात नहीं सुनते, ध्यान नहीं देते, ज्ञान प्राप्त करने का कोई इरादा नहीं रखते। वे शिक्षक के निर्देशों से भटककर अभ्यास करते हैं। उसकी आलोचना इस प्रकार की जानी चाहिए, 'हे पूज्यवर, आपने चिंतनशील जीवन का वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए व्यक्ति गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है।

चिंतनशील जीवन का वह लक्ष्य प्राप्त करने के बाद, आप अपने शिष्यों को सिखाते हैं, "यह तुम्हारे कल्याण के लिए है।" यह तुम्हारी खुशी के लिए है। तुम्हारे शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं, न ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, और गुरु के निर्देशों से भटककर अभ्यास करते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई पुराने बंधन को तोड़कर नया बंधन बना रहा हो। मैं कहता हूँ कि ऐसा करना एक बुरा, लालच भरा काम है, क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे के लिए क्या कर सकता है? यह संसार में आलोचना के योग्य तीसरा गुरु है, और जब कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करता है, तो वह आलोचना सच्ची, तथ्यात्मक, न्यायसंगत और निंदनीय होती है।

यह सुनकर ब्राह्मण लोहिच्च ने भगवान बुद्ध से कहा, "परन्तु हे गौतम गुरु, क्या संसार में कोई ऐसा गुरु है जो आलोचना के योग्य न हो?"

"लोहिका, दुनिया में एक ऐसा शिक्षक भी है जो आलोचना के योग्य नहीं है।"

लेकिन हे गुरु गौतम, संसार में ऐसा कौन सा गुरु है जो आलोचना के योग्य नहीं है?

"लोहिच्चा, ऐसा मामला है जिसमें तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी और धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन खुले आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, पॉलिश किए हुए शंख के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

"जब वह इस प्रकार प्रस्थान कर लेता है, तो वह मठवासी नियमों से बंधे हुए जीवन व्यतीत करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। अपने सद्गुणों में परिपूर्ण, वह अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, सचेत और सतर्क रहता है, और संतुष्ट रहता है..."

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस श्रेष्ठ समूह, इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम, इस श्रेष्ठ जागरूकता और सजगता तथा इस श्रेष्ठ संतोष से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, किसी वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वह बैठ जाता है, पैर मोड़कर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है और अपनी जागरूकता को एकाग्र करता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति ऋण लेकर उसे अपने व्यवसाय में निवेश करता है। उसका व्यवसाय सफल होता है। वह अपने पुराने ऋण चुका देता है और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ऋण लेने से पहले मैंने इसे अपने व्यवसाय में निवेश किया था। अब मेरा व्यवसाय सफल हो गया है। मैंने अपने पुराने ऋण चुका दिए हैं और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच गया है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति बीमार पड़ जाता है - उसे बहुत दर्द होता है और वह गंभीर रूप से अस्वस्थ है। उसे भोजन करने में आनंद नहीं आता और उसके शरीर में कोई शक्ति नहीं है। समय बीतने के साथ, वह धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। अब वह भोजन का आनंद लेता है और उसके शरीर में शक्ति आ जाती है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं बीमार था... अब मैं उस बीमारी से ठीक हो गया हूँ। मैं भोजन का आनंद लेता हूँ और मेरे शरीर में शक्ति है।' इसी कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति जेल में बंद है। समय बीतने के साथ, अंततः वह उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं जेल में बंद था। अब मैं उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से, बिना किसी संपत्ति के नुकसान के रिहा हो गया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति गुलाम है, दूसरों के अधीन है, स्वयं के अधीन नहीं, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में असमर्थ है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस गुलामी से मुक्त हो जाता है, स्वयं के अधीन हो जाता है, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो जाता है, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं गुलाम था... अब मैं उस गुलामी से मुक्त हो गया हूँ,

स्वयं के अधीन हूँ, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हूँ, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।' इसी कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"
अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा है। समय बीतने के साथ, वह अंततः उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा था। अब मैं उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आया हूँ।' इस कारण उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।
"इसी प्रकार, जब भिक्षु अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग नहीं करता, तो वह उन्हें ऋण, रोग, कारावास, दासता, वीरान देश का मार्ग समझता है। परन्तु जब वह अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग कर लेता है, तो वह उन्हें ऋणमुक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, कारावास से मुक्ति, स्वतंत्रता, सुरक्षा का स्थान समझता है। अपने भीतर इनका त्याग देखकर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर वह समाधि में लीन हो जाता है। समाधि में उसका शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर वह सुख के प्रति संवेदनशील हो जाता है। सुख का अनुभव करने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है।"

चार ध्यान
"इंद्रिय सुख से पूर्णतः विरक्त, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। वह इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है, भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका स्नान पाउडर का गोला - संतृप्त, नमी से भरा, भीतर और बाहर से व्याप्त - फिर भी न टपके; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अप्रभावित नहीं रहता। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिच्चा, वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं है, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अधार्मिक होगी, और निंदनीय।
इसके अतिरिक्त, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में समा जाता है, उसे ठंडे जल से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे जल से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, वह एक ऐसा शिक्षक है जो संसार में आलोचना के योग्य नहीं है, और यदि कोई इस प्रकार के शिक्षक की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।
और इसके अलावा, जैसे-जैसे आनंद की अनुभूति कम होती जाती है, वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजनों ने कहा है, 'समभाव में और सचेत रहते हुए, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो जल में ही जन्म लेते और बढ़ते हैं, जल में ही डूबे रहते हैं और जल से बाहर नहीं निकलते, जिससे वे जड़ से लेकर शीर्ष तक शीतल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग शीतल जल से अछूता नहीं रह सकता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग परमानंद से रहित आनंद से अछूता नहीं रह सकता। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान उपलब्धि प्राप्त कर लेता है, लोहिच्चा, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।
और इसके अलावा, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो, ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिच्चा, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

अंतर्दृष्टि ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहीं बंधी हुई है।' मान लीजिए कि शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है—आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण, और उसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा हो—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे अपने हाथ में लेकर इस प्रकार विचार करे: 'यह शुद्धतम जल से बना एक सुंदर बेरिल रत्न है, आठ फलकों वाला, उत्तम रूप से पॉलिश किया हुआ, साफ, निर्मल, हर रूप से परिपूर्ण। और इसके बीच से एक नीला, पीला, लाल, सफेद या भूरा धागा गुजर रहा है।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु उसे ज्ञान और दृष्टि की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह समझता है: 'मेरा यह शरीर रूप से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है। और मेरी यह चेतना यहाँ टिकी हुई है और यहाँ बंधी हुई है।' जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

मन द्वारा निर्मित शरीर

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने मन को एक मन-निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक अन्य शरीर की रचना करता है, जो रूप से परिपूर्ण, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता। जैसे कोई व्यक्ति म्यान से सरकंडा निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह म्यान है, यह सरकंडा है। म्यान एक चीज है, सरकंडा दूसरी, लेकिन सरकंडा म्यान से निकल गया है।' या जैसे कोई व्यक्ति म्यान से तलवार निकालता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार एक चीज है, म्यान दूसरी, लेकिन तलवार म्यान से निकल गई है।'" या यूं कहें कि कोई व्यक्ति सांप को उसके केंचुली से बाहर निकाल रहा हो। उसके मन में यह विचार आएगा: 'यह सांप है, यह केंचुली है। सांप एक चीज है, केंचुली दूसरी, लेकिन सांप को केंचुली से बाहर निकाल लिया गया है।' ठीक इसी प्रकार, जब भिक्षु का मन एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित हो जाता है, तो वह उसे मन से निर्मित शरीर की रचना की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। इस शरीर से वह एक और शरीर बनाता है, जो रूप से परिपूर्ण, मन से निर्मित, अपने सभी अंगों में पूर्ण और अपनी क्षमताओं में किसी से कम नहीं होता। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

अलौकिक शक्तियाँ

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह अनेक अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों को ऐसे पार कर जाता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक प्रभाव डालता है। जैसे एक कुशल कुम्हार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार मिट्टी से अपनी पसंद का कोई भी बर्तन बना सकता है, या जैसे एक कुशल हाथीदांत तराशने वाला या उसका सहायक अपनी पसंद की मिट्टी से किसी भी प्रकार का बर्तन बना सकता है। अच्छी तरह से तैयार हाथीदांत से वह अपनी पसंद का कोई भी हाथीदांत का काम कर सकता है, या जैसे एक कुशल सुनार या उसका सहायक अच्छी तरह से तैयार सोने से अपनी पसंद की कोई भी सोने की वस्तु बना सकता है; उसी प्रकार — अपने इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से — भिक्षु इसे अलौकिक शक्तियों के गुणों की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है... वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिच्चा, वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

क्लेयरऑडियंस

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह इसे दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और प्रवृत्त करता है। वह - शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे - दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट हों या दूर। ठीक वैसे ही जैसे यदि कोई व्यक्ति राजमार्ग पर यात्रा कर रहा हो और उसे ढोल, छोटे ढोल, शंख, झांझ और टॉम-टॉम की ध्वनियाँ सुनाई दें, तो वह जान जाएगा, 'यह ढोल की ध्वनि है, यह छोटे ढोल की ध्वनि है, यह शंख की ध्वनि है, यह झांझ की

ध्वनि है और यह टॉम-टॉम की ध्वनि है।'" इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को दिव्य श्रवण शक्ति की ओर निर्देशित और उन्मुख करता है। वह शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे दिव्य श्रवण शक्ति के माध्यम से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे निकट की हों या दूर की। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

जानो, मन में क्या चल रहा है

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और सामान्य मन को सामान्य मन के रूप में पहचानता है। अद्वितीय मन को अद्वितीय मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन और असंलग्न मन को असंलग्न मन के रूप में पहचानता है। जैसे कोई युवती या पुरुष, जो आभूषणों का शौकीन हो, किसी चमकदार दर्पण या स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखकर यह जान ले कि वह 'दोषपूर्ण' है या 'दोषरहित' है। उसी प्रकार, अपने इस एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से, भिक्षु अन्य प्राणियों की चेतना के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है। वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को अपनी चेतना से समाहित करके जानता है। वह जुनून से भरे मन को जुनून से भरे मन के रूप में और बिना जुनून वाले मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है... मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और असंलग्न मन को बिना जुनून वाले मन के रूप में पहचानता है। अविभाजित मन एक अविभाजित मन के समान है। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान उपलब्धि प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

बीते जन्मों की यादें

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों (यानी पूर्व जन्मों) के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग। वह स्मरण करता है, 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ।' उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। जीवन। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः जन्म लिया।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद करता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने गाँव से दूसरे गाँव जाए, फिर उस गाँव से किसी और गाँव जाए, और फिर उस गाँव से वापस अपने गाँव आ जाए। उसके मन में यह विचार आएगा, 'मैं अपने गाँव से उस गाँव गया। वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं उस गाँव गया, और वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बोला और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं वापस घर आ गया।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने पिछले जन्मों के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है। जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान उपलब्धि प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

प्राणियों का देहांत और पुन: प्रकट होना

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने के साथ, अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। लेकिन

ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। जैसे कि किसी शहर के केंद्रीय चौक में एक ऊँची इमारत हो, और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसके ऊपर खड़ा होकर लोगों को घर में प्रवेश करते, घर से बाहर निकलते, सड़क पर चलते और केंद्रीय चौक में बैठते हुए देखे। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ये लोग घर में प्रवेश कर रहे हैं, घर से बाहर निकल रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं और केंद्रीय चौक में बैठ रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह—शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—प्राणित और पुनर्जन्मित प्राणियों को देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है... जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान विशिष्टता प्राप्त कर लेता है, लोहिच्चा, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

मानसिक उथल-पुथल का अंत

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-वासना, कर्म-वासना और अज्ञान-वासना से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' होने का ज्ञान प्राप्त होता है। वह समझ पाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' जैसे कि किसी पहाड़ी घाटी में पानी का एक तालाब हो—साफ़, निर्मल और बेदाग—जहाँ किनारे पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़ और छोटे पत्थर देख सके, और साथ ही मछलियों के झुंड तैरते और आराम करते हुए देख सके, और उसके मन में यह विचार आए, 'यह तालाब साफ़, निर्मल और निर्मल है। यहाँ ये सीपियाँ, कंकड़ और छोटे पत्थर हैं, और साथ ही मछलियों के ये झुंड तैरते और आराम करते हुए हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझ लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' जब किसी गुरु का शिष्य इस प्रकार की महान उपलब्धि प्राप्त कर लेता है, लोहिक्का, तो वह गुरु संसार में आलोचना के योग्य नहीं होता, और यदि कोई इस प्रकार के गुरु की आलोचना करे, तो वह आलोचना झूठी, असत्य, अन्यायपूर्ण और निंदनीय होगी।

यह सुनकर ब्राह्मण लोहिच्च ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गुरु गौतम, ऐसा लगता है जैसे किसी व्यक्ति ने नरक के गड्ढे में गिरते हुए दूसरे व्यक्ति को उसके बाल पकड़कर ऊपर खींच लिया हो और उसे स्थिर कर दिया हो। ठीक उसी प्रकार, गुरु गौतम ने मुझे नरक के गड्ढे में गिरते समय ऊपर खींच लिया और स्थिर कर दिया। हे गुरु गौतम, आप महान हैं! आप महान हैं! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखा दे, ठीक उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने उनकी शरण ली है।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> सिलकखंड-वग्गा >> 1.13: तेविज्जा सुत्त (डीएन 13)

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार जब भगवान अपने लगभग पाँच सौ भाइयों के साथ कोसल से होकर यात्रा कर रहे थे, तब वे कोसल के एक ब्राह्मण गाँव, मानसकण में पहुँचे। वहाँ मानसकण में, भगवान मानसकण के उत्तर में अचिरवता नदी के किनारे स्थित आम के बाग में ठहरे।

2. उस समय बहुत से प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण मानसकण में ठहरे हुए थे; जैसे कैका ब्राह्मण, तारुक्खा ब्राह्मण, पोक्खरसादी ब्राह्मण, जौसूणी ब्राह्मण, तोदेय्या ब्राह्मण और अन्य बहुत से प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण।

3. अब वासेंझ और भारद्वाज के बीच (स्नान के बाद) टहलते हुए और विचारमग्न होकर इस बात पर बातचीत छिड़ गई कि सच्चा मार्ग कौन सा है और झूठा कौन सा।

4. युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ ने इस प्रकार कहा:

'यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष की ओर ले जाने वाला प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, वह ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में पहुँच जाता है। मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्राह्मण पोक्खरसादी ने की है।'

5. युवा ब्राह्मण भारद्वाज ने इस प्रकार कहा:

'यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष की ओर ले जाने वाला प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, उसे ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में ले जाता है। मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्रह्म तारुक्ख ने की है।'

6. परन्तु न तो युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ युवा ब्राह्मण भारद्वाज को मना सका, और न ही युवा ब्राह्मण भारद्वाज युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ को मना सका।

7. तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ ने युवा ब्राह्मण भारद्वाज से कहा:

"शाक्यों वंश के पुत्र भारद्वाज, समॅ ...

हे भारद्वाज, आइए हम उस स्थान पर चलें जहाँ समाॅगौतम विराजमान हैं; और वहाँ पहुँचकर हम समाॅगौतम से इस विषय में प्रश्न करें। समाॅगौतम जो कुछ भी हमें बताएँ, उसे हम ध्यान में रखें।

'बहुत खूब, मेरे मित्र!' युवा ब्राह्मण भारद्वाज ने युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ की बात से सहमति जताते हुए कहा।

8. तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ और युवा ब्राह्मण भारद्वाज उस स्थान पर गए जहाँ भगवान विराजमान थे।

और जब वे वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने परम पूज्य ईश्वर से शिष्टाचार और विनम्रता के अभिवादन और शुभकामनाओं का आदान-प्रदान किया और उनके बगल में बैठ गए।

और जब वे इस प्रकार बैठे थे, तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ह ने परमेश्वर से कहा:

गौतम जी, जब हम व्यायाम कर रहे थे और इधर-उधर टहल रहे थे, तभी हमारे बीच इस बात पर चर्चा शुरू हुई कि सच्चा मार्ग कौन सा है और झूठा कौन सा। मैंने इस प्रकार कहा:

"यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष की ओर ले जाने वाला प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, उसे ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में ले जाता है। मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्राह्मण पोक्खरसादि ने की है।"

भारद्वाज ने इस प्रकार कहा:

"यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष का प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, वह ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में पहुँच जाता है। मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्रह्म तारुक्ख ने की है।"

'इस मामले में, गौतम, हमारे बीच कलह, विवाद और मतभेद है।'

9. `तो तुम कहते हो, वासेन्हा, कि तुमने ऐसा कहा:

यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष की ओर ले जाने वाला प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है उसे ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में ले जाता है।

मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्राह्मण पोक्खरसादी ने की है।

भारद्वाज ने इस प्रकार कहा:

"यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष का प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, वह ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में पहुँच जाता है। मेरा तात्पर्य उस बात से है जिसकी घोषणा ब्रह्म तारुक्ख ने की है।"

तो फिर, हे वासेंह, तुम दोनों के बीच किस बात को लेकर कलह, विवाद या मतभेद है?

10. हे गौतम, सही और गलत मार्ग के विषय में। हे गौतम, अनेक ब्राह्मण अनेक मार्ग सिखाते हैं। अद्धरिया ब्राह्मण, तित्तिरिया ब्राह्मण, चंदोका ब्राह्मण, बावहरिजा ब्राह्मण। क्या ये सभी उद्धार के मार्ग हैं? क्या ये सभी ऐसे मार्ग हैं जो इन पर चलने वाले व्यक्ति को ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में ले जाएंगे?

'हे गौतम, जिस प्रकार किसी गाँव या कस्बे के पास अनेक और विभिन्न मार्ग होते हैं, परन्तु वे सब गाँव में आकर मिल जाते हैं, ठीक उसी प्रकार विभिन्न ब्राह्मणों द्वारा सिखाए गए अनेक मार्ग हैं - अधदरिया ब्राह्मण, तित्तिरिया ब्राह्मण, चंदोका ब्राह्मण (चंदवा ब्राह्मण), बवहरिजा ब्राह्मण। क्या ये सभी मार्ग मोक्षदायी हैं? क्या ये सभी मार्ग ऐसे हैं जो इन पर चलने वाले को ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था तक ले जाते हैं?'

11. 'क्या आप कहते हैं कि वे सभी सही राह पर चल रहे हैं, वासेन्हा?'

'मैं भी यही कहता हूं, गौतम।'

क्या आप सचमुच कहते हैं कि वे सभी सही नेतृत्व करते हैं, वासेन्हा?

तो मैं कहता हूँ, गौतम।

12.1 लेकिन फिर भी, वासेञ्ञ, क्या तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों में से एक भी ऐसा है जिसने ब्रह्मा को प्रत्यक्ष रूप से देखा हो?

नहीं, बिलकुल नहीं, गौतम।

या फिर, वासेञ्ञ, क्या ब्राह्मणों के उन शिक्षकों में से कोई एक ऐसा है जो तीनों वेदों का ज्ञाता है और जिसने ब्रह्मा को प्रत्यक्ष रूप से देखा है?

नहीं, बिलकुल नहीं, गौतम!

'क्या वासेञ्ञ, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों के शिष्यों में से कोई एक भी ऐसा है जिसने ब्रह्मा को साक्षात देखा हो?' 'नहीं, बिलकुल नहीं, गौतम!'

या फिर, वासेज्ज, क्या सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणों में से एक भी ऐसा ब्राह्मण है जिसने ब्रह्मा को प्रत्यक्ष रूप से देखा हो?

नहीं, बिलकुल नहीं, गौतम!

13. `तो फिर, वासेज्ज, वे प्राचीन ब्राह्मण ऋषि जो तीनों वेदों में पारंगत थे, श्लोकों के रचयिता, श्लोकों के उद्घोषक, जिनके प्राचीन शब्द रूप का इस प्रकार जप, उच्चारण या रचना की गई थी, आज के ब्राह्मण उनका पुनः जप करते हैं या दोहराते हैं; ठीक उसी प्रकार उच्चारण या पाठ करते हैं जैसे पहले किया गया था, अर्थात् अज्ज्क, वामक, वामदेव, वेस्सामित्त, यमतग्गी, ऐगिरिस, भारद्वाज, वासेज्ज, कस्सप और भगु ने भी इस प्रकार कहा था: "हम जानते हैं, हमने देखा है, ब्रह्मा कहाँ हैं, ब्रह्मा कहाँ से हैं?"'

'ऐसा नहीं है, गौतम!'

14. तब आप कहते हैं, वासेज्ज, कि सातवीं पीढ़ी तक भी किसी ब्राह्मण ने, न उनके गुरुओं ने, न उनके शिष्यों ने, न ही ब्रह्मा को प्रत्यक्ष रूप से देखा है। और प्राचीन ऋषियों ने भी, जिन्होंने श्लोकों की रचना की और उनका उच्चारण किया, उन प्राचीन शब्दों के लिए जिन्हें आज के ब्राह्मण इतनी सावधानी से उच्चारित करते हैं और ठीक उसी रूप में सुनाते हैं जैसे वे उन्हें विरासत में मिले हैं, उन्होंने भी ब्रह्मा के स्थान, उत्पत्ति और गंतव्य को जानने या देखने का दावा नहीं किया। अतः तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों ने वास्तव में कहा है: "जिसे हम नहीं जानते, जिसे हमने नहीं देखा, उसके साथ एकात्मता की अवस्था तक हम मार्ग दिखा सकते हैं, और कह सकते हैं: 'यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष का प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, वह ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था में पहुँच जाता है!'"

अब, वासेज्जा, तुम क्या सोचते हो? क्या यह बात इस तथ्य से स्पष्ट नहीं होती कि ब्राह्मणों की बातें, यद्यपि वे तीनों वेदों के ज्ञाता हैं, मूर्खतापूर्ण सिद्ध होती हैं?

सत्यतः, गौतम, ऐसी स्थिति में, यह निष्कर्ष निकलता है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं!

15. `सत्य ही, वासेज्ज, यह बात किसी भी तरह से संभव नहीं है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण उस चीज़ के साथ एकात्मता की अवस्था का मार्ग बता सकें जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है!

'हे वासेंह, जैसे जब अंधों की एक कतार एक दूसरे से चिपकी रहती है, तो न तो आगे वाला देख पाता है, न बीच वाला, न पीछे वाला, ठीक वैसे ही, हे वासेंह, मुझे लगता है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें भी सरासर अंधों की बातें हैं: पहला नहीं देख पाता, बीच वाला नहीं देख पाता, और न ही सबसे पीछे वाला देख पाता है। इसलिए तीनों वेदों में पारंगत इन ब्राह्मणों की बातें हास्यास्पद, मात्र शब्द, व्यर्थ और खोखली साबित होती हैं!'

16. 'अब तुम क्या सोचते हो, वासेज्ज? क्या तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण, अन्य साधारण लोगों की तरह, चंद्रमा और सूर्य को देख सकते हैं, जब वे प्रार्थना करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं और उनकी पूजा करते हैं, और उनके उदय और अस्त होने के स्थान की ओर हाथ जोड़कर परिक्रमा करते हैं?'

'बिल्कुल, गौतम, वे कर सकते हैं।'

17. अब तुम क्या सोचते हो, वासेज्ज? तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण, जो अन्य साधारण लोगों की तरह ही, प्रार्थना, स्तुति और पूजा करते हुए, हाथ जोड़कर उनके उदय और अस्त होने के स्थान की ओर मुड़ते हुए, चंद्रमा और सूर्य को भलीभांति देख सकते हैं, क्या वे तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण चंद्रमा या सूर्य के साथ एकात्मता की अवस्था का मार्ग बता सकते हैं, यह कहते हुए: "यही सीधा मार्ग है, यही मोक्ष का प्रत्यक्ष मार्ग है, और जो इस मार्ग पर चलता है, उसे चंद्रमा या सूर्य के साथ एकात्मता की अवस्था तक ले जाता है?"

बिलकुल नहीं, गौतम।

18. `तो आप कहते हैं, वासेज्ज, कि ब्राह्मण उस चीज़ से एकात्म होने का मार्ग नहीं बता सकते जिसे उन्होंने देखा है, और आप यह भी कहते हैं कि न तो उनमें से किसी ने, न उनके शिष्यों ने, न ही उनकी सातवीं पीढ़ी तक के पूर्वजों ने कभी ब्रह्मा को देखा है। और आप यह भी कहते हैं कि प्राचीन ऋषियों ने भी, जिनके वचनों का वे इतना आदर करते हैं, यह दावा नहीं किया कि वे जानते हैं, न ही उन्होंने देखा है कि ब्रह्मा कहाँ हैं, कहाँ से हैं या कहाँ जा रहे हैं। फिर भी ये तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण कहते हैं कि वे उस चीज़ से एकात्म होने का मार्ग

बता सकते हैं जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है। अब आप क्या सोचते हैं, वासेञ्ञ? क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि, ऐसा होने पर, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण साबित होती हैं?'

'सचमुच, गौतम, ऐसा होने पर तो यह सिद्ध होता है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं!'

19. 'बहुत अच्छा, वासेञ्ह। तो फिर, वासेञ्ह, यह बात किसी भी तरह से संभव नहीं है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण उस चीज़ के साथ एकात्मता की अवस्था का मार्ग दिखा सकें जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है!'

'बस, वासेन्हा, मानो कोई पुरुष कहे, "मैं इस देश की सबसे खूबसूरत महिला के लिए कितना तरसता हूँ, मैं उससे कितना प्यार करता हूँ!"'

और लोगों को उससे पूछना चाहिए, "अच्छा! मेरे प्रिय मित्र! इस देश की सबसे सुंदर स्त्री, जिसे तुम इतना प्यार करते हो और जिसके लिए तरसते हो, क्या तुम जानते हो कि वह सुंदर स्त्री कुलीन महिला है या ब्राह्मण स्त्री, या व्यापारी वर्ग की है या साद्र है?"

लेकिन जब उससे ऐसा पूछा जाए, तो उसे उत्तर देना चाहिए: "नहीं।"

और जब लोग उससे पूछें, "हे मेरे प्रिय मित्र! इस देश की सबसे सुंदर स्त्री, जिसे तुम इतना प्यार करते हो और जिसके लिए तरसते हो, क्या तुम जानते हो कि उस सबसे सुंदर स्त्री का नाम क्या है, या उसका पारिवारिक नाम क्या है, क्या वह लंबी है या छोटी या मध्यम कद की, सांवली है या भूरे बालों वाली या सुनहरे बालों वाली, या वह किस गाँव या कस्बे या शहर में रहती है?"

लेकिन जब उससे ऐसा पूछा जाए, तो उसे उत्तर देना चाहिए: "नहीं"।

और फिर लोग उससे कहेंगे, तो फिर, हे मेरे मित्र, जिसे तुम न तो जानते हो और न ही देखा है, क्या तुम उसी से प्रेम करते हो और उसके लिए तरसते हो?

और जब उससे ऐसा पूछा जाए, तो उसे उत्तर देना चाहिए: "हाँ।"

अब तुम क्या सोचते हो, वासेंहा? क्या ऐसा नहीं होगा कि उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण थीं?

"सचमुच, गौतम, ऐसा होने पर यह पता चलेगा कि उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण थीं!"

20. "हे वासेञ्ञ, यद्यपि मैं कहता हूँ कि ब्राह्मण उस चीज़ से एकात्म होने का मार्ग नहीं बता सकते जिसे उन्होंने देखा है, और आप यह भी कहते हैं कि न तो उनमें से किसी ने, न उनके शिष्यों ने, न ही उनकी सातवीं पीढ़ी तक के पूर्वजों ने कभी ब्रह्मा को देखा है। और आप यह भी कहते हैं कि प्राचीन ऋषियों ने भी, जिनके वचनों का वे इतना आदर करते हैं, यह दावा नहीं किया कि वे जानते हैं, न ही उन्होंने देखा है कि ब्रह्मा कहाँ हैं, कहाँ से हैं या कहाँ जा रहे हैं। फिर भी ये तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण कहते हैं कि वे उस चीज़ से एकात्म होने का मार्ग बता सकते हैं जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है। अब आप क्या सोचते हैं, वासेञ्ञ? क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि, ऐसा होने पर, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं?"

'सचमुच, गौतम, ऐसा होने पर तो यह सिद्ध होता है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं!'

'बहुत अच्छा, वासेञ्च। तो फिर, वासेञ्च, यह बात किसी भी तरह से संभव नहीं है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण उस चीज के साथ एकात्मता की अवस्था का मार्ग दिखा सकें जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है।'

21. "हे वासेंह, मान लो कि कोई व्यक्ति चार सड़कों के चौराहे पर एक सीढ़ी बनाकर किसी महल में चढ़ता है। और लोग उससे कहते हैं, "हे मित्र, जिस महल में चढ़ने के लिए तुम यह सीढ़ी बना रहे हो, क्या तुम जानते हो कि वह पूर्व में है, या दक्षिण में, या पश्चिम में, या उत्तर में? क्या वह ऊँचा है, या नीचा है, या मध्यम आकार का है?""

और जब उससे ऐसा पूछा जाए, तो उसे उत्तर देना चाहिए: "नहीं"।

और लोग उससे कहेंगे, "लेकिन फिर, मेरे प्रिय मित्र, तुम किसी चीज़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बना रहे हो, उसे एक हवेली समझ रहे हो, जिसके बारे में तुम न तो जानते हो और न ही तुमने उसे देखा है!"

और जब उससे ऐसा पूछा जाए, तो उसे उत्तर देना चाहिए: "हाँ"।

अब तुम क्या सोचते हो, वासेंहा? क्या ऐसा नहीं होगा कि उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण थीं?

"सचमुच, गौतम, ऐसा होने पर यह पता चलेगा कि उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण थीं!"

22. "हे वासेञ्ञ, यद्यपि तुम कहते हो कि ब्राह्मण उस वस्तु से एकात्म होने का मार्ग नहीं बता सकते जिसे उन्होंने देखा है, और तुम यह भी कहते हो कि न तो उनमें से किसी ने, न उनके शिष्यों ने, न ही उनकी सातवीं पीढ़ी तक के पूर्वजों ने कभी ब्रह्मा को देखा है। और तुम यह भी कहते हो कि प्राचीन ऋषियों ने भी, जिनके वचनों का वे इतना आदर करते हैं, यह दावा नहीं किया कि वे जानते हैं, न ही उन्होंने देखा है कि ब्रह्मा कहाँ हैं, कहाँ से आए हैं या कहाँ जा रहे हैं। फिर भी ये तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण कहते हैं कि वे उस वस्तु से एकात्म होने का मार्ग बता सकते हैं जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है! अब तुम क्या सोचते हो, वासेञ्ञ? क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि, ऐसा होने पर, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं?"

'सचमुच, गौतम, ऐसा होने पर तो यह सिद्ध होता है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें मूर्खतापूर्ण हैं!'

23. 'बहुत अच्छा, वासेञ्ञ। तो फिर, वासेञ्ञ, यह बात किसी भी तरह से संभव नहीं है कि तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण उस चीज के साथ एकात्मता की अवस्था का मार्ग दिखा सकें जिसे वे न तो जानते हैं और न ही देखा है।'

24. "हे वासेञ्ञा, मान लो कि अचिरावत नदी जल से लबालब भरी हो और उफान पर हो। और कोई व्यक्ति जो उस पार काम से जा रहा हो, उस पार जाने के लिए निकल पड़े, और उस पार जाना चाहे, तो वह इस किनारे पर खड़ा होकर दूसरे किनारे से प्रार्थना करे, और कहे, 'हे दूसरे किनारे, इधर आओ! इस तरफ आ जाओ!'"

अब आप क्या सोचते हैं, वासेन्हा? क्या उस व्यक्ति के आह्वान, प्रार्थना, आशा और स्तुति के कारण अचिरावाता नदी का दूर वाला किनारा इस तरफ आ जाएगा?

बिलकुल नहीं, गौतम!

25. ठीक इसी प्रकार, वासेञ्ञ, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण, उन गुणों का अभ्यास न करके जो वास्तव में मनुष्य को ब्राह्मण बनाते हैं, और उन गुणों का अभ्यास अपनाकर जो वास्तव में मनुष्य को गैर-ब्राह्मण बनाते हैं, इस प्रकार कहते हैं: "इंद्र का आह्वान करें, सोम का आह्वान करें, वरुण का आह्वान करें, आसन का आह्वान करें, प्रजापति का आह्वान करें, ब्रह्मा का आह्वान करें, महिद्धि का आह्वान करें, यम का आह्वान करें!" हे वासेञ्ञ, यह बात किसी भी प्रकार से संभव नहीं है कि वे ब्राह्मण जो तीनों वेदों में पारंगत हैं, उन गुणों का अभ्यास न करें जो वास्तव में मनुष्य को ब्राह्मण बनाते हैं, और उन गुणों का अभ्यास करें जो वास्तव में मनुष्य को गैर-ब्राह्मण बनाते हैं, और वे अपने आह्वान, प्रार्थना, आशा और स्तुति के कारण, मृत्यु के बाद और शरीर के विलीन होने पर ब्रह्मा में विलीन हो जाएं!

26. "हे वासेंह, मान लीजिए कि अचिरावत नदी पूरी तरह से भरी हुई है और उफान पर है। और एक आदमी जो उस पार काम से जा रहा है, यहाँ आकर नदी पार करना चाहे। और वह इस किनारे पर एक मजबूत जंजीर से कसकर बंधा हो, उसके हाथ पीछे की ओर बंधे हों। अब हे वासेंह, क्या आप सोचते हैं कि वह आदमी अचिरावत नदी के इस किनारे से दूसरे किनारे तक कैसे पहुँच पाएगा?"

बिलकुल नहीं, गौतम!

27. `इसी प्रकार, वासेञ्हा, पाँच ऐसी चीजें हैं जो कामवासना की ओर ले जाती हैं, जिन्हें अरहतों के अनुशासन में "श्रृंखला" और "बंधन" कहा जाता है।'

वे पाँच कौन-कौन से हैं?

आँखों से दिखाई देने वाले रूप; मनभावन, सुखद, आकर्षक रूप, जो कामवासना से प्रेरित होते हैं और आनंद उत्पन्न करते हैं। कानों से सुनाई देने वाली वैसी ही ध्वनियाँ। नाक से सुनाई देने वाली वैसी ही गंधें। जीभ से महसूस होने वाले वैसे ही स्वाद। स्पर्श से शरीर को महसूस होने वाले वैसे ही पदार्थ। कामवासना को प्रेरित करने वाली इन पाँच चीजों को अरहतों के अनुशासन में "शंख" और "बंधन" कहा जाता है। और कामवासना को प्रेरित करने वाली इन पाँच चीजों, वासेञ्ञ, से तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण चिपके रहते हैं, वे इनसे मोहित हो जाते हैं, इनसे आसक्त हो जाते हैं, इनके नर्क को नहीं देखते, इनकी अनिश्चितता को नहीं जानते, और इस प्रकार इनका आनंद लेते हैं।

28. “और हे वासेञ्ञ, निश्चय ही, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण, जो वास्तव में मनुष्य को ब्राह्मण बनाने वाले गुणों का अभ्यास नहीं करते, और वास्तव में मनुष्य को गैर-ब्राह्मण बनाने वाले गुणों का अभ्यास करते हैं, इन पाँच चीजों से आसक्त होकर, जो वासना को प्रेरित करती हैं, इनसे मोहित होकर, इनसे लगाव रखते हुए, इनके खतरे को अनदेखा करते हुए, इनकी अविश्वसनीयता को जाने बिना, इनका आनंद लेते हैं, और मृत्यु के बाद, शरीर के विघटन पर, ये ब्राह्मण ब्रह्मा में विलीन हो जाते हैं, ऐसी स्थिति किसी भी प्रकार से संभव नहीं है!”

29. “हे वासेंहा, मान लो कि अचिरावत नदी पानी से लबालब भरी हो और उफान पर हो। और कोई व्यक्ति जो उस पार काम से जा रहा हो, यहाँ आकर पार करना चाहे। और यदि वह अपने सिर तक खुद को ढककर इस किनारे पर सोने के लिए लेट जाए।”

अब तुम क्या सोचते हो, वासेंहा? क्या वह आदमी असिरावता नदी के इस किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँच पाएगा?

बिलकुल नहीं, गौतम!

30. `इसी प्रकार, वासेञ्ञा, अरहतों के अनुशासन में ये पाँच बाधाएँ हैं, जिन्हें "पर्दा", "बाधाएँ", "अड़चनें" और "उलझाव" कहा जाता है।'

वे पाँच कौन-कौन से हैं?

सांसारिक वासनाओं की बाधा, द्वेष की बाधा, मन और हृदय की सुस्ती और आलस्य की बाधा, घबराहट और चिंता की बाधा, अनिश्चितता की बाधा।

ये पाँच बाधाएँ, वासेञ्ञ हैं, जिन्हें अरहतों के अनुशासन में पर्दा, अवरोध, अड़चन और उलझन कहा जाता है।

अब इन पांच बाधाओं के कारण, वासेञ्ञ, तीनों वेदों में पारंगत ब्राह्मण भी आवरणग्रस्त, बाधित, अवरुद्ध और उलझे हुए हैं।

और हे वासेञ्ञ, यह तो किसी भी प्रकार से संभव नहीं है कि वे ब्राह्मण जो तीनों वेदों में पारंगत हैं, उन गुणों का अभ्यास न करें जो वास्तव में मनुष्य को ब्राह्मण बनाते हैं, और उन गुणों का अभ्यास करें जो वास्तव में मनुष्य को गैर-ब्राह्मण बनाते हैं; वे पाँच बाधाओं से घिरे, अवरुद्ध, अवरुद्ध और उलझे हुए हों; और मृत्यु के बाद, शरीर के विघटन पर, वे ब्राह्मण ब्रह्मा में विलीन हो जाएँ!

31. 'हे वासेञ्ञ, अब तुम क्या सोचते हो, और तुमने वृद्ध और वृद्ध ब्राह्मणों से क्या सुना है, जब शिष्य और गुरु आपस में बातचीत कर रहे होते हैं? क्या ब्रह्मा पत्नियों और धन के स्वामी हैं या नहीं?'

'वो गौतम नहीं है।'

क्या उसका मन क्रोध से भरा हुआ है, या क्रोध से मुक्त है?

क्रोध से मुक्त हो जाओ, गौतम।

क्या उसका मन द्वेष से भरा है, या द्वेष से मुक्त है?

'गौतम, द्वेष से मुक्त रहो।'

क्या उसका मन दूषित है, या फिर शुद्ध है?

'यह शुद्ध है, गौतम।'

क्या उसमें आत्मसंयम है, या नहीं?'

'हाँ, गौतम।'

32. 'अब तुम क्या सोचते हो, वासेञ्ञ, क्या वेदों में पारंगत ब्राह्मणों के पास पत्नियाँ और धन होते हैं या नहीं?'

'हाँ, गौतम।'

क्या उनके दिलों में क्रोध है या नहीं?

'उन्होंने कर दिया है, गौतम।'

क्या वे द्वेष रखते हैं, या नहीं?

'हाँ, गौतम।'

क्या वे हृदय से शुद्ध हैं या नहीं?

'वे नहीं हैं, गौतम।'

क्या उनमें आत्म-नियंत्रण है, या नहीं?

'उन्होंने ऐसा नहीं किया है, गौतम।'

33. `तो फिर तुम कहते हो, वासेञ्ञ, कि ब्राह्मणों के पास पत्नियाँ और धन-संपत्ति है, जबकि ब्रह्मा के पास नहीं है। क्या फिर ब्राह्मणों (जिनके पास पत्नियाँ और संपत्ति है) और ब्रह्मा (जिनके पास इनमें से कुछ भी नहीं है) के बीच समानता और एकरूपता हो सकती है?'

बिलकुल नहीं, गौतम!

34. 'बहुत अच्छा, वासेञ्ञ। लेकिन, यह बात तो बिलकुल भी संभव नहीं है कि वेदों में पारंगत ये ब्राह्मण, जो विवाहित और धनी जीवन व्यतीत करते हैं, मृत्यु के बाद, जब उनका शरीर नष्ट हो जाता है, ब्रह्मा से मिल जाएं, जिनके पास ये सब कुछ नहीं है!'

35. `तो फिर आप यह भी कहते हैं, वासेञ्ञ, कि ब्राह्मण अपने हृदयों में क्रोध और द्वेष धारण करते हैं, और हृदय से दूषित और अनियंत्रित होते हैं, जबकि ब्रह्मा क्रोध और द्वेष से मुक्त, हृदय से शुद्ध और आत्म-संयमित होते हैं। तो क्या ब्राह्मणों और ब्रह्मा के बीच सामंजस्य और समानता हो सकती है?'

बिलकुल नहीं, गौतम!

36. `बहुत अच्छा, वासेञ्ञ। ये ब्राह्मण, जो वेदों में पारंगत हैं, फिर भी अपने हृदय में क्रोध और द्वेष लिए हुए हैं, पापी और अनियंत्रित हैं, और मृत्यु के बाद, जब शरीर नष्ट हो जाता है, तो ब्रह्मा से मिल जाते हैं, जो क्रोध और द्वेष से मुक्त, हृदय से शुद्ध और आत्म-संयमित हैं, ऐसी स्थिति किसी भी तरह से संभव नहीं है!`

इसलिए, वासेञ्ज, ब्राह्मण, यद्यपि वे तीनों वेदों में पारंगत हैं, जब वे (विश्वास में) बैठते हैं, तो वे (कीचड़ में) डूबते जा रहे हैं; और इस प्रकार डूबते हुए वे केवल निराशा की ओर बढ़ रहे हैं, जबकि वे यह सोच रहे हैं कि वे किसी सुखी भूमि में प्रवेश कर रहे हैं।

इसलिए ब्राह्मणों की त्रिविध बुद्धि, जो अपने तीनों वेदों में पारंगत हैं, को जलहीन रेगिस्तान कहा जाता है, उनकी त्रिविध बुद्धि को पथहीन जंगल कहा जाता है, उनकी त्रिविध बुद्धि को विनाश कहा जाता है!

37. जब उन्होंने ऐसा कहा, तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ज ने भगवान से कहा:

'मुझे बताया गया है, गौतम, कि समा॔ गौतम ब्रह्मा के साथ मिलन की अवस्था प्राप्त करने का मार्ग जानते हैं।'

'वासेन्हा, तुम्हारा क्या विचार है, क्या मनसाकणा इस स्थान के निकट नहीं है, या इससे दूर नहीं है?'

'बिल्कुल सही, गौतम। मनसाकण यहाँ से निकट ही है, दूर नहीं है।'

अब, वासेञ्ह, आप क्या सोचते हैं? मान लीजिए कि कोई व्यक्ति मनसाकण में पैदा हुआ हो, और लोग उससे, जो उस समय तक कभी मनसाकण से बाहर नहीं निकला हो, पूछें कि मनसाकण जाने का रास्ता क्या है? क्या मनसाकण में पैदा हुए और पले-बढ़े उस व्यक्ति को कोई संदेह या कठिनाई होगी?

बिलकुल नहीं, गौतम! और क्यों? यदि वह व्यक्ति मानसकण में पैदा हुआ और पला-बढ़ा होता, तो मानसकण की ओर जाने वाला हर रास्ता उसे भली-भांति परिचित होता।

38. 'हे वासेञ्ह, जो मनसाकण में पैदा हुआ और पला-बढ़ा है, अगर उससे मनसाकण का मार्ग पूछा जाए तो वह संशय और कठिनाई में पड़ जाएगा, परन्तु तथागत को ब्रह्मा लोक की ओर ले जाने वाले मार्ग के विषय में पूछे जाने पर न तो संशय हो सकता है और न ही कठिनाई। क्योंकि हे वासेञ्ह, मैं ब्रह्मा को जानता हूँ, ब्रह्मा लोक को जानता हूँ, और उस मार्ग को भी जानता हूँ जो ब्रह्मा लोक में प्रवेश कर चुका है और उसमें जन्म ले चुका है!'

39. जब उसने ऐसा कहा, तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ज ने भगवान से कहा:

मुझे भी यही बताया गया है, गौतम, कि समा॔ गौतम ब्रह्मा के साथ मिलन की अवस्था का मार्ग जानते हैं। यह अच्छा है! आदरणीय गौतम कृपा करके हमें ब्रह्मा के साथ मिलन की अवस्था का मार्ग दिखाएँ, आदरणीय गौतम ब्राह्मण जाति का उद्धार करें!

'तो सुनो, वासेन्हा, और ध्यान से सुनो, और मैं बोलूंगा!'

'ऐसा ही हो, भगवान!' युवा ब्राह्मण वासेञ्ज ने भगवान से सहमति जताते हुए कहा।

40. तब भगवान बुद्ध ने कहा:

हे वासेञ्ह, जान लो कि समय-समय पर तथागत इस संसार में जन्म लेते हैं, एक अरहत, पूर्णतः जागृत, ज्ञान और सत्त्व से परिपूर्ण, संसार के ज्ञान से परिपूर्ण, मनुष्यों के लिए अद्वितीय मार्गदर्शक, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक, एक धन्य पुरुष, एक बुद्ध। वे स्वयं ही इस ब्रह्मांड को भली-भांति समझते और देखते हैं, मानो स्वर्ग के लोकों को देवताओं, मारों और ब्रह्माओं के साथ-साथ पाताल लोकों को उनके सामंतों और ब्राह्मणों, राजकुमारों और प्रजाओं के साथ; और फिर वे अपना ज्ञान दूसरों को प्रकट करते हैं। वे सत्य का प्रचार अक्षरशः और भावस्वरूप करते हैं, जो अपने उद्गम में सुंदर, अपने विकास में सुंदर और अपने समापन में सुंदर है; वे उच्चतर जीवन को उसकी संपूर्ण पवित्रता और संपूर्ण पूर्णता में प्रकट करते हैं।

41. गृहस्थ (गृहपति), या उसका कोई बच्चा, या किसी भी वर्ग का निम्न कुल का व्यक्ति उस सत्य को सुनता है। सत्य को सुनकर उसे तथागत में आस्था हो जाती है, और जब उसे वह आस्था प्राप्त हो जाती है तो वह इस प्रकार मन में विचार करता है:

गृहस्थ जीवन बाधाओं से भरा है, यह वासनाओं से दूषित मार्ग है: सांसारिक चीजों का त्याग करने वाले का जीवन वायु के समान मुक्त है। गृहस्थ जीवन में पूर्णतः, पूर्णतः, पूर्णतः परिपूर्णता में जीना गृहस्थ के लिए कितना कठिन है! इसलिए मुझे अपने बाल और दाढ़ी काट देने चाहिए, मुझे नारंगी रंग के वस्त्र धारण करने चाहिए, और मुझे गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में चले जाना चाहिए।

फिर कुछ ही समय बाद, वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे वह बड़ी हो या छोटी; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे वे बहुत हों या कम, को त्यागकर अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, नारंगी रंग के वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में चला जाता है।

42. जब वह इस प्रकार संन्यासी बन जाता है, तो वह उस संयम से भरा जीवन व्यतीत करता है जो संन्यासी के लिए अनिवार्य है। सत्यनिष्ठा उसका आनंद है, और वह उन छोटी से छोटी चीजों में भी खतरा देखता है जिनसे उसे बचना चाहिए। वह उपदेशों को अपनाता है और उनका पालन-पोषण करता है। वह अपने वचन और कर्म से अच्छाई को अपनाता है। वह अपने जीवन को पूर्णतः शुद्ध साधनों से चलाता है; उसका आचरण अच्छा होता है, वह अपनी इंद्रियों के द्वार पर पहरा देता है; सचेत और आत्मसंयमित होकर वह पूर्णतः सुखी रहता है!

43-75. `और, वासेन्हा, उसका आचरण कैसे अच्छा है?'

76. 'और वह अपने मन को प्रेम के विचारों से संसार के एक चौथाई भाग में व्याप्त कर लेता है, फिर दूसरे भाग में, फिर तीसरे भाग में, फिर चौथे भाग में। और इस प्रकार वह संपूर्ण विशाल संसार को, ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, प्रेम से भरे हृदय से व्याप्त करता रहता है, जो दूरगामी, विशाल और असीम है।'

77. 'हे वासेंह, जिस प्रकार एक शक्तिशाली तुरही वादक बिना किसी कठिनाई के चारों दिशाओं में अपनी आवाज सुनाता है; उसी प्रकार आकार और जीवन वाले सभी प्राणियों में से वह किसी को भी अनदेखा या त्यागता नहीं है, बल्कि उन सभी को मुक्त मन और गहरे प्रेम से देखता है।'

'हे वासेञ्ञ, यही ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था प्राप्त करने का मार्ग है।'

78. 'और वह अपने मन को दुनिया के एक चौथाई हिस्से में दया, सहानुभूति और समभाव के विचारों से भर देता है, फिर दूसरे हिस्से में, फिर तीसरे हिस्से में, फिर चौथे हिस्से में। और इस प्रकार वह पूरी दुनिया को, ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, दया, सहानुभूति और समभाव के हृदय से भरता रहता है, जो दूरगामी, विशाल और असीम है।'

79. 'हे वासेञ्ह, जिस प्रकार एक शक्तिशाली तुरही वादक बिना किसी कठिनाई के चारों दिशाओं में अपनी आवाज सुनाता है; उसी प्रकार वह आकार और जीवन वाले सभी प्राणियों में से किसी को भी अनदेखा या त्यागता नहीं है, बल्कि उन सभी को मुक्त मन से, गहरी दया, सहानुभूति और समभाव से देखता है।'

'हे वासेञ्ञ, यही ब्रह्मा के साथ एकात्मता की अवस्था प्राप्त करने का मार्ग है।'

80. 'अब तुम क्या सोचते हो, वासेञ्ह्हा, क्या इस प्रकार जीवन यापन करने वाला भिक्षु स्त्रियों और धन का स्वामी होगा या नहीं?'

'वो ऐसा नहीं करेगा, गौतम!'

क्या वह क्रोध से भरा होगा, या क्रोध से मुक्त होगा?

'वह क्रोध से मुक्त हो जाएगा, गौतम!'

क्या उसका मन द्वेष से भरा होगा, या द्वेष से मुक्त होगा?

'गौतम, द्वेष से मुक्त हो!'

क्या उसका मन कलंकित होगा, या शुद्ध होगा?

'यह शुद्ध होगा, गौतम!'

क्या उसमें आत्म-संयम होगा या नहीं?

'ज़रूर करेगा, गौतम!'

81. `तो आप कहते हैं, वासेञ्ञ, कि भिक्षु गृहस्थ और सांसारिक चिंताओं से मुक्त है, और ब्रह्मा गृहस्थ और सांसारिक चिंताओं से मुक्त हैं। क्या तब भिक्षु और ब्रह्मा में कोई समानता और एकरूपता है?'

'हाँ, गौतम!'

'बहुत अच्छा, वासेञ्ञ। तो वास्तव में, वासेञ्ञ, कि गृहस्थी चिंताओं से मुक्त भिक्षु मृत्यु के बाद, जब शरीर विलीन हो जाता है, तो ब्रह्मा से एकात्म हो जाए, जो कि एक ही स्वरूप हैं, ऐसी स्थिति हर तरह से संभव है!'

तो हे वासेञ्ह, आप कहते हैं कि भिक्षु क्रोध और द्वेष से मुक्त, मन से शुद्ध और आत्म-संयमित होता है; और ब्रह्मा भी क्रोध और द्वेष से मुक्त, मन से शुद्ध और आत्म-संयमित होते हैं। तो वास्तव में, हे वासेञ्ह, जो भिक्षु क्रोध और द्वेष से मुक्त, मन से शुद्ध और आत्म-संयमित होता है, मृत्यु के बाद, जब शरीर विलीन हो जाता है, तो वह ब्रह्मा के साथ एकात्म हो जाता है, जो कि वही हैं; ऐसी स्थिति हर तरह से संभव है!

82. जब उन्होंने ऐसा कहा, तब युवा ब्राह्मण वासेञ्ञ और भारद्वाज ने भगवान बुद्ध से कहा:

हे भगवान, तेरे मुख के वचन अत्यंत उत्कृष्ट हैं! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठा दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए को सही मार्ग दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि देखने वाले बाहरी चीजों को देख सकें, ठीक उसी प्रकार, हे भगवान, सत्य को अनेक उदाहरणों के द्वारा परमेश्वर ने हमें प्रकट किया है। और हम, हे भगवान, परमेश्वर को अपना मार्गदर्शक, सत्य और भाईचारा मानते हैं। परमेश्वर हमें आज से जीवन भर के लिए सच्चे शिष्य, सच्चे विश्वासी के रूप में स्वीकार करें!

त्रिपिटक >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.1 महा-पदान सुत्त(DN14)

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2बुद्ध के बत्तीस (32) चिह्न
3[जन्म संबंधी अनुभाग का अंत]
4[द्वितीय खंड का अंत]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, अनाथपिंडिका के उद्यान में, जेतवन में, करेरी कुटिया में ठहरे हुए थे। भिक्षा मांगने के बाद भोजन करने के लिए एकत्रित हुए कई भिक्षुओं के बीच करेरी मंडप में पूर्व जन्मों के विषय में गंभीर चर्चा हुई, क्योंकि वे कहने लगे, "पिछले जन्म में ऐसा था," या "वैसा था।"
और भगवान ने, मनुष्यों की क्षमताओं से परे, शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से, उनकी बातें सुनीं। वे अपने आसन से उठकर करेरी मंडप में गए, वहाँ तैयार आसन पर बैठ गए और बोले, "भिक्षुओं, जब आप सब साथ बैठे थे तो आपकी क्या बातचीत चल रही थी? मैंने किस चर्चा में बाधा डाली?" और उन्होंने उन्हें बताया।
"तो, भिक्षुओं, क्या आप पूर्व जन्मों पर एक उचित प्रवचन सुनना चाहेंगे?"
"हे भगवान, अब समय आ गया है! हे शुभचिंतक, अब समय आ गया है! यदि भगवान पूर्व जन्मों पर उचित प्रवचन दें, तो भिक्षु उसे ध्यान से सुनेंगे और याद रखेंगे!"

"तो फिर, भिक्षुओं, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान ने कहा,
भिक्षुओं, इक्यावन युग पूर्व भगवान अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध विपस्सी संसार में अवतरित हुए। इकतीस युग पूर्व भगवान बुद्ध सिखि अवतरित हुए; उनसे ठीक इकतीसवें युग पूर्व भगवान बुद्ध वेसभु अवतरित हुए। और इस वर्तमान शुभ युग में भगवान बुद्ध काकुसंध, कोनागमना और कस्सपा संसार में अवतरित हुए। और भिक्षुओं, इस वर्तमान शुभ युग में मैं भी पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध के रूप में संसार में अवतरित हुआ हूँ।
"भगवान बुद्ध विपस्सी का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था और वे क्षत्रिय परिवार में पले-बढ़े थे, भगवान बुद्ध सिखि भी इसी प्रकार; और भगवान बुद्ध वेस्सभु भी इसी प्रकार; भगवान बुद्ध ककुसंध का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था और वे ब्राह्मण परिवार में पले-बढ़े थे; भगवान बुद्ध कोनागमना भी इसी प्रकार; भगवान बुद्ध कस्सपा भी इसी प्रकार; और मैं, भिक्षुओं, जो अब अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हूँ, का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था और मैं क्षत्रिय परिवार में पले-बढ़े थे।"
"भगवान बुद्ध विपस्सी कोंडन्ना वंश के थे; भगवान सिख भी उसी वंश के थे; भगवान बुद्ध वेस्सभु भी उसी वंश के थे; भगवान बुद्ध ककुसंध कस्सपा वंश के थे; भगवान बुद्ध कोनागमना भी उसी वंश के थे; भगवान बुद्ध कस्सपा भी उसी वंश के थे; मैं, जो अब अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हूँ, गौतम वंश का हूँ।"
भगवान बुद्ध विपस्सी के समय में जीवन अवधि अस्सी हजार वर्ष थी; भगवान बुद्ध सिखि के समय में सत्तर हजार; भगवान बुद्ध वेस्सभु के समय में साठ हजार; भगवान बुद्ध काकुसंध के समय में चालीस हजार; भगवान बुद्ध कोनागमना के समय में तीस हजार; भगवान बुद्ध कस्सपा के समय में बीस हजार थी। मेरे समय में जीवन अवधि छोटी, सीमित और शीघ्र बीतने वाली है: बहुत कम लोग सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं।
"भगवान बुद्ध विपस्सी ने तुरही के फूल के वृक्ष की तलहटी में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया; भगवान बुद्ध सिखि ने सफेद आम के वृक्ष के नीचे; भगवान बुद्ध वेस्सभु ने साल के वृक्ष के नीचे; भगवान बुद्ध ककुसंध ने बबूल के वृक्ष के नीचे; भगवान बुद्ध कोनागमना ने अंजीर के वृक्ष के नीचे; भगवान बुद्ध कस्सपा ने बरगद के वृक्ष के नीचे; और मैंने असत्था वृक्ष की तलहटी में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया।"
"भगवान बुद्ध विप्पासी के महान शिष्यों खंडा और तिस्सा की जोड़ी थी; भगवान बुद्ध सिक्खी के पास अभिभू और संभव थे; भगवान बुद्ध वेस्साभु के पास सोना और उत्तरा थे; भगवान बुद्ध काकुसंध के पास विधुरा और संजीव थे; भगवान बुद्ध कोणगमन के पास भिय्योसा और उत्तरा थे; भगवान बुद्ध कस्सप के पास तिस्सा और भारद्वाज थे; मेरे पास अब महान शिष्यों शारिपुत्र और मोग्गल्लाना की जोड़ी है।
भगवान बुद्ध विपस्सी के शिष्यों की तीन सभाएँ थीं, एक में 6,800,000, एक में एक लाख और एक में 80 हजार भिक्षु थे, और इन तीनों सभाओं में सभी अरहंत थे; भगवान बुद्ध सिख धर्म के शिष्यों की तीन सभाएँ थीं: एक में एक लाख, एक में 80 हजार और एक में 70 हजार भिक्षु थे - सभी अरहंत; भगवान बुद्ध वेस्साभू की तीन सभाएँ थीं, एक में 80 हजार, एक में 70 हजार और एक में 60 हजार भिक्षु थे, सभी अरहंत; भगवान बुद्ध ककुसंध की एक सभा थी: 40 हजार भिक्षु - सभी अरहंत; भगवान बुद्ध कोनागमना की एक सभा थी: 30 हजार भिक्षु - सभी अरहंत; भगवान बुद्ध कस्सपा की एक सभा थी: 20 हजार भिक्षु - सभी अरहंत; मैं, भिक्षुओं, की शिष्यों की एक सभा है, 1250 भिक्षुओं की, और इस एक सभा में केवल अरहंत ही हैं।
"भगवान बुद्ध विपश्यी के निजी परिचारक भिक्षु अशोक थे; भगवान बुद्ध सिखी के खेमनकर थे; भगवान बुद्ध वेसाभु के उपसन्नक थे; भगवान बुद्ध काकुसंध के वुद्धिज थे; भगवान बुद्ध कोनागमन के सोथिजा थे; भगवान बुद्ध कस्पा के सब्बामित्त थे; मेरा मुख्य निजी परिचारक अब आनंद है।
भगवान बुद्ध विपस्सी के पिता राजा बंधुमा थे, उनकी माता रानी बंधुमती थीं और राजा बंधुमा की राजधानी बंधुमती थी। भगवान बुद्ध सिखि के पिता राजा अरुणा थे, उनकी माता रानी पभवती थीं; राजा अरुणा की राजधानी अरुणावती थी। भगवान बुद्ध वैशाभु के पिता राजा सुप्पतिता थे, उनकी माता रानी यशवती थीं; राजा सुप्पतिता की राजधानी अनोपमा थी। भगवान बुद्ध ककुसंध के पिता ब्राह्मण अग्गिदत्त थे, उनकी माता ब्राह्मण महिला विशाखा थीं। उस समय के राजा खेमा थे; उनकी राजधानी खेमावती थी। भगवान बुद्ध कनोगमना के पिता ब्राह्मण यन्नदत्त थे, उनकी माता ब्राह्मण महिला उत्तरा थीं। उस समय के राजा शोभ थे; उनकी राजधानी शोभवती थी। भगवान बुद्ध कस्सपा के पिता ब्राह्मण ब्रह्मदत्त थे, उनकी माता ब्राह्मण महिला धनवती थीं। उस समय के राजा किकी थे; उनकी राजधानी चारणसी थी। अब, भिक्षुओं, मेरे पिता राजा सुद्धोदन थे, मेरी माता रानी माया थीं, और राजसी राजधानी कपिलवस्तु थी।"
इस प्रकार भगवान ने कहा, और तब वह शुभचिंतक अपनी सीट से उठा और अपने आवास की ओर चला गया।
भगवान के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं के बीच एक और चर्चा छिड़ गई।
"यह अद्‌भुत है, मित्रों, यह विस्मयकारी है, तथागत की महान शक्ति और सामर्थ्य - जिस प्रकार वे परिनिर्वाण प्राप्त करने वाले, बाधाओं को दूर करने वाले, भोग के मार्ग को काटने वाले, जन्म-जन्म के चक्र को समाप्त करने वाले और समस्त दुखों पर विजय प्राप्त करने वाले अतीत के बुद्धों को याद करते हैं। वे उनके जन्म, उनके नाम, उनके कुल, उनके जीवनकाल, उनसे जुड़े शिष्यों और सभाओं को याद करते हैं, 'इस प्रकार जन्म लेकर, ये भगवान ऐसे-ऐसे थे, उनके नाम, उनके कुल, उनकी साधना, उनका धर्म, उनका ज्ञान और उनकी मुक्ति ऐसी-ऐसी थी।' तो मित्रों, तथागत को वह गहन ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ जिससे वे यह याद रख पाते हैं कि, 'इस प्रकार जन्म

लेकर, ये भगवान ऐसे-ऐसे थे, उनके नाम, उनके कुल, उनकी साधना, उनका धर्म, उनका ज्ञान और उनकी मुक्ति ऐसी-ऐसी थी?' क्या किसी देवता ने उन्हें यह ज्ञान प्रकट किया?' यह उन भिक्षुओं की बातचीत थी, जो बीच में ही रुक गई।"

फिर भगवान विश्राम काल के एकांत से उठकर करेरी मंडप में गए और तैयार आसन पर बैठ गए। उन्होंने कहा,

"भिक्षुओं, जब आप सब साथ बैठे थे तो आपकी क्या बातचीत चल रही थी? मैंने किस चर्चा में बाधा डाली?" और भिक्षुओं ने उसे बताया।

"तथागत ने धम्म के सिद्धांतों के अपने गहन ज्ञान से इन बातों को समझा है; और देवताओं ने भी उन्हें बताया है। अच्छा, भिक्षुओं, क्या आप पिछले जन्मों के बारे में और अधिक सुनना चाहते हैं?"

"हे भगवान, अब समय आ गया है! हे शुभचिंतक, अब समय आ गया है! यदि भगवान पूर्व जन्मों पर उचित प्रवचन दें, तो भिक्षु उसे सुनेंगे और याद रखेंगे।"

"तो फिर, भिक्षुओं, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान ने कहा,

भिक्षुओं, इक्यावन युग पूर्व भगवान, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध विपस्सी संसार में अवतरित हुए। वे क्षत्रिय वंश के थे और एक क्षत्रिय परिवार में जन्मे। वे कोंडन्ना कुल के थे। उनका जीवनकाल अस्सी हजार वर्ष था। उन्होंने तुरही पुष्प वृक्ष की तलहटी में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। उनके दो श्रेष्ठ शिष्य खंडा और तिस्सा उनके प्रमुख अनुयायी थे। उनके शिष्यों की तीन सभाएँ थीं: एक में 6,800,000, दूसरी में एक लाख और तीसरी में अस्सी हजार भिक्षु, सभी अरहंत थे। उनके प्रमुख निजी सेवक भिक्षु अशोक थे। उनके पिता राजा बंधुमा और माता रानी बंधुमती थीं। राजा की राजधानी बंधुमती थी।

"और इसलिए, भिक्षुओं, बोधिसत्व विपस्सी सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर तुषिता स्वर्ग से अपनी माता के गर्भ में अवतरित हुए। भिक्षुओं, यही नियम है।"

भिक्षुओं, यह नियम है कि जब कोई बोधिसत्व तुषिता स्वर्ग से अपनी माता के गर्भ में अवतरित होता है, तो इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा, तपस्वी और ब्राह्मण, राजकुमार और मनुष्य सभी हैं, एक असीम, तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है जो सर्वोच्च देवताओं की महिमा से भी अधिक होता है। और संसार के अंत से परे जो भी अंधकारमय, अव्यवस्थित, अंधकारमय और काला स्थान है, जहाँ सूर्य और चंद्रमा की शक्तिशाली किरणें भी नहीं पहुँच पातीं, वे भी इस असीम, तेजस्वी प्रकाश से प्रकाशित होते हैं जो सर्वोच्च देवताओं की महिमा से भी अधिक होता है। और वहाँ पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी इस प्रकाश से एक-दूसरे को पहचानते हैं और जानते हैं, 'यहाँ अन्य प्राणी भी जन्म ले चुके हैं!' और यह दस हजार गुना संसार-प्रणाली काँप उठती है, हिल उठती है और थरथरा उठती है। और यह असीम प्रकाश चमक उठता है। यही नियम है।

"यह नियम है कि जब कोई बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो चारों दिशाओं से चार देवता उसकी रक्षा के लिए आते हैं और कहते हैं, 'कोई भी मनुष्य, कोई भी अमानवीय प्राणी, कोई भी वस्तु इस बोधिसत्व या इस बोधिसत्व की माता को हानि न पहुँचाए!' यही नियम है।"

"यह नियम है कि जब कोई बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो उसकी माता स्वभाव से ही गुणी हो जाती है, वह किसी का जीवन लेने से, किसी की देन लेने से, यौन दुराचार से, झूठ बोलने से, और मादक पेय पदार्थों तथा आलस्य उत्पन्न करने वाली औषधियों से परहेज करती है। यही नियम है।"

"यह नियम है कि जब कोई बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो माता के मन में किसी पुरुष से संबंधित कामुक विचार नहीं होते, और कोई भी पुरुष कामुक विचारों से उसे वश में नहीं कर सकता। यही नियम है।"

"यह नियम है कि जब कोई बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो माता पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का आनंद लेती है और उनसे परिपूर्ण होकर प्रसन्न होती है। यही नियम है।"

नियम यह है कि जब कोई बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो माता किसी भी प्रकार की बीमारी से मुक्त होती हैं, वे सहज और निर्मल होती हैं, और वे अपने गर्भ में बोधिसत्व को उनके सभी अंगों और इंद्रियों सहित पूर्ण रूप से देख सकती हैं। भिक्षुओं, यह ऐसा है मानो कोई शुद्ध, उत्तम, आठ फलकों में सुगठित, निर्मल, चमकीला, दोषरहित और हर तरह से परिपूर्ण रत्न नीले, पीले, लाल, सफेद या नारंगी रंग के धागे में पिरोया गया हो। और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे हाथ में लेकर उसका वर्णन इसी प्रकार करेगा। इसी प्रकार बोधिसत्व की माता, जो निर्मल हैं, उन्हें उनके सभी अंगों और इंद्रियों सहित पूर्ण रूप से देखती हैं। यही नियम है।

यह नियम है कि जब किसी बोधिसत्व की माता उसके जन्म के सात दिन बाद मर जाती है, तो उसका पुनर्जन्म तुषिता स्वर्ग में होता है। यही नियम है।

नियम यह है कि जहाँ अन्य स्त्रियाँ जन्म देने से पहले नौ या दस महीने तक गर्भ धारण करती हैं, वहीं बोधिसत्व की माता के साथ ऐसा नहीं है; वह जन्म देने से पहले ठीक दस महीने तक गर्भ धारण करती हैं। यही नियम है।

यह नियम है कि जहाँ अन्य स्त्रियाँ बैठकर या लेटकर प्रसव करती हैं, वहीं बोधिसत्व की माता के साथ ऐसा नहीं होता, वे खड़े होकर प्रसव करती हैं। यही नियम है।

यह नियम है कि जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से जन्म लेते हैं, तो सबसे पहले देवता उनका स्वागत करते हैं, और फिर मनुष्य, यही नियम है।

यह नियम है कि जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से जन्म लेते हैं, तो वे पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते। चार देवता उनका स्वागत करते हैं और उन्हें उनकी माता के सामने रखते हुए कहते हैं, "हे महाराज, प्रसन्न होइए, आपको एक महान पुत्र प्राप्त हुआ है!" यही नियम है।

नियम यह है कि जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से जन्म लेते हैं, तो वे निर्मल, जल, बलगम, रक्त या किसी भी अशुद्धि से अपवित्र नहीं होते, बल्कि शुद्ध और बेदाग होते हैं। जैसे जब काशी के मलमल पर रत्न रखा जाता है, तो रत्न न तो मलमल को दूषित करता है और न ही मलमल रत्न को। ऐसा क्यों नहीं होता? क्योंकि दोनों ही शुद्ध होते हैं। ठीक उसी प्रकार बोधिसत्व निर्मल, जल, बलगम, रक्त या किसी भी अशुद्धि से अपवित्र नहीं होते, बल्कि शुद्ध और बेदाग होते हैं। यही नियम है।

"यह नियम है कि जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से प्रकट होते हैं, तो आकाश से जल की दो धाराएँ प्रकट होती हैं, एक ठंडी और दूसरी गर्म, जिनसे वे विधिपूर्वक बोधिसत्व और उनकी माता को स्नान कराते हैं। यही नियम है।"

"यह नियम है कि जन्म लेते ही बोधिसत्व उत्तर दिशा की ओर मुख करके दोनों पैरों पर दृढ़ता से खड़े हो जाते हैं, फिर सात कदम चलते हैं, और फिर एक सफेद छांव के नीचे चारों दिशाओं का अवलोकन करते हुए बैल के समान स्वर में घोषणा करते हैं, 'मैं संसार का मुखिया हूँ, संसार का सर्वोच्च हूँ, संसार का सबसे बड़ा हूँ। यह मेरा अंतिम जन्म है, अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। यही नियम है।'"

"यह नियम है कि जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से जन्म लेता है, तो इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा, तपस्वी और ब्राह्मण, राजकुमार और मनुष्य सभी उपस्थित होते हैं, एक असीम, तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है जो सबसे शक्तिशाली देवों की महिमा से भी बढ़कर होता है। यही नियम है।"

"जब राजकुमार विपस्सी का जन्म हुआ, तो भिक्षुओं ने उन्हें राजा बंधुमा को दिखाया और कहा,

"महाराज, आपके घर पुत्र का जन्म हुआ है। हे महाराज, कृपा करके उसे देखिए।" राजा ने राजकुमार की ओर देखा और फिर संकेतों में निपुण ब्राह्मणों से कहा:

"आप सज्जन संकेतों के ज्ञाता हैं। राजकुमार की जांच कीजिए।"

ब्राह्मणों ने राजकुमार की जांच की और राजा बंधुमा से कहा,

महाराज, प्रसन्न होइए, क्योंकि आपके घर एक महान पुत्र का जन्म हुआ है। महाराज, यह आपके लिए एक बड़ा लाभ है, महाराज, कि आपके परिवार में ऐसा पुत्र जन्मा है। महाराज, यह राजकुमार एक महान पुरुष के बत्तीस गुणों से संपन्न है। ऐसे व्यक्ति के लिए केवल दो ही मार्ग खुले हैं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह शासक बनेगा, धर्म का पालन करने वाला धर्मात्मा सम्राट, चारों दिशाओं का विजेता, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की है और सात रत्नों का स्वामी है। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं जो वीर हैं, वीर व्यक्तित्व वाले हैं, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले हैं। उसने इस सागर से घिरे देश को बिना लाठी या तलवार के, धर्म के द्वारा जीता है। लेकिन यदि वह गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करता है, तो वह अरहंत बन जाएगा, एक पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, जो संसार से पर्दा हटा देता है।

बुद्ध के बत्तीस (32) चिह्न

"और महाराज, ये बत्तीस महान व्यक्ति के लक्षण क्या हैं?"

I. उसके पैर समतल हैं।

II. उसके पैरों के तलवों पर हजार तीलियों वाले पहिए हैं

III. उसकी एड़ियाँ उभरी हुई हैं।

IV. उसकी उंगलियां और पैर की उंगलियां लंबी हैं।

V. उसके हाथ और पैर कोमल और मुलायम हैं।

VI. उसके हाथ और पैर जालीदार हैं (जालीदार?)

VII. उसके टखने बहुत ऊंचे हैं

VIII. उसके पैर हिरण जैसे हैं

IX. खड़े होकर और बिना झुके, वह अपने दोनों हाथों से अपने घुटनों को छू और रगड़ सकता है।

X. उसके पुरुष अंग एक आवरण में बंद हैं।

11. उसका रंग सुनहरा है, चमकदार।

XII. उसकी त्वचा इतनी कोमल और चिकनी है कि उस पर धूल भी नहीं चिपकती।

XIII. उसके शरीर के बाल अलग-अलग हैं, प्रत्येक रोमछिद्र पर एक-एक बाल है।

XIV. वे ऊपर की ओर बढ़ते हैं, नीले-काले रंग के, कॉलीरियम की तरह, दाहिनी ओर छल्ले में बढ़ते हैं।

XV. उनका शरीर ईश्वरीय रूप से सीधा है।

16. उसके पास सात उत्तल सतहें हैं।

सत्रहवीं। उसके शरीर का अगला भाग शेर के समान है।

XVIII. उसके कंधों के बीच कोई खोखलापन नहीं है।

XIX. उसका शरीर बरगद के पेड़ के समान है: उसकी ऊँचाई उसकी भुजाओं की लंबाई के बराबर है।

XX. उसका धड़ समरूप रूप से गोल है।

XXI. उसकी स्वाद की समझ एकदम उत्तम है।
XXII. उसके जबड़े शेर जैसे हैं
XXIII. उसके चालीस दांत हैं।
XXIV. उसके दांत समतुल्य हैं।
XXV. उसके दांतों के बीच कोई जगह नहीं है।
XXVI. उसके नुकीले दांत बहुत चमकीले हैं।
XXVII. उसकी जीभ बहुत लंबी है
XXVIII. उसकी आवाज ब्रह्मा जैसी है, जैसे कराविका पक्षी की आवाज होती है।
XXIX. उसकी आँखें गहरे नीले रंग की हैं।
XXX. उसकी पलकें गाय जैसी हैं।
XXXI. उसकी भौहों के बीच के बाल सफेद और रुई की तरह मुलायम हैं।
XXXII. उसका सिर शाही पगड़ी जैसा है।"

महाराज, यह राजकुमार एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों से संपन्न है। ऐसे व्यक्ति के लिए केवल दो ही मार्ग खुले हैं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे तो वह शासक बनेगा, धर्म का पालन करने वाला धर्मात्मा सम्राट, चारों दिशाओं का विजेता, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की है और सात रत्नों से परिपूर्ण है। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं जो वीर हैं, वीर व्यक्तित्व वाले हैं, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले हैं। उसने इस सागर से घिरे देश को बिना लाठी या तलवार के, धर्म के द्वारा जीता है। परन्तु यदि वह गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन व्यतीत करे तो वह अरहंत बनेगा, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध बनेगा, जो संसार से पर्दा हटा देगा।

तब राजा बंधुमा ने उन ब्राह्मणों को नए वस्त्र पहनाकर उनकी सभी मनोकामनाएं पूरी कर दीं।

और राजा बंधुमा ने राजकुमार विपस्सी के लिए दाइयों को नियुक्त किया। कुछ उन्हें दूध पिलाती थीं, कुछ उन्हें नहलाती थीं, कुछ उन्हें गोद में उठाती थीं, कुछ उन्हें झुलाती थीं। उन पर दिन-रात एक सफेद छत्र लगा रहता था, ताकि उन्हें सर्दी, गर्मी, घास या धूल से कोई नुकसान न हो। और राजकुमार विपस्सी लोगों के प्रिय थे। जैसे सभी लोग नीले, पीले या सफेद कमल को पसंद करते हैं, वैसे ही सभी लोग राजकुमार विपस्सी को प्यार करते थे। इस प्रकार उन्हें एक गोद से दूसरी गोद में ले जाया जाता था।

और राजकुमार विपस्सी की आवाज मधुर, सुंदर, मनमोहक और आनंददायक थी। जैसे हिमालय पर्वत में करविका पक्षी की आवाज अन्य सभी पक्षियों की तुलना में अधिक मधुर, सुंदर, मनमोहक और आनंददायक होती है, वैसे ही राजकुमार विपस्सी की आवाज भी उन सभी में सर्वश्रेष्ठ थी।

और पिछले कर्मों के फलस्वरूप, राजकुमार विपस्सी को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, जिससे वे दिन-रात एक मील दूर तक देख सकते थे।

"राजकुमार विपस्सी तैंतीस देवताओं की तरह अविचलित और सतर्क रहते थे। उनकी इसी सतर्कता के कारण उन्हें 'विपस्सी' कहा जाने लगा। जब राजा बंधुमा किसी मामले की सुनवाई करते थे, तो वे राजकुमार विपस्सी को अपनी गोद में बिठाकर मामले के बारे में समझाते थे। फिर, उन्हें गोद से उतारकर, उनके पिता उन्हें मामले की बारीकियों को विस्तार से बताते थे। इसी कारण उन्हें विपस्सी के नाम से और भी अधिक पुकारा जाने लगा।"

तब राजा बंधुमा ने राजकुमार विपस्सी के लिए तीन महल बनवाए, एक बरसाती मौसम के लिए, एक सर्दी के मौसम के लिए और एक गर्मी के मौसम के लिए, ताकि पांचों इंद्रिय सुखों का ध्यान रखा जा सके। राजकुमार विपस्सी बरसाती मौसम के चारों महीनों तक बरसाती महल में बिना किसी पुरुष सेवक के, महिला संगीतकारों से घिरे रहे और उन्होंने कभी भी वह महल नहीं छोड़ा।

[जन्म संबंधी अनुभाग का अंत]

फिर, हे भिक्षुओं, अनेक वर्षों के बाद, सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद, राजकुमार विपस्सी ने अपने सारथी से कहा, 'सारथी, कुछ सुंदर रथ तैयार करो! हम मनोरंजन उद्यान का निरीक्षण करने चलते हैं।' सारथी ने ऐसा ही किया और फिर राजकुमार को सूचना दी, 'महाराज, सुंदर रथ तैयार हैं, अब आप अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।' और राजकुमार विपस्सी रथ पर सवार होकर जुलूस के साथ मनोरंजन उद्यान की ओर चल दिए।

"जब राजकुमार विपस्सी को मनोरंजन उद्यान ले जाया जा रहा था, तो उन्होंने एक बूढ़े व्यक्ति को देखा, जो छत की कड़ी की तरह झुका हुआ था, टूटा हुआ, छड़ी के सहारे लड़खड़ाता हुआ, बीमार, जिसकी जवानी पूरी तरह गायब हो चुकी थी। उसे देखकर उन्होंने सारथी से कहा, "सारथी, इस आदमी को क्या हुआ है? इसके बाल अन्य पुरुषों जैसे नहीं हैं, इसका शरीर अन्य पुरुषों जैसा नहीं है।"

"'राजकुमार, बूढ़ा आदमी इसी को कहते हैं।'"

"'लेकिन उसे बूढ़ा आदमी क्यों कहा जाता है?'"

"'राजकुमार, उन्हें बूढ़ा इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनके पास जीने के लिए अधिक समय नहीं बचा है।'"

लेकिन क्या मैं बूढ़ा होने के लिए उत्तरदायी हूँ, और क्या मैं बुढ़ापे से मुक्त नहीं हूँ?

"'राजकुमार, हम दोनों बूढ़े होने के योग्य हैं, और बुढ़ापे से मुक्त नहीं हैं।'"

"'तो फिर, सारथी, आज के लिए इतना ही काफी है मनोरंजन पार्क में। अब महल में लौट आओ।'"
"'बहुत अच्छा, राजकुमार,' सारथी ने कहा और राजकुमार विपस्सी को महल में वापस ले आया। वहाँ पहुँचकर राजकुमार विपस्सी शोक और निराशा से व्याकुल हो गए और रोते हुए बोले, 'इस जन्म पर धिक्कार है, क्योंकि जो जन्म लेता है उसे बुढ़ापा अवश्य ही प्रकट होता है!'"
तब राजा बंधुमा ने सारथी को बुलवाया और कहा, 'राजकुमार ने आनंद उद्यान में खूब मजे किए? क्या वह वहाँ खुश नहीं थे?'
"महाराज, राजकुमार को वहां आनंद नहीं आया, वह वहां खुश नहीं थे।"
"'उसने रास्ते में क्या देखा?'"
"तब सारथी ने राजा को सारी घटना बताई।"
तब राजा बंधुमा ने सोचा, 'राजकुमार विपस्सी को सिंहासन नहीं छोड़ना चाहिए, उन्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में नहीं जाना चाहिए - संकेतों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें सच नहीं होनी चाहिए!' इसलिए राजा ने राजकुमार विपस्सी को पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का और अधिक आनंद लेने का प्रबंध किया, ताकि वे राज्य पर शासन करें और गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में न जाएं। इस प्रकार राजकुमार पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों में लिप्त और उनके आदी होकर जीवन व्यतीत करते रहे।
कई वर्षों बाद, सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद, राजकुमार विपस्सी ने अपने सारथी से कहा, 'सारथी, कुछ सुंदर रथ तैयार करो! हम मनोरंजन उद्यान का निरीक्षण करने चलते हैं।' सारथी ने ऐसा ही किया और फिर राजकुमार को सूचना दी, 'महाराज, सुंदर रथ तैयार हैं, अब आप अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।' और राजकुमार विपस्सी रथ पर सवार होकर जुलूस के साथ मनोरंजन उद्यान की ओर चल दिए।
"जब राजकुमार विपस्सी को मनोरंजन उद्यान ले जाया जा रहा था, तो उन्होंने एक बीमार व्यक्ति को देखा, जो बहुत कष्ट झेल रहा था, अपने ही मूत्र और मल में पड़ा हुआ था, और कुछ लोग उसे उठा रहे थे और कुछ उसे बिस्तर पर लिटा रहे थे। यह देखकर उन्होंने सारथी से कहा, 'इस आदमी को क्या हुआ है? इसकी आंखें अन्य पुरुषों जैसी नहीं हैं, इसका सिर अन्य पुरुषों जैसा नहीं है।'"
"राजकुमार, बीमार आदमी को यही कहते हैं।"
"लेकिन उसे बीमार आदमी क्यों कहा जाता है?"
"उन्हें राजकुमार इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे अपनी बीमारी से मुश्किल से ही उबर पाते हैं।"
"लेकिन क्या मैं बीमार होने के लिए उत्तरदायी हूँ, और क्या मैं बीमारी से मुक्त नहीं हूँ?"
"राजकुमार, हम दोनों बीमार पड़ सकते हैं, और बीमारी से मुक्त नहीं हैं।"
"'तो फिर, सारथी, आज के लिए इतना ही काफी है मनोरंजन पार्क में। अब महल में लौट आओ।'"
"'बहुत अच्छा, राजकुमार,' सारथी ने कहा और राजकुमार विपस्सी को महल में वापस ले आया। वहाँ पहुँचकर राजकुमार विपस्सी शोक और निराशा से व्याकुल हो गए और रोते हुए बोले, 'इस जन्म पर धिक्कार है, क्योंकि जो जन्म लेता है उसे बीमारी अवश्य प्रकट होती है!'"
तब राजा बंधुमा ने सारथी को बुलवाया और कहा, 'राजकुमार ने आनंद उद्यान में खूब मजे किए? क्या वह वहाँ खुश नहीं थे?'
"महाराज, राजकुमार को वहां आनंद नहीं आया, वह वहां खुश नहीं थे।"
"'उसने रास्ते में क्या देखा?'"
"तब सारथी ने राजा को सारी घटना बताई।"
तब राजा बंधुमा ने सोचा, 'राजकुमार विपस्सी को सिंहासन नहीं छोड़ना चाहिए, उन्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में नहीं जाना चाहिए - संकेतों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें सच नहीं होनी चाहिए!' इसलिए राजा ने राजकुमार विपस्सी को पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का और अधिक आनंद लेने का प्रबंध किया, ताकि वे राज्य पर शासन करें और गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में न जाएं। इस प्रकार राजकुमार पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों में लिप्त और उनके आदी होकर जीवन व्यतीत करते रहे।
कई वर्षों बाद, सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद, राजकुमार विपस्सी ने अपने सारथी से कहा, 'सारथी, कुछ सुंदर रथ तैयार करो! हम मनोरंजन उद्यान का निरीक्षण करने चलते हैं।' सारथी ने ऐसा ही किया और फिर राजकुमार को सूचना दी, 'महाराज, सुंदर रथ तैयार हैं, अब आप अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।' और राजकुमार विपस्सी रथ पर सवार होकर जुलूस के साथ मनोरंजन उद्यान की ओर चल दिए।
"और जब राजकुमार विपस्सी को मनोरंजन पार्क ले जाया जा रहा था, तो उन्होंने रंग-बिरंगे वस्त्र पहने और अर्थी लिए एक बड़ी भीड़ को इकट्ठा होते देखा। यह देखकर उन्होंने सारथी से कहा, 'ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं?'"
" 'राजकुमार, वे एक मृत व्यक्ति को यही कहते थे।'
"मुझे उस जगह ले चलो जहाँ मृत व्यक्ति है।"
“ ‘बहुत अच्छा, राजकुमार,’ सारथी ने कहा और उसने वैसा ही किया। राजकुमार विपस्सी ने मृत व्यक्ति के शव को देखा। फिर उसने सारथी से पूछा, ‘इसे मृत क्यों कहा जाता है?’”
"राजकुमार को मृत व्यक्ति कहा जाता है क्योंकि अब उसके माता-पिता और अन्य रिश्तेदार उसे फिर कभी नहीं देख पाएंगे, न ही वह उन्हें देख पाएगा।"
"लेकिन क्या मैं मृत्यु के अधीन हूँ, मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ?"
"राजकुमार, हम दोनों ही मृत्यु के अधीन हैं, इससे मुक्त नहीं हैं।"

"'तो फिर, सारथी, आज के लिए इतना ही काफी है मनोरंजन पार्क में। अब महल में लौट आओ।'"
"'बहुत अच्छा, राजकुमार,' सारथी ने कहा और राजकुमार विपस्सी को महल में वापस ले आया। वहाँ पहुँचकर राजकुमार विपस्सी शोक और निराशा से व्याकुल हो गए और रोते हुए बोले, 'इस जन्म पर धिक्कार है, क्योंकि जन्म लेने वाले को मृत्यु अवश्य प्राप्त होती है!'"
तब राजा बंधुमा ने सारथी को बुलवाया और कहा, 'राजकुमार ने आनंद उद्यान में खूब मजे किए? क्या वह वहाँ खुश नहीं थे?'
"महाराज, राजकुमार को वहां आनंद नहीं आया, वह वहां खुश नहीं थे।"
"'उसने रास्ते में क्या देखा?'"
"तब सारथी ने राजा को सारी घटना बताई।"
तब राजा बंधुमा ने सोचा, 'राजकुमार विपस्सी को सिंहासन नहीं छोड़ना चाहिए, उन्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में नहीं जाना चाहिए - संकेतों में पारंगत ब्राह्मणों की बातें सच नहीं होनी चाहिए!' इसलिए राजा ने राजकुमार विपस्सी को पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का और अधिक आनंद लेने का प्रबंध किया, ताकि वे राज्य पर शासन करें और गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में न जाएं। इस प्रकार राजकुमार पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों में लिप्त और उनके आदी होकर जीवन व्यतीत करते रहे।
कई वर्षों बाद, सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद, राजकुमार विपस्सी ने अपने सारथी से कहा, 'सारथी, कुछ सुंदर रथ तैयार करो! हम मनोरंजन उद्यान का निरीक्षण करने चलते हैं।' सारथी ने ऐसा ही किया और फिर राजकुमार को सूचना दी, 'महाराज, सुंदर रथ तैयार हैं, अब आप अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।' और राजकुमार विपस्सी रथ पर सवार होकर जुलूस के साथ मनोरंजन उद्यान की ओर चल दिए।
"जब राजकुमार विपस्सी को मनोरंजन उद्यान ले जाया जा रहा था, तो उन्होंने एक मुंडा हुआ सिर वाला व्यक्ति देखा, जो पीले रंग का वस्त्र पहने हुए आगे बढ़ रहा था। उन्होंने सारथी से कहा, 'उस आदमी को क्या हुआ है? उसका सिर अन्य पुरुषों जैसा नहीं है, और उसके वस्त्र भी अन्य पुरुषों जैसे नहीं हैं।'"
"'राजकुमार, उसे ही प्रस्थान करने वाला कहा जाता है।'"
"उसे 'प्रस्थान करने वाला' क्यों कहा जाता है?"
"राजकुमार, 'जिसने धर्म का अनुसरण किया है' से हमारा तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो वास्तव में धम्म का पालन करता है, जो वास्तव में शांति में रहता है, अच्छे कर्म करता है, पुण्य कर्म संपन्न करता है, हानिरहित है और वास्तव में जीवित प्राणियों के प्रति करुणा रखता है।"
"'सारथी, उसे ठीक ही 'प्रस्थान करने वाला' कहा जाता है—वह जो वास्तव में धम्म का अनुसरण करता है, जो वास्तव में शांति में रहता है, अच्छे कर्म करता है, पुण्य कर्म संपन्न करता है, निर्दोष है और वास्तव में जीवों के प्रति करुणा रखता है। रथ को उसके पास ले चलो।'
“ ‘बहुत अच्छा, राजकुमार,’ सारथी ने कहा और वैसा ही किया। और राजकुमार विपस्सी ने आगे जाने वाले व्यक्ति से प्रश्न किया।
"राजकुमार, एक सिद्ध पुरुष के रूप में मैं वास्तव में धम्म का अनुसरण करता हूँ...और जीवित प्राणियों के प्रति करुणा रखता हूँ।"
" 'तुम्हारा बुलावा बिल्कुल सही है, तुम आगे बढ़ चुके हो...'"
तब राजकुमार विपस्सी ने सारथी से कहा, 'तुम रथ लेकर महल वापस चले जाओ, लेकिन मैं यहीं रुकूंगा और अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लूंगा, पीले वस्त्र धारण करूंगा और गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करूंगा।'
“ ‘बहुत अच्छा, राजकुमार,’ सारथी ने कहा और महल लौट गया। और राजकुमार विपस्सी ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया।”
"राजधानी बंधुमती से चौरासी हजार लोगों की एक विशाल भीड़ ने सुना कि राजकुमार विपस्सी ने संन्यासी जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है। उन्होंने सोचा, 'यह कोई साधारण शिक्षा और अनुशासन नहीं है, कोई साधारण संन्यास नहीं है, जिसके लिए राजकुमार विपस्सी ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी जीवन व्यतीत किया है। यदि राजकुमार ने ऐसा किया है, तो हम क्यों न करें?' अतः चौरासी हजार भिक्षुओं की एक विशाल भीड़ ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके बोधिसत्व विपस्सी का अनुसरण करते हुए संन्यासी जीवन व्यतीत किया। और बोधिसत्व अपने अनुयायियों के साथ गांवों, कस्बों और राजसी नगरों में भ्रमण करने लगे।"
तब बोधिसत्व एक एकांत स्थान पर जाकर यह सोचने लगे, 'मेरे लिए इस तरह की भीड़ के साथ रहना उचित नहीं है। मुझे अकेले रहना चाहिए, इस भीड़ से अलग।' अतः कुछ समय बाद वे भीड़ छोड़कर अकेले रहने लगे। चौरासी हजार लोग एक दिशा में चले गए और बोधिसत्व दूसरी दिशा में।
फिर, जब बोधिसत्व एकांत स्थान पर अकेले अपने निवास में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने सोचा, "अफ़सोस, यह संसार दयनीय अवस्था में है: जन्म और मृत्यु है, मृत्यु है और अन्य अवस्थाओं में जाना और पुनर्जन्म है। और इस दुख, इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु से बचने का कोई रास्ता किसी को नहीं पता। इस दुख, इस वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति कब मिलेगी?"
"और फिर, भिक्षुओं, बोधिसत्व ने सोचा, "किस अस्तित्व के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु होती है? वृद्धावस्था और मृत्यु को कौन सी परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं?" और फिर, भिक्षुओं, गहन चिंतन से उत्पन्न ज्ञान के परिणामस्वरूप उन्हें यह अहसास हुआ, "जन्म के अस्तित्व के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, जन्म वृद्धावस्था और मृत्यु को प्रभावित करता है।"
फिर उन्होंने सोचा, “जन्म किन परिस्थितियों पर निर्भर करता है?” और उन्हें यह अहसास हुआ, “जन्म का निर्धारण होना ही जन्म का निर्धारण करता है”... “जन्म का निर्धारण किन परिस्थितियों पर निर्भर करता है?”... “आसक्ति जन्म का निर्धारण करती है।”... “लालसा आसक्ति का निर्धारण करती है।”... “इंद्रिय लालसा का निर्धारण करती है।”... “संपर्क भावना का निर्धारण करता है।”... “छह इंद्रिय

आधार संपर्क का निर्धारण करते हैं।"... "मन और शरीर छह इंद्रिय आधारों का निर्धारण करते हैं।"... "चेतना मन और शरीर का निर्धारण करती है।"... और फिर बोधिसत्व विपस्सी ने सोचा, "किस सत्ता की उपस्थिति में चेतना उत्पन्न होती है? चेतना किन परिस्थितियों पर निर्भर करती है?" और फिर, गहन चिंतन से प्राप्त ज्ञान के परिणामस्वरूप, उन्हें यह अहसास हुआ, "मन और शरीर चेतना का निर्धारण करते हैं।"

"फिर, भिक्षुओं, बोधिसत्व विपस्सी ने सोचा, 'यह चेतना मन और शरीर में ही सिमट जाती है, इससे आगे नहीं बढ़ती। यहीं तक जन्म और क्षय, मृत्यु और अन्य अवस्थाओं में गिरना और पुनर्जन्म होता है; अर्थात् मन-शरीर चेतना को नियंत्रित करते हैं, चेतना मन-शरीर को नियंत्रित करती है, मन-शरीर छह इंद्रियों को नियंत्रित करता है, छह इंद्रियों का संबंध स्पर्श से होता है, संपर्क संवेदना से, संवेदना लालसा से, लालसा आसक्ति से, आसक्ति जन्म से, जन्म जन्म से, जन्म वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और कष्ट से उत्पन्न होता है। और इस प्रकार यह संपूर्ण दुःख उत्पन्न होता है।" और 'उत्पत्ति, उत्पत्ति' के विचार से ही बोधिसत्व विपस्सी में उन चीजों की अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई जो उन्होंने पहले कभी अनुभव नहीं की थीं, ज्ञान, बुद्धि, जागरूकता और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

फिर उन्होंने सोचा, "अब किस बात के न रहने से वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती? किसके न रहने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है?" और फिर, गहन चिंतन से उत्पन्न ज्ञान के फलस्वरूप उन्हें यह अहसास हुआ, "जन्म के न रहने से वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जन्म के न रहने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है... किसके न रहने से जन्म का अंत होता है?... होने के न रहने से जन्म का अंत होता है... आसक्ति के न रहने से होने का अंत होता है... लालसा के न रहने से आसक्ति का अंत होता है... संवेदना के न रहने से लालसा का अंत होता है... स्पर्श के न रहने से संवेदना का अंत होता है... छह इंद्रियों के न रहने से स्पर्श का अंत होता है..."

"मन और शरीर के समाप्त होने के साथ ही छह इंद्रियों का भी अंत हो जाता है... चेतना के समाप्त होने के साथ ही मन और शरीर का अंत हो जाता है... मन और शरीर के समाप्त होने के साथ ही चेतना का भी अंत हो जाता है।"

तब बोधिसत्व विपस्सी ने सोचा, "मुझे ज्ञान प्राप्ति का अंतर्दृष्टि मार्ग मिल गया है, अर्थात्:

"मन और शरीर के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर समाप्त हो जाते हैं; मन और शरीर के समाप्त होने से छह इंद्रिय आधार समाप्त हो जाते हैं; छह इंद्रिय आधारों के समाप्त होने से संपर्क समाप्त हो जाता है; संपर्क के समाप्त होने से भावना समाप्त हो जाती है; भावना के समाप्त होने से लालसा समाप्त हो जाती है; लालसा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है; जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और कष्ट समाप्त हो जाते हैं। और इस प्रकार यह संपूर्ण दुःख समाप्त हो जाता है।" और 'समाप्ति, समाप्ति' के विचार से बोधिसत्वों में विपस्सी का उदय हुआ, जिन्हें पहले कभी अनुभव नहीं की गई चीजों की अंतर्दृष्टि, ज्ञान, दृष्टि, जागरूकता और प्रकाश प्राप्त हुआ।

"फिर, भिक्षुओं, एक समय बोधिसत्व विपस्सी पांच आसक्ति स्कंधों के उदय और पतन का चिंतन करते हुए, 'ऐसा शरीर है, ऐसा इसका उदय होता है, ऐसा इसका क्षय होता है; ऐसी भावना है... ऐसी बोध शक्ति है... ऐसी मानसिक संरचनाएं हैं... ऐसी चेतना है... ऐसा इसका उदय होता है... ऐसा इसका क्षय होता है।' और जब वे पांच आसक्ति स्कंधों के उदय और पतन का चिंतन करते रहे, तो कुछ ही समय में उनका मन पूर्णतः विकारों से मुक्त हो गया।"

[द्वितीय खंड का अंत]

तब भिक्षुओं, परम पूज्य भगवान, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध विपस्सी ने सोचा, "मान लीजिए कि अब मैं धम्म का उपदेश दूं?" फिर उन्होंने सोचा, "मैंने इस धम्म को प्राप्त कर लिया है, जो गहन, देखने में कठिन, समझने में कठिन, शांत, उत्कृष्ट, तर्क से परे, सूक्ष्म और केवल बुद्धिमानों द्वारा ही समझा जा सकता है। परन्तु यह पीढ़ी आसक्ति में आनंदित होती है, उसमें प्रसन्न होती है और उसमें मग्न रहती है। परन्तु जो लोग आसक्ति में इतना आनंदित होते हैं, उनके लिए यह विषय, अर्थात् वस्तुओं की बद्ध प्रकृति, या प्रतीत्यसमुत्पाद, देखना कठिन है। सभी मानसिक संरचनाओं का शांत होना, पुनर्जन्म के सभी आधारों का त्याग, व्यथा का कम होना, वैराग्य, निश्चिंतता और निर्वाण भी उतना ही कठिन होगा। और यदि मैं दूसरों को धम्म का उपदेश दूं और वे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए थकावट और कष्ट का कारण होगा।"

और भगवान बुद्ध विपस्सी को अनायास ही यह श्लोक सूझा, जो पहले कभी नहीं सुना गया था:

"जो मैंने हासिल किया है, उसका प्रचार क्यों करूं?"
जो लोग वासना और घृणा से भरे होते हैं, वे इसे कभी समझ नहीं सकते।
यह धम्म सूक्ष्म और गहन रूप से आगे बढ़ता है।
इसे देखना मुश्किल है, भावनाओं में अंधे लोग इसे नहीं देख सकते।

जब भगवान बुद्ध विपस्सी इस प्रकार चिंतन कर रहे थे, तब उनका मन धम्म का उपदेश देने के बजाय निष्क्रियता की ओर झुका हुआ था। हे भिक्षुओं, भगवान बुद्ध विपस्सी के विचार एक महान ब्रह्मा को मानसिक रूप से ज्ञात हो गए। और उन्होंने सोचा, "हाय, संसार नष्ट हो रहा है, यह इसलिए नष्ट हो जाएगा क्योंकि परम पूज्य भगवान विपस्सी, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध का मन धम्म का उपदेश देने के बजाय निष्क्रियता की ओर झुका हुआ है!"

"तब यह महान ब्रह्मा, एक बलवान पुरुष की मुड़ी हुई भुजा को जितनी तेज़ी से फैला सकते हैं, उतनी ही तेज़ी से ब्रह्मालोक से विलीन हो गए और भगवान बुद्ध विपस्सी के समक्ष प्रकट हुए। अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर और दाहिने घुटने पर बैठकर, उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध विपस्सी को प्रणाम किया और कहा, "हे भगवान, हे भगवान, हे उपकारक, हे भगवान, हे धर्म का उपदेश दें! कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों पर थोड़ी सी भी धूल नहीं है और वे धर्म का उपदेश न सुनकर नष्ट हो रहे हैं: वे धर्म के ज्ञाता बनेंगे!"

तब भगवान बुद्ध विपस्सी ने समझाया, "मैंने इस धम्म को प्राप्त कर लिया है, जो गहन, देखने में कठिन, समझने में कठिन, शांत, उत्कृष्ट, तर्क से परे, सूक्ष्म और केवल बुद्धिमानों द्वारा ही समझा जा सकता है। परन्तु यह पीढ़ी आसक्ति में आनंदित होती है, उसमें प्रसन्न होती है और उसमें मग्न रहती है। परन्तु जो लोग आसक्ति में इतना आनंदित होते हैं, उनके लिए यह विषय, अर्थात् वस्तुओं का बद्ध स्वरूप या आश्रित उत्पत्ति, देखना कठिन है। सभी मानसिक संरचनाओं का शांत होना, पुनर्जन्म के सभी आधारों का त्याग, व्यथा का कम होना, वैराग्य, निश्चिंतता और निर्वाण भी उतना ही कठिन होगा। और यदि मैं दूसरों को धम्म का उपदेश दूं और वे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए थकावट और कष्ट का कारण होगा।"

और ब्रह्मा ने भगवान बुद्ध विपस्सी से दूसरी और तीसरी बार शिक्षा देने का अनुरोध किया... तब भगवान बुद्ध विपस्सी ने ब्रह्मा के अनुरोध को पहचानते हुए और प्राणियों के प्रति करुणा से द्रवित होकर, बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों पर कम धूल थी और बहुत धूल थी, जिनकी इंद्रियाँ तेज थीं और सुस्त थीं, जिनका स्वभाव अच्छा था और बुरा, जिन्हें सिखाना आसान था और कठिन, और उनमें से कुछ पाप और परलोक के भय में जी रहे थे। और जैसे नीले, लाल या सफेद कमलों के तालाब में कुछ पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी को छोड़े बिना पानी में फलते-फूलते हैं, कुछ पानी में जन्म लेते हैं और सतह तक पहुँचते हैं, जबकि कुछ सतह पर पहुँचकर पानी से बाहर बढ़ते हैं और उससे अछूते रहते हैं, उसी प्रकार, भिक्षुओं, भगवान बुद्ध विपस्सी ने बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, कुछ प्राणियों को देखा जिनकी आँखों पर कम धूल थी और बहुत धूल थी, जिनकी इंद्रियाँ तेज थीं और सुस्त थीं, जिनका स्वभाव अच्छा था और बुरा, जिन्हें सिखाना आसान था और कठिन, और उनमें से कुछ पाप और परलोक के भय में जी रहे थे। पाप करने और परलोक के भय में जीना।

तब, उनके विचार को जानकर, महान ब्रह्मा ने भगवान बुद्ध विपस्सी को इन श्लोकों में संबोधित किया,

जैसे पहाड़ की चोटी पर खड़ा दर्शक नीचे लोगों को देखता है

इसलिए, हे ज्ञानवान व्यक्ति, सब कुछ देखते हुए, धम्म की ऊंचाइयों से नीचे देखो!

दुःख से मुक्त होकर, उन लोगों को देखो जो दुःख में डूबे हुए हैं, जन्म और वृद्धावस्था के बोझ से दबे हुए हैं।

उठो, वीर, युद्ध के विजेता, कारवां के नेता, संसार की यात्रा करो!

हे भगवान, धर्म का उपदेश दीजिए, और वे समझ जाएंगे।

और भगवान बुद्ध विपस्सी ने महान ब्रह्मा को श्लोकों में उत्तर दिया।

उनके लिए अमरता के द्वार खुले हैं!

जो लोग अब सुन रहे हैं, वे विश्वास प्रकट करें।

परेशानी के डर से मैंने पहले उपदेश नहीं दिया।

मनुष्यों के लिए उत्तम धर्म है, ब्रह्मा!

तब महान ब्रह्मा ने यह सोचकर कि "मैं ही भगवान बुद्ध विपस्सी के धम्म उपदेश का कारण रहा हूँ," भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से गुजरते हुए वहीं से विलीन हो गए।

तब भगवान बुद्ध विपस्सी ने सोचा, "मैं सबसे पहले किसे यह धम्म सिखाऊँ? इसे कौन जल्दी समझ पाएगा?" फिर उन्होंने सोचा, "राजधानी बंधुमती में राजा का पुत्र खंडा और पुरोहित का पुत्र तिस्सा रहते हैं। वे बुद्धिमान, विद्वान और अनुभवी हैं, और लंबे समय से उनकी आँखों पर धूल नहीं जमी है। यदि मैं अब पहले खंडा और तिस्सा को धम्म सिखाऊँ, तो वे इसे जल्दी समझ जाएँगे।" और इस प्रकार भगवान बुद्ध विपस्सी, एक बलवान व्यक्ति की मुड़ी हुई भुजा की तरह तेज़ी से, ज्ञान के उस वृक्ष की जड़ से वहीं से विलीन हो गए और बंधुमती की राजराजभूमि में खेमा के हिरण उद्यान में पुनः प्रकट हुए।

और भगवान बुद्ध विपस्सी ने उद्यान रक्षक से कहा, "रक्षक, बंधुमती जाओ और राजकुमार खंडा और पुरोहित के पुत्र तिस्सा से कहो, 'हे भगवान, परम पूज्य भगवान विपस्सी, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध बंधुमती आए हैं और खेमा के हिरण उद्यान में ठहरे हुए हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं।'"

"हे भगवान," पार्क के रखवाले ने कहा और जाकर संदेश पहुंचा दिया।

फिर खंडा और तिस्सा ने कुछ उत्तम रथों को जोतकर भंडुमती से खेमा के हिरण पार्क की ओर प्रस्थान किया। वे रथों में जहाँ तक जा सकते थे, गए, फिर उतरकर पैदल चलते हुए भगवान बुद्ध विपस्सी के पास पहुँचे। उनके पास पहुँचकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

और भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें उदारता, नैतिकता और स्वर्ग पर क्रमबद्ध प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने इंद्रिय इच्छाओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा त्याग के लाभ को दर्शाया। और जब भगवान बुद्ध विपस्सी को पता चला कि खंडा और तिस्सा का मन तैयार, लचीला, बाधाओं से मुक्त, आनंदित और शांत है, तब उन्होंने बुद्ध के विशेष उपदेश का संक्षेप में प्रवचन दिया: दुखों पर, उनके उद्गम, उनके निवारण और मार्ग पर। और जिस प्रकार एक साफ कपड़ा, जिससे सभी दाग हटा दिए गए हों, रंग को पूर्णतः ग्रहण करता है, उसी

प्रकार राजकुमार खंडा और पुरोहित के पुत्र तिस्सा में, जब वे वहाँ बैठे थे, शुद्ध और निष्कलंक धम्म दृष्टि जागृत हुई, और उन्होंने जाना: जिन चीजों का उद्‌गम होता है, उनका अंत अवश्य होता है।
और उन्होंने धम्म को देखकर, प्राप्त करके, अनुभव करके और उसमें पूर्णतः विलीन होकर, संदेह से परे होकर, दूसरों पर निर्भर हुए बिना गुरु के सिद्धांत में पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया, और फिर कहा,
हे परम पूज्य भगवान, परम पूज्य! ऐसा लगता है मानो कोई गिरी हुई चीज़ को उठा रहा हो, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा रहा हो, या किसी अंधेरी जगह में तेल का दीपक जला रहा हो ताकि देखने वाले वहाँ की चीज़ें देख सकें। ठीक इसी प्रकार, भगवान ने विभिन्न तरीकों से धम्म की व्याख्या की है। हम भगवान और धम्म की शरण में जाते हैं। भगवान के हाथों से हमें दीक्षा प्राप्त हो, हमें दीक्षा प्राप्त हो!
"इस प्रकार राजकुमार खंडा और पुरोहित के पुत्र तिस्सा ने भगवान बुद्ध विपस्सी के हाथों दीक्षा ग्रहण की और उन्हें दीक्षा प्राप्त हुई। तब भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें धम्म पर प्रवचन दिया, उन्हें प्रेरित किया, उनमें जोश भर दिया और उन्हें प्रसन्न किया, साथ ही उन्हें सांसारिक वस्तुओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा निर्वाण के लाभ को समझाया। इस प्रवचन से प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न होकर, कुछ ही समय में उनका मन पूर्णतः सभी विकारों से मुक्त हो गया।"
भंडुमती से चौरासी हजार लोगों की एक विशाल भीड़ ने सुना कि भगवान बुद्ध विपस्सी खेमा के हिरण पार्क में ठहरे हुए हैं, और खंडा और तिस्सा ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर तपस्वी जीवन में प्रवेश कर लिया है। उन्होंने सोचा: यह कोई साधारण शिक्षा और अनुशासन नहीं है, कोई साधारण संन्यास नहीं है, जिसके लिए राजकुमार खंडा और पुरोहित के पुत्र तिस्सा ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके तपस्वी जीवन में प्रवेश किया है। यदि वे भगवान बुद्ध विपस्सी की उपस्थिति में ऐसा कर सकते हैं, तो हम क्यों नहीं? अतः चौरासी हजार लोगों की यह विशाल भीड़ भंडुमती से खेमा के हिरण पार्क के लिए रवाना हुई, जहाँ भगवान बुद्ध विपस्सी ठहरे हुए थे। जब वे उनके पास पहुँचे, तो उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।
और भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें उदारता, नैतिकता और स्वर्ग पर क्रमबद्ध प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने इंद्रिय इच्छाओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा त्याग के लाभ को दर्शाया। जिस प्रकार एक साफ कपड़ा, जिससे सारे दाग हट गए हों, रंग को पूर्णतः ग्रहण करता है, उसी प्रकार उन चौरासी हजार लोगों में, जब वे वहाँ बैठे थे, शुद्ध और निष्कलंक धम्म दृष्टि उत्पन्न हुई, और उन्होंने जाना: जो भी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उनका अंत अवश्य होगा। और उन्होंने धम्म को देखकर, प्राप्त करके, अनुभव करके और उसमें पारंगत होकर, संदेह से परे होकर, दूसरों पर निर्भर हुए बिना गुरु के उपदेश में पूर्ण विश्वास प्राप्त करके कहा,
हे परम पूज्य भगवान, परम पूज्य! ऐसा लगता है मानो कोई गिरी हुई चीज़ को उठा रहा हो, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा रहा हो, या किसी अंधेरी जगह में तेल का दीपक जला रहा हो ताकि देखने वाले वहाँ की चीज़ें देख सकें। ठीक इसी प्रकार, भगवान ने विभिन्न तरीकों से धम्म की व्याख्या की है। हम भगवान और धम्म की शरण में जाते हैं। भगवान के हाथों से हमें दीक्षा प्राप्त हो, हमें दीक्षा प्राप्त हो!
और उन चौरासी हजार लोगों ने भगवान बुद्ध विपस्सी के हाथों दीक्षा ग्रहण की और उन्हें दीक्षा प्राप्त हुई। भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया, उनमें जोश भर दिया और उन्हें प्रसन्न किया, साथ ही उन्हें सांसारिक वस्तुओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा निर्वाण के लाभ को समझाया। इस प्रवचन से प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न होकर, कुछ ही समय में उनका मन पूर्णतः सभी विकारों से मुक्त हो गया।
तब चौरासी हजार लोगों ने, जो पहले से ही निकले हुए थे, सुना: भगवान बुद्ध विपस्सी भांडुमती आए हैं और खेमा के हिरण पार्क में धर्मोपदेश दे रहे हैं। अतः चौरासी हजार लोगों का यह विशाल समूह भांडुमती में खेमा के हिरण पार्क की ओर चल पड़ा, जहाँ भगवान बुद्ध विपस्सी ठहरे हुए थे। जब वे उनके पास पहुँचे, तो उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।
और भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें उदारता, नैतिकता और स्वर्ग पर क्रमबद्ध प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने इंद्रिय इच्छाओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा त्याग के लाभ को दर्शाया। जिस प्रकार एक साफ कपड़ा, जिससे सारे दाग हट गए हों, रंग को पूर्णतः ग्रहण करता है, उसी प्रकार उन चौरासी हजार लोगों में, जब वे वहाँ बैठे थे, शुद्ध और निष्कलंक धम्म दृष्टि उत्पन्न हुई, और उन्होंने जाना: जो भी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उनका अंत अवश्य होगा। और उन्होंने धम्म को देखकर, प्राप्त करके, अनुभव करके और उसमें पारंगत होकर, संदेह से परे होकर, दूसरों पर निर्भर हुए बिना गुरु के उपदेश में पूर्ण विश्वास प्राप्त करके कहा,
हे परम पूज्य भगवान, परम पूज्य! ऐसा लगता है मानो कोई गिरी हुई चीज़ को उठा रहा हो, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा रहा हो, या किसी अंधेरी जगह में तेल का दीपक जला रहा हो ताकि देखने वाले वहाँ की चीज़ें देख सकें। ठीक इसी प्रकार, भगवान ने विभिन्न तरीकों से धम्म की व्याख्या की है। हम भगवान और धम्म की शरण में जाते हैं। भगवान के हाथों से हमें दीक्षा प्राप्त हो, हमें दीक्षा प्राप्त हो!
और उन चौरासी हजार लोगों ने भगवान बुद्ध विपस्सी के हाथों दीक्षा ग्रहण की और उन्हें दीक्षा प्राप्त हुई। भगवान बुद्ध विपस्सी ने उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया, उनमें जोश भर दिया और उन्हें प्रसन्न किया, साथ ही उन्हें सांसारिक वस्तुओं के खतरे, पतन और भ्रष्टाचार तथा निर्वाण के लाभ को समझाया। इस प्रवचन से प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न होकर, कुछ ही समय में उनका मन पूर्णतः सभी विकारों से मुक्त हो गया।

उस समय राजमति में 6,800,000 भिक्षुओं का विशाल समूह एकत्रित था। जब भगवान बुद्ध विपस्सी एकांतवास में चले गए, तो उन्होंने सोचा, "राजधानी में भिक्षुओं का यह विशाल समूह एकत्रित है। मान लीजिए कि मैं उन्हें अनुमति दूं, 'हे भिक्षुओं, अनेकों के कल्याण, अनेकों के सुख, संसार के प्रति करुणा, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए विचरण करो। हे भिक्षुओं, दो-दो करके मत जाओ, बल्कि उस धम्म का प्रचार करो जो आरंभ में, मध्य में और अंत में सुंदर है, शाब्दिक और भाव दोनों में, और पूर्णतः परिपूर्ण पवित्र जीवन का प्रदर्शन करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आंखों पर थोड़ी सी भी धूल नहीं है और वे धम्म न सुनने के कारण नष्ट हो रहे हैं: वे धम्म के ज्ञाता बनेंगे। परन्तु ठीक छह वर्ष बाद तुम सब एक साथ राजमति में अनुशासन संहिता का पाठ करने के लिए एकत्रित होना।"
फिर एक महान ब्रह्मा ने भगवान बुद्ध विपस्सी के विचारों को जानकर, बलवान पुरुष की तरह शीघ्रता से ब्रह्मालोक से विमुख होकर भगवान बुद्ध विपस्सी के समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने अपना वस्त्र एक कंधे पर डाला और हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम करते हुए कहा, "हे भगवान, हे शुभचिंतक! भगवान इस विशाल समूह को संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए, अनेकों के कल्याण और सुख हेतु भ्रमण करने की अनुमति दें। वे दो-दो करके न जाएं, बल्कि उस धम्म का प्रचार करें जो आरंभ में, मध्य में और अंत में सुंदर है, अक्षर और भाव दोनों में, और पूर्ण एवं परिपूर्ण पवित्र जीवन का प्रदर्शन करें। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आंखों पर धूल भी कम है और वे धम्म न सुनने के कारण नष्ट हो रहे हैं: वे धम्म के ज्ञाता बनेंगे।" और हम भी भिक्षुओं की ही तरह करेंगे: छह साल के अंत में हम भंडुमती आएंगे और अनुशासन संहिता का पाठ करेंगे।
"ऐसा कहकर ब्रह्मा ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से गुजरते हुए वहीं से विलीन हो गए। तब भगवान बुद्ध विपस्सी ने अपने विश्राम काल के एकांतवास से बाहर आकर भिक्षुओं को घटना का विवरण दिया।"
"मैं आप भिक्षुओं को अनेकों के कल्याण, देवताओं और मनुष्यों के सुख-समृद्धि के लिए विदेश भ्रमण करने की अनुमति देता हूँ। हे भिक्षुओं, दो-दो करके मत जाओ, बल्कि उस धम्म का प्रचार करो जो आरंभ में, मध्य में और अंत में सुंदर है, शाब्दिक और भाव दोनों में, और पूर्णतः परिपूर्ण पवित्र जीवन का प्रदर्शन करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों पर थोड़ी सी भी धूल नहीं है और वे धम्म न सुनने के कारण नष्ट हो रहे हैं: वे धम्म के ज्ञाता बनेंगे। परन्तु ठीक छह वर्ष बाद आप सब एक साथ भंडुमती की राजराजधानी में अनुशासन संहिता का पाठ करने के लिए एकत्रित हों।" और उनमें से अधिकांश भिक्षु उसी दिन देश भ्रमण के लिए प्रस्थान कर गए।
उस समय जंबूद्वीप में चौरासी हजार धार्मिक निवास थे। एक वर्ष के अंत में देवता घोषणा करते थे: हे सज्जनों, एक वर्ष बीत गया, पाँच वर्ष शेष हैं। पाँच वर्ष पूरे होने पर आपको अनुशासन संहिता का पाठ करने के लिए भंडुमती लौटना है। और इसी प्रकार दो, तीन, चार, पाँच वर्ष पूरे होने पर भी। और जब छह वर्ष बीत गए, तो देवताओं ने घोषणा की: "हे सज्जनों, छह वर्ष बीत गए, अब अनुशासन संहिता का पाठ करने के लिए भंडुमती की राजराजधानी जाने का समय आ गया है!" और वे भिक्षु, कुछ अपनी स्वयं की मानसिक शक्तियों से, और कुछ देवताओं की शक्ति से, सभी एक ही दिन में अनुशासन संहिता का पाठ करने के लिए भंडुमती आ गए।
और फिर भगवान बुद्ध विपस्सी ने एकत्रित भिक्षुओं को निम्नलिखित उपदेश दिए:
धैर्य रखना ही सबसे बड़ा बलिदान है।
बुद्धों का कहना है कि निर्वाण सर्वोच्च है।
वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जो दूसरों को नुकसान पहुंचाता हो।
जो व्यक्ति दूसरों को हानि पहुंचाता है, वह तपस्वी नहीं रहता।
बुराई न करना बल्कि अच्छाई को बढ़ावा देना।
बुद्धों का उपदेश है कि मन को शुद्ध करना चाहिए।
अपमान न करना, हानि न पहुंचाना, नियमों के अनुसार संयम बरतना।
भोजन में संयम, निवास स्थान का एकांत,
उच्च चिंतन के प्रति समर्पण, यही बुद्धों की शिक्षा है।
"एक बार, भिक्षुओं, मैं सुभागा वन में एक विशाल साल के वृक्ष की तलहटी में स्थित उक्कत्था में ठहरा हुआ था। वहाँ एकांतवास करते हुए मुझे यह विचार आया: 'पवित्र लोकों के देवताओं के निवास स्थान की तरह कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ मैं इतने लंबे समय से न गया हो। मान लीजिए कि मैं अभी उनके पास जाऊँ?' और फिर जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फिर से मोड़ता है, उतनी ही तेज़ी से मैं उक्कत्था से विलीन हो गया और अविहा देवताओं के बीच प्रकट हुआ। और उनमें से हजारों मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर उन्होंने कहा:
"महोदय, बुद्ध विपस्सी के संसार में प्रकट हुए 91 युग बीत चुके हैं।"
भगवान बुद्ध विपस्सी का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ और वे एक क्षत्रिय परिवार में पले-बढ़े; वे कोंडन्ना कुल के थे; उनके समय में जीवन अवधि 80,000 वर्ष थी; उन्होंने तुरही पुष्प वृक्ष के नीचे पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया; उनके दो श्रेष्ठ शिष्य खंडा और तिस्सा थे; उनके तीन शिष्यों की सभाएँ थीं, एक में 6,800,000, दूसरी में एक लाख और तीसरी में 80,000 भिक्षु थे, ये सभी अरहंत थे; उनके मुख्य सेवक भिक्षु अशोक थे, उनके पिता राजा बंधुमा थे, उनकी माता रानी भंडुमती थीं और उनके पिता की राजराजधानी भंडुमती थी। भगवान बुद्ध विपस्सी का त्याग इस प्रकार था, उनका प्रस्थान इस प्रकार था, उनका प्रयास इस प्रकार था, उनका पूर्ण ज्ञान इस प्रकार था; उनका चक्र इस प्रकार था।

"और हम, महोदय, जिन्होंने भगवान बुद्ध विपस्सी के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत किया, इंद्रिय इच्छाओं से मुक्त होकर यहाँ अवतरित हुए हैं।"

"इसी प्रकार हजारों देव आए और उन्होंने कहा, 'हे भगवान, इस शुभ युग में, अब भगवान बुद्ध संसार में अवतरित हुए हैं। वे क्षत्रिय वंश के थे और एक क्षत्रिय परिवार में पले-बढ़े। वे गौतम कुल के थे। उनके समय में जीवनकाल अल्प, सीमित और शीघ्र बीतने वाला होता है: सौ वर्ष तक जीवित रहना दुर्लभ है। उन्होंने असत्थ वृक्ष के नीचे पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। उनके दो श्रेष्ठ शिष्य हैं, शारिपुत्र और मोग्गलाना। उनके शिष्यों की एक सभा है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, जो सभी अरहंत हैं। उनके मुख्य सेवक आनंद हैं। उनके पिता राजा शुद्धोदन हैं, उनकी माता रानी माया थीं और उनके पिता की राजराजमहल कपिलवस्तु है। भगवान का ऐसा ही त्याग था, उनका ऐसा ही प्रस्थान था, उनका ऐसा ही प्रयास था, उनका ऐसा ही पूर्ण ज्ञान था; उनका ऐसा ही चक्र था।" और हम, महोदय, जिन्होंने भगवान के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत किया है, अपनी इंद्रिय इच्छाओं से स्वयं को मुक्त करके, यहाँ अवतरित हुए हैं।

फिर मैं अविहा देवों के साथ अतप्पा देवों के दर्शन करने गया, फिर उनके साथ सुदस्सा देवों के दर्शन करने, फिर उनके साथ सुदस्सी देवों के दर्शन करने और फिर उन सभी के साथ अकनित्थ देवों के दर्शन करने गया। वहाँ हजारों देव आए, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर बोले, "हे भगवान, भगवान बुद्ध विपस्सी के संसार में प्रकट हुए 91 युग हो चुके हैं। भगवान बुद्ध विपस्सी क्षत्रिय वंश में जन्मे और क्षत्रिय परिवार में पले-बढ़े; वे कोंडन्ना कुल के थे; उनके समय में जीवनकाल 80,000 वर्ष था; उन्होंने तुरही पुष्प वृक्ष के नीचे पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया; उनके दो श्रेष्ठ शिष्य खंडा और तिस्सा थे; उनके तीन शिष्यों की सभाएँ थीं, एक में 6,800,000, एक में एक लाख और एक में 80,000 भिक्षु, ये सभी अरहंत थे; उनके प्रमुख निजी सेवक भिक्षु अशोक थे, उनके पिता राजा बंधुमा थे, उनकी माता रानी भंडुमती थीं और उनके पिता की राजराजभात भंडुमती थी। भगवान बुद्ध विपस्सी का त्याग ऐसा था, उनका प्रस्थान ऐसा था, उनका प्रयास ऐसा था, उनका पूर्ण ज्ञान ऐसा था; उनका चक्र ऐसा था।

"और हम, महोदय, जिन्होंने भगवान बुद्ध विपस्सी के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत किया, इंद्रिय इच्छाओं से मुक्त होकर यहाँ अवतरित हुए हैं।"

"इसी प्रकार हजारों देव आए और उन्होंने कहा, 'हे भगवान, इस शुभ युग में, अब भगवान बुद्ध संसार में अवतरित हुए हैं। वे क्षत्रिय वंश के थे और एक क्षत्रिय परिवार में जन्मे थे; वे गौतम कुल के थे; उनके समय में जीवनकाल अल्प, सीमित और शीघ्र बीतने वाला था: सौ वर्ष तक जीवित रहना दुर्लभ था। उन्होंने असत्थ वृक्ष के नीचे पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया; उनके दो श्रेष्ठ शिष्य थे, शारिपुत्र और मोग्गलाना; उनके शिष्यों की एक सभा थी, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु थे, जो सभी अरहंत थे; उनके मुख्य निजी सेवक आनंद थे; उनके पिता राजा शुद्धोदन थे, उनकी माता रानी माया थीं, और उनके पिता की राजराजकंद कपिलवस्तु थी। भगवान का ऐसा त्याग, ऐसा प्रस्थान, ऐसा प्रयास, ऐसा पूर्ण ज्ञान; ऐसा चक्र-चक्र।'" और हम, महोदय, जिन्होंने भगवान के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत किया है, अपनी इंद्रिय इच्छाओं से स्वयं को मुक्त करके, यहाँ अवतरित हुए हैं।

और इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तथागत धर्म के मूलभूत सिद्धांतों के गहन अध्ययन द्वारा उन पूर्व बुद्धों को याद करते हैं जिन्होंने अनेकता को भेदते हुए, मार्ग प्रशस्त करते हुए, जीवन चक्र को पूर्ण करते हुए, समस्त दुखों से मुक्त होकर अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है; वे उनके जन्म, उनके नाम, उनके कुल, उनकी आयु, उनके जुड़वां शिष्यों, उनके शिष्यों की सभाओं को याद करते हैं: "ये परम पूज्य बुद्ध इस प्रकार जन्मे, इस प्रकार नाम दिए गए, इस प्रकार उनका कुल था, इस प्रकार उनकी नैतिकता, उनका धर्म, उनका ज्ञान, उनका निवास स्थान था, इस प्रकार उनकी मुक्ति थी।"

इस प्रकार भगवान ने कहा, और भिक्षु उनके शब्दों से प्रसन्न होकर आनंदित हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.2 महा-निदान सुत्त(डीएन15)

अंतर्वस्तु

1आश्रित सह-उत्पत्ति
2वृद्धावस्था और मृत्यु
3बनना
4पकड़
5तीव्र इच्छा
6लालसा पर निर्भर
7अनुभूति
8संपर्क
9नाम और प्रपत्र
10चेतना
11स्वयं की रूपरेखा
12स्वयं की गैर-परिभाषाएँ
13स्वयं की मान्यताएँ
14चेतना के सात चरण
15आठ मुक्ति

आश्रित सह-उत्पत्ति

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कुरुओं के बीच रह रहे थे। कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ पूज्य आनंद भगवान के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान से कहा, "हे भगवान, यह कितना अद्भुत और विस्मयकारी है कि यह आश्रित सह-उत्पत्ति कितनी गहरी है, और इसका स्वरूप कितना गहरा है, फिर भी मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है।"

[बुद्ध:] "आनंद, ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो। यह आश्रित सह-उत्पत्ति गहरी है, और इसका स्वरूप भी गहरा है। इस धम्म को न समझने और इसमें प्रवेश न करने के कारण ही यह पीढ़ी उलझे हुए धागे, गांठदार रस्सी, उलझी हुई सरकंडों और नरकटों के समान है, और पुनर्जन्म से परे, अभाव, दुख और बुरे गंतव्यों के लोकों से परे नहीं जा पाती।"

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या वृद्धावस्था और मृत्यु के लिए कोई सिद्ध आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'बुढ़ापा और मृत्यु किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होते हैं?' तो उसे कहना चाहिए, 'बुढ़ापा और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि जन्म ही उनकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या जन्म के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'जन्म किस आवश्यक शर्त से आता है?' तो उसे कहना चाहिए, 'जन्म होने से आता है, क्योंकि यही उसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या किसी अस्तित्व के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'उत्पत्ति किस आवश्यक शर्त से आती है?' तो उसे कहना चाहिए, 'उत्पत्ति आसक्ति से आती है, जो इसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या आसक्ति के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'आसक्ति किस अनिवार्य शर्त से उत्पन्न होती है?' तो उसे कहना चाहिए, 'आसक्ति लालसा से उत्पन्न होती है, जो इसकी अनिवार्य शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या लालसा के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'इच्छा किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होती है?' तो उसे कहना चाहिए, 'इच्छा का उत्पन्न होना अनुभूति से उत्पन्न होता है, जो इसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या भावना के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'भावना किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होती है?' तो उसे कहना चाहिए, 'भावना संपर्क से उत्पन्न होती है, क्योंकि संपर्क ही इसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या संपर्क के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'संपर्क किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होता है?' तो उसे कहना चाहिए, 'संपर्क नाम और रूप से उत्पन्न होता है, जो इसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या नाम और स्वरूप के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'नाम और रूप किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होते हैं?' तो उसे कहना चाहिए, 'नाम और रूप चेतना से उत्पन्न होते हैं, जो इसकी आवश्यक शर्त है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'क्या चेतना के लिए कोई सिद्ध करने योग्य आवश्यक शर्त है?' तो उसे उत्तर देना चाहिए, 'हाँ, है।'

यदि किसी से पूछा जाए, 'चेतना किस आवश्यक शर्त से उत्पन्न होती है?' तो उसे कहना चाहिए, 'चेतना नाम और रूप से उत्पन्न होती है, जो इसकी आवश्यक शर्त है।'

"इस प्रकार, आनंद, नाम और रूप के अनिवार्य नियम से चेतना उत्पन्न होती है। चेतना के अनिवार्य नियम से नाम और रूप उत्पन्न होते हैं। नाम और रूप के अनिवार्य नियम से संपर्क उत्पन्न होता है। संपर्क के अनिवार्य नियम से भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य नियम से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा के अनिवार्य नियम से आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति के अनिवार्य नियम से जन्म उत्पन्न होता है। जन्म के अनिवार्य नियम से वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा उत्पन्न होती हैं। यही इस संपूर्ण तनाव का मूल है।"

वृद्धावस्था और मृत्यु

"'जन्म से ही वृद्धावस्था और मृत्यु अनिवार्य है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि जन्म से ही वृद्धावस्था और मृत्यु अनिवार्य है। यदि किसी भी प्रकार से, कहीं भी, किसी भी चीज का जन्म न हो—अर्थात, देवों का देवत्व अवस्था में, देवताओं का देवत्व अवस्था में, आत्माओं का आत्माओं अवस्था में, राक्षसों का राक्षस अवस्था में, मनुष्यों का मनुष्य अवस्था में, चौपायों का चौपायों अवस्था में, पक्षियों का पक्षी अवस्था में, नागों का नाग अवस्था में, या किसी भी प्राणी का अपनी मूल अवस्था में—जन्म के पूर्ण अभाव में, जन्म के रुकने से, क्या वृद्धावस्था और मृत्यु का बोध हो सकता है?"

"नहीं, भगवान।"

"अतः यही एक कारण है, यही एक वजह है, यही एक उत्पत्ति है, यही वृद्धावस्था और मृत्यु के लिए एक आवश्यक शर्त है, अर्थात् जन्म।"

जन्म "'जन्म एक आवश्यक शर्त के रूप में उत्पन्न होता है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि जन्म एक आवश्यक शर्त के रूप में कैसे उत्पन्न होता है। यदि किसी भी प्रकार से, कहीं भी, किसी भी चीज का कोई विकास न हो—अर्थात्, इंद्रियजन्य विकास, रूप विकास, या निराकार विकास—विकास की पूर्ण अनुपस्थिति में, विकास के रुकने से, क्या जन्म को समझा जा सकता है?"

"नहीं, भगवान।"

"अतः यही एक कारण है, यही एक तर्क है, यही एक उत्पत्ति है, यही जन्म के लिए एक आवश्यक शर्त है, अर्थात् बनना।"

बनना

"'आसक्ति को एक अनिवार्य शर्त मानने से ही विकास होता है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि आसक्ति को एक अनिवार्य शर्त मानने से ही विकास होता है। यदि किसी भी प्रकार से, कहीं भी, किसी भी चीज से आसक्ति न हो—अर्थात्, इंद्रियों से आसक्ति, नियमों और प्रथाओं से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, या आत्म-ज्ञान के सिद्धांतों से आसक्ति—तो आसक्ति के पूर्ण अभाव में, आसक्ति के समाप्त होने से ही, क्या विकास को समझा जा सकता है?"

"नहीं, भगवान।"

अत: यही कारण है, यही वजह है, यही उत्पत्ति है, यही होने की एक आवश्यक शर्त है, अर्थात् आसक्ति।

पकड़

"'आसक्ति की अनिवार्यता से आसक्ति उत्पन्न होती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि आसक्ति की अनिवार्यता से आसक्ति कैसे उत्पन्न होती है। यदि किसी भी प्रकार से, किसी भी चीज़ की, कहीं भी कोई आसक्ति न हो—अर्थात्, इंद्रिय सुख की आसक्ति, अस्तित्व की आसक्ति, अस्तित्वहीनता की आसक्ति—तो क्या आसक्ति का पूर्ण अभाव होने पर, आसक्ति के समाप्त होने पर, आसक्ति का पता लगाया जा सकता है?"

"नहीं, भगवान।"

अत: यही कारण है, यही वजह है, यही उत्पत्ति है, यही आसक्ति, अर्थात् लालसा के लिए एक आवश्यक शर्त है।

तीव्र इच्छा

"'इंद्रिय बोध एक आवश्यक शर्त है, जिससे लालसा उत्पन्न होती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि कैसे इंद्रिय बोध एक आवश्यक शर्त है, जिससे लालसा उत्पन्न होती है। यदि किसी भी प्रकार से, कहीं भी, किसी भी चीज का कोई भी अहसास न हो—अर्थात, आँख के संपर्क से उत्पन्न अहसास, कान के संपर्क से उत्पन्न अहसास, नाक के संपर्क से उत्पन्न अहसास, जीभ के संपर्क से उत्पन्न अहसास, शरीर के संपर्क से उत्पन्न अहसास, या बुद्धि के संपर्क से उत्पन्न अहसास—भावना के पूर्ण अभाव में, अहसास के समाप्त होने से, क्या लालसा को पहचाना जा सकता है?"

"नहीं, भगवान।"

अत: यही कारण है, यही वजह है, यही उत्पत्ति है, यही लालसा, अर्थात् भावना के लिए एक आवश्यक शर्त है।

लालसा पर निर्भर

"अब, लालसा भावना पर निर्भर है, खोज लालसा पर निर्भर है, प्राप्ति खोज पर निर्भर है, निर्धारण प्राप्ति पर निर्भर है, इच्छा और जुनून निर्धारण पर निर्भर हैं, आसक्ति इच्छा और जुनून पर निर्भर है, अधिकार भावना आसक्ति पर निर्भर है, कंजूसी अधिकार भावना पर निर्भर है, रक्षात्मकता कंजूसी पर निर्भर है, और रक्षात्मकता के कारण, जो रक्षात्मकता पर निर्भर है, विभिन्न बुराई और अकुशलतापूर्ण घटनाएं उत्पन्न होती हैं: लाठी और चाकू उठाना; संघर्ष, झगड़े और विवाद; आरोप लगाना, फूट डालने वाली बातें और झूठ।"

और इस तरह से यह समझा जा सकता है कि रक्षात्मकता के कारण ही विभिन्न प्रकार की बुरी और अकुशल घटनाएं उत्पन्न होती हैं: लाठी-चाकू उठाना; संघर्ष, झगड़े और विवाद; आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली बातें और झूठ। यदि कहीं भी, किसी भी प्रकार से, किसी भी चीज के प्रति रक्षात्मकता बिल्कुल न हो, तो क्या रक्षात्मकता के पूर्ण अभाव में, रक्षात्मकता के समाप्त होने से ही विभिन्न प्रकार की बुरी और अकुशल घटनाएं - लाठी-चाकू उठाना; संघर्ष, झगड़े और विवाद; आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली बातें और झूठ - उत्पन्न होंगी?

"नहीं, भगवान।"

"इस प्रकार यह एक कारण है, यह एक वजह है, यह एक उत्पत्ति है, यह विभिन्न बुराई, अकुशल घटनाओं के घटित होने के लिए एक आवश्यक शर्त है - लाठी और चाकू उठाना; संघर्ष, झगड़े और विवाद; आरोप, विभाजनकारी भाषण और झूठ - अर्थात् रक्षात्मकता।"

"'रक्षात्मकता कंजूसी पर निर्भर करती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि रक्षात्मकता कंजूसी पर कैसे निर्भर करती है। यदि कहीं भी, किसी भी रूप में, किसी भी चीज़ में बिल्कुल भी कंजूसी न हो, कंजूसी की पूर्ण अनुपस्थिति में, कंजूसी के समाप्त होने पर, क्या रक्षात्मकता को पहचाना जा सकेगा?"
"नहीं, भगवान।"
"अतः यही कारण है, यही वजह है, यही उत्पत्ति है, यही रक्षात्मकता, अर्थात् कंजूसी के लिए एक आवश्यक शर्त है।"
(इसी प्रकार, स्थितियों की श्रृंखला में पीछे की ओर देखें: कंजूसी, आसक्ति, अधिकार भावना, इच्छा और जुनून, निश्चितता, अधिग्रहण और खोज।)
"'खोज, भोग पर निर्भर है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि खोज, भोग पर कैसे निर्भर है। यदि किसी भी प्रकार की, किसी भी चीज़ की, कहीं भी कोई भोग न हो—अर्थात्, इंद्रिय भोग की भोग, अस्तित्व की भोग, अस्तित्वहीनता की भोग— भोग की पूर्ण अनुपस्थिति में, भोग के समाप्त होने पर, क्या खोज को समझा जा सकता है?"
"नहीं, भगवान।"
"अतः यही कारण है, यही तर्क है, यही उत्पत्ति है, यही खोज, अर्थात् लालसा के लिए आवश्यक शर्त है। अतः, आनंद, ये दो घटनाएँ [लालसा से जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु तक ले जाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला, और लालसा से कलह आदि तक ले जाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला], द्वैत के रूप में, अनुभूति में एक ही स्थान पर आकर मिल जाती हैं।"

अनुभूति
"'संपर्क एक आवश्यक शर्त है जिससे भावना उत्पन्न होती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि संपर्क एक आवश्यक शर्त कैसे है जिससे भावना उत्पन्न होती है। यदि किसी भी प्रकार से, किसी भी चीज का कहीं भी कोई संपर्क न हो—अर्थात, आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शरीर का संपर्क, या बुद्धि का संपर्क—संपर्क की पूर्ण अनुपस्थिति में, संपर्क के रुकने से, क्या भावना का अनुभव किया जा सकता है?"
"नहीं, भगवान।"
"अतः यही एक कारण है, यही एक वजह है, यही एक उत्पत्ति है, यही भावना, यानी संपर्क के लिए एक आवश्यक शर्त है।"

संपर्क
"'नाम और रूप के अनिवार्य शर्त होने से संपर्क उत्पन्न होता है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि नाम और रूप के अनिवार्य शर्त होने से संपर्क कैसे उत्पन्न होता है। यदि वे सभी गुण, लक्षण, विषय और संकेतक अनुपस्थित हों जिनके द्वारा नाम-समूह (मानसिक गतिविधि) का वर्णन किया जाता है, तो क्या रूप-समूह (भौतिक शरीर) के संबंध में पदनाम-संपर्क को पहचाना जा सकेगा?"
"नहीं, भगवान।"
"यदि वे सभी क्रमपरिवर्तन, संकेत, विषय और संकेतक अनुपस्थित हों जिनके द्वारा रूप-समूह का वर्णन किया जाता है, तो क्या नाम-समूह के संबंध में प्रतिरोध-संपर्क का पता लगाया जा सकेगा?"
"नहीं, भगवान।"
"यदि वे सभी क्रमपरिवर्तन, संकेत, विषय और संकेतक अनुपस्थित हों जिनके द्वारा नाम-समूह और रूप-समूह का वर्णन किया जाता है, तो क्या पदनाम-संपर्क या प्रतिरोध-संपर्क को पहचाना जा सकेगा?"
"नहीं, भगवान।"
"इस प्रकार यह एक कारण है, यह एक वजह है, यह एक उत्पत्ति है, यह संपर्क के लिए एक आवश्यक शर्त है, अर्थात् नाम और रूप।"

नाम और प्रपत्र
"'चेतना एक आवश्यक शर्त है जिससे नाम और रूप की उत्पत्ति होती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि चेतना एक आवश्यक शर्त के रूप में नाम और रूप की उत्पत्ति कैसे करती है। यदि चेतना माता के गर्भ में अवतरित न हो, तो क्या गर्भ में नाम और रूप का जन्म होगा?"
"नहीं, भगवान।"
"यदि गर्भ में उतरने के बाद चेतना चली जाए, तो क्या इस संसार के लिए नाम और रूप उत्पन्न होंगे?"
"नहीं, भगवान।"
"यदि किसी बालक या बालिका की चेतना को काट दिया जाए, तो क्या नाम और रूप परिपक्व होकर विकास करेंगे और परिपक्वता प्राप्त करेंगे?"
"नहीं, भगवान।"
"अतः यही एक कारण है, यही एक तर्क है, यही एक उत्पत्ति है, यही नाम और रूप, अर्थात् चेतना के लिए एक आवश्यक शर्त है।"

चेतना
"'नाम और रूप के अनिवार्य नियम से चेतना उत्पन्न होती है।' ऐसा कहा गया है। और यही वह तरीका है जिससे यह समझा जा सकता है कि नाम और रूप के अनिवार्य नियम से चेतना कैसे उत्पन्न होती है। यदि चेतना नाम और रूप में आधार न बनाए, तो क्या भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु और तनाव की उत्पत्ति का कोई प्रभाव देखा जा सकेगा?"
"नहीं, भगवान।"
"अतः यही एक कारण है, यही एक तर्क है, यही एक उत्पत्ति है, यही चेतना के लिए एक आवश्यक शर्त है, अर्थात् नाम और रूप।"
"जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, देहांत और पुनर्जन्म की यही सीमा है। नामकरण, अभिव्यक्ति और चित्रण के साधन इसी सीमा तक हैं। विवेक का दायरा इसी सीमा तक विस्तारित होता है, यह चक्र इस संसार की अभिव्यक्ति (विवेचनशीलता) के लिए घूमता है - अर्थात् नाम और रूप के साथ चेतना।"

स्वयं की रूपरेखा
"आनंद, आत्मा का वर्णन करते समय हम किस हद तक उसका वर्णन करते हैं? या तो जब हम सजीव और परिमित आत्मा का वर्णन करते हैं, तो हम कहते हैं कि 'मेरी आत्मा सजीव और परिमित है।' या जब हम सजीव और अनंत आत्मा का वर्णन करते हैं, तो हम कहते हैं कि 'मेरी आत्मा सजीव और अनंत है।' या जब हम निराकार और परिमित आत्मा का वर्णन करते हैं, तो हम कहते हैं कि 'मेरी आत्मा निराकार और परिमित है।' या जब हम निराकार और अनंत आत्मा का वर्णन करते हैं, तो हम कहते हैं कि 'मेरी आत्मा निराकार और अनंत है।'"
अब, जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन करते समय उसे रूप और परिमितता से युक्त बताता है, वह या तो उसे वर्तमान में रूप और परिमितता से युक्त बताता है, या इस प्रकार से कि वह [स्वाभाविक रूप से] [भविष्य में/मृत्यु के बाद] रूप और परिमितता से युक्त हो जाएगा, या वह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि रूप और परिमितता से युक्त स्वयं का एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त कर देता है।
जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन करते समय उसे रूप और अनंतता से युक्त बताता है, वह या तो उसे वर्तमान में रूप और अनंतता से युक्त बताता है, या इस प्रकार की प्रकृति का बताता है कि वह [स्वाभाविक रूप से] भविष्य में/मृत्यु के बाद रूप और अनंतता से युक्त हो जाएगी, या वह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि रूप और अनंतता से युक्त स्वयं के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त कर देता है।
जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन करते समय उसे निराकार और सीमित रूप में वर्णित करता है, वह या तो उसे वर्तमान में निराकार और सीमित रूप में वर्णित करता है, या इस प्रकार के स्वरूप में कि वह [स्वाभाविक रूप से] [भविष्य में/मृत्यु के बाद] निराकार और सीमित हो जाएगा, या वह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि निराकार और सीमित स्वयं के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त कर देता है।
जो व्यक्ति अपने आत्म का वर्णन करते समय उसे निराकार और अनंत के रूप में वर्णित करता है, वह या तो उसे वर्तमान में निराकार और अनंत के रूप में वर्णित करता है, या इस प्रकार के स्वरूप में कि वह [स्वाभाविक रूप से] [भविष्य में/मृत्यु के बाद] निराकार और अनंत हो जाएगा, या वह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि निराकार और अनंत आत्म की एक निश्चित धारणा उसे ग्रस्त कर देती है।

स्वयं की गैर-परिभाषाएँ
"आनंद, जब हम स्वयं का वर्णन नहीं करते, तो किस हद तक हम उसका वर्णन नहीं करते? या तो जब हम सजीव और परिमित स्वयं का वर्णन नहीं करते, तो हम यह वर्णन नहीं करते कि 'मेरा स्वयं सजीव और परिमित है।' या जब हम सजीव और अनंत स्वयं का वर्णन नहीं करते, तो हम यह वर्णन नहीं करते कि 'मेरा स्वयं सजीव और अनंत है।' या जब हम निराकार और परिमित स्वयं का वर्णन नहीं करते, तो हम यह वर्णन नहीं करते कि 'मेरा स्वयं निराकार और परिमित है।' या जब हम निराकार और अनंत स्वयं का वर्णन नहीं करते, तो हम यह वर्णन नहीं करते कि 'मेरा स्वयं निराकार और अनंत है।"
अब, जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन न करते समय उसे रूप और परिमितता से युक्त नहीं मानता, न ही उसे वर्तमान में रूप और परिमितता से युक्त मानता है, न ही उसे इस प्रकार का मानता है कि वह [स्वाभाविक रूप से] भविष्य में/मृत्यु के बाद रूप और परिमितता से युक्त हो जाएगा, और न ही वह यह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि रूप और परिमितता से युक्त स्वयं का एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त नहीं करता।
जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन न करते समय उसे रूप और अनंतता से युक्त नहीं मानता, न ही उसे वर्तमान में रूप और अनंतता से युक्त मानता है, न ही उसे इस प्रकार का मानता है कि वह भविष्य में/मृत्यु के बाद स्वाभाविक रूप से रूप और अनंतता से युक्त हो जाएगा, और न ही वह यह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि रूप और अनंतता से युक्त स्वयं के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त नहीं करता।

जो व्यक्ति स्वयं का वर्णन न करते समय उसे निराकार और सीमित नहीं मानता, न ही वर्तमान में उसे निराकार और सीमित मानता है, न ही उसे इस प्रकार का मानता है कि वह भविष्य में/मृत्यु के बाद स्वाभाविक रूप से निराकार और सीमित हो जाएगा, और न ही वह यह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि निराकार और सीमित स्वयं के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त नहीं करता।
जो व्यक्ति अपने भीतर की आत्मा का वर्णन करते समय उसे निराकार और अनंत के रूप में नहीं चित्रित करता, न ही उसे वर्तमान में निराकार और अनंत के रूप में चित्रित करता है, न ही उसे इस प्रकार का मानता है कि वह भविष्य में/मृत्यु के बाद स्वाभाविक रूप से निराकार और अनंत हो जाएगी, और न ही वह यह मानता है कि 'यद्यपि यह अभी ऐसा नहीं है, मैं इसे ऐसा बना दूंगा।' ऐसी स्थिति में, यह कहना उचित है कि निराकार और अनंत आत्मा के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण उसे ग्रस्त नहीं करता।

स्वयं की मान्यताएँ
"आनंद, जब हम स्वयं की कल्पना करते हैं, तो हम किस हद तक कल्पना करते हैं? भावना को स्वयं मानकर हम यह कल्पना करते हैं कि 'भावना ही मेरा स्वयं है' [या] 'भावना मेरा स्वयं नहीं है: मेरा स्वयं [भावना से] अनभिज्ञ है' [या] 'न तो भावना मेरा स्वयं है, न ही मेरा स्वयं भावना से अनभिज्ञ है, बल्कि मेरा स्वयं भावना को महसूस करता है, क्योंकि मेरा स्वयं भावना के अधीन है।'
अब, जो कहता है, 'भावना ही मेरा स्वरूप है,' उससे इस प्रकार पूछा जाना चाहिए: 'मेरे मित्र, ये तीन भावनाएँ हैं - सुख की भावना, दुख की भावना और न सुख की भावना, न दुख की भावना। इन तीनों भावनाओं में से आप किसे अपना स्वरूप मानते हैं?' जिस क्षण सुख की भावना का अनुभव होता है, उस समय न तो दुख की भावना होती है और न ही सुख की भावना, न दुख की भावना। उस क्षण केवल सुख की भावना ही अनुभव होती है। जिस क्षण दुख की भावना का अनुभव होता है, उस समय न तो सुख की भावना होती है और न दुख की भावना। उस क्षण केवल दुख की भावना ही अनुभव होती है। जिस क्षण न सुख की भावना होती है और न दुख की भावना, उस समय न तो सुख की भावना होती है और न दुख की भावना। उस क्षण केवल सुख की भावना होती है, न दुख की भावना।
सुख की अनुभूति अस्थिर, कृत्रिम, परिस्थितियों पर निर्भर, क्षणभंगुर, विघटनशील, लुप्त और क्षीण होने के अधीन है। दुख की अनुभूति भी अस्थिर, कृत्रिम, परिस्थितियों पर निर्भर, क्षणभंगुर, विघटनशील, लुप्त और क्षीण होने के अधीन है। सुख और दुख दोनों की अनुभूति अस्थिर, कृत्रिम, परिस्थितियों पर निर्भर, क्षणभंगुर, विघटनशील, लुप्त और क्षीण होने के अधीन है। सुख की अनुभूति को 'स्व' के रूप में अनुभव करने पर, अपनी ही सुख की अनुभूति के समाप्त होने के साथ ही 'स्व' नष्ट हो जाता है। दुख की अनुभूति को 'स्व' के रूप में अनुभव करने पर, अपनी ही दुख की अनुभूति के समाप्त होने के साथ ही 'स्व' नष्ट हो जाता है। सुख और दुख दोनों की अनुभूति को 'स्व' के रूप में अनुभव करने पर, अपनी ही सुख और दुख दोनों की अनुभूति के समाप्त होने के साथ ही 'स्व' नष्ट हो जाता है।
"इस प्रकार, जो कहता है, 'भावना ही मेरा स्वरूप है,' वह तात्कालिक वर्तमान में एक अस्थिर, सुख-दुख में उलझे हुए, उत्पन्न होने और नष्ट होने वाले स्वरूप को मानकर ऐसा करता है।" हे आनंद, इस प्रकार भावना को स्वरूप मानना उचित नहीं है।
जो व्यक्ति कहता है, 'भावना आत्मा नहीं है: मेरी आत्मा भावना से विरक्त है,' उसे इस प्रकार संबोधित किया जाना चाहिए: 'मेरे मित्र, जहाँ कुछ भी बिल्कुल भी महसूस (अनुभव) नहीं किया जाता है, क्या वहाँ 'मैं हूँ' का विचार होगा?'
"नहीं, भगवान।"
"इस प्रकार, आनंद, यह मानना उचित नहीं है कि 'भावना मेरा स्व नहीं है: मेरा स्व (भावना से) अनभिज्ञ है।'
जो व्यक्ति कहता है, 'न तो मेरी भावना मेरा अस्तित्व है, न ही मैं भावना से अनभिज्ञ हूँ, बल्कि मेरा अस्तित्व ही भावना को महसूस करता है, क्योंकि मेरा अस्तित्व भावना के अधीन है,' उससे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: 'मेरे मित्र, यदि भावनाएँ पूरी तरह से और हर तरह से बिना किसी अंश के समाप्त हो जाएँ, और भावनाएँ पूरी तरह से अस्तित्वहीन हो जाएँ, तो क्या 'मैं हूँ' का विचार भी अस्तित्व में रहेगा?'
"नहीं, भगवान।"
"इस प्रकार, आनंद, यह मानना उचित नहीं है कि 'न तो मेरा स्व भावहीन है, न ही मेरा स्व भावहीन है, बल्कि मेरा स्व भावहीन है, क्योंकि मेरा स्व भावहीन है।'
"आनंद, जब तक कोई भिक्षु भावना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को विस्मृत मानता है, और न ही यह मानता है कि 'मेरी आत्मा भावना के अधीन है,' तब तक वह इस प्रकार न मानते हुए संसार में किसी भी चीज से पोषित नहीं होता (किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता)। पोषित न होने पर वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने पर वह भीतर से पूर्णतः मुक्त होता है। वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'"
"यदि कोई इस प्रकार मुक्त मन वाले भिक्षु के विषय में यह कहे कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' तो यह गलत होगा; यह कहना कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'... यह कहना कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी'... यह कहना कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं' तो यह गलत होगा। क्यों? क्योंकि उन्होंने पदनाम की सीमा और पदनाम के विषय की सीमा, अभिव्यक्ति की सीमा और अभिव्यक्ति के विषय की सीमा, वर्णन की सीमा और वर्णन के विषय की सीमा, विवेक की सीमा और विवेक के विषय की सीमा, चक्र के घूमने की सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया है: इसे प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद भिक्षु मुक्त हो जाता है। [यह कहना कि] 'मुक्त भिक्षु, इसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर, न देखता है, न जानता है,' यह गलत होगा।"

चेतना के सात चरण
"आनंद, चेतना के ये सात स्तर और दो क्षेत्र हैं। वे कौन से सात हैं?"
"शरीर और धारणाओं की विविधता वाले प्राणी हैं, जैसे मनुष्य, कुछ देवता और कुछ निम्न लोकों के प्राणी। यह चेतना का पहला स्तर है।"
"शरीर की विविधता तथा बोध की विलक्षणता वाले प्राणी हैं, जैसे कि प्रथम [ध्यान] द्वारा उत्पन्न ब्रह्म सेना के देव और अभाव के चार लोकों में कुछ प्राणी। यह चेतना का दूसरा स्तर है।"
"ऐसे प्राणी हैं जिनका शरीर विलक्षण है और धारणाओं में विविधता है, जैसे कि तेजस्वी देव। यह चेतना का तीसरा स्तर है।"
"ऐसे प्राणी हैं जिनका शरीर और बोध विलक्षण है, जैसे कि सुंदर तेजस्वी देव। यह चेतना का चौथा स्तर है।"
"ऐसे प्राणी हैं जो भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने के साथ-साथ विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम तक पहुँच जाते हैं। यही चेतना का पाँचवाँ स्तर है।"
"ऐसे प्राणी हैं जो अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' का अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम तक पहुँचते हैं। यह चेतना का छठा स्तर है।"
"ऐसे प्राणी हैं जो चेतना की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम तक पहुँच जाते हैं। यह चेतना का सातवाँ स्तर है।"
"एक आयाम उन प्राणियों का है जिन्हें अनुभूति नहीं होती, और दूसरा आयाम वह है जिसमें न अनुभूति होती है और न अनुभूति। [ये दो क्षेत्र हैं।]"
अब, चेतना के प्रथम स्तर की बात करें तो— शरीर और धारणाओं की विविधता वाले प्राणी, जैसे मनुष्य, कुछ देवता और कुछ निम्न लोकों के प्राणी: यदि कोई उस [चेतना के स्तर] को जान ले, उसकी उत्पत्ति को जान ले, उसके क्षय को जान ले, उसके आकर्षण को जान ले, उसकी कमियों को जान ले और उससे मुक्ति के मार्ग को जान ले, तो क्या उस [समझ] के माध्यम से उसमें आनंद लेना उचित होगा?
"नहीं, भगवान।"
(इसी प्रकार चेतना के शेष सभी स्तरों और दो क्षेत्रों के साथ भी।)
"आनंद, जब चेतना के इन सात स्तरों और दो लोकों की उत्पत्ति, क्षय, आकर्षण, कमियों और उनसे मुक्ति को - उनके वास्तविक स्वरूप में - जान लेता है, तो एक भिक्षु आसक्ति के अभाव के कारण मुक्त हो जाता है, उसे विवेक के माध्यम से मुक्त भिक्षु कहा जाता है।"

आठ मुक्ति
"आनंद, ये आठ मुक्ति हैं। कौन सी आठ?"
"रूप से युक्त होने पर, व्यक्ति रूपों को देखता है। यही पहली मुक्ति है।"
"आंतरिक रूप से रूप का बोध न होने पर, व्यक्ति बाह्य रूप से रूपों को देखता है। यही दूसरी मुक्ति है।"
"व्यक्ति का ध्यान केवल सुंदरता पर केंद्रित होता है। यही तीसरी मुक्ति है।"
भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने पर, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, व्यक्ति अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसी में स्थिर रहता है। यही चौथी मुक्ति है।
"अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, व्यक्ति चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही पाँचवीं मुक्ति है।"
चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, व्यक्ति शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही छठी मुक्ति है।
"शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करने पर, व्यक्ति उस आयाम में प्रवेश करता है और बना रहता है जहाँ न तो अनुभूति होती है और न ही अनुभूति। यही सातवीं मुक्ति है।"
"जब व्यक्ति न तो अनुभूति और न ही अनुभूति के आयाम से पूरी तरह परे हो जाता है, तो वह अनुभूति और अनुभूति की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही आठवीं मुक्ति है।"
जब कोई भिक्षु इन आठ मुक्ति को क्रमानुसार, विपरीत क्रम में, और दोनों ही क्रम में प्राप्त कर लेता है, जब वह इन्हें प्राप्त कर लेता है और जहाँ चाहे, जैसे चाहे और जब तक चाहे इनसे मुक्त हो जाता है, जब मानसिक मंथनों के अंत से वह मंथन-मुक्त जागरूकता और विवेक की मुक्ति में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, और इसे प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान क्षण में जान लेता है और अनुभव कर लेता है,

तब उसे दोनों प्रकार से मुक्त भिक्षु कहा जाता है। और इससे भी उच्चतर या अधिक उत्कृष्ट दोनों प्रकार की मुक्ति का कोई और रूप नहीं है।
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.3 महा-परिनिब्बान सुत्त(डीएन16)

अंतर्वस्तु
1भाग एक: मगध में
2किसी राष्ट्र के कल्याण की शर्त
3भिक्षुओं का कल्याण
4सात अच्छे गुण
5ज्ञानोदय के सात कारक
6सात धारणाएँ
7याद रखें उपयुक्त छह स्थितियाँ
8भिक्षुओं को परामर्श
9सारिपुत्त की सिंह गर्जना
10नैतिकता और नैतिक जीवन के फल
11गंगा पार करना
12भाग दो: वेसालि की यात्रा
13चार आर्य सत्य
14चार विशिष्ट उपलब्धियाँ
15धम्म का दर्पण
16जागरूकता और स्पष्ट समझ
17अंबापाली और लिच्छवी
18भगवान की जन्मजात बीमारी
19भाग तीन: जीने की इच्छा का त्याग
20भगवान की प्रेरणा
21मारा की अपील
22भगवान ने जीव की इच्छा का त्याग कर दिया।
23भूकंप के आठ कारण
24आठ विधानसभाएं
25बट के आठ क्षेत्र
26आठ सदस्यता
27मारा का पूर्व चुनाव
28आनंद की अपील
29अंतिम चेतावनी
30भाग चार: अंतिम भोजन
31हाथी की नज़र
32बुद्ध का अंतिम भोजन
33पुक्कुसा द मल्ला
34कुंडा के ऑटोमोबाइल को दूर करना
35भाग पाँच: कुसिनारा में
36अंतिम विश्राम स्थल
37देवताओं का शोक
38आनंद की चिंता
39चार तीर्थस्थल
40आनंद का शोक

41आनंद की प्रशंसा
42कुशीनारा का अतीत का गौरव
43मेलों का विलाप
44अन्तिम धर्मान्तरित
45शेर की दहाड़
46भाग छह: मृत्यु
47भगवान का अंतिम उपदेश
48भगवान बुद्ध निर्वाण कैसे प्राप्त हुआ
49दुनिया की प्रतिध्वनि
50मूलनिवासी को श्रद्धांजलि
51बस्ती का विभाजन

भाग एक: मगध में

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान राजगृह में, गिद्ध शिखर नामक पहाड़ी पर निवास कर रहे थे। उस समय मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेही रानी के पुत्र थे, ने वज्जियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने इस प्रकार कहा, "ये वज्जी चाहे कितने भी शक्तिशाली और गौरवशाली क्यों न हों, मैं उनका संहार करूँगा, मैं उन्हें नष्ट कर दूँगा, मैं उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर दूँगा।"

2. मगध के राजा अजातसत्तु ने अपने प्रधान मंत्री, ब्राह्मण वस्सकारा को संबोधित करते हुए कहा, “हे ब्राह्मण, भगवान बुद्ध के पास जाइए, मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम कीजिए, उनके अच्छे स्वास्थ्य, शक्ति, आराम, शक्ति और सुख की कामना कीजिए और उनसे इस प्रकार कहिए: ‘हे भगवान, मगध के राजा अजातसत्तु वज्जियों के विरुद्ध युद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने इस प्रकार कहा है: “ये वज्जी, चाहे कितने भी शक्तिशाली और गौरवशाली क्यों न हों, मैं उनका संहार करूँगा, मैं उन्हें नष्ट कर दूँगा, मैं उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर दूँगा।”’ और भगवान बुद्ध जो भी उत्तर दें, उसे अच्छी तरह से याद रखिए और मुझे बताइए; क्योंकि तथागत झूठ नहीं बोलते।”

3. "महाराज, बहुत अच्छा," मगध के राजा अजातसत्तु की बात मानते हुए ब्राह्मण वस्साकरा ने सहमति व्यक्त की। उन्होंने अनेक भव्य रथ तैयार करने का आदेश दिया, स्वयं एक रथ पर सवार हुए और बाकी लोगों के साथ गिद्ध शिखर की ओर राजगृह के लिए रवाना हुए। वे रथ से जहाँ तक जा सकते थे, गए, फिर रथ से उतरकर पैदल ही भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। भगवान बुद्ध से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन करने और कई मधुर बातें कहने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: "आदरणीय गौतम, मगध के राजा अजातसत्तु, आपके चरणों में प्रणाम करते हैं और उनके अच्छे स्वास्थ्य, शक्ति, आराम, शक्ति और सुख की कामना करते हैं। वे वज्जियों के विरुद्ध युद्ध करना चाहते हैं और उन्होंने इस प्रकार कहा है: 'ये वज्जी, चाहे कितने भी शक्तिशाली और गौरवशाली क्यों न हों, मैं उनका संहार करूँगा, मैं उन्हें नष्ट कर दूँगा, मैं उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर दूँगा।'"

किसी राष्ट्र के कल्याण की शर्तें

4. उस समय पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे, और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: "आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी लोग अक्सर सभाएँ करते हैं, और क्या उनकी सभाओं में पर्याप्त लोग आते हैं?"

"मैंने सुना है, भगवान, कि ऐसा ही है।"

"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"

"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी शांतिपूर्वक एकत्रित और विलीन होते हैं और सद्भाव से अपने मामलों को निपटाते हैं?"

"मैंने सुना है, भगवान, कि वे ऐसा करते हैं।"

"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"

"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी न तो नए फरमान जारी करते हैं और न ही मौजूदा फरमानों को रद्द करते हैं, बल्कि अपने प्राचीन संविधानों के अनुसार ही कार्य करते हैं?"

"मैंने सुना है, भगवान, कि वे ऐसा करते हैं।"

"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"

"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी अपने बड़ों के प्रति आदर, सम्मान और श्रद्धा दिखाते हैं और उनकी बात सुनना उचित समझते हैं?"

"मैंने सुना है, भगवान, कि वे ऐसा करते हैं।"

"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"

"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी लोग अच्छे परिवारों की महिलाओं और युवतियों का अपहरण करने और उन्हें बंदी बनाने से परहेज करते हैं?"

"मैंने सुना है, भगवान, कि वे ऐसा करने से परहेज करते हैं।"
"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"
"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी लोग अपने मंदिरों के प्रति, चाहे वे शहर के अंदर हों या बाहर, आदर, सम्मान और श्रद्धा का भाव रखते हैं, और क्या वे उन्हें पहले की तरह उचित भेंट चढ़ाने से वंचित नहीं करते?"
"मैंने सुना है, भगवान, कि वे अपने मंदिरों का आदर करते हैं, और उन्हें अपनी भेंटों से वंचित नहीं करते हैं।"
"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों का पतन नहीं, बल्कि उनकी वृद्धि अपेक्षित है।"
"आनंद, तुमने क्या सुना है: क्या वज्जी अरहतों की विधिवत रक्षा और सुरक्षा करते हैं, ताकि जो अभी तक उस लोक में नहीं आए हैं वे आ सकें और जो पहले ही आ चुके हैं वे वहां शांति से रह सकें?"
"मैंने सुना है, भगवान, कि वे ऐसा करते हैं।"
"जब तक, आनंद, यही स्थिति बनी रहेगी, वज्जियों की वृद्धि अपेक्षित है, न कि उनका पतन।"
5. भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण वस्सकारा को इन शब्दों में संबोधित किया: "हे ब्राह्मण, एक बार मैं वैशाली में सरंददा मंदिर में निवास कर रहा था, और वहीं मैंने वज्जियों को राष्ट्र के कल्याण के लिए इन सात सिद्धांतों का उपदेश दिया था। हे ब्राह्मण, जब तक ये सिद्धांत वज्जियों में बने रहेंगे, और वज्जी इसी के लिए जाने जाते रहेंगे, तब तक उनकी उन्नति निश्चित है, उनका पतन नहीं।"
तब ब्राह्मण वस्साकर ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम बुद्ध, यदि वज्जियों को कल्याणकारी इन गुणों में से केवल एक भी गुण प्राप्त हो जाए, तो उनकी उन्नति निश्चित है, पतन नहीं। तो फिर इन सातों गुणों का क्या? वास्तव में, मगध के राजा अजातसत्तु द्वारा वज्जियों को युद्ध में छल या कलह के अलावा कोई हानि नहीं पहुंचाई जा सकती। अच्छा, हे गौतम बुद्ध, हम अब चलते हैं, क्योंकि हमें बहुत कार्य करना है।"
"अब आप वही करें जो आपको उचित लगे, ब्राह्मण।" और मगध के प्रधान मंत्री ब्राह्मण वस्साकरा ने भगवान बुद्ध के शब्दों को स्वीकार करते हुए और उनसे प्रसन्न होकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया।

भिक्षुओं का कल्याण

6. फिर, वासकारा के जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को इस प्रकार संबोधित किया: "अब जाओ, आनंद, और राजगृह के चारों ओर जितने भिक्षु रहते हैं, उतने भिक्षुओं को सभा भवन में एकत्रित करो।"
"बहुत अच्छा, भगवान।" और पूज्य आनंद ने जैसा उनसे कहा गया था वैसा ही किया और भगवान को सूचित किया: "भिक्षुओं का समुदाय एकत्रित हो गया है, भगवान। अब भगवान अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।"
तब भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे, सभा-गृह में गए, वहाँ अपने निर्धारित स्थान पर बैठे और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली सात अवस्थाओं का वर्णन करूँगा। मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"
भिक्षुओं की वृद्धि अपेक्षित है, न कि उनका पतन, हे भिक्षुओं, जब तक वे नियमित रूप से और बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं; शांतिपूर्वक मिलते-जुलते हैं और संघ के कार्यों में सामंजस्य बनाए रखते हैं; जब तक वे कोई नए नियम नहीं बनाते और मौजूदा नियमों को समाप्त नहीं करते, बल्कि निर्धारित प्रशिक्षण संहिता (विनय) के अनुसार कार्य करते हैं; जब तक वे वरिष्ठ भिक्षुओं, दीर्घकालीन भिक्षुओं, दिवंगत भिक्षुओं, संघ के पिताओं और नेताओं के प्रति आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं और उनकी बातों को सुनना उचित समझते हैं; जब तक वे नवजीवन की लालसा के वश में नहीं आते; जब तक वे वन की गहराइयों को अपना निवास स्थान मानते हैं; जब तक वे स्वयं को सजगता में स्थापित करते हैं, ताकि संघ के वे गुणी भाई जो अभी तक नहीं आए हैं, वे भी आ सकें और जो आ चुके हैं वे शांति से रह सकें; हे भिक्षुओं, जब तक भिक्षुओं और संघ के बीच कल्याणकारी ये सात स्थितियाँ बनी रहती हैं। भिक्षुओं की यही विशेषता है, उनकी प्रगति अपेक्षित है, उनकी गिरावट नहीं।
7. "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली सात और शर्तें बताऊंगा। ध्यान से सुनो और जो मैं कह रहा हूं उस पर गौर करो।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"
भिक्षुओं का उत्थान होना निश्चित है, पतन नहीं। यह तब तक संभव है जब तक वे कर्मकांड, वार्ता, नींद और संगति में आनंद न लें, उनसे प्रसन्न न हों और उनके प्रति आसक्ति न रखें; जब तक वे बुरी इच्छाओं के वश में न हों; उनके बुरे मित्र, सहयोगी या साथी न हों; और जब तक वे किसी तुच्छ उपलब्धि के कारण अपने मार्ग में न रुकें। हे भिक्षुओं, जब तक ये सात गुण जो कल्याण की ओर ले जाते हैं, भिक्षुओं में बने रहते हैं और भिक्षु इसी गुण के लिए जाने जाते हैं, तब तक उनका उत्थान होना निश्चित है, पतन नहीं।

सात अच्छे गुण

8. "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली सात और शर्तें बताऊंगा। ध्यान से सुनो और जो मैं कह रहा हूँ उस पर गौर करो।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"

भिक्षुओं का पतन नहीं, बल्कि उनकी उन्नति अपेक्षित है। हे भिक्षुओं, जब तक उनमें आस्था रहेगी, जब तक उनमें नैतिक लज्जा और दुराचार का भय रहेगा, जब तक वे विद्या में निपुण, दृढ़, सचेत और बुद्धिमान रहेंगे। हे भिक्षुओं, जब तक कल्याणकारी ये सात गुण भिक्षुओं में विद्यमान रहेंगे और भिक्षु इन गुणों के लिए जाने जाएंगे, तब तक उनकी उन्नति अपेक्षित है, न कि उनका पतन।

ज्ञानोदय के सात कारक

9. "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली सात और शर्तें बताऊंगा। मेरी बातों को ध्यान से सुनो और समझो।"

"ऐसा ही हो, भगवान।"

भिक्षुओं का पतन नहीं, बल्कि उनकी उन्नति ही अपेक्षित है, जब तक वे ज्ञानोदय के सात कारकों का अभ्यास करते हैं, अर्थात्: सजगता, घटनाओं का अन्वेषण, ऊर्जा, आनंद, शांति, एकाग्रता और समभाव। जब तक ये सात गुण जो कल्याण की ओर ले जाते हैं, भिक्षुओं में बने रहते हैं और भिक्षु इसके लिए जाने जाते हैं, तब तक उनकी उन्नति ही अपेक्षित है, न कि उनका पतन।

सात धारणाएँ

10. "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली सात और शर्तें बताऊंगा। ध्यान से सुनो और जो मैं कह रहा हूं उस पर गौर करो।"

"ऐसा ही हो, भगवान।"

भिक्षुओं का पतन नहीं, बल्कि उनकी उन्नति ही अपेक्षित है, जब तक वे अनित्यता, अहंकारहीनता, शरीर की अशुद्धता, शरीर की दयनीयता, त्याग, वैराग्य और निश्चिंतता का ज्ञान विकसित करते हैं। जब तक ये सात गुण, जो कल्याण की ओर ले जाते हैं, भिक्षुओं में बने रहते हैं और भिक्षुओं की यह विशेषता ज्ञात होती है, तब तक उनकी उन्नति ही अपेक्षित है, न कि उनका पतन।

याद रखने योग्य छह स्थितियाँ

11. "भिक्षुओं, मैं कल्याण की ओर ले जाने वाली छह और शर्तें बताऊंगा। ध्यान से सुनो और जो मैं कह रहा हूँ उस पर गौर करो।"

"ऐसा ही हो, भगवान।"

भिक्षुओं का पतन नहीं, बल्कि उनकी उन्नति अपेक्षित है, जब तक वे कर्म, वचन और विचार से एक-दूसरे की प्रेममयी भावना से सेवा करते हैं, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष; जब तक वे दान के रूप में प्राप्त वस्तुओं, यहाँ तक कि भिक्षापात्रों में रखी वस्तुओं का भी उपयोग समुदाय के गुणी सदस्यों के साथ साझा किए बिना नहीं करते; जब तक वे अपने भाइयों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आचरण के उन नियमों का अभ्यास करते हैं जो पूर्ण, परिपूर्ण, निष्कलंक और शुद्ध, मुक्तिदायक, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, सांसारिक चिंताओं से अप्रभावित और मन की एकाग्रता के लिए अनुकूल हैं; और अपने भाइयों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उस अंतर्दृष्टि को संजोते हैं जो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक है और उस पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाती है। जब तक भिक्षुओं में कल्याणकारी ये छह स्थितियाँ बनी रहती हैं और भिक्षु इसके लिए जाने जाते हैं, तब तक उनकी उन्नति अपेक्षित है। उनकी गिरावट नहीं, बल्कि उनकी अपेक्षित प्रगति है।

भिक्षुओं को परामर्श

12. और भगवान बुद्ध, राजगृह में, गिद्ध शिखर नामक पहाड़ी पर निवास करते हुए, अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार सलाह देते थे:

"ऐसा-ऐसा सद्‌गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्‌गुणपूर्ण आचरण द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; और बुद्धि में पूर्णतः विकसित मन काम, अभिमान और अज्ञान के दोषों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है।"

13. जब भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तो उन्होंने पूज्य आनंद से इस प्रकार कहा: "आओ, आनंद, हम अंबलत्थिका चलें।"

"ऐसा ही हो, भगवान।"

और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ अंबलत्थिका में अपना निवास स्थान बनाया।

14. अंबलत्थिका में भगवान बुद्ध राजा के विश्रामगृह में रहने आए; और वहाँ भी, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अक्सर इस प्रकार उपदेश दिया:

"ऐसा-ऐसा सद्‌गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्‌गुणपूर्ण आचरण द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; और बुद्धि में पूर्णतः विकसित मन कामवासना, अभिमान और अज्ञान के दोषों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है।"

15. जब भगवान बुद्ध अंबलत्थिका में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तो उन्होंने पूज्य आनंद से इस प्रकार कहा: "आओ, आनंद, हम नालंदा चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"
और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ नालंदा में अपना निवास स्थान बनाया और पवारिका के आम के बाग में रहने लगे।

सारिपुत्त की सिंह गर्जना
16. तब पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास गए, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे इस प्रकार कहा:
"हे भगवान, मुझे भगवान बुद्ध पर यह विश्वास है कि भगवान बुद्ध से अधिक प्रबुद्ध कोई दूसरा संन्यासी या ब्राह्मण न तो कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है।"
"सारिपुत्त, आपका यह वचन वास्तव में उदात्त और भगवानत्वपूर्ण है! एक साहसी वाणी, मानो सिंह की दहाड़ हो! परन्तु यह कैसे संभव है, सारिपुत्त? क्या आपको अतीत के उन पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंतों के गुणों, उनकी ध्यान साधना, उनके ज्ञान, उनके निवास और उनकी मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान है?"
"ऐसा नहीं है, भगवान।"
"तो फिर यह कैसे है, सारिपुत्त? भविष्य के वे अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष—क्या आपको उन सभी भगवानों के गुणों, उनकी ध्यान साधना, उनके ज्ञान, उनके निवास और उनकी मुक्ति के बारे में प्रत्यक्ष व्यक्तिगत ज्ञान है?"
"ऐसा नहीं है, भगवान।"
"तो फिर यह कैसे है, सारिपुत्त? मैं, जो इस समय अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हूँ, क्या आपको मेरे सद्गुण, मेरी ध्यान साधना, मेरी बुद्धि, मेरे निवास और मेरी मुक्ति के बारे में प्रत्यक्ष व्यक्तिगत ज्ञान है?"
"ऐसा नहीं है, भगवान।"
"तो फिर, सारिपुत्त, यह स्पष्ट है कि आपको अतीत, भविष्य और वर्तमान के पूर्णतः प्रबुद्ध अरहतों का प्रत्यक्ष व्यक्तिगत ज्ञान नहीं है। फिर आप इतनी ऊँची और भगवानत्वपूर्ण वाणी, इतना साहसी कथन, मानो सिंह की दहाड़ की तरह, यह कहने का साहस कैसे कर सकते हैं: 'हे भगवान, मुझे भगवान बुद्ध पर यह विश्वास है कि उनसे अधिक प्रबुद्ध कोई दूसरा संन्यासी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है'?"
17. हे भगवान, मुझे अतीत, भविष्य और वर्तमान के पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंतों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है; फिर भी मुझे धम्म की वैधता का ज्ञान हो गया है। मान लीजिए, हे भगवान, किसी राजा का सीमावर्ती किला सुदृढ़ प्राचीरों और बुर्जों से सुदृढ़ है, उसमें एक ही द्वार है, और एक बुद्धिमान, अनुभवी और विवेकशील द्वारपाल है जो अजनबी को प्रवेश नहीं देता तथा मित्र को प्रवेश करने देता है। जब वह किले के चारों ओर जाने वाले मार्ग पर गश्त करता है, तो उसे प्राचीरों में एक भी ऐसा छेद या दरार नहीं दिखाई देती जिससे एक बिल्ली भी निकल सके। अतः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है: 'इस नगर में प्रवेश करने या बाहर जाने वाले सभी स्थूल प्राणियों को इसी द्वार से होकर जाना होगा।' इसी प्रकार, हे भगवान, मुझे धम्म की वैधता का ज्ञान हो गया है।
"हे भगवान, अतीत के सभी धन्यजनों, अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुषों ने पांच बाधाओं, यानी बुद्धि को कमजोर करने वाले मानसिक विकारों का त्याग कर दिया था; उन्होंने अपने मन को ध्यान के चार आधारों में अच्छी तरह से स्थापित कर लिया था; उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विधिवत अभ्यास किया था, और वे अतुलनीय, सर्वोच्च ज्ञान में पूर्णतः प्रबुद्ध थे।"
और, हे भगवान, भविष्य के सभी धन्यजन, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध जन पाँच बाधाओं, उन मानसिक विकारों का त्याग करेंगे जो बुद्धि को कमजोर करते हैं; वे अपने मन को ध्यान के चार आधारों में अच्छी तरह स्थापित करेंगे; वे ज्ञान के सात कारकों का विधिवत अभ्यास करेंगे, और अतुलनीय, सर्वोच्च ज्ञान में पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे।
और हे भगवान, भगवान बुद्ध भी, जो इस समय अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, उन्होंने पांच बाधाओं, यानी बुद्धि को कमजोर करने वाले मानसिक विकारों का त्याग कर दिया है; उन्होंने अपने मन को चार आधारों पर अच्छी तरह से स्थापित कर लिया है; उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विधिवत अभ्यास किया है, और वे अतुलनीय, सर्वोच्च ज्ञान में पूर्णतः प्रबुद्ध हैं।
18. और नालंदा में, पावारिका के आम के बाग में, भगवान बुद्ध अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार सलाह देते थे:
"ऐसा-ऐसा सद्गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्गुणपूर्ण आचरण द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता द्वारा पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; और बुद्धि में पूर्णतः विकसित मन कामवासना, अभिमान और अज्ञान के दोषों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है।"
19. जब भगवान ने नालंदा में अपनी इच्छानुसार समय व्यतीत किया, तब उन्होंने पूज्य आनंद को इस प्रकार संबोधित किया:
"आओ, आनंद, हम पातालगामा चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"

और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ पातालगामा में अपना निवास स्थान बनाया।
20. तब पाटालिगमा के भक्तों को पता चला, “भगवान पाटालिगमा आ गए हैं।” वे भगवान के पास गए, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे इस प्रकार कहा, “हे भगवान, कृपा करके हमारे सभा भवन में दर्शन कीजिए।” भगवान ने मौन रहकर सहमति दे दी।
21. भगवान बुद्ध की सहमति जानकर, पाटालिगमा के भक्त अपने-अपने स्थानों से उठे, उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनकी ओर दाहिनी ओर मुख करके सभा भवन की ओर चल दिए। फिर उन्होंने सभा भवन को पूरी तरह से तैयार किया, फर्श को मिट्टी से ढका, बैठने की व्यवस्था की, पानी उपलब्ध कराया और एक दीपक जलाया। यह सब करने के बाद, वे भगवान बुद्ध के पास लौटे, उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर घोषणा की: “हे भगवान, सभा भवन तैयार है, फर्श पूरी तरह से मिट्टी से ढका हुआ है, बैठने की व्यवस्था और पानी उपलब्ध है और एक दीपक जलाया गया है। हे भगवान, जब चाहें तब आएँ।”
22. भगवान बुद्ध तैयार हुए और अपना कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समूह के साथ सभा भवन में गए। पैर धोकर भगवान बुद्ध सभा भवन में प्रवेश कर मध्य स्तंभ के पास पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए। भिक्षुओं के समूह ने भी पैर धोकर सभा भवन में प्रवेश किया और पश्चिमी दीवार के पास पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए, ताकि भगवान बुद्ध उनके सामने हों। और पाटालिगमा के भक्तों ने भी पैर धोकर सभा भवन में प्रवेश किया और पूर्वी दीवार के पास पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बैठ गए, ताकि भगवान बुद्ध उनके सामने हों।

अनैतिक और नैतिक जीवन के फल

23. तब भगवान बुद्ध ने पाटालिगमा के भक्तों को इस प्रकार संबोधित किया: “अनैतिक मनुष्य, गृहस्थ, सद्‌गुणों से विमुख होकर पाँच विपत्तियों का सामना करते हैं: असावधानी के कारण धन की भारी हानि; बदनामी; हर समाज में, चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों का हो या तपस्वियों का हो, भय और व्याकुलता में मृत्यु; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, दुख के लोक में, दुखी अवस्था में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म।”
24. "हे गृहस्थों, धर्मात्मा व्यक्ति को उसके सद्‌गुणों के अभ्यास से पाँच आशीर्वाद प्राप्त होते हैं: परिश्रम से धन में अत्यधिक वृद्धि; अच्छी प्रतिष्ठा; हर समाज में, चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों का हो या तपस्वियों का हो, आत्मविश्वास से भरा व्यवहार; शांतिपूर्ण मृत्यु; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर स्वर्गलोक में सुखी अवस्था में पुनर्जन्म।"
25. और भगवान बुद्ध ने रात का अधिकांश समय पाटालिगमा के भक्तों को धम्म का उपदेश देने, उन्हें प्रेरित करने, उनका ज्ञानवर्धन करने और उन्हें प्रसन्न करने में व्यतीत किया, जिसके बाद उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया: “गृहस्थों, रात काफी आगे बढ़ चुकी है। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।”
"ऐसा ही हो, भगवान।" और पाटालिगमा के भक्त अपनी सीटों से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके सामने अपना दाहिना भाग रखते हुए चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद भगवान बुद्ध एकांत में चले गए।
26. उस समय मगध के प्रधान मंत्री सुनीधा और वस्साकरा, वज्जियों से रक्षा के लिए पाटलिगामा में एक किला बनवा रहे थे। और हजारों की संख्या में देवताओं ने पाटलिगामा के स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया था। जिस क्षेत्र में उच्च शक्ति वाले देवता विराजमान थे, वहाँ उच्च शक्ति वाले अधिकारी भवन निर्माण में लगे हुए थे; और जहाँ मध्यम और निम्न शक्ति वाले देवता विराजमान थे, वहाँ मध्यम और निम्न शक्ति वाले अधिकारी भवन निर्माण में लगे हुए थे।
27. और भगवान बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से, जो मनुष्यों की क्षमताओं से परे और शुद्ध है, पातालगामा में हजारों देवताओं को देखा, जिन्होंने विभिन्न स्थानों पर अधिकार कर लिया था। और रात्रि समाप्त होने से पहले, भोर होते हुए, भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "हे आनंद, पातालगामा में नगर का निर्माण कौन कर रहा है?"
"मगध के प्रधान मंत्री, सुनीधा और वासकारा, वज्जियों से बचाव के लिए पाटलिगामा में एक किला बनवा रहे हैं।"
28. "आनंद, ऐसा लगता है मानो सुनीधा और वस्सकर ने तैंतीस देवताओं से परामर्श किया हो। क्योंकि मैंने, आनंद, दिव्य दृष्टि से, जो मनुष्यों की क्षमताओं से परे है, हजारों की संख्या में देवताओं को पाटलिगामा में स्थित स्थानों पर अधिकार जमाए हुए देखा है। जिस क्षेत्र में उच्च शक्ति वाले देवता विराजमान होते हैं, वहां उच्च शक्ति वाले अधिकारी भवन निर्माण में लगे रहते हैं; और जहां मध्यम और कम शक्ति वाले देवता विराजमान होते हैं, वहां मध्यम और कम शक्ति वाले अधिकारी भवन निर्माण में लगे रहते हैं। सचमुच, आनंद, आर्य वंश जहां तक फैला है और व्यापार मार्ग जहां तक जाते हैं, पाटलिपुत्त प्रमुख नगर होगा, एक व्यापार केंद्र। लेकिन पाटलिपुत्त, आनंद, तीन विपत्तियों - अग्नि, जल और कलह - से घिरा रहेगा।"
29. तब सुनीधा और वासकारा भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करने और अनेक सुखद बातें करने के बाद एक तरफ खड़े होकर उनसे इस प्रकार कहा, “हे पूज्य गौतम, कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ भोज के लिए हमारा निमंत्रण स्वीकार कीजिए।” और भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दे दी।
30. भगवान बुद्ध की सहमति जानकर, सुनीधा और वस्सकारा अपने-अपने निवास स्थानों के लिए प्रस्थान कर गए, जहाँ उन्होंने उत्तम प्रकार का भोजन, कठोर और नरम, तैयार करवाया। और जब समय हुआ, तो उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "हे पूज्य गौतम, भोजन तैयार है।"

तब भगवान बुद्ध ने सुबह के समय तैयार होकर, पान का पात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षुओं के समुदाय के साथ सुनीधा और वस्सकारा के निवास पर गए, जहाँ उन्होंने अपने लिए तैयार आसन ग्रहण किया। सुनीधा और वस्सकारा ने स्वयं बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय की सेवा की और उन्हें उत्तम भोजन, कठोर और नरम, परोसा। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और पान के पात्र से अपना हाथ हटा लिया, तो वे सभी नीची कुर्सियों पर बैठकर एक तरफ बैठ गए।
31. और भगवान बुद्ध ने इन छंदों के साथ उनका आभार व्यक्त किया:
वह जहाँ कहीं भी निवास करे, विवेकशील व्यक्ति पवित्र और गुणी लोगों की सेवा करता है; और इन योग्य लोगों को दान देकर, वह अपने पुण्य का सदुपयोग स्थानीय देवताओं के साथ करता है।
और इस प्रकार पूजनीय होने के कारण, वे भी उनका आदर करते हैं, उनके प्रति वैसे ही दयालु होते हैं जैसे एक माँ अपने इकलौते बेटे के प्रति होती है; और जो इस प्रकार देवताओं की कृपा का पात्र होता है, और उनका प्रिय होता है, उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसके बाद, भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे और प्रस्थान कर गए।

गंगा पार करना
32. तब सुनीधा और वस्सकारा भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे कदम-कदम चलते हुए बोले, “जिस भी द्वार से आज गौतम संन्यासी प्रस्थान करेंगे, हम उसका नाम गौतम द्वार रखेंगे; और जिस घाट से वे गंगा पार करेंगे, उसका नाम भी गौतम घाट रखा जाएगा।” और ऐसा ही हुआ, द्वार के संबंध में।
33. जब भगवान बुद्ध गंगा नदी के पास पहुँचे, तो वह नदी पूरी तरह से भरी हुई थी, यहाँ तक कि कौवे भी उससे पानी पी रहे थे। कुछ लोग नाव या तैरने के साधन की तलाश में निकल पड़े, जबकि अन्य लोगों ने बेड़ा बाँध लिया, क्योंकि वे नदी पार करना चाहते थे। परन्तु भगवान बुद्ध, एक बलवान पुरुष के मुड़े हुए हाथ को फैलाने या अपने फैले हुए हाथ को समेटने की गति से ही, गंगा नदी के इस किनारे से लुप्त हो गए और उस पार जाकर खड़े हो गए।
34. और भगवान बुद्ध ने देखा कि पार जाने की इच्छा रखने वाले लोग नाव या तैरने वाली नाव की तलाश कर रहे थे, जबकि अन्य लोग बेड़े बाँध रहे थे। तब भगवान बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार देखकर गंभीर वचन कहा:
जिन्होंने विशाल सागर पर पुल बनाया है, निचले इलाकों को बहुत पीछे छोड़ते हुए, जबकि अन्य अभी भी अपनी कमजोर नावों को बांधे हुए हैं, वे अतुलनीय ज्ञान द्वारा बचाए गए हैं।

भाग दो: वेसाली की यात्रा
चार आर्य सत्य
1. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "आओ, आनंद, हम कोटिगामा चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोटिगामा में निवास करने लगे।
2. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों को न जानने और न ही उनमें पूर्णतः प्रवेश करने के कारण ही यह जन्म-मृत्यु का चक्र मेरे और आपके द्वारा भोगा गया है। ये चार सत्य क्या हैं? ये हैं: दुख का आर्य सत्य; दुख के कारण का आर्य सत्य; दुख के निवारण का आर्य सत्य; और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। परन्तु अब, भिक्षुओं, इन आर्य सत्यों को जान लेने और उनमें पूर्णतः प्रवेश करने से, जीवन की लालसा का नाश हो गया है, पुनर्जन्म का मार्ग नष्ट हो गया है, और अब कोई नया पुनर्जन्म नहीं है।"
3. इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा। और धन्य गुरु ने आगे कहा:
चार आर्य सत्यों को न जानने के कारण जन्म-जन्म का लंबा और थकाऊ मार्ग व्यतीत होता था। जब इनका ज्ञान हो जाता है, तो पुनर्जन्म का कारण दूर हो जाता है, दुःख का मूल उखड़ जाता है; तब पुनर्जन्म का अंत हो जाता है। 4. और कोटिगामा में भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अक्सर इस प्रकार उपदेश दिया: "ऐसा सद्‌गुण है; ऐसी एकाग्रता है; और ऐसा ज्ञान है। जब एकाग्रता सद्‌गुणों से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब ज्ञान एकाग्रता से पूर्णतः विकसित हो जाता है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; वह मन जो ज्ञान में पूर्णतः विकसित हो जाता है, कामवासना, कर्म और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"
5. जब भगवान बुद्ध कोटिगामा में अपनी इच्छानुसार कुछ देर ठहर गए, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आओ, आनंद, हम नादिका चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ नादिका में ईंट के घर में निवास किया।

चार विशिष्ट उपलब्धियाँ

6. तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास आए और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, नादिका में भिक्षु सलहा और भिक्षुणी नंदा का देहांत हो गया है। इसी प्रकार सुदत्त और सुजाता, काकुधा, कलिंग, निकता, कटिस्सभ, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा का भी देहांत हो गया है। हे भगवान, उनका क्या भाग्य है? उनका भविष्य क्या होगा?”
7. "भिक्षु सलहा, आनंद ने इसी जीवनकाल में दोषों के नाश के द्वारा मन की दोषमुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त कर ली है, क्योंकि उन्होंने इसे स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लिया है।"
"भिक्खुनी नंदा, आनंद, पांच निम्न बंधनों (जो प्राणियों को इंद्रियों के जगत से बांधते हैं) के विनाश के माध्यम से (शुद्धवास देवताओं के बीच) स्वतः ही उत्पन्न हुए हैं और उसी स्थान पर उनका अंत होगा, वे उस लोक से वापस लौटने के योग्य नहीं होंगे।"
"गृहस्थ सुदत्त, आनंद ने तीन बंधनों (आत्मविश्वास, संदेह और अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों की प्रभावकारिता में विश्वास) के नाश और काम, घृणा और भ्रम में कमी के माध्यम से एक बार पुनरावर्ती बन गया है और इस दुनिया में एक बार फिर लौटने के बाद दुख का अंत करने के लिए बाध्य है।"
"तीनों बंधनों के नाश के द्वारा सुजाता, आनंद नामक गृहस्थ स्त्री, धारा-प्रवेशक बन गई है और दुख की अवस्थाओं में गिरने से सुरक्षित, आश्वस्त और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर है।"
"पांच निम्न बंधनों (जो प्राणियों को इंद्रियों के जगत से बांधते हैं) के विनाश के माध्यम से, गृहस्थ ककुधा, आनंद, स्वतः ही (शुद्धवास देवताओं के बीच) उत्पन्न हुए हैं, और उसी स्थान पर उनका अंत होगा, वे उस लोक से वापस लौटने के योग्य नहीं होंगे।"
"इसी प्रकार कलिंग, निकटा, कटिस्भा, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा के साथ-साथ नादिका में पचास से अधिक गृहस्थों का भी यही हाल है। नादिका में आनंद द्वारा परलोक विदा हुए नब्बे से अधिक गृहस्थ, तीनों बंधनों के नाश और कामवासना, घृणा और मोह के कम होने के कारण, एक बार फिर इस संसार में लौटकर दुःख का अंत करने के लिए बाध्य हैं।"
"नादिका, आनंद में प्राण त्याग चुके पांच सौ से अधिक गृहस्थ, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के कारण, जलधारा में प्रवेश करने वाले बन गए हैं और दुख की अवस्थाओं में गिरने से सुरक्षित हैं, आश्वस्त हैं और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हैं।"

धम्म का दर्पण

8. "लेकिन हे आनंद, वास्तव में मनुष्यों की मृत्यु कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन यदि हर बार ऐसा होने पर तुम तथागत के पास आकर इस प्रकार उनके बारे में पूछोगे, तो यह उनके लिए कष्टदायी होगा। इसलिए, हे आनंद, मैं तुम्हें धर्म का दर्पण नामक शिक्षा दूंगा, जिसे प्राप्त करके श्रेष्ठ शिष्य, यदि वह चाहे, तो अपने बारे में कह सकता है: 'अब मेरा न तो नरक में, न पशु रूप में, न प्रेत रूप में, न ही किसी दुःख लोक में पुनर्जन्म होगा। मैं एक जल-प्रवेशक हूं, दुःख की अवस्थाओं में गिरने से सुरक्षित हूं, आश्वस्त हूं और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूं।'"
9. "और हे आनंद, वह शिक्षा क्या है जिसे धम्म का दर्पण कहा जाता है, जिसके द्वारा श्रेष्ठ शिष्य अपने बारे में इस प्रकार बता सकता है?"
"इस मामले में, आनंद, जो एक श्रेष्ठ शिष्य है, बुद्ध में अटूट विश्वास रखता है और कहता है: 'भगवान अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुखी हैं, संसार के ज्ञाता हैं, प्राणियों के सर्वोपरि प्रशिक्षक हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान हैं।"
"उनका धम्म में अटूट विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान द्वारा अच्छी तरह से प्रतिपादित धम्म स्पष्ट, शाश्वत, अध्ययन के लिए आमंत्रित करने वाला, मुक्ति की ओर ले जाने वाला, और बुद्धिमानों द्वारा अपने-अपने लिए समझा जाने वाला है।'
"वह भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ में अटूट विश्वास रखते हैं और कहते हैं: 'भगवान बुद्ध के शिष्यों का संघ, धार्मिकता, बुद्धिमत्ता और कर्तव्यनिष्ठा से फलता-फूलता है: अर्थात्, मनुष्यों के चार जोड़े, व्यक्तियों के आठ वर्ग। भगवान बुद्ध के शिष्यों का संघ सम्मान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य है - संसार में पुण्य कर्मों का सर्वोच्च क्षेत्र है।"
और उसमें वे गुण हैं जो श्रेष्ठजनों को प्रिय हैं, पूर्ण और परिपूर्ण, निष्कलंक और पवित्र, जो मुक्तिदायक हैं, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं, (सांसारिक चिंताओं से) अप्रभावित हैं, और मन की एकाग्रता के लिए अनुकूल हैं।
10. "हे आनंद, यही वह शिक्षा है जिसे धम्म का दर्पण कहा जाता है, जिसके द्वारा श्रेष्ठ शिष्य स्वयं को इस प्रकार जान सकता है: 'अब मेरा पुनर्जन्म न तो नरक में होगा, न पशु रूप में, न प्रेत रूप में, न ही किसी दुःख लोक में। मैं एक सहज ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति हूँ, दुःख की अवस्थाओं में गिरने से सुरक्षित हूँ, आश्वस्त हूँ और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ।'"
11. और नादिका में, ईंट के घर में, भगवान बुद्ध अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश देते थे: "ऐसा-ऐसा सद्गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्गुणों से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; काम, कर्म और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त वह मन है जो बुद्धि में पूर्णतः विकसित हो जाता है।"
12. जब भगवान बुद्ध नादिका में अपनी इच्छानुसार कुछ देर ठहर गए, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आओ, आनंद, हम वैशाली चलें।"

"ऐसा ही हो, हे भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ वैशाली में अपना निवास स्थान बनाया और अंबपाली के उपवन में ठहरे।

जागरूकता और स्पष्ट समझ

13. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, तुम सजग रहो, स्पष्ट रूप से समझो; मैं तुम्हें यही उपदेश देता हूँ।"

14. "और हे भिक्षुओं, भिक्षु कैसे सचेत रहता है? जब वह शरीर में शरीर का चिंतन करता है, गंभीर रूप से, स्पष्ट रूप से समझते हुए और सचेत रहते हुए, संसार के संबंध में इच्छा और दु:ख पर विजय प्राप्त कर लेता है; और जब वह भावनाओं में भावनाओं का, मन में मन का और मानसिक विषयों में मानसिक विषयों का चिंतन करता है, गंभीर रूप से, स्पष्ट रूप से समझते हुए और सचेत रहते हुए, संसार के संबंध में इच्छा और दु:ख पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब उसे सचेत कहा जाता है।"

15. "और हे भिक्षुओं, भिक्षु को स्पष्ट ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? जब वह अपने आने-जाने, आगे देखने और पीछे देखने, झुकने और अंगड़ाई लेने, वस्त्र धारण करने और पान पात्र उठाने, खाने-पीने, चबाने और स्वाद लेने, शौच करने और पेशाब करने, चलने, खड़े होने, बैठने, लेटने, सोने या जागते रहने, बोलने या चुप रहने के प्रति पूर्णतः सजग रहता है, तब उसे स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।"

"हे भिक्षुओं, तुम सजग रहो और स्पष्ट रूप से समझो; मैं तुम्हें यही उपदेश देता हूँ।"

अंबापाली और लिच्छवी

16. तब वेश्या अंबपाली को पता चला, "लोग कहते हैं कि भगवान वैशाली आ गए हैं और मेरे आम के बाग में ठहरे हुए हैं।" उसने बहुत से भव्य रथ तैयार करवाने का आदेश दिया, स्वयं उनमें से एक पर सवार हुई और बाकी लोगों के साथ वैशाली से अपने उद्यान की ओर चल पड़ी। वह रथ में जहाँ तक जा सकती थी, वहाँ तक गई, फिर उतर गई; और भगवान के पास पैदल चलकर, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गई। भगवान ने वेश्या अंबपाली को धर्म का उपदेश दिया और उसे प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न किया।

17. इसके बाद वेश्या अंबपाली ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ भोज के लिए मेरा निमंत्रण स्वीकार कीजिए।" और भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दे दी।

तो, भगवान की सहमति से आश्वस्त होकर, वेश्या अंबपाली अपनी सीट से उठी, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपना दाहिना भाग उनकी ओर रखते हुए वहां से चली गई।

18. तब वैशाली के लिच्छवियों को पता चला, "वे कहते हैं कि भगवान वैशाली पहुँच गए हैं और अंबपाली के उपवन में ठहरे हुए हैं।" उन्होंने बड़ी संख्या में भव्य रथ तैयार करवाए, प्रत्येक पर एक-एक सवार हुआ और बाकी लिच्छवियों के साथ वैशाली से निकल पड़े। इन लिच्छवियों में से कुछ नीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे, जबकि अन्य पीले, लाल और सफेद रंग के वस्त्र पहने हुए थे।

19. और ऐसा हुआ कि वेश्या अंबपाली ने युवा लिच्छवियों पर धुरी दर धुरी, पहिया दर पहिया और जुआ दर जुआ करके हमला कर दिया। तब लिच्छवियों ने कहा, "अंबपाली, तुम इस तरह हम पर हमला क्यों कर रही हो?"

"यद्यपि, ऐसा ही है, अन्यथा नहीं! क्योंकि भगवान बुद्ध को मैंने भिक्षुओं के समुदाय के साथ कल के भोज में आमंत्रित किया है!"

"अंबापाली, एक लाख के बदले खाना छोड़ दो!"

लेकिन उसने जवाब दिया: "यद्यपि आप मुझे वेसाली राज्य, उसके सहायक क्षेत्रों सहित, दे भी दें, तो भी मैं इतने महत्वपूर्ण भोजन को नहीं छोड़ूंगी।"

तब लिच्छवियों ने झुंझलाहट में उंगलियां चटकाते हुए कहा: "देखो, मित्रों! हम इस आम वाली लड़की से हार गए! हम इस आम वाली लड़की से पूरी तरह से मात खा गए!" लेकिन वे अंबपाली के बाग की ओर अपने रास्ते पर चलते रहे।

20. और भगवान बुद्ध ने दूर से लिच्छवियों को आते हुए देखा। फिर उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, जिन्होंने अभी तक तैंतीस देवताओं के दर्शन नहीं किए हैं, वे लिच्छवियों के इस समूह को देखें और उनका ध्यान लगाएं, क्योंकि वे तैंतीस देवताओं के समूह के समान हैं।"

21. तब लिच्छवियों ने अपने रथों को जहाँ तक जा सकते थे, वहाँ तक चलाया, फिर उतर गए; और भगवान बुद्ध के पास पैदल चलकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने लिच्छवियों को धम्म का उपदेश दिया, और उन्हें प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न किया।

22. इसके बाद लिच्छवियों ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ भोज के लिए हमारा निमंत्रण स्वीकार करें।"

"लिच्छवी, कल के भोजन का निमंत्रण मैंने वेश्या अंबपाली से स्वीकार कर लिया है।"

तब लिच्छवियों ने झुंझलाहट में उंगलियां चटकाते हुए कहा: "देखो, मित्रों! हम इस आम वाली कन्या से हार गए! हम इस आम वाली कन्या से पूरी तरह से मात खा गए!" और फिर लिच्छवी, भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर, अपनी सीटों से उठे, उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनके सामने अपना दाहिना भाग रखते हुए वहां से चले गए।

23. फिर रात बीत जाने के बाद, वेश्या अम्बापाली ने अपने उद्यान में उत्तम भोजन, हर प्रकार का, तैयार करवाया और भगवान बुद्ध को सूचित किया: “हे भगवान, समय हो गया है; भोजन तैयार है।” तब भगवान बुद्ध सुबह तड़के तैयार हुए और कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ अम्बापाली के निवास पर गए और वहाँ अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। अम्बापाली स्वयं बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय की सेवा करती रही और उन्हें उत्तम भोजन, हर प्रकार का, परोसा।
24. जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और कटोरे से अपना हाथ हटा लिया, तब वेश्या अंबपाली ने एक नीची चौकी पर बैठकर एक तरफ खड़े होकर भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, मैं यह उद्यान बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को अर्पित करती हूँ।” और भगवान बुद्ध ने उद्यान स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने अंबपाली को धम्म का उपदेश दिया, और उन्हें प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न करके वे अपने आसन से उठे और चले गए।
25. वैशाली में, अंबपाली के उपवन में, भगवान बुद्ध अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश देते थे: "ऐसा-ऐसा सद्‌गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्‌गुणों से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; काम, कर्म और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त वह मन है जो बुद्धि में पूर्णतः विकसित हो जाता है।"
26. जब भगवान बुद्ध अंबपाली के उपवन में अपनी इच्छानुसार कुछ देर ठहर गए, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आओ, आनंद, हम बेलुवा के गाँव चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ बेलुवा ग्राम में निवास किया।

भगवान की जानलेवा बीमारी

27. उस समय भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, अब जाओ और वैशाली के आसपास के किसी भी ऐसे स्थान पर शरण लो जहाँ तुम्हारा स्वागत हो, परिचितों और मित्रों के बीच, और वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत करो। मैं वर्षा ऋतु यहीं बेलुवा गाँव में व्यतीत करूँगा।"
"हे भगवान, ऐसा ही हो," भिक्षुओं ने कहा।
28. परन्तु जब बुद्ध ने वर्षा ऋतु में प्रवेश किया, तो उन्हें एक गंभीर रोग हो गया और तीव्र एवं जानलेवा पीड़ा होने लगी। परन्तु बुद्ध ने उस पीड़ा को सजग, स्पष्टतः समझते हुए और अविचलित रहते हुए सहन किया।
29. तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया: "यदि मैं अपने सेवकों को संबोधित किए बिना, भिक्षु समुदाय से विदा लिए बिना ही इस दुनिया से विदा हो जाऊं, तो यह उचित नहीं होगा। इसलिए, मैं अपनी इच्छाशक्ति से इस रोग को वश में कर लूं, जीवन चक्र को जारी रखने का संकल्प लूं और आगे बढ़ता रहूं।"
30. और भगवान बुद्ध ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से रोग को दबा दिया, जीवन प्रक्रिया को जारी रखने का संकल्प लिया और जीवित रहे। इस प्रकार भगवान बुद्ध का रोग शांत हो गया।
31. और भगवान बुद्ध उस बीमारी से ठीक हो गए; और ठीक होने के तुरंत बाद वे अपने निवास स्थान से बाहर आए और भवन की छाया में, उनके लिए तैयार की गई आसन पर बैठ गए। तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए, आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर उनसे कहा, “हे भगवान, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि भगवान बुद्ध फिर से आराम से हैं! यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि भगवान बुद्ध ठीक हो गए हैं! क्योंकि हे भगवान, जब मैंने भगवान बुद्ध को बीमार देखा तो ऐसा लगा जैसे मेरा अपना शरीर लता के समान कमजोर हो गया हो, मेरे आस-पास सब कुछ धुंधला हो गया हो और मेरी इंद्रियां काम करना बंद कर चुकी हों। फिर भी, हे भगवान, मुझे इस विचार से कुछ सांत्वना मिली कि भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय के विषय में कुछ अंतिम उपदेश देने के बाद ही इस दुनिया से विदा होंगे।”
32. आदरणीय आनंद ने ऐसा कहा, परन्तु भगवान बुद्ध ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा, “आनंद, भिक्षु समुदाय मुझसे और क्या अपेक्षा रखता है? मैंने धम्म का निरूपण गूढ़ और बाह्य सिद्धांतों में भेद किए बिना किया है; आनंद, तथागत शिक्षाओं के विषय में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे वे किसी शिक्षक की तरह अंत तक अपने पास रखते हों। जो कोई यह सोचता है कि भिक्षु समुदाय का नेतृत्व उन्हें करना चाहिए, या समुदाय उन पर निर्भर है, तो ऐसे व्यक्ति को ही भिक्षु समुदाय के विषय में अंतिम उपदेश देने होंगे। परन्तु आनंद, तथागत ऐसा कोई विचार नहीं रखते कि भिक्षु समुदाय का नेतृत्व उन्हें करना चाहिए, या समुदाय उन पर निर्भर है। तो भिक्षु समुदाय के विषय में उन्हें क्या उपदेश देने होंगे?”
"अब मैं दुर्बल हो गया हूँ, आनंद, बूढ़ा, उम्रदराज, काफी बूढ़ा। यह मेरा अस्सीवाँ वर्ष है, और मेरा जीवन समाप्त हो गया है। जैसे एक पुरानी गाड़ी, आनंद, बड़ी मुश्किल से चलती है, वैसे ही तथागत का शरीर भी सहारे के बिना नहीं चल पाता। आनंद, तथागत तभी अधिक आराम महसूस करते हैं जब वे बाह्य वस्तुओं का अनादर करते हुए, कुछ भावनाओं के शांत होने पर, निरूपी एकाग्रता की अवस्था में लीन हो जाते हैं।"
33. "इसलिए, हे आनंद, अपने आप में द्वीप बनो, अपने आप में शरण बनो, किसी बाहरी शरण की तलाश न करो; धम्म को अपना द्वीप बनाओ, धम्म को अपनी शरण बनाओ, किसी अन्य शरण की तलाश न करो।"

और हे आनंद, भिक्षु स्वयं में एक द्वीप, स्वयं में एक शरणस्थली कैसे होता है, जो किसी बाहरी शरण की तलाश नहीं करता; धम्म ही उसका द्वीप है, धम्म ही उसकी शरणस्थली है, वह किसी अन्य शरण की तलाश नहीं करता?
34. जब वह शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, गंभीर रूप से, स्पष्ट रूप से समझते हुए और सचेत होकर, संसार के संबंध में इच्छा और दुःख पर विजय प्राप्त कर लेता है; जब वह भावनाओं में भावनाओं का, मन में मन का और मानसिक विषयों में मानसिक विषयों का चिंतन करते हुए, गंभीर रूप से, स्पष्ट रूप से समझते हुए और सचेत होकर, संसार के संबंध में इच्छा और दुःख पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब वास्तव में वह अपने आप में एक द्वीप है, अपने आप में एक शरणस्थल है, किसी बाहरी शरण की तलाश नहीं करता; धम्म को अपना द्वीप और धम्म को अपनी शरणस्थल बनाकर, किसी अन्य शरण की तलाश नहीं करता।
35. "हे आनंद, मेरे वे भिक्षु जो अभी या मेरे जाने के बाद, अपने लिए एक द्वीप की तरह, अपने लिए एक शरणस्थली की तरह रहते हैं, और किसी अन्य शरणस्थली की तलाश नहीं करते; धम्म को अपना द्वीप और शरणस्थली बनाकर, किसी अन्य शरणस्थली की तलाश नहीं करते: वे ही सर्वोच्च होंगे, 20 यदि उनमें सीखने की इच्छा हो।"

भाग तीन: जीने की इच्छा का त्याग

भगवान की प्रेरणा

1. फिर भगवान बुद्ध ने दोपहर से पहले तैयार होकर भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने और भोजन करने के बाद लौटकर उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, चटाई उठा लो और चलो आज का दिन चपाल मंदिर में व्यतीत करें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और पूज्य आनंद ने चटाई उठाई और भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे कदम-दर-कदम चलने लगे।
2. भगवान बुद्ध चपाल मंदिर गए और अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। जब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, तब भगवान ने उनसे कहा, "हे आनंद, वैशाली सुंदर है; उदेना, गौतमक, सत्तंबक, बहुपुत्त, सरंददा और चपाल के मंदिर भी सुंदर हैं।"
3. और भगवान बुद्ध ने कहा: "हे आनंद, जिसने भी मानसिक शक्ति के चार तत्वों को विकसित किया है, अभ्यास किया है, उपयोग किया है, मजबूत किया है, बनाए रखा है, बारीकी से जांचा है और पूर्णता तक पहुँचाया है, वह चाहे तो पूरे विश्वकाल तक या उसके अंत तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत ने ऐसा ही किया है। इसलिए तथागत चाहे तो पूरे विश्वकाल तक या उसके अंत तक जीवित रह सकते थे।"
4. परन्तु पूज्य आनंद भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए स्पष्ट सुझाव, उस महत्वपूर्ण प्रेरणा को समझ नहीं पाए। मानो उनका मन मार से प्रभावित था, उन्होंने भगवान बुद्ध से यह प्रार्थना नहीं की: "हे भगवान, भगवान बुद्ध समस्त संसार में बने रहें! हे भगवान, हे सुखी बुद्ध समस्त संसार में बने रहें, जनसमूह के कल्याण और सुख के लिए, संसार पर दया करते हुए, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए!"
5. और जब भगवान ने दूसरी और तीसरी बार अपने शब्दों को दोहराया, तो पूज्य आनंद मौन रहे।
6. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: "अब जाओ, आनंद, और जो तुम्हें उचित लगे वही करो।"
"जी भगवान, ऐसा ही हो।" और पूज्य आनंद अपने आसन से उठकर भगवान को आदरपूर्वक प्रणाम किया और अपना दाहिना भाग उनकी ओर करके कुछ दूरी पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए।

मारा की अपील

7. जब पूज्य आनंद चले गए, तब दुष्ट मारा भगवान बुद्ध के पास आया। एक तरफ खड़े होकर उसने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, अब भगवान बुद्ध को उनके अंतिम प्राण त्यागने दीजिए; हे सुखी बुद्ध को पूर्णतः प्राण त्यागने दीजिए! भगवान के परिनिर्वाण का समय आ गया है।”
"हे भगवान, भगवान ने मुझसे ये शब्द कहे: 'हे दुष्ट, मैं तब तक अपने अंतिम प्राण त्याग नहीं दूंगा जब तक मेरे भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और स्त्रियां, सच्चे शिष्य न बन जाएं - बुद्धिमान, अनुशासित, योग्य और विद्वान, धम्म के संरक्षक, धम्म के अनुसार जीवन यापन करने वाले, उचित आचरण का पालन करने वाले, और गुरु के वचन को सीखकर, उसकी व्याख्या करने, उसका प्रचार करने, उसका उद्घोष करने, उसे स्थापित करने, उसे प्रकट करने, उसका विस्तार से वर्णन करने और उसे स्पष्ट करने में सक्षम न हो जाएं; जब तक कि प्रतिकूल मत उत्पन्न हों, तो वे उनका पूर्णतः और अच्छी तरह खंडन करने और इस प्रेरक और मुक्तिदायक धम्म का प्रचार करने में सक्षम न हो जाएं।"
8. "और अब, हे भगवान, भिक्षुओं और भिक्षुणियों, गृहस्थ पुरुषों और गृहस्थ महिलाओं, आप सभी इस प्रकार भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए हैं। अतः, हे भगवान, भगवान बुद्ध के अंतिम परलोक में प्रवेश होने दीजिए! भगवान के परिनिर्वाण का समय आ गया है।"
हे भगवान, भगवान ने मुझसे ये शब्द कहे थे: 'हे दुष्ट, मैं तब तक परलोक नहीं जाऊँगा जब तक मेरे द्वारा सिखाया गया यह पवित्र जीवन सफल, समृद्ध, प्रसिद्ध, लोकप्रिय और व्यापक न हो जाए, जब तक यह देवताओं और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से घोषित न हो जाए।'

और ऐसा ही हुआ है। इसलिए, हे भगवान, भगवान को परलोक जाने दो, भगवान को पूर्णतः परलोक जाने दो! भगवान के परिनिर्वाण का समय आ गया है।
भगवान ने जीने की इच्छा का त्याग कर दिया।
9. यह सुनकर भगवान बुद्ध ने दुष्ट मारा से कहा, "हे दुष्ट, चिंता मत करो। शीघ्र ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। तीन माह बाद तथागत का पूर्णतः परारोहण हो जाएगा।"
10. और कपाला तीर्थस्थल पर भगवान बुद्ध ने सचेतन और स्पष्ट रूप से समझते हुए जीवन जीने की इच्छा का त्याग कर दिया। भगवान बुद्ध द्वारा जीवन जीने की इच्छा का त्याग करने पर एक भयंकर भूकंप आया, जो भयावह और आश्चर्यजनक था, और आकाश में गर्जना हुई। भगवान बुद्ध ने इसे समझदारी से देखा और यह गंभीर वचन कहा:
जीवन का कारण, चाहे वह असीम हो या सीमित—जीवन की उत्पत्ति की प्रक्रिया—इसका ऋषि त्याग करते हैं। आंतरिक शांति और आनंद के साथ वे अपने जीवन के कारण को, मानो कवच की तरह, तोड़ देते हैं। 11. तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "यह वास्तव में अद्भुत और अत्यंत आश्चर्यजनक है! पृथ्वी ज़ोर से कांप रही है! यह कितना भयानक और आश्चर्यजनक है कि आकाश में गर्जना गूंज रही है! ऐसा क्या कारण हो सकता है कि इतना शक्तिशाली भूकंप आया?"

भूकंप के आठ कारण

12. पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास आए और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गए। फिर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “यह वास्तव में अद्भुत और अत्यंत आश्चर्यजनक है! पृथ्वी बहुत ज़ोर से कांप रही है! आकाश में गर्जना कितनी भयानक और विस्मयकारी है! ऐसा शक्तिशाली भूकंप आने का कारण क्या हो सकता है?”
13. तब भगवान बुद्ध ने कहा: "हे आनंद, भयंकर भूकंप आने के आठ कारण हैं। वे आठ कारण क्या हैं?"
14. "आनंद, यह विशाल पृथ्वी द्रव पर, द्रव वायुमंडल पर और वायुमंडल अंतरिक्ष पर स्थापित है। और जब, आनंद, वायुमंडल में तीव्र हलचल होती है, तो द्रव में हलचल उत्पन्न होती है। और द्रव की हलचल से पृथ्वी में कंपन उत्पन्न होती है। यही शक्तिशाली भूकंपों के उत्पन्न होने का पहला कारण है।"
15. "आनंद, जब कोई तपस्वी या महान शक्तिवान संत, जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली हो, या कोई शक्तिशाली और सामर्थ्यवान देवता, पृथ्वी तत्व के सीमित पहलू पर और द्रव तत्व पर असीम एकाग्रता विकसित करता है, तो वह भी पृथ्वी को थरथराने, कांपने और हिलाने का कारण बनता है। यही दूसरा कारण है, भयंकर भूकंपों के उत्पन्न होने का दूसरा कारण।"
16-21. "हे आनंद, जब बोधिसत्व तुषिता लोक से विदा होकर अपनी माता के गर्भ में सचेत और स्पष्ट रूप से अवतरित होते हैं; और जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ से सचेत और स्पष्ट रूप से अवतरित होकर बाहर आते हैं; और जब तथागत अतुलनीय, सर्वोच्च ज्ञान में पूर्णतः प्रबुद्ध हो जाते हैं; जब तथागत धम्म के उत्कृष्ट चक्र को गतिमान करते हैं; जब तथागत जीवन जीने की इच्छा का त्याग करते हैं; और जब तथागत निर्वाण की उस अवस्था में विलीन हो जाते हैं जिसमें आसक्ति का कोई तत्व शेष नहीं रहता — तब भी, हे आनंद, यह महान पृथ्वी कांपती, थरथराती और हिलती है।"
"आनंद, ये आठ कारण हैं, एक महान भूकंप आने के आठ कारण।"

आठ विधानसभाएँ

22. "अब, हे आनंद, आठ प्रकार की सभाएँ होती हैं, अर्थात् कुलीनों, ब्राह्मणों, गृहस्थों, तपस्वियों, चार महान राजाओं, तैंतीस देवताओं, मारों और ब्रह्माओं की सभाएँ।"
23. "और मुझे याद है, आनंद, कि मैंने इन आठ प्रकार की सभाओं में भाग लिया है, जिनमें सैकड़ों लोग शामिल थे। बैठने और बातचीत या चर्चा शुरू करने से पहले, मैंने अपना रूप और अपनी आवाज़ उनके जैसी बना ली। और इस प्रकार मैंने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, और उन्हें प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न किया। फिर भी जब मैं उनसे इस प्रकार बोल रहा था, वे मुझे पहचान नहीं पाए, और वे एक-दूसरे से पूछते रहे: 'यह कौन है जो हमसे बात कर रहा है? क्या यह कोई मनुष्य है या कोई देवता?'"
"फिर उन्हें धम्म का उपदेश देकर, उन्हें प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न करके, मैं तुरंत अंतर्धान हो जाता था। और मेरे अंतर्धान हो जाने पर भी, वे मुझे पहचान नहीं पाते थे, और वे एक-दूसरे से पूछते थे: 'वह कौन है जो अंतर्धान हो गया है? क्या वह मनुष्य है या देवता?'"

"और इस प्रकार, आनंद, आठ प्रकार की सभाएँ होती हैं।"
महारत के आठ क्षेत्र
24. "आनंद, अब महारत के आठ क्षेत्र हैं। वे आठ कौन से हैं?"

25. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से अनुभव करते हुए, अपने से बाहर छोटे रूपों, सुंदर या बदसूरत, को देखता है और उन पर महारत हासिल कर लेता है, तो उसे पता चलता है कि वह उन्हें वैसे ही देखता और जानता है जैसे वे हैं - यह महारत का पहला क्षेत्र है।"
26. "जब कोई व्यक्ति, व्यक्तिपरक रूप से रूपों को देखते हुए, अपने से बाहर बड़े रूपों, सुंदर या बदसूरत, को देखता है और उन पर महारत हासिल कर लेता है, तो वह इस बात से अवगत होता है कि वह उन्हें वैसे ही देखता और जानता है जैसे वे हैं - यह महारत का दूसरा क्षेत्र है।"
27. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से न देखते हुए, अपने से बाहर मौजूद छोटे रूपों, सुंदर या बदसूरत, को देखता है और उन पर महारत हासिल कर लेता है, तो वह इस बात से अवगत होता है कि वह उन्हें वैसे ही देखता और जानता है जैसे वे हैं - यह महारत का तीसरा क्षेत्र है।"
28. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से न देखते हुए, अपने से बाहर बड़े रूपों, सुंदर या बदसूरत, को देखता है और उन पर महारत हासिल कर लेता है, तो वह इस बात से अवगत होता है कि वह उन्हें वैसे ही देखता और जानता है जैसे वे हैं - यह महारत का चौथा क्षेत्र है।"
29. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से अनुभव किए बिना, अपने से बाहर नीले रंग के, नीली चमक वाले रूप देखता है, जैसे सन के फूल या बनारस के महीन मलमल के समान, जो दोनों तरफ से पॉलिश किया हुआ नीला होता है, नीली चमक वाला होता है - जब ऐसा व्यक्ति अपने से बाहर नीले रंग के रूप देखता है, और उन पर महारत हासिल करके, यह जानता है कि वह उन्हें जैसा है वैसा ही देखता और जानता है - यह महारत का पाँचवाँ क्षेत्र है।"
30. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से देखे बिना, अपने से बाहर पीले रंग के, पीले रंग की, कनिकारा फूल के समान पीली चमक वाली, या दोनों तरफ से पॉलिश किए गए महीन बनारस मलमल के समान पीले रंग की, पीली चमक वाली आकृतियों को देखता है - जब ऐसा व्यक्ति अपने से बाहर पीले रंग की आकृतियों को देखता है, और उन पर महारत हासिल करके, यह जानता है कि वह उन्हें उनके वास्तविक रूप में देखता और जानता है - तो यह महारत का छठा क्षेत्र है।"
31. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से देखे बिना, अपने से बाहर ऐसे रूप देखता है जो लाल रंग के हों, बंधुजीवका फूल के समान लाल चमक वाले हों, या दोनों तरफ से पॉलिश किए गए महीन बनारस मलमल के समान लाल रंग के हों, लाल चमक वाले हों - जब ऐसा व्यक्ति अपने से बाहर लाल रंग के रूप देखता है, और उन पर महारत हासिल कर लेता है, और इस बात से अवगत होता है कि वह उन्हें उनके वास्तविक रूप में देखता और जानता है - तो यह महारत का सातवां क्षेत्र है।"
32. "जब कोई व्यक्ति, रूपों को व्यक्तिपरक रूप से अनुभव किए बिना, अपने से बाहर ऐसे रूप देखता है जो श्वेत हैं, श्वेत रंग के हैं, भोर के तारे के समान श्वेत चमक वाले हैं, या दोनों तरफ से पॉलिश किए गए उत्तम बनारस मलमल के समान श्वेत हैं - जब ऐसा व्यक्ति अपने से बाहर श्वेत रूपों को देखता है, और उन पर महारत हासिल करके, इस बात से अवगत होता है कि वह उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में देखता और जानता है - तो यह महारत का आठवां क्षेत्र है।"
"आनंद, ये ही महारत के आठ क्षेत्र हैं।"

आठ मुक्ति

33. "आनंद, अब आठ मुक्ति हैं। वे आठ कौन सी हैं?"
34. "स्वयं आकार धारण करके ही व्यक्ति आकारों को देखता है; यही प्रथम मुक्ति है।"
35. "अपने स्वयं के रूप से अनभिज्ञ होकर, व्यक्ति अपने से बाह्य रूपों को अनुभव करता है; यही दूसरी मुक्ति है।"
36. "सुंदरता का अनुभव करते हुए, व्यक्ति उस पर ध्यान केंद्रित करता है; यही तीसरी मुक्ति है।"
37. "पदार्थ की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की धारणाओं के लुप्त होने से, और विविधता-धारणाओं पर ध्यान न देकर, व्यक्ति अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र के प्रति सजग हो जाता है, उसे प्राप्त कर लेता है और उसमें स्थिर हो जाता है; यही चौथी मुक्ति है।"
38. "अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति अनंत चेतना के क्षेत्र के प्रति सजग हो जाता है, उसे प्राप्त कर लेता है और उसमें स्थिर हो जाता है; यही पाँचवीं मुक्ति है।"
39. "अनंत चेतना के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति शून्यता के क्षेत्र के प्रति सजग हो जाता है, उसे प्राप्त कर लेता है और उसमें स्थिर हो जाता है; यही छठी मुक्ति है।"
40. "शून्यता के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; यही सातवीं मुक्ति है।"
41. "न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति बोध और संवेदना की समाप्ति को प्राप्त करता है और उसमें स्थिर रहता है; यही आठवीं मुक्ति है।"
"आनंद, ये आठ मुक्ति हैं।"

मारा का पूर्व प्रलोभन

42. "आनंद, एक समय ऐसा था जब मैं परम ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद, नेरांजरा नदी के किनारे, उरुवेला में, चरवाहों के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहा था। तभी दुष्ट मारा मेरे पास आकर बोला: 'हे भगवान, अब भगवान को उनके अंतिम प्राण त्यागने दीजिए! भगवान को पूर्णतः प्राण त्यागने दीजिए! भगवान के परिनिर्वाण का समय आ गया है।'"

43. "तब, हे आनंद, मैंने दुष्ट मारा को उत्तर देते हुए कहा: 'हे दुष्ट, मैं तब तक अपने अंतिम प्राण त्याग नहीं दूंगा जब तक मेरे भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और स्त्रियां, सच्चे शिष्य न बन जाएं—बुद्धिमान, अनुशासित, योग्य और विद्वान, धम्म के संरक्षक, धम्म के अनुसार जीवन यापन करने वाले, उचित आचरण का पालन करने वाले और गुरु के वचन को सीखकर उसकी व्याख्या करने, उसका प्रचार करने, उसका उद्घोष करने, उसे स्थापित करने, उसे प्रकट करने, उसकी विस्तार से व्याख्या करने और उसे स्पष्ट करने में सक्षम न हो जाएं; जब तक कि प्रतिकूल मत उत्पन्न हों, तो वे उनका पूर्णतः और अच्छी तरह खंडन करने और इस प्रेरक और मुक्तिदायक धम्म का प्रचार करने में सक्षम न हो जाएं।'

44. "'हे दुष्ट, मैं तब तक अपनी अंतिम मृत्यु को प्राप्त नहीं होऊंगा, जब तक कि मेरे द्वारा सिखाया गया यह पवित्र जीवन सफल, समृद्ध, दूर-दूर तक प्रसिद्ध, लोकप्रिय और व्यापक न हो जाए, जब तक कि देवताओं और मनुष्यों के बीच इसका अच्छी तरह से प्रचार न हो जाए।'

45. "और आज फिर, आनंद, चपाला मंदिर में, दुष्ट मारा मेरे पास आया और बोला: 'हे भगवान, भिक्षुओं और भिक्षुणियों, गृहस्थ पुरुषों और गृहस्थ महिलाओं, सभी भगवान बुद्ध के सच्चे शिष्य बन गए हैं - बुद्धिमान, सुशासित, योग्य और विद्वान, धम्म के संरक्षक, धम्म के अनुसार जीवन यापन करने वाले, उचित आचरण में रहने वाले, और गुरु के वचन को सीखकर, उसकी व्याख्या करने, उसका प्रचार करने, उसका प्रचार करने, उसे स्थापित करने, उसे प्रकट करने, उसकी विस्तार से व्याख्या करने और उसे स्पष्ट करने में सक्षम हैं; और जब प्रतिकूल मत उत्पन्न होते हैं, तो वे अब उनका पूरी तरह और अच्छी तरह से खंडन करने और इस प्रेरक और मुक्तिदायक धम्म का प्रचार करने में सक्षम हैं।

"और अब, हे भगवान, भगवान बुद्ध द्वारा सिखाया गया यह पवित्र जीवन सफल, समृद्ध, दूर-दूर तक प्रसिद्ध, लोकप्रिय और व्यापक हो गया है, और देवताओं और मनुष्यों के बीच इसकी अच्छी तरह से चर्चा हो रही है। इसलिए, हे भगवान, भगवान बुद्ध को उनके अंतिम देहांत तक आने दें! भगवान को पूर्णतः विदा होने दें! भगवान के परिनिर्वाण का समय आ गया है।"

46. "और फिर, आनंद, मैंने दुष्ट मारा को उत्तर देते हुए कहा: 'दुष्ट, तुम परेशान मत हो। शीघ्र ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। तीन माह बाद तथागत का पूर्णतः अंत हो जाएगा।'"

47. "और इस प्रकार, आनंद, आज चपाला मंदिर में तथागत ने जीने की इच्छा का त्याग कर दिया है।"

आनंद की अपील

48. इन शब्दों को सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, हे भगवान! हे भगवान, समस्त विश्वकाल में समस्त जन कल्याण और सुख के लिए, जगत के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, सुख और कल्याण के लिए बने रहें!”

49. और भगवान बुद्ध ने उत्तर देते हुए कहा, "बस करो, आनंद। तथागत से विनती मत करो, क्योंकि आनंद, ऐसी विनती का समय बीत चुका है।"

50-51. लेकिन दूसरी और तीसरी बार, पूज्य आनंद ने भगवान से कहा: "हे भगवान, भगवान बने रहें! हे भगवान, समस्त विश्वकाल में बने रहें, असंख्य लोगों के कल्याण और सुख के लिए, जगत के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए!"

52. तब भगवान ने कहा: "आनंद, क्या तुम्हें तथागत के ज्ञानोदय में विश्वास है?" और पूज्य आनंद ने उत्तर दिया: "हाँ, हे भगवान, मुझे विश्वास है।"

"तो फिर, आनंद, तुम तथागत के विरुद्ध तीसरी बार तक भी कैसे डटे रह सकते हो?"

53. तब पूज्य आनंद ने कहा: "हे भगवान, यह मैंने स्वयं भगवान बुद्ध से सुना और सीखा है, जब भगवान बुद्ध ने मुझसे कहा था: 'हे आनंद, जिसने भी मानसिक शक्ति के चार तत्वों को विकसित किया है, अभ्यास किया है, उपयोग किया है, मजबूत किया है, बनाए रखा है, बारीकी से परखा है और पूर्णता तक पहुँचाया है, वह यदि चाहे तो एक संसार काल तक या उसके अंत तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत ने ऐसा ही किया है। इसलिए तथागत भी यदि चाहें तो एक संसार काल तक या उसके अंत तक जीवित रह सकते हैं।'"

54. "और क्या तुमने इस पर विश्वास किया, आनंदा?"

"हां, हे भगवान, मैंने किया।"

"तो, आनंद, गलती तुम्हारी है। इसमें तुम असफल रहे, क्योंकि तुम तथागत द्वारा दिए गए स्पष्ट सुझाव, महत्वपूर्ण संकेत को समझ नहीं पाए और तुमने तथागत से वहाँ रहने का आग्रह नहीं किया। क्योंकि यदि तुमने ऐसा किया होता, आनंद, तो तथागत शायद दो बार मना कर देते, लेकिन तीसरी बार वे मान जाते। इसलिए, आनंद, गलती तुम्हारी है; इसमें तुम असफल रहे।"

55. "राजगृह में, आनंद, जब मैं गिद्ध शिखर पर निवास कर रहा था, मैंने तुमसे कहा था: 'आनंद, राजगृह कितना सुखद है; गिद्ध शिखर कितना सुखद है। आनंद, जिसने भी विकास किया है... इसलिए तथागत, यदि चाहें तो, एक विश्वकाल तक या उसके अंत तक रह सकते हैं।'

56. "इसी प्रकार बरगद के वन में, लुटेरों की चट्टान पर, वेभारा पर्वत पर स्थित सत्तपन्नी गुफा में, इसिगिली की काली चट्टान पर, शीतल वन में स्थित सर्पों के कुंड में, तपौदा के वन में, गिलहरियों के चरागाह में स्थित बांस के वन में, जीवक के आम के वन में और हिरण उद्यान में स्थित छोटे से कोने में मैंने तुमसे इन्हीं शब्दों में कहा था: 'हे आनंद, राजगृह कितना सुखद है, ये स्थान कितने सुखद हैं। हे आनंद, जिसने भी विकास किया है... इसलिए तथागत, यदि चाहें तो, एक विश्वकाल तक या उसके अंत तक रह सकते हैं।"

लेकिन हे आनंद, तुम तथागत द्वारा दिए गए स्पष्ट सुझाव और महत्वपूर्ण प्रेरणा को समझ नहीं पाए और तुमने तथागत से रुकने का आग्रह नहीं किया। क्योंकि यदि तुमने ऐसा किया होता, हे आनंद, तो तथागत शायद दो बार मना कर देते, लेकिन तीसरी बार वे मान जाते। इसलिए, हे आनंद, गलती तुम्हारी है; इसमें तुम असफल रहे।

57. "इसी प्रकार, हे आनंद, वैशाली में तथागत ने समय-समय पर तुमसे कहा है: 'हे आनंद, वैशाली सुंदर है; उदेना, गौतमक, सत्तंबक, बहुपुत्त, सरंददा और चपाल के मंदिर सुंदर हैं। हे आनंद, जिसने भी उन्नति की है... इसलिए तथागत चाहें तो एक युग के पूरे काल तक या उसके अंत तक वहाँ रह सकते हैं।'

"परन्तु हे आनंद, तथागत द्वारा दिए गए स्पष्ट सुझाव, उस महत्वपूर्ण प्रेरणा को तुम समझ नहीं पाए और तथागत से वहाँ रुकने का आग्रह नहीं किया। क्योंकि यदि तुमने ऐसा किया होता, हे आनंद, तो तथागत दो बार मना कर देते, परन्तु तीसरी बार वे मान जाते। अतः, हे आनंद, गलती तुम्हारी है; इसमें तुम असफल रहे।"

58. "फिर भी, आनंद, क्या मैंने शुरू से ही यह नहीं सिखाया है कि जो कुछ भी प्रिय और प्यारा है, उसमें परिवर्तन, वियोग और विच्छेद अवश्य होगा? जो जन्म लेता है, अस्तित्व में आता है, बनता है और क्षय के अधीन है, उसके बारे में कोई कैसे कह सकता है: 'काश उसका विघटन न हो!' ऐसी कोई स्थिति हो ही नहीं सकती। और हे आनंद, तथागत ने जिस चीज का समापन कर दिया है, जिसे उन्होंने त्याग दिया है, छोड़ दिया है, त्याग दिया है और अस्वीकार कर दिया है - जीने की इच्छा - उसके बारे में तथागत ने एक बार ही कहा है: 'शीघ्र तथागत का परिनिर्वाण होगा। तीन माह बाद तथागत पूर्णतः परलोक चले जाएंगे।' और तथागत का जीवित रहने के लिए अपने वचनों को वापस लेना असंभव है।"

अंतिम चेतावनी

59. "तो फिर, आनंद, आइए हम महान वन में स्थित गैबल हाउस के हॉल में चलें।" और पूज्य आनंद ने उत्तर दिया: "ऐसा ही हो, भगवान।"

60. तब भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, महान वन में स्थित गैबल हाउस के हॉल में गए। वहाँ उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "हे आनंद, अब जाओ और वैशाली के आसपास रहने वाले सभी भिक्षुओं को सभा कक्ष में एकत्रित करो।"

"ऐसा ही हो, भगवान।" और पूज्य आनंद ने वैशाली के पड़ोस में रहने वाले सभी भिक्षुओं को इकट्ठा किया और उन्हें सभा-गृह में एकत्रित किया। फिर, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, एक तरफ खड़े होकर उन्होंने कहा: "भिक्षुओं का समुदाय एकत्रित हो गया है, भगवान। अब भगवान बुद्ध अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।"

61. तब भगवान बुद्ध सभा-गृह में प्रवेश कर अपने लिए तैयार आसन पर बैठकर भिक्षुओं को उपदेश देते हुए बोले: "हे भिक्षुओं, मैं तुमसे कहता हूँ कि जिन शिक्षाओं का मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान है और जिनका मैंने तुम्हें ज्ञान दिया है, उन्हें तुम भली-भांति सीखो, उनका अभ्यास करो, उन्हें विकसित करो और बार-बार उनका पालन करो, ताकि पवित्र जीवन स्थापित हो और दीर्घायु बना रहे, जनसमूह के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए।"

62. "हे भिक्षुओं, ये शिक्षाएँ क्या हैं? ये हैं ध्यान के चार आधार, चार उचित प्रयास, मानसिक शक्ति के चार घटक, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, ज्ञान के सात कारक और आर्य अष्टांगिक मार्ग। हे भिक्षुओं, ये वे शिक्षाएँ हैं जिनका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान है, जो मैंने आपको बताई हैं, और जिनका आपको पूर्णतया अध्ययन, अभ्यास, विकास और नियमित रूप से साधना करनी चाहिए, ताकि पवित्र जीवन स्थापित हो और दीर्घकाल तक बना रहे, जनसमूह के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए।"

63. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ: सभी मिश्रित वस्तुएँ निष्फल होने वाली हैं। पूरी लगन से प्रयास करो। तथागत के परिनिर्वाण का समय निकट है। तीन माह बाद तथागत का पूर्णतः परारोहण हो जाएगा।"

64. और ये शब्द कहने के बाद, धन्य पुरुष, गुरु ने फिर कहा:

मेरी उम्र अब पूरी हो चुकी है, जीवन का समय बहुत कम बचा है। मैं अब तुमसे विदा लेता हूँ, केवल अपने सहारे। हे भिक्षुओं, सचेत रहो, सजग रहो और शुद्ध गुणों से परिपूर्ण रहो!

दृढ़ संकल्प के साथ अपने मन की रक्षा करो! जो निरंतर धम्म और अनुशासन का अनुसरण करता है, वह जन्म-जन्म के चक्र से परे जाकर दुखों का अंत करेगा।

भाग चार: अंतिम भोजन
हाथी की नज़र
1. फिर भगवान बुद्ध ने दोपहर से पहले तैयार होकर भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और वैशाली में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने और भोजन करने के बाद, लौटकर उन्होंने हाथी जैसी दृष्टि से वैशाली की ओर देखा, 36 और पूज्य आनंद से कहा: “आनंद, यह अंतिम बार है जब तथागत वैशाली को देखेंगे। आओ, आनंद, हम भंडागम चलें।”
"ऐसा ही हो, हे भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक विशाल समुदाय के साथ भंडागामा में अपना निवास स्थान बनाया।
2. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, चार सिद्धांतों को न जानने और उनमें पारंगत न होने के कारण ही यह जन्म-मृत्यु का लंबा चक्र मेरे और आपके द्वारा सहा गया है। वे चार सिद्धांत क्या हैं? वे हैं: श्रेष्ठ सद्गुण, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ मुक्ति। परन्तु अब, भिक्षुओं, इन सिद्धांतों को जान लेने और उनमें पारंगत हो जाने से, जीवन की लालसा समाप्त हो गई है, वह सब नष्ट हो गया है जो पुनर्जन्म की ओर ले जाता है, और अब कोई नया पुनर्जन्म नहीं है।"
3. और ये शब्द कहने के बाद, धन्य पुरुष, गुरु ने फिर कहा:
"सद्गुण, एकाग्रता, ज्ञान और मुक्ति अतुलनीय हैं।"
ये वे सिद्धांत हैं जिन्हें ख्यातिप्राप्त गौतम गौतम ने साकार किया था;
और, उन्हें जानकर, बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा दी।
वह, दुखों का नाश करने वाला, स्वामी, द्रष्टा, शांति में है।
4. भंडागम में भगवान बुद्ध अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश देते थे: "ऐसा-ऐसा सद्गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्गुणों से परिपूर्ण हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता से परिपूर्ण हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; और जो मन बुद्धि में परिपूर्ण हो जाता है, वह कामवासना, कर्मकांड और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"
5. जब भगवान बुद्ध भंडागामा में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आओ, आनंद, हम हत्थिगमा चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक विशाल समुदाय के साथ हत्थिगमा में अपना निवास स्थान बनाया।
और जब भगवान बुद्ध हत्थिगमा में अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय तक रहे, तो उन्होंने अंबगामा में निवास किया, फिर जंबुगामा में। और इन सभी स्थानों पर भगवान बुद्ध भिक्षुओं को अक्सर इस प्रकार उपदेश देते थे: "ऐसा-ऐसा सद्गुण है; ऐसा-ऐसा एकाग्रता है; और ऐसा-ऐसा ज्ञान है। जब एकाग्रता सद्गुणों से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब ज्ञान एकाग्रता से पूर्णतः विकसित हो जाता है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; काम, कर्म और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त वह मन है जो ज्ञान में पूर्णतः विकसित हो जाता है।"
6. और जब भगवान बुद्ध जंबुगामा में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक ठहर गए, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आओ, आनंद, हम भोगनगर चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भोगनगर में अपना निवास स्थान बनाया और आनंद मंदिर में ठहरे।
चार महान संदर्भ 7. और वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें चार महान संदर्भों के बारे में बताऊंगा। 37 मेरी बातों को ध्यान से सुनो और समझो।" और उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया:
"ऐसा ही हो, भगवान।"
8-11. तब भगवान बुद्ध ने कहा: “इस प्रकार, भिक्षु, एक भिक्षु कह सकता है: 'भगवान बुद्ध के समक्ष, भाइयों, मैंने यह सुना और सीखा है: यह धम्म और अनुशासन है, गुरु का उपदेश है'; या: 'अमुक नाम के एक आश्रम में एक समुदाय रहता है जिसमें वरिष्ठ और एक मुखिया होते हैं। उस समुदाय के समक्ष, मैंने यह सुना और सीखा है: यह धम्म और अनुशासन है, गुरु का उपदेश है'; या: 'अमुक नाम के एक आश्रम में कई भिक्षु रहते हैं जो वरिष्ठ हैं, विद्वान हैं, जिन्होंने अपना मार्ग पूर्ण कर लिया है, जो धम्म, अनुशासन और सारांश के संरक्षक हैं। उन वरिष्ठों के समक्ष, मैंने यह सुना और सीखा है: यह धम्म और अनुशासन है, गुरु का उपदेश है'; या: 'अमुक नाम के एक आश्रम में एक अकेला भिक्षु रहता है जो एक एक विद्वान, अपने मार्ग को पूर्ण कर चुके, धम्म, अनुशासन और सारांश के संरक्षक, उस वरिष्ठ गुरु से मैंने आमने-सामने बैठकर यह सुना और सीखा है: यही धम्म और अनुशासन है, गुरु का उपदेश है।
ऐसे में, हे भिक्षुओं, ऐसे भिक्षु के कथन को न तो स्वीकृति से स्वीकार करना चाहिए और न ही तिरस्कार से। स्वीकृति और तिरस्कार दोनों के बिना, बल्कि वाक्यों का शब्द-दर-शब्द ध्यानपूर्वक अध्ययन करके, उन्हें प्रवचनों में ढूँढ़ना चाहिए और अनुशासन के अनुसार सत्यापित करना चाहिए। यदि वे न तो प्रवचनों में मिलें और न ही अनुशासन के अनुसार सत्यापित हों, तो यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान बुद्ध का वचन नहीं है; इसे उस भिक्षु ने - या उस समुदाय ने, या उन वरिष्ठों ने, या उस वरिष्ठ ने - गलत समझा है।' इस प्रकार, हे भिक्षुओं, आपको इसे अस्वीकार कर देना चाहिए। लेकिन यदि संबंधित वाक्य प्रवचनों में मिलें और अनुशासन के अनुसार सत्यापित हों, तो यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान बुद्ध का वचन है; इसे उस भिक्षु ने - या उस

समुदाय ने, या उन वरिष्ठों ने, या उस वरिष्ठ ने - अच्छी तरह से समझा है।' और इस प्रकार, भिक्षुओं, आप इसे पहले, दूसरे, तीसरे या चौथे संदर्भ में स्वीकार कर सकते हैं। भिक्षुओं, ये चार महान संदर्भ हैं जिन्हें आपको संरक्षित रखना चाहिए।
12. और भोगनगर में, आनंद मंदिर में, भगवान बुद्ध अक्सर भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश देते थे: "ऐसा-ऐसा सद्गुण है; ऐसी-ऐसी एकाग्रता है; और ऐसी-ऐसी बुद्धि है। जब एकाग्रता सद्गुणों से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; जब बुद्धि एकाग्रता से पूर्णतः विकसित हो जाती है, तो उसका फल महान होता है, उसका लाभ महान होता है; काम, कर्म और अज्ञान के दोषों से पूर्णतः मुक्त वह मन है जो बुद्धि में पूर्णतः विकसित हो जाता है।"
13. जब भगवान बुद्ध भोगनगर में अपनी इच्छानुसार कुछ समय तक रहे, तो उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आओ, आनंद, हम पावा चलें।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ पावा में अपना निवास स्थान बनाया और चुंडा के आम के बाग में ठहरे, जो परिवार से धातुकर्मी थे।

बुद्ध का अंतिम भोजन
14. और चुंडा नामक धातुकर्मी को यह पता चला, "लोग कहते हैं कि भगवान पावा आ गए हैं और मेरे आम के बाग में ठहरे हुए हैं।" वह भगवान के पास गया और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। भगवान ने चुंडा नामक धातुकर्मी को धर्म का उपदेश दिया, उसे प्रेरित किया, उसका ज्ञानवर्धन किया और उसे प्रसन्न किया।
15. तब चुंडा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ भोज के लिए मेरा निमंत्रण स्वीकार कीजिए।" और भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दे दी।
16. तब, भगवान की सहमति के बारे में आश्वस्त होकर, धातुकर्मी चुंडा अपनी सीट से उठा, आदरपूर्वक भगवान को प्रणाम किया और अपना दाहिना भाग उनकी ओर रखते हुए वहां से चला गया।
17. और रात बीत जाने के बाद, धातु कारीगर चुंडा ने अपने घर में उत्तम प्रकार का भोजन, कठोर और नरम, तथा सुकरा-मद्दवा की पर्याप्त मात्रा तैयार करवाई और भगवान बुद्ध को यह सूचना देते हुए कहा: "हे भगवान, भोजन तैयार है।"
18. तब भगवान बुद्ध ने दोपहर से पहले तैयार होकर, कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ चुंडा के घर गए और वहाँ अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। उन्होंने चुंडा से कहा, "चुंडा, तुमने जो सुकर-मद्दव तैयार किया है, उससे मेरी सेवा करो; अन्य भोजन, कठोर और नरम, उससे भिक्षुओं के समुदाय की सेवा करो।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और अपने द्वारा तैयार किए गए सुकरा-मद्दवा से उन्होंने भगवान बुद्ध की सेवा की; और अन्य कठोर और नरम भोजन से उन्होंने भिक्षुओं के समुदाय की सेवा की।
19. इसके बाद भगवान बुद्ध ने चुंडा से कहा, "हे चुंडा, सुकरमद्दव का जो भी भाग बच जाए, उसे गड्ढे में गाड़ दो। क्योंकि इस समस्त संसार में, देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, तपस्वियों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के बीच, तथागत के सिवा कोई ऐसा नहीं है जो इसे खाकर पूर्णतः पचा सके।"
और धातुकर्मी चुंडा ने भगवान बुद्ध से कहा, "ऐसा ही हो, हे भगवान।" और सुकरा-मद्दवा का जो कुछ बचा था, उसे उसने एक गड्ढे में गाड़ दिया।
20. फिर वह भगवान बुद्ध के पास लौटकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने चुंडा नामक धातुकर्मी को धम्म का उपदेश दिया, उसे प्रेरित किया, उसका ज्ञानवर्धन किया और उसे प्रसन्न किया। इसके बाद वह अपने आसन से उठकर चले गए।
21. चुंडा नामक धातुकर्मी द्वारा परोसे गए भोजन को ग्रहण करने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध को भयंकर रोग, अर्थात् पेचिश हो गया, और उन्हें तीव्र एवं असहनीय पीड़ा होने लगी। परन्तु भगवान बुद्ध ने धैर्यपूर्वक, सर्वथा समझते हुए और अविचलित होकर उन पीड़ाओं को सहन किया।
22. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "आओ, आनंद, हम कुशीनार चलें।" पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, "ऐसा ही हो, भगवान।"
23. जब उन्होंने चुंडा का भोजन ग्रहण कर लिया, तब मैंने सुना कि उन्होंने धैर्यपूर्वक असहनीय पीड़ा सहन की। शुक्र-मद्दव से भगवान को एक भयंकर और दर्दनाक बीमारी हो गई। लेकिन उन्होंने प्रकृति की पीड़ा सहन की। "चलो, कुशीनारा चलें," उनका निडर शब्द था।
जल का शुद्धिकरण 24. अब रास्ते में भगवान मुख्य मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे रुक गए। और उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आनंद, कृपया मेरे ऊपरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर नीचे रख दें। मैं थक गया हूँ और थोड़ी देर आराम करना चाहता हूँ।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और पूज्य आनंद ने वस्त्र को चार भागों में मोड़कर नीचे रख दिया।
25. और भगवान बुद्ध अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, कृपया मेरे लिए थोड़ा पानी लाओ। मुझे प्यास लगी है और मैं पीना चाहता हूँ।"
26. तब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया, "परन्तु अभी-अभी, हे भगवान, बहुत से रथ, लगभग पाँच सौ रथ, यहाँ से गुजरे हैं, और पहियों के कारण उथला जल कट गया है, जिससे वह मटमैला और गंदा बह रहा है। परन्तु हे भगवान, ककुत्था नदी तो बिल्कुल

पास ही है, और उसका जल निर्मल, सुखद, शीतल और पारदर्शी है। वह सुगम्य और रमणीय स्थान पर स्थित है। वहाँ भगवान बुद्ध अपनी प्यास बुझा सकते हैं और अपने अंगों को तरोताजा कर सकते हैं।"

27-29. लेकिन भगवान बुद्ध ने दूसरी बार निवेदन किया, और पूज्य आनंद ने पहले की तरह ही उत्तर दिया। फिर तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा: "आनंद, कृपया मेरे लिए थोड़ा पानी लाओ। मुझे प्यास लगी है और मैं पीना चाहता हूँ।"

30. तब पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, "ऐसा ही हो, भगवान।" और उन्होंने कटोरा उठाया और नदी की ओर चल दिए। पहियों के कारण उथला जल, जो मटमैला और मैला बह रहा था, पूज्य आनंद के पास आते ही साफ और शांत हो गया, शुद्ध और सुखद।

31. तब पूज्य आनंद ने सोचा: "तथागत की शक्ति और महिमा वास्तव में अद्भुत और अत्यंत आश्चर्यजनक है!"

32. फिर उसने कटोरे में जल लिया और उसे भगवान बुद्ध के पास ले जाकर कहा, "तथागत की शक्ति और महिमा वास्तव में अद्भुत और अत्यंत आश्चर्यजनक है! क्योंकि यह उथला जल, जो पहियों के कारण मटमैला और गंदा बह रहा था, मेरे पास आते ही साफ और स्थिर, शुद्ध और सुखद हो गया। अब भगवान बुद्ध इस जल को पी लें। हे भगवान बुद्ध, इसे पी लें।" और भगवान बुद्ध ने जल पी लिया।

पुक्कुसा द मल्ला

33. अब ऐसा हुआ कि मल्ल वंश का एक पुक्कुसा, जो अलारा कलामा का शिष्य था, कुसिनारा से पावा की ओर जा रहा था।

34. जब उसने भगवान को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा, तो वह उनके पास गया, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। फिर उसने भगवान से कहा, "हे भगवान, यह कितना अद्भुत है, हे भगवान, यह कितना आश्चर्यजनक है कि संसार से विदा हुए लोग कितनी शांति में रहते हैं।"

35. "एक बार, हे भगवान, अलारा कलामा यात्रा पर थे और वे राजमार्ग से हटकर एक पेड़ की छाया में बैठ गए ताकि दिन की गर्मी से बच सकें। तभी, हे भगवान, बहुत सी गाड़ियाँ, लगभग पाँच सौ गाड़ियाँ, एक-एक करके उनके पास से गुज़रीं। फिर, हे भगवान, एक व्यक्ति जो उन गाड़ियों के काफिले के पीछे चल रहा था, उनके पास आया और उनसे बोला, 'क्या आपने, महाराज, बहुत सी गाड़ियाँ देखीं जो आपके पास से गुज़रीं?' अलारा कलामा ने उत्तर दिया, 'मैंने उन्हें नहीं देखा, भाई।' 'पर, महाराज, आपने शोर तो ज़रूर सुना होगा?' 'मैंने नहीं सुना, भाई।' तब उस व्यक्ति ने उनसे पूछा, 'तो, महाराज, शायद आप सो रहे थे?' 'नहीं, भाई, मैं सो नहीं रहा था।' 'तो, महाराज, क्या आप होश में थे?' 'हाँ, भाई।' तब उस व्यक्ति ने कहा: 'तो फिर, महाराज, जब आप होश में थे और जाग रहे थे, तब भी आपने एक के बाद एक आपके पास से गुज़रने वाली इतनी बड़ी संख्या में गाड़ियाँ, यहाँ तक कि पाँच सौ गाड़ियाँ, नहीं देखीं और न ही उनका शोर सुना? अरे, महाराज, आपका वस्त्र भी उनकी धूल से सना हुआ है!' इस पर अलारा कलामा ने उत्तर दिया: 'जी हाँ, भाई।'

36. "और हे भगवान, उस व्यक्ति के मन में यह विचार आया: 'यह कितना अद्भुत है, वास्तव में कितना आश्चर्यजनक है, उन लोगों की शांति की अवस्था जिसमें वे रहते हैं जो संसार से विदा हो चुके हैं!' और उसके मन में अलारा कलामा में गहरा विश्वास उत्पन्न हुआ, और वह अपने मार्ग पर चल पड़ा।"

37. "अब तुम क्या सोचते हो, पुक्कुसा? इनमें से कौन सा काम करना अधिक कठिन है, कौन सी स्थिति का सामना करना अधिक कठिन है — कि कोई व्यक्ति सचेत और जागृत अवस्था में, एक के बाद एक गुजरती हुई असंख्य गाड़ियों, यहाँ तक कि पाँच सौ गाड़ियों को न देखे और न ही उनकी आवाज़ सुने, या फिर सचेत और जागृत अवस्था में, भारी बारिश के बीच, गरजते बादलों, चमकती बिजली और बिजली कड़कने के बावजूद, न तो उसे देखे और न ही उसकी आवाज़ सुने?"

38. "हे भगवान, पाँच सौ गाड़ियाँ - बल्कि छह, सात, आठ, नौ सौ, या एक हज़ार या यहाँ तक कि लाखों गाड़ियाँ - इसकी तुलना में क्या हैं?"

39. "एक बार, पुक्कुसा, मैं अतुमा में ठहरा हुआ था और वहाँ एक खलिहान में मेरा निवास था। उस समय भारी बारिश हो रही थी, गरज हो रही थी, बिजली चमक रही थी और बिजली कड़क रही थी। खलिहान के पास दो किसान भाई, चार बैलों के साथ मारे गए, और अतुमा से एक बड़ी भीड़ उस स्थान पर उमड़ पड़ी जहाँ वे मारे गए थे।

40. "उस समय, पुक्कुसा, मैं खलिहान से बाहर आ गया था और दरवाजे के सामने सोच-विचार करते हुए इधर-उधर टहल रहा था। तभी भीड़ में से एक आदमी मेरे पास आया, आदरपूर्वक मेरा अभिवादन किया और एक तरफ खड़ा हो गया।

41. "और मैंने उससे पूछा, 'भाई, इतनी बड़ी भीड़ यहाँ क्यों इकट्ठा हुई है?' उसने उत्तर दिया, 'अभी-अभी, भगवान, बहुत तेज़ बारिश हुई, गरज हुई, बिजली चमकी और बिजली कड़की। और दो किसान भाई पास ही में चार बैलों के साथ मारे गए। इसी कारण इतनी बड़ी भीड़ यहाँ इकट्ठा हुई है। लेकिन भगवान, आप कहाँ थे?'"

"'मैं यहीं था, भाई।' 'फिर भी, भगवान, क्या आपने इसे नहीं देखा?' 'मैंने इसे नहीं देखा, भाई।' 'पर वह शोर, भगवान, आपने अवश्य सुना होगा?' 'मैंने नहीं सुना, भाई।' तब उस व्यक्ति ने मुझसे पूछा: 'तो, भगवान, शायद आप सो रहे थे?' 'नहीं, भाई, मैं सो नहीं रहा था।' 'तो, भगवान, आप सचेत थे?' 'हाँ, भाई।' तब उस व्यक्ति ने कहा: 'तो, भगवान, सचेत और जागृत रहते हुए, भारी बारिश के बीच, गरजते बादलों, चमकती बिजली और कड़कती बिजली के बीच, आपने न तो इसे देखा और न ही शोर सुना?' और मैंने उसे उत्तर दिया: 'मैंने नहीं सुना, भाई।'

42. "और उस पुक्कुसा के मन में यह विचार आया: 'यह कितना अद्भुत है, वास्तव में कितना आश्चर्यजनक है, उन लोगों की शांति की अवस्था जिसमें वे रहते हैं जो संसार से विमुख हो गए हैं!' और उसके मन में मुझ पर गहरा विश्वास जागा, और उसने आदरपूर्वक मुझे प्रणाम किया, और अपनी दाहिनी ओर मेरी ओर रखते हुए वह अपने मार्ग पर चल पड़ा।"
43. यह सुनकर मल्ल वंश के पुक्कुसा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अलारा कलामा में जो आस्था मेरे मन में थी, उसे मैं अब प्रचंड हवा में बिखेर देता हूँ, उसे बहती धारा की तरह बहने देता हूँ! हे भगवान, उत्तम, हे भगवान, परम उत्तम! हे भगवान, मानो कोई गिरी हुई वस्तु को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए को मार्ग दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि आँखें रखने वाले देख सकें—ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से धर्म का प्रसार किया है। अतः हे भगवान, मैं भगवान बुद्ध, धर्म और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे अपने शिष्य के रूप में, जीवन के अंत तक, स्वीकार करें।"
44. तब मल्ला वंश के पुक्कुसा ने एक व्यक्ति से कहा, "मित्र, मेरे लिए तुरंत सुनहरे रंग के दो वस्त्र लाओ, जो चमकीले और पहनने के लिए तैयार हों।" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "ठीक है, महोदय।"
45. जब वस्त्र लाए गए, तो मल्ल कुल के पुक्कुसा ने उन्हें भगवान बुद्ध को अर्पित करते हुए कहा, "हे भगवान, दया करके इसे मुझसे स्वीकार करें।" तब भगवान बुद्ध ने कहा, "पुक्कुसा, मुझे एक वस्त्र पहनाओ, और आनंद को दूसरा वस्त्र पहनाओ।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और फिर उन्होंने एक वस्त्र भगवान बुद्ध को पहनाया और दूसरे वस्त्र से पूज्य आनंद को आदरणीय बना दिया।
46. फिर भगवान बुद्ध ने मल्ल वंश के पुक्कुसा को धम्म का उपदेश दिया, और उन्हें प्रेरित, शिक्षित और प्रसन्न किया। इसके बाद पुक्कुसा अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और अपना दाहिना भाग उनकी ओर करके अपने मार्ग पर चल दिए।
47. मल्ल वंश के पुक्कुसा के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध के शरीर पर सुनहरे रंग के, चमकीले और पहनने के लिए तैयार वस्त्रों का समूह लपेटा। परन्तु जब वस्त्रों का समूह भगवान बुद्ध के शरीर पर लपेटा गया, तो वे मानो फीके पड़ गए और उनकी चमक फीकी पड़ गई।
48. और पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, यह कितना अद्भुत है, वास्तव में कितना आश्चर्यजनक है, तथागत की त्वचा कितनी निर्मल और तेजस्वी प्रतीत होती है! हे भगवान, यह स्वर्ण रंग का वस्त्र, जो चमकीला और पहनने के लिए तैयार था, अब जब इसे भगवान बुद्ध के शरीर पर पहनाया गया है, तो ऐसा लगता है मानो इसकी चमक फीकी पड़ गई हो।"
49. "हाँ, आनंद। आनंद, दो अवसर हैं जब तथागत की त्वचा अत्यंत निर्मल और तेजस्वी दिखाई देती है। ये दो अवसर कौन से हैं? आनंद, वह रात जब तथागत पूर्णतः सर्वोच्च ज्ञान से परिपूर्ण हो जाते हैं, और वह रात जब तथागत निर्वाण की अवस्था में अंतःस्रावित हो जाते हैं, जिसमें आसक्ति का कोई अंश नहीं रह जाता। आनंद, ये दो अवसर हैं जब तथागत की त्वचा अत्यंत निर्मल और तेजस्वी दिखाई देती है।"
50. "और अब आज रात के आखिरी पहर में, आनंद, मल्लाओं के सालावन में, कुसिनारा के पास, दो साल के पेड़ों के बीच, तथागत अपने परिनिर्वाण को प्राप्त करेंगे। अतः, आनंद, अब हम ककुत्था नदी की ओर चलें।"
51. पुक्कुसा के उपहार, स्वर्ण वस्त्रों से सुशोभित, गुरु का रूप दर्शन में तेजस्वी था। 52. फिर भगवान भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ काकुत्था नदी पर गए।
53. फिर वह जल में उतरा और स्नान करके जल पिया। जल से बाहर आकर वह आम के बाग में गया और वहाँ पूज्य चुंडक से बोला, "हे चुंडक, कृपया मेरे ऊपरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर नीचे रख दीजिए। मैं थका हुआ हूँ और थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और चुंडक ने वस्त्र को चार भागों में मोड़कर नीचे रख दिया।
54. भगवान बुद्ध दाहिनी ओर सिंह की मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे पर रखकर, और उठने के समय को ध्यान में रखते हुए, पूरी तरह सचेत और स्पष्ट रूप से इस प्रकार बैठ गए। और पूज्य चुंडक भगवान बुद्ध के ठीक सामने बैठ गए।
55. बुद्ध ककुत्था नदी पर आए, जहाँ शीतल और निर्मल जल की सुखद धारा बहती है; वहाँ उन्होंने अपने थके हुए शरीर को निर्मल जल से धोया - वे समस्त जगत में सर्वोच्च हैं! और स्नान और जलपान करने के बाद, गुरु सीधे नदी पार चले गए, भिक्षु उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।
पवित्र सत्यों का प्रवचन देते हुए, महान गुरु आम के बाग की ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने वृद्ध चुंडक से कहा, "कृपा करके मेरा वस्त्र, जो चार भागों में तह किया हुआ है, नीचे रख दीजिए।" तब वृद्ध चुंडक ने बिजली की गति से गुरु की आज्ञा का पालन किया। थके-हारे गुरु चटाई पर लेट गए, और चुंडक उनके सामने जमीन पर बैठ गए।
कुंडा के पश्चाताप को दूर करना
56. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "हे आनंद, ऐसा हो सकता है कि कोई धातुकर्मी चुंडा को यह कहकर दुखी करे: 'हे मित्र चुंडा, यह तुम्हारे लिए लाभ नहीं, बल्कि हानि है कि तथागत ने तुमसे अपना अंतिम भिक्षा ग्रहण किया और फिर अपने प्राण त्यागे।' तब, हे आनंद, चुंडा के दुःख को इस प्रकार दूर किया जाना चाहिए: 'हे मित्र चुंडा, यह तुम्हारे लिए लाभ है, आशीर्वाद है कि तथागत ने तुमसे अपना अंतिम भिक्षा ग्रहण किया और फिर अपने प्राण त्यागे। क्योंकि, मित्र, मैंने भगवान बुद्ध से आमने-सामने बैठकर यह सुना और सीखा है: "दो प्रकार के भिक्षापात्र हैं जिनका फल और परिणाम समान है, जो अन्य सभी प्रकार के भिक्षापात्रों के फल और परिणाम से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। वे दो कौन से हैं? एक वह जिसे तथागत ने पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने से पहले ग्रहण किया था; और वह प्रसाद जिसे

तथागत ने निर्वाण अवस्था में प्रवेश करने से पहले ग्रहण किया था, जिसमें आसक्ति का कोई अंश नहीं रहता। अपने कर्म से पुण्य चुंडा ने पुण्य अर्जित किया है जो दीर्घायु, सौंदर्य, कल्याण, यश, स्वर्गिक पुनर्जन्म और भगवानत्व का कारण बनता है। इस प्रकार, हे आनंद, चुंडा नामक धातुकर्मी के पश्चाताप को दूर किया जाना चाहिए।
57. तब भगवान बुद्ध ने उस बात को समझकर यह गंभीर वचन कहा:
जो दान करता है, उसके सद्‌गुण बढ़ते हैं; जो आत्मसंयमित है, वह किसी से घृणा नहीं करता; जो सद्‌गुणों में निपुण है, वह बुराई से दूर रहता है, और कामवासना, घृणा और समस्त भ्रमों को जड़ से उखाड़ फेंककर शांति प्राप्त करता है।

भाग पाँच: कुसिनारा में
अंतिम विश्राम स्थल
1. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "आओ, आनंद, हम हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर चलें और कुसिनारा के निकट मल्लों के सालावन में जाएँ।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"
2. और भगवान बुद्ध, भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ, हिरण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर, कुसिनारा के निकट मल्ल वंश के साला वन में गए। और वहाँ उन्होंने पूज्य आनंद से कहा:
3. "आनंद, कृपया मेरे लिए जुड़वां साल के पेड़ों के बीच उत्तर दिशा की ओर मुख करके एक पलंग तैयार कर दीजिए। मैं थक गया हूँ, आनंद, और लेटना चाहता हूँ।"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और पूज्य आनंद ने वही किया जो भगवान ने उनसे करने को कहा था।
तब भगवान बुद्ध दाहिनी ओर सिंह की मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे पर रखकर, और इस प्रकार सचेत और स्पष्ट रूप से समझते हुए स्वयं को व्यवस्थित किया।
4. उस समय दोनों साल के वृक्ष पूरी तरह खिल उठे, यद्यपि यह फूल खिलने का मौसम नहीं था। और वे फूल तथागत के शरीर पर बरसने लगे, गिरे, बिखरे और तथागत की पूजा में उन पर बिखेर दिए गए। आकाश से दिव्य मंदारव के फूल और दिव्य चंदन का चूर्ण तथागत के शरीर पर बरसने लगा, गिरे, बिखरे और तथागत की पूजा में उन पर बिखेर दिए गए। और दिव्य स्वरों और दिव्य वाद्ययंत्रों की ध्वनि ने तथागत के प्रति श्रद्धा से आकाश में संगीत की गूंज पैदा कर दी।
5. और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, “आनंद, यद्यपि यह फूल खिलने का मौसम नहीं है, फिर भी दोनों साल के वृक्ष पूरी तरह खिले हुए हैं। और ये फूल तथागत के शरीर पर बरसते हैं, गिरते हैं, बिखरते हैं और तथागत की पूजा में उन पर बिखरे जाते हैं। आकाश से दिव्य मूंगा फूल और दिव्य चंदन का पाउडर तथागत के शरीर पर बरसता है, गिरता है, बिखरता है और तथागत की पूजा में उन पर बिखरता है। दिव्य स्वरों और दिव्य वाद्ययंत्रों की ध्वनि तथागत के प्रति श्रद्धा से वातावरण में संगीत उत्पन्न करती है।”
6. "लेकिन हे आनंद, तथागत को सर्वोच्च सम्मान, आदर, प्रतिष्ठा, पूजा और आदर इस प्रकार नहीं मिलता। बल्कि, हे आनंद, जो भी भिक्षु या भिक्षुणी, गृहस्थ पुरुष या गृहस्थ स्त्री, धम्म का पालन करता है, धम्म में सत्यनिष्ठा से जीवन व्यतीत करता है, धम्म के मार्ग पर चलता है, उसी के द्वारा तथागत को सर्वोच्च सम्मान, आदर, प्रतिष्ठा, पूजा और आदर मिलता है। अत:, हे आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम धम्म का पालन करेंगे, धम्म में सत्यनिष्ठा से जीवन व्यतीत करेंगे, धम्म के मार्ग पर चलेंगे।'"
देवताओं का शोक
7. उस समय पूज्य उपवना भगवान बुद्ध के सामने खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। तब भगवान बुद्ध ने उन्हें डांटते हुए कहा, "भिक्षु, हट जाओ, मेरे सामने मत खड़े हो।"
8. और पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य उपवन लंबे समय से भगवान बुद्ध की सेवा में उनके साथ रहे हैं, उनसे घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं और उनकी सेवा करते रहे हैं। फिर भी, अब बिल्कुल अंत में, भगवान बुद्ध उन्हें फटकारते हैं। अब क्या कारण हो सकता है, भगवान बुद्ध ने पूज्य उपवन को यह कहकर क्यों फटकारा: 'भिक्षु, हट जाओ, मेरे सामने मत खड़े हो'?"
9-10. पूज्य आनंद ने अपने विचार भगवान बुद्ध को बताए। भगवान बुद्ध ने कहा: "आनंद, इस दस लोकों में शायद ही कोई ऐसा देवता हो जो तथागत के दर्शन के लिए एकत्रित न हुआ हो। कुशीनार के पास मल्ल वंश के सालावन के चारों ओर बारह योजन की दूरी तक ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ बाल की नोक से भी चुभन हो और वह शक्तिशाली देवताओं से भरा न हो। और ये देवता, आनंद, शिकायत कर रहे हैं: 'हम दूर से तथागत के दर्शन के लिए आए हैं। क्योंकि संसार में तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्तियों का उदय दुर्लभ है। और आज रात के अंतिम पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। परन्तु इस महान शक्ति वाले भिक्षु ने स्वयं को भगवान बुद्ध के ठीक सामने स्थापित कर लिया है, उन्हें छिपा लिया है, जिससे अब, बिल्कुल अंत में, हम उनके दर्शन से वंचित रह गए हैं।' इसलिए, आनंद, देवता शिकायत करते हैं।
11. "हे भगवान, भगवान किस प्रकार के देवताओं के बारे में जानते हैं?"
12-13. "हे आनंद, अंतरिक्ष और पृथ्वी पर ऐसे देवता हैं जो सांसारिक स्वभाव के हैं; बिखरे बालों के साथ वे रोते हैं, भुजाएँ ऊपर उठाकर रोते हैं; जमीन पर गिरकर वे करवटें बदलते हुए विलाप करते हैं: 'भगवान बहुत जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! सुखी भगवान बहुत जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! संसार की आँख बहुत जल्दी दृष्टि से ओझल हो जाएगी!'"

14. "परन्तु वे देवता जो वासना से मुक्त, सजग और बोधशील हैं, इस प्रकार चिंतन करते हैं: 'सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। ऐसा कैसे हो सकता है?'"

आनंद की चिंता

15. "हे भगवान, पहले वर्षा ऋतु समाप्त होने पर भिक्षु अपने निवास स्थान से निकलकर तथागत के दर्शन करने जाते थे, और हमें उन पूजनीय भिक्षुओं के साथ समय बिताने और संगति करने का सौभाग्य प्राप्त होता था जो भगवान बुद्ध के दर्शन करने और उनकी सेवा करने आते थे। परन्तु हे भगवान, भगवान बुद्ध के चले जाने के बाद हमें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा।"

चार तीर्थस्थल

16. "आनंद, ऐसे चार स्थान हैं जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक दर्शन करना चाहिए। वे चार स्थान कौन से हैं?"
17. "'यहाँ तथागत का जन्म हुआ था!' हे आनंद, यह वह स्थान है जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को अवश्य जाना चाहिए और श्रद्धा भाव से देखना चाहिए।"
18. "'यहाँ तथागत को अद्वितीय, सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हुआ!' आनंद, यह वह स्थान है जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को श्रद्धा भाव से दर्शन करना चाहिए।"
19. "'यहाँ तथागत ने धम्म के अद्वितीय चक्र को गतिमान किया!' हे आनंद, यह वह स्थान है जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को श्रद्धा भाव से दर्शन करना चाहिए।"
20. "'यहाँ तथागत निर्वाण की अवस्था में विलीन हो गए, जिसमें आसक्ति का कोई अंश नहीं रहता!' हे आनंद, यह वह स्थान है जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को अवश्य जाना चाहिए और श्रद्धा भाव से देखना चाहिए।"
21. "हे आनंद, ये चार स्थान हैं जहाँ एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक दर्शन करना चाहिए। और वास्तव में, हे आनंद, इन स्थानों पर धर्मनिष्ठ भिक्षु और भिक्षुणियाँ, गृहस्थ पुरुष और स्त्रियाँ आएँगे, यह चिंतन करते हुए: 'यहाँ तथागत का जन्म हुआ! यहाँ तथागत को अद्वितीय, सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हुआ! यहाँ तथागत ने अद्वितीय धम्म चक्र को गतिमान किया! यहाँ तथागत निर्वाण की उस अवस्था में विलीन हो गए जिसमें आसक्ति का कोई अंश नहीं रहता!'"
22. "और हे आनंद, जो कोई भी इस प्रकार की तीर्थयात्रा पर दृढ़ विश्वास के साथ मरता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह स्वर्गिक सुख के लोक में पुनर्जन्म लेगा।"
23. तब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे भगवान, हमें स्त्रियों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए?"
"आनंद, उन्हें मत देखो।"
"लेकिन, हे भगवान, अगर हम उन्हें देख लें तो?"
"आनंद, कुछ मत बोलो।"
"लेकिन, हे भगवान, यदि वे हमसे बात करें तो?"
"तो फिर, आनंद, तुम्हें ध्यान स्थापित करना चाहिए।"
24. तब पूज्य आनंद ने कहा: "हे भगवान, तथागत के शरीर के संबंध में हमें क्या करना चाहिए?"
हे आनंद, तथागत के शरीर का आदर करने में संकोच न करो। बल्कि, हे आनंद, अपने हित में परिश्रम और तत्परता दिखाओ। निडरता, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ अपने हित के लिए प्रयास करो। क्योंकि हे आनंद, तथागत के भक्त बुद्धिमान, बुद्धिमान ब्राह्मण और बुद्धिमान गृहस्थ हैं, और वे ही तथागत के शरीर का आदर करेंगे।
25. तब पूज्य आनंद ने कहा: "परन्तु हे भगवान, तथागत के शरीर के संबंध में उन्हें क्या करना चाहिए?"
"हे आनंद, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर के प्रति किया जाता है।"
"पर हे भगवान, वे एक सार्वभौमिक सम्राट के शरीर के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं?"
26. "हे आनंद, सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर को पहले नए लिनेन में लपेटा जाता है, फिर रूई में, इस प्रकार पाँच सौ परतों तक लिनेन और पाँच सौ परतों तक रूई लपेटी जाती है। जब यह हो जाता है, तो सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर को एक लोहे के तेल पात्र में रखा जाता है, जिसे एक अन्य लोहे के पात्र में बंद कर दिया जाता है, सभी प्रकार की सुगंधित लकड़ियों से एक चिता बनाई जाती है, और इस प्रकार सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर को जलाया जाता है; और एक चौराहे पर सर्वशक्तिमान सम्राट के लिए एक स्तूप स्थापित किया जाता है। हे आनंद, सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर के साथ ऐसा ही किया जाता है। और हे आनंद, जैसे सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर के साथ किया जाता है, वैसे ही तथागत के शरीर के साथ भी किया जाना चाहिए; और एक चौराहे पर तथागत के लिए भी एक स्तूप स्थापित किया जाना चाहिए। और जो कोई भी उस स्थान पर मालाएँ, धूप या चंदन का लेप चढ़ाएगा, या श्रद्धा अर्पित करेगा, और जिसका मन वहाँ शांत हो जाएगा - यह उसके लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण होगा।"
27. "आनंद, चार व्यक्ति स्तूप के योग्य हैं। वे चार कौन हैं? तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति स्तूप के योग्य हैं; इसी प्रकार पच्चेकबुद्ध, तथागत के शिष्य और विश्व सम्राट भी योग्य हैं।"

28-31. "आनंद, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति स्तूप के योग्य क्यों हैं? क्योंकि, आनंद, 'यह उस परम पूज्य अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का स्तूप है!' यह विचार मात्र से ही अनेक लोगों के हृदय शांत और प्रसन्न हो जाते हैं; और इस प्रकार शांत होकर और उसमें दृढ़ विश्वास के साथ, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, वे स्वर्गिक सुख के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं। और ऐसा ही 'यह उस पच्चेकबुद्ध का स्तूप है!' या 'यह उस तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के शिष्य का स्तूप है!' या 'यह उस धर्मात्मा राजा का स्तूप है जिसने धम्म के अनुसार शासन किया!' यह विचार मात्र से ही होता है।" — बहुत से लोगों के हृदय शांत और प्रसन्न होते हैं; और इस प्रकार शांत होकर और उनमें दृढ़ विश्वास स्थापित करके, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, वे स्वर्गिक सुख के लोक में पुनर्जन्म लेंगे। और इसी कारण, आनंद, ये चारों व्यक्ति स्तूप के योग्य हैं।

आनंद का शोक

32. तब पूज्य आनंद विहार में गए और द्वार के चौखट से टेक लगाकर रोने लगे: "मैं अभी भी एक विद्यार्थी ही हूँ, और मुझे अभी भी अपनी पूर्णता के लिए प्रयास करना है। लेकिन, हाय, मेरे गुरु, जो मुझ पर इतने दयालु थे, अब इस दुनिया से विदा होने वाले हैं!"

33. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, आनंद कहाँ है?"

"परमेश्वर आनंद विहार में चले गए हैं और वहाँ द्वार के चौखट से टेक लगाकर रो रहे हैं: 'मैं अभी भी एक विद्यार्थी हूँ, और मुझे अभी भी अपनी पूर्णता के लिए प्रयास करना है। लेकिन, हाय, मेरे गुरु, जो मुझ पर इतने दयालु थे, अब इस दुनिया से विदा होने वाले हैं!'"

34. तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से पूज्य आनंद को उनके पास लाने को कहा और बोला: "हे भिक्षु, जाओ और आनंद से कहो, 'मित्र आनंद, गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं।'"

"ऐसा ही हो, भगवान।" और वह भिक्षु जाकर पूज्य आनंद से वैसे ही बोला जैसे भगवान बुद्ध ने उससे कहा था। पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

35. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, “बस करो, आनंद! शोक मत करो, विलाप मत करो! क्या मैंने शुरू से ही यह नहीं सिखाया है कि जो कुछ भी प्रिय और प्यारा है, उसमें परिवर्तन, वियोग और विच्छेद अवश्य है? जो जन्म लेता है, अस्तित्व में आता है, बनता है और क्षय के अधीन है, उसके बारे में कोई कैसे कह सकता है: 'काश उसका अंत न हो!'? ऐसी कोई स्थिति हो ही नहीं सकती। अब, आनंद, तुमने लंबे समय तक तथागत की सेवा कर्म, वचन और विचार से प्रेमपूर्वक, कृपापूर्वक, प्रसन्नता से, पूरे मन से और असीम रूप से की है। तुमने महान पुण्य अर्जित किया है, आनंद! अब तुम्हें ऊर्जा लगानी चाहिए, और शीघ्र ही तुम भी दोषों से मुक्त हो जाओगे।”

आनंद की प्रशंसा

36. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, बीते समय के भगवान, अरहंतों और पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुषों के भी मेरे आनंद के समान ही उत्तम और समर्पित सेवक भिक्षु थे। और हे भिक्षुओं, आने वाले समय के भगवान, अरहंतों और पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुषों के भी ऐसे ही सेवक होंगे।"

37. "आनंद, हे भिक्षुओं, अत्यंत योग्य और विवेकशील हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि भिक्षुओं के लिए तथागत से मिलने का उचित समय क्या है, भिक्षुणियों के लिए क्या समय है, गृहस्थ पुरुषों और गृहस्थ महिलाओं के लिए क्या समय है; राजाओं और राज्य मंत्रियों के लिए क्या समय है; अन्य संप्रदायों के शिक्षकों और उनके अनुयायियों के लिए क्या समय है।"

38. हे भिक्षुओं, आनंद में चार दुर्लभ और श्रेष्ठ गुण पाए जाते हैं। वे चार गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, यदि भिक्षुओं का एक समूह आनंद के दर्शन करने जाए, तो वे उन्हें देखकर आनंदित हो जाते हैं; और यदि वे उनसे धर्म के विषय में बात करें, तो वे उनके प्रवचन से आनंदित हो जाते हैं; और जब वे मौन हो जाते हैं, तो वे निराश हो जाते हैं। इसी प्रकार, जब भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष या गृहस्थ महिलाएं आनंद के दर्शन करने जाएं, तो वे उन्हें देखकर आनंदित हो जाते हैं; और यदि वे उनसे धर्म के विषय में बात करें, तो वे उनके प्रवचन से आनंदित हो जाते हैं; और जब वे मौन हो जाते हैं, तो वे निराश हो जाते हैं।

39. हे भिक्षुओं, एक सर्वज्ञानी सम्राट में चार दुर्लभ और श्रेष्ठ गुण पाए जाते हैं। वे चार गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, यदि कुलीनों का एक समूह सर्वज्ञानी सम्राट के दर्शन करने जाए, तो वे उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाते हैं; और यदि वे तब बोलते हैं, तो वे उनके वचनों से प्रसन्न हो जाते हैं; और जब वे मौन हो जाते हैं, तो वे निराश हो जाते हैं। ऐसा ही तब होता है जब ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों का एक समूह सर्वज्ञानी सम्राट के दर्शन करने जाता है।

40. "और ठीक इसी प्रकार, भिक्षुओं, आनंद में ये चार दुर्लभ और श्रेष्ठ गुण पाए जाते हैं।"

कुसिनारा का अतीत का गौरव

41. यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, ऐसा न हो कि भगवान बुद्ध इस नीच स्थान, इस जंगल के बीच बसे असभ्य कस्बे में, प्रांत की एक मात्र चौकी में, परारोहण करें। हे भगवान, चंपा, राजगृह, सावत्थी, सकेत, कोसंबी और बनारस जैसे महान नगर हैं - भगवान बुद्ध का अंतिम संस्कार इनमें से किसी एक में हो। क्योंकि इन नगरों में अनेक धनी कुलीन, ब्राह्मण और गृहस्थ निवास करते हैं जो तथागत के भक्त हैं, और वे तथागत के अवशेषों को उचित सम्मान देंगे।”

42. "ऐन, ऐसा मत कहो! यह मत कहो: 'यह नीच जगह, जंगल के बीचोंबीच बसा यह असभ्य कस्बा, प्रांत की एक मात्र चौकी।' ऐन, बहुत समय पहले महा सुदस्सन नाम का एक राजा था, जो सर्वव्यापी सम्राट, धर्मात्मा राजा, पृथ्वी के चारों दिशाओं का विजेता था,

जिसका राज्य सुरक्षित था और जो सात रत्नों से संपन्न था।53 ऐन, उस राजा महा सुदस्सन का राज निवास कुसिनारा में था, जिसे तब कुसावती कहा जाता था, और यह पूर्व से पश्चिम तक बारह योजन और उत्तर से दक्षिण तक सात योजन तक फैला हुआ था।
43. "हे आनंद, कुसावती राजधानी बहुत शक्तिशाली, समृद्ध और घनी आबादी वाली थी, जहाँ बहुत से लोग आते-जाते थे और भोजन की प्रचुरता थी। जिस प्रकार देवताओं का राजनिवास, अलकमंडा, शक्तिशाली, समृद्ध और घनी आबादी वाला, देवताओं द्वारा बहुत बार आने-जाने वाला और भोजन की प्रचुरता वाला होता है, उसी प्रकार कुसावती की राजराज राजधानी भी शक्तिशाली, समृद्ध और घनी आबादी वाली थी।"
44. "आनंद, कुसावती दिन-रात दस ध्वनियों से लगातार गूंजती रहती थी—हाथियों का चिंघाड़ना, घोड़ों का हिनहिनाना, रथों की खड़खड़ाहट, ढोल और तबले की थाप, संगीत और गीत, जयकार, तालियाँ और 'खाओ, पियो और आनंद करो!' के नारे।"

मल्लों का विलाप

45. "अब, आनंद, कुसिनारा जाओ और मल्लों को यह घोषणा करो: 'हे वसेत्थों, आज रात के अंतिम पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। हे वसेत्थों, पास आओ! बाद में इस विचार से पश्चाताप मत करना कि 'हमारे नगर में तथागत का परिनिर्वाण हुआ था, परन्तु हम अंत में उनके दर्शन नहीं कर पाए!'"
"ऐसा ही हो, भगवान।" और पूज्य आनंद ने स्वयं को तैयार किया, और कुंड और वस्त्र लेकर एक साथी के साथ कुसिनारा चले गए।
46. उस समय मल्ल समुदाय के लोग किसी सार्वजनिक कार्य के लिए सभा भवन में एकत्रित हुए थे। पूज्य आनंद उनके पास आए और घोषणा की: "हे वसेत्थों, आज रात के अंतिम पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। हे वसेत्थों, पास आओ! बाद में इस बात का पश्चाताप मत करना कि 'तथागत का परिनिर्वाण हमारे नगर में हुआ, परन्तु हम अंत में उनके दर्शन नहीं कर पाए।'"
47. जब उन्होंने पूज्य आनंद के ये शब्द सुने, तो मल्ल अपने पुत्रों, अपनी पत्नियों और अपने पुत्रों की पत्नियों सहित अत्यंत व्यथित हुए; कुछ अपने बिखरे बालों के साथ, निराशा में बाहें उठाकर रोने लगे; वे जमीन पर गिर पड़े, इधर-उधर लुढ़कते हुए विलाप करने लगे: "भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! शुभ पुरुष कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! कितनी जल्दी संसार की आँख दृष्टि से ओझल हो जाएगी!"
48. और इस प्रकार दुखी और शोक से व्याकुल होकर मल्ला लोग अपने पुत्रों, अपनी पत्नियों और अपने पुत्रों की पत्नियों के साथ मल्लाओं के मनोरंजन उद्यान, साला उपवन में, उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे।
49. और पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "यदि मैं कुसिनारा के मल्लों को एक-एक करके भगवान को प्रणाम करने की अनुमति दूं, तो उन सभी के भगवान के समक्ष प्रस्तुत होने से पहले ही रात हो जाएगी। इसलिए मैं उन्हें कुल के अनुसार अलग-अलग कर दूं, प्रत्येक परिवार को एक समूह में, और फिर उन्हें भगवान के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करूं: 'हे भगवान, फलां नाम का मल्ल, अपनी पत्नियों और बच्चों, अपने सेवकों और अपने मित्रों के साथ, भगवान के चरणों में प्रणाम करता है।'"
50. और पूज्य आनंद ने मल्लों को कुल के अनुसार, प्रत्येक परिवार को एक समूह में बाँटकर, भगवान बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रकार पूज्य आनंद ने कुसिनारा के मल्लों को कुल के अनुसार, प्रत्येक परिवार को एक समूह में, रात्रि के पहले पहर में ही भगवान बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत करवाया।

अंतिम धर्मांतरित

51. उस समय सुभद्दा नामक एक विचरणशील तपस्वी कुशीनार में निवास कर रहा था। सुभद्दा नामक विचरणशील तपस्वी ने सुना कि "आज रात के तीसरे पहर में तपस्वी गौतम का परिनिर्वाण होगा।"
52. तब उनके मन में यह विचार आया: "मैंने प्राचीन और पूजनीय घुमंतू तपस्वियों, गुरुओं के गुरुओं से सुना है कि तथागतों, अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों का उदय संसार में दुर्लभ है। फिर भी आज ही रात के अंतिम पहर में तपस्वी गौतम का परिनिर्वाण होगा। अब मेरे मन में संदेह है; परन्तु तपस्वी गौतम पर मुझे इतना विश्वास है कि वे मुझे धम्म का ऐसा उपदेश देंगे जिससे मेरा यह संदेह दूर हो जाएगा।"
53. तब भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा मल्लों के मनोरंजन उद्यान, साला वन में गए और पूज्य आनंद के पास पहुँचकर उन्हें अपने विचार बताए। उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "मित्र आनंद, यदि मुझे तपस्वी गौतम के समक्ष उपस्थित होने की अनुमति मिल जाए तो अच्छा होगा।"
54. लेकिन पूज्य आनंद ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा, "बस करो, मित्र सुभद्दा! तथागत को परेशान मत करो। भगवान थके हुए हैं।"
55-56. फिर भी दूसरी और तीसरी बार विचरण करने वाले तपस्वी सुभद्दा ने अपना निवेदन किया, और दूसरी और तीसरी बार पूज्य आनंद ने उसे अस्वीकार कर दिया।
57. भगवान बुद्ध ने उनकी बातचीत सुनी और पूज्य आनंद को बुलाकर कहा, "आनंद, रुको! सुभद्दा को मना मत करो। आनंद, सुभद्दा को तथागत के समक्ष प्रवेश करने की अनुमति दी जा सकती है। क्योंकि वह मुझसे जो कुछ भी पूछेगा, ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूछेगा, न कि किसी अपराध के लिए। और मैं उसे जो उत्तर दूंगा, वह उसे सहजता से समझ आ जाएगा।"
58. तब पूज्य आनंद ने भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा से कहा: "तो जाओ, मित्र सुभद्दा, भगवान तुम्हें जाने की अनुमति देते हैं।"

59. तब भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया। उनसे सौहार्दपूर्ण और शालीन अभिवादन करने के बाद, सुभद्दा एक तरफ बैठ गए और भगवान बुद्ध से कहा, “हे पूज्य गौतम, ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो शिष्यों के बड़े समूहों के प्रमुख हैं, जिनके साथ बहुत से अनुयायी होते हैं, जो स्कूलों के नेता हैं, जो प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हैं, और जनमानस में उनका बहुत सम्मान है, जैसे पुराण कस्सपा, मक्खली गोसला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चयन, संजय बेलत्थिपुत्त, निगंथ नटपुत्त। क्या इन सभी ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, जैसा कि उनमें से प्रत्येक का मानना है, या किसी ने नहीं, या ऐसा है कि कुछ ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है और अन्य ने नहीं?”
60. "बस करो, सुभद्दा! चाहे जो भी हो, चाहे उन सभी ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो, जैसा कि उनमें से प्रत्येक मानता है, या चाहे किसी ने भी न किया हो, या चाहे कुछ ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो और कुछ ने नहीं। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा, सुभद्दा; ध्यान से सुनो और समझ लो, फिर मैं बोलूंगा।"
"ऐसा ही हो, भगवान।"

शेर की दहाड़
61. भगवान बुद्ध ने कहा, “हे सुभद्दा, जिस भी धर्म और अनुशासन में आर्य अष्टांगिक मार्ग नहीं पाया जाता, न ही उसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ श्रेणी का कोई सच्चा तपस्वी पाया जाता है। परन्तु जिस भी धर्म और अनुशासन में आर्य अष्टांगिक मार्ग पाया जाता है, उसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी का सच्चा तपस्वी पाया जाता है। हे सुभद्दा, इसी धर्म और अनुशासन में आर्य अष्टांगिक मार्ग पाया जाता है; और इसी में प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के सच्चे तपस्वी पाए जाते हैं। अन्य गुरुओं की प्रणालियाँ सच्चे तपस्वियों से रहित हैं। परन्तु हे सुभद्दा, यदि भिक्षु धार्मिक जीवन व्यतीत करें, तो संसार अरहतों से रहित नहीं होगा।”
62. "मैं, सुभद्दा, उस समय मात्र उनतीस वर्ष की थी,

जब मैंने संसार का त्याग करके पुण्य की खोज की; सुभद्दा, तब से इक्यावन वर्ष बीत चुके हैं, और इस पूरे समय में मैं सद्गुण और सत्य के क्षेत्र में भटकता रहा हूँ, और इसके सिवा कोई प्रथम श्रेणी का संत नहीं है। न ही द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ श्रेणी का कोई संत है। अन्य गुरुओं की प्रणालियाँ सच्चे तपस्वियों से रहित हैं। परन्तु सुभद्दा, यदि भिक्षु धर्मपरायण जीवन व्यतीत करें, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं रहेगा।
63. यह सुनकर, भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, परम श्रेष्ठ! हे भगवान, मानो कोई गिरी हुई वस्तु को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए को मार्ग दिखा दे, या अंधकार में दीपक प्रज्वलित कर दे ताकि देखने वाले देख सकें — ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से धम्म का प्रसार किया है। अतः, हे भगवान, मैं भगवान बुद्ध, धम्म और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। भगवान बुद्ध से मुझे संघ में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्राप्त हो।”
64. "सुभद्दा, जो कोई भी पहले किसी अन्य संप्रदाय का अनुयायी रहा हो और इस धर्म एवं अनुशासन में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता हो, वह चार माह की परिवीक्षा पर रहता है। उन चार माहों के अंत में, यदि भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे उसे भिक्षु के रूप में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्रदान करते हैं। फिर भी, इस मामले में मैं व्यक्तित्वों के अंतर को स्वीकार करता हूँ।"
65. "हे भगवान, यदि कोई व्यक्ति, जो पहले किसी अन्य पंथ का अनुयायी रहा हो, इस धम्म और अनुशासन में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, तो वह चार महीने की परिवीक्षा अवधि में रहे, और उन चार महीनों के अंत में, यदि भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे उसे भिक्षु के रूप में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्रदान करें - तो मैं चार वर्ष की परिवीक्षा अवधि में रहूँगा। और उन चार वर्षों के अंत में, यदि भिक्षु मुझसे संतुष्ट हों, तो वे मुझे भिक्षु के रूप में प्रवेश और उच्च दीक्षा प्रदान करें।"
66. परन्तु भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को बुलाया और उनसे कहा, "आनंद, सुभद्दा को संघ में प्रवेश दिया जाए।" पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, "ऐसा ही हो, भगवान।"
67. तब भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा ने पूज्य आनंद से कहा: "हे मित्र आनंद, यह आपके लिए लाभ की बात है, आशीर्वाद की बात है कि स्वयं गुरु की उपस्थिति में आपको शिष्य के रूप में दीक्षा का अभिषेक प्राप्त हुआ है।"
68. इस प्रकार हुआ कि भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में दीक्षा और उच्चतर दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा के समय से ही पूज्य सुभद्दा एकांत, एकांतप्रिय, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहे। शीघ्र ही उन्होंने उस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जिसके लिए एक योग्य व्यक्ति सही मायने में गृहस्थी छोड़कर तपस्वी जीवन की ओर प्रस्थान करता है, जो पवित्र जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है; और स्वयं उच्चतर ज्ञान से इसे प्राप्त करके वे उसमें निवास करने लगे। उन्होंने जाना: "जन्म नष्ट हो गया; उच्चतर जीवन पूर्ण हो गया; अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, और इस जीवन के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता।" और पूज्य सुभद्दा अरहतों में से एक और बन गए, और वे स्वयं भगवान बुद्ध द्वारा परिवर्तित अंतिम शिष्य थे।
भाग छह: मृत्यु
भगवान का अंतिम उपदेश

1. अब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "हे आनंद, हो सकता है कि तुममें से कुछ के मन में यह विचार आए: 'गुरु का वचन समाप्त हो गया है; अब हमारे पास कोई गुरु नहीं है।' परन्तु हे आनंद, ऐसा मत सोचो। क्योंकि मैंने जिस धर्म और अनुशासन का प्रचार किया है, वही मेरे जाने के बाद तुम्हारा गुरु होगा।"
2. "और, आनंद, यद्यपि अब भिक्षु एक दूसरे को 'मित्र' कहकर संबोधित करते हैं, मेरे जाने के बाद ऐसा न हो। आनंद, वरिष्ठ भिक्षु कनिष्ठ भिक्षुओं को उनके नाम, उनके पारिवारिक नाम या 'मित्र' कहकर संबोधित कर सकते हैं; परन्तु कनिष्ठ भिक्षुओं को वरिष्ठ भिक्षुओं को 'आदरणीय महोदय' या 'महामहिम' कहकर संबोधित करना चाहिए।"
3. "यदि चाहा जाए, आनंद, तो मेरे जाने के बाद संघ छोटे और गौण नियमों को समाप्त कर सकता है।"
4. "आनंद, मेरे जाने के बाद, भिक्षु चन्ना पर कड़ी सजा लगाई जाए।"
लेकिन हे भगवान, इससे भी बड़ी सजा क्या है?
"आनंद, भिक्षु चन्ना जो चाहे कह सकता है, लेकिन भिक्षुओं को न तो उससे बातचीत करनी चाहिए, न ही उसे उपदेश देना चाहिए और न ही उसे चेतावनी देनी चाहिए।"
5. तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, हो सकता है कि आप में से कोई बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या साधना के विषय में संशय या दुविधा में हो। तो प्रश्न पूछिए, हे भिक्षुओं! बाद में इस विचार से पश्चाताप न कीजिए कि 'गुरु हमारे सामने उपस्थित थे, फिर भी हम उनसे आमने-सामने प्रश्न पूछने में असफल रहे।'"
6. परन्तु यह सुनकर भिक्षु चुप हो गए। फिर भी भगवान बुद्ध ने उनसे दूसरी और तीसरी बार कहा: "हे भिक्षुओं, हो सकता है कि तुममें से कोई बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या साधना के विषय में संशय या दुविधा में हो। तो प्रश्न करो, भिक्षुओं! पश्चात में यह सोचकर पश्चाताप मत करो कि 'गुरु हमारे समक्ष उपस्थित थे, फिर भी हमने उनसे प्रश्न नहीं पूछा।'"
और दूसरी और तीसरी बार भी भिक्षु चुप रहे। तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे भिक्षुओं, हो सकता है कि गुरु के प्रति आदर के कारण आप प्रश्न न पूछें। तो हे भिक्षुओं, अपने मित्र से दूसरे मित्र को यह बात बता दें।" फिर भी भिक्षु चुप रहे।
7. तब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, यह कितना अद्‌भुत है, अत्यंत आश्चर्यजनक है! भिक्षुओं के समुदाय में मेरा यह विश्वास है कि बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या अभ्यास के विषय में एक भी भिक्षु को कोई संदेह या उलझन नहीं है।"
"आनंद, तुम आस्था के कारण ऐसा कहते हो। लेकिन आनंद, तथागत को यह पूर्ण विश्वास है कि इस भिक्षु समुदाय में एक भी भिक्षु ऐसा नहीं है जिसे बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या साधना के विषय में संदेह या दुविधा हो। क्योंकि आनंद, इन पाँच सौ भिक्षुओं में सबसे निम्नतम भिक्षु भी धारा में प्रवेश करने वाला है, पतन से सुरक्षित, आश्वस्त और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर है।"
8. और भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ: सभी मिश्रित वस्तुएँ निष्फल होने वाली हैं। पूरी लगन से प्रयास करो!"
तथागत के ये अंतिम शब्द थे।

भगवान बुद्ध निर्वाण कैसे प्राप्त हुए

9. भगवान बुद्ध प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गए। प्रथम ध्यान से उठकर वे द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गए। द्वितीय ध्यान से उठकर वे तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गए। तृतीय ध्यान से उठकर वे चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गए। चतुर्थ ध्यान से उठकर वे अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश कर गए। अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र की प्राप्ति से उठकर वे अनंत चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर गए। अनंत चेतना के क्षेत्र की प्राप्ति से उठकर वे शून्यता के क्षेत्र में प्रवेश कर गए। शून्यता के क्षेत्र की प्राप्ति से उठकर वे न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में प्रवेश कर गए। न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र की प्राप्ति से उठकर उन्होंने बोध और संवेदना की समाप्ति को प्राप्त कर लिया।
10. और पूज्य आनंद ने पूज्य अनुराधा से कहा, "पूज्य अनुराधा, भगवान बुद्ध का देहांत हो गया है।"
"नहीं, मित्र आनंद, भगवान बुद्ध का निधन नहीं हुआ है। वे चेतना और संवेदना के निश्चिंत होने की अवस्था में प्रवेश कर चुके हैं।"
11. फिर भगवान बुद्ध ने अनुभूति और संवेदना के अंत से ऊपर उठकर, न अनुभूति और न अ अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश किया। न अनुभूति और न अ अनुभूति के क्षेत्र की प्राप्ति से ऊपर उठकर, उन्होंने शून्यता के क्षेत्र में प्रवेश किया। शून्यता के क्षेत्र की प्राप्ति से ऊपर उठकर, उन्होंने अनंत चेतना के क्षेत्र में प्रवेश किया। अनंत चेतना के क्षेत्र की प्राप्ति से ऊपर उठकर, उन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश किया। अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र की प्राप्ति से ऊपर उठकर, उन्होंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया। चौथे ध्यान से ऊपर उठकर, उन्होंने तीसरे ध्यान में प्रवेश किया। तीसरे ध्यान से ऊपर उठकर, उन्होंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया। दूसरे ध्यान से ऊपर उठकर, उन्होंने पहले ध्यान में प्रवेश किया।
प्रथम ध्यान से उठकर वे द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गए। द्वितीय ध्यान से उठकर वे तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गए। तृतीय ध्यान से उठकर वे चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गए। और चतुर्थ ध्यान से उठकर वे तुरंत परास्त हो गए।

दुनिया की प्रतिध्वनि

12. और जब भगवान बुद्ध का देहांत हो गया, तो उनके परिनिर्वाण के साथ ही एक भयंकर भूकंप आया, जो भयानक और चौंकाने वाला था, और आकाश में गर्जना गूंज उठी।

13. और जब भगवान बुद्ध का देहांत हो गया, उनके परिनिर्वाण के साथ ही, ब्रह्म सहमपति ने यह श्लोक कहा:
सभी को जाना है— सभी जीवित प्राणियों को अपना मिश्रित रूप त्यागना होगा। हाँ, यहाँ तक कि एक, उनके जैसा एक गुरु, एक अद्वितीय प्राणी, ज्ञान में शक्तिशाली, प्रबुद्ध, भी देह त्याग चुके हैं। 14. और जब भगवान बुद्ध का देह त्याग हो गया, उनके परिनिर्वाण के साथ ही, देवताओं के राजा सक्का ने यह श्लोक कहा:
सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, उनका जन्म और विनाश निश्चित है; अस्तित्व में आने के बाद वे नष्ट हो जाती हैं; जब वे सदा के लिए समाप्त हो जाती हैं, तब शांति सुखद होती है। 15. और जब भगवान बुद्ध का परनिर्वाण हो गया, उसी समय पूज्य अनुराधा ने यह श्लोक कहा:
श्वास का कोई संचलन नहीं, परन्तु स्थिर हृदय से, इच्छाओं से मुक्त और शांत — इस प्रकार ऋषि का अंत हुआ। मृत्यु के कष्टों से अविचलित, उनका मन, बुझती हुई लौ के समान, मुक्ति पा गया। 16. और जब भगवान बुद्ध का परनिर्वाण हो गया, उसी समय पूज्य आनंद ने यह श्लोक कहा:
फिर भय का माहौल छा गया और रोंगटे खड़े हो गए, जब सर्वसिद्ध बुद्ध का देहांत हुआ। 17. फिर, जब भगवान बुद्ध का देहांत हो गया, तो कुछ भिक्षु, जो अभी तक वासना से मुक्त नहीं हुए थे, अपने हाथ उठाकर रोने लगे; और कुछ जमीन पर गिरकर इधर-उधर लुढ़कते हुए विलाप करने लगे: "भगवान बुद्ध कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! शुभ बुद्ध कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! संसार की आँख कितनी जल्दी दृष्टि से ओझल हो गई!"
लेकिन जो भिक्षु कामवासना से मुक्त थे, सचेत थे और स्पष्ट रूप से समझते थे, उन्होंने इस प्रकार चिंतन किया: "सभी चीजें क्षणभंगुर हैं। भला ऐसा कैसे हो सकता है?"
18. तब पूज्य अनुराधा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "बस करो, मित्रों! शोक मत करो, विलाप मत करो! क्योंकि क्या भगवान बुद्ध ने यह नहीं कहा है कि जो कुछ भी प्रिय और प्यारा है, उसमें परिवर्तन, वियोग और विच्छेद अवश्य होगा? जो जन्म लेता है, अस्तित्व में आता है, बनता है और क्षय के अधीन है, उसके बारे में कोई कैसे कह सकता है: 'काश उसका विघटन न हो!'? हे मित्रों, देवता दुखी हैं।"
लेकिन, आदरणीय महोदय, आदरणीय अनुराधा किन देवताओं के बारे में जानते हैं?
"हे आनंद, मित्र, अंतरिक्ष और पृथ्वी पर ऐसे देवता हैं जो सांसारिक विचारों से प्रेरित हैं; बिखरे बालों के साथ वे रोते हैं, भुजाएँ उठाकर रोते हैं; जमीन पर गिरकर करवटें बदलते हुए विलाप करते हैं: 'भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! जगत की आँख कितनी जल्दी दृष्टि से ओझल हो गई!' परन्तु जो देवता वासना से मुक्त हैं, सचेत हैं और स्पष्ट रूप से समझते हैं, वे इस प्रकार चिंतन करते हैं: 'सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। ऐसा कैसे हो सकता है?'"
19. अब पूज्य अनुराधा और पूज्य आनंद ने शेष रात्रि धम्म पर चर्चा करते हुए बिताई। फिर पूज्य अनुराधा ने पूज्य आनंद से कहा, "हे मित्र आनंद, अब कुसिनारा जाओ और मल्लों को यह सूचना दो: 'परमेश्वर वसेत्थास का निधन हो गया है। अब तुम जो उचित समझो, वही करो।'"
"ऐसा ही हो, पूज्यवर।" और पूज्य आनंद ने सुबह स्वयं को तैयार किया, और पान और वस्त्र लेकर एक साथी के साथ कुसिनारा चले गए।
20. उस समय कुसिनारा के मल्ल इसी विषय पर विचार करने के लिए सभा भवन में एकत्रित हुए थे। तभी पूज्य आनंद उनके पास आए और घोषणा की: "हे वसेत्थास, भगवान बुद्ध का देहांत हो गया है। अब आप जो उचित समझें, वही करें।"
जब उन्होंने पूज्य आनंद के ये शब्द सुने, तो मल्ल अपने पुत्रों, अपनी पत्नियों और अपने पुत्रों की पत्नियों सहित अत्यंत व्यथित हुए; कुछ अपने बिखरे बालों के साथ, निराशा में बाहें उठाकर रोने लगे; वे ज़मीन पर गिर पड़े, इधर-उधर लुढ़कते हुए विलाप करने लगे: "भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! सुखी भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! संसार की आँख कितनी जल्दी दृष्टि से ओझल हो गई!"
अवशेषों को श्रद्धांजलि
21. तब कुसिनारा के मल्लों ने अपने आदमियों को आदेश दिया, "अब कुसिनारा में जितने भी इत्र, पुष्पमालाएँ और संगीतकार हैं, उन सबको इकट्ठा करो।" और मल्ल, इत्र, पुष्पमालाएँ, संगीतकारों और पाँच सौ जोड़ी वस्त्रों के साथ, मल्लों के मनोरंजन उद्यान, साला वन में गए और भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाएँ और इत्र से भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की और मंडप व तंबू लगाकर सारा दिन भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर के प्रति आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट करते हुए बिताया। फिर उनके मन में यह विचार आया, "आज का दिन बहुत बीत चुका है, इसलिए हम भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर का दाह संस्कार नहीं कर सकते। हम इसे कल करेंगे।"
और दूसरे दिन, और तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे दिन भी, उन्होंने नृत्य, गीत, संगीत, फूलों की मालाओं और इत्र से भगवान बुद्ध के शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की, और मंडप और तंबू बनाकर, उन्होंने पूरा दिन भगवान बुद्ध के शरीर के प्रति सम्मान, आदर और श्रद्धा प्रदर्शित करने में बिताया।
लेकिन सातवें दिन उनके मन में यह विचार आया: "हमने नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाओं और इत्र से भगवान के शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की है, आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट की है; अब आइए हम भगवान के शरीर को दक्षिण की ओर शहर के दक्षिणी भाग और उससे आगे ले जाएं, और वहां शहर के दक्षिण में भगवान के शरीर का अंतिम संस्कार करें।"

और प्रमुख परिवारों के आठ मल्लाओं ने अपने सिर के ऊपरी भाग को धोकर और नए कपड़े पहनकर, इस विचार के साथ कि "हम भगवान बुद्ध के शरीर को उठाएंगे," ऐसा करने का प्रयास किया, लेकिन वे ऐसा नहीं कर सके।
22. तब मल्लों ने पूज्य अनुराधा से कहा, "हे पूज्य अनुराधा, क्या कारण है? ये आठ प्रमुख परिवारों के मल्ल, जिन्होंने अपने सिर के मुकुट से स्नान किया और नए वस्त्र पहने हुए थे, इस विचार से कि 'हम भगवान के शरीर को उठा लेंगे', ऐसा करने का प्रयास तो करते हैं, पर ऐसा करने में असमर्थ क्यों हैं?"
"हे वसेत्थास, तुम्हारा एक उद्देश्य है, देवताओं का दूसरा।"
"तो फिर, आदरणीय महोदय, देवताओं का उद्देश्य क्या है?"
"हे वसेत्थास, तुम्हारा उद्देश्य यह है: 'हमने नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाओं और इत्र से भगवान बुद्ध के शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की है, और आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट की है; अब हम भगवान बुद्ध के शरीर को दक्षिण की ओर शहर के दक्षिणी भाग और उससे आगे ले जाएं, और वहां शहर के दक्षिण में भगवान बुद्ध के शरीर का अंतिम संस्कार करें।' लेकिन देवताओं, वसेत्थों का उद्देश्य यह है: "हमने दिव्य नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाओं और इत्र से भगवान के शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की है, और आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट की है; अब हम भगवान के शरीर को उत्तर की ओर नगर के उत्तरी भाग में ले चलें; और उत्तरी द्वार से होते हुए नगर के मध्य से गुजरें, और फिर पूर्व की ओर नगर के पूर्वी भाग में जाएँ; और पूर्वी द्वार से गुजरते हुए, हम इसे मल्ल वंश के चैत्य, मकुता-बंधन में ले जाएँ, और वहाँ भगवान के शरीर का दाह संस्कार करें।"
"हे पूज्यवर, देवताओं की यही इच्छा हो, वैसा ही हो।"
23. तब कुसिनारा का सारा क्षेत्र, यहाँ तक कि धूल के ढेर और कूड़े के ढेर भी, घुटनों तक मंदारवा के फूलों से ढक गए। 62 कुसिनारा के देवताओं और मल्लों ने भगवान बुद्ध के शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की। नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाओं और सुगंध से, दिव्य और मानवीय दोनों तरह से, आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट की गई। और वे भगवान बुद्ध के शरीर को उत्तर की ओर नगर के उत्तरी भाग में ले गए; और उत्तरी द्वार से होकर वे नगर के मध्य से होते हुए पूर्व की ओर नगर के पूर्वी भाग में गए; और पूर्वी द्वार से होकर वे भगवान बुद्ध के शरीर को मल्लों के चैत्य, मकुटा-बंधन में ले गए और वहाँ रख दिया।
24. तब कुसिनारा के मल्लों ने पूज्य आनंद से कहा, "हे पूज्य आनंद, तथागत के शरीर के संबंध में हमें क्या करना चाहिए?"
"उसी प्रकार, वसेत्थास, जैसे किसी सार्वभौमिक सम्राट के शरीर के प्रति किया जाता है।"
लेकिन हे पूज्य आनंद, वे एक सार्वभौमिक सम्राट के शरीर के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं?
"सर्वशक्तिमान सम्राट, वसेत्थास, के शरीर को पहले नए लिनेन में लपेटा जाता है, फिर रूई से। फिर से नए लिनेन में लपेटा जाता है, फिर रूई से, और इसी तरह लिनेन और रूई की पाँच सौ परतों तक लपेटा जाता है। जब यह हो जाता है, तो सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर को एक लोहे के तेल पात्र में रखा जाता है, जिसे एक और लोहे के पात्र में बंद कर दिया जाता है, और सभी प्रकार की सुगंधित लकड़ियों से एक चिता बनाई जाती है, और इस प्रकार सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर को जला दिया जाता है। और एक चौराहे पर सर्वशक्तिमान सम्राट के लिए एक स्तूप बनाया जाता है। इस प्रकार, वसेत्थास, सर्वशक्तिमान सम्राट के शरीर के साथ किया जाता है।"
और हे वसेत्थों, जैसे किसी विश्व सम्राट के शरीर का सम्मान किया जाता है, वैसे ही तथागत के शरीर का सम्मान किया जाना चाहिए; और चौराहे पर तथागत के लिए एक स्तूप भी स्थापित किया जाना चाहिए। और जो कोई भी उस स्थान पर माला, धूप या चंदन का लेप चढ़ाए, या श्रद्धा अर्पित करे, और जिसका मन वहाँ शांत हो जाए, वह उसके लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेगा।
25. तब मल्लों ने अपने आदमियों को आदेश दिया, "अब मल्लों की सारी रूई इकट्ठा करो!" कुसिनारा के मल्लों ने भगवान बुद्ध के शरीर को नए लिनेन से लपेटा, फिर रूई से। फिर उन्होंने उसे नए लिनेन से लपेटा, फिर रूई से। इस प्रकार उन्होंने लिनेन की पाँच सौ परतें और रूई की पाँच सौ परतें लपेटीं। जब यह कार्य पूरा हो गया, तो उन्होंने भगवान बुद्ध के शरीर को एक लोहे के तेल पात्र में रखा, जिसे एक और लोहे के पात्र में बंद कर दिया गया। उन्होंने सभी प्रकार की सुगंधित लकड़ियों की चिता बनाई और उस पर भगवान बुद्ध के शरीर को रख दिया।
26. उस समय पूज्य महा कस्सपा पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ पावा से कुसिनारा की यात्रा कर रहे थे। रास्ते में पूज्य महा कस्सपा राजमार्ग से हटकर एक वृक्ष की गोद में बैठ गए।
और एक अजीवक पावा जा रहा था, और वह कुसिनारा से एक मंदारवा फूल लेकर आया था। पूज्य महा कस्सपा ने दूर से अजीवक को आते देखा, और पास आकर उससे कहा, "मित्र, क्या तुम हमारे गुरु के बारे में कुछ जानते हो?"
"जी हां, मित्र, मुझे पता है। तपस्वी गौतम के देहांत को अब सात दिन हो गए हैं। मैं वहीं से यह मंदारवा का फूल लाया हूं।"
27. तब कुछ भिक्षु, जो अभी तक वासना से मुक्त नहीं हुए थे, अपने हाथ उठाकर रोने लगे; और कुछ जमीन पर गिरकर इधर-उधर लुढ़कते हुए विलाप करने लगे: "भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! भगवान कितनी जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए! जगत की आँख कितनी जल्दी दृष्टि से ओझल हो गई!"
28. उस समय, सुभद्दा नामक एक भिक्षु, जिन्होंने वृद्धावस्था में ही संन्यास लिया था, सभा में बैठे थे। उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "बस करो, मित्रों! शोक मत करो, विलाप मत करो! हम उस महान तपस्वी से छुटकारा पा चुके हैं। मित्रों, बहुत समय तक हम उनके इस कथन से पीड़ित रहे कि 'यह तुम्हारे लिए उचित है; वह तुम्हारे लिए उचित नहीं है।' अब हम अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकेंगे, और जो हम नहीं चाहते, वह नहीं करेंगे।"

लेकिन पूज्य महा कस्सपा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "बस करो मित्रों! शोक मत करो, विलाप मत करो! क्योंकि क्या भगवान बुद्ध ने यह नहीं कहा है कि जो कुछ भी प्रिय और प्यारा है, उसमें परिवर्तन, वियोग और विच्छेद अवश्य होगा? जो जन्म लेता है, अस्तित्व में आता है, बनता है और क्षय के अधीन है, उसके बारे में कोई कैसे कह सकता है: 'यह नष्ट न हो!'?"

29. उस समय, प्रमुख परिवारों के चार मल्ल भिक्षुओं ने अपने सिर के मुकुट से स्नान किया और नए वस्त्र धारण किए, यह सोचकर कि "हम भगवान बुद्ध की चिता को प्रज्वलित करेंगे," उन्होंने ऐसा करने का प्रयास किया, परन्तु वे ऐसा नहीं कर सके। तब मल्ल भिक्षुओं ने पूज्य अनुराधा से कहा, "हे पूज्य अनुराधा, इसका क्या कारण है कि प्रमुख परिवारों के इन चार मल्ल भिक्षुओं ने अपने सिर के मुकुट से स्नान किया और नए वस्त्र धारण किए, यह सोचकर कि "हम भगवान बुद्ध की चिता को प्रज्वलित करेंगे," उन्होंने ऐसा करने का प्रयास किया, परन्तु वे ऐसा नहीं कर सके?"

"हे वसेत्थास, तुम्हारा एक उद्देश्य है, देवताओं का दूसरा।"

"तो फिर, आदरणीय महोदय, देवताओं का उद्देश्य क्या है?"

वसेत्था देवताओं का उद्देश्य यह है: 'पूज्य महा कस्सपा पांच सौ भिक्षुओं के एक विशाल समूह के साथ पावा से कुसिनारा जा रहे हैं। जब तक पूज्य महा कस्सपा भगवान के चरणों में प्रणाम न कर लें, तब तक उनकी चिता को प्रज्वलित न किया जाए।'

"हे पूज्यवर, देवताओं की यही इच्छा हो, वैसा ही हो।"

30. पूज्य महा कस्सपा कुसिनारा में मल्ल भिक्षुओं के चैत्य, मकुता-बंधन स्थित भगवान बुद्ध की चिता के पास पहुँचे। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर रखा और हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए भगवान बुद्ध के शरीर की ओर दाहिना भाग रखते हुए चिता के तीन चक्कर लगाए और भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम किया। पाँच सौ भिक्षुओं ने भी ऐसा ही किया।

और जब पूज्य महा कस्सपा और पांच सौ भिक्षुओं ने श्रद्धांजलि अर्पित कर दी, तो भगवान बुद्ध की चिता स्वतः ही प्रज्वलित हो गई।

31. और ऐसा हुआ कि जब भगवान बुद्ध का शरीर जलाया गया, तो त्वचा, ऊतक, मांस, नसें और तरल पदार्थ के कोई अवशेष या कण नहीं बचे; केवल हड्डियाँ ही शेष रहीं। जैसे घी या तेल जलने पर कोई कण या राख नहीं बचती, वैसे ही जब भगवान बुद्ध का शरीर जलाया गया, तो त्वचा, ऊतक, मांस, नसें और तरल पदार्थ के कोई अवशेष या कण नहीं बचे; केवल हड्डियाँ ही शेष रहीं। और पाँच सौ लिनेन के आवरणों में से केवल दो ही अविचलित रहे, भीतरी और बाहरी।

32. और जब भगवान बुद्ध का शरीर जला दिया गया, तो आकाश से जल बरसा और भगवान बुद्ध की चिता को बुझा दिया, और साल के पेड़ों से जल निकला, और कुसिनारा के मल्ल अनेक प्रकार के इत्रों से सुगंधित जल लाए, और उन्होंने भी भगवान बुद्ध की चिता को बुझा दिया।

और कुसिनारा के मल्लों ने भगवान बुद्ध के अवशेषों को अपने सभा भवन में रखा, और उन्हें भालों की जाली से घेर दिया तथा धनुषों की बाड़ से घेर दिया; और वहाँ सात दिनों तक उन्होंने नृत्य, गीत, संगीत, पुष्पमालाओं और इत्र से भगवान बुद्ध के अवशेषों को श्रद्धांजलि अर्पित की, और भगवान बुद्ध के अवशेषों के प्रति आदर, सम्मान और श्रद्धा प्रकट की।

अवशेषों का विभाजन

33. तब मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेही रानी के पुत्र थे, को यह सूचना मिली कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और मैं भी उसी जाति का हूँ। मैं भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हूँ। मैं भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाऊँगा और उनके सम्मान में एक उत्सव आयोजित करूँगा।”

34. वैशाली के लिच्छवियों को यह पता चला कि कुसिनारा में भगवान बुद्ध का निधन हो गया है। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और हम भी उसी जाति के हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”

35. कपिलवस्तु के शाक्यों को यह जानकर कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं, उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा और कहा, “भगवान बुद्ध हमारे कुल में श्रेष्ठ थे। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”

36. और अल्लाकप्पा के बुलियों को यह पता चला कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और हम भी उसी जाति के हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”

37. रामागामा के कोलियों को यह पता चला कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और हम भी उसी जाति के हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”

38. और वेथादीप ब्राह्मण को यह पता चला कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे और मैं ब्राह्मण हूँ। मैं भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हूँ। मैं भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करूँगा और उनके सम्मान में एक उत्सव आयोजित करूँगा।”

39. पावा के मल्लों को यह पता चला कि भगवान बुद्ध कुसिनारा में देहांत हो गए हैं। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और हम भी उसी जाति के हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”
40. परन्तु जब उन्होंने ये शब्द सुने, तो कुसिनारा के मल्लों ने सभा को संबोधित करते हुए कहा, “भगवान बुद्ध हमारे नगर में देहांत कर चुके हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का कोई भी अंश किसी को नहीं देंगे।” तब ब्राह्मण डोना ने सभा को संबोधित करते हुए कहा:
मेरी ओर से एक शब्द, महोदय, कृपया ध्यान दें! हमारे बुद्ध ने हमें सदा संयम बरतने का उपदेश दिया है; यह अनुचित होगा यदि उनके अवशेषों की रक्षा को लेकर कलह, युद्ध और रक्तपात हो, जो श्रेष्ठ पुरुष थे! महोदय, आइए हम सब मित्रतापूर्वक आठ भागों में बाँटने पर सहमत हों—ताकि दूर-दूर तक स्तूप स्थापित हों और उन्हें देखकर मानवजाति सर्वज्ञानी में आस्था प्राप्त करे! "ऐसा ही हो, ब्राह्मण! आप स्वयं अवशेषों को आठ बराबर भागों में बाँट लें।"
ब्राह्मण डोना ने सभा से कहा, “ऐसा ही हो, महोदय।” उन्होंने भगवान बुद्ध के अवशेषों को आठ बराबर भागों में उचित रूप से विभाजित किया और ऐसा करने के बाद सभा को संबोधित करते हुए कहा, “यह कलश मुझे दे दीजिए। मैं इस कलश पर एक स्तूप बनवाऊंगा और इसके सम्मान में एक उत्सव आयोजित करूंगा।” और वह कलश ब्राह्मण डोना को दे दिया गया।
41. तब पिप्पलीवन के मोरियाओं को पता चला कि कुसिनारा में भगवान बुद्ध का निधन हो गया है। उन्होंने कुसिनारा के मल्लों को संदेश भेजा, “भगवान बुद्ध योद्धा जाति के थे, और हम भी उसी जाति के हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों का एक अंश प्राप्त करने के योग्य हैं। हम भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप का निर्माण करेंगे और उनके सम्मान में एक उत्सव मनाएंगे।”
“भगवान बुद्ध के अवशेषों का कोई अंश शेष नहीं है; उनके अवशेष विभाजित हो चुके हैं। परन्तु यहाँ से राख ले लो।” और वे वहाँ से राख ले गए।
42. मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेही रानी के पुत्र थे, ने राजगृह में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। वैशाली के लिच्छवियों ने वैशाली में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। कपिलवस्तु के शाक्यों ने कपिलवस्तु में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। अल्लाकप्पा के बुलियों ने अल्लाकप्पा में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। रामागम के कोलियों ने रामागम में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। वेथाद्वीप के ब्राह्मण ने वेथाद्वीप में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव का आयोजन किया। पावा के मल्लों ने पावा में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव आयोजित किया। कुसिनारा के मल्लों ने कुसिनारा में भगवान बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव आयोजित किया। ब्राह्मण दोना ने कलश पर एक स्तूप बनवाया और उसके सम्मान में एक उत्सव आयोजित किया। और पिप्पलीवन के मोरियाओं ने पिप्पलीवन में अस्थियों पर एक स्तूप बनवाया और उनके सम्मान में एक उत्सव आयोजित किया।
इस प्रकार, अवशेषों के लिए आठ स्तूप, कलश के लिए नौवां और राख के लिए दसवां स्तूप बनाए गए।
और पुराने समय में ऐसा ही होता था।
43. सर्वदर्शी, सर्वज्ञ पुरुष के आठ अवशेष थे। सात जंबुद्वीप में और एक रामागम में नाग वंश के राजाओं द्वारा पूजनीय हैं। एक दांत तावतिंसा स्वर्ग में, एक कलिंग राज्य में और एक नाग राजाओं द्वारा पूजनीय है। उनके प्रकाश से यह समृद्ध पृथ्वी अपने उत्कृष्ट उपहारों से संपन्न है; क्योंकि सर्वदर्शी पुरुष के अवशेषों का सबसे अच्छा सम्मान उन्हीं द्वारा किया जाता है जो सम्मान के योग्य हैं - देवताओं, नागों, मनुष्यों के स्वामियों, हाँ, मानव जाति के सर्वोच्च लोगों द्वारा। हाथ जोड़कर प्रणाम करो! क्योंकि सैकड़ों युगों में सर्व-प्रबुद्ध पुरुष से मिलना वास्तव में कठिन है!

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.4 महा सुदासन सुत्त(DN17)

एक बार भगवान अपने अंतिम निर्वाण से कुछ समय पहले कुसिनारा में मल्लाओं के साल के बाग में दो साल के पेड़ों के बीच ठहरे हुए थे।

आदरणीय आनंद भगवान के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे भगवान, भगवान इस निर्धन छोटे से, मिट्टी-मिट्टी से बने कस्बे में, जो घने जंगल में दूर-दूर तक फैला हुआ है, अपना प्राण न त्यागें! हे भगवान, चंपा, राजगृह, सावत्थी, सकेता, कोसंबी या वाराणसी जैसे अन्य महान नगर हैं। उन स्थानों पर धनी क्षत्रिय, ब्राह्मण और गृहस्थ हैं जो तथागत के भक्त हैं और वे तथागत के अंतिम संस्कार का उचित प्रबंध करेंगे।”

"आनंद, इसे जंगल के सुदूर इलाके में स्थित एक दयनीय, मिट्टी और लकड़ी से बना छोटा सा कस्बा मत कहो! आनंद, एक समय की बात है, राजा महासुदस्सन एक चक्र-चालक सम्राट थे, एक न्यायप्रिय और धर्मात्मा राजा, जिन्होंने चारों दिशाओं में देश पर विजय प्राप्त की थी और अपने राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित की थी। और इस राजा महासुदस्सन ने इसी कुसिनारा को कुसावती नाम से अपनी राजधानी बनाया था। यह पूर्व से पश्चिम तक बारह योजन लंबा और उत्तर से दक्षिण तक सात योजन चौड़ा था। कुसावती समृद्ध, खुशहाल और घनी आबादी वाला शहर था, लोगों से भरा हुआ और भोजन का भरपूर भंडार था। जैसे देव-नगर अलकमंडा समृद्ध है..., वैसे ही कुसावती का राजसी नगर था। और कुसावती नगर दिन-रात दस ध्वनियों से कभी मुक्त नहीं होता था: हाथियों, घोड़ों, रथों, ढोल, सारंगी, गायन, झांझ और घंटों की आवाज।" दसवें स्थान पर 'खाओ, पियो और मौज करो' के नारों के साथ।

"कुसावती का शाही शहर सात दीवारों से घिरा हुआ था। एक सोने की, एक चांदी की, एक बेरिल की, एक क्रिस्टल की, एक माणिक की, एक पन्ना की और एक-एक प्रकार के रत्नों की बनी हुई थी।"

कुसावती सात पंक्तियों में एक ही प्रकार के ताड़ के वृक्षों से घिरी हुई थी। स्वर्ण वृक्षों के तने स्वर्ण रंग के थे और उन पर चांदी के पत्ते और फल लगे थे, चांदी के वृक्षों के तने चांदी रंग के थे और उन पर स्वर्ण रंग के पत्ते और फल लगे थे। बेरिल वृक्षों के तने बेरिल रंग के थे और उन पर क्रिस्टल रंग के पत्ते और फल लगे थे, क्रिस्टल रंग के वृक्षों के तने क्रिस्टल रंग के थे और उन पर बेरिल रंग के पत्ते और फल लगे थे। माणिक वृक्षों के तने माणिक रंग के थे और उन पर पन्ना रंग के पत्ते और फल लगे थे, पन्ना वृक्षों के तने पन्ना रंग के थे और उन पर माणिक रंग के पत्ते और फल लगे थे, जबकि सभी प्रकार के रत्नों के वृक्षों के तने, पत्ते और फल एक समान थे। हवा से हिलते हुए पत्तों की ध्वनि सुरीली, मनमोहक, मधुर और मदहोश कर देने वाली थी, ठीक वैसे ही जैसे पांच प्रकार के वाद्ययंत्रों को कुशल वादक एक साथ बजाते हैं। और, आनंद, कुसावती में जो लोग व्यभिचारी और शराबी थे, उनकी इच्छाएं हवा में लहराते पत्तों की ध्वनि से शांत हो जाती थीं।

"राजा महासुदस्सन सात रत्नों और चार गुणों से संपन्न थे। वे सात गुण क्या हैं? एक बार, व्रत के दिन, उन्हें हजार तीलियों वाला, धुरी, हब और सभी सहायक उपकरणों से सुसज्जित दिव्य चक्र-रत्न प्रकट हुआ। इसे देखकर राजा महासुदस्सन ने सोचा: 'मैंने सुना है कि जब विधिवत अभिषिक्त क्षत्रिय राजा पंद्रहवें व्रत के दिन ऐसा चक्र देखता है, तो वह चक्र-चक्कर लगाने वाला राजा बन जाता है। काश मैं भी ऐसा राजा बन सकूँ!'"

फिर, राजा अपने आसन से उठकर, अपने एक कंधे को अपने वस्त्र से ढकते हुए, अपने बाएं हाथ में एक सोने का पात्र लेकर, अपने दाहिने हाथ से चक्र पर स्वर्णजल छिड़का और कहा: 'हे महान चक्र-खजाने, हे महान चक्र-खजाने, विजय प्राप्त करने!' चक्र पूर्व दिशा की ओर घूमा, और राजा महासुदस्सन अपनी चार सेनाओं के साथ उसके पीछे-पीछे चले। और जिस भी देश में चक्र रुका, राजा अपनी चार सेनाओं के साथ वहीं निवास करने लगे।

और, पूर्वी क्षेत्र में जो राजा उसके विरुद्ध थे, वे आकर बोले: 'हे महाराज, आपका स्वागत है! हम आपके अधीन हैं, महाराज। हम पर शासन कीजिए, महाराज!' और राजा ने कहा: 'किसी की जान मत लो। जो न दिया गया हो, उसे मत लो। यौन दुराचार मत करो। झूठ मत बोलो। शराब मत पियो। भोजन संयम से करो।' और पूर्वी क्षेत्र में जो राजा उसके विरुद्ध थे, वे उसकी प्रजा बन गए।

और जब चक्र पूर्वी समुद्र में समा गया, तो वह उभरा और दक्षिण की ओर मुड़ गया, और राजा महासुदस्सन अपनी चार गुना सेना के साथ उसके पीछे-पीछे चले। और वे राजा... उसके अधीन हो गए। दक्षिणी समुद्र में समा जाने के बाद वह पश्चिम की ओर मुड़ गया..., पश्चिमी समुद्र में समा जाने के बाद वह उत्तर की ओर मुड़ गया, और राजा महासुदस्सन अपनी चार गुना सेना के साथ उसके पीछे-पीछे चले... और जो उत्तरी क्षेत्र में उसका सामना कर रहे थे, वे उसके अधीन हो गए।

फिर, समुद्र से समुद्र तक के सभी क्षेत्रों को जीतकर, चक्र-खजाना कुसावती की राजराजधानी में लौटा और राजा के महल के सामने, जब वह एक मामले की सुनवाई कर रहे थे, मानो महल की शोभा बढ़ाने के लिए रुका। और इस प्रकार चक्र-खजाना राजा महासुदस्सन के सामने प्रकट हुआ।

फिर राजा महासुदस्सना के सामने हाथी-खजाना प्रकट हुआ, जो शुद्ध सफेद रंग का, सात गुना शक्तिशाली और हवा में उड़ने की अद्भुत शक्ति से युक्त था। वह उपोसथा नाम का एक शाही हाथी था। उसे देखकर राजा ने सोचा, 'कितना अद्भुत सवारी करने वाला हाथी है, काश इसे वश में किया जा सकता!' और यह हाथी-खजाना एक प्रशिक्षित हाथी की तरह वश में हो गया। एक बार राजा ने उसे परखने के लिए भोर होते ही उस पर सवार होकर एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक की यात्रा की और नाश्ते के समय तक कुसावती लौट आए। इस प्रकार हाथी-खजाना राजा महासुदस्सना के सामने प्रकट हुआ।

फिर अश्व-रत्न राजा महासुदस्सना के समक्ष प्रकट हुआ, जिसका सिर कौवे जैसा था, घने काले अयाल थे, और उसमें हवा में उड़ने की अद्भुत शक्ति थी। वह वलाहाका नामक एक शाही घोड़ा था। राजा ने सोचा, 'कितना अद्भुत वाहन है, काश इसे वश में किया जा सकता!' और यह अश्व-रत्न एक लंबे समय से प्रशिक्षित शुद्ध नस्ल के घोड़े की तरह नियंत्रण में आ गया... और इस प्रकार अश्व-रत्न राजा महासुदस्सना के समक्ष प्रकट हुआ।

फिर राजा महासुदस्सना को वह रत्न प्रकट हुआ। वह शुद्ध, उत्कृष्ट, आठ फलकों में तराशा हुआ, निर्मल, चमकीला और हर तरह से परिपूर्ण बेरिल था। इस रत्न की चमक पूरे एक योजन तक फैली रही। एक बार राजा ने इसे परखने के लिए अपनी चार गुना सेना के साथ अंधेरी रात में रात्रियुद्ध किया, और रत्न को अपने ध्वज के शीर्ष पर स्थापित किया। आसपास के गांवों में रहने वाले सभी लोग दिन का उजाला समझकर अपना दैनिक कार्य करने लगे। इस प्रकार राजा महासुदस्सना को वह रत्न प्रकट हुआ।

फिर, राजा महासुदस्सन के समक्ष स्त्री-खजाने प्रकट हुईं। वे सुंदर, मनमोहक, कमल के समान रंग की थीं, न अधिक लंबी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली, न अधिक मोटी, न अधिक सांवली, न अधिक गोरी, बल्कि देव-समान सौंदर्य से परिपूर्ण थीं। उनकी त्वचा रुई या रेशम जैसी कोमल थी, और उनके अंग गर्मी में शीतल और सर्दी में गर्म रहते थे। उनके शरीर से चंदन की सुगंध और होठों से कमल की सुगंध आती थी। यह स्त्री-खजाने राजा के सामने उठती और बाद में लौटती, और सदा उनकी प्रसन्नता के लिए तत्पर रहती, और उनकी वाणी मधुर थी। यह स्त्री-खजाने राजा के प्रति विचार में भी विश्वासघाती नहीं थीं, कर्म में तो बिल्कुल भी नहीं। इस प्रकार, स्त्री-खजाने राजा महासुदस्सन के समक्ष प्रकट हुईं।

फिर गृहस्थ महासुदस्सन के सामने प्रकट हुए। कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त दिव्य दृष्टि से उन्होंने देखा कि कहाँ-कहाँ धन छिपा है, चाहे वह स्वामी का हो या स्वामीहीन का। वे राजा के पास आए और बोले, 'महाराज, चिंता न करें, मैं आपके धन की उचित देखभाल करूँगा।' एक बार राजा ने उनकी परीक्षा लेने के लिए गंगा के मध्य में एक जहाज पर सवार होकर धारा में बह गए। तब उन्होंने गृहस्थ से कहा, 'गृहस्थ, मुझे कुछ सोने के सिक्के चाहिए!' 'ठीक है महाराज, जहाज को एक किनारे पर ले आइए।' 'मुझे सोने के सिक्के यहीं चाहिए!' तब गृहस्थ ने दोनों हाथों से पानी को छुआ और सोने के सिक्कों से भरा एक पात्र निकाला और कहा, 'क्या इतना काफी है महाराज? क्या इससे काम चल जाएगा महाराज?' राजा ने कहा, 'बस इतना ही काफी है, गृहस्थ, इतना ही काफी है, आपने मेरी पर्याप्त सेवा कर दी है।' और इस प्रकार गृहस्थ राजा महासुदस्सन के सामने प्रकट हुए।

फिर सलाहकार-खजाने वाले राजा महासुदस्सन के सामने प्रकट हुए। वे बुद्धिमान, अनुभवी, चतुर और सक्षम थे, और राजा को यह सलाह देने में सक्षम थे कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वे राजा के पास आए और बोले: 'महाराज, भयभीत न हों, मैं आपको सलाह दूंगा।' और इस प्रकार सलाहकार-खजाने वाले राजा महासुदस्सन के सामने प्रकट हुए, और उन्हें सातों खजाने प्राप्त हुए।

"आनंद, फिर से बताओ, राजा महासुदस्सन चार गुणों से संपन्न थे। वे क्या हैं? पहला, राजा सुंदर, आकर्षक, मनमोहक थे, उनका रंग उत्तम कमल के समान था, जो अन्य पुरुषों से श्रेष्ठ था।"

"दूसरा, वह दीर्घायु थे, अन्य पुरुषों से अधिक समय तक जीवित रहे।"

"तीसरा, वह बीमारी से मुक्त था, उसकी पाचन शक्ति अच्छी थी, और वह अन्य पुरुषों की तुलना में सर्दी और गर्मी से कम प्रभावित होता था।"

चौथी बात, वे ब्राह्मणों और गृहस्थों के प्रिय और लोकप्रिय थे। जैसे एक पिता अपने बच्चों का प्रिय होता है, वैसे ही वे ब्राह्मणों और गृहस्थों के प्रिय थे। और वे राजा के प्रिय थे, जैसे बच्चे अपने पिता के प्रिय होते हैं। एक बार राजा अपनी चार सेनाओं के साथ मनोरंजन उद्यान के लिए निकले, तो ब्राह्मण और गृहस्थ उनके पास आकर बोले, 'महाराज, धीरे चलें, ताकि हम आपको यथासंभव लंबे समय तक

देख सकें!' तब राजा ने सारथी से कहा, 'रथ को धीरे चलाओ ताकि मैं इन ब्राह्मणों और गृहस्थों को यथासंभव लंबे समय तक देख सकूँ।' इस प्रकार राजा महासुदस्सन इन चारों गुणों से संपन्न थे।

तब राजा महासुदस्सन ने सोचा, "मान लो मैं ताड़ के पेड़ों के बीच सौ धनुष की दूरी पर कमल के तालाब बनवाऊँ।" और उन्होंने ऐसा ही किया। कमल के तालाबों की दीवारें चार रंगों की टाइलों से बनी थीं: सोना, चाँदी, बेरिल और क्रिस्टल। प्रत्येक तालाब तक पहुँचने के लिए चार सीढ़ियाँ थीं: एक सोने की, एक चाँदी की, एक बेरिल की और एक क्रिस्टल की। सोने की सीढ़ी में सोने के खंभे और चाँदी की रेलिंग व रेलिंग थीं, और इसी प्रकार आगे भी। कमल के तालाबों में दो प्रकार की चौखटें थीं: सोने की और चाँदी की। सोने की चौखटों में सोने के खंभे और चाँदी की रेलिंग व रेलिंग थीं, और चाँदी की चौखटों में चाँदी के खंभे और सोने की रेलिंग व रेलिंग थीं।

तब राजा ने सोचा, "मान लीजिए कि मैं प्रत्येक तालाब के लिए उपयुक्त फूल उपलब्ध कराऊँ, जिनसे मालाएँ बनाई जा सकें—नीले, पीले, लाल और सफेद कमल, जो बिना मुरझाए सभी ऋतुओं तक टिके रहें?" और उसने ऐसा ही किया। फिर उसने सोचा, "मान लीजिए कि मैं इन तालाबों के किनारों पर स्नान कराने वालों को नियुक्त कर दूँ, ताकि वे वहाँ आने वालों को स्नान करा सकें?" और उसने ऐसा ही किया। फिर उसने सोचा, "मान लीजिए कि मैं इन तालाबों के किनारों पर दान-पुण्य के केंद्र स्थापित कर दूँ, ताकि जिन्हें भोजन की आवश्यकता हो, उन्हें भोजन मिल सके, जिन्हें पानी की आवश्यकता हो, उन्हें वस्त्र मिल सकें, जिन्हें परिवहन की आवश्यकता हो, उन्हें सोने की जगह मिल सके, जिन्हें पत्नी की आवश्यकता हो, उन्हें पत्नी मिल सके और जिन्हें सोने के सिक्के की आवश्यकता हो, उन्हें वह मिल सके?" और उसने ऐसा ही किया।

तब ब्राह्मणों और गृहस्थों ने बहुत धन लेकर राजा के पास जाकर कहा, "महाराज, यह धन हमने विशेष रूप से आपके लिए एकत्रित किया है, कृपया इसे स्वीकार करें।" राजा ने कहा, "धन्यवाद मित्रों, लेकिन मेरे पास वैध आय से पर्याप्त धन है। यह आपका है, और आप इसके अलावा और भी ले जा सकते हैं!" राजा द्वारा इस प्रकार मना किए जाने पर वे एक तरफ हट गए और सोचने लगे, "हमारे लिए इस धन को वापस घर ले जाना उचित नहीं होगा। मान लीजिए कि हम राजा महासुदासन के लिए एक निवास स्थान बनवाते हैं।" अतः वे राजा के पास गए और कहा, "महाराज, हम आपके लिए एक निवास स्थान बनवाएंगे," और राजा ने मौन रहकर इसे स्वीकार कर लिया।

तब देवताओं के स्वामी सक्का ने राजा महासुदस्सन के मन में विचार जान लिया और अपने सेवक देव विस्सकम्मा से कहा, "हे मित्र विस्सकम्मा, आओ और राजा महासुदस्सन के लिए एक निवास स्थान, धम्म नामक महल का निर्माण करो।" विस्सकम्मा ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा, भगवान," और जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या फिर से मोड़ता है, वैसे ही वह तैंतीस देवताओं के स्वर्ग से विलीन हो गया और राजा महासुदस्सन के सामने प्रकट होकर उनसे कहा, "महाराज, मैं आपके लिए एक निवास स्थान, धम्म नामक महल का निर्माण करूँगा।" राजा ने मौन रहकर सहमति दे दी और विस्सकम्मा ने उनके लिए धम्म महल का निर्माण किया।

"आनंद, धम्म का महल, पूर्व से पश्चिम तक एक योजन लंबा और उत्तर से दक्षिण तक आधा योजन चौड़ा था। पूरा महल मनुष्य की ऊंचाई से तीन गुना ऊँचाई तक चार रंगों - सोना, चांदी, बेरिल और क्रिस्टल - की टाइलों से बना था, और इसमें इन्हीं चार रंगों के चौरासी हजार स्तंभ थे। इसमें इन्हीं चार रंगों की चौबीस सीढ़ियाँ थीं, और सोने की सीढ़ियों में सोने के खंभे और चांदी की रेलिंग व बैंस्टर थे... इसमें इन्हीं रंगों के चौरासी हजार कक्ष भी थे। सोने के कक्ष में चांदी का पलंग था, चांदी के कक्ष में सोने का पलंग, बेरिल कक्ष में हाथीदांत का पलंग और क्रिस्टल कक्ष में चंदन का पलंग था। सोने के कक्ष के द्वार पर चांदी के तने, सोने के पत्तों और फलों वाला चांदी का ताड़ का पेड़ बना था... चांदी के कक्ष के द्वार पर सोने के तने, पत्तों और फलों वाला सोने का ताड़ का पेड़ बना था, बेरिल कक्ष के द्वार पर क्रिस्टल के तने और बेरिल के पत्तों और फलों वाला क्रिस्टल का ताड़ का पेड़ बना था... क्रिस्टल कक्ष के द्वार पर क्रिस्टल से बने पत्तों और फलों के साथ एक बेरिल ताड़ के पेड़ की आकृति बनी हुई थी।

तब राजा ने सोचा: 'मान लीजिए कि मैं उस विशाल गुंबददार कक्ष के द्वार के पास, जहाँ मैं दिन के समय बैठता हूँ, सोने के खजूर के पेड़ों का एक छोटा सा बाग बनवा दूँ?' और उसने ऐसा ही किया।

धम्म महल के चारों ओर दो प्राचीरें थीं, एक सोने की और एक चांदी की। सोने वाली प्राचीर में सोने के खंभे, चांदी की रेलिंग और रेलिंग थीं, और चांदी वाली प्राचीर में चांदी के खंभे, सोने की रेलिंग और रेलिंग थीं।

धम्म महल दो झंकारदार घंटियों के जालों से घिरा हुआ था। एक जाल सोने का था जिसमें चांदी की घंटियाँ लगी थीं, दूसरा चांदी का था जिसमें सोने की घंटियाँ लगी थीं। जब हवा से ये घंटियों के जाल हिलते थे, तो इनकी ध्वनि सुरीली, मनमोहक, मीठी और मदहोश कर देने

वाली होती थी, ठीक वैसे ही जैसे पाँचों प्रकार के वाद्ययंत्रों को कुशल और प्रशिक्षित वादक एक साथ बजाते हैं। कुसावती में जो व्यभिचारी और शराबी थे, उनकी इच्छाएँ भी इन घंटियों के जालों की ध्वनि से शांत हो जाती थीं।

"और जब धम्म महल बनकर तैयार हुआ, तो उसे देखना मुश्किल था, वह आँखों को चकाचौंध कर देता था, ठीक वैसे ही जैसे शरद ऋतु में वर्षा ऋतु के अंतिम महीने में, जब आसमान साफ और बादलों से रहित होता है, तो कोहरे को चीरते हुए सूरज को देखना मुश्किल होता है, धम्म महल भी जब बनकर तैयार हुआ तो ऐसा ही था।"

तब राजा ने सोचा, 'क्या मैं धम्म महल के सामने धम्म नाम का एक कमल-झील बनवाऊँ?' और उसने ऐसा ही किया। यह झील पूर्व से पश्चिम तक एक योजन लंबी और उत्तर से दक्षिण तक आधी योजन चौड़ी थी, और सोने, चांदी, बेरिल और क्रिस्टल की चार श्रेणियों की टाइलों से बनी थी। इस तक जाने के लिए चार अलग-अलग प्रकार की चौबीस सीढ़ियाँ थीं: सोने, चांदी, बेरिल और क्रिस्टल की। सोने की सीढ़ियों में सोने के खंभे और चांदी की रेलिंग और डंडे थे, चांदी की सीढ़ियों में सोने की रेलिंग और डंडे थे...

"तब धम्म झील सात प्रकार के ताड़ के पेड़ों से घिरी हुई थी। हवा से हिलते पत्तों की ध्वनि सुरीली, मनमोहक, मधुर और मदहोश कर देने वाली थी, ठीक वैसे ही जैसे प्रशिक्षित और कुशल वादकों द्वारा एक साथ बजाए जाने वाले पाँच प्रकार के वाद्ययंत्रों की ध्वनि होती है। और, आनंद, कुसावती में जो लोग स्वच्छंद और शराबी थे, उनकी इच्छाएँ भी हवा में लहराते पत्तों की ध्वनि से शांत हो जाती थीं।"

"जब धम्म महल और धम्म झील का निर्माण पूरा हो गया, तो राजा महासुदस्सना ने उस समय के तपस्वियों या ब्राह्मणों, या ऐसे पूजनीय लोगों की सभी इच्छाओं को पूरा करने के बाद, धम्म महल में प्रवेश किया।"

तब राजा महासुदस्सन ने सोचा, 'यह किस कर्म का फल है, किस कर्म का परिणाम है कि मैं अब इतना शक्तिशाली और बलवान हूँ?' फिर उन्होंने सोचा: 'यह तीन प्रकार के कर्मों का फल है, परिणाम है: दान, संयम और परहेज।'

तब राजा विशाल गुंबददार कक्ष में गया और द्वार पर खड़े होकर बोला: 'कामवासना का विचार समाप्त हो जाए! द्वेष का विचार समाप्त हो जाए! क्रूरता का विचार समाप्त हो जाए! बस यहीं तक, इससे आगे नहीं, कामवासना, द्वेष और क्रूरता का विचार!'

फिर राजा विशाल गुंबददार कक्ष में गए, सोने के पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए और सभी इंद्रिय-इच्छाओं से विरक्त होकर, अस्वस्थ मानसिक अवस्थाओं से मुक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे, जो चिंतन और मनन से युक्त, वैराग्य से उत्पन्न, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है। मन के शांत और एकाग्र होने पर, वे द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे, जो चिंतन और मनन रहित, एकाग्रता से उत्पन्न, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है। आनंद के लुप्त होने पर, अविचलित, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहते हुए, उन्होंने स्वयं में उस आनंद का अनुभव किया जिसके बारे में श्रेष्ठजन कहते हैं: 'धन्य है वह जो समभाव और सजगता में रहता है', वे तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे। और सुख-दुख का त्याग करके, और पूर्व के सुख-दुख के लुप्त होने पर, वे चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे, जो सुख-दुख से परे, समभाव और सजगता से शुद्ध होता है।

फिर राजा विशाल गुंबददार कक्ष से निकलकर स्वर्ण गुंबददार कक्ष में गए और चांदी के पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए। वे पहले एक चौथाई, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे चौथाई भाग में प्रेममयी भाव से परिपूर्ण होकर विचरण करते रहे। इस प्रकार वे प्रेममयी भाव को ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह फैलाते रहे, सदा प्रेममयी भाव से परिपूर्ण, असीम, और घृणा या द्वेष से रहित होकर। उन्होंने करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव से भी ऐसा ही किया।

राजा महासुदस्सन के चौरासी हजार नगरों में उनकी राजधानी कुसावती प्रमुख थी; उनके चौरासी हजार महलों में धम्म प्रमुख था; उनके चौरासी हजार गुंबददार महलों में विशाल गुंबददार कक्ष प्रमुख था; उनके चौरासी हजार पलंग सोने, चांदी, हाथी दांत, चंदन के बने थे, ऊन से ढके थे, कदली हिरण की खाल से सजे थे, सिर ढकने के लिए आवरण थे और दोनों सिरों पर लाल तकिए थे; उनके चौरासी हजार हाथी सोने के आभूषणों, सोने के झंडों और सोने के जालों से सजे थे, उनमें शाही हाथी उपोसथ प्रमुख था; उनके चौरासी हजार रथ शेर की खाल, बाघ की खाल, तेंदुए की खाल या नारंगी रंग के कपड़े से ढके थे, सोने के आभूषणों, सोने के झंडों और सोने के जालों से सजे थे, उनमें रथ वेजयंत प्रमुख था; उनकी चौरासी हजार पत्नियों में रानी सुभद्दा प्रमुख थीं; उनके चौरासी हजार गृहस्थों में... गृहस्थ-खजाने का प्रमुख अधिकारी था; उसके चौरासी हजार खत्तिया सेवकों में सलाहकार-खजाने का प्रमुख अधिकारी था; उसकी चौरासी हजार गायों के लिए उत्तम जूट की रस्सियाँ और चांदी के दूध के बर्तन थे; उसके चौरासी हजार वस्त्रों के गट्ठे उत्तम लिनन, कपास, रेशम और ऊन के थे; उसके चौरासी हजार चावल के प्रसाद जरूरतमंदों के लिए शाम और सुबह उपलब्ध थे।

उस समय, राजा महासुदस्सन के चौरासी हजार हाथी सुबह-शाम उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। उन्होंने सोचा, 'ये चौरासी हजार हाथी सुबह-शाम मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं। अगर प्रत्येक शताब्दी के अंत में बयालीस हजार हाथी बारी-बारी से मेरी सेवा में तत्पर रहें तो कैसा रहेगा?' उन्होंने अपने राजकोष के सलाहकार को इसी प्रकार निर्देश दिए, और ऐसा ही किया गया।

और, आनंद, कई सौ-लाखों वर्षों के बाद, रानी सुभद्दा ने सोचा: 'महासुदस्सन को देखे हुए बहुत समय हो गया है। मान लो, मैं उनसे मिलने जाऊं?' इसलिए उन्होंने अपनी दासियों से कहा: 'चलो, अपने सिर धो लो और साफ कपड़े पहन लो। महासुदस्सन को देखे हुए बहुत समय हो गया है। हम उनसे मिलने चलते हैं।' 'जी महाराज', उन्होंने कहा और आदेशानुसार तैयार होकर रानी के पास लौट आईं। रानी सुभद्दा ने सलाहकार-कोषाध्यक्ष से कहा: 'मित्र सलाहकार, चार गुना सेना तैयार कर लो। महासुदस्सन को देखे हुए बहुत समय हो गया है। हम उनसे मिलने चलते हैं।' 'बहुत अच्छा, महाराज', सलाहकार-कोषाध्यक्ष ने कहा और चार गुना सेना तैयार करके रानी को सूचना दी: 'अब समय आ गया है कि आप अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करें।'

तब रानी सुभद्दा अपनी चार गुना सेना और स्त्रियों के साथ धम्म महल गईं और अंदर जाकर विशाल गुंबददार कक्ष में जाकर द्वार के चौखट से टेक लगाकर खड़ी हो गईं। राजा महासुदस्सन ने सोचा, 'यह लोगों की भीड़ जैसा शोर कैसा है?' और द्वार से बाहर आकर उन्होंने रानी सुभद्दा को द्वार के चौखट से टेक लगाकर खड़ा देखा। उन्होंने कहा, 'वहीं ठहरो, रानी! अंदर मत आओ!'

तब राजा महासुदस्सना ने एक व्यक्ति से कहा: 'हे महोदय, उस विशाल गुंबददार कक्ष में जाइए, सोने का पलंग बाहर लाइए और उसे सोने के ताड़ के पेड़ों के बीच रख दीजिए।' 'अच्छी बात है महाराज,' उस व्यक्ति ने कहा और वैसा ही किया। तब राजा महासुदस्सना ने एक पैर दूसरे पर रखकर दाहिनी ओर सिंह मुद्रा धारण की, वे सचेत और पूरी तरह जागरूक थे।

तब रानी सुभद्दा ने सोचा, 'राजा महासुदस्सन की इंद्रियां शुद्ध हो गई हैं, उनका रंग निर्मल और तेजस्वी है, ओह--मुझे उम्मीद है कि वे मरे नहीं हैं!' इसलिए उन्होंने उनसे कहा, 'महाराज, आपके चौरासी हजार नगरों में कुसावती प्रमुख है। एक कामना कीजिए, वहां रहने की इच्छा जगाइए!' इस प्रकार, उन्हें उनकी सभी राजसी संपत्तियों की याद दिलाते हुए उन्होंने उन्हें जीवित रहने की कामना करने के लिए प्रेरित किया।

इस पर राजा महासुदस्सन ने रानी से कहा, "महारानी, आपने लंबे समय तक मुझसे मधुर, मनभावन और आकर्षक बातें कीं, लेकिन अब इस आखिरी समय में आपकी बातें मुझे अप्रिय, अरुचिकर और अनाकर्षक लग रही हैं।" "महाराज, फिर मैं आपसे कैसे बात करूँ?"

"आपको इस प्रकार बोलना चाहिए: 'सभी मनभावन और आकर्षक वस्तुएँ परिवर्तन के अधीन हैं, लुप्त हो सकती हैं, रूप बदल सकती हैं। हे भगवान, लालसा से ग्रस्त होकर मत मरो। लालसा से ग्रस्त होकर मरना कष्टदायी और निंदनीय है। आपके चौरासी हजार नगरों में कुसावती प्रमुख है: इच्छा का त्याग करो, उनमें रहने की लालसा का त्याग करो... आपके चौरासी हजार महलों में धम्म प्रमुख है: इच्छा का त्याग करो, वहाँ रहने की लालसा का त्याग करो...'"

यह सुनकर रानी सुभद्दा फूट-फूटकर रोने लगीं। फिर अपने आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा, 'हे महाराज, जो भी चीज़ें मनभावन और आकर्षक होती हैं, वे क्षणिक होती हैं...हे महाराज, लालसा से ग्रस्त होकर मत मरिए...'

इसके कुछ ही समय बाद राजा महासुदस्सन का निधन हो गया; और जिस प्रकार एक गृहस्थ या उसका पुत्र अच्छे भोजन के बाद उनींदापन महसूस करता है, उसी प्रकार उन्हें भी मृत्यु का अहसास हुआ और उन्हें ब्रह्मलोक में अनुकूल पुनर्जन्म प्राप्त हुआ।

राजा महासुदस्सना चौरासी हजार वर्षों तक बालकों के क्रीड़ाओं में लिप्त रहे, चौरासी हजार वर्षों तक उन्होंने उपसदन का कार्य किया, चौरासी हजार वर्षों तक उन्होंने राजा के रूप में शासन किया और चौरासी हजार वर्षों तक गृहस्थ के रूप में उन्होंने धम्म लोक में पवित्र जीवन व्यतीत किया। और, चार दिव्य निवासों का अभ्यास करने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर उनका ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म हुआ।

"आनंद, तुम शायद सोचते होगे कि उस समय राजा महासुदस्सन कोई और था। लेकिन ऐसा मत सोचो, क्योंकि उस समय मैं ही राजा महासुदस्सन था। वे चौरासी हजार नगर, जिनमें कुसावती प्रमुख था, मेरे थे,...वे चौरासी हजार चावल की भेंटें...मेरी थीं।"

"और उन चौरासी हजार शहरों में से मैं केवल एक में रहा, कुसावती,... मेरी चौरासी हजार पत्नियों में से केवल एक ने मेरी देखभाल की, और उसका नाम खत्तियानी या वेलामिकानी था; मेरे पास कपड़े के चौरासी हजार गट्ठों में से केवल एक ही था...; चौरासी हजार चावल के प्रसाद में से केवल एक ही उत्तम करी थी जिसे मैंने खाया।"

"देखो, आनंद, अतीत की वे सभी सशर्त अवस्थाएँ कैसे लुप्त हो गईं और बदल गईं! अतः, आनंद, सशर्त अवस्थाएँ क्षणभंगुर हैं, वे अस्थिर हैं, वे हमें कोई सुख नहीं दे सकतीं, और ऐसी स्थिति में, आनंद, हमें सशर्त अवस्थाओं में प्रसन्न नहीं होना चाहिए, हमें उनमें रुचि लेना छोड़ देना चाहिए और उनसे मुक्त हो जाना चाहिए।"

"आनंद, मुझे याद है कि मैंने छह बार इसी स्थान पर शरीर त्यागा था, और सातवीं बार मैंने एक चक्र चलाने वाले सम्राट के रूप में, एक धर्मात्मा राजा के रूप में, जिसने चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त की थी और एक मजबूत शासन स्थापित किया था, और जो सात रत्नों का स्वामी था, शरीर त्यागा था। लेकिन, आनंद, मुझे इस संसार में, चाहे इसमें देव, मार और ब्रह्मा हों, या इस पीढ़ी में, चाहे इसमें तपस्वी और ब्राह्मण हों, राजकुमार और आम लोग हों, कोई ऐसा स्थान नहीं दिखता जहाँ तथागत आठवीं बार शरीर त्यागेंगे।"

तब भगवान ने कहा। जब शुभचिंतक ने यह कहा, तो शिक्षक ने कहा:

"अस्थायी वस्तुएँ क्षणभंगुर होती हैं, उनका उत्थान और पतन होता रहता है; उत्थान के बाद वे नष्ट हो जाती हैं, उनका क्षणभंगुर होना ही सच्चा आनंद है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.5जनवासभा सुत्त(डीएन18)

मैंने ऐसा सुना है:

1. एक समय भगवान नादिका में ईंट के घर में ठहरे हुए थे। उस समय भगवान अपने अनुयायियों के पुनर्जन्म के बारे में घोषणाएँ करते थे, जो चारों ओर की जनजातियों में, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेती, वामसा, कुरु, पंचाल, मच्छ और सूरसेन में, मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। वे कहते थे: 'अमुक व्यक्ति का वहाँ पुनर्जन्म हुआ है, और अमुक व्यक्ति का वहाँ।' 2. नादिका से पचास से अधिक अनुयायी, जिन्होंने इस संसार से बंधे पाँच बंधनों को पूर्णतः नष्ट करके मृत्यु को प्राप्त किया, 3 सर्वोच्च स्वर्ग के उत्तराधिकारी बन गए हैं, जहाँ वे पूर्णतः विलीन हो जाते हैं, और फिर कभी वापस नहीं लौटते। नादिका के नब्बे अनुयायी, जिन्होंने तीनों बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है और कामवासना, द्वेष और मोह को न्यूनतम स्तर तक कम कर दिया है, एक बार जन्म लेने वाले बन गए हैं और इस संसार में अपने पहले जन्म पर दुखों का अंत करेंगे। नादिका के पाँच सौ से अधिक अनुयायी, जिन्होंने तीनों बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है और परिवर्तित हो गए हैं, किसी भी दुःखपूर्ण अवस्था में पुनर्जन्म नहीं ले सकते, बल्कि उन्हें (मार्ग के उच्चतर चरणों की) अंतर्दृष्टि प्राप्त होने का आश्वासन दिया जाता है।

2. नादिका में रहने वाले अनुयायियों ने जब ये रहस्योद्घाटन सुने, तो वे परम पूज्य और प्रसन्न हुए और आनंद से भर उठे क्योंकि परमेश्वर ने उनके सामने रखी गई समस्याओं का समाधान कर दिया था।

3. अब पूज्य आनंद ने [भगवान द्वारा की गई इन घोषणाओं और नादिका में अनुयायियों द्वारा महसूस की गई संतुष्टि के बारे में] सुना।

4. और उनके मन में यह विचार आया: — 'परन्तु वहाँ [202] अनुयायी भी थे, जिनमें से अनेक, और दीर्घ धार्मिक अनुभव वाले थे, जो देहांत में चले गए। कोई सोच सकता है कि अंग और में कोई देहांत में चले गए अनुयायी नहीं थे। क्योंकि वे भी बुद्ध, धर्म और व्यवस्था में पूर्ण विश्वास रखते थे, उन्होंने नैतिक उपदेशों का पालन किया था। फिर भी, उनके विषय में, क्योंकि वे देहांत में चले गए, भगवान ने कुछ भी घोषित नहीं किया है। उनके विषय में प्रतिक्रिया उत्पन्न करना निश्चय ही उचित होगा; क्योंकि बहुत से लोग विश्वास करेंगे और परलोक में आनंदित होंगे। फिर वहाँ सेनिया बिम्बिसार भी थे, जो के राजा थे, धर्मात्मा और धर्मपरायण शासक, पुरोहितों और गृहस्थों, नगरवासियों और गाँववासियों के प्रति दयालु थे। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल रही है, लोग कह रहे हैं: "हमारे धर्मात्मा राजा, जिन्होंने हमें इतना सुख दिया, का निधन हो गया! हमने उस धर्मात्मा राजा के राज्य में कितना सुख भोगा!" अब उनका भी बुद्ध, धर्म और व्यवस्था में पूर्ण विश्वास था, और उन्होंने नैतिक उपदेशों का पालन किया। और लोगों ने यह भी कहा है, "सेनिया बिम्बिसार, के राजा, जो अपनी मृत्यु तक भगवान की स्तुति करते रहे, का निधन हो गया है।" जो मर गए हैं, उनके विषय में भगवान ने कुछ भी घोषित नहीं किया है। उनके बारे में प्रतिक्रिया उत्पन्न करना निश्चित रूप से अच्छा होगा; क्योंकि बहुत से लोग विश्वास करेंगे, और आगे चलकर आनंद में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, भगवान ने में सर्वोच्च अंतर्दृष्टि प्राप्त की। अब जहाँ यह हुआ, वहाँ में के उन अनुयायियों के विषय में भगवान की ओर से कोई घोषणा क्यों नहीं है जो मर गए हैं? [203] यदि भगवान उनके विषय में कुछ भी घोषित नहीं करते हैं, तो उन्हें दुख होगा। और चूंकि उन्हें दुख होगा, तो भगवान चुप कैसे रह सकते हैं? '

5, 6. इस प्रकार मगधियों के अनुयायियों के विषय में एकांत में चिंतन करने के बाद, पूज्य आनंद अगले दिन सुबह उठे और भगवान बुद्ध के समक्ष आए, और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को वह सब कुछ बताया जो उन्होंने सुना और सोचा था। [204] और भगवान बुद्ध के समक्ष अपने विचार समाप्त करने के बाद, वे अपनी सीट से उठे, भगवान बुद्ध को सही ढंग से प्रणाम किया और चले गए।

7. फिर पूज्य आनंद के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान ने सुबह वस्त्र धारण किए और एक कटोरा और लबादा लेकर नादिका में भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े। नादिका में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, जब वे भिक्षा मांगने के बाद वापस लौटे और अपने पैर धोए, तो वे ईंट के घर में प्रवेश कर गए और एक तैयार आसन पर बैठ गए, मगधियों के अनुयायियों के बारे में सोचते हुए, मनन करते हुए और अपना पूरा ध्यान उन पर केंद्रित करते हुए, मन ही मन कहने लगे: 'मैं उनका भविष्य, इस जीवन के बाद उनका भाग्य, ये भले लोग कहाँ जा रहे हैं, उनका क्या नसीब है, यह सब जानूंगा।' और भगवान ने मगधियों के अनुयायियों को देखा, वे कहाँ जा रहे थे, [205] और उनका क्या नसीब था। फिर संध्या के समय, भगवान ध्यान से उठकर ईंट के घर से बाहर निकले और आवास के पीछे छाया में बिछी चटाई पर बैठ गए।

8. तब पूज्य आनंद भगवान के समक्ष आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान से कहा: "हे भगवान, आप अत्यंत शांत प्रतीत होते हैं, मानो आपकी इंद्रियों की शांति के कारण आपका चेहरा दमक रहा हो। क्या भगवान ने आज सुखद दिन बिताया है?"

9. जब तुमने मुझे, आनंद, मगधियों के अनुयायियों के विषय में वह भाषण दिया और चले गए, तब मैं नादिका में भिक्षा मांगने गया, भोजन किया, लौटा, पैर धोए और ईंट के घर में प्रवेश किया, वहाँ बिछी चटाई पर बैठ गया और उन मगधियों के बारे में सोचने लगा, मनन करने लगा और अपना सारा ध्यान उन मगधियों के भविष्य, इस जीवन के बाद उनके भाग्य, इन भले लोगों के गंतव्य, उनके भाग्य के बारे में जानने का संकल्प लिया। और मैंने, आनंद, उन मगधियों के अनुयायियों को देखा, उन भले लोगों के गंतव्य, उनके भाग्य के बारे में। तब एक अदृश्य आत्मा ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए कहा: — "मैं जन-वसभा हूँ, हे परम पूज्य; मैं जन-वसभा हूँ, हे स्वागत करने योग्य!" अब, हे आनंद, क्या आप यह स्वीकार करते हैं कि आपने कभी जन-वसभा नाम वाले किसी व्यक्ति के बारे में सुना है? 'मैं स्वीकार करता हूँ, भगवान, कि मैंने कभी जन-वसभा नाम वाले किसी व्यक्ति के बारे में नहीं सुना है। इसके अलावा, भगवान, जन-वसभा जैसा नाम सुनकर मैं रोमांचित हो गया हूँ और मुझे लगता है कि जन-वसभा नाम वाला कोई साधारण आत्मा नहीं हो सकता।'

10. उन शब्दों के बोले जाने के बाद, स्वयं आनंद, एक तेजस्वी स्वरूप में मेरे सामने प्रकट हुए। और उन्होंने दूसरा उच्चारण किया: — "हे परम पूज्य, मैं बिम्बिसार हूँ! हे स्वागतयोग्य, मैं बिम्बिसार हूँ! हे भगवान, यह सातवीं बार है कि मैं महान राजा वेसवना के साथ पुनर्जन्म ले रहा हूँ। मानव राजा के रूप में मृत्यु को प्राप्त करने के बाद, मैं स्वर्ग में अमानव राजा बन गया हूँ।"

अतः सात, फिर सात, कुल मिलाकर चौदह पुनर्जन्म—इतना तो मैं अपने बीते हुए जन्मों के बारे में जानता हूँ। हे भगवान, मैं, जिसे दुःखपूर्ण अवस्थाओं में पुनर्जन्म न लेने का भाग्य प्राप्त है, अपने इस भाग्य के प्रति लंबे समय से सचेत हूँ, और अब मेरे भीतर एक पुनर्जन्म लेने की इच्छा है।

'यह कितना अद्भुत है, कितना चमत्कारी है कि आप, आदरणीय जन-वासभा, मुझसे कहते हैं: — "मैं, जिसका जन्म दुःख के राज्यों में नहीं होना तय है, अपने इस भाग्य के प्रति सजग हूँ;" और फिर कहते हैं: — "अब मेरे मन में एक बार जन्म लेने की इच्छा है।" आदरणीय जन-वासभा को इतनी उत्कृष्ट उपलब्धि प्राप्त होने का ज्ञान कैसे हुआ?'

11. हे परम पूज्य, तेरे वचन के सिवा कोई नहीं, हे धन्य! तेरे वचन के सिवा कोई नहीं! जिस क्षण से मैं पूर्ण और संपूर्ण विश्वास के साथ परम पूज्य के पास गया, उसी क्षण से, हे भगवान, [207] मैं, जिसका जन्म दुःख की अवस्थाओं में नहीं होना तय है, उस नियति के प्रति सचेत हो गया; और अब मैं एक बार जन्म लेने वाला बनना चाहता हूँ। हे भगवान, मुझे राजा वेसवज़ा द्वारा राजा वीरहुका के पास किसी कार्य के संबंध में संदेश लेकर भेजा गया है; और रास्ते में मैंने परम पूज्य को ईंट के घर में प्रवेश करते और बैठकर विचार करते, मनन करते, अपना पूरा ध्यान मृत मगधियों के अनुयायियों पर केंद्रित करते देखा, ताकि उनके भविष्य, इस जीवन के बाद उनके भाग्य का पता चल सके; कि वे भले लोग कहाँ जा रहे हैं, उनका भाग्य क्या है। हे भगवान, अभी कुछ क्षण पहले ही मैंने राजा वेसवज़ा से आमने-सामने सुना था और उनके मुख से ही समझा था कि उन्होंने क्या कहा था... मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वे भले लोग कहाँ जा रहे थे और उनका क्या भाग्य था, इसलिए मैंने परमेश्वर से मिलने और उन्हें यह बताने का निर्णय लिया। हे भगवान, ये दो कारण हैं जिनके कारण मैं परमेश्वर से मिलने आया हूँ।

12. हे भगवान, बहुत समय पहले, ऐसा हुआ कि जिस महीने में साधना शुरू करने का समय था, उस महीने की पूर्णिमा की पंद्रहवीं तिथि के पर्व की रात, आषाढ़ महीने में, तैंतीस देवताओं का समूह, जो उनके साथ था, शुभ सभा के कक्ष में एकत्रित हुआ। उनके चारों ओर विशाल दिव्य समूह विराजमान था; और आकाश के चारों दिशाओं में चार महान राजा विराजमान थे। पूर्व के राजा धतरत्थ पश्चिम की

ओर मुख करके अपनी सेना के प्रमुख थे; दक्षिण के राजा वीरहक उत्तर की ओर मुख करके अपनी सेना के प्रमुख थे; पश्चिम के राजा विरुपाक्ख पूर्व की ओर मुख करके अपनी सेना के प्रमुख थे; और उत्तर के राजा वेसवम दक्षिण की ओर मुख करके अपनी सेना के प्रमुख थे। [208] हे भगवान, जब भी तैंतीस देवताओं का समूह अपने सुविचार सभा कक्ष में एकत्रित होकर बैठता है, और उनके चारों ओर दिव्य देवमंडल विराजमान होता है, तथा आकाश के चारों दिशाओं में चार महान राजा विराजमान होते हैं, तो चारों के बैठने का क्रम इस प्रकार होता है। इसके बाद हमारे बैठने का क्रम आता है। और हे भगवान, वे देवता जो हाल ही में तैंतीस देवताओं के समूह में पुनर्जन्म लेकर आए थे क्योंकि उन्होंने परम पूज्य के अधीन उच्चतर जीवन व्यतीत किया था, वे रूप और महिमा में अन्य देवताओं से कहीं अधिक तेजस्वी थे। और इस पर, हे भगवान, तैंतीस देवता प्रसन्न और प्रसन्न हुए, आनंद और प्रसन्नता से भर गए, और कहने लगे: — “सचमुच, हे सज्जनों, दिव्य देवमंडल बढ़ रहा है, और विशाल देवमंडल घट रहा है।”

13. हे देवताओं के स्वामी, सक्का ने जब तैंतीस शिष्यों के दल की संतुष्टि देखी, तो उन्होंने इन छंदों में अपनी स्वीकृति व्यक्त की:

तैंतीस, निश्चय ही, देवता और भगवान दोनों आनंदित होते हैं, तथागत का आदर करते हैं और परम दिव्य ब्रह्मांडीय नियम का सम्मान करते हैं, क्योंकि वे नए सिरे से पुनर्जीवित, सुंदर और प्रकाशमान देवताओं को देखते हैं, जिन्होंने पहले पवित्र जीवन व्यतीत किया था, सुखी ऋषि के अधीन, पराक्रमी ऋषि के श्रोता, जिन्होंने उच्च सत्यों को प्राप्त किया था।

इधर आओ; और महिमा में अन्य सभी देवता भी फीके पड़ जाएंगे।

वे इसे बड़ी खुशी से देखते हैं, स्वामी और तैंतीस दोनों।

वे तथागत का आदर करते हैं और ब्रह्मांडीय नियम को श्रेष्ठ मानते हैं।

हे भगवान, यहाँ [209] तैंतीस देवता और भी अधिक प्रसन्न और प्रसन्न हुए तथा आनंद और प्रसन्नता से भर गए, और कहने लगे: — "निश्चित रूप से स्वर्गीय सेनाएँ बढ़ रही हैं, विशाल सेनाएँ घट रही हैं!"

14. फिर, हे भगवान, जिस उद्देश्य से तैंतीस देवता शुभ परामर्श कक्ष में अपने-अपने स्थानों पर एकत्रित हुए थे, उस विषय में उन्होंने परामर्श किया और विचार-विमर्श किया; और उस विषय के विषय में चारों महान राजाओं को संबोधित किया गया, और उस विषय के विषय में चारों महान राजाओं को उनके स्थानों पर खड़े होकर चेतावनी दी गई: —

कहे गए शब्द को राजाओं ने स्वीकार कर लिया, वे मन से शांत और स्थिर होकर अपने-अपने स्थान पर खड़े रहे।

15. तब, हे भगवान, उत्तर दिशा से एक तेजस्वी प्रकाश निकला, और देवताओं की दिव्य महिमा से भी बढ़कर एक तेज चारों ओर फैल गया। तब, हे भगवान, देवताओं के राजा सक्का ने तैंतीस देवताओं के अनुयायियों से कहा: — "हे मित्रों, अब जो संकेत दिखाई दे रहे हैं, — जो प्रकाश उदय हो रहा है, जो तेज प्रकट हो रहा है — उनके अनुसार ब्रह्मा प्रकट होंगे। क्योंकि ब्रह्मा के प्रकट होने का यही संकेत है, अर्थात् जब प्रकाश उदय होता है और महिमा चमकती है।"

अब शगुन दिखाई देने लगे हैं, इसलिए ब्रह्मा निकट आ रहे हैं, क्योंकि यही ब्रह्मा का संकेत है, यही विशाल वैभव और महिमा है।

16. तब, हे भगवान, तैंतीस देवताओं ने अपने-अपने स्थानों पर बैठकर कहा: — “हम इस प्रकाश के परिणाम का पता लगाएंगे; जब हमें इसका ज्ञान हो जाएगा, तब हम उससे मिलने जाएंगे।” चारों महान राजा भी अपने-अपने स्थानों पर बैठकर यही बात कहने लगे। [210] और जब उन्होंने यह सुना, तो तैंतीस देवताओं ने एकमत होकर कहा: — “हम इस प्रकाश के परिणाम का पता लगाएंगे; जब हमें इसका ज्ञान हो जाएगा, तब हम उससे मिलने जाएंगे।”

17. हे भगवान, जब ब्रह्मा सनकुमार तैंतीस देवताओं के समक्ष प्रकट होते हैं, तो वे एक (अपेक्षाकृत) स्थूल व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं, जिसे उन्होंने विशेष रूप से सृजित किया है। क्योंकि ब्रह्मा का सामान्य स्वरूप तैंतीस देवताओं की दृष्टि को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त रूप से साकार नहीं होता। और हे भगवान, जब ब्रह्मा सनकुमार तैंतीस देवताओं के समक्ष प्रकट होते हैं, तो वे रंग और महिमा में अन्य देवताओं को भी मात देते हैं। हे भगवान, जिस प्रकार सोने की बनी मूर्ति मनुष्य के शरीर को मात देती है, उसी प्रकार जब ब्रह्मा सनकुमार तैंतीस देवताओं के समक्ष प्रकट होते हैं, तो वे रंग और महिमा में अन्य देवताओं को भी मात देते हैं। और हे भगवान, जब ब्रह्मा सनकुमार तैंतीस देवताओं के समक्ष प्रकट होते हैं, तो उस सभा में कोई भी देवता उन्हें प्रणाम नहीं करता, न ही खड़ा होता है, न ही

उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करता है। वे सभी चुपचाप हाथ जोड़कर, पालथी मारकर बैठे हैं और सोच रहे हैं: “ब्रह्मा सना कुमार जिस भी देवता से कुछ भी चाहता है, वह उसी के दीवान पर बैठ जाता है।” और जिस भी देवता के पास वह बैठता है, वह देवता परम संतोष और परम आनंद से भर जाता है, ठीक वैसे ही जैसे नवगठित क्षत्रिय राजा परम संतोष और परम आनंद से भर जाता है।

18. [211] इसलिए, हे भगवान, ब्रह्मा सनवकुमार ने एक स्थूल शरीर धारण करके पंचमंजित युवक का रूप धारण किया और तैंतीस देवताओं के समूह के समक्ष इस प्रकार प्रकट हुए। वे आकाश में ऊपर उठकर पालथी मारकर बैठ गए। हे भगवान, जिस प्रकार एक बलवान व्यक्ति अच्छी तरह बिछे हुए दीवान या समतल भूमि पर पालथी मारकर बैठ जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा सनवकुमार वायु में ऊपर उठकर आकाश में पालथी मारकर बैठ गए। तैंतीस देवताओं के समूह की शांति देखकर उन्होंने इन श्लोकों में अपनी प्रसन्नता व्यक्त की: —

हे भगवान, तैंतीस देवता और भगवान, आनंदित हों।

वे तथागत का आदर करते हैं और ब्रह्मांडीय नियम को श्रेष्ठ मानते हैं।

जबकि वे इन देवताओं को नव-उत्पन्न, सुंदर और उज्ज्वल देखते हैं,

जिन्होंने पहले पवित्र जीवन जिया था, उस धन्य व्यक्ति के अधीन,

परम ऋषि के वे श्रोता, जिन्होंने उच्चतर सत्यों को प्राप्त कर लिया था,

इधर आओ; और महिमा में अन्य सभी देवता भी फीके पड़ जाएंगे।

वे इसे बड़ी खुशी से देखते हैं, भगवान और तैंतीस दोनों।

वे तथागत का आदर करते हैं और ब्रह्मांडीय नियम को श्रेष्ठ मानते हैं।

19. यह ब्रह्मा सनकुमार के भाषण का विषय था । उन्होंने इसे आठ गुणों वाली वाणी में बोला—एक ऐसी वाणी में जो धाराप्रवाह, सुबोध, मधुर, श्रव्य, निरंतर, स्पष्ट, गहरी और गूंजदार थी। और हे भगवान, ब्रह्मा सनकुमार ने अपनी वाणी से उस सभा से संवाद किया, तो उसकी ध्वनि सभा से बाहर नहीं जा सकी। जिसकी वाणी में ये आठ गुण होते हैं, उसे ब्रह्मा वाणी वाला कहा जाता है।

20. तब, भगवान ब्रह्मा सना/जकुमार ने अपने तैंतीस रूप बनाकर, प्रत्येक तैंतीस देवता के पलंग पर बैठकर, देवताओं को इस प्रकार संबोधित किया: —

हे तैंतीस देवताओं, अब आप क्या सोचते हैं? क्योंकि परमेश्वर ने जन कल्याण, जन सुख, संसार पर दया, देवताओं और मनुष्यों के हित, कल्याण और सुख के लिए कार्य किया है, इसलिए हे महोदय, जिन्होंने बुद्ध की शरण ली है, सत्य की शरण ली है, और संघ की शरण ली है, वे मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर पुनर्जन्म लेते हैं, उनमें से कुछ परानिम्मित-वासवत्ती देवताओं के समूह में, कुछ तुषिता देवताओं के समूह में, या यम के अनुयायियों के समूह में, या तैंतीस देवताओं के समूह में, या चार महान राजाओं के समूह में। जो सबसे निचले समूह में आते हैं, वे गंधर्व सेना में शामिल होते हैं।

21. यही ब्रह्मा सनावकुमार के भाषण का विषय था। और उन्होंने इसे इस प्रकार बोला कि प्रत्येक देवता को लगा: — "जो मेरे दीवान पर विराजमान है, वही बोल रहा है।"

जब एक ब्रह्मा-रूप बोलता है, तो तैंतीस सब बोलते हैं; जब एक रूप चुपचाप बैठता है, तो वे सब चुपचाप बैठते हैं। तब तैंतीस अपने राजा के साथ सोचते हैं, पाई जो मेरे पलंग पर है, वही अकेला है जिसने बात की।

22. तब, भगवान ब्रह्मा सनकुमार हॉल के एक छोर पर गए और [213] देवताओं के स्वामी सक्का के दीवान पर बैठकर तैंतीस देवताओं को संबोधित किया: —

हे मेरे भगवान, तैंतीसवें, आप क्या सोचते हैं कि परम ज्ञाता, सर्वज्ञ अरहंत, बुद्ध ने इद्धि प्राप्ति के चार मार्गों को विकास, दक्षता और विस्तार के लिए किस पूर्णता से प्रकट किया है? वे कौन से मार्ग हैं? प्रथम मार्ग में, एक भाई एकाग्रता और प्रयास तथा इच्छा के संयोजन से युक्त मार्ग का अभ्यास करता है। द्वितीय मार्ग में, एक भाई एकाग्रता और प्रयास तथा ऊर्जा के संयोजन से युक्त मार्ग का अभ्यास करता है। तृतीय मार्ग में, एक भाई एकाग्रता और प्रयास तथा एक प्रमुख विचार के संयोजन से युक्त मार्ग का अभ्यास करता है। चतुर्थ मार्ग में, एक भाई एकाग्रता और प्रयास तथा अन्वेषण के संयोजन से युक्त मार्ग का अभ्यास करता है। हे महोदय, ये परम ज्ञाता, सर्वज्ञ अरहंत, बुद्ध द्वारा प्रकट किए गए इद्धि प्राप्ति के चार मार्ग हैं, जो इसके विकास, दक्षता और विस्तार के लिए हैं। अब वे संन्यासी या अतीत में जिन ब्राह्मणों ने इद्धि के एक या एक से अधिक रूपों का आनंद लिया है, उन्होंने केवल इन्हीं रूपों में अभ्यास और सुधार के माध्यम से ऐसा किया है। और भविष्य में जिन संन्यासियों या ब्राह्मणों को इद्धि के एक या एक से अधिक रूपों का आनंद मिलेगा, वे सभी केवल इन्हीं रूपों में अभ्यास और सुधार के माध्यम से ऐसा करेंगे। और वर्तमान समय में जिन संन्यासियों या ब्राह्मणों को इद्धि के एक या एक से अधिक रूपों का आनंद मिलता है, वे सभी केवल इन्हीं रूपों में अभ्यास और सुधार के माध्यम से ऐसा करते हैं।

हे मेरे भगवान, तैंतीस, क्या आप मुझमें इद्धि की ऐसी सामर्थ्य देखते हैं?

"हाँ, ब्रह्मा।"

"मैं भी, महोदय, इन्हीं इद्धि [214] में अभ्यास और सुधार के माध्यम से, उसमें ऐसी शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त कर चुका हूँ।"

23. ब्रह्मा सनम कुमार के भाषण का विषय यही था । और ऐसा कहकर उन्होंने तैंतीस देवताओं को संबोधित किया:

"हे मेरे भगवान, तैंतीस देवताओं, अब आप उन तीन मार्गों के बारे में क्या सोचते हैं जिनसे परम आनंद प्राप्त किया जा सकता है, जिसे सर्वज्ञानी, साक्षी, अरहंत, परम बुद्ध ने प्रकट किया है? वे तीन मार्ग कौन से हैं?"

सबसे पहले, महोदय, एक ऐसे भाई का उदाहरण लीजिए जो इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर बुरी परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रहा है। एक अवसर पर उसे आर्य सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है, वह उसका अध्ययन करता है और उसके मुख्य एवं सहायक दोनों सिद्धांतों को ग्रहण करता है। इस ज्ञान को ग्रहण करने, अध्ययन करने और ग्रहण करने के बाद वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी परिस्थितियों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है। इन परिस्थितियों में उसे सहजता और उससे भी बढ़कर, आनंद का अनुभव होता है। जिस प्रकार संतुष्टि की भावना प्रसन्नता में परिवर्तित हो सकती है, उसी प्रकार इन परिस्थितियों में उसे पहले सहजता प्राप्त होती है, और फिर उससे भी बढ़कर, आनंद प्राप्त होता है। महोदय, यही परम आनंद की प्राप्ति का मार्ग है, जिसे परम बुद्ध ने प्रकट किया है।

24. इसके बाद, महोदय, एक ऐसे भाई का उदाहरण लीजिए जिसमें कर्म, वाणी और विचार से उत्पन्न होने वाली स्थूल अवस्थाएँ पूरी तरह शांत नहीं हुई हैं। एक अवसर पर वह आर्य सत्य का उपदेश सुनता है, उसका अध्ययन करता है और मुख्य एवं सहायक दोनों सिद्धांतों को ग्रहण करता है। इस श्रवण, अध्ययन और ग्रहण के फलस्वरूप, उसमें कर्म, वाणी और विचार से उत्पन्न होने वाली स्थूल अवस्थाएँ पूरी तरह शांत हो जाती हैं। और इससे उसे सहजता का अनुभव होता है, और फिर सहजता से भी बढ़कर, आनंद प्राप्त होता है। जिस प्रकार आत्मसंतुष्टि की भावना प्रसन्नता में परिवर्तित हो सकती है, उसी प्रकार उन परिस्थितियों में, पहले सहजता उत्पन्न होती है और फिर सहजता से भी बढ़कर, आनंद प्राप्त होता है। [215] महोदय, यही परमानंद को प्राप्त करने का मार्ग है, जिसे परम बुद्ध ने प्रकट किया है।

25. तीसरे स्थान पर, महोदय, एक ऐसे भाई का उदाहरण लीजिए जो वास्तव में यह नहीं जानता कि 'यह अच्छा है', 'यह बुरा है', 'यह गलत है', 'यह गलत नहीं है', 'इसका पालन करना चाहिए', 'इससे बचना चाहिए', 'यह नीच है', 'यह उत्तम है', 'यह अंधकार और उजाले के मिश्रित गुणों वाला है'। एक अवसर पर वह आर्य सत्य सुनता है, उसका अध्ययन करता है और मुख्य एवं सहायक सिद्धांतों को ग्रहण करता है। इस प्रकार सुनने, अध्ययन करने और ग्रहण करने के बाद, वह वास्तव में जान जाता है कि 'यह अच्छा है', वह वास्तव में जान जाता है कि 'यह बुरा है', 'यह गलत है', 'यह गलत नहीं है', 'इसका पालन करना चाहिए', 'इससे बचना चाहिए', 'यह नीच है', 'यह उत्तम है', 'यह अंधकार और उजाले के मिश्रित गुणों वाला है'। इस प्रकार जानने और देखने से उसका अज्ञान दूर हो जाता है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अज्ञान के इस विनाश और ज्ञान के उदय से उसे सहजता का अनुभव होता है और फिर सहजता से भी बढ़कर सुख प्राप्त होता है। जैसे संतुष्टि की भावना प्रसन्नता में परिवर्तित हो सकती है, वैसे ही इन परिस्थितियों में उनके लिए पहले आराम उत्पन्न होता है, और फिर आराम से भी बढ़कर, सुख। हे महोदय, यही परम आनंद की प्राप्ति का मार्ग है, जिसे सर्वज्ञानी, सर्वदृष्टिशील, अरहंत, परम बुद्ध ने प्रकट किया है।

ये [216] परम आनंद तक पहुँचने के तीन मार्ग हैं, जो परम ज्ञाता, सर्वज्ञानी, अरहंत, परम बुद्ध द्वारा प्रकट किए गए हैं।"

26. हे भगवान, इस विषय पर ब्रह्मा सना कुमार ने प्रवचन दिया। और ऐसा कहकर उन्होंने तैंतीस देवताओं को संबोधित किया: —

हे तैंतीस देवताओं, अब आप क्या सोचते हैं कि परम पूज्य, सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी अरहंत, बुद्ध ने अच्छे प्राणों को प्राप्त करने हेतु ध्यान के चार आरंभों को किस पूर्णता से प्रकट किया है? और वे चार कौन से हैं? हे सज्जनों, एक ऐसे भाई को लीजिए जो अपने शरीर के प्रति सचेत, आत्म-नियंत्रित और जागरूक रहता है, ताकि वह संसार की वस्तुओं के लोभ से उत्पन्न होने वाले दु:ख को पहचान सके। इस प्रकार, सचेत रहकर वह उचित एकाग्रता और उचित शांति प्राप्त करता है। अपने शरीर में उचित एकाग्रता और उचित शांति प्राप्त करके, वह अपने से परे सभी भौतिक रूपों का ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है। इस प्रकार, वह अपनी भावनाओं, अपने हृदय और अपने विचारों के प्रति सचेत, आत्म-नियंत्रित और जागरूक रहता है, ताकि वह संसार की वस्तुओं के लोभ से उत्पन्न होने वाले दु:ख को पहचान सके। अत:, आत्मिक रूप से सजग रहकर, वह उचित एकाग्रता और उचित शांति प्राप्त करता है। अपने भावों, हृदय और विचारों में उचित एकाग्रता और उचित शांति धारण करके, वह अपने से बाह्य अन्य व्यक्तियों के विचारों का ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है।

हे महोदय, ये वे चार आरंभिक चरण हैं जिनके द्वारा परम ज्ञात, सर्वज्ञानी, सर्वदृष्टिशील, अरहंत, परम बुद्ध द्वारा पूर्णतः प्रकट किए गए पुण्य को प्राप्त किया जा सकता है।

27. इस विषय पर ब्रह्मा सनम कुमार ने बात की। और बोलने के बाद उन्होंने तैंतीस देवताओं को संबोधित किया: —

हे मेरे भगवान, तैंतीसवें देवता, आप उस पूर्णता के बारे में क्या सोचते हैं जिसके साथ परम पूज्य, जो जानते हैं, जो देखते हैं, अरहंत, परम बुद्ध ने सही परमानंद के अभ्यास और परमानंद की पूर्णता के लिए बौद्धिक एकाग्रता की सात आवश्यकताओं को प्रकट किया है? वे सात कौन सी हैं? सही विचार, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, [217] सही प्रयास, सही जागरूकता। हे सज्जनों, इन सात कारकों द्वारा तैयार की गई विचार एकाग्रता को इसके आधारों और इसकी आवश्यकताओं के साथ श्रेष्ठ सही परमानंद कहा जाता है। सही विचार बनाए रखने के लिए सही इरादा पर्याप्त है, सही इरादे को बनाए रखने के लिए सही वाणी पर्याप्त है, सही वाणी को बनाए रखने के लिए सही कर्म पर्याप्त है, सही कर्म को बनाए रखने के लिए सही आजीविका पर्याप्त है, सही आजीविका को बनाए रखने के लिए सही प्रयास पर्याप्त है, सही प्रयास को बनाए रखने के लिए सही जागरूकता पर्याप्त है, सही जागरूकता को बनाए रखने के लिए सही परमानंद पर्याप्त है, सही ज्ञान पर्याप्त है। सही आनंद और सही स्वतंत्रता को बनाए रखना ही सही ज्ञान को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है।

यदि कोई सही वाणी बोलने वाला, महोदय, यह कहे: — 'परमेश्वर ने सत्य का सुंदर प्रचार किया है, — वह मानदंड जो इस जीवन में फलदायी है, जो क्षणिक लाभ नहीं देता, जो सबका स्वागत करता है, जो आगे और ऊपर ले जाता है, ताकि प्रत्येक बुद्धिवान व्यक्ति स्वयं समझ सके!' तब यह कहना: "निर्वाण के द्वार खुले हैं!"

क्योंकि, महोदय, जो कोई भी बुद्ध में अटूट विश्वास रखता है, सत्य में अटूट विश्वास रखता है, संघ में अटूट विश्वास रखता है, और श्रेष्ठों को प्रसन्न करने वाले गुणों से संपन्न है; और हमारे बीच जो भी नए देवता प्रकट हुए हैं, जो धर्म द्वारा यहाँ लाए गए हैं, अर्थात् चौबीस लाख से अधिक शिष्य अब मर चुके हैं; ये सभी तीन बंधनों के पूर्ण विनाश के माध्यम से परिवर्तित हो गए हैं, और किसी भी दु:ख की अवस्था में पुनर्जन्म नहीं ले सकते, बल्कि अंतर्दृष्टि (मार्ग के उच्चतम चरणों की) प्राप्त करने के लिए आश्वस्त हैं। [218] इसके अलावा यहाँ एक बार लौटने वाले भी हैं;

लेकिन उस दूसरी नस्ल के बारे में बताने के लिए, जो उच्चतर योग्यता की है, अरे! मैं कहानी का हिसाब नहीं लगा सकता, कहीं ऐसा न हो कि मैं सच्चाई के विरुद्ध अपराध कर बैठूँ।

28. हे भगवान, यही ब्रह्मा सनम कुमार के प्रवचन का विषय था । उनके प्रवचन के विषय में महान राजा वेसवना के मन में यह विचार आया : “यह वास्तव में कितना अद्भुत है, हे महोदय, कितना आश्चर्यजनक है कि ऐसा गौरवशाली गुरु हो, सत्य का ऐसा गौरवशाली प्रचार हो, और विशिष्टता के ऐसे गौरवशाली मार्ग बताए जाएँ!”

तब, भगवान ब्रह्मा सनावकुमार ने महान राजा वेसवना के मन में इस विचार को भांपते हुए उनसे इस प्रकार कहा:

"अब मेरे स्वामी, महान राजा वेसवना, आपका क्या विचार है ? अतीत में भी एक ऐसा ही गौरवशाली शिक्षक, सत्य का ऐसा ही गौरवशाली प्रचार और विशिष्टता के ऐसे गौरवशाली मार्ग प्रकट करने वाला व्यक्ति रहा है, और भविष्य में भी एक ऐसा ही गौरवशाली शिक्षक, [214] सत्य का ऐसा ही गौरवशाली प्रचार और विशिष्टता के ऐसे गौरवशाली मार्ग प्रकट करने वाला व्यक्ति होगा।"

29. यह वह विषय था जिसके बारे में ब्रह्मा सनम कुमार ने तैंतीस देवताओं से बात की थी। जब महान राजा वेसवना ने स्वयं इसे सुना और स्वीकार किया, तो उन्होंने अपने अनुयायियों को इसकी सूचना दी। जब आत्मा जनवसभा ने स्वयं वेसवना द्वारा बताई गई इस प्रकार की सूचना सुनी, तो उन्होंने भगवान को इसकी सूचना दी । जब भगवान ने स्वयं इसे सुना और स्वीकार किया, और अंतर्ज्ञान से भी इसे जान लिया, तो उन्होंने आनंद को इसकी सूचना दी। जब पूज्य आनंद ने स्वयं इसे भगवान से सुना और स्वीकार किया, तो उन्होंने भाइयों और बहनों, विश्वासी गृहस्थ पुरुषों और गृहस्थ महिलाओं को इसकी सूचना दी। और यह प्रणाली प्रभावशाली और समृद्ध होती गई और इसमें शामिल होने वालों की संख्या के साथ विस्तारित और विस्तृत होती गई, क्योंकि यह मनुष्यों के बीच इतनी अच्छी तरह से फैल गई थी।

जनवासभा की कहानी यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.6 महा गोविंदा सुत्त(DN19)

एक बार भगवान (बुद्ध) राजघा में, गिद्ध शिखर पर ठहरे हुए थे। जब रात लगभग समाप्त होने वाली थी, तब गंधर्वों के देव पंचसिखा ने गिद्ध शिखर को अपनी तेजस्वी रोशनी से जगमगाते हुए भगवान के पास आकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और बोले, "हे भगवान, मैं आपको वह सब बताना चाहता हूँ जो मैंने स्वयं तैंतीस करोड़ देवों की उपस्थिति में देखा और अनुभव किया है।" भगवान ने कहा, "तो बताओ, पंचसिखा।"

हे भगवान, प्राचीन काल में, बहुत समय पहले, वर्षा ऋतु के अंत में पंद्रहवें व्रत के दिन तैंतीस करोड़ देवता एकत्रित हुए और इस बात पर प्रसन्न हुए कि देवताओं की सेना बढ़ रही थी और असुरों की सेना घट रही थी। तब सक्का ने यह श्लोक कहा:

"तैंतीस देवता और उनके नेता आनंदित होते हैं, तथागत (गौतम बुद्ध) और धम्म के सत्य की स्तुति करते हुए, नवजन्मित, सुंदर और तेजस्वी देवताओं को देखकर, जिन्होंने पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया है, अब वे अच्छे से पुनर्जन्म लेकर आए हैं। यश और वैभव में सभी को पीछे छोड़ते हुए, शक्तिशाली ऋषि के शिष्यों को चुना गया है। यह देखकर, तैंतीस (करोड़ देवता) और उनके नेता आनंदित होते हैं, तथागत और धम्म के सत्य की स्तुति करते हैं।"

"हे भगवान, इस पर तैंतीस देवता और भी अधिक प्रसन्न हुए और कहने लगे: 'देवताओं की सेना बढ़ रही है, असुरों की सेना घट रही है!'"

तब सक्का ने उनकी संतुष्टि देखकर तैंतीस देवताओं से कहा: 'हे सज्जनों, क्या आप भगवान की स्तुति में आठ सत्य कथन सुनना चाहेंगे?' और उनकी सहमति प्राप्त करने पर उसने घोषणा की:

"'हे तैंतीस स्वामियों, आपका क्या विचार है? जिस प्रकार से भगवान ने अनेकों के कल्याण, अनेकों की खुशी, संसार के प्रति करुणा, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए प्रयास किए हैं - अतीत हो या वर्तमान, भगवान के सिवा हमें ऐसे गुणों वाला कोई गुरु नहीं मिलता।"

भगवान ने सही और गलत, निंदनीय और निर्दोष, अनुसरण करने योग्य और न करने योग्य, नीच और श्रेष्ठ, घृणित, उचित और मिश्रित गुणों का भली-भांति स्पष्टीकरण दिया है। और भगवान के सिवा कोई ऐसा प्रचारक नहीं है जो इन बातों का प्रचार करता हो।

"भगवान ने अपने शिष्यों को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को भली-भांति समझाया है, और निर्वाण और मार्ग एक हो जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे गंगा और यमुना का जल मिलकर बहता है। और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग का उद्घोषक भगवान के सिवा कोई और नहीं मिलता।"

“और भगवान ने शिष्यों और उन लोगों को भी साथी बना लिया है जिन्होंने भगवान का जीवन जीकर विकृतियों को दूर कर दिया है, और भगवान उन सभी के साथ निवास करता है, सब एक ही बात में आनंदित होते हैं। और हमें भगवान के सिवा ऐसा कोई शिक्षक नहीं मिल सकता।”

"भगवान को दिए गए उपहार उत्तम हैं, उनकी प्रसिद्धि इतनी स्थापित है कि मुझे लगता है कि क्षत्रिय उनसे जुड़े रहेंगे, फिर भी भगवान उन्हें बिना किसी अहंकार के भोजन भेंट करते हैं। और हमें भगवान के सिवा कोई ऐसा शिक्षक नहीं मिलता जो ऐसा करता हो।"

"और भगवान जैसा बोलता है वैसा ही करता है, और जैसा करता है वैसा ही बोलता है। और हमें भगवान के सिवा कोई ऐसा शिक्षक नहीं मिलता जो सिद्धांत के हर पहलू में ऐसा ही करता हो...।"

भगवान ने संदेह को दूर कर दिया है, सभी “कैसे” और “क्यों” से परे जाकर, उन्होंने अपने लक्ष्य और सर्वोच्च पवित्र जीवन (या ब्रह्मचर्य जीवन) के संबंध में अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है। और हम भगवान के सिवा ऐसा कोई शिक्षक नहीं पाते जिसने ऐसा किया हो, चाहे हम अतीत की बात करें या वर्तमान की।

और जब सक्का ने इस प्रकार भगवान की स्तुति में ये आठ सत्य कथन घोषित किए, तो तैंतीस देवता भगवान की स्तुति में सुनी गई बातों से और भी अधिक प्रसन्न, आनंदित और प्रसन्न हुए।

तब कुछ देवताओं ने समझाया: 'हे भगवान! यदि केवल चार पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध संसार में प्रकट हों और भगवान की तरह धम्म का उपदेश दें, तो यह अनेकों के कल्याण और सुख के लिए होगा, संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए होगा!' और कुछ ने कहा: 'चार पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्धों की आवश्यकता नहीं है - तीन ही पर्याप्त होंगे!' और अन्य ने कहा: 'तीन की आवश्यकता नहीं है - दो ही पर्याप्त होंगे!'

इस पर सक्का ने कहा: 'यह असंभव है, सज्जनों, ऐसा नहीं हो सकता कि एक ही विश्व व्यवस्था में दो पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध एक साथ प्रकट हों। ऐसा संभव नहीं है। भगवान बुद्ध को दीर्घायु होने की कृपा हो, अनेक वर्षों तक वे रोग और विपत्तियों से मुक्त रहें! यह अनेकों के कल्याण और सुख के लिए होगा, संसार के प्रति करुणावश यह देवताओं और मनुष्यों दोनों के कल्याण और सुख के लिए होगा!'

तब तैंतीस देवताओं ने सुधम्म हॉल में एकत्रित होकर जिस विषय पर विचार-विमर्श किया, उस पर आपस में परामर्श किया और चारों महान राजाओं को, जो अपनी सीटों पर अविचल खड़े थे, इस विषय पर सलाह और चेतावनी दी गई।

"राजाओं ने निर्देश दिए, उनके बोले गए शब्दों पर ध्यान दिया, वे शांत और गंभीर भाव से अपनी सीटों के पास खड़े रहे।"

"एक तीव्र प्रकाश प्रकट हुआ, जो ब्रह्मा के आगमन की सूचना दे रहा था। सभी ने अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिए, इस आशा के साथ कि ब्रह्मा पलंग पर विराजमान होंगे।"

तब ब्रह्मा सनंकुमार (या सनत्कुमार) अपने स्वर्ग से अवतरित होकर, उनकी प्रसन्नता देखकर, इन श्लोकों का उच्चारण किया:

"'तैंतीस के देवता आनंदित होते हैं, उनका नेता भी...'"

"ब्रह्मा सनंकुमार की आवाज में आठ गुण थे।"

तब तैंतीस देवताओं ने ब्रह्मा सनंकुमार से कहा, “हे ब्रह्मा, यह अच्छा है! हमने जो सुना उससे हम प्रसन्न हैं। देवताओं के स्वामी सक्का ने भी भगवान के विषय में आठ सत्य कथन बताए हैं, जिससे हम भी प्रसन्न हैं।” तब ब्रह्मा ने सक्का से कहा, “हे देवताओं के स्वामी, यह अच्छा है। हम भी भगवान के विषय में वे आठ सत्य कथन सुनना चाहते हैं।” सक्का ने कहा, “बहुत अच्छा, हे महान ब्रह्मा,” और उन्होंने वे आठ कथन दोहराए।

"'हे भगवान ब्रह्मा, आप क्या सोचते हैं...?' और ब्रह्मा सनंकुमार भगवान की स्तुति में सुनी गई बातों से प्रसन्न, अतिप्रसन्न और आनंदित हो गए।"

ब्रह्मा सनंकुमार ने स्थूल रूप धारण किया और पंचसिखा के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हुए उन्होंने तैंतीस देवताओं से कहा: 'भगवान कब से सर्वशक्तिमान ज्ञान में से एक हैं?'

एक समय की बात है, दिसमपति नाम का एक राजा था। उसका पुरोहित एक ब्राह्मण था जिसका नाम गोविन्द था। राजा का पुत्र रेणु नामक एक युवक था और गोविन्द का पुत्र ज्योतिपाला था। राजकुमार रेणु और ज्योतिपाला, छह अन्य क्षत्रियों के साथ मिलकर आठ मित्रों का एक समूह बनाते थे। समय बीतने पर गोविन्द का देहांत हो गया और राजा दिसमपति ने उसके लिए शोक व्यक्त करते हुए कहा, 'हाय, ठीक उसी क्षण जब हमने अपने सभी दायित्व गोविन्द को सौंप दिए थे और हम पांचों इंद्रियों के सुखों में लिप्त थे, गोविन्द का देहांत हो गया!'

यह सुनकर राजकुमार रेनू ने कहा, "महाराज, प्रबंधक की मृत्यु पर अधिक शोक न करें! उनका पुत्र ज्योतिपाला अपने पिता से अधिक चतुर है और लाभप्रद बातों को बेहतर ढंग से पहचानता है। आपको ज्योतिपाला को वह सारा व्यवसाय सौंप देना चाहिए जो आपने उनके पिता को सौंपा था।" "क्या ऐसा है, मेरे पुत्र?" "जी महाराज।"

तब राजा ने एक व्यक्ति को बुलाया और कहा: "हे मेरे सज्जन, इधर आओ, युवक ज्योतिपाला के पास जाओ और कहो: 'आदरणीय ज्योतिपाला कुशल मंगल हों! राजा दिसमपति ने तुम्हें बुलवाया है, वे तुमसे मिलना चाहते हैं।'" उस व्यक्ति ने कहा, "महाराज, आपको नमस्कार," और संदेश पहुँचा दिया। संदेश पाकर ज्योतिपाला ने कहा, "महोदय, आपको नमस्कार," और राजा से मिलने चले गए। राजा के दरबार में प्रवेश करते ही उन्होंने राजा से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। राजा ने कहा: "हम चाहते हैं कि आदरणीय ज्योतिपाला हमारे मामलों का प्रबंधन करें। मना मत करना। मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के स्थान पर नियुक्त करूँगा और तुम्हें प्रबंधक के रूप में अभिषेक करूँगा।" ज्योतिपाला ने उत्तर दिया, "आपको नमस्कार।"

इसलिए राजा दिसमपति ने ज्योतिपाला को उसके पिता के स्थान पर प्रबंधक नियुक्त किया। पदभार ग्रहण करने के बाद ज्योतिपाला ने वही कार्य संपन्न किए जो उसके पिता करते थे, और कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया जो उनके पिता ने न किया हो। उसने वे सभी कार्य पूरे किए जो उसके पिता ने किए थे, और कोई अन्य कार्य नहीं किया। लोगों ने कहा, 'यह ब्राह्मण सचमुच एक प्रबंधक है! वास्तव में यह एक महान प्रबंधक है!' और इस प्रकार युवा ब्राह्मण ज्योतिपाला को महान प्रबंधक (महा गोविंदा) के नाम से जाना जाने लगा।

एक दिन महा गोविंदा (महा गोविन्द) छह सरदारों के समूह के पास गए और बोले: 'राजा दिसमपति वृद्ध, दुर्बल और उम्र से ग्रस्त हैं। उनका जीवन निकट है और वे अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। कौन जानता है कि मनुष्य कितने समय तक जीवित रहेंगे? जब राजा दिसमपति की मृत्यु होगी, तो राज-निर्माताओं का दायित्व होगा कि वे राजकुमार रेणु को राजा के रूप में राज्याभिषेक करें। हे सज्जनों, आप राजकुमार रेणु के पास जाकर कहें: "हम भगवान रेणु के प्रिय, प्रिय और कृपापात्र मित्र हैं, उनके सुख-दुखों में भागीदार हैं। हमारे भगवान राजा दिसमपति वृद्ध हैं... जब उनकी मृत्यु होगी, तो राज-निर्माताओं का दायित्व होगा कि वे भगवान रेणु को राजा के रूप में राज्याभिषेक करें। यदि भगवान रेणु को राज प्राप्त हो, तो वे इसे हमारे साथ साझा करें।"'

"बहुत अच्छा, महाराज," छह सरदारों ने कहा और वे राजकुमार रेणु के पास गए और उनसे उसी प्रकार बात की जैसे महा गोविंदा ने प्रस्ताव रखा था: "अच्छा, सज्जनों, मेरे अलावा और कौन समृद्ध होना चाहिए, सिवाय आपके? यदि, सज्जनों, मैं राजगद्दी प्राप्त करता हूँ, तो मैं इसे आपके साथ साझा करूँगा।"

कुछ समय बाद राजा दिसमपति का निधन हो गया, और राजा बनाने वालों ने उनके स्थान पर राजकुमार रेणु को राजा घोषित कर दिया। राजा बनने के बाद रेणु ने पांचों इंद्रियों के सुखों में लिप्त हो गए। तब महा गोविंदा (महा गोविन्द) छह सरदारों के पास गए और बोले, 'हे सज्जनों, अब राजा दिसमपति का निधन हो गया है और उनके स्थान पर राजा बने भगवान रेणु पांचों इंद्रियों के सुखों में लिप्त हो गए हैं। कौन जाने इसका क्या परिणाम होगा? इंद्रिय सुख मादक होते हैं। आप उनके पास जाकर कहें, 'राजा दिसमपति का निधन हो गया है और भगवान रेणु को राजा घोषित कर दिया गया है। क्या आपको अपना वचन याद है, हे स्वामी?'

उन्होंने ऐसा ही किया, और राजा ने कहा: 'सज्जनों, मुझे अपना वचन याद है। उत्तर में इतना विशाल और दक्षिण में बैलगाड़ी के आगे के हिस्से की तरह संकरा, इस विशाल पृथ्वी राज्य को सात बराबर भागों में कौन विभाजित कर सकता है?' 'हे भगवान, महा गोविंदा के सिवा कौन?'

"तब राजा रेणु ने महा गोविंदा (महा गोविंदा) के पास एक व्यक्ति को यह कहने के लिए भेजा: 'महाराज, राजा ने आपको बुलवाया है।' वह व्यक्ति गया, और महा गोविंदा राजा के पास आए, उनसे शिष्टाचार का आदान-प्रदान किया और एक तरफ बैठ गए। तब राजा ने

कहा: 'महा गोविंदा, जाइए और इस विशाल राज्य को, जो उत्तर में इतना चौड़ा और दक्षिण में रथ के आगे के हिस्से की तरह इतना संकरा है, सात बराबर भागों में बाँट दीजिए।' महा गोविंदा ने कहा, 'बहुत अच्छा, महाराज', और उन्होंने वैसा ही किया।"

और राजा रेनू का देश केंद्र में था:

"दंतपुरा कलिगों को, पोटाका अस्सकों को, महिस्सति अवंतीस को, रोरुका सोविरस को। मिथिला विदेहों को, कैम्पा अंगों को, बनारस काशी को, इस प्रकार प्रबंधक ने निपटान किया।

"छह रईस अपने-अपने लाभ और योजना की सफलता से प्रसन्न थे: 'जो हम चाहते थे, जिसकी हमने कामना की थी, जिसका हमने लक्ष्य रखा था और जिसके लिए हमने प्रयास किया था, वह हमें मिल गया है!'"

"सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभु और भरत, रेनू और दो धतारथ, ये सात भरत राजा हैं।

तब छह सरदार महा गोविंदा के पास आए और बोले, 'हे पूज्य स्वामी, जिस प्रकार आप राजा रेणु के प्रिय, प्यारे और निष्ठावान मित्र थे, उसी प्रकार आप हमारे भी हैं। कृपया हमारे मामलों का प्रबंधन कीजिए! हमें विश्वास है कि आप मना नहीं करेंगे।' अतः उन्होंने सात अभिषिक्त राजाओं के राज्यों का प्रशासन संभाला और सात विशिष्ट ब्राह्मणों तथा सात सौ उन्नत शिष्यों को मंत्रों का शिक्षण भी दिया।

समय बीतने के साथ ही महा गोविंदा के बारे में अच्छी-अच्छी बातें फैलने लगीं: 'महा गोविंदा ब्रह्मा को अपनी आँखों से देख सकते हैं, उनसे आमने-सामने बात कर सकते हैं और उनसे सलाह ले सकते हैं!' तब उन्होंने सोचा: 'अब मेरे बारे में भी यह अच्छी बात फैल रही है कि मैं ब्रह्मा को अपनी आँखों से देख सकता हूँ,...लेकिन यह सच नहीं है। हालाँकि, मैंने वृद्ध और सम्मानित ब्राह्मणों, गुरुओं के गुरुओं से सुना है कि जो कोई भी वर्षा ऋतु के चार महीनों में करुणा की एकाग्रता विकसित करते हुए ध्यान में लीन हो जाता है, वह ब्रह्मा को अपनी आँखों से देख सकता है, उनसे आमने-सामने बात कर सकता है और उनसे सलाह ले सकता है। मान लीजिए कि मैं ऐसा करूँ!'

"तब महान प्रबंधक राजा रेणु के पास गए और उन्हें यह खबर सुनाई, और अपनी इच्छा बताई कि वे एकांतवास में जाकर करुणा पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं। 'और मेरे पास भोजन लाने के अलावा कोई नहीं आएगा।' 'आदरणीय प्रबंधक, जैसा आप उचित समझें।'

"छह रईसों ने भी उत्तर दिया: 'आदरणीय प्रबंधक, जैसा आपको उचित लगे वैसा करें।'

"वह सात ब्राह्मणों और सात सौ शिष्यों के पास गए और उन्हें अपने इरादों के बारे में बताया, और कहा: 'तो सज्जनों, आप उन मंत्रों का पाठ जारी रखें जो आपने सुने और सीखे हैं, और उन्हें एक दूसरे को सिखाएं।' 'आदरणीय स्टीवर्ड, जैसा आप उचित समझें', उन्होंने उत्तर दिया।"

"फिर वह अपनी चालीस समान पदस्थ पत्नियों के पास गया, और उन्होंने कहा: 'रेवरेंड स्टीवर्ड, जैसा आपको उचित लगे वैसा करें।'

इसलिए महा गोविंदा ने नगर के पूर्व में एक नया निवास स्थान बनवाया और वर्षा ऋतु के चार महीनों के लिए वहाँ शरण ली, करुणा में लीन रहे और भोजन देने के अलावा कोई उनके पास नहीं आया। परन्तु चार महीने बीतने पर उन्हें केवल असंतोष और थकान का अनुभव हुआ, क्योंकि वे सोचने लगे: 'मैंने सुना है कि जो कोई वर्षा ऋतु के चार महीनों के लिए करुणा में लीन होकर ध्यान करता है, वह ब्रह्मा को अपने दर्शन कर सकता है...परन्तु मैं ब्रह्मा को अपने दर्शन नहीं कर सकता, और न ही उनसे बात कर सकता हूँ, चर्चा कर सकता हूँ या परामर्श कर सकता हूँ!'

"ब्रह्मा सनंकुमार ने उनके विचारों को जान लिया और एक बलवान व्यक्ति की तरह तेज़ी से अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाकर फिर से मोड़ने की तरह, वे ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और महागोविन्द के समक्ष प्रकट हुए। महागोविन्द भयभीत और कांप उठे, और ऐसा दृश्य देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गए जैसा उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। इस प्रकार भयभीत, कांपते हुए और रोंगटे खड़े होते हुए उन्होंने ब्रह्मा सनंकुमार को इन श्लोकों में संबोधित किया:

"'हे शानदार दर्शन, गौरवशाली और दिव्य, आप कौन हैं, भगवान? मैं आपका नाम जानना चाहता हूँ।'"

"'मैं सर्वोच्च स्वर्ग में सभी के द्वारा ज्ञात हूँ; ब्रह्मा सनकुमार - मुझे इसी प्रकार जानो।'"

"'एक आसन, पैरों के लिए जल और केक ब्रह्मा के लिए उपयुक्त हैं। भगवान स्वयं तय करें कि वे किस प्रकार का आतिथ्य सत्कार चाहते हैं।'

"हम इस भेंट को स्वीकार करते हैं: अब बताइए कि आप हमसे क्या चाहते हैं—इस जीवन में लाभ का वरदान, या अगले जीवन में। कहिए, भगवान, प्रबंधक, आप क्या चाहते हैं।"

तब महा गोविंदा (महा गोविंदा) ने सोचा, 'ब्रह्म सनंकुमार मुझे वरदान दे रहे हैं। मुझे क्या चुनना चाहिए—इस जीवन के लाभ या आने वाले जीवन के लाभ?' फिर उन्होंने सोचा, 'मैं इस जीवन के लाभों का ज्ञाता हूं, और दूसरे लोग इस बारे में मुझसे सलाह लेते हैं। मान लीजिए कि मैं ब्रह्मा सनंकुमार से आने वाले जीवन के लाभ के लिए कुछ मांगूं?' और उन्होंने ब्रह्मा से इन श्लोकों में प्रार्थना की:

"'मैं ब्रह्म सनंकुमार से यह पूछता हूँ, संदेह करने वाले से, जो संदेह रहित है, मैं पूछता हूँ (दूसरों के लिए भी पूछता हूँ): ऐसा क्या कर सकते हैं जिससे मनुष्य अमर ब्रह्मलोक तक पहुँच सकें?'"

"'वह व्यक्ति जो सभी अधिकारपरक विचारों का त्याग करता है, एकाकी, एकाग्र, करुणामय, दुर्गंध से विरक्त, कामवासना से मुक्त— इस प्रकार स्थापित होकर और इस प्रकार अभ्यास करके, मनुष्य अमर ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकते हैं।'

मैं "स्वार्थी विचारों का त्याग" समझता हूँ। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अपनी छोटी-बड़ी सभी संपत्तियों का त्याग कर देता है, अपने रिश्तेदारों (कम-ज़्यादा) को छोड़ देता है, और बाल-दाढ़ी मुंडवाकर गृहस्थ जीवन से निकलकर तपस्वी जीवन में प्रवेश करता है। मैं "स्वार्थी विचारों का त्याग" इसी प्रकार समझता हूँ। मैं "एकाग्र, एकाग्र" भी समझता हूँ। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अकेले ही निकल जाता है और जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, पर्वतीय घाटी में, किसी पथरीली गुफा में, श्मशान भूमि में, जंगल में या खुले मैदान में घास के ढेर पर अपना निवास स्थान चुनता है। मैं "करुणा से परिपूर्ण" भी समझता हूँ। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन के एक भाग को करुणा से परिपूर्ण करता है, फिर दूसरे, फिर तीसरे और चौथे भाग को। इस प्रकार व्यक्ति संपूर्ण संसार को, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, चारों ओर, करुणा से परिपूर्ण, विस्तृत, असीम, घृणा और द्वेष से मुक्त मन से परिपूर्ण करता है। मैं "करुणा से परिपूर्ण" इसी प्रकार समझता हूँ। लेकिन भगवान के "दुर्गंध से दूर" होने के बारे में कहे गए शब्द मुझे समझ नहीं आते:

"'हे ब्रह्मा, मनुष्यों में 'दुर्गंध' से आपका क्या तात्पर्य है? हे ज्ञानी, कृपया इस विषय में मेरी अज्ञानता दूर करें। वह कौन सी बाधा है जिसके कारण मनुष्य दुर्गंधयुक्त और सड़ता हुआ, ब्रह्मलोक से विमुख होकर नरक की ओर अग्रसर होता है?'"

क्रोध, झूठ, छल और कपट, लोभ, अभिमान और ईर्ष्या, लालच, संदेह और दूसरों को हानि पहुँचाना, लोभ और घृणा, सुस्ती और भ्रम: इन सबसे निकलने वाली घिनौनी दुर्गंध मनुष्य को नरक की ओर ले जाती है, ब्रह्मलोक से अलग कर देती है।

"'जैसा कि मैं दुर्गंध के बारे में भगवान के शब्दों को समझता हूँ, गृहस्थ जीवन जीने वाले व्यक्ति के लिए इन चीजों पर काबू पाना आसान नहीं है। इसलिए मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी अवस्था में जाऊँगा।' 'आदरणीय प्रबंधक, जैसा आपको उचित लगे वैसा करें।'"

"तब महा गोविंदा (महा गोविन्द) राजा रेणु के पास गए और बोले: 'हे स्वामी, कृपया अपने मामलों के प्रबंधन के लिए एक और मंत्री नियुक्त करें। मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाना चाहता हूँ। ब्रह्मा ने मुझे संसार की दुर्गंध के बारे में बताया है, जिसे गृहस्थ जीवन जीने से आसानी से दूर नहीं किया जा सकता, इसलिए मैं तपस्वी जीवन में जा रहा हूँ।"

"'इस राज्य के स्वामी, राजा रेणु, मैं घोषणा करता हूँ, आपको स्वयं शासन करना होगा, मैं अब आपको कोई सलाह नहीं दूंगा!'"

"'यदि तुम्हें किसी चीज की कमी हो, तो मैं उसे पूरा कर दूंगा, यदि कोई तुम्हें चोट पहुंचाए, तो मेरी शाही भुजाएँ तुम्हारी रक्षा करेंगी। तुम मेरे पिता, मैं तुम्हारा पुत्र, प्रबंधक, यहीं रहो!'"

"'मुझे किसी चीज की कमी नहीं है, कोई भी मुझे नुकसान पहुंचाने वाला नहीं है; मैंने किसी इंसान की आवाज नहीं सुनी - मैं घर पर नहीं रह सकता।'

"'अमानव"—वह कैसा है जो पुकारता है, कि तुम अचानक घर और हम सबको छोड़ देते हो?'

"इस साधना पर जाने से पहले मैंने यज्ञ करने, पवित्र अग्नि प्रज्वलित करने और कुश घास बिखेरने के बारे में सोचा था। लेकिन अब—ब्रह्मलोक से शाश्वत ब्रह्मा प्रकट हुए। मैंने उनसे पूछा, उन्होंने उत्तर दिया: मैं अब और नहीं रह सकता।"

"'आदरणीय स्टीवर्ड, मुझे आपके शब्दों पर भरोसा है। ऐसे शब्द एक बार सुनने के बाद, आपके पास कोई और विकल्प नहीं बचा था। हम आपका अनुसरण करेंगे: स्टीवर्ड, आप हमारे स्वामी बनें। एक बेरिल रत्न की तरह, शुद्ध, उत्तम जल से बना, इतना पवित्र, हम आपके पदचिन्हों पर चलेंगे।'

"यदि आदरणीय स्टीवर्ड गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन अपनाते हैं, तो मैं भी ऐसा ही करूंगा। आप जहां भी जाएंगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।"

तब महा गोविंदा (महा गोविंदा) छह सरदारों के पास गए और उनसे कहा, 'हे स्वामियों, कृपया अपने मामलों के प्रबंधन के लिए एक और मंत्री नियुक्त करें। मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाना चाहता हूँ...' और छह सरदार एक तरफ जाकर आपस में सलाह करने लगे, 'ये ब्राह्मण धन के लालची हैं। शायद हम महा गोविंदा को धन से मना लें।' तो वे उनके पास वापस आए और बोले, 'महोदय, इन सात राज्यों में बहुत धन है। जितना चाहें उतना ले लीजिए।' 'बस, सज्जनों, मुझे अपने स्वामियों से पहले ही बहुत धन मिल चुका है। यही वह धन है जिसका मैं त्याग कर रहा हूँ ताकि गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जा सकूँ, जैसा कि मैंने स्पष्ट किया है।'

फिर छह सरदार एक तरफ जाकर आपस में सलाह करने लगे: 'ये ब्राह्मण स्त्रियों के लालची हैं। शायद हम स्त्रियों के ज़रिए महामहिम को मना सकें।' तो वे उनके पास आए और बोले: 'महोदय, इन सात राज्यों में बहुत सी स्त्रियाँ हैं। आप अपनी पसंद की चुन लीजिए!' 'बस कीजिए, महोदय, मेरे पास पहले से ही चालीस समान पत्नियाँ हैं, और मैं उन्हें छोड़कर गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जा रहा हूँ, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है।'

"यदि आदरणीय स्टीवर्ड गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन अपनाते हैं, तो हम भी वैसा ही करेंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।"

"'यदि तुम उन वासनाओं का त्याग कर दो जो अधिकांश मनुष्यों को बांधती हैं, तो प्रयास करो, बलवान बनो और धैर्यपूर्वक सहन करो! यही सीधा मार्ग है, अद्वितीय मार्ग है, सत्य का मार्ग है, जो अच्छे लोगों द्वारा संरक्षित है, और ब्रह्मा के लोक की ओर ले जाता है।'"

"तो, हे लॉर्ड स्टीवर्ड, बस सात साल प्रतीक्षा कीजिए, और फिर हम भी तपस्वी जीवन में चले जाएंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।"

"सज्जनों, सात साल बहुत लंबा समय है, मैं सात साल तक इंतजार नहीं कर सकता! कौन बता सकता है कि लोग कितने समय तक जीवित रहेंगे? हमें अगले लोक में जाना है, हमें ज्ञान के माध्यम से सीखना होगा, हमें सही काम करना होगा और पवित्र जीवन जीना होगा, क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी प्राणी अमर नहीं होता। अब मैं जैसा मैंने समझाया है, वैसे ही आगे बढ़ रहा हूँ।"

"'अच्छा, आदरणीय स्टीवर्ड, बस छह साल, पाँच साल, चार साल, तीन साल, दो साल, एक साल प्रतीक्षा कीजिए, और फिर हम भी तपस्वी जीवन में चले जाएंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।'"

"'सज्जनों, एक साल बहुत लंबा समय है...' 'तो फिर सात महीने इंतजार कीजिए...'"

"'सज्जनों, सात महीने बहुत लंबा समय है...' 'तो छह महीने प्रतीक्षा करें,...पांच महीने,...चार महीने,...तीन महीने,...दो महीने,...एक महीना,...आधा महीना...'"

"'सज्जनों, आधा महीना बहुत लंबा समय है...' 'तो, आदरणीय प्रबंधक, बस सात दिन प्रतीक्षा कीजिए जब तक हम अपने राज्य अपने पुत्रों और भाइयों को सौंप देते हैं। सात दिनों के अंत में हम तपस्वी जीवन में प्रवेश करेंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।' 'सात दिन लंबा समय नहीं है, मैं सहमत हूँ, मेरे स्वामी।'

तब महा गोविंदा (महा गोविंदा) सात ब्राह्मणों और उनके सात सौ उन्नत शिष्यों के पास गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, अब आपको मंत्रों का शिक्षण प्राप्त करने के लिए किसी अन्य गुरु की खोज करनी होगी। मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करने जा रहा हूँ। ब्रह्मा ने मुझे संसार की दुर्गंध के बारे में बताया है, जिसे गृहस्थ जीवन से आसानी से दूर नहीं किया जा सकता, इसलिए मैं तपस्वी जीवन में प्रवेश कर रहा हूँ।" "हे पूज्यवर, ऐसा मत कीजिए! तपस्वी जीवन में शक्ति और लाभ कम है, जबकि ब्राह्मण जीवन में शक्ति और लाभ अधिक है!" "ऐसी बातें मत कहिए, सज्जनों! इसके अलावा, मुझसे अधिक शक्ति और लाभ किसके पास है? मैं राजाओं के लिए राजा के समान, ब्राह्मणों के लिए ब्रह्मा के समान, गृहस्थों के लिए देवता के समान रहा हूँ, और जैसा कि मैंने समझाया है, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करने के लिए यह सब त्याग रहा हूँ।" 'यदि आदरणीय स्टीवर्ड गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन अपनाते हैं, तो हम भी ऐसा ही करेंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।'

तब महा गोविंदा (महा गोविंदा) अपनी चालीस पत्नियों के पास गए और बोले: 'तुममें से जो भी महिला चाहे, अपने परिवार में वापस जाकर दूसरा पति खोज सकती है। मैं संन्यासी जीवन में जाने का इरादा रखता हूँ...' 'आप ही हमारे लिए एकमात्र रिश्तेदार हैं, एकमात्र पति जो हम चाहते हैं। यदि पूज्य स्वामी संन्यासी जीवन में जाते हैं, तो हम भी ऐसा ही करेंगे। आप जहाँ भी जाएँगे, हम आपका अनुसरण करेंगे।'

और महा गोविंदा ने सात दिनों के अंत में अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया। उनके साथ सात अभिषिक्त क्षत्रिय राजा, सात धनी और प्रतिष्ठित ब्राह्मण अपने सात सौ उन्नत शिष्यों के साथ, उनकी चालीस समतुल्य पत्नियाँ, कई हजार क्षत्रिय, कई हजार ब्राह्मण, कई हजार गृहस्थ और कुछ हरम की स्त्रियाँ भी थीं।

और इस प्रकार, इस दल के साथ, महान प्रबंधक गांवों, कस्बों और राजसी शहरों में विचरण करते थे। और जब भी वे किसी गांव या कस्बे में आते थे, वे राजाओं के लिए राजा के समान, ब्राह्मणों के लिए ब्रह्मा के समान, और गृहस्थों के लिए देवता के समान होते थे। और उन दिनों, जब भी कोई छींकता या ठोकर खाता था, वे कहते थे: 'महान प्रबंधक की जय हो! सात के मंत्री की जय हो!'

और महा गोविंदा (महा गोविंदा) ने प्रेम से परिपूर्ण मन से एक भाग को, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे भाग को भी व्याप्त किया। उन्होंने संपूर्ण जगत को, ऊपर, नीचे, चारों ओर, करुणा से परिपूर्ण मन से, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण मन से, समभाव से परिपूर्ण मन से, घृणा और द्वेष से मुक्त मन से व्याप्त किया। इस प्रकार उन्होंने अपने शिष्यों को ब्रह्मलोक से मिलन का मार्ग सिखाया।

और उस समय जो भी महागुरु के शिष्य थे और जिन्होंने उनकी शिक्षा को पूर्णतः आत्मसात कर लिया था, वे शरीर के विखंडन के बाद ब्रह्मलोक में एक सुखमय लोक में पुनर्जन्म लेते थे। और जिन्होंने उनकी शिक्षा को पूर्णतः आत्मसात नहीं किया था, वे या तो परानिम्मित-वासवत्ती देवताओं के बीच, निम्मनारति देवताओं के बीच, तुषिता देवताओं के बीच, यम देवताओं के बीच, तैंतीस देवताओं के देवताओं के बीच, या चार महाराजों के देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेते थे। और उनमें से जो भी सबसे निम्नतम लोक प्राप्त करते थे, वह गंधर्वों का था। इस प्रकार उन सभी लोगों का पुनर्जन्म निष्फल या बंजर नहीं था, बल्कि फलदायी और लाभदायक था।

"क्या आपको यह याद है, भगवान?" "हाँ, पंचसिखा। उस समय मैं ब्राह्मण था, महा गोविंदा, और मैंने उन शिष्यों को ब्रह्मलोक के साथ मिलन का मार्ग सिखाया था।"

"हे पंचसिखा, वह पवित्र जीवन (या ब्रह्मचर्य) वैराग्य, वैराग्य, शांति, परमज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता, बल्कि केवल ब्रह्मलोक में जन्म की ओर ले जाता है, जबकि मेरा पवित्र जीवन निश्चय ही वैराग्य, वैराग्य, शांति, परमज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की ओर ले जाता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है, अर्थात् सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"

"और, पंचसिखा, मेरे जिन शिष्यों ने मेरी शिक्षा को पूर्णतः आत्मसात कर लिया है, उन्होंने अपने अलौकिक ज्ञान से इसी जीवन में विकारों का नाश करके हृदय और मन की निर्मल स्वतंत्रता को प्राप्त कर लिया है। और जिन्होंने इसे पूर्णतः आत्मसात नहीं किया है, उनमें से कुछ पाँच निम्न बंधनों के नाश से स्वतः ही पुनर्जन्म लेंगे और इस संसार में वापस आए बिना निर्वाण को प्राप्त करेंगे; कुछ तीन बंधनों के नाश और लोभ, घृणा और मोह के कम होने से एक बार जन्म लेने वाले बनेंगे, जो दुखों का अंत करने से पहले एक बार अपने संसार में लौटेंगे; और कुछ तीन बंधनों के नाश से धारा-विजेता बनेंगे, जो दुखों की अवस्थाओं में नहीं पड़ सकते और ज्ञानोदय के प्रति आश्वस्त रहेंगे। इस प्रकार इन सभी लोगों का प्रस्थान निष्फल या बांझ नहीं था, बल्कि फलदायी और लाभदायक था।"

इस प्रकार भगवान ने कहा, और गंधर्वों में से पंचसिखा भगवान के वचनों से प्रसन्न और आनंदित हुआ। उसने उन्हें प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से गुजर कर वहाँ से विमुख हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.7 महा-समय सुत्त(डीएन20)

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कपिलवस्तु के विशाल वन क्षेत्र में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, उनके साथ लगभग पाँच सौ भिक्षुओं का एक बड़ा संघ था, जो सभी अरहंत थे। दस लोकों के अधिकांश देवता भगवान और भिक्षु संघ के दर्शन के लिए एकत्रित हुए थे। तब शुद्ध लोकों के चार देवताओं के मन में यह विचार आया: "भगवान कपिलवस्तु के विशाल वन क्षेत्र में शाक्यों के बीच निवास कर रहे हैं, उनके साथ लगभग पाँच सौ भिक्षुओं का एक बड़ा संघ है, जो सभी अरहंत हैं। दस लोकों के अधिकांश देवता भगवान और भिक्षु संघ के दर्शन के लिए एकत्रित हुए हैं। आइए हम भी भगवान के पास जाएँ और वहाँ पहुँचकर उनके समक्ष एक-एक श्लोक का पाठ करें।"

फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को मोड़ता है, वैसे ही वे देवता शुद्ध लोकों के देवताओं के बीच से लुप्त हो गए और भगवान बुद्ध के समक्ष पुनः प्रकट हुए। भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ खड़े हो गए। जब वे वहाँ खड़े थे, तब एक देवता ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

वन में एक महान सभा: देवों की सेना एकत्रित हुई है। हम इस धम्म सभा में अजेय संघ के दर्शन करने आए हैं। तब एक अन्य देवता ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

वहाँ भिक्षु एकाग्रचित्त हैं, उन्होंने अपने मन को स्थिर कर लिया है। सारथी की तरह, ज्ञानी लोग अपनी इंद्रियों को संजोए रखते हैं। फिर एक अन्य देवता ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

बंजर भूमि को चीरते हुए, चौखट को काटते हुए, इंद्र के स्तंभ को उखाड़ते हुए, अविचलित होकर, वे शुद्ध, निष्कलंक विचरण करते हैं, युवा नाग जिन्हें दूरदर्शी ने भलीभांति प्रशिक्षित किया है। तब एक अन्य देवता ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

जो बुद्ध की शरण में आए हैं, वे दुःख के लोक में नहीं जाएँगे। मानव शरीर त्यागकर वे देवमंडल में विलीन हो जाएँगे। तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “भिक्षुओं, दस लोकों के अधिकांश देवता तथागत और भिक्षु संघ के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए हैं। जो अतीत में शुद्ध आत्मा-जागृत थे, उनका देवमंडल अधिकतम मेरे वर्तमान के समान ही था। जो भविष्य में शुद्ध आत्मा-जागृत होंगे, उनका देवमंडल अधिकतम मेरे वर्तमान के समान ही होगा। मैं तुम्हें देवमंडलों के नाम विस्तार से बताऊँगा। मैं तुम्हें देवमंडलों के नाम सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो और ग्रहण करो। मैं बोलूँगा।”

“जैसा आप कहें, भगवान,” भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने कहा:

मैं स्तुतिगान का एक श्लोक पढ़ता हूँ। जो आत्माओं के निवास स्थान में रहते हैं, जो पर्वतीय गुफाओं में रहते हैं, दृढ़, एकाग्र, असंख्य, छिपे हुए शेरों के समान, जिन्होंने भय पर विजय प्राप्त की है, निर्मल, पवित्र, शांत और अविचलित: यह जानकर कि उनमें से 500 से अधिक कपिलवस्तु वन में आए हैं, गुरु ने अपने उपदेशों से प्रसन्न शिष्यों से कहा, "देवों की सेना आ गई है। हे भिक्षुओं, उनका पता लगाओ!" प्रबुद्ध गुरु के उपदेश को सुनकर उन्होंने लगन से प्रयास किया। उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ, अमानवीय प्राणियों के दर्शन हुए। कुछ ने 100, कुछ ने 1,000, कुछ ने 70,000 देखे, कुछ ने 100,000 अमानवीय प्राणियों के दर्शन किए। कुछ ने असंख्य देवताओं के दर्शन प्राप्त किए जो हर दिशा में व्याप्त थे। यह सब जानकर, दिव्यदर्शी ने बोलने की प्रेरणा पाई। तब गुरु ने अपने शिष्यों से कहा, जो उनके उपदेशों से प्रसन्न थे, "देव सेनाएं आ गई हैं। हे भिक्षुओं, जैसे-जैसे मैं उनके महिमामंडनों का एक-एक करके वर्णन करता हूँ, वैसे-वैसे उनका पता लगाओ।"

कपिलवस्तु की भूमि में निवास करने वाले 7,000 यक्ष, जो शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित हैं, भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

हिमालय से आए 6,000 यक्ष, जो विभिन्न रंगों के हैं, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित हैं, भिक्षुओं की वन सभा में पहुंचे हैं।

साता पर्वत से विभिन्न रंगों के 3,000 यक्ष, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर भिक्षुओं की वन सभा की ओर आ रहे हैं।

विभिन्न रंगों वाले ये 16,000 यक्ष, जो शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित हैं, भिक्षुओं की वन सभा की ओर आ रहे हैं।

वेसमित्ता से आए 500 यक्ष, जो विभिन्न रंगों के, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित हैं, भिक्षुओं की वन सभा में पहुँच गए हैं।

राजगृह से कुंभिरा, जो वेपुल्ला पर्वत पर निवास करता है, 100,000 से अधिक यक्षों के साथ आया है - राजगृह से कुंभिरा: वह भी वन सभा में आया है।

और धतरत्थ, जो पूर्वी दिशा के राजा के रूप में, गंधर्वों के स्वामी के रूप में शासन करते हैं: वे एक महान और गौरवशाली राजा हैं, और उनके अनेक पुत्र इंद्र हैं, जो अत्यंत शक्तिशाली हैं। शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर वे भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

और वीरुल, जो दक्षिण दिशा के राजा और कुम्भंडों के स्वामी हैं: वे एक महान और गौरवशाली राजा हैं, और उनके अनेक पुत्र इंद्र हैं, जो अत्यंत शक्तिशाली हैं। शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर वे भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

और विरुपाक्खा, जो पश्चिम दिशा के राजा और नागों के स्वामी के रूप में शासन करते हैं: वे एक महान और गौरवशाली राजा हैं, और उनके अनेक पुत्र इंद्र हैं, जो अत्यंत शक्तिशाली हैं। शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर वे भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

और कुबेर, जो उत्तर दिशा के राजा और यक्षों के स्वामी हैं: वे एक महान और गौरवशाली राजा हैं, और उनके अनेक पुत्र इंद्र हैं, जो अत्यंत शक्तिशाली हैं। शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर वे भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

पूर्व दिशा से धतरत्था, दक्षिण से वीरुल्हक, पश्चिम से विरुपाक्खा, उत्तर दिशा से कुबेर: चारों दिशाओं को समाहित करने वाले ये चार महान राजा, तेजस्वी रूप में कपिलवस्तु वन में विराजमान हैं।

उनके कपटी सामंत भी आ गए हैं— छल-कपट, विश्वासघाती— माया, कुतेन्दु, वेतेन्दु, वितु और वितुता, चंदन (कामुक सुख का स्वामी), किन्नुघंडु, निघंडु, पाणदा (नकलची), मतली (देवों का सारथी), चित्तसेना (गंधब्बत), राजा नल (जनता का बैल), पंचसिखा (तिंबरू और उसकी पुत्री सूरियावच्छसा) के साथ आए हैं। ये और अन्य राजा, अपने राजाओं सहित गंधब्बत, आनंद मनाते हुए भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

फिर नभासा, वेसाली और तच्चका झील से भी नागा आए हैं। कम्बलस, अस्सटारस, पयागास और उनके परिजन। और यमुना नदी से प्रतिष्ठित नागा, धतरत्थ आते हैं। महान नागा एरावन्ना: वह भी वन सभा में आये हैं।"

नाग राजाओं पर शीघ्रता से आक्रमण करने वाले, दिव्य, द्विज, पंखयुक्त, शुद्ध दृष्टि वाले गरुड़ आकाश से वन के मध्य में आए। चित्रा और सुपन्ना उनके नाम हैं। लेकिन बुद्ध ने नाग राजाओं को सुरक्षित किया, उन्हें सुपन्ना से बचाया। एक-दूसरे से स्नेहपूर्ण शब्दों में बात करते हुए, नागों और सुपन्नाओं ने बुद्ध को अपना आश्रय बनाया।

"ज्वलित हाथ वाले इंद्र से पराजित, समुद्र में रहने वाले असुर, वासव के भाई - शक्तिशाली, प्रतिष्ठित - अत्यंत भयानक कालकंज, दानवेघास असुर वेपचित्ति और सुचित्ति, पहाड़द, नमुचि के साथ, और बलि के सौ पुत्र, सभी वेरोका नाम के, शक्तिशाली सेनाओं से सुसज्जित होकर अपने आदरणीय राहु के पास पहुँचे और बोले: 'हे भगवान, अब भिक्षुओं की वन सभा का अवसर है।'"

जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु के देवता यहाँ आए हैं। वरुण, सोम और यश सहित सद्भावना और करुणा के देवों की सेना के प्रतिष्ठित देवता यहाँ आए हैं। ये दस प्रकार के देव, विभिन्न रंगों वाले, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर भिक्षुओं की वन सभा में पहुँचे हैं।

विष्णु और सहाली, असम और यम जुड़वाँ, चंद्रमा पर आश्रित और चंद्रमा के चारों ओर घूमने वाले देवता आ गए हैं। सूर्य पर आश्रित और सूर्य के चारों ओर घूमने वाले देवता आ गए हैं। राशि चक्र के तारों के चारों ओर घूमने वाले देवता और बादलों के अप्सराएँ आ गए हैं। वसुओं के मुखिया, प्राचीन दानदाता सक्का आ गए हैं। ये दस गुना देवमंडल, सभी विविध रंगों वाले, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर, भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

फिर सहभू देव अग्नि की लपटों के समान प्रज्वलित होकर आते हैं। अरित्तक, रोज, नीले रंग के देव, वरुण और सहधम्म, अच्चुत और अनेजक, सुलेय्या और रुचिर, और वासवनेसी देव आ चुके हैं। ये दस प्रकार के देव, विविध रंगों वाले, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुंचे हैं।

समना और महा समना, मनुसा और महा मनुसा, क्रीड़ा में लिप्त देवता, साथ ही मन में लिप्त देवता भी आ चुके हैं। फिर स्वर्ण-परागित देवता और लाल वस्त्र धारण करने वाले देवता आते हैं। पराग और महा पराग, प्रतिष्ठित देवता आ चुके हैं। ये दस प्रकार के देव, सभी विविध रंगों वाले, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित, भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

श्वेत देव, लालिमा लिए हरे देव, भोर के देव, पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारण किए हुए देवों के नेतृत्व में वेघनों के साथ आ चुके हैं। विच्छण आ चुके हैं। सदामत्त, हरगज और प्रतिष्ठित बहुरंगी देव, प्रज्वलित पजुन्न, जो हर दिशा में वर्षा लाते हैं: ये दस विविध देवों की सेना, जो विभिन्न रंगों से परिपूर्ण, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित हैं, भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँची हैं।

खेमिया, तुषिता और यम, प्रतिष्ठित कत्थक, लम्बितक और लामा प्रमुख, ज्योतिनामा और आसव, निम्मनारती, और परानिम्मिता आ चुके हैं। ये दस प्रकार के देवमंडल, सभी विविध रंगों वाले, शक्तिशाली, तेजस्वी, आकर्षक, प्रतिष्ठित और आनंदित होकर भिक्षुओं की वन सभा में आ पहुँचे हैं।

ये 60 देव समूह, सभी विविध रंगों के, एक क्रम में व्यवस्थित होकर आए हैं, साथ ही अन्य भी इसी प्रकार [सोच रहे हैं:] 'हम उन्हें देखेंगे जिन्होंने जन्म को पार कर लिया है, जिनकी कोई सीमा नहीं है, जिन्होंने बाढ़ को पार कर लिया है, जो सर्वशक्तिमान हैं, बुराई से परे हैं, जैसे बादल से निकला चंद्रमा।'

सुब्रह्म और परमत्त ब्रह्मा, सर्वशक्तिमान के पुत्रों सनंकुमार और तिस्सा सहित, वन सभा में आए हैं। महान ब्रह्मा, जो 1000 ब्रह्म लोकों पर विराजमान हैं, जो वहाँ स्वतः प्रकट हुए, तेजस्वी हैं: वे गौरवशाली हैं, भयानक शरीर वाले हैं। और दस ब्रह्मा सम्राट, जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने राज्य का स्वामी है - और उनके बीच हरिता ब्रह्मा अपने अनुयायियों से घिरे हुए आए हैं।

जब ये सभी देवता इंद्र और ब्रह्मा सहित आ गए, तो मारा भी आ गया। अब उस अंधकारमय देवता की मूर्खता तो देखो! [उसने कहा:] "आओ, इन्हें पकड़ो! इन्हें बांधो! इन्हें वासना से जकड़ लो! इन्हें चारों ओर से घेर लो! किसी को भी भागने मत दो!" इस प्रकार उस महान योद्धा ने अपने हाथ से ज़मीन पर थपथपाते हुए, अपनी अंधकारमय सेना को उकसाया, जिससे एक भयानक शोर मच गया, मानो कोई तूफ़ानी बादल गरज, बिजली और मूसलाधार बारिश के साथ फट रहा हो। लेकिन फिर वह क्रोधित होकर पीछे हट गया, किसी को भी अपने वश में नहीं कर पाया। यह सब जानकर, दूरदर्शी ने बोलने का निश्चय किया। तब गुरु ने अपने शिष्यों से कहा, जो उनके उपदेशों से प्रसन्न थे, "मारा की सेना आ गई है। भिक्षुओं, उनका पता लगाओ!" प्रबुद्ध गुरु के निर्देश को सुनकर, उन्होंने पूरी लगन से प्रयास किया। सेना उन लोगों से पीछे हट गई जो वासना से रहित थे, उनके शरीर पर एक बाल भी नहीं उठा। युद्ध में जीत हासिल करने के बाद - प्रतिष्ठा से भरपूर, भय से परे - वे सभी प्राणियों के साथ आनंद मनाते हैं: मानव जाति में उत्कृष्ट शिष्य।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.8 सक्कपन्हा सुत्त(डीएन21)

(देवताओं/देवदूतों के राजा इंद्र (शक्र) के प्रश्न)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान मगध में, राजगृह के पूर्व में, अम्बासंडा नामक ब्राह्मण गाँव के पास, वेदिया पर्वत के उत्तर में स्थित इंद्रशाला गुफा में ठहरे हुए थे। उस समय देवताओं के स्वामी सक्का को भगवान के दर्शन करने की तीव्र इच्छा हुई। सक्का ने सोचा, 'परमेश्वर, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, अब कहाँ ठहरे हुए हैं?' तब भगवान के स्थान का ज्ञान प्राप्त करके सक्का ने तैंतीस देवताओं से कहा, 'हे सज्जनों, भगवान अब मगध में, राजगृह के पूर्व में, अम्बासंडा नामक ब्राह्मण गाँव के पास, वेदिया पर्वत के उत्तर में स्थित इंद्रशाला गुफा में ठहरे हुए हैं। यदि हम जाकर भगवान के दर्शन करें तो कैसा रहेगा?'

'बहुत अच्छा, भगवान, और आपको सौभाग्य प्राप्त हो,' तैंतीस देवताओं ने उत्तर दिया।

तब सक्का ने गंधर्वों के पंचसिखा से कहा: 'भगवान राजगृह के पूर्व में, अम्बासंडा नामक ब्राह्मण गाँव के पास, और उस गाँव के उत्तर में वेदिया पर्वत पर स्थित इंद्रशाला गुफा में मगध में ठहरे हुए हैं। मैं उनसे मिलने जाना चाहता हूँ।'

'बहुत अच्छा, भगवान,' पंचसिखा ने कहा और अपना पीला बेलुव-लकड़ी का वीणा लेकर सक्का के पीछे चल पड़ा। और, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेज़ी से फैलाता है या फिर से मोड़ता है, वैसे ही तैंतीस देवताओं से घिरे और पंचसिखा के साथ सक्का, तैंतीस देवताओं के स्वर्ग से विलीन हो गया और राजगृह के पूर्व में, अम्बासंडा नामक ब्राह्मण गाँव के पास, वेदिया पर्वत पर स्थित गाँव के उत्तर में, मगध में प्रकट हुआ।

फिर वेडिया पर्वत पर एक प्रचंड प्रकाश चमका, जिससे अम्बासंडा गाँव जगमगा उठा — देवताओं की शक्ति इतनी महान थी कि आसपास के गाँवों में लोग कहने लगे: 'देखो! आज वेडिया पर्वत में आग लग गई है! यह जल रहा है! यह लपटों में घिरा हुआ है! क्या बात है कि वेडिया पर्वत और अम्बासंडा इस तरह जगमगा रहे हैं?' और वे इतने भयभीत हो गए कि उनके रोंगटे खड़े हो गए।

तब सक्का ने कहा: 'पंचसिखा, जब तथागत ध्यान की अवस्था में लीन होते हैं और एकांत में रहते हैं, तो हम जैसे लोगों के लिए उनके निकट जाना कठिन होता है। परन्तु हे पंचसिखा, यदि तुम सर्वप्रथम भगवान का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लो, तो हम भी उनके पास जाकर पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध के दर्शन कर सकेंगे।'

'बहुत अच्छा, भगवान,' पंचसिखा ने कहा और अपना पीला बेलुव-लकड़ी का वीणा लेकर इंद्रशाला गुफा की ओर चल पड़ा। यह सोचते हुए कि 'यह न तो भगवान से बहुत दूर है और न ही बहुत पास, और वे मेरी वाणी सुन लेंगे,' वह एक तरफ खड़ा हो गया। फिर, अपने वीणा की धुन पर, उसने बुद्ध, धर्म, अरहंतों और प्रेम की स्तुति में ये श्लोक गाए:

'महोदया, आपके पिता टिंबारू का नमस्कार।'

ओह, सुंदर धूप, मैं उसे उचित सम्मान देता हूँ।

किसके पुत्र ने तुम्हारे जैसी सुंदर कन्या को जन्म दिया?

मेरे हृदय की प्रसन्नता का कारण कौन है?

पसीने से तरबतर व्यक्ति के लिए हवा के झोंके की तरह सुखद।

या प्यासे व्यक्ति के लिए शीतल पेय के समान,

आपकी असीम सुंदरता मुझे अत्यंत प्रिय है।

जिस प्रकार धम्म अरहंतों के लिए है।

जैसे बीमार व्यक्ति के लिए दवा,

या फिर किसी भूखे व्यक्ति को पोषण प्रदान करना,

हे कृपालु महिला, मुझे मुक्ति दिलाओ।

मेरी प्रचंड ज्वालाओं से ठंडा हुआ पानी।

गर्मी से बेहाल हाथी

वह एक कमल-कुंड की तलाश करता है जिस पर वह तैर सके।

उस फूल की पंखुड़ियाँ और परागकण

तो मैं तुम्हारी प्यारी गोद में समा जाऊंगा।

जैसे हाथी को अंकुश से प्रेरित किया जाता है,

भाले और बरछी के चुभन की परवाह नहीं करता।

इसलिए मैं अनभिज्ञ होकर यह नहीं जानता कि मैं क्या कर रहा हूँ।

तुम्हारे सुंदर रूप से मोहित हो गया हूँ।

तुम्हारे द्वारा मेरा हृदय दृढ़ बंधनों में जकड़ा हुआ है।

मेरे सारे विचार पूरी तरह बदल गए हैं, और मैं

मुझे अपना पुराना कोर्स अब नहीं मिल रहा है:

मैं उस मछली की तरह हूँ जो कांटे में फंस गई हो।

आओ, मुझे गले लगाओ, सुंदर जांघों वाली कन्या।

अपनी प्यारी आँखों से मुझे थाम लो,

मुझे अपनी बाहों में ले लो, बस यही मेरी विनती है!

हे कन्या, मेरी इच्छा पहले तो बहुत कम थी।

लहराते बालों की लटें, लेकिन वे तेजी से बढ़ रही थीं।

जैसे-जैसे अरहंतों को मिलने वाले वरदान बढ़ते जाते हैं।

मैंने उपहारों से जो भी पुण्य अर्जित किया है

उन महानुभावों को मेरा प्रतिफल प्राप्त हो।

जब यह पक जाए, तो मेरा प्यार बन जाना, मेरे सूर्य!

ठीक वैसे ही जैसे वह ऋषि प्रसन्न होते, यदि वह

यदि किसी को सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हो जाए,

इसलिए मुझे आपके साथ एक हो जाने में बहुत खुशी होगी।

यदि सक्का, तैंतीस देवताओं के स्वामी

यदि संयोगवश आप मुझे कोई वरदान प्रदान करें,

मुझे सिर्फ तुम्हारी ही चाहत है, तुम्हारे लिए मेरा प्यार बहुत प्रबल है।

हे बुद्धिमान कन्या, आपके पिता, मैं उनका आदर करता हूँ।

जैसे कोई साल का पेड़ पूरी तरह से खिल गया हो,

अपने प्यारे और सुंदर बच्चों की खातिर।'

यह सुनकर भगवान ने कहा, 'पंचसिखा, तुम्हारे वाद्ययंत्रों की ध्वनि तुम्हारे गीत के साथ इतनी अच्छी तरह घुलमिल जाती है, और तुम्हारा गीत वाद्ययंत्रों के साथ, कि न तो कोई दूसरे पर हावी होता है। तुमने बुद्ध, धर्म, अरहंतों और प्रेम पर ये श्लोक कब रचे?'

हे भगवान, यह उस समय की बात है जब भगवान बुद्ध ज्ञान प्राप्ति से पहले नेरंजारा नदी के किनारे एक चरवाहे के बरगद के पेड़ के नीचे ठहरे हुए थे। उस समय मुझे गंधर्व वंश के राजा तिंबरू की पुत्री, सूर्य के समान तेजस्वी भद्दा से प्रेम हो गया। परन्तु वह किसी और से प्रेम करती थी। वह सारथी मताली के पुत्र सिखद्दी से प्रेम करती थी। जब मुझे पता चला कि मैं किसी भी तरह से उसे प्राप्त नहीं कर सकता, तो मैंने अपना पीला बेलुवा-लकड़ी का वीणा उठाया और गंधर्व वंश के राजा तिंबरू के घर गया, और वहाँ मैंने वे श्लोक गाए। हे भगवान, श्लोक सुनकर भद्दा सूर्यवाच्चा ने मुझसे कहा: 'हे भगवान, मैंने स्वयं उस भगवान को नहीं देखा है, यद्यपि मैंने उनके बारे में तब सुना था जब मैं तैंतीस देवताओं के सुधम्म हॉल में नृत्य करने गई थी।' और चूंकि, महोदय, आप उस परम भगवान की इतनी प्रशंसा करते हैं, तो आइए आज मिलते हैं। और इस प्रकार, भगवान, मैं उस महिला से मिला, तब नहीं बल्कि बाद में।

तब सक्का ने सोचा, 'पंचसिखा और भगवान आपस में सौहार्दपूर्ण बातचीत कर रहे हैं,' इसलिए उसने पंचसिखा को पुकारा: 'हे प्रिय पंचसिखा, मेरी ओर से भगवान को प्रणाम करो और कहो, "भगवान सक्का, देवताओं के राजा, अपने सेवकों और अनुयायियों के साथ, भगवान के चरणों में नमन करते हैं।"'

'बहुत अच्छा, भगवान,' पंचसिखा ने कहा और वैसा ही किया।

'पंचसिखा, देवताओं के राजा सक्का, उनके मंत्री और अनुयायी सभी प्रसन्न रहें, क्योंकि वे सभी सुख की कामना करते हैं: देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व और अन्य सभी प्राणी समूह!' तथागत ऐसे शक्तिशाली प्राणियों का इसी प्रकार अभिवादन करते हैं। इस अभिवादन के बाद, सक्का इंद्रशाला गुफा में प्रवेश कर गए, भगवान को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए, और पंचसिखा सहित तैंतीस देवताओं ने भी ऐसा ही किया।

फिर इंदसला गुफा में, देवताओं की शक्ति से, उबड़-खाबड़ रास्ते चिकने हो गए, संकरे हिस्से चौड़े हो गए और घोर अंधेरी गुफा उजाले से भर गई। तब भगवान ने सक्का से कहा: 'यह अद्‌भुत है, यह चमत्कार है कि पूज्य कोसिया, जिनके पास करने के लिए बहुत कुछ है, यहाँ आए हैं!' 'भगवान, मेरी बहुत समय से भगवान के दर्शन करने की इच्छा थी, लेकिन मैं तैंतीस देवताओं के कार्य में इतना व्यस्त रहा कि आ नहीं सका। एक बार भगवान श्रावस्ती में सलाला कुटिया में ठहरे हुए थे, और मैं भगवान के दर्शन करने श्रावस्ती गया।'

उस समय भगवान किसी ध्यान में बैठे थे, और राजा वेसवना की पत्नी भुंजतु उनकी सेवा में हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर रही थीं। मैंने उनसे कहा, "देवी, कृपया मेरी ओर से भगवान को प्रणाम करें और कहें: 'देवताओं के राजा सक्का अपने सेवकों और अनुयायियों के साथ भगवान के चरणों में प्रणाम करते हैं।' लेकिन उन्होंने कहा, "महोदय, भगवान के दर्शन का यह सही समय नहीं है, वे ध्यान में हैं।"

"तो फिर, देवी, जब भगवान ध्यान से उठें, तो कृपया उन्हें मेरा संदेश बता दें।" हे भगवान, क्या उस महिला ने मेरी ओर से आपको प्रणाम किया और क्या भगवान को उनका संदेश याद है?

'उन्होंने मुझे, देवताओं के राजा, प्रणाम किया और मुझे याद है कि उन्होंने क्या कहा था। मुझे यह भी याद है कि आपके रथ के पहियों ने ही मुझे मेरी ध्यान अवस्था से जगाया था।'

हे भगवान, मुझसे पहले तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में अवतरित हुए उन देवताओं ने मुझे बताया और आश्वस्त किया है कि जब भी तथागत, पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत बुद्ध संसार में अवतरित होते हैं, तो देवताओं की संख्या बढ़ जाती है और असुरों की संख्या घट जाती है। वास्तव में, मैंने स्वयं इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। हे भगवान, यहीं कपिलवस्तु में गोपिका नामक एक शाक्य कन्या थी, जिसे बुद्धों, धम्म और संघ में गहरी आस्था थी और जो नियमों का पूर्णतया पालन करती थी। उसने स्त्रीत्व का त्याग कर पुरुष बनने का विचार किया। फिर, उसकी मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के समय, वह एक सुखद गंतव्य पर गई, तैंतीस देवताओं के बीच स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर, हमारे पुत्रों में से एक के रूप में, देवताओं के पुत्र गोपका के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके अलावा, तीन भिक्षु थे जिन्होंने भगवान के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत किया और गंधर्वों के निम्नतम रूप में पुनर्जन्म लिया। वे हमारे परिचारकों और सेवकों के रूप में पाँचों इंद्रियों के सुखों में लिप्त होकर जीवन व्यतीत करते थे। इस पर गोपाका ने उन्हें फटकारते हुए कहा, "हे महाराज, आप किस बात में लिप्त थे कि आपने भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का पालन नहीं किया? मैं बुद्ध में आस्था रखने वाली स्त्री थी... मैंने स्त्रीत्व का त्याग कर दिया... और तैंतीस देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेकर गोपाका देव पुत्र के रूप में जानी जाती हूँ। परन्तु आप, भगवान बुद्ध के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करने के बाद, गंधर्वों के निम्न जीवन में पुनर्जन्म लेकर आए हैं!" इस प्रकार फटकार सुनकर उन दोनों देवों ने तुरंत सजगता प्राप्त कर ली और ब्रह्मा के अनुचरों के धाम को प्राप्त कर लिया। परन्तु उनमें से एक इंद्रिय सुखों में लिप्त रहा।

गोपाका ने कहा:

"एक बार उस सर्वज्ञानी के अनुशासन का पालन करो,"

उस समय मेरा नाम गोपिका था।

बुद्ध, धम्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए

मैंने संघ की सेवा प्रसन्नतापूर्वक की।

उन्हें दी गई निष्ठापूर्ण सेवा के लिए

अब मुझे देखो, मैं सक्का का पुत्र हूँ।

त्रिविध स्वर्ग में पराक्रमी

तेजस्वी; मेरा नाम गोपाका है।

फिर मैंने पूर्व भिक्षुओं को देखा, जो पहुँच चुके थे।

गंधब्बा के पद से ऊँचा नहीं।

जिनका मानव जन्म पहले हुआ था

और उन्होंने बुद्ध द्वारा सिखाई गई जीवनशैली का अनुसरण किया।

हमने उन्हें भोजन और पेय पदार्थ उपलब्ध कराए।

और हमने अपने घरों में उनकी सेवा की।

क्या उनके कान नहीं थे, कि वे इस प्रकार आशीर्वाद देते?

फिर भी बुद्ध के नियम को नहीं समझ पाए?

प्रत्येक को स्वयं ही समझना होगा

वह धम्म जो दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा सिखाया जाता है,

और अच्छी तरह से प्रचारित। मैं, आपकी सेवा में,

मैंने उस महान व्यक्ति के अच्छे शब्द सुने,

और इस तरह मेरा जन्म हुआ, एक सक्का पुत्र के रूप में।

त्रिविध स्वर्ग में पराक्रमी,

और तेजस्वी, जबकि आप,

यद्यपि आपने मनुष्यों के राजकुमार की सेवा की

और उन्होंने स्वयं वैसा ही अनुकरणीय जीवन जिया जैसा उन्होंने सिखाया था।

विनम्र अवस्था में पुनः प्रकट हुए हैं

और आपने अपना उचित पद प्राप्त नहीं किया है,

यह देखना बेहद दुखद दृश्य है।

अपने धर्म-साथियों को इतनी नीचता पर ले जाने लगा

हे गंधब्बा-आत्माओं, तुम

लेकिन देवताओं की सेवा करने आओ,

और मैं तो पूरी तरह बदल गया हूँ!

घरेलू जीवन से, और स्त्री होने से, मैं

अब मेरा पुनर्जन्म एक पुरुष के रूप में हुआ है, एक देवता के रूप में।

दिव्य आनंद में मग्न!

जब गोपाका ने इस प्रकार फटकार लगाई,

गौतम का सच्चा शिष्य,

अत्यंत व्याकुल होकर उन सभी ने उत्तर दिया:

"अफ़सोस, चलो चलते हैं और पूरी ताकत से प्रयास करते हैं।"

और अब दूसरों के गुलाम मत बनो!

और उन तीनों में से दो को काफी संघर्ष करना पड़ा।

और शिक्षक के वचन को ध्यान में रखा।

उन्होंने अपने हृदयों को कामवासना से मुक्त किया।

इच्छाओं में खतरे को भांपना,

और उस हाथी की तरह जो फट जाता है

उन्होंने सभी बंधन तोड़ दिए।

कामवासना के बंधन और बेड़ियाँ,

उस शैतान की बेड़ियाँ

इस पर काबू पाना बहुत मुश्किल है — और इस प्रकार

स्वयं देवता, तैंतीस

इंद्र और प्रजापति के साथ,

काउंसिल हॉल में कौन सिंहासन पर विराजमान था?

ये दोनों नायक, अपनी वासनाओं से मुक्त,

उन्हें पछाड़ दिया और बहुत पीछे छोड़ दिया।

यह देखकर वासावा भयभीत हो गया।

उन देवताओं के समूह में सबसे प्रमुख,

रोते हुए बोला, "देखो ये निचले दर्जे के लोग कैसे हैं।"

तैंतीस देवताओं को भी पीछे छोड़ दो!

फिर अपने शासकों के भय के बारे में सुनकर...

गोपाका ने वासवा से कहा:

मनुष्य जगत में भगवान इंद्र

एक बुद्ध, जिन्हें शाक्य ऋषि कहा जाता है,

उसने कामवासना पर महारत हासिल कर ली है।

और ये उनके वे शिष्य थे जो असफल हो गए थे।

मृत्यु के समय सचेतन अवस्था में,

अब मैंने मेरी मदद से इसे वापस पा लिया है।

हालांकि उनमें से एक पीछे छूट गया है

और गंधबों के बीच अभी भी निवास करता है,

ये दोनों, सर्वोच्च ज्ञान के आधार पर स्थापित हैं,

गहन ध्यान में देवताओं को भी ठुकरा दो!

किसी भी शिष्य को कभी संदेह नहीं होना चाहिए

वह सत्य अभी भी साकार हो सकता है

इन आवासों में रहने वालों द्वारा।

जिसने बाढ़ पार कर ली और आगे बढ़ गया

सभी शंकाओं का अंत, हमारी ओर से उचित सम्मान,

हम बुद्ध, विजेता, भगवान को अर्पित करते हैं।"

यहां भी उन्हें सच्चाई का पता चल गया, और इसलिए

उच्चतर प्रतिष्ठा की सीमा को पार कर चुके हैं।

उन दोनों ने इससे भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है।

ब्रह्मा के अनुचरों के लोकों में। और हम

हे भगवान, हम इस आशा से आए हैं कि हमें लाभ प्राप्त होगा।

वह सत्य, और यदि भगवान हमें अनुमति दें,

अपने प्रश्न भगवान से पूछने के लिए।

तब भगवान ने सोचा: 'सक्का ने लंबे समय तक पवित्र जीवन व्यतीत किया है। वह जो भी प्रश्न पूछेगा, वे प्रासंगिक होंगे, निरर्थक नहीं, और वह मेरे उत्तरों को शीघ्रता से समझ लेगा।' अतः भगवान ने सक्का को इस श्लोक में उत्तर दिया:

'सक्का, जो कुछ भी तुम चाहो, मुझसे मांग लो!'

आपके सवाल का मैं जवाब दे दूंगा।

इस प्रकार आमंत्रित किए जाने पर, देवताओं के स्वामी सक्का ने भगवान से अपना पहला प्रश्न पूछा: 'हे भगवान, किन बंधनों से प्राणी बंधे हुए हैं - देवता, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व और अन्य सभी प्रकार के प्राणी - जिनके कारण, यद्यपि वे घृणा, द्वेष, शत्रुता या दुर्भावना के बिना शांति से रहना चाहते हैं, फिर भी वे घृणा में लीन रहते हैं, एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं, शत्रुतापूर्ण और द्वेषपूर्ण व्यवहार करते हैं?' यह सक्का का भगवान से पहला प्रश्न था, और भगवान ने उत्तर दिया: 'हे देवताओं के स्वामी, ईर्ष्या और लोभ के बंधन ही प्राणियों को बांधते हैं, जिसके कारण यद्यपि वे घृणा के बिना रहना चाहते हैं... फिर भी वे घृणा में लीन रहते हैं, एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं, शत्रुतापूर्ण और द्वेषपूर्ण व्यवहार करते हैं।' यह भगवान का उत्तर था, और सक्का प्रसन्न होकर बोले: 'हे भगवान, ऐसा ही है, हे शुभचिंतक! भगवान के उत्तर से मेरा संदेह और अनिश्चितता दूर हो गई है!'

तब सक्का ने अपनी प्रशंसा व्यक्त करने के बाद एक और प्रश्न पूछा: 'परन्तु महोदय, ईर्ष्या और लोभ किस कारण उत्पन्न होते हैं, इनका मूल क्या है, ये कैसे पैदा होते हैं, कैसे उत्पन्न होते हैं? किसकी उपस्थिति के कारण ये उत्पन्न होते हैं, किसकी अनुपस्थिति के कारण ये उत्पन्न होते हैं?'

'हे देवताओं के स्वामी, ईर्ष्या और लोभ, पसंद और नापसंद से उत्पन्न होते हैं; यही इनका मूल है; इसी प्रकार इनका जन्म होता है; जब ये मौजूद होते हैं, तब इनका जन्म होता है; जब ये अनुपस्थित होते हैं, तब इनका जन्म नहीं होता।'

लेकिन महोदय, पसंद और नापसंद किस कारण उत्पन्न होती है?... किसकी उपस्थिति के कारण वे उत्पन्न होती हैं, और किसकी अनुपस्थिति के कारण वे उत्पन्न नहीं होती हैं?

'हे देवताओं के स्वामी, वे इच्छा से उत्पन्न होते हैं... इच्छा की उपस्थिति के कारण वे उत्पन्न होते हैं, इच्छा की अनुपस्थिति के कारण वे उत्पन्न नहीं होते।'

'लेकिन महोदय, इच्छा का जन्म किस कारण होता है?'

'देवताओं के स्वामी, इच्छा चिंतन से उत्पन्न होती है... जब मन किसी बात पर चिंतन करता है, तो इच्छा उत्पन्न होती है; जब मन किसी बात पर चिंतन नहीं करता, तो इच्छा उत्पन्न नहीं होती।'

लेकिन महोदय, सोचने की क्षमता किस चीज से उत्पन्न होती है?

'विस्तार की प्रवृत्ति से ही चिंतन का जन्म होता है... जब यह प्रवृत्ति मौजूद होती है, तब चिंतन का जन्म होता है; जब यह अनुपस्थित होती है, तब चिंतन का जन्म नहीं होता।'

'महोदय, उस भिक्षु ने कौन सा अभ्यास किया है जिसने सही मार्ग प्राप्त कर लिया है जो आवश्यक है और प्रजनन की प्रवृत्ति को रोकने की ओर ले जाता है?'

'देवताओं के स्वामी, मैं घोषणा करता हूँ कि सुख दो प्रकार के होते हैं: एक वह जिसे पाने का प्रयास करना चाहिए, और दूसरा वह जिससे बचना चाहिए। यही बात दुख और समभाव पर भी लागू होती है।'

'मैंने सुख के विषय में यह क्यों कहा? सुख को मैं इस प्रकार समझता हूँ: जब मैंने देखा कि ऐसे सुख की खोज में अशुभ तत्व बढ़ते हैं और शुभ तत्व घटते हैं, तो ऐसे सुख से बचना चाहिए। और जब मैंने देखा कि ऐसे सुख की खोज में अशुभ तत्व घटते हैं और शुभ तत्व बढ़ते हैं, तो ऐसे सुख की प्राप्ति करनी चाहिए। अब, चिंतन और मनन से युक्त सुख और बिना चिंतन से युक्त सुख में, बाद वाला अधिक श्रेष्ठ है। यही बात दुख और समभाव पर भी लागू होती है। और हे देवताओं के स्वामी, यही वह अभ्यास है जिसे सही मार्ग पर चलने वाले भिक्षु ने अपनाया है... जो प्रजनन की प्रवृत्ति को समाप्त करता है।' और सक्का ने भगवान के उत्तर पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

तब सक्का ने अपनी प्रशंसा व्यक्त करने के बाद एक और प्रश्न पूछा: 'अच्छा, महोदय, उस भिक्षु ने कौन सा अभ्यास किया है जिसने नियमों के अनुसार आवश्यक संयम प्राप्त कर लिया है?'

हे देवताओं के स्वामी, मैं घोषणा करता हूँ कि शारीरिक आचरण दो प्रकार के होते हैं: एक वह जिसका पालन करना चाहिए और दूसरा वह जिससे बचना चाहिए। यही बात वाणी और लक्ष्यों की प्राप्ति पर भी लागू होती है। मैंने शारीरिक आचरण के संबंध में यह क्यों कहा है? क्योंकि मैंने शारीरिक आचरण को इस प्रकार समझा है: जब मैंने देखा कि कुछ कर्मों के करने से अस्वास्थ्यकर कारक कम होते हैं और स्वास्थ्यकर कारक बढ़ते हैं, तो ऐसे कर्मों का पालन करना चाहिए। इसीलिए मैंने यह भेद किया है। यही बात वाणी और लक्ष्यों की प्राप्ति पर भी लागू होती है। और हे देवताओं के स्वामी, यही वह अभ्यास है जिसे उस भिक्षु ने अपनाया है जिसने नियमों के अनुसार आवश्यक संयम प्राप्त कर लिया है। और सक्का ने भगवान के उत्तर पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

तब सक्का ने एक और प्रश्न पूछा: 'अच्छा, महोदय, उस भिक्षु ने कौन सा अभ्यास किया है जिसने अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है?'

'देवताओं के स्वामी, मैं घोषणा करता हूँ कि आँखों से देखी जाने वाली वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं: एक वो जिनका पीछा किया जाना चाहिए, और दूसरी वो जिनसे बचा जाना चाहिए। यही बात कान, नाक, जीभ, शरीर और मन द्वारा देखी जाने वाली वस्तुओं पर भी लागू होती है।'

इस पर सक्का ने कहा, "हे भगवान, भगवान ने संक्षेप में जो बताया है, उसका सही अर्थ मैं भली-भांति समझ गया हूँ। हे भगवान, आँख से दिखाई देने वाली कोई भी वस्तु, यदि उसकी खोज से अस्वास्थ्यकर तत्व बढ़ते हैं और स्वास्थ्यकर तत्व घटते हैं, तो उसकी खोज नहीं करनी चाहिए; यदि उसकी खोज से अस्वास्थ्यकर तत्व घटते हैं और स्वास्थ्यकर तत्व बढ़ते हैं, तो ऐसी वस्तु की खोज करनी चाहिए। यही बात कान, नाक, जीभ, शरीर और मन से अनुभव की जाने वाली वस्तुओं पर भी लागू होती है। इस प्रकार मैं भगवान ने संक्षेप में जो बताया है, उसका सही अर्थ भली-भांति समझ गया हूँ, और इस प्रकार भगवान के उत्तर से मैंने अपने संदेह को दूर कर लिया है और अनिश्चितता से छुटकारा पा लिया है।"

तब सक्का ने एक और प्रश्न पूछा: 'हे महोदय, क्या सभी तपस्वी और ब्राह्मण एक ही सिद्धांत का उपदेश देते हैं, एक ही अनुशासन का अभ्यास करते हैं, एक ही चीज चाहते हैं और एक ही लक्ष्य का पीछा करते हैं?'

'नहीं, देवताओं के शासक, वे ऐसा नहीं करते।'

'लेकिन महोदय, वे ऐसा क्यों नहीं करते?'

'हे देवताओं के स्वामी, यह संसार अनेक और विविध तत्वों से बना है। ऐसे में, प्राणी इनमें से किसी न किसी तत्व का अनुसरण करते हैं, और जिस तत्व का वे अनुसरण करते हैं, उसके प्रति वे प्रबल रूप से आसक्त हो जाते हैं, और घोषणा करते हैं: 'यही सत्य है, बाकी सब असत्य है!' इसलिए, वे सभी एक ही बात नहीं सिखाते, एक ही लक्ष्य का पीछा नहीं करते।'

'हे महोदय, क्या सभी तपस्वी और ब्राह्मण पूर्णतः निपुण, बंधनों से मुक्त, पवित्र जीवन में परिपूर्ण हैं, क्या वे पूर्णतः लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं?'

'नहीं, देवताओं के शासक।'

'ऐसा क्यों है महोदय?'

'केवल वे ही लोग पूर्णतः निपुण, बंधनों से मुक्त, पवित्र जीवन में परिपूर्ण और लक्ष्य तक पूर्णतः पहुँच चुके हैं जो भोग-विलास से मुक्त हो चुके हैं।'

तब सक्का ने भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर और अपनी सहमति व्यक्त करते हुए उनसे कहा: "लालसा एक रोग है, लालसा एक फोड़ा है, लालसा एक तीर है। यह व्यक्ति को बहकाती है, उसे किसी न किसी अवस्था में खींच ले जाती है, यही कारण है कि व्यक्ति उच्च और निम्न अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेता है। जबकि अन्य बाहरी पुरोहितों और ध्यानियों ने मुझे ये प्रश्न पूछने का अवसर नहीं दिया, भगवान बुद्ध ने विस्तार से उत्तर दिया है, जिससे उन्होंने मेरी अनिश्चितता और उलझन के तीर को दूर कर दिया है।"

"देवताओं के शासक, क्या आपको याद है कि आपने अन्य पुजारियों और ध्यानियों से ये प्रश्न पूछे थे?"

"जी भगवान, मुझे याद है कि मैंने अन्य पुजारियों और ध्यानियों से ये प्रश्न पूछे थे।"

"यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो क्या आप मुझे बता सकते हैं कि उन्होंने क्या जवाब दिया?"

"भगवान बुद्ध या उनके जैसे किसी व्यक्ति के साथ बैठने में कोई असुविधा नहीं होती।"

"तो मुझे बताइए, देवताओं के शासक।"

"मैंने उन लोगों के पास जाकर, जिन्हें मैं एकांतवास में रहने वाले पुजारी और ध्यानमग्न मानता था, उनसे ये प्रश्न पूछे। लेकिन जब मैंने उनसे ये प्रश्न पूछे, तो वे असमंजस में पड़ गए। असमंजस में होने के कारण, उन्होंने मुझसे ही पूछा, 'आपका नाम क्या है?'"

पूछे जाने पर मैंने उत्तर दिया, 'मैं, महोदय, देवताओं का शासक सक्का हूँ।'

"तो उन्होंने मुझसे आगे पूछा, 'लेकिन इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए आपने कौन सा कर्म किया?'"

"इसलिए मैंने उन्हें धम्म का उतना ही ज्ञान दिया जितना मैंने सुना और समझा था। और वे बस इतना ही जानकर संतुष्ट हो गए: 'हमने देवताओं के स्वामी सक्का के दर्शन किए हैं और उन्होंने हमारे प्रश्नों के उत्तर दिए हैं!' इस प्रकार, मेरे उनके शिष्य बनने के बजाय, वे मेरे शिष्य बन गए। परन्तु हे भगवान, मैं भगवान बुद्ध का शिष्य हूँ, एक ऐसा शिष्य जो सफलता की राह पर चल पड़ा है, दृढ़ निश्चयी हूँ, फिर कभी दुखों की अवस्थाओं में नहीं पड़ूँगा, आत्मज्ञान की ओर अग्रसर हूँ।"

"देवताओं के स्वामी, क्या आपको याद है कि आपने इससे पहले कभी ऐसी खुशी और आनंद का अनुभव किया था?" "जी हां, स्वामी, मुझे याद है।"

"और आपको याद है कि आपने पहले कभी ऐसा सुख और आनंद कैसे अनुभव किया था?" "एक बार, हे भगवान, देव और असुर युद्ध में आमने-सामने थे। उस युद्ध में देव विजयी हुए, जबकि असुर हार गए। युद्ध जीतने के बाद, मेरे मन में यह विचार आया: 'असुरों का जो भी दिव्य पोषण रहा है, देवों का जो भी दिव्य पोषण रहा है, अब देव दोनों उसका आनंद लेंगे।' परन्तु मेरा सुख और आनंद हिंसा और शस्त्रों के क्षेत्र में प्राप्त हुआ। इससे वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्म-जागरूकता, मुक्ति आदि प्राप्त नहीं हुई। परन्तु भगवान बुद्ध के धर्म का पाठ सुनकर मेरा जो सुख और आनंद प्राप्त हुआ, वह हिंसा और शस्त्रों से रहित क्षेत्र में है। इससे वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्म-जागरूकता, मुक्ति आदि प्राप्त होती है।"

'हे देवताओं के स्वामी, जब आप इस प्रकार की संतुष्टि और आनंद का अनुभव कर रहे होते हैं, तो आपके मन में कौन-कौन सी बातें आती हैं?' 'हे भगवान, ऐसे समय में, मेरे मन में छह बातें आती हैं जिनसे मुझे आनंद मिलता है:

मैं, जो मात्र एक देवता के रूप में विद्यमान हूं, ने प्राप्त किया है

कर्म के फलस्वरूप, एक और सांसारिक जीवन का अवसर।

हे भगवान, यही पहली बात है जो मेरे मन में आती है।

'देवताओं के इस अमानवीय क्षेत्र को पीछे छोड़ते हुए,

मैं बिना किसी चूक के उस गर्भ की खोज करूंगा जिसे मैं पाना चाहता हूं।'

वह भगवान दूसरी चीज है...

'मेरी समस्याएं हल हो गईं, मैं खुशी-खुशी बुद्ध के नियमों का पालन करूंगा।'

संयमित और सचेत, और स्पष्ट जागरूकता से परिपूर्ण।"

हे भगवान, यही तीसरी बात है...

और यदि इससे मुझमें ज्ञान की प्राप्ति हो जाए,

एक ज्ञानी व्यक्ति के रूप में मैं वहीं निवास करूंगा और अपने अंत की प्रतीक्षा करूंगा।

हे भगवान, यही चौथी बात है...

'फिर जब मैं दोबारा मानव जगत को छोड़ूंगा, तो मैं

एक बार फिर देवता, और सर्वोच्च पद वाले देवता।'

हे भगवान, यह पाँचवीं बात है...

'देवताओं से भी अधिक गौरवशाली हैं अद्वितीय देवता।'

जिनके बीच रहकर मैं अपना अंतिम निवास बनाऊंगा।'

हे भगवान, यह छठी बात है जो मेरे मन में आती है, और ये वे छह बातें हैं जिनसे मुझे आनंद मिलता है:

मैं लंबे समय तक भटकता रहा, असंतुष्ट, संशय में डूबा हुआ।

तथागत की खोज में। मैंने सोचा

एकांतवास और सादगी में रहने वाले संन्यासी

वे अवश्य ही प्रबुद्ध होंगे: मैं उनकी खोज करूंगा।

मुझे सफलता प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए, और क्या करना चाहिए?

लेकिन इससे असफलता ही मिलती है? — ऐसा पूछा गया तो

वे मुझे यह नहीं बता सके कि मुझे उस रास्ते पर कैसे चलना है।

इसके बजाय, जब उन्हें पता चला कि मैं राजा हूँ

देवताओं ने मुझसे पूछा कि मैं उनके पास क्यों आया था।

और मैंने ही उन्हें वह सब सिखाया जो मुझे पता था।

धम्म के विषय में, और इस पर प्रसन्न होकर, वे

वह चिल्लाया: "हमने वासवा, भगवान को देख लिया है!"

लेकिन अब — मैंने बुद्ध को देख लिया है, और मेरे संदेह दूर हो गए हैं।

मेरे सारे डर दूर हो गए हैं, मेरी सारी आशंकाएं दूर हो गई हैं।

और अब मैं प्रबुद्ध व्यक्ति को नमन करता हूँ।

अंधकार को चित्रित करने वाले को श्रद्धांजलि अर्पित!

तृप्ति के विषय में, बुद्ध को, जो अद्वितीय भगवान हैं,

महान नायक, सूर्य के रिश्तेदार!

जिस प्रकार ब्रह्मा की पूजा देवता करते हैं,

इसलिए आज हम भी आपकी पूजा करते हैं।

हे प्रबुद्ध पुरुष, और अद्वितीय गुरु,

मानव जगत में जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।

या फिर स्वर्ग में, देवताओं के निवास स्थान में!

तब देवताओं के स्वामी सक्का ने गंधर्वों के पंचसिखा से कहा, 'हे मेरे प्रिय पंचसिखा, तुमने भगवान बुद्ध का ध्यान आकर्षित करने में मेरी बहुत सहायता की है। तुम्हारे द्वारा ही हमें भगवान बुद्ध, अरहंत, परम प्रबुद्ध बुद्ध के दर्शन करने का अवसर मिला। मैं तुम्हारा पिता बनूंगा, तुम गंधर्वों के राजा बनोगे, और मैं तुम्हें भद्दा सूर्यचच्चासा दूंगा, जिसकी तुमने कामना की थी।' तब देवताओं के स्वामी सक्का ने अपने हाथ से पृथ्वी को स्पर्श किया और तीन बार कहा,

उस परम पूज्य, उस धन्य, उस सच्चे आत्मजागृत व्यक्ति को नमन!

उस परम पूज्य, उस धन्य, उस सच्चे आत्मजागृत व्यक्ति को नमन!

उस परम पूज्य, उस धन्य, उस सच्चे आत्मजागृत व्यक्ति को नमन!

जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तभी सक्का को धूल रहित, निष्कलंक धम्म दृष्टि प्राप्त हुई - "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब समाप्ति के अधीन है" - जैसा कि उनके देव अनुयायियों को भी हुआ था।

ये वे प्रश्न थे जिनका उत्तर भगवान बुद्ध ने सक्का के कहने पर दिया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » दीघ निकाय » 2.9 महा-सतिपत्थन सुत्त(DN22)

अंतर्वस्तु

1सेवा
2शरीर (काया)
2.1अनापशन ध्यान
2.2संपजना (पूर्ण ज्ञान)
2.3मानस (शरीर पर ध्यान देना)
3भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)
4मन (चित्त)
5मानसिक गुण (धम्म)
5.1उपादान-खंड (समुच्चय के कारण सांस्कृतिक/चिपके रहना)
5.2आयतन (इन्द्रियाँ)
5.3भारांग (ज्ञानोदय कारक)
5.4सक्का (चार आर्य सत्य)
6उत्साह
7यह भी देखें
8चयन

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कुरु देश में ठहरे हुए थे। वहाँ कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं।"

"भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है - दूसरे शब्दों में, संदर्भ के चार ढाँचे। वे चार कौन से हैं?"

"एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है - उत्साही, सतर्क और सचेत - संसार के प्रति लालच और व्याकुलता को त्यागकर। वह भावनाओं... मन... मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है - उत्साही, सतर्क और सचेत - संसार के प्रति लालच और व्याकुलता को त्यागकर।"

शरीर (काया)

काया-अनुपस्सना (शरीर पर ध्यान)

"और एक भिक्षु शरीर पर ही कैसे केंद्रित रहता है?"

अनापना ध्यान

[1] "ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर - अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है और ध्यान को आगे [शाब्दिक रूप से: छाती के सामने] रखता है। हमेशा सचेत रहते हुए, वह साँस लेता है; सचेत रहते हुए वह साँस छोड़ता है।
लंबी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस ले रहा है; या लंबी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस छोड़ रहा है। छोटी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस ले रहा है; या छोटी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस छोड़ रहा है। वह अपने आप को पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस लेने और पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ने का अभ्यास कराता है। वह अपने आप को शरीर की हलचल को शांत करते हुए सांस लेने और शांत करते हुए सांस छोड़ने का अभ्यास कराता है। जैसे एक कुशल खराद कारीगर या उसका शिष्य, जब लंबी मोड़ बनाता है, तो महसूस करता है कि वह लंबी मोड़ बना रहा है, या जब छोटी मोड़ बनाता है, तो महसूस करता है कि वह छोटी मोड़ बना रहा है; उसी प्रकार एक भिक्षु, जब लंबी सांस लेता है, तो महसूस करता है कि वह लंबी सांस ले रहा है; या छोटी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस छोड़ रहा है... वह अपने आप को शरीर की हलचल को शांत करते हुए सांस लेने और शांत करते हुए सांस छोड़ने का अभ्यास कराता है।
इस प्रकार वह आंतरिक रूप से शरीर पर, या बाह्य रूप से शरीर पर, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह शरीर के संबंध में उत्पत्ति की घटना पर, शरीर के संबंध में नश्वरता की घटना पर, या शरीर के संबंध में उत्पत्ति और नश्वरता की घटना पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'शरीर है' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर पर एकाग्र रहता है।
अनापना ध्यान का समापन
[2] "इसके अलावा, चलते समय भिक्षु को यह अहसास होता है कि वह चल रहा है। खड़े होने पर उसे यह अहसास होता है कि वह खड़ा है। बैठने पर उसे यह अहसास होता है कि वह बैठा है। लेटने पर उसे यह अहसास होता है कि वह लेटा है। या उसका शरीर जिस भी स्थिति में हो, वह उसी तरह से अहसास करता है।"
"इस तरह वह आंतरिक रूप से शरीर पर ही केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इसी तरह एक भिक्षु शरीर पर ही केंद्रित रहता है।"

संपजना (पूर्ण ज्ञान)
[3] "इसके अलावा, आगे बढ़ते और लौटते समय, वह पूरी तरह सतर्क रहता है; आगे देखते और पीछे देखते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, अपना ऊपरी वस्त्र और अपना कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बात करते और चुप रहते समय, वह पूरी तरह सतर्क रहता है।"
"इस तरह वह आंतरिक रूप से शरीर पर ही केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इसी तरह एक भिक्षु शरीर पर ही केंद्रित रहता है।"
मानसिका (शरीर पर ध्यान देना)
[4] "इसके अलावा... जैसे कि दोनों सिरों पर खुले हुए एक बोरे में कई प्रकार के अनाज भरे हों - गेहूँ, चावल, मूंग, राजमा, तिल, छिलका उतारा हुआ चावल - और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे बाहर निकालते हुए सोचे, 'यह गेहूँ है। यह चावल है। ये मूंग हैं। ये राजमा हैं। ये तिल हैं। यह छिलका उतारा हुआ चावल है,' उसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु इस शरीर पर, पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरे और कई प्रकार की अशुद्ध चीजों से भरे हुए, विचार करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आँसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों में तरल पदार्थ, मूत्र हैं।'"
"इस तरह वह आंतरिक रूप से शरीर पर ही केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इसी तरह एक भिक्षु शरीर पर ही केंद्रित रहता है।"
[5] "इसके अलावा... जिस प्रकार एक कुशल कसाई या उसका प्रशिक्षु, गाय को मारने के बाद, चौराहे पर बैठकर उसके टुकड़े करता है, उसी प्रकार भिक्षु इस शरीर का - चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, चाहे वह किसी भी प्रकार से व्यवस्थित हो - गुणों के संदर्भ में चिंतन करता है: 'इस शरीर में पृथ्वी गुण, द्रव गुण, अग्नि गुण और वायु गुण हैं।'
"इस तरह वह आंतरिक रूप से शरीर पर ही केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इसी तरह एक भिक्षु शरीर पर ही केंद्रित रहता है।"
[6] "इसके अलावा, मानो वह किसी श्मशान में फेंके गए शव को देखे - एक दिन, दो दिन, तीन दिन पहले मृत - फूला हुआ, पीला पड़ा हुआ और सड़ता हुआ, वह इसे इसी शरीर पर लागू करता है, 'यह शरीर भी: यही इसकी प्रकृति है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है'..."

या फिर, मानो वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसे कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, लकड़बग्घे और अन्य कई जीव नोंच रहे हों... मांस और खून से सना हुआ कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... खून से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... बिना मांस या खून का कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... हड्डियाँ अपनी नसों से अलग होकर चारों दिशाओं में बिखरी हुई हैं - यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ पसली, वहाँ छाती की हड्डी, यहाँ कंधे की हड्डी, वहाँ गर्दन की हड्डी, यहाँ जबड़े की हड्डी, वहाँ दाँत, यहाँ खोपड़ी... हड्डियाँ सफेद हो गई हैं, कुछ-कुछ सीपियों के रंग जैसी... ढेर लगी हुई, एक साल से भी अधिक पुरानी... चूर्ण में परिवर्तित: वह इसे इसी शरीर पर लगाता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है।'
इस प्रकार वह आंतरिक रूप से शरीर पर, या बाह्य रूप से शरीर पर, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह शरीर के संबंध में उत्पत्ति की घटना पर, शरीर के संबंध में नश्वरता की घटना पर, या शरीर के संबंध में उत्पत्ति और नश्वरता की घटना पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'शरीर है' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर पर एकाग्र रहता है।

भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)
वेदना-अनुपस्सना (वेदना पर ध्यान)
"एक भिक्षु स्वयं में ही भावनाओं/संवेदनाओं (वेदना) पर कैसे एकाग्र रहता है? एक उदाहरण है कि जब एक भिक्षु को कोई पीड़ादायक भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे पीड़ादायक भावना महसूस हो रही है। जब उसे कोई सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे सुखद भावना महसूस हो रही है। जब उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस हो रही है।"
जब वेदना के अनुसार शरीर की कोई पीड़ादायक अनुभूति होती है, तो व्यक्ति यह पहचान लेता है कि वह शरीर की पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव कर रहा है। जब शरीर से इतर कोई पीड़ादायक अनुभूति होती है, तो व्यक्ति यह पहचान लेता है कि वह शरीर से इतर कोई पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव कर रहा है। जब शरीर से कोई सुखद अनुभूति होती है, तो व्यक्ति यह पहचान लेता है कि वह शरीर से इतर कोई सुखद अनुभूति का अनुभव कर रहा है। जब शरीर से ऐसी अनुभूति होती है जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखद, तो व्यक्ति यह पहचान लेता है कि वह शरीर से इतर कोई पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव कर रहा है। जब शरीर से ऐसी अनुभूति होती है जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखद, तो व्यक्ति यह पहचान लेता है कि वह शरीर से इतर कोई पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव कर रहा है।
इस प्रकार वह आंतरिक रूप से वेदनाओं पर, या बाह्य रूप से भावनाओं पर, या दोनों पर एकाग्र रहता है। या वह भावनाओं की उत्पत्ति, उनके नष्ट होने, या उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने की प्रक्रिया पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'भावनाएँ हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु भावनाओं पर एकाग्र रहता है।
मन (चित्त)
चित्त-अनुपस्सना (मन/जागरूकता पर ध्यान)
"एक भिक्षु मन पर ही कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है कि जब मन में वासना होती है, तो भिक्षु यह पहचानता है कि मन में वासना है। जब मन में वासना नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में वासना नहीं है। जब मन में घृणा होती है, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा है। जब मन में घृणा नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा नहीं है। जब मन में भ्रम होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन में भ्रम है। जब मन भ्रम रहित होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन भ्रम रहित है।"
जब मन सीमित होता है, तो वह जान लेता है कि मन सीमित है। जब मन बिखरा हुआ होता है, तो वह जान लेता है कि मन बिखरा हुआ है। जब मन विस्तृत होता है, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत है। जब मन विस्तृत नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत नहीं है। जब मन श्रेष्ठ होता है, तो वह जान लेता है कि मन श्रेष्ठ है। जब मन असीम होता है, तो वह जान लेता है कि मन असीम है। जब मन एकाग्र होता है, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र है। जब मन एकाग्र नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र नहीं है। जब मन मुक्त होता है, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त है। जब मन मुक्त नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त नहीं है।
इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मन पर, या बाह्य रूप से मन पर, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मन की उत्पत्ति, मन के क्षय, या मन की उत्पत्ति और क्षय की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मन है' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु मन पर एकाग्र रहता है।

मानसिक गुण (धम्म)
धम्म-अनुपस्सना (धम्म पर ध्यान)
"और एक भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है?"

[1] "एक स्थिति ऐसी है जिसमें एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति ऐसी है जिसमें, भीतर में कामुक इच्छा की उपस्थिति होने पर, एक भिक्षु यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद है।' या, भीतर में कामुक इच्छा की अनुपस्थिति होने पर, वह यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद नहीं है।' वह यह समझता है कि अजन्मी कामुक इच्छा कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह समझता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद कामुक इच्छा का त्याग कैसे होता है। और वह यह समझता है कि त्यागी गई कामुक इच्छा भविष्य में फिर कभी प्रकट नहीं होती। (यही सूत्र शेष बाधाओं के लिए भी दोहराया जाता है: द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और चिंता, और अनिश्चितता।)

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों के उद्‌भव, उनके क्षय, या उनके उद्‌भव एवं क्षय पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है।

उपादान-खंड (समुच्चय के कारण रुकावट/चिपके रहना)

[2] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और वह पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है जहाँ एक भिक्षु [समझता है]: 'रूप ऐसा है, उसकी उत्पत्ति ऐसी है, उसका लुप्त होना ऐसा है। भावना ऐसी है... बोध ऐसा है... रचनाएँ ऐसी हैं... चेतना ऐसी है, उसकी उत्पत्ति ऐसी है, उसका लुप्त होना ऐसा है।'"

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु पांच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

आयतन (इंद्रियां)

[3] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है। और वह छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? वह आँख को देखता है, वह रूपों को देखता है, वह उन दोनों पर निर्भर बंधन को देखता है। वह यह देखता है कि कैसे एक अजन्मे बंधन का उदय होता है। और वह यह देखता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद बंधन का त्याग कैसे होता है। और वह यह देखता है कि त्यागे गए बंधन का भविष्य में कोई पुन: प्रकट होना नहीं होता है। (यही सूत्र शेष इंद्रियों: कान, नाक, जीभ, शरीर और बुद्धि के लिए दोहराया जाता है।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु छह प्रकार की आंतरिक और बाह्य इंद्रिय माध्यमों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

बोझांग (ज्ञानोदय कारक)

[4] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु जागृति/ज्ञानोदय के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही केंद्रित रहता है। और वह जागृति के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि जब जागृति के कारक के रूप में सजगता उपस्थित होती है, तो वह यह समझता है कि 'जागृति के कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित है।' या, जब जागृति के कारक के रूप में सजगता उपस्थित नहीं होती है, तो वह यह समझता है कि 'जागृति के कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित नहीं है।' वह यह समझता है कि जागृति के कारक के रूप में अविकसित सजगता कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह समझता है कि जागृति के कारक के रूप में सजगता के विकास की पराकाष्ठा कैसे होती है, एक बार जब यह उत्पन्न हो जाती है। (यही सूत्र जागृति के शेष कारकों के लिए भी दोहराया जाता है: गुणों का विश्लेषण, दृढ़ता, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से... संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता (उससे आसक्ति नहीं रखता)। इस प्रकार एक भिक्षु जागृति के सात कारकों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

सक्का (चार आर्य सत्य)

[5] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही केंद्रित रहता है। और वह चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि वह वास्तव में मौजूद स्थिति में यह देखता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्‌गम है... यह तनाव का निवारण है... यह तनाव के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'"

[क] "अब तनाव का महान सत्य क्या है? जन्म तनावपूर्ण है, बुढ़ापा तनावपूर्ण है, मृत्यु तनावपूर्ण है; शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा तनावपूर्ण हैं; अपनों से संबंध तनावपूर्ण है; प्रियजनों से वियोग तनावपूर्ण है; मनचाही चीज न मिलना तनावपूर्ण है। संक्षेप में, ये पाँचों आसक्ति-समूह तनावपूर्ण हैं।"

और जन्म क्या है? जन्म लेना, वंशानुक्रम, अस्तित्व में आना, प्रकट होना, विभिन्न प्राणियों के समूह का प्रकट होना और विभिन्न प्राणियों के इंद्रिय-क्षेत्रों का अधिग्रहण, जो भी हो, उसे जन्म कहा जाता है।

"और बुढ़ापा क्या है? किसी भी प्राणी समूह में होने वाली बुढ़ापा, जीर्णता, टूटन, बालों का सफेद होना, झुर्रियों का आना, जीवन शक्ति में कमी आना, क्षमताओं का कमजोर होना, यही बुढ़ापा कहलाता है।"
और मृत्यु क्या है? जो कुछ भी मरना, देहांत होना, विखंडन होना, लुप्त होना, मरना, मृत्यु होना, समय की समाप्ति, समुच्चय का विखंडन, शरीर का त्याग, विभिन्न प्राणियों के जीवन की शक्ति में रुकावट आना, वह सब मृत्यु कहलाता है।
और दुःख क्या है? किसी दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति का दुःख, शोक, उदासी, आंतरिक दुःख, किसी पीड़ादायक घटना से प्रभावित व्यक्ति की आंतरिक उदासी, वही दुःख कहलाता है।
और विलाप क्या है? किसी दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति का रोना, शोक करना, विलाप करना, विलाप करना, शोक करना, विलाप करना, यही विलाप कहलाता है।
"और दर्द क्या है? शरीर में होने वाली किसी भी प्रकार की पीड़ा, शारीरिक असुविधा, या शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ा या असुविधा को दर्द कहा जाता है।"
और पीड़ा क्या है? मानसिक पीड़ा, मानसिक बेचैनी, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ा या बेचैनी के रूप में जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसे पीड़ा कहते हैं।
और निराशा क्या है? दुर्भाग्य से पीड़ित, किसी पीड़ादायक घटना से ग्रस्त व्यक्ति की निराशा, हताशा, व्याकुलता ही निराशा कहलाती है।
"और अपनों के साथ संगति का तनाव क्या है? एक स्थिति वह होती है जब व्यक्ति को अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय दृश्य, ध्वनि, सुगंध, स्वाद या स्पर्श का अनुभव होता है; या व्यक्ति का उन लोगों से संबंध, संपर्क, रिश्ता या संवाद होता है जो उसका बुरा चाहते हैं, उसकी हानि चाहते हैं, उसे असुविधा पहुंचाना चाहते हैं, और उसे बंधनों से मुक्त नहीं करना चाहते। इसे अपनों के साथ संगति का तनाव कहते हैं।"
"प्रियजन से वियोग का कष्ट क्या होता है? यह वह स्थिति है जब मनभावन, सुखद, आकर्षक दृश्य, ध्वनियाँ, सुगंध, स्वाद या स्पर्श संवेदनाएँ प्राप्त नहीं होतीं; या फिर उन लोगों से कोई संबंध, संपर्क, रिश्ता या संवाद नहीं होता जो उनका भला चाहते हैं, जो उनके लाभ की कामना करते हैं, जो उनके आराम की कामना करते हैं, जो उन्हें बंधनों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं, न ही माता-पिता, भाई, बहन, मित्रों, साथियों या रिश्तेदारों से। इसे ही प्रियजन से वियोग का कष्ट कहते हैं।"
और इच्छा पूरी न होने का तनाव क्या है? जन्म के अधीन प्राणियों में यह इच्छा उत्पन्न होती है, 'हे भगवान, हम जन्म के अधीन न हों, और जन्म हमारे लिए कभी न आए।' लेकिन यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होता। यही इच्छा पूरी न होने का तनाव है। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा के अधीन प्राणियों में यह इच्छा उत्पन्न होती है, 'हे भगवान, हम वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा के अधीन न हों, और वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा हमारे लिए कभी न आए।' लेकिन यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होता। यही इच्छा पूरी न होने का तनाव है।
और वे पाँच आसक्ति-समूह क्या हैं जो संक्षेप में तनाव हैं? रूप एक आसक्ति-समूह के रूप में, भावना एक आसक्ति-समूह के रूप में, बोध एक आसक्ति-समूह के रूप में, कल्पनाएँ एक आसक्ति-समूह के रूप में, चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में: इन्हें ही वे पाँच आसक्ति-समूह कहा जाता है जो संक्षेप में तनाव हैं।
इसे तनाव का महान सत्य कहा जाता है।
[ख] "और तनाव की उत्पत्ति का महान सत्य क्या है? वह लालसा जो आगे के विकास को जन्म देती है - जुनून और आनंद के साथ, यहाँ और वहाँ दोनों समय का आनंद लेते हुए - अर्थात्, कामुकता की लालसा, विकास की लालसा, गैर-विकास की लालसा।"
और यह लालसा जब उत्पन्न होती है, तो कहाँ से उत्पन्न होती है? और जब यह निवास करती है, तो कहाँ निवास करती है? संसार के संदर्भ में जो कुछ भी मनभावन और आकर्षक होता है, वहीं से यह लालसा उत्पन्न होती है। और जब यह निवास करती है, तो वहीं निवास करती है।
और संसार के संदर्भ में क्या मनमोहक और आकर्षक है? संसार के संदर्भ में आँख ही मनमोहक और आकर्षक है। जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो वहीं से उत्पन्न होती है। जब यह लालसा ठहरती है, तो वहीं ठहरती है।
कान... नाक... जीभ... शरीर... बुद्धि...
"रूप... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्श संवेदनाएँ... विचार..."
"दृष्टि-चेतना... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... बुद्धि-चेतना..."
"आँखों का संपर्क... कानों का संपर्क... नाक का संपर्क... जीभ का संपर्क... शारीरिक संपर्क... बौद्धिक संपर्क..."
आँखों के संपर्क से उत्पन्न भावना... कानों के संपर्क से उत्पन्न भावना... नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना... जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना... शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना... बुद्धि के संपर्क से उत्पन्न भावना...
आकृतियों की अनुभूति... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्श संवेदनाओं की अनुभूति... विचारों की अनुभूति...
"रूपों के लिए इरादा... ध्वनियों के लिए इरादा... गंधों के लिए इरादा... स्वादों के लिए इरादा... स्पर्श संवेदनाओं के लिए इरादा... विचारों के लिए इरादा..."

रूपों की लालसा... ध्वनियों की लालसा... गंधों की लालसा... स्वादों की लालसा... स्पर्श संवेदनाओं की लालसा... विचारों की लालसा...

"रूपों पर केंद्रित विचार... ध्वनियों पर केंद्रित विचार... गंधों पर केंद्रित विचार... स्वादों पर केंद्रित विचार... स्पर्श संवेदनाओं पर केंद्रित विचार... विचारों पर केंद्रित विचार..."

रूपों का मूल्यांकन... ध्वनियों का मूल्यांकन... गंधों का मूल्यांकन... स्वादों का मूल्यांकन... स्पर्श संवेदनाओं का मूल्यांकन... विचारों का मूल्यांकन, संसार के संदर्भ में मनमोहक और आकर्षक है। यहीं से यह लालसा उत्पन्न होती है। यहीं पर यह निवास करती है।

इसे तनाव की उत्पत्ति का महान सत्य कहा जाता है।

[ग] "और तनाव के निवारण का महान सत्य क्या है? शेष न रहने वाला लुप्त होना और निवारण, त्याग, परित्याग, मुक्ति और उस लालसा को छोड़ देना।"

और जब इस लालसा का त्याग किया जाता है, तो यह कहाँ त्यागी जाती है? और जब यह समाप्त होती है, तो यह कहाँ समाप्त होती है? संसार के संदर्भ में जो कुछ भी प्यारा और आकर्षक है: त्यागे जाने पर, यह लालसा वहीं त्यागी जाती है। वहीं, समाप्त होने पर, यह समाप्त होती है।

और संसार के संदर्भ में क्या मनमोहक और आकर्षक है? संसार के संदर्भ में आँख ही मनमोहक और आकर्षक है। जब इस दृष्टि का त्याग हो जाता है, तो यह लालसा भी समाप्त हो जाती है। जब यह समाप्त हो जाती है, तो यह लालसा भी समाप्त हो जाती है।

कान... नाक... जीभ... शरीर... बुद्धि...

"रूप... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्श संवेदनाएँ... विचार..."

"दृष्टि-चेतना... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... बुद्धि-चेतना..."

"आँखों का संपर्क... कानों का संपर्क... नाक का संपर्क... जीभ का संपर्क... शारीरिक संपर्क... बौद्धिक संपर्क..."

आँखों के संपर्क से उत्पन्न भावना... कानों के संपर्क से उत्पन्न भावना... नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना... जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना... शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना... बुद्धि के संपर्क से उत्पन्न भावना...

आकृतियों की अनुभूति... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्श संवेदनाओं की अनुभूति... विचारों की अनुभूति...

"रूपों के लिए इरादा... ध्वनियों के लिए इरादा... गंधों के लिए इरादा... स्वादों के लिए इरादा... स्पर्श संवेदनाओं के लिए इरादा... विचारों के लिए इरादा..."

रूपों की लालसा... ध्वनियों की लालसा... गंधों की लालसा... स्वादों की लालसा... स्पर्श संवेदनाओं की लालसा... विचारों की लालसा...

"रूपों पर केंद्रित विचार... ध्वनियों पर केंद्रित विचार... गंधों पर केंद्रित विचार... स्वादों पर केंद्रित विचार... स्पर्श संवेदनाओं पर केंद्रित विचार... विचारों पर केंद्रित विचार..."

रूपों का मूल्यांकन... ध्वनियों का मूल्यांकन... गंधों का मूल्यांकन... स्वादों का मूल्यांकन... स्पर्श संवेदनाओं का मूल्यांकन... विचारों का मूल्यांकन, विश्व के संदर्भ में मनमोहक और आकर्षक है। यहीं पर, जब इसे त्याग दिया जाता है, तो यह लालसा भी त्याग जाती है। यहीं पर, जब यह समाप्त हो जाती है, तो यह समाप्त हो जाती है।

इसे ही तनाव से मुक्ति का महान सत्य कहा जाता है।

[घ] "और तनाव से मुक्ति दिलाने वाले अभ्यास के मार्ग का महान सत्य क्या है? बस यही महान अष्टमार्ग: सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।"

और सही दृष्टिकोण क्या है? तनाव के संबंध में ज्ञान, तनाव की उत्पत्ति के संबंध में ज्ञान, तनाव की समाप्ति के संबंध में ज्ञान, तनाव की समाप्ति की ओर ले जाने वाले अभ्यास के तरीके के संबंध में ज्ञान: यही सही दृष्टिकोण कहलाता है।

और सही संकल्प क्या है? त्याग की आकांक्षा रखना, द्वेष से मुक्ति पाना, अहिंसा की ओर अग्रसर होना: यही सही संकल्प कहलाता है।

और सही वाणी क्या है? झूठ बोलने से, फूट डालने वाली बातों से, अपशब्द बोलने से और व्यर्थ की बातों से बचना ही सही वाणी कहलाता है।

और सही कर्म क्या है? जीवन लेने से, चोरी करने से और अवैध यौन संबंध से दूर रहना। यही सही कर्म कहलाता है।

और सही आजीविका क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें श्रेष्ठ पुरुषों का एक शिष्य बेईमानी से आजीविका छोड़कर सही आजीविका से अपना जीवन यापन करता है: इसे सही आजीविका कहा जाता है।

और सही प्रयास क्या है? वह स्थिति है जब एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, दृढ़ता जगाता है, अपने इरादे को कायम रखता है और उसे लागू करता है ताकि अभी तक उत्पन्न न हुए बुरे, अकुशल गुणों का उदय न हो... उत्पन्न हो चुके बुरे, अकुशल गुणों का त्याग हो... अभी तक उत्पन्न न हुए कुशल गुणों का उदय हो... (और) उत्पन्न हो चुके कुशल गुणों का रखरखाव, भ्रम से मुक्ति, वृद्धि, परिपूर्णता, विकास और पराकाष्ठा हो: इसे सही प्रयास कहा जाता है।

और सही ध्यान क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर। वह भावनाओं पर ही एकाग्र रहता है... मन पर ही... मानसिक गुणों पर ही—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर। इसे ही सही ध्यान कहते हैं।

और सही एकाग्रता क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचार और मूल्यांकन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के लुप्त होने पर वह समभाव में, सचेत और जागरूक होकर, सुख के प्रति शारीरिक रूप से संवेदनशील होकर स्थिर रहता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सचेत होकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ - वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। इसे ही सही एकाग्रता कहते हैं।

इसे ही तनाव से मुक्ति दिलाने वाले अभ्यास के मार्ग का महान सत्य कहा जाता है।

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों के उद्भव, उनके क्षय, या उनके उद्भव एवं क्षय की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है...

निष्कर्ष

"अब, यदि कोई व्यक्ति सात वर्षों तक इस प्रकार से संदर्भ के इन चार ढाँचों को विकसित करता है, तो उससे दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति-पोषण का कोई अवशेष बचा हो - तो अनात्म।"

"सात साल तो छोड़ ही दीजिए। यदि कोई व्यक्ति इन चार संदर्भों को इस प्रकार छह साल... पांच... चार... तीन... दो साल... एक साल... सात महीने... छह महीने... पांच... चार... तीन... दो महीने... एक महीना... आधा महीना तक विकसित करता रहे, तो उसे दो में से एक परिणाम की उम्मीद की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, या - यदि आसक्ति-आधारित जीवन का कोई अंश शेष रहे - तो पुनर्जन्म नहीं होगा।"

"आधे महीने की तो बात ही छोड़िए। यदि कोई व्यक्ति सात दिनों तक इस प्रकार इन चार संदर्भों को विकसित करे, तो उसे दो में से एक फल की उम्मीद की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त हो जाए, या - यदि आसक्ति-आधारित जीवन का कोई अंश शेष रहे - तो अनात्मवाद प्राप्त हो जाए।"

"'यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय पाने, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की अनुभूति का सीधा मार्ग है - दूसरे शब्दों में, संदर्भ के चार ढाँचे।' ऐसा कहा गया था, और इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 2.10 पयासी सुत्त(DN23)
पायसी सूत्र में
राजकुमार पायसी पुनर्जन्म (पुनरावतार) के सिद्धांत (और कर्मों के परिणाम स्वरूप) के अस्तित्व पर विवाद करते हैं, लेकिन इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

मैंने ऐसा सुना है: एक बार पूज्य (वरिष्ठ भिक्षु) कुमार-कस्सपा लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक समूह के साथ कोसल का भ्रमण कर रहे थे और वे सेताव्य नामक एक नगर में पहुँचे, जहाँ उन्होंने ठहरने का निर्णय लिया। उन्होंने नगर के सबसे उत्तरी क्षेत्र में, सिम्सपा नामक वन में एक निवास स्थान चुना। राजकुमार पायसी भी सेताव्य में रह रहे थे, क्योंकि यह कोसल के शासक राजा पसेनदी द्वारा उन्हें उपहार में दिया गया था। यह वन हरा-भरा था और इसकी आबादी बहुत अधिक थी, साथ ही भोजन और जल की प्रचुर उपलब्धता भी थी। पता चला कि राजकुमार पायसी एक विकृत सोच से ग्रसित थे - उनका मानना था, "मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं है, हमारे अपने संसार के अलावा कोई दूसरा संसार नहीं है। न तो देवदूत हैं और न ही राक्षस। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई परिणाम नहीं होता।"

अब सेताव्य के लोगों में यह बात फैलने लगी थी कि तपस्वी कुमार-कस्सपा उनके सुंदर नगर में रहने आए हैं और वे बुद्ध के शिष्य हैं। कुमार के बारे में चारों ओर प्रशंसा की बातें फैल रही थीं, जैसे: 'वह कुमार, वह बुद्धिमान और अनुभवी हैं।' 'वह कुमार, वह अपनी उम्र से कहीं अधिक ज्ञानवान हैं।' 'वह कुमार, वह एक कुशल वक्ता हैं - वह हमारे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं।' 'क्या आपने सुना? उत्तरी वन में रहने वाले तपस्वी कुमार - वह एक पवित्र अरहंत हैं! ऐसे पुरुषों को देखना हमेशा सुखद होता है।' जैसे ही यह खबर फैली, लोग कुमार से मिलने वन की ओर चल पड़े।

राजकुमार पायसी अपने बरामदे में बैठे हुए थे और उन्होंने इन लोगों को जंगल की ओर जाते देखा। स्वाभाविक रूप से, इससे उनकी जिज्ञासा जागी और उन्होंने अपने एक रक्षक से पूछा कि वे क्या कर रहे हैं। रक्षक ने बताया कि कुमार-कस्सपा जंगल में ठहरे हुए हैं और उनके बारे में बहुत अच्छी बातें हो रही हैं, हर जगह लोग उन्हें संत बता रहे हैं। रक्षक ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, 'जंगल में जाने वाले लोग स्वयं कुमार के दर्शन करना चाहते हैं।'

हम्म। यह तो बहुत दिलचस्प साबित हो सकता है। जाओ और उन्हें रोको, उन्हें मेरे लिए इंतज़ार करने को कहो, क्योंकि मैं भी आ रहा हूँ। यह कुमार झूठी बातें फैला रहा है, लोगों के दिमाग में मृत्यु के बाद जीवन, परलोक, देवदूत और राक्षस जैसी बातें भर रहा है, और उसका दावा है कि हर कर्म का फल होता है। मूर्खता!

"जी हां, मेरे स्वामी," रेंजर ने कहा और उसने संदेश पहुंचा दिया।

इसलिए राजकुमार पायसी लोगों के साथ जंगल में गए, जहाँ वे कुमार के निवास पर पहुँचे। उन्होंने कुमार से अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए, जबकि उन्होंने समूह के अन्य लोगों को भी ऐसा ही करते देखा। कुछ लोग अत्यंत श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर कुमार को प्रणाम कर रहे थे। अन्य लोग उन्हें अपने बराबर, लगभग बराबर, या थोड़ा अधिक बराबर मानकर अभिवादन कर रहे थे। कुछ ने केवल सिर हिलाया, या कुछ भी नहीं किया, और बस बैठ गए।

जब सब लोग बैठ गए, तो राजकुमार पायसी ने कहा, "आदरणीय कुमार, मेरा मानना है कि कर्मों का कोई फल नहीं होता। मेरा मानना है कि मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं है, हमारे संसार के परे कोई दूसरा संसार नहीं है। मुझे लगता है कि देवदूत और राक्षस तो बच्चों के सपनों की बातें हैं।"

"हम्म... राजकुमार," कुमार ने जवाब दिया, उनकी आवाज़ किसी डॉक्टर की तरह लग रही थी जो किसी मरीज़ का निदान कर रहा हो। "आपका दृष्टिकोण अनोखा है, क्योंकि मैंने कभी किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जो इस तरह से बात करता हो। हम्म... मुझे लगता है कि मुझे इस बारे में आपसे कुछ सवाल पूछने चाहिए। आपका क्या विचार है, राजकुमार? क्या सूर्य और चंद्रमा इस दुनिया में मौजूद हैं, या इससे अलग हैं? क्या वे मनुष्य हैं? या वे कोई दिव्य अमानवीय प्राणी हैं?"

"आरोवर कुमार, वे इस दुनिया से परे मौजूद हैं, और वे दिव्य और अमानवीय हैं।"

"तो फिर, राजकुमार, क्या आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि अन्य लोक भी अस्तित्व में हो सकते हैं, कि देवदूत और राक्षस केवल सपनों की चीजें नहीं हैं, और कर्मों का फल अवश्य मिलता है?"

"कुमारा, तुम इस बारे में कुछ भी कहो, मेरा दृष्टिकोण अपरिवर्तित रहेगा।"

"क्यों? क्या आपके पास कोई कारण है?"

"सहज रूप में।"

"शायद, राजकुमार, आप इसे मेरे साथ साझा कर सकते हैं?"

"आरवियन कुमारा, मेरे मित्रों, सहकर्मियों और रिश्तेदारों में ऐसे लोग हैं जो हत्या करते हैं, चोरी करते हैं, यौन दुराचार करते हैं; ऐसे लोग हैं जो झूठ बोलते हैं, अपशब्द और कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं, व्यर्थ की गपशप में लिप्त रहते हैं, घृणा और पूर्वाग्रह से भरे हुए हैं, गलत विचारों से लबालब भरे हुए हैं। कई बार, जब वे अपनी मृत्युशय्या पर थे, बीमार और पीड़ित थे, जब उनके ठीक होने की कोई उम्मीद नहीं थी, मैंने उनसे कहा: "कुछ धर्मगुरु कहते हैं कि आप जैसे लोगों को मरने के बाद परलोक में दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा, कि आप एक भयानक जगह में, दुखों की जगह में, यातना कक्ष जैसी दुनिया में जन्म लेंगे: नरक लोक में। यदि उनकी बात सच है, तो मेरे मित्र, आप निश्चित रूप से ऐसी ही दुनिया में पहुँचेंगे। यदि आप वहाँ पहुँचते हैं, और यदि स्वर्गदूतों और राक्षसों के अस्तित्व, परलोक और आपके कर्मों के परिणामों के बारे में उनकी बात सही है, तो कृपया मुझे सूचित करें, या किसी दूत को भेजकर मुझे सूचित करें। आप मेरे लिए हमेशा भरोसेमंद और विश्वसनीय रहे हैं; और अगर आप कहते हैं कि आपने ये चीजें देखी हैं, तो मेरे लिए यही काफी

सबूत है।" आदरणीय कुमारा, वे इस बात पर सहमत हो गए, और आज तक उनकी तरफ से एक भी शब्द नहीं आया है, न ही उन्होंने कोई संदेशवाहक भेजा है। यही कारण है कि मैं अपने विचार पर कायम हूं।"

"हम्म। मुझे लगता है, राजकुमार, कि हमें इसकी और जाँच करनी चाहिए। इस परिदृश्य पर विचार करें: एक चोर को पकड़ा जाता है और आपके पास लाया जाता है, और उसे पकड़ने वाला कहता है, "यह आदमी चोर है, महाराज, रंगे हाथों पकड़ा गया है, और उसके सामने बीस गवाह हैं! उसे क्या सज़ा दी जानी चाहिए?"

अब मान लीजिए कि आपने कहा, "उसे सबक सिखाओ: उसके हाथ बांधकर उसे पूरे शहर में घुमाओ, उसकी दाढ़ी और बाल दोनों मुंडवा दो और फिर उसका सिर उसके कंधों से अलग करके पूरे शहर के सामने प्रदर्शित करो।"

"अब मान लीजिए, राजकुमार, कि चोर बीच में ही टोकते हुए बोले, 'नहीं। मुझे सज़ा देने से पहले फलाँ गाँव में अपने मित्रों और रिश्तेदारों से मिलने जाना है। मुझे उनसे मिलने दीजिए, फिर मैं लौट आऊँगा।' आपका क्या विचार है? क्या आप उसकी इच्छा पूरी करेंगे और उस पर भरोसा करेंगे कि वह जल्लाद के पास लौट आएगा? या आप उसका सिर धड़ से अलग कर देंगे?"

"उसे नजरअंदाज कर दिया जाएगा, कुमार, और उसका सिर तुरंत काट दिया जाएगा।"

"राजकुमार, इस पर विचार कीजिए: आपके मित्र को राक्षस नरक में घसीटकर एक महाराक्षस के पास ले जाते हैं, जलती हुई जंजीरों से जकड़ा हुआ, नुकीली चट्टानों से टकराकर खून से लथपथ और घायल अवस्था में - और यातना के उपकरणों के पास ले जाने से पहले, वह महाराक्षस से कहता है, "क्षमा कीजिए? राक्षस? मुझे वापस जाने दीजिए - मैंने अपने मित्र, राजकुमार पायसी को एक संदेश पहुंचाने का वादा किया था..." जिस प्रकार आप चोर की अनदेखी करके उसका सिर कलम करवा देते, उसी प्रकार महाराक्षस आपके मित्र की अनदेखी करेगा।"

"वाह! आप चाहे कुछ भी कह लें, पूज्य कुमारा, आप मुझे मना नहीं सकते। मेरे विचार अटल हैं!"

"फिर से? क्यों?"

"आरवन्न कुमारा, मेरे कुछ मित्र ऐसे भी हैं जो इस विचारधारा के विपरीत हैं, जो हर प्रकार के बुरे कामों से दूर रहते हैं, अच्छे कामों में लगे रहते हैं और सही विचारों से परिपूर्ण हैं। कई बार वे भी मृत्युशय्या पर थे, बीमार थे, पीड़ा झेल रहे थे, और उनके ठीक होने की कोई आशा नहीं थी। तब मैंने उनसे कहा: "कुछ धर्मगुरु कहते हैं कि आप जैसे लोग मृत्यु के बाद परम आनंद के स्थान पर जाते हैं। आप हमेशा से भरोसेमंद और विश्वसनीय रहे हैं, इसलिए जब आपकी मृत्यु हो, और यदि आप ऐसे स्थान पर जाएँ, तो वापस आएँ या किसी दूत को भेजें और मुझे बताएँ कि यह सच है या नहीं।" वे इस बात से सहमत हो गए, और आज तक न तो वे आए हैं और न ही उन्होंने किसी दूत को भेजा है। इसीलिए मेरा मत आज भी अटल है।"

"हम्म। राजकुमार, इस पर विचार कीजिए: मान लीजिए एक आदमी पत्थर से ठोकर खाकर एक गहरे गड्ढे में सिर के बल गिर जाता है। इस गड्ढे में ताजा गोबर और गंदी चीजों से निकला पित्त है - साथ ही कीड़े, मक्खियां, परजीवी और गोबर की गंध पसंद करने वाले जीव भी हैं। इस मल में बलगम भी मिला हुआ है, और इस गड्ढे में रहने वाले हर जीव के रोमछिद्रों से लगातार मवाद निकल रहा है। फिर, यह देखकर आप अपने आदमियों से कहते हैं, "जल्दी! उसे बाहर निकालो!" और वे ऐसा ही करते हैं। उसे बचाकर, आप उसके शरीर से बलगम, पित्त और अन्य असंख्य गंदगी को साफ करवाते हैं। फिर, उसे अपना मेहमान बनाकर, आप उसे नए रेशमी वस्त्र, इत्र, गहने और अन्य सभी प्रकार के उत्तम आभूषणों से सजाते हैं। फिर, वह महल में आपके साथ अनेकों सुखों का आनंद लेता है। आपका क्या विचार है, राजकुमार? क्या वह कभी स्वेच्छा से उस गड्ढे में वापस जाना चाहेगा जहाँ से आपने उसे निकलवाया था?"

उफ़। नहीं। घिनौना...

"ओह क्यों नहीं?"

"क्योंकि कोई भी समझदार व्यक्ति स्वेच्छा से ऐसे गड्ढे में कदम नहीं रखेगा! यह घिनौना है, और मुझे लगता है कि यहां मौजूद हर कोई इससे सहमत होगा!"

"खैर, राजकुमार, जिस प्रकार आपको कीड़े-मकोड़ों के सिरे और रोमछिद्रों से बलगम निकालने वाले जीव घृणित लगते हैं, उसी प्रकार स्वर्गदूतों को मनुष्य घृणित लगते हैं, और उनके लिए मनुष्यलोक गोबर से भरे गड्ढे के समान है। तो फिर आप अपने मित्रों से यह अपेक्षा क्यों करते हैं कि वे केवल आपको संदेश देने के लिए स्वेच्छा से इस गंदगी के गड्ढे में उतरें? स्वीकार कीजिए, राजकुमार, कि आपका दृष्टिकोण गलत है!"

"अरे! आप जो भी कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता — मेरे विचार अटल हैं।"

"अच्छा, क्या आपके पास कोई और कारण है?"

"जी हां, रेवरेंड कुमारा।"

"मुझे इसके बारे में बताओ ताकि हम इसकी तह तक पहुँच सकें।" कुमार-कस्सपा ने कहा, जिसका अर्थ था राजकुमार के गलत विचारों की जड़, हालांकि राजकुमार का मानना था कि उनका मतलब अन्य लोकों के अस्तित्व के रहस्य से था।

"हे पूज्य कुमारा, मेरे कुछ मित्र थे जिन्होंने सही मार्ग का अनुसरण किया, वे हर तरह से बहुत अच्छे लोग और नागरिक थे। कुछ धर्मगुरुओं के अनुसार, उन्हें तो तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में जाना चाहिए था। फिर भी, जब उनमें से एक की मृत्यु हुई, तो मैंने उनसे कहा, "तुम हमेशा भरोसेमंद और विश्वसनीय रहे हो। कुछ धर्मगुरुओं का कहना है कि तुम्हारी जीवनशैली और सही मार्ग का अनुसरण करने के कारण तुम्हारा पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में होगा। यदि ऐसा है, तो कृपया आकर मुझे बताएं कि क्या यह सच है, या किसी दूत को भेजकर मुझे बताएं कि क्या यह सच है। आज तक उन्होंने न तो मुझसे संपर्क किया है और न ही कोई दूत भेजा है।"

हम्म। अच्छा, राजकुमार... ज़रा सोचो। तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में समय अलग गति से चलता है और लोग बहुत लंबी आयु जीते हैं। हमारी सदी के सौ वर्षों में, उनके लिए केवल एक दिन, चौबीस घंटे ही बीते होंगे। इन सौ वर्षों के तीस दिन मिलकर उनका एक महीना बनाते हैं, ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं और ऐसे हज़ार वर्ष लगभग तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में जन्म लेने वालों का जीवनकाल होता है। मान लो कि तुम्हारा मित्र यह तय करे, "मैं राजकुमार को अपना संदेश देने के लिए उस अपवित्र दुनिया में बस कुछ समय के लिए वापस जाऊँगा — मैं कल निकलूँगा। या शायद, इस जगह को थोड़ा और देखने के बाद, दो-तीन दिनों में, मैं उनसे मिलने के लिए निकलूँगा।" — क्या वह ऐसा कर पाता?

"बिल्कुल नहीं, पूज्य कुमार, क्योंकि आपके दिए तर्क के अनुसार, जब तक वह वहाँ तीन दिन बिताएगा, तब तक हम सब मर चुके होंगे। लेकिन मुझे नहीं लगता कि तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में जन्म लेने वाले इतने लंबे समय तक जीवित रहते हैं, या समय की गति अलग होती है। आपको उनके जीवनकाल या उनके समय के बारे में कैसे पता है?"

आह! राजकुमार, ज़रा सोचिए, एक ऐसा व्यक्ति जो जन्म से ही दृष्टिहीन हो। उसने कभी प्रकाश और अंधकार, नीला और लाल, चंद्रमा और सूर्य का अनुभव नहीं किया हो। वह व्यक्ति शायद कहे, "प्रकाश और अंधकार तो अवास्तविक चीज़ें हैं, उनका अस्तित्व ही नहीं हो सकता, वे तो बच्चों के सपनों की बातें हैं।" या "रंग? यह विचार ही मेरे लिए असंभव है! मुझे इन चीज़ों का ज्ञान नहीं है, इसलिए इनका अस्तित्व ही नहीं हो सकता।" क्या वह सही होगा, राजकुमार?

"क्या? नहीं। जिस कमरे में हम अभी हैं, उसमें भी प्रकाश और अंधकार मौजूद है। रंग हमारे चारों ओर मौजूद हैं। ऐसा व्यक्ति गलत होगा।"

"राजकुमार, आप उस अंधे व्यक्ति के समान हैं। जैसा आप मानते हैं, भौतिक आँखों से परलोक नहीं देखे जा सकते। वे पवित्र पुरुष, वे तपस्वी जो एकांतवास में जाकर आध्यात्मिक विकास करते हैं, उन्हें ही शुद्ध दृष्टि प्राप्त होती है। यह शुद्ध दृष्टि भौतिक आँख से कहीं अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि इससे वे परलोक को उसके राक्षसों और देवदूतों सहित देख सकते हैं। इसी प्रकार हम पवित्र पुरुष परलोक में देख पाते हैं। इसी प्रकार हम राक्षसों और देवदूतों के बारे में, और तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में निवास करने वालों के बारे में जानते हैं। इसी प्रकार हम जानते हैं कि कर्मों का फल होता है।"

"मेरी राय अब भी अटल है, रेवरेंड कुमारा, आप कुछ भी कहें।"

"आप विश्वास क्यों नहीं करते?"

"हाहा! आप जैसे पवित्र पुरुष मृत्यु के बाद मिलने वाले अद्‌भुत जीवन के बारे में, किसी दूसरे लोक में मिलने वाले अनगिनत सुख-सुविधाओं के बारे में बड़ी ही काव्यात्मक बातें करते हैं। लेकिन ध्यान दीजिए, पूज्य कुमार: उनमें से एक भी दुख या मृत्यु नहीं चाहता। वे सभी सुख-सुविधाओं के लिए और यथासंभव लंबे समय तक जीने के लिए प्रयासरत हैं। यदि ऐसे स्वर्ग लोक मौजूद हैं और ये पवित्र पुरुष उन्हें देख सकते हैं, तो वे स्वयं को चाकू क्यों नहीं मार लेते, या विष क्यों नहीं पी लेते, या किसी चट्टान से कूदकर इन स्वर्गों की यात्रा को शीघ्र क्यों नहीं कर लेते? वे ऐसा नहीं करते! यही एक और कारण है कि मैं दूसरे लोकों, स्वर्गदूतों और राक्षसों, या कर्म (कर्मों के फल) में विश्वास नहीं करता।"

हम्म। इस दृष्टांत पर गौर कीजिए और ध्यान से विचार कीजिए: एक धनी व्यक्ति की दो पत्नियाँ थीं। एक पत्नी गर्भवती थी और दूसरी का दस या बारह वर्ष का पुत्र था। पुत्र ही इस धनी व्यक्ति का उत्तराधिकारी था। पिता की मृत्यु हो गई और पुत्र अपनी विरासत पर दावा करने गया, लेकिन गर्भवती माँ ने विनती की, "रुको! मेरे बच्चे के जन्म तक रुको! यदि बच्चा लड़का हुआ, तो उसे इस संपत्ति का आधा हिस्सा मिलेगा, लेकिन यदि लड़की हुई, तो वह आपकी दासी बन जाएगी।" अपने और अपने बच्चे के लिए आधी संपत्ति पाने की इच्छा से, वह उत्तराधिकारी के विरासत पर दावा करने आने पर हर बार यही विनती करती थी। फिर उसने चाकू उठाया और बच्चे के जन्म को शीघ्र करने और इस प्रकार अपनी संपत्ति प्राप्त करने के लिए अपना गर्भ चीरने का प्रयास किया। हालाँकि, ऐसा करने में उसने स्वयं को और अजन्मे बच्चे दोनों को नष्ट कर दिया।

"इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति परलोकों का सुख भोगने के लिए अपना प्राण त्याग देता है, तो वह न केवल इस जीवन को, बल्कि अगले जीवन को भी नष्ट कर देता है। पास्ता को पूरी तरह उबलने से पहले नहीं खाना चाहिए, वरना आपके दांत और पेट खराब हो जाएंगे। पवित्र पुरुषों द्वारा अर्जित पुण्य उनके जीवनकाल के साथ बढ़ता ही जाता है। अब, राजकुमार, अपनी गलती स्वीकार कीजिए।"

"नहीं। मैं अपने विचारों पर अडिग हूं, आपने जो कहा उससे उनमें कोई बदलाव नहीं आया है।"

"अरे? क्या आपके पास कोई और कारण है?"

"हां, और भी बहुत कुछ।"

"अच्छा, शर्माओ मत। मुझे अपना कारण बताओ।"

"आदरणीय कुमार, एक बार एक चोर को मेरे पास लाया गया, जो चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था और उसे सज़ा मिलनी ज़रूरी थी। जब उसे सज़ा सुनाने का समय आया, तो मैंने कहा, "इस आदमी को ले जाओ और इसे एक बड़े बर्तन में डाल दो, इसके हाथ-पैर बांध दो और मुंह पर पट्टी बांध दो। फिर बर्तन के ऊपर गीली चमड़ी से सील कर दो और उसे बिना गर्म की हुई मिट्टी से ढक दो। फिर बर्तन को चूल्हे में रख दो और तेज़ आग जला दो।" उन्होंने वैसा ही किया। जब वह मर गया, तो बर्तन को बाहर निकाला गया और खोला गया। फिर, मुंह पर बंधी पट्टी हटाकर हमने देखा कि क्या उसकी आत्मा, उसका प्राण, उसका सार - बाहर निकलकर अंततः मुक्त हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, न कोई आत्मा थी, न कोई प्राण, न कोई सार। इसीलिए मुझे लगता है कि कोई दूसरा लोक नहीं है।"

"बहुत बढ़िया। अच्छा, राजकुमार, जब आप झपकी ले रहे होते हैं, या सो रहे होते हैं, तो क्या आप मानते हैं कि आपको कहीं और की जगहें दिखाई देती हैं? तालाब और सुंदर जंगल, या शायद बादलों में बने महल? या शायद गहरी गुफाएँ?"

"कुछ ऐसा ही, लेकिन हां, मुझे सपने आते हैं, रेवरेंड कुमारा।"

"क्या तुम्हारी रक्षा के लिए नौकर और रखैलें नहीं तैनात हैं?"

"हाँ मैं हूँ।"

"और क्या उन्होंने कभी सोते समय तुम्हारी आत्मा को आते-जाते देखा है?"

"अह... नहीं।"

"खैर, राजकुमार, यदि वे आपके जीवित रहते आपकी आत्मा को नहीं देख सकते, तो आप किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा को देखने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?"

"जो भी हो। मैं अब भी इस बात पर कायम हूं कि अन्य दुनियाएं मौजूद नहीं हैं, बल्कि हो ही नहीं सकतीं।"

"अरे? लेकिन क्यों?"

राजकुमार ने आत्मा के पलायन को देखने के लिए अपने द्वारा अपनाए गए विभिन्न तरीकों के बारे में बताना शुरू किया, जो सभी मूर्खतापूर्ण थे। हर बार, कुमार ने उन्हें एक दृष्टांत देकर समझाया कि वे तरीके कारगर क्यों नहीं होंगे और यह साबित क्यों नहीं करते कि अन्य लोक, कर्म (परिणामस्वरूप) और सूक्ष्म जगत का अस्तित्व नहीं है। अंत में, कुमार ने देखा कि इस बात को न मानने का हमेशा एक और कारण होगा, इसलिए उन्होंने कुछ नया करने का प्रयास किया। उन्होंने राजकुमार को एक मनुष्य और एक अनाथ बच्चे का दृष्टांत सुनाया।

कुमार ने शुरू करते हुए कहा, "एक बार एक मैला-कुचैला साधु, जो अग्नि उपासक था, जिसके बाल और शरीर दोनों ही मैले थे, एक सुनसान झोपड़ी में गया और उसे वहाँ एक छोटा बच्चा मिला। उस साधु ने सोचा कि बच्चे को जंगली जानवरों के लिए छोड़ना ठीक नहीं होगा, इसलिए उसने उसे गोद में उठा लिया और अपने बेटे की तरह पाला। एक बार जब लड़का बारह साल का था, तो किसी कारणवश उसे पास के एक गाँव जाना पड़ा। वह नहीं चाहता था कि उसके जाने के बाद उसकी आग बुझ जाए, इसलिए उसने लड़के को आग जलाए रखने का निर्देश दिया। उस साधु ने बच्चे से कहा, "अगर आग बुझ जाए, तो यह कुल्हाड़ी लो, ये लकड़ियाँ लो और इस सूखी सामग्री से नई आग जला लेना।" वह साधु काफी देर तक चला गया, और लड़का अपने खेल में मग्न होने के कारण आग को बुझने दिया। जब उसने यह देखा, तो उसे साधु की बातें ठीक से याद नहीं रहीं, और उसने कुल्हाड़ी से सूखी सामग्री पर वार करके आग जलाने की कोशिश की। उसने बार-बार कोशिश की, लेकिन फिर भी आग नहीं जली। जब वह आदमी लौटा तो लड़का वही कर रहा था। "क्यों?" उस अचंभित आदमी ने कहा, "क्या तुम कुल्हाड़ी से सूखी लकड़ियों पर मार रहे हो, और आग को बुझने क्यों दे रहे हो?" लड़के ने समझाया, और उस आदमी ने उसे डांटते हुए कहा, "मूर्ख मत बनो - इस तरह से कभी आग नहीं लग सकती! देखो, मैं तुम्हें दिखाता हूँ।" और ऐसा कहते हुए, उसने उसे आग जलाना सिखाया।

"ठीक उसी तरह, राजकुमार, जिस प्रकार उस बच्चे ने आग की खोज के लिए मूर्खतापूर्ण तरीका अपनाया, तुम भी दूसरे लोकों के प्रमाण खोजने के लिए मूर्खतापूर्ण तरीके अपना रहे हो! इन बुरे विचारों को त्याग दो, राजकुमार, अन्यथा भविष्य में तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ेगा!"

"नहीं, आदरणीय महोदय, आपके शब्दों के बावजूद मैं इन विचारों को नहीं छोड़ सकता। मेरे स्वामी, राजा पसेनादी, मेरे विचारों को जानते हैं, और अन्य स्थानों के सभी राजा भी। यदि मैं इतने लंबे समय तक और इतनी मेहनत से इनका बचाव करने के बाद इन्हें छोड़ दूं, तो वे सब मुझे मूर्ख समझेंगे!"

"हम्म। अच्छा, राजकुमार, इस पर विचार करो। एक बार एक विशाल कारवां था, जिसमें हजारों गाड़ियां और माल ढोने वाले जानवर थे। यह कारवां जहां भी गया, वहां का सारा सामान, लकड़ी, घास, फल और जड़ी-बूटियां, सब खत्म हो गया। इस समूह के दो नेता थे, प्रत्येक आधे हिस्से का प्रभारी था, और उन्होंने यह निर्णय लिया कि अलग-अलग रास्तों पर जाना ही बुद्धिमानी होगी, कहीं ऐसा न हो कि वे सब कुछ खत्म कर दें और अन्य यात्रियों के लिए रास्ता बंद कर दें।"

पहला सरदार पर्याप्त सामान इकट्ठा करके आगे बढ़ा। रास्ते में उसे और उसके साथियों को एक चालाक राक्षस मिला, जिसने मनुष्य का रूप धारण कर रखा था। राक्षस ने ताजे फूलों का मुकुट पहन रखा था और उसके हाव-भाव से साफ पता चल रहा था कि वह किसी हरे-भरे इलाके से गुजरा है। उसने सरदार से कहा, "आगे रास्ते में पर्याप्त से अधिक सामान है। अगर तुम अपना इकट्ठा किया हुआ सामान अपने पास रखोगे, तो तुम्हारी गति धीमी हो जाएगी। इसे छोड़ दो, तुम जल्दी पहुँच जाओगे।" काफिले के सरदार ने उसकी बात मान ली और उसने अपना अतिरिक्त पानी, लकड़ी, भोजन और जड़ी-बूटियाँ फेंक दीं। लेकिन रास्ते में कुछ भी नहीं मिला और वे कई दिनों तक बिना कुछ खाए-पिए चलते रहे। अंत में, पोषक तत्वों की कमी से उनकी मृत्यु हो गई और वह चालाक राक्षस आया और उनके शरीर को खा गया, केवल हड्डियाँ ही बचीं।

दूसरे नेता ने लंबा रास्ता चुना और कुछ हफ़्तों बाद उसका सामना उसी धूर्त राक्षस से हुआ। राक्षस ने उससे भी वही बात कही। लेकिन नेता समझदार था और अपने साथियों से सलाह मशवरा करके उसने अपना सामान अपने पास रखने का फैसला किया, भले ही वह बोझ

ही क्यों न हो। आगे का रास्ता सचमुच सुनसान था, लेकिन उसके साथियों और जानवरों ने भरपेट खाना खाया। तभी उन्हें पहले कारवां की हड्डियाँ और छोड़ा हुआ सामान मिला। नेता ने सोचा, "उस आदमी ने उसे धोखा देकर उसका सामान छुड़वा दिया होगा। कितना अफ़सोस! मुझे समझदारी से काम लेना चाहिए - मुझे अपना कम कीमती सामान वहीं छोड़ देना चाहिए और उसके छोड़े हुए कीमती सामान को अपने साथ ले जाना चाहिए।" और उसने ऐसा ही किया और सुरक्षित रूप से अपनी मंज़िल तक पहुँच गया।

"राजकुमार, तुम उस पहले नेता की तरह हो - तुम अपने हित के लिए उपयोगी चीज़ों को त्यागकर भी आगे बढ़ते रहते हो। इससे केवल मुसीबत और दुर्भाग्य ही आएगा! इसके बजाय दूसरे नेता की तरह बनो - जो तुम्हारे लिए अच्छा है उसे अपनाओ और जो बेकार है उसे त्याग दो! अपनी बुरी सोच को छोड़ दो और लाभकारी सोच को अपनाओ!"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता, मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं राजा और अन्य शासकों को यह सोचने नहीं दूंगा कि मैं मूर्ख हूं।"

"राजकुमार! एक किसान के बारे में सोचिए, जो यात्रा करते समय सूखे गोबर का एक विशाल ढेर देखता है और सोचता है, 'मैं इसे ईंधन के रूप में इस्तेमाल कर सकता हूँ।' तो वह अपना लबादा लेता है, गोबर के उस विशाल ढेर को उससे लपेटता है और उसे लेकर चला जाता है। लेकिन घर लौटते समय, तेज बारिश शुरू हो जाती है और गोबर गीला हो जाता है। गीला होने के कारण, वह रिसने लगता है और किसान पर टपकने लगता है, जिससे वह मल से लथपथ हो जाता है और बदबू आने लगती है। राहगीरों ने उसे देखा और कहा, 'तुम्हें इसे फेंक देना चाहिए, फिर बारिश तुम्हें साफ करने में मदद करेगी, न कि तुम्हें गंदगी से ढक देगी।' लेकिन किसान ने उत्तर दिया, 'नहीं, मुझे इसे ईंधन के लिए रखना ही होगा!' और आगे बढ़ गया।"

"राजकुमार, तुम उस किसान की तरह हो! तुम अपने बुरे विचारों को एक तरह का ईंधन मानते हो और उनसे चिपके रहते हो - लेकिन वे तुम्हें केवल गोबर और गंदगी से ढक देते हैं! तुम्हें उन्हें त्याग देना चाहिए।"

"ओह, उफ़! लेकिन नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि मैं राजघराने को यह सोचने नहीं दे सकता कि मैं मूर्ख हूँ!"

"राजकुमार, इस पर विचार कीजिए: मान लीजिए दो आदमी भाग्य बनाने का सबसे अच्छा तरीका यह तय करते हैं कि वे किसी पुराने, भूले हुए शहर में खजाने की खोज पर जाएं। ऐसा करते हुए उन्हें सरकंडों का एक बड़ा ढेर मिलता है, और वे अपने लबादों को बोरियों में बदलकर सरकंडों को ले जाते हैं। हालांकि, कुछ देर बाद उन्हें सन का एक ढेर मिलता है। "अरे वाह, क्या किस्मत है!" एक दोस्त ने कहा, "हम वैसे भी इन सरकंडों से सन बनाने वाले थे! तो अब हम सरकंडों को फेंक सकते हैं और सन ले जा सकते हैं!" - और वह अपने सरकंडों को फेंक देता है और अपने लबादे को सन से भर लेता है। लेकिन दूसरा आदमी सरकंडों को अपने पास रखता है, यह सोचकर, "मैंने इन्हें अच्छे से बांध दिया है, अपनी बोरी को खोलना मूर्खता होगी, वरना फिर से बांधना ही पड़ेगा।"

फिर कुछ समय बाद, खोज जारी रखते हुए, उन्हें कुछ बढ़िया रेशमी कपड़े मिलते हैं, और वही घटना फिर से घटित होती है। एक दोस्त रेशमी कपड़े ले लेता है, जबकि दूसरा अपने सरकंडे अपने पास ही रखता है। और फिर वही घटना दोबारा घटित होती है, इस बार सोने के सिक्कों का ढेर होता है।

"खैर, हम तो वैसे भी सरकंडे और रेशमी कपड़े बेचना चाहते थे, तो क्यों न इसके बजाय सोना ले जाएं?"

"नहीं, दोस्त, मैं अपने सरकंडों से संतुष्ट हूँ।"

"अगर इससे आपको खुशी मिलती है, तो अपनी मर्जी करो!"

लेकिन जब वे घर लौटे, तो सोने का ढेर रखने वाला आदमी बहुत अमीर हो गया, क्योंकि उसने सोने का इस्तेमाल निवेश और व्यापार में किया — और इससे उसका, उसकी पत्नी, बच्चों और माता-पिता का लंबे समय तक भरण-पोषण हुआ। वहीं, सरकंडों वाला आदमी अपने सरकंडों से अमीर नहीं हुआ, क्योंकि अंत में उसने उन्हें उस बोरी से कभी नहीं निकाला, और वे वहीं सड़ कर बदबू देने लगे।

"राजकुमार, तुम उस आदमी की तरह हो जिसके पास सरकंडों की बोरी है! अपने बुरे विचारों को त्याग दो! उन्हें तुम्हें नुकसान न पहुँचाने दो!"

"ऐसे शब्द... आदरणीय, बल्कि परम पूज्य अरहंत कुमार-कस्सपा, आपके वचन मुझे छू गए हैं, और आपके दृष्टांतों ने मुझे दिखाया है कि मैं सत्य की खोज के लिए मूर्खतापूर्ण तरीके अपना रहा हूँ। ऐसा लगता है जैसे आपने गिरी हुई चीज़ को सीधा खड़ा कर दिया हो। मैं आज आपके तीक्ष्ण उत्तर सुनने आया था, क्योंकि मैं वाद-विवाद में रुचि रखता था, लेकिन आज मैं कुछ बहुत ही मूल्यवान सीखकर जा रहा हूँ - मानो यात्रा करते हुए अचानक कोई छिपा हुआ हीरा मिल गया हो। आप अपने उपदेशों को इतनी सरलता से समझाते हैं कि वे सुनने और समझने में आसान हो जाते हैं, और आपकी बातें वास्तव में अर्थपूर्ण होती हैं। हे कुमार, मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता हूँ। मुझे इस रूप में स्वीकार करें: आज से लेकर अपने अंतिम दिन तक एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में। हे भगवान, हमें उपदेश दीजिए!"

अतः बुद्ध के शिष्य कुमार तपस्वी ने उदारता और दान के महत्व पर उपदेश दिया।

इससे प्रेरित होकर राजकुमार पायसी ने जरूरतमंदों के लिए एक दान-पुण्य संस्था स्थापित की। कोई भी जरूरतमंद, चाहे वह केवल बदकिस्मत हो या तपस्वी, उनकी संस्था में जाकर वस्त्र और भोजन प्राप्त कर सकता था, हालांकि भोजन की गुणवत्ता घटिया थी और वस्त्र खुरदुरे बोरे से बने थे। यह व्यवस्था उन्हें और जरूरतमंदों को भी रास आई, लेकिन दान-पुण्य संस्था के संचालन का जिम्मा संभाल रहे उत्तरा नामक एक चिंतित रईस ने टिप्पणी की, "मुझे लगता है कि इस दान-पुण्य के माध्यम से मुझे और राजकुमार पायसी को बहुत अलग-अलग प्रतिफल मिलेंगे।"

यह सुनकर राजकुमार ने उत्तरा से कहा, "मैं अपने दान के लिए पुरस्कार की अपेक्षा रखता हूं और मुझे ऐसा करने में कोई बुराई नहीं दिखती।"

"हाँ, लेकिन हे भगवान, जो भोजन और वस्त्र आप देते हैं... मैं उन्हें छूने का दिखावा भी नहीं करूँगा, और आप स्वयं भी अपने सबसे मोटे जूतों से उन पर नहीं चलेंगे!"

"हम्म... अच्छा..."

"महाराज, आप आधे-अधूरे मन से किए गए दान से अच्छे प्रतिफल की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?"

राजकुमार ने आह भरी और फिर कहा, "जैसी आपकी इच्छा। घटिया गुणवत्ता वाले भोजन और वस्त्रों को त्याग दें, और इसके बजाय ऐसा भोजन और वस्त्र दें जैसा मैं स्वयं या आप स्वयं उपयोग में लाते।"

"जी महाराज।" और उन्होंने ठीक वैसा ही किया।

मृत्यु के बाद, राजकुमार पायसी का जन्म एक मध्यम दर्जे के स्वर्ग में मध्यम दर्जे के देवदूतों के बीच हुआ, क्योंकि यद्यपि वे बहुत उदार थे, फिर भी उनका मन उदार होने में संकोच करता था और वे जो कुछ भी देते थे, उसमें कंजूसी करते थे। वहीं, उत्तरा का पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में हुआ, क्योंकि वे निःशर्त और बिना किसी कंजूसी के उदार थे।

जैसा कि बाद में पता चला, बुद्ध के शिष्यों में से एक, गवमपति, उसी स्वर्ग में दोपहर की झपकी लेने के आदी थे जहाँ राजकुमार पयासी का पुनर्जन्म हुआ था, और जब वे अगली बार वहाँ गए, तो उन्होंने राजकुमार को पहचान लिया।

"क्या आप वही व्यक्ति नहीं हैं जो झूठे विचारों से चिपके रहे?"

"हां, लेकिन मैंने उन्हें बहुत पहले ही त्याग दिया है, इसके लिए मैं आदरणीय कुमार का आभारी हूं।"

"ओह। आपको देखकर अच्छा लगा, और यह सुनकर भी अच्छा लगा। आपकी चैरिटी चलाने वाली उस उत्तरा का क्या हुआ?"

"उनका पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में हुआ—ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के एक भी चीज दान की और उनकी उदारता असीमित थी।"

"हां दिलचस्प।"

"आदरणीय महोदय?"

"जी हां, राजकुमार?"

"मुझ पर एक कृपा करो - जब तुम वापस जाओ, तो सबको मेरे और उत्तरा के भाग्य के बारे में बताओ, ताकि वे मेरी गलती न दोहराएं!"

गवमपति ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था, और अपने साथियों से यह कहा:

"राजकुमार पायसी का पुनर्जन्म एक साधारण स्वर्ग में साधारण देवदूतों के साथ हुआ, क्योंकि दान देने के बावजूद उन्हें उसमें कोई संकोच नहीं था। उत्तरा, जो केवल दान का प्रबंध करते थे, तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में गए, क्योंकि उन्हें दान देने में कोई संकोच नहीं था। इससे सीख लो! जो कुछ भी दान करो, उसमें कभी संकोच मत करो!"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.1पतिका सुत्त(DN24)

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान मल्लों के बीच ठहरे हुए थे। अनुपिया मल्लों के एक कस्बे का नाम है। भगवान ने सुबह सवेरे वस्त्र धारण किए, अपना वस्त्र और भिक्षापात्र ग्रहण किया और अनुपिया में भिक्षा मांगने गए। तब उन्होंने सोचा, 'अनुपिया में भिक्षा मांगने जाना मेरे लिए अभी बहुत जल्दी है। क्यों न मैं घुमंतू भगवगोत्त के आश्रम में दर्शन करने जाऊं?' और उन्होंने ऐसा ही किया।

और घुमंतू भगव-गोत्त ने कहा, 'हे भगवान, आपका स्वागत है! अंततः भगवान यहाँ आने के लिए अपना मार्ग बदल कर आए हैं। बैठिए, भगवान, आसन तैयार है।' भगवान तैयार आसन पर बैठ गए, और भगव ने एक छोटी चौकी ली और एक तरफ बैठ गए। फिर उन्होंने कहा, 'हे भगवान, कुछ दिन पहले लिच्छवी सुनक्खत्त मेरे पास आए और कहा, "भगव, मैंने भगवान को छोड़ दिया है। मैं अब उनके अधीन नहीं हूँ।" क्या सचमुच ऐसा है, भगवान?'

'यह सच है, भगगव।'

कुछ दिन पहले, सुनक्खत्ता मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला: "हे भगवान, मैं भगवान को छोड़ रहा हूँ, मैं अब भगवान के अधीन नहीं हूँ।" तो मैंने उससे कहा: "सुनक्खत्ता, क्या मैंने कभी तुमसे कहा था: 'आओ, सुनक्खत्ता, मेरे अधीन रहो'?"

"कोई भगवान नहीं।"

"या क्या तुमने कभी मुझसे कहा है: 'हे भगवान, मैं आपके शासन के अधीन रहूंगा'?"

"कोई भगवान नहीं।"

"तो, सुनक्खत्ता, अगर मैंने तुमसे ऐसा नहीं कहा और तुमने मुझसे ऐसा नहीं कहा - हे मूर्ख, तुम कौन हो और क्या त्याग रहे हो? सोचो, हे मूर्ख, इसमें तुम्हारी कितनी गलती है।"

"हे भगवान, आपने कोई चमत्कार नहीं किया है।"

और क्या मैंने कभी तुमसे कहा है: 'मेरे शासन के अधीन आओ और मैं तुम्हारे लिए चमत्कार करूंगा'?

"कोई भगवान नहीं।"

"या क्या तुमने कभी मुझसे कहा है: 'हे भगवान, यदि तुम मेरे लिए चमत्कार करोगे तो मैं तुम्हारे शासन के अधीन रहूंगा'?"

"कोई भगवान नहीं।"

"तो फिर, सुनक्खत्ता, ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने ऐसे कोई वादे नहीं किए थे, और तुमने ऐसी कोई शर्तें नहीं रखी थीं। ऐसी स्थिति में, हे मूर्ख, तुम कौन हो और क्या त्याग रहे हो?"

"सुनक्खत्ता, आपका क्या विचार है? चमत्कार हों या न हों - क्या मेरे धम्म शिक्षण का उद्देश्य इसका अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाना है?"

"हाँ, भगवान।"

इसलिए, सुनक्खत्ता, चाहे चमत्कार किए जाएं या न किए जाएं, मेरे धम्म उपदेश का उद्देश्य अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाना है। फिर चमत्कार करने का क्या उद्देश्य रह जाता है? हे मूर्ख, विचार करो कि इसमें तुम्हारा कितना दोष है।

"हे भगवान, आप चीजों की शुरुआत के बारे में नहीं सिखाते।"

और क्या मैंने कभी तुमसे कहा है: 'मेरे शासन के अधीन आओ और मैं तुम्हें चीजों की शुरुआत सिखाऊंगा'?

"नहीं, भगवान।"

"...ऐसी स्थिति में, हे मूर्ख व्यक्ति, तुम कौन हो और तुम क्या त्याग रहे हो?"

"सुनक्खत्ता, आपने वज्जियों के बीच अनेक प्रकार से मेरी प्रशंसा की है, यह कहते हुए: 'यह भगवान अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हैं, जो ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, कल्याणकारी हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अतुलनीय प्रशिक्षक हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, बुद्ध हैं, भगवान हैं।' आपने अनेक प्रकार से धम्म की प्रशंसा की है, जो यहाँ और अभी दृश्यमान है, कालातीत है, अवलोकन के लिए आमंत्रित करता है, आगे की ओर ले जाता है, जिसे बुद्धिमानों द्वारा स्वयं के लिए अनुभव किया जाना है।" आपने अनेक प्रकार से भिक्षुओं के संघ की प्रशंसा करते हुए कहा है: 'भगवान के शिष्यों का संघ सुप्रशिक्षित है, सत्यनिष्ठा में प्रशिक्षित है, विधिपूर्वक प्रशिक्षित है, उत्कृष्ट रूप से प्रशिक्षित है, अर्थात् चार युग्मों के पुरुष, आठ प्रकार के व्यक्ति। यह भगवान के शिष्यों का संघ है, आदर के योग्य, श्रद्धा के योग्य, दान के योग्य, अभिवादन के योग्य, पुण्य के लिए संसार में अद्वितीय क्षेत्र है।'

"इन तरीकों से आपने मेरी, धम्म की और वज्जियों के बीच इस संप्रदाय की प्रशंसा की है। और मैं आपसे कहता हूँ, मैं आपसे कहता हूँ, सुनक्खत्त, ऐसे लोग होंगे जो कहेंगे: 'सुनक्खत्त लुच्छवी तपस्वी गौतम के अधीन पवित्र जीवन धारण करने में असमर्थ थे, और इस असमर्थता के कारण उन्होंने प्रशिक्षण छोड़ दिया और नीच जीवन में लौट गए।' सुनक्खत्त, वे यही कहेंगे।" और, भगगव, मेरे शब्दों पर सुनक्खत्त ने इस धम्म और शिष्यों को ऐसे छोड़ दिया जैसे नरक में जाने वाला कोई व्यक्ति।"

हे भगगव, एक बार मैं खुलुओं के बीच, उनके नगर उत्तराका में ठहरा हुआ था। सुबह-सुबह मैं वस्त्र और कुंड लेकर भिक्षा मांगने उत्तराका गया, मेरे साथ सुनक्खत्त भी था। उस समय नग्न तपस्वी कोरक्खत्तिया, जिसे "कुत्ते के समान" कहा जाता था, चारों पैरों पर जमीन पर लेटकर भोजन को अपने मुँह से चबाकर खा रहा था। उसे देखकर सुनक्खत्त ने सोचा, "यही तो असली अरहंत तपस्वी है, जो

चारों पैरों पर जमीन पर लेटकर भोजन को अपने मुँह से चबाकर खाता है।" और मैं उसके मन में यह विचार जान गया और उससे कहा, "हे मूर्ख, क्या तू शाक्यों का अनुयायी होने का दावा करता है?"

"हे भगवान, इस प्रश्न से आपका क्या तात्पर्य है?"

"सुनक्खत्ता, क्या आपने उस नग्न तपस्वी को चारों पैरों पर घूमते हुए देखकर यह नहीं सोचा: 'यही तो असली अरहंत तपस्वी है, जो जमीन पर लेटकर चारों पैरों पर घूमता है और केवल अपने मुंह से ही भोजन चबाता और खाता है'?"

"जी भगवान, मैंने किया। क्या परम पूज्य भगवान दूसरों को उनके अरहंत पद से वंचित रखते हैं?"

"मैं दूसरों के अरहंत पद से ईर्ष्या नहीं करता, हे मूर्ख! यह बुरी सोच केवल तुम्हारे मन में उत्पन्न हुई है। इसे त्याग दो, अन्यथा यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक हानि और दुःख का कारण बनेगी! यह नग्न तपस्वी कोरक्खत्तिया, जिसे तुम सच्चा अरहंत मानते हो, सात दिनों में अपच से मर जाएगा, और मरने के बाद वह कालकंज असुरों के बीच पुनर्जन्म लेगा, जो असुरों की सबसे नीच श्रेणी हैं। और मरने के बाद उसे श्मशान भूमि में बिरना घास के ढेर पर फेंक दिया जाएगा। यदि तुम चाहो, हे सुनक्खत्त, तो तुम उसके पास जाकर उससे पूछ सकते हो कि क्या वह अपने भाग्य को जानता है। और हो सकता है कि वह तुम्हें बताए: 'मित्र सुनक्खत्त, मैं अपना भाग्य जानता हूँ। मेरा पुनर्जन्म कालकंज असुरों के बीच हुआ है, जो असुरों की सबसे नीच श्रेणी हैं।'"

तब सुनक्खत्त कोरक्खत्तिया के पास गया और उसे मेरी भविष्यवाणी के बारे में बताया, और कहा: "इसलिए, मित्र कोरक्खत्तिया, अपने खाने-पीने का बहुत ध्यान रखो, ताकि तपस्वी गौतम की बातें गलत साबित हो जाएँ!" सुनक्खत्त को तथागत की बातों के गलत साबित होने का इतना यकीन था कि उसने सातों दिन एक-एक करके गिने। लेकिन सातवें दिन कोरक्खत्तिया की बदहजमी से मृत्यु हो गई, और मरने के बाद वह कालकंज असुरों के बीच फिर से प्रकट हुआ, और उसके शरीर को श्मशान भूमि में बिरना घास के ढेर पर फेंक दिया गया।

जब सुनक्खत्त ने यह सुना, तो वह श्मशान भूमि में बिराना घास के ढेर के पास गया, जहाँ कोरक्खत्तिया लेटा हुआ था। उसने उसके शरीर पर तीन बार हाथ से प्रहार किया और कहा, "मित्र कोरक्खत्तिया, क्या तुम अपना भाग्य जानते हो?" कोरक्खत्तिया उठ बैठा और अपने हाथ से अपनी पीठ रगड़ते हुए बोला, "मित्र सुनक्खत्त, मैं अपना भाग्य जानता हूँ। मेरा पुनर्जन्म कालकंज असुरों के बीच हुआ है, जो असुरों की सबसे नीच श्रेणी है।" और इतना कहकर वह फिर से गिर पड़ा।

फिर सुनक्खत्ता मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। मैंने उससे कहा: 'सुनक्खत्ता, तुम्हारा क्या विचार है? मैंने तुम्हें 'कुत्ते-आदमी' के बारे में जो बताया था, क्या वह सच हुआ या नहीं?'

"हे भगवान, यह सब उसी तरह हुआ है जैसा आपने कहा था, अन्यथा नहीं।"

"तो, सुनक्खत्ता, आपका क्या विचार है? क्या कोई चमत्कार हुआ है या नहीं?"

"हे भगवान, ऐसा होने पर चमत्कार हुआ है, अन्यथा नहीं।"

"तो फिर, हे मूर्ख, क्या तुम मुझसे, मेरे ऐसे चमत्कार करने के बाद भी, यह कहते हो: 'हे भगवान, आपने तो कोई चमत्कार नहीं किया है।'? हे मूर्ख, सोचो, गलती तुम्हारी ही कितनी बड़ी है।" और मेरी बात सुनकर सुनक्खत्ता ने इस धम्म और अनुशासन को ऐसे त्याग दिया जैसे कोई नरक का दंड भुगत रहा हो।

'एक बार, भगगव, मैं वैशाली में, महान वन के गैबल हॉल में ठहरा हुआ था। उस समय वैशाली में कलारमुत्थक नाम का एक नग्न तपस्वी रहता था, जिसने वज्जिया की राजधानी में अपार लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने सात नियमों का पालन किया था: "जब तक मैं जीवित रहूंगा, मैं नग्न तपस्वी रहूंगा और कोई वस्त्र नहीं धारण करूंगा; जब तक मैं जीवित रहूंगा, मैं पवित्र रहूंगा और यौन संबंध से दूर रहूंगा; जब तक मैं जीवित रहूंगा, मैं मादक पेय और मांस का सेवन करूंगा, उबले हुए चावल और खट्टे दूध से परहेज करूंगा; जब तक मैं जीवित रहूंगा, मैं वैशाली के पूर्व में स्थित उदेना मंदिर, दक्षिण में स्थित गौतमका मंदिर, पश्चिम में स्थित सत्तम्बा मंदिर और उत्तर में स्थित बहुपुत्त मंदिर से आगे कभी नहीं जाऊंगा।" और इन्हीं सात नियमों का पालन करने के कारण उसने वज्जिया की राजधानी में अपार लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

अब सुनक्खत्त कलारमुत्थक से मिलने गए और उनसे एक प्रश्न पूछा जिसका उत्तर वे नहीं दे सके। उत्तर न दे पाने के कारण सुनक्खत्त क्रोधित, चिड़चिड़े और अड़ियल हो गए। लेकिन सुनक्खत्त ने सोचा, "कहीं मैं इस सच्चे अरहंत तपस्वी को नाराज न कर दूं। मैं नहीं चाहता कि ऐसा कुछ हो जिससे मुझे हमेशा के लिए हानि और दुर्भाग्य हो!"

तब सुनक्खत्ता मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। मैंने उससे कहा, "हे मूर्ख, क्या तू शाक्य वंश का अनुयायी होने का दावा करता है?" "हे भगवान, इस प्रश्न से आपका क्या तात्पर्य है?"

"सुनक्खत्ता, क्या तुम कलारमुत्थक से मिलने नहीं गए थे और उनसे कोई ऐसा प्रश्न नहीं पूछा था जिसका वे उत्तर न दे सकें, और क्या उन्होंने तब क्रोध, रोष और चिड़चिड़ेपन के लक्षण नहीं दिखाए थे? और क्या तुमने यह नहीं सोचा था: 'कहीं मैं इस सच्चे अरहंत तपस्वी को नाराज न कर दूं। मैं नहीं चाहता कि ऐसा कुछ हो जिससे मुझे चिरस्थायी हानि और दुर्भाग्य हो'?"

"जी भगवान, मैंने किया। क्या परम पूज्य भगवान दूसरों को उनके अरहंत पद से वंचित रखते हैं?"

"मैं दूसरों के अरहंत बनने से ईर्ष्या नहीं करता, हे मूर्ख! यह बुरी सोच केवल तुम्हारे मन में उत्पन्न हुई है। इसे त्याग दो, अन्यथा यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक हानि और दुःख का कारण बनेगी! यह नग्न तपस्वी, जिसे तुम सच्चा अरहंत मानते हो, शीघ्र ही वस्त्र धारण करके विवाहित हो जाएगा और उबले हुए चावल और खट्टे दूध पर जीवन व्यतीत करेगा। वह वैशाली के सभी तीर्थों से भी आगे निकल जाएगा और अपनी प्रतिष्ठा पूरी तरह खोकर मर जाएगा।" और वास्तव में, ऐसा ही हुआ।

"तब सुनाक्खत्ता ने जो कुछ हुआ था, उसे सुनकर मेरे पास आया... और मैंने कहा, "सुनाक्खत्ता, तुम्हारा क्या विचार है? क्या कलारमुत्थक के बारे में मैंने जो कहा था, वह सच हुआ या नहीं? ...क्या कोई चमत्कार हुआ है या नहीं?"... और मेरी बात सुनकर सुनाक्खत्ता ने इस धम्म और अनुशासन को ऐसे छोड़ दिया जैसे उसे नरक की सजा मिली हो।"

"एक बार, भगव, मैं वैशाली के महान वन में स्थित गैबल हॉल में ठहरा हुआ था। उस समय वैशाली में पतिकपुत्त नाम का एक नग्न तपस्वी रहता था, जिसने वज्जिआ की राजधानी में बहुत ख्याति और समृद्धि प्राप्त की थी। उसने वैशाली की सभा में यह घोषणा की: 'तपस्वी गौतम स्वयं को ज्ञानी पुरुष होने का दावा करते हैं, और मैं भी यही दावा करता हूँ। यह उचित है कि ज्ञानी पुरुष चमत्कार करके अपनी बुद्धिमत्ता का प्रमाण दे। यदि तपस्वी गौतम मुझसे मिलने के लिए आधा रास्ता भी तय करके आएँ, तो मैं भी ऐसा ही करूँगा। तब हम दोनों चमत्कार कर सकते हैं और यदि तपस्वी गौतम एक चमत्कार करें, तो मैं दो करूँगा। यदि वे दो करें, तो मैं चार करूँगा। और यदि वे चार करें, तो मैं आठ करूँगा। तपस्वी गौतम जितने चमत्कार करें, मैं उससे दोगुने चमत्कार करूँगा!'"

तब सुनक्खत्ता मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और मुझे बताया कि पतिकपुत्त ने क्या कहा था। मैंने कहा: "सुनक्खत्ता, वह नग्न तपस्वी पतिकपुत्त मुझसे आमने-सामने मिलने के योग्य नहीं है जब तक कि वह अपने शब्द वापस न ले ले, उस विचार को त्याग न दे और उस दृष्टिकोण को छोड़ न दे। और यदि वह अन्यथा सोचता है, तो उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

हे भगवान, परमेश्वर अपने शब्दों का ध्यान रखें, और उपकार करने वाले अपने शब्दों का ध्यान रखें!

"तुम मुझसे ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हो?"

हे भगवान, परमेश्वर पतिकपुत्त के आगमन के विषय में कोई निश्चित कथन दे सकते हैं। परन्तु वे किसी रूपांतरित होकर आ सकते हैं, और इस प्रकार परमेश्वर के वचनों को असत्य कर सकते हैं!

लेकिन, सुनक्खत्ता, क्या तथागत कोई ऐसा कथन कहेंगे जो अस्पष्ट हो?

"हे भगवान, क्या भगवान स्वयं जानते हैं कि पतिकपुत्त का क्या होगा? या किसी देवता ने तथागत को बताया है?"

"सुनक्खत्ता, मैं यह अपने मन से जानता हूँ, और एक देवता ने भी मुझे बताया है। क्योंकि लिच्छवियों के सेनापति अजिता का परसों निधन हो गया और उनका पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं के साथ हुआ है। वे मुझसे मिलने आए और बोले: हे भगवान, नग्न तपस्वी पतिकपुत्त एक धृष्ट झूठा है! उसने वज्जी राजधानी में घोषणा की: 'लिच्छवियों के सेनापति अजिता का पुनर्जन्म नरक में हुआ है!' परन्तु

मेरा पुनर्जन्म नरक में नहीं, बल्कि तैंतीस देवताओं के साथ हुआ है। वह एक धृष्ट झूठा है...' अतः, सुनक्खत्ता, मैं जो कह रहा हूँ वह अपने मन से जानता हूँ, और एक देवता ने भी मुझे बताया है। और अब, सुनक्खत्ता, मैं वैशाली में भिक्षा मांगने जा रहा हूँ। लौटकर, भोजन करने के बाद, मैं दोपहर के विश्राम के लिए पतिकपुत्त के उद्यान में जाऊँगा। आप उसे जो चाहें कह सकते हैं।"

फिर, वस्त्र धारण करके, मैंने अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लिया और वैशाली में भिक्षा मांगने चला गया। लौटकर मैं दोपहर के विश्राम के लिए परिकापुत्त के उद्यान में गया। इसी बीच सुनक्खत्त वैशाली में दौड़ा और सभी प्रमुख लिच्छवियों से कहा, "मित्रों, भगवान वैशाली में भिक्षा मांगने गए हैं, और उसके बाद वे परिकापुत्त के उद्यान में दोपहर के विश्राम के लिए गए हैं। आओ, मित्रों, अकेले आओ! दो महान तपस्वी चमत्कार करने जा रहे हैं!" और सभी प्रमुख लिच्छवियों ने सोचा, "दो महान तपस्वी चमत्कार करने जा रहे हैं! चलो चलें!" और वह विभिन्न संप्रदायों के प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मणों के पास गया और उन्हें भी यही बात बताई, और उन्होंने भी सोचा, "चलो चलें!" और इस प्रकार ये सभी लोग परिकापुत्त के उद्यान में आ गए, सैकड़ों-हजारों की संख्या में।

'और पतिकपुत्त ने सुना कि ये सभी लोग उसके उद्यान में आए हैं, और तपस्वी गौतम दोपहर के विश्राम के लिए वहाँ गए हैं। यह खबर सुनकर वह भय और कंपकंपी से कांप उठा, और उसके रोंगटे खड़े हो गए। और इस प्रकार भयभीत और कांपते हुए, रोंगटे खड़े हुए, वह यात्रियों के तिन्दुका आवास की ओर चल पड़ा।' जब सभी उपस्थित लोगों ने सुना कि वह तिन्दुका के आश्रम में गए हैं, तो उन्होंने एक व्यक्ति को पतिकपुत्त के पास जाकर उनसे यह कहने का आदेश दिया: "मित्र पतिकपुत्त, आइए! ये सभी लोग आपके उद्यान में आए हैं, और तपस्वी गौतम दोपहर के विश्राम के लिए वहाँ गए हैं। क्योंकि आपने वैशाली में सभा में घोषणा की थी: 'तपस्वी गौतम स्वयं को ज्ञानवान मानते हैं, और मैं भी यही दावा करता हूँ। यह उचित है कि ज्ञानवान व्यक्ति चमत्कार करके अपनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करे। यदि तपस्वी गौतम मुझसे मिलने के लिए आधा रास्ता तय करेंगे, तो मैं भी ऐसा ही करूँगा। तब हम दोनों चमत्कार कर सकते हैं और यदि तपस्वी गौतम एक चमत्कार करेंगे, तो मैं दो करूँगा। यदि वे दो करेंगे, तो मैं चार करूँगा। और यदि वे चार करेंगे, तो मैं आठ करूँगा। तपस्वी गौतम जितने चमत्कार करेंगे, मैं उससे दोगुने चमत्कार करूँगा!' अतः अब आधा रास्ता तय कीजिए: तपस्वी गौतम आपसे मिलने के लिए आधा रास्ता तय कर चुके हैं और आपके उद्यान में दोपहर के विश्राम के लिए बैठे हैं।"

वह आदमी जाकर संदेश लेकर गया, और उसे सुनकर पतिकपुत्त ने कहा: "मैं आ रहा हूँ, मित्र, आ रहा हूँ!" लेकिन लाख कोशिश करने के बावजूद वह अपनी सीट से उठ नहीं सका। तब उस आदमी ने कहा: "क्या हुआ है तुम्हें, मित्र पतिकपुत्त? क्या तुम्हारी कमर सीट से चिपक गई है या सीट तुम्हारी कमर से चिपक गई है? तुम बार-बार कह रहे हो: 'मैं आ रहा हूँ, मित्र, आ रहा हूँ!' लेकिन तुम बस छटपटा रहे हो और अपनी सीट से उठ नहीं पा रहे हो।" और ये शब्द सुनकर भी पतिकपुत्त छटपटाता रहा लेकिन उठ नहीं सका।

और जब उस व्यक्ति को यह एहसास हुआ कि पतिकपुत्त स्वयं को रोक नहीं सकता, तो वह सभा में वापस गया और स्थिति की सूचना दी। और मैंने उनसे कहा: "नग्न तपस्वी पतिकपुत्त मुझसे आमने-सामने मिलने में सक्षम नहीं है जब तक कि वह अपने शब्दों को वापस न ले, उस विचार को त्याग न दे और उस दृष्टिकोण को छोड़ न दे। और यदि वह अन्यथा सोचता है, तो उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

तब, लिच्छवियों के मंत्रियों में से एक भगव अपने आसन से उठे और बोले, "महोदय, ज़रा रुकिए, मैं देख लेता हूँ कि क्या मैं पतिकपुत्त को सभा में ला सकता हूँ।" इसलिए वे तिन्दुका के आवास पर गए और पतिकपुत्त से कहा, "पतिकपुत्त, मेरे साथ आइए। आपका आना ही बेहतर होगा। ये सभी लोग आपके उद्यान में आए हैं और तपस्वी गौतम दोपहर के विश्राम के लिए वहाँ गए हैं। यदि आप आएँगे, तो हम आपको विजेता बना देंगे और तपस्वी गौतम को पराजित कर देंगे।"

और पट्टिकापुत्त ने कहा, "मैं आ रहा हूँ, मित्र, मैं आ रहा हूँ," लेकिन लाख कोशिश करने के बावजूद वह अपनी सीट से उठ नहीं सका...

तो मंत्री सभा में लौट आए और स्थिति की रिपोर्ट दी। तब मैंने कहा, "नग्न तपस्वी पतिकपुत्त मुझसे आमने-सामने तब तक नहीं मिल सकते जब तक वे अपने शब्द वापस न ले लें, उस विचार को त्याग न दें और उस दृष्टिकोण को छोड़ न दें। और यदि वे इसके विपरीत सोचते हैं, तो उनका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

तब लकड़ी के कटोरे वाले तपस्वी के शिष्य जलिया अपनी सीट से उठे... तिन्दुका के आवास पर गए और पतिकपुत्त से कहा: "चलिए पतिकपुत्त... यदि आप आएंगे, तो हम आपको विजेता बनाएंगे और तपस्वी गौतम को पराजित होने देंगे।"

और पतिकपुत्त ने कहा: "मैं आ रहा हूँ, मित्र, मैं आ रहा हूँ!" लेकिन लाख कोशिश करने पर भी वह अपनी सीट से उठ नहीं सका...

तब जब जलिया को स्थिति का एहसास हुआ, तो उसने कहा, "पतिकपुत्त, बहुत समय पहले, पशुओं के राजा सिंह ने सोचा, 'मान लो मैं किसी जंगल के पास अपना मांद बना लूँ। फिर मैं शाम को बाहर निकलकर जम्हाई लूँगा, चारों दिशाओं का जायजा लूँगा, तीन बार सिंह की दहाड़ मारूँगा और फिर मवेशियों के चरागाह की ओर चल दूँगा। वहाँ मैं झुंड में से सबसे अच्छे मवेशी को चुनकर उसका शिकार करूँगा और कोमल मांस का अच्छा भोज करके अपने मांद में लौट आऊँगा।' और उसने ऐसा ही किया।"

"एक बूढ़ा सियार था जो शेर के छोड़े हुए भोजन पर पल-बढ़कर मोटा हो गया था, और वह घमंडी और बलवान था। उसने सोचा: 'मेरे और शेर, जो जानवरों का राजा है, में क्या अंतर है? मान लो मैं जंगल में अपना मांद बना लूँ...' तो उसने उसी के अनुसार एक मांद चुना और शाम को बाहर निकलकर चारों दिशाओं का जायजा लिया, और फिर सोचा: 'अब मैं शेर की तरह तीन बार दहाड़ूँगा', और उसने अपनी जाति की तरह, एक सियार की दहाड़ निकाली। भला इस सियार की दयनीय दहाड़ का शेर की दहाड़ से क्या लेना-देना है? ठीक उसी तरह, पतिकपुत्त, तुम भी धनवान के पुण्य पर जीते हो और उसके छोड़े हुए भोजन पर पलते हो, यह सोचकर कि तुम तथागतों, अरहंतों और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध बुद्धों के बराबर हो सकते हो। लेकिन इन दयनीय पतिकपुत्तों का उनसे क्या लेना-देना है?"

'तब, इस दृष्टांत की सहायता से भी पतिकपुत्त को अपने आसन से उठाने में असमर्थ होकर, जलिया ने यह श्लोक कहा:

खुद को शेर समझते हुए सियार कहता है

'मैं जानवरों का राजा हूँ' और दहाड़ने की कोशिश की।

शेर की दहाड़ जैसी, लेकिन केवल गरजने जैसी आवाज।

शेर तो शेर है और सियार तो सियार ही रहेगा।

ठीक इसी तरह पतिकपुत्त, तुम भी उस कल्याणकारी की उपलब्धियों पर जी रहे हो..."

और, इस श्लोक की सहायता से भी पतिकपुत्त को उसके आसन से उठने में असमर्थ होकर, जलिया ने यह श्लोक कहा:

"दूसरे के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए, और पोषित होते हुए"

जूठे टुकड़ों पर वह अपना सियार जैसा स्वभाव भूल जाता है।

मन में सोचते हुए: "मैं एक बाघ हूँ!" दहाड़ने की कोशिश की

एक जोरदार दहाड़, लेकिन उसके बजाय केवल चीखने जैसी आवाज।

शेर तो शेर है और सियार तो सियार ही रहेगा।

ठीक इसी तरह पतिकपुत्त, तुम भी उस कल्याणकारी की उपलब्धियों पर जी रहे हो..."

और, इस दृष्टांत से भी पतिकपुत्ता को अपनी सीट से उठने में असमर्थ होकर, जलिया सभा में लौट आया और स्थिति की रिपोर्ट दी।

तब मैंने कहा: "पतिकपुत्त मुझसे आमने-सामने मिलने में सक्षम नहीं है जब तक कि वह अपने शब्द वापस न ले ले, उस विचार को त्याग न दे और उस दृष्टिकोण को छोड़ न दे। भले ही अच्छे लुच्छवी यह सोचें: 'चलो इसे रस्सियों से बांधकर जुते हुए बैलों से यहाँ घसीटकर लाते हैं', वह रस्सियों को तोड़ देगा। वह मुझसे आमने-सामने मिलने में सक्षम नहीं है... यदि वह इसके विपरीत सोचता है, तो उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

तब, हे भगगव, मैंने धर्म पर प्रवचन देकर उस सभा को उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साह से भर दिया और प्रसन्न किया। इस प्रकार उस समूह को महान बंधन से मुक्त करके, चौरासी हजार प्राणियों को महान संकट के मार्ग से बचाकर, मैं अग्नि तत्व में प्रवेश कर सात ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक वायु में विलीन हो गया, और फिर सात और ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक एक किरण प्रक्षेपित की जिससे वह प्रज्वलित हुई और सुगंध बिखेरी, और फिर मैं उस विशाल वन में स्थित छज्जेदार हॉल में पुनः प्रकट हुआ।

और तभी सुनक्खत्ता मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। मैंने कहा, "सुनक्खत्ता, तुम्हारा क्या विचार है? मैंने तुम्हें पतिकपुत्त के बारे में जो बताया था, क्या वह सच हुआ या नहीं?"

"हाँ, भगवान।"

"और क्या कोई चमत्कार हुआ है या नहीं?"

"हाँ, भगवान।"

"तो फिर, हे मूर्ख, क्या तुम मेरे इस चमत्कार के बाद भी मुझसे यही कहते हो: 'हे भगवान, आपने तो कोई चमत्कार ही नहीं किया'? हे मूर्ख, सोचो, इसमें तुम्हारी कितनी गलती है।" और, मेरी बात सुनकर भगवम ने सुनक्खत्ता को इस धम्म और अनुशासन से ऐसे त्याग दिया जैसे वह नरक का दंड पा चुका हो।

'भग्गव, मैं सृष्टि की आदिम उत्पत्ति को जानता हूँ, और केवल इतना ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक मूल्यवान ज्ञान को जानता हूँ। मैं अपने ज्ञान के वश में नहीं हूँ, और उसके वश में न होकर मैं उस निर्वाह को भलीभूत कर लेता हूँ, जिसके ज्ञान से तथागत भी कुटिल पथ पर नहीं भटकते। भग्गव, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिन्होंने यह सिद्धांत घोषित किया है कि समस्त सृष्टि की उत्पत्ति किसी देवता, या ब्रह्मा द्वारा हुई है। मैं उनके पास गया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, क्या यह सत्य है कि आप यह घोषणा करते हैं कि समस्त सृष्टि की उत्पत्ति किसी देवता, या ब्रह्मा द्वारा हुई है?"'

"हाँ," उन्होंने उत्तर दिया

"तो फिर, आदरणीय शिक्षकों का क्या कहना है कि यह सब कैसे हुआ?" लेकिन वे इसका उत्तर नहीं दे सके, इसलिए उन्होंने मुझसे ही यह प्रश्न पूछा और मैंने उत्तर दिया:

"भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है, चाहे देर से ही सही, लंबे समय के बाद, जब यह संसार संकुचित होता है। संकुचन के समय, अधिकांश प्राणी आभासर ब्रह्म लोक में पुनर्जन्म लेते हैं। और वहाँ वे मन से निर्मित, आनंद में लिप्त, स्वयंप्रकाशित, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी रूप में निवास करते हैं - और वे बहुत लंबे समय तक इसी अवस्था में रहते हैं।"

गलत धारणा संख्या 5: "परन्तु एक समय आता है, चाहे देर से ही सही, जब यह संसार फैलने लगता है। इस फैलते हुए संसार में ब्रह्मा का एक खाली महल प्रकट होता है। तब एक प्राणी, अपने जीवनकाल या अपने पुण्यों के समाप्त होने के कारण, आभासर लोक से गिरकर उस खाली ब्रह्मा-महल में आ जाता है। और वहाँ वह मन से विवश होकर, आनंद में लिप्त होकर, स्वयंप्रकाशित होकर, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी रूप में निवास करता है - और वह बहुत लंबे समय तक उसी अवस्था में रहता है।"

"तब इतने लंबे समय तक अकेले रहने वाले इस प्राणी में बेचैनी, असंतोष और चिंता उत्पन्न होती है, और वह सोचता है: 'काश, कुछ अन्य प्राणी यहाँ आ जाएँ!' और अन्य प्राणी, अपने जीवनकाल या अपने पुण्य कर्मों के समाप्त होने के कारण, आभासर लोक से गिरकर ब्रह्मलोक में इस प्राणी के साथी के रूप में आ जाते हैं। और वे वहाँ मनमग्न होकर निवास करते हैं... और वे बहुत लंबे समय तक उसी अवस्था में रहते हैं।"

और फिर, हे भिक्षुओं, जो प्राणी सबसे पहले वहाँ उत्पन्न हुआ, वह सोचता है: "मैं ब्रह्मा हूँ, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, भगवान, सृष्टिकर्ता, शासक, नियुक्तकर्ता और व्यवस्थापक, समस्त अस्तित्व का पिता। इन प्राणियों की रचना मैंने की है। ऐसा कैसे? क्योंकि सबसे पहले मेरे मन में यह विचार आया: 'काश, कुछ अन्य प्राणी यहाँ आ जाएँ!' यही मेरी इच्छा थी, और फिर ये प्राणी अस्तित्व में आए!" परन्तु जो प्राणी बाद में उत्पन्न हुए, वे सोचते हैं: "हे मित्रों, यह ब्रह्मा हैं, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी,

सर्वशक्तिमान, भगवान, सृष्टिकर्ता, शासक, नियुक्तकर्ता और व्यवस्थापक, समस्त अस्तित्व का पिता। ऐसा कैसे? हमने देखा है कि वे पहले यहाँ थे, और हम उनके बाद उत्पन्न हुए।"

और जो प्राणी सबसे पहले उत्पन्न हुआ, वह उनसे अधिक दीर्घायु, अधिक सुंदर और अधिक शक्तिशाली है। और ऐसा हो सकता है कि कोई प्राणी उस लोक से गिरकर इस संसार में आ जाए। इस संसार में आकर वह गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। संन्यास लेने के बाद वह परिश्रम, लगन, परिश्रम और उचित ध्यान से ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि उसे अपना पिछला जन्म तो याद आ जाता है, पर उससे पहले का कोई जन्म याद नहीं आता। और वह सोचता है: 'वह ब्रह्मा, ... उसने हमें बनाया है, और वह स्थिर, अटल, शाश्वत, परिवर्तनहीन, सदा-सदा एक समान है। परन्तु हम, जिन्हें उस ब्रह्मा ने सृजित किया है, हम क्षणभंगुर, अस्थिर, अल्पायु हैं, हमारा नश्वर नाशवान है, और हम इस संसार में आए हैं।'

"हे पूज्यवर, इसी कारण आप यह सिखाते हैं कि समस्त सृष्टि की उत्पत्ति एक देवता, या ब्रह्मा द्वारा हुई है।" और उन्होंने कहा, "हे पूज्यवर गौतम, हमने यह आपके बताए अनुसार सुना है।" परन्तु मैं सृष्टि की आदि उत्पत्ति जानता हूँ... और अपने ज्ञान के वश में न होकर मैंने वह तृप्ति प्राप्त कर ली है, जिसके अहसास से तथागत भी अपंग मार्ग पर नहीं भटक सकते।

"कुछ तपस्वी और ब्राह्मण यह कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति सुख-भोग के कारण हुई... कुछ मन के भ्रष्ट होने के कारण हुई... कुछ संयोगवश हुई... परन्तु मैं सृष्टि की उत्पत्ति जानता हूँ... और अपने ज्ञान के वश में न होकर मैंने वह तृप्ति प्राप्त कर ली है, जिसके अहसास से तथागत भी कुटिल पथ पर नहीं भटकते।"

और मैं, भगव, जो यह सिखाता और घोषित करता हूँ, कुछ तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा गलत, व्यर्थ, झूठे और कुतर्कपूर्ण आरोपों का शिकार बनाया गया हूँ, जो कहते हैं: "तपस्वी गौतम और उनके भिक्षु दोनों ही गलत मार्ग पर हैं। उन्होंने कहा है कि जो कोई भी 'सुंदर' नामक मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, उसे सब कुछ घृणित लगता है।" लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूँ कि जब भी कोई 'सुंदर' नामक मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो वह जानता है कि वह सुंदर है।

'हे भगवान, जो लोग भगवान और उनके भिक्षुओं पर त्रुटि का आरोप लगाते हैं, वे स्वयं ही गलत मार्ग पर हैं। मैं भगवान से इतना प्रसन्न हूँ कि मुझे विश्वास है कि भगवान मुझे "सुंदरता" नामक मुक्ति को प्राप्त करना और उसमें बने रहना सिखा सकते हैं।'

'हे भगगव, भिन्न मतों, भिन्न प्रवृत्तियों, भिन्न प्रभावों, भिन्न अनुशासनों और भिन्न गुरुओं से प्रभावित होने के कारण तुम्हारे लिए "सुंदरता" नामक मुक्ति को प्राप्त करना और उसमें बने रहना कठिन है। तुम्हें मुझ पर भरोसा रखते हुए, कड़ी मेहनत करनी होगी, भगगव।'

'हे भगवान, भले ही मेरे लिए "सुंदरता" नामक मुक्ति को प्राप्त करना और उसमें बने रहना कठिन हो, फिर भी मैं भगवान पर अपना भरोसा रखूंगा।'

इस प्रकार भगवान ने कहा, और भगव नामक यात्री भगवान के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.2 उडुम्बरिकासिहानादा सुत्त(25)

मैंने ऐसा सुना है:

1. एक बार भगवान राजगृह के पास, गिद्ध शिखर पर ठहरे हुए थे। उस समय रानी उदंबरिका के उद्यान में, जो कि संन्यासियों के लिए निर्धारित था, संन्यासी निग्रोध1 अपने साथ लगभग तीन हजार संन्यासियों का एक बड़ा समूह लेकर ठहरे हुए थे। गृहस्थ संधान दोपहर में राजगृह से भगवान से मिलने निकले। तब उन्हें यह विचार आया: अभी भगवान से मिलने का समय नहीं है; वे विश्राम कर रहे होंगे। न ही मन साधना कर रहे भाइयों से मिलने का समय है; वे भी विश्राम कर रहे होंगे। क्या मैं उदंबरिका के उद्यान जाकर संन्यासी निग्रोध को ढूँढ़ लूँ? और संधान ने ऐसा ही किया।

2. उस समय निग्रोध नामक घुमक्कड़ अपने बड़े समूह के साथ बैठा था, सभी ऊँची आवाज़ में, शोर-शराबे के साथ, तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे, जैसे: राजाओं, लुटेरों [37] और राजकीय अधिकारियों की कहानियाँ; सेनाओं, दहशतों और लड़ाइयों की कहानियाँ; खाने-पीने की चीज़ों, कपड़ों, बिस्तरों, मालाओं और इत्रों के बारे में बातें; रिश्तेदारों के बारे में बातें; रथों, गाँवों, कस्बों, शहरों और देशों के बारे में बातें; महिलाओं के बारे में बातें;1 नायकों के बारे में बातें; गली-नुक्कड़ों और पानी भरने की जगहों की गपशप; भूत-प्रेत की कहानियाँ; बेतरतीब बातें; दुनिया और समुद्र पर अटकलबाज़ी वाली बातें; अस्तित्व और गैर-अस्तित्व पर बातें।

3. और निग्रोध नामक घुमंतू ने दूर से गृहस्थ संधान को आते देखा, और अपने साथियों को शांत रहने का आदेश देते हुए कहा: "महोदय, शांत रहो और शोर मत करो। समना गौतम का एक शिष्य, गृहस्थ संधान आ रहा है। काजगाह में गौतम के जितने भी श्वेत वस्त्रधारी शिष्य निवास करते हैं, उनमें से यह संधान भी एक है। ये सज्जन शांति पसंद करते हैं; इन्हें शांति का प्रशिक्षण दिया गया है; ये शांति की प्रशंसा करते हैं। कितना अच्छा होता यदि सभा की शांति देखकर वह हमारे साथ शामिल होना उचित समझता।" और जब उसने ऐसा कहा, तो घुमंतू चुप हो गए।

4. अब गृहस्थ संधान, निग्रोध नामक तपस्वी के पास आया और उससे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन और प्रशंसा करते हुए उसके पास बैठ गया। बैठे-बैठे संधान ने निग्रोध से कहा, "ये पूजनीय तपस्वी, जो अपने-अपने विचार रखते हैं, जब मिलते हैं और एक साथ आते हैं, तो उनकी बातचीत का तरीका भगवान के आचरण से भिन्न है। वे ऊँची आवाज़ में, शोर-शराबे के साथ, तरह-तरह की बचकानी बातें करते हैं (अर्थात्... [38] अस्तित्व और गैर-अस्तित्व पर)। परन्तु भगवान वन के एकांत और एकांत स्थानों में विचरण करते हैं, जहाँ शोर न के बराबर होता है, जहाँ चरागाहों से हवाएँ चलती हैं,1 फिर भी जो मनुष्यों की आँखों से छिपी होती हैं, आत्मचिंतन के लिए उपयुक्त होती हैं।"

5. जब संधाना ने बोल लिया, तो निग्रोधा ने उत्तर दिया: हे गृहस्थ, देखो, क्या तुम जानते हो कि समना गौतम किससे बात करते हैं? वे किससे संवाद करते हैं? किसके साथ संवाद करने से उन्हें ज्ञान की स्पष्टता प्राप्त होती है? 2 समना गौतम की अंतर्दृष्टि एकांतवास के कारण नष्ट हो गई है। वे सभा का संचालन करने में सहज नहीं हैं। वे बातचीत के लिए तैयार नहीं रहते। वे केवल विषय के बाहरी पहलुओं में ही लगे रहते हैं। 3 जैसे एक आँख वाली गाय वृत्त में चलते हुए केवल बाहरी किनारों का अनुसरण करती है, वैसे ही समना गौतम हैं। हे गृहस्थ, यदि समना गौतम इस सभा में आ जाएँ, तो हम केवल एक प्रश्न से ही उन्हें वश में कर सकते हैं; हाँ, मुझे लगता है कि हम उन्हें खाली घड़े की तरह पलट सकते हैं।

6. अब भगवान ने अपनी असाधारण, शुद्ध और मनुष्य की श्रवण शक्ति से गृहस्थ संधान और घुमक्कड़ निग्रोध के बीच की बातचीत सुनी। गिद्ध शिखर से उतरकर वे सुमगधा नदी के किनारे स्थित मोरों के चरागाह में आए और वहाँ खुले में टहलने लगे। निग्रोध ने उन्हें इस प्रकार टहलते देखा और अपने साथियों को शांत रहने का आदेश देते हुए कहा: "महोदय, शांत रहो और शोर मत करो। समना गौतम सुमगधा नदी के किनारे स्थित मोरों के चरागाह में खुले में टहल रहे हैं। यह सज्जन शांति में प्रसन्न होते हैं और शांति की प्रशंसा करते हैं; कितना अच्छा होता यदि वे सभा की शांति देखकर हमारे साथ शामिल होना उचित समझते। यदि समना गौतम इस सभा में आते, तो हम उनसे यह प्रश्न पूछ सकते थे;" हे भगवान, यह परम पूज्य का धर्म क्या है जिसमें वह अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करता है, और जिसे परम पूज्य द्वारा इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि उन्हें आराम मिले, और जिसे वे शिष्य अपना परम सहारा और धर्म का मूलभूत सिद्धांत मानते हैं?

जब उसने यह कहा तो घुमंतू लोग चुप रहे।

7. तब परमेश्वर निग्रोध के पास गए, और निग्रोध ने उनसे कहा: हे परमेश्वर, आपका स्वागत है! परमेश्वर ने यहाँ आने का निर्णय लेने में बहुत समय लगाया है। कृपया बैठ जाइए। यहाँ एक व्यक्ति बैठा है।

भगवान निग्रोध तैयार आसन पर बैठ गए, और निग्रोध उनके बगल में नीचा आसन लेकर बैठ गए। निग्रोध से बैठे हुए भगवान ने कहा, "हे निग्रोध, तुम यहाँ बैठकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हो, और मैंने तुम्हारी किस बातचीत में बाधा डाली है?" [40] तब निग्रोध ने भगवान से उत्तर दिया, "हे भगवान, हमने अभी-अभी सुमगधा नदी के किनारे मोरों के चरागाह में भगवान को खुले में टहलते हुए देखा है, और उन्हें इस प्रकार देखकर हमने कहा, "यदि समना गौतम इस सभा में आएँ, तो हम उनसे यह प्रश्न पूछ सकते हैं: हे भगवान, भगवान का यह धर्म क्या है, जिसमें वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं, और जिसे भगवान द्वारा प्रशिक्षित शिष्य, जो सुख प्राप्त करने के लिए इस प्रकार प्रशिक्षित होते हैं, अपना परम सहारा और धर्म का मूल सिद्धांत मानते हैं?"

निग्रोधा, क्या यह कठिन है कि कोई व्यक्ति, चाहे उसका मत, विचारधारा या मत अलग हो, अभ्यास और शिक्षा के बिना उस बात को समझ पाए जिसमें मैं अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करता हूँ, और जिसे वे, सुख प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित होकर, अपना परम सहारा और धर्म का मूल सिद्धांत मानते हैं? निग्रोधा, अब मुझसे अपने ही सिद्धांत, जीवन की कठोर संयमशीलता के बारे में एक प्रश्न पूछिए: इन आत्म-यातनाओं की पूर्ति किसमें है और इनकी पूर्ति न होने में क्या है?

जब उन्होंने यह कहा, तो घुमंतू लोग शोर मचाते हुए जोर से चिल्लाए: अद्भुत, महोदय! यह कितना अद्भुत है, महोदय, समना गौतम की महान प्रतिभा और क्षमताएं कि वे अपने सिद्धांतों को रोककर दूसरों के सिद्धांतों पर चर्चा के लिए आमंत्रित करते हैं!

8. तब निग्रोध ने भटकने वालों को शांत रहने का आदेश दिया और भगवान से इस प्रकार कहा: हे भगवान, हम आत्म-यातना का पालन करते हैं; हम उन्हें आवश्यक मानते हैं; हम उनका पालन करते हैं। उनकी पूर्ति और उनकी पूर्ति किसमें निहित है? मान लीजिए, निग्रोध, कि एक तपस्वी 2 नग्न रहता है, कुछ ढीले-ढाले वस्त्र पहनता है, अपने हाथ चाटता है, किसी के आने या रुकने का आदर नहीं करता; [41] किसी द्वारा विशेष रूप से लाई गई, विशेष रूप से तैयार की गई या किसी निमंत्रण को स्वीकार नहीं करता। वह खाना पकाने के

बर्तन के मुँह से ली गई कोई भी चीज़, दहलीज के भीतर रखी गई कोई भी चीज़, ओखली में रखी कोई भी चीज़, लकड़ियों के बीच रखी कोई भी चीज़ या चक्की में रखी कोई भी चीज़ स्वीकार नहीं करता; दो लोगों के एक साथ भोजन करने से कुछ भी ग्रहण नहीं करता, न ही गर्भवती महिला से, न ही दूध पिलाने वाली माँ से, न ही किसी पुरुष के साथ संभोग करने वाली स्त्री से, न ही सूखे में एकत्र किया गया भोजन, न ही जहाँ कुत्ता हो, न ही जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों, न ही वह मछली या मांस ग्रहण करता है, न ही मादक पेय, न ही मादक पदार्थ, न ही दलिया। वह या तो एक घर में रहने वाला (एक निवाला खाने वाला) होता है; या दो घर में रहने वाला (दो निवाला खाने वाला) होता है; या सात घर में रहने वाला (सात निवाला खाने वाला) होता है। वह एक, दो या सात भिक्षा पर अपना जीवन यापन करता है। वह दिन में एक बार, या हर दो दिन में एक बार, या हर सात दिन में एक बार भोजन करता है। इस प्रकार वह नियमित अंतराल पर, यहाँ तक कि आधे महीने तक, नियमानुसार भोजन करने के अभ्यास में लगा रहता है। वह या तो जड़ी-बूटियों, या जंगली चावल, या निवारा के बीज, या चमड़े के छिलके, या हाटा, या चावल के रसक में मौजूद पाउडर, चावल की मैल, तिलहन के आटे, घास, गोबर, जंगल से मिले फलों और जड़ों, [42] या गिरे हुए फलों पर निर्भर रहता है। वह मोटे भांग के कपड़े, मोटे मिश्रित कपड़े, छोड़े हुए शवों के कपड़े, छोड़े हुए चिथड़े, या तिरिता की छाल के कपड़े पहनता है; या फिर वह हिरण की खाल, या उसी की जालीदार पट्टियाँ, या कुसा के रेशे, या छाल के वस्त्र, या शंख के कपड़े, या मानव बालों का कंबल, या घोड़े के बालों का कंबल, या उल्लू के पंखों का वस्त्र पहनता है। वह बाल और दाढ़ी नोचने वाला है, दोनों को नोचने का आदी है; खड़ा होने वाला; एड़ियों पर झुकने वाला, इस तरह बैठने पर खुद को (आगे बढ़ने के लिए) ज़ोर लगाने का आदी है; कांटों की सेज पर सोने वाला, अपने पलंग पर लोहे के कांटे या नुकीली कीलें लगाने वाला; तख्तों का बिस्तर इस्तेमाल करने वाला; ज़मीन पर सोने वाला; केवल एक करवट सोने वाला; धूल-मिट्टी से सना हुआ और खुले में रहने वाला; जहाँ मन करे वहाँ बैठने वाला; गंदगी खाने का आदी; शराब न पीने का आदी; तीसरी बार शाम बिताने वाला। निग्रोधा, तुम क्या सोचती हो? यदि ये सब बातें सच हैं, तो क्या आत्म-यातना का पालन किया जा रहा है या नहीं?

हे भगवान, यदि ये बातें सत्य हैं, तो आत्म-यातना का पालन किया जा रहा है, न कि इसके विपरीत।

अब मैं, निग्रोधा, यह पुष्टि करती हूँ कि इस प्रकार की गई आत्म-यातना द्वारा तपस्या में कई तरह से दोष 1 शामिल है।

9. हे भगवान, आप किस प्रकार से यह पुष्टि करते हैं कि इसमें दोष शामिल है?

हे निग्रोध, यदि कोई तपस्वी तपस्या करता है और उस तपस्या के कारण आत्मसंतुष्ट हो जाता है, तो उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।2 हे निग्रोध, यह तपस्वी के लिए दोष है। [43] फिर, हे निग्रोध, यदि कोई तपस्वी तपस्या करता है और उस तपस्या के कारण स्वयं को श्रेष्ठ समझता है तथा दूसरों को तुच्छ समझता है, तो यह भी तपस्वी के लिए दोष है। फिर, हे निग्रोध, यदि कोई तपस्वी तपस्या करता है और उस तपस्या के कारण मदहोश और आसक्त हो जाता है तथा लापरवाह हो जाता है, तो यह भी तपस्वी के लिए दोष है।

10. और फिर, निग्रोधा, जब कोई तपस्वी तपस्या करता है, तो उसे उपहार, ध्यान और प्रसिद्धि प्राप्त होती है। इससे वह आत्मसंतुष्ट हो जाता है और उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है। यह भी तपस्वी के लिए एक दोष है। और फिर, निग्रोधा, उपहार, ध्यान और प्रसिद्धि प्राप्त करने से तपस्वी स्वयं को श्रेष्ठ समझता है और दूसरों को तुच्छ समझता है। यह भी तपस्वी के लिए एक दोष है।

और फिर, निग्रोध उपहारों, ध्यान और प्रसिद्धि को प्राप्त करने के चक्कर में मदहोश और मोहित हो जाता है और लापरवाह हो जाता है। यह भी तपस्वी के लिए एक दोष है।

और फिर, निग्रोध, जब कोई तपस्वी तपस्या करता है, तो वह भोजन में भेद करने लगता है, यह कहते हुए: यह मुझे भाता है; यह मुझे भाता नहीं है। बाद वाले को वह जानबूझकर त्याग देता है। पहले वाले के प्रति वह लालची और आसक्त हो जाता है, और उनमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए, उन्हें असुरक्षित न समझते हुए, उनसे चिपका रहता है और उनका आनंद लेता है। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है। [44] और फिर, निग्रोध, उपहारों, ध्यान और प्रसिद्धि की लालसा के कारण, वह सोचता है: राजा मुझ पर ध्यान देंगे, और उनके अधिकारी भी; और कुलीन, ब्राह्मण, गृहस्थ और विद्यालय संस्थापक भी। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।

11. और फिर, निग्रोधा, एक तपस्वी किसी संन्यासी या ब्राह्मण पर नाराज़गी जताते हुए कहता है: वह व्यक्ति हर तरह की चीज़ें खाकर अपना जीवन यापन करता है: कंदों से उगी चीज़ें, या कोंपलों से, या बेरों से, या पाँचवें, बीजों से, 1 उन सबको अपने उस पहिए रहित वज्र के समान जबड़े से चबाकर — और वे उसे पवित्र पुरुष कहते हैं! 2 यह भी तपस्वी में एक दोष है।

फिर निग्रोध, एक तपस्वी, एक ब्राह्मण को देखता है कि नागरिक उसका आदर-सम्मान कर रहे हैं, उसे भेंट चढ़ा रहे हैं और उसका सम्मान कर रहे हैं। यह देखकर वह सोचता है: नागरिक इस विलासितापूर्ण जीवन जीने वाले व्यक्ति पर ध्यान देते हैं; उसका आदर-

सम्मान करते हैं और उसे भेंट चढ़ाते हैं, जबकि मुझ जैसे तपस्वी को, जो वास्तव में सादा जीवन जीता है, न तो कोई ध्यान देता है, न आदर करता है, न सम्मान करता है, न भेंट चढ़ाता है! इस प्रकार वह नागरिकों से ईर्ष्या और द्वेष रखने लगता है। यह भी तपस्वी के लिए एक दोष है।

और फिर, निग्रोधा, एक तपस्वी सार्वजनिक रूप से बैठने वाला बन जाता है।3 यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।

और फिर, तपस्वी निग्रोध, जब लोगों के बीच भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते हैं, तो दबे पांव चलते हैं,1 मानो कह रहे हों: यह मेरी तपस्या का हिस्सा है; यह मेरी तपस्या का हिस्सा है। यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है। [45] और फिर, तपस्वी निग्रोध रहस्यमयी व्यवहार करते हैं। जब उनसे पूछा जाता है: क्या आप इसे स्वीकार करते हैं? तो वे स्वीकार न करते हुए कहते हैं: मैं करता हूँ, या स्वीकार करते हुए कहते हैं: मैं नहीं करता। इस प्रकार वे जानबूझकर झूठ बोलते हैं। . . . यह भी तपस्वी में एक दोष बन जाता है।

12. और फिर, निग्रोधा, जब तथागत या तथागत के शिष्य, विधि का उपदेश देते हुए, किसी प्रशंसनीय विधि का प्रयोग करते हैं, तो तपस्वी उसकी सराहना नहीं करता। यह भी तपस्वी के लिए एक दोष बन जाता है।

और फिर, निग्रोध, तपस्वी अपना आपा खो सकता है और शत्रुता रख सकता है। यह भी तपस्वी का दोष है। और फिर, निग्रोध, तपस्वी पाखंडी और कपटी होने के साथ-साथ ईर्ष्यालु और द्वेषी भी हो सकता है; वह धूर्त और चालाक, कठोर हृदय और अभिमानी हो जाता है; वह बुरी इच्छाओं का पालन करता है और उनका गुलाम बन जाता है; वह गलत मतों का पालन करता है, अनुभवहीन सिद्धांतों में लीन हो जाता है;2 अपने अनुभव की गलत व्याख्या करता है;3 लालची और त्याग से विमुख हो जाता है। यह भी तपस्वी का दोष है।

निग्रोधा, इस बारे में आपका क्या विचार है? क्या ये बातें आत्म-यातना की तपस्या में खामियां हैं, या नहीं?

हे भगवान, ये सब बातें आत्म-यातना में दोष हैं। हे भगवान, यह संभव है कि एक तपस्वी में ये सभी दोष हों, और इनमें से कोई एक दोष तो और भी अधिक हो।

13. अब विपरीत मामला लीजिए, निग्रोध: एक तपस्वी तपस्या का मार्ग अपनाता है। उस मार्ग के माध्यम से वह आत्मसंतुष्ट नहीं होता, न ही उसके उद्देश्य पूरे होते हैं [46]। ऐसा होने पर, वह उस हद तक शुद्ध हो जाता है।

और फिर, निग्रोध, वह... न तो स्वयं को श्रेष्ठ समझता है और न ही दूसरों को तुच्छ समझता है... वह न तो मदहोश होता है, न ही मोह में डूबता है और न ही लापरवाह होता है... वह उपहारों, ध्यान और प्रसिद्धि से आत्मसंतुष्ट और तिरस्कारपूर्ण नहीं हो जाता, न ही वह इसके कारण स्वयं को श्रेष्ठ समझता है और न ही दूसरों को तुच्छ समझता है, न ही वह इसके कारण मदहोश होता है, न ही मोह में डूबता है और न ही लापरवाह होता है; वह भोजन में भेद नहीं करता, यह कहते हुए कि: यह मुझे पसंद है, यह मुझे पसंद नहीं है, जानबूझकर बाद वाले को त्यागकर पहले वाले के प्रति लालची और मोह में डूबा हुआ नहीं रहता, उनमें छिपे खतरे को देखे बिना या उनकी असुरक्षा को समझे बिना उनसे चिपका रहता है और उनका आनंद लेता है; वह उपहारों, ध्यान और प्रसिद्धि की लालसा में यह नहीं सोचता कि राजा, उनके अधिकारी, और इसी तरह कुलीन, ब्राह्मण, गृहस्थ और विद्यालय संस्थापक भी मुझ पर ध्यान देंगे।

14. और फिर, वह किसी संन्यासी या ब्राह्मण पर यह कहकर शिकायत नहीं करता [47] कि वह व्यक्ति हर तरह की चीजों पर जीता है—उदाहरण के लिए कंद, अंकुर, बेर, गांठ, या पांचवा, बीजों से उगी हुई चीजों पर—उन सबको अपने उस पहिए रहित वज्र के समान जबड़े से चबाकर, और वे उसे पवित्र पुरुष कहते हैं! जब वह किसी संन्यासी या ब्राह्मण को नागरिकों द्वारा ध्यान, आदर, सम्मान और भेंट प्राप्त करते देखता है, तो वह यह नहीं सोचता: नागरिक इस व्यक्ति पर ध्यान देते हैं जो हर तरह की चीजों पर जीता है; वे उसका आदर और सम्मान करते हैं और उसे भेंट देते हैं, जबकि मुझ पर, जो एक तपस्वी के रूप में वास्तव में कठोर जीवन जीता हूँ, वे न तो ध्यान देते हैं, न आदर, न सम्मान, न भेंट, और इस प्रकार वह नागरिकों से ईर्ष्या और द्वेष नहीं रखता; वह सार्वजनिक रूप से नहीं बैठता, न ही नागरिकों के बीच छिपकर घूमता है मानो यह कहने के लिए: यह मेरी तपस्या का हिस्सा है; यह मेरी सादगी का हिस्सा है। वह रहस्यमयी बातें नहीं करता, न ही पूछे जाने पर कि क्या वह इससे सहमत है, कहता है, "मैं सहमत हूँ," जबकि वह सहमत नहीं होता, या कहता है, "मैं सहमत नहीं हूँ," जबकि वह सहमत होता है। इस प्रकार वह जानबूझकर झूठ बोलने से बचता है।

15. और फिर, जब तथागत या तथागत के शिष्य, नियम का उपदेश देते हुए, किसी प्रशंसनीय विधि का प्रयोग करते हैं, तो वे उसकी सराहना करते हैं। वे क्रोधित नहीं होते और न ही शत्रुता रखते हैं; वे पाखंडी और कपटी, ईर्ष्यालु और द्वेषी, धूर्त और चालाक, कठोर हृदय वाले [48] और अभिमानी नहीं बनते; वे बुरी इच्छाएँ नहीं रखते और न ही उनके वश में होते हैं; वे झूठे मत नहीं रखते और न ही

अनुभवजन्य सिद्धांतों में लीन होते हैं, अनुभव को विकृत नहीं करते, लोभी नहीं होते और त्याग से विमुख नहीं होते। अनुभववाद से अप्रभावित रहने, लोभी न होने और त्याग में लीन रहने से ही वे शुद्ध होते हैं। निग्रोध, आप क्या सोचते हैं? ऐसा होने पर, क्या इन बातों से तपस्या वास्तव में शुद्ध हो जाती है या नहीं?

हे भगवान, इन चीजों की तपस्या वास्तव में पवित्र होती है, अपवित्र नहीं; यह सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है, यह सार तक पहुँचती है।

नहीं, निग्रोधा, अभी तक तपस्या सर्वोच्च श्रेणी की नहीं हुई है, न ही सार तक पहुंची है; बल्कि यह तो केवल बाहरी टुकड़ों तक ही पहुंची है।

16. हे भगवान, तपस्या किस प्रकार सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है और सार तक पहुँचती है? यदि परमेश्वर मेरी तपस्या को सर्वोच्च स्थान और सार तक पहुँचा दें तो यह कितना अच्छा होगा!

निग्रोधा, एक ऐसे तपस्वी का उदाहरण लीजिए जो चौगुने पहर के संयम से आत्मसंयमित है। चौगुने पहर का संयम क्या है? यह वह स्थिति है जब कोई तपस्वी किसी भी सजीव प्राणी को चोट नहीं पहुँचाता, न ही किसी सजीव प्राणी को चोट पहुँचाने का कारण बनता है, और न ही उसका समर्थन करता है। [49] वह बिना दी हुई वस्तु नहीं लेता, और न ही उसका समर्थन करता है। वह झूठ नहीं बोलता, न ही झूठ बुलवाता है, और न ही उसका समर्थन करता है। वह इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करता, न ही दूसरों को उनकी लालसा करने के लिए प्रेरित करता है, और न ही उसका समर्थन करता है। अब, निग्रोधा, इस प्रकार तपस्वी चौगुने पहर के संयम से आत्मसंयमित हो जाता है।

अब चूंकि वह इस प्रकार आत्मसंयमित है, और उसकी तपस्या इसी में निहित है, वह ऊपर की ओर अग्रसर होता है 2 और निम्नतर चीजों की ओर नहीं लौटता। वह अपने बैठने के लिए कोई एकांत स्थान चुनता है 3 - जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में, पहाड़ी पर, पर्वतीय घाटी में, या चट्टानी गुफा में, श्मशान में, या खुले मैदानों में पुआल के ढेर पर। और भिक्षा मांगने के बाद वहां लौटकर, भोजन समाप्त होने पर वह पालथी मारकर बैठ जाता है, शरीर को सीधा रखता है, और अपनी बुद्धि को सतर्क और एकाग्र रखता है। संसार की लालसा को त्यागकर, वह लालसा रहित हृदय से रहता है, और अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष के नासूर को त्यागकर, वह शत्रुता रहित हृदय से रहता है, प्रत्येक प्राणी के प्रति दयालु और करुणामय होता है, 4 और अपने मन को द्वेष से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती को त्यागकर, वह दोनों से मुक्त रहता है; प्रकाश के प्रति सचेत, सजग और आत्मसंयमित होकर वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। हड़बड़ी और चिंता को त्यागकर वह उत्तेजना से मुक्त रहता है; हृदय में शांति लिए वह अपने मन को हड़बड़ी और चिंता से शुद्ध करता है। संदेह को त्यागकर वह उस व्यक्ति के समान रहता है जो उलझन से परे हो चुका है; अच्छे-बुरे के बारे में संशय में न रहकर वह अपने मन को संदेह से शुद्ध करता है।

17. इन पाँच बाधाओं को दूर करके और अंतर्दृष्टि से हृदय को दूषित करने वाली चीजों की शक्ति को कमजोर करके, वह प्रेम से भरे अपने मन को संसार के एक चौथाई भाग में, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे भाग में व्याप्त करता है। इस प्रकार वह संपूर्ण संसार को, ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, प्रेम से भरे विचारों से व्याप्त करता रहता है, जो प्रचुर, उदात्त और असीम हैं, घृणा और द्वेष से मुक्त हैं। वह करुणा से भरे अपने मन को संसार में व्याप्त करता है... और वह समभाव से भरे अपने मन को संसार में व्याप्त करता है। और इस प्रकार संपूर्ण विशाल संसार—ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह—वह समभाव से परिपूर्ण, प्रचुर, उदात्त और असीम हृदय से व्याप्त रहता है, जो घृणा और दुर्भावना से मुक्त है।

निग्रोधा, इस बारे में तुम्हारा क्या विचार है? क्या इन चीजों से की गई तपस्या वास्तव में पवित्र हो जाती है या नहीं?

हे भगवान, निश्चय ही इन बातों से तपस्या वास्तव में शुद्ध हो जाती है, अशुद्ध नहीं होती, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है और सार तक पहुँचती है।

नहीं, निग्रोधा, तपस्या ने अभी तक सर्वोच्च स्थान या वास्तविकता प्राप्त नहीं की है; बल्कि यह तो केवल सतही स्तर तक ही सीमित है।2

18. हे भगवान, तपस्या किस प्रकार सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर पूर्णत: सार तक पहुँचती है? कितना अच्छा होगा यदि भगवान मेरी तपस्याओं को सर्वोच्च स्थान प्राप्त करा दें और उन्हें पूर्णत: सार तक पहुँचा दें!

निग्रोधा, उस तपस्वी का उदाहरण लीजिए जो चार प्रकार के संयम से आत्मसंयमित है। इस प्रकार आत्मसंयम के कारण और इसी तपस्या में समाहित होने के कारण, वह ऊपर की ओर अग्रसर होता है और निम्नतर चीजों की ओर नहीं लौटता। वह अपने विश्राम के लिए कोई एकांत स्थान चुनता है... और उन पाँच बाधाओं को दूर करके, और अंतर्दृष्टि से हृदय को दूषित करने वाली चीजों की शक्ति को कमजोर करके, प्रेम, दया, सहानुभूति और समभाव से परिपूर्ण होकर अपने मन को संसार में व्याप्त करता है। वह बीते दिनों की अपनी विभिन्न अस्थायी अवस्थाओं को याद करता है—एक जन्म, या दो, या तीन, या चार, या पाँच जन्म, या दस, या बीस, या तीस, या चालीस, या पचास, या सौ, [51] या एक हजार, या एक लाख जन्म, विघटन के कई युगों से, विकास के कई युगों से गुज़रते हुए: ऐसे स्थान पर, ऐसा मेरा नाम था, ऐसा मेरा परिवार था, ऐसा मेरा रंग था, ऐसा मेरा भोजन था, ऐसा मेरा असुविधा या आराम का अनुभव था, और ऐसी मेरे जीवन की सीमाएँ थीं। जब मैं उस अवस्था से विदा हुआ, तो मैंने ऐसे स्थान पर पुनः जन्म लिया। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा परिवार, ऐसा रंग, ऐसा भोजन, ऐसा असुविधा या आराम का अनुभव था, और ऐसी मेरे जीवन की सीमाएँ थीं। जब मैं उस अवस्था से विदा हुआ, तो मैंने यहाँ पुनः जन्म लिया... इस प्रकार वह बीते दिनों की अपनी अस्थायी अवस्थाओं को उनके सभी विवरणों और सभी रूपों में याद करता है।

निग्रोधा, इस बारे में आपका क्या विचार है? क्या इन चीजों से की गई तपस्या वास्तव में शुद्ध होती है या नहीं?

हे भगवान, निश्चय ही इन बातों से तपस्या वास्तव में शुद्ध हो जाती है, अशुद्ध नहीं, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है और सार तक पहुँचती है।

नहीं, निग्रोधा, तपस्या अभी तक सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके सार तक नहीं पहुंची है, हालांकि यह अंतर्निहित रेशों तक अवश्य पहुंच जाती है।

19. हे भगवान, तपस्या किस प्रकार शिखर और सार तक पहुँचती है? कितना अच्छा होता यदि परमेश्वर मेरी तपस्याओं को शिखर और सार तक पहुँचा देते!

निग्रोध, उस तपस्वी का उदाहरण लीजिए जो चार प्रकार के पहर के संयम से आत्मसंयमित है, जिसने पाँच बाधाओं को दूर कर दिया है, जिसने अपने मन को प्रेम, दया, सहानुभूति और समभाव से संसार में व्याप्त कर लिया है, और जिसने अपने बीते दिनों की विभिन्न अस्थायी अवस्थाओं को उनके सभी विवरणों [52] और उनके सभी रूपों में याद किया है। वह मनुष्यों की दृष्टि से परे, शुद्ध देव-दृष्टि से प्राणियों को एक रूप से विलीन होकर दूसरे रूप में धारण करते हुए देखता है; वह नीच और श्रेष्ठ, सुंदर और बदसूरत, सुखी और दुखी को उनके कर्मों के अनुसार मृत्यु को प्राप्त करते हुए पहचानता है: अमुक-अमुक योग्य लोग,1 कर्म, वचन और विचार में दुष्ट, आर्यों के निंदक, गलत विचारों को धारण करने वाले, गलत विचारों से उत्पन्न कर्मों को अर्जित करने वाले, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वे किसी दुखद या कष्टमय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु अमुक प्राणी, जो कर्म, वचन और विचार में अच्छे हैं, आर्यों की निंदा नहीं करते, सही विचारों को धारण करते हैं, सही विचारों से फल प्राप्त करते हैं, वे शरीर के नष्ट होने पर स्वर्ग में किसी सुखी अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य की दृष्टि से परे शुद्ध देव दृष्टि से, वे प्राणियों को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जन्म लेते हुए देखते हैं; वे नीच और श्रेष्ठ, सुंदर और अशुभ, सुखी और दुखी, सभी को उनके कर्मों के अनुसार मृत्यु को प्राप्त होते हुए पहचानते हैं। निग्रोधा, इस विषय में आपका क्या विचार है?

क्या इन चीजों से तपस्या करने पर वास्तव में पवित्रता प्राप्त होती है या नहीं? हे भगवान, इन चीजों से तपस्या करने पर वास्तव में पवित्रता प्राप्त होती है, अपवित्रता नहीं; यह सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है और सार तक पहुँचती है।

इस प्रकार, निग्रोधा, तपस्या सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है और सार तक पहुँचती है। इसलिए, निग्रोधा, जब तुम मुझसे कहते हो: हे भगवान, परमेश्वर का यह धर्म क्या है, जिसमें वे अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं, और जिसे परमेश्वर द्वारा प्रशिक्षित होकर वे सुख प्राप्त करते हैं, और उसे अपना परम सहारा और धर्म का मूल सिद्धांत मानते हैं? मैं कहता हूँ कि यह उससे भी उच्च और उत्कृष्ट स्तर का विषय है जिसमें मैं अपने शिष्यों को प्रशिक्षित करता हूँ, ताकि वे मेरे द्वारा प्रशिक्षित होकर सुख प्राप्त करें और उसे अपना परम सहारा और धर्मपरायण जीवन का मूल सिद्धांत मानें।

जब उसने ऐसा कहा, तो घुमंतू लोग शोर मचाने लगे और जोर-जोर से चिल्लाने लगे: इसमें हम और हमारे गुरु दोनों ही निष्कलंक हैं। हम उनकी शिक्षा से परे कुछ भी उच्चतर नहीं जानते।

20. जब गृहस्थ संधान को यह अहसास हुआ कि ये भटकने वाले, यद्यपि उनके विचार भिन्न हैं, भगवान की बातें सुन रहे हैं, ध्यान दे रहे हैं और समझने का प्रयास कर रहे हैं, तब उन्होंने निग्रोध से कहा: 1 हे निग्रोध, अभी तुम मुझसे कह रहे थे: हे गृहस्थ, अब जान लो कि समना गौतम किससे बात करते हैं; किससे संवाद करते हैं; किसके साथ संवाद करके उन्हें ज्ञान की स्पष्टता प्राप्त होती है? समना गौतम की अंतर्दृष्टि एकांतवास के कारण नष्ट हो गई है। वे सभा का संचालन करने में सहज नहीं हैं। वे बातचीत में तत्पर नहीं हैं। वे केवल सतही बातों में ही लगे रहते हैं। जैसे एक आँख वाली गाय वृत्त में घूमते हुए हमेशा बाहरी किनारों का अनुसरण करती है, वैसे ही समना गौतम हैं। हे गृहस्थ, यदि समना गौतम इस सभा में आ जाएँ, तो हम केवल एक प्रश्न से ही उन्हें वश में कर सकते हैं; हाँ, मुझे लगता है कि हम उन्हें खाली घड़े की तरह पलट सकते हैं। अब परम पूज्य भगवान, अरहंत बुद्ध, हमारे बीच आ गए हैं; उन्हें सभा में असहज दिखाओ; उन्हें एक आँख वाली गाय की तरह गोल-गोल घूमते हुए दिखाओ; अपने एक ही प्रश्न से उन्हें शांत कर दो, उन्हें एक खाली बर्तन की तरह पलट दो।

जब उसने ऐसा कहा, तो निग्रोधा चुपचाप और नाराज होकर, पीठ झुकाए और सिर झुकाए बैठी रही, सोच में डूबी हुई और हक्का-बक्का सी।

21. अब जब परमेश्वर ने उसकी स्थिति देखी, तो उन्होंने कहा: हे निग्रोधा, क्या यह सच है कि तुमने यह बात कही?

हे भगवान, यह सच है कि मैंने वह भाषण दिया था, मैं कितना मूर्ख था, कितना बेवकूफ था, कितना गलत था।

निग्रोधा, इस विषय में आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी आदरणीय, वृद्ध संतों, जो आपके गुरु और आपके गुरुओं के गुरु थे, से यह कहते सुना है: "जो बीते युगों में अरहंत, परम बुद्ध थे, वे जब एकत्रित होते थे, तो ऊँची आवाज़ में, शोर-शराबे के साथ, तरह-तरह की बचकानी बातें करते थे, जैसे राजाओं, डाकुओं आदि की बातें, या अस्तित्व और गैर-अस्तित्व के विषय में चिंतन करते थे, जैसा कि आप और आपके गुरु अब करते हैं?" या उन्होंने यह कहा: "वे संत जंगल के एकांत और एकांत स्थानों में जाया करते थे, जहाँ शोर न के बराबर होता था, जहाँ चरागाहों से हवाएँ चलती थीं, फिर भी जो मनुष्यों की आँखों से छिपे रहते थे, आत्मचिंतन के लिए उपयुक्त स्थान थे, जैसा कि मैं अब करता हूँ?"

हे भगवान, मैंने पूजनीय, वृद्ध संतों, हमारे गुरुओं और हमारे गुरुओं के गुरुओं से यह सुना है: बीते युगों में जो अरहंत, परम बुद्ध थे, उनका यह कार्य नहीं था कि जब वे एकत्रित हों, तो ऊँची आवाज़ में, शोर-शराबे के साथ, तरह-तरह की बचकानी बातें करें... या अस्तित्व और गैर-अस्तित्व के विषय में अटकलबाज़ी करें, जैसा कि मैं अब अपने विश्वास में करता हूँ, बल्कि उनका कार्य था वनों के एकांत और एकांत स्थानों में जाना, जहाँ शोर न के बराबर होता है, जहाँ चरागाहों से हवाएँ चलती हैं, फिर भी जो मनुष्यों की आँखों से छिपी होती हैं, आत्म-चिंतन के लिए उपयुक्त स्थान, जैसा कि परम पूज्य बुद्ध अब करते हैं।

हे निग्रोधा, तुम स्वयं बुद्धिमान और वृद्ध होते हुए भी क्या यह बात तुम्हें नहीं सूझी? परम पूज्य हैं वे; वे ज्ञान के धर्म का उपदेश देते हैं। परम पूज्य हैं वे; वे आत्म-संयम के धर्म का उपदेश देते हैं। परम पूज्य हैं वे; वे शांत हैं; वे शांति के धर्म का उपदेश देते हैं। परम पूज्य हैं वे; [55] वे मोक्ष के धर्म का उपदेश देते हैं। 1 परम पूज्य हैं वे; वे शांति के धर्म का उपदेश देते हैं। 2

22. जब यह कहा गया, तो निग्रोध नामक यात्री ने परम पूज्य से इस प्रकार कहा:3 हे भगवान, मुझसे एक अपराध हो गया है, मैं मूर्ख, नासमझ और पापी हूँ, जिसने परम पूज्य के विषय में ऐसा कहा। हे भगवान, कृपया मेरे इस अपराध को स्वीकार करें, ताकि भविष्य में मैं स्वयं को संयमित रख सकूँ।

निग्रोध, तुमने जो किया वह एक अपराध था; तुमने मेरे बारे में जो कहा वह मूर्खतापूर्ण, नासमझ और गलत था। निग्रोध, तुमने इसे अपराध मानते हुए अपने कर्मों के अनुसार स्वीकार किया है, इसलिए हम तुम्हारा स्वीकारोक्ति स्वीकार करते हैं। निग्रोध, आर्यों के अनुशासन में यही प्रथा है कि जो कोई अपने दोष को दोष मानता है और उसे स्वीकार करता है, वह भविष्य में आत्मसंयम प्राप्त करेगा।

लेकिन मैं, निग्रोध, तुमसे यह कहता हूँ:4 मेरे पास एक बुद्धिमान, ईमानदार, स्पष्टवादी और सीधा-सादा व्यक्ति आए—मैं उसे शिक्षा दूँगा, मैं उसे नियम सिखाऊँगा। यदि वह सिखाए अनुसार अभ्यास करे, तो स्वयं को जानने और इसी क्षण उस परम धर्म और लक्ष्य को प्राप्त करने में, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में जाते हैं, उसे सात वर्ष लगेंगे। नहीं, निग्रोध, सात वर्ष ही रहने दो। यदि वह सिखाए अनुसार अभ्यास करे, तो स्वयं को जानने और इसी क्षण उस परम धर्म और लक्ष्य को प्राप्त करने में, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में जाते हैं, उसे छह वर्ष, पाँच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, ... छह महीने ... पाँच, तीन, दो महीने, एक महीना, आधा महीना लगेगा। नहीं, निग्रोध, आधा महीना ही रहने दो। मेरे पास एक बुद्धिमान, ईमानदार,

स्पष्टवादी और सीधा-सादा व्यक्ति आए; मैं उसे शिक्षा दूंगा, मैं उसे नियम सिखाऊंगा, और यदि वह सिखाए गए अनुसार अभ्यास करे, तो स्वयं उस सर्वोच्च धर्म और लक्ष्य को जानने और समझने में उसे सात दिन लगेंगे, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी अवस्था में जाते हैं।

23. हे निग्रोधा, शायद तुम सोचोगी: समना गौतम ने शिष्य पाने की इच्छा से ऐसा कहा है; परन्तु तुम मेरे शब्दों की व्याख्या इस प्रकार न करो। जो तुम्हारा गुरु है, वही तुम्हारा गुरु बना रहे। हे निग्रोधा, शायद तुम सोचोगी: समना गौतम ने हमें हमारे नियम से विमुख करने की इच्छा से ऐसा कहा है; परन्तु तुम मेरे शब्दों की व्याख्या इस प्रकार न करो। जो तुम्हारा नियम है, वही तुम्हारा नियम बना रहे। हे निग्रोधा, शायद तुम सोचोगी: समना गौतम ने हमें हमारी आजीविका के तरीके से विमुख करने की इच्छा से ऐसा कहा है; परन्तु तुम मेरे शब्दों की व्याख्या इस प्रकार न करो। जो तुम्हारी आजीविका का तरीका है, वही बना रहे। हे निग्रोधा, शायद तुम सोचोगी: समना गौतम ने हमें हमारे उन सिद्धांतों के बारे में पुष्ट करने की इच्छा से ऐसा कहा है जो गलत हैं, और जिन्हें हमारे समुदाय के लोग गलत मानते हैं; लेकिन तुम इस प्रकार मेरे शब्दों की व्याख्या नहीं कर सकते। तुम्हारे सिद्धांतों में जो बातें गलत हैं और तुम्हारे समुदाय के लोग उन्हें गलत मानते हैं, उन्हें तुम अपने लिए वैसा ही रहने दो। शायद, निग्रोधा, तुम सोचोगे: समना गौतम ने यह इसलिए कहा है ताकि हमें हमारे सिद्धांतों की उन बातों से अलग किया जा सके जो अच्छी हैं और हमारे समुदाय के लोग उन्हें अच्छा मानते हैं; लेकिन तुम इस प्रकार मेरे शब्दों की व्याख्या नहीं कर सकते। तुम्हारे सिद्धांतों में जो बातें अच्छी हैं और तुम्हारे समुदाय के लोग उन्हें अच्छा मानते हैं, उन्हें तुम अपने लिए वैसा ही रहने दो।

अत: हे निग्रोधा, मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ, न तो शिष्य प्राप्त करने के लिए, न ही नियम से विमुख करने के लिए, न ही आजीविका के तरीके से विमुख करने के लिए, न ही तुम्हें बुरे सिद्धांतों में दृढ़ करने के लिए, और न ही अच्छे सिद्धांतों से विमुख करने के लिए। परन्तु, हे निग्रोधा, कुछ बुरी बातें ऐसी हैं जिन्हें दूर नहीं किया जा सकता, जो भ्रष्ट करती हैं, जन्म-पुनरावृत्ति का कारण बनती हैं, दुख लाती हैं, बुराई का परिणाम देती हैं, और भविष्य में जन्म, क्षय और मृत्यु का कारण बनती हैं। और इन्हीं को दूर करने के लिए मैं नियम का उपदेश देता हूँ, जिसके अनुसार यदि तुम चलोगे, तो भ्रष्ट करने वाली बातें दूर हो जाएँगी, पवित्रता लाने वाली बातें बढ़ेंगी और फलेंगी-फूलेंगी, और तुम सब यहीं और अभी अपने लिए पूर्ण और प्रचुर अंतर्दृष्टि की समझ और अनुभूति प्राप्त करोगे और उसमें बने रहोगे।

24. जब उसने ऐसा कहा, तो घुमक्कड़ चुपचाप और नाराज़ होकर, कमर झुकाए और सिर झुकाए बैठे रहे, चिंतन करते और अवाक रह गए, उनके हृदय मारा के प्रति समर्पित थे।

तब परमेश्वर ने सोचा: इन सभी मूर्ख पुरुषों पर शैतान का साया है, इसलिए उनमें से किसी के मन में भी यह विचार नहीं आएगा: आओ, अब हम समना गौतम द्वारा सिखाए गए पवित्र जीवन का अनुसरण करें, ताकि हम उसे जान सकें। सात दिनों का अंतराल क्या मायने रखता है?

फिर भगवान ने रानी उदंबरिका द्वारा यात्रियों के लिए निर्धारित उद्यान में सिंह गर्जना करते हुए आकाश में उड़ान भरी और गिद्ध शिखर पर उतरे। तब गृहस्थ संधना भी राजगृह लौट गए।

(उदुम्बरिका सिहानफिदा-सुत्तंता समाप्त हो गया है।)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.3 चक्कावत्तिसिहानादा सुत्त (DN26)

अंतर्वस्तु

1सुत्त
1.1शाश्वत शिक्षा
1.2एक पूर्व शासक दलहानेमी
1.2.1उत्तराधिकार के बाद नैतिक पतन
1.3बुद्ध द्वारा भविष्यवाणियाँ
1.4अंत में, क्या करें?

सुत्त

शाश्वत शिक्षा

एक बार भगवान मगधियों के बीच मतुला में ठहरे हुए थे। तब उन्होंने कहा: "भिक्षुओं!" "भगवान," उन्होंने उत्तर दिया, और भगवान ने कहा:

"भिक्षुओं, अपने आप में एक द्वीप बनो, अपने लिए एक शरणस्थल बनो, और किसी अन्य शरणस्थल की आवश्यकता न हो। धम्म को अपना द्वीप बनाओ, धम्म को अपनी शरणस्थल बनाओ, धम्म को अपना द्वीप बनाओ, धम्म को अपनी शरणस्थल बनाओ, और किसी अन्य शरणस्थल की आवश्यकता न हो? यहाँ, एक भिक्षु शरीर को शरीर के रूप में ध्यान करते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, भावनाओं को भावनाओं के रूप में ध्यान करते हुए, ... वह मन की वस्तुओं को ध्यान करते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, ध्यान करते हुए रहता है।"

"भिक्षुओं, अपने पैतृक क्षेत्रों में ही रहो। ऐसा करने से मारा को कोई आश्रय या ठिकाना नहीं मिलेगा। यह पुण्य केवल अच्छे कर्मों के संचय से ही बढ़ता है।"

एक पूर्व शासक दलहानेमी

"एक समय की बात है, भिक्षुओं, दलहानेमी नाम का एक चक्र-घुमाने वाला राजा था, जो धर्म का पालन करने वाला, चारों दिशाओं का विजेता, अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित करने वाला और सात रत्नों का स्वामी था। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थी रत्न और सातवाँ रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र थे जो वीर थे, वीर व्यक्तित्व वाले और शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले थे। उसने इस सागर-घिरे देश को बिना लाठी या तलवार के, धर्म के द्वारा जीता था।"

और, कई सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद, राजा दलहानेमी ने एक व्यक्ति से कहा: 'हे मेरे जन, जब भी तुम देखो कि पवित्र चक्र-खजाना अपनी जगह से खिसक गया है, तो मुझे सूचना देना।' 'जी महाराज', उस व्यक्ति ने उत्तर दिया। और कई सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद उस व्यक्ति ने देखा कि पवित्र चक्र-खजाना अपनी जगह से खिसक गया है। यह देखकर उसने राजा को सूचना दी। तब राजा दलहानेमी ने अपने सबसे बड़े पुत्र, युवराज को बुलवाया और कहा: "मेरे पुत्र, पवित्र चक्र-खजाना अपनी जगह से खिसक गया है। और मैंने सुना है कि जब किसी चक्र-चालक सम्राट के साथ ऐसा होता है, तो उसका जीवन अधिक समय तक नहीं चलता। मैंने सांसारिक सुखों का भरपूर आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय सुखों की खोज का समय है। हे मेरे पुत्र, तुम इस सागर-बद्ध भूमि का कार्यभार संभाल लो। मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत करूंगा।" अपने सबसे बड़े पुत्र को विधिवत राजा के रूप में स्थापित करने के बाद, राजा दलहानेमी ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले गए। और, राजा के संन्यासी बनने के सात दिन बाद, पवित्र चक्र-खजाना गायब हो गया। फिर एक व्यक्ति अभिषेक किए गए खत्तिया बादशाह के पास आया और बोला, 'महाराज, आपको यह जानना चाहिए कि पवित्र चक्र-खजाना लुप्त हो गया है।' यह सुनकर राजा व्यथित हुए और दुखी हुए। वे राजऋषि के पास गए और उन्हें यह खबर सुनाई। राजऋषि ने उनसे कहा, 'मेरे पुत्र, चक्र-खजाने के लुप्त होने पर शोक या दुखी न हों। चक्र-खजाना आपके पूर्वजों की विरासत नहीं है। लेकिन अब, मेरे पुत्र, आपको आर्य चक्र-चालक बनना होगा। और तब ऐसा हो सकता है कि यदि आप आर्य चक्र-चालक सम्राट के कर्तव्यों का

पालन करें, तो पंद्रहवें व्रत के दिन, जब आप अपना सिर धोकर व्रत के लिए अपने महल के शीर्ष पर स्थित बरामदे में जाएँ, तो पवित्र चक्र-खजाना आपको हजार तीलियों वाला, धुरी, केंद्रक और सभी सहायक वस्तुओं सहित प्रकट हो जाएगा।'

"'लेकिन महाराज, आर्य चक्र-घुमाने वाले सम्राट का कर्तव्य क्या है?'" हे मेरे पुत्र, तुम स्वयं धम्म पर निर्भर रहो, उसका आदर करो, उसका सम्मान करो, उसे संजोकर रखो, उसे प्रणाम करो और उसकी पूजा करो, धम्म को अपना प्रतीक और ध्वज मानकर, धम्म को अपना स्वामी मानकर, अपने घर, अपनी सेना, अपने सरदारों और सामंतों, ब्राह्मणों और गृहस्थों, नगर और गाँव के लोगों, तपस्वियों और ब्राह्मणों, पशुओं और पक्षियों की धम्म के अनुसार रक्षा और संरक्षण करो। अपने राज्य में किसी भी प्रकार का अपराध न होने दो, और जरूरतमंदों को संपत्ति दो। और तुम्हारे राज्य में जितने भी तपस्वी और ब्राह्मण इंद्रिय मोह का त्याग करके संयम और नम्रता के प्रति समर्पित हैं, जो स्वयं को वश में रखते हैं, स्वयं को शांत रखते हैं और भोग-विलास के अंत के लिए प्रयासरत हैं, वे समय-समय पर तुम्हारे पास आकर तुमसे परामर्श करें कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है, क्या निंदनीय है और क्या निंदनीय है, क्या पालन करने योग्य है और क्या नहीं। और कौन सा कार्य अंततः हानि और दुःख का कारण बनेगा, और कौन सा कल्याण और सुख का, तुम्हें सुनना चाहिए, और उन्हें बुराई से बचने और भलाई करने के लिए कहना चाहिए। हे मेरे पुत्र, यही आर्य चक्र-घुमाने वाले सम्राट का कर्तव्य है।'

"जी महाराज," राजा ने कहा और उन्होंने आर्य चक्र-चालक सम्राट के कर्तव्यों का पालन किया। ऐसा करते हुए, पंद्रहवें व्रत के दिन, जब उन्होंने अपना सिर धोकर व्रत के लिए अपने महल के शीर्ष पर बने बरामदे में गए, तो उन्हें हजार तीलियों वाला, धुरी, हब और सभी सहायक उपकरणों से सुसज्जित पवित्र चक्र-खजाना प्रकट हुआ। तब राजा ने सोचा: 'मैंने सुना है कि जब विधिवत अभिषेक किया हुआ क्षत्रिय राजा पंद्रहवें व्रत के दिन ऐसा चक्र देखता है, तो वह चक्र-चालक सम्राट बन जाता है। काश मैं भी ऐसा सम्राट बन सकूँ!'

फिर, राजा अपने आसन से उठकर, अपने एक कंधे को अपने वस्त्र से ढककर, अपने बाएँ हाथ में एक सोने का पात्र लेकर, अपने दाहिने हाथ से चक्र पर स्वर्ण का छिड़काव किया और कहा: 'यह महान चक्र-खजाना घूमे, यह महान चक्र-खजाना विजय प्राप्त करे!' चक्र पूर्व की ओर घूमा, और राजा अपनी चार गुना सेना के साथ उसके पीछे-पीछे चला। और जिस भी देश में चक्र रुका, राजा अपनी चार गुना सेना के साथ वहाँ निवास करने लगा। और पूर्वी क्षेत्र में उसका विरोध करने वाले लोग आकर बोले: 'हे महाराज, आपका स्वागत है! हम आपके हैं, महाराज। हम पर शासन कीजिए, महाराज।' और राजा ने कहा: 'किसी की जान मत लो। जो दिया न गया हो, उसे मत लो। यौन दुराचार मत करो। झूठ मत बोलो। मादक पेय मत पियो। भोजन में संयम बरतो।' और पूर्वी क्षेत्र में उसका विरोध करने वाले लोग उसकी प्रजा बन गए।

"फिर पहिया दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर घूमा... फिर पहिया-खजाने ने समुद्र से समुद्र तक की भूमि पर विजय प्राप्त कर ली और शाही राजधानी में लौट आया और राजा के महल के सामने रुक गया, जैसे कि वह किसी मामले की सुनवाई कर रहा हो, मानो शाही महल को सुशोभित करने के लिए।"

और एक दूसरे चक्र-घुमाने वाले सम्राट ने भी ऐसा ही किया, और तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें राजा ने भी... एक आदमी को यह देखने के लिए कहा कि क्या चक्र अपनी जगह से खिसक गया है। और उस ऋषि के जाने के सात दिन बाद चक्र गायब हो गया।

फिर एक व्यक्ति राजा के पास आया और बोला, 'महाराज, आपको यह जानना चाहिए कि पवित्र चक्र-खजाना लुप्त हो गया है।' यह सुनकर राजा बहुत दुखी और उदास हुए। लेकिन वे राजमह के पास जाकर उनसे चक्र-चढ़ाने वाले राजा के कर्तव्यों के बारे में नहीं पूछे। इसके बजाय, उन्होंने अपनी ही सोच के अनुसार प्रजा पर शासन किया, और इस प्रकार शासन किए जाने पर प्रजा उतनी समृद्ध नहीं हुई जितनी कि पिछले राजाओं के शासनकाल में हुई थी, जिन्होंने चक्र-चढ़ाने वाले राजा के कर्तव्यों का पालन किया था। तब मंत्री, सलाहकार, कोषाधिकारी, रक्षक, द्वारपाल और मंत्रोच्चार करने वाले राजा के पास आए और बोले:

"महाराज, जब तक आप अपने विचारों के अनुसार और पूर्व के चक्र-परिवर्तकों के शासनकाल से भिन्न तरीके से लोगों पर शासन करते रहेंगे, तब तक लोग समृद्ध नहीं होंगे। महाराज, आपके राज्य में ऐसे मंत्री हैं, जिनमें हम भी शामिल हैं, जिन्होंने इस ज्ञान को संरक्षित रखा है कि एक चक्र-परिवर्तक को कैसे शासन करना चाहिए। महाराज, हमसे पूछिए, हम आपको बताएंगे!"

उत्तराधिकार के बाद नैतिक पतन

तब राजा ने सभी मंत्रियों और अन्य लोगों को एक साथ बुलाया और उनसे परामर्श किया। उन्होंने राजा को एक शासक के कर्तव्यों के बारे में समझाया। उनकी बात सुनकर राजा ने सुरक्षा और पहरेदारी का प्रबंध किया, लेकिन उसने जरूरतमंदों को संपत्ति नहीं दी, जिसके परिणामस्वरूप गरीबी फैल गई। गरीबी फैलने के साथ ही एक व्यक्ति ने वह ले लिया जो उसे नहीं दिया गया था, इस प्रकार उसने चोरी का अपराध किया। उन्होंने उसे गिरफ्तार कर राजा के समक्ष पेश किया और कहा: 'महाराज, इस व्यक्ति ने वह लिया जो उसे नहीं दिया गया था, जिसे हम चोरी कहते हैं।' राजा ने उससे कहा: 'क्या यह सच है कि तुमने वह लिया जो तुम्हें नहीं दिया गया था - जिसे चोरी कहते हैं?' 'हाँ, महाराज।' 'क्यों?' 'महाराज, मेरे पास जीने के लिए कुछ नहीं है।' तब राजा ने उस व्यक्ति को कुछ संपत्ति देते हुए कहा, "हे मेरे सज्जन, इससे तुम अपना भरण-पोषण कर सकते हो, अपने माता-पिता का सहारा बन सकते हो, पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण कर सकते हो, व्यापार कर सकते हो और संन्यासियों और ब्राह्मणों को दान दे सकते हो, जिससे तुम्हारा आध्यात्मिक कल्याण होगा और तुम्हें स्वर्गलोक में सुखद पुनर्जन्म प्राप्त होगा।" "बहुत अच्छा, महाराज," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

और ठीक ऐसा ही एक दूसरे आदमी के साथ भी हुआ।

फिर लोगों ने सुना कि राजा उन लोगों को संपत्ति दे रहा है जिन्होंने वह लिया है जो उन्हें नहीं दिया गया था, और उन्होंने सोचा: 'काश हम भी ऐसा ही करें!' फिर एक और आदमी ने वह लिया जो उसे नहीं दिया गया था, और वे उसे राजा के सामने ले आए। राजा ने उससे पूछा

कि उसने ऐसा क्यों किया, और उसने उत्तर दिया: 'महाराज, मेरे पास जीने के लिए कुछ नहीं है।' तब राजा ने सोचा: 'अगर मैं हर उस व्यक्ति को संपत्ति देता रहूँ जो वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है, तो यह चोरी और भी बढ़ जाएगी। बेहतर होगा कि मैं इसका अंत कर दूँ, इसे हमेशा के लिए खत्म कर दूँ, और इसका सिर काट दूँ।' इसलिए उसने अपने आदमियों को आदेश दिया: 'इस आदमी के हाथों को एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बाँध दो, इसका सिर पूरी तरह से मुंडवा दो, और इसे ढोल की कर्कश ध्वनि के साथ गलियों और चौकों से होते हुए दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाओ, और वहाँ इसे मृत्युदंड देकर इसका सिर काट दो!' और उन्होंने ऐसा ही किया।

यह सुनकर लोगों ने सोचा: 'चलो अब हम अपने लिए तेज तलवारें बनवाते हैं, और फिर हम किसी से भी वह सब कुछ छीन लेंगे जो हमें नहीं दिया गया है, जिसे चोरी कहते हैं, हम उनका अंत कर देंगे, उन्हें हमेशा के लिए खत्म कर देंगे और उनके सिर काट देंगे।' इसलिए, कुछ तेज तलवारें प्राप्त करके, उन्होंने गांवों, कस्बों और शहरों पर जानलेवा हमले किए, और राजमार्गों पर लूटपाट करते हुए अपने पीड़ितों के सिर काट डाले।

इस प्रकार, जरूरतमंदों को संपत्ति न देने से गरीबी व्यापक हो गई, गरीबी बढ़ने से वंचितों को छीनने की प्रवृत्ति बढ़ गई, चोरी बढ़ने से हथियारों का प्रयोग बढ़ गया, हथियारों के बढ़ते प्रयोग से हत्याएं बढ़ गईं—और हत्याओं में वृद्धि के कारण लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और जीवन अवधि और सुंदरता में इस कमी के परिणामस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि अस्सी हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल चालीस हजार वर्ष ही जीवित रहे।

"और चालीस हजार वर्ष तक जीवित रहने वाली पीढ़ी के एक व्यक्ति ने वह लिया जो उसे नहीं दिया गया था। उसे राजा के समक्ष लाया गया, जिसने उससे पूछा: 'क्या यह सच है कि तुमने वह लिया जो तुम्हें नहीं दिया गया था - जिसे चोरी कहा जाता है?' 'नहीं, महाराज', उसने उत्तर दिया, इस प्रकार जानबूझकर झूठ बोला।"

"इस प्रकार, जरूरतमंदों को संपत्ति न देने के कारण, ...जीवन लेने की प्रवृत्ति बढ़ गई, और जीवन लेने की प्रवृत्ति से झूठ बोलने की प्रवृत्ति बढ़ गई, झूठ बोलने की प्रवृत्ति बढ़ने से लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और परिणामस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि चालीस हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल बीस हजार वर्ष ही जीवित रहे।"

"और बीस हजार वर्ष तक जीवित रहने वाली पीढ़ी के एक व्यक्ति ने वह ले लिया जो उसे नहीं दिया गया था। दूसरे व्यक्ति ने राजा के समक्ष उसकी निंदा करते हुए कहा, 'महाराज, फलां व्यक्ति ने वह ले लिया जो उसे नहीं दिया गया था', इस प्रकार उसने दूसरे की बुराई की।"

इस प्रकार, जरूरतमंदों को संपत्ति न देने से...दूसरों की बुराई करने की प्रवृत्ति बढ़ गई, और परिणामस्वरूप, लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और फलस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि बीस हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल दस हजार वर्ष ही जीवित रहे।

"और जो पीढ़ी दस हजार वर्ष तक जीवित रही, उनमें से कुछ सुंदर थे और कुछ बदसूरत। और बदसूरत लोगों ने सुंदर लोगों से ईर्ष्या करते हुए दूसरों की पत्नियों के साथ व्यभिचार किया।"

"इस प्रकार, जरूरतमंदों को संपत्ति न देने के कारण, यौन दुराचार बढ़ गया, और परिणामस्वरूप लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और फलस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि दस हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल पांच हजार वर्ष ही जीवित रहे।"

और जिस पीढ़ी की जीवन अवधि पाँच हज़ार वर्ष थी, उसमें दो बातें बढ़ गईं: कठोर भाषा और व्यर्थ की बातें, जिसके परिणामस्वरूप लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और फलस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि पाँच हज़ार वर्ष थी, उनके बच्चे कुछ ढाई हज़ार वर्ष तक जीवित रहे, और कुछ केवल दो हज़ार वर्ष तक।

और जिस पीढ़ी की जीवन अवधि ढाई हजार वर्ष थी, उसमें लोभ और घृणा बढ़ गई, और परिणामस्वरूप लोगों की जीवन अवधि कम हो गई, उनकी सुंदरता कम हो गई, और फलस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि ढाई हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल एक हजार वर्ष ही जीवित रहे।

"जिन लोगों की जीवन अवधि एक हजार वर्ष थी, उनमें गलत धारणाएं बढ़ गईं...और परिणामस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि एक हजार वर्ष थी, उनके बच्चे केवल पांच सौ वर्ष ही जीवित रहे।"

"और जिस पीढ़ी की जीवन अवधि पाँच सौ वर्ष थी, उसमें तीन चीजें बढ़ गईं: व्यभिचार, अत्यधिक लालच और विकृत प्रथाएँ...और परिणामस्वरूप, जिनकी जीवन अवधि पाँच सौ वर्ष थी, उनके बच्चे कुछ ढाई सौ वर्ष तक जीवित रहे, कुछ केवल दो सौ वर्ष तक।"

और जिनकी आयु ढाई सौ वर्ष थी, उनमें ये बातें बढ़ गईं: माता-पिता के प्रति, तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रति, और कुल के मुखिया के प्रति अनादर।

"इस प्रकार, जरूरतमंदों को संपत्ति न देने के कारण, माता-पिता, तपस्वियों और ब्राह्मणों तथा कुल के मुखिया के प्रति अनादर बढ़ गया, और परिणामस्वरूप लोगों की आयु और सुंदरता कम हो गई, और जिनकी आयु ढाई शताब्दियाँ थी, उनके बच्चे केवल सौ वर्ष ही जीवित रहे।"

बुद्ध द्वारा भविष्यवाणियाँ

भिक्षुओं, एक समय आएगा जब इन लोगों के बच्चों की आयु दस वर्ष होगी। और उनके समय में, लड़कियाँ पाँच वर्ष की आयु में विवाह योग्य हो जाएँगी। और उनके समय में ये स्वाद लुप्त हो जाएँगे: घी, मक्खन, तिल का तेल, गुड़ और नमक। उनके बीच कुद्रुसा अनाज

मुख्य भोजन होगा, जैसे आज चावल और करी हैं। और उनके समय में, नैतिक आचरण के दस मार्ग पूरी तरह से लुप्त हो जाएँगे, और बुराई के दस मार्ग अत्यधिक प्रचलित हो जाएँगे: दस वर्ष की आयु वालों के लिए 'नैतिक' शब्द का कोई अर्थ नहीं होगा, तो भला कोई नैतिक मार्ग पर कैसे चल सकता है? जो लोग माता-पिता, संन्यासियों और ब्राह्मणों, कुल के मुखिया का आदर नहीं करते, वे ही मान-सम्मान और प्रतिष्ठा के पात्र होंगे। जैसे आज माता-पिता, संन्यासियों और ब्राह्मणों, कुल के मुखिया का आदर करने वाले लोगों की प्रशंसा और सम्मान होता है, वैसे ही इसके विपरीत करने वालों के साथ भी होगा।

दस वर्ष की आयु वाले लोगों में माता या चाची, माता की भाभी, शिक्षक की पत्नी या पिता की पत्नियों आदि का कोई ध्यान नहीं रखा जाएगा—वे सभी दुनिया में बकरियों और भेड़ों, मुर्गियों और सूअरों, कुत्तों और सियार की तरह अनैतिक रूप से संबंध बनाएंगे। उनमें एक-दूसरे के प्रति भयंकर शत्रुता, तीव्र घृणा, तीव्र क्रोध और हत्या के विचार व्याप्त होंगे, माता का बच्चे के प्रति और बच्चे का माता के प्रति, पिता का बच्चे के प्रति और बच्चे का पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति, भाई का बहन के प्रति, ठीक वैसे ही जैसे शिकारी जिस जानवर का पीछा करता है उससे घृणा करता है...

"और दस वर्ष की आयु वाले प्राणियों के लिए सात दिनों का 'तलवार-अंतराल' आएगा, जिसके दौरान वे एक-दूसरे को जंगली जानवर समझ लेंगे। उनके हाथों में तेज तलवारें आ जाएंगी और यह सोचकर कि 'यह एक जंगली जानवर है!' वे उन तलवारों से एक-दूसरे की जान ले लेंगे। लेकिन कुछ प्राणी ऐसे भी होंगे जो सोचेंगे: 'चलो हम किसी को न मारें और न ही किसी के हाथों मारे जाएं! चलो हम घास के घने जंगलों, वन-छिपारियों, वृक्षों के समूह, दुर्गम नदियों या दुर्गम पहाड़ों की ओर चलें और जंगल की जड़ों और फलों पर जीवन व्यतीत करें।' और वे अपने छिपने के स्थानों से निकलकर एकमत होकर एक साथ आनंद मनाएंगे और कहेंगे: 'हे अच्छे प्राणियों, मैं देखता हूं कि तुम जीवित हो!'" और फिर उन प्राणियों के मन में यह विचार आएगा, 'बुरे मार्गों के आदी होने के कारण ही हमने अपने सगे-संबंधियों को खोया है, इसलिए अब हम अच्छे कार्य करें! हम कौन से अच्छे कार्य कर सकते हैं? आइए हम जीवन लेने से बचें और इस अच्छे कार्य को अपनाकर इसका अभ्यास करें। ऐसे अच्छे कार्य करने से उनकी आयु और सौंदर्य में वृद्धि होगी। और जिनकी आयु दस वर्ष थी, उनके बच्चे बीस वर्ष तक जीवित रहेंगे।'

तब उन प्राणियों को यह विचार आएगा: 'अच्छे कर्मकांडों का पालन करने से ही हमारी आयु और सौंदर्य में वृद्धि हुई है, इसलिए हमें और भी अच्छे कर्मकांड करने चाहिए। हमें वह सब कुछ लेने से बचना चाहिए जो हमें नहीं दिया गया है, यौन दुराचार से, झूठ बोलने से, निंदा करने से, कठोर वाणी से, व्यर्थ की बातों से, लोभ से, द्वेष से और गलत दृष्टिकोण से दूर रहना चाहिए; हमें तीन चीजों से बचना चाहिए: व्यभिचार, अत्यधिक लोभ और कुटिल कर्मकांड; हमें अपने माता-पिता, तपस्वियों और ब्राह्मणों और कुल के मुखिया का आदर करना चाहिए और इन अच्छे कर्मों में निरंतर बने रहना चाहिए।'

और वे ये कार्य करेंगे, और इसी कारण उनकी आयु और सौंदर्य में वृद्धि होगी। जिनकी आयु बीस वर्ष है, उनके बच्चे चालीस वर्ष तक जीवित रहेंगे, उनके बच्चे अस्सी वर्ष तक, उनके बच्चे एक सौ साठ वर्ष तक, उनके बच्चे तीन सौ बीस वर्ष तक, उनके बच्चे छह सौ चालीस वर्ष तक जीवित रहेंगे; जिनकी आयु छह सौ चालीस वर्ष है, उनके बच्चे दो हजार वर्ष तक जीवित रहेंगे, उनके बच्चे चार हजार वर्ष तक, उनके बच्चे आठ हजार वर्ष तक, और उनके बच्चे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहेंगे, चालीस हजार वर्ष तक जीवित रहेंगे, और उनके बच्चे अस्सी हजार वर्ष तक जीवित रहेंगे।

अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले लोगों में, लड़कियाँ पाँच सौ वर्ष की आयु में विवाह योग्य हो जाएँगी। और ऐसे लोग केवल तीन प्रकार के रोगों से ग्रसित होंगे: लोभ, उपवास और वृद्धावस्था। और उन लोगों के समय में जंबूद्वीप महाद्वीप शक्तिशाली और समृद्ध होगा, और गाँव, कस्बे और शहर एक दूसरे से एक मुर्गे की उड़ान की दूरी पर होंगे। यह जंबूद्वीप, अविची की तरह, उतना ही घना होगा जितना जंगल सरकंडों और झाड़ियों से घना होता है। उस समय आज का वाराणसी केतुमती नामक एक शाही नगरी होगा, शक्तिशाली और समृद्ध, लोगों से भरा हुआ और अच्छी तरह से सुसज्जित। जंबूद्वीप में चौरासी हजार नगर होंगे, जिनकी राजधानी केतुमती होगी।

और अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले लोगों के समय में, केतुमारी की राजधानी में शंखा नामक एक राजा का उदय होगा, जो चक्र-घुमाने वाला सम्राट, धर्म का पालन करने वाला धर्मनिष्ठ सम्राट और चारों दिशाओं का विजेता होगा...

और उस समय, जब अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले लोग होंगे, तब संसार में एक परम पूज्य भगवान, पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत बुद्ध, मेत्तेय का जन्म होगा, जो ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने वाले अतुलनीय प्रशिक्षक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य होंगे, ठीक वैसे ही जैसे मैं अभी हूँ। वे अपने अलौकिक ज्ञान से इस ब्रह्मांड को, इसके देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, और इस पीढ़ी को, इसके राजकुमारों और लोगों सहित, पूर्णतः जानेंगे और प्रचार करेंगे, ठीक वैसे ही जैसे मैं अभी करता हूँ। वे धम्म का उपदेश देंगे, जो आरंभ में सुंदर, मध्य में सुंदर और अंत में सुंदर है, भाव और अक्षर दोनों में, और ठीक वैसे ही जैसे मैं अभी करता हूँ, पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य/संयम) को उसकी पूर्णता और शुद्धता में प्रचारित करेंगे। उनके साथ हजारों भिक्षुओं का समूह होगा, ठीक वैसे ही जैसे मेरे साथ सैकड़ों भिक्षुओं का समूह है।

तब राजा शंख, राजा महा-पानादा द्वारा निर्मित महल का पुनर्निर्माण करेंगे और उसमें निवास करने के बाद उसे त्याग देंगे तथा तपस्वियों, ब्राह्मणों, भिखारियों, यात्रियों और दरिद्रों को भेंट कर देंगे। फिर वे अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर पीले वस्त्र धारण करेंगे और परम बुद्ध मेत्तेय के मार्गदर्शन में गृहस्थ जीवन त्याग देंगे। प्रस्थान करने के बाद वे एकांत में, एकांतवास में, उत्साही, उत्सुक और दृढ़ निश्चय के साथ रहेंगे और शीघ्र ही अपने अलौकिक ज्ञान और संकल्प से इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अद्वितीय लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे, जिसके लिए अच्छे परिवार के युवक गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यास लेते हैं और उसमें निवास करते हैं।

अंत में, क्या करें?
"भिक्षुओं, अपने आप में एक द्वीप बनो, अपने आप में एक शरणस्थल बनो, जिसके अलावा कोई और शरणस्थल न हो। धम्म को अपना द्वीप बनाओ, धम्म को अपना शरणस्थल बनाओ, जिसके अलावा कोई और शरणस्थल न हो। और एक भिक्षु अपने आप में एक द्वीप की तरह कैसे रहता है...? यहाँ, एक भिक्षु शरीर को शरीर के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, भावनाओं को भावनाओं के रूप में देखते हुए, मन को मन के रूप में देखते हुए, मन की वस्तुओं को मन की वस्तुओं के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर रहता है।"
"हे भिक्षुओं, अपने पैतृक निवासों में ही रहो। ऐसा करने से तुम्हारी आयु बढ़ेगी, तुम्हारी सुंदरता बढ़ेगी, तुम्हारी खुशी बढ़ेगी, तुम्हारा धन बढ़ेगा, तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी।"
"एक भिक्षु के लिए जीवन की अवधि क्या है? यहाँ, एक भिक्षु शक्ति के मार्ग का विकास करता है, जो इच्छाशक्ति के साथ इरादे की एकाग्रता है, शक्ति का मार्ग जो ऊर्जा की एकाग्रता है..., शक्ति का मार्ग जो चेतना की एकाग्रता है..., शक्ति का मार्ग जो इच्छाशक्ति के साथ अन्वेषण की एकाग्रता है। शक्ति के इन चारों मार्गों का बार-बार अभ्यास करके वह, यदि चाहे, तो पूरी एक शताब्दी या शताब्दी के शेष भाग तक जीवित रह सकता है। यही मैं एक भिक्षु के लिए जीवन की अवधि कहता हूँ।"
"एक भिक्षु के लिए सौंदर्य क्या है? यहाँ, एक भिक्षु सही आचरण का अभ्यास करता है, अनुशासन के अनुसार संयमित रहता है, व्यवहार और आदतों में परिपूर्ण होता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है, और अपने द्वारा अपनाए गए प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है। यही एक भिक्षु के लिए सौंदर्य है।"
"एक भिक्षु के लिए सुख क्या है? यहाँ, एक भिक्षु, सात इच्छाओं से विरक्त होकर...प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है,...द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ध्यान में,...समभाव और सजगता से शुद्ध होकर। यही एक भिक्षु के लिए सुख है।"
और एक भिक्षु के लिए धन क्या है? यहाँ, एक भिक्षु, अपने हृदय में करुणा से परिपूर्ण होकर, एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा, चौथी दिशा में व्याप्त रहता है। इस प्रकार वह पूरे संसार में, ऊपर, नीचे, हर दिशा में—हर जगह—हमेशा करुणा से परिपूर्ण, असीम, घृणा या द्वेष से रहित मन से व्याप्त रहता है। फिर, अपने हृदय में करुणा से परिपूर्ण होकर,...सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण होकर,...समभाव से परिपूर्ण हृदय से परिपूर्ण होकर,...वह पूरे संसार में, ऊपर, नीचे, हर दिशा में, हर जगह—हमेशा समभाव से परिपूर्ण, असीम, घृणा या द्वेष से रहित मन से व्याप्त रहता है। यही एक भिक्षु के लिए धन है।
"एक भिक्षु के लिए शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षु विकारों के नाश द्वारा हृदय की उस निर्मल मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसे उसने इसी जीवन में अपने अलौकिक ज्ञान और अनुभूति से प्राप्त किया है। यही एक भिक्षु के लिए शक्ति है।"
"भिक्षुओं, मैं मारा की शक्ति से अधिक कठिन विजय प्राप्त करने वाली शक्ति नहीं मानता। यह पुण्य केवल सद्‌गुणों के संचय से ही बढ़ता है।"
इस प्रकार भगवान ने कहा, और भिक्षु उनके शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए।

टिपिटका » सुत्त पिटक » दीघा निकाय >> 3.4अग्गन्ना सुत्त(डीएन27)

अग्गन्ना सुत्त
एक बार भगवान सावत्थी में, पूर्वी उद्यान में मिगारा की माता के महल में ठहरे हुए थे। उस समय वसेत्था और भारद्वाज भी भिक्षुओं के बीच रहते थे और स्वयं भिक्षु बनने की आशा रखते थे। शाम को भगवान अपनी एकांत साधना से उठे और महल से बाहर आकर उसकी छाया में टहलने लगे।

वसेत्था ने यह देखा और भारद्वाज से कहा, "मित्र भारद्वाज, भगवान बाहर आ गए हैं और इधर-उधर टहल रहे हैं। चलो उनके पास चलते हैं। शायद हमें स्वयं भगवान से धर्म पर प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो।" भारद्वाज ने कहा, "जी हाँ," और वे भगवान के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ चलने लगे।

तब भगवान ने वसेत्थ से कहा, "वसेत्थ, तुम दोनों जन्म से ब्राह्मण हो और ब्राह्मण परिवार में रहकर गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में आए हो। क्या ब्राह्मण तुम्हें बुरा-भला नहीं कहते?" "जी हाँ, भगवान, ब्राह्मण हमें बुरा-भला कहते हैं। वे हमेशा की तरह निंदा करने से पीछे नहीं हटते। भगवान, ब्राह्मण कहते हैं: 'ब्राह्मण जाति सर्वोच्च जाति है, बाकी सब नीच हैं; ब्राह्मण जाति गोरी है, बाकी सब काली हैं; ब्राह्मण शुद्ध हैं, गैर-ब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ब्रह्मा के सच्चे बच्चे हैं, उनके मुख से जन्मे हैं, ब्रह्मा के वंशज हैं। और तुम, तुमने सर्वोच्च जाति

को त्यागकर नीच जाति के छोटे तपस्वियों, सेवकों, ब्रह्मा के चरणों से जन्मे काले लोगों के साथ संगति कर ली है! ऐसे लोगों के साथ रहना तुम्हारे लिए ठीक नहीं है!' भगवान, ब्राह्मण इसी तरह हमें बुरा-भला कहते हैं।"

"तो, वसेत्था, ब्राह्मण ऐसा कहकर अपनी प्राचीन परंपरा को भूल गए हैं। क्योंकि हम ब्राह्मण स्त्रियों, ब्राह्मणों की पत्नियों को देख सकते हैं, जो मासिक धर्म से गुजरती हैं, गर्भवती होती हैं, बच्चे को जन्म देती हैं और उन्हें दूध पिलाती हैं। फिर भी ये गर्भ से जन्मे ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से जन्म लेने की बात करते हैं... ये ब्राह्मण ब्रह्मा का गलत अर्थ निकालते हैं, झूठ बोलते हैं और बहुत पुण्य कमाते हैं।"

"वसेत्था, ये चार जातियाँ हैं: क्षत्रिय, ब्राह्मण, व्यापारी और कारीगर। और कभी-कभी कोई क्षत्रिय जीवन छीन लेता है, बिना माँगे कुछ ले लेता है, यौन दुराचार करता है, झूठ बोलता है, निंदा करता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है या व्यर्थ की बातें करता है, लालची, द्वेषपूर्ण या गलत विचारों वाला होता है। इस प्रकार, ऐसे कार्य अनैतिक माने जाते हैं, निंदनीय माने जाते हैं, जिनसे बचना चाहिए, आर्यों के लिए अशोभनीय माने जाते हैं, काले कर्मों से भरे होते हैं और बुद्धिमानों द्वारा निंदनीय माने जाते हैं, और ये कभी-कभी क्षत्रियों में भी पाए जाते हैं, और यही बात ब्राह्मणों, व्यापारियों और कारीगरों पर भी लागू होती है।"

कभी-कभी, एक क्षत्रिय भी जीवन लेने से परहेज करता है,...वह लोभी, द्वेषी या गलत विचारों वाला नहीं होता। इस प्रकार, नैतिक और निर्दोष माने जाने वाले, अनुसरण योग्य और अनुसरण करने योग्य माने जाने वाले, आर्यों के लिए उपयुक्त और उपयुक्त माने जाने वाले मार्ग, उज्ज्वल परिणामों वाले और बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित ऐसे गुण कभी-कभी क्षत्रियों में पाए जाते हैं, और इसी प्रकार ब्राह्मणों, व्यापारियों और कारीगरों में भी पाए जाते हैं।

"चूंकि ज्ञानियों द्वारा निंदा और प्रशंसा किए जाने वाले अंधकार और प्रकाश दोनों गुण चारों जातियों में समान रूप से विकेंद्रीकृत हैं, इसलिए ज्ञानी ब्राह्मण जाति के सर्वोच्च होने के दावे को स्वीकार नहीं करते। ऐसा क्यों है? क्योंकि, वसेत्था, चारों जातियों में से जो कोई भी भिक्षु बन जाता है, जो अरहंत बनकर विकारों का नाश करता है, जिसने जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त किया है, कर्मों के बंधनों को तोड़ दिया है और परम ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो गया है—उसे धम्म के कारण सर्वोच्च घोषित किया जाता है, न कि अधर्म के कारण।"

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

यह दृष्टांत आपको स्पष्ट करेगा कि धम्म इस संसार और परलोक में सर्वोत्तम कैसे है। कोसल के राजा पसेनादि को पता चलता है: 'संन्यासी गौतम शाक्यों के पड़ोसी कुल से निकले हैं।' शाक्यों कोसल के राजा के अधीन हैं। वे उन्हें विनम्र सेवा अर्पित करते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं, उठकर उन्हें आदर देते हैं और उचित सेवा प्रदान करते हैं। और, जिस प्रकार शाक्यों राजा को विनम्र सेवा अर्पित करते हैं..., उसी प्रकार राजा तथागत को विनम्र सेवा अर्पित करते हैं, यह सोचते हुए कि 'यदि तपस्वी गौतम उच्च कुल के हैं, तो मैं निम्न कुल का हूँ; यदि तपस्वी गौतम बलवान हैं, तो मैं दुर्बल हूँ; यदि तपस्वी गौतम देखने में सुंदर हैं, तो मैं अपंग हूँ; यदि तपस्वी गौतम प्रभावशाली हैं, तो मेरा प्रभाव नगण्य है।' अब धम्म का आदर करने, धम्म को महत्व देने, धम्म का सम्मान करने और धम्म के प्रति श्रद्धापूर्वक श्रद्धा अर्पित करने के कारण ही राजा पसेनादि तथागत की विनम्र सेवा करते हैं और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हैं।

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

वसेत्था, तुम सब, चाहे तुम्हारा जन्म, नाम, कुल और परिवार कोई भी हो, गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में आसीन हुए हो। यदि तुमसे पूछा जाए कि तुम कौन हो, तो उत्तर देना: 'हम तपस्वी हैं, शाक्यों के अनुयायी हैं।' तथागत में जिसकी आस्था दृढ़, स्थिर, अटल और अविचल है, जिसे कोई भी तपस्वी या ब्राह्मण, कोई भी देव या मार या ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति विचलित नहीं कर सकता, वही सत्यतः कह सकता है: 'मैं भगवान का सच्चा पुत्र हूँ, उनके मुख से जन्मा हूँ, धम्म से जन्मा हूँ, धम्म द्वारा सृजित हूँ, धम्म का वंशज हूँ।' ऐसा क्यों है? क्योंकि, वसेत्था, यही तथागत का सार है: 'धम्म का शरीर', अर्थात् 'ब्रह्म का शरीर', या 'धम्म बनो', अर्थात् 'ब्रह्म बनो'।

"हे वसेत्थ, एक समय ऐसा आता है जब, लंबे समय के बाद, यह संसार सिकुड़ता है। इस संकुचन के समय, अधिकांश प्राणी आभासर ब्रह्म लोक में जन्म लेते हैं। वे वहाँ मन से बने, आनंद में लिप्त, स्वयंप्रकाशित, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी भाव से निवास करते हैं—और वे बहुत लंबे समय तक इसी अवस्था में रहते हैं। परन्तु कुछ समय बाद, लंबे समय के बाद, यह संसार पुनः फैलने लगता है। इस विस्तार के समय, आभासर ब्रह्म लोक से मृत्यु को प्राप्त प्राणी, वहाँ से मृत्यु को प्राप्त करके, अधिकतर इस संसार में पुनर्जन्म लेते हैं। वे यहाँ मन से बने, आनंद में लिप्त, स्वयंप्रकाशित, वायु में विचरण करते हुए, तेजस्वी भाव से निवास करते हैं—और वे बहुत लंबे समय तक इसी अवस्था में रहते हैं।"

"उस समय, वसेत्था, केवल एक ही जल का विशाल भूभाग था, और चारों ओर घना अंधकार छाया हुआ था। न चंद्रमा था, न सूर्य, न तारामंडल, न तारे, न दिन-रात का भेद था, न महीने-पखवाड़े, न वर्ष-ऋतुएँ, न नर-नारी, सभी प्राणी मात्र थे। और कुछ समय बाद, बहुत लंबे समय के बाद, उस जल पर सुगंधित मिट्टी फैल गई जहाँ वे प्राणी थे। वह देखने में बिल्कुल वैसी ही थी जैसे गर्म दूध ठंडा होने पर उस पर एक परत बन जाती है। उसमें रंग, सुगंध और स्वाद था। उसका रंग उत्तम घी या मक्खन जैसा था, और वह शुद्ध जंगली शहद की तरह मीठी थी।"

फिर एक लालची प्राणी ने कहा, 'अरे, यह क्या हो सकता है?' और उसने अपनी उंगली से उस स्वादिष्ट मिट्टी को चखा। ऐसा करने पर वह उसके स्वाद से मोहित हो गया और उसके मन में लालसा उत्पन्न हो गई। फिर अन्य प्राणियों ने भी उससे प्रेरणा लेकर अपनी उंगलियों से उस पदार्थ को चखा। वे भी उसके स्वाद से मोहित हो गए और उनके मन में लालसा उत्पन्न हो गई। इसलिए वे अपने हाथों से उस पदार्थ के टुकड़े तोड़ने लगे ताकि उसे खा सकें। और इसका परिणाम यह हुआ कि उनका स्वयं का प्रकाश लुप्त हो गया। और उनके स्वयं के प्रकाश के लुप्त होने के परिणामस्वरूप, चंद्रमा और सूर्य प्रकट हुए, रात और दिन में अंतर स्पष्ट हुआ, महीने और पखवाड़े अस्तित्व में आए, और वर्ष और उसके ऋतुएँ शुरू हुईं। इस प्रकार संसार का पुनर्विकास हुआ।

और वे प्राणी बहुत लंबे समय तक इस स्वादिष्ट मिट्टी का सेवन करते रहे, इसे खाकर पोषण प्राप्त करते रहे। ऐसा करते-करते उनके शरीर खुरदुरे हो गए और उनके रूप-रंग में अंतर आ गया। कुछ प्राणी सुंदर हो गए, कुछ बदसूरत। सुंदर प्राणी दूसरों को तुच्छ समझने लगे और कहने लगे: 'हम उनसे अधिक सुंदर हैं।' और क्योंकि वे अपने रूप-रंग को लेकर अहंकारी और घमंडी हो गए, इसलिए वह स्वादिष्ट मिट्टी लुप्त हो गई। इस पर वे सब एकत्रित हुए और विलाप करते हुए बोले: 'ओह, वह स्वाद! ओह, वह स्वाद!' और जैसे आजकल लोग कुछ अच्छा पाकर कहते हैं: 'ओह, वह स्वाद!' वैसे ही वे अनजाने में एक प्राचीन कहावत को दोहरा रहे होते हैं।

और फिर, जब स्वादिष्ट मिट्टी गायब हो गई, तो मशरूम की तरह एक कवक उग आया। उसका रंग, सुगंध और स्वाद बहुत अच्छा था। वह उत्तम घी या मक्खन के रंग का था और शुद्ध जंगली शहद की तरह बहुत मीठा था। और उन प्राणियों ने उस कवक को खाना शुरू कर दिया। और यह बहुत लंबे समय तक चलता रहा। और जैसे-जैसे वे कवक खाते रहे, वैसे-वैसे उनके शरीर और भी खुरदुरे होते गए और उनके रूप-रंग में अंतर और भी बढ़ता गया। और सुंदर दिखने वाले दूसरों को तुच्छ समझने लगे... और क्योंकि वे अपने रूप-रंग को लेकर घमंडी और अभिमानी हो गए, इसलिए वह मीठा कवक गायब हो गया। फिर, बांस की तरह उगने वाली लताएँ दिखाई दीं... और वे भी शुद्ध जंगली शहद की तरह बहुत मीठी थीं।

और वे प्राणी उन लताओं को खाने लगे। ऐसा करते-करते उनके शरीर और भी खुरदुरे हो गए, और उनके रूप-रंग में अंतर और भी बढ़ गया... और वे और भी अहंकारी हो गए, और इस तरह वह लता भी गायब हो गई। इस पर वे सब एक साथ जमा हुए और विलाप करते हुए बोले, 'हाय, हमारी लता चली गई! हमने क्या खो दिया!' और इसलिए आज जब लोगों से पूछा जाता है कि वे क्यों दुखी हैं, तो वे कहते हैं: 'अरे, हमने क्या खो दिया!' तो वे अनजाने में एक प्राचीन कहावत को दोहरा रहे होते हैं।

और फिर, लताओं के गायब होने के बाद, खुले स्थानों में चावल दिखाई दिए, जो धूल और भूसी से मुक्त, सुगंधित और साफ थे। और जो चावल उन्होंने शाम के भोजन में खाए थे, वे फिर से उग आए थे और सुबह तक पक गए थे, और जो चावल उन्होंने सुबह नाश्ते में खाए थे, वे शाम तक फिर से पक गए थे, कटाई का कोई संकेत नहीं था। और ये प्राणी इस चावल को खाने में जुट गए, और यह बहुत लंबे समय तक चला। और ऐसा करते-करते, उनके शरीर और भी खुरदुरे हो गए, और उनके रूप-रंग में अंतर और भी बढ़ गया। और स्त्रियों में स्त्री जननांग विकसित हो गए, और पुरुषों में पुरुष जननांग। और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति अत्यधिक आसक्त हो गईं, और पुरुष स्त्रियों के प्रति। एक-दूसरे के प्रति इस अत्यधिक आसक्ति के कारण, कामुकता जागृत हुई, और उनके शरीर कामवासना से जलने लगे। और बाद में, इस जलन के कारण, वे यौन क्रिया में लिप्त हो गए। लेकिन जिन्होंने उन्हें ऐसा करते देखा, उन्होंने उन पर धूल, राख या गोबर फेंका और चिल्लाए: 'मर जा, हे गंदे जानवर! एक प्राणी ऐसा कैसे कर सकता है?' एक और! ठीक वैसे ही जैसे आज कुछ इलाकों में जब बहू को घर से बाहर लाया जाता है, तो कुछ लोग उस पर मिट्टी, कुछ राख और कुछ गोबर फेंकते हैं, यह जाने बिना कि वे एक प्राचीन प्रथा को दोहरा रहे हैं। जो उस समय बुरा माना जाता था, वह आज अच्छा माना जाता है।

"और उन दिनों जो लोग यौन क्रियाओं में लिप्त रहते थे, उन्हें एक या दो महीने तक किसी गाँव या कस्बे में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। इसलिए, जो लोग अत्यधिक लंबे समय तक ऐसी अनैतिक गतिविधियों में लिप्त रहते थे, वे छिपकर ऐसी गतिविधियों में लिप्त रहने के लिए अपने लिए घर बनाने लगे।"

अब आलसी स्वभाव वाले एक प्राणी के मन में यह विचार आया: 'तो फिर शाम के भोजन और सुबह के नाश्ते के लिए चावल इकट्ठा करने की क्या ज़रूरत है? क्यों न मैं एक ही बार में दोनों समय के लिए चावल इकट्ठा कर लूँ?' और उसने ऐसा ही किया। तभी एक दूसरा प्राणी उसके पास आया और बोला: 'चलो, चावल इकट्ठा करने चलते हैं।' 'कोई ज़रूरत नहीं, मेरे मित्र, मैंने दोनों समय के लिए पर्याप्त चावल इकट्ठा कर लिया है।' तब दूसरे ने भी उसका अनुसरण करते हुए एक बार में दो दिन के लिए पर्याप्त चावल इकट्ठा किया और कहा: 'यह लगभग पर्याप्त होगा।' तभी एक और प्राणी आया और उस दूसरे से बोला: 'चलो, चावल इकट्ठा करने चलते हैं।' 'कोई ज़रूरत नहीं, मेरे मित्र, मैंने दो दिन के लिए पर्याप्त चावल इकट्ठा कर लिया है।' लेकिन जब उन प्राणियों ने चावल का भंडार बनाया और उसी पर जीवन यापन किया, तो भूसी और दाने चावल को ढकने लगे, और जहाँ से चावल काटा गया था, वहाँ फिर से नहीं उगा, और कटी हुई जगह दिखाई देने लगी, और चावल अलग-अलग गुच्छों में उगने लगा।

फिर वे प्राणी एकत्रित होकर विलाप करने लगे: 'हमारे बीच दुष्टता का मार्ग व्याप्त हो गया है: आरंभ में हम बुद्धि से निर्मित थे, आनंद में लिप्त थे... और चावल अलग-अलग गुच्छों में उगता है। अतः अब हम चावल को सीमांकित खेतों में विभाजित कर दें।' और उन्होंने ऐसा ही किया।

फिर, लालची स्वभाव के वसेत्था ने अपनी ज़मीन की रखवाली करते हुए, बिना अधिकार के दूसरी ज़मीन ले ली और उसका लाभ उठाया। तब लोगों ने उसे पकड़ लिया और कहा, 'तूने दूसरे की ज़मीन लेकर बहुत बुरा काम किया है! फिर कभी ऐसा मत करना!' उसने कहा, 'मैं नहीं करूँगा', लेकिन उसने वही काम दूसरी और तीसरी बार भी किया। उसे फिर पकड़ा गया और फटकारा गया, और कुछ ने उसे मुक्कों से, कुछ ने पत्थरों से और कुछ ने लाठियों से मारा। इस प्रकार, वसेत्था ने बिना अधिकार के ज़मीन लेकर, निंदा करके, झूठ बोलकर और दंड देकर इन सब का जन्म किया।

तब वे सब मिलकर अपने बीच उत्पन्न हुई इन बुराइयों पर शोक करने लगे: बिना दिए वस्तुएँ लेना, निंदा करना, झूठ बोलना और दंड देना। उन्होंने सोचा, 'मान लो कि हम किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करें जो उचित क्रोध प्रकट करे, जो निंदा के पात्र हों उनकी निंदा करे और जो निर्वासन के पात्र हों उन्हें निर्वासित कर दे! और बदले में हम उसे चावल का एक हिस्सा दें।' अतः वे अपने बीच के सबसे सुंदर, सबसे आकर्षक, सबसे प्रसन्न और योग्य व्यक्ति के पास गए और उससे चावल के एक हिस्से के बदले में उनके लिए यह करने का अनुरोध किया, और वह सहमत हो गया।

"'जनता की पसंद' महा-सम्मत का अर्थ है, जो कि पहला नियमित उपाधि है जिसे प्रचलन में लाया गया। 'खेतों का स्वामी' क्षत्रिय का अर्थ है, जो कि दूसरी उपाधि है। और 'धर्म से दूसरों को प्रसन्न करने वाला' राजा का अर्थ है, जो कि तीसरी उपाधि है जिसे प्रचलन में लाया गया। इस प्रकार, वसेत्थ, प्राचीन उपाधियों के अनुसार, क्षत्य वर्ग की उत्पत्ति हुई। वे इन्हीं प्राणियों में से उत्पन्न हुए, जो हमारे जैसे ही हैं, कोई भिन्न नहीं, और धर्म के अनुसार ही, अन्यथा नहीं।"

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

तब उनमें से कुछ प्राणियों ने सोचा, 'मनुष्यों में बुरी बातें फैल गई हैं, जैसे कि बिना माँगे लेना, निंदा करना, झूठ बोलना, दंड देना और देश निकाला देना। हमें बुरी और अस्वास्थ्यकर बातों को त्याग देना चाहिए।' और उन्होंने ऐसा ही किया। 'उन्होंने बुरी और अस्वास्थ्यकर बातों को त्याग दिया' ब्राह्मण का अर्थ है, जो ऐसे लोगों के लिए शुरू की गई पहली नियमित उपाधि है। उन्होंने वन क्षेत्रों में पत्तों की कुटियाएँ बनाईं और उनमें ध्यान किया। धुआँ छोड़ी हुई आग बुझने पर, मूसल को एक तरफ रखकर, सुबह और शाम के भोजन के लिए भिक्षा एकत्र करके, वे भोजन की तलाश में किसी गाँव, कस्बे या राजनगर में चले गए, और फिर ध्यान करने के लिए अपनी पत्तों की कुटियाओं में लौट आए। लोगों ने यह देखा और ध्यान दिया कि वे कैसे ध्यान करते थे। 'वे ध्यान करते हैं' झयका का अर्थ है, जो शुरू की गई दूसरी नियमित उपाधि है।

"हालाँकि, उनमें से कुछ प्राणी, पत्तों की झोपड़ियों में ध्यान करने में असमर्थ होने के कारण, कस्बों और गाँवों के आसपास बस गए और पुस्तकें संकलित करने लगे। लोगों ने उन्हें ऐसा करते देखा, ध्यान न करते हुए। 'अब ये ध्यान नहीं करते' यही अज्जयाक का अर्थ है, जो तीसरा नियमित उपाधि है जिसे प्रचलन में लाया गया। उस समय इसे निम्न पदनाम माना जाता था, परन्तु अब यह उच्चतर है। इस प्रकार, वसेत्थ, प्राचीन उपाधियों के अनुसार ब्राह्मण वर्ग की उत्पत्ति है। उनकी उत्पत्ति इन्हीं प्राणियों में से हुई, जो उन्हीं के समान थे, उनसे भिन्न नहीं थे, और धम्म के अनुसार ही हुई, अन्यथा नहीं।"

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

"और फिर, वसेत्था, उनमें से कुछ प्राणियों ने मृत्यु के बाद विभिन्न व्यवसाय अपना लिए, और यह 'विभिन्न' शब्द वेस्सा का अर्थ है, जो ऐसे लोगों के लिए प्रचलित उपाधि बन गई। इस प्रकार, प्राचीन उपाधियों के अनुसार, वेस्सा वर्ग की उत्पत्ति हुई। उनकी उत्पत्ति इन्हीं प्राणियों में से हुई थी..."

और फिर, वसेत्था, जो प्राणी बचे रहे, वे शिकार करने चले गए। 'वे नीच हैं जो शिकार करके जीते हैं', और यही सुद्दा का अर्थ है, जो ऐसे लोगों के लिए सामान्य उपाधि बन गई। इस प्रकार, प्राचीन उपाधियों के अनुसार सुद्दा वर्ग की उत्पत्ति हुई। उनकी उत्पत्ति इन्हीं प्राणियों में से हुई थी...

"और फिर, वसेत्था, ऐसा हुआ कि कोई क्षत्रिय अपने धर्म से असंतुष्ट होकर गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया, यह सोचकर कि 'मैं तपस्वी बनूँगा।' एक ब्राह्मण ने भी ऐसा ही किया, एक वेस ने भी ऐसा ही किया, और एक शुद्ध ने भी। और इन्हीं चार वर्गों से तपस्वियों का वर्ग अस्तित्व में आया। उनकी उत्पत्ति इन्हीं प्राणियों में से हुई, जो उन्हीं के समान थे, उनसे भिन्न नहीं थे, और धर्म के अनुसार ही हुई, अन्यथा नहीं।"

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

और, वसेत्था, एक क्षत्रिय जिसने शरीर, वाणी और विचार से बुरा जीवन व्यतीत किया है, और जिसके विचार गलत हैं, ऐसे गलत विचारों और कर्मों के फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, वह हानि की अवस्था में, दुर्भाग्य से, पतन की अवस्था में, नरक की अवस्था में पुनर्जन्म लेगा। यही बात ब्राह्मण, वेस या शुद्ध के लिए भी लागू होती है।

इसी प्रकार, एक क्षत्रिय जिसने शरीर, वाणी और विचार से अच्छा जीवन व्यतीत किया हो और जिसका दृष्टिकोण सही हो, वह अपने सही दृष्टिकोण और कर्मों के फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन होने पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेगा। ब्राह्मण, वेस या शुद्ध भी इसी प्रकार पुनर्जन्म लेंगे।

और, वसेत्था, इन चारों जातियों में से जो भी भिक्षु बनकर अरहंत बन जाता है, जिसने विकारों का नाश किया हो, जो करना आवश्यक था वह किया हो, बोझ को त्याग दिया हो, सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त किया हो, अस्तित्व के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया हो और सर्वोच्च अंतर्दृष्टि से मुक्त हो गया हो, उसे धम्म के अनुसार उनमें श्रेष्ठ घोषित किया जाता है, अन्यथा नहीं।

"धम्म इस जीवन में और अगले जीवन में भी लोगों के लिए सबसे अच्छी चीज है।"

"वसेत्था, यह श्लोक ब्रह्मा सनंकुमार ने कहा था:

"'वंश को महत्व देने वालों में खत्तिया श्रेष्ठ है; ज्ञान और आचरण में श्रेष्ठ वह है जो देवताओं और मनुष्यों में सबसे अच्छा है।'

"यह श्लोक सही ढंग से गाया गया था, गलत ढंग से नहीं; सही ढंग से बोला गया था, गलत ढंग से नहीं; लाभ से जुड़ा हुआ था, असंबद्ध नहीं। मैं भी यही कहता हूँ, वसेत्था:

"वंश को महत्व देने वालों में खत्तिया श्रेष्ठ है; ज्ञान और आचरण में श्रेष्ठ वह व्यक्ति देवताओं और मनुष्यों में भी श्रेष्ठ है।"

इस प्रकार भगवान ने कहा, और वसेत्था और भारद्वाज उनके शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.5 संपासदनिया सुत्त (डीएन28)

मैंने ऐसा सुना है:

1. एक समय भगवान नालंदा के पास पावारिका आम के वन में ठहरे हुए थे। 1. पूज्य सारिपुत्त उस स्थान पर आए जहाँ भगवान थे, और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक उनके पास बैठ गए और बोले: — हे भगवान! मुझे भगवान पर ऐसी आस्था है कि मुझे लगता है कि न कभी कोई ऐसा था, न कभी होगा, और न ही वर्तमान में कोई ऐसा है जो उच्चतर ज्ञान के मामले में भगवान से बड़ा और बुद्धिमान हो। 2

सारिपुत्त, तेरे मुख के शब्द कितने महान और साहसी हैं! तूने जो कहा है, उसमें तूने सचमुच सिंह की गर्जना की है। निश्चय ही तू अतीत के उन सभी महानुभावों को जानता है जो आरहंत, प्रबुद्ध पुरुष रहे हैं, तू उनके मन को अपने मन से समझता है, और उनके आचरण, उनके सिद्धांतों, उनकी बुद्धि, उनके जीवन शैली और उनके द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता से अवगत है।

ऐसा नहीं है, भगवान।

तो फिर तुमने उन सभी महानुभावों को जान लिया है जो आने वाले युगों में अरहंत, ज्ञानी होंगे, जिनके मन को तुम अपने मन से समझते हो और उनके आचरण, सिद्धांतों, ज्ञान, जीवन शैली और स्वतंत्रता के बारे में जानते हो?

ऐसा नहीं है, भगवान।

लेकिन कम से कम तब, सारिपुत्त, तुम जानते हो कि मैं अब अरहंत हूँ, एक प्रबुद्ध व्यक्ति हूँ, जो अपने मन को तुम्हारे मन के साथ जोड़ता है, और जानता हूँ कि इस प्रकार है भगवान का आचरण, इस प्रकार है उनका ज्ञान, इस प्रकार है उनका जीवन-मार्ग, और इस प्रकार की स्वतंत्रता उन्होंने प्राप्त की है?

ऐसा नहीं है, भगवान।

हे सारिपुत्त, तुम्हें अरहंतों, ज्ञानी पुरुषों, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान के विषय में कोई ज्ञान नहीं है। फिर तुम्हारे शब्द इतने भव्य और साहसी क्यों हैं? तुमने इस सर्वव्यापी सिंह की गर्जना क्यों की है?

2. हे भगवान! मुझे अतीत, भविष्य और वर्तमान के अरहंतों, प्रबुद्धों के मन के विषय में कोई ज्ञान नहीं है। हे भगवान, मैं केवल नॉर्म के वंश को जानता हूँ। [101] हे भगवान, जैसे किसी राजा का कोई सीमावर्ती नगर हो, जिसकी नींव, प्राचीर और मीनारें सुदृढ़ हों और जिसमें केवल एक ही द्वार हो। और उस द्वार पर एक विवेकशील, चतुर और बुद्धिमान रक्षक हो, जो सभी अजनबियों को रोककर केवल परिचितों को ही प्रवेश दे। और वह नगर के चारों ओर पहरेदारी करते हुए प्राचीरों की सभी दरारों और जोड़ों को इतनी बारीकी से न देख पाए कि उसे पता चल जाए कि बिल्ली जैसी छोटी सी चीज भी कहाँ से निकल सकती है। वह सोचेगा: चाहे कोई भी भारी-भरकम प्राणी इस नगर में प्रवेश करे या बाहर निकले, वे सभी केवल इसी द्वार से होकर गुजरते हैं। हे भगवान, मैं नॉर्म के वंश को केवल इसी प्रकार जानता हूँ। अतीत के लंबे युगों में जो अरहंत, परम ज्ञानी थे, उन्होंने पाँच बाधाओं को दूर करके, बुद्धि से मन के विकारों को दबाकर, ध्यान स्थापित करने के चार अभ्यासों में दृढ़ निश्चय के साथ, ज्ञान की सात शाखाओं में पूर्णतः अभ्यास करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। जो भविष्य के लंबे युगों में अरहंत, परम ज्ञानी होंगे, वे भी ऐसा ही करेंगे। और हे भगवान, जो अब परम ज्ञानी अरहंत हैं, उन्होंने भी ऐसा ही किया है।

हे भगवान, एक दिन ऐसा हुआ कि मैं परम पूज्य परमेश्वर के पास नियम की व्याख्या सुनने आया था। परम पूज्य परमेश्वर ने मुझे सिद्धांत सिखाया, प्रत्येक बिंदु पिछले बिंदु से अधिक उत्कृष्ट था, प्रकाश और अंधकार की वस्तुओं की तुलना करते हुए। अब जब परम पूज्य परमेश्वर मुझे इस प्रकार नियम सिखा रहे थे, तब मैंने उस नियम को समझते हुए, सिद्धांतों में से एक विशेष सिद्धांत को पूर्ण किया, अर्थात् गुरु में विश्वास। और मैंने अपने हृदय में स्वीकार किया: परम पूज्य परमेश्वर सर्वोच्च रूप से जागृत हैं; उनके द्वारा नियम अच्छी तरह से सिखाया गया है; यह क्रम धन्य है।

3. हे भगवान, यह भी अद्वितीय है: जिस प्रकार से भगवान धार्मिक सिद्धांतों के नियम का उपदेश देते हैं; मेरा तात्पर्य है ध्यान स्थापित करने के चार अभ्यास, चार सर्वोच्च प्रयास, संतत्व के चार मार्ग, पाँच नैतिक शक्तियाँ, पाँच बल, ज्ञान की सात शाखाएँ, आर्य अष्टांगिक मार्ग [जो यह दर्शाता है कि] एक भिक्षु मादक पदार्थों का नाश करके इस जीवन में ही बुद्धि और अंतर्ज्ञान की स्वस्थ और निर्मल मुक्ति को जान और अनुभव कर सकता है, और इस प्रकार उसे प्राप्त करके उसमें स्थिर रह सकता है। हे भगवान, धार्मिक सिद्धांतों के विषय में यह अद्वितीय है। यह सब भगवान को ज्ञात है, और उनके ज्ञान से परे कुछ भी समझना शेष नहीं है। न ही कोई दूसरा, चाहे वह संन्यासी हो या ब्राह्मण, भगवान से अधिक महान और बुद्धिमान है, अर्थात् धार्मिक सिद्धांतों के विषय में।

4. हे भगवान, यह भी अतुलनीय है, जिस प्रकार से परमेश्वर हमारी इंद्रिय-अनुभव के संबंध में नियम सिखाते हैं, — कि कैसे इंद्रियों के छह क्षेत्र व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ हैं1: दृष्टि और दृश्य वस्तुएँ, श्रवण और ध्वनियाँ, गंध और सुगंध, स्वाद और स्वादयुक्त वस्तुएँ, स्पर्श और स्पर्शनीय वस्तुएँ, मन और मानसिक विषय। हे भगवान, हमारी इंद्रिय-अनुभव के संबंध में यह अतुलनीय है। परमेश्वर यह

सब समझते हैं, और जो वे समझते हैं उससे परे समझने के लिए कुछ भी नहीं है। और न ही कोई दूसरा है, [103] चाहे वह संन्यासी हो या ब्राह्मण, जो हमारी इंद्रिय-अनुभव के संबंध में परमेश्वर से अधिक महान और बुद्धिमान हो।2

5. हे भगवान, यह भी अतुलनीय है: जिस प्रकार से परम पूज्य भगवान पुनर्जन्म के समय अवतरण के नियम का उपदेश देते हैं: अवतरण के चार तरीके हैं: पहला तरीका है ...

6. हे भगवान, यह भी अतुलनीय है, जिस प्रकार से परम पूज्य भगवान मन की जानकारी प्राप्त करने के चार तरीके बताते हैं: — मन की जानकारी प्राप्त करने का तरीका इस प्रकार है: — एक तरीका प्रत्यक्ष संकेत द्वारा यह कहकर प्रकट करना है कि "तुम ऐसा सोच रहे हो, तुम्हारे मन में ऐसा है, तुम्हारा विचार ऐसा है।" जितना भी प्रकट किया जाए, बात वही रहती है, अन्यथा नहीं। यह मन की जानकारी प्राप्त करने का पहला तरीका है। दूसरा तरीका यह है कि मन की जानकारी प्रत्यक्ष संकेत द्वारा नहीं, बल्कि मनुष्यों या अन्य मनुष्यों (यक्ष, पिशाच) या देवताओं द्वारा उच्चारित ध्वनि को सुनकर प्रकट की जाती है, और कहा जाता है: — "तुम ऐसा सोच रहे हो, तुम्हारे मन में ऐसा है, तुम्हारा विचार ऐसा है।" जितना भी प्रकट किया जाए, बात वही रहती है, अन्यथा नहीं। यह दूसरा तरीका है। फिर, विचारों का प्रकटीकरण न तो किसी दृश्य संकेत से होता है, न ही मनुष्यों, गैर-मनुष्यों या देवताओं द्वारा उत्पन्न ध्वनि से2 [104], बल्कि बुद्धिमानी और जानबूझकर उत्पन्न तर्कसंगत ध्वनि से होता है।3 और कोई कहता है: तुम ऐसा सोच रहे हो, इत्यादि [जैसा पहले]। यह प्रकट करने का तीसरा तरीका है। फिर, विचारों का प्रकटीकरण इनमें से किसी भी तरीके से नहीं होता, बल्कि जब एकाग्रता प्राप्त हो जाती है, बिना इंद्रियों के ध्यान लगाए, तब व्यक्ति सहज रूप से दूसरे के विचारों को जान लेता है। और कोई कहता है: इस भले व्यक्ति की मानसिक गतिविधि के उद्देश्य के अनुसार ही वह आगे ऐसे-ऐसे विचार पर अपना ध्यान केंद्रित करेगा। और जितना प्रकट किया जाता है, उतना ही होता है, अन्यथा नहीं। यह चौथा तरीका है। हे भगवान, दूसरे के मन को प्रकट करने के तरीकों के विषय में यह अतुलनीय है।1

8. हे भगवान, परमेश्वर जिस प्रकार से व्यक्तियों के वर्गीकरण के नियम का उपदेश देते हैं, वह अतुलनीय है: व्यक्तियों के सात वर्ग हैं, अर्थात्: दोनों दिशाओं से मुक्त, अंतर्दृष्टि से मुक्त, शारीरिक अनुभव रखने वाले, दृष्टि प्राप्त करने वाले, विश्वास से मुक्त, ज्ञान के अनुयायी, विश्वास के अनुयायी। हे भगवान, व्यक्तियों के इन वर्गों के लिए ये शब्द अतुलनीय हैं।

9. हे भगवान, जिस प्रकार से परम पूज्य [106] प्रयास के विषय में नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है:— कि ज्ञानोदय के ये सात कारक हैं, अर्थात्, सजगता, सिद्धांत का परीक्षण, ऊर्जा, उत्साह, शांति, एकाग्रता और समभाव। हे भगवान, प्रयास के विषय में यह अतुलनीय है।3

10. हे भगवान, परमेश्वर ने प्रगति की दर के संबंध में जिस प्रकार से शिक्षा दी है, वह अतुलनीय है: प्रगति की चार दरें होती हैं, अर्थात्, जब प्रगति कठिन हो और अंतर्ज्ञान धीमा हो; जब प्रगति कठिन हो लेकिन अंतर्ज्ञान शीघ्रता से प्राप्त हो; जब प्रगति सरल हो लेकिन अंतर्ज्ञान धीमा हो; और जब प्रगति सरल हो और अंतर्ज्ञान शीघ्रता से प्राप्त हो। प्रथम स्थिति में, कठिनाई और धीमेपन दोनों के कारण प्रगति को खराब माना जाता है; दूसरी स्थिति में, कठिनाई के कारण प्रगति को खराब माना जाता है; तीसरी स्थिति में, धीमेपन के कारण प्रगति को खराब माना जाता है; चौथी स्थिति में, सरलता और शीघ्रता दोनों के कारण प्रगति को उत्कृष्ट माना जाता है। हे भगवान, प्रगति की दरों के संबंध में यह अतुलनीय है।

11. हे भगवान, परमेश्वर जिस प्रकार से वाणी में आचरण का नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है: — किसी को न केवल झूठ से संबंधित वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि अपने मामले को जीतने के प्रयास में निंदात्मक, अपमानजनक और विवादात्मक वाणी से भी बचना चाहिए, और सदा कोमल, ज्ञानवर्धक और अनमोल वचन उचित समय पर बोलने चाहिए। हे भगवान, वाणी में आचरण के विषय में यह अतुलनीय है।

12. हे भगवान, मनुष्य के नैतिक आचरण के विषय में परमेश्वर जिस प्रकार शिक्षा देते हैं, वह अतुलनीय है: — ऐसा मनुष्य सत्यनिष्ठ और विश्वासयोग्य होना चाहिए, छल-कपट करने वाला नहीं, [पैसे के लिए पवित्र वचनों का पाठ करने वाला] नहीं, भविष्यवक्ता नहीं, भूत-प्रेत भगाने वाला नहीं, [107] लाभ पर लाभ बढ़ाने का भूखा नहीं, अपनी इंद्रियों के द्वारों के प्रति सतर्क, संयमी आहार वाला, शांतिदूत, सतर्कता में समर्पित, अडिग, प्रयास करने में सक्षम, चिंतनशील, सचेत, शालीन वार्तालाप करने वाला, 3 साहसपूर्वक चलने, सहन करने और सोचने वाला, सांसारिक सुखों के लिए लालची नहीं, बल्कि सावधान और बुद्धिमान। हे भगवान, मनुष्य के नैतिक आचरण के विषय में यह अतुलनीय है।

13. इसके अतिरिक्त, हे भगवान, जिस प्रकार से परम पूज्य ईश्वर शिक्षा प्राप्त करने के तरीकों के संबंध में नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है, अर्थात् ऐसे चार तरीके हैं: (i) परम पूज्य ईश्वर अपने व्यवस्थित चिंतन की विधि से जानते हैं कि कोई व्यक्ति, जब उसे

सिखाई गई बातों का पालन करता है, तो तीन बंधनों के पूर्ण नाश से वह सफलता प्राप्त करने वाला बन जाएगा, भविष्य में विपत्तियों से बच जाएगा और निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त करेगा; (2) तीन बंधनों के पूर्ण नाश से, उसके जुनून, घृणा और भ्रम इतने कम हो जाएंगे कि वह एक बार लौटने वाला बन जाएगा और इस दुनिया में एक बार लौटने से ही उसके सारे दुख दूर हो जाएंगे; (3) पांच अन्य बंधनों के पूर्ण नाश से, वह देवलोक में पुनर्जन्म लेगा, वहां पूर्णतः विलीन हो जाएगा और फिर कभी वापस नहीं लौटेगा; (4) मादक पदार्थों के नाश से वह इस जीवन में ही बुद्धि और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को जान और अनुभव कर लेगा तथा उसमें स्थिर रहेगा। हे भगवान, शिक्षा प्राप्त करने के इस तरीके में अतुलनीयता है।

14. हे भगवान, परमेश्वर जिस प्रकार से किसी व्यक्ति को प्राप्त होने वाली मुक्ति की मात्रा के ज्ञान के संबंध में नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है। क्योंकि परमेश्वर स्वयं कारण का ध्यान रखते हुए जानते हैं कि कोई व्यक्ति धारा-प्राप्तकर्ता, एक बार लौटने वाला, न लौटने वाला या अरहंत बनेगा। हे भगवान, किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जाने वाली मुक्ति की मात्रा के ज्ञान के संबंध में यह अतुलनीय है।

15. इसके अतिरिक्त, हे भगवान, जिस प्रकार से परम पूज्य परमेश्वर शाश्वतवाद के सिद्धांतों के संबंध में मानदंड सिखाते हैं, वह अतुलनीय है, अर्थात्, ये तीन सिद्धांत हैं4 :

(i) कोई संन्यासी या ब्राह्मण उत्साह, परिश्रम, लगन, गंभीरता और गहन चिंतन के माध्यम से ऐसी भावविभोर अवस्था में पहुँच जाता है कि हृदयविभोर होकर वह अपने बीते जन्मों के विभिन्न निवास स्थानों (या जन्मों) को याद करता है—चाहे एक जन्म में हो, दो में हो, तीन में हो, चार में हो, पाँच में हो, दस में हो, बीस में हो, तीस में हो, चालीस में हो, पचास में हो, सौ में हो, हज़ार में हो, एक लाख में हो, या कई सौ, कई हज़ार, कई लाख जन्मों में हो—और इस प्रकार कहता है कि 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे वंश और वर्ग का था, ऐसा भोजन करता था, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करता था [109], मेरी आयु इतनी थी। और जब मैं वहाँ से गिरा तो यहाँ पुनर्जन्म हुआ':— इस प्रकार वह अपने बीते जन्मों के विभिन्न निवास स्थानों को उनके स्वरूप और विवरण सहित याद करता है। और वह मन ही मन कहता है: 'बीते समय को मैं जानता हूँ, कि संसार विकास की प्रक्रिया में था या विघटन की। परन्तु आने वाले समय को मैं नहीं जानता, कि संसार का विकास होगा या विघटन। आत्मा और संसार दोनों शाश्वत हैं, किसी नई चीज को जन्म नहीं देते, पर्वत शिखर की तरह स्थिर हैं, एक दृढ़ स्तंभ की तरह स्थिर हैं; और यद्यपि ये सजीव प्राणी जन्म लेते हैं और मर जाते हैं, एक अवस्था से गिरकर दूसरी में जन्म लेते हैं, फिर भी केवल वही है जो शाश्वत और सर्वदा बना रहता है।' यह शाश्वतवाद का पहला सिद्धांत है।

(2) हे भगवान, फिर कोई संन्यासी या ब्राह्मण, उसी विधि से, अतीत में अपने निवास स्थानों को और भी अधिक कालखंडों के लिए याद करता है, जैसे कि जगत के निर्माण और विनाश के एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस या बीस युग्म। ... और वह भी चिंतन करता है: 'बीते हुए समय को मैं जानता हूँ, जगत के निर्माण और विनाश दोनों को, परन्तु आने वाले समय को नहीं जानता, [110] कि जगत का निर्माण होगा या विनाश। आत्मा और जगत दोनों शाश्वत हैं, किसी नई चीज को जन्म नहीं देते, पर्वत शिखर के समान स्थिर हैं, एक दृढ़ स्तंभ के समान स्थिर हैं; और यद्यपि ये सजीव प्राणी जन्म लेते हैं और मर जाते हैं, एक अवस्था से गिरकर दूसरी में जन्म लेते हैं, फिर भी केवल वही है जो सदा-सदा के लिए है।' यह दूसरा शाश्वतवादी सिद्धांत है।

(3) हे भगवान, फिर कोई संन्यासी या ब्राह्मण, उसी विधि से, अतीत में अपने निवास स्थानों को और भी अधिक कालखंडों के लिए, यहाँ तक कि चालीस विश्व-प्रणालियों के विकास और विघटन तक, याद करता है। और वह भी वही निष्कर्ष निकालता है। यह तीसरा शाश्वतवादी सिद्धांत है।

हे भगवान, शाश्वतवादी सिद्धांतों के संबंध में यह बात अतुलनीय है।

16. हे भगवान, जिस प्रकार से परमेश्वर पूर्व जन्मों के ज्ञान के विषय में नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है: कैसे कोई संन्यासी या ब्राह्मण, लगन, परिश्रम, परिश्रम, गंभीरता और गहन चिंतन के द्वारा, मन की ऐसी तल्लीनता तक पहुँच जाता है कि चिंतन में लीन होकर वह बीते समय के अपने विभिन्न जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म या अनेक जन्मों में [111] यहाँ तक कि असंख्य जन्मों और जन्मों तक: — 'वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा वंश, ऐसा वर्ग था, मेरा ऐसा पालन-पोषण हुआ, मैंने ऐसे और इतने समय तक सुख-दुख का अनुभव किया।' [वह याद करता है कि] वहाँ से मृत्यु होने पर उसका पुनर्जन्म ऐसे दूसरे स्थान पर हुआ, जहाँ वह ऐसा था, ऐसी स्थिति में था; वहाँ से मृत्यु होने पर उसका यहाँ पुनर्जन्म हुआ। इस प्रकार वह बीते समय में अपने विभिन्न निवास स्थानों को उनके तौर-तरीकों और विवरणों के साथ याद करता है।

हे भगवान, कुछ ऐसे देवता हैं जिनका जीवनकाल न तो गिनकर और न ही गणना करके निर्धारित किया जा सकता है। फिर भी, चाहे वे शारीरिक रूप में हों या निराकार रूप में, चाहे वे प्रत्यक्षदर्शी हों, प्रत्यक्षदर्शी न हों या दोनों में से कोई भी न हों, उनके पूर्व निवास स्थान की स्मृति उनके स्वरूप और विवरण दोनों में बनी रहती है। हे भगवान, ऐसी स्मृतियों के ज्ञान के संदर्भ में यह ज्ञान अतुलनीय है।

17. हे भगवान, जिस प्रकार से परमेश्वर प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान के नियम का उपदेश देते हैं, वह अतुलनीय है। इस प्रकार, कोई संन्यासी या ब्राह्मण, उपरोक्त साधनों द्वारा, मन की ऐसी परमानंद अवस्था प्राप्त कर लेता है कि चिंतन में लीन होकर वह मनुष्यों की दृष्टि से परे, शुद्ध देव-दृष्टि से प्राणियों को उनकी मृत्यु और पुनर्जन्म के क्रम में देखता है; वह प्राणियों को नीच या श्रेष्ठ, कुरूप या प्रसन्न, सुखी या दुखी, उनके कर्मों के अनुसार जन्म लेते हुए पहचानता है: अमुक-अमुक योग्य जन, कर्म, वचन और विचार से दुष्ट1, श्रेष्ठों की निंदा करने वाले2, गलत विचार रखने वाले, गलत विचारों से उत्पन्न कर्म भोगने वाले, शरीर के विनाश के बाद, किसी दुखद या कष्टमय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु अमुक-अमुक योग्य जन, जो कर्म, वचन और विचार से भले हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही विचार रखते हैं, सही विचारों से फलदायी कर्म प्राप्त करते हैं, वे शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद स्वर्ग में किसी सुखमय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं। [112] इस प्रकार, मनुष्य की दृष्टि से परे, शुद्ध देव-दृष्टि से वे प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं। हे भगवान, मृत्यु और पुनर्जन्म के विषय में यह ज्ञान अतुलनीय है।

18. हे भगवान, जिस प्रकार से परम पूज्य भगवान अलौकिक शक्ति के गुणों के संबंध में नियम सिखाते हैं, वह अतुलनीय है। वे दो प्रकार की शक्तियाँ बताते हैं, अर्थात्: (i) वह अलौकिक शक्ति जो मानसिक मादक पदार्थों और सांसारिक उद्देश्यों से संबंधित होती है। इसे नीच शक्ति कहते हैं। (2) वह अलौकिक शक्ति जो इनसे संबंधित नहीं होती। इसे श्रेष्ठ शक्ति कहते हैं। हे भगवान, पहली प्रकार की, नीच अलौकिक शक्ति क्या है? हे भगवान, जब कोई संन्यासी या ब्राह्मण उपर्युक्त साधनों द्वारा मन की ऐसी परमानंद अवस्था प्राप्त कर लेता है कि वह चिंतन में लीन होकर अलौकिक शक्ति के अनेक गुणों का आनंद लेने में सक्षम हो जाता है: — एक रूप से अनेक रूपों में, अनेक रूपों से एक रूप में; दृश्य रूप से अदृश्य रूप में; वह किसी दीवार, प्राचीर या पर्वत के दूसरी ओर हवा में सहजता से पार हो जाता है; वह ठोस भूमि में जल में सहजता से ऊपर-नीचे प्रवेश कर जाता है; वह जल पर बिना उसे विभाजित किए ऐसे चलता है मानो ठोस भूमि पर चल रहा हो; वह आकाश में पालथी मारकर ऐसे विचरण करता है जैसे कोई पक्षी पंख फैलाए उड़ रहा हो; वह चंद्रमा और सूर्य को भी, जो रहस्यमयी शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं, अपने हाथों से स्पर्श और अनुभव करता है; वह शरीर धारण करके भी ब्रह्मा के स्वर्ग तक पहुँच जाता है। हे भगवान, यही वह अलौकिक शक्ति है, जो मानसिक मादक पदार्थों और सांसारिक उद्देश्यों से जुड़ी है, जिसे नीच कहा जाता है। और हे भगवान, दूसरा गुण क्या है, जिसे श्रेष्ठ कहा जाता है? यह वह अवस्था है जब एक भिक्षु, यदि चाहे तो, घृणित चीजों के बीच भी घृणा से अचेतन रह सकता है; या जो घृणित और विपरीत दोनों हैं उनके बीच भी घृणा से अचेतन रह सकता है; या घृणित और विपरीत दोनों के बीच भी घृणा से सचेतन रह सकता है; या घृणित और विपरीत दोनों से बचते हुए, उनके प्रति सजग और समझदार रहते हुए उदासीन रह सकता है। हे भगवान, यही वह अलौकिक शक्ति है जो मानसिक मादक पदार्थों या सांसारिक उद्देश्यों के साथ असंगत है, और जिसे श्रेष्ठ कहा जाता है। हे भगवान, अलौकिक शक्ति के इस प्रकार में अतुलनीयता है।

इन सब बातों को परमपिता बुद्ध प्रारंभ से अंत तक भलीभांति जानते हैं। उनके ज्ञान से परे कुछ भी समझना शेष नहीं है; और न ही कोई दूसरा, चाहे वह संन्यासी हो या ब्राह्मण, परमपिता बुद्ध से श्रेष्ठ या बुद्धिमान है, अर्थात् अलौकिक शक्तियों के मामले में।

19. हे भगवान, जो कुछ भी विश्वास रखने वाले, ऊर्जा जुटाने वाले और दृढ़ रहने वाले कुलवासी द्वारा मानवीय दृढ़ता, ऊर्जा, प्रगति और धैर्य से प्राप्त किया जा सकता है, वह सब परमपिता परमेश्वर ने प्राप्त कर लिया है। क्योंकि, हे भगवान, परमपिता परमेश्वर न तो सांसारिक इच्छाओं, विशेषकर कामुकता, को आकर्षित करने वाली चीजों का नियमित अभ्यास करते हैं—जो नीच और मूर्तिपूजक मार्ग है, अयोग्य, निष्फल, सांसारिक बहुमत से संबंधित;—और न ही वे आत्म-यातना का नियमित अभ्यास करते हैं, जो कष्टदायक, अयोग्य और निष्फल है।1 परमपिता परमेश्वर अपनी इच्छा से, सहजता से और पूर्ण रूप से उस उच्च कोटि के सांसारिक सुख को प्राप्त करने में सक्षम हैं^ जो परमानंद की चार अवस्थाएँ प्रदान करती हैं।

हे भगवान, यदि कोई मुझसे पूछे: हे मित्र सारिपुत्त, क्या अतीत में कभी कोई ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण हुआ है जो ज्ञान के मामले में भगवान से अधिक महान और बुद्धिमान हो? तो मैं कहूँगा नहीं। हे मित्र सारिपुत्त, क्या भविष्य में कोई ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण होगा जो ज्ञान के मामले में भगवान से अधिक महान या बुद्धिमान हो? इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं कहूँगा नहीं। [114] हे मित्र सारिपुत्त, क्या अब कोई ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण है जो ज्ञान के मामले में भगवान से अधिक महान या बुद्धिमान हो? इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं कहूँगा नहीं।

हे भगवान, यदि मुझसे पूछा जाए: हे मित्र सारिपुत्त, बीते समय में क्या हुआ है... क्या भविष्य में भी कोई ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण होगा जो ज्ञान के मामले में भगवान बुद्ध के समान हो? तो मैं कहूंगा, हाँ। लेकिन यदि मुझसे पूछा जाए: क्या वर्तमान में कोई ऐसा संन्यासी या

ब्राह्मण है जो ज्ञान के मामले में भगवान बुद्ध के समान हो? तो मैं कहूंगा, नहीं। परम अरहंत बुद्ध, एक दूसरे से पहले और एक दूसरे के बाद: — यह असंभव और अभूतपूर्व है। ऐसा हो ही नहीं सकता।

हे भगवान, क्या मैं अपने प्रश्नकर्ताओं को इस प्रकार उत्तर देकर परम पूज्य ईश्वर के सिद्धांत का ही कथन कर रहा हूँ, न कि असत्य बातों से उनका गलत अर्थ निकाल रहा हूँ? क्या मैं सिद्धांत को प्रचलित परंपरा के अनुरूप ही बता रहा हूँ, और क्या इसमें किसी रूढ़िवादी विवादकर्ता को दोष का पात्र नहीं मिलेगा?

सच ही है, सारिपुत्त, यदि तुमसे ऐसे प्रश्न पूछे गए होते और तुमने इस प्रकार उत्तर दिया होता, तो तुमने मेरे सिद्धांत का ही प्रतिपादन किया होता, और तुमने असत्य बात से मेरा गलत अर्थ नहीं निकाला होता। तुमने सिद्धांत का प्रतिपादन नियम के अनुरूप किया है, और किसी भी रूढ़िवादी वाद-विवादकर्ता को इसमें दोष सिद्ध करने का अवसर नहीं मिलता।

20. जब उन्होंने ऐसा कहा, तब पूज्य उदयिन 2 ने परमेश्वर से कहा: हे भगवान, यह देखना कितना अद्भुत है, कितना आश्चर्यजनक है, कि तथागत कितने शांत, सौम्य और त्यागी हैं, जबकि वे इतने शक्तिशाली और बलवान होते हुए भी अपने गुणों का बखान नहीं करते! 3 यदि स्वतंत्र मतों के किसी भी अनुयायी को अपने भीतर ऐसा एक भी गुण दिखाई दे, तो वे इसके कारण ध्वज फहराएंगे। यह देखना कितना अद्भुत है, कितना आश्चर्यजनक है, कि तथागत कितने शांत, सौम्य और त्यागी हैं, जबकि वे इतने शक्तिशाली और बलवान होते हुए भी अपने गुणों का बखान नहीं करते!

इसलिए, उदयिन, इस बात को ध्यान में रखो कि यह सत्य है; और यदि स्वतंत्र सिद्धांतों का प्रचार करने वाले घुमंतू अपने भीतर ऐसा एक भी गुण पा लें, तो वे इसके ध्वज के नीचे फल-फूलेंगे। इस बात को ध्यान में रखो।

21. तब भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा: “इसलिए, सारिपुत्त, तुम्हें इस विषय पर भाइयों और बहनों, गृहस्थों और गृहस्थ बहनों, सभी को बार-बार प्रवचन देना चाहिए। तथागत के विषय में जो भी मूर्ख संदेह और संकोच रखते हैं, वे भी ऐसा प्रवचन सुनकर अपने संकोच और संदेह को दूर कर लेंगे।”

इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त ने परमेश्वर के समक्ष अपनी आस्था प्रकट की। अतः उनकी इस स्वीकारोक्ति को "संतोषजनक आस्था" कहा जाता है।

यहां पांचवां सूत्र, 'संतोषजनक आस्था', समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.6 पसादिका सुत्त(डीएन 29)

1. मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान शाक्यों के बीच, धनुर्धर नामक शाक्य परिवार के आम के बाग में स्थित [तकनीकी महाविद्यालय1] में निवास कर रहे थे। उस समय नथपुत्त निगंथ की पावा में मृत्यु हो गई थी। उनकी मृत्यु के बाद निगंथ आपस में फूट पड़े और दो गुटों में बँट गए, आपस में कलह और संघर्ष करते हुए, एक-दूसरे पर शब्दों के वार से प्रहार करते हुए: — तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को नहीं समझते; परन्तु मैं समझता हूँ। तुम इसे कैसे समझोगे? तुम गलत हो; मैं सही हूँ! मैं मुद्दे की बात कर रहा हूँ; तुम नहीं! तुम वह बात सबसे आखिर में कहते हो जो सबसे पहले कही जानी चाहिए, और वह बात सबसे पहले जो सबसे आखिर में आनी चाहिए! जिस बात पर तुमने इतने समय तक विचार किया, वह पूरी तरह उलट गई! तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर ली गई है; तुम गलत साबित हुए! अपनी राय त्याग दो, या हो सके तो खुद को इससे अलग कर लो! सचमुच, नाथपुत्त के अनुयायी निगंथ, मेरे विचार से, हत्या करने पर तुले हुए थे। यहाँ तक कि नाथपुत्त के अनुयायी श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य भी निगंथों से भयभीत, विचलित और क्रोधित थे, क्योंकि उनका सिद्धांत और अनुशासन इतना विकृत था, मार्गदर्शन के लिए इतना अप्रभावी था, शांति के लिए इतना कम सहायक था, क्योंकि इसका प्रसार एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया था जो सर्वोच्च रूप से प्रबुद्ध नहीं था, और अब यह उनके समर्थन और संरक्षक के बिना ही नष्ट हो गया था।

2. अब चुंडा नामक नौसिखिए ने पावरी में वर्षा ऋतु बिताकर समफिगामा में पूज्य आनंद से मिलने आया और उन्हें प्रणाम करके उनके पास बैठ गया। बैठे-बैठे उसने पूज्य आनंद से कहा, “हे नफिथापुत्त, निगंथ का अभी-अभी पफिवा में निधन हो गया है। उनके मरने से निगंथ दो गुटों में बँट गए हैं और आपस में झगड़ते-झगड़ते और एक-दूसरे को चोट पहुँचाते हैं... यहाँ तक कि उनके शिष्य भी स्तब्ध हैं... उनकी शिक्षा और अनुशासन का इतना बुरा तरीके से प्रचार-प्रसार किया गया था... क्योंकि यह शिक्षा एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दी गई थी जो परम प्रबुद्ध नहीं था, और अब वे अपने सहारे से वंचित हो गए हैं और बिना किसी संरक्षक के रह गए हैं।”

तब पूज्य आनंद ने नौसिखिए चुंडा से कहा, “मित्र चुंडा, यह विषय भगवान के समक्ष रखने योग्य है। चलो हम उनके पास चलते हैं और उन्हें इसके बारे में बताते हैं।”

"बहुत बढ़िया, महोदय," नौसिखिए कुंडा ने उत्तर दिया।

3. अतः पूज्य आनंद और नवोदित चुंडा ने परम पूज्य को खोज निकाला और उन्हें प्रणाम करके उनके पास बैठ गए तथा उन्हें निगंथों के बारे में बताया।

4. (बुद्ध:) हे चुंडा, यहाँ हमारे पास एक ऐसा गुरु है जो परम प्रबुद्ध नहीं है, और एक ऐसा सिद्धांत है जो गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है, गलत तरीके से समझाया गया है, मार्गदर्शन के लिए अप्रभावी है, शांति के लिए सहायक नहीं है, और एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया है जो परम प्रबुद्ध नहीं है। इसके अलावा, ऐसे सिद्धांत में, शिष्य न तो मुख्य सिद्धांत से निकलने वाले छोटे उपसिद्धांतों में महारत हासिल कर पाता है, न ही सही आचरण सीख पाता है, न ही उपदेशों के अनुसार चलता है, बल्कि वह निरंतर उस सिद्धांत से बचता रहता है। उससे कोई कह सकता है: हे मित्र, तुम्हें अपना सिद्धांत मिल गया है, और तुम्हें अपना अवसर भी मिल गया है। तुम्हारा गुरु परम प्रबुद्ध नहीं है; उसका सिद्धांत गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है, गलत तरीके से समझाया गया है, मार्गदर्शन के लिए अप्रभावी है, शांति के लिए सहायक नहीं है, और एक परम प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा नहीं दिया गया है। उस सिद्धांत में तुमने न तो मुख्य सिद्धांत से निकलने वाले छोटे उपसिद्धांतों में महारत हासिल की है, न ही सही आचरण सीखा है, न ही तुम उन उपसिद्धांतों के अनुसार चलते हो, बल्कि तुम तुम उस सिद्धांत से लगातार बचते रहते हो। इस प्रकार, कुंडा, वह शिक्षक और वह सिद्धांत दोनों ही निंदनीय सिद्ध होते हैं, परन्तु शिष्य प्रशंसनीय है।

अब जो कोई ऐसे शिष्य से कहे, “हे पूज्यवर, अपने गुरु द्वारा सिखाए और बताए गए सिद्धांतों का पालन कीजिए!” चाहे वह उकसाए, उकसाया जाए, या उकसाया जाए और उसके अनुसार अभ्यास करे, वे सब बहुत दोष उत्पन्न करते हैं। और क्यों? क्योंकि उनका सिद्धांत और अनुशासन गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है, गलत तरीके से सिखाया गया है, मार्गदर्शन के लिए अप्रभावी है, शांति के लिए सहायक नहीं है, और किसी परम प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा नहीं सिखाया गया है।

5. परन्तु चुंडा, विचार करो, जहाँ गुरु सर्वोत्कृष्ट न हो, और शिक्षा का निरूपण और उपदेश न हो, मार्गदर्शन के लिए निष्प्रभावी हो, शांति के लिए अनुकूल न हो, और शिक्षा किसी सर्वोत्कृष्ट न हो, फिर भी शिष्य उस शिक्षा का अनुसरण करता है, मुख्य शिक्षा के उपप्रवचनों का पालन करता है, सही आचरण ग्रहण करता है और उपदेशों के अनुसार चलते हुए सदा उस शिक्षा का पालन करता है। ऐसे में शिष्य से कहा जा सकता है: हे मित्र, तू अपने गुरु और अवसर दोनों में दुर्भाग्यशाली रहा है; तेरा गुरु सर्वोत्कृष्ट न हो; तेरी शिक्षा का निरूपण ठीक से न हो, इत्यादि; और तू सदा उस शिक्षा का पालन करता है। इन शब्दों से, चुंडा, गुरु, शिक्षा और शिष्य सब दोषी हैं। और जो यह कहे कि “निःसंदेह, शिष्य इस प्रणाली में निपुण होकर इसे सफलता की ओर ले जाएगा!” प्रशंसा करने वाला, प्रशंसा पाने वाला और प्रशंसा पाकर अपनी ऊर्जा को दुगुना करने वाला, ये सभी बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। और क्यों? क्योंकि उनके सिद्धांत और अनुशासन को गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है, गलत तरीके से सिखाया गया है... ऐसे व्यक्ति द्वारा जो परम प्रबुद्ध नहीं है।

6. हे चुंडा, विचार करो, जहाँ गुरु परम प्रबुद्ध हैं, और शिक्षा सुव्यवस्थित, अच्छी तरह से दी गई, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी, शांति के लिए सहायक है, और एक परम प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा दी गई है, परन्तु जहाँ शिष्य उस मानक के अनुसार शिक्षा के उपप्रवचनों में निपुण नहीं है, न ही सही आचरण का अभ्यास करना सीखा है, न ही उपदेशों के अनुसार चलता है, बल्कि उस शिक्षा से निरंतर विमुख रहता है। ऐसे में उससे कहा जा सकता है: — हे मित्र, तू सफल नहीं हुआ, तूने अपना अवसर खो दिया। तेरा गुरु परम प्रबुद्ध है, और उसकी शिक्षा सुव्यवस्थित, अच्छी तरह से दी गई, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी, शांति के लिए सहायक है, और एक परम प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा दी गई है, परन्तु तू उसमें निपुण नहीं है, बल्कि निरंतर उससे विमुख रहता है? इन शब्दों से, चुंडा, गुरु और शिक्षा की प्रशंसा होती है, परन्तु शिष्य को दोषी ठहराया जाता है। अब यदि कोई ऐसे शिष्य से कहे: — हे पूज्यवर, अपने गुरु द्वारा सिखाए और बताए गए सिद्धांत के अनुसार अभ्यास कीजिए! — तो जिसने प्रेरित किया, जिसे प्रेरित किया गया, और जिसने प्रेरित होकर उसके अनुसार अभ्यास किया, वे सब बहुत पुण्य अर्जित करेंगे। और क्यों? क्योंकि वह सिद्धांत और अनुशासन उत्तम रूप से प्रस्तुत किए गए थे, उत्तम रूप से प्रदान किए गए थे... एक परम प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा।

7. हे चुंडा, विचार करो, जहाँ गुरु परम ज्ञानी हो, शिक्षा सुव्यवस्थित हो... और शिष्य ने उसमें महारत हासिल कर ली हो... और सदा उसका पालन करता हो। ऐसे शिष्य से कहा जा सकता है: — हे मित्र, तू गुरु और अवसर दोनों में सफल रहा है... और तू सदा अपनी शिक्षा का पालन करता है। इन शब्दों से, चुंडा, गुरु, शिक्षा और शिष्य तीनों प्रशंसनीय माने जाते हैं। और यदि ऐसे शिष्य से कहा जाए:

— निश्चय ही उसके आदरणीय ने शिक्षा प्रणाली में महारत हासिल कर ली है और वह इसे सफलता की ओर ले जाएगा, तो प्रशंसा करने वाला, प्रशंसा पाने वाला और प्रशंसा पाने के बाद अपने परिश्रम को दुगुना करने वाला, सभी पुण्य अर्जित करते हैं। और क्यों? क्योंकि, चुंडा, ऐसा तब होता है जब कोई शिक्षा और अनुशासन सुव्यवस्थित और सुव्यवस्थित हो, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी हो, शांति के लिए सहायक हो, और उसे परम ज्ञानी व्यक्ति द्वारा प्रदान किया गया हो।

8. परन्तु हे चुंडा, विचार करो, जहाँ संसार में एक परम प्रबुद्ध शिक्षक, अरहंत, प्रकट हुए हों; जहाँ एक सिद्धांत को सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया हो, सुस्पष्ट रूप से समझाया गया हो, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी हो, शांति के लिए सहायक हो, और जिसका उपदेश परम प्रबुद्ध व्यक्ति ने दिया हो; परन्तु जहाँ उनके शिष्य अच्छे नियम में निपुण न हुए हों, न ही उच्च जीवन का पूर्ण उद्देश्य उनके लिए स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ हो, उसके सभी चरण समन्वित रूप से स्पष्ट हों, और न ही यह उनके लिए उद्धार का साधन बना हो, और न ही लोगों के बीच इसका अच्छी तरह प्रचार किया गया हो, जब उनके शिक्षक का देहांत हो जाता है।

हे चुंडा, ऐसे गुरु का निधन उनके शिष्यों के लिए अत्यंत दुःख का कारण है। और क्यों? हे अरहंत, हमारे गुरु परम प्रबुद्ध होकर हमारे लिए संसार में अवतरित हुए; और उन्होंने एक सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी और शांति के लिए सहायक मार्ग का वर्णन किया, जो परम प्रबुद्ध गुरु द्वारा प्रदान किया गया था। परन्तु हम उस सुस्पष्ट मार्ग में निपुण नहीं हो पाए, न ही उच्चतर जीवन का पूर्ण सार, उसके सभी चरणों का समन्वित ज्ञान, हमारे लिए प्रकट हुआ, न ही यह हमारे लिए उद्धार का स्रोत बना, न ही इसका मनुष्यों में व्यापक प्रचार हुआ। अब हमारे गुरु का देहांत हो गया है! हे चुंडा, ऐसे गुरु का निधन उनके शिष्यों के लिए अत्यंत दुःख का कारण है।

9. हे चुंडा, विचार करो, जहाँ संसार में एक परम प्रबुद्ध अरहंत गुरु प्रकट हुए; जहाँ एक सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी, शांति के लिए सहायक नियम का उपदेश दिया गया; और जहाँ शिष्य उस उत्तम नियम में निपुण हो गए, और जहाँ उच्च जीवन का संपूर्ण सार उनके सामने प्रकट हो गया, उसके सभी चरण समन्वित रूप से स्पष्ट हो गए, और उद्धार का स्रोत बन गए, और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हो गए, जब वह गुरु देहांत चले गए। अब, हे चुंडा, ऐसे गुरु का मरना उनके शिष्यों के लिए कोई विपत्ति नहीं है। और क्यों? 'हे अरहंत, हमारे लिए संसार में एक परम प्रबुद्ध गुरु प्रकट हुए; और उनके द्वारा एक सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित नियम का उपदेश दिया गया। और हम उत्तम नियम में निपुण हो गए, और उच्च जीवन का संपूर्ण सार हमारे सामने प्रकट हो गया, उसके सभी चरण समन्वित रूप से स्पष्ट हो गए, और उद्धार का स्रोत बन गए, मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हो गए। अब हमारे गुरु का देहांत हो गया है!' हे चुंडा, ऐसे गुरु का निधन उनके शिष्यों के लिए कोई विपत्ति नहीं है।

10. हे कुंडा, यदि इन परिस्थितियों में कोई धार्मिक व्यवस्था स्थापित हो जाए और उसका नेतृत्व करने वाला कोई वरिष्ठ, अनुभवी, पंथ में लंबे समय से कार्यरत, परिपक्व आयु का और विवेकशील भाई न हो, तो वह व्यवस्था इस परिस्थिति के कारण अपूर्ण हो जाती है। परन्तु यदि ऐसा कोई व्यक्ति हो, तो वह व्यवस्था इस परिस्थिति के कारण पूर्ण हो जाती है।

11. फिर, यदि किसी धार्मिक व्यवस्था, चुंडा, को इन परिस्थितियों में रखा जाए, और कोई वरिष्ठ भिक्षु, अनुभवी, संघ में लंबे समय से कार्यरत, परिपक्व आयु का, विवेकशील पाया जाए, परन्तु कोई वरिष्ठ भिक्षु न हो जो शिष्य हो, बुद्धिमान और सुप्रशिक्षित हो, तैयार और विद्वान हो, धर्म के लक्ष्य को प्राप्त कर चुका हो, सत्य का प्रचार करने में सक्षम हो, और अपने सिद्धांतों सहित उत्पन्न विरोधी संप्रदायों का भली-भांति खंडन करके उद्धारकारी अनुग्रह के साथ नियम का शिक्षण करने में सक्षम हो: तो इस परिस्थिति से वह व्यवस्था परिपूर्ण हो जाती है।

12. हे चुंडा, पवित्र जीवन इन परिस्थितियों से सुसज्जित है: अर्थात्, ऐसे प्रमुख भिक्षु और ऐसे वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ, लेकिन यदि मध्यम आयु या प्रतिष्ठित शिष्य भिक्षु न हों, तो इस परिस्थिति के कारण पवित्र जीवन अपूर्ण हो जाता है। या यदि इसमें कुछ अन्य पहलुओं की कमी हो, तो यह उस हद तक अपूर्ण है, उदाहरण के लिए, यदि कोई शिष्या न हों, या वरिष्ठ शिष्याएँ न हों, या मध्यम स्तर की शिष्याएँ न हों, या शिष्याएँ न हों, या यदि कोई शिष्या, गृहस्थ, पवित्र जीवन जीने वाला व्यक्ति न हो, या यदि उन गृहस्थों में से कोई धनी न हो, या यदि कोई शिष्या, गृहस्थ, पवित्र जीवन जीने वाली महिलाएँ न हों, या यदि उन गृहस्थ महिलाओं में से कोई धनी न हो, या यदि यह प्रणाली अपने पूर्ण विस्तार में सफल, समृद्ध, व्यापक और लोकप्रिय न हो, लोगों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित न हो, या यदि यह प्रणाली इन सभी गुणों के बावजूद सार्वजनिक प्रसिद्धि और समर्थन में अग्रणी स्थान प्राप्त न कर पाई हो: — इनमें से किसी एक परिस्थिति के कारण यह प्रणाली अपूर्ण हो जाती है।

13. और इसके विपरीत, इन सभी परिस्थितियों की उपस्थिति से ही वह प्रणाली परिपूर्ण हो जाती है।

14. परन्तु मैं, चुंडा, अब संसार में एक शिक्षक के रूप में प्रकट हुआ हूँ, जो अरहंत, परम प्रबुद्ध हूँ। और नियम सुस्पष्ट, सुस्पष्ट, मार्गदर्शन के लिए प्रभावी, शांति के लिए सहायक, परम प्रबुद्ध द्वारा प्रदान किया गया है। और मेरे सच्चे श्रोता अच्छे नियम में निपुण हैं, और पवित्र जीवन का संपूर्ण सार उनके लिए प्रकट हो गया है, स्पष्ट हो गया है, इसके सभी चरण समन्वित हैं, और उनके लिए उद्धार का साधन बन गया है, जिसका मनुष्यों के बीच व्यापक प्रचार किया गया है।

लेकिन मैं, कुंडा, शिक्षिका, अब बूढ़ी हो गई हूँ, मैंने कई रातें देखी हैं, मुझे निकले हुए बहुत समय हो गया है, मैं पूर्ण आयु तक पहुँच गई हूँ, मेरी यात्रा का अंत हो गया है।

15. हे चुंडा, मेरे कुछ वरिष्ठ भिक्षु भी हैं जो शिष्य हैं, बुद्धिमान और सुप्रशिक्षित हैं, तैयार और विद्वान हैं, जिन्होंने अरहंत की शांति प्राप्त कर ली है, जो उत्तम नियम का प्रचार करने में सक्षम हैं, जो जब दूसरे लोग सत्य द्वारा आसानी से खंडन किए जा सकने वाले विरोधी सिद्धांत का प्रचार शुरू करते हैं, तो वे उसका खंडन करते हुए नियम और उसके उद्धारकारी गुणों का उपदेश देने में सक्षम होते हैं।

हे चुंडा, अब वहाँ मध्यम आयु और प्रतिष्ठा के भिक्षु हैं; मेरे शिष्य और ज्ञानी। हे चुंडा, अब वहाँ नौसिखिए हैं, मेरे शिष्य। हे चुंडा, अब वहाँ वरिष्ठ बहनें हैं, मेरी शिष्य। हे चुंडा, अब वहाँ मध्यम आयु और प्रतिष्ठा की बहनें हैं, और नौसिखिए भी, मेरी शिष्य। हे चुंडा, अब वहाँ गृहस्थ पुरुष हैं, श्वेत वस्त्रधारी, पवित्र जीवन जीने वाले, मेरे शिष्य; और इनमें धनी पुरुष भी हैं। हे चुंडा, अब वहाँ गृहस्थ महिलाएं हैं, श्वेत वस्त्रधारी, मेरी शिष्य; और इनमें धनी महिलाएं भी हैं। हे चुंडा, मेरा धर्म सफल, समृद्ध, व्यापक और अपने पूर्ण विस्तार में लोकप्रिय है, और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित है।

16. हे चुंडा, संसार में आज जितने भी गुरु उत्पन्न हुए हैं, उनमें से मुझे ऐसा कोई गुरु नहीं दिखता जिसने मेरी तरह प्रसिद्धि और समर्थन प्राप्त किया हो। हे चुंडा, संसार में आज जितने भी संघ और संस्थाएँ उत्पन्न हुई हैं, उनमें से मुझे भिक्षु संघ की तरह प्रसिद्धि और समर्थन प्राप्त करने वाला कोई नहीं दिखता। यदि कोई किसी धर्म को हर तरह से सफल, हर पहलू से पूर्ण, न तो अपूर्ण और न ही अनावश्यक, अपने संपूर्ण विस्तार में सुव्यवस्थित बताते हुए सही कह रहा है, तो वह इसी धर्म का वर्णन कर रहा होगा।

राम के पुत्र उद्दक (चुंड) कहा करते थे: देखकर भी कोई नहीं देखता। और देखते हुए क्या नहीं देखा जा सकता? एक तेज धार वाले तरकश का ब्लेड तो दिखता है, पर धार नहीं। उनका यही अर्थ था। और तरकश के बारे में उनकी यह बात एक नीच, निरर्थक, सांसारिक बहुमत के लिए उपयुक्त बात थी। अब यदि कोई इस मुहावरे, 'देखते हुए भी कोई नहीं देखता', का सही प्रयोग करना चाहे, तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए: देखते हुए भी कोई नहीं देखता। लेकिन वह क्या है जो देखकर भी कोई नहीं देखता? एक ऐसा धर्म जो हर तरह से सफल हो, हर पहलू से पूर्ण हो, न तो अपूर्ण हो और न ही अनावश्यक, अपने पूर्ण विस्तार में सुव्यवस्थित हो: यही वह देखता है। यदि वह किसी बिंदु पर किसी विशेषता को अमूर्त रूप से देखे; यह सोचकर कि इससे वह स्पष्ट हो जाएगा, तो वह उसे नहीं देख पाता। यदि वह किसी बिंदु पर किसी विशेषता को भर कर उसे और अधिक पूर्ण बनाने की कोशिश करे, तो भी वह उसे नहीं देख पाता, और इस प्रकार 'देखते हुए भी कोई नहीं देखता'।

इसलिए, कुंडा, यदि कोई व्यक्ति किसी धर्म का वर्णन करना चाहता है जो हर तरह से सफल हो, हर पहलू में पूर्ण हो, न तो दोषपूर्ण हो और न ही अनावश्यक हो, बल्कि अपने पूर्ण विस्तार में अच्छी तरह से प्रस्तुत किया गया हो, तो वह सही ढंग से बोल रहा है, और उसे इसी धर्म के बारे में बात करनी चाहिए।

17. अतः, हे चुंडा, तुम सब, जिन्हें मैंने अपने द्वारा प्राप्त सत्यों का ज्ञान कराया है, एक साथ एकत्रित होकर उन सिद्धांतों का पाठ करो और उन पर आपस में झगड़ा न करो, बल्कि अर्थ की तुलना अर्थ से और वाक्य की तुलना वाक्य से करो, ताकि यह शुद्ध धर्म दीर्घायु हो और निरंतर चलता रहे, ताकि यह संसार के प्रति प्रेम से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के भले, लाभ और समृद्धि के लिए, असंख्य लोगों के कल्याण और सुख के लिए बना रहे!

तो फिर, हे कुंडा, वे कौन से सत्य हैं जिन्हें मैंने जानकर तुम्हें बताया? जब तुम सब एक साथ आकर एकजुट हो जाओ, तो तुम सब मिलकर उनका पाठ करो, और अर्थ-अर्थ और वाक्य-वाक्य की तुलना करके झगड़ा न करो, ताकि यह पवित्र धर्म दीर्घायु हो और निरंतर चलता रहे, ताकि यह संसार के प्रति प्रेम से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के भले, लाभ और कल्याण के लिए, असंख्य लोगों के कल्याण और सुख के लिए बना रहे?

ये हैं: — ध्यान के चार आरंभ, चार सर्वोच्च प्रयास, प्रभावशीलता के चार मार्ग, पाँच शक्तियाँ, पाँच बल, ज्ञानोदय के सात कारक, आर्य अष्टांगिक मार्ग। हे चुंडा, ये वे सत्य हैं जिन्हें मैंने अनुभव करने पर तुम्हें बताया था, और जब तुम सब एक साथ आकर जुड़ जाओ, तो तुम सब इनका अभ्यास करो, और अर्थ की तुलना अर्थ से और वाक्य की तुलना वाक्य से न करो, ताकि यह शुद्ध धर्म दीर्घायु हो और निरंतर चलता रहे, ताकि यह जगत के प्रति प्रेम से, देवताओं और मनुष्यों के भला, उनके कल्याण और उनकी उन्नति के लिए निरंतर बना रहे!

18. हे कुंडा, तुम सब एकता और शिष्टाचार के साथ एकत्रित होकर, मान लो कि कोई सहधर्मी सभा के समक्ष कोई मत व्यक्त करता है। यदि तुम यह समझो कि इस आदरणीय सदस्य ने अर्थ को गलत समझा है, या शब्दों का गलत प्रयोग कर रहा है, तो न तो उसका समर्थन करो और न ही उसे दोष दो। अस्वीकार करते हुए, दोष न देते हुए, तुम उससे इस प्रकार कहो: — हे भाई, इस अर्थ के लिए या तो यह वाक्यांश अधिक उपयुक्त है या वह: कौन सा अधिक उपयुक्त है? या: — इन वाक्यांशों के लिए या तो यह अर्थ है, या वह: कौन सा अधिक उपयुक्त है? यदि वह उत्तर दे: हे भाई, इस अर्थ के लिए वही वाक्यांश अधिक उपयुक्त है, या, हे भाई, इन वाक्यांशों के लिए वही अर्थ अधिक उपयुक्त है, तो न तो उसे दरकिनार करो और न ही उसकी निंदा करो। न तो उसे दरकिनार करो और न ही उसकी निंदा करो, बल्कि ध्यानपूर्वक उसे अर्थ और वाक्यांश दोनों समझाओ।

19. हे कुंडा, मान लीजिए कि कोई सहधर्मी सभा के समक्ष कोई राय व्यक्त करता है। यदि आप यह पाते हैं कि इस माननीय सदस्य ने अर्थ को गलत समझा है, परन्तु शब्दों का सही रूप प्रस्तुत कर रहे हैं, तो आपको न तो उनकी प्रशंसा करनी है और न ही उन्हें दोष देना है। निंदा न करते हुए, दोषरहित होकर, आपको उनसे इस प्रकार कहना है: हे भाई, इन विभिन्न वाक्यांशों में से या तो यह अर्थ सही है या वह: कौन सा अर्थ अधिक उपयुक्त है? यदि वे उत्तर दें: हे भाई, इन वाक्यांशों में से यही अर्थ अधिक उपयुक्त है, तो आपको न तो उन्हें दरकिनार करना है और न ही उनकी निंदा करनी है। न तो उन्हें दरकिनार करते हुए और न ही उनकी निंदा करते हुए, आपको उन्हें सावधानीपूर्वक सही अर्थ समझाना है।

20. यदि आपको लगे कि कोई वक्ता सही अर्थ तो समझ गया है, लेकिन शब्दों का गलत प्रयोग कर रहा है, तो आपको भी यही करना चाहिए; आपको उसे सावधानीपूर्वक सही शब्दावली समझानी चाहिए।

21. परन्तु हे कुंडा, यदि ऐसा वक्ता जो कहे और जिसका अर्थ तुम सही समझो, वही कहे, तो "बहुत खूब!" कहकर उसकी प्रशंसा करो और उसे बधाई दो। और ऐसा कहते और करते हुए, तुम उससे इस प्रकार कहो: हे भाई, हम कितने भाग्यशाली हैं कि तुम्हारे आदर में हमें एक ऐसा सहधर्मी मिलता है जो आध्यात्मिक और शाब्दिक दोनों ही दृष्टियों से इतना निपुण है!

22. हे कुंडा, मैं एक नया सिद्धांत सिखाता हूँ, जो इस वर्तमान जीवन में उत्पन्न होने वाले मानसिक व्यसनों को वश में करने के लिए है। मैं केवल भविष्य के जीवन में व्यसनों को नष्ट करने का सिद्धांत नहीं सिखाता, बल्कि ऐसा सिद्धांत सिखाता हूँ जो उन्हें अभी और परलोक में भी नष्ट करने के लिए है।

इसलिए, हे कुंडा, मेरे द्वारा तुम्हारे लिए स्वीकृत वस्त्र, ठंड, गर्मी, मक्खी, मच्छर, हवा, धूप और सांपों के स्पर्श से बचाव के लिए पर्याप्त हैं। मेरे द्वारा तुम्हारे लिए स्वीकृत दान, शरीर को जीवन में बनाए रखने, उसे सक्रिय रखने, चोट से बचाने और पवित्र जीवन जीने में तुम्हारी सहायता करने के लिए पर्याप्त हैं। यह सोचकर कि 'इस प्रकार मैं पिछली संवेदना पर काबू पाऊंगा और नई संवेदना उत्पन्न नहीं होने दूंगा।' मैं निश्चिंत रहूंगा और किसी भी प्रकार का दोष नहीं लूंगा। मेरे द्वारा तुम्हारे लिए स्वीकृत आवास, ठंड, गर्मी, मक्खी, मच्छर, हवा, धूप और सांपों के स्पर्श से बचाव के लिए पर्याप्त हैं, ताकि तुम जलवायु के खतरों से बच सको और एकांत का आनंद ले सको। मैंने आपके लिए बीमारियों से संबंधित दवाओं और अन्य आवश्यक वस्तुओं का जो प्रावधान स्वीकृत किया है, कृपया वही आपके लिए पर्याप्त समझें, ताकि उत्पन्न हुई बीमारी की अनुभूतियों को दूर किया जा सके और आपके स्वास्थ्य को बनाए रखा जा सके।

23. हे कुंडा, ऐसा हो सकता है कि हमारे विचारों से भिन्न मत रखने वाले संन्यासी कहें: "स्फ़िक्यान पद्धति का अनुसरण करने वाले संन्यासी सुखमय जीवन में लिप्त और समर्पित हैं।" हे कुंडा, ऐसा कहने वाले शिक्षकों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: "भाई, सुख में लिप्त और समर्पित होना क्या है? क्योंकि ऐसे अनेक और विविध तरीके हैं जिनसे कोई व्यक्ति सुख में लिप्त और समर्पित हो सकता है।"

चार प्रकार के गुण हैं, जिन्हें चुंडा कहते हैं, जो निम्न और मूर्तिपूजक हैं, आम जनता में पाए जाते हैं, अयोग्य हैं, अच्छे से संबंधित नहीं हैं, सांसारिकता, वासनाहीनता, शांति, उच्च ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर नहीं ले जाते। ये चार गुण क्या हैं? पहला, मूर्ख का मामला है जो जीवित प्राणियों को मारकर आनंद और संतुष्टि प्राप्त करता है। दूसरा, वह व्यक्ति है जो बिना दी गई वस्तुएँ लेकर आनंद

और संतुष्टि प्राप्त करता है। तीसरा, वह व्यक्ति है जो झूठे कथनों में आनंद और संतुष्टि प्राप्त करता है। चौथा, वह व्यक्ति है जो पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से घिरा रहता है और उनका आनंद लेता है। ये, चुंडा, आनंद के प्रति आसक्त और समर्पित बीन के चार गुण हैं जो निम्न और मूर्तिपूजक हैं, औसत बहुमत से संबंधित हैं, अयोग्य हैं, अच्छाई से विमुख हैं, सांसारिकता, वासनाहीनता, शांति, अंतर्दृष्टि, ज्ञानोदय और निर्वाण के लिए अनुकूल नहीं हैं।

24. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि दूसरे शिक्षक पूछें: क्या शाक्य दर्शन का अनुसरण करने वाले संन्यासी इन चारों गुणों के प्रति आसक्त और समर्पित होते हैं? उन्हें उत्तर देना चाहिए: नहीं, ऐसा नहीं है! वे सही नहीं कह रहे होंगे; वे आपको गलत तरीके से पेश कर रहे होंगे, जो तथ्य नहीं है, जो वास्तव में नहीं है।

ये सुख के प्रति आसक्त और समर्पित होने के चार तरीके हैं, चुंडा, जो पूर्णतः सांसारिकता से विमुख होने, वासनाहीनता, विश्राम, शांति, उच्च ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। ये चार क्या हैं? पहला, चुंडा, जब एक भाई, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम झिफिना में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें एकांत से उत्पन्न पहल और निरंतर विचार होते हैं जो उत्साह और सहजता से परिपूर्ण होते हैं।1

दूसरे, जब कोई व्यक्ति पहल और निरंतर चिंतन को दबाता है, तो वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो स्वयं उत्पन्न होता है, एकाग्रता से पैदा होता है, उत्साह और सहजता से परिपूर्ण होता है। उसमें, आरंभिक और निरंतर चिंतन से मुक्त होकर, मन शांत और स्थिर हो जाता है, उच्चतर अवस्था में लीन हो जाता है। तीसरे, जब कोई व्यक्ति उत्साह से रहित होकर शांत चिंतन में स्थिर रहता है, सचेत और आत्मसंयमित रहते हुए, वह अपने शरीर में उस सहजता का अनुभव करता है जिसके बारे में आर्य कहते हैं: जो शांत चिंतनशील और सचेत रहता है, वह सहजता में रहता है, इस प्रकार वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। चौथे, सहजता और बेचैनी को त्यागकर, अपने सुख और दुःख के देहांत से, वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो पूर्ण शुद्धता, सचेतनता और समभाव की परम आनंदमय अवस्था है, जिसमें न तो सहजता का अनुभव होता है और न ही कोई दुर्बलता। हे चुंडा, सुख में लीन और समर्पित रहने के ये चार तरीके पूर्ण सांसारिकता, वासनाहीनता, शांति, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। हे चुंडा, यदि ऐसा हो कि अन्य सिद्धांतों का उपदेश देने वाले साधु यह घोषणा करें कि शाक्य संन्यासी इन चार सुखों में लीन और समर्पित रहते हैं, तो तुम्हें उनसे कहना चाहिए, "हाँ, वे तुम्हारे विषय में सही कह रहे होंगे, और वे तुम्हें असत्य या असत्य बातों से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं कर रहे होंगे।"

25. हे कुंडा, ऐसा हो सकता है कि हमारे सिद्धांतों से भिन्न अन्य सिद्धांतों का उपदेश देने वाले भिक्षु यह घोषणा करें: हे भाई, इन चार सुखों में लीन और समर्पित रहने वालों को कितना फल और कितना लाभ प्राप्त होगा? उन्हें तुम इस प्रकार उत्तर देना: हे भाई, चार प्रकार के फल और चार लाभ प्राप्त होंगे। वे चार क्या हैं? पहला, वह भाई जो तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से जलमार्ग विजेता बन जाता है, परलोक में विपत्तियों से मुक्त हो जाता है और निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरा, वह भाई जो तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से अपने कामवासना, घृणा और माया को इतना कम कर लेता है कि वह एक बार जन्म लेने वाला बन जाता है और इस संसार में एक बार लौटने से ही उसके सारे दुख दूर हो जाते हैं। तीसरा, वह भाई जो अंतिम पाँच बंधनों के पूर्ण नाश से परलोक में पुनर्जन्म लेगा और वहाँ से कभी वापस नहीं लौटेगा, वहीं उसका निधन हो जाएगा। चौथे, उस भाई का उदाहरण लीजिए जिसने मानसिक व्यसनों के नाश द्वारा इसी जीवन में बुद्धि और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को स्वयं जान लिया है और उसमें स्थिर है। हे भाई, ये चार प्रकार के फल हैं, चार लाभ हैं जो उन लोगों को प्राप्त होते हैं जो इन चार प्रकार के सुखों के प्रति आसक्त और समर्पित हैं।

26. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि हमारे विचारों से भिन्न मत सिखाने वाले साधु यह घोषणा करें कि शाक्य संन्यासी अपने सिद्धांतों में असंगत हैं। ऐसी घोषणा करने पर उन्हें यह उत्तर दिया जा सकता है: - हे भाई, परम ज्ञानी, सर्वज्ञ अरहंत ने अपने शिष्यों को ऐसे सिद्धांत सिखाए और बताए हैं जिनका जीवन भर उल्लंघन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार पत्थर या लोहे का स्तंभ, जिसका आधार गहरा गड़ा हो, सुदृढ़ हो, अविचल और स्थिर हो, ठीक वैसे ही ये सिद्धांत हैं।

जो भाई अरहंत है, जिसमें मादक पदार्थ नष्ट हो चुके हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जिसने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है, जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, जिसने पुनर्जन्म के बंधन को पूरी तरह से तोड़ दिया है, जो सच्चे ज्ञान से मुक्त हो गया है, वह नौ कार्यों को करने में असमर्थ है:

1. वह जानबूझकर किसी जीवित प्राणी को जीवन से वंचित करने में असमर्थ है।

2. वह ऐसी कोई चीज लेने में असमर्थ है जो उसे दी ही न गई हो, जिससे चोरी की श्रेणी में आना असंभव हो।

3. वह यौन अशुद्धता के काबिल नहीं है।

4. वह जानबूझकर झूठ बोलने में असमर्थ है।

5. वह सांसारिक सुखों में लिप्त होने के लिए धन संचय करने में असमर्थ है, जैसा कि वह गृहस्थ जीवन में किया करता था।

6. वह पक्षपात के कारण गलत मार्ग अपनाने में असमर्थ है।

7. वह घृणा के कारण गलत मार्ग अपनाने में असमर्थ है।

8. वह मूर्खता के कारण गलत रास्ता अपनाने में असमर्थ है।

9. वह भय के कारण गलत मार्ग अपनाने में असमर्थ है।

ये नौ बातें वह अरहंत करने में असमर्थ है जिसमें मानसिक मादक पदार्थ नष्ट हो चुके हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जिसका कार्य पूरा हो चुका है, जिसका बोझ हल्का हो गया है, जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, जिसने अस्तित्व के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, जो सच्चे ज्ञान से मुक्त हो चुका है।

27. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि जो यात्री हमसे भिन्न विचार रखते हों, वे कहें: अतीत के विषय में गौतम संन्यासी असीम ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्रकट करते हैं, परन्तु भविष्य के विषय में, उसके क्या और क्यों के विषय में, वे ऐसा नहीं कर पाते। [यदि वे ऐसा कहें], तो वे यात्री, अनेक मूर्खों की तरह, यह समझ बैठेंगे कि एक प्रकार के विषय का ज्ञान और अंतर्दृष्टि दूसरे प्रकार के विषय के ज्ञान और अंतर्दृष्टि से प्रकट होती है। हे चुंडा, अतीत के विषय में तथागत को अतीत का स्मरण है। वे जितनी दूर तक चाहें, उतना पीछे तक याद रख सकते हैं। और भविष्य के विषय में, उनमें ज्ञानोदय से उत्पन्न यह ज्ञान है: यही अंतिम जन्म है; अब और कोई जन्म नहीं होगा।

28. हे चुंडा, यदि भूतकाल का अर्थ वह है जो सत्य नहीं है, तथ्य नहीं है, और जो तुम्हारे हित में नहीं है, तो तथागत इस विषय में कुछ भी प्रकट नहीं करते। यदि भूतकाल का अर्थ वह है जो सत्य है, तथ्य है, परन्तु जो तुम्हारे हित में नहीं है, तो तथागत इस विषय में कुछ भी प्रकट नहीं करते। यदि भूतकाल का अर्थ वह है जो सत्य है, तथ्य है, और जो तुम्हारे हित में है, तो तथागत उस समय को भली-भांति जानते हैं जब उसे प्रकट करना है। [और यही बात वर्तमान और भविष्य के विषय में भी समझी जानी चाहिए।]

इसलिए, हे चुंडा, अतीत, भविष्य और वर्तमान के विषय में तथागत समय के पैगंबर हैं, सत्य के पैगंबर हैं, अच्छाई के पैगंबर हैं, नियम के पैगंबर हैं, अनुशासन के पैगंबर हैं। इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।

29. हे चुंड, इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं, जो कुछ भी यहाँ के लोग, चाहे देवता हों या मनुष्य, संन्यासी हों या ब्राह्मण, देखते, सुनते, महसूस करते, समझते, सिद्ध करते, प्रयास करते या मन में विचार करते हैं, वह सब तथागत को ज्ञात है। इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।

हे चुंडा, उस रात्रि के अंतराल में, जिसमें तथागत सर्वोच्च ज्ञान से परिपूर्ण हुए, और उस रात्रि के अंतराल में, जिसमें वे पुनर्जन्म की किसी भी स्थिति से मुक्त होकर परलोक विदा हुए, उस अंतराल में वे जो कुछ भी प्रवचन, वार्तालाप या व्याख्या करते हैं, वह सब सत्य है, अन्यथा नहीं। इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।

हे चुंड, तथागत जैसा कहते हैं, वैसा ही वे करते हैं; जैसा वे करते हैं, वैसा ही वे कहते हैं। क्योंकि वे अपने वचन के अनुसार ही चलते हैं, और उनका वचन उनके आचरण के अनुरूप है, इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।

हे चुंड, इस संसार में, चाहे मार हों या ब्रह्मा, समस्त जनसमूह, चाहे देवता हों या मनुष्य, संन्यासी हों या ब्राह्मण, तथागत इन सबसे श्रेष्ठ हैं, और स्वयं उनसे श्रेष्ठ नहीं हैं; वे इन सबका प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं, वे ही संसार के स्वामी हैं। इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।

30. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि हमारे सिद्धांतों से भिन्न अन्य सिद्धांतों का प्रचार करने वाले भिक्षु कहें: हे भाई, क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में रहते हैं? क्या यह सत्य है, और क्या कोई अन्य मत निरर्थक है? ऐसे प्रश्न पूछने पर उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: हे भाई, यह परमेश्वर द्वारा प्रकट नहीं किया गया है। या वे यह भी कह सकते हैं: क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहते? ... या क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते? क्या यह सत्य है, और क्या कोई अन्य मत निरर्थक है? तब उन्हें एक ही शब्द में उत्तर देना चाहिए।

31. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि वे पूछें: हे भाई, यह गौतम संन्यासी द्वारा प्रकट क्यों नहीं किया गया? उन्हें इस प्रकार उत्तर देना है: क्योंकि हे भाई, यह न तो अच्छे के लिए, न ही सच्चे सिद्धांत के लिए, न ही धर्म के मूल सिद्धांतों के लिए, न ही सांसारिकता के लिए, न ही वासनाहीनता के लिए, न ही शांति के लिए, न ही अंतर्दृष्टि के लिए, न ही ज्ञान के लिए, और न ही निर्वाण के लिए अनुकूल है। इसलिए इसे परमेश्वर द्वारा प्रकट नहीं किया गया है।

32. हे चुंडा, ऐसा हो सकता है कि वे पूछें: परन्तु हे भाई, गौतम संन्यासी ने क्या प्रकट किया है? उन्हें इस प्रकार उत्तर देना है: — यह बुराई है: — हे भाई, यह परमेश्वर द्वारा प्रकट किया गया है। यह बुराई का कारण है: — हे भाई, यह परमेश्वर द्वारा प्रकट किया गया है। यह बुराई का निवारण है: — हे भाई, यह परमेश्वर द्वारा प्रकट किया गया है। यह बुराई के निवारण का मार्ग है: — हे भाई, यह परमेश्वर द्वारा प्रकट किया गया है।

33. हे कुंडा, ऐसा हो सकता है कि वे यात्री पूछें: हे भाई, केवल वही बात परमेश्वर ने क्यों प्रकट की है? ऐसे प्रश्न करने वालों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: क्योंकि हे भाई, वह अच्छाई से परिपूर्ण है, वह नियम के अंतर्गत आता है, वह धर्म का मूल है, और वह पूर्ण सांसारिकता, वासनाहीनता, बुराई का निवारण, शांति, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाता है। इसलिए वह परमेश्वर द्वारा प्रकट किया गया है।

34. हे कुंडा, सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में वे टिप्पणियाँ जो मैंने तुम्हें बताई हैं, ठीक वैसे ही जैसे उन्हें बताया जाना चाहिए था: क्या मैं उन्हें इस प्रकार तुम्हें बताऊँ जैसे उन्हें नहीं बताया जाना चाहिए था? और सृष्टि के अंत या उत्पत्ति के विषय में वे टिप्पणियाँ जो मैंने तुम्हें बताई हैं, ठीक वैसे ही जैसे उन्हें बताया जाना चाहिए था: क्या मैं उन्हें इस प्रकार तुम्हें बताऊँ जैसे उन्हें नहीं बताया जाना चाहिए था?

हे चुंडा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो निम्नलिखित में से किसी एक मत को मानते और उसका प्रचार करते हैं; उनका कहना है: केवल यही सत्य है, कोई अन्य मत बेतुका है:

आत्मा और संसार शाश्वत हैं।

आत्मा और संसार शाश्वत नहीं हैं।

आत्मा और संसार एक दूसरे के समान नहीं हैं।

आत्मा और संसार दोनों ही हैं...

आत्मा और संसार स्वयं निर्मित हैं. . . .

आत्मा और संसार किसी और ने बनाए हैं. . . .

आत्मा और संसार दोनों स्वयं निर्मित हैं और

किसी और द्वारा बनाया गया. . . .

आत्मा और संसार दोनों ही न तो मनुष्य हैं और न ही संसार, क्योंकि इनका अस्तित्व संयोगवश ही हुआ है।

या फिर वे सुख और दुख के संबंध में इन्हीं में से किसी एक विचार पर विश्वास करते हैं और उसे स्वीकार करते हैं।"

35. हे चुंडा, अब मैं उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के पास जाता हूँ जो इनमें से किसी भी मत को मानते और स्वीकार करते हैं, और उनसे कहता हूँ: क्या यह सच है, मित्र? और यदि वे उत्तर दें: 'हाँ! केवल यही सत्य है, अन्य कोई मत बेतुका है', तो मैं उनके दावे को स्वीकार नहीं करता। ऐसा क्यों? क्योंकि ऐसे प्रश्नों पर लोगों के अलग-अलग मत होते हैं। और न ही मैं इस [या उस] मत को अपने मत के बराबर मानता हूँ, श्रेष्ठ तो दूर की बात है। व्याख्या के मामले में तो मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

36. और इस प्रकार मैं उपरोक्त सभी मतों के विषय में कहता हूँ। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में इन सभी टिप्पणियों के बारे में, मैंने तुम्हें वह प्रकट कर दिया है जो प्रकट किया जाना चाहिए था; तो क्या मैं तुम्हें वह प्रकट करूँ जो प्रकट नहीं किया जाना चाहिए?

37. और हे कुंडा, इस जीवन के बाद की चीजों के बारे में क्या टिप्पणियाँ हैं, जिनमें से कुछ प्रकट होनी चाहिए और कुछ प्रकट नहीं होनी चाहिए?

हे चुंडा, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो निम्नलिखित में से किसी एक मत को मानते और उसका प्रचार करते हैं तथा उसके विषय में कहते हैं: केवल यही सत्य है, अन्य कोई मत निरर्थक है।

मृत्यु के बाद आत्मा दृश्य स्वरूप धारण कर लेती है और रोगमुक्त हो जाती है।

यह अदृश्य हो जाता है, . . .

यह दृश्य और अदृश्य दोनों हो जाता है।

यह न तो दिखाई देता है और न ही अदृश्य हो जाता है।

यह सचेत हो जाता है. . . .

यह अचेतन हो जाता है. . . .

यह दोनों बन जाता है. . . .

यह न तो बनता है और न ही...

मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, वह नष्ट हो जाती है, उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता।

38. हे चुंडा, अब उन संन्यासियों और ब्राह्मणों से, जो इनमें से किसी भी मत को मानते और स्वीकार करते हैं, मैं पहले की तरह ही कहता हूँ: — क्या यह वही है जो तुम कहते हो, मित्र? और यदि वे उत्तर दें: 'केवल यही सत्य है, बाकी सभी मत बेतुके हैं,' तो मैं इसे स्वीकार नहीं करता। और ऐसा क्यों है?

क्योंकि ऐसे प्रश्नों पर लोगों के अलग-अलग विचार होते हैं। न ही मैं इस या उस विचार को अपने विचार के बराबर मानता हूँ, श्रेष्ठ तो दूर की बात है। व्याख्या के मामले में तो मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

39. और इस प्रकार मैं उन सभी पूर्वोक्त मतों के विषय में कहता हूँ। इस जीवन के बाद की बातों के विषय में मैंने तुम्हें वह प्रकट कर दिया है जो प्रकट किया जाना चाहिए था; तो क्या मैं तुम्हें वह प्रकट करूँ जो प्रकट नहीं किया जाना चाहिए?

40. हे कुंडा, चीजों की शुरुआत और परलोक के बारे में इन सभी टिप्पणियों को मिटाने और उनसे आगे निकलने के लिए, मैंने ध्यान के चार आरंभ सिखाए और निर्धारित किए हैं।

— वे चार क्या हैं? इसमें, एक भाई को शरीर के प्रति इस प्रकार ध्यान देना चाहिए कि वह उत्साही, आत्मसंयमित और सचेत रहे, ताकि वह संसार में व्याप्त लालसा और निराशा दोनों पर विजय प्राप्त कर सके। और इसी प्रकार उसे भावनाओं, विचारों और धारणाओं पर

भी ध्यान देना चाहिए। मैंने इन्हें इसलिए सिखाया और निर्धारित किया है ताकि मतों पर की जाने वाली सभी टिप्पणियों को मिटाया जा सके और उनसे आगे बढ़ा जा सके।

41. उस समय पूज्य उपवन भगवान के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा झल रहे थे। तब उन्होंने भगवान से कहा, "हे भगवान, यह नियम का वर्णन कितना अद्भुत और मनमोहक है; इसका आकर्षण कितना महान है। हे भगवान, इस वर्णन का नाम क्या है?"

तो फिर, उपवन, इसे आनंदमय प्रवचन के रूप में याद रखना।

इस प्रकार परम पूज्य ने कहा। उनके शब्दों से आदरणीय उपवन प्रसन्न और आनंदित हुए।

यहां पसादिका सुट्टंता समाप्त होती है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.7 लक्खाना सुत्त (DN30)
मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में ठहरे हुए थे।

"भिक्षुओं!" उन्होंने कहा, और भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "भगवान?"

भगवान ने कहा, "हे भिक्षुओं, महान पुरुष के ये बत्तीस विशेष लक्षण हैं, और जो महान पुरुष इन्हें धारण करता है, उसके लिए केवल दो ही मार्ग खुले हैं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह शासक बनेगा, धर्म का पालन करने वाला धर्मात्मा सम्राट, चारों दिशाओं का विजेता, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की है और सात रत्नों से परिपूर्ण है। ये हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र होंगे जो वीर होंगे, वीर व्यक्तित्व वाले होंगे, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले होंगे। वह इस सागर से घिरे देश को बिना लाठी या तलवार के, धर्म के द्वारा जीतकर निवास करता है। परन्तु यदि वह गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करता है, तो वह अरहंत बनेगा, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, जो संसार से पर्दा हटा देता है।"

और ये बत्तीस लक्षण कौन से हैं जो एक महान व्यक्ति की पहचान कराते हैं?

I. उसके पैर सीधे और समतल हैं। यह एक महान व्यक्ति की पहचान है।

II. उसके पैरों के तलवों पर पहिए लगे हैं, जिनमें हल और हब भी शामिल हैं।

III. उसकी एड़ियाँ उभरी हुई हैं।

IV. उसकी उंगलियां और पैर की उंगलियां लंबी हैं।

V. उसके हाथ और पैर कोमल और मुलायम हैं।

VI. उसके हाथ और पैर जालीदार हैं (जालीदार?)

VII. उसके टखने बहुत ऊंचे हैं

VIII. उसके पैर हिरण जैसे हैं

IX. खड़े होकर और बिना झुके, वह अपने दोनों हाथों से अपने घुटनों को छू और रगड़ सकता है।

X. उसके पुरुष अंग एक आवरण में बंद हैं।

11. उसका रंग सुनहरा है, चमकदार।

XII. उसकी त्वचा इतनी कोमल और चिकनी है कि उस पर धूल भी नहीं चिपकती।

XIII. उसके शरीर के बाल अलग-अलग हैं, प्रत्येक रोमछिद्र पर एक-एक बाल है।

XIV. उसके शरीर के बाल ऊपर की ओर बढ़ते हैं, नीले-काले रंग के, कॉलीरियम की तरह, दाहिनी ओर छल्ले के रूप में बढ़ते हैं।

XV. उनका शरीर ईश्वरीय रूप से सीधा है।

16. उसके पास सात उत्तल सतहें हैं।

सत्रहवीं। उसके शरीर का अगला भाग शेर के समान है।

XVIII. उसके कंधों के बीच कोई खोखलापन नहीं है।

XIX. उसका शरीर बरगद के पेड़ के समान है: उसकी ऊँचाई उसकी भुजाओं की लंबाई के बराबर है।

XX. उसका धड़ समरूप रूप से गोल है।

XXI. उसकी स्वाद की समझ एकदम उत्तम है।

XXII. उसके जबड़े शेर जैसे हैं

XXIII. उसके चालीस दांत हैं।

XXIV. उसके दांत समतुल्य हैं।

XXV. उसके दांतों के बीच कोई जगह नहीं है।

XXVI. उसके नुकीले दांत बहुत चमकीले हैं।

XXVII. उसकी जीभ बहुत लंबी है

XXVIII. उसकी आवाज ब्रह्मा जैसी है, जैसे कराविका पक्षी की आवाज होती है।

XXIX. उसकी आँखें गहरे नीले रंग की हैं।

XXX. उसकी पलकें गाय जैसी हैं।

XXXI. उसकी भौहों के बीच के बाल सफेद और रुई की तरह मुलायम हैं।

XXXII. उसका सिर शाही पगड़ी जैसा है।"

"हे भिक्षुओं, महान पुरुष के लिए विशिष्ट बत्तीस लक्षण यहाँ दिए गए हैं, और इन लक्षणों को प्राप्त करने वाले महान पुरुष के लिए केवल दो ही मार्ग खुले हैं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह शासक बनेगा, धर्म का पालन करने वाला धर्मात्मा सम्राट,

चारों दिशाओं का विजेता, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की है और सात रत्नों से परिपूर्ण है। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवाँ रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र होंगे जो वीर होंगे, वीर व्यक्तित्व वाले होंगे, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले होंगे। वह इस सागर से घिरे देश को बिना लाठी या तलवार के, धर्म के द्वारा जीतकर निवास करता है। परन्तु यदि वह गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करता है, तो वह अरहंत बनेगा, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, जो संसार से पर्दा हटा देता है। अन्य संप्रदायों के ऋषि भी इन बत्तीस लक्षणों को जानते हैं, परन्तु वे इन्हें प्राप्त करने के कर्मिक कारणों को नहीं जानते।"

भिक्षुओं, तथागत अपने पिछले जन्म, पूर्वज या निवास स्थान में मनुष्य के रूप में जन्म लेकर, अच्छे उद्देश्य से महान कर्म करते थे। वे शरीर, वाणी और विचार के अच्छे आचरण में अडिग रहे, उदारता, आत्म-अनुशासन, व्रत पालन, माता-पिता, तपस्वियों, ब्राह्मणों और कुल के मुखिया का आदर करते रहे, और अन्य अत्यंत पुण्य कर्मों में भी लिप्त रहे। इन कर्मों का भरपूर और संचय करते हुए, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय उनका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में हुआ, जहाँ वे अन्य देवताओं से दस प्रकार से परिपूर्ण थे: स्वर्गलोक की लंबी आयु, सौंदर्य, सुख, वैभव, प्रभाव, और दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श। वहाँ से विमुख होकर पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेने पर, उन्होंने एक महान पुरुष का यह लक्षण प्राप्त किया: समतल पदचिह्न, जिससे वे अपने पैर को जमीन पर समान रूप से रखते हैं, उसे समान रूप से उठाते हैं, और पूरे शरीर से जमीन को समान रूप से स्पर्श करते हैं। अकेला।

इस चिह्न से संपन्न होकर, यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह धर्म के पालन में दृढ़ निश्चयी, चक्र-संचालित सम्राट बनेगा, जो चारों दिशाओं का विजेता होगा, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की होगी और सात रत्नों से संपन्न होगा। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं जो वीर हैं, वीर व्यक्तित्व वाले हैं और शत्रु सेना पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। वह इस सागर-बद्ध भूमि पर बिना लाठी या तलवार के, केवल न्याय के बल पर शासन करता है, और इस पृथ्वी पर समुद्र की सीमाओं तक शासन करता है। यह एक खुली, डाकुओं से मुक्त, वन-विहीन, शक्तिशाली, समृद्ध, सुखी और विपत्तियों से मुक्त भूमि है। शासक के रूप में उसे क्या लाभ होता है? कोई भी शत्रु उसे रोक नहीं सकता। यही उसका शासक के रूप में लाभ है। और यदि वह संन्यासी जीवन व्यतीत करता है तो उसे क्या लाभ होता है? वह पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध बनेगा, जो... वह संसार से पर्दा हटाता है। इस प्रकार, उसे क्या लाभ होता है? उसे भीतर या बाहर से किसी शत्रु या विरोधी, लोभ, घृणा या भ्रम से, न ही किसी तपस्वी या ब्राह्मण, किसी देव, मार या ब्रह्मा, या संसार के किसी भी प्राणी से रोका जा सकता है। यही बुद्ध होने का उसका लाभ है।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था,

सत्यवादी, धर्मी, संयमित और स्थिर

पवित्र और सदाचारी, उपवास रखने वाला,

उदार, किसी को हानि न पहुँचाते हुए, शांति से उन्होंने इस महान कार्य को अपने हाथ में लिया और अंत में स्वर्ग में आनंद और सुख का निवास करने चले गए। वहाँ से पृथ्वी पर लौटकर, उनके पैर समतल कदमों से धरती को छू गए, तब एकत्रित भविष्यवक्ताओं ने घोषणा की: जो समतल भूमि पर चलता है, उसी के लिए।

यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे, या संसार का त्याग कर दे, तो कोई भी बाधा उसके मार्ग में नहीं आ सकती: यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। यदि वह गृहस्थ है, तो कोई भी शत्रु उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। कोई भी मानवीय शक्ति उसे उसके कर्मों के फल से वंचित नहीं कर सकती। या यदि वह संन्यासी जीवन को अपना विकल्प चुने: तो वह त्याग की ओर उन्मुख और स्पष्ट दृष्टि वाला होगा—वह मनुष्यों में श्रेष्ठ होगा, अद्वितीय, कभी पुनर्जन्म नहीं लेगा: यही उसके लिए नियम होगा।

भिक्षुओं, चाहे उनका पिछला जीवन कैसा भी रहा हो... तथागत मनुष्य के रूप में जन्म लेकर अनेकों के सुख के लिए, भय और आतंक को दूर करने वाले, विधिवत सुरक्षा और आश्रय प्रदान करने वाले और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले के रूप में जीवन व्यतीत करते रहे, उस कर्म का पालन करते हुए... एक सुखी अवस्था में, एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया... वहाँ से विमुख होकर और पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने एक महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त किया: उनके पैरों के तलवों पर हजार तीलियों वाले पहिए हैं, जो हल और धुरी सहित पूर्ण हैं।

इस विशेषता से संपन्न होकर, यदि वह गृहस्थ जीवन का पालन करता है, तो वह धर्म का पालन करने वाला, चक्र चलाने वाला, धर्मनिष्ठ सम्राट बनेगा, जो चारों दिशाओं का विजेता होगा, जिसने अपने राज्य की सुरक्षा स्थापित की है और सात रत्नों से संपन्न है। ये रत्न हैं: चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न, परामर्शदाता रत्न। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं जो वीर हैं, वीर व्यक्तित्व वाले हैं और शत्रु सेना पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। वह इस समुद्र से घिरी भूमि पर बिना लाठी या तलवार के, केवल न्याय के बल पर शासन करता है, और इस पृथ्वी पर समुद्र की सीमाओं तक शासन करता है। यह एक खुली, डाकुओं से मुक्त, वनों से रहित, शक्तिशाली, समृद्ध, सुखी और विपत्तियों से मुक्त भूमि है। एक शासक के रूप में उसे क्या लाभ होता है? उसके पास एक विशाल दल है: वह ब्राह्मण गृहस्थों, नागरिकों और ग्रामीणों, कोषाध्यक्षों, रक्षकों, द्वारपालों, मंत्रियों, करदाताओं, प्रमुख किरायेदारों और सेवकों से घिरा हुआ है। यही उसका धन है। "शासक के रूप में उसे लाभ होगा। और यदि वह संन्यासी जीवन व्यतीत करे, तो वह पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध बन जाएगा... इस प्रकार, उसे क्या लाभ होगा? उसके साथ एक विशाल दल होगा: वह भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ पुरुषों और महिलाओं, देवताओं और मनुष्यों, असुरों, नागों और गंधर्वों से घिरा रहेगा। यही बुद्ध के रूप में उसका लाभ है।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

बीते समय में, अपने पूर्व जन्मों में, मनुष्य के रूप में, अनेकों का भला करते हुए, भय और दहशत को दूर करते हुए, रक्षा और संरक्षण के लिए तत्पर, उन्होंने यह महान कार्य अपने हाथ में लिया, और अंत में स्वर्ग चले गए, जहाँ वे आनंद और सुख में निवास करेंगे। वहाँ से पृथ्वी पर लौटने पर, उनके पैरों के निशान पहियों के हैं, प्रत्येक पहिया हजार तीलियों वाला, पूर्ण। एकत्रित भविष्यवक्ताओं ने तब पुण्य के इन अनेक चिह्नों को देखकर घोषणा की: "उनका अनुयायी वर्ग विशाल होगा, वे अपने सभी शत्रुओं को परास्त करेंगे। यही बात पहियों के चिह्न स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। यदि वे संसार का त्याग नहीं करते, तो वे पहिया घुमाकर पृथ्वी पर शासन करेंगे। कुलीन लोग उनके अधीन होंगे, सभी उनकी शक्ति की सेवा में तत्पर रहेंगे। लेकिन यदि वे तपस्वी जीवन को चुनते हैं: त्याग की ओर उन्मुख, और स्पष्ट दृष्टि वाले—मनुष्य और देवता,

असुर, सक्क, रक्खास, गंधब्बा, नाग, गरुड़, चार पैर वाले जानवर भी उनकी सेवा करेंगे, बेजोड़, देवों द्वारा और पुरुषों द्वारा समान रूप से उनकी महिमा में पूजनीय।

भिक्षुओं, चाहे उनके पिछले जन्म में जो भी रहा हो... तथागत मनुष्य के रूप में जन्म लेकर, जीवन लेने का त्याग करके और उससे परहेज करके, तथा लाठी और तलवार को त्यागकर, दयालु और करुणामय होकर, सभी प्राणियों के प्रति मित्रता और सहानुभूति रखते हुए निवास करते रहे, उस कर्म का पालन करके... वे एक सुखी अवस्था में पुनर्जन्म हुए... वहाँ से विमुख होकर और पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने महान पुरुष के ये तीन लक्षण प्राप्त किए: उभरी हुई एड़ियाँ, लंबी उंगलियाँ और पैर की उंगलियाँ, और दिव्य रूप से सीधा शरीर।

"इन गुणों से युक्त होकर, यदि कोई शासक गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो उसे क्या लाभ होता है? वह दीर्घायु होता है, दीर्घायु होता है, और उस दौरान कोई भी शत्रु उसका वध नहीं कर सकता... बुद्ध के रूप में, उसे क्या लाभ होता है? वह दीर्घायु होता है... कोई भी शत्रु, चाहे वह तपस्वी हो या ब्राह्मण, देव हो, मार हो या ब्रह्मा, या संसार का कोई भी प्राणी, उसका वध नहीं कर सकता। यही बुद्ध के रूप में उसका लाभ है।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

मृत्यु के भय को भलीभांति जानते हुए भी, उन्होंने प्राणियों की हत्या करने से परहेज किया। इसी सद्‌गुण के कारण उन्हें स्वर्ग में जन्म मिला, जहाँ उन्होंने पुण्य के फल का आनंद लिया। पृथ्वी पर लौटकर उन्होंने अपने शरीर पर ये तीन चिह्न धारण किए: उनकी एड़ियाँ भरी हुई और बहुत लंबी हैं, ब्रह्मा के समान उनका रूप सीधा है, वे देखने में सुंदर और सुडौल अंगों वाले हैं, उनकी उंगलियाँ कोमल, मुलायम और लंबी हैं। इन तीन उत्कृष्ट चिह्नों से ही यह ज्ञात होता है कि युवक दीर्घायु होगा। वे गृहस्थ जीवन में दीर्घायु होंगे, और उससे भी अधिक समय तक तपस्वी के रूप में अपने श्रेष्ठ गुणों का अभ्यास करेंगे: यही इन तीन चिह्नों का संकेत है।

भिक्षुओं, चाहे उनके पिछले जन्म में जो भी रहा हो... तथागत उत्तम भोजन, स्वादिष्ट और लजीज, कठोर और नरम, और पेय पदार्थ दाता बन गए, उस कर्म का पालन करके... उनका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में हुआ... वहाँ से विमुख होकर और पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त किया: दोनों हाथों, दोनों पैरों, दोनों कंधों और धड़ पर सात उत्तल सतहें।

"इस चिह्न से संपन्न होकर...शासक के रूप में उसे क्या लाभ होता है? उसे उत्तम भोजन और पेय पदार्थ प्राप्त होते हैं, स्वादिष्ट और लजीज, कठोर और नरम...बुद्ध के रूप में भी ऐसा ही होता है।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

वह स्वादिष्ट भोजन और उत्तम स्वाद वाले पेय पदार्थों का वितरक था। इस अच्छाई ने उसे सुखद जन्म दिया, और वह नंदन में लंबे समय तक रहा। पृथ्वी पर लौटते समय, वह कोमल, फूले हुए अंगों पर सात राशियों को धारण किए रहा। तब एकत्रित भविष्यवक्ताओं ने घोषणा की,

वह उत्तम भोजन और पेय का आनंद उठाएगा: न केवल गृहस्थ जीवन में— क्योंकि भले ही वह संसार का त्याग कर दे और सांसारिक जीवन के बंधनों को तोड़ दे, फिर भी उसे स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होगा!

भिक्षुओं, चाहे उनका पिछला जीवन कैसा भी रहा हो...तथागत ने सहानुभूति के चार आधारों के माध्यम से स्वयं को प्रिय बनाया: उदारता, मधुर वाणी, लाभकारी आचरण और निष्पक्षता...इस पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने एक महान व्यक्ति के ये दो लक्षण प्राप्त किए: कोमल और दयालु हाथ और पैर, और जालीदार हाथ और पैर।

"इन दो लक्षणों से युक्त होकर, एक शासक के रूप में उसे क्या लाभ होता है? उसके सभी अनुयायी उसके प्रति सत्कारपूर्ण रहते हैं: ब्राह्मण गृहस्थ, नागरिक और ग्रामीण, खजाने, रक्षक, द्वारपाल... सेवक। बुद्ध के रूप में उसे क्या लाभ होता है? उसके सभी अनुयायी उसके प्रति सत्कारपूर्ण रहते हैं: भिक्षु, भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और महिलाएं, देवता और मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व। यही बुद्ध के रूप में उसका लाभ है।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

"दान और सहायता कार्यों के द्वारा, मधुर वाणी और समभाव से, सभी के हित में, मृत्यु के समय वे स्वर्ग गए। जब वे पृथ्वी पर लौटे, तो उनके हाथ-पैर कोमल और कोमल थे, उनकी उंगलियां और पैर की उंगलियां जालीदार फैली हुई थीं। वे देखने में अत्यंत सुंदर थे: इस प्रकार शिशु को ये गुण प्राप्त हुए थे। वे लोगों के शासक होंगे, वफादार अनुयायियों से घिरे रहेंगे। मधुर वाणी वाले, अच्छे कर्मों में लिप्त, सदाचारी और बुद्धिमान आचरण वाले। लेकिन यदि वे इंद्रिय सुखों का त्याग करते हैं, तो एक विजेता के रूप में वे मार्ग का उपदेश देंगे, और उनके वचनों से प्रसन्न होकर, सुनने वाले सभी लोग धर्म के महान और लघु मार्गों में उनका अनुसरण करेंगे!"

भिक्षुओं, चाहे उन्होंने अपने पिछले जन्म में जो भी जीवन जिया हो... तथागत लोगों के कल्याण और धम्म के बारे में लोगों को उपदेश देते हुए, लोगों को इसकी व्याख्या करते हुए, प्राणियों के कल्याण और सुख के वाहक और धम्म के वितरक बने... इस पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: ऊंचे उठे हुए टखने और ऊपर की ओर बढ़ते हुए शरीर के बाल।

"इन लक्षणों से संपन्न होकर...एक शासक के रूप में उसे क्या लाभ होता है? वह संन्यासियों में प्रमुख, अग्रणी और सर्वोच्च बन जाता है...बुद्ध के रूप में, वह सभी प्राणियों में प्रमुख, अग्रणी, सर्वोच्च और सर्वोच्च बन जाता है। यही बुद्ध के रूप में उसका लाभ है।"

भगवान ने यही घोषणा की थी।

इस बारे में कहा गया था

एक बार उन्होंने सभी अच्छाइयों के बारे में बात की, समस्त मानवजाति को ज़ोर-ज़ोर से उपदेश दिया, सभी प्राणियों को आशीर्वाद दिया, और उदारतापूर्वक कानून का पालन करवाया। ऐसे आचरण और ऐसे कर्मों के लिए, स्वर्ग में जन्म उनका पुरस्कार था। यहाँ लौटने पर,

उनके दो चिह्न थे, परम सुख के चिह्न: ऊपर की ओर बढ़ते शरीर के बाल, टखने जो पैर से काफी ऊपर थे। मांस और त्वचा के नीचे निर्मित,

सुगठित और सुंदर। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे, तो उसे अपार धन-संपत्ति प्राप्त होगी; उससे महान कोई पुरुष नहीं मिलेगा; वह जंबुद्वीप के स्वामी के रूप में शासन करेगा। यदि वह अत्यंत बलवान होकर संसार त्याग दे, तो वह सर्वोत्कृष्ट होगा; उससे महान कोई पुरुष नहीं मिलेगा; वह समस्त संसार के स्वामी के रूप में शासन करेगा।

भिक्षुओं, चाहे उनके पिछले जन्म में जो भी रहा हो... तथागत किसी शिल्प, विज्ञान, आचरण या कर्म के कुशल व्याख्याता बन गए, यह सोचते हुए: "मैं बिना अनावश्यक सावधानी के जल्दी से क्या सीख सकता हूँ, क्या प्राप्त कर सकता हूँ और जल्दी से क्या अभ्यास कर सकता हूँ?" ... पृथ्वी पर लौटने पर उन्हें महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त होता है: मृग के समान पैर।

“इस विशेषता से संपन्न होकर...शासक के रूप में वह शीघ्र ही वे सभी चीजें प्राप्त कर लेता है जो एक शासक के लिए उपयुक्त होती हैं, जो उसे प्रसन्न करती हैं और उसके लिए उचित होती हैं। बुद्ध के रूप में भी ऐसा ही है।” भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

कला और विज्ञान, तौर-तरीके और कर्म: "मुझे आसानी से सीखने दो," वह कहता है। "ऐसे कौशल जो किसी भी जीवित प्राणी को नुकसान न पहुंचाएं।"

उसने कम मेहनत से जल्दी ही सब कुछ सीख लिया। ऐसे कुशल और मधुर कर्मों से उसके अंग सुशोभित और आकर्षक होंगे, जबकि कोमल त्वचा पर बाल घुमावदार रेखाओं में खूबसूरती से खड़े होंगे। ऐसा व्यक्ति हिरण की टांगों वाला होता है: कहते हैं, वह जल्द ही धनवान हो जाएगा। "उसका हर एक बाल उसके लिए सौभाग्य लेकर आएगा, यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे। लेकिन यदि वह संसार त्यागने का निश्चय करे, तो स्पष्ट दृष्टि से वह शीघ्र ही उन सभी चीजों को पा लेगा जो ऐसे उच्च मार्ग के लिए उपयुक्त हैं।"

भिक्षुओं, चाहे उनका पिछला जन्म कैसा भी रहा हो... तथागत ने एक तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाकर पूछा, "हे भगवान, क्या अच्छा है और क्या बुरा? क्या निंदनीय है और क्या नहीं? कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए और कौन सा नहीं? क्या करने से मुझे चिरस्थायी दुःख और हानि होगी और क्या चिरस्थायी सुख?" ...इस पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने एक महान पुरुष का यह लक्षण प्राप्त किया: उनकी त्वचा इतनी कोमल और चिकनी है कि उन पर धूल भी नहीं चिपकती।

"इस विशेषता से संपन्न होकर...शासक के रूप में वह अत्यंत बुद्धिमान होगा, और संन्यासियों में बुद्धि के मामले में उससे समतुल्य या श्रेष्ठ कोई नहीं होगा...बुद्ध के रूप में वह महान बुद्धि, व्यापक बुद्धि, आनंदमय बुद्धि, तीव्र बुद्धि, मर्मस्पर्शी बुद्धि, विवेकशील बुद्धि से परिपूर्ण होगा, और समस्त प्राणियों में बुद्धि के मामले में उससे समतुल्य या श्रेष्ठ कोई नहीं होगा।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

पुराने समय में, पिछले जन्मों में, वह जानने की उत्सुकता में, एक प्रश्नकर्ता के रूप में तपस्वियों की सेवा करता था: सत्य को जानने के लिए उत्सुक, वह जीवन के लक्ष्य के बारे में उनके वचनों पर ध्यान देता था। इसका फल यह हुआ कि जब उसने मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लिया, तो उसकी त्वचा कोमल और सौम्य थी। एकत्रित भविष्यवक्ताओं ने इस प्रकार घोषणा की: "वह सूक्ष्म अर्थों को समझेगा। यदि वह संसार नहीं छोड़ता है, तो वह एक घूमते हुए चक्र का राजा होगा, सभी सूक्ष्मताओं को जानने में बुद्धिमान, जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता या उससे आगे नहीं निकल सकता। लेकिन यदि वह संसार को त्यागने का चुनाव करता है, तो उसे सर्वोच्च ज्ञान, सर्वोपरि और विशाल ज्ञान प्राप्त होगा।"

भिक्षुओं, चाहे उनका पिछला जीवन कैसा भी रहा हो... तथागत क्रोध रहित, पूर्णतः शांत स्वभाव के थे, और अनेक शब्द बोले जाने के बाद भी वे अपशब्द, उत्तेजित, क्रोधित या आक्रामक नहीं होते थे, न क्रोध, न घृणा, न आक्रोश प्रदर्शित करते थे, बल्कि उत्तम, कोमल

कालीन, लबादे, उत्तम लिनेन, सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्र दान करने की आदत रखते थे... इस पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त किया: स्वर्णमय उज्ज्वल रंग।

इस चिह्न से संपन्न होकर...शासक के रूप में उन्हें ऐसी उत्तम वस्तुएँ प्राप्त होंगी...बुद्ध के समान ही।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

सद्भावना से स्थापित होकर, उन्होंने कोमल और उत्तम वस्त्रों का उपहार दिया। पूर्व जन्मों में उन्होंने इसी प्रकार दान दिया, जैसे वर्षादेव वर्षा बरसाते हैं। इसी अच्छाई ने उन्हें स्वर्ग में जन्म दिलाया, जहाँ उन्होंने पुण्य के फल का आनंद लिया। बीते समय में, उत्तम गढ़े हुए सोने के समान उनका शरीर सभी देवताओं से अधिक सुंदर है, वे महान इंद्र के समान प्रतीत होते हैं। "यदि वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, तो वे इस दुष्ट संसार को व्यवस्थित करेंगे, और अपने कर्मों के फल के रूप में उन्हें उत्तम वस्त्र, सर्वोत्तम कालीन और चादरें प्राप्त होंगी। और यदि वे संसार को त्यागने का निर्णय लेते हैं, तो उन्हें ये वस्तुएँ भी प्राप्त होंगी: सद्गुणों के फल कभी व्यर्थ नहीं होते।"

भिक्षुओं, चाहे उनका पिछला जीवन कैसा भी रहा हो... तथागत ने बिछड़े हुए लोगों को उनके रिश्तेदारों, मित्रों और साथियों से मिलाया, जिन्होंने उन्हें बहुत याद किया था, माँ को बच्चे से और बच्चे को माँ से, पिता को बच्चे से और बच्चे को पिता से, भाई को भाई से, भाई को बहन से और बहन को भाई से मिलाया, और उन्हें बड़े हर्षोल्लास के साथ फिर से एक कर दिया... पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त किया: उनके पुरुष अंग एक आवरण में लिपटे हुए हैं।

"इस चिह्न से संपन्न होकर...शासक के रूप में उसके अनेक पुत्र होंगे, एक हजार से अधिक पुत्र, बलवान वीर, शत्रु सेना का नाश करने वाले। बुद्ध के समान ही।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

पूर्वज दिनों में, पूर्व जन्मों में, बिछड़े हुए मित्रों और रिश्तेदारों, यहाँ तक कि साथियों को भी, उन्होंने एक साथ लाया और उन्हें आनंद में एकजुट किया। इस अच्छे कर्म ने उन्हें स्वर्ग का जन्म दिलाया और आनंद और सुख उनका पुरस्कार था। जब वे पृथ्वी पर लौटे, तो उनके अंग आवरण में लिपटे हुए थे। उनके अनेक पुत्र होंगे, एक हजार से अधिक पुत्र उनके हैं, वीर योद्धा, विजेता और आज्ञाकारी भी, जो आम आदमी के लिए आनंद हैं। लेकिन यदि वे संसार छोड़ दें, तो भी उन्हें और अधिक संतानें प्राप्त होंगी: वे जो उनके वचन पर निर्भर हैं। और इसलिए, त्याग किया हो या न किया हो, यह संकेत ऐसे लाभों का संकेत देता है।

प्रथम पाठ खंड का अंत]
भिक्षुओं, चाहे उनके पिछले जन्म में जो भी रहा हो... तथागत ने लोगों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव को जाना, प्रत्येक को स्वयं में जाना और यह भी जाना कि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न है: "यह व्यक्ति इस प्रकार के योग्य है, वह व्यक्ति इस प्रकार के योग्य है," इस प्रकार उन्होंने उनमें भेद किया... पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: उनका शरीर बरगद के वृक्ष के समान सुडौल है और खड़े होकर, बिना झुके, वे अपने दोनों हाथों से अपने घुटनों को छू और रगड़ सकते हैं।

"इन गुणों से युक्त होकर...शासक के रूप में वह धनी, अपार संपत्ति और संसाधनों से संपन्न होगा, उसके पास सोने-चांदी का भरपूर खजाना होगा, हर प्रकार की वस्तुएँ होंगी और उसका अन्न भंडार अनाज से भरा होगा। बुद्ध के रूप में वह धनवान और समृद्ध होगा: और ये उसके खजाने होंगे: आस्था, नैतिकता, नैतिक लज्जा, नैतिक भय, विद्या, त्याग और ज्ञान।"

भगवान ने यही कहा:

इस बारे में कहा गया था:

तराजू में तौलकर, लोगों के हित को ध्यान में रखते हुए, यह देखकर कि "यह योग्य है और वह योग्य है," उसने उनका न्याय किया। अब वह अडिग खड़ा हो सकता है और अपने दोनों हाथों से अपने घुटनों को छू सकता है, और उसका वृक्ष के समान तना और ऊँचाई उसके पुण्य कर्मों का फल है। जो लोग चिह्नों और संकेतों को पढ़ते हैं और इस विद्या के विशेषज्ञ हैं, वे कहते हैं: "गृहस्थ जीवन के लिए

उपयुक्त वस्तुएँ उसे बचपन में बहुतायत में मिलेंगी, इस संसार के स्वामी के समान सांसारिक धन उसे प्राप्त होगा, जो एक गृहस्थ के लिए उचित है। परन्तु यदि वह सांसारिक धन का त्याग कर दे, तो उसे अतुलनीय धन प्राप्त होगा।”

भिक्षुओं, तथागत अपने पिछले जन्म में चाहे जिस भी जीवन में रहे हों...उन्होंने अनेकों के कल्याण, उनके लाभ, सुख-सुविधाओं और बंधनों से मुक्ति की कामना की, और यह सोचा कि वे कैसे आस्था, नैतिकता, ज्ञान, त्याग, धम्म, बुद्धि, धन-संपत्ति, द्विपद और चौपद प्राणियों, पत्नियों, बच्चों, नौकरों, कामगारों और सहायकों, रिश्तेदारों, मित्रों और परिचितों में वृद्धि कर सकते हैं...पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये तीन लक्षण प्राप्त किए: उनके शरीर का अगला भाग सिंह के समान है, उनके कंधों के बीच कोई गड्ढा नहीं है, और उनका धड़ समरूप रूप से गोल है।

"इन लक्षणों से युक्त होकर...शासक के रूप में वह कुछ भी नहीं खो सकता: धन-संपत्ति, दो पैरों वाले और चार पैरों वाले प्राणी, पत्नियाँ और बच्चे—कुछ भी न खोकर वह सब कुछ में सफल होगा। बुद्ध के रूप में वह कुछ भी नहीं खो सकता: आस्था, नैतिकता, विद्या, त्याग या ज्ञान—कुछ भी न खोकर वह सब कुछ में सफल होगा।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

"विश्वास, नैतिकता, ज्ञान, बुद्धि, संयम और न्याय, और भी बहुत सी अच्छी चीजें। धन, संपत्ति, पत्नियां और पुत्र, पशुधन, रिश्तेदार, मित्र, सहकर्मी, बल, सौंदर्य और सुख: ये सब चीजें वह दूसरों के लिए चाहता था कि वे इन्हें बनाए रखें और कभी न खोएं। इसलिए, सिंहमुखी रूप में जन्मा, खोखली पीठ वाला नहीं, बल्कि गोल-मटोल। पिछले अच्छे कर्मों से भरपूर, जन्म से ही ऐसे चिह्नों से युक्त, वह हर प्रकार की हानि से बचा रहा। गृहस्थ जीवन में वह धन-संपत्ति में समृद्ध है, पत्नियों, पुत्रों और चौपायों से संपन्न है। या यदि वह त्यागी हो, तो उसके पास कुछ भी नहीं है, फिर भी उसे परम ज्ञान प्राप्त है, जहां असफलता का कोई स्थान नहीं है।"

भिक्षुओं, तथागत अपने पिछले जन्म में जिस भी रूप में रहे हों...वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हाथ, पत्थर, लाठी या तलवार से किसी भी प्राणी को हानि पहुँचाने से परहेज किया...पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने इस महान पुरुष का यह लक्षण प्राप्त किया: उनकी स्वाद इंद्रिय परिपूर्ण है। वे अपनी जीभ की नोक से जिस भी चीज को स्पर्श करते हैं, उसका स्वाद उनके गले में महसूस होता है और वह स्वाद चारों ओर फैल जाता है।

“इस विशेषता से युक्त होने के कारण...शासक के रूप में उन्हें कम कष्ट या बीमारी होगी, उनका पाचन अच्छा होगा, न तो उन्हें अधिक ठंड लगेगी और न ही अधिक गर्मी। इसी प्रकार, बुद्ध के रूप में वे समभाव वाले और परिश्रम सहने वाले होंगे।” भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था,

"हाथ, लाठी या पत्थर से किसी को हानि न पहुँचाने वाला, तलवार से किसी की हत्या न करने वाला, निर्दोष, किसी को बंधन में न डालने वाला, सुखी जन्म से उसने अपने अच्छे कर्मों का फल प्राप्त किया, और फिर पुनर्जन्म लेकर, उसकी स्वाद कलिकाएँ खड़ी हो गईं और अच्छी तरह से स्थापित हो गईं। जो लोग इन लक्षणों को जानते हैं वे कहते हैं: 'उसे महान सुख प्राप्त होगा, चाहे वह साधारण व्यक्ति हो या घुमक्कड़: यही इस चिन्ह का अर्थ है।'"

भिक्षुओं, तथागत अपने पिछले जन्म में लोगों को तिरछी नज़रों से, अप्रत्यक्ष रूप से या छिपकर नहीं देखते थे, बल्कि सीधे, खुले और स्पष्ट रूप से, और दयालु दृष्टि से देखते थे...और पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: गहरी नीली आँखें और गाय जैसी पलकें।

"इन गुणों से युक्त होने के कारण...शासक के रूप में वे आम लोगों के बीच प्रेम से देखे जाएँगे; वे ब्राह्मण गृहस्थों, नागरिकों और ग्रामीणों, कोषाध्यक्षों, रक्षकों, द्वारपालों और सेवकों के बीच लोकप्रिय और प्रिय होंगे। बुद्ध के रूप में वे भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ पुरुषों और महिलाओं, देवताओं और मनुष्यों, असुरों, नागों और गंधबत्तों के बीच लोकप्रिय और प्रिय होंगे।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था

तिरछी नज़रों से न देखते हुए, न ही दृष्टि फेरते हुए, वह लोगों को सीधे और खुले दिल से देखता है, स्पष्टवादिता और दयालु दृष्टि से। सुखद स्थान पर पुनर्जन्म लेकर, वह वहाँ अपने अच्छे कर्मों का फल भोगता है। यहाँ पुनर्जन्म लेकर, उसकी पलकें गाय जैसी हैं; उसकी आँखें नीली हैं। जो लोग इन बातों को जानते हैं, वे (इन लक्षणों की कुशलता से व्याख्या करते हुए) कहते हैं, "जिस बच्चे की ऐसी सुंदर आँखें होंगी, उसे सब प्रसन्नता से देखेंगे। यदि वह गृहस्थ है, तो वह सबकी दृष्टि को भाएगा। यदि वह तपस्वी बन जाता है, तो लोगों के दुखों का निवारण करने वाले के रूप में प्रिय होगा।"

"भिक्षुओं, तथागत अपने पिछले जन्म में जिस भी रूप में रहे हों... वे कौशल और व्यवहार में सर्वोपरि थे, शरीर, वाणी और विचार की सही क्रिया में अग्रणी थे, उदारता, सदाचार, उपवासों के पालन, माता-पिता, तपस्वियों, ब्राह्मणों और कुल के मुखिया का सम्मान करने में और अन्य विभिन्न उचित गतिविधियों में अग्रणी थे... पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष का यह चिह्न प्राप्त किया: एक शाही पगड़ी जैसा सिर।"

"इस चिह्न से संपन्न होकर...शासक के रूप में उन्हें ब्राह्मण गृहस्थों और नागरिकों की निष्ठा प्राप्त होगी...बुद्ध के रूप में उन्हें भिक्षुओं और भिक्षुणियों की निष्ठा प्राप्त होगी..." भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

उन्होंने आचरण में मार्गदर्शिता दिखाई, धार्मिक जीवन जीने का दृढ़ संकल्प लिया। इस प्रकार लोग उनके प्रति वफादार रहे और उन्हें स्वर्गिक पुरस्कार प्राप्त हुआ। और उस पुरस्कार के बाद, वे पगड़ी पहने हुए पुनः प्रकट हुए। जो लोग संकेतों को जानते हैं, उन्होंने घोषणा की: वे मनुष्यों में प्रथम होंगे। सभी इस जीवन में उनकी सेवा करेंगे, जैसा कि पहले हुआ था। यदि वे धनवान कुलीन व्यक्ति होंगे, तो उन्हें अपने लोगों की सेवा प्राप्त होगी, लेकिन यदि वे संसार छोड़ दें, तो यह उपदेशक एक गुरु होंगे, और सभी लोग उनके द्वारा प्रचारित शिक्षा को सुनने के लिए उमड़ पड़ेंगे।

भिक्षुओं, तथागत ने अपने पिछले जन्म में चाहे जो भी जीवन जिया हो... झूठे वचनों का त्याग करके, झूठ को छोड़कर सत्य के वक्ता बन गए, सत्य से जुड़े रहे, विश्वसनीय, सुसंगत और संसार को धोखा न देने वाले बने... पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने एक महान व्यक्ति के ये दो लक्षण प्राप्त किए: उनके शरीर के बाल अलग-अलग थे, प्रत्येक रोमछिद्र में एक-एक बाल था और उनकी भौहों के बीच के बाल रुई की तरह सफेद और मुलायम थे।

"इन लक्षणों से युक्त होने के कारण...शासक के रूप में ब्राह्मण गृहस्थ उनका पालन करेंगे...बुद्ध के रूप में भिक्षु उनका पालन करेंगे..." भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया:

पिछले जन्मों में किए अपने वादे के प्रति सच्चे, वे वाणी के सच्चे और झूठ से रहित थे। उन्होंने कभी अपना वचन नहीं तोड़ा, वे सत्य और ईमानदारी से प्रसन्न होते थे। उनके माथे के बीच सफेद, चमकदार और रुई के समान कोमल बाल थे, और एक रोमछिद्र से दो बाल नहीं उगते थे, बल्कि प्रत्येक बाल अलग-अलग दिखाई देता था। एकत्रित ज्योतिषियों ने (उन चिह्नों को कुशलता से पढ़कर) यह घोषणा की कि ऐसे चिह्न और ऐसे बालों के कारण सभी उनका पालन करेंगे; यदि वे अभी भी गृहस्थ हैं, तो लोग उनके पिछले कर्मों के कारण उनका सम्मान करेंगे; यदि वे संन्यासी और निर्धन हैं, तो लोग उन्हें बुद्ध के रूप में पूजेंगे।

भिक्षुओं, तथागत ने अपने पिछले जन्म में चाहे जो भी जीवन जिया हो... निंदा का त्याग करते हुए, उससे दूर रहे, यहाँ सुनी हुई बातों को न तो दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए दोहराते रहे, न ही वहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए दोहराते रहे... इस प्रकार वे मतभेदियों के बीच सुलह कराने वाले और एकता में रहने वालों को प्रोत्साहित करने वाले थे, शांति में आनंदित होते थे, उससे प्रेम करते थे, उसमें प्रसन्न होते थे, शांति के लिए आवाज उठाते थे। झूठे वचनों का त्याग करते हुए, तपस्वी गौतम झूठे वचनों से दूर रहते हैं, सत्य का वाचक, भरोसेमंद, विश्वसनीय, संसार को धोखा न देने वाला। द्वेषपूर्ण वचनों का त्याग करते हुए, वे यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए न तो वहाँ दोहराते हैं, न ही वहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए दोहराते हैं। इस प्रकार वे मतभेदियों के बीच सुलह कराने वाले और एकता में रहने वालों को प्रोत्साहित करने वाले, शांति में आनंदित होते हैं, उससे प्रेम करते हैं, उसमें प्रसन्न होते हैं, शांति के लिए आवाज उठाते हैं। कठोर भाषा का त्याग करके, वे उससे परहेज करते हैं। वे वही बोलते हैं जो निर्दोष,

सुनने में मधुर, मनभावन, हृदय को छूने वाला, शिष्ट और जनमानस को भाने वाला होता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वे उचित समय पर, सही और सटीक, धर्म और अनुशासन की बातें बोलते हैं। वे ऐसे वक्ता हैं जिनके शब्द अनमोल, समयबद्ध, तर्कसंगत, सुस्पष्ट और लक्ष्य से जुड़े होते हैं। पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: चालीस दांत, जिनके बीच कोई अंतराल नहीं।

"इन लक्षणों से युक्त होने के कारण...शासक, उसके अनुयायी, ब्राह्मण गृहस्थ, नागरिक...आपस में विभाजित नहीं होंगे। इसी प्रकार, बुद्ध के रूप में, उनके अनुयायी, भिक्षु, भिक्षुणियां...आपस में विभाजित नहीं होंगे।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

वह ऐसे बुरे शब्द नहीं बोलता जो कलह पैदा करें या उसे बढ़ाएं, कलह और कड़वाहट को लंबा खींचें, और अच्छी दोस्ती को खत्म कर दें। उसने जो कुछ भी कहा, वह शांति के लिए था, और टूटे हुए रिश्तों को जोड़ने के लिए था। उसने अपनी शक्ति का उपयोग सभी कलह को समाप्त करने के लिए किया, सद्भाव ही उसका आनंद था। पुनर्जन्म लेकर, उसने अपने अच्छे कर्मों का फल भोगा। पृथ्वी पर लौटने पर, उसके दांत पास-पास आ गए, चालीस दांत मजबूती से जड़े हुए थे। यदि कोई धनी कुलीन व्यक्ति है, तो उसकी प्रजा कोमल होगी; यदि कोई संन्यासी है - जो कलंक से मुक्त है, तो उसका झुंड अच्छी तरह से व्यवस्थित होगा।

भिक्षुओं, तथागत ने अपने पिछले जन्म में चाहे जो भी किया हो... कठोर वाणी का त्याग करके उससे परहेज किया, और निर्दोष, कानों को भाने वाली, मनभावन, हृदय को छूने वाली, शिष्ट, और जनमानस को प्रसन्न करने वाली बातें बोलीं... पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: उनकी जीभ बहुत लंबी थी, और उनकी आवाज ब्रह्मा के समान, करविका पक्षी के समान थी।

"इन गुणों से युक्त होने के कारण...शासक के रूप में उनकी वाणी प्रभावशाली होगी, सभी प्रजा उनके वचनों को दिल से ग्रहण करेगी, बुद्ध के रूप में भी उनकी वाणी प्रभावशाली होगी: सभी भिक्षु और भिक्षुणियां...उनके वचनों को दिल से ग्रहण करेंगे।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

वह अपशब्द बोलने वाला नहीं है, कठोर और पीड़ादायक बातें करने वाला नहीं है, जो लोगों को दुख पहुंचाती हों। उसकी वाणी कोमल, दयालु और मधुर है, जो लोगों के हृदयों को भाती है और उनके कानों को सुहाती है। सुखमय लोक में पुनर्जन्म लेकर, उसने अपने अच्छे कर्मों का फल भोगा। अपने कर्मों का फल चखने के बाद, ब्रह्ममय वाणी से संपन्न होकर, वह पृथ्वी पर लौट आया, और उसकी वाणी भी मंद है। और उसकी कही बातों में वजन होगा। यदि वह एक साधारण व्यक्ति है, तो वह बहुत समृद्ध होगा। लेकिन यदि यह व्यक्ति इस संसार को छोड़ दे, तो लोग उसके शब्दों को दिल से मानेंगे और उसकी हर बात को महत्व देंगे।

भिक्षुओं, तथागत ने अपने पिछले जन्म में चाहे जो भी किया हो...व्यर्थ की बातों को त्यागकर, सही समय पर, सही और सटीक बात, धम्म और अनुशासन, और लाभ से संबंधित बातें ही बोलीं...पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष का यह लक्षण प्राप्त किया: शेर जैसे जबड़े।

"इस विशेषता से संपन्न होकर...शासक के रूप में उन्हें कोई भी मानव शत्रु या विरोधी पराजित नहीं कर सकता। बुद्ध के रूप में उन्हें भीतर या बाहर से किसी भी शत्रु या शत्रुतापूर्ण वस्तु से, कामवासना, घृणा, भ्रम से, किसी तपस्वी या ब्राह्मण से, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में किसी भी वस्तु से पराजित नहीं किया जा सकता।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था:

"व्यर्थ की बातें या मूर्खता नहीं, उनका ध्यान भटकता था। हानिकारक बातों को उन्होंने त्याग दिया और केवल सभी मनुष्यों की भलाई की बात की। इसलिए मृत्यु के समय वे स्वर्ग गए, अपने अच्छे कर्मों का फल चखने के लिए। पृथ्वी पर लौटकर, उनका जबड़ा उस व्यक्ति के समान था जो दो पैरों वाले सभी प्राणियों का स्वामी है। वे एक अजेय राजा होंगे, मनुष्यों के स्वामी, सर्वशक्तिमान, त्रिविध स्वर्ग

के स्वामी के समान, देवताओं में सबसे श्रेष्ठ। गंधर्व, सक्क, असुर उन्हें गिराने के व्यर्थ प्रयास करेंगे। वे संसार के सभी कोनों में एक साधारण मनुष्य के रूप में विराजमान रहेंगे।"

भिक्षुओं, तथागत ने अपने पिछले जन्म में चाहे जो भी जीवन जिया हो... उन्होंने गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका का मार्ग अपनाया, और छल-कपट, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, कपट और बेईमानी, चोट पहुँचाने, हत्या करने, कैद करने, लूटपाट और बलपूर्वक माल छीनने से परहेज किया। पृथ्वी पर लौटने पर उन्होंने महान पुरुष के ये दो लक्षण प्राप्त किए: समकोण दांत और चमकीले नुकीले दांत।

"इन लक्षणों से युक्त होकर, यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे तो वह चक्र चलाने वाला सम्राट होगा... उसके अनुयायी पवित्र होंगे... बुद्ध के समान, उसके अनुयायी... भिक्षु, भिक्षुणियां... पवित्र होंगे।" भगवान ने यही कहा।

इस बारे में कहा गया था।

उन्होंने कुटिल जीवन का त्याग कर शुद्ध और धर्मपरायण मार्ग अपनाया। उन्होंने हानिकारक चीजों को त्याग दिया और केवल जन कल्याण के लिए कार्य किया। स्वर्ग उन्हें उनके कर्मों का मीठा प्रतिफल देता है, जो बुद्धिमान और कुशल लोगों की प्रशंसा के पात्र हैं। वे त्रिस्वरूप स्वर्ग के स्वामी की तरह सभी सुखों और आनंदों में भागीदार होते हैं। सद्गुणों के फल के अवशेष के रूप में मनुष्य रूप में अवतरित होकर वे समरूप दांत, पवित्रता और चमक प्राप्त करते हैं। एकत्रित भविष्यवक्ताओं ने इस प्रकार घोषणा की कि वे मानव जाति में सबसे बुद्धिमान होंगे और उनके अनुयायी शुद्ध होंगे, जिनके समरूप दांत पक्षी के पंखों की तरह चमकेंगे। राजा के रूप में उनके शुद्ध अनुयायी उनके, अपने स्वामी के आदेश का पालन करेंगे। बलपूर्वक उत्पीड़ित न होकर, वे जन कल्याण और आनंद के लिए प्रयास करेंगे। लेकिन यदि वे एक घुमक्कड़ के रूप में निवास करते हैं, बुराई से मुक्त, सभी वासनाओं से मुक्त, पर्दा हटाकर; पीड़ा और थकान दूर हो जाने पर; वे इस संसार और परलोक को देखेंगे, और वहाँ साधारण और त्यागी लोगों को देखेंगे जो उनके द्वारा सिखाए गए अनुसार उन अशुद्ध, बुरी चीजों को त्यागने के लिए एकत्रित होते हैं। इस प्रकार उनके अनुयायी शुद्ध होते हैं। वह उनके हृदयों से बुराई और भ्रष्ट प्रवृत्तियों को दूर करता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.8 सिगालोवाड़ा सुत्त (डीएन31)

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के पास स्थित बांस के जंगल, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे।

उस समय, गृहस्थ परिवार के पुत्र युवा सिगाला ने सुबह जल्दी उठकर, भीगे हुए वस्त्रों और भीगे बालों के साथ राजगृह से प्रस्थान किया और पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नादिर और ज़ेनिथ - विभिन्न दिशाओं में हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

तब परम पूज्य ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने युवा सिगाला को इस प्रकार पूजा करते हुए देखा और उससे इस प्रकार कहा:

"हे गृहस्थ, तुम सुबह सवेरे उठकर, भीगे वस्त्रों और भीगे बालों के साथ राजगृह से प्रस्थान करके, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, निम्नतम और उच्चतम दिशाओं की हाथ जोड़कर उपासना क्यों करते हो?"

"हे भगवान, मेरे पिता ने मरते समय मुझसे कहा: हे पुत्र, तुम इन छह दिशाओं की उपासना करना। और हे भगवान, मैं अपने पिता के वचन का आदर, श्रद्धा और सम्मान करते हुए सुबह सवेरे उठकर, भीगे वस्त्रों और भीगे बालों के साथ राजगृह छोड़कर, हाथ जोड़कर इन छह दिशाओं की उपासना करता हूँ।"

"हे गृहस्थ, ऐसा नहीं है कि छह दिशाओं की पूजा कुलीन वर्ग के अनुशासन के अनुसार की जानी चाहिए।"

"हे भगवान, श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में छह दिशाओं की पूजा कैसे की जानी चाहिए? हे भगवान, यदि आप मुझे यह सिद्धांत सिखाएँ कि श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में छह दिशाओं की पूजा कैसे की जानी चाहिए, तो यह अच्छा होगा।"

"अच्छा, हे युवा गृहस्थ, सुनो और इसे अच्छी तरह याद रखो; मैं बोलूंगा।" — "बहुत अच्छा, भगवान," युवा सिगाला ने उत्तर दिया।

और परमेश्वर ने इस प्रकार कहा:

"क्योंकि, हे गृहस्थ, जैसे कि महान शिष्य:
(1) उसने आचरण में चारों दोषों का निवारण कर लिया है,
(2) क्योंकि वह चारों तरीकों से कोई बुरा कर्म नहीं करता है,
(3) क्योंकि वह धन को नष्ट करने के छह मार्गों का अनुसरण नहीं करता है।
इस प्रकार, वह इन चौदह बुराइयों से बचकर छहों दिशाओं को पार कर लेता है और दोनों लोकों में विजय के मार्ग पर अग्रसर होता है: उसे इस लोक और परलोक दोनों में कृपा प्राप्त होती है। मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह एक सुखमय स्वर्गलोक में जन्म लेता है।

(1) "उसने आचरण में किन चार दोषों का निवारण किया है? गृहस्थ, जीवन का विनाश एक दोष है, और इसी प्रकार चोरी, यौन दुराचार और झूठ बोलना भी दोष हैं। ये चार दोष हैं जिनका उसने निवारण किया है।"

इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने कहा। और जब गुरु ने इस प्रकार कहा, तो उन्होंने फिर कहा:

हत्या, चोरी, झूठ बोलना और व्यभिचार,
इन चार बुराइयों की बुद्धिमान लोग कभी प्रशंसा नहीं करते।
(2) "किन चार तरीकों से मनुष्य कोई बुरा कर्म नहीं करता? इच्छा से प्रेरित होकर मनुष्य बुराई करता है। क्रोध से प्रेरित होकर मनुष्य बुराई करता है। अज्ञान से प्रेरित होकर मनुष्य बुराई करता है। भय से प्रेरित होकर मनुष्य बुराई करता है।"

लेकिन चूंकि श्रेष्ठ शिष्य इच्छा, क्रोध, अज्ञान और भय से प्रेरित नहीं होता, इसलिए वह कोई बुराई नहीं करता।

इस प्रकार परम पूज्य ने कहा। और जब गुरु ने इस प्रकार कहा, तो उन्होंने फिर कहा: साहसी

जो कोई इच्छा, घृणा, भय
या अज्ञान के कारण धर्म का उल्लंघन करता है, उसकी सारी महिमा घटते चंद्रमा की तरह
क्षीण हो जाती है । जो कोई इच्छा, घृणा, भय या अज्ञान के कारण धर्म का उल्लंघन नहीं करता, उसकी सारी महिमा बढ़ते चंद्रमा की तरह निरंतर बढ़ती रहती है ।

(3) "धन को नष्ट करने के वे छह तरीके कौन से हैं जिनका वह अनुसरण नहीं करता है?"
(क) मादक पदार्थों का सेवन जिससे मोह और लापरवाही उत्पन्न होती है;
(ख) अनुचित समय पर सड़कों पर घूमना;
(ग) नाट्य प्रदर्शनों में बार-बार जाना;
(घ) जुए में लिप्त होना जिससे लापरवाही उत्पन्न होती है;
(ङ) बुरे साथियों की संगति;
(च) आलस्य की आदत।
(3क) "हे गृहस्थ, मादक पदार्थों के सेवन से ये छह बुरे परिणाम होते हैं, जो मोह और लापरवाही का कारण बनते हैं:
(i) धन की हानि,
(ii) झगड़ों में वृद्धि,
(iii) रोग के प्रति संवेदनशीलता,
(iv) बदनामी कमाना,
(v) शरीर का बेशर्म प्रदर्शन,

(vi) बुद्धि का कमजोर होना।
(3ख) "हे गृहस्थ, सुबह-सुबह सड़कों पर घूमने के ये छह बुरे परिणाम होते हैं:
(i) वह स्वयं असुरक्षित और निरसंरक्षित है,
(ii) उसकी पत्नी और बच्चे असुरक्षित और निरसंरक्षित हैं,
(iii) उसकी संपत्ति असुरक्षित और निरसंरक्षित है,
(iv) उस पर बुरे कर्मों का संदेह है,
(v) वह झूठी अफवाहों का शिकार है,
(vi) उसे कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है।
(3c) "हे गृहस्थ, नाट्यकला में बार-बार जाने के ये छह बुरे परिणाम होते हैं। वह हमेशा सोचता रहता है:
(i) नृत्य कहाँ है?
(ii) गायन कहाँ है?
(iii) संगीत कहाँ है?
(iv) पाठ कहाँ है?
(v) झांझ कहाँ बजाई जाती है?
(vi) मिट्टी के बर्तन कहाँ बजाए जाते हैं?
(3) "हे गृहस्थ, जुए में लिप्त होने के ये छह बुरे परिणाम हैं:
(i) विजेता घृणा का पात्र बनता है,
(ii) हारने वाला खोई हुई संपत्ति पर शोक करता है,
(iii) धन की हानि होती है,
(iv) अदालत में उसके वचन पर भरोसा नहीं किया जाता,
(v) उसके मित्र और साथी उसे तुच्छ समझते हैं,
(vi) उससे विवाह का प्रस्ताव नहीं रखा जाता; क्योंकि लोग कहते हैं कि वह जुआरी है और पत्नी की देखभाल करने के योग्य नहीं है।
(3e) "हे गृहस्थ, बुरे साथियों के साथ संगति करने के ये छह बुरे परिणाम होते हैं, अर्थात्: कोई जुआरी, कोई व्यभिचारी, कोई शराबी, कोई ठग, कोई धोखेबाज, कोई उपद्रवी उसका मित्र और साथी होता है।
(3f) "हे गृहस्थ, आलस्य में लिप्त रहने के ये छह बुरे परिणाम होते हैं:
वह कोई काम नहीं करता और कहता है:
(i) कि बहुत ठंड है,
(ii) कि बहुत गर्मी है,
(iii) कि शाम को बहुत देर हो चुकी है,
(iv) कि सुबह बहुत जल्दी है,
(v) कि उसे बहुत भूख लगी है,
(vi) कि उसका पेट बहुत भरा हुआ है।
"इस तरह से जीने से वह कई कर्तव्यों को पूरा नहीं कर पाता, उसे नई दौलत नहीं मिलती और जो दौलत उसने अर्जित की है वह धीरे-धीरे खत्म हो जाती है।"
इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने कहा। और जब गुरु ने इस प्रकार कहा, तो उन्होंने फिर कहा:
"एक व्यक्ति बोतल का दोस्त होता है; एक व्यक्ति 'दोस्त, दोस्त' केवल सामने से ही कहता है; एक व्यक्ति तभी दोस्त और सहयोगी बनता है जब यह फायदेमंद हो।"
"सूर्योदय तक सोना, व्यभिचार, क्रोध, द्वेष, बुरे साथी, लोभ—ये छह कारण मनुष्य को बर्बाद कर देते हैं।"
"जिस व्यक्ति के साथी और मित्र दुष्ट होते हैं, वह दुष्टतापूर्ण मार्गों की ओर प्रवृत्त हो जाता है, वह दोनों लोकों में - इस लोक में और अगले लोक में - विनाश की ओर अग्रसर होता है।"
"जुआ, स्त्रियाँ, शराब, नृत्य, गायन, दिन में सोना, अनुचित समय पर टहलना, बुरे साथी, लालच—ये नौ कारण मनुष्य को बर्बाद कर देते हैं।"
जो व्यक्ति जुए से खेलता है और मादक पदार्थों का सेवन करता है, उन स्त्रियों के पास जाता है जो दूसरों को अपने जीवन के समान प्रिय होती हैं, नीच लोगों की संगति करता है और बड़ों की संगति नहीं करता — वह घटते हुए चंद्रमा की तरह ही पतन की ओर जाता है।
जो व्यक्ति शराबी, गरीब, निर्धन है, शराब पीते हुए भी प्यासा रहता है, शराबखानों में बार-बार जाता है, पानी में पत्थर की तरह कर्ज में डूब जाता है, और शीघ्र ही अपने परिवार को बदनाम करता है।
जो व्यक्ति आदत से दिन में सोता है, देर रात तक जागता है, हमेशा नशे में रहता है और व्यभिचारी होता है, वह गृहस्थ जीवन जीने के योग्य नहीं है।

"जो लोग कहते हैं कि बहुत गर्मी है, बहुत ठंड है, बहुत देर हो चुकी है, और काम अधूरे छोड़ देते हैं, ऐसे लोगों के हाथ से अच्छे काम करने के अवसर निकल जाते हैं।"
लेकिन जो व्यक्ति ठंड या गर्मी को घास के तिनके से अधिक महत्व नहीं देता और अपने कर्तव्यों का पूरी निष्ठा से निर्भीकता से निर्वाह करता है, वह सुख से वंचित नहीं होता।
"हे गृहस्थ, इन चारों को मित्रों के वेश में शत्रु समझा जाना चाहिए।"
(1) जो मित्र की संपत्ति हड़प लेता है,
(2) जो दिखावटी सेवा करता है,
(3) जो चापलूसी करता है,
(4) जो विनाश लाता है।
(1) "हे गृहस्थ, चार तरीकों से, जो व्यक्ति संपत्ति हड़पता है उसे मित्र के वेश में शत्रु समझा जाना चाहिए:
(i) वह अपने मित्र की संपत्ति हड़प लेता है,
(ii) वह थोड़ा देता है और बहुत कुछ मांगता है,
(iii) वह भयवश अपना कर्तव्य निभाता है,
(iv) वह अपने लाभ के लिए संगति करता है।
(2) "हे गृहस्थ, चार तरीकों से, दिखावटी समर्थन करने वाले को मित्र के वेश में शत्रु समझा जाना चाहिए:
(i) वह अतीत के बारे में मैत्रीपूर्ण बातें करता है,
(ii) वह भविष्य के बारे में मैत्रीपूर्ण बातें करता है,
(iii) वह खोखले शब्दों से किसी का पक्ष जीतने की कोशिश करता है,
(iv) जब सेवा का अवसर आता है, तो वह अपनी असमर्थता व्यक्त करता है।
(3) "हे गृहस्थ, चापलूसी करने वाले को चार तरीकों से मित्र के वेश में शत्रु समझा जाना चाहिए:
(i) वह अपने मित्र के बुरे कर्मों का समर्थन करता है,
(ii) वह अपने मित्र के अच्छे कर्मों का विरोध करता है,
(iii) वह उसकी उपस्थिति में उसकी प्रशंसा करता है,
(iv) वह उसकी अनुपस्थिति में उसकी बुराई करता है।
(4) "हे गृहस्थ, विनाश लाने वाले को मित्र के वेश में शत्रु समझा जाना चाहिए:
(i) वह ऐसे मादक पदार्थों के सेवन में साथ देता है जो मोह और लापरवाही का कारण बनते हैं,
(ii) वह अनुचित समय पर सड़कों पर घूमने में साथ देता है,
(iii) वह नाट्य प्रदर्शनों में बार-बार जाने में साथ देता है,
(iv) वह जुए में लिप्त होने में साथ देता है जो लापरवाही का कारण बनता है।"
इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने कहा। और जब गुरु ने इस प्रकार कहा, तो उन्होंने फिर कहा:
जो मित्र स्वार्थपरक होता है,
जो मित्र दिखावटी समर्थन करता है,
जो मित्र चापलूसी करता है,
जो मित्र विनाश लाता है,
इन चारों को बुद्धिमान शत्रु मानते हैं और
इनसे दूर रहकर ही बच निकलते हैं, क्योंकि ये खतरे के रास्ते हैं।
"इन चारों युवा गृहस्थों को स्नेही मित्रों के रूप में समझा जाना चाहिए:
(1) जो सहायक हो,
(2) जो सुख-दुख में एक समान हो,
(3) जो अच्छी सलाह दे,
(4) जो सहानुभूति दिखाए।
(1) "हे गृहस्थ, एक सहायक को चार तरीकों से स्नेही मित्र के रूप में समझा जाना चाहिए:
(i) वह लापरवाहों की रक्षा करता है,
(ii) वह लापरवाहों के धन की रक्षा करता है,
(iii) जब आप खतरे में होते हैं तो वह शरणस्थल बन जाता है,
(iv) जब प्रतिबद्धताएं होती हैं तो वह आपको आवश्यकता से दुगुनी आपूर्ति प्रदान करता है।
(2) "हे गृहस्थ, सुख-दुख में एक समान रहने वाले व्यक्ति को चार प्रकार से स्नेही मित्र समझा जाना चाहिए:
(i) वह अपने रहस्य प्रकट करता है,

(ii) वह अपने रहस्य छुपाता है,
(iii) विपत्ति में वह किसी का साथ नहीं छोड़ता,
(iv) वह किसी के लिए अपना जीवन भी बलिदान कर देता है।
(3) "हे गृहस्थ, अच्छे परामर्श देने वाले व्यक्ति को चार प्रकार से स्नेही मित्र समझा जाना चाहिए:
(i) वह बुराई करने से रोकता है,
(ii) वह अच्छाई करने के लिए प्रोत्साहित करता है,
(iii) वह स्वयं को अज्ञात बातों की जानकारी देता है,
(iv) वह स्वर्ग का मार्ग दिखाता है।
(4) "हे गृहस्थ, सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति को चार तरीकों से स्नेही मित्र समझा जाना चाहिए:
(i) वह किसी के दुर्भाग्य में प्रसन्न नहीं होता,
(ii) वह किसी की समृद्धि में प्रसन्न होता है,
(iii) वह दूसरों को अपने बारे में बुरा बोलने से रोकता है,
(iv) वह उन लोगों की प्रशंसा करता है जो अपने बारे में अच्छा बोलते हैं।
इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने कहा। और जब गुरु ने इस प्रकार कहा, तो उन्होंने फिर कहा:
वह मित्र जो सहायक होता है,
सुख-दुख में साथ देने वाला मित्र,
अच्छी सलाह देने वाला मित्र,
सहानुभूति रखने वाला मित्र -
इन चारों को बुद्धिमान लोग मित्र के रूप में
उसी प्रकार सम्मानपूर्वक देखते और संजोते हैं
जैसे एक माँ अपने बच्चे को।
बुद्धिमान और गुणी व्यक्ति धधकती आग की तरह चमकते हैं। जो व्यक्ति मधुमक्खी की तरह शहद इकट्ठा करते हुए हानिरहित तरीकों से धन अर्जित करता है , उसके लिए धन चींटियों के टीले की तरह तेजी से बढ़ता है।

इस प्रकार अर्जित धन से,
गृहस्थ जीवन के योग्य एक साधारण व्यक्ति,
अपने धन को चार भागों में विभाजित करके
मित्रता प्राप्त कर सकता है।
एक हिस्सा वह अपनी जरूरतों के लिए इस्तेमाल करता है,
दो हिस्से अपने व्यवसाय पर खर्च करता है,
और चौथा हिस्सा जरूरत के समय के लिए बचाकर रखता है।
"और हे गृहस्थ, एक श्रेष्ठ शिष्य छह दिशाओं को कैसे ढकता है?"
निम्नलिखित को छह दिशाओं के रूप में देखा जाना चाहिए। माता-पिता को पूर्व, शिक्षकों को दक्षिण, पत्नी और बच्चों को पश्चिम, मित्रों और सहयोगियों को उत्तर, नौकरों और कर्मचारियों को निम्नतम, और तपस्वियों और ब्राह्मणों को उच्चतम माना जाना चाहिए।8
"हे गृहस्थ, एक बालक को अपने माता-पिता की सेवा पाँच तरीकों से करनी चाहिए, जैसे पूर्व में होता है:
(i) मेरा भरण-पोषण करने के कारण मैं उनका भरण-पोषण करूँगा,
(ii) मैं उनके कर्तव्यों का पालन करूँगा,
(iii) मैं पारिवारिक परंपरा को कायम रखूँगा,
(iv) मैं अपनी विरासत के योग्य बनूँगा,
(v) इसके अतिरिक्त मैं अपने दिवंगत रिश्तेदारों के सम्मान में दान दूँगा।9
"हे गृहस्थ, पाँच तरीकों से, अपने बच्चों द्वारा पूर्व की ओर से माता-पिता की सेवा किए जाने पर, वे अपनी करुणा दिखाते हैं:
(i) वे उन्हें बुराई से रोकते हैं,
(ii) वे उन्हें अच्छा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं,
(iii) वे उन्हें किसी पेशे के लिए प्रशिक्षित करते हैं,
(iv) वे एक उपयुक्त विवाह की व्यवस्था करते हैं,
(v) उचित समय पर वे उन्हें उनकी विरासत सौंप देते हैं।

"इन पाँच तरीकों से बच्चे अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, जैसे पूर्व दिशा में और माता-पिता अपने बच्चों के प्रति करुणा दिखाते हैं। इस प्रकार पूर्व दिशा उनके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित रहती है।"

"हे युवा गृहस्थ, एक शिष्य को दक्षिण में शिक्षक की सेवा पाँच तरीकों से करनी चाहिए:
(i) अभिवादन में सीट से उठकर,
(ii) उसकी सेवा करके,
(iii) सीखने की उत्सुकता से,
(iv) व्यक्तिगत सेवा से,
(v) निर्देश प्राप्त करते समय आदरपूर्वक ध्यान देकर।

"हे युवा गृहस्थ, दक्षिण में अपने विद्यार्थियों द्वारा इस प्रकार सेवा प्राप्त करने वाले शिक्षक पाँच तरीकों से अपनी करुणा दिखाते हैं:
(i) वे उन्हें सर्वोत्तम अनुशासन में प्रशिक्षित करते हैं,
(ii) वे देखते हैं कि वे अपने पाठों को अच्छी तरह से समझते हैं,
(iii) वे उन्हें कला और विज्ञान में निर्देश देते हैं,
(iv) वे उन्हें अपने दोस्तों और सहयोगियों से परिचित कराते हैं,
(v) वे हर तरफ से उनकी सुरक्षा का प्रबंध करते हैं।

"इस प्रकार, दक्षिण में अपने विद्यार्थियों द्वारा सेवा प्राप्त करने वाले शिक्षक, इन पांच तरीकों से उनके प्रति अपनी करुणा प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार दक्षिण उनके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित बनाया जाता है।"

"हे गृहस्थ, पश्चिम में पति द्वारा पत्नी की सेवा पाँच तरीकों से की जानी चाहिए:
(i) उसके प्रति विनम्र रहकर,
(ii) उसका तिरस्कार न करके,
(iii) उसके प्रति वफादार रहकर,
(iv) उसे अधिकार सौंपकर,
(v) उसे आभूषण प्रदान करके।

"इस प्रकार, पति द्वारा पश्चिम की तरह सेवा प्राप्त करने वाली पत्नी पांच तरीकों से अपने पति के प्रति अपनी करुणा प्रदर्शित करती है:
(i) वह अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करती है,
(ii) वह रिश्तेदारों और परिचारकों के प्रति आतिथ्य सत्कारपूर्ण है,
(iii) वह वफादार है,
(iv) वह उसके द्वारा लाई गई चीजों की रक्षा करती है,
(v) वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में कुशल और मेहनती है।

"इन पांच तरीकों से पत्नी अपने पति के प्रति करुणा प्रकट करती है, जो पश्चिम के रूप में उसकी सेवा करता है। इस प्रकार पश्चिम उसके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित रहता है।"

"हे गृहस्थ, पाँच तरीकों से एक कुलवासी को अपने मित्रों और सहयोगियों की सेवा करनी चाहिए, जैसे उत्तर में:
(i) उदारता से,
(ii) शिष्टतापूर्ण वाणी से,
(iii) सहायक बनकर,
(iv) निष्पक्ष रहकर,
(v) ईमानदारी से।

"उत्तर में एक कबीले के सदस्य द्वारा सेवा किए गए मित्र और सहयोगी पांच तरीकों से उसके प्रति करुणा दिखाते हैं:
(i) वे उसकी रक्षा करते हैं जब वह लापरवाह होता है,
(ii) वे उसकी संपत्ति की रक्षा करते हैं जब वह लापरवाह होता है,
(iii) वे उसके खतरे में होने पर शरणस्थली बन जाते हैं,
(iv) वे उसकी मुसीबतों में उसका साथ नहीं छोड़ते,
(v) वे उसके परिवार के प्रति विचार दिखाते हैं।

"एक कबीले के सदस्य द्वारा उत्तर की सेवा किए जाने पर, मित्र और सहयोगी इन पांच तरीकों से उसके प्रति अपनी करुणा प्रकट करते हैं। इस प्रकार उत्तर उसके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित हो जाता है।"

"एक स्वामी को अपने सेवकों और कर्मचारियों के साथ निम्नतम स्तर की तरह पाँच तरीकों से व्यवहार करना चाहिए:
(i) उनकी क्षमता के अनुसार उन्हें काम सौंपकर,
(ii) उन्हें भोजन और मजदूरी प्रदान करके,
(iii) बीमारी में उनकी देखभाल करके,

(iv) उनके साथ किसी भी स्वादिष्ट भोजन को साझा करके,
(v) उन्हें समय-समय पर छुट्टी देकर।
"इस प्रकार स्वामी द्वारा निम्नतम स्तर पर सेवा किए जाने वाले सेवक और कर्मचारी पाँच तरीकों से उसके प्रति अपनी करुणा प्रकट करते हैं:
(i) वे उसके सामने उठते हैं,
(ii) वे उसके बाद सोते हैं,
(iii) वे केवल वही लेते हैं जो दिया जाता है,
(iv) वे अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करते हैं,
(v) वे उसके अच्छे नाम और प्रसिद्धि को बनाए रखते हैं।
"इस प्रकार सेवा करने वाले सेवक और कर्मचारी नादिर के प्रति अपनी करुणा इन पाँच तरीकों से प्रकट करते हैं। इस प्रकार नादिर उनके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित हो जाता है।"
"हे गृहस्थ, पाँच प्रकार से गृहस्थ को तपस्वियों और ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिए, जो सर्वोच्च स्थान पर हैं:
(i) प्रेमपूर्ण कार्यों द्वारा,
(ii) प्रेमपूर्ण शब्दों द्वारा,
(iii) प्रेमपूर्ण विचारों द्वारा,
(iv) उनके लिए अपने घर के दरवाजे खुले रखकर,
(v) उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके।
"गृहस्थ द्वारा सर्वोच्च मानकर सेवा किए जाने वाले तपस्वियों और ब्राह्मणों ने छह तरीकों से उसके प्रति अपनी करुणा प्रकट की:
(i) वे उसे बुराई से रोकते हैं,
(ii) वे उसे अच्छा करने के लिए प्रेरित करते हैं,
(iii) वे उससे दयालु हृदय से प्रेम करते हैं,
(iv) वे उसे वह सुनाते हैं जो उसने नहीं सुना है,
(v) वे उसे जो पहले से सुना है उसे स्पष्ट करते हैं,
(vi) वे उसे स्वर्गिक अवस्था का मार्ग दिखाते हैं।
"इन छह तरीकों से तपस्वी और ब्राह्मण गृहस्थ के प्रति करुणा प्रकट करते हैं, जो उन्हें सर्वोच्च मानकर उनकी सेवा करता है। इस प्रकार सर्वोच्च उसके द्वारा सुरक्षित और संरक्षित रहता है।" भगवान ने ऐसा कहा। और जब गुरु ने ऐसा कहा, तो उन्होंने फिर कहा:
माता-पिता पूर्व दिशा में हैं,
शिक्षक दक्षिण दिशा में हैं,
पत्नी और बच्चे पश्चिम दिशा में हैं,
मित्र और सहयोगी उत्तर दिशा में हैं।
सेवक और कर्मचारी निम्नतम स्तर पर हैं,
तपस्वी और ब्राह्मण उच्चतम स्तर पर हैं;
जो गृहस्थ जीवन जीने के योग्य है,
उसे इन छह दिशाओं को प्रणाम करना चाहिए।
जो बुद्धिमान और गुणी हो,
सौम्य और तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो,
विनम्र और आज्ञाकारी हो,
ऐसा व्यक्ति सम्मान का पात्र होता है।
जो ऊर्जावान हो और आलसी न हो,
विपत्ति में भी अविचलित रहे,
व्यवहार में निर्दोष और बुद्धिमान हो,
ऐसा व्यक्ति सम्मान का पात्र हो सकता है।
जो आतिथ्य सत्कारपूर्ण और मित्रवत हो,
उदार और निस्वार्थ हो,
मार्गदर्शक, प्रशिक्षक और नेता हो,
ऐसा व्यक्ति सम्मान का पात्र हो सकता है।
उदारता, मधुर वाणी,
दूसरों की मदद करना,

सभी के प्रति निष्पक्षता,
जैसा कि परिस्थिति की मांग हो।
ये चार विजयी तरीके ही दुनिया को चलाते हैं,
जैसे चलती गाड़ी में मुख्य पेंच।
अगर ये दुनिया में न हों, तो न माता-पिता को अपने बच्चों से आदर और सम्मान
मिलेगा ।

क्योंकि बुद्धिमान लोग इन चार विजयी मार्गों का
सर्वथा मूल्यांकन करते हैं,
इसलिए वे उच्च पद प्राप्त करते हैं
और उचित प्रशंसा अर्जित करते हैं।
जब परमेश्वर ने ऐसा कहा, तब गृहस्थ सिगाला नामक युवक ने इस प्रकार कहा:
हे भगवान, यह उत्तम है! हे भगवान, यह ऐसा है मानो कोई मनुष्य उलटी हुई वस्तु को सीधा खड़ा कर दे, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि देखने वाले देख सकें। ठीक इसी प्रकार, परमेश्वर ने इस सिद्धांत को अनेक तरीकों से समझाया है।
"हे भगवान, मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता हूँ। ईश्वर मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें; उस व्यक्ति के रूप में जिसने आज से जीवन के अंत तक मेरी शरण ली है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.9 अतनतिया सुत्त (DN32)

अंतर्वस्तु

1अतनातिया सुत्त
1.1अतानातिया सुत्तः नया संस्करण
1.2अतानातिया सुत्तः पुराना संस्करण
1.3अतानातिया सुत्तः मूल पाली भाषा में,tipitaka.org से
1.4अतानातिया सुत्तः जप संस्करण से परिता पाली के बर्मी संस्करण

अतनातिया सुत्त

परिचय :

थेरवाद बौद्ध धर्म में तंत्र, जादू-टोना आदि का उल्लेख सामान्यतः नहीं किया जाता है। यद्यपि, दुष्ट आत्माओं से सुरक्षा के लिए बुद्ध ने इस सूत्र को स्मरण करने और समय-समय पर पाठ करने का विधान अवश्य किया है। संक्षेप में, इस सूत्र में चारों दिशाओं (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर) के चार राजा अपने अदृश्य लोकों से बुद्ध के समक्ष प्रकट होते हैं। वे सर्वप्रथम बुद्ध को प्रणाम करते हैं, फिर उनका परिचय और वर्णन एक-एक करके किया जाता है। इसके बाद दुष्ट आत्माओं को चेतावनी दी जाती है कि यदि वे बुद्ध के अनुयायियों के लिए कष्ट उत्पन्न करें, तो बुद्ध को समस्त आध्यात्मिक लोकों में सर्वोच्च माना जाता है। साथ ही, यदि इनमें से कोई भी आत्मा असहमत हो, तो इस सूत्र में प्रमुख सेनापतियों के नाम दिए गए हैं, ताकि उन्हें स्थिति को संभालने के लिए बुलाया जा सके।

इस सूत्र में चार प्रकार के आध्यात्मिक प्राणियों का उल्लेख है, अर्थात् यक्ष, गंधर्व, कुम्भंद और नाग, और उनके शासक राजाओं का। इन्हें सक्का (इंद्र) के स्वर्ग के रक्षक माना जाता है, जिसे बौद्ध ग्रंथों में अक्सर 33 का स्वर्ग कहा जाता है, वास्तव में 33 करोड़ देवता, जो आकाश में बहुत ऊपर विद्यमान हैं, अन्य आयामों के कारण अदृश्य हैं, संभवतः अज्ञात अंधकार पदार्थ में (बौद्ध धर्म में कई प्रकार के स्वर्ग माने जाते हैं)। अपने पिछले जन्म में, बहुत समय पहले, जब बुद्ध इस स्वर्ग के राजा थे, असुरों (राक्षसों) ने इस पर आक्रमण किया और लगभग इस पर कब्जा कर लिया था, लेकिन सक्का (अब बुद्ध) के धर्मपरायणता से उन्हें पराजित किया गया। तब स्वर्ग के राजा सक्का (अब बुद्ध) ने उस समय इन चार राजाओं (और गरुड़ों) से स्वर्ग की पांच दिशाओं से रक्षा करने का अनुरोध किया ताकि भविष्य में असुरों के घुसपैठ पर नजर रखी जा सके। उन्होंने सहमति दी और यह ज्ञात है कि वे इस भौतिक ब्रह्मांड के जीवनकाल के दौरान, अर्थात् वर्तमान कल्प काल तक रक्षक बने रहेंगे। जब सक्का (बुद्ध) का जीवनकाल समाप्त हो गया और किसी अन्य सक्का ने पदभार संभाला, तब बुद्ध ने अनेक रूपों में पुनर्जन्म लिया और अनेक जन्मों के बाद भगवान बुद्ध बने। तब स्वर्ग के ये चार संरक्षक राजा पृथ्वी पर अवतरित हुए और भिक्षुओं की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। उन्होंने बुद्ध को यह अतनातिया सूत्र भिक्षुओं को उनकी सुरक्षा के लिए संप्रेषित करने को कहा। ____________ कुलावक-जातक से: 'विजय का महल', लगभग एक हजार मील (4.23 किमी) ऊँचा, जिसे विजय के समय प्रकट होने के कारण यह नाम दिया गया। तब, असुरों को पुनः आने से रोकने के लिए, सक्का (इंद्र) ने पाँच स्थानों पर पहरेदार नियुक्त किए, जिनके बारे में कहा गया है:-

दोनों शहर अभेद्य हैं!
पांच बार पहरा देते हुए, नागों, गरुलों को देखो,
कुम्भंड, जिन्न और चार महान राजा!

अतनातिया का पाठ कोई भी कर सकता है और बुरी आत्माओं से मुक्ति पाने के लिए इसका लाभ उठा सकता है। यहाँ दो संस्करण दिए गए हैं। पुराना संस्करण पुरानी अंग्रेज़ी में है। नया संस्करण आधुनिक अंग्रेज़ी में है, जिसमें सुधार किए गए हैं और पाली में मूल पाठ से तुलना भी की गई है। पाली संस्करण भी उपलब्ध है। अंत में, परोपकारी उपयोगकर्ता संपुना द्वारा दिया गया पाठ संस्करण अभ्यास और सुरक्षा के लिए अनुशंसित है।

अतानातिया सुत्तः नया संस्करण

275. मैंने ऐसा सुना है:
एक बार भगवान बुद्ध राजगिरि के पास गिज्जकूट पर्वत पर निवास कर रहे थे।
फिर चारों दिशाओं के चार महान राजाओं ने यक्षों की विशाल सेना, गंधर्वों की विशाल सेना, कुम्भंडों की विशाल सेना और नागों की विशाल सेना के साथ चारों दिशाओं पर पहरा बिठाया;
सेना तैनात करके, चारों ओर सैनिकों की घेराबंदी करके, रात ढलने पर भगवान बुद्ध के समक्ष आए, अपनी असाधारण चमक से पूरे गिज्जकूट पर्वत को प्रकाशित करते हुए, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। (सेवकों) यक्षों में से कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने मैत्रीपूर्ण और विनम्र तरीके से बातचीत करते हुए भगवान बुद्ध से अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने अपना नाम और वंश बताया और एक तरफ बैठ गए; कुछ मौन बैठे रहे।
276. तब एक ओर बैठे महान राजा वेस्स्वान (संस्कृत: वैश्रवण) ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्य भगवान (भन्ते), कुछ प्रख्यात यक्ष भगवान बुद्ध से अप्रसन्न हैं, और कुछ प्रख्यात यक्ष भगवान बुद्ध से प्रसन्न हैं। कुछ मध्यम श्रेणी के यक्ष भगवान बुद्ध से अप्रसन्न हैं, और कुछ उनसे प्रसन्न हैं। कुछ निम्न श्रेणी के यक्ष भगवान बुद्ध से अप्रसन्न हैं, और कुछ उनसे प्रसन्न हैं। हे भगवान (भन्ते), यक्ष आमतौर पर भगवान बुद्ध से अप्रसन्न रहते हैं। इसका कारण क्या है?"
"भगवान बुद्ध धम्म की शिक्षा देते हैं कि हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज करना चाहिए, जो नशा और लापरवाही का कारण बनते हैं। उनके लिए ऐसी शिक्षा अप्रिय और अरुचिकर है।"
"हे भंते, भगवान बुद्ध के शिष्य अवश्य ही हैं। वे वनों के एकांत और निर्जन वनक्षेत्रों में जाते हैं, जहाँ कोई ध्वनि नहीं होती, कोई शोर नहीं होता, जहाँ हवाएँ मानव संपर्क से रहित होती हैं, और जो मनुष्य के एकांत और शांत चिंतन के लिए उपयुक्त हैं। इन वनों में प्रख्यात यक्ष भी विचरण करते हैं, जिन्हें भगवान बुद्ध के वचनों में कोई विश्वास नहीं है।"
"भंते, भगवान बुद्ध अतानाता संरक्षण सीखें ताकि अप्रसन्न यक्ष प्रसन्न हो सकें, ताकि भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और महिलाएं निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण रहें।"
भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दी। तब महान राजा वेसवना ने, यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, अतनातीय मंत्र का पाठ किया:
277. 1. "दिव्य दृष्टि (ज्ञान की) और वैभव से परिपूर्ण विपस्सी बुद्ध को प्रणाम। सभी प्राणियों के प्रति करुणामय सिख बुद्ध को प्रणाम।"
2. सभी दोषों से मुक्त और तपस्वी ऊर्जा से परिपूर्ण वेस्सभु बुद्ध को प्रणाम। मार (मृत्यु के देवता) की (पांच गुना) सेना पर विजय प्राप्त करने वाले काकुसन्द बुद्ध को प्रणाम।
3. कोनागमना बुद्ध को प्रणाम, जिन्होंने सभी दोषों का त्याग कर पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया। कश्यप बुद्ध को प्रणाम, जो सभी दोषों से पूर्णतः मुक्त हैं।
4. "शाक्यों के पुत्र अंगिरासा (गौतम बुद्ध) को नमन, जो प्रकाश से परिपूर्ण हैं और जिन्होंने उस धम्म का प्रचार किया जो समस्त दुखों का निवारण करता है।"
5. संसार में वे लोग जिन्होंने (कामवासना की ज्वालाओं को) बुझा दिया है और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना) के माध्यम से चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखा है, वे कभी किसी की निंदा नहीं करते; वे शक्तिशाली पुरुष हैं जो भय से मुक्त हैं।
6. "गौतम बुद्ध, जो देवताओं और मनुष्यों के प्रिय हैं, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, शक्तिशाली और निर्भीक हैं, सभी उन्हें प्रणाम करते हैं (उन्हें प्रणाम हो)।"
278. 7-8. "जब अदिति की संतान, तेजस्वी सूर्य, अपने पूर्ण आकार में उदय होता है, तब रात का अंत होता है और दिन का आरंभ होता है। सूर्य जिस दिशा से उदय होता है (वह पूर्व दिशा है)। वहाँ गहरा और विशाल सागर विद्यमान है।"
9. "यह - पानी की फैली हुई चादर - वे इसे महासागर कहते हैं। जहाँ पूर्व दिशा है (मेरु पर्वत/कैलाश के पूर्व में) वे कहते हैं कि वह दिशा पूर्व है।"
10. "इस दिशा का संरक्षक धतरत्थ नामक एक महान राजा है, जिसके पास सेवकों का एक दल है, और वह गंधब्बाओं का संभगवान स्वामी है।"
11. "गंधाब्बाओं से घिरे हुए वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेते हैं। मैंने सुना है कि उनके (दथारत्ता के) कई पुत्र हैं, सभी का एक ही नाम है।"
12-13. "वे अस्सी, दस और एक हैं, उनका नाम इंदा है, और वे शक्तिशाली हैं। वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से ही उन्हें प्रणाम करते हैं: "आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको गौरव, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं।"
14-15. "आपकी सर्वज्ञता के कारण, आपने (मानव जाति को ज्ञान भरी दृष्टि से) देखा है, यहाँ तक कि गैर-मानव भी आपको आदर देते हैं। यह हमने अक्सर सुना है। इसलिए हम उनसे (गैर-मानवों से) अनुरोध करते हैं कि वे गौतम, विजेता (बुद्ध) को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं: 'हम गौतम, विजेता को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं।'"

279. 16-18. "जिस दिशा में प्रेत, चुगलखोर, हत्यारे, क्रूर डाकू और कपटी चोर जाते हैं, वह दिशा (मेरु पर्वत/कैलाश के दक्षिण की ओर) है, और इसे दक्षिण दिशा कहा जाता है। इस दिशा का संरक्षक वीरुल नामक एक महान राजा है, जिसके साथ सेवकों का एक दल है, और वह कुम्भंडों का संभगवान स्वामी है। कुम्भंडों की सेवा में वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेता है।"
19. "मैंने सुना है कि उसके (विरुल्हा के) बहुत से पुत्र हैं, सब एक ही नाम के हैं। वे अस्सी, दस और एक हैं, उनके नाम इन्दा हैं, और वे बहुत शक्तिशाली हैं।"
20. "वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से ही उन्हें प्रणाम करते हैं: 'आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको महिमा हो, जो मनुष्यों में सर्वोच्च हैं।'
21-22. "आपकी सर्वज्ञता के कारण, आपने (मानव जाति को ज्ञान भरी दृष्टि से) देखा है, यहाँ तक कि गैर-मानव भी आपको आदर देते हैं। यह हमने अक्सर सुना है। इसलिए हम उनसे (गैर-मानवों से) अनुरोध करते हैं कि वे गौतम, विजेता (बुद्ध) को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं: 'हम गौतम, विजेता को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्‌गुण से परिपूर्ण हैं।'"
280. 23-24. "जब अदिति की संतान, तेजस्वी सूर्य, अपने पूर्ण आकार में अस्त होता है, तब दिन समाप्त होता है और रात होती है। सूर्य जिस दिशा में अस्त होता है (वह पश्चिम दिशा है)। वहाँ गहरा और विशाल सागर विद्यमान है।"
25. "यह - पानी की फैली हुई चादर - वे इसे महासागर कहते हैं। जहाँ पश्चिम है (मेरु पर्वत/कैलाश के पश्चिम में) वे कहते हैं कि वह दिशा पश्चिम है।"
26. "इस दिशा के संरक्षक विरुपाक्खा नामक एक महान राजा हैं, जिनके पास सेवकों का एक दल है, और वे नागों के संभगवान स्वामी हैं।"
27. "नागों से घिरे हुए वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेते हैं। मैंने सुना है कि उनके (विरुपक्खा के) कई पुत्र हैं, सभी का एक ही नाम है।"
28-29. "वे अस्सी, दस और एक हैं, उनका नाम इंदा है, और वे शक्तिशाली हैं। वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से उन्हें प्रणाम करते हैं: 'आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको गौरव, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं।'"
30-31. "आपकी सर्वज्ञता के कारण, आपने (मानव जाति को ज्ञान भरी दृष्टि से) देखा है, यहाँ तक कि गैर-मानव भी आपको आदर देते हैं। यह हमने अक्सर सुना है। इसलिए हम उनसे (गैर-मानवों से) अनुरोध करते हैं कि वे गौतम, विजेता (बुद्ध) को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं: 'हम गौतम, विजेता को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्‌गुण से परिपूर्ण हैं।'"

281. 32. "जहाँ रमणीय उत्तरकुरु (उत्तरी महाद्वीप) स्थित है, जहाँ सुंदर मेरु पर्वत (कैलाश) विराजमान है, वहाँ निस्वार्थ और अनासक्त पुरुष जन्म लेते हैं।"
33. "वे न तो बीज बोते हैं और न ही हल का प्रयोग करते हैं। उनके आनंद के लिए स्वाभाविक रूप से उगा हुआ मक्का मौजूद है।"
34. "लाल पाउडर और छिलके से शुद्ध किया हुआ, साफ और सुगंधित चावल सोने के बर्तनों में उबाला जाता है; यही वे खाते हैं।"
35. "वे (यक्ष/गैर-मानव) गायों को एक सवारी के रूप में इस्तेमाल करते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। वे अन्य जानवरों को भी एक सवारी के रूप में इस्तेमाल करते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं।"
36. "वे महिलाओं को वाहन के रूप में इस्तेमाल करते हैं और उनमें बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं। वे पुरुषों को वाहन के रूप में इस्तेमाल करते हैं और उनमें बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं।
37. "वे लड़कियों को वाहन के रूप में इस्तेमाल करते हैं और उनमें बैठकर एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। वे लड़कों को वाहन के रूप में इस्तेमाल करते हैं और उनमें बैठकर एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं।
38. "इन वाहनों पर सवार होकर वे (राजा वेसवना के यक्ष) हर दिशा में यात्रा करते हैं।"
39. "यह राजा, जिसके पास सेवकों का एक दल है, हाथियों और घोड़ों का स्वामी है जिन पर वह सवारी करता है। उसके पास दिव्य रथ, महल और पालकी भी हैं। उसने स्वर्गीय लोकों में सुशोभित नगर बनवाए हैं।"
उनके नाम अतानाता, कुसिनता, परकुसिनता, नटसुरिया, परकुसिटानाता हैं। उत्तर में कपिवन्त नगर, दक्षिण में जनोघा, और नवनावती, अंबरा-अंबरावती तथा अलकमंडा नामक राजधानी नगर स्थित हैं। हे प्रसन्न (बुद्ध को संबोधित करते हुए), इस कुबेर (वेसवना का दूसरा नाम) का एक राज्य है जिसका नाम विष्ण है, इसलिए महान राजा कुबेर को वेसवना कहा जाता है। इस राजा के यक्ष हैं जो जांच करते हैं और उन्हें प्रकट करते हैं। वे ततोला, तत्तला, ततोताला, ओजसी, तेजसी, ततोजसी, सुरो, राजा (सुरा-राज), अरित्थो, नेमी (अरित्थ-नेमी) हैं। वहाँ (विष्ण राज्य में) धरणी झील है जहाँ वर्षा के बादल बरसते हैं। और वहाँ भगलावती नामक एक हॉल भी है जहाँ यक्ष एकत्रित होते हैं।
40. "वहाँ (हॉल के चारों ओर) सदाबहार फल देने वाले वृक्ष हैं। (इन वृक्षों पर) असंख्य पक्षी हैं। वहाँ मोर और बगुले की आवाज़ (कोंच/क्रोंच) और कोकीला (भारतीय कोयल) का मधुर गीत भी सुनाई देता है।"
41. "वहाँ (झील के पास) पक्षियों की पुकार सुनाई देती है, जो 'जीवित रहो! जीवित रहो!' (जीवमजीवका) कहते हैं। ओत्थावचित्तक ('हे अपने हृदय को ऊपर उठाओ!') पक्षी, कुक्कुट (जंगली मुर्गे), केकड़े और पोक्खरसातक पक्षी जंगलों में विचरण करते हैं।"

42. "वहाँ तोते, मैना और दंडमानवक पक्षियों की आवाज सुनाई देती है। और कुबेर का कमल-सर्दी हर मौसम में अपनी सुंदरता बिखेरता रहता है।"
43-44. "उस दिशा (मेरु पर्वत के उत्तर की ओर) को लोग उत्तर दिशा कहते हैं। इस दिशा का संरक्षक कुबेर नामक एक महान राजा है, जिसके साथ सेवकों का एक दल है, और वह यक्षों का संभगवान स्वामी है। यक्षों की सेवा में वह उनके गीतों और नृत्य का आनंद लेता है।"
45. "उसके (कुवेरा के) बहुत से पुत्र हैं, सब एक ही नाम के हैं, ऐसा मैंने सुना है। वे अस्सी और दस और एक हैं, उनके नाम इंदा हैं, और वे शक्तिशाली हैं।"
46. "वे भी, सूर्य के सगे संबंधियों, शक्तिशाली और निर्भीक बुद्ध को देखकर, दूर से ही उन्हें प्रणाम करते हैं: 'हे मानवजाति में अद्वितीय, आपको प्रणाम! हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, आपकी जय हो!'"
47-48. "आपने अपनी सर्वज्ञता से (मानवजाति) पर दृष्टि डाली है; यहाँ तक कि निर्जीव भी आपको आदर देते हैं, ऐसा हमने सुना है। इसलिए हम यक्षों से अनुरोध करते हैं कि वे गौतम, विजेता (बुद्ध) को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं, 'हम गौतम, विजेता को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्गुण से परिपूर्ण हैं।'"
"हे सौभाग्यशाली, यह अतानाता संरक्षण है जिसके द्वारा भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं सभी निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"
282. "यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी, गृहस्थ पुरुष या गृहस्थ स्त्री अतानाता की इस रक्षा को कंठस्थ कर ले और शब्द-वार दोहराने में निपुण हो जाए, और यदि कोई अमानवीय यक्ष पुरुष या यक्षिणी, यक्ष युवक या कन्या यक्ष, यक्ष मंत्री या कोई यक्ष या यक्ष परिचारक; गंधर्व पुरुष या कन्या गंधर्व, गंधर्व मंत्री या कोई गंधर्व या परिचारक; कुंभण्ड पुरुष या कन्या कुंभण्ड, कुंभण्ड मंत्री या कोई कुंभण्ड या परिचारक; नाग पुरुष या कन्या नाग, नाग मंत्री या कोई नाग या परिचारक; उसके साथ द्वेषपूर्ण इरादे से चले, खड़े हों, बैठें या लेटें, तो ऐसा अमानवीय, सुखी (भगवान बुद्ध), किसी भी नगर या कस्बे से आतिथ्य प्राप्त नहीं करेगा, उसे रहने के लिए स्थान नहीं मिलेगा, और वह अलकमण्ड राज्य में नहीं रह सकेगा। वह यक्षों की सभाओं में भाग लेने पर उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा और न ही उसका विवाह कराया जाएगा; उसे अपमानित किया जाएगा (उसके विकृत दांतों, आंखों या शरीर के किसी भी अंग पर टिप्पणी करके), और अमानव उसके सिर पर एक खाली कटोरा रखकर उसके सिर को सात टुकड़ों में फाड़ देंगे।
हे भगवान बुद्ध, कुछ ऐसे अमानव हैं जो क्रूर, हिंसक और प्रतिशोध लेने वाले हैं; वे न तो चारों महान राजाओं की आज्ञा मानते हैं, न उनके मंत्रियों की और न ही उनके सेवकों की। उन्हें चारों महान राजाओं के विद्रोही कहा जाता है। जैसे मगध राज्य में चोर न तो मगध के राजा की आज्ञा मानते हैं, न मंत्रियों की और न ही उनके सेवकों की, और इसलिए उन्हें मगध के राजा के विद्रोही कहा जाता है, वैसे ही कुछ ऐसे अमानव हैं जो क्रूर, हिंसक और प्रतिशोध लेने वाले हैं; वे न तो चारों महान राजाओं की आज्ञा मानते हैं, न उनके मंत्रियों की और न ही उनके सेवकों की। उन्हें चारों महान राजाओं के विद्रोही कहा जाता है।
हे भगवान बुद्ध, यदि कोई अमानवीय यक्ष पुरुष या यक्षिणी यक्ष युवक या कन्या यक्ष, यक्ष मंत्री या कोई यक्ष या यक्ष सेवक; गंधर्व पुरुष या कन्या गंधर्व, गंधर्व मंत्री या कोई गंधर्व या गंधर्व सेवक; कुंभण्ड पुरुष या कन्या कुंभण्ड, कुंभण्ड मंत्री या कोई कुंभण्ड या कुंभण्ड सेवक; नाग पुरुष या कन्या नाग, नाग मंत्री या कोई नाग या नाग सेवक; उसके साथ द्वेषपूर्ण इरादे से चलें, खड़े हों, बैठें या लेटें, तो उस व्यक्ति को उन यक्षों, शक्तिशाली यक्षों, उनके सेनापतियों और प्रमुख सेनापतियों को सूचित करना चाहिए, जोर से चिल्लाना चाहिए और कहना चाहिए: 'यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है, मुझ पर कब्जा कर रहा है, मुझे सता रहा है, मुझ पर हमला कर रहा है, मुझे हानि पहुंचा रहा है, मुझे अत्यधिक हानि पहुंचा रहा है और मुझे जाने नहीं दे रहा है!'
283. "यक्ष कौन हैं, पराक्रमी यक्ष और सेनापति, और प्रमुख सेनापति (जिनसे ऐसी अपील की जानी चाहिए)?"
49. इंदा, सोम, और वरुण, भारद्वाज, पजापति, चंदना, कामसेट्ठ भी, किन्नुघंडु, निगहंडु,
50. पनाडा, ओपमन्ना भी, देवसुता और मातलि, चित्तसेना और गंधब्बा, नल, राजा, जनसभा,
51. सतगिरा, हेमावता, पुन्नका, करतिया, गुला, सिवाका, मुकलिंडा भी, वेसामिट्टा, युगंधरा,
52. गोपाल, सुपेग्धा भी, हिरी, नेट्टी, और मांडिया, पंचलकंडा, अलावाका, पज्जुन्ना, सुमना, सुमुखा, दादामुक्खा, इन सेरिसक्का के साथ।
"ये यक्ष हैं, शक्तिशाली यक्ष हैं, सेनापति हैं, प्रमुख सेनापति हैं, जिनसे (पीड़ित व्यक्ति को) सूचना देनी चाहिए, जोर से पुकार कर चिल्लाना चाहिए और कहना चाहिए: 'यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है, मुझ पर कब्जा कर रहा है, मुझे सता रहा है, मुझ पर हमला कर रहा है, मुझे नुकसान पहुंचा रहा है, और मुझे बहुत नुकसान पहुंचा रहा है, और यह यक्ष मुझे जाने नहीं दे रहा है!'"
"हे प्रिय, यह अतानाता संरक्षण है जिसके द्वारा भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"
"हे सौभाग्यशाली, अब हम आपसे विदा लेते हैं; क्योंकि हमें कई कर्तव्यों का पालन करना है (चारों महान राजाओं ने ऐसा कहा)।"
"महान राजाओं, अब आपके प्रस्थान का समय आ गया है" (बुद्ध ने स्वीकार किया)।
चारों महान राजा अपने-अपने आसनों से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके दाहिनी ओर परिक्रमा की और वहीं पर अंतर्धान हो गए। (सेवकों) यक्षों में से कुछ अपने-अपने आसनों से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके दाहिनी ओर परिक्रमा की और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ ने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण और विनम्र ढंग से बातचीत करते हुए अभिवादन किया और वहीं पर अंतर्धान

हो गए; कुछ ने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ ने अपना नाम और वंश बताया और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ मौन ही अंतर्धान हो गए।

रात्रि बीत जाने पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: (बुद्ध ने भिक्षुओं को वही शब्द-शब्द सुनाया जो महान राजा वेसवना ने कहे थे) "हे भिक्षुओं, अतानाता सुरक्षा मंत्र को अच्छी तरह याद कर लो, इसका निरंतर उपयोग करो, इसे अपने मन में रखो। हे भिक्षुओं, अतानाता सुरक्षा तुम्हारे कल्याण के लिए है, और इसके बल पर भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और स्त्रियां निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"

भगवान बुद्ध ने ये कहा। स्वयं पर गर्व करने वाले उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की।

अतानातिया सुत्त: पुराना संस्करण

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान राजगृह (राजगीर) के पास गिद्ध शिखर पर निवास कर रहे थे।

फिर चार महान राजाओं ने चारों दिशाओं में पहरा बिठाकर, यक्षों, गंधर्वों, कुम्भंडों और नागों की विशाल सेना के साथ, सैनिकों को तैनात करके, चारों ओर सैनिकों की घेराबंदी करके, रात ढलने के बाद भगवान बुद्ध के समक्ष आए। अपनी असाधारण चमक से गिद्ध शिखर को पूरी तरह से प्रकाशित करते हुए, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। (परिचारकों) यक्षों में से कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने उनसे मैत्रीपूर्ण और विनम्र बातचीत करते हुए अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने अपना नाम और वंश बताया और एक तरफ बैठ गए; कुछ मौन बैठे रहे।

तब एक तरफ बैठे महान राजा वैश्रवण ने भगवान बुद्ध से कहा:

"आदरणीय भंते, कुछ प्रख्यात यक्ष भगवान से प्रसन्न नहीं होते, और कुछ प्रख्यात यक्ष भगवान से प्रसन्न होते हैं। कुछ मध्यम श्रेणी के यक्ष भगवान से प्रसन्न नहीं होते, और कुछ उनसे प्रसन्न होते हैं। कुछ निम्न श्रेणी के यक्ष भगवान से प्रसन्न नहीं होते, और कुछ उनसे प्रसन्न होते हैं। भंते, यक्ष आमतौर पर भगवान से प्रसन्न नहीं होते। इसका कारण क्या है?"

"भगवान बुद्ध हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और मादक पेय पदार्थों से परहेज करने का उपदेश देते हैं, जो नशा और लापरवाही का कारण बनते हैं। उन्हें ऐसा उपदेश अप्रिय और अरुचिकर लगता है।"

"निश्चित रूप से, भगवान बुद्ध के शिष्य हैं। वे घने जंगलों और वनभूमि के एकांत स्थानों में जाते हैं, जहाँ कोई शोर नहीं होता, कोई हलचल नहीं होती, जहाँ हवाएँ मानव संपर्क से रहित होती हैं, और जो मनुष्य के एकांत और शांत चिंतन के लिए उपयुक्त हैं। इन जंगलों में कुछ प्रख्यात यक्ष भी विचरण करते हैं, जिन्हें भगवान बुद्ध के वचनों में कोई विश्वास नहीं है।"

"भंते, भगवान अतनाता की रक्षा सीखें ताकि अप्रसन्न यक्ष प्रसन्न हो जाएं, ताकि भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण रहें।"

भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दी। तब महान राजा वेसवना ने यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, अतनातिया मंत्र का पाठ किया:

1. "ज्ञान और वैभव से परिपूर्ण विपस्सी (बुद्ध) को प्रणाम। सभी प्राणियों के प्रति दयालु सिखि (बुद्ध) को प्रणाम।"
2. सभी दोषों से मुक्त और तपस्वी ऊर्जा से परिपूर्ण वेस्सभु (बुद्ध) को प्रणाम। मारा की (पांच प्रकार की) सेना पर विजय प्राप्त करने वाले काकुसन्द (बुद्ध) को प्रणाम।
3. "कोनागमना (बुद्ध) को प्रणाम, जिन्होंने सभी दोषों का निवारण किया और पवित्र जीवन व्यतीत किया। कश्यप (बुद्ध) को प्रणाम, जो सभी दोषों से पूर्णतः मुक्त हैं।"
4. "शाक्यों के पुत्र अंगिरासा (बुद्ध गौतम) को प्रणाम, जो प्रकाश से परिपूर्ण हैं और जिन्होंने उस धम्म का प्रचार किया जो समस्त दुखों का निवारण करता है।"
5. संसार में वे लोग जिन्होंने (वासना की ज्वालाओं को) बुझा दिया है और अंतर्दृष्टि (ध्यान) के माध्यम से चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख लिया है, वे कभी किसी की निंदा नहीं करते; वे शक्तिशाली पुरुष हैं जो भय से मुक्त हैं।
6. "गौतम (बुद्ध) देवताओं और मनुष्यों के प्रिय, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण, शक्तिशाली और निर्भीक, सभी उन्हें प्रणाम करते हैं (उन्हें प्रणाम हो)।"

7-8. "जब अदिति की संतान, तेजस्वी सूर्य, अपने पूर्ण आकार में उदय होता है, तब रात का अंत होता है और दिन कहलाता है। सूर्य जिस दिशा से उदय होता है (वह पूर्व दिशा है)। वहाँ गहरा और विशाल सागर विद्यमान है।"

9. "यह - पानी की फैली हुई चादर - वे इसे महासागर कहते हैं। जहाँ पूर्व दिशा है (मेरु पर्वत के पूर्व में) वे कहते हैं कि वह दिशा पूर्व है।"
10. "इस क्षेत्र का संरक्षक धतरत्थ नामक एक महान राजा है, जिसके पास सेवकों का एक दल है, और वह गंधब्बाओं का संभगवान स्वामी है।"

11. "गंधाब्बाओं से घिरे हुए वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेते हैं। मैंने सुना है कि उनके (दथारत्ता के) कई पुत्र हैं, सभी का एक ही नाम है।"
12-13. "वे अस्सी, दस और एक हैं, उनका नाम इंदा है, और वे शक्तिशाली हैं। वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से उन्हें प्रणाम करते हैं: "आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको गौरव, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं।"
14-15. "जिस प्रकार आपने अपने सर्वज्ञ ज्ञान से मनुष्य जाति को देखा है, उसी प्रकार अन्य प्राणी भी आपको आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं। यह हमने अनेक बार सुना है। अतः हम यक्षों से निवेदन करते हैं कि वे गौतम बुद्ध को प्रणाम करें। वे भी यही कहते हैं: 'हम गौतम बुद्ध को प्रणाम करते हैं, हम ज्ञान और सद्‌गुणों से परिपूर्ण गौतम को प्रणाम करते हैं।'"
16-18. "जिस दिशा से पेटा (लाशें), चुगलखोर, हत्यारे, क्रूर डाकू और कपटी लोगों को हटाया जाता है, वह दिशा (मेरु पर्वत के दाहिनी ओर) है और उसे दक्षिण दिशा कहा जाता है। इस दिशा का संरक्षक वीरुल नाम का एक महान राजा है, जिसके साथ सेवकों का एक दल है और वह कुम्भंडों का संभगवान स्वामी है। कुम्भंडों की सेवा में वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेता है।"
19. "मैंने सुना है कि उसके (विरुल्हा के) बहुत से पुत्र हैं, सब एक ही नाम के हैं। वे अस्सी, दस और एक हैं, उनके नाम इन्दा हैं, और वे बहुत शक्तिशाली हैं।"
20. "वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से ही उन्हें प्रणाम करते हैं: 'आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको महिमा हो, जो मनुष्यों में सर्वोच्च हैं।'"
21-22. "जिस प्रकार आपने अपने सर्वज्ञ ज्ञान से (मानव जाति को) देखा है, उसी प्रकार अन्य जीव भी आपको आदर देते हैं। यह हमने अनेक बार सुना है। अतः हम यक्षों से विनती करते हैं कि वे गौतम बुद्ध को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं: 'हम गौतम को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं।'"
23-24. "जब अदिति की संतान, तेजस्वी सूर्य, अपने पूर्ण आकार में अस्त होता है, तब दिन समाप्त होता है और रात हो जाती है। सूर्य जिस दिशा में अस्त होता है, वह पश्चिम दिशा है। वहाँ गहरा और विशाल सागर स्थित है।"
25. "यह - पानी की फैली हुई चादर - वे इसे महासागर कहते हैं। जहाँ पश्चिम है (मेरु पर्वत के पश्चिम में) वे कहते हैं कि वह दिशा पश्चिम है।"
26. "इस क्षेत्र का संरक्षक विरुपाक्खा नामक एक महान राजा है, जिसके पास सेवकों का एक दल है, और वह नागों का संभगवान स्वामी है।"
27. "नागों से घिरे हुए वह उनके गीत और नृत्य का आनंद लेते हैं। मैंने सुना है कि उनके (विरुपक्खा के) कई पुत्र हैं, सभी का एक ही नाम है।"
28-29. "वे अस्सी, दस और एक हैं, उनका नाम इंदा है, और वे शक्तिशाली हैं। वे भी बुद्ध को देखकर—सूर्य के सगे, शक्तिशाली और निर्भीक—दूर से उन्हें प्रणाम करते हैं: 'आपको प्रणाम, जो मानवजाति में अद्वितीय हैं; आपको गौरव, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं।'"
30-31. "जिस प्रकार आपने अपनी सर्वज्ञता से (मानव जाति को ज्ञान भरी दृष्टि से) देखा है, उसी प्रकार अन्य जीव भी आपको आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं। यह हमने अनेक बार सुना है। अतः हम यक्षों से निवेदन करते हैं कि वे गौतम, विजेता (बुद्ध) को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं: 'हम गौतम, विजेता को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं।'"
32. "जहां रमणीय उत्तरकुरु (उत्तरी महाद्वीप) स्थित है, जहां सुंदर मेरु पर्वत विराजमान है, वहां निस्वार्थ और अनासक्त पुरुष जन्म लेते हैं।"
33. "वे न तो बीज बोते हैं और न ही हल का प्रयोग करते हैं। उनके आनंद के लिए स्वाभाविक रूप से उगा हुआ मक्का मौजूद है।"
34. "लाल पाउडर और छिलके से शुद्ध किया हुआ, साफ और सुगंधित चावल सोने के बर्तनों में उबाला जाता है; यही वे खाते हैं।"
35. "वे गायों से एक-सीट वाला वाहन बनाते हैं (जैसे घोड़े पर सवार होना)9 और जगह-जगह घूमते हैं।
36-37. "वे महिलाओं और पुरुषों, लड़कियों और लड़कों को वाहनों के रूप में इस्तेमाल करते हैं, और उनमें एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं।"
38. "वाहनों (हाथियों और घोड़ों) पर सवार होकर वे (राजा वेसवना के यक्ष) हर दिशा में यात्रा करते हैं।"
39. "यह राजा, जिसके पास सेवकों का एक दल है, हाथियों और घोड़ों का स्वामी है जिन पर वह सवारी करता है। उसके पास दिव्य रथ, महल और पालकी भी हैं। उसने स्वर्गीय लोकों में सुशोभित नगर बनवाए हैं।"
उनके नाम अतानाता, कुसिनता, परकुसिनता, नटपुरिया, परकुसिटानाता हैं। उत्तर में कपिलावत नगर, दक्षिण में जनोघा, नवनावती, अंबरा-अंबरावती और अलकमंडा राज्य स्थित हैं। हे भगवान (बुद्ध को संबोधित करते हुए), इस कुबेर (वेसवना का दूसरा नाम) का एक राज्य है जिसका नाम विष्णु है, इसलिए महान राजा कुबेर को वेसवना कहा जाता है। इस राजा के यक्ष हैं जो जांच करते हैं और उन्हें प्रकट करते हैं। वे हैं ततोला, तत्तला, ततोताला, ओजसी, तेजसी, ततोजसी, सुरो, राजा (सुरा-राज), अरित्थो, नेमी (अरित्था-नेमी)। वहाँ (विसना राज्य में) धरणी झील है जहाँ से वर्षा के बादल (जल धारण करके) वर्षा करते हैं। और वहाँ भगलावती नामक एक हॉल भी है जहाँ यक्ष एकत्रित होते हैं।
40. "वहाँ (हॉल के चारों ओर) सदाबहार फल देने वाले वृक्ष हैं। (इन वृक्षों पर) असंख्य पक्षी हैं। वहाँ मोर और बगुले की आवाज और कोकीला (भारतीय कोयल) का मधुर गीत भी सुनाई देता है।"

41. "वहाँ (झील के पास) पक्षियों की पुकार सुनाई देती है, जो 'जीवित रहो! जीवित रहो!' (जीवमजीवका) पुकारते हैं। ओत्थावचित्तक ('हे अपने हृदय को ऊपर उठाओ!') पक्षी, जंगली मुर्गे, केकड़े और पोक्खरसटका पक्षी जंगलों में विचरण करते हैं।"
42. "वहाँ तोते, मैना और दंडमानवक पक्षियों की आवाज सुनाई देती है। और कुबेर का कमल-सर्दी हर मौसम में अपनी सुंदरता बिखेरता रहता है।"
43-44. "उस दिशा (मेरु पर्वत के उत्तर की ओर) को लोग उत्तर दिशा कहते हैं। इस दिशा का संरक्षक कुबेर नामक एक महान राजा है, जिसके साथ सेवकों का एक दल है, और वह यक्षों का संभगवान स्वामी है। यक्षों की सेवा में वह उनके गीतों और नृत्य का आनंद लेता है।"
45. "उसके (कुवेरा के) बहुत से पुत्र हैं, सब एक ही नाम के हैं, ऐसा मैंने सुना है। वे अस्सी और दस और एक हैं, उनके नाम इंदा हैं, और वे शक्तिशाली हैं।"
46. "वे भी, सूर्य के सगे संबंधियों, शक्तिशाली और निर्भीक बुद्ध को देखकर, दूर से ही उन्हें प्रणाम करते हैं: 'हे मानवजाति में अद्वितीय, आपको प्रणाम! हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, आपकी जय हो!'"
47-48. "हे भगवान, अपने सर्वज्ञ ज्ञान से तुमने (मानवजाति को) देखा है; यहाँ तक कि निर्जीव भी तुम्हें आदर देते हैं, ऐसा हमने सुना है। अतः हम यक्षों से विनती करते हैं कि वे गौतम बुद्ध को प्रणाम करें। वे भी कहते हैं, 'हम गौतम को आदर देते हैं, हम गौतम को आदर देते हैं जो ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं।'"
"हे सौभाग्यशाली, यह अतानाता संरक्षण है जिसके द्वारा भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं सभी निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"
यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी, गृहस्थ पुरुष या गृहस्थ स्त्री अतानाता की इस रक्षा को कंठस्थ कर ले और शब्दशः इसका पाठ कर ले, और यदि कोई अमानवीय यक्ष, युवक या कन्या यक्ष, यक्ष मंत्री या कोई अन्य यक्ष या यक्ष सेवक; गंधर्व पुरुष या स्त्री... (जैसा कि पहले बताया गया है); कुम्भंद पुरुष या स्त्री... नाग पुरुष या स्त्री... उसके साथ द्वेषपूर्ण इरादे से चले, खड़े हों, बैठें या लेटें, तो ऐसे अमानवीय, सुखी प्राणी को किसी नगर या कस्बे में आतिथ्य सत्कार नहीं मिलेगा, रहने के लिए स्थान नहीं मिलेगा, और वह अलकमंद राज्य में नहीं रह सकेगा। वह यक्षों की सभाओं में भी शामिल नहीं हो सकेगा। इसके अलावा, उसका विवाह न तो स्वीकार किया जाएगा और न ही विवाह के लिए दिया जाएगा, उसे (उसके विकृत दांतों, आंखों या शरीर के किसी भी अंग पर टिप्पणी करके) अपमानित किया जाएगा, और अमानवीय प्राणी उसके सिर पर एक खाली कटोरा रखकर उसे (सिर को) सात टुकड़ों में फाड़ देंगे।
हे सौभाग्यशाली! कुछ अमानव क्रूर, हिंसक और प्रतिशोध लेने वाले होते हैं; वे न तो चारों महान राजाओं की आज्ञा मानते हैं, न उनके मंत्रियों की और न ही उनके सेवकों की। उन्हें चारों महान राजाओं के विद्रोही कहा जाता है। जैसे मगध राज्य में चोर न तो मगध के राजा की आज्ञा मानते हैं, न मंत्रियों की और न ही उनके सेवकों की, और इसलिए उन्हें मगध के राजा के विद्रोही कहा जाता है, वैसे ही कुछ अमानव क्रूर होते हैं... (जैसा कि पहले बताया गया है)। उन्हें चारों महान राजाओं के विद्रोही कहा जाता है।
हे सौभाग्यशाली, यदि कोई अमानवीय प्राणी—नर या मादा यक्ष, युवक या कन्या यक्ष, यक्ष मंत्री या कोई भी यक्ष, या यक्ष सेवक; नर या मादा गंधर्व... (जैसा कि पहले बताया गया है); नर या मादा कुंभंद... नर या मादा नाग... किसी भिक्षु या भिक्षुणी, या गृहस्थ पुरुष या गृहस्थ स्त्री के साथ चले, या उसके साथ दुर्भावनापूर्ण इरादे से खड़ा हो, बैठे या लेटे, तो (पीड़ित व्यक्ति) को उन यक्षों, शक्तिशाली यक्षों, उनके सेनापतियों और प्रमुख सेनापतियों को सूचित करना चाहिए, जोर से रोना चाहिए और चिल्लाना चाहिए कि: 'यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है, मुझ पर कब्जा कर रहा है, मुझे सता रहा है, मुझ पर हमला कर रहा है, मुझे हानि पहुंचा रहा है, मुझे गंभीर रूप से हानि पहुंचा रहा है और मुझे जाने नहीं दे रहा है!'
"वे यक्ष कौन हैं, पराक्रमी यक्ष और सेनापति कौन हैं, और प्रमुख सेनापति कौन हैं (जिनसे ऐसी अपील की जानी चाहिए)?"
49. इंदा, सोम, और वरुण, भारद्वाज, पजापति, चंदना, कामसेट्ठ भी, किन्नुघंडु, निगहंडु,
50. पनाडा, ओपमन्ना भी, देवसता और मातलि, चित्तसेना और गंधब्बा, नल, राजा, जनसभा,
51. सतगिरा, हेमावता, पुन्नका, करतिया, गुला, सिवाका, मुकलिंडा भी, वेसामिट्टा, युगंधरा,
52. गोपाल, सुप्पेगधा, हिरी, नेट्टी, मंडिया, पंचलचंदा, अलावक, पज्जुन्ना, सुमना, सुमुखा, ददमुखा, इनके साथ सेरिसाक्का भी हैं। "ये यक्ष हैं, शक्तिशाली यक्ष, सेनापति, प्रमुख सेनापति, जिनसे (पीड़ित व्यक्ति) को सूचना देनी चाहिए, जोर से पुकार कर कहना चाहिए: 'यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है, मुझ पर कब्जा कर रहा है, मुझे सता रहा है, मुझ पर हमला कर रहा है, मुझे हानि पहुंचा रहा है, और मुझे बहुत अधिक हानि पहुंचा रहा है, और यह यक्ष मुझे जाने नहीं दे रहा है!'"
"हे प्रिय, यह अतानाता संरक्षण है जिसके द्वारा भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और गृहस्थ महिलाएं निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"
"हे सौभाग्यशाली, अब हम आपसे विदा लेते हैं; क्योंकि हमें कई कर्तव्यों का पालन करना है (चारों महान राजाओं ने ऐसा कहा)।"
"महान राजाओं, अब आपके प्रस्थान का समय आ गया है" (बुद्ध ने उत्तर दिया)।
चारों महान राजा अपने-अपने आसनों से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके दाहिनी ओर परिक्रमा की और वहीं पर अंतर्धान हो गए। (सेवक) यक्षों में से कुछ अपने-अपने आसनों से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके दाहिनी ओर परिक्रमा की और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ ने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण और विनम्र ढंग से बातचीत करते हुए अभिवादन किया और वहीं पर अंतर्धान

हो गए; कुछ ने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ ने अपना नाम और वंश बताया और वहीं पर अंतर्धान हो गए; कुछ मौन ही वहीं पर अंतर्धान हो गए।
रात्रि बीत जाने पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: (बुद्ध ने भिक्षुओं को वही शब्द-शब्द सुनाया जो महान राजा वेसवना ने कहे थे) "हे भिक्षुओं, अतानाता सुरक्षा मंत्र को अच्छी तरह याद कर लो, इसका निरंतर उपयोग करो, इसे अपने मन में रखो। हे भिक्षुओं, अतानाता सुरक्षा तुम्हारे कल्याण के लिए है, और इसके बल पर भिक्षु और भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और स्त्रियां निश्चिंत, सुरक्षित और अक्षुण्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"
भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा। ये सुनकर भिक्षु प्रसन्न हो गए और भगवान बुद्ध के वचन सुनकर आनंदित हुए।

अतानातिया सुत्त: मूल पाली भाषा में,tipitaka.org से
275. एवं मे सुतं - एकं समयं भगव राजगहे विहारति गिज्जकुते पब्बते। अथा खो कटारो महाराजा [महाराजनो (का.)] महतिया च यक्खसेनाय महतिया च गन्धबसेनाय महतिया च कुम्भनदसेनाय महतिया च नागसेनाय कैटुडिसं रक्खं थपेत्वा कैटुडिसं गुंबं थपेत्वा कैटुडिसं ओवरानं थपेत्वा अभिकांतया रत्तिया अभिकांतवना केवलकप्पां गिज्जाकुटं पब्बतम् ओभसेत्व [गिज्जाकुट्टं ओभासेत्वा (सि. स्या. पि.)] येन भगव तेनुपसांकमिंसु; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदिन्सु। तेपि खो यक्खा अप्पेकैसे भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदिंसु, अप्पेकैसे भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदानियं कथं सरण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसिदिंसु, अप्पेकैसे येन भगव तेनंजलिं पणमेत्वा एकमंतं निसिडिंसु, अप्पेकैसे नामगोट्टं सवेत्वा एकमंतं निसिडिंसु, अप्पेकैसे तुन्हिभुता एकमन्तम् nisīdiṃsu.
276. एकमंतम निसिन्नो खो वेस्सावणो महाराज भगवन्तं एतदावोचा - "शांति ही, भंते, उदार यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। शांति हि, भंते, उदार यक्खा भगवतो पस्न्ना। शांति हि, भन्ते, मज्झिमा यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। शांति हि, भन्ते, मज्झिमा यक्खा भगवतो पस्न्ना। शांति हि, भंते, निका यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। शांति हि, भंते, निका यक्खा भगवतो पस्न्ना। येभुयेन खो पना, भंते, यक्खा अप्पसन्नयेव भगवतो। इसलिए किस्सा हेतु? भगव हाय, भंते, पनातिपात वेरामनिया धम्मं देसेटि, अदिन्नादाना वेरामनिया धम्मं देसेटी, कामेसुमिचाचारा वेरामनिया धम्मं देसेटी, मुसावादा वेरामनिया धम्मं देसेटि, सुरामेरायमज्जप्पमदथना वेरामनिया धम्मं देसेटि। येभुयेना खो पाना, भंते, यक्खा अप्पतिविरतायेव पणनातिपता, अप्पतिविरता अदिनादाना, अप्पतिविरता कामेसुमिचचारा, अप्पतिविरता मुसावदा, अप्पतिविरता सुरमेरेयमजप्पमदथना। तेसं तं होति अप्पियं अमानपं। शांति हि, भंते, भगवतो सावका अरन्नवनपत्थानि पंतानि सेनासननि पतिसेवंति अप्पसद्दनि अप्पनिग्घोसानि विजनावतानि मनुस्सराहास्सेयकानि [मनुस्सरहासेयकानि (सि. स्या.) पी.)]पतिसल्लानासरूपपाणि. तत्थ सन्ति उदार यक्खा निवासिनो, ये इमास्मि भगवतो पावकेन अप्पसन्ना। तेसं पसदाय उग्गनहातु, भंते, भगव अतानातियं रक्खं भिक्खुनं भिक्खुनिनं उपासकन उपासिकाणं गुटिया रक्खाय अविहिंसया फासुविहारयति। अधिवासीसि भगव तुन्हिभावेन।
अथ खो वेस्सावणो महाराज भगवतो अधिवासन विदित्वा तयं वेलायं इमं अतानातियं रक्खं अभासि -
277. "विपसिस्सा च [इमे काकारा पोराणपोत्थकेसु नत्थि] नमत्थु, चक्खुमंतस्सा सिरिमतो।
सिखिसापि सीए [इमे काकारा पोराणपोत्थकेसु नत्थि] नमत्थु, सब्बाभूतानुकमपिनो।
"वेसाभुस्सा सीए [इमे काकारा पोराणपोत्थकेसु नत्थि] नमत्थु, नहतकस्सा तपासिनो;
नामत्तु ककुसंधास्सा, मरसेनापमद्दिनो।
"कोनागमनस्स नमत्थु, ब्राह्मणस्स वुसीमतो;
कस्सापासा च [इमे चकारा पोराणपोत्थकेसु नत्थि] नमत्थु, विप्पमुत्तस्स सब्बाधि।
"अंगिरसस्सा नामत्तु, शाक्यपुत्तस्स सिरिमतो;
यो इमं धम्मं देसेसि [धम्ममदेसि (सि. स्या. पि.), धम्मं देसेटि (?)], सब्बदुक्खापनुदानं।
"ये कपि निब्बुता लोके, यथाभूतं विपस्सीसुं;
ते जना एपिसुनाथा [एपिसुना (सि. स्या. पि.)], महंता वितसारदा।
"हितं देवमनुस्सनं, यं नमस्सांति गोतमम्;
विज्जाचरणसंपन्नं, महन्तं वितसारदम्।
278. "यतो उग्गच्छति सूर्यो [सूरियो (सि. स्या. पि.)], आदिको मंडली महा।
यस्सा कुग्गच्छमानस्स, संवरीपि निरुज्जति;
यस्सा कुग्गेट सुरिये, 'दिवसोति पवुक्कति।'
"रहदोपि तत्थ गंभीरो, समुद्दो सरितोदको;
एवं तं तत्थ जानन्ति, 'समुद्दो सरितोदको'।
"इतो 'सा पुरिमा दिसा', इति नं अचिक्खति जानो;
यं दिसं अभिपालेति, महाराज यस्स्सी सो।
"गंधब्बाणं अधिपति [अधिपति (सि. स्या. पि.) एवमुपरिपि], 'धतरथोऽति नमसो;
रामति नच्चगितेहि, गंधब्बेहि पुरक्खतो।

"पुत्तपि तस्स बहावो, एकानामति मे सुतम्;
असिति दास एको च, इंदानामा महब्बला।
ते कपि बुद्धं दिस्वाना, बुद्धं आदिच्चबंधुणं;
दुरतोवा नमस्सान्ति, महन्तं वितसारदम्।
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
कुसलेना समेक्खसि, अमानुस्सापि तं वंदन्ति;
सुतं नेतं अभिन्हासो, तस्मा एवं वदेमसे।
"जिनं वंदथ गोतमम्, जिनं वंदथ गोतमम्;
विज्जाचरणसंपन्नं, बुद्धं वंदम गोतमम्।'
279. "येन पेटा पावुक्कन्ति, पिसुना पिठिमांसिका।"
पानातिपतिनो लुद्दा [लुद्दा (पी. का.)], कोरा नेकाटिका जाना।
"इतो 'सा दक्खिना दिसा', इति नं अचिक्खति जानो;
यं दिसं अभिपालेति, महाराज यस्स्सी सो।
"कुम्भानां अधिपति, 'विरुधो' इति नमसो;
रामति नच्चगितेहि, कुम्भन्देहि पुरक्खतो।
"पुत्तपि तस्स बहावो, एकानामति मे सुतम्;
असिति दास एको च, इंदानामा महब्बला।
ते कपि बुद्धं दिस्वाना, बुद्धं आदिच्चबंधुणं;
दुरतोवा नमस्सान्ति, महन्तं वितसारदम्।
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
कुसलेना समेक्खसि, अमानुस्सापि तं वंदन्ति;
सुतं नेतं अभिन्हासो, तस्मा एवं वदेमसे।
"जिनं वंदथ गोतमम्, जिनं वंदथ गोतमम्;
विज्जाचरणसंपन्नं, बुद्धं वंदम गोतमम्।'
280. "Yattha coggacchati sūriyo, ādicco maṇḍalī mahā.
यस्सा कोग्गच्छमानस्स, दिवासोपि निरुज्जति;
यस्सा कॉगगेट सुरिये, 'संवरी'ति पवुक्कति।'
"रहदोपि तत्थ गंभीरो, समुद्दो सरितोदको;
एवं तं तत्थ जानन्ति, 'समुद्दो सरितोदको'।
"इतो 'सा पछिमा दिसा', इति नं अचिक्खति जानो;
यं दिसं अभिपालेति, महाराज यस्स्सी सो।
"नागानञ्च अधिपति, 'विरुपक्खोति नमसो;'
रामति नक्कागितेहि, नगेहेव पुरक्खतो।
"पुत्तपि तस्स बहावो, एकानामति मे सुतम्;
असिति दास एको च, इंदानामा महब्बला।
ते कपि बुद्धं दिस्वाना, बुद्धं आदिच्चबंधुणं;
दुरतोवा नमस्सान्ति, महन्तं वितसारदम्।
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
कुसलेना समेक्खसि, अमानुस्सापि तं वंदन्ति;
सुतं नेतं अभिन्हासो, तस्मा एवं वदेमसे।
"जिनं वंदथ गोतमम्, जिनं वंदथ गोतमम्;
विज्जाचरणसंपन्नं, बुद्धं वंदम गोतमम्।'
281. "येन उत्तरकुरुवो [उत्तरकुरु रम्मा (सि. स्या. पि.)], महानेरु सुदस्सानो।
मनुषसा तथा जयंती, अमामा अपरिग्गहा।
"न ते बीजं पावापंती, नापि नियंती नंगला;
अकथपाकिमं सालिं, परिभुञ्जन्ति मानुषा।
"अकानं अथुसं शुद्धं, सुगंधं तंदुलपफलं;
तुण्डिकिरे पचित्वाना, ततो भुञ्जन्ति भोजनं।

"गाविं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं;
पसुं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं।
"इत्थिं वा वाहनं [इत्थि-वाहनं (सि. पि.), इत्थिं वाहनं (स्या.)] कट्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं;
पुरिसं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं।
"कुमारीं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं;
कुमारं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति डिसोडिसं।
"Te yāne abhiruhitvā,
सब्बा दिसा अनुपरियंती [अनुपरियंती (स्या.)];
Pacārā tassa rājino.
"हत्थियानं अस्सयानं, दिब्बं यानं उपथितः;
पसाद शिविका सेवा, महाराजस्स यसस्सिनो।
"Tassa ca nagarā ahu,
Antalikkhe sumāpitā;
अतानाता कुसीनता परकुसिनाता,
नटसूर्या [नातपुरिया (सी.पी.), नटापरिया (स्या.)] परकुसीताना.
"उत्तरेण कासिवन्तो [कपिवंतो (सि. स्या. पि)],
Janoghamaparena ca;
नवनावुतिओ अंबरअम्बरावतियो,
अचकमंदा नाम राजधनी।
"कुवेरस्सा खो पाना, मारिसा, महाराजससा विसाणा नाम राजधानि;
तस्मा कुवेरो महाराज, 'वेसावनो'ति पवुक्कति।'
"पक्सेसंतो पकासेन्ति, ततोला तत्तला ततोताला;
ओजसि तेजसि ततोजसि, सुरो राजा अरिथो नेमि।
"रहदोपि तत्थ धरणि नाम, यतो मेघा पवसन्ति;
वस्सा यतो पटैयन्ति, सभापि तथा सलावती [भागलवती (सि. स्या. पि.)] नामा।
"Yattha yakkhā payirupāsanti, tattha niccaphalā rukkhā;
नाना दिजगाना युता, मयूरकोन्चाभिरुदा;
Kokilādīhi vagguhi.
"जीवाञ्जिवकसद्देत्थ, अथो ओत्थवचित्तका;
कुक्कुट्टका [कुकुत्थाका (सी.पी.)] कुधिरका, वेन पोक्खरासटाका।
"सुकसासिकासद्देत्था, दण्डमानवकानि च;
शोभति सब्बकालं सा, कुवेरननि सदा।
"इतो 'सा उत्तरा दिसा', इति नं अचिक्खति जानो;
यं दिसं अभिपालेति, महाराज यस्स्सी सो।
" यक्खानांच अधिपति, 'कुवेरो' इति नमसो;
रामति नक्कागितेहि, यक्खेहेव पुरक्खतो।
"पुत्तपि तस्स बहावो, एकानामति मे सुतम्;
असिति दास एको च, इंदानामा महब्बला।
"ते कपि बुद्धं दिस्वाना, बुद्धं आदिच्चबंधुणं;
दुरतोवा नमस्सान्ति, महन्तं वितसारदम्।
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
कुसलेना समेक्खसि, अमानुस्सापि तं वंदन्ति;
सुतं नेतं अभिन्हासो, तस्मा एवं वदेमसे।
"जिनं वंदथ गोतमम्, जिनं वंदथ गोतमम्;
विज्जाचरणसंपन्नं, बुद्धं वंदामा गोतम"न्ति।
"अयं खो सा, मारिसा, अतानातिया रक्खा भिक्खुनं भिक्खुनिनं उपासकनं उपासिकाणं गुटिया रक्खाय अविहिंसया फासुविहारय.
202. [परियपुता (का.)]. टैम सीई अमानुसो यक्खो वा यक्खिनी वा यक्खापोटाको वा यक्खापोटिका वा यक्खामहामात्तो वा यक्खापरिसाज्जो वा यक्खापचारो वा, गंधब्बो वा गंधब्बी वा गंधब्बापोटाको वा गंधब्बापोटिका वा गन्धबमहामत्तो वा गन्धब्बापरिसज्जो वा

गन्धबपचारो वा, कुम्भण्डो वा कुम्भण्डी वा कुम्भण्डपोतको वा कुम्भण्डपोतिका वा कुम्भण्डमहामत्तो वा कुम्भाण्डपरिसज्जो वा कुंभण्डपचारो वा, नागो वा नागी वा नागापोटाको वा नागापोटिका वा नागमहामत्तो वा नागापरिसज्जो वा नागापाचारो वा, पदुथचित्तो भिक्खुम् वा भिक्खुनिं वा उपासकं वा उपासिकम् वा गच्छन्तं वा अनुगच्छेय्य, स्थितं वा उपतिथेय्य, निसिन्नं वा उपनिषेद्यय, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य। ना मी सो, मारिसा, अमानुसो लभेया गमेसु वा निगमेसु वा सक्करां वा गरुकारां वा। ना मे सो, मारिसा, अमानुसो लभेया अहाकामंडाय नाम राजधानिया वत्थुं वा वासं वा। न मे सो, मारिसा, अमानुसो लभेया यक्खानां समितिं गंतुम्। एपिस्सु नं, मारिसा, अमानुस्सा अनवयहमपि नं काय्युं अविवयहं। एपिस्सु नं, मारिसा, अमानुस्सा अत्ताहिपि परिपुणनाहि परिभासाहि परिभासेयुम्। एपिस्सु नाम, मारिसा, अमानुस्सा ऋत्तंपिस्सा पत्तं सिसे निक्कुज्जेय्युं। एपिस्सु नं, मारिसा, अमानुस्सा सत्तधापिस्सा मुद्धं फलेयुं।
"शांति ही, मारिसा, अमानुस्सा चंदा रुद्धा [रुद्दा (सी. पी.)] रभासा, ते नेव महाराजनं अदियंति, न महाराजनं पुरिसाकानां अदियंति, न महाराजनं पुरिसकानं पुरिसकानं अदियंति। ते खो ते, मारिसा, अमानुस्सा महाराजनं अवरुद्ध नाम वुक्कन्ति। सेय्यथापि, मारिसा, रणनो मागधस्सा विजिते महाकोरा। ते नेव राणो मागधस्सा पुरिसाकानां अदियान्ति, न राणो मागधसा पुरिसाकानां अदियान्ति, न राणो मागधसा पुरिसाकानां अदियान्ति। ते खो ते, मारिसा, महाकोरा राणो मागधस्सा अवरुद्ध नामा वुक्कन्ति। एवमेव खो, मारिसा, शांति अमानुषा चंद रुद्ध रभासा, ते नेव महाराजनं अदियंति, न महाराजां पुरिसाकानां अदियंति, न महाराजनं पुरिसकानं पुरिसकानं अदियंति। ते खो ते, मारिसा, अमानुस्सा महाराजनं अवरुद्ध नाम वुक्कन्ति। यो ही कोसी, मारिसा, अमानुसो यक्खो वा यक्खिनी वा...पे... गंधब्बो वा गंधब्बी वा... कुंभंदो वा कुंभंडी वा... नागो वा नागी वा नागापोटाको वा नागापोटिका वा नागमहामत्तो वा नागापरिसज्जो वा नागपचारो वा पदुथचित्तो भिक्खुम् वा भिक्खुनिम् वा उपासकम वा उपासिकम् वा गच्छन्तं वा अनुगच्छेय, थितम् वा उपतिथेय्य, निसिन्नं वा उपनिसिडेय्य, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य। इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतिनं महासेनापतिनं उज्झापेटब्बां विक्कंदितबं विरावितब्बां - 'अयं यक्खो गन्हाति, अयं यक्खो अविसति, अयं यक्खो हेथेति, अयं यक्खो विहेथेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुनचति'।
283. "कटमेसं यक्खानां महयक्खानां सेनापतिनं महासेनापतिनं?"
"इन्दो सोमो वरुणो च, भारद्वाजो प्रजापति;
कैंडानो कामसेठो च, किन्नुघंदु निघंदु च।
"पनादो ओपमान्नो च, देवसुतो च मतलि;
चित्तसेनो च गंधब्बो, नाओ राजा जनेसभो [जनोसभो (स्या.)]।
"सतागिरो हेमवतो, पुननको करतियो गुओ;
शिवको मुकालिंदो सीए, वेस्सामितो युगंधरो।
"गोपालो सुप्परोधो सीए [सुपगेधो सीए (सि. स्या. पि.)], हिरि नेति [हिरि नेति (सि. पि.)] सीए मंडियो;
पञ्चलकाण्डो आडवको, पज्जुन्नो सुमानो सुमुखो;
दधिमुखो मणि मणिवरो [मणि मणिकारो (स्या. पि.)] दीघो, अथो सेरीसाको सहा।
"इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतिनं महासेनापतिनं उज्झापेटब्बां विक्कंदितबं विरावितब्बां - 'अयं यक्खो गन्हाति, अयं यक्खो अविसति, अयं' यक्खो हेथेति, अयं यक्खो विहेथेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुनचति'।
"अयं खो सा, मारिसा, अतानातिया रक्खा भिक्खुनं भिक्खुनिनं उपासकनं उपासिकाणं गुटिया रक्खाय अविहिंसया फासुविहारय. हांदा च दानि मयं, मारिसा, गच्छामा बहुच्चा मयं बहुकरणीयति। "यस्सादानि तुम्हें महाराजनो कलां मन्नत'ति।'
284. अथ खो चत्तरो महाराज उत्थयासन भगवन्तं अभिवदेत्वा पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराधायिन्सु। तेपि खो यक्खा उत्थायसना अप्पेकैसे भगवन्तं अभिवदेत्व पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराधायिन्सु। अप्पेक्कस भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदानियं कथं शरणियं वीतिसारेत्व तत्थेवंतराधायिन्सु। अप्पेक्कसे येन भगव तेनंजलिं पणमेत्वा तत्थेवंतराधायिन्सु। अप्पेक्कसे नामगोत्तं सवेत्वा तत्थेवंतराध्यायिन्सु। अप्पेक्कसे तुन्हिभूत तत्थेवंतराध्यायिन्सुति।

अतानातिया सुत्त: परित्ता पाली के बर्मी संस्करण से जप संस्करण
(यह एक परोपकारी उपयोगकर्ता संपुना द्वारा प्रदान किया गया था)

अप्पासन्नेहि नाथस्सा,
ससाने साधुसम्मते;
अमानुस्सेहि कन्देही,
सदा किब्बिसाकारीभि।
राक्षस (मनुष्यों में) और अन्य लोग जिन्हें बुद्ध की सुप्रसिद्ध व्यवस्था में कोई विश्वास नहीं है, वे हमेशा बुराई करते हैं।

Parisanam catassannam,

ahimsaya ca guttiya;
yam desesi mahaviro,
parittam tam bhanama he.
महान साहसी ने इस सूत्र का उपदेश इसलिए दिया ताकि यह उन्हें खतरों से बचाए और चारों सामाजिक वर्गों को कोई हानि न पहुंचे। हे श्रेष्ठजनों! आइए हम इस सूत्र का पाठ करें।

विपस्सीसा सीए नमत्तु,
चक्खुमंतस्सा सिरिमतो;
सिक्खिस्सपि च नमत्थु,
सब्बाभूता-नुकमपिनो।
ज्ञान और महिमा की आंख से युक्त विपश्यी बुद्ध को श्रद्धांजलि; सभी प्राणियों के प्रति महान दयालु सिखी बुद्ध को श्रद्धांजलि।

वेस्साभुस्सा च नमत्तु,
नहतकास्सा तपासिनो;
नमत्तु ककुसंधास्सा,
मरासेना-पमाद्दिन्नो।
वेसाभु बुद्ध को श्रद्धांजलि, जिन्होंने सभी अशुद्धियों को धो डाला और जिनके पास अच्छी तपश्चर्या है। काकुसंध बुद्ध को श्रद्धांजलि जिन्होंने मारा (दुष्ट) की सेना को हराया।

कोनगामनस्सा नामत्तु,
ब्राह्मणस्सा वुसिमतो;
कस्सापास्सा च नमत्थु,
विप्पमुत्तस्सा सबब्धि।
कोनागमन बुद्ध को श्रद्धांजलि जिन्होंने सभी बुराइयों को मिटा दिया और महान जीवन जीया। कस्पा बुद्ध को श्रद्धांजलि जो सभी अशुद्धियों से मुक्त हो गए।

अंगिरसस्सा नामत्तु,
शाक्यपुत्तस्सा सिरिमतो;
यो इमाम धम्मम देसेसि,
सबदुक्खा-पनुदानम।
गौतम बुद्ध ने इस धम्म का उपदेश दिया जिसने सभी कष्टों को दूर कर दिया। शाक्यों के इस पुत्र (गौतम बुद्ध) को श्रद्धांजलि, जिनके शरीर से प्रकाश की किरणें निकलती थीं और जो गौरवशाली थे।

Ye capi nibbuta loke,
yathabhutam vipassisum;
te jana apisunatha,
mahanta vitasarada.
इस संसार में, जिन्होंने सभी वासनाओं की ज्वालाओं को बुझा दिया है और चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में भली-भांति देख लिया है - ये अरहंत होने के कारण कभी निंदा नहीं करते। वे महान और भयमुक्त होते हैं।

हितम देवा मनुस्सनम्,
यं नमस्सन्ती गौतमम्;
विजयचरणसंपन्नम्,
महन्तम् वितसारदम्।
वे गौतम बुद्ध को प्रणाम करते हैं, जो देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं, जो ज्ञान और अच्छे आचरण से संपन्न हैं, जो महान और भयमुक्त हैं।

Ete canne ca sambuddha,

Aneka satakotiyo;
sabbe buddha samasama,
sabbe buddha mahiddhika.
वे सात बुद्ध और अन्य करोड़ों बुद्ध—ये सभी बुद्ध पूर्वोक्त बुद्धों के समान हैं, इन सभी बुद्धों में महान शक्ति है।

सब्बे दास बलुपेत,
वेसरज्जेह-उपगत;
सब्बे ते पतिजनन्ति,
असभम थाना मुत्तमम्।
ये सभी बुद्ध दस प्रकार की शक्तियों और निर्भयता के ज्ञान से संपन्न हैं। ये सभी बुद्ध सर्वज्ञता की अवस्था का दावा करते हैं।

ये बुद्ध, आठ प्रकार के श्रोताओं में निर्भीक होकर , सिंह के समान गर्जना करते
हैं

और बिना पीछे मुड़े संसार में धर्मचक्र को गतिमान करते हैं ।

उपेता बुद्ध धम्मेहि,
अत्थरसहि नायका;
बत्तिम्सा लक्खानुपेता,
सीता नुब्यंजन धरा।
ये विश्व के नेता बुद्धों के अठारह विशेष गुणों से संपन्न हैं। उनमें 'महान पुरुष' के बत्तीस प्रमुख लक्षण और अस्सी लघु लक्षण हैं।

ब्यामा पप्पाभाया सुप्पभा,
सब्बे ते मुनि कुंजारा;
बुद्ध सब्बन्नुनो एते,
सब्बे खिनसव जिना।
ये सभी परम संत आसपास के प्रभामंडल से चमकते हैं; ये सभी बुद्ध सर्वज्ञ हैं। इन सभी बुद्धों ने अशुद्धियों को समाप्त कर दिया है और वे विजेता हैं।

महापभा महातेजा,
महापन्ना महाबबला;
महाकरुणिका धीरा,
सब्बेसनम सुखवः।
ये बुद्ध तेजस्वी प्रकाश, महान शक्ति, महान ज्ञान, महान सामर्थ्य, महान करुणा और स्थिर एकाग्रता से परिपूर्ण हैं। वे सभी प्राणियों के सुख को पूर्ण करते हैं।

Dipa natha patittha ca,
tana lena ca paninam;
gati bandhu mahessasa,
sarana ca hitesino.
वे प्राणियों के द्वीप हैं, स्वामी हैं, आधार हैं, रक्षक हैं, आश्रय हैं, आश्रयस्थल हैं, मित्र हैं, गौरवशाली उद्धारकर्ता हैं, शरणस्थल हैं, और वे सभी प्राणियों के कल्याण की कामना करते हैं।

सदेवकस्सा लोकस्सा,
सब्बे एते पारायण;
तेसाऽहं सिरसा पदे,
वंदामि पुरीसुत्तमे।

ये सभी बुद्ध देवताओं और मनुष्यों की दुनिया के लिए दयालु आश्रय हैं। मैं इन परमपुरुषों के चरणों में आदरपूर्वक अपना सिर झुकाता हूं।

Vacasa manasa ceva,
vandam-ete tathagate;
sayane asane thane,
gamane capi sabbada.
मैं इन सिद्ध पुरुषों को शब्दों और विचारों से प्रणाम करता हूँ, चाहे मैं लेटा हुआ हूँ, बैठा हूँ, खड़ा हूँ या चल रहा हूँ।

सदा सुक्खेन रक्खंतु,
बुद्ध संतिकारा तुवम्;
तेहि त्वं रक्खितो सन्तो,
मुत्तो सब्बभयेहि च।
शांतिदूत बुद्ध हमेशा आपकी रक्षा करें ताकि आप खुश रहें। उनके द्वारा सुरक्षित रहकर तुम सभी खतरों से मुक्त हो जाओ।

सब्बरोगा विनीमुत्तो,
सब्बसंताप वज्जितो;
सब्बवेरम्-अतिक्कन्तो,
निब्बुतो च तुवम् भव।
आप सभी रोगों से मुक्त हों, चिंता और व्याकुलता से मुक्त हों। आप सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और शांतिवान रहें।

Tesam saccena silena,
khanti metta balena ca;
tepi amhe-nurakkhantu,
arogena sukhena ca.
उनके सत्यवाद, सद्गुण, धैर्य और प्रेम की शक्ति से, वे बुद्ध हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

पुरत्थिमास्मिं दिसाभगे,
सन्ति भूत महिद्धिका;
तेपि अमहे-नुरक्खंतु,
अरोगेन सुखेना च।
पूर्व दिशा में गंधर्व नामक दिव्य सत्ताएं विराजमान हैं, जो महान शक्ति से परिपूर्ण हैं। वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

दक्षिण दिशा में कुम्भंड नामक दिव्य प्राणी विराजमान हैं, जिनके पास अपार शक्ति है
।

वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

पश्चिम दिशा में महान शक्ति वाले नाग (दिव्य ड्रैगन)
विराजमान

हैं। वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें ।

उत्तरास्मिं दिसाभगे,
सन्ति यक्खा महिद्धिका;

तेपि अमहे-नुरक्खंतु,
अरोगेन सुख्खेना च।
उत्तर दिशा में महान शक्ति वाले यक्ख नामक दिव्य प्राणी विराजमान हैं। वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

पुरत्थिमेना धतरत्थो,
दक्खिनेन विरुलहको;
पच्चिमेना विरुपक्खो,
कुवेरो उत्तरम दिसम।
पूर्व में धतरत्थ, दक्षिण में विरुल्हक, पश्चिम में विरुपक्खा और उत्तर में कुवेरा है।

Cattaro te maharaja,
lokapala yasassino;
tepi amhe-nurakkhantu,
arogena sukhena ca.
ये चारों दिव्य राजा विशाल दल-बल के साथ संसार के रक्षक हैं। ईश्वर करे कि वे हमारी भी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

आकाश और पृथ्वी पर विराजमान शक्तिशाली देवता और नाग हैं। वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें ।

इद्धिमान्तो च ये देवा,
वसंत इधा ससाने;
तेपि अमहे-नुरक्खंतु,
आरोगेन सुखेना च।
बुद्ध के उपदेशों के दायरे में महान शक्ति वाले देवता निवास करते हैं। वे हमारी रक्षा करें ताकि हम सभी रोगों से मुक्त होकर सुखी रहें।

सब्बितियो विवज्जन्तु,
सोको रोगो विनस्सतु;
मा ते भवन्त्व-अंतराय,
सुखी दिघयुको भव।
सभी विपत्तियाँ आपसे दूर रहें। दुःख और रोग नाश हों। आपको कभी कोई संकट न आए। आपको सुख और दीर्घायु प्राप्त हो।

अभिवदना सिलिसा,
निक्कम वुद्धपकायिनो;
कत्तरो धम्म वड्ढन्ति,
आयु वन्नो सुखं बलम्।
जो लोग पवित्र संस्कृति से संपन्न हैं और हमेशा बड़ों का सम्मान करते हैं, उनके लिए ये चार उपहार वाली चीजें बढ़ती हैं: दीर्घायु, सौंदर्य, खुशी और ताकत।

अतनतिय सुत्तं निश्चितम्।

यहां अतानाटा के दिव्य शहर में संरक्षण पर प्रवचन समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.10 संगीति सुत्त (DN33)

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ मल्ला देश की यात्रा कर रहे थे। मल्लाओं की राजधानी पावा पहुँचकर वे चुंडा लोहार के आम के बाग में ठहरे।

उस समय पावा के मल्लों का एक नया सभा-महल, जिसे उभतक कहा जाता था, हाल ही में निर्मित हुआ था और उसमें अभी तक कोई तपस्वी, ब्राह्मण या वास्तव में कोई मनुष्य नहीं ठहरा था। यह सुनकर कि भगवान चुंडा के आम के बाग में ठहरे हुए हैं, पावा के मल्ल उनसे मिलने गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और बोले:

हे भगवान, पावा के मल्लों ने हाल ही में उब्भटक नामक एक नया सभा-महल बनवाया है, और अभी तक इसमें किसी तपस्वी, ब्राह्मण या किसी भी मनुष्य ने प्रवेश नहीं किया है। ईश्वर ही इसे उपयोग करने वाले पहले व्यक्ति हों! यदि वे ऐसा करते हैं, तो यह पावा के मल्लों के लिए चिरस्थायी कल्याण और सुख का कारण बनेगा।

और भगवान ने मौन रहकर सहमति दी।

उनकी सहमति देखकर मल्ला उठे, उन्हें प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर से निकलकर सभा भवन में चले गए। उन्होंने चारों ओर चटाइयाँ बिछाईं, कुटियाएँ लगाईं, पानी का पात्र और तेल का दीपक जलाया और फिर भगवान के पास लौटकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपने किए हुए कार्य की सूचना देते हुए कहा,

जब भी भगवान परमेश्वर तैयार होंगे।

फिर भगवान ने वस्त्र धारण किए, अपना वस्त्र और कुंड लिया और अपने भिक्षुओं के साथ सभा भवन में गए। वहाँ उन्होंने अपने पैर धोए, भवन में प्रवेश किया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके केंद्रीय स्तंभ के पास बैठ गए। भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोए और भवन में प्रवेश करके भगवान के सामने पूर्व दिशा की ओर मुख करके पश्चिमी दीवार के पास बैठ गए। पावा मल्लों ने भी अपने पैर धोए, भवन में प्रवेश किया और भगवान के सामने पश्चिम दिशा की ओर मुख करके पूर्वी दीवार के पास बैठ गए। फिर भगवान ने रात के समय मल्लों को धम्म के विषय में उपदेश दिया, उन्हें उपदेश दिया, प्रेरित किया, उनमें जोश भर दिया और उन्हें आनंदित किया। फिर उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया,

"वासत्थास, रात बीत चुकी है। अब आप जो चाहें करें।"

"बहुत अच्छा, भगवान।" मल्लाओं ने उत्तर दिया, और वे उठकर भगवान को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से गुजरते हुए बाहर चले गए।

मल्लों के जाते ही, भगवान ने चारों ओर चुपचाप बैठे भिक्षुओं को देखकर पूज्य सारिपुत्त से कहा,

"सारिपुत्त, भिक्षु आलस्य और सुस्ती से मुक्त हैं; आप उनके लिए धर्म पर प्रवचन देने के बारे में सोचें। मेरी पीठ में दर्द हो रहा है, मैं उसे फैलाना चाहता हूँ।"

"बहुत अच्छा, भगवान," सारिपुत्त ने उत्तर दिया।

तब भगवान ने अपने वस्त्र को चार भागों में मोड़कर, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में अपने दाहिनी ओर लेट गए, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहते हुए और उठने के समय को ध्यान में रखते हुए।

उस समय निगंथा नटपुत्त का पावा में निधन हो गया था और उनकी मृत्यु के बाद निगंथा दो गुटों में बंट गए थे, आपस में झगड़ते और विवाद करते हुए। ऐसा लग रहा था मानो वे एक-दूसरे को जान से मार डालने पर तुले हों। यहां तक कि श्वेत वस्त्रधारी अनुयायी भी यह देखकर निराश हो गए कि उनके सिद्धांत और अनुशासन का प्रचार-प्रसार गलत तरीके से किया जा रहा है... क्योंकि इसका प्रचार एक ऐसे व्यक्ति ने किया था जो पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं था, और अब बिना गुरु के ही इसका समर्थन करने वाले लोग भी भटक गए थे।

और पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए इस स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा, "उनका उपदेश और अनुशासन इतना कुप्रचारित, इतना अप्रशंसनीय और भावनाओं को शांत करने में इतना अप्रभावी था, क्योंकि इसका उपदेश एक ऐसे व्यक्ति ने दिया था जो पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं था। परन्तु मित्रों, इस धर्म का उपदेश भगवान ने, जो पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, भली-भांति दिया है, इसलिए हम सभी को बिना किसी मतभेद के इसका एक साथ पाठ करना चाहिए, ताकि यह पवित्र जीवन दीर्घस्थायी और स्थिर रहे, इस प्रकार समस्त जन कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए हो। और यह कौन सा धर्म है जिसका उपदेश भगवान ने भली-भांति दिया है?"

"एक बात है जिसका पूर्णतः ज्ञान प्राप्त बुद्ध को जानने और देखने वाले भगवान ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। इसलिए हम सभी को देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, सुख और लाभ के लिए मिलकर उसका पाठ करना चाहिए। वह एक बात क्या है? सभी प्राणी पोषण से पोषित होते हैं, सभी प्राणी अनुकूल परिस्थितियों से पोषित होते हैं।"

"दो ऐसी बातें हैं जिनका भगवान ने पूर्णतया प्रचार किया है...वे कौन सी हैं?"

I. मन और शरीर

II. अज्ञान और अस्तित्व की लालसा

III. निरंतर अस्तित्व में विश्वास और अस्तित्वहीनता में विश्वास

IV. नैतिक शर्म का अभाव और नैतिक भय का अभाव

V. नैतिक शर्म और नैतिक भय

VI. क्रूरता और बुराई से मित्रता

VII. अच्छे लोगों के साथ नम्रता और मित्रता

VIII. अपराधों को जानने और उनसे पुनर्वास की प्रक्रिया में कौशल

IX. ज्ञान में प्रवेश करने और वहां से लौटने में कौशल

X. अठारह तत्वों को जानने और उन पर ध्यान देने का कौशल (सजगता)

Ø छह इंद्रियां, उनका मन छठी इंद्रिय के रूप में, उनके विषय और संबंधित चेतनाएं (आंख, दृष्टि-विषय और आंख की चेतना आदि)

XI. बारह इंद्रियों और आश्रित उत्पत्ति को जानने की कुशलता

XII. कारणों और अनपेक्षित कारणों को जानने की कुशलता

XIII. स्पष्टवादिता और विनम्रता

14. धैर्य और कोमलता

XV. सौम्य वाणी और शिष्टाचार

सोलहवाँ. अहिंसा और पवित्रता

सत्रह. सचेतनता और स्पष्ट जागरूकता का अभाव

XVIII. सजगता और स्पष्ट जागरूकता

XIX. इंद्रियों पर अनियंत्रित नियंत्रण और खाने में संयम की कमी

XX. सचेत इंद्रिय द्वार और भोजन में संयम

XXI. चिंतन की क्षमता और मानसिक विकास

XXII. ध्यान और एकाग्रता की शक्तियाँ

XXIII. शांति और अंतर्दृष्टि

XXIV. शांति का संकेत और उस संकेत को समझना

XXV. प्रयास और ध्यान भटकाव से मुक्ति

XXVI. नैतिकता और सही दृष्टिकोण की प्राप्ति

XXVII. नैतिकता और सही दृष्टिकोण की विफलता

XXVIII. नैतिकता की शुद्धता और सही दृष्टिकोण

XXIX. सही दृष्टिकोण की शुद्धता और उसे प्राप्त करने का प्रयास

XXX. किसी ऐसी चीज़ से प्रेरित होकर तात्कालिकता की भावना उत्पन्न होना जो हमें प्रेरित करे, और उस प्रेरित व्यक्ति का व्यवस्थित प्रयास

XXXI. अच्छे कार्यों से संतुष्ट न होना और प्रयास करने से पीछे न हटना

XXXII. ज्ञान और मुक्ति

XXXIII. अशुद्धियों के विनाश और उनके पुनरावर्तन न होने का ज्ञान।

"ये दो बातें हैं जिनका भगवान ने पूर्णतः प्रचार किया है, इसलिए हमें इन्हें एक साथ पढ़ना चाहिए।"

"तीन चीजों के दो समूह हैं। वे कौन से समूह हैं?"

I. तीन अस्वास्थ्यकर जड़ें

मान गया

ख. घृणा

ग. भ्रम

II. तीन पौष्टिक मूल

ए. लोभ रहित

ख. घृणा रहित

सी. भ्रम रहित

III. शरीर, वाणी और विचार में तीन प्रकार के गलत आचरण होते हैं।

IV. शरीर, वाणी और विचार में तीन प्रकार के सही आचरण होते हैं।

V. तीन प्रकार के अस्वास्थ्यकर विचार

ए. कामुकता

बी. शत्रुता

ग. क्रूरता

VI. तीन प्रकार के सार्थक विचार

ए. त्याग

ख. शत्रुता न रखना

ग. अहिंसा

VII. तीन प्रकार की अस्वास्थ्यकर प्रेरणा

ए. कामुकता के माध्यम से

बी. शत्रुता के माध्यम से

ग. क्रूरता के माध्यम से

VIII. तीन प्रकार की स्वस्थ प्रेरणा

ए. त्याग के माध्यम से

ख. शत्रुता न रखने के माध्यम से

ग. अहिंसा के माध्यम से

IX. तीन प्रकार की अस्वास्थ्यकर धारणाएँ

ए. कामुकता का

ख. शत्रुता का

ग. क्रूरता का

X. तीन प्रकार की स्वस्थ धारणाएँ

क. त्याग का

ख. शत्रुता न रखने का

ग. निर्दयता का अभाव

XI. तीन अस्वास्थ्यकर तत्व

ए. कामुकता

बी. शत्रुता

ग. क्रूरता

XII. तीन स्वास्थ्यवर्धक तत्व

ए. त्याग

ख. शत्रुता न रखना

ग. अहिंसा

XIII. तीन और तत्व

ए. इंद्रिय-इच्छा का तत्व

b. रूप का तत्व

ग. निराकार तत्व

XIV. तीन और तत्व

ए. रूप का तत्व

b. निराकार तत्व

ग. समाप्ति का तत्व

XV. तीन और तत्व

ए. निम्न तत्व

b. मध्य तत्व

ग. उदात्त तत्व

16. लालसा के तीन प्रकार

ए. कामुक लालसा

b. बनने की लालसा

ग. विलुप्त होने की लालसा

सत्रहवीं. लालसा के तीन और प्रकार

क. इंद्रिय सुखों की दुनिया के लिए तड़प

b. आकार की दुनिया के लिए लालसा

ग. निराकार जगत की लालसा

XVIII. लालसा के तीन और प्रकार

ए. रूप की दुनिया के लिए

ख. निराकार जगत के लिए

सी. समाप्ति के लिए

XIX. तीन बेड़ियाँ

ए. व्यक्तित्व विश्वास का

ख. संदेह का

ग. रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के प्रति आसक्ति

XX. तीन भ्रष्टाचार

ए. इंद्रिय इच्छा का

ख. बनने का

ग. अज्ञानता का

XXI. तीन प्रकार के विकास

ए. इंद्रिय-इच्छा की दुनिया में

बी. प्रपत्र का

ग. निराकार जगत में

XXII. तीन खोज

ए. इंद्रिय संबंधी इच्छाओं के लिए

b. बनने के लिए

ग. पवित्र जीवन के लिए

XXIII. अभिमान के तीन रूप

ए. मैं इससे बेहतर हूँ...

b. मैं इसके बराबर हूँ...

सी. मैं इससे भी बदतर हूँ...

XXIV. तीन बार

बीता हुआ

बी. भविष्य

सी. वर्तमान

XXV. तीन "छोर"

ए. व्यक्तित्व

बी. यह उभर रहा है

सी. यह समाप्ति है

XXVI. तीन भावनाएँ

खुशगवार

बी. दर्दनाक

सी. तटस्थ

XXVII. तीन प्रकार के दुख

ए. दर्द के रूप में

b. संरचनाओं में अंतर्निहित के रूप में

सी. परिवर्तन के कारण

XXVIII. तीन संचय

ए. निश्चित परिणाम वाली बुराई

b. निश्चित परिणाम के साथ अच्छा

सी. अनिश्चित

XXIX. तीन अवरोध

ए. एक व्यक्ति हिचकिचाता है

b. व्यक्ति दुविधा में रहता है, अनिर्णय की स्थिति में रहता है

ग. अतीत, भविष्य और वर्तमान को लेकर अनिश्चित है

XXX. तीन ऐसी चीजें जिनसे तथागत को सावधान रहने की कोई आवश्यकता नहीं है

ए. तथागत शारीरिक आचरण में पूर्णतः शुद्ध होते हैं।

ख. ...भाषण में

ग. ...विचार में

घ. शरीर, वाणी या विचार से किया गया कोई भी कुकर्म ऐसा नहीं है जिसे उसे छिपाना पड़े, कहीं ऐसा न हो कि किसी को इसके बारे में पता चल जाए।

XXXI. तीन बाधाएँ

ए. वासना

ख. घृणा

ग. भ्रम

XXXII. तीन आग

ए. वासना

ख. घृणा

ग. भ्रम

XXXIII. तीन और आग

क. पूजनीय व्यक्तियों की अग्नि

ख. गृहस्थ का

ग. भेंट के योग्य लोगों में से

XXXIV. पदार्थ का त्रिविध वर्गीकरण

ए. दृश्यमान और प्रतिरोधी

बी. अदृश्य और प्रतिरोध करने वाला

ग. अदृश्य और प्रतिरोधहीन

XXXV. कर्म निर्माण के तीन प्रकार

ए. मेधावी

बी. अवगुणात्मक

सी. अविचलित

XXXVI. तीन प्रकार के व्यक्ति

ए. शिक्षार्थी

b. गैर-शिक्षार्थी

ग. वह जो न तो है और न ही वह

XXVII. तीन प्रकार के बुजुर्ग

ए. जन्म से बड़ा

ख. ...धम्म में

ग. ...परंपरा के अनुसार

XXXVIII. योग्यता पर आधारित तीन आधार

ए. देने का

ख. नैतिकता का

ग. ध्यान का

XXXIX. निंदा के तीन आधार

ए. जो देखा गया है उसके आधार पर

बी. ...सुना

ग. ...संदिग्ध

एक्सटी. इंद्रिय-इच्छा के क्षेत्र में पुनर्जन्म के तीन प्रकार

क. कुछ ऐसे प्राणी हैं जो अपने सामने प्रकट होने वाली चीजों की इच्छा रखते हैं और उस इच्छा के वश में रहते हैं, जैसे मनुष्य, कुछ देवता और कुछ दुखी अवस्था में रहने वाले प्राणी।

ख. कुछ ऐसे प्राणी भी होते हैं जो अपनी ही रचना की कामना करते हैं, जैसे कि देव जो अपनी ही रचना में आनंदित होते हैं।

ग. कुछ ऐसे प्राणी भी हैं जो दूसरों की रचनाओं में आनंदित होते हैं, जैसे कि देव जो दूसरों की रचनाओं पर अधिकार रखते हैं।

XLI. तीन सुखद पुनर्जन्म

क. कुछ ऐसे प्राणी हैं जो निरंतर सुख उत्पन्न करते हुए अब स्वयं सुख में निवास करते हैं, जैसे ब्रह्म समूह के देव।

ख. कुछ ऐसे प्राणी हैं जो आनंद से परिपूर्ण हैं, उसमें सराबोर हैं, उसमें मग्न हैं, यहाँ तक कि वे कभी-कभी "ओह, कितना आनंद है!" जैसे तेजस्वी देवों का उद्गार प्रकट करते हैं।

ग. ऐसे प्राणी भी हैं जो परम आनंद में लीन हैं, केवल पूर्ण सुख का अनुभव करते हैं, जैसे तेजस्वी देव।

XLII. तीन प्रकार की बुद्धि

क. शिक्षार्थी का

b. गैर-शिक्षार्थी का

ग. उस एक के बारे में जो न तो है और न ही वह है

XLIII. तीन और प्रकार की बुद्धिमत्ता

ए. विचार पर आधारित

ख. अधिगम (श्रवण) पर आधारित

ग. मानसिक विकास पर आधारित (ध्यान)

44. तीन शस्त्र

क. जो कुछ सीखा है

बी. टुकड़ी

ग. ज्ञान

XLV. तीन संकाय

क. यह जानना कि व्यक्ति अज्ञात को जान लेगा

ख. उच्चतम ज्ञान का

ग. उस एक के बारे में जो जानता है

XLVI. तीन आँखें

ए. मांसल आँख

बी. दिव्य दृष्टि

ग. ज्ञान की आँख

XLVII. तीन प्रकार के प्रशिक्षण

ए. उच्च नैतिकता में

बी. उच्चतर चिंतन में

ग. उच्चतर ज्ञान में

XLVIII. विकास के तीन प्रकार

ए. भावनाओं का

ख. मन का

ग. ज्ञान का

19. तीन "अतुलनीय"

ए. दृष्टि का

ख. अभ्यास का

ग. मुक्ति का

एल. सांद्रता के तीन प्रकार

क. सोच-विचार करते हुए

b. बिना सोचे-समझे विचार करना

c. इनमें से किसी के साथ नहीं

एलआई. सांद्रता के तीन और प्रकार

ए. शून्यता पर

b. "चिह्नहीन" पर

ग. इच्छा रहित

LII. तीन शुद्धताएँ

ए. शरीर का

ख. भाषण का

ग. मन का

LIII. ऋषि के तीन गुण

ए. शरीर के संबंध में

ख. भाषण के संबंध में

ग. मन के संबंध में

LIV. तीन कौशल

आगे बढ़ते हुए

बी. नीचे जाने में

ग. प्रगति के साधनों में

एल.वी. तीन नशा

ए. स्वास्थ्य के साथ

ख. युवाओं के साथ

ग. जीवन के साथ

LVI. तीन प्रमुख प्रभाव

ए. स्वयं

बी. दुनिया

ग. धम्म

LVII. चर्चा के तीन विषय

क. बातचीत अतीत की हो सकती है, "पहले ऐसा ही होता था"

बी. यह भविष्य की बात हो सकती है, "ऐसा ही होगा"

ग. बातचीत वर्तमान के बारे में हो सकती है, "अभी स्थिति ऐसी ही है"

LVIII. तीन प्रकार के ज्ञान

क. अपने पिछले जन्मों के बारे में

ख. प्राणियों की मृत्यु और पुनर्जन्म के बारे में

ग. भ्रष्टाचारों के विनाश के बारे में

LIX. तीन निवास

ए. देव-स्थायी

ख. ब्रह्म-स्थायी

ग. आर्यों में निवास करने वाला

LX. तीन चमत्कार

ए. मानसिक शक्ति का

ख. टेलीपैथी के बारे में

सी. निर्देश का

"ये तीन चीजों के समूह हैं, इसलिए हमें देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए इनका एक साथ पाठ करना चाहिए।"

"चार बातों के ऐसे समूह हैं जिनकी भगवान द्वारा पूर्णतः घोषणा की गई है।"

I. "सजगता के चार आधार: यहाँ एक भिक्षु शरीर को शरीर के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, चिंतन करता है; वह भावनाओं को भावनाओं के रूप में देखते हुए चिंतन करता है... वह मन को मन के रूप में देखते हुए चिंतन करता है... वह मन की वस्तुओं को मन की वस्तुओं के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर चिंतन करता है।"

II. "चार महान प्रयास: यहाँ एक भिक्षु अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा को उत्तेजित करता है, अपने मन को लगाता है और उत्पन्न हो चुकी अकारण बुरी मानसिक अवस्थाओं को रोकने का प्रयास करता है। वह अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है और उत्पन्न हो चुकी बुरी मानसिक अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है और उत्पन्न न हो चुकी अच्छी मानसिक अवस्थाओं को उत्पन्न करने का प्रयास करता है। वह अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है और उत्पन्न हो चुकी अच्छी मानसिक अवस्थाओं को बनाए रखने का प्रयास करता है, उन्हें लुप्त न होने देने का, उन्हें और अधिक विकास की ओर ले जाने का, विकास की पूर्णता की ओर ले जाने का प्रयास करता है।"

III. "सत्ता के चार मार्ग: यहाँ एक भिक्षु इच्छाशक्ति के प्रयास के साथ इरादे की एकाग्रता, ऊर्जा की एकाग्रता...चेतना की एकाग्रता, और इच्छाशक्ति के प्रयास के साथ जांच की एकाग्रता विकसित करता है।

चतुर्थ. "चार ध्यान अवस्थाएँ: यहाँ एक भिक्षु, सभी इंद्रिय इच्छाओं से विरक्त, अस्वस्थ मानसिक अवस्थाओं से मुक्त होकर, प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो चिंतन और मनन से युक्त, वैराग्य से उत्पन्न, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण है। चिंतन और मनन के शांत होने पर, आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त करके, वह द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो चिंतन और मनन रहित, एकाग्रता से उत्पन्न, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण है। आनंद के लुप्त होने पर, अविचलित, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहते हुए, वह अपने भीतर उस आनंद का अनुभव करता है जिसके विषय में ऋषि कहते हैं: "धन्य है वह जो समभाव और सजगता में रहता है," वह तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। और सुख और दुख का त्याग करके, और पूर्व के सुख और दुख के लुप्त होने पर, वह चतुर्थ ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो सुख और दुख से परे है, और समभाव और सजगता से शुद्ध है।"

V. "चार एकाग्रतापूर्ण ध्यान। इस ध्यान को विकसित और विस्तारित करने पर यह निम्नलिखित की ओर ले जाता है..."

ए. वर्तमान क्षण में सुख

b. ज्ञान और दृष्टि प्राप्त करना

ग. सचेतनता और स्पष्ट जागरूकता और

घ. भ्रष्टाचारों का नाश।

i. यह अभ्यास वर्तमान क्षण में सुख की ओर कैसे ले जाता है? यहाँ, एक भिक्षु चार ध्यान साधनाओं का अभ्यास कर रहा है।

ii. इससे ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति कैसे होती है? यहाँ, एक भिक्षु प्रकाश के अवलोकन पर ध्यान देता है, वह दिन और रात के बीच के संबंध को दिन और दिन और रात के बीच के संबंध पर केंद्रित करता है। इस प्रकार, एक स्पष्ट और निर्मल मन से, वह एक ऐसी अवस्था विकसित करता है जो प्रकाश से परिपूर्ण होती है।

iii. यह किस प्रकार सजगता और स्पष्ट जागरूकता की ओर ले जाता है? यहाँ, एक भिक्षु जानता है कि भावनाएँ जैसे उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं।

iv. यह अभ्यास विकारों के नाश में कैसे सहायक है? यहाँ, एक भिक्षु पाँच प्रकार के आसक्ति के उदय और पतन के चिंतन में लीन रहता है: "यह भौतिक रूप है, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है; ये भावनाएँ हैं, यह इनका उद्भव है, यह इसका अंत है; यह बोध है, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है; ये मानसिक रचनाएँ हैं, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है; यह चेतना है, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है।"

VI. "चार असीम अवस्थाएँ। यहाँ एक भिक्षु, प्रेम और करुणा से भरे हृदय के साथ, पहले एक भाग, फिर दूसरे, फिर तीसरे और चौथे भाग में व्याप्त होता है। इस प्रकार वह प्रेम और करुणा के विचार को ऊपर, नीचे और चारों ओर प्रचुर, विस्तृत, असीम रूप से, घृणा या दुर्भावना के बिना फैलाता रहता है। और इसी प्रकार करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव के साथ।"

VII. "चार निराकार ध्यान। यहाँ, एक भिक्षु शारीरिक संवेदनाओं से पूर्णतः परे होकर, सभी प्रतिरोध की भावना के लुप्त होने और विविधता की अनुभूति के प्रति अनासक्ति से, यह देखकर कि अंतरिक्ष अनंत है, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है। और अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र से पूर्णतः परे होकर, यह देखकर कि चेतना अनंत है, वह अनंत चेतना के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है। और अनंत चेतना के क्षेत्र से पूर्णतः परे होकर, यह देखकर कि कुछ भी नहीं है [बेहतर स्पष्टता के लिए "कुछ भी नहीं" का प्रयोग किया जा सकता है - वेबमास्टर], वह शून्यता के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है। और शून्यता के क्षेत्र से पूर्णतः परे होकर, वह न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति के क्षेत्र में पहुँचता है और वहीं स्थिर रहता है।"

VIII. "चार आधार: यहाँ एक भिक्षु यह निर्णय लेता है कि एक चीज का पीछा किया जाना है, एक चीज सहन की जानी है, एक चीज से बचा जाना है, एक चीज को दबा दिया जाना है।

9. "चार आर्य वंश। यहाँ, एक भिक्षु

क. वह किसी भी पुराने वस्त्र से संतुष्ट रहता है, ऐसी संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और अनुचित या अनुपयुक्त तरीके से वस्त्र प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता। यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह चिंतित नहीं होता, और यदि मिल भी जाए तो वह लालच और अंध इच्छा से ग्रस्त नहीं होता, बल्कि ऐसे खतरों से अवगत रहते हुए और उसके वास्तविक उद्देश्य को बुद्धिमानी से समझते हुए उसका उपयोग करता है। न ही वह किसी भी पुराने वस्त्र से संतुष्ट रहने पर अहंकारी होता है, और न ही वह दूसरों की निंदा करता है। और जो इस प्रकार कुशल, सजग, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होता है, वह प्राचीन, मूल आर्य वंश के प्रति सच्चा भिक्षु कहलाता है। फिर,

ख. एक भिक्षु भिक्षा में मिलने वाले किसी भी भोजन से संतुष्ट रहता है...फिर से,

ग. एक भिक्षु किसी भी पुराने आवास में संतुष्ट रहता है...और फिर,

घ. जो भिक्षु त्याग के प्रति प्रेम रखता है, वह त्याग में आनंदित होता है, और जो विकास के प्रति प्रेम रखता है, वह विकास में आनंदित होता है; अतः वह अभिमानी नहीं होता... और जो इस प्रकार कुशल, सजग, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होता है, वही प्राचीन, मूल आर्य वंश के प्रति सच्चा भिक्षु कहलाता है।

X. "चार प्रयास: का प्रयास

ए. संयम

बी. त्यागना

सी. विकास

डी. संरक्षण

i. संयम का प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु किसी वस्तु को आँखों से देखकर उसके संपूर्ण स्वरूप या उसके विवरणों को समझने का प्रयास नहीं करता, बल्कि उन भावनाओं को रोकने का प्रयास करता है जो उसके भीतर बुराई, अस्वस्थता, लालसा या दुःख जैसी भावनाओं को उत्पन्न कर सकती हैं। इस प्रकार वह अपनी दृष्टि को नियंत्रित करता है और उसकी रक्षा करता है। यहाँ, एक भिक्षु किसी वस्तु को नाक से सूंघकर उसके संपूर्ण स्वरूप या उसके विवरणों को समझने का प्रयास नहीं करता... इस प्रकार वह अपनी गंध को नियंत्रित करता है और उसकी रक्षा करता है। यहाँ, एक भिक्षु किसी वस्तु को सुनकर, चखकर या अपने कानों, जीभ या शरीर से स्पर्श करके उसके संपूर्ण स्वरूप या उसके विवरणों को समझने का प्रयास नहीं करता... इस प्रकार वह अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करता है और उनकी रक्षा करता है।

ii. त्याग का प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु कामवासना, घृणा, क्रूरता के विचार को स्वीकार नहीं करता, बल्कि उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे नष्ट करता है, उसे लुप्त कर देता है।

iii. विकास का प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु एकांत, वैराग्य, और निर्गमन पर आधारित अवस्थाओं, ऊर्जा, आनंद, शांति, एकाग्रता, समभाव की खोज के माध्यम से ज्ञानोदय के कारक को विकसित करता है, जो समर्पण की परिपक्वता की ओर ले जाता है।

iv. संरक्षण का प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु अपने मन में एकाग्रता के लिए किसी अनुकूल वस्तु को दृढ़ता से धारण करता है, जैसे कि कंकाल या कीड़ों से भरा हुआ, नीला-काला, छेदों से भरा और फूला हुआ शव। [मृत्यु ध्यान: "मठ में एक भूत" देखें]

XI. "चार प्रकार का ज्ञान: धम्म का ज्ञान, उससे संगत बातों का ज्ञान, दूसरों के मन का ज्ञान, और पारंपरिक ज्ञान।"

XII. "चार और ज्ञान: दुख का ज्ञान, उसका मूल, उसका निवारण और उसका मार्ग।"

XIII. "धारा प्राप्ति के चार कारक: अच्छे लोगों के साथ संगति, सच्चे धम्म को सुनना, पूर्ण ध्यान, संपूर्ण रूप से धम्म का अभ्यास।"

XIV. "धारा विजेता के चार लक्षण: यहाँ, आर्य शिष्य बुद्ध में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार:

क. "यह भगवान अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हैं, जो ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, कल्याणकारी हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने वाले अतुलनीय प्रशिक्षक हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं।"

ख. उन्हें धम्म पर अटूट विश्वास है, जैसा कि वे कहते हैं: "भगवान द्वारा अच्छी तरह से घोषित धम्म, जो यहाँ और अभी दृश्यमान है, कालातीत है, निरीक्षण के लिए आमंत्रित करता है, आगे की ओर ले जाता है, और जिसे बुद्धिमानों को स्वयं समझना चाहिए।"

ग. संघ में उनका अटूट विश्वास है, इस प्रकार: "भगवान के शिष्यों का संघ सुगठित है, सत्य आचरण वाला है, सही मार्ग पर है, पूर्ण मार्ग पर है; अर्थात् चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के मनुष्य। भगवान के शिष्यों का संघ आदर के योग्य है, संसार में अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।"

घ. वह ऐसे नैतिक मूल्यों से युक्त है जो श्रेष्ठजनों को प्रिय हैं, अटूट, दोषरहित, बेदाग, असंगतिरहित, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, निष्कलंक और एकाग्रता बढ़ाने वाले।

XV. "तपस्वी जीवन के चार फल: धारा में प्रवेश का फल, एक बार लौटने वाले का फल, न लौटने वाले का फल, और अरहंतत्व का फल।"

16. "चार तत्व: पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु।"

सत्रहवाँ। "चार पोषक तत्व: भौतिक, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; संपर्क दूसरा; मानसिक इच्छाशक्ति तीसरा, चेतना चौथा।"

XVIII. "चेतना के चार चरण: चेतना या तो आधार प्राप्त करती है

क. भौतिकता के संबंध में, भौतिकता को वस्तु और आधार के रूप में, आनंद के स्थान के रूप में, या इसी प्रकार के संदर्भ में

ख. भावनाएँ

ग. धारणाएँ

घ. मानसिक संरचनाएँ बनती हैं, और वहीं यह बढ़ती, विकसित होती और फलती-फूलती है।

XIX. "गलती करने के चार तरीके: व्यक्ति इच्छा, घृणा, भ्रम और भय के माध्यम से गलत रास्ते पर जाता है।"

XX. "इच्छा की चार उत्तेजनाएँ: भिक्षु में वस्त्र, भिक्षा, आवास, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व के कारण इच्छा उत्पन्न होती है।"

XXI. "प्रगति के चार प्रकार:

क. धीमी समझ के साथ कष्टदायक प्रगति

बी. शीघ्र समझ के साथ कष्टदायक प्रगति

ग. धीमी समझ के साथ सुखद प्रगति

d. शीघ्र समझ के साथ सुखद प्रगति

XXII. "प्रगति के चार और प्रकार:

ए. अधीरता से प्रगति करना

b. रोगी की प्रगति

सी. नियंत्रित प्रगति

d. शांत प्रगति

XXIII. "धम्म के चार मार्ग।"

क. लालसा के बिना

ख. बिना शत्रुता के

ग. सही जागरूकता के साथ

डी. सही एकाग्रता के साथ

XXIV. "धम्म का अनुसरण करने के चार तरीके: एक तरीका यह है कि

ए. वर्तमान में कष्टदायी है और भविष्य में भी कष्टदायी परिणाम लाता है।

बी. वर्तमान में कष्टदायी, लेकिन भविष्य में सुखद परिणाम लाता है।

ग. वर्तमान में सुखद प्रतीत होता है, लेकिन भविष्य में कष्टदायक परिणाम लाता है।

d. वर्तमान में सुखद है और भविष्य में भी सुखद परिणाम लाता है।

XXV. "धम्म के चार विभाजन:

ए. नैतिकता

बी. सांद्रता

ग. ज्ञान

डी. मुक्ति

XXVI. "चार शक्तियाँ:

ए. ऊर्जा

ख. सचेतनता

सी. सांद्रता

डी. ज्ञान

XXVII. "चार प्रकार के संकल्प:

ए. ज्ञान

ख. सत्य

ग. त्याग

डी. शांति।

XXVIII. "प्रश्नों के उत्तर देने के चार तरीके: प्रश्न

ए. सीधे उत्तर दिया जाना है

b. स्पष्टीकरण की आवश्यकता

ग. प्रतिप्रश्न की आवश्यकता

घ. अलग रखा जाना

XXIX. "चार प्रकार के कर्म—यहाँ हैं:

ए. काले परिणाम के साथ काला कम्मा

b. उज्ज्वल परिणाम के साथ उज्ज्वल कम्मा

c. काले और चमकीले रंग का कम्मा, काले और चमकीले परिणाम के साथ

d. वह कर्म जो न तो काला है और न ही चमकीला।

XXX. "देखने से प्राप्त होने वाली चार बातें:

ए. पूर्व जीवन, जिन्हें स्मृतियों द्वारा साकार किया जाना है

ख. मृत्यु और पुनर्जन्म, जिसे दिव्य दृष्टि द्वारा अनुभव किया जा सके।

ग. आठ मुक्ति, जिन्हें मानसिक शरीर के साथ प्राप्त किया जाना है।

घ. ज्ञान के द्वारा भ्रष्टाचारों का नाश होना।

XXXI. "चार बाढ़ें:

ए. कामुकता,

बी. बनना,

ग. गलत विचार

घ. अज्ञानता।

XXXII. "चार जुए

XXXIII. "चार बंधन तोड़ना, से

ए. कामुकता

b. बनना

सी. विचार

घ. अज्ञानता

XXXIV. "चार संबंध:

क. लालसा का शारीरिक बंधन

b. दुर्भावना

ग. रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के प्रति आसक्ति

डी. हठधर्मी कट्टरता

XXXV. "चार आसक्ति

ए. कामुकता के लिए

b. विचारों के लिए

ग. नियमों और रीति-रिवाजों के लिए

घ. अहंकार-विश्वास के लिए।

XXXVI. "चार प्रकार की उत्पत्ति:

ए. अंडे से

b. गर्भ से

सी. नमी से (लार्वा से विकसित जीव)

घ. स्वतः पुनर्जन्म (देवलोक में पुनर्जन्म लेना)

XXVII. "आर्यों के बोलने के चार तरीके: यह कहना कि किसी ने वह नहीं देखा, सुना, महसूस किया या जाना है जो उसने नहीं देखा, सुना, महसूस किया या जाना है।"

XXVIII. गर्भ में उतरने के तरीके:

क. व्यक्ति अनजाने में मां के गर्भ में प्रवेश करता है, अनजाने में वहां रहता है और अनजाने में ही उससे विदा लेता है।

ख. व्यक्ति गर्भ में ज्ञान के साथ प्रवेश करता है, अज्ञान के साथ रहता है और अज्ञान के साथ ही गर्भ से विदा होता है।

ग. व्यक्ति गर्भ में जानते हुए प्रवेश करता है, जानते हुए ही वहां रहता है और अनजान रहते हुए ही उससे विदा लेता है।

घ. व्यक्ति गर्भ में यह जानते हुए प्रवेश करता है, वहां यह जानते हुए रहता है और गर्भ से यह जानते हुए ही निकलता है।

XXXIX. "नया व्यक्तित्व प्राप्त करने के चार तरीके। व्यक्तित्व का अधिग्रहण होता है जो निम्न द्वारा संभव होता है:

ए. अपनी स्वयं की इच्छा से, न कि दूसरे की इच्छा से

b. दूसरे की इच्छा, स्वयं की नहीं।

सी. दोनों

डी. न ही

XL. "अर्पण के चार शुद्धिकरण। एक शुद्ध किया हुआ अर्पण है

ए. देने वाले द्वारा, लेकिन प्राप्तकर्ता द्वारा नहीं

b. प्राप्तकर्ता द्वारा, लेकिन दाता द्वारा नहीं

सी. न ही

डी. दोनों द्वारा।

XLI. "सहानुभूति के चार आधार"

ए. उदारता

ख. मनभावन भाषण

ग. लाभकारी आचरण

डी. निष्पक्षता

XLII. "चार गैर-आर्यन वाणी विधाएँ:

क. झूठ बोलने से परहेज करना

ख. ...अपमान से

ग. ...दुर्व्यवहार से

डी. ...व्यर्थ की गपशप से।

XLIII. "चार और गैर-आर्यन वाणी के तरीके: जो आपने देखा, सुना, महसूस या जाना नहीं है, उसे देखने, सुनने, महसूस करने या जानने का दावा करना।"

44. "आर्यों के बोलने के चार तरीके: यह कहना कि किसी ने वह नहीं देखा, सुना, महसूस किया या जाना है जो उसने नहीं देखा, सुना, महसूस किया या जाना है।"

XLV. "भाषण के चार और गैर-आर्यन तरीके: जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया या जाना है, उसे न देखने, सुनने, महसूस करने या जानने का दावा करना।"

XLVI. "आर्यों के भाषण के चार तरीके: यह बताना कि किसी ने क्या देखा, सुना, महसूस किया, जाना है।

472. "चार व्यक्ति: यहाँ एक निश्चित व्यक्ति

ए. स्वयं को पीड़ा देता है, स्वयं को पीड़ा देने का आदी है

b. दूसरों को सताता है, दूसरों को सताने का आदी है

ग. स्वयं को और दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, स्वयं को और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने का आदी है।

वह न तो स्वयं को और न ही दूसरों को पीड़ा देता है, न ही स्वयं को और न ही दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। इस प्रकार वह इस जीवन में भोग-विलास से मुक्त, शांत और आनंदमय होकर रहता है, और ब्रह्म के समान हो जाता है।

XLVIII. "चार और व्यक्ति। यहाँ एक व्यक्ति के जीवन को खतरा है।

ए. स्वयं को, लेकिन दूसरों को नहीं

b. दूसरों को, लेकिन खुद को नहीं।

सी. न ही

डी. दोनों

19. "चार और व्यक्ति:

ए. अंधेरे में रहना और वहीं रहने के लिए बाध्य

b. अंधकार में जीना और प्रकाश की ओर अग्रसर होना

ग. प्रकाश में जीना और अंधकार की ओर अग्रसर होना

घ. प्रकाश में रहना और वहीं बने रहना

एल. "चार और व्यक्ति:

ए. अविचल तपस्वी

ख. नीले कमल वाला तपस्वी

ग. श्वेत कमल तपस्वी

घ. सूक्ष्मता से परिपूर्ण तपस्वी

"ये चार बातें भगवान द्वारा पूर्णतः घोषित की गई हैं...इसलिए हम सभी को इनका एक साथ पाठ करना चाहिए...देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, भलाई और सुख के लिए।"

[प्रथम पाठ खंड का अंत]

"पांच चीजों के ऐसे समूह हैं जिनकी पूरी तरह से घोषणा की गई है..."
I. "पांच समुच्चय:

ए. शरीर

ख. भावनाएँ

ग. धारणाएँ

डी. मानसिक संरचनाएँ

ई. चेतना

II. ग्रहण करने के लिए पाँच समूह:

एफ. शरीर

जी. भावनाएँ

एच. धारणाएँ

i. मानसिक संरचनाएँ

जे. चेतना

III. "इंद्रिय इच्छा के पाँच सूत्र:

a. आँखों से देखा गया दृश्य

b. कान द्वारा सुनी जाने वाली ध्वनि

ग. नाक से सूंघी जाने वाली गंध

d. जीभ द्वारा चखा जाने वाला स्वाद।

ई. एक ऐसी मूर्त वस्तु जिसे शरीर वांछनीय, आकर्षक, सुंदर, मनमोहक, कामुकता से जुड़ी और जुनून जगाने वाली महसूस करता है।

IV. "मृत्यु के बाद की पाँच नियतियाँ:

नरक

बी. पशु पुनर्जन्म

ग. भूखे भूतों का साम्राज्य

डी. मानव जाति

ई. देवलोक

V. "पांच प्रकार की बेरुखी; जैसे कि

ए. रहने के स्थान

बी. परिवार

सी. लाभ

डी. सौंदर्य

ई. धम्म

VI. "पांच बाधाएँ:

ए. कामुकता

b. दुर्भावना

ग. आलस्य और सुस्ती

घ. चिंता और घबराहट

ई. संशयपूर्ण संदेह

VII. "पांच निचले बंधन:

ए. व्यक्तित्व विश्वास

ख. संदेह

ग. रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के प्रति आसक्ति

डी. कामुकता

ई. दुर्भावना

VIII. "पांच उच्चतर बेड़ियाँ

ए. रूप की दुनिया के लिए लालसा

ख. निराकार जगत की लालसा

सी. अभिमान

डी. बेचैनी

ई. अज्ञानता।

IX. "प्रशिक्षण के पाँच नियम: परहेज करना"

ए. जीवन लेना

b. जो नहीं दिया गया है उसे लेना

सी. यौन दुर्व्यवहार

घ. झूठ बोलना

ई. मादक पेय और आलस्य पैदा करने वाली दवाएँ

X. "पांच असंभव बातें: एक अरहंत के लिए ये असंभव हैं"

क. जानबूझकर किसी जीवित प्राणी की जान लेना

ख. बिना दी गई वस्तु को इस प्रकार लेना जिससे चोरी की श्रेणी में आए

सी. यौन संबंध

घ. जानबूझकर झूठ बोलना

ई. गृहस्थ जीवन में पहले की तरह ही इंद्रिय सुख की वस्तुओं का संचय करना।

XI. "पांच प्रकार की हानियाँ:

ए. रिश्तेदारों की हानि

बी. धन

सी. स्वास्थ्य

घ. नैतिकता

ई. सही दृष्टिकोण। कोई भी प्राणी अपने सगे संबंधियों, स्वास्थ्य या धन की हानि के कारण मृत्यु के बाद किसी बुरी अवस्था या नरक अवस्था में नहीं गिरता; परन्तु प्राणी नैतिकता और सही दृष्टिकोण की हानि के कारण ऐसी अवस्थाओं में गिर जाते हैं।

XII. "पांच प्रकार के लाभ:

ए. रिश्तेदारों का लाभ

बी. धन

सी. स्वास्थ्य

घ. नैतिकता

ई. सही दृष्टिकोण। कोई भी प्राणी मृत्यु के बाद सगे-संबंधियों, धन या स्वास्थ्य की प्राप्ति के कारण सुखी, स्वर्गीय अवस्था में जन्म नहीं लेता, बल्कि प्राणी नैतिकता और सही दृष्टिकोण में लाभ के कारण ऐसी अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेते हैं।

XIII. "नैतिकता से विमुख होने के कारण अनैतिक व्यक्ति को पाँच खतरे; अनैतिक व्यक्ति, गृहस्थ, सद्गुणों से विमुख होकर पाँच खतरों का सामना करता है: लापरवाही के कारण धन की भारी हानि; बदनामी; हर समाज में डरपोक और व्याकुल व्यवहार, चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों का हो या तपस्वियों का हो; विक्षिप्तता में मृत्यु; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, दुख के लोक में, दुखी अवस्था में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म।"

चौदहवाँ। "धर्मी व्यक्ति को उसके सद्गुणों के अभ्यास से पाँच आशीर्वाद प्राप्त होते हैं: परिश्रम से धन में भारी वृद्धि; अच्छी प्रतिष्ठा; हर समाज में, चाहे वह कुलीनों का हो, ब्राह्मणों का हो, गृहस्थों का हो या तपस्वियों का हो, आत्मविश्वास से भरा आचरण; शांतिपूर्ण मृत्यु; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर स्वर्गलोक में एक सुखी अवस्था में पुनर्जन्म।"

XV. "किसी भिक्षु को दूसरे भिक्षु को फटकार लगाने की इच्छा रखते समय ध्यान में रखने योग्य पाँच बिंदु:

क. मैं उचित समय पर बोलूंगा, अनुचित समय पर नहीं।

ख. मैं सत्य बोलूंगा, असत्य नहीं।

ग. मैं विनम्रता से बोलूंगा, कठोर तरीके से नहीं।

घ. मैं उसकी भलाई के लिए बोलूंगा, उसकी हानि के लिए नहीं।

e. मैं अपने हृदय में प्रेम से बोलूंगा, शत्रुता से नहीं।

16. "प्रयास के पाँच कारक: यहाँ, एक भिक्षु

क. तथागत के ज्ञान में आस्था रखते हुए, वे कहते हैं: 'यह भगवान अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, कल्याणकारी हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, बुद्ध हैं, भगवान हैं।' वे अपने ज्ञान से इस संसार को, इसके देवताओं, मारों, ब्रह्माओं, तपस्वियों और ब्राह्मणों के संसार को, इसके राजकुमारों और प्रजाजनों सहित, घोषित करते हैं। वे एक ऐसे धम्म का उपदेश देते हैं जो भाव और अक्षर दोनों में पूर्ण है, और वे पूर्णतः सिद्ध, शुद्धतम पवित्र जीवन का प्रदर्शन करते हैं। और वास्तव में ऐसे अरहंतों को देखना सुखद है।

ख. वह अच्छे स्वास्थ्य में है, उसे कम कष्ट या बीमारी होती है, उसका पाचन तंत्र अच्छा है जो न तो बहुत ठंडा है और न ही बहुत गर्म, बल्कि परिश्रम के लिए उपयुक्त मध्यम तापमान का है।

ग. वह कपटी या छलपूर्ण नहीं है, और अपने शिक्षक या पवित्र जीवन में अपने साथियों में से बुद्धिमान लोगों के सामने स्वयं को वैसे ही प्रकट करता है जैसा वह वास्तव में है।

घ. वह अस्वस्थ अवस्थाओं को त्यागने और स्वस्थ अवस्थाओं को जागृत करने के लिए अपनी ऊर्जा को निरंतर उत्तेजित रखता है।

ई. क्या वह एक ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है जिसे आर्यों के आक्रमण से उबरने और उसके निवारण के संबंध में ज्ञान प्राप्त है, जिससे दुख का पूर्ण विनाश होता है?

सत्रह. "पांच पवित्र निवास:

ए. अविहा

बी. बेफिक्र

ग. स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है

डी. स्पष्ट दृष्टि

ई. अद्वितीय

XVIII. "वापसी न करने वालों के पाँच प्रकार:

ए. आधे से कम समय

b. आधे से अधिक टाइमर

ग. बिना परिश्रम के लाभ प्राप्त करने वाला

d. परिश्रम से लाभ प्राप्त करने वाला

ई. जो शिखर तक, चोटी तक, नदी के विपरीत दिशा में जाता है

XIX. "पांच मानसिक अवरोध: यहाँ एक भिक्षु को संदेह और झिझक है"

क. शिक्षक के बारे में वह असंतुष्ट है और उसका मन शांत नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, लगन और प्रयास की ओर नहीं झुक रहा है।

ख. धम्म के विषय में वह असंतुष्ट है और उसका मन स्थिर नहीं हो पाता। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं होता।

ग. संघ के विषय में वह असंतुष्ट है और उसका मन स्थिर नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं है।

घ. प्रशिक्षण के संबंध में वह असंतुष्ट है और उसका मन शांत नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, समर्पण, दृढ़ता और प्रयास की ओर नहीं झुक रहा है।

ई. वह अपने साथी धर्मपरायणों से नाराज़ है, वह उनके प्रति उदास और नकारात्मक भाव रखता है। इस प्रकार उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर नहीं झुकता।

XX. "पांच मानसिक बंधन: यहाँ एक भिक्षु ने कामवासना, इच्छा, प्रेम, प्यास, बुखार, लालसा आदि से मुक्ति नहीं पाई है।"

क. इंद्रिय सुखों के कारण: उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं होता।

ख. शरीर के लिए: इस प्रकार उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं होता।

ग. भौतिक वस्तुओं के लिए: इस प्रकार उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं होता है, या

घ. पेट भरकर खाने के बाद वह लेटने, स्पर्श करने और आलस्य के सुख में लीन हो जाता है; या

वह किसी देवमंडल (चाहे छोटा हो या बड़ा) का सदस्य बनने के लिए पवित्र जीवन का अभ्यास करता है। इसलिए उसका मन उत्साह, भक्ति, लगन और प्रयास की ओर नहीं झुकता।

XXI. पाँच संकाय: वे संकाय जो

ए. आंखें

बी. कान

सी. नाक

डी. जीभ

ई. शरीर.

XXII. पाँच और संकाय:

ए. सुखद शारीरिक अनुभूति

बी. दर्द

ग. प्रसन्नता

डी. उदासी

ई. उदासीन भावना

XXIII. पाँच और संकाय:

ए. विश्वास

बी. ऊर्जा

ग. सचेतनता

डी. सांद्रता

ई. ज्ञान

XXIV. मुक्ति के लिए पाँच तत्व।

यहां, जब कोई भिक्षु इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं पर विचार करता है, तो उसका मन उनमें तल्लीन होकर संतुष्टि नहीं पाता, उन पर स्थिर नहीं होता या उनसे मुक्त नहीं हो जाता, परन्तु जब वह त्याग पर विचार करता है तो उसका मन तल्लीन होकर संतुष्टि पाता है, उस पर स्थिर होता है और उससे मुक्त हो जाता है। और वह इस विचार को अच्छी तरह से स्थापित, अच्छी तरह से विकसित, अच्छी तरह से उन्नत और इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से उत्पन्न होने वाले विकारों, कष्टों और ज्वर से अच्छी तरह मुक्त कर लेता है, और उसे वह इंद्रिय-संबंधी भावना महसूस नहीं होती। इसे ही इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्ति कहते हैं। और यही बात अन्य बातों पर भी लागू होती है।

बी. दुर्भावना

ग. क्रूरता

डी. प्रपत्र

ई. व्यक्तित्व

XXV. "मुक्ति के पाँच आधार; यहाँ

क. शिक्षक या कोई सम्मानित सह-शिष्य किसी भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है। शिक्षा ग्रहण करते समय, वह शिक्षा के भाव और शाब्दिक अर्थ दोनों को समझ लेता है। इससे उसमें आनंद उत्पन्न होता है, और इस आनंद से प्रसन्नता उत्पन्न होती है; इस प्रसन्नता से उसकी इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप उसे सुख का अनुभव होता है, और इस सुख से उसका मन स्थिर हो जाता है;

ख. उसने इसे इस प्रकार नहीं सुना है, बल्कि दूसरों को धम्म की शिक्षा देते समय उसने इसे जैसा सुना है वैसा ही कंठस्थ कर लिया है, या

ग. जैसे ही वह धम्म का पाठ कर रहा है... या

घ. ...जब वह धम्म पर अपना ध्यान लगाता है, उस पर विचार करता है, मनन करता है और अपना ध्यान उस पर केंद्रित करता है; या

जब वह एकाग्रता के किसी संकेत को ठीक से समझ लेता है, उस पर अच्छी तरह विचार करता है, अपना मन लगाता है और बुद्धि से उसका गहन अध्ययन कर लेता है, तब उसके मन में आनंद उत्पन्न होता है; और इस आनंद से उसे प्रसन्नता मिलती है, और इस प्रसन्नता से उसकी इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप उसे सुख का अनुभव होता है, और इस सुख से उसका मन स्थिर हो जाता है।

XXVI. "मुक्ति की परिपक्वता के लिए पाँच धारणाएँ: अनित्यता की धारणा, अनित्यता में पीड़ा की धारणा, पीड़ा में निराकारता की धारणा, त्याग की धारणा, वैराग्य की धारणा।"

"ये पाँच बातें हैं जिनका भगवान ने पूर्णतः प्रचार किया है..."

"छह ऐसी बातें हैं जिनका भगवान ने पूर्णतया प्रचार किया है..."

I. "छह आंतरिक इंद्रिय क्षेत्र:

ए. नेत्र क्षेत्र

b. कान का गोला

सी. नाक का गोला

डी. जीभ का गोला

ई. शरीर का गोला

एफ. मन इंद्रिय क्षेत्र

II. छह बाह्य इंद्रिय क्षेत्र:

ए. दृष्टि वस्तु

b. ध्वनि वस्तु

ग. वस्तु को सूंघें

d. स्वाद वस्तु

ई. मूर्त वस्तु

एफ. मन वस्तु

III. चेतना के छह समूह

ए. दृष्टि चेतना, ध्वनि चेतना आदि

IV. संपर्क के छह समूह

ए. आंखों का संपर्क, कानों का संपर्क, आदि

V. भावनाओं के छह समूह

ए. आंखों के संपर्क के आधार पर, कानों के संपर्क के आधार पर, आदि।

VI. धारणा के छह समूह:

ए. दृश्य, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और मानसिक वस्तुओं की अनुभूति।

VII. संकल्पों के छह समूह

ए. दृश्य, ध्वनि आदि पर आधारित इच्छाशक्ति

VIII. लालसा के छह समूह

ए. दृश्यों, ध्वनियों आदि की लालसा

IX. छह प्रकार के अनादर: यहाँ, एक भिक्षु शिक्षक, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, गंभीरता और आतिथ्य सत्कार के प्रति अनादरपूर्ण और असभ्य व्यवहार करता है।

X. छह प्रकार के आदर: यहाँ, एक भिक्षु शिक्षक, धम्म, संघ, प्रशिक्षण के प्रति सम्मानपूर्वक और विनम्रतापूर्वक व्यवहार करता है, गंभीरता और आतिथ्य सत्कार के सम्मान में।

XI. छह आनंददायक अन्वेषण: जब कोई व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखता है, या किसी मानसिक वस्तु को सुनता, सूंघता, चखता, छूता या जानता है [प्रत्येक अपने संबंधित इंद्रिय क्षेत्र के साथ], तो वह आनंद उत्पन्न करने वाली किसी संबंधित वस्तु का अन्वेषण करता है।

XII. छह अप्रिय अन्वेषण: जब कोई व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखता है, या किसी मानसिक वस्तु को सुनता, सूंघता, चखता, छूता या जानता है [प्रत्येक अपने संबंधित इंद्रिय क्षेत्र के साथ], तो वह किसी ऐसी वस्तु का अन्वेषण करता है जो अप्रियता उत्पन्न करती है।

XIII. छह उदासीन जांच: जब कोई व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आंख से देखता है, या किसी मानसिक वस्तु को सुनता, सूंघता, चखता, छूता या जानता है [प्रत्येक अपने संबंधित इंद्रिय क्षेत्र के साथ], तो वह उदासीनता उत्पन्न करने वाली किसी संगत वस्तु की जांच करता है।

चौदहवाँ। सांप्रदायिक जीवन के लिए छह सहायक बातें: जब तक भिक्षु सार्वजनिक और निजी दोनों ही रूप में अपने साथियों के प्रति शारीरिक, वाणी और विचार से सजीव दया प्रदर्शित करते हैं... अपने सद्गुणी साथियों के साथ वह सब कुछ साझा करते हैं जो उन्हें उचित उपहार के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें उनके भिक्षापात्र की सामग्री भी शामिल है, जिसे वे अपने लिए नहीं रखते... आचरण के उन नियमों का निरंतर, अटूट और अपरिवर्तित पालन करते हैं जो निर्मल हैं, मुक्ति की ओर ले जाते हैं, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं, बेदाग हैं और एकाग्रता के लिए सहायक हैं, और सार्वजनिक और निजी दोनों ही रूप में अपने नेक साथियों के साथ उनमें दृढ़ रहते हैं... उस महान दृष्टिकोण में बने रहते हैं जो मुक्ति की ओर ले जाता है, दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाता है, सार्वजनिक और निजी दोनों ही रूप में अपने साथियों के साथ ऐसी जागरूकता में बने रहते हैं, जब तक कि वे उचित भेंट के रूप में प्राप्त होने वाली चीजों के संबंध में, यहां तक कि उनके भिक्षापात्र की सामग्री के संबंध में भी, उन्हें समुदाय के सद्गुणी सदस्यों के साथ साझा किए बिना उनका उपयोग नहीं करते हैं; जब तक वे अपने भाइयों के साथ, खुलेआम और एकांत में, आचरण के उन नियमों का अभ्यास करते हैं, जो पूर्ण और परिपूर्ण, निष्कलंक और पवित्र, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, सांसारिक चिंताओं से अप्रभावित और मन की एकाग्रता के लिए अनुकूल हैं; और अपने भाइयों के साथ, खुलेआम और एकांत में, उस महान और मुक्तिदायक अंतर्दृष्टि को संरक्षित करते हैं, जो उस पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाती है।

पंद्रहवाँ। विवाद के छह मूल कारण: यहाँ, एक भिक्षु क्रोधित और द्वेषपूर्ण है, वह गुरु और धम्म के प्रति अनादरपूर्ण और असभ्य है, और अपना प्रशिक्षण पूरा नहीं करता। वह संघ में विवाद उत्पन्न करता है, जिससे अनेकों को दुःख और शोक होता है, और देवताओं और मनुष्यों दोनों के लिए इसके बुरे परिणाम, दुर्भाग्य और दुःख होते हैं। हे मित्रों, यदि आप अपने बीच या दूसरों के बीच ऐसा कोई विवाद का कारण पाते हैं, तो आपको केवल उसी विवाद के कारण को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यदि आपको ऐसा कोई विवाद का कारण नहीं मिलता...तो आपको भविष्य में इसे अपने ऊपर हावी होने से रोकने के लिए प्रयास करना चाहिए। या यदि कोई भिक्षु कपटी और द्वेषपूर्ण है...या यदि कोई भिक्षु ईर्ष्यालु और नीच है...या यदि कोई भिक्षु धूर्त और कपटी है...या यदि कोई भिक्षु बुरी इच्छाओं और गलत विचारों से भरा है...या यदि कोई भिक्षु हठी, जिद्दी और हठी है। हे मित्रों, यदि आप अपने बीच या दूसरों के बीच ऐसा कोई विवाद का कारण पाते हैं, तो आपको केवल उसी विवाद के कारण को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यदि आपको विवाद का ऐसा कोई मूल कारण नहीं मिलता...तो आपको भविष्य में इसे अपने ऊपर हावी होने से रोकने के लिए काम करना चाहिए।

16. छह तत्व: पृथ्वी तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व और चेतना तत्व।

सत्रह. मुक्ति के छह तत्व:

क. यहाँ एक भिक्षु कह सकता है, "मैंने प्रेम और करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति का विकास किया है, उसे विस्तृत किया है, उसे आधार और साधन बनाया है, उसे स्थापित किया है, उस पर अच्छी तरह से काम किया है, उसे सुचारू रूप से चलाया है। फिर भी द्वेष मेरे हृदय को जकड़े हुए है।" उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहते! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम प्रेम और करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति का विकास करते हो, तो द्वेष को तुम्हारे हृदय को घेरने का कोई अवसर नहीं मिलता। प्रेम और करुणा के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही द्वेष का उपचार है।"

ख. या वह कह सकता है, "मैंने करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी क्रूरता मेरे हृदय को जकड़े हुए है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो क्रूरता को तुम्हारे हृदय को जकड़ने का कोई अवसर नहीं मिलता। करुणा के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही क्रूरता का इलाज है।"

ग. या वह कह सकता है, "मैंने समभाव के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी कामवासना मेरे हृदय को जकड़े हुए है।" उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का अपमान मत करो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसी बात कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम समभाव के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो कामवासना को तुम्हारे हृदय पर हावी होने का कोई अवसर नहीं मिलता। समभाव के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही कामवासना का इलाज है।"

घ. या वह कह सकता है, "मैंने सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी घृणा मेरे हृदय को जकड़े हुए है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसी बात कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो घृणा को तुम्हारे हृदय को घेरने का कोई अवसर नहीं मिलता। सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही घृणा का उपचार है।"

या फिर वह कह सकता है, "मैंने हृदय की चिन्हहीन मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी मेरा हृदय चिन्हों की लालसा करता है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम चिन्हहीन मुक्ति के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो चिन्हों की लालसा तुम्हारे हृदय को घेर नहीं पाएगी। चिन्हहीन मुक्ति के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति चिन्हों की लालसा का उपचार है।"

च. या वह कह सकता है, "'मैं हूँ' का विचार मुझे अप्रिय लगता है, मैं 'मैं यह हूँ' के विचार पर ध्यान नहीं देता। फिर भी संदेह, अनिश्चितताएँ और समस्याएँ मेरे हृदय को जकड़े रहती हैं..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहते! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम शून्यता के माध्यम से हृदय की मुक्ति प्राप्त करोगे, तो 'मैं यह हूँ' का विचार तुम्हारे हृदय को घेर नहीं पाएगा। शून्यता के माध्यम से प्राप्त यह मुक्ति ही 'मैं यह हूँ' के विचार का उपचार है।"

XVIII. छह अतुलनीय चीजें: कुछ दृश्य, सुनी हुई बातें, लाभ, प्रशिक्षण, सेवा के रूप, स्मरण की वस्तुएँ।

XIX. स्मरण के छह विषय: बुद्ध, धम्म, संघ, नैतिकता, त्याग, देव।

XX. छह स्थिर अवस्थाएँ: आँख से किसी वस्तु को देखने पर, कान से किसी ध्वनि को सुनने पर, नाक से किसी गंध को सूंघने पर, जीभ से किसी स्वाद को चखने पर, शरीर से किसी मूर्त वस्तु को छूने पर, या मन से किसी मानसिक वस्तु को जानने पर, व्यक्ति न तो प्रसन्न होता है और न ही अप्रसन्न होता है, बल्कि न्यायसंगत, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहता है।

XXI. छह प्रजातियाँ

ए. यहाँ अंधकारमय परिस्थितियों में जन्मा व्यक्ति अंधकारमय जीवन जीता है।

b. अंधकारमय परिस्थितियों में जन्मा व्यक्ति उज्ज्वल जीवन जीता है।

ग. अंधकारमय परिस्थितियों में जन्म लेने वाला व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न तो अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय।

घ. उज्ज्वल परिस्थितियों में जन्मा व्यक्ति अंधकारमय जीवन जीता है।

ई. अच्छे परिवेश में जन्मा व्यक्ति उज्ज्वल जीवन जीता है।

च. प्रकाशमय वातावरण में जन्म लेने वाला व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न तो अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय।

XXII. भेदन के लिए सहायक छह धारणाएँ: अनित्यता की धारणा, अनित्यता में पीड़ा की धारणा, निराकारता और पीड़ा की धारणा, त्याग की धारणा, अपव्यय की धारणा और समाप्ति की धारणा।

ये छह चीजों के वे समूह हैं, जिनका भगवान ने पूर्णतः प्रचार किया है।

भगवान द्वारा पूर्णतः घोषित की गई सात बातों के समूह हैं।

I. सात आर्य खजाने

ए. विश्वास

ख. नैतिकता

ग. नैतिक शर्म

डी. नैतिक भय

ई. सीखना

एफ. त्याग

जी. ज्ञान

II. ज्ञानोदय के सात कारक

ए. सचेतनता

ख. घटनाओं की जांच

सी. ऊर्जा

डी. आनंद

ई. शांति

एफ. सांद्रता

जी. समभाव

III. एकाग्रता की सात आवश्यकताएँ:

ए. दायां दृश्य

ख. सही विचार

ग. सही भाषण

घ. सही कार्रवाई

ई. सही आजीविका

एफ. सही प्रयास

जी. सही सचेतनता

IV. सात गलत प्रथाएँ: यहाँ एक भिक्षु

ए. आस्था का अभाव

b. नैतिक शर्म का अभाव

ग. नैतिक भय का अभाव

d. सीखने की क्षमता कम है

ई. क्या शिथिलता है

एफ. असावधान है

जी. ज्ञान का अभाव

V. सात सही अभ्यास: यहाँ एक भिक्षु के पास विश्वास, नैतिक शर्म और नैतिक भय होता है, वह बहुत ज्ञानी होता है, उसने शक्ति को जागृत किया होता है, उसने जागरूकता स्थापित की होती है, और वह ज्ञान से परिपूर्ण होता है।

VI. सच्चे व्यक्ति के सात गुण: यहाँ एक भिक्षु धम्म का ज्ञाता, अर्थों का ज्ञाता, स्वयं का ज्ञाता, संयम का ज्ञाता, उचित समय का ज्ञाता, व्यक्तियों के समूहों का ज्ञाता होता है।

VII. प्रशंसा के सात आधार: यहाँ एक भिक्षु अत्यंत चिंतित है।

क. प्रशिक्षण लेने के लिए इच्छुक है और इसे जारी रखना चाहता है।

ख. धम्म का गहन अध्ययन करना

ग. इच्छाओं से छुटकारा पाने के लिए

घ. एकांत की तलाश करना

ई. ऊर्जा को जगाना

च. सचेतनता और विवेक विकसित करना

g. गहन अंतर्दृष्टि विकसित करना

VIII. सात धारणाएँ: अनित्यता की धारणा, अनात्म की धारणा, अशुद्धता की धारणा, खतरे की धारणा, परित्याग की धारणा, अपव्यय की धारणा, समाप्ति की धारणा।

IX. सात शक्तियाँ: आस्था, ऊर्जा, नैतिक लज्जा, नैतिक भय, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान।

X. चेतना के सात स्तर: प्राणी

ए. शारीरिक बनावट में भिन्नता, धारणा में भिन्नता

b. शरीर में भिन्न, धारणा में समान

ग. शारीरिक बनावट में एकरूप, धारणा में भिन्न

घ. शरीर में एकरूप, धारणा में भी एकरूप

ई. जिन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

एफ. ...अनंत चेतना का

जी. ...शून्यता का

XI. सात व्यक्ति जो भेंट के योग्य हैं: मार्ग मुक्त, ज्ञान मुक्त, शरीर साक्षी, दृष्टि प्राप्त करने वाला, आस्था मुक्त, धम्म भक्त और आस्था भक्त।

XII. सात गुप्त प्रवृत्तियाँ: कामुक लोभ, द्वेष, द्वेष, संदेह, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञान।

XIII. सात बंधन: आत्मसंतुष्टि, आक्रोश, पूर्वाग्रह, संदेह, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञान।

XIV. उठाए गए विवादित मुद्दों के समाधान के लिए सात नियम:

ए. आमने-सामने की कार्यवाही

बी. स्मरण

सी. मानसिक विकार

डी. स्वीकारोक्ति

ई. बहुमत का फैसला

एफ. आदतन बुरे चरित्र

जी. घास से ढक देना

ये सात चीजों के वे समूह हैं जिनका भगवान ने पूर्ण रूप से वर्णन किया है, इसलिए हम सभी को देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए इनका पाठ करना चाहिए।

दूसरे पाठ खंड का अंत

भगवान द्वारा पूर्णतः घोषित की गई आठ बातों के समूह हैं।
I. आठ गलत कारक: गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत कर्म, गलत वाणी, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, गलत एकाग्रता।

II. आठ सही कारक: ऊपर देखें।

III. भेंट के योग्य आठ व्यक्ति: धारा विजेता और धारा में प्रवेश का फल प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला। एक बार लौटने वाला और एक बार लौटने का फल प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला। न लौटने वाला...अरहंत...

IV. आलस्य के आठ अवसर: यहाँ एक भिक्षु

क. उसे एक काम करना है। वह सोचता है, "मुझे यह काम करना है, लेकिन इससे मैं थक जाऊँगा। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता।

ख. उसने कुछ काम किया है। वह सोचता है, "मैंने यह काम कर लिया है, अब मैं थक गया हूँ। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटाता। या

ग. उसे यात्रा पर जाना है, और वह सोचता है, "मुझे इस यात्रा पर जाना है, इससे मैं थक जाता हूँ। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अनकहे को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता। या

घ. वह एक यात्रा से लौटकर आया है और सोचता है, "मैंने यह काम कर लिया है, अब मैं थक गया हूँ। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटाता। या

उदाहरण के लिए, वह किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है। उसे पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। वह सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर थक गया है और बेकार हो गया है। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

एफ. वह भिक्षा मांगने जाता है और पेट भरकर भोजन करता है, और सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर भारी और बेकार हो गया है जैसे मैं गर्भवती हूँ। अब थोड़ा आराम कर लेता हूँ।" इसलिए वह लेट जाता है...

जी. उसे थोड़ी अस्वस्थता महसूस हो रही है, और वह सोचता है, "मुझे थोड़ा आराम कर लेना चाहिए" इसलिए वह लेट जाता है...

एच. वह हाल ही में बीमारी से उबरकर आराम कर रहा है, और वह सोचता है, "मेरा शरीर कमजोर और बेकार है, मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

V. प्रयास करने के आठ अवसर। यहाँ एक भिक्षु है।

क. उसे एक काम करना है, वह सोचता है, "मुझे यह काम करना है, लेकिन इसे करते समय मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होगा। इसलिए मैं अपूर्ण को पूरा करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा जुटाऊंगा। जो पूरा नहीं हुआ है उसे पूरा करने के लिए, जो अभी तक साकार नहीं हुआ है उसे साकार करने के लिए।"

बी. उसने कुछ काम किया है, वह सोचता है, "ठीक है, मैंने काम तो कर लिया, लेकिन इसके कारण मैं बुद्धों की शिक्षाओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाया, इसलिए मैं पर्याप्त ऊर्जा जुटाऊंगा..."

ग. उसे यात्रा पर जाना होगा...

d. वह एक यात्रा पर रहा है... "मैं इस यात्रा पर रहा हूँ, लेकिन इसके कारण मैं पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाया..."

ई. वह भिक्षा मांगने जाता है लेकिन उसकी भूख मिट नहीं पाती, इसलिए वह सोचता है, "मेरा शरीर हल्का और स्वस्थ है, मैं ऊर्जा जुटा लूंगा..."

एफ. वह भिक्षा मांगने जाता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता है, इसलिए वह सोचता है, "मेरा शरीर मजबूत और स्वस्थ है, मैं ऊर्जा जुटा लूंगा..."

जी. उसे थोड़ी अस्वस्थता है, इसलिए वह सोचता है, "यह और बिगड़ सकता है, इसलिए मैं ऊर्जा जुटाने की कोशिश करूंगा..."

एच. वह अभी हाल ही में ठीक हुआ है और अब स्वास्थ्य लाभ कर रहा है, और वह सोचता है, "हो सकता है कि बीमारी फिर से हो जाए, इसलिए मैं ऊर्जा जुटाऊंगा..."

VI. दान देने के आठ आधार: एक आधार दान देता है

ए. अवसर के अनुसार

b. डर से

ग. यह सोचना कि "उसने मुझे कुछ दिया है"

घ. यह सोचना कि "वह मुझे कुछ देगा"

ई. यह सोचना कि "दान करना अच्छा है"

एफ. यह सोचना कि "मैं कुछ पका रहा हूँ, वे नहीं पका रहे हैं। जो लोग खाना नहीं पका रहे हैं, उन्हें कुछ न देना सही नहीं होगा।"

उदाहरण के लिए, यह सोचना कि "अगर मैं यह दान करता हूँ, तो मुझे अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।"

h. अपने हृदय को सुशोभित और तैयार करने के लिए।

VII. उदारता के कारण आठ प्रकार के पुनर्जन्म

क. यहाँ कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन, पेय, वस्त्र, परिवहन, मालाएँ, इत्र और मलहम, सोने की जगह, घर या प्रकाश देता है और अपने उपहारों के बदले प्रतिफल की आशा रखता है। वह किसी धनी क्षत्रिय या ब्राह्मण या गृहस्थ को पाँचों इंद्रियों के सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए देखता है और सोचता है, "काश, मरने के बाद मेरा पुनर्जन्म इन्हीं धनी लोगों में से एक के रूप में हो।" वह इस विचार को अपने हृदय में ठान लेता है, उसे दृढ़ करता है और विकसित करता है। और इस विचार का इतने निम्न स्तर पर आरंभ होना

और उच्च स्तर तक विकसित न होना, वहीं पुनर्जन्म का कारण बनता है। परन्तु मैं यह बात नैतिक व्यक्ति के विषय में कह रहा हूँ, अनैतिक व्यक्ति के विषय में नहीं। नैतिक व्यक्ति की मानसिक आकांक्षा उसकी पवित्रता के कारण प्रभावी होती है।

ख. वह ऐसे उपहार देता है और यह सुनकर कि चार महान राजाओं के राज्य में देवता दीर्घायु, सुंदर और सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, वह सोचता है, "काश मैं भी वहीं पुनर्जन्म ले पाता!" या वह इसी प्रकार स्वर्ग में पुनर्जन्म की कामना करता है।

ग. तैंतीस देवता

घ. यम देव

ई. तुषिता देव

एफ. निम्मनारती देव

उदाहरण के लिए, परमनिमित्त वासवत्ती देव। और यह विचार वहीं पुनर्जन्म की ओर ले जाता है... एक नैतिक व्यक्ति की मानसिक आकांक्षा उसकी पवित्रता के माध्यम से प्रभावी होती है। या

वह भी इसी प्रकार ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म की कामना करता है... परन्तु मैं यह बात नैतिक व्यक्ति के बारे में कह रहा हूँ, न कि अनैतिक व्यक्ति के बारे में। ऐसे व्यक्ति के बारे में जो वासना से मुक्त हो, न कि ऐसे व्यक्ति के बारे में जो अभी भी वासना से ग्रस्त हो। ऐसे नैतिक व्यक्ति की मानसिक आकांक्षा वासना से मुक्ति के माध्यम से ही प्रभावी होती है।

VIII. आठ सभाएँ: क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों, तपस्वियों, देवताओं, चार महान राजाओं के राज्य के देवताओं, तैंतीस देवताओं, मारों और ब्रह्माओं की सभा।

IX. आठ सांसारिक स्थितियाँ: लाभ और हानि, प्रसिद्धि और बदनामी, निंदा और प्रशंसा, सुख और दुख।

X. निपुणता प्राप्त करने के आठ चरण:

ए. आंतरिक रूप से रूपों को समझने पर, व्यक्ति को बाहरी रूप सीमित और सुंदर या बदसूरत दिखाई देते हैं;

ख. आंतरिक रूप से रूपों को अनुभव करने पर, व्यक्ति बाहरी रूपों को असीमित और सुंदर या बदसूरत देखता है;

ग. आंतरिक रूप से आकृतियों को न देख पाने के कारण, व्यक्ति को बाहरी आकृतियाँ सीमित रूप से ही दिखाई देती हैं...

घ. आंतरिक रूप से रूपों को न समझने पर, व्यक्ति असीमित बाह्य रूपों को देखता है...; आंतरिक रूप से रूपों को न समझने पर, व्यक्ति ऐसे रूपों को देखता है जो

ई. नीला

एफ. पीला

जी. लाल

एच. व्हाइट...

XI. आठ मुक्ति

a. रूप धारण करने वाला व्यक्ति रूपों को देखता है;

ख. अपने भीतर भौतिक रूपों को न देख पाने के कारण, व्यक्ति उन्हें बाहर देखता है;

ग. यह सोचते हुए कि "यह सुंदर है" व्यक्ति इस पर ध्यान केंद्रित करने लगता है;

घ. व्यक्ति अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश करता है;

ई. अनंत चेतना का क्षेत्र

एफ. शून्यता का क्षेत्र

जी. वह क्षेत्र जो न तो बोधगम्य है और न ही अबोधगम्य।

h. अनुभूति और संवेदना का रुक जाना।

ये आठ चीजों के सेट हैं...

ये नौ चीजों के सेट हैं...

I. द्वेष के नौ कारण: द्वेष निम्नलिखित विचारों से उत्पन्न होता है,

ए. उसने मुझे चोट पहुँचाई है

b. वह मुझे चोट पहुँचा रहा है।

ग. वह मुझे चोट पहुँचाएगा

d. उसने किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुँचाई है जो मुझे बहुत प्रिय और प्यारा है।

ई. वह किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुंचा रहा है जो मुझे प्रिय और प्यारा है।

एफ. वह किसी ऐसे व्यक्ति को हानि पहुंचाएगा जो मुझे प्रिय और प्रिय है।

जी. उसने किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान किया है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे पसंद नहीं है।

एच. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान कर रहा है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है।

i. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान करेगा जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद करता है।

II. द्वेष पर विजय पाने के नौ तरीके: द्वेष पर इस विचार से विजय पाई जा सकती है:

ए. उसने मुझे चोट पहुंचाई है — ऐसे में उसके प्रति द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

बी. वह मुझे नुकसान पहुंचा रहा है — द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

ग. वह मुझे नुकसान पहुंचाएगा — द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

घ. उसने मेरे किसी प्रिय और प्रिय व्यक्ति को चोट पहुंचाई है — ऐसे में द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

ई. वह किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुंचा रहा है जो मुझे प्रिय और प्यारा है - ऐसे में द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

एफ. वह किसी ऐसे व्यक्ति को हानि पहुंचाएगा जो मुझे प्रिय और प्यारा है - द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

जी. उसने एक ऐसे व्यक्ति पर एहसान किया है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - ऐसे में द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

एच. वह ऐसे व्यक्ति पर एहसान कर रहा है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

i. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान करेगा जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

III. प्राणियों के नौ निवास स्थान:

a. शारीरिक बनावट और धारणा में भिन्न प्राणी

b. शरीर से भिन्न लेकिन धारणा में समान प्राणी

ग. शरीर से समान तथा धारणा में भिन्न प्राणी

घ. शरीर और धारणा में समान प्राणी

ई. अचेतन प्राणियों का क्षेत्र

एफ. वह क्षेत्र जहां न तो बोध होता है और न ही अबोध।

g. वे प्राणी जिन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

h. वे प्राणी जिन्होंने अनंत चेतना के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

i. वे प्राणी जिन्होंने शून्यता की अवस्था प्राप्त कर ली है

IV. पवित्र जीवन जीने के लिए नौ दुर्भाग्यपूर्ण, अनुपयुक्त समय

a. एक तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध, संसार में जन्म लेते हैं और उन्हें धम्म का उपदेश दिया जाता है जो शांत और पूर्ण निर्वाण की ओर ले जाता है, जो भला चाहने वाले द्वारा सिखाए गए ज्ञान की ओर ले जाता है, और यह व्यक्ति नरक अवस्था में जन्म लेता है।

ख. जानवरों के बीच

सी. पेटाओं के बीच

घ. असुरों में

ई. देवों के एक दीर्घायु समूह में

एफ. उसका जन्म सीमावर्ती क्षेत्रों में मूर्ख बर्बर लोगों के बीच हुआ है जहाँ भिक्षुओं और भिक्षुणियों, या पुरुष और महिला गृहस्थ अनुयायियों के लिए कोई पहुँच नहीं है।

उदाहरण के लिए, वह मध्य देश में जन्मा है, लेकिन उसके विचार गलत और दृष्टि विकृत है, वह सोचता है, "न तो कुछ देना है, न कुछ भेंट करना है, न ही कुछ बलिदान करना है, अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है। न तो यह लोक है और न ही परलोक, न तो माता-पिता हैं और न ही स्वतः पुनर्जन्म होता है। संसार में ऐसे कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने सर्वोच्च को प्राप्त कर स्वयं इस लोक और परलोक के बारे में सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया हो और उसका प्रचार किया हो।"

एच. वह मध्य देश में पैदा हुआ है, लेकिन बुद्धिहीन और मूर्ख है। या वह बहरा और गूंगा है, और यह नहीं बता सकता कि कोई बात अच्छी कही गई है या बुरी। या फिर

i. तथागत का कोई जन्म नहीं हुआ है और यह व्यक्ति मध्य देश में जन्मा है और बुद्धिमान है, मूर्ख नहीं, न ही बहरा या गूंगा है, और यह भली-भांति जानता है कि कोई बात अच्छी कही गई है या बुरी।

V. नौ क्रमिक अवस्थाएँ: अनंत अंतरिक्ष के ध्यान और क्षेत्र, अनंत चेतना, शून्यता, न तो बोध और न ही अबोध, और बोध और भावना का अंत।

VI. नौ क्रमिक समाप्ति: प्रथम ध्यान की प्राप्ति से इंद्रिय संवेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं, द्वितीय ध्यान की प्राप्ति से चिंतन और मनन समाप्त हो जाते हैं, तृतीय ध्यान की प्राप्ति से आनंद समाप्त हो जाता है, चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति से श्वास-श्वास समाप्त हो जाता है, अनंत आकाश के क्षेत्र की प्राप्ति से भौतिकता की अनुभूति समाप्त हो जाती है, अनंत चेतना के क्षेत्र की प्राप्ति से अनंत आकाश के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। शून्यता के क्षेत्र की प्राप्ति से अनंत चेतना के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। न तो अनुभूति और न ही अनुभूति के क्षेत्र की प्राप्ति से शून्यता के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। अनुभूति और अनुभूति की समाप्ति की प्राप्ति से अनुभूति और अनुभूति दोनों समाप्त हो जाती हैं।

ये नौ चीजों के सेट हैं।

भगवान द्वारा पूर्णतः घोषित की गई दस बातों के समूह हैं।

1. दस चीजें जो सुरक्षा प्रदान करती हैं। यहाँ एक भिक्षु है।

क. वह नैतिक है, शिष्य के संयम के अनुसार संयमित जीवन जीता है, सही आचरण में दृढ़ रहता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। वह प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है।

ख. उसने बहुत कुछ सीखा है और जो कुछ सीखा है उसे वह याद रखता है और संजो कर रखता है। आरंभ, मध्य और अंत में सुंदर इन शिक्षाओं में, जो भावना और शब्दों में पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं, वह गहन रूप से पारंगत है; वह उन्हें याद रखता है, उनका पाठ करता है, उन पर मनन करता है और उन्हें अंतर्दृष्टि से आत्मसात करता है।

ग. वह अच्छे लोगों का मित्र, सहयोगी और घनिष्ठ मित्र है।

घ. वह मिलनसार, सौम्य और धैर्यवान है। निर्देशों को शीघ्रता से ग्रहण करता है।

ई. अपने साथी भिक्षुओं के लिए जो भी विभिन्न कार्य करने होते हैं, वह उनमें कुशल होता है, लापरवाह नहीं, उन्हें पूरा करने में दूरदर्शिता का प्रयोग करता है, और कार्य करने और योजना बनाने में अच्छा होता है।

एफ. वह धम्म से प्रेम करता है और उसे सुनने में आनंदित होता है। वह विशेष रूप से उन्नत सिद्धांतों और अनुशासनों का शौकीन है।

जी. वह किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं, वस्त्रों, भिक्षा, भोजन, आवास, बीमारी की स्थिति में दवाओं से संतुष्ट रहता है।

वह सदा ऊर्जा जगाने, अस्वस्थ अवस्थाओं से छुटकारा पाने और स्वस्थ अवस्थाओं को स्थापित करने का प्रयास करता है, ऐसी अच्छी अवस्थाओं को बनाए रखने के लिए अथक और ऊर्जावान रूप से प्रयास करता है, और कभी भी इस भार को नहीं उतारता।

i. वह सचेत है, और उसमें बहुत पहले की गई और कही गई बातों को स्पष्ट रूप से याद रखने की अद्भुत क्षमता है।

जे. वह उत्पत्ति और क्षय की बुद्धिमत्तापूर्ण समझ रखने वाला बुद्धिमान व्यक्ति है, वह आर्यन समझ जो दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाती है।

II. समाधि की प्राप्ति के लिए दस वस्तुएँ। वह पृथ्वी-कसीना, जल-कसीना, अग्नि-कसीना, वायु-कसीना, नीला-कसीना, पीला-कसीना, लाल-कसीना, सफेद-कसीना, आकाश-कसीना, चेतना-कसीना को ऊपर, नीचे, चारों ओर, अविभाजित, असीम रूप से देखता है।

III. दस अवांछनीय कर्म। जीवन लेना, बिना माँगे कुछ लेना, यौन दुराचार, झूठ बोलना, निंदा करना, अभद्र भाषा, व्यर्थ की बातें, लोभ, द्वेष, गलत दृष्टिकोण।

IV. दस उत्तम कर्म। जीवन लेना मना है, बिना माँगी वस्तु लेना मना है, यौन दुराचार से बचना, झूठ बोलना मना है, निंदा करना मना है, अभद्र भाषा बोलना मना है, व्यर्थ की बातों से बचना है, लोभ से बचना है, द्वेष से बचना है और गलत विचारों से बचना है।

V. दस आर्य स्वभाव: यहाँ एक भिक्षु है

ए. इसने पाँच कारकों से छुटकारा पा लिया है,

b. इसमें छह कारक मौजूद हैं

सी. एक गार्ड तैनात किया है

d. चारों आधारों का अवलोकन करता है,

ई. इसने सांप्रदायिक विचारों से छुटकारा पा लिया है

एफ. उसने खोज को लगभग त्याग दिया है

जी. उसका उद्देश्य शुद्ध है

एच. उसने अपनी भावनाओं को शांत कर लिया है, वह पूरी तरह से मुक्त है

i. हृदय में

जे. ज्ञान द्वारा।

क. उसने पाँच कारकों से कैसे छुटकारा पाया है? यहाँ उसने कामुकता, द्वेष, आलस्य और सुस्ती, चिंता और घबराहट तथा संदेह से छुटकारा पाया है।

ख. उसमें कौन से छह गुण मौजूद हैं? किसी वस्तु को आँख से देखने, कान से ध्वनि सुनने, नाक से गंध सूंघने, जीभ से स्वाद चखने, किसी मूर्त वस्तु को छूने या मन से किसी मानसिक वस्तु को जानने पर वह न तो प्रसन्न होता है और न ही अप्रसन्न, बल्कि न्यायसंगत, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहता है।

ग. उसने एकमात्र सुरक्षा कवच कैसे स्थापित किया है? अपने मन को सचेतनता से सुरक्षित रखकर।

घ. वे चार आधार क्या हैं? उनका मानना है कि एक चीज का पीछा किया जाना चाहिए, एक चीज को सहन किया जाना चाहिए, एक चीज से बचा जाना चाहिए और एक चीज को दबा दिया जाना चाहिए।

ई. उन्होंने सांप्रदायिक विचारों से कैसे छुटकारा पाया है? अधिकांश संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा रखे गए व्यक्तिगत विचारों को उन्होंने खारिज कर दिया है, त्याग दिया है, अस्वीकार कर दिया है, जाने दिया है।

च. वह व्यक्ति कौन है जिसने सभी खोजों का त्याग कर दिया है? उसने इंद्रिय सुखों की खोज, पुनर्जन्म की खोज, और पवित्र जीवन की खोज का त्याग कर दिया है।

जी. उसके इरादे कैसे शुद्ध हैं? उसने कामुकता, द्वेष और क्रूरता के विचारों का त्याग कर दिया है।

h. वह व्यक्ति कौन है जिसने अपनी भावनाओं को शांत कर लिया है? क्योंकि सुख और दुख का त्याग करके, पूर्व की प्रसन्नता और उदासी के लुप्त होने के साथ, वह सुख और दुख से परे एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करता है, जो समभाव से शुद्ध होती है, और यही चौथा ध्यान है।

i. वह हृदय से किस प्रकार पूर्णतः मुक्त है? वह लोभ, घृणा और भ्रम के विचारों से मुक्त है।

जे. वह ज्ञान से किस प्रकार पूर्णतया मुक्त हो जाता है? वह समझता है, "मेरे लिए लोभ, घृणा और भ्रम का त्याग हो चुका है, वे ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह जड़ से उखड़ गए हैं। नष्ट हो चुके हैं और फिर से उगने में असमर्थ हैं।"

VI. गैर-शिक्षार्थी के दस गुण: गैर-शिक्षार्थी का सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, सही ज्ञान, सही मुक्ति।

ये दस बातें हैं, जिन्हें सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध ने पूर्णतया निर्धारित किया है। इसलिए हम सभी को बिना किसी मतभेद के इनका एक साथ पाठ करना चाहिए, ताकि यह पवित्र जीवन दीर्घकालीन और स्थायी बना रहे। इस प्रकार, यह समस्त जन कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए हो। फिर भगवान खड़े हुए और उन्होंने आदरणीय सारिपुत्त से कहा, "शाबाश, शाबाश सारिपुत्त, तुमने भिक्षुओं के लिए सामूहिक जप का मार्ग बहुत ही उत्तम ढंग से बताया है।"

ये बातें पूज्य सारिपुत्त ने कही थीं और गुरु ने उनकी पुष्टि की थी, भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> दीघा निकाय >> 3.11 दसुत्तर सुत्त(डीएन34)

मैंने ऐसा सुना है: एक बार भगवान चंपा में गग्गरा कमल तालाब के किनारे लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ ठहरे हुए थे। तब पूज्य शारिपुत्र ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: 'मित्रों, भिक्षुओं!'

'मित्र!' भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और पूज्य शारिपुत्र ने कहा:

मैं एक से दस लोगों के बढ़ते समूहों में पढ़ाऊंगा

निब्बान की प्राप्ति के लिए धम्म,

ताकि आप दुखों का अंत कर सकें।

और उन सभी बंधनों से मुक्त हो जाओ जो तुम्हें बांधते हैं।

जी हाँ, दोस्तों।

1. एक चीज़ जो बहुत मदद करती है

2. एक चीज जिसे विकसित किया जाना है

3. एक बात जिसे पूरी तरह से जानना आवश्यक है

4. एक चीज जिसे त्यागना होगा

5. एक चीज जो कमी की ओर ले जाती है

6. एक चीज जो विशिष्टता को बढ़ावा देती है

7. एक ऐसी चीज़ जिसमें प्रवेश करना कठिन है

8. एक चीज को उत्पन्न किया जाना है

9. एक बात जिसे अच्छी तरह से सीख लेना चाहिए

10. और एक बात समझनी है।

अब कौन सी एक चीज सबसे ज्यादा मददगार साबित होती है?

1. स्वस्थ अवस्थाओं में अथक परिश्रम।

किस एक चीज का विकास किया जाना है?

2. शरीर के प्रति सजगता, जिसमें आनंद भी शामिल हो।

वह कौन सी एक बात है जिसे पूरी तरह से जानना आवश्यक है?

3. संपर्क, भ्रष्टाचार और लोभ की एक शर्त के रूप में।

किस एक चीज को त्यागना होगा?

4. अहंकार-अभिमान।

कौन सी एक चीज कमी लाने में सहायक होती है?

5. अनुचित ध्यान

कौन सी एक चीज विशिष्टता को बढ़ावा देती है?

6. समझदारी से ध्यान देना

वह कौन सी चीज है जिसमें प्रवेश करना कठिन है?

7. निर्बाध मानसिक एकाग्रता

वह कौन सी चीज है जिसे उत्पन्न किया जाना है?

8. अडिग ज्ञान

वह कौन सी एक चीज है जिसे पूरी तरह से सीखना आवश्यक है?

9. सभी प्राणियों का पालन-पोषण पोषण द्वारा होता है।

किस एक बात को साकार करना है?

10. मन की अविचल मुक्ति।

दो चीजें बहुत मददगार होती हैं; दो चीजों का विकास किया जाना चाहिए... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)

कौन सी दो चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. सजगता और स्पष्ट जागरूकता

किन दो चीजों का विकास किया जाना है?

2. शांति और अंतर्दृष्टि

वे कौन सी दो बातें हैं जिन्हें पूरी तरह से जानना आवश्यक है?

3. मन और शरीर

किन दो चीजों को छोड़ना है?

4. अज्ञान और अस्तित्व की लालसा

वे कौन सी दो चीजें हैं जो कमी लाने में सहायक होती हैं?

5. क्रूरता और बुराई से मित्रता

कौन सी दो चीजें विशिष्टता को बढ़ावा देती हैं?

6. अच्छे लोगों के प्रति कोमलता और मित्रता

किन दो चीजों में प्रवेश करना कठिन है?

7. जो प्राणियों के अपवित्र होने का मूल कारण है, और जो प्राणियों के शुद्ध होने का मूल कारण है।

वे कौन सी दो चीजें हैं जिन्हें उत्पन्न करना है?

8. अशुद्धियों के नाश और उनके पुनरावर्तन न होने का ज्ञान

...सीखा?

9. दो तत्व, सशर्त और गैर-सशर्त

...समझना?

10. ज्ञान और मुक्ति।

इस प्रकार बीस ऐसी बातें हैं जो वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं, तथागत द्वारा अचूक और पूर्ण रूप से साकार की गई हैं।

तीन चीजें बहुत सहायक होती हैं; तीन चीजों का विकास किया जाना चाहिए... (जैसा कि ऊपर बताया गया है।)

कौन सी तीन चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. अच्छे लोगों की संगति, सच्चे धर्म का श्रवण, और संपूर्ण रूप से धर्म का अभ्यास।

किन तीन चीजों का विकास किया जाना है?

2. एकाग्रता के तीन प्रकार।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. तीन भावनाएँ

...छोड़ा हुआ?

4. लालसा के तीन प्रकार

...कमी की ओर ले जाता है?

5. तीन अस्वास्थ्यकर जड़ें

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. तीन पौष्टिक जड़ें

...भेदना मुश्किल है?

7. मुक्ति प्राप्त करने के लिए तीन तत्व:

ए. कामुकता से मुक्ति

ख) भौतिक रूपों से मुक्ति

ग. अर्थात्, जो कुछ भी अमूर्त है, जो कुछ भी हुआ है, वह मिश्रित है, सशर्त रूप से उत्पन्न हुआ है - उससे मुक्ति का अर्थ है उसका रुक जाना।

...उत्पन्न करने के लिए?

8. भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल का तीन प्रकार का ज्ञान।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. तीन तत्व: इंद्रिय-इच्छा का तत्व, रूप का तत्व, निराकार तत्व।

...समझना?

10. तीन प्रकार का ज्ञान; अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान, प्राणियों की मृत्यु और पुनर्जन्म का ज्ञान, और विकारों के नाश का ज्ञान।

चार चीजें बेहद मददगार होती हैं, चार चीजों का विकास किया जाना चाहिए...

कौन सी चार चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. चार "पहिये"

ए. रहने के लिए अनुकूल स्थान

ख. अच्छे लोगों के साथ संगति

ग. व्यक्तित्व का परिपूर्ण विकास

घ. अतीत के सराहनीय कार्य

किन चार चीजों का विकास किया जाना है?

2. चार आधार: ध्यान के चार आधार: यहाँ एक भिक्षु शरीर को शरीर के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, चिंतन करता है; वह भावनाओं को भावनाओं के रूप में देखते हुए... वह मन को मन के रूप में देखते हुए... वह मन के विषयों को मन के विषयों के रूप में देखते हुए, उत्साही, स्पष्ट रूप से जागरूक और सचेत होकर, संसार के लिए लालसा और चिंता को त्यागकर, चिंतन करता है।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. चार पोषक तत्व: भौतिक, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; संपर्क दूसरे स्थान पर; मानसिक इच्छाशक्ति तीसरे स्थान पर, चेतना चौथे स्थान पर।

...क्या इसे छोड़ दिया जाएगा?

4. चार बाढ़ें:

ए. कामुकता,

बी. बनना,

ग. गलत विचार

घ. अज्ञानता।

...कमी के लिए अनुकूल?

5. चार जुए

ए. कामुकता,

बी. बनना,

ग. गलत विचार

घ. अज्ञानता

...विभेद को बढ़ावा देने वाला?

6. चार बार बंधन तोड़ना

ए. कामुकता

बी. बनना

सी. विचार

घ. अज्ञानता

...भेदना मुश्किल है?

7. चार सांद्रताएँ:

ए. गिरावट की ओर अग्रसर

b. ठहराव की ओर ले जाना

ग. भेद की ओर अग्रसर

d. प्रवेश के लिए अनुकूल

...उत्पन्न करने के लिए?

8. चार प्रकार के ज्ञान: धम्म का ज्ञान, धम्म के अनुरूप ज्ञान, दूसरों के मन का ज्ञान, और पारंपरिक ज्ञान।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. चार आर्य सत्य: दुख का ज्ञान, उसका कारण, उसका निवारण और उसका मार्ग।

...क्या यह साकार हो पाएगा?

10. तपस्वी जीवन के चार फल: धारा में प्रवेश का फल, एक बार लौटने वाले का फल, न लौटने वाले का फल और अरहंतत्व का फल।

इस प्रकार चालीस ऐसी बातें हैं जो वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं, तथागत द्वारा अचूक और पूर्ण रूप से साकार की गई हैं।

पांच चीजें बेहद मददगार होती हैं, पांच चीजों को विकसित किया जाना चाहिए।

कौन सी पाँच चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. प्रयास के पाँच कारक: यहाँ, एक भिक्षु

क. तथागत के ज्ञान में आस्था रखते हुए, वे कहते हैं: 'यह भगवान अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, कल्याणकारी हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, बुद्ध हैं, भगवान हैं।' वे अपने ज्ञान से इस संसार को, इसके देवताओं, मारों, ब्रह्माओं, तपस्वियों और ब्राह्मणों के संसार को, इसके राजकुमारों और प्रजाजनों सहित, घोषित करते हैं। वे एक ऐसे धम्म का उपदेश देते हैं जो भाव और अक्षर दोनों में पूर्ण है, और वे पूर्णतः सिद्ध, शुद्धतम पवित्र जीवन का प्रदर्शन करते हैं। और वास्तव में ऐसे अरहंतों को देखना सुखद है।

ख. वह अच्छे स्वास्थ्य में है, उसे कम कष्ट या बीमारी होती है, उसका पाचन तंत्र अच्छा है जो न तो बहुत ठंडा है और न ही बहुत गर्म, बल्कि परिश्रम के लिए उपयुक्त मध्यम तापमान का है।

ग. वह कपटी या छलपूर्ण नहीं है, और अपने शिक्षक या पवित्र जीवन में अपने साथियों में से बुद्धिमान लोगों के सामने स्वयं को वैसे ही प्रकट करता है जैसा वह वास्तव में है।

घ. वह अस्वस्थ अवस्थाओं को त्यागने और स्वस्थ अवस्थाओं को जागृत करने के लिए अपनी ऊर्जा को निरंतर उत्तेजित रखता है।

ई. क्या वह एक ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है जिसे आर्यों के आक्रमण से उबरने और उसके निवारण के संबंध में ज्ञान प्राप्त है, जिससे दुख का पूर्ण विनाश होता है?

किन पाँच चीजों का विकास किया जाना है?

2. पंचगुणित पूर्ण एकाग्रता:

क. आनंद से सराबोर

ख. खुशी से सराबोर

ग. इच्छाशक्ति से भरा हुआ

d. प्रकाश से विसरण

ई. समीक्षा चिह्न।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. ग्रहणशीलता के पाँच समूह:

ए. शरीर

ख. भावनाएँ

ग. धारणाएँ

डी. मानसिक संरचनाएँ

ई. चेतना

...क्या इसे छोड़ दिया जाएगा?

4. पाँच बाधाएँ:

ए. कामुकता

b. दुर्भावना

ग. आलस्य और सुस्ती

घ. चिंता और घबराहट

ई. संशयपूर्ण संदेह

...कमी की ओर ले जाता है?

5. पांच मानसिक अवरोध: यहाँ एक भिक्षु को संदेह और झिझक होती है।

क. शिक्षक के बारे में वह असंतुष्ट है और उसका मन शांत नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, लगन और प्रयास की ओर नहीं झुक रहा है।

ख. धम्म के विषय में वह असंतुष्ट है और उसका मन स्थिर नहीं हो पाता। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं होता।

ग. संघ के विषय में वह असंतुष्ट है और उसका मन स्थिर नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर प्रवृत्त नहीं है।

घ. प्रशिक्षण के संबंध में वह असंतुष्ट है और उसका मन शांत नहीं हो पा रहा है। अतः उसका मन उत्साह, समर्पण, दृढ़ता और प्रयास की ओर नहीं झुक रहा है।

ई. वह अपने साथी धर्मपरायणों से नाराज़ है, वह उनके प्रति उदास और नकारात्मक भाव रखता है। इस प्रकार उसका मन उत्साह, भक्ति, दृढ़ता और प्रयास की ओर नहीं झुकता।

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. पाँच संकाय:

ए. विश्वास

बी. ऊर्जा

ग. सचेतनता

डी. सांद्रता

ई. ज्ञान

...भेदना मुश्किल है?

7. मुक्ति दिलाने वाले पाँच तत्व:

यहां, जब कोई भिक्षु इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं पर विचार करता है, तो उसका मन उनमें तल्लीन होकर संतुष्टि नहीं पाता, उन पर स्थिर नहीं होता या उनसे मुक्त नहीं हो जाता, परन्तु जब वह त्याग पर विचार करता है तो उसका मन तल्लीन होकर संतुष्टि पाता है, उस पर स्थिर होता है और उससे मुक्त हो जाता है। और वह इस विचार को अच्छी तरह से स्थापित, अच्छी तरह से विकसित, अच्छी तरह से उन्नत और इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से उत्पन्न होने वाले विकारों, कष्टों और ज्वर से अच्छी तरह मुक्त कर लेता है, और उसे वह इंद्रिय-संबंधी भावना महसूस नहीं होती। इसे ही इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्ति कहते हैं। और यही बात अन्य विषयों पर भी लागू होती है।

बी. दुर्भावना

ग. क्रूरता

डी. प्रपत्र

ई. व्यक्तित्व

...उत्पन्न करने के लिए?

8. सही एकाग्रता का पंच प्रकार का ज्ञान: वह ज्ञान जो व्यक्ति के भीतर उत्पन्न होता है:

ए. यह एकाग्रता वर्तमान सुख और भविष्य में मिलने वाले परिणामी सुख दोनों का स्रोत है।

ख. यह एकाग्रता आर्यन है और सांसारिकता से मुक्त है।

ग. अयोग्य लोग इस एकाग्रता का अभ्यास नहीं करते।

घ. यह एकाग्रता शांत और परिपूर्ण है, इसने शांति प्राप्त कर ली है, इसने एकीकरण प्राप्त कर लिया है, और यह उकसाई नहीं गई है, इसे नकारा या रोका नहीं जा सकता है।

मैं स्वयं सचेतनता से इस एकाग्रता को प्राप्त करता हूँ और सचेतनता से ही इससे बाहर निकलता हूँ।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. मुक्ति के पाँच आधार: यहाँ

क. शिक्षक या कोई सम्मानित सह-शिष्य किसी भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है। शिक्षा ग्रहण करते समय, वह शिक्षा के भाव और शाब्दिक अर्थ दोनों को समझ लेता है। इससे उसमें आनंद उत्पन्न होता है, और इस आनंद से प्रसन्नता उत्पन्न होती है; इस प्रसन्नता से उसकी इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप उसे सुख का अनुभव होता है, और इस सुख से उसका मन स्थिर हो जाता है;

ख. उसने इसे इस प्रकार नहीं सुना है, बल्कि दूसरों को धम्म की शिक्षा देते समय उसने इसे जैसा सुना है वैसा ही कंठस्थ कर लिया है, या

ग. जैसे ही वह धम्म का पाठ कर रहा है... या

घ. ...जब वह धम्म पर अपना मन लगाता है, उस पर विचार करता है, मनन करता है और अपना ध्यान उस पर केंद्रित करता है; या

जब वह एकाग्रता के किसी संकेत को ठीक से समझ लेता है, उस पर अच्छी तरह विचार करता है, अपना मन लगाता है और बुद्धि से उसका गहन अध्ययन कर लेता है, तब उसके मन में आनंद उत्पन्न होता है; और इस आनंद से उसे प्रसन्नता मिलती है, और इस प्रसन्नता से उसकी इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप उसे सुख का अनुभव होता है, और इस सुख से उसका मन स्थिर हो जाता है।

...क्या यह साकार हो पाएगा?

10. धम्म की पाँच शाखाएँ, जैसा कि ऊपर बताया गया है, साथ ही मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि।

इस प्रकार पचास ऐसी बातें हैं जो वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं, जिन्हें तथागत ने त्रुटिहीन और पूर्ण रूप से साकार किया है।

छह चीजें बेहद मददगार होती हैं, छह चीजों को विकसित करना आवश्यक है...

कौन सी छह चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. स्मरणीय छह बातें: जब तक भिक्षु सार्वजनिक और निजी रूप से अपने साथियों के प्रति शारीरिक, वाणी और विचार से सजीव दया प्रदर्शित करते हैं... अपने सद्गुणी साथियों के साथ वह सब कुछ साझा करते हैं जो उन्हें उचित उपहार के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें उनके भिक्षापात्र की सामग्री भी शामिल है, जिसे वे अपने लिए नहीं रखते... आचरण के उन नियमों का निरंतर, अटूट और अपरिवर्तित पालन करते हैं जो निर्मल हैं, मुक्ति की ओर ले जाते हैं, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित हैं, बेदाग हैं और एकाग्रता के लिए सहायक हैं, और सार्वजनिक और निजी दोनों में अपने नेक साथियों के साथ उनका पालन करते हैं... मुक्ति की ओर ले जाने वाले, दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले उस महान दृष्टिकोण में बने रहते हैं, सार्वजनिक और निजी दोनों में अपने साथियों के साथ ऐसी जागरूकता में रहते हैं, जब तक कि वे उचित भेंट के रूप में प्राप्त होने वाली चीजों के संबंध में, यहां तक कि अपने भिक्षापात्र की सामग्री के संबंध में भी, उन्हें समुदाय के सद्गुणी सदस्यों के साथ साझा किए बिना उनका उपयोग नहीं करते हैं; जब तक वे अपने भाइयों के साथ, खुलेआम और एकांत में, आचरण के उन नियमों का अभ्यास करते हैं, जो पूर्ण और परिपूर्ण, निष्कलंक और पवित्र, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, सांसारिक चिंताओं से अप्रभावित और मन की एकाग्रता के लिए अनुकूल हैं; और अपने भाइयों के साथ, खुलेआम और एकांत में, उस महान और मुक्तिदायक अंतर्दृष्टि को संरक्षित करते हैं, जो उस पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाती है।

किन छह चीजों का विकास किया जाना है?

2. स्मरण के छह विषय: बुद्ध, धम्म, संघ, नैतिकता, त्याग, देव।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. छह आंतरिक इंद्रिय क्षेत्र:

ए. नेत्र क्षेत्र

b. कान का गोला

सी. नाक का गोला

डी. जीभ का गोला

ई. शरीर का गोला

एफ. मन इंद्रिय क्षेत्र

...क्या इसे छोड़ दिया जाएगा?

4. छह प्रकार की लालसाएँ, प्रत्येक इंद्रिय क्षेत्र के लिए एक।

...कमी के लिए अनुकूल?

5. छह प्रकार के अनादर: यहाँ, एक भिक्षु शिक्षक, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, गंभीरता और आतिथ्य सत्कार के प्रति अनादरपूर्ण और असभ्य व्यवहार करता है।

...विभेद को बढ़ावा देने वाला?

6. छह प्रकार के आदर: यहाँ, एक भिक्षु शिक्षक, धम्म, संघ, प्रशिक्षण के प्रति सम्मानपूर्वक और विनम्रतापूर्वक व्यवहार करता है, गंभीरता और आतिथ्य सत्कार के सम्मान में।

...भेदना मुश्किल है?

7. मुक्ति दिलाने वाले छह तत्व:

क. यहाँ एक भिक्षु कह सकता है, "मैंने प्रेम और करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति का विकास किया है, उसे विस्तृत किया है, उसे आधार और साधन बनाया है, उसे स्थापित किया है, उस पर अच्छी तरह से काम किया है, उसे सुचारू रूप से चलाया है। फिर भी द्वेष मेरे हृदय को जकड़े हुए है।" उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहते! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम प्रेम और करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति का विकास करते हो, तो द्वेष को तुम्हारे हृदय को घेरने का कोई अवसर नहीं मिलता। प्रेम और करुणा के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही द्वेष का उपचार है।"

ख. या वह कह सकता है, "मैंने करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी क्रूरता मेरे हृदय को जकड़े हुए है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम करुणा के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो क्रूरता को तुम्हारे हृदय को जकड़ने का कोई अवसर नहीं मिलता। करुणा के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही क्रूरता का इलाज है।"

ग. या वह कह सकता है, "मैंने समभाव के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी कामवासना मेरे हृदय को जकड़े हुए है।" उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का अपमान मत करो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसी बात कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम समभाव के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो कामवासना को तुम्हारे हृदय पर हावी होने का कोई अवसर नहीं मिलता। समभाव के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही कामवासना का इलाज है।"

घ. या वह कह सकता है, "मैंने सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी घृणा मेरे हृदय को जकड़े हुए है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसी बात कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो घृणा को तुम्हारे हृदय को घेरने का कोई अवसर नहीं मिलता। सहानुभूतिपूर्ण आनंद के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति ही घृणा का उपचार है।"

या फिर वह कह सकता है, "मैंने हृदय की चिन्हहीन मुक्ति प्राप्त कर ली है, फिर भी मेरा हृदय चिन्हों की लालसा करता है..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहेंगे! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम चिन्हहीन मुक्ति के द्वारा हृदय की मुक्ति प्राप्त कर लेते हो, तो चिन्हों की लालसा तुम्हारे हृदय को घेर नहीं पाएगी। चिन्हहीन मुक्ति के द्वारा प्राप्त यह मुक्ति चिन्हों की लालसा का उपचार है।"

च. या वह कह सकता है, "'मैं हूँ' का विचार मुझे अप्रिय लगता है, मैं 'मैं यह हूँ' के विचार पर ध्यान नहीं देता। फिर भी संदेह, अनिश्चितताएँ और समस्याएँ मेरे हृदय को जकड़े रहती हैं..." उसे कहा जाना चाहिए, "नहीं! ऐसा मत कहो! भगवान परमेश्वर का गलत अर्थ मत निकालो, उन पर इस प्रकार कलंक लगाना उचित नहीं है, क्योंकि वे ऐसा कभी नहीं कहते! तुम्हारे शब्द निराधार और असंभव हैं। यदि तुम शून्यता के माध्यम से हृदय की मुक्ति प्राप्त करोगे, तो 'मैं यह हूँ' का विचार तुम्हारे हृदय को घेर नहीं पाएगा। शून्यता के माध्यम से प्राप्त यह मुक्ति ही 'मैं यह हूँ' के विचार का उपचार है।"

वे कौन सी छह चीजें हैं जिन्हें उत्पन्न करना है?

8. छह स्थिर अवस्थाएँ: आँख से किसी वस्तु को देखने पर, कान से किसी ध्वनि को सुनने पर, नाक से किसी गंध को सूंघने पर, जीभ से किसी स्वाद को चखने पर, शरीर से किसी मूर्त वस्तु को छूने पर, या मन से किसी मानसिक वस्तु को जानने पर, व्यक्ति न तो प्रसन्न होता है और न ही अप्रसन्न होता है, बल्कि न्यायसंगत, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक रहता है।

...पूरी तरह से ज्ञात?

9. छह अतुलनीय चीजें: कुछ दृश्य, सुनी हुई बातें, लाभ, प्रशिक्षण, सेवा के रूप, स्मरण की वस्तुएँ।

...क्या यह साकार हो पाएगा?

10. यहाँ, एक भिक्षु अपने मन को विभिन्न अलौकिक शक्तियों पर केंद्रित करता है और उनका आनंद लेता है:

ए. एक होते हुए भी वह अनेक हो जाता है।

ख. दिव्य श्रवण शक्ति से वह दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है।

ग. वह अन्य प्राणियों के मन को जानता और पहचानता है।

d. उसे अपने पिछले जन्मों की याद है

ई. दिव्य दृष्टि से...वह प्राणियों के निधन और पुनरुत्थान को देखता है।

च. वह इस जीवन में अपने ही अतिज्ञान और अनुभूति के द्वारा हृदय की दोषरहित मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति में निवास करता है।

इस प्रकार साठ ऐसी बातें हैं जो वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं, तथागत द्वारा अचूक और पूर्ण रूप से साकार की गई हैं।

सात चीजें बेहद मददगार होती हैं, सात चीजों का विकास करना आवश्यक है...

कौन सी सात चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. सात खजाने:

ए. विश्वास

ख. नैतिकता

ग. नैतिक शर्म

डी. नैतिक भय

ई. सीखना

एफ. त्याग

जी. ज्ञान

...विकसित किया जाना है?

2. ज्ञानोदय के सात कारक:

ए. सचेतनता

ख. घटनाओं की जांच

सी. ऊर्जा

डी. आनंद

ई. शांति

एफ. सांद्रता

जी. समभाव

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. चेतना के सात स्तर: प्राणी

ए. शारीरिक बनावट में भिन्नता, धारणा में भिन्नता

b. शरीर में भिन्न, धारणा में समान

ग. शारीरिक बनावट में एकरूप, धारणा में भिन्न

घ. शरीर में एकरूप, धारणा में भी एकरूप

ई. जिन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

एफ. ...अनंत चेतना का

जी. ...शून्यता का

...छोड़ा हुआ?

4. सात गुप्त प्रवृत्तियाँ: कामुक लोभ, द्वेष, पूर्वाग्रह, संदेह, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञान।

...कमी की ओर ले जाता है?

5. सात गलत प्रथाएँ: यहाँ एक भिक्षु

ए. आस्था का अभाव

b. नैतिक शर्म का अभाव

ग. नैतिक भय का अभाव

d. सीखने की क्षमता कम है

ई. क्या शिथिलता है

एफ. असावधान है

जी. ज्ञान का अभाव

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. सात सही अभ्यास: यहाँ एक भिक्षु के पास विश्वास, नैतिक शर्म और नैतिक भय है, वह बहुत ज्ञानी है, उसने शक्ति को जागृत किया है, उसने जागरूकता स्थापित की है, और वह ज्ञान से परिपूर्ण है।

...भेदना मुश्किल है?

7. सच्चे व्यक्ति के सात गुण: यहाँ एक भिक्षु धम्म का ज्ञाता, अर्थों का ज्ञाता, स्वयं का ज्ञाता, संयम का ज्ञाता, उचित समय का ज्ञाता और व्यक्तियों के समूहों का ज्ञाता होता है।

...उत्पन्न करने के लिए?

8. सात धारणाएँ: अनित्यता की धारणा, अनात्म की धारणा, अशुद्धता की धारणा, खतरे की धारणा, परित्याग की धारणा, अपव्यय की धारणा, समाप्ति की धारणा।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. प्रशंसा के सात आधार: यहाँ एक भिक्षु अत्यंत चिंतित है।

क. प्रशिक्षण लेने के लिए तैयार है और इसे जारी रखना चाहता है

ख. धम्म का गहन अध्ययन करना

ग. इच्छाओं से छुटकारा पाने के लिए

घ. एकांत की तलाश करना

ई. ऊर्जा को जगाना

च. सचेतनता और विवेक विकसित करना

g. गहन अंतर्दृष्टि विकसित करना

...सीखना है?

10. अरहंत की सात शक्तियाँ। यहाँ, उस भिक्षु के लिए जिसने भ्रष्टाचारों को नष्ट कर दिया है,

क. सभी मिश्रित वस्तुओं की अनित्यता पूर्ण अंतर्दृष्टि से स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जैसा कि वास्तव में है। यह एक तरीका है जिससे वह यह पहचानता है कि उसके लिए विकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं।

ख. ...इंद्रिय-इच्छाओं को धधकते अंगारों के गड्ढे के समान समझा जा सकता है...

ग. ...उसका हृदय वैराग्य की ओर उन्मुख है और वैराग्य ही उसका लक्ष्य है; त्याग में आनंदित होकर, उसका हृदय सभी प्रकार की विकृतियों के प्रति पूर्णतः अनुत्तरदायी है...

डी. ...सजगता के चारों आधारों को अच्छी तरह से विकसित किया जा चुका है...

ई. ...पांचों संकायों का अच्छा विकास हो चुका है...

एफ. ...ज्ञानोदय के सात कारकों को भली-भांति विकसित किया जा चुका है...

जी. आर्य अष्टांगिक मार्ग का पूर्णतः विकास हो चुका है... यह उन शक्तियों में से एक है जिसके द्वारा वह यह पहचानता है कि उसके लिए भ्रष्टाचार नष्ट हो गए हैं।

इस प्रकार सत्तर ऐसी बातें हैं जो वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं, तथागत द्वारा अचूक और पूर्ण रूप से साकार की गई हैं।

आठ चीजें बहुत मददगार साबित होती हैं...

कौन सी आठ चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. पवित्र जीवन के मूलभूत सिद्धांतों में ज्ञान प्राप्त करने, जो प्राप्त नहीं हुआ है उसे प्राप्त करने और जो प्राप्त हुआ है उसे बढ़ाने, विस्तारित करने और विकसित करने के लिए आठ कारण और आठ परिस्थितियाँ सहायक होती हैं।

क. जो व्यक्ति गुरु या गुरु के पदस्थ साथी भिक्षु के निकट रहता है, वह नैतिक लज्जा और नैतिक भय, प्रेम और श्रद्धा में दृढ़ता से स्थापित हो जाता है... जो व्यक्ति इस प्रकार स्थित होता है

ख. वह समय-समय पर अपने गुरु के पास जाता है, उनसे पूछता है और प्रश्न करता है: "हे भगवान, यह कैसे है? इसका क्या अर्थ है?" इस प्रकार उसके आदरणीय गुरु छिपे हुए रहस्यों को प्रकट कर सकते हैं और अस्पष्टताओं को स्पष्ट कर सकते हैं, इस प्रकार उसकी समस्याओं को हल करने में उसकी सहायता कर सकते हैं।

ग. फिर, उनसे धम्म सुनकर, वह शरीर और मन की एकांतता प्राप्त कर लेता है।

घ. इसके अलावा, एक भिक्षु नैतिक होता है, वह अनुशासन के संयम के अनुसार संयमित जीवन जीता है, सही आचरण में दृढ़ रहता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है और प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है।

ई. एक भिक्षु, जिसने बहुत कुछ सीखा है, वह अपने सीखे हुए ज्ञान को याद रखता है और उसे मन में संजोए रखता है, और उन चीजों को भी याद रखता है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में सुंदर हैं, जो भावना और अक्षर में पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं, वह उन्हें याद रखता है, उन पर चिंतन करता है और उन्हें दृष्टि से आत्मसात करता है। फिर,

च. एक भिक्षु, ऊर्जा को उत्तेजित करके, अस्वस्थ अवस्थाओं को दूर करने का प्रयास जारी रखता है, दृढ़तापूर्वक और लगन से प्रयास करता है, और स्वस्थ अवस्थाओं के बंधन को नहीं छोड़ता। फिर,

उदाहरण के लिए, एक भिक्षु अत्यंत सजग रहता है, उच्चतम सजगता और विवेक से, अतीत में किए गए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और ध्यान में रखता है। साथ ही,

एच. एक भिक्षु निरंतर पांच प्रकार के आरोहण और ग्रहण के बारे में चिंतन करता है: "यह भौतिक रूप है, इसका उद्भव और क्षय; यह भावनाएँ हैं, यह धारणाएँ हैं, यह मानसिक संरचनाएँ हैं, यह चेतना है, इसका उद्भव और क्षय।"

...विकसित किया जाना है?

2. आर्य अष्टांगिक मार्ग।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. आठ सांसारिक स्थितियाँ: लाभ और हानि, प्रसिद्धि और बदनामी, निंदा और प्रशंसा, सुख और दुख।

...छोड़ा हुआ?

4. आठ गलत कारक: गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत कर्म, गलत वाणी, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, गलत एकाग्रता।

...कमी की ओर ले जाता है?

5. आलस्य के आठ अवसर: यहाँ एक भिक्षु

क. उसे एक काम करना है। वह सोचता है, "मुझे यह काम करना है, लेकिन इससे मैं थक जाऊँगा। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता।

ख. उसने कुछ काम किया है। वह सोचता है, "मैंने यह काम कर लिया है, अब मैं थक गया हूँ। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटाता। या

ग. उसे यात्रा पर जाना है, और वह सोचता है, "मुझे इस यात्रा पर जाना है, इससे मैं थक जाता हूँ। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अनकहे को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता। या

घ. वह एक यात्रा से लौटकर आया है और सोचता है, "मैंने यह काम कर लिया है, अब मैं थक गया हूँ। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटाता। या

उदाहरण के लिए, वह किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है। उसे पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। वह सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर थक गया है और बेकार हो गया है। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

एफ. वह भिक्षा मांगने जाता है और पेट भरकर भोजन करता है, और सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर भारी और बेकार हो गया है जैसे मैं गर्भवती हूँ। अब थोड़ा आराम कर लेता हूँ।" इसलिए वह लेट जाता है...

जी. उसे थोड़ी अस्वस्थता महसूस हो रही है, और वह सोचता है, "मुझे थोड़ा आराम कर लेना चाहिए" इसलिए वह लेट जाता है...

एच. वह हाल ही में बीमारी से उबरकर आराम कर रहा है, और वह सोचता है, "मेरा शरीर कमजोर और बेकार है, मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. प्रयास करने के आठ अवसर। यहाँ एक भिक्षु है।

क. उसे एक काम करना है, वह सोचता है, "मुझे यह काम करना है, लेकिन इसे करते समय मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होगा। इसलिए मैं अपूर्ण को पूरा करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा जुटाऊंगा। जो पूरा नहीं हुआ है उसे पूरा करने के लिए, जो अभी तक साकार नहीं हुआ है उसे साकार करने के लिए।"

बी. उसने कुछ काम किया है, वह सोचता है, "ठीक है, मैंने काम तो कर लिया, लेकिन इसके कारण मैं बुद्धों की शिक्षाओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाया, इसलिए मैं पर्याप्त ऊर्जा जुटाऊंगा..."

ग. उसे यात्रा पर जाना होगा...

d. वह एक यात्रा पर रहा है... "मैं इस यात्रा पर रहा हूँ, लेकिन इसके कारण मैं पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाया..."

ई. वह भिक्षा मांगने जाता है लेकिन उसकी भूख मिट नहीं पाती, इसलिए वह सोचता है, "मेरा शरीर हल्का और स्वस्थ है, मैं ऊर्जा जुटा लूंगा..."

एफ. वह भिक्षा मांगने जाता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता है, इसलिए वह सोचता है, "मेरा शरीर मजबूत और स्वस्थ है, मैं ऊर्जा जुटा लूंगा..."

जी. उसे थोड़ी अस्वस्थता है, इसलिए वह सोचता है, "यह और बिगड़ सकता है, इसलिए मैं ऊर्जा जुटाने की कोशिश करूंगा..."

एच. वह अभी हाल ही में ठीक हुआ है और अब स्वास्थ्य लाभ कर रहा है, और वह सोचता है, "हो सकता है कि बीमारी फिर से हो जाए, इसलिए मैं ऊर्जा जुटाऊंगा..."

...भेदना मुश्किल है?

7. भिक्षु के रूप में पवित्र जीवन जीने के लिए आठ दुर्भाग्यपूर्ण, अनुपयुक्त समय।

क. उसे एक काम करना है। वह सोचता है, "मुझे यह काम करना है, लेकिन इससे मैं थक जाऊँगा। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता।

ख. उसने कुछ काम किया है। वह सोचता है, "मैंने यह काम कर लिया है, अब मैं थक गया हूँ। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अवास्तविक को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटाता। या

ग. उसे यात्रा पर जाना है, और वह सोचता है, "मुझे इस यात्रा पर जाना है, इससे मैं थक जाता हूँ। मैं आराम करूँगा।" इसलिए वह लेट जाता है और अधूरे काम को पूरा करने, अधूरे को साकार करने, अनकहे को साकार करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं जुटा पाता। या

घ. वह किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है। उसे तृप्ति नहीं मिलती। वह सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर थक गया है और बेकार हो गया है। मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

वह भिक्षा मांगने जाता है और पेट भरकर खाता है, फिर सोचता है, "मैं भिक्षा मांगने गया था, मेरा शरीर भारी और बेकार हो गया है जैसे मैं गर्भवती हूँ। अब थोड़ा आराम कर लेता हूँ।" इसलिए वह लेट जाता है...

एफ. उसे थोड़ी अस्वस्थता महसूस हो रही है, और वह सोचता है, "मुझे थोड़ा आराम कर लेना चाहिए" इसलिए वह लेट जाता है...

उदाहरण के लिए, वह हाल ही में बीमारी से उबरकर आराम कर रहा है और सोचता है, "मेरा शरीर कमजोर और बेकार है, मुझे आराम करना चाहिए।" इसलिए वह लेट जाता है...

...उत्पन्न करने के लिए?

8. एक महान व्यक्ति के आठ विचार: "यह धम्म है

ए. कुछ ही इच्छाओं में से एक के लिए, अनेक इच्छाओं में से एक के लिए नहीं।

ख. संतुष्ट लोगों के लिए, असंतुष्ट लोगों के लिए नहीं।

ग. यह अंतर्मुखी लोगों के लिए है, न कि उन लोगों के लिए जो संगति में आनंद लेते हैं।

d. यह ऊर्जावान लोगों के लिए है, आलसी लोगों के लिए नहीं।

ई. यह उन लोगों के लिए है जिनकी सचेतनता स्थापित है, न कि उन लोगों के लिए जिनकी सचेतनता शिथिल है।

एफ. यह एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए है, न कि अनिच्छुक व्यक्ति के लिए।

जी. यह ज्ञानवान व्यक्ति के लिए है, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति के लिए।

एच. यह उन लोगों के लिए है जो प्रजनन न करने में आनंद लेते हैं, न कि उन लोगों के लिए जो प्रजनन में आनंद लेते हैं।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. निपुणता प्राप्त करने के आठ चरण:

ए. आंतरिक रूप से रूपों को समझने पर, व्यक्ति को बाहरी रूप सीमित और सुंदर या बदसूरत दिखाई देते हैं;

b. आंतरिक रूप से रूपों को अनुभव करने पर, व्यक्ति को बाह्य रूप असीमित और सुंदर या बदसूरत दिखाई देते हैं।

ग. आंतरिक रूप से आकृतियों को न देख पाने के कारण, व्यक्ति को बाहरी आकृतियाँ सीमित रूप से ही दिखाई देती हैं...

घ. आंतरिक रूप से रूपों को न समझने पर, व्यक्ति असीमित बाह्य रूपों को देखता है...; आंतरिक रूप से रूपों को न समझने पर, व्यक्ति ऐसे रूपों को देखता है जो

आई. नीला

ii. पीला

iii. लाल

iv. सफेद...

...समझना?

10. आठ मुक्ति:

a. रूप धारण करने वाला व्यक्ति रूपों को देखता है;

ख. अपने भीतर भौतिक रूपों को न देख पाने के कारण, व्यक्ति उन्हें बाहर देखता है;

ग. यह सोचते हुए कि "यह सुंदर है" व्यक्ति इस पर ध्यान केंद्रित करने लगता है;

घ. व्यक्ति अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश करता है;

ई. अनंत चेतना का क्षेत्र

एफ. शून्यता का क्षेत्र

जी. वह क्षेत्र जो न तो बोधगम्य है और न ही अबोधगम्य।

h. अनुभूति और संवेदना का रुक जाना।

नौ चीजें बहुत मददगार साबित होती हैं...

वे कौन सी नौ चीजें हैं जो बहुत मददगार होती हैं?

1. विवेकपूर्ण विचार पर आधारित नौ स्थितियाँ। जब कोई भिक्षु विवेकपूर्ण विचार का अभ्यास करता है,

ए. उसमें आनंद उत्पन्न होता है और

ख. उसके प्रसन्न होने से आनंद उत्पन्न होता है, और

ग. आनंद की अनुभूति से उसकी इंद्रियां शांत हो जाती हैं;

घ. इस शांति के परिणामस्वरूप उसे खुशी का अनुभव होता है और;

ई. प्रसन्नता की अनुभूति होने से उसका मन एकाग्र हो जाता है;

च. इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर वह चीजों को वैसे ही जानता और देखता है जैसे वे वास्तव में हैं;

जी. इस प्रकार चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने और देखने से वह मोहभंग हो जाता है।

एच. मोहभंग होने पर वह उदासीन हो जाता है, और

i. वैराग्य से ही वह मुक्त होता है।

...विकसित किया जाना है?

2. पूर्ण शुद्धता के लिए प्रयास के नौ कारक:

क. नैतिकता की शुद्धता के लिए किए जाने वाले प्रयास का कारक

ख. ...मन की पवित्रता के लिए

ग. ...दृष्टि की शुद्धता के लिए

घ. ...संदेह पर विजय प्राप्त करके शुद्धिकरण करना

ई. ...मार्ग और अपमार्ग के ज्ञान और दृष्टि द्वारा शुद्धि का

एफ. ...प्रगति के ज्ञान और दृष्टि द्वारा शुद्धिकरण...

जी. ...ज्ञान और दृष्टि द्वारा शुद्धिकरण

एच. ...ज्ञान की पवित्रता का।

i. ...मुक्ति की पवित्रता का।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. प्राणियों के नौ निवास स्थान:

a. शारीरिक बनावट और धारणा में भिन्न प्राणी

b. शरीर से भिन्न लेकिन धारणा में समान प्राणी

ग. शरीर से समान तथा धारणा में भिन्न प्राणी

घ. शरीर और धारणा में समान प्राणी

ई. अचेतन प्राणियों का क्षेत्र

एफ. वह क्षेत्र जहां न तो बोध होता है और न ही अबोध।

g. वे प्राणी जिन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

h. वे प्राणी जिन्होंने अनंत चेतना के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है

i. वे प्राणी जिन्होंने शून्यता की अवस्था प्राप्त कर ली है

...क्या इसे छोड़ दिया जाएगा?

4. नौ बातें जो लालसा में निहित हैं: लालसा खोज... अधिग्रहण... निर्णय लेने... कामुक इच्छा... आसक्ति... विनियोग... लोभ... संपत्ति की रक्षा को जन्म देती है, और संपत्ति की रक्षा के कारण लाठी और तलवार उठाना, झगड़े... झूठ बोलना और अन्य बुरी अकुशल अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं।

...कमी की ओर ले जाता है?

5. द्वेष के नौ कारण: द्वेष निम्नलिखित विचारों से उत्पन्न होता है,

ए. उसने मुझे चोट पहुँचाई है

b. वह मुझे चोट पहुँचा रहा है।

ग. वह मुझे चोट पहुँचाएगा

d. उसने किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुँचाई है जो मुझे बहुत प्रिय और प्यारा है।

ई. वह किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुंचा रहा है जो मुझे प्रिय और प्यारा है।

एफ. वह किसी ऐसे व्यक्ति को हानि पहुंचाएगा जो मुझे प्रिय और प्रिय है।

जी. उसने किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान किया है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे पसंद नहीं है।

एच. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान कर रहा है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है।

i. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान करेगा जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद करता है।

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. द्वेष पर विजय पाने के नौ तरीके: द्वेष पर इस विचार से विजय पाई जा सकती है:

ए. उसने मुझे चोट पहुंचाई है — ऐसे में उसके प्रति द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

बी. वह मुझे नुकसान पहुंचा रहा है — द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

ग. वह मुझे नुकसान पहुंचाएगा — द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

घ. उसने मेरे किसी प्रिय और प्रिय व्यक्ति को चोट पहुंचाई है — ऐसे में द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

ई. वह किसी ऐसे व्यक्ति को चोट पहुंचा रहा है जो मुझे प्रिय और प्यारा है - ऐसे में द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

एफ. वह किसी ऐसे व्यक्ति को हानि पहुंचाएगा जो मुझे प्रिय और प्यारा है - द्वेष रखने से क्या लाभ होगा?

जी. उसने एक ऐसे व्यक्ति पर एहसान किया है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - ऐसे में द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

एच. वह ऐसे व्यक्ति पर एहसान कर रहा है जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

i. वह किसी ऐसे व्यक्ति पर एहसान करेगा जो मुझसे घृणा करता है और मुझे नापसंद है - द्वेष रखने से क्या फायदा होगा?

...भेदना मुश्किल है?

7. नौ अंतर: तत्व के अंतर के कारण संपर्क में अंतर होता है, संपर्क के अंतर के कारण भावना में अंतर होता है, भावना के अंतर के कारण धारणा में अंतर होता है; धारणा के अंतर के कारण विचार में अंतर होता है, विचार के अंतर के कारण इरादे में अंतर होता है, इरादे के अंतर के कारण आसक्ति में अंतर होता है, आसक्ति के अंतर के कारण खोज में अंतर होता है, खोज के अंतर के कारण प्राप्त होने वाली वस्तु में अंतर होता है।

...उत्पन्न करने के लिए?

8. अपवित्रता, मृत्यु, भोजन की घृणा, संपूर्ण संसार के प्रति अरुचि, अनित्यता, अनित्यता में पीड़ा, पीड़ा में निर्वैयक्तिकता, त्याग और वैराग्य की नौ धारणाएँ।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. नौ क्रमिक अवस्थाएँ: अनंत अंतरिक्ष के ध्यान और क्षेत्र, अनंत चेतना, शून्यता, न तो बोध और न ही अबोध, और बोध और भावना का अंत।

...समझना?

10. नौ क्रमिक समाप्ति: प्रथम ध्यान की प्राप्ति से इंद्रिय संवेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं, द्वितीय ध्यान की प्राप्ति से चिंतन और मनन समाप्त हो जाते हैं, तृतीय ध्यान की प्राप्ति से आनंद समाप्त हो जाता है, चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति से श्वास-श्वास समाप्त हो जाता है, अनंत आकाश के क्षेत्र की प्राप्ति से भौतिकता की अनुभूति समाप्त हो जाती है, अनंत चेतना के क्षेत्र की प्राप्ति से अनंत आकाश के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। शून्यता के क्षेत्र की प्राप्ति से अनंत चेतना के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। न तो अनुभूति और न ही अनुभूति के क्षेत्र की प्राप्ति से शून्यता के क्षेत्र की अनुभूति समाप्त हो जाती है। अनुभूति और अनुभूति की समाप्ति की प्राप्ति से अनुभूति और अनुभूति दोनों समाप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार तथागत द्वारा नब्बे ऐसी बातें सिद्ध की गईं जो वास्तविक और सत्य हैं, अन्यथा नहीं।

दस चीजें बहुत मददगार साबित होती हैं...

कौन सी दस चीजें बहुत मददगार होती हैं?

1. दस चीजें जो सुरक्षा प्रदान करती हैं: यहाँ एक भिक्षु है

क. वह नैतिक है, शिष्य के संयम के अनुसार संयमित जीवन जीता है, सही आचरण में दृढ़ रहता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। वह प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है।

ख. उसने बहुत कुछ सीखा है और जो कुछ सीखा है उसे वह याद रखता है और संजो कर रखता है। आरंभ, मध्य और अंत में सुंदर इन शिक्षाओं में, जो भावना और शब्दों में पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं, वह गहन रूप से पारंगत है; वह उन्हें याद रखता है, उनका पाठ करता है, उन पर मनन करता है और उन्हें अंतर्दृष्टि से आत्मसात करता है।

ग. वह अच्छे लोगों का मित्र, सहयोगी और घनिष्ठ मित्र है।

घ. वह मिलनसार, सौम्य और धैर्यवान है। निर्देशों को शीघ्रता से ग्रहण करता है।

ई. अपने साथी भिक्षुओं के लिए जो भी विभिन्न कार्य करने होते हैं, वह उनमें कुशल होता है, लापरवाह नहीं, उन्हें पूरा करने में दूरदर्शिता का प्रयोग करता है, और कार्य करने और योजना बनाने में अच्छा होता है।

एफ. वह धम्म से प्रेम करता है और उसे सुनने में आनंदित होता है। वह विशेष रूप से उन्नत सिद्धांतों और अनुशासनों का शौकीन है।

जी. वह किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं, वस्त्रों, भिक्षा, भोजन, आवास, बीमारी की स्थिति में दवाओं से संतुष्ट रहता है।

वह सदा ऊर्जा जगाने, अस्वस्थ अवस्थाओं से छुटकारा पाने और स्वस्थ अवस्थाओं को स्थापित करने का प्रयास करता है, ऐसी अच्छी अवस्थाओं को बनाए रखने के लिए अथक और ऊर्जावान रूप से प्रयास करता है, और कभी भी इस भार को नहीं उतारता।

i. वह सचेत है, और उसमें बहुत पहले की गई और कही गई बातों को स्पष्ट रूप से याद रखने की अद्‌भुत क्षमता है।

जे. वह उत्पत्ति और क्षय की बुद्धिमत्तापूर्ण समझ रखने वाला बुद्धिमान व्यक्ति है, वह आर्यन समझ जो दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाती है।

...विकसित किया जाए?

2. समाधि की प्राप्ति के लिए दस वस्तुएँ। वह पृथ्वी-कसीना, जल-कसीना, अग्नि-कसीना, वायु-कसीना, नीला-कसीना, पीला-कसीना, लाल-कसीना, सफेद-कसीना, आकाश-कसीना, चेतना-कसीना को ऊपर, नीचे, चारों ओर, अविभाजित, असीम रूप से देखता है।

...पूरी तरह से ज्ञात?

3. दस इंद्रिय क्षेत्र: आँख और दृष्टि-वस्तु, कान और ध्वनि, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श-वस्तु।

...छोड़ा हुआ?

4. आठ गलत कारक: गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत कर्म, गलत वाणी, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, गलत एकाग्रता, गलत ज्ञान और गलत मुक्ति।

...कमी की ओर ले जाता है?

5. दस अवांछनीय कर्म। जीवन लेना, बिना माँगे कुछ लेना, यौन दुराचार, झूठ बोलना, निंदा करना, अभद्र भाषा बोलना, व्यर्थ की बातें करना, लोभ, द्वेष, गलत दृष्टिकोण।

...भेदभाव को बढ़ावा देता है?

6. दस उत्तम कर्म। जीवन लेने से बचना, बिना दी हुई वस्तु न लेना, यौन दुराचार से बचना, झूठ बोलने से बचना, निंदा करने से बचना, अभद्र भाषा से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लोभ से बचना, द्वेष से बचना और गलत विचारों से बचना।

...भेदना मुश्किल है?

7. दस आर्य स्वभाव: यहाँ एक भिक्षु है

ए. इसने पाँच कारकों से छुटकारा पा लिया है,

b. इसमें छह कारक मौजूद हैं

सी. एक गार्ड तैनात किया है

d. चारों आधारों का अवलोकन करता है,

ई. इसने सांप्रदायिक विचारों से छुटकारा पा लिया है

एफ. उसने खोज को लगभग त्याग दिया है

जी. उसका उद्देश्य शुद्ध है

एच. उसने अपनी भावनाओं को शांत कर लिया है, वह पूरी तरह से मुक्त है

i. हृदय में

जे. ज्ञान द्वारा।

...उत्पन्न करने के लिए?

8. अपवित्रता, मृत्यु, भोजन की घृणा, संपूर्ण संसार के प्रति अरुचि, अनित्यता, अनित्यता में पीड़ा, पीड़ा में निर्वैयक्तिकता, त्याग, वैराग्य और समाप्ति की अनुभूति की नौ धारणाएँ।

...पूरी तरह से सीख लिया?

9. क्षय के दस कारण: सही दृष्टि से गलत दृष्टि का क्षय होता है, और गलत दृष्टि के आधार पर उत्पन्न होने वाली सभी बुरी और अस्वस्थ अवस्थाएँ भी क्षय हो जाती हैं। सही दृष्टि से अनेक स्वस्थ अवस्थाएँ विकसित और परिपूर्ण होती हैं। सही विचार से गलत विचार का क्षय होता है... सही वाणी से गलत वाणी का क्षय होता है... सही कर्म से... सही आजीविका से... सही प्रयास से... सही जागरूकता से... सही एकाग्रता से... सही ज्ञान से... सही मुक्ति से... और सही मुक्ति से अनेक स्वस्थ अवस्थाएँ विकसित और परिपूर्ण होती हैं।

... क्या यह साकार हो पाएगा?

10. अशिक्षार्थी के दस गुण: अशिक्षार्थी का सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, सही ज्ञान, सही मुक्ति।

इस प्रकार, तथागत द्वारा अचूक और पूर्ण रूप से साकार की गई सौ बातें वास्तविक और सत्य हैं, और अन्यथा नहीं।

ऐसा पूज्य शारिपुत्र ने कहा। उनके शब्दों से भिक्षु प्रसन्न और आनंदित हुए।

मज्झिमा निकाय

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेज़ी और पाली-देवनागरी संस्करण नीचे प्रत्येक वग्ग (खंड संस्कृत वर्ग) की शुरुआत में दिए गए हैं।

मज्झिमा निकाय ("मध्यम लंबाई के प्रवचनों का संग्रह") सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से दूसरा है । इस निकाय में बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्यों द्वारा दिए गए 152 प्रवचन शामिल हैं, जो मिलकर बुद्ध की शिक्षाओं के सभी पहलुओं से संबंधित शिक्षाओं का एक व्यापक संग्रह बनाते हैं।

अंतर्वस्तु

1वग्गास
1.11. मूलपरियाया-वग्ग
1.22. सिहानादा-वग्ग
1.33. तातिया-वग्गा
1.44. महायमक-वग्ग
1.55. चुलयमाका-वग्ग
1.66. गहापति-वग्ग
1.77.भिक्खु-वग्ग
1.88. परिब्बाजक-वग्ग
1.99. राजा-वग्ग
1.1010. ब्राह्मण-वग्ग
1.1111. देवदह-वग्ग
1.1212.अनुपदा-वग्ग
1.1313. सुन्नत-वग्ग
1.1414.विभंग-वग्ग
1.1515.सलायतन-वग्ग
2अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
3मूल पाली संस्करण

00:01
41:20

वग्गास

मज्झिमा निकाय में 152 प्रवचन हैं, जिन्हें 15 समूहों में बांटा गया है:

1. मूलपरियाया-वग्ग

मुलापारैया-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी

मूलपरियाय सूत्र (1) चेतना की अवस्थाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं।

सब्बासव सूत्र (2) कैंकरों के उन्मूलन पर।

धम्मदयादा सूत्र (3) भिक्षुओं को धम्म के महत्व और उनकी भौतिक इच्छाओं के महत्वहीन होने का एहसास कराने के लिए प्रेरित करना।

भयभेरव सूत्र (4) जंगल के भय और आतंक का सामना करने पर। बुद्ध के ज्ञानोदय का वृत्तांत भी।

अनंगना सूत्र (5) सारिपुत्त और मोग्गलाना के बीच दुराचार से मुक्ति की प्राप्ति पर एक संवाद।

अकंखेय्या सूत्र (6) उन चीजों पर जिनके लिए भिक्षु कामना कर सकता है।

वत्थुपमा सूत्र (7) मैले कपड़े और दूषित मन का दृष्टांत।

सल्लेख सूत्र (8) स्वयं और झूठे विचारों के उन्मूलन पर।

सम्मादिथि सुत्त (9) सही विचारों पर सारिपुत्त का एक प्रवचन।

सतिपथाना सूत्र (10) दीघा संख्या 22 के समान, लेकिन 4 सत्यों की व्याख्या के बिना।

2. सिहानादा-वग्ग

सिहानादा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कुलासिहनादा सुत्त (11).
महासिहनदा सूत्र (12) लघु और दीर्घ "चुनौती" सूत्र। तपस्वी प्रथाओं की मूर्खता पर।
महादुक्खक्खन्ध सुत्त (13).
चुलादुक्खक्खन्ध सूत्र (14) दुख की लंबी और छोटी कहानियां।
अनुमान सूत्र (15) मोग्गलाना द्वारा, आत्मनिरीक्षण के महत्व पर। (इसमें बुद्ध का कोई संदर्भ नहीं है)।
सेतोखिला सुत्त (16) पाँच मानसिक बंधनों पर।
वनपत्थ सूत्र (17) वन जीवन के लाभ और हानियों पर।
मधुपिंडिका सुत्त (18) बुद्ध अपनी शिक्षाओं की एक संक्षिप्त रूपरेखा देते हैं, जिसे कच्चन विस्तार से बताते हैं।
द्वेधवितक्क सूत्र (19) कामुकता के आकर्षण का दृष्टांत। (4) में ज्ञानोदय की पुनरावृत्ति।
वितक्कसंथन सुत्त (20) अवांछित विचारों को दूर करने के लिए ध्यान की विधि।

3. तातिया-वग्गा
ततिया-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
काकाचुपमा सूत्र (21) आरी की उपमा। सबसे गंभीर उत्तेजना के तहत भावनाओं और मन के नियंत्रण पर।
अलागड्डुपमा सुत्त (22) जल-सर्प की उपमा। धम्म के बारे में गलत विचार रखना, सर्प को पूंछ से पकड़ने के समान है।
वम्मिका सूत्र (23) सुलगती हुई चींटी की टीले की उपमा मानव शरीर के रूप में।
रथविनीत सूत्र (24) पुन्ना ने सारिपुत्त को पवित्र जीवन का उद्देश्य समझाया।
निवापा सूत्र (25) मारा की उपमा एक बोने वाले या शिकारी के रूप में हिरण के लिए चारा बिछाती है।
अरियापरियेसन सूत्र (26) महान खोज। बुद्ध का उनके त्याग, खोज और ज्ञान प्राप्ति का वृत्तांत।
चुलाहत्थिपाडोपमा सुत्त (27) संक्षिप्त "हाथी का निशान" उपमा।
महाहत्थिपाडोपमा सूत्र (28) लंबी "हाथी की पगडंडी" उपमा। पृथ्वी, द्रव, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष तत्वों का उल्लेख है।
महासरोपमा सूत्र (29) लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के खतरे पर। कहा जाता है कि यह तब दिया गया था जब देवदत्त ने संघ छोड़ दिया था।
चुलसरोपमा सूत्र (30) पूर्ववर्ती सूत्र का विकास। धम्म के सार को प्राप्त करने पर।
4. महायमक-वग्ग
महायमका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कुलागोसिंगा सूत्र (31) बुद्ध की तीन भिक्षुओं के साथ बातचीत, जो उन्हें अपनी उपलब्धियों के बारे में बताते हैं।
महागोसिंगा सूत्र (32) छह भिक्षुओं के बीच एक संवाद जिसमें वे चर्चा करते हैं कि जंगल को क्या सुंदर बनाता है।
महागोपालक सूत्र (33) चरवाहे के ग्यारह अच्छे और बुरे गुणों पर।
कुलगोपालक सूत्र (34) नदी पार करते मूर्ख और बुद्धिमान चरवाहे की उपमा।
चुला सच्चक सूत्र (35) पाँच खंडों की प्रकृति पर बुद्ध और जैन सच्चक के बीच एक चर्चा।
महा सच्चक सूत्र (36) बुद्ध के तपस्या और ज्ञानोदय का वृत्तांत, सही ध्यान पर निर्देशों के साथ।
चुलतन्हासंखया सूत्र (37) सक्का बुद्ध से भोग से मुक्ति के बारे में पूछता है और मोग्गलाना को उनके उत्तर को संतोषजनक ढंग से दोहराता है।
महातन्हासंख्य सूत्र (38) उस भिक्षु के विधर्म का खंडन जो मानता है कि चेतना ही पुनर्जन्म लेती है।
महा अस्सपुरा सुट्टा (39) नीचे (40) देखें।
चुला अस्सपुरा सूत्र (40) अस्सपुरा में दिए गए महान और लघु प्रवचन, तपस्वी के कर्तव्यों पर।

5. चुलयमाका-वग्ग
कुलायमाका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
सालेय्यक सूत्र (41) साला के ब्राह्मणों को प्रवचन, इस विषय पर कि कुछ प्राणी स्वर्ग जाते हैं और कुछ नरक।
वेरंजक सूत्र (42) वही प्रवचन वेरंजा के गृहस्थों को दोहराया गया।
महावेदल्ला सुत्त (43) सारिपुत्त द्वारा महाकोट्ठिता को दिया गया एक मनोवैज्ञानिक प्रवचन।
कुलवेदल्ला सुत्त (44) भिक्खुनी धम्मदिन्ना द्वारा सामान्य भक्त विशाखा को दिया गया एक मनोवैज्ञानिक प्रवचन।
कुलधम्मसमदाना सुत्त (45) नीचे देखें (46)।
महाधम्मसमदना सुत्त (46) भविष्य में सुख और दुख के परिपक्व होने पर संक्षिप्त और दीर्घ प्रवचन।
विमंसक सूत्र (47) जांच के सही तरीकों पर।

कोसंबिया सूत्र (48) कोसंबी के भिक्षुओं को झगड़े की बुराई पर एक प्रवचन।
ब्रह्मनिमान्तनिका सूत्र (49) बुद्ध ब्रह्मलोक में बका को स्थायित्व के विधर्म से परिवर्तित करते हैं।
मराटज्जनिया सुट्टा (50) मोग्गलाना ने मारा को चेतावनी दी।
6. गहापति-वग्ग
गहपति-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कंदारक सूत्र (51) चार प्रकार के व्यक्तित्वों पर प्रवचन।
अत्थकनगर सूत्र (52) आनंद द्वारा निर्वाण प्राप्ति के मार्गों पर एक प्रवचन।
सेखा सूत्र (53) बुद्ध कपिलवस्तु में एक नया सभा कक्ष खोलते हैं, और आनंद शिष्य के प्रशिक्षण पर प्रवचन देते हैं।
पोटालिया सूत्र (54) बुद्ध पोटालिया को सांसारिकता के त्याग का वास्तविक महत्व समझाते हैं।
जीवक सूत्र (55) बुद्ध मांसाहार की नैतिकता की व्याख्या करते हैं।
उपालि सुत्त (56) उपालि, जैन का रूपांतरण।
कुक्कुरवाटिका सूत्र (57) बुद्ध और दो तपस्वियों के बीच कर्म (कर्म/कार्य) पर एक संवाद।
अभयराजकुमार सुत्त (58) जैन नटपुत्त ने देवदत्त की निंदा पर बुद्ध से सवाल करने के लिए राजकुमार अभय को भेजा।
बहुवेदनीय सूत्र (59) भावनाओं के वर्गीकरण पर।
अपन्नक सुत्त (60) विभिन्न विधर्मियों के विरुद्ध, "निश्चित सिद्धांत" पर।

7.भिक्खु-वग्ग
भिक्खु-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अम्बलत्थिका-राहुलोवाद सुत्त (61) बुद्ध द्वारा राहुल को दिया गया झूठ पर उपदेश।
महा-राहुलोवदा सुत्त (62) राहुल को श्वास व्यायाम के साथ चिंतन करने की सलाह।
चुला-मालुनक्य सूत्र (63) अनिर्धारित प्रश्नों पर (तुलना करें (72) भी)।
महा-मालुंक्य सूत्र (64) पाँच निम्न बंधनों पर।
भद्दलि सुत्त (65) भद्दलि की स्वीकारोक्ति, और बुद्ध की सलाह।
लातुकीकोपमा सूत्र (66) संसार के त्याग पर सलाह।
कैटुमा सुट्टा (67) कैटुमा में झगड़ालू भिक्षुओं को सलाह।
नलकापना सुत्त (68) बुद्ध धम्म के कुछ बिंदुओं के संबंध में अनुरुद्ध से प्रश्न करते हैं।
गुलिस्सानी सूत्र (69) उन लोगों के लिए नियम जो गुलिस्सानी की तरह जंगल में रहते हैं।
कितागिरि सूत्र (70) भिक्षुओं के विभिन्न वर्गों द्वारा पालन किया जाने वाला आचरण।
8. परिब्बाजक-वग्ग
परिब्बाजाका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
तेविज्जा-वच्छगोत्ता सूत्र (71) बुद्ध तपस्वी वच्छगोत्ता से मिलने जाते हैं और दावा करते हैं कि उन्हें तेविज्जा (त्रिविध ज्ञान रखने वाला) कहा जाता है क्योंकि उन्हें अपने पिछले जन्मों का स्मरण, अलौकिक दृष्टि और आसवों के उन्मूलन के मार्ग का ज्ञान है।
अग्गी-वच्छगोत्त सूत्र (72) दुनिया आदि के बारे में सिद्धांत बनाने का खतरा।
महा वाचागोट्टा सुत्त (73) सामान्य शिष्यों और भिक्खुओं के आचरण पर वाचागोट्टा को आगे की व्याख्या।
दीघनखा सुत्त (74) बुद्ध तपस्वी दीघनखा का खंडन करते हैं। सारिपुत्त को अरिहतपद प्राप्त होता है।
मगंदिया सूत्र (75) बुद्ध इंद्रिय जीवन के अपने त्याग के बारे में बताते हैं, और कामुक इच्छाओं के परित्याग पर विस्तार से चर्चा करते हैं।
संदका सुत्ता (76) आनंद तपस्वी संदका के पाखंडों का खंडन करते हैं।
महासकुलुदयी सूत्र (77) बुद्ध को सम्मानित किए जाने के पाँच कारणों पर।
समनामंडीका सूत्र (78) पूर्ण सद्गुण के गुणों पर।
चुलसकुलुदयी सूत्र (79) जैन नेता नटपुत्त, और सच्चे सुख का मार्ग।
वेखानस्सा सूत्र (80) पूर्ववर्ती सूत्र के एक भाग की पुनरावृत्ति, पाँच इंद्रियों पर अतिरिक्त विषयवस्तु के साथ।

9. राजा-वग्ग
राजा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
घटिकारा सूत्र (81) बुद्ध आनंद को ज्योतिपाल के रूप में अपने पिछले अस्तित्व के बारे में बताते हैं।
रत्थपाल सूत्र (82) रत्थपाल की कहानी, जिसके माता-पिता ने उसे संघ में प्रवेश करने से रोकने के लिए व्यर्थ प्रयास किया।
मखदेव सूत्र (83) राजा मखदेव के रूप में बुद्ध के पिछले जीवन की कहानी।
मधुर सूत्र (84) बुद्ध की मृत्यु के बाद कच्चना द्वारा राजा अवंतीपुत्त को जाति के वास्तविक अर्थ पर दिया गया प्रवचन।

बोधिराजकुमार सूत्र (85) बुद्ध अपने त्याग और ज्ञानोदय की कहानी बताते हैं जैसा कि (26) और (36) में है।
अंगुलिमाला सूत्र (86) डाकू सरदार अंगुलिमाला के धर्म परिवर्तन की कहानी।
पियाजातिका सूत्र (87) बुद्ध द्वारा एक ऐसे व्यक्ति को दी गई सलाह जिसने अपना पुत्र खो दिया था, और उस पर राजा पसेनादि और उसकी पत्नी के बीच विवाद।
बहितिका सूत्र (88) आनंद पसेनादि द्वारा पूछे गए आचरण संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हैं, जो उन्हें विदेशी वस्त्र का एक टुकड़ा भेंट करता है।
धम्मचेतिया सुत्त (89) पसेनादि बुद्ध से मिलने जाता है और पवित्र जीवन की प्रशंसा करता है।
कन्नाकत्थलक सूत्र (90) बुद्ध और पसेनादि के बीच देवों, जाति और ब्रह्मा पर हुई बातचीत।
10. ब्राह्मण-वग्ग
ब्राह्मण-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
ब्रह्मयु सूत्र (91) महान पुरुष के बत्तीस लक्षण और ब्राह्मण ब्रह्मयु के रूपांतरण पर।
सेला सूत्र (92) ब्राह्मण सेला बुद्ध के बत्तीस चिह्नों को देखकर परिवर्तित हो जाता है। (यही कथा सूत्र निपाता तृतीय, 7 में भी वर्णित है)।
अस्सलायन सूत्र (93) ब्राह्मण अस्सलायन बुद्ध के साथ जाति पर चर्चा करते हैं। जाति पर बुद्ध की शिक्षाओं की एक महत्वपूर्ण प्रस्तुति।
घोटामुख सूत्र (94) घोटामुख संघ के लिए एक सभा भवन का निर्माण करता है। इसके उद्घाटन पर उदेना का प्रवचन।
कैनकी सुट्टा (95) ब्राह्मणवादी सिद्धांतों पर प्रवचन।
एसुकारी सुत्त (96) जाति और उसके कार्यों पर प्रवचन।
धनंजनी सुत्ता (97) सारिपुत्त ने ब्राह्मण धनंजनी से कहा कि पारिवारिक कर्तव्य गलत काम के लिए कोई बहाना नहीं हैं।
वसेत्था सुत्त (98) सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप पर, अधिकतर पद्य में, प्रवचन। (यह सुत्त निपाता III, 9 में पुनरावृत्त होता है)।
सुभा सुत्त (मज्झिमा निकया) (99) इस विषय पर कि मनुष्य को गृहस्थ रहना चाहिए या संसार छोड़ देना चाहिए।
संगरव सूत्र (100) धम्म को स्वीकार करने वाली ब्राह्मण स्त्री, और पवित्र जीवन पर एक प्रवचन। साथ ही (26) और (36) के कुछ हिस्सों की पुनरावृत्ति।

11. देवदह-वग्ग
देवदह-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
देवदहा सूत्र (101) बुद्ध जीवन जीने के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति पर प्रवचन देते हैं।
पंचत्तया सूत्र (102) आत्मा के पाँच सिद्धांतों पर, और यह कि मुक्ति (निर्वाण) का मार्ग उनमें से किसी पर भी निर्भर नहीं करता है।
किन्ती सूत्र (103) धम्म के विषय में विवाद करने वाले और अपराध करने वाले भिक्षुओं के लिए नियम।
समागम सूत्र (104) नटपुत्त की मृत्यु के बाद - दीघा निकया (29) में भी - विवाद और सद्भाव पर बुद्ध का प्रवचन।
सुनक्खत्त सूत्र (105) लालसा के बाण को निकालने की उपमा।
अनंजसप्पय सूत्र (106) अविघटन और उपलब्धियों पर ध्यान, और सच्ची मुक्ति पर।
गणक-मोग्गलाना सुत्त (107) शिष्यों के प्रशिक्षण पर गणक-मोग्गलाना को निर्देश।
गोपका-मोग्गलाना सूत्र (108) बुद्ध के निधन के बाद, आनंद ने वस्सकारा को समझाया कि धम्म ही अब एकमात्र मार्गदर्शक है।
महा पुन्नमा सुत्त (109) बुद्ध खंडों के संबंध में एक भिक्षु के प्रश्नों का उत्तर देते हैं।
चुला पुन्नामा सुत्त (110) अच्छे और बुरे आदमी पर एक प्रवचन।
12.अनुपदा-वग्ग
अनुपदा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अनुपदा सुत्त (111) बुद्ध सारिपुत्त और उनके मन के विश्लेषण की प्रशंसा करते हैं।
छब्बिसोदना सूत्र (112) उस भिक्षु से पूछे जाने वाले प्रश्न जो अरहंतत्व प्राप्त करने की घोषणा करता है।
सप्पुरिसा सुत्त (113) भिक्षु के अच्छे और बुरे गुणों पर।
सेविताबबासेविताब्बा सूत्र (114) सारिपुत्त पवित्र जीवन जीने का सही तरीका बताते हैं।
बहुधातुक सूत्र (115) बुद्ध और आनंद के बीच संवाद के रूप में व्यवस्थित तत्वों और सिद्धांतों की सूचियाँ।
इसिगिली सुट्टा (116) पचेका-बुद्ध पर बुद्ध।
महाचत्तरिसक सूत्र (117) आर्य अष्टांगिक मार्ग की व्याख्या।
अनापानसति सुत्त (118) श्वास व्यायाम पर।
कायगतसति सुत्त (119) शरीर पर ध्यान।
संखरुप्पति सूत्र (120) पाँच संस्कारों के विकास पर, जो भिक्षु को उसके पुनर्जन्म की स्थितियों को निर्धारित करने में सक्षम बनाते हैं।

13. सुन्नत-वग्ग

सुन्नत-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
चुलसुन्नत सूत्र (121) शून्यता पर ध्यान।
महासुन्नत सूत्र (122) आनंद को शून्यता पर ध्यान के अभ्यास पर निर्देश।
अचरियाबभुतधम्म सुत्त (123) एक बोधिसत्व के अद्‌भुत जीवन पर। दीघ निकाय (14) के भाग की पुनरावृत्ति लेकिन स्वयं बुद्ध पर लागू होती है।
बक्कुला सुत्ता (124) बक्कुला ने अपने मित्र एसेला-कस्सापा का धर्म परिवर्तन किया।
दंतभूमि सूत्र (125) हाथी के प्रशिक्षण की उपमा से बुद्ध बताते हैं कि किसी को धम्म में दूसरे को कैसे निर्देश देना चाहिए।
भूमिजा सुट्टा (126) भूमिजा ने राजकुमार जयसेन के सवालों का जवाब दिया।
अनुरुद्ध सूत्र (127) अनुरुद्ध गृहस्थ पंचकंग को मन की मुक्ति की व्याख्या करते हैं।
उपक्किलेसा सूत्र (128) बुद्ध कोसंबी के भिक्षुओं के झगड़ों को शांत करते हैं और सही ध्यान पर प्रवचन देते हैं।
बालपंडित सूत्र (129) मृत्यु के बाद पुरस्कार और दंड पर।
देवदूत सूत्र (130) मृत्यु के दूतों की उपेक्षा करने वालों के भाग्य पर।
14.विभंग-वग्ग
विभंग-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
भद्देकरट्टा सुत्त (131) चार छंदों की एक कविता, प्रयास पर टिप्पणी के साथ।
आनंदभद्देकरत्ता सूत्र (132) उसी कविता की आनंद की व्याख्या।
महाकच्चनभड्डेकरट्टा सुत्त (133) महाकच्चन उसी कविता की व्याख्या करते हैं।
लोमसाकंगियाभद्देकरट्टा सुत्त (134) बुद्ध ने लोमसाकंगिया को वही कविता समझाई।
चुलकम्मविभंग सूत्र (135) बुद्ध विभिन्न शारीरिक और मानसिक गुणों को कर्म (कर्म/कर्मों) के कारण बताते हैं।
महाकम्मविभंग सुत्त (136) बुद्ध एक तपस्वी के तर्कों का खंडन करते हैं जो कम्म (कर्म/कर्म) के संचालन से इनकार करते हैं।
सलायतनविभंग सुत्त (137) छह इंद्रियों का विश्लेषण।
उड्डेसविभंगा सुत्त (138) महाकाक्कन चेतना के एक पहलू पर विस्तार करता है।
अरणविभंग सुत्त (139) चरम के बीच का मध्य मार्ग।
धातुविभंग सूत्र (140) पुक्कुसती की कहानी, जिसने अपने उपदेशों से गुरु को पहचाना। तत्वों का विश्लेषण।
सच्चविभंगा सुत्त (141) चार आर्य सत्यों का कथन। उस पर सारिपुत्त की एक टिप्पणी।
दक्षिणविभंग सुत्त (142) उपहार और देने वालों पर।

15.सलायतन-वग्ग
सलायतन-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अनाथपिंडिकोवाडा सुत्त (143) अनाथपिंडिका की मृत्यु, तुसिता स्वर्ग में उनका पुनर्जन्म, और बुद्ध के सामने उनकी उपस्थिति।
चन्नोवादा सुत्त (144) थेरा चन्ना की कहानी, जो बीमार होने पर सारिपुत्त द्वारा उपदेशित किया गया था, और जिसने अंततः आत्महत्या कर ली।
पुन्नोवादा सूत्र (145) बुद्ध द्वारा पुन्ना को सुख और दुख सहने के बारे में दी गई शिक्षा।
नंदकोवड़ा सुत्त (146) नंदका ने महापजापति और 500 भिक्खुनियों को अनित्यता पर उपदेश दिया।
चुला राहुलवादा सूत्र (147) बुद्ध राहुल को जंगल में ले जाते हैं और उनसे अनित्यता के विषय में प्रश्न करते हैं। देवता प्रवचन सुनने आते हैं।
चचक्का सूत्र (148) छह छह (इंद्रियों के) पर।
महासलयातनिका सूत्र (149) इंद्रियों के सही ज्ञान पर।
नागरविन्देय्य सूत्र (150) बुद्ध का उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रकारों पर निर्देश जिन्हें सम्मानित किया जाना चाहिए।
पिंडपातपरिशुद्धि सूत्र (151) शिष्य के प्रशिक्षण पर सारिपुत्त को निर्देश।
इंद्रियभवन सूत्र (152) बुद्ध ने सेउस को वश में करने के लिए ब्राह्मण परासरिया की विधियों को अस्वीकार कर दिया और अपनी विधि का प्रतिपादन किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> मुलपरैया-वग्गा >> 1.1: मुलपारैया सुत्त (एमएन 1)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

चेतना की अवस्थाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं?

अंतर्वस्तु
1सेवा
2अशिक्षित सामान्य व्यक्ति
3!
4अरहंत
5तथागत
6नोट्स

मैंने ऐसा सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध उक्कत्था में, परम पवित्र उपवन में स्थित एक शाही साल के पेड़ की छाया में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त घटनाओं के मूल क्रम का ज्ञान दूंगा । ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"
"जैसा आप कहें, महोदय," उन्होंने जवाब दिया।

अशिक्षित साधारण व्यक्ति
भगवान बुद्ध ने कहा: “हे भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का अनादर करता है, उनके धर्म का ज्ञाता या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का अनादर करता है, उनके धर्म का ज्ञाता या अनुशासित नहीं है—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में देखता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में देखकर, वह पृथ्वी के बारे में, पृथ्वी में, पृथ्वी से निकलने वाली चीजों के बारे में सोचता है, वह पृथ्वी को 'मेरी' समझता है, वह पृथ्वी में आनंदित होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझा नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।”
वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, बोधित को बोधित के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, और सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में देखता है।
वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में देखता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में देखते हुए, वह मुक्ति के बारे में बातें सोचता है, मुक्ति में बातें सोचता है, मुक्ति से निकलती बातें सोचता है, मुक्ति को 'अपना' मानता है, मुक्ति में आनंदित होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझा नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।
प्रशिक्षु
“एक प्रशिक्षु भिक्षु —बंधन से पूर्ण मुक्ति की तीव्र इच्छा से ग्रस्त, जिसकी आकांक्षाएँ अभी तक अधूरी हैं—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वह पृथ्वी से संबंधित किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी में किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी से निकलने वाली किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी को ‘मेरी’ न समझे, पृथ्वी में आनंद न ले। ऐसा क्यों? ताकि वह इसे समझ सके, मैं तुम्हें बताता हूँ।
वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।

वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हुए, उसे मुक्ति के विषय में कुछ भी नहीं सोचना चाहिए, मुक्ति में कुछ भी नहीं सोचना चाहिए, मुक्ति से कुछ भी नहीं निकलना चाहिए, मुक्ति को 'मेरा' नहीं समझना चाहिए, मुक्ति में आनंद नहीं लेना चाहिए। ऐसा क्यों? ताकि वह इसे समझ सके, मैं तुम्हें बताता हूँ।

अरहंत

"एक योग्य भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है—जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधनों को तोड़ दिया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है—वह पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वह पृथ्वी के बारे में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं समझता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझ लिया है, मैं तुमसे कहता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।

वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के कारण, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझ लिया है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, मैं तुम्हें बताता हूँ, जब उसकी वासना समाप्त हो जाती है, तो वह वासना से मुक्त हो जाता है।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानते हुए, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, वासना के अंत के साथ, वह वासना से रहित हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि घृणा के अंत के साथ, वह घृणा से मुक्त हो जाता है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि घृणा के अंत के साथ, वह घृणा से रहित हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में, पृथ्वी में, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली, पृथ्वी को 'मेरी' समझकर, पृथ्वी में आनंदित होकर कुछ नहीं सोचता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, भ्रम के अंत के साथ, वह भ्रम से मुक्त हो जाता है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, भ्रम के अंत के साथ, वह भ्रम से मुक्त हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

तथागत

"तथागत—एक योग्य, सच्चे आत्मज्ञानी—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वे पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचते, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचते, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलते, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानते, पृथ्वी में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत ने इसे पूर्णतः समझ लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत ने इसे पूर्णतः समझ लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।

"तथागत—एक योग्य, सच्चे आत्मज्ञानी—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वे पृथ्वी के विषय में, पृथ्वी में, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में, पृथ्वी को 'मेरी' कहकर, पृथ्वी में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों? क्योंकि वे जानते हैं कि आनंद दुख और तनाव का मूल है, कि जन्म से ही अस्तित्व है, और जो अस्तित्व में आया है, उसी का अंत और मृत्यु है। इसलिए, भोग-विलास के पूर्ण अंत, विलीन होने, निश्चिंत होने, त्यागने और लालसा के परित्याग के साथ, तथागत पूर्णतः अद्वितीय सच्चे आत्मज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

"वह बंधनहीनता को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। बंधनहीनता को प्रत्यक्ष रूप से जानते हुए, वे बंधनहीनता के बारे में कुछ नहीं सोचते, बंधनहीनता में कुछ नहीं सोचते, बंधनहीनता से कुछ नहीं निकलते, बंधनहीनता को 'मेरा' नहीं मानते, बंधनहीनता में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों? क्योंकि वे जानते हैं कि आनंद दुख और तनाव का मूल है, कि जन्म से ही अस्तित्व है, और जो अस्तित्व में आया है, उसी का अंत और मृत्यु है। इसलिए, पूर्ण अंत, विलीनता, समाप्ति, त्याग, लालसा के परित्याग के साथ, तथागत पूर्णतः अद्वितीय आत्म-जागृति में जागृत हो गए हैं, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु इससे अप्रसन्न हुए और उन्हें भगवान बुद्ध के शब्द अच्छे नहीं लगे।

नोट्स

मूलपरियाय सूत्र का अंग्रेजी अर्थ है, मूल क्रम। बुद्ध ने सिखाया कि विचारों से आसक्ति, मन को दुख की प्रक्रियाओं से बांधने वाले चार प्रकार के आसक्ति में से एक है। इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को न केवल विशिष्ट स्थितियों के रूप में विचारों से, बल्कि उनके प्रारंभिक रूप से भी, यानी उन श्रेणियों और संबंधों से, जिन्हें मन अनुभव में ग्रहण करता है, आसक्ति का त्याग करने की सलाह दी। यह वह बिंदु है जिसे वे निम्नलिखित प्रवचन में उठाते हैं, जो स्पष्ट रूप से उनके समय में विकसित हो रहे ब्राह्मणवादी विचार के एक विशेष संप्रदाय - सांख्य, या वर्गीकरण संप्रदाय - के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है।

इस विचारधारा की शुरुआत ईसा पूर्व नौवीं शताब्दी के दार्शनिक उद्दालक के विचारों से हुई, जिन्होंने एक "मूल" की अवधारणा प्रस्तुत की: एक अमूर्त सिद्धांत जिससे सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं और जो सभी वस्तुओं में अंतर्निहित है। इस विचार को आगे बढ़ाने वाले दार्शनिकों ने तर्क और ध्यान के अनुभवों पर आधारित, परम मूल के स्वरूप और उत्पत्ति के क्रम के बारे में अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए। उनके कई सिद्धांत उपनिषदों में दर्ज हैं और अंततः बुद्ध के समय के आसपास शास्त्रीय सांख्य दर्शन प्रणाली के रूप में विकसित हुए।

यद्यपि वर्तमान प्रवचन में इसे सुनने वाले भिक्षुओं की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी टीका में कहा गया है कि दीक्षा से पहले वे ब्राह्मण थे, और दीक्षा के बाद भी वे बुद्ध की शिक्षाओं की व्याख्या अपने पूर्व प्रशिक्षण के प्रकाश में करते रहे, जो संभवतः सांख्य दर्शन का प्रारंभिक रूप रहा होगा। यदि ऐसा है, तो बुद्ध की आरंभिक पंक्तियाँ—"मैं तुम्हें समस्त घटनाओं के मूल का क्रम सिखाऊँगा"—उन्हें उनके चिंतन में बुद्ध के योगदान को सुनने के लिए तैयार करती हैं। वास्तव में, उनके द्वारा वर्णित विषयों की सूची बौद्ध सांख्य दर्शन के समान है। शास्त्रीय सांख्य दर्शन के समानांतर, इसमें 24 विषय हैं, जो भौतिक जगत (यहाँ, चार भौतिक गुण) से शुरू होते हैं, और अस्तित्व एवं अनुभव के अधिक परिष्कृत एवं समावेशी स्तरों से होते हुए अंत में परम बौद्ध अवधारणा: निर्वाण (मुक्ति) तक पहुँचते हैं। सांख्य दर्शन की पद्धति में, निर्वाण ही सर्वस्व में अंतर्निहित अस्तित्व का परम "मूल" या आधार है, जिससे वे सभी उत्पन्न होते हैं।

हालांकि, बुद्ध इस चिंतन पद्धति का अनुसरण करने के बजाय, इसकी जड़ पर ही प्रहार करते हैं: अमूर्त सिद्धांत की धारणा, अनुभव पर आरोपित "अंतर्निहित" (अंतर्निहितता) और "उत्पत्ति" (उत्पत्ति)। वे कहते हैं कि केवल एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति ही अनुभव को इस प्रकार पढ़ेगा। इसके विपरीत, प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति को एक भिन्न प्रकार के "मूल" की खोज करनी चाहिए - वर्तमान में अनुभव किए जा रहे दुख का मूल - और उसे आनंद की क्रिया में खोजना चाहिए। उस आनंद के प्रति वैराग्य विकसित करके, प्रशिक्षु अस्तित्व में आने की प्रक्रिया को उसके वास्तविक स्वरूप में समझ सकता है, उसमें सभी प्रकार की भागीदारी छोड़ सकता है, और इस प्रकार सच्ची जागृति प्राप्त कर सकता है।

यदि इस प्रवचन में उपस्थित श्रोता वास्तव में बौद्ध शिक्षाओं को सांख्य दर्शन के अनुरूप ढालने में रुचि रखते थे, तो उनकी नाराज़गी स्वाभाविक थी — यह उन कुछ उदाहरणों में से एक है जहाँ बुद्ध के वचनों पर नकारात्मक प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। उन्हें उम्मीद थी कि बुद्ध उनके उद्देश्य में योगदान देंगे, लेकिन इसके बजाय उन्होंने अपने संपूर्ण चिंतन और सिद्धांत को अज्ञानतापूर्ण और कुप्रबंधित बताकर आलोचना का सामना किया। हालाँकि, टीका हमें बताती है कि बाद में वे अपनी नाराज़गी पर काबू पाने में सफल रहे और अंततः एएन 3.123 में वर्णित प्रवचन को सुनकर ज्ञानोदय प्राप्त किया।

हालांकि आजकल हम सांख्य दर्शन के दार्शनिकों की तरह कम ही सोचते हैं, फिर भी लंबे समय से एक आम प्रवृत्ति रही है और आज भी है, जिसमें एक ऐसी "बौद्ध" तत्वमीमांसा का निर्माण किया जाता है जिसमें शून्यता, असीमता, धर्म-शरीर, बुद्ध-स्वभाव, ऋग्पा आदि के अनुभव को अस्तित्व का आधार माना जाता है, जिससे "सर्व" - हमारे सभी इंद्रिय एवं मानसिक अनुभव - उत्पन्न होते हैं और ध्यान करते समय हम उसी में लौट आते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि ये सिद्धांत उन विद्वानों की कल्पना हैं जिन्हें ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है, लेकिन वास्तव में ये सिद्धांत अक्सर ध्यान करने वालों के बीच ही उत्पन्न हुए हैं, जो किसी विशेष ध्यान अनुभव को परम लक्ष्य मानते हैं (या प्रवचन के शब्दों में, "अनुभूत करते हैं"), उससे सूक्ष्म रूप से जुड़ जाते हैं (जैसे जब हमें बताया जाता है कि "हम ही ज्ञान हैं"), और फिर उस अनुभव को अस्तित्व का आधार मानते हैं जिससे अन्य सभी अनुभव उत्पन्न होते हैं।

इन पंक्तियों के बाद दी जाने वाली कोई भी शिक्षा उसी आलोचना के अधीन होगी जो बुद्ध ने उन भिक्षुओं के विरुद्ध की थी जिन्होंने सर्वप्रथम इस प्रवचन को सुना था।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सब्बासव सुत्त(एमएन 2)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

आसवों के उन्मूलन पर

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2किण्वन प्रक्रिया को देखकर त्याग देना होगा
3किण्वन को रोककर त्याग दिया जाएगा
4किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से बंद किया जाना है:
5सहनशीलता द्वारा परित्याग की जाने वाली किण्वन प्रक्रियाएँ
6किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से रोककर समाप्त किया जाना चाहिए:
7किण्वन प्रक्रियाओं को नष्ट करके समाप्त किया जाना चाहिए
8विकासशील देशों द्वारा किण्वन प्रक्रिया को त्याग दिया जाएगा
9परिणाम
10नोट्स

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।

वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं..."

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, मैं तुमसे कहता हूँ कि विचारों का अंत उसे होता है जो जानता और देखता है, न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता और देखता है, उसके लिए क्या है? उचित ध्यान और अनुचित ध्यान। जब कोई भिक्षु अनुचित ध्यान देता है, तो अनपेक्षित विचार उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न विचार बढ़ते हैं। जब कोई भिक्षु उचित ध्यान देता है, तो अनपेक्षित विचार उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न विचार समाप्त हो जाते हैं। कुछ विचार देखने से समाप्त होते हैं, कुछ संयम से, कुछ उपयोग करने से, कुछ सहन करने से, कुछ बचने से, कुछ नष्ट करने से और कुछ विकसित करने से समाप्त होते हैं।”

किण्वन प्रक्रिया को देखकर त्याग देना होगा

और वे कौन से विकार हैं जिन्हें देखकर त्याग देना चाहिए? एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धर्म

का पारंगत या अनुशासित नहीं है—यह नहीं समझ पाता कि किन विचारों पर ध्यान देना उचित है और किन पर नहीं। ऐसा होने पर, वह ध्यान देने योग्य विचारों पर ध्यान नहीं देता और इसके बजाय अनुपयुक्त विचारों पर ध्यान देता है।
और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है, जो ध्यान देने योग्य नहीं हैं? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता का संचार होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड का संचार होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानका संचार होता है और वह बढ़ता जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है, जो ध्यान देने योग्य नहीं हैं।
और वे कौन से विचार हैं जिन पर ध्यान देना उचित है, लेकिन जिन पर वह ध्यान नहीं देता? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामुकता का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न अज्ञानकांड का त्याग हो जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर ध्यान देना उचित है, लेकिन जिन पर वह ध्यान नहीं देता। अनपेक्षित विचारों पर ध्यान देने और उचित विचारों पर ध्यान न देने, दोनों के कारण उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न कर्मकांड बढ़ते हैं।
वह इस प्रकार अनुचित ढंग से ध्यान देता है: 'क्या मैं अतीत में था? क्या मैं अतीत में नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? क्या होने के बाद, मैं अतीत में क्या था? क्या मैं भविष्य में होऊंगा? क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? क्या होने के बाद, मैं भविष्य में क्या होऊंगा?' या फिर वह तात्कालिक वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से उलझन में रहता है: 'क्या मैं हूँ? क्या मैं नहीं हूँ? मैं क्या हूँ? मैं कैसा हूँ? यह अस्तित्व कहाँ से आया है? यह कहाँ जा रहा है?'
जब वह इस प्रकार अनुचित रूप से ध्यान देता है, तो उसके मन में छह प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं: या तो 'मेरा एक आत्म है' का विचार सत्य और स्थापित मानकर, या 'मेरा कोई आत्म नहीं है' का विचार, या 'आत्म के माध्यम से ही मैं आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार, या 'आत्म के माध्यम से ही मैं अन-आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार, या 'अन-आत्म के माध्यम से ही मैं आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार सत्य और स्थापित मानकर, या फिर उसके मन में ऐसा विचार आता है: मेरा यही आत्म—वह ज्ञाता जो अच्छे और बुरे कर्मों के फलने-फूलने के प्रति संवेदनशील है—मेरा वह आत्म है जो स्थिर, शाश्वत, अनंत, अपरिवर्तनीय है और अनंत काल तक यथावत रहेगा। इसे विचारों का घना जंगल, विचारों का विकराल जाल, विचारों का मरोड़, विचारों का बंधन कहा जाता है। विचारों के बंधन से बंधा हुआ अशिक्षित साधारण व्यक्ति जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप और पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाता। वह कष्ट और निराशा से मुक्त नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।
"जो शिष्य श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म का पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म का पारंगत और अनुशासित है—वह यह भलीभांति जानता है कि किन विचारों पर ध्यान देना उचित है और किन पर नहीं। ऐसा होने पर वह अनुचित विचारों पर ध्यान नहीं देता, बल्कि उचित विचारों पर ध्यान देता है।"
और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान नहीं देता? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनगढ़ कामुकता का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनगढ़ कर्म का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनगढ़ अज्ञान का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान नहीं देता, और जिन पर वह ध्यान नहीं देता।
और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामुकता का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न अज्ञानकांड का त्याग हो जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है। अनपेक्षित विचारों पर ध्यान न देने और उपयुक्त विचारों पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है।
वह उचित ध्यान देता है। यही तनाव है... यही तनाव का उद्गम है... यही तनाव का निवारण है... यही तनाव निवारण का मार्ग है। इस प्रकार उचित ध्यान देने पर उसके भीतर तीन बंधन छूट जाते हैं: पहचान-दृष्टि, संदेह और नियमों एवं प्रथाओं से चिपके रहना। इन्हें दृष्टि द्वारा त्यागे जाने वाले विकार कहा जाता है।

किण्वन को रोककर त्याग दिया जाएगा
और संयम से किन मनोभ्रंशों का त्याग किया जा सकता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए, नेत्र-संवेदना के संयम के साथ निवास करता है। नेत्र-संवेदना के संयम के साथ असंयमित रूप से निवास करने पर जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होते, वे नेत्र-संवेदना के संयम के साथ निवास करने पर उत्पन्न नहीं होते।
उचित चिंतन करते हुए, वह श्रवण शक्ति के संयम के साथ निवास करता है...
उचित चिंतन करते हुए, वह नाक की संवेदनशीलता के संयम के साथ निवास करता है...
उचित चिंतन करते हुए, वह ज़ुबान की संयमित अभिव्यक्ति के साथ संयमित होकर निवास करता है...
उचित चिंतन करते हुए, वह शरीर की इंद्रियों के संयम के साथ संयमित होकर निवास करता है...

उचित चिंतन करते हुए, वह बुद्धि के संयम से बंधी हुई अवस्था में निवास करता है। बुद्धि के संयम से मुक्त होकर निवास करने पर जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होते, वे बुद्धि के संयम से निवास करने पर उत्पन्न नहीं होते। इन्हें संयम द्वारा त्यागे जाने वाले मनोभ्रंश कहा जाता है।

किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से बंद किया जाना है:
और किन विकारों को त्यागना चाहिए? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु, उचित चिंतन करते हुए, ठंड से बचने के लिए, गर्मी से बचने के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों के स्पर्श से बचने के लिए, केवल शरीर के उन हिस्सों को ढकने के लिए वस्त्र का उपयोग करता है जो शर्म का कारण बनते हैं।
"उचित चिंतन करते हुए, वह भिक्षा भोजन का उपयोग न तो मनोरंजन के लिए करता है, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सौंदर्य के लिए; बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को समाप्त करने के लिए, पवित्र जीवन के समर्थन के लिए, यह सोचते हुए कि 'इस प्रकार मैं पुरानी भूख की भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा। मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।'
"उचित रूप से विचार करते हुए, वह आवास का उपयोग केवल ठंड से बचाव के लिए, गर्मी से बचाव के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों के स्पर्श से बचाव के लिए करता है; केवल मौसम की प्रतिकूलताओं से सुरक्षा और एकांत का आनंद लेने के लिए।"
"उचित रूप से विचार करते हुए, वह बीमारों के इलाज के लिए इस्तेमाल की जाने वाली औषधीय सामग्रियों का उपयोग केवल बीमारी से उत्पन्न होने वाले किसी भी दर्द का प्रतिकार करने और बीमारी से अधिकतम मुक्ति प्राप्त करने के लिए करता है।"
"यदि वह इन चीजों का इस प्रकार उपयोग न करे तो जो कंपकंपी, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होता, वह इस प्रकार उपयोग करने पर उत्पन्न नहीं होता। इन्हें उपयोग करने से दूर होने वाली कंपकंपी कहा जाता है।"

सहनशीलता द्वारा परित्याग की जाने वाली किण्वन प्रक्रियाएँ
और सहनशीलता से किन विकारों का त्याग करना चाहिए? एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए सहनशीलता का अभ्यास करता है। वह सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास सहन करता है; मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों का स्पर्श सहन करता है; अपशब्दों और अप्रिय शारीरिक संवेदनाओं को सहन करता है, जो उत्पन्न होने पर पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, अप्रिय, अप्रिय और जीवन के लिए खतरा होती हैं। यदि वह इन चीजों को सहन न करे तो जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होंगे, वे सहनशीलता से उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही सहनशीलता से त्यागने योग्य विकार कहा जाता है।

किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से रोककर समाप्त किया जाना चाहिए:
और किन विकारों से बचना चाहिए? उदाहरण के लिए, एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए जंगली हाथी, जंगली घोड़ा, जंगली बैल, जंगली कुत्ता, साँप, पेड़ का ठूंठ, कंटीली झाड़ी, खाई, चट्टान, गंदा नाला, खुला सीवर आदि से बचता है। उचित चिंतन करते हुए, वह अनुचित स्थानों पर बैठने, अनुचित स्थलों पर भटकने और बुरे मित्रों की संगति करने से बचता है, क्योंकि इससे उसके ज्ञानवान मित्र उस पर बुरे आचरण का संदेह कर सकते हैं। इन चीजों से बचने पर जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होते, वे इनसे बचने पर उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही वे विकार कहा जाता है जिनसे बचना चाहिए।

किण्वन प्रक्रियाओं को नष्ट करके समाप्त किया जाना चाहिए
और वे कौन से विकार हैं जिन्हें नष्ट करके त्याग देना चाहिए? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, उचित चिंतन करते हुए, कामुकता के उत्पन्न विचार को सहन नहीं करता। वह उसे त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और अस्तित्व से मिटा देता है।
उचित चिंतन करते हुए, वह दुर्भावना के किसी भी विचार को सहन नहीं करता...
उचित चिंतन करते हुए, वह क्रूरता के किसी भी विचार को सहन नहीं करता...
उचित चिंतन करते हुए, वह उत्पन्न हुई बुराई और अकुशल मानसिक गुणों को सहन नहीं करता। वह उन्हें त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और उनका अस्तित्व मिटा देता है। यदि वह इन चीजों को नष्ट न करे तो जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होता, वह उनके नष्ट करने पर उत्पन्न नहीं होता। इन्हें ही नष्ट करके त्यागे जाने वाले मनोभ्रंश कहा जाता है।

विकासशील देशों द्वारा किण्वन प्रक्रिया को त्याग दिया जाएगा
और विकास के द्वारा किन विकारों का त्याग करना चाहिए? एक उदाहरण है, एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए, एकांतवास, वैराग्य और संयम पर आधारित जागृति के एक कारक के रूप में सजगता का विकास करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह सब कुछ त्याग देता है। वह गुणों के विश्लेषण, दृढ़ता, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव का विकास करता है, जो एकांतवास, वैराग्य और संयम पर

आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप वह सब कुछ त्याग देता है। इन गुणों का विकास न करने पर जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होते, वे इन गुणों के विकास के बाद उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही विकास के द्वारा त्यागे जाने वाले विकार कहा जाता है।

परिणाम
जब किसी भिक्षु के वे विकार जो दृष्टि से त्यागे जाने चाहिए, दृष्टि से त्याग दिए जाते हैं, संयम से त्याग दिए जाते हैं, उपयोग से त्यागे जाने चाहिए, सहनशीलता से त्याग दिए जाते हैं, परहेज से त्याग दिए जाते हैं, विनाश से त्याग दिए जाते हैं, विकास से त्याग दिए जाने चाहिए, तब उसे समस्त विकारों के संयम से ग्रस्त भिक्षु कहा जाता है। उसने व्यथा का नाश कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और अहंकार की सही समझ के द्वारा दुख और तनाव का अंत कर दिया है।
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> धम्मदयादा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में रह रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “भिक्षुओं, मेरे धर्म के वारिस बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं। तुम पर दया करते हुए मैंने सोचा है: मेरे शिष्य धर्म के वारिस कैसे बन सकते हैं, भौतिक वस्तुओं के नहीं? यदि तुम भौतिक वस्तुओं के वारिस बनोगे, धर्म के नहीं; तो तुम्हें इस प्रकार फटकारा जाएगा: 'गुरु के शिष्य उनके भौतिक वस्तुओं के वारिस बनकर जीते हैं, धर्म के वारिस बनकर नहीं;' और मुझे भी इस प्रकार फटकारा जाएगा: 'गुरु के शिष्य उनके भौतिक वस्तुओं के वारिस बनकर जीते हैं, धर्म के वारिस बनकर नहीं।'

यदि तुम धर्म में मेरे उत्तराधिकारी हो, न कि भौतिक वस्तुओं में, तो तुम पर कोई कलंक नहीं लगेगा, क्योंकि तुम्हारे बारे में कहा जाएगा, 'गुरु के शिष्य धर्म में उनके उत्तराधिकारी के रूप में रहते हैं, न कि भौतिक वस्तुओं में।' इसलिए, भिक्षुओं, धर्म में मेरे उत्तराधिकारी बनो, न कि भौतिक वस्तुओं में। तुम पर दया करते हुए मैंने सोचा है: 'मेरे शिष्य धर्म में मेरे उत्तराधिकारी कैसे बन सकते हैं, न कि भौतिक वस्तुओं में?'

अब, भिक्षुओं, मान लीजिए कि मैंने भोजन कर लिया, और भोजन लेने से इनकार कर दिया, मेरा पेट भर गया, मेरा पेट भर गया, मेरी आवश्यकता पूरी हो गई, और कुछ भिक्षापात्र बच गया जिसे फेंकना था। तभी दो भिक्षु भूखे और कमजोर होकर आए, और मैंने उनसे कहा: 'भिक्षुओं, मैंने भोजन कर लिया है और मेरी आवश्यकता पूरी हो गई है, लेकिन मेरा यह भिक्षापात्र बच गया है जिसे फेंकना है। यदि आप चाहें तो इसे खा लें; यदि आप इसे नहीं खाएंगे तो मैं इसे ऐसी जगह फेंक दूंगा जहाँ हरियाली न हो या ऐसे पानी में डाल दूंगा जहाँ जीवन न हो।' तब एक भिक्षु ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और उनकी आवश्यकता पूरी हो गई है, लेकिन भगवान बुद्ध का यह भिक्षापात्र बच गया है जिसे फेंकना है; यदि हम इसे नहीं खाएंगे तो भगवान बुद्ध इसे फेंक देंगे, लेकिन भगवान बुद्ध ने यह कहा है: 'भिक्षुओं, मेरे धर्म के वारिस बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं।' अब यह भिक्षापात्र भौतिक वस्तुओं में से एक है। मान लीजिए कि इस भिक्षा भोजन को खाने के बजाय मैं दिन-रात भूखा और कमजोर होकर गुजारूं।

और उस भिक्षापात्र को खाने के बजाय उसने वह रात-दिन भूखा और कमजोर होकर गुजारा। तब दूसरे भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और उन्हें अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं, लेकिन भगवान बुद्ध का यह भिक्षापात्र बचा हुआ है जिसे फेंकना पड़ेगा। मान लीजिए कि मैं इस भिक्षापात्र को खा लूँ और रात-दिन न भूखा रहूँ और न कमजोर।' और उस भिक्षापात्र को खाने के बाद उसने रात-दिन न भूखा रह और न कमजोर। अब यद्यपि उस भिक्षु ने उस भिक्षापात्र को खाकर रात-दिन न भूखा रह और न कमजोर, फिर भी मैं पहले भिक्षु का अधिक आदर और प्रशंसा करता हूँ। क्यों? क्योंकि उसने जो इच्छाशक्ति दिखाई है, वह उसकी इच्छाओं की कमी, संतोष, निर्मलता, सहज जीवनयापन और ऊर्जा के संचार में सहायक होगी। इसलिए, भिक्षुओं, मेरे धर्म के उत्तराधिकारी बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं। तुम्हारे प्रति करुणावश मैंने सोचा है, 'मेरे शिष्य धर्म के उत्तराधिकारी कैसे बन सकते हैं, भौतिक वस्तुओं के नहीं?'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इतना कहकर वे अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद, पूज्य शारिपुत्र ने भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य किस प्रकार एकांतवास में साधना नहीं करते?"

"सचमुच, मित्र, हम दूर से पूज्य शारिपुत्र से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। यदि पूज्य शारिपुत्र इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर ये भिक्षु इसे नहीं भूलेंगे!"

"तो मित्रों, मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो और समझो।" पूज्य शारिपुत्र ने आगे कहा: "मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य किस प्रकार एकांतवास में साधना नहीं करते? यहाँ एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांतवास में साधना नहीं करते; वे गुरु द्वारा बताई गई बातों का त्याग नहीं करते; वे विलासी हो जाते हैं और उनमें जागरूकता की कमी हो जाती है, वे पतन के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं और एकांतवास की उपेक्षा करते हैं।"

इस मामले में तीन कारणों से वरिष्ठ भिक्षुओं को दोषी ठहराया जा सकता है। एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य होने के नाते, वे स्वयं भी वैसा ही जीवन जीने का अभ्यास नहीं करते, और यही पहला कारण है जिसके लिए उन्हें दोषी ठहराया जाता है।

वे गुरु द्वारा बताई गई बातों को नहीं छोड़ते और यही दूसरा कारण है कि वे दोषी हैं। वे विलासी हैं और वर्तमान क्षण में सचेत होकर नहीं जीते, वे पतन की ओर अग्रसर होते हैं और एकांतवास की उपेक्षा करते हैं।

मध्यम श्रेणी के भिक्षु और संघ के सबसे नए सदस्य भी इन्हीं कारणों से दोषी हैं। इसी कारण एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांत में प्रशिक्षण नहीं ले पाते।

"मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांतवास में किस प्रकार साधना करते हैं? यहाँ, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य स्वयं को एकांतवास में प्रशिक्षित करते हैं; वे गुरु द्वारा बताई गई बातों का त्याग करते हैं; वे विलासी नहीं होते और वर्तमान क्षण में सचेत रूप से जीते हैं, वे पतन से बचने के लिए उत्सुक रहते हैं और इस प्रकार एकांतवास में अग्रणी बन जाते हैं।"

इस मामले में वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ-साथ मध्यम श्रेणी के भिक्षुओं और यहां तक कि सबसे नए भिक्षुओं की भी तीन कारणों से प्रशंसा की जानी चाहिए। एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य होने के नाते वे एकांत में रहकर स्वयं को प्रशिक्षित करते हैं, इसलिए वे पहले कारण के लिए प्रशंसनीय हैं।

वे गुरु द्वारा बताई गई बातों को त्याग देते हैं, इसलिए इस कारण उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए, यह दूसरा कारण है। वे विलासी नहीं होते और हमेशा वर्तमान क्षण में सचेत रहते हैं, वे पतन से बचने के लिए तत्पर रहते हैं और इस प्रकार एकांतवास में अग्रणी बन जाते हैं। यह तीसरा कारण है जिसके लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए।

मित्रों, हमारे भीतर की बुराई लोभ और घृणा है। इन बीमारियों से मुक्ति पाने का एक मध्यम मार्ग है। यह मध्यम मार्ग दृष्टि और ज्ञान प्रदान करता है, जो शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। वह मध्यम मार्ग क्या है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है: सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। यही वह मध्यम मार्ग है जो दृष्टि और ज्ञान प्रदान करता है, जो शांति, प्रत्यक्ष अनुभूति, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

भीतर की बुराई क्रोध, प्रतिशोध, तिरस्कार और दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा है; यह ईर्ष्या, लालच, छल, हठ, घमंड और अज्ञानता है।

यही मध्यम मार्ग आपको इन कष्टों से भी मुक्ति दिलाएगा!

यह बात पूज्य शारिपुत्र ने कही और भिक्षु उनके शब्दों की बुद्धिमत्ता से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> भयभेरव सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब ब्राह्मण जानूस्सोनी भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम बुद्ध, अच्छे परिवारों के वे पुत्र जो गौतम बुद्ध में आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले गए हैं: क्या गौतम बुद्ध उनके मार्गदर्शक हैं? क्या गौतम बुद्ध उनके सहायक हैं? क्या गौतम बुद्ध उनके प्रेरणास्रोत हैं? क्या वे गौतम बुद्ध को अपना आदर्श मानते हैं?”

"जी हे ब्राह्मण, ऐसा ही है। अच्छे परिवारों के पुत्र जिन्होंने मुझमें आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है: मैं उनका मार्गदर्शक हूँ। मैं उनका सहायक हूँ। मैं उनका प्रेरणास्रोत हूँ। वे मुझे अपना आदर्श मानते हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, एकांत वन या निर्जन वनों में रहना आसान नहीं है। एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर पाने वाले भिक्षु के मन को लूट लेते हैं।"

"जी, ब्राह्मण, ऐसा ही है। एकांत वन या निर्जन वनों में रहना आसान नहीं है। एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर चुके भिक्षु के मन को लूट लेते हैं। मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब भी मेरे मन में यही विचार आया था: 'एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर चुके भिक्षु के मन को लूट लेते हैं।'"

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब शारीरिक क्रियाओं में अपवित्र पुजारी या ध्यानमग्न साधक एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं, तो उनकी अपवित्र शारीरिक क्रियाओं के कारण ही अकुशल भय और आतंक उत्पन्न होता है। लेकिन जब मैं एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेता हूँ, तो मेरी शारीरिक क्रियाएँ अपवित्र नहीं होतीं। मेरी शारीरिक क्रियाएँ पवित्र होती हैं। मैं उन श्रेष्ठजनों में से एक हूँ जिनकी शारीरिक क्रियाएँ पवित्र होती हैं जब वे एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं।' अपने भीतर शारीरिक क्रियाओं की इस पवित्रता को देखकर, मुझे निर्जन स्थानों में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति, जो अपने वाणीगत कार्यों में... अपने मानसिक कार्यों में... अपनी आजीविका में अपवित्र होते हैं, एकांत वन या निर्जन में निवास करते हैं, तो यह उनकी अपवित्र आजीविका का ही दोष है कि वे अकुशल भय और आतंक को जन्म देते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि मैं एकांत वन या निर्जन में निवास करते समय अपनी आजीविका में अपवित्र हूँ। मैं अपनी आजीविका में पवित्र हूँ। मैं उन श्रेष्ठ व्यक्तियों में से एक हूँ जो एकांत वन या निर्जन में निवास करते समय अपनी आजीविका में पवित्र होते हैं।' अपने भीतर आजीविका की इस पवित्रता को देखकर, मुझे निर्जन में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग कामुक सुखों के प्रति लालची और तीव्र रूप से भावुक होते हैं... मैं लालची नहीं हूँ...'

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग दुर्भावना से भरे होते हैं, विनाशकारी मनोवृत्तियों के साथ... मेरा मन सद्भावना से भरा है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हो जाते हैं... मैं आलस्य और सुस्ती से रहित हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग बेचैन और अशांत मन से होते हैं... मेरा मन शांत है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग अनिश्चित और संशय में होते हैं... मैं अनिश्चितता से परे जा चुका हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग स्वयं की प्रशंसा करने और दूसरों की निंदा करने में लगे रहते हैं... मैं स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग जो घबराहट और भय की ओर प्रवृत्त होते हैं... मैं रोंगटे खड़े होने की सीमा से परे चला गया हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग लाभ, भेंट और प्रसिद्धि की इच्छा रखते हैं... मुझे बहुत कम इच्छाएँ हैं..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग आलसी और दृढ़ताहीन होते हैं... तब मेरी दृढ़ता जागृत हो जाती है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति अपनी चेतना में भ्रमित और असावधान होते हैं... तब मैं चेतना स्थापित कर लेता हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति, जिनका ध्यान भटकता रहता है... मैं एकाग्रता में पूर्णतः तल्लीन रहता हूँ..."

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब मूर्ख पुजारी या ध्यानमग्न साधक एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं, तो उनकी मूर्खता ही उनके द्वारा उत्पन्न अकुशल भय और आतंक का कारण होती है। लेकिन जब मैं एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेता हूँ, तो मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं विवेक में परिपूर्ण हूँ। मैं उन श्रेष्ठ व्यक्तियों में से एक हूँ जो एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते समय विवेक में परिपूर्ण होते हैं।' अपने भीतर इस परिपूर्ण विवेक को देखकर, मुझे निर्जन स्थानों में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या होगा यदि मैं चंद्र पखवाड़े की आठवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं जैसी मान्यता प्राप्त, निर्धारित रातों में, उद्यान-मंदिरों, वन-मंदिरों और वृक्ष-मंदिरों जैसी विस्मयकारी और रोमांचकारी जगहों पर रहूँ? शायद तब मुझे वह भय और आतंक देखने को मिले।' इसलिए कुछ समय बाद, चंद्र पखवाड़े की आठवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं जैसी मान्यता प्राप्त, निर्धारित रातों में, मैं उद्यान-मंदिरों, वन-मंदिरों और वृक्ष-मंदिरों जैसी विस्मयकारी और रोमांचकारी जगहों पर रहा। और जब मैं वहाँ रह रहा था, कोई जंगली जानवर आता, कोई पक्षी टहनी गिरा देता, या हवा गिरे हुए पत्तों को सरसरा देती। मेरे मन में यह विचार आता: 'क्या यही वह भय और आतंक आ रहा है?' फिर मेरे मन में यह विचार आया: 'मैं डर का इंतज़ार क्यों करता रहता हूँ? क्या होगा अगर मैं डर और आतंक को, चाहे वे किसी भी रूप में आएँ, वश में कर लूँ?' इसलिए जब चलते-फिरते डर और आतंक आता, तो मैं न तो खड़ा होता, न बैठता, न लेटता। मैं तब तक चलता रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब खड़े होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न चलता, न बैठता, न लेटता। मैं तब तक खड़ा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब बैठे होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न लेटता, न खड़ा होता, न चलता। मैं तब तक बैठा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब लेटे होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न बैठता, न खड़ा होता, न चलता। मैं तब तक लेटा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता।

"हे ब्राह्मण, कुछ पुरोहित और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिन्हें रात में भी 'दिन' और दिन में 'रात' का आभास होता है। मैं तुमसे कहता हूँ, यह उनका भ्रम के देह में होना है। जहाँ तक मेरी बात है, मुझे दिन में भी 'दिन' और रात में भी 'रात' का आभास होता है। यदि कोई सही ढंग से कहे, 'एक ऐसा प्राणी जो भ्रम से मुक्त है, अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति सहानुभूति से, मनुष्य और दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए संसार में प्रकट हुआ है,' तो वह निश्चित रूप से मेरे ही बारे में कह रहा होगा।"

मुझमें अटूट दृढ़ता जागृत हुई और निर्मल ध्यान स्थापित हुआ। मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं था, मेरा मन एकाग्र और स्थिर था। कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, मैं प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर मैं समभाव में स्थिर रहा, सचेत और जागरूक रहा, और शारीरिक रूप से सुख के प्रति संवेदनशील रहा। मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ - मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: समभाव और ध्यान की शुद्धता, न सुख न दुख।

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे अपने पिछले जन्मों को याद करने के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पिछले जन्मों को याद किया, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्मों की शैली और विवरण याद आ गए।

"यह वह पहला ज्ञान था जो मैंने रात्रि के पहले पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने उसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - सही विचारों वाले लोग, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैंने प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया।

"यह वह दूसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने उसे मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अनुभव किया कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' मेरा हृदय, इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, इंद्रिय-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो गया, अस्तित्व की हलचलों से मुक्त हो गया, अज्ञान की हलचलों से मुक्त हो गया। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त हो गया' का ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

"यह वह तीसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के तीसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

"हे ब्राह्मण, यदि आपके मन में यह विचार आए कि 'शायद गौतम ध्यानमग्न आज भी वासना, घृणा और भ्रम से मुक्त नहीं हैं, इसीलिए वे एकांत वनों में निवास करते हैं,' तो इसे इस तरह से न देखें। मैं दो प्रबल कारणों से एकांत वनों में निवास करता हूँ: वर्तमान में अपने लिए सुखदायक निवास की कामना करता हूँ और आने वाली पीढ़ियों के प्रति सहानुभूति रखता हूँ।"

"गुरु गौतम ने भावी पीढ़ियों के प्रति कितनी सच्ची सहानुभूति दिखाई है, मानो वे योग्य और सच्चे आत्म-जागृत हों! महान गुरु गौतम! महान! जैसे वे उलटी हुई चीज़ को सीधा करते हैं, छिपी हुई चीज़ को प्रकट करते हैं, भटके हुए को रास्ता दिखाते हैं, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखाते हैं, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के माध्यम से धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ में आता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने उनकी शरण ली है।"

अनंगना सूत्र
संपादन करने के लिए लॉग इन करें
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> अनंगना सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे।

आदरणीय शारिपुत्र ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों, भिक्षुओं!" और उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "जी हां, मित्र।" तब आदरणीय शारिपुत्र ने कहा, "मित्रों, संसार में चार व्यक्ति हैं, वे कौन से चार हैं?"

यहां, एक दोषयुक्त व्यक्ति यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है'। एक दोषयुक्त व्यक्ति यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष है'। एक दोषरहित व्यक्ति यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष नहीं है'। एक दोषरहित व्यक्ति यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष नहीं है'। दो दोषयुक्त व्यक्तियों में से, वह व्यक्ति जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है' निम्न है। वह व्यक्ति जो यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष है' श्रेष्ठ है।

दो निष्कलंक व्यक्तियों में से, वह व्यक्ति जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई निष्कलंक नहीं है', निम्न है। और वह व्यक्ति जो यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें कोई निष्कलंक नहीं है', श्रेष्ठ है।

जब यह कहा गया, तो पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा, हे मित्र, शारिपुत्र, क्या कारण है कि दो दोषयुक्त में से एक हीन और दूसरा श्रेष्ठ हो, और अन्य दो दोषरहित में से एक हीन और दूसरा श्रेष्ठ हो?

हे मित्र, मोग्गलाना, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए न तो रुचि लेगा और न ही प्रयास करेगा। अतः वह लोभ, घृणा और भ्रम से दूषित मन के साथ मर जाएगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा धूल और दागों से ढक जाता है, क्योंकि उसका मालिक उसमें भोजन नहीं करता और उसे साफ नहीं करता, बल्कि धूल में पड़ा रहने देता है, और समय बीतने के साथ वह पीतल का कटोरा और भी अधिक धूल और दागों से भर जाता है। उसी प्रकार, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए न तो रुचि लेगा और न ही प्रयास करेगा। अतः वह लोभ, घृणा और भ्रम से दूषित मन के साथ मर जाएगा।

मित्र, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए रुचि उत्पन्न करेगा और प्रयास करेगा। वह लोभ, घृणा और भ्रम से रहित निर्मल मन से मृत्यु को प्राप्त होगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा धूल और दागों से ढका होता है। उसका मालिक उसमें भोजन करते समय उसे साफ करता है, उसे गंदगी में पड़ा नहीं रहने देता और समय के साथ-साथ पीतल का कटोरा और भी साफ होता जाता है। उसी प्रकार, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए रुचि उत्पन्न करेगा और प्रयास करेगा। इस प्रकार वह लोभ, घृणा और भ्रम से रहित निर्मल मन से मृत्यु को प्राप्त होगा।

मित्र, यह निष्कलंक व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई दोष नहीं है', किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देने से उसके मन पर लोभ, घृणा और भ्रम हावी हो जाएंगे और वह दूषित मन से मर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया एक स्वच्छ और शुद्ध पीतल का कटोरा, जिसे मालिक उपयोग नहीं करता, उसे धूल में पड़ा रहने देता है, तो समय बीतने के साथ-साथ वह पीतल का कटोरा अधिकाधिक धूलयुक्त और मैला हो जाता है। ठीक उसी प्रकार, यह निष्कलंक व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई दोष नहीं है', किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देने से उसके मन पर लोभ, घृणा और भ्रम हावी हो जाएंगे और वह दूषित मन से मर जाएगा।

मित्र, वह निष्कलंक व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें कोई दोष नहीं है', जब किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देता है, तो लोभ उसके मन पर हावी नहीं होता, घृणा और भ्रम उसके मन पर हावी नहीं होते। वह लोभ, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर मरेगा; वह निर्मल मन से मरेगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा साफ और शुद्ध होता है, मालिक उसे स्वयं उपयोग करता है, उसे साफ रखता है और गंदगी में नहीं छोड़ता, और समय के साथ वह पीतल का कटोरा और भी साफ होता जाता है। उसी प्रकार, वह निष्कलंक व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें कोई दोष नहीं है', जब किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देता है, तो लोभ उसके मन पर हावी नहीं होता, घृणा और भ्रम उसके मन पर हावी नहीं होते। वह लोभ, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर मरेगा। वह निर्मल मन से मरेगा।

मित्र मोग्गलाना, यही कारण है कि दोषयुक्त दो व्यक्तियों में से एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ कहा जाता है, और दोषरहित दो व्यक्तियों में से एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ कहा जाता है।

मित्र, इसे दोष कहते हैं, दोष का पर्यायवाची क्या है? मित्र, दोष विचारों का भटकना है, जो बुरे कर्मों की ओर ले जाता है। कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने पाप किया है, भिक्षुओं को इसके बारे में पता न चले।' भिक्षुओं को पता चल जाता है कि इस भिक्षु ने पाप किया है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने यह अपराध किया है, भिक्षु मुझे गुप्त रूप से सलाह दें, समुदाय के बीच में नहीं।' कभी-कभी भिक्षु को समुदाय के बीच में ही सलाह दी जाती है। समुदाय के बीच सलाह देने के कारण भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने यह अपराध किया है, मुझे गुरु के बजाय भिक्षु ही सलाह दें।' लेकिन ऐसा भी होता है कि गुरु ही भिक्षु को सलाह देते हैं। गुरु की सलाह से भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उठती है, 'हे गुरु, मुझसे प्रश्न पूछकर ही भिक्षुओं को उपदेश दें।' ऐसा भी होता है कि गुरु किसी दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछकर ही उन्हें उपदेश देते हैं। गुरु द्वारा उपदेश देने से पहले किसी दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछने के कारण वह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं गाँव में भिक्षा मांगने के दौरान भिक्षुओं का नेतृत्व करूँ?' ऐसा भी होता है कि गाँव में भिक्षा मांगने के दौरान कोई दूसरा भिक्षु नेतृत्व करता है। इस कारण यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मुझे आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो जाता है। क्योंकि दूसरे भिक्षु को आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो जाता है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे भोजन के अंत में धन्यवाद देने का अवसर मिले...' लेकिन ऐसा होता है कि कोई दूसरा भिक्षु भोजन के अंत में धन्यवाद देता है। दूसरे भिक्षु के धन्यवाद देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाले भिक्षुओं को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाले भिक्षुओं को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं...

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाली भिक्षुणियों को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाली भिक्षुणियों को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाले पुरुष शिष्यों को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाले पुरुष शिष्यों को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने के कारण यह भिक्षु क्रोधित और अरुचिपूर्ण हो जाता है। क्रोध और अरुचि दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाली स्त्री शिष्याओं को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाली स्त्री शिष्याओं को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु द्वारा ऐसा करने से यह भिक्षु क्रोधित और अरुचिपूर्ण हो जाता है। क्रोध और अरुचि दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'भिक्षु मुझे आदर, श्रद्धा और सम्मान दें।' ऐसा होता है कि भिक्षु किसी अन्य भिक्षु को आदर, श्रद्धा और सम्मान देते हैं। क्योंकि किसी अन्य भिक्षु को आदर, श्रद्धा और सम्मान मिलता है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'भिक्षुणियाँ मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा भी होता है कि भिक्षुणियाँ किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं। क्योंकि भिक्षुणियाँ किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मेरे शिष्य मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा होता है कि शिष्य किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करते हैं। शिष्यों द्वारा किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करने के कारण यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मेरी शिष्याएं मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा होता है कि वे शिष्याएं किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं। क्योंकि वे शिष्याएं किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम वस्त्र प्राप्त हों।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को उत्तम वस्त्र प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि उत्तम वस्त्र प्राप्त करने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम भोजन प्राप्त हो जाए...'। संयोगवश, किसी अन्य भिक्षु को उत्तम भोजन प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उत्तम भोजन प्राप्त करने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम आवास प्राप्त हो।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को उत्तम आवास प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उत्तम आवास पाने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उठती है, 'मैं बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी बन जाऊं।' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी बन जाता है। क्योंकि वह भिक्षु बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं। मित्र, बुरे कर्मों में भटकते विचार ही दोष का अर्थ हैं।

मित्र, जिस भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से भरे विचार व्याप्त दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह वनवासी हो, झोपड़ी में रहने वाला हो, विधिपूर्वक भोजन करने वाला हो या फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से भरे विचार दूर नहीं होते। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा हुआ शुद्ध पीतल का कटोरा, उसका मालिक उसमें किसी मृत सर्प का शव भर दे, या कोई कुत्ता या मनुष्य उसे दूसरे कटोरे से ढककर मेले में ले जाए। लोग उसे देखकर कहते, "मित्र, यह क्या ले जा रहे हो? लगता है इसमें कुछ स्वादिष्ट है।" फिर वे उसे रोकते, कटोरा खोलते और अंदर झांकते। उसे देखकर घृणा और उससे दूर भागने की भावना उत्पन्न हो जाती है। भूखे तो भूख खो बैठते हैं, तो जो भूखे नहीं हैं, उनकी तो बात ही क्या। मित्र, जिस प्रकार से किसी भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह वनवासी हो, झोपड़ी में रहने वाला हो, विधिपूर्वक भोजन करने वाला हो, या फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई नहीं देते। मित्र, जिस भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह गाँव के बाहरी इलाके में रहने वाला हो, आमंत्रित हो, या गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई नहीं देते। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया शुद्ध और साफ पीतल का कटोरा, उसका मालिक उसमें बढ़िया पका हुआ चावल, काले बीज और तरह-तरह के सूप व करी भरकर, दूसरे कटोरे से ढककर मेले में ले जाता था। लोग उसे देखकर कहते, "मित्र, यह क्या है जो तुम ले जा रहे हो? लगता है इसमें कुछ स्वादिष्ट है।" फिर वे उसे रोककर कटोरा खोलते और अंदर झाँकते। उसे देखते ही खाने की इच्छा जाग उठती थी। जो भूखे नहीं होते, उन्हें भी खाने की इच्छा होती थी, तो भूखे लोगों की तो बात ही क्या! मित्र, इसी प्रकार, जिस भी भिक्षु के मन में ये बुरे कर्मों से भरे विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह गाँव के बाहरी इलाके में रहने वाला हो, आमंत्रित हो, या गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र धारण करने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, सम्मान और आदर करते हैं। इसका कारण यह है कि उसके मन में बुरे कर्मों से भरे विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं...

यह सुनकर पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा: "मित्र, शारिपुत्र, मेरे मन में एक उपमा आई है। मित्र, कहिए।" "मित्र, एक समय मैं राजगृह पर्वत में रहता था। फिर एक सुबह मैं वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र लेकर राजगृह में प्रवेश किया। उस समय सारथी समिति का पुत्र, पांडु के पुत्र, जो पहले सारथी थे, के लिए एक तपस्वी के पहिये को मोड़ रहा था। तब तपस्वी के मन में यह विचार आया, 'हे! यदि समिति का पुत्र इस टेढ़ेपन, झुकाव और दोष को सुधारकर पहिये को पूर्ण बना दे, तो तपस्वी ने जो भी टेढ़ापन, झुकाव या दोष सोचा था, उसे सुधारकर पहिये को पूर्ण बना दिया।' तब तपस्वी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, 'ऐसा लगता है जैसे उसने हृदय से हृदय को जान लिया हो।'" हे मित्र शारिपुत्र, उसी प्रकार, जो लोग बिना आस्था के जीविका कमाते हैं, धूर्त पाखंडी, प्रशिक्षित धोखेबाज, अस्थिर, डगमगाते, व्यर्थ की बातें करने वाले, अनियंत्रित मानसिक क्षमताओं वाले, उचित मात्रा का ज्ञान न रखने वाले, सचेतन और संन्यास की इच्छा न रखने वाले, प्रशिक्षण का सम्मान न करने वाले, बहुतायत और आलस्य में जीवन यापन करने वाले, संन्यास से विमुख, बिना प्रयास के, सचेत और जागरूक न रहने वाले, एकाग्र न रहने वाले, बुद्धिहीन और गूंगे-बहरे, इस प्रवचन को सुनकर हृदय को हृदय से जानें और सुधार करें।

जो कुल के पुत्र आस्था से मुक्त होकर निकले हैं, जो छल-कपट, पाखंड, छल करने में निपुण नहीं हैं, स्थिर हैं, व्यर्थ की बातें नहीं करते, अपनी बुद्धि पर नियंत्रण रखते हैं, सचेत रहते हैं, संन्यास की इच्छा रखते हैं, प्रशिक्षण का आदर करते हैं, विलासिता और आलस्य में नहीं रहते, परिश्रमपूर्वक एकांतवास में बंधे रहते हैं, सजग और सचेत रहते हैं, एकाग्र और बुद्धिमान हैं, वे पूज्य शारिपुत्र का यह प्रवचन सुनकर, मेरे विचार से, इसके शब्द और विचार को आत्मसात कर लें। यह अच्छा होगा यदि उनके सहयात्री पवित्र जीवन में दोष से उठकर पुण्य में स्थापित हो जाएं।

दोनों महान पुरुष एक-दूसरे के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> अकांखेय सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। भगवान एक बार अनाथपिंडिका के उद्यान में सावत्थी में ठहरे हुए थे।

वहाँ भगवान बुद्ध ने भाइयों को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं।' भाइयों ने सहमति जताते हुए कहा, 'जी भगवान!'

तब भगवान ने कहा:

2. 'भाइयों, संघ के नियमों का पालन करते हुए, सही आचरण का अभ्यास जारी रखें; संघ के नियमों के संयम में रहते हुए, जीवन में सच्चाई के प्रति समर्पित रहें; उपदेशों के अनुसार स्वयं को प्रशिक्षित करें, और छोटे से छोटे अपराध में निहित खतरे को समझते हुए उन्हें अपने ऊपर ग्रहण करें।'

3. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने साथी शिष्यों के बीच प्रिय, लोकप्रिय और सम्मानित होना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में बहुत समय बिताना चाहिए!'

4. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु आवश्यक वस्तुएँ—वस्त्र, भोजन, आवास, औषधि और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ—प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, उसे एकांत में समय बिताना चाहिए!'

5. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे कि जिन लोगों के बीच उसे वस्त्र, भोजन, आवास, औषधि और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनके द्वारा किया गया दान महान फलदायी और लाभकारी सिद्ध हो, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, और उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

6. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे कि उसके रक्त के वे संबंधी जो दिवंगत हो चुके हैं और श्रद्धापूर्वक उसका स्मरण करते हैं, उन्हें इसमें महान फल और महान लाभ प्राप्त हो, तो वह समस्त धार्मिकता का पालन करे, भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहे, ध्यान की परमानंद अवस्था को न त्यागे, चीजों को गहराई से देखे, और एकांत में अधिक समय बिताए!'

7. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा रखे कि वह असंतोष और कामवासना पर विजय प्राप्त करे, कि असंतोष कभी उस पर हावी न हो, कि वह अपने भीतर उत्पन्न हुए किसी भी असंतोष पर विजय प्राप्त करे और उसे वश में कर ले, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

8. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा रखे कि वह (आध्यात्मिक) संकट और भय पर विजय प्राप्त करे, कि न तो संकट और न ही भय कभी उस पर हावी हो, कि वह प्रत्येक संकट और भय पर विजय प्राप्त करे और उसे वश में करे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

9. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु उन आध्यात्मिक पुरुषों की आशाओं को साकार करना चाहे जो इस वर्तमान संसार में भी चारों घानों से प्राप्त होने वाले आनंद में रहते हैं, तो यदि वह उन कष्टों और कठिनाइयों में न पड़ना चाहे (जिनसे वे बचते हैं), तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान के परमानंद को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

10. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने शरीर से उन निराकार मोक्ष अवस्थाओं को प्राप्त करना और उनमें स्थिर रहना चाहे, तथा भौतिकताओं से परे जाना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को परखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

11. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु तीनों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा परिवर्तित होना चाहे, दुख की अवस्था में पुनर्जन्म से मुक्त होना चाहे और अंतिम मोक्ष का आश्वासन प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

12. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु तीनों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा, और कामवासना, घृणा और मोह को न्यूनतम करके सकदागामिन बनना चाहे, और इस प्रकार इस संसार में अपने प्रथम आगमन पर दुःख का अंत करना चाहे, तो उसे समस्त धर्मों का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

13. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु इस पृथ्वी से मनुष्यों को बांधने वाले पांचों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा सर्वोच्च स्वर्ग का उत्तराधिकारी बनना चाहे, वहां पूर्णतः विलीन हो जाए और फिर कभी वापस न लौटे, तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

14. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु एक-एक करके विभिन्न इद्धियों का अभ्यास करना चाहे, एक होकर अनेक रूपों में परिवर्तित होना चाहे, अनेक रूपों में परिवर्तित होकर एक होना चाहे; दृश्यमान होना चाहे या अदृश्य होना चाहे; किसी दीवार, बाड़ या पर्वत के उस पार बिना रुके हवा में समाने यात्रा करना चाहे; ठोस भूमि में ऊपर-नीचे समाने जल में समाने; जल को विभाजित किए बिना ठोस भूमि पर समाने चलना; पक्षियों की तरह पालथी मारकर आकाश में यात्रा करना; सूर्य और चंद्रमा को भी, चाहे वे कितने भी शक्तिशाली और बलवान क्यों न हों, हाथ से स्पर्श करना और अनुभव करना चाहे; और शरीर से ब्रह्मा के स्वर्ग तक पहुंचना चाहे; तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को परखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

15. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु मनुष्यों की तुलना में कहीं अधिक स्पष्ट और दिव्य श्रवण शक्ति से दूर या निकट से आने वाली मानवीय और दिव्य दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली

हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में समय बिताना चाहिए!'

16. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने हृदय से अन्य प्राणियों और अन्य मनुष्यों के हृदयों को समझना चाहे; यह जानना चाहे कि भावुक मन भावुक है और शांत मन शांत; क्रोधित मन क्रोधित है और शांत मन शांत; भ्रमित मन भ्रमित है और बुद्धिमान मन बुद्धिमान; एकाग्र विचारों को एकाग्र और बिखरे हुए विचारों को बिखरा हुआ; उच्च मन को उच्च और संकीर्ण मन को संकीर्ण; उदात्त विचारों को उदात्त और नीच विचारों को नीच; स्थिर मन स्थिर है और डगमगाता मन डगमगाता; मुक्त मन मुक्त है और दास मन दास है; तो वह समस्त धर्म का पालन करे, भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहे, ध्यान की परमानंद अवस्था को न रोके, चीजों को गहराई से देखे, और एकांत में अधिक समय बिताए!'

17. 'यदि कोई भिक्षु, हे भाइयों, अपने बीते दिनों की विभिन्न अस्थायी अवस्थाओं को याद करना चाहे; जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ या हज़ार, या एक लाख जन्म; विनाश के अनेक युगों में, नवीनीकरण के अनेक युगों में, विनाश और नवीनीकरण दोनों के अनेक युगों में उसके जन्म; (ताकि वह कह सके), "उस स्थान पर मेरा नाम ऐसा था, मेरा परिवार ऐसा था, मेरी जाति ऐसी थी, मेरा जीवनयापन ऐसा था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था और मेरी आयु की सीमा ऐसी थी; और जब मैं वहाँ से चला गया, तो मैंने उस दूसरे स्थान पर पुनः जन्म लिया जहाँ मेरा नाम ऐसा था, मेरा परिवार ऐसा था, मेरी जाति ऐसी थी, मेरा जीवनयापन ऐसा था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था और मेरी आयु की ऐसी अवधि थी; और जब मैं वहाँ से गिर गया, तो मैंने उस स्थान पर पुनः जन्म लिया;"—यदि वह इस प्रकार अपने बीते दिनों की अस्थायी अवस्थाओं को उनके सभी रूपों और सभी विवरणों के साथ याद करना चाहे, तो उसे सभी धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे उस हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए जो भीतर से उत्पन्न होती है, उसे चिंतन के परमानंद को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे बहुत एकांत में रहना चाहिए!

18. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु मनुष्यों की दृष्टि से परे, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से प्राणियों को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जन्म लेते हुए देखना चाहे; चाहे वे नीच हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या बदसूरत, सुखी हों या दुखी, उनके कर्मों के अनुसार—(यदि वह यह कहने की इच्छा रखे), "हे पूज्यवरों, ये प्राणी अपने बुरे कर्मों, बुरे वचनों, बुरे विचारों, संतों की निंदा करने, झूठे सिद्धांतों का पालन करने या झूठे सिद्धांतों का कर्म अर्जित करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर किसी दुखद या कष्टमय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं।" "हे आदरणीय महोदय, ये प्राणी अपने अच्छे आचरण, अपने अच्छे वचन, अपने अच्छे विचार, अपने श्रेष्ठ पुरुषों की निंदा न करने, सही सिद्धांतों का पालन करने और सही सिद्धांतों के कर्म अर्जित करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर स्वर्ग में किसी सुखी अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं; यदि वह मनुष्य की दृष्टि से परे, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से प्राणियों को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में विचरण करते हुए देखना चाहे; चाहे वे नीच हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या बदसूरत, सुखी हों या दुखी, अपने कर्मों के अनुसार; तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में बहुत समय बिताना चाहिए!

19. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु स्वयं ही, इस संसार में ही, आसवों के नाश द्वारा अरहत्त्व को जानना, अनुभव करना और प्राप्त करना चाहे, हृदय की मुक्ति और मन की मुक्ति प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को रोकना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

20. 'इसलिए, हे भाइयों, संघ के नियमों का पालन करते हुए, सही आचरण में लगे रहो; संघ के नियमों के संयम में रहते हुए, जीवन में सच्चाई के प्रति समर्पित रहो; उपदेशों के अनुसार स्वयं को प्रशिक्षित करो, और छोटे से छोटे उल्लंघन में छिपे खतरे को समझते हुए उन्हें अपना लो। क्योंकि जो कुछ भी कहा गया है, वह केवल इसी उद्देश्य से कहा गया है!'

21. भगवान ने ऐसा कहा। और वे भाई प्रसन्न होकर भगवान के वचन की महिमा करने लगे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> वत्थुपामा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं।" - "आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने आगे कहा:

2. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कपड़ा दागदार और गंदा है, और एक रंगसाज़ उसे किसी भी रंग में डुबोता है, चाहे वह नीला हो, पीला हो, लाल हो या गुलाबी, तो वह रंग को ठीक से नहीं सोखेगा और उसका रंग अशुद्ध हो जाएगा। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि कपड़ा साफ नहीं था। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन दूषित होता है, तो [भविष्य में] एक अप्रिय परिणाम की उम्मीद की जा सकती है।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कपड़ा साफ और चमकदार है, और एक रंगसाज़ उसे किसी भी रंग में डुबोता है, चाहे वह नीला हो, पीला हो, लाल हो या गुलाबी, तो वह रंग को अच्छी तरह सोख लेगा और शुद्ध रंग का होगा। और ऐसा क्यों है? क्योंकि कपड़ा साफ है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन निर्मल होता है, तो भविष्य में सुखद प्राप्ति की आशा की जा सकती है।

3. "और हे भिक्षुओं, मन के दोष क्या हैं? (1) लोभ और अधर्मी लालच मन का दोष है; (2) द्वेष मन का दोष है; (3) क्रोध मन का दोष है; (4) शत्रुता...(5) निंदा...(6) भगवानत्व...(7) ईर्ष्या...(8) जलन...(9) पाखंड...(10) छल...(11) हठ...(12) अहंकार...(13) घमंड...(14) अभिमान...(15) घमंड...(16) लापरवाही मन का दोष है।

4. हे भिक्षुओं, लोभ और अधर्मी लालच को मन का दोष जानकर, भिक्षु इनका त्याग कर देते हैं। द्वेष को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। क्रोध को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। शत्रुता को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। निंदा को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। भगवानत्व को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। ईर्ष्या को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। जलन को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। पाखंड को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। छल को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। हठ को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। अहंकार को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। वह इसे त्याग देता है। अहंकार को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है। घमंड को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है। लापरवाही को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है।

5. "जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि लोभ और अधर्मी लालच मन को दूषित करते हैं, तो वह इस लोभ और अधर्मी लालच का त्याग कर देता है; जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि द्वेष मन को दूषित करता है, तो वह इस द्वेष का त्याग कर देता है; ... जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि लापरवाही मन को दूषित करती है, तो वह इस लापरवाही का त्याग कर देता है।"

6. — तब उसे बुद्ध पर अटूट विश्वास हो जाता है और वह कहता है: 'यही तो भगवान हैं: वे सिद्ध हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, स्पष्ट दृष्टि और सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं, उदात्त हैं, संसार के ज्ञाता हैं, आज्ञाकारी मनुष्यों के अतुलनीय मार्गदर्शक हैं, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं।'

7. — इस प्रकार वह धम्म में अटूट विश्वास प्राप्त करता है: 'भगवान द्वारा अच्छी तरह से घोषित धम्म, जो यहीं और अभी प्राप्त करने योग्य है, जिसका तत्काल परिणाम है, जो आपको आकर देखने के लिए आमंत्रित करता है, और जो बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से सुलभ और जानने योग्य है।

8. — इस प्रकार संघ में उनका अटूट विश्वास इस प्रकार प्रकट होता है: 'भगवान बुद्ध के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग पर, सीधे मार्ग पर, सच्चे मार्ग पर, उचित मार्ग पर चल पड़ा है; अर्थात्, मनुष्यों के चार युग्मों पर, आठ प्रकार के व्यक्तियों पर; भगवान बुद्ध के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य सत्कार के योग्य है, भेंटों के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।'

9. जब वह आंशिक रूप से [अपराधों] का त्याग कर देता है, उन्हें छोड़ देता है, उनसे मुक्त हो जाता है, और उन्हें त्याग देता है, तब वह जान जाता है: 'मैं बुद्ध में, धम्म में, संघ में अटूट विश्वास से परिपूर्ण हूँ;' और वह लक्ष्य के प्रति उत्साह, धम्म के प्रति उत्साह और धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो उसमें खुशी का जन्म होता है; मन में आनंद होने से उसका शरीर शांत हो जाता है; शरीर शांत होने से उसे खुशी का अनुभव होता है; और आनंदित व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है।

10. वह जानता है: 'मैंने आंशिक रूप से [अपराधों] का त्याग कर दिया है, उन्हें छोड़ दिया है, त्याग दिया है और उनसे मुक्ति पा ली है'; और वह लक्ष्य के प्रति उत्साह, धम्म के प्रति उत्साह और धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो उसमें

खुशी का जन्म होता है; मन में आनंद होने पर उसका शरीर शांत हो जाता है; शरीर शांत होने पर उसे खुशी का अनुभव होता है; और आनंदित व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है।

11. "यदि हे भिक्षुओं, ऐसा सद्गुण, ऐसी एकाग्रता और ऐसी बुद्धि वाला भिक्षु उत्तम पहाड़ी चावल और विभिन्न प्रकार की चटनी और करी से युक्त भिक्षा भोजन ग्रहण करता है, तो भी यह उसके लिए कोई बाधा नहीं होगी।"

जिस प्रकार दागदार और मैला कपड़ा शुद्ध जल की सहायता से साफ और चमकदार हो जाता है, या जिस प्रकार सोना भट्टी की सहायता से साफ और चमकदार हो जाता है, उसी प्रकार यदि ऐसा सद्गुण, ऐसी एकाग्रता और ऐसी बुद्धि वाला भिक्षु उत्तम पहाड़ी चावल और विभिन्न प्रकार की चटनी और करी से युक्त भिक्षा भोजन ग्रहण करता है, तो वह भी उसके लिए कोई बाधा नहीं होगी।

12. "वह प्रेम और करुणा से भरे मन से संसार की एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, और इसी प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति अपने समान प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होकर विद्यमान रहता है; वह पूरे ब्रह्मांड को प्रेम और करुणा से परिपूर्ण करते हुए, महान, उदात्त, असीम और द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से विद्यमान रहता है।"

वह करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव से परिपूर्ण मन से संसार की एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, और इसी प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति स्वयं के समान भाव रखते हुए विद्यमान रहता है; वह संपूर्ण ब्रह्मांड को समभाव से परिपूर्ण करते हुए, महान, उदात्त, असीम और द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से विद्यमान रहता है।

13. "वह समझता है कि क्या अस्तित्व में है, क्या नीच है, क्या उत्कृष्ट है, और इस [संपूर्ण] बोध क्षेत्र से क्या मुक्ति है।"

14. "जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन इंद्रिय सुख के दोष से मुक्त हो जाता है, जन्म के दोष से मुक्त हो जाता है, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, उसे ज्ञान होता है: 'यह मुक्त हो गया है'; और वह जानता है: 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, कार्य पूरा हो गया है, अब आगे कुछ नहीं है।' ऐसे भिक्षु को 'आंतरिक स्नान से नहाया हुआ' कहा जाता है।"

15. उस समय ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर बैठे थे और उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा, "पर क्या गुरु गौतम बहुका नदी में स्नान करने जाते हैं?"

"हे ब्राह्मण, बहुका नदी का क्या लाभ है? बहुका नदी क्या कर सकती है?"

"हे गौतम जी, सचमुच बहुत से लोग मानते हैं कि बहुका नदी शुद्धिकरण करती है, बहुत से लोग मानते हैं कि बहुका नदी पुण्य प्रदान करती है। क्योंकि बहुका नदी में बहुत से लोग अपने बुरे कर्मों को धो डालते हैं।"

16. तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज को इन श्लोकों में संबोधित किया:

बहुका और अधिकक्का, गया और सुंदरिका, पयागा और सरस्वती, और बहुमती नदी — एक मूर्ख चाहे वहां कितना भी स्नान करे, फिर भी उसके काले कर्म शुद्ध नहीं होंगे।

सुंदरिका क्या कर सकती है? पायगा और बहुका क्या कर सकते हैं? वे किसी पापी को, क्रूर और निर्मम कर्म करने वाले व्यक्ति को शुद्ध नहीं कर सकते।

जिसका हृदय शुद्ध है, वह सदा शुद्धिकरण के पर्व और पवित्र दिन का पालन करता है; जिसका हृदय शुद्ध है और जो अच्छे कर्म करता है, उसके अनुष्ठान सदा के लिए परिपूर्ण रहते हैं।

हे ब्राह्मण, यहीं स्नान करो, ताकि तुम समस्त प्राणियों के लिए एक सुरक्षित आश्रय बन सको। और यदि तुम असत्य न बोलो, और किसी भी सजीव प्राणी को हानि न पहुँचाओ,

जो भेंट न की गई हो, उसे मत लो, श्रद्धा से लो, लोभ रहित होकर, गया जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? गया चाहे जैसा भी हो, उसे अपना बना लो! 17. यह सुनकर ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने यों कहा:

"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे पराजितों को पुनर्जीवित कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को मार्ग दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों।"

18. "मैं गुरु गौतम की शरण में जाता हूँ, और धम्म की, और संघ की। मुझे गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा प्राप्त हो, मुझे पूर्ण प्रवेश प्राप्त हो!"

19. ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में संन्यास लेने का प्रथम दीक्षा ग्रहण किया और पूर्ण दीक्षा प्राप्त की। पूर्ण दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में रहकर, परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य भारद्वाज ने अपने स्वयं के अनुभव से इस जीवन में ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए अच्छे परिवार के लोग गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "जन्म समाप्त हो गया, शुद्ध जीवन जी लिया गया, कार्य पूरा हो गया, अब आगे कुछ नहीं करना है।"

और आदरणीय भारद्वाज अरहतों में से एक बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सल्लेखा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2आठ उपलब्धियाँ
3काटना
4विचार का जागरण
5परिहार
6ऊपर की ओर जाने का रास्ता
7शमन

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।
2. फिर एक शाम पूज्य महा-चुंडा ध्यानमग्न एकांतवास से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान बुद्ध से इस प्रकार बोले:
3. "आदरणीय महोदय, संसार में आत्म-सिद्धांतों या विश्व-सिद्धांतों के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। क्या ध्यानमग्न अवस्था में ही आरंभ कर रहे भिक्षु में ऐसे मतों का त्याग और परित्याग संभव हो पाता है?"
"कुंडा, जहाँ तक संसार में आत्म-सिद्धांतों और विश्व-सिद्धांतों के संबंध में उत्पन्न होने वाले अनेक विचारों का सवाल है, यदि जिस वस्तु में ये विचार उत्पन्न होते हैं, जिसमें वे अंतर्निहित होते हैं और सक्रिय होते हैं, उसे सही बुद्धि से यथावत देखा जाए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है' - तो इन विचारों का त्याग, उनका परित्याग, उस व्यक्ति में होता है जो इस प्रकार देखता है।"

आठ उपलब्धियाँ
4. "हे चुंडा, हो सकता है कि कोई भिक्षु इंद्रिय-विषयों से विरक्त होकर, अवांछित विचारों से विरक्त होकर, वैराग्य से उत्पन्न प्रथम समाधि में प्रवेश करे, जो विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन से परिपूर्ण हो, और परमानंद और आनंद से भर जाए, और तब वह सोचे: 'मैं विरक्ति में लीन हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विरक्ति' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'यहाँ और अभी में सहजता में लीन रहना' कहा जाता है।"
5. "हो सकता है कि विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन के शांत होने के बाद, वह द्वितीय समाधि की आंतरिक शांति और सामंजस्य प्राप्त कर ले, जो विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन से मुक्त होती है, एकाग्रता से उत्पन्न होती है और परमानंद और आनंद से

परिपूर्ण होती है; और तब वह सोच सकता है: 'मैं समाधि में लीन हूँ।' परन्तु ऋषि के अनुशासन में इन [उपलब्धियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; ऋषि के अनुशासन में इन्हें 'यहाँ और अभी में सहजता में लीन रहना' कहा जाता है।"

6. "हो सकता है कि समाधि की अवस्था समाप्त होने के बाद, भिक्षु समभाव, सजगता और स्पष्ट जागरूकता में निवास करे, और वह अपने शरीर में उस सुख का अनुभव करे जिसके बारे में ऋषि कहते हैं: 'सुखद जीवन उसी का है जो समभाव में निवास करता है और सजग रहता है!' - वह तृतीय समाधि प्राप्त कर लेता है; और तब वह सोच सकता है: 'मैं समाधि में निवास कर रहा हूँ।' परन्तु ऋषि के अनुशासन में इन [प्राप्तियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; ऋषि के अनुशासन में इन्हें 'यहाँ और अभी सुख में निवास' कहा जाता है।"

7. "हो सकता है कि सुख और दुख के त्याग और उससे पहले आनंद और शोक के लुप्त हो जाने के साथ, वह चौथे समाधि में प्रवेश करे और उसमें स्थिर रहे, जो सुख और दुख से परे है और समभाव के कारण मन की शुद्धता से परिपूर्ण है; और तब वह सोचे: 'मैं समाधि में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'यहाँ और अभी सहजता में स्थिर रहना' कहा जाता है।"

8. "हो सकता है कि शारीरिकता की धारणाओं से पूरी तरह परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की धारणाओं के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह सोचते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है,' कोई भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलीनता में स्थिर हूँ।' लेकिन भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलीनता' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

9. "हो सकता है कि अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को पूर्णतः पार करते हुए, यह सोचते हुए कि 'चेतना अनंत है,' कोई भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विरक्ति में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विरक्ति' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

10. "हो सकता है कि अनंत चेतना के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, कोई भिक्षु शून्यता के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलोपन में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलोपन' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

11. "हो सकता है कि शून्यता के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके कोई भिक्षु न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में प्रवेश कर जाए और उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलोपन में स्थिर हूँ।' परन्तु हे भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलोपन' नहीं कहा जाता; हे भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

काटना

12. "परन्तु हे कुंडा, यहाँ तुम्हें मिटाने का अभ्यास करना चाहिए:

(1) दूसरे हानिकारक होंगे; हम यहाँ हानिकारक नहीं होंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (2) दूसरे जीवित प्राणियों की हत्या करेंगे; हम यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (3) दूसरे बिना दी हुई वस्तुएँ लेंगे; हम यहाँ बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (4) दूसरे व्यभिचारी होंगे; हम यहाँ पवित्र रहेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (5) दूसरे झूठ बोलेंगे; हम यहाँ झूठ बोलने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (6) दूसरे द्वेषपूर्ण बातें करेंगे; हम यहाँ द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (7) दूसरे कठोर बातें करेंगे; हम यहाँ कठोर बातें करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (8) दूसरे चुगली करेंगे; हम यहाँ चुगली करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (9) दूसरे लोभी होंगे; हम यहाँ लोभ नहीं करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (10) दूसरों के मन में दुर्भावना होगी; हम यहाँ दुर्भावना नहीं रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (11) दूसरों के विचार गलत होंगे; हम यहाँ सही विचार रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (12) दूसरों का इरादा गलत होगा; हम यहाँ सही इरादा रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (13) दूसरे गलत बातें करेंगे; हम यहाँ सही बातें करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (14) दूसरे गलत काम करेंगे; हम यहाँ सही काम करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (15) दूसरों की आजीविका गलत होगी; हम यहाँ सही आजीविका रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (16) दूसरे गलत प्रयास करेंगे; हम यहाँ सही प्रयास करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (17) दूसरों की चेतना गलत होगी; हम यहाँ सही चेतना रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (18) दूसरों का ध्यान गलत दिशा में होगा; हमारा ध्यान यहाँ सही दिशा में होगा - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (19) दूसरों का ज्ञान गलत होगा; हमारा ज्ञान यहाँ सही होगा - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (20) दूसरों को गलत मुक्ति मिलेगी; हमें यहाँ सही मुक्ति मिलेगी - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (21) दूसरे आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त होंगे; हम यहाँ आलस्य और सुस्ती से मुक्त होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (22) दूसरे उत्तेजित होंगे; हम यहाँ शांत रहेंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (23) दूसरे संशय में होंगे; हम यहाँ संशय से मुक्त होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (24) दूसरे क्रोधित होंगे; हम यहाँ क्रोधित नहीं होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (25) दूसरे शत्रुतापूर्ण होंगे; हम यहाँ शत्रुतापूर्ण नहीं होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (26) दूसरे निंदा करेंगे; हम यहाँ किसी की निंदा नहीं करेंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (27) दूसरे लोग भगवानत्वशाली होंगे; हम यहाँ भगवानत्वशाली नहीं होंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (28) दूसरे लोग ईर्ष्यालु होंगे; हम यहाँ ईर्ष्यालु नहीं होंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (29) दूसरे लोग जलन करेंगे; हम यहाँ जलन नहीं करेंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है।(30) दूसरे कपटी

होंगे; हम यहाँ कपटी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (31) दूसरे पाखंडी होंगे; हम यहाँ पाखंडी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (32) दूसरे हठी होंगे; हम यहाँ हठी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (33) दूसरे अहंकारी होंगे; हम यहाँ अहंकारी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (34) दूसरों को समझाना कठिन होगा; हमें समझाना आसान होगा — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (35) दूसरों के बुरे मित्र होंगे; हमारे यहाँ नेक मित्र होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (36) दूसरे लापरवाह होंगे; हम यहाँ सावधान रहेंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (37) दूसरे विश्वासघाती होंगे; हम यहाँ वफादार रहेंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (38) दूसरे निर्लज्ज होंगे; हम यहाँ लज्जित होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (39) दूसरे विवेकहीन होंगे; हम यहाँ विवेकवान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (40) दूसरों के पास ज्ञान नहीं होगा; हम यहाँ ज्ञानवान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (41) दूसरे आलसी होंगे; हम यहाँ ऊर्जावान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (42) दूसरों में जागरूकता की कमी होगी; हम यहाँ जागरूकता में स्थापित होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (43) दूसरे बुद्धिहीन होंगे; हम बुद्धि से संपन्न होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (44) दूसरे अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत समझेंगे, उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे और उन्हें आसानी से नहीं छोड़ेंगे; हम अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत नहीं समझेंगे और न ही उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से छोड़ देंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है।उन्हें दृढ़ता से थामे रहो और आसानी से त्याग मत दो; हम व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा नहीं बनाएंगे और न ही उन्हें दृढ़ता से थामे रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से त्याग देंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है।उन्हें दृढ़ता से थामे रहो और आसानी से त्याग मत दो; हम व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा नहीं बनाएंगे और न ही उन्हें दृढ़ता से थामे रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से त्याग देंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है।

विचार का जागरण

13. "कुंडा, मैं कहता हूँ कि लाभकारी बातों [और विचारों] से संबंधित विचार का उत्पन्न होना भी बहुत महत्वपूर्ण है, शारीरिक क्रियाओं और शब्दों का ऐसे विचार के अनुरूप होना तो और भी महत्वपूर्ण है। इसलिए, कुंडा:

(1) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग हानि पहुँचाएँगे; हम यहाँ हानि नहीं पहुँचाएँगे।' (2) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग जीवित प्राणियों की हत्या करेंगे; हम यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करेंगे।' (3)-(43)... (44) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत समझेंगे, उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे और उन्हें आसानी से नहीं छोड़ेंगे; हम अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत नहीं समझेंगे और न ही उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से छोड़ देंगे।'

परिहार

14. "मान लो, कुंडा, एक ऊबड़-खाबड़ सड़क हो और दूसरी समतल सड़क हो जिससे उसे पार किया जा सके; और मान लो एक ऊबड़-खाबड़ घाट हो और दूसरी समतल घाट हो जिससे उसे पार किया जा सके। ठीक वैसे ही:

(1) जो व्यक्ति दूसरों को हानि पहुँचाने का भोगता है, उसे हानि न पहुँचाने का गुण अपनाना चाहिए। (2) जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने का भोगता है, उसे हत्या न करने का गुण अपनाना चाहिए। (3) जो व्यक्ति बिना दी हुई वस्तुएँ लेने का भोगता है, उसे बिना दी हुई वस्तुओं को न लेने का गुण अपनाना चाहिए। (4) जो व्यक्ति व्यभिचार का भोगता है, उसे ब्रह्मचर्य का गुण अपनाना चाहिए। (5) जो व्यक्ति झूठी बातें बोलने का भोगता है, उसे झूठी बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (6) जो व्यक्ति द्वेषपूर्ण बातें बोलने का भोगता है, उसे द्वेषपूर्ण बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (7) जो व्यक्ति कठोर बातें बोलने का भोगता है, उसे कठोर बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (8) जो व्यक्ति चुगली करने का भोगता है, उसे चुगली न करने का गुण अपनाना चाहिए। (9) जो व्यक्ति लोभ का भोगता है, उसे लोभ न करने का गुण अपनाना चाहिए। (10) जो व्यक्ति द्वेषपूर्ण विचार रखता है, उसे द्वेष रहित रहने का गुण अपनाना चाहिए। (11) जो व्यक्ति गलत मत रखता है, उसे सही मत रखना चाहिए। (12) गलत इरादे वाले व्यक्ति के पास सही इरादे होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (13) गलत वाणी वाले व्यक्ति के पास सही वाणी होती है जिससे वह इससे बच सके। (14) गलत कर्म करने वाले व्यक्ति के पास सही कर्म होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (15) गलत आजीविका वाले व्यक्ति के पास सही आजीविका होती है जिससे वह इससे बच सके। (16) गलत प्रयास करने वाले व्यक्ति के पास सही प्रयास होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (17) गलत ध्यान में रहने वाले व्यक्ति के पास सही ध्यान होता है जिससे वह इससे बच सके। (18) गलत एकाग्रता में रहने वाले व्यक्ति के पास सही एकाग्रता होती है जिससे वह इससे बच सके। (19) गलत ज्ञान में रहने वाले व्यक्ति के पास सही ज्ञान होता है जिससे वह इससे बच सके। (20) गलत मुक्ति पाने वाले व्यक्ति के पास सही मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (21) आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त व्यक्ति के पास आलस्य और सुस्ती से मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (22) बेचैनी में रहने वाले व्यक्ति के पास अशांति होती है जिससे वह इससे बच सके। (23) संदेह में रहने वाले व्यक्ति के पास संदेह से मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (24) क्रोध करने वाले व्यक्ति के पास क्रोध से मुक्ति होती है जिससे वह क्रोध से बच सकता है। (25) शत्रुता रखने वाले व्यक्ति के पास शत्रुता से मुक्ति होती है जिससे वह शत्रुता से बच सकता है। (26) निंदा करने वाले व्यक्ति के पास निंदा न करने का गुण होता है जिससे वह निंदा से बच सकता है। (27) भगवानत्वशाली व्यक्ति के पास भगवानत्वहीनता का गुण होता है जिससे वह भगवानत्वहीन हो सकता है। (28) ईर्ष्या करने वाले व्यक्ति के पास ईर्ष्या न करने का गुण होता है जिससे वह ईर्ष्या से बच सकता है। (29) जलन करने

वाले व्यक्ति के पास जलन न करने का गुण होता है जिससे वह जलन से बच सकता है। (30) कपट करने वाले व्यक्ति के पास कपट न करने का गुण होता है जिससे वह कपट से बच सकता है। (31) पाखंड करने वाले व्यक्ति के पास पाखंड न करने का गुण होता है जिससे वह पाखंड से बच सकता है। (32) हठधर्मी व्यक्ति के पास हठधर्मिता न करने का गुण होता है जिससे वह हठधर्मिता से बच सकता है। (33) अहंकारी व्यक्ति के पास अहंकार न करने का गुण होता है जिससे वह अहंकार से बच सकता है। (34) जिसे समझाना कठिन होता है उसके पास विनम्रता होती है जिससे वह अनुनय से बच सकता है। (35) बुरे मित्र बनाने की आदत वाले व्यक्ति को अच्छे मित्र बनाकर इससे बचना चाहिए। (36) लापरवाही करने की आदत वाले व्यक्ति को सावधानी बरतनी चाहिए जिससे वह इससे बच सके। (37) अविश्वास करने की आदत वाले व्यक्ति को विश्वास रखना चाहिए जिससे वह इससे बच सके।(38) निर्लज्जता का भोग करने वाले व्यक्ति के पास लज्जा होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (39) विवेकहीन व्यक्ति के पास विवेक होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (40) अज्ञानी व्यक्ति के पास महान ज्ञान का अधिग्रहण होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (41) आलस्य का भोग करने वाले व्यक्ति के पास ऊर्जावान प्रयास होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (42) सजगताहीन व्यक्ति के पास सजगता की स्थापना होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (43) बुद्धिहीन व्यक्ति के पास बुद्धि होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (44) अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन पर दृढ़ता से टिके रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का भोग करने वाले व्यक्ति के पास व्यक्तिगत विचारों की गलत धारणा न रखने, दृढ़ता से न टिकने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का गुण होता है जिससे वह इससे बच सकता है।

ऊपर की ओर जाने का रास्ता

15. "चुंडा, जिस प्रकार सभी अस्वास्थ्यकर अवस्थाएँ नीचे की ओर ले जाती हैं और सभी स्वास्थ्यकर अवस्थाएँ ऊपर की ओर ले जाती हैं, उसी प्रकार, चुंडा:

(1) जो व्यक्ति दूसरों को हानि पहुँचाने में लीन है, उसे अहिंसा का पालन करना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो। (2) जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या करने में लीन है, उसे हत्या से परहेज करना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो। (3)-(43)... (44) जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन पर दृढ़ता से अडिग रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने में लीन है, उसे अपने व्यक्तिगत मतों की गलत धारणा न रखना, उन पर दृढ़ता से अडिग न रहना और उन्हें आसानी से न छोड़ देना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो।

शमन

16. "कुंडा, यह असंभव है कि जो स्वयं कीचड़ में डूबा हो, वह किसी दूसरे को, जो कीचड़ में डूबा हो, बाहर निकाल सके। परन्तु यह संभव है, कुंडा, कि जो स्वयं कीचड़ में न डूबा हो, वह किसी दूसरे को, जो कीचड़ में डूबा हो, बाहर निकाल सके।"

"हे चुंडा, यह संभव नहीं है कि जो व्यक्ति स्वयं संयमित, अनुशासित और अपनी भावनाओं को तृप्त न कर सके, वह दूसरों को संयमित और अनुशासित कर सके, उन्हें भावनाओं की पूर्ण शांति दिला सके। परन्तु हे चुंडा, यह संभव है कि जो व्यक्ति स्वयं संयमित, अनुशासित और अपनी भावनाओं को पूर्ण रूप से तृप्त कर सके, वह दूसरों को संयमित और अनुशासित कर सके, उन्हें भावनाओं की पूर्ण शांति दिला सके। ऐसा ही हो, हे चुंडा:

(1) जो व्यक्ति हानि पहुँचाने में लीन है, उसे हानि न पहुँचाने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का पूर्ण शमन प्राप्त कर सके। (2) जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने में लीन है, उसे हत्या से परहेज करने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का पूर्ण शमन प्राप्त कर सके। (3)-(43)... (44) जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन विचारों को दृढ़ता से पकड़े रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने में लीन है, उसे अपने व्यक्तिगत विचारों की गलत धारणा न रखने, दृढ़ता से न पकड़े रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का शमन प्राप्त कर सके। निष्कर्ष 17. "इस प्रकार, चुंडा, मैंने तुम्हें मिटाने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें विचारों के उत्पन्न होने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें उनसे बचने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें ऊपर की ओर जाने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें शमन का निर्देश दिखाया है।

18. "जो गुरु अपने शिष्यों का कल्याण चाहता है और उन पर दया और करुणा करता है, वह उनके लिए क्या कर सकता है जो मैंने तुम्हारे लिए किया है, चुंडा? यहाँ वृक्षों की जड़ें हैं, यहाँ खाली स्थान हैं। ध्यान करो, चुंडा, देर मत करो, वरना बाद में पछताओगे। यही मेरा संदेश है तुम्हारे लिए।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा। भगवान बुद्ध के वचन सुनकर आदरणीय चुंडा संतुष्ट हो गए और प्रसन्न हुए।

[प्रथम परिषद के 'थेरास द्वारा जोड़ा गया अंतिम श्लोक:]

यह सूत्रन्त, जो विलोपन पर आधारित है, सागर की तरह गहरा है, और इसमें चौवालीस विषयों पर चर्चा की गई है, जिन्हें पाँच खंडों में दर्शाया गया है।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2स्वास्थ्यवर्धक और अस्वस्थ
3भोजन
4चार आर्य सत्य
5वृद्धावस्था और मृत्यु
6जन्म
7प्राणी
8पकड़
9तीव्र इच्छा
10अनुभूति
11संपर्क
12छह गुना आधार
13मानसिकता-भौतिकता
14चेतना
15संरचनाओं
16अज्ञान
17दाग

सेटिंग

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, मित्रों।" - "हे भिक्षु," उन्होंने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

2. "'सही दृष्टि वाला एक व्यक्ति, सही दृष्टि वाला एक व्यक्ति' कहा जाता है, मित्रों। एक श्रेष्ठ शिष्य किस प्रकार सही दृष्टि वाला होता है, जिसकी दृष्टि सीधी होती है, जिसे धम्म में पूर्ण विश्वास होता है, और जो इस सच्चे धम्म तक पहुँच चुका होता है?"

"सचमुच, मित्र, हम दूर-दूर से पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। यह अच्छा होगा यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो दोस्तों, ध्यान से सुनो और जो मैं कहने जा रहा हूँ उस पर गौर करो।"

"जी हां, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

स्वास्थ्यवर्धक और अस्वस्थ

3. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अस्वस्थता, अस्वस्थता के मूल, अच्छाई और अच्छाई के मूल को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।"

4. "और हे मित्रों, अस्वास्थ्यकर क्या है, अस्वास्थ्यकर का मूल क्या है, स्वास्थ्यकर क्या है, स्वास्थ्यकर का मूल क्या है? जीवित प्राणियों की हत्या करना अस्वास्थ्यकर है; बिना दी हुई वस्तु लेना अस्वास्थ्यकर है; इंद्रिय सुखों में लिप्त होना अस्वास्थ्यकर है; झूठी बातें करना अस्वास्थ्यकर है; द्वेषपूर्ण बातें करना अस्वास्थ्यकर है; कठोर बातें करना अस्वास्थ्यकर है; चुगली करना अस्वास्थ्यकर है; लोभ करना अस्वास्थ्यकर है; दुर्भावना रखना अस्वास्थ्यकर है; गलत दृष्टिकोण रखना अस्वास्थ्यकर है। इसे ही अस्वास्थ्यकर कहा जाता है।"

5. "अशुभता की जड़ क्या है? लोभ अशुभता की जड़ है; घृणा अशुभता की जड़ है; भ्रम अशुभता की जड़ है। इसे ही अशुभता की जड़ कहा जाता है।"

6. "और अच्छा क्या है? जीवित प्राणियों की हत्या न करना अच्छा है; बिना दी हुई वस्तु न लेना अच्छा है; इंद्रिय सुखों में लिप्त न होना अच्छा है; झूठी बातें न बोलना अच्छा है; द्वेषपूर्ण बातें न बोलना अच्छा है; कठोर बातें न बोलना अच्छा है; चुगली न करना अच्छा है; लोभ न करना अच्छा है; द्वेष न रखना अच्छा है; सही दृष्टिकोण रखना अच्छा है। यही अच्छा है।"

7. "और अच्छाई का मूल क्या है? लोभ रहित होना अच्छाई का मूल है; घृणा रहित होना अच्छाई का मूल है; भ्रम रहित होना अच्छाई का मूल है। इसे ही अच्छाई का मूल कहा जाता है।"

8. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अहानिकारक, अहानिकारक के मूल, सुखी और सुखी के मूल को समझ लेता है, तो वह कामवासना की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, 'मैं हूँ' की धारणा और अहंकार की

अंतर्निहित प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।

भोजन

9. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

10. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य पोषण, पोषण के स्रोत, पोषण की समाप्ति और पोषण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

11. "पोषण क्या है, पोषण का स्रोत क्या है, पोषण का अंत क्या है, और पोषण के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? जो जीव पहले से अस्तित्व में हैं और जो नए अस्तित्व की तलाश में हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? वे हैं: स्थूल या सूक्ष्म रूप से भौतिक भोजन; दूसरा, संपर्क; तीसरा, मानसिक इच्छाशक्ति; और चौथा, चेतना। तृष्णा उत्पन्न होने पर पोषण उत्पन्न होता है। तृष्णा के अंत होने पर पोषण समाप्त हो जाता है। पोषण के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"

12. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार पोषण, पोषण के स्रोत, पोषण की समाप्ति और पोषण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह लोभ की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, और 'मैं हूँ' की धारणा और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।

चार आर्य सत्य

13. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

14. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

15. "दुख क्या है, दुःख का कारण क्या है, दुःख का निवारण क्या है, दुःख के निवारण का मार्ग क्या है? जन्म दुःख है; वृद्धावस्था दुःख है; रोग दुःख है; मृत्यु दुःख है; शोक, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा दुःख हैं; इच्छा की प्राप्ति न होना दुःख है; संक्षेप में, आसक्ति से प्रभावित पाँचों स्कंध दुःख हैं। इसे दुःख कहते हैं।"

16. "दुख का मूल कारण क्या है? यह लालसा है, जो अस्तित्व का नवीनीकरण लाती है, आनंद और कामवासना के साथ होती है, और इसमें और उसमें आनंद लेती है; अर्थात्, इंद्रिय सुखों की लालसा, अस्तित्व की लालसा और गैर-अस्तित्व की लालसा। इसे ही दुःख का मूल कारण कहा जाता है।"

17. "और दुख का निवारण क्या है? यह उसी लालसा का पूर्णतः लुप्त हो जाना और समाप्त हो जाना, उसका त्याग करना, उसे छोड़ देना और अस्वीकार करना है। इसी को दुख का निवारण कहते हैं।"

18. "और दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता। यही दुखों के निवारण का मार्ग कहलाता है।"

19. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

वृद्धावस्था और मृत्यु

20. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

21. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य वृद्धावस्था और मृत्यु, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण, वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण, और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

22. "वृषण और मृत्यु क्या है, वृषण और मृत्यु का कारण क्या है, वृषण और मृत्यु का निवारण क्या है, और वृषण और मृत्यु के निवारण का मार्ग क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों का वृद्ध होना, उनका वृद्धावस्था, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, जीवन का क्षय, इंद्रियों का कमजोर होना—यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न कोटि के प्राणियों का अंत, उनका देह त्याग, विघटन, विलीन होना, मरना, काल की समाप्ति, स्कंधों का विघटन, शरीर का त्याग—यही मृत्यु कहलाता है। अतः यही वृद्धावस्था और यही मृत्यु है। जन्म के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। जन्म के निवारण के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
23. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य वृद्धावस्था और मृत्यु, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण, वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण, और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

जन्म

24. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
25. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य जन्म, जन्म का उद्गम, जन्म का अंत और जन्म के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
26. "जन्म क्या है, जन्म का उद्गम क्या है, जन्म का अंत क्या है, जन्म के अंत का मार्ग क्या है? प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में अवक्षेपित होना, उत्पत्ति, तत्वों का प्रकटीकरण, संपर्क के आधारों की प्राप्ति—यही जन्म कहलाता है। अस्तित्व की उत्पत्ति के साथ ही जन्म की उत्पत्ति होती है। अस्तित्व के अंत के साथ ही जन्म का अंत होता है। जन्म के अंत का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
27. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य जन्म, जन्म का कारण, जन्म का अंत और जन्म के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

प्राणी

28. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
29. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अस्तित्व, अस्तित्व की उत्पत्ति, अस्तित्व की समाप्ति और अस्तित्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
30. "अस्तित्व क्या है, अस्तित्व का उद्गम क्या है, अस्तित्व का अंत क्या है, और अस्तित्व के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, सूक्ष्म-भौतिक अस्तित्व और अभौतिक अस्तित्व। आसक्ति उत्पन्न होने पर अस्तित्व उत्पन्न होता है। आसक्ति के अंत से अस्तित्व का अंत हो जाता है। अस्तित्व के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
31. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व की उत्पत्ति, अस्तित्व की समाप्ति और अस्तित्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

पकड़

32. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
33. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य आसक्ति, आसक्ति का कारण, आसक्ति का निवारण और आसक्ति के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
34. "आसक्ति क्या है, आसक्ति का कारण क्या है, आसक्ति का निवारण क्या है, और आसक्ति निवारण का मार्ग क्या है? आसक्ति चार प्रकार की होती है: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, दृष्टियों से आसक्ति, रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों से आसक्ति, और आत्म-प्रशंसा से आसक्ति। तृष्णा उत्पन्न होने पर आसक्ति उत्पन्न होती है। तृष्णा के निवारण से आसक्ति का निवारण होता है। आसक्ति निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

35. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य आसक्ति, आसक्ति का कारण, आसक्ति का निवारण और आसक्ति निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

तीव्र इच्छा

36. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

37. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य तृष्णा, तृष्णा का कारण, तृष्णा का निवारण और तृष्णा के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

38. "और भोग क्या है, भोग का कारण क्या है, भोग का निवारण क्या है, भोग के निवारण का मार्ग क्या है? भोग के ये छह प्रकार हैं: रूपों का भोग, ध्वनियों का भोग, गंधों का भोग, स्वादों का भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं का भोग, मन के विषयों का भोग। बोध उत्पन्न होने पर भोग उत्पन्न होता है। बोध के निवारण पर भोग का निवारण होता है। भोग के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

39. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार तृष्णा, तृष्णा का कारण, तृष्णा का निवारण और तृष्णा निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

अनुभूति

40. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

41. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य भावना, भावना की उत्पत्ति, भावना की समाप्ति और भावना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

42. "और भावना क्या है, भावना का उद्गम क्या है, भावना का निवारण क्या है, भावना के निवारण का मार्ग क्या है? भावना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना, कान संपर्क से उत्पन्न भावना, नाक संपर्क से उत्पन्न भावना, जीभ संपर्क से उत्पन्न भावना, शरीर संपर्क से उत्पन्न भावना, मन संपर्क से उत्पन्न भावना। संपर्क उत्पन्न होने पर भावना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर भावना समाप्त हो जाती है। भावना के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

43. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार भाव, भाव का उद्गम, भाव का निवारण और भाव निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

संपर्क

44. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

45. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संपर्क, संपर्क की उत्पत्ति, संपर्क की समाप्ति और संपर्क की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

46. "संपर्क क्या है, संपर्क का उद्गम क्या है, संपर्क का अंत क्या है, और संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संपर्क के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क, मन संपर्क। छह आधारों के उत्पन्न होने से संपर्क उत्पन्न होता है। छह आधारों के समाप्त होने से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

47. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संपर्क, संपर्क का उद्गम, संपर्क का अंत और संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

छह गुना आधार

48. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
49. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य छह प्रकार के आधार, छह प्रकार के आधार की उत्पत्ति, छह प्रकार के आधार की समाप्ति और छह प्रकार के आधार की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
50. "छठ प्रकार का आधार क्या है, छह प्रकार के आधार का उद्‌गम क्या है, छह प्रकार के आधार का निवारण क्या है, और छह प्रकार के आधार के निवारण का मार्ग क्या है? ये छह आधार हैं: आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। मन और भौतिकता के उत्पन्न होने से छह प्रकार के आधार उत्पन्न होते हैं। मन और भौतिकता के निवारण से छह प्रकार के आधार का निवारण होता है। छह प्रकार के आधार के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
51. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार छह प्रकार के आधार, छह प्रकार के आधार की उत्पत्ति, छह प्रकार के आधार की समाप्ति और छह प्रकार के आधार की समाप्ति के मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

मानसिकता-भौतिकता
52. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
53. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य मानसिक-भौतिकता, मानसिक-भौतिकता की उत्पत्ति, मानसिक-भौतिकता की समाप्ति और मानसिक-भौतिकता की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
54. "मानसिक-भौतिकता क्या है, मानसिक-भौतिकता का उद्‌गम क्या है, मानसिक-भौतिकता का अंत क्या है, और मानसिक-भौतिकता के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? भावना, बोध, इच्छाशक्ति, संपर्क और ध्यान—ये सब मानसिक हैं। चार महा तत्व और उनसे उत्पन्न भौतिक रूप—ये सब भौतिकता कहलाते हैं। अतः यह मानसिकता और यह भौतिकता ही मानसिक-भौतिकता कहलाती है। चेतना के उदय के साथ ही मानसिक-भौतिकता का उदय होता है। चेतना के अंत के साथ ही मानसिक-भौतिकता का अंत हो जाता है। मानसिक-भौतिकता के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
55. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार मन-भौतिकता, मन-भौतिकता की उत्पत्ति, मन-भौतिकता की समाप्ति और मन-भौतिकता की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

चेतना
56. "अच्छा मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा:
"पर, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच गया हो?" - "हो सकता है, मित्रों।"
57. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य चेतना, चेतना की उत्पत्ति, चेतना की समाप्ति और चेतना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
58. चेतना क्या है, चेतना का उद्‌गम क्या है, चेतना का अंत क्या है, और चेतना के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। जब शरीरों का निर्माण होता है, तब चेतना का निर्माण होता है। जब शरीरों का अंत होता है, तब चेतना का अंत होता है। चेतना के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।
59. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य चेतना, चेतना की उत्पत्ति, चेतना की समाप्ति और चेतना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

संरचनाओं
60. "हे मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और मार्ग हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

61. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य सृष्टि, सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि की समाप्ति और सृष्टि की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
62. "और ये रचनाएँ क्या हैं, इनकी उत्पत्ति क्या है, इनका निवारण क्या है, और इनके निवारण का मार्ग क्या है? तीन प्रकार की रचनाएँ होती हैं: शारीरिक रचना, मौखिक रचना और मानसिक रचना। अज्ञान उत्पन्न होने पर ही रचनाएँ उत्पन्न होती हैं। अज्ञान के निवारण से ही रचनाएँ समाप्त हो जाती हैं। रचना निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
63. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सृष्टि के निर्माण, निर्माण की उत्पत्ति, निर्माण की समाप्ति और निर्माण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

अज्ञान
64. "हे मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और मार्ग हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
65. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अज्ञान, अज्ञान के स्रोत, अज्ञान के निवारण और अज्ञान के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
66. अज्ञान क्या है, अज्ञान का स्रोत क्या है, अज्ञान का निवारण क्या है, और अज्ञान के निवारण का मार्ग क्या है? दुख के बारे में न जानना, दुख के स्रोत के बारे में न जानना, दुख के निवारण के बारे में न जानना, और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में न जानना—यही अज्ञान कहलाता है। दोषों के उत्पन्न होने से अज्ञान उत्पन्न होता है। दोषों के निवारण से अज्ञान का निवारण होता है। अज्ञान के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।
67. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अज्ञान, अज्ञान के स्रोत, अज्ञान के निवारण और अज्ञान के निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

दाग
68. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका भी हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला, सीधा दृष्टिकोण वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला हो?" - "हो सकता है, मित्रों।"
69. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य दोषों, दोषों के उद्‌गम, दोषों के निवारण और दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला, सीधा दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और इस सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।"
70. "और दोष क्या हैं, दोषों का स्रोत क्या है, दोषों का निवारण क्या है, दोषों के निवारण का मार्ग क्या है? तीन प्रकार के दोष हैं: कामुक इच्छा का दोष, व्यथा का दोष और अज्ञान का दोष। अज्ञान के उत्पन्न होने से ही दोष उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के निवारण से ही दोष दूर हो जाते हैं। दोषों के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"
71. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दोषों, दोषों के उद्‌गम, दोषों के निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो वह कामवासना की मूल प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की मूल प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, और 'मैं हूँ' की अभिलाषा और अहंकार की मूल प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।
यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सतिपत्थन सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सूत्र की पृष्ठभूमि
2सूत्र की व्याख्या
2.1ए. शरीर (काया)
2.1.1अनापना ध्यान
2.1.2संपजना (पूर्ण ज्ञान)
2.1.3मानसिका (शरीर पर ध्यान देना)
2.2ख. भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)
2.3सी. मन (चित्त)
2.4डी. मन की वस्तुएँ/गुण (धम्म)
2.4.1उपादान-खंड (समुच्चय के कारण रुकावट/चिपके रहना)
2.4.2आयतन (इंद्रियां)
2.4.3बोझांग (ज्ञानोदय कारक)
2.4.4सक्का (चार आर्य सत्य)
3निष्कर्ष

सूत्र की पृष्ठभूमि

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कुरु देश में ठहरे हुए थे। वहाँ कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं।"

"भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "ये प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की अनुभूति के एकमात्र स्वर्ण मार्ग हैं - संक्षेप में, ये ध्यान के आधार हैं। वे चार कौन से हैं?"

इस शिक्षा में एक भिक्षु शरीर (काया) के तत्वों पर केंद्रित रहता है - उत्साही, स्पष्ट समझ और सचेत रहते हुए - हर चीज में और हर जगह आकर्षण और द्वेष का त्याग करता है।

इसमें एक भिक्षु वेदना (भावनाओं/संवेदनाओं) के तत्वों पर ध्यान केंद्रित करता है...

चित्त पर केंद्रित...

मन के विषयों/गुणों (धम्म) पर केंद्रित - उत्साही, स्पष्ट समझ और सचेत - हर चीज में और हर जगह आकर्षण और द्वेष का त्याग करना।

सूत्र की व्याख्या

ए. शरीर (काया)

काया-अनुपस्सना (शरीर पर ध्यान)

"और एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर कैसे केंद्रित रहता है?"

अनापना ध्यान

[1] "यहाँ एक भिक्षु - जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी एकांतवास भवन में जाकर - अपने पैरों को आड़ा मोड़कर बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है और ध्यान को सबसे आगे रखता है [शाब्दिक रूप से: नाक की नोक पर साँस लेता है]। हमेशा सचेत रहते हुए, वह साँस लेता है; सचेत रहते हुए वह साँस छोड़ता है।

जब वह लंबी सांस लेता है, तो वह 'मैं लंबी सांस ले रहा हूँ' के बारे में सोचता है; या जब वह लंबी सांस छोड़ता है, तो वह 'मैं लंबी सांस छोड़ रहा हूँ' के बारे में सोचता है।

जब वह छोटी-छोटी सांसें लेता है, तो वह 'मैं छोटी-छोटी सांसें ले रहा हूँ' के बारे में सोचता है; या जब वह छोटी-छोटी सांसें छोड़ता है, तो वह 'मैं छोटी-छोटी सांसें छोड़ रहा हूँ' के बारे में सोचता है।

वह स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है: 'मैं सांस अंदर ले रहा हूँ और पूरी सांस पर ध्यानपूर्वक विचार कर रहा हूँ।' या वह स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है: 'मैं सांस बाहर छोड़ रहा हूँ और पूरी सांस पर ध्यानपूर्वक विचार कर रहा हूँ।'

वह स्वयं को 'मैं धीरे-धीरे सांस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'मैं धीरे-धीरे सांस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है।

"जैसे एक कुशल खराद कारीगर या उसका शागिर्द, जब कोई लंबा मोड़ बनाता है, तो उसे इस बात का एहसास होता है कि वह लंबा मोड़ बना रहा है, या जब कोई छोटा मोड़ बनाता है, तो उसे इस बात का एहसास होता है कि वह छोटा मोड़ बना रहा है; उसी प्रकार एक भिक्षु, जब लंबी साँस लेता है, तो वह 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ' का चिंतन करता है; या जब वह लंबी साँस छोड़ता है, तो वह 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ' का चिंतन करता है। जब वह छोटी साँस लेता है, तो वह 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ' का चिंतन करता है; या जब वह छोटी साँस छोड़ता है, तो वह 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ' का चिंतन करता है। वह स्वयं को 'मैं साँस ले रहा हूँ और पूरी साँस पर संवेदनशीलता से चिंतन कर रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'मैं साँस छोड़ रहा हूँ और पूरी साँस पर संवेदनशीलता से चिंतन कर रहा हूँ' का

अभ्यास कराता है। वह स्वयं को 'धीरे-धीरे साँस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'धीरे-धीरे साँस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों (श्वास) पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर के उत्पन्न होने के कारणों पर, शरीर के नष्ट होने के कारणों पर, या शरीर के उत्पन्न होने और नष्ट होने के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

[2] "इसके अलावा, चलते समय भिक्षु स्पष्ट रूप से 'मैं चल रहा हूँ' समझता है। खड़े होने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं खड़ा हूँ' समझता है। बैठने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं बैठा हूँ' समझता है। लेटने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं लेटा हूँ' समझता है। या उसका शरीर जिस भी स्थिति में हो, वह उसे उसी प्रकार स्पष्ट रूप से समझता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर की उत्पत्ति के कारणों पर, शरीर के विनाश के कारणों पर, या शरीर की उत्पत्ति और विनाश के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

संपजना (पूर्ण ज्ञान)

[3] "इसके अलावा, आगे बढ़ते और लौटते समय, वह स्वयं को स्पष्ट रूप से समझ में लाता है; आगे देखते और पीछे देखते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, अपना ऊपरी वस्त्र और अपना कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब करते और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बात करते और चुप रहते समय, वह स्वयं को स्पष्ट रूप से समझ में लाता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

मानसिका (शरीर पर ध्यान देना)

[4] "इसके अलावा, एक भिक्षु इस शरीर पर ध्यान लगाता है, पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरा हुआ और विभिन्न प्रकार की अशुद्ध चीजों से भरा हुआ: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों में तरल पदार्थ, मूत्र हैं।'

"जैसे मान लीजिए कि दोनों सिरों पर खुले हुए एक बोरे में कई प्रकार के अनाज भरे हों—गेहूं, चावल, मूंग, राजमा, तिल, छिलका उतारा हुआ चावल—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे बाहर निकालते हुए सोचे, 'यह गेहूं है। यह चावल है। ये मूंग हैं। ये राजमा हैं। ये तिल हैं। यह छिलका उतारा हुआ चावल है,' ठीक उसी प्रकार, भिक्षु मूत्र पर ध्यान लगाते हैं।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

[5] "इसके अलावा...जैसे एक कुशल कसाई या उसका प्रशिक्षु, गाय को मारने के बाद, चौराहे पर बैठकर उसे टुकड़ों में काटता है, उसी प्रकार भिक्षु इस शरीर पर - चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, चाहे वह किसी भी तरह से व्यवस्थित हो - गुणों के संदर्भ में विचार करता है: 'इस शरीर में ठोस गुण, आकर्षण गुण, तापमान गुण और तनाव गुण मौजूद हैं।'

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

[6] "इसके अलावा, मानो वह किसी श्मशान में फेंके गए शव को देखे - एक दिन, दो दिन, तीन दिन पहले मृत - फूला हुआ, पीला पड़ा हुआ और सड़ता हुआ, वह इसे इसी शरीर पर लागू करता है, 'यह शरीर भी: यही इसकी प्रकृति है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है'..."

या फिर, मानो वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसे कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, लकड़बग्घे और अन्य कई जीव नोंच रहे हों... मांस और खून से सना हुआ कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... खून से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... बिना मांस या खून का कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... हड्डियाँ अपनी नसों से अलग होकर चारों दिशाओं में बिखरी हुई हैं - यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ पसली, वहाँ छाती की हड्डी, यहाँ कंधे की हड्डी, वहाँ गर्दन की हड्डी, यहाँ जबड़े की हड्डी, वहाँ दाँत, यहाँ खोपड़ी... हड्डियाँ सफेद हो गई हैं, कुछ-कुछ सीपियों के रंग जैसी... ढेर लगी हुई, एक साल से भी अधिक पुरानी... चूर्ण में परिवर्तित: वह इसे इसी शरीर पर लगाता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है।'

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों (श्वास) पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर के उत्पन्न होने के कारणों पर, शरीर के नष्ट होने के कारणों पर, या शरीर के उत्पन्न होने और नष्ट होने के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

ख. भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)

चित्त-अनुपस्सना (मन/जागरूकता पर ध्यान)

"एक भिक्षु स्वयं भावनाओं पर कैसे केंद्रित रहता है? एक उदाहरण है कि जब एक भिक्षु को कोई पीड़ादायक भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे पीड़ादायक भावना महसूस हो रही है। जब उसे कोई सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे सुखद भावना महसूस हो रही है। जब उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस हो रही है।"

जब उसे शरीर में दर्द का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर में दर्द का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर दर्द का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दर्द का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से न तो दर्द का और न ही सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से भावनाओं पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह भावनाओं की उत्पत्ति, उनके नष्ट होने, या उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने की प्रक्रिया पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'भावनाएँ हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु भावनाओं पर एकाग्र रहता है।

सी. मन (चित्त)

चित्त-अनुपस्सना (मन/जागरूकता पर ध्यान)

"एक भिक्षु मन पर ही कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है कि जब मन में वासना होती है, तो भिक्षु यह पहचानता है कि मन में वासना है। जब मन में वासना नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में वासना नहीं है। जब मन में घृणा होती है, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा है। जब मन में घृणा नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा नहीं है। जब मन में भ्रम होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन में भ्रम है। जब मन भ्रम रहित होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन भ्रम रहित है।"

जब मन सीमित होता है, तो वह जान लेता है कि मन सीमित है। जब मन बिखरा हुआ होता है, तो वह जान लेता है कि मन बिखरा हुआ है। जब मन विस्तृत होता है, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत है। जब मन विस्तृत नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत नहीं है। जब मन श्रेष्ठ होता है, तो वह जान लेता है कि मन श्रेष्ठ है। जब मन असीम होता है, तो वह जान लेता है कि मन असीम है। जब मन एकाग्र होता है, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र है। जब मन एकाग्र नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र नहीं है। जब मन मुक्त होता है, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त है। जब मन मुक्त नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त नहीं है।

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मन पर, या बाह्य रूप से मन पर, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मन की उत्पत्ति, मन के क्षय, या मन की उत्पत्ति और क्षय की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मन है' ज्ञान और स्मरण के स्तर तक ही सीमित रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु मन पर एकाग्र रहता है।

डी. मन की वस्तुएँ/गुण (धम्म)

धम्म-अनुपासना (धम्म पर ध्यान)

और एक भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है?

[1] "एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक मामला यह है कि जब भीतर कामुक इच्छा मौजूद होती है, तो एक भिक्षु यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद है।' या, जब भीतर कामुक इच्छा मौजूद नहीं होती है, तो वह यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद नहीं है।' वह यह समझता है कि अजन्मी कामुक इच्छा कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह समझता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद कामुक इच्छा का त्याग कैसे होता है। और वह यह समझता है कि त्यागी गई कामुक इच्छा भविष्य में फिर कभी प्रकट नहीं होती है। (यही सूत्र शेष बाधाओं के लिए भी दोहराया जाता है: द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और चिंता, और अनिश्चितता।)"

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों के उद्भव, उनके क्षय, या उनके उद्भव एवं क्षय पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की

सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है।

उपादान-खंड (समुच्चय के कारण रुकावट/चिपके रहना)

[2] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और वह पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है जहाँ एक भिक्षु [समझता है]: 'ऐसा रूप है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा अपव्यय है। ऐसी भावना है... ऐसी बोध है... ऐसी रचनाएँ हैं... ऐसी चेतना है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा अपव्यय है।'"

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु पांच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

आयतन (इंद्रियां)

[3] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों/अंगों के संदर्भ में स्वयं में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है। और वह छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों के संदर्भ में स्वयं में मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? वह आँख को देखता है, वह रूपों को देखता है, वह उन दोनों पर निर्भर बंधन को देखता है। वह यह देखता है कि कैसे एक अजन्मे बंधन का उदय होता है। और वह यह देखता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद बंधन का त्याग कैसे होता है। और वह यह देखता है कि त्यागे गए बंधन का भविष्य में कोई पुन: प्रकट होना नहीं होता है। (यही सूत्र शेष इंद्रियों: कान, नाक, जीभ, शरीर और बुद्धि के लिए दोहराया जाता है।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु छह प्रकार की आंतरिक और बाह्य इंद्रिय माध्यमों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

बोझांग (ज्ञानोदय कारक)

[4] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु जागृति/ज्ञानोदय के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है। और वह जागृति के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि, जागृति के एक कारक के रूप में सजगता उपस्थित होने पर, वह यह अनुभव करता है कि 'सजगता के एक कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित है।' या, जागृति के एक कारक के रूप में सजगता उपस्थित न होने पर, वह यह अनुभव करता है कि 'सजगता के एक कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित नहीं है।' वह यह अनुभव करता है कि जागृति के एक कारक के रूप में अविकसित सजगता कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह अनुभव करता है कि जागृति के एक कारक के रूप में सजगता के विकास की पराकाष्ठा कैसे होती है। (यही सूत्र जागृति के शेष कारकों के लिए दोहराया जाता है: गुणों का विश्लेषण, दृढ़ता, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से... संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता (उससे आसक्ति नहीं रखता)। इस प्रकार एक भिक्षु जागृति के सात कारकों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

सक्का (चार आर्य सत्य)

[5] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है। और वह चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख का उद्‌गम है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख का निवारण है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'"

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों की उत्पत्ति, उनके नष्ट होने, या उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है...

निष्कर्ष

"अब, यदि कोई व्यक्ति सात वर्षों तक इस प्रकार से इन चार संदर्भों को विकसित करे, तो उससे दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अवशेष बचा हो - तो अनावर्तन।"

"सात साल तो छोड़ ही दीजिए। यदि कोई व्यक्ति इन चार संदर्भों को इस प्रकार छह साल... पांच... चार... तीन... दो साल... एक साल... सात महीने... छह महीने... पांच... चार... तीन... दो महीने... एक महीना... आधा महीना तक विकसित करता रहे, तो उसे दो में से एक फल की उम्मीद की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनात्मवाद प्राप्त होगा।"

"आधे महीने की तो बात ही छोड़िए। यदि कोई व्यक्ति सात दिनों तक इस प्रकार इन चार संदर्भों को विकसित करे, तो उसे दो में से एक फल प्राप्त हो सकता है: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनासक्ति।"

"'यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की अनुभूति का सीधा मार्ग है - दूसरे शब्दों में, संदर्भ के चार ढाँचे।' ऐसा कहा गया था, और इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.1 कुलसिहनाडा सुत्त(11)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं।" - "आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने आगे कहा:

2. "भिक्षुओं, केवल यहीं एक संन्यासी है, केवल यहीं दूसरा संन्यासी है, केवल यहीं तीसरा संन्यासी है, केवल यहीं चौथा संन्यासी है। दूसरों के सिद्धांतों में संन्यासी नहीं हैं: यही वह सही तरीका है जिससे आप अपने सिंह के समान दहाड़ मारें।"

3. "हे भिक्षुओं, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के भिक्षु पूछें: 'परन्तु किस तर्क के बल पर या किस प्रमाण के आधार पर पूज्य भिक्षु ऐसा कहते हैं?' अन्य संप्रदायों के भिक्षुओं को जो ऐसा पूछते हैं, उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जा सकता है: 'मित्रों, हमें चार बातें ज्ञात और ज्ञाता, सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान ने बताई हैं; इन्हें अपने भीतर देखकर हम ऐसा कहते हैं: 'केवल यहीं एक संन्यासी है, केवल यहीं दूसरा संन्यासी है, केवल यहीं तीसरा संन्यासी है, केवल यहीं चौथा संन्यासी है।'" दूसरों के उपदेश संन्यासियों से रहित हैं। वे चार बातें क्या हैं? हमें गुरु पर विश्वास है, हमें धम्म पर विश्वास है, हमने नियमों का पालन किया है, और धम्म में हमारे साथी हमें प्रिय और प्रिय हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। ये चार बातें हमें उस ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान ने बताई हैं, जो सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, और जिन्हें अपने भीतर देखकर हम ऐसा कहते हैं।

4. "हे भिक्षुओं, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के भिक्षु ऐसा कहें: 'मित्रों, हमें भी गुरु पर, अर्थात् हमारे गुरु पर, विश्वास है; हमें भी धम्म पर, अर्थात् हमारे धम्म पर, विश्वास है; हमने भी उपदेशों का पालन किया है; हमारे धम्म के साथी भी हमें प्रिय और प्रिय हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। हे मित्रों, इसमें क्या भेद है, क्या भिन्नता है, आप और हम में क्या अंतर है?'"

5. "अन्य संप्रदायों के जो यात्री इस प्रकार पूछते हैं, उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जा सकता है: 'तो फिर, मित्रों, लक्ष्य एक है या अनेक?' सही उत्तर देते हुए, अन्य संप्रदायों के यात्री इस प्रकार उत्तर देंगे: 'मित्रों, लक्ष्य एक है, अनेक नहीं।' - 'परन्तु, मित्रों, क्या वह लक्ष्य कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या कामवासना से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए, अन्य संप्रदायों के यात्री इस प्रकार उत्तर देंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य कामवासना से मुक्त व्यक्ति के लिए है, कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' - 'परन्तु, मित्रों, क्या वह लक्ष्य घृणा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या घृणा से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए, वे उत्तर देंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य भ्रम से मुक्त व्यक्ति के लिए है, भ्रम से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य व्यथा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या व्यथा से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य व्यथा से मुक्त व्यक्ति के लिए है, व्यथा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य आसक्ति से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या आसक्ति से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य आसक्ति से मुक्त व्यक्ति के लिए है, आसक्ति से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य दूरदृष्टि वाले व्यक्ति के लिए है या दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य दूरदृष्टि वाले व्यक्ति के लिए है, दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य पक्ष लेने और विरोध करने वाले व्यक्ति के लिए है या पक्ष न लेने और विरोध न करने वाले व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य पक्ष लेने और विरोध न करने वाले व्यक्ति के लिए है, पक्ष लेने और विरोध करने वाले व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन मित्रों, क्या यह लक्ष्य उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद लेता है और उसका लुत्फ़ उठाता है, या उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद नहीं लेता और उसका लुत्फ़ नहीं उठाता?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, यह लक्ष्य उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद नहीं लेता और उसका लुत्फ़ नहीं उठाता, न कि उस व्यक्ति के लिए जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद लेता है और उसका लुत्फ़ उठाता है।'

6. "भिक्षुओं, दो मत हैं: अस्तित्व का मत और गैर-अस्तित्व का मत। जो भी संन्यासी या ब्राह्मण अस्तित्व के मत पर विश्वास करते हैं, वे गैर-अस्तित्व के मत का विरोध करते हैं। जो भी संन्यासी या ब्राह्मण गैर-अस्तित्व के मत पर विश्वास करते हैं, वे गैर-अस्तित्व के मत का विरोध करते हैं।"

7. "जो भी संन्यासी या ब्राह्मण इन दो दृष्टिकोणों के संदर्भ में उत्पत्ति, अपव्यय, संतुष्टि, संकट और मुक्ति को यथार्थ रूप में नहीं समझते, वे कामवासना, घृणा, भ्रम, लालसा और आसक्ति से ग्रस्त होते हैं, दृष्टिहीन होते हैं, पक्षपात और विरोध में लगे रहते हैं, और वे संतानोत्पत्ति में आनंदित होते हैं। वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।"

8. "जो भी संन्यासी या ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियों के उद्भव, अपव्यय, तृप्ति, संकट और मुक्ति को यथावत समझते हैं, वे कामवासना, घृणा, भ्रम, लालसा और आसक्ति से रहित होते हैं, दृष्टि से शांत होते हैं, पक्षपात और विरोध नहीं करते, और संतानोत्पत्ति में आनंद नहीं लेते। वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त होते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त होते हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त होते हैं।"

9. "भिक्षुओं, आसक्ति के ये चार प्रकार हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति, और आत्म-प्रथा से आसक्ति।"

10. यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं, वे सभी प्रकार के आसक्ति का पूर्ण वर्णन नहीं करते।7 वे इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन विचारों के प्रति आसक्ति, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। ऐसा क्यों है? वे अच्छे संन्यासी और ब्राह्मण आसक्ति के इन तीनों रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते। इसलिए, यद्यपि वे सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं, वे केवल इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, जबकि विचारों के प्रति आसक्ति, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।

11. "यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं... वे इंद्रिय सुखों और मतों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। ऐसा क्यों है? वे दो उदाहरणों को नहीं समझते... इसलिए वे केवल इंद्रिय सुखों और मतों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।"

12. यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं... वे इंद्रिय सुखों से आसक्ति, मतों से आसक्ति और नियमों एवं अनुष्ठानों से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन आत्म-सिद्धांत से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। वे एक भी उदाहरण नहीं समझते... इसलिए वे केवल इंद्रिय सुखों से आसक्ति, मतों से आसक्ति और नियमों एवं अनुष्ठानों से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, जबकि आत्म-सिद्धांत से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।

13. "भिक्षुओं, ऐसे धम्म और अनुशासन में यह स्पष्ट है कि गुरु पर विश्वास सही दिशा में नहीं है, धम्म पर विश्वास सही दिशा में नहीं है, उपदेशों का पालन सही दिशा में नहीं है और धम्म के साथियों के बीच स्नेह सही दिशा में नहीं है। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसा तब होता है जब धम्म और अनुशासन का गलत प्रचार और गलत व्याख्या की जाती है, जो मुक्तिदायक नहीं है, शांति के लिए प्रतिकूल है, और जिसकी व्याख्या पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा की जाती है।"

14. "भिक्षुओं, जब कोई तथागत, सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध, सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण बोध का प्रतिपादन करने का दावा करता है, तो वह सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण बोध का पूर्ण वर्णन करता है: वह इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति के पूर्ण बोध का वर्णन करता है।"

15. "भिक्षुओं, ऐसे धम्म और अनुशासन में यह स्पष्ट है कि गुरु पर विश्वास, धम्म पर विश्वास, उपदेशों का पालन और धम्म के साथियों के बीच स्नेह उचित रूप से निर्देशित होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसा तब होता है जब धम्म और अनुशासन का भली-भांति प्रचार और व्याख्या की जाती है, जो मुक्तिदायक और शांति के लिए सहायक होता है, और जिसकी व्याख्या पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा की जाती है।"

16. अब इन चारों प्रकार के आसक्ति का स्रोत क्या है, इनका उद्गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और पैदा होते हैं? इन चारों प्रकार के आसक्ति का स्रोत और उद्गम तृष्णा है। तृष्णा का स्रोत क्या है? तृष्णा का स्रोत भावना है... भावना का स्रोत क्या है? भावना का स्रोत स्पर्श है... स्पर्श का स्रोत क्या है? स्पर्श का स्रोत छह प्रकार का आधार है... छह प्रकार का आधार क्या है? छह प्रकार का आधार चेतना

है... चेतना का स्रोत क्या है? चेतना का स्रोत रचनाएँ हैं... रचनाओं का स्रोत और उद्‌गम क्या है? रचनाओं का स्रोत अज्ञान है, अज्ञान उनका उद्‌गम है; वे अज्ञान से उत्पन्न और पैदा होते हैं।

17. "भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ ही वह इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता, मतों से आसक्त नहीं रहता, नियमों और रीति-रिवाजों से आसक्त नहीं रहता, और आत्म-प्रथा से भी आसक्त नहीं रहता। जब वह आसक्त नहीं रहता, तब वह विचलित नहीं होता। जब वह विचलित नहीं होता, तब वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह समझता है: 'जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में आना नहीं है।'"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.2महासिहानाद सुत्त(12)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2तथागत की दस शक्तियाँ
3चार प्रकार की निर्भीकता
4आठ सभाएँ
5चार प्रकार की उत्पत्ति
6पांच गंतव्य और निर्वाण — संक्षेप में
7पांच गंतव्य और निर्वाण — विस्तार से
8बोधिसत्व की तपस्या

सेटिंग

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध वेसाली में शहर के पश्चिम में स्थित उपवन में रह रहे थे।

2. उस समय लिच्छवियों के पुत्र सुनक्खत्त ने हाल ही में इस धम्म और अनुशासन को त्याग दिया था। वे वैशाली सभा के समक्ष यह कथन कर रहे थे: “सन्यासी गौतम के पास कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं होतीं, न ही उन्हें श्रेष्ठ जनों के समान ज्ञान और दृष्टि की कोई विशिष्टता प्राप्त होती है। सन्यासी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धम्म का उपदेश देते हैं, जो उनके स्वयं के चिंतन के मार्ग पर चलता है, और जब वे किसी को धम्म का उपदेश देते हैं, तो अभ्यास करने पर वह व्यक्ति दुखों के पूर्ण नाश की ओर अग्रसर होता है।”

3. फिर, जब सुबह हुई, तो पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने गए। तब उन्होंने लिच्छवियों के पुत्र सुनक्खत्त को वैशाली की सभा में यह कहते हुए सुना। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भोजन करके लौटे, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और उन्हें सुनक्खत्त की बातें बताईं।

4. (भगवान बुद्ध ने कहा:) "सरिपुत्त, गुमराह सुनक्खत्त क्रोधित है, और उसके शब्द क्रोध में निकले हैं। तथागत को बदनाम करने की सोचकर वह वास्तव में उनकी प्रशंसा कर रहा है; क्योंकि तथागत के बारे में यह कहना उनकी प्रशंसा है: 'जब वह किसी को धम्म का उपदेश देता है, तो अभ्यास करने पर वह उसे दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।'"

5. "सारिपुत्त, यह गुमराह सुनक्खत्ता धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान सिद्ध पुरुष पूर्ण, पूरी तरह से प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, उदात्त, संसारों के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अतुलनीय नेता, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक, प्रबुद्ध, धन्य हैं।'"

6. और वह धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों का आनंद लेते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; वे प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं; वे बिना किसी बाधा के दीवार, बाड़े, पर्वत से होकर अंतरिक्ष की तरह गुजर जाते हैं; वे पृथ्वी में ऐसे गोता लगाते हैं जैसे वह जल हो; वे जल पर बिना डूबे ऐसे चलते हैं जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वे पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा करते हैं; वे अपने हाथ से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; वे ब्रह्मलोक तक भी अपने शरीर पर पूर्ण भगवानत्व रखते हैं।'

7. और वह धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, भगवान दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनते हैं, स्वर्गीय और मानवीय, दूर की और निकट की भी।'
8. और वह धर्म के अनुसार मेरे विषय में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान अपने मन से अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों के मनों को समाहित करते हैं। वे कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त और कामवासना से अप्रभावित मन को कामवासना से अप्रभावित समझते हैं; वे घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त और घृणा से अप्रभावित मन को घृणा से अप्रभावित समझते हैं; वे मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त और भ्रम से अप्रभावित मन को भ्रम से अप्रभावित समझते हैं; वे संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; वे उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; वे श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ न होने वाले मन को श्रेष्ठ समझते हैं; वे एकाग्र मन को एकाग्र और असंलग्न मन को असंलग्न समझते हैं; वे मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त समझते हैं।'

तथागत की दस शक्तियाँ

9. "तथागत सारिपुत्त के पास तथागत की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे वृहद नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं। वे दस शक्तियाँ कौन सी हैं?"
10. (1) "यहाँ तथागत यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं। और यही तथागत की वह शक्ति है जिसके बल पर वे समूह-प्रमुख का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
11. (2) "तथागत कर्मों के परिणामों को, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल में, संभावनाओं और कारणों सहित, यथार्थ रूप में समझते हैं। यही तथागत की शक्ति है..."
12. (3) "तथागत सभी गंतव्यों तक ले जाने वाले मार्गों को यथावत समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
13. (4) "तथागत संसार को उसके अनेक और विविध तत्वों सहित, जैसा वह वास्तव में है, समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
14. (5) "तथागत यह समझते हैं कि प्राणियों की प्रवृत्तियाँ किस प्रकार भिन्न-भिन्न होती हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
15. (6) "तथागत अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की इंद्रियों की वास्तविक स्थिति को समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
16. (7) "तथागत ध्यान, मुक्ति, एकाग्रता और उपलब्धियों के संदर्भ में अशुद्धता, शुद्धि और उद्भव को यथार्थ रूप में समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
17. (8) "तथागत अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के संकुचन के अनेक युग, संसार के विस्तार के अनेक युग, संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; और वहाँ से मैं कहीं और प्रकट हुआ; और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; और वहाँ से मैं यहाँ प्रकट हुआ।' इस प्रकार, वे अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके विभिन्न रूपों और विवरणों के साथ याद करते हैं। यही तथागत की शक्ति है...
18. (9) "फिर, शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से तथागत प्राणियों को जन्म लेते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये योग्य प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचारी थे, श्रेष्ठों की निंदा करते थे, अपने विचारों में गलत थे, अपने कार्यों में गलत विचारों को क्रियान्वित करते थे, शरीर के विनाश के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव की स्थिति में, बुरे गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में, पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु ये योग्य प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुचारु थे, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते थे, अपने विचारों में सही थे, अपने कार्यों में सही विचारों को क्रियान्वित करते थे, शरीर के विनाश के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्गलोक में, पुनर्जन्म लेते हैं।' इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, वे प्राणियों को जन्म लेते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, चाहे वे हीन हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या कुरूप, भाग्यशाली हों या दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे जन्म लेते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है...
19. (10) "फिर, प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, तथागत यहीं और इसी क्षण मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा मुक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें स्थिर रहते हैं, जो दोषों के नाश से दोषरहित होती है। यह भी तथागत की वह शक्ति है जिसके बल पर वे झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
20. "तथागत के पास तथागत की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
21. "सारिपुत्त, जब मैं ऐसा जानता और देखता हूँ, तो यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'सन्यासी गौतम में कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं हैं, न ही ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता है जो श्रेष्ठों के योग्य हो। तपस्वी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धर्म का उपदेश देते हैं, अपने स्वयं के विचार के अनुसार उसका अनुसरण करते हैं' - जब तक वह उस कथन और उस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और उस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे कि उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।13 जिस

प्रकार सद्गुण, एकाग्रता और बुद्धि से युक्त भिक्षु यहाँ और अभी अंतिम ज्ञान का आनंद लेता है, वैसे ही इस मामले में भी होगा, मैं कहता हूँ, कि जब तक वह उस कथन और उस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और उस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे कि उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।"

चार प्रकार की निर्भीकता

22. "तथागत सारिपुत्त में ये चार प्रकार के निर्भीकता गुण हैं, जिनके कारण वे वर-नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं। वे चार गुण क्या हैं?"
23. "यहाँ मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति धम्म के अनुसार मुझ पर यह आरोप लगा सके: 'यद्यपि आप पूर्ण ज्ञान का दावा करते हैं, तो कुछ विषयों में आप पूर्णतः ज्ञानी नहीं हैं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर मैं निश्चिंत, निर्भीक और साहसी बना रहता हूँ।"
24. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जबकि आप कलंकों को नष्ट करने का दावा करते हैं, ये कलंक आपके द्वारा नष्ट नहीं किए गए हैं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं सुरक्षा, निर्भीकता और साहस के साथ रहता हूँ।"
25. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जिन चीजों को आप बाधा कहते हैं, वे उनमें संलग्न होने वाले व्यक्ति को रोक नहीं सकतीं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं सुरक्षा, निर्भीकता और साहस के साथ रहता हूँ।"
26. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जब आप किसी को धम्म का उपदेश देते हैं, तो अभ्यास करने पर वह दुखों के पूर्ण नाश की ओर नहीं अग्रसर होता।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं निडरता, निर्भीकता और साहस के साथ निवास करता हूँ।"
27. "तथागत में ये चार प्रकार के निर्भीकता गुण होते हैं, जिनके द्वारा वह झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करता है, सभाओं में सिंह की गर्जना करता है और ब्रह्मा के चक्र को घुमाता है।"
28. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

आठ सभाएँ

29. "सारिपुत्त, ये आठ सभाएँ हैं। ये आठ कौन-कौन सी हैं? कुलीनों की सभा, ब्राह्मणों की सभा, गृहस्थों की सभा, संन्यासियों की सभा, चार महाराजों के स्वर्ग के देवताओं की सभा, तैंतीस देवताओं के स्वर्ग के देवताओं की सभा, मार के अनुयायियों की सभा और ब्रह्माओं की सभा। इन चारों प्रकार के साहस से युक्त तथागत इन आठ सभाओं में प्रवेश करते हैं।"
30. मुझे याद है कि मैं सैकड़ों कुलीन सभाओं, सैकड़ों ब्राह्मण सभाओं, सैकड़ों गृहस्थ सभाओं, सैकड़ों संन्यासियों, सैकड़ों चार महान राजाओं के स्वर्ग के देवताओं, सैकड़ों तैंतीस देवताओं के स्वर्ग के देवताओं, सैकड़ों मार के अनुयायियों और सैकड़ों ब्रह्माओं की सभाओं में गया था। पहले मैं उनके साथ बैठकर उनसे बातचीत करता था, फिर भी मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि वहाँ मुझमें भय या संशय आ सकता है। और ऐसा कोई कारण न देखकर, मैं निडरता और साहस के साथ वहाँ रहता हूँ।
31. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

चार प्रकार की उत्पत्ति

32. "सारिपुत्त, ये चार प्रकार की उत्पत्ति होती है। वे चारों क्या हैं? अंडाणु से उत्पन्न उत्पत्ति, गर्भ से उत्पन्न उत्पत्ति, नमी से उत्पन्न उत्पत्ति और स्वतः उत्पन्न उत्पत्ति।"
33. "अंडे से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? अंडे के खोल को तोड़कर जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे अंडे से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। गर्भ से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? गर्भनाल को तोड़कर जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे गर्भ से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। नमी से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? सड़ी हुई मछली, सड़े हुए शव, सड़े हुए आटे, गटर या सीवर में जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे नमी से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। स्वतः उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? देवता, नरक के निवासी, कुछ मनुष्य और कुछ निम्न लोकों के जीव होते हैं; इसे स्वतः उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। ये चार प्रकार की उत्पत्ति हैं।"
34. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

पांच गंतव्य और निर्वाण — संक्षेप में

35. "सारिपुत्त, ये पाँच गंतव्य हैं। वे पाँच क्या हैं? नरक, पशुलोक, भूतलोक, मनुष्यलोक और देवतालोक।"
36. (1) "मैं नरक को समझता हूँ, और नरक की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चल पड़ा है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा।"

(2) मैं पशु जगत को समझता हूँ, और पशु जगत की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, पशु जगत में पुनः प्रकट होगा।
(3) मैं भूतों के लोक को समझता हूँ, और उस लोक तक जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चला गया है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, भूतों के लोक में पुनः प्रकट होगा।
(4) "मैं मनुष्यों को समझता हूँ, और मानव जगत की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, मनुष्यों के बीच कैसे पुन: प्रकट होगा।"
(5) मैं देवताओं को समझता हूँ, और देवताओं के लोक की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, स्वर्ग लोक में एक सुखद गंतव्य में कैसे पुन: प्रकट होगा।
(6) मैं निर्वाण को समझता हूँ, और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चल पड़ा है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, यहीं और अभी, मन की मुक्ति और बुद्धि द्वारा मुक्ति प्राप्त करेगा, जो दोषों के नाश से निष्कलंक है।
पांच गंतव्य और निर्वाण — विस्तार से
37. (1) "मन को मन से समाहित करते हुए मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैं देखता हूँ कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है, और अत्यंत पीड़ादायक, कष्टदायक, भेदनशील भावनाओं का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से भी गहरा है, बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी कोयले के गड्ढे की ओर जाता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा रास्ता चुना है, कि वह इसी कोयले के गड्ढे में आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उसी कोयले के गड्ढे में गिर गया है और अत्यंत पीड़ादायक, कष्टदायक, भेदनशील भावनाओं का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से घेरने पर... भेदनशील भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
38. (2) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह पशु जगत में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैं देखता हूँ कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह पशु जगत में पुनः प्रकट हुआ है और पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी भावनाओं का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि मनुष्य की ऊँचाई से भी गहरा एक गटर गंदगी से भरा हुआ है; और फिर एक व्यक्ति, जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी गटर की ओर जाता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार कर रहा है... कि वह इसी गटर में आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उसी गटर में गिर गया है और पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी भावनाओं का अनुभव कर रहा है। ठीक इसी प्रकार, मन को मन से घेरने पर... भेदनकारी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
39. (3) "मन से मन को जोड़कर मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह प्रेतों के लोक में पुनः प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह प्रेतों के लोक में पुनः प्रकट हो चुका है और अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि एक पेड़ ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर कम पत्तियों के साथ छाया दे रहा है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी पेड़ की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी पेड़ के पास आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उस पेड़ की छाया में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन से मन को जोड़कर... अत्यंत पीड़ा का अनुभव होता है।"
40. (4) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह मनुष्यों के बीच पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह मनुष्यों के बीच पुन: प्रकट हो चुका है और उसे बहुत सुखद अनुभूति हो रही है। मान लीजिए कि समतल भूमि पर एक घना वृक्ष है जिसकी घनी पत्तियाँ गहरी छाया प्रदान करती हैं; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी वृक्ष की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी वृक्ष के पास आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उस वृक्ष की छाया में बैठा या लेटा हुआ है और उसे बहुत सुखद अनुभूति हो रही है। इसी प्रकार, मन को मन से समाहित करके... बहुत सुखद अनुभूति होती है।
41. (5) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह एक सुखद स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव

कर रहा है। मान लीजिए एक हवेली है, और उसका ऊपरी कमरा भीतर और बाहर से प्लास्टर किया हुआ है, बंद है, सलाखों से सुरक्षित है, खिड़कियों पर शटर लगे हैं, और उसमें गलीचे, कंबल और चादरों से ढका एक पलंग है, हिरण की खाल का आवरण है, एक चंदवा है और सिर और पैरों दोनों के लिए लाल रंग के तकिए हैं; और फिर एक आदमी जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा है, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी हवेली की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी हवेली में आएगा'; और बाद में वह देखता है कि वह उस हवेली के ऊपरी कमरे में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से जोड़ने से... अत्यंत सुखद अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

42. (6) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करके, वह यहीं और अभी मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा मुक्ति में प्रवेश करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जो दोषों के नाश से दोषरहित हैं।' और फिर बाद में मैं देखता हूँ कि प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, वह यहीं और अभी मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा प्राप्त मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो दोषों के नाश से निर्मल है, और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव करता है।16 मान लीजिए कि एक साफ, सुखद, ठंडा, पारदर्शी जल वाला, चिकने किनारों वाला, रमणीय तालाब है, और उसके पास एक घना जंगल है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी तालाब की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी तालाब पर आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह तालाब में डुबकी लगा चुका है, स्नान कर चुका है, पानी पीकर अपने सभी कष्ट, थकान और बुखार से मुक्त हो चुका है और फिर बाहर आकर जंगल में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से घेरने से... अत्यंत सुखद अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये पाँच गंतव्य हैं।

43. "सारिपुत्त, जब मैं ऐसा जानता और देखता हूँ, तो यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'सन्यासी गौतम में कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं हैं, न ही ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता है जो श्रेष्ठों के योग्य हो। तपस्वी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धर्म का उपदेश देते हैं, अपने स्वयं के विचार के अनुसार उसका अनुसरण करते हैं' - जब तक वह इस कथन और इस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और इस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा। जिस प्रकार सद्गुण, एकाग्रता और ज्ञान से युक्त भिक्षु को अभी और यहीं अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे ही इस मामले में भी होगा, मैं कहता हूँ, कि जब तक वह इस कथन और इस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और इस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।"

बोधिसत्व की तपस्या

44. "सारिपुत्त, मुझे याद है कि मैंने चार गुणों से युक्त एक पवित्र जीवन व्यतीत किया है। मैंने तपस्या का अभ्यास किया है - तपस्या की चरम सीमा; मैंने कठोरता का अभ्यास किया है - कठोरता की चरम सीमा; मैंने सावधानी का अभ्यास किया है - सावधानी की चरम सीमा; मैंने एकांतवास का अभ्यास किया है - एकांतवास की चरम सीमा।"

45. "हे सारिपुत्त, मेरी तपस्या ऐसी थी कि मैं नग्न अवस्था में रहता था, रीति-रिवाजों का त्याग करता था, अपने हाथ चाटता था, बुलाए जाने पर भी नहीं आता था, रुकता भी नहीं था; मैं लाया हुआ भोजन, विशेष रूप से बनाया हुआ भोजन या भोजन का निमंत्रण स्वीकार नहीं करता था; मैं किसी बर्तन से, किसी कटोरे से, किसी दहलीज के पार से, किसी छड़ी के पार से, किसी मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, किसी गर्भवती स्त्री से, किसी स्तनपान कराने वाली स्त्री से, किसी पुरुष के साथ लेटी हुई स्त्री से, जहाँ भोजन वितरित करने का किया जाता था, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता था, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती थीं, कुछ भी ग्रहण नहीं करता था; मैं मछली या मांस ग्रहण नहीं करता था, मैं शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता था। मैं एक घर में, एक निवाला खाता था; मैं दो घरों में, दो निवाले खाता था; ... मैं सात घरों में, सात निवाले खाता था। मैं एक थाली भर भोजन, दो थाली भर भोजन ... सात थाली भर भोजन प्रतिदिन खाता था; मैं दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार ... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर दिन एक बार तक भोजन करता था।" दो सप्ताह तक मैं नियमित अंतराल पर भोजन करने का अभ्यास करता रहा। मैं हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की झाग, तिल का आटा, घास और गोबर खाता था। मैं जंगल की जड़ों और फलों पर जीवित रहा, गिरे हुए फलों को खाता था। मैं भांग, भांग मिश्रित कपड़े, कफन, चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, हिरण की खाल की पट्टियों, कुसा घास के कपड़े, छाल के कपड़े, लकड़ी के बुरादे के कपड़े, सिर के बालों की ऊन, जानवरों की ऊन और उल्लू के पंखों से खुद को ढकता था। मैं बाल और दाढ़ी नोचता था, बाल और दाढ़ी नोचने का अभ्यास करता था। मैं लगातार खड़ा रहता था, बैठने की जगह को त्याग देता था। मैं लगातार उकडू बैठा रहता था, उकडू बैठने की मुद्रा बनाए रखने के लिए समर्पित था। मैं कांटों के गद्दे का उपयोग करता था; मैंने कांटों के गद्दे को अपना बिस्तर बनाया था। मैं तीन बार पानी में स्नान करने का अभ्यास करता रहा। दिन में कई बार, शाम समेत। इस प्रकार, मैं शरीर को कष्ट देने और उसे पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में अनेकों तरीकों से लगा रहता था। यही मेरा वैराग्य था।

46. "हे सारिपुत्त, मेरी कठोरता ऐसी थी कि जैसे वर्षों के संचय से तिन्दुका वृक्ष का तना पपड़ी बनकर झड़ जाता है, वैसे ही वर्षों के संचय से मेरे शरीर पर जमी धूल और मैल पपड़ी बनकर झड़ जाती थी। मुझे कभी यह विचार नहीं आया कि 'मैं अपने हाथ से इस धूल और मैल को पोंछ लूँ, या किसी और से पोंछ लूँ' - ऐसा विचार मुझे कभी नहीं आया। मेरी कठोरता ऐसी थी।"
47. "हे सारिपुत्त, मेरी गंभीरता इतनी प्रबल थी कि मैं आगे-पीछे कदम बढ़ाते समय सदा सचेत रहता था। यहाँ तक कि पानी की एक बूँद में रहने वाले जीवों के प्रति भी मुझे दया आती थी, और मैं यही सोचता था: 'जमीन की दरारों में रहने वाले नन्हे-मुन्नों को मैं कष्ट न पहुँचाऊँ।' मेरी गंभीरता इतनी प्रबल थी।"
48. "हे सारिपुत्त, मेरा एकांतवास ऐसा था कि मैं किसी जंगल में जाकर वहीं निवास करता था। और जब मैं किसी चरवाहे या गौशाला में घास या लकड़ियाँ इकट्ठा करने वाले को देखता, या किसी लकड़हारे को देखता, तो मैं एक उपवन से दूसरे उपवन, एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी, एक खोखली जगह से दूसरी खोखली जगह, एक छोटी पहाड़ी से दूसरी छोटी पहाड़ी की ओर भागता था। ऐसा क्यों? ताकि वे मुझे न देखें और मैं उन्हें न देखूँ। जैसे जंगल में पला-बढ़ा हिरण मनुष्य को देखकर एक उपवन से दूसरे उपवन, एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी, एक खोखली जगह से दूसरी खोखली जगह, एक छोटी पहाड़ी से दूसरी छोटी पहाड़ी की ओर भागता है, वैसे ही जब मैं किसी चरवाहे या गौशाला में किसी को देखता, तो मैं भाग जाता... मेरा एकांतवास ऐसा ही था।"
49. "जब मवेशी बाहर चले जाते और चरवाहा उन्हें छोड़कर चला जाता, तो मैं चारों पैरों पर रेंगते हुए गौशाला में जाता और छोटे बछड़ों के गोबर को खाता। जब तक मेरा अपना मल-मूत्र रहता, मैं उसी से अपना पेट भरता। मेरे भोजन में यही घोर विकृति थी।"
50. "मैं किसी विस्मयकारी उपवन में जाकर वहीं निवास करता—ऐसा उपवन जो इतना विस्मयकारी होता कि यदि कोई व्यक्ति कामवासना से मुक्त न होता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। जब 'आठ दिनों के पाले के अंतराल' के दौरान वे सर्द सर्द रातें आतीं, तो मैं रात को खुले में और दिन को उपवन में रहता। गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में मैं दिन को खुले में और रात को उपवन में रहता। और तभी अनायास ही मेरे मन में यह छंद आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था:
रात की ठंड और दिन की झुलसन में, विस्मयकारी उपवनों में अकेला, नग्न, बैठने के लिए कोई अग्नि नहीं, फिर भी ऋषि अपनी खोज में लगे रहते हैं। 51. "मैं श्मशान भूमि में मृतकों की हड्डियों को तकिया बनाकर अपना बिस्तर लगाता था। और ग्वाले लड़के आकर मुझ पर थूकते, मुझ पर पेशाब करते, मुझ पर मिट्टी फेंकते और मेरे कानों में डंडे चुभोते थे। फिर भी मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके प्रति कोई द्वेष भाव उत्पन्न किया हो। मेरा ऐसा ही समभाव था।"
52. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि भोजन के माध्यम से होती है।'" वे कहते हैं: 'चलो कोला फल खाकर जीवन व्यतीत करें,' और वे कोला फल खाते हैं, कोला फल का पाउडर खाते हैं, कोला फल का पानी पीते हैं, और कोला फल से कई तरह के मिश्रण बनाते हैं। अब मुझे याद आता है कि मैं दिन में सिर्फ एक कोला फल खाता था। सारिपुत्त, तुम शायद सोचते होगे कि उस समय कोला फल बड़ा होता था, पर ऐसा मत समझो: उस समय कोला फल का आकार ज़्यादा से ज़्यादा आज के आकार जितना ही था। दिन में सिर्फ एक कोला फल खाने से मेरा शरीर अत्यधिक कमज़ोर हो गया था। इतना कम खाने से मेरे अंग लता या बांस के तनों के जोड़ों जैसे हो गए थे। इतना कम खाने से मेरी पीठ ऊंट के खुर जैसी हो गई थी। इतना कम खाने से मेरी रीढ़ की हड्डी पर उभरे हुए हिस्से मोतियों की तरह दिखने लगे थे। इतना कम खाने से मेरी पसलियां किसी पुराने, बिना छत वाले खलिहान की टूटी-फूटी कड़ियों की तरह बाहर निकली हुई थीं। इतना कम खाने से मेरी आंखों की चमक फीकी पड़ गई थी। आँखों के गड्ढे ऐसे लग रहे थे मानो गहरे कुएँ में डूबी पानी की एक बूंद चमक रही हो। कम खाने के कारण मेरी खोपड़ी ऐसे मुरझा गई थी जैसे हरी करेला हवा और धूप में मुरझा जाती है। कम खाने के कारण मेरे पेट की त्वचा मेरी रीढ़ की हड्डी से चिपक गई थी; इसलिए अगर मैं अपने पेट की त्वचा को छूता तो मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी महसूस होती, और अगर मैं अपनी रीढ़ की हड्डी को छूता तो मुझे अपने पेट की त्वचा महसूस होती। कम खाने के कारण, अगर मैं अपने हाथों से अपने अंगों को रगड़कर अपने शरीर को आराम देने की कोशिश करता, तो जड़ से सड़े हुए बाल रगड़ते ही मेरे शरीर से झड़ जाते।
53-55. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि भोजन से होती है।' वे कहते हैं: 'चलो सेम खाकर जीवन व्यतीत करें'... 'तिल खाकर जीवन व्यतीत करें'... 'चावल खाकर जीवन व्यतीत करें,' और वे चावल खाते हैं, चावल का पाउडर खाते हैं, चावल का पानी पीते हैं, और तरह-तरह के चावल के मिश्रण बनाते हैं। अब मुझे याद आता है कि मैं दिन में केवल एक चावल का दाना खाता था। सारिपुत्त, तुम सोच सकते हो कि उस समय चावल का दाना बड़ा था, लेकिन ऐसा मत मानो: चावल का दाना तब भी लगभग उतना ही बड़ा था जितना अब है। दिन में केवल एक चावल का दाना खाने से मेरा शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था। इतना कम खाने के कारण... जड़ से सड़े हुए बाल मेरे शरीर से रगड़ने पर झड़ने लगे।"
56. "फिर भी, सारिपुत्त, ऐसे आचरण से, ऐसी साधना से, ऐसी तपस्या करने से, मुझे कोई अलौकिक अवस्था, ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं हुई जो श्रेष्ठों के योग्य हो। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मुझे वह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ जो प्राप्त होने पर श्रेष्ठ और मुक्तिदायी होता है और जो उसका पालन करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।"
57. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'पुनर्जन्म के चक्र से ही शुद्धि प्राप्त होती है।' परन्तु इस चक्र में ऐसा कोई लोक खोजना असंभव है जिससे मैं इस लंबी यात्रा में पहले ही न गुजर चुका हूँ, सिवाय शुद्ध लोकों के देवताओं के; और यदि मैं शुद्ध लोकों में देवता के रूप में इस चक्र से गुजर चुका होता, तो मैं कभी इस संसार में वापस नहीं आता।"

58. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि किसी विशेष प्रकार के पुनर्जन्म के माध्यम से प्राप्त होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में मुझे ऐसा कोई पुनर्जन्म नहीं मिला जिसमें मैं पहले ही जन्म न ले चुका हूँ, सिवाय शुद्ध लोकों के देवताओं के..."
59. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि किसी विशेष निवास स्थान में रहने से प्राप्त होती है।' लेकिन ऐसा कोई निवास स्थान खोजना असंभव है जिसमें मैं पहले से न रहा होऊं... सिवाय शुद्ध निवास स्थानों के देवताओं के..."
60. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि यज्ञ के माध्यम से होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में, जब मैं या तो प्रधान राजा था या धनी ब्राह्मण, तब मैंने जो यज्ञ किया है, वैसा कोई यज्ञ खोजना असंभव है।"
61. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'अग्नि पूजा से ही शुद्धि होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में, जब मैं या तो प्रधान राजा था या धनी ब्राह्मण, तब मुझे ऐसी कोई अग्नि नहीं मिली जिसकी पूजा मैंने पहले ही न की हो।"
62. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'जब तक यह सज्जन व्यक्ति युवा है, काले बालों वाला, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वोपरि अवस्था में है, तब तक वह अपनी स्पष्ट बुद्धि में परिपूर्ण है। परन्तु जब यह सज्जन व्यक्ति वृद्ध हो जाता है, उम्र का बोझ उस पर आ जाता है, जीवन में आगे बढ़ जाता है और अंतिम अवस्था में पहुँच जाता है, अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का हो जाता है, तब उसकी बुद्धि की स्पष्टता खो जाती है।' लेकिन ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए। मैं अब बूढ़ा हो चुका हूँ, उम्र का बोझ मुझ पर है, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुका हूँ: मेरी उम्र अस्सी वर्ष हो गई है। अब मान लीजिए कि मेरे चार शिष्य हैं जिनकी आयु सौ वर्ष है, जो सजग, स्मरणशील, स्मृतिशील और ज्ञान की स्पष्टता में परिपूर्ण हैं। जैसे एक कुशल धनुर्धर, प्रशिक्षित, अभ्यासशील और परीक्षित, ताड़ के पेड़ की छाया के पार आसानी से एक हल्का तीर चला सकता है, मान लीजिए कि वे भी उसी हद तक सजग, स्मरणशील, स्मृतिशील और ज्ञान की स्पष्टता में परिपूर्ण हैं। मान लीजिए कि वे मुझसे निरंतर सजगता के चार आधारों के बारे में पूछते हैं और मैं उनके पूछे जाने पर उत्तर देता हूँ और वे मेरे प्रत्येक उत्तर को याद रखते हैं और कभी कोई गौण प्रश्न नहीं पूछते या खाने, पीने, भोजन ग्रहण करने, स्वाद लेने, पेशाब करने, शौच करने और नींद और थकान दूर करने के लिए विश्राम करने के अलावा कभी विराम नहीं लेते। फिर भी तथागत का धम्म का उपदेश, धम्म के कारकों की व्याख्या और प्रश्नों के उत्तर अभी समाप्त नहीं होंगे, लेकिन इस बीच मेरे वे चार शिष्य अपनी सौ वर्ष की आयु के साथ उन सौ वर्षों के अंत में मेरी आयु समाप्त हो जाती। सारिपुत्त, चाहे तुम्हें मुझे पलंग पर ही क्यों न ले जाना पड़े, तथागत की ज्ञान की स्पष्टता में कोई परिवर्तन नहीं आएगा।
63. "सही मायने में, यदि किसी के बारे में यह कहा जाए कि 'भ्रम से मुक्त एक प्राणी अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट हुआ है,' तो वास्तव में यह बात मेरे बारे में ही सही मायने में कही जानी चाहिए।"
64. उस समय पूज्य नागसमला भगवान बुद्ध के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। फिर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है, यह चमत्कारी है! जब मैंने धम्म पर यह प्रवचन सुना, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। हे पूज्यवर, इस धम्म प्रवचन का नाम क्या है?"
"नागसमला, इस विषय पर आपको धम्म का यह प्रवचन 'रोंगटे खड़े कर देने वाला प्रवचन' के रूप में याद होगा।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य नागसमला भगवान बुद्ध के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.3 महादुक्खखंड सुत्त(13)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है: एक बार भगवान सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे।

फिर, जब सुबह हुई, तो कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए चले गए। तब उन्होंने सोचा, "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। क्यों न हम दूसरे संप्रदायों के भिक्षुओं के उद्यान में चलें?" इसलिए वे दूसरे संप्रदायों के भिक्षुओं के उद्यान में गए और उनसे अभिवादन किया। जब यह विनम्र और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए। भिक्षुओं ने उनसे कहा:

"मित्रों, संन्यासी गौतम इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं; संन्यासी गौतम भौतिक रूप की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं; संन्यासी गौतम भावनाओं की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं। तो फिर यहाँ क्या अंतर है, मित्रों, क्या भिन्नता है, संन्यासी गौतम के धम्म उपदेश और हमारे उपदेशों में क्या अंतर है?"

तब उन भिक्षुओं ने उस यात्री के शब्दों का न तो समर्थन किया और न ही विरोध। बिना कुछ कहे वे अपनी सीटों से उठे और यह सोचते हुए चले गए: "हम इन शब्दों का अर्थ भगवान बुद्ध की उपस्थिति में समझ पाएंगे।"

जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद भिक्षा मांगने लौट आए, तो भोजन के बाद वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और उन्हें सारी घटना बताई। भगवान बुद्ध ने कहा:

"हे भिक्षुओं, अन्य संप्रदायों के उन भिक्षुओं से जो इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार प्रश्न किया जाना चाहिए: 'लेकिन, मित्रों, इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है? भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है? भावनाओं के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है?' इस प्रकार प्रश्न किए जाने पर, अन्य संप्रदायों के भिक्षु इस मामले का उत्तर देने में असफल रहेंगे, और इससे भी बढ़कर, वे कठिनाइयों में पड़ जाएंगे। ऐसा क्यों है: क्योंकि यह उनके क्षेत्र से बाहर है। हे भिक्षुओं, मैं इस संसार में, इसके देवताओं, इसके मारों और इसके ब्रह्माओं के साथ, इसके संन्यासियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके राजकुमारों और इसकी प्रजा के साथ, किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या उनके शिष्य या उनसे इसे सीखने वाले के।"

हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों की संतुष्टि क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र हैं। वे पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद और आकर्षक होते हैं, इंद्रिय-संबंधी होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ, नाक से सुनाई देने वाली गंधें, जीभ से महसूस किए जाने वाले स्वाद और शरीर द्वारा स्पर्श किए जाने वाले वे पदार्थ जो वांछित, मनभावन, सुखद और आकर्षक होते हैं, इंद्रिय-संबंधी होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। ये इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र हैं। अब इन पाँच सूत्रों से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद ही इंद्रिय सुखों की संतुष्टि है।

और हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों के मामले में क्या खतरा है? हे भिक्षुओं, यहाँ, जिस शिल्प से कुलवासी जीविका कमाता है—चाहे वह जाँच-पड़ताल हो, लेखा-जोखा हो, खेती हो, व्यापार हो, पशुपालन हो, तीरंदाजी हो, राजसेवा हो, या कोई भी शिल्प हो—उसे ठंड का सामना करना पड़ता है, उसे गर्मी का सामना करना पड़ता है; वह मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और रेंगने वाले जीवों के संपर्क से घायल होता है; वह भूख और प्यास से मृत्यु के जोखिम में रहता है। अब यही इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, एक ऐसा कष्ट जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

यदि कोई कुलवासी परिश्रम, मेहनत और प्रयास करने के बावजूद संपत्ति अर्जित नहीं करता, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और व्याकुल होकर कहता है, 'जो मेरे पास था, वह अब नहीं रहा!' अब यही बात इंद्रिय सुखों के मामले में भी एक खतरा है, जिसका कारण केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर से, इंद्रिय सुखों को कारण, स्रोत और आधार मानते हुए, राजा राजाओं से, कुलीन कुलीनों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहस्थ गृहस्थों से; माता बच्चे से, बच्चा पिता से; भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से, मित्र मित्र से झगड़ते हैं। और यहाँ अपने झगड़ों, लड़ाइयों और विवादों में वे एक-दूसरे पर मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से हमला करते हैं, जिससे उन्हें मृत्यु या जानलेवा पीड़ा होती है। अब यह इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, दुख का एक ऐसा समूह जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुख को कारण मानकर मनुष्य तलवारें और ढालें लेकर, धनुष और तरकश बांधकर, दो पंक्तियों में युद्ध में उतरते हैं, तीर और भाले चलाते हैं और तलवारें चमकाते हैं; और वहाँ वे तीरों और भालों से घायल हो जाते हैं, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं, जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है या उन्हें असहनीय पीड़ा सहनी पड़ती है। अब यही इंद्रिय सुख के मामले में एक खतरा है, पीड़ा का एक ऐसा समूह जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुख को कारण मानकर मनुष्य तलवारें और ढालें उठा लेते हैं, धनुष और तरकश बांध लेते हैं, और फिसलन भरे गढ़ों पर तीर-भाले चलाते हुए और तलवारें चमकाते हुए आक्रमण करते हैं; और वहाँ वे तीर-भालों से घायल हो जाते हैं, उबलते तरल पदार्थों से लथपथ हो जाते हैं, भारी वज़न के नीचे दब जाते हैं, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं, जिससे उन्हें मृत्यु या असहनीय पीड़ा प्राप्त होती है। अब यही इंद्रिय सुख के मामले में एक खतरा है, पीड़ा का एक ऐसा समूह जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, कामुक सुख के कारण ही लोग घरों में सेंध लगाते हैं, धन लूटते हैं, चोरी करते हैं, राजमार्गों पर घात लगाते हैं, दूसरों की पत्नियों को बहकाते हैं, और पकड़े जाने पर राजा उन पर अनेक प्रकार की यातनाएँ देते हैं। राजा उन्हें कोड़ों से कोड़े मरवाते हैं, बेंत से पीटते हैं, लाठियों से मारते हैं, उनके हाथ काट देते हैं, उनके पैर काट देते हैं, उनके नाक काट देते हैं; उन्हें अनेक प्रकार की भयानक यातनाएँ दी जाती हैं, उन पर खौलता तेल छिड़का जाता है, उन्हें कुत्तों के सामने फेंक दिया जाता है, उन्हें जिंदा ही खंभों पर लटका दिया जाता है, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं—जिससे उनकी मृत्यु या असहनीय पीड़ा होती है। अब कामुक सुख के मामले में यही एक खतरा है, एक ऐसा कष्ट जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल कामुक सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुखों को कारण, स्रोत और आधार मानकर, मनुष्य देह, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त हो जाते हैं। ऐसा करने के बाद, मृत्यु के बाद जब शरीर नष्ट हो जाता है, तो वे अभावग्रस्त अवस्था में, दुखद गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनः प्रकट होते हैं। अब यह भी इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, परलोक में दुखों का अंबार, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

और हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से मुक्ति का मार्ग क्या है? यह है कामवासना और वासना का त्याग करना, इंद्रिय सुखों के प्रति इच्छा और वासना को छोड़ देना। यही इंद्रिय सुखों से मुक्ति का मार्ग है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनका स्वयं इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझना या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझ सके, असंभव है। और जो संन्यासी और ब्राह्मण इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, उनका स्वयं इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझना या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझ सके, संभव है।

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि क्या है? मान लीजिए कि एक कुलीन वर्ग की, ब्राह्मण वर्ग की या गृहस्थ परिवार की लड़की पंद्रह या सोलह वर्ष की है, न अधिक लंबी है, न अधिक छोटी, न अधिक पतली है, न अधिक मोटी, न अधिक सांवली है, न अधिक गोरी। क्या तब उसकी सुंदरता और आकर्षण अपने चरम पर होता है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

"अब उस सुंदरता और आकर्षण पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद भौतिक रूप के मामले में तृप्ति है।"

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में क्या खतरा है? बाद में शायद उसी स्त्री को यहाँ अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष की आयु में देखा जाए, वृद्ध, छत के ब्रैकेट की तरह टेढ़ी, कमर झुकाए, छड़ी के सहारे चलती हुई, लड़खड़ाती हुई, दुर्बल, जवानी खो चुकी, दाँत टूटे हुए, बाल सफ़ेद, कम घने, गंजी, झुर्रियों वाली, और अंगों पर धब्बेदार। हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण गायब हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में यह एक खतरा है।

फिर से, वही स्त्री पीड़ित, कष्ट सहती और गंभीर रूप से बीमार अवस्था में अपने ही मल-मूत्र में पड़ी हुई दिखाई दे सकती है, जिसे कुछ लोग उठाते हैं और कुछ लोग नीचे रखते हैं। भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण लुप्त हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

फिर, कोई उसी स्त्री को श्मशान में फेंके गए शव के रूप में देख सकता है, जो एक, दो या तीन दिन पहले मरी हो, फूली हुई, पीली पड़ी हुई और मवाद टपकाती हुई। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण खो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

फिर से, कोई उसी स्त्री को श्मशान भूमि में फेंके गए शव के रूप में देख सकता है, जिसे कौवे, बाज, गिद्ध, कुत्ते, सियार या विभिन्न प्रकार के कीड़े नोच रहे हों; एक मांसहीन कंकाल, या मांस और रक्त से लथपथ, नसों से जुड़ा हुआ; रक्त से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ; अलग-अलग हड्डियाँ चारों ओर बिखरी हुई—यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ जांघ की हड्डी, वहाँ पसली की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ खोपड़ी; सफेद पड़ चुकी हड्डियाँ, सीपियों के रंग की; एक वर्ष से अधिक पुरानी हड्डियों का ढेर, सड़कर धूल में मिल चुकी हड्डियाँ। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण गायब हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप से मुक्ति का मार्ग क्या है? यह इच्छा और वासना का निवारण है, भौतिक रूप के प्रति इच्छा और वासना का त्याग है। भौतिक रूप से मुक्ति का मार्ग यही है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनके लिए न तो स्वयं भौतिक रूप को पूर्णतः समझना और न ही किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सके—यह असंभव है।

यह संभव है कि वे संन्यासी और ब्राह्मण जो भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, वे या तो स्वयं भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सकते हैं, या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं कि वह भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सके।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में तृप्ति क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो निरंतर चिंतन, एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से परिपूर्ण होती है। ऐसे अवसर पर वह न तो स्वयं को, न ही किसी अन्य को, और न ही दोनों को पीड़ा पहुँचाना चुनता है। उस अवसर पर वह केवल पीड़ा रहित भावना का अनुभव करता है। मैं कहता हूँ, भावनाओं के मामले में सर्वोच्च तृप्ति पीड़ा से मुक्ति है।

फिर, गहन और निरंतर चिंतन के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; आनंद के लुप्त होने पर, वह तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; सुख और दुख के त्याग के साथ, वह चतुर्थ ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; ऐसे समय में वह न तो अपने कष्ट को चुनता है, न ही किसी दूसरे के कष्ट को, और न ही दोनों के कष्ट को। उस समय वह केवल कष्ट रहित अनुभूति का अनुभव करता है। मैं कहता हूँ कि अनुभूतियों के मामले में सर्वोच्च तृप्ति कष्ट से मुक्ति है।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में क्या खतरा है? भावनाएँ क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होती हैं। यही भावनाओं के मामले में खतरा है।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में मुक्ति का मार्ग क्या है? यह इच्छा और वासना का त्याग है, भावनाओं के लिए इच्छा और वासना का परित्याग है। यही भावनाओं के मामले में मुक्ति का मार्ग है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण भावनाओं के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनके लिए न तो स्वयं भावनाओं को पूर्णतः समझना और न ही किसी दूसरे को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह भावनाओं को पूर्णतः समझ सके—यह असंभव है।

यह संभव है कि वे संन्यासी और ब्राह्मण जो भावनाओं के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, वे या तो स्वयं भावनाओं को पूर्णतः समझ सकते हैं या दूसरों को इस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं कि वे भावनाओं को पूर्णतः समझ सकें।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.4 कुलदुक्खखंड सुत्त(14)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान भगवान शाक्य लोक में कपिलवस्तु के निग्रोध उद्यान में रह रहे थे। तब महानामा नामक शाक्य भगवान के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे पूज्यवर, मैंने भगवान द्वारा उपदेशित धर्म को इस प्रकार समझा है: लोभ एक दोष है जो मन को दूषित करता है, मोह एक दोष है जो मन को दूषित करता है। फिर भी, भगवान द्वारा उपदेशित धर्म को इस प्रकार समझने के बावजूद, कभी-कभी लोभ, घृणा और मोह की अवस्थाएँ मेरे मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं। हे पूज्यवर, मैं सोचता हूँ कि मेरे भीतर कौन सी ऐसी अवस्था है जिसे मैंने अभी तक नहीं छोड़ा है, जिसके कारण कभी-कभी लोभ, घृणा और मोह की अवस्थाएँ मेरे मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं?”

"महानामा, आपके भीतर अभी भी एक ऐसी अवस्था है जिसे आपने त्यागा नहीं है, जिसके कारण कभी-कभी लोभ, घृणा और भ्रम की अवस्थाएँ आपके मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं; क्योंकि यदि आपने उस अवस्था को आंतरिक रूप से त्याग दिया होता तो आप गृहस्थ जीवन नहीं जी रहे होते, आप इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं ले रहे होते। यह इसलिए है क्योंकि आपने उस अवस्था को आंतरिक रूप से नहीं त्यागा है, इसलिए आप गृहस्थ जीवन जी रहे हैं और इंद्रिय सुखों का आनंद ले रहे हैं।"

यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य ने उचित ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख लिया है कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें निहित खतरा कितना बड़ा है, फिर भी जब तक वह इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण आनंद की प्राप्ति नहीं कर लेता, तब तक वह इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित हो सकता है। परन्तु जब एक श्रेष्ठ शिष्य ने उचित ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख लिया है कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें निहित खतरा कितना बड़ा है, और वह इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण आनंद की प्राप्ति कर लेता है, तब वह इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित नहीं होता।

ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं केवल एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब भी मैंने उचित बुद्धि से स्पष्ट रूप से देखा कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें कितना बड़ा खतरा है। लेकिन जब तक मैंने इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं किया, तब तक मैंने महसूस किया कि मैं अभी भी इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित हो सकता हूँ। लेकिन जब मैंने उचित बुद्धि से स्पष्ट रूप से देखा कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें कितना बड़ा खतरा है, और मैंने इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लिया, तब मैंने महसूस किया कि मैं अब इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित नहीं हूँ।

और इंद्रिय सुखों में तृप्ति क्या है? महानामा, इंद्रिय सुख के ये पाँच सूत्र हैं: आँखों से पहचाने जाने वाले रूप, कानों से पहचाने जाने वाली ध्वनियाँ, नाक से पहचाने जाने वाली गंध, जीभ से पहचाने जाने वाले स्वाद और शरीर द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्शनीय पदार्थ, जो

वांछित, आकर्षक और मनभावन होते हैं, इंद्रिय इच्छा से जुड़े होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। इंद्रिय सुखों के मामले में यही खतरा है: परलोक में दुखों का अंबार, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही होगा।

अब, महानामा, एक बार मैं राजगृह में गिद्ध शिखर (जिसे 'ईगल शिखर' भी कहा जाता है) नामक पर्वत पर रह रहा था। उस समय इसिगिली की ढलानों पर स्थित काली चट्टान पर रहने वाले कई निगंथ लगातार खड़े होकर अभ्यास कर रहे थे और बैठने का त्याग कर रहे थे। परिश्रम के कारण उन्हें असहनीय पीड़ा, व्याकुलता और चुभन का अनुभव हो रहा था। (जैन धर्म में लोग आत्म-दंड का एक चरम रूप अपनाते थे, इस विश्वास के साथ कि इससे उनके पिछले कर्मों का प्रायश्चित हो जाएगा।)

फिर, जब शाम हुई, तो मैं ध्यान से उठा और वहाँ मौजूद निगंथों के पास गया। मैंने उनसे पूछा: मित्रों, आप बैठने का त्याग करके लगातार खड़े रहने का अभ्यास क्यों करते हैं, और परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और चुभने वाली अनुभूतियाँ क्यों अनुभव करते हैं?

यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया: “मित्र, निगंथ नटपुत्त सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं और उनका दावा है कि उन्हें पूर्ण ज्ञान और दृष्टि प्राप्त है, जैसा कि वे कहते हैं: ‘चाहे मैं चल रहा हूँ, खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि निरंतर और निर्बाध रूप से मेरे पास मौजूद हैं।’ वे कहते हैं: ‘निगंथों, तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं; उन्हें कठोर तपस्या करके नष्ट करो। और जब तुम अभी और यहीं शरीर, वाणी और मन से संयमित हो, तो यह भविष्य के लिए कोई बुरा कर्म न करना है। अतः तपस्या द्वारा अतीत के कर्मों का नाश करके और कोई नया कर्म न करके, भविष्य में कोई परिणाम नहीं होगा। भविष्य में कोई परिणाम न होने से कर्म का नाश होता है। कर्म के नाश से दुख का नाश होता है। दुख के नाश से भावना का नाश होता है। भावना के नाश से सभी दुख समाप्त हो जाएंगे। यही वह सिद्धांत है जिसे हम स्वीकार करते हैं और इससे संतुष्ट हैं।’

जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे कहा: लेकिन, दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आप अतीत में मौजूद थे, और ऐसा नहीं है कि आप मौजूद नहीं थे?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए और उनसे परहेज नहीं किया?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आपने ऐसे-ऐसे बुरे काम किए हैं?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि कितना दुख पहले ही समाप्त हो चुका है, या कितना दुख अभी समाप्त होना बाकी है, या जब इतना दुख समाप्त हो जाएगा तो सभी दुख समाप्त हो जाएंगे?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि अस्वस्थ अवस्थाओं का त्याग क्या होता है और स्वस्थ अवस्थाओं का विकास अभी और यहीं क्या होता है?

'नहीं, दोस्त।'

अतः मित्रों, ऐसा प्रतीत होता है कि आप यह नहीं जानते कि आप अतीत में विद्यमान थे और यह सत्य नहीं है कि आप विद्यमान नहीं थे; या यह कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए और उनसे विमुख नहीं हुए; या यह कि आपने फलां-फलां बुरे कर्म किए; या यह कि इतना कष्ट पहले ही समाप्त हो चुका है, या इतना कष्ट अभी समाप्त होना बाकी है, या यह कि जब इतना कष्ट समाप्त हो जाएगा तो समस्त कष्ट समाप्त हो जाएंगे; या यह कि अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं का त्याग क्या है और इस समय सुखदायक अवस्थाओं का विकास क्या है। ऐसी स्थिति में, जो लोग संसार में हत्यारे, रक्तरंजित दुष्ट कर्म करने वाले हैं, जब वे मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, तो निगंथों के रूप में तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं।

'मित्र गौतम, सुख सुख से नहीं, बल्कि कष्ट से प्राप्त होता है। यदि सुख सुख से ही प्राप्त होता, तो मगध के राजा बिम्बिसार भी सुख प्राप्त कर लेते, क्योंकि वे पूज्य गौतम से भी अधिक सुख में लीन रहते हैं।'

निज्ञाततः पूज्य निगंथों ने वे शब्द जल्दबाजी और बिना सोचे-समझे कहे हैं। बल्कि मुझसे यह पूछा जाना चाहिए: अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या पूज्य गौतम?

"हे मित्र गौतम, हमने वे शब्द जल्दबाजी में और बिना सोचे-समझे कह दिए। खैर, छोड़ो। अब हम पूज्य गौतम से पूछते हैं: अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या पूज्य गौतम?"

तो मित्रों, मैं आपसे एक प्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। मित्रों, आपका क्या विचार है? क्या मगध के राजा बिम्बिसार सात दिन और सात रात बिना शरीर हिलाए या एक शब्द बोले, परम सुख का अनुभव कर सकते हैं?

नहीं, दोस्त।

क्या मगध के राजा बिम्बिसार बिना शरीर हिलाए और बिना एक शब्द बोले छह, पांच, चार, तीन या दो दिन और दो रातों तक परम सुख का अनुभव कर सकते हैं? क्या वे एक दिन और एक रात भी इस सुख का अनुभव कर सकते हैं?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन मित्रों, मैं बिना शरीर हिलाए-डुलाए और बिना एक शब्द बोले सात दिन और सात रातों तक परम आनंद का अनुभव कर सकता हूँ। आप क्या सोचते हैं मित्रों? ऐसे में, अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या मैं?

"इस प्रकार, पूज्य गौतम मगध के राजा बिम्बिसार से भी अधिक आनंदित रहते हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। महानामा शाक्य भगवान बुद्ध के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.5अनुमना सुत्त(15)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य महा मोग्गलाना भग्गा देश में सुमसुमारा पहाड़ियों के बीच भेषकला वन में स्थित हिरण उद्यान में रहते थे। तब पूज्य महा मोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित किया।

भले ही भिक्षु सलाह मानने को तैयार हों, यदि वे अनुशासनहीन हों, अनुशासनहीन बातें करते हों, सलाह का पालन न करते हों, तो साधुओं को उन्हें सलाह न देने और उनका विश्वास न लेने का विचार करना चाहिए। हे मित्रों, अनुशासनहीनता क्या है? बुरी इच्छाओं में डूबा हुआ भिक्षु अनुशासनहीनता का शिकार होता है। अपनी प्रशंसा करते हुए दूसरों की निंदा करने वाला भिक्षु अनुशासनहीनता का शिकार होता है।

फिर क्रोधित भिक्षु उस क्रोध से अभिभूत हो जाता है। क्रोधित और क्रोध से अभिभूत भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। फिर क्रोधित भिक्षु द्वेष रखता है। क्रोधित और द्वेष रखने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। क्रोधित होने पर भिक्षु का स्वभाव शाप देने वाला हो जाता है। क्रोधित और क्रोध के कारण शाप देने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। क्रोधित होने पर भिक्षु क्रोधी शब्द बोलता है। क्रोधित और क्रोधी शब्द बोलने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है।

डांट पड़ने पर भिक्षु पलटवार करता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। डांट पड़ने पर भिक्षु बदले में डांटता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। डांट पड़ने पर भिक्षु पलटवार करता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। फिर से डांट पड़ने पर भिक्षु प्रश्न से बचता है और क्रोध और असंतोष दिखाता है। डांट खाने वाले भिक्षु का प्रश्न से बचना और क्रोधित और असंतुष्ट होना अनुशासनहीनता है।

फटकारा गया भिक्षु उपदेश स्वीकार नहीं करता। फटकारा गया भिक्षु उपदेश स्वीकार नहीं करता, यह एक अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर पाखंडी और निर्दयी हो जाता है। पाखंडी और निर्दयी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर ईर्ष्यालु और स्वार्थी हो जाता है। ईर्ष्यालु और स्वार्थी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर धूर्त और कपटी हो जाता है। कपटी और कपटी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर हठी और अहंकारी हो जाता है।

हठी और अहंकारी भिक्षु का व्यवहार अनुशासनहीनता की निशानी है। सांसारिकता से ग्रसित भिक्षु भी उससे दृढ़तापूर्वक चिपके रहते हैं और उसे छोड़ना उनके लिए कठिन होता है। सांसारिक विचारों से दृढ़तापूर्वक चिपके रहने और उन्हें छोड़ना उनके लिए कठिन होने के कारण, सांसारिक भिक्षु का व्यवहार अनुशासनहीनता की निशानी है। .यद्यपि भिक्षु सलाह न मांगें, विनम्र स्वभाव के हों, धैर्यवान हों और सलाह मिलने पर आदरपूर्वक उसका सम्मान करें, तब भी भिक्षुओं को सलाह देने और उन्हें विश्वास में लेने के बारे में सोचना चाहिए।

हे भिक्षुओं, सौम्य गुण क्या हैं? बुरी इच्छाओं से मुक्त भिक्षु सौम्य गुण है। स्वयं की प्रशंसा न करने वाला और दूसरों की निंदा न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और द्वेष न रखने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और दूसरों को शाप न देने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और दूसरों को शाप न देने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट पड़ने पर पलटवार न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट पड़ने पर पलटवार न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट खाने पर बातचीत को दूसरी दिशा में न ले जाने वाला और क्रोध या असंतोष न दिखाने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट खाने पर नसीहत स्वीकार करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। पाखंडी न होने वाला और दयालु भिक्षु सौम्य गुण है। फिर वही बात कि ईर्ष्यालु और स्वार्थी न होने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है। फिर वही बात कि धूर्त और कपटी न होने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है। फिर वही बात कि हठी न होने वाला और स्वयं को बहुत बड़ा न समझने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है।

मित्रों, स्वयं भिक्षु द्वारा ही यह अवलोकन किया जाना चाहिए: मुझे बुरी इच्छाओं से ग्रस्त व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी प्रकार यदि मैं बुरी इच्छाओं से ग्रस्त हो जाऊं तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए, मुझे बुरी इच्छाओं से ग्रस्त न होने का चिंतन करना चाहिए। मुझे स्वयं की प्रशंसा करने और दूसरों की निंदा करने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी प्रकार यदि मैं स्वयं की प्रशंसा करूं और दूसरों की निंदा करूं तो मुझसे घृणा की जाएगी। यह जानते हुए, मुझे स्वयं की प्रशंसा और दूसरों की निंदा करते समय सावधान रहने का चिंतन करना चाहिए।

मुझे क्रोधी व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि मैं क्रोध से ग्रस्त हो जाऊं तो लोग मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे क्रोध से बचने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे द्वेष रखने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि क्रोध के कारण मेरे मन में द्वेष हो तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे द्वेष न रखने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे गाली देने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि मेरा स्वभाव गाली देने वाला हो तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे अपने गाली देने के स्वभाव को दूर करने के लिए विचार करना चाहिए।

मुझे क्रोधित होकर बोलने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे अगर मैं क्रोधित होकर बोलूँ तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए, मुझे इस स्वभाव पर काबू पाने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं है जो डांटने पर पलटवार करता है, ठीक उसी तरह जैसे अगर मैं डांटने पर पलटवार करूँ तो मुझसे घृणा की जाएगी। यह जानते हुए, मुझे डांटने पर पलटवार नहीं करना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं है जो सवाल से बचता है और डांटने पर क्रोधित और असंतुष्ट हो जाता है, अगर मैं ऐसा करूँ तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे।

मुझे डांट पड़ने पर सवाल से बचना नहीं चाहिए और न ही गुस्सा या असंतुष्ट होना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं जो डांट खाने के बाद भी नसीहत न माने। अगर मैं ऐसा करता तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे डांट खाने के बाद भी नसीहत माननी चाहिए। मुझे निर्दयी पाखंडी पसंद नहीं। अगर मैं निर्दयी पाखंडी बन जाता, तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे दयालु होना चाहिए और पाखंडी नहीं बनना चाहिए। मुझे ईर्ष्यालु और स्वार्थी व्यक्ति पसंद नहीं। अगर मैं ईर्ष्यालु और स्वार्थी होता, तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे ईर्ष्यालु और स्वार्थी नहीं होना चाहिए।

मुझे धूर्त और कपटी व्यक्ति पसंद नहीं है। यदि मैं धूर्त और कपटी होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे धूर्त और कपटी नहीं होना चाहिए। मुझे हठी और अहंकारी व्यक्ति पसंद नहीं है। यदि मैं हठी और अहंकारी होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे हठी और अहंकारी नहीं होना चाहिए। मुझे सांसारिक व्यक्ति पसंद नहीं है जो अपने विचारों पर अडिग रहता है और उन्हें छोड़ना मुश्किल पाता है। यदि मैं ऐसा होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे अपने विचारों पर अडिग नहीं रहना चाहिए और उन्हें आसानी से छोड़ देना चाहिए।

भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मुझमें कोई बुरी इच्छाएँ हैं? यदि चिंतन करते समय भिक्षु को कोई बुरी इच्छाएँ दिखाई देती हैं, तो उसे उन बुरी इच्छाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को कोई बुरी इच्छाएँ दिखाई देती हैं, तो उसे दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं अपनी प्रशंसा करता हूँ और दूसरों की निंदा करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को अपनी प्रशंसा करते और दूसरों की निंदा करते हुए दिखाई देता है, तो उसे उन बुरी इच्छाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं की प्रशंसा न करे और दूसरों की निंदा न करे, तो उसे दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक इन पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी सोचना चाहिए कि क्या मैं क्रोध से ग्रसित हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोध से ग्रसित पाए, तो उसे इन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोध से ग्रसित न पाए, तो उसे प्रसन्नतापूर्वक इन पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी सोचना चाहिए कि क्या मैं किसी से द्वेष रखता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को द्वेष से क्रोधित पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोधित और द्वेष रहित पाता है, तो उसे दिन-रात उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं क्रोधित मन से शाप देता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को शाप देते और क्रोधित पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोधित और शाप न देते हुए पाता है, तो उसे दिन-रात उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं क्रोधित शब्द बोलता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को क्रोधित शब्दों का उच्चारण करते हुए पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह अपने आप को क्रोधित शब्दों का उच्चारण न करते हुए पाता है, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं डांट पड़ने पर पलटवार करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को डांट पड़ने पर पलटवार करते हुए पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को डांट पड़ने पर पलटवार न करते हुए पाता है, तो उसे पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं डांटे जाने वाले व्यक्ति को नीचा दिखाता हूँ?

जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति का अपमान करते हुए पाए, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति का अपमान न करते हुए पाए, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदित होकर अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं फटकारे गए व्यक्ति को फटकारता हूँ? जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति को फटकारते हुए पाए, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब वह चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति को फटकारते हुए न पाए, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदित होकर अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं फटकारे गए व्यक्ति से बचकर क्रोध और असंतोष प्रकट करता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार से बचते हुए और क्रोध एवं असंतोष प्रकट करते हुए पाता है, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को फटकार से बचते हुए और क्रोध एवं असंतोष प्रकट न करते हुए पाता है, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैं फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण न करते हुए पाता है, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण करते हुए पाता है, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैं निर्दयी पाखंडी हूँ?

जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को निर्मम पाखंडी समझे, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब वह आत्मचिंतन करे और अपने आप को दयालु और पाखंडी न समझे, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को आत्मचिंतन करना चाहिए, क्या मैं ईर्ष्यालु और स्वार्थी हूँ? जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को ईर्ष्यालु और स्वार्थी समझे, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को ईर्ष्यालु या स्वार्थी न समझे, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को आत्मचिंतन करना चाहिए, क्या मैं धूर्त और कपटी हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को धूर्त और कपटी पाता है, तो उसे इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को न तो धूर्त और न ही कपटी पाता है, तो उसे प्रसन्न और आनंदित रहना चाहिए और दिन-रात पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं हठी हूँ और क्या मैं अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को हठी और अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचता हुआ पाता है, तो उसे इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को हठी और अहंकारी न पाए, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी चिंतन करना चाहिए, क्या मैं सांसारिक विचारों से दृढ़तापूर्वक चिपका हुआ हूँ और उन्हें त्यागने में कठिनाई महसूस कर रहा हूँ? चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को दृढ़तापूर्वक विचारों से चिपका हुआ पाए और उन्हें त्यागने में कठिनाई महसूस कर रहा हो, तो उसे उन बुरी चीजों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को दृढ़तापूर्वक विचारों से चिपका हुआ न पाए और उन्हें आसानी से त्याग दे, तो उसे प्रसन्नतापूर्वक पुण्य कर्मों में दिन-रात अभ्यास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु को ये सभी बुराइयाँ दूर न होती दिखाई दें, तो उसे इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि उसे ये सभी बुराइयाँ दूर होती दिखाई दें, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। जैसे कोई स्त्री, पुरुष, बच्चा या युवक जो सजावट का शौकीन हो, दर्पण, किसी साफ सतह या पानी के कटोरे में अपना प्रतिबिंब देखता है और उसमें कोई धूल का कण देखकर उसे दूर करने का प्रयास करता है, और धूल का कण न देखकर प्रसन्न होता है। उसी प्रकार, चिंतन करते समय यदि भिक्षु को ये सभी बुरी बातें दिखाई दें, तो उसे इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि उसे ये बुराइयाँ दिखाई न दें, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महा मोग्गलाना ने ऐसा कहा और उन भिक्षुओं को ये शब्द सुनकर अत्यंत प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.6सीतोखिला सुत्त(16)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु के मन में स्थित पाँचों बाणों का निवारण न हो और पाँचों बंधन न टूटें, तो उस भिक्षु का धर्मोपदेश में विकास और उन्नति संभव नहीं है। उसके मन के पाँचों बाणों का निवारण क्यों नहीं हुआ? यहाँ भिक्षु संशय में है और गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता। जब वह संशय में होता है और गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन बाणों के निवारण के लिए प्रयास नहीं करता। यह मन में स्थित पहला बाण है जिसका निवारण नहीं हुआ। फिर भिक्षु संशय में है और शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता।"

जब भिक्षु को संदेह होता है और वह शिक्षा को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न दूसरा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु को संदेह होता है और वह भिक्षु समुदाय को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता। जब भिक्षु को संदेह होता है और वह भिक्षु समुदाय को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न तीसरा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु को संदेह होता है और वह प्रशिक्षण को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता। जब भिक्षु को संदेह होता है और वह प्रशिक्षण को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार

नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न चौथा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु अपने सहपाठियों से क्रोधित होता है, अप्रसन्न और आहत होता है, और उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न पाँचवाँ अनसुलझा तीर है। मन में उठने वाले ये पांच तीर दूर नहीं होते।

मन के पाँच बंधन कैसे नहीं टूटते? यहाँ भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब उसने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह पहला बंधन है जो नहीं टूटा है। फिर भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और शरीर की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और शरीर की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह दूसरा बंधन है जो नहीं टूटा है। फिर भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक चीजों की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक चीजों की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह तीसरा बंधन है जो नहीं टूटा है।

फिर, जब भिक्षु अपनी इच्छानुसार भोजन करता है, तो वह आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से बंधा रहता है। जब भिक्षु अपनी इच्छानुसार भोजन करता है, तो वह आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से बंधा रहता है, और उसका मन इन बंधनों को दूर करने के लिए प्रयास नहीं करता। यह चौथा बंधन है जो टूटा नहीं है। फिर, जब भिक्षु इन गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए और पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए यह कामना करता है कि काश मैं उन देवताओं के साथ रहूँ, या काश मैं कोई विशेष देवता बन जाऊँ, तो जब भिक्षु गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए और पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए किसी विशेष देवता के साथ रहने या कोई विशेष देवता बनने की कामना करता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने के लिए प्रयास नहीं करता। यह पाँचवाँ बंधन है जो टूटा नहीं है। ये मन के पाँच बंधन हैं जो टूटे नहीं हैं। यदि उस भिक्षु के मन में स्थित पाँच तीर दूर नहीं होते, पाँच बंधन नहीं टूटते, तो इस युग में उसका विकास और उन्नति संभव नहीं है।

जिस भिक्षु के मन में पाँचों बाण उच्छेदित हो जाते हैं और पाँचों बंधन टूट जाते हैं, उसका इस युग में विकास और उन्नति संभव है। मन के पाँचों बाण कैसे उच्छेदित होते हैं? यहाँ भिक्षु संशयहीन होकर गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है। जब वह संशयहीन होकर गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है, तो उसका मन बाण उच्छेदित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मन का पहला बाण उच्छेदित हो जाता है। फिर, भिक्षु संशयहीन होकर शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है। जब वह संशयहीन होकर शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है, तो उसका मन बाण उच्छेदित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मन का दूसरा बाण उच्छेदित हो जाता है।

फिर, भिक्षु संदेह नहीं करता, और विश्वास के साथ भिक्षु समुदाय को स्वीकार करता है। जब वह संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ भिक्षु समुदाय को स्वीकार करता है, तो उसका मन इस तीसरे तीर को दूर करने का प्रयास करता है। मन का यह तीसरा तीर दूर हो जाता है। फिर, भिक्षु संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ प्रशिक्षण को स्वीकार करता है। जब वह संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ प्रशिक्षण को स्वीकार करता है, तो उसका मन इस चौथे तीर को दूर करने का प्रयास करता है। फिर, भिक्षु पवित्र जीवन में सहपाठियों से क्रोधित नहीं होता, प्रसन्न होता है और दुखी नहीं होता, उसका मन इस पाँचवें तीर को दूर करने का प्रयास करता है। मन का यह पाँचवाँ तीर दूर हो जाता है। इस प्रकार मन के पाँचों तीर दूर हो जाते हैं।

मन के पाँच बंधनों को कैसे काटा जाता है? यहाँ भिक्षु ने लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृप्ति को दूर कर दिया है। जब भिक्षु लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृप्ति को दूर कर देता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने का प्रयास करता है। यह पहला बंधन है जिसे काटा जाता है। फिर भिक्षु ने लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और देह की तृप्ति को दूर कर दिया है। जब भिक्षु लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और देह की तृप्ति को दूर कर देता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने का प्रयास करता है। यह दूसरा बंधन है जिसे काटा जाता है।

भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक लालसा को त्याग दिया है। जब भिक्षु भौतिक लालसा, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और लालसा को त्याग देता है, तो उसका मन इन लालसाओं को दूर करने का प्रयास करता है। यह तीसरा बंधन है जो टूटता है। फिर, भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार भोजन न करने पर आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से मुक्त हो जाता है। जब भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार भोजन न करने पर आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से मुक्त हो जाता है, तो उसका मन इन लालसाओं को दूर करने का प्रयास करता है। यह चौथा बंधन है जो टूटता है।

फिर भी, जो भिक्षु इन गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है, वह यह इच्छा नहीं रखता कि काश मैं उन देवताओं के साथ होता या काश मैं कोई विशेष देवता होता। जब भिक्षु गुणों और तपस्याओं का पालन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है, किसी विशेष देवता समूह में शामिल होने या स्वयं देवता बनने की इच्छा नहीं रखता, तो उसका मन इन बंधनों को दूर

करने का प्रयास करता है। यही पाँचवाँ बंधन है जिसे काटा गया है। ये मन के पाँच बंधन हैं जिन्हें काटा गया है। जब भिक्षु मन के पाँचों बाणों को दूर कर देता है और पाँचों बंधनों को काट देता है, तभी इस युग में उसका विकास और उन्नति संभव है।

भिक्षु रुचि, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। वह मन, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। वह विवेक, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। पाँचवाँ है परिश्रम। परिश्रम से पंद्रह तत्व प्राप्त होते हैं, इन पंद्रह तत्वों से युक्त होकर भिक्षु को ज्ञान प्राप्ति संभव होती है।

इस प्रकार जुए के श्रेष्ठ अंत तक पहुँचना संभव हो जाता है। जैसे मुर्गी आठ, दस या बारह दिनों तक अंडों पर बैठी रहती है, तब उसके मन में यह इच्छा जागती है कि चूजा अपने पैरों के नाखूनों या चोंच से अंडे तोड़कर बाहर क्यों न आ जाए। फिर चूजा अपने पैरों के नाखूनों या चोंच से अंडे तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर आ जाता है। इसी प्रकार इन पंद्रह गुणों से युक्त होकर भिक्षु के लिए ज्ञान प्राप्ति संभव हो जाती है, जुए के श्रेष्ठ अंत तक पहुँचना संभव हो जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.7 वनपत्था सुत्त(17)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे।

वहाँ से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मैं आपको वन की विधि सिखाऊंगा, ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो, मैं आपको सिखाऊंगा।"

भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु एक विशेष वन क्षेत्र में निवास करता है। वहाँ निवास करने पर, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न ही नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट होती हैं और न ही प्राप्त हुआ श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त होता है, क्योंकि प्राणलोक के लिए चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय आवश्यक औषधि - बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, इस वन में निवास करने से, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न ही नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट होती हैं और न ही प्राप्त हुआ श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त होता है, क्योंकि प्राणलोक के लिए चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय आवश्यक औषधि - बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं। भिक्षुओं, उसे उस वन क्षेत्र में निवास नहीं करना चाहिए, उसे उसे छोड़ देना चाहिए। रात हो या दिन।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु एक विशेष वन क्षेत्र में निवास करता है। वहाँ निवास करने पर, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और न ही प्राप्त हुए पुण्य कर्मों की प्राप्ति होती है, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, इस वन में निवास करने से, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, प्राणलोक कर्मों की आवश्यकताएँ नष्ट नहीं होतीं, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। हे भिक्षु, चिंतन करो, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ। इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जैसे प्राणवास करने वालों के लिए वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं के लिए संन्यासी नहीं बना, फिर भी इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। हे भिक्षुओं, जो भिक्षु इस वन क्षेत्र को छोड़ने का विचार कर रहे हैं, उन्हें वहाँ नहीं रहना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी वन क्षेत्र में निवास करता है, तो वहाँ निवास करने पर उसकी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक प्राणाधारण की आवश्यकताओं की बात है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यक वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, और इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक प्राणाधारण की आवश्यकताओं की बात है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यक वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। मैंने वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय आवश्यक वस्तुओं के लिए संन्यास नहीं लिया था, फिर भी इस वन क्षेत्र में रहने से मुझे अनगढ़ ध्यान स्थापित होता है, असंलग्न मन एकाग्र होता है, अविचलित इच्छाएँ नष्ट होती हैं और अनप्राप्त महान उद्देश्य प्राप्त होता है। ऐसा भिक्षु इस बात को ध्यान में रखते हुए उस वन क्षेत्र को न छोड़े, वहीं निवास करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी वन क्षेत्र में निवास करता है, तो वहाँ निवास करने पर उसकी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन का वह महान उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक प्राणवास की आवश्यकताओं की बात है, प्राणवास, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, और इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, मेरी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन का वह महान उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। उस भिक्षु को यह सोचकर उस वन क्षेत्र को नहीं छोड़ना चाहिए, उसे जीवन भर वहीं निवास करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष ग्राम, किसी विशेष बस्ती, किसी विशेष नगर, किसी विशेष राज्य, किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है, तो वह किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है। हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है, तो उसकी अस्थापित चेतना स्थापित नहीं होती, उसका ध्यान भंग नहीं होता, उसकी अविचल इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल भी प्राप्त नहीं होता। ठीक उसी प्रकार, जैसे प्राणत्यागियों के लिए जीवन की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ - बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति का सहारा लेकर रहता हूँ, इस व्यक्ति का सहारा लेकर रहने से मेरी अस्थापित चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और बंधन का अप्राप्त श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक प्राणवास की चार आवश्यक वस्तुओं, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं का सवाल है, जो प्राणवास के लिए बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं, भिक्षुओं को उस व्यक्ति का सहारा लेकर नहीं रहना चाहिए; उन्हें बिना बताए रात या दिन में उस व्यक्ति को छोड़ देना चाहिए, ताकि वह उनका पीछा न करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी व्यक्ति के सहारे रहता है, तो उसकी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, उसका असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, उसकी अशक्त इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और उसके बंधन का मूल उद्देश्य भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी असंलग्न चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, मेरी असंलग्न इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और उसके बंधन का मूल उद्देश्य भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। हे भिक्षु, चिंतन करो, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी अचेतन चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अचेतन इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जैसे संन्यासी को वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ आसानी से मिल जाती हैं। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं के लिए संन्यासी नहीं बना, फिर भी इस व्यक्ति के सहारे रहने से मेरी अचेतन चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अचेतन इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस व्यक्ति को बिना बताए छोड़ देना चाहिए, ताकि वह उसका अनुसरण न करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी व्यक्ति के सहारे रहता है, तो इस प्रकार रहने से उसकी अस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और बंधन का वह श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक परलोक के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं का एकत्रण कठिन होता है, उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी अस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और बंधन का वह श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक परलोक के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की

आवश्यकताओं का एकत्रण कठिन होता है। मैंने वस्त्रों, भोजन के टुकड़ों, आवासों और बीमारी के समय आवश्यक वस्तुओं के लिए संन्यास नहीं लिया, फिर भी इस व्यक्ति के साथ रहने से मेरी अनगढ़ चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, मेरी अविचल इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और मेरे बंधन का अनचाहा उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। इसलिए, जो भिक्षु इस बात को समझे, उसे उस व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, उसे नहीं छोड़ना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष व्यक्ति के सहारे रहता है, तो उस व्यक्ति के सहारे उसे अनस्थापित ध्यान स्थापित हो जाता है, उसका असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, उसकी अविचलित इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक परलोक में रहने वाले भिक्षुओं के जीवन की आवश्यकताओं का सवाल है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मुझे अनस्थापित ध्यान स्थापित हो जाता है, मेरा असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, उसकी अविचलित इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक परलोक में रहने वाले भिक्षुओं के जीवन की आवश्यकताओं का सवाल है, एक संन्यासी के रूप में, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को जीवन भर उस व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, चाहे उसका पीछा किया जाए या न किया जाए।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 2.8मधुपिंडिका सुत्त(18)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान भगवान कपिलवस्तु के पास बरगद के उद्यान में शाक्यों के बीच रह रहे थे। तब सुबह तड़के, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने गए। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे दिनभर विश्राम करने के लिए वन में चले गए। वन में प्रवेश करके वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक बेल के पौधे की जड़ में बैठ गए।

दंडपानी ("हाथ में छड़ी लिए") शाक्य पुरुष, व्यायाम के लिए टहलते हुए, महान वन में गए। महान वन में प्रवेश करते हुए, वे वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध बिल्व वृक्ष के नीचे विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "इस ध्यानमग्न व्यक्ति का सिद्धांत क्या है? यह क्या प्रचार करता है?"

"हे मित्र, मेरा सिद्धांत ऐसा है जिसमें मनुष्य ब्रह्मांड में किसी से भी झगड़ा नहीं करता, चाहे वह देव हों, मार हों, ब्रह्मा हों, ध्यानमग्न हों, पुरोहित हों, राजा हों या आम लोग हों; मेरा सिद्धांत ऐसा है जिसमें इंद्रिय सुखों से विरक्त, भ्रममुक्त, अनिश्चितता से मुक्त और अस्तित्व-अस्तित्व की लालसा से रहित ब्राह्मण को धारणाओं का वश में होना नहीं पड़ता। यही मेरा सिद्धांत है, यही मैं घोषित करता हूँ।"

यह सुनकर शाक्य दंडपानी - अपना सिर हिलाते हुए, अपनी जीभ लहराते हुए, अपनी भौहें इस तरह उठाते हुए कि उनके माथे पर तीन लकीरें बन गईं - अपनी छड़ी के सहारे खड़े होकर चले गए।

फिर, जब संध्या हुई, तो भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और बरगद उद्यान गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भिक्षुओं को सब कुछ बताया। यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, यह किस प्रकार का सिद्धांत है जिसमें मनुष्य इस ब्रह्मांड में किसी से भी झगड़ा नहीं करता, चाहे वह देवता हों, मार हों, ब्रह्मा हों, ध्यान करने वाले हों, पुरोहित हों, राजा हों या आम लोग हों; जहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त, भ्रम से मुक्त, अनिश्चितता से रहित और अस्तित्व-अस्तित्व की लालसा से रहित ब्राह्मण को धारणाओं का वश में होना नहीं पड़ता?"

"हे भिक्षु, यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और

अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठी बातों का अंत है। यहीं पर ये बुराई और अकुशलतापूर्ण चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।" भगवान बुद्ध ने यही कहा। यह कहकर, भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए।

फिर, भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया, और उसके विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए — अर्थात्, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, आनंद लेने के लिए कुछ भी नहीं है... तो वहीं ये बुरी, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं': अब इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण कौन कर सकता है?" तब उनके मन में यह विचार आया, "आदरणीय महा कच्चाना गुरु द्वारा प्रशंसित और उनके ज्ञानवान साथियों द्वारा पवित्र जीवन में सम्मानित हैं। वे इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। मान लीजिए कि हम उनके पास जाएँ और पहुँचने पर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें।"

अतः भिक्षु पूज्य महा कच्चना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनका विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई और कहा, "पूज्य महा कच्चना, इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए!"

[उन्होंने उत्तर दिया:] "मित्रों, यह ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति जिसे लकड़ी की आवश्यकता हो, उसे खोजता फिरे, लकड़ी की तलाश में भटकता रहे – लकड़ी से युक्त खड़े पेड़ की जड़ और तने को अनदेखा करते हुए – यह सोचे कि लकड़ी उसकी शाखाओं और पत्तियों में खोजी जानी चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है, जिन्होंने गुरु भगवान के सामने होते हुए भी उन्हें अनदेखा कर दिया, और अब यह सोच रहे हैं कि मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछा जाए। क्योंकि भगवान जानते हैं, वे जानते हैं; देखते हैं, वे देखते हैं। वे आँख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया हो, आपको उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए।"

"जी हां, मित्र कच्चाना: जानने वाले भगवान जानते हैं; देखने वाले देखते हैं। वे आंख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब हमें उनसे इस विषय पर प्रश्न करना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया, हमें उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए था। लेकिन गुरु ने आपकी प्रशंसा की है और पवित्र जीवन में आपके ज्ञानी साथी आपको सम्मान देते हैं। आप इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। हे पूज्य महा कच्चाना, अर्थ का विश्लेषण कीजिए!"

"तो फिर, मेरे दोस्तों, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय महा कच्चना ने कहा: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए, उसके विषय में उन्होंने कहा, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे किसी व्यक्ति को जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठे भाषण का अंत है। यहीं पर ये दुष्ट, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।'"

"आंख और आकृतियों पर निर्भर, दृष्टि-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। जो हम महसूस करते हैं, उसे हम बोध करते हैं (मन में नाम देते हैं)। जो हम बोध करते हैं, उसके बारे में हम सोचते हैं। जिसके बारे में हम सोचते हैं, उसे हम जटिल बना देते हैं। व्यक्ति जिस तरह से चीजों को जटिल बनाता है, उसी के आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य की आकृतियों के संबंध में, जिन्हें आंख के माध्यम से जाना जा सकता है, जटिलता की धारणाएं और श्रेणियां उस पर हावी हो जाती हैं।"

"कान और ध्वनियों पर निर्भर होने से, कान-चेतना उत्पन्न होती है..."

नाक और सुगंध पर निर्भर होने के कारण, नाक-चेतना उत्पन्न होती है...

जीभ और स्वादों पर निर्भर करते हुए, जीभ की चेतना उत्पन्न होती है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर-चेतना उत्पन्न होती है...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके आधार पर भावना उत्पन्न होती है। जो हम महसूस करते हैं, उसे हम बोध करते हैं (मन में नाम देते हैं)। जो हम बोध करते हैं, उसके बारे में हम सोचते हैं। जिसके बारे में हम सोचते हैं, उसे हम जटिल बना देते हैं। व्यक्ति जिस तरह से चीजों को जटिल बनाता है, उसी के आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य के विचारों के संबंध में बुद्धि द्वारा बोधित जटिलता की धारणाएं और श्रेणियां उस पर हावी हो जाती हैं।

"अब, जब आँख होती है, जब रूप होते हैं, जब आँख-चेतना होती है, तब संभव है कि कोई संपर्क का चित्रण करे।1 जब संपर्क का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई भावना का चित्रण करे। जब भावना का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई बोध का चित्रण करे। जब बोध का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई चिंतन का चित्रण करे। जब चिंतन का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई जटिलता की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करे।"

"जब कान होता है..."

"जब नाक होती है..."

"जब जीभ होती है..."

"जब शरीर मौजूद हो..."

जब बुद्धि होती है, जब विचार होते हैं, जब बौद्धिक चेतना होती है, तब संपर्क का चित्रण संभव है। जब संपर्क का चित्रण होता है, तब भावना का चित्रण संभव है। जब भावना का चित्रण होता है, तब बोध का चित्रण संभव है। जब बोध का चित्रण होता है, तब चिंतन का चित्रण संभव है। जब चिंतन का चित्रण होता है, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण संभव है।

"अब, जब आँख नहीं है, जब रूप नहीं हैं, जब दृष्टि-चेतना नहीं है, तब संपर्क का चित्रण करना असंभव है। जब संपर्क का चित्रण नहीं है, तब भावना का चित्रण करना असंभव है। जब भावना का चित्रण नहीं है, तब बोध का चित्रण करना असंभव है। जब बोध का चित्रण नहीं है, तब चिंतन का चित्रण करना असंभव है। जब चिंतन का चित्रण नहीं है, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करना असंभव है।"

"जब कान न हों..."

"जब नाक ही न हो..."

"जब जीभ न हो..."

"जब कोई शरीर न हो..."

जब बुद्धि नहीं होती, जब विचार नहीं होते, जब बौद्धिक चेतना नहीं होती, तब संपर्क का चित्रण करना असंभव है। जब संपर्क का चित्रण नहीं होता, तब भावना का चित्रण करना असंभव है। जब भावना का चित्रण नहीं होता, तब बोध का चित्रण करना असंभव है। जब बोध का चित्रण नहीं होता, तब चिंतन का चित्रण करना असंभव है। जब चिंतन का चित्रण नहीं होता, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करना असंभव है।

अतः, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त कथन के विषय में, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया — अर्थात्, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठी बातों का अंत है। यहीं पर ये दुष्ट, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं' — मैं इसका विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो भगवान बुद्ध के पास जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। उनका जो भी उत्तर हो, उसे आपको याद रखना चाहिए।'

तब भिक्षु, पूज्य महा कच्चना के शब्दों से प्रसन्न और सहमत होकर, अपने स्थानों से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने [उन्हें बताया कि उनके निवास स्थान में जाने के बाद क्या हुआ था, और अंत में कहा,] "तब पूज्य महा कच्चना ने इन शब्दों, कथनों और वाक्यांशों का उपयोग करके अर्थ का विश्लेषण किया।"

"महा कच्चाना ज्ञानवान हैं, भिक्षुओं। वे अत्यंत विवेकशील व्यक्ति हैं। यदि आपने मुझसे इस विषय पर पूछा होता, तो मैं भी वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इस कथन का यही अर्थ है। आपको इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, ऐसा ही है मानो कोई व्यक्ति भूख, कमजोरी और प्यास से व्याकुल होकर शहद के गोले के सामने आ जाए। जहाँ कहीं भी वह उसे चखेगा, उसे मीठा और आनंददायक स्वाद मिलेगा। ठीक उसी प्रकार, जहाँ कहीं भी एक सक्षम चेतना वाला भिक्षु अपने विवेक से इस धम्म प्रवचन के अर्थ का अध्ययन करेगा, उसे तृप्ति और विश्वास का अनुभव होगा। इस धम्म प्रवचन का नाम क्या है?"

"तो फिर, आनंद, तुम इस धम्म प्रवचन को 'शहद के गोले का प्रवचन' के रूप में याद रख सकते हो।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.9द्वेधावितक्का सुत्त(19)

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, आत्मज्ञान प्राप्त करने से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्यों न मैं अपने चिंतन को दो प्रकारों में विभाजित करता रहूँ?' अतः मैंने कामुकता से ग्रस्त चिंतन, द्वेष से ग्रस्त चिंतन और हानि पहुँचाने से ग्रस्त चिंतन को एक प्रकार का बनाया, और त्याग से ग्रस्त चिंतन, द्वेषहीन चिंतन और हानि न पहुँचाने से ग्रस्त चिंतन को दूसरे प्रकार का बनाया।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हो गए हैं; और यह मुझे स्वयं या दूसरों को या दोनों को पीड़ा पहुँचाता है। यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट को बढ़ावा देता है, और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया। जब भी कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न होते थे, मैं उन्हें त्याग देता था, नष्ट कर देता था, मिटा देता था, अस्तित्व से ही मिटा देता था।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो द्वेष से भरी सोच उत्पन्न हुई। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर द्वेष से भरी सोच उत्पन्न हो गई है; और यह मुझे स्वयं या दूसरों को या दोनों को कष्ट पहुँचाती है। यह विवेक में बाधा डालती है, झुंझलाहट बढ़ाती है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाती।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब भी दुर्भावना से भरा विचार उत्पन्न होता, मैं उसे त्याग देता, नष्ट कर देता, मिटा देता, अस्तित्व से ही मिटा देता।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो हानिकारक विचारों का उदय हुआ। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर हानिकारक विचार उत्पन्न हो गए हैं; और ये मेरे स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों के कष्ट का कारण बनते हैं। ये विवेक में बाधा डालते हैं, झुंझलाहट को बढ़ावा देते हैं, और मुक्ति की ओर नहीं ले जाते।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब भी हानिकारक विचार उत्पन्न होते थे, मैं उन्हें त्याग देता था, नष्ट कर देता था, दूर कर देता था, अस्तित्व से मिटा देता था।"

"एक साधु अपने चिंतन और मनन में जिस बात का निरंतर अनुसरण करता है, वही उसकी चेतना का झुकाव बन जाता है। यदि कोई साधु कामुकता से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और वैराग्य से प्रेरित चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन कामुकता से प्रेरित चिंतन से ग्रस्त हो जाता है। यदि कोई साधु द्वेष से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और निःद्वेष से प्रेरित चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन द्वेष से प्रेरित चिंतन से ग्रस्त हो जाता है। यदि कोई साधु हानि पहुंचाने वाले चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और हानि न पहुंचाने वाले चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन हानि पहुंचाने वाले चिंतन से ग्रस्त हो जाता है।"

"जैसे वर्षा ऋतु के अंतिम महीने में, शरद ऋतु में जब फसलें पक रही होती हैं, एक चरवाहा अपनी गायों की देखभाल करता है: वह उन्हें इधर-उधर से थपथपाता, कुरेदता और डंडे से नियंत्रित करता है। ऐसा क्यों? क्योंकि वह इस बात का पूर्वाभास रखता है कि यदि वह अपनी गायों को फसलों में भटकने देगा तो उसे कोड़े पड़ेंगे, कारावास होगा, जुर्माना होगा या सार्वजनिक निंदा होगी। ठीक उसी प्रकार मैंने अकुशल गुणों में कमियाँ, पतन और अपवित्रता देखी, और कुशल गुणों में त्याग और शुद्धि से संबंधित पुरस्कार देखे।"

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो वैराग्य से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए। मैंने यह अनुभव किया कि 'मेरे भीतर वैराग्य से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए हैं; और ये न तो मुझे स्वयं कष्ट देते हैं, न दूसरों को, और न ही दोनों को। ये विवेक को बढ़ावा देते हैं, चिंताहीनता को प्रोत्साहित करते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं। यदि मैं एक रात भी, एक दिन भी, या एक-एक रात भी इसी के अनुरूप चिंतन और मनन करूं, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक चिंतन और मनन करने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' अतः मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे एकाग्र किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो मेरे मन में द्वेष रहित विचार उत्पन्न हुए। मैंने यह महसूस किया कि 'मेरे भीतर द्वेष रहित विचार उत्पन्न हुए हैं; और ये न तो मुझे स्वयं कष्ट देते हैं, न दूसरों को, और न ही दोनों को। ये विवेक को बढ़ाते हैं, चिंताहीनता को बढ़ावा देते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं। यदि मैं एक रात... एक दिन... एक दिन और एक रात भी इसके अनुरूप चिंतन और मनन करूं, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक चिंतन और मनन करने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' इसलिए मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे शांत किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो अहिंसा से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुआ। मैंने यह अनुभव किया कि 'मेरे भीतर अहिंसा से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुआ है; और यह न तो मुझे स्वयं कष्ट देता है, न दूसरों को, और न ही दोनों को। यह विवेक को बढ़ावा देता है, चिंताहीनता को प्रोत्साहित करता है, और मुक्ति की ओर ले जाता है। यदि मैं इसके अनुरूप एक रात भी सोचूँ... एक दिन भी... एक दिन और रात भी, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक सोचने-विचारने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' अतः मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे शांत किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

"एक साधु अपने चिंतन और मनन में जिस बात का निरंतर अनुसरण करता है, वही उसकी चेतना का झुकाव बन जाता है। यदि कोई साधु वैराग्य से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और कामुकता से प्रेरित चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन वैराग्य से प्रेरित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है। यदि कोई साधु द्वेष रहित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और द्वेष रहित चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन द्वेष रहित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है। यदि कोई साधु अहिंसा से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और हानिपूर्ण चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन अहिंसा से प्रेरित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है।"

"जैसे गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, जब सारी फसलें गाँव में इकट्ठा हो जाती हैं, तो एक चरवाहा अपनी गायों की देखभाल करता है: पेड़ की छाया में या खुले में आराम करते हुए, वह बस 'उन गायों' के बारे में सोचता रहता है। ठीक उसी तरह, मैं भी बस 'उन मानसिक गुणों' के बारे में सोचता रहा।"

मुझमें अटूट दृढ़ता जागृत हुई और निर्मल ध्यान स्थापित हुआ। मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं था, मेरा मन एकाग्र और स्थिर था। कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, मैं प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर मैं समभाव में स्थिर रहा, सचेत और जागरूक, और शारीरिक रूप से सुख के प्रति संवेदनशील। मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के विमुख होने के साथ - मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: समभाव और ध्यान की शुद्धता, न सुख न दुख।

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे अपने पिछले जन्मों को याद करने के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पिछले जन्मों को याद किया, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्मों की शैली और विवरण याद आ गए।

"यह वह पहला ज्ञान था जो मैंने रात्रि के पहले पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने संतों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने के साथ, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। लेकिन ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने संतों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुए। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — मैंने प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया।

"यह वह दूसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने उसे मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अनुभव किया कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' मेरा हृदय, इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, इंद्रिय-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो गया, अस्तित्व की हलचलों से मुक्त हो गया, अज्ञान की हलचलों से मुक्त हो गया। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त हो गया' का ज्ञान

प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

"यह वह तीसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के तीसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक घने जंगल में एक बड़ा, नीचा दलदल है, जिस पर हिरणों का एक बड़ा झुंड निर्भर करता है; और एक व्यक्ति प्रकट होता है, जो न तो उनका भला चाहता है, न ही उनकी भलाई चाहता है, न ही उनके बंधन से मुक्ति चाहता है। वह उनके आनंद की ओर ले जाने वाले सुरक्षित, विश्रामकारी मार्ग को बंद कर देगा और एक नकली मार्ग बना देगा, एक नर हिरण को हटा देगा, एक मादा हिरण को हटा देगा, और इस प्रकार हिरणों का बड़ा झुंड बाद में विनाश और विपत्ति का शिकार हो जाएगा। फिर मान लीजिए कि एक व्यक्ति उसी हिरणों के बड़े झुंड के सामने प्रकट होता है, जो उनका भला चाहता है, उनकी भलाई चाहता है, और उनके बंधन से मुक्ति चाहता है। वह उनके आनंद की ओर ले जाने वाले सुरक्षित, विश्रामकारी मार्ग को खोल देगा, नकली मार्ग को बंद कर देगा, नर हिरण को हटा देगा, मादा हिरण को नष्ट कर देगा, और इस प्रकार हिरणों का बड़ा झुंड बाद में फलेगा-फूलेगा और प्रचुर मात्रा में हो जाएगा।

मैंने यह उपमा अर्थ समझाने के लिए दी है। इसका अर्थ यह है: 'विशाल, नीचा दलदल' इंद्रिय सुखों का प्रतीक है। 'हिरणों का बड़ा झुंड' प्राणियों का प्रतीक है। 'वह मनुष्य जो उनका लाभ नहीं चाहता, उनका कल्याण नहीं चाहता, उनके बंधन से मुक्ति नहीं चाहता' मार, दुष्ट देवता का प्रतीक है। 'गलत मार्ग' अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है, अर्थात् गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता। 'पुरुष मोहरा' वासना और आनंद का प्रतीक है। 'स्त्री मोहरा' अज्ञान का प्रतीक है। 'वह मनुष्य जो उनका लाभ चाहता है, उनका कल्याण चाहता है, उनके बंधन से मुक्ति चाहता है' तथागत, योग्य पुरुष, सत्यात्मा जागृत पुरुष का प्रतीक है। 'सुरक्षित, विश्रामपूर्ण मार्ग जो उन्हें परमानंद की ओर ले जाता है' श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है, अर्थात् सत्य सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

इसलिए, हे भिक्षुओं, मैंने आपके लिए सुरक्षित और विश्राम का मार्ग खोल दिया है, झूठे मार्ग को बंद कर दिया है, पुरुष मोहरे को हटा दिया है और स्त्री मोहरे को नष्ट कर दिया है। एक गुरु को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए, उनके प्रति सहानुभूति से जो कुछ करना चाहिए, वह सब मैंने आपके लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान का अभ्यास करो। लापरवाह मत बनो। बाद में पश्चाताप मत करो। यही हमारा संदेश है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.10 विटक्कसंथाना सुत्त(20)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "जब कोई भिक्षु उन्नत मन की साधना में लगा हो, तो उसे उचित समय पर पाँच विषयों पर ध्यान देना चाहिए। वे पाँच विषय कौन से हैं?"

एक ऐसी स्थिति भी आती है जब कोई भिक्षु किसी विशेष विषय पर विचार करते समय, इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे और अकुशल विचार उत्पन्न करता है। उसे उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देना चाहिए। जब वह उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देता है, तो वे बुरे और अकुशल विचार - इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े - त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्यागने से वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जिस प्रकार एक कुशल बढ़ई या उसका शिष्य एक छोटी कील का उपयोग करके एक बड़ी कील को ठोकता है, निकालता है और खींचता है; उसी प्रकार, यदि

कोई भिक्षु किसी विशेष विषय पर विचार करते समय, इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे और अकुशल विचार उत्पन्न करता है, तो उसे उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देना चाहिए। जब वह उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देता है, तो वे बुरे और अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। जो कुशल है, वह उन बुरे, अकुशल विचारों को त्याग देता है—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—और वे शांत हो जाते हैं। उनके त्याग से वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

"यदि भिक्षु को कुशल साधना से संबंधित दूसरे विषय पर ध्यान देते समय भी इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उत्पन्न होते हैं, तो उसे उन विचारों की कमियों का गहन विश्लेषण करना चाहिए: 'वास्तव में, मेरे ये विचार अकुशल हैं, मेरे ये विचार निंदनीय हैं, मेरे ये विचार तनाव उत्पन्न करते हैं।'" जैसे-जैसे वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करता है, वैसे-वैसे वे बुरे, अकुशल विचार—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकाग्र करता है और उसे एकाग्र बनाता है। जिस प्रकार एक युवती—या पुरुष—जो आभूषणों की शौकीन होती है, यदि उसके गले में साँप, कुत्ते या मनुष्य का शव लटका दिया जाए तो वह भयभीत, अपमानित और घृणास्पद हो जाएगी; उसी प्रकार, यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उस समय भी भिक्षु के मन में उठते हैं जब वह कुशल विषय पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करना चाहिए: 'सचमुच, मेरे ये विचार अकुशल हैं, मेरे ये विचार निंदनीय हैं, मेरे ये विचार तनाव उत्पन्न करते हैं।' जैसे-जैसे वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करता है, वैसे-वैसे वे बुरे, अकुशल विचार—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—त्याग कर शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न हों जब वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण कर रहा हो, तो उसे उन विचारों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जैसे ही वह उन विचारों पर ध्यान नहीं देता, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति, सामने आए रूपों को न देखने की इच्छा से अपनी आँखें बंद कर लेता है या दूसरी ओर देखने लगता है; उसी प्रकार, यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न हों जब वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण कर रहा हो, तो उसे उन विचारों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जैसे ही वह उन विचारों पर ध्यान नहीं देता, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। यह।

यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों पर ध्यान नहीं दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों के संबंध में विचार-निर्माण को शिथिल करने पर ध्यान देना चाहिए। जैसे-जैसे वह उन विचारों के संबंध में विचार-निर्माण को शिथिल करता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे किसी व्यक्ति के मन में तेज गति से चलते हुए यह विचार आता है, 'मैं तेज क्यों चल रहा हूँ? मैं धीरे क्यों नहीं चलता?' तो वह धीरे चलने लगता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं धीरे क्यों चल रहा हूँ? मैं खड़ा क्यों नहीं होता?' तो वह खड़ा हो जाता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं खड़ा क्यों हूँ? मैं बैठ क्यों नहीं जाता?' तो वह बैठ जाता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं बैठा क्यों हूँ? मैं लेट क्यों नहीं जाता?' अतः वह लेट जाता है। इस प्रकार, स्थूल मुद्रा को त्यागकर वह परिष्कृत मुद्रा को अपना लेता है। इसी प्रकार, यदि भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उत्पन्न होते हैं, जबकि वह उन विचारों पर ध्यान नहीं दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों के प्रति विचार-रचना को शिथिल करने का प्रयास करना चाहिए। जैसे-जैसे वह उन विचारों के प्रति विचार-रचना को शिथिल करता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्यागने से वह अपने मन को भीतर ही स्थिर कर लेता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार भिक्षु के मन में तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने का प्रयास कर रहा होता है, तो उसे अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर अपने मन को चेतना से वश में करना चाहिए। जैसे ही वह अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर अपने मन को चेतना से वश में करता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को सिर, गला या कंधे से पकड़कर उसे पीटता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है; उसी प्रकार, यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार भिक्षु के मन में तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने का प्रयास कर रहा होता है, तो उसे अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर

अपने मन को चेतना से वश में करना चाहिए। दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर—उसे अपनी चेतना से अपने मन को वश में करना, नियंत्रित करना और कुचल देना चाहिए। जैसे ही—दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर—वह अपनी चेतना से अपने मन को वश में करता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है, वैसे ही वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही, वह अपने मन को भीतर ही स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

"अब जब कोई भिक्षु... किसी अन्य विषय पर ध्यान देते हुए... उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करते हुए... उन विचारों पर ध्यान न देते हुए... उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने पर ध्यान देते हुए... अपनी चेतना से अपने मन को वश में करते हुए, नियंत्रित करते हुए और कुचलते हुए... अपने मन को भीतर ही स्थिर करते हैं, उसे शांत करते हैं, उसे एकीकृत करते हैं और उसे एकाग्र करते हैं: तब उसे विचार अनुक्रमों पर निपुण भिक्षु कहा जाता है। वह जो चाहे सोचता है, सोचता है, और जो नहीं चाहता, नहीं सोचता। उसने व्यथा का त्याग कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और—अभिमान की सही समझ के माध्यम से—दुख और तनाव का अंत कर दिया है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.1 काकाकुपामा सुत्त(21)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

हे भिक्षुओं, एक बार इसी श्रावस्ती में वेदेहिका नाम की एक गृहस्थी रहती थी। वेदेहिका के बारे में यह अच्छी बात फैली हुई थी: 'वेदिका सौम्य, शांत और स्थिर स्वभाव की हैं।' वेदेहिका की एक दासी थी जिसका नाम काली था, जो अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी थी। दासी काली के मन में यह विचार आया: 'वेदेहिका के बारे में यह अच्छी बात फैली हुई है: 'वेदिका शांत, सौम्य और स्थिर स्वभाव की हैं।' अब, क्या मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट किए मौजूद है, या वह अनुपस्थित है? या क्या यह सिर्फ इसलिए है कि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूं, इसलिए मेरी स्वामिनी में मौजूद क्रोध प्रकट नहीं होता? क्यों न मैं उनकी परीक्षा लूं?'

"तो भोर होते ही दासी काली उठ उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम सूर्योदय के बाद क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, तुम दुष्ट दास, और फिर भी तुम सूर्योदय के बाद उठते हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उसने तेवर चढ़ाए।"

तब दासी काली के मन में यह विचार आया: 'मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट हुए मौजूद है, अनुपस्थित नहीं। और यह सिर्फ इसलिए है क्योंकि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूँ, इसलिए मेरी स्वामिनी का क्रोध प्रकट नहीं होता। क्यों न मैं उनकी थोड़ी और परीक्षा लूँ?'

"तो दासी काली दिन में बाद में उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे, काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम दिन में देर से क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, तुम दुष्ट दासी, और फिर भी तुम दिन में देर से उठते हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उसने बड़बड़ाया।"

तब दासी काली के मन में यह विचार आया: 'मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट हुए मौजूद है, अनुपस्थित नहीं। और यह सिर्फ इसलिए है क्योंकि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूँ, इसलिए मेरी स्वामिनी का क्रोध प्रकट नहीं होता। क्यों न मैं उनकी थोड़ी और परीक्षा लूँ?'

"तो दासी काली दिन में और भी देर से उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे, काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम दिन में और भी देर से क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, दुष्ट दासी, और फिर भी तुम दिन में इतनी देर से उठती हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर, उसने एक बेलन पकड़ा और उसके सिर पर एक जोरदार प्रहार किया, जिससे उसका सिर फट गया।"

"तब काली नाम की दासी, जिसका सिर बुरी तरह से फट गया था और खून बह रहा था, पड़ोसियों के सामने जाकर अपनी मालकिन की शिकायत करने लगी: 'देखो, महिलाओं, इस सौम्य महिला का करतूत? इस शांत स्वभाव वाली महिला का करतूत? इस स्थिर महिला का करतूत? भोर के बाद उठने पर अपनी इकलौती दासी से क्रोधित और नाराज़ होकर वह कैसे बेलन उठाकर उसके सिर पर इस तरह वार कर सकती है, जिससे उसका सिर फट जाए?'"

"उसके बाद लेडी वेदेहिका के बारे में यह बुरी अफवाह फैल गई: 'लेडी वेदेहिका दुष्ट हैं। लेडी वेदेहिका गुस्सैल हैं। लेडी वेदेहिका हिंसक हैं।'

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कितना भी सौम्य, कितना भी शांत और सौम्य क्यों न हो, जब तक वह अप्रिय वाणी से प्रभावित न हो। परन्तु जब अप्रिय वाणी उसे प्रभावित करती है, तभी वह वास्तव में सौम्य, शांत और सौम्य कहलाता है। मैं किसी भिक्षु को उपदेश देने में सरल नहीं कहता यदि वह केवल वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के उपचार हेतु औषधियों के कारण उपदेश देने में सरल हो जाता है और स्वयं को उपदेश देने में सरल बना लेता है। ऐसा क्यों? क्योंकि यदि उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के उपचार हेतु औषधियाँ न मिलें, तो वह उपदेश देने में सरल नहीं होता और स्वयं को उपदेश देने में सरल नहीं बनाता। परन्तु यदि कोई भिक्षु केवल धम्म के प्रति आदर, धम्म के प्रति श्रद्धा और धर्म के प्रति श्रद्धा के कारण उपदेश देने में सरल हो जाता है और स्वयं को उपदेश देने में सरल बना लेता है, तो मैं उसे उपदेश देने में सरल कहता हूँ। अतः, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।" 'हम धर्म के प्रति आदर, श्रद्धा और सम्मान के कारण ही दूसरों को आसानी से नसीहत देंगे और स्वयं को भी नसीहत के योग्य बनाएंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा दूसरे आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। दूसरे आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से भरी जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे शुरू करके, हम सर्वव्यापी विश्व को सद्भावना से भरी जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से।' आपको इसी तरह खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी कुदाल और टोकरी लेकर आता है और कहता है, 'मैं इस विशाल पृथ्वी को मिट्टी रहित कर दूंगा।' वह यहाँ-वहाँ खोदेगा, यहाँ-वहाँ मिट्टी बिखेरेगा, यहाँ-वहाँ थूकेगा, यहाँ-वहाँ पेशाब करेगा और कहेगा, 'मिट्टी रहित हो जाओ। मिट्टी रहित हो जाओ।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह वास्तव में इस विशाल पृथ्वी को मिट्टी रहित कर पाएगा?

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि यह विशाल पृथ्वी गहरी और विस्तृत है। इसे आसानी से पृथ्वीविहीन नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी पृथ्वी के समान सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी लाख, पीला ऑर्पिमेंट, नील या गहरा लाल रंग लेकर आता है और कहता है, 'मैं अंतरिक्ष में चित्र बनाऊंगा, मैं चित्र प्रकट करूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह वास्तव में अंतरिक्ष में चित्र बनाएगा और चित्र प्रकट करेगा?'

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि अंतरिक्ष निराकार और आकारहीन है। वहां चित्र बनाना और उन्हें प्रकट करना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम अंतरिक्ष के समान - प्रचुर, विस्तृत - सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से सर्वव्यापी होते रहेंगे।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी जलती हुई घास की मशाल लेकर आता है और कहता है, 'इस जलती हुई घास की मशाल से मैं गंगा नदी को गर्म कर दूंगा और उसे उबाल दूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह उस जलती हुई घास की मशाल से गंगा नदी को गर्म कर देगा और उसे उबाल देगा?

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि गंगा नदी गहरी और विशाल है। जलती हुई घास की मशाल से इसे गर्म करना और उबालना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम गंगा नदी के समान सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से सर्वव्यापी जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए एक बिल्ली की खाल का थैला है - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - और एक आदमी एक छड़ी या लकड़ी का टुकड़ा लेकर आता है और कहता है, 'इस छड़ी या टुकड़े से मैं इस बिल्ली की खाल के थैले को - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - हिला दूंगा और हिला दूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह उस छड़ी या टुकड़े से उस बिल्ली की खाल के थैले को - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - हिला देगा और हिला देगा?

"नहीं, स्वामी जी। ऐसा क्यों? क्योंकि बिल्ली की खाल का थैला खूब पीटा गया है, पूरी तरह से पीटा गया है, नरम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त। इसे किसी छड़ी या टुकड़े से सरसराहट और चटकने की आवाज़ कराना आसान नहीं है। ऐसा करने से उस व्यक्ति को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से भरी जागरूकता से व्याप्त रखेंगे और उससे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी सद्भावना से भरी जागरूकता से व्याप्त रखेंगे जो बिल्ली की खाल के थैले के समान प्रचुर, विस्तृत है।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

"भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर मार डालें, तब भी तुममें से जो कोई क्रोधित हो जाए, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा। तब भी तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई अपशब्द नहीं बोलेंगे। हम सद्भावना से भरे भाव से इन लोगों में निरंतर व्याप्त रहेंगे और इनसे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी सद्भावना से भरी चेतना से पूरे संसार में व्याप्त रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित।' इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, यदि आप आरी के उपमा पर दिए गए इस उपदेश पर निरंतर ध्यान दें, तो क्या आपको वाणी का कोई ऐसा पहलू दिखाई देता है, चाहे वह मामूली हो या स्थूल, जिसे आप सहन न कर सकें?"

"नहीं, भगवान।"

"इसलिए आरी के दृष्टांत पर आधारित इस उपदेश पर निरंतर ध्यान दें। यह आपके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.2अलागाद्दुपामा सुत्त(22)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2जल-सर्प उपमा
3बेड़ा उपमा
4छह दृश्य-स्थितियाँ
5आंदोलन और अहस्तक्षेप
6संपत्ति और विचारों का त्याग
7सुप्रसिद्ध धम्म

सेटिंग

मैंने सुना है कि एक बार भगवान श्रावस्ती में, जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में ठहरे हुए थे। उस समय गिद्धों को मारने वाले भिक्षु अरित्थ के मन में यह हानिकारक विचार (दित्तिगता) उत्पन्न हुआ: "भगवान द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बाधक कहते हैं, यदि उनमें लिप्त हुआ जाए तो वे वास्तव में बाधक नहीं होते।" बहुत से भिक्षुओं ने सुना, “लोग कहते हैं कि गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है: ‘भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधा बताते हैं, यदि उनमें लिप्त हों तो वे वास्तव में बाधा नहीं हैं।’” इसलिए वे गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ के

पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, “हे मित्र अरित्थ, क्या यह सच है कि आप में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है – ‘भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधा बताते हैं, यदि उनमें लिप्त हों तो वे वास्तव में बाधा नहीं हैं’?”

"जी हां, बिल्कुल, मित्रों। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूं, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते हैं।"

तब उन भिक्षुओं ने, गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ को उस हानिकारक दृष्टिकोण से दूर करने की इच्छा से, उससे बार-बार प्रश्न पूछे और उसे फटकारते हुए कहा, "ऐसा मत कहो, मित्र अरित्थ। भगवान बुद्ध का गलत अर्थ मत निकालो, क्योंकि भगवान बुद्ध का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ऐसा कुछ नहीं कहेंगे। मित्र, भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और जब उनमें लिप्त हुआ जाता है तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख कम संतुष्टि, अधिक तनाव, अधिक निराशा और अधिक हानियाँ देते हैं। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, अधिक निराशा और अधिक हानियाँ देती है। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... एक पेड़ के फलों... एक कसाई की कुल्हाड़ी से की है।" काटने का तख्ता... तलवारें और भाले... एक साँप का सिर: बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी बड़ी हानियाँ।" और फिर भी, उन भिक्षुओं द्वारा बार-बार पूछे गए प्रश्नों और फटकारों के बावजूद, गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था ने अपनी हठधर्मिता और उसी हानिकारक दृष्टिकोण से आसक्ति के कारण यह कहना जारी रखा, "हाँ, बिल्कुल, मित्रों। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते।"

अतः जब भिक्षु गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था को उस हानिकारक दृष्टिकोण से विमुख करने में असमर्थ रहे, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु। मेरे नाम से, गिद्धों को मारने वाले भिक्षु अरित्था को पुकारो और कहो, 'गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र अरित्था।'"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षु ने उत्तर दिया और गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था के पास जाकर, वहाँ पहुँचकर उसने कहा, "गुरुजी अरित्था, गुरुजी आपको बुला रहे हैं।"

“जैसा आप कहें, मेरे मित्र,” गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ ने उत्तर दिया। फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वह वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “क्या यह सच है, अरित्थ, कि तुम्हारे मन में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है – ‘भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, यदि उनमें लिप्त हो जाऊं, तो वे वास्तव में बाधक नहीं हैं’?”

"जी हां, बिल्कुल, भगवान। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूं, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते हैं।"

"हे निकम्मे मनुष्य, तुमने मुझसे धम्म का ऐसा अर्थ कैसे समझा? हे निकम्मे मनुष्य, क्या मैंने अनेक प्रकार से बाधक कर्मों का वर्णन नहीं किया है? और जब उनमें लिप्त हुआ जाता है, तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। मैंने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... सांप के सिर से की है: जो बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। परन्तु हे निकम्मे मनुष्य, तुमने धम्म की अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकाला है, बल्कि स्वयं को भी हानि पहुँचाई है और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित किया है, क्योंकि इससे तुम्हें दीर्घकाल हानि और व्यथा भोगनी पड़ेगी।"

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो? क्या यह भिक्षु अरित्था, जो पहले गिद्धों का वध करने वालों में से था, इस सिद्धांत और अनुशासन में वाकई निपुण है?"

"वह ऐसा कैसे हो सकता है, भगवान? नहीं, भगवान।"

यह सुनकर, गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था चुपचाप, शर्मिंदा होकर, कंधे झुकाए, सिर नीचे करके, सोच में डूबे हुए, शब्दों की कमी के साथ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने देखा कि गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ चुपचाप, लज्जित, कंधे झुकाए, सिर नीचे किए, चिंतन में डूबे बैठे हैं और उनके पास कहने के लिए शब्द नहीं हैं, तो उन्होंने उनसे कहा, "अयोग्य व्यक्ति, तुम्हारा यह घृणित दृष्टिकोण सबके सामने प्रकट होगा। मैं इस मामले पर भिक्षुओं से पूछताछ करूंगा।"

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम भी मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को उसी प्रकार समझते हो जिस प्रकार गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्था समझते हैं, जो अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकालते हैं बल्कि स्वयं को भी हानि पहुंचाते हैं और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित करते हैं?"

नहीं, भगवान, क्योंकि भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और जब उनमें लिप्त होते हैं तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करती है। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... एक सांप के सिर से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करती है।
"यह अच्छी बात है, भिक्षुओं, कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं, क्योंकि मैंने आपको अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और उनमें लिप्त होने से वास्तव में बाधा उत्पन्न होती है। मैंने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... एक सांप के सिर से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। लेकिन यह भिक्षु अरित्थ, जो पहले गिद्धों का वध करने वाला था, ने धम्म की अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकाला है, बल्कि स्वयं को भी हानि पहुँचाई है और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित किया है, और यह इस निकम्मे व्यक्ति के दीर्घकालिक नुकसान का कारण बनेगा। और पीड़ा। किसी व्यक्ति के लिए कामुक जुनून, कामुक अनुभूति, कामुक सोच के बिना कामुक सुखों में लिप्त होना संभव नहीं है।

जल-सर्प उपमा

भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ कुछ निकम्मे लोग धम्म का अध्ययन करते हैं: संवाद, गद्य और पद्य के मिश्रित वृत्तांत, व्याख्याएँ, श्लोक, सहज उद्गार, उद्धरण, जन्म कथाएँ, आश्चर्यजनक घटनाएँ, प्रश्नोत्तर सत्र [बुद्ध की शिक्षाओं का सबसे प्रारंभिक वर्गीकरण]। धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ (या उद्देश्य) नहीं जान पाते। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ न जान पाने के कारण, वे चिंतन के माध्यम से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। वे धम्म का अध्ययन दूसरों पर आक्रमण करने और वाद-विवाद में अपना बचाव करने दोनों के लिए करते हैं। वे उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों की उनकी गलत समझ उनके दीर्घकालिक नुकसान और पीड़ा का कारण बनेगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्होंने धम्मों को गलत तरीके से समझा है।
मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जलीय सर्प की आवश्यकता है, वह उसे खोज रहा है, उसकी तलाश में भटक रहा है। उसे एक बड़ा जलीय सर्प दिखाई देगा और वह उसे कुंडली या पूंछ से पकड़ लेगा। जलीय सर्प पलटकर उसके हाथ, बांह या किसी अन्य अंग पर काट लेगा, और इस कारण उसकी मृत्यु हो जाएगी या मृत्यु के समान पीड़ा होगी। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जलीय सर्प को गलत तरीके से पकड़ा गया है। इसी प्रकार, कुछ निकम्मे लोग धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ नहीं समझते। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ न समझ पाने के कारण, वे मनन द्वारा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते। वे धम्म का अध्ययन दूसरों पर आक्रमण करने और वाद-विवाद में अपना बचाव करने दोनों के लिए करते हैं। वे उस लक्ष्य तक नहीं पहुँचते जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों के प्रति उनकी गलत समझ उनके दीर्घकालिक नुकसान और पीड़ा का कारण बनेगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि धम्मों को गलत तरीके से समझा गया है।
लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कुछ कुलवासी धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझते हैं। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझने के बाद, वे चिंतन-मनन के माध्यम से एक समझौते पर पहुँचते हैं। वे न तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए और न ही वाद-विवाद में अपना बचाव करने के लिए धम्म का अध्ययन करते हैं। वे उस लक्ष्य तक पहुँचते हैं जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों की उनकी सही समझ उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख की ओर ले जाती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्होंने धम्मों को सही ढंग से समझा है।
मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जलीय सर्प की आवश्यकता है, वह उसे खोज रहा है, और उसकी तलाश में भटक रहा है। वह एक बड़ा जलीय सर्प देखेगा और उसे एक दोमुंही छड़ी से मजबूती से पकड़ लेगा। उसे एक दोमुंही छड़ी से मजबूती से पकड़ने के बाद, वह उसकी गर्दन को मजबूती से पकड़ लेगा। तब चाहे जलीय सर्प अपने कुंडल उसके हाथ, उसकी बांह या उसके किसी भी अंग के चारों ओर कितना भी लपेट ले, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि जलीय सर्प की पकड़ सही है। इसी प्रकार, कुछ कुल के लोग धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझते हैं। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझने के बाद, वे चिंतन के माध्यम से एक समझौते पर पहुंचते हैं। वे न तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए और न ही वाद-विवाद में अपना बचाव करने के लिए धम्म का अध्ययन करते हैं। वे उस लक्ष्य तक पहुंचते हैं जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों पर उनकी सही पकड़ ही उन्हें उस लक्ष्य तक पहुंचाती है जिसके लिए वे धम्मों का अध्ययन करते हैं। धर्म उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। ऐसा क्यों? क्योंकि धर्मों की सही समझ ही इसका कारण है।

इसलिए, भिक्षुओं, जब आप मेरे कथनों का अर्थ समझ लें, तो उन्हें उसी प्रकार याद रखें। लेकिन जब आप मेरे कथनों का अर्थ न समझें, तो वहीं मुझसे या अनुभवी भिक्षुओं से पूछें।

बेड़ा उपमा

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें धम्म की शिक्षा एक नाव के उदाहरण से दूंगा, जिसका उद्देश्य पार करना है, न कि उस पर टिके रहना। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "मान लीजिए एक व्यक्ति किसी रास्ते पर यात्रा कर रहा है। उसे पानी का एक विशाल विस्तार दिखाई देता है, जिसका निकटवर्ती किनारा संदिग्ध और जोखिम भरा है, जबकि दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और जोखिम रहित है, लेकिन इस किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए न तो कोई नौका है और न ही कोई पुल। उसके मन में यह विचार आता है, 'यह पानी का विशाल विस्तार है, जिसका निकटवर्ती किनारा संदिग्ध और जोखिम भरा है, जबकि दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और जोखिम रहित है, लेकिन इस किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए न तो कोई नौका है और न ही कोई पुल। यदि मैं घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ एकत्र करूँ और उन्हें एक साथ बाँधकर एक बेड़ा बनाऊँ, और अपने हाथों और पैरों से प्रयास करते हुए उस बेड़े के सहारे दूसरे किनारे पर सुरक्षित रूप से पहुँच जाऊँ तो क्या होगा?'" फिर वह व्यक्ति घास, टहनियाँ, डालियाँ और पत्तियाँ इकट्ठा करके उन्हें एक साथ बाँधकर एक बेड़ा बनाता और उस बेड़े के सहारे अपने हाथों और पैरों से ज़ोर लगाकर दूसरे किनारे पर सुरक्षित पहुँच जाता। किनारे पर पहुँचकर वह सोचता, 'यह बेड़ा मेरे लिए कितना उपयोगी रहा! इसी के सहारे, अपने हाथों और पैरों से ज़ोर लगाकर, मैं सुरक्षित किनारे पर पहुँच गया। क्यों न मैं इसे अपने सिर पर उठाकर या अपनी पीठ पर लादकर जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँ?' हे भिक्षुओं, आपका क्या विचार है: क्या ऐसा करने से वह व्यक्ति बेड़े का सही उपयोग कर रहा होगा?

"नहीं, भगवान।"

और मनुष्य को क्या करना चाहिए ताकि वह बेड़ा का उचित उपयोग कर सके? एक उदाहरण यह है कि व्यक्ति पार पहुँचने के बाद सोचेगा, 'यह बेड़ा मेरे लिए कितना उपयोगी रहा! क्योंकि इसी बेड़े के सहारे, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, मैं सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गया। क्यों न मैं इसे सूखी भूमि पर घसीटकर या पानी में डुबोकर जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँ?' ऐसा करके वह बेड़े का उचित उपयोग कर रहा होगा। इसी प्रकार, भिक्षुओं, मैंने धम्म की तुलना बेड़े से की है, पार करने के उद्देश्य से, न कि उस पर पकड़ बनाए रखने के उद्देश्य से। धम्म को बेड़े की तुलना में समझते हुए, आपको धम्मों को भी छोड़ देना चाहिए, गैर-धम्मों की तो बात ही क्या है।

छह दृश्य-स्थितियाँ

भिक्षुओं, ये छह दृष्टिकोण (दित्थित्थाना) हैं। कौन से छह? एक स्थिति वह है जब एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—यही रूप धारण कर लेता है: 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'

वह भावनाओं के बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यही मैं हूं, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूं।'

वह धारणा के बारे में यह मानकर चलता है: 'यह मैं हूं, यह मेरा स्व है, यह वही है जो मैं हूं।'

वह मनगढ़ंत बातों के बारे में अनुमान लगाता है: 'यही मैं हूं, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूं।'

"वह जो कुछ भी देखता, सुनता, महसूस करता, समझता, प्राप्त करता, खोजता और बुद्धि द्वारा विचार करता है, उसके बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

वह इस दृष्टिकोण को अपनाता है - 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत रहेगा, परिवर्तन के अधीन नहीं। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूंगा': 'यही मैं हूं, यही मेरी आत्मा है, यही मैं हूं।'

फिर वह स्थिति आती है जब श्रेष्ठ जनों का एक सुशिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ जनों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—यह भाव धारण कर लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह भावनाओं के बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह धारणा के बारे में यह मान लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह मनगढ़ंत बातों के बारे में अनुमान लगाता है: 'यह मैं नहीं हूं, यह मेरा असली रूप नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूं।'

"वह जो कुछ भी देखता, सुनता, महसूस करता, समझता, प्राप्त करता, खोजता और बुद्धि द्वारा विचार करता है, उसके बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

वह इस दृष्टिकोण को अपनाता है - 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत रहेगा, परिवर्तन के अधीन नहीं। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूंगा': 'यह मैं नहीं हूं, यह मेरी आत्मा नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूं।'

"इस प्रकार देखकर, वह उस चीज को लेकर विचलित नहीं होता जो मौजूद नहीं है।"

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान से कहा, "हे भगवान, क्या किसी ऐसी चीज को लेकर चिंता हो सकती है जो बाह्य रूप से मौजूद नहीं है?"

“हे भिक्षु, ऐसा हो सकता है,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब कोई सोचता है, ‘ओह, यह मेरा था! ओह, जो मेरा था वह अब नहीं है! ओह, काश यह मेरा हो जाए! ओह, मुझे यह प्राप्त नहीं हो रहा है!’ वह दुखी होता है, व्याकुल होता है, रोता है, अपनी छाती पीटता है और बेहोश हो जाता है। इस प्रकार बाहरी रूप से अनुपस्थित वस्तु के प्रति बेचैनी उत्पन्न होती है।”

लेकिन, हे भगवान, क्या जो बाह्य रूप से उपस्थित नहीं है, उसके बारे में अशांति न होना संभव है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब कोई यह न सोचे, ‘ओह, यह मेरा था! ओह, जो मेरा था वह अब नहीं है! ओह, काश यह मेरा हो जाए! ओह, मुझे यह प्राप्त न हो!’ वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, रोता नहीं, सीना नहीं पीटता, या उन्माद में नहीं आता। इस प्रकार, जो बाह्य रूप से उपस्थित नहीं है, उसके प्रति अविचलितता बनी रहती है।”

आंदोलन और अहस्तक्षेप

लेकिन, हे भगवान, क्या आंतरिक रूप से अनुपस्थित किसी चीज को लेकर भी अशांति हो सकती है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा हो सकता है कि किसी के मन में यह विचार हो: ‘यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह ‘मैं’ स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहूँगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूँगा।’ वह तथागत या तथागत के शिष्य को सभी दृष्टिकोणों, संकल्पों, पूर्वाग्रहों, झुकावों और आसक्तियों के निवारण, सभी मनगढ़ंत बातों के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, व्यथा के अंत, वैराग्य, निश्चिंतता और मुक्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हुए सुनता है। उसके मन में यह विचार आता है, ‘तो ऐसा हो सकता है कि मेरा नाश हो जाए! तो ऐसा हो सकता है कि मेरा अस्तित्व ही न रहे!’ वह शोक करता है, व्याकुल होता है, रोता है, अपनी छाती पीटता है और प्रलाप करने लगता है। इस प्रकार आंतरिक रूप से विद्यमान न होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है।”

लेकिन, हे भगवान, क्या आंतरिक रूप से अनुपस्थित किसी चीज को लेकर अशांति न होना संभव है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब किसी का यह दृष्टिकोण न हो: ‘यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह ‘मैं’ स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहूँगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूँगा।’ वह तथागत या तथागत के शिष्य को सभी दृष्टिकोणों, संकल्पों, पूर्वाग्रहों, झुकावों और आसक्तियों के निवारण, सभी कल्पनाओं के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, व्यथा के अंत, वैराग्य, निश्चिंतता और मुक्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हुए सुनता है। उसके मन में यह विचार नहीं आता, ‘ऐसा हो सकता है कि मेरा नाश हो जाए! ऐसा हो सकता है कि मैं नष्ट हो जाऊँ! ऐसा हो सकता है कि मेरा अस्तित्व ही न रहे!’ वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, रोता नहीं, छाती नहीं पीटता, न ही प्रलाप करता है। इस प्रकार आंतरिक रूप से अनुपस्थित चीज़ के प्रति अविचलितता रहती है।”

संपत्ति और विचारों का त्याग

भिक्षुओं, आपके लिए उस प्राप्ति की कामना करना भला होगा, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो, और अनंत काल तक यथावत बनी रहे। परन्तु क्या आप उस प्राप्ति को देख पाते हैं, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो, और अनंत काल तक यथावत बनी रहे?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत खूब, भिक्षुओं। मैं भी किसी ऐसी संपत्ति की कल्पना नहीं करता, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत हो, परिवर्तन के अधीन न हो, और जो अनंत काल तक वैसी ही बनी रहे।"

भिक्षुओं, आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप आत्म-संतोष के उस सिद्धांत से जुड़े रहें, जिससे शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु क्या आप आत्म-संतोष के उस सिद्धांत से जुड़े रहने को देख पाते हैं, जिससे शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा उत्पन्न न हो?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत अच्छा, भिक्षुओं। मैं भी आत्म-प्रधानता के सिद्धांत से चिपके रहने की कल्पना नहीं करता, जिससे चिपके रहने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न होगी।"

भिक्षुओं, आप दृष्टि-निर्भरता (दित्थी-निस्सया) पर निर्भर रहना भला होगा, जिस पर निर्भर रहने से दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु क्या आप ऐसी दृष्टि-निर्भरता देखते हैं, जिस पर निर्भर रहने से दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत अच्छा, भिक्षुओं। मैं भी किसी ऐसी दृष्टि-निर्भरता की कल्पना नहीं करता, जिसके आधार पर दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न न हो।"

भिक्षुओं, जहाँ आत्मा होती है, क्या वहाँ 'मेरी आत्मा से संबंधित' का विचार भी होता है?

"हाँ भगवान।"

"या, भिक्षुओं, जहाँ स्वयं से संबंधित कुछ है, क्या वहाँ 'मेरा स्व' का विचार होगा?"
"हाँ भगवान।"
भिक्षुओं, जहाँ आत्मा या आत्मा से संबंधित किसी चीज़ को सत्य या वास्तविकता के रूप में परिभाषित नहीं किया जाता, वहाँ यह दृष्टिकोण कि 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहेगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही बना रहूँगा' - क्या यह पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण शिक्षा नहीं है?
"हे भगवान, यह और क्या हो सकता है? यह तो सरासर मूर्खता की शिक्षा है।"
"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या रूप स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"
"नहीं, भगवान।"
"...क्या भावना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"
"...क्या बोध स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"
"...क्या निर्माण स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, स्वामी।"
"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"
"नहीं, भगवान।"
"इस प्रकार, भिक्षुओं, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"
किसी भी प्रकार की भावना...
किसी भी प्रकार की धारणा...
किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें...
"भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल की कोई भी चेतना; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक चेतना को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखा जाना चाहिए: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्व नहीं है। यह वह नहीं है जो मैं हूं।'"
इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य रूप, भावना, बोध, कल्पना और चेतना से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'
"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसकी चौखट हटा दी गई हो, जिसकी खाई भर दी गई हो, जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो, जिसका बोल्ट निकाल दिया गया हो; एक महान भिक्षु जिसका ध्वज नीचे झुका हुआ हो, बोझ नीचे रखा हुआ हो, बंधन मुक्त हो।"
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसकी लगाम टूट जाती है? एक स्थिति वह होती है जब भिक्षु का अज्ञान त्याग दिया जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसकी लगाम टूट जाती है।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसकी खाई भर दी गई हो? एक स्थिति वह होती है जब किसी भिक्षु का जन्म-जन्म की यात्रा, जो आगे चलकर विकास की ओर ले जाती है, त्याग दी जाती है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में जन्म लेने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसकी खाई भर दी गई हो।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो? एक स्थिति वह होती है जब भिक्षु की तृष्णा का त्याग हो जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, जो अस्तित्व की अवस्थाओं से वंचित हो जाता है, भविष्य में उसका कोई जन्म नहीं होता। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसका बंधन खुल जाता है? एक मामला ऐसा होता है जब भिक्षु के पाँच निम्न बंधन त्याग दिए जाते हैं, उनकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसका बंधन खुल जाता है।
और ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और बंधनमुक्त भिक्षु कैसे श्रेष्ठ हो सकता है? यह वह स्थिति है जब भिक्षु का 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और बंधनमुक्त भिक्षु श्रेष्ठ होता है।

और जब देवता, इंद्र, ब्रह्मा और प्रजापति के साथ मिलकर उस भिक्षु की खोज करते हैं जिसका मन इस प्रकार मुक्त हो गया है, तो उन्हें यह नहीं मिलता कि 'वास्तव में दिवंगत (तथागत) की चेतना इस पर निर्भर है।' ऐसा क्यों है? वास्तव में दिवंगत व्यक्ति का तो इस वर्तमान क्षण में भी पता नहीं लगाया जा सकता।

"इस प्रकार बोलने और इस प्रकार शिक्षा देने के कारण, कुछ ब्राह्मणों और ध्यानियों ने मुझे गलत, व्यर्थ, झूठे और तथ्यहीन तरीके से गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, [जो कहते हैं], 'गौतम ध्यानी गुमराह करने वाले हैं। वे विद्यमान प्राणी के संहार, विनाश और अंत की घोषणा करते हैं।' लेकिन चूंकि मैं ऐसा नहीं हूं, चूंकि मैं ऐसा नहीं कहता, इसलिए उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों ने मुझे गलत, व्यर्थ, झूठे और तथ्यहीन तरीके से गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, [जो कहते हैं], 'गौतम ध्यानी गुमराह करने वाले हैं। वे विद्यमान प्राणी के संहार, विनाश और अंत की घोषणा करते हैं।'"

"हे भिक्षुओं, मैं पहले भी और अब भी, केवल तनाव और तनाव के निवारण की घोषणा करता हूँ। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का अपमान करें, गाली दें, उपहास करें, परेशान करें और उत्पीड़न करें, तो उन्हें इससे कोई घृणा, कोई आक्रोश या हृदय में कोई असंतोष नहीं होता। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का आदर करें, सम्मान करें, और श्रद्धा करें, तो उन्हें इससे कोई आनंद, कोई प्रसन्नता या हृदय में कोई उत्साह नहीं होता। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का आदर करें, सम्मान करें, और श्रद्धा करें, तो वे सोचते हैं, 'वे मेरी ऐसी सेवा कर रहे हैं जो पहले से ही समझी जा चुकी है।'"

इसलिए, हे भिक्षुओं, यदि दूसरे आपका अपमान करें, गाली दें, ताना मारें, परेशान करें और उत्पीड़न करें, तो भी आपको इससे घृणा, आक्रोश या असंतोष नहीं होना चाहिए। और यदि दूसरे आपका आदर करें, सम्मान करें, श्रद्धा करें और पूजा करें, तो भी आपको इससे प्रसन्नता, आनंद या उत्साह नहीं होना चाहिए। और यदि दूसरे आपका आदर करें, सम्मान करें, श्रद्धा करें और पूजा करें, तो आपको सोचना चाहिए, 'वे हमारी ऐसी सेवा कर रहे हैं जो पहले ही समझी जा चुकी है।'

अतः, भिक्षुओं, जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। और क्या तुम्हारा नहीं है? शरीर तुम्हारा नहीं है: उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। भावना तुम्हारी नहीं है... बोध... विचार... चेतना तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है: यदि कोई व्यक्ति जेतवन में घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को इकट्ठा करे, जलाए या अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग करे, तो क्या आपके मन में यह विचार आएगा, 'यह व्यक्ति तो हमें ही इकट्ठा कर रहा है, जला रहा है या अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर रहा है'?"

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि वे चीजें हमारा 'स्व' नहीं हैं, और न ही वे हमारे 'स्व' से संबंधित हैं।"

फिर भी, हे भिक्षुओं, जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। और क्या तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है... भावना तुम्हारी नहीं है... बोध... विचार-रचनाएँ... चेतना तुम्हारी नहीं है: इसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।

सुप्रसिद्ध धम्म

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट किया गया धम्म स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है। मेरे द्वारा सुस्पष्ट किए गए इस धम्म में—जो स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है—उन अर्हंत भिक्षुओं के लिए—जिनके मानसिक दोष समाप्त हो गए हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, अपना कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जन्म के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हो गए हैं—भविष्य में कोई पुनर्जन्म चक्र नहीं है। इस प्रकार मेरे द्वारा सुस्पष्ट किया गया धम्म स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, वे सभी [शुद्ध लोकों में] पुनर्जन्म लेने के पात्र हैं, वहाँ वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं और उस लोक से कभी वापस नहीं लौटते। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने तीनों बंधनों का त्याग कर, कामवासना, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर, एक बार फिर इस संसार में लौटकर अपने दुखों का अंत कर देंगे। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने तीनों बंधनों का त्याग कर दिया है, वे सभी जलमार्ग के विजेता हैं, स्थिर हैं, फिर कभी दुःख की अवस्थाओं में नहीं पड़ेंगे, और आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर होंगे। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

"मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और अपरिष्कृत धम्म में, वे सभी भिक्षु जो धम्म के अनुयायी और दृढ़ विश्वास के अनुयायी हैं, आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर हैं। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और अपरिष्कृत है।"

"मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जो मुझमें पर्याप्त विश्वास रखते हैं, मुझसे पर्याप्त प्रेम रखते हैं, वे सभी स्वर्ग की ओर अग्रसर हैं। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 3.3वम्मिका सुत्त(23)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य कुमारकस्सपा घने जंगल में रहते थे। जब रात ढल रही थी, एक देवता ने पूरे घने जंगल को प्रकाशित कर दिया और पूज्य कुमारकस्सपा के पास आए। कुमारकस्सपा एक तरफ खड़े हो गए और बोले, "भिक्षु, यह चींटी का टीला रात में धुआं छोड़ता है और दिन में जल उठता है।" ब्राह्मण ने कहा, "

हे ज्ञानी, औजार लो और खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक बाधा दिखाई दी; हे अच्छे ज्ञानी, एक बाधा। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, बाधा हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक फूला हुआ शव दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक फूला हुआ शव। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, फूले हुए शव को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक दोराहा दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक दोराहा। ब्राह्मण ने कहा, दोराहा हटाओ और औजार से खोदो। हे अच्छे ज्ञानी, एक ताबूत। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, ताबूत हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक कछुआ दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक कछुआ। ब्राह्मण ने कहा, कछुए को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक कसाईखाना दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक कसाईखाना। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कसाईखाने को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे मांस की एक नस दिखाई दी। हे अच्छे ज्ञानी, मांस की एक नस। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, मांस की नस को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसने एक साँप देखा। वाह, एक साँप! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, रुको, साँप को मत मारो, साँप की पूजा करो। भिक्षु, भगवान बुद्ध के पास जाओ और उनसे यह प्रश्न पूछो, और जब वे इसका उत्तर दें तो इसे ध्यान में रखो। इस देवी-देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं और संन्यासियों और ब्राह्मणों के समुदाय में, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके और मन को संतुष्ट कर सके, सिवाय तथागत, तथागत के शिष्य या जिसने इसे सुना हो। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए...

उस रात के अंत में पूज्य कुमारकस्सपा भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे हुए पूज्य कुमारकस्सपा ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे भगवान, पिछली रात एक देवता ने घने जंगल को प्रकाशित किया और मेरे पास आकर एक तरफ खड़े हो गए और कहा, 'भिक्षु, यह चींटियों का टीला रात में धुआँ छोड़ता है और दिन में जल उठता है।' ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, औजार लेकर खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक बाधा दिखाई दी। हे ज्ञानी, एक बाधा!' ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, बाधा हटाओ और औजार से खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक फूला हुआ शव दिखाई दिया। हे ज्ञानी, एक फूला हुआ शव! ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, फूले हुए शव को हटाओ और औजार से खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक दोराहा रास्ता दिखाई दिया। हे ज्ञानी, एक दोराहा रास्ता! ब्राह्मण ने कहा, 'दोराहा रास्ता हटाओ और औजार से खोदो। हे ज्ञानी, एक ताबूत!' ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, ताबूत हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक कछुआ दिखाई दिया। हे भगवान, एक कछुआ! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कछुए को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक कसाईखाना दिखाई दिया। हे भगवान, एक कसाईखाना! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कसाईखाने को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे मांस की एक नस दिखाई दी। हे भगवान, मांस की एक नस! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, मांस की नस को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक सांप दिखाई दिया। हे भगवान, एक सांप! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, रुको, सांप को मत मारो, सांप की पूजा करो। भिक्षु, भगवान के पास जाओ और यह प्रश्न पूछो और जब वे इसका उत्तर दें तो इसे ध्यान में रखो। इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं और संन्यासियों और ब्राह्मणों के समुदाय में, मुझे ऐसा कोई नहीं दिखता जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके और मन को संतुष्ट कर सके, सिवाय तथागत, उनके शिष्य के या जिसने यह बात सुनी हो। यह कहते हुए कि देवता वहाँ से विलीन हो गए।

आदरणीय महोदय, दीमक का टीला क्या होता है? रात में धूम्रपान करना क्या होता है? दिन में आग जलाना क्या होता है? ब्राह्मण कौन है और ज्ञानी कौन है? औजार क्या होता है? खोदना क्या होता है? बाधा क्या होती है? फूला हुआ शव क्या होता है? दोराहा रास्ता क्या होता है? ताबूत क्या होता है? कछुआ क्या होता है? कसाईखाना क्या होता है? मांस की नस क्या होती है? और साँप कौन होता है?

भिक्षु, दीमक का टीला इस चार तत्वों से बने शरीर का पर्यायवाची है, जिसे माता-पिता ने जन्म दिया है, जो चावल और रोटी पर पलता है और जो क्षणभंगुर, टूटने, बिखरने और नष्ट होने के अधीन है। दिन में किया गया कोई भी कार्य रात में विचार और चिंतन के रूप में लिया जाता है, यही रात में धूम्रपान करने के समान है। रात में जो विचार और चिंतन किया जाता है, उसे दिन में शरीर, शब्दों और मन के

माध्यम से क्रियान्वित किया जाता है, यही दिन में प्रज्वलित होने के समान है। ब्राह्मण तथागत, योग्य और उचित रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का पर्यायवाची है। ज्ञानी व्यक्ति प्रशिक्षक का पर्यायवाची है। उपकरण श्रेष्ठ व्यक्ति के ज्ञान का पर्यायवाची है।

खुदाई उत्तेजित प्रयास का पर्यायवाची है। बाधा अज्ञान का पर्यायवाची है। बाधा को दूर करना अज्ञान को दूर करना है। इसका अर्थ है कि ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खुदाई करे। भिक्षु, एक फूला हुआ मृत शरीर क्रोध और बेचैनी का पर्यायवाची है। औजार लेकर खुदाई करना और फूले हुए मृत शरीर को हटाना क्रोध और बेचैनी को दूर करना है। दोराहा मार्ग संदेह का पर्यायवाची है। औजार लेकर खुदाई करना और दोराहे मार्ग को हटाना इसका अर्थ है। ताबूत पाँच बाधाओं का पर्यायवाची है: कामुक रुचि, घृणा, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और चिंता, और संदेह। पाँच बाधाओं को दूर करना है। ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खुदाई करना और ताबूत को हटाना इसका अर्थ है। कछुआ पाँच धारण करने वाले पिंडों का पर्यायवाची है: पदार्थ का धारण करने वाला पिंड, भावनाओं का धारण करने वाला पिंड, धारणाओं का धारण करने वाला पिंड, संकल्पों का धारण करने वाला पिंड, और चेतना का धारण करने वाला पिंड। कछुए को हटाना पाँच धारण करने वाले पिंडों का त्याग करना है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर कछुआ खोदकर निकाल दे। वधशाला पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है। जैसे, आंखों से अनुभव की जाने वाली मनभावन आकृतियाँ, कानों से अनुभव की जाने वाली मनभावन ध्वनियाँ, नाक से अनुभव की जाने वाली मनभावन गंधें, जीभ से अनुभव की जाने वाली मनभावन स्वाद और शरीर से अनुभव की जाने वाली मनभावन स्पर्श। वधशाला को हटाना पांच प्रकार की इंद्रिय इच्छाओं का नाश करना है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर वधशाला खोदकर निकाल दे। मांस का एक रेशा लोभ और लालच का पर्यायवाची है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खोद दे। इसका अर्थ है, सर्प इच्छा नष्ट कर चुके भिक्षु का पर्यायवाची है। रुको! सर्प को चोट मत पहुँचाओ, सर्प की पूजा करो।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य कुमारकस्सपा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.4 रथविनिता सुत्त(24)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। तब भगवान के जन्मस्थान से कई भिक्षु, अपने जन्मस्थान में वर्षाकालीन साधना पूरी करके, भगवान के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे भिक्षुओं, हमारे जन्मस्थान में उनके साथी भिक्षु—पवित्र जीवन में उनके साथी—जिनका इस प्रकार आदर करते हैं, वे स्वयं कम इच्छाओं वाले होते हुए भी भिक्षुओं को कम इच्छाओं पर प्रवचन देते हैं। स्वयं संतुष्ट होते हुए भी वे भिक्षुओं को संतोष पर प्रवचन देते हैं। स्वयं एकांतवासी होते हुए भी वे भिक्षुओं को एकांतवास पर प्रवचन देते हैं। स्वयं मुक्त होते हुए भी वे भिक्षुओं को अनासक्ति पर प्रवचन देते हैं। स्वयं में दृढ़ता उत्पन्न करते हुए भी वे भिक्षुओं को दृढ़ता उत्पन्न करने पर प्रवचन देते हैं। अपने सद्गुणों में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को सद्गुणों में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपनी एकाग्रता में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को एकाग्रता में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने विवेक में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को विवेक में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने ज्ञान और दृष्टि में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को मुक्ति पर परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। मोक्ष के विषय में, वे भिक्षुओं को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में पूर्ण होने के लिए प्रवचन देते हैं। वे पवित्र जीवन में अपने साथियों को प्रेरित करने, सूचित करने, निर्देश देने, प्रोत्साहित करने, जागृत करने और उनका हौसला बढ़ाने वाले व्यक्ति हैं।

हे भगवान, पुन्ना मंतानिपुत्त (मंतनी के पुत्र) नामक भिक्षु को उनके गृहस्थ भिक्षु - उनके आध्यात्मिक जीवन के साथी - इस प्रकार पूजते हैं: 'स्वयं कम इच्छाओं वाले होने के कारण, वे भिक्षुओं को कम इच्छाओं पर प्रवचन देते हैं। स्वयं संतुष्ट होने के कारण, वे भिक्षुओं को संतोष पर प्रवचन देते हैं। स्वयं एकांतवासी होने के कारण, वे भिक्षुओं को एकांत पर प्रवचन देते हैं। स्वयं बंधनमुक्त होने के कारण, वे भिक्षुओं को अनासक्ति पर प्रवचन देते हैं। स्वयं में दृढ़ता जागृत करने के कारण, वे भिक्षुओं को दृढ़ता जागृत करने पर प्रवचन देते हैं। अपने सद्गुणों में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को सद्गुणों में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपनी एकाग्रता में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को एकाग्रता में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने विवेक में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को विवेक में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने ज्ञान और दृष्टि में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को मुक्ति में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। मोक्ष के विषय में, वे भिक्षुओं को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में पूर्ण होने के लिए प्रवचन देते हैं। वे पवित्र जीवन में अपने साथियों को प्रेरित करने, सूचित करने, निर्देश देने, प्रोत्साहित करने, जागृत करने और उनका हौसला बढ़ाने वाले व्यक्ति हैं।

उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर बैठे थे। उनके मन में यह विचार आया: “यह पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त के लिए एक बड़ा लाभ है कि उनके ज्ञानवान साथी गुरु की उपस्थिति में उनकी स्तुति विस्तार से करते हैं और गुरु भी उनकी स्तुति का समर्थन करते हैं। शायद कभी न कभी मैं भी पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त से मिलने जाऊँ; शायद उनसे कुछ बातचीत करूँ।”

फिर भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय रहने के बाद श्रावस्ती की ओर विचरण करने निकल पड़े। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे वहाँ पहुँचे और जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे। पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने सुना, “भगवान बुद्ध श्रावस्ती पहुँच गए हैं और श्रावस्ती के निकट जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए हैं।” अपना आवास व्यवस्थित करके और अपने वस्त्र एवं कुंड लेकर वे श्रावस्ती की ओर विचरण करने निकल पड़े। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध ठहरे हुए थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उन्हें धर्मोपदेश देकर उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया। तब पूज्य पुन्ना ने भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश से उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया; भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न और सहमत होकर, वे अपनी सीट से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और दिनभर रहने के लिए अंधों के उपवन में चले गए।

फिर एक भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु पुन्ना मंतानिपुत्त, जिनकी आपने अक्सर प्रशंसा की है—जिन्हें आपने भगवान बुद्ध के धम्म प्रवचनों से उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया; जिनके वचनों से आप प्रसन्न और सहमत हुए—वे अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनकी परिक्रमा करने और दिनभर विश्राम करने के लिए अंधवन चले गए हैं।” तब पूज्य सारिपुत्त ने तुरंत एक आसन उठाया और पूज्य पुन्ना के ठीक पीछे-पीछे चल दिए, उनका सिर अपनी दृष्टि में रखते हुए। पूज्य पुन्ना अंधवन में प्रवेश कर गए और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। पूज्य सारिपुत्त भी अंधवन में प्रवेश कर गए और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

फिर शाम को, पूज्य सारिपुत्त अपने एकांतवास से उठे और पूज्य पुन्ना के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पुन्ना का अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य पुन्ना से कहा, "मेरे मित्र, क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में व्यतीत होता है?"

"जी हां, मेरे दोस्त।"

और क्या परम पूज्य के अधीन बिताया गया पवित्र जीवन सद्गुणों के संदर्भ में शुद्धता के लिए है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, परमेश्वर के मार्गदर्शन में, मन की शुद्धता (एकाग्रता) के लिए व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ईश्वर के मार्गदर्शन में व्यतीत करना, पवित्रता की दृष्टि से सार्थक है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या परम पूज्य भगवान के अधीन पवित्र जीवन जीना, भ्रम पर विजय प्राप्त करने के संदर्भ में शुद्धता के लिए है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, भगवान के मार्गदर्शन में, पवित्रता के लिए, उस मार्ग के ज्ञान और दृष्टि के संदर्भ में व्यतीत किया जाता है जो सही है और जो गलत है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ज्ञान और मार्ग के दर्शन के संदर्भ में शुद्धता के लिए, परमेश्वर के अधीन व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ज्ञान और दृष्टि के संदर्भ में शुद्धता के लिए, परमेश्वर के अधीन व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

जब आपसे पूछा जाता है कि क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में सद्‌गुणों की शुद्धता के लिए जिया जाता है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' जब आपसे पूछा जाता है कि क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में मन की शुद्धता... दृष्टि... भ्रम पर विजय... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... ज्ञान और दृष्टि के लिए जिया जाता है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' तो फिर, मेरे मित्र, भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में जिया जाने वाला पवित्र जीवन किसलिए है?

"मेरे मित्र, पवित्र जीवन परमपिता परमेश्वर के मार्गदर्शन में जिया जाता है, ताकि आसक्ति न होने के कारण पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो सके।"

लेकिन क्या सद्‌गुण के संदर्भ में पवित्रता, आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

"तब मन की शुद्धता... दृष्टि की शुद्धता... उलझन पर विजय... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि है?"

"नहीं, मेरे दोस्त।"

"तो क्या आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति इन गुणों से अलग कुछ है?"

"नहीं, मेरे दोस्त।"

जब आपसे पूछा जाता है कि क्या सद्‌गुण, मन, दृष्टि, भ्रम पर विजय, मार्ग का ज्ञान और दृष्टि, मार्ग का ज्ञान और दृष्टि आदि के संदर्भ में शुद्धता, आसक्ति के अभाव से प्राप्त पूर्ण मुक्ति है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' लेकिन जब आपसे पूछा जाता है कि क्या आसक्ति के अभाव से प्राप्त पूर्ण मुक्ति इन गुणों से भिन्न है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' तो अब, मेरे मित्र, इन कथनों का अर्थ कैसे समझा जाए?

"यदि भगवान बुद्ध ने पवित्रता को सद्‌गुण के रूप में, यानी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में वर्णित किया होता, तो मेरे मित्र, उन्होंने आसक्ति से ग्रस्त किसी वस्तु को भी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में परिभाषित किया होता। यदि उन्होंने पवित्रता को मन, दृष्टि, भ्रम पर विजय, मार्ग के ज्ञान और दृष्टि, मार्ग के ज्ञान और दृष्टि, और आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में वर्णित किया होता, तो उन्होंने आसक्ति से ग्रस्त किसी वस्तु को भी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में परिभाषित किया होता। परन्तु यदि आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति इन गुणों से भिन्न होती, तो एक साधारण व्यक्ति भी पूर्णतः मुक्त होता, क्योंकि एक साधारण व्यक्ति इन गुणों से रहित होता है।"

तो, मेरे मित्र, मैं तुम्हें एक उदाहरण देता हूँ, क्योंकि ऐसे कई मामले होते हैं जहाँ उदाहरण के माध्यम से ही ज्ञानी लोग कही गई बात का अर्थ समझ पाते हैं। मान लीजिए कि राजा पसेनादि कोसल श्रावस्ती में ठहरे हुए थे और साकेत में कोई अत्यावश्यक कार्य आ पड़ा; और श्रावस्ती और साकेत के बीच उनके लिए सात रथ तैयार रखे गए। श्रावस्ती में महल के द्वार से बाहर निकलकर वे पहले रथ में बैठेंगे। पहले रथ से वे दूसरे रथ तक पहुँचेंगे। पहले रथ से उतरकर वे दूसरे रथ में बैठेंगे। दूसरे रथ से वे तीसरे रथ तक पहुँचेंगे... तीसरे रथ से वे चौथे रथ तक पहुँचेंगे... चौथे रथ से वे पाँचवें रथ तक... पाँचवें रथ से वे छठे रथ तक... छठे रथ से वे सातवें रथ तक पहुँचेंगे। छठे रथ से उतरकर वे सातवें रथ में बैठेंगे। सातवें रथ से वे अंततः साकेत में महल के द्वार पर पहुँचेंगे। वहाँ पहुँचते ही उनके मित्र, साथी, रिश्तेदार

और सगे-संबंधी उनका स्वागत करेंगे। उनसे पूछा जाता, 'महाराज, क्या आप सावत्थी से साकेत के भीतरी महल के द्वार तक इसी रथ से आए हैं?' मेरे मित्र, राजा पसेनादि कोसला उन्हें किस प्रकार सही उत्तर देते?

"इस तरह उत्तर देते हुए, मेरे मित्र, वह सही उत्तर देता: 'अभी-अभी, जब मैं सावत्थी में ठहरा हुआ था, साकेत में कोई अत्यावश्यक कार्य आ पड़ा; और सावत्थी और साकेत के बीच मेरे लिए सात रथ तैयार किए गए। सावत्थी में भीतरी महल के द्वार से निकलकर मैं पहले रथ में सवार हो गया। पहले रथ से मैं दूसरे रथ तक पहुँचा। पहले रथ से उतरकर मैं दूसरे रथ में सवार हो गया। दूसरे रथ से मैं तीसरे रथ तक पहुँचा... तीसरे रथ से मैं चौथे रथ तक पहुँचा... चौथे रथ से मैं पाँचवें रथ तक पहुँचा... पाँचवें रथ से मैं छठे रथ तक पहुँचा... छठे रथ से मैं सातवें रथ तक पहुँचा। छठे रथ से उतरकर मैं सातवें रथ में सवार हो गया। सातवें रथ से मैं अंततः साकेत में भीतरी महल के द्वार पर पहुँचा।' इस तरह उत्तर देते हुए वह सही उत्तर देता।"

"इसी प्रकार, मेरे मित्र, सद्गुणों के संदर्भ में पवित्रता केवल मन की पवित्रता के लिए है। मन की पवित्रता केवल दृष्टि की पवित्रता के लिए है। दृष्टि की पवित्रता केवल भ्रम पर विजय पाने के लिए है। भ्रम पर विजय पाने के लिए पवित्रता केवल मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल आसक्ति के अभाव से पूर्ण मुक्ति के लिए है। और आसक्ति के अभाव से पूर्ण मुक्ति के लिए ही भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत किया जाता है।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त से कहा: "मित्र, आपका नाम क्या है और आपके आध्यात्मिक साथी आपको कैसे जानते हैं?"

"मेरा नाम पुन्ना है, मित्र, और मेरे धर्मपरायण साथी मुझे मंतानिपुत्त के नाम से जानते हैं।"

"मेरे मित्र, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने गहन विवेक के साथ, एक विद्वान शिष्य की तरह, गुरु के संदेश को सही ढंग से समझते हुए, बिंदुवार उत्तर दिया है! उनके जीवन में उनके किसी भी साथी के लिए, जिन्हें उनसे मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर मिलता है, यह एक बड़ा लाभ है। भले ही उन्हें उनसे मिलने और बातचीत करने के लिए उन्हें अपने सिर पर तकिये पर रखकर ले जाना पड़े, तब भी यह उनके लिए एक बड़ा लाभ होगा। और मुझे उनसे मिलने और बातचीत करने का अवसर मिला है, यह मेरे लिए भी एक बड़ा लाभ है।"

यह सुनकर पूज्य पुन्ना ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र, आपका नाम क्या है और आपके आध्यात्मिक साथी आपको कैसे जानते हैं?"

"मेरा नाम उपतिस्सा है, मित्र, और मेरे आध्यात्मिक साथी मुझे सारिपुत्त के नाम से जानते हैं।"

"क्या? मैं उस शिष्य से बात कर रहा था जो स्वयं गुरु के समान हैं, और मुझे पता ही नहीं था कि वे पूज्य सारिपुत्त हैं? यदि मुझे पता होता कि वे पूज्य सारिपुत्त हैं, तो मैं इतनी लंबी बात नहीं करता। मेरे मित्र, यह कितना अद्भुत है, कितना आश्चर्यजनक है कि पूज्य सारिपुत्त ने गहन विवेक के साथ, गुरु के संदेश को सही ढंग से समझने वाले एक विद्वान शिष्य की तरह, एक-एक करके प्रश्न पूछे! उनके जीवन में उनके किसी भी साथी के लिए, जो उन्हें देखने और उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त करता है, यह एक बड़ा लाभ है। भले ही उन्हें उन्हें अपने सिर पर तकिये पर रखकर ले जाना पड़े, फिर भी यह उनके लिए एक बड़ा लाभ होगा। और मुझे भी उन्हें देखने और उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यह मेरे लिए एक बड़ा लाभ है।"

इस प्रकार दोनों महान हस्तियों ने एक-दूसरे के अच्छे शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.5निवापा सुत्त(25)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1निवापा सूत्र
1.1निवापा सूत्र

1.2निवापा सूत्र (पाली संस्करण)
1.3सारांश एवं व्याख्या
निवापा सूत्र
निवापा सूत्र
मैंने ऐसा सुना:
एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, हिरणों को चारा खिलाने वाला जंगली जानवरों को यह सोचकर चारा नहीं खिलाता, 'ये जंगली जानवर इस भोजन को खाकर सुंदर बनें, दीर्घायु हों और दीर्घकाल तक इस भोजन को खाते रहें।' परन्तु हिरणों को चारा खिलाने वाला जंगली जानवरों को यह सोचकर चारा खिलाता है, 'भोजन के लिए अतिक्रमण करने वाले जंगली जानवर इस भोजन को खाकर मदहोश हो जाएं, बेहोश हो जाएं, लापरवाह हो जाएं और इस अतिक्रमण के कारण पाप कर्मों के भागी हो जाएं।'"
जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुस गया, चारा खाया, बेहोश हो गया, मदहोश हो गया और लापरवाह हो गया, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गया । इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका।
जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में किसी घर में चले जाएं?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में एक घर में रहने लगे। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और प्रयास कम हो गए। फिर वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास वापस गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए । इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका।
जंगली जानवरों के तीसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में निवास करें?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में निवास किया। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और परिश्रम कम हो गए। तब वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास लौट गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। हम हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में क्यों न बस जाएं और चारा खाएं, बेहोश न हों, मदहोश न हों, लापरवाह न हों और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन न हों? इसलिए उन्होंने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में बस गए और चारा खाया, बेहोश न हुए, मदहोश न हुए और लापरवाह न हुए और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन नहीं हुए। तब हिरण चराने वाले और उसके साथियों के मन में यह विचार आया: "जंगली जानवरों का यह तीसरा समूह धूर्त, प्रशिक्षित धोखेबाज और कुशल शैतान हैं; हमें इनके आने-जाने का पता नहीं है। क्या हम बाड़े को चारों ओर से लकड़ियों से घेर लें? इससे हमें जंगली जानवरों के तीसरे समूह का ठिकाना दिख जाएगा और हम उन पर हमला कर सकेंगे।" फिर उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लकड़ियों से घेर लिया और हिरण चराने वाले और उसके साथियों ने जंगली जानवरों का ठिकाना देख लिया और उन पर हमला कर दिया। इस प्रकार जंगली जानवरों का तीसरा समूह भी हिरण चराने वाले के चंगुल से नहीं बच पाया।
जंगली जानवरों के चौथे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो

सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में निवास करें?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में निवास किया। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और परिश्रम कम हो गए। तब वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास लौट गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के तीसरे समूह ने सोचा, "क्यों न हम हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में ही बस जाएं और चारा खाएं, बेहोश न हों, मदहोश न हों, लापरवाह न हों और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन न हों?" तो उन्होंने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में डेरा डाल लिया और चारा खाते रहे, न बेहोश हुए, न नशे में चूर हुए, न लापरवाह हुए और न ही उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हुए? फिर हिरणों को चारा खिलाने वाले और उसके अनुयायियों को यह विचार आया: "जंगली जानवरों का यह तीसरा समूह चालाक, प्रशिक्षित धोखेबाज और कुशल शैतान हैं, हम उनके आने-जाने को नहीं जानते। क्या होगा यदि हम बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लें? हम निश्चित रूप से जंगली जानवरों के तीसरे समूह की बस्ती को देख लेंगे और उन पर हमला कर देंगे।" फिर उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लिया और हिरणों को चारा खिलाने वाले और उसके अनुयायियों ने जंगली जानवरों की बस्ती को देख लिया और उन पर हमला कर दिया। इस प्रकार जंगली जानवरों का तीसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब जंगली जानवरों के चौथे समूह को यह विचार आया, "क्या होगा यदि हम अतिक्रमण में अपना ठिकाना बना लें ताकि हिरण चराने वाला और उसके अनुयायी हमारे आने-जाने से अनजान रहें और बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरते चारा खाएं और उसी अतिक्रमण में हिरण चराने वाले की इच्छाओं के अधीन न हो जाएं?" इसलिए उन्होंने अतिक्रमण में अपना ठिकाना बना लिया, ताकि हिरण चराने वाला और उसके अनुयायी उनके आने-जाने से अनजान रहें और बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरते चारा खाएं और अतिक्रमण में हिरण चराने वाले की इच्छाओं के अधीन न हो जाएं।

तब हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों के मन में यह विचार आया, "जंगली जानवरों का यह चौथा समूह धूर्त और प्रशिक्षित धोखेबाज है, ये माहिर शैतान हैं, हमें इनके आने-जाने का पता नहीं है। क्या होगा यदि हम बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लें? इससे हमें जंगली जानवरों के चौथे समूह का ठिकाना दिख जाएगा और हम उन पर हमला कर सकेंगे।" तब उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लिया, लेकिन हिरण चराने वाले और उसके अनुयायी जंगली जानवरों का ठिकाना नहीं देख पाए और उन पर हमला नहीं कर सके। तब हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों के मन में यह विचार आया: "यदि हम जंगली जानवरों के चौथे समूह को चोट पहुँचाएँगे, तो दूसरों को भी चोट पहुँचेगी, और इससे दूसरों को भी नुकसान होगा। क्या होगा यदि हम जंगली जानवरों के चौथे समूह की रक्षा करें?" इसलिए हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों ने जंगली जानवरों के चौथे समूह की रक्षा की। इस प्रकार जंगली जानवरों का चौथा समूह हिरण चराने वाले के चंगुल से मुक्त हो गया।

यह तुलना अर्थ समझाने के लिए है, इसका अर्थ यही है। चारा पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है। हिरण को चारा खिलाने वाला दुष्ट मारा का पर्यायवाची है। हिरण को चारा खिलाने वाले के अनुयायी मारा के अनुयायियों का पर्यायवाची हैं। जंगली जानवर संन्यासियों और ब्राह्मणों का पर्यायवाची हैं।

प्रथम संन्यासी और ब्राह्मणों के समूह ने जब अतिक्रमण किया तो उन्होंने मारा के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए; वे मारा और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए । प्रथम जंगली पशुओं की तरह, मैं कहता हूँ कि संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह प्रथम समूह उनके समान है।

दूसरे समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मिलकर यह सोचा: "पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह होकर मार और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा ?" उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा, चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने के लिए लौट आए। भोजन ग्रहण करते ही वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह जंगली जानवरों के दूसरे समूह की तरह मारा के वश से मुक्त नहीं हुआ; मैं कहता हूँ, संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह दूसरा समूह उनके समान है।

ब्राह्मणों के तीसरे समूह ने मिलकर यह सोचा: "पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए; वे मार और सांसारिक पदार्थों के वश में थे, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। ... यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा?" उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा,

चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने के लिए लौट आए। भोजन ग्रहण करते ही वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह भी मारा के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब उनके मन में यह विचार आया: ‘ यदि हम मारा की सांसारिक वस्तु में अपना निवास स्थान बना लें, और उस सांसारिक वस्तु का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरतें, और मारा और उसकी सांसारिक वस्तु के अधीन न हों तो क्या होगा?’ उन्होंने मारा की सांसारिक वस्तु में अपना निवास स्थान बना लिया, सांसारिक वस्तु का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए और बिना लापरवाही बरते किया, और मारा और उसकी सांसारिक वस्तु के अधीन नहीं हुए। फिर भी उनके मन में ऐसे विचार थे: ‘क्या संसार शाश्वत है या नहीं? क्या यह सीमित है या नहीं? क्या आत्मा शरीर है, या आत्मा एक है और शरीर कुछ भिन्न है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है, या नहीं है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है और नहीं है? क्या तथागत मृत्यु के बाद न है और न नहीं है?’ अतः, भिक्षुओं का यह तीसरा समूह मारा के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ । जैसे मैं जंगली जानवरों के तीसरे समूह की बात कर रहा हूँ, वैसे ही संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह तीसरा समूह भी उनसे तुलनीय है।

ब्राह्मणों के चौथे समूह ने मिलकर यह सोचा: “पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, मार और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा?” उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा, चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे फिर से मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने लगे। वहाँ भोजन ग्रहण करते हुए वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह भी मारा के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब उनके मन में यह विचार आया, ‘यदि हम मारा के सांसारिक पदार्थ में अपना निवास स्थान बना लें, और उस सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए, बिना लापरवाही बरतें, और मारा और उसके सांसारिक पदार्थ के अधीन न हों तो क्या होगा?’ उन्होंने मारा के सांसारिक पदार्थ के अतिक्रमण में अपना निवास स्थान बनाया, सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते किया, और मारा और सांसारिक पदार्थ के अधीन नहीं हुए। फिर भी उनके मन में ऐसे विचार थे: ‘क्या संसार शाश्वत है या नहीं? क्या यह सीमित है या नहीं? क्या आत्मा शरीर है, या आत्मा एक है और शरीर कुछ भिन्न है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है या नहीं? क्या तथागत मृत्यु के बाद न है और न नहीं है?’ इस प्रकार, भिक्षुओं, भिक्षुओं का यह तीसरा समूह मार के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ। 'यदि हम मृत्यु और उसके अनुयायियों के लिए अपने निवास स्थान को दुर्गम बना लें, और मृत्यु और सांसारिक पदार्थों के इस अतिक्रमण में रहते हुए, इस सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते करें, तो क्या हम इसी अतिक्रमण में मार के अधीन नहीं हो जाएँगे?' उन्होंने अपने निवास स्थान को मृत्यु और उसके अनुयायियों के लिए दुर्गम बना लिया, और मृत्यु और सांसारिक पदार्थों के इस अतिक्रमण में रहते हुए, बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते, इस सांसारिक पदार्थ का सेवन किया, और इसी अतिक्रमण में मार के अधीन नहीं हुए। भिक्षुओं, इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का चौथा समूह मार के प्रभाव से मुक्त हुआ। मैं कहता हूँ, जंगली जानवरों के चौथे समूह की तरह, संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह चौथा समूह उनके समान है।

भिक्षुओं, जो मारा और मारा के अनुयायियों के लिए अगम्य है , यहाँ, भिक्षुओं, वह भिक्षु जो कामुक विचारों और दोषपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से मुक्त होकर , एकांतवास से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में निवास करता है। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टि बंधवा ली है, और पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चला गया है। फिर, वह भिक्षु जो विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एक बिंदु पर लाकर, विचारों और विवेचनात्मक विचारों से मुक्त होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में निवास करता है । इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टि बंधवा ली है, और पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चला गया है। फिर, भिक्षु आनंद और वैराग्य के साथ सजग और सचेत रहते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करते हैं; इस पर श्रेष्ठ जन कहते हैं: समभाव के साथ सुख में सजग रहते हुए, मृत्यु नेत्रहीन हो जाती है, और उसने पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चली जाती है। फिर, भिक्षु सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही सुख और दुःख पर विजय प्राप्त करके, दुःख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु नेत्रहीन हो जाती है, और उसने पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चली जाती है। फिर, भिक्षु पदार्थ की सभी धारणाओं और क्रोध की धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देकर, असीम आकाश के साथ अनंत आकाश में लीन हो जाते हैं। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, असीम चेतना से युक्त भिक्षु, स्थान की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, अनंत चेतना के क्षेत्र में निवास करता है ।

इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, कुछ भी नहीं होने की अनुभूति से युक्त भिक्षु, चेतना के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है । इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निवास करता है। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर से, भिक्षुसभी प्रत्यक्ष-विषम सीमाओं को पार करते हुए, वह अनुभूतियों और संवेदनाओं के अंत को प्राप्त कर स्थिर हो जाता है। ज्ञान से देखने पर भी उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं [निर्वाण-अंतिम अवस्था]। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु की दृष्टि बंधी हुई है, उसने अपंग का नाश कर दिया है और मृत्यु, जो कि एक दुष्ट है, की दृष्टि से परे चला गया है।
भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

निवापा सूत्र (पाली संस्करण)
[1] Evaṃ me sutaṃ:॥ ॥
एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरमे ॥ ॥
तत्र खो भगव भिक्खु अमांतेसि:॥ ॥
"भिक्खवो" ति.॥ ॥
"भदंते"ति॥
ते भिक्खु भगवतो पचासोसुऽ॥ ॥
Bhagavā etad avoca:॥ ॥
2. "न भिक्खवे नेवापिको निवापैं निवापति मिगजातना:॥ ॥
'इमं मे निवापं निवुत्तं मिगजाता परिभुंजंता दीघायुका वनवंतो सिरां दीघम-अद्धानां यापेंतु' ति.॥ ॥
एवं च खो भिक्खवे नेवापिको निवापं निवापति मिगजातनाण:॥ ॥
'इमं मे निवापं निवुत्तं मिगजाता अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्संति,॥
अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं आपज्जिस्संति,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जिस्संती,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य भविसंति इमस्मि निवापे' ति.॥ ॥

---

3. तत्र, भिक्खवे, पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे पठमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

4. तत्र, भिक्खवे, दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना [152] यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिं निवापे ॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्ठकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥

पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

---

5. तत्र, भिक्खवे, ततिया मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
''ये खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्था अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदां आपाजिंसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपाजिंसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकरनिया अहेसुं नेवापिकास्सा अमुसमीं निवापे ॥॥
एवं ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयाṃ अमुṃ निवापाṃ निवुत्तṃ नेवापिकासा [153] उपनिस्साय आसयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे'' ति.॥।
ते अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पायिउसु,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद् अहोसि:॥ ॥
'सत्थास्सु नम'इमे ततिया मिगजाता केतुभिनो,॥
इधिमंतस्सु नमइमे ततिया मिगजाता परजाना,।
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा;।
यान-नुना मयाṃ इमं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरेयामा,॥
अप्पएव नाम तत्यानां मिगजतानां असयं पस्सेयामा यत्थ ते गहाऽ गच्चेयुं' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
अद्दसासूं खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च तत्यानां मिगजातनां असयं यत्थ ते गहां अगमांसु.।॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

6. तत्र, भिक्खवे, चतुत्था मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'यो खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते तत्या मिगजाता एवं समसिंतेसुं:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
''ये खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्था अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदां आपाजिंसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपाजिंसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकरनिया अहेसुं नेवापिकास्सा अमुसमीं निवापे ॥॥
एवं ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥

एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे" ति.॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पायिउसु,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद् अहोसि:॥ ॥
'सत्थास्सु नम'इमे ततिया मिगजाता केतुभिनो,॥
इधिमंतस्सु नमइमे ततिया मिगजाता परजाना,।
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा;।
यान-नुना मयाm इमं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरेयामा,॥
अप्पएव नाम तत्यानां मिगजतानां असयं पस्सेयामा यत्थ ते गहाऽ गच्चेयुं' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
अद्दसासूं खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च तत्यानां मिगजातनां असयं यत्थ ते गहां अगमांसु.।॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां यथा अगति नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाय च,॥
तत्र'सयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुङ निवापे" ति.॥
ते यत्थ अगति नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च तत्रायं कप्पायिंसु॥ ॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु ।॥
ते तत्थ अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं अज्जीसु.॥ ॥
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीसु अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुऽ नेवापिकास्सा अमुस्मिं निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद अहोसि: "सथस्सु नामिमे चतुत्था मिगजाता केतुभिनो ।॥
इधिमंतसु नामिमे चतुत्था मिगजाता परजाना॥ ॥
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥ ॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा.॥ ॥
यान-नुना मयाm इमं निवापं निवुत्तं महतीहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसां अनुपरिवरेयामा अप्पेएव नाम चतुत्थानां मिगजतानां असयं पसेय्यमा यत्थ ते गहाऽ गच्चेय्युं" ति.॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
नेव खो भिक्खवे एडसासुं नेवापिको च नेवापिकापरिसा च चतुत्थानं मिगजातनां असयं यथा ते गहाओ गच्चेयुउ ।॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद अहोसि: ससे खो मायां चतुत्थे मिगजाते घट्तेस्सामा, ते घटिता अण्णे घटेस्सान्ति ।॥ ॥
ते पि घटिता अण्णे घटेस्सन्ति॥ ॥
एवं इमां निवापं निवुत्तं सब्बासो मिगजाता रिंसीसंति.॥ ॥
यान-नुना मयाm कतुत्थे मिगजाते अज्झुपेक्खेयामा'ति अज्जुपेक्खिंसु खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च कतुत्थे मिगाजते॥ ॥
इवं ही ते भिक्खवे चतुत्था मिगजाता परिमुक्किसु नेवापिकास्सा इधानुभवा॥ ॥

---

7. उपमा खो मे अयं भिक्खवे काटा अत्थस्सा विनापनाय,॥

अयान सी'एव'एत्था अथो:॥ ॥
'निवापो' ति खो भिक्खवे पञ्चन्नतेतं कामगुणानां अधिवचनं॥ ॥
'नेवापिको' ति खो भिक्खवे मरास्सेएतां पापिमतो अधिवाचनं॥ ॥
'नेवापिकापरिसा' ति खो भिक्खवे मरापरिसायेताऽ अधिवचनाऽ॥ ॥
'मिगजाता' ति खो भिक्खवे समान-ब्राह्मणएतं अधिवचनान्॥ ॥
8. तत्र, भिक्खवे, पठम समान-ब्राह्मण अमुं निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज [156] मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे पथमा समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे पथमा मिगजाता,॥
तथुपमे अहं इमे पथमे समान-ब्राह्मणे वदामि.॥ ॥

---

9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥ ॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुŋ,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥ ॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥ ॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मा- [157] रस इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे दुतिया मिगजाता तथुपमे अहं इमे दुतिये समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

10. तत्र, भिक्खवे, ततिया समान-ब्राह्मण एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥

'ये खो ते पथम समान-ब्राह्मण अमु ण निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे।'। ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥ ॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुṃ,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥ ॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥ ॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ।॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते दुतिया समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभव:॥ ॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पायिंसु॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन्का लोकामिसे॥ ॥
अपि च खो एवं दितिहिका एहेसुṃ:॥ ॥
सस्सतो लोको इति पि,॥
अस्स्सतो लोको इति पि,॥

अंतवा लोको इति पि,॥
अनन्तवा लोको इति पि,॥
तं जीवं तं शरीरं इति पि,॥
अण्णां जीवं अण्णां शरीर इति पि,॥
होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
न होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
नेव भोति न न होति तथागतो परम मरणा [158] इति पि.॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे तत्या मिगजाता तथुपमे अहं इमे ततिये समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

11. तत्र, भिक्खवे, चतुत्था समान-ब्राह्मण एवं समसिंतेसुm:॥ ॥
'ये खो ते पथम समान-ब्राह्मण अमु ण निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥ ॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुm,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥ ॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥ ॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते दुतिया समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभव:॥ ॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥

अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पायिंसु॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन्का लोकामिसे॥ ॥
अपि च खो एवं दितिहिका एहेसुṃ:॥ ॥
सस्सतो लोको इति पि,॥
अस्स्सतो लोको इति पि,॥
अंतवा लोको इति पि,॥
अनन्तवा लोको इति पि,॥
तं जीवं तं शरीरं इति पि,॥
अण्णां जीवं अण्णां शरीर इति पि,॥
होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
न होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
नेव भोति न न होति तथागतो परम मरणा इति पि.। ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां यत्थ अगति मरास्सा च मरापरिसाय च तत्र'सायं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥ ॥
ते यत्थ अगति मरास्सा च मरापरिसाया च तत्र'सयायं कप्पायिणसु;।
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुṃ निवा- [159] पण निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन् च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे चतुत्था समान-ब्राह्मण पमुचिंसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे चतुत्था मिगजाता तथुपमे अहं इमे चतुत्थे समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

12. कथं च भिक्खवे अगति मरास्सा च मरापरिसाया च?॥ ॥
इधा, भिक्खवे, भिक्खु॥
विविच्चेवा कामेहि॥
विविक्का अकुसालेही धम्मेहि॥
सविताक्कṃ॥
सविचराओ॥
विवेकाजं पित-सुखां॥
पथमं-झाणं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
13. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
विटक्क-विचारणं वुपासमा॥
अज्झत्तं सम्पसादानां॥
सीतासो एकोदी-भवना॥

अविताक्कm̥॥
अविचरण॥
समाधिजां पित-सुखां॥
दुतीयं-झाणु उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
14. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
पिटिया च विरागा॥
उपेक्खको च विहारति॥
सातो च संपजानो,॥
सुखं च कायेन पतिसासोवेदेति॥
यं तं अरिय अचिक्खंति:॥
'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति॥
ततियाऽ-झाणु उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
15. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सुखसा च पहाना॥
दुक्खस्सा च पहाना॥
पुब्बे वा सोमनास्सा-डोमनस्सानां अत्थ-गमा॥
अदुक्खाm̥-असुखाm̥॥
उपेक्खा-सति-परिशुद्धि॥
चतुत्थं-झाणं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
16. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो रूप-संन्याना समतिक्कमा॥
पतिघ-संन्यानां अत्थ-गमा॥
नानात्त-सन्नान्नं अमानसि-कारा॥
'अनन्तो आकाशो' ति॥
आकाशान्चायतनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
17. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो आकाशान्चायतनं समतिक्कम्मा॥
'अनन्तं विनाशं' ति॥
विनानाञ्चायतनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥

अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
18. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बसो विन्ननचायतनṃ [160] समतिक्कम्मा॥
'नत्थि किन्चि' ति॥
अकिंचनन्यातनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
19. पुना च परं भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बसो अकिंचनन्यातनं समतिक्कम्मा॥
नेव-सन्या-नासन्यातनं उपसम्पज्ज विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
20. पुना च परं भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो नेव-सन्या-नासन्यातनं समतिक्कम्मा॥
सन्ना-वेदयित-निरोधं उपसम्पज्ज विहारति॥
पनन्या चस्सा दिस्वा॥
आसव परिक्खिना होंति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अदस्सानां गतो पापिमतो,॥
तिन्नो लोके विसाटिकन" ति.॥॥
इदं अवोच भगवा.॥ ॥
अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भसीतं अभिनंदनं ति.॥ ॥

Nivāpa Suttaṃ Pañcamaṃ.

सारांश एवं व्याख्या

पृष्ठभूमि : मृत्यु, पुनर्जन्म, इंद्रिय सुख (और दुख) और धन के दुष्ट देवता मारा, सभी प्राणियों को सांसारिक वासना और भौतिक निर्भरता के आकर्षण में बांधकर पूरी दुनिया पर शासन करते हैं। मृत्यु के बाद, सांसारिक वासना के आकर्षण के कारण उन्हें बार-बार पुनर्जन्म मिलता है। जो लोग मृत्यु और पुनर्जन्म के इस शाश्वत चक्र से बचने का प्रयास करते हैं, उन्हें मारा द्वारा बिछाए गए कई जालों का सामना करना पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे हिरण शिकारियों के जाल में फंस जाते हैं।

स्पष्टीकरण: यह सूत्र हिरणों के झुंड की तुलना सत्य के साधकों/सन्यासियों/भिक्षुओं से करता है।

1. शिकारी का चारा खाने वाले हिरण मदमस्त और लापरवाह हो गए और शिकारी के वश में आ गए। इसी प्रकार जब साधु/भिक्षु सांसारिक वस्तुओं (भोजन, वस्त्र आदि) पर निर्भर हो जाते हैं, तो वे भी आश्रित और लापरवाह हो जाते हैं और इस प्रकार दुष्ट देवता मारा के बंधन में आ जाते हैं और पुनर्जन्म तथा उससे जुड़े कष्ट भोगते हैं। [अतिभोग एक चरम अवस्था है, जिससे बचना चाहिए।]

2. जो हिरण शिकारियों का चारा पूरी तरह त्याग देते हैं, जब जंगल में भोजन की कमी का मौसम आता है, तो वे फिर से शिकारियों का चारा खाने लौट आते हैं और पकड़े जाते हैं। इसी प्रकार, जो संन्यासी/भिक्षु भोजन, वस्त्र आदि जैसी सांसारिक भौतिक निर्भरता से पूरी तरह परहेज करते हैं, जब सूखा पड़ता है, तो उनका शरीर कमजोर हो जाता है और वे फिर से सांसारिक सुख-सुविधाओं पर निर्भर हो जाते हैं और पुनर्जन्म के चक्र में फिर से फंस जाते हैं। [अत्यधिक परहेज से भी बचना चाहिए]

3. जो हिरण पास में ही सतर्क रहकर रहते थे, वे छिपकर समय-समय पर शिकारियों का चारा खा जाते थे। जब शिकारियों ने लाठियों से घेरा बनाया, तो उन्हें देख लिया गया और हिरणों को पकड़ लिया गया। इसी प्रकार, वे संन्यासी/भिक्षु जो सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करते थे, लेकिन सतर्क रहते थे, ध्यान करते थे, धार्मिक जीवन का पालन करते थे, लेकिन उन्होंने अपने मन में पूर्वकल्पित धारणाओं, संदेहों और विचारों की दीवारें खड़ी कर रखी थीं, जैसे कि - क्या संसार शाश्वत है या नहीं, क्या शरीर में आत्मा है, क्या बुद्ध मृत्यु से परे चले गए हैं या नहीं आदि। वे भी इनसे मुक्त नहीं हो सके और पुनर्जन्म के चक्र में फंस गए और इस प्रकार दुखों में लीन हो गए। [मानसिक अनुशासन आवश्यक है। कलामा सूत्र देखें]

4. हिरणों के चौथे समूह ने पास में ही रहने का फैसला किया, वे बेहद सतर्क और लापरवाह नहीं थे, बल्कि अदृश्य थे। उनके आने-जाने का पता किसी को नहीं चलता था, यहाँ तक कि जब जगह को लकड़ियों से घेर दिया गया था तब भी। वे शिकारियों का चारा बिना किसी को पता चले खाते थे, इसलिए वे पकड़े नहीं गए और स्वतंत्र रहे। इसी प्रकार, जो संन्यासी संसार में रहकर सांसारिक पदार्थों का उपभोग करते हैं, लेकिन सतर्क रहते हैं और सांसारिक पदार्थों के प्रति कोई लगाव या नापसंदगी उत्पन्न नहीं करते, शरीर में आत्मा, ब्रह्मांड की असीमता, ब्रह्मांड की उत्पत्ति आदि जैसी काल्पनिक धारणाओं और विचारों को उत्पन्न नहीं करते, समाधि/सम्मोहन अवस्था को प्राप्त करके और उसका अभ्यास करके मारा के प्रभाव से दूर रहते हैं, वे मारा के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं।
[मध्य मार्ग बुद्ध का मार्ग है]
समाधि (यहाँ ध्यान कहा गया है) की अवस्थाओं की प्राप्ति, अर्थात् मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में ज्ञान का संचार और अन्य उच्चतर अवस्थाएँ, इस साधना का लक्ष्य है। शत्रु मारा (शैतान) इन अवस्थाओं को जान नहीं सकता, उन तक पहुँच नहीं सकता, इसलिए यह सांसारिक इंद्रिय सुखों, अन्य भावनाओं और पुनर्जन्मों के बंधन से मुक्त एक सुरक्षित आश्रय है। यहीं पर दिव्य आनंद के रूप में वास्तविक सुख और अंतिम मुक्ति - निर्वाण प्राप्त होता है। पाली ग्रंथ के श्लोक 12-20 में और उपरोक्त अंग्रेजी अनुवाद के अंतिम पैराग्राफ में भी इन ध्यान (यथा ध्यान) अवस्थाओं का उल्लेख है। ये वही अवस्थाएँ हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया गया है: Buddhism_FAQ2_Trance_States

नोट: यह भी निहित है कि इस सूत्र में यौन सुख का भी समर्थन नहीं किया गया है, क्योंकि संयम यानी ब्रह्मचर्य वह अडिग आधार है जिसके बिना समाधि/सम्मोहन अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। इसका विषय भोजन, वस्त्र आदि मूलभूत आवश्यकताओं पर निर्भरता न रखना है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.6अरियापरियेसन सुत्त(26)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित
नोट : ध्यान/समाधि/ज़ेन की 9 अवस्थाओं के लिए कृपया सूत्र के अंत में देखें।

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। सुबह सवेरे, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। तब बहुत से भिक्षु पूज्य आनंद के पास गए और बोले, "हे मित्र आनंद, भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धम्म प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। यदि हमें भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धम्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए तो कितना अच्छा होगा।"

"ऐसे में, हे पूज्यवरों, ब्राह्मण रामक के आश्रम में जाइए। शायद आपको भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धर्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने आदरणीय आनंद को उत्तर दिया और चले गए।

फिर भगवान बुद्ध भिक्षा मांगने गए और भोजन करने के बाद भिक्षा मांगने के बाद लौटकर आदरणीय आनंद से बोले, "आनंद, चलो आज पूर्वी उद्यान में मिगारा की माता के महल में विश्राम करने चलते हैं।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

अतः भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, दिनभर विश्राम करने के लिए पूर्वी उद्यान, मिगारा की माता के महल में गए। शाम को एकांतवास से बाहर आकर उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, चलो पूर्वी द्वार पर जाकर स्नान करें।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

अतः भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, पूर्वी द्वार पर स्नान करने गए। पूर्वी द्वार पर स्नान करने के बाद, जल से बाहर आकर वे अपने वस्त्रों में खड़े होकर अपने अंगों को सुखा रहे थे। तब पूज्य आनंद ने उनसे कहा, “हे भगवान, ब्राह्मण रामक का आश्रम निकट ही है। ब्राह्मण रामक का आश्रम अत्यंत प्रसन्नतादायक है। यदि भगवान बुद्ध सहानुभूतिवश रामक ब्राह्मण के आश्रम जाएँ तो यह अच्छा होगा।” भगवान बुद्ध मौन रहकर इस बात को स्वीकार कर गए।

अतः भगवान रामक ब्राह्मण के आश्रम में गए। उस समय रामक ब्राह्मण के आश्रम में बड़ी संख्या में भिक्षु धर्म पर चर्चा के लिए एकत्रित थे। भगवान चर्चा समाप्त होने की प्रतीक्षा में द्वार के बाहर खड़े रहे। चर्चा समाप्त होने पर उन्होंने खाँसी करते हुए द्वार पर दस्तक दी। भिक्षुओं ने उनके लिए द्वार खोल दिया। रामक ब्राह्मण के आश्रम में प्रवेश करते ही भगवान एक तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भिक्षुओं से कहा, “आप यहाँ किस चर्चा के लिए एकत्रित हुए हैं? किस चर्चा के बीच में आपको व्यवधान डाला गया है?”

"हे भगवान, हमारी बाधित धम्म चर्चा स्वयं भगवान बुद्ध के बारे में थी, और तभी भगवान बुद्ध आ गए।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह उचित है कि आप, अच्छे परिवारों के पुत्र होने के नाते, जो आस्था से प्रेरित होकर घर छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करने आए हैं, धम्म पर चर्चा के लिए एकत्रित हों। एकत्रित होने पर आपके दो कर्तव्य हैं: या तो धम्म पर चर्चा करना या मौन रहना।"

भिक्षुओं, दो प्रकार की खोजें होती हैं: नीच खोज और श्रेष्ठ खोज। नीच खोज क्या है? एक प्रकार वह है जब कोई व्यक्ति जन्म के अधीन होते हुए भी, जन्म के अधीन ही सुख की खोज करता है। बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए भी, वह रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन ही सुख की खोज करता है।

और किन चीजों को जन्म के अधीन कहा जा सकता है? पति-पत्नी और बच्चे जन्म के अधीन हैं। पुरुष और महिला दास... बकरियां और भेड़ें... मुर्गियां और सूअर... हाथी, मवेशी, घोड़े और घोड़ियां... सोना और चांदी जन्म के अधीन हैं। ये सभी वस्तुएं जन्म के अधीन हैं, और जो इनसे बंधा हुआ है, इन पर मोहित है, जो पूरी तरह से इनके प्रति आकर्षित हो गया है, वह भी जन्म के अधीन होने के कारण, ऐसी ही चीजों की तलाश करता है जो जन्म के अधीन हों।

और ऐसी कौन सी चीज़ें हैं जो बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं? पति-पत्नी और बच्चे... पुरुष और महिला दास... बकरियाँ और भेड़ें... मुर्गियाँ और सूअर... हाथी, गाय, घोड़े और घोड़ियाँ... सोना और चाँदी बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं। ये सभी वस्तुएँ बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं, और जो इनसे बंधा हुआ है, इन पर मोहित है, जो पूरी तरह से इनके प्रति आकर्षित है, जन्म के अधीन होने के कारण, वह ऐसी ही वस्तुओं की खोज करता है जो बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं। यह एक नीच खोज है।

और श्रेष्ठ खोज क्या है? एक स्थिति यह है कि एक व्यक्ति, जो स्वयं जन्म के बंधन में बंधा हुआ है, जन्म के दोषों को देखकर, उस बंधन से मुक्ति पाने के लिए अजन्मे, अद्वितीय विश्राम की तलाश करता है। वही व्यक्ति वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के बंधन में बंधा हुआ है, और वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दोषों को देखकर, उस बंधन से मुक्ति पाने के लिए अवृद्ध, रोगरहित, मृत्युरहित, दुःखरहित, निष्कलंक, अद्वितीय विश्राम की तलाश करता है। यही श्रेष्ठ खोज है।

हे भिक्षुओं, मैं भी अपने ज्ञानोदय से पहले, जब मैं एक अज्ञानी बोधिसत्व था, जन्म के अधीन होते हुए, जन्म के अधीन ही सुख की खोज करता था। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए, मैं सुख की खोज उसी में करता था जो उसी में विद्यमान हो। मेरे मन में यह विचार आया, 'जन्म के अधीन होते हुए, मैं जन्म के अधीन ही सुख की खोज क्यों करता हूँ? वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए, मैं उसी में विद्यमान सुख की खोज क्यों करता हूँ? क्या होगा यदि मैं जन्म के अधीन होते हुए, जन्म के दोषों को देखकर, जन्म से परे, अद्वितीय मुक्ति की खोज करूँ? क्या होगा यदि मैं वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के दोषों को देखकर, वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय सुख की खोज करूँ?' बंधनों से मुक्तिः क्या यह बंधन मुक्त हो रहा है?

"इसलिए, कुछ समय बाद, जब मैं अभी भी जवान था, काले बालों वाला एक युवक, जीवन के पहले चरण में यौवन के आशीर्वाद से संपन्न - और जब मेरे माता-पिता, अनिच्छा से, अपने चेहरे पर आंसू बहाते हुए रो रहे थे - मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, गेरुए रंग का वस्त्र धारण किया और गृहस्थ जीवन छोड़कर एकांतवास में चला गया।"

"इस प्रकार, कौशल की खोज में निकलते हुए, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं अलारा कलामा के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा: 'मित्र कलामा, मैं इस सिद्धांत और अनुशासन का अभ्यास करना चाहता हूँ।'

"जब यह कहा गया, तो उन्होंने मुझसे उत्तर दिया, 'मेरे मित्र, तुम यहीं रह सकते हो। यह सिद्धांत ऐसा है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव करके शीघ्र ही अपने गुरु के ज्ञान में प्रवेश कर सकता है और उसमें निवास कर सकता है।'

"मुझे सिद्धांत सीखने में ज्यादा समय नहीं लगा। केवल होंठ हिलाकर दोहराने से ही मैं ज्ञान के शब्द, बड़ों के शब्द बोल सकता था, और मैं यह पुष्टि कर सकता था कि मैं जानता और देखता हूँ - मैं, दूसरों के साथ।"

मैंने सोचा: 'यह केवल दृढ़ विश्वास के बल पर नहीं है कि अलारा कलामा यह घोषणा करते हैं, "मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव किया है और इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ।" निश्चित रूप से वे इस धम्म को जानते और देखते हुए निवास करते हैं।' इसलिए मैं उनके पास गया और पूछा, 'आप किस हद तक यह घोषणा करते हैं कि आपने इस धम्म में प्रवेश कर लिया है और निवास करते हैं?' यह सुनकर उन्होंने शून्यता के आयाम की घोषणा की।

मैंने सोचा: 'अलारा कलामा में न केवल दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है, बल्कि मुझमें भी दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है। क्या होगा यदि मैं स्वयं उस धम्म को जानने का प्रयास करूँ जिसमें अलारा कलामा ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्रवेश करने और निवास करने का दावा किया है?' इसलिए, शीघ्र ही मैंने भी प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उस धम्म में प्रवेश कर लिया और निवास किया। मैं उनके पास गया और कहा, 'मित्र कलामा, क्या आप इसी हद तक इस धम्म में प्रवेश कर चुके हैं और निवास करते हैं, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे स्वयं अनुभव कर चुके हैं?'

"'हाँ, मेरे दोस्त...'"

"'मित्र, यही वह सीमा है जहाँ तक मैं भी इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे अनुभव किया है।'

"मेरे मित्र, यह हमारे लिए एक बड़ा लाभ है, हमारे लिए एक महान लाभ है कि पवित्र जीवन में हमें ऐसा साथी मिला है। अतः जिस धर्म में मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके प्रवेश किया है और निवास किया है, वही धर्म तुम भी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके अपने भीतर प्रवेश कर चुके हो और निवास कर चुके हो। और जिस धर्म में तुमने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके प्रवेश किया है और निवास किया है, वही धर्म मैं भी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके अपने भीतर प्रवेश कर चुका हूँ और निवास कर चुका हूँ। जिस धर्म को मैं जानता हूँ, वही धर्म तुम जानते हो; जिस धर्म को तुम जानते हो, वही धर्म मैं जानता हूँ। जैसा मैं हूँ, वैसा ही तुम हो; जैसा तुम हो, वैसा ही मैं हूँ। आओ मित्र, अब हम मिलकर इस समुदाय का नेतृत्व करें।"

"इस प्रकार मेरे गुरु अलारा कलामा ने मुझे, अपने शिष्य को, अपने समान दर्जा दिया और मेरा बहुत सम्मान किया। परन्तु मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धम्म न तो मोहभंग, न वैराग्य, न शांति, न प्रत्यक्ष ज्ञान, न जागृति, न मुक्ति की ओर ले जाता है, बल्कि केवल शून्यता के आयाम में पुन: प्रकट होने की ओर ले जाता है।' अतः उस धम्म से असंतुष्ट होकर मैंने उसे छोड़ दिया।"

"कुशलता की खोज में, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा: 'मित्र उद्दक, मैं इस सिद्धांत और अनुशासन का अभ्यास करना चाहता हूँ।'"

"जब यह कहा गया, तो उन्होंने मुझसे उत्तर दिया, 'मेरे मित्र, तुम यहीं रह सकते हो। यह सिद्धांत ऐसा है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव करके शीघ्र ही अपने गुरु के ज्ञान में प्रवेश कर सकता है और उसमें निवास कर सकता है।'

"मुझे सिद्धांत सीखने में ज्यादा समय नहीं लगा। केवल होंठ हिलाकर दोहराने से ही मैं ज्ञान के शब्द, बड़ों के शब्द बोल सकता था, और मैं यह पुष्टि कर सकता था कि मैं जानता और देखता हूँ - मैं, दूसरों के साथ।"

मैंने सोचा: 'यह केवल दृढ़ विश्वास से ही नहीं था कि राम ने घोषणा की, "मैंने इस धम्म में प्रवेश किया है और इसमें निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने इसे प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं अनुभव किया है।" निश्चित रूप से वे इस धम्म को जानते और देखते हुए निवास करते थे।' इसलिए

मैं उद्दक के पास गया और पूछा, 'राम ने किस हद तक यह घोषणा की कि उन्होंने इस धम्म में प्रवेश किया है और इसमें निवास किया है?' यह सुनकर उद्दक ने न तो प्रत्यक्ष ज्ञान के आयाम का उल्लेख किया और न ही अप्रत्यक्ष ज्ञान के आयाम का।

मैंने सोचा: 'न केवल राम में दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक था, बल्कि मुझमें भी दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है। क्या होगा यदि मैं स्वयं उस धम्म को जानने का प्रयास करूँ जिसमें राम ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्रवेश किया और निवास किया?' इसलिए शीघ्र ही मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उस धम्म में प्रवेश किया और निवास किया। मैं उद्दक के पास गया और कहा, 'मित्र उद्दक, क्या राम ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इस धम्म में इतना ही प्रवेश किया और निवास किया?'

"'हाँ, मेरे दोस्त...'"

"'मित्र, यही वह सीमा है जहाँ तक मैं भी इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे अनुभव किया है।'

"मेरे मित्र, यह हमारे लिए एक बड़ा लाभ है कि पवित्र जीवन में हमें ऐसा साथी मिला है। इसलिए, राम ने जिस धम्म में प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया, वही धम्म है जिसमें आपने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया। और जिस धम्म में आपने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया, वही धम्म है जिसमें राम ने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया। जिस धम्म को वे जानते थे, वही धम्म आप जानते हैं; जिस धम्म को आप जानते हैं, वही धम्म वे जानते थे। जैसा वे थे, वैसा ही आप हैं; जैसा आप हैं, वैसा ही वे थे। आओ मित्र, इस समुदाय का नेतृत्व करो।"

"इस प्रकार मेरे आध्यात्मिक साथी उद्दक रामपुत्त ने मुझे गुरु का पद दिया और मेरा बहुत सम्मान किया। परन्तु मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धर्म न तो मोहभंग, न वैराग्य, न शांति, न प्रत्यक्ष ज्ञान, न जागृति, न मुक्ति की ओर ले जाता है, परन्तु केवल उस आयाम में पुन: प्रकट होने की ओर ले जाता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही प्रत्यक्ष।' अतः उस धर्म से असंतुष्ट होकर मैंने उसे त्याग दिया।"

"कुशलता की खोज में, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं मगध देश में कई चरणों में भटकता रहा और उरुवेला के सैन्य नगर में पहुँचा। वहाँ मैंने एक रमणीय ग्रामीण क्षेत्र देखा, जिसमें एक प्रेरणादायक वनक्षेत्र, सुंदर और रमणीय किनारों वाली एक निर्मल बहती नदी और चारों ओर भिक्षा मांगने के लिए गाँव थे। मेरे मन में यह विचार आया: 'यह ग्रामीण क्षेत्र कितना रमणीय है, अपने प्रेरणादायक वनक्षेत्र, सुंदर और रमणीय किनारों वाली निर्मल बहती नदी और चारों ओर भिक्षा मांगने के लिए गाँवों के साथ। यह परिश्रम करने के इच्छुक कुलवासी के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।' इसलिए मैं वहीं बैठ गया और सोचने लगा, 'यह परिश्रम के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।'"

फिर, हे भिक्षुओं, जन्म के बंधन में रहते हुए, जन्म के दोषों को देखकर, अजन्मे, अद्वितीय बंधनमुक्ति की खोज में, मैंने बंधनमुक्ति प्राप्त की। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के अधीन रहते हुए, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दोषों को देखकर, मैंने वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय बंधनमुक्ति की खोज में, मैंने वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय बंधनमुक्ति प्राप्त की। मुझे ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'बिना किसी कारण के मेरी मुक्ति है। यह अंतिम जन्म है। अब आगे कोई जन्म नहीं है।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धम्म जो मैंने प्राप्त किया है, गहरा है, देखना कठिन है, अनुभव करना कठिन है, शांत है, परिष्कृत है, कल्पना की सीमा से परे है, सूक्ष्म है, केवल ज्ञानियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। लेकिन यह पीढ़ी आसक्ति में आनंद लेती है, आसक्ति से उत्तेजित होती है, आसक्ति का आनंद लेती है। आसक्ति में आनंद लेने वाली, आसक्ति से उत्तेजित होने वाली, आसक्ति का आनंद लेने वाली पीढ़ी के लिए यह/वह तुल्यता और आश्रित सह-उत्पत्ति देखना कठिन है। यह अवस्था भी देखना कठिन है: सभी सृजनों का निवारण, सभी प्राप्तियों का त्याग, व्यथा का अंत; वैराग्य; निश्चिंतता; मुक्ति। और यदि मैं धम्म का उपदेश दूं और दूसरे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए थकाऊ और कष्टदायक होगा।'

"तभी मुझे ये पंक्तियाँ सूझीं, जो पहले कभी नहीं बोली गईं, कभी नहीं सुनी गईं:

अब बस करो उस ज्ञान को सिखाने का जो मैंने बड़ी मुश्किल से प्राप्त किया है। जो लोग घृणा और वासना से ग्रस्त हैं, उन्हें यह धम्म आसानी से प्राप्त नहीं होता।

जो कुछ गूढ़, सूक्ष्म, गहरा, देखना कठिन है, जो प्रवाह के विपरीत है— वे लोग जो वासना में लिप्त हैं, अंधकार के घने आवरण में लिपटे हुए हैं, उसे नहीं देख पाएंगे।' "जब मैंने इस प्रकार चिंतन किया, तो मेरा मन धम्म का उपदेश देने के बजाय आराम से रहने की ओर झुक गया।"

तब ब्रह्म सहमपति ने अपनी चेतना से मेरी चेतना की विचारधारा को जानकर सोचा: 'संसार नष्ट हो गया है! संसार का नाश हो गया है! तथागत, अरहंत, सत्यात्मा से जागृत व्यक्ति का मन आराम में रहने की ओर झुका हुआ है, धम्म का उपदेश देने की ओर नहीं!' तब, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाता है, वैसे ही ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे सामने प्रकट हुए। उन्होंने अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखा और दाहिना घुटना जमीन पर रखकर मुझे हृदय के सामने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मुझसे कहा: 'हे भगवान, भगवान को धम्म का उपदेश देने दीजिए! सिद्ध पुरुष को धम्म का उपदेश देने दीजिए! कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी नहीं है और वे धम्म न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धम्म को समझेंगे।'

"ब्रह्म सहमपति ने यही कहा था। इतना कहने के बाद उन्होंने आगे यह भी कहा:

अतीत में मगधियों के बीच एक अपवित्र धर्म प्रकट हुआ, जिसे दूषित लोगों ने रचा था। अमर के लिए द्वार खोल दो! उन्हें निष्कलंक धर्म का ज्ञान प्राप्त करने दो!

जैसे कोई चट्टानी टीले पर खड़ा होकर नीचे चारों ओर लोगों को देख सकता है, वैसे ही, हे ज्ञानी, सर्वव्यापी दृष्टि से धम्म के महल में आरोहण करो। दु:ख से मुक्त होकर दु:ख में डूबे हुए, जन्म और वृद्धावस्था के कष्टों से पीड़ित लोगों को देखो।

उठो, वीर, युद्ध में विजयी! हे गुरु, ऋणमुक्त होकर संसार में विचरण करो। हे भगवान, धम्म का उपदेश दो: अवश्य ही समझोगे। तब, ब्रह्मा के निमंत्रण को समझकर, प्राणियों पर दया करते हुए, मैंने ज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। ऐसा करते हुए, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन, उनमें से कुछ को परलोक में अपमान और संकट दिखाई दे रहा था। जैसे नीले, लाल या सफेद कमलों से भरे तालाब में, कुछ कमल - जल में जन्म लेकर बढ़ते हैं - जल में ही डूबे रहते हैं और जल से ऊपर नहीं उठते; कुछ जल के स्तर पर स्थिर रहते हैं; जबकि कुछ जल से ऊपर उठकर बिना जल से लथपथ हुए खड़े रहते हैं - उसी प्रकार, ज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक धूल थी, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन, उनमें से कुछ को परलोक में अपमान और संकट दिखाई दे रहा था।

यह देखकर मैंने ब्रह्म सहमपति को श्लोकों में उत्तर दिया:

जिनके कान हैं, उनके लिए अमरता के द्वार खुले हैं। वे अपना विश्वास प्रकट करें। हे ब्रह्मा, मैंने संकट को भांपते हुए लोगों को परिष्कृत, उदात्त धम्म नहीं बताया। तब ब्रह्मा सहमपति ने यह सोचकर कि 'भगवान ने धम्म सिखाने की सहमति दे दी है,' मुझे प्रणाम किया और मेरे दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्र समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'यह अलारा कलामा बुद्धिमान, योग्य और समझदार हैं। उनकी आंखों में लंबे समय से धूल नहीं है। क्या होगा यदि मैं उन्हें पहले धम्म की शिक्षा दूं? वे इस धम्म को शीघ्र समझ जाएंगे।' तब देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे भगवान, अलारा कलामा का सात दिन पहले निधन हो गया।' और मेरे भीतर ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'अलारा कलामा का सात दिन पहले निधन हो गया।' मेरे मन में यह विचार आया, 'अलारा कलामा को बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। यदि उन्होंने इस धम्म को सुना होता, तो वे इसे शीघ्र समझ जाते।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्र समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'यह उद्दक रामपुत्त बुद्धिमान, योग्य और समझदार है। उसके नेत्रों में लंबे समय से धूल नहीं है। क्या होगा यदि मैं उसे पहले धम्म की शिक्षा दूं? वह इस धम्म को शीघ्र समझ जाएगा।' तब देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे भगवान, उद्दक रामपुत्त का कल रात निधन हो गया।' और मेरे भीतर ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'उद्दक रामपुत्त का कल रात निधन हो गया।' मेरे मन में यह विचार आया, 'उद्दक रामपुत्त को बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। यदि उसने इस धम्म को सुना होता, तो वह इसे शीघ्र समझ जाता।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्रता से समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'जब मैं साधना में दृढ़ था, तब वे पाँच भिक्षु मेरे लिए बहुत सहायक थे। क्या होगा यदि मैं उन्हें पहले धम्म की शिक्षा दूं?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'वे पाँच भिक्षु अब कहाँ रह रहे हैं?' और दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैंने देखा कि वे वाराणसी के पास इसिपताना के हिरण उद्यान में रह रहे थे।

फिर, उरुवेला में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद, मैं धीरे-धीरे वाराणसी की ओर प्रस्थान करने लगा। गया और ज्ञानोदय स्थल के बीच मार्ग पर अजीवक उपाक ने मुझे देखा और मुझे देखकर कहा, 'हे मेरे मित्र, तुम्हारी इंद्रियाँ निर्मल हैं। तुम्हारा रंग शुद्ध और तेजस्वी है। तुम किसके कारण निकले हो? तुम्हारे गुरु कौन हैं? तुम किसके धर्म में प्रसन्न होते हो?'

"जब यह कहा गया, तो मैंने उपका अजीवक को श्लोकों में उत्तर दिया:

मैं सर्वविजयी, सर्वज्ञ हूँ, सभी चीजों के संबंध में अनासक्त। सभी इच्छाओं के अंत में मुक्त होकर, मैंने सब कुछ त्याग दिया है: मैंने स्वयं ही सब कुछ जान लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु मानूँ?

मेरा कोई गुरु नहीं है, और मेरे जैसा गुरु मिलना भी मुश्किल है। इस देवलोक में मेरा कोई समकक्ष नहीं है।

क्योंकि मैं संसार में अरहंत हूँ; मैं अद्वितीय गुरु हूँ। मैं अकेला ही सही मायने में आत्मजागृत हूँ। मैं शीतल और मुक्त हूँ।

धम्म के चक्र को गति देने के लिए मैं काशी नगर जाता हूँ। इस अंधी दुनिया में, मैं अमरता का ढोल बजाता हूँ।' "'मेरे मित्र, तुम्हारे दावों से तो यही प्रतीत होता है कि तुम अनंत विजेता हो।'"

'विजेता वे हैं जो मेरे जैसे हैं और जिन्होंने चरम अवस्था प्राप्त कर ली है। मैंने बुरी आदतों पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए, उपका, मैं एक विजेता हूँ।' यह सुनकर उपका ने कहा, 'ऐसा ही हो, मेरे मित्र,' और सिर हिलाते हुए, एक तरफ मुड़कर, वह चला गया।

फिर, धीरे-धीरे भटकते हुए, मैं वाराणसी के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में पहुँचा, जहाँ पाँच भिक्षुओं का समूह ठहरा हुआ था। दूर से ही उन्होंने मुझे आते हुए देखा और मुझे देखते ही आपस में एक प्रतिज्ञा कर ली, (कहते हुए), 'मित्रों, देखो गौतम ध्यानमग्न आ रहे हैं: विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं, परिश्रम से विमुख हैं, धन-दौलत में लिप्त हैं। वे प्रणाम करने, खड़े होकर अभिवादन करने या उनके वस्त्र और कुंड ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। फिर भी, उनके लिए एक आसन लगाया जाए; यदि वे चाहें तो बैठ सकते हैं।' लेकिन जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा, वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पाए। एक भिक्षु ने खड़े होकर मेरा अभिवादन किया और मेरे वस्त्र और कुंड ग्रहण किए। दूसरे ने मेरे लिए आसन बिछाया। तीसरे ने मेरे पैर धोने के लिए पानी रखा। फिर भी, उन्होंने मुझे नाम से और 'मित्र' कहकर संबोधित किया।

इसलिए मैंने उनसे कहा, 'तथागत को नाम से और 'मित्र' कहकर संबोधित मत करो। मित्रों, तथागत एक योग्य व्यक्ति हैं, जो सही मायने में आत्म-जागृत हैं। ध्यान से सुनो, मित्रों: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। निर्देशानुसार अभ्यास करने से तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में अपने घर से संन्यासी जीवन में प्रस्थान करते हैं, और इसे स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।'

"जब यह कहा गया, तो पाँच भिक्षुओं के समूह ने मुझसे उत्तर दिया, 'उस अभ्यास, उस आचरण, उस तपस्या के द्वारा तुमने कोई श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, कोई ऐसा ज्ञान और दृष्टि का गुण प्राप्त नहीं किया जो किसी महान व्यक्ति के योग्य हो। तो अब तुम विलासी जीवन जीते हुए, अपने परिश्रम से भटकते हुए, धन-दौलत में लिप्त होकर, किसी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, किसी ऐसे ज्ञान और दृष्टि का गुण कैसे प्राप्त कर सकते हो जो किसी महान व्यक्ति के योग्य हो?'"

"जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे उत्तर दिया, 'तथागत, भिक्षुओं, विलासितापूर्ण जीवन नहीं जी रहे हैं, अपने परिश्रम से विमुख नहीं हुए हैं, धन-दौलत में लिप्त नहीं हुए हैं। तथागत, मित्रों, योग्य हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं। ध्यान से सुनो, मित्रों: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। निर्देशानुसार अभ्यास करने से, तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में जन्म लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं, और इसे स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।"

दूसरी बार... तीसरी बार, पाँच भिक्षुओं के समूह ने मुझसे कहा, 'उस साधना, उस आचरण, उस तपस्या के द्वारा तुम किसी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, किसी कुलीन ज्ञान और दृष्टि की विशिष्टता को प्राप्त नहीं कर सके। तो अब तुम विलासितापूर्ण जीवन जीकर, परिश्रम से विमुख होकर, धन-दौलत में लिप्त होकर, किसी कुलीन ज्ञान और दृष्टि की विशिष्टता को कैसे प्राप्त कर सकते हो?'

"जब यह कहा गया, तो मैंने पांच भिक्षुओं के समूह से उत्तर दिया, 'क्या आपको याद है कि मैंने इससे पहले कभी इस तरह से बात की है?'"

"'नहीं, भगवान।'"

"'हे भिक्षुओं, तथागत विलासितापूर्ण जीवन नहीं जी रहे हैं, उन्होंने अपने परिश्रम से विमुख नहीं हुए हैं, वे धन-दौलत में लिप्त नहीं हुए हैं। हे मित्रों, तथागत योग्य हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं। हे मित्रों, ध्यान से सुनो: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। उपदेशानुसार अभ्यास करने से तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में जन्म लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं, और इसे तुम स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।'

और इस प्रकार मैं उन्हें समझाने में सफल रहा। मैं दो भिक्षुओं को शिक्षा देता था जबकि तीन भिक्षा मांगने जाते थे, और हम छह लोग उन तीन भिक्षुओं द्वारा भिक्षा मांगने से लाए गए धन से अपना जीवन यापन करते थे। फिर मैं तीन भिक्षुओं को शिक्षा देता था जबकि दो भिक्षा मांगने जाते थे, और हम छह लोग उन दो भिक्षुओं द्वारा भिक्षा मांगने से लाए गए धन से अपना जीवन यापन करते थे। फिर पाँच भिक्षुओं का समूह—इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित और निर्देशित होकर—जन्म के बंधन में बंधे न रहने के, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम की खोज करते हुए, बंधन से मुक्त होकर, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम को प्राप्त कर लिया। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के अधीन होकर, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दुष्परिणामों को देखते हुए, वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम की खोज करते हुए, वे वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम को प्राप्त कर लिया। उनमें ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'बिना किसी उकसावे के हमारी मुक्ति है। यह अंतिम जन्म है। अब आगे कोई जन्म नहीं होगा।'

भिक्षुओं, कामुकता के ये पाँच सूत्र हैं। वे कौन से पाँच सूत्र हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्यारा, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। नाक से महसूस होने वाली सुगंध - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। जीभ से महसूस होने वाले स्वाद - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। शरीर से महसूस होने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। ये कामुकता के पाँच सूत्र हैं।

और जो भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे हों—इनमें आसक्त हों, पूरी तरह से इनके वश में हो गए हों, इनके दुष्परिणामों को देखे बिना या इनसे मुक्ति का मार्ग जाने बिना इनका उपभोग कर रहे हों—उन्हें दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई जंगली हिरण फंदों के ढेर पर बंधा पड़ा हो: उसे दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; शिकारी उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है। जब शिकारी आता है, तो वह अपनी इच्छा से बच नहीं सकता। उसी प्रकार, जो भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे हों—इनमें आसक्त हों, पूरी तरह से इनके वश में हो गए हों, इनके दुष्परिणामों को देखे बिना या इनसे मुक्ति का मार्ग जाने बिना इनका उपभोग कर रहे हों—उन्हें दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

लेकिन जो पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे नहीं हैं—इनसे आसक्त हैं, इन पर पूरी तरह मोहित नहीं हुए हैं, इनके दोषों को समझते हुए इनका उपभोग करते हैं और इनसे मुक्ति का मार्ग जानते हैं—उन्हें दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता। ठीक वैसे ही जैसे यदि कोई जंगली हिरण फंदों के ढेर पर बिना बंधे पड़ा हो: तो उसे दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; शिकारी उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता। जब शिकारी आएगा, तो वह अपनी मर्जी से भाग जाएगा। उसी प्रकार, जो पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे नहीं हैं—इनसे आसक्त हैं, इन पर पूरी तरह मोहित नहीं हुए हैं, इनके दोषों को समझते हुए इनका उपभोग करते हैं और इनसे मुक्ति का मार्ग जानते हैं—उन्हें दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता।

प्रथम ध्यान (प्रथम स्तर की समाधि)

मान लीजिए कि एक जंगली हिरण जंगल की घाटी में रहता है। वह बेफिक्र होकर चलता है, बेफिक्र होकर खड़ा होता है, बेफिक्र होकर बैठता है, बेफिक्र होकर लेटता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह शिकारी की पहुँच से बाहर चला गया है। 5 इसी प्रकार, एक भिक्षु—इंद्रिय सुखों से पूरी तरह विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त— प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है : विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी है और शैतान के लिए अदृश्य हो गया है।

द्वितीय ध्यान (द्वितीय स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है : शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

तीसरा ध्यान (तीसरे स्तर की समाधि)

फिर, जब ध्यान की अवस्था शांत हो जाती है, तो भिक्षु समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है , जिसके बारे में श्रेष्ठजनों का कहना है, 'समभाव में स्थिर और सचेत रहकर वह सुखमय अवस्था में रहता है।' कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। दृष्टिहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और राक्षस के लिए अदृश्य हो गया।

चौथा ध्यान (चौथा स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, सुख और तनाव का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर— चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है : समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

पांचवां ध्यान (पांचवां स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं की परवाह न करते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर हो जाता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना किसी मार्ग के, उसने मारा की दृष्टि को नष्ट कर दिया और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

छठा ध्यान (छठा स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना मार्ग दिखाए, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

सातवां ध्यान (सातवें स्तर की समाधि)

फिर भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता (शून्यता) के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना मार्ग दिखाए, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

आठवां ध्यान (आठवां स्तर का समाधि)

फिर वह भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है जहाँ न तो बोध होता है और न ही अबोध। कहा जाता है कि इसी भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

नौवां ध्यान (9वें स्तर का समाधि)

फिर वह भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और भाव के अंत में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। और, विवेक से यह देखकर, उसकी मानसिक हलचलें पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया। उस पार पहुँचकर, वह संसार से अनासक्त हो जाता है। वह निर्धन होकर चलता है, निर्धन होकर खड़ा होता है, निर्धन होकर बैठता है, निर्धन होकर लेटता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह शैतान की पहुँच से परे चला गया है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

सूत्र का अंत

उपयोगकर्ता द्वारा दी गई व्याख्याएँ:-

नोट-1: पहले ध्यान में, अंतर्मुखी एकाग्रता का अनुभव होता है, जिससे मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में तीव्र जागृति का अनुभव होता है। चौथे ध्यान तक, इसकी गुणवत्ता और तीव्रता में वृद्धि होती है। पाँचवें ध्यान में, चेतना शरीर से सभी दिशाओं में फैलती हुई प्रतीत होती है, जिसमें पृथ्वी, सौर मंडल, आकाशगंगा और यहाँ तक कि संपूर्ण ब्रह्मांड (भौतिक जगत के भीतर) भी समाहित हो जाता है। यह विशाल होती जाती है और अनंत अंतरिक्ष का अनुभव कराती है। छठे ध्यान में, इसकी गुणवत्ता और तीव्रता बढ़ती है। सातवें ध्यान में, शून्यता या शून्य का अनुभव होता है। आठवें ध्यान में, भौतिक ब्रह्मांड के प्रति उदासीनता का अनुभव होता है। अंत में, नौवें ध्यान में, फिर से अनंत, लेकिन पारलौकिक, अर्थात् भौतिक ब्रह्मांड से परे, एक तीव्र प्रज्वलित प्रकाश-शाश्वतता-निर्वाण के सागर में परिवर्तित होने जैसा अनुभव होता है, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं, कोई समय नहीं, सदा जीवित, सर्वव्यापी।

नोट-2: इस प्रक्रिया को समझने के लिए एक उदाहरण लें - आकाशगंगाओं की छपी हुई एक कागज़ की तस्वीर लें (अनंत अंतरिक्ष - पंचम ध्यान)। अब तस्वीर को इस तरह घुमाएँ कि उसका एक किनारा आपकी ओर हो, अब तस्वीर गायब हो जाती है - आपको केवल किनारा दिखाई देता है (शून्यता - सातवाँ ध्यान)। अंत में तस्वीर को पूरी तरह से पलट दें (पलट दें) ताकि अब आपको तस्वीर का पिछला भाग दिखाई दे, जो पूरी तरह से सफेद है (नौवाँ ध्यान), यानी शाश्वत प्रकाश का गहन सर्वव्यापी सागर - ज्ञानोदय।

नोट-3: ज्ञानोदय की अंतिम नौवीं अवस्था को समझने के लिए एक और उपमा विज्ञान द्वारा प्रस्तावित अंधकार ऊर्जा में विलीन होना है, जो हमारे चारों ओर व्याप्त प्रकाश के एक गहन सागर के समान है, लेकिन अदृश्य, अगोचर, इंद्रिय अनुभव से परे, अर्थात् प्रकृति में पारलौकिक लेकिन अद्वितीय। ज्ञानोदय और अंततः निर्वाण प्राप्त करने वाले सभी लोग इस अंतिम अवस्था में उसी प्रकार विलीन हो जाएंगे जैसे वर्षा की बूंदें समुद्र पर गिरकर समुद्र बन जाती हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.7 कुलहत्थिपदोपमा सुत्त(27)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2गुण
3इंद्रिय संयम
4जागरूकता और सतर्कता
5बाधाओं को त्यागना
6चार ध्यान

7तीन ज्ञान
सेटिंग
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय ब्राह्मण जानूस्सोनी दिनदहाड़े एक सफेद छत वाले रथ में सावत्थी से निकल रहे थे। उन्होंने दूर से आते हुए तीर्थयात्री पिलोतिक को देखा और उन्हें देखकर कहा, "गुरु वच्चायन दिनदहाड़े कहाँ से आ रहे हैं?"
"महोदय, मैं ध्यानमग्न गौतम के दर्शन के बाद यहाँ आया हूँ।"
"और एक बुद्धिमान व्यक्ति गौतम गौतम की विवेकशीलता के बारे में क्या सोचता है?"
"महोदय, मैं कौन होता हूँ जो गौतम जैसे चिंतनशील व्यक्ति की विवेकशीलता को जान सकूँ? क्या उनके समान होना ही उनकी विवेकशीलता को जानने का एकमात्र साधन नहीं होगा?"
"मास्टर वच्चायना ने गौतम ध्यानमग्न की भरपूर प्रशंसा की है!"
"महोदय, मैं कौन होता हूँ ध्यानमग्न गौतम की प्रशंसा करने वाला। उनकी प्रशंसा तो प्रशंसनीय लोगों द्वारा की जाती है, क्योंकि वे मनुष्य और दिव्य, दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ प्राणी हैं।"
"गुरु वच्चायना को ध्यानमग्न गौतम पर इतना अधिक विश्वास होने के क्या कारण हैं?"
"महोदय, मान लीजिए कि एक हाथी शिकारी किसी हाथी वन में प्रवेश करे और वहाँ उसे एक विशाल, लंबा और चौड़ा हाथी का पदचिह्न दिखाई दे। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ठीक उसी प्रकार, जब मैंने ध्यानमग्न गौतम के चार पदचिह्न देखे, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं, भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है, और भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।' वे चार कौन से थे?"
"एक ऐसा मामला है जहाँ मैं कुछ ऐसे महान योद्धाओं को देखता हूँ जो विद्वान, सूक्ष्म बुद्धि वाले, वाद-विवाद में निपुण और बाल की खाल निकालने वाले निशानेबाजों की तरह होते हैं। वे मानो इधर-उधर घूमते रहते हैं और अपने तर्क-वितर्क से दार्शनिक मतों को चकनाचूर कर देते हैं। उन्हें पता चलता है, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आएँगे।' वे इस प्रकार प्रश्न बनाते हैं: 'गौतम ध्यानमग्न के पास जाकर हम उनसे अपना यह प्रश्न पूछेंगे। यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे इस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का इस प्रकार खंडन करेंगे। और यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे उस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का उस प्रकार खंडन करेंगे।'
वे सुनते हैं, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आ रहे हैं।' वे उनके पास जाते हैं, और वे उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश देते हैं, प्रेरित करते हैं, जागृत करते हैं और प्रोत्साहित करते हैं। धम्म पर प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रेरणा, जागृति और प्रोत्साहन प्राप्त करने के बाद, वे उनसे अपना प्रश्न भी नहीं पूछते, तो भला वे उनका खंडन कैसे कर सकते थे? अंततः, वे उनके शिष्य बन जाते हैं। जब मैंने गौतम ध्यानमग्न में यह पहला पदचिह्न देखा, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'
फिर एक ऐसा मामला भी है जहां मैं कुछ ब्राह्मणों को देखता हूं...
"फिर एक ऐसा मामला भी है जहां मैं कुछ गृहस्थों को देखता हूं..."
फिर एक ऐसा मामला भी है जहाँ मैं कुछ ऐसे ध्यानमग्न लोगों को देखता हूँ जो विद्वान हैं, सूक्ष्म बुद्धि वाले हैं, वाद-विवाद में निपुण हैं, मानो बाल की खाल निकालने वाले निशानेबाज हों। वे मानो इधर-उधर घूमते रहते हैं और अपने तर्क-वितर्क से दार्शनिक मतों को चकनाचूर कर देते हैं। वे सुनते हैं, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आएँगे।' वे इस प्रकार प्रश्न बनाते हैं: 'गौतम ध्यानमग्न के पास जाकर हम उनसे अपना यह प्रश्न पूछेंगे। यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे इस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का इस प्रकार खंडन करेंगे। और यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे उस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का उस प्रकार खंडन करेंगे।'
"वे सुनते हैं, 'गौतम चिंतनशील व्यक्ति उस गांव या कस्बे में आ रहे हैं।'" वे उनके पास जाते हैं, और वे उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश देते हैं, प्रेरित करते हैं, उत्साह बढ़ाते हैं और प्रोत्साहित करते हैं। धम्म पर प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रेरणा, उत्साह और प्रोत्साहन प्राप्त करने के बाद, वे उनसे अपना प्रश्न भी नहीं पूछते, तो भला वे उनका खंडन कैसे कर सकते थे? दरअसल, वे उनसे गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने का अवसर मांगते हैं। वे उन्हें संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति देते हैं। वहाँ जाकर—एकाकी, एकांत, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ—वे थोड़े ही समय में पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और उसमें स्थिर हो जाते हैं, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में गृहस्थ जीवन में संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं वर्तमान क्षण में जान और अनुभव कर लेते हैं। वे कहते हैं, 'हम खो जाने के कितने करीब थे! हम खो जाने के कितने करीब थे! पहले, यद्यपि हम ध्यानी नहीं थे, फिर भी हम ध्यानी होने का दावा करते थे। यद्यपि हम ब्राह्मण नहीं थे, फिर भी हम ब्राह्मण होने का दावा करते थे। यद्यपि हम हम अरहंत नहीं थे, हम खुद को अरहंत होने का दावा करते थे। लेकिन अब हम ध्यानमग्न हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अरहंत हैं।'
जब मैंने गौतम ध्यानमग्न के शरीर पर यह चौथा पदचिह्न देखा, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्मजागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'
यह सुनकर ब्राह्मण जानूस्सोनी अपने पूर्णतः सफेद छत वाले रथ से नीचे उतरे और अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान बुद्ध की ओर श्रद्धापूर्वक हाथ फैलाकर तीन बार यह उद्घोषणा की:
"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"

"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"
"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"
"क्या मुझे कभी न कभी गुरु गौतम से मिलने का अवसर मिल सकता है! क्या कुछ बातचीत हो सकती है!"
तब ब्राह्मण जानूस्सोनी भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन किया। अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को तीर्थयात्री पिलोतिक के साथ हुई अपनी सारी बातचीत सुनाई। जब उनकी बातचीत समाप्त हुई, तो भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे ब्राह्मण, हाथी के पदचिह्न वाली उपमा इतनी विस्तृत नहीं है। यह किस प्रकार विस्तृत है, इस विषय पर ध्यान से सुनो। मैं आगे बताऊंगा।"
"जैसा आप कहें, महोदय," ब्राह्मण जानूसोनिन ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा: "मान लीजिए कि एक हाथी शिकारी किसी हाथी वन में प्रवेश करे और वहाँ उसे एक विशाल, लंबा और चौड़ा हाथी का पदचिह्न दिखाई दे। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथी वन में बौनी मादा हाथी भी होती हैं जिनके पैर बड़े होते हैं। हो सकता है कि वह पदचिह्न उन्हीं में से किसी एक का हो।"
तो वह उसका पीछा करता है और हाथियों के जंगल में एक विशाल हाथी का पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, और ऊपर की ओर कुछ खरोंच के निशान भी हैं। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथियों के जंगल में लंबी मादा हाथी भी होती हैं जिनके दाँत उभरे हुए और पैर बड़े होते हैं। हो सकता है कि यह पदचिह्न उनमें से किसी एक का हो।
तो वह उसका पीछा करता है और हाथी के जंगल में एक विशाल हाथी का पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, और उस पर कुछ खरोंच के निशान और दांतों के गहरे घाव हैं। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथी के जंगल में लंबे कद की मादा हाथी भी होती हैं जिनके दांत और बड़े पैर होते हैं। हो सकता है कि यह पदचिह्न उनमें से किसी एक का हो।
"तो वह उसका पीछा करता है और हाथी के जंगल में एक विशाल हाथी के पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, जिस पर कुछ खरोंच के निशान और दांतों के गहरे घाव हैं और कुछ टूटी हुई शाखाएँ हैं। और वह उस नर हाथी को पेड़ के नीचे या खुले मैदान में चलते, खड़े, बैठे या लेटे हुए देखता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है, 'यही वह विशाल नर हाथी है।'"
"इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, एक ऐसा मामला है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट स्वरूपों और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"
"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"
"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण
जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।
"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"
"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"
वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।
विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर

दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।
"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"
"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"
वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।
वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।
वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।
वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।
वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।
वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।
वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।
वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।
वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।
वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।
"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

इंद्रिय संयम
जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

जागरूकता और सतर्कता
आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना
"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"
संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पांच बाधाओं - विवेक को कमजोर करने वाली जागरूकता की अपूर्णताओं - का त्याग करने के बाद, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: विरक्ति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है।"

"हे ब्राह्मण, इसे तथागत का पदचिह्न, तथागत का खरोंच चिह्न, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, परन्तु श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी तक इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्मजागृत हैं; भगवान ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त जागरूकता की एकाग्रता - आंतरिक आश्वासन।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजनों ने कहा है, 'समभाव में और सचेत रहते हुए, वह सुखमय अवस्था में रहता है।'

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के गायब होने के साथ - वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है।3 वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए,] 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। विदा होकर..." उस अवस्था से मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'
इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'
"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है। श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है, लेकिन वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'
इस प्रकार ज्ञान और दृष्टि से उसका हृदय इंद्रिय सुख, कर्म और अज्ञान के मंथन से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'
इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, और यहीं पर श्रेष्ठजनों के एक शिष्य ने यह निष्कर्ष निकाला है: 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'
यह सुनकर ब्राह्मण जानूस्सोनी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान! हे महान! जिस प्रकार कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, भटके हुए को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं भगवान बुद्ध की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.8महाहत्थिपदोपमा सुत्त(28)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1सेटिंग
2पृथ्वी का गुणधर्म
3तरल गुण
4आग संपत्ति
5पवन संपत्ति
6अंतरिक्ष संपत्ति
7आश्रित सह-उत्पत्ति

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्र भिक्षुओं!"
"जी हां, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
आदरणीय सारिपुत्त ने कहा: "मित्रों, जिस प्रकार सभी पैरों वाले जानवरों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित होते हैं और आकार के मामले में हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ माना जाता है; उसी प्रकार, सभी कुशल गुण चार आर्य सत्यों के अंतर्गत एकत्रित होते हैं। वे कौन से चार हैं? तनाव के आर्य सत्य के अंतर्गत, तनाव की उत्पत्ति के आर्य सत्य के अंतर्गत, तनाव के निवारण के आर्य सत्य के अंतर्गत और तनाव निवारण की ओर ले जाने वाले अभ्यास के आर्य सत्य के अंतर्गत।"
और तनाव का महान सत्य क्या है? जन्म तनावपूर्ण है, वृद्धावस्था तनावपूर्ण है, मृत्यु तनावपूर्ण है; शोक, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा तनावपूर्ण हैं; अपनों से संबंध तनावपूर्ण है, प्रियजनों से वियोग तनावपूर्ण है, मनचाही चीज न मिलना तनावपूर्ण है। संक्षेप में,

पाँचों आसक्ति तनावपूर्ण हैं। और वे पाँच कौन सी हैं? रूप आसक्ति, भावना आसक्ति, बोध आसक्ति, कल्पना आसक्ति और चेतना आसक्ति।
और आसक्ति से ग्रस्त रूप क्या है? चार महान सत्ताएँ और उनसे उत्पन्न रूप। और वे चार महान सत्ताएँ क्या हैं? पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु।

पृथ्वी का गुणधर्म
पृथ्वी गुण क्या है? पृथ्वी गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक पृथ्वी गुण कौन सा है? जो कुछ भी आंतरिक रूप से, अपने भीतर कठोर, ठोस और [लालसा से पोषित] है: सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, पेट की सामग्री, मल, या जो कुछ भी आंतरिक रूप से, अपने भीतर कठोर, ठोस और पोषित है: इसे आंतरिक पृथ्वी गुण कहते हैं। अब आंतरिक पृथ्वी गुण और बाह्य पृथ्वी गुण दोनों ही केवल पृथ्वी गुण हैं। और इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखता है, तो वह पृथ्वी गुण से विरक्त हो जाता है और मन को पृथ्वी गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।
"अब एक समय आता है, मित्रों, जब बाह्य द्रव गुण उत्तेजित हो जाता है, और उस समय बाह्य पृथ्वी गुण लुप्त हो जाता है। अतः जब बाह्य पृथ्वी गुण में भी—जो इतना विशाल है—अस्थिरता, नश्वरता, क्षय की प्रवृत्ति, परिवर्तनशीलता दिखाई देगी, तब इस क्षणभंगुर शरीर में, जो आसक्ति से पोषित है, 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"
"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, पृथ्वी के गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"
और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि 'यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, "भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।" इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।'
और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'
लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

तरल गुण
द्रव गुण क्या है? द्रव गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक द्रव गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक रूप से स्वयं से संबंधित है, द्रव, जलमय और स्थिर है: पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों का द्रव, मूत्र, या जो कुछ भी आंतरिक रूप से स्वयं के भीतर द्रव, जलमय और स्थिर है: इसे आंतरिक द्रव गुण कहते हैं। अब आंतरिक द्रव गुण और बाह्य द्रव गुण दोनों ही वास्तव में द्रव गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह द्रव गुण से विरक्त हो जाता है और मन को द्रव गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।
"अब एक समय आता है, मित्रों, जब बाहरी तरल पदार्थ का प्रकोप होता है और वह गाँव, कस्बा, शहर, ज़िला और देश को बहा ले जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सौ मील, दो सौ... तीन सौ... चार सौ... पाँच सौ... छह सौ... सात सौ मील नीचे चला जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सात ताड़ के पेड़ों जितना गहरा, छह... पाँच... चार... तीन... दो ताड़ के पेड़ों जितना गहरा, एक ताड़ के पेड़ जितना गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सात फ़ैदम जितना गहरा, छह...

पाँच... चार... तीन... दो फ़ैदम जितना गहरा, एक फ़ैदम जितना गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी आधा फ़ैदम, कमर तक, घुटने तक, टखने तक गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी उंगली के पहले जोड़ की गहराई तक भी नहीं रह जाता है।"

"तो जब बाह्य तरल स्वरूप में भी—जो इतना विशाल है— अस्थिरता, नश्वरता, क्षय की प्रवृत्ति, परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देगी, तब इस क्षणभंगुर शरीर में, जो आसक्ति से पोषित है, 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, इस (तरल) गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि 'यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, "भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।" इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।'

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

आग संपत्ति

और अग्नि गुण क्या है? अग्नि गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक अग्नि गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक है, जो स्वयं से संबंधित है, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर है: जिससे शरीर को गर्मी मिलती है, वृद्धावस्था होती है और बुखार से क्षीण होता है; और जिससे खाया, पिया, चबाया और स्वाद लिया गया भोजन ठीक से पचता है, या जो कुछ भी आंतरिक है, जो स्वयं के भीतर है, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर है: इसे आंतरिक अग्नि गुण कहते हैं। अब आंतरिक अग्नि गुण और बाह्य अग्नि गुण दोनों ही केवल अग्नि गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह अग्नि गुण से विरक्त हो जाता है और मन को अग्नि गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।

"अब एक समय ऐसा आता है, मित्रों, जब बाहरी आग भड़क उठती है और गाँव, कस्बे, शहर, ज़िले और देश को भस्म कर देती है; और फिर, किसी हरे-भरे ज़िले के किनारे, सड़क के किनारे, पथरीले ज़िले के किनारे, पानी के किनारे या किसी हरे-भरे, सिंचित क्षेत्र के किनारे पहुँचकर, पोषण की कमी से बुझ जाती है। एक समय ऐसा आता है जब लोग पंख की हड्डी और नस के टुकड़ों का उपयोग करके आग जलाने का प्रयास करते हैं।"

"तो जब बाह्य अग्नि के इतने विशाल स्वरूप में भी अस्थिरता, विनाशशीलता, क्षय की प्रवृत्ति और परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो आसक्ति से पोषित इस क्षणभंगुर शरीर में 'मैं', 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, अग्नि गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि ‘यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, “भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।” इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।’

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

पवन संपत्ति

और वायु गुण क्या है? वायु गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक वायु गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक है, स्वयं से संबंधित है, वायु है, पवनमय है और निरंतर है: ऊपर की ओर जाने वाली वायु, नीचे की ओर जाने वाली वायु, पेट में वायु, आंतों में वायु, शरीर में प्रवाहित होने वाली वायु, श्वास-प्रश्वास, या जो कुछ भी आंतरिक है, स्वयं के भीतर, वायु है, पवनमय है और निरंतर है: इसे आंतरिक वायु गुण कहते हैं। अब आंतरिक वायु गुण और बाह्य वायु गुण दोनों ही केवल वायु गुण हैं। और इसे सही विवेक के साथ यथावत देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक के साथ यथावत देखता है, तो वह वायु गुण से विरक्त हो जाता है और मन को वायु गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।

"अब एक समय ऐसा आता है, मित्रों, जब बाहरी हवा का प्रकोप होता है और वह गाँव, कस्बे, शहर, ज़िले और देश को उड़ा ले जाती है। एक समय ऐसा आता है, जब गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, लोग पंखे या धौंकनी से हवा लाने की कोशिश करते हैं, और छप्पर की छत के किनारे की घास भी नहीं हिलती।"

"तो जब बाह्य वायु के विशाल स्वरूप में भी अस्थिरता, विनाशशीलता, क्षय की प्रवृत्ति और परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो आसक्ति से पोषित इस क्षणभंगुर शरीर में 'मैं', 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, वायु के गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि ‘यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, “भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।” इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।’

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

अंतरिक्ष संपत्ति
"मित्रों, जिस प्रकार लकड़ी, लताओं, घास और मिट्टी पर निर्भर होकर स्थान को घेरकर 'घर' कहा जाता है, उसी प्रकार जब हड्डियों, टेंडनों, मांसपेशियों और त्वचा पर निर्भर होकर स्थान को घेरकर 'रूप' कहा जाता है।"

आश्रित सह-उत्पत्ति
"यदि आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है, परन्तु बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में नहीं आते, और न ही कोई संगति है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। यदि आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है और बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में आते हैं, परन्तु कोई संगति नहीं है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। परन्तु जब आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है और बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में आते हैं, और संगति है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट होती है।"
"इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसका रूप आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होता है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी भावना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी बोधिता आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी रचनाएँ रचना-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती हैं। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी चेतना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। व्यक्ति यह समझता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रकार इन पाँच आसक्ति-समूहों का एकत्रीकरण, मिलन और अभिसरण होता है।' अब, भगवान ने कहा है, "जो कोई भी आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है, वह धम्म को देखता है; जो कोई धम्म को देखता है, वह आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है। और ये पाँच आसक्ति समूह आश्रित सह-उत्पत्ति से उत्पन्न हुए हैं। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति कोई भी इच्छा, आलिंगन, लगाव और पकड़ तनाव का कारण है। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति इच्छा और जुनून को वश में करना, इच्छा और जुनून का त्याग करना तनाव का निवारण है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने महान कार्य संपन्न किया है।
"अब अगर कान के अंदरूनी हिस्से सही सलामत हैं..."
"अब अगर नाक आंतरिक रूप से सही सलामत है..."
"अब अगर जीभ आंतरिक रूप से अक्षुण्ण है..."
"अब अगर शरीर आंतरिक रूप से अक्षुण्ण है..."
"यदि आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो, परन्तु बाह्य रूप से विचार अभिगम में न आएं, और न ही उनसे संबंधित कोई जुड़ाव हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। यदि आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो और बाह्य रूप से विचार अभिगम में आएं, परन्तु उनसे संबंधित कोई जुड़ाव न हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। परन्तु जब आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो और बाह्य रूप से विचार अभिगम में आएं, और उनसे संबंधित जुड़ाव हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट होती है।"
"इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसका रूप आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होता है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी भावना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी बोधिता आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी रचनाएँ रचना-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती हैं। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी चेतना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। व्यक्ति यह समझता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रकार इन पाँच आसक्ति-समूहों का एकत्रीकरण, मिलन और अभिसरण होता है।' अब, भगवान ने कहा है, "जो कोई भी आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है, वह धम्म को देखता है; जो भी धम्म को देखता है, वह आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है। और ये पाँच आसक्ति समूह आश्रित सह-उत्पत्ति से उत्पन्न हुए हैं। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति कोई भी इच्छा, आलिंगन, लगाव और पकड़ तनाव का कारण है। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति इच्छा और जुनून को वश में करना, इच्छा और जुनून का त्याग करना तनाव का निवारण है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने महान कार्य संपन्न किया है।
यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही थी। भिक्षुओं को पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.9महासरोपामा सुत्त(29)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक समय भगवान राजगृह में गिद्ध शिखर पर निवास करते थे। देवदत्त द्वारा तपस्वियों (समना) के समुदाय को छोड़ने के कुछ ही समय बाद, भगवान ने देवदत्त के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया।

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता है और सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, चिंता और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ, जबकि केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार प्रस्थान करके, वह लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर, उसकी आकांक्षाएँ इसी लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि से पूर्ण हो जाती हैं। वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों को नीचा दिखाता है। वह कहता है, 'मुझे आतिथ्य प्राप्त हुआ है, ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।'" वह उस लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के कारण मदहोश और लापरवाह हो जाता है और दुःख में डूबा रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता है और लकड़ी से लदे पेड़ के पास पहुँचकर उसकी छाल, टहनियों और पत्तियों को अनदेखा कर देता है और उन्हें यह सोचकर तोड़कर ले जाता है, 'यही तो लकड़ी है।'

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग से युक्त एक खड़े पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग, छाल और शाखाओं को अनदेखा कर रहा है। उसने शाखाओं और पत्तियों को काटकर यह सोचकर ले गया है कि वही भीतरी भाग है। भीतरी भाग के साथ उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।'"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक कुल का पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। वह यह सोचते हुए तपस्वी (समना) बन जाता है, "मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ" और कहता है, "केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।" वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों को यह कहते हुए निंदा करता है, "मैंने आतिथ्य सत्कार प्राप्त किया है। ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।" इस प्रकार वह उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण मदहोश और लापरवाह हो जाता है और अप्रियता (दुक्खा) में जीवन व्यतीत करता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, "भिक्षु ने टहनियों और पत्तों के बीच पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।"

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित है, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता है और सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ।' वह कहता है, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी उसकी आकांक्षाएँ उस लाभ, मान-सम्मान और यश से पूर्ण नहीं होतीं। वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होता है, और वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। सद्‌गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर, और इससे उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण होने पर, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, 'मेरे सद्‌गुण शुद्ध हैं, ये दूसरे दुष्ट हैं।'" वह मदमस्त और लापरवाह हो जाता है और अप्रियता में लिप्त रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता है, और जब उसे लकड़ी से युक्त कोई खड़ा पेड़ मिलता है, तो वह लकड़ी और उपशाखा को अनदेखा कर देता है। वह शाखाओं को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी लकड़ी के भीतरी भाग, छाल, टहनियों, डालियों या पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए यह आदमी, जिसे लकड़ी की आवश्यकता है, उसकी खोज में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है; लेकिन उसने भीतरी भाग, छाल और छाल को अनदेखा कर दिया है। वह डालियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वे भीतरी भाग हैं। उसे भीतरी भाग से जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक कुल के पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं। वे तपस्वी (समना) बनकर यह सोचते हैं, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहते हैं, 'कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत का ज्ञान कराते हैं।' इस प्रकार त्याग करने के बाद उनका पुनर्जन्म लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ होता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वे न तो अपनी प्रशंसा करते हैं और न ही दूसरों की निंदा करते हैं। वे सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेते हैं। सद्‌गुणों का पालन करने और उससे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वे अपनी प्रशंसा

करते हैं और दूसरों की निंदा करते हुए कहते हैं, 'मेरे सद्‌गुण शुद्ध हैं, ये दूसरे दुष्ट और निर्गुण हैं।' नशे में लीन और लापरवाह होकर वह दुःख (दुक्खा) में लीन हो जाता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने अंगों के बीच पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक कुल के पुत्र का वर्णन है जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। तपस्वी (समना) बनकर वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ; केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत का ज्ञान कराते हैं।' इस प्रकार त्याग करने के बाद उसका पुनर्जन्म लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ होता है। इससे संतुष्ट होकर भी, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह इस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह। वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी, सद्‌गुणों के वरदान से उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होतीं, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। मदहोश न होकर भी, वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर भी, ध्यानमग्नता के वरदान से उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण होती हैं, वह वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, 'मैं एक ही बिंदु पर ध्यानमग्न रहता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु विचलित मनों में उलझे रहते हैं।' ध्यानमग्न होने की इस वरदान के कारण वह मदहोश और लापरवाह होकर अप्रियता में लीन रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता रहता है, और जब वह लकड़ी से युक्त पेड़ के पास पहुँचता है, तो वह लकड़ी और छाल को अनदेखा करके उसकी छाल काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग वाले पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग और छाल को अनदेखा कर रहा है और उसे यह सोचकर ले जा रहा है कि 'यह भीतरी भाग है।' भीतरी भाग के साथ उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

"भिक्षुओं, इसी प्रकार, अपने कुल का कोई पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी (समना) बन जाता और सोचता, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' वह कहता, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।'" इस प्रकार प्रस्थान करने पर वह लाभ, मान-सम्मान और यश में पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। सद्‌गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर और सद्‌गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। ध्यानमग्नता के वरदान से संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करते हुए कहता है, 'मेरा ध्यान एक ही बिंदु पर केंद्रित है, अन्य भिक्षुओं का मन विचलित है।' ध्यानमग्नता के वरदान से मदहोश और लापरवाह होकर वह दुःख में लीन रहता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने नौका में पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुलवासी का पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता था, यह सोचते हुए कि 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहता था, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के समूह के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेने के बाद, वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है, और उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, सद्‌गुणों का पालन करने का परिश्रमपूर्वक संकल्प लेता है। सद्‌गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर, और सद्‌गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। संतुष्ट होकर और ध्यानमग्नता के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर वह ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति का संकल्प लेता है। संतुष्ट होकर और ज्ञान और दृष्टि के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करते हुए कहता है, 'मैं ज्ञान और दृष्टि में स्थिर रहता हूँ। अन्य भिक्षु न तो ज्ञान में स्थिर रहते हैं और न ही दृष्टि में।' ज्ञान और दृष्टि के वरदान से मदहोश और लापरवाह होकर वह अप्रियता में ही लीन रहता था। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता रहता है, और जब उसे लकड़ी से युक्त कोई खड़ा पेड़ मिलता है, तो वह लकड़ी को अनदेखा करके उसके बाहरी भाग को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही असली लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ नहीं जानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग वाले पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग को अनदेखा करते हुए,

भीतरी भाग को काट रहा है और यह सोचकर उसे ले जा रहा है कि 'यह भीतरी भाग है।' भीतरी भाग से उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, कुल के किसी पुत्र को जन्म, क्षय और मृत्यु का कष्ट सहते हुए, आस्थावश गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी (सन्यासी) बनना पड़ता है। वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहता है, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी, यदि उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण न हों, तो वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, सद्गुणों से संपन्न होकर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। नशे में चूर न होकर और लापरवाही न बरतते हुए वह ज्ञान और दृष्टि के विकास का दायित्व स्वयं पर लेता। संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह सोचता, 'मैं ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण रहता हूँ, ये अन्य भिक्षु न तो ज्ञान से परिपूर्ण रहते हैं और न ही दृष्टि से।' ज्ञान और दृष्टि के वरदान से मदहूस और लापरवाह होकर वह दुःख में लीन रहता। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन गया। वह सोचता था, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ।' वह कहता था, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर, और उस लाभ, मान-सम्मान और यश से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर, और सद्गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर, और ध्यानमग्नता के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह अपनी प्रशंसा नहीं करता है।" न तो नशे में चूर होकर और न ही लापरवाही बरतते हुए वह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त करने का संकल्प लेगा। इससे संतुष्ट होकर और ज्ञान और दृष्टि के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करेगा और न ही दूसरों की निंदा करेगा। ज्ञान और दृष्टि के वरदान से नशे में चूर होकर और न ही लापरवाही बरतते हुए वह मन की शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने का संकल्प लेगा।

भिक्षुओं, यह संभव नहीं है कि कोई भिक्षु मन की शाश्वत मुक्ति से विमुख हो जाए। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है और उसे काटकर ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी है। एक ज्ञानी व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को जानता है। इसलिए यह व्यक्ति, जिसे लकड़ी की आवश्यकता है, लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है और उसे काटकर ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी है। लकड़ी से उसे जो भी कार्य करना हो, वह उसी उद्देश्य से आएगा।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, कुल के किसी व्यक्ति का पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। तपस्वी (समना) बनकर वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' वह कहता है, 'कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश में पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को इस लाभ, मान-सम्मान और यश से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को सद्गुणों से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदमस्त होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को ध्यानमग्नता से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदमस्त होकर और न ही लापरवाह होकर वह ज्ञान और दृष्टि का विकास करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को ज्ञान और दृष्टि से पूर्ण न होने पर वह मन की शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने का संकल्प लेता है। भिक्षुओं, यह संभव नहीं है कि भिक्षु मन की शाश्वत मुक्ति से विमुख हो जाए।

इसलिए, हे भिक्षुओं, पवित्र जीवन लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के लिए नहीं, सद्गुणों की प्राप्ति के लिए नहीं, ध्यानमग्नता की प्राप्ति के लिए नहीं, ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति के लिए नहीं जिया जाता। हे भिक्षुओं, पवित्र जीवन का सार और उद्देश्य मन की अविचल मुक्ति है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.10कुलसरोपामा सुत्त(30)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब ब्राह्मण पिंगालकोच्च भगवान बुद्ध के पास आए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ये संन्यासी और ब्राह्मण, अपने अनुयायियों और शिष्यों के गुरुओं के साथ, प्रसिद्ध मार्गदर्शक हैं। ये परम पूज्य पुराण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चायना, संजय बेलातुत्तपुत्त और निगंत नातपुत्त हैं। आदरणीय महोदय, क्या इन सभी ने अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः प्राप्त किया या नहीं? या ऐसा है कि कुछ ने प्राप्त किया और कुछ ने नहीं? ब्राह्मण, चाहे इन सभी ने अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः प्राप्त किया हो या नहीं, या कुछ ने प्राप्त किया और कुछ ने नहीं, इस विषय को छोड़ दें। मैं इसका उपदेश दूंगा, कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।" ब्राह्मण पिंगालकोच्चा सहमत हो गए और भगवान ने कहा:

ब्राह्मण, लकड़ी की खोज में भटकते हुए व्यक्ति की तरह, किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, और वह लकड़ी, छाल, टहनियों और शाखाओं को अनदेखा करके, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि यह लकड़ी है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, और लकड़ी, छाल, टहनियों और शाखाओं को अनदेखा करके, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि यह लकड़ी है। जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह लकड़ी, छाल और उपशामक भाग को अनदेखा कर देता है और शाखाओं को काटकर यह सोचकर ले जाता है कि यह लकड़ी है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, शाखाओं, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, लेकिन वह लकड़ी, छाल और उपशामक भाग को अनदेखा करके शाखाओं को काटकर यह सोचकर ले जाता है कि यह लकड़ी है; जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह लकड़ी से भरे एक विशाल वृक्ष के पास आता है। वह लकड़ी और तने को अनदेखा कर देता है और छाल काटकर उसे लकड़ी समझकर ले जाता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति लकड़ी, तने, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह लकड़ी से भरे एक विशाल वृक्ष के पास आया है, उसने लकड़ी और तने को अनदेखा कर दिया है, छाल काटकर उसे लकड़ी समझकर ले जा रहा है। जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी खोजी है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति वृक्ष की भीतरी लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें भीतरी लकड़ी होती है। वह भीतरी लकड़ी को अनदेखा कर देता है और उसके बाहरी आवरण को काटकर उसे भीतरी लकड़ी समझकर ले जाता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति भीतरी लकड़ी, बाहरी आवरण, छाल, कोंपल, शाखाएँ और पत्तियाँ नहीं जानता। वह भीतरी लकड़ी की खोज में भटकता हुआ, एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें भीतरी लकड़ी होती है, लेकिन भीतरी लकड़ी को अनदेखा करके बाहरी आवरण को काटकर उसे भीतरी लकड़ी समझकर ले जाता है। जिस उद्देश्य से उसने भीतरी लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है और वह उसे काटकर अपने साथ ले जाता है, यह जानते हुए कि यह लकड़ी ही है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता, "यह भला व्यक्ति

लकड़ी, छाल, कोंपल, शाखाएँ और पत्तियाँ सब जानता है। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आया है जिसमें लकड़ी है, उसने लकड़ी काट ली है और उसे अपने साथ ले जा रहा है, यह जानते हुए कि यह लकड़ी ही है; जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी खोजी थी, वह पूरा हो जाएगा।"

ब्राह्मणों में से कोई व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर, आस्था के कारण यह सोचकर घर-बार त्याग देता है कि वह जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ है। केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार त्याग कर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, "मैं आतिथ्य सत्कार का लाभ उठाने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।" वह लाभ, मान-सम्मान और यश से अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि या प्रयास नहीं करता और आसक्त एवं आलसी बना रहता है।

जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह उसकी लकड़ी, छाल, तने और शाखाओं को अनदेखा करते हुए, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस भी उद्देश्य से हो, वह उस उद्देश्य से नहीं आया है। मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ब्राह्मण के समान है।

ब्राह्मणों में से कोई व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है, यह सोचकर कि मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ हूँ। केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार निकलकर, वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। वह न तो इससे संतुष्ट होता है और न ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, न ही अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान-सम्मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि रखता है और प्रयास करता है। न तो आसक्त होकर और न ही आलसी होकर, वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, मैं गुणी हूँ, ये अन्य भिक्षु पापमय हैं। वह सद्गुणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि नहीं रखता और न ही प्रयास करता है।

जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी तो होती है, लेकिन वह उसकी छाल, तने और छाल को अनदेखा कर देता है। वह उसकी शाखाओं को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस भी उद्देश्य से हो, वह उसके लिए नहीं आता। ब्राह्मण, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उसी ब्राह्मण के समान है।

ब्राह्मण, एक व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है। वह सोचता है कि मैं जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ हूँ। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार निकलकर, वह लाभ, मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। न तो इससे संतुष्ट होकर और न ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जगाता है और प्रयास करता है। न तो आसक्त होकर और न ही आलसी होकर, वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जगाता है और एकाग्रता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर, वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। मैं एक बिंदु पर मन से एकाग्र हूँ। ये दूसरे भिक्षु एकाग्र नहीं हैं, बल्कि विचलित हैं। वे एकाग्रता से भी श्रेष्ठ किसी गुण को प्राप्त करने के लिए न तो रुचि जगाते हैं और न ही प्रयास करते हैं, तथा आसक्ति और आलस्य में लीन रहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता हुआ एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह उसकी लकड़ी और उपशाखा को अनदेखा करते हुए उसकी छाल काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस उद्देश्य से हो, वह उस उद्देश्य से नहीं आता। हे ब्राह्मण, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उसी के समान है।

ब्राह्मण वंश का कोई व्यक्ति गृहस्थी छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है, यह सोचकर कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ है। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट न होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर भी वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान-सम्मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और न तो आसक्त होता है और न ही आलसी। वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों के वरदान से

कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और प्रयास करता है। वह एकाग्रता का वरदान ग्रहण करता है। एकाग्रता के वरदान से संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह एकाग्रता के वरदान से कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और प्रयास करता है। वह न तो मोह में डूबा रहता है और न ही आलस्य में, ज्ञान और दृष्टि के वरदान को ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर भी वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह ज्ञान और दृष्टि के वरदान से भी अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जागृत करता है और प्रयास करता है, तथा न तो मोह में डूबा रहता है और न ही आलस्य में।

ब्राह्मण, ज्ञान और दृष्टि से बढ़कर श्रेष्ठ और क्या हो सकता है? यहाँ ब्राह्मण, भिक्षु, इंद्रिय-वासनाओं और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है। ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से बढ़कर श्रेष्ठ और श्रेष्ठ है।

हे ब्राह्मण, भिक्षु विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, आंतरिक रूप से शांत होकर, एकाग्र मन से आनंद और प्रसन्नता के साथ एकाग्रता से दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है। हे ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

हे ब्राह्मण, जो भिक्षु समभाव, आनंद और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक रहते हुए शरीर से सुख का अनुभव करते हैं, वे तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। श्रेष्ठ जन इसे समभाव के साथ सुख में लीन रहना कहते हैं। यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

हे ब्राह्मण, जो भिक्षु सुख और दुःख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुःख को दूर कर चुके थे, वे सुख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर, चौथे ध्यान में निवास करते हैं। हे ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और पवित्र है।

हे ब्राह्मण, जो पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश को प्राप्त कर आकाश के क्षेत्र में निवास करते हैं। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर से, हे ब्राह्मण, वह भिक्षु जो असीम चेतना के साथ अंतरिक्ष के सभी क्षेत्रों को पार कर जाता है, चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर भिक्षु चेतना के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर भिक्षु ने निरर्थकता के सभी क्षेत्रों को पार करते हुए, न-बोध-न-बोध के क्षेत्र में निवास किया। ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर है।

फिर भिक्षु सभी न-बोध और न-बोध के क्षेत्रों को पार करते हुए, संवेदनाओं और अनुभूतियों के निर्वाह में लीन हो जाता है। इस ज्ञान से उसकी इच्छाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

ब्राह्मण, लकड़ी की तलाश में भटकते हुए जब किसी विशाल वृक्ष के पास पहुँचता है जिसमें लकड़ी होती है, तो वह उसे काटकर अपने साथ ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी उसकी असली लकड़ी है। वह जिस भी उद्देश्य से उस लकड़ी को खोज रहा हो, उसी उद्देश्य से वह आया होगा। मेरा कहना है कि यह व्यक्ति उसी के समान है।

हे ब्राह्मण, यह पवित्र जीवन यश और यश प्राप्त करने के लिए नहीं, सद्गुणों की प्राप्ति के लिए नहीं, एकाग्रता की प्राप्ति के लिए नहीं, और न ही ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति के लिए है। हे ब्राह्मण, यह मन की अविचल मुक्ति के लिए है। यही पवित्र जीवन का सार है, यही पवित्र जीवन का मूल तत्व और लक्ष्य है।

यह सुनकर ब्राह्मण पिंगालकोच्चा ने भगवान बुद्ध से कहा, हे गौतम, मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज को फिर से स्थापित किया जा रहा हो, कोई ढकी हुई चीज को प्रकट किया जा रहा हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। या जैसे अंधेरे में चीजों को देखने वालों के लिए तेल का दीपक जलाया जा रहा हो। इस प्रकार, हे गौतम ने शिक्षा को अनेक तरीकों से

समझाया है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। हे गौतम, आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में स्वीकार करें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.1 कुलगोसिंगा सुत्त(31)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान नादिका में एक ईंट के घर में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य अनुराधा, नंदीय और किंबिला राजा द्वारा उपहार में दिए गए गोसिंगा साला वन में निवास कर रहे थे। शाम को भगवान एकांतवास से उठकर साला वन की ओर चल पड़े। वनपाल ने दूर से भगवान को आते देखा और कहा, हे संन्यासी, इस वन में प्रवेश न करें। यहाँ कुल के तीन पुत्र अपने कल्याण की तलाश में निवास कर रहे हैं, उन्हें परेशान न करें। पूज्य अनुराधा ने वनपाल और भगवान के बीच यह बातचीत सुनी और वनपाल से कहा, भगवान को मत रोको, वे हमारे गुरु, भगवान हैं। पूज्य अनुराधा ने पूज्य नंदीय और किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, आओ! पूज्यजनों, हमारे गुरु आ गए हैं। तब पूज्य अनुराधा, नंदीय और किंबिला भगवान के पास गए और उनसे पान और वस्त्र ग्रहण किए। एक ने आसन तैयार किया और दूसरे ने पैर धोने के लिए जल दिया। भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठे और अपने पैर धोए। वे पूजनीय लोग भगवान बुद्ध की पूजा करते हुए एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुराधा से कहा: अनुराधा, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन की कमी के कारण कोई थकान है? आदरणीय, हम ठीक हैं, हमें भोजन की कमी के कारण कोई थकान नहीं है। अनुराधा, क्या तुम दूध और पानी की तरह एक-दूसरे से जुड़े हुए और बिना किसी विवाद के मित्रवत हो, और क्या तुम एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो? आदरणीय, हम दूध और पानी की तरह एक हैं, मित्रवत हैं, बिना किसी विवाद के, और एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हैं। अनुराधा, तुम दूध और पानी की तरह एक कैसे रहते हो, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए? आदरणीय, मेरे मन में यह विचार आता है कि मेरे लिए यह लाभ है कि मैं ऐसे सहपाठियों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करता हूँ। इसलिए मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। इन आदरणीयों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। इन पूजनीय व्यक्तियों के प्रति प्रेम और दया की भावना रखते हुए, कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लेता हूँ। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, परन्तु मन से एक हैं।

आदरणीय नंदिया और आदरणीय किंबिला ने भी भगवान बुद्ध से कहा, हे पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आता है। ऐसे सहचरों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करना मेरे लिए लाभदायी है। अतः मैं इन पूज्यवरों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण कर्म करता हूँ। खुले और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। खुले और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूज्यवरों के विचारों को अपना लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूज्यवरों के विचारों को अपना लूँगा। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, पर मन से एक हैं।

आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम दूध और पानी की तरह एक साथ, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहते हैं। अच्छा, अनुराद्ध, क्या तुम भी निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जी हाँ, हम निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हैं। अनुराद्ध, तुम निर्वाह निवारण के लिए लगन से कैसे जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जो भी गाँव से सबसे पहले आता है, वह भोजन इकट्ठा करने के बाद बैठने की व्यवस्था करता है, पीने और धोने के लिए पानी देता है और थूकदान रखता है। जो भी गाँव से सबसे अंत में आता है, वह यदि चाहे तो बचे हुए भोजन को ग्रहण करता है, यदि नहीं, तो उसे ऐसी जगह फेंक देता है जहाँ कुछ भी न उगता हो, या ऐसे पानी में डाल देता है जहाँ जीवन न हो। वह बैठने की व्यवस्था और पानी के बर्तनों को समेटता है, थूकदानों को धोता है और भोजनालय की सफाई करता है। जो भी पीने, धोने या शौचालय के पानी के बर्तनों को खाली देखता है, वह उन्हें भर देता है। यदि वह उसे ले जाने में असमर्थ पाता है, तो वह हाथ के इशारे से दूसरे को बुला लेता है। इस कारण एक शब्द भी नहीं बोलते थे। हर पाँचवें दिन हम रात भर बैठकर शिक्षा के किसी विषय पर चर्चा करते थे। आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम निवारण के लिए लगन से प्रयास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, तुम भी निवारण के लिए लगन से प्रयास करते हो। क्या तुमने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है? क्यों नहीं आदरणीय महोदय, जब भी हम चाहें, मन को कामुक विचारों और

अशुद्ध विचारों से अलग करके, एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में लीन हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, यही वह विशिष्ट ज्ञान है जो हमने मनुष्य से परे प्राप्त किया है। अच्छा, अनुराधा, इससे भी ऊपर, क्या तुमने कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है और मनुष्य से परे लीन हो जाते हो? क्यों नहीं आदरणीय महोदय, जब भी हम चाहें, विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से एक बिंदु पर स्थिर करके, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर, हमने वह विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे हम मनुष्य से ऊपर उठते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से ऊपर उठते हैं? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? जब भी हम इच्छा करते हैं, समभाव, आनंद और वैराग्य के साथ हम सचेत और जागरूक रहते हुए शरीर के साथ सुख का अनुभव करते हैं, तृतीय ध्यान में... इस पर, श्रेष्ठ कहते हैं कि समभाव के साथ सुख में सचेत रहना। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से ऊपर उठते हैं? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? जब भी हम इच्छा करते हैं, सुख और दुख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त करके, समभाव, शुद्ध चेतना के साथ, हम चतुर्थ ध्यान में रहते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर, हमने वह विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे हम मनुष्य से ऊपर उठते हैं। बहुत खूब, अनुराधा! उस बाधा को पार करके और उससे ऊपर उठकर, क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से परे रह सकें? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय?जब भी हम पदार्थ की सभी धारणाओं और क्रोध की धारणाओं पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश को प्राप्त करते हुए, आकाश के क्षेत्र में निवास करते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके, यही वह विशिष्ट ज्ञान है जिसे हमने प्राप्त किया है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके क्या आपने कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं? क्यों नहीं आदरणीय महोदय? जब भी हम असीम चेतना और कुछ भी नहीं होने की स्थिति को प्राप्त करते हुए, आकाश के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, तो शून्यता के क्षेत्र में निवास करते हैं। शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निवास प्राप्त करते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके, यही वह विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि है जिसे हमने प्राप्त किया है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके क्या आपने कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं? क्यों नहीं, पूज्यवर। जब भी हम बोध-विहीनता के क्षेत्र को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, तो हम बोध और भावों के अंत में निवास करते हैं। इसे ज्ञान से देखने पर इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं। पूज्यवर, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे ऊपर उठकर, हमने यही विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, जो मनुष्य से परे है। पूज्यवर, हमने इससे अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर निवास नहीं देखा है। - अच्छा, अनुराधा, इससे अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर निवास कोई नहीं है।

तब भगवान ने ननुरुद्ध, नंदीय और किंबिला को उपदेश दिया, उपदेश दिया, प्रेरित किया और उनके हृदयों को हल्का किया, और आसन से उठकर चले गए। जब भगवान जा रहे थे, तब तीनों ननुरुद्ध, नंदीय और किंबिला उनके पीछे-पीछे चले और अचानक रुक गए। तब ननुरुद्ध और किंबिला ने ननुरुद्ध से पूछा, "हे ननुरुद्ध, क्या हमने आपको बताया था कि हम उन निवासों और उपलब्धियों के लाभार्थी हैं? क्या आपने भगवान को हमारी इच्छाओं के नाश के बारे में बताया था?" ननुरुद्ध ने मुझे अपने निवासों और उपलब्धियों के बारे में नहीं बताया, बल्कि हमने उनके मन में प्रवेश किया और जाना कि वे उन उपलब्धियों के लाभार्थी हैं। देवताओं ने भी मुझे इसके बारे में बताया था, और जब भगवान ने मुझसे इसके बारे में पूछा, तो मैंने उत्तर दिया।

तब राक्षस दीघा पूज्य भगवान बुद्ध के पास आया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे इस प्रकार कहा: "हे पूज्य, यह वज्जियों के लिए बड़ा लाभ है कि भगवान बुद्ध पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, और साथ ही ये तीनों कुल के पुत्र, पूज्य अनुराद्ध, पूज्य किंबिला और पूज्य नंदीय भी।" राक्षस दीघा की यह ध्वनि सुनकर पृथ्वी के देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। पृथ्वी के देवताओं की ध्वनि सुनकर चारों महान राजाओं के अनुयायियों ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। चारों महान राजाओं की ध्वनि सुनकर बत्तीस देवताओं के समूह ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। बत्तीस देवताओं के समूह की ध्वनि सुनकर यम देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। यम देवताओं की ध्वनि सुनकर सुख के देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। सुख के देवताओं की ध्वनि सुनकर सृष्टि से जुड़े देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। सृष्टि से जुड़े देवताओं की ध्वनि सुनकर दूसरों की रचनाओं से जुड़े देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। अन्य प्राणियों की रचनाओं से जुड़े देवताओं की ध्वनि सुनकर ब्रह्मा देवताओं ने उसका प्रतिध्वनित किया। क्षण भर में यह ध्वनि ब्रह्मा लोक तक फैल गई।

दीघा, सत्य यही है कि ये तीनों कुल के पुत्र जिस भी कुल से निकले हों, यदि वे कुल इन्हें प्रसन्न मन से याद करें, तो उन्हें दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा। यदि उनके परिवार के लोग—जिस गाँव से वे निकले हों—चाहे किसी भी गाँव से हों—चाहे किसी भी शहर से हों—चाहे कोई भी योद्धा—चाहे कोई भी ब्राह्मण—चाहे कोई भी गृहस्थ—चाहे कोई भी कुल का निवासी इन तीनों पुत्रों को प्रसन्न मन से याद करें,

तो उन्हें दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा। दीघा, इस लोक में, चाहे वह देवता हो, मनुष्य हो या मार, ब्रह्मा, यदि कोई भी इन तीनों पुत्रों को याद करे, तो उसे दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और राक्षस दीघा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 4.2महागोसिंगा सुत्त(32)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने यही सुना।

एक समय भगवान गोसिंगा साला वन में कई विद्वान वरिष्ठ शिष्यों जैसे सारिपुत्त, महामोग्गलाना, महाकस्सपा, अनुराधा, रेवता, आनंद और अन्य के साथ निवास कर रहे थे। शाम को एकांतवास से बाहर आकर, आदरणीय महामोग्गलाना आदरणीय महाकस्सपा के पास गए और बोले, "कस्सपा, चलो हम आदरणीय सारिपुत्त के पास चलें, ताकि उनके ज्ञान से लाभ उठा सकें।" आदरणीय महाकस्सपा सहमत हो गए और सभी भिक्षु आदरणीय सारिपुत्त के पास गए। आदरणीय आनंद ने देखा कि आदरणीय महामोग्गलाना, महाकस्सपा और अनुराधा आदरणीय सारिपुत्त के पास जा रहे हैं और वे आदरणीय रेवता के पास गए और बोले, "मित्र रेवता, तीनों आदरणीय सारिपुत्त के पास उनके ज्ञान से लाभ उठाने के लिए जा रहे हैं। हमारे लिए भी उनके पास जाना उचित होगा।" आदरणीय रेवता सहमत हो गए और वे दोनों आदरणीय सारिपुत्त के पास गए।

आदरणीय सारिपुत्त ने दूर से आदरणीय रेवता और आनंद को आते देखा और कहा, "मित्र आनंद, परमेश्वर के निकट और करीबी सेवक, आपका स्वागत है। मित्र आनंद, चांदनी रात में साला वन अत्यंत सुंदर है। फूल पूरी तरह खिले हुए हैं और उनसे दिव्य सुगंध निकल रही है। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" आनंद ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, एक विद्वान भिक्षु, जो समस्त शिक्षा को धारण करता है, आरंभ, मध्य और अंत में जो अच्छा है उसे संजोता है, और पूर्णतः पवित्र जीवन की घोषणा करता है। उसे उस शिक्षा का वचन और अभ्यास द्वारा प्रसारक बनना चाहिए। उसे उस शिक्षा का गहन अनुभव होना चाहिए। वह चार प्रकार की सभाओं में उसका उपदेश दे, अपने शब्दों का चयन सहजता से करते हुए, तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोगों की सुप्त प्रवृत्तियों के नाश के लिए। मित्र सारिपुत्त, ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य रेवता से कहा, “मित्र रेवता, पूज्य आनंद ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु जो एकांत में प्रसन्न रहता है, मन की आंतरिक शांति में लीन रहता है। वह ध्यान का उपकार नहीं करता, ज्ञानपूर्ण चिंतन से परिपूर्ण होता है और विचार-विवेचन से रहित स्थिर अवस्था विकसित करता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा, “मित्र अनुराधा, पूज्य रेवता ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत सुंदर लगता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” अनुराधा ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्थाओं को देखेगा। जैसे कोई व्यक्ति अपने महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर चढ़कर हजार रूपों वाली एक डिस्क को देख रहा हो। उसी प्रकार मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्थाओं को देखेगा। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "मित्र कस्सपा, पूज्य अनुराधा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु वनवासी होगा जो वनवास की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह एक निवाला भोजन ग्रहण करने वाला होगा जो निवाला भोजन ग्रहण करने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह चिथड़े वस्त्र पहनने वाला होगा जो चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह तीन वस्त्रों में विलीन रहेगा और तपस्या की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह कम इच्छाओं वाला होगा और कम इच्छाओं की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संतुष्ट

होगा और संतुष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकांतवासी होगा और एकांत की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संसार से विरक्ति का प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह प्रेरित परिश्रम वाला होगा और परिश्रम की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह गुणी होगा और सद्‌गुणों के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकाग्रता से संपन्न होगा और एकाग्रता के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह बुद्धिमान होगा और ज्ञान के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्त होगा और मुक्ति के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि से संपन्न होगा और मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा भिक्षु..." यह गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महामोग्गल्लाना से कहा, “मित्र मोग्गल्लाना, पूज्य महाकस्सपा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” मोग्गल्लाना ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, जब दो भिक्षु धर्म के किसी गहन विषय पर चर्चा कर रहे हों, तो वे एक-दूसरे से प्रश्न पूछते हैं। वे एक-दूसरे के प्रश्नों के उत्तर ढूंढते हैं। वे आपस में मतभेद नहीं करते और उनकी चर्चा समयोचित और लाभकारी होती है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

तब पूज्य महामोग्गल्लाना ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "मित्र सारिपुत्त, हम सबने अपनी समझ के अनुसार यह बात कह दी है। अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "मित्र मोग्गल्लाना, भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। दोपहर में जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। जैसे कोई राज्याभिषेक किया हुआ राजा या उसका मुख्य मंत्री, जिसके पास विभिन्न रंगों के वस्त्रों से भरा संदूक होता है, सुबह, दोपहर और शाम को पहनने के लिए अपनी पसंद के वस्त्र चुनता है। उसी प्रकार भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह, दोपहर और शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। भिक्खु गोसिंगा साला वन को सुशोभित करता है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने अन्य पूज्य भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “आइए हम परमेश्वर के पास चलें। आइए हम उन्हें यह बात बताएं। आइए हम उनके ज्ञान से लाभ उठाएं। आइए हम उनकी बातों को ध्यान में रखें।” पूज्य भिक्षु सहमत हो गए। वे परमेश्वर के पास गए और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य सारिपुत्त ने परमेश्वर से कहा, “हे भगवान, पूज्य रेवता और पूज्य आनंद मेरे ज्ञान से लाभ उठाने के लिए मेरे पास आए हैं। उन्हें देखकर और उनका स्वागत करके, मैंने आनंद से यह पूछा, “मित्र आनंद, चांदनी रात में साला वन बहुत ही सुंदर लगता है। फूल पूरी तरह खिले हुए हैं और उनसे दिव्य सुगंध निकल रही है। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” आनंद ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, एक विद्वान भिक्षु, जो समस्त शिक्षाओं का ज्ञान रखता है, आरंभ, मध्य और अंत में जो अच्छा है उसे संजोता है, और पूर्णतः पवित्र जीवन की घोषणा करता है। उसे वचन और अभ्यास द्वारा उस शिक्षा का प्रसारक बनना चाहिए। उसे उस शिक्षा का गहन अनुभव प्राप्त करना चाहिए। वह चार प्रकार की सभाओं में उसका उपदेश दे, सहजता से शब्दों का चयन करते हुए, ताकि तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोगों की छिपी हुई प्रवृत्तियों का नाश हो सके। मित्र सारिपुत्त, ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने आदरणीय रेवता से कहा, “मित्र रेवता, आदरणीय आनंद ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु जो एकांत में प्रसन्न रहता है, मन की आंतरिक शांति में लीन रहता है। वह ध्यान का उपकार नहीं करता, ज्ञानपूर्ण चिंतन से परिपूर्ण होता है, और विचार-विवरण से रहित स्थिर अवस्था विकसित करता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने आदरणीय अनुराधा से कहा, “मित्र अनुराधा, आदरणीय रेवता ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” अनुराधा ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली संसार-प्रणालियों को देखेगा। जैसे कोई व्यक्ति अपने महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर चढ़कर हजार रूपों वाली एक डिस्क को देख

रहा हो। उसी प्रकार मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली संसार-प्रणालियों को देखेगा। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "मित्र कस्सपा, पूज्य अनुराधा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु वनवासी होगा जो वनवास की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह एक निवाला भोजन ग्रहण करने वाला होगा जो निवाला भोजन ग्रहण करने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह चिथड़े वस्त्र पहनने वाला होगा जो चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह तीन वस्त्रों में विलीन रहेगा और तपस्या की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह कम इच्छाओं वाला होगा और कम इच्छाओं की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संतुष्ट होगा और संतुष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकांतवासी होगा और एकांत की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संसार से विरक्ति का प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह प्रेरित परिश्रम वाला होगा और परिश्रम की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह गुणी होगा और सद्गुणों के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकाग्रता से संपन्न होगा और एकाग्रता के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह बुद्धिमान होगा और ज्ञान के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्त होगा और मुक्ति के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि से संपन्न होगा और मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा भिक्षु..." यह गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

जब यह कहा गया, भगवान, तो मैंने पूज्य महामोग्गल्लाना से कहा, "मित्र मोग्गल्लाना, पूज्य महाकस्सपा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" मोग्गल्लाना ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, जब दो भिक्षु शिक्षा के किसी गहन विषय पर चर्चा कर रहे हों, तो वे एक-दूसरे से प्रश्न पूछें। वे एक-दूसरे के प्रश्नों के उत्तर खोजें। वे आपस में मतभेद न करें और उनकी चर्चा समयोचित और लाभकारी हो। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

तब पूज्य महामोग्गल्लाना ने भगवान से कहा, “हे भगवान, मैंने पूज्य सारिपुत्त से कहा, “मित्र सारिपुत्त, हम सबने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है। अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” सारिपुत्त ने उत्तर दिया, “मित्र मोग्गल्लाना, भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। दोपहर में जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है।” जैसे कोई राज्याभिषेकित राजा या उसका मुख्य मंत्री, जिसके पास विभिन्न रंगों के वस्त्रों से भरा एक संदूक होता था, सुबह, दोपहर और शाम को पहनने के लिए अपनी पसंद के वस्त्र चुनता था, उसी प्रकार भिक्षु मन पर नियंत्रण रखता है और मन को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। सुबह, दोपहर और शाम को वह जिस भी अवस्था में रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाता है।

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान से पूछा, “हे भगवान, किसके वचन सबसे सत्य हैं?” भगवान ने उत्तर दिया, “सारिपुत्त, तुम्हारे सभी वचन सत्य हैं, फिर भी मेरी बात सुनो। देखो, सारिपुत्त भिक्षु भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद पालथी मारकर बैठे हैं। शरीर को सीधा रखते हुए, एकाग्र मन से वे निश्चय करते हैं, “जब तक मेरा मन इच्छाओं से मुक्त नहीं हो जाता, मैं इस आसन को नहीं बदलूंगा।” ऐसा भिक्षु, सारिपुत्त, गोसिंगा साल वन की शोभा बढ़ाता है।”

इस प्रकार भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया। प्रसन्न होकर, पूजनीय भिक्षुओं ने भगवान के वचनों का आनंद लिया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 4.3 महागोपालक सुत्त(33)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाले के लिए अपने झुंड को बढ़ाना संभव नहीं है। वे ग्यारह गुण क्या हैं? ग्वाला पदार्थ को नहीं जानता, चिह्नों में निपुण नहीं है, जूँ नहीं निकालता, घावों पर मरहम नहीं लगाता, जलधारा नहीं जलाता, नदी पार करने का मार्ग नहीं जानता, आनंद का अनुभव नहीं करता, मार्ग नहीं जानता, चारागाह खोजने में निपुण नहीं है, अवशेष न छोड़ने का दोष करता है, झुंड के पूर्वजों पर विशेष ध्यान नहीं देता। इन ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाले के लिए अपने झुंड की देखभाल करना या उसे बढ़ाना संभव नहीं है। इसी प्रकार, इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस युग में वृद्धि और विकास नहीं कर सकता। वे ग्यारह गुण क्या हैं? भिक्षु पदार्थ को नहीं जानता, चिह्नों में निपुण नहीं है, जूँ नहीं निकालता, घावों पर पट्टी नहीं बांधता, धूम्रपान नहीं करता, नदी पार करने का मार्ग नहीं जानता, आनंद का अनुभव नहीं करता, मार्ग नहीं जानता, चारागाह खोजने में निपुण नहीं है, अवशेष न छोड़ने का दोष करता है, और समुदाय के पूर्वजों पर विशेष ध्यान नहीं देता। इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु के लिए इस युग में उन्नति और विकास संभव नहीं है।

भिक्षुओं, भिक्षु पदार्थ को कैसे नहीं जानता? भिक्षु को यह नहीं पता कि वह वास्तव में क्या है, कि समस्त पदार्थ चार महा तत्वों से बना है और मेरा जो पदार्थ है वह भी इन्हीं चार महा तत्वों से बना है। अतः भिक्षु पदार्थ को नहीं जानता। भिक्षु गुणों में चतुर क्यों नहीं है? भिक्षु को यह नहीं पता कि मूर्ख अपने कर्मों से और ज्ञानी अपने कर्मों से कैसे पहचाने जाते हैं, अतः भिक्षु गुणों में चतुर नहीं है। भिक्षु जूँओं को कैसे नहीं दूर करता? यहाँ भिक्षु कामुक विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। क्रोधित विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। पीड़ादायक विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। उत्पन्न दोषों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। इस प्रकार भिक्षु जूँओं को दूर नहीं करता। भिक्षु घावों पर पट्टी क्यों नहीं बांधते? भिक्षु किसी आकृति को देखकर उसके संकेत और विवरण को ग्रहण कर लेते हैं। नेत्र-सम्मोहन शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति में लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्म समाहित हो सकते हैं; इसलिए वे नेत्र-सम्मोहन शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पाते और उसकी रक्षा नहीं करते। कान से ध्वनि सुनना, नाक से गंध का अनुभव करना, जीभ से स्वाद का अनुभव करना, शरीर से स्पर्श का अनुभव करना और मन से विचार का अनुभव करना, संकेत और विवरण को ग्रहण नहीं करते। मन-सम्मोहन शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति में लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्म समाहित हो सकते हैं; इसलिए वे मन-सम्मोहन शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पाते और उसकी रक्षा नहीं करते। इस प्रकार भिक्षु घावों पर पट्टी नहीं बांधते। भिक्षुओं, भिक्षु धुआं क्यों नहीं करते? यहां भिक्षु अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर दूसरों को शिक्षा का वर्णन नहीं करते। इसलिए भिक्षु धुआं नहीं करते। भिक्षुओं, भिक्षु को मार्ग का ज्ञान क्यों नहीं होता? भिक्षु समय-समय पर शिक्षा और अनुशासन के विद्वानों, जो इसके शीर्षकों को जानते हैं, के पास जाकर प्रश्न और परप्रश्न नहीं करते, ताकि वे अर्थों को जान सकें। ताकि वे पूजनीय विद्वान गूढ़ अर्थों की व्याख्या कर सकें और शंकाओं को दूर कर सकें। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान नहीं होता। भिक्षुओं, भिक्षु को आनंद का अनुभव क्यों नहीं होता? तथागत द्वारा घोषित शिक्षा और अनुशासन में भिक्षु को शिक्षा के अर्थों और उससे उत्पन्न आनंद का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु को आनंद का अनुभव नहीं होता। भिक्षु को मार्ग का ज्ञान क्यों नहीं होता? यहाँ भिक्षु को अष्टांगिक मार्ग का वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान नहीं होता। भिक्षु चरागाहों को खोजने में चतुर क्यों नहीं होते? यहां भिक्षु को ध्यान के चार वास्तविक सिद्धांतों का ज्ञान नहीं है। इस प्रकार भिक्षु चरागाहों को चुनने में निपुण नहीं है। भिक्षु शेषफल न छोड़ने की गलती कैसे करता है? यहां भिक्षु गृहस्थों द्वारा आस्था के कारण दिए गए वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएं स्वीकार कर लेता है, यह जाने बिना कि उसे कितना स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार भिक्षु शेषफल न छोड़ने की गलती करता है।भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान क्यों नहीं देते? यहाँ भिक्षु समुदाय के नेताओं के प्रति शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण भाव नहीं दिखाते। वे नेता जिनका समुदाय में लंबा इतिहास है और जिन्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान नहीं देते। ऐसे में इन ग्यारह गुणों से संपन्न भिक्षु का इस शिक्षा और अनुशासन में विकास और उन्नति संभव नहीं है।

भिक्षुओं, यह संभव है कि ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाला अपने झुंड को बढ़ा सके। वे ग्यारह गुण क्या हैं? ग्वाला पदार्थ का ज्ञाता होता है। वह लक्षणों को पहचानने में निपुण होता है। वह जूँ निकालता है, घावों पर मरहम लगाता है, धुआँ करता है, नदी पार करने का मार्ग जानता है, आनंद का अनुभव करता है और मार्ग का ज्ञाता होता है। वह चारागाह खोजने में निपुण होता है और कोई अवशेष न छोड़ने की गलती नहीं करता। वह झुंड के पूर्वजों का विशेष ध्यान रखता है। इन ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाला अपने झुंड की देखभाल कर सकता है और उसे बढ़ा सकता है। इसी प्रकार, इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस युग में वृद्धि और विकास करेगा। वे ग्यारह गुण क्या हैं? भिक्षु पदार्थ का ज्ञाता होता है। वह लक्षणों को पहचानने में निपुण होता है, जूँ निकालता है, घावों पर मरहम लगाता है, धुआँ करता है, नदी पार करने का मार्ग जानता है, आनंद का अनुभव करता है, मार्ग का ज्ञाता होता है और चारागाह खोजने में निपुण होता है। वह कोई अवशेष न छोड़ने की गलती नहीं करता। वह समुदाय के पूर्वजों का विशेष ध्यान रखता है। इन ग्यारह गुणों से संपन्न होकर भिक्षु इस शिक्षा और उपदेश में उन्नति और विकास प्राप्त कर सकता है।

भिक्षुओं, भिक्षु पदार्थ को कैसे जानता है? भिक्षु पदार्थ को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, कि समस्त पदार्थ चार महा तत्वों का मिश्रण है और वह पदार्थ भी है जिसे मैं अपने भीतर समाहित मानता हूँ। इस प्रकार भिक्षु पदार्थ को जानता है। भिक्षु लक्षणों में कैसे निपुण होता है? भिक्षु मूर्ख को उसके कर्मों से और बुद्धिमान को उसके कर्मों से पहचानता है। इस प्रकार भिक्षु लक्षणों में निपुण होता है। भिक्षु जूँओं को कैसे दूर करता है? भिक्षु कामुक विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। क्रोधित विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। पीड़ादायक विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। उत्पन्न दोषों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। इस प्रकार भिक्षु जूँओं को दूर करता है। भिक्षु घावों पर मरहम कैसे लगाता है? आँख से किसी रूप को देखकर उसके चिह्न और विवरण को नहीं लेता। आँख की शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति पर लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्मों का प्रभाव पड़ सकता है; इसलिए, उसे अपने वश में करके आँख की शक्ति की रक्षा करनी चाहिए। कान से ध्वनि सुनना, नाक से गंध महसूस करना, जीभ से स्वाद महसूस करना, शरीर से स्पर्श महसूस करना, मन से विचार महसूस करना, संकेत या विवरण को नहीं ग्रहण करता। मन की शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति पर लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्मों का प्रभाव पड़ सकता है; इसलिए, उसे अपने वश में करके मन की शक्ति की रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार भिक्षु घावों पर मरहम लगाते हैं। भिक्षुओं, भिक्षु धुआँ कैसे उत्पन्न करते हैं? यहाँ भिक्षु अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर दूसरों को शिक्षा समझाते हैं। इस प्रकार भिक्षु धुआँ उत्पन्न करते हैं। भिक्षुओं, भिक्षु को नदी पार करने का मार्ग कैसे पता चलता है? भिक्षु समय-समय पर शिक्षा और अनुशासन के उन विद्वान गुरुओं के पास जाते हैं, जो विषयों को जानते हैं, उनसे प्रश्न और परप्रश्न करते हैं, ताकि उनके अर्थ जान सकें। इससे वे पूजनीय गुरु छिपे हुए अर्थों को समझाते हैं और शंकाओं को दूर करते हैं। इस प्रकार भिक्षु को नदी पार करने का मार्ग पता चलता है। भिक्षुओं, भिक्षु को आनंद कैसे प्राप्त होता है? तथागत द्वारा घोषित शिक्षा और अनुशासन में भिक्षु को अर्थों का अनुभव होता है, शिक्षा में और उससे प्राप्त आनंद में। इस प्रकार भिक्षु को आनंद प्राप्त होता है। भिक्षु को मार्ग कैसे पता चलता है? यहाँ भिक्षु को अष्टांगिक मार्ग का वास्तविक स्वरूप पता चलता है। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान होता है। भिक्षु चरागाहों को खोजने में कैसे कुशल होते हैं? यहाँ भिक्षु को ध्यान के चार प्रतिष्ठान, जैसे वे वास्तविक हैं, का ज्ञान होता है। इस प्रकार भिक्षु चरागाहों को खोजने में कुशल होते हैं। भिक्षु किसी भी प्रकार से शेषफल न छोड़ने की गलती कैसे नहीं करता? यहाँ भिक्षु गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ, ज्ञात मात्रा में स्वीकार करता है। इस प्रकार भिक्षु किसी भी प्रकार का शेषफल न छोड़ने की गलती नहीं करता। भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान कैसे नहीं देता? यहाँ भिक्षु प्रेमपूर्ण शारीरिक क्रियाओं, प्रेमपूर्ण वाणी और प्रेमपूर्ण मानसिक क्रियाओं द्वारा उनकी सेवा करता है।समुदाय के नेताओं की ओर। उन लोगों की ओर जिनका लंबा इतिहास रहा है और जिन्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार भिक्षु समुदाय के पूर्वजों की देखभाल करता है। यह संभव है कि इन ग्यारह गुणों से संपन्न भिक्षु इस शिक्षा और अनुशासन में उन्नति और विकास प्राप्त करे।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.4कुलगोपालक सुत्त(34)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध वज्जियों के देश में, गंगा नदी के किनारे उक्काचेला में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, अतीत में मगध में एक मूर्ख ग्वाला था। शरद ऋतु में वर्षा ऋतु समाप्त होने पर उसने नदी के किनारे का न तो अवलोकन किया और न ही प्रस्थान का, और बिना घाट के ही अपने पशुओं को नदी पार कराकर दूसरे किनारे पर ले गया। नदी के बीच में ही उसका पशुओं का झुंड नदी के भंवर में फंस गया और नष्ट हो गया। कारण क्या है? जिस प्रकार मगध के उस मूर्ख ग्वाले ने शरद ऋतु में वर्षा ऋतु समाप्त होने पर बिना किनारे का न अवलोकन किए और बिना घाट के ही अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर ले गया, उसी प्रकार यदि कोई ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों की बातों पर विश्वास करे, जो न इस लोक के ज्ञान में निपुण हैं और न ही परलोक के, न मृत्यु के ज्ञान में और न ही अमरता के ज्ञान में, तो यह उसके लिए दीर्घकालिक विनाश और कष्ट का कारण बनेगा।

भिक्षुओं, पुराने समय में मगध में एक बुद्धिमान ग्वाला रहता था। शरद ऋतु में वर्षा ऋतु के अंत में, नदी के दोनों किनारों को देखते हुए, उसने एक घाट से अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर ले गया। सबसे पहले उसने सांडों को भेजा, जो झुंड के मुखिया और पूर्वज थे। उन्होंने गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने बलवान और पालतू सांडों को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने युवा सांडों और गायों को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने छोटे बछड़ों और कमजोर पशुओं को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। यहाँ तक कि नवजात शिशु भी, जिन्हें माँ की पुकार का अनुसरण करना था, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। भिक्षुओं, मगध के बुद्धिमान ग्वाले ने शरद ऋतु की वर्षा समाप्त होने पर, नदी के दोनों किनारों का चिंतन करते हुए, एक घाट से अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर पार कराया। इसी प्रकार, यदि कोई ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों की बात सुने और उन पर विश्वास करे, जो इस संसार में भी कुशल हैं, परलोक में भी कुशल हैं, मृत्यु के लोक में भी कुशल हैं, अमरत्व के लोक में भी कुशल हैं, मृत्यु के क्षेत्र में भी कुशल हैं और अमरत्व के क्षेत्र में भी कुशल हैं, तो यह उनके लिए दीर्घकाल तक कल्याणकारी होगा।

भिक्षु, बैल और झुंड के मुखिया, यानी झुंड के पूर्वज, गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार सिद्ध भिक्षु, जिन्होंने इच्छाओं का नाश कर, पवित्र जीवन व्यतीत किया, उचित कर्म किए, भार को त्याग दिया, परम सुख को प्राप्त किया और 'जन्म' के बंधनों को तोड़कर, सही ज्ञान से मुक्त होकर, मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। शक्तिशाली और वश में किए गए बैल गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, जिन भिक्षुओं ने इंद्रिय जगत के पाँचों बंधनों को तोड़ दिया है, वे स्वतः ही जन्म लेकर वहाँ से विलीन हो जाते हैं। वे वहाँ से गिरते नहीं, मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे तट तक पहुँच जाते हैं। युवा बैल और गायें गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, जिन भिक्षुओं ने तीन निम्न बंधनों को तोड़कर लोभ, घृणा और मोह को कम किया है, वे इस संसार में एक बार फिर आते हैं, ताकि अप्रियता का अंत कर सकें। उन्होंने भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए हैं। बछड़े और दुर्बल भी गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए। इसी प्रकार, जो भिक्षु तीन निम्न बंधनों को नष्ट करके शिक्षा की धारा में प्रवेश करते हैं, वहाँ से नहीं गिरते, और निर्गमन के लिए दृढ़ संकल्पित होते हैं, उन्होंने भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए हैं। नवजात शिशु, जिन्हें माता की पुकार का अनुसरण करना पड़ा, उन्होंने भी गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए। इसी प्रकार, जो श्रद्धा के साथ शिक्षा में स्थिर रहते हैं, वे भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। भिक्षुओं, मैं इस संसार में चतुर हूँ, परलोक में चतुर हूँ, मृत्यु के क्षेत्र में चतुर हूँ, अमरता के क्षेत्र में चतुर हूँ, मृत्यु के क्षेत्र में चतुर हूँ और अमरता के क्षेत्र में चतुर हूँ। भिक्षुओं, यह उनके कल्याण और भलाई के लिए होगा कि कुछ लोग मेरी बात सुनने और मुझ पर विश्वास करने का विचार करेंगे। तब भगवान ने आगे कहा:

जो जानता है उसने इस संसार और परलोक का वर्णन कर दिया है, मृत्यु से क्या प्राप्त हो सकता है और क्या नहीं। सही मायने में प्रबुद्ध व्यक्ति ने समस्त संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अमरता का द्वार खुल गया है, शांति और निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग खुल गया है। दुष्टों का प्रवाह कट गया है, नष्ट हो गया है और निष्फल हो गया है। भिक्षुओं, जिन्होंने शांति और सर्वोच्च कल्याण प्राप्त कर लिया है, आनंदित हो जाओ!

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.5 कुल सक्का सुत्त(35)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित एक शिखरनुमा हॉल में निवास करते थे। उसी समय निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक, जो एक चतुर वाद-विवादक थे और अनेकों द्वारा बुद्धिमान माने जाते थे, वैशाली में रहते थे। वे वैशाली में घूमते हुए कहते थे, "मैंने किसी संन्यासी, ब्राह्मण, भीड़ के नेता, भीड़ के शिक्षक या स्वयं को पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध मानने वाले व्यक्ति को भी मेरे द्वारा वाद-विवाद के लिए आमंत्रित किए जाने पर कांपते, थरथराते और पसीना बहाते हुए नहीं देखा। यहां तक कि मेरे द्वारा वाद-विवाद के लिए बुलाए जाने पर एक निर्जीव स्तंभ भी कांप उठता है, तो मनुष्य का क्या होगा?" फिर पूज्य असाजी ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक, जो व्यायाम के लिए टहल रहे थे, ने

दूर से पूज्य असाजी को आते देखा और उनके पास गए। उन्होंने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर कहा: "हे असाजी, गौतम संत के शिष्यों को किस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है, और उन्हें किस भाग में अधिक प्रशिक्षण दिया जाता है?" तब पूज्य असाजी ने कहा, "अग्गिवेसना, भगवान बुद्ध अपने शिष्यों को इस भाग में बहुत उपदेश देते हैं और उन्हें विशेष रूप से प्रशिक्षित करते हैं: भिक्षुओं, पदार्थ क्षणभंगुर है। भावनाएँ क्षणभंगुर हैं। बोध क्षणभंगुर हैं। संकल्प क्षणभंगुर हैं और चेतना क्षणभंगुर है। भिक्षुओं, पदार्थ आत्मा नहीं है। भावनाएँ आत्मा नहीं हैं। बोध आत्मा नहीं हैं। संकल्प आत्मा नहीं हैं, और चेतना आत्मा नहीं है। सभी संकल्प क्षणभंगुर हैं।" सभी चीजें आत्मा नहीं हैं। भगवान बुद्ध भिक्षुओं को इस विषय पर बहुत उपदेश देते हैं और उनका प्रशिक्षण भी इसी पर केंद्रित है। हे भगवान असाजी, हमने कुछ ऐसा सुन लिया जो नहीं सुनना चाहिए था। यदि संन्यासी गौतम का यही मत है, तो हमें उनसे इस विषय पर चर्चा करने के लिए अवश्य मिलना चाहिए। ताकि इस मत के बारे में संदेह दूर हो सकें।

उस समय लगभग पाँच सौ लिच्छवी किसी कार्य से सभा भवन में एकत्रित थे। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक उनके पास आए और बोले, “आइए लिच्छवी, आज मेरा और संन्यासी गौतम का विवाद है। यदि संन्यासी गौतम अपने शिष्य भिक्षु अस्सजी के इस मत का समर्थन करते हैं, तो हम उन्हें विवाद में घसीटेंगे। जैसे कोई बलवान पुरुष भेड़ को उसकी लंबी ऊन से खींचकर घसीटता है, या जैसे कोई शराब बनाने वाला किसी गहरे तालाब में एक बड़ा गड्ढा डुबोकर उसे हिलाता है, और उसके कान पकड़कर उसे हिलाता है, उसी प्रकार हम विवाद में संन्यासी गौतम को घसीटेंगे। जैसे साठ हाथ का हाथी गहरे तालाब में उतरकर भांग धोने का खेल खेलता है, उसी प्रकार हम संन्यासी गौतम के साथ भांग धोने का खेल खेलेंगे।” लिच्छवियों, आओ, मेरा और संन्यासी गौतम का विवाद है। तब एक लिच्छवी ने पूछा, “क्या संन्यासी गौतम का निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक से कोई विवाद है? या निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक का संन्यासी गौतम से कोई विवाद है?” दूसरे लिच्छवी ने पूछा, “क्या तेजस्वी सच्चक निगंथ (जैन) के पुत्र संन्यासी गौतम को विवाद के लिए बुला रहे हैं? या संन्यासी गौतम निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक को विवाद के लिए बुला रहे हैं?” तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक लगभग पाँच सौ लिच्छवियों के साथ विशाल वन में स्थित मंडप की ओर बढ़े। उस समय कई भिक्षु खुले में पैदल ध्यान कर रहे थे। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक उन भिक्षुओं के पास गए और पूछा, “इस समय अच्छे गौतम कहाँ निवास कर रहे हैं? हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।” अग्गिवेसना, भगवान बुद्ध महान वन में प्रवेश कर चुके हैं और दिन बिताने के लिए एक वृक्ष की जड़ में बैठे हैं। तभी निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक महान वन में आए और भगवान बुद्ध ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गए। फिर कुछ लिच्छवियों ने भगवान बुद्ध की पूजा की और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गए, कुछ ने भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर एक तरफ बैठ गए, कुछ ने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करते हुए एक तरफ बैठ गए, और अन्य चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

निगंथा (जैन) के पुत्र सच्चक ने भगवान बुद्ध से कहा, “हम अच्छे गौतम से एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। यदि अच्छे गौतम हमें अनुमति दें और हमें इसका उत्तर दें, तो हम पूछ सकते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा, ‘जो तुम चाहते हो, वह अग्गिवेसन से पूछो। अच्छे गौतम शिष्यों को किस प्रकार सलाह देते हैं और किन विषयों में उन्हें अधिक प्रशिक्षण देते हैं?’ अग्गिवेसन ने कहा, ‘मैं अपने शिष्य को इस प्रकार सलाह और प्रशिक्षण देता हूँ।’” भिक्षुओं, पदार्थ क्षणभंगुर है। भावनाएँ क्षणभंगुर हैं। बोध और संकल्प क्षणभंगुर हैं। चेतना क्षणभंगुर है। भिक्षुओं, पदार्थ आत्मा नहीं है। भावनाएँ आत्मा नहीं हैं। बोध और संकल्प आत्मा नहीं हैं। चेतना आत्मा नहीं है। सभी संकल्प क्षणभंगुर हैं। सभी वस्तुएँ आत्मा नहीं हैं। अग्गिवेसना, मैं अपने शिष्यों को इस भाग में सलाह देता हूँ और उन्हें बहुत प्रशिक्षण देता हूँ। हे गौतम, मुझे एक उपमा सूझ रही है। अग्गिवेसना, इसे कहिए। जैसे ये बीज समूह और वनस्पति समूह पृथ्वी पर स्थापित और पोषित होकर बढ़ते और विकसित होते हैं। उसी प्रकार सभी शक्तिशाली कार्य, जो किए जाने हैं, पृथ्वी पर स्थापित और पोषित होकर किए जाने चाहिए। उसी प्रकार यह व्यक्ति, जो पदार्थ में स्थापित है, भौतिक आत्मा के साथ पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह भावपरक व्यक्ति, जो भावों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह बोधपरक व्यक्ति, जो बोधों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह संकल्पपरक व्यक्ति, जो संकल्पों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। दोष। चेतना में स्थापित सचेत व्यक्ति पुण्य या दोष अर्जित करता है। अग्गिवेसना, क्या आप कहते हैं कि पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं। चेतना मेरा आत्मा है? हे गौतम, मैं कहता हूँ, पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं। चेतना मेरा आत्मा है, और यह विशाल जनसमूह भी यही कहता है। यह विशाल जनसमूह आपके इस विचार के बारे में क्या कहता है? आपको अपने विचार पर बहस करनी चाहिए। हे गौतम, मैं कहता हूँ, पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं, और चेतना मेरा आत्मा है।

फिर मैं इस विषय पर आपसे जिरह करूँगा और आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दे सकते हैं। हे गौतम, क्या कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजा अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें पैदा करने और उन्हें निर्वासित करने का अधिकार रखते हैं जिन्हें मृत्युदंड देना आवश्यक है? जी हाँ, हे गौतम, कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजा अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें पैदा करने और उन्हें निर्वासित करने का अधिकार रखते हैं

जिन्हें मृत्युदंड देना आवश्यक है। यहां एकत्रित हुए वज्जी और मल्ल वंश के नेता भी अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें उत्पन्न करने और उन्हें निर्वासित करने की शक्ति रखते हैं जिन्हें निर्वासित किया जाना आवश्यक है, इसलिए कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजाओं के बारे में कोई संदेह नहीं है। अग्गिवेसना, आप कहते हैं कि पदार्थ आपका स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अधिकार रखते हैं, क्या मेरा पदार्थ ऐसा हो सकता है और ऐसा नहीं हो सकता है? यह सुनकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए। दूसरी बार भगवान बुद्ध ने पूछा, अग्गिवेसना, आप कहते हैं कि पदार्थ आपका स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अधिकार रखते हैं, क्या मेरा पदार्थ ऐसा हो सकता है और ऐसा नहीं हो सकता है? दूसरी बार निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए। तब भगवान बुद्ध ने कहा, अग्गिवेसना, इसे समझाओ। तुम्हारे चुप रहने का समय नहीं है। यदि कोई व्यक्ति तथागत बुद्ध द्वारा पूछे गए उचित प्रश्न का तीसरी बार तक उत्तर न दे, तो उसका सिर सात टुकड़ों में फट जाता है। उसी क्षण वज्रपाणि नामक राक्षस आकाश में अपने हाथ में जलता हुआ वज्र लिए प्रकट हुआ, मानो वह निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक का सिर फाड़ देगा यदि वह तथागत बुद्ध द्वारा पूछे गए उचित प्रश्न का तीसरी बार तक उत्तर न दे। वज्रपाणि नामक राक्षस को भगवान बुद्ध और निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने देखा। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक भयभीत होकर और रोंगटे खड़े होकर भगवान बुद्ध की शरण में आए और कहा, हे गौतम, मुझसे पूछिए, मैं समझा दूंगा।

अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि पदार्थ आपका ही स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरा पदार्थ ऐसा ही रहे, अन्यथा न रहे? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि भावनाएँ आपका ही स्वरूप हैं, क्या आप उन भावनाओं पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरी भावनाएँ ऐसी ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि बोध आपका ही स्वरूप है, क्या आप उन बोधों पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरी बोधियाँ ऐसी ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि संकल्प आपका ही स्वरूप है, क्या आप उन संकल्पों पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरे संकल्प ऐसे ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनो और उत्तर दो, अग्गिवेसना। तुमने पहले जो कहा था, वह अब जो कह रहे हो, उससे मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, तुम जो कहते हो कि चेतना ही तुम्हारा स्वरूप है, क्या तुम उस चेतना पर अधिकार रखते हो, ताकि मेरी चेतना ऐसी ही रहे, अन्यथा न रहे? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनो और उत्तर दो, अग्गिवेसना। तुमने पहले जो कहा था, वह अब जो कह रहे हो, उससे मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, तुम क्या सोचते हो, पदार्थ स्थायी है या अस्थायी? अस्थायी, हे गौतम। वह अस्थायी वस्तु, क्या सुखद है? सुखद है, अप्रिय। वह अस्थायी, अप्रिय, परिवर्तनशील वस्तु, क्या यह विचार करने योग्य है कि वह मेरी है, वह मैं हूँ, वह मेरा स्वरूप है? नहीं, हे गौतम। अग्गिवेसना, क्या भावनाएँ, क्या धारणाएँ, क्या निर्धारण, क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी? अस्थायी, हे गौतम। वह अस्थायी वस्तु, क्या सुखद है? सुखद है, अप्रिय। क्या उस क्षणभंगुर, अप्रिय, परिवर्तनशील वस्तु को मेरा मानना, मुझे अपना स्वरूप मानना उचित है? नहीं, हे गौतम। अग्गिवेसना, जो अप्रियता से चिपका रहता है, उससे अभिभूत होता है, उसके दबाव में रहता है और उसे अपना मानता है, वह उसे अपना स्वरूप समझेगा। क्या वह स्वयं अप्रियता को सही ढंग से समझ पाएगा या उससे बचकर उसमें स्थिर रह पाएगा? हे गौतम, ऐसा कैसे संभव है? नहीं, हे गौतम, ऐसा नहीं हो सकता।

अग्गिवेसना, जैसे कोई व्यक्ति किसी पेड़ की जड़ और जड़ की खोज में भटकता हुआ खंजर लेकर जंगल में प्रवेश करता है, वहाँ एक लंबा, सीधा, नया केले का पेड़ देखकर उसकी जड़ें और ऊपरी भाग काट देता है, और पेड़ को गिराकर उसकी बालियाँ खोल देता है, लेकिन उसे अंदर की जड़ तक नहीं पहुँच पाता, तो फिर जड़ कहाँ है? ठीक उसी प्रकार, अग्गिवेसना, अपने ही विवाद में आपसे पूछताछ की गई, आपसे कारण पूछे गए, और आपके साथ अध्ययन करते हुए हमने आपको खोखला, बेकार और पथभ्रष्ट पाया। क्या आपने वैशाली की इन सभाओं में ऐसी कोई बात कही है? मुझे कोई संन्यासी, ब्राह्मण, भीड़ का नेता, भीड़ का शिक्षक, या यहाँ तक कि वह व्यक्ति भी जो स्वयं को पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध मानता है, मेरे द्वारा विवाद में खींचे जाने पर काँपता, थरथराता और पसीना बहाता हुआ नहीं दिखता। यहाँ तक कि एक निर्जीव स्तंभ भी मेरे द्वारा विवाद में खींचे जाने पर काँपता और थरथराता है, तो मनुष्य का क्या होगा? हे अग्गिवेसना, आपके माथे से पसीना टपक रहा है और कुछ बूंदें आपके शॉल को भेदकर जमीन पर गिर गई हैं, इस समय मेरे शरीर पर पसीना नहीं है। यह कहते हुए भगवान बुद्ध ने अपना स्वर्णमय शरीर उस सभा के सामने प्रकट किया। यह सुनकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए, भ्रमित हो गए, उनका शरीर उदास हो गया, चेहरा नीचे की ओर झुका हुआ था, वे कुछ कह नहीं पाए और बैठ गए।

तब लिच्छवियों के पुत्र दुम्मुख ने निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक को चुपचाप, भ्रमित, उदास, चेहरा नीचे किए, उत्तर देने में असमर्थ बैठे हुए देखा। उसने भगवान बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, मेरे मन में एक उपमा आती है।” भगवान बुद्ध ने कहा, “बताइए दुम्मुख। हे पूज्यवर, एक गाँव या बस्ती के पास एक तालाब है, जिसमें एक केकड़ा रहता है। बहुत से लड़के-लड़कियाँ तालाब के पास जाते हैं, उसमें उतरते हैं और केकड़े को खींचकर सूखी ज़मीन पर ले आते हैं। जब भी केकड़ा अपना कोई अंग बाहर निकालता है, कोई लड़का या लड़की उसे

लाठी या पत्थर से काटकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार, अपने सभी अंगों के नष्ट हो जाने के कारण, केकड़ा पहले की तरह तालाब में नहीं उतर पाता। इसी प्रकार, भगवान बुद्ध ने निगंथ के पुत्र सच्चक के सभी विकृत विचारों और बेचैनी को काट कर नष्ट कर दिया है, और अब यह संभव नहीं है कि वह विवाद करने के इरादे से भगवान बुद्ध के पास आए।" यह सुनकर निगंथा (जैन) के पुत्र सच्चक ने लिच्छवी वंश के पुत्र दुम्मुख से कहा, "रुको, दुम्मुख, हमें भले गौतम से बात करनी है।"

हे गौतम जी, मेरा यह विचार सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों का भी विचार है। मुझे लगता है यह व्यर्थ की बातें हैं। हे गौतम जी के शिष्य, गुरु के मार्गदर्शन में कैसे कार्य करते हैं, दिए गए उपदेशों का पालन करते हैं, शंकाओं को दूर करते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं और गुरु पर निर्भर न रहकर गुरु के मार्गदर्शन में रहते हैं? हे अग्गिवेसन जी, मेरे शिष्यों, देखो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा है वैसा ही देखा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा है वैसा ही देखा जाता है। अग्गिवेसना, मेरे शिष्यों ने मेरे मार्गदर्शन में इतना ही किया है, सलाह का पालन किया है, शंकाओं को दूर किया है और गुरु पर निर्भर न रहकर आत्मविश्वास से भरे हुए हैं। हे गौतम, भिक्षु कैसे पूर्ण हो जाता है जब उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह पवित्र जीवन जीता है, जो करना चाहिए वह करता है, भार को त्याग देता है, सर्वोच्च सुख प्राप्त करता है, 'होने' की इच्छा को नष्ट कर देता है और सही ज्ञान से मुक्त हो जाता है? हे अग्गिवेसना, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी धारणाएँ मेरी नहीं हैं। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी धारणाएँ मेरी नहीं हैं। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी चेतना मेरी नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। अग्गिवेसना, जब इतना हो जाए तो भिक्षु परिपूर्ण हो जाता है, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, पवित्र जीवन व्यतीत हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है, बोझ उतर जाता है, सर्वोच्च कल्याण प्राप्त हो जाता है, और 'होने वाली' इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं।और सही ज्ञान प्राप्त होता है। अग्गिवेसना, इस प्रकार मुक्त हुए भिक्षु का मन तीन गुणों से परिपूर्ण हो जाता है: दृष्टि का गुण, विधि का गुण और मुक्ति का गुण। अग्गिवेसना, इस प्रकार मुक्त हुए भिक्षु तथागत बुद्ध का आदर, श्रद्धा और सम्मान करते हैं। भगवान बुद्ध प्रबुद्ध हैं, वे ज्ञान का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध वश में हैं, वे वश में करने का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध शांत हैं, वे शांत करने का उपदेश देते हैं। भगवान बुद्ध परलोक गए, वे परलोक जाने का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध का नाश हुआ, वे नाश होने का उपदेश देते हैं।

यह सुनकर निगंथ के पुत्र सच्चक (जैन) ने भगवान बुद्ध से कहा: "हम साहसी और निडर थे और हमने सोचा कि हम गौतम बुद्ध का अपमान विवाद से करें। क्रोधित हाथी का अपमान करने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला नहीं। जलती हुई लौ को छेड़ने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला सुरक्षित नहीं रहेगा। विषैले साँप का अपमान करने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला सुरक्षित नहीं रहेगा। हम साहसी और निडर थे और हमने सोचा कि हम गौतम बुद्ध का अपमान विवाद से करें। हे गौतम, कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ ग्रहण करें।" भगवान बुद्ध ने मौन स्वीकार किया।

तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, लिच्छवियों से कहा, "हे लिच्छवियों, सुनो। मैंने भगवान बुद्ध और भिक्षु समुदाय को कल के भोज के लिए आमंत्रित किया है। जो भी तुम्हें उचित लगे, ले आओ।" तब उस रात के अंत में वे लिच्छवी पके हुए चावल से भरे पाँच सौ कटोरे लेकर आए। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने भी अपने मठ में भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार करवाए और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी, "हे गौतम, समय हो गया है, भोजन तैयार है।" तब भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके और कटोरे व वस्त्र लेकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक के मठ की ओर प्रस्थान किया और भिक्षु समुदाय के साथ तैयार आसन पर विराजमान हुए। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने अपने हाथों से प्रबुद्ध बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय अर्पित किए। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने देखा कि भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और कटोरा रख दिया है। तब वह एक नीची चौकी पर एक तरफ बैठ गया और भगवान बुद्ध से कहा, "इस भेंट के उत्तम पुण्य उन

दाताओं को मिलें। हे अग्गिवेसना, लोभ, घृणा और मोह से मुक्त होकर आपको दी गई भेंटों से प्राप्त पुण्य उन दाताओं को मिलें। लोभ, घृणा और मोह से मुक्त होकर मुझे दी गई भेंटों से प्राप्त पुण्य आपको मिलें।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.6 महा सकाका सुत्त(36)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में रह रहे थे। उस समय, जब सुबह हुई, भगवान बुद्ध वस्त्र धारण कर चुके थे और भिक्षा मांगने के लिए वैशाली जाने की इच्छा से अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र धारण कर चुके थे। तभी, निगंथ के पुत्र सच्चक व्यायाम के लिए टहलते हुए विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में आए। पूज्य आनंद ने उन्हें दूर से आते देखा और भगवान बुद्ध से कहा, “पूज्यवर, निगंथ के पुत्र सच्चक आ रहे हैं, जो वाद-विवाद में निपुण और कुशल वक्ता हैं और अनेकों द्वारा संत माने जाते हैं। वे बुद्ध, धम्म और संघ को बदनाम करना चाहते हैं। यदि भगवान बुद्ध दयावश कुछ देर बैठ जाएं तो अच्छा होगा।” भगवान बुद्ध तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब निगंथ के पुत्र सच्चक भगवान बुद्ध के पास गए और उनसे अभिवादन किया। जब यह विनम्र और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वह एक तरफ बैठ गया और भगवान बुद्ध से बोला:

“गुरु गौतम, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जो शरीर के विकास में लगे रहते हैं, लेकिन मन के विकास में नहीं। वे शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। पहले, जब किसी को शारीरिक पीड़ा होती थी, तो उसकी जांघें अकड़ जाती थीं, दिल फट जाता था, मुंह से गर्म खून बहने लगता था और वह पागल हो जाता था, उसका दिमाग खराब हो जाता था। तब मन शरीर के अधीन था, शरीर उस पर हावी था। ऐसा क्यों था? क्योंकि मन विकसित नहीं था। लेकिन कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जो मन के विकास में लगे रहते हैं, लेकिन शरीर के विकास में नहीं। वे मानसिक पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। पहले, जब किसी को मानसिक पीड़ा होती थी, तो उसकी जांघें अकड़ जाती थीं, दिल फट जाता था, मुंह से गर्म खून बहने लगता था और वह पागल हो जाता था, उसका दिमाग खराब हो जाता था। तब शरीर मन के अधीन था, मन उस पर हावी था। ऐसा क्यों था? क्योंकि शरीर विकसित नहीं हुआ था। गुरु गौतम, मेरे मन में यह विचार आया है: 'निश्चित रूप से गुरु गौतम के शिष्य मन के विकास में लगे रहते हैं, न कि शरीर के विकास में।'

लेकिन, अग्गिवेसना, तुमने शरीर के विकास के बारे में क्या सीखा है?

उदाहरण के लिए, नंदा वच्छ, किसा संकिच्छ, मक्खली गोशाला जैसे लोग हैं। वे नंगे रहते हैं, रीति-रिवाजों को नकारते हैं, अपने हाथ चाटते हैं, बुलाए जाने पर नहीं आते, रुके नहीं; वे लाया हुआ भोजन, विशेष रूप से बनाया गया भोजन या भोजन का निमंत्रण स्वीकार नहीं करते; वे किसी बर्तन, कटोरे, दहलीज के पार, छड़ी, मूसल, साथ भोजन कर रहे दो लोगों, गर्भवती महिला, दूध पिला रही महिला, पुरुष के साथ लेटी महिला, जहाँ भोजन बाँटने का हो, जहाँ कुत्ता इंतज़ार कर रहा हो, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों, से कुछ भी ग्रहण नहीं करते; वे मछली या मांस नहीं खाते, वे शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीते। वे एक घर में, एक निवाला खाते हैं; वे दो घरों में, दो निवाले खाते हैं... वे सात घरों में, सात निवाले खाते हैं। वे एक थाली प्रतिदिन, दो थाली प्रतिदिन... सात थाली प्रतिदिन पर जीवन यापन करते हैं। वे दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर पखवाड़े में एक बार तक भोजन करते हैं; वे निश्चित अंतराल पर भोजन करने की प्रथा का पालन करते हुए जीवन यापन करते हैं।

लेकिन क्या वे इतने कम पर ही अपना गुजारा करते हैं, अग्गिवेसना?

"नहीं, गुरु गौतम, कभी-कभी वे उत्तम कठोर भोजन, उत्तम नरम भोजन, उत्तम व्यंजन और उत्तम पेय का सेवन करते हैं। इससे वे अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर लेते हैं, मजबूत हो जाते हैं और मोटे हो जाते हैं।"

“जिस चीज को उन्होंने पहले त्याग दिया था, अग्गिवेसना, उसे वे बाद में फिर से अपना लेते हैं। इसी तरह इस शरीर में वृद्धि और कमी होती है। लेकिन आपने मन के विकास के बारे में क्या सीखा?”

जब भगवान बुद्ध ने निगंथा के पुत्र सच्चक से मन के विकास के बारे में पूछा, तो वह उत्तर देने में असमर्थ रहा।

तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा: "हे अग्गिवेसना, तुमने अभी जिस शरीर विकास की बात की है, वह धम्म के अनुसार, श्रेष्ठ धर्म के अनुसार शरीर विकास नहीं है। जब तुम शरीर विकास को नहीं जानते, तो मन विकास को कैसे जान सकते हो? फिर भी, हे अग्गिवेसना, शरीर और मन के अविकसित होने के विषय में, मेरी बात ध्यान से सुनो।"—"जी, श्रीमान," निगंथा के पुत्र सच्चक ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

"हे अग्गिवेसन, शरीर और मन से अविकसित व्यक्ति कैसे होता है? यहाँ, अग्गिवेसन, एक अशिक्षित साधारण व्यक्ति में सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभूति से प्रेरित होकर वह सुख की लालसा करता है और निरंतर उसी लालसा में लगा रहता है। उसकी वह सुखद अनुभूति समाप्त हो जाती है। सुखद अनुभूति के समाप्त होते ही दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है। उस दुख की अनुभूति से प्रेरित होकर वह शोक करता है, दुखी होता है और विलाप करता है, वह सीना पीटते हुए रोता है और व्याकुल हो जाता है। जब उसमें सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि शरीर विकसित नहीं होता। और जब उसमें दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि मन विकसित नहीं होता। जिस व्यक्ति में इस दोहरे तरीके से, उत्पन्न सुखद अनुभूति उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि शरीर विकसित नहीं होता, और उत्पन्न दुख की अनुभूति उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि मन विकसित नहीं होता, वह शरीर और मन दोनों से अविकसित होता है।"

"और हे अग्गिवेसन, शरीर और मन का विकास कैसे होता है? यहाँ, अग्गिवेसन, एक सुशिक्षित श्रेष्ठ शिष्य में सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभूति से प्रेरित होकर वह सुख की लालसा नहीं करता और न ही उसमें लिप्त रहता है। उसकी वह सुखद अनुभूति समाप्त हो जाती है। सुखद अनुभूति के समाप्त होते ही दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है। उस दुख की अनुभूति से प्रेरित होकर वह शोक, शोक और विलाप नहीं करता, वह छाती पीट-पीटकर रोता नहीं और व्याकुल नहीं होता। जब उसमें सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में नहीं बसती और शरीर के विकास के कारण नहीं ठहरती। और जब उसमें दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में नहीं बसती और मन के विकास के कारण नहीं ठहरती। जिस व्यक्ति में इस दोहरे तरीके से उत्पन्न सुखद अनुभूति उसके मन में नहीं बसती और शरीर के विकास के कारण नहीं ठहरती, और उत्पन्न दुख की अनुभूति उसके मन में नहीं बसती और मन के विकास के कारण नहीं ठहरती, वह शरीर और मन दोनों से विकसित होता है।"

"मुझे गुरु गौतम पर इस प्रकार विश्वास है: 'गुरु गौतम शरीर और मन दोनों से विकसित हैं।'"

हे अग्गिवेसना, निःसंदेह आपके शब्द अपमानजनक और असभ्य हैं, फिर भी मैं आपको उत्तर दूंगा। जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से न तो कोई सुखद भावना मेरे मन में प्रवेश कर सकती है और न ही कोई दुखद भावना मेरे मन में प्रवेश कर सकती है और न ही बनी रह सकती है।

"क्या गुरु गौतम के मन में कभी कोई ऐसी सुखद अनुभूति नहीं उत्पन्न हुई जो उनके मन में व्याप्त हो जाए? क्या गुरु गौतम के मन में कभी कोई ऐसी पीड़ादायक अनुभूति नहीं उत्पन्न हुई जो उनके मन में व्याप्त हो जाए?"

"क्यों नहीं, अग्गिवेसना? यहाँ, अग्गिवेसना, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, मैंने सोचा: 'गृहस्थ जीवन भीड़भाड़ वाला और धूल भरा है; परलोक में जीवन खुला और विशाल है। घर में रहते हुए, एक पॉलिश किए हुए शंख के समान पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। मान लीजिए कि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लूँ, पीला वस्त्र पहन लूँ, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊँ।'

बाद में, जब मैं अभी भी जवान था, एक काले बालों वाला युवक, यौवन के आशीर्वाद से परिपूर्ण, अपने जीवन के चरम पर... और मैं वहाँ बैठकर सोचने लगा: 'यह प्रयास करने के लिए उपयोगी होगा।'

"अब ये तीन उपमाएँ मुझे अनायास ही सूझीं, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। मान लीजिए कि पानी में लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।'

अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी आग जलाने वाली लकड़ी को पानी में पड़े गीले, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"नहीं, गुरु गौतम। क्यों नहीं? क्योंकि यह लकड़ी का एक गीला और रसदार टुकड़ा है, और यह पानी में पड़ा हुआ है। अंततः इससे मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए भी, जो अभी तक शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त नहीं हुए हैं, और जिनकी इंद्रिय सुखों की इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और लालसा पूरी तरह से त्यागी और आंतरिक रूप से दबाई नहीं गई है, भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनशील अनुभूतियाँ अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं; और भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनशील अनुभूतियाँ अनुभव न करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यह पहली उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले मैंने कभी नहीं सुनी थी।

"अग्गिवेसना, एक और उपमा मेरे मन में अनायास ही आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। मान लीजिए कि पानी से दूर सूखी ज़मीन पर लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।' अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी आग जलाने वाली लकड़ी को पानी से दूर सूखी ज़मीन पर पड़े गीले, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"नहीं, गुरु गौतम। क्यों नहीं? क्योंकि यह गीली और रसदार लकड़ी का टुकड़ा है, भले ही यह पानी से दूर सूखी जमीन पर पड़ा हो। अंततः इससे मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए भी, जो शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त रहते हैं, परन्तु जिनकी इंद्रिय इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और इंद्रिय सुखों की लालसा पूर्णतः त्यागी और आंतरिक रूप से दमित नहीं हुई है, चाहे वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायी और भेदनशील अनुभूतियाँ भी अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान की प्राप्ति के योग्य नहीं हैं; और चाहे वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायी और भेदनशील अनुभूतियाँ न भी अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान की प्राप्ति के योग्य नहीं हैं। यह दूसरी उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।"

"अग्गिवेसना, एक तीसरा उपमा मुझे अनायास ही सूझा, जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मान लीजिए कि पानी से दूर सूखी ज़मीन पर लकड़ी का एक सूखा, रसहीन टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।' अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी पानी से दूर सूखी ज़मीन पर पड़े लकड़ी के सूखे, रसहीन टुकड़े पर लकड़ी रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"जी हां, गुरु गौतम। ऐसा क्यों? क्योंकि यह सूखी, रसहीन लकड़ी का टुकड़ा है, और यह पानी से दूर सूखी जमीन पर पड़ा है।"

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए जो शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त रहते हैं, और जिनकी इंद्रिय सुखों की इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और लालसा पूर्णतः त्याग दी गई है और आंतरिक रूप से दबा दी गई है, भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी अनुभूतियाँ अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं; और भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक या भेदनकारी अनुभूतियाँ अनुभव न करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं। यह तीसरी उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले कभी नहीं सुनी थी। ये तीन उपमाएँ हैं जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले कभी नहीं सुनी थीं।"

मैंने सोचा: 'मान लो, मैं दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मन को मन से कुचल दूं, उस पर नियंत्रण कर लूं।' तो, दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मैंने मन को मन से कुचल दिया, उस पर नियंत्रण कर लिया और उस पर

नियंत्रण कर लिया। ऐसा करते हुए, मेरी बगलों से पसीना बहने लगा। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति को सिर या कंधों से पकड़कर नीचे गिरा देता है, उस पर नियंत्रण कर लेता है और उसे कुचल देता है, वैसे ही, दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मैंने मन को मन से कुचल दिया, उस पर नियंत्रण कर लिया और उस पर नियंत्रण कर लिया, और मेरी बगलों से पसीना बहने लगा। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर पीड़ादायक प्रयास से थक जाने के कारण अशांत और बेचैन था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और बनी नहीं रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख और नाक से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे कानों से तेज़ हवा की आवाज़ आई। जैसे लोहार की धौंकनी चलने पर तेज़ आवाज़ आती है, वैसे ही जब मैंने अपने नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे कानों से तेज़ हवा की आवाज़ आई। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर पीड़ादायक प्रयास से थक जाने के कारण अशांत और बेचैन था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का और अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय, मेरे सिर में तेज हवाएं चलने लगीं। मानो कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर रहा हो, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे सिर में तेज हवाएं चलने लगीं। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, मेरा शरीर अत्यधिक तनावग्रस्त और अशांत था क्योंकि मैं कष्टदायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह कष्टदायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ।' इसलिए मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे सिर में तीव्र दर्द हुआ। मानो कोई बलवान व्यक्ति मेरे सिर पर चमड़े का सख्त पट्टा कसकर बाँध रहा हो, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे सिर में तीव्र दर्द हुआ। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं इस पीड़ादायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का और अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय, तेज हवाओं ने मेरे पेट को चीर डाला। ठीक वैसे ही जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द किसी बैल के पेट को तेज चाकू से काटता है, वैसे ही, जब मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो तेज हवाओं ने मेरे पेट को चीर डाला। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं कष्टदायक प्रयास से थक गया था। लेकिन मुझमें उत्पन्न हुई यह कष्टदायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ।' इसलिए मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे शरीर में तीव्र जलन हुई। जैसे दो बलवान पुरुष किसी कमजोर पुरुष को दोनों भुजाओं से पकड़कर गर्म कोयलों के गड्ढे पर भून रहे हों, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे शरीर में तीव्र जलन हुई। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं इस पीड़ादायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

"जब देवताओं ने मुझे देखा, तो कुछ ने कहा: 'सन्यासी गौतम मर गए हैं।' अन्य देवताओं ने कहा: 'सन्यासी गौतम मरे नहीं हैं, वे मर रहे हैं।' और अन्य देवताओं ने कहा: 'सन्यासी गौतम न तो मरे हैं और न ही मर रहे हैं; वे एक अरहंत हैं, क्योंकि अरहंत इसी प्रकार रहते हैं।"

मैंने सोचा: 'मान लीजिए मैं पूरी तरह से भोजन त्यागने का अभ्यास करता हूँ।' तब देवता मेरे पास आए और बोले: 'हे भगवान, पूरी तरह से भोजन त्यागने का अभ्यास न करें। यदि आप ऐसा करेंगे, तो हम आपकी त्वचा के रोमछिद्रों में दिव्य भोजन डाल देंगे और आप उसी पर जीवित रहेंगे।' मैंने सोचा: 'यदि मैं यह दावा करूँ कि मैं पूरी तरह से उपवास कर रहा हूँ जबकि ये देवता मेरी त्वचा के रोमछिद्रों में

दिव्य भोजन डाल रहे हैं और मैं उसी पर जीवित हूँ, तो मैं झूठ बोल रहा हूँगा।' इसलिए मैंने उन देवताओं को यह कहकर विदा कर दिया: 'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

मैंने सोचा: 'मान लीजिए कि मैं बहुत कम खाना लेता हूँ, एक बार में मुट्ठी भर, चाहे वह बीन्स का सूप हो, मसूर का सूप हो, वेच का सूप हो या मटर का सूप हो।' इसलिए मैं बहुत कम खाना खाता था, एक बार में बस मुट्ठी भर, चाहे वो बीन्स का सूप हो, मसूर का सूप हो, या मटर का सूप हो। ऐसा करते-करते मेरा शरीर अत्यधिक कमजोर हो गया। इतना कम खाने के कारण मेरे अंग बेल या बांस के तनों के जोड़ों जैसे हो गए। इतना कम खाने के कारण मेरी पीठ ऊंट के खुर जैसी हो गई। इतना कम खाने के कारण मेरी रीढ़ की हड्डी पर उभरे हुए हिस्से मोतियों की माला जैसे दिखने लगे। इतना कम खाने के कारण मेरी पसलियां किसी पुराने, बिना छत वाले खलिहान की टूटी-फूटी कड़ियों की तरह बाहर निकली हुई थीं। इतना कम खाने के कारण मेरी आंखों की चमक मिट गई, मानो किसी गहरे कुएं में डूबे पानी की चमक हो। इतना कम खाने के कारण मेरी खोपड़ी हवा और धूप में हरे करेले की तरह सिकुड़ गई। इतना कम खाने के कारण मेरे पेट की त्वचा मेरी रीढ़ की हड्डी से चिपक गई; इसलिए अगर मैं अपने पेट की त्वचा को छूता तो मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी महसूस होती और अगर मैं अपनी रीढ़ की हड्डी को छूता तो... मुझे अपने पेट की त्वचा से परेशानी हुई। कम खाने के कारण, अगर मैं पेशाब या शौच करता, तो वहीं मुंह के बल गिर जाता। कम खाने के कारण, अगर मैं अपने हाथों से अपने अंगों को रगड़कर शरीर को आराम देने की कोशिश करता, तो जड़ से सड़े हुए बाल रगड़ते ही मेरे शरीर से झड़ जाते।

“अब जब लोग मुझे देखते थे, तो कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम काले हैं।' कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम काले नहीं, भूरे हैं।' कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम न तो काले हैं और न ही भूरे, उनकी त्वचा सुनहरी है।' इतना कम खाने से मेरी त्वचा का साफ, चमकीला रंग इतना बिगड़ गया था।”

मैंने सोचा: 'अतीत में संन्यासियों या ब्राह्मणों ने परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव की हैं, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। और भविष्य में संन्यासियों और ब्राह्मणों को परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव करनी होंगी, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। और वर्तमान में संन्यासियों और ब्राह्मणों को परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव करनी हैं, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। परन्तु इस कष्टदायक तपस्या से भी मुझे कोई अलौकिक अवस्था, कोई ऐसा ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं हुई जो श्रेष्ठों के योग्य हो। क्या ज्ञान प्राप्ति का कोई और मार्ग हो सकता है?'

मैंने सोचा: 'मुझे याद है कि जब मेरे पिता शाक्य व्यस्त थे, तब मैं एक रसभरी की ठंडी छाया में बैठा था, इंद्रिय सुखों से पूरी तरह दूर, अस्वस्थ अवस्थाओं से अलग, तब मैंने प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा, जो निरंतर चिंतन, एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से युक्त होती है। क्या यही ज्ञानोदय का मार्ग हो सकता है?' फिर, उस स्मृति के आधार पर, मुझे यह अहसास हुआ: 'यही ज्ञानोदय का मार्ग है।'

मैंने सोचा: 'मैं उस आनंद से क्यों डरता हूँ जिसका इंद्रिय सुखों और अस्वस्थ अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं है?' मैंने सोचा: 'मैं उस आनंद से नहीं डरता क्योंकि उसका इंद्रिय सुखों और अस्वस्थ अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं है।'

मैंने सोचा: 'इतने दुबले-पतले शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है। मान लीजिए मैंने कुछ ठोस भोजन खाया—कुछ उबले हुए चावल और रोटी। और मैंने कुछ भोजन खाया—कुछ उबले हुए चावल और रोटी। उस समय पाँच भिक्षु मेरी सेवा में बैठे थे, यह सोचते हुए: 'यदि हमारे संन्यासी गौतम किसी उच्चतर अवस्था को प्राप्त कर लें, तो वे हमें सूचित करेंगे।' लेकिन जब मैंने उबले हुए चावल और रोटी खाई, तो पाँचों भिक्षु घृणा से भर गए और मुझे छोड़कर चले गए, यह सोचते हुए: 'सन्यासी गौतम अब विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं; उन्होंने अपना परिश्रम त्याग दिया है और विलासिता में लौट गए हैं।'

“जब मैंने ठोस भोजन कर लिया और अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली, तब इंद्रिय सुखों से पूर्णतया विवश होकर, अस्वस्थ अवस्थाओं से विवश होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा, जो निरंतर और गहन चिंतन के साथ-साथ एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से परिपूर्ण होता है। परन्तु मेरे भीतर उत्पन्न हुई ऐसी सुखद अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।”

“लगातार और गहन चिंतन के शांत होने के साथ, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... परमानंद के भी लुप्त होने के साथ... मैंने तीसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... सुख और दुख के त्याग के साथ... मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... लेकिन मेरे भीतर जो सुखद भावना उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।”

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने इसे पूर्व जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण किया, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म... इस प्रकार उनके विभिन्न पहलुओं सहित मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण किया।

"यह वह पहला सच्चा ज्ञान था जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे प्राणियों के देहान्तरण और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया... इस प्रकार दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैंने प्राणियों को देहान्तरण और पुनर्जन्म लेते देखा, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैंने समझा कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे देहान्तरण करते हैं।

"यह रात के दूसरे पहर में मुझे प्राप्त हुआ दूसरा सच्चा ज्ञान था। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन में नहीं बसी और न ही बनी रही।"

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने प्रत्यक्ष रूप से यह जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख है;'... 'यह दुख का मूल है;'... 'यह दुख का निवारण है;'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है;'... 'ये दोष हैं;'... 'यह दोषों का मूल है;'... 'यह दोषों का निवारण है;'... 'यह दोषों के निवारण का मार्ग है।'

जब मैंने इस प्रकार जाना और देखा, तो मेरा मन इंद्रिय सुख, बोध और अज्ञान के दोष से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'यह मुक्त हो गया है।' मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: 'जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में आना संभव नहीं है।'

"यह तीसरा सच्चा ज्ञान था जो मुझे रात के तीसरे पहर में प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

"अग्गिवेसना, मुझे सैकड़ों लोगों की सभा में धम्म का उपदेश देना याद है। शायद हर कोई सोचता होगा: 'सन्यासी गौतम विशेष रूप से मुझे ही धम्म का उपदेश दे रहे हैं।' लेकिन ऐसा नहीं सोचना चाहिए; तथागत दूसरों को केवल ज्ञान देने के लिए ही धम्म का उपदेश देते हैं। जब प्रवचन समाप्त हो जाता है, अग्गिवेसना, तब मैं अपने मन को आंतरिक रूप से स्थिर करता हूँ, शांत करता हूँ, एकाग्रता में लाता हूँ और उसी एकाग्रता की अवस्था में एकाग्र करता हूँ जिसमें मैं निरंतर लीन रहता हूँ।"

"गुरु गौतम के बारे में यह बात मानी जा सकती है, क्योंकि वे सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं। लेकिन क्या गुरु गौतम को दिन में सोने की याद है?"

"मुझे याद है, अग्गिवेसना, गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, भिक्षाटन से लौटने के बाद, भोजन करने के बाद मैंने अपना बाहरी वस्त्र चार भागों में मोड़कर बिछाया और अपनी दाहिनी ओर करवट लेकर सो गया, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर।"

"हे गौतम जी, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण इसे भ्रम में रहना कहते हैं।" "हे अग्गिवेसना, भ्रम में होने या न होने का कोई ऐसा तरीका नहीं है। भ्रम में होने या न होने के बारे में आप ध्यान से सुनिए और मेरी बात समझिए।"—"जी जी," निगंथ के पुत्र सच्चक ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने कहा: "मैं उसे भ्रमित कहता हूँ, अग्गिवेसन, जिसने उन दोषों का त्याग नहीं किया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते

हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; क्योंकि दोषों का त्याग न करने से ही व्यक्ति भ्रमित होता है। मैं उसे भ्रममुक्त कहता हूँ जिसने उन दोषों का त्याग कर दिया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; क्योंकि दोषों का त्याग करने से ही व्यक्ति भ्रममुक्त होता है। तथागत, अग्गिवेसन ने उन दोषों का त्याग कर दिया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; उन्होंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उनका इस प्रकार उन्मूलन कर दिया है कि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। जैसे ताड़ के पेड़ का ऊपरी भाग काट दिया जाए तो वह आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है, वैसे ही..." तथागत ने अपवित्र करने वाले दोषों का त्याग कर दिया है... उन्हें दूर कर दिया है ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

यह सुनकर निगंथ के पुत्र सच्चक ने कहा, "हे गौतम जी, यह अद्भुत है, यह आश्चर्य की बात है कि जब गौतम जी से बार-बार अपमानजनक बातें की जाती हैं, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तब भी उनकी त्वचा का रंग निखरता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। मुझे याद है, गौतम जी ने पुराण कस्सप से वाद-विवाद किया, फिर उन्होंने टालमटोल किया, बात को दूसरी ओर मोड़ दिया और क्रोध, घृणा और कड़वाहट दिखाई। लेकिन जब गौतम जी से बार-बार अपमानजनक बातें की जाती हैं, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तब भी उनकी त्वचा का रंग निखरता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। मुझे याद है, गौतम जी ने मखली गोसला... अजित केशकंबलिन... पकुधा कच्चयन... संजय बेलत्थिपुत्त... निगंथ नटपुत्त से वाद-विवाद किया, फिर उन्होंने टालमटोल किया, बात को दूसरी ओर मोड़ दिया एक तरफ हटकर, उन्होंने क्रोध, घृणा और कड़वाहट दिखाई। लेकिन जब गुरु गौतम से बार-बार अपमानजनक ढंग से बात की जाती है, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तो उनकी त्वचा का रंग निखर उठता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि एक सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। और अब, गुरु गौतम, हम प्रस्थान करते हैं। हम व्यस्त हैं और हमें बहुत कुछ करना है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.7 कुलतनहसंखाय सुत्त(37)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में मिगारा की माता के महल, पुब्बा मठ में निवास कर रहे थे। तब देवताओं के राजा सक्का भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और इस प्रकार कहा: हे पूज्यवर, भिक्षु को तृष्णा का नाश करके कैसे मुक्ति मिलती है? वह कैसे परिपूर्ण होता है, बंधनों से मुक्त होता है, पवित्र जीवन का अंत करता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ बनता है?

हे देवताओं के राजा, यहाँ भिक्षु ज्ञानी हो उठता है और जान जाता है कि किसी भी चीज़ में स्थिर रहना उचित नहीं है। वह सभी चीजों को अच्छी तरह से और सही-सही जान लेता है, सभी चीजों को पहचानता है, सुख, दुख और न सुख, सभी प्रकार के भावों को महसूस करता है। उन भावों में वह अनित्यता देखता है, मन को उनसे अलग करता है, उनके अंत को देखता है और उन्हें त्याग देता है। अनित्यता, वैराग्य, अंत और उन भावों के त्याग को देखते हुए, वह संसार में किसी भी चीज को नहीं पकड़ता। कुछ न पकड़ने से चिंता नहीं होती। चिंता न करने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म नष्ट हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है, पवित्र जीवन जी लिया जाता है, और वह जान जाता है कि अब और कुछ नहीं चाहना है। हे देवताओं के राजा, इतना जानने से ही भिक्षु पूर्णतः सिद्ध हो जाता है, बंधन से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, भोग-विलास के नाश से मुक्त हो जाता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। फिर देवताओं के राजा, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर और सहमत होकर, उनकी पूजा और परिक्रमा करते हैं और वहीं से विलीन हो जाते हैं।

उस समय पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास बैठे थे और उनके मन में यह प्रश्न उठा कि क्या इस अमानव ने सचमुच भगवान बुद्ध के वचन समझ लिए हैं, क्या वह प्रसन्न होकर गायब हो गया है या नहीं, मुझे इसका पता लगाना चाहिए। तब पूज्य महामोग्गलाना, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है, वैसे ही मिगारा की माता के महल, पुब्बा मठ से गायब हो गए और बत्तीस देवताओं के साथ प्रकट हुए। उस समय देवताओं के राजा सक्का, पंचांग संगीत के साथ एकल श्वेत कमल के उद्यान में विराजमान थे। दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देख, देवताओं के राजा सक्का ने पंचांग संगीत को विदा किया

और पूज्य महामोग्गलाना के पास आकर कहा: आपका स्वागत है! श्रीमान मोग्गलाना, बहुत समय बाद आपको यहाँ आने का अवसर मिला है। बैठिए, महाराज, आसन तैयार है। पूज्य महामोग्गलाना तैयार आसन पर बैठ गए। देवताओं के राजा सक्का भी एक छोटे आसन पर बैठ गए, और पूज्य महामोग्गलाना ने देवताओं के राजा से इस प्रकार कहा।

कोसिया, भगवान बुद्ध ने आपको भोग-विलास के नाश से मुक्ति का सार संक्षेप में कैसे समझाया? हम भी इसे सुनना चाहते हैं। हे भगवान, हमारे पास बहुत काम है, और बत्तीस देवताओं के लिए भी बहुत काम है। फिर भी, हे भगवान, मोग्गलाना, हमने इसे सुना, अच्छी तरह समझा, इस पर गहन विचार किया और इसे मन में संजो लिया, और हम तुरंत अंतर्धान हो गए। अतीत में देवताओं और अर्धदेवों के बीच युद्ध हुआ था। हमने उस युद्ध में अर्धदेवों को पराजित किया और विजय के बाद लौटकर विजय का जश्न मनाने के लिए, मैंने वेजंत नामक एक महल की रचना की। इस महल में सौ शिखर हैं, और प्रत्येक शिखर पर सात, सात सौ छज्जे हैं, प्रत्येक छज्जे पर सात अप्सराएँ हैं और प्रत्येक अप्सरा की सात परिचारिकाएँ हैं। हे भगवान, मोग्गलाना, क्या आप वेजंत महल की भव्यता देखना चाहते हैं? आदरणीय महामोग्गलाना ने मौन में स्वीकार किया।

तब देवताओं के राजा सक्का और महान राजा वेसवना, पूज्य महामोग्गलाना के पीछे-पीछे वेजनता महल की ओर बढ़े। दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देख, देवताओं के राजा सक्का की परिचारिकाएँ पश्चाताप और लज्जा से अपने-अपने कमरों में लौट गईं, ठीक वैसे ही जैसे बहुएँ अपनी सास को इस हालत में देखकर दुखी हो जाती हैं। तब देवताओं के राजा सक्का और महान राजा वेसवना वेजनता महल में इधर-उधर घूमते हुए बोले, “हे मोग्गलाना, वेजनता महल की भव्यता देखिए। यह भव्यता पूज्य कोसिया के पूर्व कर्मों के कारण है। यहाँ तक कि लोग भी किसी अच्छी चीज़ को देखकर कहते हैं, यह भव्य है, यह बत्तीस देवताओं का काम है। पूज्य कोसिया अपने पूर्व कर्मों के कारण इस वैभव में निवास करते हैं।” तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया। यह मूर्ख अमानव लापरवाही में जी रहा है, अगर मैं उसे भयभीत कर दूं तो क्या होगा? तब पूज्य महामोग्गलाना ने एक ऐसी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया जिससे उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से वेजंत भवन को हिलाकर रख दिया। देवताओं के राजा सक्का, महान राजा वेसवना और तैंतीस देवताओं के दल को यह देखकर आश्चर्य और विस्मितता हुई कि एक संन्यासी अपने पैर के अंगूठे से स्वर्ग के भवन को इतनी तीव्रता से हिला सकता है। तब पूज्य महामोग्गलाना ने यह जानते हुए कि देवताओं के राजा सक्का भयभीत हैं और उनके रोंगटे खड़े हो गए हैं, उनसे इस प्रकार कहा।

कोसिया, भगवान बुद्ध ने आपको भोग-विलास के नाश से मुक्ति का सार संक्षेप में कैसे बताया? हम भी इसे सुनना चाहेंगे। हे भगवान, मोग्गलाना, मैं भगवान बुद्ध के पास गया, प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और इस प्रकार कहा: हे पूज्यवर, भोग-विलास के नाश से भिक्षु को संक्षेप में कैसे मुक्ति मिलती है? वह कैसे पूर्णतः सिद्ध होता है, कैसे बंधनों से मुक्त होकर पवित्र जीवन के अंत तक पहुँचता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ बनता है? हे भगवान, मोग्गलाना, तब भगवान बुद्ध ने मुझसे इस प्रकार कहा: हे देवताओं के राजा, भिक्षु ज्ञानी हो जाता है, कि कुछ भी मन में स्थिर नहीं रह सकता। वह ज्ञानी हो जाता है, सभी चीजों का गहन ज्ञान प्राप्त करता है, सभी चीजों को सही-सही पहचानता है, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय न सुखद, सभी प्रकार की भावनाओं का अनुभव करता है। वह उन भावनाओं में अनित्यता देखता है, मन को उनसे अलग करता है, उनके अंत को देखता है और उन्हें त्याग देता है। इस प्रकार अनित्यता, वैराग्य, निरोध और उन भावनाओं के त्याग को देखकर स्थिर रहने वाला व्यक्ति संसार में किसी भी वस्तु को पाने की लालसा नहीं रखता। लालसा न रखने से चिंता नहीं होती, चिंता न होने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म का नाश हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है। पवित्र जीवन जीने वाला जानता है कि अब और कुछ पाने की इच्छा नहीं है। हे देवताओं के राजा, इतना करने से भिक्षु को तृष्णा का नाश हो जाता है। इस प्रकार वह परम सिद्ध हो जाता है, बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, पवित्र जीवन का अंत हो जाता है और वह देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। हे भगवान मोग्गलाना, भगवान ने तृष्णा के नाश से मुक्ति का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया। तब पूज्य महामोग्गलाना, देवताओं के राजा सक्का के वचनों से प्रसन्न होकर और सहमत होकर, तैंतीस देवताओं के बीच से विलीन हो गए और पुब्बा मठ में प्रकट हुए, जो मिगारा की माता का महल था, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है। आदरणीय महामोग्गलाना के जाने के तुरंत बाद, देवताओं के राजा सक्का के सेवकों ने उनसे कहा - "महोदय, क्या वह आपके गुरु हैं?" - "महोदय, वह हमारे गुरु नहीं हैं, वह मेरे सह-सहयोगी हैं।" आदरणीय महामोग्गलाना ने कहा, "महोदय, यह आपके लिए लाभ की बात है, आपके सह-सहयोगी इतने शक्तिशाली हैं, तो आपके गुरु के बारे में क्या?"

तब पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास आए, उनका प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए तथा उनसे कहा: “हे पूज्यवर, क्या भगवान बुद्ध को याद है कि उन्होंने किसी शक्तिशाली अमानव को तृष्णा के नाश द्वारा मुक्ति का सार समझाया था?” महामोग्गलाना, “मुझे याद है। यहाँ, देवताओं के राजा सक्का मेरे पास आए, मेरा प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर पूछा, “हे पूज्यवर, भिक्षु तृष्णा के नाश द्वारा मुक्ति कैसे प्राप्त करता है? वह कैसे पूर्णतः सिद्ध होता है और बंधनों से मुक्त होकर पवित्र जीवन का अंत प्राप्त करता है?” “हे मोग्गलाना, जब यह कहा गया, तो मैंने देवताओं के राजा सक्का से कहा, “हे देवताओं के राजा, भिक्षु ज्ञानी हो जाता है और यह जान

जाता है कि किसी भी चीज में स्थिर होना उचित नहीं है। वह सभी चीजों का गहन ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी चीजों को सटीक रूप से पहचान लेता है। वह सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद, सभी प्रकार की भावनाओं का अनुभव करता है। वह इन भावनाओं में अनित्यता देखता है।" अपने मन को उनसे अलग करके और उनके अंत को देखकर, वह उनका त्याग कर देता है। इस प्रकार अनित्यता, वैराग्य, अंत और उन भावनाओं के त्याग को देखकर वह संसार में किसी भी चीज की लालसा नहीं करता। लालसा न करने से चिंता नहीं होती। चिंता न करने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म का नाश होता है। जो करना चाहिए वह किया जाता है, पवित्र जीवन जिया जाता है, और वह जानता है कि अब और कुछ पाने की इच्छा नहीं है। हे देवताओं के राजा, इतना करने से भिक्षु को तृष्णा का नाश हो जाता है। वह अत्यंत सिद्ध हो जाता है, बंधनों के बंधन और पवित्र जीवन के अंत तक पूर्णतः पहुँच जाता है। वह देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। मोग्गलाना, मुझे याद है कि मैंने देवताओं के राजा सक्का को तृष्णा के नाश से मुक्ति के बारे में संक्षेप में इस प्रकार समझाया था।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.8महातनहसंखाय सुत्त(38)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय साती नामक एक मछुआरे के पुत्र भिक्षु के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ: "भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, यह चेतना जन्म-जन्म लेती है, और कुछ नहीं।" अनेक भिक्षुओं ने यह बात सुनी कि साती नामक एक मछुआरे के पुत्र भिक्षु के मन में यह गलत विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, यह चेतना जन्म-जन्म लेती है, और कुछ नहीं।' तब वे भिक्षु मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती के पास आए और उनसे पूछा, "हे मित्र साती, क्या यह सच है कि तुम्हारे मन में ऐसा गलत विचार आया है: 'जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं'?" "जी हाँ, मित्रों, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।" तब उन भिक्षुओं ने भिक्षु साती को उस गलत विचार से विमुख करने की इच्छा से उनसे प्रश्न पूछे, कारण पूछे और उनके साथ अध्ययन किया, "साती, ऐसा मत कहो, भगवान बुद्ध को दोष मत दो। भगवान बुद्ध को दोष देना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से कहा है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं होती।" जब उन भिक्षुओं ने उससे पूछताछ की, कारण पूछे और उसके साथ अध्ययन किया, तब भी वह अपने बुरे विचार पर अडिग रहा और उसे छोड़ने को तैयार नहीं था। उसने कहा, 'जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा को जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।'

जब वे भिक्षु साति भिक्षु को उस बुरे विचार से विमुख नहीं कर सके, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, एक मछुआरे के पुत्र साति नामक भिक्षु के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं।'" तब हम भिक्षु साति के पास गए और उनसे पूछा, "मित्र साति, क्या यह सच है कि आपके मन में ऐसा बुरा विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं'?" हे पूज्यवर, भिक्षु साति ने हमसे ऐसा कहा, "जी हां, मित्रों, 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं।'" तब हम भिक्षुओं ने भिक्षु साती को उस बुरे विचार से विमुख करने की इच्छा से उनसे प्रश्न पूछे, कारण पूछे और उनके साथ अध्ययन किया: साती, ऐसा मत कहो। भगवान बुद्ध पर दोष मत लगाओ। भगवान बुद्ध पर दोष लगाना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से कहा है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं होती। हमारे प्रश्न पूछने, कारण पूछने और उनके साथ अध्ययन करने के बावजूद भी वे अपने बुरे विचार पर अडिग रहे और उसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। जब हम भिक्षु साती को उस बुरे विचार से विमुख नहीं कर सके, तो हमने भगवान बुद्ध को इस बारे में सूचित करने के लिए उनसे संपर्क किया।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा, “आओ! भिक्षु, मेरी वाणी में भिक्षु साती से कहो कि गुरुजी उन्हें बुला रहे हैं।” वह भिक्षु मान गया और भिक्षु साती के पास जाकर बोला, “भगवान बुद्ध आपको बुला रहे हैं।” भिक्षु साती ने कहा, “जी मित्र,” और भगवान बुद्ध के पास जाकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने भिक्षु साती से कहा, “साती, क्या यह सच है कि तुम्हारे मन में ऐसा बुरा विचार आया है? जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।” “जी, आदरणीय, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।” “साती, वह चेतना कैसी है?” “आदरणीय, यह उच्चारण और अनुभव करने वाली चेतना है, जो यहाँ-वहाँ किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगती है।” हे मूर्ख, तुम मुझे यह उपदेश देते हुए किसे जानते हो? क्या मैंने तुम्हें अनेक तरीकों से नहीं बताया कि चेतना स्वयं उत्पन्न होती है? बिना कारण के चेतना का कोई उद्भव नहीं होता। फिर भी, हे मूर्ख, अपनी गलत समझ के कारण मुझे दोष देते हो, अपना विनाश करते हो और बहुत से पुण्य सृजित करते हो, जो तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्ट और परेशानी का कारण बनेगा।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या इस मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती को इस शिक्षा से वंचित नहीं किया जाना चाहिए? हे पूज्यवर, क्या भला हो? हमें ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए?” यह सुनकर भिक्षु साती मौन हो गए, भ्रमित हो गए, उनका शरीर झुक गया और चेहरा नीचे की ओर हो गया। वे उत्तर देने में असमर्थ होकर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने यह जानकर कि मछुआरे का पुत्र भिक्षु साती मौन हो गया है और उत्तर देने में असमर्थ है, उनसे कहा, “हे मूर्ख, तेरे बुरे विचार का फल मिलेगा। अब मैं इस विषय पर भिक्षुओं से प्रश्न पूछने जा रहा हूँ।” तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “भिक्षुओं, क्या आप भी इस शिक्षा को जानते हैं, जिसे मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती ने गलत तरीके से ग्रहण किया है? इससे वह मुझे दोषी ठहराता है। वह स्वयं को नष्ट करता है और बहुत से कष्टों को एकत्रित करता है।” जी नहीं, पूज्यवर। हमें अनेक तरीकों से बताया गया है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं हो सकती। भिक्षुओं, यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा प्रचारित शिक्षा को जानते हैं। मैंने अनेक तरीकों से यह उपदेश दिया है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं हो सकती। फिर भी, मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती ने इस गलत धारणा को अपनाकर मुझे दोषी ठहराया और अपना विनाश किया, तथा बहुत पुण्य अर्जित किया। यह उसके लिए लंबे समय तक अपव्यय और अप्रसन्नता का कारण बनेगा।

भिक्षुओं, जिस भी आधार पर चेतना उत्पन्न होती है, उसी के आधार पर उसकी गणना की जाती है। आँख और रूपों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे आँख चेतना कहा जाता है। कान और ध्वनियों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे कान चेतना कहा जाता है। नाक और गंध के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे नाक चेतना कहा जाता है। जीभ और स्वाद के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे जीभ चेतना कहा जाता है। शरीर और स्पर्श के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे शरीर चेतना कहा जाता है। मन और विचारों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे मन चेतना कहा जाता है। भिक्षुओं, जिस प्रकार किसी भी आधार पर अग्नि जलती है, उसी के आधार पर उसकी गणना की जाती है। लकड़ी से जलने वाली अग्नि लकड़ी की अग्नि होती है। टहनियों से जलने वाली अग्नि टहनी की अग्नि होती है। घास से जलने वाली अग्नि घास की अग्नि होती है। गोबर से जलने वाली अग्नि गोबर की अग्नि होती है। अनाज के भूसे से जलने वाली अग्नि अनाज के भूसे की अग्नि होती है। मिट्टी से जलने वाली अग्नि मिट्टी की अग्नि होती है। उसी प्रकार आँख और रूपों के कारण चेतना आँख चेतना होती है। कान और ध्वनियों के कारण होने वाली चेतना को कान चेतना कहते हैं। नाक और गंध के कारण होने वाली चेतना को नाक चेतना कहते हैं। जीभ और स्वाद के कारण होने वाली चेतना को स्वाद चेतना कहते हैं। शरीर और स्पर्श के कारण होने वाली चेतना को शरीर चेतना कहते हैं।

मन और विचारों के कारण ही मन चेतना होती है।

भिक्षुओं, क्या आप देखते हैं कि यह उत्पन्न हुआ है? जी हाँ, पूज्यवर। क्या आप देखते हैं कि यह सहारे से उत्पन्न होता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप देखते हैं कि यदि सहारा हट जाए, तो इसका उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, जब यह निश्चित न हो कि यह उत्पन्न हुआ है या नहीं, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर। जब यह निश्चित न हो कि यह समर्थित है या नहीं, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, जब यह निश्चित न हो कि समर्थन समाप्त होने पर उत्पन्न भी समाप्त हो जाएगा, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि संदेह उत्पन्न हुआ है, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि संदेह सहारे से उत्पन्न हुआ है, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि सहारे के समाप्त होने पर उत्पन्न संदेह भी समाप्त हो जाएगा, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, यह उत्पन्न हुआ है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, यह समर्थित होकर उत्पन्न हुआ है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, जब समर्थन समाप्त हो जाता है तो उत्पत्ति भी समाप्त हो जाती है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं।

भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि यह कैसे उत्पन्न हो रहा है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि यह सहारे से उत्पन्न हो रहा है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि जब सहारा हट जाता है तो इसका उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, यह दृष्टिकोण इतना पवित्र और शुद्ध है, यदि आप इस पर लालच, स्नेह, संजोकर रखना और गर्व करना चाहें, तो क्या आप जानते हैं कि यह शिक्षा एक नाव के समान है, जिसे त्यागने के उद्देश्य से सिखाया जाता है, न कि थामे रखने के उद्देश्य से? नहीं, पूज्यवर। भिक्षुओं, आपका यह दृष्टिकोण इतना पवित्र और शुद्ध है, इस पर लालच, स्नेह, संजोकर रखना और गर्व न करें। क्या आप जानते हैं कि यह शिक्षा एक नाव के समान है, जिसे त्यागने के उद्देश्य से सिखाया जाता है, न कि थामे रखने के उद्देश्य से? जी, पूज्यवर।

भिक्षुओं, ये चार आधार हैं, जो उत्पन्न प्राणियों के भरण-पोषण और जन्म की तलाश करने वालों के लिए सहायक हैं। ये चार क्या हैं? भौतिक भोजन, चाहे वह मोटा हो या महीन, दूसरा है संपर्क, तीसरा है मानसिक चिंतन और चौथा है चेतना।

भिक्षुओं, ये चारों आधार किससे उत्पन्न होते हैं, कहाँ से उठते हैं, कहाँ जन्म लेते हैं और कहाँ विकसित होते हैं?

ये चारों आधार लालसा से उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

भिक्षुओं, व्यथा किससे उत्पन्न होती है, कैसे जन्म लेती है और कैसे विकसित होती है?

लालसा भावनाओं से उत्पन्न होती है, बढ़ती है, जन्म लेती है और विकसित होती है।

भिक्षुओं, भावनाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं, कहाँ से उठती हैं, कहाँ जन्म लेती हैं और कहाँ विकसित होती हैं?

भावनाएं संपर्क से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, जन्म लेती हैं और विकसित होती हैं।

भिक्षुओं, संपर्क की उत्पत्ति, उदय, जन्म और विकास किससे होता है?

संपर्क की उत्पत्ति, विकास और विस्तार छह मानसिक क्षमताओं से ही होता है।

भिक्षुओं, ये छह मानसिक क्षमताएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं, कहाँ से उठती हैं, कहाँ जन्म लेती हैं और कहाँ विकसित होती हैं?

छह मानसिक क्षमताएं नाम और पदार्थ से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, जन्म लेती हैं और विकसित होती हैं।

भिक्षुओं, नाम और पदार्थ की उत्पत्ति, उदय, जन्म और विकास किससे होता है?

नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं, उठते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

भिक्षुओं, चेतना की उत्पत्ति, उत्थान, जन्म और विकास किससे होता है?

चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है, बढ़ती है, जन्म लेती है और विकसित होती है।

भिक्षुओं, संकल्प कहाँ से उत्पन्न होते हैं, कहाँ से उठते हैं, कहाँ जन्म लेते हैं और कहाँ विकसित होते हैं?

संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

इस प्रकार भिक्षुओं, अज्ञान से संकल्प, संकल्प से चेतना, चेतना से नाम और पदार्थ, नाम और पदार्थ से छह मानसिक क्षेत्र, छह मानसिक क्षेत्रों से संपर्क, संपर्क से भावनाएँ, भावनाओं से लालसा, लालसा से अस्तित्व, अस्तित्व से जन्म, जन्म से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं। क्या क्षय और मृत्यु वास्तव में जन्म से ही उत्पन्न होते हैं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है या नहीं, या यह यहाँ कैसे होता है? आदरणीय जी, जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है, यह हमारे साथ इसी प्रकार घटित होता है। जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि आसक्ति तृष्णा से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में आसक्ति तृष्णा से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय भिक्षु, आसक्ति से तृष्णा उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। आसक्ति से तृष्णा उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होती है? आदरणीय जी, तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं। क्या वास्तव में भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। क्या वास्तव में ये छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं। क्या नाम और पदार्थ वास्तव में चेतना से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है।

अच्छा! भिक्षुओं, आप भी यही कहते हैं और मैं भी यही कहता हूँ। अतः जब यह विद्यमान होता है, तो यह घटित होता है। जब यह उत्पन्न होता है, तो यह उत्पन्न होता है। जैसे, अज्ञान के कारण संकल्प उत्पन्न होते हैं। संकल्पों के कारण चेतना उत्पन्न होती है। चेतना के कारण नाम और पदार्थ उत्पन्न होते हैं। नाम और पदार्थ के कारण छह मानसिक क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के कारण संपर्क उत्पन्न होता है। संपर्क के कारण भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। भावनाओं के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है। अस्तित्व के कारण जन्म उत्पन्न होता है। जन्म के कारण क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। अज्ञान के पूर्ण निवारण से संकल्प समाप्त हो जाते हैं। संकल्पों के पूर्ण निवारण से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के निवारण से नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के निवारण से छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के निवारण से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के

निवारण से भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। भावनाओं के निवारण से तृष्णा समाप्त हो जाती है। लालसा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है। आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व के समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म के समाप्त होने से क्षय, मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार अप्रियता का पूर्ण अंत हो जाता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। क्या वास्तव में संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ ऐसा कैसे होता है? पूज्यवर, संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है। भिक्षुओं, क्या जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है, या नहीं होता है, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही होता है, जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का अंत हो जाता है।

कहते हैं कि जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म भी समाप्त हो जाता है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है।

कहते हैं कि जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या अस्तित्व समाप्त होने पर धारण करना भी समाप्त हो जाता है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या आसक्ति समाप्त होने पर व्यथा भी समाप्त हो जाती है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है। हे भिक्षुओं, क्या भावनाएँ शांत होने पर व्यथा भी शांत हो जाती है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है।

जब संपर्क टूटता है तो भावना भी रुक जाती है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है।

जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या संपर्क समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र भी निष्क्रिय हो जाते हैं या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि जब नाम और पदार्थ का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो छह मानसिक क्षेत्र भी समाप्त हो जाते हैं। भिक्षुओं, क्या नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र भी समाप्त हो जाते हैं या नहीं, या वे कैसे समाप्त होते हैं? आदरणीय जी, नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। ऐसा हमारे साथ होता है। नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं।

जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या चेतना समाप्त होने पर नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं तो चेतना भी समाप्त हो जाती है। भिक्षुओं, क्या संकल्प समाप्त होने पर चेतना भी समाप्त हो जाती है या नहीं, या यह कैसे होता है?

आदरणीय महोदय, जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं तो चेतना भी समाप्त हो जाती है। यही हमारे साथ होता है।

जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं, चेतना भी समाप्त हो जाती है।
कहते हैं कि अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं। भिक्षुओं, क्या अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं। हमारे साथ भी ऐसा ही होता है, अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं।

हे भिक्षुओं! आप भी यही कहते हैं और मैं भी यही कहता हूँ। जब यह नहीं रहता, तो यह भी नहीं रहता। जब यह समाप्त हो जाता है, तो यह भी समाप्त हो जाता है। जैसे अज्ञान के समाप्त होने से संकल्प समाप्त हो जाते हैं। संकल्पों के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के समाप्त होने से नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के समाप्त होने से छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के समाप्त होने से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क समाप्त होने से भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। भावनाओं के समाप्त होने से लालसा समाप्त हो जाती है। लालसा के समाप्त होने से आलिंगन समाप्त हो जाता है। आलिंगन समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार संपूर्ण अप्रियता समाप्त हो जाती है।

हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपका मन अतीत की ओर भटकता है? क्या मैं अतीत में था या नहीं था? अतीत में मैं क्या था? अतीत में मैं कैसा था? अतीत में मैं कौन था? नहीं, आदरणीय भिक्षु। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपका मन भविष्य की ओर भटकता है? क्या मैं भविष्य में रहूंगा या नहीं रहूंगा? भविष्य में मैं क्या होऊंगा? भविष्य में मैं कैसा होऊंगा? भविष्य में मैं कौन होऊंगा? नहीं, आदरणीय भिक्षु। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपको वर्तमान के बारे में संदेह है? क्या मैं हूं या नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह प्राणी कहां से आया है? यह कहां जाएगा? नहीं, आदरणीय भिक्षु।

हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप कहेंगे कि हम गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हैं? क्या हम गुरु के प्रति श्रद्धावश ऐसा कहते हैं? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप कहेंगे कि हमारे संन्यासी ने ऐसा कहा था, ये संन्यासी के वचन हैं। क्या हम ऐसा नहीं कहते? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप किसी अन्य गुरु की खोज करेंगे? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप अन्य संन्यासियों और ब्राह्मणों के धार्मिक अनुष्ठानों, समारोहों और त्योहारों में सार देखेंगे? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, क्या यह आप स्वयं जानकर, देखकर और अनुभव करके ही ऐसा नहीं कहते? जी, आदरणीय। अच्छा! हे भिक्षुओं, मैंने आपको इस शिक्षा में अग्रसर किया है। यह यहीं और अभी है। समय का कोई महत्व नहीं है। यह अवलोकन के लिए खुला है, परलोक की ओर ले जाता है और ज्ञानी लोगों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना है। भिक्षुओं, यदि यह कहा गया है कि शिक्षा यहीं और अभी है, समय का कोई महत्व नहीं है, यह अवलोकन के लिए खुली है, यह परलोक की ओर ले जाती है और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं ही इसका अनुभव किया जाना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षुओं, तीन चीजों के एक साथ आने से गर्भ में जन्म होता है: यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय नहीं है। जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित नहीं होता। तब गर्भ में जन्म नहीं होता। यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय है। जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित नहीं होता। तब गर्भ में जन्म नहीं होता। यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय है और जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित होता है। तब गर्भ में जन्म होता है। वह माता नौ या दस महीने तक बड़ी चिंता और कष्ट के साथ गर्भ की रक्षा करती है। नौ या दस महीने बाद वह माता बड़ी चिंता और कष्ट के साथ जन्म देती है। वह अपने रक्त से बच्चे का पालन-पोषण करती है। श्रेष्ठ धर्म में माता के दूध को रक्त कहा जाता है। भिक्षुओं, वह बालक बड़ा होता है और उसकी इंद्रियाँ परिपक्व होती हैं और वह लड़कों के खेल खेलता है। जैसे कि कटोरा पकड़ना, कलाबाजी करना, ताड़ के पत्तों से खिलौने वाली चक्कियाँ बनाना, छोटी गाड़ियाँ और धनुष बनाना। भिक्षुओं, वह बालक बड़ा होता है और उसकी इंद्रियाँ विकसित होती हैं तथा उसे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख प्राप्त होते हैं तथा वह नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद रूपों, कान चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद ध्वनियों, नाक चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद गंधों, जीभ चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद स्वादों और शरीर चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद स्पर्शों से मोहित होकर जीवन व्यतीत करता है।

आँख से किसी रूप को देखकर वह सुखद रूप के प्रति लालची हो जाता है, या अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। वह शरीर के प्रति अचेतन और सीमित मन से ग्रस्त रहता है। मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से प्राप्त मुक्ति का वास्तविक ज्ञान न होने के कारण, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं, वह सहमति और असहमति के मार्ग पर चल पड़ता है और सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, जैसी भी भावनाएँ अनुभव करता है। उन भावनाओं से प्रसन्न होकर वह उन्हें अपना लेता है। प्रसन्न होकर और उन्हें अपना लेने से उसमें स्वार्थ उत्पन्न होता है। भावनाओं के प्रति यही स्वार्थ है। उसे धारण करने से ही अस्तित्व उत्पन्न होता है, अस्तित्व से जन्म, जन्म से क्षय और मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट, इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। कान से ध्वनि सुनकर,

नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श करके, मन से विचार महसूस करके वह सुखद विचार के प्रति लालची हो जाता है। अप्रिय विचार से विमुख हो जाता है। शरीर के प्रति अचेतन भाव और सीमित मन के साथ लीन रहता है। मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति का वास्तविक स्वरूप वह नहीं जानता। अपगुणों के विचार पूर्णतः कैसे समाप्त होते हैं, यह भी वह नहीं जानता। वह सहमति और असहमति के मार्ग पर चलता है और सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, हर प्रकार की भावना का अनुभव करता है। उन भावनाओं से प्रसन्न होकर उन्हें अपना लेता है। इन भावनाओं से प्रसन्न होकर और उन्हें अपना लेने से उसमें स्वार्थ उत्पन्न होता है। भावनाओं के प्रति यही स्वार्थ है। उसे धारण करने से ही अस्तित्व उत्पन्न होता है, अस्तित्व से ही जन्म, जन्म से ही क्षय और मृत्यु, दु:ख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट, इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है।

हे भिक्षुओं, यह देखिए, तथागत पूर्णतः प्रबुद्ध होकर संसार में जन्म लेते हैं। ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, अद्वितीय रूप से वश में करने वाले, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य। वे इस संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, अपने उस उपदेश का प्रचार करते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है। उनके वचन शब्दों में भी अर्थपूर्ण हैं और पूर्ण एवं पवित्र जीवन का उद्घोष करते हैं। गृहस्थ, गृहस्थ पुत्र या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस उपदेश को सुनकर तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था से वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, यह एक दूषित मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त अंतरिक्ष के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए पूर्ण एवं पवित्र जीवन जीना और अपवित्र हुए बिना जीवन व्यतीत करना आसान नहीं है। अगर मैं सिर और दाढ़ी मुंडवा लूँ, पीले वस्त्र पहन लूँ और संन्यासी बनकर निकल जाऊँ तो क्या होगा? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ा धन या बहुत सारा धन त्याग देता है। वह अपने पीछे मित्रों का एक छोटा समूह या एक बड़ा समूह छोड़ जाता है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र पहनकर वह संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है, प्राणियों को पीड़ा देना छोड़ देता है, लाठी-हथौड़े त्याग देता है, लज्जा और करुणा से भर जाता है, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, बिना चोरी किए स्वयं को शुद्ध करके रहता है। नीच यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद नहीं करता। निंदा करना छोड़ देता है, यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। इस प्रकार वह विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है, एकता प्रेमी होकर एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी त्यागकर कानों को भाने वाले मधुर वचन बोलता है। ऐसे वचन बोलता है जो सीधे जनमानस के हृदय को छूते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। उचित वचन बोलता है, जो सत्य, अर्थपूर्ण और शिक्षा एवं अनुशासन के अनुरूप होते हैं, ऐसे वचन जिन्हें संजोकर रखा जा सकता है।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों, गायों, मुर्गियों, सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने से परहेज करता है। वह संदेशवाहक का काम करने और खरीद-फरोख्त करने से परहेज करता है। वह अनुचित तरीके से वजन करने और नापने से परहेज करता है। वह काटने, अलग करने, नष्ट करने और लूटपाट करने तथा भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर, पेट भरकर, अपने सभी सामानों के साथ जहाँ कहीं भी जाता है, वह जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ते हैं। उसी प्रकार संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर, पेट भरकर, अपने सभी सामानों के साथ जहाँ कहीं भी जाता है, वह जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव करता है। किसी रूप को देखकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, वह लोभ के कारण दोष और अप्रसन्नता उत्पन्न कर सकता है। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनकर, नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श महसूस करके, मन से विचार महसूस करके, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, वह लोभ के कारण दोष और अप्रसन्नता उत्पन्न कर सकता है। वह मन की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों के समान मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वे मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करते हैं। आगे बढ़ना और पीछे लौटना, देखना और अगल-बगल देखना, झुकना और फैलाना, कटोरा और तीनों

वस्त्र धारण करना, चखना, पीना, खाना और आनंद लेना, चलना, खड़ा होना, बैठना, लेटना, जागना और मौन रहना, सब कुछ उनके लिए सजग है।

इन सद्गुणों से परिपूर्ण, श्रेष्ठ जनों की मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाले, श्रेष्ठ जनों की सचेतनता एकांतवास, जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वतीय गुफा, श्मशान भूमि, घने वन, खुले स्थान या भूसे के ढेर में निवास करती है। भोजन समाप्त होने के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर वे पालथी मारकर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने केंद्रित करते हैं।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वह मन को लोभ से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा से मन को क्रोध से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वह प्रकाश की अनुभूति से सचेत और जागरूक रहते हुए, मन से आलस्य और सुस्ती को दूर करते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वह आंतरिक रूप से शांत मन से, मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। वह उन पुण्य कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं जो किए जाने चाहिए।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से लघु दोषों को कमजोर करके कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों को दूर करता है। विचारों और विचार प्रक्रियाओं के साथ, और एकांतवास से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान अवस्था में लीन हो जाता है।

फिर, भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से एक बिंदु पर शांत करके, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख का अनुभव करते हुए द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है। फिर, भिक्षु समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर में भी सुख का अनुभव करते हुए तृतीय ध्यान में लीन हो जाता है। इस पर श्रेष्ठजन समभाव के साथ सुख में लीन होकर कहते हैं।

फिर भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए, और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध होकर, ध्यान से चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं।

जो किसी रूप को आँख से देखता है, वह न तो किसी सुखद रूप का लोभी होता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह शरीर के प्रति सजग और असीम मन से स्थिर रहता है, मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। वह सहमति और असहमति के भावों को त्यागकर, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद, किसी भी प्रकार की अनुभूति करता है। वह उन अनुभूतियों से न तो प्रसन्न होता है और न ही प्रसन्न, और न ही उन्हें अपनाता है। जो न प्रसन्न होता है, न प्रसन्न होता है और न ही उन अनुभूतियों को अपनाता है, तो उनमें उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। रुचि समाप्त होने पर लगाव समाप्त हो जाता है। लगाव समाप्त होने पर अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने पर क्षय और मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार, अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। कान से ध्वनि सुनकर, नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श महसूस करके, मन से विचार महसूस करके, वह किसी सुखद विचार का लोभी नहीं होता। अप्रिय विचार से विमुख नहीं होता। शरीर के प्रति सजग और असीम मन से स्थिर रहता है, मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। सहमति और असहमति को त्यागकर, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, किसी भी प्रकार की भावना का अनुभव करता है। उन भावनाओं से न तो प्रसन्न होता है और न ही प्रसन्न, उन्हें अपनाता नहीं है। तब उन भावनाओं में रुचि समाप्त हो जाती है। रुचि समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है। आसक्ति समाप्त होने पर अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने पर क्षय और मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, इसे अप्रियता के नाश का संक्षिप्त रूप समझो। जहाँ तक भिक्षु साती का संबंध है, जो एक मछुआरे का पुत्र है, वह अत्यधिक लालसा के जाल में फँसा हुआ है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.9महा अस्सपुरा सुत्त(39)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1सेटिंग
2अंतरात्मा और चिंता
3आचरण की पवित्रता
4इंद्रियों पर संयम
5खाने में संयम बरतें
6जागृत होना
7सजगता और सतर्कता
8बाधाओं को त्यागना
9चार ध्यान
10तीन ज्ञान

सेटिंग

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध अंगों के बीच ठहरे हुए थे। अंगों का एक नगर है जिसका नाम अस्सपुरा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "'चिंतनशील, चिंतनशील': लोग तुम्हें इसी रूप में देखते हैं। और जब पूछा जाता है, 'तुम क्या हो?' तो तुम कहते हो, 'हम चिंतनशील हैं।' अतः, यही तुम्हारा पदनाम और यही तुम्हारा दावा है, इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन गुणों का अभ्यास करेंगे जो चिंतनशील बनाते हैं, जो ब्रह्म बनाते हैं, ताकि हमारा पदनाम सत्य हो और हमारा दावा सटीक हो; ताकि जिनके वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियों का हम उपयोग करते हैं, उनकी सेवा से उन्हें महान फल और महान पुरस्कार प्राप्त हो; और ताकि हमारा प्रस्थान व्यर्थ न हो, बल्कि फलदायी और उपजाऊ हो।'

अंतरात्मा और चिंता

और हे भिक्षुओं, वे कौन से गुण हैं जो किसी को ध्यानमग्न बनाते हैं, जो किसी को ब्राह्मण बनाते हैं? 'हम अंतरात्मा और (गलत कर्मों के परिणामों के प्रति) चिंता से परिपूर्ण होंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से परिपूर्ण हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यानमग्न अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, हे भिक्षुओं। मैं आपको आग्रह करता हूँ, हे भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यानमग्न अवस्था की खोज कर रहे हैं, वे ध्यानमग्न अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।

आचरण की पवित्रता

और क्या करना बाकी है? 'हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध, निर्मल और खुला, अटूट और संयमित होगा। हम उस शुद्ध शारीरिक आचरण के कारण स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, और अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान की अवस्था की खोज कर रहे हैं, वे ध्यान की अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।

और क्या करना बाकी है? 'हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध, स्पष्ट और खुला, अटूट और संयमित होगा। हम उस शुद्ध वाणी... मानसिक आचरण के कारण स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना कार्य पूरा कर लिया है, और हमारी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी कार्य करना बाकी हो।

और क्या करना बाकी है? 'हमारी आजीविका शुद्ध, निर्मल और खुली, अटूट और संयमित होगी। हम उस शुद्ध आजीविका के कारण न तो स्वयं को श्रेष्ठ समझेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा

मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।

इंद्रियों पर संयम

और क्या करना है? 'हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करेंगे। आँख से किसी आकृति को देखते समय, हम किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ेंगे, जिससे - यदि हम आँख की शक्ति पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करें - तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण हम पर हावी हो सकते हैं। हम इस पर नियंत्रण का अभ्यास करेंगे। हम आँख की शक्ति की रक्षा करेंगे। हम आँख की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करेंगे। कान से ध्वनि सुनते समय... नाक से सुगंध सूंघते समय... जीभ से स्वाद चखते समय... शरीर से स्पर्श संवेदना महसूस करते समय... बुद्धि से किसी विचार को समझते समय, हम किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ेंगे, जिससे - यदि हम बुद्धि की शक्ति पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करें - तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण हम पर हावी हो सकते हैं। हम इस पर नियंत्रण का अभ्यास करेंगे। हम बुद्धि की शक्ति की रक्षा करेंगे। हम बुद्धि की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करेंगे': इसी तरह आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से परिपूर्ण हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना ध्यानमग्न अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यानमग्न अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यानमग्न अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब अभी और भी कार्य करना बाकी हो।

खाने में संयम बरतें

और क्या करना बाकी है? 'हम खाने में संयम बरतेंगे। उचित विचार करते हुए, हम भोजन न तो मौज-मस्ती के लिए, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सुंदरता के लिए लेंगे, बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को समाप्त करने के लिए, पवित्र जीवन के समर्थन के लिए लेंगे, यह सोचते हुए कि, "मैं भूख की पुरानी भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा।" इस प्रकार मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा। यही वह तरीका है जिससे आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हम भोजन में संयम बरतते हैं। इतना ही पर्याप्त है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। अतः मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब आगे और भी कार्य करना बाकी हो।

जागृत होना

और क्या करना बाकी है? 'हम जागृति के प्रति समर्पित रहेंगे। दिन के दौरान, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं। रात्रि के पहले पहर में, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं। रात्रि के दूसरे पहर में, अपनी दाहिनी ओर लेटकर, हम सिंह की मुद्रा धारण करेंगे, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, सचेत और सतर्क रहते हुए, उठने के लिए मन को दृढ़ संकल्पित रखेंगे [या तो जागते ही या किसी निश्चित समय पर]। रात्रि के अंतिम पहर में, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम विवेक और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हमारे पास संयम की भावना है।' भोजन में। हम जागरूकता के प्रति समर्पित हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना काम पूरा कर लिया है, और इस तरह हमारी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब अभी और भी कार्य करना बाकी हो।

सजगता और सतर्कता

और क्या करना बाकी है? हम सजग और सतर्क रहेंगे। आगे बढ़ते और लौटते समय हम सतर्कता से कार्य करेंगे। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपने बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कटोरा उठाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय हम सतर्कता

से कार्य करेंगे: इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हम खाने में संयम बरतते हैं। हम सजगता के प्रति समर्पित हैं। हम सजग और सतर्क हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमारी चिंतनशील अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।' और आप बस इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यान की अवस्था की खोज में लगे हैं, उन्हें ध्यान की अवस्था के लक्ष्य से भटकने न दें, जबकि अभी और भी बहुत कुछ करना बाकी है।

बाधाओं को त्यागना

और क्या किया जा सकता है? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु एकांत स्थान की तलाश करता है: जंगल, पेड़ की छाया, पहाड़, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, जंगल का उपवन, खुला आकाश, पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वह बैठ जाता है, पैर मोड़कर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान केंद्रित करता है।

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति ऋण लेकर उसे अपने व्यवसाय में निवेश करता है। उसका व्यवसाय सफल होता है। वह अपने पुराने ऋण चुका देता है और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ऋण लेने से पहले मैंने उसे अपने व्यवसाय में निवेश किया था। अब मेरा व्यवसाय सफल हो गया है। मैंने अपने पुराने ऋण चुका दिए हैं और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच गया है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति बीमार पड़ जाता है - उसे बहुत दर्द होता है और वह गंभीर रूप से अस्वस्थ है। उसे भोजन करने में आनंद नहीं आता और उसके शरीर में कोई शक्ति नहीं रहती। कुछ समय बाद वह उस बीमारी से मुक्त हो जाता है। अब वह भोजन का आनंद लेता है और उसके शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं बीमार था... अब मैं उस बीमारी से मुक्त हो गया हूँ। मैं भोजन का आनंद लेता हूँ और मेरे शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

"अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जेल में बंद कर दिया गया है। कुछ समय बाद उसे उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से रिहा कर दिया जाता है, और उसकी संपत्ति का कोई नुकसान नहीं होता। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं जेल में बंद था। अब मैं उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से रिहा हो गया हूँ, और मेरी संपत्ति का कोई नुकसान नहीं हुआ है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति दूसरों के अधीन है, स्वयं के अधीन नहीं, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में असमर्थ है। कुछ समय बाद वह उस गुलामी से मुक्त हो जाता है, स्वयं के अधीन हो जाता है, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो जाता है, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं गुलाम था... अब मैं उस गुलामी से मुक्त हो गया हूँ, स्वयं के अधीन हूँ, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो गया हूँ, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा है। कुछ समय बाद वह उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा था। अब मैं उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आया हूँ।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

इसी प्रकार, जब भिक्षु अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग नहीं करता, तो वह उन्हें ऋण, रोग, कारावास, दासता, वीरान देश का मार्ग समझता है। परन्तु जब वह अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग कर लेता है, तो वह उन्हें ऋणमुक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, कारावास से मुक्ति, स्वतंत्रता, सुरक्षा का स्थान समझता है। अपने भीतर इनका त्याग देखकर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर वह समाधि में लीन हो जाता है। समाधि में उसका शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर वह सुख के प्रति संवेदनशील हो जाता है। सुख का अनुभव करने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है।

चार ध्यान

"इंद्रिय सुख से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित चिंतन और विश्लेषण से परिपूर्ण होता है। वह इस शरीर को

एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका पाउडर का गोला - भीगा हुआ, नमी से लथपथ, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी टपके नहीं; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।"

इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में समा जाता है, उसे ठंडे जल से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे जल से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।

और इसके अलावा, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो पानी में पैदा होते हैं और बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी से बाहर नहीं निकलते, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक ठंडे पानी से भरे रहते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग परमानंद रहित आनंद से अछूता नहीं रहता।

और इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न तनाव। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता।

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद करता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति अपने गाँव से दूसरे गाँव जाए, फिर उस गाँव से किसी और गाँव जाए, और फिर उस गाँव से वापस अपने गाँव आ जाए। उसके मन में यह विचार आएगा, 'मैं अपने गाँव से उस गाँव गया। वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बात की और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं उस गाँव गया, और वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बात की और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं वापस घर आ गया।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने पिछले जन्मों के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले – शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार – दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है – वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। जैसे कि किसी शहर के केंद्रीय चौक में एक ऊँची इमारत हो, और उस पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को घर में प्रवेश करते, घर से बाहर

निकलते, सड़क पर चलते और केंद्रीय चौक में बैठते हुए देखे। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ये लोग घर में प्रवेश कर रहे हैं, घर से बाहर निकल रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं और केंद्रीय चौक में बैठ रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह—शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—प्राणित और पुनर्जन्मित प्राणियों को देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह समझता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं है।'

ठीक वैसे ही जैसे किसी पर्वतीय घाटी में पानी का एक तालाब हो - साफ, निर्मल और बेदाग - जहाँ अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति किनारे पर खड़ा होकर सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर देख सके, और मछलियों के झुंड तैरते और विश्राम करते हुए दिखाई दें, और उसके मन में यह विचार आए, 'यह तालाब साफ, निर्मल और निर्मल है। यहाँ ये सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर हैं, और मछलियों के झुंड तैरते और विश्राम करते हुए दिखाई दे रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझ जाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं बचा है।'

"भिक्षुओं, इसे ही चिंतनशील भिक्षु, ब्राह्मण, शुद्धिग्रस्त, गुरु, विद्वान, कुलीन और अरहंत कहा जाता है।"

और एक भिक्षु ध्यानमग्न कैसे होता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, शांत हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

और एक भिक्षु ब्राह्मण कैसे होता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित होते हैं, जो आगे चलकर और विकृतियाँ उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनते हैं, उन्हें दूर कर दिया गया है। इस प्रकार एक भिक्षु ब्राह्मण होता है।

और एक भिक्षु का शुद्धिकरण कैसे होता है? उसके दूषित, अकुशल गुण, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, धुल जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु का शुद्धिकरण होता है।

और एक भिक्षु कैसे गुरु बनता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर और भी बुरे रूप धारण करने की ओर ले जाते हैं, कष्ट उत्पन्न करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, उन पर उसने विजय प्राप्त कर ली है। इसी प्रकार एक भिक्षु गुरु बनता है।

और एक भिक्षु कैसे ज्ञानी बनता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु ज्ञानी बनता है।

और एक भिक्षु किस प्रकार श्रेष्ठ होता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित होते हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, दूर हो जाते हैं। यही एक भिक्षु की श्रेष्ठता है।

और एक भिक्षु अरहंत कैसे होता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर और भी बुरे कर्मों की ओर ले जाते हैं, कष्ट उत्पन्न करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनते हैं, दूर हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु अरहंत होता है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकया >> 4.10कुल अस्सपुरा सुत्त(40)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध अंग देश में, अस्सपुरा नामक एक छोटे से गाँव में निवास करते थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित किया। हे भिक्षुओं, लोग आपको संन्यासी कहते हैं, और आप भी स्वीकार करते हैं कि हम संन्यासी हैं। हे भिक्षुओं, आप पर एक प्रतिज्ञा है जिसे आपको निभाना है। आपको संन्यास के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। ताकि हमारा संन्यास सार्थक हो और हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो। जो लोग हमें वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उनके लिए यह बहुत फलदायी हो। इससे हमारा प्रस्थान फलदायी और सफल होगा। (*1) हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

भिक्षुओं, भिक्षु संन्यास के मार्ग का अनुसरण कैसे नहीं करता? जिस भिक्षु का लोभ दूर नहीं होता, जिसका दूषित हृदय दूर नहीं होता, जिसका क्रोध दूर नहीं होता, जिसका द्वेष दूर नहीं होता, जिसका कपट दूर नहीं होता, जिसका ईर्ष्या दूर नहीं होती, जिसका स्वार्थ दूर नहीं होता, जिसका छल दूर नहीं होता, जिसकी बुरी इच्छाएँ दूर नहीं होतीं, जिसका गलत दृष्टिकोण दूर नहीं होता, वह संन्यास के मार्ग पर नहीं चला है। इन अशुद्धियों, दोषों और दागों को दूर किए बिना, जो संन्यासी को नरक जैसी अनुभूतियाँ देते हैं, मैं कहता हूँ, तुम संन्यास के मार्ग पर नहीं चले हो। पीले वस्त्र के किनारों पर माताजा नामक एक शस्त्र लगा होता है, जो दोनों किनारों से तेज होता है, और भिक्षु उसे अपने वस्त्र में लपेटता है। मैं इन अशुद्धियों से युक्त भिक्षु के संन्यास लेने की तुलना उससे करता हूँ।

भिक्षुओं, तीन वस्त्र धारण करने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, नग्न रहने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, धूल-मिट्टी में रहने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, जल में उतरने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता। वृक्ष की जड़ में बैठने के कारण, खुले स्थान में रहने के कारण, खड़े रहने की मुद्रा बनाए रखने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता। नियमित अंतराल पर भोजन करने के कारण, शिक्षा का पाठ करने के कारण, और सिर पर पगड़ी पहनने के कारण कोई संन्यासी नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति तीन वस्त्र धारण करता है, तो यदि उसका लोभ, भ्रष्ट हृदय, क्रोध, द्वेष, पाखंड, दुर्भावना, ईर्ष्या, स्वार्थ, धूर्तता, छल, बुरी इच्छाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाते हैं, तो उसके मित्रों और रक्त संबंधियों को जन्म से ही उसे तीन वस्त्र धारण कराना चाहिए और उसे बनाए रखना चाहिए। हे सौभाग्यशाली, जब तुम तीन वस्त्र धारण करोगे, तो तुम्हारा लोभ, भ्रष्ट हृदय, क्रोध, द्वेष, पाखंड, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, धूर्तता, छल, बुरी इच्छाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाएँगे। भिक्षुओं, क्योंकि मैंने एक विशेष व्यक्ति को लोभ के साथ तीन वस्त्र धारण करते देखा है, इसलिए मैं कहता हूँ कि तीन वस्त्र धारण करने मात्र से वह संन्यासी नहीं बन जाता।

भिक्षुओं, यदि नग्न रहने, धूल-मिट्टी में रहने, जल में चढ़ने, वृक्ष की जड़ में बैठने, खुले स्थान में रहने, खड़े रहने की मुद्रा बनाए रखने, नियमित अंतराल पर भोजन करने, उपदेशों का पाठ करने और पगड़ी धारण करने से लोभ दूर हो जाए, हृदय की बुराइयाँ दूर हो जाएँ, क्रोध दूर हो जाए, द्वेष दूर हो जाए, पाखंड दूर हो जाए, द्वेष दूर हो जाए, ईर्ष्या दूर हो जाए, स्वार्थ दूर हो जाए, धूर्तता दूर हो जाए, छल दूर हो जाए, बुरी इच्छाएँ दूर हो जाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाए, तो जन्म के समय उसके मित्रों और रक्त संबंधियों को उसे पगड़ी पहनाकर उसकी देखभाल करनी चाहिए। आओ! हे सौभाग्यशाली, जब तुम पगड़ी धारण करोगे, तो तुम्हारा लोभ दूर हो जाएगा, तुम्हारा भ्रष्ट हृदय शांत हो जाएगा, तुम्हारा क्रोध शांत हो जाएगा, तुम्हारी दुर्भावना, पाखंड, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, छल, कपट, बुरी इच्छाएँ और गलत विचार शांत हो जाएँगे। भिक्षुओं, क्योंकि मैंने एक भिक्षु को लोभ से पगड़ी धारण किए हुए देखा है, इसलिए मैं कहता हूँ कि पगड़ी धारण करने मात्र से कोई संन्यासी नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, भिक्षु संन्यास की विधि का पालन कैसे करता है? जब लोभ दूर हो जाता है, दूषित हृदय दूर हो जाता है, क्रोध दूर हो जाता है, द्वेष दूर हो जाता है, पाखंड दूर हो जाता है, द्वेष दूर हो जाता है, ईर्ष्या दूर हो जाती है, स्वार्थ दूर हो जाता है, छल दूर हो जाता है, बुरी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं, गलत दृष्टिकोण दूर हो जाता है, तब मैं कहता हूँ कि तुम संन्यास की विधि में आ गए हो। जब संन्यासी के ये सभी दोष, अशुद्धियाँ और लज्जाएँ, जो नरकीय भाव उत्पन्न करती हैं, दूर हो जाती हैं, तब मैं कहता हूँ कि तुम संन्यास की विधि में आ गए हो। जब ये सभी बुरे कर्म दूर हो जाते हैं और वह स्वयं को शुद्ध पाता है, तो उसे राहत मिलती है। मुक्त होने पर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न मन को आनंद प्राप्त होता है। प्रसन्न मन वाले का शरीर शांत हो जाता है। शांत शरीर को सुख मिलता है। प्रसन्न मन एकाग्र होता है। वह प्रेम और करुणा के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, पूर्णतः, प्रेम और करुणा के विचार असीम रूप से विकसित होकर, द्वेष और क्रोध से मुक्त रहता है। वह करुणा

के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, वह आंतरिक आनंद के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, वह समभाव के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, पूर्णतः, समभाव के विचार असीम रूप से विकसित होकर, द्वेष और क्रोध से मुक्त रहता है।

भिक्षुओं, एक रमणीय स्थान पर एक तालाब है जिसका पानी निर्मल, शुद्ध और शीतल है, और उसके किनारे सुगठित हैं। पूर्व दिशा से कोई व्यक्ति प्यासा, थका हुआ और गर्मी से व्याकुल होकर वहाँ आता है। वहाँ आकर उसकी प्यास और जलन दूर हो जाती है। पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, कोई भी आ सकता है। वे किसी भी दिशा से आएँ, उस तालाब पर आकर उनकी प्यास बुझ जाती है और उनकी जलन दूर हो जाती है। इसी प्रकार, योद्धा वंश से भी कोई व्यक्ति तथागत द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हुए संन्यासी बनता है और प्रेम, करुणा, आंतरिक आनंद और समभाव के भाव विकसित करके आंतरिक शांति प्राप्त करता है। जब आंतरिक शांति प्राप्त हो जाती है, तब मैं कहता हूँ कि उसने संन्यास का मार्ग अपना लिया है। योद्धा वंश से भी संन्यासी बनने वाला व्यक्ति अपनी इच्छाओं का नाश करता है, उसका मन मुक्त हो जाता है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में ही वह ज्ञान-साक्षात्कार में स्थिर हो जाता है। इच्छाओं के नाश के साथ ही वह संन्यासी बन जाता है। ब्राह्मण वंश से, गृहस्थ वंश से, यहाँ तक कि बहिष्कृत वंश से भी, जो संन्यासी बन जाता है, वह भी अपनी इच्छाओं का नाश कर लेता है। उसका मन यहीं और इसी क्षण ज्ञान से मुक्त हो जाता है, और वह ज्ञान और अनुभूति में स्थिर हो जाता है। इच्छाओं का नाश करने वाला संन्यासी ही होता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

5. चुलयमाका-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.1 सालेयाका सुत्त(41)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ कोसल देश में विचरण कर रहे थे, और अंततः वे साला नामक एक कोसल ब्राह्मण गाँव में पहुँचे।

2. साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: "गौतम नामक एक भिक्षु, जो शाक्य वंश से निकले शाक्य वंश के पुत्र हैं, कोसल देश में भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ विचरण कर रहे थे और साला आए हैं। अब गुरु गौतम के बारे में यह अच्छी ख्याति फैली है कि 'वह भगवान अर्हंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, उदात्त हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने के लिए अतुलनीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस संसार का वर्णन इसके देवताओं, इसके मारों और इसके (ब्रह्म) देवताओं के साथ, इस पीढ़ी का वर्णन इसके भिक्षुओं और ब्राह्मणों के साथ, इसके राजाओं और इसकी प्रजा के साथ करते हैं, जिसका उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से अनुभव किया है। वे एक ऐसे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ, वे एक पवित्र जीवन की पुष्टि करते हैं जो पूर्णतः परिपूर्ण है और शुद्ध। अब ऐसे अरहंतों को देखकर अच्छा लगता है।

3. साला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए; कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने उनसे अभिवादन किया और जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो एक तरफ बैठ गए; कुछ ने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अपना नाम और कुल बताया और एक तरफ बैठ गए; कुछ चुप रहे और एक तरफ बैठ गए।

4. जब वे बैठ गए, तो उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम गुरु, इसका क्या कारण है, क्या परिस्थिति है, कि कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अभावग्रस्त अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनर्जन्म लेते हैं; और इसका क्या कारण है, क्या परिस्थिति है, कि कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्ग में भी पुनर्जन्म लेते हैं?"

5. "गृहस्थों, धम्म के अनुरूप आचरण न करने, अधार्मिक आचरण के कारण ही प्राणी शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद अभावग्रस्त अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनर्जन्म लेते हैं। वहीं, धम्म के अनुरूप आचरण करने, धार्मिक आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्ग में भी पुनर्जन्म लेते हैं।"

6. गुरु गौतम द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ हमें समझ में नहीं आता, क्योंकि इसका विस्तृत अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। यदि गुरु गौतम हमें धम्म का उपदेश दें, तो यह अच्छा होगा, ताकि हम गुरु गौतम द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ समझ सकें।

"तो, गृहस्थों, मेरी कही हुई बातों को ध्यान से सुनो और समझो।"

“जी, आदरणीय महोदय,” उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

7. "गृहस्थों, तीन प्रकार के शारीरिक आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण। चार प्रकार के वाणी आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण। तीन प्रकार के मानसिक आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण।"

8. "और तीन प्रकार के शारीरिक आचरण, जो धम्म के अनुसार नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ एक व्यक्ति प्राणियों का हत्यारा है: वह हत्यारा, रक्तरंजित हाथों वाला, मारपीट करने वाला और सभी प्राणियों के प्रति निर्दयी है। वह बिना दी हुई वस्तुएँ लेने वाला है: वह गाँव या जंगल में चोर की तरह दूसरे की संपत्ति और सामान चुराता है। वह यौन इच्छाओं में लिप्त है: वह ऐसी (स्त्रियों) के साथ संभोग करता है जो माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं, जिनका पति है, जिन पर दंड लगता है, और साथ ही उन स्त्रियों के साथ भी जो सगाई के प्रतीक के रूप में माला पहनती हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण, जो धम्म के अनुसार नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, हैं।"

9. "और चार प्रकार के मौखिक आचरण किस प्रकार हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण? यहाँ कोई व्यक्ति झूठ बोलता है: जब उसे किसी दरबार में, या किसी सभा में, या अपने रिश्तेदारों के सामने, या अपने संघ में, या राजपरिवार के सामने बुलाया जाता है, और एक साक्षी के रूप में उससे इस प्रकार प्रश्न किया जाता है, 'हे सज्जन, जो कुछ तुम जानते हो, वह बताओ,' तो न जानते हुए वह कहता है 'मैं जानता हूँ,' या जानते हुए वह कहता है 'मैं नहीं जानता,' न देखते हुए वह कहता है 'मैं देखता हूँ,' या देखते हुए वह कहता है 'मैं नहीं देखता'; वह पूरी जागरूकता के साथ अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण ढंग से बोलता है: वह यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों में दोहराता है ताकि यहाँ फूट उत्पन्न हो, या वह दूसरों में सुनी हुई बातों को दूसरों के सामने दोहराता है ताकि यहाँ फूट उत्पन्न हो, और इस प्रकार वह एकता को तोड़ने वाला, फूट उत्पन्न करने वाला, कलह का आनंद लेने वाला, कलह में प्रसन्न होने वाला, कलह में आनंदित होने वाला, कलह में प्रसन्न होने वाला, ऐसे शब्दों का वक्ता है जो वह कलह उत्पन्न करता है। वह कठोर शब्दों का प्रयोग करता है: वह ऐसे शब्द बोलता है जो कठोर, आहत करने वाले, दूसरों की निंदा करने वाले, क्रोध से भरे और एकाग्रता भंग करने वाले होते हैं। वह चुगलखोर है: वह ऐसी बातें बताता है जो असमय, असत्य, अनुचित, धर्म के विरुद्ध और अनुशासन के विरुद्ध होती हैं। वह अनुचित, तर्कहीन, अस्पष्ट और अच्छाई से रहित बातें करता है। इस प्रकार धर्म के विरुद्ध चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो अधार्मिक आचरण हैं।

10. "और तीन प्रकार के मानसिक आचरण, जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ कोई लोभी है: वह दूसरे की संपत्ति का लोभी है, इस प्रकार: 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा होता!' या उसका मन द्वेष से भरा है, घृणा से ग्रस्त है, इस प्रकार: 'इन प्राणियों का वध हो, ये कट जाएं, नष्ट हो जाएं या मिट जाएं!' या उसका दृष्टिकोण विकृत है, इस प्रकार: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिपक्वता नहीं होती, न यह संसार है, न दूसरा संसार है, न माता है, न पिता है, न स्वतः उत्पन्न प्राणी है,1 न ही सद्‌गुणी भिक्षु और ब्राह्मण हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त किया है और इसकी घोषणा करते हैं।'2 इस प्रकार तीन प्रकार के मानसिक आचरण, जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, हैं।"

इसलिए, गृहस्थों, धम्म के अनुरूप आचरण न करने, अधर्मी आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अभाव की अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनः प्रकट होते हैं।

11. "हे गृहस्थो, धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है। धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है। धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है।"

12. "और धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण क्या हैं? यहाँ, जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या का त्याग कर देता है, वह प्राणियों की हत्या से परहेज करने वाला बन जाता है; वह लाठी और शस्त्र त्यागकर, कोमल और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामय रहता है। जो कुछ भी नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उन चीजों को लेने से परहेज करने वाला बन जाता है जो नहीं दी गई हैं; वह गाँव या जंगल में किसी दूसरे की संपत्ति को चोर की तरह नहीं लेता। कामुक इच्छाओं में दुराचार का त्याग करके, वह कामुक इच्छाओं में दुराचार से परहेज करने वाला बन जाता है: वह ऐसी स्त्रियों के साथ संभोग नहीं करता जो माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं, जिनका पति है, जिन पर दंड लगता है, और जो सगाई के प्रतीक के रूप में माला पहनती हैं। इस प्रकार धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण होते हैं।"

13. "और धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी संबंधी आचरण, यानी धार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ जो व्यक्ति झूठी वाणी का त्याग करके झूठी वाणी से विमुख हो जाता है, वह तब साक्षी बन जाता है जब उसे किसी दरबार में, किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के समक्ष, अपने संघ में, या राजपरिवार के समक्ष बुलाया जाता है और उससे साक्षी के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाता है, 'हे भले, जो तुम जानते हो, वह बताओ,' न जानने पर वह कहता है 'मैं नहीं जानता,' या जानने पर भी वह कहता है 'मैं जानता हूँ,' न देखने पर वह कहता है 'मैं नहीं देखता,' या देखने पर भी वह कहता है 'मैं देखता हूँ'; वह पूरी जागरूकता के साथ अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ नहीं बोलता। द्वेषपूर्ण वाणी का त्याग करके वह द्वेषपूर्ण वाणी से विमुख हो जाता है: वह न तो यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों में दोहराता है ताकि यहाँ विभाजन हो, न ही दूसरों में सुनी हुई बातों को दूसरों के बीच दोहराता है ताकि यहाँ विभाजन हो, वह विभाजितों को जोड़ने वाला, मित्रता को बढ़ावा देने वाला और आनंद लेने वाला होता है। वह सामंजस्य में प्रसन्न होता है, सामंजस्य से आनंदित होता है, सामंजस्य को बढ़ावा देने वाले शब्दों का वक्ता बनता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहने वाला बन जाता है: वह ऐसे शब्दों का वक्ता बनता है जो निर्दोष, कानों को मधुर और प्रिय हों, हृदय को छूने वाले हों, सभ्य हों, अनेकों के प्रिय हों। चुगली का त्याग करके, वह चुगली से दूर रहने वाला बन जाता है: वह समयोचित, तथ्यात्मक, उत्तम, धर्म के अनुसार और अनुशासन के अनुसार बात करता है; वह समयोचित, तर्कसंगत, निश्चित और अच्छाई से संबंधित वाणी बोलता है। इस प्रकार धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है।

14. "और धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण कैसे होते हैं? यहाँ व्यक्ति लोभ रहित है: वह दूसरों की संपत्ति का लोभ नहीं करता, जैसे कि 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा होता!' उसके मन में द्वेष नहीं है, बल्कि घृणा से मुक्त मन है, जैसे कि 'ये प्राणी शत्रुता, कष्ट और चिंता से मुक्त हों, सुखी जीवन व्यतीत करें!' उसका सही दृष्टिकोण है, स्पष्ट दृष्टि है, जैसे कि 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है और जो बलिदान किया जाता है, वह है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिपक्वता है; यह संसार है, परलोक है; माता-पिता हैं, स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं; अच्छे और गुणी भिक्षु और ब्राह्मण हैं जिन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से इस संसार और परलोक का वर्णन किया है।' इस प्रकार धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण होते हैं।"

इसलिए, गृहस्थों, धम्म के अनुसार आचरण करने के कारण, धार्मिक आचरण के कारण ही, कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, एक सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्गलोक में भी, पुन: प्रकट होते हैं।

15. यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं महान धनवान योद्धाओं के समूह में पुन: प्रकट हो सकूँ!' तो संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह ऐसा कर पाए। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धम्म के अनुसार आचरण करता है।

16. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण का पालन करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं धनवान ब्राह्मणों की संगति में पुन: प्रकट हो सकूँ!' तो यह संभव है..."

17. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, ... '... मैं धनवान गृहस्थों की संगति में पुनः प्रकट हो सकता हूँ!' यह संभव है..."

18. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण का पालन करता है, यह इच्छा करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, मैं चारों राजाओं के देवताओं की संगति में पुन: प्रकट हो सकूँ!'" यह संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह ऐसा करे। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण करता है।
19. ...तैंतीस लोक के देवताओं में से...
20. ...आनंदित देवताओं में से... 21.
...संतोषी देवताओं में से... 22. ...
सृजन में आनंदित देवताओं में से... 23.
...दूसरों की रचनाओं पर शक्ति रखने वाले देवताओं में से... 24. ...
ब्रह्मा के अनुयायियों में से... 25. ...
तेजस्वी देवताओं में से... 26. ...
सीमित तेवर वाले देवताओं में से... 27. ...
असीम तेवर वाले देवताओं में से... 28.
...प्रवाहमय तेवर वाले देवताओं में से...
29. ...महिमावान देवताओं में से...
30. ...सीमित महिमा वाले देवताओं में से...
31. ...असीम महिमा वाले देवताओं में से...
32. ...तेजस्वी महिमा वाले देवताओं में से...
33. ...अत्यंत फलदायी देवताओं के...
34. ...अपनी समृद्धि में डूबे देवताओं के...
35. ...पीड़ा रहित देवताओं के...
36. ...मनमोहक देवताओं के...
37. ...सुंदर दृष्टि वाले देवताओं के...
38. ...उन देवताओं के जो किसी से कम नहीं हैं...
39. ...अनंत अंतरिक्ष से बने आधारभूत देवताओं के...
40. ...अनंत चेतना से बने आधारभूत देवताओं के...
41. ...शून्यता से बने आधारभूत देवताओं के...
42. यदि कोई गृहस्थ, जो धर्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं उन नीच देवताओं के साथ पुन: प्रकट हो सकूँ जो न तो प्रत्यक्ष हैं और न ही अप्रत्यक्ष!' तो संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह ऐसा कर पाए। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है।

43. यदि कोई गृहस्थ, जो धर्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'हे ईश्वर, प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को आत्म-साक्षात्कार करके, मैं इसी क्षण हृदय की मुक्ति और दोषरहित तथा सभी दोषों के निवारण से प्राप्त ज्ञान की मुक्ति में प्रवेश कर सकूँ और उसमें स्थिर रह सकूँ!' तो यह संभव है कि प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को आत्म-साक्षात्कार करके, वह इसी क्षण हृदय की मुक्ति और सभी दोषों के निवारण से प्राप्त ज्ञान की मुक्ति में प्रवेश कर सकूँ और उसमें स्थिर रह सके। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है।'

44. जब यह कहा गया, तो साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से कहा:

"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरे हुए को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को रास्ता दिखा रहे हों, अंधकार में उन लोगों के लिए दीपक जला रहे हों जिनके पास रूप देखने के लिए आंखें हैं।"

45. "हम गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाते हैं। आज से गुरु गौतम हमें जीवन भर के लिए अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.2वेरंजका सुत्त(42)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय वेरंजक के ब्राह्मण गृहस्थ किसी उद्देश्य से सावत्ती आए हुए थे। उन्होंने सुना कि शाक्यों वंश से विमुख होकर निकले श्रेष्ठ संन्यासी गौतम सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे हैं। उनके बारे में यह ख्याति फैल गई थी कि भगवान बुद्ध परिपूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न हैं, और उनका स्वर्गवास सिद्ध हो चुका है। वे संसार के ज्ञाता हैं और मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, और ज्ञान से परिपूर्ण एवं धन्य हैं। देवताओं और मनुष्यों के इस संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय सहित, उन्होंने स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभवित एक शिक्षा का प्रचार किया। यह आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है। यह शब्दों में भी अर्थपूर्ण है और शुद्ध एवं पूर्ण, पवित्र जीवन की घोषणा करती है। ऐसे श्रेष्ठ लोगों को देखना सुखद है। तब वेरंजा के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। कुछ ने भगवान बुद्ध की पूजा की, कुछ ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, कुछ ने उनसे हाथ जोड़े, कुछ ने अपने कुल और नाम की घोषणा की, और कुछ मौन रहे। वे सब एक तरफ बैठ गए। तब उन ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: हे गौतम, कुछ प्राणी मृत्यु के बाद हानि, नरक में क्यों जाते हैं और कुछ अन्य मृत्यु के बाद वृद्धि और स्वर्ग में जन्म क्यों लेते हैं? हे! गृहस्थों, दुराचार करने और शिक्षा के अनुसार जीवन न जीने के कारण कुछ लोग हानि उठाते हैं और नरक में जाते हैं, जबकि अन्य जो अच्छा आचरण करते हैं और शिक्षा के अनुसार जीवन जीते हैं, वे समृद्धि प्राप्त करते हैं और मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। हमें गौतम बुद्ध की यह संक्षिप्त व्याख्या समझ में नहीं आई। कृपया इसकी व्याख्या कर दें। भगवान बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थों, ध्यान से सुनो, मैं समझाता हूँ।"

हे गृहस्थो, शरीर से तीन प्रकार के दुराचार होते हैं, वाणी से चार प्रकार के दुराचार होते हैं और मन से तीन प्रकार के दुराचार होते हैं। गृहस्थो, शरीर से होने वाले तीन प्रकार के दुराचार क्या हैं? यहाँ, एक व्यक्ति निर्दयी है, जीवों को नष्ट करता है, उसके हाथ रक्त से सने हैं। वह निर्दयता से जीवों को नष्ट करने में लगा रहता है। गाँव या जंगल से दूसरों की संपत्ति चोरी-छिपे ले लेता है। जो दिया नहीं गया, उसे ले लेता है। यौन दुराचार करता है, पिता, माता, भाई, बहन, रिश्तेदारों, पति वाली महिलाओं, यहाँ तक कि माला पहनाई गई और प्रतिज्ञा ली गई महिलाओं के साथ भी दुराचार करता है। गृहस्थो, यह शरीर से होने वाले तीन प्रकार के दुराचार हैं। गृहस्थो, वाणी से होने वाले चार प्रकार के दुराचार क्या हैं? यहाँ, गृहस्थो, एक व्यक्ति सभा में, समारोह में, रिश्तेदारों के बीच, संघ में, या राजपरिवार की उपस्थिति में झूठ बोलता है। जब उसे गवाह के रूप में बुलाया जाता है और उससे पूछा जाता है कि वह क्या जानता है, तो न जानने पर वह कहता है कि मैं जानता हूँ। जानने पर वह कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखकर भी वह कहता कि मैंने देखा, देखकर कहता कि मैंने नहीं देखा। इस प्रकार अपने लाभ के लिए, किसी दूसरे के लाभ के लिए, या किसी छोटे से लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता। निंदा करता, यहाँ सुनकर कहीं और बताता ताकि यहाँ फूट पड़ जाए, कहीं और सुनकर यहाँ बताता ताकि वहाँ फूट पड़ जाए। इस प्रकार वह एकता को भंग करता है, फूट डालने वाली बातों का शौकीन है, फूट डालने वाले शब्द बोलता है। कठोर स्वर में बोलता है, कठोर और तीखे शब्दों का प्रयोग करता है। क्रोध से भरे शब्द जो एकाग्रता में बाधक होते हैं। व्यर्थ, असमय और असत्य शब्द बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं होते। ऐसे शब्द जिनका कोई महत्व नहीं। गृहस्थों, यह चार प्रकार का शाब्दिक कुकर्म है। गृहस्थों, तीन प्रकार का मानसिक कुकर्म क्या है? यहाँ, गृहस्थों, व्यक्ति दूसरों की संपत्ति का लोभ करता है, सोचता है कि काश वे मेरी हो जाएँ। दूषित मन से क्रोधित होता है, सोचता है कि वे नष्ट हो जाएँ और उनका अस्तित्व न रहे। यह गलत, विकृत सोच है कि दान और बलिदान का कोई फल नहीं होता। शुद्ध और अशुद्ध कर्मों का कोई फल नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता-पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न वे संन्यासी और न ब्राह्मण जो सही मार्ग पर चलकर स्वयं इस संसार और परलोक का ज्ञान प्राप्त कर चुके हों। हे गृहस्थों, यह तीन प्रकार का मानसिक दुराचार है। हे गृहस्थों, इस दुराचार और शिक्षा के अनुसार जीवन न जीने के कारण, कोई व्यक्ति मृत्यु के बाद हानि में जन्म लेता है और नरक में जाता है।

हे गृहस्थो, शरीर द्वारा सही आचरण तीन प्रकार का होता है, वाणी द्वारा चार प्रकार का और मन द्वारा तीन प्रकार का। गृहस्थो, शरीर द्वारा सही आचरण क्या है? यहाँ, एक व्यक्ति जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करता है, लाठी और हथियार फेंक देता है, लज्जित रहता है, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु रहता है, गाँव या जंगल में दूसरों की संपत्ति नहीं लेता, जो किसी की देन नहीं है। यौन संबंध में दुराचार नहीं करता, माता-पिता, भाई-बहन, रिश्तेदारों या पति द्वारा संरक्षित लोगों के साथ दुराचार नहीं करता, दंड के पात्र नहीं बनता, यहाँ तक कि माला पहनाकर प्रतिज्ञा लेने वालों के साथ भी दुराचार नहीं करता। गृहस्थो, यह शरीर द्वारा सही आचरण का तीन प्रकार है। गृहस्थो, वाणी द्वारा सही आचरण का चार प्रकार क्या है? यहाँ, गृहस्थो, एक व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। सभा में, समारोह में, रिश्तेदारों के

बीच, संघ में, या राजपरिवार की उपस्थिति में, साक्षी के रूप में बुलाए जाने पर, जब उससे पूछा जाए कि वह क्या जानता है, तो न जानने पर वह कहेगा, मैं नहीं जानता। जानने पर वह कहेगा, मैं जानता हूँ। न देखने पर वह कहता कि मैंने नहीं देखा, और देखने पर कहता कि मैंने देखा। इस प्रकार, अपने भले के लिए, या किसी दूसरे के भले के लिए, या किसी छोटे से लाभ के लिए, वह सचेत होकर झूठ नहीं बोलता। निंदा नहीं करता, यहाँ सुनकर उसे कहीं और नहीं बताता ताकि यहाँ फूट न पड़े। कहीं और सुनकर उसे यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ फूट न पड़े। इस प्रकार, एक को विभाजित नहीं करता, एकता पसंद करने वाला एकता के वचन बोलता है। कठोर नहीं बोलता, बल्कि विनम्र, प्रेमपूर्ण और सीधे हृदय को छूने वाले वचन बोलता है, जो आम जनता को भाते हैं। व्यर्थ की बातें नहीं करता, बल्कि समयोचित, सत्य और शिक्षा एवं अनुशासन के अनुसार वचन बोलता है। ऐसे वचन जिन्हें संजोकर रखा जा सके। गृहस्थों, यह चार प्रकार का सही आचरण है। गृहस्थों, तीन प्रकार का मानसिक आचरण क्या है? यहाँ, गृहस्थों, कोई दूसरों की संपत्ति का लालच नहीं करता, यह सोचकर कि काश वह मेरी हो जाए। क्रोधित नहीं होता और दूषित मन से यह सोचकर नहीं चलता कि ये प्राणी कुशल और सुखी हों। सही दृष्टि से विकृत नहीं होता। दान और बलिदान का फल होता है। शुद्ध और अशुद्ध कर्मों का फल होता है। यह संसार है और दूसरा संसार। इसमें माता, पिता और स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं। इस संसार में संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो सही मार्ग पर चल पड़े हैं और स्वयं को इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। गृहस्थों, यही तीन प्रकार का सही मानसिक आचरण है। इस सही आचरण और शिक्षा के अनुसार जीवन जीने के कारण, मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेता है।

हे गृहस्थों, यदि कोई व्यक्ति, जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, यह कामना करे कि मृत्यु के बाद उसका जन्म योद्धा गृहस्थों के साथ हो, तो संभव है कि उसका जन्म योद्धा गृहस्थों के साथ ही हो। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, उसके साथ ऐसा होता है। — मृत्यु के बाद उसका जन्म ब्राह्मण गृहस्थों के साथ हो, — गृहस्थ वंश के साथ हो, तो संभव है कि उसका जन्म गृहस्थ वंश में ही हो। गृहस्थों, यदि कोई व्यक्ति, शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहते हुए, यह कामना करे कि वह रक्षक देवताओं के दल के साथ, तैंतीस देवताओं के दल के साथ, यम देवताओं के साथ, सुख के देवताओं के साथ, सृजन से जुड़े देवताओं के साथ, दूसरों के सृजन से जुड़े देवताओं के साथ, ब्रह्म शरीर धारण करने वाले देवताओं के साथ, तेज के देवताओं के साथ, सीमित तेज के देवताओं के साथ, असीम तेज के देवताओं के साथ, प्रकाशमान देवताओं के साथ, सुख के देवताओं के साथ, सीमित सुख के देवताओं के साथ, असीम सुख के देवताओं के साथ, सुख से परिपूर्ण देवताओं के साथ, अंतरिक्ष में शक्ति धारण करने वाले देवताओं के साथ, अविनाशी देवताओं के साथ, असंतुष्ट देवताओं के साथ, अंतर्दृष्टि वाले देवताओं के साथ, सर्वोच्च स्वर्ग के देवताओं के साथ, देवताओं के दल के साथ, अंतरिक्ष के क्षेत्र में, चेतना के क्षेत्र में, न तो चेतना के क्षेत्र में, न ही चेतना के क्षेत्र में जन्म ले। मृत्यु के बाद, यह संभव है कि वे देवताओं के दल के साथ, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में जन्म लें। इसका कारण क्या है? यह उन लोगों के साथ होता है जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, यह कामना करे कि वह इच्छाओं का नाश करके, मन को ज्ञान से मुक्त करके, यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त कर ले और स्थिर रहे, तो यह संभव है कि वह इच्छाओं का नाश करके, मन को ज्ञान से मुक्त करके, यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त कर ले और स्थिर रहे। इसका कारण क्या है? यह उन लोगों के साथ होता है जो सही आचरण में रहते हैं।

यह सुनकर साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से कहा, "अब हम समझ गए हैं, पूज्यवर। ऐसा लगता है जैसे भगवान गौतम ने किसी खोई हुई चीज को फिर से स्थापित कर दिया हो। किसी छिपी हुई चीज को प्रकट कर दिया हो। मानो भटके हुए लोगों को मार्ग बता दिया हो। मानो दृष्टिहीन लोगों के लिए, जो रूप देख सकते हैं, तेल का दीपक जला दिया हो। इस प्रकार अनेक प्रकार से उपदेश की व्याख्या की गई है। अब हम भगवान गौतम की शरण में, उनके उपदेश में और भिक्षु समुदाय में शरण लेते हैं। हम आज से जीवन भर भगवान गौतम की शरण में रहेंगे।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.3महावेदल्ला सुत्त(43)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो द्वारा अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के उपवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब पूज्य महा कोत्थिता दोपहर बाद अपने एकांतवास से उठकर पूज्य सारिपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए।

वहाँ बैठे हुए उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र, 'कम विवेक वाला व्यक्ति, कम विवेक वाला व्यक्ति': ऐसा कहा जाता है। किस हद तक किसी को 'कम विवेक वाला व्यक्ति' कहा जाता है?"

"'समझ नहीं पाता, समझ नहीं पाता': इसलिए, मित्र, 'कम विवेक वाला' कहा जाता है। और क्या नहीं समझ पाता? वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव का कारण है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव का निवारण है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास है।' 'समझ नहीं पाता, समझ नहीं पाता': इसलिए 'कम विवेक वाला' कहा जाता है।"

"बहुत अच्छा, मित्र," कहते हुए, पूज्य महा कोत्थिता - पूज्य सारिपुत्त के कथन से प्रसन्न और सहमत होते हुए - ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "विवेकशील, विवेकशील: ऐसा कहा जाता है। मित्र, किस हद तक किसी को 'विवेकशील' कहा जाता है?"

"'एक व्यक्ति विवेक करता है, एक व्यक्ति विवेक करता है': इस प्रकार, मित्र, व्यक्ति को 'विवेकी' कहा जाता है। और व्यक्ति क्या विवेक करता है? वह विवेक करता है, 'यह तनाव है।' वह विवेक करता है, 'यह तनाव का उद्‌गम है।' वह विवेक करता है, 'यह तनाव के निवारण का मार्ग है।' 'एक व्यक्ति विवेक करता है, एक व्यक्ति विवेक करता है': इस प्रकार व्यक्ति को 'विवेकी' कहा जाता है।" चेतना

"'चेतना, चेतना': ऐसा कहा जाता है। मित्र, किस हद तक इसे 'चेतना' कहा जाता है?"

"'यह जानता है, यह जानता है': इस प्रकार, मित्र, इसे 'चेतना' कहा जाता है। और यह क्या जानता है? यह 'सुखद' को जानता है। यह 'दुखद' को जानता है। यह 'न दुखदायी और न सुखदायी' को जानता है। 'यह जानता है, यह जानता है': इस प्रकार इसे 'चेतना' कहा जाता है।"

"विवेक और चेतना, मित्र: क्या ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं या अलग-अलग? क्या इन्हें एक दूसरे से अलग करके इनके बीच के अंतर को स्पष्ट करना संभव है?"

"विवेक और चेतना आपस में जुड़े हुए हैं, मित्र, अविभाजित नहीं। इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है। क्योंकि जो हम देखते हैं, वही हम जानते हैं। जो हम जानते हैं, वही हम देखते हैं। इसलिए ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं, और इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है।"

"विवेक और चेतना, मित्र: इन गुणों में क्या अंतर है जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं हैं?"

"विवेक और चेतना, मित्र: ये दोनों गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं। इनमें से विवेक का विकास करना है, चेतना को पूर्णतः समझना है।"1

"'भावना, भावना': ऐसा कहा जाता है। मित्र, इसे किस हद तक 'भावना' कहा जाता है?"

"'यह महसूस करता है, यह महसूस करता है': इसलिए, मित्र, इसे 'महसूस करना' कहा जाता है। और यह क्या महसूस करता है? यह सुख महसूस करता है। यह दर्द महसूस करता है। यह न सुख महसूस करता है, न दर्द। 'यह महसूस करता है, यह महसूस करता है': इसलिए इसे 'महसूस करना' कहा जाता है।" बोध

"'धारणा, धारणा': ऐसा कहा जाता है। मित्र, इसे किस हद तक 'धारणा' कहा जाता है?"

"'यह अनुभव करता है, यह अनुभव करता है': इसलिए, मित्र, इसे 'अनुभूति' कहा जाता है। और यह क्या अनुभव करता है? यह नीला अनुभव करता है। यह पीला अनुभव करता है। यह लाल अनुभव करता है। यह सफेद अनुभव करता है। 'यह अनुभव करता है, यह अनुभव करता है': इसलिए इसे 'अनुभूति' कहा जाता है।"

"मित्र, भावना, बोध और चेतना: क्या ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं या अलग-अलग? क्या इन्हें एक-दूसरे से अलग करके इनके बीच के अंतर को स्पष्ट करना संभव है?"

"मित्र, भावना, बोध और चेतना आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं। इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है। क्योंकि जो हम महसूस करते हैं, वही हम अनुभव करते हैं। जो हम अनुभव करते हैं, वही हम जानते हैं। इसलिए ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं, और इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है।" विवेक की दृष्टि

"मित्र, पाँच इंद्रियों से विरक्त शुद्ध बुद्धि-चेतना से क्या जाना जा सकता है?"

"मित्र, पाँचों इंद्रियों से मुक्त होकर शुद्ध हुई बुद्धि-चेतना से अनंत अंतरिक्ष के आयाम को 'अनंत अंतरिक्ष' के रूप में जाना जा सकता है। अनंत चेतना के आयाम को 'अनंत चेतना' के रूप में जाना जा सकता है। शून्यता के आयाम को 'कुछ नहीं है' के रूप में जाना जा सकता है।"

"जिस गुण को जाना जा सकता है, उसे जानने के लिए क्या तरीका इस्तेमाल किया जा सकता है?"

"एक गुण को विवेक की दृष्टि से जाना जा सकता है।"

और विवेक का उद्देश्य क्या है?

"विवेक का उद्देश्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, इसका उद्देश्य पूर्ण बोध है, इसका उद्देश्य त्याग है।" सही दृष्टिकोण

"मित्र, सही दृष्टिकोण उत्पन्न होने के लिए कितनी शर्तें होती हैं?"

"मित्र, सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए दो शर्तें हैं: दूसरे की वाणी और उचित ध्यान। यही दो शर्तें हैं सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए आवश्यक हैं।"

और कितने कारकों की सहायता से सही दृष्टिकोण जागरूकता-मुक्ति को अपने फल और पुरस्कार के रूप में प्राप्त करता है, और विवेक-मुक्ति को अपने फल और पुरस्कार के रूप में प्राप्त करता है?

पांच कारकों की सहायता से, सही दृष्टि का फल और पुरस्कार जागरूकता की मुक्ति तथा विवेक की मुक्ति है। एक स्थिति ऐसी भी है जब सही दृष्टि को सद्गुण, ज्ञान, चर्चा, शांति और अंतर्दृष्टि से सहायता मिलती है। इन पांच कारकों की सहायता से, सही दृष्टि का फल और पुरस्कार जागरूकता की मुक्ति तथा विवेक की मुक्ति है।

"मित्र, बनने की प्रक्रिया कितने प्रकार की होती है?"

"मित्र, तीन प्रकार की उत्पत्ति होती है: इंद्रियजन्य उत्पत्ति, रूप उत्पत्ति और निराकार उत्पत्ति।"

और भविष्य में आगे का विकास किस प्रकार होगा?

"अज्ञान से बाधित और लालसा से जकड़े प्राणियों का कभी यहाँ, कभी वहाँ का आनंद: इसी प्रकार भविष्य में आगे का विकास होता है।"

और भविष्य में और अधिक विकास कैसे नहीं होगा?

"अज्ञान के लुप्त होने, स्पष्ट ज्ञान के उदय और लालसा के निवारण से ही भविष्य में आगे की उत्पत्ति नहीं होती।" पहला ध्यान

"मित्र, पहला ध्यान क्या है?"

"मित्र, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल गुणों से विरक्त होकर - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: यह एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद है, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं।"

"और पहले ध्यान में कितने कारक होते हैं?"

"प्रथम ध्यान में पाँच तत्व होते हैं। एक ऐसा मामला है जहाँ पंच तत्वों से युक्त प्रथम ध्यान प्राप्त कर चुके भिक्षु में निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, आनंद और एकाग्र मन की अनुभूति होती है। इस प्रकार प्रथम ध्यान में पाँच तत्व होते हैं।"

"प्रथम ध्यान में कितने कारकों का त्याग किया जाता है, और कितने कारकों से यह युक्त होता है?"

"प्रथम ध्यान में पाँचों गुणों का त्याग किया जाता है और पाँचों गुण ही मन को परिपूर्ण करते हैं। प्रथम ध्यान प्राप्त कर चुके भिक्षु में कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य, बेचैनी और चिंता, अनिश्चितता का त्याग हो जाता है। और वहाँ निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, सुख और एकाग्रता उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रथम ध्यान में पाँचों गुणों का त्याग किया जाता है और पाँचों गुण ही मन को परिपूर्ण करते हैं।"

"मित्र, ये पाँच इंद्रियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक का अपना अलग दायरा और क्षेत्र है, और वे एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। अब इन पाँचों इंद्रियों का, जिनका प्रत्येक का अपना अलग दायरा और क्षेत्र है, और जो एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर, का सामान्य मध्यस्थ कौन है? वह कौन है जो इन सभी के दायरे और क्षेत्रों का अनुभव करता है?"

"मित्र, ये पाँचों इंद्रियाँ—जिनमें से प्रत्येक का अपना अलग दायरा, अपना अलग क्षेत्र है, और जो एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर—इन सबका [साझा] मध्यस्थ बुद्धि है। बुद्धि ही इन सभी के दायरे और क्षेत्रों का अनुभव करती है।"

अब, ये पाँच इंद्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर: ये किस पर निर्भर करती हैं?

"ये पाँचों इंद्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर—जीवन शक्ति पर निर्भर रहते हुए स्थिर रहती हैं।"2

और जीवन शक्ति किस पर निर्भर रहती है?

"जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर रहती है।"

और ऊष्मा किस पर निर्भर रहती है?

"ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर रहते हुए स्थिर रहती है।"

"अभी-अभी, मित्र सारिपुत्त, हमने आपको यह कहते हुए समझा, 'जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर रहती है।' और अभी-अभी हमने आपको यह कहते हुए समझा, 'ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर रहती है।' अब इन कथनों का अर्थ क्या निकाला जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हें एक उदाहरण दूंगा, क्योंकि ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ एक बुद्धिमान व्यक्ति उदाहरण के माध्यम से ही किसी कथन का अर्थ समझता है। मान लीजिए एक तेल का दीपक जल रहा है। उसकी चमक उसकी लौ पर निर्भर करती है, और उसकी लौ उसकी चमक पर निर्भर करती है। उसी प्रकार, जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर करती है, और ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर करती है। जीवन शक्ति-निर्माण..."

"मित्र, क्या जीवन शक्ति की कल्पनाएँ3 और भावना-अवस्थाएँ एक ही चीज़ हैं? या जीवन शक्ति की कल्पनाएँ एक चीज़ हैं और भावना-अवस्थाएँ दूसरी?"

"मित्र, प्राण-निर्माण और भावना-अवस्थाएँ एक ही चीज़ नहीं हैं। यदि प्राण-निर्माण और भावना-अवस्थाएँ एक ही होतीं, तो भावना और बोध की समाप्ति से भिक्षु का उद्भव स्पष्ट नहीं होता। प्राण-निर्माण एक चीज़ है और भावनाएँ दूसरी, इसीलिए बोध और बोध की समाप्ति से भिक्षु का उद्भव स्पष्ट होता है।"

"जब इस शरीर में कितने गुणों की कमी होती है, तो यह एक बेजान लकड़ी के लट्ठे की तरह त्यागा और छोड़ दिया जाता है?"

"जब इस शरीर में ये तीन गुण - जीवन शक्ति, ताप और चेतना - नहीं होते हैं, तो यह एक बेजान लकड़ी के लट्ठे की तरह त्यागा और छोड़ दिया जाता है।"

"मृत व्यक्ति, जिसने अपना समय पूरा कर लिया है, और उस भिक्षु में क्या अंतर है जिसने धारणा और संवेदना की समाप्ति प्राप्त कर ली है?"

"मृत व्यक्ति, जिसने अपना जीवन काल पूरा कर लिया है, उसके शारीरिक कर्म, वाणी और मानसिक कर्म समाप्त हो चुके हैं, उसकी शक्ति समाप्त हो चुकी है, उसकी ऊष्मा शांत हो चुकी है और उसकी इंद्रियाँ विलीन हो चुकी हैं। परन्तु जो भिक्षु चेतना और संवेदना के अंत को प्राप्त कर चुका है, उसके शारीरिक कर्म, वाणी और मानसिक कर्म समाप्त हो चुके हैं, उसकी शक्ति समाप्त नहीं हुई है, उसकी ऊष्मा शांत नहीं हुई है और उसकी इंद्रियाँ अत्यंत निर्मल हैं। यही अंतर है मृत व्यक्ति, जिसने अपना जीवन काल पूरा कर लिया है, और उस भिक्षु में जिसने चेतना और संवेदना के अंत को प्राप्त कर लिया है।"

"मित्र, सुखदायक और पीड़ादायक दोनों प्रकार की नहीं, इस प्रकार की जागरूकता-मुक्ति की प्राप्ति के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"मित्र, सुख-दुख रहित चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए चार शर्तें हैं। एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु, सुख और तनाव का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर—चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, सुख-दुख रहित अवस्था। ये चार शर्तें सुख-दुख रहित चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"विषयहीन जागरूकता-मुक्ति की प्राप्ति के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"विषयहीन चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए दो शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान न देना और विषयहीन गुण पर ध्यान देना। ये दो शर्तें विषयहीन चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"और विषय-रहित जागरूकता-प्रवेश की निरंतरता के लिए कितनी शर्तें हैं?"

विषयविहीन जागरूकता-मुक्ति की निरंतरता के लिए तीन शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान न देना, विषयविहीन गुण पर ध्यान देना और इच्छाशक्ति का पूर्व-कार्य। ये विषयविहीन जागरूकता-मुक्ति की निरंतरता के लिए तीन शर्तें हैं।

"और विषयहीन जागरूकता-मुक्ति से उभरने के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"विषयहीन जागरूकता से मुक्ति के लिए दो शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान देना और विषयहीन गुण पर ध्यान न देना। ये दो शर्तें विषयहीन जागरूकता से मुक्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"असीम जागरूकता-मुक्ति, शून्यता जागरूकता-मुक्ति, खालीपन जागरूकता-मुक्ति, विषयहीन जागरूकता-मुक्ति: क्या ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न हैं, या वे अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं?"

"असीम जागरूकता-मुक्ति, शून्यता जागरूकता-मुक्ति, खालीपन जागरूकता-मुक्ति, विषयहीन जागरूकता-मुक्ति: एक व्याख्या का तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न होते हैं, और एक व्याख्या का तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में एक होते हैं और केवल नाम में भिन्न होते हैं।"

और वह कौन सा स्पष्टीकरण है जिससे ये गुण अर्थ और नाम दोनों में भिन्न हैं? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु सद्भावना से ओतप्रोत चेतना के साथ प्रथम दिशा—साथ ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ दिशा—में व्याप्त रहता है। इस प्रकार वह ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह और हर तरह से सर्वव्यापी संसार में सद्भावना से ओतप्रोत चेतना के साथ व्याप्त रहता है: प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित।

वह करुणा से ओतप्रोत जागरूकता के साथ पहली दिशा के साथ-साथ दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी व्याप्त रहता है... प्रशंसा से ओतप्रोत जागरूकता के साथ...

वह समभाव से परिपूर्ण जागरूकता के साथ प्रथम दिशा, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ दिशाओं में व्याप्त रहता है। इस प्रकार वह समभाव से परिपूर्ण जागरूकता के साथ ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह और हर तरह से सर्वव्यापी संसार में व्याप्त रहता है: प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, द्वेष से मुक्त।

इसे असीम जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और शून्यता की जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। इसे शून्यता की जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और शून्यता जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की जड़ में, या किसी खाली घर में जाकर यह विचार करता है: 'यह स्वयं से या स्वयं से संबंधित किसी भी चीज़ से रहित है।'5 इसे शून्यता जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और विषय-रहित जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सभी विषयों पर ध्यान न देकर, जागरूकता की विषय-रहित एकाग्रता में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है।6 इसे विषय-रहित जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

"यह समझाने का वह तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न होते हैं।"

और वह कौन सा तरीका है जिससे यह समझाया जा सके कि ये गुण अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं?

"मित्र, वासना सीमाओं का निर्माण करती है। घृणा सीमाओं का निर्माण करती है। भ्रम सीमाओं का निर्माण करता है। जिस भिक्षु के ये सभी विकार समाप्त हो जाते हैं, उसमें ये सब त्याग दिए जाते हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, वह ताड़ के ठूंठ के समान हो जाता है, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाता है, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं होता। अब, जिस हद तक असीम चेतना-मुक्ति होती है, उस हद तक अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि घोषित किया जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"वासना एक तत्व है। घृणा एक तत्व है। भ्रम एक तत्व है। जिस भिक्षु के भीतर की ये सभी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, उसमें ये सब त्याग दी जाती हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, ये ताड़ के पेड़ के ठूंठ के समान हो जाती हैं, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाती हैं, भविष्य में इनके उत्पन्न होने का कोई आसार नहीं रहता। अब, जहाँ तक शून्यता की चेतना-मुक्ति है, वहाँ तक अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि माना जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"वासना विषयों का निर्माण करती है। घृणा विषयों का निर्माण करती है। भ्रम विषयों का निर्माण करता है। जिस भिक्षु के भीतर की सभी मनोभ्रंश समाप्त हो जाती हैं, उनमें ये मनोभ्रंश त्याग दी जाती हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, ये ताड़ के ठूंठ के समान हो जाती हैं, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाती हैं, भविष्य में इनके उत्पन्न होने का कोई आसार नहीं रहता। अब, जिस हद तक विषय-रहित चेतना-मुक्ति होती है, उस अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि माना जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"मित्र, यही वह तरीका है जिससे यह समझाया जा सकता है कि ये गुण अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं।"

यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। पूज्य महा कोत्थिता, पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.4कुलवेदल्ला सुत्त(44)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो द्वारा अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। तब उनके अनुयायी विशाखा धम्मदिन्ना भिक्षुणी के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने धम्मदिन्ना से कहा, "हे देवी, कहते हैं, 'आत्म-समर्पण, आत्म-समर्पण। भगवान ने किस आत्म-समर्पण का वर्णन किया है?'"

"हे विशाखा, ये पाँच आसक्ति-समूह हैं: रूप एक आसक्ति-समूह है, भावना एक आसक्ति-समूह है, बोध एक आसक्ति-समूह है, कल्पनाएँ एक आसक्ति-समूह हैं और चेतना एक आसक्ति-समूह है। ये पाँच आसक्ति-समूह ही भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान हैं।"

"जी जी," कहते हुए, गृहस्थ अनुयायी विशाखा भिक्षुणी धम्मदिन्ना की बातों से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "'स्वयं-पहचान की उत्पत्ति, स्वयं-पहचान की उत्पत्ति,' ऐसा कहा जाता है, हे भिक्षुणी। भगवान बुद्ध ने स्वयं-पहचान की किस उत्पत्ति का वर्णन किया है?"

"वह लालसा जो आगे चलकर विकास की ओर ले जाती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, जो यहाँ और वहाँ दोनों पलों का आनंद लेती है—अर्थात्, इंद्रिय सुख की लालसा, विकास की लालसा, गैर-विकास की लालसा: हे मित्र विशाखा, यही आत्म-पहचान का उद्‌गम है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है।"

"'स्वयं की पहचान का अंत, स्वयं की पहचान का अंत,' कहा जाता है, हे देवी। भगवान बुद्ध ने स्वयं की पहचान के किस अंत का वर्णन किया है?"

"अपूर्ण रूप से लुप्त होना और समाप्ति, त्याग, मुक्ति, और उस लालसा का पूरी तरह से त्याग देना: हे मित्र विशाखा, यही भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान की समाप्ति है।"

"'स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास मार्ग, स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास मार्ग,' ऐसा कहा जाता है, हे देवी। भगवान बुद्ध ने स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाले किस अभ्यास मार्ग का वर्णन किया है?"

"ठीक यही श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग—सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता: हे मित्र विशाखा, यही वह अभ्यास मार्ग है जो भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान के निवारण की ओर ले जाता है।"

"क्या ऐसा है, महोदया, कि आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान ही है या यह कुछ अलग है?"

"मित्र विशाखा, न तो आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान है, न ही यह उनसे भिन्न है। पाँच आसक्ति-समूहों के प्रति जो भी इच्छा और अभिलाषा होती है, वही यहाँ आसक्ति है।"

लेकिन, महोदया, आत्म-पहचान कैसे होती है?

"हे मित्र विशाखा, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—रूप (शरीर) को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मान लेता है, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है।"

वह भावना को ही स्वयं मान लेता है...

वह धारणा को स्वयं के रूप में मानता है...

वह (मानसिक) कल्पनाओं को स्वयं मान लेता है...

वह चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, या चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। इसी प्रकार आत्म-पहचान उत्पन्न होती है।

"लेकिन, महोदया, आत्म-पहचान कैसे नहीं हो पाती?"

"ऐसा भी मामला है जहां श्रेष्ठ व्यक्तियों का एक सुशिक्षित शिष्य - जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर करता है, उनके धर्म में भली-भांति पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में भली-भांति पारंगत और अनुशासित है - रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में।"

वह भावना को स्वयं नहीं मानता...

वह धारणा को स्वयं के रूप में नहीं मानता...

वह मनगढ़ंत बातों को स्वयं की वास्तविकता नहीं मानता...

"वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। इसी कारण आत्म-पहचान संभव नहीं हो पाती।"

"अब, महोदया, पुनः बताइए, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है?"

"हे मित्र विशाखा, यही श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग है: सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"

"क्या आर्य अष्टांगिक मार्ग गढ़ा हुआ है या असगढ़ा हुआ है?"

"आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग मनगढ़ंत है।"

"क्या हे देवी, सद्गुण, एकाग्रता और विवेक के ये तीनों समुच्चय आर्य अष्टांगिक मार्ग में समाहित हैं, या आर्य अष्टांगिक मार्ग इन तीनों समुच्चयों में समाहित है?"

"हे मित्र विशाखा, ये तीनों गुण अष्टांगिक मार्ग में शामिल नहीं हैं, परन्तु अष्टांगिक मार्ग इन तीनों गुणों में शामिल है। सही वाणी, सही कर्म और सही आजीविका सद्गुण के अंतर्गत आते हैं। सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता एकाग्रता के अंतर्गत आते हैं। सही दृष्टि और सही संकल्प विवेक के अंतर्गत आते हैं।"

"अब, हे महिला, एकाग्रता क्या है? इसके मूल तत्व क्या हैं? इसके लिए कौन से गुण आवश्यक हैं? इसके लिए कौन से गुण अनिवार्य हैं? और इसका विकास क्या है?"

"हे मित्र विशाखा, मन की एकाग्रता ही एकाग्रता है; चारों संदर्भ इसके विषय हैं; चारों सही प्रयास इसकी आवश्यकताएँ हैं; और इन गुणों का कोई भी संवर्धन, विकास और अनुसरण ही इसका विकास है।"

"तो महोदया, ये मनगढ़ंत बातें क्या होती हैं?"

"ये तीन मनगढ़ंत बातें हैं, मित्र विशाखा: शारीरिक मनगढ़ंत बातें, मौखिक मनगढ़ंत बातें और मानसिक मनगढ़ंत बातें।"

लेकिन शारीरिक बनावट क्या होती है? शाब्दिक बनावट क्या होती है? मानसिक बनावट क्या होती है?

"सांस लेना और छोड़ना शारीरिक रचनाएँ हैं। निर्देशित विचार और मूल्यांकन शाब्दिक रचनाएँ हैं। धारणाएँ और भावनाएँ मानसिक रचनाएँ हैं।"

लेकिन सांस लेना और छोड़ना शारीरिक बनावट क्यों हैं? निर्देशित विचार और मूल्यांकन मौखिक बनावट क्यों हैं? धारणाएं और भावनाएं मानसिक बनावट क्यों हैं?

"सांस लेना और छोड़ना शारीरिक क्रियाएं हैं; ये शरीर से जुड़ी चीजें हैं। इसीलिए सांस लेना और छोड़ना शारीरिक रचनाएं हैं। पहले अपने विचारों को निर्देशित और मूल्यांकन करने के बाद, व्यक्ति बोलना शुरू करता है। इसीलिए निर्देशित विचार और मूल्यांकन मौखिक रचनाएं हैं। धारणाएं और भावनाएं मानसिक क्रियाएं हैं; ये मन से जुड़ी चीजें हैं। इसीलिए धारणाएं और भावनाएं मानसिक रचनाएं हैं।"

"अब, महोदया, धारणा और संवेदना की समाप्ति की प्राप्ति कैसे होती है?"

"जब कोई भिक्षु अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था में होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त करने वाला हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा हूँ' या 'मैंने अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर ली है'। इसके बजाय, जिस प्रकार से उसका मन पहले से विकसित हुआ है, वही उसे उस अवस्था तक ले जाता है।"

लेकिन जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले कौन सी चीजें समाप्त होती हैं: शारीरिक रचनाएँ, शाब्दिक रचनाएँ या मानसिक रचनाएँ?

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले शाब्दिक रचनाएँ, फिर शारीरिक रचनाएँ और फिर मानसिक रचनाएँ समाप्त हो जाती हैं।"1

"अब, महोदया, बोध और भावना के रुकने से उद्भव कैसे होता है?"

"जब कोई भिक्षु अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकलने वाला हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल चुका हूँ'। इसके बजाय, जिस प्रकार से उसका मन पहले से विकसित हुआ है, वही उसे उस अवस्था तक ले जाता है।"

लेकिन जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो सबसे पहले कौन सी चीजें उत्पन्न होती हैं: शारीरिक रचनाएँ, शाब्दिक रचनाएँ या मानसिक रचनाएँ?

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो सबसे पहले मानसिक कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं, फिर शारीरिक कल्पनाएँ, फिर शाब्दिक कल्पनाएँ।"

"जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर आ जाता है, हे देवी, तो कितने संपर्क स्थापित होते हैं?"

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर आ जाता है, तो तीन संपर्क स्थापित होते हैं: शून्यता से संपर्क, निराकार से संपर्क और दिशाहीन से संपर्क।"2

"हे देवी, जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर आ जाता है, तो उसका मन किस ओर झुकता है, किस ओर प्रवृत्त होता है, किस ओर उसका झुकाव होता है?"

"जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर आ जाता है, हे मित्र विशाखा, तो उसका मन एकांत की ओर झुक जाता है, एकांत की ओर प्रवृत्त हो जाता है, एकांत की ओर रुझान हो जाता है।"3

"अब, महोदया, भावनाओं के कितने प्रकार होते हैं?"

"ये तीन प्रकार की भावनाएँ हैं: सुखद भावना, दुखद भावना और न सुखद न दुखद भावना।"

"सुखद अनुभूति क्या है? कष्टदायक अनुभूति क्या है? ऐसी अनुभूति क्या है जो न तो सुखद है और न ही कष्टदायक?"

जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से सुखद और तृप्तिदायक अनुभव होता है, वह सुखद अनुभूति है। जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से पीड़ादायक और कष्टदायक अनुभव होता है, वह कष्टदायक अनुभूति है। जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से न तो तृप्तिदायक है और न ही कष्टदायक, वह न तो सुखद है और न ही कष्टदायक अनुभूति है।

"महोदय, सुखद अनुभूति किस प्रकार सुखद होती है और किस प्रकार कष्टदायक?"

"हे मित्र विशाखा, सुखद अनुभूति बने रहने में सुखद और बदलने में कष्टदायी होती है। कष्टदायी अनुभूति बने रहने में कष्टदायी और बदलने में सुखद होती है। न सुखद और न कष्टदायी अनुभूति ज्ञान के साथ घटित होने पर सुखद होती है, और ज्ञान के बिना घटित होने पर कष्टदायी होती है।"

"सुखद अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है? कष्टदायक अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है? न तो सुखद और न ही कष्टदायक अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है?"

"जुनून-दीवानगी सुखद अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है। प्रतिरोध-दीवानगी दुखदायी अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है। अज्ञान-दीवानगी न तो सुखद और न ही दुखदायी अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है।"

क्या जुनून-दीवानगी सभी सुखद भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है? क्या प्रतिरोध-दीवानगी सभी पीड़ादायक भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है? क्या अज्ञान-दीवानगी सभी न सुखद और न पीड़ादायक भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है?

"नहीं..."

लेकिन सुखद अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है? पीड़ादायक अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है? और न सुखद और न पीड़ादायक अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है?

"सुखद अनुभूति के संबंध में वासना-उन्माद का त्याग करना चाहिए। कष्टदायक अनुभूति के संबंध में प्रतिरोध-उन्माद का त्याग करना चाहिए। न सुखद और न कष्टदायक अनुभूति के संबंध में अज्ञान-उन्माद का त्याग करना चाहिए।"

क्या सभी सुखद भावनाओं के संबंध में जुनून-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए? क्या सभी पीड़ादायक भावनाओं के संबंध में प्रतिरोध-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए? क्या सभी न सुखद और न पीड़ादायक भावनाओं के संबंध में अज्ञान-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए?

नहीं... एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु—इंद्रिय सुख से पूर्णतः विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त—प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्ति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। इसके साथ ही वह कामवासना का त्याग कर देता है। वहाँ कोई कामवासना-ग्रस्तता नहीं होती।4 एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु विचार करता है, 'हे, मैं कब उस आयाम में प्रवेश करूँगा और स्थिर रहूँगा जिसमें श्रेष्ठ लोग अब प्रवेश करते हैं और स्थिर रहते हैं?' और जैसे-जैसे वह इस प्रकार अद्वितीय मुक्ति की लालसा को पोषित करता है, उसके भीतर उस लालसा पर आधारित दुःख उत्पन्न होता है। इसके साथ ही वह प्रतिरोध का त्याग कर देता है। वहाँ कोई प्रतिरोध-ग्रस्तता नहीं होती।5 एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सुख और दुःख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—चला जाता है—चथम ध्यान की शुद्धता में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समता और जागरूकता, न सुख न दुःख। इसके साथ ही वह अज्ञान का त्याग कर देता है। वहाँ कोई अज्ञान-ग्रस्तता नहीं होती।6

"अब, महोदया, सुखद अनुभूति के दूसरी ओर क्या है?"

"उत्साह सुखद अनुभूति के दूसरी ओर स्थित होता है।"

और पीड़ादायक भावना के दूसरी ओर क्या छिपा है?

"दर्दनाक अनुभूति के दूसरी ओर प्रतिरोध निहित होता है।" 7

"न तो सुखद और न ही कष्टदायक इस भावना के दूसरी ओर क्या छिपा है?"

"अज्ञानता न तो सुखद और न ही कष्टदायक अनुभूति के दूसरी ओर स्थित होती है।"

अज्ञानता के दूसरी ओर क्या है?

"अज्ञान के दूसरी ओर स्पष्ट ज्ञान निहित है।"

स्पष्ट ज्ञान के दूसरी ओर क्या छिपा है?

"स्पष्ट ज्ञान के दूसरी ओर मुक्ति निहित है।"

"रिहाई के बाद क्या होता है?"

"मुक्ति के दूसरी ओर ही बंधन मुक्त होना निहित है।"

"अनबाइंडिंग के दूसरी ओर क्या है?"

"विशाखा, तुम हद से आगे बढ़ गई हो। प्रश्नों की सीमा तक अटके रहना ठीक नहीं है। क्योंकि पवित्र जीवन मुक्ति में ही आधार पाता है, मुक्ति में ही परिणत होता है और मुक्ति ही उसका अंतिम लक्ष्य है। यदि तुम चाहो, तो भगवान बुद्ध के पास जाओ और उनसे इन बातों का अर्थ पूछो। वे जो कुछ भी कहें, तुम्हें वही याद रखना चाहिए।"

तब विशाखा नामक गृहस्थ अनुयायी धम्मदिन्ना भिक्षुणी की बातों से प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भगवान बुद्ध को धम्मदिन्ना भिक्षुणी के साथ हुई सारी बातचीत सुनाई। यह सुनकर भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “हे विशाखा, धम्मदिन्ना भिक्षुणी बुद्धिमान और बहुत समझदार हैं। यदि तुमने मुझसे ये बातें पूछी होतीं, तो मैं भी तुम्हें वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इन बातों का यही अर्थ है। तुम्हें इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।”

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर, विशाखा नामक गृहस्थ अनुयायी ने भगवान बुद्ध के शब्दों का आनंद लिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकया >> 5.5कुलधम्मसमादान सुत्त(45)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भिक्षुओं, साधना करने के चार तरीके हैं। वे कौन से चार तरीके हैं? एक तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में सुखद हो लेकिन भविष्य में कष्टदायी हो। दूसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में कष्टदायी हो और भविष्य में भी कष्टदायी हो। तीसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में कष्टदायी हो लेकिन भविष्य में सुखदायी हो। तीसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में सुखद हो और भविष्य में भी सुखदायी हो।

"अब, उस अभ्यास को अपनाने का क्या अर्थ है जो वर्तमान में तो सुखद है लेकिन भविष्य में कष्टदायी है? कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग इस सिद्धांत, इस विचार को मानते हैं: 'इंद्रिय सुखों में कोई हानि नहीं है।' इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण ही अपने पतन की ओर अग्रसर होते हैं। वे उन घुमक्कड़ों महिलाओं के साथ संगति करते हैं जो अपने बालों को चोटी में बांधे रखती हैं।"

उनके मन में यह विचार आता है: 'अब वे [अन्य] पुजारी और ध्यानमग्न लोग इंद्रिय सुखों के संबंध में भविष्य में किस खतरे की भविष्यवाणी करते हैं, जिन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की है और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया है? इस स्त्री यात्री की कोमल, नाजुक, मुलायम भुजा का स्पर्श कितना सुखद है।'

इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन को प्राप्त करते हैं। फिर, इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वे एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाते हैं। वहाँ वे तीव्र, जलन भरे दर्द का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं: 'इंद्रिय सुखों से संबंधित यह भविष्य का खतरा था जिसे उन पुरोहितों और ध्यानियों ने पहले ही देख लिया था कि उन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया। इंद्रिय सुखों के कारण, इंद्रिय सुखों के परिणामस्वरूप, हम अब इन तीव्र, जलन भरे दर्दों का अनुभव कर रहे हैं।'

"जैसे कि गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में मलुवा लता का फली फट जाए और उसका एक बीज साल के पेड़ की जड़ों में गिर जाए। पेड़ में रहने वाली देवी भयभीत, चिंतित और परेशान हो जाएगी। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी - बगीचे के देवता, जंगल के देवता, वृक्षों के देवता, जड़ी-बूटियों, घास और वनों में रहने वाले देवता और वन के सम्राट - उसे सांत्वना देने के लिए इकट्ठा होंगे: 'डरो मत, डरो मत। पूरी संभावना है कि कोई मोर इस मलुवा लता के बीज को निगल जाएगा, या कोई हिरण इसे खा जाएगा, या झाड़ियों में लगी आग इसे जला देगी, या लकड़हारे इसे उठा लेंगे, या दीमक इसे ले जाएंगे, और वैसे भी यह शायद वास्तव में बीज नहीं है।"

और फिर न तो किसी मोर ने उसे निगला, न ही किसी हिरण ने उसे खाया, न ही किसी जंगल की आग ने उसे जलाया, न ही किसी लकड़हारे ने उसे उठाया, और वह सचमुच एक बीज था। बारिश से लदे बादल से सींचा गया, वह उचित समय पर अंकुरित हुआ और अपनी कोमल, नाजुक, रोएँदार बेल को साला के पेड़ के चारों ओर लपेट लिया।

साला वृक्ष में निवास करने वाले देव के मन में यह विचार आया: 'मेरे मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों - उद्यान देवों, वन देवों, वृक्ष देवों, जड़ी-बूटियों, घास और वन सम्राटों में निवास करने वाले देवों - ने उस मालुवा लता के बीज में भविष्य में क्या खतरा देखा होगा, जिसे उन्होंने मुझे सांत्वना देने के लिए इकट्ठा किया था: 'डरें नहीं, डरें नहीं। पूरी संभावना है कि कोई मोर इस मालुवा लता के बीज को निगल जाएगा, या कोई हिरण इसे खा जाएगा, या झाड़ियों में आग लग जाएगी, या लकड़हारे इसे उठा लेंगे, या दीमक इसे ले जाएंगे, और वैसे भी यह शायद वास्तव में बीज नहीं है।' इस मालुवा लता की कोमल, मुलायम, रोएँदार टहनी का स्पर्श कितना सुखद है!'

फिर उस लता ने साल के पेड़ को पूरी तरह से लपेट लिया, उसके ऊपर एक छत्र बना लिया और उसके चारों ओर नीचे लटकने लगी, जिसके कारण साल के पेड़ की विशाल शाखाएँ टूटकर गिर पड़ीं। पेड़ में रहने वाले देवता के मन में यह विचार आया: 'यह वही भविष्य का खतरा था जिसे मेरे मित्रों ने उस मालुवा लता के बीज में देख लिया था, जिसके कारण वे मुझे सांत्वना देने के लिए एकत्रित हुए थे... उसी मालुवा लता के बीज के कारण अब मुझे तीव्र, जलन वाला दर्द हो रहा है।'

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग इस सिद्धांत या विचार को मानते हैं कि 'इंद्रिय सुखों में कोई हानि नहीं है।' इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण ही अपने पतन की ओर अग्रसर होते हैं। वे उन घुमक्कड़ों महिलाओं के साथ संगति करते हैं जो अपने बालों को चोटी में बांधे रखती हैं।"

उनके मन में यह विचार आता है: 'अब वे [अन्य] पुजारी और ध्यानमग्न लोग भविष्य में किस खतरे की आशंका करते हैं कि वे इंद्रिय सुखों के त्याग और विश्लेषण की शिक्षा देते हैं? इस स्त्री घुमक्कड़ की कोमल, नाजुक, मुलायम भुजा का स्पर्श कितना सुखद है।'

इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन को प्राप्त करते हैं। फिर, इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वे एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाते हैं। वहाँ वे तीव्र, जलन भरे दर्द का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं: 'इंद्रिय सुखों से संबंधित यह भविष्य का खतरा उन पुरोहितों और ध्यानियों ने पहले ही देख लिया था कि उन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया। इंद्रिय सुखों के कारण, इंद्रिय सुखों के परिणामस्वरूप ही, हम अब इन तीव्र, जलन भरे दर्दों का अनुभव कर रहे हैं।'

इसे ऐसी प्रथा को अपनाना कहते हैं जो वर्तमान में तो सुखद लगती है लेकिन भविष्य में कष्टदायी साबित होती है।

"और उस अभ्यास को अपनाना क्या है जो वर्तमान में कष्टदायी है और भविष्य में भी कष्टदायी ही रहेगा?"

एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति वस्त्रहीन तपस्वी है, परंपराओं का त्याग करता है, अपने हाथ चाटता है, बुलाए जाने पर नहीं आता, बुलाए जाने पर नहीं ठहरता। वह अपने लिए लाए गए भोजन या अपने लिए समर्पित भोजन को स्वीकार नहीं करता, न ही भोजन के निमंत्रण को। वह किसी बर्तन या कटोरे के मुख से कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह किसी छड़ी या मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, गर्भवती महिला से, स्तनपान कराने वाली महिला से, पुरुष के साथ लेटी हुई महिला से, भोजन संग्रह से, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा हो या मक्खियाँ भिनभिना रही हों, कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह मछली या मांस नहीं खाता। वह शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता। वह स्वयं को एक घर और एक निवाला प्रतिदिन, या दो घर और दो निवाले... सात घर और सात निवाले तक सीमित रखता है। वह एक थाली प्रतिदिन, दो... सात थाली प्रतिदिन पर जीवन यापन करता है। वह दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह पखवाड़े भर तक अपने भोजन सेवन को नियंत्रित करने के लिए भोजन ग्रहण करता है। वह साग, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की झाग, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और बेरों पर जीवित रहता है। वह गिरे हुए फलों को खाता है। वह भांग, कैनवास, कफ़न, चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, हिरण की खाल की पट्टियाँ, कुसा घास के वस्त्र, छाल के वस्त्र, लकड़ी के बुरादे के वस्त्र, सिर के बालों के वस्त्र, पशु ऊन और उल्लू के पंख पहनता है। वह बाल और दाढ़ी खींचने वाला है, जो अपने बाल और दाढ़ी खींचने के अभ्यास में लगा रहता है। वह खड़ा रहता है, जो बैठने से परहेज करता है। वह घुटनों के बल बैठने वाला है, जो अपने घुटनों के बल हाथ रखकर बैठने के प्रयास में लगा रहता है। वह कांटों के गद्दे पर सोता है, जो कांटों के गद्दे पर अपना बिस्तर लगाता है। वह शाम को तीसरी बार स्नान करने वाला है, जो पानी में स्नान करने के अभ्यास में लगा रहता है। इस प्रकार वह अनेक तरीकों से शरीर को कष्ट देने और पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में लगा रहता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, वह एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाता है।

इसे ऐसी प्रथा को अपनाना कहते हैं जो वर्तमान में कष्टदायी हो और भविष्य में भी कष्टदायी साबित हो।

"और उस अभ्यास को अपनाने का क्या अर्थ है जो वर्तमान में कष्टदायी है लेकिन भविष्य में आनंद प्रदान करता है?"

एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत भावुक होता है और अक्सर भावुकता से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है; एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत घृणास्पद होता है और अक्सर घृणा से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है; एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत भ्रमित होता है और अक्सर भ्रम से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है। पीड़ा और दुःख से व्याकुल होकर, आँसू भरी आँखों से रोते हुए भी, वह पूर्णतः परिपूर्ण, अत्यंत शुद्ध जीवन जीता है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। इसे वर्तमान में पीड़ादायक, लेकिन भविष्य में सुखदायी साधना का पालन करना कहते हैं।

"और उस अभ्यास को अपनाना क्या है जो वर्तमान में सुखद हो और भविष्य में भी आनंद प्रदान करे?"

एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक भावुक नहीं होता और न ही उसे भावुकता से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है; जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक घृणास्पद नहीं होता और न ही उसे घृणा से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है; जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक भ्रमित नहीं होता और न ही उसे भ्रम से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है। इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद एवं आनंद, जो निर्देशित विचार एवं मूल्यांकन से युक्त होता है। निर्देशित विचारों एवं मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद एवं आनंद, निर्देशित विचार एवं मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण — आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और सजग रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके विषय में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह

चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख, न दुख। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। इसे वर्तमान में सुखद और भविष्य में सुखदायी साधना का पालन करना कहते हैं।

"और ये अभ्यासों को अपनाने के चार तरीके हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.6 महाधम्मसमादान सुत्त(46)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, मनुष्य सदा ही ऐसे हितों, इच्छाओं और इरादों से ग्रस्त रहते हैं। अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय बातें कम हों और सुखद, सुखद और सुखद बातें बढ़ें। भिक्षुओं, ऐसे हितों, इच्छाओं और इरादों वाले लोगों के लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय बातें बढ़ती हैं और सुखद, सुखद और सुखद बातें घटती हैं। भिक्षुओं, क्या आप इसका कारण समझते हैं? आदरणीय गुरुदेव, भगवान बुद्ध इस शिक्षा के जनक, मार्गदर्शक और आश्रयदाता हैं, कृपया स्वयं भगवान बुद्ध इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करें। भिक्षु भगवान बुद्ध से सुनकर इसे ध्यान में रखेंगे। तब भिक्षुओं, ध्यानपूर्वक सुनो, मैं उपदेश देता हूँ।

हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान पुरुषों को नहीं देखा, न ही उनकी शिक्षा सुनी है और न ही उनसे शिक्षा प्राप्त की है, वह यह नहीं जानता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वह उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए और उन चीजों का अभ्यास नहीं करता जिनका अभ्यास करना चाहिए। जो व्यक्ति उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए और उन चीजों का अभ्यास नहीं करता जिनका अभ्यास करना चाहिए, उसके लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय चीजें बढ़ जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद चीजें कम हो जाती हैं। इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, उस श्रेष्ठ शिष्य के लिए जिसने श्रेष्ठ पुरुषों को देखा है, उनकी शिक्षा सुनी है और उनके द्वारा प्रशिक्षित हुआ है, वह जानता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वह उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, उसके लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय चीजें कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद चीजें बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, बुद्धिमानों के साथ भी ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, ये चार विधियाँ शिक्षा में वर्णित हैं। ये चार विधियाँ क्या हैं? एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में सुखद परिणाम देगी।

भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है। मूर्ख लोग इसे नहीं जानते, जैसा कि यह वास्तव में है, कि यह अनुष्ठान वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, और वे इसका पालन करते हैं। उनके लिए इसका पालन करने से अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, मूर्ख लोग इसे नहीं जानते, जैसा कि यह वास्तव में है, कि यह अनुष्ठान वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है। इसलिए वे इसका पालन करते हैं। उनके लिए इसका पालन करने से अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद, सुखद

भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं। यह अनुष्ठान, जो अभी अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है, मूर्ख लोग इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानते। यह अनुष्ठान अभी अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है, और वे इसका पालन नहीं करते। उनके पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान, जो अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, मूर्ख लोग इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानते। यह अनुष्ठान अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, और वे इसका पालन नहीं करते। उनके पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, ज्ञानी इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, फिर भी वे इसका पालन नहीं करते। उनके द्वारा इसका पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, ज्ञानी इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, फिर भी वे इसका पालन नहीं करते। उनके द्वारा इसका पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद परिणाम लाता है, ज्ञानी लोग इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान अभी अप्रिय है, लेकिन भविष्य में सुखद फल देता है, और भिक्षु इसका पालन करते हैं। इसका पालन करने से उन्हें अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम होती हुई और सुखद, सुखद भावनाएँ बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं। इसका कारण क्या है?: भिक्षुओं, ऐसा ही बुद्धिमानों के साथ होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान, जो अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, बुद्धिमान इसे इसके वास्तविक स्वरूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, और भिक्षु इसका पालन करते हैं। इसका पालन करने से उन्हें अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम होती हुई और सुखद, सुखद भावनाएँ बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ऐसा ही बुद्धिमानों के साथ होता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है? यहाँ, एक व्यक्ति असंतुष्ट होकर जीवों का संहार करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह वस्तुएँ ग्रहण करता है जो उसे नहीं दी गई हैं और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह यौन दुराचार करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह झूठ बोलता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह द्वेषपूर्ण बातें करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह कठोर वाणी बोलता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह व्यर्थ की बातें करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह लोभ करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह क्रोधी मन रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह गलत मत रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद अपघटित होकर नरक में जन्म लेता है। यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है? यहाँ, एक व्यक्ति आनंद के लिए जीवों का संहार करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह अनचाही वस्तुएँ लेता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह व्यभिचार करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह झूठ बोलता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह द्वेषपूर्ण बातें कहता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह कठोर वाणी बोलता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह व्यर्थ की बातें करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह लोभ करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह क्रोधित मन रखता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह गलत मत रखता है और सुख का अनुभव करता है। मृत्यु के बाद वह क्षीणन में जाता है और नरक में जन्म लेता है। भिक्षुओं, यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है? यहाँ, एक व्यक्ति अप्रसन्नता के साथ जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह यौन दुराचार से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह झूठ बोलने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह कठोर वाणी बोलने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह लोभ से परहेज करता है और

अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह क्रोधपूर्ण मन रखने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह सही दृष्टि बनाए रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद वृद्धि के लिए जाता है और स्वर्ग में जन्म लेता है। यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा व्रत है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देता है? यहाँ, एक व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक जीवों का संहार करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह कामुकता में दुराचार करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह झूठ बोलने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह फिजूल की बातें करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। अप्रसन्नतापूर्वक वह लोभ करने से परहेज करता है और सुख एवं आनंद का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह क्रोधित मन रखने से परहेज करता है और इसके कारण सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह सही दृष्टि बनाए रखता है और इसके कारण सुख एवं आनंद का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद वृद्धि के लिए जाता है और स्वर्ग में जन्म लेता है। यही वह व्रत है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देता है। भिक्षुओं, ये शिक्षा में वर्णित चार व्रत हैं।

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, जिसे सुख पसंद है और दुख से घृणा करता है, वह आता है और उसे कहा जाता है: "मित्र, यह कड़वा गुड़ से बना पेय है, और इसमें विष मिला हुआ है। यह देखने, सूंघने या चखने में अप्रिय है, और इसे पीने से तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घोर कष्ट होगा। यदि तुम पीना चाहते हो, तो पियो।" बिना सोचे-समझे वह पी लेता है। देखने, सूंघने या चखने में वह अप्रिय होता है और उसे पीने से उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घोर कष्ट होता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन करना इसी के समान है, क्योंकि यह अभी अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, जिसे सुख पसंद है और दुख से घृणा है, वह आता है और उसे कहा जाता है: "मित्र, इस कटोरे में एक पेय है, इसमें विष मिला हुआ है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद है, और इसे पीने से तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घोर दुख का सामना करना पड़ेगा। यदि तुम पीना चाहते हो, तो पी लो।" बिना सोचे-समझे वह उसे पी लेता है। देखने, सूंघने और स्वाद में वह सुखद होता है, लेकिन उसे पीने से उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घोर दुख का सामना करना पड़ता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन करना इसी के समान है, क्योंकि यह अभी सुखद है, लेकिन भविष्य में दुखद परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति पीलिया से पीड़ित होकर आता है और उसे बताया जाता है: "मित्र, सड़े हुए मूत्र से बना एक पेय है, जिसमें कई प्रकार की औषधियाँ मिलाई गई हैं। यदि आप चाहें तो पी सकते हैं। इसे पीते समय यह देखने, सूंघने और स्वाद में अप्रिय लगेगा, परन्तु इसे पीने से आप रोगमुक्त हो जाएँगे।" वह इस पर विचार करता है और उसे पी लेता है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में अप्रिय तो लगता है, फिर भी वह रोगमुक्त हो जाता है। मैं कहता हूँ कि इस शिक्षा का पालन करना इसी प्रकार है, क्योंकि यह अभी अप्रिय है, परन्तु भविष्य में सुखद फल देता है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति खूनी पेचिश से पीड़ित होकर आता है और उसे बताया जाता है, हे भगवान, दही, शहद, घी और गुड़ से बना एक मिश्रण है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद है, और इसे पीने से आप ठीक हो जाएंगे। वह विचार करता है और इसे पीता है, और पीते समय भी उसे यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद लगता है, और पीने से वह ठीक हो जाता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन इसी के समान है, क्योंकि यह अभी सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देगा। भिक्षुओं, वर्षा ऋतु के अंतिम महीने में, शरद ऋतु में जब आकाश वर्षा के बादलों से मुक्त होता है, सूर्य तेजस्वी होकर समस्त अंधकार को दूर भगाता है और प्रकाश और ऊष्मा प्रदान करता है, उसी प्रकार, इस शिक्षा का पालन, जो अभी सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देगा, अन्य सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों की शिक्षाओं को निष्फल कर देता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.7विममसाका सुत्त(47)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब भगवान बुद्ध ने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया।

भिक्षुओं, किसी ऐसे भिक्षु द्वारा जो दूसरे भिक्षु के मन की प्रक्रिया को पढ़ सकता हो, तथागत की परीक्षा की जानी चाहिए। क्या वे वास्तव में प्रबुद्ध हैं या नहीं, या केवल इसके प्रति सचेत हैं? आदरणीय, भगवान बुद्ध ही शिक्षा के स्रोत, मार्गदर्शक और शरणस्थल हैं। सौभाग्य है कि भगवान बुद्ध को इन शब्दों का अर्थ समझ में आया। भगवान बुद्ध से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे। तो भिक्षुओं, सुनो, मैं शिक्षा देता हूँ।

भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरे के विचार-प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकते हैं, उन्हें तथागत की दो बातों पर परीक्षा करनी चाहिए। पहली, वे बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं। क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली अशुद्ध बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये अशुद्ध बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*1) तथागत में प्रकट नहीं होती हैं। तब उन्हें आगे परीक्षा करनी चाहिए: क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली मिश्रित बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये मिश्रित बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*2) तथागत में प्रकट नहीं होती हैं। तब उन्हें आगे परीक्षा करनी चाहिए: क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली शुद्ध बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये शुद्ध बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*3) तथागत में प्रकट होती हैं।

फिर उसे आगे की जाँच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर को ये पुण्य गुण बहुत पहले से प्राप्त हैं या हाल ही में प्राप्त हुए हैं? जाँच करने पर उसे पता चलता है कि ये पुण्य गुण बहुत पहले से प्राप्त हैं, हाल ही में नहीं। फिर उसे आगे की जाँच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर को इस प्राप्ति का आंतरिक विश्वास है? क्या कोई संभावित खतरा दिखाई देता है? उसे यह जानने के लिए गहन जाँच करनी चाहिए कि क्या कोई खतरा दिखाई देता है। जाँच करने पर उसे पता चलता है कि पूज्यवर को इस प्राप्ति का आंतरिक विश्वास है और कोई खतरा दिखाई नहीं देता।

फिर उसे और अधिक जांच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर लोभ के नाश से या भय से कामुकता में लिप्त नहीं होते? जांच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर लोभ के नाश से कामुकता में लिप्त नहीं होते, न ही भय से।

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से प्रश्न करना चाहिए। पूज्यवर ने किस आधार पर कहा कि वे कामुकता में लिप्त नहीं होते क्योंकि उनका लोभ नष्ट हो गया है, भय के कारण नहीं? यदि वह भिक्षु सही उत्तर दे, तो उसे कहना चाहिए: चाहे पूज्यवर समुदाय के बीच हों या अकेले रह रहे हों, सुखी हों या दुखी, यदि वे किसी समूह को उपदेश देते समय किसी को भौतिकता में लिप्त या अप्रभावित देखते हैं, तो वे उस पर तिरस्कार नहीं करते: यह मैंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में सुना, और उन्होंने इसे स्वीकार किया, 'मैं कामुकता में लिप्त नहीं होता क्योंकि मेरा लोभ नष्ट हो गया है, भय के कारण नहीं।'

फिर आगे चलकर स्वयं तथागत से भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात अशुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात अशुद्ध वस्तुएँ प्रकट नहीं होतीं।' पूछे जाने पर: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात मिश्रित वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात मिश्रित वस्तुएँ प्रकट नहीं होतीं।' पूछे जाने पर: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात शुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात शुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं। यही मेरा मार्ग और चारागाह है, परन्तु मैं इन्हें अपना नहीं मानता।' भिक्षुओं, जो गुरु ऐसा कहते हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करने हेतु संपर्क करना उचित है। वे शिक्षा देते हुए व्यक्ति को उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाते हैं, अंधकार और श्वेत के प्रतिरूपों को दर्शाते हैं। जब शिक्षा अधिक से अधिक उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाती है, तो एक निश्चित बिंदु पर वह शिखर (*4) पर पहुँच जाता है और शिक्षक में विश्वास स्थापित करता है: भगवान सही मायने में प्रबुद्ध हैं, शिक्षा अच्छी तरह से घोषित की गई है, भिक्षुओं का समुदाय अच्छा रहा है।

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से प्रश्न करना चाहिए। पूज्य भिक्षु ने किस आधार पर कहा कि भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उपदेश का प्रचार सुचारू रूप से हो रहा है और भिक्षु समुदाय का भला हो रहा है? वह भिक्षु उचित उत्तर देते हुए कहेगा, मैं भगवान बुद्ध से उपदेश सुनने के लिए उनके पास गया था। भगवान बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया जिससे मैं उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर अग्रसर हुआ, उन्होंने मुझे अंधकार और श्वेत रंग के दो पहलुओं को दिखाया। उपदेश देते हुए, जिससे मैं उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर अग्रसर हुआ, एक समय ऐसा आया जब मैं शिखर पर पहुँच गया, और तब मैंने गुरु में आस्था स्थापित की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उपदेश का प्रचार सुचारू रूप से हो रहा है और भिक्षु समुदाय का भला हो रहा है।

भिक्षुओं, जिस किसी में तथागत के प्रति इस प्रकार, इन शब्दों और वाक्यों से आस्था स्थापित हो जाती है, वह आस्था और अंतर्दृष्टि दृढ़ और अटूट हो जाती है। इसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मारा ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बदला नहीं जा सकता।

भिक्षुओं, यही तथागत के उपदेश में खोज है, और तथागत के उपदेश में शिखर (*5) तक पहुँचने की औचित्य है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.8कोसंबिया सुत्त(48)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में घोषिता के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय कोसंबी के भिक्षुओं में आपस में विवाद हो गया था और वे एक-दूसरे पर तीखे शब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ रहे थे। वे आपस में चर्चा करके सुलह करने को तैयार नहीं थे। एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला, "हे पूज्यवर, कोसंबी के भिक्षुओं में विवाद हो गया है और वे आपस में झगड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर तीखे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। वे आपस में चर्चा करके सुलह करने को तैयार नहीं हैं।" तब भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु से कहा, "हे भिक्षु, मेरी बात उन भिक्षुओं से कहो कि गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं।" उस भिक्षु ने सहमति जताई, उन भिक्षुओं के पास गया और बोला, "हे भिक्षुओं, गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं।" उन भिक्षुओं ने भी सहमति जताई, भगवान बुद्ध के पास गया, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। तब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या यह सच है कि तुम आपस में विवाद कर रहे हो और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोल रहे हो? क्या तुम आपस में इस मामले पर चर्चा करके समझौता नहीं करोगे?" "जी, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, जब तुम आपस में विवाद कर रहे हो और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोल रहे हो, क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो? क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति मौखिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो? क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति मानसिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो?" नहीं, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, तुम आपस में झगड़ा करके और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोलकर विवाद खड़ा कर रहे हो। अब तुम न तो अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के शारीरिक कर्मों में स्थिर हो। न ही अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के मौखिक कर्मों में स्थिर हो। न ही अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के मानसिक कर्मों में स्थिर हो। हे मूर्ख लोगो, तुमने यह विवाद क्यों खड़ा किया? तुम आपस में इस विषय पर चर्चा करके कोई समझौता क्यों नहीं करते? हे मूर्ख लोगो, यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक नाश का कारण बनेगा।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: हे भिक्षुओं, छह बातें हैं जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती हैं। वे छह बातें क्या हैं? हे भिक्षुओं, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। फिर, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह भी एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। फिर, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह भी एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। हे भिक्षुओं, उचित रूप से प्राप्त लाभ, जहाँ तक पात्र में डाले गए प्रसाद का संबंध है, भिक्षु उसे अपने सहचरों के साथ समान रूप से बाँटे बिना ग्रहण नहीं करेगा। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है। भिक्षु खुलेआम और गुप्त रूप से अपने सहचरों के साथ सद्गुणों में समान हो जाता है। जो सद्गुण अविभाजित, विखंडित या दागदार नहीं होते, वे स्थिर होते हैं और ज्ञानी उन्हें अप्रभावित और एकाग्रता बढ़ाने वाला मानते हैं। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है। भिक्षु अपने सहचरों के साथ उस महान दृष्टिकोण में समान हो जाता है जो परलोक की ओर ले जाता है। जो तार्किक रूप से सोचने वाले व्यक्ति के लिए अप्रियता के नाश को उचित रूप से दर्शाता है। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है।

भिक्षुओं, ये छह बातें आदर, एकता, मित्रता और एक दूसरे के प्रति प्रेम को बढ़ावा देती हैं। भिक्षुओं, इन छह में से वह श्रेष्ठ दृष्टिकोण जो पारलौकिक अवस्था की ओर ले जाता है और तार्किक चिंतन करने वाले को अप्रियता का नाश करने का सही मार्ग दिखाता है, सर्वोत्कृष्ट और प्रमुख है। यह सभी को एक छत वाले घर के सबसे ऊंचे स्तंभ से बांधता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा श्रेष्ठ दृष्टिकोण है जो पारलौकिक अवस्था की ओर ले जाता है और तार्किक चिंतन करने वाले को अप्रियता का नाश सिद्ध करता है? यहाँ, भिक्षुओं, वन में, वृक्ष की जड़ में, या किसी एकांत घर में जाकर चिंतन कीजिए। क्या मुझमें कोई अनसुलझी बाधाएँ हैं? क्या वे मेरे मन को उसके वास्तविक स्वरूप को जानने और देखने से रोक रही हैं? क्या मैं कामवासना से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन उनसे अवरुद्ध है? क्या मैं क्रोध से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन क्रोध से अवरुद्ध है? क्या मैं आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन आलस्य और सुस्ती से अवरुद्ध है? क्या मैं बेचैनी और चिंता से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन बेचैनी और चिंता से अवरुद्ध है? क्या मेरा मन इस संसार और परलोक के बारे में संदेह से ग्रस्त है? या क्या मैं किसी विवाद में उलझा हुआ हूँ, दूसरों पर कठोर शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ, क्या मेरा मन इस प्रकार अवरुद्ध है?

भिक्षु जानता है, मैंने उन बाधाओं को दूर नहीं किया है जिनके कारण मेरा मन इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं देख पा रहा था। ये बातें मेरे मन से पूरी तरह दूर हो गई हैं और यह सत्य को जानने के लिए तैयार है। यह प्राप्त किया गया प्रथम महान ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के साथ साझा किया जाता है (*1)।

फिर, महान शिष्य चिंतन करता है, "जब मैं इस दृष्टिकोण का बहुत अभ्यास और विकास करता हूँ, तो मुझे आंतरिक शांति और आंतरिक निर्गमन (*2) का अनुभव होता है। यह प्राप्त किया गया दूसरा महान ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही सामान्य लोगों के साथ साझा किया जाता है।"

फिर उस श्रेष्ठ शिष्य ने चिंतन किया। क्या यह ज्ञान जो मैंने प्राप्त किया है, अन्य संप्रदायों के संन्यासियों और ब्राह्मणों का भी ज्ञान है? तब उसे ज्ञान प्राप्त हुआ कि यह ज्ञान, जो मुझे प्राप्त हुआ है, अन्य संप्रदायों के संन्यासियों और ब्राह्मणों को प्राप्त नहीं है। यह तीसरा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो संसार का है और न ही साधारण लोगों को प्राप्त है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं इस विचार को उन सभी के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। भिक्षुओं, सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वह विशिष्ट गुण क्या है? जब वह कोई पाप करता है, तो वह उसे प्रकट हो जाता है, और वह तुरंत गुरु या किसी ज्ञानी सहपाठी के पास जाकर उसे स्वीकार करता है, प्रकट करता है और भविष्य में संयम बरतने का निश्चय करता है, जैसे कोई छोटा बच्चा जो खड़े होने और लेटने में धीमा होता है, जलते हुए कोयले पर पैर रख दे और तुरंत उससे दूर हट जाए। ठीक उसी प्रकार, जब वह कोई पाप करता है, तो वह उसे प्रकट हो जाता है, और वह तुरंत गुरु या किसी ज्ञानी सहपाठी के पास जाकर उसे स्वीकार करता है और भविष्य में संयम बरतने का निश्चय करता है। यह सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विशिष्ट गुण है। यह चौथा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों में पाया जाता है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं भी इस विचार को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। भिक्षुओं, सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वह विशिष्ट गुण क्या है? सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विशिष्ट गुण यह है कि वह पवित्र जीवन में सहचरों के लिए किए जाने वाले किसी भी कार्य, चाहे वह उच्च हो या निम्न, को पूर्ण करने में अत्यंत तत्पर रहता है। उच्च गुणों, प्रशिक्षण और उच्च ज्ञान के प्रति सचेत रहता है। जैसे गाय अपने बछड़े को बचाने के प्रयास में उस खंभे को भी उखाड़ देती है जिससे वह बंधी होती है। उसी प्रकार, वह पवित्र जीवन में सहचरों के लिए किए जाने वाले किसी भी कार्य, चाहे वह उच्च हो या निम्न, को पूर्ण करने में अत्यंत तत्पर रहता है। उच्च गुणों, प्रशिक्षण और उच्च ज्ञान के प्रति सचेत रहता है। तब वह जानता है, मैं भी इस विचार को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। यह पाँचवाँ श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास है।

फिर, वह श्रेष्ठ शिष्य मनन करता है कि मैं इस शक्ति को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मैं उस शक्ति से संपन्न हूँ। वह कौन सी शक्ति है जिससे सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति संपन्न होता है? सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति ध्यानपूर्वक उपदेश सुनता है और एकाग्र मन से उसका सार ग्रहण करता है। तब वह जान जाता है, मैं सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति की शक्ति से संपन्न हूँ। यह छठा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास होता है।

फिर, वह श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं इस शक्ति को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मैं उस शक्ति से संपन्न हूँ। वह कौन सी शक्ति है जिससे सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला संपन्न होता है? यह सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाले की वह शक्ति है

जिससे वह भगवान बुद्ध द्वारा दी गई शिक्षा को सुनता है, उसके अर्थों को ग्रहण करता है, शिक्षा का अनुभव करता है और आनंद का अनुभव करता है। तब वह जान जाता है कि जिस भी शक्ति से सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला संपन्न है, मैं भी उस शक्ति से संपन्न हूँ। यह सातवाँ श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास होता है।

जब श्रेष्ठ शिष्य इन सात गुणों से संपन्न हो जाता है, तो वह शिक्षा की धारा में प्रवेश करने के फलों को प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.9ब्राह्मणिमंतनिका सुत्त(49)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हाल ही में एक बार मैं सुभगा वन में उक्कत्था में एक राजसी साल वृक्ष की जड़ में ठहरा हुआ था। उस समय बका-ब्रह्मा के मन में एक बुरी धारणा उत्पन्न हुई: 'यह स्थिर है। यह स्थायी है। यह शाश्वत है। यह पूर्ण है। यह पतन के अधीन नहीं है - क्योंकि यह जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता, मरता नहीं, नष्ट नहीं होता, पुन: प्रकट नहीं होता।1 और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।'

"इसलिए मैंने—बका ब्रह्मा के मन में चल रहे विचारों को अपनी चेतना से जानकर—जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाता है, वैसे ही उक्कत्था के सुभाग वन में स्थित राजसी साल वृक्ष की जड़ में विलीन होकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हुआ। बका ब्रह्मा ने मुझे दूर से आते हुए देखा और मुझे देखकर कहा, 'आओ, हे सज्जन। आपका स्वागत है, हे सज्जन। हे सज्जन, आपने यहाँ आने का प्रबंध किए हुए बहुत समय हो गया है—क्योंकि, हे सज्जन, यह स्थिर है। यह स्थायी है। यह शाश्वत है। यह पूर्ण है। यह पतन के अधीन नहीं है—क्योंकि यहाँ न जन्म होता है, न वृद्धावस्था होती है, न मृत्यु होती है, न पतन होता है, न पुनर्जन्म होता है। और इससे ऊपर कोई दूसरा मुक्ति मार्ग नहीं है।'

जब यह कहा गया, तो मैंने बका ब्रह्मा से कहा, 'बका ब्रह्मा अज्ञान में कितना डूबा हुआ है! बका ब्रह्मा अज्ञान में कितना डूबा हुआ है! क्योंकि जो वास्तव में अस्थिर है, उसे वह 'स्थिर' कहता है। जो वास्तव में अनित्य है, उसे वह 'स्थायी' कहता है। जो वास्तव में शाश्वत नहीं है, उसे वह 'शाश्वत' कहता है। जो वास्तव में आंशिक है, उसे वह 'पूर्ण' कहता है। जो वास्तव में पतन के अधीन है, उसे वह 'पतन के अधीन नहीं' कहता है। जहाँ जन्म होता है, वृद्धावस्था होती है, मृत्यु होती है, पतन होता है और पुन: प्रकट होता है, वहाँ वह कहता है, 'क्योंकि यहाँ न तो जन्म होता है, न वृद्धावस्था होती है, न मृत्यु होती है, न पतन होता है, न पुन: प्रकट होता है।' और एक अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग होने के कारण, वह कहता है, 'कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है।'

तब दुष्ट मारा ने ब्रह्मा सभा के एक सेवक को अपने वश में कर लिया और मुझसे कहा, 'हे भिक्षु! हे भिक्षु! उस पर आक्रमण मत करो! उस पर आक्रमण मत करो! क्योंकि हे भिक्षु, यह ब्रह्मा ही महान ब्रह्मा हैं, विजेता हैं, अजेय हैं, सर्वदर्शी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, संभगवान स्वामी हैं, सृष्टिकर्ता हैं, सृजनकर्ता हैं, प्रधान हैं, नियुक्तकर्ता हैं और शासक हैं, जो सभी के पिता हैं जो रहे हैं और होंगे। हे भिक्षु, तुम्हारे समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यान करने वाले थे जिन्होंने पृथ्वी में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने द्रव में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने अग्नि में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने वायु में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने प्राणियों में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने देवताओं में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने प्रजापति में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने ब्रह्मा में दोष पाया और उनसे घृणा की।'

"'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन के विच्छेदन के साथ, वे एक स्थूल शरीर में स्थापित हो गए।3 हे भिक्षु, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न थे, जो पृथ्वी की स्तुति करते थे और पृथ्वी से प्रसन्न होते थे, जो द्रव की स्तुति करते थे और द्रव से प्रसन्न होते थे, जो अग्नि की स्तुति करते थे और अग्नि से प्रसन्न होते थे, जो वायु की स्तुति करते थे और वायु से प्रसन्न होते थे, जो प्राणियों की स्तुति करते थे और प्राणियों से प्रसन्न होते थे, जो देवताओं की स्तुति करते थे और देवताओं से प्रसन्न होते थे, जो प्रजापति की स्तुति करते थे और प्रजापति से प्रसन्न होते थे, जो ब्रह्मा की स्तुति करते थे और ब्रह्मा से प्रसन्न होते थे।

"शरीर के विखंडन और जीवन के विच्छेदन के साथ, वे एक परिष्कृत शरीर में स्थापित हुए। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, हे भिक्षु, "कृपा करके, केवल ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करो। ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन मत करो। यदि तुम ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन करोगे, तो — जैसे कोई मनुष्य भाग्य की देवी के आने पर उसे लाठी से भगा देता है, या जैसे कोई मनुष्य नरक में गिरकर अपने हाथों और पैरों से पृथ्वी को खो देता है — वही तुम्हारा कर्म होगा। कृपा करके, हे भगवान, केवल ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करो। ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन मत करो। क्या तुम नहीं देखते कि ब्रह्मा की सभा एकत्रित हुई है?" और इस प्रकार दुष्ट मारा ने मेरा ध्यान ब्रह्मा की सभा की ओर आकर्षित किया।

जब यह कहा गया, तो मैंने दुष्ट मारा से कहा, 'मैं तुम्हें जानता हूँ, दुष्ट। यह मत समझो कि "वह मुझे नहीं जानता।" तुम ही हो दुष्ट मारा। और ब्रह्मा, ब्रह्मा की सभा और ब्रह्मा की सभा के सेवक सब तुम्हारे हाथों में आ गए हैं। वे सब तुम्हारी शक्ति के अधीन हो गए हैं। और तुम सोचते हो, "यह भी मेरे हाथों में आ गया है, मेरे वश में आ गया है।" लेकिन, दुष्ट, मैं न तो तुम्हारे हाथों में आया हूँ और न ही तुम्हारे वश में आया हूँ।'

जब यह कहा गया, तो बका ब्रह्मा ने मुझसे कहा, 'परन्तु, हे भगवान, जो वास्तव में स्थिर है, उसे मैं 'स्थिर' कहता हूँ। जो वास्तव में स्थायी है, उसे मैं 'स्थायी' कहता हूँ। जो वास्तव में शाश्वत है, उसे मैं 'शाश्वत' कहता हूँ। जो वास्तव में पूर्ण है, उसे मैं 'पूर्ण' कहता हूँ। जो वास्तव में पतन के अधीन नहीं है, उसे मैं 'पतन के अधीन नहीं' कहता हूँ। जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, वृद्ध नहीं होता, मरता नहीं, पतन नहीं होता, या पुनर्जन्म नहीं लेता, वहाँ मैं कहता हूँ, 'क्योंकि यह जन्म नहीं लेता, वृद्ध नहीं होता, मरता नहीं, पतन नहीं होता, पुनर्जन्म नहीं लेता।' और जब कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है, तो मैं कहता हूँ, 'कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है।'

"'हे भिक्षु, तुम्हारे समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न हुए लोग थे, जिनका तप तुम्हारे जीवनकाल के बराबर चला। वे जानते थे कि जब कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग था, तो वह था; या जब कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं था, तो वह था। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, हे भिक्षु, कि तुम्हें कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं मिलेगा, और उस हद तक तुम्हें कष्ट और थकान का सामना करना पड़ेगा। हे भिक्षु, यदि तुम्हें पृथ्वी से प्रेम है, तो तुम मेरे निकट लेटोगे, मेरे क्षेत्र में, ताकि मैं तुम्हें निर्वासित कर सकूँ और जैसा चाहूँ वैसा कर सकूँ। यदि तुम्हें द्रव... अग्नि... वायु... प्राणी... देव... प्रजापति... ब्रह्मा से प्रेम है, तो तुम मेरे निकट लेटोगे, मेरे क्षेत्र में, ताकि मैं तुम्हें निर्वासित कर सकूँ और जैसा चाहूँ वैसा कर सकूँ।"

"'मैं भी यह जानता हूँ, ब्रह्मा। यदि मुझे पृथ्वी से प्रेम हो, तो मैं आपके निकट, आपके क्षेत्र में, आपके लिए उपलब्ध रहूँगा, ताकि आप मुझे निर्वासित कर सकें और मेरे साथ जैसा चाहें वैसा कर सकें। यदि मुझे द्रव... अग्नि... वायु... प्राणी... देव... प्रजापति... ब्रह्मा से प्रेम हो, तो मैं आपके निकट, आपके क्षेत्र में, आपके लिए उपलब्ध रहूँगा, ताकि आप मुझे निर्वासित कर सकें और मेरे साथ जैसा चाहें वैसा कर सकें। इसके अलावा, मैं आपके क्षेत्र को, आपकी महिमा को देखता हूँ: 'बका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है।'"

"'अच्छा, भिक्षु, तुम मेरे क्षेत्र को कैसे समझते हो, तुम मेरी महिमा को कैसे समझते हो: 'बाका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बाका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बाका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है'?'"

सूर्य और चंद्रमा जहाँ तक घूमते हैं, चमकते हैं, दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, एक हजार गुना से अधिक विशाल संसार पर आपका नियंत्रण है। वहाँ आप ऊपर और नीचे वालों को जानते हैं, कामवासना वाले और कामवासना रहित लोगों को जानते हैं, जो जैसा है वैसा ही है, जो बदल जाता है, प्राणियों के आने-जाने को जानते हैं।

"'हे ब्रह्मा, मैं इसी प्रकार आपके क्षेत्र को पहचानता हूँ, इसी प्रकार आपकी महिमा को पहचानता हूँ: बका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है।' हे ब्रह्मा, आपके शरीर के अलावा अन्य शरीर भी हैं जिन्हें आप नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु जिन्हें मैं जानता हूँ, देखता हूँ। हे ब्रह्मा, आभासर (दीप्तिमान/प्रकाशमान) नामक शरीर है

जिससे आप गिरे और यहाँ पुनः प्रकट हुए।4 यहाँ इतने लंबे समय तक रहने के कारण, उस शरीर की आपकी स्मृति धुंधली हो गई है। इसीलिए आप उसे नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु मैं उसे जानता हूँ, देखता हूँ। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के मामले में मैं केवल आपका समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं आपसे हीन कैसे हो सकता हूँ? वास्तव में मैं आपसे श्रेष्ठ हूँ।"

"'हे ब्रह्मा, सुभकिन्हा (सुंदर काला/तेजस्वी महिमा) नामक शरीर है... वेहप्पला (आकाश-फल/महान फल) नामक शरीर है, अभिभू (विजेता) नामक शरीर है,5 जिसे तुम नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु जिसे मैं जानता हूँ, देखता हूँ। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में मैं तुम्हारा मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं तुम्हारा हीन कैसे हो सकता हूँ? वास्तव में मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ।"

"'पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, और पृथ्वी के पृथ्वीत्व के माध्यम से अनुभव न की गई सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद,6 मैं पृथ्वी नहीं था, मैं पृथ्वी में नहीं था, मैं पृथ्वी से नहीं आ रहा था, मैं 'पृथ्वी मेरी है' नहीं कह रहा था। मैंने पृथ्वी की पुष्टि नहीं की।7 इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में आपका मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं हीन कैसे हो सकता हूँ? मैं वास्तव में आपसे श्रेष्ठ हूँ।'"

"'द्रव्य को द्रव के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर... अग्नि को अग्नि के रूप में... वायु को वायु के रूप में... प्राणियों को प्राणियों के रूप में... देवताओं को देवताओं के रूप में... प्रजापति को प्रजापति के रूप में... ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में... प्रकाशमान को प्रकाशमान के रूप में... सुंदर काले को सुंदर काले के रूप में... आकाश फल को आकाश फल के रूप में... विजेता को विजेता के रूप में..."

"'सर्व को सर्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद,8 और सर्व की सर्वव्यापकता के माध्यम से अनुभव न की गई सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, मैं सर्व नहीं था, मैं सर्व में नहीं था, मैं सर्व से उत्पन्न नहीं हो रहा था, मैं 'सर्व मेरा है' नहीं था। मैंने सर्व की पुष्टि नहीं की। इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में आपका मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं हीन कैसे हो सकता हूँ? मैं वास्तव में आपसे श्रेष्ठ हूँ।'

"यदि, महोदय, आपने सर्वव्यापीता के माध्यम से उस चीज़ की सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया है जिसका अनुभव नहीं किया गया है, तो यह आपके लिए वास्तव में व्यर्थ और निरर्थक साबित न हो।"

"'सचेतना जिसका कोई सतही स्वरूप नहीं है, अनंत है, चारों ओर दीप्तिमान है,

पृथ्वी की सांसारिकता... द्रव की तरलता... अग्नि की उग्रता... वायु की हवादारता... सर्वव्यापीता के माध्यम से इसका अनुभव नहीं किया गया है।'9

"'तो फिर, महोदय, मैं आपके सामने से गायब हो जाऊंगा।'"

"'तो फिर, ब्रह्मा, अगर हो सके तो मुझसे विदा हो जाओ।'"

"तब बका ब्रह्मा, [यह सोचते हुए,] 'मैं गौतम ध्यानमग्न से विलीन हो जाऊंगा। मैं गौतम ध्यानमग्न से विलीन हो जाऊंगा,' मुझसे विलीन नहीं हो सके। जब यह कहा गया, तो मैंने बका ब्रह्मा से कहा, 'ठीक है, ब्रह्मा, मैं आपसे विलीन हो जाऊंगा।'

"'तो फिर, भले आदमी, अगर हो सके तो मुझसे दूर चले जाओ।'"

तो फिर, हे भिक्षुओं, मैंने ऐसी मानसिक शक्ति का कृत्रिम रूप से प्रयोग किया कि ब्रह्मा, ब्रह्मा सभा और ब्रह्मा सभा के सेवकों ने मेरी आवाज सुनी, लेकिन मुझे देख नहीं पाए। अंतर्धान होने के बाद, मैंने यह श्लोक पढ़ा:

'होने में ही खतरे को देखकर, और न होने की तलाश में होने के कारण,10 मैंने किसी भी प्रकार के होने की पुष्टि नहीं की, न ही किसी आनंद से चिपके रहे।'

तब ब्रह्मा, ब्रह्मा सभा और ब्रह्मा सभा के सेवकों में विस्मय और श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ: 'कितना अद्भुत! कितना विस्मयकारी! — गौतम ध्यानमग्न की महान शक्ति, महान सामर्थ्य! हमने पहले कभी किसी अन्य ध्यानमग्न या ब्राह्मण के बारे में न तो देखा है और न ही सुना है, जिसकी शक्ति और सामर्थ्य शाक्य वंश के इस गौतम ध्यानमग्न के समान हो! ऐसे युग में रहते हुए जो बनने में इतना आनंदित होता है, बनने में इतना प्रसन्न होता है, बनने का इतना शौकीन है, उसने बनने को जड़ से उखाड़ दिया है!'

तब दुष्ट मारा ने ब्रह्म सभा के एक सेवक के शरीर में प्रवेश करके मुझसे कहा, 'हे सज्जन, यदि यही वह बात है जो आप समझते हैं, यदि यही वह बात है जिसके लिए आप जागृत हुए हैं, तो (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व न करें। (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश न दें। (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों के लिए तरसें नहीं। हे सज्जन, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानी थे जिन्होंने स्वयं को योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा किया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व किया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों के लिए तरसें। (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व करने, (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश देने, (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों के लिए तरसने के बाद, शरीर के टूटने और जीवन के विच्छेद होने पर, वे एक स्थूल शरीर में स्थापित हो गए। शरीर।

"हे महोदय, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न हुए लोग थे जो स्वयं को योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत मानते थे। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों का नेतृत्व किया और न ही संन्यासी शिष्यों का। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों को और न ही संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों के लिए और न ही संन्यासी शिष्यों के लिए तरस किया। चूंकि उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों का और न ही संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व नहीं किया, न ही (गृहस्थ) शिष्यों को और न ही संन्यासी शिष्यों के लिए तरस किया, इसलिए शरीर के टूटने और जीवन के विच्छेद होने पर वे एक परिष्कृत शरीर में स्थापित हुए।"

"तो, भिक्षु, मैं आपसे यह कहता हूँ: कृपया, सज्जन, सहज रहें। वर्तमान क्षण में सुखद रूप से बने रहने के लिए प्रतिबद्ध रहें—क्योंकि, सज्जन, यह सिखाया न जाना ही कुशलता है। दूसरों को उपदेश न दें।"

जब यह कहा गया, तो मैंने हे दुष्ट मारा से कहा, 'हे दुष्ट, मैं तुम्हें जानता हूँ। यह मत समझो कि "वह मुझे नहीं जानता।" हे दुष्ट मारा, तुम ही हो। और तुम्हारा इस प्रकार मुझसे बात करना कल्याणकारी नहीं है। बल्कि यह कल्याणकारी नहीं है। हे दुष्ट, तुम यह सोचते हो: "जिन लोगों को गौतम ध्यानमग्न धम्म का उपदेश देंगे, वे मेरी संभगवानता का उल्लंघन करेंगे।" हे दुष्ट, सही मायने में आत्म-जागृत हुए बिना, तुम्हारे ध्यानमग्न और ब्राह्मणों ने सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा किया। लेकिन मैं, सही मायने में आत्म-जागृत होकर, सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा करता हूँ। क्योंकि जब तथागत अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश देते हैं, तब वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश नहीं देते, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों का मार्गदर्शन नहीं करते, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। ऐसा क्यों है?' वे विकृतियाँ जो अपवित्र करती हैं, जो आगे चलकर नए रूप धारण करने की ओर ले जाती हैं, जो विक्षिप्त करती हैं, जो तनाव में परिपक्व होती हैं, जो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती हैं: तथागत ने उनका त्याग कर दिया है, उनकी जड़ नष्ट कर दी है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का वृक्ष, विकास की परिस्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। जैसे ताड़ का वृक्ष जिसका ऊपरी भाग काट दिया जाए, पुनः उगने में असमर्थ होता है; उसी प्रकार, वे विकृतियाँ जो अपवित्र करती हैं, जो आगे चलकर नए रूप धारण करने की ओर ले जाती हैं, जो विक्षिप्त करती हैं, जो तनाव में परिपक्व होती हैं, जो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती हैं: तथागत ने उनका त्याग कर दिया है, उनकी जड़ नष्ट कर दी है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का वृक्ष, विकास की परिस्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं।

अत: मारा को चुप करा दिए जाने और ब्रह्मा के निमंत्रण के कारण, इस प्रवचन का शीर्षक "ब्रह्म का निमंत्रण" रखा गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.10 मरातज्जनिया सुत्त(50)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य महामोग्गलाना भग्गा देश में, सुसुमारा पर्वतों के बीच भेषकला वन में स्थित हिरण उद्यान में रह रहे थे। उस समय पूज्य महामोग्गलाना खुले में टहल रहे थे। तभी मृत्यु नामक राक्षस ने उनके गर्भ में प्रवेश किया। तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया, “मेरा पेट इतना भारी क्यों है, मानो मैं गर्भावस्था के अंतिम चरण में हूँ?” तब पूज्य महामोग्गलाना ध्यान मुद्रा से बाहर निकले और मठ में प्रवेश करके तैयार आसन पर बैठ गए।

बैठे-बैठे उसने अपना ध्यान भीतर की ओर लगाया। जब उसने अंतर्मन किया तो उसने देखा कि दुष्ट आत्मा पेट में, जांघों के रास्ते, प्रवेश कर चुकी है, और उसने उससे कहा: दुष्ट आत्मा निकल जा! तथापि तथापि के शिष्यों को चिंता मत दिलाओ। यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्टदायी रहेगा। यहाँ तक कि उसका गुरु भी मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता, तो उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है? दुष्ट आत्मा, मैं जानता हूँ कि तुम सोच रहे हो, "वह मुझे नहीं पहचानता।" तुम ही दुष्ट आत्मा हो। मैं तुम्हें जानते और देखते हुए संबोधित कर रहा हूँ। निकल जा दुष्ट आत्मा! तथापि के शिष्यों को चिंता मत दिलाओ। यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्टदायी रहेगा। यहाँ तक कि यदि वह उसका गुरु भी होता, तो वह मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता। उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है? दुष्ट आत्मा, क्या तुम्हारे मन में यह विचार आया, "यहाँ तक कि उसका गुरु भी मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता, तो उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है?" तब मृत्यु, दुष्ट आत्मा, के मन में यह विचार आया, "यह संन्यासी मुझे पहचानता है और देखता है और कहता है: निकल जा! दुष्ट आत्मा।" हे भगवान, चिंता मत करो और न ही उनके शिष्यों को चिंता करने दो। इससे तुम्हें लंबे समय तक कष्ट होगा। फिर दुष्ट मृत्यु मुख से निकली और गले में अटक गई।

आदरणीय महामोग्गल्लाना ने दुष्ट को गले में फंसा हुआ देखा और कहा, "मैं तुम्हें भी वहीं देख रहा हूँ। तुम भी गले में फंसे हो। अतीत में दूसी नाम का एक दुष्ट था। मेरी एक बहन थी जिसका नाम काली था। तुम उसके पुत्र थे। फिर तुम मेरे भतीजे बने।" यह पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान (बुद्ध) ककुसन्द के समय की बात है। पूर्णतः प्रबुद्ध ककुसन्द के दो प्रमुख शिष्य थे, विदुर और संजीव। प्रबुद्ध ककुसन्द के शिष्यों में आदरणीय विदुर के समान अध्यापन कोई नहीं था। वे इतने तीक्ष्ण बुद्धि के थे कि इसी अर्थ में उन्हें विदुर नाम दिया गया। आदरणीय संजीव वन में, किसी वृक्ष की जड़ में या किसी खाली घर में जाकर सहजता से अपने भावों और संवेदनाओं का अंत प्राप्त कर लेते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि आदरणीय संजीव ने अपने भावों और संवेदनाओं का अंत प्राप्त कर लिया। तब ग्वालों, पशुपालकों, किसानों और राहगीरों ने पूज्य संजीव को एक वृक्ष की जड़ में सम्मोहन अवस्था में देखा। तब उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस संन्यासी ने बैठे-बैठे ही समय व्यतीत कर लिया है। तब उन्होंने उनके ऊपर घास, लकड़ियाँ, गोबर और मिट्टी इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी और चले गए। फिर उस रात के अंत में पूज्य संजीव सम्मोहन अवस्था से उठे। उन्होंने अपने भिक्षापात्र और वस्त्रों को साफ किया, वस्त्र धारण किए और फिर भिक्षा मांगने के लिए उस गाँव में प्रवेश किया। ग्वालों, पशुपालकों, किसानों और राहगीरों ने पूज्य संजीव को भिक्षा मांगने जाते देखा तो वे आश्चर्यचकित होकर बोले, इस संन्यासी ने बैठे-बैठे ही समय व्यतीत कर लिया था और अब वे उठ खड़े हुए हैं, वे फिर से जीवित हो गए हैं। इस प्रकार उनका नाम संजीव पड़ा।

तब दुष्ट दूशी के मन में यह विचार आया: मैं इन गुणी भिक्षुओं के आने-जाने से अनभिज्ञ हूँ, क्या होगा यदि मैं ब्राह्मण गृहस्थों पर अधिकार कर लूँ और उन्हें डाँटूँ और अपशब्द कहूँ? यदि हम भिक्षुओं को जागृत कर दें, तो हमें उनके मन को बदलने का अवसर मिल जाएगा। तब दुष्ट दूशी ने ब्राह्मण गृहस्थों पर अधिकार कर लिया और भिक्षुओं को डाँट कर उन्हें चिंतित किया: ये ब्रह्म के चरणों से उत्पन्न हुए संन्यासी, नीच, दुष्ट हैं, जो कहते हैं कि हम ध्यान लगाते हैं, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए चिंतन करते हैं। चिंतन करते-करते व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे उल्लू शाखाओं पर चूहों का इंतजार करते हैं। ये ब्रह्म के चरणों से उत्पन्न हुए संन्यासी, नीच, दुष्ट हैं, जो कहते हैं कि हम ध्यान लगाते हैं, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए चिंतन करते हैं... चिंतन करते-करते व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे सियार नदी के किनारे मछली का इंतजार करते हैं। हे! ब्रह्मा के चरणों से उत्पन्न ये संन्यासी, नीच, दुष्ट लोग, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए, ध्यानमग्न होने का दावा करते हैं। चिंतन करो और व्यर्थ करो, जैसे कूड़े के ढेर पर चूहों का इंतजार करती बिल्ली। हे! ब्रह्मा के चरणों से उत्पन्न ये संन्यासी, नीच, दुष्ट लोग, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए, ध्यानमग्न होने का दावा करते हैं। चिंतन करो और व्यर्थ करो, जैसे बोझ से मुक्त गधा कूड़े के ढेर पर खड़ा हो। हे! दुष्ट! उस समय मरने वाले अनेक मनुष्य हानि में, नरक में जन्म लिए।

तब पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: हे भिक्षुओं, ब्राह्मण गृहस्थ दुष्ट राक्षस के वश में हैं। यदि वे इन भिक्षुओं को डांटें और परेशान करें, तो हमें एक अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। हे भिक्षुओं, प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहो, जो एक दिशा से दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त हो। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहो। करुणा के विचार में लीन रहो। आंतरिक आनंद के विचार में लीन रहो। समभाव के विचार में लीन रहो, जो एक दिशा से दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त हो। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान समभाव के विचार में लीन रहो। हे दुष्ट, ज्ञानी काकुसन्द द्वारा सलाह दिए गए भिक्षुओं, जो वन में, वृक्ष की जड़ में, या किसी खाली घर में गए हों, प्रेम और करुणा के विचार के साथ एक ही दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त रहें। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान प्रेम और करुणा के विचार के साथ रहें। करुणा के विचार के साथ रहें। आंतरिक आनंद के विचार के साथ रहें। समभाव के विचार के साथ एक ही दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त रहें। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान समभाव के विचार के साथ रहें।

तब दुष्ट दूशी के मन में यह विचार आया कि ऐसा करने से पुण्य भिक्षुओं के आने-जाने का पता नहीं चलेगा। क्या होगा यदि मैं इन ब्राह्मण गृहस्थों के मन पर अधिकार कर लूँ और उन्हें इन पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा करने के लिए प्रेरित कर दूँ? तब हमें एक अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। आओ, गृहस्थों, इन पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा करो। इस प्रकार ब्राह्मण गृहस्थों ने पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा की। उस समय मरने वाले अधिकांश मनुष्य स्वर्ग में जन्म लेकर वृद्धि के मार्ग पर चले गए।

हे दुष्ट! तब पूर्णतः प्रबुद्ध काकुसन्द भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, ब्राह्मण गृहस्थ दुष्ट के वश में हैं। आओ, इन गुणी भिक्षुओं का आदर, सम्मान और आराधना करो। तब हमें अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। इसलिए भिक्षु शरीर से घृणा, आधारों से घृणा और समस्त संसार से वैराग्य की अनुभूति करते हुए निवास करते हैं। समस्त संकल्पों में अनित्यता का दर्शन करते हैं।" तब पूर्णतः प्रबुद्ध काकुसन्द भगवान द्वारा इस प्रकार सलाह दिए गए भिक्षु वन में, वृक्ष की जड़ में या किसी खाली घर में जाकर शरीर से घृणा, आधारों से घृणा, समस्त संसार से वैराग्य की अनुभूति करते हुए और समस्त संकल्पों में अनित्यता का दर्शन करते हुए निवास करते हैं।

तब पूर्णतः ज्ञानी काकुसन्द भगवान, सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर, आदरणीय विदुर को दूसरे संन्यासी के रूप में साथ लेकर भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। तभी दुष्ट दूशी ने एक बालक के शरीर में प्रवेश करके आदरणीय विदुर के सिर पर पत्थर से प्रहार किया। विदुर का सिर फट गया और खून बहता हुआ वह उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। पूर्णतः ज्ञानी काकुसन्द भगवान ने हाथी जैसी दृष्टि से उसे देखा और सोचा कि इस दुष्ट दूशी को अपनी सीमाएँ जाननी चाहिए, और उसी दृष्टि के साथ वह नरक में जन्म ले लिया। इस नरक के तीन नाम हैं: छह स्पर्शों का क्षेत्र, लोहे की कीलों से खींचा जाने वाला, आंतरिक पीड़ा देने वाला। तब मैंने उस नरक के निवासियों के पास जाकर पूछा, हे सज्जनों, कब से आपके हृदय कीलों से छेदे गए हैं? वे नहीं जानते, और हज़ार वर्षों से इसका अनुभव कर रहे हैं। हे दुष्ट, मैंने उस नरक में एक लाख वर्षों तक कष्ट सहा है। दस हज़ार वर्षों तक मैंने उस नरक में विशेष पीड़ा सहते हुए कष्ट झेला है। हे दुष्ट, उस नरक में मेरा शरीर मनुष्य का और सिर मछली का था।

दूसी ने किस प्रकार का नरक भोगा होगा?
शिष्य विदुर तथा ब्राह्मण ककुसन्द को हानि पहुँचाना।
सौ लोहे की कीलों ने हृदय को भेदकर आंतरिक पीड़ा उत्पन्न की।
दुशी ने ऐसे नरक में कष्ट भोगा, जिससे शिष्य विदुर और
ब्राह्मण ककुसंद
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणास्पद परिणाम भुगतूँगा।
बीच में एक हवेली है जो विश्व चक्र का प्रतीक है।
यह नीलमणि की तरह चमकता है
वहाँ अप्सराएँ रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजी नृत्य करती हैं।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को चोट पहुँचाना घोर अप्रियता की ओर ले जाएगा।
वह व्यक्ति जिसे प्रबुद्ध व्यक्ति ने समुदाय में से चुना था,
पैर के अंगूठे से मिगारा की मां के महल को हिला देना।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार में डूब जाऊँगा।
उसने अपने पैर के अंगूठे से वेजांता महल को हिला दिया।
असाधारण शक्तियों से परिपूर्ण होने के कारण देवताओं में व्याकुलता फैल गई।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर चला जाऊँगा।
वेजांता महल में, उन्होंने सक्का से पूछताछ की।
हे पूज्यवर, क्या आप व्यथा के नाश से मिलने वाली मुक्ति को जानते हैं?
जब उनसे प्रश्न पूछा गया तो सक्का ने उन्हें समझाया।
उस प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य जो इतना कर सकता था

यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर अग्रसर हो जाऊँगा।
उन्होंने सुधम्म सभा में ब्रह्मा से निडर होकर प्रश्न किया।
आदरणीय महोदय, क्या आप अभी भी वही विचार रखते हैं जो आपने पहले रखा था?
हम आपको ब्रह्म जगत के सुखों का आनंद लेते हुए देखते हैं...
तब ब्रह्मा ने चरणबद्ध तरीके से समझाया कि वे इस मत को नहीं मानते।
हालांकि मुझे ब्रह्म के सुखों का आनंद मिलता है
मुझे पता है कि इसे स्थायी और शाश्वत मानना एक गलती है।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाकर मैं घोर अंधकार में चला जाऊँगा।
उन्होंने महामेरु के शिखर को छुआ और शून्यता की अवस्था प्राप्त की।
मैंने पुब्बविधेहा के जंगलों और वहाँ सो रहे लोगों को छुआ।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर अग्रसर हो जाऊँगा।
आग को यह नहीं लगता कि मैं उस मूर्ख को नहीं जलाऊंगा।
यह मूर्ख और अपराधी दोनों को जला देता है।
हे दुष्ट, तूने उस प्राणदाता को पीड़ा पहुंचाई है जो इस दुनिया से विदा हो चुका है।
अकेले रहने पर व्यक्ति जल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई मूर्ख आग को छू लेता है।
हे दुष्ट, तूने पश्चात्ताप करने वाले को पीड़ा पहुँचाकर पाप संचित किया है।
हे दुष्ट, क्या तुम्हें लगता है कि मेरे कर्मों का फल मुझे नहीं भुगतना पड़ेगा?
हे दुष्ट, कर्म करने वाला लंबे समय तक पुण्य संचित करता रहता है।
हे दुष्ट, ज्ञानी व्यक्ति से दूर चले जाओ, भिक्षु को परेशान मत करो।
इस प्रकार, उस दुष्ट ने भेषकला वन में भिक्षु को कोई हानि नहीं पहुँचाई।
वह क्रोधित राक्षस वहां से गायब हो गया।

6. गहापति-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.1 कंदरक सुत्त(51)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध चंपा में गग्गरा तालाब के किनारे भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ निवास करते थे। हाथी सवार के पुत्र पेस्सा और तपस्वी कंदारक भगवान बुद्ध के पास आए। हाथी सवार के पुत्र पेस्सा ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, तथा तपस्वी कंदारक ने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। उन्होंने भिक्षुओं के विशाल शांत समुदाय को देखा और भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, भिक्षुओं के इस समुदाय का प्रशिक्षण आश्चर्यजनक और अद्भुत है। क्या अतीत में सच्चे ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षुओं ने अपने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित किया था? क्या भविष्य में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षु अपने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित करेंगे?” भगवान बुद्ध ने कहा, “जी हां, कंदारक, अतीत में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षुओं ने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित किया था।” भविष्य में पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने वाले सिद्ध पुरुष भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित करेंगे। कंदारक, इस भिक्षु समुदाय में ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिनकी इच्छाएँ नष्ट हो चुकी हैं, जिन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया है और जो करना चाहिए वह किया है। इस भिक्षु समुदाय में ऐसे प्रशिक्षक भी हैं जो सद्गुणों के द्वारा चतुर और शांत हो चुके हैं और जिनका मन चार प्रकार की ध्यान विधि में सुस्थापित है। वे चार विधियाँ हैं: शरीर को शरीर में प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना; भावनाओं को भावनाओं में प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर

करना; मन को मन में मानसिक गुणों को प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना; और शिक्षा में विचारों को प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना।

यह सुनकर हाथी सवार के पुत्र पेसा ने कहा, "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है कि भगवान बुद्ध ने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय पाने, अप्रियता और अप्रसन्नता को दूर करने, ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान की चार अवस्थाओं को कितनी बुद्धिमत्ता से दिखाया है। हे पूज्यवर, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले एक गृहस्थ शिष्य के रूप में, मैं समय-समय पर ध्यान स्थापित करने के इन चार तरीकों का अभ्यास करता हूँ। मैं शरीर में शरीर का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। भावनाओं में भावनाओं का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। मन में मानसिक अवस्थाओं का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। शिक्षा का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ।" आदरणीय महोदय, यह अद्भुत है कि आप मनुष्यों के चंगुल में रहकर, उनकी कमियों और धूर्तता को सहन करते हुए भी, जानते हैं कि मनुष्यों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। आदरणीय महोदय, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, जबकि जानवर आराम से रहते हैं। आदरणीय महोदय, मैं चंपा में हाथी को प्रशिक्षित करने के विभिन्न तरीकों को जानता हूँ, जिससे उसकी सभी धूर्तता, कपटपूर्ण और कपटपूर्ण आदतों को सुधारा जा सके। शरीर से हम सेवक, संदेशवाहक, मजदूर या कुछ और की तरह व्यवहार करते हैं, शब्दों से हम कुछ और होते हैं, और मन से हम वह नहीं होते। आदरणीय महोदय, यह अद्भुत है कि आप मनुष्यों के चंगुल में रहकर, उनकी कमियों और धूर्तता को सहन करते हुए भी, जानते हैं कि मनुष्यों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। आदरणीय महोदय, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, जबकि जानवर आराम से रहते हैं। जी हाँ, पेसा, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, और जानवर आराम से रहते हैं। पेसा, संसार में चार व्यक्ति प्रकट होते हैं। वे चार कौन हैं? पेस्सा, एक व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है, स्वयं को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है, दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देता है, सभी को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है, न ही दूसरों को, और न ही पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। स्वयं को और दूसरों को पीड़ा न देने से वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुखदता में लीन हो जाता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। पेस्सा, इन चारों व्यक्तियों में से कौन आपको अधिक प्रिय है?

आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुख में लीन रहता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न करता है। पेसा, ये तीनों व्यक्ति आपको क्यों प्रसन्न नहीं करते? आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह अपने उस स्वरूप को पीड़ा देता है जो सुख चाहता है और दुख से घृणा करता है। अतः यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह सुख चाहने वाले और दुख से घृणा करने वाले दूसरों को पीड़ा देता है। अतः यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह अपने आप को और उन दूसरों को पीड़ा देता है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। इसलिए वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को कष्ट नहीं देता, स्वयं को या दूसरों को कष्ट देने के बंधन में नहीं बंधा, वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुखमय अवस्था में रहता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। यही वह व्यक्ति है जो मुझे प्रसन्न करता है। आदरणीय महोदय, हमें अब जाना होगा, हमें बहुत काम करना है। पेस्सा, जो तुम्हें उचित लगे वही करो। तब हाथी सवार का पुत्र पेस्सा भगवान की वाणी से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठा, भगवान को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की और चला गया।

हाथी सवार के पुत्र के चले जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, यदि हाथी सवार का पुत्र मेरे द्वारा इन चारों व्यक्तियों के बारे में बताने तक कुछ और समय प्रतीक्षा करता, तो वह बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेता। हे भगवान बुद्ध, यही समय है इन चारों व्यक्तियों के बारे में बताने का।" भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से यह सुनकर इसे ध्यान में रखा। "भिक्षुओं, ध्यान से सुनो, मैं बताता हूँ..."

भिक्षुओं, जो स्वयं को कष्ट देते हैं, क्या वे स्वयं को कष्ट देने में ही लिप्त हैं? एक भिक्षु बिना वस्त्र के रहता है, बिना शिष्टाचार के हाथ चाटता है। वह किसी का निमंत्रण स्वीकार नहीं करता और न ही किसी को निमंत्रण देता है। वह लाया गया या विशेष रूप से तैयार किया गया भोजन स्वीकार नहीं करता। वह किसी निमंत्रण का आनंद नहीं लेता। वह किसी बर्तन, खाना पकाने के पात्र के किनारे से या जब आसपास बकरी हो, तब भोजन स्वीकार नहीं करता। वह किसी छड़ी या झाड़ू के पार से भोजन स्वीकार नहीं करता। वह दो व्यक्तियों के साथ भोजन करने, गर्भवती स्त्री, स्तनपान कराने वाली स्त्री, पुरुष के साथ गई स्त्री, अपवित्र स्त्री या जहाँ से वह भोजन ग्रहण करती है, वहाँ

से भोजन स्वीकार नहीं करता। वह उस स्थान से भोजन स्वीकार नहीं करता जहाँ मक्खियाँ बहुतायत में हों। वह मछली, मांस, मादक पेय और मादक पेय स्वीकार नहीं करता। वह एक घर में एक निवाले पर, दो घरों में दो निवाले पर या सात घरों में सात निवाले पर भोजन ग्रहण करता है। या वह एक स्त्री, दो स्त्रियों या सात स्त्रियों द्वारा दिए गए भोजन पर भोजन ग्रहण करता है। या फिर एक, दो या सात पुरुषों द्वारा लाए गए भोजन पर निर्भर रहता है। आधे महीने तक इसी प्रकार भोजन ग्रहण करता है। सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, दादुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी हुई चावल की चूर्ण, चावल का झाग, तिलहन का आटा, घास, गोबर, वन की जड़ें और फल खाता है, या फिर रास्ते में गिरने वाले भोजन पर निर्भर रहता है। भांग के वस्त्र, मोटे वस्त्र, फटे-पुराने वस्त्र, छाल के वस्त्र, चमड़े के वस्त्र, चमड़े की पट्टियाँ, घास के वस्त्र, छाल के वस्त्र, तख्तों और उल्लू के बालों, पूंछों और पंखों से बने वस्त्र पहनता है। सिर और दाढ़ी के बाल नोचने का बंध जाता है। बैठने का त्याग करके खड़े रहने का बंध जाता है। काँटों के बिस्तर पर बैठने या लेटने का बंध जाता है। सूर्यास्त से पहले तीन बार तक जल में उतरने का बंध जाता है। इस प्रकार वह शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति इसी से बंध कर स्वयं को यातना देता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को सताने का काम करता है? भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति सूअर, बकरी, पक्षी का वध करने वाला, जंगली जानवरों का शिकारी, मछुआरा, डाकू, लुटेरा, जेल चलाने वाला या किसी अन्य दुष्ट गतिविधि में लिप्त है। यह व्यक्ति दूसरों को सताने का काम करता है।

भिक्षु, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट देते हैं, क्या वे इससे बंधे हुए हैं? एक राजा या योद्धाओं के प्रधान राजा, ब्राह्मण या गृहस्थ कुल के राजा एक नया सभा भवन बनवाते हैं। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, खुरदरा वस्त्र पहनकर, वे अपने शरीर पर घी और तेल मलते हैं। अपनी पीठ पर हिरण का सींग चुभोकर, वे रानी और ब्राह्मण सलाहकार के साथ सभा भवन में प्रवेश करते हैं। परिसर के भीतर, वे कुछ हरियाली पर लेट जाते हैं। एक युवा गाय से एक थन से दूध निकालकर राजा को पिलाया जाता है, दूसरे से रानी को, तीसरे से सलाहकार को, और चौथे से यज्ञ की रोटी पकाई जाती है। बचे हुए दूध से बछड़े को खिलाया जाता है। फिर वे आदेश देते हैं कि यज्ञ के लिए इतने बैल, इतनी गायें, इतनी बकरियां और इतनी भेड़ें काटें। वे आदेश देते हैं कि यज्ञ के खंभे के लिए इतने पेड़ काटें और यज्ञ के लिए इतनी जगह साफ करें। दासों, सेवकों और संदेशवाहकों को छड़ी से डराकर आवश्यक कार्य करवाया जाता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को और अपने अधीन अन्य लोगों को भी पीड़ा पहुँचाता है।

भिक्षुओं, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देते, बंधनमुक्त हैं? भिक्षुओं, तथागत संसार में जन्म लेते हैं, पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय में, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं, जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है, वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है। यह दोषों का मार्ग है। संन्यासी बनना खुले स्थान के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए, बिना दोष के पूर्ण और पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर, मैं संन्यासी क्यों न बन जाऊं? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ा धन या बहुत धन त्याग देता है, चाहे मित्रों का एक छोटा समूह पीछे छोड़ दे या मित्रों का एक बड़ा समूह, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु के जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है। वह जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है और लज्जापूर्वक सभी प्राणियों के प्रति करुणा जगाते हुए निवास करता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, अपने मन को शुद्ध करता है और चोरी रहित जीवन व्यतीत करता है। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बनता है और संसार से विवाद रहित जीवन व्यतीत करता है। निंदा का त्याग करता है। यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहता, इस प्रकार विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है। एकता प्रेमी होकर एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी का त्याग करता है और ऐसे मधुर वचन बोलता है जो सभी के हृदय को सीधे छूते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप होते हैं और अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज करता है। वह खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने-पीटने, नष्ट करने, लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता के सुख का अनुभव करता है।

किसी रूप को आँख से देखने पर, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, उसमें लोभ और अप्रसन्नता के दोष आ सकते हैं। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनने, नाक से गंध का अनुभव करने, चखने, शरीर से स्पर्श का अनुभव करने, मन से विचार का अनुभव करने पर, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, उसमें लोभ और अप्रसन्नता के दोष आ सकते हैं। वह मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वह मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करता है। आगे बढ़ते या लौटते समय वह सचेत रहता है। देखते या देखते समय वह सचेत रहता है। झुकते या खिंचते समय वह सचेत रहता है। कुंड और तीन वस्त्र धारण करते समय वह सचेत रहता है। चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय वह सचेत रहता है। चलते, खड़े होते, बैठते, लेटते समय, जागते हुए और मौन रहते हुए भी वह सचेत रहता है।

सद्‌गुणों से परिपूर्ण, मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाले और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सही जागरूकता रखने वाले वे किसी एकांत स्थान में निवास करते हैं, जैसे कि जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद वे पैर मोड़कर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने केंद्रित करते हैं।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वे मन को मुक्त रखते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वे क्रोध रहित मन से, सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी रहते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति से अवगत रहते हैं, और आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, और मन से बेचैनी और चिंता को दूर करते हैं। वे उचित और अनुचित कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से छोटी-छोटी अशुद्धियों को कमजोर करके, मन को कामुक विचारों और दोषों से एकांत में रखता है। एकांत से उत्पन्न विचारों, विचार प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान में लीन रहता है।

फिर भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है।

फिर, जो भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए सजग रहता है, वह तीसरे ध्यान में रहता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यही समभाव के प्रति सचेत रहते हुए सुख में रहना है।

फिर, भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई चेतना के साथ चौथे ध्यान में निवास करते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा जन्म ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखता है - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, कर्मों के फल के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हुए। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, वे अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणी प्रकट होते और लुप्त होते देखे जाते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है, और यह अप्रियता के अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इनका उद्भव है, यह इनका अंत है, और यह इनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। उसका मन जो इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं, 'होने' की इच्छाओं और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जिया जा रहा है, जो करना चाहिए वह किया जा चुका है। अब और कुछ चाहने को नहीं है।

भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को कष्ट न पहुँचाकर बंधनमुक्त है, यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल, शीतल है और ब्रह्मा के समान सुखमय निवास करता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.2अत्थकनगर सुत्त(52)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य आनंद वैशाली के बेलुवा नामक छोटे से गाँव में निवास कर रहे थे। संयोगवश, गृहस्थ दशमा, जो एक अच्छे नागरिक थे, किसी काम से पाटलिपुत्त आए थे। तब गृहस्थ दशमा कुक्कुताराम में एक भिक्षु के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गृहस्थ दशमा ने पूछा, 'पूज्यवर, इस समय पूज्य आनंद कहाँ निवास कर रहे हैं?' 'गृहस्थ, पूज्य आनंद वैशाली के बेलुवा नामक छोटे से गाँव में निवास कर रहे हैं।' तब गृहस्थ दशमा ने पाटलिपुत्त में अपना काम समाप्त करके बेलुवा स्थित छोटे से गाँव में पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'पूज्य आनंद इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?'

आदरणीय गुरुदेव, आनंद, क्या भगवान बुद्ध द्वारा बताई गई कोई ऐसी अवस्था है जो पूर्ण, सही मायने में प्रबुद्ध, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी है? क्या ऐसी अवस्था में रहकर, कर्मठ भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त कर, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट कर, और उस महान सुख को प्राप्त कर सकता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है? आदरणीय गुरुदेव द्वारा बताई गई वह अवस्था क्या है?

गृहस्थ भिक्षु, अपने मन को कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों से अलग रखते हुए, एकांत से उत्पन्न विचारों, विवेचनात्मक विचारों और आनंद एवं सुख में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है। तब वह चिंतन करता है: यह प्रथम ध्यान मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित वस्तु है। जो कुछ भी मानसिक रूप से विकसित और मिश्रित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि लोभ और स्वार्थ के कारण उसकी इच्छाएँ नष्ट न हों, तो उस पवित्रता के लिए वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और स्वतः ही इसी जन्म में विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता (*1)। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष भगवान ने किया है। इसमें रहकर, इच्छाओं के निवारण में तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है और अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करके बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, भिक्षु विचारों और व्यंजक विचारों पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है। वह चिंतन करता है कि यह द्वितीय ध्यान भी कुछ मिश्रित और मानसिक रूप से

विकसित है। सभी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति व्यथ के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और स्वतः ही इसी जन्म में विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यह वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञानवान और साक्षी हैं, जिसमें विवशता का अभ्यास करने वाला भिक्षु अपने अविवश मन को मुक्त करता है, अपनी अविवश इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, समभाव और वैराग्य से युक्त भिक्षु, सुख में लीन होकर, शरीर के सुख का भी ध्यान रखते हुए (*2), तृतीय ध्यान में लीन रहता है। इस पर श्रेष्ठ जन कहते हैं कि समभाव से सुख में लीन रहना। वह चिंतन करता है कि यह तृतीय ध्यान भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान होने पर, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति सजगता के कारण, पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करके, वह स्वतः ही इसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञात और प्रत्यक्ष भगवान ने किया है। उसमें लीन होकर, निर्वाह के लिए तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो सुख और दुःख को दूर करता है, और जिसने पहले सुख और दुःख को दूर कर लिया है, वह सुख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर, चौथे ध्यान में रहता है। तब वह चिंतन करता है कि यह चौथा ध्यान भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, तो उस पवित्रता के लोभ और स्वार्थ के कारण जो पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करती है, वह स्वतः ही इसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। उसमें रहकर, जो भिक्षु बंधनों को दूर करने में तत्पर है, वह अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और उस महान लक्ष्य को प्राप्त करता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

फिर, गृहस्थ भिक्षु प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहता है, जो एक ही दिशा में व्याप्त होता है। इसी प्रकार, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति, यह विचार और भी गहरा होता जाता है। तब वह चिंतन करता है कि प्रेम और करुणा का विचार मानसिक रूप से विकसित एक संवर्धित वस्तु है। जो कुछ भी संवर्धित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो उस पवित्रता के लोभ और स्वार्थ के कारण, जो पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करती है, वह स्वतः ही उसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। इस अवस्था में रहकर, जो भिक्षु इन बंधनों को दूर करने के लिए तत्पर रहता है, वह अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट करता है और बंधन के उस महान लक्ष्य को प्राप्त करता है जिसे अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है।

फिर, गृहस्थ भिक्षु करुणा के विचार में, आंतरिक आनंद के विचार में लीन रहता है। वह समभाव के विचार में लीन रहता है, जो एक दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति व्याप्त रहता है। समभाव का यह विचार महान हो उठता है। तब वह चिंतन करता है कि यह समभाव का विचार भी कुछ मिश्रित है, कुछ मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति स्वार्थ के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और उसी जन्म में स्वतः ही विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी हैं। वह अवस्था जिसमें भिक्षु अपने अंतर्विदारित मन को मुक्त करने के लिए लगन से रहता है, अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट करता है और बंधन के महान उद्देश्य को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, भिक्षु पदार्थ और विमुखता की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देकर, असीम आकाश में निवास करता है। यह आकाश भी मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित पदार्थ है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है।

यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट न हों, तो लोभ और उनके प्रति आसक्ति के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और उसी जन्म में स्वतः ही विलीन हो जाता है, फिर पुनर्जन्म नहीं लेता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी हैं। उसमें निवास करते हुए, निर्वाह के लिए तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो स्थान के सभी बोधों से परे होकर असीम चेतना के साथ चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। चेतना का यह क्षेत्र भी मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान होने पर वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति आसक्ति के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़कर स्वतः ही उसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध और ज्ञाता एवं साक्षी हैं। इसमें निवास करने वाला भिक्षु, जो इच्छाओं के निवारण के लिए तत्पर है, अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो चेतना की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, जब कुछ भी नहीं होता, तो वह शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। यह शून्यता का क्षेत्र भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थापित हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति व्यथ के कारण, वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़कर स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है, और उसी जन्म में समाप्त हो जाता है। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। उसमें निवास करते हुए, इच्छाओं के निवारण में तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

यह सुनकर गृहस्थ दशमा ने कहा, "हे पूज्यवर, यह ऐसा है जैसे किसी व्यक्ति को एक ही खजाने की खोज में ग्यारह खजाने मिल गए हों। उसी प्रकार हमें अमरत्व के एक द्वार के बारे में पता चला था और यहाँ हमें अमरत्व के ग्यारह द्वार बताए जा रहे हैं। यह ऐसा है जैसे किसी व्यक्ति के घर में ग्यारह द्वार होते हैं और आग लगने पर वह उनमें से किसी एक द्वार से निकल सकता है। उसी प्रकार मैं भी अमरत्व के इन ग्यारह द्वारों में से किसी एक से सुरक्षित हो सकता हूँ। अन्य संप्रदायों के तपस्वी अपने गुरु के खजानों की खोज करते हैं। हमें पूज्य आनंद को भेंट क्यों नहीं करनी चाहिए?" तब गृहस्थ दशमा ने पातालपुत्त और वैशाली के भिक्षुओं को एकत्रित करके अपने हाथों से उन्हें पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ भेंट किए, प्रत्येक भिक्षु को वस्त्रों का एक जोड़ा और पूज्य आनंद को तीन वस्त्रों का एक जोड़ा भेंट किया, और पूज्य आनंद के लिए पाँच सौ मठों का निर्माण करवाया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.3 सेखा सुत्त(53)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। उस समय कपिलवस्तु के शाक्यों ने एक नया स्वागत कक्ष बनवाया था, जिसमें अभी तक कोई ध्यानमग्न, पुजारी या कोई भी मनुष्य निवास नहीं कर पाया था। इसलिए कपिलवस्तु के शाक्य भगवान के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान से कहा, "हे भगवान, कपिलवस्तु के शाक्यों ने एक नया स्वागत कक्ष बनवाया है, जिसमें अभी तक कोई ध्यानमग्न, पुजारी या कोई भी मनुष्य निवास नहीं कर पाया है। भगवान भगवान ही सर्वप्रथम इसका उपयोग करें। जब भगवान इसका उपयोग कर लेंगे, तब कपिलवस्तु के शाक्य इसका उपयोग करेंगे। यह उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

भगवान बुद्ध मौन धारण कर मान गए। उनकी स्वीकृति को भांपते हुए कपिलवस्तु शाक्य अपने स्थानों से उठे, उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और फिर नए स्वागत कक्ष में चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूरे कक्ष में मखमली चटाई बिछाई, आसन लगाए, जलपात्र रखा और तेल का दीपक जलाया। फिर वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, स्वागत कक्ष में मखमली चटाई बिछाई जा चुकी है, आसन लगाए जा चुके हैं, जलपात्र रखा जा चुका है और तेल का दीपक जलाया जा चुका है। अब समय आ गया है कि भगवान बुद्ध अपनी इच्छानुसार कार्य करें।"

अतः भगवान बुद्ध ने अपना वस्त्र धारण किया, अपना कुंड और बाहरी वस्त्र उठाया और भिक्षुओं के एक समुदाय के साथ स्वागत कक्ष में गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और मध्य स्तंभ की ओर पीठ करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए। भिक्षुओं के समुदाय ने भी अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और पश्चिम की दीवार की ओर पीठ करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके भगवान बुद्ध के चारों ओर बैठ गए। कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और पूर्व की दीवार की ओर पीठ करके पश्चिम दिशा की ओर मुख करके भगवान बुद्ध के चारों ओर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने लगभग पूरी रात कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं को धर्मोपदेश देकर, प्रेरित करके और प्रोत्साहित करके उन्हें शिक्षा प्रदान की और फिर आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं को उस व्यक्ति के बारे में बताओ जो साधना में लगे व्यक्ति के लिए उचित अभ्यास करता है। मेरी पीठ में दर्द है। मैं आराम करूँगा।"

आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया, "जैसा आप कहें, भगवान।"

फिर भगवान बुद्ध ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर व्यवस्थित किया और दाहिनी ओर सिंह की सोई हुई मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, सचेत और सतर्क रहते हुए, मन ही मन उठने का निश्चय कर लिया।

तब पूज्य आनंद ने महानामा शाक्य3 को संबोधित करते हुए कहा: "महानामा, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण होता है, अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, भोजन में संयम जानता है, जागरूकता के प्रति समर्पित होता है, सात गुणों से संपन्न होता है, और इच्छा से - बिना किसी परेशानी या कठिनाई के - चार ध्यान प्राप्त करता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद निवास का निर्माण करते हैं।"

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण कैसे होता है? श्रेष्ठ जनों का शिष्य गुणी होता है। वह पतिमोक्खा के अनुसार संयमित रहता है, अपने व्यवहार और कार्यक्षेत्र में परिपूर्ण होता है। वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण होता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य अपनी इंद्रियों के द्वार कैसे सुरक्षित रखता है? एक स्थिति यह है कि श्रेष्ठ जनों का शिष्य किसी आकृति को देखकर उसमें निहित किसी भी विषयवस्तु या विविधता को नहीं पकड़ता, जिसके कारण—यदि वह नेत्र शक्ति पर अनियंत्रित रूप से ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। वह नेत्र शक्ति पर नियंत्रण का अभ्यास करता है। वह नेत्र शक्ति की रक्षा करता है। वह नेत्र शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करता है।

"कानों से कोई ध्वनि सुनकर..."

नाक से किसी सुगंध को सूंघने पर...

जीभ से किसी स्वाद को चखने पर...

शरीर में स्पर्श संवेदना महसूस होने पर...

जब वह किसी विचार को बुद्धि से ग्रहण करता है, तो वह उसके किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की शक्ति का अनियंत्रित रूप से उपयोग करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। वह बुद्धि पर नियंत्रण का अभ्यास करता है। वह बुद्धि की शक्ति की रक्षा करता है। वह बुद्धि की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य अपनी इंद्रियों के द्वार की रक्षा करता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य भोजन में संयम कैसे जानता है? श्रेष्ठ जनों का शिष्य उचित विचार करते हुए भोजन न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सौंदर्य के लिए, बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को दूर करने के लिए, पवित्र जीवन के पालन-पोषण के लिए ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि 'मैं पुरानी भूख की भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा। इस प्रकार मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।' इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य भोजन में संयम जानता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य किस प्रकार जागृति के प्रति समर्पित रहता है? उदाहरण के लिए, एक भिक्षु दिन के दौरान बैठकर और टहलते हुए अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। रात्रि के पहले पहर (शाम से रात 10 बजे तक) में बैठकर और टहलते हुए वह अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। रात्रि के दूसरे पहर (रात 10 बजे से सुबह 2 बजे तक) में वह अपनी दाहिनी ओर करवट लेकर सिंह की मुद्रा में बैठता है, एक पैर दूसरे के ऊपर रखता है, सचेत और सतर्क रहता है, और उसका मन उठने पर केंद्रित रहता है (या तो जागते ही या किसी निश्चित समय पर)। रात्रि के अंतिम पहर (सुबह 2 बजे से सुबह तक) में बैठकर और टहलते हुए वह अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। इस प्रकार भिक्षु जागृति के प्रति समर्पित रहता है।

और श्रेष्ठ जनों के शिष्य में सात गुण कैसे पाए जाते हैं?

"(1) ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठजनों के शिष्य को तथागत के ज्ञानोदय का दृढ़ विश्वास है: 'यद्यपि, भगवान योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, स्पष्ट ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के संबंध में विशेषज्ञ हैं, वश में किए जाने योग्य लोगों के लिए प्रशिक्षक के रूप में अद्वितीय हैं, दिव्य और मानव प्राणियों के शिक्षक हैं, जागृत हैं, धन्य हैं।'

"(2) उसे शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार, मानसिक दुराचार में संलग्न होने के विचार से शर्म आती है।

"(3) वह शारीरिक दुर्व्यवहार, मौखिक दुर्व्यवहार, मानसिक दुर्व्यवहार से होने वाली पीड़ा के लिए चिंतित है।

(4) उसने बहुत कुछ सुना है, जो सुना है उसे याद रखा है, जो सुना है उसे संजोकर रखा है। जो भी शिक्षाएँ आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय हैं, जो अपने अर्थ और अभिव्यक्ति में पूर्णतः शुद्ध और पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं: उन्हें उसने बार-बार सुना है, याद रखा है, उन पर चर्चा की है, उन्हें संकलित किया है, अपने मन से उनका विश्लेषण किया है और अपने दृष्टिकोण से उनमें गहराई से प्रवेश किया है।

(5) वह अकुशल मानसिक गुणों को त्यागने और कुशल मानसिक गुणों को अपनाने के लिए अपनी दृढ़ता को जागृत रखता है। वह अपने प्रयास में दृढ़ और स्थिर है, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटता।

"(6) वह सचेत, अत्यंत सावधानी बरतने वाला, याद रखने वाला और बहुत पहले किए और कहे गए बातों को भी याद करने में सक्षम है।

(7) वह विवेकशील है, उसे उत्पन्न होने और नष्ट होने का विवेक प्राप्त है - वह महान, मर्मस्पर्शी है, जो तनाव के सही अंत की ओर ले जाता है।

"इस प्रकार श्रेष्ठ जनों के शिष्य को सात गुण प्राप्त होते हैं।"

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से उन चार ध्यान अवस्थाओं को कैसे प्राप्त करता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करती हैं? एक अवस्था यह है कि, इंद्रियों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से युक्त होता है। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त जागरूकता का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सचेत होकर, वह सुखद स्थिरता का अनुभव करता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। इस प्रकार श्रेष्ठजनों का शिष्य बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से ही उन चार ध्यान अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता का स्रोत हैं।

"अब, जब श्रेष्ठजनों का कोई शिष्य इस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, इस प्रकार भोजन में संयम बरतता है, इस प्रकार सचेतन रहता है, इस प्रकार सात गुणों से संपन्न हो जाता है, और इस प्रकार इच्छा से—बिना

किसी कष्ट या कठिनाई के—चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता का निर्माण करते हैं, तब वह श्रेष्ठजनों का शिष्य कहलाता है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले के लिए अभ्यास का पालन करता है, जिसके अंडे अक्षुण्ण हैं, जो फूटने में सक्षम है, जो जागृत होने में सक्षम है, जो बंधन से मुक्ति पाने में सक्षम है।"

"जैसे कि अगर किसी मुर्गी के पास आठ, दस या बारह अंडे हों जिन्हें वह ठीक से ढक दे, ठीक से गर्म रखे और ठीक से सेए: भले ही उसके मन में यह इच्छा न आई हो - 'काश मेरे चूजे अपने नुकीले पंजों या चोंच से अंडों के छिलके तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!'" फिर भी यह संभव है कि चूजे अपने नुकीले पंजों या चोंच से अंडों के छिलके तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं। इसी प्रकार, जब श्रेष्ठ जनों का कोई शिष्य इस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार अपनी इंद्रियों को वश में रखता है, इस प्रकार खान-पान में संयम बरतता है, इस प्रकार सचेत रहता है, इस प्रकार सात गुणों से युक्त हो जाता है, और इस प्रकार इच्छा से—बिना किसी कष्ट या कठिनाई के—चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करते हैं, तब वह श्रेष्ठ जनों का शिष्य कहलाता है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले के लिए अभ्यास करता है, जिसके अंडे अक्षुण्ण हैं, जो अंडे तोड़कर बाहर निकलने में सक्षम है, जो जागृत होने में सक्षम है, और जो बंधन से मुक्ति पाने में सक्षम है।

"अब जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और जागरूकता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यह उसका पहला जन्म है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से बाहर निकलते हैं।"

जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और जागरूकता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठ जनों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में, पुनः प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठ जनों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में, पुनः प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से परे, शुद्ध दिव्य दृष्टि से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है। यह उसका दूसरा उद्भव है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से बाहर निकलते हैं।

जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और सजगता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह उत्तेजना-मुक्त जागरूकता और विवेक-मुक्ति में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि उसने स्वयं इस पल में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लिया होता है। 5 यह उसका तीसरा निष्कासन है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से निकलते हैं।

"जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, तो यह उसके आचरण का विषय है। जब वह अपनी इंद्रियों को वश में रखता है... खान-पान में संयम बरतता है... सचेत रहता है... सात गुणों से परिपूर्ण होता है, तो यह उसके आचरण का विषय है। जब वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से उन चार ध्यान अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करती हैं, तो यह उसके आचरण का विषय है।"

जब वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है, तो यह उसके स्पष्ट ज्ञान का विषय है। जब वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते देखता है... जब वह इस क्षण और यहीं प्रत्यक्ष रूप से उन्हें जानकर और अनुभव करके, उस निर्मल चेतना और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, तो यह उसके स्पष्ट ज्ञान का विषय है।

"महानामा, इसे श्रेष्ठ जनों का शिष्य कहा जाता है जो स्पष्ट ज्ञान में निपुण, आचरण में निपुण और स्पष्ट ज्ञान एवं आचरण में निपुण है। और ब्रह्म सनंकुमार ने यह श्लोक कहा है:

'महान योद्धा ही लोगों में श्रेष्ठ होता है।'

कुल के आधार पर निर्णय करते समय, जो व्यक्ति स्पष्ट ज्ञान और आचरण में निपुण हो, वह श्रेष्ठ प्राणी होता है।

मानवीय और दिव्य।'

"ब्रह्म सनंकुमार ने इस श्लोक का सुंदर गायन किया है, न कि कुरूप; यह सुंदर कथन है, न कि कुरूप; यह लक्ष्य से जुड़ा हुआ है, न कि असंबद्ध। इसे भगवान बुद्ध ने भी स्वीकार किया है।"

तब भगवान बुद्ध उठे और पूज्य आनंद से बोले, "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, आनंद। तुमने कपिलवस्तु शाक्यों से प्रशिक्षणार्थी के लिए अभ्यास करने वाले व्यक्ति के बारे में जो कहा है, वह अच्छा है।"

यही बात पूज्य आनंद ने कही थी, और गुरु ने इसे स्वीकार किया। कपिलवस्तु के शाक्यों को पूज्य आनंद के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.4पोटालिया सुत्त(54)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध अंगुत्तरापा में बाज़ार के आपना नामक एक छोटे से गाँव में रहते थे। सुबह उन्होंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर आपना में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन समाप्त होने पर, भगवान बुद्ध एक वन क्षेत्र में गए और दिन बिताने के लिए एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए। गृहस्थ पोटालिया भी पूरी तरह से वस्त्र पहने और तम्बू लगाए, व्यायाम के लिए टहलते हुए वन क्षेत्र में आए और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने गृहस्थ से कहा, 'गृहस्थ, बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ सकते हैं।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि संन्यासी गौतम मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और उदासीन हो गए और कुछ नहीं बोले। दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'गृहस्थ, बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ सकते हैं।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और अरुचि से भर गया और उसने बात करना बंद कर दिया। तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'गृहस्थ, यहाँ बैठने की जगहें हैं, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और अरुचि से भर गया और बोला, 'यह उचित नहीं है कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित करें।' 'आपके गुणों और लक्षणों से तो आप गृहस्थ ही हैं।' 'हे गौतम, मैंने अपने सभी कर्म और व्यवसाय समाप्त कर दिए हैं। मेरे पास जो भी धन, अनाज, सोना और चांदी था, वह सब मैंने अपने पुत्रों को दे दिया है और मैं उन्हें न तो सलाह देता हूँ और न ही दोष देता हूँ। मैं केवल अपने भोजन और वस्त्र की चिंता करता हूँ। इस प्रकार मैंने अपने सभी कर्म और व्यवसाय समाप्त कर दिए हैं।' 'गृहस्थ, आपके कर्म और व्यवसाय का समापन, श्रेष्ठ धर्म में कर्म और व्यवसाय के समापन से भिन्न है।' 'आदरणीय महोदय, यदि भगवान बुद्ध मुझे श्रेष्ठ धर्म में सभी कार्यों और व्यापारों के समापन का उपदेश दें तो अच्छा होगा।' 'तो गृहस्थ, ध्यान से सुनो, मैं उपदेश दूंगा।'

हे गृहस्थ, श्रेष्ठ धर्म में सभी कर्मों और व्यापारों को समाप्त करने के आठ तरीके हैं। वे आठ क्या हैं? हे गृहस्थ, जीवन को नष्ट न करने के उद्देश्य से, जीवन को नष्ट करने का त्याग कर देना चाहिए। जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग कर देना चाहिए। सच बोलने के उद्देश्य से, झूठ बोलने का त्याग कर देना चाहिए। निंदा न करने के उद्देश्य से, निंदा का त्याग कर देना चाहिए। लोभ न करने और लालच से मुक्त रहने के उद्देश्य से, लोभ और लालच का त्याग कर देना चाहिए। निर्दोष घृणा न करने के उद्देश्य से, निंदनीय घृणा का त्याग कर देना चाहिए। क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के उद्देश्य से, क्रोध और द्वेष का त्याग कर देना चाहिए। अहंकार न करने के उद्देश्य से, अहंकार का त्याग कर देना चाहिए। संक्षेप में ये सभी उपाय श्रेष्ठ धर्म में सभी कर्मों और व्यापारों को समाप्त करने में सहायक हैं। 'आदरणीय महोदय, कृपा करके भगवान बुद्ध उन आठ बातों का स्पष्टीकरण दें जो इस धर्म में कर्म और व्यापार के समापन में सहायक हैं। गृहस्थ, ध्यानपूर्वक सुनें, मैं आपको बताऊंगा।'

यह कहा गया था कि जीवित प्राणियों को नष्ट न करने के उद्देश्य से जीवन का विनाश त्याग देना चाहिए; ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करते हुए कहते हैं, जिन बंधनों के कारण मैं जीवित प्राणियों का विनाशक बना, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग अपना लिया। यदि मैं जीवित प्राणियों का विनाश करता हूँ, तो मैं स्वयं ही दोषी हूँगा, और जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद तो अवनति ही अपेक्षित है। ये वे बंधन और अवरोध हैं जो जीवित प्राणियों के विनाश का कारण बनते हैं। जीवित प्राणियों का विनाश करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु जीवन का विनाश न करने वालों को नहीं। यदि यह कहा गया था कि जीवित प्राणियों को नष्ट न करने के उद्देश्य से जीवन का विनाश त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण कहा गया था।

कहा गया था कि जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, मनन करते हैं। कुछ बंधनों के कारण मैंने वह लिया जो मुझे नहीं दिया गया था। मैं उन बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा हूँ। यदि मैं जो नहीं दिया गया है उसे लेता हूँ, तो मैं स्वयं को दोषी ठहराऊँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद अवमूल्यन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये वे बंधन और बाधाएँ हैं जो मुझे जो नहीं दिया गया है उसे लेने से रोकती हैं। जो लोग जो नहीं दिया गया है उसे लेते हैं, उन्हें इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है; जो लोग जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हैं, उन्हें ये नहीं होते। यदि यह कहा गया था कि जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया है कि सत्य बोलने के उद्देश्य से झूठ बोलना त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं झूठ बोल रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपना लिया है। यदि मैं झूठ बोलूंगा तो स्वयं ही दोषी ठहराया जाएगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये झूठ बोलने के बंधन और बाधाएँ हैं। झूठ बोलने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। ये झूठ न बोलने वालों के लिए नहीं हैं। यदि कहा गया है कि सत्य बोलने के उद्देश्य से झूठ बोलना त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया है। कहा गया है कि निंदा न करने के उद्देश्य से निंदा करना त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं निंदा कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपना लिया है। यदि मैं स्वयं निंदा करूंगा तो स्वयं ही दोषी ठहराया जाएगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। निंदा करने के लिए ये बंधन और बाधाएँ हैं। निंदा करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। निंदा से दूर रहने वालों को ऐसा नहीं होता। यदि यह कहा गया है कि निंदा न करने के उद्देश्य से इसे त्याग देना चाहिए, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया था कि लोभ से मुक्ति पाने के लिए लोभ और लालच का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, कि जिन बंधनों के कारण मैं लोभ और लालच में लिप्त हुआ, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपनाया है। यदि मैं लोभ और लालच में लिप्त हो जाऊँ, तो स्वयं मैं ही दोषी होऊंगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये लोभ और लालच के बंधन और अवरोध हैं। लोभ और लालच में लिप्त लोगों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। जो लोभ और लालच से दूर रहते हैं, उनके लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया था कि लोभ से मुक्ति पाने के लिए लोभ और लालच का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था कि निर्दोष अनासक्ति बनाए रखने के लिए निंदनीय अनासक्ति का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, कि जिन भी बंधनों के कारण मैं निंदनीय अनासक्ति का पालन कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा। यदि मैं निंदनीय अनासक्ति का पालन करता हूँ, तो मैं स्वयं ही अपनी निंदा करूँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मेरी निंदा करेंगे। मृत्यु के बाद अवनति की अपेक्षा करनी चाहिए। ये निंदनीय अनासक्ति के बंधन और अवरोध हैं। निंदनीय अनासक्ति का पालन करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। निंदनीय अनासक्ति से दूर रहने वालों के लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया था कि निर्दोष अनासक्ति बनाए रखने के लिए निंदनीय अनासक्ति का त्याग करना चाहिए, तो इसका कारण यही था।

कहा गया है कि क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के लिए क्रोध और द्वेष का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं क्रोध और द्वेष धारण कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा हूँ। क्रोध और द्वेष धारण करने पर मैं स्वयं ही दोषी ठहराया जाऊँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद तो अवमूल्यन की ही अपेक्षा करनी चाहिए। ये क्रोध और द्वेष के बंधन और अवरोध हैं। क्रोध और द्वेष धारण करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। क्रोध और द्वेष से दूर रहने वालों के लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया है कि क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के लिए क्रोध और द्वेष का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण कहा गया है।

कहा गया था कि अहंकार से मुक्ति पाने के लिए अहंकार का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, "जिन भी बंधनों के कारण मैं अहंकारी हुआ, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपनाया है। अहंकारी होने पर मेरा अपना अहंकार मुझे दोष देगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोष देंगे। मृत्यु के बाद अवनति की अपेक्षा करनी चाहिए। ये अहंकार के बंधन और अवरोध हैं। अहंकारी लोगों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। ये अहंकार रहित लोगों के लिए नहीं हैं। यदि कहा गया था कि अहंकार से मुक्ति पाने के लिए अहंकार का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।"

गृहस्थ, ये आठ बातें संक्षेप में बताई और समझाई गई हैं, जो श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और कार्यों के समापन का कारण बनती हैं। परन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, और इससे श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय का समापन नहीं होगा। आदरणीय महोदय, श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय का पूर्ण समापन कैसे होता है? महोदय, यदि भगवान बुद्ध श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय के पूर्ण समापन की व्याख्या करें तो यह मेरे लिए अच्छा होगा। ध्यान से सुनिए, गृहस्थ, मैं बताता हूँ।

गृहस्थ, एक चतुर कसाई या उसका शागिर्द कसाईखाने के पास इंतजार कर रहे भूखे कुत्ते को मांस रहित, खून से सनी हड्डी फेंक देता। गृहस्थ, क्या वह कुत्ता उस खून से सनी, मांस रहित हड्डी को चाटकर अपनी भूख मिटा लेगा? नहीं, आदरणीय महोदय, ऐसा नहीं होगा। 'क्या कारण है?' 'वह कुत्ता उस खून से सनी, मांस रहित हड्डी को चाटकर केवल थकावट और कमजोरी ही प्राप्त करेगा।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख एक हड्डी के समान है, जो बहुत कष्ट और परेशानी लाती है, यहाँ खतरा बहुत अधिक है। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए, और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, अगर कोई गिद्ध, कौआ या बाज मांस का एक टुकड़ा छीनकर उड़ जाए, तो दूसरा कौआ, बाज या गिद्ध उसे देखकर उसका पीछा करेगा और वह टुकड़ा छीन लेगा। गृहस्थ, अगर वह गिद्ध, कौआ या बाज वह मांस का टुकड़ा न छोड़े, तो क्या उसकी मृत्यु या मृत्यु का कष्ट नहीं होगा? 'हे पूज्यवर, हाँ, होगा।' 'इसी प्रकार, शिष्य मनन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख की इच्छाएँ मांस के एक टुकड़े के समान हैं जो बहुत कष्ट, कष्ट और खतरा लाता है। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएँ और समभाव और अधिक विकसित हो।

गृहस्थ, जलती हुई घास की मशाल लिए हुए व्यक्ति हवा के विपरीत दिशा में जाएगा। गृहस्थ, यदि वह व्यक्ति उस जलती हुई घास की मशाल को न छोड़े तो क्या उसका हाथ, बांह या शरीर का कोई भी छोटा या बड़ा अंग जल नहीं जाएगा? क्या उसकी मृत्यु नहीं हो जाएगी या उसे मृत्यु का कष्ट नहीं होगा?' 'हाँ, आदरणीय।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा था कि इंद्रिय सुख की इच्छाएँ जलती हुई घास की मशाल के समान हैं जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाती हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएँ और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, मनुष्य की ऊँचाई तक एक कोयले का गड्ढा है, जो धुएँ और आग से मुक्त है। एक सुखप्रिय और जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति आता है और दो बलवान पुरुष उसे हाथ-पैर से पकड़कर कोयले के गड्ढे में घसीटते हैं। गृहस्थ, क्या उसका शरीर इससे बचने के लिए छटपटाएगा नहीं? इसका क्या कारण है?': 'आदरणीय महोदय, वह जानता है कि यदि मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा, तो मेरी मृत्यु हो जाएगी या मुझे घोर कष्ट सहना पड़ेगा।' 'इसी प्रकार, शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख जलते हुए कोयले के गड्ढे के समान हैं, जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाते हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्यागकर, एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूर्णतः लुप्त हो जाएँ और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, एक व्यक्ति सपने में सुंदर स्मारक, जंगल, समतल भूमि और तालाब देखता है, जागने पर उसे इनमें से कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख स्वप्न के समान हैं, जो अत्यंत कष्ट, परेशानी और खतरे लाते हैं। इन्हें समभाव और उचित बुद्धि से, यथार्थ रूप में देखना चाहिए, और विभिन्न हितों को त्यागकर, एक ही हित और आसक्ति को

समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूर्णतः लुप्त हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।

गृहस्थ, एक आदमी जो कुछ झुमके और फैशनेबल गहने उधार लेकर बाजार जाता था, उन्हें पहनकर खुद को सजाता था। लोग उसे देखकर कहते थे, 'देखो, अमीर आदमी है।' जब घरवाले उसे देखते, तो अपना सामान समेट लेते। गृहस्थ, क्या वह आदमी अपने असली रूप में बेहतर नहीं होता?' 'वह बेहतर होता, आदरणीय महोदय।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य विचार करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख उधार ली गई चीजों के समान हैं, जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाते हैं। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।

गृहस्थ, किसी गाँव या बस्ती के पास एक घना जंगल है, जिसमें फलों से लदा एक वृक्ष है। एक व्यक्ति फलों की तलाश में उस वृक्ष के पास आता है, और जब उसे ज़मीन पर कोई फल गिरा हुआ नहीं दिखता, तो वह वृक्ष पर चढ़कर मन भरकर फल खाता है। वह अपनी गुलेल में कुछ फल भर लेता है। एक दूसरा व्यक्ति तेज धार वाले खंजर से फलों की तलाश में उसी वृक्ष के पास आता है, और जब उसे कोई फल गिरा हुआ नहीं दिखता, और वह वृक्ष पर चढ़ भी नहीं पाता, तो वह वृक्ष को काट देता है। गृहस्थ, यदि वृक्ष पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जल्दी नीचे न उतरता, तो क्या वह मर नहीं जाता, या उसके कोई अंग टूटकर उसकी मृत्यु नहीं हो जाती? 'जी हाँ, आदरणीय, वह मर जाता।' 'इसी प्रकार,' शिष्य मनन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख-सुविधाएँ फलों से लदे वृक्ष के समान हैं। ये बहुत कष्ट, परेशानी और खतरे लाती हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से देखा जाना चाहिए, जैसा कि यह वास्तव में है, और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए, समभाव के साथ एक ही हित और आसक्ति विकसित की जानी चाहिए, [1] जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से लुप्त हो जाते हैं और समभाव को और विकसित किया जाना चाहिए।

हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य अपने अनेक पूर्व जन्मों, जैसे एक जन्म, दो जन्म, आदि को सभी गुणों और विवरणों सहित याद करता है। हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से प्रकट और लुप्त होते प्राणियों को, उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप प्राणियों को, अच्छे और बुरे रूपों में देखता है—प्राण प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता है। हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य, अपने मन को मुक्त कर चुका है, ज्ञान से मुक्त हो चुका है और इसी मुक्त अवस्था में वर्तमान में विद्यमान है।

गृहस्थ, श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों का यही अंत है। गृहस्थ, क्या आप अपने भीतर श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों के इस अंत को देख पाते हैं? 'मैं क्या हूँ, पूज्यवर, मैं श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों के अंत से बहुत दूर हूँ। पूज्यवर, पहले हम अन्य संप्रदायों के तपस्वियों को श्रेष्ठ मानते थे और उन्हें श्रेष्ठ समझकर भोजन कराते थे तथा उन पर विश्वास रखते थे। हम भिक्षुओं को श्रेष्ठ नहीं समझते थे, उन्हें श्रेष्ठ समझकर भोजन कराते थे तथा उन पर विश्वास नहीं रखते थे। अब हम जानते हैं कि अन्य संप्रदायों के तपस्वी श्रेष्ठ नहीं हैं, और हम उन्हें यह जानते हुए भी भोजन कराते हैं कि वे श्रेष्ठ नहीं हैं तथा उन पर विश्वास नहीं रखते। अब हम जानते हैं कि भिक्षु श्रेष्ठ हैं, उन्हें यह जानकर भोजन कराएं कि वे श्रेष्ठ हैं और उन पर विश्वास रखें। आदरणीय गुरुदेव, आपने मेरे मन में संन्यासियों के प्रति प्रेम और आदर उत्पन्न किया है। अब मैं समझ गया हूँ, आदरणीय गुरुदेव। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से शिक्षा का स्पष्टीकरण किया है। अब मैं भगवान बुद्ध, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.5जीवक सुत्त(55)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध राजगृह में राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक के आम के बाग में निवास करते थे। राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि गौतम संन्यासी के कारण जीव-

जंतुओं की मृत्यु होती है और वे यह जानते हुए भी उसका सेवन करते हैं कि यह उन्हीं के कारण हुआ है। हे पूज्यवर, जो लोग यह कहते हैं कि गौतम संन्यासी के कारण जीव-जंतुओं की मृत्यु होती है और वे यह जानते हुए भी उसका सेवन करते हैं कि यह उन्हीं के कारण हुआ है, क्या वे भगवान बुद्ध के सही वचन कह रहे हैं या उनकी शिक्षाओं की निंदा कर रहे हैं?'

'जीवका, जो लोग कहते हैं कि गौतम संन्यासी के कारण जीव मारे जाते हैं और गौतम यह जानते हुए भी उन्हें खा लेता है कि वे उसी के कारण मारे गए हैं, वे मेरे शब्द नहीं हैं और वे मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हैं। जीवका, मैं कहता हूँ कि तीन स्थितियों में मांस नहीं खाना चाहिए: जब उसे देखा जाए, जब उसके बारे में सुना जाए और जब उसके बारे में कोई संदेह हो। मैं कहता हूँ कि इन तीन स्थितियों में मांस नहीं खाना चाहिए। मैं कहता हूँ कि तीन स्थितियों में मांस खाया जा सकता है: जब उसे देखा न जाए, जब उसके बारे में सुना न जाए और जब उसके बारे में कोई संदेह न हो।'

जीवक, एक गाँव या बस्ती में रहने वाला भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से परिपूर्ण होकर एक दिशा में, और दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर परिस्थिति में, हर उद्देश्य से, सभी के प्रति व्याप्त रहता है। उसका यह विचार असीम रूप से विकसित होता है और बिना क्रोध के महान बनता है। तभी एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसके पास आता है और उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि भिक्षु चाहे तो वह स्वीकार करता है और उस रात के अंत में, वस्त्र धारण करके और कुंड और वस्त्र लेकर, उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के घर जाता है और तैयार आसन पर बैठता है। वह गृहस्थ या उसका पुत्र अपने हाथों से उसे पौष्टिक भोजन परोसता है। उसके मन में यह विचार नहीं आता कि भविष्य में भी इस गृहस्थ को मुझे पौष्टिक भोजन देना चाहिए। वह उस निवाले को ग्रहण करता है, न तो व्यथित होकर, न बेहोश होकर, न ही दोषी महसूस करते हुए। खतरे पर बुद्धिमानी से विचार करते हुए, जीवक, क्या यह भिक्षु उस क्षण स्वयं को, किसी और को या दोनों को कष्ट पहुँचाने के बारे में सोच रहा है?

'नहीं, आदरणीय महोदय, वह ऐसा नहीं करता।'

'जीवक, क्या यह भिक्षु बिना किसी दोष के इस भोजन का सेवन नहीं कर रहा है?'

'हे आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि ब्रह्मा प्रेममयी अवस्था में निवास करते हैं। मैंने स्वयं भगवान बुद्ध में इसका साक्षी देखा है। भगवान बुद्ध प्रेममयी अवस्था में निवास करते हैं।'

'जीवक, तथागत ने उस लोभ, घृणा और भ्रम को जड़ से उखाड़ फेंका है, ताड़ के ठूंठ बना दिए हैं और उन्हें फिर कभी न उगने दिया है। यदि तुम ऐसा कहते हो, तो इसी कारण मैं इसकी अनुमति देता हूँ।'

'आदरणीय महोदय, मैं यह बात इसी कारण से कह रहा हूँ।'

'जीवक, भिक्षु किसी गाँव या बस्ती में निवास करते हैं। वे करुणा के विचारों से परिपूर्ण होकर एक ही दिशा में विलीन रहते हैं... आंतरिक आनंद के विचारों से परिपूर्ण... समभाव से, और साथ ही दूसरे, तीसरे, चौथे, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति असीम समभाव से परिपूर्ण, क्रोध रहित। फिर कोई गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उनके पास आता है और उन्हें अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि भिक्षु चाहें तो वे निमंत्रण स्वीकार कर लेते हैं। उस रात के अंत में, वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर, वे उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के घर जाते हैं और तैयार आसन पर बैठते हैं। वह गृहस्थ अपने हाथों से भिक्षु को पौष्टिक भोजन परोसता है। उन्हें यह विचार नहीं आता कि भविष्य में भी इस गृहस्थ को उन्हें पौष्टिक भोजन देना चाहिए।' वह उस निवाले को ग्रहण करता है, न तो वश में होकर, न बेहोश होकर, और न ही अपराधबोध से, खतरे पर बुद्धिमानी से विचार करते हुए। जीवक, क्या यह भिक्षु उस क्षण स्वयं को, किसी और को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने के बारे में सोच रहा है?

'नहीं, आदरणीय महोदय, वह ऐसा नहीं करता।'

'जीवक, क्या यह भिक्षु बिना किसी दोष के इस भोजन का सेवन नहीं करता?'

'आदरणीय महोदय, वह बिना किसी दोष के भोजन ग्रहण करते हैं। मैंने सुना है कि ब्रह्मा समभाव में रहते हैं। मैं इसे भगवान बुद्ध में देखता हूँ। भगवान बुद्ध समभाव में रहते हैं।'

'जीवक, तथागत विचलित नहीं होते, विरक्त होते हैं और लोभ, घृणा और मोह से विमुख नहीं होते; उन्होंने इन सब को जड़ से उखाड़ फेंका, ताड़ के ठूंठ बना दिए और उन्हें फिर कभी न उगने दिया। यदि इस कारण ऐसा कहा जाता है, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ।'

'आदरणीय महोदय, मैं यह बात इसी कारण से कह रहा हूँ।'

'जीवका, जो भी तथागत या तथागत के शिष्यों के कारण किसी जीव का वध करता है, वह पाँच बार अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है: यदि वह कहे, 'उस नाम के जीव को ले आओ', तो वह प्रथम उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। यदि उस जीव को बांधकर घसीटा जाए, उसके गले में दर्द हो, वह अप्रसन्न और अप्रिय महसूस करे, तो वह द्वितीय उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। यदि कहा जाए, 'उस जानवर को मार डालो', तो वह तृतीय उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। वध करते समय यदि वह जानवर अप्रसन्न और अप्रिय महसूस करे, तो वह चतुर्थ उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। जब तथागत या तथागत का कोई शिष्य अनुपयुक्त भोजन का सेवन करे, तो वह पाँचवाँ उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है।'

यह सुनकर राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक ने कहा, “हे पूज्यवर, यह अद्भुत है! भिक्षु उचित और दोषरहित भोजन ग्रहण करते हैं। अब मैं समझ गया, पूज्यवर। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई वस्तु अपनी जगह पर वापस आ गई हो। कोई ढकी हुई वस्तु प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। मानो दृष्टिहीन लोगों के लिए रूप देखने हेतु तेल का दीपक प्रज्वलित किया गया हो। अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की गई है। अब मैं भगवान बुद्ध, शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले के रूप में याद किया जाए।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.6उपाली सुत्त(56)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान नत्त्व नालंदा में, पवारिका के आम के बाग में रहते थे। उस समय निगंत नटपुत्त नालंदा में कई निगंतों के साथ रहते थे। दिघतपस्सी नामक निगंत नालंदा में भिक्षा मांगने के लिए घूम रहे थे और भोजन करने के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर भगवान नत्त्व के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। भगवान नत्त्व ने कहा, 'तपस्सी, यहाँ बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।' तब दिघतपस्सी एक नीची कुर्सी पर बैठ गए और भगवान नत्त्व ने उनसे कहा:

'तपस्सी, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने कर्म बताए हैं?' 'मित्र गौतम, कर्म कहना उचित नहीं है, दंड कहना उचित है।' 'तपस्सी, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने दंड बताए हैं?' 'मित्र गौतम, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए तीन दंड बताए हैं। वे हैं शारीरिक दंड, मौखिक दंड और मानसिक दंड।' 'तपस्सी, क्या शारीरिक दंड एक है, मौखिक दंड दूसरा और मानसिक दंड तीसरा?' 'मित्र गौतम, शारीरिक दंड एक है, मौखिक दंड दूसरा और मानसिक दंड तीसरा।' 'तपस्सी, इन तीनों दंडों का विश्लेषण करने पर निगंथनातापुत्त इनमें से किसे सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं? क्या यह शारीरिक, मौखिक या मानसिक दंड है?' 'मित्र गौतम, इन तीन अलग-अलग और विवेचित दंडों में से निगंथनातापुत्त शारीरिक दंड को सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं, क्योंकि यह पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए है, न कि मौखिक और मानसिक दंडों के लिए।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' इस प्रकार भगवान बुद्ध ने दिघतापसी को इस तर्क में तीसरी बार तक दृढ़ किया।

तब दिघतपस्सी ने भगवान गौतम से कहा, 'मित्र गौतम, आप पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने दंड बताते हैं?' 'मित्र तपस्सी, तथागत की प्रथा दंड कहना नहीं है, उनकी प्रथा कर्म कहना है।' 'मित्र गौतम, आप पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने कर्म बताते हैं?' 'तपस्सी, मैं पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए तीन कर्म बताता हूँ। वे हैं शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्म।' 'मित्र गौतम, क्या शारीरिक कर्म एक है, वाणी कर्म दूसरी और मानसिक कर्म तीसरी?' 'मित्र गौतम, इन तीन अलग-अलग और विवेचित कर्मों

में से, भगवान गौतम किसे सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं? क्या यह शारीरिक, वाणी या मानसिक कर्म है?' 'मित्र तपस्सी, इन तीनों कर्मों में से, मैं मानसिक कर्म को सबसे अधिक निंदनीय मानता हूँ, न कि शारीरिक या वाणी कर्म को।' 'क्या मित्र गौतम मानसिक कर्म कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ मानसिक क्रिया।' 'क्या मित्र गौतम भी मानसिक क्रिया कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ, मानसिक क्रिया।' 'क्या मित्र गौतम भी मानसिक क्रिया कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ, मानसिक क्रिया।' इस प्रकार दिघतपसी ने भगवान बुद्ध को इस बहस में तीसरी बार तक स्थिर रखा, फिर वे अपने आसन से उठे और निगंथनतपुत्त के पास गए।

उस समय निगंथनातापुत्त मूर्ख उपाली के नेतृत्व में अपने अनुयायियों की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे। निगंथनातापुत्त ने दूर से दिघतपसी को आते देखा और उनसे कहा, 'तपस्सी, तुम दिन के इस समय कहाँ से आए हो?' 'आदरणीय महोदय, मैं संन्यासी गौतम के दर्शन करने आया हूँ।' 'क्या तुम्हारा और संन्यासी गौतम के बीच कोई विवाद था?' 'हाँ, मेरा और संन्यासी गौतम के बीच विवाद था।' 'तपस्सी, तुम्हारा और संन्यासी गौतम के बीच क्या विवाद था?' तब निगंथ दिघतपसी ने अपने और संन्यासी गौतम के बीच हुई सारी बातचीत बताई। जब बातचीत पूरी हो गई, तो निगंथनातापुत्त ने निगंथ दिघतपसी से कहा, 'शाबाश! तपस्सी! तुम गुरु के विद्वान शिष्य हो। तुमने संन्यासी गौतम से सही बात कही है। कठोर शारीरिक दंड के सामने यह नीच मानसिक दंड क्या है?' शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि मौखिक या मानसिक दंड।

तब गृहस्थ उपली ने निगंथनतापुत्त से कहा, "आदरणीय महोदय, आपके विद्वान शिष्य ने संन्यासी गौतम से ठीक ही कहा है। कठोर शारीरिक दंड के सामने तुच्छ मानसिक दंड का क्या महत्व है? शारीरिक दंड ही सबसे बड़ा पाप है, और पाप का कारण मौखिक या मानसिक दंड से कहीं अधिक गंभीर है। आदरणीय महोदय, अब मैं संन्यासी गौतम से वाद-विवाद करूँगा। यदि संन्यासी गौतम उस बात पर अडिग रहे जो आदरणीय दिघतपसी ने उन्हें मनवाने के लिए कही है, तो जैसे कोई बलवान पुरुष मेमने को उसकी खाल से पकड़कर घसीटता है, वैसे ही जैसे कोई शराब बनाने वाला गहरे तालाब में बने बड़े गड्ढे को कान पकड़कर हिलाता है, वैसे ही हम भी संन्यासी गौतम को घसीटकर वाद-विवाद के लिए उकसाएँगे। जैसे साठ हाथ का हाथी गहरे तालाब में भांग धोने का आनंद लेता है, वैसे ही हम भी संन्यासी गौतम के साथ भांग धोने का आनंद लेंगे।" आदरणीय महोदय, अब हम इस विषय पर संन्यासी गौतम से बहस करने चलेंगे। 'जाओ, गृहस्थ, और संन्यासी गौतम से इस विषय पर बहस शुरू करो, या तो मैं जाकर बहस करूं, या तुम या आदरणीय दिघतापस्सी यह काम करो।'

निगंत दिघतपसी ने निगंतनतपुत्त से कहा, "आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना पसंद नहीं है। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।" निगंत दिघतपसी ने कहा, "तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपाली का शिष्य बन जाए। या तो मैं इस विषय पर विवाद करने जाऊं, या गृहस्थ उपाली या निगंत दिघतपसी जाएं।" दूसरी और तीसरी बार तक दिघतपसी ने निगंतनतपुत्त से यही कहा, "आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना पसंद नहीं है। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।" निगंत दिघतपसी ने कहा, "तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए।" ऐसा संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली के शिष्य बन जाएं। इस बात पर बहस करने के लिए या तो मैं जाऊं, या गृहस्थ उपली जाऊं, या दिघतपसी जाऊं।

उपली, जो गृहस्थ थे, ने कहा, 'आदरणीय गुरुदेव, मैं जाता हूँ।' वे अपनी सीट से उठे, निगंथनतापुत्त की पूजा और परिक्रमा की और पवारिका के आम के बाग में जाकर भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय गुरुदेव, क्या निगंथ दिघतापसी यहाँ आए थे?' 'गृहस्थ, निगंथ दिघतापसी यहाँ आए थे।' 'आदरणीय गुरुदेव, क्या निगंथ दिघतापसी से कोई बातचीत हुई?' 'हाँ, निगंथ दिघतापसी से बातचीत हुई।' 'आदरणीय गुरुदेव, निगंथ दिघतापसी से क्या बातचीत हुई?' भगवान बुद्ध ने अपने और निगंथ दिघतापसी के बीच हुई पूरी बातचीत सुनाई। 'अच्छा, आदरणीय तपसी ने भगवान बुद्ध से अच्छी बातें कही हैं। वे गुरु के विद्वान शिष्य हैं।' यह घृणित मानसिक दंड, कठोर शारीरिक दंड की तुलना में क्या है? शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि यह मौखिक या मानसिक दंड। 'गृहस्थ, यदि आप इस सत्य पर दृढ़ होकर परामर्श लें, तो इस विषय पर चर्चा होगी।' 'आदरणीय महोदय, मैं सत्य पर दृढ़ होकर परामर्श लूंगा, इस विषय पर चर्चा होगी।'

'गृहस्थ, एक निगंत गंभीर रूप से बीमार है, वह ठंडा पानी नहीं पी सकता और गर्म पानी चाहता है, ठंडा पानी भी उसे नहीं मिलता। निगंतनतापुत्र कहाँ जन्म लेंगे?' 'आदरणीय महोदय, कुछ देवता हैं जिन्हें मानसिक प्राणी कहा जाता है, वह उनके साथ जन्म लेगा। इसका क्या कारण है? क्योंकि वह मन के बंधन में जकड़ा हुआ मरेगा।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें। आपने पहले जो कहा वह अब जो कह रहे हैं उससे मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में स्थापित होकर परामर्श लूँगा और इस पर

चर्चा करूँगा।' 'आदरणीय महोदय, भगवान जो भी कहें, शारीरिक दंड सबसे अधिक निंदनीय है, चाहे वह पाप करने का हो या पाप करवाने का, मौखिक दंड और मानसिक दंड तो इसके सामने कुछ भी नहीं हैं।' 'गृहस्थ, एक निगंत सभी संयमों का पालन कर रहा है और उन संयमों के फल भोग रहा है।' इधर-उधर चलते हुए वह अनेक कीटों को मार डालता है। निगंथनातापुत्त उसे क्या परिणाम बताते हैं? 'हे पूज्यवर, यदि अनजाने में हो तो निगंथनातापुत्त कहते हैं कि यह इतना निंदनीय नहीं है।' 'गृहस्थ, यदि जानबूझकर हो तो?' 'तो यह सबसे अधिक निंदनीय है।' 'निगंथनातापुत्त जानबूझकर किए गए कार्य को किस श्रेणी में रखते हैं?' 'हे पूज्यवर, इसे मानसिक दंड के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें। आपने जो पहले कहा वह इन शब्दों से मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में दृढ़ होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा करूंगा।' 'हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध जो भी कहें, शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि मौखिक और मानसिक दंड।'

'गृहस्थ, क्या नालंदा घनी आबादी वाला इलाका है? क्या नालंदा के लोग धनी और समृद्ध हैं?' 'आदरणीय महोदय, नालंदा घनी आबादी वाला इलाका है और यहाँ के लोग धनी और समृद्ध हैं।' 'एक तलवार लिए हुए आदमी आए और कहे, पल भर में मैं पूरे नालंदा को मांस का ढेर बना दूंगा। क्या वह ऐसा कर पाएगा?' 'आदरणीय महोदय, दस, बीस, तीस, चालीस आदमी भी पल भर में ऐसा नहीं कर पाएंगे। एक नीच आदमी क्या कर सकता है?' 'गृहस्थ, कोई संन्यासी या ब्राह्मण, अपने मन पर नियंत्रण रखते हुए, आए और कहे, एक पल में मैं पूरे नालंदा को राख कर दूंगा, एक ही दूषित इरादे से। गृहस्थ, क्या वह अपने मन पर नियंत्रण रखते हुए, एक पल में उसे राख कर पाएगा?' 'आदरणीय महोदय, मन पर वश में रखने वाला एक संन्यासी या ब्राह्मण एक ही दूषित इरादे से दस, बीस, तीस, चालीस या पचास नालंदों को भी राख कर सकता है। तो एक नीच नालंद की तो बात ही क्या?' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें, आपके पहले के शब्द अब के शब्दों से मेल नहीं खाते। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में स्थापित होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा होगी।' 'आदरणीय महोदय, भगवान जो भी कहें, शारीरिक दंड सबसे बड़ा दंड है और इसके विरुद्ध मौखिक और मानसिक दंड कुछ भी नहीं हैं।' 'गृहस्थ, क्या आप जानते हैं कि ये वन, दंडक, कलिंग, मेझ और मथंग, वन कैसे बने?' 'आदरणीय महोदय, मैं जानता हूँ।' 'आपने इसके बारे में क्या सुना है?' 'मैंने सुना है कि एक ऋषि के दूषित मन के कारण ये वन, दंडक, कलिंग, मेझ और मथंग वन बन गए हैं।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें, जो आपने पहले कहा था वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में दृढ़ होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा करूंगा।'

'आदरणीय महोदय, पहली तुलना से ही मैं संतुष्ट हो गया था। भगवान बुद्ध की विभिन्न व्याख्याएँ सुनने की इच्छा से मैंने जानबूझकर भगवान बुद्ध का विरोध किया था। अब मैं समझ गया हूँ, आदरणीय महोदय। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टिहीन लोग रूप देख सकें। शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया गया है। अब मैं भगवान बुद्ध, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ।' 'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।' 'यदि किसी अन्य संप्रदाय के तपस्वियों ने मुझे अपना शिष्य बना लिया होता, तो वे मुझे नालंदा में घुमाते हुए कहते कि गृहस्थ उपली हमारे शिष्य बन गए हैं। यहाँ भगवान बुद्ध कहते हैं, 'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। अब मैं दूसरी बार भगवान बुद्ध, उनके उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

'गृहस्थ, आपका कुल लंबे समय से निगंतों के लिए एक स्रोत रहा है। मेरा मानना है कि आने वालों को भोजन का निवाला देना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। गृहस्थ, आपका कुल लंबे समय से निगंतों के लिए एक स्रोत रहा है। मेरा मानना है कि आने वालों को भोजन का निवाला देना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, मैंने आपके बारे में यह सुना है। मुझे ही भेंट देनी चाहिए, दूसरों को नहीं। भेंट मेरे शिष्यों को देनी चाहिए, न कि अन्य संप्रदायों के शिष्यों को। मेरे शिष्यों को दी गई भेंट बहुत फलदायी होती है, परन्तु दूसरों को दी गई भेंट नहीं। यहाँ, भगवान बुद्ध मुझे निगंतों को भेंट देने की सलाह देते हैं। हमें इसका समय पता चल जाएगा। अब मैं तीसरी बार भगवान बुद्ध, उनके उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

तब भगवान बुद्ध ने गृहस्थ उपली को दान देने, सद्गुणी बनने, स्वर्गिक अवस्थाओं, कामुकता के खतरों, अपवित्र वस्तुओं की नीचता और त्याग के लाभों के बारे में क्रमिक रूप से शिक्षा दी। तब भगवान बुद्ध ने जाना कि गृहस्थ उपली का मन तैयार, कोमल, अवरोधों से मुक्त, उदात्त और प्रसन्न था, और उन्होंने प्रबुद्धों का विशेष संदेश दिया: अप्रियता, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण और अप्रियता के

निवारण का मार्ग। जैसे एक शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र रंग को समान रूप से सोख लेता है, उसी प्रकार शिक्षा की निष्कलंक, निर्मल आँख गृहस्थ उपली के समक्ष प्रकट हुई, जो वहीं विराजमान थी। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका अंत निश्चित है। गृहस्थ उपली ने तब और वहीं उस शिक्षा को पूर्णतः समझ लिया, उसे जान लिया और उसमें मर्मस्पर्शी हो गए। संदेह दूर हो गए, वे आत्मविश्वासी हो गए और उस अवस्था को प्राप्त कर लिया जहाँ उन्हें भगवान बुद्ध के विधान में अब किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं रही (* 1)। उन्होंने कहा, 'आदरणीय महोदय, अब हम चलते हैं, बहुत काम करना है।' 'गृहस्थ, जैसा आपको उचित लगे वैसा करो।'

तब गृहस्थ उपली भगवान बुद्ध की वाणी सुनकर प्रसन्न और प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करते हुए घर चले गए। उन्होंने अपने द्वारपाल से कहा, 'मित्र द्वारपाल, आज से निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह भगवान बुद्ध, भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों (पुरुष और स्त्री) के लिए खुला है। यदि कोई निगंत आए, तो आप उनसे कहें: 'महोदय, कृपया प्रतीक्षा करें, प्रवेश न करें। आज से गृहस्थ उपली गौतम संन्यासी के शिष्य बन गए हैं। निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह भगवान बुद्ध के भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों (पुरुष और स्त्री) के लिए खुला है। यदि महोदय, आपको भोजन चाहिए, तो यहाँ खड़े हो जाइए।' द्वारपाल मान गया।

निगंत दिघतापस्सी ने सुना। गृहस्थ उपली ने संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है। वह निगंतनतपुत्त के पास गया और बोला, 'आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है।' निगंतनतपुत्त ने कहा, 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए।' दूसरी बार और तीसरी बार तक निगंत दिघतापस्सी ने निगंतनतपुत्त से कहा, 'आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है। तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए।' संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली के शिष्य बन जाएं। 'आदरणीय महोदय, मैं जाकर देख लेता हूँ कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम के शिष्य बने हैं या नहीं।' 'जाओ तपसी, पता करो कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम के शिष्य हैं या नहीं?'

फिर निगंत दिघतपस्सी गृहस्थ उपाली के घर पहुँचे। द्वारपाल ने उन्हें दूर से आते देखा और कहा, 'महोदय, रुकिए। अंदर मत आइए। आज से गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम के शिष्य बन गए हैं। निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह द्वार भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, भगवान बुद्ध के पुरुष और स्त्री के लिए खुला है। यदि महाराज, आपको भोजन चाहिए तो यहीं खड़े रहिए। ला दिया जाएगा।' उन्होंने कहा, 'मित्र, मुझे भोजन की आवश्यकता नहीं है', और निगंतनतपुत्त के पास जाकर कहा, 'आदरणीय महोदय, यह सत्य है। गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम के शिष्य हैं। मैंने आपको पहले ही कहा था, आदरणीय महोदय, कि गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना उचित नहीं है। वे धूर्त हैं और अन्य संप्रदायों के शिष्यों को लुभाना जानते हैं।' 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली, संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम, गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए।' दूसरी और तीसरी बार तक निगंथ दिघतपस्सी ने निगंथनतपुत्त से कहा, 'आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना अच्छा नहीं लगा। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।' 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली, संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम, गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए। मैं अब जाकर देखता हूँ कि गृहस्थ उपली ने संन्यासी गौतम की शिष्यता ग्रहण की है या नहीं।'

फिर निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ गृहस्थ उपली के घर के पास पहुँचे। द्वारपाल ने उन्हें दूर से आते देखा और कहा, 'महोदय, कृपया प्रतीक्षा करें। अंदर न जाएँ। आज से गृहस्थ उपली, गौतम गौतम के शिष्य हैं। निगंथों और निगन्तियों के लिए द्वार बंद है। यह द्वार भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, भगवान बुद्ध के पुरुष और स्त्री के लिए खुला है। यदि आप भोजन करना चाहते हैं, तो यहाँ खड़े रहें। भोजन यहाँ लाया जाएगा।' 'तो हे मित्र द्वारपाल, गृहस्थ उपली के पास जाकर उन्हें बताएँ कि निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ आए हैं और बाहर खड़े हैं। वे गृहस्थ उपली से मिलना चाहते हैं।' द्वारपाल गृहस्थ उपली के पास गया और उनसे कहा, 'महोदय, निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ आए हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।' 'तो फिर, हे मित्र द्वारपाल, मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था करो।' द्वारपाल ने मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था की और गृहस्थ उपाली को सूचित किया। 'मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था हो गई है, अब आप अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं।' तब गृहस्थ उपाली मध्य कक्ष में आए और सबसे उत्तम स्थान चुनकर बैठ गए और द्वारपाल से कहा, 'हे मित्र द्वारपाल, निगंथनतापुत्त के पास जाकर उन्हें बताओ।' गृहस्थ उपाली ने कहा, 'महोदय, यदि आप प्रवेश करना चाहते हैं, तो प्रवेश करें।' निगंथनतापुत्त निगंतों के एक बड़े समूह के साथ मध्य कक्ष में प्रवेश कर गए।

गृहस्थ उपली पहले निगंथनातापुत्त को दूर से आते देख उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ते, सबसे उत्तम आसन को अपने शॉल से पोंछते और उन्हें बिठाते। उस दिन वे सबसे उत्तम आसन पर बैठे और निगंथनातापुत्त से बोले, "महोदय, आसन तैयार हैं, यदि आप चाहें

तो बैठिए।" "गृहस्थ, क्या तुम पागल हो गए हो? क्या तुम पर किसी बुरी नज़र का साया है? तुम गौतम संन्यासी से वाद-विवाद करने गए थे, और ऐसे लौटे जैसे कोई अच्छी बहस कर बैठा हो। गृहस्थ, यह उस व्यक्ति के समान है जो अपने अंडकोष निकलवाने गया हो और निकलवाकर लौट आया हो। जैसे कोई अपनी आँखें निकलवाने गया हो और उन्हें निकलवाकर लौट आया हो। उसी प्रकार तुम गौतम संन्यासी से वाद-विवाद करने गए थे, और ऐसे लौटे जैसे कोई अच्छी बहस कर बैठा हो। गृहस्थ, तुम गौतम संन्यासी के बहकावे में आ गए हो।"

'महोदय, वे प्रलोभन अच्छे हैं। मेरे प्रियजनों और रक्त संबंधियों को भी उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। सभी योद्धाओं, सभी ब्राह्मणों, सभी गृहस्थों, सभी अछूतों को उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। इस देवी-देवताओं और मनुष्यों के संसार में, जिसमें मार, ब्रह्मा, संन्यासी, ब्राह्मण, देवी-देवता और मनुष्य हैं, सभी को उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। तब महोदय, मैं आपको एक तुलना दूंगा, क्योंकि कुछ बुद्धिमान लोग तुलना को समझ जाते हैं।'

पुराने समय में एक वृद्ध और कमजोर ब्राह्मण रहता था। उसकी एक युवती थी, जो प्रसव पीड़ा से गुजर रही थी। युवती ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, बाजार जाकर मेरे बेटे के लिए एक छोटा बंदर ले आओ।" तब ब्राह्मण ने कहा, "बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करो। यदि बेटा हुआ तो मैं उसके लिए एक नर बंदर लाऊंगा और यदि बेटी हुई तो मैं एक मादा बंदर खरीदूंगा।" युवती ने बार-बार यही कहा, "ब्राह्मण, बाजार जाकर मेरे बेटे के लिए एक छोटा बंदर ले आओ।" तब ब्राह्मण ने फिर कहा, "बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करो। यदि बेटा हुआ तो मैं उसके लिए एक नर बंदर लाऊंगा और यदि बेटी हुई तो मैं एक मादा बंदर खरीदूंगा।" क्योंकि ब्राह्मण अपनी युवती से बहुत प्रेम करता था, इसलिए उसने बाजार से एक नर बंदर खरीदा और कहा, "यह लो तुम्हारे बेटे के लिए एक छोटा बंदर।" तब उस युवती ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, इस बंदर को लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास जाओ और इसे पीले रंग में रंगवा दो। रंग दोनों तरफ से अच्छी तरह से लगना चाहिए और अच्छी तरह से पॉलिश किया जाना चाहिए।" ब्राह्मण उस युवती से बहुत प्रेम करता था, इसलिए वह बंदर को लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास गया और बोला, "मित्र रत्तपानी, मैं इस बंदर को पीले रंग में रंगवाना चाहता हूँ। रंग दोनों तरफ से अच्छी तरह से लगना चाहिए और अच्छी तरह से पॉलिश किया जाना चाहिए।" तब रंगसाज़ के पुत्र ने उससे कहा, "महोदय, यह छोटा बंदर रंगाई, रंगने और पॉलिश करने को सहन नहीं करेगा। उसी प्रकार, महाराज, मूर्ख निगंत का झगड़ा बुद्धिमानों को सहन नहीं होता। यह ज्ञानियों के लिए सहनीय नहीं है।" फिर, महाराज, इसी बीच वह ब्राह्मण नए वस्त्रों का एक जोड़ा लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास जाकर बोला, "मित्र रत्तपानी, मुझे ये वस्त्र पीले रंग में रंगवाने हैं, दोनों तरफ से रंग अच्छी तरह से गूंथा हुआ और पॉलिश किया हुआ।" रंगसाज़ के पुत्र ने कहा, "महोदय, ये नए वस्त्र रंगाई, दोनों तरफ से गूंथने और पॉलिश करने को सहन कर सकते हैं।" इसी प्रकार, पूर्णतः ज्ञानी व्यक्ति का विवाद बुद्धिमानों के प्रति सहिष्णु होता है, मूर्खों के प्रति नहीं; वह वाद-विवाद और बुद्धिमानीपूर्ण परीक्षण को सहन करता है।

'हे गृहस्थ, राजा समेत सभी लोग आपको निगंथनतापुत्त का शिष्य जानते हैं। अब आप किसके शिष्य हैं?' यह सुनकर गृहस्थ उपली अपने आसन से उठे, अपने शॉल को एक कंधे पर ठीक किया और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर बोले, 'सुनिए महोदय, मैं कैसे भगवान बुद्ध का शिष्य बना...'

मैं भ्रममुक्त का शिष्य हूँ, तीर निकाला हुआ, विजयी (* 2)

वह शांत, धन्य, चिंतामुक्त, गुणी और बुद्धिमान हैं। संशय से मुक्त, सुखी, सांसारिक मामलों से विमुख। मैं उस पूर्ण पुरुष का शिष्य हूँ, जो अंतिम शरीर धारण करता है। अनुशासित सारथी को गुणों के बारे में कोई संदेह नहीं है। मैं उस सच्चे ज्ञानी का शिष्य हूँ, जो अहंकार रहित है। वह धैर्यवान, ज्ञान से परिपूर्ण, असीम रूप से गहन ऋषि हैं। मैं उस भगवान का शिष्य हूँ, जो बंधनों से मुक्त हैं। वह जंगल में एक मुक्त हाथी के समान हैं, शुद्ध, ध्वज नीचे रखे हुए (* 3)। मैं उस शांत भगवान का शिष्य हूँ, जो संसार के विचरण से परे हैं। वह ब्रह्मा के मार्ग पर चलने वाले सातवें ऋषि हैं। वह तीनों वेदों के ज्ञाता हैं। मैं उस भगवान का शिष्य हूँ। वह देवताओं के राजा सक्का के समान हैं। वह सचेत, बुद्धिमान, उदासीन और अनासक्त हैं। मैं उस शांत आत्मस्वामी का शिष्य हूँ। न आसक्ति रखने वाला, न त्यागने वाला, सर्वोच्च एकांतप्रिय मन वाला है। मैं उस व्यक्ति का शिष्य हूँ जिसने पार कर लिया है और दूसरों को पार करने में सहायता करता है। वह इस प्रकार चला गया है, जिसकी कोई तुलना नहीं है। मैं उस शांत, बुद्धिमान, चतुर, धन्य व्यक्ति का शिष्य हूँ, जिसने भोग-विलास का नाश करके ज्ञान प्राप्त किया है। मैं उस महान पुरुष का शिष्य हूँ, जिसकी कोई तुलना नहीं है।

'गृहस्थ, आपने गौतम गौतम की यह स्तुति कब लिखी?' 'महोदय, जब विभिन्न प्रकार के फूलों का ढेर लगा होता है, तो एक कुशल मालाकार सुंदर माला बना लेता है। उसी प्रकार, महाराज, भगवान गौतम के असंख्य गुण हैं, हजारों गुण हैं, जब उपयुक्त हो तो उनका उल्लेख क्यों न किया जाए।'

तब निगंथनातापुत्त, भगवान को उस समय और वहीं दिए गए सम्मान को सुनकर अचेत होकर, गर्म रक्त की उल्टी कर दी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.7कुक्कुरावटिका सुत्त(57)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान कोलियन देश में रह रहे थे: वहाँ कोलियनों का एक नगर है जिसका नाम हलिद्दवासना है।

2. तब कोलियन वंश के पुत्र और बैल-पुण्य तपस्वी पुन्ना और नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया भगवान बुद्ध के पास गए। पुन्ना ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, जबकि नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया ने भगवान बुद्ध से अभिवादन किया। जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे भी एक तरफ कुत्ते की तरह सिकुड़कर बैठ गए। पुन्ना के बैठते ही उन्होंने भगवान बुद्ध से पूछा, “हे आदरणीय, यह नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया कठिन कार्य करते हैं: वे अपना भोजन जमीन पर फेंके जाने पर खाते हैं। उन्होंने लंबे समय से कुत्ते-पुण्य का पालन किया है। उनका गंतव्य क्या होगा? उनका भविष्य का मार्ग क्या होगा?”1

"बस करो, पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो।"

दूसरी बार... तीसरी बार पुन्ना नामक बैल-वकील तपस्वी ने भगवान बुद्ध से पूछा: "हे पूज्यवर, यह नग्न कुत्ते-वकील सेनिया वह कठिन कार्य करता है: वह अपना भोजन तब खाता है जब उसे जमीन पर फेंका जाता है। उसने लंबे समय से इस कुत्ते-वकील के कर्तव्य को अपनाया और अभ्यास किया है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य का मार्ग क्या होगा?"

"अच्छा, पुन्ना, चूंकि मैं तुम्हें यह कहकर मना नहीं सकता कि 'बस करो, पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' इसलिए मैं तुम्हें जवाब दूंगा।"

3. "यहाँ, पुन्ना, कोई व्यक्ति पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के कुत्ते के कर्तव्य का पालन करता है, वह कुत्ते की आदत को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है, वह कुत्ते के मन को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है, वह कुत्ते के व्यवहार को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह कुत्तों के साथ पुनः प्रकट होता है। लेकिन यदि उसका विचार ऐसा है: 'इस सद्गुण या कर्तव्य या तपस्या या धार्मिक जीवन से मैं एक (महान) देवता या कोई (छोटा) देवता बन जाऊँगा,' तो यह उसके मामले में गलत विचार है। अब मैं कहता हूँ कि गलत विचार वाले व्यक्ति के लिए दो गंतव्य हैं: नरक या पशु गर्भ। इसलिए, पुन्ना, यदि उसका कुत्ते का कर्तव्य पूर्ण हो जाता है, तो वह उसे कुत्तों के साथ ले जाएगा; यदि नहीं, तो वह उसे नरक ले जाएगा।"

4. यह सुनकर नग्न भिक्षुणी सेनिया रोने लगी। तब भगवान बुद्ध ने कोलियन वंश के पुत्र और भिक्षुणी पुन्ना से कहा, "पुन्ना, जब मैंने तुमसे कहा था, 'बस करो पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' तब भी मैं तुम्हें मना नहीं सका।"

"आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के ऐसा कहने पर मैं रो नहीं रहा हूँ। फिर भी, मैंने बहुत समय से इस कर्तव्य का पालन किया है। आदरणीय महोदय, एक पुन्ना है, जो कोलियों का पुत्र और बैल-भक्त तपस्वी है: उसने भी बहुत समय से इस कर्तव्य का पालन किया है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य क्या होगा?"

"बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो।" दूसरी बार... तीसरी बार नग्न भिक्षु-भक्त सेनिया ने भगवान बुद्ध से पूछा: "हे पूज्यवर, एक पुन्ना है, जो कोलियन वंश का पुत्र और भिक्षु-भक्त है; वह लंबे समय से भिक्षु-भक्त की सेवा में लगा हुआ है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य क्या होगा?"

"अच्छा, सेनिया, चूंकि मैं तुम्हें यह कहकर मना नहीं सकता कि 'बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' इसलिए मैं तुम्हें जवाब दूंगा।"

5. "यहाँ, सेनिया, कोई व्यक्ति बैल के कर्तव्य को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के निभाता है, वह बैल की आदतों को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है, वह बैल के मन को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है, वह बैल के व्यवहार को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह बैलों के समूह में पुनः प्रकट होता है। परन्तु यदि उसका विचार ऐसा हो: 'इस सद्गुण या कर्तव्य या तपस्या या धार्मिक जीवन से मैं (महान) देवता या कोई (छोटा) देवता बन जाऊँगा,' तो यह उसके मामले में गलत विचार है। अब गलत विचार रखने वाले के लिए दो गंतव्य हैं, मैं कहता हूँ: नरक या पशु गर्भ। अतः, सेनिया, यदि उसका बैल का कर्तव्य पूर्ण हो जाता है, तो वह उसे बैलों के समूह में ले जाएगा; यदि नहीं, तो वह उसे नरक में ले जाएगा।"

6. यह सुनकर कोलियन वंश के पुत्र और बैलगाड़ी की सेवा करने वाले तपस्वी पुन्ना रोने लगे। तब भगवान बुद्ध ने नग्न कुत्ते की सेवा करने वाले तपस्वी सेनिया से कहा, "सेनिया, जब मैंने तुमसे कहा था, 'बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' तब भी मैं तुम्हें मना नहीं सका।"

"आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के ऐसा कहने पर मैं रो नहीं रहा हूँ। फिर भी, मैंने यह बैल-पालन का कर्तव्य बहुत समय से अपनाया और उसका पालन किया है। आदरणीय महोदय, मुझे भगवान बुद्ध पर पूरा भरोसा है: 'भगवान बुद्ध मुझे इस प्रकार धम्म की शिक्षा देने में सक्षम हैं कि मैं इस बैल-पालन का कर्तव्य छोड़ दूँ और यह नग्न कुत्ते-पालन करने वाला तपस्वी सेनिया भी उस कुत्ते-पालन का कर्तव्य छोड़ दे।'"

7. "तो, पुन्ना, मेरी बात ध्यान से सुनो और समझो।"

“जी, पूज्यवर,” उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

8. "पुन्ना, प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं को जानने के बाद मैंने चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है। वे चार क्या हैं? एक है अंधकारमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय होता है; एक है प्रकाशमय कर्म, जिसका फल प्रकाशमय होता है; एक अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय होता है; और एक ऐसा कर्म है जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों है, और जो कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाता है।"

9. "अंधकारमय कर्म और उसके फल क्या हैं? यहाँ कोई व्यक्ति कष्ट से ग्रस्त शारीरिक क्रिया करता है,2 वह कष्ट से ग्रस्त वाणी करता है, वह कष्ट से ग्रस्त मानसिक क्रिया करता है। ऐसा करने से वह कष्टमय संसार में पुनः प्रकट होता है। ऐसा होने पर, कष्टदायी संपर्क3 उसे स्पर्श करते हैं। इनके स्पर्श से वह नरक में रहने वाले प्राणियों के समान पूर्णतः पीड़ादायक कष्टदायी भावनाओं का अनुभव करता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुनः प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुनः प्रकट होता है। पुनः प्रकट होने पर, संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। अतः मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं। इसे अंधकारमय कर्म और उसके फल कहा जाता है।"

10. "और उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल परिपक्वता क्या है? यहाँ कोई व्यक्ति कष्ट रहित शारीरिक क्रिया करता है, कष्ट रहित वाणी करता है, कष्ट रहित मानसिक क्रिया करता है। ऐसा करने से वह कष्ट रहित संसार में पुनः प्रकट होता है। जब ऐसा होता है, तो उसे कष्ट रहित स्पर्श प्राप्त होते हैं। इन स्पर्शों से वह सुख रहित, पूर्णतः सुखद भावों का अनुभव करता है, जैसे तेजस्वी महिमा के देवता सुभकिन्हाओं के मामले में होता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुनः प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुनः प्रकट होता है। पुनः प्रकट होने पर उसे स्पर्श प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं। इसे उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल परिपक्वता कहते हैं।"

11. "अंधकारमय कर्म और अंधकारमय परिपक्वता क्या है? यहाँ कोई व्यक्ति ऐसी शारीरिक क्रिया करता है जो पीड़ा से युक्त भी है और नहीं भी... मौखिक क्रिया... मानसिक क्रिया जो पीड़ा से युक्त भी है और नहीं भी। ऐसा करने से वह पीड़ामय और पीड़ारहित दोनों संसारों में पुन: प्रकट होता है। जब ऐसा होता है, तो पीड़ादायक और पीड़ारहित दोनों प्रकार के संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। इन संपर्कों से स्पर्श होने पर, वह मनुष्यों, कुछ देवताओं और कुछ अभावग्रस्त अवस्थाओं के निवासियों की तरह मिश्रित सुख और दुख के साथ पीड़ादायक और पीड़ारहित दोनों प्रकार की भावनाएँ अनुभव करता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुन: प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुन: प्रकट होता है। पुन: प्रकट होने पर, संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं। इसे अंधकारमय कर्म कहा जाता है।" गहरे और चमकीले रंग में पकना।

12. "वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, तथा जिसका फल न अंधकारमय है और जो कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाता है? इन (तीन प्रकार के कर्मों) के संदर्भ में, अंधकारमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, प्रकाशमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, और अंधकारमय एवं प्रकाशमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, जो अंधकारमय और न प्रकाशमय दोनों है: इसे ही अंधकारमय और न प्रकाशमय फलदायक कर्म कहा जाता है।"

"प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को अनुभव करने के बाद मैंने जिन चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है, वे ये हैं।"

13. जब यह कहा गया, तो कोलियन वंश के पुत्र और एक सन्यासी पुन्ना ने भगवान बुद्ध से कहा, “महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को रास्ता दिखा रहे हों, दृष्टिहीनों के लिए अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि वे रूप देख सकें।”

14. "मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म में और भिक्षुओं के संघ में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर उनकी शरण ली है।"

15. परन्तु नग्न भिक्षु-श्राप सेनिया ने कहा: "महान, गुरु गौतम!... धम्म स्पष्ट हो गया है... दृष्टि रखने वालों के लिए रूपों को देखने के लिए।"

16. "मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म में और भिक्षुओं के संघ में जाता हूँ। मैं गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा और पूर्ण प्रवेश प्राप्त करना चाहता हूँ।"4

17. "सेनिया, जो पहले किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित था और इस धम्म एवं अनुशासन में प्रवेश और पूर्ण दीक्षा चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहता है। चार महीने की समाप्ति पर, जो भिक्षु अपने मन में संतुष्ट होते हैं, वे उसे संन्यासी जीवन में प्रवेश और भिक्षु अवस्था में पूर्ण दीक्षा प्रदान करते हैं। इस (परिवीक्षा अवधि) में मुझे व्यक्तियों में एक अंतर का ज्ञान हुआ है।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे जो पहले किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित थे और इस धम्म एवं अनुशासन में प्रवेश और पूर्ण दीक्षा चाहते हैं, चार महीने की परिवीक्षा पर रहें और चार महीने के अंत में जो भिक्षु अपने मन से संतुष्ट हों, वे उन्हें संन्यासी जीवन में दीक्षा और भिक्षु अवस्था में पूर्ण प्रवेश दें, तो मैं चार साल की परिवीक्षा पर रहूंगा और चार साल के अंत में जो भिक्षु अपने मन से संतुष्ट हों, वे मुझे संन्यासी जीवन में दीक्षा और भिक्षु अवस्था में पूर्ण प्रवेश दें।"

18. नग्न कुत्ते के समान सन्यासी सेनिया ने भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में संन्यास लिया और पूर्ण दीक्षा प्राप्त की। पूर्ण दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, लगनशील, उत्साही और संयमी रहते हुए, पूज्य सेनिया ने प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं को उसी क्षण और यहीं पर उस सर्वोच्च लक्ष्य, पवित्र जीवन में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब आगे कुछ नहीं करना है।"

और आदरणीय सेनिया अरहंतों में से एक बन गईं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.8अभयराजकुमार सुत्त(58)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

तब राजकुमार अभय निगंथ नटपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, निगंथ नटपुत्त ने उनसे कहा, "आइए, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के वचनों का खंडन कीजिए, और आपके बारे में यह प्रशंसनीय समाचार दूर-दूर तक फैल जाएगा: 'इतने महान, इतने शक्तिशाली ध्यानमग्न गौतम के वचनों का खंडन राजकुमार अभय ने किया!'"

लेकिन हे पूज्यवर, मैं चिंतनशील गौतम के शब्दों का खंडन कैसे करूँ—जो इतने महान और शक्तिशाली हैं?

"अब आओ, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर यह कहो: 'हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों?' यदि ध्यानमग्न गौतम इस प्रकार पूछे जाने पर उत्तर दें, 'तथागत ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों,' तो तुम्हें कहना चाहिए, 'हे भगवान, आपमें और सामान्य लोगों में क्या अंतर है? क्योंकि सामान्य लोग भी ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों।'" लेकिन यदि चिंतनशील गौतम से इस प्रकार पूछे जाने पर वे उत्तर दें, 'तथागत ऐसे शब्द नहीं कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें,' तो आपको कहना चाहिए, 'हे भगवान, आपने देवदत्त के विषय में ऐसा क्यों कहा कि "देवदत्त दरिद्रता की ओर जा रहा है, देवदत्त नरक की ओर जा रहा है, देवदत्त युगों तक जलता रहेगा, देवदत्त असाध्य है"? क्योंकि देवदत्त आपके इन शब्दों से व्यथित और असंतुष्ट हो गया था।' जब आप चिंतनशील गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो पचा पाएंगे और न ही उगल पाएंगे। ठीक वैसे ही जैसे किसी व्यक्ति के गले में दो सींगों वाला शाहबलूत अटक जाए: वह उसे न तो निगल पाएगा और न ही उगल पाएगा। उसी प्रकार, जब आप चिंतनशील गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो पचा पाएंगे और न ही उगल पाएंगे।

“जैसा आप कहें, आदरणीय,” कहकर राजकुमार अभय अपने आसन से उठे, निगंथ नटपुत्त को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और फिर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने सूर्य की ओर देखा और सोचा, “आज भगवान बुद्ध के वचनों का खंडन करने का समय नहीं है। कल अपने घर में मैं भगवान बुद्ध के वचनों को गलत साबित करूँगा।” इसलिए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “कृपा करके, तीन अन्य लोगों के साथ, कल के भोजन के मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें।”

भगवान बुद्ध मौन रहकर सहमत हो गए।

तब राजकुमार अभय ने भगवान की सहमति को समझते हुए, अपने स्थान से उठकर भगवान को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, रात्रि बीत जाने के बाद, भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार अभय के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। राजकुमार अभय ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध को उत्तम भोजन परोसा और उन्हें स्वादिष्ट व्यंजन परोसे। फिर, जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और अपना हाथ कुंड से हटा लिया, तो राजकुमार अभय एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें?”

"राजकुमार, इसका कोई स्पष्ट हां या ना में जवाब नहीं है।"

"तो यहीं पर, भगवान, निगांथाओं का नाश हो जाता है।"

लेकिन राजकुमार, आप ऐसा क्यों कहते हैं, 'तो यहीं पर, स्वामी, निगांथा नष्ट हो जाते हैं'?

"हे भगवान, कल ही मैं निगंथ नटपुत्त के पास गया था और उन्होंने मुझसे कहा... 'आइए, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के पास जाइए और वहाँ पहुँचकर यह कहिए: "हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें?"... जैसे किसी के गले में दो सींगों वाला शाहबलूत अटक जाए, तो वह उसे न तो निगल पाएगा और न ही थूक पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब आप ध्यानमग्न गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो निगल पाएंगे और न ही थूक पाएंगे।"

उस समय एक शिशु राजकुमार की गोद में पीठ के बल लेटा हुआ था। तब भगवान बुद्ध ने राजकुमार से कहा, "हे राजकुमार, क्या विचार है: यदि यह शिशु, तुम्हारी या दाई की लापरवाही से, अपने मुँह में कोई छड़ी या कंकड़ डाल ले, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उसे निकाल डालूँगा, भगवान। अगर मैं उसे तुरंत नहीं निकाल सका, तो उसके सिर को अपने बाएँ हाथ में पकड़कर और अपने दाहिने हाथ की उंगली को मोड़कर, मैं उसे निकाल डालूँगा, भले ही इसका मतलब खून बहाना हो। ऐसा क्यों? क्योंकि मुझे उस छोटे लड़के के लिए सहानुभूति है।"

"इसी प्रकार, राजकुमार:

[1] तथागत जिन शब्दों को असत्य, असत्य, अलाभकारी (या: लक्ष्य से जुड़ा हुआ नहीं), अप्रिय और दूसरों के लिए अप्रिय जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[2] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, अलाभकारी, अप्रिय और दूसरों के लिए अप्रिय जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[3] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, लाभकारी, लेकिन दूसरों के लिए अप्रिय और अप्रिय जानते हैं, उनके मामले में उन्हें कहने का उचित समय पता होता है।

[4] तथागत जिन शब्दों को असत्य, असत्य, लाभहीन जानते हैं, परन्तु दूसरों को प्रिय और सुखद मानते हैं, तो वे उन्हें नहीं कहते।

[5] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, अलाभकारी, लेकिन दूसरों को प्रिय और सुखद जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[6] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, लाभकारी और दूसरों को प्रिय एवं सुखद मानते हैं, उन्हें कहने का उचित समय उन्हें ज्ञात होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत को जीवों के प्रति सहानुभूति है।

हे भगवान, जब ज्ञानी कुलीन या पुरोहित, गृहस्थ या ध्यानमग्न व्यक्ति प्रश्न तैयार करके तथागत के पास आते हैं और उनसे पूछते हैं, तो क्या यह तर्क उन्हें पहले से ही सूझता है - 'यदि मेरे पास आने वाले लोग यह पूछते हैं, तो मैं - इस प्रकार पूछे जाने पर - इस प्रकार उत्तर दूंगा' - या तथागत मौके पर ही उत्तर देते हैं?

"तो फिर, राजकुमार, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है: क्या आप रथ के भागों में कुशल हैं?"

"जी, स्वामी। मैं रथ के पुर्जों में कुशल हूँ।"

और आप क्या सोचते हैं: जब लोग आकर आपसे पूछते हैं, 'रथ के इस हिस्से का नाम क्या है?' तो क्या यह तर्क आपके मन में पहले से आता है - 'यदि मुझसे पूछने वाले यह सवाल पूछते हैं, तो मैं - इस प्रकार पूछे जाने पर - इस तरह जवाब दूंगा' - या आप मौके पर ही जवाब देते हैं?

"हे भगवान, मैं रथ के भागों के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हूँ। रथ के सभी भाग मुझे भली-भांति ज्ञात हैं। मैं मौके पर ही उत्तर दे देता हूँ।"

"इसी प्रकार, हे राजकुमार, जब ज्ञानी कुलीन या पुरोहित, गृहस्थ या ध्यानमग्न व्यक्ति प्रश्न तैयार करके तथागत के पास आते हैं और उनसे पूछते हैं, तो वे तुरंत उत्तर दे देते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि तथागत को धम्म का पूर्ण ज्ञान है। धम्म के पूर्ण ज्ञान के कारण ही वे तुरंत उत्तर दे देते हैं।"

यह सुनकर राजकुमार अभय ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान! आप महान हैं! जिस प्रकार कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, भटके हुए को राह दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं भगवान बुद्ध की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ में आता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे आज से जीवन भर अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.9बहुवेदनीय सुत्त(59)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।

तब बढ़ई पंचकंगा आदरणीय उदयिन के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने आदरणीय उदयिन से कहा, "आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध ने कितनी भावनाओं का वर्णन किया है?"

"हे गृहस्थ, भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात की है: सुख का भाव, दुख का भाव और न सुख का भाव। ये तीन भाव हैं जिनकी बात भगवान बुद्ध ने की है।"

यह सुनकर बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है: सुख और दुख। जहाँ तक सुख और दुख दोनों के न होने की भावना की बात है, भगवान बुद्ध ने इसे परिष्कृत सुख बताया है।"

दूसरी बार, पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंगा से कहा, "गृहस्थ, भगवान ने दो भावों की बात नहीं की है। उन्होंने तीन भावों की बात की है..."

दूसरी बार, बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है..."

तीसरी बार, पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंगा से कहा, "गृहस्थ, भगवान ने दो भावों की बात नहीं की है। उन्होंने तीन भावों की बात की है..."

तीसरी बार, बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है..."

न तो पूज्य उदयिन पंचकंगा नामक बढ़ई को समझाने में सफल हुए, और न ही पंचकंगा नामक बढ़ई पूज्य उदयिन को समझाने में सफल हुए।

अब, पूज्य आनंद ने पूज्य उदयिन और पंचकंग के बीच हो रही इस चर्चा को सुन लिया। इसलिए वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को उदयिन और पंचकंग के बीच हुई पूरी चर्चा बताई।

[भगवान बुद्ध ने कहा:] "आनंद, वह व्याख्या सत्य थी जिसे बढ़ई पंचकंग ने पूज्य उदयिन से स्वीकार नहीं किया। और वह व्याख्या भी सत्य थी जिसे पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंग से स्वीकार नहीं किया। एक व्याख्या है जिसके द्वारा मैंने दो भावों की बात की है, एक व्याख्या है जिसके द्वारा मैंने तीन भावों ... पाँच भावों ... छह भावों ... अठारह भावों ... छत्तीस भावों ... अट्ठारह भावों की बात की है।1 इस प्रकार मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है। जब मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है, तो यह अपेक्षित है कि जब ऐसे लोग हों जो एक-दूसरे द्वारा कही और कही गई अच्छी बातों से सहमत न हों, तो वाद-विवाद, झगड़े और विवाद होंगे, और वे एक-दूसरे को जीभ की तलवार से घायल करते रहेंगे। इस प्रकार मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है। जब मैंने व्याख्या के

माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है, तो यह अपेक्षित है कि जब ऐसे लोग हों जो सहमत हों, एक-दूसरे की कही और समझाई गई अच्छी बातों को स्वीकार करने और मानने से, वे सद्‌भाव और शिष्टाचार के साथ, बिना झगड़े के, पानी में मिले दूध की तरह, एक-दूसरे को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहेंगे।

आनंद, ये पाँच इंद्रिय-संबंधी सूत्र हैं। कौन से पाँच? आँखों से अनुभव किए जा सकने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्रेमवर्धक, इच्छा जगाने वाले, लुभाने वाले। कानों से अनुभव की जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से अनुभव की जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद... शरीर से अनुभव की जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्रेमवर्धक, इच्छा जगाने वाले, लुभाने वाले। अब इन पाँच इंद्रिय-संबंधी सूत्रों पर निर्भर जो भी सुख या आनंद उत्पन्न होता है, उसे इंद्रिय-संबंधी सुख कहते हैं। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च सुख है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत एक अन्य सुख है।

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक स्थिति वह है जब एक भिक्षु निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, समाधि के शांत होने पर भी, समभाव, सजग और सतर्क रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजनों ने कहा है, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।' यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सुख और दुख का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर—चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' का अनुभव करते हुए, अनंत चेतना के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु चेतना की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यह उससे

भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यही प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और संवेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। अब, हे आनंद, यह संभव है कि अन्य मतों के कुछ साधक कहें, 'गौतम ध्यानमग्न व्यक्ति बोध और संवेदना की समाप्ति की बात करते हैं और फिर भी उसे आनंद कहते हैं। यह क्या है? यह कैसे हो सकता है?' जब वे ऐसा कहें, तो उन्हें यह कहा जाना चाहिए, 'ऐसा नहीं है, मित्रों, कि भगवान बुद्ध केवल सुखद अनुभूति को ही आनंद में शामिल करते हैं। जहाँ कहीं भी आनंद पाया जाता है, चाहे किसी भी रूप में हो, भगवान बुद्ध उसे आनंद ही कहते हैं।'"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.10अपन्नका सुत्त(60)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1अस्तित्व और गैर-अस्तित्व
2क्रिया और निष्क्रियता
3कारणता और अकारणता
4निराकार
5बनने की समाप्ति
6चार व्यक्ति
7गुण
8संयम की भावना
9सजगता और सतर्कता
10बाधाओं को त्यागना
11चार ध्यान
12तीन ज्ञान
मैंने सुना है कि एक बार जब भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसलों में भ्रमण कर रहे थे, तब वे साला नामक ब्राह्मण गांव में पहुंचे थे। ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना, "साहसिक गुरु गौतम—शाक्यों के पुत्र, शाक्य वंश से निकलकर कोसल पर्वतमाला में भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भ्रमण करते हुए—सला पहुँचे हैं। और उस गुरु गौतम के बारे में यह उत्तम ख्याति फैली है: 'वे वास्तव में एक धन्य पुरुष हैं, एक अरहंत हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं: ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुगठित, ब्रह्मांड के ज्ञाता, वश में होने के लिए तैयार व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मानव और दिव्य प्राणियों के गुरु, जागृत, धन्य। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा इस संसार को इसके देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसकी पीढ़ियों को उनके ध्यानियों और पुरोहितों सहित, उनके शासकों और आम लोगों सहित ज्ञात कराया है। उन्होंने धर्म की व्याख्या आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय तरीके से की है; उन्होंने पवित्र जीवन को उसके विवरण और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण, अत्यंत शुद्ध रूप से समझाया है। ऐसे योग्य व्यक्ति को देखकर अच्छा लगा।

अतः साला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर कुछ ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन एवं शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। कुछ ने अपने हृदय पर हाथ रखकर प्रणाम किया। कुछ ने अपना नाम और कुल बताया। कुछ मौन बैठे रहे।
जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे पूछा, "गृहस्थों, क्या कोई ऐसा शिक्षक है जो आपको पसंद हो, जिसमें आपको दृढ़ विश्वास मिला हो?"
"नहीं, भगवान, हमें कोई ऐसा शिक्षक नहीं मिला जो हमें पसंद हो और जिसमें हमें ठोस विश्वास मिला हो।"
"चूंकि आपको कोई मनचाहा शिक्षक नहीं मिला है, इसलिए आपको इस सुरक्षित शिक्षा को अपनाना और अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यह सुरक्षित शिक्षा - जब स्वीकार और अपनाई जाती है - तो आपके दीर्घकालिक कल्याण और खुशी के लिए होगी।"
और सुरक्षित विकल्प वाली शिक्षा क्या है?

अस्तित्व और गैर-अस्तित्व
ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानी इस सिद्धांत को मानते हैं, इस दृष्टिकोण को धारण करते हैं: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानी जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर स्वयं इसका प्रचार करते हैं।'1
बी. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, वह सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; ऐसे पुजारी और ध्यानी हैं जो सही मार्ग अपनाते हुए और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।'
"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"
"हाँ भगवान।"
ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानी जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हुए इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर स्वयं इसका वर्णन करते हैं' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं, देखते हैं।"
A2. "चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए 'परलोक नहीं है' सोचने वाले का यह विचार गलत है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह उसका गलत संकल्प है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह यह कहता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह उसका गलत वचन है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह कहता है कि 'परलोक नहीं है', तो वह परलोक के ज्ञान रखने वाले अरहंतों का विरोधी बन जाता है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसके पूर्व के सभी अच्छे गुण त्याग दिए जाते हैं, जबकि बुरे गुण प्रकट होते हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, आत्म-प्रशंसा, और..." दूसरों की निंदा करना: ये अनेक दुष्ट और अकुशल गतिविधियाँ गलत दृष्टिकोण के कारण ही घटित होती हैं।
ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कोई परलोक नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि परलोक है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम परलोक की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस लोक में बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अस्तित्वहीनता के सिद्धांत को मानता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत कदम उठाया है: एक तो इस लोक में कि बुद्धिमानों द्वारा उनकी इस लोक में आलोचना की जाती है, और दूसरा इस लोक में कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वे अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में पुनः प्रकट होंगे। नरक के लोकों में। इस प्रकार, यह सुरक्षित मानी जाने वाली शिक्षा, जब उसके द्वारा ठीक से समझी और अपनाई नहीं जाती, तो (केवल) एक पक्ष को ही कवर करती है और कुशल होने की संभावना को छोड़ देती है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; पुरोहित और ध्यानी हैं जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण और बुरे मानसिक आचरण - से दूर रहकर इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण और अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार देखते हैं, जो शुद्धि के समान हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए 'परलोक है' का विचार करने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह यह संकल्प लेता है कि 'परलोक है', तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह यह कथन करता है कि 'परलोक है', तो यही उसका सही वाणी है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह कहता है कि 'परलोक है', तो वह परलोक के ज्ञान रखने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह दूसरों को यह विश्वास दिलाता है कि 'परलोक है', तो यही सच्चे धम्म का प्रचार है। और सच्चे धम्म के प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म का प्रचार करना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना... स्वयं का सम्मान करना और दूसरों का अपमान न करना: ये अनेक कुशल गतिविधियाँ सही दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं।

B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि परलोक है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। भले ही हम परलोक की बात न करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न हो, फिर भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस दुनिया में बुद्धिमानों द्वारा अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसा की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अस्तित्व के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा दांव खेला है, एक तो इस दुनिया में बुद्धिमानों द्वारा उनकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वे स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होंगे। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

क्रिया और निष्क्रियता

ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'किसी का अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने में, किसी को पीड़ा पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा पहुँचाने में, किसी को दुख पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा पहुँचाने में, किसी को सताने या दूसरों से सताने के लिए कहने में, किसी को डराने या दूसरों से डराने के लिए कहने में, किसी की जान लेने में, किसी की वस्तु न लेने में, घरों में सेंध लगाने में, धन लूटने में, चोरी करने में, राजमार्गों पर घात लगाने में, व्यभिचार करने में, झूठ बोलने में - कोई बुराई नहीं होती। यदि कोई तेज धार वाले चक्र से इस पृथ्वी पर सभी जीवित प्राणियों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई गंगा के दाहिने किनारे पर हत्या करने और दूसरों से हत्या करवाने, अंग-भंग करने और दूसरों से अंग-भंग करवाने, यातना देने और दूसरों से यातना करवाने के लिए चलता रहे, तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई गंगा के बाएँ किनारे पर चलते हुए, दान करते हुए और दूसरों से दान करवाते हुए, त्याग करते हुए और दूसरों से त्याग करवाते हुए, उस कार्य से कोई पुण्य प्राप्त नहीं होगा, कोई पुण्य नहीं मिलेगा। उदारता, आत्मसंयम, संयम और सत्यवादी वाणी के माध्यम से भी उस कार्य से कोई पुण्य प्राप्त नहीं होगा, कोई पुण्य नहीं मिलेगा।3

ख. कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'अपना काम करने या दूसरों से करवाने में, अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने में, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में, दुःख पहुँचाने या दूसरों से दुःख दिलवाने में, पीड़ा पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा दिलवाने में, डराने या दूसरों से डराने-धमकाने में, जान लेने में, बिना दी हुई वस्तु लेने में, घरों में सेंध लगाने में, धन लूटने में, चोरी करने में, राजमार्गों पर घात लगाने में, व्यभिचार करने में, झूठ बोलने में - व्यक्ति बुराई करता है। यदि कोई तेज धार वाले चक्र से इस पृथ्वी पर सभी जीवित प्राणियों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो उस कारण से बुराई उत्पन्न होगी, बुराई का आगमन होगा। यदि कोई गंगा के दाहिने किनारे पर हत्या करने और दूसरों से हत्या करवाने, अंग-भंग करने और दूसरों से अंग-भंग करवाने, यातना देने और दूसरों से यातना दिलवाने के लिए जाए, तो उस कारण से बुराई उत्पन्न होगी, बुराई का आगमन होगा। बुराई का आगमन होगा। यदि कोई गंगा के बाएँ किनारे पर चलता रहे, दान करता रहे और दूसरों से दान करवाता रहे, बलिदान करता रहे और दूसरों से बलिदान करवाता रहे, तो उस कार्य से पुण्य प्राप्त होगा, पुण्य का आगमन होगा। उदारता, आत्मसंयम, संयम और सत्यवादी वाणी के माध्यम से उस कार्य से पुण्य प्राप्त होता है, पुण्य का आगमन होता है।

"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"

"हाँ भगवान।"

ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'कर्म करने या दूसरों से कर्म करवाने में, अंग-भंग करने या दूसरों से अंग-भंग करवाने में, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में... कोई बुराई नहीं होती... उदारता, आत्म-संयम, संयम और सत्यवादी वाणी से कोई पुण्य नहीं मिलता, कोई पुण्य प्राप्त नहीं होता' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं।"

ए2. क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जो यह सोचता है कि 'कोई अगला कर्म नहीं है', उसका यह विचार गलत है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह उसका गलत संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह यह कहता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह उसका गलत वचन है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो वह कर्म का उपदेश देने वाले अरहंतों का विरोधी बन जाता है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पहले की सभी अच्छी आदतें छूट जाती हैं, जबकि बुरी आदतें प्रकट हो जाती हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, स्वयं को श्रेष्ठ दिखाना और दूसरों को नीचा दिखाना: ये अनेक दुष्ट, अकुशल कर्म उसके जीवन में आते हैं। गलत दृष्टिकोण पर आधारित खेल।

ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कोई कर्म नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि कर्म है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कर्म की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस समय बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में कर्म है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत दांव खेला है: एक तो इस समय बुद्धिमानों द्वारा उसकी आलोचना की जाती है; और दूसरा यह कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वह अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट होगा। इस प्रकार यह सुरक्षित दांव जब कोई व्यक्ति शिक्षण को ठीक से समझ नहीं पाता और उसे ठीक से अपना नहीं पाता, तो वह (केवल) एक ही पहलू को समेटता है और कुशल होने की संभावना को अधूरा छोड़ देता है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'अपराध करने या दूसरों से करवाने, अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में... व्यक्ति बुराई करता है... उदारता, आत्म-संयम, संयम और सत्यवादी वाणी के द्वारा उस कारण से पुण्य प्राप्त होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण, अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार देखते हैं, जो शुद्धि के समान हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए 'कर्म है' सोचने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह 'कर्म है' का संकल्प लेता है, तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह 'कर्म है' कहता है, तो यही उसका सही वाणी है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कर्म है', तो वह कर्म का उपदेश देने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह दूसरे को 'कर्म है' का विश्वास दिलाता है, तो यही सच्चे धम्म का विश्वास दिलाना है। और सच्चे धम्म का विश्वास दिलाने में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म का विश्वास दिलाना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना और दूसरों को नीचा न दिखाना: ये अनेक कुशल कर्म क्रियाशील हो जाते हैं। सही दृष्टिकोण पर निर्भरता में।

B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कर्म है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कर्म की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न भी हो, तब भी यह पूजनीय व्यक्ति इस समय बुद्धिमानों द्वारा अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसित है: एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा प्रयास किया है, एक तो इस समय बुद्धिमानों द्वारा उसकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

कारणता और अकारणता

ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना कारण-कार्य संबंध, बिना आवश्यक शर्त के अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना कारण-कार्य संबंध, बिना आवश्यक शर्त के शुद्ध होते हैं। कोई शक्ति नहीं है, कोई प्रयास नहीं है, कोई मानवीय ऊर्जा नहीं है, कोई मानवीय प्रयास नहीं है। सभी जीवित प्राणी, सभी जीव, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं। भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'4

बी. कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'कारण-कार्य संबंध है, प्राणियों के अपवित्र होने के लिए आवश्यक शर्त है। प्राणी कारण-कार्य संबंध और आवश्यक शर्त से अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए भी कारण-कार्य संबंध है, आवश्यक शर्त है। प्राणी कारण-कार्य संबंध और आवश्यक शर्त से शुद्ध होते हैं। बल है, प्रयास है, मानवीय ऊर्जा है, मानवीय प्रयास है। ऐसा नहीं है कि सभी जीव, सभी जीवन, सभी प्राणी, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं; या यह कि भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'

"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"

"हाँ भगवान।"

ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण या आवश्यक शर्त नहीं है... भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह प्रमुख वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं।"

ए2. क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए 'कारण-कार्य संबंध नहीं है' सोचने वाले का यह विचार गलत है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह उसका गलत संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह यह कथन कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह उसका गलत वचन है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो वह उन अरहंतों का विरोधी बन जाता है जो कारण-कार्य संबंध का उपदेश देते हैं। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसके पूर्व में जो भी अच्छे गुण थे, वे त्याग जाते हैं, जबकि बुरे गुण प्रकट होते हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, स्वयं को श्रेष्ठ दिखाना... स्वयं और दूसरों की निंदा: ये अनेक दुष्ट और अकुशल गतिविधियाँ गलत दृष्टिकोण के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कारण-कार्य संबंध नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि कारण-कार्य संबंध है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कारण-कार्य संबंध की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस लोक में बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अकारणता के सिद्धांत को मानता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत कदम उठाया है: एक तो इस लोक में कि बुद्धिमानों द्वारा उनकी इस लोक में आलोचना की जाती है, और दूसरा इस लोक में कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वे अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में पुनः प्रकट होंगे। नरक के लोकों में। इस प्रकार, यह सुरक्षित मानी जाने वाली शिक्षा, जब उसके द्वारा ठीक से समझी और अपनाई नहीं जाती, तो (केवल) एक पक्ष को ही कवर करती है और कुशल होने की संभावना को छोड़ देती है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'प्राणियों के अपवित्र होने के लिए कारण-कार्य संबंध है, आवश्यक शर्त है... ऐसा नहीं है कि सभी जीव, सभी जीवन, सभी प्राणी, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं; या भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन होकर वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण, अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं, देखते हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, इसलिए 'कारण-कार्य संबंध है' सोचने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह 'कारण-कार्य संबंध है' का संकल्प लेता है, तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह 'कारण-कार्य संबंध है' कहता है, तो यही उसका सही वचन है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध है,' तो वह कारण-कार्य सिद्धांत सिखाने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य

संबंध है, जब वह दूसरे को 'कारण-कार्य संबंध है' के लिए प्रेरित करता है, तो यही सच्चे धम्म में विश्वास दिलाना है। और सच्चे धम्म में विश्वास दिलाने में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वचन, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म में विश्वास दिलाना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना... स्वयं का सम्मान करना और दूसरों का अपमान न करना: ये अनेक कुशल गतिविधियाँ सही दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं।
B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कारणता है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा। यदि हम कारणता की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न भी हो, तब भी यह पूजनीय व्यक्ति बुद्धिमानों द्वारा वर्तमान में अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसित है: एक ऐसा व्यक्ति जो कारणता के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में कारणता है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा दांव खेला है, एक तो बुद्धिमानों द्वारा वर्तमान में उसकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वह स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

निराकार
कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'पूर्ण निराकारता नहीं है।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न, इन ब्राह्मणों और ध्यानमग्नों के ठीक विपरीत, यह कहते हैं: 'पूर्ण निराकारता है।' गृहस्थों, आप क्या सोचते हैं? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न एक दूसरे के ठीक विपरीत नहीं बोल रहे हैं?
"हाँ भगवान।"
इस संदर्भ में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता नहीं है" - मैंने ऐसा नहीं देखा है। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता है" - मैंने ऐसा नहीं जाना है। यदि मैं, बिना जाने, बिना देखे, एक पक्ष लेकर यह घोषणा करूँ कि "केवल यही सत्य है, अन्यथा सब व्यर्थ है," तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता नहीं है": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह निश्चित संभावना है कि मैं मन से निर्मित सजीव देवताओं के बीच पुनः प्रकट हो जाऊँ। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता है": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह निश्चित संभावना है कि मैं वे निराकार देवताओं के बीच फिर से प्रकट होते हैं, जिन्हें बोध ने बनाया है। दंड और शस्त्र उठाना, झगड़े, विवाद, निंदा, फूट और झूठी बातें, ये सब रूप से उत्पन्न होते प्रतीत होते हैं, न कि पूर्ण निराकारता से। इस प्रकार चिंतन करते हुए, वे रूपों के प्रति मोहभंग, रूपों के प्रति वैराग्य और रूपों के अंत के लिए साधना करते हैं।
बनने की समाप्ति
कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'जन्म की प्रक्रिया का पूर्ण अंत नहीं होता।' वहीं कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इन ब्राह्मणों और ध्यानमग्नों के ठीक विपरीत यह कहते हैं: 'जन्म की प्रक्रिया का पूर्ण अंत होता है।' गृहस्थों, आप क्या सोचते हैं? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न एक दूसरे के ठीक विपरीत नहीं बोल रहे हैं?
"हाँ भगवान।"
इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता" - मैंने ऐसा नहीं देखा है। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत होता है" - मैंने ऐसा नहीं जाना है। यदि मैं, बिना जाने, बिना देखे, एक पक्ष लेकर यह घोषणा करूँ कि "केवल यही सत्य है, अन्यथा सब व्यर्थ है," तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह पूरी संभावना है कि मैं निराकार, बोध से निर्मित देवताओं के बीच पुनः प्रकट हो जाऊँ। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत होता है": यदि उनका कथन सत्य है, संभव है कि मैं वर्तमान क्षण में पूर्णतः मुक्त हो जाऊँ। जहाँ तक उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सवाल है जो इस सिद्धांत को मानते हैं, उनका यह मत है - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता": उनका यह मत वासना, बंधन, आनंद, हड़बड़ी और आसक्ति के करीब है। जहाँ तक उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सवाल है जो इस सिद्धांत को मानते हैं, उनका यह मत है - "जन्म का पूर्ण अंत होता है": उनका यह मत वासनाहीनता, बंधनहीनता, आनंदहीनता, हड़बड़ीहीनता और आसक्तिहीनता के करीब है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, वह जन्मों के प्रति विरक्ति, जन्मों के प्रति वैराग्य और जन्मों के अंत के लिए अभ्यास करते हैं।

चार व्यक्ति

गृहस्थों, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है, न ही दूसरों को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। न तो स्वयं को पीड़ा देते हुए और न ही दूसरों को पीड़ा देते हुए, वह वर्तमान क्षण में भूख से मुक्त, बंधनमुक्त, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से निवास करता है।
और वह कौन सा व्यक्ति है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में लगा रहता है? एक ऐसा व्यक्ति है जो वस्त्रहीन तपस्वी है, रीति-रिवाजों का त्याग करता है, अपने हाथ चाटता है, बुलाए जाने पर नहीं आता, कहे जाने पर नहीं ठहरता। वह लाया हुआ या विशेष रूप से बनाया हुआ भोजन ग्रहण नहीं करता। वह भोजन के निमंत्रण को स्वीकार नहीं करता। वह किसी बर्तन के मुँह से, किसी पात्र के मुँह से, किसी दहलीज के पार से, किसी छड़ी के पार से, किसी मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, किसी गर्भवती महिला से, किसी बच्चे को दूध पिलाने वाली महिला से, किसी पुरुष के साथ रहने वाली महिला से, जहाँ से भोजन बाँटने की घोषणा की जाती है, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता है, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती हैं, वहाँ से कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह मांस, मादक पेय, शराब, या किण्वित मादक पेय ग्रहण नहीं करता। वह एक घर में एक निवाला, दो घरों में दो निवाले... सात घरों में सात निवाले तक ही सीमित रहता है। वह एक थाली भरकर, दो थाली भरकर... सात थाली भरकर प्रतिदिन भोजन करता है। वह दिन में एक बार, दो दिन में एक बार, सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर छह महीने में एक बार भोजन करता है। वह निर्धारित अंतराल पर भोजन करने के नियम का पालन करता है। वह हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल का पानी, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और फलों पर निर्भर रहता है। वह गिरे हुए फल खाता है। वह भांग, कैनवास, कफन, फेंके हुए चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, लकड़ी के बुरादे से बने कपड़े, सिर के बालों की ऊन, जंगली जानवरों की ऊन और उल्लू के पंखों से अपने वस्त्र बनाता है। वह बाल और दाढ़ी नोचने वाला है, जो अपने बाल और दाढ़ी नोचने के नियम का पालन करता है। वह खड़ा रहता है, जो बैठने से परहेज करता है। वह घुटनों के बल हाथ रखकर बैठता है, जो अपने घुटनों के बल हाथ रखकर बैठने के प्रयास का पालन करता है। वह गद्दे पर सोता है, जो पलंग पर अपना बिस्तर लगाता है। कांटों से घिरा हुआ। वह शाम को तीसरी बार स्नान करने वाला है, जो पानी में स्नान करने के अभ्यास के प्रति समर्पित रहता है। इस प्रकार, कई मायनों में, वह शरीर को पीड़ा और उत्पीड़न देने के अभ्यास के प्रति समर्पित है। इसे स्वयं को पीड़ा देने वाला और स्वयं को यातना देने के अभ्यास के प्रति समर्पित व्यक्ति कहा जाता है।
और वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को सताता है और उन्हें यातना देने के काम में लगा रहता है? उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति भेड़ काटने वाला, सूअर काटने वाला, मुर्गी काटने वाला, शिकारी, मछुआरा, चोर, जल्लाद,5 जेल का वार्डन, या कोई भी अन्य रक्तपातपूर्ण व्यवसाय करने वाला हो सकता है। इसे ही दूसरों को सताने वाला और उन्हें यातना देने के काम में लगा रहने वाला व्यक्ति कहा जाता है।
और वह कौन सा व्यक्ति है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने में लगा रहता है? एक उदाहरण है, एक व्यक्ति प्रधान राजा या धनी ब्राह्मण है। उसने नगर के पूर्व में एक नया मंदिर बनवाया, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, खुरदरी खाल का वस्त्र पहना, अपने शरीर पर घी और तेल मल लिया, और हिरण के सींग से अपनी पीठ खुजलाई। वह अपनी मुख्य रानी और ब्राह्मण महापुजारी के साथ नए मंदिर में प्रवेश करता है। वहाँ वह घास से ढकी नंगी ज़मीन पर अपना बिस्तर लगाता है। राजा एक गाय के पहले थन के दूध से अपना जीवन यापन करता है, जिसके साथ एक बछड़ा भी है; रानी दूसरे थन के दूध से; ब्राह्मण महापुजारी तीसरे थन के दूध से। चौथे थन का दूध वे आग में डाल देते हैं। बछड़ा बचे हुए दूध से अपना जीवन यापन करता है।
वह कहता है, 'बलिदान के लिए इतने बैल काटे जाएँ। इतने बछड़े... इतनी बछियाएँ... इतनी बकरियाँ... इतनी भेड़ें... बलिदान के लिए इतने घोड़े काटे जाएँ। 7 बलिदान के खंभों के लिए इतने पेड़ काटे जाएँ; बलिदान की घास के लिए इतनी घास काटी जाए।' और उसके दास, सेवक और मजदूर रोते-रोते, दंड और भय से प्रेरित होकर तैयारी करते हैं। इसे वह व्यक्ति कहा जाता है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को यातना देने में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को यातना देने में लगा रहता है।
और वह कौन सा व्यक्ति है जो न तो स्वयं को कष्ट देता है और न ही स्वयं को कष्ट देने में लिप्त रहता है, न ही दूसरों को कष्ट देता है और न ही दूसरों को कष्ट देने में लिप्त रहता है; जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट न देते हुए, भूख से मुक्त, असीम, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से वर्तमान क्षण में निवास करता है?
"ऐसा भी मामला है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"
"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान

पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण

जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।

"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"

वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।

विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।

"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"

"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"

वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।

वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।

वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।

वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।

वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।

वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।

वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।

वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।

वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।

वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।

"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

संयम की भावना

जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दु:ख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता,

जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

सजगता और सतर्कता

आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पांच बाधाओं - विवेक को कमजोर करने वाली जागरूकता की अपूर्णताओं - का त्याग करने के बाद, कामुकता से पूरी तरह अलग होकर, अकुशल मानसिक गुणों से अलग होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है।"

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन।

फिर, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह शांत, सचेत और सजग रहता है और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'शांत और सचेत रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।'

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के गायब होने के साथ - वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समता और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख।

तीन ज्ञान

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों (यानी पूर्व जन्मों) के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग। वह स्मरण करता है, 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ।' उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। जीवन। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और उच्च्य, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह वास्तविक रूप से यह अनुभव करता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्‌गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्‌गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार ज्ञान और दृष्टि से उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह यह अनुभव करता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

"इसे वह व्यक्ति कहते हैं जो न तो स्वयं को कष्ट देता है और न ही स्वयं को कष्ट देने में लिप्त रहता है, न ही दूसरों को कष्ट देता है और न ही दूसरों को कष्ट देने में लिप्त रहता है। न तो स्वयं को कष्ट देकर और न ही दूसरों को कष्ट देकर, वह वर्तमान क्षण में भूख से मुक्त, बंधनमुक्त, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से निवास करता है।"

यह सुनकर साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, "हे महान गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। हम गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु समुदाय की शरण में आते हैं। गुरु गौतम हमें, जो उनके पास शरण लेने आए हैं, आज से जीवन भर याद रखें।"

7.भिक्खु-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.1अम्बालत्थिका-राहुलोवदा सुत्त(61)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास, बांस के जंगल में, गिलहरियों के भोजन स्थल पर ठहरे हुए थे।

उस समय पूज्य राहुल प्रथम मैंगो स्टोन में ठहरे हुए थे। फिर दोपहर ढलते समय भगवान एकांतवास से उठकर मैंगो स्टोन स्थित पूज्य राहुल के पास गए। पूज्य राहुल ने उन्हें दूर से आते देखा और देखते ही उनके लिए आसन और पैर धोने का पानी रख दिया। भगवान उस आसन पर बैठ गए और अपने पैर धो लिए। पूज्य राहुल ने भगवान को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने जल पात्र में थोड़ा सा पानी छोड़कर पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम जल पात्र में बचा हुआ यह थोड़ा सा पानी देख रहे हो?"

"जी श्रीमान।"

"जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें चिंतनशीलता का स्तर इतना कम होता है।"

बचे हुए थोड़े से पानी को फेंकते हुए भगवान ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देखते हो कि यह थोड़ा सा बचा हुआ पानी कैसे फेंक दिया जाता है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें जो भी चिंतनशील तत्व बचा होता है, वह पल भर में ही नष्ट हो जाता है।"

पानी के पात्र को उल्टा करके भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देख रहे हो कि यह पानी का पात्र कैसे उल्टा हो गया है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें मौजूद चिंतनशील स्वभाव का अंश पल भर में उलट जाता है।"

पानी के पात्र को सीधा करने के बाद, भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देखते हो कि यह पानी का पात्र कितना खाली और खोखला है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें चिंतनशील होने का जो भी अंश होता है, वह ठीक उसी तरह खोखला और बेकार हो जाता है।"

"राहुला, यह एक शाही हाथी की तरह है: विशाल, श्रेष्ठ नस्ल का, युद्धों का अभ्यस्त, इसके दांत रथ के खंभों जैसे हैं। युद्ध में जाने के बाद, यह अपने अगले और पिछले पैरों, अपने आगे के और पिछले हिस्सों, अपने सिर, कान, दांत और पूंछ का इस्तेमाल करता है, लेकिन अपनी सूंड की रक्षा करता रहता है। हाथी प्रशिक्षक यह देखता है और सोचता है, 'इस शाही हाथी ने राजा के लिए अपना प्राण नहीं दिए।' लेकिन जब शाही हाथी... युद्ध में जाने के बाद, अपने अगले और पिछले पैरों, अपने आगे के और पिछले हिस्सों, अपने सिर, कान, दांत, पूंछ और अपनी सूंड का इस्तेमाल करता है, तो प्रशिक्षक यह देखता है और सोचता है, 'इस शाही हाथी ने राजा के लिए अपना प्राण दे दिए हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह न करे।'"

"इसी प्रकार, राहुल, जब कोई जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, तो मैं तुमसे कहता हूँ, वह कोई बुराई नहीं करेगा। इसलिए, राहुल, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए, 'मैं मजाक में भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलूंगा।'"

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है: दर्पण किस काम आता है?"

"चिंतन के लिए, महोदय।"

"इसी प्रकार, हे राहुल, शारीरिक क्रियाएं, मौखिक क्रियाएं और मानसिक क्रियाएं बार-बार चिंतन के साथ की जानी चाहिए।"

जब भी आप कोई शारीरिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'यह शारीरिक क्रिया जो मैं करना चाहता हूँ - क्या इससे मुझे, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा; यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी शारीरिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कोई कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल शारीरिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी शारीरिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई शारीरिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह शारीरिक क्रिया, जो मैं कर रहा हूँ, स्वयं को कष्ट पहुँचा रही है, दूसरों को कष्ट पहुँचा रही है, या दोनों को? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं को कष्ट पहुँचा रही है, दूसरों को कष्ट पहुँचा रही है, या दोनों को... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।'

"कोई शारीरिक क्रिया करने के बाद, आपको उस पर विचार करना चाहिए: 'मैंने जो शारीरिक क्रिया की है - क्या उससे मुझे, दूसरों को, या दोनों को कष्ट हुआ? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको, दूसरों को, या दोनों को कष्ट हुआ; यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इसे स्वीकार करना चाहिए, इसे प्रकट करना चाहिए, इसे गुरु या पवित्र जीवन में किसी ज्ञानी साथी के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। स्वीकार करने के बाद... आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल शारीरिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

जब भी आप कोई मौखिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मौखिक क्रिया, जो मैं करने जा रहा हूँ, स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाएगी? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा; यह एक अकुशल मौखिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी मौखिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। परन्तु यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल मौखिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी मौखिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई मौखिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मौखिक क्रिया मेरे स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों का कारण बन रही है? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों का कारण बन रही है... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।

"जब आप कोई मौखिक क्रिया करें, तो उस पर विचार करें: 'मैंने जो यह मौखिक क्रिया की है - क्या इससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों; यह एक अकुशल मौखिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इसे स्वीकार करना चाहिए, इसे प्रकट करना चाहिए, इसे गुरु या पवित्र जीवन में किसी ज्ञानवान साथी के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। स्वीकार करने के बाद... आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल मौखिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

जब भी आप कोई मानसिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'यह मानसिक क्रिया जो मैं करना चाहता हूँ - क्या इससे मुझे स्वयं कष्ट होगा, दूसरों को कष्ट होगा, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको स्वयं कष्ट होगा, दूसरों को कष्ट होगा, या दोनों; यह एक अकुशल मानसिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी मानसिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। परन्तु यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल मानसिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी मानसिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई मानसिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मानसिक क्रिया स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचा रही है? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचा रही है... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।

"कोई मानसिक क्रिया करने के बाद, आपको उस पर विचार करना चाहिए: 'मैंने जो मानसिक क्रिया की है - क्या उससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों; यह एक अकुशल मानसिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इससे दुखी, लज्जित और घृणा महसूस करनी चाहिए। दुखी, लज्जित और घृणा महसूस करते हुए, आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल मानसिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

"राहुला, अतीत में जिन ब्राह्मणों और ध्यानियों ने अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध किया, उन्होंने ऐसा अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार चिंतन करके इसी प्रकार किया।"

भविष्य में जो भी ब्राह्मण और ध्यानमग्न अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध करेंगे, वे अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार इसी प्रकार चिंतन करके ऐसा करेंगे।

"वर्तमान में वे सभी ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति जो अपने शारीरिक कर्मों, मौखिक कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध करते हैं, वे ऐसा अपने शारीरिक कर्मों, मौखिक कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार चिंतन करके इसी प्रकार करते हैं।"

"इस प्रकार, राहुल, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं बार-बार चिंतन करके अपने शारीरिक कर्मों को शुद्ध करूँगा। मैं बार-बार चिंतन करके अपने वाणी कर्मों को शुद्ध करूँगा। मैं बार-बार चिंतन करके अपने मानसिक कर्मों को शुद्ध करूँगा।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य राहुल भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.2महा-राहुलोवादा सुत्त(62)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। तब भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी गए। और पूज्य राहुल भी सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर भगवान बुद्ध के ठीक पीछे-पीछे भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी गए।1 तब भगवान बुद्ध ने राहुल की ओर मुड़कर देखा और उनसे कहा, "राहुल, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"हे परम पूज्य, बस रूप धारण करो? हे सुप्रसिद्ध आत्मा, बस रूप धारण करो?"

"रूप, राहुल, और भावना और बोध और रचनाएँ और चेतना।"

तब पूज्य राहुल के मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उपदेश दिए जाने के बाद, आज भला कौन भिक्षा मांगने शहर जाएगा?" अतः वे वापस मुड़े और एक वृक्ष के नीचे बैठकर, पाँव जोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, एकाग्र मन से ध्यान केंद्रित किया।

आदरणीय सारिपुत्त ने आदरणीय राहुल को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा, उनके पैर पालथी मारकर मोड़े हुए थे, शरीर सीधा था और वे एकाग्रचित्त थे। उन्हें देखकर उन्होंने राहुल से कहा, "राहुल, श्वास-प्रश्वास की जागरूकता का अभ्यास करो। श्वास-प्रश्वास की जागरूकता का अभ्यास करने से बहुत लाभ होता है।"

फिर आदरणीय राहुल दोपहर बाद अपने एकांतवास से बाहर आकर भगवान बुद्ध के पास गए और प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, श्वास-प्रश्वास पर ध्यान कैसे विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि वह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"राहुला, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।' राहुल, ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? पृथ्वी गुण, जल गुण, अग्नि गुण, वायु गुण और आकाश गुण।"

"और पृथ्वी का गुण क्या है? पृथ्वी का गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक पृथ्वी का गुण क्या है? 3 अपने भीतर की कोई भी चीज़ जो कठोर, ठोस और [लालसा से] पोषित है: सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, झिल्ली, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, पेट की सामग्री, मल, या अपने भीतर की कोई भी अन्य चीज़ जो कठोर, ठोस और पोषित है: इसे आंतरिक पृथ्वी का गुण कहते हैं। अब आंतरिक पृथ्वी का गुण और बाह्य पृथ्वी का गुण दोनों ही पृथ्वी के गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह पृथ्वी के गुण से विरक्त हो जाता है और पृथ्वी के गुण को मन से विलीन कर देता है।"

और जल का गुण क्या है? जल का गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक जल का गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक वस्तु, जो जलमय, तरल और निरंतर बनी रहती है: पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, तेल, लार, बलगम, जोड़ों का तेल, मूत्र, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, जो जलमय, तरल और निरंतर बनी रहती है: इसे आंतरिक जल का गुण कहते हैं। अब आंतरिक जल का गुण और बाह्य जल का गुण दोनों ही वास्तव में जल का गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह जल के गुण से विरक्त हो जाता है और जल के गुण को मन से विलीन कर देता है।

और अग्नि गुण क्या है? अग्नि गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक अग्नि गुण क्या है? कोई भी आंतरिक वस्तु, जो स्वयं से संबंधित हो, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर बनी रहे: वह जिससे शरीर को गर्मी मिलती है, वृद्धावस्था होती है और बुखार से क्षीण होता है; और वह जिससे खाया, पिया, चबाया और स्वाद लिया गया भोजन ठीक से पचता है; या कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, जो स्वयं के भीतर हो, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर बनी रहे: इसे आंतरिक अग्नि गुण कहते हैं। अब आंतरिक अग्नि गुण और बाह्य अग्नि गुण दोनों ही वास्तव में अग्नि गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह अग्नि गुण से विरक्त हो जाता है और अग्नि गुण को मन से विलीन कर देता है।

और वायु गुण क्या है? वायु गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक वायु गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक चीज, जो वायु है, वायुमय है और निरंतर बनी रहती है: ऊपर की ओर बहने वाली वायु, नीचे की ओर बहने वाली वायु, पेट में वायु, आंतों में वायु, शरीर में प्रवाहित होने वाली वायु, श्वास लेना और छोड़ना, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक चीज, जो वायु है, वायुमय है और निरंतर बनी रहती है: इसे आंतरिक वायु गुण कहते हैं। अब आंतरिक वायु गुण और बाह्य वायु गुण दोनों ही वायु गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह वायु गुण से विरक्त हो जाता है और वायु गुण को मन से विलीन कर देता है।

और स्थानिक गुण क्या है? स्थानिक गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक स्थानिक गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक वस्तु, वह स्थानिक और स्थायी है: कान के छिद्र, नाक के छिद्र, मुख, वह मार्ग जिससे खाया, पिया, ग्रहण किया और चखा जाता है, जहाँ वह एकत्रित होता है और जहाँ से वह नीचे से उत्सर्जित होता है, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, वह स्थानिक और स्थायी है: इसे आंतरिक स्थानिक गुण कहते हैं। अब आंतरिक स्थानिक गुण और बाह्य स्थानिक गुण दोनों ही स्थानिक गुण हैं। और इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखता है, तो वह स्थानिक गुण से विरक्त हो जाता है और उसे मन से विलीन कर देता है।

"राहुला, पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करो। क्योंकि जब तुम पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करोगे, तो उत्पन्न होने वाले सुखद और अप्रिय इंद्रियबोध तुम्हारे मन पर हावी नहीं रहेंगे। जैसे जब लोग पृथ्वी पर स्वच्छ या अस्वच्छ पदार्थ - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - फेंकते हैं, तो पृथ्वी उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब तुम पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करोगे, तो उत्पन्न होने वाले सुखद और अप्रिय इंद्रियबोध तुम्हारे मन पर हावी नहीं रहेंगे।"

जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करें। जब आप जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जैसे जब लोग पानी में साफ या गंदी चीजों को धोते हैं - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - तो पानी उनसे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होता; उसी प्रकार, जब आप जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।

अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जिस प्रकार अग्नि जब स्वच्छ या अस्वच्छ किसी भी पदार्थ—मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त—को जलाती है, तो वह उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब आप अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।

"वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास करें। जब आप वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जैसे जब हवा किसी भी स्वच्छ या अस्वच्छ पदार्थ - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - को उड़ाती है, तो वह उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब आप वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।"

"स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहतीं। जिस प्रकार स्थान कहीं स्थिर नहीं होता, उसी प्रकार जब आप स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहतीं।"

"सद्भावना का ध्यान विकसित करो। क्योंकि जब तुम सद्भावना का ध्यान विकसित करोगे, तो दुर्भावना अपने आप दूर हो जाएगी।"

करुणा की ध्यान साधना का विकास करो। क्योंकि जब तुम करुणा की ध्यान साधना का विकास करोगे, तो क्रूरता का त्याग हो जाएगा।

"प्रशंसा की ध्यान साधना विकसित करें। क्योंकि जब आप प्रशंसा की ध्यान साधना विकसित कर रहे होते हैं, तो आक्रोश अपने आप दूर हो जाता है।"

"समभाव की ध्यान साधना विकसित करो। क्योंकि जब तुम समभाव की ध्यान साधना विकसित करोगे, तो चिड़चिड़ापन दूर हो जाएगा।"

"अनाकर्षक चीजों पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप अनाकर्षक चीजों पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करते हैं, तो वासना का त्याग हो जाता है।"

अस्थिरता की अनुभूति का ध्यान विकसित करें। क्योंकि जब आप अस्थिरता की अनुभूति का ध्यान विकसित कर रहे होंगे, तो 'मैं हूं' का अहंकार त्याग जाएगा।

"सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करें। सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास, जब विकसित और नियमित किया जाता है, तो बहुत फलदायी और बहुत लाभदायक होता है।"

"और हे राहुल, श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान को सबसे आगे रखता है।4 वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"

"[1] लंबी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ।' [2] या छोटी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस छोड़ूँगा।' [4] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस छोड़ूँगा।'

"[5] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोडूंगा।' [6] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोडूंगा।' [7] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोडूंगा।'

[8] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शांत मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शांत मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।'

"[9] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास छोड़ूंगा।' [10] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [11] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [12] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"[13] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [14] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' [15] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' [16] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"हे राहुल, इस प्रकार से श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है, जिससे महान फल और महान लाभ प्राप्त होते हैं।"

"जब इस प्रकार से सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है, तो अंतिम सांसें भी समाप्त होते ही ज्ञात हो जाती हैं, अज्ञात नहीं।"6

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य राहुल भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.3कुल-मालुंक्य सुत्त(63)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक बार भगवान सावत्थी में अनाथपिंडिका उद्यान के जेतवन मठ में निवास कर रहे थे। तभी पूज्य मालुंक्यपुत्त एकांतवास में ध्यानमग्न थे, तभी उनके मन में एक विचार आया, जो इस प्रकार है:

ये सिद्धांत जिन्हें भगवान बुद्ध ने स्पष्ट नहीं किया है, खारिज कर दिया है और अस्वीकार कर दिया है—कि संसार शाश्वत है, कि संसार शाश्वत नहीं है, कि संसार सीमित है, कि संसार अनंत है, कि आत्मा और शरीर एक हैं, कि आत्मा एक है और शरीर दूसरा, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते और नहीं भी रहते—भगवान बुद्ध ने मुझे इन सिद्धांतों को स्पष्ट नहीं किया है। और यह तथ्य कि भगवान बुद्ध ने मुझे इन्हें स्पष्ट नहीं किया है, मुझे प्रसन्न नहीं करता और न ही मुझे भाता है। इसलिए मैं भगवान बुद्ध के निकट जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, या संसार सीमित है, या संसार अनंत है, या आत्मा और शरीर एक हैं, या आत्मा एक है और शरीर दूसरा, या यदि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, या मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, या मृत्यु के बाद विद्यमान और विद्यमान दोनों रहते हैं, या मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं, तो मैं भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट नहीं करते कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं, तो मैं धार्मिक प्रशिक्षण त्यागकर गृहस्थ जीवन में लौट जाऊँगा।

तब पूज्य मालुंक्यापुत्त संध्याकाल में अपने एकांतवास से उठे और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे; और उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया, फिर आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। आदरपूर्वक एक तरफ बैठे हुए, पूज्य मालुंक्यापुत्त ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:--

"आदरणीय महोदय, अभी-अभी जब मैं एकांत में ध्यानमग्न था, तब मेरे मन में एक विचार आया, जो इस प्रकार है: 'ये सिद्धांत जिन्हें भगवान बुद्ध ने स्पष्ट नहीं किया है, खारिज कर दिया है और अस्वीकार कर दिया है - कि संसार शाश्वत है, कि संसार शाश्वत नहीं है, ... कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है - भगवान बुद्ध ने मुझे स्पष्ट नहीं किया है। और यह तथ्य कि भगवान बुद्ध ने मुझे स्पष्ट नहीं किया है, मुझे प्रसन्न नहीं करता और न ही मुझे भाता है। मैं भगवान बुद्ध के निकट जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है, तो मैं भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट नहीं कर दें कि संसार शाश्वत है, या कि यदि संसार शाश्वत नहीं है, ...या संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन होता है, तो मैं धार्मिक प्रशिक्षण त्यागकर एक गृहस्थ के निम्न जीवन में लौट जाऊंगा।'

यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संसार शाश्वत है, तो वे मुझे स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत है; यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संसार शाश्वत नहीं है, तो वे मुझे स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत नहीं है। यदि भगवान बुद्ध न तो यह जानते हैं कि संसार शाश्वत है और न ही यह कि संसार शाश्वत नहीं है, तो जो व्यक्ति नहीं जानता या जिसके पास वह अंतर्दृष्टि नहीं है, उसके लिए एकमात्र उचित बात यही कहना है, 'मैं नहीं जानता; मेरे पास वह अंतर्दृष्टि नहीं है।'

यदि भगवान जानते हैं कि संसार सीमित है, तो...

यदि भगवान जानते हैं कि आत्मा और शरीर एक समान हैं, तो...

यदि भगवान को यह पता हो कि संत मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं, तो...

यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, तो कृपया मुझे यह स्पष्ट करें कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते; यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, तो कृपया मुझे यह स्पष्ट करें कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते। यदि भगवान बुद्ध यह भी नहीं जानते कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं रहते, या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, तो जो व्यक्ति नहीं जानता या जिसके पास यह अंतर्दृष्टि नहीं है, उसके लिए एकमात्र उचित बात यही कहना है, 'मैं नहीं जानता; मेरे पास यह अंतर्दृष्टि नहीं है।'

"हे मालुंक्यपुत्त, क्या मैंने कभी तुमसे कहा है, 'आओ, मालुंक्यपुत्त, मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करो, और मैं तुम्हें यह स्पष्ट कर दूंगा कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन रहता है'?"

"जी नहीं, बिल्कुल नहीं, आदरणीय महोदय।"

या क्या आपने कभी मुझसे कहा है, 'आदरणीय महोदय, मैं भगवान के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा, इस शर्त पर कि भगवान मुझे यह स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन रहता है'?

"जी नहीं, बिल्कुल नहीं, आदरणीय महोदय।"

"तो हे मालुंक्यपुत्त, तुम यह स्वीकार करते हो कि मैंने तुमसे यह नहीं कहा, 'आओ, मालुंक्यपुत्त, मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करो और मैं तुम्हें यह स्पष्ट कर दूँगा कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है;' और फिर तुमने मुझसे यह भी नहीं कहा, 'आदरणीय महोदय, मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा, इस शर्त पर कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है।' ऐसा होने पर, हे व्यर्थ मनुष्य, तुम इतने क्रोधित होकर किसकी निंदा कर रहे हो?"

"मालुनक्यपुत्त, जो कोई यह कहे कि 'मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते;' - वह व्यक्ति, मालुनक्यपुत्त, तथागत द्वारा उसे यह स्पष्ट करने से पहले ही मर जाएगा।"

"ऐसा ही है, मालुंक्यपुत्त, मानो किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर से चोट लगी हो, और उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए किसी चिकित्सक या सर्जन की व्यवस्था करें; और वह बीमार व्यक्ति कहे, 'जब तक मुझे यह पता न चल जाए कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति योद्धा जाति का है, ब्राह्मण जाति का है, किसान जाति का है या मजदूर जाति का है, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे उस व्यक्ति का नाम और वह किस कबीले से संबंधित है, यह पता नहीं चल जाता, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति लंबा था, छोटा था या मध्यम कद का था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति काला था, सांवला था या पीली चमड़ी वाला था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति इस या उस गांव, कस्बे या शहर का था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि जिस धनुष से मुझे चोट लगी है वह कापा है या कोडंडा, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि जिस धनुष की डोरी से मुझे चोट लगी है वह अबाबील-जड़ी बूटी, बांस, स्नायु, मारुवा या दूध-वनस्पति से बनी है, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर कच्चा था या रोपिमा, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर गिद्ध, बगुले, बाज़, मोर या सिथिलहनु के पंखों से बना था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर बैल, भैंस, रुरु हिरण या बंदर की नसों से लिपटा हुआ था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह कहे, 'जब तक मुझे यह पता न चल जाए कि मुझे घायल करने वाला तीर साधारण तीर था, या पंजे के आकार का तीर था, या वेकंद तीर था, या लोहे का तीर था, या बछड़े के दांत का तीर था, या करावीरापट्टा तीर था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।' वह मालुंक्यापुत्त, यह जाने बिना ही...

"ठीक इसी प्रकार, मालुंक्यापुत्त, जो कोई यह कहे कि 'मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं;' - मालुंक्यापुत्त, वह व्यक्ति तथागत द्वारा उसे यह स्पष्ट करने से पहले ही मर जाएगा।"

"मालुंक्यापुत्त, धार्मिक जीवन इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संसार शाश्वत है; न ही यह इस सिद्धांत पर निर्भर करता है कि संसार शाश्वत नहीं है। चाहे यह सिद्धांत प्रचलित हो, मालुंक्यापुत्त, कि संसार शाश्वत है या नहीं, जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, विलाप, कष्ट, शोक और निराशा तो शेष रहते ही हैं, जिनके निवारण के लिए मैं इस जीवन में उपाय बता रहा हूँ।"

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संसार सीमित है; . . ."

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि आत्मा और शरीर एक समान हैं; . . ."

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संत मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहते हैं; . . ."

"मालुनक्यापुत्त, धार्मिक जीवन इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी; न ही यह इस सिद्धांत पर निर्भर करता है कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते। चाहे यह सिद्धांत मान्य हो, मालुनक्यापुत्त, कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी, या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, फिर भी जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, शोक, विलाप, कष्ट, दुःख और निराशा शेष रहते हैं, जिनके निवारण के लिए मैं इस जीवन में उपाय बता रहा हूँ।"

"इसलिए, मालुंक्यपुत्त, हमेशा ध्यान रखो कि मैंने क्या स्पष्ट नहीं किया है और क्या स्पष्ट किया है। और, मालुंक्यपुत्त, मैंने क्या स्पष्ट नहीं किया है? मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है, मालुंक्यपुत्त, कि संसार शाश्वत है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार शाश्वत नहीं है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार सीमित है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार अनंत है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आत्मा और शरीर एक हैं; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आत्मा एक है और शरीर दूसरी; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते। और क्यों?" मालुंक्यापुत्त, क्या मैंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया? क्योंकि, मालुंक्यापुत्त, इससे कोई लाभ नहीं होता, न ही इसका धर्म के मूल सिद्धांतों से कोई संबंध है, न ही यह विरक्ति, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, अलौकिक शक्तियों, परम ज्ञान और निर्वाण की ओर प्रवृत्त होता है; इसलिए मैंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

"और हे मालुंक्यपुत्त, मैंने क्या समझाया है? हे मालुंक्यपुत्त, मैंने दुख समझाया है; दुख का कारण समझाया है; दुख का निवारण समझाया है; और दुख निवारण का मार्ग समझाया है। और हे मालुंक्यपुत्त, मैंने यह क्यों समझाया है? क्योंकि हे मालुंक्यपुत्त, इससे लाभ होता है, यह धर्म के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे विरक्ति, वासना का अभाव, निर्वाह, शांति, ज्ञान, परम बुद्धि और निर्वाण प्राप्त होता है; इसलिए मैंने इसे समझाया है। तदनुसार, हे मालुंक्यपुत्त, हमेशा ध्यान रखो कि मैंने क्या नहीं समझाया है और क्या समझाया है।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा; और आदरणीय मालुनक्यपुत्त प्रसन्न होकर भगवान बुद्ध के भाषण की प्रशंसा करने लगे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.4 महा-मालुंक्य सुत्त(64)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपियोइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम्हें मेरे द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधन याद हैं?" यह सुनकर पूज्य मलंख्यपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, "परमेश्वर, मुझे भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधन याद हैं।" मलंख्यपुत्त, तुम्हें मेरे द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों में से क्या याद है? पूज्य परमेश्वर, मुझे आत्म-प्रेम, संशय, सद्गुणों को सर्वोच्च लक्ष्य मानना, इंद्रिय-संबंध और क्रोध जैसे इंद्रिय-संबंध के निम्न बंधन याद हैं, जिनका उपदेश भगवान बुद्ध ने दिया था। मुझे भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के ये पाँच निम्न बंधन याद हैं।

मालुंख्यपुत्त, आप किसे जानते हैं कि मैं इस प्रकार इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों का उपदेश दे रहा हूँ? क्या अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस मूर्खतापूर्ण उदाहरण पर आपत्ति नहीं करेंगे? एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो आत्म-बोध भी नहीं होता। आत्म-बोध का विचार कैसे उत्पन्न हो सकता है? आत्म-बोध की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ उसमें प्रवेश कर जाती हैं। [1] मालुंख्यपुत्त, एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो विचार भी नहीं होते। विचारों के बारे में उसके मन में संदेह कैसे उत्पन्न हो सकता है? संदेह करने की अंतर्निहित प्रवृत्ति उसमें प्रवेश कर जाती है। एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो सद्गुण भी नहीं होते। सद्गुणों को उच्चतर कैसे माना जा सकता है? सद्गुणों को उच्चतर मानने की अंतर्निहित प्रवृत्ति उसमें प्रवेश कर जाती है। मालुंख्यपुत्त, एक शिशु में

तो इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ भी नहीं होतीं। इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं में रुचि कैसे हो सकती है? इंद्रिय-संबंधी रुचि के लिए लोभ की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ उसमें प्रवेश कर जाती हैं। मालुंख्यपुत्त, एक शिशु के लिए प्राणी मायने नहीं रखते। वह प्राणियों के प्रति क्रोध कैसे रख सकता है? क्रोध करने की छिपी हुई प्रवृत्तियाँ तो उसमें प्रकट हो ही जाती हैं। मलंख्यपुत्त, क्या अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस मूर्खतापूर्ण उदाहरण पर आपत्ति नहीं उठाएँगे? तब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, यह इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का उपदेश देने का समय है। जो भिक्षु इसे भगवान बुद्ध से सुनेंगे, वे इसे याद रखेंगे।" तब आनंद, सुनो, मैं उपदेश देता हूँ, भगवान बुद्ध ने कहा और पूज्य आनंद सहमत हो गए।

आनंद, वह साधारण मनुष्य जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और अपने उपदेशों में निपुण न होने वाले और न ही प्रशिक्षित महान पुरुषों को नहीं देखा है, अपने अहंकार से ग्रस्त मन में रहता है। वह उस अहंकार से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वह अहंकार इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहता है। वह संदेह से ग्रस्त मन में रहता है, उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वे संदेह इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहते हैं। वह सद्गुणों को उच्च स्थान देने वाले मन में रहता है, सद्गुणों के प्रति उत्पन्न सम्मान से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। सद्गुणों के प्रति उच्च सम्मान इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित हो जाता है। वह कामुक लोभ से ग्रस्त मन में रहता है, उत्पन्न कामुक लोभ से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वह कामुक लोभ इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहता है। क्रोध से ग्रस्त मन के साथ रहना, उत्पन्न क्रोध से मुक्ति का वास्तविक मार्ग नहीं जानता। वह क्रोध इंद्रिय जगत के निम्न बंधन की तरह दृढ़ और अनियंत्रित बना रहता है।

आनंद, जो एक विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य हैं, जिन्होंने श्रेष्ठ पुरुषों और अपने शिक्षण में निपुण और प्रशिक्षित महान पुरुषों को देखा है, उनका मन आत्म-निरीक्षण से ग्रस्त नहीं होता। वे आत्म-निरीक्षण से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। उनका आत्म-निरीक्षण, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है। संदेह से ग्रस्त मन न रखते हुए, वे संदेह से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। उनके संदेह, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाते हैं। सद्गुणों को उच्चतर न समझते हुए, वे सद्गुणों के प्रति उत्पन्न उच्च सम्मान से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है, और सद्गुणों के प्रति उच्च सम्मान, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है। कामुक लोभ से ग्रस्त न होने वाले मन रखते हुए, वे कामुक लोभ से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। वह कामुक लोभ, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही उनसे लुप्त हो जाता है। क्रोध से ग्रस्त न होने वाले मन रखते हुए, वे क्रोध से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है, और वह क्रोध, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है।

आनंद, यही वह मार्ग और विधि है जिससे इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार किया जा सकता है। इस मार्ग और विधि को अपनाए बिना, केवल जानकर और देखकर भी, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार करना संभव नहीं है। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी विशाल वृक्ष के पास आए, जिसमें भीतरी लकड़ी हो, और वह छाल और रस को हटाए बिना ही भीतरी लकड़ी काट ले। यह संभव नहीं है, उसी प्रकार, इस मार्ग और विधि को अपनाए बिना, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जानना, देखना और पार करना संभव नहीं है। आनंद, यही वह मार्ग और विधि है जिससे इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार किया जा सकता है। इस मार्ग और विधि को अपनाकर, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जानना, देखना और पार करना संभव है। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी विशाल वृक्ष के पास आए, जिसमें भीतरी लकड़ी हो, और वह छाल और रस को काटकर फिर भीतरी लकड़ी ले ले। यह संभव है। उसी प्रकार, इस मार्ग और विधि को अपनाकर, आप इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जान, देख और पार कर सकते हैं। जैसे कोई दुर्बल व्यक्ति उफनती हुई गंगा नदी के किनारे आकर कहे कि मैं अपने हाथों से नदी की धारा काटकर सुरक्षित रूप से नदी पार कर लूँगा। यह संभव नहीं कि वह नदी पार कर ले। उसी प्रकार, जब आत्म-दर्शन के निवारण का उपदेश दिया जाता है, तो मन उत्तेजित होकर प्रसन्न नहीं होता और मुक्त होने के लिए स्थिर नहीं हो जाता। इसे उस दुर्बल व्यक्ति का स्वभाव समझना चाहिए। जैसे कोई बलवान व्यक्ति उफनती हुई गंगा नदी के किनारे आकर कहे कि मैं अपने हाथों से नदी की धारा काटकर सुरक्षित रूप से नदी पार कर लूँगा। यह संभव है कि वह नदी पार कर ले। उसी प्रकार, हे आनंद, जब आत्म-दर्शन के निवारण का उपदेश दिया जाता है, तो मन उत्तेजित होकर प्रसन्न नहीं होता और मुक्त होने के लिए स्थिर नहीं हो जाता, इसे बलवान व्यक्ति का स्वभाव समझना चाहिए।

आनंद, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को दूर करने का मार्ग और विधि क्या है? आनंद, भिक्षु मन को पूर्णतः एकांत में रखकर, दोषों को दूर करते हुए, सभी शारीरिक पापों का निवारण करता है जो पश्चाताप उत्पन्न करते हैं। फिर मन को इंद्रिय संबंधी विचारों और दोषों से विरक्त करके, चिंतनशील विचारों और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता में लीन होकर प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है। उसमें स्थापित होकर वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों पर चिंतन करता है; वे सभी क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य और आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी प्रेमों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत*1)। उस मन से वह इच्छाओं का नाश करता है। यदि वह उन्हीं चीजों के लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं का

नाश नहीं करता, तो वह पांच निम्न बंधनों, इंद्रिय जगत के बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे नहीं बढ़ता। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों पर विजय पाने की एक विधि है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, आंतरिक रूप से शांत मन से, एक बिंदु पर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से रहित और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में रहता है। इस अवस्था को प्राप्त करके, वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों को क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य और आत्माहीन मानता है। तब वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह लोभ और उन्हीं चीजों के प्रति आसक्ति के कारण होने वाली इच्छाओं का नाश नहीं करता, तो इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ ही वह स्वतः ही उत्पन्न हो उठता है और आगे नहीं बढ़ता। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों पर विजय पाने का एक तरीका है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश में निवास करता है। इसे प्राप्त करके, वह सभी भौतिक चीजों, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष चीजों, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों पर विचार करता है, जो क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य, आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उच्च है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह उन्हीं चीजों के प्रति लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं के नाश की ओर नहीं बढ़ता है, तो वह पांच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए उठ खड़ा होता है। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों पर विजय पाने का एक तरीका है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो स्थान की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, असीम चेतना के साथ चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। चेतना के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, जहाँ कुछ भी नहीं है, वह शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। इसे प्राप्त करके वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी सचेत संकेतों पर विचार करता है: ये सभी क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, पीड़ा, पराये, विनाश के लिए नियत, शून्य, आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह उन्हीं वस्तुओं के प्रति लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं का नाश नहीं करता है, तो वह पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे नहीं बढ़ पाता है। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों को दूर करने की एक विधि है।

आदरणीय महोदय, जब इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों के नाश का यही मार्ग और विधि है, तो एक भिक्षु मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मुक्ति की बात क्यों करता है? आनंद, यही मानसिक क्षमताओं की परिपक्वता में अंतर है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.5 भद्दली सुत्त(65)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपियोइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने वहाँ से संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मैं दिन में एक बार भोजन करता हूँ, और इसके कारण मुझे कम कष्ट, कम रोग, हल्कापन, शक्ति और सुखद निवास का अनुभव होता है। आओ! भिक्षुओं, तुम भी दिन में एक बार भोजन करो, और इसके कारण तुम्हें कम कष्ट, कम रोग, हल्कापन, शक्ति और सुखद निवास का अनुभव होगा।" यह सुनकर पूज्य भद्दाली ने भगवान बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, मैं दिन में एक बार भोजन करने का साहस नहीं करूँगा। दिन में एक बार भोजन करने से मेरे मन में संदेह और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं।" भद्दाली, तब जब तुम्हें आमंत्रित किया जाता है तो क्या तुम वहाँ भोजन करते हो, और भोजन को दूसरे लोक में ले जाकर खाते हो? भद्दाली, क्या तुम भी इसी तरह अपना जीवन यापन करते हो? फिर भी, आदरणीय गुरुजी, मैं दिन में एक बार भी भोजन करने का साहस नहीं करता।

दिन में एक बार भोजन करने से मुझे संदेह और पश्चाताप होता है। जब भगवान बुद्ध नियम बता रहे थे और भिक्षु समुदाय उन नियमों का पालन करने के लिए तैयार हो रहा था, तब आदरणीय भद्दाली ने उन्हें स्वीकार करने का साहस नहीं किया। इसलिए, आदरणीय भद्दाली उन तीन महीनों के दौरान भगवान बुद्ध के समक्ष नहीं आए, क्योंकि वे गुरु के मार्गदर्शन में अपूर्ण थे।

उस समय बहुत से भिक्षु भगवान बुद्ध का वस्त्र सिल रहे थे; वस्त्र सिलकर पूर्ण हो जाने पर भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाने वाले थे। पूज्य भद्दाली उन भिक्षुओं के पास गए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब उन भिक्षुओं ने कहा, 'भद्दाली, यहाँ हम भगवान बुद्ध का वस्त्र सिल रहे हैं, जब यह पूरा हो जाएगा और तीन महीने पूरे हो जाएंगे तो भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाने वाले हैं। भद्दाली, सावधान रहना। लंबे समय तक अप्रिय कर्मों में मत पड़ना।' पूज्य भद्दाली ने उन भिक्षुओं की सलाह मानकर भगवान बुद्ध के पास जाकर प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'पूज्यवर, मैंने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण पाप किया है।' जब भिक्षुओं के समुदाय के लिए नियम बनाए गए और भिक्षुओं ने उन नियमों को स्वीकार किया, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया। हे पूज्यवर, मेरी इस गलती के लिए मुझे क्षमा करें, और यह भविष्य में संयम के लिए होगा। 'भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है। जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षुओं के समुदाय ने उन्हें स्वीकार किया, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया।'

भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि भगवान सावत्थी में निवास करते हैं और मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत से भिक्षु वर्षा ऋतु में सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत सी भिक्षुणियां वर्षा ऋतु में सावत्थी आई हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगी? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत से पुरुष गृहस्थ शिष्य सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत सी महिला गृहस्थ शिष्य सावत्थी आई हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगी? भद्दाली, क्या तुम्हें यह भी नहीं सूझा? कई संन्यासी और अन्य संप्रदायों के ब्राह्मण वर्षा ऋतु में सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु समझेंगे? मैं संन्यासी गौतम का शिष्य हूँ, जो इस संप्रदाय में एक वरिष्ठ हैं, और मेरा प्रशिक्षण अपूर्ण है। 'आदरणीय महोदय, मैंने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है। जब भिक्षु समुदाय के लिए नियम बनाए जा रहे थे और भिक्षु उन नियमों को स्वीकार कर रहे थे, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया। कृपया मेरी गलती क्षमा करें, आदरणीय महोदय, और यह भविष्य में संयम के लिए होगा। भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है, जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षु समुदाय उन नियमों को स्वीकार कर रहा था, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया।'

भद्दाली, मैं दोनों मार्गों से मुक्त हुए एक भिक्षु से कहता हूँ, [1] आओ भिक्षु, मेरे लिए इस कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'ऐसा नहीं होगा, आदरणीय।' 'भद्दाली, मैं ज्ञान के माध्यम से मुक्त हुए एक भिक्षु से कहता हूँ। [2] आओ भिक्षु, मेरे लिए इस कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'ऐसा नहीं होगा, आदरणीय।' 'भद्दाली, मैं मार्ग के साक्षी भिक्षु से कहता हूँ, [3] या जो धार्मिक दृष्टि से मुक्त हुआ हो, [4] या जो विश्वास के माध्यम से मुक्त हुआ हो, [5] या जो शिक्षा के अनुसार मार्ग पर चल रहा हो, [6] या जो विश्वास के अनुसार मार्ग पर चल रहा हो। [7] आओ भिक्षु, मेरे लिए कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'यह उचित नहीं होगा, आदरणीय महोदय।' 'भद्दाली, क्या तुम उस समय खाली, निकम्मे और पथभ्रष्ट नहीं थे?' 'जी, आदरणीय महोदय। मैंने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण अपराध किया है। जब भिक्षु समुदाय के लिए नियम बनाए जा रहे थे और भिक्षु उन नियमों को स्वीकार कर रहे थे, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया था। आदरणीय महोदय, मेरी गलती क्षमा करें। यह भविष्य में संयम के लिए होगा।' 'भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण अपराध किया है। जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षु समुदाय उन नियमों को स्वीकार कर रहा था, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया था। भद्दाली, क्योंकि तुम अपनी गलती स्वीकार करते हो और भविष्य में संयम के लिए क्षमा मांगते हो, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। गलती को देखकर और भविष्य में संयम के लिए क्षमा मांगना श्रेष्ठ पुरुष के गुणों में वृद्धि का संकेत है।'

भद्दाली, गुरु के मार्गदर्शन में एक भिक्षु है जिसका प्रशिक्षण अभी पूर्ण नहीं हुआ है। वह सोचता है कि यदि मैं किसी एकांत स्थान पर रहूँ, जैसे जंगल में वृक्ष की जड़, पहाड़ों में गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर, तो मुझे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। वह किसी एकांत स्थान पर रह जाता है, जैसे जंगल में वृक्ष की जड़, पहाड़ों में गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर। गुरु उसे फटकारते हैं, और यह देखकर ज्ञानी सहपाठी, देवता और वह स्वयं भी उसे फटकारते हैं, और उसे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसका कारण क्या है? गुरु के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण में अपूर्ण रहने वाले के साथ ऐसा ही होता है।

भद्दाली, गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त एक भिक्षु है। वह सोचता है, "यदि मैं जंगल में किसी वृक्ष की जड़, पहाड़ों में किसी गुफा, श्मशान भूमि, घने जंगल, खुले स्थान या भूसे के ढेर जैसे किसी एकांत स्थान में निवास करूँ, तो मुझे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।" वह जंगल में किसी वृक्ष की जड़, पहाड़ों में किसी गुफा, श्मशान भूमि, घने जंगल, खुले स्थान या भूसे के ढेर जैसे

किसी एकांत स्थान में निवास करता है। जब वह इस प्रकार एकांत में रहता है, तो गुरु उसे दोष नहीं देते, बुद्धिमान सहपाठी भी उसे दोष नहीं देते, देवता और वह स्वयं भी उसे दोष नहीं देते, और उसे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इंद्रिय सुखों और पापपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान में निवास करता है: इसका क्या कारण है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो गुरु के उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को शांत और एकाग्र करके, विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख का अनुभव करते हुए द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है: इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भद्दाली, भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करते हुए तृतीय ध्यान में लीन हो जाता है। इस पर श्रेष्ठजन समभाव का ध्यान रखते हुए सुख में लीन रहते हैं। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भद्दाली, भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर चुका होता है। समभाव और शुद्धिकरण के साथ चतुर्थ ध्यान में लीन हो जाता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो गुरु के उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, लघु दोषों से मुक्त, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। वह असंख्य पूर्व जन्मों को याद करता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होता है। जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, निष्कलंक, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में प्रकट होते और लुप्त होते देखता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार जानता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होता है। जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, निष्कलंक, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है, जैसा कि वास्तव में है, यह अप्रिय है—इच्छाओं के निवारण का मार्ग वह जानता है जैसा कि वास्तव में है। जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ। जन्म नष्ट हो जाता है, पवित्र जीवन जिया जाता है, जो करना चाहिए वह किया जाता है। अब कुछ भी चाहने को नहीं रहता। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उसी को होता है जो गुरु के प्रशिक्षण, उनके मार्गदर्शन में पूर्ण हो चुका हो।

यह सुनकर पूज्य भद्दाली ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, एक भिक्षु पर इतना ध्यान क्यों दिया जाता है और दूसरे पर नहीं?" भद्दाली ने कहा, "एक भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता दिखाता है। वह सही व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूंगा।" तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है, "यह भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता दिखाता है। वह सही व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूंगा।" तब भिक्षु कहते हैं, "अच्छा है कि पूज्यवर इस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर जल्दी न दें।" भद्दाली ने कहा, "तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर जल्दी नहीं देते।" भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को विषयांतर नहीं करता और न ही क्रोध, घृणा या अप्रसन्नता दिखाता है, बल्कि शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूँगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है कि वह भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को विषयांतर नहीं करता और न ही क्रोध, घृणा या अप्रसन्नता दिखाता है। वह शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूँगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा होगा यदि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर देते हैं।

भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है। वह उचित व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूँगा। तब उन भिक्षुओं को यह बात समझ आती है कि यह भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है, जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है। वह उचित व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूँगा। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा है कि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर शीघ्रता से न दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर शीघ्रता से नहीं देते। भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है, जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर नहीं मोड़ता और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट नहीं करता। वह शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूंगा

जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है कि यह भिक्षु बिना किसी अपराध के हमेशा दोषी प्रतीत होता है; जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं तो वह बात को भटकाता नहीं है और क्रोध, घृणा या असंतोष नहीं दिखाता, बल्कि शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूंगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा होगा यदि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर देते हैं।

भद्दाली, एक भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है। तब भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: यह भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है: यदि हम इस भिक्षु का अत्यधिक पीछा करेंगे तो इसकी थोड़ी सी श्रद्धा और प्रेम भी कम हो जाएगा। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की एक आँख होती है, उसके मित्र, सहपाठी और रक्त संबंधी उसकी एक आँख की रक्षा करते हैं, यह मत करो, वह मत करो, वरना तुम्हारी एक आँख चली जाएगी। ठीक इसी प्रकार भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: यह भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है: यदि हम इस भिक्षु का अत्यधिक पीछा करेंगे तो इसकी थोड़ी सी श्रद्धा और प्रेम भी कम हो जाएगा।

भद्दाली, यही कारण है कि एक भिक्षु का बारीकी से अनुसरण किया जाता है और दूसरे का बारीकी से अनुसरण नहीं किया जाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या कारण है कि पहले कम नियमों के साथ बहुत से भिक्षुओं का संन्यास हो जाता था, और अब बहुत से नियमों के साथ कुछ ही भिक्षुओं का संन्यास होता है?' 'बद्दाली, ऐसा तब होता है जब मनुष्य में सद्गुण कम हो जाते हैं और जब शिक्षा का स्तर गिर जाता है। बहुत से नियम बनाए जाते हैं, लेकिन कुछ ही भिक्षुओं का संन्यास होता है। भद्दाली, गुरु तब तक नियम नहीं बनाते जब तक कि कामवासना का पतन स्पष्ट न हो जाए। जब समुदाय में कामवासना का पतन स्पष्ट हो जाता है, तो गुरु उस पतन को दूर करने के लिए नियम बनाते हैं। जब तक समुदाय बड़ा नहीं हो जाता, तब तक कामवासना का पतन स्पष्ट नहीं होता। जब तक समुदाय सर्वोच्च लाभ प्राप्त नहीं कर लेता, सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर लेता, सबसे विद्वान नहीं बन जाता, दीर्घकालिक नहीं हो जाता, तब तक कामवासना का पतन स्पष्ट नहीं होता। भद्दाली, जब कोई भिक्षु दीर्घकालिक हो जाता है, तब कामवासना का पतन स्पष्ट हो जाता है और तब गुरु उस पतन को दूर करने के लिए नियम बनाते हैं।'

भद्दाली, जब मैंने तुम्हें शुद्ध नस्ल के घोड़े की उपमा देकर प्रवचन दिया था, तब तुम छोटे थे, क्या तुम्हें याद है? नहीं, पूज्यवर। भद्दाली, क्या तुम जानते हो कि यह क्यों दिया गया था? पूज्यवर, क्या यह इसलिए नहीं था कि तुम गुरु के मार्गदर्शन में लंबे समय से अपूर्ण रहे हो? भद्दाली, केवल यही कारण नहीं है, मैंने तुम्हारे मन को लंबे समय से भेद कर देखा है। मैं जानता था: यह मूर्ख व्यक्ति शिक्षा को समग्र रूप से नहीं समझता और उसका सार नहीं ग्रहण करता। मैं शुद्ध नस्ल के घोड़े की उपमा देकर प्रवचन दूंगा, ध्यान से सुनो। पूज्यवर भद्दाली सहमत हो गए और भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा:

'घोड़ों को अच्छी तरह से प्रशिक्षित करने वाले भद्दाली, किसी शुद्ध नस्ल के घोड़े को प्रशिक्षण देने के लिए सबसे पहले उसे मुंह से लगाम लगाने का प्रशिक्षण देते थे। मुंह से लगाम लगाने का प्रशिक्षण देते समय घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण के कारण छटपटाता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था। जब मुंह से लगाम लगाने के कारण बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था, तब घोड़ा प्रशिक्षक उसे जुआ बांधने का प्रशिक्षण देते थे। जुआ बांधने के बाद भी घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण के कारण छटपटाता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था। फिर घोड़ा प्रशिक्षक उसे बार-बार गोल-गोल सरपट दौड़ने का प्रशिक्षण देते थे। बार-बार असामान्य रूप से गोल-गोल दौड़ने का प्रशिक्षण लेते समय घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण से छटपटाता रहता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी। जब बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी, तो बार-बार गोल-गोल दौड़ते समय घोड़े का प्रशिक्षक उसे मौन धारण करने का प्रशिक्षण देता था। मौन धारण करने का प्रशिक्षण लेते समय भी घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण से छटपटाता रहता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी। जब शुद्ध नस्ल का घोड़ा यह दस प्रकार का प्रशिक्षण पूरा कर लेता था, तो वह राजा के योग्य, राजा की सेवाओं के योग्य और राजसी संपत्ति बन जाता था। इसी प्रकार, इन दस गुणों से संपन्न भिक्षु आतिथ्य, भेंट, उपहार और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता था। वह संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र बन जाता है: दस गुण क्या हैं? भिक्षु को प्रशिक्षण से परे सही दृष्टि और सही विचार रखने चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही शब्द और कर्म रखने चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही आजीविका रखनी चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही प्रयास और ध्यान रखना चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही एकाग्रता और विमोचन प्राप्त करना चाहिए। भद्दाली, इन दस गुणों से युक्त भिक्षु आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट देने के योग्य, दान देने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन करने के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र बन जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य भद्दाली भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

[1] एक भिक्षु जो दोनों दिशाओं से मुक्त हो चुका है (उभतोविमुत्तो), वह शाब्दिक रूप से मुक्ति को जानता है और वह इस मुक्ति का अनुभव यहीं और अभी करता है। अर्थात्, वह अपने शरीर के साथ इस मुक्ति का अनुभव करता है। उदाहरण के लिए, मानसिक संपर्क के किसी भी द्वार से उसे कोई स्पर्श नहीं होता। उसने यह अनुभव ध्यान के माध्यम से भी किया है।

[2] ज्ञान के माध्यम से मुक्त होने वाला (पाविमुत्तो) शाब्दिक रूप से मुक्ति को जानता है, और वह इसे झानों और उच्चतर समाधि में अनुभव करता है।

[3] मार्ग का देह साक्षी (कायसक्खी), एक बार मार्ग का अनुभव कर चुका होता है। उसे यहाँ और अभी इसके परिणाम अनुभव करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। फिर भी वह पूरी तरह सुरक्षित है और कम से कम अपनी मृत्युशय्या पर इसके परिणाम अनुभव करेगा।

[4] जो व्यक्ति धार्मिक दृष्टि (दिंहिपट्टो) प्राप्त कर लेता है, वह सुरक्षित रूप से मार्ग पर विचरण करता है। वह भी सुरक्षित है और यदि वह अभी और यहीं प्रयास नहीं करता है, तो उसे अपनी मृत्युशय्या पर अपनी उपलब्धियों के अनुसार परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

[5] आस्था के द्वारा मुक्त होने वाला (सद्धविमुत्तो) भगवान बुद्ध के ज्ञान, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय में बहुत आस्था रखता है। इसी कारण वह आस्था के द्वारा मुक्त होता है। वह सुरक्षित रूप से मार्ग पर है और उसके लिए अधिकतम सात जन्म शेष रहेंगे, भले ही वह आलसी और सुस्त हो जाए।

[6] जो शिक्षा के अनुसार चलता है (धम्मनुसारि)। वह शिक्षा के अनुसार जीवन व्यतीत करता है और यदि वह आलसी और सुस्त नहीं है, तो वह निश्चित रूप से शिक्षा की धारा में प्रवेश करेगा।

[7] आस्था के अनुसार चलने वाला (सद्धानुसारि)। आस्था के अनुसार चलने वाला भी निश्चित रूप से शिक्षा की धारा में प्रवेश करेगा, यदि वह आलसी और सुस्त न हो।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.6 लाटुकिकोपमा सुत्त(66)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध अंगुत्तरापनियों के बीच अपाना नामक एक नगर में ठहरे हुए थे। तब सुबह सवेरे, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर अपाना में भिक्षा मांगने के लिए गए। अपाना में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद वे एक वन में विश्राम करने के लिए गए। वन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए।

आदरणीय उदयिन भी सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण करके और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर अपाना में भिक्षा मांगने चले गए। अपाना में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके वे उस वन में विश्राम करने के लिए चले गए। वन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए। एकांत में अकेले होने पर उनके मन में यह विचार आया: "भगवान ने हमसे कितने ही दुखदायी कार्य दूर किए हैं! कितने ही सुखदायी कार्य हमें दिए हैं! भगवान ने हमसे कितने ही अपव्ययपूर्ण गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!"

फिर, शाम को, पूज्य उदयिन एकांतवास छोड़कर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अभी जब मैं एकांतवास में अकेला था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान बुद्ध ने हमसे कितने ही दुखदायी कार्य दूर किए हैं! कितने ही सुखदायी कार्य हमें दिए हैं! भगवान बुद्ध ने हमसे कितने ही अकुशल गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!' क्योंकि हे भगवान, अतीत में हम सुबह, शाम और दिन में गलत समय (दोपहर) पर भोजन करते थे। फिर एक समय ऐसा आया जब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं,

कृपया दिन में गलत समय पर भोजन करना बंद कर दें।'" 1 उस समय मैं व्याकुल था, उस समय मैं दुखी था, [सोच रहा था], 'वे उत्तम भोजन जो गृहस्थ हमें दिन में गलत समय पर देते हैं: यहाँ तक कि वे भी जिन्हें भगवान ने हमें त्यागने के लिए कहा है; यहाँ तक कि वे भी जिन्हें स्वर्गवासी ने हमें छोड़ने के लिए कहा है!' परन्तु, भगवान के प्रति अपने प्रेम और आदर के कारण, लज्जा और अपराध के भय के कारण, हमने उस दिन के भोजन को गलत समय पर त्याग दिया।

"तो हमने शाम और सुबह दोनों समय भोजन किया। फिर एक बार भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कृपया शाम का भोजन गलत समय पर छोड़ दें।' उस समय मैं व्याकुल और दुखी था, [सोच रहा था], 'हमारे दो भोजनों में से जो अधिक उत्तम रूप से तैयार किया गया था: उसे भी भगवान बुद्ध ने हमें छोड़ने को कहा; उसे भी जो परम पूज्य थे, उन्होंने हमें त्यागने को कहा! हे भगवान, ऐसा भी हुआ है कि एक व्यक्ति दिन में कुछ अच्छी करी की सामग्री प्राप्त करके अपनी पत्नी से कहता है, 'इसे अलग रख दो और हम सब इसे शाम को एक साथ खा लेंगे।' सभी उत्तम व्यंजन शाम को ही पकाए जाते हैं, और दिन में लगभग न के बराबर। परन्तु भगवान बुद्ध के प्रति अपने प्रेम और आदर के कारण, लज्जा और अपराधबोध के भय के कारण, हमने शाम का भोजन गलत समय पर छोड़ दिया।"

"हे भगवान, ऐसा हुआ है कि घोर अंधकार में भिक्षा माँगते भटकते भिक्षु गंदे पानी के तालाब में गिर गए हैं, गटर में जा गिरे हैं, काँटों के झुरमुट में ठोकर खा गए हैं या सोई हुई गाय से टकरा गए हैं। अपराध करने जाते या लौटते समय उनका सामना बदमाशों से हुआ है। स्त्रियों ने उन्हें यौन प्रस्ताव दिए हैं। एक बार मैं घोर अंधकार में भिक्षा माँगने गया था। एक बर्तन धो रही स्त्री ने बिजली की चमक में मुझे देखा और मुझे देखते ही चिल्ला उठी: 'मैं तो गई काम से! कोई राक्षस मेरे पीछे पड़ा है!' यह सुनकर मैंने उससे कहा, 'मैं कोई राक्षस नहीं हूँ, बहन। मैं तो भिक्षा माँगने वाला भिक्षु हूँ।' 'तो तुम तो ऐसे भिक्षु हो जिसके पिता और माता दोनों मर चुके हैं। हे भिक्षु, तुम्हारे लिए बेहतर है कि किसी तेज धार वाले कसाई के चाकू से तुम्हारा पेट चीर दिया जाए, बजाय इसके कि तुम घोर अंधकार में अपने पेट के लिए भिक्षा माँगते भटको!'" हे भगवान, उस बात को याद करते हुए मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान ने हमसे कितनी ही पीड़ादायक चीजें दूर की हैं! कितनी ही सुखद चीजें हमें दी हैं! भगवान ने हमसे कितने ही अकुशल गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!'

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

मान लीजिए कि एक बटेर एक सड़ी हुई लता में फंस गई है, जिससे उसे चोट लग सकती है, वह पकड़ी जा सकती है या मर भी सकती है, और कोई कहे, 'यह सड़ी हुई लता जिसमें यह बटेर फंसी है, और जिससे उसे चोट लग सकती है, वह पकड़ी जा सकती है या मर भी सकती है, उसके लिए एक कमजोर फंदा है, एक दुर्बल फंदा है, एक सड़ा हुआ फंदा है, एक सारहीन फंदा है।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वह सड़ती हुई लता... उसके लिए एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक न सड़ने वाला फंदा है, और एक मोटा जुआ है।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

"अब कुछ ऐसे कुलवासी हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों छोड़ने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों त्यागने को कहते हैं?' लेकिन वे इसे छोड़ देते हैं और न तो मेरे प्रति और न ही प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य होते हैं। इसे छोड़ने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण की तरह मन से जीते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक निष्फल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

मान लीजिए कि एक शाही हाथी—विशालकाय, कुलीन, युद्धों का अभ्यस्त, जिसके दांत रथ के डंडों के समान हों—मोटे चमड़े के फंदों में फंसा हुआ था, लेकिन अपने शरीर को थोड़ा सा मोड़कर वह उन फंदों को तोड़कर अपनी मनचाही जगह पर जा सकता था। और मान लीजिए कि कोई कहे, 'वे मोटे चमड़े के फंदे जिनमें शाही हाथी फंसा था, लेकिन जिन्हें उसने अपने शरीर को थोड़ा सा मोड़कर तोड़कर

अपनी मनचाही जगह पर जा सकता था: उसके लिए वे एक मजबूत फंदा, एक मोटा फंदा, एक भारी फंदा, एक अटूट फंदा और एक भारी जुआ थे।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वे मोटे चमड़े के फंदे... उसके लिए एक कमजोर फंदा थे, एक दुर्बल फंदा, एक सड़ा हुआ फंदा, एक सारहीन फंदा।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ कुलवासी ऐसे हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे त्याग दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों त्यागने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों छोड़ने को कहते हैं?' परन्तु वे इसे त्याग देते हैं और मेरे या प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य नहीं होते। इसे त्यागने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण के समान मन से जीवन व्यतीत करते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक दुर्बल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

मान लीजिए एक गरीब, निर्धन और निर्धन व्यक्ति है, जिसके पास एक छोटी सी जर्जर झोपड़ी है—जो कौवों के लिए खुली है, अच्छी हालत में नहीं; एक जर्जर पलंग है—जो अच्छी हालत में नहीं; चावल और लौकी के दानों का एक बर्तन है—जो अच्छी हालत में नहीं; और एक अकेली पत्नी है—जो अच्छी हालत में नहीं। वह एक पार्क में जाता और एक भिक्षु को देखता—स्वादिष्ट भोजन के बाद अपने हाथ-पैर धोकर, ठंडी छाया में बैठा हुआ, एकाग्र ध्यान में लीन। उसके मन में यह विचार आता: 'ध्यान की अवस्था कितनी सुखद है! ध्यान की अवस्था कितनी रोगमुक्त है! काश मैं भी—अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके—गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊं!' लेकिन अपनी उस अकेली झोपड़ी को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो जर्जर थी, कौवों के लिए खुली थी, अच्छी हालत में नहीं थी; अपने उस अकेले पलंग को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो जर्जर थी, अच्छी हालत में नहीं थी; चावल और लौकी के दानों के अपने उस अकेले बर्तन को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो अच्छी हालत में नहीं था; और अपनी उस अकेली पत्नी को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो अच्छी हालत में नहीं थी—वह अपने बाल और दाढ़ी नहीं मुंडवा सकता था, गेरुए वस्त्र नहीं पहन सकता था, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में नहीं जा सकता था। और मान लीजिए कोई कहे, 'वह अकेली झोपड़ी... वह अकेला पलंग... वह अकेला बर्तन... और वह अकेली पत्नी—जो अच्छी हालत में नहीं थी—जिसमें वह व्यक्ति फंसा हुआ था, जिसे वह छोड़ नहीं सका, और जिसके कारण वह अपने बाल और दाढ़ी नहीं मुंडवा सका, गेरुए वस्त्र नहीं पहन सका, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में नहीं जा सका: उसके लिए वे एक कमजोर फंदा थे, एक दुर्बल फंदा थे, एक सड़ता हुआ फंदा थे, एक सारहीन फंदा थे।' क्या इस तरह बोलने वाला व्यक्ति सही बोल रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वह अकेली झोपड़ी... वह अकेला पलंग... वह अकेला बर्तन... वह अकेली पत्नी... उस आदमी के लिए एक मजबूत फंदा, एक मोटा फंदा, एक भारी फंदा, एक न सड़ने वाला फंदा और एक मोटा जुआ था।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

"अब मान लो, उदयिन, कि एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र हो - धनी, समृद्ध और संपत्ति संपन्न - जिसके पास सोने की विशाल ईंटें, अनाज का विशाल भंडार, खेतों की विशाल संख्या, भूमि की विशाल संख्या, पत्नियों की विशाल संख्या और दासों की विशाल संख्या हो। वह एक उद्यान में जाए और एक भिक्षु को देखे - स्वादिष्ट भोजन के बाद हाथ-पैर धोए हुए, ठंडी छाया में बैठा हुआ, एकाग्र ध्यान में लीन। उसके मन में यह विचार आए: 'ध्यान की अवस्था कितनी सुखद है! ध्यान की अवस्था कितनी रोगमुक्त है! काश मैं भी - अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके - गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जा पाता!'" और अपने विशाल सोने के भंडार, अपने विशाल अनाज, अपने विशाल खेतों, अपनी विशाल भूमि, अपनी विशाल पत्नियों और अपने विशाल पुरुष एवं स्त्री दासों को त्यागकर, वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सकेगा। अब मान लीजिए कोई कहे, 'वे विशाल सोने के भंडार... और वे विशाल पुरुष एवं स्त्री दास जिनके जाल में वह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र फँसा था, लेकिन जिन्हें त्यागकर वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सका: उसके लिए वे एक मजबूत फंदा, एक घना फंदा, एक भारी फंदा, एक न गलने वाला फंदा और एक भारी जुआ थे।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, स्वामी। सोने की वे विशाल मात्राएँ... उसके लिए एक कमजोर जाल थीं, एक निष्फल जाल, एक सड़ता हुआ जाल, एक सारहीन जाल।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ कुलवासी ऐसे हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे त्याग दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों त्यागने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों छोड़ने को कहते हैं?' परन्तु वे इसे त्याग देते हैं और मेरे या प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य नहीं होते। इसे त्यागने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण के समान मन से जीवन व्यतीत करते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक दुर्बल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

उदयिन, संसार में चार प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक प्रकार वह है जब कोई व्यक्ति अपने संचयों का त्याग करने का अभ्यास कर रहा होता है। जैसे-जैसे वह संचयों का त्याग करने का अभ्यास करता है, संचयों से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प उसे परेशान करने लगते हैं। वह उनके आगे झुक जाता है। वह उन्हें न तो त्यागता है, न नष्ट करता है, न दूर करता है, और न ही मिटाता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति की क्षमताओं की विविधता को जाना है।

"फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित वस्तुओं का त्याग करने का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह इन वस्तुओं का त्याग करने का अभ्यास करता है, उनसे जुड़ी यादें और संकल्प उसे परेशान करने लगते हैं। वह उनके आगे नहीं झुकता। वह उनका त्याग करता है, उन्हें नष्ट करता है, उन्हें दूर करता है और उन्हें अस्तित्व से मिटा देता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के संबंध में विभिन्न प्रकार की क्षमताओं को जाना है।"

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे ध्यान भंग होने के कारण समय-समय पर उसे अर्जित वस्तुओं से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प सताने लगते हैं। उसका ध्यान धीरे-धीरे जागृत होता है, परन्तु वह उन स्मृतियों और संकल्पों को शीघ्र ही त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और मिटा देता है। जैसे दिन भर गर्म किए हुए लोहे के पलंग पर पानी की दो-तीन बूँदें गिरती हैं: पानी की बूँदें धीरे-धीरे गिरती हैं, परन्तु शीघ्र ही गायब हो जाती हैं। उसी प्रकार, एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे ध्यान भंग होने के कारण समय-समय पर उसे अर्जित वस्तुओं से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प सताने लगते हैं। उसका ध्यान धीरे-धीरे जागृत होता है, लेकिन फिर वह उन यादों और संकल्पों को तुरंत त्याग देता है, उन्हें नष्ट कर देता है, मिटा देता है और अस्तित्व से ही मिटा देता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के गुणों की विविधता को जाना है।

"फिर एक ऐसा मामला भी है जहाँ एक व्यक्ति, यह जानकर कि संचय ही दुख और तनाव का मूल कारण है, संचय से मुक्त हो जाता है, संचय के अंत में उसे मुक्ति मिल जाती है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि ऐसा व्यक्ति बंधनमुक्त है, बंधनमुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के संबंध में क्षमताओं की विविधता को जाना है।"

"दुनिया में चार प्रकार के लोग पाए जाते हैं।"

और, उदयिन, ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। कौन से पाँच? आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, मोहक। कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनी जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से सुनी जा सकने वाली स्वाद... शरीर से सुनी जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाला, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। अब, इन पाँच प्रकार की कामुकता पर निर्भर कोई भी सुख और आनंद कामुक सुख कहलाता है, एक घिनौना सुख, एक साधारण सुख, एक नीच सुख। और इस सुख के विषय में मैं कहता हूँ कि इसे संजोना नहीं चाहिए, इसे विकसित नहीं करना चाहिए, इसका पीछा नहीं करना चाहिए, इससे डरना चाहिए।

अब, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचारों और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और सजग रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजन कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहते हुए, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की

शुद्धता, न सुख न दुख। इसे त्याग का सुख, एकांत का सुख, शांत सुख, आत्म-जागरूकता का सुख कहा जाता है। और इस सुख के विषय में मैं कहता हूँ कि इसे संवर्धित करना चाहिए, विकसित करना चाहिए, प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, इससे भयभीत नहीं होना चाहिए।

अब, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु—जो कामुकता से पूर्णतः विरक्त है, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त है—प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। मैं आपको बताता हूँ, यह विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है। और वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत क्या आता है? वे निर्देशित विचार और मूल्यांकन जो वहाँ भी नहीं रुके हैं: वही वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत आते हैं।

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके, द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। मैं आपको बताता हूँ, यह अविचल के अंतर्गत आता है। और वहाँ अविचल के अंतर्गत क्या आता है? वह परमानंद-आनंद जो वहाँ समाप्त नहीं हुआ है: वही वहाँ अविचल के अंतर्गत आता है।"

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, समाधि की अवस्था के शांत होने पर भी, समभाव, सजग और सतर्क रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।' मैं तुम्हें बताता हूँ, यह विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है। और वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत क्या आता है? वह समभाव-सुख जो वहाँ समाप्त नहीं हुआ है: वही वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है।"

"एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, सुख और दुख का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। अब मैं आपको बताता हूँ, यह अविचलितता के अंतर्गत आता है।"

"अब एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। मैं तुमसे कहता हूँ, यह पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे ऊपर उठो। और इससे ऊपर उठना क्या है?"

"एक स्थिति ऐसी भी है जब एक भिक्षु... दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक स्थिति ऐसी भी है जब एक भिक्षु... तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु...चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है...यह उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसका पारगमन करो। और इसका पारगमन क्या है?"

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने के साथ, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'अनंत चेतना' का अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?

"फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?"

"फिर एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ एक भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ एक भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, बोध और संवेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही इसका पारगमन है।"

"इस प्रकार, उदयिन, मैं उस आयाम के त्याग की बात कर रहा हूँ जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। क्या तुम्हें कोई ऐसा बंधन दिखाई देता है, चाहे छोटा हो या बड़ा, जिसके त्याग की मैं बात नहीं कर रहा हूँ?"

"नहीं, भगवान।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। आदरणीय उदयिन ने भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 7.7कैटुमा सुट्टा(67)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध चतुमा के आमलकी वन में निवास कर रहे थे। उस समय लगभग पाँच सौ भिक्षु, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना के नेतृत्व में, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए थे। वे आपस में अभिवादन करते हुए, बिस्तर लगाते हुए, कुंड और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'आनंद, ये कौन हैं जो मछुआरों की तरह मछली पकड़ने के बाद शोर मचा रहे हैं?' 'पूज्यवर, लगभग पाँच सौ भिक्षु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए हैं। वे वहाँ के भिक्षुओं से अभिवादन करते हुए, बिस्तर लगाते हुए, कुंड और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर कर रहे हैं।' 'तो, आनंद, उन भिक्षुओं को मेरे नाम से बुलाओ।' आदरणीय आनंद ने सहमति जताते हुए उन भिक्षुओं के पास जाकर कहा, 'आदरणीय भिक्षुओं, गुरुजी आपको बुला रहे हैं।' तब वे भिक्षु सहमत होकर भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आप इतना शोर क्यों मचा रहे हैं? ऐसा लग रहा है जैसे मछुआरे मछलियाँ पकड़कर ला रहे हों।' 'आदरणीय महोदय, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में लगभग पाँच सौ भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए हैं। वे वहाँ के भिक्षुओं से अभिवादन करते हुए, बिस्तर ठीक करते हुए, पान-पात्र और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर मचा रहे हैं।' 'जाओ! भिक्षुओं, मैं तुम्हें विदा करता हूँ, मेरे पास मत ठहरो।' उन भिक्षुओं ने सहमति जताई, भगवान बुद्ध की पूजा की, उनकी परिक्रमा की और अपने कुंड और वस्त्र लेकर भगवान बुद्ध के समक्ष से चले गए।

उस समय चतुमा वंश के शाक्य किसी कार्य के लिए सभा भवन में एकत्रित हुए थे। चतुमा वंश के शाक्यों ने भिक्षुओं को दूर जाते देखा और उनके पास जाकर कहा, "हे पूज्यवर, आप क्यों जा रहे हैं?" भिक्षु ने कहा, "भगवान ने भिक्षु समुदाय को विदा कर दिया है।" भिक्षु ने कहा, "हे पूज्यवर, एक क्षण रुकिए, शायद मैं भगवान को मना सकूँ।" तब उन भिक्षुओं ने चतुमा वंश के शाक्यों की बात सुनी और प्रतीक्षा की। चतुमा वंश के शाक्य भगवान के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर कहा, "भगवान भिक्षु समुदाय से प्रसन्न हों। भगवान भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जिस प्रकार भगवान ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, उसी प्रकार अब भी दया दिखाई जाए। हे पूज्यवर, यहाँ कुछ नए भिक्षु हैं, जो हाल ही में विदा हुए हैं।" यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे छोटे पौधे पानी की कमी से मुरझा जाते हैं। आदरणीय महोदय, यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे बछड़ा अपनी माँ को न देखकर व्याकुल हो जाता है। आदरणीय महोदय, उसी प्रकार यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे

अपना मन बदल लेंगे। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय से प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जैसे भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, वैसे ही अब भी दया दिखाएं।

तब भगवान बुद्ध के विचारों को जानकर, एक बलवान पुरुष की तरह, जैसे वह अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या अपनी सीधी भुजा को इस प्रकार मोड़ता है जैसे ब्रह्मालोक से विलीन हो जाता है, ब्रह्मा बुद्ध के समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्मा बुद्ध ने अपने शॉल को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, "भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय में प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय का स्वागत करें। जैसे भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, वैसे ही अब भी दया दिखाई जाए। आदरणीय, यहाँ कुछ नए भिक्षु हैं, जो हाल ही में दीक्षा लेकर आए हैं। यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला, तो वे अपना मन बदल लेंगे, जैसे छोटे पौधे पानी की कमी से मर जाते हैं। आदरणीय, यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे बछड़ा अपनी माँ को न देखकर व्याकुल हो जाता है।" आदरणीय महोदय, जिस प्रकार इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं, यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले तो वे अपना मन बदल लेंगे। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय में प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जिस प्रकार भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर करुणा दिखाई, उसी प्रकार अब भी करुणा दिखाई जाए।

चतुमा और ब्रह्म सहमपति के शाक्यों ने पौधों और बछड़े की उपमा देकर भगवान को प्रसन्न कर लिया। तब पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'मित्रों, उठो, अपने कुंड और वस्त्र ले लो, चतुमा और ब्रह्म सहमपति के शाक्यों ने पौधों और बछड़े की उपमा देकर भगवान को प्रसन्न कर लिया।' वे भिक्षु सहमत होकर अपने स्थानों से उठे और कुंड और वस्त्र लेकर भगवान के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, 'सारिपुत्त, जब मैंने भिक्षु समुदाय को विदा किया, तो तुम्हारे मन में क्या विचार आया?' 'पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया। भगवान इस समय और यहाँ प्रसन्नता में विलीन रहेंगे, उदासीन, मैं भी इस समय और यहाँ प्रसन्नता में विलीन रहूँगा। आओ!' सारिपुत्त, भविष्य में ऐसा विचार मत लाना। तब भगवान बुद्ध ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा, 'मोग्गलाना, जब मैंने भिक्षु समुदाय से विमुख होकर विमुख हुए, तब तुम्हारे मन में क्या विचार आया?' 'पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया: भगवान बुद्ध यहाँ सुख में विलीन रहेंगे और चिंतामुक्त रहेंगे, मैं और पूज्य सारिपुत्त भिक्षु समुदाय का नेतृत्व करेंगे।' 'अच्छा! मोग्गलाना, या तो मैं या सारिपुत्त और मोग्गलाना भिक्षु समुदाय का नेतृत्व करें।'

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, जल में उतरने वाले को चार भयों का सामना करना चाहिए: वे चार क्या हैं? लहरों का भय, मगरमच्छों का भय, भंवरों का भय और घड़ियालों का भय। भिक्षुओं, जल में प्रवेश करने वाले को इन चार भयों का सामना करना चाहिए। ठीक उसी प्रकार, गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बनने वाले व्यक्ति को भी चार भयों का सामना करना पड़ता है। वे चार क्या हैं? लहरों का भय, मगरमच्छों का भय, भंवरों का भय और घड़ियालों का भय।'

भिक्षुओं, लहरों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने श्रद्धापूर्वक गृहस्थी त्याग दी। वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दु:ख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त होकर तपस्वी बन गया। वह सोचता था कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दु:ख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त है। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले कुछ ही लोग हैं। उसके साथी साधुओं ने उसे सलाह दी: इस प्रकार आगे बढ़ो, इस प्रकार मुड़ो और आगे बढ़ो, इस प्रकार देखो, और दूसरी ओर इस प्रकार देखो। इस प्रकार अपने अंगों को मोड़ो और फैलाओ। इस प्रकार तीनों वस्त्र और कुंड धारण करो। तब उसे यह विचार आया: जब मैं गृहस्थ था, तब मैंने दूसरों को सलाह दी थी, अब मुझे अपने पुत्रों और पोतों के समान लोगों की सलाह माननी होगी। तब उसने लहरों के भय से वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। भिक्षुओं, लहरों का भय क्रोध और घृणा का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल का पुत्र श्रद्धा से प्रेरित होकर गृहस्थी त्याग देता है। वह यह सोचकर संन्यासी बन जाता है, "मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दु:ख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले तो कुछ ही हैं।" हे संन्यासी, उसे सलाह दो। "तुम्हें यह खाना चाहिए, यह नहीं खाना चाहिए। तुम्हें यह ग्रहण करना चाहिए, यह नहीं ग्रहण करना चाहिए। तुम्हें यह चखना चाहिए और यह नहीं चखना चाहिए। तुम्हें यह पीना चाहिए और यह नहीं पीना चाहिए। तुम्हें उचित पेय पीना चाहिए और अनुचित पेय से बचना चाहिए। उचित भोजन करो, ग्रहण करो और चखो, अनुचित भोजन से बचो।" तब उसे यह बात समझ में आती है, "जब मैं गृहस्थ था, तब मैं वह खाता था जो मुझे पसंद था, और वह नहीं जो मुझे नापसंद था। मैं वह ग्रहण करता था जो मुझे पसंद था, और वह नहीं जो मुझे नापसंद था।" मैंने उचित और अनुचित दोनों प्रकार के भोजन, सेवन, चखना और पीना किया। मैंने समय पर और असमय भी सेवन, चखना और पीना किया। गृहस्थ हमें दिन के समय, जब उचित समय नहीं होता, आस्थावश पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ देते हैं। मुझे लगता है कि यह मुँह पर प्रतिबंध है। फिर वह वस्त्र त्यागकर साधारण हो जाता है। कहा जाता है कि वह मगरमच्छों के भय से वस्त्र त्यागकर साधारण हो जाता है। मगरमच्छ भोजन के लालच का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, भंवरों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने आस्था के कारण गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन गया, यह सोचकर कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त है। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा कर सकते हैं। वह इस प्रकार सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने निकल पड़ा, गाँव या बस्ती में शरीर और वाणी को संयमित रखते हुए, सचेतनता स्थापित किए बिना और मानसिक शक्तियों को संरक्षित किए बिना। गाँव में उसने एक गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र को पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का भोग करते हुए देखा। तब उसे यह विचार आया, जब मैं गृहस्थ था, तब मैंने भी इन पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का भोग किया था। मेरे कुल में इन इंद्रिय सुखों का भोग करने के लिए धन था। मैं भी पुण्य कर्म कर सकता था। तब उसने वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। ऐसा कहा जाता है कि वह भंवरों के भय से वस्त्र त्यागकर गृहस्थ बन जाता है। भिक्षुओं, भंवरों का भय पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने श्रद्धापूर्वक गृहस्थी त्याग दी। वह यह सोचकर संन्यासी बन गया कि मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले कुछ ही लोग हैं। वह इस प्रकार सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने निकला। गाँव या बस्ती में वह शरीर और वाणी पर संयम रखता था, सचेतन नहीं था और मानसिक शक्तियों का संरक्षण नहीं करता था। गाँव में उसने एक स्त्री को अधढका देखा। उसे उस अवस्था में देखकर उसके मन में लोभ उत्पन्न हुआ और लोभ से ग्रस्त होकर उसने वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। उसने मगरमच्छों के भय से वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय स्त्री का पर्यायवाची है।

"भिक्षुओं, इस अनुशासन के युग में तपस्वी के रूप में प्रस्थान करने वाले व्यक्ति को इन चार भयों का सामना करना पड़ सकता है।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.8 नालकापना सुत्त(68)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान कोसल राज्य के नलकपान में एक जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय कई प्रसिद्ध कुलवंशी भगवान के प्रति श्रद्धा से तपस्वी बन गए थे। इनमें अनुराधा, नंदीय, किंबिला, भागु, कुंडादान, रेवता, आनंद और अन्य कुलवंशी पुत्र शामिल थे। उस समय भगवान भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे थे। भगवान ने उन कुलवंशियों के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया। हे भिक्षुओं, हे कुलवंशी पुत्रों, जो मुझ पर श्रद्धा से तपस्वी बन गए हैं, क्या आप आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं? यह सुनकर भिक्षु मौन हो गए। दूसरी बार और तीसरी बार तक भगवान ने कहा, "हे भिक्षुओं, हे कुल के पुत्रों, जो मुझ पर विश्वास के कारण संन्यास लेकर निकले हो, क्या तुम आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करते हो?" तीसरी बार भी भिक्षु मौन रहे।

तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया कि क्या होगा यदि मैं उन्हीं कुल के पुत्रों में से किसी एक से प्रश्न करूँ? तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुरुद्ध से कहा: अनुरुद्ध, क्या तुम पवित्र जीवन से जुड़े हो? आदरणीय, मैं पवित्र जीवन से जुड़ा हूँ। अच्छा! अनुरुद्ध, आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करो! मेरे प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर संन्यास लेने वाले कुल के पुत्रों को ऐसा ही करना चाहिए। अनुरुद्ध, तुम यौवन की चरम अवस्था में हो, जीवन के प्रथम चरण में हो, तुम्हारे बाल भी काले हैं। जब तुम्हें पाँचों इंद्रिय सुखों का आनंद लेना चाहिए था, तब तुमने संन्यास लिया। अनुरुद्ध, तुमने राजा या लुटेरों के भय से संन्यास नहीं लिया। न ही ऋण के भय से, न ही इसलिए कि तुम्हारे पास जीवनयापन का कोई साधन नहीं था। बल्कि इसलिए कि तुमने सोचा, मैं जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ, और कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा कर सकते हैं। अनुरुद्ध, क्या तुम इसी आस्था के साथ प्रस्थान नहीं किए थे? जी हाँ, पूज्यवर, मैंने किया था। अनुरुद्ध, अपने कुल के पुत्र, जिसने इस प्रकार प्रस्थान किया है, इस युग में क्या किया जाना चाहिए? अनुरुद्ध, यदि तुम अपने मन को इंद्रिय-सुख और पापमय वस्तुओं से नहीं हटाते, या उससे भी श्रेष्ठ किसी चीज़ को प्राप्त नहीं करते, तो लोभ तुम्हारे मन पर हावी हो जाता है और बना रहता है*1)। क्रोध तुम्हारे मन पर हावी हो जाता है और बना रहता है। आलस्य और सुस्ती तुम्हारे मन पर हावी हो जाती है और बनी रहती है। बेचैनी और चिंता तुम्हारे मन पर हावी हो जाती है और बनी रहती है। इसलिए, अनुरुद्ध, अपने मन को इंद्रिय-सुख और पापमय वस्तुओं से हटाओ, या उससे भी श्रेष्ठ किसी चीज़ को प्राप्त करो। ताकि लोभ तुम्हारे मन पर हावी न हो और बना न रहे। क्रोध आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकता, आलस्य और सुस्ती आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकती, बेचैनी और चिंता आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकती और संदेह आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकता।

अनुरुद्ध, क्या आप सोचते हैं कि ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, तथागत को प्राप्त नहीं होतीं? इसलिए तथागत सावधानीपूर्वक एक का पीछा करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को नष्ट करते हैं और दूसरे को नाश करते हैं। आदरणीय महोदय, हम ऐसा नहीं सोचते। हम ऐसा सोचते हैं। दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, तथागत को प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए तथागत सावधानीपूर्वक एक का पीछा करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को नष्ट करते हैं और दूसरे को नाश करते हैं। अच्छा, अनुरुद्ध, आपने इसे समझ लिया है। तथागत को ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, प्राप्त हो जाती हैं। वे जड़ से उखाड़ दी जाती हैं, ताड़ के ठूंठ बना दी जाती हैं, ऐसी चीजें बना दी जाती हैं जो फिर कभी नहीं उगेंगी। अनुरुद्ध, यह उस ताड़ के पेड़ के समान है जिसका ऊपरी भाग काट दिया गया हो और वह फिर से उगने में सक्षम न हो। इसी प्रकार, ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य में जन्म, क्षय और मृत्यु जैसे अप्रिय परिणामों से भरी होती हैं, तथागत के लिए विलीन हो जाती हैं। अतः तथागत एक इच्छा का सावधानीपूर्वक अनुसरण करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को विलीन करते हैं और दूसरी को नष्ट कर देते हैं।

अनुरुद्ध, तथागत भगवान अपने शिष्यों से यह क्यों कहते हैं कि समय की बर्बादी किए बिना, मरने से पहले ही किसी उच्चतर स्थान में जन्म लो? उनका कहना है कि एक का जन्म वहाँ होता है, दूसरे का वहाँ। *2) इस शिक्षा का स्रोत भगवान बुद्ध हैं, इसका मार्गदर्शन भगवान बुद्ध से ही होता है, और इसकी शरण भी भगवान बुद्ध ही हैं। सौभाग्य है कि यह अर्थ भगवान बुद्ध को समझ में आया। हम भिक्षु, भगवान बुद्ध से यह सुनकर इसे याद रखेंगे। अनुरुद्ध, तथागत भगवान अपने शिष्यों से कहते हैं कि समय की बर्बादी किए बिना, मरने से पहले ही किसी उच्चतर स्थान में जन्म लो। उनका कहना है कि एक का जन्म वहाँ होता है, दूसरे का वहाँ। लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, सरासर बकवास करने के लिए नहीं, न ही मान-सम्मान या प्रसिद्धि पाने के लिए, और न ही यह सोचकर कि लोग मुझे इस रूप में जानें। फिर भी, अनुरुद्ध, कुल के ऐसे पुत्र हैं जो आस्था में जन्मे हैं और इसे सुनकर प्रसन्न होते हैं। इसे सुनकर उनमें रुचि जागृत होगी और वे अपना ध्यान उस ओर लगाएंगे, और यह उनके लिए दीर्घकाल तक लाभकारी होगा।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है और भगवान ने उन्हें प्रबुद्ध घोषित किया है। अब यह पूजनीय भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया व्यक्ति है या नहीं भी देखा गया है। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण थे, ये उनके विचार थे, ऐसी उनकी बुद्धि थी, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था होती है*3)।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि वे पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही प्रकट हुए हैं और आगे नहीं बढ़ेंगे। अब यह पूजनीय भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया या नहीं देखा गया। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण थे, ये उनके विचार थे, ऐसी उनकी बुद्धि थी, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मुक्त हो गए। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि का स्मरण करता है और अपना मन उनमें लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि उन्होंने तीन निम्न बंधनों का नाश करके और लोभ, घृणा और मोह को कम करके एक बार फिर यहाँ आने से उनका कष्ट समाप्त हो जाएगा। अब यह पूजनीय भिक्षु वह व्यक्ति है जिसे उस भिक्षु ने देखा है या नहीं देखा है। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए वह उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान का स्मरण करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद निवास होता है। अनुराधा, एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूज्य भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वे शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके हैं। वे मृत्यु के इरादे से पतन नहीं करेंगे। अब यह पूज्य भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया या नहीं देखा गया। वह सुनता है कि ये उस पूज्य भिक्षु के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था है।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि वे प्रबुद्ध हो गई हैं। अब यह पूजनीय भिक्षुणी संयोगवश उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई या न देखी गई है। वह सुनती है कि ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की

है कि पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ ही वह स्वतः उत्पन्न हुई है और आगे नहीं बढ़ेगी। अब यह भिक्षुणी उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई है या नहीं भी देखी गई है। वह सुनती है कि ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद निवास होता है। अनुराधा, एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने और लोभ, घृणा और मोह के कम होने से वह एक बार फिर यहाँ आने वाली बन गई है। यहाँ एक बार फिर आने से अप्रियता का अंत हो जाएगा। अब, यह पूजनीय भिक्षुणी उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई है या नहीं भी देखी गई है। वह सुनती है, ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनकी बुद्धि ऐसी थी कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि का स्मरण करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, यहाँ एक भिक्षुणी सुनती है, इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह शिक्षा की धारा में प्रवेश कर गई हैं। कि वे निर्वाण की इच्छा से भी इससे विमुख नहीं हुईं। अब यह पूजनीय भिक्षुणी संयोगवश उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई या न देखी गई व्यक्ति हैं। वह सुनती है, ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनकी बुद्धि ऐसी थी कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन सद्‌गुणों, अपने ज्ञान, परोपकार और बुद्धिमत्ता को याद करती है और अपना मन उन्हीं में लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद निवास होता है।

अनुराधा, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है। भगवान बुद्ध ने घोषणा की थी कि पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ वह स्वतः ही प्रकट हुए हैं और आगे नहीं बढ़ेंगे। अब यह गृहस्थ शिष्य उस गृहस्थ शिष्य द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो। अनुराधा सुनता है कि ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था कि इन गुणों को विकसित करते हुए उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य के लिए सुखद निवास है। अनुराधा, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है। भगवान बुद्ध ने घोषणा की थी कि तीन निम्न बंधनों के नाश और लोभ, घृणा और मोह को कम करते हुए वह इस संसार में एक बार फिर आएंगे और अप्रियता का अंत करेंगे। अब यह गृहस्थ शिष्य उस गृहस्थ शिष्य द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो। वह सुनता है, ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस आस्था, उन गुणों, अपने ज्ञान, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना ध्यान उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य को सुखद अनुभूति होती है।

अनुरुद्ध, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने पर, जो शिष्य मोक्ष की इच्छा रखता है, वह नहीं गिरेगा। यह गृहस्थ शिष्य उस व्यक्ति को देख चुका था या नहीं भी देख पाया था। अनुरुद्ध सुनता है कि ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस विश्वास, उन गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना ध्यान उसी ओर लगाता है। अनुरुद्ध, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य के लिए सुखद निवास है।

यहां अनुराधा नामक एक महिला शिष्या सुनती है कि इस नाम की शिष्या का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि पांच निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह स्वतः ही इस संसार में अवतरित होकर चली गई है। अब यह शिष्या उस शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो। वह सुनती है कि ये उस शिष्या के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह शिष्या उस आस्था, गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी, एक शिष्या के लिए सुखद स्थिति होती है। अनुराधा नामक एक महिला शिष्या सुनती है कि इस नाम की शिष्या का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने और लोभ, घृणा और मोह के कम होने के साथ ही वह इस संसार में एक बार फिर अप्रियता को समाप्त करने के लिए आएगी। अब यह शिष्या उस शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो। वह सुनती है, ये उसके गुण और विचार थे, ऐसी उसकी बुद्धि थी, उसने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्या उस आस्था, उन गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है, अनुराधा, इस प्रकार भी एक गृहस्थ महिला शिष्या के लिए सुखद निवास है। अनुराधा, एक गृहस्थ महिला शिष्या सुनती है, इस नाम की गृहस्थ महिला शिष्या का देहांत हो गया है। भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह शिक्षा की धारा में प्रवेश करने वाली है, और निर्वाण के लिए अभिप्रेत है, वह इससे विमुख नहीं होगी। अब यह गृहस्थ महिला, चाहे वह उस गृहस्थ महिला शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो, सुनती है, ये उसके गुण और विचार थे, ऐसी उसकी बुद्धि थी, उसने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ महिला शिष्या उस आस्था, उन सद्‌गुणों, अपनी विद्वत्ता,

परोपकार और बुद्धिमत्ता को याद करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है, अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ महिला शिष्या के लिए सुखद निवास होता है।

अनुराद्ध, यानी तथागत, शिष्यों को सलाह देते हैं, समय बर्बाद मत करो, मरने से पहले किसी उच्चतर स्थान पर जन्म लो। वे कहते हैं कि एक जन्म यहाँ का है, दूसरा वहाँ का, लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, सरासर बकवास करने के लिए नहीं, मान-सम्मान या प्रसिद्धि पाने के लिए नहीं, और न ही यह सोचकर कि लोग मुझे इस रूप में जानें। फिर भी, अनुराद्ध जैसे कुछ लोग हैं, जो कुल के पुत्र हैं और आस्था में जन्मे हैं, और यह सुनकर प्रसन्न होते हैं; वे रुचि जागृत करते हैं और अपना ध्यान उसी ओर लगाते हैं। यह उनके लिए दीर्घकाल तक लाभकारी होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य अनुराधा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.9गुलिसानी सुत्त(69)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। उसी समय गुलिस्सानी नाम का एक भिक्षु, जो वनवासी और आज्ञाकारी नहीं था, किसी कारणवश भिक्षुओं के समुदाय में आ गया। तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षु गुलिस्सानी के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, अपने सहपाठियों के प्रति आदर और विनम्रता का भाव रखना चाहिए। यदि कोई वनवास में रहने वाला भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहता है, अपने सहपाठियों के प्रति अनादर और अनुशासनहीनता का भाव रखता है, तो यह उसके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में एकांतवास में रहते हैं, वे अपने सहपाठियों के प्रति अनादर और अनुशासनहीनता का भाव क्यों रखते हैं? ऐसे विचार उसके लिए अपराध हैं। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के बीच में आते हैं, अपने सहपाठियों के प्रति आदर और विनम्रता का भाव रखना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, बैठने की कुशलता विकसित करनी चाहिए। मैं बड़ों का अतिक्रमण नहीं करूँगा और न ही नौसिखियों को उनके स्थान से हटाऊँगा। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु समुदाय में आकर बैठने की कुशलता विकसित नहीं करता, तो यह उसके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे बैठने की कुशलता क्यों नहीं विकसित करते? यह उनके लिए अपराध हो जाता है। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय में आते हैं, बैठने की कुशलता विकसित करनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उन्हें गाँव में न तो बहुत जल्दी प्रवेश करना चाहिए और न ही बहुत देर से गाँव छोड़ना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करे और बहुत देर से गाँव छोड़े, तो यह उनके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे गाँव में बहुत जल्दी क्यों प्रवेश करते हैं और बहुत देर से गाँव छोड़ते हैं? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को गाँव में न तो बहुत जल्दी प्रवेश करना चाहिए और न ही बहुत देर से गाँव छोड़ना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उन्हें भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल नहीं रखना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल रखता है, तो यह उनके लिए अपराध है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ क्यों मेलजोल रखते हैं? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल नहीं रखना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, अहंकारी और बातूनी नहीं होना चाहिए। जब कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आता है और अहंकारी और बातूनी होता है, तो यह उनके लिए अपमानजनक होता है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे

अहंकारी और बातूनी क्यों होते हैं? यह उनके लिए अपमानजनक होता है। इसलिए, वनवासी भिक्षु को समुदाय के बीच आकर अहंकारी और बातूनी नहीं होना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग करता है, तो यह उनके लिए अपराध बन जाता है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग क्यों करते हैं? यह उनके लिए अपराध बन जाता है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वन में रहने वाला भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहता है, उसे विनम्र और अच्छा मित्र होना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर उद्दंड और दुष्ट मित्र बन जाता है, तो यह उसके लिए अपराध बन जाता है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में एकाकी रहते हैं, वे उद्दंड और दुष्ट मित्र क्यों बन जाते हैं? यह उनके लिए अपराध बन जाता है। इसलिए, वनवासी भिक्षु, जो समुदाय के बीच आकर रहते हैं, उन्हें विनम्र और अच्छा मित्र होना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर अपनी मानसिक शक्तियों को असुरक्षित रखे, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वन में रहने वाले पूजनीय भिक्षु को अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित क्यों नहीं रखना चाहिए? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहता है, भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा ज्ञात होनी चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु, समुदाय के बीच आकर भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा न जाने, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वन में रहने वाले पूजनीय भिक्षु को भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा क्यों न ज्ञात हो? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा ज्ञात होनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहता है, जागरूकता विकसित करनी चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु, समुदाय के बीच आकर जागरूक न हो, तो क्या यह उसके लिए अपराध है? क्या वह पूजनीय भिक्षु जो वन में एकाकी रहता है, जागरूकता से बंधा नहीं रहता? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को जागरूकता से बंधा रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, सजग रहना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर सजग न रहे, तो यह उसके लिए अपराध है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे सजग क्यों नहीं रहते? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को सजग रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, एकाग्रचित्त रहना चाहिए। यदि वन में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर एकाग्रचित्त न रहे, तो यह उसके लिए अपराध है। पूजनीय भिक्षु अकेले वन में क्यों रहते हैं, जबकि वे एकाग्रचित्त न हों? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वन में रहने वाले भिक्षु को समुदाय के बीच आकर एकाग्रचित्त रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, एकाग्रता विकसित करनी चाहिए। यदि वन में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर एकाग्रता विकसित नहीं करता है, तो यह उसके लिए अपराध है। अकेले वन में रहने वाले पूज्य भिक्षु ने एकाग्रता क्यों नहीं विकसित की? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के बीच आकर रहते हैं, एकाग्रता विकसित करनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, ज्ञान का विकास करना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर ज्ञान का विकास न करे तो क्या यह उनके लिए अपराध है? आदरणीय भिक्षु का वन में अकेले रहना, अविकसित ज्ञान के साथ, उनके लिए अपराध क्यों है? इसलिए, वनवासी भिक्षु को समुदाय के बीच आकर ज्ञान का विकास करना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से जुड़े रहना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से नहीं जुड़ता है, तो यह उनके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से क्यों नहीं जुड़ते? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, जो वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आते हैं, उन्हें उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से जुड़ना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, उन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति से जुड़ना चाहिए। कुछ लोग वनवास में रहने वाले भिक्षु से इन मुक्ति के बारे में प्रश्न करते हैं। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर इन मुक्ति के बारे में पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर न दे पाए, तो यह उसके लिए अपराध है। अंत में, जो पूजनीय भिक्षु वन में एकाकी रहते हैं, वे इन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति के प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे सकते? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को समुदाय के बीच आकर उन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति से जुड़ना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, मानवीय गुणों से परे किसी चीज़ से जुड़ना चाहिए। कुछ लोग वनवास में रहने वाले भिक्षु से मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में प्रश्न करते हैं। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु, समुदाय के बीच आकर, मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में पूछे गए प्रश्न का उत्तर न दे पाए, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वनवास में रहने वाला पूजनीय व्यक्ति मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे पाता? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवास में रहने वाले भिक्षु को मानवीय गुणों से परे किसी चीज़ से जुड़ना चाहिए।

आदरणीय महामोग्गलाना ने आदरणीय सारिपुत्त से कहा, 'मित्र सारिपुत्त, क्या ये नियम केवल वन में रहने वाले भिक्षुओं के लिए हैं या गांवों में रहने वाले भिक्षुओं पर भी लागू होते हैं?' सारिपुत्त ने कहा, 'मित्र मोग्गलाना, ये नियम वन में रहने वाले भिक्षुओं के साथ-साथ गांवों के अंत में रहने वाले भिक्षुओं के लिए भी लागू होते हैं।'

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.10 कितागिरी सुत्त(70)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ काशी की यात्रा पर थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मैं रात्रि भोजन नहीं करता। रात्रि भोजन न करने के कारण मुझे न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय जीवन का अनुभव होता है। अब आप भी रात्रि भोजन न करें। रात्रि भोजन न करने के कारण आपको भी न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय जीवन का अनुभव होगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

फिर, जब भगवान बुद्ध काशी में विभिन्न चरणों में विचरण कर रहे थे, तो अंततः वे काशी के एक कस्बे कितागिरी पहुंचे। और वहीं वे काशी के कितागिरी कस्बे में ठहरे।

उस समय असाजी और पुनाबासु2 के नेतृत्व में भिक्षु कितागिरी में निवास कर रहे थे। तब बड़ी संख्या में भिक्षु उनके पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, “भगवान बुद्ध और भिक्षु समुदाय रात्रि भोज का त्याग करते हैं। रात्रि भोज का त्याग करने के कारण उन्हें न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय निवास का अनुभव होता है। अब आओ, मित्रों। तुम भी रात्रि भोज का त्याग करो। रात्रि भोज का त्याग करने के कारण तुम्हें भी न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय निवास का अनुभव होगा।”

यह सुनकर असाजी और पुनाबस्सु के नेतृत्व में भिक्षुओं ने उन भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, हम शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करते हैं। शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करने से हमें न के बराबर बीमारी, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखदायक अनुभूति होती है। जो तुरंत दिखाई देता है उसे छोड़कर हम समय के अधीन किसी चीज के पीछे क्यों भागें? हम शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करेंगे।"

जब वे असाजी और पुनाबबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं को समझाने में असमर्थ रहे, तो वे भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए [और उन्हें जो कुछ हुआ था वह बताया]।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु। मेरे नाम से, असाजी और पुनाबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं को बुलाओ और कहो, 'गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं, मित्रों।'"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षु ने उत्तर दिया और असाजी और पुनाबबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं के पास जाकर, वहाँ पहुँचकर उसने कहा, "गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्रों।"

“जैसा आप कहें, मित्र,” असाजी और पुनाबस्सु के नेतृत्व में भिक्षुओं ने उत्तर दिया। फिर वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि बहुत से भिक्षु आपके पास आए थे... और आपने कहा था, '...जो तुरंत दिखाई देता है, उसे छोड़कर हम समय के अधीन किसी चीज के पीछे क्यों भागें? हम शाम को, सुबह को और दिन में गलत समय पर भी खाएँगे।'”

"हाँ भगवान।"

भिक्षुओं, क्या आपने कभी मुझे धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हुए समझा है: 'व्यक्ति चाहे जो भी अनुभव करे—सुखद, दुखद, या न सुखद न दुखद—उसके अकुशल गुण कम होते हैं और उसके कुशल गुण बढ़ते हैं'?

"नहीं, भगवान।"

क्या आपने मुझे धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हुए नहीं समझा है: 'जो व्यक्ति इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की कष्टदायक अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की कष्टदायक अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की ऐसी अनुभूति का अनुभव करता है जो न सुखद है और न कष्टदायक, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की अनुभूति का अनुभव करता है जो न सुखद है और न कष्टदायक, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं।'

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। और यदि मुझे यह ज्ञात न होता—न देखा होता, न अवलोकन किया होता, न बोध किया होता, न विवेक से स्पर्श किया होता—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं,' तो क्या मेरे लिए, यह जाने बिना, यह कहना उचित होता कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का त्याग करो'?"

"नहीं, भगवान।"

लेकिन चूंकि यह मेरे द्वारा ज्ञात है—देखा, अवलोकन किया, अनुभव किया, विवेक के माध्यम से छुआ—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं,' इसलिए मैं कहता हूं, 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का त्याग करो।'

"यदि मुझे यह ज्ञात न होता—न देखा होता, न देखा होता, न महसूस किया होता, न विवेक से स्पर्श किया होता—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण कम हो जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं,' तो क्या मेरे लिए, यह जाने बिना, यह कहना उचित होता कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति में प्रवेश करो और बने रहो'?"

"नहीं, भगवान।"

"परन्तु क्योंकि यह मेरे द्वारा ज्ञात है—देखा, अनुभव किया, बोध किया, विवेक से छुआ—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण कम हो जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं,' इसलिए मैं कहता हूँ, 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति में प्रवेश करो और बने रहो।'

(इसी प्रकार दर्दनाक भावनाओं और न तो सुखद और न ही दर्दनाक भावनाओं के लिए भी यही बात लागू होती है।)

"मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें सजगता से संबंधित कोई कार्य करना है; न ही मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह कहता हूं कि उन्हें सजगता से संबंधित कोई कार्य नहीं करना है।"

"जो भिक्षु अरहंत हैं, जिनके मानसिक विकार समाप्त हो चुके हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, अपना कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधन को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हो चुके हैं: मैं उनके बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें सजगता से काम करना है। ऐसा क्यों? क्योंकि उन्होंने अपना कार्य सजगता से पूरा कर लिया है। वे असावधान होने में असमर्थ हैं। लेकिन उच्च प्रशिक्षण प्राप्त भिक्षुओं के बारे में, जिन्होंने अभी तक अपने हृदय के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है, जो अभी भी बंधन से अद्वितीय मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं: मैं उनके बारे में कहता हूं कि उन्हें सजगता से काम करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूं:] 'शायद ये पूजनीय भिक्षु, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करते हुए, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करते हुए, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करते हुए,3 पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेंगे और उसमें बने रहेंगे, जिसके लिए कुलवासी सही रूप से घर से तपस्वी जीवन में प्रस्थान करते हैं, और इसे स्वयं यहीं और अभी में जानते और अनुभव करते हैं।'" इन भिक्षुओं के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूं कि उन्हें सजगता के साथ एक कार्य करना है।

भिक्षुओं, संसार में ये सात व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से सात हैं? एक जो दोनों मार्गों से मुक्त है, एक जो विवेक के माध्यम से मुक्त है, एक जो शारीरिक साक्षी है, एक जो दृष्टि प्राप्त कर चुका है, एक जो दृढ़ विश्वास के माध्यम से मुक्त है, एक जो धम्म का अनुयायी है, और एक जो दृढ़ विश्वास का अनुयायी है।

और वह व्यक्ति जो दोनों तरह से मुक्त हो चुका है, वह क्या है? एक स्थिति यह है कि कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति को स्पर्श करता रहता है जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और विवेक से देखकर उसकी व्यथा समाप्त हो जाती है। इसे ही दोनों तरह से मुक्त व्यक्ति कहा जाता है।4 इस भिक्षु के बारे में मैं यह नहीं कहता कि उसे सजगता से कोई कार्य करना है। ऐसा क्यों? उसने अपना कार्य सजगता से किया है। वह असावधान होने में असमर्थ है।

और विवेक से मुक्त हुआ व्यक्ति क्या है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति को स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, बल्कि विवेक से देखकर उसकी मनोभ्रंश समाप्त हो जाती है। इसे विवेक से मुक्त हुआ व्यक्ति कहते हैं।5 इस भिक्षु के विषय में, मैं यह नहीं कहता कि उसे सजगता से कोई कार्य करना है। ऐसा क्यों? उसने अपना कार्य सजगता से किया है। वह असावधान होने में असमर्थ है।

और वह व्यक्ति कौन है जो शारीरिक साक्षी है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श करता रहता है जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश शांत हो जाती हैं। इसे शारीरिक साक्षी कहा जाता है।6 इस भिक्षु के विषय में, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से संबंधित कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जिसके लिए कुलवासी सही रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं यहाँ और अभी में जानकर और अनुभव करके प्राप्त करेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से संबंधित कार्य करना है।

और वह व्यक्ति जिसे दृश्य प्राप्ति हुई है, वह क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्तियों से स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, परन्तु विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश शांत हो जाती हैं, और वह तथागत द्वारा घोषित गुणों (या शिक्षाओं) का विवेकपूर्वक अवलोकन और परीक्षण कर लेता है। इसे ही दृश्य प्राप्ति प्राप्त व्यक्ति कहते हैं।7 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों की संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और

इसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है।

और विश्वास के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, परन्तु विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश समाप्त हो जाती हैं, और तथागत में उसका विश्वास दृढ़, जड़ जमा लेता है और स्थिर हो जाता है। इसे ही विश्वास के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति कहते हैं।8 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है।

"और वह व्यक्ति कौन है जो धम्म का अनुयायी है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श नहीं रखता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और न ही विवेक से देखकर उसकी मनोभ्रंश शांत होती है। परन्तु पर्याप्त चिंतन और विवेक से वह तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं से सहमत हो जाता है। और उसमें ये गुण होते हैं: दृढ़ विश्वास, दृढ़ता, सजगता, एकाग्रता और विवेक। यही वह व्यक्ति कहलाता है जो धम्म का अनुयायी है।9 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ रहकर, अपनी [मानसिक] शक्तियों को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यास लेते हैं। जीवन को स्वयं यहीं और अभी में जानना और अनुभव करना। इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता के साथ एक कार्य करना है।

और वह व्यक्ति कौन है जो दृढ़ विश्वास का अनुयायी है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका शरीर उन शांतिपूर्ण मुक्ति से स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और न ही विवेक से देखने के बाद भी उसकी भावनाएँ शांत होती हैं। परन्तु उसमें तथागत के प्रति पर्याप्त दृढ़ विश्वास और प्रेम होता है। और उसमें ये गुण होते हैं: दृढ़ विश्वास, दृढ़ता, सजगता, एकाग्रता और विवेक। इसे दृढ़ विश्वास का अनुयायी कहा जाता है। इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से एक कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों की संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और उसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूं कि उसे सजगता से संबंधित एक कार्य करना है।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि ज्ञान की प्राप्ति एक ही बार में हो जाती है। बल्कि, ज्ञान की प्राप्ति क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास के बाद होती है। और क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास के बाद ज्ञान की प्राप्ति कैसे संभव है? एक स्थिति यह है कि जब विश्वास उत्पन्न हो जाता है, तो व्यक्ति किसी शिक्षक के पास जाता है। मिलने के बाद, व्यक्ति उनसे निकटता प्राप्त करता है। निकटता प्राप्त करने के बाद, वह उनकी बातें ध्यान से सुनता है। ध्यान से सुनने के बाद, वह धम्म सुनता है। धम्म सुनने के बाद, वह उसे याद रखता है। याद रखने के बाद, वह शिक्षाओं के अर्थ को गहराई से समझता है। अर्थ को गहराई से समझने के बाद, वह शिक्षाओं पर मनन करके एक सहमति पर पहुँचता है। शिक्षाओं पर मनन करने के बाद सहमति प्राप्त होने पर, इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा उत्पन्न होने पर, व्यक्ति तत्पर होता है। तत्पर होने पर, वह चिंतन करता है। चिंतन करने के बाद, वह प्रयास करता है। प्रयास करने के बाद, वह शरीर से परम सत्य को अनुभव करता है और विवेक से उसका बोध करके उसे देखता है।10

"अब, भिक्षुओं, वह दृढ़ विश्वास नहीं रहा, वह दर्शन नहीं रहे, वह निकटता नहीं रही... वह ध्यान से सुनना नहीं रहा... धम्म का वह श्रवण नहीं रहा... वह स्मरण नहीं रहा... शिक्षाओं के अर्थ की वह मर्मस्पर्शी समझ नहीं रही... शिक्षाओं पर मनन करके वह सहमति नहीं बन पाई... वह इच्छा नहीं रही... वह तत्परता नहीं रही... वह चिंतन नहीं रहा... वह प्रयास नहीं रहा। हे भिक्षुओं, तुम मार्ग भटक गए हो। तुम गलत रास्ते पर चले गए हो, भिक्षुओं। हे मूर्ख मनुष्यों, तुम इस धम्म और अनुशासन से कितना दूर भटक गए हो!"

"भिक्षुओं, एक चार वाक्यों वाला कथन है, जिसे पढ़ने से एक बुद्धिमान व्यक्ति विवेक के बल पर शीघ्र ही उसका अर्थ समझ लेता है। मैं इसे पढ़ता हूँ, और आप इसे मुझसे सीख लें।"

लेकिन, हे भगवान, हम कौन हैं जो धम्म के शिक्षार्थी बनें?

"भिक्षुओं, यहाँ तक कि भौतिक वस्तुओं के प्रति समर्पित, भौतिक वस्तुओं के उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं से आसक्त जीवन जीने वाले गुरु के मामले में भी, उनके छात्रों द्वारा इस प्रकार की सौदेबाजी उचित नहीं होगी: 'यदि हमें यह मिलेगा, तो हम इसे करेंगे; यदि नहीं मिलेगा, तो हम नहीं करेंगे।' तो फिर तथागत के संबंध में यह कैसे उचित हो सकता है, जो भौतिक वस्तुओं से पूर्णतः विरक्त रहते हैं?"

जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए धम्म के अनुसार यह सत्य है: 'भगवान गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ। वही ज्ञानी हैं, मैं नहीं।' जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए गुरु का संदेश उपचार और पोषण प्रदान करता है। जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए धम्म के अनुसार यह सत्य है: 'मैं अपने शरीर के मांस और रक्त को सूखने दूँ, केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, परन्तु यदि मैंने मानवीय दृढ़ता, मानवीय लगन और मानवीय प्रयास से प्राप्त होने वाली वस्तु को प्राप्त नहीं किया है, तो मेरी लगन में कोई शिथिलता नहीं होगी।' जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उससे दो फल प्राप्त हो सकते हैं: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति-पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनात्म।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 8.1 तेविज्जा-वाचागोट्टा सुट्टा(71)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित एक ऊंचे चबूतरे वाले भवन में निवास कर रहे थे। उसी समय वाच्छगोत्त नामक एकपुंडरीका नामक उनके आश्रम में वाच्छगोत्त रह रहे थे। भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उन्हें यह विचार आया कि वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। क्या मैं एकपुंडरीका स्थित एकपुंडरीका में जाकर वाच्छगोत्त से मिलूं? तब भगवान बुद्ध वाच्छगोत्त के पास गए। उन्होंने भगवान बुद्ध को आते हुए देखा और कहा, "आइए! भगवान बुद्ध, बहुत समय बाद आए हैं, कृपया बैठिए। यहाँ आसन तैयार है।" भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए और भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भी एक तरफ नीचा आसन लेकर बैठ गए और भगवान बुद्ध से कहा।

आदरणीय महोदय, मैंने यह सुना है कि गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे इस प्रकार पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, 'चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार ज्ञान और दृष्टि मुझ तक पहुँचती है।' आदरणीय महोदय, जो लोग ये शब्द कहते हैं, 'गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं: चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार।' क्या वे गौतम संत के शब्द कह रहे हैं और क्या वे भगवान गौतम पर झूठा आरोप नहीं लगा रहे हैं? हे भगवान, जो लोग कहते हैं, 'गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार।' वे मेरे शब्द नहीं कह रहे हैं, वे मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हैं।

आदरणीय महोदय, यह कैसे कहा जाए, जिससे भगवान बुद्ध पर झूठा आरोप न लगे? 'सन्यासी गौतम तीनों ज्ञानों को जानते हैं।' ऐसा कहना सही होगा, और मुझ पर झूठा आरोप नहीं लगेगा। वच्छा, जब भी मैं इच्छा करता हूँ, तो मुझे अनेक जन्म याद आते हैं, जैसे एक जन्म, दो जन्म, सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ। इस प्रकार मैं अनेक जन्मों को याद करता हूँ। वच्छा, जब मैं इच्छा करता हूँ, तो मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए, उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे अवस्थाओं में देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता हूँ। वच्छा, इच्छाओं का नाश करके, मेरा मन ज्ञान से मुक्त होता है, और मैं स्वयं को सबोध करके यहीं और अभी विद्यमान रहता हूँ। वच्छा, यदि यह कहा जाए कि तपस्वी गौतम तीनों ज्ञानों को जानते हैं, तो ऐसा कहना सही होगा, और मुझ पर झूठा आरोप नहीं लगेगा।'

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी वच्छगोत्ता ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, क्या कोई ऐसा गृहस्थ है जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पा सके? नहीं, वच्छ, ऐसा कोई गृहस्थ नहीं है जिसने गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना कष्टों से मुक्ति पाई हो। हे गौतम, क्या कोई ऐसा गृहस्थ है जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेता हो? वच्छ, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं, बल्कि अनेक ऐसे हैं जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। हे गौतम, क्या कोई ऐसा तपस्वी है जिसने मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पाई हो? नहीं, वच्छ, ऐसा कोई तपस्वी नहीं है जिसने मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पाई हो। हे गौतम, क्या कोई ऐसा तपस्वी है जो मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेता हो?” वच्छा, मैंने 91 विश्व चक्रों का स्मरण किया और स्वर्ग में जन्म लेने वाले किसी भी तपस्वी को नहीं देखा, सिवाय एक विशेष तपस्वी के जो मानता था कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है। हे गौतम, यदि ऐसा है तो स्वर्ग में जन्म लिए बिना अन्य सभी धर्म व्यर्थ हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.2अग्गी-वाचागोट्टा सुट्टा(72)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका उद्यान में स्थित जेतवन मठ के सावत्थी में निवास कर रहे थे। तभी वाच्छ नामक तपस्वी भगवान बुद्ध के पास आया; और पास आकर उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया; और मित्रता और शिष्टाचार का अभिवादन करने के बाद वह आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गया। आदरपूर्वक एक तरफ बैठे हुए वाच्छ नामक तपस्वी ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:--

"ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार शाश्वत है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत है, और न ही यह मानता हूँ कि केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"लेकिन ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत नहीं है, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"कैसे है गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार सीमित है...?"

"गौतम, ऐसा कैसे है? क्या गौतम यह मानते हैं कि आत्मा और शरीर एक ही हैं...?"

"यह कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संत मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहते हैं, . . ."

"गौतम, ऐसा कैसे है? क्या गौतम का मानना है कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी रहते हैं, और क्या यही एकमात्र सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्चा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी होते हैं और नहीं भी, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"लेकिन ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि मृत्यु के बाद संत का न तो अस्तित्व होता है और न ही नहीं होता, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में होते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"हे गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संसार शाश्वत है, और केवल यही सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत है, और केवल यही सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?"

लेकिन हे गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम मानते हैं कि दुनिया सीमित है, . . . '?"

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम यह मानते हैं कि आत्मा और शरीर एक समान हैं, . . . '?"

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम मानते हैं कि संत का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी रहता है, . . . '?"

"हे गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?"

"परन्तु गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और केवल यही मत सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छ। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और केवल यही मत सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'? गौतम को इन सिद्धांतों में क्या आपत्ति है कि उन्होंने इनमें से किसी को भी नहीं अपनाया है?"

"वच्छ, वह सिद्धांत जो मानता है कि दुनिया शाश्वत है, एक जंगल है, एक निर्जन क्षेत्र है, एक कठपुतली का खेल है, एक तड़प है और एक बेड़ी है, और यह दुख, विनाश, निराशा और पीड़ा से जुड़ा हुआ है, और यह अरुचि, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, ज्ञान, सर्वोच्च बुद्धि और निर्वाण की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।"

"वच्छ, वह सिद्धांत जिसके अनुसार संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में होते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, एक जंगल है, एक वीरान जगह है, एक कठपुतली का खेल है, एक तड़प है और एक बेड़ी है, और यह दुख, विनाश, निराशा और पीड़ा से जुड़ा हुआ है, और यह अरुचि, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, ज्ञान, सर्वोच्च बुद्धि और निर्वाण की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।"

"मुझे इन सिद्धांतों पर यही आपत्ति है, इसलिए मैंने इनमें से किसी को भी नहीं अपनाया है।"

"लेकिन क्या गौतम का अपना कोई सिद्धांत है?"

हे वच्छ, तथागत समस्त सिद्धांतों से मुक्त हैं; परन्तु हे वच्छ, तथागत केवल यही जानते हैं—रूप का स्वरूप, रूप की उत्पत्ति और विनाश; संवेदना का स्वरूप, संवेदना की उत्पत्ति और विनाश; बोध का स्वरूप, बोध की उत्पत्ति और विनाश; प्रवृत्तियों का स्वरूप, प्रवृत्तियों की उत्पत्ति और विनाश; चेतना का स्वरूप, चेतना की उत्पत्ति और विनाश। अतः मैं कहता हूँ कि तथागत ने मुक्ति प्राप्त कर ली है और वे आसक्ति से मुक्त हैं, क्योंकि अहंकार या उससे संबंधित किसी भी विषय में समस्त कल्पनाएँ, व्याकुलताएँ और अभिमानपूर्ण विचार नष्ट हो गए हैं, लुप्त हो गए हैं, समाप्त हो गए हैं, त्याग दिए गए हैं।

लेकिन, गौतम, वह पुनर्जन्म लेने वाला पुजारी कहाँ है जिसने अपने मन के लिए यह मुक्ति प्राप्त कर ली है?

"वाच्चा के बारे में यह कहना कि उसका पुनर्जन्म हुआ है, इस मामले में उचित नहीं होगा।"

"तो फिर, गौतम, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

"तो, गौतम, वह पुनर्जन्म भी लेता है और पुनर्जन्म नहीं भी लेता है।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि वह पुनर्जन्म भी ले चुका है और पुनर्जन्म नहीं भी ले चुका है, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

"तो फिर, गौतम, वह न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही पुनर्जन्म नहीं लेता है।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि वह न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही पुनर्जन्म नहीं लेता, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'परन्तु, गौतम, वह पुरोहित कहाँ है जिसने मन की इस मुक्ति को प्राप्त कर लिया है?' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म होना उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म न होना उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका पुनर्जन्म हुआ भी है और नहीं भी हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म हुआ भी है और नहीं भी हुआ है, यह उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका न तो पुनर्जन्म हुआ है और न ही नहीं हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका न तो पुनर्जन्म हुआ है और न ही नहीं हुआ है, यह उचित नहीं है।' गौतम, मैं इस मामले में क्या सोचूँ, यह समझ नहीं पा रहा हूँ, और मैं बहुत भ्रमित हो गया हूँ, और पिछली बातचीत से गौतम में जो विश्वास जागा था, वह अब लुप्त हो गया है।

"बस करो, हे वच्छा! इस विषय में क्या सोचना है, इस बारे में असमंजस में मत पड़ो, और अधिक भ्रमित मत हो। हे वच्छा, यह सिद्धांत गहरा, गूढ़ और समझने में कठिन है; उत्तम, उत्कृष्ट, और मात्र तर्क से प्राप्त न होने वाला; सूक्ष्म और केवल बुद्धिमानों के लिए बोधगम्य है; और यह तुम्हारे लिए सीखना कठिन है, क्योंकि तुम दूसरे संप्रदाय, दूसरे धर्म, दूसरे मत, दूसरे अनुशासन से संबंधित हो और दूसरे गुरु के चरणों में बैठते हो। इसलिए, हे वच्छा, अब मैं तुमसे प्रश्न पूछूंगा, और तुम ऐसा उत्तर दो जो तुम्हें उचित लगे। हे वच्छा, तुम क्या सोचते हो? मान लो तुम्हारे सामने आग जल रही हो, तो क्या तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे सामने आग जल रही है?"

"गौतामा, अगर मेरे सामने आग जल रही हो, तो मुझे इस बात का एहसास होना चाहिए कि मेरे सामने आग जल रही है।"

लेकिन मान लो, वच्छा, अगर कोई तुमसे पूछे, 'तुम्हारे सामने जल रही यह आग किस पर निर्भर करती है?' तो तुम क्या उत्तर दोगे, वच्छा?

"गौतम, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आपके सामने जल रही यह आग किस पर निर्भर करती है?' तो मैं उत्तर दूंगा, गौतम, 'यह आग घास और लकड़ी के ईंधन पर निर्भर करती है।'"

लेकिन, वाच्चा, अगर तुम्हारे सामने की आग बुझ जाए, तो क्या तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे सामने की आग बुझ गई है?

"गोतामा, अगर मेरे सामने की आग बुझ जाए, तो मुझे पता चल जाएगा कि मेरे सामने की आग बुझ गई है।"

लेकिन, वच्छा, यदि कोई तुमसे पूछे, 'वह आग किस दिशा में गई है—पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण?' तो तुम क्या कहोगे, हे वच्छा?'

"यह प्रश्न इस मामले के अनुकूल नहीं है, गौतम। क्योंकि जो अग्नि घास और लकड़ी के ईंधन पर निर्भर करती है, जब वह ईंधन पूरी तरह समाप्त हो जाता है और उसे कोई अन्य ईंधन नहीं मिल पाता, तो वह पोषक तत्वों से रहित होकर बुझ जाती है।"

"ठीक इसी प्रकार, हे वच्छा, संत के अस्तित्व को दर्शाने वाले सभी रूप त्याग दिए गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के वृक्ष की तरह जमीन से निकाल दिए गए हैं, और अस्तित्वहीन हो गए हैं तथा भविष्य में फिर से उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है। हे वच्छा, जो रूप कहलाने वाली हर चीज से मुक्त हो चुके हैं, वे विशाल सागर के समान गहरे, असीम, अथाह हैं। उनका पुनर्जन्म होना उचित नहीं होगा।

उनका पुनर्जन्म न होना भी उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म होना और न होना भी उचित नहीं होगा। उनका न तो पुनर्जन्म होना और न ही न होना भी उचित नहीं होगा।"

"सारी संवेदना..."

सभी धारणाएँ...

सभी पूर्वधारणाएँ...

वह समस्त चेतना जिसके आधार पर संत के अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता था, वह समस्त चेतना त्याग दी गई है, जड़ से उखाड़ दी गई है, ताड़ के वृक्ष की तरह जमीन से निकाल दी गई है, और अस्तित्वहीन हो गई है तथा भविष्य में फिर से उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है। हे वच्छ, वह संत जो चेतना कहलाने वाली चीज़ से मुक्त हो चुके हैं, विशाल सागर के समान गहरे, असीम, अथाह हैं। उनका पुनर्जन्म होना उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म न होना भी उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म होना और न होना भी उचित नहीं होगा। उनका न तो पुनर्जन्म होना और न ही न होना भी उचित नहीं होगा।

जब भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, तब वाच्छा नामक तपस्वी ने उनसे इस प्रकार कहा:

हे गौतम, ऐसा ही है मानो किसी गाँव या कस्बे के पास एक विशाल साल का पेड़ हो, और वह अपनी सूखी शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी को गिरा दे, और फिर उन शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी से मुक्त होकर, अपनी शक्ति में निर्मल और सुंदर खड़ा हो। ठीक इसी प्रकार गौतम का वचन भी शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी से मुक्त होकर, अपनी शक्ति में निर्मल और सुंदर खड़ा है। हे गौतम, यह कितना अद्भुत है! हे गौतम, यह कितना अद्भुत है! हे गौतम, ऐसा ही है मानो कोई उलटी हुई चीज को सीधा खड़ा कर दे; या किसी छिपी हुई चीज को प्रकट कर दे; या किसी खोए हुए यात्री को रास्ता दिखा दे; या किसी अंधेरी जगह में दीपक ले जाए, ताकि देखने वाले आकृतियाँ देख सकें। गौतम ने भी इसी प्रकार अनेक प्रकार से इस सिद्धांत की व्याख्या की है। मैं गौतम की शरण में जाता हूँ। मैंने धर्म और पुरोहितों के समुदाय की शरण ली है। गौतम मुझे, जिसने उनकी शरण ली है, स्वीकार करें और आज से जीवन भर मुझे अपना शिष्य बना लें।

[टिपिटक]] >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.3 महा वाचागोट्टा सुत्त(73)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रह रहे थे। तब भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान के पास आए, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर भगवान से कहा, 'बहुत समय हो गया है जब हमें अच्छे गौतम से बात करने का अवसर मिला। हम संक्षेप में उनके गुण-दोष जानना चाहते हैं।' 'वच्छ, मैं तुम्हें गुण-दोष संक्षेप में और विस्तार से भी बताऊंगा। अब ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूं।' भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता सहमत हो गए और भगवान ने इस प्रकार कहा:

ßवच्छ, लोभ एक दोष है, लोभ न करना एक गुण है। क्रोध एक दोष है और क्रोध न करना एक गुण है। भ्रम एक दोष है और भ्रम से मुक्ति एक गुण है। ये तीनों दोष हैं और अन्य तीन गुण हैं। जीवन का नाश करना एक दोष है, जीवन का नाश न करना एक गुण है। जो नहीं दिया गया है उसे लेना एक दोष है और जो नहीं दिया गया है उसे न लेना एक गुण है। यौन दुराचार एक दोष है और यौन दुराचार से बचना एक गुण है। झूठ बोलना एक दोष है और झूठ न बोलना एक गुण है। निंदा करना एक दोष है और निंदा से बचना एक गुण है। अभद्र भाषा बोलना एक दोष है और अभद्र भाषा से बचना एक गुण है। निरर्थक बातें करना एक दोष है और निरर्थक बातों से बचना एक गुण है। लोभ करना एक दोष है और लोभ से बचना एक गुण है। क्रोधित मन रखना दोष है और शांत मन रखना पुण्य है। गलत दृष्टिकोण दोष है और सही दृष्टिकोण पुण्य है। वाच्छा, ये दस दोष हैं और अन्य दस पुण्य हैं। वाच्छा, जब भिक्षु व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंकता है, उसे ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह बना देता है और उसे ऐसा बना देता है कि वह फिर से न उगे, तब वह भिक्षु पूर्ण हो जाता है।

वह इच्छाओं से विलीन होकर, पवित्र जीवन जीकर, जो करना चाहिए वह करके, बोझ उतारकर सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर लेता है, और 'होने' के बंधन को नष्ट करके, वह सही ज्ञान के साथ मुक्त हो जाता है।

'अच्छा, गौतम, रुको! क्या गौतम का कोई एक भी शिष्य ऐसा भिक्षु है जिसने इच्छाओं का नाश किया हो, मन को इच्छाओं से मुक्त किया हो और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में स्थिर रहकर मुक्ति पाई हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ भी नहीं। मेरे कई शिष्य भिक्षु हैं जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, मन को इच्छाओं से मुक्त किया है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में स्थिर रहकर मुक्ति पाई है।'

'अच्छा, गौतम, रुकिए! भिक्षुओं की बात छोड़िए। क्या गौतम की कोई एक भी शिष्या है जिसने इच्छाओं का नाश किया हो, मन को इच्छाओं से मुक्त किया हो और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में मोक्ष प्राप्त किया हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं। मेरी बहुत सी शिष्याएं हैं जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, मन को इच्छाओं से मुक्त किया है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में मोक्ष प्राप्त किया है।'

'अच्छा, गौतम, रुको! भिक्षुओं और भिक्षुणियों के अलावा, क्या गौतम का कोई ऐसा गृहस्थ शिष्य है, जिसने श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्र जीवन व्यतीत किया हो, इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों को नष्ट किया हो, और जो स्वाभाविक रूप से जन्म लेकर आगे न बढ़े?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पाँच सौ नहीं। मेरे कई ऐसे गृहस्थ शिष्य हैं, जिन्होंने इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों को नष्ट कर दिया है, और जो स्वाभाविक रूप से जन्म लेकर आगे न बढ़ें।'

'अच्छा, गौतम, रुकिए! श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन जीने वाले गौतम के भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों के अलावा, क्या कोई एक भी गृहस्थ शिष्य है, जो श्वेत वस्त्र धारण करता हो, पवित्र जीवन जीता हो, इंद्रिय सुखों का भोग करता हो और धर्मोपदेश के कार्य में अपने सभी संदेहों को दूर कर चुका हो, जो उचित और अनुचित कार्यों के प्रति आश्वस्त हो चुका हो और गुरु के धर्मोपदेश में अब उसे किसी गुरु की आवश्यकता न हो? वाच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ भी नहीं। मेरे अनेक गृहस्थ शिष्य हैं, जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, पवित्र जीवन जीते हैं, इंद्रिय सुखों का भोग करते हैं और धर्मोपदेश के कार्य में अपने सभी संदेहों को दूर कर चुके हैं, जो उचित और अनुचित कार्यों के प्रति आश्वस्त हो चुके हैं और अब उन्हें किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।'

'हे गौतम, रुकिए! भिक्षुओं, भिक्षुणियों, स्वतः उत्पन्न हुए और आगे न बढ़ने वाले गृहस्थ शिष्यों, और शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके और आश्वस्त शिष्यों के अलावा, क्या गौतम की कोई ऐसी स्त्री गृहस्थ शिष्या है जो श्वेत वस्त्र धारण करती हो, पवित्र जीवन व्यतीत करती हो, इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का नाश कर चुकी हो, और स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए जन्मी हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पाँच सौ नहीं। मेरी बहुत सी स्त्री गृहस्थ शिष्याएँ हैं जिन्होंने इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का नाश कर दिया है, और स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए जन्मी हैं।'

अच्छा, गौतम, रुको! भिक्षुओं, भिक्षुणियों, स्वतः उत्पन्न हुए उन गृहस्थ शिष्यों के अलावा जो आगे नहीं बढ़ना चाहते, और उन लोगों के अलावा जो शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके हैं और आत्मविश्वासी हैं, और उन गृहस्थ स्त्री शिष्यों के अलावा जो स्वतः उत्पन्न हुई हैं और आगे नहीं बढ़ना चाहतीं, क्या एक भी ऐसी स्त्री शिष्या है जो श्वेत वस्त्र धारण करती है, पवित्र जीवन व्यतीत करती है, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए भी धर्म के कार्यों में लगी रहती है, उसके सारे संदेह दूर हो गए हैं, उसे इस बात का पूरा ज्ञान हो गया है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, और अब उसे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है। 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं। मेरी बहुत सी ऐसी स्त्री शिष्याएं हैं जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए भी धर्म के कार्यों में लगी रहती हैं, उनके सारे संदेह दूर हो गए हैं, उन्हें इस बात का पूरा ज्ञान हो गया है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। गुरु के धर्म में उन्हें अब किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।

हे गौतम जी, यदि इस युग में केवल गौतम जी ही पूर्ण होते और भिक्षु पूर्ण न होते, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण होता। परन्तु गौतम जी और भिक्षु दोनों ही पूर्ण हैं, अतः यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस युग में केवल गौतम वरन् और भिक्षु ही सिद्ध हुए होते और भिक्षुणियाँ नहीं, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण होता। यद्यपि गौतम वरन् और भिक्षुणियाँ सिद्ध हो चुके हैं, इसलिए यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस उपदेश में, हे गौतम, भिक्षु और भिक्षुणियों को ही सिद्ध किया गया है, न कि श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन जीने वाले गृहस्थ शिष्यों को, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। यद्यपि हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियों और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले गृहस्थ शिष्यों को भी सिद्ध किया गया है, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस युग में हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध हो गए, तथा श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा इंद्रिय सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध न हुए, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। परन्तु हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, तथा साथ ही श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा इंद्रिय सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य भी सिद्ध हो गए, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस शिक्षा में सुभान गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध हो गए हैं, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री गृहस्थ शिष्य सिद्ध नहीं हुई हैं, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। यद्यपि सुभान गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली स्त्री गृहस्थ शिष्य भी सिद्ध हो गए हैं, इसलिए यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस शिक्षा में हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री शिष्याएँ, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाली गृहस्थ शिष्याएँ पूर्ण हो जाती हैं, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण हो जाता है।

हे गौतम, जैसे गंगा नदी सागर की ओर मुड़कर सीधे सागर में विलीन हो जाती है, वैसे ही हे गौतमों का समूह, जो गृहस्थों के साथ प्रस्थान कर चुके हैं, वे भी विनाश की ओर झुके हुए हैं और उसके निकट खड़े हैं। हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई वस्तु फिर से स्थापित हो गई हो। जैसे कोई ढकी हुई वस्तु प्रकट हो गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें।

हे गौतम जी, शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया गया है। अब मैं हे गौतम जी की शरण में, उनकी शिक्षाओं में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। हे गौतम जी के मार्गदर्शन में मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हो। वाच्छगोत्ता, जो इस दीक्षा में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चार महीने की परीक्षा अवधि के रूप में प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस अवधि के अंत में, प्रसन्न भिक्षु उन्हें दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करेंगे। यह व्यक्तिगत मतभेदों की परीक्षा के लिए है। आदरणीय महोदय, यदि दूसरे संप्रदाय के किसी व्यक्ति को दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करने के लिए चार महीने की परीक्षा अवधि के रूप में प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तो मैं चार वर्ष की परीक्षा अवधि में रहूँगा। जब भिक्षु प्रसन्न हों, तो वे मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करें। वाच्छगोत्ता नामक भ्रमणशील तपस्वी को दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हुई।

आदरणीय वच्छगोत्ता को उच्च दीक्षा प्राप्त होने के दो सप्ताह बाद, वे भगवान बुद्ध के पास गए, उनकी पूजा की, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'आदरणीय महोदय, मैंने एक गुरु का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। भगवान बुद्ध मुझे आगे मार्गदर्शन करें।' 'तब वच्छ, तुम्हें दो चीजों को और विकसित करना चाहिए। शांत और अंतर्दृष्टि विकसित करो। वच्छ, जब शांत और अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती है, तो यह विभिन्न तत्वों का अनुभव करने में सहायक होती है।'

वाच्छा, जब तुम्हारी इच्छा हो, तो विभिन्न अलौकिक शक्तियों का अनुभव करो। एक का अनेकों में और अनेकों का एक में परिवर्तन। दीवारों, तटबंधों और पहाड़ों के आर-पार ऐसे जाओ जैसे हवा में। धरती में ऐसे गोता लगाओ और बाहर आओ जैसे पानी में। पानी पर ऐसे चलो जैसे धरती पर। अंतरिक्ष में ऐसे पैर मोड़कर बैठो जैसे छोटे-बड़े पक्षी बैठते हैं। चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करो, जैसे वे शक्तिशाली हैं। शरीर से ब्रह्मलोक तक शक्ति का प्रयोग करो। यह उस और अन्य मानसिक क्षमताओं के विकास का प्रत्यक्षदर्शी होगा।

वाच्छा, जब तुम चाहो, तो मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से, दूर या पास की विभिन्न ध्वनियाँ, दिव्य और मानवीय, सुनो; तुम्हारे लिए वह सजगता उस मानसिक शक्ति में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वाच्छा, यदि तुम चाहो तो दूसरों की मानसिक अवस्थाओं को भलीभांति जान लो। लोभ से ग्रस्त और निर्लोभ से मुक्त मन को, क्रोधित और शांत मन को, भ्रमित और शांत मन को, सजग और विचलित मन को, विकसित और अविकसित मन को, तुलना करने वाले और

तुलना न करने वाले मन को, एकाग्र और असंलग्न मन को, मुक्त और अमुक्त मन को जान लो। वह सजगता तुम्हारे लिए उस मानसिक अवस्था का प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वच्छा, यदि तुम चाहो, तो अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करो। जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्मों का चक्र, अनगिनत पीछे के जन्मों का चक्र और अनगिनत आगे-पीछे के जन्मों का चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था और मैं इन सुख-दुख के अनुभवों से गुजर रहा था और मेरी ऐसी आयु थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लिया, इसी नाम, ऐसे कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार के साथ और इन सुख-दुख के अनुभवों से गुजर रहा था। मेरी ऐसी आयु थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लिया। इस प्रकार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करो, क्योंकि चेतना उस मानसिक शक्ति में प्रत्यक्षदर्शी है।

वाच्छा, यदि आप चाहें तो मानवीय गुणों से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते हुए देख सकते हैं, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अच्छे हों या बुरे। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार पहचानें। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टि और कर्मों के गलत दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद हानि में जाते हैं, घटते हैं और नरक में जन्म लेते हैं। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सही आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि और कर्मों के सही दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद वृद्धि में जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मानवीय गुणों से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार प्रकट होते और लुप्त होते हुए देखें, और वह जागरूकता आपकी मानसिक क्षमता में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वाच्छा, यदि तुम चाहो तो, इच्छाओं के नाश के साथ, इच्छाओं से मुक्त मन को मुक्त करो, और ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो जाओ, इसे यहीं और अभी अनुभव करो। वह जागरूकता उस मानसिक क्षमता में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

तब पूज्य वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा और परिक्रमा की और चले गए। पूज्य वच्छगोत्ता भीड़ से दूर एकांतवास में जाकर आध्यात्मिक शांति के लिए तल्लीन हो गए। चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाते हों, उन्होंने उसी क्षण पवित्र जीवन के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो चुका है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह हो चुका है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। पूज्य वच्छगोत्ता सिद्ध पुरुषों में से एक बन गए।

उस समय बहुत से भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन करने जा रहे थे, और पूज्य वच्छगोत्ता ने दूर से उन भिक्षुओं को देखा, उनके पास जाकर उनसे कहा, 'पूज्य भिक्षुओं, आप कहाँ जा रहे हैं?' 'मित्रों, हम भगवान बुद्ध के दर्शन करने जा रहे हैं।' 'यदि ऐसा है, तो मेरी ओर से भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा कीजिए और उन्हें बताइए - 'पूज्यवर, भिक्षु वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा करते हैं और कहते हैं, मैं सिद्ध पुरुष हूँ।' भिक्षु सहमत हुए, भगवान बुद्ध के पास गए, पूजा की, उनके बगल में बैठ गए और कहा, 'पूज्यवर, पूज्य वच्छगोत्ता कहते हैं कि वे भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा करते हैं और कहते हैं कि वे सिद्ध पुरुष हैं।' 'भिक्षुओं, मुझे पहले से ही पता था कि पूज्य वच्छगोत्ता सिद्ध पुरुष हैं, मैंने उनके मन में भेद करके यह जान लिया था।' भिक्षुओं, वह बहुत शक्तिशाली है, तीनों ज्ञानों का ज्ञाता है। देवताओं ने भी मुझे इस बारे में बताया है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.4दीघनखा सुत्त(74)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के पास गिद्ध शिखर पर्वत पर, सूअर की गुफा में ठहरे हुए थे। तब लोंगनेल्स नामक घुमक्कड़ भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वह एक तरफ खड़ा हो गया। वहाँ खड़े-खड़े उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गुरु गौतम, मेरा यह मत है कि 'सब कुछ मुझे प्रसन्न नहीं करता।'"

लेकिन हे अग्गिवेसना, तुम्हारा यह विचार— 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है'— क्या यह भी तुम्हें पसंद नहीं है?'

"हे गौतम गुरु, भले ही मेरा यह विचार मुझे भी पसंद हो, फिर भी यह वही रहेगा, यह वही रहेगा।"

"खैर, अग्गिवेसना, दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जो कहते हैं, 'यह सब वैसा ही रहेगा, यह सब वैसा ही रहेगा,' फिर भी वे न तो उस विचार को छोड़ते हैं और न ही किसी दूसरे विचार से जुड़े रहते हैं। दुनिया में ऐसे बहुत कम लोग हैं जो कहते हैं, 'यह सब वैसा ही रहेगा, यह सब वैसा ही रहेगा,' और वे न तो उस विचार को छोड़ते हैं और न ही किसी दूसरे विचार से जुड़े रहते हैं।"

कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा नहीं लगता।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे कुछ अच्छा लगता है; कुछ अच्छा नहीं लगता।'

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के बारे में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ प्रिय है': उनका यह दृष्टिकोण भावुकता, बंधन, आनंद, आसक्ति और मोह के निकट है। वहीं, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के बारे में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ प्रिय नहीं है': उनका यह दृष्टिकोण भावुकता, बंधनहीनता, आनंदहीनता, आसक्ति और मोहहीनता के निकट है।

यह सुनकर, घुमंतू लॉन्गनेल्स ने भगवान से कहा, "गुरु गौतम मेरे दृष्टिकोण की सराहना करते हैं। गुरु गौतम मेरे दृष्टिकोण की अनुशंसा करते हैं।"

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के विषय में जो यह मत रखते हैं कि 'एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है': जो कुछ उन्हें भाता है, उनका दृष्टिकोण भावुकता के निकट, बंधन के निकट, आनंद के निकट, आसक्ति के निकट और आसक्ति के निकट होता है। जो कुछ उन्हें भाता नहीं है, उनका दृष्टिकोण भावुकता रहित होने के निकट, बंधन रहित होने के निकट, आनंद रहित होने के निकट, आसक्ति रहित होने के निकट और आसक्ति रहित होने के निकट होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के विषय में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से पकड़ कर रखूँ कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है' और यह कहूँ कि 'केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है', तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा नहीं लगता' और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'कुछ मुझे अच्छा लगता है; कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता'। मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के संबंध में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से पकड़ कर रखूँ कि 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है', और यह कहूँ कि 'केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है', तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'मुझे सब कुछ पसंद है' और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'कुछ मुझे पसंद है; कुछ मुझे पसंद नहीं है'। मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के संबंध में जो यह मानते हैं कि 'एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह विचार करता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से धारण कर लूँ कि "एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है," और यह कहूँ कि "केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है," तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि "सब कुछ मुझे भाता है" और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि "सब कुछ मुझे भाता नहीं है।" मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना

करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

हे अग्गिवेसना, यह शरीर—जो आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है—इसे अस्थिर, तनावपूर्ण, रोग, कैंसर, तीर, पीड़ादायक, कष्टदायक, पराया, विघटन, शून्यता और अनात्म के रूप में देखना चाहिए। जो व्यक्ति शरीर को अस्थिर, तनावपूर्ण, रोग, कैंसर, तीर, पीड़ादायक, कष्टदायक, पराया, विघटन, शून्यता और अनात्म के रूप में देखता है, उसमें शरीर के प्रति कोई इच्छा, शरीर के प्रति आकर्षण और शरीर के पीछे भागने की भावना का त्याग हो जाता है।

तीन प्रकार की भावनाएँ होती हैं: सुखद भावना, दुखदायी भावना और न सुखद न दुखदायी भावना। जब किसी को सुखद भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो दुखदायी भावना का अनुभव होता है और न ही न सुखद न दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल सुखद भावना ही महसूस होती है। जब किसी को दुखदायी भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो सुखद भावना का अनुभव होता है और न ही न सुखद न दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल दुखदायी भावना ही महसूस होती है। जब किसी को न सुखद न दुखदायी भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो सुखद भावना का अनुभव होता है और न ही दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल न सुखद न दुखदायी भावना ही महसूस होती है।

सुखद अनुभूति अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है। दुखदायी अनुभूति भी अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है। न सुखद और न दुखदायी अनुभूति भी अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है।

यह देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य सुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है, दुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है, और न सुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य से उसे मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति के साथ ही उसे 'मुक्ति' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह समझता है, 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' इस प्रकार मुक्त मन वाला भिक्षु किसी का पक्ष नहीं लेता, किसी से विवाद नहीं करता। वह संसार में कही गई बातों के आधार पर ही अपने विचार व्यक्त करता है, परन्तु उन पर आसक्ति नहीं रखता।

उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पीछे बैठे उन्हें पंखा कर रहे थे। उनके मन में यह विचार आया, "सचमुच, ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इन सभी मानसिक गुणों के त्याग के बारे में हमसे कह रहे हैं। सचमुच, ऐसा लगता है कि परम पूजनीय भगवान प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इन सभी मानसिक गुणों के त्याग के बारे में हमसे कह रहे हैं।" पूज्य सारिपुत्त जब इस प्रकार चिंतन कर रहे थे, तो उनके मन में आसक्ति न होने के कारण मनोभ्रंश मुक्त हो गया। जब लंबी कील वाले घुमक्कड़ में धूल रहित, निष्कलंक धम्म दृष्टि उत्पन्न हुई: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब समाप्ति के अधीन है।"

तब लॉन्गनेल्स नामक घुमक्कड़ ने—धम्म को देखकर, धम्म को प्राप्त करके, धम्म को जानकर, धम्म को गहराई से समझकर, अनिश्चितता से परे जाकर, अब और उलझन से मुक्त होकर, निर्भयता प्राप्त करके, गुरु के संदेश के संबंध में दूसरों से स्वतंत्र होकर—भगवान बुद्ध से कहा: “महान, गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, खोए हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक ले जाए ताकि देखने वाले आकृतियाँ देख सकें, उसी प्रकार गुरु गौतम ने— अनेक तर्क-वितर्कों के माध्यम से—धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने उनकी शरण ली है।”5

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 8.5मगंडिया सुत्त(75)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कुरुओं के देश में कम्मसधम्म नामक एक छोटे से गाँव में रहते थे। वे भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में सूखी घास पर सोए। सुबह, भगवान बुद्ध ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कम्मसधम्म गाँव में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन करने के बाद, भगवान बुद्ध एक विशेष वन क्षेत्र में गए और एक वृक्ष की जड़ में बैठकर दिन व्यतीत किया।

भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया व्यायाम के लिए टहलते हुए भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में प्रवेश किया। कुटिया में सूखी घास बिछी देखकर उन्होंने कहा, 'हे भारद्वाज, यह सूखी घास किसके लिए बिछाई गई है? मुझे लगता है यह किसी संन्यासी का बिस्तर है।' 'हे मगंदिया, यह शाक्यों वंश के संन्यासी गौतम का बिस्तर है। वे शाक्यों वंश से विमुख होकर गए हैं। उनकी प्रसिद्धि ऐसी है कि वे परिपूर्ण, सत्यात्मा, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं। वे संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं।' 'हे भारद्वाज, हमने कुछ ऐसा देखा जो हमें नहीं देखना चाहिए था, यह मानव जाति के संहारक गौतम का बिस्तर है।' 'मगंडिया, अपने शब्दों पर ध्यान दो, अच्छे गौतम के पास बहुत से बुद्धिमान योद्धा, ब्राह्मण, गृहस्थ और संन्यासी हैं, जो श्रेष्ठ शिक्षा में प्रसन्न और संयमित हैं और पुण्य में स्थापित हैं।' 'भारद्वाज, मैं उस अच्छे गौतम से मिलूंगा और उन्हें स्वयं ये शब्द बताऊंगा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है। इसका क्या कारण है? हमारे शास्त्रों में ऐसा ही लिखा है।' 'यदि अच्छे मगंडिया को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, तो मैं संन्यासी गौतम को यह बात बता दूंगा।' 'चिंता मत करो, अच्छे भारद्वाज, अगर वह पूछे तो बता देना।'

भगवान बुद्ध ने अपने दिव्य तुल्य श्रवण शक्ति से, जो मनुष्य से परे है, मगंदिया नामक एकांतवासी तपस्वी और भारद्वाज वंश के ब्राह्मण के बीच हुई इस बातचीत को सुना। शाम को भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया के पास गए। कुटिया में प्रवेश करके वे तैयार आसन पर बैठ गए। भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया, अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने भारद्वाज वंश के ब्राह्मण से पूछा, 'क्या भारद्वाज और मगंदिया नामक एकांतवासी तपस्वी के बीच घास के इस फैलाव के विषय में कोई बातचीत हुई थी?' यह पूछे जाने पर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण कांप उठे और उनके रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने कहा, 'यह बात हम गौतम बुद्ध को बताना चाहते थे, और गौतम बुद्ध के बताने से पहले ही हम यह बात बता देंगे।' जब यह बातचीत चल रही थी, तभी भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया, जो व्यायाम के लिए टहल रहे थे, भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में प्रवेश कर गए और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया को संबोधित करते हुए कहा, 'मगंदिया, आँख रूपों की शौकीन होती है, रूपों में मग्न रहती है और रूपों में आनंद लेती है, तथागत की आँख वश में और सुरक्षित होती है। वे आँख की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाते हैं। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं, क्योंकि मैंने उनके पलंग की जाँच की।' ... 'मगंदिया, कान ध्वनियों के शौकीन होते हैं, नाक गंधों की शौकीन होती है, जीभ स्वादों की शौकीन होती है, स्वादों में मग्न रहती है और स्वादों में आनंद लेती है। तथागत की जीभ वश में और सुरक्षित होती है। वे जीभ की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाते हैं। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं, क्योंकि मैंने उनके पलंग की जाँच की।' 'मगंदिया, शरीर, स्पर्शों का शौकीन है, ...मन विचारों का शौकीन है, विचारों में मग्न रहता है और विचारों से आनंदित होता है। तथागत का मन वश में और संरक्षित है। वह मन की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाता है। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है, उनके पलंग की जाँच करते हुए।'

'मगंदिया, मनुष्य को नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले, मनभावन, सुखद रूप और कामुकता जगाने वाले रूप उपलब्ध हैं। साथ ही, वह रूपों के उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत जानता है। वह रूपों की लालसा और प्यास को शांत करता है और मन को आंतरिक रूप से शांत करके स्थिर रहता है। इस पर मगंदिया का क्या कहना है?' 'हे गौतम, मुझे कुछ नहीं कहना।' मगंदिया, मनुष्य को कान चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले, मनभावन, सुखद ध्वनियाँ, नाक चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली गंध, जीभ चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्वाद और शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श उपलब्ध हैं, जो प्रेम और कामुकता जगाते हैं। साथ ही, वह स्पर्शों के उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत जानता है। वह स्पर्शों की लालसा और प्यास को शांत करता है और मन को आंतरिक रूप से शांत करके स्थिर रहता है। इस पर मगंदिया को क्या कहना है?' 'हे गौतम, मुझे कुछ नहीं कहना।'

मागंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों की भरपूर उपलब्धता थी। जैसे कि आँखों से दिखने वाले मनभावन रूप जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं, मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन सुगंध, मनभावन स्वाद और शरीर से दिखने वाले मनभावन

स्पर्श जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। मुझे तीन ऋतुओं के लिए तीन महल दिए गए थे, एक वर्षा ऋतु के लिए, एक शीत ऋतु के लिए और एक ग्रीष्म ऋतु के लिए। मागंदिया, मैंने वर्षा ऋतु के महल में चार महीने बिताए, पुरुषों के बिना और संगीत से सुसज्जित। किसी भी कारण से नीचे की मंजिल पर नहीं उतरा। इस दौरान मैंने इंद्रिय इच्छाओं के उत्पन्न होने, समाप्त होने, संतुष्टि, खतरे और उनसे मुक्ति का ज्ञान प्राप्त किया। मैंने इंद्रिय इच्छाओं की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और मन और निवास को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं देखता हूँ कि अन्य प्राणी कामुकता से तृप्त नहीं होते, फिर भी उसका भोग करते हुए उसी से भस्म हो जाते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिये, मैं उस आसक्ति में रहता हूँ जो कामुकता से दूर, पापमय विचारों से दूर और दिव्य सुख से भी परे है, और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या प्रसन्नता नहीं करता।

मगंदिया, गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के समान, अत्यंत धनी और संसाधनों से संपन्न, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण था। जैसे कि नेत्र-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन रूप, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं; मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन सुगंध, मनभावन स्वाद और मनभावन स्पर्श, जो देह-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। वह शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण करता था। मृत्यु के बाद, वह वंशवृद्धि करने के लिए गया, तैंतीस देवताओं के अनुचरों के साथ जन्म लिया और नंदना वन में अप्सराओं की देखरेख में पाँच प्रकार के स्वर्गीय इंद्रिय सुखों का अनुभव किया। फिर उसने एक गृहस्थ को पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का अनुभव करते हुए देखा, जो उसे भरपूर मात्रा में उपलब्ध कराए गए थे। मगंदिया, क्या तुम सोचते हो कि देवताओं का यह पुत्र, जो स्वर्ग के पांचों सुखों का भोग कर अप्सराओं से घिरा हुआ है, उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र से ईर्ष्या करेगा और पांचों प्रकार के सांसारिक सुखों के लिए वापस लौटेगा?' 'नहीं, हे गौतम। स्वर्ग के सांसारिक सुख मनुष्य के सांसारिक सुखों से श्रेष्ठ और अधिक उत्तम हैं।' 'इसी प्रकार, मगंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पांचों प्रकार के सांसारिक सुखों का भरपूर अनुभव प्राप्त था। जैसे कि आंखों से दिखने वाले मनभावन रूप जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। मनभावन ध्वनियां, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद और शरीर से दिखने वाले मनभावन स्पर्श जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। तब मैंने कामुकता के वास्तविक स्वरूप को जाना, उसके उदय, अस्त, संतुष्टि, खतरे और उससे मुक्ति को भी।' फिर मैंने कामुकता की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और मन और शरीर को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं देखता हूँ कि अन्य प्राणी कामुकता से तृप्त नहीं होते, बल्कि उसका सेवन करते हुए उससे भस्म और झुलस जाते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिये, मैं कामुकता से दूर, पापमय विचारों से दूर, और यहाँ तक कि दिव्य सुख से भी परे, उस आसक्ति में रहता हूँ और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या प्रसन्नता नहीं करता।

मगंदिया, एक कुष्ठ रोगी, जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, अपने नाखूनों से त्वचा को खरोंचता था और उसके खुले घाव और चोटें होती थीं। फिर वह उन घावों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था और उसके मित्र, साथी और रक्त संबंधी डॉक्टर को बुलाकर उसका इलाज करवाते थे। उस उपचार के बाद वह अपने कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता था और स्वस्थ होकर जहाँ चाहे वहाँ जा सकता था। फिर वह एक अन्य कुष्ठ रोगी को देखता जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, और वह राहत पाने के लिए उसे खरोंचता था और घावों और चोटों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था। क्या वह उस कुष्ठ रोगी से, या अंगारों के गड्ढे से, या दिए गए उपचार से ईर्ष्या करेगा?' 'नहीं, हे गौतम, जब वह रोगग्रस्त था, तब उपचार आवश्यक था। जब वह रोग से मुक्त हो गया, तो और दवा की आवश्यकता नहीं है।' 'इसी प्रकार, मगंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पाँचों प्रकार के इंद्रिय सुखों की पर्याप्त उपलब्धता थी।' नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन रूप स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद और मनभावन स्पर्श स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। इसी बीच मैंने कामुकता के उदय, अस्त, संतुष्टि, खतरे और उससे मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जाना। मैंने कामुकता की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और नष्ट कर दिया, मन को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं अन्य प्राणियों को कामुकता में लिप्त देखता हूँ, जो उससे तृप्त नहीं होते, बल्कि उसके द्वारा भस्म और झुलसते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिया, मैं उस आसक्ति में रहता हूँ जो कामुकता से दूर है, दोष के विचारों से दूर है, और यहाँ तक कि दिव्य सुख से भी परे है, और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या आनंद नहीं लेता।

मगंदिया, एक कुष्ठ रोगी जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, उस पर कीड़े लगे हुए थे, वह अपने नाखूनों से त्वचा को खरोंचता था, जिससे खुले घाव और चोटें लग जाती थीं, और उन घावों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था। उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसके इलाज के लिए डॉक्टर को बुलाते थे। डॉक्टर द्वारा इलाज किए जाने पर वह कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता था और स्वस्थ होकर जहाँ चाहे वहाँ जा सकता था। फिर दो बलवान पुरुष आते और उसे घसीटकर अंगारों के जलते हुए गड्ढे में ले जाते। 'मगंदिया, क्या उसका शरीर उससे दूर भागने के लिए छटपटाता नहीं था?' 'जी, हे गौतम, उसका शरीर उससे दूर भागने के लिए छटपटाता था। इसका क्या कारण है? हे गौतम, आग से संपर्क करना अप्रिय होता है, इसकी अत्यधिक गर्मी से बहुत जलन होती है।' 'मगंदिया, आग से संपर्क करना अप्रिय है, गर्मी पैदा करती है और उसे जलन होती है, केवल अभी, या पहले भी संपर्क करना अप्रिय था, गर्मी पैदा करती थी और जलन पैदा करती थी?' 'हे गौतम, अभी और पहले भी आग से संपर्क करना अप्रिय था, गर्मी पैदा करती थी और जलन पैदा करती थी।'

कुष्ठ रोगी की त्वचा रोगग्रस्त और सड़ी हुई थी, उस पर कीड़े लगे हुए थे, वह नाखूनों से अपनी त्वचा को खरोंचता था और उसके शरीर पर खुले घाव थे। विकृत मानसिक क्षमता के कारण, उसे अग्नि में सुख का अनुभव होता था। यह विकृत धारणा का परिणाम है। 'मगंदिया, इसी प्रकार, अतीत में भी कामुक संपर्क अप्रिय था, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होती थी, भविष्य में भी कामुक संपर्क अप्रिय होगा, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होगी, और वर्तमान में भी कामुक संपर्क अप्रिय है, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होती है। मगंदिया, ये प्राणी कामुक लोभ से मुक्त नहीं हैं, कामुक लोभ से नष्ट हो गए हैं, कामुक चिंताओं से ग्रस्त हैं, इनकी मानसिक क्षमता विकृत है और ये कामुक संपर्क को सुखद अनुभूति के रूप में अनुभव करते हैं।

मगंदिया, कुष्ठ रोगी चाहे कितनी भी खुजली करे, कीड़ों से सड़ी हुई त्वचा को खरोंचे, घाव बनाए और उन्हें अंगारों के गड्ढे में जलाए। फिर भी वे घाव ठीक नहीं होते, बल्कि और भी बदतर होते जाते हैं। सड़न और दुर्गंध बढ़ती ही जाती है। उसे जो भी संतुष्टि मिलती है, वह घावों को खरोंचने और उन्हें जलाने से ही मिलती है। इसी प्रकार, मगंदिया, कामुक लालसा से मुक्त न होने वाले प्राणी, कामुक लालसा से ग्रस्त होकर, कामुक चिंताओं से परेशान होकर, कामुक इच्छाओं में लिप्त होते हैं और इस तरह से अपनी कामुक लालसा और कामुक चिंताओं को बढ़ाते हैं। उन्हें जो थोड़ी-बहुत संतुष्टि मिलती है, वह पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों से ही मिलती है।

मगंदिया, क्या तुमने कभी किसी राजा या राजा के प्रधान मंत्री को देखा या सुना है, जो पाँचों प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण और परिपूर्ण हो? क्या तुमने कभी ऐसे व्यक्ति को देखा है जो उन इंद्रिय, लोभ, तृप्ति और प्यास का त्याग किए बिना आंतरिक रूप से संतुष्ट हो? क्या तुमने कभी ऐसे किसी व्यक्ति को देखा है, या भविष्य में देखोगे?' 'नहीं, हे गौतम।' 'अच्छा! मगंदिया, तुमने सही समझा। मैंने भी न तो कभी ऐसे किसी व्यक्ति को देखा है और न ही उसके बारे में सुना है। और न ही कभी सुनूंगा। मगंदिया, जो भी संन्यासी या ब्राह्मण अतीत में रहे हों, वर्तमान में रह रहे हों या भविष्य में रहेंगे, उन्होंने हमेशा इंद्रिय सुख की प्यास और तृप्ति का त्याग किया है, करते हैं और करते रहेंगे, और आंतरिक रूप से संतुष्ट होते रहे हैं। इंद्रिय सुख, उसके उत्पन्न होने, उसके नष्ट होने, उसकी संतुष्टि, उसके खतरों और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को जानकर।'

उस समय भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा।

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु ही सर्वोच्च आनंद है।'
अष्टांगिक मार्ग ही शांति और अमरता का मार्ग है।'
यह सुनकर घुमंतू तपस्वी मगंदिया ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम बुद्ध के ये वचन उत्तम हैं, जैसे स्वास्थ्य सर्वोच्च लाभ है और मृत्यु सर्वोच्च आनंद है। मैंने भी घुमंतू तपस्वियों के गुरुओं से ये वचन सुने हैं।"

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, निर्वाण ही सर्वोच्च आनंद है। मगंदिया, यह स्वास्थ्य क्या है और यह निर्वाण क्या है?' यह पूछे जाने पर मगंदिया ने अपने शरीर और हाथों को सहलाते हुए कहा, 'यह स्वास्थ्य और निर्वाण यहीं है। हे गौतम, मैं अब स्वस्थ और रोगमुक्त हूँ।'

'मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख सकता, नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख सकता, सम और विषम रूपों को नहीं देख सकता, नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख सकता। वह एक दृष्टिवान व्यक्ति को यह कहते हुए सुनेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" तब वह सफेद वस्त्र की खोज में निकल पड़ेगा। एक व्यक्ति उसे धोखा देगा और तेल से सना हुआ मोटा वस्त्र देकर कहेगा, "हे भगवान, यह सफेद, शुद्ध और निर्मल वस्त्र है।" वह उसे स्वीकार कर लेगा, पहन लेगा और प्रसन्न होकर कहेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" 'मगंदिया, क्या वह अंधा व्यक्ति, जो जानता और देखता है, इस वस्त्र को स्वीकार करेगा, पहनेगा और प्रसन्नता के शब्द कहेगा?' हे भगवान, वह जन्म से अंधा व्यक्ति उस तेल से सने मोटे वस्त्र को न जानते और न देखते हुए भी स्वीकार करेगा, पहनेगा और प्रसन्नता के शब्द कहेगा। वह दृष्टिवान व्यक्ति पर विश्वास रखते हुए प्रसन्नता के ये शब्द कहेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" 'मगंदिया, उसी प्रकार अन्य संप्रदायों के विचरण करने वाले तपस्वी अंधे होते हैं, वे स्वास्थ्य और मृत्यु को न तो जानते हैं और न ही देखते हैं, वे यह श्लोक कहेंगे।'

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु ही सर्वोच्च आनंद है।'
मगंदिया, यह श्लोक अतीत के सही मायने में प्रबुद्ध सिद्ध पुरुषों द्वारा कहा गया था: "स्वास्थ्य सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु सर्वोच्च आनंद है, अष्टांगिक मार्ग अमरता का शांतिपूर्ण मार्ग है।"

अब यह साधारण व्यक्ति का श्लोक बन गया है। मगंदिया, यह शरीर अस्वस्थता, फोड़े, कष्टों और बीमारियों का जन्मस्थान है, और तुम इसे स्वस्थ और मृत्यु कहते हो। तुम्हें स्वस्थता को जानने और मृत्यु को देखने के लिए श्रेष्ठ दृष्टि रखनी चाहिए। (* 1)

मैं गौतम जी की शिक्षा से प्रसन्न हूँ: क्या गौतम जी मुझे ऐसा उपदेश दे सकते हैं जिससे मैं स्वास्थ्य को जान सकूँ और मृत्यु को देख सकूँ? मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख पाता। वह नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख पाता। सम और विषम रूपों को नहीं देख पाता और नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को भी नहीं देख पाता। उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसकी आँखों का इलाज करने के लिए सर्जन को बुलाते हैं। इलाज और दवा लेने के बाद भी उसकी दृष्टि वापस नहीं आती। मगंदिया, क्या उस सर्जन को केवल थकान ही नहीं मिलेगी?' 'जी हाँ, गौतम जी।' 'मगंदिया, जिस प्रकार मैंने तुम्हें स्वास्थ्य और मृत्यु का उदाहरण देकर उपदेश दिया, फिर भी तुम उसे नहीं जान पाते और देख नहीं पाते, और मेरे लिए तो यह केवल थकान ही है।'

'मैं गौतम जी की शिक्षा से प्रसन्न हूँ: क्या गौतम जी मुझे ऐसी शिक्षा दे सकते हैं जिससे मैं स्वास्थ्य को जान सकूँ और मृत्यु को देख सकूँ?' 'मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख पाता। वह नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख पाता, न ही सम और विषम रूपों को। वह नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख पाता। वह एक दृष्टिवान व्यक्ति को यह कहते हुए सुनता, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" वह सफेद वस्त्र की खोज में निकल पड़ता है। तब एक व्यक्ति उसे तेल से सना हुआ मोटा वस्त्र देकर धोखा देता है और कहता है, "हे भगवान, यह सफेद, शुद्ध और निर्मल वस्त्र है।" वह उसे स्वीकार कर लेता है, पहन लेता है और प्रसन्न होकर कहता है, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसकी आँखों का उपचार करने के लिए एक सर्जन को बुलाते हैं। वह सर्जन उसका उपचार करता है, उसे सिर और पेट के लिए जुलाब देता है और नाक का उपचार करता है। तब उसकी दृष्टि वापस आ जाती है।' कुछ ही क्षण बाद, जब उसकी दृष्टि वापस आ जाती है, तो वह तेल से सने मोटे वस्त्र के प्रति अपने आसक्ति और लोभ को त्याग देता है, और उसे देने वाले को शत्रु मानकर उसे जान से मारने का भी विचार करता है: "सचमुच, इस व्यक्ति ने मुझे इस तेल से सने मोटे वस्त्र से लंबे समय से धोखा दिया है। वह कहता है, 'हे भगवान, यह तो अद्भुत सफेद वस्त्र है, शुद्ध और बेदाग।' मगंदिया, जिस प्रकार मैंने तुम्हें स्वस्थ अवस्था और निर्गमन का उदाहरण देकर सिखाया है, तुम उसे जानते और देखते हो, और उस दृष्टि के उदय के साथ ही तुम पाँचों वश में रहने वाले तत्वों के प्रति अपने आसक्ति और लोभ को त्याग देते हो। सचमुच, लंबे समय से मैं इस मन से धोखा खा रहा हूँ। मैं पदार्थ को धारण कर रहा हूँ। मैं भावनाओं को धारण कर रहा हूँ। मैं धारणाओं को धारण कर रहा हूँ। मैं संकल्पों को धारण कर रहा हूँ और मैं चेतना को धारण कर रहा हूँ। उस धारण के कारण अस्तित्व है, अस्तित्व के कारण जन्म है। जन्म के कारण क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और पीड़ा है—इस प्रकार अप्रियता के पूरे समूह का उदय होता है।"

मैं गौतम गौतम की शिक्षा से प्रसन्न हूँ, क्या मुझे ऐसी शिक्षा दी जा सकती है जिससे मैं इस आसन से प्रसन्न होकर उठूँ? हे मगंडिया, अच्छे मित्रों की संगति करो। अच्छे मित्रों की संगति करने से तुम्हें अच्छी शिक्षा मिलती है। अच्छी शिक्षा सुनने से तुम उस शिक्षा के अनुसार जीवन जीने की विधि का अनुसरण करते हो। शिक्षा के अनुसार जीवन जीने की विधि का अनुसरण करने से तुम स्वयं अस्वस्थता, फोड़े, बाण और बाण का अनुभव करते हो। यहीं पर अस्वस्थता, फोड़े, बाण और बाण का पूर्णतः निवारण हो जाता है। धारण का त्याग होने पर अस्तित्व का त्याग हो जाता है, अस्तित्व के त्याग होने पर जन्म का त्याग हो जाता है। जन्म के त्याग होने पर क्षय, मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता और कष्ट का त्याग हो जाता है। इस प्रकार, सभी अप्रियताओं का अंत हो जाता है।

तब भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया ने भगवान बुद्ध से कहा, "अब मैं समझ गया, पूज्यवर, ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। जैसे अंधकार में दृष्टिहीन लोगों के लिए प्रकाशमान दीपक जलाया गया हो ताकि वे रूप देख सकें। भगवान बुद्ध ने शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया है। अब मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हो।" "मगंदिया, जो कोई भी दूसरे संप्रदाय का है और इस मार्गदर्शन में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, उसे चार महीने की परीक्षा में रहना चाहिए। चार महीने बाद, यदि भिक्षु संतुष्ट हों, तो वे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करेंगे। यह व्यक्ति के विकास को देखने के लिए है।" आदरणीय महोदय, यदि किसी अन्य संप्रदाय के भिक्षु को चार महीने की परिवीक्षा अवधि होती है, तो मुझे चार वर्ष की परिवीक्षा अवधि होगी। जब भिक्षु संतुष्ट हो जाएं, तो मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करें। मगंदिया ने दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की और उच्च दीक्षा के शीघ्र ही, आदरणीय मगंदिया भीड़ से अलग होकर धर्मप्रचार में तल्लीन हो गए। उन्होंने यहीं और इसी क्षण उस सर्वोच्च बंधन को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर बेघर हो जाते हैं। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। आदरणीय मगंदिया पूर्ण पुरुष बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.6 संदका सुत्त(76)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में गोशिता के मठ में निवास करते थे। उस समय संदक नामक एक विचरणशील तपस्वी अंजीर के पेड़ों के एक उपवन में लगभग पाँच सौ विचरणशील तपस्वियों के एक बड़े समुदाय के साथ रहते थे। तब पूज्य आनंद एकांतवास से उठकर भिक्षुओं से बोले, 'मित्रों, आइए देवकाता सरोवर पर गुफाएँ देखने चलें।' भिक्षुओं ने सहमति जताई और पूज्य आनंद उन भिक्षुओं के साथ देवकाता सरोवर की ओर चल पड़े। उस समय संदक विचरणशील तपस्वियों के एक बड़े समूह के साथ बैठे हुए थे, जो शोर मचाते हुए तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे। जैसे राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, झगड़े, खाने-पीने की चीजों, कपड़ों, बिस्तरों, फूलों और सुगंधों, रिश्तों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों और राज्यों, महिलाओं और नायकों, गली के कोनों और कुएँ पर गपशप, मरे हुए और चले गए लोगों के बारे में, दुनिया और सागर की उत्पत्ति और घटी और न घटी घटनाओं के बारे में तरह-तरह की बातें। घुमंतू तपस्वी संदक ने दूर से पूज्य आनंद को आते देखा और सभा को शांत करते हुए कहा: 'महोदय, शोर कम करें, इतना शोर न करें। तपस्वी गौतम के शिष्य आनंद आ रहे हैं। कोसंबी में रहने वाले गौतम के शिष्यों में से यह एक हैं। ये पूज्य साधु कम शोर करते हैं, कम शोर करना सीखते हैं और दूसरों को भी कम शोर करना सिखाते हैं।' यह सोचकर कि इस सभा में शोर कम है, शायद उन्होंने पास आने का सोचा होगा। तभी वे भ्रमणशील तपस्वी शांत हो गए। आदरणीय आनंद, भ्रमणशील तपस्वी संदक के पास पहुँचे। भ्रमणशील तपस्वी संदक ने आदरणीय आनंद से कहा, "हे आनंद, आइए! बहुत समय बाद आदरणीय आनंद ने आने का मन बनाया है। हे आनंद, बैठिए, आसन तैयार है।" आदरणीय आनंद तैयार आसन पर बैठ गए, और भ्रमणशील तपस्वी भी एक तरफ नीची आसन पर बैठ गए।

तब पूज्य आनंद ने एक तरफ बैठे हुए विचरणरत तपस्वी संदक को संबोधित करते हुए कहा, "संदक, इस समय आप किस विषय पर चर्चा कर रहे थे और आपका विषय क्या था?" "हे आनंद, आइए उसी विषय पर चर्चा करें जिस पर हम अभी बैठे हैं। हे आनंद, आपसे ऐसी चर्चाएँ बहुत कम सुनने को मिलती हैं। हम आपके गुरु के उपदेशों के बारे में कुछ सुनना चाहते हैं।" "यदि ऐसा है, तो संदक, ध्यानपूर्वक सुनिए।" विचरणरत तपस्वी संदक सहमत हो गए और पूज्य आनंद ने कहा, "संदक, जो सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी हैं, जो पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उन्होंने चार ऐसे पवित्र जीवन बताए हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए और चार अन्य असंतोषजनक पवित्र जीवन बताए हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए।" 'हे आनंद, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान द्वारा घोषित वे चार पवित्र जीवन कौन से हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी, यदि संभव हो तो नहीं जीते और यदि जीते भी हैं तो उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का साधन है?'

संदक नामक एक गुरु इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं: दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं होता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता, न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता। न कोई स्वतः उत्पन्न प्राणी है, न कोई संन्यासी और न ब्राह्मण, जो स्वयं इस संसार और परलोक को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। मनुष्य चार मूल तत्वों से बना है और जब उसकी मृत्यु होती है, तो पृथ्वी पृथ्वी में, जल जल में, अग्नि अग्नि में और वायु वायु में विलीन हो जाती है। मानसिक शक्तियाँ आकाश में विलीन हो जाती हैं। पाँच लोग शव को सजी हुई कुर्सी पर रखकर श्मशान तक ले जाते हैं, जहाँ अवशेष धूसर अस्थियाँ रह जाती हैं। जली हुई राख दान में दी जाती है। जो कोई कहता है कि कुछ है, वह व्यर्थ की बातें करता है। मूर्ख और बुद्धिमान दोनों ही मृत्यु के बाद नष्ट हो जाते हैं, और मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं रहता।

संदका नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हुए कहता है, "ये अच्छे गुरु इस मत का समर्थन करते हैं और घोषणा करते हैं कि दान-पुण्य का कोई फल नहीं मिलता और मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं है। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मृत्यु के बाद मेरे गुरु और मैं एकांतवास में समान हो जाते हैं। मैं, जो इस पर विश्वास भी नहीं करता, मृत्यु के बाद हम दोनों का नाश हो जाता है।" ये अच्छे गुरु अनावश्यक रूप से नग्न रहे और सिर पर गाँठ बाँधे, खड़े-खड़े तपस्या की और सिर और दाढ़ी के बाल नोचे। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र पहनने का आनंद लिया, फूल और सुगंध बाँटे और सोना-चाँदी कमाया। मृत्यु के बाद मैं इन अच्छे गुरुओं के समान हो जाता हूँ। यह जानते हुए और यह देखते हुए कि मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन जीना चाहिए, जो यह जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदाका, यह पहला पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने घोषित किया है कि नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो नहीं जीता है, और यदि वह जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदक नामक एक शिक्षक इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि कर्ता और वश में किया गया, संहारक और संहारित, यातना देने वाला और यातना सहने वाला, भयभीत और राक्षस, कोई दोष नहीं करते। हत्यारा, बिना दिया हुआ लेने वाला, अंग काटने वाला, लुटेरा, बंदी बनाने वाला, घात लगाकर बैठने वाला, दूसरों की पत्नियों के पास जाने वाला और छल करने वाला, कोई दोष नहीं करते। यदि कोई

व्यक्ति तराजू पर ब्लेड लगे हुए गंगा के दक्षिणी किनारे तक सभी प्राणियों को मारकर मांस का ढेर बना दे, तो संहारक को इससे कोई दोष नहीं मिलता। यदि कोई व्यक्ति गंगा के उत्तरी किनारे तक दान देते हुए और दूसरों से दान करवाते हुए, यज्ञ करते हुए और दूसरों से यज्ञ करवाते हुए जाए, तो इससे कोई पुण्य नहीं मिलता।

संदक नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करता है। यह गुरु इस मत का समर्थन करते हुए कहता है, "कर्ता और अधीन—दोनों के कर्मों से कोई पुण्य अर्जित नहीं होता। यदि इस गुरु के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं संन्यास में समान हो जाते हैं। मुझे इस पर विश्वास भी नहीं होता। हम दोनों को कोई पुण्य अर्जित नहीं होता। इन गुरुओं ने अनावश्यक रूप से पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र धारण करने, फूल और सुगंध लाने और सोना-चांदी कमाने का आनंद लिया। मृत्यु के बाद, मैं इन गुरुओं के समान हो जाऊँगा। जो जानता और देखता है, उसे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन जीना चाहिए? जो जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है।" संदक कहता है, "यह दूसरा पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने नहीं जीने की बात कही है, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता।"

फिर से, संदका नामक एक शिक्षक इस विचार का समर्थन करते हैं और इसकी घोषणा करते हैं। प्राणी बिना किसी कारण या तर्क के अशुद्ध होते हैं और बिना किसी कारण या तर्क के शुद्ध होते हैं। कोई बल नहीं, कोई प्रयास नहीं, कोई मर्दाना शक्ति नहीं, कोई मर्दाना साहस नहीं; सभी प्राणी, सभी जीव, सभी जन्म लेते हैं, परिपक्वता की ओर अग्रसर होते हैं और उच्चतर छह स्तरों में जन्म लेते हैं तथा सुख और दुख का अनुभव करते हैं।

यहां, संदक नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हैं, ये अच्छे गुरु इस मत का समर्थन करते हैं और घोषणा करते हैं कि प्राणी अशुद्ध हैं—सुख और दुःख दोनों का अनुभव करते हैं। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे यहां कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं, हम दोनों अपने वैराग्य में समान हो जाते हैं, मैं जो इस पर विश्वास नहीं करता। हम दोनों बिना किसी कारण के शुद्ध हो जाएंगे। अनावश्यक रूप से इन अच्छे गुरुओं ने पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहां तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र पहनने, फूल और सुगंध लाने और सोना-चांदी कमाने का आनंद लिया। मृत्यु के बाद, मैं इन अच्छे गुरुओं के समान हो जाऊंगा। क्या जानते हुए और क्या देखते हुए मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए? जो जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदक, यह तीसरा पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने घोषित किया है कि नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदका नामक एक शिक्षक इस मत का समर्थन करते हुए इसकी घोषणा करते हैं। ये सात शरीर न तो निर्मित हैं और न ही सृजित, बल्कि निराकार, अचल और मजबूत स्तंभों की तरह स्थिर हैं। ये न तो गतिमान हैं, न परिवर्तित होते हैं और न ही एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं। एक शरीर दूसरे के सुख, दुख या न सुख, किसी भी प्रकार की अनुभूति में रुचि नहीं रखता। ये सात शरीर क्या हैं? ये हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुख और आत्मा। इसलिए इनमें न तो हानि पहुँचाना, न हत्या करना, न सुनना और न सुनाना, न जानना और न ही बोध कराना। यदि सिर को किसी तीक्ष्ण हथियार से काट दिया जाए, तो किसी जीवन का नाश नहीं होता। केवल सात शरीर नष्ट होते हैं। चौदह लाख महत्वपूर्ण जन्म, साठ हजार छह सौ पाँच कर्म हैं। पाँच सौ चार कर्मों वाले जन्म, तीन चार कर्मों वाले जन्म, एक कर्म, आधा कर्म और सोलह विधियाँ हैं। सोलह आंतरिक विश्व चक्र हैं। छह उच्च जन्म, आठ नबी के जन्म, चार हजार नौ सौ तपस्वी जन्म, चार हजार नौ सौ भ्रमणशील तपस्वी जन्म और चार हजार नौ सौ हाथी जन्म हैं। बीस सौ नियंत्रक शक्तियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस राज तत्व, सात प्रत्यक्ष जन्म, सात अप्रत्यक्ष जन्म, सात निगंत जन्म, सात स्वर्गीय और सात मानव जन्म, सात प्रेत जन्म और सात स्मृतियाँ। सात उच्च स्मृतियाँ, सात सौ सात पतन, सात सौ सात स्वप्न। मूर्ख या बुद्धिमान बनकर अस्सी लाख बड़े और छोटे विश्व चक्रों में कष्टों का अंत होना चाहिए। ऐसा नहीं है कि इन गुणों, अनुष्ठानों और तपस्याओं से मैं अपने अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व कर लूँगा, या भावनाओं को महसूस करते हुए उन्हें समाप्त कर दूँगा। सुखद या अप्रिय भावनाओं का कोई माप नहीं है और अस्तित्व का कोई अंत नहीं दिखता। कोई ऊँच-नीच नहीं है। यह एक अव्यवस्थित धागे के गोले में फेंके जाने जैसा है और उससे बाहर निकलने का रास्ता खोजना पड़ता है। मूर्ख या बुद्धिमान बनकर अस्सी लाख बड़े और छोटे विश्व चक्रों में कष्टों का अंत होना चाहिए।

संदका नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हैं। यह उत्तम गुरु इस मत का समर्थन करते हुए इसकी घोषणा करते हैं। ये सात शरीर कष्टों का अंत करेंगे। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं एकांतवास में समान हैं, मैं तो इस पर विश्वास भी नहीं करता। हम दोनों ही जन्मों में कष्टों का अंत करेंगे। इन उत्तम गुरुओं ने अनावश्यक रूप से नग्न रहकर, सिर पर गाँठ बाँधकर, खड़े-खड़े सिर और दाढ़ी के बाल नोचते हुए पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्रों का आनंद लेता रहा, फूल और सुगंध लाता रहा और सोना-चाँदी

कमाता रहा। मृत्यु के बाद मैं इन उत्तम गुरुओं के समान हो जाऊँगा। यह जानते हुए और देखते हुए कि क्या मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए, वह इससे विमुख हो जाता है। जो यह जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदाका, यह चौथा पवित्र जीवन है जिसे सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने नहीं जीने की सलाह दी है। बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो इसे नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का कार्य है।

संदका, ये चार पवित्र जीवन हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने अस्वीकृत घोषित किया है, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता। - हे आनंद, यह आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है। हे आनंद, ये चार पवित्र जीवन कौन से हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता। हे आनंद, वे चार पवित्र जीवन कौन से हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता।

संदका, एक शिक्षक निरंतर और लगातार सर्वव्यापी ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, चाहे वे चल रहे हों, खड़े हों, लेटे हों या जाग रहे हों। वे एक खाली घर में प्रवेश करते हैं और उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। एक कुत्ता उन्हें काट लेता है। उनका सामना मदमस्त हाथी, एक उग्र घोड़े या एक उग्र बैल से होता है। वे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र, या किसी गाँव या बस्ती का नाम और वहाँ जाने का मार्ग पूछते हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि क्या हुआ, तो वे कहते हैं, मैं एक खाली घर में गया, मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ और एक कुत्ते ने मुझे काट लिया। मेरा सामना मदमस्त हाथी, एक उग्र घोड़े और एक उग्र बैल से हुआ। मुझे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र, किसी गाँव या बस्ती का नाम और वहाँ जाने का मार्ग पूछना पड़ा। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह उत्तम शिक्षक सर्वव्यापी ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, और वे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र पूछते हैं। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से असंतुष्टिपूर्ण समझकर विमुख हो जाना चाहिए। संदका, यह पहला पवित्र जीवन है, जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो नहीं जीता है और यदि जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

फिर से, संदका, एक शिक्षक सुनी-सुनाई बातों को ही सत्य मान लेता है। जो शिक्षक सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करता है, उसके लिए परंपरा ही सत्य बन जाती है। हो सकता है उसने सही सुना हो या गलत। उसके लिए वही सत्य बन जाता है, जबकि सत्य कुछ और भी हो सकता है। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करता है। वह वही उपदेश देता है जो उसे परंपरा और सुनी-सुनाई बातों से प्राप्त हुआ है। उसने जो सुना है वह सत्य हो भी सकता है और नहीं भी। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से विमुख हो जाना चाहिए क्योंकि वह संतोषजनक नहीं है। संदका, यह दूसरा पवित्र जीवन है, जिसे सर्वज्ञ, सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने संतोषजनक नहीं बताया है और कहा है कि इसे जीना नहीं चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे न जिए और यदि वह जी भी ले तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का कार्य है।

फिर से, संदका, एक विशेष शिक्षक तर्क के आधार पर उपदेश देते हैं, तार्किक तर्कों के माध्यम से वे स्वयं ही एक शिक्षा का आधार तैयार करते हैं। एक तार्किक शिक्षक की शिक्षा में कुछ तर्क सत्य हो सकते हैं और कुछ असत्य। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक तर्क के आधार पर उपदेश देते हैं। उनके तर्क प्रामाणिक हों या न हों, मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से असंतुष्टिपूर्ण समझकर विमुख हो जाना चाहिए। संदका, यह तीसरा पवित्र जीवन है, जिसे सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतुष्टिपूर्ण घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे न जिए और यदि वह जी भी ले तो उसे यह विश्वास नहीं होना चाहिए कि यह पुण्य का कार्य है।

संदका, एक विशेष शिक्षक मंदबुद्धि और भ्रमित है; जब उससे कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह टालमटोल करता है और तटस्थ रहता है। मुझे यह बात समझ में नहीं आती, न ही कोई और उपाय समझ में आता है; न ही कोई दूसरा उपाय है और न ही इनमें से कोई उपाय सही है। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक मंदबुद्धि और भ्रमित है; जब उससे कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह टालमटोल करता है और तटस्थ रहता है। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से विमुख हो जाना चाहिए क्योंकि वह असंतोषजनक है। संदका, यह चौथा पवित्र जीवन है, जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए; बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे नहीं जीता है और यदि जीता भी है, तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदका, ये वे चार पवित्र जीवन हैं जिन्हें सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। हे आनंद, यह आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है! हे आनंद, ये वे चार पवित्र जीवन हैं जिन्हें सर्वज्ञानी, पूर्ण और

सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है, जिनका जीवन बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं अपनाता और यदि अपनाता भी है तो उसे यह पुण्यपूर्ण नहीं लगता। हे आनंद, वह पवित्र जीवन क्या है जिसे सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने श्रेष्ठ शिक्षा में संतोषजनक और आश्वस्त करने वाला घोषित किया है और जो पुण्यपूर्ण है?

संदक, यानी तथागत, संसार में पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य रूप से जन्म लेते हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के इस संसार में, साथ ही इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, और जिसके अक्षर भी पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करते हुए अर्थपूर्ण हैं। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था के साथ वह विचार करता है कि गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, यह अपवित्रता का मार्ग है। गृहस्थ जीवन खुले स्थान के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए अपवित्र हुए बिना पूर्ण और पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। यदि मैं सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाऊं तो क्या होगा? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ी या बहुत अधिक संपत्ति का त्याग कर देता है, या तो मित्रों के एक छोटे समूह को पीछे छोड़ देता है, या मित्रों के एक बड़े समूह को पीछे छोड़ देता है, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके एक संन्यासी के रूप में निकल जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है, प्राणियों को पीड़ा देना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है, लज्जा और करुणा से भर जाता है, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है। अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करते हुए, दी हुई वस्तुओं की इच्छा रखता है, बिना चोरी किए स्वयं को शुद्ध करता है। नीच यौन संबंध से परहेज करते हुए वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए वह विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद न करता है। निंदा का त्याग करके, यहाँ सुनकर उसे कहीं और न दोहराता है, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर उसे यहाँ न दोहराता है ताकि दूसरों को विभाजित न करे। विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है, एकता प्रेमी है और एकता के वचन बोलता है। कठोर शब्दों का त्याग करके वह कानों को भाने वाले मधुर शब्द बोलता है, जो आम जनता के हृदय तक पहुँचते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। शिक्षा और अनुशासन के अनुसार उचित, सत्य और अर्थपूर्ण शब्द बोलता है, वे शब्द जो अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने, संदेशवाहक का काम करने, खरीद-फरोख्त करने और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने, अलग करने, नष्ट करने, लूटपाट करने और अनुचित तरीकों से भोजन प्राप्त करने से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ प्रस्थान करता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ प्रस्थान करता है। सद्गुणों के इस समूह से युक्त होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव करता है। किसी रूप को देखकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न होने पर, लोभ और अप्रसन्नता के कारण दोष प्रवेश कर सकता है। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनकर...या। नाक से गंध पहचानकर...या। जीभ से स्वाद चखकर...या। शरीर से स्पर्श पहचानकर...या। मन से विचार पहचानकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न होने पर, लोभ और अप्रसन्नता के कारण दोष प्रवेश कर सकता है। वह मन की क्षमताओं की रक्षा करते हुए निवास करते हैं। श्रेष्ठों के समान मन की शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण वे मन के अछूते आनंद का अनुभव करते हैं। आगे बढ़ना हो या पीछे मुड़ना, वे सचेत रहते हैं। देखना हो या अगल-बगल देखना, झुकना हो या सीधा होना, भिक्षापात्र और तीनों वस्त्र धारण करना, वे सचेत रहते हैं। चखना, पीना, खाना और आनंद लेना, वे सचेत रहते हैं। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए और मौन रहना, वे सचेत रहते हैं। इन सभी सद्गुणों से, श्रेष्ठों के समान मन की शक्तियों पर नियंत्रण से, और श्रेष्ठों के समान सजगता से वे एकांत स्थान में निवास करते हैं। जैसे कि वन, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन समाप्त होने पर वे पैर मोड़कर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने की ओर केंद्रित करते हैं।

वह संसार के लोभ को दूर करते हुए, मन को लोभ से मुक्त करते हुए निवास करते हैं। वे क्रोध से मुक्त मन को शुद्ध करते हुए, सभी प्राणियों के प्रति करुणा जागृत करते हुए निवास करते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति के प्रति सचेत और जागरूक रहते हुए, आलस्य और सुस्ती को ध्यानपूर्वक दूर करते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, बेचैनी और चिंता दूर हो जाती है। वे अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में संदेह से मुक्त होकर निवास करते हैं।

पांचों बाधाओं को दूर करके और छोटे-मोटे दोषों को कमजोर करके, भिक्षु अपने मन को कामुक, क्रोधी और पीड़ादायक विचारों से अलग रखता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, वह प्रथम ध्यान में रहता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो उसने बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जिया है और उसे पुण्य का ज्ञान है। फिर भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को एक ही बिंदु पर आंतरिक रूप से शांत करता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, वह द्वितीय ध्यान में रहता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो उसने बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जिया है और ऐसा करते हुए भी उसे पुण्य का ज्ञान है। फिर भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, सचेत और जागरूक रहते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करता है, और तृतीय ध्यान में प्राप्त होता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यह समभाव में रहते हुए सुख और दुख को दूर करना है। फिर, जो भिक्षु सुख और दुख को दूर कर चुका है और पहले सुख और दुख को दूर कर चुका है, वह समभाव से शुद्ध होकर चौथे ध्यान में रहता है। संदक कहते हैं कि जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जीता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा नाम, कुल, स्वभाव और आधार ऐसा था, मैंने ऐसे सुख और दुख का अनुभव किया, और मेरा जीवनकाल ऐसा था। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, कुल, स्वभाव और आधार से जन्म लेता हूँ, ऐसे सुख और दुख का अनुभव करता हूँ, और मेरा जीवनकाल ऐसा होता है। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है। संदका के अनुसार, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन व्यतीत करता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए देखता है, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूप में हों। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, और कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, जो अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, और कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए देखता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन व्यतीत करता है और ऐसा करते हुए भी उसे पुण्य मानता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यही अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्भव है, यह इच्छाओं का निवारण है और यही इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। जो इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, 'होने' की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और अज्ञान की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जिया जा रहा है। जो करना चाहिए, वह हो गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जी चुका होता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

“हे आनंद, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, क्या वे कामुकता में लिप्त होते हैं?” “संदक, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होंने ‘होने’ की इच्छा का नाश किया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हैं, वे पाँच चीजों से आगे नहीं जा सकते। यह संभव नहीं है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर चुके हैं, वे जागरूकता के साथ, जीवित

प्राणियों का जीवन नष्ट करें, जो नहीं दिया गया है उसे लें, कामुकता में लिप्त हों और झूठ बोलें। वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करते समय की तरह कामुक उपभोग के लिए वस्तुओं का संचय नहीं करेंगे। संदक, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, वे इन पाँच चीजों को नहीं करेंगे, यह असंभव है कि वे इन्हें करें।"

"हे आनंद, सिद्ध भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, जो करना चाहिए वो किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च सुख को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, क्या उसका ज्ञान और दृष्टि निरंतर और सतत रूप से स्थापित रहती है, जैसे मेरी इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं?" "संदक, मैं तुम्हें एक उदाहरण देता हूँ, क्योंकि कुछ बुद्धिमान लोग उदाहरण को समझ जाते हैं। संदक, मान लो एक मनुष्य के हाथ-पैर काट दिए गए हैं। वह चाहे जिस भी मुद्रा में हो, वह जान जाएगा कि मेरे हाथ-पैर कटे हुए हैं और चिंतन करने पर भी जान जाएगा कि मेरे हाथ-पैर कटे हुए हैं। उसी प्रकार, सिद्ध भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, जो करना चाहिए वो किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च सुख को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, वह निरंतर और सतत रूप से जान जाएगा कि मेरी इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं।"

"हे गौतम, इस युग में लगभग कितने लोगों को पार कराया गया है?" "संदक, एक भी नहीं, सौ भी नहीं, दो सौ भी नहीं, तीन सौ भी नहीं, चार सौ भी नहीं, पाँच सौ भी नहीं, फिर भी इस युग में बहुतों को पार कराया गया है।" "हे आनंद, यह अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि न तो किसी ने अपने उपदेश की प्रशंसा की और न ही दूसरे के उपदेश की निंदा की, फिर भी बहुतों को पार कराया गया। जहाँ तक इन तपस्वियों की बात है, वे मृत स्त्रियों के पुत्र हैं। वे अपनी प्रशंसा करते हैं, दूसरों की निंदा करते हैं, और केवल तीन को ही पार कराया हुआ दिखाते हैं। वे हैं नंदा वच्छ, संकिच्छा और मक्खली गोशाला।"

तब भ्रमणशील तपस्वी संदक ने अपने उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए कहा: "हे सज्जनों, गौतम गौतम के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करें। मान-सम्मान और यश की लालसा छोड़ दें।" इस प्रकार, भ्रमणशील तपस्वी संदक ने उपस्थित लोगों में भगवान गौतम के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करने की रुचि जगाई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.7 महासकुलुदायी सुत्त(77)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रह रहे थे। उस समय कई प्रसिद्ध भिक्षु मोरा वृक्षों के अभयारण्य में स्थित भिक्षु मठ में रहते थे। जैसे अनुगारो वरधरा, सकुलुदयी और अन्य प्रसिद्ध भिक्षु। फिर भगवान ने सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब भगवान को यह विचार आया कि राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है, क्यों न मैं मोरा वृक्षों के अभयारण्य में रहने वाले भिक्षु सकुलुदयी के पास जाऊं। भगवान भिक्षु मठ की ओर गए और सकुलुदयी के पास पहुंचे। उस समय सकुलुदयी भिक्षुओं की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे और बहुत शोर मचा रहे थे। वे तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे, राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, लड़ाइयों, खाने-पीने की चीजों, कपड़ों, बिस्तरों, फूलों और सुगंधों, रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों और राज्यों, महिलाओं और नायकों के बारे में। गली के कोने और कुएं पर गपशप के बारे में, मरे हुए लोगों के बारे में, दुनिया और समुद्र की उत्पत्ति के बारे में और जो हुआ और जो नहीं हुआ, उसके बारे में तरह-तरह की बातें।

घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देख सभा को शांत कराया और कहा, "हे सज्जनों, शोर कम कीजिए, इतना शोर मत कीजिए। गौतम गौतम आ रहे हैं। ये पूजनीय लोग शांत हैं, और शायद इस सभा के शांत होने को देखकर पास आने का सोच रहे हैं।" घुमंतू तपस्वी शांत हो गए।

तब भगवान बुद्ध भ्रमणरत तपस्वी शकुलुदयी के पास पहुँचे, और शकुलुदयी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, आइए! बहुत समय बाद हे गौतम ने आने का मन बनाया है। हे गौतम, बैठिए, आसन तैयार है।" भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए, और भ्रमणरत तपस्वी भी एक तरफ झुककर बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने कहा, “आप यहाँ किस विषय पर चर्चा करने के लिए बैठे थे और बातचीत का विषय क्या था? आदरणीय महोदय, अभी जिस विषय पर हम बैठे थे, उसी पर चर्चा हो रही है। भगवान बुद्ध की वाणी दुर्लभ होती है और यह वाणी बाद में सुनी जा सकती है। बहुत समय पहले, जब संन्यासी और ब्राह्मण सभा भवन में एकत्रित हुए थे, तब यह वाणी उठी थी। अंग और मगध के लिए यह बड़ा लाभ है कि अनेक संन्यासी और ब्राह्मण, सभाओं के नेता, प्रसिद्ध मार्ग निर्माता, जिन्हें अनेक लोग शुभ मानते हैं, अपने अनुयायियों के साथ वर्षा ऋतु में राजगृह आते हैं। वे पुराण कस्सपा, मक्खली गोशाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चयन, संजय बेलत्थिपुत्त और निगंथ नटपुत्त हैं, और संन्यासी गौतम भी। शिष्य गुरु का आदर और सम्मान कैसे करते हैं और उनके प्रति क्या श्रद्धा रखते हैं?”

तब किसी ने कहा: “यह पुराण कस्सपा, जो एक सभा के नेता और गुरु हैं और जिन्हें कई लोग प्रसिद्ध मार्गदर्शक मानते हैं, अपने शिष्यों द्वारा आदर और सम्मान नहीं पाते और पुराण कस्सपा स्वयं अपने शिष्यों को उचित सम्मान नहीं देते। एक बार पुराण कस्सपा सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी पुराण कस्सपा के एक शिष्य ने विस्मयबोधक स्वर में कहा, ‘महोदय, पुराण कस्सपा से इसका अर्थ मत पूछो, उन्हें इसका अर्थ नहीं पता। मुझे इसका अर्थ पता है, मुझसे पूछो, मैं तुम्हें समझा दूंगा।’ तब पुराण कस्सपा ने अपनी छाती पीटते हुए चिल्लाकर सभा को चुप रहने का आग्रह किया। ‘महोदय, उनसे प्रश्न मत पूछो, मुझसे पूछो। मैं समझा दूंगा।’ उनके कई शिष्य झगड़ा करते हुए उनसे दूर चले गए: ‘आप इस विद्या को नहीं जानते। मैं जानता हूं। आप इस विद्या के बारे में क्या जानते हैं? आपका मार्ग गलत है। मैं तर्क से बोलता हूं और आप तर्कहीन बोलते हैं।’ आप अंतिम शब्द पहले कहते हैं, और जो शब्द पहले कहे जाने चाहिए वे अंत में कहते हैं। आपने इस पर विचार किया, इसे उलट दिया, और विवाद को जन्म दिया, इसे रोकें! यदि संभव हो तो विवाद सुलझाकर मुक्त हो जाएं। इस प्रकार पुराण कस्सपा अपने शिष्यों द्वारा सम्मानित और आदरणीय नहीं हैं, और पुराण कस्सपा अपने शिष्यों को उचित मान्यता नहीं देते हैं, और पुराण कस्सपा अपने ही उपदेशों से अपमानित होते हैं। तब किसी ने कहा, मक्खली गोशाला भी, अजित केशकंबली भी, पाकुधा कच्चयन भी, संजय बेलत्थिपुत्त भी। निगंथ नटपुत्त, एक सभा के नेता और शिक्षक, जिन्हें कई लोग एक प्रसिद्ध पथ निर्माता मानते हैं, अपने शिष्यों द्वारा सम्मानित और आदरणीय नहीं हैं, और निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को उचित सम्मान नहीं देते हैं। एक बार निगंथ नटपुत्त सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तब निगंथ नटपुत्त के एक शिष्य ने विस्मयबोधक चिह्न लगाया। महोदय, निगंथ नटपुत्त से इसका अर्थ मत पूछिए, उन्हें इसका अर्थ नहीं पता। मैं इसका अर्थ जानता हूँ, मुझसे प्रश्न पूछिए, मैं आप सभी को समझा दूँगा। ऐसा हुआ कि निगंथ नटपुत्त ने अपनी छाती पीटते हुए चिल्लाकर सभा में मौजूद लोगों से चुप रहने की विनती की। ये महोदय उनसे प्रश्न नहीं पूछते, मुझसे पूछते हैं। मैं उन्हें समझा दूँगा। उनके कई शिष्य झगड़ा करते हैं और उनसे दूर चले जाते हैं। आप अनुशासन और शिक्षा को नहीं जानते। मैं जानता हूँ। आप इस अनुशासन के बारे में क्या जानते हैं? आप गलत रास्ते पर चले गए हैं। मैं तर्क से बोलता हूँ और आप बिना तर्क के। आप अंतिम शब्द पहले बोलते हैं और जो शब्द पहले बोले जाने चाहिए वे अंत में बोलते हैं। आपने इस पर विचार किया, इसे उलट दिया और विवाद खड़ा कर दिया, इसे रोकिए! यदि संभव हो तो विवाद सुलझाकर मुक्त हो जाइए। इस प्रकार निगंथ नटपुत्त को उनके शिष्यों द्वारा सम्मान और आदर नहीं दिया जाता है, और निगंथ नटपुत्त स्वयं अपने शिष्यों को उचित मान्यता नहीं देते हैं, और निगंथ नटपुत्त अपने ही उपदेशों से बदनाम होते हैं।

किसी ने कहा: “सन्यासी गौतम भी एक सभा के नेता और गुरु हैं, अनेकों द्वारा प्रसिद्ध मार्गदर्शक माने जाते हैं, उनके शिष्य उनका आदर और सम्मान करते हैं, और वे स्वयं भी अपने शिष्यों का आदर करते हैं, और शिष्य उन पर निर्भर रहते हैं। एक बार तपस्वी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी एक शिष्य ने खाँसी की, और उनके एक साथी ने घुटने से उन्हें हल्का सा धक्का देकर कहा, ‘आदरणीय, शोर न करें।’ जब तपस्वी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश देते हैं, तो वहाँ न तो छींक आती है और न ही खाँसी की आवाज़। तब सभा के लोग तपस्वी गौतम के अगले वचन सुनने की प्रतीक्षा करते हैं, यह सोचते हुए कि भगवान जो भी कहेंगे, हम सुनेंगे। ठीक वैसे ही जैसे लोग चौराहे पर उत्सुकता से तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि कोई छोटा सा मधुकोश ढक न जाए।” इस प्रकार, जब संन्यासी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश देते हैं, तो भीड़ में छींकने या खांसने की भी आवाज नहीं आती। सभा संन्यासी गौतम के अगले शब्दों को सुनने की प्रतीक्षा में रहती है, यह सोचकर कि भगवान जो भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे। संन्यासी गौतम के वे शिष्य भी, जो प्रशिक्षण में स्वयं को संलग्न नहीं कर सके और भिक्षु वस्त्र त्याग दिए, गुरु, उपदेश और भिक्षु समुदाय की प्रशंसा करते हैं। वे स्वयं को दोषी मानते हैं, किसी और को नहीं। वे कहते हैं, मैं ही अभागा, निर्गुण हूँ, इस सुप्रसिद्ध उपदेश में जाकर भी जीवन के अंत तक शुद्ध और पूर्ण पवित्र जीवन नहीं जी सका। वे या तो मठ में रहते हैं या पंच ऋषियों का पालन करते हुए गृहस्थ शिष्य के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार संन्यासी गौतम शिष्यों द्वारा आदर और सम्मान पाते हैं और संन्यासी गौतम अपने शिष्यों को उचित सम्मान और आदर देते हैं और वे उन पर निर्भर रहते हैं।

हे उदयी, मेरी शिक्षा में आपको क्या दिखाई देता है, जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और मेरे साथ रहते हैं, और वे मेरे आदर और सम्मान के सहारे मेरे साथ रहते हैं?

आदरणीय महोदय, मैं पाँच बातें देखता हूँ जिनके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं, और उन्हीं के कारण उन्हें उचित आदर और सम्मान प्राप्त होता है और उनका भरण-पोषण होता है। वे पाँच बातें क्या हैं? आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध अल्प

भोजन करते हैं और अल्प भोजन करते हुए स्तुति करते हैं। यही वह पहली बात है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं उचित आदर प्राप्त करके अपना भरण-पोषण करते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध प्राप्त वस्त्रों से संतुष्ट रहते हैं और इस संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह दूसरा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और उचित सम्मान प्राप्त करके उनका सहारा बनते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध भोजन के हर निवाले से संतुष्ट होते हैं और भोजन के हर निवाले से मिलने वाली संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह तीसरा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध आवास के लाभ से संतुष्ट रहते हैं और आवास के लाभ से संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह चौथा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

हे आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध एकांतवास की प्रशंसा करते हैं, यही पाँचवाँ कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

आदरणीय महोदय, मैं इन पाँच बातों को देखता हूँ जिनके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए सहारा पाते हैं।

हे उदयाय, यदि मैं थोड़े से भोजन करने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान पाता हूँ, तो आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए, और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य एक कटोरी, आधी कटोरी, यहाँ तक कि एक बेल और आधा बेल भी ग्रहण करते हैं। दूसरी ओर, मैं कभी-कभी कटोरी भरकर, और कभी-कभी उससे भी अधिक ग्रहण करता हूँ। हे उदयाय, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए। हे उदयाय, मेरे कुछ शिष्य एक कटोरी, आधी कटोरी, यहाँ तक कि एक बेल और आधा बेल भी ग्रहण करते हैं। हे उदयाय, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मैं वस्त्रों के लाभ से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान पाता हूँ, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र पहनते हैं, जो श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से मिली सामग्री से अपने तीनों वस्त्र बनाते हैं। वहीं, मैं कभी-कभी किसी गृहस्थ द्वारा अंकुश के खुरदुरे रस्से से कुशलतापूर्वक बनाए गए वस्त्र को धारण करता हूँ। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते हुए उनका सम्मान करना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र पहनते हैं, जो श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से मिली सामग्री से अपने तीनों वस्त्र बनाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मैं भोजन के किसी भी टुकड़े से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए सम्मानित और आदरणीय हूँ, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए। आपको उनका समर्थन करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान देना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य विधिवत भिक्षादान करते हैं। रीति-रिवाजों से जुड़े होने के कारण, वे किसी घर में प्रवेश करने पर भी बैठने की पेशकश किए जाने पर भी नहीं बैठते, जबकि दूसरी ओर, मैं कभी-कभी आमंत्रित भोजन ग्रहण करता हूँ, जो उत्तम चावल से बना होता है, जिसमें काले बीज निकाल दिए जाते हैं और विभिन्न प्रकार के करी और सूप परोसे जाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते रहना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र धारण करते हैं, वे अपने तीनों वस्त्र श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से प्राप्त सामग्री से बनाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मुझे आवासों के लाभ से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान दिया जाता है, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य खुले में, पेड़ के नीचे रहते हैं, वे आठ महीने तक छत की तलाश नहीं करते। वहीं मैं कभी-कभी अच्छी तरह से रंगे हुए, हवा और बारिश से सुरक्षित, कुंडीदार दरवाजों और खिड़कियों वाले छज्जेदार घर में रहता हूँ। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते रहना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य खुले में, पेड़ के नीचे रहते हैं, वे आठ महीने तक छत की तलाश नहीं करते। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मुझे एकांतवास और उसकी प्रशंसा के लिए आदर और सम्मान प्राप्त है, तो आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य वनवासी, पादप-शपथवासी, वन-जंगलवासी और वन-मार्गवासी हैं। वे भिक्षुओं के समुदाय में नहीं रहते। वे हर पखवाड़े में उच्च नियमों का पाठ करने आते हैं। दूसरी ओर, मैं भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, पुरुष और स्त्री, सभी से घिरा रहता हूँ। राजाओं, मंत्रियों और अन्य धर्मों के तपस्वियों से भी घिरा रहता हूँ। उदयी, आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य वनवासी, पादप-शपथवासी, वन-जंगलवासी और वन-मार्गवासी हैं। वे भिक्षुओं के समुदाय में नहीं रहते। वे हर पखवाड़े में उच्च नियमों का पाठ करने आते हैं। उदयी, तुम्हें मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

अतः उदयि, मेरे शिष्य इन पाँच बातों के कारण मेरा आदर और सम्मान नहीं करते तथा उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा नहीं लेते।

उदयी, पाँच अन्य बातें हैं जिनके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा समर्थन करते हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? उदयी, मेरे शिष्य मुझे सद्गुणों के सर्वोच्च समूह के कारण आदर करते हैं। संन्यासी गौतम गुणी और सद्गुणों के सर्वोच्च समूह से परिपूर्ण हैं। यही वह पहली बात है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं।

हे उदयी, मेरे शिष्य मुझे ज्ञान और दृष्टि के सर्वोच्च भंडार के लिए आदर देते हैं; संन्यासी गौतम, जानते हुए कहते हैं, मैं जानता हूँ, देखते हुए कहते हैं, मैं देखता हूँ। ज्ञानी संन्यासी गौतम उदाहरणों के साथ और अद्भुत बातें कहकर उपदेश देते हैं। यही वह दूसरा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मुझे आदर और श्रद्धा देते हैं।

उदयी, मेरे शिष्य मुझे सर्वोच्च ज्ञान के लिए आदर देते हैं। संन्यासी गौतम अत्यंत ज्ञान से संपन्न हैं। ऐसा संभव ही नहीं कि उन्होंने एक भी ऐसा संकेत न पहचाना हो, जिसके कारण भविष्य में कोई झूठा शिक्षक विवाद खड़ा करे, और उन्होंने वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सभी विवादों का उचित समाधान किया है। उदयी, क्या आपने कभी मेरे किसी शिष्य को प्रवचन के बीच में मुझे टोकते हुए देखा है?

नहीं, आदरणीय महोदय, मैंने ऐसा नहीं किया है।

मेरे शिष्य मानते हैं कि वास्तव में, उन्हीं के कारण उन्हें सलाह मिलती है, इसलिए वे मुझे सर्वोच्च ज्ञान से सम्मानित करते हैं। यही तीसरा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा बनते हैं।

फिर, उदयि, जब मेरे शिष्य दुखी और अप्रियता से ग्रस्त होते हैं, तो वे मेरे पास आकर अप्रियता के महान सत्य के बारे में पूछते हैं। तब मैं उन्हें इसका अर्थ समझाता हूँ। मैं अप्रियता के महान सत्य को समझाकर उनके मन को आश्वस्त करता हूँ। वे अप्रियता के उत्पन्न होने के महान सत्य, अप्रियता के निवारण के महान सत्य और अप्रियता के निवारण के मार्ग के महान सत्य के बारे में पूछते हैं। मैं उन्हें अप्रियता के निवारण का मार्ग समझाता हूँ और उसे समझाकर उनके मन को आश्वस्त करता हूँ। यही वह चौथा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और मेरा सहारा बनते हैं, और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार की ध्यान साधना विधि बताई है। यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे भावनाओं में भावनाओं का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे मन में मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे विचारों में विचारों का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से मोक्ष की प्राप्ति के लिए चिंतन करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार के उचित कर्मों को विकसित करने की विधि बताई है। मेरे शिष्य इन चार उचित कर्मों को विकसित करने की विधि का अनुसरण करते हैं। हे उदयी, भिक्षु अजन्मे दोषों के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु उत्पन्न दोषों के निवारण के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु अजन्मे गुणों के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु उत्पन्न गुणों के स्थिर, स्थिर और विकास के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार की अलौकिक शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु लगन और दृढ़ संकल्प से एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से मानसिक एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है और भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से खोजपूर्ण एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को पंच प्रकार की मानसिक शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। हे उदयी, भिक्षु विश्वास की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु प्रयास की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ध्यान की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु एकाग्रता की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ज्ञान की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से निवास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को पंच प्रकार की शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु प्रयास की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ध्यान की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ज्ञान की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है... इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से शांति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

उदयी, मैंने अपने शिष्यों को सात ज्ञानोदय कारकों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, ध्यान नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, शिक्षा के अध्ययन नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, प्रयास नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, आनंद नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, प्रसन्नता नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, एकाग्रता नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांतवास में समभाव धारण करते हुए ज्ञान का विकास करता है, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए मोक्ष की ओर अग्रसर रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित करने की विधि बताई है। हे उदयी, मेरे शिष्य सही समझ, सही विचार, सही शब्द, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता विकसित करें। इसी प्रकार मेरे शिष्य मोक्ष के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की दिशा में निरंतर प्रयास करते रहें।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आठ मुक्ति प्राप्त करने की विधि बताई है: पदार्थ होते हुए पदार्थ को देखना, यह पहली मुक्ति है। [1] आंतरिक अमूर्त बोध से बाह्य पदार्थ को देखना, यह दूसरी मुक्ति है। केवल अच्छाई में मुक्त होना, यह तीसरी मुक्ति है। पदार्थ और क्रोध के सभी बोधों पर विजय प्राप्त करते हुए, विभिन्न बोधों पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश के साथ आकाश के क्षेत्र को प्राप्त करना, यह चौथी मुक्ति है। असीम चेतना के साथ आकाश के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, चेतना के क्षेत्र को प्राप्त करना, यह पाँचवीं मुक्ति है। कुछ भी न होते हुए, शून्यता के क्षेत्र में रहना, यह छठी मुक्ति है। शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, न बोध-न अबोध में रहना, यह सातवीं मुक्ति है। न बोध-न अबोध के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, बोध और भावनाओं के निश्चिंतन में रहना, यह आठवीं मुक्ति है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आठ निपुणताओं को विकसित करने की विधि बताई है। एक व्यक्ति आंतरिक भौतिक बोध*1) से सीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह पहली निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक भौतिक बोध से असीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह दूसरी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से सीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह तीसरी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से असीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह चौथी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से नीले रंग के रूपों को रंग, आभा और चमक के साथ देखता है। नीले कमलों का रंग, आभा और चमक से युक्त, कश्मीरी वस्त्र की तरह, जिसमें दोनों तरफ रंग, आभा और चमक से युक्त होता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह पाँचवीं निपुणता है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त

बोध रखता है, पीले रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें रंग, आभा और चमक समाहित हैं, कनिकारा फूलों के रंग की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं। इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह छठा महारत है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त बोध रखता है, लाल रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें रंग, आभा और चमक समाहित हैं, बंदूजीव फूलों की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं... इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह सातवां महारत है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त बोध रखता है, सफेद रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें सफेद रंग, आभा और चमक समाहित हैं, सुबह के तारे के रंग की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं। इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह आठवां महारत है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को दस कसिन चिह्नों को विकसित करने की विधि बताई है। पृथ्वी का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। जल का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। अग्नि का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। वायु का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। नीला चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। पीला चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। लाल चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। सफेद चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। आकाश का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। चेतना का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से निरंतर प्रयास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार ध्यान विधियों को विकसित करने की विधि बताई है। जो भिक्षु इंद्रिय सुख और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं से मुक्त होकर, एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है, वह उसी शरीर को एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण करता है, उसे पूर्ण बनाता है, उसे भर देता है; वह एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से शरीर के किसी भी भाग को अछूता नहीं छोड़ता। जैसे कोई स्नान करने वाला या उसका शिष्य पीतल के पात्र में स्नान का पाउडर डालकर पानी छिड़कते हुए उसे झाग के गोले में मिलाता है, बिना कुछ टपकने दिए। उसी प्रकार वह उसी शरीर को एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण करता है, उसे पूर्ण बनाता है और भर देता है; वह एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से शरीर के किसी भी भाग को अछूता नहीं छोड़ता। फिर भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एकाग्र करके, विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर द्वितीय ध्यान में लीन हो जाते हैं। तब वे इसी शरीर को एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से व्याप्त कर देते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे परिपूर्ण कर देते हैं, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। जैसे एक गहरा तालाब, जिसमें चारों दिशाओं से जल का प्रवाह न हो, यहाँ तक कि वर्षा का पानी भी न गिरे, फिर भी तल से निकलने वाले शीतल जल से भरा और परिपूर्ण हो जाता है, और कोई भी स्थान शीतल जल से अछूता नहीं रहता। उसी प्रकार वे इसी शरीर को एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से व्याप्त कर देते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे परिपूर्ण कर देते हैं, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। फिर, हे भिक्षु उदयि, समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक रहते हुए, शरीर के सुख का भी अनुभव करते हुए, तीसरे ध्यान में रहते हैं - हे श्रेष्ठ जन कहते हैं, समभाव के साथ सुख में रहना। फिर वे इसी शरीर को आनंद रहित सुख से व्याप्त करते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे भर देते हैं, कोई भी स्थान आनंद रहित सुख से अछूता नहीं छोड़ते। जैसे नीले, लाल और सफेद कमल जल में उगते हैं, जल में विकसित होते हैं, जल में पोषित होते हैं और जल में खिलते हैं, उनके शीर्ष और जड़ जल से स्पर्शित रहते हैं, उनका कोई भी स्थान जल से अछूता नहीं रहता। उसी प्रकार वे इस शरीर को आनंद रहित सुख से व्याप्त करते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे भर देते हैं, और कोई भी स्थान आनंद रहित सुख से अछूता नहीं छोड़ते। फिर से, उदयि, जो सुख और दुख को दूर करने वाले भिक्षु हैं, और जिन्होंने पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त की थी, बिना किसी सुख-दुख के और समभाव से शुद्ध ध्यान के साथ चौथे ध्यान में निवास करते हैं। वे बैठे हुए अपने शुद्ध मन से पूरे शरीर को व्याप्त कर लेते हैं, कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। उदयि,यह उस व्यक्ति के समान है जिसने अपने सिर सहित पूरे शरीर को सफेद कपड़े से ढक लिया है और शरीर का कोई भी हिस्सा उस कपड़े से अछूता नहीं है। ठीक उसी प्रकार, वह बैठे-बैठे अपने शुद्ध मन से पूरे शरीर को भर लेता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से लीन रहते हैं।

फिर, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसे मेरे शिष्य जानते हैं। मेरा यह शरीर चार महा तत्वों से बना है, माता-पिता द्वारा उत्पन्न हुआ है, चावल और रोटी पर टिका है, क्षय, घिसाव, विखंडन और विनाश के अधीन है, और मेरी चेतना इसमें संलग्न है, इसमें बंधी है। जैसे उच्च कुल के एक सुंदर नीलमणि में आठ फलक होते हैं और उसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के पीले रंग की डोरी होती है। इस प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है। इस विधि से प्रभावित होकर मेरे शिष्य जानते हैं कि मेरा यह शरीर चार महा तत्वों से बना है, माता-पिता द्वारा उत्पन्न हुआ है, चावल और रोटी पर टिका है, क्षय, घिसाव, विखंडन और विनाश के अधीन है, और मेरी चेतना इसमें संलग्न है, इसमें बंधी है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के लिए स्थिर रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, और इस विधि का पालन करके मेरे शिष्य एक पूर्ण, छोटे-बड़े अंगों और मानसिक क्षमताओं से युक्त मानसिक आकृति बना सकते हैं। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने घास से एक सरकंडा उठाया और उसे यह आभास हुआ कि यह सरकंडा है और यह घास है। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने म्यान से तलवार निकाली और उसे यह आभास हुआ कि यह तलवार है और यह म्यान है। तलवार एक वस्तु है और म्यान दूसरी वस्तु है। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने एक डिब्बे से सांप निकाला और उसे यह आभास हुआ कि यह सांप है और यह डिब्बा है। साँप एक चीज़ है और डिब्बा दूसरी चीज़। उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य एक और शरीर, एक मानसिक रूप, बड़े और छोटे अंगों और मानसिक क्षमताओं से परिपूर्ण रचना कर सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य अनेक अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं; एक होकर अनेक हो सकते हैं, अनेक होकर एक हो सकते हैं। वे बिना किसी अवरोध के दीवारों, पहाड़ों और तटबंधों को पार कर सकते हैं, मानो अंतरिक्ष में जा रहे हों। पृथ्वी में गोता लगाना और उससे बाहर आना ऐसा हो सकता है जैसे जल में। जल पर चलना ऐसा हो सकता है जैसे पृथ्वी पर। अंतरिक्ष में पालथी मारकर बैठना, जैसे छोटे-बड़े पक्षी बैठते हैं। चंद्रमा और सूर्य के समान शक्तिशाली होकर हथेली से स्पर्श कर सकते हैं। ब्रह्मलोक में, शक्ति शरीर में समाहित होती है। एक कुशल कुम्हार या उसका शिष्य, अच्छी तरह से मिश्रित मिट्टी से अपनी इच्छानुसार बर्तन बना सकता है। या एक कुशल शिल्पकार या उसका शिष्य, अनुभवी हाथियों के दांतों से आभूषण बना सकता है। या एक कुशल सुनार या उसका शिष्य, शुद्ध सोने से सुंदर आभूषण बना सकता है। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य अनेक अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं; एक होकर अनेक हो सकते हैं, अनेक होकर एक हो सकते हैं। वे बिना किसी अवरोध के दीवारों, पहाड़ों और तटबंधों को पार कर सकते हैं, मानो अंतरिक्ष में जा रहे हों। पृथ्वी पर वे ऐसे गोता लगा सकते हैं और ऊपर आ सकते हैं जैसे जल में। वे जल पर ऐसे चल सकते हैं जैसे पृथ्वी पर। वे अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह पैर मोड़कर बैठ सकते हैं। वे चंद्रमा और सूर्य के समान शक्तिशाली हो सकते हैं, उन्हें हथेली से स्पर्श कर सकते हैं। ब्रह्मा लोक तक शक्ति शरीर में समाहित है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से निवास करते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से दूर और पास की सभी दिव्य और मानवीय ध्वनियों को सुन सकते हैं। एक शक्तिशाली ढोल वादक की तरह, वे तुरंत चारों दिशाओं में समाचार फैला देते हैं। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से दूर और पास की सभी दिव्य और मानवीय ध्वनियों को सुन सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य अन्य प्राणियों के मन को भेद कर देख सकते थे। वे लोभ से ग्रस्त और लोभ रहित, क्रोधित और अक्रोधित, भ्रमित और अक्रोधित, संकुचित और विचलित, विकसित और अविकसित मन को जान सकते थे। वे अतुलनीय और अतुलनीय, एकाग्रता से ग्रस्त और अक्रोधित, मुक्त और अमुक्त मन को जान सकते थे। जैसे कोई स्त्री, पुरुष या बच्चा जो आभूषणों का शौकीन होता है, दर्पण में अपना चेहरा देखकर यह पता लगाता है कि उसके चेहरे पर तिल हैं या नहीं और तुरंत जान जाता है कि उसके चेहरे पर तिल हैं या नहीं। उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य अन्य प्राणियों के मन को भेद कर देख सकते थे। वे लोभ से ग्रस्त और लोभ रहित, क्रोधित और अक्रोधित, भ्रमित और अक्रोधित, संकुचित और विचलित, विकसित और अविकसित, अतुलनीय और अतुलनीय मन को जान सकते थे। एकाग्रता से भरे और एकाग्रताहीन मनों को जानो, मुक्त और मुक्त न हुए मनों को जानो। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहो।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है। इस विधि का पालन करके मेरे शिष्य अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद कर सकते हैं। जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्म, अनगिनत पीछे के जन्म और अनगिनत आगे-पीछे के जन्म। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, और मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरा जीवनकाल ऐसा था। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधार और ऐसे अनुभवों के साथ जन्म लेता हूँ, और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करता हूँ। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार वे अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं। उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जो अपने गाँव से दूसरे गाँव जाता है, फिर वहाँ से तीसरे गाँव जाता है और फिर अपने गाँव लौट आता है: और उसे यह बात याद आती है। मैं अपने गाँव से उस गाँव गया, वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा रहा, इस प्रकार बैठा, यह कहा और इस प्रकार मौन रहा। उस गाँव से मैं अगले गाँव गया, वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा रहा, इस प्रकार बैठा, यह कहा और इस प्रकार मौन रहा। उस गाँव से मैं अपने गाँव लौट आया। इसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को वह विधि

बताई है जिससे वे अनेक जन्मों, जैसे एक जन्म, दो जन्मों—को याद कर सकें। इस प्रकार अनेक पूर्व जन्मों को याद करें। इसी प्रकार मेरे शिष्य मोक्ष के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से स्थिर रहें।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देख सकते हैं, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अच्छे हों या बुरे, और उनके कर्मों के अनुसार प्राणियों को जान सकते हैं। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टि और कर्मों के गलत दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद हानि में जाते हैं, घटते हैं और नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सही आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि और कर्मों के सही दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद वृद्धि में जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार प्रकट होते और लुप्त होते देखा जा सकता है। यह ऐसा है जैसे दो घर हों जिनके दरवाजे अगल-बगल स्थित हों और एक घर में खड़ा व्यक्ति दूसरे घर में लोगों को आते-जाते और घूमते हुए देख सके। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य मानवीय दृष्टि से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए, उदात्त, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में उनके कर्मों के अनुसार देख सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके अनुसरण से मेरे शिष्य इच्छाओं का नाश कर सकते हैं, मन को इच्छाओं से मुक्त कर सकते हैं, और ज्ञान से मुक्त होकर, इसे यहीं और अभी अनुभव कर सकते हैं। उदयी, एक पर्वत की चोटी पर एक घाटी है जिसमें शुद्ध, स्वच्छ और शांत जल है, और उसके किनारे पर खड़ा व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़, रेत और मछलियों के झुंडों को चलते-फिरते और स्थिर देखता है। तब उस व्यक्ति को यह विचार आता है कि इस तालाब का जल शुद्ध, स्वच्छ और शांत है, और इसमें सीपियाँ, कंकड़, रेत और मछलियों के झुंड चल रहे हैं और स्थिर हैं। उदयी, उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके अनुसरण से मेरे शिष्य इच्छाओं का नाश कर सकते हैं, मन को इच्छाओं से मुक्त कर सकते हैं, और ज्ञान से मुक्त होकर, इसे यहीं और अभी अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से स्थिर रहते हैं।

उदयि, यह पाँचवाँ कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा बने रहते हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और भ्रमणशील तपस्वी सकुलुदयी भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.8समनमंदिका सुत्त(78)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय, ध्यानमग्न मुंडिका के अनुयायी उगाहमना,1 लगभग 500 साधकों के एक बड़े समूह के साथ, रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले उद्यान में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित विमर्श कक्ष में निवास कर रहे थे। तब बढ़ई पंचकंग दिन के मध्य में भगवान बुद्ध से मिलने के लिए सावत्थी से निकले, लेकिन उनके मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध से मिलने का यह सही समय नहीं है, क्योंकि वे एकांतवास में हैं। और मन विकास करने वाले भिक्षुओं से मिलने का भी यह सही समय नहीं है, क्योंकि वे भी एकांतवास में हैं। क्यों न मैं रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले उद्यान में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित विमर्श कक्ष में जाकर ध्यानमग्न मुंडिका के अनुयायी उगाहमना से मिलूँ?" इसलिए वह रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले पार्क में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित वाद-विवाद कक्ष की ओर चल पड़ा।

उस अवसर पर उगाहमाना अपने विशाल अनुयायियों के साथ बैठा था, सभी मिलकर खूब शोर मचा रहे थे और कई प्रकार के पशुवत विषयों पर चर्चा कर रहे थे: राजाओं, लुटेरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातचीत; सेनाओं, चेतावनियों और लड़ाइयों के बारे में बातचीत; भोजन और पेय के बारे में बातचीत; वस्त्र, फर्नीचर, मालाओं और सुगंधों के बारे में बातचीत; रिश्तेदारों के बारे में बातचीत; वाहनों के बारे में बातचीत; गांवों, कस्बों, शहरों और ग्रामीण इलाकों के बारे में बातचीत; महिलाओं और नायकों के बारे में बातचीत; गली और कुएं की गपशप के बारे में बातचीत; मृतकों की कहानियों के बारे में बातचीत; विविधता की कहानियों, दुनिया और समुद्र की

रचना के बारे में बातचीत; और इस बारे में बातचीत कि चीजें अस्तित्व में हैं या नहीं। फिर उगाहमना ने दूर से बढ़ते हुए पंचकंग को आते देखा और उसे देखकर अपने अनुयायियों को चुप रहने का आदेश दिया: "महोदय, शांत रहें। कोई शोर न करें। पंचकंग बढ़ई आ रहा है, जो ध्यानमग्न गौतम का शिष्य है। वह ध्यानमग्न गौतम के उन शिष्यों में से एक है, जो सफेद वस्त्र धारण करके श्रावस्ती में रहते हैं। ये लोग शांतिप्रिय हैं, शांति में प्रशिक्षित हैं और शांति की प्रशंसा करते हैं। शायद, यदि वह हमारे समूह को शांत देखेगा, तो वह हमारे रास्ते आने पर विचार करेगा।" इस प्रकार सभी यात्री चुप हो गए।

फिर पंचकंग उगाहमना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, उगाहमना ने उनसे कहा, "मैं चार गुणों से संपन्न व्यक्ति को निपुण, सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ। वे चार गुण कौन से हैं? एक वह स्थिति है जहाँ वह अपने शरीर से कोई बुरा कार्य नहीं करता, कोई बुरी बात नहीं बोलता, कोई बुरा संकल्प नहीं लेता और बुरे साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता। इन चार गुणों से संपन्न व्यक्ति को मैं निपुण, सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ।"

तब पंचकंगा ने न तो उगाहमना के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उनका उपहास किया। प्रसन्नता और उपहास दोनों ही भावों को व्यक्त करते हुए, वे अपनी सीट से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "मैं इस कथन का अर्थ भगवान बुद्ध की उपस्थिति में जानूंगा।"

फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को उगाहमाना के साथ हुई सारी बातचीत सुनाई।

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने पंचकंग से कहा, "हे बढ़ई, तो उगाहमन के शब्दों में, पीठ के बल लेटा हुआ एक मूर्ख शिशु भी निपुणता में पारंगत है, निपुणता में अग्रणी है, सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त एक अजेय ध्यानशील है। क्योंकि पीठ के बल लेटे हुए एक मूर्ख शिशु के मन में 'शरीर' का विचार भी नहीं आता, तो वह अपने शरीर से थोड़ा लात मारने के अलावा कोई बुरा कार्य कहाँ से करेगा? उसके मन में 'वाणी' का विचार भी नहीं आता, तो वह थोड़ा रोने के अलावा कोई बुरी बात कहाँ से कहेगा? उसके मन में 'संकल्प' का विचार भी नहीं आता, तो वह थोड़े क्रोध के अलावा कोई बुरा संकल्प कहाँ से लेगा? उसके मन में 'आजीविका' का विचार भी नहीं आता, तो वह अपनी माँ के दूध के अलावा किसी बुरे साधन से अपना भरण-पोषण कहाँ से करेगा? अतः उगाहमन के शब्दों में, पीठ के बल लेटा हुआ एक मूर्ख शिशु निपुणता में पारंगत है।" जो कुशल है उसमें, जो कुशल है उसमें सर्वोपरि, एक अजेय ध्यानमग्न व्यक्ति ने उच्चतम उपलब्धियों को प्राप्त किया।

यदि किसी व्यक्ति में ये चार गुण हों, तो मैं उसे निपुण, कुशल, या सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी नहीं कहता। बल्कि, वह पीठ के बल लेटे एक मूर्ख शिशु के समान है। वे कौन से चार गुण हैं? वह स्थिति है जिसमें वह अपने शरीर से कोई बुरा कार्य नहीं करता, कोई बुरी बात नहीं बोलता, कोई बुरा संकल्प नहीं लेता और बुरे साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता। यदि किसी व्यक्ति में ये चार गुण हों, तो मैं उसे निपुण, कुशल, या सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी नहीं कहता। बल्कि, वह पीठ के बल लेटे एक मूर्ख शिशु के समान है।

"दस गुणों से संपन्न व्यक्ति को मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ। इस संदर्भ में, यह जानना आवश्यक है कि 'ये अकुशल आदतें हैं,' मैं कहता हूँ। इस संदर्भ में, यह जानना आवश्यक है कि 'यही अकुशल आदतों का कारण है'...'यहाँ अकुशल आदतें पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास अकुशल आदतों के निवारण की ओर ले जाता है,' मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये कुशल आदतें हैं'...'यह कुशल आदतों का कारण है'...'यहाँ कुशल आदतें बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास कुशल आदतों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है,' मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये अकुशल संकल्प हैं'... 'यही अकुशल संकल्पों का कारण है'... 'यहाँ अकुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं'... 'इस प्रकार का अभ्यास अकुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है', मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये कुशल संकल्प हैं'...'यह कुशल संकल्पों का कारण है'...'यहाँ कुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास कुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है,' मैं कहता हूँ।"

"अकुशल आदतें क्या हैं? अकुशल शारीरिक क्रियाएँ, अकुशल वाणी क्रियाएँ, और आजीविका के बुरे साधन। इन्हें अकुशल आदतें कहा जाता है। अकुशल आदतों का कारण क्या है? इनका कारण बताया जा चुका है, और इन्हें मन-जनित कहा जाता है। कौन सा मन? - क्योंकि मन के अनेक गुण और रूप होते हैं। कोई भी मन जिसमें वासना, घृणा या भ्रम हो: वही अकुशल आदतों का कारण है। अब अकुशल आदतें कहाँ पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं? उनका समापन बताया जा चुका है: वह स्थिति जब कोई भिक्षु गलत शारीरिक आचरण को त्यागकर सही शारीरिक आचरण अपनाता है, गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी अपनाता है, गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाता है। यहीं पर अकुशल आदतें पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं। और अकुशल आदतों के समापन की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति जब कोई भिक्षु बुराई के उत्पन्न न होने के लिए इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, दृढ़ता जगाता है, और अपने इरादे को दृढ़ रखता है और उस पर बल देता है।" अकुशल गुणों का त्याग करना जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं...बुराई को त्यागने के लिए; अकुशल गुणों का त्याग करना जो उत्पन्न हो चुके हैं...उन कुशल गुणों के उदय के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं...(और) उत्पन्न हो चुके कुशल गुणों के रखरखाव, अव्यवस्था दूर करने, वृद्धि, परिपूर्णता, विकास और पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास अकुशल आदतों के निवारण की ओर ले जाता है।

"और कुशल आदतें क्या हैं? कुशल शारीरिक क्रियाएं, कुशल वाणी क्रियाएं, आजीविका की पवित्रता। इन्हें कुशल आदतें कहा जाता है। कुशल आदतों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें मन-प्रेरित कहा जाता है। कौन सा मन? - क्योंकि मन के अनेक गुण और रूप होते हैं। कोई भी मन जो वासना, घृणा और भ्रम से रहित हो: वही कुशल आदतों का कारण है। अब कुशल आदतें कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं? उनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: एक स्थिति है जहाँ एक भिक्षु गुणी होता है, परन्तु गुण से निर्मित नहीं होता।2 वह यथास्थिति में जागरूकता और विवेक की मुक्ति को पहचानता है जहाँ उसकी कुशल आदतें बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं। और कुशल आदतों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? एक स्थिति है जहाँ एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... उन बुरे, अकुशल गुणों के उत्पन्न न होने के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... उन बुरे, अकुशल गुणों के त्याग के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं... अविकसित कुशल गुणों के उद्भव के लिए...(और) विकसित हो चुके कुशल गुणों के विकास और पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास कुशल आदतों के अंत की ओर ले जाता है।

और अकुशल संकल्प क्या हैं? कामुकता, द्वेष और हानि पहुँचाने के संकल्प। इन्हें अकुशल संकल्प कहते हैं। अकुशल संकल्पों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें बोध-जनित कहा जाता है। कौन सा बोध? क्योंकि बोध के अनेक रूप और क्रमपरिवर्तन होते हैं। कोई भी कामुकता-बोध, द्वेष-बोध या हानि पहुँचाने का बोध: वही अकुशल संकल्पों का कारण है। अब अकुशल संकल्प कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं? उनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: वह स्थिति है जहाँ एक भिक्षु, कामुकता से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। यहीं पर अकुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं। और अकुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति है जहाँ एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... ताकि... अकुशल और अनचाहे गुणों को त्यागने के लिए, जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... उन अकुशल गुणों को त्यागने के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं... उन कुशल गुणों को उत्पन्न करने के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... (और) उन कुशल गुणों के विकास और पराकाष्ठा के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं। इस प्रकार का अभ्यास अकुशल संकल्पों के निवारण की ओर ले जाता है।

"और कुशल संकल्प क्या हैं? त्याग (इंद्रिय सुख से मुक्ति), द्वेष रहित रहने और अहिंसा का संकल्प लेना। इन्हें कुशल संकल्प कहते हैं। कुशल संकल्पों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें बोध-प्रेरित कहा जाता है। कौन सा बोध? क्योंकि बोध के अनेक रूप और क्रमपरिवर्तन होते हैं। कोई भी त्याग-बोध, द्वेष रहित बोध या अहिंसा-बोध: यही कुशल संकल्पों का कारण है। अब कुशल संकल्प कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं? इनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: वह स्थिति है जब एक भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। यहीं पर कुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं। और कुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति है जब एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... ताकि... अविकसित, अकुशल गुणों के त्याग के लिए...विकसित, अकुशल गुणों के त्याग के लिए...अविकसित, अविकसित, अकुशल गुणों के उद्भव के लिए...(और) विकसित, विकसित गुणों के पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास कुशल संकल्पों के अंत की ओर ले जाता है।

अब, वह व्यक्ति कौन है जो उन दस गुणों से परिपूर्ण है जिन्हें मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी कहता हूँ? वह व्यक्ति जो प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सही दृष्टिकोण, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, सही ज्ञान और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की सही मुक्ति से परिपूर्ण है। इन दस गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति को मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी कहता हूँ।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर बढ़ई पंचकंगा ने भगवान बुद्ध के शब्दों पर आनंद मनाया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.9 कुलसाकुलुदायि सुत्त(79)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान बुद्ध बांस के जंगल में गिलहरियों के आश्रम में रह रहे थे। उस समय, मोरा आश्रम में स्थित भिक्षुओं के मठ में सकुलुदयी कई भिक्षुओं के साथ रह रहे थे। फिर भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब भगवान बुद्ध के मन में विचार आया, राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है, क्यों न मैं भिक्षुओं के मठ में जाकर सकुलुदयी से मिलूं? तब भगवान बुद्ध मोरा आश्रम में स्थित भिक्षुओं के मठ में गए। उस समय, घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी, घुमंतू तपस्वियों की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे, जो बहुत शोर मचाते हुए राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, लड़ाई-झगड़ों, खाने-पीने की चीजों, वस्त्रों, पलंगों, फूलों, सुगंधों, रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों, राज्यों, स्त्रियों, वीरों, गली के कोने पर गपशप, कुएँ पर गपशप, मरे हुओं के बारे में, संसार और सागर की उत्पत्ति के बारे में, घटी हुई और न घटी हुई बातों के बारे में तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे। घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और सभा को शांत कराया। 'हे सज्जनों, शांत हो जाइए, इतना शोर मत कीजिए। संन्यासी गौतम आ रहे हैं। ये आदरणीय शांत हैं, और शायद इस सभा के शांत होने का फायदा उठाकर पास आने का सोच रहे होंगे।' तब वे घुमंतू तपस्वी शांत हो गए।

तब भगवान बुद्ध भ्रमणरत तपस्वी सकुलुदायी के पास पहुँचे, और सकुलुदायी ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे गौतम, आइए! बहुत समय बाद हे गौतम ने आने का मन बनाया है। हे गौतम, बैठिए, आसन तैयार है।'

भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए, और वह तपस्वी भी एक तरफ झुककर बैठ गया। भगवान बुद्ध ने कहा, 'तुम यहाँ किस विषय पर बात करने बैठे थे और बातचीत का विषय क्या था?'

आदरणीय महोदय, उस विषय को रहने दीजिए जिस पर हम अभी बैठे हैं। भगवान बुद्ध का प्रवचन दुर्लभ है और यह प्रवचन बाद में सुना जा सकता है। आदरणीय महोदय, जब मैं इस सभा में उपस्थित नहीं होता, तो ये लोग तरह-तरह की बचकानी बातें करते हैं। जब मैं उनके पास जाता हूँ, तो वे मेरी ओर देखते हुए बैठ जाते हैं, ताकि वे सुन सकें कि मुझे क्या कहना है। उदयि जो कुछ भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे। जब भगवान बुद्ध आते हैं, तो मैं और यह सभा भगवान बुद्ध के मुख की ओर देखते हैं, भगवान बुद्ध जो कुछ भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे।

तब उदयी, मुझे बताओ कि मुझे तुम्हें क्या सिखाना है।

आदरणीय महोदय, बहुत समय पहले की बात है। मैंने एक संन्यासी से, जो निरंतर ज्ञान और दृष्टि को धारण किए रहते हैं, चलते-फिरते, खड़े होते, लेटे होते या जागते हुए, आदि के बारे में एक प्रश्न पूछा। जब मैंने प्रश्न पूछा, तो उन्होंने मुझसे दूसरा प्रश्न पूछकर विषय बदल दिया और क्रोध, घृणा और नाराजगी प्रकट की। आदरणीय महोदय, तब मुझे यह विचार आया कि यह प्रश्न भगवान बुद्ध से ही पूछा जाना चाहिए, वही इस प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम हैं।

'उदयि, यह कौन संन्यासी है, जो चलते, खड़े, लेटे या जागते हुए भी निरंतर और सतत रूप से स्थापित ज्ञान और दृष्टि को स्वीकार करता है? जब उससे आरंभ के बारे में कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह दूसरा प्रश्न पूछकर विषय बदल देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है?'

आदरणीय महोदय, यह निगंथनातपुत्त है।

उदयी, यह प्रश्न मुझसे ही पूछा गया है, जो एक जन्म, दो जन्म, --- अनेक पूर्व जन्मों को उनके सभी रूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। मैं इस प्रश्न का उत्तर देकर तुम्हारे मन को संतुष्ट कर सकता था। उदयी, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से, मैं प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में प्रकट और लुप्त होते देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार जानता हूँ। यह प्रश्न मुझसे ही पूछा गया है। मैं इस प्रश्न का उत्तर देकर तुम्हारे मन को संतुष्ट कर सकता था। फिर भी उदयी, न तो शुरुआत की बात है और न ही अंत की, मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि जब यह है, तो यह है; जब यह है, तो यह उत्पन्न होता है; जब यह है, तो यह उत्पन्न होता है; जब यह नहीं है, तो यह नहीं है; और जब यह समाप्त होता है, तो यह समाप्त होता है।

आदरणीय गुरुदेव, मैं स्वयं को भी नहीं समझ पाता। मेरे लिए अपने अनेक पूर्व जन्मों को, उनके सभी गुणों और विवरणों सहित, जैसे एक जन्म, दो जन्म, आदि, याद रखना संभव नहीं है, जैसा कि भगवान बुद्ध को है। आदरणीय गुरुदेव, अब तो मुझे मिट्टी का एक छोटा सा जीव भी दिखाई नहीं देता, तो मैं मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से कैसे देख पाऊँगा, जो प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में प्रकट और लुप्त होते हुए देखती है—और प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार कैसे जान पाऊँगा, जैसा कि भगवान बुद्ध जानते हैं। फिर भी भगवान बुद्ध ने कहा, आरंभ और अंत की तो बात ही छोड़िए, मैं उपदेश दूँगा - जब यह है, तब यह है, जब यह उत्पन्न होता है, तब यह उत्पन्न होता है। जब यह नहीं है, तब यह नहीं है, और जब यह है, तब यह है। यह मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता का विषय है, फिर भी मैं इसे नहीं समझ पाता। आदरणीय गुरुदेव, क्या मेरे गुरु को उनके प्रश्न का उत्तर देकर संतुष्ट किया जा सकता है?

'उदयी, तुम्हारे शिक्षक का क्या विचार है?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का मत है कि यह सबसे उत्तम रूप है। 'उदयी, आपके गुरु का मत है कि यह सबसे उत्तम रूप है, यह उत्तम रूप कैसा है?'

आदरणीय महोदय, इस उत्कृष्ट रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट रूप और कोई नहीं है।

'उदयि, यह कैसा रूप है, जिसके आगे कोई दूसरा रूप इतना श्रेष्ठ और उत्तम नहीं है?'

आदरणीय महोदय, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है।

'उदयि, क्या यह लंबाई में विस्तारित है?'

आदरणीय महोदय, क्योंकि इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई रूप नहीं है, इसलिए इसे सर्वोच्च रूप कहा जाता है, और इसे इंगित नहीं किया जा सकता है।

उदयी, यह कुछ इस प्रकार है। एक पुरुष कहता है, "मैं इस राज्य में सबसे सुंदर स्त्री को चाहता और उससे प्रेम करता हूँ।" तब उससे पूछा जाता है, "हे जन, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते हो, क्या वह योद्धा कुल की है, ब्राह्मण कुल की है, गृहस्थ कुल की है या किसी अन्य जाति की है?" पूछे जाने पर वह कहता है, "नहीं।" तब उससे पूछा जाता है, "हे जन, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते और उससे प्रेम करते हो, क्या तुम जानते हो कि वह किस कुल की है? क्या तुम जानते हो कि वह लंबी है, छोटी है या मध्यम? क्या तुम जानते हो कि वह सांवली है, गोरी है या भूरी? क्या तुम जानते हो कि वह किस गाँव, बस्ती या कस्बे में रहती है?" पूछे जाने पर वह कहता है, "नहीं।" तब उससे कहा जाता है, "हे जन, क्या तुम किसी ऐसी स्त्री को चाहते और उससे प्रेम करते हो जिसे तुम नहीं जानते और न ही देखा है?" तब वह कहता है, "हाँ।" उदयी, क्या तुम सोचते हो? क्या यह सब बातें व्यर्थ नहीं लगतीं?

आदरणीय महोदय, जब ऐसा होता है, तो उस व्यक्ति की बातें मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती हैं।

इसी प्रकार, हे आदरणीय, आप कहते हैं, जब उस रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई दूसरा रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है, और आप उस रूप की ओर इशारा नहीं करते।

आदरणीय महोदय, यह उत्तम कुल के लेपिस रत्न के समान है, जिसमें आठ पहलू हैं, जो पूर्ण रूप से परिपूर्ण है और जब इसे नारंगी रंग के कंबल में रखा जाता है, तो यह चमकता है, ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाशमान होता है। मृत्यु के बाद आत्मा का स्वरूप भी ऐसा ही होगा, जो स्वस्थ होगी।

"उदयि, इन दो चीजों के बारे में आपका क्या विचार है? एक तो उत्तम कुल का आठ फलकों वाला, सुगठित और नारंगी रंग के आवरण में सुशोभित नीलम, और दूसरा रात के अंधेरे में चमकते, ऊष्मा उत्सर्जित करते और प्रकाशमान होते हुए अधिक सुंदर रूप धारण करने वाले कीड़े और जुगनू?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से अधिक उत्कृष्ट दृश्य रात के अंधेरे में दिखने वाले कीड़े और जुगनू होंगे।

"उदयि, इन दो में से, रात के अंधेरे के लिए कीड़े और जुगनू, और जलता हुआ तेल का दीपक, चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो रूपों में से, जलता हुआ तेल का दीपक अधिक उत्तम रूप है, जो ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाश प्रदान करता है।

"उदयि, इन दोनों में से, रात के अंधेरे के लिए जला हुआ तेल का दीपक और रात के अंधेरे के लिए आग का एक बड़ा गोला, कौन सा चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश देने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो रूपों में से, अंधकार के लिए अग्नि के विशाल पिंड का रूप अधिक उत्कृष्ट होगा।

"उदयि, इन दोनों में से, अंधकार के लिए अग्नि का विशाल पिंड और रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, तो भोर का तारा, चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाशमान होने में कौन अधिक सुंदर दिखता है?"

हे आदरणीय महोदय, इन सभी दृश्यों में सबसे उत्तम दृश्य रात्रि के अंतिम पहर में, जब आकाश निर्मल हो, भोर का तारा है।

"उदयि, इन दोनों में से, रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, भोर का तारा और आधी रात को, जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा, कौन सा तारा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से, मध्यरात्रि के समय पूर्ण चंद्रमा का दिखना अधिक उत्तम है, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित हो।

"उदयी, इन दोनों में से, मध्यरात्रि को जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा और ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य, कौन सा प्रकाशमान, ऊष्मा उत्सर्जित करने वाला और प्रकाशमान दिखने में अधिक उत्तम है?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य का दृश्य अधिक उत्कृष्ट है।

"उदयी, इन देवताओं में से कई की श्रेष्ठता चंद्रमा और सूर्य की श्रेष्ठता से भी अधिक है; मैं उन्हें जानता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं बता सकता कि किसका रूप दूसरे से अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है। फिर भी, तुम कहते हो कि यह रूप, जो कीड़े और जुगनू के रूप से भी कमतर है, सबसे श्रेष्ठ और उत्तम रूप है। तुम यह भी नहीं बताओगे।"

आदरणीय महोदय, मुझे क्षमा करें, हे दिवंगत, मुझे क्षमा करें!

'उदयी, तुम ऐसा क्यों कहते हो, 'मुझे क्षमा कर दो, आदरणीय महोदय, और मुझे क्षमा कर दो, शुभ यात्रा करने वाले?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का यह मत है: यह सबसे उत्तम रूप है, इससे उत्तम कोई दूसरा रूप नहीं है, और जब मुझसे इस पर प्रश्न पूछे गए, कारण पूछे गए और इस पर चर्चा की गई, तो मैंने पाया कि यह सारहीन, खोखला और त्रुटिपूर्ण है।

हे उदयी, क्या कोई ऐसा संसार है जो केवल सुखों से भरा हो? क्या उस केवल सुखों से भरे संसार को प्राप्त करने का कोई उपाय है?

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का मत है कि एक संसार केवल सुखमय है और उसे प्राप्त करने के लिए कर्मों का एक क्रम निर्धारित है।

हे उदयी, वह कौन सा कर्म मार्ग है जिससे केवल सुखमय संसार की प्राप्ति हो सके?

हे पूज्यवर, एक व्यक्ति जीवन का विनाश करने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; जो कुछ उसे नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; यौन दुराचार का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; झूठ बोलने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; एक निश्चित तपस्या का पालन करके उससे दूर रहता है। यही वह मार्ग है जिससे केवल सुखमय संसार की प्राप्ति होती है।

‘‘ऐसे समय में जब तुम जीवन का विनाश करना छोड़ देते हो और उससे दूर रहते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही अनुभव होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?'

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदायी, ऐसे समय में जब तुम अनचाही चीजों को लेना छोड़ देते हो और उनसे परहेज करते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएं ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों तरह की भावनाएं?

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदायी, ऐसे समय में जब तुम यौन दुराचार से परहेज करते हो और उसे त्याग देते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं या सुखद और अप्रिय दोनों तरह की भावनाएँ?

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

‘उदयि, ऐसे समय में जब तुम झूठ बोलने से परहेज करते हो और इसे त्याग देते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?’

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

‘उदयि, ऐसे समय में, जब तुम किसी विशेष तपस्या का पालन करते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?’

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदयी, क्या तुम सोचते हो कि सुखद और अप्रिय भावनाओं से भरे कर्मों के क्रम का पालन करके क्या तुम केवल सुखद भावनाओं से भरे संसार को प्राप्त कर सकते हो?

आदरणीय महोदय, मुझे क्षमा करें, हे दिवंगत, मुझे क्षमा करें!

'उदयी, तुम ऐसा क्यों कहते हो, 'मुझे क्षमा कर दो, आदरणीय महोदय, और मुझे क्षमा कर दो, शुभ यात्रा करने वाले?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का यह मत है: एक ऐसी विधि है जिसका अनुसरण करने से केवल सुखद भावनाओं से भरी दुनिया का अहसास हो सकता है, और जब मुझसे इस बारे में प्रश्न पूछे गए, कारण पूछे गए और इस पर चर्चा की गई, तो मैंने पाया कि यह विधि सारहीन, खोखली और गलत है।

आदरणीय महोदय, क्या केवल सुखद भावनाओं से भरा कोई संसार है, और क्या उसे साकार करने का कोई उपाय है?

हे उदयी, एक ऐसी दुनिया है जो केवल सुखद भावनाओं से भरी है और उसे साकार करने के लिए कर्मों का एक क्रम है।

आदरणीय महोदय, केवल सुखद भावनाओं से भरे संसार को साकार करने के लिए कौन-कौन से उपाय हैं?

हे उदयी, यहाँ भिक्षु इंद्रिय सुखों और अपगुणों के विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में रहता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके और मन को एक बिंदु पर स्थिर करके, आंतरिक रूप से शांत होकर, वह द्वितीय ध्यान में रहता है। फिर समभाव और वैराग्य के साथ, शरीर से भी प्रसन्नता का अनुभव करते हुए, वह तृतीय ध्यान में रहता है। इस पर वरम्बी कहते हैं, समभाव के साथ प्रसन्नता में रहना। हे उदयी, यही कर्मों का मार्ग है, जिससे केवल सुखद भावों के संसार का अहसास होता है।

आदरणीय महोदय, क्या सुखद भावनाओं की दुनिया को साकार करने का कोई और तरीका नहीं है, क्या यही एकमात्र तरीका है?

हे उदयी, केवल सुखदायक संसार की प्राप्ति के लिए यही एकमात्र उपाय नहीं है। सुखदायक संसार की प्राप्ति के लिए अन्य उपाय भी हैं।

यह सुनकर उदयी के साथ उपस्थित तपस्वियों का समूह शोरगुल करने लगा। उन्होंने कहा, हमें तो बस इतना ही ज्ञान है। तब सकुलुदयी ने समूह को शांत कराया और भगवान बुद्ध से कहा, 'हे पूज्यवर, इस संसार को, जो केवल सुखदायक अनुभूतियों से भरा है, कैसे अनुभव किया जा सकता है?'

हे उदयी, यहाँ वह भिक्षु है जो सुख और दुख को दूर करते हुए, समभाव से ध्यान को शुद्ध करते हुए, सुख और दुख से मुक्त होकर, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर और समभाव से शुद्ध किए हुए ध्यान में चौथे ध्यान में रहता है; जो भी देवता केवल सुखमय जगत में जन्म लेते हैं, उनसे वह बातें करता है और चर्चा करता है। हे उदयी, यही केवल सुखमय जगत का अनुभव है।

आदरणीय महोदय, क्या भिक्षु भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, जिसका उद्देश्य केवल सुखमय संसार की प्राप्ति है?

नहीं, उदयि, मेरे विधान में भिक्षु केवल इस सुखमय संसार की प्राप्ति के लिए पवित्र जीवन नहीं जीते हैं। इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति के लिए भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन जीते हैं।

हे पूज्यवर, इससे बढ़कर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट क्या बात है जिसके कारण भिक्षु भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं?

हे उदयी, यहाँ तथागत इस संसार में जन्म लेते हैं, परिपूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, संसारों के ज्ञाता, जो वश में किए जाने वालों के अतुलनीय प्रवर्तक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार को, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, उस शिक्षा की घोषणा करते हैं जो आरंभ में अच्छी, मध्य में अच्छी और अंत में अच्छी है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। ----पुनः--- उन्होंने पाँच बाधाओं को दूर करके और मन के सूक्ष्म दोषों को कम करके, मन को इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और दोषपूर्ण विचारों से अलग करके प्रथम ध्यान की अवस्था को प्राप्त किया है। हे उदयी, यह उस पूर्व से श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। फिर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके और मन को एक बिंदु पर आंतरिक रूप से शांत करके, द्वितीय ध्यान में स्थिर होते हैं, तृतीय ध्यान में स्थिर होते हैं, चतुर्थ ध्यान में स्थिर होते हैं। उदयि, यह भी पहले वाले से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है, जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं... जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मैं ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों का, ऐसे सुख और दुःख के भावों का अनुभव करते हुए, ऐसे जीवनकाल में था। वहाँ से विलीन होकर वह वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव,

ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए जन्म लेता है, ऐसे जीवनकाल में वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता है। इस प्रकार अनेक पूर्व जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है। उदयि, यह भी उस श्रेष्ठ और उत्तम गुण से अधिक श्रेष्ठ है जिसके कारण मेरे धर्म में भिक्षु पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को अभिलाषित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखता है, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हैं। ये अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हुए, श्रेष्ठों की निंदा करते हुए, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। ये भले प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं करते, और कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वे प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने को देखते हैं। (उदयी)यह भी उस मार्ग से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है जिसके कारण मेरे धर्म में भिक्षु पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्‌भव है, यह अप्रियता का निवारण है, और यही अप्रियता के निवारण का वास्तविक मार्ग है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्‌भव है, यह इच्छाओं का निवारण है, और यही इच्छाओं के निवारण का वास्तविक मार्ग है। जो मन इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, 'होने' की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन व्यतीत हो रहा है, जो करना चाहिए वह हो गया है, वह जानता है, अब और कुछ चाहने को नहीं है। उदयि, यह भी अन्य बातों से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है, जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।

यह सुनकर विचरण करने वाले तपस्वी सकुलुदायी ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। मानो अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से उपदेश की व्याख्या की है। अब मैं भगवान बुद्ध, उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। मुझे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा प्राप्त हो।”

जब यह कहा गया तो घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी के अनुयायियों ने कहा, “हे उदयी, गौतम संत के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन न व्यतीत करें। हे उदयी, आप गुरु हैं, शिष्य न बनें। यह ऐसा है जैसे कोई बर्तन हो और फिर उसमें चम्मच बन जाए। इसलिए हे उदयी, गौतम संत के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन न व्यतीत करें।” इस प्रकार घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी के अनुयायियों ने उन्हें भगवान बुद्ध के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करने से रोक दिया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.10 वेखनास्सा सुत्त(80)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब भ्रमणशील तपस्वी वेखनस्सा भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर गंभीर स्वर में बोले, 'यह सबसे उत्तम दर्शन है।'

'कच्चयन, तुम ऐसा क्यों कहते हो कि यह सबसे उत्तम रूप है? वह सबसे उत्तम रूप क्या है?'

'हे गौतम, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो यही सबसे उत्तम रूप है।'

'कच्चयन, वह कैसा रूप है, जिससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट रूप और कोई नहीं है?'

'हे गौतम, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो यही सबसे उत्तम रूप है।'

'कच्चयन, क्या यह लंबाई में फैला हुआ है? हे गौतम, क्योंकि इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई रूप नहीं है, इसलिए इसे सर्वोच्च रूप कहा जाता है, और इसे इंगित नहीं किया जा सकता है।'

'कच्चायण, बात कुछ इस प्रकार है। एक पुरुष कहता है, मैं इस अवस्था में सबसे सुंदर स्त्री को चाहता और उससे प्रेम करता हूँ। तब उससे पूछा जाता है, हे स्वाम, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते हो, क्या वह योद्धा कुल की है, ब्राह्मण कुल की है, गृहस्थ कुल की है या किसी अन्य जाति की है? पूछे जाने पर वह कहता है, नहीं। फिर उससे पूछा जाता है, हे स्वाम, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते और उससे प्रेम करते हो, क्या तुम जानते हो कि वह किस कुल की है? क्या तुम जानते हो कि वह लंबी है, छोटी है या मध्यम? क्या तुम जानते हो कि वह सांवली है, गोरी है या भूरी? क्या तुम जानते हो कि वह किस गाँव, बस्ती या कस्बे में रहती है? पूछे जाने पर वह कहता है, नहीं। तब उससे कहा जाता है, हे स्वाम, क्या तुम किसी ऐसी स्त्री को चाहते और उससे प्रेम करते हो जिसे तुम नहीं जानते और न ही देखा है? तब वह कहता है, हाँ। 'क्या सोचते हो कच्चायण? क्या यह सब बातें व्यर्थ नहीं लगतीं?'

'हे गौतम, जब ऐसा है तो उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण साबित होती हैं।'

'इसी प्रकार, हे गौतम, कच्चायना, आप कहते हैं, जब उस रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई दूसरा रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है, और आप उस रूप की ओर इशारा नहीं करते।'

हे गौतम, यह उत्तम जन्म के लीपिस रत्न के समान है, जिसमें आठ पहलू हैं, जो पूर्ण रूप से परिपूर्ण है और जब इसे नारंगी रंग के कंबल में रखा जाता है, तो यह चमकता है, ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाशमान होता है। मृत्यु के बाद आत्मा का स्वरूप ऐसा ही होगा और वह स्वस्थ होगी।

'कच्चयन, इन दो में से आपका क्या विचार है? एक तो उत्तम कुल का आठ फलकों वाला, सुगठित और नारंगी रंग के आवरण में सुशोभित नीलम, और दूसरा रात के अंधेरे में चमकते, ऊष्मा उत्सर्जित करते और प्रकाशमान होते हुए अधिक उत्कृष्ट रूप धारण करने वाले कीड़े और जुगनू?'

'हे गौतम, इन दोनों रूपों में से अधिक उत्तम रूप रात्रि के अंधकार में दिखाई देने वाले कीड़े और जुगनू का है।'

'कच्चयन, इन दो चीजों में से, रात के अंधेरे में उड़ने वाले कीड़े और जुगनू और जलता हुआ तेल का दीपक, कौन चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, जलते हुए तेल के दीपक वाला रूप अधिक उत्तम है।'

'कच्चयन, इन दोनों में से, रात के अंधेरे के लिए जलता हुआ तेल का दीपक और रात के अंधेरे के लिए आग का एक बड़ा गोला, कौन सा प्रकाशमान, ऊष्मा उत्सर्जित करने वाला और रोशन करने वाला अधिक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, अंधकार के लिए अग्नि के विशाल पिंड के रूप में प्रकट होना अधिक उत्कृष्ट रूप होगा।'

'कच्चयन, इन दोनों में से, अंधकार के लिए अग्नि का विशाल पिंड और रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, तो भोर का तारा, चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाशमान होने में अधिक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है?'

हे गौतम, इन सभी दृश्यों में से सबसे उत्तम दृश्य रात्रि के अंतिम पहर में, जब आकाश निर्मल हो, भोर का तारा है।

'कच्चयन, इन दोनों में से, रात के अंतिम पहर में दिखने वाला भोर का तारा, जब आकाश साफ होता है, और आधी रात को दिखने वाला पूर्णिमा का चंद्रमा, जब आकाश बादलों से रहित और साफ होता है, कौन सा तारा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, आधी रात को जब आकाश साफ और बादलों से रहित हो, तब पूर्णिमा का चांद दिखना अधिक उत्तम होगा?'

'कच्चयन, इन दोनों में से, मध्यरात्रि को जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा और ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य, इनमें से कौन सा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य का रूप अधिक उत्तम है।'

'कच्चयन, इन देवताओं में से कई की श्रेष्ठता चंद्रमा और सूर्य की श्रेष्ठता से भी अधिक है; मैं उन्हें जानता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं बता सकता कि किसका रूप दूसरे से अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है। फिर भी, आप कहते हैं कि यह रूप, जो कीड़ों और जुगनुओं के रूप से भी कमतर है, सबसे श्रेष्ठ और उत्तम रूप है। आप यह भी नहीं बताते।'

कच्चयन, इंद्रिय सुख के पाँच प्रकार हैं। वे पाँच क्या हैं? मनभावन रूप जो आँखों से दिखाई देते हैं और स्नेह एवं कामुक इच्छाओं को जगाते हैं; मनभावन ध्वनियाँ; मनभावन गंध; मनभावन स्वाद; मनभावन स्पर्श जो शरीर से दिखाई देते हैं और स्नेह एवं कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। कच्चयन, ये पाँच प्रकार हैं इंद्रिय सुख के, जिनके कारण सुख और आनंद उत्पन्न होता है। इस प्रकार इंद्रियों से ही इंद्रिय सुख उत्पन्न होता है, और इंद्रिय सुखों में सर्वोच्च इंद्रिय सुख की घोषणा की जाती है। [1]

यह सुनकर भ्रमणशील तपस्वी वेखनस्सा ने भगवान बुद्ध से कहा, "सचमुच गौतम बुद्ध के वचन अद्भुत हैं। इंद्रियों में से इंद्रिय सुखों में सबसे बड़ा सुख मैंने बताया है।"

'कच्चयन, तुम जो दूसरे धर्म, दूसरे प्रेम, दूसरे बंधन के अनुयायी हो, प्रशिक्षण के बिना इंद्रियों, इंद्रिय सुखों और उनमें से सर्वोच्च इंद्रिय सुख को नहीं जान सकते। कच्चयन, वे सिद्ध भिक्षु जिन्होंने इच्छाओं का नाश कर पवित्र जीवन व्यतीत किया, उचित कर्म किए, भार को त्याग दिया, सर्वोच्च पुण्य प्राप्त किया, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया और उचित ज्ञान से मुक्त होकर इंद्रियों, इंद्रिय सुखों और सर्वोच्च इंद्रिय सुख को जान लेते हैं।'

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी वेखनस्सा क्रोधित और असंतुष्ट हो गए और भगवान बुद्ध को शाप देते हुए बोले, 'यह तो गौतम संन्यासी ही हैं जो बुरे शब्द बोलते हैं। इस प्रकार कुछ संन्यासी और ब्राह्मण, जो न तो शुरुआत जानते हैं और न ही अंत देखते हैं, जन्म को निष्फल मानते हैं। पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। उनके ये शब्द व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण हैं।'

'हे कच्चायन, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो न तो आदि जानते हैं और न ही अंत देखते हैं, जन्म को निष्फल मानते हैं, पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, जो करना चाहिए वह कर लेते हैं, और कुछ भी चाहने की इच्छा नहीं रहती। उन्हें उचित रूप से दोषी ठहराया जाना चाहिए। फिर भी कच्चायन, आदि और अंत को छोड़ दो। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आए, जो धूर्त और कपटी न हो, बल्कि सीधा-सादा हो, मैं उसे उपदेश और सलाह दूंगा। यदि वह बताए गए मार्ग का अनुसरण करेगा, तो शीघ्र ही वह स्वयं सही ज्ञान प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार वह अज्ञान के इस बंधन से सही मायने में मुक्त हो जाएगा। कच्चायन, एक छोटे बच्चे की तरह जिसके हाथों, पैरों और गर्दन में डोरियाँ बंधी होती हैं और जब वह बड़ा हो जाता है और उसकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है तो वे बंधन टूट जाते हैं और वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। मैं उन बंधनों से मुक्त हूँ। उसी प्रकार कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आए, जो धूर्त और कपटी न हो, बल्कि सीधा-सादा हो, मैं उसे उपदेश और सलाह दूंगा, और यदि वह बताए गए मार्ग का अनुसरण करेगा, तो शीघ्र ही वह स्वयं सही ज्ञान प्राप्त कर लेगा।' इस प्रकार वह अज्ञान के इस बंधन से उचित रूप से मुक्त हो जाएगा।

यह सुनकर विचरण करने वाले तपस्वी वेखनस्सा ने कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दिया गया हो। जैसे दृष्टिहीन लोगों को अंधकार में आकृतियाँ देखने के लिए तेल का दीपक जला दिया गया हो। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से लेकर अपनी मृत्यु तक मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने शरण ली है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.1 घटिकारा सुत्त(81)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसल देश में भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भ्रमण कर रहे थे। एक विशेष क्षेत्र में पहुँचकर भगवान बुद्ध मार्ग से हटकर मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद के मन में यह प्रश्न उठा कि भगवान बुद्ध बिना कारण मुस्कुराए क्यों मुस्कुराए? तब पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र को एक कंधे पर संवारते हुए भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुराए?' भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, 'आनंद, अतीत में इस क्षेत्र में वेभलिंग नामक एक प्रमुख गाँव था। यह बहुत समृद्ध और घनी आबादी वाला था। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कश्यप का निवास इसी गाँव में था। आनंद, पूर्ण ज्ञान प्राप्त कश्यप यहाँ बैठकर भिक्षुओं के समुदाय को उपदेश देते थे।'

आदरणीय आनंद ने वस्त्र को चार भागों में मोड़कर वहाँ रखते हुए कहा, "हे आदरणीय महोदय, आप यहाँ बैठिए, ताकि दो पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति इसका सेवन कर सकें।" भगवान बुद्ध उस पर बैठ गए और आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "इस प्रमुख गाँव वेभलिंग में घटिकारा नामक एक कुम्हार था, जो भगवान बुद्ध का प्रमुख समर्थक था, और उसका एक शिष्य था, ज्योतिपाला, जो एक प्यारा युवक था।" तब कुम्हार घटिकारा ने युवक ज्योतिपाला से कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो हम पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें। ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तियों के दर्शन करना अच्छा होता है।" यह सुनकर युवक ज्योतिपाला ने कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के सिर मुंडवाने से क्या लाभ?" कुम्हार घटिकारा ने दूसरी बार कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो हम पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें।" ऐसे प्रबुद्धों को देखकर अच्छा लगता है। कुम्हार घटिकारा ने तीसरी बार कहा, "मित्र ज्योतिपाल, चलो हम परिपूर्ण और सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें।" ऐसे प्रबुद्धों को देखकर अच्छा लगता है... युवक ज्योतिपाला ने तीसरी बार कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडेले देखने से क्या लाभ है?"

तब मित्र ज्योतिपाला, साबुन का पाउडर और ब्रश लो और चलो नदी पर स्नान करने चलते हैं। ज्योतिपाला मान गया और वे नदी पर स्नान करने चले गए। नदी पर भी कुम्हार घटिकारा ने युवक से कहा, "हे मित्र ज्योतिपाला, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप का मठ पास ही है। चलो, उनके दर्शन करने चलते हैं, ऐसे प्रबुद्धों के दर्शन करना अच्छा होता है।" यह सुनकर युवक ने फिर कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडे हुए सिर देखने से क्या लाभ?" आनंद, युवक ज्योतिपाला ने यही बात दूसरी और तीसरी बार दोहराई। तब कुम्हार घटिकारा ने युवक ज्योतिपाला की कमरबंद पकड़ ली और फिर कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलते हैं। ऐसे प्रबुद्धों के दर्शन करना अच्छा होता है।" युवक ने अपना हाथ छुड़ा लिया और कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडे हुए सिर देखने से क्या लाभ।" तब कुम्हार घटिकारा ने उस युवक के अच्छी तरह से धुले हुए बालों को पकड़कर कहा, "हे मित्र ज्योतिपाल, सिद्ध और सच्चे ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप का मठ पास ही है। चलो, हम उनसे मिलने चलें। ऐसे ज्ञानी पुरुषों के दर्शन करना अच्छा होता है।" आनंद, तब युवक ज्योतिपाल के मन में यह विचार आया, "यह आश्चर्य की बात है कि कुम्हार घटिकारा मेरे जैसे उच्च कुल के व्यक्ति के धुले हुए बालों को छूने के बारे में कैसे सोच सकता है? क्या वह यह नहीं सोचता कि बालों को छूना नहीं चाहिए?" तब उसने कहा, "तुम्हारी यही इच्छा है।" "हे मित्र ज्योतिपाल, तुम्हारी भी यही इच्छा है! इन सिद्ध और सच्चे ज्ञानी पुरुषों के दर्शन करना अच्छा है।"

मित्र घटिकारा, अपनी पकड़ ढीली करो और हमें जाने दो। तब आनंद, कुम्हार घटिकाना और युवक ज्योतिपाल पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के मठ में पहुँचे। कुम्हार घटिकारा ने भगवान का प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, युवक ज्योतिपाल ने पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। कुम्हार घटिकारा ने पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप से कहा, 'आदरणीय महोदय, यह मेरा प्रिय मित्र और सहायक ज्योतिपाल है, इसे शिक्षा दीजिए।' पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप ने ज्योतिपाल और कुम्हार घटिकारा को सलाह दी, उपदेश दिया, प्रेरित किया और उनके हृदयों को हल्का किया। तब वे दोनों प्रसन्न होकर अपनी सीटों से उठे, प्रणाम किया, भगवान की परिक्रमा की और चले गए।

तब युवक ज्योतिपाला ने कुम्हार घटिकारा से कहा, 'मित्र घटिकारा, यह उपदेश सुनकर तुम गृहस्थी छोड़कर संन्यासी क्यों नहीं बन जाते?'

'मित्र ज्योतिपाला, क्या तुम नहीं जानते कि मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता हूँ, जो अंधे और दुर्बल हैं?'

'तो मित्र घटिकारा, मैं गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाऊंगा।'

जोतिपाला नाम का युवक और कुम्हार घटिकारा, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब कुम्हार घटिकारा ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप से कहा, “आदरणीय महोदय, यह मेरा प्रिय मित्र और सहायक जोतिपाला है, कृपया इसे दीक्षा प्रदान करें।” जोतिपाला ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप से दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की। जोतिपाला को दीक्षा प्रदान करने के दो सप्ताह बाद, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप आनंद, बनारस की यात्रा पर निकल पड़े और धीरे-धीरे बनारस पहुँच गए।

फिर, परम ज्ञानी भगवान कश्यप बनारस के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में निवास करते थे। बनारस के राजा किकी कासिराजा ने सुना कि परम ज्ञानी भगवान कश्यप बनारस आ गए हैं। उन्होंने अपने लिए अच्छे वाहन की व्यवस्था की और राजसी वैभव के साथ उनसे मिलने आए। जहाँ तक वाहन जा सकता था, पैदल चलकर वे परम ज्ञानी भगवान कश्यप के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान कश्यप को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान कश्यप ने उन्हें उपदेश दिया, मार्गदर्शन किया और उनके हृदय को प्रसन्न किया। तब प्रसन्न और प्रसन्न राजा ने परम ज्ञानी भगवान कश्यप को भिक्षुओं के समुदाय के साथ अगले दिन के भोज के लिए आमंत्रित किया। पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कस्सपा ने मौन ही निमंत्रण स्वीकार कर लिया। तब राजा किकी कासिराजा को जब पता चला कि भगवान कस्सपा ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठकर भगवान कस्सपा की पूजा और परिक्रमा करके चले गए। राजा किकी कासिराजा ने अपने महल में विभिन्न पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए, जिनमें हल्के पीले रंग के, गहरे रंग के बीजों से युक्त उत्तम चावल भी शामिल थे। उन्होंने भगवान कस्सपा को सूचित किया: "हे पूज्यवर, भोजन तैयार है, और भोजन का समय हो गया है।"

तब आनंद, भगवान कश्यप ने सुबह वस्त्र धारण करके, कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ राजा किकी कासिराजा के महल में पहुँचकर वहाँ के आसनों पर विराजमान हुए। राजा ने अपने हाथों से पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप और भिक्षुओं के समुदाय को भोजन परोसा और उन्हें तृप्त किया। भोजन समाप्त होने और कुंड को रखने के बाद, राजा किकी कासिराजा ने एक नीचा आसन ग्रहण किया और भगवान से कहा, “आदरणीय महोदय, कृपया भगवान बनारस में वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दें। मैं इस प्रकार भगवान और समुदाय की सेवा करूँगा।” पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप ने कहा, “मैंने वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दे दी है।” राजा किकी कासिराजा ने तीसरी बार तक भगवान कश्यप से विनती की, तब भी उन्होंने कहा, “मैंने वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दे दी है।” तब राजा किकी कासिराजा को यह सोचकर खेद और नाराजगी हुई कि भगवान कस्सपा, जो पूर्णतः ज्ञानी हैं, उनका निमंत्रण स्वीकार नहीं करते। उन्होंने भगवान कस्सपा से पूछा, “हे पूज्यवर, क्या कोई और आकर्षक समर्थक है?” कस्सपा ने उत्तर दिया, “महाराज, मुख्य गाँव वेभलिंग में घटिकारा नाम का एक कुम्हार है, वही मेरा मुख्य समर्थक है।” हे महाराज, आपके मन में यह परिवर्तन और असंतोष है कि भगवान कश्यप ने बनारस में वर्षा ऋतु बिताने के मेरे निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया। कुम्हार घटिकारा के लिए ऐसा कुछ नहीं होता, न ही कभी होगा। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ने ज्ञान, शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण ली है। वह जीवन को नष्ट करने से, बिना दी हुई वस्तु लेने से, कामुकता में दुराचार से, झूठ बोलने से और मादक पेय पदार्थों से दूर रहता है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा को ज्ञान, शिक्षा और भिक्षु समुदाय में अटूट विश्वास है। वह श्रेष्ठों के गुणों से परिपूर्ण है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ने अप्रियता, अप्रियता के उत्पन्न होने, अप्रियता के निवारण और निवारण के मार्ग के बारे में सभी शंकाओं का समाधान कर लिया है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा सप्ताह में एक बार भोजन करता है। हे महान राजा, घटिकारा एक गुणी और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति है। उसने सोना-रत्न, यहाँ तक कि धन-चाँद भी त्याग दिया है। वह न तो गदा से और न ही अपने हाथों से ज़मीन जोतता है। वह चूहों, गिलहरियों और कुत्तों को मित्रतापूर्वक एक डिब्बे में रखता है और उसमें चावल, हरी मूंग या चने के बचे हुए दाने डालकर कहता है, "जो चाहो ले जाओ।" हे महान राजा, घटिकारा कुम्हार अपने अंधे और क्षीण माता-पिता का सहारा है। हे महान राजा, घटिकारा ने इंद्रिय जगत के पाँचों बंधनों को तोड़ दिया है; वह स्वतः ही जन्म लेता है, उस संसार से विलीन नहीं होता और उसी जन्म में विलीन हो जाता है।

महाराज, एक समय मैं वेभलिंगा नामक प्रमुख गाँव में रहता था। सुबह मैंने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर कुम्हार घटिकारा के माता-पिता के पास गया और उनसे कहा, “यह भला कहाँ चला गया?” “हे महाराज, आपका सहायक बाहर गया है। कृपया बर्तन से पके हुए चावल, सूप और करी लें और भोजन करें।” “तो महाराज, मैंने बर्तन से पके हुए चावल, सूप और करी लिए, भोजन किया और चला गया।” तब, महाराज, कुम्हार घटिकारा अपने माता-पिता के पास जाकर पूछता, “कौन आया, बर्तन से चावल, सूप और करी लिए, भोजन किया, आसन से उठा और चला गया?” “प्रिय, यह भगवान कस्सपा हैं, जो पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, जिन्होंने बर्तन से चावल, सूप और करी लिए और भोजन करके आसन से उठकर चले गए।” तब कुम्हार घटिकारा के मन में यह विचार आया कि यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है। यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता के लिए यह एक सप्ताह तक ही रहा।

महाराज, एक समय मैं वेभलिंगा नामक प्रमुख गाँव में रहता था। सुबह मैंने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर कुम्हार घटिकारा के माता-पिता के पास गया और उनसे कहा, “यह भला कहाँ चला गया?” “हे महाराज, आपका सहायक बाहर गया है। कृपया कड़ाही से रोटी, सूप और करी लें और भोजन करें।” “तो महाराज, मैंने कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, भोजन किया और चला गया।” तब,

महाराज, कुम्हार घटिकारा अपने माता-पिता के पास जाकर पूछता, “कौन आया, कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, उन्हें खाया, आसन से उठा और चला गया?” “प्रिय, यह पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कस्सपा हैं, जिन्होंने कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, उन्हें खाया और आसन से उठकर चले गए।” तब कुम्हार घटिकारा के मन में यह विचार आया कि यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि पूर्णतः ज्ञानी भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है। यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता के लिए यह एक सप्ताह तक ही रहा।

हे महाराज, एक समय मैं प्रमुख गाँव वेभलिंग में रहता था। उस समय मेरे सुगंधित कक्ष से पानी टपक रहा था। तब मैंने भिक्षुओं से कहा, “हे भिक्षुओं, क्या तुम कुम्हार घटिकारा के घर की घास जानते हो? जाओ! उसे ले आओ।” हे महाराज, यह सुनकर भिक्षुओं ने कहा, “हे पूज्यवर, कुम्हार घटिकारा के घर में घास नहीं है। वहाँ तो घास की छप्पर वाली छत है।” तब मैंने कहा, “हे भिक्षुओं, जाओ और कुम्हार घटिकारा के घर की छप्पर वाली छत से घास ले आओ।” तब भिक्षुओं ने कुम्हार घटिकारा के घर की छप्पर वाली छत से घास उतार ली। तब हे महाराज, कुम्हार घटिकारा के माता-पिता ने कहा, “छत से घास कौन उतारता है?” मैंने कहा, “बहन, ये भिक्षु हैं। भगवान घटिकारा के सुगंधित कक्ष से पानी टपक रहा है।” “ले आओ!” 'हे स्वामी, तुम अच्छे शब्द बोलते हो।' तब, कुम्हार घटिकारा घर लौटकर अपने माता-पिता के पास गया और पूछा, 'छत से घास किसने हटाई?' 'हे प्रिय, भिक्षुओं ने हटाई है। पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप के सुगंधित कक्ष की छत से पानी टपक रहा है।' तब कुम्हार घटिकारा को यह बात समझ में आई। 'यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है।' यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता को एक सप्ताह तक ही। फिर वह घर तीन महीने तक बिना छत के रहा और बारिश नहीं हुई। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ऐसा ही है।'

'आदरणीय महोदय, घटिकार कुम्हार के लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु को इस प्रकार व्यतीत करते हैं।'

तब आनंद, राजा किकी कासिराजा ने कुम्हार घटिकारा के पास लगभग पाँच सौ बैलगाड़ी हल्के पीले रंग के उत्तम चावल और उतनी ही मात्रा में आवश्यक सामग्री भेजी। शाही दूत कुम्हार घटिकारा के पास पहुँचे और कहा, "महोदय, राजा किकी कासिराजा ने ये पाँच सौ बैलगाड़ी हल्के पीले रंग के उत्तम चावल और उतनी ही मात्रा में आवश्यक सामग्री आपको भेजी है। कृपया इन्हें स्वीकार करें। राजा के पास बहुत काम है, यह शायद राजा की ओर से मेरे लिए ही है।"

आनंद, तुम्हारे मन में यह विचार आ सकता है, 'क्या उस समय इस युवक ज्योतिपाल ने पूर्णता प्राप्त कर ली थी?' 'ऐसा नहीं सोचना चाहिए। उस समय मैं ही ज्योतिपाल था।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.2रथपाल सुत्त(82)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध, भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कुरुओं के बीच भ्रमण करते हुए, कुरुओं के एक नगर थुलकोत्थिता पहुंचे थे। थुल्लकोत्थिता के ब्राह्मणों और गृहस्थों ने सुना, “शाक्यों वंश के पुत्र, ध्यानमग्न गौतम, शाक्यों वंश से निकलकर केशपुत्त पहुंचे हैं। और उस गुरु गौतम के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली है: ‘वे वास्तव में एक धन्य, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुगठित, ब्रह्मांड के ज्ञाता, वश में होने के लिए तैयार व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मानव और दिव्य प्राणियों के गुरु, जागृत और धन्य हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से इस संसार को, इसके देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसकी पीढ़ियों को, उनके ध्यानमग्न और पुरोहितों सहित, उनके शासकों और आम लोगों सहित, ज्ञात कराया है। उन्होंने धर्म की व्याख्या आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय ढंग से की है; उन्होंने पवित्र जीवन को उसके विशिष्ट और सार दोनों में, पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध रूप से समझाया है। ऐसे योग्य व्यक्ति को देखना सुखद है। एक।'"

अत: थुल्कोत्थिता के ब्राह्मण और गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उनमें से कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ

गए। कुछ ने अपने हृदय पर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। कुछ ने अपना नाम और कुल बताया। कुछ मौन बैठे रहे। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने धर्म पर प्रवचन देकर उन्हें उपदेश दिया, प्रेरित किया, उनका उत्साह बढ़ाया और उन्हें प्रोत्साहित किया।

उस समय थुल्लकोत्थिता के प्रमुख कुल के पुत्र रत्थपाला नामक एक कुलवासी उस सभा में बैठे थे। उनके मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करूँ तो क्या होगा?"

तब थुल्कोत्थिता के ब्राह्मण और गृहस्थ, भगवान बुद्ध के धर्म प्रवचन से शिक्षित, प्रेरित और उत्साहित होकर, उनके वचनों से प्रसन्न और आनंदित हुए। वे अपने स्थानों से उठकर, उन्हें प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

तब, थुल्कोत्थिता के ब्राह्मणों और गृहस्थों के चले जाने के कुछ ही समय बाद, रत्थपाल भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और उनसे कहा, "भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, गृहस्थ जीवन में पूर्णतः सिद्ध, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। हे भगवान, मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करना चाहता हूँ। क्या मुझे भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह दीक्षा प्राप्त होगी? क्या मुझे प्रवेश मिलेगा?"

"क्या आपको अपने माता-पिता की अनुमति मिल गई है, रत्थपाला, गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने के लिए?"

"नहीं, भगवान, मैंने नहीं किया है।"

"रत्थपाल, तथागत किसी को भी उसके माता-पिता की अनुमति के बिना प्रस्थान करने की अनुमति नहीं देते हैं।"

"हे भगवान, मैं वह सब करूंगा जो करना आवश्यक है ताकि मेरे माता-पिता मुझे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दे दें।"

तब रत्थपाल अपने आसन से उठकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हुए और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए अपने माता-पिता के पास गए और बोले, "माँ, पिताजी, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाना चाहता हूँ। कृपया मुझे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दें।"

यह सुनकर रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "प्रिय रत्थपाल, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते।1 तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

दूसरी बार... तीसरी बार, रत्थपाल ने अपने माता-पिता से कहा, "माँ, पिताजी, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से विमुख होना चाहता हूँ। कृपया मुझे गृहस्थ जीवन से विमुख होने की अनुमति दें।"

तीसरी बार रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "प्रिय रत्थपाल, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते।2 तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तब रत्थपाल को अपने माता-पिता से गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं मिली, इसलिए वे वहीं नंगी ज़मीन पर लेट गए और बोले, "यहीं मेरी मृत्यु होगी या मेरा संन्यास।" और वे एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन, छह दिन तक बिना भोजन के रहे। वे सात दिन तक बिना भोजन के रहे।3

उसके माता-पिता ने उससे कहा, "रत्थपाल, प्रिय पुत्र, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। उठो, प्रिय पुत्र। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते। तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

यह सुनकर रत्थपाल चुप रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "रत्थपाल, प्रिय पुत्र, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्रिय और आकर्षक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। उठो, प्रिय पुत्र। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते। तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तीसरी बार भी रत्थपाला चुप रहे।

तब रत्थपाल के माता-पिता उसके मित्रों के पास गए और उनसे कहा, "प्रियजनों, रत्थपाल नंगे फर्श पर लेट गया है और कह रहा है, 'यहीं मेरी मृत्यु होगी या मेरा संन्यास।' कृपया, पुत्रजनों, रत्थपाल के पास जाओ और उससे कहो, 'मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता तुम्हें जीवित रहते हुए गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?'"4

तो रत्थपाल के मित्र उनके पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे जीवित रहते तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दी?"

यह सुनकर रत्थपाल चुप रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, उनके मित्रों ने उनसे कहा, "मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता तुम्हें जीवित रहते हुए गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तीसरी बार भी रत्थपाला चुप रहे।

तो रत्थपाल के मित्र उनके माता-पिता के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "माँ, पिताजी, रत्थपाल नंगी ज़मीन पर लेटा हुआ है और कह रहा है, 'यहाँ मेरी मृत्यु होगी या मेरा प्रस्थान। यदि आप उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देंगे, तो यहीं उसकी मृत्यु हो जाएगी। लेकिन यदि आप उसे अनुमति दे देंगे... तो प्रस्थान करने के बाद भी आप उसे देखेंगे। और यदि उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने में आनंद नहीं आएगा, तो वह और कहाँ जाएगा? वह यहीं लौट आएगा। इसलिए कृपया उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दें।"

"तो, प्रियजनों, हम रत्थपाल को गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति देते हैं। लेकिन जब वह चले जाएं, तो उन्हें अपने माता-पिता से अवश्य मिलना चाहिए।"

तब रत्थपाल के मित्र उसके पास गए और बोले, "उठो, रत्थपाल। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दे दी है। लेकिन जब तुम जाओगे, तो तुम्हें अपने माता-पिता से अवश्य मिलना होगा।"

तब रत्थपाल उठे और शक्ति प्राप्त करके भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, मुझे अपने माता-पिता से गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति मिल गई है। भगवान बुद्ध मुझे यह अनुमति प्रदान करें!"

तब कुल के रत्थपाला ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में दीक्षा प्राप्त की और उन्हें प्रवेश मिल गया। प्रवेश के कुछ ही समय बाद, डेढ़ महीने बाद, भगवान बुद्ध थुल्लाकोत्थिता में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद सावत्थी की ओर प्रस्थान कर गए। विभिन्न चरणों में भटकते हुए अंततः वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ वे सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में रहने लगे।

पूज्य रत्थपाल, जो एकांत में रहते थे, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी थे, उन्होंने अल्पकाल में ही पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और उसमें स्थिर रहे। इसी लक्ष्य के लिए कुलवासी जन्म-मृत्यु का मार्ग अपनाते हैं, और उन्होंने स्वयं इस संसार में इसे अनुभव कर लिया था। उन्होंने जाना: "जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं करना है।" इस प्रकार पूज्य रत्थपाल भी अरहंतों में से एक बन गए।

तब पूज्य रत्थपाल भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, मैं अपने माता-पिता से मिलने जाना चाहता हूँ, यदि आप मुझे अनुमति दें।" तब भगवान बुद्ध ने पूज्य रत्थपाल की चेतना को अपने भीतर समाहित करते हुए विचार किया और समझा, "पूज्य रत्थपाल साधना छोड़कर निम्न लोक में लौटने में असमर्थ हैं।" अतः उन्होंने उनसे कहा, "रत्थपाल, अब समय आ गया है कि आप अपनी इच्छानुसार कार्य करें।"

तब पूज्य रत्थपाल अपने आसन से उठकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हुए और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, प्रस्थान कर गए। अपना आवास व्यवस्थित करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वे थुल्लकोत्थिता की ओर विचरण करने लगे। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे अंततः थुल्लकोत्थिता पहुँचे। वहाँ वे राजा कोरव्य के मिगाचिरा उद्यान में ठहरे। फिर, सुबह सवेरे, अपने अंतर्वस्त्र को धारण करके और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वे भिक्षा मांगने के लिए थुल्लकोत्थिता गए। थुल्लकोत्थिता में घर-घर भिक्षा मांगते हुए वे अपने पिता के घर पहुँचे।

उस समय पूज्य रत्थपाल के पिता मध्य द्वार के बरामदे में अपने बाल संवार रहे थे। उन्होंने दूर से पूज्य रत्थपाल को आते देखा और उन्हें देखकर कहा, "इन्हीं मुंडे सिर वाले ध्यानियों ने हमारे इकलौते प्यारे और मनमोहक पुत्र को यहाँ से विदा किया है!" इस प्रकार पूज्य रत्थपाल को अपने पिता के घर में उपहार या विनम्रतापूर्वक मना करने के बजाय केवल अपमान ही मिला।

तभी उनके एक रिश्तेदार की दासी बासी दलिया फेंकने वाली थी। तब पूज्य रत्थपाल ने उससे कहा, "बहन, अगर इसे फेंकना ही है तो मेरे कटोरे में डाल दो।" जब वह बासी दलिया कटोरे में डाल रही थी, तभी उसने उनके हाथ, पैर और आवाज़ पहचान ली। इसलिए वह उनकी माँ के पास गई और बोली, "हे स्वामी, आपको यह जानकर प्रसन्नता हो कि स्वामी का पुत्र रत्थपाल आ गया है।"

"अरे, अगर तुम्हारी बात सच है, तो मैं तुम्हें तुम्हारी आजादी देता हूँ!"

तब पूज्य रत्थपाला की माता उनके पिता के पास गईं और बोलीं, "हे गृहस्थ, आपको यह जानकर प्रसन्नता हो कि उनके कुल का पुरुष रत्थपाला आ गया है।"

उस समय पूज्य रत्थपाल एक दीवार के सहारे बैठे बासी दलिया खा रहे थे। उनके पिता उनके पास गए और बोले, "रत्थपाल, मेरे प्यारे, क्या — क्या? तुम बासी दलिया खा रहे हो? क्या तुम्हारे पास अपना घर नहीं है जहाँ तुम जा सको?"

"हे गृहस्थ, हमारा घर कैसे हो सकता है? हम गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में आ गए हैं। हम तपस्वी हैं, हे गृहस्थ। हम आपके घर आए थे, लेकिन उपहार या विनम्रतापूर्वक मना करने के बजाय हमें केवल गालियां ही मिलीं।"

"आओ, प्रिय रत्थपाला। चलो घर चलते हैं।"

"बस करो, गृहस्वामी। आज का मेरा भोजन समाप्त हो गया है।"

"तो फिर, प्रिय रत्थपाला, कल के भोजन के लिए मान जाइए।"

तो वेन. रथपाल ने मौन रहकर सहमति व्यक्त की।

आदरणीय रत्थपाल की सहमति समझकर, उनके पिता उनके घर गए और फर्श पर ताजा गोबर बिछाकर सोने-चांदी के दो बड़े ढेर बनवाए - एक सोने का, एक चांदी का - इतने बड़े कि पास खड़ा व्यक्ति दूर खड़े व्यक्ति को नहीं देख सकता था, ठीक वैसे ही जैसे दूर खड़ा व्यक्ति पास खड़े व्यक्ति को नहीं देख सकता था। उन्हें पर्दों के पीछे छिपाकर, उन्होंने उनके बीच एक आसन स्थापित किया, जिसके चारों ओर एक पर्दा लगा था।6 आदरणीय रत्थपाल की पूर्व पत्नियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आओ, बहुओं। उन आभूषणों से सुशोभित हो जाओ जो हमारे पुत्र रत्थपाल को प्रिय और आकर्षक लगते थे।"

फिर, जैसे ही रात समाप्त होने लगी, पूज्य रत्थपाल के पिता ने अपने घर में स्वादिष्ट मुख्य और गैर-मुख्य भोजन तैयार करवाया और पूज्य रत्थपाल को समय की घोषणा करते हुए कहा: "प्रिय रत्थपाल, समय हो गया है। भोजन तैयार है।"

फिर, सुबह सवेरे—अपने अंतर्वस्त्र पहनकर और कुंड व वस्त्र लेकर—पूजनीय रत्थपाल अपने पिता के घर गए और वहाँ पहुँचकर तैयार आसन पर बैठ गए। तब उनके पिता ने सोने-चाँदी का ढेर दिखाते हुए उनसे कहा, “हे मेरे प्रिय रत्थपाल, यह तुम्हारी माता की विरासत है। बाकी तुम्हारे पिता की है; और बाकी तुम्हारे दादा की—[इतना काफी है कि] तुम धन का आनंद ले सको और पुण्य कमा सको। आओ, मेरे प्रिय रत्थपाल, साधना छोड़ो और सांसारिक जीवन में लौट आओ। धन का आनंद लो और पुण्य कमाओ!”

"हे गृहस्थ, यदि तुम मेरी बात मानोगे, तो सोने-चांदी का यह ढेर गाड़ियों पर लादकर गंगा नदी के मध्य में बहा दिया जाएगा। ऐसा क्यों? यही धन तुम्हारे दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा का कारण बनेगा।"

फिर, उनके प्रत्येक पैर को पकड़ते हुए, पूज्य रत्थपाल की पूर्व पत्नियों ने उनसे कहा, "हे प्रिय स्वामी-पुत्र, वे कैसी दिखती हैं: वे अप्सराएँ जिनके लिए आप पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं?"

"बहनों, हम अप्सराओं के खातिर पवित्र जीवन नहीं जीते हैं।"

"'बहनें' कहकर पुकारता है वो!" और वे बेहोश होकर वहीं गिर पड़ीं।

तब पूज्य रत्थपाल ने अपने पिता से कहा, "गृहस्थ, यदि भोजन उपलब्ध हो तो दे दीजिए। हमें परेशान मत कीजिए।"

"तो खाओ, मेरे प्यारे रत्थपाला। खाना तैयार है।"

अतः, पूज्य रत्थपाल के पिता ने अपने हाथों से उन्हें उत्तम प्रकार के मुख्य और गैर-मुख्य भोजन परोसकर तृप्त किया। भोजन समाप्त करने और कटोरे से हाथ हटाने के बाद, पूज्य रत्थपाल खड़े हुए और उन्होंने ये श्लोक पढ़े:

इस सौंदर्यीकृत छवि को देखिए।

घावों का एक ढेर, जिसे सहारा देकर खड़ा किया गया है: बीमार, लेकिन कई संकल्पों का विषय, जहाँ कुछ भी स्थायी या निश्चित नहीं है।7

कानों की बालियों और रत्नों से सजी इस आकृति को देखिए: त्वचा में लिपटा एक कंकाल, जिसे कपड़ों से आकर्षक बनाया गया है।

मेहंदी से लाल हुए पैर, पाउडर से सना हुआ चेहरा: एक मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन उस व्यक्ति को नहीं जो आगे के किनारे की तलाश में है।

आठ लटों में गुंथे बाल, आँखों में लगा इत्र: मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन परलोक की खोज करने वाले को नहीं। जैसे किसी नए रंगे इत्र के पात्र को सजाया गया हो - एक सड़ा हुआ शरीर: मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन परलोक की खोज करने वाले को नहीं।

शिकारी ने जाल बिछाया, लेकिन हिरण जाल के पास नहीं गया। चारा खाकर हम चले गए, और शिकारी रोने लगे।

खड़े होकर इन श्लोकों का पाठ करने के बाद, पूज्य रत्थपाला राजा कोरव्य के मिगाचिरा गए। वहाँ पहुँचकर वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

तब राजा कोराव्या ने अपने रक्षक से कहा, "मिगासिरा के मनोरम उद्यान को साफ करो। मैं वहाँ के सुंदर मैदानों को देखने जा रहा हूँ।"

"जैसा आप कहें, महाराज," रक्षक ने राजा को उत्तर दिया। मिगाचिरा की सफाई करते समय उसने देखा कि पूज्य रत्थपाला दिनभर आराम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं। उन्हें देखकर वह राजा के पास गया और बोला, "महाराज, मिगाचिरा की सफाई कर दी गई है। और थुल्लाकोत्थिता के प्रमुख कुल के पुत्र रत्थपाला, जिनकी आपने अक्सर प्रशंसा की है, वहीं दिनभर आराम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं।"

"तो फिर, मेरे प्रिय रक्षक, आज के लिए मनोरंजन उद्यान की चिंता छोड़ दीजिए। मैं अब उस गुरु रत्थपाला को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा हूँ।"

फिर, "तैयार किए गए सभी मुख्य और गैर-मुख्य खाद्य पदार्थों को दान कर दो," कहते हुए, राजा कोरव्य ने शुभ वाहनों को तैयार करवाया। एक शुभ वाहन पर सवार होकर, वे अन्य शुभ वाहनों के साथ, पूरे राजसी वैभव के साथ थुल्लकोत्थिता से पूज्य रत्थपाल से मिलने के लिए निकले। जहाँ तक मार्ग संभव था, वे वाहन से गए, फिर वाहन से उतरकर अपने दरबार के कई प्रतिष्ठित सदस्यों के साथ पूज्य रत्थपाल के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य रत्थपाल का शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने पूज्य रत्थपाल से कहा, "हे स्वामी रत्थपाल, हाथी की गद्दी पर यहाँ बैठें।"

"कोई बात नहीं, महाराज। आप वहीं बैठिए। मैं अपनी सीट पर बैठा हूँ।"

अतः राजा कोरव्य तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठते हुए उन्होंने पूज्य रत्थपाल से कहा, "ऐसे उदाहरण हैं जहाँ चार प्रकार की हानियाँ भोगने के बाद पुरुष अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेते हैं, गेरुए वस्त्र धारण कर गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं। वे चार प्रकार कौन से हैं? वृद्धावस्था की हानि, रोग की हानि, धन की हानि और सगे संबंधियों की हानि... परन्तु गुरु रत्थपाल को इनमें से कोई हानि नहीं हुई। उन्होंने ऐसा क्या जाना, देखा या सुना कि गुरु रत्थपाल गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत करने चले गए?"

"हे महाराज, ज्ञानवान, दर्शनशील, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने धम्म के चार सारांश बताए हैं। उन्हें जानकर, देखकर और सुनकर मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया। वे चार कौन से हैं?"

"'यह संसार बह गया है। यह स्थिर नहीं है': यह सर्वज्ञानी, साक्षी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान द्वारा कहा गया पहला धम्म सारांश है। इसे जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"'संसार आश्रयहीन है, रक्षकहीन है': यह धम्म का दूसरा सारांश है..."

"'यह संसार स्वामित्वहीन है। व्यक्ति को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना पड़ता है': यह धम्म का तीसरा सारांश है..."

"'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है': यह चौथा धम्म सारांश है..."

"हे महाराज, ये चार धम्म सारांश हैं जिनका वर्णन ज्ञानवान, प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने किया है। इन्हें जानकर, देखकर और सुनकर, मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया।"

"हे गुरु रत्थपाल, आप कहते हैं, 'संसार बह जाता है। यह स्थिर नहीं रहता।' अब इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"हे महान राजा, आपका क्या विचार है: जब आप बीस या पच्चीस वर्ष के थे - एक कुशल हाथी सवार, एक कुशल घुड़सवार, एक कुशल रथ चालक, एक कुशल धनुर्धर, एक कुशल तलवारबाज - क्या आप भुजाओं और जांघों में बलवान, चुस्त-दुरुस्त और युद्धकला में अनुभवी थे?"

"जी हां, गुरु रत्थपाल, जब मैं बीस या पच्चीस वर्ष का था... मेरी भुजाएँ और जांघें बलवान थीं, मैं तंदुरुस्त था और युद्धकला में निपुण था। ऐसा लगता था मानो मुझमें अलौकिक शक्ति हो। मुझे शक्ति में अपने समकक्ष कोई नहीं दिखता था।"

"और हे महान राजा, आपका क्या विचार है: क्या आप अब भी उतने ही बलवान और मजबूत हैं, उतने ही चुस्त-दुरुस्त और युद्ध में उतने ही अनुभवी हैं?"

"बिल्कुल नहीं, गुरु रत्थपाल। मैं अब एक दुर्बल बूढ़ा व्यक्ति हूँ, उम्रदराज हो चुका हूँ, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच गया हूँ, 80 वर्ष का। कभी-कभी, यह सोचते हुए कि 'मैं अपना पैर यहाँ रखूँगा,' मैं उसे कहीं और रख देता हूँ।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, दर्शनशील, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार नष्ट हो जाएगा। यह स्थिर नहीं रहेगा।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्‌भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि वाले, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार बह जाएगा। यह स्थिर नहीं रहेगा।' क्योंकि वास्तव में संसार बह जाएगा, गुरु रत्थपाल। यह स्थिर नहीं रहेगा।"

"इस राजमहल में हाथी सेना, घुड़सवार सेना, रथ सेना और पैदल सेना मौजूद हैं जो हमें खतरों से बचाएंगे। फिर भी आप कहते हैं, 'दुनिया बेघर है, रक्षक नहीं।' इस कथन का अर्थ क्या है?"

"हे महाराज, आपका क्या विचार है: क्या आपको कोई बार-बार होने वाली बीमारी है?"

"जी हां, स्वामी रत्थपाल, मुझे बार-बार वात रोग हो जाता है।9 कभी-कभी मेरे मित्र और सलाहकार, रिश्तेदार और रक्त संबंधी मेरे चारों ओर खड़े होकर कहते हैं, 'इस बार राजा कोरव्य की मृत्यु होगी। इस बार राजा कोरव्य की मृत्यु होगी।'"

"और हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: क्या आप अपने मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और रक्त संबंधियों से कह सकते हैं, 'मेरे मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और रक्त संबंधियों को आदेश दिया जाता है: आप सभी जो यहाँ उपस्थित हैं, इस पीड़ा को आपस में बाँट लें ताकि मुझे कम पीड़ा हो'? या आपको यह पीड़ा अकेले ही सहनी होगी?"

"ओह, नहीं, गुरु रत्थपाल, मैं अपने मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों से यह नहीं कह सकता, 'आप सभी जो यहाँ उपस्थित हैं, इस पीड़ा को आपस में बाँट लें ताकि मुझे कम पीड़ा हो।' मुझे यह पीड़ा अकेले ही सहनी होगी।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार आश्रयहीन और रक्षकहीन है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्‌भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार आश्रयहीन है, रक्षकहीन है।' वास्तव में संसार आश्रयहीन है, गुरु रत्थपाल। यह रक्षकहीन है।"

"इस शाही दरबार में ज़मीन के नीचे और अटारी की तिजोरियों में बहुत सारा सोना और चांदी छिपाकर रखा गया है। फिर भी आप कहते हैं, 'दुनिया का कोई मालिक नहीं है। हर किसी को सब कुछ छोड़कर मरना पड़ता है।' इस कथन का अर्थ क्या है?"

"हे महाराज, आपका क्या विचार है? जिस प्रकार आप अब पांचों इंद्रियों के सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद ले रहे हैं, क्या आप कह सकते हैं, 'परलोक में भी मैं इसी प्रकार, इन्हीं पांचों इंद्रियों के सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लूंगा'? या यह धन दूसरों को मिल जाएगा, जबकि आप अपने कर्मों के अनुसार इस दुनिया से चले जाएंगे?"

"ओह, नहीं, गुरु रत्थपाल, मैं यह नहीं कह सकता, 'परलोक में भी मैं उसी तरह आनंद लूंगा, पांचों इंद्रियों के उन्हीं सुखों से परिपूर्ण होकर।' यह धन दूसरों को मिलेगा, जबकि मैं अपने कर्मों के अनुसार इस दुनिया से चला जाऊंगा।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार का कोई स्वामित्व नहीं है। मनुष्य को सब कुछ छोड़कर इस संसार से विदा होना पड़ता है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में विलीन हो गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार का कोई स्वामित्व नहीं है। मनुष्य को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना ही है।' क्योंकि वास्तव में संसार का कोई स्वामित्व नहीं है, गुरु रत्थपाल। मनुष्य को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना ही है।"

"हे रत्थपाल स्वामी, आप कहते हैं, 'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।' इस कथन का अर्थ क्या समझा जाए?"

"हे महान राजा, आपका क्या विचार है: क्या अब आप कुरु के समृद्ध देश पर शासन करते हैं?"

"जी हां, स्वामी रत्थपाल। मैं कुरु के समृद्ध देश का शासक हूं।"

"हे महाराज, आप क्या सोचते हैं? मान लीजिए कि आपका कोई भरोसेमंद और विश्वसनीय व्यक्ति पूर्व से आपके पास आता है। पहुँचने पर वह आपसे कहता है, 'महाराज, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो कि मैं पूर्व से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महान, शक्तिशाली, समृद्ध, घनी आबादी वाला और लोगों से भरा देश देखा। वहाँ हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सेना प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ हाथीदांत, सोना और चांदी, दोनों ही तरह के, प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ स्त्रीयाँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। आपके पास जो सेना है, उससे आप उस देश को जीत सकते हैं। हे महाराज, उस देश को जीत लीजिए!' आप क्या करेंगे?"

"हे रत्थपाला स्वामी, इसे जीतने के बाद मैं इस पर शासन करूंगा।"

"अब आप क्या सोचते हैं, महाराज? मान लीजिए कि आपका कोई भरोसेमंद और विश्वसनीय व्यक्ति पश्चिम से... उत्तर से... दक्षिण से... समुद्र के उस पार से आपके पास आता है। पहुँचने पर वह आपसे कहता है, 'महाराज, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो कि मैं समुद्र के उस पार से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महान देश देखा, शक्तिशाली और समृद्ध, घनी आबादी वाला और लोगों से भरा हुआ। वहाँ हाथियों की सेनाएँ, घुड़सवार सेनाएँ, रथ सेनाएँ और पैदल सेनाएँ प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ हाथीदांत का काम प्रचुर मात्रा में है, सोना और चाँदी, दोनों ही तराशे हुए और बिना तराशे हुए, प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ स्त्रीयाँ भी प्रचुर मात्रा में हैं। आपके पास जो सेना है, उससे आप उसे जीत सकते हैं। उसे जीत लीजिए, महाराज!' आप क्या करेंगे?"

"हे रत्थपाल स्वामी, इसे जीतने के बाद मैं इस पर शासन भी करूंगा।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार अपर्याप्त, अतृप्त और लालसा का गुलाम है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।' क्योंकि वास्तव में संसार अपर्याप्त है, गुरु रत्थपाल। यह अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।"

यही बात पूज्य रत्थपाला ने कही। इसके बाद उन्होंने आगे यह कहा:

मैं दुनिया में देखता हूँ

धनवान लोग, जो भ्रम में डूबे रहते हैं, अपने अर्जित खजाने को दान नहीं करते। लालच में आकर वे उसे छिपाकर रखते हैं, और अधिक सुख-सुविधाओं की आशा करते हैं।

एक राजा जिसने बलपूर्वक दुनिया को जीत लिया है और समुद्र के किनारे तक पृथ्वी पर शासन करता है, समुद्र के निकटवर्ती तट से असंतुष्ट होकर समुद्र के दूरवर्ती तट की भी लालसा रखता है।

राजाओं और अन्य लोगों सहित कई लोग अपनी अतृप्त इच्छाओं के साथ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। तृप्त न होकर वे शरीर त्याग देते हैं, क्योंकि उन्हें संसार के इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद नहीं मिल पाता।

रिश्तेदार रोते-बिलखते हैं और अपने बाल नोचते हैं। वे चिल्लाते हैं, 'हाय, हमारा प्रियतम मर गया!' उसे कपड़े में लपेटकर ले जाते हैं, चिता पर रखते हैं और फिर आग लगा देते हैं।

इसलिए वह केवल एक कपड़े में लिपटा हुआ, लकड़ियों से गोदा हुआ जल रहा है, अपनी सारी संपत्ति पीछे छोड़कर। ये किसी मृत व्यक्ति के लिए आश्रय नहीं हैं—न ही रिश्तेदार, न मित्र, न साथी।

उसके उत्तराधिकारी उसकी संपत्ति के वारिस बन जाते हैं, और आत्मा अपने कर्मों के अनुसार जीवित रहती है। मृत आत्मा के साथ कोई धन-संपत्ति नहीं जाती—न संतान, न पत्नियाँ, न राज्य, न दौलत।

धन-दौलत से लंबी उम्र नहीं मिलती, न ही दौलत से बुढ़ापा दूर होता है। ज्ञानी कहते हैं कि यह जीवन क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है।

अमीर और गरीब, सभी मृत्यु के स्पर्श को महसूस करते हैं। मूर्ख और बुद्धिमान, दोनों ही इससे प्रभावित होते हैं। लेकिन मूर्ख तो अपनी मूर्खता के कारण मृत प्रतीत होते हैं, जबकि बुद्धिमान मृत्यु के स्पर्श से भयभीत नहीं होते।

अत: वह विवेक जिससे व्यक्ति निपुणता प्राप्त करता है, धन से श्रेष्ठ है—क्योंकि जो लोग निपुणता प्राप्त नहीं कर पाते वे भ्रम में भटकते हुए बुरे कर्म करते हुए एक जन्म से दूसरे जन्म में भटकते रहते हैं।

एक व्यक्ति एक गर्भ में जाता है और फिर परलोक में, एक के बाद एक भटकता रहता है, जबकि कमजोर विवेक वाले लोग, एक पर भरोसा करते हुए, वे भी एक गर्भ में जाते हैं और फिर परलोक में।

जिस प्रकार चोरी करते हुए पकड़ा गया दुष्ट चोर अपने ही कर्मों के फलस्वरूप नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट लोग भी मरने के बाद परलोक में अपने ही कर्मों के फलस्वरूप नष्ट हो जाते हैं।

इंद्रिय सुख— विविध, मोहक, मधुर— विभिन्न प्रकार से मन को विचलित करते हैं। इंद्रिय सुखों की कमियों को देखकर ही, हे राजा, मैं प्रस्थान किया।

जैसे फल नष्ट होते हैं, वैसे ही शरीर के टूटने पर मनुष्य भी गिर पड़ते हैं—युवा और वृद्ध। हे राजा, यह जानकर मैं आगे बढ़ा। निःसंदेह चिंतनशील जीवन श्रेष्ठ है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.3 मखदेव सुत्त(83)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध मिथिला में मखादेव आम के बाग में रहते थे। फिर जब वे किसी विशेष स्थान पर गए तो मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद के मन में यह प्रश्न आया—भगवान बुद्ध बिना कारण मुस्कुराए तो नहीं मुस्कुराते, आखिर क्यों मुस्कुराए? तब पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र को एक कंधे पर समेटते हुए भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, 'हे पूज्य, भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुराए?'

आनंद, अतीत में, इसी मिथिला में, मखदेव नाम का एक राजा था। वह एक धर्मात्मा राजा था और उसने देश पर धर्मपूर्वक शासन किया। शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन वह आठ नियमों का पालन करता था। गाँव-बस्तियों और राज्य के ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन आठ नियमों का पालन करते थे। फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, एक लाख वर्षों के बाद राजा मखदेव ने अपने नाई से कहा: हे मित्र नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना। नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा मखदेव के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा, 'हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।' 'तो हे मित्र नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकाल कर मेरी हथेली पर रख दो।' नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक एक सफेद बाल निकालकर राजा मखदेव की हथेली पर रख दिया। फिर राजा मखदेव ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र से कहा, “प्रिय पुत्र, मुझे दूत मिले हैं, मेरे सिर पर सफेद बाल आ गए हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बनूँगा। प्रिय राजकुमार, जब तुम भी अपने सिर पर एक सफेद बाल देखो, तो नाई को एक गाँव भेंट कर देना, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप देना और उसे उचित मार्ग से देश पर शासन करने की सलाह देना। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बनो। ध्यान रखना कि मेरा शुभ चक्र भंग न हो। यदि किसी भी प्रकार से यह शुभ चक्र भंग हुआ, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा।” प्रिय राजकुमार, इसलिए मैं कहता हूँ, अच्छाई के इस चक्र को जारी रखें और इस चक्र को तोड़ने वाले अंतिम व्यक्ति न बनें।

फिर राजा मखदेव आनंद ने नाई को एक गाँव दान में दिया, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उसे धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में तपस्वी के रूप में चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से, उन्होंने एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। राजा मखदेव आनंद ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बालक के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। फिर संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों के बाद राजा मखदेव के पुत्र ने अपने नाई को संबोधित करते हुए कहा: हे मित्र, नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना। नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा मखदेव के पुत्र के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा: 'हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। तब, हे मित्र, नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकालकर मेरी हथेली पर रख दो। नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक सफेद बाल निकालकर राजा मखदेव के पुत्र की हथेली पर रख दिया। फिर राजा मखदेव के पुत्र ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र को संबोधित किया: प्रिय पुत्र, मुझे संदेश मिले हैं कि मेरे सिर पर सफेद बाल हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा लूँगा, पीले वस्त्र पहनूँगा और तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगा। हे राजकुमार, जब आपके सिर पर भी एक सफेद बाल दिखाई दे, तो नाई को एक गाँव दान कर दीजिए, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप दीजिए और उसे उचित मार्ग से देश चलाने की सलाह दीजिए। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा लीजिए, पीले वस्त्र पहन लीजिए और तपस्वी जीवन व्यतीत कीजिए। ध्यान रखिए कि मेरा यह शुभ चक्र भंग न हो। यदि किसी भी कारण से यह शुभ चक्र भंग हुआ, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा। हे राजकुमार, इसीलिए मैं कहता हूँ, इस शुभ चक्र का अनुसरण कीजिए और इसे भंग करने वाले अंतिम व्यक्ति न बनिए।

फिर राजा मखदेव के पुत्र आनंद ने नाई को एक गाँव दान में देकर, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उन्हें धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में तपस्वी जीवन व्यतीत करने चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, जो क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम हो गया। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से उन्होंने एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, जो क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम हो गया। राजा मखदेव के पुत्र आनंद ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बालक के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

राजा मखदेव के पोते आनंद और उनके 48 हजार योद्धाओं ने इसी आम के बाग में अपने सिर और दाढ़ी मुंडवा ली थी। वे प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त रहे, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित करते हुए, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम में निवास करते रहे। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से वे एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त रहे, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित करते हुए, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम में निवास करते रहे। आनंद, उन्होंने 48 हजार वर्षों तक बच्चों के खेल खेले। 48 हजार वर्षों तक वे वायसराय रहे, 48 हजार वर्षों तक शासक रहे। 48 हजार वर्षों तक वे तपस्वी बनकर पवित्र जीवन व्यतीत करते रहे। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए, वे ब्रह्मा के लोक में जन्म लेते हैं।

निमी उस शुभ चक्र के अंतिम राजा थे, जिन्होंने धार्मिक जीवन व्यतीत किया और धार्मिक शासन किया। उनके समय में भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन गाँवों, गांवों और राज्यों के ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा आठ नियमों का पालन किया जाता था।

आनंद, अतीत में तैंतीस देवताओं की शुद्धम सभा में यह चर्चा हुई: विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और धार्मिकता से शासन करते हैं, वे चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं, और ब्राह्मण गृहस्थ भी गांवों, गांवों और राज्य में चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं।

तब तैंतीस देवताओं के राजा सक्का ने उनसे कहा, “महोदय, क्या आप राजा निमि से मिलना चाहेंगे?” उस दिन शुक्ल पक्ष की पंद्रहवीं तिथि थी और राजा निमि ने अपने बाल धोकर आठ नियमों का पालन करते हुए अपने महल के सबसे ऊपरी तल पर विराजमान थे। तब देवताओं के राजा सक्का, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है, तैंतीस देवताओं के बीच से लुप्त होकर राजा निमि के सामने प्रकट हुए और बोले, “महाराज, यह आपके लिए लाभ की बात है कि तैंतीस देवता आपकी इस प्रकार प्रशंसा करें: विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और धार्मिकता से शासन करते हैं, शुक्ल पक्ष की चौदहवीं, पंद्रहवीं और आठवीं तिथि को आठ नियमों का पालन करते हैं, और ब्राह्मण गृहस्थ भी गांवों, गांवों और राज्य में शुक्ल पक्ष की चौदहवीं, पंद्रहवीं और आठवीं तिथि को आठ नियमों का पालन करते हैं।” हे महान राजा, तैंतीस देवताओं की आपसे मिलने की इच्छा है, मैं आपके लिए एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ भेजूंगा, इस पर आसीन होइए, हे महान राजा, दिव्य रथ कभी नहीं हिलता।

राजा निमी ने मौनपूर्वक स्वीकार कर लिया, और देवताओं के राजा सक्का, एक बलवान व्यक्ति की तरह अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाते या मोड़ते हुए, राजा निमी के समक्ष से गायब हो गए और तैंतीस देवताओं के बीच प्रकट हुए।

तब देवताओं के राजा सक्का ने सारथी मतली से कहा, “मित्र मतली, रथ में हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमि के पास जाओ और उनसे कहो: “महाराज, यह हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ है, जिसे देवताओं के राजा सक्का ने भेजा है। इस पर आसीन हो जाइए, महाराज, यह दिव्य रथ हिलता नहीं।” सारथी मतली मान गया और उसने रथ में हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमि के पास जाकर कहा, “महाराज, यह हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ है, जिसे देवताओं के राजा सक्का ने भेजा है। इस पर आसीन हो जाइए, महाराज, यह दिव्य रथ हिलता नहीं।” “परन्तु आप किस मार्ग से जाना चाहते हैं, क्या उस मार्ग से जहाँ दुष्टों को उनके कर्मों का फल मिलता है, या जहाँ पुण्यों को उनके कर्मों का फल मिलता है?” “मतली, मुझे इन दोनों मार्गों से ले चलो।” आनंद, सारथी मतली राजा निमि को तैंतीस देवताओं की सभा में ले गया। देवताओं के राजा सक्का ने राजा निमि को देखकर कहा, “आओ!” हे महान राजा! तैंतीस

देवता शुद्धम सभा में बैठकर आपकी स्तुति कर रहे हैं। विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और विधिपूर्वक शासन करते हैं, शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं, और गाँव-बस्तियों और राज्यों में रहने वाले ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं। हे महान राजा! तीन और तीस देवता आपको देखकर प्रसन्न होते हैं, देवताओं की महिमा में आनंदित होते हैं।

'बेकार है, महोदय, मुझे मिथिला वापस भेज दीजिए, वहाँ मैं ब्राह्मण गृहस्थों के साथ बस्तियों, गाँवों और राज्यों में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा और शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करूँगा।'

आनंद, जो उस समय देवताओं के राजा सक्का थे, ने सारथी मतली से कहा, “आओ! हे मित्र मतली, रथ में एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतो और राजा निमी को मिथिला वापस ले चलो।” सारथी मतली मान गए और उन्होंने रथ में एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमी को मिथिला वापस पहुँचा दिया।

आनंद, राजा निमि धार्मिक जीवन जीते थे और चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते थे। गाँव-बस्तियों और राज्यों में रहने वाले ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते थे। फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, एक लाख वर्षों के बाद राजा निमि ने अपने नाई से कहा: "हे मित्र नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना।" नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा निमि के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा, "हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।" "तो, हे मित्र नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकालकर मेरी हथेली पर रख दो।" नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक सफेद बाल निकालकर राजा निमि की हथेली पर रख दिया। फिर राजा निमि ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र को संबोधित किया। 'प्रिय पुत्र, मुझे दूत मिले हैं, मेरे सिर पर सफ़ेद बाल आ गए हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाऊँगा। प्रिय राजकुमार, जब तुम भी अपने सिर पर सफ़ेद बाल देखो, तो नाई को एक गाँव दान कर देना, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप देना और उसे उचित मार्ग से देश पर शासन करने की सलाह देना। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाना। ध्यान रखना कि मेरे अच्छे कर्मों का चक्र न टूटे। यदि किसी भी प्रकार से, अच्छे कर्मों का यह चक्र किसी के द्वारा टूटता है, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा। प्रिय राजकुमार, इसलिए मैं कहता हूँ, अच्छे कर्मों के इस चक्र का पालन करो और इस चक्र को तोड़ने वाले अंतिम व्यक्ति मत बनो।'

फिर आनंद ने राजा निमी को एक गाँव उपहार में दिया, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उसे धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में एक तपस्वी के रूप में चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम रूप से प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। उन्होंने आंतरिक आनंद और समभाव के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम रूप से प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। आनंद, राजा निमी ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बच्चे के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। फिर संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

आनंद, राजा निमि के पुत्र कालराजनक ने संन्यास नहीं लिया, उन्होंने उस शुभ चक्र को तोड़ा, और इस प्रकार वे उस शुभ चक्र के अंतिम पुरुष बन गए। आनंद, क्या आपके मन में यह बात आई कि यदि वह शुभ चक्र टूट जाता तो राजा मखदेव पूर्ण हो जाते? ऐसा नहीं होना चाहिए। उस समय मैं ही राजा मखदेव था, मैंने उस शुभ चक्र को तोड़ा ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उस चक्र में न चलती रहें। आनंद, वह शुभ चक्र विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाता। वह ब्रह्मलोक में जन्म की ओर ले जाता है। आनंद, वह शुभ चक्र अब मेरे द्वारा तोड़ा गया है। यह निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर ले जाता है। आनंद, मेरे द्वारा तोड़ा गया वह शुभ चक्र निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर कैसे ले जाता है? यह वही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है, जैसे: सही समझ, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। आनंद, अब मैं इस शुभ चक्र को तोड़ रहा हूँ, ताकि निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, समाप्ति, प्रसन्नता, बोध, ज्ञानोदय और अंत की ओर अग्रसर हो सकूँ। आनंद, मैं तुमसे कहता हूँ, जब तक तुम इस चक्र को निर्बाध रूप से चलाते रहोगे, तुम इस चक्र के

अंतिम व्यक्ति नहीं बनोगे। आनंद, जब महान पुरुषों के काल में यह शुभ चक्र बाधित होता है, तो वे इस चक्र के अंतिम व्यक्ति बन जाते हैं। आनंद, इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ, इस शुभ चक्र को बाधित मत करो और इस चक्र के अंतिम व्यक्ति मत बनो।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.4मधुरा सुत्त(84)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय की बात है, पूज्य महाअक्कैयान मथुरा के गुंडा वन में निवास कर रहे थे। मथुरा के राजा अवंतीपुत्त ने सुना कि पूज्य महाअक्कैयान मथुरा के गुंडा वन में निवास कर रहे हैं और उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। वे ज्ञानवान, विद्वान, कुशल उपदेशक और सर्वथा सिद्ध पुरुष हैं, और ऐसे सिद्ध पुरुषों को देखना सुखद है। तब मथुरा के राजा अवंतीपुत्त ने उत्तम वाहन तैयार करके पूज्य महाअक्कैयान से मिलने के लिए राजमहल की शोभायात्रा निकाली। जहाँ तक वाहन उन्हें ले जा सकते थे, वहाँ तक वे पैदल चलकर पूज्य महाअक्कैयान के पास पहुँचे। महाकच्चायन के पास आकर और उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन करते हुए, वे एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे पूज्यवर, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण ही प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते। इस विषय में कच्चेयानन का क्या कहना है?"

महाराज, संसार में यह मात्र एक कथन है: ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, केवल ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते। महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते', आपको यह जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। महाराज, यदि किसी योद्धा के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण हो, तो क्या योद्धा सबसे पीछे खड़ा होकर, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा, या कोई ब्राह्मण, गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति, या अछूत कुल का कोई व्यक्ति, सबसे पीछे खड़ा होकर, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा?

'हे कच्चयन, यदि किसी योद्धा के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो योद्धा खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बातें करेगा, चाहे वह ब्राह्मण हो, गृहस्थ वंश का हो या अछूत वंश का हो, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बातें करेगा।'

'हे महाराज, यदि किसी ब्राह्मण के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न वस्तु हो, तो क्या कोई ब्राह्मण खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, या कोई योद्धा, या गृहस्थ वंश का कोई व्यक्ति, या अछूत वंश का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि किसी ब्राह्मण के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो ब्राह्मण खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा, चाहे योद्धा हो, गृहस्थ वंश का हो या अछूत वंश का, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि गृहस्थ कुल के किसी व्यक्ति के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो क्या गृहस्थ कुल, योद्धा कुल, ब्राह्मण कुल या अछूत कुल का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाकर उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे विनम्रतापूर्वक बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि गृहस्थ कुल के किसी व्यक्ति के पास धन, अनाज, चांदी, सोने आदि के रूप में समृद्धि हो, तो कोई योद्धा खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, चाहे वह ब्राह्मण हो, गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति हो या अछूत कुल का कोई व्यक्ति हो, वह खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि किसी अछूत कुल के व्यक्ति को धन, अनाज, चांदी, सोने आदि के रूप में समृद्धि प्राप्त हो, तो क्या उस अछूत कुल का व्यक्ति खड़ा होकर अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, या फिर कोई योद्धा, ब्राह्मण कुल का व्यक्ति, या गृहस्थ कुल का व्यक्ति खड़ा होकर अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि किसी अछूत कुल के व्यक्ति को धन, अनाज, चांदी या सोने के रूप में समृद्धि प्राप्त हो, तो उसी अछूत कुल का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, चाहे वह योद्धा हो, ब्राह्मण हो या गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति हो, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा होता है, तो ये चारों कुल समतुल्य हो जाते हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते।' आपको यह भी जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। हे महाराज, ऐसे योद्धा भी हैं जो जीवन का नाश करते हैं, बिना दिए वस्तुएँ छीन लेते हैं, यौन दुराचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, निंदा करते हैं, कठोर शब्द बोलते हैं, तुच्छ बातें करते हैं, लोभ करते हैं, क्रोधित मन और गलत विचार रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद नरक में घटित होंगे? या वे नरक में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, चाहे वे योद्धा ही क्यों न हों, जीवन का नाश करें, बिना दिए का सामान लें, यौनिकता में दुराचार करें, झूठ बोलें, निंदा करें, कठोर और तुच्छ बातें करें, लोभ करें, क्रोधी मन रखें और गलत धारणा रखें, मृत्यु के बाद वे घटते क्रम में जन्म लेंगे और हानि में ही जाएंगे। मुझे ऐसा ही लगता है, और मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया और आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, कुछ ब्राह्मण हैं - गृहस्थ कुल के, अछूत कुल के, जो जीवन का संहार करते हैं, अनचाहा लेते हैं, व्यभिचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, निंदा करते हैं, कठोर शब्द बोलते हैं, तुच्छ बातें करते हैं, लोभ करते हैं, क्रोधी मन रखते हैं और गलत दृष्टिकोण रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद नरक में वंशानुक्रम में जन्म लेंगे? या वे नरक में जन्म नहीं लेंगे?'

हे कच्चयन, भले ही बहिष्कृत कुल के लोग जीवन का नाश करें, अनचाही वस्तुएँ छीनें, यौन दुराचार करें, झूठ बोलें, निंदा करें, कठोर और तुच्छ बातें करें, लोभ करें, क्रोधी मन रखें और गलत विचार रखें, तो मृत्यु के बाद वे घटते क्रम में जन्म लेंगे और हानि में ही जाएंगे। मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है, और मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, यदि ऐसा है, तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा होता है, तो ये चारों कुल समतुल्य हो जाते हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखाई देता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते', आपको यह भी मात्र एक कथन है। हे महाराज, ऐसे योद्धा भी हैं जो जीवन-नाशक, अनादि का सेवन करने वाले, व्यभिचारी, झूठ बोलने वाले, निंदा करने वाले, कठोर शब्द बोलने वाले, तुच्छ शब्द बोलने वाले, लोभ करने वाले, क्रोधी मन रखने वाले और सही दृष्टि वाले होते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशागत रूप से जन्म लेंगे? या वे स्वर्ग में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, जो योद्धा जीवन का नाश करने, बिना दी हुई वस्तु लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, निंदा करने, कठोर शब्द बोलने, तुच्छ शब्द बोलने, लोभ करने, क्रोध करने और सही दृष्टि रखने से परहेज करते हैं, वे भी मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेते हैं; ऐसा ही होता है, मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, कुछ ब्राह्मण हैं, गृहस्थ वंश के, और कुछ बहिष्कृत जाति के, जो जीवन नष्ट करने वाले कर्मों से, अनचाही वस्तु लेने से, व्यभिचार करने से, झूठ बोलने से, निंदा करने से, कठोर शब्दों से, तुच्छ शब्दों से, लोभ करने से, क्रोधी मन रखने से परहेज करते हैं, और जो सही दृष्टि रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेंगे? या वे स्वर्ग में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, यहाँ तक कि बहिष्कृत कुल के लोग भी यदि जीवन नष्ट करने, अनचाही वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, निंदा करने, कठोर शब्द बोलने, तुच्छ शब्द बोलने, लोभ करने, क्रोध करने और सही दृष्टिकोण बनाए रखने से परहेज करते हैं, तो मृत्यु के बाद स्वर्ग में उनका वंश बढ़ता है, ऐसा ही होता है, मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, यदि ऐसा है, तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल हीन हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होते हैं, उनके वंशज हैं, जो पवित्र करते हैं, गैर-ब्राह्मण पवित्र नहीं करते' आपको यह जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। यहाँ, हे महाराज, एक योद्धा किसी घर में घुसकर लूटपाट करता है, घात लगाकर बैठता है या दूसरों की पत्नियों के पास जाता है, तब लोग उसे पकड़कर राजा के सामने लाते हैं। हे स्वामी, यह तो एक लुटेरा है, इसे अपनी इच्छा अनुसार दंड दीजिए—आप क्या करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसे नष्ट करवा दूँगा, या निर्वासित करवा दूँगा, या उसे उचित दंड दूँगा। कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले वह एक योद्धा माना जाता था, और बाद में वह एक डाकू के रूप में जाना जाने लगा।'

'हे महाराज, एक ब्राह्मण, जो गृहस्थ कुल का है, और बहिष्कृत कुल का है, किसी के घर में घुसकर लूटपाट करता है, घात लगाकर बैठता है या दूसरों की पत्नियों के पास जाता है। तब लोग उसे पकड़ लेते हैं और राजा के सामने पेश करते हैं। हे महाराज, यह तो एक लुटेरा है, इसे अपनी इच्छानुसार दंड दीजिए—आप क्या करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसे नष्ट करवा दूँगा, या निर्वासित करवा दूँगा, या उसे उचित दंड दूँगा। कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले तो उसे बहिष्कृत माना जाता था, और बाद में वह डाकू के रूप में जाना जाने लगा।'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन मात्र है: 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते।' हे महाराज, यहाँ एक योद्धा है जो सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र

पहनकर, संन्यासी के रूप में विराजमान है। वह जीव-जंतुओं को नष्ट करने से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, झूठ बोलने से विराजमान है, दिन में एक बार भोजन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है। आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसके आने पर आसन से उठूंगा, उसे आसन दूंगा, उसे आमंत्रित करूंगा, जीवन की चारों आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय भोजन उपलब्ध कराऊंगा, और उसकी धार्मिक सुरक्षा सुनिश्चित करूंगा। इसका कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले वह योद्धा माना जाता था, और बाद में वह संन्यासी माना जाता है।'

'हे महान महाराज, एक ब्राह्मण, जो गृहस्थ वंश का है, और अछूत वंश का है, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी बन गया है। वह जीव संहार से दूर रहता है, अनचाही वस्तुएँ लेने से बचता है, झूठ बोलने से परहेज करता है, दिन में एक बार भोजन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है: आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?'

हे कच्चयन, मैं उसके आने पर आसन से उठूंगा, उसे आसन दूंगा, आमंत्रित करूंगा, जीवन की चारों आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय भोजन आदि प्रदान करूंगा, और उसकी धार्मिक सुरक्षा का ध्यान रखूंगा। इसका कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले उसे बहिष्कृत माना जाता था, और बाद में उसे संन्यासी माना जाता है।

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल से हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते, आपको यह जानना चाहिए कि यह भी केवल एक कथन मात्र है।'

यह सुनकर, मदुरा के राजा अवंतीपुत्त ने पूज्य महाकच्चायन से कहा, "हे कच्चेयान, अब मैं समझ गया हूँ। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो, जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो, जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दिया गया हो। ऐसा लगता है जैसे दृष्टिहीन लोगों को अंधकार में आकृतियाँ दिखाई देने के लिए तेल का दीपक जला दिया गया हो। हे कच्चेयान ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे कच्चेयान की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से जीवन के अंत तक मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने शरण ली है।"

'हे महान राजा, मेरी शरण मत लो, मेरी शरण लो, जैसे मैंने ली है वैसे ही उस धन्य परमेश्वर की शरण लो।'

'हे कच्चायना, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त भगवान अब कहाँ निवास करते हैं?'

'महान राजा, भगवान, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त कर चुके व्यक्ति का देहांत हो गया है।'

हे कच्चायन, यदि मुझे पता चले कि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान यहाँ से सत्तर मील दूर हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए वहाँ जाऊँगा। यदि मुझे पता चले कि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान यहाँ से एक सौ चालीस मील, दो सौ दस मील, तीन सौ पचास मील या सात सौ मील दूर हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए वहाँ जाऊँगा। हे कच्चायन, क्योंकि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान का देहांत हो गया है, मैं उनकी शिक्षाओं और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। हे कच्चायन, आज से मेरी मृत्यु तक मुझे गृहस्थ शिष्य के रूप में शरण दें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.5बोधिराजकुमार सुत्त(85)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान भग्ग देश के भेषकला वन में सुनसुमारा चट्टानों के बीच स्थित हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय राजकुमार बोधिराज ने कोकनाड़ा नामक एक महल का निर्माण करवाया था, जो अभी तक किसी संन्यासी, ब्राह्मण या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आबाद नहीं था। तब राजकुमार बोधिराज ने संजिकपुत्त नामक एक युवक को संबोधित करते हुए कहा, "आओ! मित्र संजिकपुत्त, मेरी ओर से भगवान के पास आओ, उनकी आराधना करो और उनसे यह कहो, 'हे पूज्यवर, क्या आप स्वस्थ हैं, क्या आपको कोई रोग नहीं है, और क्या आपका निवास सुखमय है?' और भगवान से यह भी कहो, 'हे पूज्यवर, राजकुमार बोधिराज आपके स्वास्थ्य के बारे में जानना चाहते हैं, और यह भी जानना चाहते हैं कि क्या आप स्वस्थ हैं और आपका निवास सुखमय है।' और भगवान से यह भी कहो कि कल राजकुमार बोधिराज के महल में भिक्षुओं के समुदाय के साथ भगवान भोज ग्रहण करें।' युवक संजिकापुत्त सहमत हो गया और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। उसने यह भी पूछा कि क्या उन्हें कोई रोग नहीं है और कहा, "हे पूज्यवर, राजकुमार बोधिराज ने भगवान गौतम के चरणों की पूजा की है और उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा है और यह भी कहा है, 'हे पूज्यवर, कल राजकुमार बोधिराज के महल में भोजन ग्रहण करें।' भगवान बुद्ध ने मौन में स्वीकार कर लिया। यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने स्वीकार कर लिया है, युवक संजिकापुत्त राजकुमार बोधिराज के पास गया और कहा, "हे राजकुमार बोधिराज, आपके शब्दों में, मैंने भगवान गौतम के चरणों की पूजा की है, उनके स्वास्थ्य और उनके सुखमय निवास के बारे में पूछा है और यह भी कहा है, 'हे भगवान गौतम कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ राजकुमार बोधिराज के महल में भोजन ग्रहण करें। भगवान गौतम ने इसे स्वीकार कर लिया है।'" फिर उस रात के अंत में राजकुमार बोधिराज ने विभिन्न पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए और कोकनंद महल को सीढ़ी के सबसे निचले पायदान तक सफेद कपड़े से पूरी तरह ढक दिया। फिर उन्होंने युवक संजिकापुत्त को संबोधित करते हुए कहा, 'आओ, मित्र संजिकापुत्त, भगवान बुद्ध के पास आओ और उनसे कहो, हे पूज्यवर, भोजन का समय हो गया है, भोजन तैयार है।' युवक संजिकापुत्त ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर कहा, 'हे पूज्यवर, भोजन तैयार है।' फिर सुबह भगवान बुद्ध ने वस्त्र धारण किए, कुंड और वस्त्र लेकर राजकुमार बोधिराज के महल की ओर प्रस्थान किया। उस समय राजकुमार बोधिराज महल के प्रवेश द्वार पर भगवान बुद्ध के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से भगवान बुद्ध को आते देख वे आगे बढ़े, प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे महल तक गए। भगवान बुद्ध सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर खड़े हो गए। तब राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर कुछ देर तक चलें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन रहे। दूसरी बार राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर कुछ देर तक चलें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन रहे।दूसरी बार। तीसरी बार राजकुमार बोधिराज ने भगवान से इस प्रकार कहा, "आदरणीय महोदय, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर दीर्घकालीन चलें।" भगवान ने आदरणीय आनंद के चेहरे की ओर देखा। आदरणीय आनंद ने राजकुमार बोधिराज से कहा, "राजकुमार, भावी पीढ़ी के हित में, इस वस्त्र को मोड़ दें। इस प्रकार जाने वाला इस वस्त्र पर नहीं चलता।" तब राजकुमार बोधिराज ने इस वस्त्र को मोड़ दिया और कोकनाडा महल की ऊपरी मंजिल पर आसन तैयार किए। भगवान कोकनाडा महल में चढ़े और भिक्षुओं के समुदाय के साथ तैयार आसनों पर बैठ गए। तब राजकुमार बोधिराज ने अपने हाथों से भगवान के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान ने भोजन समाप्त कर लिया और कटोरा रख दिया, तो राजकुमार बोधिराज एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए और इस प्रकार कहा। 'आदरणीय महोदय, मुझे यह बात समझ में आती है कि सुख को सुख से प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसे दुख से ही प्राप्त करना पड़ता है।'

हे राजकुमार, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं ज्ञान की खोज में लगा हुआ था, तब मुझे यह विचार आया कि सुख से सुख प्राप्त नहीं हो सकता, और दु:ख से सुख प्राप्त हो सकता है। जब मैं युवा था, तब भी काले बालों वाला मैं जन्म के अधीन केवल जन्म की ही कामना करता था, क्षय के अधीन केवल क्षय की ही कामना करता था, रोग के अधीन केवल रोग की ही कामना करता था, मृत्यु के अधीन केवल मृत्यु की ही कामना करता था, शोक के अधीन केवल शोक की ही कामना करता था, और अपवित्र वस्तुओं के अधीन केवल अपवित्र वस्तुओं की ही कामना करता था। हे राजकुमार, मैंने विचार किया, जन्म के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? रोग के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? मृत्यु के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? शोक के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? अपवित्र वस्तुओं के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? जन्म के संकटों को जानते हुए भी, मैं बंधन के उस निर्वाहकारी लक्ष्य, यानी बंधन के अंत की कामना क्यों न करूँ? मैं, क्षय के अधीन होकर, उसके संकटों को जानते हुए भी, बंधन के उस निर्वाहकारी लक्ष्य की कामना क्यों न करूँ? मैं, जो पूर्णता का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत की तलाश करूँ? मैं, जो मृत्यु का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के अमर और महान अंत की तलाश करूँ? मैं, जो दु:ख का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत, यानी मुक्ति की तलाश करूँ? मैं, जो अपवित्रता का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत, यानी मुक्ति की तलाश करूँ?

जब मैं जवानी के चरम पर था, काले बालों के साथ भी, माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध, जब वे आँसू बहाते हुए रो रहे थे, मैंने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए, घर छोड़ दिया, संन्यासी बन गया और पुण्य का साधक तथा अतुलनीय शांति की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे कहा, हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, "आओ मित्र, तुम्हारे जैसे ज्ञानी लोग शीघ्र ही इस शिक्षा को समझ लेते हैं और गुरु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।" हे राजकुमार, मैंने शीघ्र ही इस शिक्षा को सीख लिया और बड़ों की तरह इसका उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार किया कि मैं जानता हूँ और देखता हूँ। तब मुझे यह आभास हुआ कि केवल इसी विश्वास से आलारा कालामा यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानते और समझते हुए जीवन व्यतीत करता हूँ, वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और समझते हुए कैसे जीवन व्यतीत करते हैं?" जब मैंने आलारा कालामा से पूछा, तो उन्होंने शून्यता के क्षेत्र की घोषणा की। तब मुझे यह बात समझ में आई कि केवल आलारा कालामा ही आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हैं। मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं उनके द्वारा प्राप्त इस शिक्षा को जानने का प्रयास करूं तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा और उसका निवास स्थान प्राप्त हो गया। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे पूछा, 'हे पूज्यवर, क्या यही वह शिक्षा है जिसे आपने प्राप्त किया है और जिसका पालन करते हैं?' 'मित्र, यही वह शिक्षा है जिसे मैंने प्राप्त किया है, घोषित किया है और जिसका पालन करता हूं।' तब मैंने कहा, 'मैंने भी इतना ही प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं।' 'हे पूज्यवर, पवित्र जीवन में आप जैसे सहोदरों से मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जिस शिक्षा को प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं, वही आपने भी प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं। इसलिए, जो शिक्षा मैं जानता हूं, वही आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं।' आइए हम दोनों मिलकर इस मार्ग का मार्गदर्शन करें। हे राजकुमार, मेरे गुरु आलारा कालामा ने इसी प्रकार मुझे, अपने शिष्य को, समान दर्जा देकर सम्मानित किया। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल शून्यता के क्षेत्र तक ले जाती है। इससे संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और बोला, 'हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।' हे मित्र, आप जैसे ज्ञानी लोग, शीघ्र ही इस शिक्षा को समझकर गुरु के समान जीवन व्यतीत करें। मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को आत्मसात कर लिया, जिसमें बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार करना था कि मैं जानता और देखता हूँ। तब मुझे यह आभास हुआ कि केवल इसी विश्वास से उद्दक रामपुत्त यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानते और समझते हुए जीवन व्यतीत करता हूँ, बल्कि वे स्वयं इस शिक्षा को जानते और देखते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, 'हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और समझते हुए कैसे जीवन व्यतीत करते हैं?' मेरे पूछने पर उद्दक रामपुत्त ने कहा कि यह न तो बोध का क्षेत्र है और न ही अबोध का। राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि केवल उद्दक रामपुत्त ही नहीं, बल्कि मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं उनके द्वारा प्राप्त इस शिक्षा को जानने का प्रयास करूँ तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा और उसका निवास स्थान प्राप्त हो गया। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, हे पूज्यवर, क्या आपने इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करते हैं? मित्र, मैंने इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है, घोषित किया है और उसका पालन करता हूँ। तब मैंने कहा, मैंने भी इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करता हूँ। 'हे पूज्यवर, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठियों से मिलना हमारे लिए दुर्लभ लाभ है। मैंने जिस भी शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करता हूँ, आपने भी उसे प्राप्त किया है और उसका पालन करते हैं। इसलिए, मैं जिस भी शिक्षा को जानता हूँ, आप भी उसे जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। 'आओ! मित्र, तुम इस अनुयायी का मार्गदर्शन करो।' इस प्रकार मेरे सहपाठी उद्दक रामपुत्त ने मुझे अपना गुरु मानकर सम्मानित किया। तब मुझे यह आभास हुआ कि यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल न-बोध-न-बोध के क्षेत्र तक ही ले जाती है। इससे संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

अच्छाई की खोज में और अतुलनीय शांति की तलाश में भटकते हुए, मैं उरुवेला के सेनानी गाँव पहुँचा। वहाँ मैंने एक सुंदर भूभाग, एक जंगल, सुंदर सफेद किनारों वाली एक बहती नदी और पास में ही एक पशु-पशु गाँव देखा। तब मुझे यह विचार आया: वास्तव में यह भूभाग सुंदर है, यहाँ जंगल है, नदी बहती है और पास में ही पशु-पशु गाँव है। तब मैं सोचने लगा कि यह किसी कबीले के सदस्य के लिए प्रयास करने के लिए आदर्श स्थान है।

हे राजकुमार, तब मेरे मन में तीन ऐसी तुलनाएँ आईं जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। जैसे कोई व्यक्ति पानी में रखी गीली, रसदार लकड़ी के लट्ठे पर ढक्कन लगाकर कहे, "मैं इससे आग जलाऊँगा।" हे राजकुमार, क्या वह उस गीली, रसदार लकड़ी के लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम। इसका कारण क्या है? पानी में रखी वह गीली, रसदार लकड़ी का लट्ठा, ढक्कन से रगड़ने पर भी आग नहीं पैदा करेगी, बल्कि मनुष्य को केवल थकान ही मिलेगी। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो भी संन्यासी या ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से दूर नहीं रह पाते, उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास, कामुक जलन आंतरिक रूप से शांत नहीं होती, जिससे उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध होता है और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त

करना संभव नहीं है। भले ही इन पुण्य संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध न हो, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। यह पहली तुलना है जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

हे राजकुमार, तभी मेरे मन में एक ऐसी उपमा आई जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर सूखी ज़मीन पर रखे हुए रसीले लट्ठे पर आवरण ओढ़कर यह कहे कि मैं इससे आग जलाऊँगा। हे राजकुमार, क्या वह पानी से दूर सूखी ज़मीन पर रखे उस रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम, इसका कारण क्या है? वह रसीला लट्ठा, चाहे पानी से कितना भी दूर क्यों न हो, आवरण से रगड़ने पर भी आग नहीं जलाएगा और उस व्यक्ति को केवल थकान ही मिलेगी। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो संन्यासी और ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से अछूते नहीं रहते, उनकी आंतरिक कामुकता, कामुकता की आवश्यकता, कामुकता की सुस्ती, कामुकता की प्यास और कामुकता की जलन शांत नहीं हो पाती, जिससे उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध होता है और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है। भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ न हों, फिर भी यह संभव नहीं है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्राप्त कर सकें। यह दूसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी थी।

हे राजकुमार, मेरे मन में एक तीसरा उदाहरण आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर फेंके गए सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे पर आवरण लेकर आता है और कहता है, मैं इससे आग जलाऊंगा। हे राजकुमार, क्या वह पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? जी जी गौतम। इसका कारण क्या है? पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे को आवरण से रगड़ने पर आग लग जाती है। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो भी संन्यासी और ब्राह्मण शारीरिक रूप से इंद्रियों से विरक्त होकर रहते हैं, उनकी इंद्रिय-रुचि, इच्छा, सुस्ती, प्यास और कामुक ज्वालाएं आंतरिक रूप से अच्छी तरह से नियंत्रित हो जाती हैं, भले ही उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएं महसूस हों, फिर भी वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ महसूस न हों, फिर भी संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और महान आत्मज्ञान प्राप्त कर लें। यह तीसरी तुलना है जो मेरे मन में आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

राजकुमार, मेरे मन में यह विचार आया, क्या होगा यदि मैं ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाऊँ, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ? फिर, पसीने से तरबतर बगलों के बीच से भी, मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल को पकड़कर दबाता है और उसे परेशान करता है, ठीक उसी प्रकार मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ, जबकि पसीने से तरबतर बगलें बह रही थीं। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास करूँ? जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास किया, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा ने बहुत शोर किया। यह लोहार की धौंकनी से निकलने वाली ध्वनि के समान था। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोका, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा ने बहुत शोर किया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, अविचलित ध्यान स्थापित हुआ, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ? मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को रोकने का अभ्यास किया, तो बहुत सी हवा ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। ऐसा लगा जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज धार वाले ब्लेड से मेरे सिर को तराश रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को रोका, तो बहुत सी हवा ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान केंद्रित हुआ, लेकिन कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ? मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को और अधिक रोकने का प्रयास किया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को और अधिक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द महसूस हुआ... जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी के सिर पर मजबूत पगड़ी बाँध रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को और अधिक रोका, तो मुझे सिर में बहुत दर्द महसूस हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार जी, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। ऐसा लगा जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द कसाई के चाकू से पेट को काट रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोका, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

हे राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक किया, तो मुझे शरीर में तीव्र जलन का अनुभव हुआ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति को उसके हाथों और पैरों से पकड़कर जलते हुए कोयले के गड्ढे में जला रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक किया, तो मुझे शरीर में तीव्र जलन का अनुभव हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ। तब देवताओं ने मुझे इस प्रकार देखकर कहा, 'सन्यासी गौतम मर गए।' एक देवता ने कहा। 'सन्यासी गौतम मरे नहीं हैं। वे मरेंगे नहीं, बल्कि इसी रूप में बने रहेंगे, परिपूर्ण हो जाएंगे।'

राजकुमार, तभी मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं सभी प्रकार का भोजन त्याग दूं तो क्या होगा? देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे महाराज, ऐसा मत कीजिए, यदि आप ऐसा करेंगे तो हम आपकी त्वचा के छिद्रों के माध्यम से दिव्य शक्ति का संचार करेंगे और इस प्रकार आपका समर्थन करेंगे।' तब मेरे मन में यह विचार आया: यदि मैं सभी प्रकार के भोजन से परहेज करूं और ये देवता दिव्य शक्ति का संचार करें, तो मेरा यह कार्य छल होगा। अतः मैंने उन देवताओं को विदा कर दिया।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या होगा यदि मैं थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, बूंद-बूंद करके, हरी मूंग दाल, मटर, चना या मटर के सूप का सार ग्रहण करूँ? मैंने थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, हरी मूंग दाल, मटर, चना या मटर के सूप का सार ग्रहण किया। इस प्रकार भोजन करने से मेरा शरीर बहुत कमजोर हो गया। ऐसा लगा जैसे मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ या जीवन के अंत के करीब आ गया हूँ। मेरे अंग बड़े-छोटे हो गए थे। मेरी पीठ ऊँट के पैर जैसी थी, रीढ़ की हड्डी मुड़ने और फैलने पर मोतियों की माला जैसी हो जाती थी। मेरी पसलियाँ किसी जर्जर भवन की छत की कड़ियों जैसी थीं, जो कभी भी गिर सकती थीं। मेरी आँखें, जो आँखों के गड्ढों में धँसी हुई थीं, किसी गहरे कुएँ में जड़े दो तारों जैसी थीं। मेरे सिर की त्वचा किसी कच्चे, कड़वे अंकुश की तरह थी, जिसे धूप और गर्म हवा में सुखाया गया हो। अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरे अंग कभी बड़े तो कभी छोटे हो गए थे। जब मैं पेट की त्वचा को छूता था, तो रीढ़ की हड्डी पकड़ लेता था। मल-मूत्र त्यागते समय मैं मुंह के बल गिर जाता था। यदि मैं शरीर को शांत करने के लिए छूता था, तो शरीर के बाल जड़ से सड़ कर झड़ जाते थे। अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरा शरीर ऐसा हो गया था। मुझे देखकर लोग कहते थे, संन्यासी गौतम तो काले हैं। एक व्यक्ति ने कहा, वे काले नहीं बल्कि सांवले हैं। दूसरे व्यक्ति ने कहा, संन्यासी गौतम न तो काले हैं और न ही सांवले, बल्कि सुनहरे रंग के हैं। हे राजकुमार, अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरी शुद्ध त्वचा का रंग नष्ट हो गया।

हे राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि अतीत में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण ने तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव कीं, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं हुआ। भविष्य में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण को तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव हों, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं होगा। वर्तमान में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण को तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव हो रही हैं, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं हो रहा है। मुझे यह विचार आया: इन कठिन परिश्रमों से मुझे कोई श्रेष्ठ, विशिष्ट ज्ञान या मानवीय दृष्टि प्राप्त नहीं होगी। ज्ञान प्राप्ति का कोई और तरीका अवश्य होगा। तब हे राजकुमार, मुझे अपने पिता के खेत के पास गुलाब-खलिहान के पेड़ की छाया में हुआ अनुभव याद आया: कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विवेचनात्मक विचारों के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, मैंने प्रथम ध्यान अवस्था को कैसे प्राप्त किया। तब चेतना जागी कि यही ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है। मैंने सोचा, मुझे इस सुखद अनुभूति से क्यों डरना चाहिए, जो इंद्रिय सुख से अलग है और दोषों के विचारों से दूर है।

हे राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि इस दुर्बल शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है, यदि मैं कुछ सादा भोजन, कुछ पका हुआ चावल और रोटी खा लूँ तो क्या होगा? उस समय पाँचों भिक्षु मेरी सेवा में थे, यह सोचकर कि जो भी महान कार्य गौतम को प्राप्त होगा, वे हमें सूचित करेंगे। जब मैंने पका हुआ चावल और रोटी जैसा सादा भोजन ग्रहण किया, तो वे घृणापूर्वक चले गए, यह सोचकर कि गौतम ने परिश्रम त्याग दिया है और समृद्धि की ओर लौट गए हैं।

मैंने सादा भोजन करके और शक्ति प्राप्त करके, कामुक विचारों और अपगुणों से विरक्त होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश किया। विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एक बिंदु पर स्थिर करके, बिना विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर द्वितीय ध्यान में प्रवेश किया। आनंद और समभाव से, निर्वाह में सचेत और जागरूक होकर, और शरीर से भी सुख का अनुभव करते हुए, मैंने इस अवस्था में रहते हुए कहा, "सुख में सचेत रहकर, मैंने तृतीय ध्यान में प्रवेश किया।" सुख और दुख को दूर करके, और पहले ही सुख और दुख को दूर करके, बिना सुख और दुख से परिपूर्ण होकर, समभाव से शुद्ध होकर, मैंने चतुर्थ ध्यान में प्रवेश किया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर मन लगाया। मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, मुझे ऐसे सुख और दुख का अनुभव होता था और मेरी आयु ऐसी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख और दुख का अनुभव करते हुए, ऐसी आयु के साथ जन्म लेता हूँ, वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार, सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया। हे राजकुमार, यह वह पहला ज्ञान है जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ; अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो अज्ञान को दूर करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर मन को लगाया। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते देखा। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के सही दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा। हे राजकुमार, यह वह दूसरा ज्ञान है जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया, अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उद्भव हुआ, जैसा कि अज्ञान निवारण के लिए तत्पर रहने वालों के साथ होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित किया। मैं जानता था, यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यही अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वह वास्तव में है। मैं जानता था, ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्भव है, यह इच्छाओं का निवारण है और यही इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वह वास्तव में है। जब मैंने यह जाना और देखा, तब मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञान की इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर ज्ञान का उदय हुआ। मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, जो करना चाहिए वह हो गया है, पवित्र जीवन जीया जा रहा है, मैं जानता था, अब और कुछ भी चाहने के लिए नहीं है।

हे राजकुमार, मुझे यह विचार आया। यह शिक्षा जिसे मैंने अनुभव किया है, गहरी है, देखने और समझने में कठिन है, शांत और उदात्त है, तार्किक रूप से समझी नहीं जा सकती, चतुर है और बुद्धिमानों को ही समझनी चाहिए। स्थिर होने के शौकीन और स्थिर होने से आसक्त लोग इस कठिन बिंदु को नहीं देख पाते कि आश्रित उत्पत्ति इसी कारण से होती है। यह बिंदु भी देखना कठिन है, अर्थात् सभी नियतियों को शांत करना, सभी प्रेमों का त्याग करना, लालसा का नाश करना, वैराग्य, समाप्ति और अंत। यदि मैं इसे दूसरों को सिखाऊँ तो वे नहीं समझेंगे, और मुझे केवल परिश्रम ही मिलेगा। तभी मुझे यह अद्भुत श्लोक सूझा।

मैंने इसे बड़ी मुश्किल से हासिल किया है, तो मुझे इसका प्रचार क्यों करना चाहिए?

जो लोग लोभ और घृणा से ग्रस्त हैं, उनके लिए यह समझना कठिन है। चतुर और विपरीत दिशा में जाना गहरा और देखना मुश्किल है।

लालच में डूबे लोग इसे देख नहीं पाते, यह अंधकार के घने आवरण में लिपटा रहता है।

हे राजकुमार, जब मैंने इस पर विचार किया, तो मेरा मन निष्क्रियता की ओर झुका, उपदेश न देने की ओर। तब मेरे मन को जानने वाले ब्रह्म सहमपति के मन में यह विचार आया कि संसार लुप्त हो जाएगा, यह विलीन हो जाएगा, क्योंकि इस प्रकार विलीन हुए व्यक्ति ने निष्क्रियता और उपदेश न देने का निश्चय कर लिया है। तब ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे समक्ष प्रकट हुए, जैसे कोई

बलवान पुरुष अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है। ब्रह्म सहमपति ने शॉल को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान की ओर हाथ जोड़कर मुझसे विनती की, "भगवान उपदेश दें। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनमें थोड़े से दोष हैं, जो उपदेश न सुनने के कारण पतित हो जाएंगे। कुछ ऐसे भी होंगे जो उपदेश को समझेंगे।" ब्रह्म सहमपति ने आगे कहा।

अतीत में मगध में शिक्षा का उद्भव हुआ, जो अशुद्ध और दोषयुक्त थी। हे भगवान, इस शुद्ध शिक्षा का प्रचार करके अमरता का द्वार खोलें। जैसे कोई व्यक्ति किसी चट्टानी पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर चारों ओर की जनता को देखता है, हे ज्ञानी, यही उदाहरण है, चट्टान पर चढ़कर उपदेश दें। दुःख में डूबी जनता के दुःख को दूर करें, जन्म और मृत्यु के वश में उन्हें देखें। हे वीर, स्थिर होकर युद्ध जीतें, हे सारथी, संसार में ऋणमुक्त रहें। हे भगवान, उपदेश दें, समझने वाले अवश्य होंगे।

ब्रह्मा के आग्रह को सुनकर और प्राणियों पर दया करके, मैंने ज्ञानी दृष्टि से देखा और पाया कि कुछ प्राणी कम और कुछ अधिक दोषों से ग्रसित हैं, कुछ की बुद्धि तीव्र है और कुछ की दुर्बल, कुछ का स्वभाव अच्छा है और कुछ का दुर्बल, और कुछ परलोक से भयभीत हैं। जैसे नीले, लाल और सफेद कमलों के समूह में, कुछ जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर के नीचे खिलते हैं। कुछ अन्य जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर पर खिलते हैं, और कुछ अन्य जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर के ठीक ऊपर खिलते हैं। उसी प्रकार मैंने कम और कुछ अधिक दोषों से ग्रसित प्राणियों को देखा, कुछ की बुद्धि तीव्र है और कुछ की दुर्बल, कुछ का स्वभाव अच्छा है और कुछ का दुर्बल, और कुछ परलोक से भयभीत हैं। तब मैंने ब्रह्मा सहमपति को एक श्लोक का उत्तर दिया।

ब्रह्मा, मैंने अमरता के द्वार खोल दिए हैं।

जिनके कान हैं, वे विश्वास के द्वारा मुक्त हों। अभ्यास से हम ऐसे शब्द बोलेंगे जिनसे किसी को ठेस न पहुंचे।

और जनता को वह उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त होगी...

तब ब्रह्मा सहमपति ने यह जानकर कि मैंने उपदेश को सुनाना संभव बना दिया है, भगवान की पूजा की, परिक्रमा की और वहीं से विलीन हो गए।

तब मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं? तब मैंने सोचा कि अलारा कलामा बहुत बुद्धिमान हैं, लंबे समय से कम दोषों से ग्रस्त रहे हैं, यदि मैं उन्हें पहला प्रवचन दूं, तो वे इस शिक्षा को शीघ्र ही ग्रहण कर लेंगे। तब देवताओं ने मेरे पास आकर कहा, आदरणीय महोदय, उनका सात दिन पहले देहांत हो गया। ज्ञान ने मुझे यह बताया कि उनके देहांत को सात दिन हो गए हैं। तब मुझे यह विचार आया कि अलारा कलामा बुद्धिमान हैं, यदि उन्होंने यह शिक्षा सुनी होती, तो वे इसे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते। फिर मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं? उद्दक रामपुत्त बहुत बुद्धिमान हैं और लंबे समय से कम दोषों से ग्रस्त रहे हैं। यदि मैं उन्हें पहला प्रवचन दूं, तो वे इस शिक्षा को शीघ्र ही सीख लेंगे। तब देवताओं ने मेरे पास आकर कहा, 'आदरणीय महोदय, उनका कल रात देहांत हो गया।' तब ज्ञान ने मुझे यह बताया कि उनका कल रात देहांत हो गया। फिर मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं और कौन इस शिक्षा को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगा। तब मुझे यह बात याद आई कि ये पंचांग भिक्षु मेरे लिए बहुत सहायक थे, इन्होंने मेरी सेवा तब तक की जब तक मैंने दृढ़तापूर्वक प्रयास करना नहीं छोड़ दिया। तब मुझे यह विचार आया कि ये पंचांग भिक्षु इस समय कहाँ रह रहे हैं, तब मैंने अपनी पवित्र दिव्य दृष्टि से उन्हें बनारस के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में निवास करते हुए देखा। उरुवेला में अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय बिताने के बाद, मैं धीरे-धीरे बनारस के लिए रवाना हो गया।

रास्ते में गया और बोधि वृक्ष के बीच मेरी मुलाकात घुमंतू तपस्वी उपका से हुई और उन्होंने कहा, "मित्र, तुम्हारी बुद्धि शुद्ध है और तुम्हारा रंग भी शुद्ध है, तुम किसके मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हो, तुम्हारे गुरु कौन हैं और किसकी शिक्षा तुम्हें भाती है?" मैंने उन्हें इस श्लोक से उत्तर दिया।

मैंने हर चीज पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब कुछ जानता हूं, मैं किसी भी चीज से कलंकित नहीं हूं।

सब कुछ त्यागकर, भोग-विलास के नाश से मैं मुक्त हो गया, मैंने स्वयं ही यह जान लिया कि मेरा कोई गुरु नहीं है। देवताओं और मनुष्यों में मेरा कोई सानी नहीं। इस संसार में परिपूर्ण, मैं ही अतुलनीय गुरु हूँ। मैंने सही मायने में ज्ञान प्राप्त कर लिया है, मैं शांत और निर्मल हो गया हूँ। मैं काशी नगर जा रहा हूँ, ताकि शिक्षा का चक्र चला सकूँ। यह अंधभक्त संसार को अमरता का ढोल सुनाने के लिए है। मित्र, जैसा कि तुम स्वीकार करते हो, ऐसा लगता है कि तुम ही संसार के विजेता हो।

उपका, मेरी सारी कमियां दूर हो गई हैं, इसलिए मैं विजेता हूं।

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी उपका ने अपना सिर हिलाया और कहा, मित्र, ऐसा हो सकता है, और फिर वह एक अलग मार्ग अपनाकर चला गया।

फिर भिक्षुओं, मैं बनारस, इसिपताना और हिरण पार्क में बारी-बारी से आते हुए पंच भिक्षुओं के पास पहुँचा। दूर से मुझे आते देख वे आपस में बैठ गए। उन्होंने कहा, "ये वही संन्यासी गौतम हैं जिन्होंने कर्म त्याग कर सुखमय जीवन व्यतीत किया है। हमें उनकी पूजा या सेवा नहीं करनी चाहिए, न ही उनका पान-पात्र ग्रहण करना चाहिए। मैं उनके लिए आसन तैयार करूँगा, यदि वे चाहें तो बैठ सकते हैं।" भिक्षुओं, जैसे-जैसे मैं उनके पास पहुँचता गया, पंच भिक्षु अपनी जगह पर नहीं रह सके। एक ने पान-पात्र ग्रहण करने के लिए आगे बढ़ा, एक ने आसन तैयार किया, एक ने पैर धोने के लिए जल रखा, फिर भी वे मुझे नाम से पुकारते रहे। तब मैंने पंच भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, तथागत को नाम से या मित्र कहकर न पुकारें। तथागत पूर्ण और सत्यतः प्रबुद्ध हैं। भिक्षुओं, अमरत्व प्राप्त करने के लिए सुनो। मैं सलाह देता हूँ।" जो लोग दी गई सलाह के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुलवंशी पुत्र गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन जाते हैं, और वे यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और वहीं स्थिर रहते हैं।' यह सुनकर पंच भिक्षुओं ने कहा: 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन परिश्रम से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की, अब उस परिश्रम को त्यागकर आपने कौन सा मनुष्य से परे विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है?' 'भिक्षुओं, तथागत सिद्ध पुरुष पूर्ण हैं, सही मायने में प्रबुद्ध हैं, ध्यान से सुनो, मैं अमरता प्राप्त करने का उपदेश देता हूँ। जो लोग दी गई सलाह के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुलवंशी पुत्र गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन जाते हैं, और वे यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और वहीं स्थिर रहते हैं।' दूसरी बार पंच भिक्षुओं ने मुझसे कहा: 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन परिश्रम से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की। अब, उस प्रयास को त्यागकर और समृद्धि प्राप्त करके, आपने कौन सा विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है जो मनुष्य से परे है?' तीसरी बार पंच भिक्षुओं ने इस प्रकार कहा। 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन प्रयास से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की। अब, उस प्रयास को त्यागकर और समृद्धि प्राप्त करके, आपने कौन सा विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है जो मनुष्य से परे है?' यह सुनकर, मैंने पंच भिक्षुओं से पूछा, 'क्या आप मुझे पहले भी इस प्रकार बोलते हुए जानते हैं?' उन्होंने कहा। 'नहीं, आदरणीय।' मैंने कहा। 'भिक्षुओं, तथागत पूर्ण हैं, सही मायने में प्रबुद्ध हैं, ध्यान से सुनो, मैं अमरता प्राप्त करने का उपदेश देता हूँ। जो लोग दिए गए उपदेश के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाएँ, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को आप यहीं और अभी प्राप्त कर लेते हैं और उसमें स्थिर रहते हैं।' 'भिक्षुओं, मैं पंच भिक्षुओं को समझाने में सफल रहा।' फिर मैं दो भिक्षुओं को सलाह देता, और तीन भिक्षु भिक्षा मांगने चले जाते।तीन भिक्षुओं द्वारा लाए गए धन में से प्रत्येक का एक छठा हिस्सा उनके भरण-पोषण में सहायक होता है। मैं कभी-कभी तीन भिक्षुओं को उपदेश देता हूँ, और दो भिक्षु भिक्षा मांगने जाते हैं; लाए गए धन में से प्रत्येक का एक छठा हिस्सा उनके भरण-पोषण में सहायक होता है। हे राजकुमार, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और सलाह दिए जाने पर, पंचांग भिक्षु शीघ्र ही ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर, पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को यहीं और अभी प्राप्त कर लेते हैं।

यह सुनकर राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "तथान्गित भगवान बुद्ध भिक्षुओं को पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कब तक प्रशिक्षण देते हैं?"

तब भगवान बुद्ध ने कहा, "मैं इस विषय पर तुमसे प्रश्न पूछूंगा और तुम्हारी इच्छा अनुसार उत्तर दूंगा। 'राजकुमार, क्या तुम हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हो?' 'जी जी, मैं हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हूं।' 'एक व्यक्ति आता है और कहता है कि राजकुमार बोधिराज हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हैं। मैं राजकुमार से हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने की कला सीखूंगा। उसमें आस्था नहीं है और जो कुछ आस्था से प्राप्त किया जा सकता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। उसे अनेक रोग हैं और जो कुछ कम रोगों वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह धूर्त और कपटी है और जो कुछ धूर्त और कपटी न होने वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह आलसी है और जो कुछ जागृत प्रयास से प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह बुद्धिहीन है और जो कुछ बुद्धिमान व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। राजकुमार, क्या तुम उस व्यक्ति से हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने की कला सीखना चाहोगे?'

'आदरणीय महोदय, इनमें से एक गुण वाला व्यक्ति हाथी की सवारी या हाथी के कांटे को संभालने की कला नहीं सीख सकता। तो पांच गुणों के साथ वह इसे कैसे सीख सकता है?'

'राजकुमार, एक व्यक्ति आकर कहता है, 'राजकुमार बोधिराज हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हैं। मैं राजकुमार से हाथी की सवारी और हाथी को हांकने की कला सीखूंगा।' वह आस्थावान है, और आस्था से जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह कम रोगों से ग्रसित है, और कम रोगों से ग्रसित व्यक्ति को जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह न तो धूर्त है और न ही कपटी, और जो न धूर्त और न कपटी होता है, उसे जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह आलसी नहीं है, और जो कुछ सजग प्रयास से प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह बुद्धिमान है, और जो कुछ बुद्धिमान को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। राजकुमार, आपका क्या विचार है, क्या वह व्यक्ति हाथी की सवारी और हाथी को हांकने की कला सीखेगा?

'आदरणीय महोदय, जिस व्यक्ति में इनमें से एक भी गुण हो, वह हाथी की सवारी और हाथी के कांटे को संभालने की कला सीख लेगा; यदि उसमें पांच गुण हों, तो इस बारे में कोई संदेह ही नहीं रहेगा।'

'इसी प्रकार, हे राजकुमार, इन पाँच कारकों पर दृढ़ रहते हुए प्रयास किया जाता है। वे पाँच कौन से हैं? यहाँ भिक्षु तथागत के ज्ञान के प्रति आस्था रखता है: वह धन्य पुरुष परिपूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसारों का ज्ञाता, वश में किए जाने वालों का अद्वितीय प्रवर्तक, देवताओं और मनुष्यों का गुरु, प्रबुद्ध और धन्य है। उसे कम रोग और कम विकार हैं, उसका पाचन तंत्र सुचारु है, न अधिक शीतलता है और न अधिक गर्मी। वह धूर्त और कपटी नहीं है, पवित्र जीवन में गुरु या ज्ञानवान सहचरों के समक्ष अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है। दोष को दूर करने और पुण्य संचय करने के लिए निरंतर प्रयास करता है। पुण्य के लिए बंधनों का त्याग न करते हुए दृढ़ रहता है।' (* पांचों देहों के उत्थान और पतन की गहरी समझ रखने वाले, श्रेष्ठ व्यक्तियों से संपन्न होकर, अप्रियता के उचित नाश के लिए ज्ञान प्राप्त होता है। हे राजकुमार, ये वे पांच कारक हैं जिन पर प्रयास आधारित है। हे राजकुमार, इन पांच कारकों से संपन्न भिक्षु, जो तथागत से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने के लिए प्रस्थान करें, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को वह यहीं और अभी, जानकर, अनुभव करके, सात वर्षों में प्राप्त कर लेंगे। सात वर्ष तो छोड़िए, छह वर्ष, पांच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष भी। हे राजकुमार, एक वर्ष तो छोड़िए, इन पांच कारकों से संपन्न भिक्षु, जो तथागत से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने के लिए प्रस्थान करें, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को वह यहीं और अभी, जानकर, अनुभव करके, सात महीनों में प्राप्त कर लेंगे। सात महीने तो छोड़िए, छह महीने, पांच महीने, चार महीने, तीन महीने, दो महीने, एक महीना भी। हे राजकुमार, एक महीने तो छोड़िए, इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु, जो पश्चात्तापी से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुलवंशी पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने का निश्चय करें, वे पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को यहीं, जानकर और अनुभव करके सात रातों और दिनों में प्राप्त कर लेंगे। सात रातों और दिनों, छह रातों और दिनों, पांच रातों और दिनों, चार रातों और दिनों, तीन रातों और दिनों, दो रातों और दिनों, एक रात और दिन की तो बात ही छोड़िए। इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु, जो सुबह पश्चात्तापी से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुलवंशी पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने का निश्चय करें, वे पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को यहीं, जानकर और अनुभव करके शाम तक प्राप्त कर लेंगे, या शाम को सलाह मिलने पर अगली सुबह तक प्राप्त कर लेंगे।

यह सुनकर राजकुमार बोधिराज ने भगवान से कहा, 'हे! ज्ञान की श्रेष्ठता! सुस्पष्ट उपदेश की श्रेष्ठता! संध्या में दिया गया ज्ञान सुबह प्राप्त हो जाता है और सुबह दिया गया ज्ञान शाम को प्राप्त हो जाता है।'

यह सुनकर युवक संजिकापुत्त ने राजकुमार बोधिराज से कहा, "हे भगवान, अच्छे बोधिराज कहते हैं, हे ज्ञान की श्रेष्ठता और सुस्पष्ट उपदेश की श्रेष्ठता, पर यह नहीं कहते कि मैं अच्छे गौतम की शरण लेता हूँ, उपदेश में और भिक्षुओं के समुदाय में।" "मित्र, संजिकापुत्त, ऐसा मत कहो, मैंने अपनी माता से सुना है और इसे स्वीकार करता हूँ। जब मैं उनके गर्भ में था, तब वे भगवान के पास गईं, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और कहा, 'आदरणीय महोदय, मेरे गर्भ में पल रहा यह बालक या कन्या भगवान की शरण लेता है, उपदेश में और भिक्षुओं के समुदाय में। भगवान मुझे जीवन के अंत तक शरण लिए हुए याद रखें।' एक समय भगवान भग्गा देश में सुनसुमारा पहाड़ियों के बीच भेषकला वन में इसी हिरण उद्यान में रह रहे थे, तब मेरी धाय माँ मुझे अपनी गोद में लेकर भगवान के पास गईं।" उन्होंने भगवान बुद्ध की आराधना की और कहा, हे पूज्यवर, ये राजकुमार बोधिराज हैं और भगवान बुद्ध की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेते हैं। उन्होंने आगे कहा, हे पूज्यवर, आज से जीवन भर राजकुमार बोधिराज को गृहस्थ शिष्य के रूप में याद रखें। मित्र संजिकापुत्त, मैं अब जीवन भर के लिए तीसरी बार भगवान बुद्ध की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 9.6 अंगुलिमाल सुत्त(86)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय राजा पसेनादि के राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू था: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता था। उसने गांवों को वीरान और कस्बों को बेघर कर दिया था, और ग्रामीण इलाकों को उजाड़ दिया था। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों (अंगुली) से बनी माला पहनता था।

फिर भगवान बुद्ध सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण करके और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करके वे अपने आवास को व्यवस्थित करने लगे। फिर अपने वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर वे उस मार्ग पर चल पड़े जहाँ अंगुलिमाला ठहरी हुई थीं। चरवाहों, गड़रियों और किसानों ने उन्हें अंगुलिमाला के निवास स्थान की ओर जाने वाले मार्ग पर जाते देखा और उन्हें देखकर कहा, “हे ध्यानमग्न, उस मार्ग पर मत जाओ, क्योंकि उस मार्ग पर अंगुलिमाला है: क्रूर, रक्तरंजित हाथों वाला, हत्या और वध में लिप्त, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को निर्जन, कस्बों को निर्जन, बसे हुए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ बना दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों की माला पहनता है। दस, बीस, तीस और चालीस पुरुषों के समूह उस मार्ग से गए हैं, और वे भी अंगुलिमाला के हाथों मारे गए हैं।” यह सुनकर भगवान चुपचाप आगे बढ़ते रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, ग्वालों, चरवाहों और किसानों ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे ध्यानमग्न, उस मार्ग पर मत जाओ... दस, बीस, तीस और चालीस पुरुषों के समूह उस मार्ग पर गए हैं, और वे भी अंगुलिमाला के हाथों मारे गए हैं।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन ही आगे बढ़ते रहे।

फिर अंगुलिमाला ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और उन्हें देखकर उनके मन में यह विचार आया: “यह कितना अद्भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! दस, बीस, तीस और चालीस लोगों के समूह इस मार्ग से गए हैं और वे भी मेरे हाथों मारे गए हैं, और अब यह ध्यानमग्न व्यक्ति मानो अकेले ही आक्रमण कर रहा है, बिना किसी साथी के। मैं इसे क्यों न मार डालूँ?” इसलिए अंगुलिमाला ने अपनी तलवार और ढाल उठाई, धनुष और तरकश बांधा और भगवान बुद्ध के ठीक पीछे चल पड़े।

तब भगवान बुद्ध ने ऐसी मानसिक शक्ति का प्रदर्शन किया कि अंगुलिमाला अपनी पूरी ताकत से दौड़ने के बावजूद भी सामान्य गति से चल रहे भगवान बुद्ध को पकड़ नहीं सका। तब अंगुलिमाला के मन में यह विचार आया: "यह कितना अद्भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! अतीत में मैंने तेज दौड़ने वाले हाथी, तेज दौड़ने वाले घोड़े, तेज दौड़ने वाले रथ, तेज दौड़ने वाले हिरण का भी पीछा किया और उन्हें पकड़ लिया। लेकिन अब, अपनी पूरी ताकत से दौड़ने के बावजूद भी मैं सामान्य गति से चल रहे इस ध्यानमग्न व्यक्ति को पकड़ नहीं पा रहा हूँ।" इसलिए वह रुक गया और भगवान बुद्ध को पुकारा, "रुको, ध्यानमग्न! रुको!"

"मैं रुक गया हूँ, अंगुलिमाला। तुम भी रुक जाओ।"

तब अंगुलिमाला के मन में यह विचार आया, "ये शाक्य साधक सत्य के वक्ता हैं, सत्यों के प्रतिपादक हैं, और फिर भी यह साधक चलते-चलते कहता है, 'मैं रुक गया हूँ, अंगुलिमाला। तुम भी रुक जाओ।' मैं उससे प्रश्न क्यों न करूँ?"

अत: अंगुलिमाला नामक डाकू ने भगवान बुद्ध से यह श्लोक कहा:

चलते समय, चिंतनशील अवस्था में,

आप कहते हैं, 'मैंने रुकना शुरू कर दिया है।' लेकिन जब मैं रुक जाता हूँ, तो आप कहते हैं कि मैंने नहीं रुका है। मैं आपसे इसका अर्थ पूछता हूँ: आपने कैसे रुकना शुरू किया है?

मैंने ऐसा क्यों नहीं किया?

[बुद्ध:]

"अंगुलिमाला, मैंने सभी प्राणियों के प्रति हिंसा का त्याग कर हमेशा के लिए हिंसा करना बंद कर दिया है। लेकिन तुम प्राणियों के प्रति अनियंत्रित हो। इसी कारण मैंने हिंसा करना बंद कर दिया है।"

और आपने ऐसा नहीं किया है।"

[अंगुलिमाला:]

अंततः मेरे लिए एक अत्यंत पूजनीय संत इस महान वन में आए हैं। धम्म के अनुरूप आपके श्लोक को सुनकर, मैं आगे बढ़ूंगा।

बुराई का त्याग करके।"

ऐसा कहते हुए, डाकू

उसने अपनी तलवार और हथियार एक चट्टान से नीचे खाई में फेंक दिए। फिर उस डाकू ने परम पूज्य के चरणों में नमन किया और वहीं पर मोक्ष की प्रार्थना की।

ज्ञानी पुरुष, करुणामयी महान ऋषि, संसार के गुरु और देवताओं के गुरु ने तब उनसे कहा: "आओ, भिक्षु।" यही उनके लिए भिक्षुत्व था।

तब भगवान बुद्ध आदरणीय अंगुलिमाला को अपने सहायक भिक्षु के रूप में साथ लेकर श्रावस्ती की ओर प्रस्थान कर गए। कई पड़ावों पर भटकते हुए वे श्रावस्ती पहुँचे और वहाँ श्रावस्ती के निकट जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में निवास करने लगे।

उस समय राजा पसेनादि कोसला के महल के द्वार पर लोगों की एक बड़ी भीड़ जमा हो गई थी, जो शोर मचाते हुए पुकार रही थी, “हे महाराज, आपके राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू है: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को वीरान, कस्बों को बेघर और बसे-बसाए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ बना दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण वह उंगलियों की माला पहनता है। राजा को उसे कुचल देना चाहिए!”

तब राजा पसेनादि कोसल लगभग 500 घुड़सवारों की सेना के साथ सावत्थी से निकले और मठ में प्रवेश किया। जहाँ तक रथों के लिए मार्ग संभव था, वहाँ तक रथ चलाते हुए वे अपने रथ से उतरे और भगवान बुद्ध के पास पैदल चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “हे महाराज, क्या बात है? क्या मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने आपको उकसाया है, या वैशाली के लिच्छवियों ने या किसी अन्य शत्रु राजा ने?”

"नहीं, महाराज। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने मुझे उकसाया नहीं है, न ही वैशाली के लिच्छवियों ने, न ही किसी अन्य शत्रु राजा ने। मेरे राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू है, महाराज: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को गैर-गांव, कस्बों को गैर-कस्बे, बसे हुए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों की माला पहनता है। मैं उसे कुचल दूंगा।"

"हे महाराज, मान लीजिए कि आप अंगुलिमाला को अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाए हुए, गेरुए वस्त्र पहने हुए, गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हुए, जीवित प्राणियों की हत्या न करते हुए, बिना दी हुई वस्तु न लेते हुए, झूठ न बोलते हुए, दिन में एक बार भोजन करके पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए, गुणी और उत्तम चरित्र वाले व्यक्ति के रूप में देखते हैं: तो आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?"

"हे भगवान, हम उनके सामने सिर झुकाते, या उनका अभिवादन करने के लिए उठते, या उन्हें आसन देते, या उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास या रोग निवारण हेतु औषधियाँ भेंट करते; या हम उनकी विधिवत रक्षा, सुरक्षा और बचाव की व्यवस्था करते। परन्तु एक दुष्ट, बुरे चरित्र में ऐसा सद्‌गुण और संयम कैसे हो सकता है?"

उस समय पूज्य अंगुलिमाला भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर बैठे थे। तब भगवान बुद्ध ने अपने दाहिने हाथ से इशारा करते हुए राजा पसेनादि कोसल से कहा, "हे महाराज, वह अंगुलिमाला हैं।" यह सुनकर राजा पसेनादि कोसल भयभीत हो गए, उनके रोंगटे खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने राजा के भय और भय को भांपते हुए उनसे कहा, "हे महाराज, भयभीत न हों। भयभीत न हों। उनसे आपको कोई खतरा नहीं है।"

तब राजा का भय, उसका आतंक, उसके रोंगटे खड़े हो जाना शांत हो गया। वह पूज्य अंगुलिमाला के पास गया और बोला, "क्या आप सचमुच अंगुलिमाला हैं, स्वामी?"

"जी हां, महान राजा।"

"तुम्हारे पिता का कुल क्या है? तुम्हारी माता का कुल क्या है?"

"मेरे पिता एक गग्गा हैं, एक महान राजा, और मेरी माँ एक मंतानी हैं।"

"तो भगवान गग्गा मंतानिपुत्त को यहाँ रहने में प्रसन्नता हो। मैं आपके वस्त्र, भिक्षा, आवास और रोगों के उपचार के लिए आवश्यक औषधियों की व्यवस्था करूँगा।"

उस समय ऐसा हुआ कि पूज्य अंगुलिमाला एक वनवास में रहने वाले, भिक्षा मांगने वाले व्यक्ति थे, जो पुराने वस्त्रों से बने तीन वस्त्रों का एक सेट धारण किए हुए थे। उन्होंने राजा पसेनादि कोसल से कहा, "हे महाराज, बस करो। मेरा तीन वस्त्रों का सेट पूरा हो गया है।"

अतः राजा पसेनादि कोसला भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, यह अद्‌भुत है। यह आश्चर्यजनक है कि भगवान बुद्ध ने अनियंत्रित को वश में किया, अशांत को शांत किया और जो बंधन में बंधे नहीं थे उन्हें मुक्त किया। जिसे हम कुंद या धारदार हथियारों से भी वश में नहीं कर सके, उसे भगवान बुद्ध ने बिना कुंद या धारदार हथियारों के वश में कर लिया। अब, हे भगवान, हमें जाना होगा। हमारे कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ बहुत हैं।"

"तो फिर, हे महान राजा, वही करो जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

फिर पूज्य अंगुलिमाला सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हुए उन्होंने एक स्त्री को प्रसव पीड़ा से पीड़ित देखा। उसे देखकर उनके मन में यह विचार आया, "जीव कितने कष्ट सहते हैं! जीव कितने कष्ट सहते हैं!" फिर सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके वे भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अभी सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर मैं सावत्थी में भिक्षा मांगने गया था। घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हुए मैंने एक स्त्री को प्रसव पीड़ा से पीड़ित देखा। उसे देखकर मेरे मन में यह विचार आया, 'जीव कितने कष्ट सहते हैं! जीव कितने कष्ट सहते हैं!'"

"ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला, उस स्त्री के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर उससे कहो, 'बहन, जन्म से लेकर अब तक मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीवित प्राणी की हत्या की हो। इस सत्य के माध्यम से तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ शिशु का कल्याण हो।'"

लेकिन, हे भगवान, क्या यह मेरे लिए झूठ नहीं होगा? क्योंकि मैंने जानबूझकर कई जीवित प्राणियों को मारा है।

"तो फिर, अंगुलिमाला, उस स्त्री के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर उससे कहो, 'बहन, क्योंकि मैं उच्च कुल में जन्मी हूँ, मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीव की हत्या की हो। इस सत्य के द्वारा तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हो।'"2

भगवान बुद्ध को उत्तर देते हुए, “जैसा आप कहें, भगवान,” अंगुलिमाला उस स्त्री के पास गए और वहाँ पहुँचकर उससे कहा, “बहन, क्योंकि मैं उच्च कुल में जन्मा हूँ, मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीव की हत्या की हो। इससे तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हो।” और उस स्त्री और उसके गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हुआ।

तब पूज्य अंगुलिमाला, एकांतवास में रहकर, एकाग्र, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, अल्पकाल में ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर उसमें स्थिर हो गए, जिसके लिए कुलवासी जन्म-मृत्यु के मार्ग पर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने स्वयं इस अनुभव को वर्तमान क्षण में ही जान लिया था। उन्होंने जाना: "जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य संपन्न हो गया। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।" इस प्रकार पूज्य अंगुलिमाला भी अरहंतों में से एक बन गए।

तब पूज्य अंगुलिमाला सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। उसी समय एक व्यक्ति द्वारा फेंका गया मिट्टी का ढेला पूज्य अंगुलिमाला के शरीर पर लगा, दूसरे व्यक्ति द्वारा फेंका गया पत्थर उनके शरीर पर लगा और तीसरे व्यक्ति द्वारा फेंका गया मिट्टी का टुकड़ा भी उनके शरीर पर लगा। इस प्रकार पूज्य अंगुलिमाला - जिनका सिर फट गया था और खून बह रहा था, उनका भिक्षापात्र टूट गया था और उनका बाहरी वस्त्र टुकड़े-टुकड़े हो गया था - भगवान बुद्ध के पास गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखकर कहा: "सहन करो, ब्राह्मण! सहन करो! उस कर्म का फल जो तुम्हें कई वर्षों, कई सौ वर्षों, कई हजारों वर्षों तक नरक में जलाता, तुम अभी इसी क्षण भोग रहे हो!" 3

तब पूज्य अंगुलिमाला एकांतवास में जाकर मुक्ति के आनंद का अनुभव किया। उस समय उन्होंने कहा:

जो कभी लापरवाह था,

लेकिन बाद में ऐसा नहीं होता, यह बादलों से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

उसके बुरे कर्म5 की जगह कुशलता ने ले ली है: वह दुनिया को ऐसे रोशन करता है जैसे बादल से मुक्त हुआ चाँद।

जो भी युवा भिक्षु स्वयं को बुद्ध के आदेशों के प्रति समर्पित करता है, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह संसार को प्रकाशित करता है।

मेरे शत्रु भी धम्म के बारे में सुनें। मेरे शत्रु भी बुद्ध के उपदेशों का पालन करें। मेरे शत्रु भी उन लोगों के साथ संगति करें जो शांतिप्रिय और अच्छे हैं और दूसरों को धम्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं। मेरे शत्रु भी उन लोगों से बार-बार धम्म के बारे में सुनें जो धीरज और सहनशीलता का उपदेश देते हैं, जो अहिंसा की प्रशंसा करते हैं, और वे इसका अनुसरण करें।

वह निश्चित रूप से मुझे नुकसान नहीं पहुंचाएगा।

या किसी और की; वह सर्वोच्च शांति प्राप्त करेगा, कमजोरों और दृढ़ लोगों की रक्षा करेगा।

सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं।6 तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। बुद्धिमान लोग स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।

कुछ लोग कुंद छड़ी, हुक और चाबुक से वश में करते हैं, लेकिन मुझे कुंद या धारदार हथियारों के बिना उस एक ने वश में किया जो ऐसा ही है।

मेरा नाम "किसी को हानि न पहुँचाने वाला" है।

लेकिन मैं पहले दूसरों को हानि पहुँचाने वाला था। आज मैं अपने नाम के अनुरूप हूँ, क्योंकि मैं किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता।

मैं अंगुलिमाला के नाम से मशहूर एक डाकू हुआ करता था। एक भीषण बाढ़ में बहकर मैं बुद्ध की शरण में गया।

मैं कभी अंगुलिमाला के नाम से कुख्यात, खूनी हाथों वाला था। देखो, मैं शरण लेने जा रहा हूँ! जड़ से उखड़ जाना ही [लालसा] है, बनने का मार्ग।

मैंने ऐसे कर्म किए हैं जिनसे अनेक बुरे परिणाम निकलते हैं, फिर भी उस कर्म के फल से अछूता रहकर, ऋणी न होकर, मैं अपना भोजन करता हूँ।

वे लापरवाही के आदी हैं।

मंदबुद्धि, मूर्ख लोग - जबकि बुद्धिमान व्यक्ति सावधानी को अपना सर्वोच्च धन मानता है।

लापरवाही को हावी न होने दें

या फिर ध्यान में लीन, सजग व्यक्ति के लिए, इंद्रिय सुख के साथ घनिष्ठता की ओर।

उसे असीम आनंद की प्राप्ति होती है।

यह अच्छी तरह से शुरू हुआ है और अभी तक गया नहीं है।

मेरे लिए इस पर बुरी तरह से विचार नहीं किया गया था। अच्छी तरह से विश्लेषित गुणों में से, मैंने प्राप्त किया है।

सर्वश्रेष्ठ।

यह सब ठीक रहा और व्यर्थ नहीं गया, मेरे लिए इस पर बुरी तरह से विचार नहीं किया गया था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो चुके हैं; बुद्ध की आज्ञा का पालन किया गया है।

हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.7 पियाजातिका सुत्त(87)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय एक गृहस्थ के प्रिय और लाडले बेटे, जो उसका इकलौता बच्चा था, की मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के कारण पिता को काम करने और खाने की इच्छा नहीं रही। वह बार-बार श्मशान जाकर रोते हुए कहता, "मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए?"

फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, तुम्हारी बुद्धि स्थिर मन वाले व्यक्ति की बुद्धि के समान नहीं है। तुम्हारी बुद्धि में कुछ विकार है।"

हे भगवान, मेरी इंद्रियों में कोई गड़बड़ी कैसे न हो? मेरा प्रिय और लाडला छोटा बेटा, मेरा इकलौता बच्चा, मर गया है। उसकी मृत्यु के कारण, मुझे काम करने या खाने की कोई इच्छा नहीं है। मैं बार-बार कब्रिस्तान जाती हूँ और रोते हुए कहती हूँ, 'मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए?'"

"यही सत्य है, गृहस्थ। यही सत्य है—क्योंकि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।"

"पर हे भगवान, भला कौन सोचेगा कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से आते हैं? सुख और आनंद तो किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से ही आते हैं।" अतः गृहस्थ भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न न होकर, उन्हें अस्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठकर चला गया।

उस समय बड़ी संख्या में जुआरी भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर जुआ खेल रहे थे। इसलिए गृहस्थ उनके पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "हे आदरणीय महोदय, अभी-अभी मैं ध्यानमग्न गौतम के पास गया था और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। जब मैं वहाँ बैठा था, तब ध्यानमग्न गौतम ने मुझसे कहा, 'गृहस्थ, तुम्हारी इंद्रियाँ स्थिर मन वाले व्यक्ति की इंद्रियों जैसी नहीं हैं। तुम्हारी इंद्रियों में कुछ गड़बड़ी है।'"

जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे कहा, 'हे भगवान, मेरी इंद्रियों में कोई गड़बड़ी कैसे न हो? मेरा प्रिय और लाडला छोटा बेटा, मेरा इकलौता बच्चा, मर गया है। उसकी मृत्यु के कारण, मुझे काम करने या खाने की कोई इच्छा नहीं है। मैं बार-बार कब्रिस्तान जाकर रोती रहती हूँ, "मेरे इकलौते छोटे बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते छोटे बच्चे, तुम कहाँ चले गए?"'

"'यही सत्य है, गृहस्थ। यही सत्य है—क्योंकि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"पर हे भगवान, भला कौन सोचेगा कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से निकलते हैं? सुख और आनंद तो किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से निकलते हैं।" अतः गौतम गौतम के इन शब्दों से प्रसन्न न होकर, उन्हें अस्वीकार करते हुए, मैं अपने आसन से उठकर चला गया।

"यही बात है, गृहस्थ [जुआरियों ने कहा]। यही बात है। सुख और आनंद प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही आते हैं।"

इसलिए गृहस्वामी यह सोचते हुए चला गया, "मैं जुआरियों से सहमत हूँ।"

अंततः, इस बातचीत की खबर राजा के भीतरी कक्षों तक पहुँच गई। तब राजा पसेनादि कोसला ने रानी मल्लिका को संबोधित करते हुए कहा, "मल्लिका, आपके चिंतनशील गुरु गौतम ने यह कहा है: 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं।'"

"अगर यह बात भगवान ने कही है, हे महान राजा, तो यही सच है।"

"गौतम ध्यानमग्न चाहे कुछ भी कहें, मल्लिका उसका समर्थन करती हैं: 'हे महाराज, यदि यह बात भगवान बुद्ध ने कही है, तो यही सत्य है।' ठीक वैसे ही, जैसे शिष्य अपने गुरु की बात माने बिना उसका समर्थन करते हैं: 'हे गुरु, यही सत्य है।' ठीक उसी प्रकार, गौतम ध्यानमग्न चाहे कुछ भी कहें, मल्लिका उसका समर्थन करती हैं: 'हे भगवान बुद्ध ने बात मानी है, तो यही सत्य है।' मल्लिका, दूर हो जाओ! मेरी दृष्टि से ओझल हो जाओ!"

तब रानी मल्लिका ने ब्राह्मण नलिजंग को बुलाया और कहा, "हे ब्राह्मण, आओ। भगवान बुद्ध के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करो और पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। यह कहते हुए: 'हे भगवान, रानी मल्लिका आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती हैं और पूछती हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' फिर कहो: 'हे भगवान, क्या भगवान बुद्ध ने कहा है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं?' भगवान बुद्ध जो कुछ भी कहें, उसे अच्छी तरह याद रखो और मुझे बताओ। क्योंकि तथागत असत्य नहीं बोलते।"

"जी महोदया," ब्राह्मण नलिजंग ने रानी मल्लिका को उत्तर दिया। भगवान बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम बुद्ध, रानी मल्लिका आपके चरणों में सिर झुकाकर आपसे पूछती हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। आगे वे कहती हैं, 'हे भगवान, क्या भगवान बुद्ध ने कहा है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं?'"

"यही सत्य है, ब्राह्मण। यही सत्य है। दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, उन्हीं से उत्पन्न होते हैं। और घटनाओं के इसी क्रम से यह समझा जा सकता है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही कैसे उत्पन्न होते हैं, उन्हीं से उत्पन्न होते हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक स्त्री थी जिसकी माता का निधन हो गया था। माता की मृत्यु के कारण वह पागल हो गई, उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती हुई कहती, 'क्या तुमने मेरी माँ को देखा है? क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा किसी प्रियजन से जन्म लेती हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होती हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक स्त्री रहती थी जिसके पिता की मृत्यु हो गई... भाई की मृत्यु हो गई... बहन की मृत्यु हो गई... पुत्र की मृत्यु हो गई... पुत्री की मृत्यु हो गई... पति की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गई, उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती हुई कहती, 'क्या तुमने मेरे पति को देखा है? क्या तुमने मेरे पति को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा किसी प्रियजन की मृत्यु से जन्म लेती हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होती हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक आदमी था जिसकी माँ का निधन हो गया था। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गया, उसका दिमाग खराब हो गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकता हुआ कहता, 'क्या तुमने मेरी माँ को देखा है? क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रियजन से जन्म लेते हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होते हैं।"

"इसी श्रावस्ती में एक आदमी रहता था जिसके पिता की मृत्यु हो गई... भाई की मृत्यु हो गई... बहन की मृत्यु हो गई... बेटे की मृत्यु हो गई... बेटी की मृत्यु हो गई... पत्नी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गया, उसका दिमाग खराब हो गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकता हुआ कहता, 'क्या तुमने मेरी पत्नी को देखा है? क्या तुमने मेरी पत्नी को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से जन्म लेते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक पत्नी अपने रिश्तेदारों के घर गई। उसके रिश्तेदारों ने उसे उसके पति से अलग कर दिया था और उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे किसी और को देना चाहते थे। तब उसने अपने पति से कहा, 'मेरे इन रिश्तेदारों ने हमें अलग कर दिया है और मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे किसी और को देना चाहते हैं।' यह सुनकर उसके पति ने उसे दो टुकड़ों में काट दिया और यह सोचते हुए खुद को भी चीर डाला, 'हम दोनों एक साथ मरेंगे।' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे दुख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रियजन से ही जन्म लेते हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होते हैं।"

तब ब्राह्मण नलिजंग, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठे और रानी मल्लिका के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रानी मल्लिका को वे सभी बातें बताईं जो उन्होंने भगवान बुद्ध से की थीं।

तब रानी मल्लिका राजा पसेनादि कोसला के पास गईं और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: क्या राजकुमारी वजिरी आपको प्रिय हैं?"

"जी हां, मल्लिका, राजकुमारी वजिरी मुझे प्रिय हैं।"

"और आप क्या सोचते हैं: क्या राजकुमारी वजिरी में किसी भी परिवर्तन या असामान्यता से आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?"

"मल्लिका, राजकुमारी वजिरी में कोई भी परिवर्तन या गड़बड़ी मेरे जीवन में भी गड़बड़ी का कारण बनेगी। ऐसे में मेरे भीतर दुःख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा: क्या आपको परम रानी वासभा प्रिय हैं?... क्या आपको [आपका पुत्र] सेनापति विदुदभा प्रिय हैं?... क्या मैं आपको प्रिय हूँ?"

"हां, मल्लिका, तुम मुझे बहुत प्रिय हो।"

और आप क्या सोचते हैं: क्या मुझमें किसी भी परिवर्तन या विकृति से आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?

"मल्लिका, तुममें कोई भी परिवर्तन या विकृति मेरे जीवन में भी विकृति का कारण बनेगी। ऐसे में मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा: क्या आपके [प्रजाजन] कासी और कोसलान आपको प्रिय हैं?"

"जी हां, मल्लिका, कासी और कोसलन मुझे प्रिय हैं। कासी और कोसलन की शक्ति के कारण ही हम कासी चंदन का उपयोग करते हैं और माला, सुगंध और मलहम लगाते हैं।"

और आपका क्या विचार है: क्या कसी और कोसलान लोगों में किसी भी परिवर्तन और विचलन से आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?

"मल्लिका, कसी और कोसलान में कोई भी परिवर्तन या गड़बड़ी मेरे जीवन में भी गड़बड़ी का कारण बनेगी। ऐसे में मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सत्यनिष्ठ रूप से आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'"

"यह अद्भुत है, मल्लिका। यह विस्मयकारी है: भगवान बुद्ध कितनी गहराई से देखते हैं, मानो उन्होंने विवेक से सब कुछ भेद दिया हो। आओ मल्लिका: मुझे स्नान का जल दो।" तब राजा पसेनादि कोसला अपने आसन से उठकर और अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, अपने हृदय के सामने हथेलियों को जोड़कर भगवान बुद्ध की ओर प्रणाम किया और तीन बार कहा:

हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!
हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!

हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.8 बहितिका सुत्त(88)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान आनंद सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। पूज्य आनंद ने सुबह वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन समाप्त होने पर, वे दिन बिताने के लिए मिगारा की माता के महल में गए। उस समय कोसल के राजा पसेनादि हाथी एकपुंदरीका पर सवार होकर सावत्थी से गुजर रहे थे। कोसल के राजा पसेनादि ने दूर से पूज्य आनंद को आते देखा और अपने प्रधान मंत्री श्रीवद्दा से पूछा, 'श्रीवद्दा, क्या वह पूज्य आनंद हैं?' 'महाराज, वह पूज्य आनंद हैं।' तब कोसल के राजा पसेनादि ने एक व्यक्ति को बुलाया और कहा, 'हे जन, पूज्य आनंद के पास जाओ, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और उनसे कहो।' आदरणीय महाराज, कोसल के राजा पसेनादि ने आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा, 'यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश कोसल के राजा पसेनादि के लिए एक क्षण प्रतीक्षा कर सकते हैं?' राजा ने सहमति व्यक्त की और आदरणीय आनंद के पास जाकर प्रणाम किया, एक तरफ खड़े होकर कहा, 'आदरणीय महाराज, कोसल के राजा पसेनादि ने आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा, यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश कोसल के राजा पसेनादि के लिए एक क्षण प्रतीक्षा कर सकते हैं?' आदरणीय आनंद ने मौन सहमति व्यक्त की। राजा हाथी की पीठ पर जहाँ तक जा सकते थे, गए और हाथी से उतरकर पैदल ही आदरणीय आनंद के पास पहुँचे। उन्होंने आदरणीय आनंद को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर कहा, 'यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश अचिरावथी नदी के तट पर आ सकते हैं?' आदरणीय आनंद ने इसे मौनपूर्वक स्वीकार किया, अचिरावथी नदी के तट पर पहुँचे और तैयार आसन पर बैठ गए। राजा हाथी की पीठ पर जहाँ तक जा सकते थे, गए, फिर हाथी से उतरकर पैदल ही आदरणीय आनंद के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर उन्होंने कहा, 'आदरणीय आनंद, हाथी के गद्दी पर बैठिए।' 'हे महाराज, मैं बैठा हूँ, आप बैठिए।' कोसल के राजा पसेनादि तैयार आसन पर बैठ गए और बोले, 'आदरणीय आनंद, क्या भगवान ऐसा कोई शारीरिक व्यवहार करते हैं जो संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण हो?' 'नहीं, महाराज, भगवान ऐसा कोई शारीरिक व्यवहार नहीं करते जो संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण हो।'

हे आनंद, क्या भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण वाणी का अभ्यास करते हैं? क्या भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण मानसिक व्यवहार का अभ्यास करते हैं? 'नहीं, हे महाराज, भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण किसी भी प्रकार की वाणी... किसी भी प्रकार का मानसिक व्यवहार नहीं करते हैं।'

'अद्भुत और आश्चर्यजनक, पूज्यवर, यह प्रश्न हम पूछ नहीं पाए और न ही इसका उत्तर मिल पाया, अब पूज्यवर आनंद ने मुझे इसका उत्तर दे दिया है। पूज्यवर, मूर्ख वे होते हैं जो बिना सोचे-समझे और समझे दूसरों की प्रशंसा या निंदा करते हैं। मैं उन शब्दों पर विश्वास नहीं करता।'

हे आनंद जी, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए शत्रुतापूर्ण है?

'महान राजा का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण होता है?'

''महान राजा, शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण है?'

'महान राजा, आपका शारीरिक व्यवहार चिंताजनक है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार परेशानी का कारण बनता है?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम अप्रिय होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक व्यवहार के अप्रिय परिणाम होते हैं?'

'हे महाराज, ऐसा शारीरिक व्यवहार जो स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है, जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। ऐसा शारीरिक व्यवहार स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है।'

'हे आनंद जी, किस प्रकार का मौखिक व्यवहार, ...या...मानसिक व्यवहार संन्यासी ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के प्रति शत्रुतापूर्ण होता है?'

'महान राजा, आपका मानसिक व्यवहार निंदनीय है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोष कहलाता है?'

''महान राजा, लेकिन मानसिक व्यवहार दोषपूर्ण है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोषपूर्ण है?'

'महान राजा, आपका मानसिक व्यवहार चिंताजनक है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार चिंताजनक है?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम अप्रिय होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक व्यवहार के अप्रिय परिणाम होते हैं?'

'हे महाराज, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है, जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। ऐसा मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है।'

हे महाराज, ऐसा मानसिक व्यवहार जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि पहुँचाता है, और जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, वह स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि पहुँचाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या भगवान समस्त दोषों के निवारण को स्वीकार करते हैं?'

'महान राजा, तथागत ने समस्त दोषों को दूर कर दिया है, वे गुणों से परिपूर्ण हैं।'

'हे आनंद, संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार उपयुक्त होता है?'

'महान राजा का शारीरिक व्यवहार ही गुणकारी होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार पुण्य कहलाता है?'

''महान राजा, जिनका शारीरिक व्यवहार दोषरहित है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषरहित होता है?'

'महान राजा, शारीरिक व्यवहार जो परेशानी पैदा नहीं करता।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार कष्टदायक नहीं होता?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम सुखद होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक व्यवहार से सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं?'

'हे महाराज, शारीरिक आचरण ऐसा होना चाहिए जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम होकर पुण्य बढ़ता है। ऐसा शारीरिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि नहीं पहुँचाता।'

'हे आनंद, किस प्रकार का मौखिक व्यवहार, ...या...मानसिक व्यवहार संन्यासी ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त होता है?'

'महान राजा का मानसिक व्यवहार ही गुणकारी होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार पुण्य कहलाता है?'

''महान राजा, जिनका मानसिक व्यवहार दोषरहित है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोषरहित होता है?'

'महान राजा, मानसिक व्यवहार जो परेशानीजनक नहीं है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार परेशानी का कारण नहीं होता?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम सुखद होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक व्यवहार से सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं?'

'हे महान राजा, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम हो और पुण्य बढ़े, वह मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए।'

हे महान राजा, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम हो और पुण्य बढ़े, वह मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि नहीं पहुँचाता।

'आदरणीय महोदय, क्या भगवान सभी पुण्य अर्जित करने को स्वीकार करते हैं?'

'महान राजा, तथागत ने समस्त दोषों को दूर कर दिया है, वे गुणों से परिपूर्ण हैं।'

'अद्भुत और आश्चर्यजनक! पूज्य आनंद के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। मैं इतना प्रसन्न हूँ कि मैं पूज्य आनंद को अपना हाथी, घोड़ा या यहाँ तक कि एक भव्य गाँव भी भेंट कर सकता हूँ, पर हम जानते हैं कि वे उपयुक्त नहीं हैं। यह गर्म वस्त्र मगध के राजा अजातसत्तु ने सरकंडों के डिब्बे में भेजा है। इसकी लंबाई सोलह माप और चौड़ाई आठ माप है, यह उपयुक्त है। पूज्य आनंद दयावश इसे स्वीकार करें।'

'हे महान राजा, व्यर्थ! मेरे तीनों वस्त्र पूर्ण हैं।'

'आदरणीय महोदय, हम दोनों देख रहे हैं कि अचिरावथी नदी पहाड़ों से उफान मारते हुए बह रही है और किनारों को उफान पर ला रही है। उसी प्रकार, आदरणीय आनंद इस गर्म वस्त्र से अपने तीन वस्त्र बनाएंगे। मेरा मानना है कि वे पहले से बने तीनों वस्त्रों को अपने आध्यात्मिक जीवन के साथियों में बाँट देंगे। आदरणीय आनंद इस गर्म वस्त्र को स्वीकार करें।'

आदरणीय आनंद ने गर्म वस्त्र ग्रहण किया। तब कोसल के राजा पसेनादि ने आदरणीय आनंद से कहा, 'आदरणीय महोदय, हमें अब जाना होगा, बहुत काम करना है।'

'महाराज, आप जैसा उचित समझें वैसा करें।' कोसल के राजा पसेनादि अपने आसन से उठे, पूज्य आनंद को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की और चले गए। राजा के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास आए और उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गए। पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को राजा और अपने बीच हुई सारी बातचीत बताई और उन्हें गर्म वस्त्र भेंट किया।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कोसल के राजा पसेनादि के लिए यह दुर्लभ और बड़ा लाभ है कि वे पूज्य आनंद के निकट आकर उनसे संगति करते हैं।' भगवान बुद्ध के शब्दों से भिक्षु प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.9 धम्मसेटिया सुत्त(89)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध मेधालुम्पा नामक शाक्य गाँव में शाक्यों के साथ रह रहे थे। उस समय कोसल के राजा पसेनादि किसी उद्देश्य से नांगरका आए थे और उन्होंने दीघा कारायण से कहा, 'मित्र कारायण, अच्छे रथ तैयार करो, हम उद्यानों का भ्रमण करना चाहते हैं और उपजाऊ मिट्टी देखना चाहते हैं।' दीघा मान गए और उपयुक्त रथ तैयार करके कोसल के राजा पसेनादि को सूचित किया, 'महाराज, रथ तैयार हैं, अब उचित कार्य करने का समय है।' कोसल के राजा पसेनादि एक उपयुक्त रथ पर सवार हुए और भव्यता से नांगरका से रवाना हुए। रथ जहाँ तक जा सकते थे, वहाँ तक गए और रथों से उतरकर उद्यान में प्रवेश किया। उद्यान में घूमते हुए कोसल के राजा पसेनादि ने ऐसे वृक्षों की जड़ें देखीं जो मनभावन, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त थीं और उन्होंने भगवान बुद्ध का चिंतन किया। उन्होंने सोचा, इन सुखद, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त वृक्षों की जड़ों के कारण, मुझे पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान की संगति करनी चाहिए। तब कोसल के राजा पसेनादि ने दीघा कारायण को संबोधित किया। 'मित्र कारायण, ये सुखद, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त वृक्षों की जड़ें मुझे पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान की याद दिलाती हैं। मित्र, वे अब कहाँ निवास करते हैं?' 'महाराज, शाक्यों का एक गाँव है, मेडलुम्पा, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान वहाँ निवास करते हैं।' 'मित्र कारायण, मेडलुम्पा नांगरका से कितनी दूर है?' 'यह यहाँ से बहुत दूर नहीं है, लगभग 20 मील।' 'क्या हम सूर्यास्त तक वहाँ पहुँच सकते हैं?' 'तो मित्र कारायण, उपयुक्त रथ तैयार करो, मैं उस पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान के दर्शन करना चाहता हूँ।' तब दीघा कारायण ने सहमति जताते हुए उपयुक्त रथों को जोता और राजा को सूचित किया, 'महाराज, रथ जोत दिए गए हैं, अब उचित कार्य करने का समय है।' तब कोसल के राजा पसेनादि, अच्छी तरह से जोते हुए रथों पर सवार होकर नांगरका से शाक्यों के गाँव मेडलुम्पा की ओर चल पड़े। अंधेरा होने पर वे मेडलुम्पा पहुँचे। रथ में जहाँ तक जा सकते थे, वहाँ तक जाने के बाद, वे रथों से उतरकर मठ परिसर में आ पहुँचे। उस समय कई भिक्षु खुले में चलते हुए ध्यान कर रहे थे और कोसल के राजा पसेनादि उनके पास गए और पूछा, 'आदरणीय महोदय, इस समय भगवान कहाँ हैं? हम उस परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान के दर्शन करना चाहते हैं?' 'महाराज, निवास का द्वार बंद है, कृपया चुपचाप, बिना किसी को परेशान किए, छत पर चढ़ें, खाँसें और चौखट पर दस्तक दें। भगवान द्वार खोल देंगे।' उस समय कोसल के राजा ने दीघा कारायण को तलवार और मुकुट सौंप दिया, और उनके मन में यह विचार आया कि राजा एकांत चाहते हैं। मुझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। कोसल के राजा पसेनादि चुपचाप निवास भवन के बंद द्वार के पास पहुँचे, बिना किसी को दखल दिए, छत पर कदम रखा, खाँसा और चौखट पर दस्तक दी। भगवान बुद्ध ने द्वार खोल दिया। कोसल के राजा पसेनादि निवास भवन में प्रवेश कर गए।उन्होंने भगवान बुद्ध के चरणों में अपना सिर रखा, उनके चरणों को चूमा और अपने हाथों से उन्हें सहलाया। फिर उन्होंने घोषणा की, 'हे पूज्यवर, मैं कोसल का राजा पसेनादि हूं।'

'हे महान राजा, इस अच्छाई को देखकर आप सर्वोच्च श्रद्धा प्रकट करते हैं और इस शरीर को ये मैत्रीपूर्ण भेंट अर्पित करते हैं?'

आदरणीय महोदय, मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ गया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं। आदरणीय महोदय, मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों को देखता हूँ, जो दस, बीस, तीस या चालीस वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। बाद में मैं उन्हें स्नान करते और सजते-संवरते देखता हूँ, उनके बाल और दाढ़ी छोटे होते हैं, वे इंद्रिय सुखों में लिप्त होते हैं और उनके पास पर्याप्त साजो-सामान होता है। यहाँ मैं भिक्षुओं को जीवन के अंत तक, अपनी अंतिम साँस तक, पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन व्यतीत करते देखता हूँ। आदरणीय महोदय, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ गया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, फिर से वही बात, राजा राजाओं से, योद्धा योद्धाओं से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहस्थ गृहस्थों से, माता पुत्र से, पुत्र माता से, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से, भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से, मित्र मित्र से। हे पूज्यवर, यहाँ मैं भिक्षुओं को एकजुट और मित्रवत देखता हूँ, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह घुलमिलकर, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए। हे पूज्यवर, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सत्यतः प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का सर्वप्रचार हो चुका है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैं एक मठ से दूसरे मठ और एक उद्यान से दूसरे उद्यान में विचरण करता हूँ, वहाँ मुझे कुछ संन्यासी और ब्राह्मण दुबले-पतले, बदसूरत, पीलिया से क्षत-विक्षत, उभरी हुई नसों वाले और दृष्टिहीन दिखाई देते हैं। तब मुझे यह विचार आता है कि वास्तव में ये आदरणीय साधु पवित्र जीवन जीते हैं, लेकिन उससे आसक्त नहीं हैं। या फिर उनमें कोई ऐसा अज्ञात दोष है, जिसके कारण वे दुबले-पतले, बदसूरत, पीलिया से क्षत-विक्षत और उभरी हुई नसों वाले हैं।

मैं उनके पास जाकर पूछता हूँ, 'आदरणीय भिक्षु क्यों क्षीण, अप्रिय, पीलिया से क्षत-विक्षत, उभरी हुई नसों वाले और देखने में भद्दे हो गए हैं?' वे मुझे बताते हैं, 'महाराज, हम पीलिया से पीड़ित हैं।' 'आदरणीय, यहाँ हम भिक्षुओं को प्रसन्न, प्रसन्न, दृष्टि में मनभावन, संतुष्ट, निर्भय जीवन व्यतीत करते, भयमुक्त और सहायता के लिए तत्पर, जंगली पशु के समान मन के साथ देखते हैं। आदरणीय, मुझे यह प्रतीत होता है कि इन आदरणीय भिक्षुओं में धीरे-धीरे कुछ भेद प्रकट हो रहा है, कि वे प्रसन्न, प्रसन्न, दृष्टि में मनभावन, संतुष्ट, निर्भय जीवन व्यतीत करते, भयमुक्त, सहायता के लिए तत्पर और जंगली पशु के समान मन के साथ रहते हैं। आदरणीय, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, और उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है।' भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर आ गए हैं।

आदरणीय महोदय, एक अभिषिक्त योद्धा राजा के रूप में, मुझे अपने राज्य में उन लोगों को मारने, नष्ट करने या निर्वासित करने का अधिकार है जिन्हें मारना, नष्ट करना या निर्वासित करना आवश्यक है। फिर भी जब मैं न्याय करने बैठता हूँ, तो मुझे न्याय करना असंभव लगता है क्योंकि मेरे सामने कई बाधाएँ आती रहती हैं। मैं उनसे कहता भी हूँ, हे सज्जनों, मुझे बाधित न करें, मेरे भाषण के समाप्त होने तक प्रतीक्षा करें। आदरणीय महोदय, जब भगवान बुद्ध सैकड़ों भिक्षुओं को उपदेश दे रहे होते हैं, तो छींक या खांसी की आवाज भी सुनाई नहीं देती। एक बार ऐसा हुआ कि भगवान बुद्ध सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी भगवान बुद्ध के एक शिष्य को खांसी हुई और दूसरे शिष्य ने उसके घुटने पर हल्का सा धक्का देकर कहा, शोर मत करो, भगवान बुद्ध उपदेश दे रहे हैं। आदरणीय महोदय, तब मुझे यह बात समझ में आई कि यह आश्चर्यजनक है कि सभा बिना लाठी या हथियार के इतनी अनुशासित है। आदरणीय महोदय, मैंने ऐसी अनुशासित सभा कहीं और नहीं देखी। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैंने एक बुद्धिमान, चतुर, योद्धा और वाद-विवाद करने वाले व्यक्ति को देखा है, जो बुद्धिमानों और उनके विचारों को नीचा दिखाने की सोच में लगा रहता है। यह सुनकर कि गौतम बुद्ध किसी गाँव या कस्बे में आए हैं, वे एक प्रश्न गढ़ते हैं। वे कहते हैं, "हम गौतम बुद्ध के पास जाएँगे और उनसे यह प्रश्न पूछेंगे। जब वे इसका उत्तर देंगे, तो हम उन्हें विवाद में उलझाएँगे।" जब वे उनके पास पहुँचते हैं, तो भगवान बुद्ध उन्हें सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और उनके हृदय को हल्का करते हैं। सलाह, प्रेरणा और हृदय के हल्के होने के कारण, वे प्रश्न भी नहीं पूछते, तो विवाद की बात ही क्या? वे भगवान बुद्ध के सर्वांगीण शिष्य बन जाते हैं। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैंने एक बुद्धिमान, चतुर ब्राह्मण को देखा, जो गृहस्थ है, संन्यासी है और वाद-विवाद करने वाला है। वह बुद्धिमानों और उनके विचारों को नीचा दिखाने की सोच में इधर-उधर घूमता रहता है। जब उन्हें पता चलता है कि संन्यासी गौतम किसी गाँव में आए हैं, तो वे एक प्रश्न गढ़ते हैं। वे कहते हैं, "हम गौतम के पास जाएँगे और उनसे यह प्रश्न पूछेंगे। वे इसका उत्तर देंगे और हम उन्हें वाद-विवाद में उलझा लेंगे।" जब वे उनके पास पहुँचते हैं, तो भगवान बुद्ध उन्हें सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और उनके हृदय को हल्का करते हैं। सलाह, प्रेरणा और हृदय के हल्के होने के कारण वे प्रश्न भी नहीं पूछते, तो वाद-विवाद की बात ही क्या? वे भगवान बुद्ध के सर्वांगीण शिष्य बन जाते हैं। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, मैंने फिर से कहा, हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण, जिनका पालन-पोषण मैंने ही किया, जिन्हें मैंने ही जीवनदान दिया और जिन्हें मैंने ही उस मुकाम तक पहुंचाया। फिर भी ये दोनों मेरे प्रति वैसा आदर नहीं दिखाते, जैसा वे भगवान बुद्ध के प्रति दिखाते हैं। हे पूज्यवर, अतीत में जब सेना मेरे विरुद्ध अग्रसर थी, तब मैं हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण के एक दुर्गम निवास में गया। उन्होंने मुझे देर रात तक उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि वे सोते समय अपना सिर भगवान बुद्ध की ओर और पैर मेरी ओर रखते हैं। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह आश्चर्य और विस्मय की बात है कि हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण, जिनका पालन-पोषण मैंने ही किया, जिन्हें मैंने ही जीवनदान दिया और जिन्हें मैंने ही उस मुकाम तक पहुंचाया। फिर भी ये दोनों मेरे प्रति वैसा आदर नहीं दिखाते, जैसा वे भगवान बुद्ध के प्रति दिखाते हैं। वास्तव में, ये पूज्यवर अपने आप में कुछ भेद देख रहे हैं। इसी कारण से मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध को उचित ज्ञान प्राप्त है, भगवान बुद्ध की शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, मैं एक योद्धा हूँ, कोसल का रहने वाला अस्सी वर्ष का पुरुष हूँ। भगवान बुद्ध भी कोसल के रहने वाले योद्धा हैं और उनकी आयु भी अस्सी वर्ष है। अतः मैं भी इस शरीर को अत्यंत श्रद्धापूर्वक ये भेंट अर्पित करता हूँ। हे पूज्यवर, अब हम चलते हैं, बहुत कार्य करना है।

'महान राजा, जैसा आपको उचित लगे वैसा करो।'

कोसला के राजा पसेनादि अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और उनकी परिक्रमा की और चले गए।

कोसल के राजा पसेनदी के जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कोसल के राजा पसेनदी ने शिक्षा के स्मारक बनवाए। भिक्षुओं, उन स्मारकों का अध्ययन करो। वे पुण्यदायी हैं और पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों का हिस्सा हैं।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.10कन्नकत्थलका सुत्त(90)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान उदाञ्ञों के बीच, कन्नाकत्थला के हिरण उद्यान में ठहरे हुए थे। उस समय राजा पसेनादि कोसल किसी कार्य से उदाञ्ञा आए थे। राजा पसेनादि कोसल ने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे जन। भगवान के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करो और उनसे पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। उनसे कहो: 'हे भगवान, राजा पसेनादि कोसल आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं और पूछते हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' और फिर कहो: 'हे भगवान, आज राजा पसेनादि कोसल सुबह के भोजन के बाद भगवान के दर्शन करने आएँगे।'"

"जैसा आप कहें, महाराज," यह सुनकर वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने उनसे कहा, "हे भगवान, राजा पसेनादि कोसला आपके चरणों में सिर झुकाकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि क्या आप

रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।" फिर उसने कहा, "हे भगवान, आज राजा पसेनादि कोसला सुबह का भोजन करने के बाद भगवान बुद्ध से मिलने आएँगे।"

अब, सोमा और सकुला बहनों ने सुना, "आज, लोग कहते हैं, राजा पसेनादि कोसल सुबह के भोजन के बाद भगवान बुद्ध के दर्शन करने जाएंगे।" इसलिए वे राजा पसेनादि के पास भोजन परोसे जाने के दौरान गईं और पहुँचकर उनसे कहा, "हे महाराज, आप भी हमारी ओर से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और उनसे पूछें कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।"

फिर, सुबह का भोजन करने के बाद, राजा पसेनादि कोसल भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, बहनें सोम और शकुल आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती हैं और आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप रोग और कष्टों से मुक्त, चिंतामुक्त, बलवान और सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"

लेकिन, हे महाराज, क्या बहनें सोमा और सकुला कोई दूसरा दूत नहीं भेज सकती थीं?

हे भगवान, बहनों सोमा और सकुला ने सुना, 'आज राजा पसेनादि कोसला सुबह के भोजन के बाद भगवान बुद्ध से मिलने जाएंगे।' इसलिए जब मेरा भोजन परोसा जा रहा था, वे मेरे पास आईं और पहुँचकर मुझसे बोलीं, 'हे महाराज, आप भी हमारी ओर से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और उनसे प्रार्थना करें कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' हे भगवान, बहनों सोमा और सकुला, आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और प्रार्थना करें कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।

"हे महान राजा, सोमा और सकुला बहनों को सुख मिले।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, मैंने सुना है कि गौतम ध्यानी कहते हैं: "यह संभव नहीं है कि कोई पुरोहित या ध्यानी सर्वज्ञ और सर्वदृष्टि का दावा करे।" जो लोग ऐसा कहते हैं, क्या वे भगवान बुद्ध के वचन के अनुरूप बोल रहे हैं? क्या वे गलत तथ्यों से भगवान बुद्ध का गलत अर्थ नहीं निकाल रहे हैं? क्या वे धर्म के अनुसार उत्तर दे रहे हैं, ताकि धर्म के अनुरूप चिंतन करने वाले किसी भी व्यक्ति को उनकी आलोचना करने का कोई आधार न मिले?"

"महान महाराज, जो लोग ऐसा कह रहे हैं वे मेरी कही बातों के अनुरूप नहीं बोल रहे हैं, और वे असत्य और असत्य बातों से मेरा गलत अर्थ निकाल रहे हैं।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने सेनापति विदुदभा की ओर मुड़कर पूछा, "सेनापति, इस विषय को महल में कौन लाया?"

"आकाश वंश के ब्राह्मण संजय, महान राजा।"

तब राजा पसेनादि ने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे जन। आकाश वंश के ब्राह्मण संजय को बुलाओ और कहो, 'राजा पसेनादि कोसल तुम्हें बुला रहे हैं।'"

"जैसा आप कहें, महाराज," कहकर वह व्यक्ति आकाश वंश के ब्राह्मण संजय के पास गया और वहाँ पहुँचकर उससे कहा, "राजा पसेनादि कोसला ने आपको बुलाया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला ने भगवान बुद्ध से कहा, "क्या ऐसा हो सकता है कि भगवान बुद्ध ने किसी और बात के संदर्भ में कुछ कहा हो, जिसे किसी व्यक्ति ने गलत समझा हो? भगवान बुद्ध को यह बात किस प्रकार याद है कि उन्होंने ऐसा कहा था?"

"महान राजा, मुझे याद है मैंने कहा था, 'यह संभव नहीं है कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति एक ही समय में सब कुछ जान सके और सब कुछ देख सके।'"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बात तर्कसंगत प्रतीत होती है। भगवान बुद्ध की बात तार्किक लगती है: 'यह संभव नहीं है कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति एक ही समय में सब कुछ जान सके और सब कुछ देख सके।'"

"हे भगवान, ये चार जातियाँ हैं: श्रेष्ठ योद्धा, पुरोहित (ब्राह्मण), व्यापारी और श्रमिक। क्या इनमें कोई भेद या अंतर है?"

"हे महान राजा, इन चार जातियों में से दो - कुलीन योद्धा और पुजारी - सम्मान, आतिथ्य, अभिवादन और विनम्र सेवाओं को प्राप्त करने के मामले में सर्वोपरि मानी जाती हैं।"

"हे भगवान, मैं वर्तमान जीवन के बारे में नहीं पूछ रहा हूँ। मैं भविष्य के जीवन के बारे में पूछ रहा हूँ। क्या इन चारों जातियों में कोई भेद या अंतर है?"

"महाराज, परिश्रम के ये पाँच कारक हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

"ऐसा भी मामला है जहाँ एक भिक्षु को तथागत के ज्ञानोदय पर दृढ़ विश्वास है: 'वास्तव में, भगवान योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के संबंध में विशेषज्ञ हैं, वश में किए जाने योग्य लोगों के लिए अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, दिव्य और मानव प्राणियों के गुरु हैं, जागृत हैं, धन्य हैं।"

"वह रोग और असुविधा से मुक्त है, उसका पाचन तंत्र अच्छा है - न ज्यादा ठंडा, न ज्यादा गर्म, मध्यम शक्ति वाला - परिश्रम के लिए उपयुक्त है।"

वह न तो कपटी है और न ही छलपूर्ण। वह अपने गुरु या पवित्र जीवन में अपने बुद्धिमान मित्रों के समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप के अनुरूप ही स्वयं को प्रकट करता है।

वह अकुशल मानसिक गुणों को त्यागने और कुशल मानसिक गुणों को अपनाने के लिए अपनी दृढ़ता को बनाए रखता है। वह अपने प्रयास में दृढ़ और स्थिर है, और कुशल मानसिक गुणों के संबंध में अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटता।

"वह विवेकशील है, उसमें लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ले जाने वाली विवेकशक्ति है - महान, मर्मस्पर्शी, जो तनाव के सही अंत की ओर ले जाती है।"

"ये परिश्रम के पांच कारक हैं।"

"हे महाराज, चारों जातियों के लिए: यदि उन्हें परिश्रम के लिए ये पाँच कारक प्रदान किए जाएँ, तो यह उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

"हे भगवान, यदि इन चारों जातियों को परिश्रम के लिए ये पाँच कारक प्रदान किए जाएं, तो क्या इस संबंध में उनमें कोई भेद या अंतर होगा?"

"हे महाराज, मैं आपसे कहता हूँ: उनमें अंतर उनके परिश्रम की विविधता में निहित होगा। मान लीजिए कि दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल अच्छी तरह से प्रशिक्षित और वश में किए जा सकते हैं; और दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल ऐसे हैं जो अनियंत्रित और अप्रशिक्षित हैं। आपका क्या विचार है: क्या अच्छी तरह से प्रशिक्षित और वश में किए जा सकने वाले दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल पालतू प्राणियों के तौर-तरीके अपनाकर पालतू प्राणियों का दर्जा प्राप्त कर सकेंगे?"

"हाँ भगवान।"

"और क्या वे दो पालतू हाथी, पालतू घोड़े या पालतू बैल जो पालतू और अप्रशिक्षित थे, पालतू जानवरों की आदतें अपना लेंगे और पालतू जानवरों का दर्जा प्राप्त कर लेंगे?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, हे महाराज, यह असंभव है कि जो व्यक्ति आत्मविश्वास से भरा हो, रोगमुक्त हो, कपटी या छल-कपट न करता हो, दृढ़ संकल्पित हो और विवेकशील हो, वह जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वही लाभ एक ऐसे व्यक्ति को प्राप्त हो सके जो दृढ़ विश्वासहीन हो, बीमार हो, कपटी और छल-कपट करने वाला हो, आलसी हो और सुस्त हो।"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बात तर्कसंगत लगती है। उनकी बात तार्किक लगती है। लेकिन इन चार जातियों के विषय में: यदि उन्हें परिश्रम के ये पाँच कारक दिए गए हों, और वे उचित परिश्रम करें, तो क्या इस संदर्भ में उनमें कोई भेद या अंतर होगा?"

"हे महाराज, मैं आपसे कहता हूँ कि एक की लौ और दूसरी की लौ में कोई अंतर नहीं होगा। मान लीजिए कि एक व्यक्ति सूखी साल की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि दूसरा व्यक्ति सूखी सागौन की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि तीसरा व्यक्ति सूखी आम की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि चौथा व्यक्ति सूखी अंजीर की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। अब हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: विभिन्न प्रकार की लकड़ियों से उत्पन्न इन लपटों में, क्या एक की चमक और दूसरी की चमक में, एक के रंग और दूसरे के रंग में, एक की दीप्ति और दूसरी की दीप्ति में कोई अंतर होगा?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, हे महान राजा, दृढ़ता से प्रज्वलित और परिश्रम से उत्पन्न शक्ति के संबंध में, मैं कहता हूँ कि एक की रिहाई और दूसरे की रिहाई में कोई अंतर नहीं है।"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बातें तर्कसंगत लगती हैं। भगवान बुद्ध की बातें तार्किक लगती हैं। लेकिन, हे भगवान, क्या देव भी होते हैं?"

"लेकिन आप यह क्यों पूछते हैं, 'लेकिन, भगवान, क्या देव हैं?'?"

"हे भगवान, चाहे देवता इस जीवन में वापस आएं या न आएं।"

"पीड़ित देवता इस जीवन में वापस आते हैं, जबकि अप्रभावित देवता इस जीवन में वापस नहीं आते हैं।"

जब यह कहा गया, तो सेनापति विदुदभा ने भगवान से कहा, "हे भगवान, क्या पीड़ित देवता, अपीड़ित देवताओं को उस स्थान से निकाल सकते हैं या निष्कासित कर सकते हैं?"

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया, "यह सेनापति विदुदभा राजा पसेनादि कोसल का पुत्र है, और मैं भगवान बुद्ध का पुत्र हूँ। अब पुत्र को पुत्र को सलाह देने का समय है।" इसलिए पूज्य आनंद ने सेनापति विदुदभा की ओर मुड़कर कहा, "तो फिर, सेनापति, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछता हूँ। आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर दें। राजा पसेनादि कोसल द्वारा जीते गए भूभाग में, जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजसत्ता का प्रयोग करता है, क्या वह किसी पुजारी या ध्यानी को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित कर सकता है, चाहे वह व्यक्ति पुण्यवान हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो?"

"महोदय, राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीते गए भूभाग के माध्यम से - जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग करता है - वह किसी भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो।"

"और आप क्या सोचते हैं, सेनापति: राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीती न गई भूमि के उस विस्तार के माध्यम से - जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग नहीं करता है - क्या वह किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो?"

"महोदय, राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीती न गई भूमि के विस्तार के माध्यम से - जहां वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग नहीं करता है - वह उस स्थान से किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम नहीं है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो।"

"और जनरल, आपका क्या विचार है: क्या आपने तैंतीस देवों के बारे में सुना है?"

"जी हाँ, महोदय, मैंने तैंतीस देवताओं के बारे में सुना है, जैसा कि राजा पसेनादि कोसल ने भी सुना है।"

"और आप क्या सोचते हैं, सेनापति: क्या राजा पसेनादि कोसल उस स्थान से तैंतीस देवताओं को बेदखल या निष्कासित कर सकते हैं?"

"महाराज, राजा पसेनादि कोसल तैंतीस देवताओं को देख भी नहीं सकते। वे उन्हें उस स्थान से कैसे निकाल या निष्कासित कर सकते हैं?"

"इसी प्रकार, सामान्य रूप से पीड़ित देवता, जो इस जीवन में वापस आएंगे, उन निर्पीड़ित देवताओं को देख भी नहीं सकते जो इस जीवन में वापस नहीं आते। वे उन्हें उस स्थान से कैसे निकाल सकते हैं या निष्कासित कर सकते हैं?"

तब राजा पसेनादि कोसला ने भगवान से कहा, "हे भगवान, इस भिक्षु का नाम क्या है?"

"उनका नाम आनंद है, वे महान राजा हैं।"

"वह कितना आनंददायक है! कितना सच्चा आनंद! लेकिन, हे भगवान, क्या ब्रह्मा भी होते हैं?"

लेकिन आप यह क्यों पूछते हैं, 'लेकिन, भगवान, क्या ब्रह्मा भी होते हैं?'?

"हे भगवान, चाहे ब्रह्मा इस जीवन में वापस आएं या न आएं।"

"पीड़ित ब्रह्मा इस जीवन में वापस आते हैं, जबकि अपीड़ित ब्रह्मा इस जीवन में वापस नहीं आते हैं।"

तब एक व्यक्ति ने राजा पसेनादि कोसल से कहा, "महान महाराज, आकाश वंश के ब्राह्मण संजय आए हैं।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने आकाश वंश के ब्राह्मण संजय से कहा, "यह विषय राजमहल में कौन लाया?"

"जनरल विदुदभ, महान राजा।"

सेनापति विदूदभा ने कहा, "आकाश वंश के ब्राह्मण संजय, महान राजा।"

तब एक व्यक्ति ने राजा पसेनादि कोसला से कहा, "हे महान राजा, अब जाने का समय हो गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, हमने भगवान बुद्ध से सर्वज्ञता के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें सर्वज्ञता का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से चारों जातियों की शुद्धता के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें चारों जातियों की शुद्धता का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से उच्चतर देवताओं के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें उच्चतर देवताओं का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से उच्चतर ब्रह्माओं के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें उच्चतर ब्रह्माओं का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से जो कुछ भी पूछा है, उन्होंने उसका उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है।" अब, भगवान, हमें जाना होगा। हमारे बहुत से कर्तव्य हैं, बहुत सी जिम्मेदारियाँ हैं।

"तो फिर, हे महान राजा, वही करो जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला, भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 10.1 ब्रह्मयु सुत्त(91)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विदेह की यात्रा कर रहे थे। उस समय एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध और दुर्बल ब्राह्मण ब्रह्मायु मिथिला में निवास कर रहे थे। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था, वे पुरोहित के रूप में अनुष्ठान और रीति-रिवाजों को जानते थे, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति तथा महान पुरुष के लक्षण जानते थे। ब्रह्मायु ने सुना कि शाक्य वंश से विदेह त्यागे हुए गौतम लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विदेह की यात्रा कर रहे हैं। उस गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे पूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले मनुष्यों के अद्वितीय गुरु, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के इस संसार को, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों को, स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उपदेश की घोषणा करते हैं। यह आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है और यह संपूर्ण और पवित्र जीवन का वर्णन करता है। ऐसे परिपूर्ण व्यक्तियों को देखना सुखद है।

उस समय ब्राह्मण ब्रह्मायु का एक शिष्य था, उत्तरा नामक एक युवक, जिसने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, वह पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को जानता था, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति का ज्ञाता था और एक महान पुरुष के लक्षण जानता था। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने अपने शिष्य से कहा, “प्रिय उत्तरा, शाक्यों पुत्र, संन्यासी गौतम के पास जाओ, जो पूर्ण, प्रबुद्ध और धन्य माने जाते हैं, और पता लगाओ कि क्या वास्तव में ये गुण उनमें हैं या नहीं। मेरे लिए अच्छे गौतम की परीक्षा लो।” “महोदय, मुझे कैसे पता चलेगा कि अच्छे गौतम इन गुणों से संपन्न हैं या नहीं?” “उत्तरा, शास्त्रों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण बताए गए हैं। इन लक्षणों से संपन्न व्यक्ति के लिए दो ही मार्ग होते हैं, कोई दूसरा नहीं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह विश्व सम्राट बन जाता है, एक स्थिर, धर्मात्मा राजा, जो चारों दिशाओं में शक्ति रखता है और सात रत्नों से संपन्न होता है।” वे चक्र, हाथी, अश्व, रत्न, स्त्री, गृहस्थ और सलाहकार के रत्न हैं। उनके एक हजार से अधिक पुत्र हैं, जो वीर व्यक्तित्व वाले, चतुर और विदेशी सेनाओं को पराजित करने में सक्षम हैं। वे बिना लाठी या हथियार के, समुद्र से घिरे देश पर विधिपूर्वक शासन करते हैं। यदि वे गृहस्थी त्यागकर संन्यासी बन जाएं, तो वे पूर्ण और सर्वज्ञानी हो जाएंगे और अंधकार का पर्दा हटा देंगे। मैंने तुम्हें यह ज्ञान दिया है और तुम इसे जानते हो।

उत्तरा नाम का युवक सहमत होकर अपने आसन से उठा, ब्राह्मण ब्रह्मायु की पूजा की और परिक्रमा की, और भगवान बुद्ध से मिलने के लिए विदेह की ओर चल पड़ा। धीरे-धीरे वह भगवान बुद्ध के पास पहुँचा, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया। उत्तरा नाम के युवक ने भगवान बुद्ध के शरीर पर स्थित 33 चिह्नों का अवलोकन किया। दो चिह्नों को छोड़कर अधिकांश चिह्नों को देखकर वह संतुष्ट नहीं हुआ और उसे संदेह हुआ कि क्या गुप्तांग ढका हुआ है और क्या जीभ पर्याप्त बड़ी है। तभी भगवान बुद्ध को यह विचार आया, "उत्तरा नाम का यह युवक मेरे शरीर पर स्थित अधिकांश चिह्नों को देख रहा है, सिवाय दो चिह्नों के। वह संतुष्ट नहीं है और उसे संदेह है कि क्या गुप्तांग ढका हुआ है और क्या जीभ पर्याप्त बड़ी है।" तब भगवान बुद्ध ने अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया, जिससे उत्तरा गुप्तांग को देख सका। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली, कान के लोबों और नासिका छिद्रों को छुआ और नाक से पूरे माथे को ढक लिया।

तब युवक उत्तरा के मन में यह विचार आया कि संन्यासी गौतम में 33 महान पुरुषों के गुण हैं। यदि मैं संन्यासी गौतम का अनुसरण करूँ, तो मुझे उनकी मुद्राएँ दिखाई देंगी। वह सात माह तक भगवान के पीछे-पीछे ऐसे चला जैसे कोई परछाई किसी का पीछा करती है, बिना उनका साथ छोड़े। सात माह बीतने पर वह मिथिला लौटने के लिए यात्रा पर निकल पड़ा, ताकि ब्राह्मण ब्रह्मायु से मिल सके। ब्राह्मण ब्रह्मायु के पास पहुँचकर उत्तरा ने उन्हें प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने कहा, “प्रिय उत्तरा, क्या संन्यासी गौतम में वे गुण हैं जिनका ख्यातिगान होता है?”

हे भगवान, एकांतवासी गौतम गौतम में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। उनके पैर मजबूती से टिके हुए हैं। उनके तलवों में हजार गुना चक्र और नाभि जैसी संरचनाएं हैं, जो हर तरह से पूर्ण हैं। यह एक महान पुरुष का लक्षण है। उनकी पलकें लंबी हैं, उंगलियां, हाथ और पैर लंबे और स्पर्श करने में कोमल हैं। हथेलियों और पैरों पर बुने हुए जाल जैसी रेखाएं हैं। उनके टखने ऊंचे हैं और पैर हिरण जैसे हैं। खड़े होने पर वे झुकते नहीं हैं और उंगलियों से घुटनों को छू सकते हैं। उनका गुप्तांग ढका हुआ है। उनकी त्वचा सुनहरे रंग की है। उनकी कोमल त्वचा पर धूल नहीं जमती। उनके शरीर के प्रत्येक रोमछिद्र से एक बाल निकलता है और वे गहरे नीले बाल दाहिनी ओर मुड़े हुए ऊपर की ओर खड़े होते हैं। उनका शरीर सीधा है, जिसका अगला भाग शेर जैसा है। उनके कंधे ऊंचे हैं

और उनका शरीर उनकी ऊंचाई के अनुरूप चौड़ा है। उनके शरीर के चारों ओर एक प्रभामंडल है। अच्छे गौतम सौंदर्य के मामले में सर्वोच्च को जानते हैं। उनके जबड़े शेर जैसे हैं, जिनमें चालीस सुंदर सफेद दांत हैं। उनकी जीभ बड़ी है और आवाज कोयल जैसी सुरीली है। उनकी आंखें गहरे नीले रंग की हैं और मुंह सुंदर है। भौंहों के बीच दाहिनी ओर मुड़ा हुआ बालों का गुच्छा है। शुभ गौतम का सिर पगड़ी की तरह उठा हुआ है। ये एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं। शुभ गौतम हमेशा दाहिने पैर से चलना शुरू करते हैं, पैर को न तो बहुत दूर रखते हैं और न ही बहुत पास। वे न तो बहुत तेज चलते हैं और न ही बहुत धीमे, चलते समय उनके घुटने आपस में नहीं टकराते, न ही टखने और जांघें। चलते समय उनकी जांघें मरोड़ती, मुड़ती या उठती नहीं हैं, केवल शरीर का निचला हिस्सा बिना किसी शारीरिक प्रयास के चलता है।

देखते समय वे अपने पूरे शरीर को घुमाते हैं। वे ऊपर या नीचे नहीं देखते और जिज्ञासु आँखों से नहीं चलते। सामना करते समय वे थोड़ी दूरी तक आगे देखते हैं, फिर भी अपने परिवेश से अवगत रहते हैं। घर में प्रवेश करते समय वे शरीर को उठाते, झुकाते या मरोड़ते नहीं हैं। वे दूर से बैठने के लिए मुड़ते नहीं हैं, न ही बहुत पास आते हैं, न ही बैठने से पहले आसन को पकड़ते हैं या आसन पर गिर पड़ते हैं। घर के अंदर बैठे हुए वे अपने हाथों या पैरों से नहीं खेलते, न ही एक पैर दूसरे के ऊपर उठाते हैं या एक पिंडली को दूसरी के ऊपर रखते हैं। वे अपने जबड़े को हाथों से सहारा नहीं देते। घर के अंदर वे कांपते या थरथराते नहीं हैं, न ही बेचैनी से बैठते हैं, बल्कि शांत और सहजता से बैठते हैं। अच्छे गौतम कटोरे में पानी ग्रहण करते समय उसे झुकाते, उठाते या हिलाते नहीं हैं, बल्कि उचित मात्रा में पानी ग्रहण करते हैं। कटोरा धोते समय वे कोई आवाज़ नहीं करते, न ही उसे घुमाते हैं, न ही उसे धोने के लिए ज़मीन पर रखते हैं। कटोरे के पानी से वे अपनी उंगलियाँ धोते हैं और उंगलियों से ही कटोरा धोते हैं और पानी को न तो बहुत दूर और न ही बहुत पास फेंकते हैं, उसे चारों ओर बिखेरते नहीं हैं। चावल ग्रहण करते समय, वे कटोरे को घुमाए या मरोड़े बिना, सही मात्रा में चावल ग्रहण करते हैं। वे चावल की मात्रा के अनुसार ही सूप और करी ग्रहण करते हैं, लेकिन इतना नहीं कि चावल उनके लिए मलहम बन जाए। अच्छे गौतम भोजन को दो-तीन बार चबाते हैं और साबुत कण नहीं निगलते, अगला निवाला लेते समय कोई कण मुंह में नहीं छोड़ते। अच्छे गौतम स्वाद के प्रति सचेत होकर भोजन ग्रहण करते हैं, फिर भी स्वाद के प्रति लालची नहीं होते। आठ बातों का ध्यान रखते हुए, अच्छे गौतम खेल, नशा या सजावट के लिए भोजन ग्रहण नहीं करते। वे शरीर को पोषण देने के लिए भोजन ग्रहण करते हैं, स्वाद के प्रति लालची नहीं होते, यह सोचते हुए कि मुझे पिछली अप्रिय भावनाओं को समाप्त करना चाहिए और नई भावनाओं को उत्पन्न नहीं करना चाहिए, बल्कि एक सुखद स्थिति के लिए, दोषरहित, सही मात्रा में भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन ग्रहण करने के बाद, कटोरे में पानी ग्रहण करते समय वे उसे झुकाते, उठाते या हिलाते नहीं, बल्कि सही मात्रा में पानी ग्रहण करते हैं। कटोरे को धोते समय वे कोई आवाज नहीं करते, उसे घुमाते नहीं और न ही उसे जमीन पर रखकर धोते हैं। कटोरे में रखे पानी से वे अपनी उंगलियाँ धोते हैं और उन्हीं से कटोरा धोकर पानी को न ज़्यादा दूर, न ज़्यादा पास, इस तरह फेंकते हैं कि वह इधर-उधर न फैले। भोजन करने के बाद वे कटोरे को ज़मीन पर रख देते हैं, न ज़्यादा दूर, न ज़्यादा पास, यह सोचते हुए कि कटोरे से कोई अशांति न हो, और उसे ज़्यादा देर तक अपने पास नहीं रखते। भोजन समाप्त होने के बाद वे कुछ देर चुपचाप बैठते हैं, और धन्यवाद देना नहीं भूलते। जब वे धन्यवाद देते हैं, तो उनका उद्देश्य भोजन को नीचा दिखाना या किसी और भोजन की इच्छा करना नहीं होता। यह एक सर्वांगीण शिक्षा होती है, जिसमें सलाह, प्रोत्साहन और हृदयों को हल्का करना शामिल होता है। धन्यवाद देने के बाद वे उठते हैं और चले जाते हैं, न ज़्यादा तेज़, न ज़्यादा धीमे, और न ही इस तरह जैसे उन्हें राहत मिली हो। वे वस्त्र न ज़्यादा छोटा, न ज़्यादा लंबा, न ज़्यादा तंग, न ज़्यादा ढीला पहनते हैं। वे उसे इस तरह पहनते हैं कि शरीर को हवा का स्पर्श न लगे और धूल-मिट्टी उनके शरीर पर न जमे।

वह मठ में जाकर तैयार आसन पर बैठता है और अपने पैर धोता है, उन्हें सजाने के लिए नहीं। धुले हुए पैरों के साथ, वह पालथी मारकर बैठता है, शरीर को सीधा रखते हुए और ध्यान को अपने सामने केंद्रित करते हुए। वह सोचता है कि वह खुद को, किसी और को या दुनिया में किसी को भी चोट न पहुँचाए।

वे समस्त विश्व के कल्याण के बारे में सोचते हैं। मठ में वे सभा में उपस्थित लोगों को उपदेश देते हैं, न उनकी प्रशंसा करते हैं और न ही उनकी निंदा करते हैं। वे सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और सभा में उपस्थित सभी लोगों के हृदय को हल्का करते हैं। गौतम जी के मुख से निकलने वाली ध्वनियों में आठ गुण होते हैं: वे स्पष्ट, ज्ञानवर्धक, मनमोहक, कानों को मधुर लगने वाली, सुगठित, बिखरी हुई नहीं, गहरी और गूंजदार होती हैं। गौतम जी की वाणी सभा तक ही पहुँचती है और उससे आगे नहीं बढ़ती।

उस सभा ने सलाह दी, प्रेरित किया और दिलों को हल्का किया, उठो और चले जाओ, वापस आने के विचार से, न कि त्यागने के इरादे से।

मैंने अच्छे गौतम को आते-जाते, खड़े होते, घर के अंदर चुपचाप बैठे, वहाँ भोजन करते, भोजन के बाद चुपचाप बैठे, भोजन के बाद धन्यवाद देते, मठ जाते, मठ में चुपचाप बैठे और मठ में सभाओं को शिक्षा देते देखा है। अच्छे गौतम ऐसे भी हैं और ऐसे भी, और इससे भी कहीं अधिक।

यह सुनकर ब्राह्मण ब्रह्मायु अपने आसन से उठे, अपने कंधे पर शॉल को ठीक किया और भगवान बुद्ध की ओर मुड़कर, हाथ जोड़कर तीन बार गंभीर स्वर में कहा, 'मैं उस परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान बुद्ध की पूजा करता हूँ। हम किसी दिन उस अच्छे गौतम बुद्ध से मिलेंगे और उनसे बातचीत करेंगे।'

भगवान बुद्ध ने विदेह की यात्रा करते हुए, विभिन्न चरणों में मिथिला में आकर मखादेव के आम के बाग में निवास किया।

मिथिला के लोगों ने सुना कि शाक्यों के पुत्र, उत्तम संन्यासी गौतम, विदेह यात्रा करते हुए अंततः लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के समुदाय के साथ मिथिला पहुँचे हैं और मखादेव आम के बाग में निवास कर रहे हैं। उस उत्तम गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी। ...अरे, ऐसे सिद्ध पुरुषों को देखना सुखद है। तब मिथिला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। कुछ ने प्रणाम किया, कुछ ने मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, कुछ ने भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़े, कुछ ने अपना नाम और कुल बताया, और कुछ अन्य चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

ब्राह्मण ब्रह्मायु ने सुना कि शाक्यों के पुत्र, श्रेष्ठ संन्यासी गौतम मिथिला आए हैं। तब वे अनेक युवकों के साथ मखादेव के आम के बाग की ओर चल पड़े। जब ब्रह्मायु मखादेव के आम के बाग के निकट पहुँचे, तो उनके मन में यह विचार आया कि बिना पूर्व सूचना दिए संन्यासी गौतम के पास जाना मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन्होंने एक युवक को बुलाया और कहा, "हे स्वाभिमान, आओ, संन्यासी गौतम के पास जाओ और मेरी ओर से पूछो कि क्या वे कम रोगों से मुक्त हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं है और उनका जीवन सुखमय है। हे स्वाभिमान, उनसे कहना कि एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध और क्षीण ब्राह्मण ब्रह्मायु मिथिला में निवास कर रहे हैं। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है, वे पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को जानते हैं, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति को जानते हैं और एक महान पुरुष के लक्षण जानते हैं।" मिथिला में रहने वाले ब्राह्मणों में, ब्राह्मण ब्रह्मायु सबसे धनी, वेदों में सबसे विद्वान, वृद्धों में सबसे वृद्ध और सबसे प्रसिद्ध हैं। वे अच्छे गौतम के दर्शन करना चाहते हैं।' युवक सहमत होकर भगवान के पास गया, मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर बोला, 'हे गौतम, एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध ब्रह्मायु मिथिला में रहते हैं। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है, वे पुरोहित के रूप में अनुष्ठान और रीति-रिवाजों को जानते हैं, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति तथा महान पुरुष के लक्षण जानते हैं। मिथिला में रहने वाले ब्राह्मणों में, ब्राह्मण ब्रह्मायु सबसे धनी, वेदों में सबसे विद्वान, वृद्धों में सबसे वृद्ध और सबसे प्रसिद्ध हैं। वे अच्छे गौतम के दर्शन करना चाहते हैं।'

'युवक, यदि उसे लगता है कि यही उचित समय है तो ऐसा करो।'

वह युवक ब्राह्मण ब्रह्मायु के पास गया और बोला, 'अच्छे संन्यासी गौतम ने सहमति दे दी है, अब आप जो उचित हो वही करें।'

तब ब्राह्मण ब्रह्मायु भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। जब वे दूर से आ रहे थे, तो उनकी प्रसिद्धि के अनुरूप, सभा में उपस्थित लोगों ने उनके लिए जगह बना दी। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने उनसे कहा, 'बेकार, जहाँ बैठे हो वहीं बैठो, मैं भगवान बुद्ध के पास जा रहा हूँ।' वे भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध के शरीर पर स्थित 33 महान पुरुष के लक्षणों का अवलोकन किया। उनमें से दो को छोड़कर अधिकांश को देखकर वे संतुष्ट नहीं हुए और उन्हें संदेह हुआ कि क्या जननांग ढके हुए हैं और जीभ पर्याप्त बड़ी है। तब ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया।

मैंने एक महान व्यक्ति के बत्तीस चिह्नों के बारे में सुना है।

महोदय, मुझे आपके शरीर पर उनमें से दो दिखाई नहीं देते, महान पुरुष का जननांग, महिलाओं के साथ संबंध, जीभ का आकार, जीभ बाहर निकालो और संदेह दूर करो, इस समय और इस समय तथा परलोक के कल्याण के लिए।

अनुमति मिल गई है, हमारी मनोकामनाएं पूरी हों।

तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया कि ब्राह्मण ब्रह्माया, मेरे शरीर पर एक महान पुरुष के अधिकांश लक्षण तो हैं, लेकिन उनमें से दो नहीं। वे संतुष्ट नहीं हुए और उन्हें संदेह हुआ कि क्या जननांग ढका हुआ है और जीभ पर्याप्त बड़ी है। तब भगवान बुद्ध ने अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया, जिससे ब्राह्मण जननांग को देख सका। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली, कान के लोबों और नासिका छिद्रों को छुआ और पूरे माथे को नाक से ढक लिया।

तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्माया को श्लोकों से संबोधित किया:

महान व्यक्ति के बत्तीस चिह्न, जिनके बारे में आपने सुना है,

मेरे शरीर में सब कुछ विद्यमान है, ब्राह्मण, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो मुझे जानना चाहिए वह ज्ञात है, जो विकसित होना चाहिए वह विकसित हो चुका है। जो दूर होना चाहिए वह दूर हो चुका है, इसलिए मैं प्रबुद्ध हूँ। इस समय और इस समय तथा परलोक में भी,

मैं आपको जो चाहें पूछने की अनुमति देता हूँ।

तब ब्राह्मण ब्रह्मायु के मन में एक विचार आया। भगवान ने मुझे प्रश्न पूछने की अनुमति दी है। मुझे संन्यासी गौतम से क्या पूछना चाहिए, इस समय के कल्याण के बारे में या परलोक के कल्याण के बारे में? ब्राह्मण ब्रह्मायु के मन में यह विचार आया। मैं इस समय के कल्याण में तो निपुण हूँ। यहाँ तक कि अन्य लोग भी मुझसे इस समय के कल्याण के बारे में ही प्रश्न करते हैं। मुझे संन्यासी गौतम से परलोक के कल्याण के बारे में ही प्रश्न करना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने भगवान से श्लोकों में प्रश्न किया।

हे भगवान, कोई ब्राह्मण कैसे बनता है? वह ज्ञानी कैसे बनता है?

उन्हें तीनों वेदों का ज्ञान कैसे है? और स्वास्थ्य किसे कहते हैं? कोई व्यक्ति योग्य कैसे बनता है? और वह परिपूर्ण कैसे होता है? कोई व्यक्ति ऋषि कैसे बनता है? और ज्ञान क्या है? तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्मायु को श्लोकों में इन प्रश्नों का उत्तर दिया। पूर्व जन्मों को याद करते हुए, और स्वर्ग और नरक के जन्मों को देखते हुए, जन्म के नाश होने पर ऋषि ज्ञान के स्वामी बन जाते हैं। सभी लोभों से मुक्त होने पर मन की पवित्रता का ज्ञान होता है। जन्म और मृत्यु का त्याग होने पर पवित्र जीवन पूर्ण हो जाता है।

जब सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो ऐसे लोगों को प्रबुद्ध कहा जाता है।

यह सुनकर ब्राह्मण ब्रह्मायु अपने आसन से उठे, शॉल को एक कंधे पर रखा, सिर भगवान बुद्ध के चरणों में रखकर प्रणाम किया, उनके चरणों को चूमा और हाथों से सहलाते हुए कहा, 'हे गौतम, मैं ब्राह्मण ब्रह्मायु हूँ।' तब वहाँ उपस्थित लोग आश्चर्यचकित होकर बोले, 'इस संन्यासी की शक्ति अद्‌भुत है। इतने प्रसिद्ध और विख्यात ब्राह्मण ब्रह्मायु को इस प्रकार श्रद्धा और विनम्रता दिखानी चाहिए।' तब भगवान बुद्ध ने कहा, 'अव्यवहारिक, ब्राह्मण उठो और अपने आसन पर बैठो, जैसे तुम्हारा मन प्रसन्न है, वैसे ही मेरा भी मन प्रसन्न है।' तब ब्राह्मण उठकर अपने आसन पर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्मायु को क्रमिक उपदेश दिए।

जैसे दान देना, सद्‌गुणी बनना, स्वर्ग, कामुकता के खतरे, उनका दूषित स्वभाव और त्याग के फल। जब भगवान बुद्ध को पता चला कि ब्राह्मण ब्रह्मायु का मन शुद्ध, परिष्कृत, अवरोधों से मुक्त, उदात्त और प्रसन्न है, तो उन्होंने प्रबुद्धों को दी जाने वाली शिक्षा दी, जैसे अप्रियता, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण और निवारण का मार्ग। जैसे शुद्ध वस्त्र रंग को समान रूप से सोख लेता है, उसी आसन पर विराजमान ब्राह्मण ब्रह्मायु को शिक्षा की शुद्ध और निर्मल दृष्टि प्राप्त हुई। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब समाप्त हो जाता है। तब ब्राह्मण ब्रह्मायु ने उसी क्षण शिक्षा को प्राप्त किया, जाना और आत्मसात किया। उनके संदेह दूर हो गए।

उसे पता चल गया था कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, वह आत्मविश्वास से भर गया और शिक्षक के शासन में उसे अब किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं रही।

उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया हूँ। यह ऐसा है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर रख दी गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ खुल गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखाया गया हो। जैसे दृष्टि रखने वालों के लिए प्रकाश प्रज्वलित किया गया हो। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा दी है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षाओं में और भिक्षु समुदाय में आता हूँ। हे गौतम कल भिक्षु समुदाय के साथ भोजन ग्रहण करें।"

भगवान बुद्ध ने मौनपूर्वक निमंत्रण स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने जब जाना कि भगवान बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और परिक्रमा की तथा चले गए। फिर उस रात के अंत में ब्राह्मण ब्रह्मायु ने अपने घर पर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार करवाए और भगवान बुद्ध को सूचित किया, "हे गौतम, भोजन तैयार है।"

भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ ब्राह्मण ब्रह्मयु के घर गए और तैयार आसनों पर बैठ गए। ब्राह्मण ब्रह्मयु ने अपने हाथों से सात दिनों तक भगवान बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उनकी तृप्ति सुनिश्चित की। सात दिनों की समाप्ति पर भगवान बुद्ध विदेह की यात्रा पर निकल पड़े।

भगवान बुद्ध के चले जाने के तुरंत बाद ब्राह्मण ब्रह्मायु का देहांत हो गया। कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, उनकी पूजा की, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, ब्राह्मण ब्रह्मायु का देहांत हो गया, मृत्यु के बाद उनकी गतिविधियाँ कहाँ हैं?"

"भिक्षुओं, ब्राह्मण ब्रह्मायु बुद्धिमान हैं, वे शिक्षा के अनुसार स्थिर खड़े रहते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता, वे शिक्षा को समझते हैं। उन्होंने इंद्रिय जगत से बंधे पाँच निम्न बंधनों को तोड़ दिया और स्वतः ही उस जगत से उठ खड़े हुए, वे उससे बाहर नहीं निकलेंगे।"

भगवान बुद्ध ने वे शब्द कहे और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.2सेला सुत्त(92)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध लगभग एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ अंगुत्तरापा देश का भ्रमण कर रहे थे और आपाना नामक एक छोटे से गाँव में प्रवेश किया। जटाधारी तपस्वी केनिया ने सुना, "शाक्यों पुत्र, उत्तम संन्यासी गौतम, अपने भिक्षुओं के विशाल समुदाय के साथ अंगुत्तरापा देश का भ्रमण कर रहे हैं। लगभग एक हजार दो सौ पचास भिक्षु आपना नामक गाँव में आए हैं। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली है। वे धन्य हैं, सर्वज्ञ हैं, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उस उपदेश का प्रचार करते हैं। वह उपदेश आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है। अक्षरशः अर्थपूर्ण है और संपूर्ण एवं पवित्र जीवन का वर्णन करता है। ऐसे योग्यजनों को देखना सौभाग्य की बात है।"

तब जटाधारी तपस्वी केनिया भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने जटाधारी तपस्वी को उपदेश दिया, सलाह दी, प्रेरित किया और उनके हृदय को हल्का किया। भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित, सलाहित, प्रेरित और प्रसन्न किए जाने पर जटाधारी तपस्वी केनिया ने कहा, "भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ स्वीकार करें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा, "हे केनिया, भिक्षु समुदाय बहुत बड़ा है, लगभग एक हजार दो सौ पचास, क्या ब्राह्मण इससे प्रसन्न हैं?" दूसरी बार केनिया ने कहा, "हे गौतम, एक हजार दो सौ पचास भिक्षु होने पर भी ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं। भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ स्वीकार करें।" दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, "हे! केनिया, यहाँ लगभग एक हज़ार दो सौ पचास भिक्षु हैं, क्या ब्राह्मण इससे प्रसन्न हैं? तीसरी बार केनिया ने कहा, "हे गौतम, भिक्षुओं की संख्या चाहे जो भी हो, चाहे एक हज़ार दो सौ पचास भिक्षु ही क्यों न हों, यदि ब्राह्मण प्रसन्न हों, तो भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ ग्रहण करें।" भगवान बुद्ध ने मौन स्वीकार किया।

तब जटाधारी तपस्वी केनिया को जब पता चला कि भगवान बुद्ध ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, तो वे अपने आसन से उठे, अपने आश्रम गए और अपने मित्रों और सगे संबंधियों से कहा, "हे सज्जनों, सुनिए, मैंने कल के भोज में भिक्षु गौतम को भिक्षुओं के समुदाय के साथ आमंत्रित किया है, जो भी काम करना हो, मेरे लिए कर दीजिए।" उन्होंने जटाधारी तपस्वी केनिया की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उनमें से कुछ ने भट्टियाँ खोदीं, कुछ ने लकड़ियाँ काटीं। कुछ ने बर्तन धोए, कुछ ने पानी के पात्र रखे और कुछ ने आसन लगाए।

जटाधारी तपस्वी केनिया ने स्वयं गोलाकार हॉल की व्यवस्था की थी।

उस समय ब्राह्मण सेला आपान अवस्था में रहते थे, वे तीनों वेदों में पारंगत थे, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों में निपुण थे, पुरोहित के रूप में शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति में पारंगत थे, पंचांग इतिहास और व्याकरण में पारंगत थे, और महान पुरुषों के लक्षणों को पहचानने में पारंगत थे। उन्होंने ये सब तीन सौ युवकों को मौखिक रूप से सिखाया।

उस समय जटाधारी तपस्वी केनिया ब्राह्मण सेला के मित्र थे। ब्राह्मण सेला अपने साथ तीन सौ युवकों को लेकर व्यायाम के लिए टहलते-घूमते हुए जटाधारी तपस्वी के आश्रम की ओर मुड़े। उन्होंने केनिया के आश्रम में जटाधारी तपस्वियों को काम करते देखा; कुछ भट्टियाँ खोद रहे थे, कुछ आग जलाने के लिए लकड़ी काट रहे थे, कुछ बर्तन धो रहे थे, कुछ पानी के बर्तन रख रहे थे, कुछ आसन लगा रहे थे और स्वयं केनिया गोलाकार हॉल को सजा रहे थे। उन्होंने केनिया से कहा... "केनिया, क्या यहाँ कोई स्त्री लाई जाएगी, या किसी को दान में दिया जाएगा, या कोई बड़ा यज्ञ होगा, या मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को कल के भोज में अपनी सेना सहित आमंत्रित किया गया है?" "सेला, मुझे नहीं लगता कि कोई स्त्री लाई जाएगी, न ही दान में दी जाएगी, मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को कल के भोज में अपनी सेना सहित आमंत्रित किया गया है। फिर भी मेरे लिए एक बड़ा यज्ञ है। शाक्य वंश से विमुख होकर निकले संन्यासी गौतम भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ अंगुत्तरापा की यात्रा पर आए हैं। उनकी प्रसिद्धि फैली हुई है, वे धन्य, योग्य, सर्वज्ञ, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, भली-भांति परिचित, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। मैंने उन्हें कल के भोज में भिक्षुओं के समुदाय सहित आमंत्रित किया है।"

“क्या हे केन्या, प्रबुद्ध कहते हैं?” “हे सेला, मैं प्रबुद्ध कहता हूँ।” “क्या हे केन्या, प्रबुद्ध कहते हैं?” “हे सेला, मैं प्रबुद्ध कहता हूँ।” तब ब्राह्मण सेला के मन में विचार आया। “प्रबुद्ध शब्द भी संसार में दुर्लभ है। पवित्र ग्रंथों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण बताए गए हैं, जिनसे संपन्न होने पर महान पुरुष के लिए केवल दो ही मार्ग हैं, कोई दूसरा नहीं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है तो वह सर्वव्यापी सम्राट, एक धर्मात्मा राजा बन जाता है जो सात रत्नों से सुसज्जित चारों दिशाओं पर शासन करेगा। ये रत्न हैं: चक्र, हाथी, अश्व, रत्न, स्त्री, गृहस्थ और सलाहकार। उसके एक हजार से अधिक पुत्र होंगे, जो चतुर और वीर होंगे और विदेशी सेनाओं को परास्त करेंगे। वे समुद्र से घिरे देश पर बिना शस्त्रों और दंडों के धर्मपूर्वक शासन करेंगे। यदि वह गृहस्थ जीवन त्यागकर प्रस्थान करता है, योग्य बनता है, सर्वज्ञ होता है और संसार से पर्दा हटा देता है।”

“हे केनिया, सर्वज्ञानी और योग्य ज्ञानी अब कहाँ निवास करते हैं?” जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर कहा, “वहाँ! घने हरे जंगल में।”

तब ब्राह्मण सेला तीन सौ युवकों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और जाते हुए उन्होंने युवकों से कहा, “हे सज्जनों, धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ाते हुए आइए। भगवान बुद्ध शोर-शराबे से दूर रहते हैं और सिंहों की तरह अकेले निवास करते हैं। जब मैं गौतम साधु से बात कर रहा हूँ, तो आप आपस में बातचीत न करें और हमारी बातचीत समाप्त होने पर ही प्रवेश करें।”

तब ब्राह्मण सेला भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों का अवलोकन किया। उन्होंने एक महान पुरुष के लगभग सभी लक्षण देखे, सिवाय दो के। उन्हें संदेह था कि क्या जननांग ढका हुआ है और क्या जीभ चेहरे को ढकने के लिए पर्याप्त बड़ी है, और वे असंतुष्ट थे। तब भगवान बुद्ध को एक विचार आया। ब्राह्मण सेला ने एक महान पुरुष के लगभग सभी लक्षण देखे हैं, सिवाय दो के, उन्हें संदेह है कि क्या जननांग ढका हुआ है और क्या जीभ चेहरे को ढकने के लिए पर्याप्त बड़ी है।

चेहरा। फिर भगवान बुद्ध ने एक मानसिक अभ्यास किया जिससे ब्राह्मण सेला भगवान बुद्ध के गुप्तांग और विशाल जीभ को देख सके। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली और उससे दोनों कान के निचले हिस्से, नाक के छिद्र और पूरे माथे को छुआ और उससे अपना पूरा चेहरा ढक लिया।

तब ब्राह्मण सला के मन में यह विचार आया, "सचमुच, संन्यासी गौतम तो एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण हैं, फिर भी हम नहीं जानते कि वे प्रबुद्ध हैं या नहीं। मैंने विद्वान वृद्ध ब्राह्मणों से सुना है कि जब महान पुरुषों की प्रशंसा की जाती है, तो वे अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं, कि वे योग्य और प्रबुद्ध हैं या नहीं। क्या होगा यदि मैं संन्यासी गौतम की प्रशंसा अर्थपूर्ण श्लोकों से करूँ?" और इसी प्रकार उन्होंने भगवान गौतम की प्रशंसा करते हुए कहा।

ये श्लोक।

548. "हे भगवान! आप सुंदर हैं, मनमोहक हैं, अच्छे कुल के हैं, देखने में प्यारे हैं, सुनहरे रंग के हैं और मजबूत सफेद दांत रखते हैं।"

549. अच्छे कुल में जन्मे लोगों में कुछ निशान होते हैं। एक महान व्यक्ति के सभी निशान आपके शरीर पर स्पष्ट होते हैं।

550. तुम्हारी आंखें मनमोहक हैं, तुम्हारा मुंह सुंदर है, तुम्हारा शरीर सीधा और राजसी है। समाज के बीच तुम सूर्य की तरह चमकते हो।

551. सुंदर दिखने वाला भिक्षु सोने की मूर्ति के समान होता है। इतने आकर्षक होने पर आपके संन्यास का क्या लाभ?

552. आपको एक सार्वभौमिक सम्राट होना चाहिए, चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला अग्रणी सारथी होना चाहिए, आपको जंबुडवाप का सम्राट होना चाहिए।

553. हे गौतम, राजाओं के राजा, आपके साथ योद्धाओं से युक्त अधीनस्थ राजा होने चाहिए! मनुष्यों पर विजय प्राप्त करके शासन करें।

554. भगवान बुद्ध ने कहा:

“सेला, मैं धर्मी राजा हूँ, अतुलनीय, मैं धर्मी रूप से पहिया घुमाता हूँ, कभी रुकने वाला नहीं।”

555. ब्राह्मण सेला ने कहा:

ß पूर्ण ज्ञान और अतुलनीय धार्मिक शासन को स्वीकार करता है और कहता है कि वह शिक्षा के पहिये को धार्मिकता से घुमाएगा।

556. अच्छे गुरु के सेनापति कौन हैं, गुरु के पीछे चलने वाले शिष्य कौन हैं, ताकि शिक्षा का चक्र आगे बढ़े, और उसके बाद उसे कौन आगे बढ़ाएगा?

557. भगवान बुद्ध ने कहा:

हे सेला, मेरे द्वारा चलाया गया यह अतुलनीय धर्मचक्र, तथागत के बाद जन्म लेने वाले सारिपुत्त द्वारा चलाया जाएगा।

558. ब्राह्मण, मैंने जो जानना चाहिए था, वह जान लिया; जो विकसित करना चाहिए था, वह विकसित कर लिया; जो दूर करना चाहिए था, वह दूर कर दिया; अतः मैं प्रबुद्ध हूँ।

559. ब्राह्मण सेला ने कहा:

हे ब्राह्मण! मेरे संदेह दूर करो और मुझे मुक्त करो। ज्ञानी व्यक्ति का मिलना बहुत दुर्लभ है।

560. "जो संसार में दुर्लभ है, वह प्रकट हुआ है। सर्वज्ञानी, अतुलनीय सर्जन।"

561. महा ब्रह्मा ने मृत्यु की सेना का नाश कर दिया है, सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर वे निर्भय होकर आनंदपूर्वक निवास करते हैं।

562. "महोदय, बुद्धिमान की बात सुनो, सर्जन, महान नायक, जंगल में शेर की तरह दहाड़ता है।"

563. महा ब्रह्मा बनो, मृत्यु की सेना का नाश करो। उन्हें देखकर नीच कुल के लोगों के सिवा कौन प्रसन्न होगा?

564. जो मेरे पीछे आना चाहते हैं, वे आएं, बाकी लोग जा सकते हैं। अब मैं महान बुद्धिमान के निर्देशों का पालन करते हुए आगे बढ़ता हूँ।

565. "यदि आप, महोदय, सर्वज्ञानी के विधान को पसंद करते हैं, तो हम भी उस महान ज्ञानी के विधान का अनुसरण करेंगे।"

566. "हे भगवान! हम तीन सौ ब्राह्मण हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें अपने धर्म में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाएं।"

567. भगवान बुद्ध ने कहा:

"सेला, पवित्र जीवन का भली-भांति प्रचार किया गया है, यह यहीं और अभी है, समय की बात नहीं है। यहाँ जो भ्रमित नहीं हैं वे आगे बढ़ते हैं और लगन से अभ्यास करते हैं।"

भगवान बुद्ध की कृपा से ब्राह्मण सेला और उनके अनुयायियों ने संन्यासी बनने और उच्च दीक्षा प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया।

उस रात के अंत में जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपने आश्रम में भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए और भगवान बुद्ध को सूचित किया: "हे पूज्यवर, भोजन तैयार है।"

भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण किए, पान का पात्र और वस्त्र लेकर जटाधारी तपस्वी की कुटिया में गए और भिक्षुओं के समुदाय के साथ तैयार आसनों पर बैठ गए। तब जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपने हाथों से ज्ञान प्राप्त भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और पान का पात्र रख दिया, तो केनिया एक तरफ नीची कुर्सी पर बैठ गए और भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों के साथ धन्यवाद दिया।

568. "बलिदानों में अग्नि यज्ञ प्रमुख है, और सैविट्टी (यहूदी भजन) सबसे आगे है।"

राजा मनुष्यों का मुखिया है, सागर सभी नदियों का मुखिया है।

569. नक्षत्रों में चंद्रमा प्रमुख है, ऊष्मा प्रदान करने में सूर्य प्रमुख है, पुण्य की इच्छा रखने वालों में भिक्षुओं का समुदाय प्रमुख है।

भगवान बुद्ध ने इन छंदों के साथ धन्यवाद किया, अपने आसन से उठे और चले गए।

तब पूज्य सेला और उनके अनुयायी अकेले ही भीड़ से अलग होकर एकांत में ध्यानपूर्वक साधना करने लगे। कुछ ही समय में, कुल के पुत्र जिस भी उद्देश्य से अपने घर से निकलते हैं, उन्होंने पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च उद्देश्य को वहीं जान लिया, अनुभव कर लिया और उसमें लीन हो गए। वे जान गए कि जन्म का नाश हो जाता है, पवित्र जीवन अंत तक जिया जाता है, जो करना चाहिए वो हो चुका है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। पूज्य सेला और उनके अनुयायी अरहंत बन गए। तब पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उन्होंने अपने वस्त्र को एक कंधे पर रखा और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की।

570. "हे ज्ञानी, आपकी शरण में आने के बाद आज आठवां दिन है। सात रातों के भीतर ही हम आपकी व्यवस्था में वश में हो गए हैं।"

571. हे गुरु, आप प्रबुद्ध हैं, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले ऋषि हैं, आपने सुप्त प्रवृत्तियों को नष्ट करते हुए इस जनसमुदाय पर विजय प्राप्त की।

572. स्नेह ने इच्छाओं को नष्ट कर दिया है, यह बिना दौरे वाले शेर की तरह है, बड़े और छोटे डर पर विजय प्राप्त करता है।

573. यहाँ तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़कर खड़े हैं। हे वीर, हम आपके चरणों को प्रणाम करते हैं, महान पुरुष गुरु को प्रणाम करते हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.3अस्सालायन सुत्त(93)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन के वन में अनाथपिङ्ग द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय विभिन्न राज्यों के लगभग पाँच सौ ब्राह्मण किसी काम से श्रावस्ती आए हुए थे और वहीं रह रहे थे। उन ब्राह्मणों के मन में यह विचार आया, “यह संन्यासी गौतम चारों जातियों की पवित्रता की घोषणा करते हैं। भला कौन इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से विवाद कर सकता है?” उसी समय श्रावस्ती में अस्सलायन नाम का एक युवक रहता था। वह युवा, मुंडा हुआ, सोलह वर्ष का था, तीनों वेदों का

ज्ञाता था, पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों का ज्ञान रखता था, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति जानता था और एक महान पुरुष के लक्षण जानता था। तब उन ब्राह्मणों के मन में यह विचार आया, "यह युवक अस्सलायन श्रावस्ती में रहता है, युवा है, मुंडा हुआ है, सोलह वर्ष का है, तीनों वेदों का ज्ञाता है, पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों का ज्ञाता है।" वह शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति को जानता है और एक महान व्यक्ति के लक्षण भी पहचानता है। उसके लिए इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से बहस करना संभव है। तब वे ब्राह्मण युवक अस्सलायन के पास आए और बोले, "हे अस्सलायन, संन्यासी गौतम ने चारों जातियों की पवित्रता की घोषणा की है। हे अस्सलायन, आओ, इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से बहस करो।" तब युवक अस्सलायन ने उन ब्राह्मणों से कहा, "सन्यासी गौतम सत्य कहते हैं, सत्य बोलने वालों से बहस करना कठिन है। मेरे लिए उनसे इस पर बहस करना संभव नहीं है।" दूसरी बार ब्राह्मणों ने युवक अस्सलायन से विनती की, यह कहते हुए कि वह एक घुमंतू तपस्वी है। उसने इनकार कर दिया। तीसरी बार ब्राह्मणों ने युवक अस्सलायन से विनती की, यह कहते हुए कि उसे बिना किसी विरोध के हार स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

यह सुनकर युवक अस्सलायन ने कहा, "मैं निश्चित रूप से नहीं जीतूंगा। हे पुण्य संन्यासी गौतम सत्य कहते हैं, सत्य बोलने वालों से विवाद करना कठिन होता है। मेरे लिए उनसे इस पर विवाद करना संभव नहीं है। फिर भी मैं आप भले लोगों को प्रसन्न करने जाऊंगा।"

तब युवक अस्सलायन, ब्राह्मणों के एक बड़े समूह के साथ भगवान बुद्ध के पास आया, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया। उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के हैं, अन्य निम्न जाति के। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनकी चिह्न और विरासत के साथ। इस विषय में हे गौतम का क्या कहना है?"

"अस्सलायन, ब्राह्मणों में मैं एक स्त्री को मासिक धर्म से पीड़ित, गर्भ धारण किए, जन्म देते और दूध पिलाते हुए देखता हूँ। क्या वे कहते हैं कि गर्भ से ही ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के हैं, अन्य निम्न जाति के। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से, उनसे, उनकी चिह्न और विरासत के साथ।"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायाना, क्या तुमने ग्रीस, कंबोडिया और कुछ अन्य पड़ोसी राज्यों के बारे में सुना है? वहाँ केवल दो ही जातियाँ हैं, स्वामी और दास। एक व्यक्ति स्वामी बनता है और फिर दास, और एक दास स्वामी बन जाता है।"

"अच्छा है, मैंने ग्रीस, कंबोडिया और कुछ अन्य पड़ोसी राज्यों के बारे में सुना है। वहाँ केवल दो जातियाँ हैं, स्वामी और दास। एक व्यक्ति स्वामी बनता है और फिर दास, और एक दास स्वामी बन जाता है।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

"गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मणों का मानना है कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उनके चिन्ह और विरासत के साथ।"

"अस्सलायन, क्या वह योद्धा है, साधारण मनुष्य है या दास है, जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, निंदा करता है, कठोर बातें करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभ करता है, क्रोधी मन रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है, जो मृत्यु के बाद नरक में घटते क्रम में जन्म लेगा, न कि ब्राह्मण?"

"यह ठीक नहीं है गौतम। एक योद्धा, एक ब्राह्मण, एक साधारण व्यक्ति या एक दास, जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे कुछ लेता है, यौन दुराचार करता है, झूठ बोलता है, निंदा करता है, कठोर बातें करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभ करता है, क्रोधी मन रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है, मृत्यु के बाद नरक में घटते क्रम में जन्म लेगा।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायन, क्या केवल ब्राह्मण ही, जो जीवन को नष्ट करने से, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से, कामुकता में दुराचार न करने से, झूठ न बोलने, निंदा न करने, अभद्र या व्यर्थ की बातें न करने से, लोभ न करने और क्रोधी मन न रखने से और सही दृष्टि रखने से परहेज करता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेता है, न कि योद्धा, साधारण मनुष्य या दास?"

हे गौतम, यह अच्छा नहीं है। योद्धा, ब्राह्मण, साधारण मनुष्य या दास, जो जीवन-नाशक क्रिया से दूर रहता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, कामुकता में दुराचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, निंदा नहीं करता, कठोर या निरर्थक बातें नहीं करता, लोभ और क्रोध से दूर रहता है और सही दृष्टि रखता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेगा। हे गौतम, चारों जातियों में से, जो जीवन-नाशक क्रिया से दूर रहता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, कामुकता में दुराचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, निंदा नहीं करता, कठोर या निरर्थक बातें नहीं करता, लोभ और क्रोध से दूर रहता है और सही दृष्टि रखता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेगा।

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण कहते हैं कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायन, क्या इस क्षेत्र में केवल ब्राह्मण ही क्रोध और द्वेष रहित प्रेम और दया की भावना विकसित करने में सक्षम हैं, योद्धा, आम लोग या दास नहीं?"

हे गौतम, ऐसा नहीं है; इस क्षेत्र के योद्धा, ब्राह्मण, साधारण जाति और दास भी, क्रोध और द्वेष रहित प्रेम और दया की भावना विकसित करने में सक्षम हैं। इस क्षेत्र की चारों जातियों के लिए प्रेम और दया की भावना विकसित करना संभव है।

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

"गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मणों का मानना है कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उनके चिन्ह और विरासत के साथ।"

"अस्सलायन, क्या तुम यह सोचते हो कि केवल ब्राह्मण ही झाड़ू और साबुन लेकर नदी में धूल-मिट्टी धो सकते हैं, योद्धा, आम लोग और दास नहीं?"

"हे गौतम, ऐसा नहीं है। योद्धा भी झाड़ू और साबुन लेकर नदी में अपनी धूल-मिट्टी धो सकते हैं, ब्राह्मण, साधारण जाति और दास भी। चारों जातियां झाड़ू और साबुन लेकर नदी में अपनी धूल-मिट्टी धो सकती हैं।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण उन्हें ही सर्वोच्च जाति का मानते हैं, बाकी सब नीची जाति के। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अभिषिक्त योद्धा राजा अस्लायन ने विभिन्न कुलों, जैसे योद्धा, ब्राह्मण, साधारण वर्ग या दास, में जन्मे सैकड़ों लोगों को आमंत्रित किया। चाहे आप किसी महल में, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में जन्मे हों, एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। आइए, सज्जनों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप बहिष्कृत, निम्न जाति के, बांस बुनने वाले, रथ निर्माता या सफाईकर्मी के बीच जन्मे हैं। चाहे आप कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में या झाड़ियों में जन्मे हों। एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। यदि ज्वाला, रंग और चमक वाली अग्नि उत्पन्न हो, तो क्या अग्नि से किया जाने वाला कोई भी कार्य किया जा सकता है?" जो लोग बहिष्कृत, नीची जाति

के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ पैदा हुए हों, कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में पैदा हुए हों या झाड़ियों में पैदा हुए हों, यदि वे आवरण ओढ़कर आग जलाएं, तो क्या वह आग लपट, रंग और चमक नहीं देगी और क्या उस आग के साथ जो कुछ किया जाना चाहिए वह नहीं किया जाएगा?

हे गौतम, ऐसा नहीं है, चाहे कोई भी कुल हो, योद्धा हो, ब्राह्मण हो, साधारण वर्ग का हो या दास हो। चाहे वह किसी महल में जन्मा हो, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में। यदि वह आवरण लेकर अग्नि जलाए, तो उसमें ज्वाला, रंग और चमक होगी और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। यहाँ तक कि जो लोग बहिष्कृत, निम्न जाति के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ जन्म लेते हैं, चाहे वे कुत्तों, सूअरों, धोबी या झाड़ियों में जन्म लें, उनकी जलाई हुई अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। हे गौतम, सभी प्रकार की अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य करना संभव है, वह उससे किया जा सकता है।

“जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?”

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

“एक योद्धा राजकुमार अस्सलायन एक ब्राह्मण कन्या के साथ रहता है, उनके एक पुत्र का जन्म होता है। क्या योद्धा राजकुमार और ब्राह्मण कन्या से उत्पन्न वह पुत्र, पिता के अनुसार 'योद्धा' कहलाएगा या माता के अनुसार 'ब्राह्मण' कहलाएगा?”

हे गौतम, उस योद्धा राजकुमार और ब्राह्मण कन्या के पुत्र को पिता के अनुसार योद्धा और माता के अनुसार ब्राह्मण कहा जाना चाहिए। अस्सलायन, एक ब्राह्मण राजकुमार एक योद्धा कन्या के साथ रहता है, उनके एक पुत्र का जन्म होता है। क्या उस ब्राह्मण राजकुमार और योद्धा कन्या के पुत्र को पिता के अनुसार ब्राह्मण और माता के अनुसार योद्धा कहा जाना चाहिए?

हे गौतम, ब्राह्मण राजकुमार और योद्धा कन्या के पुत्र को पिता के नाम से ब्राह्मण और माता के नाम से योद्धा कहा जाना चाहिए।

अस्सलायन, एक घोड़ी और गधे से खच्चर का जन्म होता है, क्या उसे माँ के अनुसार 'घोड़ा' कहा जाए या पिता के अनुसार 'गधा'?

"वाह गौतम, एक शुद्ध नस्ल के घोड़े से ही टट्टू का जन्म होता है। अब मुझे अंतर समझ में आ गया, पहले के उदाहरणों में मुझे कोई अंतर नहीं दिख रहा था।"

“अस्सलायन, एक ही माता के दो पुत्र, दो युवक भाई हैं। एक ब्राह्मण विद्वान है, वयस्क है, जबकि दूसरा न तो विद्वान है और न ही वयस्क। ब्राह्मण सबसे पहले श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल से, यज्ञ की रोटी से या आतिथ्य सत्कार से किसकी सेवा करते हैं?”

“हे गौतम, ब्राह्मण सर्वप्रथम परिपक्व ब्राह्मण विद्वान की सेवा श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल, यज्ञ की रोटी और आतिथ्य सत्कार के साथ करते हैं। क्या अपरिपक्व गैर-विद्वान की सेवा करने से पुण्य प्राप्त होगा?”

“अस्सलायन, एक ही माता के दो पुत्र हैं, दो युवक भाई। एक ब्राह्मण विद्वान है, वयस्क है, दुष्ट और पापी है। दूसरा न तो विद्वान है और न ही वयस्क, वह गुणी और अच्छे आचरण वाला है। ब्राह्मण सबसे पहले श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल से, यज्ञ की रोटी से या आतिथ्य सत्कार से किसकी सेवा करते हैं?”

हे गौतम, ब्राह्मण सर्वप्रथम उस गैर-विद्वान व्यक्ति की सेवा करते हैं जो बालिग नहीं हुआ है, जो गुणी है, जिसका आचरण अच्छा है, जो आस्थावान है, जिसे दूध-चावल, यज्ञ की रोटी और आतिथ्य सत्कार प्रदान करते हैं। दुष्ट और पापी व्यक्तियों को भेंट अर्पित करने में भला क्या पुण्य हो सकता है?

“अस्सलायन, पहले तुम ब्राह्मणों की पवित्रता लेकर आए, फिर ब्राह्मण शास्त्र लेकर आए। अब तुमने चारों जातियों की पवित्रता से मुंह मोड़ लिया है, जैसा कि मैंने तुम्हें दिखाया है।”

यह सुनकर युवक अस्सलायाना चुप हो गया, भ्रमित हो गया, उसका शरीर लटक गया और चेहरा उदास हो गया। वह यह न जानते हुए बैठ गया कि क्या कहे।

तब भगवान बुद्ध ने देखा कि युवक अस्सलायन व्याकुल होकर चुप हो गया है, उसका शरीर झुका हुआ है और चेहरा नीचे की ओर है। तब उन्होंने उससे कहा, "अस्सलायन, कुछ समय पहले सात ब्राह्मण ऋषि वन में पत्तों की कुटियाओं में रहते थे। जब वे बातचीत कर रहे थे, तब उनके मन में यह बुरा विचार आया कि ब्राह्मण उच्च जाति के हैं, अन्य सभी जातियाँ नीची हैं। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध हैं। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनके चिह्न और वंश के साथ हैं।" तब स्वर्ग के ऋषि असित ने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, भूरे वस्त्र पहनकर, मजबूत चप्पलों में, एक स्वर्ण डंडा लेकर, पत्तों की कुटियाओं के सामने प्रकट हुए। वहाँ इधर-उधर घूमते हुए उन्होंने कहा, "ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए? ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए?" तब ब्राह्मण ऋषियों को यह बात समझ में आई, "यह क्यों कहा जा रहा है कि ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए?" जब सात ब्राह्मण ऋषि खलिहान के खंभे से बंधे बैलों की तरह ध्यानमग्न होकर चल रहे थे, तब उन्होंने सोचा कि हम उसे शाप देंगे और शाप दिया, 'अछूत, राख हो जाओ।' ऋषियों के शाप देते ही स्वर्गिक ऋषि असिता और भी अधिक आकर्षक और मनमोहक हो गए। तब सात ब्राह्मण ऋषियों को यह आभास हुआ कि हमारी तपस्या व्यर्थ है, हमारा पवित्र जीवन निष्फल है। पहले जब हमने शाप दिया था, 'अछूत, राख हो जाओ,' तो वह तुरंत राख हो गया था, लेकिन अब वह और भी अधिक आकर्षक और मनमोहक हो गया है।

"यदि सज्जनों की तपस्या भ्रम नहीं है और यदि पवित्र जीवन व्यर्थ नहीं है, तो सज्जनों, मुझ पर लगे श्राप को दूर कीजिए। यदि आप पर कोई श्राप है, तो मैं उसे दूर करूँगा।"

यह शुभ पुरुष कौन है?

क्या नेक लोगों ने स्वर्गिक ऋषि असिता के बारे में सुना है?

जी हाँ, हमारे पास एक अच्छा है।

"महोदय, मैं ही वह ऋषि हूँ।"

तब अस्सलायन और सात ऋषि स्वर्गिक ऋषि असिता की पूजा करने के लिए उनके पास पहुँचे।

स्वर्गिक ऋषि असिता ने सात ऋषियों से कहा, "मैंने सुना है कि वन में पत्तों की कुटिया में रहने वाले सात ब्राह्मण ऋषियों के मन में यह बुरा विचार आया। क्या बातचीत के दौरान आपके मन में यह विचार आया? ब्राह्मण सोचते हैं कि ब्राह्मण जन्म से ही सर्वोच्च जाति के होते हैं, बाकी सभी नीची जाति के। ब्राह्मण शुद्ध होते हैं, बाकी सभी अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, बाकी नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनकी पहचान और विरासत से संपन्न हैं। क्या ऐसा नहीं है?"

जी हां, बिल्कुल ठीक रहा।

"महोदय, क्या आप जानते हैं कि आपकी जन्मदाता माता ब्राह्मण जाति की हैं या किसी अन्य जाति की?"

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आपको पता है कि आपकी मां की मां सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मण जाति की थीं या किसी अन्य जाति की?

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

"महोदय, क्या आप जानते हैं कि आपके जन्मदाता पिता ब्राह्मण जाति के हैं या किसी अन्य जाति के?"

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आपको पता है कि आपके दादा-दादी सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मण जाति के थे या किसी अन्य जाति के?

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आप सज्जनों को पता है कि गर्भ तक पहुंचने की प्रक्रिया कैसी होती है?

"महोदय, हम जानते हैं कि गर्भ में प्रवेश कैसे होता है। माता-पिता का मिलन होता है, यह माता का समय होता है, जन्म लेने वाले जीव का समय होता है। जब ये तीनों एक साथ आते हैं, तब गर्भ में प्रवेश होता है।"

"क्या आप जानते हैं कि उपस्थित व्यक्ति योद्धा है, ब्राह्मण है, साधारण व्यक्ति है या दास है?"

"अच्छा, हमें नहीं पता कि उपस्थित व्यक्ति योद्धा था, ब्राह्मण था, साधारण व्यक्ति था या दास था।"

जब ऐसा हो जाए, तो क्या तुम जानते हो कि तुम क्या बन गए हो?

जब ऐसा होता है, तो हमें पता नहीं चलता कि हम क्या बन गए हैं।

"अस्सलायन, सात ब्राह्मण ऋषियों ने प्रश्न किए, साथ मिलकर अध्ययन किया और जन्म की पवित्रता के विषय में उनके विचार के कारण पूछे, फिर भी वे उत्तर नहीं दे सके। यहाँ आप, मेरे द्वारा प्रश्न किए जाने पर, हमारे साथ अध्ययन करने पर और मेरे द्वारा जन्म की पवित्रता के विषय में कारण पूछे जाने पर भी, उत्तर नहीं दे सके। क्या आपने अपने गुरु से एक चम्मच भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया?"

यह सुनकर युवक अस्सलायन ने कहा, "अब मैं गौतम जी को समझ गया हूँ। मैं आज से जीवन भर गौतम जी का गृहस्थ शिष्य हूँ और उनकी शरण में रहता हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.4घोटामुख सुत्त(94)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय पूज्य उदेना बनारस के खेमिया के आम के बाग में निवास कर रहे थे। उसी समय ब्राह्मण गोणमुख किसी उद्देश्य से बनारस आए थे। टहलते-फिरते वे खेमिया के आम के बाग में पहुँचे और पूज्य उदेना को बाग में ध्यानमग्न अवस्था में टहलते हुए देखकर उनके पास गए। ब्राह्मण गोणमुख ने पूज्य उदेना से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और उनके साथ चलते हुए कहा, "हे हे संन्यासी, मुझे लगता है कि अंत, अस्तित्व या ऐसी शिक्षा की दृष्टि रखने वाले व्यक्ति के लिए कोई उचित प्रस्थान नहीं है।"

यह सुनकर पूज्य उदेना चंकमान से बाहर निकले, अपने निवास स्थान पर गए और वहाँ रखी हुई चौकी पर बैठ गए। ब्राह्मण ने भी अपने अभ्यास रोक दिए, पूज्य उदेना के पीछे-पीछे उनके निवास स्थान में प्रवेश किया और एक तरफ खड़े हो गए। "ब्राह्मण, यहाँ कुर्सियाँ हैं, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।"

जब तक पूज्य उदेना बैठ नहीं जाते, हम नहीं बैठते, ऐसा नहीं कि मैंने सोचा हो कि मैं बिना बुलाए बैठ जाऊँगा?

ब्राह्मण गोणमुख ने नीची चौकी पर बैठकर एक तरफ बैठते हुए कहा, "हे हे संन्यासी, मेरा मानना है कि 'अस्तित्व' के अंत की दृष्टि रखने वाले या इस प्रकार की शिक्षा देने वाले व्यक्ति का कोई उचित प्रस्थान नहीं है।"

"हे ब्राह्मण, यदि आप मुझे आपको फटकार लगाने की अनुमति दें, जब फटकार आवश्यक हो और जब कोई बात स्पष्ट न हो, यदि आप मुझसे और प्रश्न पूछें, तो हम इस पर चर्चा करेंगे।"

“हे उदेना, जब फटकार आवश्यक हो और जब कोई बात स्पष्ट न हो तो मुझे फटकार लगाने की अनुमति है। हे पूज्य उदेना, मैं प्रश्न करूँगा। इस विषय पर हमारे बीच चर्चा होगी।”

“हे ब्राह्मण, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति प्रकट होते हैं। वे चारों कौन-कौन से हैं? एक व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है, स्वयं को पीड़ा देता है, दूसरों को पीड़ा देता है, स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देता है, और एक व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को पीड़ा नहीं देता; वह संतुष्ट, शांत और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। हे ब्राह्मण, इन चारों में से कौन सा आपको प्रसन्न करता है?”

हे उदेना, मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ जो स्वयं को पीड़ा पहुँचाता है, न ही उस व्यक्ति से जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ जो स्वयं को और दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न हूँ जो स्वयं को और दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाता, संतुष्ट है, शांत है, निर्मल है और ब्रह्मा के समान सुख में रहता है।

“हे ब्राह्मण, तुम इन तीनों व्यक्तियों से प्रसन्न क्यों नहीं हो?”

हे उदेना, जो व्यक्ति स्वयं को कष्ट देता है, वह अपने उस स्वभाव से बंधा हुआ है जो सुख चाहता है और दुख से घृणा करता है। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट देता है, वह उन दूसरों को कष्ट देने से बंधा हुआ है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट देता है, वह स्वयं को और उन दूसरों को कष्ट देने से बंधा हुआ है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, वह बंधनमुक्त, संतुष्ट, शांत, निर्मल और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, दो समूह हैं। वे कौन से हैं? एक समूह आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से आसक्त है और इनकी खोज में लगा रहता है। दूसरा समूह आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से अनासक्त है। इन सब का त्याग करके वे संन्यासी बन जाते हैं। हे ब्राह्मण, यह व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, बंधनमुक्त है, संतुष्ट है, शांत है और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। आप इस व्यक्ति को किस समूह में अधिक पाते हैं? क्या वह उस समूह में है जो आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से आसक्त है और इनकी खोज में लगा रहता है? या फिर उस समूह में है जो आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से अनासक्त है, इन सब का त्याग करके संन्यासी बन गया है?

“हे उदेना, जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, बंधनमुक्त, संतुष्ट, शांत, निर्मल और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है, वह सभा में मुझे दिखाई देता है; वह गहनों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों, खेतों, धन और सोने से अनासक्त होकर इन सब का त्याग करके आगे बढ़ गया है।”

“ब्राह्मण, हम जानते हैं कि आप ये शब्द कह रहे हैं, ‘हे संन्यासी, मुझे लगता है कि अंत, अस्तित्व या इस तरह की शिक्षा के दर्शन के साथ आगे बढ़ना उचित नहीं है।”

“हे उदेना, सचमुच वे शब्द लापरवाही से बोले गए थे। अब मुझे समझ में आया है कि आगे बढ़ने का एक उचित तरीका है। मेरा मानना है कि हे उदेना उनमें से एक है। कृपया संक्षेप में उल्लेख किए गए उन चारों व्यक्तियों के बारे में मुझे विस्तार से बताएं।”

“ब्राह्मण, सुनो मैं समझाता हूँ,” उन्होंने उत्तर दिया, “जी हाँ, अच्छा उदेना।”

तब पूज्य उदेना ने कहा, “हे ब्राह्मण, एक विशेष ब्राह्मण अपने आप को कष्ट देता है, वह इससे जकड़ा हुआ है। वह नंगा रहता है, शिष्टाचारहीन होकर हाथ चाटता है, अभिवादन या ठहरने का आदर नहीं करता। जो कुछ लाया जाता है या विशेष रूप से तैयार किया जाता है, उसे ग्रहण नहीं करता। निमंत्रण सहन नहीं करता। जब बकरी आसपास हो, या छड़ी या झाड़ू के पार से, बर्तन के किनारे से भी भोजन ग्रहण नहीं करता। दो लोगों के भोजन करने, गर्भवती स्त्री, दूध पिलाने वाली स्त्री, पुरुष के साथ गई स्त्री, या अपवित्र स्त्री से भी भोजन ग्रहण नहीं करता। मछली, मांस, मादक पेय और मादक पेय भी ग्रहण नहीं करता।”

वह एक घर से एक निवाला, दो घरों से दो निवाले, और अधिकतम सात घरों से सात निवाले ग्रहण करता है। उसका भरण-पोषण एक स्त्री, दो स्त्री, और अधिकतम सात स्त्रीयों द्वारा दिए गए भोजन से होता है। उसका भरण-पोषण एक पुरुष, दो पुरुष, और अधिकतम सात

पुरुषों द्वारा दिए गए भोजन से होता है। उसे इस प्रकार बारी-बारी से आधे महीने तक भोजन दिया जाता है। वह सब्जियां और बाजरा, कच्चा चावल, दादुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी वाले चावल का चूरा, चावल का झाग, तिलहन का आटा, घास, गोबर, वन की जड़ें और फल खाता है, या रास्ते में जो कुछ गिरता है, उससे अपना भरण-पोषण करता है। वह भांग के कपड़े, मोटे कपड़े, फटे-पुराने वस्त्र, छाल के कपड़े, चमड़े के कपड़े, चमड़े की पट्टियां, घास के कपड़े, छाल के कपड़े, तख्तों और उल्लू के बालों, पूंछ और पंखों से बने कपड़े पहनता है। उसे सिर और दाढ़ी के बाल नोचने पड़ते हैं। उसे खड़े रहने के लिए बाध्य किया जाता है, बैठने से मना किया जाता है। उसे कांटों के बिस्तर पर बैठने या लेटने के लिए बाध्य किया जाता है। उसे रात में तीन बार तक पानी में उतरने के लिए बाध्य किया जाता है। इस प्रकार वह शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति शरीर से बंधे हुए स्वयं को यातनाएँ देता है। *1)

भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को यातना देता है? भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति सूअर, बकरी, पक्षी का वध करने वाला, जंगली जानवरों का शिकारी, मछुआरा, डाकू, लुटेरा, जेल चलाने वाला या किसी अन्य दुष्ट गतिविधि में लिप्त है। यह व्यक्ति दूसरों को यातना देता है।

भिक्षु, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट देते हैं, क्या वे इससे बंधे हुए हैं? एक राजा या योद्धाओं के प्रधान राजा, ब्राह्मण या गृहस्थ कुल के राजा ने एक नया सभा भवन बनवाया। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, खुरदरा वस्त्र पहनकर, उसने अपने शरीर पर घी और तेल लगाया। हिरण के सींग को अपने पिछले हिस्से में चुभोकर वह रानी और ब्राह्मण सलाहकार के साथ सभा भवन में प्रवेश किया। सभा भवन के भीतर, वह कुछ हरियाली पर लेट गया। एक युवा गाय से एक थन से दूध निकाला गया, जिससे राजा का पोषण हुआ, दूसरे से रानी का, तीसरे से सलाहकार का, और चौथे थन के दूध से यज्ञ की रोटी पकाई गई। बचे हुए दूध से बछड़े को दूध पिलाया गया। फिर उसने आदेश दिया कि यज्ञ के लिए इतने बैल, इतनी गायें, इतनी बकरियां और इतनी भेड़ें काटें। उसने आदेश दिया कि यज्ञ के खंभे के लिए इतने पेड़ काटें और यज्ञ के लिए इतनी जगह साफ करें। दासों, सेवकों और संदेशवाहकों को छड़ी से डराकर आवश्यक कार्य करवाया जाता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को और अपने अधीन अन्य लोगों को भी पीड़ा पहुँचाता है।

भिक्षुओं, जो स्वयं को या दूसरों को कष्ट नहीं देता, क्या वह बंधनमुक्त है? भिक्षुओं, तथागत संसार में पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य रूप से जन्म लेते हैं। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय में, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति उस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था के साथ वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है। यह विकारों का मार्ग है। हे संन्यासी, बाहर जाना खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए पूर्ण और पवित्र जीवन जीना, अपवित्र हुए बिना, आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, मैं संन्यासी क्यों न बनूँ? उचित समय पर वह थोड़ा या बहुत धन त्याग देता है, चाहे मित्रों का छोटा समूह हो या मित्रों का बड़ा समूह, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु के जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है। वह जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है और लज्जित होकर समस्त प्राणियों के प्रति करुणा जगाता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, अपने मन को शुद्ध करता है और चोरी रहित जीवन व्यतीत करता है। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए वह विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद न करता है। निंदा करना त्याग देता है। यहाँ सुनकर वह कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर वह यहाँ नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। इस प्रकार वह विभाजितों को एकजुट करता है और एकता को बढ़ावा देता है। एकता प्रेमी होकर वह एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी त्यागकर वह कानों को भाने वाले वचन बोलता है, जो सबके हृदय को छू जाते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए वह उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप होते हैं और अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज करता है। वह खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने-पीटने, नष्ट करने, लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता के सुख का अनुभव करता है।

किसी आकृति को आँख से देखने पर, वह चिन्ह या तत्व ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उसमें समा सकते हैं। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनने, नाक से गंध का अनुभव करने, स्वाद चखने, शरीर से स्पर्श का अनुभव करने, मन से विचार का अनुभव करने पर, वह चिन्ह या तत्व ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उसमें समा सकते हैं। वह मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वह मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करता है। आगे बढ़ते या लौटते समय वह सचेत रहता है। देखते या देखते समय वह सचेत रहता है। झुकते या खिंचते समय वह सचेत रहता है। कुंड और तीन वस्त्र धारण करते समय वह सचेत रहता है। चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय वह सचेत रहता है। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, जागते हुए और चुप रहते हुए भी वह सचेत रहता है।

सद्गुणों से परिपूर्ण, मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाला, और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सजग, वह किसी एकांत स्थान पर निवास करता है, जैसे कि जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद, वह पाँव जोड़कर बैठता है, शरीर सीधा रखता है और ध्यान को सामने केंद्रित करता है।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वे मन को मुक्त रखते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वे क्रोध रहित मन से, सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी रहते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति से अवगत रहते हैं, और आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, और मन से बेचैनी और चिंता को दूर करते हैं। वे उचित और अनुचित कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से लघु दोषों को कमजोर करके, मन को कामुक विचारों और दोषों से अलग रखता है। एकांत से उत्पन्न विचारों, चिंतन प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता के साथ वह प्रथम ध्यान में लीन रहता है।

फिर भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है।

फिर, जो भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए सजग रहता है, वह तीसरे ध्यान में रहता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यही समभाव के प्रति सचेत रहते हुए सुख में रहना है।

फिर, भिक्षु, सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई ध्यान अवस्था में चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा जन्म ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी रही। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसी व्यवस्थाओं, ऐसे आधारों से, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए, इतनी आयु में जन्म लेता हूँ। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को देखता है। प्रकट और लुप्त होते प्राणी - उदात्त

और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हैं। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, निंदनीय श्रेष्ठ प्राणी, कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि, कमी और नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, जो अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठ प्राणियों के प्रति निंदनीय नहीं होते, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों के प्रकट और लुप्त होने को देखता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, इसका उत्पन्न होना अप्रिय है, इसका निवारण अप्रिय है, और निवारण का मार्ग भी भलीभांति ज्ञात है।

वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, ये इनका उदय है, ये इनका अंत है और ये इनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। जो मन इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'अस्तित्व' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह हो गया है। अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है।

भिक्षुओं, यह व्यक्ति न तो स्वयं को और न ही दूसरों को कष्ट देता है, बंधनों से मुक्त है, वर्तमान क्षण में ही शांत है, निर्मल है, शीतल है, और ब्रह्मा के समान सुख से निवास करता है।

तब ब्राह्मण गोणमुख ने कहा, "हे उदेना, अब मैं समझ गया। यह ऐसा है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। यह ऐसा है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो और यह उन लोगों के लिए अंधकार में दीपक जलाने जैसा है जिनके पास रूपों को देखने की दृष्टि है। उदेना ने अनेक प्रकार से इस शिक्षा की व्याख्या की। अब मैं उदेना, इस शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ।"

मेरी शरण मत लो। मेरी शरण लो, जैसे मैंने ली है।

"हे उदेना, हे परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध गौतम इस समय कहाँ निवास करते हैं?"

"परमेश्वर ब्राह्मण, जो पूर्णतः प्रबुद्ध थे, अब अंतिम निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।"

हे उदेना, अगर मुझे पता चले कि परम सिद्ध और सही मायने में ज्ञानी गौतम यहाँ से सात मील दूर रहते हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए जाता हूँ। अगर मुझे पता चले कि वे सत्तर मील, एक सौ चालीस मील, दो सौ दस मील, दो सौ अस्सी मील, तीन सौ पचास मील या सात सौ मील दूर रहते हैं, तो भी मैं उनके दर्शन के लिए जाता हूँ। क्योंकि उनका अंत हो गया है, इसलिए मैं उस परम गौतम की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से लेकर जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए। अंग के राजा मुझे प्रतिदिन भोजन के दो पैकेट देते हैं, मैं उनमें से एक पैकेट उदेना को अर्पित करता हूँ।

"हे ब्राह्मण, क्या अंग का राजा तुम्हें प्रतिदिन भोजन के दो पैकेट देता है?"

"हे उदेना, वह मुझे पाँच सौ सोने के सिक्के दे रहा है।"

"हे ब्राह्मण, हमारे लिए शुद्ध सोना और सिक्के स्वीकार करना उचित नहीं है।"

यदि यह उपयुक्त नहीं है, तो हम उडेना के लिए एक अच्छा आवास बनवा लेंगे।

हे ब्राह्मण, यदि आप मेरे लिए आवास बनवाना चाहते हैं, तो इसके बजाय पातालपुत्त के भिक्षुओं के लिए एक सभा-भवन बनवाइए।

"उदेना के इन शब्दों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए मैं भिक्षुओं के लिए प्रतिदिन भोजन की व्यवस्था करूँगा और सभा भवन का भी निर्माण करवाऊँगा।"

तब ब्राह्मण गोणामुख ने वर्तमान और भविष्य के लिए भोजन की व्यवस्था हेतु पातालपुत्त में एक सभा भवन बनवाया। अब इसे गोणामुख के नाम से जाना जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.5कन्की सुत्त(95)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध कोसल की यात्रा पर अपने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ ओपसदा नामक ब्राह्मण ग्राम में आए। भगवान बुद्ध ओपसदा के उत्तर में स्थित साला वन में विश्राम कर रहे थे। उस समय ओपसदा में सात गुणों से युक्त ब्राह्मण चंका निवास करते थे। कोसल के राजा पसेनादि ने उन्हें घास, लकड़ी, जल और अनाज उपहार स्वरूप प्रदान किए। ओपसदा के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना कि शाक्यों वंश के श्रेष्ठ संन्यासी गौतम अपने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल की यात्रा पर ओपसदा पहुंचे हैं। उस श्रेष्ठ गौतम की प्रसिद्धि फैल गई है। वे धन्य, परिपूर्ण और सच्चे अर्थों में प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, सफल मार्ग पर चल रहे हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे स्वयं ज्ञात और अनुभव किए गए एक ऐसे उपदेश का शिक्षण करते हैं जो देवताओं और मनुष्यों के संसार को, उसके मारस ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों सहित, सर्वथा उत्तम है। वह उपदेश आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थ निहित है। वह उपदेश पूर्ण और पवित्र जीवन का उद्घोष करता है। ऐसे परिपूर्ण व्यक्तियों को देखना सुखद है।

ब्राह्मण गृहस्थ ओपासाडा छोड़कर, बड़ी संख्या में एकत्रित होकर ओपासाडा के उत्तर में स्थित क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर चल पड़े। उस समय ब्राह्मण चांक अपने घर की ऊपरी मंजिल पर स्थित अपने कक्ष में दिन में सो रहे थे। तभी उन्होंने ओपासाडा के ब्राह्मण गृहस्थों को बड़ी संख्या में उत्तर की ओर क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर जाते देखा। उन्होंने अपने सेवक से पूछा, "मित्र, ओपासाडा के ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर की ओर क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर क्यों जा रहे हैं?"

"हे परम पूज्य चंका, शाक्यों वंश के संन्यासी गौतम, जो संन्यासी बन चुके हैं, भिक्षुओं के एक विशाल समुदाय के साथ कोसल देश का भ्रमण करते हुए ओपासादा पहुंचे हैं। उस परम पूज्य गौतम की प्रसिद्धि फैल चुकी है। वे धन्य, परिपूर्ण और सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, सुयोग्य आचरण वाले, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस संसार को, जिसमें मारस, ब्रह्मा, संन्यासी और ब्राह्मण शामिल हैं, स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उपदेश का उपदेश देते हैं। वह उपदेश आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थ निहित है। वह उपदेश पूर्ण और पवित्र जीवन का उद्घोष करता है। ऐसे परिपूर्ण पुरुषों को देखना सुखद है।"

फिर मित्र, ओपासादा के उन ब्राह्मण गृहस्थों के पास जाओ और उन्हें बताओ। ब्राह्मण चांक कहते हैं, हे सज्जनों, जाओ, ब्राह्मण चांक भी भगवान के दर्शन करने के लिए आ रहे हैं।

सेवक मान गया और ओपासादा के उन ब्राह्मण गृहस्थों के पास जाकर बोला, "भले ब्राह्मण चांक ने कहा है, महोदय जाइए। ब्राह्मण चांक भी भगवान के दर्शन करने जा रहे हैं।"

उस समय विभिन्न राज्यों से लगभग पाँच सौ ब्राह्मण किसी उद्देश्य से ओपासाडा में निवास कर रहे थे। उन्होंने सुना कि ब्राह्मण चानक, गौतम साधु से मिलने जा रहे हैं और वे उनके पास गए। उन्होंने पूछा, "क्या यह सच है कि उत्तम चानक, गौतम साधु से मिलने जा रहे हैं?"

जी हाँ, अच्छे लोगों, मैं भी एकांतवासी गौतम के दर्शन के लिए जाऊँगा।

यह उचित नहीं है कि उत्तम चाणक, संन्यासी गौतम के पास जाएँ, बल्कि यह उचित है कि संन्यासी गौतम उत्तम चाणक के पास जाएँ। उत्तम चाणक माता और पिता दोनों ओर से शुद्ध हैं। उनकी शुद्धता जन्म से ही सातवीं पीढ़ी तक निर्दोष है। अतः उत्तम चाणक का संन्यासी गौतम के पास जाना उचित नहीं है, बल्कि संन्यासी गौतम को उत्तम चाणक के पास जाना चाहिए। उत्तम चाणक अपार धनवान

हैं, तीनों वेदों के ज्ञाता हैं और पुरोहित के रूप में अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों से भलीभांति परिचित हैं। वे शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति से भी भली-भांति परिचित हैं। वे महान पुरुष के लक्षणों से भी भली-भांति परिचित हैं। उत्तम चाणक देखने में सुंदर हैं, उनकी त्वचा का रंग सुशोभित है, वे विनम्रता से बात करते हैं और उनकी सूरत में कोई कमी नहीं है। उत्तम चाणक गुणवान और सुविकसित हैं। वे विनम्रतापूर्वक, स्पष्ट और अर्थपूर्ण शब्दों में बोलते हैं। शुभ चंका अनेकों के गुरु हैं, वे तीन सौ युवकों को मौखिक रूप से शिक्षा देते हैं। कोसल के राजा पसेनादि शुभ चंका का आदर करते हैं। ब्राह्मण पोक्करासाति भी शुभ चंका का आदर करते हैं। ब्राह्मण चंका ओपासादा में निवास करते हैं और सात गुणों से संपन्न हैं। कोसल के राजा पसेनादि उन्हें घास, लकड़ी, जल और अनाज प्रदान करते हैं। इसलिए शुभ चंका का भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए आना उचित नहीं है; बल्कि संन्यासी गौतम का शुभ चंका के दर्शन के लिए आना उचित है।

तो सज्जनों, मेरी बात ध्यान से सुनिए, मैं आपको अच्छे गौतम के बारे में बताना चाहता हूँ, कि मुझे ही गौतम के पास जाना चाहिए, न कि गौतम को मेरे पास आना चाहिए। अच्छे गौतम माता-पिता दोनों की ओर से शुद्ध हैं। उनकी शुद्धता सातवीं पीढ़ी तक दोषरहित है। इसलिए यह उचित नहीं है कि गौतम मेरे पास आएं, बल्कि मुझे ही गौतम के पास जाना चाहिए। गौतम ने बहुत सारा सोना, छिपे और खुले खजाने त्याग दिए और तपस्वी बन गए। युवावस्था में, जब उनके बाल काले थे और उनके माता-पिता रो रहे थे, तब उन्होंने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली और तपस्वी बन गए। गौतम देखने में सुंदर हैं, उनकी त्वचा का रंग सुंदर है, वे विनम्रता से बात करते हैं, उनके रूप में कोई कमी नहीं है। गौतम गुणों से परिपूर्ण हैं, विनम्रता से बोलते हैं, और उनके शब्द अर्थपूर्ण और स्पष्ट हैं। संन्यासी गौतम अनेकों के गुरु हैं। उन्होंने कामुक इच्छाओं का नाश किया है और अपने निर्णय में अडिग हैं। संन्यासी गौतम कर्मों के फल बताते हैं और बुद्धिमानों द्वारा बुराई न करने के लिए सम्मानित हैं। सुधर्मी गौतम एक प्रतिष्ठित, धनी और संसाधनों से संपन्न कुल से आए थे। अनेक लोग दूर-दराज के देशों और राज्यों से सुधर्मी गौतम से अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए आते हैं। हजारों देवताओं ने अपने जीवन के अंत तक सुधर्मी गौतम की शरण ली है। सुधर्मी गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। वह परिपूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से युक्त, सफल, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। संन्यासी गौतम में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण पूर्ण हैं। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने अपनी पत्नी और बच्चों सहित जीवन भर सुधर्मी गौतम की शरण ली है। कोसल के राजा पसेनादि अपनी पत्नी और बच्चों के साथ पुण्य सन्यासी गौतम की शरण में आए हैं। ब्राह्मण पोक्करासाती भी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ पुण्य सन्यासी गौतम की शरण में आए हैं। सन्यासी गौतम ओपासाडा पहुंचे हैं और ओपासाडा के उत्तर में स्थित क्रीड़ाशील साला वन में निवास कर रहे हैं। जो भी हमारे गांवों और खेतों में आता है, वह हमारा अतिथि होता है। हमें अपने अतिथियों का ध्यान रखना चाहिए, उनका आदर और सम्मान करना चाहिए। इन कारणों से यह उचित नहीं है कि सन्यासी गौतम मुझसे मिलने आएं, बल्कि यह उचित है कि मैं सन्यासी गौतम के पास जाऊं। ये सभी पुण्य गुण नहीं हैं, बल्कि और भी बहुत से गुण हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इनमें से एक भी गुण को ध्यान में रखते हुए, यह उचित नहीं है कि सन्यासी गौतम मुझसे मिलने आएं, बल्कि मुझे सन्यासी गौतम के पास जाना चाहिए। इसलिए आइए हम सब सन्यासी गौतम के पास जाएं।

ब्राह्मण चंक, कई ब्राह्मणों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। उस समय कुछ वृद्ध ब्राह्मण भी भगवान बुद्ध से सौहार्दपूर्ण अभिवादन कर रहे थे। उस सभा में कपाण्हिका नाम का एक युवक बैठा था, जिसकी आयु लगभग सोलह वर्ष थी, सिर मुंडा हुआ था और वह तीनों वेदों का ज्ञाता था। उसने शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और वह एक महान पुरुष के लक्षणों से भलीभांति परिचित था। उसने भगवान बुद्ध को वृद्ध ब्राह्मणों से सौहार्दपूर्ण अभिवादन करते समय टोका। भगवान बुद्ध ने कहा, "आदरणीय भारवदाज, जब हम वृद्ध ब्राह्मणों से बात कर रहे हों तो आप बीच में न टोकें। जब यह बातचीत समाप्त हो जाए, तब आप बोलें।" ब्राह्मण चंक ने कहा, "हे गौतम, युवक कपाण्हिका को दोष न दें। वह अच्छी तरह बोलता है, बुद्धिमान और युवा है और वह इन शब्दों पर हे गौतम से बहस कर सकता है।" तब भगवान बुद्ध को यह विचार आया। "यद्यपि, कपाणिक से तीनों वेदों पर चर्चा होगी, इसीलिए ब्राह्मण उन्हें इतना आदर देते हैं।" कपाणिक के मन में यह विचार आया, "जब संन्यासी गौतम की निगाहें मुझसे मिलेंगी, तो मैं अपना प्रश्न पूछूंगा।" भगवान बुद्ध ने युवक के विचार और चिंतन प्रक्रिया को जानते हुए अपनी दृष्टि कपाणिक की ओर कर दी। कपाणिक के मन में यह विचार आया, "मेरी निगाहें संन्यासी गौतम से मिली हैं, तो क्या मैं प्रश्न पूछ लूं?" उन्होंने कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण प्राचीन कथाओं और उनके प्रमाणों से प्राप्त ज्ञान को ही सत्य मानते हैं, बाकी सब सत्य नहीं है। इस विषय में गौतम का क्या कहना है?"

"भारद्वाज, क्या कोई एक भी ब्राह्मण ऐसा है जो कहता हो, 'मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है'?"

नहीं, हे गौतम, ऐसा कुछ नहीं है।

"भारद्वाज, क्या कोई एक गुरु है, या सातवीं पीढ़ी तक कोई गुरुओं का गुरु है, जो कहता है, 'मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।'"

नहीं, हे गौतम, ऐसा नहीं है।

"भारद्वाज, क्या अतीत में अठक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेत्थ, कस्सपा और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी एक ऋषि ने, जिन्होंने प्राचीन कथनों को बनाया और संरक्षित किया, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण श्लोकों का बार-बार पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं, यह कहा है कि मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।"

नहीं, हे गौतम, उन्होंने ऐसा नहीं किया।

ब्राह्मणों में से भारद्वाज ने भी कभी यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।" सातवीं पीढ़ी तक किसी गुरु या उनके परदादा ने भी कभी यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है।" अतीत में, अठक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेत्थ, कस्सपा और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी ने भी, जिन्होंने प्राचीन कथनों को उसी प्रकार रचा और संरक्षित किया, जैसे ब्राह्मण आज श्लोकों का बार-बार पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं, यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है।" भारद्वाज, यह अंधों की एक पंक्ति के समान है जो हाथ पकड़े खड़े हैं। पहला नहीं देखता, बीच वाला नहीं देखता और आखिरी वाला भी नहीं देखता। जब ऐसा है, तो ब्राह्मणों के शब्द अंधों की पंक्ति के शब्दों के समान हैं। भारद्वाज, क्या यह आस्था अच्छी तरह से स्थापित नहीं है?

"हे गौतम, ब्राह्मण इसे न केवल आस्था के आधार पर बल्कि सुनी-सुनाई बातों के आधार पर भी जोड़ते हैं।"

"भारद्वाज, पहले आपका विवाद आस्था पर था, अब यह सुनी-सुनाई बातों पर है। इन पाँचों बातों के दोगुने परिणाम होते हैं। ये पाँच क्या हैं? ये हैं आस्था, पसंद, सुनी-सुनाई बातें, सावधानीपूर्वक विचार और दृष्टि के प्रति सहनशीलता। इन पाँचों बातों के दोगुने परिणाम होते हैं। भारद्वाज, अच्छी आस्था होती है, तो वह व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। फिर अत्यधिक पसंद होती है, तो वह व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। सुनी-सुनाई बातें होती हैं, जो व्यर्थ हो जाती हैं, असत्य हो जाती हैं, बदल जाती हैं। बहुत सावधानीपूर्वक विचार करना भी व्यर्थ हो जाता है, असत्य हो जाता है, बदल जाता है। दृष्टि के प्रति सहनशीलता भी व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। सत्य की रक्षा करने वाले बुद्धिमान व्यक्ति के लिए एकतरफा दृष्टिकोण अपनाकर यह कहना उचित नहीं है कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है।"

हे गौतम, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है? हे गौतम, मैं आपसे पूछता हूँ, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है?

भारद्वाज, मनुष्य में आस्था उत्पन्न होती है, यह मेरी आस्था है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में पसंद उत्पन्न होती है, यह मेरी पसंद है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में सुनी-सुनाई बातें होती हैं, यह मेरी सुनी-सुनाई बातें हैं, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में गहन चिंतन उत्पन्न होता है, यह मेरा गहन चिंतन है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है। यह तो केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में विचारों के प्रति सहनशीलता आ जाती है, वह कहता है कि यही मेरा विचार है, वह अपने शब्दों की सत्यनिष्ठा से रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है। यह तो केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं।

हे गौतम जी, सत्य की रक्षा इतनी सुरक्षा से होती है। अब हमें सत्य की रक्षा का ज्ञान हो गया है। सत्य की प्राप्ति कैसे होती है? हे गौतम जी से सत्य की प्राप्ति का प्रश्न है।

भरद्वाज, एक भिक्षु किसी गाँव या बस्ती में रहते हैं। एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र इस पूज्य भिक्षु के पास यह जानने के लिए आता है कि क्या उनमें लोभ, क्रोध या भ्रम के विचार हैं। वह जाँच करता है कि क्या यह पूज्य भिक्षु लोभपूर्ण विचारों से ग्रस्त हैं, क्या वे इन विचारों से अभिभूत होकर यह कहते हैं कि मैं जानता हूँ, क्या वे यह कहते हैं कि मैंने देखा, या क्या वे लंबे समय से दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए उपदेश देते आ रहे हैं। तब उसे पता चलता है कि इस पूज्य भिक्षु में लोभपूर्ण विचार नहीं हैं, क्या वे इन विचारों से अभिभूत होकर

यह कहते नहीं कि मैं जानता हूँ, क्या वे यह कहते हैं कि मैंने देखा, या क्या वे लंबे समय से दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए उपदेश देते आ रहे हैं। इस पूज्य भिक्षु का शारीरिक और वाणी का व्यवहार लोभहीन है। यदि यह पूज्य भिक्षु कुछ उपदेश देते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उत्कृष्ट, तर्क से परे, बुद्धिमत्तापूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह लोभपूर्ण व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। जांच करते समय वह देखता है कि पूजनीय व्यक्ति पवित्र है, उसके मन में कोई लालची विचार नहीं है और वह उसकी आगे जांच करता है।

क्या यह पूज्यवर ऐसे क्रोधित विचारों से ग्रस्त हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा है, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय से इस प्रकार उपदेश देते आ रहे हैं? तब उन्हें पता चलता है कि इस पूज्यवर के मन में ऐसे क्रोधित विचार नहीं हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा है, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय से इस प्रकार उपदेश देते आ रहे हैं। इस पूज्यवर का शारीरिक और वाणी व्यवहार एक शांत व्यक्ति का है। यदि यह पूज्यवर कुछ उपदेश देते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उदात्त, तर्क से परे, बुद्धिमत्तापूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह एक क्रोधित व्यक्ति के बस की बात नहीं है। जाँच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर शुद्ध हैं, उनके मन में क्रोधित विचार नहीं हैं, और वे उनकी आगे जाँच करते हैं।

क्या यह पूज्यवर ऐसे भ्रमित विचारों से ग्रस्त हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय तक उपदेश देते रहते हैं? तब उन्हें पता चलता है कि इस पूज्यवर में ऐसे भ्रमित विचार नहीं हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय तक उपदेश देते रहते हैं। इस पूज्यवर का शारीरिक और वाणी व्यवहार एक भ्रमित व्यक्ति के समान है। यदि यह पूज्यवर कुछ सिखाते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उत्कृष्ट, तर्क से परे, चतुराईपूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह एक भ्रमित व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। जाँच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर शुद्ध हैं, भ्रमित नहीं हैं। इस प्रकार उनमें आस्था स्थापित हो जाती है, और आस्था के साथ वे संगति में जाते हैं। संगति में वे उपदेश को ध्यान से सुनते हैं और उसे मन में आत्मसात करते हैं। जब उपदेश मन में आत्मसात हो जाता है, तो उसकी जाँच की जाती है। अर्थों का विश्लेषण करते समय, वे धैर्यपूर्वक चिंतन करते हैं और उनमें रुचि उत्पन्न होती है। वे इस रुचि के साथ तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। विश्लेषण से सर्वोच्च सत्य को प्राप्त करने का चौगुना प्रयास होता है। तब वे शरीर सहित सर्वोच्च सत्य को प्राप्त करते हैं, और उसे गहन ज्ञान से देखते हैं। भारद्वाज, इतना सत्य का अनुभव हो जाता है। मैं इसे सत्य की प्राप्ति घोषित करता हूँ।

हे गौतम जी, अब मुझे सत्य का ज्ञान हो गया है। यह कैसे प्राप्त होता है? हे गौतम जी, मुझे वह प्राप्ति और ज्ञान सिखाइए।

"भारद्वाज, इन्हीं चीजों का अभ्यास, विकास और महत्व देने से सत्य की प्राप्ति होती है। मैं घोषणा करता हूँ कि सत्य की प्राप्ति यही है।"

हे गौतम, अब मुझे सत्य का ज्ञान हो गया है। सत्य को जानने में कौन-कौन सी चीजें सहायक होती हैं?

"भारद्वाज, सत्य की प्राप्ति के लिए चार प्रकार के प्रयास अत्यंत सहायक होते हैं। यदि चार प्रकार के प्रयास न हों, तो सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए चार प्रकार के प्रयास अत्यंत सहायक होते हैं।"

हे गौतम, चौतरफा प्रयास के लिए कौन सी चीज सबसे अधिक सहायक है?

भारद्वाज, वजन करना [1] चार प्रकार के प्रयासों में बहुत सहायक होता है। वजन किए बिना चार प्रकार के प्रयास संभव नहीं हैं, इसलिए वजन करना चार प्रकार के प्रयासों में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, वजन करने के लिए कौन सी चीज सबसे ज्यादा मददगार होती है?

भारद्वाज, संघर्ष [2] तौलने में बहुत सहायक होता है। उस संघर्ष के बिना तौलना संभव नहीं है, इसलिए वह संघर्ष तौलने में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, संघर्ष करने में कौन सी चीज सबसे ज्यादा सहायक होती है?

“भारद्वाज, यानी रुचि, संघर्ष में बहुत सहायक होती है। उस रुचि के बिना कोई संघर्ष नहीं होता, इसलिए वह रुचि संघर्ष में बहुत सहायक होती है।”

“हे गौतम, रुचि के लिए, कौन सी चीज बहुत उपयोगी है?”

भारद्वाज, उचित चिंतन [3] ब्याज के लिए बहुत सहायक है। उचित चिंतनशील मन के बिना ब्याज नहीं होता, इसलिए उचित चिंतनशील मन ब्याज के लिए बहुत सहायक है।

हे गौतम, एक सच्चे चिंतनशील मन के लिए कौन सी चीज बहुत सहायक होती है?

“भारद्वाज, शिक्षा के अर्थों का अध्ययन करना एक सही चिंतनशील मन के लिए बहुत सहायक होता है। शिक्षा के अर्थों का अध्ययन किए बिना सही चिंतन संभव नहीं है, इसलिए शिक्षा के अर्थों का अध्ययन करना एक चिंतनशील मन के लिए बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, शिक्षा में अर्थों की जांच करने के लिए कौन सी चीज बहुत सहायक होती है?

“भारद्वाज, शिक्षा को मन में धारण करके, शिक्षा के अर्थों की जाँच करने में अत्यंत सहायक होते हैं। शिक्षा को मन में धारण किए बिना अर्थों की जाँच संभव नहीं है, इसलिए शिक्षा को मन में धारण करना शिक्षा के अर्थों की जाँच करने में अत्यंत सहायक होता है।”

हे गौतम, शिक्षा को मन में धारण करने के लिए कौन सी चीज सबसे अधिक सहायक होती है?

“भारद्वाज, उपदेश सुनना मन में उपदेश को धारण करने में बहुत सहायक होता है। उपदेश सुने बिना उपदेश को धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए उपदेश सुनना मन में उपदेश को धारण करने में बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, उपदेश सुनने में सबसे अधिक सहायक क्या है?

“भारद्वाज, ध्यानपूर्वक सुनना, शिक्षा को सुनने में बहुत सहायक होता है। बिना ध्यान दिए शिक्षा को सुनना संभव नहीं है, इसलिए ध्यानपूर्वक सुनना शिक्षा को सुनने में बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, ध्यान से सुनने के लिए, कौन सी बात बहुत सहायक होगी?

“भारद्वाज, संगति करने से सुनने में बहुत सहायता मिलती है। संगति के बिना सुनने की क्षमता नहीं होती, इसलिए संगति करने से सुनने में बहुत सहायता मिलती है।”

हे गौतम, संगति करने में कौन सी वस्तु अत्यंत सहायक होती है?

भारद्वाज, पास आने से, संयोजन में बहुत सहायता मिलती है। पास आए बिना संयोजन संभव नहीं है, इसलिए पास आना संयोजन में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, पास आने के लिए कौन सी चीज सबसे ज्यादा मददगार होगी?

“भारद्वाज, आस्था, निकट आने में बहुत सहायक होती है। आस्था के बिना निकट आना संभव नहीं है, इसलिए आस्था निकट आने में बहुत सहायक होती है।”

मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य का अनुभव कैसे होता है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य का अनुभव कैसे प्राप्त होता है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य के अनुभव में कौन सी चीजें सहायक होती हैं? गौतम जी ने मुझे उनका स्पष्टीकरण दिया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने जो भी प्रश्न पूछे, उन सभी का मुझे उत्तर दिया गया। मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं

उससे प्रसन्न हुआ। गौतम जी, पहले मैं सोचता था कि ये मुंडेले हुए साधु कौन हैं, जो हमारे सगे-संबंधियों के चरणों में अर्पित किए गए हैं। क्या वे शिक्षा को जानते हैं? गौतम जी ने मेरे मन में इन साधुओं के प्रति प्रेम जगाया है, अब मैं उनका सम्मान करता हूँ और उनकी कद्र करता हूँ। गौतम जी, अब मैं समझ गया हूँ। - आज से लेकर जीवन भर मुझे उस गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने अच्छे गौतम की शरण ली है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.6एसुकारी सुत्त(96)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेट वन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में रह रहे थे। ब्राह्मण एशुकारी भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। ब्राह्मण एशुकारी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ब्राह्मणों, योद्धाओं, साधारण लोगों और निम्न जाति के लोगों की सेवा के लिए अलग-अलग व्यक्ति नियुक्त करते हैं। हे गौतम, ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक ब्राह्मण को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या एक योद्धा को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या एक साधारण व्यक्ति को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक योद्धा को योद्धा की सेवा करनी चाहिए, या एक साधारण व्यक्ति को योद्धा की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को योद्धा की सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक साधारण व्यक्ति को साधारण व्यक्ति की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को उसकी सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए निम्न जाति के व्यक्ति को इस प्रकार व्यवस्था है।" नीची जाति के व्यक्ति की सेवा नीची जाति के व्यक्ति को ही करनी चाहिए। भला उसकी सेवा कौन करेगा? हे गौतम, ब्राह्मण इन चार प्रकार की सेवाओं को नियुक्त करते हैं। इस बारे में हे गौतम को क्या कहना है?

"हे ब्राह्मण, क्या समस्त विश्व ब्राह्मणों द्वारा दी गई इन सेवाओं को स्वीकार करता है?"

"हे गौतम, ऐसा नहीं है।"

हे ब्राह्मण, यह उस प्रकार है जैसे किसी गरीब, दुखी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कहा जाए, "हे भले मनुष्य, तुम मांस खाओ और उस पर धन खर्च न करो।" इसी प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों की सहमति के बिना, ये चार सेवाएँ निर्धारित की गई हैं। हे ब्राह्मण, मैं यह नहीं कहता कि सभी सेवाएँ की जानी चाहिए। मैं यह भी नहीं कहता कि सभी सेवाएँ नहीं की जानी चाहिए। यदि उन सेवाओं को करने में कोई बुराई हो, तो वह सेवा अच्छी नहीं है। मैं कहता हूँ कि उसे नहीं करना चाहिए। यदि उन सेवाओं को करने में कोई बुराई न हो, तो वह सेवा अच्छी है। मैं कहता हूँ कि उसे करना चाहिए। हे ब्राह्मण, योद्धाओं से यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए। सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, और सेवा करते समय भलाई हो और बुराई न हो, तो आप इस स्थिति में कैसे सेवा करेंगे? सही उत्तर देने वाले योद्धाओं को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: यदि बुराई हो और भलाई न हो, तो मैं वह सेवा नहीं करूँगा। यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो मैं वह सेवा करूँगा। यहाँ तक कि ब्राह्मणों, साधारण वर्ग और निम्न जाति के लोगों से भी प्रश्न पूछा जाना चाहिए। सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, और सेवा करते समय यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो आप इस स्थिति में कैसे सेवा करेंगे? निम्न जाति के व्यक्ति को सही उत्तर देते हुए इस प्रकार कहना चाहिए: सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, तो मैं वह सेवा नहीं करूँगा। सेवा करते समय यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो मैं वह सेवा करूँगा। ब्राह्मण, मुझे उच्च कुल में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही उच्च कुल में कोई बुराई। ब्राह्मण, मुझे उदात्त रूप में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही उदात्त रूप में कोई बुराई। ब्राह्मण, मुझे अपार धन में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही अपार धन में कोई बुराई।

ब्राह्मण, उच्च कुल का कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट कर सकता है, बिना माँगे वस्तुएँ ले सकता है, यौन दुराचार कर सकता है, झूठ बोल सकता है, द्वेषपूर्ण बातें कर सकता है, कठोर और निरर्थक बातें कर सकता है, लोभग्रस्त, क्रोधित और गलत दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं उच्च कुल में श्रेष्ठता नहीं कहता। उच्च कुल का कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने, बिना माँगे वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, द्वेषपूर्ण बातें करने, कठोर और निरर्थक बातें करने से परहेज कर सकता है, लोभग्रस्त या क्रोधित नहीं हो सकता और सही दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं उच्च कुल में बुराई नहीं कहता।

एक ब्राह्मण, जो देखने में उत्तम और धनी हो, वह जीवों को नष्ट कर सकता है, बिना माँगे वस्तुएँ ले सकता है, यौन दुराचार कर सकता है, झूठ बोल सकता है, द्वेषपूर्ण बातें कर सकता है, कठोर और व्यर्थ बातें कर सकता है, लोभग्रस्त, क्रोधित और गलत दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं धन को श्रेष्ठ नहीं कहता। एक धनी व्यक्ति जीवों को नष्ट करने, बिना माँगे वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, द्वेषपूर्ण बातें करने, कठोर और व्यर्थ बातें करने से परहेज कर सकता है, लोभग्रस्त या क्रोधित नहीं हो सकता और सही दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं धन को बुराई नहीं कहता। मैं यह नहीं कहता कि हर चीज का अनुसरण करना चाहिए, न ही मैं यह कहता हूँ कि हर चीज का अनुसरण नहीं करना चाहिए। किसी चीज का अनुसरण करते समय, यदि आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि बढ़ती है, तो मैं कहता हूँ कि उसका अनुसरण करना चाहिए।

यह सुनकर ब्राह्मण एशुकारी ने कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण चार प्रकार के धन देते हैं: एक ब्राह्मणों के लिए, दूसरा योद्धाओं के लिए, तीसरा साधारणों के लिए और चौथा निम्न जातियों के लिए। ब्राह्मण भिक्षावृत्ति का वरदान देते हैं। जो ब्राह्मण भिक्षावृत्ति को तुच्छ समझते हैं, वे इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण योद्धाओं को बाण-धन का वरदान देते हैं। योद्धा भी बाण-धन का तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण साधारणों को कृषि और पशुपालन का वरदान देते हैं। वे इसे तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण निम्न जातियों को पिंगो ढोने का वरदान देते हैं और गंदगी को त्याग देते हैं। वे इसे तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। हे गौतम, इस विषय में आपका क्या कहना है?"

"हे ब्राह्मण, क्या समस्त विश्व ब्राह्मणों द्वारा दिए गए धन के दान को स्वीकार करता है?"

"हे गौतम, ऐसा नहीं है।"

हे ब्राह्मण, यह ऐसा है जैसे किसी गरीब, दुखी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कहा गया हो, "हे भले मनुष्य, तुम मांस खाओ और उस पर पैसा खर्च न करो।" ठीक इसी प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों की सहमति के बिना, ये चार धन भेंट किए गए हैं।

हे ब्राह्मण, मैं मनुष्यों को यह श्रेष्ठ धन प्रदान करता हूँ, जो इस संसार से परे है। पहले मनुष्य अपने माता-पिता का नाम और कुल याद रखते हैं और उसी के अनुसार उनकी गणना की जाती है। यदि कोई योद्धाओं के साथ जन्म लेता है, तो वह योद्धा कहलाता है, ब्राह्मणों के साथ जन्म लेता है, साधारण जाति के साथ जन्म लेता है, और नीच जाति के साथ जन्म लेता है, तो उसी जाति का माना जाता है। जिस प्रकार किसी भी चीज से आग जलती है, उसी के अनुसार उसकी गणना की जाती है। जैसे टहनियों से जलने वाली आग टहनी की आग होती है, घास से जलने वाली आग घास की आग होती है, गोबर से जलने वाली आग गोबर की आग होती है। उसी प्रकार, मैं मनुष्यों को यह श्रेष्ठ धन प्रदान करता हूँ, जो इस संसार से परे है। पहले मनुष्य अपने माता-पिता का नाम और कुल याद रखते हैं और उसी के अनुसार उनकी गणना की जाती है। यदि कोई योद्धाओं के साथ जन्म लेता है, तो वह योद्धा कहलाता है, ब्राह्मणों के साथ जन्म लेता है, साधारण जाति के साथ जन्म लेता है, और नीच जाति के साथ जन्म लेता है, तो उसी जाति का माना जाता है। ब्राह्मण, यहाँ तक कि वह योद्धा भी जो तथागत द्वारा घोषित धर्म के मार्ग पर चलकर तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, प्राणनाशक, अनादि वस्तु का सेवन, यौन दुराचार, झूठ बोलना, द्वेषपूर्ण बातें, कठोर वाणी और निरर्थक बातों से विरक्त रहता है। वह लोभ नहीं करता, क्रोधी मन नहीं रखता और सही दृष्टि प्राप्त करता है। पुण्य कर्मों के लिए प्रयास करता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, यहाँ तक कि साधारण जाति का व्यक्ति, यहाँ तक कि निम्न जाति का व्यक्ति भी, जो तथागत द्वारा घोषित धर्म के मार्ग पर चलकर तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, प्राणनाशक, अनादि वस्तु का सेवन, यौन दुराचार, झूठ बोलना, द्वेषपूर्ण बातें, कठोर वाणी और निरर्थक बातों से विरक्त रहता है। वह लोभ नहीं करता, क्रोधी मन नहीं रखता और सही दृष्टि प्राप्त करता है। पुण्य कर्मों के लिए प्रयास करता है। क्या केवल ब्राह्मण ही प्रेम और करुणा का विचार विकसित कर सकता है, योद्धा नहीं, साधारण जाति का व्यक्ति नहीं और निम्न जाति का व्यक्ति भी नहीं?

'कोई भी अच्छा योद्धा गौतम भी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर प्रेम और दया का विचार विकसित नहीं कर सकता था, एक ब्राह्मण भी कर सकता था, साधारण वर्ग का व्यक्ति भी कर सकता था और निम्न जाति का व्यक्ति भी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर प्रेम और दया का विचार विकसित कर सकता था।'

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण भी तथागत के प्रवचनों का अनुसरण करते हुए, जीवन-नष्ट करने से परहेज़ कर सकता है और पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण वर्ग का व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के प्रवचनों का अनुसरण करते हुए, जीवन-नष्ट करने से परहेज़ कर सकता है और पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। क्या केवल ब्राह्मण ही साबुन और झाड़ू लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है, कोई योद्धा नहीं, कोई साधारण व्यक्ति नहीं और कोई निम्न वर्ग का व्यक्ति नहीं?

"हे गौतम, ऐसा नहीं है, एक योद्धा भी साबुन और ब्रश लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है, एक ब्राह्मण भी धो सकता है, साधारण व्यक्ति भी धो सकता है और निम्न वर्ग का व्यक्ति भी साबुन और ब्रश लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है।"

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण, एक योद्धा भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है।

ब्राह्मण, एक अभिषिक्त योद्धा राजा, विभिन्न कुलों में जन्मे सैकड़ों लोगों को आमंत्रित करता है, जैसे योद्धा, ब्राह्मण, साधारण वर्ग या निम्न जाति। चाहे आप किसी महल में, किसी सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में जन्मे हों, एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। आइए सज्जनों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप बहिष्कृत, निम्न जाति, बांस बुनने वाले, रथ निर्माता या सफाईकर्मी के बीच जन्मे हैं। चाहे आप कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में या झाड़ियों में जन्मे हों। एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। यदि ज्वाला, रंग और चमक वाली अग्नि प्रज्वलित हो, तो क्या अग्नि से किया जाने वाला कोई भी कार्य किया जा सकता है? जो लोग बहिष्कृत, नीची जाति के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ पैदा हुए हों, कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में पैदा हुए हों या झाड़ियों में पैदा हुए हों, यदि वे बाहरी आवरण लेकर आग जलाएं, तो क्या वह आग लपट, रंग और चमक नहीं देगी और क्या आग के साथ जो कुछ किया जाना चाहिए वह नहीं किया जाएगा?'

हे गौतम, ऐसा नहीं है, चाहे कोई भी कुल हो, योद्धा हो, ब्राह्मण हो, साधारण वर्ग का हो या दास हो। चाहे वह किसी महल में जन्मा हो, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में। यदि वह आवरण लेकर अग्नि जलाए, तो उसमें ज्वाला, रंग और चमक होगी और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। यहाँ तक कि जो लोग बहिष्कृत, निम्न जाति के, बाँस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ जन्म लेते हैं, चाहे वे कुत्तों, सूअरों, धोबी या झाड़ियों में जन्म लें, उनकी जलाई हुई अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। हे गौतम, सभी प्रकार की अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य करना संभव है, वह उससे किया जा सकता है।

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण, एक योद्धा भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण वर्ग का व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है।

तब ब्राह्मण एशुकारी ने कहा, “अब मैं अच्छे गौतम को जान गया हूँ... मुझे आज से जीवन भर अच्छे गौतम की शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.7धनंजनी सुत्त(97)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ दक्षिणी पर्वतों में विचरण कर रहे थे। तभी एक भिक्षु, जिन्होंने वर्षा ऋतु राजगृह में बिताई थी, पूज्य सारिपुत्त के पास दक्षिणी पर्वतों में गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, पूज्य सारिपुत्त ने उनसे कहा, "मित्र, मुझे विश्वास है कि भगवान स्वस्थ और रोगमुक्त हैं।"

"हे मित्र, भगवान बलवान और रोगमुक्त हैं।"

"मुझे विश्वास है कि भिक्षुओं का समुदाय मजबूत है और बीमारियों से मुक्त है?"

"भिक्षुओं का समुदाय भी मजबूत है और रोगमुक्त है।"

"तन्दुलपाला द्वार पर धनंजनी नाम का एक ब्राह्मण है।1 मुझे विश्वास है कि वह बलवान और रोगमुक्त है?"

"धनंजनी ब्राह्मण भी बलवान और रोगमुक्त हैं।"

और मुझे विश्वास है कि ब्राह्मण धनंजनी सावधान हैं?

"हे मित्र, हमारे धनंजनी ब्राह्मण को भला सजगता कहाँ से आएगी? राजा पर भरोसा करके वह ब्राह्मणों और गृहस्थों को लूटता है। ब्राह्मणों और गृहस्थों पर भरोसा करके वह राजा को लूटता है। उसकी पत्नी—जो आस्थावान परिवार से आई थी—की मृत्यु हो गई है। उसने एक और पत्नी—जो आस्थाहीन है—को भी आस्थाहीन परिवार से लाया है।"

"मेरे मित्र, यह सुनकर कितना बुरा लगता है कि ब्राह्मण धनंजनी लापरवाह हैं। शायद कभी न कभी हमारी मुलाकात ब्राह्मण धनंजनी से हो जाए। शायद कुछ बातचीत हो पाए।"

फिर पूज्य सारिपुत्त, दक्षिणी पर्वतों में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद, राजगृह की दिशा में विचरण करने लगे। कई पड़ावों से गुजरते हुए वे राजगृह पहुँचे। वहाँ वे राजगृह के निकट गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे।

फिर सुबह सवेरे, पूज्य सारिपुत्त ने अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने गए। उस समय ब्राह्मण धनंजनी नगर के बाहर एक गौशाला में गायों का दूध दुह रहे थे। राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय पूज्य सारिपुत्त धनंजनी ब्राह्मण के पास गए। धनंजनी ब्राह्मण ने पूज्य सारिपुत्त को दूर से आते देखा। उन्हें देखकर वे उनके पास गए और बोले, "हे स्वामी सारिपुत्त, थोड़ा ताजा दूध पीजिए। आपके भोजन का समय हो गया होगा।"

"कोई बात नहीं, ब्राह्मण। मैंने आज का भोजन कर लिया है। आज मैं उस पेड़ के नीचे ही विश्राम करूँगा। आप वहाँ आ सकते हैं।"

"जैसा आप कहें, गुरुजी," धनंजनी ने आदरणीय सारिपुत्त को उत्तर दिया। सुबह का भोजन करने के बाद, वे आदरणीय सारिपुत्त के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने आदरणीय सारिपुत्त से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, आदरणीय सारिपुत्त ने उनसे कहा, "धनंजनी, मुझे विश्वास है कि तुम सचेत हो?"

"हे स्वामी, हमें सजगता कहाँ से मिलेगी? — जब माता-पिता का भरण-पोषण करना है, पत्नी और बच्चों का, दासों और श्रमिकों का, मित्रों और साथियों के लिए मित्र-सहयोगी कर्तव्य निभाने हैं, रिश्तेदारों के लिए सगोत्र-संबंधी कर्तव्य निभाने हैं, मेहमानों के लिए अतिथि कर्तव्य निभाने हैं, दिवंगत पूर्वजों के लिए दिवंगत पूर्वजों के कर्तव्य निभाने हैं, देवताओं के लिए देवता कर्तव्य निभाने हैं, राजा के लिए राजा कर्तव्य निभाने हैं, और इस शरीर को भी तरोताजा और पोषित करना है।"

"धनंजनी, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। फिर, उसके अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक के रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। मुझे नरक में मत डालो, नरक के रक्षकों!' या क्या उसके माता-पिता को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने हमारे खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। उसे नरक में मत डालो, नरक के रक्षकों!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"धनंजनि, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों... अपने दासों और श्रमिकों... अपने मित्रों और साथियों... अपने सगे-संबंधियों... अपने अतिथियों... अपने दिवंगत पूर्वजों... देवताओं... राजा के लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। तब, उसके इस अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने राजा के लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, मुझे

नरक में मत डालो!' या क्या राजा को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने हमारे लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, उसे नरक में मत डालो!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"धनंजनी, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। फिर, उसके इस अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक के रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, मुझे नरक में मत डालो!' या क्या दूसरों को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, उसे नरक में मत डालो!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"अब, धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है? कौन बेहतर है: वह जो अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असंगत कार्य करे; या वह जो अपने माता-पिता के खातिर धर्मी, संगत कार्य करे?"

"हे स्वामी सारिपुत्त, जो अपने माता-पिता के खातिर अधार्मिक, असामंजस्यपूर्ण कार्य करे, वह श्रेष्ठ नहीं है। जो अपने माता-पिता के खातिर न्यायपूर्ण, समभावपूर्ण कार्य करे, वही श्रेष्ठ है। न्यायपूर्ण आचरण, समभावपूर्ण आचरण, अधार्मिक आचरण, असामंजस्यपूर्ण आचरण से श्रेष्ठ है।"

"धनंजनि, ऐसे अन्य कार्य भी हैं - जो उचित और धार्मिक हैं - जिनके द्वारा कोई व्यक्ति अपने माता-पिता का भरण-पोषण कर सकता है, और साथ ही साथ बुराई न करके पुण्य कर्मों का अभ्यास भी कर सकता है।"

"धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है: कौन बेहतर है: वह जो अपनी पत्नी और बच्चों... अपने दासों और श्रमिकों... अपने मित्रों और साथियों... अपने सगे-संबंधियों... अपने अतिथियों... अपने दिवंगत पूर्वजों... देवताओं... राजा... अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असंगत कार्य करे; या वह जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए उचित और संगत कार्य करे?"

"हे स्वामी सारिपुत्त, जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक, असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है, वह श्रेष्ठ नहीं है। जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए धार्मिक, समभावपूर्ण कार्य करता है, वही श्रेष्ठ है। धार्मिक आचरण, समभावपूर्ण आचरण, अधार्मिक आचरण, असामंजस्यपूर्ण आचरण से श्रेष्ठ है।"

"धनंजनि, ऐसे अन्य कार्य भी हैं - जो तर्कसंगत और धार्मिक हैं - जिनके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर को तरोताजा और पोषित कर सकता है, और साथ ही बुराई न करके पुण्य कर्मों का अभ्यास भी कर सकता है।"

तब ब्राह्मण धनंजनी, पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और चले गए।

फिर एक बार ब्राह्मण धनंजनी बीमार पड़ गए, उन्हें बहुत कष्ट हुआ। तब उन्होंने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे भले। भगवान बुद्ध के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम करो और कहो, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, उन्हें कष्ट हुआ है, वे बहुत बीमार हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करते हैं।' फिर पूज्य सारिपुत्त के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम करो और कहो, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, उन्हें कष्ट हुआ है, वे बहुत बीमार हैं। वे पूज्य सारिपुत्त के चरणों में प्रणाम करते हैं।' फिर कहो, 'यदि पूज्य सारिपुत्त सहानुभूतिवश धनंजनी के घर जाएँ तो अच्छा होगा।'"

धनंजनी ब्राह्मण को "जैसा आप कहें, भगवान" कहकर उत्तर देते हुए वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने कहा, "भगवान, धनंजनी ब्राह्मण बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत अस्वस्थ हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।" फिर वह पूज्य सारिपुत्त के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने कहा, "आदरणीय, धनंजनी ब्राह्मण बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत अस्वस्थ हैं। वे पूज्य सारिपुत्त के

चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।" फिर उसने कहा, "यदि पूज्य सारिपुत्त सहानुभूतिवश धनंजनी के घर जाएँ तो अच्छा होगा।" पूज्य सारिपुत्त मौन रहकर सहमत हो गए।

तब पूज्य सारिपुत्त ने अपने वस्त्र धारण किए और पान का पात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर धनंजनी के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए और उनसे कहा, "धनंजनी, मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हैं? मुझे आशा है कि आप आराम से हैं? मुझे आशा है कि आपका दर्द कम हो रहा है, बढ़ नहीं रहा है? मुझे आशा है कि दर्द कम होने के संकेत मिल रहे हैं, बढ़ने के नहीं?"

"हे गुरु सारिपुत्त, मेरी तबीयत में सुधार नहीं हो रहा है। मैं आराम से नहीं हूँ। मेरा दर्द कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। दर्द कम होने के संकेत नहीं, बल्कि बढ़ने के संकेत हैं। मेरे सिर में असहनीय पीड़ा हो रही है, मानो कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर रहा हो... मेरे सिर में असहनीय दर्द हो रहा है, मानो कोई बलवान व्यक्ति चमड़े के कड़े पट्टे से मेरे सिर पर पगड़ी कस रहा हो... मेरे पेट में असहनीय पीड़ा हो रही है, मानो कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से बैल का पेट चीर रहा हो... मेरे शरीर में असहनीय जलन हो रही है, मानो दो बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को बाहों में भरकर अंगारों के गड्ढे पर भून रहे हों। हे पूज्यवर, मेरी तबीयत में सुधार नहीं हो रहा है। मैं आराम से नहीं हूँ। मेरा दर्द कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। दर्द कम होने के संकेत नहीं, बल्कि बढ़ने के संकेत हैं।"

"धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है? नरक या पशु गर्भ में रहना, इनमें से कौन बेहतर है?"

"हे सारिपुत्त गुरु, पशु का गर्भ नरक से बेहतर है।"

"... इनमें से कौन सा बेहतर है: पशु का गर्भ या भूखे प्रेतों का लोक?"

"...भूखे प्रेतों का क्षेत्र...."

"...भूखे प्रेतों का क्षेत्र या मनुष्यों का?"

"... मनुष्य ..."

"...मनुष्य या चार महान राजा देव?"

"...चार महान राजा देव...."

"...चार महान राजा देव या तैंतीस देव?"

"...तैंतीस के देवता...."

"...तैंतीस देव या यम देव?"

"...यमदेव...."

"...यम देव या तुसिता देव?"

"...तुषिता देवों...."

"...तुसिता देव या निम्मनराती देव?"

"...निम्मनराती देवता...।"

"...निम्मनराति देव या परानिम्मितावासवति देव?"

"...परानिम्मितवसवत्ति देवता...।"

"...परानिम्मितवासवत्ति देव या ब्रह्म जगत?"

क्या गुरु सारिपुत्त ने 'ब्रह्म जगत' कहा था? क्या गुरु सारिपुत्त ने 'ब्रह्म जगत' कहा था?

तब पूज्य सारिपुत्त के मन में यह विचार आया, "ये ब्राह्मण ब्रह्मलोक में ही लगे हुए हैं। यदि मैं ब्राह्मण धनंजनी को ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊं तो क्या होगा?"

[तब उन्होंने कहा:] "धनंजनी, मैं तुम्हें ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उस पर गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," धन्नजनी ब्राह्मण ने वेन को उत्तर दिया। सारिपुट्टा.

आदरणीय सारिपुत्त ने कहा: "ब्रह्मों के साथ मिलन का मार्ग क्या है? एक भिक्षु पूर्व दिशा में सद्भावना से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह, संपूर्ण रूप से, वह सर्वव्यापी ब्रह्मांड में सद्भावना से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। वह करुणा, प्रशंसा और समभाव से परिपूर्ण चेतना के साथ पहली दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह, संपूर्ण रूप से, वह सर्वव्यापी ब्रह्मांड में समभाव से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। हे धनंजनी, यही ब्रह्मों के साथ मिलन का मार्ग है।"

"ऐसे में, हे स्वामी सारिपुत्त, मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और कहें, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार है, पीड़ा में है, अत्यंत अस्वस्थ है। वह भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता है।'"

अतः पूज्य सारिपुत्त ने जब धनंजनी ब्राह्मण को निम्न ब्रह्मलोक में स्थापित कर दिया, तब भी उनका कार्य शेष था। वे अपने आसन से उठकर चले गए। फिर, पूज्य सारिपुत्त के जाने के कुछ ही समय बाद धनंजनी ब्राह्मण का निधन हो गया और वे ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए।

और भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त ने जब अभी और भी काम बाकी था, तब निम्न ब्रह्मलोक में ब्राह्मण धनंजनी को स्थापित करने के बाद, अपने आसन से उठकर चले गए हैं।"

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत कष्ट में हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।”

"परन्तु सारिपुत्त, जब निम्न ब्रह्मलोक में धनंजनी ब्राह्मण की स्थापना कर दी गई थी और अभी बहुत कुछ करना बाकी था, तो तुम अपने आसन से उठकर क्यों चले गए?"

"हे भगवान, मेरे मन में यह विचार आया, 'ये ब्राह्मण ब्रह्मलोक में बसे हुए हैं। यदि मैं ब्राह्मण धनंजनी को ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊं तो क्या होगा?'"

"सारिपुत्त, ब्राह्मण धनंजनी का निधन हो गया है और वे ब्रह्मलोक में पुन: प्रकट हुए हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 10.8वसेत्थ सुत्त(98)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान बुद्ध इच्छानाकला के पास इच्छानाकला वन में निवास करते थे। उस समय इच्छानाकला में कई प्रसिद्ध ब्राह्मण गृहस्थ रहते थे, जैसे कि चंकी, तारुक्खा, पोक्खरसाती, जानूनी, तोदेय्या और अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मण गृहस्थ।

दो युवा ब्राह्मण वासेञ्च और भारद्वाज व्यायाम के लिए टहलते हुए इस विवाद में पड़ गए। "मित्र, ब्राह्मण कैसे बनते हैं?" युवा भारद्वाज ने कहा, "यदि कोई व्यक्ति माता और पिता दोनों की ओर से सात पीढ़ियों तक निर्मल और निर्मल रहा हो, तो वह ब्राह्मण बन जाता है।" युवा वासेञ्च ने कहा, "यदि कोई व्यक्ति सद्गुणी और अच्छे आचरण वाला हो, तो वह ब्राह्मण बन जाता है।" इस विवाद पर दोनों में से कोई भी दूसरे को मना नहीं सका, और युवा वासेंह ने युवा भारद्वाज से कहा, “मित्र भारद्वाज, शाक्य वंश के पुत्र गौतम नामक एक संन्यासी हैं, जो शाक्य कुल से विमुख होकर आए हैं। उनकी प्रसिद्धि इस प्रकार फैली हुई है: वे योग्य, सर्वज्ञ, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, लोकों के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। आइए हम उनके पास जाकर यह प्रश्न पूछें, और जब वे इसका उत्तर दें, तो हम दोनों इसे स्वीकार करें।” युवा भारद्वाज ने युवा वासेंह के सुझाव पर सहमति व्यक्त की। तब दोनों युवक भगवान बुद्ध के पास गए, मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और युवा वासेंह ने श्लोकों में भगवान बुद्ध को संबोधित किया।

594. हम दोनों स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि हम तीनों वेदों के विद्वान हैं, मैं पोक्खरसाती का शिष्य हूँ, और यह युवक तारुक्खा का शिष्य है।

595. हम दोनों तीनों वेदों का पूर्ण पाठ कर सकते हैं, शब्दों और व्याकरण के अर्थ समझाने में हम अपने शिक्षकों के समान हैं।

596. हे गौतम, जन्म को लेकर हमारा विवाद है। भारद्वाज कहते हैं, "जन्म से ब्राह्मण बनता है" और मैं कहता हूँ, "कर्मों से ब्राह्मण बनता है।"

597. हममें से कोई भी दूसरे को मना नहीं सका। हम इसके बारे में सर्वज्ञानी से पूछने आए थे।

598. जब चंद्रमा घटते चरण से आगे निकल जाता है, तो लोग हाथ जोड़कर उसका सामना करते हैं, उसी प्रकार गौतम की पूजा विश्व द्वारा हाथ जोड़कर की जाती है।

599. हम गौतम से पूछते हैं, "संसार प्रबुद्ध है, क्या ब्राह्मण जन्म से बनता है या कर्मों से? हमें यह ज्ञात नहीं है, हमें ज्ञान प्रदान करें ताकि हम ब्राह्मण को जान सकें।"

600. भगवान बुद्ध ने कहा:

"वासेंहा, मैं तुम्हें चरण-दर-चरण बताऊंगा कि यह कैसे होता है, इस जन्म और अन्य जन्मों में जीवित प्राणियों का वर्गीकरण कैसे होता है।"

601. घास और पेड़ों को देखो, हालाँकि वे अनजान हैं, इस और अन्य में उनके जन्म के लिए विशिष्ट गुण हैं।

602. इसी प्रकार कीड़े-मकोड़े, जैसे टिड्डे और चींटियाँ, उनमें उनके जन्म से संबंधित विशिष्ट गुण होते हैं।

603. छोटे-बड़े जानवरों को देखो। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

604. उन सर्पों को देखो जिनकी लंबी पीठ उनके पेट पर जाती है, उनमें उनके जन्म के अनुसार विशिष्ट गुण हैं।

605. मछलियों को भी देखो, जो पानी में भोजन ढूंढती हैं। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

606. हवा में उड़ते पक्षियों को देखो। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

607. यद्यपि इनमें विभिन्न गुण होते हैं, जन्म के समय, मनुष्यों में विभिन्न गुण जन्म के समय स्पष्ट नहीं होते हैं।

608. वे बालों, सिर, कान या आँखों में नहीं होते। मुंह, नाक, होंठ या पलकों में भी नहीं होते।

609. गर्दन, बगल, पेट या पीठ में नहीं, नितंबों, छाती, जननांगों में नहीं, और न ही यौन संबंध में।

610. न हाथों, पैरों, उंगलियों या नाखूनों में, न घुटनों और पिंडलियों में, न रंग या आवाज में, जिससे उनके जन्म का पता लगाया जा सके।

611. मनुष्यों के व्यक्तिगत शरीरों में ये स्पष्ट नहीं होते; इन्हें मनुष्यों की गतिविधियों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

612. मनुष्यों में जो कोई भी पशुओं की देखभाल करके जीविका कमाता है, वासेञ्हा, उसे किसान समझो, ब्राह्मण नहीं।

613. मनुष्यों में जो कोई भी शिल्प करके जीविका कमाता है, वासेञ्हा, उसे शिल्पकार के रूप में जानो, ब्राह्मण के रूप में नहीं।

614. हे वासेञ्ञ, मनुष्यों में जो कोई भी व्यापार करके जीविका कमाता है, उसे व्यापारी समझो, ब्राह्मण नहीं।

615. मनुष्यों में जो कोई भी दूसरों के लिए काम करके जीविका कमाता है, वासेञ्हा, उसे ब्राह्मण नहीं बल्कि श्रमिक समझो।

616. हे वासेञ्ञ, मनुष्यों में जो कोई भी बिना दी हुई वस्तु से जीविका कमाता है, जान लो कि वह लुटेरा है, ब्राह्मण नहीं।

617. मनुष्यों में जो कोई भी राजा वासेञ्ञ की सेवा करके जीविका कमाता है, जान लो कि वह सैनिक है, ब्राह्मण नहीं।

618. मनुष्यों में जो कोई भी राजा वासेञ्ञ को सलाह देकर जीविका कमाता है, जान लो कि वह सलाहकार है, ब्राह्मण नहीं।

619. मनुष्यों में जो कोई भी गाँव और देश की संपत्ति का आनंद लेते हुए जीविका कमाता है, वाञ्ह, जान लो कि वह राजा है, ब्राह्मण नहीं।

620. ब्राह्मण स्त्री के गर्भ से जन्मा व्यक्ति ब्राह्मण नहीं होता। संबोधन से वह 'सर' कहलाता है, उसमें दोष होते हैं। जब उसमें दोष न हों और वह नपुंसक हो, तभी मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

621. जब सभी बंधन टूट जाते हैं, यदि कोई चिंतित नहीं होता, बंधन टूट जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

622. जब कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ और वर्तमान बंधनों को तोड़कर, बाधाओं को दूर करके, ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

623. यदि कोई क्रोधी मन से डांट-फटकार और कोड़े सह ले, तो उसमें बहुत धैर्य विकसित हो जाता है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

624. क्रोधित नहीं, संयमी, गुणी, अभिमानी नहीं, वश में रहते हुए वह अंतिम शरीर धारण करता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

625. जैसे कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता, जैसे राई के सिरे से सरसों का दाना फिसल जाता है, जब तक वह कामुकता से दूषित न हो, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

626. वह यहीं पर आत्म-दृष्टि को कम करके अप्रियता को समझता है। जब त्यागा हुआ बोझ उतर जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

627. गहन ज्ञान से मार्ग और अपमार्ग में चतुर हो जाता है, जब सर्वोच्च सत्य प्राप्त हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

628. गृहस्थों या बाहर जाने वालों से अपवित्र न हुआ, जब वह कम इच्छाओं के साथ घर से बाहर हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

629. जो प्राणी दुर्बल हो या दृढ़, उसे दंड न देता हो, जब वह किसी को मारता या चोट नहीं पहुँचाता, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

630. शत्रुओं में, बिना शत्रुता के, स्वयं को चोट पहुँचाने वालों में, जो बुझ गए, जब बिना पकड़े पकड़ने वालों में, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

631. तलवार की नोक पर सरसों के दानों की तरह, यदि उसका लोभ और घृणा, माप और द्वेष दूर हो जाए, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

632. कठोर शब्दों के बिना निर्देश देता है, सत्य को सामने लाता है। जब वह किसी को शाप नहीं देता, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

633. लंबा हो या छोटा, छोटा हो या बड़ा, सुखद हो या अप्रिय, जब वह बिना दी हुई कोई चीज नहीं लेता, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

634. जो इस दुनिया और अगली दुनिया के लिए इच्छाओं से रहित है, जब इच्छाओं से मुक्त होकर वह बंधनमुक्त होता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

635. जब उसके पास रहने की कोई जगह नहीं होती, और वह जानता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, और मृत्यु में डुबकी लगा लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

636. पुण्य और पाप दोनों के बंधनों से पार पाकर, शुद्ध होकर, दुःख रहित और आसक्त होकर, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

637. अत्यंत शुद्ध, अविचलित और निर्मल चंद्रमा की तरह, जब 'होने' की रुचि नष्ट हो जाती है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

638. भ्रमपूर्ण अस्तित्व के इस कठिन मार्ग पर विजय प्राप्त करके, एकाग्रता प्राप्त करता है, निर्भय होता है, संदेह पर विजय प्राप्त करता है, बिना किसी अवरोध के समाप्त हो जाता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

639. कामुकता का त्याग करके, व्यक्ति एक गृहस्थ के रूप में निकलता है। जब उसके कामुक विचार नष्ट हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

640. लालसा का त्याग करके, व्यक्ति एक गृहस्थ के रूप में आगे बढ़ता है। जब उसके लालची विचार नष्ट हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

641. मानवीय बंधनों को त्यागकर, वह स्वर्गीय बंधनों पर विजय प्राप्त करता है। जब वह बंधनमुक्त हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

642. आसक्ति और घृणा का त्याग करने पर शीतलता आती है और जब नायक पूरी दुनिया पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

643. प्राणियों के लुप्त होने और उनके उदय को देखकर, जो निर्मल, सुप्रसिद्ध और प्रबुद्ध है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

644. उसकी गतिविधियाँ [1] देवताओं, स्वर्गीय संगीतकारों या मनुष्यों को ज्ञात नहीं हैं, जब इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, तो वह योग्य हो जाता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

645. जिसने अतीत, बाद या मध्य में कोई अपवित्र वस्तु नहीं ली है, जब वह अपवित्र नहीं है और उसे धारण नहीं करता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

646. महान बैल, वीर महान ऋषि, निडर विजेता, स्नान करने वाला, प्रबुद्ध व्यक्ति, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

647. पूर्व जन्मों को जानकर, और स्वर्ग और नरक के अस्तित्वों को देखकर, जो जन्म के विनाश की ओर आता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

648. दुनिया का सामान्य तरीका नाम और वंश के बारे में योजनाबद्ध होना है, लेकिन संचित चीजें संयोगवश, सही समय पर मिलती हैं।

649. लंबे समय से अज्ञानता में उलझे हुए, अज्ञानी हमें बताते हैं कि जन्म से ही ब्राह्मण जन्म लेता है।

650. जन्म से ब्राह्मण जन्म नहीं लेता, जन्म से गैर-ब्राह्मण जन्म नहीं लेता; कर्मों से ब्राह्मण जन्म लेता है, कर्मों से गैर-ब्राह्मण जन्म लेता है।

651. कर्मों से किसान जन्म लेता है, कर्मों से शिल्पकार जन्म लेता है, कर्मों से व्यापारी जन्म लेता है, कर्मों से मजदूर जन्म लेता है।

652. कर्मों से ही डाकू जन्म लेता है, कर्मों से ही सैनिक जन्म लेता है, कर्मों से ही सलाहकार जन्म लेता है, कर्मों से ही राजा जन्म लेता है।

653. इस प्रकार बुद्धिमान लोग कर्म को उसके वास्तविक स्वरूप में देखते हैं, और उसे आश्रित रूप से उत्पन्न होते हुए देखकर कर्मों के परिणामों में निपुण हो जाते हैं।

654. कर्मों से संसार चलता है, कर्मों से जनता चलती है, कर्मों से बंधे प्राणी, पहिये के मुख्य बिंदु की तरह चलते रहते हैं।

655. तपस्या, पवित्र जीवन निर्वाह, संयम और वशीकरण से, इन्हीं से ब्राह्मण का जन्म होता है, जो सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है।

656. तीनों ज्ञानों से संपन्न, संतुष्ट और पुनर्जन्म नष्ट करने वाले वासेञ्ञ इसे ब्रह्मा और सख को पहचानने के रूप में जानते हैं।

यह सुनकर वासेञ्ञ और भारद्वाज नामक दो युवकों ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, अब हम जान गए हैं। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो, कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो, मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखाया जा रहा हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, उन लोगों के लिए जिनके पास रूप देखने की आंखें हैं। हे गौतम ने अनेक तरीकों से समझाया है।”

शिक्षा। अब मैं परम पूज्य गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। परम पूज्य गौतम, आज से जीवन भर हमें शरण लिए हुए शिष्यों के रूप में याद रखना।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.9सुभा सुत्त(99)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक किसी उद्देश्य से श्रावस्ती आया था और एक गृहस्थ के साथ रह रहा था। तोदेय्या ने उस गृहस्थ से कहा, “शवस्ती अरहंतों से समृद्ध है, आज यदि हम किसी संन्यासी या ब्राह्मण के साथ रहें तो क्या होगा?”

"हे महोदय, जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दान किए गए मठ में भगवान विराजमान हैं। हम उस परम पूजनीय भगवान की संगति करेंगे।"

तोदेय्या के पुत्र सुभा ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब तोदेय्या ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि गृहस्थ पुण्य कर्म करने में सक्षम होते हैं, जबकि संन्यासी बनने वाले पुण्य कर्म करने में सक्षम नहीं होते। हे गौतम इस विषय में क्या कहते हैं?”

"युवक, यहाँ मुझे विश्लेषणात्मक उत्तर देना है, न कि कोई निश्चित उत्तर। मैं गृहस्थ या संन्यासी के गलत मार्ग की प्रशंसा नहीं करता। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह गलत मार्ग पर चल पड़े तो उसके लिए पुण्य का अनुभव करना संभव नहीं है। मैं गृहस्थ या संन्यासी के सही मार्ग की प्रशंसा करता हूँ। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह सही मार्ग पर चल पड़े तो उसके लिए पुण्य का अनुभव करना संभव है।"

हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि गृहस्थों के कार्य बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सत्कारपूर्ण और विनाशकारी होते हैं, और उनसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है। वहीं संन्यासी बन चुके लोगों के कार्य कम महत्वपूर्ण, कम सक्रिय, कम सत्कारपूर्ण और कम विनाशकारी होते हैं, इसलिए उनसे कम पुण्य प्राप्त होता है। इस विषय में हे गौतम क्या कहते हैं?

"युवक, यहाँ भी मुझे विश्लेषणात्मक उत्तर देना होगा, कोई निश्चित उत्तर नहीं। युवक, ऐसे कई कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल नहीं होते और निष्फल हो जाते हैं। ऐसे भी कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और फलदायी हो जाते हैं। युवक, ऐसे भी कार्य हैं जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और निष्फल हो जाते हैं। ऐसे भी कार्य हैं जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और फलदायी हो जाते हैं। युवक, ऐसे कौन से कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल नहीं होते और निष्फल हो जाते हैं? युवक, कृषि एक ऐसा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है। युवक, ऐसा कौन सा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है? कृषि भी एक ऐसा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है। ऐसा कौन सा कार्य है जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है? निष्फल? हे युवक, व्यापार एक ऐसा कार्य है जिसमें महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होती है, और यदि इसमें सफलता न मिले तो यह निष्फल हो जाता है। कौन सा कार्य महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होने पर भी सफल होता है? व्यापार भी एक ऐसा कार्य है जिसमें महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होती है, और यदि इसमें सफलता मिले तो यह सफल होता है।

हे युवक, जिस प्रकार कृषि कार्य, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन भी, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार कृषि कार्य, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन भी, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार व्यापार कार्य, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार तपस्वी जीवन भी, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार व्यापार कार्य, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है।

हे गौतम, ब्राह्मणों, पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए पाँच बातें बताइए।

"युवक, यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो क्या आप इस सभा को ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए पाँच बिंदुओं के बारे में बताएँगे?"

"हे गौतम, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, अगर हे गौतम और यह सभा इसे सुनना चाहती है।"

"तो फिर, युवक, उन्हें बताओ।"

हे गौतम जी, पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित पहला सिद्धांत सत्य है। तपस्या दूसरा सिद्धांत है। पवित्र जीवन तीसरा सिद्धांत है। शिक्षा चौथा सिद्धांत है और परोपकार पाँचवाँ सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य पुण्य प्राप्ति और संचय करना है। हे गौतम जी, इनके बारे में क्या कहते हैं?

"युवक, क्या कोई एक भी ब्राह्मण है जो कहता है, 'मैं इन पांच चीजों को अनुभव से प्राप्त कर लेता हूँ और उनका प्रतिपादन करता हूँ?'"

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

"युवक, क्या ब्राह्मणों में सातवीं पीढ़ी तक कोई एक भी ऐसा गुरु है, या गुरुओं का गुरु है, जो कहता हो, 'मैं जानता हूँ कि ये पाँच बातें अहसास से फलदायी होती हैं और मैं इनकी घोषणा करता हूँ'?"

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

क्या अतीत में अञ्चक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेञ्ञ, कस्सपा और भगू जैसे ब्राह्मणों में से कोई एक ऐसा संत था जिसने प्राचीन कथनों को उसी प्रकार रचा और संरक्षित किया, जैसे ब्राह्मण आज बार-बार श्लोकों का पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं? क्या उनमें से किसी ने कहा है कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से प्राप्त होने वाले फलदायी ज्ञान से जानता हूँ और उनका प्रचार करता हूँ?

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

तो फिर, हे युवक, ब्राह्मणों में से एक भी ब्राह्मण ने यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। सातवीं पीढ़ी तक के किसी भी गुरु या उनके परदादा ने भी यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। अतीत में, अञ्चक, वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमताग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेञ्च, कस्सप और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी भी संत ने, जिन्होंने प्राचीन ग्रंथों की रचना और संरक्षण किया, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण आज श्लोकों का बार-बार पाठ करके उनका संरक्षण करते हैं, यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। हे युवक, यह एक पंक्ति में खड़े अंधे लोगों के हाथ पकड़ने के समान है। पहला नहीं देख पाता, बीच वाला नहीं देख पाता और आखिरी वाला भी नहीं देख पाता। जब ऐसा है, तो ब्राह्मणों के शब्द अंधे लोगों की पंक्ति के शब्दों के समान हैं।

जब भगवान बुद्ध ने अंधों की पंक्ति का दृष्टांत दिया, तो युवक सुभा क्रोधित हो गया और भगवान बुद्ध को कोसते हुए बोला, "सन्यासी गौतम अपवित्र शब्द बोलते हैं।"

तब उस युवक सुभा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, प्रसन्न मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती कहते हैं कि यहाँ एक संन्यासी या ब्राह्मण मनुष्य से परे किसी महान ज्ञान और दृष्टि को स्वीकार करते हैं। ये निरर्थक शब्द हैं जो हँसी उत्पन्न करते हैं। मनुष्य उस महान ज्ञान और दृष्टि को कैसे जान, देख और अनुभव कर सकते हैं?"

"युवक, क्या मनमोहक मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों के मन को भेद कर देख सकते हैं?"

"ब्राह्मण पोक्खरसाती अपनी दासी पुन्ना के मन को भी नहीं जान सकता, तो वह सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों के मन को कैसे जान पाएगा?"

"हे युवक, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, जो काले-सफेद, नीले, पीले, लाल, भूरे, तारे, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख पाता, कहेगा। न तो काले-सफेद रंग की आकृतियाँ हैं और न ही उन्हें देखने वाले। न ही नीले, पीले, लाल और भूरे रंग की आकृतियाँ हैं और न ही उन्हें देखने वाले। न ही तारे, चंद्रमा और सूर्य हैं और न ही उन्हें देखने वाले। मैं इन्हें नहीं जानता और न ही मैंने इन्हें देखा है। इसलिए, ये अस्तित्व में नहीं हैं। हे युवक, क्या ये शब्द सही हैं?"

नहीं, हे गौतम जी, ऐसा नहीं है। काले और सफेद रूप हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। नीले, पीले, लाल और भूरे रूप हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। तारे, चंद्रमा और सूर्य हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। ये कहना कि 'मैं इन्हें नहीं जानता, मैंने इन्हें नहीं देखा, इसलिए ये मौजूद नहीं हैं', उचित नहीं है।

हे युवक, उसी प्रकार, प्रसन्न मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती अंधे हैं, उनकी आंखें नहीं हैं। उनके लिए उस श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि को देखना, जानना या अनुभव करना संभव नहीं है जो मनुष्य से परे है। हे कोसल के ब्राह्मण गृहस्थों, जैसे चांका, तारुक्खा, पोक्खरसाती, जानुसोनी और तुम्हारे पिता तोदेय्या, इनमें से श्रेष्ठ कौन है, वे जो सर्वमान्य मत का पालन करते हैं, या वे जो सर्वमान्य मत का पालन नहीं करते?

"हे गौतम, जो लोग स्वीकृत संस्करण बोलते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, वे जो बोलने से पहले अच्छी तरह सोचते हैं, या वे जो बोलने से पहले अच्छी तरह नहीं सोचते?"

"हे गौतम, बोलने से पहले अच्छी तरह सोच-विचार करने वाले ही श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, वे जो सोच-विचार करके बोलते हैं, या वे जो बिना सोचे-समझे बोलते हैं?"

"हे गौतम, जो सोच-समझकर बोलते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, सार्थक शब्द बोलने वाले या निरर्थक शब्द बोलने वाले?"

"हे गौतम, सार्थक शब्द बोलने वाले ही श्रेष्ठ होते हैं।"

"युवक, यदि ऐसा है तो क्या ब्राह्मण पोक्खरसाती सामान्यतः स्वीकृत बात कहता है या असामान्य बात?"

"वाह गौतम, वो तो आम तौर पर अस्वीकृत बातें बोलता है।"

"क्या वह सोच-समझकर बोलता है या बिना सोचे-समझे बोलता है?"

"हे भगवान गौतम, ये तो बिना सोचे-समझे बोल देते हैं।"

"क्या वह सोच-विचार करने के बाद बोलता है, या बिना सोचे-समझे बोलता है?"

"वाह गौतम, वो बिना सोचे समझे ही बोल देते हैं।"

"क्या वह सार्थक शब्द बोलता है, या निरर्थक शब्द?"

"अच्छा गौतम, वो निरर्थक बातें बोलता है।"

"हे युवक, ये पाँच बाधाएँ हैं। ये पाँच क्या हैं? कामुकता में रुचि एक बाधा है। क्रोध एक बाधा है। आलस्य और सुस्ती एक बाधा है। बेचैनी और चिंता एक बाधा है। संदेह एक बाधा है। प्रसन्न चेहरे वाला ब्राह्मण पोक्खरसाती भी इन पाँच बाधाओं से घिरा हुआ है, जिसके कारण उसके लिए मनुष्य से ऊपर किसी श्रेष्ठ गुण को देखना, जानना और अनुभव करना असंभव है।"

हे युवक, ये पाँच इंद्रिय सुखों के सूत्र हैं। ये पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले सुखद रूप, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं... ध्वनियाँ, गंध, स्वाद और शरीर से दिखाई देने वाले सुखद स्पर्श, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। ये पाँच इंद्रिय सुखों के सूत्र हैं। प्रसन्न मुख वाला ब्राह्मण पोक्खरसाती पाँच इंद्रिय सुखों का अनुभव करता है, बंध जाता है, बेहोश हो जाता है और गुलाम बन जाता है, खतरे और उससे बचने के रास्ते को नहीं देख पाता; उसके लिए मनुष्य से ऊपर किसी श्रेष्ठ गुण को देखना, जानना और महसूस करना संभव नहीं है। हे युवक, क्या आग घास और लकड़ियों पर टिकी हुई जलती है या बिना घास और लकड़ियों के टिके? आग की लौ, रंग और चमक कैसी होगी?

"हे गौतम, यदि आग घास और लकड़ियों के सहारे के बिना भी जलती है, तो भी उसकी लौ, रंग और दीप्ति विद्यमान रहेगी।"

हे युवक, बिना घास और लकड़ियों के आग का जलना किसी अलौकिक शक्ति के बिना संभव नहीं है। पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाला आनंद, घास और लकड़ियों के सहारे जलने वाली आग के समान है। हे युवक, वह आनंद क्या है जो पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों और दोषों के विचारों से दूर रहकर उत्पन्न होता है? हे युवक, इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त भिक्षु प्रथम ध्यान में रहता है। यही इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त आनंद है। फिर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करने वाला भिक्षु द्वितीय ध्यान में रहता है। यही भी इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त आनंद है। हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा बताए गए पाँचों गुणों में से कौन सा गुण पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए सबसे महत्वपूर्ण है?

"हे गौतम, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताई गई पाँच बातों में से सबसे महत्वपूर्ण परोपकार है।"

"युवक, एक ब्राह्मण ने महान यज्ञ किया। दो ब्राह्मण वहाँ आए, उन्हें उस ब्राह्मण के यज्ञ के बारे में पता था। उनमें से एक ब्राह्मण के मन में विचार आया, 'अच्छा होगा यदि मुझे भोजनालय में सबसे प्रमुख स्थान, सबसे ऊँचा आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला दिया जाए।' संयोगवश, किसी अन्य ब्राह्मण को भोजनालय में सबसे प्रमुख स्थान, सबसे ऊँचा आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला प्राप्त हो गया। वह यह सोचकर क्रोधित और विमुख हो गया कि किसी अन्य ब्राह्मण को सबसे प्रमुख आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला प्राप्त हुआ है। इस ब्राह्मण को क्या लाभ हुआ?"

"हे गौतम, ब्राह्मणों, इस प्रकार यज्ञ न करो जिससे दूसरे क्रोधित और विमुख हो जाएं। ब्राह्मण करुणा से दान देते हैं।"

"युवक, यदि ऐसा है तो क्या ब्राह्मणों के पास पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए कोई छठी वस्तु है?"

"हे गौतम, जब ऐसा है तो ब्राह्मणों के पास पुण्य की प्राप्ति और संचय के लिए एक छठी चीज भी है।"

"युवक, ब्राह्मणों ने पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए पाँच बातें बताई हैं, आप इन बातों को किन लोगों में अधिक प्रचलित देखते हैं, गृहस्थों में या तपस्वियों में?"

हे गौतम, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताए गए ये पाँच गुण मुझे अधिकतर संन्यासी पुरुषों में और गृहस्थों में कम ही दिखाई देते हैं। गृहस्थों के महत्वपूर्ण, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य सदा निष्ठावान नहीं होते। वहीं संन्यासी पुरुषों के अल्प, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य सदा निष्ठावान होते हैं। महत्वपूर्ण, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य करने वाले गृहस्थ सदा संयमी, उच्च आजीविका वाले, शिक्षित और परोपकारी नहीं होते। अल्प, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य करने वाले संन्यासी पुरुष सदा संयमी, उच्च आजीविका वाले, शिक्षित और परोपकारी होते हैं। ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताए गए ये पाँच गुण मुझे अधिकतर संन्यासी पुरुषों में और गृहस्थों में कम ही दिखाई देते हैं।

हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए ये पाँच वचन, मैं घोषणा करता हूँ, मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करने वाले सहायक साधन हैं। हे युवक, भिक्षु सत्यवादी हो जाता है। वह सत्य का ज्ञान प्राप्त करके, शिक्षा और शिक्षा के ज्ञान का आनंद अनुभव करता है। पुण्य के साथ प्राप्त उस आनंद को मैं मन का सहायक साधन कहता हूँ, जो मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करता है। भिक्षु तपस्वी हो जाता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, विद्वान हो जाता है, परोपकारी हो जाता है। वह परोपकार का ज्ञान प्राप्त करके, शिक्षा और शिक्षा के ज्ञान का आनंद अनुभव करता है। पुण्य के साथ प्राप्त उस आनंद को मैं मन का सहायक साधन कहता हूँ, जो मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करता है। हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए ये पाँच वचन, मैं घोषणा करता हूँ, मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करने वाले सहायक साधन हैं।

तब तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक ने भगवान बुद्ध से कहा, "मैंने सुना है कि गौतम संन्यासी ब्रह्मा के साथ जन्म लेने का मार्ग जानते हैं।"

"युवक, क्या नालाकारा गाँव इस जगह के पास है?"

"जी हां, गौतम, यह जगह यहीं पास में है।"

"एक युवक, जो नालाकारा गाँव में जन्मा और पला-बढ़ा है और वहाँ से चला गया है, उससे नालाकारा गाँव जाने का मार्ग पूछा जाए। क्या वह नालाकारा गाँव जाने का मार्ग बताने में संकोच करेगा या मूर्खता दिखाएगा? ठीक उसी प्रकार, जब तथागत से ब्रह्मा के साथ

जन्म लेने का मार्ग पूछा जाता है, तो वे न तो संकोच करते हैं और न ही मूर्खता दिखाते हैं। मैं ब्रह्मा के लोक को जानता हूँ, और ब्रह्मा के लोक की ओर जाने वाले मार्ग को भी जानता हूँ।"

"हे गौतम, यह अच्छा होगा यदि मुझे ब्रह्मा के लोक में जन्म लेने का मार्ग सिखाया जाए।"

"तो हे युवक, ध्यान से सुनो, मैं बताता हूँ," युवक मान गया और भगवान बुद्ध ने कहा। भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर दिशा में, हर परिस्थिति में, समस्त संसार में, वह क्रोध और द्वेष से रहित, असीम और अपार प्रेम और करुणा के विचारों से व्याप्त होता है। हे युवक, जब प्रेम और करुणा में मन का निर्बलीकरण इस प्रकार विकसित हो जाता है, तो कोई भी निर्धारित कर्म शेष नहीं रहता। [1] जैसे एक कुशल ढोलक वादक क्षण भर में चारों दिशाओं में संदेश प्रसारित कर देता है। उसी प्रकार, जब प्रेम और करुणा में मन का निर्बलीकरण इस प्रकार विकसित हो जाता है, तो कोई भी निर्धारित कर्म शेष नहीं रहता। यही ब्रह्मा के साथ जन्म लेने की विधि है। फिर भिक्षु करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होता है, ...रे.... आंतरिक आनंद से, ...रे... समभाव से, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर दिशा में, हर परिस्थिति में, समस्त संसार में, वह असीम और अपार समभाव से व्याप्त हैं, क्रोध और द्वेष से रहित। हे युवक, जब समभाव में मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित हो जाती है, तो कोई भी संयमित कर्म शेष नहीं रहता। *1) जिस प्रकार एक कुशल ढोलक वादक क्षण भर में चारों दिशाओं में संदेश पहुंचा देता है, उसी प्रकार, जब समभाव में मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित हो जाती है, तो कोई भी संयमित कर्म शेष नहीं रहता। ब्रह्मा के साथ जन्म लेने की यही विधि है।

तब तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक ने कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ अपनी जगह पर वापस आ गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। मानो अंधकार में प्रकाश भेजा गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। हे गौतम, आज से जीवन भर मुझे गृहस्थ शिष्य के रूप में स्वीकार करें। हे गौतम, अब हम चलते हैं। बहुत काम करना है।"

"युवक, जाओ! अगर तुम्हें लगता है कि यह उचित है।"

युवक सुभा प्रसन्न होकर अपनी सीट से उठा, भगवान बुद्ध की पूजा की और परिक्रमा की और चला गया।

उस समय ब्राह्मण जानुसोनी एक घोड़ी से जुती हुई पूरी तरह सफेद गाड़ी में सावत्थी से गुजर रहे थे। उन्होंने युवक सुभा को देखकर पूछा, "भव्य भारद्वाज इस समय कहाँ से आए हैं?"

"अब मैं गौतम नाम के संन्यासी की उपस्थिति से आया हूँ।"

"पवित्र भारद्वाज, संन्यासी गौतम की बुद्धिमत्ता के बारे में क्या सोचते हैं? क्या आप उन्हें बुद्धिमान मानते हैं?"

"सन्यासी गौतम की बुद्धिमत्ता को जानने वाला मैं कौन होता हूँ, यह तो उन्हीं की तरह किसी ऐसे व्यक्ति को जानना चाहिए, जो उनकी बुद्धिमत्ता की गहराई को जानता हो।"

"सचमुच अच्छे भारद्वाज ने संन्यासी गौतम की प्रशंसा की है।"

"मैं कौन हूँ, और यह संन्यासी गौतम कौन हैं? वास्तव में, जिनकी प्रशंसा होनी चाहिए, उनकी ही प्रशंसा की जानी चाहिए। अच्छे गौतम देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताई गई पाँच बातें, वे कहते हैं, क्रोध और द्वेष से मुक्त मन के विकास के लिए सहायक हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण जानुसोनी अपने सफेद रथ से उतरे, अपने शॉल को एक कंधे पर समेटा और हाथ जोड़कर उस ओर मुड़े जहाँ भगवान विराजमान थे, और बोले, "कोसल के राजा पसेनादि के लिए यह लाभ है, उनके लिए यह दुर्लभ लाभ है कि सिद्ध और सही मायने में प्रबुद्ध तथागत कोसल के राजा पसेनादि के राज्य में निवास करते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.10 संगरव सुत्त(100)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल का भ्रमण कर रहे थे। उस समय चंदालकप्पा में धनंजनी नाम की एक ब्राह्मण स्त्री रहती थी, जो भगवान बुद्ध, उनके उपदेशों और भिक्षु समुदाय में श्रद्धा रखती थी। तब धनंजनी ने जमीन पर गिरकर तीन बार यह गंभीर शब्द कहा, 'मैं उस पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान बुद्ध की पूजा करती हूँ।' उसी समय चंदालकप्पा में संगरव नाम का एक युवक रहता था, जो तीनों वेदों, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति और एक महान पुरुष के लक्षणों का ज्ञाता था। संगरव ने धनंजनी को ये शब्द कहते हुए सुना और कहा, 'धनंजनी नाम की ब्राह्मण स्त्री नीच है और तिरस्कृत होनी चाहिए, क्योंकि वह ब्राह्मणों की उपेक्षा करती है और मुंडे हुए भिक्षुओं की बहुत प्रशंसा करती है।'

हे शुभ मुख वाले, तुम उस भगवान के गुणों और ज्ञान को नहीं जानते; यदि तुम उनके गुणों और ज्ञान को जानते तो उन्हें डांटने और उनकी निंदा करने के बारे में न सोचते।

"तो जब संन्यासी गौतम चंदालकप्पा आएं तो मुझे इसके बारे में बता देना।"

"जी हां, मैं करूंगी, अच्छे लड़के," ब्राह्मण स्त्री धनाजनी ने युवा ब्राह्मण संगरवा से कहा।

भगवान बुद्ध कोसल पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए चांडालकप्पा पहुंचे और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रहने लगे। ब्राह्मण स्त्री धनाजनी ने सुना कि भगवान बुद्ध चांडालकप्पा पहुंचे हैं और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रह रहे हैं। वह युवक संगरवा के पास गईं और उनसे कहा, “हे स्वामी, भगवान बुद्ध चांडालकप्पा पहुंचे हैं और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रह रहे हैं। अब तुम्हारे लिए अपनी इच्छा पूरी करने का समय है।”

ब्राह्मण संगरव ने कहा, 'जी हां, मैं जाऊंगा।' वे भगवान बुद्ध के पास पहुंचे, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे गौतम, ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसी क्षण मूलभूत सिद्धांतों तक पहुंच गए हैं। इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के बारे में, जो यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसी क्षण मूलभूत सिद्धांतों तक पहुंच गए हैं, हे गौतम, क्या कहना चाहते हैं?'

भारद्वाज, ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने वाले इन संन्यासियों और ब्राह्मणों में मैं एक अंतर स्पष्ट करता हूँ। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो सुनी-सुनाई बातों से ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। जैसे वे ब्राह्मण जिन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो केवल विश्वास के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। जैसे तार्किक चिंतन और विवेक से। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो अनसुनी बातों को जानकर और स्वयं उनका अनुभव करके ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। भारद्वाज, मैं उन संन्यासियों और ब्राह्मणों में से हूँ जो अनसुनी बातों को जानकर और स्वयं उनका अनुभव करके ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। भारद्वाज, आपको यह जानना चाहिए कि मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों की श्रेणी में आता हूँ, जो ज्ञान की प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को उन चीजों को जानने के माध्यम से स्वीकार करते हैं जिनके बारे में पहले कभी सुना नहीं गया हो, और उन्हें इस प्रकार स्वयं अनुभव करते हैं।

भारद्वाज, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं प्रबुद्ध नहीं था, बल्कि ज्ञान का साधक था, तब मेरे मन में यह विचार आया: गृहस्थ जीवन कष्टों और दोषों से भरा है। गृहस्थ जीवन में रहकर पूर्णतः पवित्र और शुद्ध जीवन व्यतीत करना संभव नहीं है। यदि मैं सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थी में चला जाऊं तो क्या होगा? यौवन में ही, काले बालों के साथ, माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध, जब वे रो रहे थे, मैंने सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थी त्याग दी और संन्यासी बन गया। पुण्य का साधक और अतुलनीय शांति की प्राप्ति का साधक बनकर, मैं आलार कलाम के पास गया और कहा: 'आदरणीय, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूं।' 'आओ मित्र, ज्ञानी लोग शीघ्र ही इस शिक्षा को समझ लेते हैं और गुरु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।' भारद्वाज, मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को सीख लिया और बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार किया कि मैं जानता और

देखता हूं। तब मुझे यह बात सूझी कि मात्र इसी आस्था से, जिसे आलारा कलाम स्वीकार नहीं करेंगे, मैं इस शिक्षा को जानता और अनुभव करता हूँ। वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए विद्यमान हैं। तब मैं आलारा कलाम के पास गया और उनसे पूछा, हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और अनुभव करते हुए कैसे विद्यमान रहते हैं? आलारा कलाम ने शून्यता के क्षेत्र की घोषणा की। तब मुझे यह बात सूझी कि केवल आलारा कलाम ही नहीं, मेरे पास भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। मैं भी उनके द्वारा अनुभव की गई इस शिक्षा को अनुभव करने का प्रयास करूँगा। कुछ ही समय में मैंने उस शिक्षा को अनुभव कर लिया। तब मैं आलारा कलाम के पास गया और पूछा, हे पूज्यवर, क्या यही वह शिक्षा है जिसे आपने अनुभव किया है? मित्र, मैंने बस इतना ही ज्ञान प्राप्त किया है, यही मैं घोषित करता हूँ और इसी में रहता हूँ। तब मैंने कहा, मैंने भी इतना ही ज्ञान प्राप्त किया है और इसी में रहता हूँ। आदरणीय, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठी मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है, वही आपने भी प्राप्त किया है। अतः, जो भी ज्ञान मैं जानता हूँ, वही आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। आइए मिलकर इस अनुयायी का मार्गदर्शन करें। भारद्वाज, मेरे गुरु आलार कलाम ने इसी प्रकार मुझे समान दर्जा दिया था। तब मुझे यह विचार आया: यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल शून्यता के क्षेत्र की ओर ले जाती है। संतुष्ट न होकर मैंने इससे विमुख हो गया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और बोला, "हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा, "आओ मित्रो, शीघ्र ही इस शिक्षा को समझो और गुरु के समान रहो।" भारद्वाज, मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को स्वीकार करना, जानना और देखना, और बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करना सीख लिया। तब मुझे यह बात समझ में आई। केवल इस विश्वास से उद्दक रामपुत्त यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानता और समझ चुका हूँ। वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए ही रहते हैं। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को कैसे जानते और समझते हैं?" उद्दक रामपुत्त ने कहा कि यह न तो बोध के क्षेत्र में है और न ही अबोध के क्षेत्र में। भारद्वाज, तब मुझे यह बात समझ में आई। केवल उद्दक रामपुत्त ही आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हैं। मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं इसे प्राप्त करने का प्रयास करूँ तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा प्राप्त हो गई। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, "आदरणीय, क्या आपने इतनी ही शिक्षा प्राप्त की है?" उन्होंने कहा, "मित्र, मैंने यही शिक्षा प्राप्त की है, इसका प्रचार करो और इसमें स्थिर रहो।" तब मैंने कहा, "मैंने भी इतना ही प्राप्त किया है और इसमें स्थिर रहता हूँ।" उन्होंने कहा, "आदरणीय, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठियों का मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जो शिक्षा प्राप्त की है, आपने भी वही प्राप्त की है। अतः जो शिक्षा मैं जानता हूँ, आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। आओ मित्र, तुम इस अनुयायी का मार्गदर्शन करो।" इस प्रकार मेरे सहपाठी उद्दक रामपुत्त ने मुझे अपना गुरु बना दिया। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तुष्टीकरण, ज्ञानोदय और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल न-बोध-न-बोध के क्षेत्र तक ही ले जाती है। संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में मैं उरुवेला के सेनानी गाँव में आया। वहाँ मैंने एक सुंदर भूभाग देखा, जिसमें एक जंगल, सफेद किनारों वाली बहती नदी और पास में ही पशु चराने के लिए एक गाँव था। तब मेरे मन में यह विचार आया: सचमुच यह भूभाग सुंदर है, यहाँ जंगल है, बहती नदी है और पास में ही पशु चराने के लिए एक गाँव है। तब मैं बैठकर सोचने लगा कि यह तो कुल के किसी व्यक्ति के लिए परिश्रम करने का आदर्श स्थान है। भारद्वाज, मेरे मन में तीन ऐसी तुलनाएँ आईं जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। जैसे कोई व्यक्ति पानी में रखे गीले, रसीले लट्ठे पर ओढ़नी रखकर कहे, मैं इससे आग जलाऊँगा। भारद्वाज, क्या वह उस गीले, रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम। इसका कारण क्या है? पानी में रखे उस गीले, रसीले लट्ठे को ओढ़नी से रगड़ने पर आग नहीं लगेगी। उस व्यक्ति को केवल परिश्रम ही मिलेगा। इसी प्रकार, जब संन्यासी या ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से दूर नहीं रहते, तब भी उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास और कामुक प्रज्वलन आंतरिक रूप से वश में नहीं रहते। वे तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाओं का अनुभव करते हैं और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है... भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएं महसूस न हों, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है। यह पहली उपमा है जो मेरे मन में आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। भारद्वाज, फिर एक और उपमा मेरे मन में आई जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। एक आदमी सूखे, पानी से दूर रखे हुए रसीले लट्ठे के पास एक आवरण लेकर आता है और कहता है, मैं इससे आग जलाऊंगा। भारद्वाज, क्या वह पानी से दूर सूखे, ज़मीन पर रखे उस रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? हे गौतम, वह रसीली लकड़ी, चाहे पानी से कितनी भी दूर हो, ऊपर से रगड़ने पर भी आग नहीं पैदा करेगी। उससे केवल थकान ही प्राप्त होगी। उसी प्रकार, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो शारीरिक रूप से भी कामुकता से मुक्त नहीं रहते, उनकी आंतरिक कामुकता, आवश्यकता, सुस्ती, प्यास और तृष्णा शांत न होने पर तीव्र, अप्रिय और कष्टदायक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। भले ही इन संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, अप्रिय और कष्टदायक भावनाएँ न हों, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। यह दूसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी थी।

भारद्वाज, मेरे मन में एक तीसरा उदाहरण आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर फेंके गए सूखे, रसहीन लट्ठे पर आवरण ओढ़कर कहे कि मैं इससे आग जलाऊँगा। भारद्वाज, क्या वह पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? जी हाँ, गौतम जी। इसका कारण क्या है? पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लट्ठे को आवरण से रगड़ने पर आग लग जाएगी। उसी प्रकार, संन्यासी और ब्राह्मण जो शारीरिक रूप से कामुकता से विरक्त रहते हैं, उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास और कामुक ज्वालाएँ आंतरिक रूप से सुलझ जाने पर तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाओं का अनुभव करते हैं। फिर भी यह संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञानोदय को प्राप्त कर लें... भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ न हों, फिर भी यह संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञानोदय को प्राप्त कर लें। यह तीसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी गई।

भारद्वाज, मेरे मन में यह विचार आया, क्या होगा यदि मैं ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाऊँ, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ? फिर, बगलों से पसीना टपकते हुए भी, मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल को पकड़कर उसे दबाता है और उसे परेशान करता है, उसी प्रकार मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ, जबकि बगलों से पसीना टपक रहा था। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान स्थिर हुआ, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या हो अगर मैं नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास करूँ? जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास किया, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा से बहुत शोर हुआ। यह लोहार की धौंकनी की आवाज़ जैसा था। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोका, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा से बहुत शोर हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, मेरी जागरूकता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास किया, तो बहुत सी वायु ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। ऐसा लगा जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज धार वाले ब्लेड से मेरे सिर को तराश रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने को रोका, तो बहुत सी वायु ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, मेरी जागरूकता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को और अधिक रोकने का प्रयास किया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द हुआ... जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी के सिर पर मजबूत पगड़ी बाँध रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने को रोकने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। ऐसा लगा जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द कसाई के चाकू से पेट को काट रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोका, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई। कठिन परिश्रम के कारण मेरा शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मुझे यह विचार आया कि इस दुर्बल शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है, यदि मैं कुछ सादा भोजन, कुछ पका हुआ चावल और रोटी खा लूँ तो क्या होगा? उस समय पाँचों भिक्षु मेरी सेवा में थे, यह सोचकर कि जो भी महान कार्य गौतम को प्राप्त होगा, वे हमें सूचित करेंगे। जब मैंने पका हुआ चावल और रोटी जैसा सादा भोजन ग्रहण किया, तो वे यह सोचकर चले गए कि गौतम ने परिश्रम त्याग दिया है और समृद्धि की ओर लौट गए हैं।

सामान्य भोजन ग्रहण करके और शक्ति प्राप्त करके, कामुक विचारों और अपगुणों से विरक्त होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर मैंने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। विचारों और अपव्यय से विरक्त होकर, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एक बिंदु पर स्थिर करके, बिना विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर मैंने द्वितीय ध्यान प्राप्त किया। समभाव से आनंद और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर से सुख का अनुभव करते हुए मैंने तृतीय ध्यान प्राप्त किया। इस अवस्था में रहने पर श्रेष्ठजनों ने कहा, सुख में सचेत होकर रहना। सुख और दुःख को दूर करके, और पहले सुख और दुःख को दूर करके, बिना दुःख और दुःख के, समभाव से शुद्ध होकर, मैंने चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाया। मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्म चक्र, अनगिनत पीछे के जन्म चक्र, अनगिनत आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, मुझे ऐसे सुख-दुख का अनुभव होता था और मेरी आयु ऐसी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए, ऐसी आयु के साथ जन्म लेता हूँ, वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार मैंने सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ अनेक जन्मों का स्मरण किया। भारद्वाज, यह वह पहला ज्ञान है जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ, अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उद्भव हुआ, जैसा कि अज्ञान को दूर करने के लिए लगन से रहने वालों के साथ होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हुए। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के सही दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा। भारद्वाज, यह वह दूसरा ज्ञान है जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का निवारण हुआ और ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित किया। मैं जानता था कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यह अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैं जानता था कि ये इच्छाएँ हैं, इच्छाओं का उद्भव है, इच्छाओं का निवारण है और इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैंने उन्हें जाना और देखा और मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञान-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर ज्ञान का उदय हुआ, मैं मुक्त हो गया, जन्म का नाश हुआ, जो करना चाहिए था वह हो गया। पवित्र जीवन अंत तक जिया गया। मैं जानता था, अब और कुछ चाहने को नहीं है। भारद्वाज, यह तीसरा ज्ञान है, जो मैंने रात्रि के अंतिम पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं।

तब ब्राह्मण संगरव ने कहा, "हे गौतम के महान प्रयास फलदायी हुए हैं। ये एक महान पुरुष के प्रयास हैं, जैसे कि पूर्णतः ज्ञान प्राप्त व्यक्ति के होते हैं। हे गौतम, क्या देवता होते हैं?"

हे भारद्वाज, यह कारण सहित जानना चाहिए कि क्या देवता हैं।

जब गौतम जी से पूछा गया कि क्या ईश्वर हैं, तो कहा गया कि ईश्वर हैं या नहीं, इसका उत्तर तर्क सहित जानना चाहिए। क्या ये शब्द व्यर्थ के झूठ नहीं हैं?

जब भारद्वाज से पूछा जाए कि क्या देवता हैं, चाहे उन्हें बताया जाए कि देवता हैं या यह तर्क सहित बताया जाए कि इसे जानना चाहिए, तो एक बुद्धिमान व्यक्ति को यही निष्कर्ष निकालना चाहिए कि देवता हैं।

'अच्छे गौतम ने मुझे यह बात पहले क्यों नहीं बताई?'

'भारद्वाज, यह मान लिया जाता है कि संसार में देवता हैं।'

तब युवक संगरवा ने कहा, “हे गौतम जी, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर रख दी गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें। हे गौतम जी ने शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया है। अब मैं हे गौतम जी की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। आज से जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.1देवदाहा सुत्त(101)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1गुण
2इंद्रिय संयम
3जागरूकता और सतर्कता
4बाधाओं को त्यागना
5चार ध्यान
6तीन ज्ञान
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। शाक्यों का एक नगर है जिसका नाम देवदहा है, और वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस प्रकार शिक्षा देते हैं, उनका यह मत है: ‘मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से संवेदना का अंत हो जाता है। संवेदना के अंत से समस्त दुख और तनाव का अंत हो जाता है।’ यही निगंथों की शिक्षा है।”
"इस प्रकार शिक्षा देने वाले निगंथों के पास जाकर मैंने उनसे पूछा, 'हे मित्र निगंथों, क्या यह सत्य है कि आप इस प्रकार शिक्षा देते हैं, कि आपका यह मत है: 'मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से भावों का अंत हो जाता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं'?"
"जब मैंने उनसे यह पूछा, तो निगांथाओं ने इसे स्वीकार करते हुए कहा, 'हाँ।'"
"तो मैंने उनसे कहा, 'लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आप अतीत में अस्तित्व में थे, और यह कि आप अस्तित्वहीन नहीं थे?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या तुम जानते हो कि तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं, और यह भी कि तुमने उन्हें नहीं किया?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या आप जानते हैं कि आपने अतीत में ऐसे-ऐसे बुरे काम किए हैं?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या आप जानते हैं कि इतना तनाव समाप्त हो चुका है, या इतना तनाव अभी समाप्त होना बाकी है, या इतना तनाव समाप्त होने के साथ ही सारा तनाव समाप्त हो जाएगा?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"लेकिन क्या आप जानते हैं कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति वर्तमान क्षण में क्या होती है?"

"'नहीं, दोस्त।'"
तो मित्रों, ऐसा लगता है कि आप यह नहीं जानते कि आप अतीत में विद्यमान थे, और न ही आप विद्यमान नहीं थे... आप यह नहीं जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है। ऐसे में, आपके लिए यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं।"
"यदि आप जानते हैं कि आपका अतीत में अस्तित्व था, और यह भी कि आपका अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ; यदि आप जानते हैं कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए थे, और यह भी कि आपने उन्हें समाप्त नहीं किया; यदि आप जानते हैं कि आपने अतीत में अमुक-अमुक बुरे कर्म किए थे; आप यह नहीं जानते कि अमुक-अमुक तनाव समाप्त हो गया है, या अमुक-अमुक तनाव समाप्त होना बाकी है, या अमुक-अमुक तनाव के समाप्त होने से सभी तनाव समाप्त हो जाएंगे; यदि आप जानते हैं कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति वर्तमान क्षण में क्या है, तो—ऐसी स्थिति में—आपके लिए यह कहना उचित होगा कि, "व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों के कारण होता है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के न करने से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है।" कर्म के अंत के साथ तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत के साथ भावनाओं का अंत होता है। भावनाओं के अंत के साथ, सभी दुख और तनाव समाप्त हो जाएंगे।
"मित्र निगंथस, ऐसा मान लो कि किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर लग गया हो। तीर लगने से उसे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन लाएंगे। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाएगा। सर्जन द्वारा चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन एक औजार से तीर को टटोलेगा। सर्जन द्वारा औजार से तीर को टटोलने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन फिर तीर को बाहर निकालेगा। सर्जन द्वारा तीर निकालने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन फिर घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाएगा। सर्जन द्वारा घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। लेकिन फिर कुछ समय बाद, जब घाव भर जाएगा..." जब घाव भर गया और त्वचा आ गई, तो वह स्वस्थ और खुश, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम होगा। उसके मन में यह विचार आता, "पहले मुझे विष से सना हुआ तीर लगा था। तीर लगने के कारण मुझे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द हुआ। मेरे मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने मुझे एक सर्जन के पास बुलाया... सर्जन ने चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाया... एक औजार से तीर को ढूँढा... तीर को बाहर निकाला... और घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाई। जलन पैदा करने वाली दवा लगाने के कारण मुझे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द हुआ। लेकिन अब जब घाव भर गया है और त्वचा आ गई है, तो मैं स्वस्थ और खुश, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।"
"इसी प्रकार, हे मित्र निगंथों, यदि तुम जानते कि तुम्हारा अतीत में अस्तित्व था, और तुम्हारा अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ... यदि तुम जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है, तो—ऐसा होने पर—तुम्हारे लिए यह कहना उचित होगा कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है।" भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे। परन्तु क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि तुम अतीत में विद्यमान थे... तुम यह नहीं जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।"
जब यह कहा गया, तो निगंथों ने मुझसे कहा, 'मित्र, निगंथ नटपुत्त सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, और वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि का दावा इस प्रकार करते हैं: "चाहे मैं चल रहा हूँ या खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि मुझमें निरंतर और सतत रूप से स्थापित हैं।" उन्होंने हमसे कहा है, "निगंथों, तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं। इन कष्टदायी तपस्याओं से उन्हें नष्ट करो। जब तुम वर्तमान में शरीर, वाणी और मन से संयमित हो, तो यह भविष्य के लिए बुरे कर्मों का त्याग है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है।" जब संवेदना समाप्त हो जाएगी, तो सभी दुख और तनाव दूर हो जाएंगे। हम इस [शिक्षा] को स्वीकार करते हैं, इसे प्राथमिकता देते हैं और इससे संतुष्ट हैं।
"जब यह कहा गया, तो मैंने निगंथों से कहा, 'मित्र निगंथों, इस वर्तमान समय में पाँच बातें दो तरह से घटित हो सकती हैं। वे पाँच कौन सी हैं? दृढ़ विश्वास, पसंद, अटूट परंपरा, सादृश्य द्वारा तर्क और विचारों पर मनन करके सहमति। ये पाँच बातें हैं जो इस वर्तमान समय में

दो तरह से घटित हो सकती हैं। ऐसे में, अतीत के संबंध में आपके गुरु के प्रति आपका किस प्रकार का दृढ़ विश्वास है? किस प्रकार की पसंद है? किस प्रकार की अटूट परंपरा है? किस प्रकार का सादृश्य द्वारा तर्क है? विचारों पर मनन करके किस प्रकार की सहमति है?' लेकिन जब मैंने यह कहा, तो मुझे निगंथों के पास अपनी शिक्षा का कोई वैध बचाव नहीं दिखा।"

"तो मैंने उनसे आगे पूछा, 'मित्र निगंथों, आप क्या सोचते हैं: जब तीव्र प्रयास, तीव्र परिश्रम होता है, तो क्या आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, चुभने वाली, कष्टदायी पीड़ा महसूस होती है? और जब कोई तीव्र प्रयास, कोई तीव्र परिश्रम नहीं होता है, तो क्या आपको कठोर व्यवहार से कोई तीव्र, चुभने वाली, कष्टदायी पीड़ा महसूस नहीं होती है?'"

"'हाँ दोस्त...'

"...तो फिर यह कहना उचित नहीं है कि, 'मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से भावों का अंत हो जाता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं।'"

यदि ऐसा हो कि जब आप तीव्र प्रयास और परिश्रम करते हैं, तो आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है; और जब आप तीव्र प्रयास या परिश्रम नहीं करते हैं, तब भी आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है, तो ऐसी स्थिति में आपके लिए यह कहना उचित होगा कि, "व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के न करने से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावना का अंत होता है।" "भावनाओं के समाप्त होने से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।" परन्तु जब प्रचंड प्रयास और परिश्रम होता है, तो कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है; और जब प्रचंड प्रयास और परिश्रम नहीं होता, तो कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा नहीं होती, तो ऐसी स्थिति में यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। इस प्रकार, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्मों का अंत होता है। कर्मों के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावनाओं का अंत होता है। भावनाओं के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।" परन्तु जब मैंने यह कहा, तो मुझे निगंथों के पास अपनी शिक्षा का कोई वैध बचाव नहीं दिखा।

"तो मैंने उनसे आगे पूछा, 'मित्र निगांथास, आप क्या सोचते हैं: क्या इस वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली किसी क्रिया को, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से, भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?'"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली किसी क्रिया को, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से, वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसे आनंद के रूप में अनुभव किया जाना चाहिए, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से दर्द के रूप में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसे पीड़ा के रूप में अनुभव किया जाना है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से सुख के रूप में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी ऐसी क्रिया को, जो अनुभव करने के लिए तैयार है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से ऐसी क्रिया में बदला जा सकता है जो अनुभव करने के लिए तैयार न हो?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जो अभी अनुभव करने के लिए तैयार नहीं है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से अनुभव करने के लिए तैयार क्रिया में बदला जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या अत्यधिक अनुभव योग्य क्रिया को प्रयास और परिश्रम के माध्यम से लगभग अनुभवहीन क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसका अनुभव लगभग न के बराबर हो, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से एक ऐसी क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अनुभव भरपूर हो?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी अनुभव किए जाने वाले कार्य को प्रयास और परिश्रम के माध्यम से ऐसे कार्य में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अनुभव न किया जा सके?"
"'नहीं, दोस्त।'"
"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसका अनुभव नहीं किया जा सकता, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"
"'नहीं, दोस्त।'"
इसलिए, मित्रों, ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता... अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा अनुभव न की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अनुभव न की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में, निगंथों का प्रयास निष्फल है, उनका परिश्रम निष्फल है।
"यह निगंथों की शिक्षा है। और, निगंथों की शिक्षा ऐसी होने के कारण, दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो उनकी निंदा करने का आधार प्रदान करते हैं।"
(1) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों ने अतीत में बुरे कर्म किए हैं, यही कारण है कि अब उन्हें इतना भयंकर, तीखा, कष्टदायक दर्द महसूस होता है।
(2) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से निगंथों को एक दुष्ट सर्वोच्च देवता द्वारा बनाया गया है, यही कारण है कि वे अब इस तरह के भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(3) "यदि प्राणी विशुद्ध भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों का भाग्य खराब है, यही कारण है कि वे अब इतने भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(4) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों का जन्म बुरा हुआ है, यही कारण है कि अब वे इतने भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(5) "यदि प्राणी यहाँ और अभी सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से निगंथों के पास यहाँ और अभी बुरे प्रयास हैं, यही कारण है कि वे अब ऐसे भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(6) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(7) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(8) "यदि प्राणी केवल भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(9) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(10) "यदि प्राणी वर्तमान में सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि नहीं भी, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
"यह निगंथों की शिक्षा है, भिक्षुओं। और, निगंथों की यही शिक्षा होने के कारण, ये दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो उनकी निंदा करने का आधार प्रदान करते हैं। इसी प्रकार प्रयास व्यर्थ होता है, परिश्रम व्यर्थ होता है।"
और प्रयास कैसे फलदायी होता है, परिश्रम कैसे फलदायी होता है? एक ऐसा उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु, जब बोझ से मुक्त होता है, तो वह स्वयं को कष्टों से बोझिल नहीं करता, न ही वह धम्म के अनुरूप सुख का त्याग करता है, यद्यपि वह उस सुख पर आसक्त नहीं होता। वह यह समझता है कि 'जब मैं इस तनाव के कारण के विरुद्ध कोई [शारीरिक, वाणी या मानसिक] क्रिया करता हूँ, तो उस क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है। जब मैं उस तनाव के कारण को समभाव से देखता हूँ, तो समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है।' अतः वह तनाव के कारण के विरुद्ध ऐसी क्रिया करता है जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, और तनाव के कारण के प्रति समभाव विकसित करता है जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार, वह तनाव जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और वह तनाव जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, भी समाप्त हो जाता है।
मान लीजिए कि एक पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है, उसका मन तीव्र इच्छा और जुनून से ग्रस्त है। वह उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मजाक करते और हंसते हुए देखता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं: क्या उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मजाक करते और हंसते हुए देखकर उसके मन में दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?
"जी हां, भगवान। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह उससे प्रेम करता है, उसका मन तीव्र इच्छा, तीव्र जुनून से जकड़ा हुआ है..."

अब मान लीजिए कि उसके मन में यह विचार आए, 'मैं इस स्त्री से प्रेम करता हूँ, मेरा मन तीव्र इच्छा और वासना से जकड़ा हुआ है। जब मैं उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखता हूँ, तो मेरे भीतर दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होती है। मैं उस स्त्री के प्रति अपनी इच्छा और वासना का त्याग क्यों न कर दूँ?' तो वह उस स्त्री के प्रति अपनी इच्छा और वासना का त्याग कर देता है, और बाद में उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं: क्या उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखकर दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?'

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों है? वह उस महिला के प्रति उदासीन है..."

इसी प्रकार, जब भिक्षु बोझ से मुक्त होता है, तो वह स्वयं को कष्टों से बोझिल नहीं करता, और न ही वह धम्म के अनुरूप सुख का त्याग करता है, यद्यपि वह उस सुख के प्रति आसक्त नहीं होता। वह यह समझता है कि 'जब मैं इस तनाव के कारण के विरुद्ध कोई [शारीरिक, वाणी या मानसिक] क्रिया करता हूँ, तो उस क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है। जब मैं उस तनाव के कारण को समभाव से देखता हूँ, तो समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है।' अतः वह तनाव के कारण के विरुद्ध ऐसी क्रिया करता है जिससे क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है, और तनाव के कारण के प्रति समभाव विकसित करता है जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार, वह तनाव जिससे क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और वह तनाव जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है, भी समाप्त हो जाता है।

इसके अलावा, भिक्षु ने यह देखा: 'जब मैं अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता हूँ, तो मुझमें अकुशल मानसिक गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। लेकिन जब मैं तनाव और पीड़ा सहता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। मैं तनाव और पीड़ा क्यों नहीं सहता?' इसलिए वह तनाव और पीड़ा सहता है, और तनाव सहते हुए उसमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। फिर कुछ समय बाद वह तनाव और पीड़ा सहना छोड़ देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह तनाव और पीड़ा सह रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह तनाव और पीड़ा सहना छोड़ देता है।

मान लीजिए कि एक तीर बनाने वाला दो लपटों के बीच तीर के डंडे को गर्म करके उसे सीधा और लचीला बना रहा है। फिर कुछ समय बाद वह उसे दो लपटों के बीच गर्म करके सीधा और लचीला बनाना बंद कर देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह डंडे को गर्म कर रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह उसे दो लपटों के बीच गर्म करके सीधा और लचीला बनाना बंद कर देता है।

इसी प्रकार, भिक्षु ने यह देखा: 'जब मैं अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता हूँ, तो मुझमें अकुशल मानसिक गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु जब मैं कष्ट और पीड़ा सहता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। मैं कष्ट और पीड़ा क्यों नहीं सहता?' अतः वह कष्ट और पीड़ा सहता है, और कष्ट सहते हुए उसमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। फिर कुछ समय बाद वह कष्ट और पीड़ा सहना छोड़ देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह कष्ट और पीड़ा सह रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह कष्ट और पीड़ा सहना छोड़ देता है।

"इसी तरह प्रयास करना फलदायी होता है, इसी तरह मेहनत करना फलदायी होता है।"

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण

जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।

"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"

वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।

विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।

"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"

"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"

वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।

वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।

वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।

वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।

वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।

वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।

वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।

वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।

वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।

वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।

"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

इंद्रिय संयम

जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

जागरूकता और सतर्कता

आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध

करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पाँच बाधाओं—चेतना की अपूर्णताओं, जो विवेक को कमजोर करती हैं—को त्यागकर, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से युक्त होता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।"

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त एकाग्रता - आंतरिक आश्वासन। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

फिर, जब तन्मयता का भाव शांत हो जाता है, तो वह समभाव, सजग और सतर्क रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद ध्यान में रहता है।' यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। इसी प्रकार प्रयास फलदायी होता है, परिश्रम फलदायी होता है।

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है।2 वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। विदा होकर...' उस अवस्था से मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है — वे प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखते हैं, और वे उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करते हैं। यही कारण है कि प्रयास फलदायी होता है, परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-वासना, कर्म-वासना और अज्ञान-वासना से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह समझ पाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' यही वह तरीका है जिससे प्रयास करना फलदायी होता है, इसी प्रकार परिश्रम करना फलदायी होता है।

"तथागत की यही शिक्षा है। तथागत की यही शिक्षा होने के कारण, उनकी प्रशंसा करने के लिए दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।"

(1) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्टतः तथागत ने अतीत में अच्छे कर्म किए हैं, इसीलिए अब उन्हें ऐसा सुख मिलता है जो अभिरुचि से मुक्त है।"

(2) "यदि प्राणी सर्वोच्च ईश्वर के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्टतः तथागत की रचना एक उत्कृष्ट सर्वोच्च ईश्वर द्वारा की गई है, यही कारण है कि अब वे इस प्रकार के सुख का अनुभव करते हैं जो किसी भी प्रकार की उत्तेजना से मुक्त है।"

(3) "यदि प्राणी विशुद्ध भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है तथागत का भाग्य प्रशंसनीय है, यही कारण है कि अब वे बिना किसी विकार के ऐसे सुख का अनुभव करते हैं।
(4) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से तथागत का जन्म प्रशंसनीय रहा है, यही कारण है कि अब वे ऐसी सुख-सुविधाओं से मुक्त होकर आनंद का अनुभव करते हैं।"
(5) "यदि प्राणी यहाँ और अभी में सुख और दुख आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से तथागत के यहाँ और अभी में प्रशंसनीय प्रयास हैं, यही कारण है कि अब वे ऐसी आनंद का अनुभव करते हैं जो मनोभ्रंश से मुक्त है।"
(6) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(7) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता तथागत की सृजनात्मक क्रिया के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(8) "यदि प्राणी केवल भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(9) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(10) "यदि प्राणी इस समय सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि नहीं भी, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
"तथागत की यही शिक्षा है। तथागत की यही शिक्षा होने के कारण, उनकी प्रशंसा करने के लिए ये दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.2पंचत्तय सुत्त(102)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण भविष्य के बारे में अपने मत व्यक्त करते हैं। जैसे कि मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, बोधगम्य आत्मा होगी। मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, अबोधगम्य आत्मा होगी। मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा होगी। या फिर चेतना का नाश, विनाश और अस्तित्वहीनता होगी। या फिर यहीं और इसी समय मृत्यु होगी। इन पांचों को कभी-कभी तीन के रूप में भी बताया जाता है, क्योंकि मृत्यु के बाद एक स्वस्थ आत्मा होती है, चेतना का नाश, विनाश और अस्तित्वहीनता होती है और यहीं और इसी समय मृत्यु होती है। इसलिए ये पांच कभी तीन हो जाते हैं और तीन कभी पांच हो जाते हैं। यह पांच और तीन का संक्षिप्त विवरण है।'

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ और सजीव आत्मज्ञान का अनुभव करते हैं, भौतिक या अभौतिक आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, या भौतिक और अभौतिक आत्मज्ञान का, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो न भौतिक है और न अभौतिक। या वे एक स्वस्थ आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, जो एकल बोध, अनेक बोध, सीमित बोध या असीमित बोध के साथ मृत्यु के बाद स्वस्थ रहता है। एक विशेष व्यक्ति, जो चेतना पर विजय प्राप्त कर लेता है, असीम अविचलता का वर्णन करता है। तथागत उन संन्यासियों और ब्राह्मणों को जानते हैं जो मृत्यु के बाद स्वस्थ और सजीव आत्मज्ञान का अनुभव करते हैं, भौतिक या अभौतिक आत्मज्ञान का, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो भौतिक और अभौतिक है, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो न भौतिक है और न अभौतिक। या वे जो एक स्वस्थ आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, जो एकल बोध, अनेक बोध, सीमित बोध या असीमित बोध के साथ मृत्यु के बाद स्वस्थ रहता है। तथागत इन सभी अनुभूतियों को भी जानते हैं, जो सर्वोच्च कोटि में अतुलनीय रूप से शुद्ध हैं, चाहे वे भौतिक हों या अभौतिक, चाहे एक अनुभूति हो या अनेक अनुभूतियाँ। वे शून्यता के क्षेत्र को भी जानते हैं, जो असीम रूप से अविचलित है। वे जानते हैं कि ये सभी मिश्रित और स्थूल हैं, निर्धारणों का अंत है, और इससे मुक्ति का मार्ग जानकर तथागत ने इन पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं, वे भौतिक, अभौतिक, भौतिक और अभौतिक, या न भौतिक और न अभौतिक निर्धन आत्मा के मृत्यु के बाद स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं। यहाँ, भिक्षुओं, एक ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने की घोषणा करता है, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करेगा। इसका क्या कारण है? बोध एक रोग है, एक फोड़ा है, एक तीर है, यह निर्बोधता शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। तथागत इसे जानते हैं। वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने का प्रचार करते हैं, वे भौतिक या अभौतिक, भौतिक और अभौतिक, या न भौतिक और न अभौतिक निर्धन आत्मा के मृत्यु के बाद स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं। भिक्षुओं, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण कहे कि मैं निर्पदार्थ, भावों, बोध, संकल्पों और चेतना के बिना आने-जाने, लुप्त होने-प्रकट होने, वृद्धि-वृद्धि का ज्ञान कराऊंगा, तो यह संभव नहीं है। यह जटिल और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। तथागत ने मुक्ति का मार्ग जानकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, वे संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा का ज्ञान देते हैं, वे न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा, न भौतिक, न अभौतिक, न भौतिक और न ही अभौतिक आत्मा की घोषणा करते हैं। यहाँ, भिक्षुओं, कुछ संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले बोधगम्य आत्मा की घोषणा करते हैं और जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले अबोधगम्य आत्मा की घोषणा करते हैं, वे उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करते हैं। इसका कारण क्या है? बोध एक रोग है, एक फोड़ा है, एक तीर है, इसका भ्रम यह न तो बोध और न ही अबोध शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। तथागत इसे जानते हैं।

वे उत्तम संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ, न बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा का ज्ञान प्रकट करते हैं, वे न बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा, पदार्थ, न ही अपदार्थ, पदार्थ और अपदार्थ, या न तो पदार्थ और न ही अपदार्थ का ज्ञान प्रकट करते हैं। भिक्षुओं, जो भी संन्यासी और ब्राह्मण दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श के क्षेत्रों में दृढ़ निश्चय के साथ मानसिक उपलब्धियों का ज्ञान प्रकट करते हैं, मैं इन उपलब्धियों को विनाश घोषित करता हूँ। भिक्षुओं, मैं घोषित करता हूँ कि इन्हें दृढ़ निश्चय के साथ प्राप्त नहीं करना चाहिए, बल्कि दृढ़ निश्चय का अंत करना चाहिए। यह संवर्धित और स्थूल है, दृढ़ निश्चय का अंत होता है। तथागत ने इस मुक्ति को देखकर इस पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों में से जो यह बताते हैं कि मृत्यु के बाद सजीव आत्मा, मृत्यु के बाद सजीव आत्मा और न सजीव आत्मा भी सजीव रहती है, उनमें से कुछ संन्यासी उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करते हैं जो चेतना के विनाश, नाश और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं। इसका कारण क्या है? ये सभी अच्छे संन्यासी और ब्राह्मण अपने आसक्तियों को उल्टा लटकाकर यह कहते हैं कि हम भविष्य में होंगे। जैसे किसी व्यापारी को व्यापार करने जाते समय यह विचार आता है कि मैं भविष्य में ऐसा ही होऊंगा और लाभ कमाऊंगा। इस प्रकार, भविष्य में मैं ऐसा ही होऊंगा, यह विचार संन्यासियों और ब्राह्मणों को उसी प्रकार आता है जैसे व्यापार करने गए व्यापारी को। तथापि इस बात को जानते हैं। वे संन्यासी और ब्राह्मण जो चेतना के विनाश, नाश और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, वे आत्मा से भयभीत होते हैं, उससे घृणा करते हैं और उसी आत्मा के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। जैसे कोई लकड़ी या लोहे के खंभे से बंधा हुआ व्यक्ति खंभे के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। इसी प्रकार वे संन्यासी और ब्राह्मण, जो व्यक्ति की चेतना के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, स्वयं से भयभीत होते हैं, उससे घृणा करते हैं और उसी स्वयं के चारों ओर घूमते रहते हैं। यह जटिल और विकृत है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। तथागत ने इस समस्या से मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

जो भी संन्यासी और ब्राह्मण भविष्य के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हैं, वे इन पाँचों में से किसी एक को प्रकट करते हैं। भिक्षुओं, ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण भी हैं जो अतीत के बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं। वे भी इन पाँचों में से किसी एक में शामिल होते हैं। ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण भी हैं जो अतीत के बारे में ऐसे विचार प्रकट करते हैं जैसे कि आत्मा और संसार शाश्वत हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार शाश्वत नहीं हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार शाश्वत हैं और शाश्वत नहीं भी हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार न तो शाश्वत हैं और न ही अनात्म, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार सीमित हैं, आत्मा और संसार असीमित हैं, आत्मा और संसार सीमित और असीमित हैं, आत्मा और संसार न तो सीमित हैं और न ही असीमित, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। आत्मा और संसार एक ही दृष्टि से हैं, अनेक दृष्टियों से हैं, सीमित दृष्टि से हैं, असीमित दृष्टियों से हैं; यही सत्य है, अन्यथा सब असत्य है। आत्मा और संसार पूर्णतः सुखद हैं, पूर्णतः अप्रिय हैं, सुखद और अप्रिय दोनों हैं, न अप्रिय हैं और न सुखद; यही सत्य है, अन्यथा सब असत्य है।

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो यह घोषणा करते हैं कि आत्मा और संसार शाश्वत हैं, यही एकमात्र सत्य है, अन्यथा सब असत्य है। उनके लिए बिना किसी आस्था, पक्षपात, सुनी-सुनाई बातों, गहन चिंतन और प्रसन्नता के स्वयं इस शुद्ध दर्शन को प्राप्त करना असंभव है। जब इन पुण्य संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा स्वयं किसी बात का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो उनमें एक निश्चित शुद्धता होनी

चाहिए, फिर भी वे आसक्ति का दावा करते हैं। यह संदूषण और स्थूलता है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पा ली।

भिक्षुओं और ब्राह्मणों, जो यह मानते हैं कि आत्मा और संसार न तो शाश्वत है, न शाश्वत है और न ही शाश्वत, न ही शाश्वत है और न ही अनात्म, सीमित है, असीमित है, सीमित है और असीमित है, न ही सीमित है और असीमित नहीं, एक ही दृष्टि का है, अनेक दृष्टियों का है, सीमित दृष्टि का है, असीमित दृष्टि का है, केवल सुखद है, केवल अप्रिय है, सुखद है और अप्रिय है, न ही अप्रिय है और न ही सुखद, यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है। उनके लिए बिना किसी विश्वास, पसंद, सुनी-सुनाई बातों, विचार-विमर्श और प्रसन्नता के इस शुद्ध दृष्टिकोण को स्वयं प्राप्त करना संभव नहीं है। जब इन उत्तम संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा स्वयं किसी बात का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो उनमें एक निश्चित शुद्धता होनी चाहिए, फिर भी वे आसक्ति का दावा करते हैं। यह संदूषण और स्थूलता है, इसमें संकल्पों का अंत है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त हो जाती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त हो जाती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय सुख का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और उदात्त है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त होती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। यह मिश्रित और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद को पार कर लेता है और यह सोचकर अभौतिक सुख में लीन रहता है कि इस अभौतिक सुख में रहना शांतिपूर्ण और उदात्त है। वह अभौतिक सुख समाप्त हो जाता है और उसे एकांतवास का आनंद प्राप्त होता है। एकांतवास का आनंद समाप्त होने पर, उसे अभौतिक सुख प्राप्त होता है। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद को पार कर लेता है और यह सोचकर अभौतिक सुख में लीन रहता है कि यह अभौतिक सुख शांतिपूर्ण और उदात्त है। वह अभौतिक सुख समाप्त हो जाता है और उसे एकांतवास का आनंद प्राप्त होता है। एकांतवास से उत्पन्न आनंद जब क्षीण हो जाता है, तब अभौतिक सुख उत्पन्न होता है। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अभौतिक सुख में लीन रहता है, यह सोचकर कि अभौतिक सुख शांत और उदात्त है। वह अभौतिक सुख क्षीण हो जाता है और एकांतवास का आनंद उत्पन्न हो जाता है। एकांतवास का आनंद क्षीण होने पर अभौतिक सुख उत्पन्न हो जाता है। यह मिश्रित और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करता है, भौतिक सुखों पर विजय प्राप्त करता है, और न ही सुखी भावों में स्थिर रहता है, यह सोचकर कि न तो सुखी भावों में स्थिर रहना शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। वे न तो सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं और उन्हें भौतिक सुखी भाव प्राप्त होते हैं। जब वे सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं, तो वे न तो सुखी भाव उत्पन्न होते हैं। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करता है, भौतिक सुखों पर विजय प्राप्त करता है, और न ही सुखी भावों में स्थिर रहता है, यह सोचकर कि वे न तो सुखी भाव शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ हैं। वे न तो सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं और उन्हें भौतिक सुखी भाव प्राप्त होते हैं। जब अमूर्त सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं, तो न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत के आनंद पर विजय प्राप्त करके और अमूर्त सुखद भावनाओं पर विजय प्राप्त करके, न तो अप्रिय और न ही

सुखद भावनाओं में निवास करता है, यह सोचकर कि न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ शांतिपूर्ण और उदात्त हैं। वे अप्रिय और सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं और अमूर्त सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। जब अमूर्त सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं, तो न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। यह मिश्रित और स्थूल है, संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पा ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अमूर्त सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, और न ही सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, यह सोचता है कि मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैं निर्मल हो गया हूँ, मैं किसी भी बंधन में नहीं हूँ। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण, अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अमूर्त सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, और न ही सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, यह सोचता है कि मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैं निर्मल हो गया हूँ और मैं किसी भी बंधन में नहीं हूँ। यह पूजनीय संन्यास के निकट है, फिर भी अतीत के विचारों, भविष्य के विचारों, इंद्रिय-संबंधों, एकांतवास के आनंद, अमूर्त सुखमय भावों, और न ही सुखमय भावों से जुड़ा हुआ है। यह आदरणीय कहता है कि मैं शांत हो गया हूँ, सुलझ गया हूँ और कुछ धारण नहीं कर रहा हूँ, यह उसकी संपत्तियों की बात करता है। यह जटिल और भद्दा है, निर्धारणों का अंत हो गया है। यह जानकर तथागत ने इस मुक्ति को देखकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

यह वह अतुलनीय श्रेष्ठ शांति है जिसे तथागत ने छह मानसिक संपर्क क्षेत्रों के उद्भव, विघटन, संतुष्टि और खतरे के वास्तविक स्वरूप में अनुभव किया है, जो कि बंधन रहित मुक्ति है। तथागत ने इस अतुलनीय श्रेष्ठ शांति को अनुभव कर लिया है, इनके उद्भव, विघटन, संतुष्टि, खतरे और इनसे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए, और बंधन रहित होकर मुक्त हो गए हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.3किन्ति सुत्त(103)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध बलिहारण के कुसिनारा वन क्षेत्र में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, क्या आप सोचते हैं कि एकांतवासी गौतम वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए इस उपदेश का प्रचार करते हैं?'

आदरणीय महोदय, हमें यह बात समझ में नहीं आती कि गौतम संन्यासी वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए इस शिक्षा का प्रचार करते हैं।

“भिक्षुओं, आप देखते हैं कि संन्यासी गौतम वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए शिक्षा का प्रचार नहीं करते, तो क्या शिक्षा का प्रचार करने का कोई कारण है?”

आदरणीय महोदय, हमें यह प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध करुणावश ही शिक्षा का प्रचार करते हैं।

भिक्षुओं, मुझे यह बात समझ में आती है कि भगवान करुणावश ही शिक्षा का प्रचार करते हैं। इसलिए आपको उन बातों का अभ्यास करना चाहिए जिन्हें मैंने अनुभव किया है और प्रचारित किया है, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक और श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग, एक साथ और बिना किसी विवाद के। एक साथ और बिना किसी विवाद के अभ्यास करते समय, दो भिक्षुओं के बीच उच्चतर शिक्षा के विषय में विवाद हो सकता है। तब आपको यह बात समझ में आएगी कि इन पूज्य भिक्षुओं ने किसी ऐसी बात पर विवाद खड़ा कर दिया है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं। दोनों में से अधिक समीपस्थ भिक्षु के पास जाकर उसे यह कहना चाहिए, 'पूज्य भिक्षु, यह विवाद किसी ऐसी बात पर है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं। पूज्य भिक्षुओं को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' फिर दूसरे पक्ष के अधिक समीपस्थ भिक्षु के पास जाकर उसे यह कहना चाहिए, 'पूज्य भिक्षु, यह विवाद किसी ऐसी बात पर है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं।' इस विषय पर आदरणीय व्यक्तियों को

विवाद नहीं करना चाहिए। यदि कोई बात समझने में कठिन हो, तो उसे कठिन ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए। यदि आपको लगे कि ये आदरणीय व्यक्ति इसकी अलग-अलग व्याख्या कर रहे हैं, तो शब्द एक ही हैं। दोनों में से जो अधिक आदरणीय हों, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'आदरणीय व्यक्ति, यहाँ अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं। आदरणीय व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। जो बात समझने में कठिन हो, उसे कठिन ही समझना चाहिए, जो आसानी से समझ में आए, उसे आसानी से समझ में आने वाला ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो सबसे अधिक आदरणीय व्यक्ति हों, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'आदरणीय व्यक्ति, यहाँ अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं। आदरणीय व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' जो बात समझ में न आए उसे समझना कठिन है, और जो आसानी से समझ में आए उसे समझना आसान है। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए। यदि आपको लगे कि ये दोनों पूज्यवर इसका एक ही अर्थ निकालते हैं, तो यहाँ शब्द भिन्न हैं। इन दोनों में से जो अधिक प्रिय है, उससे संपर्क करके उसे बताना चाहिए। 'पूज्यवर, यहाँ अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं। पूज्यवर को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। जो बात समझ में न आए उसे समझना कठिन है, और जो आसानी से समझ में आए उसे समझना आसान है। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो अधिक प्रिय है, उससे संपर्क करके उसे बताना चाहिए। 'पूज्यवर, यहाँ अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं। पूज्यवर को यह ज्ञात होना चाहिए।'अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं, इस पर आपको विवाद नहीं करना चाहिए। जो समझना कठिन है उसे समझना कठिन ही मानना चाहिए, और जो आसानी से समझ में आता है उसे आसानी से समझ में आने वाला ही मानना चाहिए। शिक्षण और अनुशासन दोनों का संदर्भ लेना चाहिए।

तब आपको यह बात समझ में आएगी। इन पूज्यजनों ने एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर विवाद खड़ा कर दिया है। दोनों में से जो अधिक पूज्य हैं, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'पूज्यजन, यह विवाद एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर है। पूज्यजनों को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो अधिक पूज्यजन हैं, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'पूज्यजन, यह विवाद एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर है। पूज्यजनों को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। यदि यह बात समझने में कठिन है, तो इसे कठिन ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।'

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार एकता, सौहार्द और बिना किसी विवाद के साधना करते हैं, तो यदि कोई भिक्षु नियम तोड़ता है और पाप करता है, तो उसे दोष नहीं देना चाहिए, बल्कि स्थिति का विश्लेषण करना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि क्या यह व्यक्ति मूर्ख तो नहीं है, क्या वह क्रोध और द्वेष से ग्रसित तो नहीं है, क्या उसे बिना कष्ट पहुँचाए आसानी से सुधारा जा सकता है, और क्या उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित किया जा सकता है, बिना मुझे नाराज़ किए। यदि यह संभव है, तो यह अत्यंत उत्तम है। भिक्षुओं, यदि आपको यह प्रतीत होता है कि यह व्यक्ति मूर्ख, क्रोधी और द्वेषी है, तो उसे कष्ट पहुँचाकर सुधारा जा सकता है, और मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, बिना मुझे नाराज़ किए। उसे पहुँचाया गया कष्ट नगण्य है, उसे पहुँचाया गया लाभ अधिक होगा। भिक्षुओं, यह अत्यंत उत्तम है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख नहीं है, क्रोध और द्वेष से रहित है, सुधारना कठिन है, फिर भी मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, उसे बिना किसी कष्ट के, परन्तु मुझे कष्ट होगा। मुझे होने वाला कष्ट नगण्य है, उसे होने वाला उपकार बहुत अधिक होगा। यदि यह संभव है, तो यह शब्द से परे पुण्य है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख है, क्रोध और द्वेष से युक्त है, सुधारना कठिन है, फिर भी मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, उसे कष्ट देकर और मुझे कष्ट देकर। मुझे होने वाला कष्ट और उसे होने वाला कष्ट दोनों नगण्य हैं, उपकार बहुत अधिक होगा। यदि यह संभव है, तो यह शब्द से परे पुण्य है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख है, क्रोध और द्वेष से युक्त है, सुधारना कठिन है। इस व्यक्ति को सुधारना, उसके दोषों को दूर करना और उसे पुण्य में स्थापित करना संभव नहीं है, भले ही इससे उसे दुख पहुंचे और मुझे असुविधा हो। भिक्षुओं, ऐसे लोगों को अनदेखा करके छोड़ देना चाहिए।

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार एकतापूर्वक, सौहार्दपूर्ण और बिना किसी विवाद के साधना करते हैं, तो किसी भिक्षु के प्रति द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न होती है। तब उस भिक्षु से संपर्क करना चाहिए जो अन्य भिक्षुओं की तुलना में अधिक एकांतप्रिय हो।

और कहा गया, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। जो संन्यासी जानते हैं, वे ऐसे विचारों की निंदा करते हैं।' भिक्षुओं ने इसका सही उत्तर देते हुए कहा, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। उस द्वेषपूर्ण विचार को दूर किए बिना मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं है।' फिर दूसरी ओर स्थित एक भिक्षु, जो अन्य भिक्षुओं की तुलना में अधिक संन्यासी था, के पास जाकर कहा गया, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना

किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। उस द्वेषपूर्ण विचार को दूर किए बिना मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं है।'

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से पूछना चाहिए, "क्या पूज्य गुरु ने उसे दोष से उठाकर पुण्य में स्थापित किया?" वह भिक्षु सही उत्तर देते हुए कहे, "मैं भगवान बुद्ध के पास गया, उनसे यह उपदेश सुना और उस भिक्षु को बताया। उस उपदेश को सुनकर उसने स्वयं को दोष से उठाकर पुण्य में स्थापित किया। भिक्षुओं, इस प्रकार कहने से न तो आप अपनी प्रशंसा करते हैं, न ही दूसरों की निंदा करते हैं और न ही किसी बात के लिए दोषी ठहराए जाते हैं।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.4 समागम सुत्त(104)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध शाक्यों के साथ उनके गाँव सामगामा में रह रहे थे। उस समय निगन्न नाटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया था। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई और वे आपस में झगड़ने, लड़ने और एक-दूसरे पर मुख में हथियार लेकर हमला करने लगे। वे इस प्रकार की बातें कह रहे थे: "तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल रहे हो। मैं तर्क के साथ सही मार्ग पर चल रहा हूँ। तुम पहले की बात बाद में और बाद की बात पहले कहते हो। तुम्हारा झगड़ा बिना सोचे-समझे है, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! झगड़ा करो और हो सके तो अपना मार्ग खोजो।" निगन्न नाटपुत्त का धर्म विनाश की ओर बढ़ रहा था। निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो सफेद वस्त्र धारण करते थे, भी विखंडित, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि एक ऐसे युग में होता है, जिसे सही ढंग से नहीं सिखाया गया हो और जिसे सही मायने में प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा नहीं सिखाया गया हो।

नवोदित चुंडा ने वर्षा ऋतु पावा में बिताई, सामगामा में पूज्य आनंद के पास पहुँचे, प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर उनसे कहा, "पूज्यवर, निगन्न नटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई है, वे आपस में झगड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर मुख-शस्त्रों से हमला कर रहे हैं। वे इस प्रकार की बातें कह रहे हैं। 'तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल पड़े हो। मैं तर्क सहित सही मार्ग पर चला हूँ। तुम पहले की बात को अंत में और अंत की बात को पहले रखते हो। तुम्हारा विवाद बिना सोचे-समझे, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! विवाद करो और यदि संभव हो तो अपना मार्ग खोजो। निगन्न नटपुत्त का धर्म विनाश की ओर जा रहा है।' निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो श्वेत वस्त्र धारण करते थे, भी विचलित, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि किसी ऐसे धर्म में होता है जिसे उचित शिक्षा न मिली हो और जो सही मायने में प्रबुद्ध न हो। यह सुनकर पूज्य आनंद ने कहा, 'मित्र चुंडा, यह बात भगवान बुद्ध को बतानी होगी। आइए हम भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें इसके बारे में सूचित करें।'

आदरणीय चुंडा सहमत हो गए और आदरणीय आनंद और नवोदित चुंडा भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय महोदय, नवोदित चुंडा कहते हैं कि निगन्न नटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया है। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई है, वे आपस में झगड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर मुख में हथियार लेकर हमला कर रहे हैं। वे इस प्रकार की बातें कह रहे हैं। 'तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल रहे हो। मैं सही मार्ग पर चल रहा हूँ, तर्क के साथ। तुम पहले की बात को बाद में और बाद की बात को पहले कहते हो। तुम्हारा विवाद बिना सोचे-समझे, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! विवाद करो और यदि संभव हो तो अपना मार्ग खोजो। निगन्न नटपुत्त का धर्म विनाश की ओर चला गया है।' निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो श्वेत वस्त्र धारण करते थे, भी विमुख, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि एक ऐसे युग में होता है, जिसे उचित शिक्षा नहीं मिली है और जिसका मार्गदर्शन सही ढंग से नहीं किया गया है। आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के देहांत पर मुझे यह विचार आता है कि अनेकों के कल्याण और भलाई के लिए कोई विवाद न हो।

'आदणंद, क्या आपको मेरे द्वारा अनुभव किए गए और प्रचारित इस उपदेश में कोई ऐसा उदाहरण दिखाई देता है जहाँ दो भिक्षु विवाद कर सकें, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान कारक और अष्टांगिक मार्ग?' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा अनुभव किए गए और प्रचारित इस उपदेश में मुझे कोई ऐसा उदाहरण नहीं दिखाई देता जहाँ दो भिक्षु विवाद कर सकें, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान कारक और अष्टांगिक मार्ग।'

फिर भी जो लोग अब भगवान के प्रति आज्ञाकारी प्रतीत होते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, वे कठोर आजीविका के कारण विवाद उत्पन्न करेंगे, क्योंकि उच्च नियमों के विरुद्ध यह अनेकों के कल्याण और देवताओं एवं मनुष्यों के कल्याण के लिए नहीं होगा। आनंद, कठोर आजीविका या उच्च नियमों पर विवाद नगण्य है; यदि समुदाय में मार्ग और विधि को लेकर विवाद हो, तो यह अनेकों के लिए, देवताओं एवं मनुष्यों के लिए अप्रिय होगा।

आनंद, ये छह कारण विवाद का कारण बनते हैं। ये छह कारण क्या हैं? जब भिक्षु क्रोधित हो जाता है और मन में द्वेष रखता है, तो वह गुरु के प्रति भी अनुशासनहीन हो जाता है, शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, समुदाय के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, और प्रशिक्षण में पूर्ण रूप से लीन नहीं रहता। इस प्रकार वह समुदाय में विवाद उत्पन्न करता है, जिससे अनेकों और देवताओं एवं मनुष्यों को अप्रसन्नता होती है। आनंद, यदि आप विवाद का यह कारण आंतरिक या बाह्य रूप से देखें, तो आपको विवाद के इस कारण को दूर करने और इसे पुनः उत्पन्न न होने देने का प्रयास करना चाहिए।

फिर से, आनंद, भिक्षु पाखंड से निर्दयी है... ईर्ष्यालु और स्वार्थी है... धूर्त और कपटी है... बुरी इच्छाओं और गलत दृष्टिकोण से ग्रस्त है... सांसारिक मामलों से मजबूती से जुड़ा हुआ है और आसानी से उन्हें नहीं छोड़ता। जब भिक्षु सांसारिक मामलों से मजबूती से जुड़ा रहता है और आसानी से उन्हें नहीं छोड़ता, तो वह गुरु के प्रति भी अनुशासनहीन हो जाता है, शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, समुदाय के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, प्रशिक्षण में पूर्ण रूप से नहीं रहता। इस प्रकार वह समुदाय में विवाद उत्पन्न करता है, जिससे अनेकों और देवताओं एवं मनुष्यों को अप्रसन्नता होती है। आनंद, यदि आप विवाद का यह कारण आंतरिक या बाह्य रूप से देखते हैं, तो आपको उस विवाद के कारण को दूर करने और भविष्य में उसके दोबारा न उत्पन्न होने के लिए प्रयास करना चाहिए। यही विवादों के बुरे कारणों को दूर करना है, ताकि भविष्य में वे उत्पन्न न हों। आनंद, ये विवाद के छह कारण हैं।

आनंद, चार प्रकार के प्रशासन हैं। वे चार क्या हैं? विवाद के प्रश्न, निंदा के प्रश्न, दुराचार के प्रश्न और कर्तव्य के प्रश्न। आनंद, इन सभी विवादों को निपटाने के सात तरीके हैं। आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही करना, आरोपी की अंतरात्मा से अपील करना, मानसिक रूप से स्वस्थ होने के आधार पर बरी करना, वचन के द्वारा समझौता करना, अध्याय के बहुमत से बरी करना, बुरी इच्छाओं के कारण बरी करना और बिना विस्तार में जाए पूरे मामले को दबा देना।

आनंद, आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही कैसे की जाती है? भिक्षु इस बात पर विवाद करते हैं कि यह शिक्षा है और यह शिक्षा नहीं है, यह अनुशासन है और यह अनुशासन नहीं है। तब सभी भिक्षु एकजुट होकर शिक्षा के अनुसार इसकी जांच करते हैं और इसे अनुमोदित और तय करते हैं। इस प्रकार आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही की जाती है।

आनंद, अध्याय के बहुमत मत से दोषमुक्ति कैसे होती है? इस मामले का निपटारा उसी मठ में संभव नहीं है, हमें ऐसे स्थान पर जाना चाहिए जहाँ भिक्षुओं की संख्या अधिक हो। तब सभी भिक्षु एकजुट होकर एक साथ बैठें और शिक्षा के अनुसार इसकी जांच करें और इसे अनुमोदित और निपटाएं। उस विवाद को निपटाने के लिए, अध्याय के बहुमत मत से आरोपी को दोषमुक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार भी मामला सुलझ जाता है।

आनंद, अंतरात्मा को कैसे अनुनयित किया जाता है? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर किसी गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उन्होंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए? भिक्षु कहते हैं, आदरणीय महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। आनंद, इसी प्रकार से अंतरात्मा को अनुशासित किया जाता है। इसी प्रकार से अंतरात्मा को अनुशासित करके विवाद का निपटारा किया जाता है।

आनंद, विवेक की बहाली के आधार पर बरी होना कैसा होता है? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उन्होंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। भिक्षु कहते हैं, आदरणीय महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। तब उन्हें यह स्पष्ट करना चाहिए, आदरणीय भिक्षु, याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध किया है। तब वे कहेंगे, मित्रों, मेरा मन विचलित हो गया था, मेरा दिमाग भटक गया था और मैंने कई ऐसे काम किए जो एक सच्चे संन्यासी को नहीं करने चाहिए थे। मैंने बहुत सी चुभने वाली बातें कही हैं जो नहीं कहनी चाहिए थीं। ये सब मैंने भ्रम में किया और मुझे याद नहीं है। आनंद, विवेक की बहाली के आधार पर उन्हें बरी कर दिया जाना चाहिए। विवेक की बहाली के आधार पर बरी होना यही है, इस प्रकार भी विवादों का निपटारा होता है।

आनंद, वचन द्वारा समझौता कैसे होता है? एक भिक्षु, चाहे उस पर किसी अपराध का आरोप हो या न हो, उसे याद करके स्वीकार करता है। उसे एक वृद्ध भिक्षु के पास जाना चाहिए, उनके वस्त्र को एक कंधे पर रखना चाहिए, उनके चरणों की पूजा करनी चाहिए, उनके चरणों में बैठकर प्रणाम करना चाहिए और कहना चाहिए, 'आदरणीय भिक्षु, मैंने अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।' तब वृद्ध भिक्षु पूछेंगे, 'क्या आप इसे देखते हैं?' 'हाँ, मैं देखता/देखती हूँ।' 'क्या आपने भविष्य में संयम बरता है?' 'मैंने भविष्य में संयम बरता है।' आनंद, यही वचन द्वारा समझौता है, इस प्रकार भी विवाद का निपटारा होता है।

आनंद, बुरी इच्छाओं से कैसे निपटा जाए? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को वह गंभीर अपराध याद है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए? वह कहता है, आदरणीय महोदय, मुझे वह गंभीर अपराध याद नहीं है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए। तब उसे यह समझाना चाहिए, आदरणीय भिक्षु, याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया है। तब वह कहेगा, 'मित्रों, मुझे एक छोटे से अपराध का पता है, जिसके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं हुआ। अगर मैंने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया होता, तो मुझे वह याद क्यों नहीं आता?' तब उसे कहा जाता है, 'आपने एक छोटा सा अपराध किया है, पछतावा न होने के कारण आपने उसे स्वीकार नहीं किया। आइए! याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया है।' तब वह कहेगा। 'मित्रों, मुझे याद है मैंने एक गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए,' आनंद ने कहा, 'इस प्रकार उसकी बुरी इच्छाएं समाप्त हो जानी चाहिए और विवाद का निपटारा हो जाना चाहिए।'

आनंद, घास से ढकने से क्या हल हो जाता है? आनंद, भिक्षु आपस में झगड़ते, लड़ते और ऐसी बातें कहते रहते हैं जो सच्चे संन्यासियों को नहीं कहनी चाहिए। तब सभी भिक्षुओं को एकजुट होकर इकट्ठा होना चाहिए। एक तरफ से एक विद्वान भिक्षु उठकर, एक कंधे पर वस्त्र व्यवस्थित करके, हाथ जोड़कर समुदाय को सूचित करे। 'हे आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए, जब हम झगड़ रहे थे और लड़ रहे थे, तब आपने और मैंने भी ऐसी बहुत सी बातें कह दीं जो सच्चे संन्यासियों को नहीं कहनी चाहिए। हमने अपराध किया है। समुदाय के भले के लिए, आप सभी और मैं भी, गृहस्थों के बीच हुई इस चर्चा और अपराध को समुदाय के सामने ढक दिया जाए।' तब दूसरी तरफ से एक भिक्षु उठकर, एक कंधे पर वस्त्र व्यवस्थित करके, हाथ जोड़कर समुदाय को सूचित करे। आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए, जब हम आपस में झगड़ रहे थे और लड़ रहे थे, तब आपने और मैंने भी कई ऐसी बातें कह दीं जो सच्चे संन्यासी को नहीं कहनी चाहिए। हमने अपराध किया है। समुदाय के भले के लिए, आप सभी और मैं भी, समुदाय के सामने हुई इस चर्चा और अपराध को छिपा दिया जाए। आनंद, यह घास से ढकने जैसा है, और विवाद को घास से ढककर ही सुलझाया जाता है।

आनंद, एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देने वाली और विवादों को दूर करने वाली छह बातें हैं। वे छह बातें क्या हैं? आनंद, भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के साथ कटोरे में रखे गए निवाले तक सभी उचित लाभों को समान रूप से बाँटना चाहिए। भिक्षु अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के साथ उन सभी गुणों में समान रूप से संपन्न होना चाहिए जो दागदार, त्रुटिरहित, दोषरहित और ज्ञानियों द्वारा एकाग्रता बढ़ाने वाले माने जाते हैं। फिर भिक्षु उस महान दृष्टिकोण को, जो उचित रूप से अप्रियता को नष्ट करता है, [4] जो तार्किक रूप से इस पर विचार करता है, पवित्र जीवन में सहचरों के साथ खुले तौर पर और गुप्त रूप से साझा करता है। आनंद, ये छह बातें एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देती हैं और विवादों को दूर करती हैं। आनंद, क्या आपको इन शब्दों में एक भी ऐसा शब्द दिखाई देता है जो स्वीकार्य नहीं है?

आदरणीय महोदय, मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।

अत: हे आनंद, एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देने वाले तथा विवादों को दूर करने वाले इन छह गुणों में निपुण हो जाओ, यह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक कल्याणकारी होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.5सुनक्खत्ता सुत्त(105)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध वैशाली के पास महान वन में, शिखर मंडप में ठहरे हुए थे। उस समय बड़ी संख्या में भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की: "हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।'"

लिच्छविन सुनक्खत्ता ने सुना कि "ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।'" तब लिच्छविन सुनक्खत्ता भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "हे भगवान, मैंने सुना है कि बहुत से भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।' अब, क्या उन्होंने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, या उनमें से कुछ ने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है?"

"सुनक्खत्ता, मेरे समक्ष अंतिम ज्ञान की घोषणा करने वाले भिक्षुओं में से... कुछ ने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, जबकि अन्य ने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। जिन्होंने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, वही उनका सत्य है। और जिन्होंने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, तथागत के मन में यह विचार आता है, 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा।' फिर भी ऐसे भी मामले हैं जब तथागत के मन में यह विचार आया है, 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा,' लेकिन कुछ निकम्मे लोग उनके पास प्रश्नोत्तर प्रश्न लेकर आते हैं, जिससे उनका 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा' का विचार कुछ और ही रूप ले लेता है।"

हे भगवान, अब समय आ गया है। हे स्वर्गवासी, अब समय आ गया है कि भगवान धम्म का उपदेश दें। भगवान का उपदेश सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

"तो फिर, सुनक्खत्ता, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," लिच्छविन सुनक्खत्ता ने भगवान को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "सुनक्खत्ता, ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। कौन से पाँच? आँखों से दिखाई देने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, मोहक। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली सुगंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा महसूस की जाने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाला, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं।"

"अब एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त हो। जब कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब अविचलित (चौथे ध्यान और अनंत अंतरिक्ष एवं अनंत चेतना के क्षेत्र) विषयों पर चर्चा हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति बहुत समय पहले अपना गाँव या कस्बा छोड़कर चला गया था। उसकी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से होती है जो कुछ ही समय पहले उसी गाँव या कस्बे को छोड़कर आया है। वह पूछेगा कि क्या गाँव या कस्बे के लोग सुरक्षित, तृप्त और रोगमुक्त हैं, और दूसरा व्यक्ति उसे बताएगा कि क्या वे सुरक्षित, तृप्त और रोगमुक्त हैं। अब, सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं? क्या पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बात सुनेगा, ध्यान से सुनेगा और जानने की कोशिश करेगा? क्या वह दूसरे व्यक्ति के साथ घुलमिल पाएगा; क्या उसका मन उसके साथ सहज महसूस करेगा?

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, यह संभव है कि कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त हो। जब कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है। लेकिन जब अविचलित (चौथे ध्यान और अनंत अंतरिक्ष एवं अनंत चेतना के क्षेत्र) विषयों पर चर्चा हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति शांत और स्थिर रहने पर ध्यान केंद्रित करता है। जब कोई व्यक्ति शांत और स्थिर रहने पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब दुनियावी बातों की चर्चा हो रही होती है, तो वह सुनता नहीं है, ध्यान नहीं देता है, और जानने के लिए अपने मन का प्रयोग नहीं करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं रह पाता है; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता है।

"जैसे तने से अलग हुआ पीला पत्ता फिर कभी हरा नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है, तो वह संसार के प्रलोभनों के बंधन से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति, संसार के प्रलोभनों से मुक्त होकर, अविचलित अवस्था में लीन है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर केंद्रित हो। जब कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर केंद्रित होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब अविचलितता के विषय में बात हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने के लिए अपने मन का प्रयोग करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"जैसे दो टुकड़ों में टूटी हुई मोटी चट्टान को फिर से जोड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह अविचलितता के बंधन को तोड़ देता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति, अविचलितता के बंधन से मुक्त होकर, शून्यता के आयाम पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है। जब कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उस प्रकार की बातें उसे रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब शून्यता के आयाम के बारे में बात हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने के लिए अपने मन पर जोर डालता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"सुनक्खत्ता, मान लो कि किसी व्यक्ति ने स्वादिष्ट भोजन खाया और उसे उल्टी कर दिया। क्या तुम सोचते हो - क्या उसे उस भोजन की कोई इच्छा रहेगी?"

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि वह उस भोजन को घृणित समझेगा।"

"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह शून्यता के आयाम के बंधन को तोड़ देता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'शून्यता के आयाम के बंधन से मुक्त यह व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति वास्तव में बंधनमुक्ति की इच्छा रखता हो। जब कोई व्यक्ति वास्तव में बंधनमुक्ति की इच्छा रखता है, तो उसे इस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन इसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब ऐसी बातें हो रही हों जो न तो प्रत्यक्ष और न ही अप्रत्यक्षता के आयाम से संबंधित हों, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"जैसे किसी ताड़ के पेड़ का ऊपरी भाग काट देने पर वह आगे नहीं बढ़ पाता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति सही ढंग से मुक्ति पाने के लिए तल्लीन होता है, तो वह बोध और अबोध के बंधन को जड़ से उखाड़ फेंकता है, उसे विकास की अवस्थाओं से वंचित ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, जो भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं होता। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'बोध और अबोध के बंधन से मुक्त यह व्यक्ति मुक्ति पाने के लिए तल्लीन है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ कोई भिक्षु सोचे, 'ध्यानमग्न (बुद्ध) ने लालसा को तीर बताया है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निकाल दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के लिए तत्पर हूँ।' क्योंकि यह उसके लिए सत्य नहीं है, वह उन चीजों का पीछा कर सकता है जो मुक्ति के लिए तत्पर व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा कर सकता है। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा कर सकता है... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा कर सकता है। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा करता है... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा करता है, तो कामवासना मन पर हावी हो जाती है। कामवासना से ग्रस्त मन के कारण, वह मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा का शिकार होता है।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति विष से लथपथ तीर से घायल हो गया। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन की व्यवस्था करते। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाता और फिर एक औजार से तीर को टटोलता। वह तीर को बाहर निकालता और विष को निकाल लेता, जिससे थोड़ा सा अवशेष रह जाता। अवशेष रह जाने पर वह कहता, 'मेरे भले, तुम्हारा तीर निकाल लिया गया है। विष निकाल लिया गया है, थोड़ा सा अवशेष रह गया है, लेकिन इससे तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा। उचित भोजन करो। अनुपयुक्त भोजन मत करो, नहीं तो घाव में मवाद भर जाएगा। घाव को बार-बार धोते रहो और उस पर बार-बार मरहम लगाते रहो, ताकि घाव में खून और मवाद न भर जाए। हवा और धूप में मत घूमो, नहीं तो धूल और गंदगी घाव को दूषित कर सकती है। मेरे भले, घाव का ध्यान रखो और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करो।'

उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता: 'मेरा तीर निकाल लिया गया है। ज़हर निकाल लिया गया है, थोड़ा सा अवशेष बचा है, लेकिन इतना नहीं कि मुझे नुकसान हो।' वह अनुपयुक्त भोजन करता, जिससे घाव में मवाद भर जाता। वह घाव को बार-बार धोता या मरहम नहीं लगाता, जिससे घाव के मुँह में खून और मवाद भर जाता। वह हवा और धूप में घूमता, जिससे घाव के मुँह में धूल और गंदगी जमा हो जाती। वह घाव की देखभाल नहीं करता और न ही उसे ठीक करने के लिए कुछ करता। अब, उसके इन अनुपयुक्त कार्यों और बचे हुए गंदे ज़हर के अवशेष के कारण, घाव सूज जाता। घाव के सूजने से उसकी मृत्यु हो जाती या उसे मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ती।

"इसी प्रकार, एक ऐसा मामला भी संभव है जहाँ कोई भिक्षु सोचता है, 'ध्यानशील व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निष्कासित कर दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के बंधन में लीन हूँ।" क्योंकि यह बात उसके स्वभाव में नहीं है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा कर सकता है जो मुक्ति के सच्चे इरादे वाले व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा कर सकता है। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा कर सकता है... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा कर सकता है। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा करता है... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा करता है, तो कामवासना मन पर हावी हो जाती है। कामवासना से ग्रस्त मन के कारण, वह मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा का शिकार होता है। क्योंकि श्रेष्ठ जनों के अनुशासन में यही मृत्यु है: जब कोई प्रशिक्षण त्याग कर निम्न जीवन में लौट जाता है। और यही मृत्यु के समान पीड़ा है: जब कोई अपवित्र अपराध करता है।

अब, एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ कोई भिक्षु सोचे, 'ध्यानमग्न व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निकाल दिया है। मैं मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन हूँ।' क्योंकि वह मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा नहीं करेगा जो मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करेगा। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा नहीं करेगा... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का पीछा नहीं करेगा... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का पीछा नहीं करेगा... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का पीछा नहीं करेगा। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करेगा। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करता... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करता, तो कामवासना मन पर हावी नहीं होती। कामवासना से मुक्त मन होने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होती।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति विष से लथपथ तीर से घायल हो गया। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन की व्यवस्था करते। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाता और फिर एक औजार से तीर को टटोलता। इसके बाद वह तीर को बाहर निकालता और विष को पूरी तरह से निकाल देता। यह जानकर कि कोई अवशेष नहीं बचा है, वह कहता, 'मेरे भले, तुम्हारा तीर निकाल लिया गया है। विष भी निकाल लिया गया है, कोई अवशेष नहीं बचा है, इसलिए यह तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएगा। उचित भोजन करो। अनुपयुक्त भोजन मत करो, अन्यथा घाव में मवाद भर जाएगा। घाव को बार-बार धोते रहो और उस पर बार-बार मरहम लगाते रहो, ताकि घाव में खून और मवाद न भर जाए। हवा और धूप में मत घूमो, अन्यथा धूल और गंदगी घाव को दूषित कर सकती है। मेरे भले, घाव का ध्यान रखो और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करो।'

उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता: 'मेरा तीर निकाल लिया गया है। ज़हर पूरी तरह से निकल चुका है और अब कोई अवशेष नहीं बचा है, इसलिए अब मुझे इससे कोई नुकसान नहीं होगा।' वह उचित भोजन करता ताकि घाव में मवाद न पनपे। वह घाव को बार-बार धोता और उस पर मरहम लगाता ताकि खून और मवाद घाव के खुले हिस्से में न भर जाए। वह हवा और धूप में नहीं चलता ताकि धूल और गंदगी घाव के खुले हिस्से को दूषित न कर दे। वह घाव की देखभाल करता और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करता। अब, उसके इन उचित कार्यों और ज़हर का कोई अवशेष न बचे होने के कारण, घाव ठीक हो जाता। घाव के ठीक होने और त्वचा से ढक जाने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु जैसी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती।

"इसी प्रकार, एक ऐसा मामला भी संभव है जहाँ कोई भिक्षु सोचता है, 'ध्यानशील व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निष्कासित कर दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के बंधन में लीन हूँ।" क्योंकि वह बंधनमुक्ति के सही इरादे से प्रेरित है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा नहीं करेगा जो बंधनमुक्ति के सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करेगा। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा नहीं करेगा... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का पीछा नहीं करेगा... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का पीछा नहीं करेगा... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का पीछा नहीं करेगा। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करेगा। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करता... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करता, तो कामवासना मन पर हावी नहीं होती। कामवासना से मुक्त मन होने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होती।

मैंने यह उपमा अर्थ समझाने के लिए दी है। इसका अर्थ यह है: घाव छह आंतरिक इंद्रियों का प्रतीक है; विष अज्ञान का; तीर लालसा का; जांच यंत्र जागरूकता का; चाकू श्रेष्ठ विवेक का; और शल्य चिकित्सक तथागत का, जो योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं।

"अब, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

"मान लीजिए कि एक पीतल के प्याले में एक पेय है - जो रंग, सुगंध और स्वाद में उत्तम है - लेकिन उसमें विष मिला हुआ है। और मान लीजिए कि एक व्यक्ति आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और पीड़ा से घृणा करता है। सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं - क्या वह पीतल के प्याले में रखे पेय को यह जानते हुए पिएगा कि 'इसे पीने से मुझे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ेगी'?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

"मान लीजिए एक घातक विषैला साँप है, और एक आदमी आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और दर्द से घृणा करता है। सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं - क्या वह यह जानते हुए भी कि 'इसके काटने से मेरी मृत्यु हो जाएगी या मृत्यु के समान पीड़ा होगी', अपना हाथ या उंगली साँप को दे देगा?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर लिच्छविन सुनक्खत्ता ने भगवान बुद्ध के शब्दों पर प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.6अनंजसप्पाया सुत्त(106)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कुरु देश में ठहरे हुए थे। वहाँ कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: “हे भिक्षुओं, कामुकता अस्थिर, खोखली, व्यर्थ और भ्रामक है। यह मायावी है, मूर्खों की बकवास है। इस जन्म में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; इस जन्म में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध: दोनों ही मार के क्षेत्र, मार के अधिकार, मार के जाल और मार के दायरे में आते हैं। ये लोभ, द्वेष और कलह जैसे बुरे और अकुशल मानसिक अवस्थाओं की ओर ले जाते हैं। ये यहाँ प्रशिक्षण ले रहे श्रेष्ठ जनों के शिष्य के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं।”

"ऐसे में, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; इस समय की इंद्रिय अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की इंद्रिय अनुभूतियाँ: ये दोनों ही मार के क्षेत्र, मार के अधिकार, मार के जाल और मार की सीमा में हैं। ये लोभ, द्वेष और कलह जैसे दुष्ट, अकुशल मानसिक अवस्थाओं को जन्म देती हैं। ये श्रेष्ठ जनों के शिष्य के प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि मैं—पांचों इंद्रियों के संसार पर विजय प्राप्त करके और अपने मन को स्थिर करके—एक व्यापक और विस्तृत चेतना में लीन हो जाऊं तो क्या होगा? ऐसा करने से ये दुष्ट, अकुशल मानसिक अवस्थाएँ—लोभ, द्वेष और कलह—उत्पन्न नहीं होंगी। इनके त्याग से मेरा मन असीमित, असीम और सुविकसित हो जाएगा।" इस प्रकार अभ्यास करने और नियमित रूप से इस विधि का पालन करने से, उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास प्राप्त होने पर, वह या तो अविचलित अवस्था को प्राप्त कर लेता है या विवेक के मार्ग पर चल पड़ता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि उसकी यह चेतना अविचलित अवस्था में विलीन हो जाए। इसे अविचलित अवस्था की प्राप्ति का पहला अभ्यास माना जाता है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता: जो भी रूप है, प्रत्येक रूप, चार महातत्वों से बना है या उनसे व्युत्पन्न रूप है।' इस प्रकार अभ्यास करने और निरंतर इसमें लीन रहने से, उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान क्षण में अविचलित अवस्था को प्राप्त कर लेता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि

उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना अविचलित अवस्था में चली जाए। इसे अविचलित अवस्था के लिए सहायक दूसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'वर्तमान में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; वर्तमान में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप-बोध; आने वाले जन्मों में रूप-बोध: ये सभी अस्थिर हैं। जो कुछ भी अस्थिर है, वह आनंद लेने योग्य नहीं है, स्वागत करने योग्य नहीं है, उससे जुड़े रहने योग्य नहीं है।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से, उसका मन उस आयाम में विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान में अविचलित अवस्था को प्राप्त करता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना अविचलित अवस्था में चली जाए। इसे अविचलित अवस्था के लिए सहायक तीसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'वर्तमान में इंद्रिय सुख; आने वाले जन्मों में इंद्रिय सुख; वर्तमान में इंद्रिय बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप बोध; आने वाले जन्मों में रूप बोध; निर्विचल की अनुभूतियाँ: ये सभी अनुभूतियाँ हैं। जहाँ ये बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं, वही शांति है, वही उत्कृष्टता है, अर्थात् शून्यता का आयाम।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो अभी शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है या फिर विवेक के लिए समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला पहला अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य जब वन में, किसी वृक्ष की जड़ में, या किसी निर्जन निवास में जाता है, तो वह यह विचार करता है: 'यह स्थान स्वयं से रहित है, स्वयं से संबंधित किसी भी चीज से रहित है।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इस अवस्था में रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर वह या तो उसी क्षण शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है, या फिर विवेक के मार्ग पर चल पड़ता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि उसकी यह चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला दूसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'मैं कहीं भी किसी का कुछ भी नहीं हूँ; न ही कहीं भी किसी में मेरा कुछ भी है।' इस प्रकार अभ्यास करने और निरंतर इसमें लीन रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर वह या तो अभी शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है या फिर विवेक के लिए समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला तीसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'वर्तमान में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; वर्तमान में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप-बोध; आने वाले जन्मों में रूप-बोध; अविचलितता का बोध; शून्यता के आयाम का बोध: ये सभी बोध हैं। जहाँ ये बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाते हैं, वही शांति है, वही उत्कृष्टता है, अर्थात् वह आयाम जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से उसका मन उस आयाम में विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान में ही उस आयाम को प्राप्त कर लेता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह चेतना उस आयाम की ओर अग्रसर हो जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध। इसे उस आयाम की ओर ले जाने वाला अभ्यास बताया गया है जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध।

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हुए — 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो कुछ है, जो कुछ हुआ है, मैं उसे त्याग देता हूँ' — समभाव प्राप्त कर लेता है। अब, क्या यह भिक्षु पूर्णतः बंधनमुक्त होगा या नहीं?"

"आनंद, एक ऐसा भिक्षु शायद ऐसा कर सके, और दूसरा शायद न कर सके।"

"वह क्या कारण है, वह क्या वजह है, जिसके चलते एक ऐसा कर सकता है और दूसरा नहीं?"

"आनंद, एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हुए—(यह सोचते हुए) 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो है, जो अस्तित्व में आया है, मैं उसे त्याग देता हूँ'—समभाव प्राप्त करता है। वह उस समभाव का आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है, उससे जुड़ा रहता है। जैसे-जैसे वह उस समभाव का आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है, उससे जुड़ा रहता है, उसकी चेतना उस पर निर्भर होती है, उससे पोषित होती है (उससे चिपकी रहती है)। हे आनंद, इस आसक्ति/पोषण के साथ, एक भिक्षु पूरी तरह से मुक्त नहीं होता।"

"वह भिक्षु कहाँ से अपना भरण-पोषण प्राप्त कर रहा है?"

"यह वह आयाम है जिसमें न तो अनुभूति होती है और न ही अअनुभूति।"

"तब, वास्तव में, वह जिस प्रकार से पोषित होता है, वह सर्वोच्च पोषण द्वारा पोषित होता है।"

"आनंद, जब वह पोषित होता है, तो वह परम पोषण से पोषित होता है; क्योंकि यही—जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष—परम पोषण है। हालांकि, एक ऐसा मामला भी है जहां एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करके—'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो है, जो अस्तित्व में आया है, उसे मैं त्याग देता हूं'—समभाव प्राप्त करता है। वह उस समभाव का आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता। चूंकि वह उस समभाव का आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता, इसलिए उसकी चेतना उस पर निर्भर नहीं होती, उससे पोषित नहीं होती (उससे चिपकी नहीं रहती)। हे आनंद, बिना आसक्ति/पोषण के, एक भिक्षु पूर्णतः मुक्त होता है।"

"हे भगवान, यह अद्भुत है। यह विस्मयकारी है। क्योंकि वास्तव में, भगवान ने हमें एक सहारे से दूसरे सहारे तक जाकर बाढ़ पार करने का मार्ग बताया है। लेकिन वह महान मुक्ति क्या है?"

"आनंद, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ जनों का एक शिष्य इस पर विचार करता है: 'यहाँ और अभी की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; यहाँ और अभी की कामुक अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की कामुक अनुभूतियाँ; यहाँ और अभी के रूप; आने वाले जन्मों के रूप; यहाँ और अभी की रूप-अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की रूप-अनुभूतियाँ; अविचलितता की अनुभूतियाँ; शून्यता के आयाम की अनुभूतियाँ; न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूतियाँ: यही एक पहचान है, उस हद तक जहाँ तक पहचान है। यही अमर है: आसक्ति/पोषण के अभाव के माध्यम से मन की मुक्ति।"

"आनंद, मैंने तुम्हें अविचलित रहने का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें शून्यता के आयाम का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें न तो बोध और न ही अबोध के आयाम का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें बाढ़ पार करने का मार्ग सिखाया है, एक आधार से दूसरे आधार तक जाकर, यानी महान मुक्ति का मार्ग। एक गुरु को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए, उनके प्रति सहानुभूति से जो कुछ करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। ध्यान का अभ्यास करो, आनंद। लापरवाह मत बनो। बाद में पछतावा मत करो। यही हमारा तुम सभी के लिए संदेश है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.7 गणक-मोग्गलाना सुत्त(107)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से आईबी हॉर्नर द्वारा अनुवादित

अंतर्वस्तु
1नैतिकता
2इंद्रिय-नियंत्रण
3खाने में संयम बरतें

4सतर्कता
5सजगता और स्पष्ट चेतना
6पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना
7झाना
मैंने ऐसा सुना है: एक समय भगवान पूर्वी मठ में मिगारा की माता के महल में श्रावस्ती के पास ठहरे हुए थे। तब ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना भगवान के पास गए; वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान को प्रणाम किया; सौहार्दपूर्ण और विनम्रतापूर्वक बातचीत करने के बाद वे आदरपूर्वक कुछ दूरी पर बैठ गए। जब वे आदरपूर्वक दूरी पर बैठे थे, तब ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा: "हे गौतम, जैसे मिगर की माता के इस महल में क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् अंतिम सीढ़ी तक,1 उसी प्रकार, हे गौतम, इन ब्राह्मणों के लिए भी क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् वेदों के अध्ययन में;2 उसी प्रकार, हे गौतम, इन धनुर्धारियों के लिए भी क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् धनुर्विद्या में; उसी प्रकार, हे गौतम, हम जिनकी आजीविका गणना3 पर आधारित है, उनके लिए भी क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् लेखांकन में। क्योंकि जब हमें कोई शिष्य मिलता है, हे गौतम, तो हम सबसे पहले उससे गणना करवाते हैं: 'एक, दो, दो, तीन, चार, चार, पांच, छह, सात, सात, आठ, नौ, नौ, दस, दस,' और हम, हे गौतम, गौतम, उससे सौ की गणना भी करवाइए। हे गौतम, क्या इस धर्म और अनुशासन के संबंध में भी इसी प्रकार का क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास स्थापित करना संभव नहीं है?
"हे ब्राह्मण, इस धर्म और अनुशासन के संबंध में क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास करना संभव है। यहाँ तक कि कुशल अश्व प्रशिक्षक भी, किसी सुंदर नस्ल के घोड़े को लेकर सबसे पहले उसे लगाम पहनने का प्रशिक्षण देता है। फिर उसे आगे के प्रशिक्षण का अभ्यास कराता है। ठीक उसी प्रकार, तथागत ब्राह्मण, किसी मनुष्य को वश में करने के लिए लेकर सबसे पहले उसे इस प्रकार अनुशासित करते हैं।"
नैतिकता
"'आओ, भिक्षु, नैतिक आदरणीय बनो, कर्तव्यों के नियंत्रण में रहो, उचित आचरण और व्यवहार से युक्त रहो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो और उन्हें स्वीकार करते हुए प्रशिक्षण के नियमों का पालन करो।' हे ब्राह्मण, जैसे ही भिक्षु नैतिक आदरणीय बन जाता है, कर्तव्यों के नियंत्रण में रहता है, उचित आचरण और व्यवहार से युक्त हो जाता है; छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देख लेता है और उन्हें स्वीकार करते हुए प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है, तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं:
इंद्रिय-नियंत्रण
हे भिक्षु, अपनी इंद्रियों के द्वारों के प्रति सावधान रहो; किसी वस्तु को आँख से देखकर, उसके सामान्य स्वरूप या बारीकियों में मत उलझो; क्योंकि यदि दृष्टि को अनियंत्रित रखा जाए, तो लोभ, निराशा, और दुष्ट, अकुशल मनःस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अतः इसे नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ो, दृष्टि की रक्षा करो, और दृष्टि पर नियंत्रण प्राप्त करो। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्श महसूस करके... मन से किसी मानसिक स्थिति को जानकर, बारीकियों में मत उलझो। क्योंकि यदि मन को अनियंत्रित रखा जाए, तो लोभ, निराशा, और दुष्ट, अकुशल मनःस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अतः इसे नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ो; मन की रक्षा करो, और मन पर नियंत्रण प्राप्त करो।
खाने में संयम बरतें
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों के प्रति सतर्क रहता है, तथागत उसे और भी अनुशासन सिखाते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, संयम से भोजन करो; भोजन करते समय ध्यानपूर्वक विचार करो, मनोरंजन, भोग-विलास, व्यक्तिगत आकर्षण या सौंदर्यबोध के लिए नहीं, बल्कि इस शरीर को बनाए रखने और इसे सुचारू रूप से चलाने, इसे अक्षुण्ण रखने और ब्रह्ममार्ग को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त मात्रा में ही भोजन करो, यह सोचकर कि: इस प्रकार मैं पुरानी भावना को कुचल दूंगा और नई भावना को उत्पन्न नहीं होने दूंगा, और तब मुझे जीविका, दोषरहितता और सुखमय जीवन प्राप्त होगा।'
सतर्कता
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु भोजन में संयम बरतता है, तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, एकाग्र होकर ध्यान लगाओ; दिन में टहलते हुए, बैठते हुए, मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करो; रात के मध्य पहर में, दाहिनी ओर सिंह मुद्रा में लेट जाओ, पैर पर पैर रखकर, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, फिर से उठने के विचार पर चिंतन करो; रात के अंतिम पहर में, जब तुम उठ जाओ, टहलते हुए, बैठते हुए, मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करो।"
सजगता और स्पष्ट चेतना
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु सतर्कता में लीन होता है, तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सचेतन और निर्मल चेतना से युक्त रहो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम आ रहे हो या जा रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम आगे देख रहे हो या चारों ओर देख रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम झुक रहे हो या बाहें फैला रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम बाहरी आवरण, कुंड या वस्त्र धारण कर रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम खा रहे हो, पी रहे हो, चबा रहे हो या स्वाद ले रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम प्राकृतिक क्रिया कर रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम चल रहे हो, खड़े हो, बैठे हो, सो रहे हो, जाग रहे हो, बात कर रहे हो या मौन हो।'

पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना
"हे ब्राह्मण, जैसे ही वह सजग और स्पष्ट चेतना से युक्त हो जाता है, तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, आओ, किसी एकांत स्थान पर जंगल में, किसी वृक्ष की जड़ में, किसी पर्वत की ढलान पर, किसी घाटी में, किसी पहाड़ी गुफा में, किसी कब्रिस्तान में, किसी वन उपवन में, खुले में, या भूसे के ढेर पर विश्राम करो।' भोजन के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर भिक्षु पालथी मारकर बैठ जाते हैं, पीठ सीधी रखते हुए, अपने सामने ध्यान केंद्रित करते हैं। वे संसार के प्रति लोभ से मुक्त होकर, लोभ रहित मन से रहते हैं, और अपने मन को लोभ से शुद्ध करते हैं। द्वेष के कलंक से मुक्त होकर, वे परोपकारी मन से रहते हैं; सभी प्राणियों और जीवों के प्रति करुणामय और दयालु होकर, वे अपने मन को द्वेष से शुद्ध करते हैं। आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर, वे आलस्य और सुस्ती से रहित रहते हैं; प्रकाश को देखते हुए, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, वे अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करते हैं। बेचैनी और चिंता से मुक्त होकर, वे शांत मन से रहते हैं; भीतरी मन को शांत रखते हुए, वे अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। संदेह से मुक्त होकर, वे संदेह से मुक्त रहते हैं; कुशल अवस्थाओं के बारे में विचलित न होकर, वे अपने मन को संदेह से शुद्ध करते हैं।
झाना
वह व्यक्ति, मन के इन पाँच अवरोधों6 से छुटकारा पाकर, जो मन के दोष हैं और सहज ज्ञान के लिए हानिकारक हैं, इंद्रियों के सुखों से विरक्त होकर, अकुशल मन की अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार से युक्त होता है, एकांत से उत्पन्न होता है और आनंदमय एवं प्रसन्न होता है। प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार को शांत करके, उसका मन व्यक्तिपरक रूप से शांत और एक बिंदु पर स्थिर होकर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार से रहित होता है, एकाग्रता से उत्पन्न होता है और आनंदमय एवं प्रसन्न होता है। आनंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, एकाग्र और स्पष्ट रूप से सचेत होकर रहता है, और अपने व्यक्ति में उस आनंद का अनुभव करता है जिसके बारे में आर्य7 कहते हैं: 'आनंदित जीवन वह है जो समभाव और सचेत है,' और वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। पीड़ा से छुटकारा पाकर, अपने पूर्व के सुखों के कम होने पर और दुःखों से मुक्त होकर, वह चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर हो जाता है, जिसमें न तो पीड़ा होती है और न ही आनंद, और जो समभाव और जागरूकता से पूर्णतः शुद्ध होती है।
"ब्रह्म, मेरा यही उपदेश उन भिक्षुओं के लिए है जो अभी तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाए हैं और बंधनों से अतुलनीय मुक्ति की लालसा रखते हैं। परन्तु जो भिक्षु सिद्ध हो चुके हैं, जिनके सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने जीवन जी लिया है, जो करना था वो कर लिया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जिनके जन्म के बंधन पूर्णतः टूट चुके हैं और जो पूर्ण गहन ज्ञान से मुक्त हो चुके हैं—ये सब बातें उन्हें वर्तमान क्षण में सहजता से रहने और सजग रहने तथा स्पष्ट चेतना प्राप्त करने में सहायक होती हैं।"
यह सुनकर ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा:
"अब, इस प्रकार उपदेश और निर्देश प्राप्त करने पर, क्या गौतम के सभी शिष्य अपरिवर्तनीय लक्ष्य—निर्वाण—को प्राप्त कर लेते हैं या उनमें से कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते?"
"मेरे कुछ शिष्य, हे ब्राह्मण, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और शिक्षा दिए जाने पर, अपरिवर्तनीय लक्ष्य - निर्वाण - को प्राप्त कर लेते हैं; कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते।"
"हे गौतम जी, इसका क्या कारण है? ऐसा क्यों है कि जब निर्वाण विद्यमान है, जब निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग विद्यमान है, जब गौतम जी सलाहकार के रूप में विद्यमान हैं, तब भी गौतम जी के कुछ शिष्य उनके द्वारा इस प्रकार उपदेश और निर्देश दिए जाने पर अविचल लक्ष्य - निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु कुछ शिष्य उसे प्राप्त नहीं कर पाते?"
"तो फिर, ब्राह्मण, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न पूछूंगा। जैसा आपको उचित लगे, आप उत्तर दें। इस विषय पर आपका क्या विचार है, ब्राह्मण? क्या आप राजगृह मार्ग में निपुण हैं?"
"जी हां, महोदय, मैं राजगृह जाने वाले मार्ग से भलीभांति परिचित हूं।"
"इस बारे में आपका क्या विचार है? एक व्यक्ति यहाँ आकर राजगृह जाना चाहेगा। आपके पास आकर वह इस प्रकार कहेगा: 'महोदय, मैं राजगृह जाना चाहता हूँ; मुझे राजगृह का रास्ता बता दीजिए।' आप उससे इस प्रकार कह सकते हैं: 'जी, महोदय, यह सड़क राजगृह जाती है; इस पर थोड़ी दूर चलिए। थोड़ी दूर चलने पर आपको एक गाँव दिखाई देगा; थोड़ी दूर चलते रहिए; थोड़ी दूर चलने पर आपको एक बाज़ार दिखाई देगा; थोड़ी दूर चलते रहिए। थोड़ी दूर चलने पर आपको राजगृह अपने रमणीय उद्यानों, रमणीय जंगलों, रमणीय खेतों और रमणीय तालाबों के साथ दिखाई देगा। लेकिन आपके द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित और निर्देशित किए जाने के बावजूद, वह गलत रास्ते पर चलकर पश्चिम की ओर जा सकता है। फिर एक दूसरा व्यक्ति राजगृह जाना चाहेगा...(जैसा कि ऊपर बताया गया है)... आपको राजगृह अपने रमणीय... तालाबों के साथ दिखाई देगा।' आपके द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित और निर्देशित किए जाने पर वह राजगृह सुरक्षित पहुँच सकता है।" हे ब्राह्मण, इसका क्या कारण है? क्या वजह है कि जब राजगृह विद्यमान है, जब राजगृह जाने का मार्ग विद्यमान है, जब आप सलाहकार के रूप में विद्यमान हैं, तब भी एक व्यक्ति, आपके द्वारा इस प्रकार उपदेश और निर्देश दिए जाने के बावजूद, गलत मार्ग अपनाकर पश्चिम की ओर चला जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति राजगृह तक सुरक्षित पहुँच जाता है?
"हे गौतम, मैं इस मामले में क्या कर सकता हूँ? हे गौतम, मैं तो मार्ग का एक झुरमुट हूँ।"

फिर भी, हे ब्राह्मण, निर्वाण का अस्तित्व है, निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग विद्यमान है और मैं सलाहकार के रूप में विद्यमान हूँ। परन्तु मेरे कुछ शिष्य, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और उपदेश दिए जाने पर, इस अटल लक्ष्य—निर्वाण—को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते। हे ब्राह्मण, इस मामले में मैं क्या कर सकता हूँ? हे ब्राह्मण, मार्ग का प्रकाश फैलाने वाला तथागत होता है।
यह सुनकर ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा:
हे गौतम, जो लोग जीवनयापन का मार्ग न पाकर, बिना आस्था के घर छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, जो धूर्त, कपटी, छल करने वाले, असंतुलित और अहंकारी हैं, जो चंचल, निंदक और व्यभिचारी हैं, जिनकी इंद्रियाँ संभली नहीं हैं, जो खान-पान में संयम नहीं जानते, जो सतर्कता नहीं बरतते, जो संन्यास के प्रति उदासीन हैं, जो प्रशिक्षण का सम्मान नहीं करते, जो धन-दौलत के शौकीन हैं, जो पतन में अग्रणी हैं, जो संन्यास का बोझ नहीं उठाते, जो आलसी हैं, जिनकी ऊर्जा कम है, जिनका ध्यान भटकता है, जो स्पष्ट रूप से सचेत नहीं हैं, जो एकाग्र नहीं हैं बल्कि भटकते मन वाले हैं, जो बुद्धि में कमजोर हैं, जो बकवास करते हैं - हे गौतम, उनसे संगति नहीं रखते। परन्तु जो प्रतिष्ठित परिवारों के युवक आस्था से घर छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, जो धूर्त, कपटी या छल करने वाले नहीं हैं, जो असंतुलित या जो अहंकारी नहीं हैं, जो छल-कपट, निंदा और व्यभिचार नहीं करते, जिनकी इंद्रियों के द्वार सतर्क हैं, जो खान-पान में संयम जानते हैं, जो सतर्कता पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो एकांतवास की कामना करते हैं, जो प्रशिक्षण का गहन सम्मान करते हैं, जो अधिकता के शौकीन नहीं हैं, जो लापरवाह, कामचोर, पथभ्रष्ट नहीं हैं, जो एकांतवास में आगे नहीं बढ़ते, जो ऊर्जावान, दृढ़ निश्चयी, सचेत, स्पष्ट रूप से जागरूक, एकाग्र, जिनका मन एकाग्र है, जो ज्ञानवान हैं, जो निरर्थक नहीं हैं — उनसे गौतम सान्निध्य में लीन हैं। हे गौतम, जैसे काले गोंद को जड़ की सुगंधों में श्रेष्ठ, लाल चंदन को गूदे की सुगंधों में श्रेष्ठ, चमेली को पुष्प की सुगंधों में श्रेष्ठ माना जाता है — वैसे ही गौतम का उपदेश आज के उपदेशों में सर्वोच्च है। हे गौतम, उत्कृष्ट! हे गौतम, जैसे कोई व्यक्ति सीधा खड़ा कर सकता है। जो बात अनसुनी रह गई हो, उसे उजागर करना, जो बात छिपी हुई हो, उसे प्रकट करना, भटके हुए को राह दिखाना, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाना ताकि दृष्टि वाले भौतिक आकृतियों को देख सकें — इसी प्रकार अनेक आकृतियों में भगवान गौतम ने धर्म को स्पष्ट किया है। मैं पूज्य गौतम की शरण में, धर्म की शरण में और भिक्षु संघ में जा रहा हूँ। भगवान गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.8गोपका-मोग्गलाना सुत्त(108)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार पूज्य आनंद, भगवान बुद्ध के पूर्ण रूप से मुक्त होने के कुछ ही समय बाद, राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

उस समय मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त, राजा पज्जोत पर संदेह करते हुए, राजगृह की किलेबंदी करवा रहे थे।

फिर सुबह तड़के, पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उनके मन में विचार आया, "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। क्या मैं ब्राह्मण मोग्गलाना रक्षक के पास उनके निर्माण स्थल पर जाऊं?" अतः वे मोग्गलाना रक्षक के पास उनके निर्माण स्थल पर गए। मोग्गलाना रक्षक ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखकर कहा, "आइए, गुरु आनंद। आपका स्वागत है, गुरु आनंद। गुरु आनंद को यहां आने का समय मिले बहुत समय हो गया है। बैठिए, गुरु आनंद। आपके लिए आसन तैयार है।"

अतः पूज्य आनंद तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। अंगरक्षक मोग्गलाना एक नीची सीट पर एक तरफ बैठ गए।

वहाँ बैठे हुए उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे गुरु गौतम - योग्य और सही मायने में आत्मजागृत - परिपूर्ण थे?"

नहीं, ब्राह्मण, ऐसा कोई भी भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध—योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत—सशक्त थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद उस मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।

फिर पूज्य आनंद और मोग्गलाना (रक्षक) के बीच चल रही चर्चा बीच में ही रुक गई, क्योंकि राजगृह में निर्माण स्थलों का निरीक्षण करने आए ब्राह्मण वस्साकरा, जो मगध के प्रशासक थे, पूज्य आनंद से मिलने मोग्गलाना के निर्माण स्थल पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "अभी आप दोनों किस चर्चा के लिए बैठे थे कि बीच में ही आपकी चर्चा रुक गई?"

"अभी-अभी, ब्राह्मण, रक्षक मोग्गलाना ने मुझसे कहा, 'गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे गुरु गौतम - योग्य और सही मायने में आत्मज्ञानी - परिपूर्ण थे?' और जब उन्होंने यह कहा, तो मैंने उनसे कहा, 'नहीं, ब्राह्मण, कोई ऐसा भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध - योग्य और सही मायने में आत्मज्ञानी - परिपूर्ण थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।' यह मेरी ब्राह्मण रक्षक मोग्गलाना के साथ हुई चर्चा थी जो आपके आने पर बीच में ही रुक गई।"

"गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके बारे में उन्होंने कहा हो, 'मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा मध्यस्थ होगा,' और क्या अब आप उसकी ओर रुख कर रहे हैं?"

"नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई भी ऐसा भिक्षु नहीं है - जो जानता हो, देखता हो, योग्य हो और सही मायने में आत्मजागृत हो - जिसके बारे में उन्होंने कहा हो कि 'मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा मध्यस्थ होगा', जिसकी ओर अब हम रुख करते हैं।"

"तो क्या संघ द्वारा अधिकृत और वरिष्ठ भिक्षुओं के एक बड़े समूह द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके बारे में आपने अब पूछा हो, 'भगवान के जाने के बाद वह हमारा मध्यस्थ होगा'?"

"नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत और वरिष्ठ भिक्षुओं के एक बड़े समूह द्वारा नियुक्त कोई भी भिक्षु ऐसा नहीं है, जिसके पास हम अब जा रहे हैं, और जिसकी ओर हम अब रुख कर रहे हैं।"

"हे गुरु आनंद, मध्यस्थ के बिना, आपके इस सामंजस्य का क्या कारण है?"

"हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि हमारे पास कोई मध्यस्थ नहीं है। हमारे पास मध्यस्थ है। धम्म ही हमारा मध्यस्थ है।"

जब आपसे पूछा गया, 'हे गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके पास आप अब जाते हैं, और जिसके पास आप अब जाते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसके पास हम अब जाते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'तो क्या संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु है... जिसकी ओर आप अब रुख करते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसकी ओर हम अब रुख करते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'हे आनंद स्वामी, इस प्रकार मध्यस्थ के बिना आपकी इस एकता का क्या कारण है?' तो आपने कहा, 'हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि हम मध्यस्थ के बिना हैं। हमारे पास मध्यस्थ है। धम्म ही हमारा मध्यस्थ है।' अब आपके इस कथन का क्या अर्थ है?'

"ब्रह्मन, भगवान बुद्ध द्वारा एक प्रशिक्षण नियम निर्धारित किया गया है - जो ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं - एक पतिमोक्खा जिसे संहिताबद्ध किया गया है। उपोसथा दिवस पर, हम सभी जो एक ही कस्बे में आश्रित हैं, एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। एकत्रित होने पर, हम उस व्यक्ति को आमंत्रित करते हैं जिसे पतिमोक्खा का पाठ करना है। यदि पाठ करते समय किसी भिक्षु को कोई अपराध या उल्लंघन याद आता है, तो हम उसके साथ धम्म के अनुसार, जो निर्देश दिया गया है, उसके अनुसार व्यवहार करते हैं। हम उस पूज्य व्यक्ति के साथ व्यवहार नहीं करते हैं, बल्कि धम्म ही हमारे साथ व्यवहार करता है।"

"हे गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जिसका आप अब आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आप आदर और सम्मान करते हुए आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं?"

"जी हां, ब्राह्मण, एक ऐसे भिक्षु हैं जिनका हम अब आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिन पर आदर और सम्मान करते हुए हम निर्भर रहते हैं।"

जब आपसे पूछा गया, 'हे गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके पास आप अब जाते हैं, और जिसके पास आप अब जाते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसके पास हम अब जाते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'तो क्या संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु है... जिसकी ओर आप अब रुख करते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसकी ओर हम अब रुख करते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'हे आनंद स्वामी, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जिसका आप आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आदर और आदर करते हुए आप निर्भर रहते हैं?' तो आपने कहा, 'जी हे ब्राह्मण, एक भिक्षु है जिसका हम आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आदर और आदर करते हुए हम निर्भर रहते हैं।' अब आपके इस कथन का अर्थ क्या समझा जाए?

"ब्रह्म, भगवान बुद्ध ने दस प्रेरणादायक गुणों का वर्णन किया है - जो ज्ञानवान, दृष्टिवान, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं। हममें से जिनमें भी ये दस गुण पाए जाते हैं, हम उनका आदर, सम्मान और आदर करते हैं; उनका आदर और सम्मान करते हुए हम उन पर निर्भर रहते हैं। वे दस गुण कौन से हैं?"

[1] "ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु गुणी है। वह पतिमोक्खा के अनुसार संयमित रहता है, अपने व्यवहार और गतिविधि के क्षेत्र में परिपूर्ण है। वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता है, छोटी से छोटी गलतियों में भी खतरा देखता है।

[2] "उसने बहुत कुछ सुना है, जो सुना है उसे याद रखा है, जो सुना है उसे संजोकर रखा है। जो भी शिक्षाएँ आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय हैं, जो अपने अर्थ और अभिव्यक्ति में पूर्णत: परिपूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं: उन्हें उसने बार-बार सुना है, याद रखा है, उन पर चर्चा की है, उन्हें संकलित किया है, अपने मन से उनका परीक्षण किया है और अपने दृष्टिकोण से उनमें अच्छी तरह से प्रवेश किया है।"

[3] "वह वस्त्रों, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के इलाज के लिए औषधीय सामग्री से संतुष्ट है।

[4] "वह जब चाहे, बिना किसी तनाव, बिना किसी कठिनाई के, चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उन्नत मानसिक अवस्थाएँ हैं, यहाँ और अभी में सुखद निवास।

[5] "वह अनेक अलौकिक शक्तियों का अनुभव करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों से ऐसे होकर गुजरता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह पानी पर ऐसे चलता है जैसे वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।"

[6] "वह दिव्य श्रवण तत्व के माध्यम से, जो शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ है, दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे पास हो या दूर।"

[7] वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को जानता है, क्योंकि उसने उसे अपनी चेतना से समाहित कर लिया है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन के रूप में और असाध्य मन को असाध्य मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और अमुक्त मन को मुक्त मन के रूप में पहचानता है। मन एक अप्रकाशित मन के रूप में।

[8] "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (शाब्दिक रूप से: पिछले जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों में याद करता है।"

[9] "वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और फिर प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में फिर प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में फिर प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से श्रेष्ठ और शुद्ध दिव्य दृष्टि के माध्यम से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

[10] "मानसिक मंथनों के अंत के माध्यम से, वह मंथन-मुक्त जागरूकता-मुक्ति और विवेक-मुक्ति में रहता है, क्योंकि उसने उन्हें यहीं और अभी अपने लिए जान लिया है और प्रकट कर दिया है।

हे ब्राह्मण, ये दस प्रेरक गुण हैं जिनका प्रतिपादन भगवान बुद्ध ने किया है—जो ज्ञानी, दृष्टिवान, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं। हममें से जिनमें भी ये दस गुण पाए जाते हैं, हम उनका आदर, सम्मान और आदर करते हैं; उनका आदर और सम्मान करते हुए हम उन पर निर्भर रहते हैं।

यह सुनकर मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा ने सेनापति उपनंद की ओर मुड़कर कहा, "महाराज, आपका क्या विचार है? क्या ये पूजनीय व्यक्ति आदर के योग्य, सम्मान के योग्य, श्रद्धा के योग्य और आदर के योग्य हैं? निःसंदेह वे आदर के योग्य, सम्मान के योग्य, श्रद्धा के योग्य और आदर के योग्य हैं। क्योंकि यदि वे इस प्रकार के व्यक्ति का आदर, सम्मान, श्रद्धा या आदर नहीं करते, तो वे किस प्रकार के व्यक्ति का आदर, सम्मान, श्रद्धा और आदर करेंगे; किस प्रकार के व्यक्ति पर आदर और आदर करते हुए वे निर्भर रहेंगे?"

तब मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा ने पूज्य आनंद से कहा, "लेकिन हे गुरु आनंद, आप अभी कहाँ रह रहे हैं?"

"मैं इस समय बैम्बू ग्रोव में ठहरा हुआ हूँ, ब्राह्मण।"

"हे गुरु आनंद, मुझे विश्वास है कि बांस का जंगल रमणीय, शांत, शोर-शराबे से मुक्त, एकांत का वातावरण लिए हुए, मनुष्यों से दूर और ध्यान लगाने के लिए उपयुक्त है।"

"निश्चित रूप से, ब्राह्मण, बांस का जंगल रमणीय, शांत, शोर-शराबे से मुक्त, एकांत का वातावरण लिए हुए, मनुष्यों से दूर और आपके जैसे संरक्षकों और रक्षकों के कारण एकांतवास के लिए उपयुक्त है।"

"निश्चित रूप से, हे गुरु आनंद, बांस का वन रमणीय, शांत, शोर-मुक्त और एकांतप्रिय है, मनुष्यों से दूर है, और ध्यान के लिए उपयुक्त है क्योंकि यहाँ ऐसे पूजनीय व्यक्ति निवास करते हैं जो ध्यान में मग्न रहते हैं और ध्यान को अपना स्वभाव बना लेते हैं। आप पूजनीय व्यक्ति ध्यान में मग्न रहते हैं और ध्यान को अपना स्वभाव बना लेते हैं।"

"एक बार, आदरणीय आनंद, गुरु गौतम वैशाली के पास, विशाल वन में स्थित शिखर छत वाले मंडप में ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिलने उस विशाल वन में गया, और वहाँ उन्होंने मननमग्नता पर अनेक प्रकार से प्रवचन दिए। गुरु गौतम स्वयं मननमग्नता से संपन्न थे और उन्होंने मननमग्नता को अपना अभ्यस्त बना लिया था। वास्तव में, उन्होंने हर प्रकार की मननमग्नता की प्रशंसा की।"

"हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि भगवान बुद्ध ने हर प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा की हो, न ही उन्होंने हर प्रकार की मानसिक तल्लीनता की आलोचना की हो। और उन्होंने किस प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा नहीं की? एक स्थिति वह है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी चेतना को कामुक वासनाओं से ग्रस्त करके, कामुक वासनाओं में डूबा हुआ रखता है। एक बार जब कामुक वासनाएं उत्पन्न हो जाती हैं, तो वह उनसे मुक्ति का मार्ग नहीं पहचान पाता, जबकि वास्तव में वे मौजूद होती हैं। उस कामुक वासना को केंद्र बिंदु बनाकर, वह स्वयं को उसमें लीन कर लेता है, उसमें समाहित हो जाता है, उसमें पुनः समाहित हो जाता है और उसमें अतिव्यापी हो जाता है।"

वह दुर्भावना से ग्रस्त अपनी चेतना के साथ निवास करता है...

वह आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त अपनी चेतना के साथ रहता है...

वह बेचैनी और चिंता से ग्रस्त चेतना के साथ रहता है...

वह अनिश्चितता से ग्रस्त, अनिश्चितता में जकड़ी हुई चेतना में लीन रहता है। अनिश्चितता उत्पन्न होने के बाद, वह उससे मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाता, जबकि वास्तव में वह मार्ग मौजूद होता है। उस अनिश्चितता को केंद्र बिंदु बनाकर, वह स्वयं को उसमें समाहित कर लेता है, उसमें समा जाता है, पुनः समाहित हो जाता है और अति-समाहित हो जाता है। यह उस प्रकार का मानसिक तल्लीनता है जिसकी भगवान बुद्ध ने प्रशंसा नहीं की।

और उन्होंने किस प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा की? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु - इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ - वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और सचेतनता की शुद्धता, न सुख न दुख। यही वह मानसिक तल्लीनता है जिसकी भगवान ने प्रशंसा की।

"ऐसा प्रतीत होता है, आदरणीय आनंद, कि गुरु गौतम ने उस मानसिक तल्लीनता की आलोचना की जो आलोचना के योग्य है, और उसकी प्रशंसा की जो प्रशंसा के योग्य है।"

"अच्छा, अब, गुरु आनंद, मुझे जाना होगा। मेरे बहुत से कर्तव्य हैं, बहुत सी चीजें हैं जो मुझे करनी हैं।"

"तो फिर, हे ब्राह्मण, जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है, वही करो।"

अतः मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा, पूज्य आनंद की कही बातों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और चले गए।

फिर, उनके जाने के कुछ ही समय बाद, रक्षक मोग्गलाना ने आदरणीय आनंद से कहा, "गुरु आनंद, आपने अभी तक मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया है।"

"क्या मैंने अभी तुम्हें नहीं बताया, ब्राह्मण? कोई भी ऐसा भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध - योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत - परिपूर्ण थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद उस मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.9 महा पुन्नम सुत्त(109)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। और उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ की रात, पूर्णिमा की रात—वे भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे हुए थे।

तब एक भिक्षु अपनी सीट से उठकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और अपने हाथों की हथेलियों को हृदय पर रखकर भगवान बुद्ध से बोले: "हे भगवान, एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ, यदि भगवान बुद्ध मुझे अनुमति दें, तो मैं एक प्रश्न का उत्तर जानना चाहता हूँ।"

"ठीक है, तो भिक्षु। अपनी सीट पर वापस बैठ जाइए और जो चाहिए पूछिए।"

भगवान बुद्ध को उत्तर देते हुए, "जी भगवान," भिक्षु अपनी सीट पर वापस बैठ गया और भगवान बुद्ध से कहा, "क्या ये पाँच आसक्ति-समूह नहीं हैं, अर्थात्, आसक्ति-समूह के रूप में रूप, भावना... बोध... कल्पनाएँ... आसक्ति-समूह के रूप में चेतना।"

"भिक्षु, ये पाँच आसक्ति-समूह हैं, अर्थात्, आसक्ति-समूह के रूप में रूप, भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु प्रसन्न हुआ और भगवान के शब्दों की सराहना करते हुए उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, भगवान, ये पाँच आसक्ति-समूह किसमें निहित हैं?"

"भिक्षु, ये पाँच आसक्ति-समूह इच्छा में निहित हैं।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "क्या आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान है, या आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों से अलग है?"

"हे भिक्षु, आसक्ति न तो पाँच आसक्ति-समूहों के समान है और न ही उनसे भिन्न है। बस जो भी वासना और आनंद है, वही आसक्ति है।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "क्या पाँच आसक्ति-समूहों के प्रति इच्छा और वासना में विविधता हो सकती है?"

"ऐसा हो सकता है, भिक्षु। ऐसा भी हो सकता है कि किसी के मन में यह विचार आए, 'काश भविष्य में मैं ऐसे रूप के साथ एक हो जाऊं। काश भविष्य में मैं ऐसी भावना... ऐसी अनुभूति... ऐसी कल्पना... ऐसी चेतना के साथ एक हो जाऊं।' इसी प्रकार पांच आसक्ति-समूहों के प्रति इच्छा और जुनून में विविधता उत्पन्न होगी।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "समूह' पदनाम किस हद तक समूहों पर लागू होता है?"

"भिक्षु, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे रूपों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी बोध; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे बोध का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है।1 'समूह' शब्द का प्रयोग समूहों के लिए इसी सीमा तक किया जाता है।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “भगवान, रूप के समूह के चित्रण का कारण क्या है, क्या शर्त है? भावना, बोध, कल्पना, चेतना के समूह के चित्रण का कारण क्या है, क्या शर्त है?”

"भिक्षु, चार महान सत्ताएँ (पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु) रूप के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति हैं। स्पर्श, संवेदना के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। स्पर्श, बोध के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। स्पर्श, कल्पनाओं के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। नाम-रूप, चेतना के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "भगवान, आत्म-पहचान का दृष्टिकोण कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—रूप को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मान लेता है, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है।"

वह भावना को आत्मा मानता है, या आत्मा को भावना से युक्त मानता है, या भावना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को भावना में समाहित मानता है। वह बोध को आत्मा मानता है, या आत्मा को बोध से युक्त मानता है, या बोध को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को बोध में समाहित मानता है। वह मनगढ़ंत बातों को आत्मा मानता है, या आत्मा को मनगढ़ंत बातों से युक्त मानता है, या मनगढ़ंत बातों को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को मनगढ़ंत बातों में समाहित मानता है। वह चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, या चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है।

"हे भिक्षु, आत्म-पहचान की अवधारणा इसी प्रकार उत्पन्न होती है।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "भगवान, आत्म-पहचान का दृष्टिकोण अब कैसे नहीं उत्पन्न होता?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का सुशिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। वह भावना को आत्मा नहीं मानता... वह बोध को आत्मा नहीं मानता... वह कल्पना को आत्मा नहीं मानता... वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, न ही चेतना को आत्मा में, न ही आत्मा को चेतना में।"

"हे भिक्षु, इस प्रकार आत्म-पहचान का दृष्टिकोण अब अस्तित्व में नहीं आता।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “हे भगवान, रूप का आकर्षण क्या है? इसकी हानि क्या है? इससे कैसे बचा जा सकता है? भावना, बोध, कल्पना, चेतना का आकर्षण क्या है? इसकी हानि क्या है? इससे कैसे बचा जा सकता है?”

"भिक्षु, रूप से संबंधित जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वही रूप का आकर्षण है। रूप का अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील होना ही रूप की दुर्बलता है। इच्छा और वासना को वश में करना, रूप के प्रति इच्छा और वासना का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है।"

"जो भी सुख और आनंद भावना से उत्पन्न होता है, वही भावना का आकर्षण है..."

"जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वह बोध पर निर्भर करता है: यही बोध का आकर्षण है..."

"मनगढ़ंत बातों से जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वही मनगढ़ंत बातों का आकर्षण है..."

चेतना से उत्पन्न होने वाला हर सुख और आनंद चेतना का आकर्षण है। चेतना का अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील होना चेतना की कमी है। इच्छा और वासना को वश में करना, चेतना के लिए इच्छा और वासना का त्याग करना चेतना से मुक्ति है।

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "किस तरह से जानकर, किस तरह से देखकर, चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में, और सभी बाहरी संकेतों के संबंध में, अब कोई 'मैं' या 'मेरा' या अहंकार का जुनून नहीं रह जाता?"

"हे भिक्षु, सही विवेक से देखने पर व्यक्ति किसी भी रूप को, चाहे वह भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का; आंतरिक हो या बाह्य; प्रत्यक्ष हो या सूक्ष्म; सामान्य हो या उदात्त; दूर हो या निकट, देखता है तो वह सोचता है: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की भावना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें देख सकता है..."

"कोई भी व्यक्ति किसी भी चेतना को - भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट - हर चेतना को - सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"इस प्रकार जानने और इस प्रकार देखने वाले भिक्षु के लिए—चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाहरी संकेतों के संबंध में—अब कोई 'मैं' या 'मेरा' या अहंकार का जुनून नहीं रह जाता है।"

उसी क्षण एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "तो—रूप अनात्म है, भावना अनात्म है, बोध अनात्म है, रचनाएँ अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर अनात्म द्वारा किए गए कार्यों से कौन सा आत्म प्रभावित होगा?"

तब भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु के चिंतन को अपनी चेतना से भांपकर भिक्षुओं को संबोधित किया: “संभव है कि कोई नासमझ व्यक्ति – अज्ञान में डूबा हुआ, लालसा से ग्रस्त – यह सोचे कि वह गुरु के संदेश को इस प्रकार समझ सकता है: ‘तो – रूप अनात्म है, भावना अनात्म है, बोध अनात्म है, रचनाएँ अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर अनात्म द्वारा किए गए कार्यों से कौन सा आत्म प्रभावित होगा?’ अब, भिक्षुओं, क्या मैंने तुम्हें यहाँ-वहाँ इस और उस विषय के संबंध में प्रतिप्रश्न करना नहीं सिखाया है? तुम क्या सोचते हो – क्या रूप स्थिर है या अस्थिर?” “अस्थिर, भगवान।” “और क्या अस्थिर को सुखदायक या तनावपूर्ण मानना उचित है?” “तनावपूर्ण, भगवान।” “और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को यह कहना उचित है: ‘यह मेरा है। यह मेरा आत्म है। यही मैं हूँ’?”

"नहीं, भगवान।"

"...क्या भावना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"

"...क्या बोध स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"

"...क्या निर्माण स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, स्वामी।"

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, भगवान।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

किसी भी प्रकार की भावना...

किसी भी प्रकार की धारणा...

किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें...

"भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल की कोई भी चेतना; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक चेतना को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखा जाना चाहिए: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्व नहीं है। यह वह नहीं है जो मैं हूं।'"

इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य रूप, भावना, बोध, कल्पना और चेतना से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इससे तृप्त होकर भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन बहुत प्रसन्न हुए। और जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब साठ भिक्षुओं के मन आसक्ति (किसी चीज़ से जुड़े न रहने) के कारण पूर्णतः विकारों से मुक्त हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.10कुल पुन्नमा सुत्त(110)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ की रात, पूर्णिमा की रात—वे भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे थे। तब, भिक्षुओं के मौन समुदाय को देखकर उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, क्या कोई निर्लज्ज व्यक्ति किसी निर्लज्ज व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह निर्लज्ज व्यक्ति है'?"

"नहीं, भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक बेईमान व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति के बारे में यह जान सके: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है।'"

"क्या एक बेईमान व्यक्ति किसी ईमानदार व्यक्ति के बारे में यह जान सकता है: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है'?"

"नहीं, भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक बेईमान व्यक्ति किसी ईमानदार व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है।'"

"एक व्यक्ति में ईमानदारी का अभाव होता है; वह अपनी मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने के तरीके में, बोलने के तरीके में, कार्य करने के तरीके में, अपने विचारों में और उपहार देने के तरीके में भी ईमानदारीहीन होता है।"

और एक बेईमान व्यक्ति बेईमानी के गुणों से कैसे संपन्न होता है? एक बेईमान व्यक्ति में दृढ़ विश्वास, अंतरात्मा और अकुशल कार्यों के परिणामों के प्रति चिंता का अभाव होता है; वह अज्ञानी, आलसी, भ्रमित और विवेकहीन होता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति बेईमानी के गुणों से संपन्न होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति मित्रता में बेईमान कैसे होता है? उदाहरण के लिए, बेईमान व्यक्ति के मित्र और साथी वे पुजारी और ध्यानमग्न होते हैं जिनमें दृढ़ विश्वास, विवेक, चिंता की कमी होती है, जो अज्ञानी, आलसी, भ्रमित और विवेकहीन होते हैं। इसी प्रकार एक बेईमान व्यक्ति मित्रता में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार बेईमान कैसे होता है? एक मामला ऐसा होता है जब बेईमान व्यक्ति स्वयं को, या दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाना चाहता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति सलाह देने के तरीके में बेईमान कैसे होता है? एक मामला यह है कि बेईमान व्यक्ति अपनी स्वयं की पीड़ा के लिए, या दूसरों की पीड़ा के लिए, या दोनों की पीड़ा के लिए सलाह देता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति सलाह देने के तरीके में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से बेईमान कैसे होता है? बेईमान व्यक्ति वह होता है जो झूठ बोलता है, फूट डालने वाली बातें फैलाता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है और व्यर्थ की बातें करता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने कार्यों से बेईमान कैसे होता है? एक बेईमान व्यक्ति वह होता है जो किसी की जान लेता है, चोरी करता है, अवैध यौन संबंध बनाता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने कार्यों से बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने विचारों में बेईमान कैसे होता है? बेईमान व्यक्ति वह होता है जो इस प्रकार का विचार रखता है: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर इसका प्रचार करते हैं।' इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने विचारों में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति उपहार देते समय बेईमान कैसे होता है? एक बेईमान व्यक्ति उपहार लापरवाही से, अपने हाथों से नहीं, बल्कि अनादरपूर्वक, मानो उसे फेंक रहा हो, इस सोच के साथ देता है कि इससे कुछ नहीं होगा। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति उपहार देते समय बेईमान होता है।

"यह बेईमान व्यक्ति—ईमानदारी के गुणों से रहित; मित्रता में, इच्छाशक्ति में, सलाह देने में, बोलने में, कार्य करने में, विचारों में और उपहार देने में—शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, बेईमान लोगों के गंतव्य में पुनः प्रकट होता है। और बेईमान लोगों का गंतव्य क्या है? नरक या पशु गर्भ।"

"अब, भिक्षुओं, क्या कोई ईमानदार व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है'?"

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह संभव है कि एक ईमानदार व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है।'"

क्या एक ईमानदार व्यक्ति किसी अन्य ईमानदार व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है'?

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह संभव है कि एक ईमानदार व्यक्ति दूसरे ईमानदार व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है।'"

"एक ईमानदार व्यक्ति ईमानदारी के गुणों से संपन्न होता है; वह अपनी मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने के तरीके में, बोलने के तरीके में, कार्य करने के तरीके में, अपने विचारों में और उपहार देने के तरीके में ईमानदार होता है।"

और एक ईमानदार व्यक्ति में ईमानदारी के गुण कैसे पाए जाते हैं? एक ईमानदार व्यक्ति दृढ़ विश्वास, विवेक और चिंता से परिपूर्ण होता है; वह ज्ञानवान होता है, उसमें दृढ़ता, स्पष्टता और अच्छा विवेक होता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति में ईमानदारी के गुण पाए जाते हैं।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपनी मित्रता में ईमानदार कैसे होता है? उदाहरण के लिए, एक ईमानदार व्यक्ति के मित्र और साथी वे पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति होते हैं जो दृढ़ विश्वास, विवेक और चिंता से परिपूर्ण होते हैं; जो विद्वान होते हैं, जिनमें जागृत दृढ़ता, स्पष्ट जागरूकता और अच्छी समझ होती है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपनी मित्रता में ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईमानदार कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक ईमानदार व्यक्ति न तो स्वयं को कष्ट पहुँचाना चाहता है, न दूसरों को, और न ही दोनों को। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति सलाह देने के तरीके में ईमानदार कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक ईमानदार व्यक्ति न तो अपनी पीड़ा के लिए, न ही दूसरों की पीड़ा के लिए, और न ही दोनों की पीड़ा के लिए सलाह देता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति सलाह देने के तरीके में ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से कैसे ईमानदार होता है? एक ईमानदार व्यक्ति वह होता है जो झूठ से दूर रहता है, फूट डालने वाली चुगली से दूर रहता है, कठोर भाषा से दूर रहता है, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपने कार्यों से कैसे ईमानदार होता है? एक ईमानदार व्यक्ति वह होता है जो किसी की जान नहीं लेता, चोरी नहीं करता, अवैध यौन संबंध नहीं बनाता। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपने कार्यों से ईमानदार होता है।

और एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपने विचारों में सत्यनिष्ठ कैसे होता है? सत्यनिष्ठ व्यक्ति वह होता है जो इस प्रकार का विचार रखता है: 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; ऐसे पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति हैं जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।' इस प्रकार एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपने विचारों में सत्यनिष्ठ होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति उपहार देते समय किस प्रकार ईमानदार होता है? एक उदाहरण यह है कि एक ईमानदार व्यक्ति ध्यानपूर्वक, अपने हाथों से, सम्मानपूर्वक उपहार देता है, न कि उसे यूं ही फेंक देने की उम्मीद से, इस विचार से कि इससे कुछ लाभ होगा। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति उपहार देते समय ईमानदार होता है।

"ईमानदारी से परिपूर्ण यह व्यक्ति—जो अपने मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने में, बोलने में, कार्य करने में, अपने विचारों में और दान देने में ईमानदार है—मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर ईमानदार लोगों के गंतव्य में पुनः प्रकट होता है। और ईमानदार लोगों का गंतव्य क्या है? देवताओं या मनुष्यों के बीच महानता।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.1अनुपाद सुत्त(111)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त बुद्धिमान, महान विवेकशील, गहन विवेकशील, व्यापक, आनंदमय, तीव्र और मर्मस्पर्शी विवेकशील हैं। आधे महीने तक सारिपुत्त ने एक के बाद एक मानसिक गुणों की स्पष्ट अंतर्दृष्टि प्राप्त की। एक के बाद एक मानसिक गुणों की अंतर्दृष्टि के माध्यम से सारिपुत्त को ये बातें समझ में आईं:

"एक उदाहरण है जब सारिपुत्त—जो कामुकता और अकुशल गुणों से पूरी तरह विरक्त थे—प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से परिपूर्ण था। प्रथम ध्यान में जो भी गुण हैं—निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, आनंद, एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न होते हैं, ज्ञात था कि वे बने रहते हैं, ज्ञात था कि वे शांत हो जाते हैं। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति मार्ग है,' और वास्तव में उनके लिए वह मार्ग था।"

इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, सारिपुत्त द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें बने रहे: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। द्वितीय ध्यान में जो भी गुण हैं - आंतरिक आश्वासन, परमानंद, आनंद, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान - उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति अनासक्त और विकर्षणरहित रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त चेतना के साथ। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और उसका अनुसरण करते हुए वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति थी।

इसके अलावा, जैसे-जैसे आनंद का भाव कम होता गया, सारिपुत्त समभाव, सजगता और सतर्कता बनाए रखते हुए, तथा सुख के प्रति शारीरिक रूप से संवेदनशील रहते हुए, तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सजग रहकर, वह सुखद अवस्था में रहते हैं।' तृतीय ध्यान में जो भी गुण हैं—समभाव-सुख, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहते हुए, प्रकट होते हैं। अस्तित्व में आने पर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसकी जागरूकता बाधाओं से परे थी। वह समझ गया था, उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—सारिपुत्त चौथे ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें बने रहे: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। चौथे ध्यान में जो भी गुण हैं—समभाव, न सुख न दुख; जागरूकता की शांति के कारण उदासीनता;3 मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, जागरूकता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने पर, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, सारिपुत्त अनंत अंतरिक्ष के आयाम में प्रवेश कर गए और उसमें विलीन हो गए। अनंत अंतरिक्ष के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे लुप्त हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, सारिपुत्त चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं बने रहे। चेतना की अनंतता के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—चेतना की अनंतता का बोध, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक

करके उन सभी को खोज निकाला। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षणित, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ बने रहे। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति थी।

इसके अलावा, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, सारिपुत्त शून्यता के आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं ठहर गए। शून्यता के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—शून्यता के आयाम का बोध, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उन सभी को खोज निकाला। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे लुप्त हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षणित, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ रहे। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति मार्ग था।

इसके अलावा, शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, सारिपुत्त उस आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं बने रहे जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध। वे उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकले। उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकलने पर, उन्होंने अतीत के उन गुणों पर विचार किया जो समाप्त हो चुके थे और बदल गए थे: 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहकर, अस्तित्व में आते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त चेतना के साथ। उन्होंने यह जान लिया कि 'एक और मुक्ति का मार्ग है,' और वास्तव में उनके लिए वह मार्ग था।

इसके अतिरिक्त, बोध और अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, सारिपुत्त भाव और बोध की समाप्ति में प्रवेश कर गए और वहीं स्थिर रहे। विवेक से देखते हुए, उनकी सभी मनोवृत्तियाँ पूर्णतः समाप्त हो गईं। वे उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकले। उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकलने पर, उन्होंने अतीत के उन गुणों पर विचार किया जो समाप्त हो चुके थे और परिवर्तित हो गए थे: 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, अस्तित्व में आते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ। उन्होंने यह जान लिया कि 'आगे कोई मुक्ति नहीं है,' और वास्तव में उनके लिए ऐसी कोई मुक्ति नहीं थी।

यदि कोई व्यक्ति किसी के बारे में सही ढंग से कहे, 'उसने श्रेष्ठ सद्गुणों, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ विवेक और श्रेष्ठ मुक्ति में निपुणता और पूर्णता प्राप्त कर ली है,' तो वह सारिपुत्त के बारे में भी सही कह रहा होगा यदि वह कहे: 'उसने श्रेष्ठ सद्गुणों, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ विवेक और श्रेष्ठ मुक्ति में निपुणता और पूर्णता प्राप्त कर ली है।'

यदि कोई व्यक्ति किसी के बारे में सही ढंग से कहे, 'वह भगवान बुद्ध के पुत्र हैं, उनकी संतान हैं - उनके मुख से जन्मे, धम्म से जन्मे, धम्म द्वारा सृजित, धम्म में उनके उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं में उनके उत्तराधिकारी नहीं,' तो वह सारिपुत्त के बारे में भी सही कह रहा होगा यदि वह कहे: 'वह भगवान बुद्ध के पुत्र हैं, उनकी संतान हैं - उनके मुख से जन्मे, धम्म से जन्मे, धम्म द्वारा सृजित, धम्म में उनके उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं में उनके उत्तराधिकारी नहीं।' हे भिक्षुओं, सारिपुत्त तथागत द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को धारण करते हैं और उसे सही ढंग से घुमाते रहते हैं।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.2 छब्बीसोदना सुत्त(112)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, भिक्षु पूर्णता की घोषणा करते हैं। "जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है। मैं जानता हूँ, अब और कुछ चाहने की इच्छा नहीं है।" उस भिक्षु के शब्दों को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। उनसे प्रश्न पूछना चाहिए। मित्र, ज्ञानवान, प्रत्यक्षदर्शी और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने परिभाषा के ये चार तरीके बताए हैं। वे चार क्या हैं? देखे हुए को देखे हुए के रूप में, सुने हुए को सुने हुए के रूप में, इंद्रियों से अनुभव किए गए को इंद्रियों से अनुभव किए गए के रूप में और ज्ञात को ज्ञात के रूप में परिभाषित करना। इन चार परिभाषाओं में से किस एक तरीके से आदरणीय भिक्षु का मन बंधनों से मुक्त होता है? यह उचित है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर चुके हैं, पवित्र जीवन जी चुके हैं, जो करना चाहिए वह कर चुके हैं, बोझ को त्याग चुके हैं, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर चुके हैं, 'होने' की इच्छा का नाश कर चुके हैं और सही मायने में मुक्त हो चुके हैं, वे इसकी व्याख्या करें। मित्र, दृष्टि से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, श्रवण से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, इंद्रियों से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, बोध से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, बोध से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, इन चार प्रकार की परिभाषाओं को जानकर और देखकर, मेरा मन इच्छाओं से मुक्त और बंधनरहित हो जाता है। उनके शब्दों को अच्छे शब्द मानकर आगे एक प्रश्न पूछना चाहिए: मित्र, ये पाँच बंधनकारी तत्व उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सत्यतः प्रबुद्ध परमेश्वर द्वारा घोषित किए गए हैं। वे पाँच क्या हैं? वे पदार्थ का धारण करने वाला पिंड, भावनाओं का धारण करने वाला पिंड, धारणाओं का धारण करने वाला पिंड, संकल्पों का धारण करने वाला पिंड और चेतना का धारण करने वाला पिंड हैं। पाँचों धारण करने वाले पिंडों में क्या है, ... यह देखकर कि धारणाएँ कमजोर हैं, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने धारणाओं के प्रति आसक्त होने और उन्हें दृढ़ता से थामे रहने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, समाप्त कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया। यह देखकर कि संकल्प कमजोर हैं, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने संकल्पों के प्रति आसक्त होने और उन्हें दृढ़ता से थामे रहने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, समाप्त कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया।यह देखकर कि चेतना दुर्बल है, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने चेतना के प्रति आसक्ति और उसे दृढ़ता से थामे रखने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया। मित्र, इन पाँच तत्वों को जानकर और देखकर मेरा मन इच्छाओं से मुक्त हो गया है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए: मित्र, इन छह तत्वों की घोषणा उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सत्यतः प्रबुद्ध भगवान ने की है। वे छह तत्व क्या हैं? वे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना हैं।

इन छह तत्वों में क्या है और क्या है, यह जानने और देखने से ही आदरणीय भिक्षु का मन इच्छाओं से मुक्त होकर बंधनहीन हो जाता है। यह उचित है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर, पवित्र जीवन व्यतीत कर, उचित कर्म कर, भार त्याग कर, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर, 'होने' की इच्छा का नाश कर और उचित रूप से मुक्त हो गया हो, वह इसकी व्याख्या करे। मित्र, पृथ्वी तत्व में आत्मा का अभाव है। आत्मा का पदार्थ में कोई निवास नहीं है। पदार्थ में निवास करने और दृढ़ता से धारण करने की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गईं, समाप्त हो गईं, त्याग दी गईं, मैं जानता हूँ कि मन मुक्त हो गया है। मैंने अनुभव किया कि जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व और चेतना तत्व में आत्मा का अभाव है। आत्मा का चेतना में कोई निवास नहीं है। चेतना में निवास करने और दृढ़ता से धारण करने की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गईं, समाप्त हो गईं, त्याग दी गईं, मैं जानता हूँ कि मन मुक्त हो गया है। मित्र, इन छह तत्वों को इस प्रकार जानने और देखने से मेरा मन इच्छाओं से मुक्त होकर बंधनहीन हो गया है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे प्रश्न पूछा जाना चाहिए। मित्र, ये छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्र उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान द्वारा घोषित किए गए हैं। ये छह क्या हैं? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, और मन और विचार। इन छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों में क्या जानना और क्या देखना है, यह आदरणीय भिक्षु के मन को इच्छाओं से मुक्त और बंधनरहित बनाता है। यह उचित है कि वह भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, पवित्र जीवन जिया है, जो करना चाहिए वह किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छा का नाश किया है और सही मायने में मुक्त हो गया है, वह इसकी व्याख्या करे। स्वार्थ, लोभ और व्याकुलता, नेत्र चेतना, रूप और नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के साथ गलत तरीके से अनुसरण करने की सुप्त प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गई हैं, समाप्त हो गई हैं और त्याग दी गई हैं, मैं जानता हूँ कि मेरा मन मुक्त हो गया है। रुचि, लोभ और लालसा के साथ गलत तरीके से अनुसरण करने की सुप्त प्रवृत्तियाँ - कान चेतना, ध्वनियाँ और कान चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, नाक चेतना, गंध और नाक चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, जीभ चेतना, स्वाद और जीभ चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, शरीर चेतना, स्पर्श और शरीर चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ और मन चेतना, विचार और मन चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ - नष्ट हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं और त्याग दी जाती हैं। मैं जानता हूँ कि मेरा मन मुक्त हो गया है। मित्र, इन छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों को इस

प्रकार जानने और देखने से, मेरा मन बिना किसी बंधन के इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे एक प्रश्न पूछा जाना चाहिए। मित्र, इस छह प्रकार के चेतन शरीर और सभी बाह्य संकेतों में यह जानकर और देखकर कि मेरे और मेरे स्वयं के अभिमानपूर्ण मापन की सुप्त प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, क्या है? यह वैध है कि एक भिक्षु जिसने इच्छाओं को नष्ट कर दिया है, पवित्र जीवन जिया है, और जो करना चाहिए वह किया है,इस बात को समझाना चाहिए कि बोझ को त्याग दिया, सर्वोच्च भलाई को प्राप्त किया, 'होने' की इच्छा को नष्ट कर दिया और उचित रूप से मुक्त हो गया।

मित्र, पहले जब मैं अज्ञानी गृहस्थ था, तब तथागत या उनके शिष्य ने उपदेश दिया और मुझे आस्था प्राप्त हुई। उस आस्था से मैंने सोचा, गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, तपस्वी जीवन निर्वाह करना खुले मैदान के समान है। गृहस्थ जीवन में पूर्ण और पवित्र, निर्मल, निर्मल जीवन जीना आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, मैं तपस्वी क्यों न बनूँ? किसी उपयुक्त समय पर मैंने थोड़ा धन या बहुत धन त्याग दिया, मित्रों का छोटा समूह या मित्रों का बड़ा समूह छोड़कर सिर और दाढ़ी मुंडवाकर पीले वस्त्र धारण किए और तपस्वी जीवन व्यतीत किया।

मैं भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन गया। मैंने प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग दिया, लाठी-हथौड़े फेंक दिए और सभी प्राणियों के प्रति करुणा जगाते हुए लज्जित निवास किया। जो नहीं दिया गया, उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया, उसकी इच्छा की, अपने मन को शुद्ध किया और चोरी रहित निवास किया। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत किया। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बना और संसार से कोई विवाद न करते हुए निवास किया। निंदा करना त्याग दिया। यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहा, ताकि दूसरों को विभाजित न किया जाए। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहा, ताकि दूसरों को विभाजित न किया जाए। इस प्रकार मैंने विभाजितों को एकजुट किया और एकता को बढ़ावा दिया। एकता का प्रेमी होकर एकता के वचन बोले। कठोर वाणी त्याग दी और ऐसे मधुर वचन बोले जो सबके हृदय को छू गए। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोले, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप थे और जिन्हें संजोकर रखा जा सकता था।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज किया। दिन में एक बार भोजन किया, रात में और असमय भोजन से परहेज किया। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, अभिषेक और आभूषणों से परहेज किया। ऊंचे और आलीशान पलंगों से परहेज किया। सोना और चांदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज किया। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज किया। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज किया।

उन्होंने खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज किया। उन्होंने खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीकों से तौलने-मापने से परहेज किया। उन्होंने काटने-पीटने, नष्ट करने और लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज किया।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, मैं अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता था, जाता था। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, मैं अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता था, जाता था। इन सद्गुणों से परिपूर्ण होकर, मैंने आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव किया।

किसी आकृति को देखकर मैंने उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं किया। आँख की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उस तक पहुँच सकते हैं। मैंने आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए निवास किया। किसी ध्वनि को सुनकर, किसी गंध को पहचानकर, चखकर, शरीर के स्पर्शों को पहचानकर, मन में किसी विचार को पहचानकर मैंने उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं किया। मन की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उस तक पहुँच सकते हैं। मैंने मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए निवास किया। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण से संपन्न होकर, मैंने मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव किया। आगे बढ़ते या लौटते समय मैं सचेत हो गया। देखते या देखते समय मैं सचेत हो गया। झुकते या खिंचते समय, प्याला और तीन वस्त्र धारण करते समय, चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय मैं सचेत हो गया। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, यदि जागृत अवस्था में हों, और मौन रहते हुए मुझे जागरूकता प्राप्त हुई।

अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण, मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण रखने वाला और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सजग, मैं किसी एकांत स्थान पर निवास करता हूँ, जैसे कि वन, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद, मैं पैर मोड़कर बैठता हूँ, शरीर सीधा रखता हूँ और ध्यान को अपने सामने केंद्रित करता हूँ।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, मैंने मन को मुक्त करके निवास किया। क्रोध को दूर करते हुए, मैंने क्रोध रहित मन से निवास किया, सभी प्राणियों के प्रति करुणामय भाव रखते हुए। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, मैंने प्रकाश की अनुभूति के साथ निवास किया, आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हुए। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, मैंने मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए निवास किया, बेचैनी और चिंता से मन को शुद्ध करते हुए। मैंने अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास किया।

मैंने मन की पाँच बाधाओं को दूर किया, और बुद्धिमानी से छोटी-छोटी अशुद्धियों को कमजोर करके मन को कामुक विचारों और दोषों से अलग किया। एकांत से उत्पन्न विचारों, विचार प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर प्रथम ध्यान में निवास किया।

एक बार फिर विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर काबू पाते हुए, मन आंतरिक रूप से शांत हो गया, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ मैं दूसरे ध्यान में लीन हो गया।

फिर, आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए, तीसरे ध्यान में निवास करें। श्रेष्ठ जन कहते हैं कि यही समभाव का ध्यान रखते हुए सुख में रहना है।

फिर, सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई चेतना के साथ मैं चौथे ध्यान में लीन हो गया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर लगाया। मैंने जाना कि यह अप्रिय है, यह है, इसका उद्भव है, इसका अंत है, और अप्रियता के अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैंने इच्छाओं को जाना, उनका उद्भव है, उनका अंत है और उनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। इस प्रकार जानने और देखने वाला मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर, मैंने जाना, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जीया जा रहा है, जो करना चाहिए वह हो गया है। अब और कुछ चाहने को नहीं है। मित्र, इस प्रकार इस षष्ठमय चेतना और सभी बाह्य चिन्हों को जानकर और देखकर, मैंने अपने और अपने के अहंकारपूर्ण मापन की सुप्त प्रवृत्तियों को पूर्णतः नष्ट कर दिया। भिक्षुओं, उनके शब्दों को अच्छे शब्द मानकर उन्हें कहना चाहिए, 'मित्र, आप जैसे सहोदरों से मिलना हमारे लिए बड़ा लाभ है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.3 सप्पुरिसा सुत्त(113)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, मैं आपको योग्य और अयोग्य के गुण बताऊंगा, ध्यान से सुनो और ग्रहण करो।'

भिक्षुओं, योग्य व्यक्ति के क्या लक्षण हैं? यहाँ उच्च कुल से संन्यासी बना अयोग्य व्यक्ति चिंतन करता है। मैं उच्च कुल से संन्यासी बना हूँ, ये अन्य संन्यासी उच्च कुल से नहीं हैं। अपने उच्च कुल के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि उच्च कुल के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई उच्च कुल से बाहर का संन्यासी शिक्षा के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और अपनी प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। भिक्षुओं, यही योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, प्रतिष्ठित कुल से निकला अयोग्य व्यक्ति चिंतन करता है। वह सोचता है, "मैं एक उच्च और प्रतिष्ठित कुल से निकला हूँ, ये अन्य लोग जो निकले हैं, वे कुलीन कुल से नहीं हैं।" अपने कुलीन कुल के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि कुलीन कुल के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम नष्ट नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति कुलीन कुल से बाहर का होकर भी संन्यासी बनता है और उपदेशों के अनुसार सही आचरण करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा नहीं करता तथा दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यह योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, फिर से, जो अयोग्य संन्यासी संन्यास लेकर गया है, वह चिंतन करता है। मैं तो प्रसिद्ध हूँ, लेकिन ये दूसरे संन्यासी प्रसिद्ध नहीं हैं। अपनी प्रसिद्धि के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि प्रसिद्धि के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई कम प्रसिद्ध संन्यासी संन्यास लेकर शिक्षा के अनुसार सही आचरण का पालन करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और अपनी प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यह योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य व्यक्ति वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ उठाता है और चिंतन करता है। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ उठाने वाला हूँ, ये अन्य जो चले गए हैं, वे इन चारों आवश्यक वस्तुओं के लाभ नहीं उठा पाए। इसी कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति लाभ के कारण चिंतन करता है, ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ नहीं उठाता, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु भी ज्ञानी होता है, वह चिंतन करता है। मैं ज्ञानी हूँ, ये दूसरे भिक्षु ज्ञानी नहीं हैं। अपने ज्ञान के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, क्योंकि उसके ज्ञान के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई अज्ञानी भिक्षु उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करे, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु अनुशासन धारण करता है, वह चिंतन करता है। मैं अनुशासन धारण करता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु अनुशासन धारण नहीं करते। अनुशासन धारण करने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु अनुशासन धारण करने के कारण चिंतन करता है, जिससे ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति जो अनुशासन धारण नहीं करता, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

भिक्षुओं, फिर से कहो, अयोग्य भिक्षु उपदेशक होता है, वह चिंतन करता है। मैं उपदेशक हूँ, ये अन्य भिक्षु उपदेशक नहीं हैं। उपदेश देने की क्षमता के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि उपदेश देने की क्षमता के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति जो उपदेशक नहीं है, उपदेश के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, सही आचरण का पालन करता है, तो वह इसके कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु वनवासी होता है, वह चिंतन करता है। मैं वनवासी हूँ, ये अन्य भिक्षु वनवासी नहीं हैं। वन में रहने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि वन में रहने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई वनवासी न होकर भी, शिक्षा के अनुसार, उचित आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण आदरणीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह उचित आचरण का आदर करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु फटे वस्त्र धारण करता है, वह चिंतन करता है। मैं फटे वस्त्र धारण करता हूँ, ये अन्य भिक्षु नहीं करते। फटे वस्त्र धारण करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन

करता है कि फटे वस्त्र धारण करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति फटे वस्त्र धारण न करते हुए भी उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करता है, वह चिंतन करता है। मैं निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण नहीं करते। निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई निःस्वार्थ भोजन ग्रहण किए बिना, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु वृक्ष की जड़ में निवास करता है, वह चिंतन करता है। मैं वृक्ष की जड़ में निवास करता हूँ, ये अन्य भिक्षु वृक्ष की जड़ में निवास नहीं करते। वृक्ष की जड़ में निवास करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि वृक्ष की जड़ में निवास करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई वृक्ष की जड़ में निवास न करते हुए, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु श्मशान में रहने वाला, खुले में रहने वाला, बैठे रहने वाला, जहाँ भी संभव हो सो जाने वाला, एक ही आसन पर बैठे रहने वाला, चिंतन करता है। वह सोचता है, मैं एक ही आसन पर बैठा हूँ, ये अन्य भिक्षु एक ही आसन पर नहीं बैठे हैं। एक ही आसन पर बैठने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु एक ही आसन पर बैठने के कारण चिंतन करता है, जिससे उसके ये लोभ, क्रोध और भ्रम नष्ट नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति जो एक ही आसन पर नहीं बैठा है, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसके कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु, इंद्रिय सुखों और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं में विलीन होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है। वह चिंतन करता है, मैं प्रथम ध्यान का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु प्रथम ध्यान के लाभार्थी नहीं हैं। अपने प्रथम ध्यान के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें प्रथम ध्यान से भी आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह प्रथम ध्यान के कारण न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत करके, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन रहता है, फिर तृतीय ध्यान में, फिर चतुर्थ ध्यान में। वह चिंतन करता है, मैं चतुर्थ ध्यान का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु चतुर्थ ध्यान के लाभार्थी नहीं हैं। अपने चतुर्थ ध्यान के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें चतुर्थ ध्यान से भी आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह चतुर्थ ध्यान के कारण न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु, पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश में निवास करता है। वह चिंतन करता है, मैं आकाश का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु आकाश के लाभार्थी नहीं हैं। आकाश में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें आकाश से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह कुछ और ही हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह आकाश में जन्म लेने के कारण न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु असीम चेतना से परिपूर्ण होकर, अंतरिक्ष के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, चेतना के क्षेत्र को प्राप्त करता है। वह चिंतन करता है, मैं चेतना के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु चेतना के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हैं। चेतना के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें चेतना के क्षेत्र से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह चेतना के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु चेतना के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, शून्यता के क्षेत्र को प्राप्त करता है। वह सोचता है, मैं शून्यता के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु शून्यता के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हैं। शून्यता के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु सोचता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें शून्यता के क्षेत्र से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु सभी शून्यता के क्षेत्रों को पार करते हुए, न तो बोध और न ही अबोध की अवस्था को प्राप्त करता है। वह चिंतन करता है, मैं न तो बोध का लाभार्थी हूँ और न ही अबोध का, ये अन्य भिक्षु न तो बोध के लाभार्थी हैं और न ही अबोध के। न तो बोध और न ही अबोध में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें न तो बोध और न ही अबोध से आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है, क्योंकि वह न तो बोध और न ही अबोध में जन्म लेता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

फिर, सभी धारणाओं और अधारणाओं पर विजय प्राप्त करने वाला योग्य व्यक्ति, धारणाओं और भावनाओं के अंत को प्राप्त करता है। इस ज्ञान से देखकर उसकी इच्छाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। यहाँ भिक्षु किसी भी कारण से कहीं भी जाने की कल्पना नहीं करता।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.4 सेवितब्बासेवितब्बा सुत्त(114)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन बातों के बारे में बताऊंगा जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए; ध्यानपूर्वक सुनो।'

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। वाणी आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। विचारों का उद्भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। बोधों की प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। दृष्टि की प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। आत्म-प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, इस संक्षिप्त व्याख्या का विस्तृत अर्थ मुझे समझ में आ रहा है। कहा गया था, “भिक्षुओं, शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।” भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? कुछ शारीरिक आचरणों का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे शारीरिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ शारीरिक आचरणों का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे शारीरिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।”

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? एक व्यक्ति निर्दयतापूर्वक जीवन का नाश करता है, रक्तरंजित हाथों से निर्दयतापूर्वक प्राणियों को नष्ट करता है, बिना दया दिखाए और बिना कुछ दिए छीन लेता है। गाँव या जंगल जाकर दूसरों का सामान चुराता है, चोरी की मानसिकता से। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार करता है। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ, या यहाँ तक कि पुष्पमाला धारण करने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार करता है। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पाप घटता है? एक ऐसा व्यक्ति जो जीवन का नाश नहीं करता, रक्तरंजित हाथों से क्रूर नहीं होता, विनाश में संलग्न नहीं होता, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखता है। जो बिना दिया हुआ नहीं लेता। गाँव या जंगल में जाकर दूसरों का सामान चोरी के इरादे से नहीं लेता। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार नहीं करता। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ या माला जपने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार नहीं करता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है कि, "शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जो करना चाहिए और जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है," तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया, “भिक्षुओं, आचरण दो प्रकार का होता है: एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।” भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी विशेष आचरण का पालन करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस आचरण का पालन नहीं करना चाहिए। किसी विशेष आचरण का पालन करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस आचरण का पालन करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के वाणी व्यवहार से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, एक व्यक्ति झूठ बोलता है। वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष जाकर गवाह बनने को कहा जाता है और झूठ बोलता है। हे भगवान, जो जानते हो बता। न जानते हुए भी वह कहता है कि मैं जानता हूँ, या जानते हुए भी कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखते हुए भी कहता है कि मैंने देखा, या देखकर भी कहता है कि मैंने नहीं देखा। किसी निजी कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण बातें बोलता है। यहाँ सुनी हुई बात को कहीं और दोहराता है, या कहीं और सुनी हुई बात को यहाँ दोहराता है, जिससे दूसरों में फूट पड़ती है। वह एक को तोड़ता है, टूटे को अलग करता है, उसे फूट डालने और अलग करने का शौक है, वह फूट डालने और अलग करने वाले शब्द बोलता है। वह कठोर और क्रोधित शब्दों का प्रयोग करता है जो तीखे और चुभने वाले होते हैं, दूसरों को क्रोधित करते हैं और एकाग्रता में बाधक होते हैं। यह व्यक्ति निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ बातें करता है जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मौखिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के वाणी आचरण से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है? आदरणीय महोदय, एक विशेष व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। जब वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष उपस्थित होता है, तो उसे साक्षी बनने के लिए कहा जाता है और वह कहता है, "अच्छे, जो जानते हो, वही बताओ।" जानने पर वह कहता है, "मैं जानता हूँ," न जानने पर कहता है, "मैं नहीं जानता।" देखने पर वह कहता है, "मैंने देखा," और न देखने पर कहता है, "मैंने नहीं देखा।" वह जानबूझकर, व्यक्तिगत कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए झूठ नहीं बोलता। वह द्वेषपूर्ण बातें नहीं बोलता। यहाँ सुनकर वह उसे कहीं और नहीं कहता जिससे फूट पड़े, और कहीं और सुनकर वह उसे यहाँ नहीं कहता जिससे फूट पड़े। वह एकजुट को एकजुट करता है, टूटे हुए को अलग नहीं करता, वह एकजुट करने का शौकीन है, अलग करने का नहीं। वह कठोर, क्रोधपूर्ण शब्दों से बचता है और कोमल, कानों को भाने वाले, हृदय को सीधे छूने वाले और अनेकों को स्वीकार्य शब्दों का प्रयोग करता है। वह निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ के शब्दों से परहेज करता है, और शिक्षा और अनुशासन के अनुसार बात करता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, “भिक्षुओं, मौखिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है,” तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया, “भिक्षुओं, मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है: एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।” भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का लोभ करता है। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित है और विचार दूषित हैं। काश, इन प्राणियों का नाश हो, या वे मारे जाएँ, या नष्ट हो जाएँ। काश, इनका अस्तित्व ही न रहे। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का लोभ नहीं करता, यह सोचकर कि हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित नहीं है और विचार दूषित नहीं हैं। काश, ये प्राणी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर सुखी रूप से निवास करें। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है।

कहा गया, “भिक्षुओं, विचार उत्पन्न करना भी दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है।” भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? कुछ विचारों का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे विचारों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ विचारों का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे विचारों का अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की संपत्ति पर लोभ करने का चिंतन करता है, क्रोधपूर्ण चिंतन करता है, और दूसरों को दुख पहुँचाने का चिंतन करता है। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति

जो दूसरों की संपत्ति पर लालच करने के विचारों में नहीं पड़ता, जो क्रोधपूर्ण विचारों से दूर रहता है, जो दूसरों को दुख पहुंचाने के विचारों में नहीं पड़ता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, “भिक्षुओं, विचारों का उद्भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं,” तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया, “भिक्षुओं, किसी मनोभाव की प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है, एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती है।” भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी मनोभाव की प्राप्ति के लिए यदि कर्म करते समय दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस मनोभाव की प्राप्ति करनी चाहिए। यदि किसी मनोभाव की प्राप्ति के लिए कर्म करते समय दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस मनोभाव की प्राप्ति करनी चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं होता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न संन्यासी और न ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को जानकर उसका वर्णन करते हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का फल होता है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल होता है। न यह संसार है, न परलोक है, न माता, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न संन्यासी और ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को जानकर उसका वर्णन करते हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, दर्शन का लाभ दो प्रकार का है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं," तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया, "भिक्षुओं, व्यक्तिगत लाभ भी दो प्रकार के होते हैं, एक वो जो करना चाहिए और एक वो जो नहीं करना चाहिए, और वो भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष बढ़े और पुण्य घटे, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त नहीं करने चाहिए। व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष घटे और पुण्य बढ़े, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, जब अस्तित्व के अंत न होने के कारण कष्टदायक व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। (*1) आदरणीय महोदय, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? आदरणीय महोदय, जब अस्तित्व के अंत न होने के कारण कष्टरहित व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है। (*2)

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, व्यक्तिगत लाभ दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से एक वह है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और दूसरा वह है जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं," तो यह इसी कारण से कहा गया था।

आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या के रूप में जानता हूँ।

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष शारीरिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो उस शारीरिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष शारीरिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो उस शारीरिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? एक व्यक्ति निर्दयतापूर्वक जीवन का नाश करता है, रक्तरंजित हाथों से निर्दयतापूर्वक प्राणियों का नाश करता है। बिना दिए हुए को छीन लेता है। गाँव या जंगल जाकर दूसरों का सामान चोरी की मानसिकता से ले जाता है। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार करता है। पति वाली और दंडनीय महिलाओं के साथ, या यहाँ तक कि पुष्पमाला धारण करने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार करता है। सारिपुत्त, इस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

सारिपुत्त, किस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पाप घटता है? एक ऐसा व्यक्ति जो जीवन का नाश नहीं करता, क्रूर नहीं है, रक्तरंजित हाथों से किसी का वध नहीं करता, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखता है। जो दिया न गया हो, उसे नहीं लेता। गाँव या वन में जाकर दूसरों की वस्तुएँ चोरी के इरादे से नहीं लेता। माता, पिता, भाई, बहन या सगे-संबंधियों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुराचार नहीं करता। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ या यहाँ तक कि पुष्पमाला जपने वाली महिलाओं के साथ भी दुराचार नहीं करता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि मैंने कहा कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग, तो यह बात इसी कारण से कही गई थी...

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि वाणी आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष वाणी आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे वाणी आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष वाणी आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे वाणी आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के वाणी आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, एक व्यक्ति झूठ बोलता है। वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष जाकर, साक्षी बनने को कहा जाता है और झूठ बोलता है। हे भगवान, जो जानते हो बता। न जानते हुए भी वह कहता है कि मैं जानता हूँ, या जानते हुए भी कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखते हुए भी कहता है कि मैंने देखा, या देखकर भी कहता है कि मैंने नहीं देखा। किसी निजी कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण बातें बोलता है। यहाँ कुछ सुनकर, उसे कहीं और बोलकर दूसरों को विभाजित करता है, या कहीं और कुछ सुनकर, उसे यहाँ बोलकर दूसरों को विभाजित करता है। वह एक को अलग करता है, टूटे को तोड़ता है, उसे अलग करने और तोड़ने का शौक है, वह ऐसे शब्द बोलता है जो दूसरों को अलग करते हैं। वह कठोर और क्रोधित शब्दों का प्रयोग करता है जो तीखे और चुभने वाले होते हैं, दूसरों को क्रोधित करते हैं और एकाग्रता में बाधक होते हैं। वह व्यर्थ, असमय, असत्य और निरर्थक शब्दों का प्रयोग करता है जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के मौखिक आचरण का अभ्यास करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

सारिपुत्त, किस प्रकार के वाणी आचरण का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है? सारिपुत्त, एक विशेष व्यक्ति झूठ बोलने से परहेज करता है। जब वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष उपस्थित होता है, तो उसे साक्षी बनने के लिए कहा जाता है और उससे पूछा जाता है, "हे स्वामी, जो जानते हो, वही बताओ।" जानने पर वह कहता है, "मैं जानता हूँ," न जानने पर कहता है, "मैं नहीं जानता।" देखने पर वह कहता है, "मैंने देखा," और न देखने पर कहता है, "मैंने नहीं देखा।" वह व्यक्तिगत कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए जानबूझकर झूठ नहीं बोलता। वह द्वेषपूर्ण बातें नहीं बोलता। यहाँ कुछ सुनकर वह उसे कहीं और नहीं कहता जिससे दूसरों में फूट पड़े, और कहीं और कुछ सुनकर वह उसे यहाँ नहीं कहता जिससे दूसरों में फूट पड़े। वह एकजुटों को एकजुट करता है, टूटे हुए को अलग नहीं करता, वह एकजुट करने का शौकीन है, अलग करने का नहीं। वह कठोर, क्रोधपूर्ण शब्दों से परहेज करता है और कोमल, कानों को भाने वाले, हृदय को सीधे छूने वाले और अनेकों को स्वीकार्य शब्दों का प्रयोग करता है। वह निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ के शब्दों से परहेज करता है, और शिक्षा और अनुशासन के अनुसार बात करता है।

भिक्षुओं, मैंने कहा, मौखिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है, ऐसा इसलिए कहा गया था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। यह किस कारण से कहा गया था? किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक विशेष प्राणी दूसरों की वस्तुओं का लोभ करता है। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित है और विचार दूषित हैं। हे! काश, इन प्राणियों का वध हो, या वे मारे जाएँ, या उनका नाश हो जाए। हे सारिपुत्त, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है। हे सारिपुत्त, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक विशेष प्राणी दूसरों की वस्तुओं का लोभ नहीं करता। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित नहीं है और विचार दूषित नहीं हैं। हे सारिपुत्त, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विचारों का उद्भव भी दो प्रकार का होता है, एक वह जो अभ्यास करने योग्य है और दूसरा वह जो अभ्यास नहीं करने योग्य है, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। यह किसलिए कहा गया था? कुछ विचारों का अभ्यास करते समय, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ विचारों का अभ्यास करते समय, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के चिंतन करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की संपत्ति के लालच में लीन रहता है, क्रोधपूर्ण चिंतन करता है, और दूसरों को दुख पहुँचाने का चिंतन करता है। सारिपुत्त, इस प्रकार के चिंतन करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के चिंतन करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति

जो व्यक्ति दूसरों की संपत्ति पर लालच करने का चिंतन नहीं करता, जो क्रोधपूर्ण चिंतन से मुक्त रहता है, जो दूसरों को दुख पहुंचाने का चिंतन नहीं करता। सारिपुत्त, इस प्रकार के चिंतन का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विचारों का उद्‌भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल होती हैं, और ये दोनों ही बातें एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि...

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि किसी दृष्टि की प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों ही एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष दृष्टि की प्राप्ति के लिए अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस दृष्टि की प्राप्ति का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष दृष्टि की प्राप्ति के लिए अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस दृष्टि की प्राप्ति का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं मिलता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं मिलता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं। न कोई संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो इस संसार और परलोक को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का फल मिलता है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल मिलता है। यह संसार है, दूसरा संसार है, माता-पिता हैं, स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं, संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो इस संसार और दूसरे संसार को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि मतों का लाभ भी दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और ये दोनों ही बातें एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। ऐसा इसलिए कहा गया था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि व्यक्तिगत लाभ भी दो प्रकार के होते हैं, एक वो जो करना चाहिए और दूसरा वो जो नहीं करना चाहिए, और वो भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं, ऐसा क्यों कहा गया है? व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त नहीं करने चाहिए। व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? सारिपुत्त, जब कष्टदायी व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो अस्तित्व के अंत न होने के कारण दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? सारिपुत्त, जब कष्टदायी व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न नहीं होते हैं, तो अस्तित्व के अंत के कारण दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि व्यक्तिगत लाभ दो प्रकार के होते हैं, जिनमें अभ्यास किया जाना चाहिए और अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वे भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं, ऐसा इसलिए कहा गया था।

सारिपुत्त, यह मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या है।

सारिपुत्त, नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। कान चेतना द्वारा अनुभव की जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। नाक चेतना द्वारा अनुभव की जा सकने वाली गंध भी दो प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। जीभ चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। मन चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले विचार भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।

जब यह कहा गया, तो पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे इस प्रकार ज्ञात है।'

कहा गया, "सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ ऐसे रूपों का अनुसरण करने से, जिनका नेत्र-चेतना से दृश्यता

होती है, पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे रूपों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। कुछ ऐसे रूपों का अनुसरण करने से, जिनका नेत्र-चेतना से दृश्यता होती है, पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे रूपों का अनुसरण करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय महोदय, कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी ध्वनियों का पालन नहीं करना चाहिए। कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी ध्वनियों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, नाक से महसूस होने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ सुगंधों का अनुसरण करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी सुगंधों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। कुछ सुगंधों का अनुसरण करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी सुगंधों का अनुसरण करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नाक से महसूस होने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका अनुसरण नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ स्वादों का अनुभव करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्वादों का पालन नहीं करना चाहिए। कुछ स्वादों का अनुभव करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे स्वादों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय महोदय, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्पर्शों का पालन नहीं करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" यह इसी कारण कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधित विचार भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय महोदय, जब मन-चेतना द्वारा बोधित कुछ विचारों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का पालन नहीं करना चाहिए। जब मन-चेतना द्वारा बोधित कुछ विचारों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधित विचार भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है...

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

सारिपुत्त, मैंने कहा है कि नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, कुछ ऐसे रूपों का पालन करने से जो नेत्र-चेतना से दिखाई देते हैं, पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे रूपों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, कान से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किस कारण से कहा गया था? सारिपुत्त, कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी ध्वनियों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, कान से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा कि नाक से पहचानी जाने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। ऐसा किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, नाक से पहचानी जाने वाली कुछ सुगंधों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी सुगंधों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, नाक से पहचानी जाने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले कुछ स्वादों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्वादों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्पर्शों का पालन नहीं करना चाहिए। शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे स्पर्शों का पालन करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचार भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचारों का पालन करने से जब दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का पालन नहीं करना चाहिए। मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचारों का पालन करने से जब दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का पालन करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचार भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मेरे संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार ज्ञात होनी चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। भोजन भी दो प्रकार का होता है, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। घर भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। गाँव भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। बस्तियाँ भी दो प्रकार की होती हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। शहर भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। राज्य भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं।

जब यह कहा गया, तो पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे इस प्रकार ज्ञात है।'

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय, कुछ वस्त्रों के उपयोग से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे वस्त्रों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ वस्त्रों के उपयोग से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, भोजन भी दो प्रकार का होता है - एक जिसका उपयोग करना चाहिए और एक जिसका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय, कुछ भोजन के उपयोग से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे भोजन का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ भोजन के उपयोग से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे भोजन का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, भोजन भी दो प्रकार का होता है, एक जिसका उपयोग करना चाहिए और एक जिसका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, निवास भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ निवासों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है,

ऐसे निवासों का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ निवासों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे निवासों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, निवास भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय महोदय, कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे गाँवों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे गाँवों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय, कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे गाँवों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे गाँवों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, नगर भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ नगरों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, इसलिए ऐसे नगरों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ नगरों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, इसलिए ऐसे नगरों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नगर भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, अवस्थाएँ भी दो प्रकार की होती हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और दूसरी जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ अवस्थाओं का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी अवस्थाओं का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ अवस्थाओं का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी अवस्थाओं का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, अवस्थाएँ भी दो प्रकार की होती हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और दूसरी जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका उपयोग करना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय, कुछ व्यक्तियों का उपयोग करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे व्यक्तियों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ व्यक्तियों का उपयोग करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे व्यक्तियों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका उपयोग करना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे ज्ञात है कि यह इस प्रकार है।

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, यहाँ तक कि भोजन भी, यहाँ तक कि घर भी, यहाँ तक कि गाँव भी, यहाँ तक कि बस्तियाँ भी, यहाँ तक कि शहर भी, यहाँ तक कि राज्य भी, यहाँ तक कि व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया है? कुछ वस्त्रों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, कुछ वस्त्रों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे वस्त्रों का ही उपयोग करना चाहिए।

सारिपुत्त, यह मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या है।

सारिपुत्त, यदि सभी योद्धा, सभी ब्राह्मण, मध्यम वर्ग और निम्न जाति के लोग मेरे संक्षिप्त व्याख्यानों की विस्तृत व्याख्या को इस प्रकार जान लें, तो यह उनके कल्याण और दीर्घकालिक कल्याण के लिए होगा।

सारिपुत्त, यदि समस्त विश्व, अपने मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों सहित, मेरे संक्षिप्त व्याख्यानों की विस्तृत व्याख्या को इस प्रकार जान ले, तो यह उनके कल्याण और दीर्घकालिक भलाई के लिए होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.5बहुधातुका सुत्त(115)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन के उपवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "जो भी भय, दुर्भाग्य और खतरे उत्पन्न होते हैं, वे सब मूर्खों के कारण होते हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। इसलिए भिक्षुओं, मूर्ख ही भय, दुर्भाग्य और खतरों से घिरे रहते हैं। अतः भिक्षुओं, बुद्धिमान जिज्ञासु बनने के लिए आपको इस प्रकार साधना करनी चाहिए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा, 'पूज्यवर, सही ढंग से कहें तो एक ज्ञानी भिक्षु जिज्ञासु कैसे बनता है?'

'आनंद, जब भिक्षु तत्वों, लोकों, आश्रित उत्पत्ति और संभव एवं असंभव के ज्ञान में निपुण हो जाता है, तब वह जिज्ञासु बन जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि बुद्धिमान भिक्षु प्रकृति के नियमों में कैसे निपुण होता है?'

आनंद, अठारह तत्व हैं। ये हैं आँख, रूप और आँख की चेतना; कान, ध्वनि और कान की चेतना; नाक, सुगंध और नाक की चेतना; जीभ, स्वाद और जीभ की चेतना; शरीर, स्पर्श और शरीर की चेतना; मन, विचार और मन की चेतना। आनंद, ये अठारह तत्व हैं, जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। भिक्षु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना जैसे छह तत्वों में निपुण हो जाता है। आनंद, ये छह तत्व हैं, जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। ये छह तत्व सुख, दुख, आनंद, दुःख, समभाव और तमस के हैं। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह इन तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। ये छह तत्व हैं: कामुकता, अनासक्ति, क्रोध, क्रोधहीनता, पीड़ा और पीड़ा न पहुँचाना। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह इन तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसमें एक विधि है। ये तीन तत्व हैं, कामुकता, भौतिकता और अभौतिकता। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसमें एक विधि है। ये दो तत्व हैं, जैसे कि संयुक्त और असंयुक्त तत्व। जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि भिक्षु लोकों में कितना कुशल होता है?'

'आनंद, ये छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्र हैं: आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श तथा मन और विचार। जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका वर्णन करता है, तो वह इन क्षेत्रों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि भिक्षु आश्रित उत्पत्ति में कैसे चतुर हो सकता है?'

आनंद, भिक्षु जानता है, जब यह मौजूद होता है, तो यह घटित होता है, जब यह उत्पन्न होता है, तो यह उत्पन्न होता है। जब यह मौजूद नहीं होता, तो यह नहीं घटित होता, जब यह समाप्त हो जाता है, तो यह समाप्त हो जाता है। जैसे अज्ञान से संकल्प उत्पन्न होते हैं, संकल्पों से चेतना उत्पन्न होती है, चेतना से नाम और पदार्थ उत्पन्न होते हैं। नाम और पदार्थ से छह लोक उत्पन्न होते हैं, छह लोकों से संपर्क उत्पन्न होता है और संपर्क से भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। भावनाओं से तृष्णा उत्पन्न होती है, तृष्णा से आलिंगन उत्पन्न होता है, आलिंगन से अस्तित्व उत्पन्न होता है और अस्तित्व से जन्म उत्पन्न होता है। जन्म से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प समाप्त हो जाते हैं, संकल्पों के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है, चेतना के समाप्त होने पर नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के समाप्त होने पर छह लोक समाप्त हो जाते हैं, छह लोकों के समाप्त होने पर संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के समाप्त होने पर भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, भावनाओं के समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है, तृष्णा के समाप्त होने पर आलिंगन समाप्त हो जाता है। धारण का त्याग होने पर अस्तित्व का त्याग हो जाता है, होने का त्याग होने पर जन्म का त्याग हो जाता है और जन्म के त्याग होने पर क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट का त्याग हो जाता है। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। जब भिक्षु इसे जान और देख लेता है, और इसे सही ढंग से कहता है, तो वह आश्रित उत्पत्ति में निपुण हो जाता है।

'आदरणीय महोदय, आपने बिल्कुल सही कहा है कि भिक्षु संभव और असंभव दोनों में कितना कुशल होता है।'

आनंद, भिक्षु जानता है, यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी भी संकल्प को स्थायी मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी संकल्प को स्थायी मान ले। यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी संकल्प को सुखद मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी संकल्प को सुखद मान ले। यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी विचार को अपना मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी विचार को अपना मान ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी माता का प्राण छीन ले। यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति अपनी माता का प्राण छीन ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने पिता का प्राण छीन ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति अपने पिता का प्राण छीन ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति दूषित मन से तथागत के शरीर को पीड़ा पहुंचाए।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति दूषित मन से तथागत के शरीर को पीड़ा पहुंचाए।
यह असंभव है कि सही दृष्टिकोण प्राप्त करने वाला व्यक्ति समुदाय में फूट डाले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति समुदाय में फूट डाले।
यह असंभव है कि सही दृष्टिकोण प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी दूसरे गुरु के पास जाए।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी दूसरे गुरु के पास जाए।
यह असंभव है कि दो सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति एक ही समय में एक ही संसार तत्व में जन्म लें।
यह संभव है कि एक ही समय में एक ही संसार तत्व में एक ही सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति का जन्म हो।
यह असंभव है कि दो सार्वभौम सम्राट एक ही समय में एक ही संसार तत्व में जन्म लें।
यह संभव है कि एक ही समय में एक ही संसार तत्व में एक सार्वभौम सम्राट का जन्म हो।
यह असंभव है कि एक स्त्री पूर्णतः सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति हो।
यह संभव है कि एक पुरुष पूर्णतः सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति हो।

यह असंभव है कि एक स्त्री सार्वभौम सम्राट हो।
यह संभव है कि एक पुरुष सार्वभौम सम्राट हो।
यह असंभव है कि एक स्त्री देवताओं की रानी हो।
यह संभव है कि एक पुरुष देवताओं का राजा हो।
यह असंभव है कि कोई स्त्री मृत्यु की रानी हो।
यह संभव है कि कोई पुरुष मृत्यु का राजा हो।
यह असंभव है कि कोई स्त्री ब्रह्मा हो।
यह संभव है कि कोई पुरुष ब्रह्मा हो।
यह असंभव है कि शारीरिक दुराचार से सुखद फल प्राप्त हों।
यह संभव है कि शारीरिक दुराचार से अप्रिय फल प्राप्त हों।
यह असंभव है कि मौखिक दुराचार या मानसिक दुराचार से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि मौखिक दुराचार या मानसिक दुराचार से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि शारीरिक सुचारु आचरण से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि शारीरिक सुचारु आचरण से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि मौखिक सुचार या मानसिक सुराचार से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि मौखिक सुचार या मानसिक सुराचार से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि शारीरिक दुराचार करने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद स्वर्ग या उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि शारीरिक दुराचार करने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद नरक या निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से दुराचार करने वाला व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से दुराचार करने वाला व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि शारीरिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि शारीरिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
तब पूज्य आनंद ने कहा, 'यह अद्‌भुत है, पूज्यवर। इस प्रवचन का नाम क्या है?'

'आनंद, इसे अनेक तत्वों पर प्रवचन कहो, या चतुर्भुज चक्र कहो, या शिक्षा का दर्पण कहो, या अमरता का ढोल कहो, या युद्ध में महान विजय कहो।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.6इसिगिली सुत्त(116)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान राजगृह के पास इसिगिली पर्वत पर निवास कर रहे थे। तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं!" उन भिक्षुओं ने सहमति जताते हुए उत्तर दिया, "भंते (आदरणीय महोदय)।" तब उन्होंने आगे कहा:

"क्या आप भिक्षुओं को यह वेभारा पर्वत दिखाई देता है?"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षुओं, इस वेभरा पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षुओं, इस पांडव पर्वत को देख पा रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षुओं, इस पांडव पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षुओं को यह वेपुल्ला पर्वत दिखाई देता है?"

"हां, भंते।"

"भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षु इस गिज्जकुटा पर्वत को देख रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"भिक्षुओं, इस गिज्जाकुटा पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम। क्या आप भिक्षु इस इसिगिली पर्वत को देख रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"यह इस इसिगिली पर्वत का नाम है, यही इसका विशिष्ट नाम है। अतीत में, हे भिक्षुओं, पाँच सौ पच्चेकबुद्ध1 इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहे। पर्वत में प्रवेश करते समय वे दिखाई देते थे, लेकिन एक बार प्रवेश कर जाने के बाद वे अदृश्य हो जाते थे। यह देखकर लोगों ने कहा: 'यह पर्वत इन ऋषियों (इसिगिलती) को निगल जाता है'; इसलिए इसका नाम इसिगिली पड़ा।"

"मैं तुम्हें पच्चेकबुद्धों के नाम बताऊंगा, भिक्षुओं। मैं पच्चेकबुद्धों के नाम प्रकट करूंगा, भिक्षुओं। सुनो, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी हां, भंते," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

उस परम पूज्य ने कहा:

"अरिट्ठा, 2 भिक्षु, एक पचेकबुद्ध थे जो इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहते थे, उपरित्था... तगारसिखी... यास्स्सी... सुदस्साना... पियादस्सी... गांधार... पिंडोला... उपसभा... निथा... तथा... सुतव... भवित्त, भिक्षुओं, एक पचेकबुद्ध थे जो इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहते थे।

i. "उन सर्वोच्च प्राणियों3 के नाम, जो दुःख और इच्छा से मुक्त हैं, जिन्होंने अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है,4 और जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, मैं उनका नाम बताता हूँ। मेरी बात सुनो:

द्वितीय. "अरिट्ठ, उपरिट्ठ, तगारसिखी, यासासी, सुदस्साना, पियादस्सी प्रबुद्ध।5 गांधार, पिंडोला और उपसभा, निथा, तथा, सुतव, भावितत्त।

iii. "शुम्भा, सुभा, मेथुला, अत्थामा, और फिर मेघा, अनिघा, सुदथा पच्चेकबुद्ध हैं जिनकी (पुनर्जीवन की) इच्छा नष्ट हो गई है। महान शक्ति के हिंगु और हिंगा।"

iv. "दो ऋषि जलि6 और अट्ठाका, फिर कोसल, प्रबुद्ध, फिर सुबाहु, उपनेमिसा, नेमीसा, संतचित्त, सक्का, तथा, विरजा और पंडिता।

वी. "काला, उपकला, विजिता और जिता, अंगा और पंगा और गुतिज्जिता। पासी ने अशुद्धियों को दूर किया, दुख की जड़। अपराजिता, मारा की शक्ति की विजेता।

vi. "सत्ता, पावट्टा, सरभंगा, लोमहंस, उचांगमाया, असिता, अनासव। मनोमाया और बंधुमा, गर्व का नाश करने वाले; तदाधिमुत्त, विमला और केतुमा।

सातवीं. "केतुंबरगा और मातंगा, अरिया। फिर अकुता और अकुतागमब्यमका। सुमंगला, दबबिला, सुप्पतिथिता, असायहा, खेमाभिरता, और सोरता।

viii. "दुरन्नय, संघ, और उच्चय, और फिर परम शक्ति वाले ऋषि सयाह। आनंद, नंदा, उपनंद, बारह पच्चेकबुद्ध, 7 भारद्वाज अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए। 8

नौ. "बोधि, महानमा, और फिर उत्तरा; केसी, सिखी, सुंदरा, और भारद्वाज। तिस्सा, उपतिस्सा, उपसिदारी, बनने के बंधनों को नष्ट करने वाली, और सिदारी, लालसा को नष्ट करने वाली।

x. "मंगल कामवासना से मुक्त पच्चेकबुद्ध थे, उषाभ दुख के फँसाने वाले मूल को काट डालने वाले थे। उपनिता निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने वाले थे, उपोसथ, सुंदर और सच्चनामा थे।"

xi. "जेता, जयंत, पदुमा, और उप्पला; पदुमुत्तारा, रक्खिता, और पब्बता। मनत्थाधा, शोभिता, वातरगा, और पच्चेकबुद्ध कान्हा अच्छी तरह से मन में मुक्त हैं।

xii. "ये और अन्य महान शक्ति वाले पच्चेकबुद्ध हैं जिनकी पुनर्जन्म की इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं। असीम सद्गुणों वाले इन महान ऋषियों को प्रणाम करें जिन्होंने सभी आसक्तियों से परे जाकर परिनिर्वाण प्राप्त किया है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 12.7महाचत्तारिसका सुत्त(117)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ सही एकाग्रता, उसके आधार और आवश्यक शर्तों के साथ सिखाऊंगा। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ सही एकाग्रता और उसके सहायक तत्व एवं आवश्यक शर्तें क्या हैं? मन की कोई भी एकाग्रता, जो इन सात कारकों से सुसज्जित हो—सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास और सही जागरूकता—श्रेष्ठ सही एकाग्रता और उसके सहायक तत्व एवं आवश्यक शर्तें कहलाती है।"

[1] "उनमें, सही दृष्टिकोण ही अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? व्यक्ति गलत दृष्टिकोण को गलत और सही दृष्टिकोण को सही के रूप में पहचानता है। यही उसका सही दृष्टिकोण है। और गलत दृष्टिकोण क्या है? 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है। न यह संसार है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; न कोई पुरोहित या ध्यानी हैं जो सही मार्ग पर चलते हुए और सही अभ्यास करते हुए, इस संसार और परलोक को प्रत्यक्ष रूप से जानने और अनुभव करने के बाद उसका प्रचार करते हैं।' यही गलत दृष्टिकोण है।"

और सही दृष्टिकोण क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही दृष्टिकोण दो प्रकार का होता है: एक सही दृष्टिकोण जिसमें आसंजन (असव) होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप (सफलता के) प्राप्त होते हैं; और दूसरा श्रेष्ठ सही दृष्टिकोण, जो आसंजन रहित, पारलौकिक और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही दृष्टिकोण क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और प्राप्ति का कारण बने? 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; पुरोहित और ध्यानमग्न हैं जो सही मार्ग पर चलते हुए और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।' यही वह सही दृष्टिकोण है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और प्राप्ति का कारण बने।

और वह सही दृष्टिकोण क्या है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है? विवेक, विवेक की क्षमता, विवेक की शक्ति, गुणों का विश्लेषण जो जागृति का कारक है, और सही दृष्टिकोण का मार्ग कारक है उस व्यक्ति का जो श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहा है, जिसका मन श्रेष्ठ है, जिसका मन अशुद्धियों से मुक्त है, जो पूर्णतः श्रेष्ठ मार्ग से जुड़ा हुआ है। यही वह सही दृष्टिकोण है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है।

गलत दृष्टिकोण को त्यागकर सही दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत दृष्टिकोण को त्यागकर सही दृष्टिकोण अपनाने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही दृष्टिकोण के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

[2] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत संकल्प को गलत संकल्प के रूप में और सही संकल्प को सही संकल्प के रूप में पहचाना जाता है। और गलत संकल्प क्या है? कामुकता, द्वेष, और हानि पहुँचाने के संकल्प में होना। यही गलत संकल्प है।"

और सही संकल्प क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही संकल्प दो प्रकार का होता है: एक सही संकल्प जिसमें सकारात्मक परिणाम होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेता है और फल प्राप्ति में परिणत होता है; और दूसरा श्रेष्ठ सही संकल्प, जो नकारात्मक परिणामों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही संकल्प क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए? त्याग का, द्वेष से मुक्ति का और अहिंसा का संकल्प लेना। यही वह सही संकल्प है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए।

और वह सही संकल्प क्या है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का अभिन्न अंग है? वह चिंतन, निर्देशित चिंतन, संकल्प, (मानसिक) स्थिरता, एकाग्रता, केंद्रित जागरूकता और वाक्पटुता, जो श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर है, जिसका मन श्रेष्ठ है, जिसका मन अशुद्धियों से रहित है, जो पूर्णतः श्रेष्ठ मार्ग में विलीन है। यही वह सही संकल्प है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का अभिन्न अंग है।

गलत संकल्प को त्यागकर सही संकल्प में प्रवेश करने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत संकल्प को त्यागकर सही संकल्प में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही संकल्प के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

[3] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत बात को गलत बात और सही बात को सही बात के रूप में पहचाना जाता है। और गलत बात क्या है? झूठ बोलना, फूट डालना, अपशब्द बोलना और व्यर्थ की बातें करना। यही गलत बात है।"

और सही वाणी क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही वाणी दो प्रकार की होती है: एक सही वाणी जिसमें सकारात्मक गुण होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेती है और फल प्राप्ति में सहायक होती है; और दूसरी श्रेष्ठ सही वाणी होती है, जो नकारात्मक गुणों से रहित, उत्कृष्ट और मार्ग का एक कारक होती है।

और वह सही वाणी क्या है जो सकारात्मक परिणाम देती है, गुणों का समर्थन करती है और लाभ दिलाती है? झूठ बोलने से, फूट डालने वाली चुगली करने से, अपशब्द बोलने से और व्यर्थ की बातों से बचना। यही वह सही वाणी है जो सकारात्मक परिणाम देती है, गुणों का समर्थन करती है और लाभ दिलाती है।

और वह सही वाणी क्या है जो अशुद्धियों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक अंग है? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, अशुद्धियों से रहित और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा चारों प्रकार के कुकर्मों से बचना, संयम बरतना और उनसे दूर रहना। यही वह सही वाणी है जो अशुद्धियों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक अंग है।

"मनुष्य गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी में प्रवेश करने का प्रयास करता है: यही उसका सही प्रयास है। मनुष्य गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहता है: यही उसकी सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही वाणी के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

[4] "उनमें, सही दृष्टिकोण सर्वोपरि है। और सही दृष्टिकोण सर्वोपरि कैसे है? व्यक्ति गलत कर्म को गलत कर्म और सही कर्म को सही कर्म के रूप में पहचानता है। और गलत कर्म क्या है? हत्या करना, बिना माँगे लेना, अवैध यौन संबंध। यह गलत कर्म है।"

और सही कर्म क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही कर्म दो प्रकार के होते हैं: एक सही कर्म जिसमें अच्छे फल होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेते हैं और फल प्राप्ति में परिणत होते हैं; और दूसरा श्रेष्ठ सही कर्म, जो अच्छे फलों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही कर्म क्या है जिससे लाभ होता है, जो पुण्य का पक्ष लेता है और जिससे समृद्धि प्राप्त होती है? हत्या से बचना, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से बचना और अवैध यौन संबंध से बचना। यही वह सही कर्म है जिससे लाभ होता है, जो पुण्य का पक्ष लेता है और जिससे समृद्धि प्राप्त होती है।

और वह सही कर्म क्या है जो दोषरहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक है? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, दोषरहित मन वाले और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा शरीर के तीनों प्रकार के दुराचारों से परहेज करना, उनसे बचना और उनका त्याग करना। यही वह सही कर्म है जो दोषरहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक है।

"मनुष्य गलत कर्म को त्यागकर सही कर्म में संलग्न होने का प्रयास करता है: यही उसका सही प्रयास है। मनुष्य गलत कर्म को त्यागकर सही कर्म में संलग्न होने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहता है: यही उसकी सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही कर्म के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

[5] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत आजीविका को गलत आजीविका और सही आजीविका को सही आजीविका के रूप में पहचाना जाता है। और गलत आजीविका क्या है? षड्यंत्र रचना, बहकाना, संकेत देना, नीचा दिखाना और लाभ के लिए लाभ की खोज करना। यही गलत आजीविका है।"

और सही आजीविका क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही आजीविका दो प्रकार की होती है: एक सही आजीविका जिसमें कर्मों का फल मिलता है, जो पुण्य का पक्ष लेती है और फल प्राप्ति में परिणत होती है; और दूसरी श्रेष्ठ सही आजीविका है, जो कर्मों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है।

और वह सही आजीविका क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए? एक उदाहरण है जब श्रेष्ठ पुरुषों का शिष्य गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाता है। यही वह सही आजीविका है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए।

और वह सही आजीविका क्या है जो अशुद्धियों से मुक्त हो, श्रेष्ठ हो, मार्ग का एक कारक हो? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, अशुद्धियों से मुक्त, और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा अशुद्ध आजीविका से परहेज करना, उससे बचना, उसका त्याग करना। यही वह सही आजीविका है जो अशुद्धियों से मुक्त हो, श्रेष्ठ हो, और मार्ग का एक कारक हो।

"गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही आजीविका के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

"इनमें सही दृष्टि सर्वोपरि है। और सही दृष्टि सर्वोपरि कैसे है? सही दृष्टि वाले व्यक्ति में सही संकल्प उत्पन्न होता है। सही संकल्प वाले व्यक्ति में सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति में सही कर्म उत्पन्न होते हैं... सही कर्म वाले व्यक्ति में सही आजीविका उत्पन्न होती है... सही आजीविका वाले व्यक्ति में सही प्रयास उत्पन्न होते हैं... सही प्रयास वाले व्यक्ति में सही जागरूकता उत्पन्न होती है... सही जागरूकता वाले व्यक्ति में सही एकाग्रता उत्पन्न होती है... सही एकाग्रता वाले व्यक्ति में सही ज्ञान उत्पन्न होता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति में सही मुक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार, शिक्षार्थी आठ गुणों से संपन्न होता है, और अरहंत दस गुणों से।"

इनमें सही दृष्टि सर्वोपरि है। और सही दृष्टि सर्वोपरि कैसे है? सही दृष्टि वाले व्यक्ति में गलत दृष्टि का नाश हो जाता है। गलत दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे और अकुशल गुण भी समाप्त हो जाते हैं, जबकि सही दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक कुशल गुण अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। सही संकल्प वाले व्यक्ति में गलत संकल्प का नाश हो जाता है... सही वाणी वाले व्यक्ति में गलत वाणी का नाश हो जाता है... सही कर्म वाले व्यक्ति में गलत कर्म का नाश हो जाता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति में गलत आजीविका का नाश हो जाता है... सही प्रयास वाले व्यक्ति में गलत प्रयास का नाश हो जाता है... सही जागरूकता वाले व्यक्ति में गलत जागरूकता का नाश हो जाता है... सही एकाग्रता वाले व्यक्ति में गलत एकाग्रता का नाश हो जाता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति में गलत ज्ञान का नाश हो जाता है... सही मुक्ति वाले व्यक्ति में गलत मुक्ति का नाश हो जाता है। गलत मुक्ति से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे और अकुशल गुण भी समाप्त हो जाते हैं, जबकि सही मुक्ति से उत्पन्न होने वाले अनेक कुशल गुण अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। उनके विकास की पराकाष्ठा।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, बीस कारक कुशलता का समर्थन करते हैं, और बीस कारक अकुशलता का।

"चालीस महान देवताओं पर यह धम्म प्रवचन शुरू हो चुका है और इसे किसी भी ध्यानमग्न, पुजारी, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में किसी भी व्यक्ति द्वारा रोका नहीं जा सकता है।"

यदि कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति यह सोचे कि इस महान चालीस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए, तो उसके इस कथन के दस वैध निहितार्थ हैं जो उसे अभी और यहीं निंदा करने का आधार बन सकते हैं। यदि वह सही दृष्टिकोण की निंदा करता है, तो वह गलत दृष्टिकोण वाले किसी भी पुरोहित और ध्यानमग्न व्यक्ति का सम्मान करेगा; वह उनकी प्रशंसा करेगा। यदि वह सही संकल्प... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही जागरूकता... सही एकाग्रता... सही ज्ञान की निंदा करता है... यदि वह सही मुक्ति की निंदा करता है, तो वह गलत मुक्ति वाले किसी भी पुरोहित और ध्यानमग्न व्यक्ति का सम्मान करेगा; वह उनकी प्रशंसा करेगा। यदि कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति यह सोचे कि इस महान चालीस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए, तो उसके इस कथन के ये दस वैध निहितार्थ हैं जो उसे अभी और यहीं निंदा करने का आधार बन सकते हैं।

"यहाँ तक कि ओक्काला के वे शिक्षक वस्सा और भान्या भी, जो अकारण, अक्रिया और अअस्तित्व के समर्थक थे, यह नहीं सोचते कि चालीस महान संतों पर दिए गए इस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए। ऐसा क्यों? आलोचना, विरोध और निंदा के भय से।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.8अनापानसति सुत्त(118)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु

1सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना
2संदर्भ के चार फ्रेम
3जागृति के सात कारक

4स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी मठ में, मिगारा की माता के महल में, कई प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्यों के साथ ठहरे हुए थे—जिनमें पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य महा कस्सपा, पूज्य महा कच्चना, पूज्य महा कोत्थिता, पूज्य महा कप्पिना, पूज्य महा चुंडा, पूज्य रेवता, पूज्य आनंद और अन्य प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्य शामिल थे। उस अवसर पर वरिष्ठ भिक्षु अध्यापन और उपदेश दे रहे थे। कुछ वरिष्ठ भिक्षु दस भिक्षुओं को, कुछ बीस भिक्षुओं को, कुछ तीस भिक्षुओं को और कुछ चालीस भिक्षुओं को अध्यापन और उपदेश दे रहे थे। नए भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं द्वारा अध्यापन और उपदेश प्राप्त कर रहे थे और क्रमिक रूप से महान गुणों को प्राप्त कर रहे थे।

उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर, पवाराना समारोह की पूर्णिमा की रात को—भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय से घिरे खुले स्थान पर विराजमान थे। मौन बैठे भिक्षुओं के समुदाय को देखते हुए उन्होंने उन्हें संबोधित किया:

भिक्षुओं, मैं इस साधना से संतुष्ट हूँ। मैं हृदय से इस साधना से संतुष्ट हूँ। इसलिए अभी तक अप्राप्त, अभी तक अछूते और अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए और भी अधिक दृढ़ता जगाएँ। मैं वर्षा ऋतु के चौथे माह, 'श्वेत जल लिली' माह में यहीं सावत्थी में रहूँगा।

ग्रामीण इलाकों के भिक्षुओं ने सुना, "भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु के चौथे माह, यानी श्वेत कमल माह के दौरान, सावत्थी में ही निवास करेंगे।" इसलिए वे भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी की ओर चल पड़े।

फिर वरिष्ठ भिक्षुओं ने नए भिक्षुओं को और भी गहनता से शिक्षा और मार्गदर्शन दिया। कुछ वरिष्ठ भिक्षु दस भिक्षुओं को, कुछ बीस भिक्षुओं को, कुछ तीस भिक्षुओं को और कुछ चालीस भिक्षुओं को शिक्षा और मार्गदर्शन दे रहे थे। वरिष्ठ भिक्षुओं से शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए नए भिक्षु क्रमिक रूप से महान गुणों को समझने लगे।

उस अवसर पर—वर्षा माह के चौथे महीने की पूर्णिमा की पंद्रहवीं उपोसथ तिथि को—भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय से घिरे खुले स्थान पर विराजमान थे। मौन बैठे भिक्षुओं के समुदाय को देखते हुए उन्होंने उन्हें संबोधित किया:

भिक्षुओं, यह सभा व्यर्थ की बातों से मुक्त है, निरर्थक चर्चाओं से रहित है और शुद्ध हृदय से स्थापित है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। यह ऐसी सभा है जो दान के योग्य है, आतिथ्य सत्कार के योग्य है, भेंटों के योग्य है, आदर के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। यह ऐसी सभा है जिसमें दिया गया छोटा सा दान महान हो जाता है, और बड़ा दान और भी महान हो जाता है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। संसार में ऐसी सभा दुर्लभ है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा — ऐसी सभा जिसे देखने के लिए मीलों की यात्रा करना, भोजन सामग्री साथ ले जाना भी सार्थक होगा।

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो अरहंत हैं, जिनके मानसिक विकार समाप्त हो चुके हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधन को तोड़ दिया है, और जो सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो गए हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो पांच निम्न बंधनों के क्षीण होने के साथ ही [शुद्ध लोकों में] पुनर्जन्म लेने के पात्र हैं, वहां पूर्णतः मुक्त हो जाएंगे, और उस लोक से फिर कभी वापस नहीं लौटेंगे: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो [पहले] तीन बंधनों के क्षीण होने और कामवासना, घृणा और भ्रम के कम होने के साथ, एक बार फिर इस दुनिया में लौटने वाले भिक्षु हैं, जो केवल एक बार फिर इस दुनिया में लौटकर तनाव का अंत करेंगे: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो [पहले] तीन बंधनों के क्षीण होने के साथ, जलधारा के विजेता, दृढ़, फिर कभी दुख की अवस्थाओं के लिए नियत नहीं, आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो चार संदर्भों के विकास के लिए समर्पित रहते हैं... चार सही प्रयास... शक्ति के चार आधार... पांच इंद्रियां... पांच शक्तियां... जागृति के सात कारक... महान अष्टांगिक मार्ग: ऐसे ही भिक्षु इस भिक्षु समुदाय में हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो सद्भावना, करुणा, सराहना, समभाव, शरीर की अशुद्धता और अस्थिरता के विकास के लिए समर्पित रहते हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"भिक्षुओं के इस समुदाय में ऐसे भिक्षु भी हैं जो सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए समर्पित रहते हैं।"

श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो बहुत फलदायी और लाभदायक होती है। श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो चारों संदर्भों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाती है। चारों संदर्भों को विकसित और अभ्यास करने से जागृति के सात कारक अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच जाते हैं। जागृति के सात कारकों को विकसित और अभ्यास करने से स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच जाती है।

सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना

"अब, सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता को किस प्रकार विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान को सर्वोपरि रखता है।1 वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"

"[1] लंबी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ।' [2] या छोटी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा।' [4] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस छोड़ूँगा।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शारीरिक हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा।'

"[5] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [6] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [7] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' [8] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना को शांत करते हुए सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना को शांत करते हुए सांस छोड़ूंगा।'

"[9] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास छोड़ूंगा।' [10] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [11] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [12] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'5

"[13] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [14] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य [शाब्दिक रूप से, लुप्त होने] पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [15] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं समाप्ति पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं समाप्ति पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [16] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"इस प्रकार से सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है ताकि यह बहुत फलदायी और बहुत लाभदायक हो।"

संदर्भ के चार फ्रेम

और सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता को किस प्रकार विकसित और जारी रखा जाता है ताकि संदर्भ के चारों ढाँचे अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकें?

"[1] जब भी कोई भिक्षु लंबी साँस लेते हुए यह महसूस करे, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए यह महसूस करे, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ'; या छोटी साँस लेते हुए यह महसूस करे, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए यह महसूस करे, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ'; और स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करे, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा...और...छोड़ूँगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करे, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा...और...छोड़ूँगा': उस अवसर पर भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर। मैं तुम्हें बताता हूँ, भिक्षुओं, कि यह—अंदर-बाहर की साँस—शरीरों में एक शरीर के रूप में वर्गीकृत है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर।"

"[2] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं आनंद के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पनाओं के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पनाओं को शांत करते हुए श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा': उस अवसर पर भिक्षु स्वयं भावनाओं पर केंद्रित रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्यागकर। मैं तुम्हें बताता हूँ, भिक्षुओं, कि यह—श्वासों के भीतर और बाहर पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना—भावनाओं में से एक भावना के रूप में वर्गीकृत किया गया है,6 यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु स्वयं भावनाओं पर केंद्रित रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्यागकर।"

"[3] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को 'मैं मन के प्रति सजग होकर श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मन को स्थिर करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मन को मुक्त करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है: उस अवसर पर भिक्षु मन पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और व्यथा

को त्याग कर। मैं यह नहीं कहता कि विमुख सचेतनता और सतर्कता की कमी वाले व्यक्ति में श्वास लेने और छोड़ने की सचेतनता होती है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु मन पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और व्यथा को त्याग कर।"

"[4] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; स्वयं को 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; स्वयं को 'निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; उस अवसर पर भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों - उत्साही, सतर्क और सचेत - पर एकाग्र रहता है, संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्याग देता है। जो विवेक से लोभ और दुःख के त्याग को देखता है, वह समभाव से सावधानीपूर्वक देखता है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों - उत्साही, सतर्क और सचेत - पर एकाग्र रहता है, संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्याग देता है।"

"इस प्रकार सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और जारी रखी जाती है ताकि संदर्भ के चारों ढांचों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाया जा सके।"

जागृति के सात कारक

और जागृति के सात कारकों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाने के लिए संदर्भ के चार ढांचों को किस प्रकार विकसित और अनुसरण किया जाता है?

"[1] जब भी भिक्षु शरीर पर ही एकाग्रचित्त, सजग और सचेत रहता है, संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर, उस समय उसकी चेतना स्थिर और अक्षुण्ण होती है। जब उसकी चेतना स्थिर और अक्षुण्ण होती है, तब जागृति के कारक के रूप में चेतना जागृत हो जाती है। वह इसका विकास करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[2] इस प्रकार सचेत रहते हुए, वह उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है। जब वह इस प्रकार सचेत रहते हुए, उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है, तब जागृति के कारक के रूप में गुणों का विश्लेषण जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[3] जो व्यक्ति उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है, उसमें निरंतर दृढ़ता जागृत होती है। जब उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करने वाले व्यक्ति में निरंतर दृढ़ता जागृत होती है, तो जागृति के कारक के रूप में दृढ़ता जागृत हो जाती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[4] जिसकी दृढ़ता जागृत होती है, उसमें एक अशाब्दिक परमानंद उत्पन्न होता है। जब जिसकी दृढ़ता जागृत होती है, उसमें अशाब्दिक परमानंद उत्पन्न होता है, तब जागृति के कारक के रूप में परमानंद जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[5] हृदय से समाधिग्रस्त व्यक्ति का शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं। जब हृदय से समाधिग्रस्त भिक्षु का शरीर और मन शांत हो जाते हैं, तब जागृति के कारक के रूप में शांति जागृत होती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[6] जो व्यक्ति शांत है—जिसका शरीर शांत है—उसका मन एकाग्र हो जाता है। जब शांत शरीर वाले व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है, तो जागृति के कारक के रूप में एकाग्रता जागृत हो जाती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[7] वह समभाव से एकाग्र मन का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता है। जब वह समभाव से एकाग्र मन का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता है, तो जागृति के कारक के रूप में समभाव जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

(इसी प्रकार अन्य तीन संदर्भों के साथ भी: भावनाएँ, मन और मानसिक गुण।)

"इस प्रकार चार संदर्भों को विकसित और अनुसरण किया जाता है ताकि जागृति के सात कारकों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाया जा सके।"

स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति

और ज्ञान की पूर्णता और मुक्ति प्राप्त करने के लिए जागृति के सात कारकों को किस प्रकार विकसित और अभ्यास किया जाता है? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित जागृति के कारक के रूप में ध्यान विकसित करता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। वह गुणों के विश्लेषण को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है... दृढ़ता को जागृति के कारक के रूप में... परमानंद को जागृति के कारक के रूप में... शांति को जागृति के कारक के रूप में... एकाग्रता को जागृति के कारक के रूप में... समभाव को जागृति के कारक के रूप में, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है।

"इस प्रकार जागृति के सात कारकों को विकसित और अनुसरण किया जाता है ताकि स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो सके और उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचा जा सके।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.9कायगतसति सुत्त(119)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1चार ध्यान
2मन की परिपूर्णता
3उच्चतर ज्ञान का द्वार
4(दस लाभ)
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, बड़ी संख्या में भिक्षु सभा भवन में एकत्रित हुए थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई: "हे मित्रों, यह कितना अद्भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! — जब शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो भगवान बुद्ध, जो सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी हैं — जो सही मायने में आत्मजागृत हैं — उसके अनुसार यह कितना फलदायी और कितना लाभकारी है।" और यह चर्चा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंची।
फिर दोपहर ढलते ही भगवान बुद्ध एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में पहुँचकर पहले से तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भिक्षुओं से पूछा, "आप यहाँ किस विषय पर एकत्रित हुए हैं? और वह कौन सी चर्चा थी जिसका कोई निष्कर्ष नहीं निकला?"
"हे भगवान, अभी-अभी भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, हम सभा भवन में एकत्रित हुए, तभी यह चर्चा उठी: 'क्या यह अद्भुत नहीं है, मित्रों! क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है! - शरीर में लीन होकर की जाने वाली जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी भगवान - सही मायने में आत्मजागृत योग्य व्यक्ति - के अनुसार यह कितना फलदायी और कितना लाभकारी है।' यह वह चर्चा थी जो बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे ही थी कि भगवान भगवान वहां आ गए।"
[भगवान बुद्ध ने कहा:] "और शरीर में लीन होकर ध्यान कैसे विकसित किया जाता है, इसका अभ्यास कैसे किया जाता है, ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"
"ऐसा भी मामला है जहां एक भिक्षु - जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर - अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है और ध्यान को सर्वोपरि रखता है। वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"
लंबी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस ले रहा है; या लंबी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस छोड़ रहा है। या छोटी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस ले रहा है; या छोटी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस छोड़ रहा है। वह अपने आप को पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस लेने और पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ने का अभ्यास कराता है। वह अपने आप को शरीर की शांत क्रियाओं (सांस) को अंदर लेने और शांत क्रियाओं को बाहर छोड़ने का अभ्यास कराता है। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी यादें और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन भीतरी रूप से एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।
इसके अलावा, चलते समय भिक्षु को यह अहसास होता है कि वह चल रहा है। खड़े होते समय उसे यह अहसास होता है कि वह खड़ा है। बैठते समय उसे यह अहसास होता है कि वह बैठा है। लेटते समय उसे यह अहसास होता है कि वह लेटा है। या उसका शरीर जिस भी स्थिति में हो, वह उसे इसी प्रकार अहसास करता है। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।
इसके अलावा, आगे बढ़ते और लौटते समय, वह पूरी तरह सचेत रहता है; आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कटोरा उठाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय, वह पूरी तरह सचेत रहता है। और जब वह इस

प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी यादें और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन भीतर ही भीतर एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, भिक्षु इस शरीर पर पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरे और विभिन्न प्रकार की अशुद्ध चीजों से भरे हुए, चिंतन करते हैं: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों में तरल पदार्थ और मूत्र हैं।' जैसे कि दोनों सिरों पर खुले हुए एक बोरे में कई प्रकार के अनाज भरे हों—गेहूं, चावल, मूंग, राजमा, तिल, छिले हुए चावल—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे बाहर निकालते हुए सोचे, 'यह गेहूं है। यह चावल है। ये मूंग हैं। ये राजमा हैं। ये तिल हैं। यह छिले हुए चावल हैं'; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर पर, पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरे और विभिन्न प्रकार की अशुद्धियों से भरे हुए, चिंतन करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।' और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन आंतरिक रूप से एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

इसके अलावा, भिक्षु इस शरीर का चिंतन करता है—चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, किसी भी अवस्था में हो—इसके गुणों के संदर्भ में: 'इस शरीर में पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु का गुण है।' जिस प्रकार एक कुशल कसाई या उसका शागिर्द गाय को मारकर चौराहे पर बैठकर उसके टुकड़े करता है, उसी प्रकार भिक्षु इस शरीर का चिंतन करता है—चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, किसी भी अवस्था में हो—इसके गुणों के संदर्भ में: 'इस शरीर में पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु का गुण है।' और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, मानो वह किसी श्मशान में फेंके गए शव को देखे - एक दिन, दो दिन, तीन दिन पहले मृत - फूला हुआ, पीला पड़ा हुआ और सड़ता हुआ, वह इसे इसी शरीर पर लागू करता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है'...

या फिर, मानो वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसे कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, लकड़बग्घे और अन्य कई जीव नोंच रहे हों... मांस और खून से सना हुआ कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... खून से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... बिना मांस या खून का कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... हड्डियाँ अपनी नसों से अलग होकर चारों दिशाओं में बिखरी हुई हैं - यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ पसली, वहाँ छाती की हड्डी, यहाँ कंधे की हड्डी, वहाँ गर्दन की हड्डी, यहाँ जबड़े की हड्डी, वहाँ दाँत, यहाँ खोपड़ी... हड्डियाँ सफेद हो गई हैं, कुछ-कुछ सीपियों के रंग जैसी... ढेर लगी हुई, एक साल से भी अधिक पुरानी... चूर्ण में परिवर्तित: वह इसे इसी शरीर पर लगाता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है।'

और जब वह इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन आंतरिक रूप से एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

चार ध्यान

इसके अलावा, कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। वह इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है, उसे भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका स्नान पाउडर का गोला - संतृप्त, नमी से भरा, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी न टपके; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन अंतर्मन में एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। एक भिक्षु शरीर में लीन होकर किस प्रकार ध्यान विकसित करता है।

और इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने से, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह इस शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में

समा जाता है, उसे ठंडे पानी से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और... दृढ़ संकल्प के साथ, गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियों और संकल्पों को त्याग दिया जाता है, और उनके त्याग के साथ ही उनका मन आंतरिक रूप से एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

और इसके अलावा, जैसे-जैसे ध्यान की अवस्था समाप्त होती है, वह शांत, सचेत और सजग रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'शांत और सचेत रहते हुए, वह सुखद अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो जल में ही जन्म लेते और बढ़ते हैं, जल में ही डूबे रहते हैं और जल से बाहर निकले बिना ही फलते-फूलते हैं, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक शीतल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग शीतल जल से अछूता नहीं रह सकता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग परमानंद से रहित आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

और इसके अलावा, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन अंतर्मन में एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर जागरूकता विकसित करता है।

मन की परिपूर्णता

भिक्षुओं, जो कोई भी शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास करता है, वह स्पष्ट ज्ञान की ओर अग्रसर सभी कुशल गुणों को समाहित कर लेता है। जिस प्रकार जो कोई भी विशाल सागर में अपनी चेतना व्याप्त करता है, वह सागर में बहने वाली सभी छोटी धाराओं को समाहित कर लेता है, उसी प्रकार जो कोई भी शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास करता है, वह स्पष्ट ज्ञान की ओर अग्रसर सभी कुशल गुणों को समाहित कर लेता है।

"जिस किसी में शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाती है, मारा अपना पैर जमा लेती है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति गीली मिट्टी के ढेर में एक भारी पत्थर का गोला फेंकता है। भिक्षुओं, आपको क्या लगता है - क्या भारी पत्थर का गोला गीली मिट्टी के ढेर में प्रवेश कर पाएगा?

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"अब मान लीजिए कि लकड़ी का एक सूखा, रसहीन टुकड़ा है, और एक आदमी एक लकड़ी का टुकड़ा लेकर आता है, यह सोचते हुए कि 'मैं आग जलाऊंगा। मैं गर्मी पैदा करूंगा।' आपको क्या लगता है - क्या वह लकड़ी के सूखे, रसहीन टुकड़े पर लकड़ी के टुकड़े को रगड़कर आग जला पाएगा और गर्मी पैदा कर पाएगा?"

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"अब मान लीजिए कि एक स्टैंड पर एक खाली, खोखला पानी का बर्तन रखा है, और एक आदमी पानी का बोझ लेकर आता है। आपको क्या लगता है - क्या उसे अपना पानी रखने के लिए जगह मिलेगी?"

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित किया जाता है, उसका अभ्यास किया जाता है, उसमें 'मार' का कोई प्रवेश नहीं होता, कोई पकड़ नहीं बनती। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति लकड़ी से बने दरवाजे के पैनल पर धागे की एक गेंद फेंके। आपको क्या लगता है - क्या धागे की वह हल्की गेंद लकड़ी से बने उस दरवाजे के पैनल में प्रवेश कर पाएगी?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
"अब मान लीजिए कि लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए कि 'मैं आग जलाऊंगा। मैं गर्मी पैदा करूंगा।' आपको क्या लगता है - क्या वह गीली, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर लकड़ी की ऊपरी लकड़ी रगड़कर आग जला पाएगा और गर्मी पैदा कर पाएगा?"
"नहीं, भगवान।"
"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
"अब मान लीजिए कि एक स्टैंड पर पानी से भरा एक घड़ा रखा है, जिसमें कौवे भी पानी पी सकते हैं, और एक आदमी पानी का बोझ लेकर आता है। आपको क्या लगता है - क्या उसे अपना पानी रखने की जगह मिलेगी?"
"नहीं, भगवान।"
"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
उच्चतर ज्ञान का द्वार
"जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर उसे स्वयं देख सकता है।"
मान लीजिए कि एक स्टैंड पर पानी से लबालब भरा एक घड़ा रखा है, ताकि एक कौआ उसमें से पानी पी सके। यदि कोई बलवान व्यक्ति उसे किसी भी तरह से झुका दे, तो क्या पानी छलक जाएगा?
"हाँ भगवान।"
"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
मान लीजिए एक आयताकार पानी का टैंक है - जो समतल जमीन पर रखा है, चारों ओर बांधों से घिरा है - और पानी से लबालब भरा है, जिससे एक कौआ भी पानी पी सकता है। यदि कोई बलवान व्यक्ति बांधों को कहीं से भी ढीला कर दे, तो क्या पानी बाहर छलक जाएगा?
"हाँ भगवान।"
"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
"मान लीजिए कि एक रथ समतल भूमि पर चार चौराहों पर खड़ा है, जिसमें उत्कृष्ट नस्ल के घोड़े जुते हुए हैं और चाबुक तैयार रखे हैं, ताकि एक कुशल सारथी, जो घोड़ों को वश में करने का प्रशिक्षक हो, उस पर सवार होकर - अपने बाएं हाथ से लगाम और दाएं हाथ से चाबुक पकड़कर - अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान और किसी भी सड़क से आ-जा सके; उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
(दस लाभ)
भिक्षुओं, जिस व्यक्ति में शरीर में लीन होकर सचेतनता का अभ्यास, विकास, अनुसरण, नियंत्रण का कार्य सौंपा जाना और उसे आधार बनाना, उसे सुदृढ़ करना, स्थिर करना, सुदृढ़ करना और भली-भांति संपन्न करना, उसके लिए दस लाभों की अपेक्षा की जा सकती है। वे दस लाभ कौन से हैं?
[1] "वह अप्रसन्नता और प्रसन्नता पर विजय प्राप्त करता है, और अप्रसन्नता उस पर विजय प्राप्त नहीं करती। वह उत्पन्न हुई किसी भी अप्रसन्नता पर विजयी रहता है।"
[2] "वह भय और दहशत पर विजय प्राप्त करता है, और भय और दहशत उस पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते। वह उत्पन्न हुए किसी भी भय और दहशत पर विजयी रहता है।"
[3] "वह ठंड, गर्मी, भूख, प्यास, मक्खियों और मच्छरों के स्पर्श, हवा और धूप और रेंगने वाले जीवों के प्रति प्रतिरोधी है; अपमानजनक, चोट पहुँचाने वाली भाषा के प्रति; वह उस प्रकार का है जो शारीरिक भावनाओं को सहन कर सकता है जो उत्पन्न होने पर दर्दनाक, तेज, चुभने वाली, भयंकर, अरुचिकर, अप्रिय, घातक होती हैं।
[4] "वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चारों ध्यान प्राप्त कर सकता है - उन्नत मानसिक अवस्थाएँ जो यहाँ और अभी में सुखद निवास प्रदान करती हैं।
[5] "वह अनेक अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों से ऐसे होकर गुजरता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह

हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।"

[6] "वह दिव्य श्रवण तत्व के माध्यम से, जो शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ है, दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे पास हो या दूर।"

[7] वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को जानता है, क्योंकि उसने उसे अपनी चेतना से समाहित कर लिया है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन के रूप में और असाध्य मन को असाध्य मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और अमुक्त मन को मुक्त मन के रूप में पहचानता है। मन एक अप्रकाशित मन के रूप में।

[8] "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (शाब्दिक रूप से: पिछले जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों में याद करता है।"

[9] "वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और फिर प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में फिर प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में फिर प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से श्रेष्ठ और शुद्ध दिव्य दृष्टि के माध्यम से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

[10] "मानसिक अपशिष्टों के अंत के माध्यम से, वह अपशिष्ट-मुक्त जागरूकता-मुक्ति और विवेक-मुक्ति में रहता है, क्योंकि उसने उन्हें यहीं और अभी अपने लिए जान लिया है और प्रकट कर दिया है।

"भिक्षुओं, जिनके भीतर शरीर में लीन होकर सचेतनता का अभ्यास किया जाता है, उसे विकसित किया जाता है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसकी बागडोर सौंपी जाती है और उसे आधार बनाया जाता है, उसे आधार प्रदान किया जाता है, उसे स्थिर किया जाता है, उसे सुदृढ़ किया जाता है और अच्छी तरह से संपन्न किया जाता है, उनसे इन दस लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.10संखारुपट्टी सुत्त(120)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास करते थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, मैं आपको अभिकल्पनाओं की उत्पत्ति के बारे में बताऊंगा, ध्यानपूर्वक सुनो।' भिक्षुओं ने सहमति व्यक्त की और भगवान बुद्ध ने कहा: 'भिक्षुओं, भिक्षु विश्वास, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे उच्च योद्धाओं के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इसे मन में धारण करता है, इस पर

विचार केंद्रित करता है, और इस विचार को विकसित करता है। ये अभिकल्पनाएँ और यह एकाग्रता, विकसित होकर प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने पर, वहाँ जन्म लेने में सहायक होती हैं। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।'

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, मुझे उच्च ब्राह्मणों, अर्थात् उच्च मध्यम वर्ग के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इस विचार को मन में संजोता है, इस ओर चिंतन करता है, उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह चिंतन, विकसित होकर समृद्ध हो जाता है, जिससे वहाँ जन्म लेने में सहायता मिलती है। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के समय, मुझे चारों संरक्षक देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार प्रसन्नता के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इस विचार को मन में संजोता है, अपने चिंतन को इस ओर केंद्रित करता है, और उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह चिंतन, जो विकसित और समृद्ध हुआ है, संरक्षक देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार प्रसन्नता के साथ जन्म लेने में सहायक होता है। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मुझे तैंतीस देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यम देवताओं के साथ, सुखी देवताओं के साथ, सृजनशील देवताओं के साथ, और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय दीर्घायु, सौंदर्य और अपार सुख के साथ। वह इसे मन में धारण करता है, इस पर विचार केंद्रित करता है, उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह इस तरह से विकसित और समृद्ध होकर जन्म लेता है, जिससे सृजनशील देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार सुख प्राप्त होता है। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि सहसब्रह्म हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। जैसे कोई ज्ञानी व्यक्ति अपनी हथेली पर वृत्त बनाकर चिंतन करता है, उसी प्रकार सहसब्रह्म हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उन्हें यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे सहसब्रह्म के साथ जन्म लेना चाहिए। वे उस मन को धारण करते हैं, विचारों को उस ओर निर्देशित करते हैं, उस विचार और उन इरादों को विकसित करते हैं। वह स्थिर मन, विकसित और समृद्ध होकर, सहसब्रह्म के साथ जन्म लेने में सहायक होता है, जो हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु ज्ञान प्राप्त करता है, "द्वि सहसा ब्रह्मा...रे... ति सहसा ब्रह्मा...रे... चतु सहसा ब्रह्मा...रे... पंच सहसा ब्रह्मा पंच हजार लोकों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायी हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं।" जैसे कोई ज्ञानी व्यक्ति अपनी हथेली पर पांच वृत्त बनाकर चिंतन करता है, उसी प्रकार पंच सहसा ब्रह्मा हजार लोकों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उसे यह विचार आता है, "हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे पंच सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए।" वह उस विचार को धारण करता है, उस पर विचार केंद्रित करता है और उस विचार को विकसित करता है। वे इरादे और वह दृढ़ संकल्प, विकसित और समृद्ध होकर, पंच सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होते हैं, जो पंच सहसा ब्रह्मा हैं और पंच हजार प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखते हैं, साथ ही दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुखदायक भी हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि दस सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक होते हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। जिस प्रकार पीले वस्त्र पर रखा आठ फलकों वाला उत्तम लेप रत्न चमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार दस सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उनके मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे दस सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए। वे उस विचार को मन में धारण करते हैं, उस विचार को उस ओर निर्देशित करते हैं और उसे विकसित करते हैं। वे इरादे और वह दृढ़ता, विकसित और समृद्ध होकर, दस हजार प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखने वाले दस सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होती हैं, जो दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुख से परिपूर्ण होते हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होते हैं। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि शत सहसा ब्रह्मा, दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुखदायकता से परिपूर्ण, एक लाख प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं। वे वहाँ जन्म लेने वालों पर आधिपत्य

रखते हैं। जैसे एक कुशल सुनार शुद्ध सोने को भट्टी में रखकर शुद्ध करता है और जब उसे नारंगी रंग के कंबल पर रखा जाता है तो वह प्रकाश और ऊष्मा विकीर्ण करता है, उसी प्रकार शत सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहाँ जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उन्हें यह आभास होता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, मुझे शत सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए। वह उस मन को धारण करता है, विचारों को उस ओर निर्देशित करता है और उस विचार को विकसित करता है। वे इरादे और वह दृढ़ता, विकसित होकर प्रबल हो जाने पर, शत सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होती हैं, जो एक लाख प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखते हैं, और दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुख से परिपूर्ण होते हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि असीम प्रकाश वाले देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, हे! मुझे असीम प्रकाश वाले, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को यह ज्ञान होता है कि सुखी देवता, असीम सुखी देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, हे! मुझे असीम सुखी, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि वायु में विचरण करने की शक्ति रखने वाले देवता, निर्दयी न होने वाले देवता, उत्साही देवता, आसानी से दिखाई देने वाले देवता, सर्वोच्च श्रेणी के देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसे यह विचार आता है, हे! मुझे सर्वोच्च श्रेणी के उन देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए जो दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक हों। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होते हैं। भिक्षु यह ज्ञान प्राप्त करते हैं कि अंतरिक्ष में जन्म लेने वाले देवताओं का जीवनकाल दीर्घ होता है।

और बहुत सुख का आनंद उठाऊं। उसके मन में यह विचार आता है। ओह! काश मैं अंतरिक्ष के देवताओं के साथ जन्म ले पाता, लंबी आयु और बहुत सुख का अनुभव कर पाता। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और तरीका है।

भिक्षु को फिर से आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण किया जाता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि चेतना के क्षेत्र में (अर्थात् शून्यता के क्षेत्र में (अर्थात् बोध और अबोध दोनों से परे) जन्म लेने वाले देवता दीर्घायु होते हैं और अत्यंत सुख भोगते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, "हे! मुझे भी दीर्घायु और अत्यंत सुख भोगने वाले, बोध और अबोध दोनों से परे के क्षेत्र के देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही उस क्षेत्र में जन्म लेने का मार्ग और विधि है।"

भिक्षु को फिर से आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण पाया जाता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, "हे! मुझे इच्छाओं का नाश करना चाहिए, इच्छाओं से मुक्त होकर, मन को मुक्त करके और ज्ञान के माध्यम से मुक्त होकर, यहीं और अभी स्वयं को सबोधित करते हुए स्थिर रहना चाहिए।" वह इच्छाओं का नाश करके, इच्छाओं से मुक्त होकर, मन को मुक्त करके और ज्ञान के माध्यम से मुक्त होकर यहीं और अभी स्वयं को सबोधित करते हुए स्थिर रहता है। भिक्षुओं, यह भिक्षु किसी भी कारण से कहीं भी जन्म नहीं लेता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.1कुलसुन्नता सुत्त(121)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1पृथ्वी की धारणा

2(अंतरिक्ष की अनंतता)
3(चेतना की अनंतता)
4(शून्यता)
5(न तो बोध और न ही अबोध)
6विषय-रहित एकाग्रता
7मुक्त करना

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। फिर शाम को, पूज्य आनंद एकांतवास से बाहर आकर भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "एक बार जब भगवान बुद्ध नागराका नामक शाक्य नगर में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे, तब वहाँ भगवान बुद्ध के सामने बैठकर मैंने यह सुना, यह सीखा: 'मैं अब पूर्णतः शून्यता के निवास में रहता हूँ।' क्या मैंने इसे सही सुना, सही सीखा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा?"

[बुद्ध:] "हाँ, आनंद, तुमने सही सुना, सही सीखा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा। अब भी, पहले की तरह, मैं पूर्णतः शून्यता के निवास में रहता हूँ। जैसे मिगारा की माता का यह महल हाथियों, गायों और घोड़ियों से, सोने-चाँदी से, स्त्री-पुरुषों की सभाओं से रहित है, और केवल यही शून्यता नहीं है—भिक्षुओं के समुदाय पर आधारित एकांतता; ठीक वैसे ही, आनंद, एक भिक्षु—गाँव की अनुभूति पर ध्यान न देकर, मनुष्य की अनुभूति पर ध्यान न देकर—वन्यभूमि की अनुभूति पर आधारित एकांतता पर ध्यान देता है। उसका मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और वन्यभूमि की अनुभूति में लीन रहता है।"

वह यह समझता है कि 'गाँव की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ मौजूद होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। मनुष्य की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ मौजूद होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी अशांति है: जंगल की धारणा पर आधारित एकांत।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका गाँव की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका मनुष्य की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: जंगल की धारणा पर आधारित एकांत।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

पृथ्वी की धारणा

"इसके अलावा, भिक्षु आनंद मनुष्य की धारणा पर ध्यान नहीं देते, वन्य जीवन की धारणा पर ध्यान नहीं देते, बल्कि पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन पृथ्वी की धारणा में आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और लीन हो जाता है। जैसे सौ खूंटियों से बैल की खाल झुर्रियों से मुक्त हो जाती है, वैसे ही - इस पृथ्वी की सभी पहाड़ियों और घाटियों, नदी की खाइयों, ठूंठों और कांटों के इलाकों, ऊबड़-खाबड़ अनियमितताओं पर ध्यान दिए बिना - वे पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन पृथ्वी की धारणा में आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और लीन हो जाता है।"

वह यह समझता है कि 'मनुष्य की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ मौजूद होते, वे यहाँ नहीं हैं। वन्य जीवन की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ मौजूद होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाकीपन।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका मनुष्य की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका वन्य जीवन की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाकीपन।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(अंतरिक्ष की अनंतता)

इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - वन्य जीवन की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, पृथ्वी की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए - अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'जंगल की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ उत्पन्न होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। पृथ्वी की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ उत्पन्न होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी अशांति है: अनंत अंतरिक्ष के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका जंगल की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका पृथ्वी की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: अनंत अंतरिक्ष के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(चेतना की अनंतता)

इसके अलावा, भिक्षु आनंद पृथ्वी की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'पृथ्वी की अनुभूति के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: चेतना की अनंतता की अनुभूति पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'अनुभूति का यह स्वरूप पृथ्वी की अनुभूति से रहित है। अनुभूति का यह स्वरूप अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: चेतना की अनंतता की अनुभूति पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(शून्यता)

इसके अलावा, भिक्षु आनंद—अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए—शून्यता के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और शून्यता के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: शून्यता के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: शून्यता के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(न तो बोध और न ही अबोध)

इसके अलावा, भिक्षु आनंद—चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए—न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति के आयाम पर आधारित एकत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर हो जाता है और न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति के आयाम में लिप्त हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। शून्यता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: वह एकत्व जो न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर आधारित है।' वह यह समझता है कि 'बोध का यह तरीका चेतना की अनंतता के आयाम के बोध से रहित है। बोध का यह तरीका शून्यता के आयाम के बोध से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: वह एकत्व जो न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर आधारित है।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

विषय-रहित एकाग्रता

इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूति पर ध्यान देते हुए - विषयहीन एकाग्रता पर आधारित एकाग्रत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और विषयहीन एकाग्रता में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'शून्यता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। न तो बोध और न ही अबोध के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। और केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: जो छह इंद्रियों से जुड़ा है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' वह यह समझता है कि 'बोध का यह तरीका शून्यता के आयाम के बोध से रहित है। बोध का यह तरीका न तो बोध और न ही अबोध के आयाम के बोध से रहित है। केवल यही शून्यता नहीं है: जो छह इंद्रियों से जुड़ा है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

मुक्त करना

इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूति पर ध्यान देते हुए - विषयहीन एकाग्रता पर आधारित एकाग्रत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और विषयहीन एकाग्रता में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'चेतना की यह विषयहीन एकाग्रता कृत्रिम और मानसिक रूप से गढ़ी हुई है।' और वह यह भी समझता है कि 'जो कुछ भी कृत्रिम और मानसिक रूप से गढ़ा हुआ है, वह अस्थिर और क्षीण होने के अधीन है।' उसके लिए—इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर—मन इंद्रिय-वासना, सृजन और अज्ञान के अपशिष्ट से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' होने का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

वह यह समझता है कि 'इंद्रिय-संबंधी अपशिष्ट, अस्तित्व-संबंधी अपशिष्ट, अज्ञान-संबंधी अपशिष्ट के कारण उत्पन्न होने वाली सभी विक्षोभ यहाँ मौजूद नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी विक्षोभ है: जो छह इंद्रियों से संबंधित है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' वह यह समझता है कि 'यह अनुभूति इंद्रिय-संबंधी अपशिष्ट, अस्तित्व-संबंधी अपशिष्ट, और अज्ञान-संबंधी अपशिष्ट से रहित है। केवल यही शून्यता है: जो छह इंद्रियों से संबंधित है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' इस प्रकार वह इसे हर उस चीज़ से रहित मानता है जो मौजूद नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, उसे वह उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, शुद्ध है - श्रेष्ठ और अतुलनीय है।
आनंद, अतीत में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहे, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहे। भविष्य में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहेंगे, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहेंगे। वर्तमान में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहते हैं, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहते हैं।
इसलिए, आनंद, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उस शून्यता में प्रवेश करेंगे और उसमें बने रहेंगे जो शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय है।'
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.2 महासुन्नता सुत्त(122)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। भोर होते ही, भगवान ने अपने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु गए। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वे भिक्षा मांगने के बाद दिनभर विश्राम करने के लिए शाक्य काल-खेमक के निवास पर गए। उस समय शाक्य काल-खेमक के निवास पर अनेक विश्राम स्थल बने हुए थे। भगवान ने वहाँ बने हुए अनेक विश्राम स्थलों को देखकर यह विचार किया, "यहाँ तो अनेक विश्राम स्थल बने हुए हैं। क्या यहाँ अनेक भिक्षु निवास करते हैं?"

उस समय पूज्य आनंद, अनेक अन्य भिक्षुओं के साथ, शाक्य कन्या घटा के निवास पर वस्त्र बना रहे थे। संध्या होने पर भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और शाक्य कन्या घटा के निवास पर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। बैठते ही उन्होंने पूज्य आनंद से पूछा, "शाक्य कन्या काल-खेमक के निवास पर अनेक विश्राम स्थल बने हुए हैं। क्या वहाँ अनेक भिक्षु रहते हैं?"

"जी हे भगवान, शाक्यों के निवास स्थान काला-खेमाका में अनेक विश्राम स्थल तैयार हैं। वहाँ अनेक भिक्षु रहते हैं। अब हमारे वस्त्र बनाने का समय आ गया है।"

"आनंद, जो भिक्षु संगति में आनंद लेता है, संगति का लुत्फ़ उठाता है, संगति में आनंद लेने के लिए प्रतिबद्ध है; जो समूह में आनंद लेता है, समूह का लुत्फ़ उठाता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में आनंदित होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, उसकी इच्छा से — बिना किसी कठिनाई या परेशानी के — त्याग का सुख, एकांतवास का सुख, शांति का सुख, आत्म-जागरूकता का सुख प्राप्त होना असंभव है। परन्तु जो भिक्षु समूह से अलग होकर एकांतवास करता है, उसकी इच्छा से — बिना किसी कठिनाई या परेशानी के — त्याग का सुख, एकांतवास का सुख, शांति का सुख, आत्म-जागरूकता का सुख प्राप्त होना संभव है।"

"हाँ, आनंद, यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो संगति में आनंद लेता है, संगति का आनंद लेता है, संगति में आनंद लेने के लिए प्रतिबद्ध है; जो समूह में आनंद लेता है, समूह का आनंद लेता है, समूह में प्रसन्न होता है, वह अस्थायी और सुखद चेतना-मुक्ति में प्रवेश कर सके और उसमें स्थिर रह सके, या उस चेतना-मुक्ति में स्थिर रह सके जो अस्थायी और अस्थाई और उत्तेजना से परे है।" लेकिन यह संभव है कि कोई भिक्षु जो अकेले रहता है, समूह से अलग रहता है, वह अस्थायी और सुखद चेतना-मुक्ति में प्रवेश करने और उसमें स्थिर रहने की अपेक्षा कर सकता है, या उस चेतना-मुक्ति में स्थिर रह सके जो अस्थायी और अस्थाई और उत्तेजना से परे है।

"आनंद, मैं एक भी ऐसे रूप की कल्पना नहीं कर सकता जिसका परिवर्तन और रूपांतरण उस व्यक्ति में दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा को जन्म न दे जो उसके प्रति भावुक हो और उसमें आनंद लेता हो।"

"लेकिन तथागत द्वारा खोजा गया एक (मानसिक) निवास है, जहाँ वे किसी भी विषय पर ध्यान दिए बिना आंतरिक शून्यता में प्रवेश करते हैं और उसमें बने रहते हैं। यदि इस निवास के माध्यम से वहाँ रहते हुए, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, गृहस्थ पुरुष, गृहस्थ स्त्रियाँ, राजा, राजमंत्री, संप्रदायवादी और उनके शिष्य उनसे मिलने आते हैं, तो - एकांतवास पर केंद्रित, एकांतवास की ओर प्रवृत्त, एकांतवास का लक्ष्य रखते हुए, त्याग का आनंद लेते हुए, मानसिक उत्तेजना के आधार गुणों को नष्ट करते हुए - वे उनसे केवल उतनी ही बातचीत करते हैं जितनी उनके विदा लेने के लिए आवश्यक होती है।"

"तो, आनंद, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे, 'मैं आंतरिक शून्यता में प्रवेश करूँ और उसमें स्थिर रहूँ,' तो उसे अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र और एकाग्र करना चाहिए। और भिक्षु अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र, एकाग्र और एकाग्र कैसे करता है? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल गुणों से विरक्त होकर - प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। इस प्रकार एक भिक्षु अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र, एकाग्र और एकाग्र करता है।"

वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान देता है। जब वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसका मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है और न ही आंतरिक शून्यता में लिप्त होता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है और न ही आंतरिक शून्यता में लिप्त होता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

वह बाह्य शून्यता पर ध्यान देता है...2

वह आंतरिक और बाह्य शून्यता का ध्यान रखता है...

वह अविचलित अवस्था पर ध्यान देता है।3 जब वह अविचलित अवस्था पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसका मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है, और न ही अविचलित अवस्था में लिप्त होता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं अविचलित अवस्था पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है, और न ही अविचलित अवस्था में लिप्त होता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"जब ऐसा हो, तो उसे अपने मन को भीतर से स्थिर, शांत, एकीकृत और एकाग्रता के अपने पहले विषय पर केंद्रित करना चाहिए।"

फिर वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान देता है। आंतरिक शून्यता पर ध्यान देते समय, उसका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और आंतरिक शून्यता में लीन हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और आंतरिक शून्यता में लीन हो जाता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

वह बाह्य शून्यता पर ध्यान देता है...

वह आंतरिक और बाह्य शून्यता का ध्यान रखता है...

वह अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है। जब वह अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उसका मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता हूँ, तो मेरा मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"यदि इस निवास में रहते हुए भिक्षु का मन इधर-उधर घूमने की ओर आकर्षित हो, तो वह यह सोचते हुए इधर-उधर घूमता है, 'इस प्रकार चलते हुए, न तो लोभ, न ही उदासी, न ही कोई बुराई या अकुशल गुण मुझ पर हावी होंगे।' इस प्रकार वह वहाँ सतर्क रहता है।"

"यदि वह इस आवास में रहते हुए, खड़े होने... बैठने... लेटने की ओर आकर्षित होता है, तो वह लेट जाता है, [यह सोचते हुए,] 'जब मैं इस प्रकार लेटा हुआ हूँ, तो न तो लोभ, न उदासी, न कोई बुराई, न ही अकुशल गुण मुझ पर हावी होंगे।' इस प्रकार वह वहाँ सतर्क रहता है।"

"यदि इस निवास में रहते हुए उसका मन बोलने की ओर आकर्षित हो, तो वह यह निश्चय करता है कि 'मैं ऐसी बातों में शामिल नहीं होऊंगा जो नीच, अश्लील, सामान्य, घृणित, अनुत्पादक हों, जो विरक्ति, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्म-जागरूकता या मुक्ति की ओर न ले जाएं - अर्थात् राजाओं, लुटेरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें; सेनाओं, चेतावनियों और युद्धों के बारे में बातें; भोजन और पेय के बारे में बातें; वस्त्र, फर्नीचर, मालाओं और सुगंधों के बारे में बातें; रिश्तेदारों के बारे में बातें; वाहनों के बारे में बातें; गांवों, कस्बों, शहरों, ग्रामीण इलाकों के बारे में बातें; महिलाओं और नायकों के बारे में बातें; गली और कुएं की गपशप के बारे में बातें; मृतकों की कहानियां; विविधता की कहानियां, दुनिया और समुद्र की रचना के बारे में बातें; चीजों के अस्तित्व या न होने के बारे में बातें।' इस प्रकार वह वहां सतर्क रहता है।"

"'परन्तु,' [वह संकल्प लेता है,] 'मैं ऐसी चर्चा में संलग्न रहूंगा जो विवेकपूर्ण हो, जागरूकता की मुक्ति में सहायक हो, और केवल विरक्ति, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता और मुक्ति की ओर ले जाए - अर्थात्, विनम्रता, संतोष, एकांत, अनासक्ति, दृढ़ता जगाने वाली चर्चा, सद्‌गुण, एकाग्रता, विवेक, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान एवं दृष्टि पर चर्चा।' इस प्रकार वह वहां सचेत रहता है।"

"यदि इस निवास के माध्यम से ध्यान करते समय उसका मन चिंतन की ओर प्रवृत्त हो, तो वह संकल्प करता है कि 'मैं ऐसे विचार नहीं सोचूंगा जो नीच, अश्लील, सामान्य, घृणित, लाभकारी न हों, जो वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता या मुक्ति की ओर न ले जाएं - अर्थात्, कामुकता के विचार, द्वेष के विचार, हानि पहुंचाने वाले विचार।' इस प्रकार वह वहां सतर्क रहता है।"

"'लेकिन,' [वह दृढ़ निश्चय करता है,] 'मैं ऐसे विचार रखूंगा जो नेक हों, प्रगतिशील हों, जो उन पर अमल करने वाले व्यक्ति के लिए तनाव के सही अंत की ओर ले जाएं - अर्थात्, त्याग के विचार, दुर्भावना रहित विचार, अहिंसा के विचार।' इस तरह वह वहां सतर्क रहता है।"

आनंद, ये पाँच प्रकार की कामुकताएँ हैं। कौन सी पाँच? आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावनी, इच्छा जगाने वाली, मोहक। कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनी जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से जाने वाले स्वाद... शरीर से सुनी जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाली, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकताएँ हैं जिन पर एक भिक्षु को बार-बार मन में चिंतन करना चाहिए: 'क्या मेरे भीतर, किसी भी परिस्थिति में, इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न होती है?' यदि चिंतन करने पर भिक्षु को यह पता चलता है कि 'मेरे भीतर, किसी न किसी परिस्थिति में, इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न होती है,' तो - ऐसा होने पर - वह यह जान लेता है कि 'मैंने इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति अपनी इच्छा-वासना का त्याग नहीं किया है।' लेकिन यदि चिंतन करने पर उसे यह अहसास होता है कि 'किसी भी परिस्थिति में मुझमें इन पांच इंद्रियों के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न नहीं होती,' तो वह समझ जाता है कि 'मैंने इन पांच इंद्रियों के प्रति वासना का त्याग कर दिया है।' इस प्रकार वह सचेत हो जाता है।

ये पाँच आसक्ति-समूह हैं जहाँ एक भिक्षु को निवास करना चाहिए, उत्पत्ति और क्षय का ध्यान रखते हुए (इस प्रकार): 'ऐसा रूप है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा क्षय है। ऐसी भावना है... ऐसी अनुभूति है... ऐसी रचनाएँ हैं... ऐसी चेतना है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा क्षय है।' इन पाँच आसक्ति-समूहों के संबंध में उत्पत्ति और क्षय का ध्यान रखते हुए, वह 'मैं हूँ' की भावना का त्याग कर देता है। ऐसा होने पर, वह समझता है, 'मैंने इन पाँच आसक्ति-समूहों के संबंध में 'मैं हूँ' की भावना का त्याग कर दिया है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"आनंद, ये गुण अपने आधार में अद्वितीय, महान, पारलौकिक और शैतान की पहुंच से बाहर हैं।"

"आनंद, आपका क्या विचार है: जब शिष्य डांट सुनने के बावजूद गुरु का अनुसरण करने के उद्देश्य की कल्पना करता है, तो क्या यह उचित है कि वह उनका अनुसरण करे?"

"हे भगवान, हमारे लिए इन शिक्षाओं का मूल, मार्गदर्शक और निर्णायक भगवान बुद्ध हैं। यह अच्छा होगा यदि स्वयं भगवान बुद्ध इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें। भगवान बुद्ध से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"आनंद, शिष्य के लिए गुरु के पीछे-पीछे प्रवचन, श्लोक या उपदेश सुनने के लिए चलना उचित नहीं है। ऐसा क्यों? आनंद, क्या तुमने लंबे समय तक शिक्षाओं को सुना है, उन्हें आत्मसात किया है, उन पर चर्चा की है, उन्हें एकत्रित किया है, अपने मन से उनका परीक्षण किया है और अपने दृष्टिकोण से उन्हें अच्छी तरह समझा है? परन्तु जो प्रवचन विवेकपूर्ण हो, चेतना की मुक्ति में सहायक हो और केवल वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता और मुक्ति की ओर ले जाए—अर्थात् विनम्रता, संतोष, एकांत, अनासक्ति, दृढ़ता, सद्गुण, एकाग्रता, विवेक, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान एवं दर्शन को प्रेरित करने वाले प्रवचन: इसी प्रकार के प्रवचन सुनने के लिए शिष्य का गुरु के पीछे-पीछे चलना उचित है, मानो वह उनसे बंधा हुआ हो।"

"ऐसी स्थिति में, शिक्षक का पतन होता है, छात्र का पतन होता है, और पवित्र जीवन जीने वाले व्यक्ति का भी पतन होता है।"

और गुरु का पतन कैसे होता है? एक उदाहरण है, एक गुरु4 किसी एकांत स्थान पर शरण लेता है: जंगल, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, वनभूमि, खुला आकाश, भूसे का ढेर। जब वह इस प्रकार एकांत में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों से मोहित हो जाता है, लोभ में पड़ जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे गुरु का पतन कहा जाता है। वह उन दुष्ट, अकुशल गुणों से ग्रस्त हो जाता है जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और भी विकृत करते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही गुरु का पतन है।5

और शिष्य का पतन कैसे होता है? उस गुरु का शिष्य, अपने गुरु के एकांतवास का अनुकरण करते हुए, एकांतवास में चला जाता है: किसी सुनसान जगह में, किसी वृक्ष की छाया में... या भूसे के ढेर पर। जब वह इस प्रकार एकांतवास में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों के प्रति आसक्त हो जाता है, लोभ में पड़ जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे ही शिष्य का पतन कहा जाता है। वह उन दुष्ट, अकुशल गुणों से ग्रस्त हो जाता है जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और भी बुरे कर्मों की ओर ले जाते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म-वृषण और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही शिष्य का पतन है।

और पवित्र जीवन जीने वाले का पतन कैसे होता है? एक उदाहरण है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुखी, संसार के ज्ञाता, योग्य लोगों के लिए अद्वितीय प्रशिक्षक, दिव्य और मानव प्राणियों के गुरु, जागृत और धन्य होते हैं। वे एकांतवास में शरण लेते हैं: वनभूमि, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। जब वे इस प्रकार एकांतवास में रहते हैं, तो नगर और ग्रामीण क्षेत्रों से ब्राह्मण और गृहस्थ उनसे मिलने आते हैं। जब वे उनसे मिलने आते हैं, तो वे मोहक वस्तुओं से मोहित नहीं होते, लोभ में नहीं पड़ते, विलासिता में नहीं लौटते। उस गुरु का शिष्य, अपने गुरु के एकांतवास का अनुकरण करते हुए, एकांतवास में शरण लेता है: वनभूमि, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। एक वृक्ष का... भूसे का ढेर। जब वह इस प्रकार एकांतवास में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों के प्रति आसक्त हो जाता है, लोभ में डूब जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे पवित्र जीवन का अनुसरण करने वाला कहा जाता है, जिसका पतन पवित्र जीवन जीने वाले के पतन के कारण होता है। वह अपवित्र, अशुद्ध गुणों से ग्रसित हो गया है, जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और अधिक विकृत करते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म-वृहद और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही पवित्र जीवन जीने वाले का पतन है।

"और इस संदर्भ में, आनंद, पवित्र जीवन जीने वाले व्यक्ति का पतन गुरु या शिष्य के पतन से कहीं अधिक पीड़ादायक और कड़वाहट से भरा होता है। यह अभाव की अवस्थाओं तक भी ले जाता है।"

इसलिए, आनंद, मेरे साथ मित्रता का व्यवहार करो, शत्रुता का नहीं। यही तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए अच्छा होगा।

और छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने के बजाय विरोधी के रूप में कैसे व्यवहार करते हैं? एक उदाहरण है जहाँ एक शिक्षक अपने छात्रों को सहानुभूतिपूर्वक धम्म का उपदेश देता है, उनकी भलाई की कामना करता है, सहानुभूति से प्रेरित होकर कहता है: 'यह तुम्हारी भलाई के लिए है; यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उसके शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना मन लगाते हैं। वे शिक्षक के संदेश से भटक जाते हैं। इस प्रकार छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने के बजाय विरोधी के रूप में व्यवहार करते हैं।6

और छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण संबंध कैसे बनाते हैं, न कि शत्रुतापूर्ण? एक उदाहरण है जहाँ एक शिक्षक अपने छात्रों को सहानुभूतिपूर्वक धम्म का उपदेश देता है, उनकी भलाई की कामना करता है, सहानुभूति से प्रेरित होकर कहता है: 'यह तुम्हारी भलाई के लिए है; यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य सुनते हैं, ध्यान से सुनते हैं और ज्ञान प्राप्त करने में अपना मन लगाते हैं। वे शिक्षक के संदेश से विचलित नहीं होते। इस प्रकार छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाते हैं, न कि शत्रुतापूर्ण।

इसलिए, आनंद, मेरे साथ मित्रता का भाव रखो, शत्रुता का नहीं। यही तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए अच्छा होगा।

मैं तुम्हारे ऊपर कुम्हार की तरह मंडराता नहीं रहूंगा, जैसे कोई कुम्हार गीली, अधपकी मिट्टी की वस्तुओं पर मंडराता है। मैं बार-बार डांटता नहीं, बार-बार तुम्हें प्रेरित करता नहीं। जो भी आवश्यक है, वही रहेगा।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.3अचैरियब्भुतधम्म सुत्त(123)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। दोपहर के भोजन के बाद बहुत से भिक्षु सभा कक्ष में एकत्रित होकर बैठे थे और उनके बीच यह वार्तालाप हुआ।

'मित्रों, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि तथागत पूर्वज प्राचीन ज्ञानियों को जानते हैं। वे कैसे अंतःस्रावी हुए, संसार के फैलाव को समाप्त किया, अपनी यात्रा को संक्षिप्त किया और यात्रा के अंत तथा समस्त कष्टों के अंत तक पहुँचे। उन्होंने कहा कि वे धन्य पुरुष ऐसे जन्म, नाम, कुल, गुणों, विचारों, ज्ञान, निवास और ऐसी मुक्ति के थे।' यह सुनकर पूज्य आनंद ने कहा, 'मित्रों, वास्तव में तथागत अद्भुत और आश्चर्यजनक बातों से परिपूर्ण हैं।'

जब यह बातचीत चल रही थी, तभी भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे, सभाघर की ओर बढ़े, तैयार आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, 'भिक्षुओं, आप यहाँ किस विषय पर चर्चा करने के लिए बैठे थे और अन्य क्या चर्चा हुई?'

आदरणीय महोदय, दोपहर के भोजन के बाद हम सब उपस्थित कक्ष में बैठे थे और हमारे बीच यह चर्चा हुई। मित्रों, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि तथागत पूर्वज प्राचीन ज्ञानियों को जानते हैं। वे कैसे अंतःसन्न हुए, संसार के फैलाव को कैसे विलीन किया, अपनी यात्रा को कैसे समाप्त किया और अपनी यात्रा के अंत तथा समस्त कष्टों के अंत तक कैसे पहुँचे। उन्होंने कहा कि वे धन्यजन ऐसे जन्म, नाम, कुल, गुणों, विचारों, ज्ञान, निवास और ऐसी मुक्ति के धनी थे। आदरणीय महोदय, जब यह कहा गया तो आदरणीय आनंद ने कहा; मित्रों, वास्तव में तथागत अद्भुत और आश्चर्यजनक बातों से परिपूर्ण हैं। जब यह चर्चा चल रही थी तभी धन्यजन वहाँ आ गए।

तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, 'यदि ऐसा है, तो आनंद, अनेकों की प्रसन्नता के लिए तथागत के अद्भुत और आश्चर्यजनक तथ्यों का वर्णन कीजिए।'

'आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, सुख के देवताओं के साथ, सजगता से जन्मा था।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्भुत और आश्चर्यजनक लगती है।'

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो सचेतन होकर सुख के देवताओं के साथ ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध का यह कथन मेरे लिए अद्भुत और आश्चर्यजनक है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, अपने जीवनकाल के अंत तक सुख के देवताओं के साथ निवास करे।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध का यह कथन मेरे लिए अद्भुत और आश्चर्यजनक है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखते थे, सुख के देवताओं से विलीन होकर माता के गर्भ में समा गए।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला आनंद, सुख के देवताओं से विलीन होकर माता के गर्भ में अवतरित हुआ, तो देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों के बीच, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। संसार के भीतर के उन अंधकारमय और अछूते स्थानों में भी, जहाँ तेजस्वी चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। वहाँ जन्म लेने वाले प्राणी उस प्रकाश के कारण एक-दूसरे को देख पाते थे और जान पाते थे कि वहाँ अन्य प्राणी भी जन्म ले चुके हैं। देवताओं की महिमा से परे उस असीम प्रकाश के कारण दस हजार प्रकार का संसार थरथरा उठा।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाला आनंद माता के गर्भ से इस संसार में जन्मा, तब चार देवता चारों दिशाओं की रक्षा करते हुए खड़े थे। वे सोच रहे थे कि ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले आनंद को या उसकी माता को किसी मनुष्य, निर्जीव या संसार के किसी भी प्राणी द्वारा कोई हानि न पहुंचे।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला आनंद, माता के गर्भ से इस संसार में जन्मा, तो माता स्वभाव से गुणी थीं, जो जीवित प्राणियों को नष्ट करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज करती थीं।" आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध के बारे में अद्भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जिस दिन ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद ने माता के गर्भ में जन्म लिया, उस दिन से ही उनकी माता के मन में पुरुषों के प्रति कामुक इच्छाएँ उत्पन्न नहीं हुईं। वे किसी भी पुरुष के विचारों से आसक्ति से ऊपर उठ चुकी थीं।" आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक अनुभूति कराती है। आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद ने इस संसार में जन्म लिया, तब उनकी माता पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण थीं।" आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक अनुभूति कराती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक शिशु का जन्म इस संसार में हुआ, तब उनकी माता स्वस्थ, सुखी और निर्मल थीं। वे अपने गर्भ में शिशु को उसके सभी अंगों सहित पूर्ण रूप से देख सकती थीं। मानो वह आठ फलकों वाला एक सुंदर रत्न हो, जिसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के रंग का धागा पिरोया हुआ हो। जो मनुष्य देख सकता है, वह उसे अपनी हथेली पर रखकर चिंतन करेगा। यह वही सुंदर रत्न है जिसमें आठ फलक हैं और जिसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के रंग का धागा पिरोया हुआ है। ठीक इसी प्रकार, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक शिशु का जन्म इस संसार में हुआ, तब उनकी माता स्वस्थ, सुखी और निर्मल थीं। वे अपने गर्भ में शिशु को उसके सभी अंगों सहित पूर्ण रूप से देख सकती थीं। आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।"

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक बालक के जन्म के सात दिन बाद उनकी माता का देहांत हो गया और वे सुखी देवताओं के साथ जन्म लीं।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक बात मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, अन्य स्त्रियाँ लगभग नौ या दस महीने गर्भ धारण करके जन्म देती हैं। लेकिन ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद के साथ ऐसा नहीं है; ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद की

माता ने पूरे दस महीने गर्भ धारण किया और जन्म दिया।" आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बात लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, अन्य स्त्रियाँ या तो बैठकर या लेटकर जन्म देती हैं, परन्तु ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद के साथ ऐसा नहीं है; ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद की माता ने खड़े होकर जन्म दिया।" आदरणीय महोदय, यह मेरे लिए भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कथन है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला इस संसार में जन्मा, तो सबसे पहले देवताओं ने उसे स्वीकार किया और फिर मनुष्यों ने।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्‌भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म इस संसार में हुआ, तो पृथ्वी पर कदम रखने से पहले ही चार देवताओं ने उन्हें ग्रहण किया और माता के सामने रखकर कहा, हे रानी, प्रसन्न हो, तुमने एक शक्तिशाली पुत्र को जन्म दिया है।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ। आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म हुआ, तो वे शुद्ध, जल, कफ, रक्त या किसी भी अशुद्धता से रहित होकर जन्मे। मानो किसी रत्न को कश्मीरी वस्त्र पर रखा गया हो। न तो कश्मीरी वस्त्र रत्न से मैला होता है और न ही रत्न कश्मीरी वस्त्र से। यह दोनों की शुद्धता के कारण है। उसी प्रकार जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म हुआ, तो वे शुद्ध, जल, कफ, रक्त या किसी भी अशुद्धता से रहित होकर जन्मे।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान की ओर से एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बात के रूप में मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाले उस बालक के जन्म के तुरंत बाद, अपने पैरों पर खड़े हुए और जब उनके ऊपर श्वेत छत्र था, तो वे उत्तर दिशा में सात कदम चले, सभी दिशाओं में देखा और महान शब्दों में बोले, "मैं इस संसार का सर्वोपरि, सबसे स्वीकृत और सबसे वरिष्ठ हूँ। यह मेरा अंतिम जन्म है, मैं फिर से जन्म नहीं लूँगा।" आदरणीय महोदय, यह मेरे लिए भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कथन है।

'आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला इस संसार में जन्मा, देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों के संसार में, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। संसार के भीतर के उन अंधकारमय और अछूते स्थानों में भी, जहाँ तेजस्वी चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। वहाँ जन्म लेने वाले प्राणी उस प्रकाश के कारण एक-दूसरे को देख पाते थे और जान पाते थे कि वहाँ अन्य प्राणी भी जन्म ले चुके हैं। देवताओं की महिमा से परे उस असीम प्रकाश के कारण दस हजार प्रकार का संसार थरथरा उठा।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।'

'तो आनंद, इसे भी भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कृति समझो। आनंद, तथागत को यह जानते हुए कि भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; यह जानते हुए कि बोध उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं; यह जानते हुए कि विचार उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं। आनंद, इसे भी भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक कृति समझो।'

'आदरणीय महोदय, तथापि इस्त्यादि को जानने वाली भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; जानने वाली धारणाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; जानने वाले विचार उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक विशेषता के रूप में मानता हूँ।'

आदरणीय आनंद ने ऐसा कहा और यह जानकर प्रसन्न हुए कि गुरु ने मेरे शब्दों को स्वीकार किया है। वे भिक्षु आदरणीय आनंद के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.4बक्कुला सुत्त(124)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य बक्कुला राजगाह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रहते थे। तभी पूज्य बक्कुला के एक मित्र, एसेला-कस्सापा, जो गृहस्थ थे, उनके पास आए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले...

'आदरणीय बक्कुला कितने समय तक तपस्वी रहे?'

'मित्र, मैं अस्सी वर्षों तक तपस्वी रहा।'

'मित्र बक्कुला, इन अस्सी वर्षों के दौरान तुमने कितनी बार यौन क्रियाओं में लिप्त हुए?'

'मित्र कस्सपा, मुझसे इस तरह से सवाल नहीं किया जाना चाहिए कि इन अस्सी वर्षों में आपने कितनी बार यौन क्रियाओं में लिप्त हुए? मित्र कस्सपा, आपको मुझसे इस प्रकार पूछना चाहिए कि इन अस्सी वर्षों में आपके मन में कितनी बार यौन विचार आए?'

'मित्र बक्कुला, इन अस्सी वर्षों के दौरान आपके मन में कितनी बार यौन धारणाएं उत्पन्न हुईं?'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसी यौन अनुभूति नहीं हुई है जो मेरे मन में उत्पन्न हुई हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी यौन अनुभूति का ज्ञान नहीं है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसी क्रोधित या आहत करने वाली अनुभूति नहीं हुई है जो मेरे भीतर उत्पन्न हुई हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी क्रोधित या आहत अनुभूति का अनुभव नहीं हुआ है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि मानता हूँ।'

'मित्र कश्यप, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी कामुक विचार का उदय नहीं हुआ है।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी कामुक विचार नहीं आया। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कश्यप, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसा क्रोधपूर्ण या पीड़ादायक विचार याद नहीं है जो मेरे मन में उत्पन्न हुआ हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी क्रोधित या आहत विचार का अनुभव नहीं हुआ। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक विशेषता मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे गृहस्थ से वस्त्र स्वीकार करने का कोई आशय नहीं है।'

'आदरणीय बक्कुला ने इन अस्सी वर्षों में कभी किसी गृहस्थ से वस्त्र स्वीकार नहीं किया। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे किसी उपकरण से वस्त्र काटने का कोई तरीका नहीं पता।'

'यह आदरणीय बक्कुला इन अस्सी वर्षों में किसी भी उपकरण से अपने वस्त्र को काटने के बारे में नहीं जानते। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे सुई से वस्त्र सिलना भी नहीं आता।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों में सुई से वस्त्र सिलना भी नहीं आता। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे वस्त्रों को रंगने का कोई ज्ञान नहीं है।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों में वस्त्र को रंगने का ज्ञान नहीं है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक बात मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे कटिना वस्त्र सिलना नहीं आता।'

'यह आदरणीय बक्कुला इन अस्सी वर्षों में कटिना वस्त्र सिलना नहीं जानते। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक आश्चर्यजनक और विस्मयकारी बात मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन में, मुझे कभी भी वस्त्र सिलने के लिए किसी सहचर को नियुक्त करने का ख्याल नहीं आया, ...निमंत्रण स्वीकार करने का, ...यहाँ तक कि ऐसा विचार भी मन में नहीं आया। हे! कोई मुझे आमंत्रित करे!'

'आदरणीय बक्कुला को न तो वस्त्र सिलने के लिए सहकर्मियों को नियुक्त करने का ज्ञान है, न ही निमंत्रण स्वीकार करने का, और न ही इस विचार का उदय होने का। ओह! काश कोई मुझे भी आमंत्रित करता! इन अस्सी वर्षों के दौरान। आदरणीय बक्कुला की यह बात मेरे लिए आश्चर्यजनक और अद्भुत है।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे कभी किसी घर के अंदर बैठने, घर के अंदर भोजन करने, किसी स्त्री के छोटे से छोटे संकेत को भी देखने, किसी स्त्री को कम से कम श्लोक की चार पंक्तियाँ सिखाने, भिक्षुणियों के कक्ष में जाने, भिक्षुणियों को शिक्षा देने, प्रशिक्षु नौसिखियों (स्त्री या पुरुष) को शिक्षा देने का अवसर नहीं मिला।'

'यह आदरणीय बक्कुला अपने अस्सी वर्षों के दौरान घर के अंदर बैठकर प्रशिक्षु नौसिखियों, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, को शिक्षा देने के बारे में नहीं जानते। मैं आदरणीय बक्कुला के इस गुण को अद्भुत और आश्चर्यजनक मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे किसी को दीक्षा देने, किसी को उच्च दीक्षा प्रदान करने, किसी को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने या किसी नौसिखिए की देखभाल करने, भाप स्नान करने, स्नान के लिए स्नान पाउडर का उपयोग करने, शरीर की मालिश के लिए किसी सहोदर को नियुक्त करने, थोड़े समय के लिए भी किसी बीमारी के उत्पन्न होने, किसी बीमारी के लिए कोई दवा लेने, कम से कम कुछ हरी दलिया खाने, गलत करवट लेकर सोने, सोने, गाँव के अंत में बारिश देखने का कोई भी कार्य याद नहीं है।

'यह आदरणीय बक्कुला किसी को दीक्षा देने के बारे में नहीं जानते, ...कि गाँव के अंत में होने वाली बारिश का उन्होंने इन अस्सी वर्षों में अवलोकन किया है। मैं आदरणीय बक्कुला की इस बात को एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना मानता हूँ।'

'मित्र, मैंने केवल सात दिनों के लिए ही कर्ज के साथ देशवासी के भोजन का सेवन किया था, आठवें दिन मुझे मृत्यु का अहसास हुआ।'

'आदरणीय बक्कुला ने सात दिनों तक ऋणी रहते हुए देशवासियों के भोजन का सेवन किया, आठवें दिन उनका प्राण थम गए। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना मानता हूँ।'

'मित्र बक्कुला, क्या मैं इस युग में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?' इसके बाद अचेला कस्सपा ने उसी युग में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की। पूज्य कस्सपा की उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, वे भीड़ से अलग होकर, बुराई को दूर करने के लिए तत्परता से निवास करने लगे और यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुल के पुत्रों का उचित रूप से तपस्वी जीवन व्यतीत करना होता है। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, और अब कुछ भी पाने की इच्छा नहीं बची है। पूज्य कस्सपा पूर्ण पुरुषों में से एक बन गए।

कुछ समय बाद ही आदरणीय बक्कुला ने चाबियों का एक गुच्छा लिया और एक घर से दूसरे घर जाते हुए कहा, 'मित्रों, आओ! आज मेरा अंतिम अंत होगा।'

आदरणीय बक्कुला ने चाबियों का एक गुच्छा लिया और एक घर से दूसरे घर जाते हुए कहा, 'मित्रों, आओ! आज मेरा अंतिम अंत होगा। मैं इसे भी आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक घटना के रूप में स्वीकार करता हूँ।'

आदरणीय बक्कुला ने बैठे हुए भिक्षुओं के समुदाय के बीच अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।

यह भी मेरे लिए आदरणीय बक्कुला की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.5दंतभूमि सुत्त(125)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से आईबी हॉर्नर द्वारा अनुवादित (1998)

अंतर्वस्तु

1आस्था की प्राप्ति
2नैतिकता
3इंद्रिय-नियंत्रण
4खाने में संयम बरतें
5सतर्कता
6सजगता और स्पष्ट चेतना
7पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना
8ध्यान के चार अनुप्रयोग
9झाना
10(तीन ज्ञान, ते-विज्जा)
10.1(1. पूर्व निवासों की स्मृति)
10.2(2. दिव्य दृष्टि)
10.3(3. कैंकर का नाश: संतत्व)

मैंने ऐसा सुना है: एक समय भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में गिलहरियों के भोजन स्थल पर ठहरे हुए थे। उस समय भिक्षु अचिरवत वन कुटिया में ठहरे हुए थे।1 तब राजकुमार जयसेना,2 जो हमेशा इधर-उधर टहलते रहते थे, पैदल घूमते रहते थे, भिक्षु अचिरवत के पास पहुँचे; पास आकर उन्होंने अचिरवत को नमस्कार किया; मित्रतापूर्ण और शिष्टाचारपूर्ण अभिवादन करने के बाद वे आदरपूर्वक कुछ दूरी पर बैठ गए। आदरपूर्वक बैठे हुए राजकुमार जयसेना ने भिक्षु अचिरवत से इस प्रकार कहा:

"मैंने सुना है, हे प्रिय अग्गिवेसना, कि यदि कोई भिक्षु यहाँ लगन, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ निवास करता है, तो वह मन की एकाग्रता प्राप्त कर सकता है।"

"यही सत्य है, राजकुमार; यही सत्य है, राजकुमार। यहाँ परिश्रमपूर्वक, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रहने वाला भिक्षु एकाग्रचित्तता प्राप्त कर सकता है।"

"यह अच्छा होगा यदि पूज्य अग्गिवेसना मुझे धम्म की शिक्षा दें, जैसा कि उन्होंने इसे सुना है, जैसा कि उन्होंने इसमें महारत हासिल की है।"

"हे राजकुमार, मैं तुम्हें धर्म का वह पाठ नहीं सिखा सकता जो मैंने सुना है, जो मैंने उसमें पारंगत किया है। अब, यदि मैं तुम्हें धर्म का वह पाठ सिखाऊँ जो मैंने सुना है, जो मैंने उसमें पारंगत किया है, और यदि तुम मेरी बातों का अर्थ न समझ पाओ, तो यह मेरे लिए कष्टदायक होगा, यह मेरे लिए झुंझलाहट का कारण होगा।"

"कृप्य अग्गिवेसना मुझे धर्म का उपदेश दें, जैसा उन्होंने सुना है, जैसा उन्होंने उसमें महारत हासिल की है। शायद मैं अग्गिवेसना की बातों का अर्थ समझ सकूँ।"

"हे राजकुमार, यदि मैं तुम्हें धर्म का उपदेश उसी प्रकार दूं जैसा मैंने सुना है, जैसा मैंने उसमें पारंगत हुआ हूं, और यदि तुम मेरी बातों का अर्थ समझ जाओ, तो यह अच्छा होगा; यदि तुम मेरी बातों का अर्थ न समझो, तो तुम्हें यथास्थिति में ही रहना होगा: तुम्हें इस विषय पर मुझसे और प्रश्न नहीं करने चाहिए।"

"उद्धारकर्ता अग्गिवेसना मुझे धर्म का उपदेश दें, जैसा उन्होंने सुना है, जैसा उन्होंने उसमें पारंगत हुए हैं। यदि मैं आदरणीय अग्गिवेसना की बातों का अर्थ समझ जाऊं, तो यह अच्छा होगा; यदि मैं आदरणीय अग्गिवेसना की बातों का अर्थ न समझ पाऊं, तो मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा; मैं इस विषय पर आदरणीय अग्गिवेसना से आगे कोई प्रश्न नहीं करूंगा।"

तब नवोदित अचिरवता ने राजकुमार जयसेना को धर्म का उपदेश दिया, जैसा कि उन्होंने सुना था और जैसा कि उन्होंने उसमें महारत हासिल की थी। यह सुनकर राजकुमार जयसेना ने नवोदित अचिरवता से इस प्रकार कहा:

"हे अग्गिवेसना, यह असंभव है; ऐसा संभव नहीं कि एक लगनशील, उत्साही और दृढ़ निश्चयी भिक्षु एकाग्रचित्त अवस्था प्राप्त कर ले।" तब राजकुमार जयसेना ने नवोदित अचिरवत को यह कहकर कि यह असंभव है और संभव नहीं है, अपने आसन से उठकर प्रस्थान कर दिया।

राजकुमार जयसेना के चले जाने के तुरंत बाद, नवोदित अचिरवत भगवान के पास पहुँचे; भगवान को प्रणाम करने के बाद, वे आदरपूर्वक दूरी पर बैठ गए। आदरपूर्वक दूरी पर बैठते हुए, नवोदित अचिरवत ने भगवान को राजकुमार जयसेना के साथ हुई सारी बातचीत बताई। यह सुनकर, भगवान ने नवोदित अचिरवत से इस प्रकार कहा:

"हे अग्गिवेसन, इससे क्या लाभ है? राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहकर, उनका आनंद लेते हुए, उनके विचारों में लीन होकर, उनके बुखार से जलते हुए, उनकी खोज में तड़पते हुए, उस ज्ञान को जान लें, देख लें, प्राप्त कर लें या अनुभव कर लें जो त्याग से जाना जा सकता है, त्याग से देखा जा सकता है, त्याग से प्राप्त किया जा सकता है, त्याग से अनुभव किया जा सकता है - ऐसी स्थिति संभव ही नहीं है। हे अग्गिवेसन, यह ऐसा ही है जैसे वश में किए जाने वाले हाथियों, घोड़ों या बैलों में से दो हाथी, दो घोड़े या दो बैल अच्छी तरह से वश में और प्रशिक्षित हैं, और दो वश में नहीं हैं, प्रशिक्षित नहीं हैं। हे अग्गिवेसन, आप इसके बारे में क्या सोचते हैं? क्या ये दो हाथी, घोड़े या बैल, जिन्हें वश में किया जाना था और जो अच्छी तरह से वश में और प्रशिक्षित हैं - क्या वश में किए जाने पर वे अपनी वश में होने की क्षमता तक पहुँच जाएँगे, क्या वे वश में किए जाने पर उस स्तर तक पहुँच जाएँगे जो क्या यह नियंत्रित अवस्था है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

लेकिन वे दो हाथी या घोड़े या बैल जिन्हें वश में किया जाना था, लेकिन जिन्हें न तो वश में किया गया और न ही प्रशिक्षित किया गया - क्या ये, वश में न किए जाने पर, उस अवस्था को प्राप्त कर लेंगे जिस अवस्था को वे दो हाथी या घोड़े या बैल प्राप्त करते हैं जिन्हें वश में किया जाना था और जिन्हें अच्छी तरह से वश में किया गया था और प्रशिक्षित किया गया था?

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

फिर भी, अग्गिवेसन, राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहते हैं... उनके लिए वैराग्य से जो जाना और अनुभव किया जा सकता है, उसे जानना, देखना, प्राप्त करना या अनुभव करना असंभव है। यह ऐसा है जैसे, अग्गिवेसन, किसी गाँव या कस्बे के पास एक विशाल पर्वत ढलान हो, जिस पर दो मित्र हाथ में हाथ डालकर गाँव या कस्बे से आ रहे हों; पर्वत ढलान पर पहुँचकर एक मित्र तलहटी में रुक जाए जबकि दूसरा शिखर पर चढ़ जाए। तब पर्वत ढलान की तलहटी में खड़ा मित्र शिखर पर खड़े मित्र से कहे: 'मेरे प्रिय, शिखर पर खड़े होकर तुम्हें क्या दिखाई देता है?' वह उत्तर दे: 'मेरे प्रिय, शिखर पर खड़े होकर मुझे रमणीय उद्यान, रमणीय वन, रमणीय समतल भूमि और रमणीय तालाब दिखाई देते हैं।' लेकिन दूसरा व्यक्ति शायद इस प्रकार बोले: 'यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता, मेरे प्रिय, कि जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें... मनमोहक तालाब दिखाई दें।' तब पर्वत की चोटी पर खड़ा मित्र नीचे उतरकर अपने मित्र का हाथ पकड़कर उसे पर्वत की चोटी पर चढ़ाता है और उसे सांस लेने के लिए कुछ क्षण देता है, फिर उससे इस प्रकार पूछता है: 'अब, मेरे प्रिय, जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें क्या दिखाई देता है?' वह शायद इस प्रकार बोले: 'मैं, मेरे प्रिय, जब पर्वत की चोटी पर खड़ा हूँ, तो मुझे मनमोहक उद्यान... मनमोहक तालाब दिखाई देते हैं।' वह शायद इस प्रकार बोले: 'अभी-अभी, मेरे प्रिय, हमने समझा कि तुम कह रहे थे: यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें मनमोहक... तालाब दिखाई दें। लेकिन अब हम समझते हैं कि तुम कह रहे हो: 'मैं, मेरे प्रिय, जब पर्वत की चोटी पर खड़ा हूँ, तो मुझे मनमोहक उद्यान... मनमोहक तालाब दिखाई देते हैं।' वह शायद इस तरह बोलेगा: 'ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि, मेरी प्रिय, मैं इस विशाल पर्वत ढलान से घिरा हुआ था, इसलिए मैं वह नहीं देख पा रहा था जो देखा जा सकता था।'

"हे अग्गिवेसन, राजकुमार जयसेना तो इससे भी कहीं अधिक अज्ञान के इस अंबार में घिरे, अवरुद्ध, अवरुद्ध और लिपटे हुए हैं। वास्तव में, राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहते हैं, उनका आनंद लेते हैं, उनके विचारों में लीन रहते हैं, उनकी खोज में तत्पर रहते हैं, फिर भी वैराग्य से जो जाना, देखा, प्राप्त किया और अनुभव किया जा सकता है, उसे जान, देख, प्राप्त या अनुभव करना उनके लिए संभव ही नहीं है। हे अग्गिवेसन, यदि ये दोनों उपमाएँ आपके मन में आतीं, तो राजकुमार जयसेना स्वाभाविक रूप से आप पर विश्वास करने वाले व्यक्ति की तरह व्यवहार करते।"

"लेकिन हे पूज्यवर, राजकुमार जयसेना के लिए ये दो उपमाएँ मेरे मन में कैसे आ सकती थीं, जबकि ये सहज हैं, अर्थात् भगवान से निकली हैं, और पहले कभी सुनी नहीं गई हैं?"

"जैसे, अग्गिवेसना, एक महान अभिषिक्त राजा, एक हाथी शिकारी को संबोधित करते हुए कहता है; 'हे अच्छे हाथी शिकारी, राजा के हाथी पर सवार होकर हाथी वन में जाओ। जब तुम्हें कोई जंगली हाथी दिखाई दे, तो उसे राजा के हाथी के गले में बाँध दो।' और, हाथी शिकारी अग्गिवेसना ने महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए 'जी महाराज' कहा और राजा के हाथी पर सवार होकर हाथी वन में चला गया। वहाँ उसने एक हाथी को देखा और उसे राजा के हाथी के गले में बाँध दिया। इस प्रकार राजा का हाथी उसे खुले में ले आया। परन्तु अग्गिवेसना, उस हाथी के मन में हाथी वन के लिए तड़प थी। इस विषय में हाथी शिकारी ने महाराज को बताया कि हाथी खुले में आ गया है। तब महाराज ने एक हाथी प्रशिक्षक को संबोधित करते हुए कहा, 'हे कुशल हाथी प्रशिक्षक, आओ और उस हाथी को वश में करो। उसके जंगली स्वभाव, उसकी जंगली यादों और आकांक्षाओं को शांत करो, उसके जंगल के लिए उसकी बेचैनी और तड़प को कम करो, उसे गाँवों से प्रसन्न करो और उसे मनुष्य के तौर-तरीकों से परिचित कराओ।'

और, हाथी प्रशिक्षक अग्गिवेसना ने महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए 'जी महाराज' कहा और एक बड़ा खंभा जमीन में गाड़कर हाथी को उसकी गर्दन से बांध दिया ताकि उसके जंगली स्वभाव को त्यागकर उसे मनुष्य के तौर-तरीकों का आदी बनाया जा सके। फिर प्रशिक्षक ने उससे कोमल, मधुर, स्नेहपूर्ण, हृदयस्पर्शी, सभ्य और जनमानस को भाने वाले शब्दों में बात की। और, अग्गिवेसना, जनमानस को भाने वाले कोमल शब्दों से संबोधित किए जाने पर, हाथी ने ध्यान से सुना और सीखने में अपना मन लगाया। इसके बाद प्रशिक्षक ने उसे घास और पानी दिया। जब अग्गिवेसना, हाथी ने प्रशिक्षक से घास और पानी ग्रहण कर लिया, तो प्रशिक्षक के मन में यह विचार आया: 'अब राजा का हाथी जीवित रहेगा।' फिर हाथी प्रशिक्षक उसे एक और काम देता है, और कहता है: 'उठो, नीचे रखो।' जब राजा का हाथी अग्गिवेसना, हाथी प्रशिक्षक की आज्ञा का पालन करता है और उसके निर्देशों के अनुसार उठाता और नीचे रखता है, तो हाथी प्रशिक्षक उसे एक और काम देता है, और कहता है: 'उठो, बैठो।' जब राजा का हाथी, अग्गिवेसना, हाथी प्रशिक्षक की आज्ञा का पालन करते हुए उठकर बैठ जाता है, तो हाथी प्रशिक्षक उसे एक और कार्य देता है, जिसे 'अपनी जगह पर डटे रहना' कहा जाता है: वह हाथी की सूंड से एक ढाल बांध देता है; एक भाला लिए हुए व्यक्ति उसकी गर्दन पर बैठा होता है, और भाले लिए हुए व्यक्ति उसके चारों ओर खड़े होते हैं; और हाथी प्रशिक्षक, एक लंबे डंडे वाला भाला लिए हुए, उसके आगे खड़ा होता है। 'अपनी जगह पर डटे रहने' के कार्य के दौरान वह न तो अपना अगला पैर हिलाता है, न ही पिछला पैर, न ही अपने शरीर का अगला भाग, न ही पिछला भाग, न ही अपना सिर, न ही अपना कान, न ही अपना दांत, न ही अपनी पूंछ और न ही अपनी सूंड हिलाता है। राजा का हाथी वह होता है जो तलवार, कुल्हाड़ी, तीर, और हथौड़े के वार और ढोल की गूंजती हुई आवाज को सहन करता है। वह ढोल, शंख और ढोल की तरह है, जैसे शुद्ध सोना, जो सभी मैल और अशुद्धियों से मुक्त हो, राजा के योग्य हो, एक शाही संपत्ति हो और राजसी गुण माना जाता हो।

आस्था की प्राप्ति

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, इस संसार में तथागत का जन्म होता है, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी, उचित ज्ञान और आचरण से संपन्न, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने वाले अद्वितीय सारथी, प्रबुद्ध, भगवान हैं। वे अपने अलौकिक ज्ञान से इस संसार को देवताओं, मारों, ब्रह्माओं, सृष्टि को उसके संन्यासियों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों सहित ज्ञान प्रदान करते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में सुंदर, मध्य में सुंदर और अंत में सुंदर है, आत्मा और अक्षरों दोनों से; वे ब्रह्मयात्रा का प्रचार करते हैं, जो पूर्णतः सिद्ध और शुद्ध है। एक गृहस्थ, गृहस्थ का पुत्र या किसी अन्य परिवार में जन्मा व्यक्ति उस धर्म को सुनता है। उस धर्म को सुनकर वह तथागत में आस्था प्राप्त करता है। इस प्राप्त आस्था से युक्त होकर वह इस प्रकार चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन सीमित और धूल भरा है, बाहर जाना खुले में; घर में रहने वाले के लिए ब्रह्म-मार्ग पर पूर्णतः तृप्त, पूर्णतः शुद्ध, शंख के समान शुद्ध होना आसान नहीं है। मान लीजिए कि मैं बाल और दाढ़ी काटकर, भगवा वस्त्र धारण करके घर से निकल कर संन्यासी जीवन व्यतीत करूँ? कुछ समय बाद, अपने धन-संपत्ति, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, त्यागकर, अपने संबंधियों के समूह, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, त्यागकर, बाल और दाढ़ी काटकर, भगवा वस्त्र धारण करके, वह घर से निकल कर संन्यासी जीवन व्यतीत कर लेता है। इस प्रकार आर्य शिष्य अग्गिवेसन खुले में निकल जाता है।

नैतिकता

"परन्तु, अग्गिवेसना, देवताओं और मनुष्यों में यह लालसा होती है, अर्थात् पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के लिए। तथागत उन्हें आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, नैतिक बनो, कर्तव्यों के वश में रहो, उचित आचरण और व्यवहार धारण करो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो; उन्हें दूर करो, और प्रशिक्षण के नियमों का पालन करो।'

इंद्रिय-नियंत्रण

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य नैतिक होता है, नियंत्रण में रहकर जीवन व्यतीत करता है..., उनका पालन करता है, प्रशिक्षण के नियमों में स्वयं को प्रशिक्षित करता है, तब तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, इंद्रियों के द्वारों के प्रति सावधान रहो। किसी भौतिक आकृति को आँख से देखकर...(जैसा ऊपर बताया गया है)। किसी मानसिक अवस्था को मन से जानकर, उसके सामान्य स्वरूप से मोहित मत हो, उसके विवरण से मोहित मत हो। क्योंकि यदि तुम मन की इंद्रिय को अनियंत्रित रखोगे, तो लोभ और निराशा, मन की बुरी और अकुशल अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए मन की इंद्रिय को नियंत्रित रखो, मन की इंद्रिय की रक्षा करो, मन की इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करो।'

खाने में संयम बरतें

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य इंद्रियों के द्वारों के प्रति सतर्क हो जाता है, तब तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, भोजन में संयम बरतो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... आराम से रहो।'

सतर्कता

"जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य, भोजन में संयम बरतता है, तो तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सतर्कता पर एकाग्र रहो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... तुम्हें अपने मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करना चाहिए।'

सजगता और स्पष्ट चेतना

और जब आर्य शिष्य अग्गिवेसना सतर्कता में लीन होता है, तब तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सजग रहो और निर्मल चेतना धारण करो। निर्मल चेतना से कार्य करने वाले बनो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... बोलते हुए, मौन।'

पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य, सजगता और स्पष्ट चेतना से परिपूर्ण हो जाता है, तब तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, किसी एकांत स्थान पर, जंगल में, किसी वृक्ष की जड़ में, किसी पर्वत की ढलान पर, किसी सुनसान जगह में, किसी पहाड़ी गुफा में, किसी कब्रिस्तान में, किसी वन में, खुले में या पुआल के ढेर पर अपना निवास स्थान चुन लो।' वह जंगल में एकांत में स्थित किसी स्थान को चुनता है... या फिर भूसे के ढेर पर। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, वह पालथी मारकर बैठ जाता है, पीठ सीधी रखते हुए, अपने सामने सचेतनता को स्थापित करते हुए, वह संसार के प्रति लालसा से मुक्त होकर, निर्लोभ मन से निवास करता है, वह मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष के कलंक से मुक्त होकर, वह परोपकारी मन से, सभी प्राणियों और जीवों के कल्याण के प्रति करुणामय होकर, मन को द्वेष के कलंक से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर, वह आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर; प्रकाश को देखते हुए, सचेतन, स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, वह मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता से मुक्त होकर, वह शांत मन से निवास करता है, वह मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करता है। संदेह से मुक्त होकर, वह संदेह से ग्रस्त मन से निवास करता है। कुशल अवस्थाओं के बारे में अविचलित रहते हुए, वह मन को संदेह से मुक्त करता है।

ध्यान के चार अनुप्रयोग

वह मन के इन पाँच अवरोधों से छुटकारा पाकर, जो मन को दूषित करते हैं और अंतर्ज्ञान को कमजोर करते हैं, शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर संसार में लोभ और निराशा को नियंत्रित करता है। वह भावनाओं, मन और मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ता है, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर संसार में लोभ और निराशा को नियंत्रित करता है।

"जैसे, अग्गिवेसना, एक हाथी प्रशिक्षक, एक बड़े खंभे को जमीन में गाड़कर, एक जंगली हाथी को उसकी गर्दन से बांध देता है ताकि उसके जंगली तौर-तरीकों, उसकी जंगली आकांक्षाओं और उसके जंगल के लिए उसकी बेचैनी, उसकी व्याकुलता और उसके उन्माद को शांत कर सके, ताकि वह गांवों से प्रसन्न हो जाए और मानवीय तौर-तरीकों का आदी हो जाए — ठीक उसी प्रकार, अग्गिवेसना, ध्यान के ये चार अनुप्रयोग गृहस्थों के तौर-तरीकों, उनकी आकांक्षाओं और उनके उन्माद, उनकी व्याकुलता और उनके उन्माद को शांत करने के लिए मन के बंधन हैं; ये सही मार्ग पर ले जाने और निर्वाण की प्राप्ति के लिए हैं।"

तब तथागत उन्हें और अनुशासन सिखाते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो, परन्तु शरीर से संबंधित विचारों में मत उलझो; भावनाओं में भावनाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो... मन में मन का चिंतन करते हुए... मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो, परन्तु मानसिक अवस्थाओं से संबंधित विचारों में मत उलझो।'

झाना

प्रारंभिक और विवेचनात्मक विचारों को शांत करके, मन को शांत और एक बिंदु पर स्थिर करके, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह ध्यान आरंभिक और विवेचनात्मक विचारों से रहित होता है, एकाग्रता से उत्पन्न होता है और आनंदमय होता है। आनंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, एकाग्रता और स्पष्ट चेतना के साथ रहता है और अपने भीतर उस आनंद का अनुभव करता है जिसके बारे में आर्य कहते हैं: 'आनंदमय जीवन वह है जो समभाव और सचेत है,' और वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। आनंद से मुक्ति पाकर, पीड़ा से मुक्ति पाकर, अपने पूर्व सुखों और दुखों के कम होने से, वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें न तो पीड़ा है और न ही आनंद, और जो समभाव और सचेतता से पूर्णतः शुद्ध है।

(तीन ज्ञान, ते-विज्जा)

(1. पूर्व निवासों की स्मृति)

फिर इस प्रकार शांत, पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः स्पष्ट, दोषरहित, अपवित्र, लचीला और क्रियाशील, स्थिर, अचल मन से वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान और स्मरण की ओर लगाता है: वह अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, जैसे: एक जन्म, दो जन्म, तीन... चार... पाँच... दस... बीस... तीस... चालीस... पचास... सौ... हज़ार... एक लाख जन्म, और अनेक युगों का एकीकरण और अनेक युगों का विघटन और अनेक युगों का एकीकरण-विघटन: 'मेरा नाम ऐसा था, मेरा कुल ऐसा था, मेरा रंग ऐसा था, मेरा पालन-पोषण ऐसा हुआ, मुझे ऐसे सुख और दुख के अनुभव हुए, और मेरा जीवनकाल ऐसा ही समाप्त हुआ।' इससे आगे बढ़कर मैं एक अन्य अवस्था में आया जहाँ मेरा नाम ऐसा था, मेरा कुल ऐसा था, मेरा रंग ऐसा था, मेरा पालन-पोषण ऐसा हुआ, मुझे ऐसे सुख और दुख के अनुभव हुए, और मेरा जीवनकाल ऐसा ही समाप्त हुआ। इससे आगे बढ़कर मैं उठा। 'यहाँ।' इस प्रकार वह अपने विभिन्न पूर्व निवासों को उनके सभी स्वरूपों और विवरणों के साथ याद करता है।

(2. दिव्य दृष्टि)

फिर शांत, पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः स्पष्ट, दोषरहित, अपवित्र, लचीले और क्रियाशील, स्थिर, अचल मन से वह अपने मन को प्राणियों के जन्म और मृत्यु के ज्ञान की ओर लगाता है। मनुष्यों की दृष्टि से श्रेष्ठ शुद्ध देव-दृष्टि से वह प्राणियों को जन्म लेते या जन्म लेते हुए देखता है; वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के फल के अनुसार नीच, श्रेष्ठ, सुंदर, कुरूप, सुखी और दुष्ट होते हैं, तब वह सोचता है: वास्तव में ये योग्य प्राणी, जो शरीर से कुकर्म से ग्रस्त थे, वाणी से कुकर्म से ग्रस्त थे, विचार से कुकर्म से ग्रस्त थे, आर्यों का उपहास करते हैं, जो गलत मत रखते हैं और गलत मत के फलस्वरूप कर्म करते हैं - ये मरने के बाद शरीर के विखंडन से दुखी अवस्था में, बुरे जन्म में, पाताल में, निरय में उत्पन्न हुए हैं। परन्तु ये योग्य प्राणी, जो शरीर से अच्छे आचरण से ग्रस्त थे, जो लोग अच्छे आचरण वाले थे, जिन्होंने आर्यों का उपहास नहीं किया, सही दृष्टिकोण रखते थे, और सही दृष्टिकोण के फलस्वरूप कर्म करते थे, वे मरने के बाद शरीर के विखंडन पर एक अच्छे जन्म, स्वर्ग लोक में उठे हैं।

(3. कैंकर का नाश: संतत्व)

फिर शांत मन से... अविचल होकर, वह अपने मन को दोषों के नाश के ज्ञान की ओर लगाता है।5 वह यथार्थ को समझता है: यह पीड़ा है,6 यह पीड़ा का उद्भव है, यह पीड़ा का निवारण है, यह पीड़ा निवारण का मार्ग है। वह यथार्थ को समझता है: ये दोष हैं, यह दोषों का उद्भव है, यह दोषों का निवारण है, यह दोषों के निवारण का मार्ग है। इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका मन इंद्रिय सुखों के दोष से मुक्त हो जाता है, जन्म के दोष से मुक्त हो जाता है, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। मुक्ति में उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: मैं मुक्त हो गया हूँ; और वह समझता है: जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्म-यात्रा समाप्त हो गई है, जो करना था वह हो गया है, अष्टम-अष्टम का कोई अस्तित्व नहीं है।

वह भिक्षु सिरदर्द, सर्दी, भूख, प्यास, मच्छरों, मक्खियों, हवा, धूप और रेंगने वाले जीवों के स्पर्श, अपशब्दों और अप्रिय वाणी को सहन करने में सक्षम है; वह शारीरिक संवेदनाओं को सहने में सक्षम है जो उत्पन्न होने पर पीड़ादायक, तीव्र, तीक्ष्ण, गंभीर, दयनीय, दुखद और घातक होती हैं। आसक्ति, घृणा और भ्रम की सभी अशुद्धियों से मुक्त होकर, वह आहुति, भेंट, सम्मान और श्रद्धा के योग्य है, संसार में अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।

हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी वृद्धावस्था में, अनियंत्रित और अप्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उस बूढ़े हाथी को अनियंत्रित हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी युवावस्था में, अनियंत्रित और अप्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उस युवा हाथी को अनियंत्रित हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु रोगमुक्त रहते हुए मर जाता है, तो उस वरिष्ठ भिक्षु को अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि कोई नवदीक्षित भिक्षु रोगमुक्त रहते हुए मर जाता है, तो उस नवदीक्षित भिक्षु को अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी वृद्धावस्था में, अच्छी तरह से प्रशिक्षित और प्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उसे अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। प्रशिक्षित होने के बावजूद, राजा के बूढ़े हाथी की मृत्यु को पालतू हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, अधेड़ उम्र के राजा के हाथी के लिए भी यही नियम लागू होता है। और इसी प्रकार, यदि राजा का युवा, अच्छी तरह से प्रशिक्षित हाथी मर जाता है, तो उस युवा हाथी की मृत्यु को पालतू हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, यदि किसी वरिष्ठ भिक्षु की मृत्यु उसके सारे रोग सुलझ जाने के बाद हो जाती है, तो उस वरिष्ठ भिक्षु की मृत्यु को पालतू भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, अधेड़ उम्र के भिक्षु के लिए भी यही नियम लागू होता है। और इसी प्रकार, यदि किसी नवदीक्षित भिक्षु की मृत्यु उसके सारे रोग सुलझ जाने के बाद हो जाती है, तो उस नवदीक्षित भिक्षु की मृत्यु को पालतू भिक्षु के रूप में गिना जाता है।

इस प्रकार भगवान ने कहा। भगवान की कही बात सुनकर नवोदित अचिरावता प्रसन्न हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 13.6भूमिजा सुत्त(126)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

फिर, सुबह सवेरे, पूज्य भूमिजा ने अपने वस्त्र धारण किए और अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार जयसेना के निवास पर गए।1 वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। राजकुमार जयसेना पूज्य भूमिजा के पास गए और उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य भूमिजा से कहा... भूमिजा, "गुरु भूमिजा, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस शिक्षा का समर्थन करते हैं, इस मत का समर्थन करते हैं: 'यदि कोई ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है , तो परिणाम की कामना करने पर भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई कामना न करने पर भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई कामना करने और न करने दोनों स्थितियों में भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई न तो कामना करने और न ही न करने की स्थिति में भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते।'2 इस संबंध में, गुरु भूमिजा के गुरु क्या कहते हैं, उनका क्या मत है, वे क्या घोषणा करते हैं?"

"मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, हे राजकुमार, मैंने यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं की है, परन्तु संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें: 'यदि कोई पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, तो परिणाम की कामना करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। यदि कोई पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा न करने पर भी... कामना करने पर भी और इच्छा न करने पर भी... न तो इच्छा करने पर भी और न ही इच्छा न करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। [परन्तु] यदि कोई पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है। यदि कोई पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा न करने पर भी... कामना करने पर भी और इच्छा न करने पर भी... न तो इच्छा करने पर भी और न ही इच्छा न करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है।" मैंने यह बात भगवान बुद्ध से आमने-सामने नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात भगवान बुद्ध से आमने-सामने प्राप्त हुई है, लेकिन यह संभव है कि भगवान बुद्ध इस तरह से उत्तर दें।"

"यदि मास्टर भूमिजा के गुरु का यही कहना है, यदि यही उनका मत है, यदि यही उनकी घोषणा है, तो हाँ, मास्टर भूमिजा के गुरु ने मानो उन सभी पुजारियों और ध्यानियों को सिर से मारकर गिरा दिया है।"

इसके बाद राजकुमार जयसेना ने आदरणीय भूमिजा को अपने द्वारा तैयार किए गए दूध-चावल के व्यंजन परोसे।

फिर पूज्य भूमिजा ने भोजन करने के बाद, भिक्षाटन से लौटकर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अभी सुबह-सुबह मैंने अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार जयसेना के निवास पर गया। वहाँ पहुँचकर मैं एक तैयार आसन पर बैठ गया। फिर राजकुमार जयसेना मेरे पास आए और मेरा अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने मुझसे कहा, 'गुरु भूमिजा, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस शिक्षा का समर्थन करते हैं, इस मत का समर्थन करते हैं: "यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का अनुसरण करता है, चाहे उसने किसी इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो उसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।" इस संबंध में गुरु भूमिजा के गुरु क्या कहते हैं, उनका क्या मत है, वे क्या घोषणा करते हैं?'

जब यह कहा गया, तो मैंने राजकुमार जयसेना से उत्तर दिया, 'राजकुमार, मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई है, लेकिन संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें: "यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, चाहे उसने इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। [परन्तु] यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, चाहे उसने इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है।" मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई है, लेकिन संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें।'

"'यदि मास्टर भूमिजा के गुरु का यही कहना है, यदि यही उनका मत है, यदि यही उनकी घोषणा है, तो हाँ, मास्टर भूमिजा के गुरु ने मानो उन सभी पुजारियों और ध्यानियों को सिर से मारकर गिरा दिया है।'

"हे भगवान, इस प्रकार पूछे जाने पर क्या मैं इस प्रकार उत्तर दे रहा हूँ? क्या मैं भगवान बुद्ध के वचनों के अनुरूप बोल रहा हूँ? क्या मैं भगवान बुद्ध का असत्य वर्णन तो नहीं कर रहा हूँ? क्या मैं धर्म के अनुरूप उत्तर दे रहा हूँ ताकि धर्म के अनुरूप विचार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को मेरी आलोचना करने का कोई आधार न मिले?"

"निश्चित रूप से, भूमिजा, इस प्रकार पूछे जाने पर इस प्रकार उत्तर देकर आप मेरे कहे अनुसार ही बोल रहे हैं, आप मुझे असत्य बातों से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, और आप धम्म के अनुरूप उत्तर दे रहे हैं ताकि धम्म के अनुरूप चिंतन करने वाले किसी भी व्यक्ति को आपकी आलोचना करने का कोई आधार न मिले। गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त किसी भी पुरोहित या ध्यानी के लिए: यदि वे कर्मों की इच्छा करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यदि वे इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यदि वे न तो इच्छा करते हुए और न ही इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह कर्म प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को तेल की आवश्यकता है, वह तेल की खोज में भटक रहा है, और वह एक टब में बजरी भरकर उसे दबाता है और बार-बार उस पर पानी छिड़कता है। यदि वह बजरी को टब में भरकर उसे दबाता रहे और बार-बार पानी छिड़कता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... चाहे इच्छा की हो या न की हो... या न की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को दूध की आवश्यकता है, वह दूध की तलाश में भटक रहा है और नवजात गाय के सींग को मरोड़ता है। यदि वह नवजात गाय के सींग को तब भी मरोड़ता है जब उसने कोई इच्छा व्यक्त की हो... या बिना इच्छा व्यक्त किए... या इच्छा व्यक्त की हो... या न तो इच्छा व्यक्त की हो और न ही इच्छा व्यक्त की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को मक्खन की आवश्यकता है, वह मक्खन की तलाश में भटक रहा है, और वह एक बर्तन में पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता है। यदि वह किसी इच्छा के साथ, बिना इच्छा के, इच्छा के साथ और बिना इच्छा के, या बिना इच्छा के, दोनों ही स्थितियों में बर्तन में पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता रहे, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को आग की आवश्यकता है, वह आग की तलाश में भटक रहा है, और वह एक जलती हुई लकड़ी को गीली और रसदार लकड़ी पर रगड़ता है। यदि वह जलती हुई लकड़ी को गीली और रसदार लकड़ी पर रगड़े, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

लेकिन सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न किसी भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए: यदि वे इच्छा करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे न तो इच्छा करते हुए और न ही इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह फल प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को तेल की आवश्यकता है, वह तेल की खोज में भटक रहा है, और वह तिल के दानों को एक टब में इकट्ठा करके उन्हें दबाता है और बार-बार पानी छिड़कता है। यदि वह तिल के दानों को एक टब में इकट्ठा करके उन्हें दबाता रहे और बार-बार पानी छिड़कता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त होंगे। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को दूध की आवश्यकता है, वह दूध की तलाश में भटक रहा है और नवजात गाय के थन को मरोड़ता है। यदि वह नवजात गाय के थन को तब भी मरोड़े जब उसने कोई इच्छा व्यक्त की हो... बिना इच्छा व्यक्त किए... इच्छा व्यक्त की हो और बिना इच्छा व्यक्त किए... न तो इच्छा व्यक्त की हो और न ही इच्छा व्यक्त की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को मक्खन की आवश्यकता है, वह मक्खन की तलाश में भटक रहा है, और वह एक बर्तन में दही पर पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता है।3 यदि वह किसी बर्तन में दही पर पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त होंगे। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को आग की आवश्यकता है, वह आग की तलाश में भटक रहा है, और वह एक आग जलाने वाली लकड़ी लेकर उसे सूखी, रसहीन लकड़ी पर रगड़ता है। यदि वह आग जलाने वाली लकड़ी लेकर उसे सूखी, रसहीन लकड़ी पर रगड़े, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे बिना किसी इच्छा के भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा करने और न करने दोनों स्थितियों में भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे न तो इच्छा करने और न ही न करने की स्थिति में भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

"भूमिजा, यदि ये चारों उपमाएँ राजकुमार जयसेना की उपस्थिति में आपके मन में आई होतीं, तो वे स्वाभाविक रूप से आप पर भरोसा करते और - भरोसा महसूस करते हुए - आप पर अपना भरोसा दिखाते।"

"परन्तु, भगवान, राजकुमार जयसेना की उपस्थिति में ये चार उपमाएँ मेरे मन में कैसे आ सकती थीं, क्योंकि ये तो भगवान बुद्ध के लिए स्वाभाविक हैं और उनसे पहले कभी नहीं सुनी गई हैं?"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य भूमिजा ने भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 13.7अनुरुद्ध सुत्त(127)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान अनुराधा सावती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। बढ़ई पंचकंग ने एक व्यक्ति को बुलाया और कहा, 'हे जन, आदरणीय अनुराधा के पास आओ और उन्हें मेरी ओर से कहो कि मैं उनके चरणों की पूजा करता हूँ और यह भी कहो कि आदरणीय अनुराधा कल तीन अन्य लोगों के साथ भोजन ग्रहण करें। आदरणीय अनुराधा यथाशीघ्र आएँ। बढ़ई पंचकंग व्यस्त है, राजा के काम के साथ-साथ उसके पास बहुत काम है।' उस व्यक्ति ने सहमति जताते हुए आदरणीय अनुराधा के पास जाकर उनके चरणों की पूजा की, एक तरफ बैठ गया और कहा, 'बढ़ई पंचकंग आदरणीय अनुराधा के चरणों की पूजा करता है और यह भी कहता है कि आदरणीय अनुराधा कल तीन अन्य लोगों के साथ भोजन ग्रहण करें। आदरणीय अनुराधा यथाशीघ्र आएँ। बढ़ई पंचकंग व्यस्त है, राजा के काम के साथ-साथ उसके पास बहुत काम है।' आदरणीय अनुराधा ने मौनपूर्वक स्वीकार किया। उस रात के अंत में, आदरणीय अनुराधा ने वस्त्र धारण किए और पान-पात्र तथा वस्त्र लेकर बढ़ई पंचकंगा के घर गए और तैयार आसन पर बैठ गए। तब बढ़ई ने अपने हाथों से आदरणीय अनुराधा को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे। भोजन समाप्त होने और पान-पात्र रखने के बाद, बढ़ई एक नीचा आसन लेकर एक तरफ बैठ गया और इस प्रकार बोला, 'आदरणीय महोदय, जब मैं वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गया, तो उन्होंने कहा, 'गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति का विकास करो।' एक अन्य ने कहा, 'गृहस्थ, मन की महान मुक्ति का विकास करो। आदरणीय महोदय, मन की असीम मुक्ति और मन की महान मुक्ति, क्या अर्थ और शब्दों में भिन्न हैं या अर्थ और शब्दों में एक ही हैं?'

'तो गृहस्थ, जैसा तुम्हें समझ में आए, समझाओ।'

'आदरणीय महोदय, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मन की असीम मुक्ति और महान मन की मुक्ति अर्थ में एक ही हैं, लेकिन शब्दों में भिन्न हैं।'

'गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति और महान मन की मुक्ति अर्थ और शब्दों दोनों में भिन्न हैं।'

गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति क्या है? यहाँ भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होते हैं। साथ ही, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, प्रेम और करुणा के विचारों से संपूर्ण जगत में व्याप्त होते

हैं, जो व्यापक, विशाल और असीम हैं, बिना द्वेष और क्रोध के। भिक्षु करुणा, आंतरिक आनंद और समभाव के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होते हैं। साथ ही, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, समभाव से संपूर्ण जगत में व्याप्त होते हैं, जो व्यापक, विशाल और असीम हैं, बिना द्वेष और क्रोध के। गृहस्थ, यही मन की असीम मुक्ति है।

गृहस्थ, महान मन की मुक्ति क्या है? भिक्षु एक वृक्ष की जड़ के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु दो या तीन वृक्षों की जड़ों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु एक गाँव और उसके खेतों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु एक विशाल राज्य के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु दो या तीन विशाल राज्यों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु विशाल सागर से घिरी पृथ्वी में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। गृहस्थ, इस विधि में आपको यह जानना चाहिए कि ये बातें अर्थ और शब्दों में कैसे भिन्न हैं।

गृहस्थ, अस्तित्व के चार प्रकार होते हैं। वे चारों क्या हैं? गृहस्थ, एक व्यक्ति सीमित प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह सीमित प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति असीम प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह असीम प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति अशुद्ध प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह अशुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति शुद्ध प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह शुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है।

एक समय ऐसा आता है जब ये सभी देवता एकत्रित होते हैं। एकत्रित देवताओं में विविधतापूर्ण सौंदर्य तो स्पष्ट होता है, लेकिन उनकी चमक नहीं। जैसे किसी व्यक्ति ने अपने घर में बहुत सारे तेल के दीपक जलाए हों। उन तेल के दीपकों की अलग-अलग लौ तो स्पष्ट होती है, लेकिन उनकी चमक नहीं। उसी प्रकार, हे गृहस्थ, एक समय ऐसा आता है जब ये सभी देवता एकत्रित होते हैं। एकत्रित देवताओं में विविधतापूर्ण सौंदर्य तो स्पष्ट होता है, लेकिन उनकी चमक नहीं। हे गृहस्थ, उन देवताओं को यह बात समझ नहीं आती। हम शाश्वत हैं, अनंत काल तक बने रहेंगे। फिर भी वे जहाँ भी निवास करते हैं, वहीं आनंद लेते हैं। जैसे मक्खियाँ सोचती नहीं हैं, कि जो हम खाते-पीते और ले जाते हैं वह शाश्वत है। फिर भी वे जहाँ भी बसती हैं, वहीं आनंद लेती हैं। हे गृहस्थ, उसी प्रकार उन देवताओं को यह बात समझ नहीं आती। हम शाश्वत हैं, अनंत काल तक बने रहेंगे। फिर भी वे जहाँ भी निवास करते हैं, वहीं आनंद लेते हैं...

यह सुनकर पूज्य अभियो कच्चानो ने पूज्य अनुराधा से कहा, "धन्यवाद पूज्य अनुराधा, मेरा एक प्रश्न है। क्या सभी तेज वाले देवता सीमित तेज वाले होते हैं या कुछ देवता असीमित तेज वाले भी होते हैं?"

'नियमानुसार कुछ देवता सीमित प्रकाश वाले होते हैं और कुछ असीमित प्रकाश वाले।'

'मित्र अनुराद्ध, एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ सीमित तेज वाले और कुछ असीमित तेज वाले क्यों हैं?'

'मित्र कच्चाना, मैं इस विषय पर तुमसे ही प्रश्न पूछता हूँ, और तुम अपनी इच्छानुसार उत्तर दे सकते हो। वह भिक्षु जिसने वृक्ष की एक जड़ में लीन होकर साधना की और दूसरा जिसने वृक्ष की दो या तीन जड़ों में लीन होकर साधना की, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, वृक्षों की दो या तीन जड़ों में लीन होकर साधना करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास वृक्ष की एक ही जड़ में लीन होकर साधना करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जो दो या तीन वृक्षों की जड़ों में लीन रहा और वह भिक्षु जो एक ही गाँव और उसके खेतों में लीन रहा, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, एक गाँव और उसके खेतों में लीन रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास दो या तीन वृक्षों की जड़ों में लीन रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने एक गाँव और उसके खेतों में व्याकुलता की और वह भिक्षु जिसने दो या तीन गाँवों और उनके खेतों में व्याकुलता की, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन गांवों और उनके खेतों में व्याप्त होकर साधना करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास, एक गांव और उसके खेतों में व्याप्त होकर साधना करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने दो-तीन गांवों और उनके खेतों में व्याकुलता की और वह भिक्षु जिसने एक विशाल राज्य में व्याकुलता की, इन दोनों में से किसकी मानसिक उन्नति श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, एक विशाल राज्य में विचरण करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास दो या तीन गांवों और उनके खेतों में विचरण करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने एक महान राज्य में व्याकुलता का अभ्यास किया और वह भिक्षु जिसने दो या तीन महान राज्यों में व्याकुलता का अभ्यास किया, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन महान राज्यों में व्याप्त रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास एक महान राज्य में व्याप्त रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने दो या तीन महान राज्यों में व्याकुलता का अभ्यास किया और वह भिक्षु जिसने विशाल सागर से घिरी पृथ्वी पर व्याकुलता का अभ्यास किया, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन महान राज्यों में व्याप्त रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास एक महान राज्य में व्याप्त रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, यही कारण है कि एक ही श्रेणी में जन्मे देवताओं में से कुछ देवताओं की चमक सीमित होती है और दूसरे की असीमित।'

'धन्यवाद आदरणीय महोदय, अनुरुद्ध, मेरा एक और प्रश्न है। क्या सभी देवता अशुद्ध प्रकाश वाले हैं या कुछ देवता शुद्ध प्रकाश वाले भी हैं?'

'नियमानुसार कुछ देवता अशुद्ध प्रकाश वाले होते हैं और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले।'

'मित्र अनुरुद्ध, एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ अपवित्र प्रकाश वाले और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले क्यों हैं?'

'मित्र कच्चाना, मैं तुम्हें एक उपमा दूंगा, क्योंकि एक बुद्धिमान व्यक्ति उपमा को समझ जाता है। मित्र कच्चाना, जलते हुए दीपक में तेल और बाती दोनों अशुद्ध होते हैं। अशुद्ध तेल और बाती के कारण लौ टिमटिमाती हुई जलती है। उसी प्रकार एक भिक्षु अशुद्ध प्रकाश में व्याप्त रहता है, उसमें लिप्त रहता है और उसमें स्थिर रहता है। क्योंकि उसके शारीरिक दुराचार पर पूर्णतः विजय नहीं हुई है, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी और चिंता पर पूर्णतः विजय नहीं हुई है, इसलिए उसका प्रकाश टिमटिमाता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद वह अशुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। मित्र कच्चाना, जलते हुए दीपक में तेल और बाती दोनों शुद्ध होते हैं। शुद्ध तेल और बाती के कारण लौ बिना टिमटिमाए जलती है। उसी प्रकार एक भिक्षु शुद्ध प्रकाश में व्याप्त रहता है, उसमें लिप्त रहता है और उसमें स्थिर रहता है।' क्योंकि उसके शारीरिक दुराचार पर पूर्णतः विजय प्राप्त हो चुकी है, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी और चिंता का पराक्रम समाप्त हो चुका है, इसलिए उसका प्रकाश अविचल है। शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह शुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है।

हे मित्र कच्चाना, इसी कारण एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ अशुद्ध प्रकाश वाले हैं और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले हैं।

तब पूज्य अभियो कच्चाना ने पूज्य अनुराधा से कहा, 'धन्यवाद पूज्यवर। मित्र अनुराधा, आपने ऐसा नहीं कहा। मैंने यह सुना है, या यह ऐसा होना चाहिए था, लेकिन आपने कहा कि वे देवता इस प्रकार थे। मुझे लगता है कि पूज्य अनुराधा को पहले ही उनके साथ रहना, उनसे बात करना, चर्चा करना और उनका अध्ययन करना चाहिए था।'

'मित्र कच्चाना, तुम प्रशंसा के निकट के शब्द बोल रहे हो, फिर भी मैं तुम्हें समझाऊंगा। अतीत में मैंने इन देवताओं के साथ जीवन व्यतीत किया है, उनके बारे में बात की है, चर्चा की है और उनसे जुड़ाव रखा है।'

तब आदरणीय अभिया कच्चाना ने बढ़ई पंचांग से कहा, 'गृहस्थ, यह बहुत लाभ की बात है, इस प्रवचन को सुनकर हमारे सारे संदेह दूर हो गए।'

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.8 उपक्किलेसा सुत्त(128)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में गोशिता के मठ में निवास करते थे। उस समय कोसंबी के भिक्षुओं में कलह चल रहा था और वे आपस में अपशब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ा कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और खड़े होकर कहा, “हे पूज्यवर, कोसंबी के भिक्षुओं में कलह चल रहा है और वे आपस में अपशब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ा कर रहे हैं। यदि भगवान बुद्ध करुणावश उन भिक्षुओं के पास जाएँ तो अच्छा होगा।” भगवान बुद्ध ने मौन रहकर यह बात स्वीकार की और उन भिक्षुओं के पास जाकर कहा, “भिक्षुओं, झगड़ा करना और अपशब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और आपस में विवाद न करो।”

जब ऐसा कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध यहीं और अभी प्रसन्न रहें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।”

दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, झगड़ा करना, कठोर शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और विवाद न करो।'

जब यह बात दूसरी बार कही गई तो उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “आदरणीय महोदय, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध यहीं और अभी प्रसन्नता में निवास करें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।”

तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, झगड़ा करना, कठोर शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और विवाद न करो।'

जब यह बात तीसरी बार कही गई तो उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “आदरणीय महोदय, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध अभी और यहीं प्रसन्नता में रहें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।”

फिर भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कोसंबी में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद जब भोजन समाप्त हो गया, तो उन्होंने निवास स्थान को व्यवस्थित किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर खड़े होकर ये श्लोक कहे।

मूर्ख लोग आम राय पर ध्यान नहीं देते, सच्चाई यह है कि जब समाज बँट जाएगा तो कुछ भी नहीं बचेगा। मुख्य उद्देश्य को भूलकर वे उससे आगे बढ़ जाते हैं और बुद्धिमानों की बात नहीं सुनते। मुझे डाँटा जाता है, पीटा जाता है, हराया जाता है और ले जाया जाता है। ऐसे द्वेष रखने वालों की घृणा कभी शांत नहीं होती। मुझे डाँटा जाता है, पीटा जाता है, हराया जाता है और ले जाया जाता है। ऐसे द्वेष न रखने वालों की घृणा शांत हो जाती है। इस दुनिया में घृणा कभी खत्म नहीं होती। घृणा का अंत घृणाहीनता से होता है, यही प्राचीन ज्ञान है। कुछ लोग नहीं जानते कि हमें इस दुनिया से जाना है। जो इसे जानते हैं, वे अपनी गलतफहमियों को दूर करते हैं। जो अंग काटते हैं, जीवन नष्ट करते हैं, घोड़े, मवेशी और धन लूटते हैं, और देश को भी बर्बाद करते हैं, वे भी पलट जाते हैं। आपके साथ ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए? यदि आपको एक चतुर मित्र, एक बुद्धिमान साथी मिले, तो सभी परेशानियों को पार करते हुए, उसके साथ सचेत रूप से रहें। यदि आपको एक चतुर, बुद्धिमान साथी न मिले, तो साथ रहना, जैसे राजा अपना शासन और देश छोड़कर अकेला, हाथी की तरह सुदूर माटांगा की ओर जाता है। अकेले रहना शानदार है, मूर्खों के साथ कोई संगति नहीं होनी चाहिए। अकेले रहते हुए, बेफिक्र, कोई बुराई नहीं होती। जैसे हाथी सुदूर माटांगा में रहता है।

भगवान बुद्ध खड़े होकर ये श्लोक बोले और बालकलोनाकारा गाँव की ओर चल दिए। उस समय पूज्य भगु उसी गाँव में रहते थे। दूर से भगवान बुद्ध को आते देख पूज्य भगु ने आसन तैयार किया और चरण धोने के लिए जल रखा। भगवान बुद्ध उस आसन पर बैठे और चरण धोए। पूज्य भगु ने भी भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षु, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन न मिलने के कारण कोई थकान है?' 'पूज्यवर, मैं ठीक हूँ, मुझे भोजन न मिलने के कारण कोई थकान नहीं है।' तब भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया, मार्गदर्शन किया और पूज्य भगु के हृदय को अपने प्रवचनों से हल्का किया और आसन से उठकर पूर्वी राज उद्यान की ओर चल दिए।

उस समय पूज्य अनुराधा, नंदिया और किम्बिला राजसी पूर्वी उद्यान में निवास कर रहे थे। वनपाल ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और कहा, 'हे संन्यासी, इस वन में प्रवेश न करें। यहाँ कुल के तीन पुत्र अपने कल्याण की खोज में निवास कर रहे हैं, उन्हें परेशान न करें।' पूज्य अनुराधा ने वनपाल और भगवान बुद्ध के बीच यह बातचीत सुनी और वनपाल से कहा, 'भगवान बुद्ध को न रोकें, वे हमारे गुरु, भगवान बुद्ध हैं।' पूज्य अनुराधा ने पूज्य नंदिया और किम्बिला को संबोधित करते हुए कहा, 'आओ! पूज्यजनों, हमारे गुरु आ गए हैं।' तब पूज्य अनुराधा, नंदिया और किम्बिला भगवान बुद्ध के पास गए, उनसे पान और वस्त्र ग्रहण किए। एक ने आसन तैयार किया और दूसरे ने उनके चरणों को धोने के लिए जल डाला। भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठे और अपने चरण धोए। वे पूजनीय व्यक्ति भगवान बुद्ध की पूजा करते हुए एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुराधा से कहा, 'अनुराधा, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन की कमी के कारण कोई थकान है?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, हम ठीक हैं, हमें भोजन की कमी के कारण कोई थकान नहीं है।' अनुराधा ने पूछा, 'अनुराधा, क्या तुम दूध और पानी की तरह एक हो, बिना किसी विवाद के मित्रवत हो और एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, हम दूध और पानी की तरह एक हैं, मित्रवत हैं, बिना किसी विवाद के एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हैं।' अनुराधा ने पूछा, 'अनुराधा, तुम दूध और पानी की तरह एक कैसे हो, मित्रवत हो, बिना किसी विवाद के एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, मेरे मन में यह विचार आता है कि ऐसे सहपाठियों के साथ पवित्र जीवन जीना मेरे लिए लाभदायी है। इसलिए मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। मैं इन आदरणीयों के प्रति मौखिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ।' इन पूजनीय व्यक्तियों के प्रति प्रेम और दया की भावना रखते हुए, कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लेता हूँ। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, परन्तु मन से एक हैं।

आदरणीय नंदिया और आदरणीय किंबिला ने भी भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आता है कि ऐसे सहचरों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करना मेरे लिए लाभदायी है। अतः मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण कर्म करता हूँ। मैं खुलेआम और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। मैं खुलेआम और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का भी प्रयोग करता हूँ। कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन आदरणीयों के विचारों को अपना लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन आदरणीयों के विचारों को अपना लूँगा। आदरणीय महोदय, हम शरीर से भिन्न हैं, पर मन से एक हैं।"

आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम दूध और पानी की तरह एक साथ, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहते हैं। अच्छा, अनुराधा, क्या तुम भी निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जी हाँ, हम निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हैं। अनुराधा, तुम निर्वाह निवारण के लिए लगन से कैसे जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जो भी गाँव से सबसे पहले आता है, वह भोजन इकट्ठा करने के बाद बैठने की व्यवस्था करता है, पीने और धोने के लिए पानी देता है और थूकदान रखता है। जो भी गाँव से सबसे अंत में आता है, वह यदि चाहे तो बचे हुए भोजन को ग्रहण करता है, यदि नहीं तो उसे ऐसी जगह फेंक देता है जहाँ कुछ भी न उगता हो, या ऐसे पानी में डाल देता है जहाँ कोई जीव-जंतु न हों। वह बैठने की व्यवस्था और पानी के बर्तनों को समेटता है, थूकदानों को धोता है और भोजनालय की सफाई करता है। जो भी पीने, धोने या शौचालय के पानी के बर्तनों को खाली देखता है, उन्हें भर देता है। यदि वह इसे उठाने में असमर्थ पाता, तो हाथ के इशारे से दूसरे को बुला लेता। इस कारण एक शब्द भी नहीं बोलता। हर पाँचवें दिन हम रात भर बैठकर शिक्षा के किसी विषय पर चर्चा करते। आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम उपदेशों के निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं। शाबाश, अनुराधा, तुम उपदेशों के निवारण के लिए तल्लीन रहते हो। क्या तुमने कोई विशिष्ट ज्ञान, मनुष्य से परे कोई सुखद निवास प्राप्त कर लिया है?

'आदरणीय महोदय, जब हम सचेत होकर उस अंधकार को दूर करने का प्रयास कर रहे थे, तब हमें प्रकाश और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वह प्रकाश और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं और हम उस संकेत को समझ नहीं पाए।'

अनुरुद्ध, उस संकेत को समझना चाहिए। पहले जब मैं ज्ञान की खोज कर रहा था, तब मैंने भी तेज और सुंदर रूप देखे थे, और वे पल भर में गायब हो गए। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मेरे मन में संदेह उत्पन्न हो गए थे। संदेह के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने उन्हें दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। तेज और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मेरा ध्यान भटक गया था। ध्यान न देने के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह और ध्यान फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने ध्यानपूर्वक ध्यान लगाकर इन संदेहों को दूर करने का प्रयास किया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें आलस्य और सुस्ती आ गई थी। आलस्य और सुस्ती के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी और आलस्य और सुस्ती फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने लगन से इन आलस्य और सुस्ती को दूर करने का प्रयास किया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। पल भर में ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें भय उत्पन्न हो गया था। भय के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति राजमार्ग पर दोनों ओर से हत्यारों से घिरा हो, तो दोनों ओर भय उत्पन्न हो जाता है। उसी प्रकार मुझमें भी भय उत्पन्न हो गया। भय के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती और भय पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने भय को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। क्षण भर में ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें उल्लास उत्पन्न हो गया था। उल्लास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति एक खजाने की खोज में एक साथ पाँच खजाने पा लेता है, वैसे ही मुझमें उल्लास उत्पन्न हो गया। उल्लास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय और उल्लास फिर से उत्पन्न न हों। जब मैं इन भावनाओं को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगा रहा था, तब मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। क्षण भर में ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें बुराई उत्पन्न हो गई है। बुराई के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय, उल्लास और बुराई पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने इन बुराइयों को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। पल भर में ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें अत्यधिक परिश्रम उत्पन्न हो गया था। इस अत्यधिक परिश्रम के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति दोनों हाथों से ठेला कसकर पकड़े रहता है, तो वह उसके साथ ही मर जाता है। उसी प्रकार अनुराद्ध, मुझमें अत्यधिक परिश्रम उत्पन्न हो गया था। इस अत्यधिक परिश्रम के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संशय, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय, उल्लास, दुष्टता और अत्यधिक परिश्रम पुनः उत्पन्न न हों। जब मैं इन संशयों को दूर करने के लिए तल्लीन था, तब मुझे मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मैंने कम प्रयास किया था। कम प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति हाथगाड़ी को ढीला छोड़ देता है, वैसे ही अनुरुद्ध, मेरे भीतर भी कम प्रयास उत्पन्न हुआ था। कम प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, न अधिक प्रयास और न कम प्रयास, ये सब फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने इन विकारों को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं।

तब मुझे यह बात समझ में आई। मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मैं जानता था कि मैं बहुत अधिक प्रयास कर रहा था। अत्यधिक प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक प्रयास, अल्प प्रयास और अत्यधिक प्रयास पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने इन सभी को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। इन अनुभूतियों के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संशय, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अति प्रयास, अल्प प्रयास, अति प्रयास और अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ पुनः उत्पन्न न हों।

जब मैंने सचेत होकर इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया, तो मुझे प्रकाश और सुंदर रूप दिखाई दिए। क्षण भर में ही वे प्रकाश और सुंदर रूप लुप्त हो गए। तब मेरे मन में यह प्रश्न आया कि मेरा प्रकाश और सुंदर रूप क्यों लुप्त हो गए? मुझे पता चला कि रूपों के बारे में अधिक सोचने के कारण ऐसा हुआ था। रूपों के बारे में अधिक सोचने के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही प्रकाश और सुंदर रूप लुप्त हो गए। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक प्रयास, कम प्रयास, अत्यधिक संघर्ष, विभिन्न धारणाएँ और रूपों के बारे में अधिक सोचना फिर से उत्पन्न न हों।

अनुराधा, मैंने जाना कि संशय मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि असावधानी मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि आलस्य और सुस्ती मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि भय मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि उल्लास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि दुष्टता मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि अत्यधिक प्रयास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि कम प्रयास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि विभिन्न धारणाएँ मन के छोटे-छोटे दोष हैं और मैंने उन्हें दूर किया। मैंने जाना कि रूपों के बारे में अत्यधिक सोचना मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया।

जब मैं रात भर, दिन भर और रात-दिन ध्यान लगाकर विवशता में था, तब मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई दिए। मुझे असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई दिए। मेरे मन में यह प्रश्न आया। इसका क्या कारण है कि रात भर, दिन भर और रात-दिन, मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई देते हैं, और असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई देते हैं? अनुराधा, मेरे मन में यह प्रश्न आया कि जब मेरी एकाग्रता सीमित होती है, तो मेरा ज्ञान भी सीमित होता है। सीमित ज्ञान के साथ मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई देते हैं। जब मेरी एकाग्रता असीम होती है, तो मेरा ज्ञान भी असीम होता है। असीम ज्ञान के साथ मुझे असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई देते हैं, रात भर, दिन भर और रात-दिन।

अनुरुद्ध, जब ये लघु दोष, जैसे संशय, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक परिश्रम, अल्प परिश्रम, विभिन्न धारणाएँ, रूपों के बारे में अत्यधिक चिंतन, दूर हो गए, तब मुझे यह आभास हुआ कि अब ये लघु दोष दूर हो गए हैं और मुझे तीन प्रकार से एकाग्रता विकसित करनी चाहिए। तब मैंने विचारों और विवेचनात्मक विचारों के साथ एकाग्रता विकसित की। फिर विचारों के बिना, विवेचनात्मक चिंतन के साथ एकाग्रता विकसित की। विचारों के बिना और विवेचनात्मक विचारों के बिना एकाग्रता विकसित की। आनंद के साथ और आनंद के बिना एकाग्रता विकसित की। अंत में समभाव वाली एकाग्रता विकसित की। तब ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई और मुझे पता चला कि मेरा मोक्ष अटल है। यही मेरा अंतिम जन्म है। अब कोई पुनर्जन्म नहीं है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य अनुराधा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.9 बालापंडिता सुत्त(129)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, ये तीन मूर्ख के लक्षण, विशेषताएँ और उपलब्धियाँ हैं। ये तीन क्या हैं? मूर्ख के विचार, वचन और कर्म मूर्खतापूर्ण होते हैं। यदि मूर्ख के विचार, वचन और कर्म मूर्खतापूर्ण न होते, तो ज्ञानी कैसे जानते कि यह अच्छा व्यक्ति मूर्ख है, अयोग्य है? क्योंकि मूर्ख मूर्खतापूर्ण सोचता है, बोलता है और करता है, इसलिए ज्ञानी जानते हैं कि वह मूर्ख है। मूर्ख को यहाँ और अभी तीन प्रकार से अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। भिक्षुओं, यदि मूर्ख भीड़ में हो, गली के कोने पर हो या चौराहे पर हो, और यदि वहाँ के लोग किसी समसामयिक विषय पर चर्चा कर रहे हों, और यदि वह जीवित प्राणियों को नष्ट करे, बिना दी हुई वस्तु ले, यौन दुराचार करे, झूठ बोले और मादक पेय का सेवन करे, तो उसे ये बातें याद आती हैं। ये बातें जो लोग कह रहे हैं, मुझमें भी स्पष्ट हैं। यही वह पहला उदाहरण है जब मूर्ख को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

भिक्षुओं, मूर्ख देखता है कि राजा ने एक अपराधी को पकड़ लिया है और उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी जा रही हैं - कोड़े और चाबुक से पीटा जा रहा है, जंगली रस्सी से कोड़े मारे जा रहे हैं, गंदी छड़ी से कोड़े मारे जा रहे हैं, हाथ काटे जा रहे हैं, पैर काटे जा रहे हैं, या दोनों हाथ और पैर काटे जा रहे हैं, कान और नाक काटे जा रहे हैं, उबलते दलिया के बर्तन में डाला जा रहा है, सिर मुंडवाया जा रहा है, राहु के मुँह में डाला जा रहा है, जलती हुई माला पहनाई जा रही है, हाथ झुलसाए जा रहे हैं, छाल के वस्त्र पहनाए जा रहे हैं, साँपों के साथ रखा जा रहा है, शरीर में हुक चुभोए जा रहे हैं, शरीर से मांस के टुकड़े काटे जा रहे हैं, कान से कान तक कील ठोंकी जा रही है, शरीर को भूसे जैसा बना दिया जा रहा है, उबलते तेल में डुबोया जा रहा है, कुत्तों को खाने के लिए दिया जा रहा है, जीवित ही कील पर लटकाकर मृत्यु तक पहुँचाया जा रहा है, और तलवार से गर्दन काटी जा रही है। भिक्षुओं, तब मूर्ख के मन में यह विचार आता है कि इस लुटेरे, इस दुष्ट को बुराई करने के कारण दंडित किया जा रहा है। यदि राजा मुझे पकड़ ले, तो मुझे भी इन्हीं दंडों का सामना करना पड़ेगा। यह दूसरी बार है जब मूर्ख को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, जब मूर्ख व्यक्ति कुर्सी पर, पलंग पर या ज़मीन पर बिछे कंबल पर आराम कर रहा होता है, तो वह अपने देह, वाणी और मन के कुकर्मों के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये कुकर्म उसे भारी बोझिल कर देते हैं। जैसे किसी विशाल पर्वत शिखर की छाया शाम के समय धरती पर भारी पड़ती है। इसी प्रकार, जब मूर्ख व्यक्ति कुर्सी पर, पलंग पर या ज़मीन पर बिछे कंबल पर आराम कर रहा होता है, तो वह अपने देह, वाणी और मन के कुकर्मों के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये कुकर्म उसे भारी बोझिल कर देते हैं। हे भिक्षुओं, तब मूर्ख व्यक्ति के मन में यह विचार आता है, “मैंने पुण्य कर्म नहीं किए। भयभीत लोगों का भय नहीं दूर किया, घिनौने पाप किए और बाद में मुझे उनका फल भोगना पड़ेगा।” वह शोक करता है, विलाप करता है, सीना पीटता है और मन व्याकुल हो जाता है। हे भिक्षुओं, यह तीसरी बार है जब मूर्ख व्यक्ति को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

भिक्षुओं, शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करने वाला मूर्ख व्यक्ति मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर नर्क में जन्म लेता है। यह कहना उचित होगा कि नर्क अत्यंत अप्रिय और अप्रिय है। उस अप्रियता की तुलना किसी अन्य शब्द से नहीं की जा सकती।

तब एक भिक्षु ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या कोई तुलना करना संभव है?'

भगवान बुद्ध ने कहा, “यह संभव है, भिक्षु। एक दुष्ट, एक लुटेरे को पकड़कर राजा के सामने लाया जाता है और उससे कहा जाता है, ‘हे महाराज, यह एक लुटेरा है, एक दुष्ट है, इसे उचित दंड दीजिए।’ तब राजा कहते, ‘हे स्वामी, इसे सुबह छह हजार कोड़े मारिए।’ उसे सुबह छह हजार कोड़े मारे जाते हैं। दोपहर में राजा पूछते, ‘हे स्वामी, वह कैसा है?’ ‘हे महाराज, वह पहले जैसा ही जीवित है।’ तब राजा कहते, ‘हे स्वामी, इसे दोपहर में छह हजार कोड़े मारिए।’ उसे दोपहर में छह हजार कोड़े मारे जाते हैं। शाम को राजा पूछते, ‘हे स्वामी, वह कैसा है?’ ‘हे महाराज, वह पहले जैसा ही जीवित है।’ तब राजा कहते, ‘हे स्वामी, इसे शाम में छह हजार कोड़े मारिए।’ उसे शाम में छह

हजार कोड़े मारे जाते हैं। भिक्षुओं, क्या वह व्यक्ति जिसे दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारे जाएं, उसे कष्ट और अप्रसन्नता महसूस होगी?'

'अगर उसे साठ कोड़े भी मारे जाएं, तो भी वह असहज और असंतुष्ट महसूस करेगा, तो फिर दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारे जाने पर क्या ही कहा जाए।'

तब भगवान बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में समा सकने वाला एक छोटा पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आकार में कौन बड़ा है, मेरी मुट्ठी में रखा पत्थर या हिमालय पर्वत?'

'आदरणीय महोदय, आपकी मुट्ठी में रखा पत्थर महान हिमालय के समर्थ, एक चौथाई भी नहीं, और न ही उसका प्रतीक है।'

'इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारने से होने वाली पीड़ा और कष्ट की तुलना न तो नरक में होने वाली पीड़ा और कष्ट से की जा सकती है, न ही उसके एक चौथाई के बराबर, और न ही उसके सादृश्य के समान। नरक के रक्षक उसे पंचांग का बंधन देते हैं।'

यानी उसके दोनों हाथों की हथेलियों में दो-दो गर्म लोहे की कीलें चुभो दी जाती हैं, उसके दोनों पैरों में दो-दो गर्म कीलें चुभो दी जाती हैं और पाँचवीं गर्म लोहे की कील उसकी छाती में चुभो दी जाती है। इसके कारण उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका दोष समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे ले जाते हैं और उस पर हथौड़े बरसाते हैं। इस कारण उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे उल्टा लटकाकर चाकू से काटते हैं। इस वजह से भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे एक गाड़ी में जोतकर धधकती हुई ज़मीन पर आगे-पीछे दौड़ाते हैं। इस कारण भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे जलते हुए अंगारों की चट्टान पर चढ़ाते और उतारते हैं। इस कारण उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे उबलते हुए, धधकते हुए पिघले हुए मदिरा के बर्तन में उल्टा फेंक देते हैं। वहाँ वह पिघले हुए मदिरा में पक जाता है, और वह स्वयं ही उसमें डुबकी लगाता है, ऊपर आता है और पिघले हुए बर्तन में इधर-उधर घूमता है। इस कारण भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे महानर में फेंक देते हैं। भिक्षुओं, महानर वर्गाकार है और इसके चार द्वार हैं। यह दो भागों में बंटा हुआ है और लोहे की दीवार से घिरा हुआ है। इसका ऊपरी भाग लोहे के ढक्कन से बंद है। इसका फर्श सात सौ मील तक फैला हुआ है और यह प्रतिदिन वहीं रहता है।

मैं नरक की अप्रियता को कई तरीकों से समझा सकता हूँ, फिर भी उस अप्रियता को पूरी तरह से समझाना आसान नहीं है।

भिक्षुओं, कुछ प्राणी चार पैरों पर चलते हैं और सूखी या गीली घास को अपने दाँतों से पीसकर खाते हैं। ऐसे प्राणी कौन हैं? वे घोड़े, गाय, गधे, बकरी, हिरण या कोई अन्य जानवर हैं जो चार पैरों पर चलते हैं और घास खाते हैं। स्वाद के लालच में मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद चार पैरों वाले प्राणियों की संगति में जन्म लेते हैं और घास खाते हैं।

भिक्षुओं, कुछ ऐसे जानवर होते हैं जो मल खाते हैं। वे मल की गंध सूंघते हुए दौड़ते हैं, यह सोचकर कि उन्हें यह और वह खाने को मिलेगा, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण यज्ञ की गंध सूंघते हुए दौड़ता है, यह सोचकर कि उन्हें यहाँ और यहाँ खाने को मिलेगा। इसी प्रकार मल खाने वाले जानवर मल की गंध सूंघते हुए दौड़ते हैं, यह सोचकर कि उन्हें वह और वह खाने को मिलेगा। भिक्षुओं, मल खाने वाले

जानवर कौन से हैं? वे मुर्गे, सूअर, कुत्ते, लोमड़ी और मल खाने वाले अन्य जानवर हैं। स्वाद के लालच में मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद मल खाने वाले जानवरों की संगति में जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ रेंगने वाले जीव हैं जो अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। भिक्षुओं, वे कौन से रेंगने वाले जीव हैं जो अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं? भृंग, केंचुए, केंचुआ और इसी तरह के अन्य रेंगने वाले जीव अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद अंधेरे में जन्म लेने वालों के साथ जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ जीव जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं... भिक्षुओं, वे कौन से जीव हैं जो जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं? मछलियाँ, कछुए, मगरमच्छ और ऐसे ही अन्य जीव जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद जल में जन्म लेने वालों के साथ ही जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो मल में जन्म लेती हैं, जीती हैं और मरती हैं... भिक्षुओं, वे कौन सी वस्तुएँ हैं जो मल में जन्म लेती हैं, जीती हैं और मरती हैं? सड़ी हुई मछली में, सड़े हुए मांस में, सड़ी हुई रोटी में, गंदे गाँव के तालाब में जन्म लेने वाली वस्तुएँ ही जीवित रहती हैं और मरती हैं। स्वाद के लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद उन्हीं के साथ जन्म लेते हैं जो मल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मरते हैं।

मैं पशु जगत की अप्रियता को कई तरीकों से समझा सकता हूं, फिर भी उस अप्रियता को पूरी तरह से समझाना आसान नहीं है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक छेद वाला हल समुद्र में फेंकता है। पूर्वी हवाओं के साथ वह पश्चिम की ओर और पश्चिमी हवाओं के साथ पूर्व की ओर बह जाता है। उत्तरी हवाओं के साथ वह दक्षिण की ओर और दक्षिणी हवाओं के साथ उत्तर की ओर बह जाता है। फिर समुद्र की गहराई में एक अंधा कछुआ है जो सौ वर्षों के बाद सतह पर आता है। भिक्षुओं, क्या यह कछुआ, जिसकी एक आँख है, अपनी गर्दन हल के फाल में डालकर उसे छेद से जोड़ देगा ताकि उसे प्रकाश दिखाई दे?

'आदरणीय महोदय, ऐसा बहुत लंबे समय के बाद ही होगा।'

भिक्षुओं, यह अधिक संभव है कि एक अंधा कछुआ हल में अपनी गर्दन डालकर और आंख को छेद में फंसाकर प्रकाश देखने की कोशिश करे, बजाय इसके कि नरक में गिरे मूर्ख को मनुष्यत्व प्राप्त हो। इसका कारण क्या है? यहाँ न तो धार्मिक जीवन है, न अच्छा आचरण, न पुण्य, न ही सुखद मन। यहाँ वे एक दूसरे को खा जाते हैं, कमजोर को खा लिया जाता है। भिक्षुओं, यदि मूर्ख बहुत समय बाद मनुष्यत्व प्राप्त भी कर लेता है, तो वह अछूतों, शिकारियों, बांस बुनने वालों, रथ बनाने वालों, कूड़ा बीनने वालों या ऐसे ही अन्य निम्न कुल में जन्म लेता है। गरीब परिवार में जन्म लेने के कारण, जहाँ खाने-पीने और वस्त्र नहीं होते, वह इन्हें बड़ी मुश्किल से प्राप्त करता है। उसका रूप भी सुंदर नहीं होता, उसका शरीर विकृत होता है और वह अनेक रोगों से ग्रस्त होता है, या तो अंधा, विकृत, लंगड़ा या लकवाग्रस्त होता है, या उसे खाने-पीने, वस्त्र, वाहन, फूल, सुगंध, मलहम, पलंग, आवास और प्रकाश नहीं मिलता। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है और मृत्यु के बाद क्षय होकर नरक में जन्म लेता है।

भिक्षुओं, यह उस जुआरी के समान है जो पहली ही चाल में अपने पुत्रों, पत्नी और सारी संपत्ति हार जाता है और आगे भी उसका पीछा किया जाता है। वह दुर्भाग्यपूर्ण चाल जिसके कारण जुआरी अपने पुत्रों, पत्नी और सारी संपत्ति खो देता है, उस मूर्ख से कहीं बेहतर है जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करता है और मृत्यु के बाद नरक में जन्म लेगा। भिक्षुओं, अब मूर्खों के क्षेत्र का पूर्ण वर्णन हो गया है।

भिक्षुओं, ये तीन गुण और उपलब्धियाँ ज्ञानी व्यक्ति के लक्षण हैं। ये तीन क्या हैं? ज्ञानी व्यक्ति कल्याण के लिए सोचता है, अच्छे वचन बोलता है और बुद्धिमानी से कार्य करता है। यदि ज्ञानी व्यक्ति बुद्धिमानी भरे विचारों, वचनों और कर्मों से युक्त न हो, तो ज्ञानी लोग कैसे जानेंगे कि यह व्यक्ति ज्ञानी है, योग्य है? क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति बुद्धिमानी से सोचता है, बोलता है और कार्य करता है, इसलिए ज्ञानी लोग उसे ज्ञानी के रूप में पहचानते हैं। ज्ञानी व्यक्ति को यहाँ और अभी तीन प्रकार से सुख और आनंद का अनुभव होता है। भिक्षुओं, यदि ज्ञानी व्यक्ति किसी भीड़ में हो, किसी गली के कोने या चौराहे पर हो, और यदि वहाँ के लोग किसी समसामयिक विषय पर चर्चा कर रहे हों, और यदि वह जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करे, बिना दी हुई वस्तु न ले, यौन दुराचार न करे, झूठ न बोले और मादक पेय पदार्थों का सेवन न करे, तो उसे यह आभास होता है कि लोग जिन बातों पर चर्चा कर रहे हैं, मैं भी उन बातों को जानता हूँ। यही वह पहला उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति को सुख और आनंद का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, ज्ञानी व्यक्ति देखता है कि राजा ने एक अपराधी को पकड़ लिया है और उसे अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जा रही हैं - कोड़े और चाबुक से पीटा जा रहा है, जंगली रस्सी से कोड़े मारे जा रहे हैं, गंदी छड़ी से कोड़े मारे जा रहे हैं, हाथ काटे जा रहे हैं, पैर काटे जा रहे हैं, या दोनों हाथ और पैर काटे जा रहे हैं, कान और नाक काटे जा रहे हैं, उबलते दलिया के बर्तन में डाला जा रहा है, सिर मुंडवाया जा रहा है, राहु के मुँह में डाला जा रहा है, जलती हुई माला पहनाई जा रही है, हाथ झुलसाए जा रहे हैं, छाल के वस्त्र पहनाए जा रहे हैं, साँपों के साथ रखा जा रहा है, शरीर में काँटे चुभाए जा रहे हैं, शरीर से मांस के टुकड़े काटे जा रहे हैं, कान से कान तक कील ठोंकी जा रही है, शरीर को भूसे की तरह पीट-पीट कर अधमरा किया जा रहा है, उबलते तेल में डुबोया जा रहा है, कुत्तों को खाने के लिए दिया जा रहा है, कील पर जीवित ही मृत्यु तक लटकाया जा रहा है, और तलवार से गर्दन काटी जा रही है। हे भिक्षुओं, तब ज्ञानी व्यक्ति को यह बात समझ में आती है कि इस लुटेरे, इस दुष्ट को बुराई करने के कारण ही दंडित किया जा रहा है। ये बातें मुझे स्पष्ट नहीं हैं। मैं भी इन्हें बुराई ही देखता हूँ। यह दूसरा उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति को सुख और आनंद का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, जब ज्ञानी व्यक्ति कुर्सी, पलंग या ज़मीन पर बिछे कंबल पर विश्राम कर रहा होता है, तो वह अपने शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये बातें उस पर गहरा प्रभाव डालती हैं। जैसे किसी विशाल पर्वत शिखर की छाया शाम के समय धरती पर भारी पड़ती है। उसी प्रकार जब ज्ञानी व्यक्ति कुर्सी, पलंग या ज़मीन पर बिछे कंबल पर विश्राम कर रहा होता है, तो वह अपने शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये बातें उस पर गहरा प्रभाव डालती हैं। हे भिक्षुओं, तब ज्ञानी व्यक्ति को यह विचार आता है, मैंने कोई दोष नहीं किया, भयभीत लोगों का भय दूर किया, कोई जघन्य अपराध नहीं किया, पुण्य कर्म किए, और बाद में मैं उनका फल भोगूँगा। वह शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, सीना नहीं पीटता और मन की व्याकुलता में नहीं पड़ता। हे भिक्षुओं, यह तीसरा उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति सुख और आनंद का अनुभव करता है।

भिक्षुओं, शरीर, वाणी और मन से सलीके से आचरण करने वाला ज्ञानी व्यक्ति मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय वृद्धि के लिए स्वर्ग में जन्म लेता है। यह कहना उचित होगा कि स्वर्ग अत्यंत सुखद और आनंदमय है। उस आनंद की तुलना करना असंभव है।

तब एक भिक्षु ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या कोई तुलना करना संभव है?'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'यह संभव है, भिक्षु। यह उस सुख और आनंद के समान है जो सात रत्नों और चार शक्तियों से संपन्न विश्व सम्राट को प्राप्त होता है।'

वे सात खजाने कौन से हैं?

भिक्षुओं, पूर्णिमा के दिन, जब एक पूजनीय योद्धा राजा अपने महल के सबसे ऊपरी तल पर अपने केश धोते हैं, स्नान करते हैं और आठ नियमों का पालन करते हैं, तब उन्हें हजार गुना तीलियों, धुरी और घुंडी से परिपूर्ण दिव्य चक्र प्रकट होता है। उस चक्र को देखकर, पूजनीय योद्धा राजा के मन में यह विचार आता है: मैंने सुना है कि जब एक पूजनीय योद्धा राजा पूर्णिमा के दिन अपने केश धोते हैं, स्नान करते हैं और आठ नियमों का पालन करते हैं, तब उन्हें हजार गुना तीलियों, धुरी और घुंडी से परिपूर्ण दिव्य चक्र प्रकट होता है। क्या मैं सर्वसमर्थ सम्राट बन गया हूँ? तब, पूजनीय योद्धा राजा अपने आसन से उठकर, अपने बाएं हाथ में स्वर्ण जल की नली और अपने दाहिने हाथ में चक्र लेकर, उस पर जल छिड़कते हैं। भिक्षुओं, तब चक्र राजा और चार प्रकार की सेनाओं के साथ बिना कुछ कहे पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करता है। जिस भी क्षेत्र में चक्र का खजाना रुकता है, वहाँ राजा और उसकी चार प्रकार की सेना निवास करती है। पूर्व के अधीनस्थ राजा सर्वशक्तिमान सम्राट के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं, 'हे महान राजा, आपका स्वागत है, आप सही समय पर आए हैं, हमें सलाह दीजिए।' सर्वशक्तिमान सम्राट कहते हैं, 'जीवन का नाश नहीं करना चाहिए, जो नहीं दिया गया उसे नहीं लेना चाहिए, यौन दुराचार नहीं करना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए और मादक पेय नहीं पीना चाहिए। अपने राज्य का आनंद उसी प्रकार लें जैसे आपने लिया है।' इस प्रकार वे सर्वशक्तिमान सम्राट के अधीनस्थ राजा बन जाते हैं। चक्र का खजाना पूर्व की ओर पूर्वी सागर तक जाता है। फिर वह मुड़कर दक्षिण की ओर जाता है... फिर... दक्षिणी सागर तक। फिर वह मुड़कर पश्चिम की ओर जाता है... फिर... पश्चिमी सागर तक। फिर वह मुड़कर उत्तर की ओर जाता है, बिना एक शब्द कहे, राजा और उसकी चार प्रकार की सेना के साथ। जिस भी क्षेत्र में चक्र का खजाना रुकता है, वहाँ राजा और उसकी चार प्रकार की सेना निवास करती है। उत्तर के अधीनस्थ राजा सर्वशक्तिमान सम्राट के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं। 'स्वागत है महान राजा, आप सही समय पर आए हैं, हमें सलाह दीजिए,' सर्वसमृद्ध सम्राट कहते हैं। 'जीवन का नाश नहीं करना चाहिए, जो नहीं दिया गया उसे लेना नहीं चाहिए, यौन दुराचार नहीं करना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए और मादक पेय नहीं पीना चाहिए। अपने राज्य का आनंद उसी प्रकार लें जैसे आपने लिया है।' इस प्रकार वे सर्वसमृद्ध सम्राट के अधीन राजा बन जाते हैं। चक्र का खजाना उत्तर दिशा में उत्तरी सागर तक जाता है। सागर से घिरे सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, सर्वसमृद्ध सम्राट के राज्य में लौटकर, वह भीतरी कक्ष के प्रवेश द्वार पर इस प्रकार खड़ा होता है मानो उसका धुरी टूट गया हो। भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट का चक्र का खजाना ऐसा है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष उपोसथ नामक हाथी प्रकट हुआ, जो पूर्णतः श्वेत, सात रूपों में दृढ़ और अलौकिक शक्तियों से युक्त था तथा वायु में भी उड़ सकता था। उसे देखकर प्रसन्न हुए विश्व सम्राट ने कहा, "यह हाथी उत्तम वाहन है, बशर्ते इसे अच्छी तरह प्रशिक्षित किया गया हो।" भिक्षुओं, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह हाथी उत्तम कुल का और अच्छी तरह प्रशिक्षित है। अतीत में, एक विश्व सम्राट ने हाथी की जांच करने की इच्छा से सुबह के समय समुद्र से घिरे समस्त भूभाग को पार करते हुए उस पर सवार होकर दोपहर के भोजन के लिए अपने राज्य में वापसी की। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का हाथी ऐसा ही है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष वलाहा नामक अश्व-शिक्ष प्रकट हुआ, जो पूरी तरह से सफेद था, सिवाय उसके काले सिर और गहरे अयाल के। उसमें अलौकिक शक्तियां थीं और वह हवा में भी उड़ सकता था। उसे देखकर प्रसन्न हुए विश्व सम्राट ने कहा, "यह अश्व-शिक्ष उत्तम है, बशर्ते इसे अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया गया हो।" भिक्षुओं, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अश्व-शिक्ष उत्तम कुल का और अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। अतीत में, एक विश्व सम्राट अश्व-शिक्ष का निरीक्षण करने के लिए सुबह समुद्र से घिरे सभी क्षेत्रों को पार करते हुए उस पर सवार हुए और दोपहर के भोजन के लिए अपने राज्य लौट आए। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का अश्व-शिक्ष ऐसा है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष रत्नों का खजाना प्रकट हुआ। एक उत्तम कुल का लेप रत्न, आठ फलकों वाला और पूर्ण रूप से परिपूर्ण। रत्नों का तेज चारों ओर सात मील तक फैला हुआ था। अतीत में, एक विश्व सम्राट रत्नों के दर्शन करने के लिए, अपने राज्य से चार गुना सेनाओं के साथ रात के अंधेरे में निकले और रत्नों को ध्वज के शीर्ष पर स्थापित कर दिया। आसपास के गांवों के लोग दिन का उजाला समझकर अपना काम करते रहे। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का रत्न ऐसा ही है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के सामने स्त्री का वह अनमोल रत्न प्रकट होता है। सुंदर, मनमोहक और सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण। न अधिक लंबी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली, न अधिक मोटी, न अधिक सांवली, न अधिक गोरी, वह सौंदर्य मानवीय से परे है, पर दिव्य नहीं। भिक्षुओं, उस स्त्री के अनमोल रत्न का स्पर्श रुई या रेशम के गुच्छे के समान था। शीत ऋतु में उसका शरीर गर्म और ग्रीष्म ऋतु में शीतल होता था। उसके शरीर से चंदन की सुगंध और मुख से श्वेत कमल की सुगंध आती थी। वह स्त्री के अनमोल रत्न, विश्व सम्राट के प्रकट होते ही प्रसन्न मन से उठकर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। उस स्त्री के मानसिक आवश्यकताएँ विश्व सम्राट की आवश्यकताओं से अधिक नहीं होती थीं, उसकी शारीरिक आवश्यकताएँ तो कभी भी उनसे अधिक नहीं होती थीं। भिक्षुओं, विश्व सम्राट की स्त्री का अनमोल रत्न ऐसा ही है।

भिक्षुओं, सर्वसमर्थक के समक्ष गृहस्थ खजाना प्रकट होता है।

गृहस्थ के खजाने पर पूर्व कर्मों के फलस्वरूप दिव्य दृष्टि पड़ती है। जब वह किसी खजाने को देखता है, चाहे वह स्वामित्व वाला हो या न हो, तो वह राजा को सूचित करता है, 'महाराज, चिंता न करें, मैं आपका खजाना भर दूंगा।' अतीत में, एक विश्व सम्राट गृहस्थ के खजाने की जांच करने के लिए एक जहाज पर सवार हुए और गंगा के मध्य में जाकर बोले, 'गृहस्थ, मुझे स्वर्ण सोना चाहिए।' 'महाराज, दोनों किनारों में से किसी एक पर पहुंचें।' 'गृहस्थ, मुझे स्वर्ण सोना यहीं चाहिए।' तब उस गृहस्थ ने अपने दोनों हाथों से नदी का पानी हटाया और स्वर्ण सोने से भरा एक घड़ा उठाकर विश्व सम्राट से कहा, 'महाराज, क्या इतना काफी है, क्या काम पूरा हो गया!' 'गृहस्थ, इतना ही काफी है, काम पूरा हो गया!' भिक्षुओं, विश्व सम्राट का गृहस्थ खजाना ऐसा ही है।

हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट के समक्ष एक विवेकशील, विद्वान, बुद्धिमान और सक्षम सलाहकार प्रकट होते हैं। वे सक्षम हैं और सर्वसमृद्ध सम्राट की आवश्यकताओं का ध्यान रख सकते हैं, जो कुछ भी निरस्त किया जाना चाहिए उसे निरस्त कर सकते हैं और जो कुछ भी स्थापित किया जाना चाहिए उसे स्थापित कर सकते हैं। सर्वसमृद्ध सम्राट के पास जाकर वे कहते हैं, 'हे महाराज, चिंता न करें, मैं सलाह दूंगा।' हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट के सलाहकार ऐसे ही होते हैं।

भिक्षुओं, विश्व सम्राट इन सात रत्नों से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, चार शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं?

भिक्षुओं, विश्व सम्राट सुंदर, मनमोहक और सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण हैं, जो किसी भी अन्य मनुष्य से कहीं अधिक सुंदर हैं। विश्व सम्राट इस प्रथम शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट की आयु लंबी होती है, वे किसी भी अन्य मनुष्य से कहीं अधिक दीर्घायु होते हैं। विश्व सम्राट इस दूसरी शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट को कम ही रोग और विकार होते हैं। अन्य मनुष्यों की तरह उनका पाचन तंत्र उत्तम है, न तो उन्हें बहुत ठंड लगती है और न ही बहुत गर्मी। सर्वसमृद्ध सम्राट को यह तीसरी शक्ति प्राप्त है।

हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट ब्राह्मण गृहस्थों को प्रिय हैं। जैसे पिता पुत्रों को प्रिय होते हैं, वैसे ही सर्वसमृद्ध सम्राट ब्राह्मण गृहस्थों को प्रिय हैं। ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट को प्रिय हैं। जैसे पुत्र पिता को प्रिय होते हैं, वैसे ही ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट को प्रिय हैं। अतीत में, सर्वसमृद्ध सम्राट चार प्रकार की सेनाओं के साथ उद्यान में गए, तब ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट के पास आए और बोले, 'हे महाराज, धीरे चलें ताकि हम आपको बेहतर देख सकें।' सर्वसमृद्ध सम्राट ने भी सारथी से कहा, 'सारथी, धीरे चलें ताकि मैं इन ब्राह्मण गृहस्थों को बेहतर देख सकूँ।' सर्वसमृद्ध सम्राट इस चौथी शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, सर्वसमर्थक इन चार शक्तियों से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, क्या इन सात रत्नों और इन चार शक्तियों से संपन्न विश्व सम्राट को इससे अत्यधिक सुख और आनंद प्राप्त होगा?

'इनमें से एक भी रत्न प्राप्त होने पर सर्वशक्तिमान सम्राट को अत्यंत सुख और आनंद प्राप्त होगा। सात रत्नों और चार शक्तियों से संपन्न होने पर तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है।'

तब भगवान बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में समा सकने वाला एक छोटा पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आकार में कौन बड़ा है, मेरी मुट्ठी में रखा पत्थर या हिमालय पर्वत?'

'आदरणीय महोदय, आपकी मुट्ठी में रखा पत्थर महान हिमालय के समर्थ, एक चौथाई भी नहीं, और न ही उसका प्रतीक है।'

भिक्षुओं, इसी प्रकार सात रत्नों और चार शक्तियों के कारण विश्व सम्राट को प्राप्त सुख और आनंद की तुलना स्वर्ग में प्राप्त सुख और आनंद से न तो की जा सकती है, न ही उसके एक चौथाई के बराबर, और न ही उसके सादृश्य के समान। भिक्षुओं, यदि वह ज्ञानी व्यक्ति लंबे समय बाद पुनः जन्म ले, तो वह धनवान, योद्धा कुल, ब्राह्मण कुल, गृहस्थ कुल, या ऐसे ही किसी उच्च कुल में जन्म लेगा, जिसके पास बहुत धन-संपत्ति, सोना-चांदी और अनाज होगा। वह सुंदर और देखने में आकर्षक होगा; उसे खाने-पीने की वस्तुएँ, वस्त्र, वाहन, फूल, सुगंध, मलहम, पलंग, आवास और प्रकाश की प्रचुरता प्राप्त होगी। शरीर, वाणी और मन से उत्तम आचरण करने वाला भिक्षु मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेगा। भिक्षुओं, यह उस जुआरी के समान है जो पहली ही बाजी में अपार धन जीत लेता है। यदि बुद्धिमान व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से उत्तम आचरण करे तो मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेना और भी भाग्यशाली दांव होगा। भिक्षुओं, अब बुद्धिमान व्यक्ति के क्षेत्र का पूर्ण वर्णन हो चुका है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.10 देवदूत सुत्त(130)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, जैसे कोई व्यक्ति दो घरों के बीच खड़ा होकर, जिनके दरवाजे सटे हुए हों, लोगों को उनमें आते-जाते, घूमते-फिरते देखता है। उसी प्रकार मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो मनुष्य से परे शुद्ध है, स्वर्ग और नरक में प्रकट और लुप्त होते प्राणियों को,

उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप प्राणियों को देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता हूँ: ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वृद्धि के लिए जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं।' ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, प्रेतों के लोक में जन्म लेते हैं। ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, पशुओं के साथ जन्म लेते हैं। ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, घट जाते हैं और नरक में जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, नरक के रक्षकों, इसे हाथ-पैर से पकड़कर पाताल लोक के राजा के पास ले जाओ, 'हे भगवान, यह व्यक्ति अमित्र है, एकता नहीं करता, पवित्र नहीं है, परिवार के बड़ों का आदर नहीं करता, इसे उचित दंड दो।'

पाताल लोक का राजा उससे प्रश्न पूछता है, कारण पूछता है और उसके साथ अध्ययन करता है। 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच पहले दिव्य दूत को नहीं देखा?' वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक का राजा उससे पूछता, 'हे भगवान, क्या तुमने एक ऐसे शिशु को नहीं देखा जो मुश्किल से खड़ा हो पाता है और लेट पाता है, और लेटे हुए अपने ही मूत्र और मल में सना हुआ है?' तब वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक का राजा उससे पूछता, 'हे भगवान, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह विचार नहीं आया कि मैं जन्म से परे नहीं गया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' वह कहता, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक का राजा कहता, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कार्य तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने प्रथम दिव्य दूत के बारे में प्रश्नोत्तर, कारण पूछने और अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच दूसरे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच अस्सी या नब्बे वर्ष की किसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा, जो छत के ढांचे की तरह कमजोर और झुका हुआ था, छड़ी के सहारे चल रहा था, कांप रहा था, बीमार था, जवानी खो चुका था, टूटे दांत थे, सफेद बाल थे, झुर्रीदार त्वचा थी?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, एक बुद्धिमान वृद्ध होने के नाते, क्या तुम्हें यह विचार नहीं आया कि मैं क्षय से परे नहीं गया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया।' यह बुरा कर्म न तो तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने किया है। न ही संन्यासियों, ब्राह्मणों या देवताओं ने; यह तुमने किया है और तुम्हें इसका फल भुगतना पड़ेगा।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने दूसरे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और साथ में अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच तीसरे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच किसी स्त्री या पुरुष को गंभीर रूप से बीमार, अपने ही मूत्र और मल में डूबा हुआ, दूसरों द्वारा उठाया और ले जाया जाते हुए नहीं देखा?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, एक बुद्धिमान वृद्ध होने के नाते, क्या तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आया कि मैं बीमारी से उबर नहीं पाया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वाणी और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कार्य तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने तीसरे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और साथ मिलकर अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच चौथे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक का राजा उससे पूछता। 'हे भले मनुष्य, क्या तुमने मनुष्यों के बीच एक अपराधी को राजा द्वारा पकड़े जाने और उसे तरह-तरह की यातनाएँ देते हुए नहीं देखा? उसे कोड़े मारे गए, जंगली रस्सी से पीटा गया, गंदी छड़ी से पीटा गया, उसके हाथ काटे गए, पैर काटे गए, या दोनों हाथ और पैर काटे गए, कान और नाक काटे गए, उसे उबलते दलिया के बर्तन में डाला गया, उसके सिर मुंडवा दिए गए, उसे राहु के मुँह में डाला गया, उसे जलती हुई माला पहनाई गई, उसके हाथ झुलसाए गए, उसे छाल का वस्त्र पहनाया गया, उसे साँपों के साथ रखा गया, उसके शरीर में हुक गाड़े गए, उसके शरीर से मांस के टुकड़े काटे गए, उसके कान से कान तक कील ठोंकी गई, उसके शरीर को भूसे की

तरह पीट-पीट कर रख दिया गया, उसे उबलते तेल में डुबोया गया, कुत्तों को खाने के लिए दे दिया गया, उसे जीवित ही कील पर लटकाकर मृत्यु तक तड़पाया गया, और तलवार से उसकी गर्दन काट दी गई?' तब वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक का राजा उससे पूछता है, 'हे भले मनुष्य, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह बात समझ में नहीं आई कि बुरे कर्मों का फल यहीं और अभी मिलता है, कोई दूसरा विकल्प नहीं है।' अब मैं अपने शरीर, वाणी और मन से कुछ अच्छा करूँ?' वह कहता, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक का राजा कहता, 'हे बालक, तुमने लापरवाही के कारण ऐसा किया। यह बुरा कर्म तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया। यह संन्यासियों, ब्राह्मणों या देवताओं ने भी नहीं किया, यह तुमने किया है और तुम्हें इसका फल भुगतना पड़ेगा।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने चौथे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने पाँचवें दिव्य दूत को मनुष्यों के बीच नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच एक स्त्री या पुरुष को एक दिन, दो दिन या तीन दिन बाद मृत नहीं देखा, जो फूला हुआ और नीला पड़ गया था?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि मैं भी मृत्यु के अधीन हूँ, मैं मृत्यु से परे नहीं गया हूँ। अब मैं अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करूँ?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कर्म तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने पाँचवें दिव्य दूत के बारे में प्रश्न-प्रश्न करने, कारण पूछने और साथ मिलकर अध्ययन करने के बाद मौन धारण कर लिया।

फिर नरक के पहरेदार उसे पाँच प्रकार से बांधते हैं। उसके दोनों हाथों की हथेलियों में दो-दो गर्म लोहे की कीलें ठोंक दी जाती हैं, उसके दोनों पैरों में दो-दो गर्म कीलें ठोंक दी जाती हैं और पाँचवीं गर्म लोहे की कील उसकी छाती में ठोंक दी जाती है। इसके कारण उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे ले जाकर हथौड़ों से पीटते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे उल्टा लटकाकर चाकू से काटते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे एक गाड़ी में जोतकर जलती हुई जमीन पर आगे-पीछे दौड़ाते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे जलते हुए अंगारों की चट्टान पर चढ़ाते और उतारते हैं। इस कारण उसे तीव्र चुभन भरी अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे पिघले हुए, धधकते हुए बर्तन में उल्टा फेंक देते हैं। वहाँ वह पिघले हुए मैल में पक जाता है, और वह स्वयं ही उसमें गोता लगाता है, ऊपर आता है और पिघले हुए बर्तन में इधर-उधर घूमता है। इस कारण भी उसे तीव्र चुभन भरी अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे महानर में फेंक देते हैं। वर्गाकार महानर के चार द्वार हैं और यह दो भागों में विभाजित है, लोहे की दीवारों से घिरा हुआ है और लोहे के ढक्कन से बंद है। इसका फर्श सात सौ मील तक फैला हुआ है, और यह प्रतिदिन वहीं रहता है।

नरक की पूर्वी दीवार से आग निकलती है और पश्चिमी दीवार को झुलसा देती है। पश्चिमी दीवार से आग निकलती है और पूर्वी दीवार को झुलसा देती है। उत्तरी दीवार से आग निकलती है और दक्षिणी दीवार को झुलसा देती है। दक्षिणी दीवार से आग निकलती है और उत्तरी दीवार को झुलसा देती है। नीचे से आग निकलती है और ऊपर से आग निकलती है और नीचे को झुलसा देती है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

भिक्षुओं, बहुत समय बीतने के बाद, नरक का पूर्वी द्वार खुलता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, इस प्रक्रिया में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, यहाँ तक कि यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी ले, तो भी ऐसा ही होता है। जब वह इससे पूरी तरह से तृप्त हो जाता है, तो द्वार बंद हो जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसके कर्मों का अंत नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, बहुत समय बीतने के बाद, नरक का पश्चिमी द्वार खुलता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, इस प्रक्रिया में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, यहाँ तक कि यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी

ले, तो भी ऐसा ही होता है। जब वह इससे पूरी तरह से तृप्त हो जाता है, तो द्वार बंद हो जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसके कर्मों का अंत नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, बहुत लंबे समय के बाद, ऐसा होता है कि नरक का पूर्वी द्वार खुल जाता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, ऐसा करने में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, और यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी ले, तो भी वह उस द्वार से बच निकलता है।

महान नरक के समानांतर और उसके साथ ही मल का नरक भी है, जिसमें वह गिरता है। उसमें सुई जैसे मुंह वाले जीव होते हैं, जो बाहरी त्वचा को छेदते हैं, फिर भीतरी त्वचा को, उसके बाद मांस, नसों और यहां तक कि हड्डियों को भी, और वे अस्थि मज्जा को खा जाते हैं। वहां उसे तीव्र चुभन और अप्रिय संवेदनाओं का अनुभव होता है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

मल-मूत्र के नरक के समानांतर और साथ ही, वह नरक जहाँ गर्म राख बरसती है, उसमें गिर जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

नरक के समानांतर और उसके साथ ही, जहाँ गर्म राख बरसती है, सिम्बाली का जंगल है, जो सात मील से भी अधिक ऊँचा है, जिसमें सोलह इंच लंबे कांटे हैं, जो धधकते और जलते रहते हैं। वह उन पर चढ़ता है और इधर-उधर घूमता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

सिम्बाली वन के समानांतर और उसके साथ ही तलवारों का एक वन है। वह उसमें प्रवेश करता है। हवा से गिरते पत्ते उसके पैरों, हाथों, कानों, नाक और कानों को काट देते हैं। वहाँ उसे तीव्र चुभन और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है।

तलवारों के जंगल के समानांतर और उसके साथ-साथ एक विशाल खारे पानी की नदी बहती है। वह उसमें गिर जाता है। उसमें वह धारा के साथ बहता है और फिर धारा के साथ बहता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

फिर नरक के पहरेदार उसे हुक से खींचकर बाहर निकालते हैं और पूछते हैं, 'भले आदमी, तुम्हारी क्या इच्छा है?' वह कहता है, 'महोदय, मुझे भूख लगी है।' नरक के पहरेदार गर्म लोहे की कीलों से उसका मुंह खोलते हैं और उसके मुंह में जलती हुई लोहे की गोलियां डालते हैं। वे उसके होंठ, मुंह, गला, छाती, आंतें, निचली आंतें सब जला देती हैं और उसके भीतरी अंगों को बाहर निकाल देती हैं। वहां उसे तेज चुभने वाली असहनीय पीड़ा होती है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

फिर पहरेदार उससे पूछते हैं, 'महोदय, आपकी क्या इच्छा है?' वह कहता है, 'महोदय, मुझे प्यास लगी है।' नरक के पहरेदार गर्म लोहे की कीलों से उसका मुंह खोलते हैं और उसके मुंह में जलता हुआ, धधकता तांबा डालते हैं। वे उसके होंठ, मुंह, गला, छाती, आंतें, निचली आंतें जला देते हैं और उसके भीतर के अंगों को बाहर निकाल देते हैं। वहां उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

फिर नरक के रक्षकों ने उसे वापस महान नरक में डाल दिया।

अतीत में पाताल लोक के राजा के साथ ऐसा ही हुआ था। संसार में बुराई करने वालों को ये अनेक दंड दिए जाते हैं। हे! काश मुझे मानवता प्राप्त हो जाए। हे! काश वह सिद्ध पुरुष, जो पूर्णतः ज्ञानी और सच्चे स्वरूप से प्रबुद्ध हैं, संसार में जन्म लें। हे! काश मैं उस परम पूज्य पुरुष की संगति में रहूँ। हे! काश वह परम पूज्य पुरुष मुझे शिक्षा दें और मैं उस शिक्षा को जान लूँ।

भिक्षुओं, मैं यह बात किसी अन्य संन्यासी या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कह रहा हूँ, यह वह है जो मैंने स्वयं जाना और देखा है, इसलिए मैं यह कह रहा हूँ।

तब भगवान ने आगे कहा।

"वे मनुष्य जो लापरवाह होते हैं, जब उन्हें दिव्य दूतों द्वारा दोषी ठहराया जाता है..."
निम्न कुल में जन्म लेने वाले लोग वहां लंबे समय तक शोक मनाते हैं।
ईश्वरीय दूतों द्वारा निंदा किए गए संतुष्ट और योग्य व्यक्ति,
किसी भी दिन इस महान शिक्षा में लापरवाही न बरतें।
वे जन्म, मृत्यु और अस्तित्व में भय देखते हैं।
और वे जन्म और मृत्यु को नष्ट करते हुए, बिना पकड़े स्वयं को मुक्त कर लेते हैं।
वे शांत और सुखद हैं, जो यहीं और अभी समाप्त हो चुके हैं।
मैं भय और प्रतिशोध की भावना से परे जा चुका हूँ, सभी अप्रियताओं से परे जा चुका हूँ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.1 भद्देकरत्ता सुत्त(131)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "जी भगवान।"

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक शुभ दिन वाले व्यक्ति के अनुभव का सारांश और व्याख्या सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा:

आपको अतीत के पीछे नहीं भागना चाहिए
और न ही भविष्य से कोई उम्मीद रखनी चाहिए।
जो बीत गया
सो बीत गया।
भविष्य
अभी आना बाकी है।
जो भी गुण वर्तमान में मौजूद है
, वह आपको स्पष्ट रूप से वहीं दिखाई देता है
।
बिना प्रभावित हुए,
अविचलित रहते हुए,
इसी तरह हृदय का विकास होता है। आज जो करना चाहिए, उसे
पूरी लगन से करो , क्योंकि कौन जाने? कल मृत्यु ही तो है। मृत्यु और उसके विशाल दल से कोई समझौता नहीं किया जा सकता ।

जो कोई भी इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन
और अथक परिश्रम से जीवन व्यतीत करता है, उसका दिन वास्तव में शुभ होता है: ऐसा शांतिप्रिय ऋषि कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, कोई अतीत के पीछे कैसे भागता है? वह इस आनंद में बह जाता है कि 'अतीत में मेरा ऐसा रूप (शरीर) था'... 'अतीत में मेरी ऐसी अनुभूति थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी धारणा थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी'। इसे ही अतीत के पीछे भागना कहते हैं।

और कोई अतीत के पीछे कैसे न भागे? कोई इस आनंद में न बह जाए कि 'अतीत में मेरा ऐसा रूप (शरीर) था'... 'अतीत में मेरी ऐसी अनुभूति थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी धारणा थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी विचार-रचना थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी।' इसे ही अतीत के पीछे न भागना कहते हैं।

और कोई भविष्य से अपेक्षाएँ कैसे रखता है? व्यक्ति इस आनंद में बह जाता है कि 'भविष्य में मेरा ऐसा रूप (शरीर) हो सकता है'... 'भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी धारणा हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी चेतना हो सकती है।' इसे ही भविष्य से अपेक्षाएँ रखना कहते हैं।

और भविष्य से अपेक्षाएँ कैसे न रखी जाएँ? 'भविष्य में मेरा ऐसा रूप (शरीर) हो सकता है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी अनुभूति हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी धारणा हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी विचार-रचना हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी चेतना हो सकती है' जैसी खुशियों में बहकना नहीं चाहिए। इसे ही भविष्य से अपेक्षाएँ न रखना कहते हैं।

और वर्तमान गुणों के संबंध में व्यक्ति कैसे भ्रमित हो जाता है? एक ऐसा मामला है जहां एक अशिक्षित साधारण व्यक्ति, जिसने श्रेष्ठ व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, जो श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षाओं में प्रशिक्षित नहीं है, वह रूप को स्वयं के रूप में, या स्वयं को रूप धारण करने वाले के रूप में, या रूप को स्वयं में, या स्वयं को रूप में देखता है।

वह भावना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को भावना से युक्त रूप में, या भावना को स्वयं में, या स्वयं को भावना में देखता/देखती है।

वह धारणा को स्वयं के रूप में, या स्वयं को धारणा से युक्त रूप में, या धारणा को स्वयं में, या स्वयं को धारणा में देखता/देखती है।

वह व्यक्ति विचार-रचनाओं को स्वयं के रूप में, या स्वयं को विचार-रचनाओं से युक्त मानता है, या विचार-रचनाओं को स्वयं में, या स्वयं को विचार-रचनाओं में देखता है।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में देखता है। इसे वर्तमान गुणों के संदर्भ में अंतर्मुखी होना कहते हैं।

और वर्तमान गुणों के संबंध में कोई कैसे मोहित नहीं हो सकता? एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों को देखा है, उनकी शिक्षाओं में पारंगत है, उनकी शिक्षाओं में अच्छी तरह से प्रशिक्षित है, वह रूप को स्वयं के रूप में, स्वयं को रूप धारण करने वाले के रूप में, रूप को स्वयं में, या स्वयं को रूप में नहीं देखता है।

वह भावना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को भावना से युक्त रूप में, या भावना को स्वयं में, या स्वयं को भावना में नहीं देखता/देखती है।

वह व्यक्ति बोध को स्वयं के रूप में, या स्वयं को बोध से युक्त रूप में, या बोध को स्वयं में, या स्वयं को बोध में नहीं देखता/देखती है।

वह व्यक्ति न तो विचार-रचनाओं को स्वयं के रूप में देखता है, न ही स्वयं को विचार-रचनाओं से युक्त मानता है, न ही विचार-रचनाओं को स्वयं में निहित मानता है, और न ही स्वयं को विचार-रचनाओं में निहित मानता है।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में नहीं देखता/देखती है। इसे वर्तमान गुणों के संबंध में बहकावे में न आना कहते हैं।

आपको अतीत के पीछे नहीं भागना चाहिए
और न ही भविष्य से कोई उम्मीद रखनी चाहिए।
जो बीत गया
सो बीत गया।
भविष्य
अभी आना बाकी है।
जो भी गुण वर्तमान में मौजूद है
, वह आपको स्पष्ट रूप से वहीं दिखाई देता है

।
बिना प्रभावित हुए,
अविचलित रहते हुए,
इसी तरह हृदय का विकास होता है। आज जो करना चाहिए, उसे
पूरी लगन से करो , क्योंकि कौन जाने? कल मृत्यु ही तो है। मृत्यु और उसके विशाल दल से कोई समझौता नहीं किया जा सकता ।
जो कोई भी इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन
और अथक परिश्रम से जीवन व्यतीत करता है, उसका दिन वास्तव में शुभ होता है: ऐसा शांतिप्रिय ऋषि कहते हैं।
"'भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक शुभ दिन वाले व्यक्ति के सारांश और व्याख्या का पाठ पढ़ाऊंगा।' ऐसा कहा गया था, और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.2आनंदभड्डेकरत्त सुत्त(132)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्ती में जेतवन के वन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद सभागृह में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें मार्गदर्शन दे रहे थे और एकल शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण देकर उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे। फिर शाम को भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे, सभागृह में आए, तैयार आसन पर बैठे और भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, सभागृह में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें मार्गदर्शन दे रहे थे और एकल शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण देकर उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे, कौन था?'

'आदरणीय महोदय, आदरणीय आनंद, सभा कक्ष में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या से उपदेश दे रहे थे, सलाह दे रहे थे और उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे।'

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, 'आनंद, आपने सभाघर में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन करके कैसे उपदेश दिया, उन्हें सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया?'

'आदरणीय महोदय, मैंने सभाघर में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या से इस प्रकार उपदेश दिया, सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षुओं, आप अतीत को कैसे याद करते हैं? आप रुचिपूर्वक सोचते हैं, अतीत में मैं इस प्रकार का था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षुओं, इस प्रकार आप अतीत को याद करते हैं।

भिक्षुओं, आप अतीत को क्यों नहीं याद करते? आप रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था, अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं, अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं, अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे, अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षुओं, इस प्रकार आप अतीत को याद नहीं करते।

भिक्षुओं, आप भविष्य की इच्छा कैसे नहीं करते? आप भविष्य में ऐसे पदार्थ, ऐसी भावनाएँ, ऐसी धारणाएँ, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। भिक्षुओं, इस प्रकार आप भविष्य की इच्छा नहीं करते।

भिक्षुओं, आप वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हैं? भिक्षुओं, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो उनके उपदेशों में निपुण नहीं है और न ही उनके उपदेशों में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चेतना का चिंतन करता है। भिक्षुओं, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में भटक जाते हैं।

भिक्षुओं, आप वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? भिक्षुओं, विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान व्यक्तियों को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह अपने भीतर के पदार्थ, भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं की भावनाओं, या स्वयं की भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की धारणाओं, या प्रत्यक्ष आत्मा, या स्वयं की धारणाओं, या स्वयं की धारणाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की चेतना, या सचेत आत्मा, या स्वयं की चेतना, या स्वयं की चेतना का चिंतन नहीं करता। भिक्षुओं, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

'आदरणीय महोदय, मैंने भिक्षुओं को इस प्रकार संक्षिप्त और विस्तृत रूप से एकमात्र शुभ आसक्ति का वर्णन करके उपदेश दिया, सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया...'

'आनंद, अतीत को कैसे याद किया जाता है? तुम रुचिपूर्वक सोचते हो, मैं अतीत में इस प्रकार का पदार्थ था। मैं अतीत में इस प्रकार की भावनाओं वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार की धारणाओं वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार के संकल्पों वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार की चेतना वाला था। आनंद, इस प्रकार तुम अतीत को याद करते हो।'

आनंद, तुम अतीत को क्यों नहीं याद करते? तुम रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। आनंद, इस प्रकार तुम अतीत को याद नहीं करते।

आनंद, तुम भविष्य की इच्छा क्यों नहीं करते? तुम भविष्य में ऐसी वस्तु, ऐसी भावना, ऐसी धारणा, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। आनंद, इस प्रकार तुम भविष्य की इच्छा नहीं करते।

आनंद, तुम वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हो? आनंद, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा, जो उनकी शिक्षाओं में निपुण नहीं है और न ही उनकी शिक्षाओं में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या एक बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं में चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या एक संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों में चिंतन

करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या एक चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चिंतन करता है। आनंद, इस प्रकार तुम वर्तमान की बातों में भटक जाते हो।

आनंद, तुम वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? आनंद, हे विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान आत्माओं को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह स्वयं में पदार्थ, भौतिक आत्मा, या स्वयं में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं में भावनाओं, या स्वयं में भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में बोध, या बोधशील आत्मा, या स्वयं में बोध, या स्वयं में बोध का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में संकल्प, या संकल्पशील आत्मा, या स्वयं में संकल्प, या स्वयं में चेतना, या स्वयं में चेतना, या स्वयं में चेतना का चिंतन नहीं करता। आनंद, इस प्रकार तुम वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.3महाक्कनभद्देकरत्त सुत्त(133)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

एक समय भगवान राजागृह के उस मठ में निवास करते थे जहाँ गर्म पानी उपलब्ध था। पूज्य समिद्धि रात्रि के अंतिम पहर उठे और गर्म पानी से स्नान करने गए। स्नान करने के बाद वे बाहर आए और एक वस्त्र धारण किए शरीर को सुखाने के लिए खड़े हो गए। तभी एक देवता ने पूरे गर्म जंगल को प्रकाशित किया, पूज्य समिद्धि के पास आए, एक तरफ खड़े हुए और बोले, 'भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?'

'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं है। भिक्षु, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण सीख लें, इसमें पवित्र जीवन के मूल सिद्धांत बताए गए हैं।'

यह कहते हुए देवता वहां से विलीन हो गए। उस रात के अंत में पूज्य समिद्धि भगवान बुद्ध के पास गए, पूजा की, एक तरफ बैठ गए और बोले।

'आदरणीय महोदय, मैं रात के अंतिम पहर में उठा और गर्म पानी से स्नान करने गया। स्नान करने के बाद मैं बाहर आया और एक वस्त्र धारण किए शरीर को सुखाने के लिए खड़ा हो गया। तभी एक देवता ने पूरे गर्म जंगल को प्रकाशित किया, मेरे पास आए और एक तरफ खड़े होकर बोले, भिक्षु, क्या तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है? मैंने कहा, मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है। क्या आपको याद है?'

तब देवता ने कहा, 'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं है।' और फिर उन्होंने आगे कहा, 'भिक्षु, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण सीखो, इसमें पवित्र जीवन के मूल सिद्धांत बताए गए हैं।' इतना कहकर देवता वहां से अंतर्धान हो गए। आदरणीय महोदय, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण क्या है?

भिक्षु, तब मैं आपको एकमात्र शुभ आसक्ति की व्याख्या सिखाऊंगा, कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भगवान बुद्ध ने यह कहा और अपनी सीट से उठकर अपने निवास स्थान में चले गए।

भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद, उन भिक्षुओं के मन में यह विचार आया, 'मित्रों, भगवान बुद्ध ने हमें यह संक्षिप्त व्याख्या दी और विस्तृत व्याख्या दिए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

अब इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या कौन कर सकता है?

उन भिक्षुओं के मन में यह विचार आया कि पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के सभी ज्ञानी सहचरों ने की है। संभव है कि पूज्य महाकच्चाना भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। क्या होगा यदि हम पूज्य महाकच्चाना के पास जाकर यह प्रश्न पूछें? तब वे भिक्षु पूज्य महाकच्चाना के पास गए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'मित्र कच्चाना, भगवान बुद्ध ने यह संक्षिप्त प्रवचन दिया और विस्तृत व्याख्या दिए बिना ही आसन से उठकर अपने निवास स्थान पर चले गए।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

मित्र कच्चाना, भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद, हमें यह बात सूझी। मित्रों, भगवान बुद्ध ने हमें यह संक्षिप्त व्याख्या दी और विस्तृत व्याख्या दिए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

अब इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या कौन कर सकता है?

हमें यह विचार आया कि पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों दोनों ने की है। संभव है कि पूज्य महाकच्चाना भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। क्या होगा यदि हम पूज्य महाकच्चाना से संपर्क करें और उनसे यह प्रश्न पूछें? अतः उन भिक्षुओं ने पूज्य महाकच्चाना से संपर्क किया और कहा, 'मित्र कच्चाना, हमें इसकी व्याख्या कीजिए।'

मित्रों, यह उस व्यक्ति के समान है जिसे लकड़ी की आवश्यकता है और वह उसकी खोज में जाता है, एक विशाल वृक्ष के पास आता है जो लकड़ी से भरा हुआ है, लेकिन वह जड़ और तने को अनदेखा करके शाखाओं और पत्तियों को ही लकड़ी समझ लेता है। उसी प्रकार, पूज्यजन गुरु के समक्ष आकर भी उनका अनादर करते हैं और उन्हें यह मुझसे पूछना चाहिए। वह भगवान सर्वज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी, ज्ञानी, शिक्षा स्वरूप और ब्रह्म स्वरूप हैं। वे उपदेश देते हैं और अभ्यास करते हैं, अर्थों के दाता हैं, अमरता प्रदान करते हैं, शिक्षा के स्वामी हैं और इस प्रकार चले गए। अब उनसे यह पूछने का सही समय है और जैसे ही वे इसका स्पष्टीकरण देंगे, हम इसे अपने मन में ग्रहण कर लेंगे।

'मित्र कच्चाना, वास्तव में, भगवान बुद्ध सब कुछ जानते हैं, सब कुछ देखते हैं, सब कुछ ज्ञान से परिपूर्ण हैं, सब कुछ स्वयं ही शिक्षा बन चुके हैं और ब्रह्म बन चुके हैं। वे इसका उपदेश देते हैं और इसका अभ्यास करते हैं, वे अर्थों के दाता हैं, अमरता प्रदान करने वाले हैं, शिक्षा के स्वामी हैं और इस प्रकार उनका निधन हो गया। अब उनसे यह प्रश्न पूछने का उचित समय है और जब वे इसका स्पष्टीकरण देंगे, तो हम इसे अपने मन में संजो लेंगे। फिर भी, पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों द्वारा की जाती है। पूज्य महाकच्चाना के लिए भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त व्याख्यान का विस्तृत स्पष्टीकरण देना संभव है। मित्र कच्चाना, यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो कृपया हमें इसका स्पष्टीकरण दें।'

तो मित्रों, ध्यानपूर्वक सुनो और गौर करो। भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन को ध्यान से सुनो:

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

मुझे विस्तृत व्याख्या पता है।

मित्रों, अतीत का स्मरण कैसे होता है? अतीत में मेरी आँखें और रूप इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरे कान और ध्वनियाँ इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरी नाक और गंध इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरी जीभ और स्वाद इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरा शरीर और स्पर्श इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। मेरे मन और विचार अतीत में लीन थे, इसी से स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। स्वार्थ और लोभ से बंधी वह चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण किया जाता है। मित्रों, इस प्रकार अतीत का स्मरण किया जाता है।

मित्रों, अतीत का स्मरण कैसे नहीं होता? मेरी आँखें और रूप अतीत में इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरे कान और ध्वनियाँ अतीत में इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरी नाक और गंध अतीत में इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरी जीभ और स्वाद अतीत में इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरा शरीर और स्पर्श अतीत में इस प्रकार थे,

इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत याद नहीं आता। मेरा मन और विचार अतीत में ही लीन थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। जो चेतना स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं होती, उसे आनंद नहीं मिलता। आनंद के बिना अतीत याद नहीं आता। मित्रों, इस प्रकार अतीत याद नहीं आता।

मित्रों, आप भविष्य की क्या कामना करते हैं? भविष्य में मेरी दृष्टि और रूप इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरे कान और ध्वनियाँ इस प्रकार होंगी, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरी नाक और सुगंध इस प्रकार होंगी, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरी जीभ और स्वाद इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरा शरीर और स्पर्श इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरा मन और विचार इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। मित्रों, इसी प्रकार भविष्य की कामना की जाती है।

दोस्तों, आप भविष्य की इच्छा कैसे नहीं करते? मेरी आँख और रूप भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरे कान और आवाज़ें भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरी नाक और खुशबू भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरी ज़बान और स्वाद भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरा शरीर और छूने की शक्ति भविष्य में ऐसे ही होगी, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते, वे भविष्य की इच्छा नहीं रखते। मेरा मन और विचार भविष्य में ऐसे ही रहेंगे। जो नहीं मिलता, उसके लिए कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते, वे भविष्य की इच्छा नहीं रखते। दोस्तों, इसलिए भविष्य की इच्छा नहीं होती।

मित्रों, वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता कैसे होती है? मित्रों, आँख और रूप दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। कान और ध्वनियाँ दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। नाक और गंध दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। जीभ और स्वाद दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। शरीर और स्पर्श दोनों ही वर्तमान में उत्पन्न होने वाली वस्तुएं हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। मन और विचार दोनों ही वर्तमान में उत्पन्न होने वाली वस्तुएं हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। मित्रों, इसी प्रकार वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है।

मित्रों, वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन कैसे नहीं होता? मित्रों, आँख और रूप दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। कान और ध्वनियाँ दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। नाक और गंध दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद

नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। जीभ और स्वाद दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। शरीर और स्पर्श दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में स्वार्थ और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। मन और विचार दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में स्वार्थ और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। मित्रों, इस प्रकार वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता।

मित्रों, भगवान बुद्ध द्वारा दी गई इस संक्षिप्त व्याख्या के बारे में:

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

मुझे इसका विस्तृत विवरण ज्ञात है। यदि आप चाहें तो भगवान बुद्ध से इसके बारे में पूछ सकते हैं। वे जो व्याख्या करेंगे, हम उसे अपने मन में धारण कर लेंगे।

वे भिक्षु पूज्य महाकच्चाना के वचनों से प्रसन्न होकर, उनकी सराहना करते हुए, अपने स्थानों से उठे, भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध ने जो व्याख्या संक्षेप में और विस्तृत व्याख्या दिए बिना की है, वह बहुत ही सार्थक है।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

भगवान बुद्ध के अपने निवास स्थान पर जाने के कुछ ही समय बाद हमारे मन में यह विचार आया कि इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या हमें कौन दे सकता है?

हमें यह बात सूझी कि पूज्य महाअक्कंचन की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों दोनों ने की है। संभव है कि पूज्य महाअक्कंचन भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। हमने पूज्य महाअक्कंचन से संपर्क किया और उनसे इसका स्पष्टीकरण मांगा। उन्होंने इसे इन शब्दों और वाक्यांशों में समझाया।

भिक्षुओं, महाकच्चाना ज्ञान का विषय है; यदि आपने मुझसे पूछा होता, तो मैं भी इसे इसी प्रकार समझाता। इसका यही अर्थ है, इसे इसी रूप में ग्रहण करें।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.4 लोमसाकांगियाभड्डेकरट्टा सुत्त(134)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लोमसंगिया शाक्य देश के कपिलवस्तु में निग्रोध के मठ में रह रहे थे। तब रात ढलते समय देवता चंदन ने पूरे निग्रोध मठ को तेज प्रकाश से प्रकाशित किया, पूज्य लोमसंगिया के पास आए, एक तरफ खड़े हुए और कहा, 'भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?'

'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या याद नहीं है। भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं?'

'मित्र, मुझे उस एक शुभ आसक्ति के श्लोक याद नहीं हैं। क्या तुम्हें याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं।'

'मित्र, तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक कैसे याद रहते हैं?'

'भिक्षु, एक बार भगवान तीस देवताओं के साथ परिच्छत्तक की छाया में निवास करते थे और वहाँ उन्होंने तैंतीस देवताओं को एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत उपदेश दिया था।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, इस प्रकार मैं एक ही शुभ आसक्ति के श्लोकों का स्मरण करता हूँ। भिक्षु, एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या को सीखें, अभ्यास करें और याद रखें, यह पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों को बताती है। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए।

उस रात के अंत में पूज्य लोमसंगिया ने अपना निवास स्थान व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर सावत्थी की यात्रा पर निकल पड़े। वे धीरे-धीरे सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में पहुँचे, भगवान बुद्ध के पास गए, उनकी पूजा की और एक तरफ बैठ गए। पूज्य लोमसंगिया ने कहा, 'पूज्यवर, एक बार मैं शाक्य देश के कपिलवस्तु में निग्रोध मठ में निवास कर रहा था। तब एक देवता ने रात ढलते समय पूरे निग्रोध मठ को अपने तेज प्रकाश से प्रकाशित किया, मेरे पास आए, एक तरफ खड़े हो गए और कहा, 'भिक्षु, क्या तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?' मैंने कहा, 'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है। क्या आपको याद है?' तब उस देवता ने कहा, 'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है।' भिक्षु, क्या आपको एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं? तब मैंने कहा, मित्र, मुझे एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं? तब उन्होंने कहा, भिक्षु, मुझे एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं। तब मैंने पूछा, मित्र, आपको एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक कैसे याद हैं? आदरणीय, उन्होंने कहा, भिक्षु, एक बार भगवान बुद्ध तीस देवताओं के साथ परिच्छेदक वृक्ष की छाया में निवास कर रहे थे और वहाँ उन्होंने तैंतीस देवताओं को एक ही शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत उपदेश दिया था।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को

समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, इस प्रकार मैं एक ही शुभ आसक्ति के श्लोकों का स्मरण करता हूँ। भिक्षु, एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या को सीखो, अभ्यास करो और याद रखो, यह पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों को बताती है। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए। अच्छा! यदि भगवान मुझे एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या सिखाएँ।

'भिक्षु, क्या तुम उस देवता को जानते हो?'

'आदरणीय महोदय, मैं उन्हें नहीं जानता।'

'भिक्षु, इसका नाम चंदन है, यह ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से उपदेश सुनता है ताकि सार को ग्रहण कर सके। ध्यान से सुनो, मैं अब तुम्हें सिखाऊंगा।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, आप अतीत को कैसे याद करते हैं? आप रुचिपूर्वक सोचते हैं, अतीत में मैं इस प्रकार का था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षु, इस प्रकार आप अतीत को याद करते हैं।

भिक्षु, आप अतीत को क्यों नहीं याद करते? आप रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था, अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं, अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं, अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे, अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षु, इस प्रकार आप अतीत को याद नहीं करते।

भिक्षु, आप भविष्य की इच्छा क्यों नहीं करते? आप भविष्य में ऐसी वस्तु, ऐसी भावना, ऐसी धारणा, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। भिक्षु, इस प्रकार आप भविष्य की इच्छा नहीं करते।

भिक्षु, आप वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हैं? भिक्षु, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो उनके उपदेशों में निपुण नहीं है और न ही उनके उपदेशों में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चिंतन करता है। भिक्षु, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में भटक जाते हैं।

भिक्षु, आप वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? भिक्षु, विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान व्यक्तियों को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह अपने भीतर के पदार्थ, भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं की भावनाओं, या स्वयं की भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की धारणाओं, या प्रत्यक्ष आत्मा, या स्वयं की धारणाओं, या स्वयं की धारणाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर के संकल्पों, या निर्णायक आत्मा, या स्वयं के संकल्पों, या स्वयं के संकल्पों, या स्वयं के संकल्पों का चिंतन

नहीं करता। वह अपने भीतर की चेतना, या सचेत आत्मा, या स्वयं की चेतना, या स्वयं की चेतना का चिंतन नहीं करता। भिक्षु, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है, लेकिन हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। इस प्रकार, दिन-रात लगन से इस प्रक्रिया को जारी रखो।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य लोमासंगिया भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.5 कुलकमविभंग सुत्त(135)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब तोदेय्या के पुत्र सुभा, जो उनके शिष्य थे, भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका अभिवादन किया। अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम गुरु, मनुष्य जाति में नीचता और श्रेष्ठता क्यों पाई जाती है? क्योंकि नश्वर और दीर्घायु, बीमार और स्वस्थ, कुरूप और सुंदर, प्रभावहीन और प्रभावशाली, गरीब और धनी, नीच और उच्च कुल के, मूर्ख और विवेकशील लोग पाए जाते हैं। तो फिर मनुष्य जाति में नीचता और श्रेष्ठता क्यों पाई जाती है?”

"विद्यार्थियों, सभी प्राणी कर्म के स्वामी हैं, कर्म के उत्तराधिकारी हैं, कर्म से उत्पन्न हुए हैं, कर्म के माध्यम से संबंधित हैं और कर्म ही उनका मध्यस्थ है। कर्म ही प्राणियों में कठोरता और परिष्कार के आधार पर भेद उत्पन्न करता है।"

"गुरु गौतम ने संक्षिप्त में जो कथन कहा है, उसका विस्तृत अर्थ मुझे समझ नहीं आया। यदि गुरु गौतम मुझे धम्म का उपदेश दें, तो मैं उनके संक्षिप्त कथन का विस्तृत अर्थ समझ पाऊँगा।"

"तो फिर, विद्यार्थी, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, गुरु गौतम," शिष्य सुभा ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने फरमाया: “हे विद्यार्थी, एक ऐसा मामला है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष प्राणियों का हत्यारा हो, निर्दयी हो, रक्तरंजित हो, हत्या और वध करने में लिप्त हो, प्राणियों पर दया न दिखाए। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, नरक में पुनः प्रकट होता है। यदि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद — अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, नरक में पुनः प्रकट होने के बजाय — वह मनुष्य रूप धारण कर लेता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, अल्पायु होता है। यही अल्पायु का मार्ग है: प्राणियों का हत्यारा होना, निर्दयी होना, रक्तरंजित हो, हत्या और वध करने में लिप्त हो, प्राणियों पर दया न दिखाए।”

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष, प्राणियों की हत्या का त्याग करके, उनका वध करने से परहेज़ करता है और दंड-चाकू त्यागकर, सभी प्राणियों के कल्याण के प्रति संशयपूर्ण, दयालु और सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन से वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। यदि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन से वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होने के बजाय मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, दीर्घायु होता है। दीर्घायु का यही मार्ग है: प्राणियों की हत्या का त्याग करना, प्राणियों की वध करने से परहेज़ करना, दंड-चाकू त्यागकर, सभी प्राणियों के कल्याण के प्रति संशयपूर्ण, दयालु और सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि पहुँचाता है। ऐसे कर्म करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, वह रोगग्रस्त ही रहता है। रोगग्रस्त होने का यही मार्ग है: अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि पहुँचाना।"

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि नहीं पहुँचाता। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, स्वस्थ रहता है। स्वास्थ्य का यही मार्ग है: अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि न पहुँचाना।

एक ऐसा मामला है, जहाँ कोई स्त्री या पुरुष चिड़चिड़े और आसानी से परेशान हो जाते हैं; यहाँ तक कि हल्की आलोचना से भी वे आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण और क्रोधित हो जाते हैं; झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाते हैं। ऐसे कार्यों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वे अभाव के लोक में पुनः प्रकट होते हैं... यदि वे मनुष्य रूप धारण करते हैं, तो वे जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेते हैं, कुरूप ही होते हैं। कुरूपता की ओर ले जाने वाला मार्ग यही है: चिड़चिड़े और आसानी से परेशान होना; यहाँ तक कि हल्की आलोचना से भी आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण और क्रोधित होना; झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष चिड़चिड़े या आसानी से परेशान नहीं होते; यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की जाती है, तब भी वे आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण या नाराज़ नहीं होते; वे झुंझलाहट, घृणा या कड़वाहट नहीं दिखाते। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वे एक अच्छे स्थान पर पुनः प्रकट होते हैं... यदि वे मनुष्य रूप धारण करते हैं, तो वे जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेते हैं, सुंदर होते हैं। सुंदरता का मार्ग यही है: चिड़चिड़े या आसानी से परेशान न होना; यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की जाती है, तब भी आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण या नाराज़ न होना; और न ही झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाना।

एक ऐसा मामला है जहाँ एक स्त्री या पुरुष ईर्ष्यालु होता है। वह दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, सम्मान, अभिवादन और श्रद्धा के बारे में ईर्ष्या करता है, द्वेष रखता है और चिंतन करता है। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि वह इसके बजाय मानव रूप धारण करता है, तो पुनर्जन्म में उसे कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। प्रतिष्ठा न प्राप्त करने का यही मार्ग है: ईर्ष्या करना, ईर्ष्या करना, द्वेष रखना और दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, श्रद्धा, अभिवादन और श्रद्धा के बारे में चिंतन करना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष ईर्ष्यालु नहीं होता। वह दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, प्रशंसा, अभिवादन या श्रद्धा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या नहीं करता। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ भी पुनर्जन्म लेता है, वहाँ विख्यात होता है। यही विख्यात होने का मार्ग है: ईर्ष्या न करना; दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, प्रशंसा, अभिवादन या श्रद्धा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या न करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष पुरोहितों या ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास या प्रकाश प्रदान नहीं करता/करती। ऐसे कार्यों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता/होती है... यदि वह इसके बजाय मानव रूप धारण करता/करती है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता/लेती है, निर्धन ही रहता/रहती है। यही निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग है: पुरोहितों या ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास या प्रकाश प्रदान न करना।"

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष पुरोहितों और ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करता है। ऐसे कार्यों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, धनी होता है। महान धन की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: पुरोहितों और ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करना।

एक ऐसा मामला है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष हठी और अहंकारी होता है। वह सम्मान के योग्य व्यक्तियों को आदर नहीं देता, जिनके लिए खड़ा होना चाहिए उनके लिए खड़ा नहीं होता, जिन्हें बैठना चाहिए उन्हें बैठने की जगह नहीं देता, जिनके लिए रास्ता बनाना चाहिए उनके लिए रास्ता नहीं बनाता, जिनकी पूजा की जानी चाहिए उनकी पूजा नहीं करता, जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका सम्मान नहीं करता, जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका आदर नहीं करता, और जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका सम्मान नहीं करता। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, नीच कुल का ही होता है। यही वह मार्ग है जो नीच कुल की ओर ले जाता है: हठी और अहंकारी होना, सम्मान के योग्य व्यक्तियों को आदर न देना, उनके लिए खड़ा न होना, न बैठने की जगह देना, न रास्ता बनाना, न पूजा करना, न आदर करना, न आदर करना, और न ही सम्मान के योग्य व्यक्तियों का सम्मान करना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष हठी या अहंकारी नहीं होता; वह सम्मान के योग्य लोगों को आदर देता है, उठ खड़ा होता है... आसन देता है... रास्ता बनाता है... पूजा करता है... आदर करता है... आदर करता है... सम्मान के योग्य लोगों का आदर करता है। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने से, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, उच्च कुल का होता है। उच्च कुल की ओर ले जाने वाला मार्ग यही है: हठी या अहंकारी न होना; सम्मान के योग्य लोगों को आदर देना, उठ खड़ा होना... आसन देना... रास्ता बनाना... पूजा करना... आदर करना... आदर करना... सम्मान के योग्य लोगों का आदर करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के पास जाकर यह नहीं पूछता: 'हे आदरणीय, कुशल क्या है? अकुशल क्या है? निंदनीय क्या है? निर्दोष क्या है? किसका अभ्यास करना चाहिए? किसका अभ्यास नहीं करना चाहिए? मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक हानि और कष्ट का कारण बनेंगे? या मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेंगे?' ऐसे कर्मों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि इसके बजाय वह मानव रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेगा, मूर्ख ही रहेगा। मूर्खता की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के पास जाकर यह न पूछना: 'कुशल क्या है?... या मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेंगे?'"

लेकिन फिर एक ऐसा मामला भी आता है जब कोई स्त्री या पुरुष किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति से मिलने जाता है और पूछता है: 'हे आदरणीय, कुशल क्या है? अकुशल क्या है? निंदनीय क्या है? निर्दोष क्या है? किसका अभ्यास करना चाहिए? किसका अभ्यास नहीं करना चाहिए? मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक हानि और पीड़ा का कारण बनेगा? या मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेगा?' ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य में पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप में जन्म लेता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, विवेकशील होता है। विवेक की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति से मिलने जाते समय यह पूछना: 'कुशल क्या है?... या मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेगा?'

इसलिए, विद्यार्थी, अल्प जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को अल्पजीहित बनाता है, दीर्घ जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को दीर्घजीहित बनाता है; रोग की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को रोगग्रस्त बनाता है, स्वास्थ्य की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को स्वस्थ बनाता है; कुरूपता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को कुरूप बनाता है, सुंदरता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को सुंदर बनाता है; प्रभावहीनता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को प्रभावहीन बनाता है, प्रभाव की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को प्रभावशाली बनाता है; गरीबी की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को गरीब बनाता है, धन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को धनी बनाता है; निम्न जन्म की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को निम्न कुल का बनाता है, उच्च कुल का बनाता है; मूर्खता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को मूर्ख बनाता है, विवेक की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को विवेकशील बनाता है।

सभी प्राणी कर्मों के स्वामी हैं, कर्मों के उत्तराधिकारी हैं, कर्मों से उत्पन्न हैं, कर्मों के माध्यम से संबंधित हैं और कर्म ही उनके मध्यस्थ हैं। कर्म ही प्राणियों में कठोरता और परिष्कार के आधार पर भेद उत्पन्न करता है।

यह सुनकर तोदेय्या के पुत्र शिष्य सुभा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे महान गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु समुदाय की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.6महाकम्मविभंग सुत्त(136)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, गिलहरियों के भोजन स्थल पर रह रहे थे। उस समय पूज्य समिद्धि वन की एक कुटिया में रह रहे थे।

फिर व्यायाम के लिए टहलते-फिरते हुए यात्री पोटालिपुत्त आदरणीय समिद्धि के पास आए और उनसे अभिवादन किया। जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए। ऐसा करने के बाद उन्होंने आदरणीय समिद्धि से कहा:

2. "हे मित्र समिद्धि, मैंने यह बात भिक्षु गौतम के मुख से सुनी और सीखी है: 'शारीरिक कर्म व्यर्थ हैं, शाब्दिक कर्म व्यर्थ हैं, केवल मानसिक कर्म ही सत्य हैं।' परन्तु वास्तव में एक ऐसी प्राप्ति है जिसमें कर्मों के परिणाम का कोई अहसास नहीं होता।"

"नहीं, मित्र पोटालिपुत्त, ऐसा मत कहो, भगवान बुद्ध का गलत वर्णन मत करो; भगवान बुद्ध का गलत वर्णन करना उचित नहीं है; भगवान बुद्ध ऐसा नहीं कहेंगे: 'शारीरिक कर्म व्यर्थ हैं, शाब्दिक कर्म व्यर्थ हैं, केवल मानसिक कर्म ही सत्य हैं।' और वास्तव में वह प्राप्ति है जिसमें कर्मों के फल का कोई भी अंश महसूस नहीं होता।"

"मित्र समिद्धि, तुम्हें बाहर गए कितना समय हो गया है?"

"ज्यादा समय नहीं लगेगा, दोस्त, सिर्फ तीन साल।"

"तो अब, जब युवा भिक्षु यह सोचता है कि गुरु की रक्षा इस प्रकार की जानी चाहिए, तो हम वरिष्ठ भिक्षुओं से क्या कहेंगे? हे मित्र समिद्धि, शरीर, वाणी या मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद, उसके परिणाम के बारे में क्या अनुभूति होती है?"

"हे मित्र पोटालिपुत्त, जानबूझकर कर्म करने के बाद, चाहे वह देह, वाणी या मन से किया गया हो, परिणाम स्वरूप दुख भोगना पड़ता है।"

तब पूज्य समिद्धि के शब्दों से न तो सहमत होते हुए और न ही असहमत होते हुए, घुमंतू पोटालिपुत्त अपने आसन से उठे और चले गए।

3. पोटालिपुत्त के जाने के तुरंत बाद, पूज्य समिद्धि पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने पूज्य आनंद को पोटालिपुत्त के साथ हुई अपनी सारी बातचीत सुनाई।

यह सुनकर पूज्य आनंद ने उनसे कहा, "मित्र समिद्धि, यह बात भगवान बुद्ध को बतानी चाहिए। चलो, हम भगवान बुद्ध के पास चलते हैं और उन्हें इस बारे में बताते हैं। वे जो उत्तर देंगे, हम उसे ध्यान में रखेंगे।"

"फिर भी, मित्र," आदरणीय समिद्धि ने उत्तर दिया।

फिर वे सब मिलकर भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद, पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को पूज्य समिद्धि और यात्री पोटालिपुत्त के बीच हुई सारी बातचीत सुनाई।

4. यह सुनकर भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा:

"आनंद, मैं उस यात्री को जानता तक नहीं। ऐसी बातचीत कैसे हो सकती थी? पोटलिपुत्त के प्रश्न का उत्तर विश्लेषण करने के बाद दिया जाना चाहिए था, लेकिन इस गुमराह समिद्धि ने बिना किसी स्पष्टीकरण के उत्तर दे दिया।"

यह सुनकर आदरणीय उदयिन ने भगवान बुद्ध से कहा, "परन्तु, आदरणीय महोदय, मान लीजिए कि आदरणीय समिद्धि ने जो कहा, उसका तात्पर्य यह था कि 'जो कुछ भी अनुभव होता है, वह पीड़ा है।'"2

5. तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "देखो, आनंद, यह गुमराह उदयिन कैसे हस्तक्षेप कर रहा है। मुझे पता था, आनंद, कि यह गुमराह उदयिन अब अनुचित रूप से हस्तक्षेप करेगा। सबसे पहले तो यह तीन प्रकार की भावनाओं के बारे में था जो पोटलीपुत्त ने पूछी थीं। यदि इस गुमराह समिद्धि ने पूछे जाने पर पोटलीपुत्त को इस प्रकार उत्तर दिया होता: 'शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) सुख के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे सुख प्राप्त होता है; शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) पीड़ा के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे पीड़ा प्राप्त होती है; शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) न तो पीड़ा और न ही सुख के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे न तो पीड़ा और न ही सुख प्राप्त होता है' - इस प्रकार उत्तर देकर, आनंद, गुमराह समिद्धि ने हे पोटालिपुत्त, घुमक्कड़ ने सही उत्तर दिया है। इसके अलावा, हे आनंद, अन्य संप्रदायों के वे मूर्ख और विचारहीन घुमक्कड़ कौन हैं जो तथागत के कर्म के महान उपदेश को समझ पाएंगे? (पर) हे आनंद, यदि तुम तथागत के कर्म के महान उपदेश को ध्यान से सुनोगे (तो शायद समझ पाओगे) ।3

"हे भगवान, यही समय है, यही समय है, हे परम पूज्य, जब भगवान बुद्ध कर्म के महान उपदेश का विवेचन करें। भगवान बुद्ध से इसे सुनकर भिक्षु इसे ध्यान में रखेंगे।"

"तो सुनो, आनंद, और मेरी बातों पर ध्यान दो।"

“जी, ऐसा ही हो,” आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया। भगवान ने आगे कहा:

6. "आनंद, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं। वे चार कौन से हैं?"

(i) "यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन इच्छाओं में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, द्वेषपूर्ण बातें करता है, कठोर बातें करता है, चुगली करता है, लोभी होता है, द्वेषपूर्ण होता है और गलत दृष्टिकोण रखता है।4 मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह अभाव की अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होता है।

(ii) "लेकिन यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों को मारता है... और उसका दृष्टिकोण गलत है। मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य में पुन: प्रकट होता है।"

(iii) "यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन इच्छाओं में लिप्त होने से, झूठी वाणी से, द्वेषपूर्ण वाणी से, कठोर वाणी से, चुगली करने से परहेज़ करता है; वह लोभी नहीं होता, द्वेषपूर्ण नहीं होता और उसका दृष्टिकोण सही होता है।5 मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होता है।"

(iv) "परन्तु यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करता है... और उसका दृष्टिकोण सही होता है। मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह अभाव की अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होता है।"

7. (i) "हे आनंद, यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या करता है, बिना दी हुई वस्तुएँ लेता है, कामुक इच्छाओं में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, द्वेषपूर्ण बातें करता है, कठोर बातें करता है, चुगली करता है, लोभी है, द्वेषपूर्ण है, और गलत दृष्टि रखता है। वह देखता है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि बुरे कर्म हैं और दुराचार का फल है; क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या की... उसकी गलत दृष्टि थी। मैंने देखा है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में पुन: प्रकट हुआ है, 'नरक में।' वह कहता है: 'ऐसा लगता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा। जो ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; केवल इसी पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है, बाकी सब गलत है।'

8. (ii) "परन्तु यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या करता है... उसका दृष्टिकोण गलत है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बुरे कर्म नहीं हैं, दुराचार का कोई परिणाम नहीं है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या की... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा लगता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका यह गलत विचार है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह हमेशा स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होगा। जो ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है, बाकी सब गलत है।'

9. (iii) "यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... और उसका दृष्टिकोण सही है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे कर्म हैं, अच्छे आचरण का फल है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया... और उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है और मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह हमेशा स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट होगा। जो लोग ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में त्रुटिपूर्ण हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है; इसके अलावा कुछ भी गलत है।'

10. (iv) "परन्तु यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अच्छे कर्म नहीं हैं, अच्छे आचरण का कोई फल नहीं है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ हत्या से परहेज किया... उसका सही दृष्टिकोण था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज करता है... उसका दृष्टिकोण सही है, वह मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा। जो लोग ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में त्रुटिपूर्ण हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है; इसके अलावा कुछ भी गलत है।'

11. (i) "अब, आनंद, जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि बुरे कर्म हैं, दुराचार का परिणाम है,' मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।

जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि किसी व्यक्ति ने जीवित प्राणियों की हत्या की... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में फिर से प्रकट हुआ,' तो मैं उससे सहमत हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

12. (ii) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बुरे कर्म नहीं हैं, दुराचार का कोई परिणाम नहीं है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने जीवित प्राणियों को मार डाला... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट हुआ,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हमेशा एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

13. (iii) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे कर्म हैं, अच्छे आचरण का परिणाम है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज किया... उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट हुआ,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।"

"जब वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, हमेशा एक सुखद गंतव्य, स्वर्ग लोक में फिर से प्रकट होगा,'6 मैं उसे यह बात नहीं मानता।

"जब वह कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूं।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है: बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

14. (iv) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अच्छे कर्म नहीं हैं, अच्छे आचरण का कोई परिणाम नहीं है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।

जब वह इस प्रकार कहता है: "क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज किया... उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट हुआ," तो मैं उससे सहमत हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म ग्रंथ की महान व्याख्या का ज्ञान भिन्न है। कर्म ग्रंथ की महान व्याख्या

15. (i) "अब, आनंद, यहाँ एक व्यक्ति है जिसने जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट होता है।7 लेकिन (शायद) उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने पहले किया था, या उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने बाद में किया था, या उसकी मृत्यु के समय उसके द्वारा गलत दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया गया था।8 और इसीलिए, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ। लेकिन चूंकि उसने यहाँ जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था, इसलिए वह इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भोगेगा।"

16. (ii) "यहाँ एक व्यक्ति है जिसने जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद स्थान पर पुनः प्रकट होता है।9 परन्तु (शायद) उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने पहले किया था, या उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने सही दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया था। और इसीलिए मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद स्थान पर पुनः प्रकट हुआ। परन्तु क्योंकि उसने यहाँ जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था, इसलिए उसे इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भुगतना पड़ेगा।10

17. (iii) "अब यहाँ वह व्यक्ति है जिसने प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होता है।11 परन्तु (शायद) उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने पहले किया था, या उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने सही दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया था। और इसीलिए मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट हुआ। परन्तु चूंकि उसने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है, इसलिए उसे इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भुगतना पड़ेगा।

18. (iv) "यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जिसने प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट होता है।12 परन्तु (शायद) उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने पहले किया था, या उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने गलत दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया। और इसीलिए, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ। परन्तु चूंकि उसने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है, इसलिए वह इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भोगेगा।13

19. "तो, आनंद, कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) असमर्थ होते हैं और असमर्थ प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) असमर्थ होते हैं और सक्षम प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) सक्षम होते हैं और सक्षम प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) सक्षम होते हैं और असमर्थ प्रतीत होते हैं।"14

भगवान बुद्ध ने यही कहा। पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें छह इंद्रियों के विश्लेषण का पाठ पढ़ाऊंगा। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए। छह बाह्य इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए। चेतना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संपर्क के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। बुद्धि के अठारह अन्वेषणों का ज्ञान होना चाहिए। प्राणियों की छत्तीस अवस्थाओं का ज्ञान होना चाहिए जिनसे वे जुड़े होते हैं। इनके संबंध में, इस पर निर्भर रहते हुए, उस पर निर्भर रहना छोड़ दें। तीन संदर्भ बिंदु हैं जिनका अभ्यास एक श्रेष्ठ व्यक्ति करता है, और इनका अभ्यास करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बन जाता है। कुशल प्रशिक्षकों में, वह उन लोगों का अद्वितीय प्रशिक्षक माना जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है। यह छह इंद्रियों के विश्लेषण का सारांश है।"

"'छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और बुद्धि। 'छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

"'छह बाह्य इंद्रिय-माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? रूप-माध्यम, ध्वनि-माध्यम, सुगंध-माध्यम, स्वाद-माध्यम, स्पर्श-माध्यम, विचार-माध्यम। 'छह बाह्य इंद्रिय-माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में ऐसा कहा गया था।"

"'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना, बुद्धि-चेतना। 'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था।"

"'संपर्क के छह प्रकारों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शारीरिक संपर्क, बौद्धिक संपर्क। 'संपर्क के छह प्रकारों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

"'बुद्धि के अठारह अन्वेषणों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था? आँख से किसी रूप को देखकर, व्यक्ति ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो सुख का आधार बन सकता है, ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो दुःख का आधार बन सकता है, और ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो समभाव का आधार बन सकता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से सुगंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्श का अनुभव करके... बुद्धि से किसी विचार को जानकर, व्यक्ति ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो सुख का आधार बन सकता है, ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो दुःख का आधार बन सकता है, और ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो समभाव का आधार बन सकता है। 'बुद्धि के अठारह अन्वेषणों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह इसी संदर्भ में कहा गया था।"

"'जीवों की छत्तीस अवस्थाओं का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? छह प्रकार के गृहस्थ सुख और छह प्रकार के त्याग सुख; छह प्रकार के गृहस्थ कष्ट और छह प्रकार के त्याग कष्ट; छह प्रकार की गृहस्थ समभाव और छह प्रकार के त्याग समभाव।"

"घरेलू सुख के छह प्रकार क्या हैं? वह सुख जो आँखों से दिखाई देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति को अर्जित करने पर उत्पन्न होता है—जो सुखद, मनभावन, आकर्षक और सांसारिक सुखों से जुड़ी होती हैं—या जब ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति को याद किया जाता है, जो बीत चुकी हों, समाप्त हो गई हों और बदल गई हों: उसे घरेलू सुख कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)

और त्याग के आनंद के छह प्रकार क्या हैं? वह आनंद जो तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति इन रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं: इसे त्याग का आनंद कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"घरेलू कष्ट के छह प्रकार क्या हैं? वह कष्ट जो तब उत्पन्न होता है जब कोई आँखों से दिखाई देने वाली वस्तुओं - सुखद, मनभावन, आकर्षक, प्यारी, सांसारिक प्रलोभनों से जुड़ी हुई - के न होने को न होने के रूप में देखता है, या जब कोई उन वस्तुओं के न होने को याद करता है जो बीत चुकी हैं, समाप्त हो चुकी हैं और बदल चुकी हैं: इसे घरेलू कष्ट कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)

और त्याग की पीड़ा के छह प्रकार क्या हैं? वह पीड़ा जो उस व्यक्ति में उत्पन्न होती है जो अद्वितीय मुक्ति की लालसा से भरा होता है, जब वह उन्हीं रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं, और वह इस लालसा से भर जाता है: 'हे, मैं कब उस आयाम में प्रवेश करूँगा और रहूँगा जिसमें श्रेष्ठ आत्माएँ प्रवेश करती हैं और रहती हैं?' इसे त्याग की पीड़ा कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"और गृहस्थी समभाव के छह प्रकार क्या हैं? वह समभाव जो तब उत्पन्न होता है जब एक मूर्ख, भ्रमित व्यक्ति—एक साधारण, अशिक्षित व्यक्ति जिसने अपनी सीमाओं या कर्मों के परिणामों पर विजय प्राप्त नहीं की है 2 और जो खतरे से अनजान है 3—किसी आकृति को अपनी आँखों से देखता है। ऐसा समभाव आकृति से परे नहीं जाता, इसीलिए इसे गृहस्थी समभाव कहा जाता है। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)"

और त्याग की समता के छह प्रकार क्या हैं? वह समता जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति इन रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं: यह समता रूप से परे है, इसीलिए इसे त्याग की समता कहा जाता है। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"'जीवों की छत्तीस अवस्थाओं को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'उनके संबंध में, इस पर निर्भर करते हुए, उसे छोड़ दो': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था?"

यहां, छह प्रकार के त्याग के आनंद पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ सुखों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है। छह प्रकार के त्याग के कष्टों पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ कष्टों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है। छह प्रकार के त्याग के समभाव पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ समभावों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है।

छह प्रकार के त्याग के आनंद पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के त्याग के कष्टों का त्याग और उनसे ऊपर उठना ही उनका त्याग है, और उनसे ऊपर उठना भी। छह प्रकार के त्याग के समभाव पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के त्याग के आनंद का त्याग और उनसे ऊपर उठना ही उनका त्याग है, और उनसे ऊपर उठना भी।

"अनेकताओं से समभाव उत्पन्न होता है, जो अनेकताओं पर निर्भर करता है; और एकत्व से समभाव उत्पन्न होता है, जो एकत्व पर निर्भर करता है।"

और अनेकता से उत्पन्न, अनेकता पर निर्भर समभाव क्या है? रूपों के प्रति समभाव है, ध्वनियों... गंधों... स्वादों... स्पर्श संवेदनाओं [और विचारों: यह शब्द एक संस्करण में आता है] के प्रति समभाव है। यही अनेकता से उत्पन्न, अनेकता पर निर्भर समभाव है।

और एकत्व से उत्पन्न, एकत्व पर निर्भर समभाव क्या है? एक समभाव है जो अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम पर निर्भर है, एक समभाव है जो चेतना की अनंतता के आयाम पर निर्भर है... शून्यता के आयाम पर निर्भर है... न तो बोध के आयाम पर और न ही अबोध के आयाम पर निर्भर है। यही एकत्व से उत्पन्न, एकत्व पर निर्भर समभाव है।

एकत्व से उत्पन्न समता पर निर्भर रहकर, जो एकत्व पर ही निर्भर है, अनेकता से उत्पन्न समता को त्यागकर, जो अनेकता पर ही निर्भर है, उससे परे जाकर। यही उसका त्याग है, यही उसका पारगमन है।

"गैर-निर्माण पर निर्भर और भरोसा करके, एकांत से उत्पन्न समता को त्यागकर और उससे ऊपर उठकर, एकांत पर निर्भर एकांत से उत्पन्न समता को प्राप्त किया जा सकता है। यही उसका त्याग है, यही उसका पारगमन है।"

"'इस पर निर्भर करते हुए, उसे छोड़ दो': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'एक कुलीन व्यक्ति तीन संदर्भों का पालन करता है, जिनका पालन करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था?"

एक ऐसा मामला है जहाँ गुरु अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति और कल्याण की कामना करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से भटक जाते हैं। इस स्थिति में तथागत न तो संतुष्ट होते हैं और न ही संतुष्टि के प्रति संवेदनशील, फिर भी वे अविचलित, सचेत और सजग रहते हैं। यही वह पहला दृष्टिकोण है जिसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति विकसित करता है, और इसी दृष्टिकोण को विकसित करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है।

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ गुरु अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति और कल्याण की कामना करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके कुछ शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान की ओर अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विमुख होकर भटक जाते हैं। परन्तु उनके कुछ शिष्य सुनते हैं, ध्यान देते हैं और ज्ञान की ओर अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विमुख नहीं होते और न ही भटकते हैं। इस स्थिति में तथागत न तो संतुष्ट होते हैं और न ही संतुष्टि के प्रति संवेदनशील; साथ ही वे न तो असंतुष्ट होते हैं और न ही असंतुष्टि के प्रति संवेदनशील। संतुष्टि और असंतुष्टि दोनों से मुक्त होकर वे समभाव, सजग और सतर्क रहते हैं। यही संदर्भ का दूसरा ढाँचा है...

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ गुरु सहानुभूतिवश, अपने शिष्यों के कल्याण की कामना करते हुए, उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य ध्यान से सुनते हैं, ग्रहण करते हैं और ज्ञान में अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विचलित नहीं होते। इस स्थिति में तथागत संतुष्ट होते हैं और संतुष्टि के प्रति संवेदनशील होते हैं, फिर भी वे अविचलित, सचेत और सजग रहते हैं। यह तीसरा दृष्टिकोण है जिसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति विकसित करता है, और इसे विकसित करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है।

"'एक महान व्यक्ति तीन संदर्भों का पालन करता है, जिनका पालन करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'मास्टर प्रशिक्षकों में, उन्हें उन लोगों को प्रशिक्षित करने में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था?"

हाथी प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला हाथी केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण। घोड़े प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला घोड़ा केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण। बैल प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला बैल केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण।

लेकिन तथागत द्वारा निर्देशित - जो योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं - वह व्यक्ति जिसे वश में करना है, आठ दिशाओं में फैल जाता है।

"रूप से युक्त होने के कारण, वह रूपों को देखता है। यही पहली दिशा है।"

"वह आंतरिक रूप से रूप को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से रूपों को देखता है। यह दूसरी दिशा है।"

"उसका ध्यान केवल सुंदरता पर केंद्रित है। यह तीसरी दिशा है।"

भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने पर, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, वह अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही चौथी दिशा है।

"अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, वह चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही पाँचवीं दिशा है।"

चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का अनुभव करते हुए, वह शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। यही छठी दिशा है।

"शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करने के साथ, वह न तो बोध और न ही अबोध के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही सातवीं दिशा है।"

"न तो अनुभूति और न ही अनुभूति के आयाम से पूर्णतः परे जाकर, वह अनुभूति और अनुभूति की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही आठवीं दिशा है।"

"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत तथागत द्वारा निर्देशित, जिसे वश में किया जाना है वह व्यक्ति आठ दिशाओं में फैल जाता है।"

"'प्रमुख प्रशिक्षकों में, तथागत को उन लोगों का अद्वितीय प्रशिक्षक कहा जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है': ऐसा कहा गया था। और इसी संदर्भ में यह कहा गया था।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.8उद्देसविभंगा सुत्त(138)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक कथन और उसका विश्लेषण सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "एक भिक्षु को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो; वह आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो, तो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इतना कहकर वे अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए।

फिर, भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया है, और जिसके बाद वे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए — अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और वह आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो — और आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती': अब इस संक्षिप्त कथन के अनविश्लेषित विस्तृत अर्थ का विश्लेषण कौन कर सकता है?" तब उनके मन में यह विचार आया, "आदरणीय महा कच्चाना गुरु द्वारा प्रशंसित और उनके ज्ञानवान साथियों द्वारा पवित्र जीवन में सम्मानित हैं। वे इस संक्षिप्त कथन के अनविश्लेषित विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। मान लीजिए कि हम उनके पास जाएँ और पहुँचने पर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें।"

अतः भिक्षु पूज्य महा कच्चना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई और कहा, "हे पूज्य महा कच्चना, इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए!"

[उन्होंने उत्तर दिया:] “मित्रों, यह ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति जिसे लकड़ी की आवश्यकता हो, उसे खोजता फिरे, लकड़ी की तलाश में भटकता रहे – लकड़ी से युक्त खड़े पेड़ की जड़ और तने को अनदेखा करते हुए – यह सोचे कि लकड़ी उसकी शाखाओं और पत्तियों में खोजी जानी चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है, जिन्होंने गुरु भगवान के सामने होते हुए भी उन्हें अनदेखा कर दिया, और अब यह सोच रहे हैं कि मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछा जाए। क्योंकि भगवान जानते हैं, वे जानते हैं; देखते हैं, वे देखते हैं। वे आँख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया हो, आपको उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए।”

"जी हां, मित्र कच्चाना: जानने वाले भगवान जानते हैं; देखने वाले देखते हैं। वे आंख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब हमें उनसे इस विषय पर प्रश्न करना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया, हमें उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए था। लेकिन गुरु ने आपकी प्रशंसा की है और पवित्र जीवन में आपके ज्ञानी साथी आपको सम्मान देते हैं। आप इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। हे पूज्य महा कच्चाना, अर्थ का विश्लेषण कीजिए!"

"तो फिर, मेरे दोस्तों, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय महा कच्चना ने कहा: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया और उसके विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया, उसके विषय में, अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार अध्ययन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, वह आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती' - मैं इसका विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ:

चेतना को बिखरी हुई और फैली हुई कैसे कहा जाता है? एक स्थिति यह है कि जब किसी आकृति को आँख से देखा जाता है, तो चेतना उस आकृति के विषय के बहाव का अनुसरण करती है (शाब्दिक रूप से: 'उसके पीछे बहती है'), उस आकृति के विषय के आकर्षण से बंधी होती है, उस आकृति के विषय के आकर्षण से जकड़ी और जुड़ी होती है: तब चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई कहा जाता है।

"ऐसा मामला है जहां कान से ध्वनि सुनी जाती है... नाक से सुगंध सूंघी जाती है... जीभ से स्वाद चखा जाता है... शरीर से स्पर्श संवेदना महसूस की जाती है... बुद्धि से एक विचार का संज्ञान लिया जाता है, और चेतना उस विचार के विषय के प्रवाह का अनुसरण करती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से बंधी होती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से जकड़ी होती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से जुड़ी होती है: चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई कहा जाता है।"

और चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई क्यों नहीं कहा जाता? एक स्थिति यह है कि जब किसी रूप को आँख से देखा जाता है, तो चेतना उस रूप के विषय के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, उससे बंधी नहीं होती... उससे जकड़ी नहीं होती... उससे जुड़ी नहीं होती, या उस रूप के विषय के आकर्षण से नहीं जुड़ती: तब चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई नहीं कहा जाता।

"ऐसा मामला है जहां कान से ध्वनि सुनी जाती है... नाक से सुगंध सूंघी जाती है... जीभ से स्वाद चखा जाता है... शरीर से स्पर्श का अनुभव होता है... बुद्धि से विचार को समझा जाता है, और चेतना विचार के विषय के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, उससे बंधी नहीं होती... उससे जकड़ी नहीं होती... उससे जुड़ी नहीं होती, या विचार के विषय के आकर्षण से नहीं जुड़ती: चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई नहीं कहा जाता है।"

और मन की आंतरिक स्थिति क्या होती है? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु, इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। उसकी चेतना एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है, जंजीरों में जकड़ी रहती है और एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के आकर्षण से जुड़ जाती है। या फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। उसकी चेतना शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है, जंजीरों में जकड़ी रहती है और शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के आकर्षण से जुड़ जाती है। या फिर, परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और सतर्क रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। ध्यान, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सजग रहने पर उसे सुखद निवास प्राप्त होता है।' उसकी चेतना समभाव और सुख के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है... जकड़ी रहती है... बेड़ियों में जकड़ी रहती है, और समभाव और सुख के आकर्षण से जुड़ी रहती है। या फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। उसकी चेतना न सुख न दुख के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है... जकड़ी रहती है... बेड़ियों में जकड़ी रहती है, और न सुख न दुख के आकर्षण से जुड़ी रहती है: मन को आंतरिक रूप से स्थित कहा जाता है।

और मन को आंतरिक रूप से स्थित न होने के रूप में कैसे कहा जाता है? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु, इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। उसकी चेतना एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी होती है, न ही उससे जकड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है। या फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। उसकी चेतना शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी होती है, न ही उससे जकड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है। या फिर, परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और सतर्क रहता है, और शरीर से आनंद का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सजग, वह सुखद अवस्था में रहता है।' उसकी चेतना समभाव और सुख के बहाव का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी रहती है, न ही उसके आकर्षण से जुड़ी होती है। या फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। उसकी चेतना न सुख न दुख के बहाव का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी रहती है, न ही उसके आकर्षण से जुड़ी होती है: कहा जाता है कि मन आंतरिक रूप से स्थित नहीं होता है।

"और आसक्ति/आश्रय से बेचैनी कैसे उत्पन्न होती है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है—स्वरूप को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण किए हुए, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है। उसका रूप परिवर्तनशील और अस्थिर होता है। रूप के परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण, उसकी चेतना रूप के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होती है। रूप के परिवर्तन के अनुसार होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न बेचैनी और (अकुशल मानसिक) गुणों

के सह-उत्पन्न होने के कारण, उसका मन व्याकुल रहता है। और चेतना के व्याकुल होने के कारण, वह भयभीत, आशंकित और चिंतित रहता है।"

वह भावना को ही स्वयं मान लेता है...

वह धारणा को स्वयं के रूप में मानता है...

वह (मानसिक) कल्पनाओं को स्वयं मान लेता है...

वह चेतना को आत्मा मान लेता है, आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना परिवर्तनशील और अस्थिर है। चेतना के इस परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण, उसकी चेतना भी चेतना में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप बदलती रहती है। चेतना में होने वाले परिवर्तन और अकुशल मानसिक गुणों के सह-उत्पन्न होने से उत्पन्न होने वाली बेचैनी के कारण उसका मन व्याकुल रहता है। और जागरूकता के व्याकुल होने के कारण, वह भयभीत, आशंकित और चिंतित रहता है।

"मित्रों, इस प्रकार आसक्ति/पोषण के कारण बेचैनी उत्पन्न होती है।"

और आसक्ति/पोषण के अभाव से अविचलितता कैसे उत्पन्न होती है? एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का एक शिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। उसका रूप परिवर्तनशील और अस्थिर है, परन्तु उसकी चेतना—रूप के परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण—रूप के परिवर्तन के अनुरूप नहीं बदलती। उसका मन रूप के परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तन से उत्पन्न किसी भी व्याकुलता से ग्रस्त नहीं होता, न ही (अकुशल मानसिक) गुणों के सह-उत्पन्न होने से उत्पन्न व्याकुलता से। और क्योंकि उसकी चेतना व्याकुल नहीं होती, इसलिए वह न तो भयभीत होता है, न ही भयभीत होता है, और न ही चिंतित होता है।

वह भावना को स्वयं के समान नहीं मानता...

वह धारणा को स्वयं के रूप में नहीं मानता...

"वह मनगढ़ंत बातों को स्वयं की वास्तविकता नहीं मानता..."

वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, और न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना परिवर्तनशील और अस्थिर है, परन्तु चेतना के इस परिवर्तनशीलता और अस्थिरता के कारण उसकी चेतना, चेतना में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तित नहीं होती। उसका मन चेतना में होने वाले परिवर्तन या अकुशल मानसिक गुणों के सह-उत्पत्ति से उत्पन्न किसी भी प्रकार की बेचैनी से ग्रस्त नहीं होता। और क्योंकि उसकी जागरूकता ग्रस्त नहीं होती, इसलिए वह न तो भयभीत होता है, न ही भयभीत, और न ही चिंतित।

"मित्रों, इस प्रकार आसक्ति/पोषण के अभाव के कारण अविचलितता उत्पन्न होती है।"

अतः, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त कथन के विषय में, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया — अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार अध्ययन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, जिससे वह आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो — आसक्ति/पोषण के अभाव में वह विचलित न हो, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती' — मैं इसका विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो भगवान बुद्ध के पास जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। उनका जो भी उत्तर हो, उसे आपको याद रखना चाहिए।'

तब भिक्षु, पूज्य महा कच्चायना के शब्दों से प्रसन्न होकर और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने स्थानों से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें बताया कि उनके निवास स्थान में जाने

के बाद क्या हुआ था, और अंत में कहा, "तब पूज्य महा कच्चायना ने इन शब्दों, इन कथनों, इन वाक्यांशों का उपयोग करके अर्थ का विश्लेषण किया।"

"महा कच्चयन ज्ञानवान हैं, भिक्षुओं। वे अत्यंत विवेकशील व्यक्ति हैं। यदि आपने मुझसे इस विषय पर पूछा होता, तो मैं भी वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इस कथन का यही अर्थ है। आपको इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.9अरणविभंग सुत्त(139)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, मैं आपको एकांतवास का वर्गीकरण सिखाऊँगा, ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से सुनो।' भिक्षुओं ने सहमति व्यक्त की और भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा, 'भिक्षुओं, बंधनों में मत बँटो।'

या तो साधारण, नीच और निरर्थक इंद्रिय सुख की ओर, या फिर स्वयं को निरर्थक पीड़ा पहुँचाने की ओर। तथागत ने मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, बोध, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों में से कुछ भी न करके उपदेश दो। सुख के मूल्यांकन को जानकर, आंतरिक सुख से जुड़े रहो। रहस्य मत बताओ। इच्छाओं के विनाश को मुख पर प्रकट मत करो। शब्दों को जल्दबाजी में मत बोलो, धीरे-धीरे बोलो। स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर मत दो और सामान्य नियमों का उल्लंघन मत करो। यह एकांत के वर्गीकरण का संक्षिप्त विवरण है।

कहा गया है कि न तो साधारण, नीच और व्यर्थ इंद्रिय सुखों से बंधे रहो, न ही स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से। ऐसा क्यों कहा गया? जो पुनर्जन्म में सुख पाता है, वह नीच, नीच और निरर्थक, निरर्थक सुखों से बंधा रहता है, वह कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहता है और गलत मार्ग पर चलता है। जो पुनर्जन्म में सुख नहीं पाता, वह नीच, नीच और निरर्थक, निरर्थक सुखों से मुक्त रहता है, वह कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से मुक्त रहता है और सही मार्ग पर चलता है। स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से बंधा रहने वाला व्यक्ति कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहता है और गलत मार्ग पर चलता है। स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से मुक्त रहने वाला व्यक्ति कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से मुक्त रहता है और सही मार्ग पर चलता है। यदि यह कहा गया था कि, न तो साधारण, गैर-महान लोगों के निम्न, घृणित, व्यर्थ कामुक सुख के बंधन में बंधे रहो, न ही स्वयं को प्रताड़ित करने के गैर-महान व्यर्थ कष्ट के बंधन में, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

ऐसा कहा गया है कि तथागत ने मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। ऐसा क्यों कहा गया? यह वही आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जैसे सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। यदि यह कहा गया है कि तथागत ने किसी भी चरम सीमा तक पहुंचे बिना मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है, तो इसका कारण यही है।

कहा गया है कि प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों न करो, उपदेश दो। ऐसा क्यों कहा गया? भिक्षुओं, उपदेश न देते हुए प्रशंसा और निंदा कैसे हो सकती है? यदि यह कहा जाए, "जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुमार्ग में हैं," तो इससे किसी विशेष व्यक्ति पर निंदा होती है। यदि यह कहा जाए, "जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त होकर श्रेष्ठ मार्ग में हैं," तो इससे किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, "जो लोग स्वयं को कष्ट देने वाले निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुमार्ग में हैं," तो इससे किसी

विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, तो किसी विशेष व्यक्ति पर दोषारोपण होता है। यदि यह कहा जाए, “जो लोग स्वयं को निरर्थक पीड़ा पहुँचाने वाले अपुष्ट कर्मों में लिप्त हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं,” तो किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, “जिनका ‘अस्तित्व’ का बंधन नहीं टूटा है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं,” तो किसी विशेष व्यक्ति पर दोषारोपण होता है। यदि यह कहा जाए, “जिनका ‘अस्तित्व’ का बंधन टूट गया है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं,” तो किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। भिक्षुओं, इस प्रकार प्रशंसा और निंदा होती है और उपदेश नहीं दिया जाता। भिक्षुओं, प्रशंसा और निंदा के बिना उपदेश कैसे दिया जा सकता है? भिक्षुओं, यह नहीं कहा गया है, “जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों से बंधे रहते हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहते हैं और गलत मार्ग पर चलते हैं।” बल्कि यह कहा गया है, “यदि बंधे रहते हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहते हैं और गलत मार्ग पर चलते हैं।” इस प्रकार उपदेश दिया गया है। यह नहीं कहा गया है, “जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों से बंधे रहते हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त रहते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।” बल्कि यह कहा गया है, “यदि बंधे न रहें, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त रहते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।” इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, “जो लोग स्वयं को निरर्थक और अवांछित यातना देने के बंधन में बंधे हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।” बल्कि यह कहा गया है, “यदि बंधे हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।” इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, “जो लोग स्वयं को निरर्थक और अवांछित यातना देने के बंधन में बंधे हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं।” बल्कि यह कहा गया है, “यदि बंधन मुक्त हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं।” इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, “जिनका ‘होना’ का बंधन नष्ट नहीं हुआ है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।” बल्कि यह कहा गया है, “जब ‘होना’ का बंधन नष्ट नहीं होता, तो ‘अस्तित्व’ (*1) नष्ट नहीं होता।” यह नहीं कहा गया है,“जिनका ‘अस्तित्व’ का बंधन टूट जाता है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त होते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।” कहा जाता है, “जब ‘अस्तित्व’ का बंधन टूट जाता है, तो ‘अस्तित्व’ (*1) नष्ट हो जाता है। भिक्षुओं, इस प्रकार उपदेश बिना स्तुति और निंदा के दिया जाता है।”

यदि यह कहा गया कि प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों में से कुछ भी न करो, तो यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया है कि सुख के मूल्यांकन को जानकर आंतरिक सुख में लीन रहो। ऐसा क्यों कहा गया है? भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख के सूत्र हैं। ये पाँच क्या हैं? आँखों से अनुभव किए जाने वाले सुखद रूप जो इंद्रिय-इच्छाओं और स्नेह को जगाते हैं। कानों से अनुभव किए जाने वाले सुखद ध्वनियाँ, ...और... नाक से अनुभव किए जाने वाले सुखद गंध, ...और... जीभ से अनुभव किए जाने वाले सुखद स्वाद, ...और... शरीर से अनुभव किए जाने वाले सुखद स्पर्श।

इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और आसक्ति को जगाना। भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख हैं। भिक्षुओं, यदि इन पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के कारण कोई सुख या आनंद उत्पन्न होता है, तो वह इंद्रिय सुख कहलाता है, जो साधारण मनुष्य का नीच सुख है। भिक्षुओं, इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, इसे अधिक महत्व नहीं देना चाहिए, मैं कहता हूँ कि इससे डरना चाहिए। यहाँ, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और दोषों से विरक्त भिक्षु, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से विरक्त होकर, एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से स्थिर करके और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है... फिर... तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है... फिर... चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। इसे ही इंद्रिय-रहित सुख, एकांतवास का सुख, शांति और ज्ञान का सुख कहा जाता है। इसका अभ्यास किया जाना चाहिए, इसे खूब महत्व दिया जाना चाहिए और इससे डरना नहीं चाहिए, मैं कहता हूँ। यदि यह कहा गया है कि आनंद के मूल्यांकन को जानते हुए, आंतरिक आनंद से जुड़े रहो, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया था, रहस्य मत बताओ, इच्छाओं के विनाश को मुखदाह मत करो। ऐसा क्यों कहा गया था? हे भिक्षुओं, यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो, जो घटित न हुआ हो, सत्य न हो, या शुभ न हो, तो संभव हो तो उस रहस्य को न बताएं। यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे न बताने का अभ्यास करें। यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो, जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ हो, तो उसे बताने का सही समय जानें। हे भिक्षुओं, यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित न हुआ हो, सत्य न हो, या शुभ न हो, तो संभव हो तो उस इच्छा विनाश को मुखदाह न करें। यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे मुखदाह न करने का अभ्यास करें। यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे मुखदाह न करने का अभ्यास करें। यदि यह कहा गया था कि रहस्य मत बताओ, इच्छाओं के विनाश को चेहरे पर प्रकट मत करो, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था, जल्दबाजी में मत बोलो, आराम से बोलो। ऐसा क्यों कहा गया था? भिक्षुओं, जल्दबाजी में बोलने वाला शरीर को थकाता है, मन और वाणी को विचलित करता है, गला दुखता है, और स्पष्ट रूप से न बोले गए शब्द समझ में नहीं आते। वहीं आराम से बोलने वाला शरीर को नहीं थकाता, मन और वाणी को विचलित नहीं करता, गला नहीं दुखता, और स्पष्ट रूप से बोले गए शब्द समझ में आते हैं।

यदि यह कहा गया था कि शब्दों को जल्दबाजी में न बोलें, आराम से बोलें, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था कि स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर न दें और प्रचलित नियमों को नकारें। ऐसा क्यों कहा गया था? भिक्षुओं, यहाँ स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर कैसे दिया जा रहा है और प्रचलित नियमों को कैसे नकारा जा रहा है? भिक्षुओं, एक अवस्था में पात्र को पातीति, दूसरी में पट्टा, तीसरी में विट्ठा, चौथी में सारवान, चौथी में धारोपन, चौथी में पोनान और चौथी में पिसीलान कहा जाता है। चाहे उस अवस्था में इसे किसी भी नाम से जाना जाए, इसे सर्वोच्च सत्य माना जाता है और बाकी सब सत्य नहीं है। यह स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर देना और प्रचलित नियमों को नकारना है। भिक्षुओं, यहाँ स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर कैसे नहीं दिया जा रहा है और प्रचलित नियमों को नकारा कैसे नहीं जा रहा है? भिक्षुओं, एक अवस्था में पात्र को पातीति, दूसरी में पट्टा, चौथी में विट्ठा, चौथी में सारवान, चौथी में धारोपन, चौथी में पोनान और चौथी में पिसीलान कहा जाता है। उस राज्य और अन्य राज्यों में इसे चाहे जिस नाम से जाना जाता हो, पूज्य गुरुजी जानते हैं कि यह वही कटोरा है जिसे जाना जाता है, और वे इसके बारे में और कुछ नहीं सोचते। इसलिए, स्थानीय अभिव्यक्ति पर कोई जोर नहीं दिया जाता और न ही प्रचलित रीति-रिवाजों को नजरअंदाज किया जाता है। यदि यह कहा गया है कि स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर न दें और प्रचलित रीति-रिवाजों को नजरअंदाज न करें, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

अतः भिक्षुओं, जो पुनर्जन्म में सुख पाता है, वह नीच, घृणित, निरर्थक और अशोभनीय सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुकर्म में रहता है। यह बात शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, जो पुनर्जन्म में सुख नहीं पाता, वह नीच, घृणित, निरर्थक और अशोभनीय सुखों से मुक्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित होकर सही मार्ग में रहता है। यह बात शरण के बिना है। अतः भिक्षुओं, जो स्वयं को अशोभनीय और निरर्थक पीड़ा पहुँचाने में लिप्त रहता है, वह अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुकर्म में रहता है। यह बात शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, जो स्वयं को अशोभनीय और निरर्थक पीड़ा पहुँचाने से मुक्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित होकर सही मार्ग में रहता है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, तथागत ने मध्य मार्ग को जान लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। यह अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और सही मार्ग पर है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, स्तुति और निंदा करना और उपदेश न देना अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और गलत मार्ग पर है। यह वस्तु शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, स्तुति और निंदा किए बिना उपदेश देना अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और सही मार्ग पर है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, साधारण मनुष्य के इंद्रिय सुख, नीच सुख अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त हैं और गलत मार्ग पर हैं। यह वस्तु शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, इंद्रिय सुख से मुक्ति, एकांतवास का सुख, शांति और आत्मज्ञान। यह बिना किसी अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप के है और सही तरीके से है। 'इस चीज का कोई आश्रय नहीं है।' भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित नहीं हुआ, सत्य नहीं है, शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और उचित मार्ग में है; यह शरण के बिना है। भिक्षुओं, इच्छाओं का वह नाश जो घटित नहीं हुआ, सत्य नहीं है, शुभ नहीं है, मुख से कहा गया है। अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, इच्छाओं का वह नाश जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, मुख से कहा गया है। अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है। गलत विधि', यह बात शरण के साथ है। वहाँ, भिक्षुओं, जो इच्छाएँ नष्ट हुई हैं, वह सत्य है और अच्छे के लिए सहायक है। सीधे-सीधे कहा गया है। बिना किसी अप्रियता, परेशानी, बुखार के।'विलाप करना और सही तरीका है', यह बात बिना किसी शरण के है। वहाँ, भिक्षुओं, स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर देते हुए और प्रचलित प्रयोग को दरकिनार करते हुए, 'अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप करना और गलत तरीका है', यह बात शरण के साथ है। वहाँ, भिक्षुओं, स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर न देते हुए और प्रचलित प्रयोग को दरकिनार न करते हुए, 'अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप करना और सही तरीका है', यह बात बिना किसी शरण के है।

अतः, भिक्षुओं, हमें शरणस्थल और शरणस्थलहीन दोनों प्रकार की चीजों को जानने का अभ्यास करना चाहिए। कुलानु सुभूति शरणस्थलहीन चीजों की विधि में विलीन हो गया है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.10धातुविभंगा सुत्त(140)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक बार भगवान बुद्ध मगध देश की यात्रा करते हुए राजगृह में कुम्हार बग्गावा की कार्यशाला में गए और उनसे कहा, 'यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो मैं एक रात आपकी कार्यशाला में बिताऊंगा।'

'आदरणीय महोदय, कार्यशाला में एक तपस्वी पहले ही आ चुके हैं, यदि उन्हें कोई आपत्ति न हो, तो आप अपनी इच्छानुसार रह सकते हैं।'

उस समय पुक्कुसाती नामक एक कुलवासी, जो भगवान बुद्ध में आस्था के कारण संन्यासी बन गए थे, कार्यशाला में पहुँच चुके थे। भगवान बुद्ध आदरणीय पुक्कुसाती के पास गए और कहा, 'यदि भिक्षु को कोई असुविधा न हो, तो मैं एक रात कार्यशाला में ठहरूँगा।'

'हे पूज्यवर, आप अपनी इच्छानुसार रहें, कुम्हार की कार्यशाला में कोई समस्या नहीं है।'

फिर भगवान बुद्ध कुम्हार की कार्यशाला में गए, एक उपयुक्त स्थान पर सूखी घास बिछाई और पालथी मारकर बैठ गए, ध्यान को अपने सामने केंद्रित करते हुए। भगवान बुद्ध रात के काफी देर तक इसी मुद्रा में बैठे रहे। पूज्य पुक्कुसाती ने भी रात का अधिकांश समय इसी मुद्रा में बिताया। तब भगवान बुद्ध के मन में विचार आया, इस कुल के भिक्षु की मुद्रा मुझे प्रसन्न करती है, मुझे इससे प्रश्न करना चाहिए। भगवान बुद्ध ने पूज्य पुक्कुसाती से पूछा, 'भिक्षु, आप किसके धर्म में दीक्षित हुए हैं? या आपके गुरु कौन हैं? या किसकी शिक्षा आपको प्रसन्न करती है?'

'हे पूज्यवर, शाक्यों के पुत्र गौतम नामक एक संन्यासी हैं। उस धन्य गौतम के बारे में ऐसी ख्याति फैली हुई है: वह धन्य पुरुष योग्य, सच्चे अर्थों में प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता (*1) हैं, जो वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। मैंने उन पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करते हुए संन्यास लिया। वह धन्य पुरुष मेरे गुरु हैं। मैं उस धन्य पुरुष की शिक्षा से प्रसन्न हूँ।'

'भिक्षु, वह सही मायने में प्रबुद्ध, भगवान अब कहाँ निवास करते हैं?'

'हे पूज्यवर, उत्तरी राज्यों में सावत्थी नाम का एक कस्बा है, जहाँ सही मायने में प्रबुद्ध भगवान निवास करते हैं।'

'भिक्षु, क्या तुमने उस भगवान को देखा है, और क्या तुम उसे पहचान सकते हो?'

'हे पूज्यवर, मैंने भगवान बुद्ध को नहीं देखा है, और उन्हें देखकर भी मैं उन्हें पहचान नहीं पाऊंगा।'

तब भगवान बुद्ध को यह विचार आया: इस कुल के व्यक्ति ने मुझ पर आस्था के कारण संन्यासी बन गए हैं, और भगवान बुद्ध ने आदरणीय पुक्कुसाती को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षु, मैं तुम्हें उपदेश दूंगा, ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से सुनो।'

पूज्य पुक्कुसाती ने उत्तर दिया, 'जी हां, पूज्यवर।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षु, मनुष्य छह तत्वों, छह संपर्क क्षेत्रों, अठारह मानसिक चिंतन और चार संकल्पों से बना है। (इनमें स्थिर होकर कल्पना नहीं करनी चाहिए। कहा जाता है कि कल्पना न करने पर ऋषि शांत हो जाते हैं।) सत्य की रक्षा करने, परोपकार विकसित करने और शांति का अभ्यास करने में बुद्धिमान और मेहनती बनो। यह छह तत्वों के वर्गीकरण का संक्षिप्त विवरण है।'

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह तत्वों से बना है। ऐसा क्यों कहा गया? ये तत्व हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह तत्वों से बना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह संपर्क क्षेत्रों से बना है। ऐसा क्यों कहा गया है? ये संपर्क क्षेत्र हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह संपर्क क्षेत्रों से बना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य अठारह मानसिक चिंतनों से बना होता है। ऐसा क्यों कहा गया? किसी रूप को देखकर मन सुख, दुःख और समभाव में स्थिर होकर विचार करता है। ध्वनि सुनकर...रे... सुगंध का अनुभव करके... स्वाद का आनंद लेकर... शरीर पर स्पर्श का अनुभव करके... मन में कोई विचार आने पर मन सुख, दुःख और समभाव में स्थिर होकर विचार करता है। इस प्रकार मन के छह चिंतन सुख में, छह चिंतन दुःख में और छह चिंतन समभाव में होते हैं। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य अठारह मानसिक चिंतनों से बना है, तो इसी कारण से कहा गया है।

भिक्षु, कहा जाता है कि मनुष्य के चार संकल्प होते हैं। ऐसा क्यों कहा गया? ये संकल्प हैं ज्ञान, सत्य, त्याग और शांति। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य के चार संकल्प होते हैं, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, सत्य की रक्षा करने, परोपकार विकसित करने और प्रसन्नता का अभ्यास करने के लिए बुद्धिमान और मेहनती बनो। ऐसा क्यों कहा गया? भिक्षु बुद्धिमान और मेहनती कैसे होता है? ये छह तत्व हैं: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना।

भिक्षु, पृथ्वी तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य पृथ्वी तत्व होते हैं। आंतरिक पृथ्वी तत्व क्या है? यह कठोर आंतरिक, व्यक्तिगत पृथ्वी है, जैसे सिर के बाल, शरीर पर बाल, नाखून, दांत, बाहरी त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दा, हृदय, यकृत, फेफड़े, प्लीहा, आंतें, बड़ी आंत, पेट, मल और कोई भी अन्य वस्तु जो कठोर, आंतरिक, व्यक्तिगत और स्वयं से संबंधित हो। यही आंतरिक और बाह्य पृथ्वी, पृथ्वी तत्व है। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूं। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को पृथ्वी तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

भिक्षु, जल तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य जल तत्व होते हैं। आंतरिक जल तत्व क्या है? वह जो आंतरिक, व्यक्तिगत, जलमय और स्वयं के रूप में स्थिर हो, जैसे पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, शरीर का तेल, आंसू, आंखों का तेल, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल, मूत्र और कोई भी अन्य वस्तु जो आंतरिक, व्यक्तिगत, जलमय और स्वयं के रूप में स्थिर हो। भिक्षु, यही आंतरिक जल तत्व है। यह आंतरिक जल तत्व और बाह्य जल तत्व, जल तत्व के रूप में एक साथ प्रवाहित होते हैं। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूँ। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को जल तत्व से अलग और पृथक कर लेना चाहिए।

भिक्षु, अग्नि तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य अग्नि तत्व होते हैं। आंतरिक अग्नि तत्व क्या है? वह जो आंतरिक, व्यक्तिगत, उग्र और स्वयं के रूप में स्थिर है। जिससे ऊष्मा और जलन उत्पन्न होती है, और जो कुछ भी खाया-पिया जाता है, पचाया जाता है, उसका पाचन होता है, और जो कुछ भी आंतरिक, व्यक्तिगत, उग्र और स्वयं के रूप में स्थिर है, वह इसी से उत्पन्न होता है। भिक्षु, यही आंतरिक अग्नि तत्व है। यह आंतरिक अग्नि तत्व और बाह्य अग्नि तत्व, अग्नि तत्व ही हैं। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूँ। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को अग्नि तत्व से अलग और पृथक रखना चाहिए।

भिक्षु, वायु तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य वायु तत्व होते हैं। आंतरिक वायु तत्व क्या है? शरीर में ऊपर-नीचे जाने वाली वायु, पेट में, उदर के निचले भाग में, अंगों में ऊपर-नीचे जाने वाली वायु, श्वास के साथ आने-जाने वाली वायु, या कोई भी अन्य आंतरिक, व्यक्तिगत, वायुमय वस्तु आंतरिक वायु तत्व है। भिक्षु, यह आंतरिक और बाह्य वायु तत्व ही वायु तत्व है। यह मैं नहीं हूँ। मैं इसमें नहीं हूँ। यह आत्मा नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को वायु तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

भिक्षु, आकाश तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य आकाश तत्व होते हैं। आंतरिक आकाश तत्व क्या है? आंतरिक स्थान, जैसे कि कान के लोब, नाक के छिद्र, मुख से निकलने वाला खुला स्थान, जहाँ उपभोग की गई, पी गई, खाई गई और चखी गई कोई भी वस्तु संग्रहित होती है, और वह स्थान जिससे वह बाहर निकलती है, या कोई अन्य आंतरिक स्थान जो स्वयं का हो। भिक्षु, यही आंतरिक आकाश तत्व है। आंतरिक और बाह्य स्थान, यही आकाश तत्व है। यह मैं नहीं हूँ। मैं इसमें नहीं हूँ। यह आत्मा नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को आकाश तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

फिर शुद्ध और निर्मल चेतना शेष रहती है, जिससे किसी चीज को सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद के रूप में जाना जाता है। भिक्षु को सुखद संपर्क से सुखद अनुभूति होती है और वह जानता है, मुझे सुखद अनुभूति हो रही है। उस सुखद संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है। भिक्षु को अप्रिय संपर्क से अप्रिय अनुभूति होती है और वह जानता है, मुझे अप्रिय अनुभूति हो रही है। उस अप्रिय संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित अप्रिय अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है। भिक्षु को न अप्रिय और न सुखद संपर्क से न अप्रिय और न सुखद अनुभूति होती है, और वह जानता है, मुझे न अप्रिय और न सुखद अनुभूति हो रही है। उस न अप्रिय और न सुखद संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित न अप्रिय और न सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है।

भिक्षु, दो लकड़ियों के संपर्क से ऊष्मा और अग्नि उत्पन्न होती है, और उन्हें अलग करने पर ऊष्मा और अग्नि शांत हो जाती है। इसी प्रकार, सुखद संपर्क से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे सुखद अनुभूति हो रही है।" सुखद संपर्क समाप्त होने पर, सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है। अप्रिय संपर्क से अप्रिय अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे अप्रिय अनुभूति हो रही है।" अप्रिय संपर्क समाप्त होने पर, अप्रिय अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है। न अप्रिय, न सुखद, संपर्क से भी अप्रिय अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे न अप्रिय, न सुखद अनुभूति हो रही है।" अप्रिय संपर्क समाप्त होने पर, अप्रिय, न सुखद, अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है।

तब केवल शुद्ध समभाव ही शेष रहता है, कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान। एक कुशल सुनार या उसका शागिर्द भट्टी जलाते समय उसे प्रज्वलित करता। वह चिमटे की मदद से सोने को प्रज्वलित भट्टी में रखता और समय-समय पर उसे गर्म करता, उस पर पानी छिड़कता और उसे देखता। तब वह सोना शुद्ध हो जाता, अशुद्धियाँ निकल जातीं। तब सोना कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान हो जाता है, और पायल, झुमके या सोने की चेन जैसे किसी भी आभूषण को बनाने के लिए उपयुक्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार केवल शुद्ध समभाव ही कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान रहता है। तब वह जानता है, इस शुद्ध और प्रकाशमान समभाव को मैं अंतरिक्ष के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है, और जानता है कि मेरा समभाव इसमें दीर्घकालिक रूप से स्थिर रहेगा। इस शुद्ध और प्रकाशमान समभाव को मैं चेतना के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है, और जानता है कि मेरा समभाव इसमें दीर्घकालिक रूप से स्थिर रहेगा। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को मैं शून्यता के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है और जानता है कि मेरी समता उसमें लंबे समय तक स्थिर रहेगी। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को मैं न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है और जानता है कि मेरी समता उसमें लंबे समय तक स्थिर रहेगी। तब वह जानता है कि इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए अंतरिक्ष के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए चेतना के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए शून्यता के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। यह शुद्ध और प्रकाशमान समभाव, जिसे मैंने बोध और अबोध के क्षेत्र में निर्देशित किया, मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए, गहनता से विकसित हुआ। इस प्रकार वह 'होने' या 'न होने' का इरादा या विचार नहीं करता, किसी भी चीज़ को पकड़ता नहीं, उसके बारे में चिंता नहीं करता और विलीन हो जाता है। वह जानता है कि जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। अप्रिय भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। न ही अप्रिय और न ही सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। सुखद, अप्रिय या न ही अप्रिय और न ही सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह उन्हें मुक्त महसूस करता है। शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए वह जानता है कि मैं शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए वह जानता है कि मैं जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। वह जानता है कि शरीर के विखंडन के समय, जीवन के अंत से पहले, सभी भावनाएं और आनंद ठंडे पड़ जाएंगे।

भिक्षु, तेल और एक टुकड़े के कारण तेल की लौ जलती है; जब तेल और टुकड़ा समाप्त हो जाते हैं और ईंधन नहीं डाला जाता, तो वह बुझ जाती है। उसी प्रकार, शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए, मैं भी शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए, मैं भी जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। वह जानता है कि शरीर के टूटने पर, जीवन के अंत से पहले, सभी भावनाएँ और भोग शांत हो जाएँगे। इस प्रकार

संपन्न भिक्षु ने सर्वोच्च विवेकपूर्ण संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ ज्ञान है, जो सभी अप्रियताओं के नाश का ज्ञान है। सत्य में स्थापित मुक्ति अचल है। भिक्षु, सत्य से विचलित होने वाले विचार सत्य नहीं हैं। (*2) सत्य से विचलित न होने वाले विचार ही सत्य हैं, उसका नाश। (*3) इसलिए, इस प्रकार संपन्न भिक्षु ने सत्य में सर्वोच्च संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ सत्य है। ये सत्य पर विचार हैं, नाश। अज्ञानता के कारण, उसने पहले कुछ संकल्प लिए होंगे। अब वे संकल्प धराशायी हो गए हैं, जड़ से उखड़ गए हैं, ताड़ के ठूंठ बन गए हैं जो फिर कभी नहीं उगेंगे।

अत: इस प्रकार से संपन्न भिक्षु ने त्याग का सर्वोच्च संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ त्याग है। इसका अर्थ है अपने सभी पूर्व संकल्पों का त्याग करना। अज्ञान के कारण, पहले उनमें लोभ और लालच रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अज्ञान के कारण, पहले उनमें घृणा और क्रोध रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अज्ञान के कारण, पहले उनमें अज्ञान और भ्रम रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अत: इस प्रकार से संपन्न भिक्षु ने शांति का सर्वोच्च संकल्प लिया है। सर्वोच्च और श्रेष्ठ शांति लोभ, घृणा और भ्रम की शांति है।

यदि यह कहा गया है कि बुद्धिमान होने में लापरवाही न करें, सत्य की रक्षा करें और त्याग विकसित करें तथा तुष्टीकरण का अभ्यास करें, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहीं भी स्थापित व्यक्ति को कल्पना नहीं करनी चाहिए; जब कल्पना न हो, तब ऋषि को प्रसन्न कहा जाता है। ऐसा क्यों कहा गया है? भिक्षु, 'मैं हूं' कल्पना है, 'मैं हूं' कल्पना है, 'मैं होऊंगा' कल्पना है, 'मैं नहीं होऊंगा' कल्पना है, 'मैं भौतिक होऊंगा' कल्पना है, 'मैं अभौतिक होऊंगा' कल्पना है, 'मैं बोधगम्य या अबोधगम्य होऊंगा' ये सभी कल्पनाएं हैं। 'मैं न तो बोधगम्य होऊंगा और न ही अबोधगम्य' कल्पना है। भिक्षु, कल्पना एक रोग है, एक छाला है, एक तीर है। जब सभी कल्पनाएं समाप्त हो जाती हैं, तब ऋषि को प्रसन्न कहा जाता है। भिक्षु, प्रसन्न ऋषि का जन्म नहीं होता, उनका क्षय नहीं होता, उनमें कोई इच्छा नहीं होती। भिक्षु, जिसका जन्म नहीं होता, उसका क्षय भी नहीं होता। जब क्षय नहीं होता, तब मृत्यु नहीं होती। जब मृत्यु नहीं होती, तब परिवर्तन नहीं होता। जब परिवर्तन नहीं होता, तब इच्छाएं नहीं होतीं। यदि ऐसा कहा गया हो कि कहीं स्थापित होने पर कल्पना नहीं करनी चाहिए, जब कल्पना न करने पर कहा जाता है कि ऋषि प्रसन्न हो गए हैं, तो ऐसा इसी कारण से कहा गया था।

भिक्षु, इसे छह तत्वों का मेरा संक्षिप्त वर्गीकरण समझो।

तब पूज्य पुक्कुसाती ने यह जानकर कि मैं गुरु, श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त गुरु से मिला हूँ, अपने आसन से उठकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर समेटकर, भगवान बुद्ध के चरणों में सिर रखकर कहा, "पूज्यवर, मुझे क्षमा करें, मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण मैंने भगवान बुद्ध को मित्र कहकर संबोधित किया है; मुझे क्षमा करें, यह भविष्य में पश्चाताप का कारण बनेगा।"

भिक्षु, मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण तुमने मुझे मित्र कहकर पुकारने का अपराध किया है, मैं इसे नहीं मानूंगा। जैसे तुमने अपनी गलती देखकर क्षमा मांगी है, वैसे ही मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। अपनी गलती देखकर क्षमा मांगना शिक्षा में वृद्धि है, ताकि भविष्य में संयम बना रहे।

'आदरणीय महोदय, क्या मैं आपकी उपस्थिति में उच्च दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?'

'भिक्षु, क्या तुम्हारा कुंड और वस्त्र पूर्ण हैं?'

'आदरणीय महोदय, मेरा कटोरा और वस्त्र अधूरे हैं।'

'भिक्षु, तथागत तब तक उच्च दीक्षा प्रदान नहीं करते, जब तक कि कुंड और वस्त्र अपूर्ण हों।'

तब पूज्य पुक्कुसाती भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनकी ओर दाहिनी ओर मुड़कर उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए कुंड और वस्त्रों की खोज में चल दिए। जब वे कुंड और वस्त्रों की खोज में जा रहे थे, तभी एक उग्र गाय ने उन्हें मार डाला।

तब कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा संक्षेप में उपदेश दिए गए कुल के पुक्कुसाती का निधन हो गया है। मृत्यु के बाद उनका जन्म कहाँ होता है?'

भिक्षुओं, कुल के पुक्कुसाती बुद्धिमान हैं, उन्होंने शिक्षा को समझ लिया है, मैंने अधिक व्याख्या नहीं की। कुल के पुक्कुसाती ने इंद्रिय जगत से बंधे पांच निम्न बंधनों को नष्ट कर दिया है और वे स्वतः ही जन्म लेते हैं, उस संसार से उत्पन्न नहीं होते।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.11 सच्चविभंगा सुत्त(141)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध बनारस के इसिपताना स्थित हिरण अभयारण्य में निवास कर रहे थे और उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'हे भिक्षुओं!' भिक्षुओं ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, पूज्यवर।' भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण तथागत तथागत ने उस शिक्षा का प्रसार किया है जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता है। उन्होंने चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार, स्थापना और व्याख्या की है।'

ये चारों क्या हैं? ये हैं अप्रियता के आर्य सत्य की घोषणा, वर्णन, स्थापना और व्याख्या; अप्रियता का उद्‌भव, उसका निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग और विधि। भिक्षुओं, सारिपुत्त और मोग्गल्लाना की संगति करो। वे ज्ञानवान हैं और पवित्र जीवन जीने वालों के लिए सहायक हैं।

सारिपुत्त जन्म देने वाली माता के समान हैं और मोग्गलाना पिता के समान। सारिपुत्त शिक्षा की धारा में प्रवेश की पूर्णता तक प्रशिक्षण देते हैं और मोग्गलाना सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति तक। भिक्षुओं, सारिपुत्त चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार, स्थापना और व्याख्या कर सकते हैं।

यह कहकर भगवान बुद्ध अपनी सीट से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए।

फिर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान के जाने के तुरंत बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, योग्य और सही मायने में प्रबुद्ध तथागत ने उस शिक्षा का प्रसार किया है जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता है, जिसमें चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार से स्थापना और व्याख्या की गई है।'

मित्रों, दुःख का मूल सत्य क्या है ? जन्म दुःखदायी है। क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, दुःख, अप्रसन्नता और कष्ट भी दुःखदायी हैं। अपूर्ण इच्छाएँ भी दुःखदायी हैं। संक्षेप में, पाँचों भाव दुःखदायी हैं।

मित्रों, जन्म क्या है? किसी प्राणी समूह के गर्भ में सचेत रूप से जन्म लेना, जनसमूहों का प्रकट होना और मानसिक क्षमताओं का विकास होना ही जन्म है।

मित्रों, क्षय क्या है? शरीर का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ना, जीवनकाल का कम होना और इस और अन्य प्राणियों के समूह में मानसिक क्षमताओं का परिपक्व होना क्षय है।

मित्रों, मृत्यु क्या है? लुप्त होना, विलीन होना, टूट जाना, प्रत्यक्ष मृत्यु, जीवनकाल का अंत, जनसमूह का विखंडित होना और इस या अन्य प्राणियों के समूह के शरीर को त्याग देना ही मृत्यु कहलाता है।

मित्रों, शोक क्या है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करने पर, शोक से ग्रस्त गंभीर विचार और परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला आंतरिक और तीव्र शोक ही शोक कहलाता है।

मित्रों, विलाप क्या है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करते हुए, शोक से व्याकुल होकर किए गए विलाप और परिणामस्वरूप निकलने वाले ऊंचे और धीमे विलाप को विलाप करना कहते हैं।

दोस्तों, अप्रियता क्या है? अप्रिय शारीरिक संपर्क (*1) से उत्पन्न अप्रिय, अप्रिय भावना को अप्रियता कहा जाता है।

मित्रों, अप्रसन्नता क्या है? अप्रिय, अप्रिय मानसिक संपर्क (*2) से उत्पन्न अप्रिय भावना को अप्रसन्नता कहते हैं।

मित्रों, विक्षिप्त अवस्था क्या होती है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करते हुए, मन में उठने वाले अप्रिय विचार एक विक्षिप्त अवस्था का कारण बनते हैं जो कष्टदायक और विचलित करने वाली होती है। इसे विक्षिप्त अवस्था कहते हैं।

मित्रों, अप्रिय इच्छाएँ क्या होती हैं? प्राणियों में जन्म की इच्छा होती है। मुझे जन्म न हो। इस प्रकार जन्महीनता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में क्षय की इच्छा होती है। मुझे क्षय न हो। इस प्रकार क्षयहीनता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में रोग की इच्छा होती है। मुझे रोग न हो। इस प्रकार रोगमुक्ति नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में मृत्यु की इच्छा होती है। मुझे मृत्यु न हो। इस प्रकार अमरता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और अशांति की इच्छा होती है। मुझे शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और अशांति न आए। इस प्रकार शोकहीनता, विलापहीनता, सुख, आनंद और अविचलित अवस्था प्राप्त नहीं होती। ये इच्छा करने से प्राप्त नहीं होतीं। ये अधूरी इच्छाएँ हैं, जो अप्रिय होती हैं।

मित्रों, संक्षेप में पाँच धारण करने वाली राशियाँ अप्रिय कैसे हैं? संक्षेप में, पदार्थ, भावनाएँ, धारणाएँ, संकल्प और चेतना की पाँच धारण करने वाली राशियाँ अप्रिय हैं (*3)।

मित्रों, यही अप्रियता का महान सत्य है।

मित्रों, दुःख की उत्पत्ति का आर्य सत्य क्या है ? बार-बार होने की लालसा और लोभ, इंद्रियों में लीन रहना, 'होने' और 'न होने' की इच्छाओं में लिप्त रहना। इसी को दुःख की उत्पत्ति का आर्य सत्य कहा जाता है।

मित्रों, दुःख के निवारण का आर्य सत्य क्या है ? कुछ भी न छोड़ते हुए लोभहीनता, यानी लोभ के सभी बंधनों का त्याग करना, दुःख के निवारण का आर्य सत्य कहलाता है।

मित्रों, दुःख को दूर करने का मार्ग और विधि क्या है ? यही आर्य सत्य है, यानी सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

मित्रों, सही दृष्टिकोण क्या है? अप्रियता को पहचानना, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण होना और अप्रियता के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग और विधि को जानना ही सही दृष्टिकोण कहलाता है।

मित्रों, सही विचार क्या हैं? कामुकता का त्याग करना, क्रोध से दूर रहना और पीड़ा से बचना, ये विचार सही विचार कहलाते हैं।

मित्रों, सही वाणी क्या है? झूठ, निंदा, अभद्र भाषा और निरर्थक बातों से बचना ही सही वाणी कहलाता है।

मित्रों, सही कर्म क्या है? जीवित प्राणियों को नष्ट करने, बिना दिए वस्तु लेने और यौन इच्छाओं में दुर्व्यवहार करने से बचना ही सही कर्म कहलाता है।

मित्रों, सही आजीविका क्या है? यहाँ श्रेष्ठ शिष्य गलत आजीविका से दूर रहकर सही आजीविका का मार्ग अपनाता है। इसी को सही आजीविका कहते हैं।

मित्रों, सही प्रयास क्या है? यहाँ भिक्षु रुचि जगाता है, प्रयास करता है और मन को आगे बढ़ाता है। अजन्मे बुरे और दोषरहित विचारों को उत्पन्न न होने देने के लिए, उत्पन्न हुए बुरे और दोषरहित विचारों को दूर करने के लिए, अजन्मे अच्छे विचारों को उत्पन्न करने के लिए और उत्पन्न हुए अच्छे विचारों को भ्रममुक्त रखते हुए स्थापित, विकसित और पूर्ण करने के लिए प्रयास करना ही सही प्रयास कहलाता है।

मित्रों, सही सती ध्यान क्या है? इसमें भिक्षु संसार में लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए पूरी तरह से सचेत और जागरूक होता है, शरीर में शरीर, भावनाओं में भावना (वेदना), मन में मानसिक स्थिति और विचारों में विचार का चिंतन करता है। इसे ही सही ध्यान कहते हैं।

मित्रों, सही समाधि (ध्यान) क्या है? यहाँ भिक्षु कामुकता और बुरे विचारों का त्याग करके, विचारों, व्यवहारिक विचारों और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में रहता है। विचारों और व्यवहारिक विचारों पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एक बिंदु पर एकाग्र करके, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर द्वितीय ध्यान में रहता है। फिर भिक्षु समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर को भी सुख का अनुभव कराते हुए (*4) तृतीय ध्यान में रहता है। इस पर वरम्बी कहते हैं कि समभाव के साथ सुख में रहना। फिर भिक्षु सुख और दुख को दूर करके, और पहले सुख और दुख को दूर करके, समभाव से शुद्ध होकर, सचेत होकर चतुर्थ ध्यान में रहता है। इसे सही समाधि कहते हैं।

मित्रों, यही अप्रियता के निवारण के मार्ग और विधि का महान सत्य है।

भिक्षुओं, योग्य तथा सही मायने में प्रबुद्ध तथा तथागत ने उस शिक्षा को आगे बढ़ाया जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता, जिसमें चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार से स्थापना और व्याख्या की गई है।

आदरणीय सारिपुत्त ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.12दक्षिणविभंग सुत्त(142)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान भगवान कपिलवस्तु में निग्रोध के मठ में शाक्यों के साथ निवास कर रहे थे। तब महाप्रजापति गौतमी नए वस्त्र लेकर भगवान भगवान के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, मैंने भगवान भगवान के लिए ये वस्त्र सूत काते और बुने हैं। कृपा करके भगवान भगवान इसे स्वीकार करें।" भगवान भगवान ने कहा, "गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।" दूसरी बार महाप्रजापति गौतमी ने कहा, "हे पूज्यवर, मैंने भगवान भगवान के लिए ये वस्त्र सूत काते और बुने हैं। कृपा करके भगवान भगवान इसे स्वीकार करें।" दूसरी बार भगवान भगवान ने कहा, "गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।" तीसरी बार महाप्रजापति गौतमी ने कहा, "हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध के लिए ये वस्त्र बनाने के लिए मैंने सूत काता और बुना है। कृपा करके भगवान बुद्ध इस वस्त्र को स्वीकार करें।" तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, "गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, महाप्रजापति गौतमी से नए वस्त्रों का यह सेट स्वीकार कीजिए। जब भगवान बुद्ध की माता का निधन हुआ, तब उन्होंने सौतेली माँ, सहारा और दूध पिलाने वाली बनकर आपकी बहुत सहायता की। भगवान बुद्ध ने भी महाप्रजापति गौतमी की बहुत सहायता की। भगवान बुद्ध के पास आइए, उन्होंने ज्ञान, शिक्षा और समुदाय की शरण ली। भगवान बुद्ध के पास आइए, उन्होंने जीवित प्राणियों का वध करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों का सेवन करने से परहेज किया। भगवान बुद्ध के पास आइए, महाप्रजापति गौतमी ने ज्ञान, शिक्षा और समुदाय में

अटूट विश्वास स्थापित किया। भगवान बुद्ध के पास आइए, महाप्रजापति गौतमी ने अप्रियता के सत्य, उसके उत्पन्न होने, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग और विधि के बारे में सभी संदेहों को दूर किया।" इस प्रकार भगवान बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी की बहुत सहायता की।

'यह सत्य है। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय की शरण लेता है, तो मैं कहता हूँ कि उस दूसरे व्यक्ति के प्रति उसकी कृतज्ञता का प्रतिफल हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, मधुर वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से नहीं मिलता। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर जीवित प्राणियों का वध करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों का सेवन करने से परहेज करता है, तो मैं कहता हूँ कि उस दूसरे व्यक्ति के प्रति उसकी कृतज्ञता का प्रतिफल हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, मधुर वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से नहीं मिलता। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय में अटूट आस्था रखता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती। आनंद, यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलकर सद्‌गुणी हो जाता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती। आनंद, यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय के बारे में उसके संदेह दूर कर देता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती।

आनंद, चौदह प्रकार की व्यक्तिगत भेंटें की जा सकती हैं। प्रथम जागीरदार, योग्य और उचित रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट पहली व्यक्तिगत भेंट है। मौन प्रबुद्ध व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट दूसरी व्यक्तिगत भेंट है। योग्य शिष्य को दी जाने वाली भेंट (*1) तीसरी व्यक्तिगत भेंट है। योग्यता प्राप्ति की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*2) चौथी व्यक्तिगत भेंट है। अनावर्ती व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*3) पाँचवीं व्यक्तिगत भेंट है। अनावर्ती अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट छठी व्यक्तिगत भेंट है। एक बार आरोहण कर चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*4) सातवीं व्यक्तिगत भेंट है। एक बार आरोहण की अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट आठवीं व्यक्तिगत भेंट है। शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट नौवीं व्यक्तिगत भेंट है। शिक्षा की धारा में प्रवेश की अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट दसवीं व्यक्तिगत भेंट है। जो व्यक्ति लालची न हो और कामुकता से विमुख हो, उसे दी गई भेंट ग्यारहवीं व्यक्तिगत भेंट है। साधारण गुणी व्यक्ति को दी गई भेंट बारहवीं व्यक्तिगत भेंट है। साधारण अगुणी व्यक्ति को दी गई भेंट तेरहवीं व्यक्तिगत भेंट है। पशु को दी गई भेंट चौदहवीं व्यक्तिगत भेंट है।

आनंद, किसी पशु को दी गई भेंट से सैकड़ों फल मिलने की उम्मीद है। किसी साधारण, निर्गुण व्यक्ति को दी गई भेंट से हजारों फल मिलने की उम्मीद है। किसी साधारण, गुणी व्यक्ति को दी गई भेंट से लाखों फल मिलने की उम्मीद है। किसी लोभी न होने वाले, इंद्रियों से विमुख व्यक्ति को दी गई भेंट से करोड़ों फल मिलने की उम्मीद है। किसी ऐसे व्यक्ति को भेंट देने से, जो शिक्षा की धारा में प्रवेश करने की विधि में विलीन हो गया हो, असंख्य और असीमित फल मिलने की उम्मीद है। शिक्षा की धारा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को भेंट देने से क्या फल मिलेंगे? या उस व्यक्ति को जो वापस न लौटने की विधि में विलीन हो गया हो? या उस व्यक्ति को जो वापस न लौटना चाहता हो? या उस व्यक्ति को जो योग्यता की विधि में विलीन हो गया हो? या तथागत के योग्य शिष्य को? या मौन प्रबुद्ध व्यक्ति को? या योग्य, उचित रूप से प्रबुद्ध तथागत को?

आनंद, ये सात भेंटें समुदाय को अर्पित की जाती हैं। भगवान बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली पहली भेंट है। भगवान बुद्ध के देहांत के बाद, भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली दूसरी भेंट है। भिक्षुओं को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली तीसरी भेंट है। भिक्षुणियों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। भिक्षुओं और भिक्षुणियों की संख्या दर्शाते हुए अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है।

आनंद, भविष्य में इस परंपरा के अंतिम भिक्षु होंगे, जो बुरे कर्मों में लिप्त नहीं होंगे और अपने गले में पीले रंग की माला धारण करेंगे। मैं कहता हूँ, संघ के लिए उन्हें दी गई भेंट का फल भी असंख्य और असीमित है। मैं तुम्हें यह नहीं बताऊँगा कि संघ को दी गई भेंट व्यक्तिगत भेंट से अधिक फलदायी कैसे होती है।

आनंद, भेंट में चार प्रकार की शुद्धता होती है। भेंट दाता की ओर से शुद्ध होती है, प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं। भेंट प्राप्तकर्ता की ओर से शुद्ध होती है, दाता की ओर से नहीं। भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध होती है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से। भेंट दाता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से शुद्ध होती है।

आनंद, दानदाता की ओर से भेंट शुद्ध क्यों है, जबकि प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं? यहाँ दानदाता अच्छे विचारों वाला गुणी है, जबकि प्राप्तकर्ता बुरे विचारों वाला गुणी है। अतः दानदाता की ओर से भेंट शुद्ध है, जबकि प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं।

आनंद, दानदाता की ओर से दान प्राप्त करने वाले की ओर से शुद्ध क्यों है? यहाँ प्राप्त करने वाला गुणी है और उसके विचार अच्छे हैं, जबकि दानदाता गुणी नहीं है और उसके विचार बुरे हैं। अतः दानदाता की ओर से प्राप्त करने वाले की ओर से शुद्ध है, दानदाता की ओर से नहीं।

आनंद, यह भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से? यहाँ दाता भी सद्गुणी है और उसके मन में बुरे विचार हैं, और प्राप्तकर्ता भी सद्गुणी है और उसके मन में बुरे विचार हैं। अतः यह भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से।

आनंद, दानकर्ता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से यह भेंट कैसे शुद्ध है? यहाँ दानकर्ता भी सद्गुणी और अच्छे विचारों वाला है और प्राप्तकर्ता भी सद्गुणी और अच्छे विचारों वाला है। अतः दानकर्ता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से यह भेंट शुद्ध है।

भगवान बुद्ध ने कहा, 'ये चार प्रकार की पवित्रता हैं,' और आगे कहा:

"एक सदाचारी दाता निर्गुणी व्यक्ति को उचित कर्मों से प्राप्त वस्तुएँ प्रसन्न मन से भेंट करता है।"

कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए, दाता की ओर से वह भेंट शुद्ध हो जाती है। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को अधार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, अप्रिय मन से, कर्मों के फल पर अविश्वास करते हुए भेंट करता है। प्राप्तकर्ता की ओर से वह भेंट शुद्ध हो जाती है। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को अधार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, अप्रिय मन से, कर्मों के फल पर अविश्वास करते हुए भेंट करता है। वह भेंट दोनों ओर से शुद्ध नहीं होती। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को धार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, सुखद मन से, कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए भेंट करता है। मैं कहता हूँ, वह भेंट महान फल लाती है। एक निर्धन दाता, निर्धन दाता को धार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, सुखद मन से, कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए भेंट करता है। मैं कहता हूँ, वह सर्वोच्च भौतिक भेंट है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.1अनाथपिंडिकोवाडा सुत्त(143)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार थे और बहुत कष्ट झेल रहे थे। उन्होंने एक व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा, "हे भगवान, भगवान बुद्ध के पास जाइए, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम कीजिए और उनसे कहिए, 'हे भगवान, गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार हैं।

आप भी आदरणीय सारिपुत्त के पास जाइए, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम कीजिए और उनसे कहिए, 'हे भगवान, गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार हैं। यदि आदरणीय सारिपुत्त करुणावश अनाथपिंडिका के घर जाएँ तो यह अच्छा होगा।'"

उस व्यक्ति ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका अत्यंत बीमार हैं और वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं। फिर वे पूज्य सारिपुत्त के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका अत्यंत बीमार हैं, वे पूज्य सारिपुत्त के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं और यह भी कहते हैं कि यदि पूज्य सारिपुत्त करुणावश गृहस्थ अनाथपिंडिका के घर आएं तो अच्छा होगा।"

आदरणीय सारिपुत्त ने चुपचाप संदेश ग्रहण किया, अपने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर, आदरणीय आनंद को दूसरे संन्यासी के रूप में साथ लेकर अनाथपिंडिका के घर पहुँचे। तैयार आसनों पर बैठकर आदरणीय सारिपुत्त ने कहा, 'गृहस्थ, आप कैसे हैं? क्या आप जीवित रह पाएँगे? क्या अप्रिय भावनाएँ घट रही हैं या बढ़ रही हैं? क्या भावनाएँ बढ़ने की ओर अग्रसर हैं या घटने की ओर?'

हे सारिपुत्त, मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे कोई बलवान पुरुष मुझे मोटे कपड़े से बना मुकुट पहना रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है, ऐसा लग रहा है जैसे पेट में बहुत हवा भरी हो। ऐसा लग रहा है जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से मेरा पेट काट रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे शरीर में बहुत जलन हो रही है। ऐसा लग रहा है जैसे दो बलवान पुरुष मुझे हाथों और पैरों से पकड़कर जलते अंगारों के गड्ढे में खींच रहे हों और मुझे झुलसा रहे हों। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएँ तीव्र होती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएँ अंत तक बढ़ती ही रहेंगी।

हे गृहस्थ, यदि ऐसा है तो तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं आँख से आसक्त नहीं रहूँगा, आँख की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं कान से आसक्त नहीं रहूँगा, कान की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं नाक से आसक्त नहीं रहूँगा, नाक की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं जीभ से आसक्त नहीं रहूँगा, जीभ की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं शरीर से आसक्त नहीं रहूँगा, शरीर की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं मन से आसक्त नहीं रहूँगा, मन की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं रूपों से आसक्त नहीं रहूंगा और रूपों में स्थिर रहूंगा। मैं ध्वनियों से आसक्त नहीं रहूंगा और ध्वनियों में स्थिर रहूंगा। मैं सुगंधों से आसक्त नहीं रहूंगा और सुगंधों में स्थिर रहूंगा। मैं स्वादों से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वादों में स्थिर रहूंगा। मैं स्पर्शों से आसक्त नहीं रहूंगा और स्पर्शों में स्थिर रहूंगा। मैं विचारों से आसक्त नहीं रहूंगा और विचारों में स्थिर रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र-चेतना से आसक्त होकर, नेत्र-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं कान-चेतना से आसक्त होकर, कान-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं नाक-चेतना से आसक्त होकर, नाक-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा।

मैं स्वाद-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, स्वाद-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं शरीर-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, शरीर-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं मन-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, मन-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और नेत्र संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं कान संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और कान संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं नाक संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और नाक संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं स्वाद संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वाद संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं शरीर संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और शरीर संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं मन संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और मन संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा।

इसलिए गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और नेत्र संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं कान के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और कान के संपर्क में आने वाले

विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं नाक के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और नाक के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं स्वाद के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वाद के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और शरीर के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं मन के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और मन में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं पृथ्वी तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं जल तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं अग्नि तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं वायु तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं आकाश तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं चेतना तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं भौतिक वस्तुओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भौतिक वस्तुओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भावनाओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं धारणाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भावनाओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं संकल्पों से आसक्त नहीं रहूंगा और संकल्पों में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं चेतना से आसक्त नहीं रहूंगा और चेतना में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं आकाश के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही आकाश के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं चेतना के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही चेतना के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं शून्यता के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही शून्यता के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं न तो बोध के क्षेत्र से आसक्त रहूंगा और न ही अबोध के क्षेत्र में लीन रहूंगा और न ही उस क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं इस संसार से आसक्त नहीं रहूंगा, न ही इस संसार के विचारों में लीन रहूंगा। मैं परलोक से भी आसक्त नहीं रहूंगा, न ही परलोक के विचारों में लीन रहूंगा।

इसलिए गृहस्थ, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि मैं देखी, सुनी, गंध से जानी गई या तार्किक चिंतन से खोजी गई किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहूंगा।

यह सुनकर गृहस्थ अनाथपिंडिका जोर-जोर से रोने लगा और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। तब पूज्य आनंद ने पूछा, 'गृहस्थ, क्या तुम स्थिर रहोगे या डूब जाओगे?' (*1)

'हे आनंद महोदय, ऐसा नहीं है कि मैं किसी बात पर अड़ा रहता हूँ या उसमें डूब जाता हूँ। फिर भी, मैंने गुरु और मन को विकसित करने वाले भिक्षुओं के साथ संगति की है, लेकिन इससे पहले मैंने ऐसा प्रवचन कभी नहीं सुना।'

तब पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'गृहस्थ, इस प्रकार का प्रवचन श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ को नहीं दिया जाता।'

'हे सारिपुत्त, इस प्रकार के प्रवचन श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थों को दिए जाने चाहिए। कुछ कुलवासी, जिनमें कुछ अशुद्धियाँ कम होती हैं, इस प्रकार के प्रवचन न सुनने के कारण पतित हो जाते हैं। इन्हें सुनकर वे शिक्षा को जान सकेंगे।'

तब, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद ने गृहस्थ अनाथपिंडिका को सलाह देकर अपने स्थान से उठकर चले गए। उनके जाने के कुछ ही समय बाद गृहस्थ अनाथपिंडिका का निधन हो गया और वे सुखी लोगों के साथ जन्म लिए। (*2) तब देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका ने, जब रात ढल रही थी, जेतवन को तेजस्वी प्रकाश से पूर्णतः प्रकाशित करते हुए, भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर उनसे कहा।

'यह रमणीय जेतवन, समुदाय के ऋषियों का निवास स्थान है।'
शिक्षा के राजा द्वारा सुशोभित होना मुझे आनंदित करता है।
जिन प्राणियों की मृत्यु हो जाती है, वे कर्मों और ज्ञान के माध्यम से शुद्ध हो जाते हैं।
और एक नेक, सदाचारी आजीविका, लेकिन वंश या धन के आधार पर नहीं।
इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति, अपना भला देखकर,

शिक्षा में विवेक का प्रयोग करके, व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करता है।
उन भिक्षुओं में से, जो परलोक चले गए, सारिपुत्त जैसे भिक्षु,
ज्ञान में, सद्गुण और प्रसन्नता सर्वोपरि हैं।'
यह कहकर, देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका ने भगवान बुद्ध की स्वीकृति की प्रतीक्षा की। यह जानकर कि गुरु ने मेरी बात स्वीकार कर ली है, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके चारों ओर दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा की और वहाँ से अंतर्धान हो गए। अगले दिन भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, जब रात ढल रही थी, तब देवताओं के एक पुत्र ने जेतवन को अपने तेजस्वी प्रकाश से पूर्णतः प्रकाशित करते हुए मेरे पास आकर प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर कहा...'

'यह रमणीय जेतवन, समुदाय के ऋषियों का निवास स्थान है।'
शिक्षा के राजा द्वारा सुशोभित होना मुझे आनंदित करता है।
जिन प्राणियों की मृत्यु हो जाती है, वे कर्मों और ज्ञान के माध्यम से शुद्ध हो जाते हैं।
और एक नेक, सदाचारी आजीविका, लेकिन वंश या धन के आधार पर नहीं।
इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति, अपना भला देखकर,
शिक्षा में विवेक का प्रयोग करके, व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करता है।
उन भिक्षुओं में से, जो परलोक चले गए, सारिपुत्त जैसे भिक्षु,
ज्ञान में, सद्गुण और प्रसन्नता सर्वोपरि हैं।'
यह कहकर, देवताओं के उस पुत्र ने मेरी स्वीकृति की प्रतीक्षा की। यह जानकर कि मैंने उसकी बातों को स्वीकार कर लिया है, उसने मेरी पूजा की और अपना दाहिना हाथ मेरी ओर करके मेरे चारों ओर परिक्रमा की और वहाँ से विलीन हो गया।

यह सुनकर आदरणीय आनंद ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या यह देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका हैं? गृहस्थ अनाथपिंडिका को आदरणीय सारिपुत्त ने प्रसन्न किया था।'

'बहुत खूब! आनंद, तुम सही हो। तुमने उतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है जितना तर्क के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।'

वह कोई और नहीं बल्कि देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.2चन्नोवदा सुत्त(144)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास करते थे। उस समय, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महाचुंड और पूज्य चन्ना गिज्जा पर्वत पर रहते थे। उस समय पूज्य चन्ना गंभीर रूप से बीमार थे। पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से उठकर पूज्य महाचुंड के पास गए और बोले, 'मित्र चुंड, चलो पूज्य चन्ना के पास जाकर उनका हालचाल पूछते हैं।' पूज्य महाचुंड ने सारिपुत्त का सुझाव स्वीकार कर लिया और दोनों पूज्य चन्ना के पास गए। पूज्य चन्ना से सौहार्दपूर्ण अभिवादन करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और सारिपुत्त ने कहा, 'मित्र चन्ना, आप कैसे हैं? क्या आप जीवित रहेंगे? क्या ये अप्रिय भावनाएँ कम हो रही हैं या बढ़ रही हैं? क्या ये भावनाएँ बढ़ रही हैं या घट रही हैं?'

मित्र सारिपुत्त, मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे कोई बलवान पुरुष मुझे मजबूत पट्टी वाला मुकुट पहना रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और

बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है, ऐसा लग रहा है जैसे मेरे पेट में बहुत हवा घूम रही हो। ऐसा लग रहा है जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से मेरा पेट काट रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे शरीर में बहुत जलन हो रही है। ऐसा लग रहा है जैसे दो बलवान पुरुष मुझे हाथों और पैरों से पकड़कर जलते हुए अंगारों के गड्ढे में खींच रहे हों और मुझे झुलसा रहे हों। मैं अस्वस्थ महसूस कर रहा हूँ और जीवित नहीं रहूँगा। मेरी अप्रिय भावनाएँ तीव्र होती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएँ अंत तक बढ़ती ही रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मैं जीवन समाप्त करने के लिए शस्त्र उठाऊँगा।

मित्र चन्ना, हथियार मत उठाओ, जीवित रहो। हम चाहते हैं कि तुम जीवित रहो। यदि पूज्य चन्ना को उचित पोषण न मिले, तो मैं उनके लिए व्यवस्था करूँगा। यदि पूज्य चन्ना को उचित चिकित्सा सुविधाएँ न मिलें, तो मैं उनके लिए व्यवस्था करूँगा। यदि पूज्य चन्ना के पास कोई उपयुक्त सेवक न हो, तो मैं उनकी सेवा करूँगा। मित्र चन्ना, हथियार मत उठाओ, जीवित रहो। हम चाहते हैं कि तुम जीवित रहो।

'मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं है कि मुझे उचित पोषण, उचित चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं या उचित परिचारक की कमी है, बल्कि मैंने गुरु के प्रति अपने कर्तव्यों को बहुत पहले ही प्रसन्नतापूर्वक पूरा कर लिया है, अप्रसन्नता से नहीं।'

मित्र सारिपुत्त, जो शिष्य गुरु के प्रति प्रसन्नतापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन करता है, यदि वह प्राणत्याग के लिए शस्त्र उठाता है तो इसमें कोई दोष नहीं है, इसे इसी रूप में याद रखना।

'मित्र चन्ना, मैं एक विशेष प्रश्न पूछूंगा यदि आदरणीय चन्ना स्वेच्छा से इसका उत्तर दें।'

'मित्र सारिपुत्त, पूछो, मैं समझा दूंगा।'

'मित्र चन्ना, क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ, वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, जीभ, जीभ-चेतना और जीभ-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं?'

हे सारिपुत्त, आँख, आँख की चेतना और आँख की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, कान, कान की चेतना और कान की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, नाक, नाक की चेतना और नाक की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, जीभ, जीभ की चेतना और जीभ की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं।

'मित्र चन्ना, आँख में, आँख की चेतना में और आँख की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि आँख, आँख की चेतना और आँख की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, कान में, कान की चेतना में और कान की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि कान, कान की चेतना और कान की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, नाक में, नाक की चेतना में और नाक की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि नाक, नाक की चेतना और नाक की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं?

हे मित्र, सारिपुत्त, आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र, सारिपुत्त, कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र, सारिपुत्त, नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं।

तब पूज्य महाकुंडा ने पूज्य चन्ना से कहा, "मित्र चन्ना, भगवान बुद्ध के विधान में इस बात पर भी निरंतर ध्यान देना चाहिए। स्थिर लोगों में परिवर्तन होता है, अस्थिर लोगों में परिवर्तन नहीं होता। (*1) जब परिवर्तन नहीं होता, तब आनंद होता है। (*2) जब आनंद होता है, तब कोई अभिलाषा नहीं होती। (*3) जब कोई अभिलाषा नहीं होती, तब आना-जाना नहीं होता। (*4) जब आना-जाना नहीं होता, तब प्रकट होना-लुप्त होना नहीं होता। (*5) जब प्रकट होना-लुप्त होना नहीं होता, तब न यहाँ न वहाँ, न बीच में। (*6) यही अप्रियता का अंत है।"

आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय महकुंड ने आदरणीय चन्ना को सलाह देकर अपने आसन से उठकर चले गए। उनके जाने के कुछ ही क्षण बाद आदरणीय चन्ना ने एक शस्त्र उठाया और अपने प्राण त्याग दिए। तब आदरणीय सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'आदरणीय महोदय, आदरणीय चन्ना ने अपने प्राण त्याग दिए हैं, मृत्यु के बाद उनकी क्या गतिविधियाँ होंगी?'

'सारिपुत्त, क्या भिक्षु चन्ना की निष्पापता आपके समक्ष घोषित नहीं की गई थी?'

'आदरणीय महोदय, पब्बजीरा में, जो वज्जी लोगों का गाँव है, आदरणीय चन्ना के मित्रों, शुभचिंतकों और पूर्व संबंधियों के परिवार रहते हैं।'

'सारिपुत्त, पूज्य चन्ना के मित्रों, शुभचिंतकों और पूर्व संबंधियों के परिवार हो सकते हैं, मैं कहता हूँ, उस हद तक कोई दोष नहीं है। सारिपुत्त, यदि कोई इस शरीर का त्याग करके दूसरा शरीर धारण करता है, तो मैं कहता हूँ कि यह दोष है। भिक्षु में वह दोष प्रकट नहीं होता। भिक्षु चन्ना ने दोषरहित रूप से प्राण त्यागे।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.3पुन्नोवदा सुत्त(145)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन के वन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। तब पूज्य पुन्ना एकांतवास से उठकर भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "पूज्यवर, यदि मुझे संक्षेप में उपदेश दिया जाए तो अच्छा होगा, ताकि मैं एकांतवास में रहकर लगन से उपदेशों का निवारण कर सकूँ।" "तो पुन्ना, सुनो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ।" पूज्य पुन्ना सहमत हो गए और भगवान बुद्ध ने कहा।

'पुन्ना, ऐसी मनभावन, सुखद आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जिनसे स्नेह, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु उनमें आनंदित होता है, उनका स्वागत करता है और उनसे आसक्त रहता है, जिससे रुचि उत्पन्न होती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का उत्पन्न होना अप्रियता का उत्पन्न होना है। ऐसी मनभावन ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं, सुगंधें हैं जो नाक से सुनी जा सकती हैं, स्वाद हैं जो जीभ से सुहकती हैं, स्पर्श हैं जो शरीर से सुहकते हैं और विचार हैं जो मन से सुहकते हैं, जिनसे स्नेह, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु उनमें आनंदित होता है, उनका स्वागत करता है और उनसे आसक्त रहता है, जिससे रुचि उत्पन्न होती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का उत्पन्न होना अप्रियता का उत्पन्न होना है।'

पुन्ना, ऐसी मनभावन और आकर्षक आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जिनसे प्रेम, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु इन आकृतियों में प्रसन्नता, स्वागत और आसक्ति नहीं रखता, और इस प्रकार उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का समाप्त होना अप्रियता का समाप्त होना है। ऐसी मनभावन और आकर्षक ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं, सुगंध जो नाक से सुनी जा सकती हैं, स्वाद जो जीभ से सुने जा सकते हैं, स्पर्श जो शरीर से सुने जा सकते हैं और विचार जो मन से सुने जा सकते हैं, जिनसे प्रेम, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु इन आकृतियों में प्रसन्नता, स्वागत और आसक्ति नहीं रखता, और इस प्रकार उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का समाप्त होना अप्रियता का समाप्त होना है।

पुन्ना, मैंने तुम्हें संक्षेप में सलाह दे दी है। अब तुम किस हालत में रहोगे?'

'आदरणीय महोदय, अब जब मुझे संक्षेप में सलाह मिल गई है, तो मैं सुनापरंत अवस्था में रहूँगा।'

'पुन्ना, सुनापरंता के लोग बहुत कठोर हैं, अगर वे तुम्हें डांटें और गाली दें तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे डांटें और गाली दें, तो मुझे यह बात समझ में आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे अपने हाथों से चोट नहीं पहुंचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें अपने हाथों से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे अपने हाथों से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे मिट्टी के ढेलों से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें मिट्टी के ढेलों से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे मिट्टी के ढेलों से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे लाठी से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें लाठी से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे लाठी से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात समझ में आ जाएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे किसी हथियार से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें हथियार से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे किसी हथियार से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि सुनापरंता के लोग वास्तव में अच्छे हैं, वे किसी धारदार हथियार से मेरी जान नहीं लेंगे।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग किसी धारदार हथियार से तुम्हारी जान ले लें, तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मेरी जान लेना चाहें, तो मेरे मन में यह विचार आएगा। भगवान बुद्ध के कुछ शिष्य हैं, जो शरीर और जीवन से घृणा करते हुए हत्यारे की तलाश करते हैं। यहाँ मुझे बिना खोजे ही हत्यारा मिल गया है।'

'अच्छा! पुन्ना, तुम्हारे लिए शिक्षा में निहित उस शांति भाव से परिपूर्ण सुनपरंता में रहना संभव है। तुम अब ऐसा कर सकते हो।'

पूज्य पुन्ना, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और दाहिनी ओर मुख करके उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। अपने निवास को व्यवस्थित करके, कुंड और वस्त्र लेकर, वे सुनपरंत की यात्रा पर निकल पड़े और विधिपूर्वक वहाँ पहुँच गए। फिर वे उसी अवस्था में रहे। उसी वर्षा ऋतु में, पूज्य पुन्ना ने लगभग पाँच सौ पुरुष शिष्यों और लगभग पाँच सौ स्त्री शिष्यों को जन्म दिया और तीनों ज्ञान प्राप्त कर अंत में निर्वाण प्राप्त किया।

तब कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा संक्षेप में उपदेशित किए गए कुल के व्यक्ति का देहांत हो गया है। मृत्यु के बाद उनकी क्या गतिविधियाँ हैं?”

'भिक्षुओं, कुल का पुन्ना बुद्धिमान है। वह शिक्षा में अपने दम पर खड़ा रहा। (*1) उसने मुझे शिक्षा से संबंधित प्रश्नों के बारे में चिंतित नहीं किया। उसने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.4 नंदकोवाड़ा सुत्त(146)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब महाप्रजापति गौतमी लगभग 500 अन्य भिक्षुणियों के साथ भगवान बुद्ध के पास गईं और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं। वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, भिक्षुणियों को उपदेश दीजिए। हे भगवान, भिक्षुणियों को शिक्षा दीजिए। भिक्षुणियों को धम्म का प्रवचन दीजिए।"

उस समय वरिष्ठ भिक्षु बारी-बारी से भिक्षुणियों को उपदेश दे रहे थे, लेकिन आदरणीय नंदका अपनी बारी आने पर भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहते थे। इसलिए भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, आज भिक्षुणियों को उपदेश देने की बारी किसकी है?"

"हे भगवान, भिक्षुणियों को उपदेश देने में सभी ने अपनी बारी ले ली है, सिवाय पूज्य नंदका के, जो अपनी बारी आने पर भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहते।"

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदका को संबोधित करते हुए कहा: "नंदका, भिक्षुणियों को उपदेश दीजिए। नंदका, भिक्षुणियों को शिक्षा दीजिए। ब्राह्मण, भिक्षुणियों को धम्म पर प्रवचन दीजिए।"

“जैसा आप कहें, भगवान,” आदरणीय नंदका ने उत्तर दिया। फिर, सुबह सवेरे, अपने वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर वे राजगृह में भिक्षा मांगने गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे एक सहपाठी के साथ राजका उद्यान गए। भिक्षुणियों ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखते ही उनके लिए आसन की व्यवस्था की और उनके चरणों के लिए जल रखा। आदरणीय नंदका उस आसन पर बैठ गए और अपने चरण धोए। भिक्षुणियों ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं।

जब वे वहाँ बैठी थीं, तब पूज्य नंदका ने उनसे कहा: "बहनो, यह प्रश्न-उत्तर वार्ता होगी। जहाँ आपको समझ आए, वहाँ कहें, 'हमें समझ आ गया।' जहाँ समझ न आए, वहाँ कहें, 'हमें समझ नहीं आया।' जहाँ आपको संदेह हो या उलझन हो, वहाँ मुझसे प्रश्न पूछें: 'यह कैसे है, पूज्यवर? इसका क्या अर्थ है?'"

"आदरणीय महोदय, हमें अत्यंत प्रसन्नता और प्रसन्नता है कि आपने हमें इस प्रकार आमंत्रित किया है।"

तो बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या आँख स्थिर है या अस्थिर? "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या कान स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या नाक स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या जीभ स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या शरीर स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या बुद्धि स्थिर है या अस्थिर?" "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने पहले ही सही विवेक से यह देख लिया है कि ये छह आंतरिक माध्यम वास्तव में अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"अब बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या रूप स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता, तनाव, परिवर्तनशीलता को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या ध्वनियाँ स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या सुगंध स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या स्वाद स्थिर होते हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या स्पर्श संवेदनाएं स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या विचार स्थिर होते हैं या अस्थिर?" "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने पहले ही सही विवेक से यह देख लिया है कि ये छह बाह्य माध्यम भी अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"अब बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या नेत्र-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या कान की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या नाक की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या जीभ की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या शरीर-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या बुद्धि-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, पूज्यवर।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, पूज्यवर।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने सही विवेक से यह अच्छी तरह देख लिया है कि ये छह चेतना समूह भी अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"जैसे जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका प्रकाश अस्थिर और परिवर्तनशील होता है। यदि कोई कहे, 'उस जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील है, परन्तु उसका प्रकाश स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि उस जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील है, तो उसका प्रकाश कितना अधिक अस्थिर और परिवर्तनशील होगा।"

"इसी प्रकार, बहनों, यदि कोई कहे, 'मेरे छह आंतरिक माध्यम अस्थिर हैं, परन्तु जो मैं इन छह आंतरिक माध्यमों के आधार पर अनुभव करता हूँ - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह स्थिर, शाश्वत, अनंत और परिवर्तन के अधीन नहीं है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि प्रत्येक भावना अपनी संबंधित स्थिति पर निर्भर करते हुए उत्पन्न होती है। अपनी संबंधित स्थिति के समाप्त होने पर वह भी समाप्त हो जाती है।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"जैसे किसी विशाल, स्थिर वृक्ष की जड़—जिसमें भीतरी लकड़ी होती है—अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं, उसकी छाया अस्थिर और परिवर्तनशील होती है। यदि कोई कहे, 'उस विशाल, स्थिर वृक्ष की जड़—जिसमें भीतरी लकड़ी होती है—अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील हैं, परन्तु उसकी छाया स्थिर, शाश्वत, अनंत और अपरिवर्तनीय है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि उस विशाल, खड़े वृक्ष की जड़ - जिसमें भीतरी लकड़ी होती है - अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं, तो उसकी छाया कितनी अधिक अस्थिर और परिवर्तनशील होनी चाहिए।"

"इसी प्रकार, बहनों, यदि कोई कहे, 'मेरे छह बाह्य माध्यम अस्थिर हैं, परन्तु जो मैं छह आंतरिक माध्यमों के आधार पर अनुभव करता हूँ - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह स्थिर, शाश्वत, अनंत और परिवर्तन के अधीन नहीं है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि प्रत्येक भावना अपनी संबंधित स्थिति पर निर्भर करते हुए उत्पन्न होती है। अपनी संबंधित स्थिति के समाप्त होने पर वह भी समाप्त हो जाती है।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"मान लीजिए कि एक कुशल कसाई या कसाई का प्रशिक्षु, एक गाय को मारकर, उसे एक तेज धार वाले चाकू से इस प्रकार काटे कि भीतरी मांस और बाहरी खाल को नुकसान पहुंचाए बिना, वह केवल त्वचा, मांसपेशियों, संयोजी ऊतकों और उनके बीच के जुड़ावों को ही काटे, अलग करे। बाहरी खाल को काटने, अलग करने और फिर उसी खाल से गाय को दोबारा ढकने के बाद, यदि वह कहे कि गाय खाल से ठीक उसी तरह जुड़ी हुई है जैसे पहले थी: तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि यदि कोई कुशल कसाई या कसाई का प्रशिक्षु किसी गाय को मारने के बाद केवल उसकी खाल, मांसपेशियों, संयोजी ऊतकों और उनके बीच के जुड़ावों को काटकर अलग कर दे; और फिर उसी खाल से गाय को दोबारा ढक दे, तो चाहे वह कितना भी कहे कि गाय खाल से उसी तरह जुड़ी हुई है जैसे पहले थी, गाय फिर भी खाल से अलग ही रहेगी।"

"बहनो, मैंने यह उपमा एक संदेश देने के लिए दी है। संदेश यह है: भीतरी मांस का सार छह आंतरिक माध्यमों का प्रतीक है; बाहरी त्वचा का सार छह बाहरी माध्यमों का। त्वचा, मांसपेशियां, संयोजी ऊतक और उनके बीच के जुड़ाव जुनून और आनंद का प्रतीक हैं। और तेज चाकू श्रेष्ठ विवेक का प्रतीक है - वह श्रेष्ठ विवेक जो बीच में मौजूद अशुद्धियों, बंधनों और बेड़ियों को काटता, अलग करता और तोड़ता है।"

"बहनो, जागृति के ये सात कारक हैं, जिनके विकास और अभ्यास से एक भिक्षु मंथन-मुक्त जागरूकता और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि वह स्वयं इस वर्तमान क्षण में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लेता है। वे कौन से सात कारक हैं? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित जागृति के कारक के रूप में सजगता का विकास करता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। वह गुणों के विश्लेषण को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है... दृढ़ता को जागृति के कारक के रूप में... परमानंद को जागृति के कारक के रूप में... शांति को जागृति के कारक के रूप में... एकाग्रता को जागृति के कारक के रूप में... समभाव को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित होता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। ये जागृति के सात कारक हैं, जिनके विकास और अभ्यास से एक भिक्षु मंथन-मुक्त जागरूकता और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि वह स्वयं इस वर्तमान क्षण में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लेता है।"

फिर, भिक्षुणियों को यह उपदेश देकर, पूज्य नंदका ने उन्हें यह कहते हुए विदा किया, "जाओ, बहनों। समय आ गया है।" भिक्षुणियाँ पूज्य नंदका के उपदेश से प्रसन्न और सहमत होकर अपनी सीटों से उठीं, उन्हें प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनकी परिक्रमा की और भगवान बुद्ध के पास गईं। वहाँ पहुँचकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ खड़ी हो गईं। जब वे वहाँ खड़ी थीं, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "जाओ, भिक्षुणियों। समय आ गया है।" अतः भिक्षुणियों ने भगवान बुद्ध को प्रणाम करके, उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

भिक्षुणियों के जाने के कुछ ही समय बाद भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, जैसे चौदहवें उपोसथ दिवस पर आम लोग इस बात को लेकर संशय या उलझन में नहीं होते कि चंद्रमा पूर्णिमा है या पूर्णिमा, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से पूर्णिमा ही होती है; 4 उसी प्रकार, यद्यपि भिक्षुणियाँ नंदक के धम्म-उपदेश से संतुष्ट हैं, फिर भी उनके संकल्प अभी तक पूर्ण नहीं हुए हैं।" अतः उन्होंने पूज्य नंदक से कहा, "ऐसे में, नंदक, कल भिक्षुणियों को ठीक यही उपदेश दें।"

"जैसा आप कहें, भगवान," आदरणीय नंदका ने उत्तर दिया। फिर, रात्रि बीत जाने के बाद, सुबह तड़के, अपने वस्त्र धारण करके और अपना भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर वे राजगृह में भिक्षा मांगने गए... [जैसा कि पहले, "तब भगवान ने आदरणीय नंदका को संबोधित किया" से आगे तक:]

भिक्षुणियों के जाने के कुछ ही समय बाद भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, जैसे पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर आम लोग इस बात को लेकर संशय या उलझन में नहीं होते कि चंद्रमा पूर्णिमा है या अमावस्या, क्योंकि वह स्पष्ट रूप से पूर्णिमा होती है; उसी प्रकार भिक्षुणियां नंदक के धम्म उपदेश से तृप्त हैं और उनके संकल्प पूर्ण हो गए हैं। इन 500 भिक्षुणियों में सबसे पिछड़ी

भिक्षुणी भी धारा-प्रवर्तक है, जो अभाव के लोकों में जाने के लिए नियत नहीं है, बल्कि निश्चित रूप से आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर है।”

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.5कुल राहुलोवादा सुत्त(147)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के उपवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब, जब वे एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "मुक्ति से जो मानसिक गुण परिपक्व होते हैं, वे राहुल में परिपक्व हो चुके हैं। क्या होगा यदि मैं राहुल को मानसिक उथल-पुथल के अंत की ओर ले जाऊं?"

फिर भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने चले गए। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद लौटकर उन्होंने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, अपनी आसन-चपाट ले आओ। हम दिन बिताने के लिए अंधों के वन में चलेंगे।"

भगवान बुद्ध को "जैसा आप कहें, भगवान" कहकर उत्तर देते हुए, पूज्य राहुल, उनका आसन वस्त्र लिए हुए, उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय हजारों देवता भगवान बुद्ध के पीछे चल रहे थे, यह सोचते हुए कि "आज भगवान बुद्ध पूज्य राहुल बुद्ध को मानसिक विकारों के अंत की ओर ले जाएंगे।"

फिर भगवान बुद्ध ने अंधों के वन में प्रवेश किया और एक वृक्ष के चरणों में बनी हुई आसन पर बैठ गए। पूज्य राहुल ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

जब वह वहाँ बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा, "राहुला, तुम क्या सोचते हो - आँख स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या रूप स्थिर होते हैं या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - आंख में चेतना स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - आंखों का संपर्क स्थिर होता है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - जो कुछ भी आंख के संपर्क पर निर्भरता में एक भावना के तरीके, एक धारणा के तरीके, एक निर्माण के तरीके या एक चेतना के तरीके के रूप में उत्पन्न होता है:1 क्या यह स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—कान स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हें क्या लगता है - नाक स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—क्या जीभ स्थिर होती है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—शरीर स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—क्या बुद्धि स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या विचार स्थिर होते हैं या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या बुद्धि में चेतना स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या बुद्धि का संपर्क स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - बुद्धि के संपर्क पर निर्भरता में जो कुछ भी उत्पन्न होता है, चाहे वह भावना के रूप में हो, बोध के रूप में हो, निर्माण के रूप में हो या चेतना के रूप में हो: क्या वह स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"यह देखकर, श्रेष्ठ जनों के शिक्षित शिष्य राहुल आँख से, रूपों से, आँख से दिखने वाली चेतना से, आँख से संपर्क से विरक्त हो जाते हैं। और जो कुछ भी आँख से संपर्क के आधार पर अनुभूति, बोध, सृजन या चेतना के किसी भी रूप में उत्पन्न होता है, उससे भी वे विरक्त हो जाते हैं।"

वह कान से मोहभंग होने लगता है...

वह नाक से मोहभंग होने लगता है...

वह जीभ से मोहभंग होने लगता है...

वह शरीर से मोहभंग होने लगता है...

वह बुद्धि से विरक्त हो जाता है, विचारों से विरक्त हो जाता है, बुद्धि से संबंधित चेतना से विरक्त हो जाता है, बुद्धि से संबंधित संपर्क से विरक्त हो जाता है। और जो कुछ भी बुद्धि से संबंधित संपर्क पर निर्भरता से उत्पन्न होता है, चाहे वह अनुभूति का तरीका हो, बोध का तरीका हो, सृजन का तरीका हो या चेतना का तरीका हो: उससे भी वह विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है।

वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ, उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इससे प्रसन्न होकर पूज्य राहुल बुद्ध के वचनों से आनंदित हुए। जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब पूज्य राहुल का मन आसक्ति रहित होकर (किसी भी प्रकार से पोषित न होकर) पूर्णतः विकारों से मुक्त हो गया। और उन हजारों देवताओं के समक्ष निर्मल, निष्कलंक धम्म दृष्टि प्रकट हुई: "जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब अंत के अधीन है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.6चाचक्का सुत्त(148)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय धम्म का उपदेश दूंगा; मैं पवित्र जीवन का उसके विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः, अत्यंत शुद्ध रूप में व्याख्या करूंगा—दूसरे शब्दों में, छह षट्कों का। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए। छह बाहरी माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए। चेतना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संपर्क के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संवेदना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। लालसा के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए।"

"'छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? नेत्र माध्यम, कान माध्यम, नाक माध्यम, जीभ माध्यम, शरीर माध्यम, बुद्धि माध्यम। 'छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह पहला षट्क है।"

"'छह बाह्य माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? रूप माध्यम, ध्वनि माध्यम, सुगंध माध्यम, स्वाद माध्यम, स्पर्श माध्यम, विचार माध्यम। 'छह बाह्य माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह दूसरा षट्क है।"

"चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए।" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में यह कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। 'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह तीसरा षट्क है।

"'संपर्क के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और आकृतियों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का

मिलन ही संपर्क है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। 'संपर्क के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह चौथा षट्क है।"

"'भावनाओं के छह वर्गों को जानना चाहिए।'" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर होकर आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर होकर नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर होकर शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। 'भावना के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह पाँचवाँ षट्क है।

"'इच्छा के छह प्रकारों को जानना चाहिए।'" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। 'लालसा के छह प्रकारों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह छठा षट्क है।

"यदि कोई कहे कि 'आँख ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। आँख का उदय और अस्त होना सर्वविदित है। और जब इसका उदय और अस्त होना सर्वविदित है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरी आत्मा का उदय और अस्त होना होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'आँख ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा।" अतः आँख अनात्म है। यदि कोई कहे, 'रूप ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है और रूप अनात्म हैं। यदि कोई कहे, 'आँख पर चेतना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'आँख से संपर्क ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है, आँख से संपर्क अनात्म है। यदि कोई कहे, 'भावना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है, आँख से संपर्क अनात्म है, भावना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'इच्छा ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा। इच्छा का उत्पन्न होना और नष्ट होना... जब इसका उद्भव और क्षय ज्ञात हो जाता है, तब यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरा स्व उद्भव और क्षय होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'इच्छा ही स्व है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। इस प्रकार आँख अस्व है, रूप अस्व हैं, आँख पर चेतना अस्व है, आँख पर स्पर्श अस्व है, भावना अस्व है, इच्छा अस्व है।

"अगर कोई कहे कि 'कान ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'नाक ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'जीभ ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'शरीर ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"यदि कोई कहे कि 'बुद्धि ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। बुद्धि का उदय और अस्त होना ज्ञात है। और जब इसका उदय और अस्त होना ज्ञात है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरी आत्मा का उदय और अस्त होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'बुद्धि ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा।" अतः बुद्धि अनात्म है। यदि कोई कहे, 'विचार ही आत्मा हैं,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः

बुद्धि अनात्म है और विचार अनात्म हैं। यदि कोई कहे, 'बुद्धि में चेतना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'बुद्धि में संपर्क ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है, बुद्धि में संपर्क अनात्म है। यदि कोई कहे, 'भावना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है, बुद्धि में संपर्क अनात्म है, भावना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'इच्छा ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा। इच्छा का उत्पन्न होना और नष्ट होना... जब इसके उत्पन्न होने और नष्ट होने का ज्ञान हो जाता है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरा स्व उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।' इसीलिए यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि 'इच्छा ही स्व है।' इस प्रकार बुद्धि अस्व है, विचार अस्व हैं, बुद्धि में चेतना अस्व है, बुद्धि में संपर्क अस्व है, भावना अस्व है, इच्छा अस्व है।

"यही भिक्षुओं, आत्म-पहचान की ओर ले जाने वाला अभ्यास का मार्ग है। आँख के बारे में यह धारणा बनाई जाती है कि 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।' रूपों के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर चेतना के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर संपर्क के बारे में धारणा बनाई जाती है... भावना के बारे में धारणा बनाई जाती है... लालसा के बारे में धारणा बनाई जाती है कि 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

"कान के बारे में अनुमान लगाया जाता है..."

नाक के बारे में अनुमान लगाया जाता है...

जीभ के बारे में एक धारणा होती है...

शरीर के बारे में धारणाएँ बनाई जाती हैं...

"बुद्धि के बारे में यह धारणा होती है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।' विचारों के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में चेतना के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में संपर्क के बारे में भी यही धारणा होती है... भावना के बारे में भी यही धारणा होती है... लालसा के बारे में भी यही धारणा होती है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

"अब, यह आत्म-पहचान के अंत की ओर ले जाने वाला अभ्यास का मार्ग है। आँख के बारे में यह धारणा बनाई जाती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।' रूपों के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर चेतना के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर संपर्क के बारे में धारणा बनाई जाती है... भावना के बारे में धारणा बनाई जाती है... लालसा के बारे में धारणा बनाई जाती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

"कान के बारे में अनुमान लगाया जाता है..."

नाक के बारे में अनुमान लगाया जाता है...

जीभ के बारे में एक धारणा होती है...

शरीर के बारे में धारणाएँ बनाई जाती हैं...

"बुद्धि के बारे में यह धारणा होती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।' विचारों के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में चेतना के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में संपर्क के बारे में भी यही धारणा होती है... भावना के बारे में भी यही धारणा होती है... लालसा के बारे में भी यही धारणा होती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख का अनुभव होता है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है या उससे जुड़ा रहता है, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) ग्रस्त हो जाती है। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक करता है, शोक मनाता है, विलाप करता है, सीना पीटता है, व्याकुल हो जाता है, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) ग्रस्त हो जाती है। यदि सुख या दुख न होने की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति या उससे मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं पहचान पाता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) ग्रस्त हो जाती है। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति

(कामवासना) को त्यागे बिना, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त किए बिना, और अज्ञान (अड़चन) को जड़ से उखाड़े बिना... सुख या दुख की अनुभूति के अभाव में, अज्ञान का त्याग किए बिना और स्पष्ट ज्ञान को जन्म दिए बिना, इस पल में दुख और तनाव का अंत हो जाएगा: ऐसा संभव नहीं है।

"कान और आवाज़ों पर निर्भर..."

"नाक और सुगंध पर निर्भर..."

जीभ और स्वाद पर निर्भर करता है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है या उससे जुड़ा रहता है, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) बढ़ जाती है। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक करता है, विलाप करता है, सीना पीटता है, व्याकुल हो जाता है, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) बढ़ जाती है। यदि सुख या दुख न होने जैसी अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति या उससे मुक्ति को यथावत नहीं पहचान पाता, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) बढ़ जाती है। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) को त्यागे बिना, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त किए बिना, और अज्ञान (अड़चन) को जड़ से उखाड़े बिना... सुख या दुख की अनुभूति के अभाव में, अज्ञान का त्याग किए बिना और स्पष्ट ज्ञान को जन्म दिए बिना, इस पल में दुख और तनाव का अंत हो जाएगा: ऐसा संभव नहीं है।

आँख और रूपों पर निर्भर करते हुए, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता या उससे जुड़ा नहीं रहता, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) नहीं बढ़ती। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक नहीं करता, शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, छाती नहीं पीटता या व्याकुल नहीं होता, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) नहीं बढ़ती। यदि सुख और न दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति और उससे मुक्ति को यथावत रूप से देख लेता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) नहीं बढ़ती। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) का त्याग करके, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त करके, सुख या दुख की अनुभूति न होने के प्रति अज्ञानता के जुनून को जड़ से उखाड़ फेंकना, अज्ञान का त्याग करके और स्पष्ट ज्ञान को जन्म देकर, वर्तमान क्षण में दुख और तनाव का अंत कर सकता है: ऐसा संभव है।

"कान और आवाज़ों पर निर्भर..."

"नाक और सुगंध पर निर्भर..."

जीभ और स्वाद पर निर्भर करता है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता या उससे जुड़ा नहीं रहता, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) नहीं बढ़ती। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक नहीं करता, शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, छाती नहीं पीटता या व्याकुल नहीं होता, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) नहीं बढ़ती। यदि सुख और न दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति और उससे मुक्ति को यथावत रूप से समझ लेता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) नहीं बढ़ती। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) का त्याग करके, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त करके, सुख या दुख की अनुभूति न होने के प्रति अज्ञानता के

जुनून को जड़ से उखाड़ फेंकना, अज्ञान का त्याग करके और स्पष्ट ज्ञान को जन्म देकर, वर्तमान क्षण में दुख और तनाव का अंत कर सकता है: ऐसा संभव है।

इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का सुशिक्षित शिष्य आँख से विरक्त हो जाता है, रूपों से विरक्त हो जाता है, आँख से दिखने वाली चेतना से विरक्त हो जाता है, आँख से दिखने वाले संपर्क से विरक्त हो जाता है, भावना से विरक्त हो जाता है, लालसा से विरक्त हो जाता है।

वह कान से मोहभंग होने लगता है...

वह नाक से मोहभंग होने लगता है...

वह जीभ से मोहभंग होने लगता है...

वह शरीर से मोहभंग होने लगता है...

वह बुद्धि से विरक्त हो जाता है, विचारों से विरक्त हो जाता है, बौद्धिक चेतना से विरक्त हो जाता है, बौद्धिक संपर्क से विरक्त हो जाता है, भावना से विरक्त हो जाता है, लालसा से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। उनके शब्दों से प्रसन्न होकर भिक्षुओं ने आनंद लिया। और जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब 60 भिक्षुओं के हृदय, बिना किसी आसक्ति के,1 पूर्णतः विकारों/अपशिष्टों से मुक्त हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.7महासलायतनिका सुत्त(149)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें छह इंद्रिय-माध्यमों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानने, न देखने पर; रूपों को न जानने, न देखने पर... आँख पर चेतना को न देखने पर... आँख से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में न देखने पर; आँख से संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली हर चीज को न जानने, न देखने पर - जो सुख, दुख या न सुख, न दुख के रूप में अनुभव की जाती है - वह उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं रहती, व्यक्ति आँख से मोहित हो जाता है... रूपों से... आँख पर चेतना से... आँख से संपर्क से... जो कुछ भी आँख से संपर्क के कारण उत्पन्न होता है और सुख, दुख या न सुख, न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।"

उसके लिए—मोह, आसक्ति, भ्रम, उनकी कमियों पर ध्यान न देना—ये पाँच आसक्ति-समूह भविष्य में संचय की ओर अग्रसर होते हैं। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, वर्तमान क्षण और वर्तमान क्षण में आनंद लेने की होती है—उसके द्वारा त्याग दी जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं। उसकी शारीरिक और मानसिक

पीड़ाएँ बढ़ती जाती हैं। उसकी शारीरिक और मानसिक पीड़ाएँ बढ़ती जाती हैं। वह शारीरिक और मानसिक तनाव दोनों के प्रति संवेदनशील होता है।

"कान को न जानना, न देखना... नाक को न जानना, न देखना... जीभ को न जानना, न देखना... शरीर को न जानना, न देखना..."

"बुद्धि को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानना, न देखना; विचारों को न जानना, न देखना... बुद्धि में चेतना को न देखना... बुद्धि से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में न देखना; बुद्धि से संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को न जानना, न देखना - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - उसके वास्तविक स्वरूप में न देखना, व्यक्ति बुद्धि से मोहित हो जाता है... विचारों से... बुद्धि में चेतना से... बुद्धि से संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।"

उसके लिए—मोह, आसक्ति, भ्रम, उनकी कमियों पर ध्यान न देते हुए—पाँच आसक्ति-समूह भविष्य में संचय की ओर अग्रसर होते हैं। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, कभी यह तो कभी वह का आनंद लेते हुए—उसके भीतर बढ़ती जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक अशांति बढ़ती जाती है। उसके शारीरिक और मानसिक कष्ट बढ़ते जाते हैं। उसके शारीरिक और मानसिक पीड़ा बढ़ती जाती है। वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के तनाव के प्रति संवेदनशील होता है।

हालाँकि, आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में जानने और देखने से, आँखों पर चेतना के रूपों को जानने और देखने से, आँखों पर संपर्क के वास्तविक स्वरूप को जानने और देखने से, आँखों पर संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को जानने और देखने से - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - जैसा कि वह वास्तव में मौजूद है, व्यक्ति आँख से मोहित नहीं होता... आँखों पर चेतना के रूपों से... आँखों पर संपर्क से... आँखों पर संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।

"उसके लिए—जो आसक्ति रहित, अनासक्त, भ्रमित नहीं है, और पाँचों आसक्ति-समूहों की कमियों पर ही ध्यान केंद्रित करता है—आसक्ति भविष्य में क्षीण होती जाती है। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से भरी होती है, जिसमें वह कभी यह तो कभी वह का आनंद लेता है—उसने त्याग दी है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक विकारों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। वह शरीर की सहजता और चेतना की सहजता दोनों के प्रति संवेदनशील है।"

जो व्यक्ति इस प्रकार का हो गया है, उसका कोई भी दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है। कोई भी संकल्प सही संकल्प है। कोई भी प्रयास सही प्रयास है। कोई भी जागरूकता सही जागरूकता है। कोई भी एकाग्रता सही एकाग्रता है: जैसे पहले उसके कर्म, वाणी और जीविका पहले से ही शुद्ध थे। इस प्रकार, जब उसने श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग विकसित कर लिया, तो उसके लिए संदर्भ के चारों बिंदु अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। चारों सही प्रयास... शक्ति के चारों आधार... पाँच शक्तियाँ... पाँच सामर्थ्य... जागृति के सात कारक अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं।1 [और] उसके लिए ये दो गुण एक साथ प्रकट होते हैं: शांति और अंतर्दृष्टि।

वह प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को समझता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का त्याग करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्यागा जाना चाहिए, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का विकास करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए, और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को प्राप्त करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को समझा जा सकता है? उत्तर होना चाहिए, 'पाँच आसक्ति-समूह।' कौन से पाँच? रूप एक आसक्ति-समूह के रूप में... भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में। ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान और बनने की लालसा: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्याग करना चाहिए।

"प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का विकास किया जाना है? शांति और अंतर्दृष्टि: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकास किया जाना है।"

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति: ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

कान को जानना और देखना... नाक को जानना और देखना... जीभ को जानना और देखना... शरीर को जानना और देखना...

बुद्धि को उसके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना, विचारों को जानना और देखना... बुद्धि में चेतना को जानना और देखना... बुद्धि से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना, बुद्धि-संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को जानना और देखना - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - जैसा कि वह वास्तव में मौजूद है, व्यक्ति बुद्धि से मोहित नहीं होता... विचारों से नहीं... बुद्धि में चेतना से नहीं... बुद्धि से संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से नहीं... जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।

"उसके लिए—जो आसक्ति रहित, अनासक्त, भ्रमित नहीं है, और पाँचों आसक्ति-समूहों की कमियों पर ही ध्यान केंद्रित करता है—आसक्ति भविष्य में क्षीण होती जाती है। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से भरी होती है, जिसमें वह कभी यह तो कभी वह का आनंद लेता है—उसने त्याग दी है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक विकारों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। वह शरीर की सहजता और चेतना की सहजता दोनों के प्रति संवेदनशील है।"

जो व्यक्ति इस प्रकार का हो जाता है, उसका कोई भी दृष्टिकोण सही होता है। कोई भी संकल्प सही होता है। कोई भी प्रयास सही होता है। कोई भी ध्यान सही होता है। कोई भी एकाग्रता सही होती है: ठीक वैसे ही जैसे पहले उसके कर्म, वाणी और जीविका पूर्णतः शुद्ध हो चुके थे। इस प्रकार, जब वह अष्टांगिक मार्ग का विकास कर लेता है, तो उसके चारों संदर्भ अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। चारों सही प्रयास... चारों शक्ति के आधार... पाँच शक्तियाँ... पाँच सामर्थ्य... जागृति के सात कारक अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। और उसके लिए ये दो गुण एक साथ प्रकट होते हैं: शांति और अंतर्दृष्टि।

वह प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को समझता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का त्याग करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्यागा जाना चाहिए, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का विकास करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए, और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को प्राप्त करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को समझा जा सकता है? उत्तर होना चाहिए, 'पाँच आसक्ति-समूह।' कौन से पाँच? रूप एक आसक्ति-समूह के रूप में... भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में। ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान और बनने की लालसा: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्याग करना चाहिए।

"प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का विकास किया जाना है? शांति और अंतर्दृष्टि: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकास किया जाना है।"

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति: ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.8नगरविंदेय सुत्त(150)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल देश की यात्रा कर रहे थे और कोसल के ब्राह्मण ग्राम नागरविंदिका पहुँचे। नागरविंदिका के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना, "शाक्यों पुत्र, पुण्य संन्यासी गौतम, भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल देश की यात्रा करते हुए नागरविंदिका ब्राह्मण ग्राम में पहुँचे हैं। उनके बारे में यह ख्याति फैली है कि वे योग्य, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न, सफल मार्ग पर चल रहे, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। हमें ऐसे योग्य व्यक्ति को देखना चाहिए।" तब नागरविंदिका के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उनमें से कुछ ने भगवान बुद्ध को मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर एक तरफ बैठ गए। कुछ लोगों ने भगवान की उपस्थिति में अपने नाम और गोत्र का उल्लेख किया और एक तरफ बैठ गए, जबकि बाकी लोग चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने नागरविन्दिका के ब्राह्मण गृहस्थों से कहा।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के संन्यासी आपसे पूछें, "हे गृहस्थों, किन संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए?" तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दें: वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका मन, घृणा और मोहभंग दूर नहीं हुआ है, जो नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूपों के प्रति आसक्त हैं, जिनका आंतरिक मन शांत नहीं है, और जो शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लगे रहते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हम भी अनिच्छुक हैं, जिनका मन, घृणा और मोहभंग दूर नहीं हुआ है, जो नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूपों के प्रति आसक्त हैं, जिनका आंतरिक मन शांत नहीं है, और जो शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लगे रहते हैं। इससे ऊपर कोई अच्छा आचरण न देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनके मन में लोभ, घृणा और मोह का वशीकरण नहीं हुआ है, जो कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों से तृप्त नहीं होते, वे शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लीन रहते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हम भी लोभ, घृणा और मोह से वशीकरण नहीं कर पाए हैं, और मन से सुनाई देने वाले विचारों से तृप्त नहीं होते, वे शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लीन रहते हैं। इससे ऊपर कोई अच्छा आचरण न देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। गृहस्थों, आप अन्य धर्मों के उन संन्यासियों को इस प्रकार उत्तर दें।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के संन्यासी आपसे पूछें, "हे गृहस्थों, किस प्रकार के संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए?" तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दें: वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका मन, भोग और मोहभंग दूर हो चुका हो, जो नेत्र-चेतना से प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हों, आंतरिक रूप से संतुष्ट हों और शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण का पालन करते हों। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। क्योंकि हम भी अनिच्छुक, भोग और मोहभंग से मुक्त हैं, नेत्र-चेतना से प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हों, आंतरिक रूप से संतुष्ट न हों और शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण का पालन करते हों। अपने से ऊपर स्थित इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के अच्छे आचरण को देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका लोभ, घृणा और मोह निराधार है, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों से संतुष्ट होकर, शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण का पालन करते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। क्योंकि हम लोभ, घृणा और मोह निराधार हैं, मन से सुनाई देने वाले विचारों से संतुष्ट नहीं हैं, शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण का पालन करते हैं। अपने से ऊपर के इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के अच्छे आचरण को देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। गृहस्थों, आपको अन्य धर्मों के संन्यासियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के तपस्वी आपसे पूछें: हे गृहस्थों, उन पूजनीय पुरुषों के तौर-तरीके और व्यवहार के स्वरूप क्या हैं, जिनके बारे में आप कहते हैं: क्या ये पूजनीय पुरुष वास्तव में लोभ से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं? क्या वे घृणा से मुक्त हैं, या

लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं? तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: वे पूजनीय पुरुष वन में स्थित झोपड़ियों और वनों की कुटियाओं में निवास करते हैं, जहाँ नेत्र-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे रूप, कान-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे ध्वनि, नाक-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे सुगंध, जीभ-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे स्वाद, शरीर-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे स्पर्शों का अनुभव नहीं किया जा सकता। इन्हीं तौर-तरीकों और व्यवहार के स्वरूपों के कारण हम कहते हैं कि ये पूजनीय पुरुष लोभ से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं, घृणा से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं, और भ्रम से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं।

यह सुनकर नागरविन्दिका के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, "हे गौतम, अब हम समझ गए। ऐसा लग रहा है जैसे कोई उलटी हुई चीज अपनी जगह पर वापस आ गई हो... आज से लेकर जब तक हम जीवित रहें, हमें अपने शिष्य समझकर याद रखना।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> मज्झिम निकाय >> 15.9पिंडपतपरिसुद्धि सुत्त(151)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास करते थे। तब पूज्य सारिपुत्त संध्याकाल में अपने एकांतवास से उठकर भगवान के पास आए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, 'सारिपुत्त, आपकी बुद्धि प्रखर है, आपका रंग शुद्ध है, आप अपना अधिकांश समय किस निवास में व्यतीत करते हैं?'

'आदरणीय महोदय, मैं अपना अधिकांश समय एकांतवास में व्यतीत करता हूँ।'

'यह अच्छी बात है सारिपुत्त, आप अधिकतर महापुरुषों की देह में निवास करते हैं। सारिपुत्त, जो भिक्षु अधिकतर समय शून्यता में रहना चाहते हैं, उन्हें चिंतन करना चाहिए। किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, क्या नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य रूपों के कारण मेरे मन में रुचि, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न होती है?'

यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि भिक्षा मांगने के लिए किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, दृष्टि से दिखाई देने वाले रूपों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न होती है, तो उसे उन बुरे विचारों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि भिक्षु यह जानता है कि किसी विशेष मार्ग पर या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय या उसी मार्ग से लौटते समय, नेत्र-दर्शन से देखे जा सकने वाले रूपों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न नहीं होती, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, जब भिक्षु यह विचार करे कि किसी विशेष मार्ग पर या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय या उसी मार्ग से लौटते समय, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों के कारण उसके मन में लोभ, लालच, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न न हो, तो उसे दिन-रात इन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

यदि भिक्षु यह जानता है कि भिक्षा मांगने के लिए किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, मन की चेतना से बोधगम्य विचारों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न नहीं होती, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए कि क्या मेरी पांचों कामुक प्रवृत्तियाँ दूर हो गई हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि उसकी पांचों कामुक प्रवृत्तियाँ दूर नहीं हुई हैं, तो उसे इन पांचों कामुक प्रवृत्तियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि मेरी पांचों कामुक भावनाएं दूर हो गई हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करते रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पाँचों अवरोध दूर हो गए हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों अवरोध दूर नहीं हुए हैं, तो उसे इन अवरोधों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों अवरोध दूर हो गए हैं, तो उसे दिन-रात आनंदपूर्वक उन्हीं विचारों में लीन रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैंने पाँचों भावों को सही ढंग से समझा है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि उसने पाँचों भावों को सही ढंग से नहीं समझा है, तो उसे उन्हें सही ढंग से समझने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि उसने पाँचों भावों को सही ढंग से समझा है, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों सही कर्मों का विकास हुआ है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों सही कर्मों का विकास नहीं हुआ है, तो उसे इन कर्मों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों सही कर्मों का विकास हो चुका है, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे पंच शक्तियों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित हुए हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित नहीं हुए हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित हो चुके हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें अष्टमार्ग विकसित हुआ है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें अष्टमार्ग विकसित नहीं हुआ है, तो उसे अष्टमार्ग विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें अष्टमार्ग विकसित हो चुका है, तो उसे दिन-रात आनंदपूर्वक उन्हीं विचारों में लीन रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मेरी शांति और अंतर्दृष्टि विकसित हुई है? (*1) चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि उसकी शांति और अंतर्दृष्टि विकसित नहीं हुई है, तो उसे शांति और अंतर्दृष्टि विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि शांति और अंतर्दृष्टि विकसित हो गई है, तो उसे दिन-रात उन विचारों में आनंदमय और प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, फिर से, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या विज्ञान और मन की मुक्ति मेरे द्वारा प्राप्त की गई है (*2)? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि विज्ञान और मन की मुक्ति मेरे द्वारा प्राप्त नहीं की गई है, तो उसे विज्ञान और मन की मुक्ति को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि विज्ञान और मन की मुक्ति प्राप्त हो गई है, तो उसे दिन-रात उन विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, अतीत में जिसने भी संन्यासी या ब्राह्मण ने भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण किया, उसने ऐसा ही चिंतन करते हुए किया। भविष्य में जो भी संन्यासी या ब्राह्मण भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण करेगा, वह भी ऐसा ही चिंतन करते हुए करेगा। वर्तमान में जो भी संन्यासी या ब्राह्मण भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण करता है, वह भी ऐसा ही चिंतन करते हुए करे। सारिपुत्त, तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.10 इंद्रियभावना सुत्त(152)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादकर्ता: थानिसारो

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कज्जंगलों के बीच बाँस के वन में ठहरे हुए थे। तब परासिरी के शिष्य युवा ब्राह्मण उत्तरा भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया। अभिवादन के बाद वे एक तरफ बैठ गए।

जब वह वहां बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा: "उत्तरा, क्या ब्राह्मण परासिरी अपने अनुयायियों को इंद्रियों के विकास की शिक्षा देते हैं?"

"जी हां, गौतम गुरु, वह करता है।"

और वह अपने अनुयायियों को उनकी क्षमताओं के विकास की शिक्षा कैसे देता है?

"एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति आँखों से आकृतियाँ नहीं देख पाता और कानों से ध्वनियाँ नहीं सुन पाता [अवतार की अवस्था में]। इसी प्रकार ब्राह्मण परासिरि अपने अनुयायियों को इंद्रियों के विकास की शिक्षा देते हैं।"

"ऐसी स्थिति में, हे उत्तरा, ब्राह्मण परासिरी के वचनों के अनुसार, एक अंधे व्यक्ति में भी इंद्रियाँ विकसित होंगी और एक बहरे व्यक्ति में भी। क्योंकि अंधा व्यक्ति आँखों से आकृतियाँ नहीं देख सकता और बहरा व्यक्ति कानों से ध्वनियाँ नहीं सुन सकता।"

यह सुनकर युवा ब्राह्मण उत्तरा चुपचाप और लज्जित होकर बैठ गया, उसके कंधे झुके हुए थे, सिर नीचे था, वह सोच में डूबा हुआ था और कुछ बोल नहीं पा रहा था। भगवान ने देखा कि उत्तरा चुपचाप और लज्जित बैठा है, उसके कंधे झुके हुए हैं, सिर नीचे है, वह सोच में डूबा हुआ है और कुछ बोल नहीं पा रहा है। तब उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, ब्राह्मण परासिरी अपने अनुयायियों को जिस प्रकार से इंद्रियों का विकास सिखाते हैं, वह एक बात है, लेकिन किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में इंद्रियों का अद्वितीय विकास होना बिलकुल अलग बात है।"

हे भगवान, अब समय आ गया है। हे स्वर्गवासी, अब समय आ गया है कि भगवान बुद्ध श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में इंद्रियों के अद्वितीय विकास की शिक्षा दें। भगवान बुद्ध की वाणी सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

"तो फिर, आनंद, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हे आनंद, श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कैसे होता है? ऐसा होता है कि जब कोई साधक किसी आकृति को देखता है, तो उसमें सुखद, अप्रिय, और सुखद एवं अप्रिय तीनों भाव उत्पन्न होते हैं। वह यह जान लेता है कि 'यह सुखद, यह अप्रिय... ये सुखद एवं अप्रिय तीनों भाव मुझमें उत्पन्न हुए हैं।' और यह मिश्रित, स्थूल, और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है।" इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे एक कुशल व्यक्ति अपनी आँखें बंद करके खोल सकता है; या खोलकर बंद कर सकता है, यानी कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से, चाहे बात किसी भी विषय की हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे आँखों द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु किसी ध्वनि को कान से सुनता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह जान लेता है कि 'मुझमें यह सुखद, यह अप्रिय... ये सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही उत्पन्न सुखद भावनाएँ... अप्रिय भावनाएँ... सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कोई बलवान व्यक्ति आसानी से अपनी उंगलियाँ चटका सकता है, उतनी ही जल्दी, उतनी ही तेजी से, उतनी ही आसानी से, चाहे वह किसी भी विषय से संबंधित हो, उत्पन्न सुखद भावनाएँ... अप्रिय भावनाएँ... सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अलावा, जब कोई भिक्षु नाक से किसी सुगंध को सूंघता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें धीरे-धीरे लुढ़कती हैं और वहाँ नहीं ठहरतीं, वैसे ही, चाहे किसी भी विषय की बात हो, उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे नाक द्वारा पहचानी जाने वाली सुगंधों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'यह सुखद वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति अपनी जीभ की नोक पर जमा लार को आसानी से थूक सकता है, उसी प्रकार, चाहे कुछ भी हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे जीभ द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्वादों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है, तो उसमें सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। वह यह समझता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति आसानी से अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या फैलाई हुई भुजा को मोड़ सकता है, उसी प्रकार, चाहे जो भी हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे शरीर द्वारा अनुभव की जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाओं के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है।' और यह मिश्रित, स्थूल, आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है। इसके साथ ही उत्पन्न सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कोई बलवान व्यक्ति दिन भर गर्म किए हुए लोहे के पलंग पर दो-तीन बूँदें गिरा दे: बूँदें धीरे-धीरे गिरेंगी, परन्तु शीघ्र ही लुप्त हो जाएँगी। इसी प्रकार शीघ्रता से, आसानी से, चाहे वह किसी भी विषय से संबंधित हो, उत्पन्न सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में इसे कहा जाता है... बुद्धि द्वारा बोधगम्य विचारों के संबंध में क्षमताओं का अद्वितीय विकास।

और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला व्यक्ति, मार्ग का अनुसरण करने वाला व्यक्ति कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ किसी आकृति को देखने पर भिक्षु के मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों भाव उत्पन्न होते हैं। वह उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु से भयभीत, अपमानित और घृणाग्रस्त हो जाता है।

जब कोई व्यक्ति कानों से कोई ध्वनि सुनता है... नाक से कोई सुगंध सूंघता है... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है... शरीर से किसी स्पर्श का अनुभव करता है... बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह उत्पन्न हुई सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय भावनाओं से भयभीत, अपमानित और घृणाग्रस्त हो जाता है।

"इसी तरह एक व्यक्ति प्रशिक्षण में होता है, एक ऐसा व्यक्ति जो मार्ग का अनुसरण कर रहा होता है।"

और विकसित इंद्रियों वाला व्यक्ति कैसे श्रेष्ठ होता है? एक उदाहरण है, जब कोई भिक्षु किसी आकृति को देखता है, तो उसके मन में सुखद और अप्रिय, दोनों प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। यदि वह चाहे, तो वह अघृणित वस्तु की उपस्थिति में भी घृणा का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणित वस्तु की उपस्थिति में भी अघृणितता का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह अघृणित और घृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में भी घृणा का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणित और अघृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में भी अघृणितता का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे—घृणित और अघृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में—स्वयं को अलग करके—वह समभाव, सजग और सचेत रहता है।

जब कोई व्यक्ति कानों से ध्वनि सुनता है... नाक से सुगंध सूंघता है... जीभ से स्वाद चखता है... शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है... बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके भीतर सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों भाव उत्पन्न होते हैं। यदि वह चाहे, तो वह अप्रियता के अभाव में भी घृणास्पद भावों को महसूस कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव में भी घृणास्पद न होने का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव और घृणास्पद दोनों के अभाव में भी घृणास्पद भावों को महसूस कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव और घृणास्पद दोनों के अभाव में भी घृणास्पद न होने का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे—घृणित और घृणास्पद दोनों के अभाव में—स्वयं को दोनों से अलग करके भी, वह समभाव, सजग और सचेत बना रहता है।

"इसी प्रकार एक व्यक्ति विकसित क्षमताओं वाला महान व्यक्ति बनता है।"

"तो, आनंद, मैंने तुम्हें श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में अद्वितीय इंद्रियों के विकास का ज्ञान दिया है; मैंने तुम्हें सिखाया है कि कैसे एक साधक, मार्ग का अनुसरण करने वाला व्यक्ति होता है; मैंने तुम्हें सिखाया है कि कैसे एक साधक, विकसित इंद्रियों वाला व्यक्ति होता है। एक गुरु को जो कुछ करना चाहिए—अपने शिष्यों का कल्याण चाहना, उनके प्रति सहानुभूति रखना—वह सब मैंने तुम्हारे लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। ध्यान का अभ्यास करो, आनंद। लापरवाह मत बनो। बाद में पश्चाताप मत करो। यही हमारा तुम सभी के लिए संदेश है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए। (इटैलिक टेक्स्ट)

सम्युत्त निकया

संपादन करने के लिए लॉग इन करें
विकिपीडिया

सहायता
मदद

शब्दकोष

शब्दकोष

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया
अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय

पाली संस्करण : नए संस्करण 2 के ग्रंथों के प्रत्येक खंड (सेक्शन) और प्रत्येक संयुत्त में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

सम्युत्त निकाय ("प्रवचनों का समूह") सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से तीसरा है। यह संग्रह विषयवस्तु के आधार पर एक विशेष क्रम में व्यवस्थित है। प्रत्येक समूह एक विशिष्ट सिद्धांत या व्यक्तित्व से संबंधित है।
इस निकाय में भगवान बुद्ध ने ध्यान और ध्यान/समाधि की अंतिम उपलब्धियों के संदर्भ में धम्म (मार्ग) के विस्तृत विवरण का भी वर्णन किया है। कुछ उल्लेखनीय सूत्र हैं: एसएन 47.6 शकुनाग्घी सूत्र , एसएन 36.19 पंचकंग सूत्र और 4.25 मराधितु सूत्र । 15.14-15.19 (माता सूत्र , पिता सूत्र , भात सूत्र , भगिनी सूत्र , पुत्तो सूत्र , धित सूत्र
) में बुद्ध पुनर्जन्म की पुष्टि करते हैं और बताते हैं कि प्रत्येक प्राणी का इतनी बार पुनर्जन्म हुआ है कि वे सभी एक दूसरे से संबंधित हैं, प्रत्येक प्राणी अतीत में या तो माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र या पुत्री था (इसलिए यह भी संकेत मिलता है कि हमें एक दूसरे के प्रति करुणा रखनी चाहिए, अर्थात् अहिंसा)। एसएन 22:58 बुद्ध क्या हैं? तथागत क्या हैं? एसएन 22.43 अत्तदीपा: स्वयं अपना द्वीप बनो (आत्मनिर्भर) सत्ती - भूत-प्रेत के प्रभाव को कैसे रोकें? एसएन 35.115 मरपासा - मारा (राक्षस, शैतान, मृत्यु, धन, रोग, दुःख, बुराई आदि का स्वामी) की शक्तियाँ क्या हैं? एसएन 36.4 पाताल सूत्र: अथाह खाई क्या है? एसएन 36.1 समाधि क्या है? एसएन 47.41

आमत सूत्र: अमर आनंद; अमरता SN 56.11 धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र: धम्म के चक्र को गतिमान करना SN 56.46 अंधकार सूत्र: अंधकार क्या है SN 51.20 इद्धिपाद-विभंग सूत्र: इद्धि (सिद्धि; आध्यात्मिक शक्तियाँ) का विश्लेषण 22.76 अरहंत (बुद्ध के समान पूर्णतः प्रबुद्ध) क्या हैं ? संयुत्त निकाय कैसे पढ़ें? एक बार में एक ही निकाय को पूरी तरह से पढ़ना बेहतर है क्योंकि इसका विषय और विवरण निरंतरता में है

वग्गास
संयुत्त निकाय में 2,889 प्रवचन हैं, जिन्हें 5 वर्गों (खंडों) और 56 संयुत्तों (समूहों) में वर्गीकृत किया गया है:

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय संस्करण 2-नया और पूर्ण
1.1SN1.सगाथा-वग्गा - श्लोकों का खंड-श्लोक 2
1.2SN2.निदाना-वग्गा - कारण-क्रिया पर अनुभाग
1.3SN3.खण्ड-वग्ग - समुच्चयशास्त्र धारा-संस्कार 2
1.4SN4.सलायतन-वग्ग - छह इंद्रियों पर अनुभाग-संस्कार 2
1.5एसएन5.महा वग्गा - महान खंड-संस्कार2-भाग1
1.6एसएन5.महा वग्गा - महान खंड-संस्कार2-भाग2
2संयुक्त निकाय संस्करण 1-पुराण एवं अपूर्ण
3अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
4मूल पाली संस्करण

संयुक्त निकाय संस्करण 2- नया और पूर्ण
भिक्खु बोधि संस्करण से रूपांतरित और मूल पाली से तुलना करते हुए निकटतम अर्थ तक संशोधित, यह सभी के लिए है, विशेष रूप से ध्यान के लिए उपयोगी है।

SN1.सगाथा-वग्गा - श्लोकों का खंड-श्लोक 2 - 5
अध्याय 1: देवताओं/देवदूतों के साथ संवाद (देवतासम्युत्त) {सम्युत्त1}
अध्याय 2: युवा देवताओं के साथ संवाद (देवपुत्तसम्युत्त) {सम्युत्त2}
अध्याय 3: कोसलों के साथ संवाद (कोसलसम्युत्त) {सम्युत्त3}
अध्याय 4: मृत्यु के देवता मार के साथ संवाद (मारसम्युत्त) {सम्युत्त4}
अध्याय 5: भिक्षुणियों के साथ संवाद (भिक्खुनीसम्युत्त) {सम्युत्त5}
अध्याय 6: ब्रह्माओं/प्रधानदेवों के साथ संवाद (ब्रह्मसम्युत्त) {सम्युत्त6}
अध्याय 7: ब्राह्मणों/पुजारियों के साथ संवाद (ब्राह्मणसम्युत्त) {सम्युत्त7}
अध्याय 8: वंगीसा के साथ संवाद (वंगीसासम्युत्त) {संयुत्त8}
अध्याय9: जंगल में जुड़े हुए प्रवचन (वनसंयुत्त) {संयुत्त9}
अध्याय10: यक्खों/आत्माओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (यक्खासंयुत्त) {संयुत्त10}
अध्याय11: देवताओं/स्वर्गदूतों के राजा सक्क[इंद्र] के साथ जुड़े हुए प्रवचन (सक्कसमुत्त) {संयुत्त11}

SN2.निदाना-वग्गा - कारण-क्रिया पर अनुभाग 224
अध्याय 1: कार्य-कारण पर जुड़े हुए प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
अध्याय 2: निर्णायक पर जुड़े हुए प्रवचन (अभिसमयसंयुत्त) {संयुत्त-13}
अध्याय 3: तत्वों पर जुड़े हुए प्रवचन (धातुसंयुत्त) {संयुत्त-14}
अध्याय 4: खोजे जाने योग्य शुरुआत के बिना (अनामतग्गससंयुत्त) {संयुत्त-15}
अध्याय5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-16}
अध्याय6: लाभ और सम्मान पर जुड़े हुए प्रवचन (लाभसक्करासंयुत्त सं. लाभ-सत्कर-संयुत्त) {संयुत्त-17}
अध्याय7: राहुल (राहुलसमुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-18}
अध्याय8 जुड़े हुए लक्खना के साथ प्रवचन (लक्खनसमुत्त) {संयुत्त-19}

अध्याय9: उपमाओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (ओपम्मासंयुत्त सं. उपमा-संयुक्त) {संयुत्त-20}
अध्याय 10: भिक्खुओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (भिक्खुससंयुत्त) {संयुत्त-21}

SN3.खंड-वग्ग - समुच्चय संबंधी अनुभाग-संस्करण 2 419
अध्याय 1: समुच्चय पर संबद्ध प्रवचन (खंडसंयुक्त) {संयुक्त-22}
अध्याय 2: राधा के साथ संबद्ध प्रवचन (राधासंयुत्त) {संयुत्त-23}
अध्याय 3: दृष्टिकोण पर संबद्ध प्रवचन (दिथिसंयुक्त सं. दृष्टि-संयुक्त) {संयुक्त-24}
अध्याय 4: प्रवेश पर संबद्ध प्रवचन (ओक्कंतसंयुक्त) {संयुत्त-25}
अध्याय 5: उद्भव पर जुड़े हुए प्रवचन (उपपादसंयुत्त सं. उत्पदा-संयुत्त) {संयुत्त-26}
अध्याय 6: अशुद्धियों पर जुड़े हुए प्रवचन (किलेसासंयुत्त) {संयुत्त-27}
अध्याय 7: सारिपुत्त (सारिपुत्तसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-28}
अध्याय8: पर जुड़े हुए प्रवचन नागा (नागसंयुत्त) {संयुत्त-29}
अध्याय9: सुपन्नस पर जुड़े हुए प्रवचन (सुपन्नासंयुत्त) {संयुत्त-30}
अध्याय10: गंधब्बों पर जुड़े हुए प्रवचन (गंधब्बासंयुत्त सं. गंधर्व-संयुक्त) {संयुत्त-31}
अध्याय11: मेघ देवों पर जुड़े हुए प्रवचन (वलाहकासंयुत्त) {संयुत्त-32}
अध्याय12: वाचागोट्टा (वाचागोट्टासंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-33}
अध्याय 13: ध्यान में ट्रान्स अवस्थाओं पर जुड़े हुए प्रवचन (झांसासंयुत्त) {संयुत्त-34}

SN4.सलायतन-वग्ग - छह इंद्रियों पर अनुभाग-संस्करण 2 617
अध्याय 1: छह इंद्रिय संकायों पर जुड़े हुए प्रवचन (सलायतनसंयुत्त) {संयुत्त-35}
अध्याय 2: संवेदनाओं पर जुड़े हुए प्रवचन (वेदानासंयुत्त) {संयुत्त-36}
अध्याय 3: महिलाओं पर जुड़े हुए प्रवचन (माटुगामासंयुत्त) {संयुत्त-37}
अध्याय 4: जम्बूखडका के साथ जुड़े हुए प्रवचन (जम्बूखडकसंयुत्त) {संयुत्त-38}
अध्याय5: समन्दक (समानन्दकसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-39}
अध्याय6: मोग्गलाना (मोग्गलानासंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-40}
अध्याय7: चित्त (चित्तसंयुक्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-41}
अध्याय8: जुड़े हुए ग्राम प्रधानों को प्रवचन (गमनिसंयुत्त) {संयुत्त-42}
अध्याय9: असंबद्ध पर जुड़े हुए प्रवचन (असंखतसंयुत्त) {संयुत्त-43}
अध्याय10: अघोषित पर जुड़े हुए प्रवचन (अभ्यक्तसंयुत्त) {संयुक्त-44}

SN5.महा वग्गा — महान खंड-संस्करण2-भाग1 868
SN5.महा वग्गा — महान खंड-संस्करण2-भाग2 1050
अध्याय 1: मार्ग पर संबंधित प्रवचन (मग्गासम्युत्त) {साम्युत्त-45}
अध्याय 2: ज्ञानोदय के कारकों पर संबंधित प्रवचन (बोज्झंगसाम्युत्त) {साम्युत्त-46}
अध्याय 3: उचित ध्यान करने पर संबंधित प्रवचन (सतिपट्टनसाम्युत्त) {साम्युत्त-47}
अध्याय 4: इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (इंद्रियसाम्युत्त) {साम्युत्त-48}
अध्याय 5: सही प्रयासों पर संबंधित प्रवचन (सम्मप्पधनसाम्युत्तम) {साम्युत्त-49}
अध्याय 6: शक्तियों पर संबंधित प्रवचन (बलसाम्युत्त) {साम्युत्त-50}
अध्याय 7: आध्यात्मिक शक्तियों के आधार (इद्धिपादसाम्युत्त संस्कृत: रिद्धिपाद-संयुक्त) {साम्युत्त-51}
अध्याय 8: संबंधित अनुरुद्ध के साथ प्रवचन (अनुरुद्धसम्युत्त) {सम्युत्त-52}
अध्याय 9: ध्यान/आत्म-मग्नता पर संबंधित प्रवचन (झनासम्युत्त) {सम्युत्त-53}
अध्याय 10: श्वास पर संबंधित प्रवचन (अनपानसम्युत्त) {सम्युत्त-54}
अध्याय 11: धारा-प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (सोतापत्तिसम्युत्त) {सम्युत्त-55}
अध्याय 12: सत्यों पर संबंधित प्रवचन (सच्चासम्युत्त संस्कृत सत्य-संयुक्त) {सम्युत्त-56}

भिक्कू बी. बोधि के संस्करण में परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ 1218

{विकिपिटक}} टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन1-सगाथवग्गा-वेर2
SN1-श्लोकों वाली पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय (संबद्ध प्रवचन) का पहला खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, दूसरा संस्करण है।)
इस खंड में विभिन्न दिव्य एवं अन्य प्राणियों के साथ हुई चर्चाओं का विवरण है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
12,196: प्राप्ति
41: दान
102: शिव देव भगवान बुद्ध से परामर्श करते हैं
124: भोजन में संयम
155: कस्सक - बुराई दुनिया को नियंत्रित करती है
159: गोधिका - निर्वाण बुराई और पुनर्जन्म से सच्ची मुक्ति है
161: मराधितु - बुद्ध ने कामुकता के प्रलोभन पर कैसे विजय प्राप्त की
181: कोकालिका - बुद्धिमानों को आध्यात्मिक लोगों का अपमान नहीं करना चाहिए
212: यौन वासना को कैसे नियंत्रित करें
213: सुभाषित - किस प्रकार की वाणी बोलनी चाहिए
251: सुभाषितजय - देवताओं और राक्षसों के बीच शब्दों का युद्ध
252: कुलवक - धम्म द्वारा देवताओं की विजय
269: संबरिमाय - बुरी जादू/तंत्र नरक की ओर ले जाता है

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

अगला (SN2) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय:आई.सगाथवग्गा-छंद के साथ
1.1सम्युत्त 1: दिव्य दिव्य/देवदूतों के साथ संवाद (देवतासंयुत्त)
1.1.1(i) रीड सेक्शन (नाला वग्गा)
1.1.1.11. मूत्राशय पार करना (ओघतरना)
1.1.1.22. मुक्ति (निमोक्खा)
1.1.1.33. यूक्रेन (यूपी)
1.1.1.44. समय तेजी से बढ़ता है (Accenti)
1.1.1.55. कटर कितना चाहिए? (कटिचिंदा)
1.1.1.66. जागरा
1.1.1.77. प्रवेशित नहीं (अप्रतिविदिता)
1.1.1.88. पूरी तरह से उलचा हुआ (सुसमुत्था)
1.1.1.99. अहंकार से पीड़ित व्यक्ति (मनकामा)
1.1.1.1010. वन (अरन्ना सं. अरण्य)
1.1.2(ii) नंदावग्गो (स्वर्गीय उद्यान खंड)
1.1.2.111. नंदन (स्वर्गीय उद्यान)

1.1.2.212. आनंद (नंदती)
1.1.2.313. पुत्र के समान कोई नहीं (नथिपुत्तसमा)
1.1.2.414. शासक (खट्टिया सं. क्षत्रिय)
1.1.2.515. बड़ाबड़ाना (सनमाना)
1.1.2.616. उनिंदापन और सुस्ती (निद्दा-तांडी सं. निद्रा-तंद्रा)
1.1.2.717. अभ्यास करना कठिन (दुक्कारा सं. दुष्कर)
1.1.2.818. शर्म की भावना (हिरी)
1.1.2.919. एक छोटा सी पौधा (कुटिका)
1.1.2.1020. समिद्धि
1.1.3(iii) तलवार की धारा (सत्तीवागो)
1.1.3.121. एक तलवार (सत्ती)
1.1.3.222. यह छूता है (फूसती)
1.1.3.323. उछाला हुआ (जाट)
1.1.3.424. मन को वश में करना (मनो-निवारन)
1.1.3.525 अरहंत
1.1.3.626. प्रकाश के स्रोत (पज्ज़ोटा सं. विध्वंस)
1.1.3.727 धाराएँ (सारा)
1.1.3.828. महाधनवान
1.1.3.929. चार पाहि (कटुकक्का)
1.1.3.1030 हिरण के बच्चे (निजंघा)
1.1.4(iv) सतुलपा कार्यस्थल
1.1.4.131. अच्छे (सभी) के साथ
1.1.4.232. कंजूसी (मछरी)
1.1.4.333 अच्छा (साधु)
1.1.4.434 कोई नहीं हैं (नसंती)
1.1.4.535. उज्जहनसन्नी
1.1.4.636 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)
1.1.4.737 समाया (कॉनकोर्स)
1.1.4.838. पत्थर का टुकड़ा
1.1.4.939 पज्जुन्ना की पुत्री (1) (पज्जुन्नाधितु1)
1.1.4.1040 पज्जुन्ना की बेटी (2)
1.1.5(v) जलता हुआ भाग (अदित्तवग्गो)
1.1.5.141 धधकती हुई (अदित्ता)
1.1.5.242. दान क्या है? (किमदादा)
1.1.5.343 (3) भोजन/अनाज (अन्ना)
1.1.5.444. एक मूल
1.1.5.545 प्रभाव (अनोमा)
1.1.5.646 अप्सराएं (अचरा सं. अप्सरा)
1.1.5.747 वनरोपा बाग मालिक
1.1.5.848. जेतवन
1.1.5.949 कंजूस (मछरी)
1.1.5.1050 घटिकारा
1.1.6(vi) वृद्धावस्था खंड (जारवाग्गो)
1.1.6.151 वृद्धावस्था (जरा)
1.1.6.252 अजरसा (अजरासा)
1.1.6.353 मित्र (मित्र सं. मित्र)
1.1.6.454 समर्थन (वथु)
1.1.6.555. व्यक्ति (1) (1 जनवरी)

1.1.6.656. व्यक्ति (2) (जनना2)
1.1.6.757. व्यक्ति (3) (जना3)
1.1.6.858. पथभ्रष्ट मार्ग (उपपथ)
1.1.6.959. साझीदार (दुतिया)
1.1.6.1060 कवि
1.1.7(vii) भारित (अधवग्गो)
1.1.7.161 नाम (मन)
1.1.7.262 मन (चित्त/चेतना)
1.1.7.363 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
1.1.7.464 बंधन (संयोजन)
1.1.7.565 बंधन
1.1.7.666 पीड़ित (अत्तहता)
1.1.7.767 उदित्त
1.1.7.868 बंद (पिहिता)
1.1.7.969 इच्छा (इच्छा)
1.1.7.1070 विश्व (लोका)
1.1.8(viii) हत्या (चेतवग्गो)
1.1.8.171 हत्या (चेतवा)
1.1.8.272 रथ
1.1.8.373 (3) धन (वित्त)
1.1.8.474 वर्षा (वुट्ठी, सं. वृष्टि)
1.1.8.575 अधिकारिक (भीता)
1.1.8.676 क्षय नहीं होता (नजिरति सं. नजीरन्ति)
1.1.8.777 संप्रभुता (इसरिया)
1.1.8.878 प्रेम (काम)
1.1.8.9यात्रा के लिए 79 प्रार्थना (पाथेय)
1.1.8.1080 प्रकाश का स्रोत (पज्जोत संस्कृत: प्रज्योत)
1.1.8.1181 बिना संघर्ष के (अराना)
1.2सम्युत्त 2: युवा देवताओं से संबंधित प्रवचन (देवपुत्तसमुत्त)
1.2.1(i) प्रथम उप-अध्याय (सूरिया)
1.2.1.182. कसपा(1)
1.2.1.283. कसपा (2)
1.2.1.384. माघ
1.2.1.485. मगध
1.2.1.586. दमाली
1.2.1.687. कामाडा
1.2.1.788. पंचलाकाण्ड
1.2.1.889. तयाना
1.2.1.990. कैंडिमा
1.2.1.1091. सूर्या
1.2.2(ii) अनाथपिंडिका
1.2.2.192. कैंडिमासा
1.2.2.293. वेंदु (विष्णु के बिना)
1.2.2.394. दिघलत्थी
1.2.2.495. नंदना
1.2.2.596.
1.2.2.697. वसुदत्ता
1.2.2.798. सुब्रह्मा

1.2.2.899. काकुधा
1.2.2.9100. उत्तरा
1.2.2.10101. अनाथपिंडिका
1.2.3(iii) विभिन्न संप्रदाय
1.2.3.1102 शिव (शिव के बिना)
1.2.3.2103. खेमा
1.2.3.3104 सीरी
1.2.3.4105. घटिकारा
1.2.3.5106. जंतु
1.2.3.6107. रोहितास्सा
1.2.3.7108. नंदा
1.2.3.8109. नंदीविसाला
1.2.3.9110. सुसीमा
1.2.3.10111. विभिन्न संप्रदाय (नानतिथ्य)
1.3संयुक्त 3: कोसलन के साथ जुड़े प्रवचन (कोसलसंयुत्त)
1.3.1(i) प्रथम उपधारा
1.3.1.1112. युवा (धारा)
1.3.1.2113 एक व्यक्ति (पुरिसा बिना पुरुष)
1.3.1.3114 वृद्धावस्था और मृत्यु (जरामरण)
1.3.1.4115 प्रिय (पिया, प्रिया के बजाय)
1.3.1.5116. आत्म-रक्षित
1.3.1.6117. कुछ (अप्पक संस्कृत अल्पा)
1.3.1.7118. जजमेंट हॉल (अड्डाकरण)
1.3.1.8119.िका
1.3.1.9120. समर्पण समारोह (यन्ना संस्कृत: यज्ञ)
1.3.1.10121 बंधन (बंधन)
1.3.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (निष्संतान)
1.3.2.1122. सात जटिलला (सत्तजटिला)
1.3.2.2123. पांच राजा (पंचराज)
1.3.2.3124 भोजन की बाल्टी माप (डोनापाका)
1.3.2.4125 युद्ध (1) (संगम1 सं. संग्राम)
1.3.2.5126 युद्ध (2) (संगम2 सं. संग्राम)
1.3.2.6127 मल्लिका
1.3.2.7128 सतर्कता (1) (अप्पमदा सं. अप्रमाद)
1.3.2.8129 परोपकारी मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याणमित्र)
1.3.2.9130 निःसंतान (1) (संस्कृत अपुत्तक1)
1.3.2.10131. निःसंतान (2) (संस्कृत अपुत्तक2)
1.3.3(iii) तीसरा उप-अध्याय (कोसलान पंचक)
1.3.3.1132. व्यक्ति (पुग्गला)
1.3.3.2133. दादी (अय्यिका)
1.3.3.3134 विश्व (लोका)
1.3.3.4135 तीरंदाजी (इस्सट्टा)
1.3.3.5136 पर्वतीय (पब्बतुपमा)
1.4सम्युत्त 4: मृत्यु के देवता मारा के साथ संबंधित प्रवचन (मारासम्युत्त)
1.4.1(i) पहला उप-अध्याय (जीवनकाल)
1.4.1.1137. तपस्वी साधना (तपोकम्मा संस्कृत: तपो-कर्म)
1.4.1.2138. राजा हाथी (हथिराजवन्ना सं. हस्ति-राज-वर्ण)
1.4.1.33 (3) सुन्दर (शुभ बिना शुभ)

1.4.1.4140 मारा का जाल (1) (मारपसा1 सं. मार-पाश)
1.4.1.5141. मारा का फंदा (2) (मारपासा2 सं. मार-पाश)
1.4.1.6142. सर्प (सप्पा संस सर्प)
1.4.1.7143. निद्रा (सुपति सं. सुषुप्ति)
1.4.1.8144. प्रसन्नता (नंदति सं. आनंदति)
1.4.1.9145 जीवनकाल (1) (आयु1)
1.4.1.10146 जीवनकाल (2) (आयु2)
1.4.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (शासन)
1.4.2.1147. बोल्डर (पसाना बिना पाशान)
1.4.2.2148. सिंह (किन्नुसिहा)
1.4.2.3149. सकलिका (स्प्लिंटर)
1.4.2.414 (4) उपयुक्त (पतिरूपा)
1.4.2.5151. मानसिक (मानस)
1.4.2.6152. भिक्षापात्र (पट्टा संस्कृत: पत्रा)
1.4.2.7153. संपर्क के लिए छह क्षेत्र
1.4.2.8154. भिक्षा (पिंड)
1.4.2.9155. किसान (कस्साका सं. कृषक)
1.4.2.10156. शासन (रज्ज बिना राज्य)
1.4.3(iii) तीसरा उप-अध्याय (मारा पंचक)
1.4.3.1157. अनेक संख्या (साम्भाहुला)
1.4.3.2158. समिद्धि
1.4.3.3159 गोधिका
1.4.3.4160. सात वर्षों का प्रयास (सत्तवसानुबंध)
1.4.3.5161. मारा की बेटियाँ (मराधितु)
1.5संयुक्त 5: भिक्खुनिस/ननों के साथ जुड़े हुए प्रवचन (भिक्खुनिससंयुत्त)
1.5.1162 अलाविका
1.5.2163 सोमा
1.5.3164 किसागोतामी
1.5.4165 विजया
1.5.5166. उप्पलावन्ना
1.5.6167. काला
1.5.7168. उपकला
1.5.8169. सिसुपाकाला
1.5.9170. सेला
1.5.10171. वजिरा
1.6संयुत्त 6: ब्रह्मा/प्रधान देवदूतों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्रह्मसंयुत्त)
1.6.1(i) प्रथम उप-अध्याय (अनुरोध)
1.6.1.1172. ब्रह्मा का निवेदन
1.6.1.2173. श्रद्धा
1.6.1.3174. ब्रह्मदेव
1.6.1.4175. ब्रह्मा बका
1.6.1.5176. एक निश्चित ब्रह्मा (अन्नतारब्रह्म)
1.6.1.6177. ब्रह्मलोक
1.6.1.7178. कोकालिका (1)
1.6.1.8179. कटामोडाकतिस्साका
1.6.1.9180. तुरु ब्रह्मा
1.6.1.10181. कोकालिका (2)
1.6.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (ब्रह्म पंचक)

1.6.2.1182. सननकुमार
1.6.2.2183. देवदत्त
1.6.2.3184. अंधकविंदा
1.6.2.4185. अरुणावती
1.6.2.5186. अंतिम निब्बान (परिनिब्बाना)
1.7सम्युत्त 7: ब्राह्मणों/पुजारियों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्राह्मणसम्युत्त)
1.7.1(i) अराहंता खंड (अराहंतावग्गो)
1.7.1.1187. धनंजनी
1.7.1.2188. दुर्व्यवहार (अक्कोसा)
1.7.1.3189. असुरिंदका
1.7.1.4190 बिलंगिका
1.7.1.5191. अहिंसक
1.7.1.6192. उलझा हुआ (जाटा)
1.7.1.7193. सुद्धिका
1.7.1.8194. अग्गिका
1.7.1.9195 सुंदरिका
1.7.1.10196. अनेक बेटियाँ (बहुधिता)
1.7.2(ii) उपासकवग्गो (गृहस्थ अनुयायी अनुभाग)
1.7.2.1197. काशी भारद्वाज
1.7.2.2198. उदय
1.7.2.3199. देवहिता
1.7.2.4200 धनी व्यक्ति (महाशाला)
1.7.2.5201. मनत्थद्धा
1.7.2.6202. पक्कानिका
1.7.2.7203. नवकम्मिका
1.7.2.8204. लकड़ी इकट्ठा करने वाले (कत्थहारा सं. काष्ठ-हारा)
1.7.2.9205. द मदर सपोर्टर (माटुपोसाका)
1.7.2.10206. भिक्षु (भिक्खक)
1.7.2.11207. संगरवा
1.7.2.12208. खोमादुस्सा
1.8संयुत्त 8: वांगिसा के साथ जुड़े हुए प्रवचन (वांगीसासंयुत्त)
1.8.1209. निक्खंत त्याग दिया
1.8.2210. असंतोष (आरती)
1.8.3211. सुसंस्कृत (पेसला)
1.8.4212. आनंद
1.8.5213. सुभाषित वक्ता (सुभाषिता)
1.8.6214. सारिपुत्त
1.8.7215. पवाराना
1.8.8216. एक हजार से अधिक (पारोसहासा सं. पारो-सहस्त्र)
1.8.9217. कोंडन्ना
1.8.10218. मोग्गलाना
1.8.11219 गग्गारा
1.8.12220. वांगिसा
1.9सम्युत्त 9: वनों में जुड़े प्रवचन (वनसम्युत्त)
1.9.1221. एकांतवास (विवेक)
1.9.2222. उत्तेजन (उपथाना)
1.9.3223. कस्सपगोट्टा
1.9.4224. एक संख्या (साम्बाहुला)

1.9.5225. आनंद
1.9.6226. अनुराधा
1.9.7227. नागदत्ता
1.9.8228. कुलाघरानी
1.9.9229. वज्जिअन राजकुमार (वज्जिपुत्त)
1.9.10230 सज्जया पाठ करना
1.9.11231. हानिकारक विचार (अकुसलवित्तक सं. अकुशल-वितर्क)
1.9.12232. मध्याह्न (मज्झान्हिका सं. मध्यानिका)
1.9.13233. इंद्रियों में शिथिल (पकतिन्द्रिय)
1.9.14234. गंध का चोर (गंधत्थेना)
1.10सम्युत्त 10: यक्षों/आत्माओं के साथ संबंधित प्रवचन (यक्षसम्युत्त)
1.10.1235. इंदका
1.10.2236. सक्कनामाका
1.10.3237. सुसिलोमा
1.10.4238. मणिभड्डा
1.10.5239. सानू
1.10.6240. पियांकरा (सं. प्रियंकारा)
1.10.7241. पुनाबासु
1.10.8242. सुदत्ता
1.10.9243. सुक्का (1)
1.10.10244. सुक्का (2)
1.10.11245. सिरा
1.10.12246. अलावाका
1.11संयुत्त 11: देवताओं/स्वर्गदूतों के राजा सक्क[इंद्र] के साथ जुड़े हुए प्रवचन (सक्कसमुत्त)
1.11.1(i) प्रथम उप-अध्याय (सुवीरा)
1.11.1.1247 सुविरा
1.11.1.2248. सुसीमा
1.11.1.3249. ध्वज का शिखर (धजग्गा सं. ध्वज-अग्र)
1.11.1.4250. वेपचिट्टी (राक्षसों का स्वामी)
1.11.1.5251. सुविचारित परामर्श से विजय (सुभाषितजय)
1.11.1.6252. पक्षियों के घोंसले (कुलवका)
1.11.1.7253. किसी को भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए (नादुभिया)
1.11.1.8254. वेरोचना, असुरों के स्वामी (वेरोचना-असुरिंदा)
1.11.1.9255. एक जंगल में संत (ऋषि संस ऋषि)
1.11.1.10256. समुद्र के निकट (समुद्दक)
1.11.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (सात व्रत)
1.11.2.1257. व्रत (वातापदा)
1.11.2.2258. सक्का के नाम (सक्कानामा)
1.11.2.3259. महाली
1.11.2.4260. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
1.11.2.5261. एक रमणीय स्थान (रामनेयका सं. रमणीक)
1.11.2.6262. दान देना (यजमान)
1.11.2.7263. बुद्ध की पूजा (बुद्धवन्दना)
1.11.2.8264. गृहस्थों की पूजा (गृहवंदना सं. गृहस्थ-वंदना)
1.11.2.9265. गुरु की पूजा (सत्थरवन्दना)
1.11.2.10266. संघ की उपासना (संघवन्दन)
1.11.3(iii) तीसरा उपअध्याय (सक्का पेंटाड)
1.11.3.1267. हत्या (चेत्वा)

1.11.3.2268. कुरूप (दुब्बानिया सं. दुर्वर्न्या)
1.11.3.3269. सांबरी जादू (सांबरिमया)
1.11.3.4270. अतिक्रमण (अक्काया)
1.11.3.5271. नॉनएंगर (अकोढ़ा सं. अक्रोधा)
संयुक्त निकाय:आई.सगाथवग्गा- छंद के साथ

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

सम्युत्त 1: दिव्य प्राणियों/देवदूतों के साथ संवाद (देवतासम्युत्त)
(i) रीड सेक्शन (नाला वग्गा)
1. बाढ़ पार करना (ओघतरना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आया। पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे कहा,

"हे प्रभु, आपने बाढ़ कैसे पार की?" 1

[बुद्धः]
"हे मित्र, बिना रुके और बिना ज़ोर लगाए मैंने बाढ़ पार की।" 2

[देवता:]
"परन्तु हे प्रभु, आपने बिना रुके और बिना ज़ोर लगाए बाढ़ कैसे पार की?"

[बुद्धः]
“हे मित्र, जब मैं स्थिर हो गया, तब मैं डूब गया; परन्तु जब मैंने संघर्ष किया, तब मैं बह गया। हे मित्र, इसी प्रकार बिना रुके और बिना प्रयास किए मैंने बाढ़ पार की।” 3

[देवता:]
“अंततः बहुत समय बाद मुझे एक ऐसा ब्राह्मण दिखाई दिया जो पूर्णतः तृप्त है। जिसने बिना रुके, बिना प्रयास किए संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।” 4

यही उस देवता ने कहा। 5 गुरु ने स्वीकृति दी। तब उस देवता ने यह सोचकर कि “गुरु ने मुझे स्वीकृति दी है,” भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर वहीं अंतर्धान हो गए।

---

2. मुक्ति (निमोक्खा)
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा,

"हे प्रभु, क्या आप प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत जानते हैं?" 6

[बुद्ध:]
"हे मित्र, मैं प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत जानता हूँ।"

[देवता:]
"पर हे प्रभु, आप प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत किस प्रकार जानते हैं?"

[बुद्ध:]
"अस्तित्व में आनंद (नंदी/आनंद) के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) द्वारा;
बोध (संज्ञा/संज्ञा) और चेतना (विन्नान/विज्ञान) के विलुप्त होने द्वारा;
संवेदनाओं (वेदना) के निरोध और शमन (उपासमन) द्वारा;
इस प्रकार, हे मित्र, मैं प्राणियों के लिए मुक्ति, मोक्ष और एकांत जानता/जानती हूँ।" 8

---

3. पहुंचना (उपनिया)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखकर,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख प्रदान करें।” 9

[भगवान (बुद्ध):]
“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखकर,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।” 10

---

4. समय तेजी से बीतता है (Accenti)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

“समय उड़ जाता है, रातें तेजी से बीत जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं। 11
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।”

[भगवान (बुद्ध):]

“समय उड़ जाता है, रातें तेजी से बीत जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।”

---

5. कितने काटने चाहिए? (कटिचिंडा)
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"कितने बंधन काटने चाहिए, कितने त्यागने चाहिए; और कितने और विकसित करने चाहिए?
जब कोई भिक्षु कितने बंधन तोड़ देता है; क्या उसे बाढ़ पार करने वाला कहा जाता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पाँच बंधन काटने चाहिए, पाँच त्यागने चाहिए; और पाँच और विकसित करने चाहिए।
जो भिक्षु पाँच बंधन तोड़ देता है; उसे बाढ़ पार करने वाला कहा जाता है।" 12

---

6. जागृत (जगरा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"कितने सोते हैं जब दूसरे जागते हैं? कितने जागते हैं जब दूसरे सोते हैं?
कितने से मनुष्य धूल इकट्ठा करता है? कितने से मनुष्य पवित्र होता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पांच सोते हैं जब दूसरे जागते हैं; पांच जागते हैं जब दूसरे सोते हैं।
पांच चीजों से मनुष्य धूल इकट्ठा करता है; पांच चीजों से मनुष्य पवित्र होता है।" 13

---

7. प्रवेशित नहीं (अप्पतिविदिता)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जिन्होंने धर्मों (नियमों, मार्ग) को भलीभांति नहीं समझा है; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक सकते हैं;
वे गहरी नींद में सो रहे हैं, अभी तक जागे नहीं हैं; उनके जागने का समय आ गया है।" 14

[भगवान (बुद्ध):]

"जिन्होंने धर्मों को भलीभांति समझा है; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक नहीं सकते,
वे जागृत जन, सही ज्ञान प्राप्त करके; विषम में समरूप बने रहते हैं।" 15

---

8. पूरी तरह से उलझा हुआ (सुसमुत्था)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जो धर्मों (नियमों, मार्ग) के बारे में पूरी तरह से भ्रमित हैं; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक सकते हैं,
वे गहरी नींद में सो रहे हैं, अभी तक जागे नहीं हैं; उनके जागने का समय आ गया है।"

[भगवान (बुद्ध):
"जो धर्मों के बारे में भ्रमित नहीं हैं; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक नहीं सकते,
वे जागृत लोग, सही ढंग से जानकर, विषम में भी समरूप रहते हैं।"

---

9. अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति (मनकामा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यहाँ अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति को वश में करना संभव नहीं है।
न ही समाधि अवस्था में न रहने वालों के लिए ऋषित्व है।
यद्यपि वन में अकेले रहकर, आलसी (पामदा) अवस्था में,
कोई मृत्युलोक से परे नहीं जा सकता।" 16

[भगवान (बुद्ध):]
"अहंकार का त्याग करके, समाधि अवस्था में रहकर,
उच्च मन से, सर्वत्र मुक्त (मोक्ष/मोक्ष) अवस्था में,
वन में अकेले रहकर, सजग (पामदा) अवस्था में,
कोई मृत्युलोक से परे जा सकता है।" 17

---

10. वन (अरन्ना सं. अरण्य)
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जो घने जंगल में निवास करते हैं; शांत, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं;
दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं; उनका रंग इतना शांत क्यों है?" 18

[भगवान (बुद्ध):]
"वे अतीत पर शोक नहीं करते; न ही वे भविष्य की लालसा करते हैं।
वे वर्तमान में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं; इसलिए उनका रंग इतना शांत है।

भविष्य की लालसा से; अतीत पर शोक करने से,
मूर्ख (बल) सूख जाते हैं और मुरझा जाते हैं; जैसे कटी हुई हरी घास।"

(ii) नंदनावग्गो (स्वर्गीय उद्यान खंड)
11. नंदना (स्वर्गीय उद्यान)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:
"एक बार, भिक्षुओं, तावतिंसा स्वर्ग के एक देवता (देवदूत) नंदनवन में आनंद मना रहे थे, जो दिव्य इंद्रिय सुख के पाँच डोरों से सुसज्जित थे और अप्सराओं के एक दल के साथ थे। उस अवसर पर उन्होंने यह श्लोक कहा:

'वे सुख को नहीं जानते; जिन्होंने नंदनवन को नहीं देखा है,
जो तीस के स्वर्ग से संबंधित, महिमावान देवताओं का निवास स्थान है।'" 19

"जब यह कहा गया, हे भिक्षुओं, तो एक देवता ने दूसरे देवता को श्लोकों में उत्तर दिया:

'क्या तुम नहीं जानते, हे मूर्ख; अरहंतों का वह सिद्धांत?
सभी संस्कार अनित्य हैं; उनका स्वभाव उत्पन्न होना और नष्ट होना है।
उत्पन्न होने के बाद वे समाप्त हो जाते हैं, उनका शमन (उपासमन) आनंदमय है।" 20

---

12. आनंद (नंदती)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों में प्रसन्न होता है।
जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं में प्रसन्न होता है।
प्राप्ति (उपाधि) वास्तव में मनुष्य का आनंद है;
प्राप्ति के बिना मनुष्य को आनंद नहीं मिलता।" 21

[भगवान (बुद्ध):

"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों के लिए शोक करता है।
जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं के लिए शोक करता है।
प्राप्ति (उपाधि) वास्तव में मनुष्य का शोक है;
प्राप्ति के बिना मनुष्य को शोक नहीं होता।"

---

13. पुत्र के समान कोई नहीं (नत्थिपुत्तसमा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक कहा:

“पुत्र के प्रेम के समान कोई प्रेम नहीं; पशुओं के समान कोई धन नहीं।
सूर्य के समान कोई प्रकाश नहीं; जल में सागर सर्वोपरि है।” 22

[भगवान (बुद्ध):]
“स्वयं के प्रेम के समान कोई प्रेम नहीं; अन्न के समान कोई धन नहीं।
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न संस्कृत प्रज्ञा) के समान कोई प्रकाश नहीं; जल में वर्षा सर्वोपरि है।”

---

14. शासक (खट्टिया सं. क्षत्रिय)
(देवता:)
"दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में क्षत्रिय (शासक/योद्धा) श्रेष्ठ है; चौपायों में बैल श्रेष्ठ है;
कुंवारी कन्या (कुंवारी) पत्नियों में श्रेष्ठ है; और प्रथम पुत्र पुत्रों में श्रेष्ठ है।" 23

(बुद्ध:)
"दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में बुद्ध श्रेष्ठ हैं; चौपायों में घोड़ा श्रेष्ठ है;
आज्ञाकारी स्त्री पत्नियों में श्रेष्ठ है; और कर्तव्यनिष्ठ बालक पुत्रों में श्रेष्ठ है।"

---

15. बड़बड़ाना (सनमाना)
(देवता:)
"जब दोपहर होती है और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल वन भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना भयानक लगता है!" 24

(बुद्ध:)
"जब दोपहर होती है और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल वन भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना आनंददायक लगता है!"

---

16. उनींदापन और सुस्ती (निद्दा-तांडी सं. निद्रा-तंद्रा)
(देवता)
"नींद आना, सुस्ती, आलस्य; भोजन के बाद असंतोष, आलस्य;
इसी कारण प्राणियों के बीच; श्रेष्ठ मार्ग प्रकट नहीं होता।"

(बुद्ध)
"नींद आना, सुस्ती, आलस्य; भोजन के बाद असंतोष, आलस्य;
ऊर्जा (वीर्य) से इन्हें दूर किया जा सकता है; तब श्रेष्ठ मार्ग स्पष्ट हो जाता है।" 25

---

17. अभ्यास करना कठिन (दुक्कारा सं. दुष्कर)

(देवता)
"तपस्वी जीवन का अभ्यास करना कठिन है
और अयोग्य व्यक्ति के लिए इसे सहन करना भी कठिन है।
क्योंकि इसमें अनेक बाधाएँ हैं
जिनमें मूर्ख (बल) व्यक्ति विफल हो जाता है।"

(बुद्ध) " यदि कोई अपने मन को वश में न रखे तो
वह कितने दिन तपस्वी जीवन का अभ्यास कर सकता है ? वह अपने इरादों के वश में रहकर हर कदम पर असफल होगा । 26 जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है, स्वतंत्र, दूसरों को परेशान न करते हुए, पूरी तरह से तृप्त, एक भिक्षु किसी को दोष नहीं देता।" 27

---

18. शर्म की भावना (हिरी)
(देवता:)
"क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति है; जो लज्जा की भावना से विवश हो;
जो निंदा से दूर रहता हो; जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक से दूर रहता है?" 28

(बुद्ध:)
"बहुत कम हैं वे जो लज्जा की भावना से विवश हैं; जो सदा ध्यानमग्न रहते हैं;
बहुत कम हैं, जो दुखों के अंत तक पहुँचकर विषम में समभाव बनाए रखते हैं।"

---

19. एक छोटी सी झोपड़ी (कुटिका)
(देवता:)
"क्या तुम्हारे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है? क्या तुम्हारे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है?
क्या तुम किसी बंधन में नहीं फंसे हो? क्या तुम बंधन से मुक्त हो?"

(बुद्ध:)
"निश्चित रूप से मेरे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है; निश्चित रूप से मेरे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है,
निश्चित रूप से मेरे किसी बंधन में नहीं फंसे हैं; निश्चित रूप से मैं बंधन से मुक्त हूँ।" 29

"तुम्हें क्या लगता है मैं छोटी सी कुटिया किसे कहता हूँ? तुम्हें क्या
लगता है मैं छोटे से घोंसले को किसे कहता हूँ? तुम्हें क्या लगता है मैं बंधन किसे कहता हूँ?" 30

"तुम माँ को छोटी सी कुटिया कहते हो; पत्नी को छोटा सा घोंसला कहते हो,
पुत्रों को बंधन कहते हो; तृष्णा को तुम बंधन कहते हो।"

"अच्छा है कि तुम्हारे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है; अच्छा है कि तुम्हारे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है,
अच्छा है कि तुम्हारे किसी बंधन में नहीं फंसे हैं; अच्छा है कि तुम बंधन से मुक्त हो।"

---

20. समिद्धि

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में गर्म झरनों के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य समिद्धि भोर होते ही उठकर गर्म झरनों में स्नान करने गए। गर्म झरनों में स्नान करके वापस आने पर वे एक वस्त्र धारण किए अपने अंगों को सुखा रहे थे।

फिर, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवी (देवदूत), जो पूरे गर्म झरनों को प्रकाशित कर रही थीं, पूज्य समिद्धि के पास आईं। पास आकर वे हवा में खड़ी हो गईं और पूज्य समिद्धि को श्लोक में संबोधित किया: 31

"बिना भोग किए भिक्षा मांगते हो; भिक्षु, भोग करने के बाद भिक्षा मत मांगो;
पहले भोग करो, भिक्षु, फिर भिक्षा मांगो; समय को यूं ही बीतने मत दो!"

(समद्धि:)
"मुझे नहीं पता कि समय क्या होगा; समय छिपा हुआ है और दिखाई नहीं देता।
इसलिए, भोग-विलास किए बिना, मैं भिक्षा मांगता हूँ; समय को यूँ ही बीतने न दो!" 32

तब उस देवता ने पृथ्वी पर अवतरित होकर पूज्य समद्धि से कहा: "हे भिक्षु, तुम युवावस्था में ही दीक्षा प्राप्त कर चुके हो, काले बालों वाले बालक, यौवन के वरदान से परिपूर्ण, जीवन के सर्वोपरि काल में, इंद्रिय सुखों में लिप्त हुए बिना। हे भिक्षु, मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद लो; जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, उसे त्याग कर समय लेने वाली चीजों की खोज में मत लगो।"

(समद्धि:)
"हे मित्र, मैंने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली चीज़ों का त्याग समय लेने वाली चीज़ों के अनुसरण में नहीं किया है। मैंने समय लेने वाली चीज़ों का त्याग प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली चीज़ों के अनुसरण में किया है। क्योंकि हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख काल-क्षय के अधीन हैं, दुख और निराशा से भरे हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है, जबकि यह धम्म (मार्ग) प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।" 33

(देवता:)
"परन्तु हे भिक्षु, यह कैसे संभव है कि भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख काल-क्षय के अधीन हैं, दुख और निराशा से भरे हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है? यह कैसे संभव है कि यह धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है?"

(समद्धि:)
“हे मित्र, मैं नवदीक्षित हूँ, अभी हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में आया हूँ। मैं इसका विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता। परन्तु वह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, राजगृह में गर्म झरनों के उद्यान में निवास कर रहे हैं। उस भगवान (बुद्ध) के पास जाओ और उनसे इस विषय में पूछो। जैसे वे तुम्हें समझाएँ, वैसे ही तुम्हें याद रखना।”

(देवता:)
“हे भिक्षु, उस भगवान (बुद्ध) के पास जाना हमारे लिए आसान नहीं है, क्योंकि वे अन्य प्रभावशाली देवताओं (देवदूतों) से घिरे हुए हैं। 34
यदि तुम उनके पास जाकर उनसे इस विषय में पूछोगे, हम भी धम्म सुनने के लिए साथ आएंगे।

हम भी धम्म सुनने के लिए साथ आएंगे। (समधि:)
“बहुत खूब, मित्र,” पूज्य समिद्धि ने उत्तर दिया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उस देवता के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत बताई (पहले के श्लोक दोहराए गए), और आगे कहा: “यदि उस देवता का कथन सत्य है, पूज्यवर, तो वह देवता निकट ही होंगे।”

यह सुनकर उस देवता ने पूज्य समिद्धि से कहा: “पूछो, भिक्षु! पूछो, भिक्षु! क्योंकि मैं आ गया हूँ।”

तब भगवान (बुद्ध) ने उस देवता को श्लोक में संबोधित किया:

“जो प्राणी व्यक्त की जा सकने वाली बातों को समझते हैं; वे व्यक्त की जा सकने वाली बातों में स्थिर हो जाते हैं।
व्यक्त की जा सकने वाली बातों को पूरी तरह न समझने पर; वे मृत्यु के बंधन में आ जाते हैं। 35

“परन्तु व्यक्त की जा सकने वाली बातों को पूरी तरह समझ लेने पर; वे ‘व्यक्त करने वाले’ की कल्पना नहीं करते।
क्योंकि उनके लिए वह अस्तित्व ही नहीं है; जिससे उनका वर्णन किया जा सके। 36
“यदि तुम समझते हो, हे आत्मा, बोलो।”

(देवता:)
"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। कृपया, हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं उनके द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझ सकूँ।"

[भगवान (बुद्ध):]
48 "जो यह सोचता है कि 'मैं बराबर, श्रेष्ठ या बदतर हूँ,' वह
इस कारण विवादों में पड़ सकता है।
परन्तु जो तीनों भेदों में स्थिर है, वह
यह नहीं सोचता कि 'मैं बराबर या श्रेष्ठ हूँ।' 37

"हे आत्मा, यदि तुम समझते हो, तो बोलो।"

(देवता:)
"इस मामले में भी, हे पूज्यवर, मुझे विस्तार से समझ नहीं आया... कृपया, भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं उनके द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझ सकूँ।"

[भगवान (बुद्ध):]
"उन्होंने हिसाब-किताब का त्याग किया, अहंकार नहीं किया; 38
उन्होंने यहाँ मन-शरीर रूप (नामरूप) के लिए तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश किया।
यद्यपि देव और मनुष्य उन्हें
यहाँ और परे, स्वर्गों और सभी लोकों में खोजते हैं,
वे उस एक को नहीं पाते जिसकी तृष्णाएँ कटी हुई हैं, जो
विक्षिप्त है, जो लालसा से मुक्त है।

"यदि तुम समझते हो, आत्मा, बोलो।" (

देवता:) "हे आदरणीय, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए
इस अर्थ को विस्तार से समझता हूँ : "संपूर्ण संसार में किसी को भी बुराई नहीं करनी चाहिए, न वाणी से, न मन से, न शरीर से। इंद्रिय सुखों का त्याग करके, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, किसी भी ऐसे मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहिए जो कष्टदायी और हानिकारक हो।" 39

(iii) तलवार अनुभाग (सत्तीवागो)
21. एक तलवार (सत्ती)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती अवस्था में रहना चाहिए; कामुक वासना (राग) का त्याग करना चाहिए।"

[भगवान (बुद्ध):]
"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती अवस्था में रहना चाहिए; शरीर-पहचान के दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) का त्याग करना चाहिए।" 40

---

22. यह छूता है (फुसती)
(देवता:)
"जो स्पर्श नहीं करता, उसे यह स्पर्श नहीं करता; परन्तु जो स्पर्श करता है, उसे स्पर्श करता है।
अतः यह स्पर्श करने वाले को स्पर्श करता है; उस व्यक्ति को जो किसी निर्दोष व्यक्ति पर अत्याचार करता है।" 41

(बुद्ध:)
"यदि कोई किसी निर्दोष व्यक्ति,
किसी पवित्र और निष्कलंक व्यक्ति पर अत्याचार करे, तो
बुराई उसी मूर्ख पर वापस आ पड़ती है,
जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।" 42

---

23. उलझा हुआ (जाट)
(देवता:)
"अंदर भी उलझन, बाहर भी उलझन; यह पीढ़ी उलझन में फंसी हुई है।
हे गौतम, मैं आपसे यह पूछता हूँ; इस उलझन को कौन सुलझा सकता है?" 43

(बुद्ध:)
"शील में स्थिर, बुद्धिमान, चित्त विकसित करने वाला और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला,
उत्साही और विवेकशील भिक्षु; वही इस उलझन को सुलझा सकता है। 44

"जिनके लिए राग और द्वेष, अज्ञान सहित, दूर हो गए हैं।
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; उनके लिए यह उलझन सुलझ गई है।" 45

"जहाँ मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है (समाधि/सम्मोहन अवस्था में);
वहाँ उसका कार्य बिना किसी अवशेष के रुक जाता है। और न ही स्वरूप का आक्षेप (पतिघा) और बोध (सन्ना संस. संग्या); यहीं यह उलझन टूट जाती है।" 46

नोट: ध्यान में रहते हुए आनंदमय पारलौकिक अवस्थाओं का अनुभव होता है जिन्हें समाधि/झान/ज़ेन/सम्मोहन कहते हैं। उच्चतर अवस्थाओं में, तीव्र आनंद के कारण, व्यक्ति शरीर के बोध का अनुभव करना बंद कर देता है। इसके अलावा, जब व्यक्ति इस आंतरिक आनंद में रहना सीख जाता है, तो वह स्वरूपों (लिंग आदि) पर आधारित आकर्षणों की इच्छा नहीं रखता।

---

24. मन को वश में करना (मनो-निवारण)
(देवता):
"मन को जिस भी चीज से वश में कर लिया जाए,
उससे कोई दुख नहीं होता।

मन को हर चीज से वश में कर लेने से
सभी दुखों से मुक्ति मिल जाती है।"

(बुद्ध): " मन को वश में करने पर
उसे हर चीज से वश में करने की आवश्यकता नहीं होती । जिस भी चीज से बुराई उत्पन्न होती है, उसी से मन को वश में कर लेना चाहिए।" 47

---

25 अरहंत
(देवता:)
"यदि कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे,
तो क्या वह फिर भी कहेगा, 'मैं बोलता हूँ'?
और क्या वह कहेगा, 'वे मुझसे बोलते हैं'?" 48

(बुद्ध:)
"यदि कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे, तो
वह फिर भी कह सकता है, 'मैं बोलता हूँ',
और वह कह सकता है, 'वे मुझसे बोलते हैं'।
कुशल, संसार की भाषा का ज्ञाता,
वह ऐसे शब्दों का प्रयोग मात्र भावार्थ के रूप में करता है।" 49

"जब कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे,
तो क्या यह अहंकार के कारण है
कि वह कहेगा, 'मैं बोलता हूँ',
या कहेगा, 'वे मुझसे बोलते हैं'?" 50

“जिसने अहंकार का त्याग कर दिया है, उसके लिए कोई गाँठ नहीं रहती;
उसके लिए अहंकार की सभी गाँठें नष्ट हो जाती हैं।
यद्यपि ज्ञानी ने कल्पना को पार कर लिया है, [15]
फिर भी वह कह सकता है, 'मैं बोलता हूँ,'
वह यह भी कह सकता है, 'वे मुझसे बोलते हैं।'
कुशल, संसार की भाषा का ज्ञाता,
वह ऐसे शब्दों का प्रयोग मात्र भाव-भंगिमाओं के रूप में करता है।” 51

टिप्पणी: अरहंत अवस्था समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन की उच्चतम (9वीं) अवस्था में प्राप्त होती है और यह बुद्ध के समतुल्य अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति 'मैं' की भावना खो देता है क्योंकि यह सार्वभौमिक, अनंत और पारलौकिक हो जाती है (संभवतः विज्ञान की 'अंधकारमय ऊर्जा' अवधारणा की अवस्था के समतुल्य)।

---

26. प्रकाश के स्रोत (पज्जोटा सं. प्रज्वलित)
(देवता:)

65 "संसार में प्रकाश के कितने स्रोत हैं; जिनसे संसार प्रकाशित होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

(बुद्धः)
"संसार में प्रकाश के चार स्रोत हैं; पाँचवाँ यहाँ नहीं पाया जाता।
सूर्य दिन में चमकता है; चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है,

और आग जगह-जगह भड़कती है; दिन और रात दोनों समय।
परन्तु बुद्ध प्रकाशमानों में श्रेष्ठ हैं; वे अतुलनीय प्रकाश हैं।"

नोटः यहाँ बुद्ध से संबंधित प्रकाश दिव्य, पारलौकिक और जागृत लोगों द्वारा अनुभव किया जाने वाला है, अर्थात् समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन का अनुभव करने वाले।

---

27 धाराएँ (सारा)
(देवताः)
"धाराएँ कहाँ से वापस मुड़ जाती हैं? चक्र कहाँ घूमना बंद कर देता है?
मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कहाँ समाप्त हो जाता है; कहाँ शेष नहीं रहता?"

(बुद्धः)
"जहाँ जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु; जड़ नहीं पकड़ पाते;
यहीं से धाराएँ वापस मुड़ जाती हैं; यहीं चक्र घूमना बंद कर देता है;
यहीं मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; शेष नहीं रहता।" 52

नोटः यहाँ धारा का तात्पर्य जीवन धारा से है और जागृत लोगों द्वारा इसे निलंबित/पार किया जाता है, अर्थात् वे लोग जो समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन का अनुभव करते हैं, जो कि अतिचेतना की अवस्था है।

---

28. अत्यधिक धनवान (महाद्धान)
(देवताः)
"अत्यधिक धनवान और संपत्ति वाले; यहाँ तक कि देश पर शासन करने वाले क्षत्रिय भी
एक-दूसरे को लालच भरी निगाहों से देखते हैं; इंद्रिय सुखों में तृप्त नहीं होते।

(बुद्धः)
इन सब में से जो इतने व्यस्त हो गए हैं, जो
जीवन की धारा (भावो) में बहते जा रहे हैं,
उनमें से किसने तृष्णा (तन्हा संस्कृतः तृष्णा) का त्याग कर दिया है?
संसार में कौन व्यस्त नहीं है?"

"अपने घर छोड़कर प्रस्थान कर चुके (दीक्षित, पबज्जित); अपने प्रिय पुत्रों और पशुओं को छोड़कर;
कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) को त्यागकर; अज्ञान (अविज्जा संस्कृतः अविद्या) का निवारण करके
, वे अरहंत जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; क्या संसार में वे व्यस्त नहीं हैं?"

नोटः यह अरहंतों, अर्थात् जागृत लोगों के बारे में है।

---

29. चार पहिए (कटुकक्का)
(देवताः)
"चार चक्र और नौ द्वारों वाला; लोभ से भरा और बंधा हुआ।
हे महावीर, दलदल से जन्मा! इससे कैसे बचा जा सकता है?" 55

(बुद्धः)
"पट्टा और पट्टा काटकर; बुरी इच्छा और लोभ को काटकर;
तृष्णा को जड़ से उखाड़कर; इस प्रकार इससे मुक्ति मिलती है।" 56

नोट: दो हाथ और दो पैर चार चक्र हैं; नौ द्वार शरीर के छिद्र हैं, अर्थात् आंखें, कान, नाक, मुंह और दो निचले छिद्र; मुक्ति पुनर्जन्म से है; और केवल संसार के आकर्षणों की तृष्णा को दूर करके ही इससे मुक्ति मिल सकती है।

---

30 हिरण के बच्चे (एनिजंग्हा)
(देवता:)
"आपके पास आकर हम एक प्रश्न पूछते हैं; उस दुबले-पतले वीर के बारे में जो हिरण के बच्चों के साथ रहता है,
लालच रहित है, कम भोजन पर जीवन यापन करता है; सिंह या नाग की तरह अकेला घूमता है,
इंद्रिय सुखों की चिंता किए बिना; दुखों से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?" 57

(बुद्धः)
"संसार में इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ हैं; मन को छठी डोरी घोषित किया गया है;
यहाँ इच्छा का त्याग करके; व्यक्ति दुखों से मुक्त हो जाता है।" 58

नोट: पाँच डोरियाँ हैं आँखें, कान, नाक, जीभ और स्पर्श।

(iv) सतुलपा मेजबान
31. अच्छे (सब्भी) के साथ
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो सतुलपा समूह के कई देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। 59 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध रखना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से; मनुष्य बेहतर होता है, कभी बुरा नहीं।"

फिर पांच अन्य देवताओं ने बारी-बारी से भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अपने श्लोक पढ़े:

(देवता 1:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, परन्तु किसी और से नहीं।"

(देवता 2:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से दुःख के बीच दुःख नहीं होता।"

(देवता 3:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से अपने सगे-संबंधियों में प्रकाशमान होता है।"

(देवता 4:)

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्राणी अच्छे गंतव्य (सुगति, स्वर्ग आदि) की ओर (पुनर्जन्म) अग्रसर होते हैं।"

(देवता 5:)
“मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्राणी सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।” 61

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे
भगवान (बुद्ध), किसने सही कहा है?”

(बुद्ध:)
“तुम सबने एक तरह से सही कहा है। 62 परन्तु मेरी बात भी सुनो:

“मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर उन देवताओं (देवदूतों) ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखकर वे वहीं अंतर्धान हो गए।

ध्यान दें: यहाँ दुखों से मुक्त होने का अर्थ है निर्वाण, अर्थात् पुनर्जन्मों से मुक्ति और शाश्वत अवस्था।

---

32. कंजूसी (मच्छरी)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। रात होने पर, सतुलपा समूह के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष यह श्लोक पढ़ा:

“कंजूसी और आलस्य के कारण दान नहीं दिया जाता।
जो जानता है और पुण्य की इच्छा रखता है, उसे अवश्य दान देना चाहिए।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : “जिस बात से कंजूस दान न देने पर भयभीत होता है, वही भय दान न देने वाले पर आता है। जिस भूख और प्यास से कंजूस भयभीत होता है, वही नासमझ को इस लोक और परलोक में कष्ट देती है। अतः, कंजूसी दूर करके, इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान देना चाहिए। 63 पुण्य कर्म ही प्राणियों का सहारा होते हैं, जब वे परलोक में जाते हैं।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : “वे मृतकों में नहीं मरते, जो मार्ग में सहयात्रियों की तरह, अपने पास थोड़ा सा होते हुए भी दान करते हैं; यह एक प्राचीन सिद्धांत है। 64 कुछ लोग अपने पास थोड़े से में से दान करते हैं; अन्य जो धनी होते हैं, वे दान देना पसंद नहीं करते। अपने पास जो थोड़ा सा है, उसमें से दिया गया दान अपने मूल्य से हजार गुना अधिक मूल्यवान होता है।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : “बुरे लोग अच्छे लोगों का अनुकरण नहीं करते; जो कठिन दान करते हैं और कठिन कर्म करते हैं; अच्छे लोगों का धर्म (मार्ग, नियम) पालन करना कठिन है । इसलिए मृत्यु के बाद उनका गंतव्य; अच्छे और बुरे लोगों के लिए भिन्न होता है; बुरे लोग नरक में जाते हैं; अच्छे लोग स्वर्ग के लिए बाध्य होते हैं।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे भगवान (बुद्ध), किसने सही कहा?” “आप सभी ने एक तरह से सही कहा है। लेकिन मेरी बात भी सुनिए: (बुद्ध): “यदि कोई धर्म का पालन करता है; गरीबी में रहते हुए भी, यदि वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करते हुए; अपने पास जो थोड़ा बहुत है उसमें से दान करता है, तो एक लाख दान; हजार दान करने वालों के एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।” (उसके जैसे दान का) एक अंश भी नहीं।" 65 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा: "

“उनका विशाल और भव्य दान,
क्या धर्मी व्यक्ति के दान के मूल्य को साझा नहीं किया जाता?
एक लाख दान करने वालों में से हज़ार दान करने वालों का क्या?
क्या वे उसके समान दान के अंश के भी बराबर नहीं हैं?

तब भगवान (बुद्ध) ने उस देवता को श्लोक में उत्तर दिया:

(बुद्ध:)
"क्योंकि वे अधर्म में लिप्त होकर दान देते हैं,
वध और हत्या करके, दुःख उत्पन्न करते हैं।

उनका आंसुओं से भरा, हिंसा से लथपथ दान
धर्मात्मा के दान के मूल्य के बराबर नहीं है।

इसीलिए एक लाख दान भी, जो हजार दान देते हैं
, उसके अंश के भी बराबर नहीं हैं।"

---

33 अच्छा (साधु)
श्रावस्ती में। जब रात ढलने लगी, तो सतुलपा समूह के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने, जो एक तरफ खड़ा था, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा:

“हे प्रभु, दान देना अच्छा है!
कंजूसी और आलस्य के कारण दान नहीं दिया जाता।
जो जानता है और पुण्य की इच्छा रखता है, उसे अवश्य दान देना चाहिए।” तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति

में यह प्रेरणादायक वचन कहा : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! और आगे: जब थोड़ा ही हो, तब भी दान देना अच्छा है। कुछ लोग अपने थोड़े से धन से दान देते हैं। कुछ धनी लोग दान देना पसंद नहीं करते।” अपने पास जो थोड़ा-बहुत है, उसमें से दिया गया दान उसके मूल्य से हज़ार गुना अधिक मूल्यवान होता है।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा: “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, दान देना अच्छा है। और तो और, श्रद्धा के साथ दिया जाए तो दान देना भी अच्छा है। कहते हैं कि दान देना और युद्ध एक समान हैं। कुछ अच्छे लोग बहुतों पर विजय प्राप्त करते हैं। यदि कोई श्रद्धा के साथ थोड़ा सा भी दान देता है, तो वह परलोक में सुखी हो जाता है।” 66 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है। श्रद्धा के साथ दान देना भी अच्छा है। और आगे: धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है। जब कोई व्यक्ति परिश्रम और बल से प्राप्त धार्मिक लाभ (वीर्य) का दान देता है , और यम की वेतरानी नदी को पार कर जाता है, तो वह दिव्य अवस्थाओं को प्राप्त करता है।” 67 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है। श्रद्धा के साथ दान देना भी अच्छा है; धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है। और आगे: विवेकपूर्ण दान देना भी अच्छा है। 68 “सद्‌गुणी (सुगतो) द्वारा विवेकपूर्ण दान की प्रशंसा की जाती है - उन लोगों के लिए जो इस सजीव जगत में दान के योग्य हैं

दिया गया दान बहुत फलदायी होता है ।
जैसे उपजाऊ खेत में बोए गए बीज।

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा :

“हे प्रभु, दान देना अच्छा है!
भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है।
श्रद्धापूर्वक दान देना भी अच्छा है;
धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है।
विवेकपूर्वक दान देना भी अच्छा है।

और आगे:

जीवों के प्रति संयम भी अच्छा है।
जो जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वह

दूसरों के तिरस्कार के भय से बुराई नहीं करता।
इस कारण वे डरपोक की प्रशंसा करते हैं, बहादुर की नहीं,
क्योंकि भय के कारण अच्छे लोग बुराई नहीं करते।"

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे भगवान, किसने अच्छा कहा?"

"आप सभी ने एक तरह से अच्छा कहा है। लेकिन मेरी बात भी सुनिए:

"निःसंदेह दान की अनेक प्रकार से प्रशंसा की जाती है।
लेकिन धम्म (नियम, सत्य) का मार्ग दान देने से कहीं बढ़कर है।
क्योंकि अतीत में और बहुत पहले भी,
अच्छे और बुद्धिमान लोगों ने निर्वाण प्राप्त किया।" 69

---

34 कोई नहीं हैं (नसंती)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो सतुलपा सेना के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत), एक तरफ खड़े होकर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"मनुष्यों में कोई स्थायी इंद्रिय सुख नहीं है;
यहाँ केवल वांछनीय वस्तुएँ हैं; जब कोई व्यक्ति इनसे बंधा होता है, तो इनके बीच आलसी (पमादा) हो जाता है; वह मृत्यु के लोक से पुनर्जन्म रहित अवस्था (निर्वाण)
तक नहीं पहुँच पाता। " 70 [एक अन्य देवता:] "दुःख इच्छा से उत्पन्न होता है; पीड़ा इच्छा से उत्पन्न होती है । इच्छा के दूर होने से दुःख दूर हो जाता है; दुःख के दूर होने से पीड़ा दूर हो जाती है।" 71 (बुद्ध:) "वे इंद्रिय सुख नहीं हैं, संसार की सुंदर वस्तुएँ, मनुष्य की कामुकता कामवासना का इरादा है। सुंदर वस्तुएँ संसार में जैसी हैं वैसी ही रहती हैं, परन्तु बुद्धिमान उनके प्रति इच्छा को त्याग देते हैं। 72 "क्रोध का त्याग करना चाहिए, अहंकार को छोड़ देना चाहिए। सभी बंधनों से ऊपर उठना चाहिए। जिसके पास कुछ नहीं है, उसे कोई पीड़ा नहीं सताती। " जो मन-शरीर रूप (नामरूप) का पालन नहीं करता। 73 "उन्होंने हिसाब-किताब का त्याग किया, अहंकार नहीं अपनाया; उन्होंने मन-शरीर रूप (नामरूप) के लिए यहाँ तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) काट डाली। यद्यपि देवता और मनुष्य उन्हें यहाँ और उससे परे, स्वर्गों और सभी लोकों में खोजते हैं, वे उन्हें नहीं पाते जिनकी गांठें कटी हुई हैं, जो विचलित नहीं हैं, जो लालसा से मुक्त हैं।" (आदरणीय मोगराज:) "यदि देवताओं और मनुष्यों ने इस प्रकार मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) को यहाँ या उससे परे नहीं देखा है ," "तो क्या उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए जो उनका आदर करते हैं, मनुष्यों के कल्याण के लिए जीने वाले श्रेष्ठ मनुष्य?" 74 ("मोगराज," भगवान (बुद्ध) ने कहा:) "वे भिक्षु भी प्रशंसा के योग्य हो जाते हैं, "जो उनका आदर करते हैं, जो इस प्रकार मुक्त (विमुक्त) हैं।" परन्तु धम्म (मार्ग, नियम) को जानकर और संशय का त्याग करके, वे भिक्षु बंधनों को तोड़ने वाले भी बन जाते हैं। 75

---

35. फाल्टफाइंडर (उज्जहनसन्नी)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर अनेक "दोषी" देवता (देवदूत), जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए और हवा में खड़े हो गए। [24] तब

एक देवता (देवदूत), हवा में खड़े होकर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यदि कोई व्यक्ति स्वयं को एक प्रकार से प्रकट करता है; जबकि वास्तव में वह कुछ और होता है,
तो उसे जो आनंद मिलता है वह चोरी से प्राप्त होता है; जैसे किसी धोखेबाज जुआरी का लाभ।" [24]

(एक अन्य देवता:)
"जैसा करोगे वैसा बोलो; जैसा न करोगे वैसा मत बोलो।
बुद्धिमान व्यक्ति उस व्यक्ति को भली-भांति पहचान लेता है; जो अपने उपदेशों का पालन नहीं करता।"

(बुद्ध:)
"केवल बोलने से नहीं, न ही केवल सुनने से,
इस दृढ़ अभ्यास मार्ग पर प्रगति हो सकती है,
जिसके द्वारा ज्ञानी, ध्यानी, मार (शैतान) के बंधन से मुक्त होते हैं।

वास्तव में, ज्ञानी लोग दिखावा नहीं करते; क्योंकि वे संसार के मार्ग को समझ चुके हैं।
ज्ञान से ज्ञानी लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं; वे संसार से आसक्ति को पार कर चुके हैं।"

तब वे देवता (देवदूत) पृथ्वी पर उतरकर भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्यवर, हमसे एक अपराध हो गया, क्योंकि हम इतने नासमझ, इतने मूर्ख और इतने अकुशल थे कि हमने सोचा कि हम भगवान (बुद्ध) पर आक्रमण कर सकते हैं।" "भगवान (बुद्ध) हमें हमारे इस अपराध के लिए क्षमा करें, ताकि भविष्य में हम संयम बरतें।"

तब भगवान (बुद्ध) मुस्कुराए। 78 वे देवता और भी अधिक दोष पाते हुए वायु में उड़ गए। एक देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यदि कोई क्षमा न करे; उन लोगों को जो अपराध स्वीकार करते हैं,
क्रोधित हृदय से, घृणा से ग्रस्त होकर; तो वह गहरी शत्रुता पालता है।"

(बुद्ध:)
"यदि कोई अपराध न होता; यदि यहाँ कोई भटकना न होता।
और यदि शत्रुता समाप्त हो जाती; तो यहाँ कोई निर्दोष होता।" 79

(एक देवता:)
"किसके लिए कोई अपराध नहीं हैं? किसके लिए कोई भटकना नहीं है?
कौन भ्रम में नहीं पड़ा है?" और वह ज्ञानी कौन है जो सदा ध्यानमग्न रहता है?

(भगवान (बुद्ध):)
"तथागत, जो प्रबुद्ध हैं, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण हैं:
उनके लिए कोई पाप नहीं है, उनके लिए कोई भटकाव नहीं है;
वे भ्रम में नहीं पड़े हैं, और वे ही ज्ञानी हैं, जो सदा ध्यानमग्न रहते हैं।

यदि कोई पाप स्वीकार करने वालों को क्षमा नहीं करता, तो
क्रोधित हृदय से, घृणा से ग्रस्त होकर, वह प्रबल शत्रुता पालता है। "
मैं उस शत्रुता में प्रसन्न नहीं होता; अतः मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा करता हूँ।

---

36 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। रात होने पर, सतुलपा सेना के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और जिनसे पूरा जेतवन प्रकाशित हो रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तभी एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर
भगवान (बुद्ध) के समक्ष यह श्लोक पढ़ा:

"विश्वास मनुष्य का साथी है;
यदि अविश्वास बना न रहे,
तो यश और यश प्राप्त होता है,
और वह शरीर त्यागकर स्वर्ग जाता है।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया : 80 "क्रोध का त्याग करो, अहंकार को छोड़ दो। सभी बंधनों से मुक्त हो जाओ। जो कुछ भी नहीं रखता, जो मन-शरीर रूप (नामरूप) से आसक्त नहीं है, उसे कोई बंधन परेशान नहीं करता।" 81 (एक अन्य देवता:) "बचकाना (नासमझ) लोग, जिनमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) नहीं होती, आलस्य (पमदा) में लिप्त रहते हैं। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति सतर्कता (पप्पमदा) को अपना सर्वोपरि खजाना मानता है। आलस्य के आगे मत झुको; इंद्रिय सुख (नंदी/आनंद) से अंतरंग मत रहो। सचेत रहने वाले, ध्यान करके, परम सुख (सुख) प्राप्त करते हैं।"

---

37 समाया (कॉन्कोर्स)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच कपिलवस्तु के विशाल वन में, पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अरहंत थे। 82 और दस लोकों (दशलोक-धातु) के अधिकांश देवता भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए थे। तब शुद्ध लोकों (शुद्धवास) के चार देवदूतों के मन में यह विचार आया: 83
"भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के विशाल वन में शाक्यों के बीच एक बड़े भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे हैं, जिसमें पाँच सौ अर्हंत भिक्षु हैं। दस लोकों के अधिकांश देवता भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए हैं। आइए हम भी भगवान (बुद्ध) के पास जाएँ और उनकी उपस्थिति में अपना-अपना श्लोक बोलें।"

फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही वे देवता शुद्ध लोकों (शुद्धवास) के देवदूतों के बीच से लुप्त हो गए और भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। तब उन देवताओं ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, एक देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जंगल में एक विशाल सभा हो रही है; देवों का समूह एकत्रित हुआ है।
हम इस धर्म सभा में आए हैं; अजेय संघ के दर्शन करने के लिए।"

फिर दूसरे देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"वहाँ भिक्षु समाधि अवस्था में हैं; उन्होंने अपने मन को स्थिर कर लिया है।
सारथी की तरह जो लगाम थामे रहता है; ज्ञानी अपनी इंद्रियों की रक्षा करते हैं।" फिर तीसरे देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा : "बंजरता को चीरकर, चौखट को काटकर; इंद्रियों के स्तंभ को उखाड़कर, अविचलित। वे शुद्ध और निर्मल विचरण करते हैं; युवा नागों को दूरदर्शी ने भली-भांति वश में कर लिया है।" 84 फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा : "जो बुद्ध की शरण में गए हैं; वे दुख के लोक में नहीं जाएंगे। मानव शरीर त्यागने पर; वे देवताओं की सेना को भर देंगे।" 85

---

38. पत्थर का टुकड़ा (सकालिका)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) के पैर में पत्थर का टुकड़ा लग गया। 86 भगवान (बुद्ध) को तीव्र पीड़ा हुई - शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) जो कष्टदायक, कष्टदायी, तीखी, चुभने वाली, पीड़ादायक और अप्रिय थीं। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, बिना विचलित हुए उन्हें सहन किया। फिर भगवान (बुद्ध) ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़ा और एक पैर को दूसरे पर रखकर सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए।

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो सतुलपा सेना के सात सौ देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने, एक तरफ खड़े होकर,
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही: “हे प्रभु, तपस्वी गौतम वास्तव में एक नाग हैं! और जब वेदनाएँ पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक और अप्रिय
शारीरिक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं , तो वे नागों के समान भाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोधगम्य होकर, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं।” 87 फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणाप्रद वाणी कही: “सन्यासी गौतम वास्तव में सिंह के समान हैं , हे प्रभु ! और जब पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक और अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने सिंह समान स्वभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं। ” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : "सन्यासी गौतम वास्तव में एक श्रेष्ठ बैल हैं, हे प्रभु! और जब कष्टदायी... अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने श्रेष्ठ बैल के स्वभाव से उन्हें ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) रखते हुए, बिना विचलित हुए सहन करते हैं।" फिर एक अन्य देवता ने यह प्रेरणादायक वाणी कही...
सहन करते हैं।”

हे प्रभु, बोझ ढोने वाले पशु! और जब कष्टदायी... अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने बोझ ढोने वाले पशु के स्वभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) रखते हुए, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं। फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति

में यह प्रेरित वाणी कही : " हे प्रभु, तपस्वी गौतम वास्तव में वश में हैं!" और जब शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, कष्टदायी और अप्रिय होती हैं, तो वे अपने संयमित स्वभाव से उन्हें ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोधगम्य (संपजानो) रहते हुए बिना विचलित हुए सहन करते हैं। फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरित वाणी कही: "देखो, उनकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था कितनी सुविकसित है और उनका मन कितना मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) है - न आगे झुका है, न पीछे झुका है, और न ही किसी बलपूर्वक दमन से अवरुद्ध या नियंत्रित है!88 यदि कोई यह सोचे कि ऐसे नाग पुरुष, ऐसे सिंह पुरुष, ऐसे श्रेष्ठ नस्ल के पुरुष, ऐसे श्रेष्ठ बैल, ऐसे बोझ ढोने वाले जानवर , ऐसे संयमित पुरुष का अपमान किया जा सकता है - तो यह दृष्टिहीनता के अलावा और क्या कारण हो सकता है ?" यद्यपि ब्राह्मण पाँच वेदों में पारंगत हैं; सौ वर्षों तक तपस्या करते हैं, फिर भी उनका मन नहीं सही मायने में मुक्त; नीच स्वभाव वाले पार तट तक नहीं पहुँच पाते। 89 वे भोग-विलास (तन्हा संस्कृत) के वश में रहते हैं, व्रतों और नियमों से बंधे होते हैं; सौ वर्षों तक कठोर तपस्या करते हैं। परन्तु उनका मन सही मायने में मुक्त नहीं होता; नीच स्वभाव वाले पार तट तक नहीं पहुँच पाते। यहाँ अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति को वश में करना संभव नहीं; समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले के लिए ऋषित्व भी नहीं: यद्यपि वन में अकेले रहते हुए, आलसी (पमादा) हो; फिर भी मृत्युलोक पार नहीं कर सकता। अहंकार का त्याग करके, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से लीन होकर; उच्च मन से, सर्वत्र मुक्त (मोक्ष/मोक्ष) होकर, वन में अकेले रहते हुए, सजग (पमादा) होकर; मृत्युलोक पार कर सकता है।

---

39 पज्जुन्ना की पुत्री (1) (पज्जुन्नाधितु1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो पज्जुन्न की पुत्री कोकनादा, जो अत्यंत सुंदर थी और पूरे वन को प्रकाशित कर रही थी, भगवान (बुद्ध) के पास आई। 90 पास आकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुई, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया: 91

"वैशाली के वनों में निवास करते हुए; मैं बुद्ध, जो प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, की पूजा करती हूँ;

मैं कोकनादा हूँ, कोकनादा, पज्जुन्न की पुत्री। 92

"पहले मैंने केवल यही सुना था कि धम्म (मार्ग, नियम); दूरदर्शी द्वारा प्राप्त किया गया है;
लेकिन अब मैं इसे प्रत्यक्षदर्शी के रूप में जानती हूँ; जब ऋषि, सौभाग्यशाली (सुगतो), उपदेश देते हैं।"

"वे अज्ञानी लोग जो धर्म की निंदा करते फिरते हैं,
वे भयानक रोरुवा नरक में जाते हैं और लंबे समय तक कष्ट भोगते हैं। 93

परन्तु वे लोग जो धर्म के प्रति शांति और स्वीकृति रखते हैं,
शरीर त्यागने पर देवदूतों की सेना में विलीन हो जाते हैं।" 94

---

40 पज्जुन्ना की बेटी (2)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में, नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो पज्जुन्न की (छोटी) पुत्री, कोकनादा, जो अत्यंत सुंदर थी और पूरे वन को प्रकाशित कर रही थी, भगवान (बुद्ध) के पास आई। पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुई और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े:

"देखो, पज्जुन्न की पुत्री कोकनादा आई।
बिजली की चमक के समान सुंदर।
बुद्ध और धर्म (मार्ग, नियम) का आदर करते हुए,
उसने ये अर्थपूर्ण श्लोक कहे।

यद्यपि धर्म ऐसा है
कि मैं इसका अनेक प्रकार से विश्लेषण कर सकता हूँ,
मैं इसका अर्थ संक्षेप में बताऊँगा,
जितना मैंने इसे याद किया है।" 95 "मनुष्य को समस्त संसार में

किसी भी प्रकार की बुराई नहीं करनी चाहिए, न वाणी से, न मन से, न शरीर से; इंद्रिय सुखों का त्याग करके, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर। उसे ऐसा मार्ग नहीं अपनाना चाहिए जो कष्टदायी और हानिकारक हो।"

(v) जलता हुआ भाग (अदित्तवग्गो)
41 धधकती हुई (अदित्ता)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) ने, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आ पहुँचा। पास आकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

“जब किसी का घर जल रहा हो; तो जो बर्तन निकाला जाए
वही उपयोगी होता है; वह नहीं जो अंदर जलकर रह जाए।

“इसी प्रकार जब संसार बुढ़ापे और मृत्यु की आग से जल रहा हो;
तो दान देकर अपनी संपत्ति निकाल लेनी चाहिए; दान की गई संपत्ति का सदुपयोग होता है।”

दान से सुखद फल मिलता है; परन्तु जो दान नहीं किया जाता, उससे नहीं।
चोर उसे चुरा ले जाते हैं, या राजा; वह आग में जल जाता है या खो जाता है।

अंत में मनुष्य अपने शरीर को, अपनी संपत्ति के साथ, त्याग देता है।
यह जानकर, बुद्धिमान व्यक्ति को आनंद लेना चाहिए और दान भी देना चाहिए।
दान देने और अपनी सामर्थ्य के अनुसार आनंद लेने के बाद,
वह निर्दोष होकर स्वर्गलोक जाता है।

---

42. क्या देना है (दान)? (किमदादा)
[एक देवता:]

141 "दान करने से क्या शक्ति मिलती है? क्या दान करने से सौंदर्य मिलता है?
क्या दान करने से आराम मिलता है? क्या दान करने से दृष्टि मिलती है?
इन सबका दाता कौन है? पूछे जाने पर, कृपया मुझे समझाएँ।"

[भगवान (बुद्ध):]
"भोजन दान करने से शक्ति मिलती है; वस्त्र दान करने से सौंदर्य मिलता है;
वाहन दान करने से आराम मिलता है; दीपक दान करने से दृष्टि मिलती है।

निवास दान करने वाला ही सब कुछ का दाता है।
परन्तु धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देने वाला ही अमरता/अमृत का दाता है।"

नोट: धर्म का दान नैतिकता और ध्यान का मार्ग है जो दिव्य ज्ञान और शाश्वत जीवन अर्थात् निर्वाण/मोक्ष की ओर ले जाता है।

---

43 (3) खाद्य/अनाज (अन्ना)
(देवता)
"वे सदा भोजन में आनंद लेते हैं; देव और मनुष्य दोनों।
तो भला कौन सी आत्मा ऐसी हो सकती है जो भोजन में आनंद न ले?" 97

(बुद्ध)
"जब वे विश्वास से दान करते हैं; दृढ़ विश्वास के साथ, तो
दानकर्ता को स्वयं इस लोक और परलोक दोनों में भोजन प्राप्त होता है।

अतः, कंजूसी दूर करके; इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा होते हैं; परलोक में।"

---

44. एक मूल (एकमूल)
[एक देवता:]
"संत ने उस खाई को पार कर लिया है; जिसकी एक ही जड़ में दो भंवर हैं।
तीन दाग, पाँच विस्तार; बारह भंवरों वाला एक सागर।" 98

---

45 परफेक्ट (अनोमा)
[एक देवता:]
148 "उन्हें देखो जिनका नाम परिपूर्ण है; सूक्ष्म लक्ष्य के द्रष्टा;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के दाता, इंद्रिय सुखों के आश्रय से अनासक्त।
उस ज्ञानी, सर्वज्ञ को देखो; महान संत को देखो जो श्रेष्ठ मार्ग पर विचरण कर रहे हैं।" 99

---

46 अप्सराएँ (अचरा सं. अप्सरा)
(देवता:)
"अप्सराओं के समूह से गूंजता हुआ; राक्षसों के समूह से प्रेतवाधित!
इस उपवन को 'भ्रमित करने वाला' कहा जाता है, इससे कैसे बचा जा सकता है?" 100

(बुद्ध:)
"उस मार्ग को 'सीधा मार्ग' कहा जाता है; और उसका गंतव्य 'निर्भीक' है।
रथ को निर्भय कहा जाता है; लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के पहियों से सुसज्जित।

"लज्जा की भावना उसका सहारा है; ध्यान (सती) उसका आवरण है;
मैं धर्म (मार्ग, नियम) को सारथी कहता हूँ; सही दृष्टि आगे बढ़ती हुई। 101

"जिसके पास ऐसा वाहन है; चाहे वह स्त्री हो या पुरुष
, इस वाहन के माध्यम से; निर्वाण के निकट पहुँच जाता है।" 102

नोट: देवता/देवदूत संसार का उल्लेख कर रहे हैं।

---

47 वनरोपा बागान मालिक
(देवता:)
"दिन-रात किसके पुण्य में वृद्धि होती है? वे
कौन हैं जो धर्म में स्थापित और सद्गुणों से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाएंगे?"

(बुद्ध:)
"जो उद्यान या उपवन स्थापित करते हैं; जो पुल,
पीने का स्थान और कुआँ बनवाते हैं; जो निवास दान करते हैं...

" उनके पुण्य में दिन-रात वृद्धि होती है;
वे ही स्वर्ग जाएंगे; धर्म में स्थापित और सद्गुणों से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाएंगे।"

---

48. जेतवन (जेतवन)
[देवता अनाथपिंडिका:]
"यह वास्तव में जेतवन है; संतों (ऋषियों) का आश्रय स्थल;
धम्म (मार्ग) के राजा द्वारा बसाया गया स्थान; एक ऐसा स्थान जो मुझे आनंद देता है। 104

"कर्म, ज्ञान, धर्म; शील, उत्तम जीवन,
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं; वंश या धन से नहीं।

"इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने हित का ध्यान रखते हुए; उसे
ध्यानपूर्वक (योनिसो) धम्म (मार्ग, नियम) का अध्ययन करना चाहिए; इस प्रकार वह उसमें शुद्ध हो जाता है।

"सारिपुत्त वास्तव में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से संपन्न हैं; सद्गुण और आंतरिक शांति से।
यहां तक कि जो भिक्षु पार हो चुके हैं; वे भी अधिकतम उनके समर्थ ही हो सकते हैं।" 105

---

49 कंजूस (मच्छरी)
[एक देवता:]
160 "जो लोग इस संसार में कंजूस हैं; लालची लोग, निंदा करने वाले लोग।
जो लोग दान देने में लगे दूसरों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं,

उन्हें कैसा फल मिलता है? उनका भविष्य कैसा होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?”

[भगवान (बुद्ध):]
162 “जो लोग इस संसार में कंजूस हैं; लालची लोग, निंदा करने वाले लोग।
जो लोग दान देने में लगे दूसरों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं,

वे नरक में, पशुलोक में या यमलोक में पुनर्जन्म ले सकते हैं। 106
“यदि वे मनुष्य रूप में लौटते हैं; तो वे एक गरीब परिवार में जन्म लेते हैं

जहाँ वस्त्र, भोजन, सुख और खेल; बड़ी मुश्किल से प्राप्त होते हैं।
“नासमझ लोग दूसरों से जो भी अपेक्षा करते हैं; वह भी उन्हें नहीं मिलता।
यही इस जीवन का परिणाम है; और भविष्य में एक बुरा भाग्य।”

[एक देवता:]
"हमने आपका कथन इस प्रकार समझा है; हे गौतम, हम एक और प्रश्न पूछते हैं,
जो मनुष्य जन्म लेकर; सौम्य और उदार होते हैं;

बुद्ध और धर्म (मार्ग, नियम) में विश्वास रखते हैं; और संघ के प्रति गहरा आदर रखते हैं,
उन्हें किस प्रकार का फल प्राप्त होता है? उनका भविष्य कैसा होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जो मनुष्य जन्म लेकर; सौम्य और उदार होते हैं;
बुद्ध और धर्म में विश्वास रखते हैं; और संघ के प्रति गहरा आदर रखते हैं,
वे स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं; जहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ है। 107

"यदि वे मनुष्य जन्म लेते हैं; तो उनका पुनर्जन्म एक समृद्ध परिवार में होता है
जहाँ वस्त्र, भोजन, सुख और खेल; बिना किसी कठिनाई के प्राप्त होते हैं।"

वे उन देवदूतों की तरह आनंदित होते हैं जो दूसरों द्वारा संचित वस्तुओं को नियंत्रित करते हैं। 108
यही इस जीवन का परिणाम है; और भविष्य में एक शुभ गंतव्य (सुगति) है।

---

50 घटिकारा
(पूर्व जन्म में बुद्ध के एक मित्र, जो अब ब्रह्मलोक में अनागामी (पुनर्जन्म न लेने वाले) हैं)

[देवता घटिकारा:]
"सात भिक्षु अविहा (नरक) में पुनर्जन्म लेकर पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।
कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) का पूर्णतः नाश हो जाने से वे संसार से आसक्ति को पार कर चुके हैं।" 109

[भगवान (बुद्ध):]
"और वे कौन हैं जिन्होंने दलदल पार किया; मृत्युलोक को पार करना इतना कठिन है?
वे कौन हैं जिन्होंने मानव शरीर त्यागकर दिव्य बंधन को पार किया है?" 110

[घटिकारा:]
"उपक और पलगंडा; पुक्कुसती के साथ - ये तीन हैं।
फिर भद्दिया और खंडदेव, और बहुद्रग्गी और सिंहिया।

इन्होंने मानव शरीर त्यागकर दिव्य बंधन को पार किया है।" 111

[भगवान (बुद्ध):]
"तुम उनके बारे में जो शब्द कहते हो, वह अच्छा है; उन लोगों के बारे में जिन्होंने मार (शैतान) के फंदों को त्याग दिया है।
किसका धर्म (मार्ग, नियम) था जिसे समझकर उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला?" 112

[घटिकार:]
"यह भगवान (बुद्ध) से अलग नहीं था! यह आपकी शिक्षा से अलग नहीं था!
आपके धर्म को समझकर, उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला।

जहाँ मन-शरीर रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; बिना किसी अवशेष के रुक जाता है,
वहाँ उस धर्म को समझकर, उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला।" 113

[भगवान (बुद्ध):]
"तुम जो वाणी बोलते हो, वह गहरी है; समझना कठिन है, ग्रहण करना बहुत कठिन है।
किसका धर्म समझकर, तुम ऐसी वाणी बोलते हो?"

[घटिकार:]
"पूर्व में मैं कुम्हार था; वेकलिंग में घटिकार।
तब मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता था; बुद्ध कश्यप के एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में,

"मैंने यौन संबंध से परहेज किया; मैं ब्रह्मचारी था, कामुक बंधनों से मुक्त था।
मैं तुम्हारा सहपाठी था; अतीत में मैं तुम्हारा मित्र था।

मैं ही वह हूं जो जानता है; ये सात मुक्त भिक्षु,
जिन्होंने कामवासना और द्वेष को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है; संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"ठीक ऐसा ही उस समय था।

[घटिकारा:]
जैसा आप कहते हैं, हे भगवान

[बुद्ध:]
अतीत में तुम वेकलिंग में कुम्हार घटिकारा थे।
तब तुम अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते थे; बुद्ध कश्यप के एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में,

जिन्होंने यौन संबंध से परहेज किया; तुम ब्रह्मचारी थे, कामुक बंधनों से मुक्त थे।
तुम मेरे सहपाठी थे; "पहले तुम मेरे दोस्त थे।"

ऐसी ही मुलाकात हुई; अतीत के उन दोस्तों के बीच।
दोनों अब आंतरिक रूप से विकसित हो चुके थे; अपने अंतिम शरीर धारण करने वाले। 115

(vi) वृद्धावस्था अनुभाग (जारवाग्गो)
51 वृद्धावस्था (जरा)
[एक देवता:]
"बुढ़ापे के लिए क्या अच्छा है? स्थापित होने पर क्या अच्छा है?

मनुष्य का अनमोल रत्न क्या है? चोरों के लिए क्या चुराना मुश्किल है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पुण्य (शील) बुढ़ापे के लिए अच्छा है; आस्था (स्थापित होने पर) अच्छी है;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) मनुष्य का अनमोल रत्न है; दिव्य पुण्य (पुण्य) चोरों के लिए चुराना मुश्किल है।"

---

52 अविनाशी (अजरसा)
[देवता:]
185 "वह क्या है जो क्षय नहीं होता? वह क्या है जो सुरक्षित रहता है?
मनुष्य का अनमोल रत्न क्या है? वह क्या है जिसे चोर नहीं चुरा सकते?" 116

[बुद्ध:]
"शील (पुण्य) क्षय न होने के कारण अच्छा है; आस्था सुरक्षित रहने पर अच्छी है;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) मनुष्य का अनमोल रत्न है; दिव्य पुण्य (पुण्य) चोरों द्वारा नहीं चुराया जा सकता।"

---

53 मित्र (मित्र सं. मित्र)
[देवता:]
187 "यात्रा में साथी का मित्र कौन होता है? घर में साथी कौन होता है?
संकट में साथी कौन होता है? भविष्य में साथी कौन होता है?" 117

[बुद्ध:]
188 "यात्रा में साथी का मित्र कारवां होता है; घर में मित्र माता होती है;
जरूरत पड़ने पर साथी बार-बार साथ देता है।
पुण्य कर्म जो किए गए हों; वही भविष्य में मित्र होता है।"

---

54 समर्थन (वत्थु)
[देवता:]
"मनुष्यों का सहारा क्या है? यहाँ सबसे अच्छा साथी कौन है?
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वे अपना जीवन कैसे जीते हैं?"

[बुद्ध:]
"पुत्र मनुष्यों का सहारा हैं; पत्नी सबसे अच्छी साथी है;
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वर्षा से अपना जीवन जीते हैं।" 118

---

55. व्यक्ति (1) (जनवरी 1)
[देवता:]
191 "मनुष्य का निर्माण किससे होता है? उसके भीतर ऐसा क्या है जो उसे विचलित करता रहता है?
संसार में प्रवेश का कारण क्या है? उसका सबसे बड़ा भय क्या है?"

[बुद्ध:]
"मनुष्य की उत्पत्ति तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से होती है; उसका मन ही उसे विचलित करता रहता है;
मनुष्य संसार में प्रवेश करता है; दुख ही उसका सबसे बड़ा भय है।"

---

56. व्यक्ति (2) (जना2)
[देवता:]
"मनुष्य का जन्म किस कारण होता है? उसके पास ऐसा क्या है जो उसके चारों ओर घूमता रहता है?
संसार में प्रवेश का कारण क्या है? वह किससे अभी तक मुक्त नहीं हुआ है?"

[बुद्ध:]
"लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ही मनुष्य का जन्म है; उसका मन ही उसके चारों ओर घूमता रहता है;
प्राणी संसार में प्रवेश करता है; वह दुख से मुक्त नहीं होता।" [38]

---

57. व्यक्ति (3) (जना3)
[देवता:]
"मनुष्य का निर्माण किससे होता है? उसके भीतर ऐसा क्या है जो उसे त्रस्त करता रहता है?
संसार में प्रवेश किससे होता है? उसका भाग्य किससे निर्धारित होता है?"

[बुद्ध:]
"लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ही मनुष्य का निर्माण करती है; उसका मन ही उसे त्रस्त करता रहता है;
प्राणी संसार में प्रवेश करता है; कर्म ही उसके भाग्य का निर्धारण करता है।"

---

58. पथभ्रष्ट मार्ग (उपपथ)
[देवता:]
"भटका हुआ मार्ग किसे कहा जाता है? दिन-रात किसका विनाश होता है?
ब्रह्मचर्य का कलंक क्या है? बिना जल का स्नान क्या है?"

[बुद्ध:]
"कामवासना को भटका हुआ मार्ग कहा जाता है; जीवन दिन-रात विनाश की प्रक्रिया से गुजरता है;
स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का कलंक हैं; यहाँ पुरुष उलझे हुए हैं।
तपस्या और ब्रह्मचर्य; वही बिना जल का स्नान है।" 119

---

59. साझेदार (दुतिया)
[देवता:]
"मनुष्य का साथी क्या है? उसे कौन सिखाता है?
नश्वर प्राणी में आनंद लेने से, सभी दुखों से मुक्ति मिलती है?"

[बुद्ध:]
"विश्वास मनुष्य का साथी है, और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि उसे सिखाती है।
निर्वाण में आनंद लेने से, नश्वर प्राणी सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

---

60 कवि
[देवता:]
"श्लोकों का आधार क्या है? उनकी रचना किससे होती है?
श्लोक किस आधार पर टिके होते हैं? श्लोकों का निवास स्थान क्या है?"

[बुद्ध:]
"छंद श्लोकों का आधार है; अक्षर उनकी रचना करते हैं;
श्लोक नामों के आधार पर टिके होते हैं; कवि श्लोकों का निवास स्थान है।" 120

(vii) भारित (अद्धावग्गो)
61 नाम (मन)
[देवता:]
"किस चीज़ ने सब कुछ भारित कर रखा है? सबसे व्यापक क्या है?
वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है जो सब कुछ अपने अधीन रखता है?"

[बुद्ध:]
"नाम (मन) ने सब कुछ भारित कर रखा है; नाम (मन) से अधिक व्यापक कुछ भी नहीं है।
नाम (मन) ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने अधीन रखता है।" 121

---

62 मन (चित्त/चेतना)
[देवता:]
"यह संसार किसके द्वारा चलाया जाता है? किसके द्वारा इधर-उधर घसीटा जाता है?
वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है जो सब कुछ अपने वश में रखता है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार मन द्वारा चलाया जाता है; मन ही इसे इधर-उधर घसीटता है।
मन ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने वश में रखता है।" 122

---

63 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
[देवता:]
"यह संसार किसके द्वारा चलाया जाता है? किसके द्वारा इधर-उधर घसीटा जाता है? <88>
वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है जो सब कुछ अपने वश में रखता है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) द्वारा चलाया जाता है; तृष्णा के कारण ही यह इधर-उधर घसीटा जाता है।
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने वश में रखता है।"

---

64 बंधन (संयोजन)
[देवता:]
"यह संसार किस बंधन में जकड़ा हुआ है? इसके आवागमन का साधन क्या है? निर्वाण प्राप्त करने के लिए हमें किसका त्याग करना चाहिए?"

[बुद्ध:]
210 "यह संसार आनंद से जकड़ा हुआ है; विचार इसके आवागमन का साधन है।
तृष्णा का त्याग करना आवश्यक है; निर्वाण प्राप्त करने के लिए।" 123

---

65 बंधन
[देवता:]
"यह संसार किस बंधन में बंधा है? इसके आवागमन का साधन क्या है?
वह क्या है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधनों से मुक्ति मिल सके?" [40]

[बुद्ध:]
"यह संसार आनंद के बंधन में बंधा है; विचार इसके आवागमन का साधन है।
तृष्णा का त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधनों से मुक्ति मिल सके।"

---

66 पीड़ित (अत्तहता)
[देवता:]
"यह संसार किस बात से ग्रस्त है? यह किस चीज़ से घिरा हुआ है?
इसे किस बाण से चोट लगी है? यह सदा किस बात से जलता रहता है?" 124

[बुद्ध:]
214 "यह संसार मृत्यु से ग्रस्त है; वृद्धावस्था से घिरा हुआ है;
तृष्णा के बाण से घायल है; यह सदा इच्छा से जलता रहता है।"

---

67 फँसा हुआ (उदित्त)
[देवता:]
"यह संसार किससे जकड़ा हुआ है? यह किससे घिरा हुआ है? यह
संसार किसमें बंद है? यह संसार किस पर स्थापित है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से जकड़ा हुआ है; यह वृद्धावस्था से घिरा हुआ है; यह
संसार मृत्यु से घिरा हुआ है; यह संसार दुख पर स्थापित है।" 125

---

68 बंद (पिहिता)
[देवता:]
"यह संसार किससे घिरा है? यह संसार किस पर स्थापित है?
यह संसार किसमें फँसा है? यह किससे लिपटा हुआ है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार मृत्यु से घिरा है; यह संसार दुख पर स्थापित है;
यह संसार तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) में फँसा है; यह वृद्धावस्था से लिपटा हुआ है।"

---

69 इच्छा (इच्छा)
[देवता:]
"यह संसार किससे बंधा है? किसके दूर होने से यह मुक्त होता है?
वह क्या है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधन टूट जाएं?"

[बुद्ध:]
"यह संसार इच्छा से बंधा है; इच्छा के दूर होने से यह मुक्त होता है।
इच्छा ही वह है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधन टूट जाएं।" [41]

---

70 विश्व (लोका)
[देवता:]
"संसार की उत्पत्ति किससे हुई है? यह किससे घनिष्ठता स्थापित करता है?
(उपदान संस्कृत: आसक्ति) इसी से आसक्त होकर संसार किस बात से व्याकुल होता है?"

[बुद्ध:]
"संसार की उत्पत्ति छह से हुई है (आँखें, कान, नाक, स्वाद, स्पर्श और मन)।
छह से ही यह घनिष्ठता स्थापित करता है;
छह से आसक्त होकर संसार छह बातों से व्याकुल होता है।" 126

(viii) हत्या (चेतवग्गो)
71 हत्या (चेत्वा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"किसे मारकर कोई चैन से सो सकता है? किसे मारकर कोई शोक नहीं करता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म है जिसका वध आप स्वीकृत करते हैं?" 127

[बुद्ध:]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सो सकता है; क्रोध का वध करके कोई शोक नहीं करता;

हे देवता, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है;
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ लोग प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसका वध करके कोई शोक नहीं करता।" 128

---

72 रथ
[देवता:]
"रथ का प्रतीक क्या है? अग्नि का प्रतीक क्या है?
देश का प्रतीक क्या है? स्त्री का प्रतीक क्या है?" 129 [42]

[बुद्ध:]
"एक ध्वज रथ का प्रतीक है; धुआँ अग्नि का प्रतीक है;
राजा देश का प्रतीक है; पति स्त्री का प्रतीक है।"

---

73 (3) धन (वित्त)
[देवता:]
"मनुष्य का सबसे बड़ा धन क्या है? किसका सही अभ्यास सुख देता है?
वास्तव में सबसे मधुर स्वाद क्या है? जिसे सर्वश्रेष्ठ जीवन जीने वाला कहा जाता है, उसका जीवन कैसा होता है?"

[बुद्ध:]
"यहाँ विश्वास ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन है; धर्म (मार्ग, नियम) का सही अभ्यास सुख देता है;
सत्य ही वास्तव में सबसे मधुर स्वाद है; जिसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से जीवन जीने वाला कहा जाता है, उसका जीवन सर्वश्रेष्ठ होता है।" 130

---

74 वर्षा (वुट्ठी, सं. वृष्टि)
[एक देवता:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है? नष्ट होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है?
प्रवाहित होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है? वक्ताओं में श्रेष्ठ कौन है?"

[एक अन्य देवता:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में बीज श्रेष्ठ है; नष्ट होने वाली वस्तुओं में वर्षा श्रेष्ठ है; प्रवाहित
होने वाली वस्तुओं में पशु श्रेष्ठ हैं; वक्ताओं में पुत्र श्रेष्ठ है।" 131

[बुद्ध:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में ज्ञान श्रेष्ठ है; नष्ट होने वाली वस्तुओं में अज्ञान श्रेष्ठ है;
प्रवाहित होने वाली वस्तुओं में संघ श्रेष्ठ है; वक्ताओं में श्रेष्ठ बुद्ध हैं।" 132

---

75 भयभीत (भीता)
[देवता:]
"यहाँ इतने लोग क्यों भयभीत हैं
जबकि मार्ग का उपदेश अनेक अंगों द्वारा दिया जा चुका है? 133
हे गौतम, व्यापक अंतर्दृष्टि वाले, मैं आपसे पूछता हूँ;
किस बात पर दृढ़ रहना चाहिए; ताकि परलोक का भय न रहे?"

[बुद्ध:]
"जिसने वाणी और मन को सही दिशा में निर्देशित किया हो;
शरीर से कोई बुरा कर्म न किया हो ;
पर्याप्त भोजन और पेय के साथ घर में निवास किया हो;
निष्ठावान, सौम्य, उदार और सौम्य हो;
जब कोई इन चार धर्मों पर दृढ़ रहता है;

धर्म (मार्ग, नियम) पर दृढ़ता से दृढ़ रहता है; तो उसे परलोक का भय नहीं रहता।" 134

---

76 क्षय नहीं होता (नजीरति सं. नजीरनति)
[देवता:]
"क्या नष्ट होता है, क्या नहीं नष्ट होता? किसे पथभ्रष्ट मार्ग घोषित किया गया है?
लाभकारी अवस्थाओं में बाधा क्या है? दिन-रात किसका विनाश होता है?
ब्रह्मचर्य का कलंक क्या है? बिना जल का स्नान क्या है?

संसार में कितनी दरारें हैं, जिनमें मन स्थिर नहीं रह पाता?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[बुद्ध:]
"मनुष्यों का शरीर नष्ट हो जाता है; उनका नाम और कुल नष्ट नहीं होता।
कामवासना को पथभ्रष्ट मार्ग घोषित किया गया है;

लोभ लाभकारी अवस्थाओं में बाधा है; जीवन दिन-रात नष्ट होता है;
स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का कलंक हैं; यहीं मनुष्य उलझे रहते हैं।
तपस्या और ब्रह्मचर्य; यही बिना जल का स्नान है।"

संसार में छह प्रकार की कमियाँ हैं; जिनमें मन स्थिर नहीं रह पाता:
आलस्य और सुस्ती (पमादा); आत्मसंयम का अभाव;
उनींदापन और आलस्य; इन कमियों से पूर्णतः बचें।

---

77 संप्रभुता (इस्सरिया)
[देवता:]
"संसार में प्रभुत्व क्या है? सर्वश्रेष्ठ वस्तु कौन सी है?
संसार में जंग लगी तलवार क्या है? संसार में महामारी किसे माना जाता है?

240 "चोरी करने पर किसे गिरफ्तार किया जाता है? और चोरी करने पर किसे प्रिय माना जाता है?
ज्ञानी किसमें आनंदित होते हैं (नंदी/आनंद); जब वह बार-बार जन्म लेता है?"

[बुद्ध:]
"संसार में प्रभुत्व ही प्रभुत्व है 136; स्त्री सर्वश्रेष्ठ वस्तु है;
संसार में क्रोध जंग लगी तलवार के समान है; संसार में चोरों को महामारी माना जाता है। 137

"चोर को चोरी करने पर गिरफ्तार किया जाता है; लेकिन चोरी करने वाला तपस्वी प्रिय होता है।
ज्ञानी तपस्वी में आनंदित होते हैं (नंदी/आनंद); जब वह बार-बार जन्म लेता है।"

---

78 प्रेम (काम)
[देवता:]
"जो अच्छाई से प्रेम करता है, उसे क्या नहीं देना चाहिए? मनुष्य को क्या नहीं त्यागना चाहिए?
जब मोक्ष अच्छा हो तो क्या त्यागना चाहिए; लेकिन जब मोक्ष बुरा हो तो क्या नहीं त्यागना चाहिए?"

[बुद्ध:]
"मनुष्य को स्वयं को नहीं देना चाहिए; उसे स्वयं को नहीं त्यागना चाहिए। 138
मनुष्य को अच्छी वाणी बोलनी चाहिए; बुरी वाणी नहीं बोलनी चाहिए।"

यात्रा के लिए 79 प्रावधान (पाथेय)

[देवता:]
"यात्रा के लिए रसद की व्यवस्था कौन करता है? धन का स्रोत क्या है?
मनुष्य को कौन सी चीज़ इधर-उधर घसीटती है? संसार में ऐसी कौन सी चीज़ है जिसे त्यागना कठिन है?
अनेक प्राणी किस बात से बंधे हैं; जैसे पक्षी फंदे में फंस जाते हैं?"

[बुद्ध:]
"विश्वास यात्रा के लिए रसद की व्यवस्था करता है; भाग्य धन का स्रोत है;
इच्छा मनुष्य को इधर-उधर घसीटती है; इच्छा को संसार में त्यागना कठिन है।
इच्छा से अनेक प्राणी बंधे हैं; जैसे पक्षी फंदे में फंस जाते हैं।"

---

80 प्रकाश का स्रोत (पज्जोत संस्कृत: प्रज्योत)
[देवता:]
"संसार में प्रकाश का स्रोत क्या है? संसार में जागृत कौन है?
कर्म से जीवन यापन करने वालों के सहकर्मी कौन हैं? जीवन यापन का मार्ग क्या है?

आलसी और सक्रिय दोनों का पोषण कौन करता है; जैसे एक माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है?
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वे अपना जीवन यापन कैसे करते हैं?"

[बुद्ध:]
"प्रकाशित अंतर्दृष्टि (पन्ना) संसार में प्रकाश है; ध्यान (सती) संसार में जागरूकता है;
कर्म से जीवन यापन करने वालों के लिए गायें हैं; जीवन यापन का मार्ग हल है। 139

"वर्षा आलसी और सक्रिय दोनों का पोषण करती है; जैसे एक माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है।
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वर्षा से अपना जीवन यापन करते हैं।"

---

81 बिना संघर्ष के (अराना)
[देवता:]
"इस संसार में कौन शांत है? किसका जीवन व्यर्थ नहीं जाता?
कौन इच्छा को पूर्णतः समझता है? कौन शाश्वत स्वतंत्रता का आनंद लेता है?

माता-पिता और भाई किसकी पूजा करते हैं; जब वह दृढ़ता से स्थापित होता है?
वह कौन है जो नीच कुल का है; जिसे यहाँ क्षत्रिय भी प्रणाम करते हैं?"

[बुद्ध:]
"संन्यासी संसार में शांत रहते हैं; तपस्वी जीवन व्यर्थ नहीं जाता;
तपस्वी इच्छा को पूर्णतः समझते हैं; वे शाश्वत स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं।

माता-पिता और भाई तपस्वी की पूजा करते हैं; जब वह दृढ़ता से स्थापित होता है। 140
यद्यपि तपस्वी नीच कुल का हो; यहाँ क्षत्रिय भी उसे प्रणाम करते हैं।"

सम्युत्त 2: युवा देवताओं के साथ संबंधित प्रवचन (देवपुत्तसम्युत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (सूरिया)
82. कस्सपा(1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) कस्सपा, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। 141 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु को ज्ञान तो दिया है, लेकिन
भिक्षु को उपदेश नहीं दिया है।" 142

[बुद्धः]
"तो कस्सपा, इस बात को स्वयं स्पष्ट करो।" 143

[देवता:]
"उसे सुविचारित परामर्श का अभ्यास करना चाहिए,
और तपस्वी के अभ्यास में,
एकांत में बैठकर,
और मन को शांत करने का अभ्यास करना चाहिए।" 144

युवा देव कस्सपा ने यही कहा। गुरु ने इसे स्वीकार किया। तब युवा देव कस्सपा ने यह सोचकर कि "गुरु ने मुझे स्वीकार कर लिया है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

---

83. कस्सपा (2)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, युवा देव कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इस श्लोक का पाठ किया:

"एक भिक्षु को ध्यानमग्न होना चाहिए, जिसका मन मुक्त हो,
यदि वह हृदय की प्राप्ति चाहता है, तो उसे
उसी पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए; संसार और उदय-पतन को जानकर,
उसे मन से उदात्त और अनासक्त होना चाहिए।" 145

---

84. माघ
[देवता:]
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) माघा, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक 146 में कहा:

"किसका वध करके कोई चैन से सोता है? किसका वध करके कोई शोक नहीं करता?
हे गौतम, वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? आप किसका वध करने को उचित मानते हैं?"

[बुद्धः]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सोता है; क्रोध का वध करके कोई शोक नहीं करता;
हे वत्रभु (इंद्र), क्रोध का वध; जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है;
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ जन प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसका वध करके कोई शोक नहीं करता।"

---

85. मगध
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) मगध ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा,

"संसार में प्रकाश के कितने स्रोत हैं; जिनसे संसार प्रकाशित होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यह पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[बुद्धः]
"संसार में प्रकाश के चार स्रोत हैं; पाँचवाँ यहाँ नहीं पाया जाता।
सूर्य दिन में चमकता है; चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है,

और आग जगह-जगह भड़कती है; दिन और रात दोनों समय।

लेकिन बुद्ध प्रकाशमानों में श्रेष्ठ हैं; वे अतुलनीय प्रकाश हैं।"

---

86. दमाली
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देवदूत दमाली, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

[देवता:]
"ब्राह्मण को यही करना चाहिए; बिना थके प्रयास करते हुए,
अपनी इंद्रिय-सुखों का त्याग करके; वह अस्तित्व के लिए तरसता नहीं है।" 147

[बुद्ध:]
"हे दमाली, ब्राह्मण के लिए कोई कार्य नहीं है,
क्योंकि ब्राह्मण ने वह कर लिया है जो करना चाहिए।

नदी में पैर जमाने के लिए
मनुष्य को अपने सभी अंगों से बल लगाना पड़ता है;
परन्तु पैर जमाने के बाद, जमीन पर खड़े होने पर
उसे बल लगाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह पार जा चुका होता है।

" हे दमाली, यह ब्राह्मण के लिए एक उपमा है,
जो दोषमुक्त, विवेकशील ध्यान करने वाला है।
जन्म और मृत्यु के अंत तक पहुँचकर,
उसे बल लगाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह पार जा चुका होता है। 148

---

87. कामाडा
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) कामदा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "यह करना कठिन है, हे भगवान! यह करना बहुत कठिन है, हे भगवान!"

[बुद्ध:]
"वे कठिन कार्य भी कर लेते हैं, [हे कामदा,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"वे साधक जो सद्‌गुणों से परिपूर्ण और स्थिर हैं।
जो संन्यासी जीवन में प्रवेश कर लेता है,
उसे सुख मिलता है।"

[देवता:]
"वह प्राप्त करना कठिन है, हे भगवान, अर्थात् संतोष।"

[बुद्ध:]
"वे कठिन कार्य भी प्राप्त कर लेते हैं,
[हे कामदा,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"जो मन को शांत करने में आनंदित होते हैं।
जिनका मन दिन-रात
विकास में आनंदित रहता है।"

[देवता:]
"समाधि में जाना कठिन है, हे भगवान, अर्थात् मन।"

[बुद्ध:]
"हे कामदा," भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"जो इंद्रियों को शांत करने में आनंदित होते हैं, वे कठिन समाधि में भी समाधि बना लेते हैं।
मृत्यु के जाल को काटकर,
हे कामदा, श्रेष्ठ जन अपने मार्ग पर चल पड़ते हैं।"

[देवता:]
"हे भगवान (बुद्ध) यह मार्ग अगम्य और ऊबड़-खाबड़ है।" 150

[बुद्ध:]
"यद्यपि मार्ग अगम्य और ऊबड़-खाबड़ है, फिर भी हे कामदा, श्रेष्ठ जन इस पर चलते हैं।
नीच जन ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर सिर के बल गिर पड़ते हैं।
परन्तु श्रेष्ठ जनों का मार्ग समतल है; क्योंकि श्रेष्ठ जन ऊबड़-खाबड़ में भी समरूप होते हैं।"

---

88. पंचलाकंडा
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) पंचलचंद ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"विस्तृत अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले ने वास्तव में पाया है; कारावास के बीच में द्वार;
ध्यान की खोज करने वाले बुद्ध।
एकांतप्रिय प्रमुख बैल, ऋषि।" 151

[बुद्ध:]
"कैद के बीच में भी वे इसे पाते हैं, [हे पंचलचंद," भगवान (बुद्ध) ने कहा,]
"निर्वाण प्राप्ति के लिए धम्म (मार्ग, नियम)।
जिन्होंने ध्यान (सती) प्राप्त कर लिया है।
वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था में पूर्णतः स्थिर रहते हैं।" 152

---

89. तयाना
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो युवा देव (देवदूत) तायना, जो पूर्व में एक धार्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, अत्यंत सुंदर थे और संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित करते थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 153 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"प्रयास लगाकर, धारा को काट दो! हे ब्राह्मण, कामुक इच्छाओं का निवारण करो!
कामुक इच्छाओं का त्याग किए बिना; एक ऋषि एकात्मता प्राप्त नहीं करता। 154

"यदि कोई वह करना चाहता है जो किया जाना चाहिए; तो उसे दृढ़ता से प्रयास करना चाहिए। <112>
क्योंकि एक शिथिल तपस्वी का जीवन; केवल अधिक धूल बिखेरता है।"

"दुराचार को न करना ही बेहतर है; वह कर्म जिसके लिए बाद में पश्चाताप करना पड़ता है।
अच्छा कर्म करना ही बेहतर है; जिसके किए जाने पर पश्चाताप नहीं होता।

जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है,
वैसे ही गलत तरीके से अपनाया गया तपस्वी जीवन नरक की ओर खींचता है।

लापरवाही से किया गया कोई भी कर्म; कोई भी भ्रष्ट प्रतिज्ञा;
कोई भी ब्रह्मचर्य जीवन जो संदेह पैदा करता है; अच्छा फल नहीं देता।" 155

यह युवा देव तयाना ने कहा। यह कहकर उन्होंने

भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए
वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने
भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात
आगे बढ़ रही थी, युवा देव तयान, जो पूर्व में एक
धार्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे... मेरे पास आए... और मेरी उपस्थिति में
उन्होंने ये श्लोक पढ़े:

"प्रयास करके धारा को काट दो!... इससे अधिक फल नहीं मिलता।"

युवा देव तयान ने यही कहा। यह कहकर
उन्होंने मुझे प्रणाम किया और मुझे दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए। भिक्षुओं, तयान के श्लोकों को सीखो।
भिक्षुओं, तयान के श्लोकों में महारत हासिल करो। भिक्षुओं, तयान के श्लोकों को याद रखो
। भिक्षुओं, तयान के श्लोक लाभकारी हैं, वे
ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित हैं।"

---

90. कैंडिमा
श्रावस्ती में। उस समय युवा देव (देवदूत) चंदीमा को असुरों के स्वामी राहु ने पकड़ लिया था। 156 तब, भगवान (बुद्ध) का स्मरण करते हुए, युवा देव चंदीमा ने उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"हे बुद्ध, आपको प्रणाम! हे वीर, आप सर्वत्र मोक्ष प्राप्त हैं।
मैं बंदी बन गया हूँ; इसलिए कृपया मेरी शरण बनें।"

तब, युवा देव चंदीमा का उल्लेख करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने असुरों के स्वामी राहु को श्लोक में संबोधित किया:

"चंदीमा शरण लेने गया है; तथागत, अरहंत के पास।
हे राहु, चंदीमा को मोक्ष प्रदान करें; बुद्धों को संसार पर दया आती है।"

तब असुरों के स्वामी राहु ने युवा देव चंदीमा को मोक्ष प्रदान किया और शीघ्रता से असुरों के स्वामी वेपचित्ति के पास गए। 157 पास आकर, स्तब्ध और भयभीत होकर, वह एक तरफ खड़ा हो गया। फिर, जब वह वहाँ खड़ा था, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने उसे श्लोक में संबोधित किया:

"हे राहु, तुम इतनी जल्दी क्यों आए? तुमने चंडीमा को क्यों छोड़ा (मोक्ष)?
मानो सदमे में आकर, तुम वहाँ भयभीत क्यों खड़े हो?"

"मेरा सिर सात भागों में फट जाता; जीवित रहते मुझे चैन नहीं मिलता।
यदि बुद्ध के श्लोक का जाप होने पर भी मैं चंडीमा को न छोड़ता।" [51]

---

91. सूर्या
श्रावस्ती पर्व पर, उस अवसर पर युवा देव (देवदूत) सूर्य को असुरों के स्वामी राहु ने बंदी बना लिया था। 158 तब, भगवान (बुद्ध) का स्मरण करते हुए, युवा देव सूर्य ने उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"हे बुद्ध, आपको प्रणाम! हे वीर, आप सर्वत्र मोक्ष में मुक्त हैं।
मैं बंदी बन गया हूँ; इसलिए कृपया मेरी शरण बनें।"

तब, युवा देव सूर्य का उल्लेख करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने असुरों के स्वामी राहु को श्लोक में संबोधित किया:

"सूर्य शरण लेने गया है; तथागत, अरहंत के पास।
हे राहु, सूर्य को मोक्ष मुक्त करो; बुद्ध संसार के प्रति करुणा रखते हैं।

हे राहु, आकाश में विचरण करते समय;
प्रकाशमान को मत निगलना;
अंधकार में प्रकाश उत्पन्न करने वाले को;
अंधकार में अग्नि शक्ति के चक्र को।"
राहु, मेरे बालक सूर्य को मुक्त करो (मोक्ष प्रदान करो)। 159

तब असुरों के स्वामी राहु ने बालक सूर्य को मुक्त किया और शीघ्रता से असुरों के स्वामी वेपचित्ति के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वेपचित्ति भयभीत होकर एक तरफ खड़े हो गए। तब वेपचित्ति ने उनसे श्लोकों में कहा,

"राहु, तुम इतनी जल्दी क्यों आए? तुमने सूर्य को मुक्त क्यों किया?
तुम जैसे स्तब्ध होकर आए हो, वैसे ही भयभीत होकर क्यों खड़े हो?"

"मेरा सिर सात टुकड़ों में फट जाता; जीवित रहते मुझे शांति नहीं मिलती,
यदि बुद्ध के श्लोकों का जाप करते हुए भी मैंने सूर्य को मुक्त न किया होता।"

(ii) अनाथपिंडिका
92. कैंडिमासा
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) चंदीमासा, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"वे निश्चय ही सुरक्षित स्थान पर पहुँचेंगे; जैसे हिरण मच्छर रहित दलदल में।
जिन्होंने ध्यान प्राप्त कर लिया है; जो एकाग्र, विवेकशील और ध्यानमग्न (सतिमा) हैं।" 160

[भगवान (बुद्ध):]
"वे निश्चय ही दूर तट पर पहुँचेंगे; जैसे मछली जाल कटने पर पहुँचती है।
जिन्होंने ध्यान प्राप्त कर लिया है; जो सचेत (अप्पमदा) हैं, जिनके दोष त्याग दिए गए हैं।" 161

---

93. वेंदु (विष्णु के बिना)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देवता वेंदु (विष्णु) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 162

"वे मनुष्य वास्तव में धन्य हैं; जो शुभ पुरुष (सुगतो) की सेवा करते हैं,
गौतम की शिक्षाओं का पालन करते हैं; और उनमें सजगतापूर्वक अभ्यास करते हैं।" 163

[बुद्ध:]
"जब मैं शिक्षा का मार्ग घोषित करता हूँ, [हे वेंदु,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"वे ध्यानी जो उसमें अभ्यास करते हैं,
उचित समय पर सजग रहते हैं,
मृत्यु के वश में नहीं आते।"

---

94. दिघलत्थी
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) दिघलत्थी, जो पूरे बाँस के वन

(वेलुवन) को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"एक भिक्षु को ध्यानमग्न होना चाहिए; मन से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त),
यदि वह हृदय की प्राप्ति चाहता है; उसे उसी में तल्लीन रहना चाहिए।
संसार और उदय-अवनय को जानकर,
उसे मन से उदात्त और अनासक्त होना चाहिए।"

---

95. नंदना
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) नंदना ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"हे गौतम, व्यापक अंतर्दृष्टि वाले,
भगवान (बुद्ध) का ज्ञान और दृष्टि अबाधित है;
वह कैसा है जिसे लोग गुणी कहते हैं? वह कैसा है जिसे लोग
बुद्धिमान कहते हैं? वह कैसा है जो
दुखों से परे हो गया है? वह कैसा
है जिसकी देवता (देवदूत) पूजा करते हैं?"

[बुद्ध:]
"वह गुणी, बुद्धिमान, विकसित मन वाला,
समाधि अवस्था में, ध्यानमग्न, ध्यान का आनंद लेने वाला,
जिसके सभी दुख दूर हो गए हैं, जिसने त्याग दिया है, जो
अपने अंतिम शरीर को धारण करने वाला, विकारों का नाश करने वाला है;

ऐसे ही व्यक्ति को लोग गुणी कहते हैं,
ऐसे ही व्यक्ति को लोग बुद्धिमान कहते हैं।
ऐसे ही व्यक्ति ने दुखों से परे हो गया है।
ऐसे ही व्यक्ति की देवता पूजा करते हैं।"

---

96. कनाडा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) चंदन ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित किया:

"यहाँ कौन बाढ़ पार करता है; दिन-रात बिना थके?
कौन गहराई में नहीं डूबता; बिना सहारे, बिना किसी पकड़ के?" 164

[बुद्ध:]
"जो सदा सद्‌गुणों में परिपूर्ण है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से संपन्न, समाधि की अवस्था में परिपूर्ण।
जो ऊर्जावान और दृढ़ है; वह बाढ़ को पार करता है जो पार करना इतना कठिन है।
जो इंद्रिय-बोध से विरक्त है; जिसने रूप के बंधन को पार कर लिया है,
जिसने अस्तित्व में आनंद का नाश कर लिया है; वह गहराई में नहीं डूबता।" 165

---

97. वसुदत्ता
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) वसुदत्त ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती भाव में रहना चाहिए; कामुक (राग) काम (राग) का त्याग करना चाहिए।"

[बुद्ध:]

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती भाव में रहना चाहिए; शरीर-पहचान के दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) का त्याग करना चाहिए।"

---

98. सुब्रह्मा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) सुब्रह्म ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक 166 में संबोधित किया:

"यह मन सदा भयभीत रहता है; यह मन सदा
अविभाजित समस्याओं और उत्पन्न समस्याओं के बारे में व्याकुल रहता है।
यदि भय से मुक्ति (मोक्ष) संभव है, तो कृपया मुझे बताएँ।" 167

[बुद्ध:]
"ज्ञान और तप (तप) के बिना नहीं; इंद्रियों के संयम के बिना नहीं;
सब कुछ त्यागने के बिना नहीं; मुझे जीवों के लिए कोई सुरक्षा दिखाई देती है।" 168

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... वह [युवा देव] वहीं अंतर्धान हो गए।

---

99. काकुधा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध)
साकेत में अंजनवन (हिरण उद्यान) में निवास कर रहे थे। तब,
जब रात हो गई, तो
अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) काकुधा, जो पूरे अंजनवन को प्रकाशित कर रहे थे,
भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया
, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा,

"क्या आप प्रसन्न हैं (नंदी आनंद), हे तपस्वी?"

[बुद्ध:] "
क्या प्राप्त हुआ, मित्र?"

[देवता:]
"तो, हे तपस्वी, क्या आप दुखी हैं?"

[बुद्ध:]
"क्या खोया है, मित्र?"

[देवता:]
"तो, हे तपस्वी, क्या आप न प्रसन्न हैं (नंदी आनंद) और न दुखी?"

[बुद्ध:]
"जी, मित्र।"

[देवता:]
"मुझे आशा है कि आप शांत हैं, भिक्षु।
मुझे आशा है कि आपमें कोई आनंद नहीं है।
मुझे आशा है कि जब आप एकांत में बैठते हैं तो
आपमें असंतोष नहीं फैलता।" 169

[बुद्ध:]

"सचमुच, मैं शांत हूँ, आत्मा।
फिर भी मुझमें कोई आनंद नहीं है।
और जब मैं एकांत में बैठता हूँ तो
मुझमें असंतोष नहीं फैलता।"

[देवता:]
"आप शांत कैसे हैं, भिक्षु?
आपमें आनंद क्यों नहीं है?
ऐसा कैसे है कि जब आप एकांत में बैठते हैं तो
आपमें असंतोष नहीं फैलता?"

[बुद्ध:]
"आनंद दुखी व्यक्ति को प्राप्त होता है।
दुख आनंद से भरे व्यक्ति को।
एक भिक्षु के रूप में जो शांत और निर्धन है;
इसी प्रकार आपको मुझे जानना चाहिए, मित्र।"

[देवता:]
"अंततः लंबे समय बाद मुझे
एक पूर्णतः तृप्त ब्राह्मण,
एक निर्विरोध भिक्षु, एक
संसार से मोहभंग हुआ भिक्षु दिखाई दिया।" 170

---

100. उत्तरा
राजगृह में, एक तरफ खड़ी युवा देवदूत उत्तरा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।”

[बुद्ध:]
“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।”

---

101. अनाथपिंडिका
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) अनाथपिंडिका ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"यह वास्तव में जेतवन है; संतों (ऋषियों) का आश्रय स्थल,
जहाँ धम्म राजा निवास करते हैं; एक ऐसा स्थान जो मुझे आनंद देता है।

कर्म, ज्ञान, धर्म; शील; उत्तम जीवन;
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं; वंश या धन से नहीं।

इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने हित का ध्यान रखते हुए,

उसे ध्यानपूर्वक धम्म (मार्ग, नियम) का अध्ययन करना चाहिए; इस प्रकार वह उसमें शुद्ध हो जाता है।

सारिपुत्त वास्तव में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न); शील और आंतरिक शांति से संपन्न हैं।
यहाँ तक कि एक भिक्षु जो पार हो चुका है; "अधिकतम तो मैं उनके बराबर ही हो सकता हूँ।"

यह युवा देव अनाथपिंडिका ने कहा।
यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें
दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात्रि बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने
भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, पिछली रात जब रात्रि
आगे बढ़ी, तो एक युवा देव मेरे पास आए और मेरी
उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"यह वास्तव में जेतवन है, ...
अधिकतम तो मैं उनके बराबर ही हो सकता हूँ।"

"यह उस युवा देव ने कहा। यह कहकर उन्होंने
मुझे प्रणाम किया और मुझे दाहिनी ओर रखते हुए
वहीं अंतर्धान हो गए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, वह युवा देव अवश्य ही अनाथपिंडिका रहे होंगे । क्योंकि गृहस्थ अनाथपिंडिका को पूज्य सारिपुत्त पर
पूर्ण विश्वास था ।" "शाबाश, शाबाश, आनंद! तुमने तर्क से सही निष्कर्ष निकाला है । 171 वह युवा देव अनाथपिंडिका थे।"

(iii) विभिन्न संप्रदाय
102 शिव (शिव के बिना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) शिव, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया: 172 “मनुष्य को

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से मनुष्य बेहतर बनता है, कभी बुरा नहीं।

मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, लेकिन किसी और से नहीं।”

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, दुख के बीच भी मनुष्य दुखी नहीं होता।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।

अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, मनुष्य अपने सगे-संबंधियों के बीच प्रकाशमान होता है।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, प्राणी अच्छे गंतव्य (सुगति, स्वर्ग आदि) की ओर पुनर्जन्म लेते हैं।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, प्राणी सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने युवा देव शिव को श्लोकों में उत्तर दिया:

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, मनुष्य सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

---

103. खेमा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) खेमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"अज्ञानी (बल) लोग, जो प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्न) से रहित हैं, स्वयं के शत्रु के समान व्यवहार करते हैं।
वे बुरे कर्म करते हैं, जिनका फल केवल कड़वा ही मिलता है।

"वह कर्म जो ठीक से नहीं किया गया है, जिसके किए जाने के बाद पश्चाताप किया जाता है,
उसका परिणाम रोते हुए चेहरे के साथ अनुभव होता है।

"परन्तु वह कर्म जो ठीक से किया गया है, जिसके किए जाने के बाद पश्चाताप नहीं किया जाता है,
उसका परिणाम प्रसन्न मन के साथ आनंदित होकर अनुभव होता है।" 173

[भगवान (बुद्ध):]

"मनुष्य को वह कर्म तुरंत करना चाहिए, जो स्वयं के कल्याण की ओर ले जाता है;
विचारक, बुद्धिमान व्यक्ति को गाड़ीवान के उदाहरण से आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

"जैसे गाड़ीवान ने समतल सड़क छोड़कर
ऊबड़-खाबड़ पगडंडी पर चलना शुरू कर दिया; टूटे हुए धुरी के साथ शोक में डूबा हुआ

"इसलिए जो बचकाना (नासमझ) धम्म (मार्ग, नियम) को छोड़कर, धम्म के विपरीत मार्ग का अनुसरण करता है,
जब वह मृत्यु के मुँह में गिरता है; तो टूटे हुए धुरी वाले गाड़ीवान की तरह शोक में डूबा रहता है।" 174

---

104 सीरी
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) सेरी ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"वे सदा भोजन में आनंद लेते हैं; देव और मनुष्य दोनों।
तो भला कौन सी आत्मा हो सकती है; जो भोजन में आनंद न ले?"

[बुद्ध:]
"जब वे श्रद्धा से दान करते हैं; विश्वास के साथ, तो
दानकर्ता को स्वयं ही भोजन प्राप्त होता है; इस लोक में भी और परलोक में भी।

इसलिए, कंजूसी दूर करके; इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा है; [जब वे परलोक में जाते हैं]।"

[देवता:]
"यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर!
भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह से यह कहा है:

"जब वे श्रद्धा से दान करते हैं ... [जब वे परलोक में जाते हैं]।"

"एक समय की बात है, आदरणीय महोदय, मैं सेरी नाम का राजा था, दानदाता, परोपकारी और दान देने की प्रशंसा करने वाला। मेरे चारों द्वारों पर मैं तपस्वियों, ब्राह्मणों, गरीबों, यात्रियों, भिक्षुओं और भिखारियों को दान देता था। तब, आदरणीय महोदय, हरम की स्त्रियाँ मेरे पास आईं और बोलीं, 'महाराज, आप दान देते हैं, पर हम दान नहीं देते। यदि महाराज की सहायता से हम भी दान दें और पुण्य कर्म करें तो अच्छा होगा।' तब मेरे मन में विचार आया, 'मैं स्वयं दानदाता, परोपकारी और दान देने की प्रशंसा करने वाला हूँ। तो जब वे कहती हैं, 'आइए दान दें,' तो मैं उन्हें क्या कहूँ?' इसलिए, आदरणीय महोदय, मैंने पहला द्वार हरम की स्त्रियों को दे दिया। वहाँ हरम की स्त्रियों ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।"

फिर, आदरणीय महाराज, मेरे क्षत्रिय सामंत मेरे पास आए और बोले:
'महाराज दान देते हैं, हरम की स्त्रियाँ दान देती हैं, परन्तु हम दान नहीं देते। यदि महाराज की सहायता से हम भी दान दें और पुण्य कर्म करें तो अच्छा होगा।' मुझे यह विचार आया: 'मैं स्वयं दानदाता हूँ...' अतः, आदरणीय महाराज, मैंने दूसरा द्वार क्षत्रिय सामंतों को दे दिया। वहाँ क्षत्रिय सामंतों ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

फिर, आदरणीय महाराज, मेरी सेना मेरे पास आई... अतः, आदरणीय महाराज, मैंने तीसरा द्वार सेना को दे दिया। वहाँ सेना ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

"फिर, हे पूज्यवर, ब्राह्मण और गृहस्थ मेरे पास आए... अतः, हे पूज्यवर, मैंने चौथा द्वार ब्राह्मणों और गृहस्थों को दे दिया। वहाँ ब्राह्मणों और गृहस्थों ने दान दिया, और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

फिर, हे पूज्यवर, मेरे सेवक मेरे पास आए और बोले: 'अब महाराज, आप कहीं भी दान नहीं दे रहे हैं।' 175 यह सुनकर मैंने उन सेवकों से कहा: 'तो फिर, मैं कहता हूँ, वहाँ से दूरदराज के प्रांतों में उत्पन्न राजस्व का आधा हिस्सा महल में भेज दो।'" वहीं से आधा भाग तपस्वियों, ब्राह्मणों, गरीबों, यात्रियों, भिक्षुओं और भिखारियों को दान कर दो।

हे पूज्यवर, मैंने इतने लंबे समय तक जो पुण्य कर्म किए हैं, जो लाभकारी कर्म किए हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है, जिससे मैं कह सकूँ: ' इतना ही पुण्य है' या 'इतना ही पुण्य का फल है' या 'मुझे स्वर्ग में इतने ही समय तक रहना है'। हे पूज्यवर, यह कितना अद्भुत है! हे पूज्यवर, यह कितना आश्चर्यजनक है! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह कहा है:

"जब वे विश्वास से दान करते हैं; विश्वास के साथ;
दानकर्ता को स्वयं ही इस लोक और परलोक दोनों में भोजन प्राप्त होता है।

इसलिए, कंजूसी दूर करके; कंजूसी पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य कर्म परलोक में जीवों का सहारा होते हैं।"

---

105. घटिकारा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) घटिकारा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"सात भिक्षु अविहा (नरक) में पुनर्जन्म लेकर
पूर्णतः मुक्त हो चुके हैं (विमुक्त संस्कृत में)..." (श्लोक 1:50 के समान हैं)
अब दोनों आंतरिक रूप से विकसित हो चुके हैं; अपने अंतिम शरीर धारण कर चुके हैं।

---

106. जंतु

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार कई भिक्षु हिमालय की ढलान पर एक छोटी सी वन कुटिया में कोसलों के बीच रह रहे थे - बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कर्कश वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित मन वाले, पूर्ण समझ से रहित (संपजन्न), समाधि अवस्था में नहीं, बिखरे हुए दिमाग वाले, अपनी इंद्रियों में शिथिल। 176

फिर, पंद्रहवें उपोसथ के दिन, युवा देव (देवदूत) जंतु उन भिक्षुओं के पास आए और उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 177

"पहले भिक्षु सुखी जीवन व्यतीत करते थे; गौतम के शिष्य।
वे इच्छाहीन होकर भिक्षा मांगते थे; वे इच्छाहीन होकर अपने आवासों का उपयोग करते थे।
संसार की अनित्यता को जानकर; उन्होंने दुखों का अंत किया।

"परन्तु अब गाँव के मुखियाओं की तरह; वे अपना भरण-पोषण कठिन बना लेते हैं।
वे खाते-पीते फिर लेट जाते हैं; दूसरों के घरों में मोह में डूबे रहते हैं। 178

"संघ (भाईचारे) को आदरपूर्वक प्रणाम करके, मैं यहाँ केवल कुछ के बारे में बात कर रहा हूँ;
वे त्यागे हुए हैं, बिना रक्षक के; मृतकों के समान हो गए हैं। 179

"मेरा कथन आलस्य (पमादा) में रहने वालों के संदर्भ में है।
जहाँ तक सजगता (अप्पमादा) में रहने वालों की बात है; मैं उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।"

---

107. रोहितास्सा
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) रोहितासा ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, क्या यात्रा करके
संसार के उस छोर को जानना, देखना या वहाँ पहुँचना संभव है, जहाँ न जन्म होता है, न
बुढ़ापा आता है, न मृत्यु होती है, न पुनर्जन्म होता है?" <143>

[बुद्ध:]
"हे मित्र, संसार के उस छोर के विषय में, जहाँ न जन्म होता है,
न बुढ़ापा आता है, न मृत्यु होती है, न पुनर्जन्म होता है
- मैं कहता हूँ कि यात्रा करके उसे जानना, देखना या वहाँ पहुँचना असंभव है।" 1811

[देवता:]
"हे पूज्यवर, यह अद्भुत है! हे पूज्यवर, यह आश्चर्यजनक है!
भगवान (बुद्ध) ने यह कितना सही कहा है: 'हे मित्र, संसार के उस छोर के विषय में ... मैं कहता हूँ कि यात्रा करके
उसे जानना, देखना या वहाँ पहुँचना असंभव है ।'" हे पूज्यवर, एक समय की बात है, मैं भोज का पुत्र रोहितास्सा नामक एक ऋषि था, जो आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) से परिपूर्ण था और आकाश में यात्रा करने में सक्षम था। हे पूज्यवर, मेरी गति इतनी तीव्र थी कि मैं एक प्रशिक्षित, कुशल, अनुभवी धनुर्धर की तरह ही तंदूर की छाया को पार करते हुए हल्के बाण से आसानी से तीर चला सकता था। हे पूज्यवर, मेरे कदम इतने विशाल थे कि ऐसा लगता था मानो मैं पूर्वी सागर से पश्चिमी सागर तक पहुँच गया हूँ। तब हे पूज्यवर, मेरे मन में यह इच्छा जागी: 'मैं यात्रा करके संसार के अंत तक पहुँचूँगा।' ऐसी गति और ऐसे विशाल कदमों के साथ, और सौ वर्ष की आयु होने के कारण, मैंने सौ वर्ष तक यात्रा की, केवल खाने-पीने, भोजन और नाश्ता करने, शौच और मूत्र त्याग करने, सोने और थकान दूर करने के लिए ही विश्राम किया; फिर भी मैं संसार के अंत तक पहुँचे बिना ही मार्ग में ही मर गया। "यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: 'मित्र, संसार के उस अंतिम छोर (निर्वाण) के विषय में, जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता, मरता नहीं, नष्ट नहीं होता और पुनर्जन्म नहीं लेता - मैं कहता हूँ कि इसे न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा द्वारा पहुँचा जा सकता है।'" [बुद्ध:] "हे मित्र, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत (निर्वाण) तक पहुँचे बिना दुखों का अंत संभव नहीं है। हे मित्र, इसी असीम ऊँचाई वाले शरीर (ज्ञान, संज्ञा और मन) में मैं संसार, संसार की उत्पत्ति, संसार के निरोध (निर्वाण) और संसार के निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान देता हूँ। (नोट: यहाँ निरोध ध्यान की अवस्था है) "संसार के भ्रमण से

संसार के अंत तक कभी नहीं पहुँचा जा सकता; फिर भी संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों से मुक्ति (मोक्ष) नहीं है। इसलिए, वास्तव में, संसार के ज्ञाता, ज्ञानी, संसार के अंत तक पहुँचे हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले।" दुनिया के अंत को जानकर, शांति में,

उसे न तो इस दुनिया की और न ही किसी और दुनिया की लालसा है।

---

108. नंदा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) नंदा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"समय तेजी से बीतता है, रातें जल्दी से गुजर जाती हैं,
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं;
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।" [

बुद्ध:]
"समय तेजी से बीतता है, रातें जल्दी से गुजर जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।"

---

109. नंदीविसाला
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) नंदीविसाला ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"चार पहियों और नौ द्वारों वाले; लोभ से भरे और बंधे हुए;
दलदल से जन्मे, हे महावीर! इससे कैसे बचा जा सकता है?"

[बुद्ध:]
"रस्सी और पट्टा काटकर; बुरी इच्छा और लोभ को
जड़ से उखाड़कर; इस प्रकार इससे बचा जा सकता है।"

---

110. सुसीमा
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे आनंद, क्या तुम भी सारिपुत्त को स्वीकार करते हो?" 183

[आनंद:]
"हे पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, सिवाय इसके कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त हो? हे पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न संस्कृत प्रज्ञा) वाले, व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, तीव्र प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, तीक्ष्ण प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले और भेदक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हैं। 184 हे पूज्यवर, पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त की इच्छाएँ कम हैं; वे संतुष्ट, एकांतप्रिय, उदासीन और ऊर्जावान हैं। हे पूज्यवर, पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त सलाह देने वाले, सलाह लेने वाले, निंदा करने वाले और बुराई की निंदा करने वाले हैं। हे पूज्यवर, भला कौन उन्हें अस्वीकार करेगा..." हे पूज्य सारिपुत्त, क्या वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा हुआ (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त है?

[बुद्ध:]
"हाँ, आनंद, ऐसा ही है! वास्तव में, आनंद, सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, जब तक कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा हुआ (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो? सारिपुत्त, आनंद, बुद्धिमान है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब तक कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो?"

फिर, जब हे पूज्य सारिपुत्त की यह प्रशंसा की जा रही थी, तभी युवा देव (देवदूत) सुसीमा, युवा देव (देवदूतों) के एक बड़े समूह के साथ, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 185 पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे कहा: "ऐसा ही है, भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, सौभाग्यशाली (सुगतो)! वास्तव में, पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा... (जैसा ऊपर बताया गया है)... जब तक कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो? मेरे मामले में भी, पूज्यवर, मैंने युवा देवताओं की जिस भी सभा में भाग लिया है, मैंने अक्सर यही बात सुनी है: पूज्य सारिपुत्त बुद्धिमान हैं... बुराई की निंदा करने वाले हैं। वास्तव में, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, जब तक कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो?"

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त की यह प्रशंसा की जा रही थी, सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता - प्रफुल्लित, प्रसन्न, आनंद से परिपूर्ण (पीति/प्रीति) और हर्षोल्लास से भरे हुए - विभिन्न प्रकार के चमकीले रंग प्रदर्शित कर रहे थे। 186 जिस प्रकार सुंदर, उत्तम गुणवत्ता वाला, आठ फलकों वाला, उत्कृष्ट कारीगरी का बना बेरिल रत्न जब सूती कपड़े पर रखा जाता है, तो चमकता है, दमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता भी अनेक प्रकार के चमकीले रंगों से परिपूर्ण थे।

और जिस प्रकार उत्तम सोने का आभूषण, जिसे एक कुशल सुनार ने भट्टी में बड़ी कुशलता से चमकाया हो, जब सूती कपड़े पर रखा जाता है, तो चमकता है, दमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता भी अनेक प्रकार के चमकीले रंगों से परिपूर्ण थे।

और जैसे रात ढलने पर सुबह का तारा चमकता है, प्रकाश बिखेरता है और प्रकाश फैलाता है, वैसे ही सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवों ने भी अनेक प्रकार के तेजस्वी रंग प्रदर्शित किए। 187

और जैसे शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अपने प्रकाश से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, 188 वैसे ही सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देव - प्रसन्न, आनंदित, परमानंद और हर्ष से परिपूर्ण - अनेक प्रकार के तेजस्वी रंग प्रदर्शित किए।

फिर, पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में, युवा देव सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक सुनाया:

"वह सर्वविदित बुद्धिमान पुरुष हैं; सारिपुत्त, जो क्रोध रहित हैं;
कम इच्छाओं वाले, सौम्य, संयमित; गुरु की स्तुति से सुशोभित संन्यासी।"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त का उल्लेख करते हुए
युवा देव सुसीमा को श्लोकों में उत्तर दिया:

"सारिपुत्त एक बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में सर्वविदित हैं; क्रोध से मुक्त,
कम इच्छाओं वाले, सौम्य, संयमित; विकसित, अच्छी तरह से संयमित (मन वाले), वे समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" 189

---

111. विभिन्न संप्रदाय (नानातिथ्य)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो कई युवा देव (देवदूत), विभिन्न संप्रदायों के गुरुओं - असमा, सहाली, निंका, अकोटक, वेतांबरी और मानवगमिया - के शिष्य, अत्यंत सुंदर थे और उन्होंने पूरे बाँस के वन (वेलुवन) को प्रकाशित कर दिया। वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। 190

फिर एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) असमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पुराण कस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"यहाँ चोट पहुँचाते और मारते हुए; कस्सपा ने
बुराई को नहीं पहचाना; न ही अपने लिए कोई पुण्य देखा।
उसने वास्तव में विश्वास के योग्य शिक्षा दी; वह गुरु आदर के योग्य है।" 191

फिर युवा देव सहली ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मक्खली गोसला के संदर्भ में यह श्लोक कहा: 192

"तप और विवेक से; उन्होंने पूर्ण आत्मसंयम प्राप्त किया।
उन्होंने लोगों से विवादपूर्ण बातें करना छोड़ दिया;
झूठ से दूर रहे, सत्य के वक्ता रहे।
निश्चय ही ऐसा व्यक्ति कोई बुराई नहीं करता।" 193

तब युवा देव निंका ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में निगंथ नटपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"एक विवेकशील और विवेकशील भिक्षु; चारों नियंत्रणों से भलीभांति संयमित।
जो देखा और सुना जाता है, उसकी व्याख्या करने वाला; निश्चय ही वह पापी नहीं हो सकता।" 194

तब युवा देव अकोतक ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में विभिन्न संप्रदायों के शिक्षकों के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"पकुधक कटियाना और निगंथ;
मक्खली और पुराण के साथ;
अनेकों के शिक्षक, तपस्वी अवस्था को प्राप्त करने वाले;
वे निश्चय ही श्रेष्ठ पुरुषों से कम नहीं थे।" 195

तब युवा देव वेतांबरी ने युवा देव अकोतक को श्लोक में उत्तर दिया: " और वे जो आकाश में प्रकाशमान हैं। हे नमुचि, तुम इन सबकी प्रशंसा करते हो, जैसे मछली पकड़ने के लिए चारा फेंका जाता है।" 198

"यद्यपि सियार भी रोता हुआ नीच
प्राणी ही रहता है, कभी सिंह के समर्थ नहीं;
इसलिए यद्यपि वह समूह का गुरु हो;
वह नग्न तपस्वी, असत्य का वक्ता;
अपने आचरण से संदेह उत्पन्न करता है;
श्रेष्ठ पुरुषों के समान नहीं है।" 196

तब दुष्ट मार (शैतान) ने युवा देव वेतांबरी को अपने वश में कर लिया और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक सुनाया: 197

"तप और संयम में लीन रहने वाले; अपने एकांत की रक्षा करने वाले;
और स्वरूप में स्थिर रहने वाले; देवलोक में आनंदित रहने वाले;
वास्तव में, ये मनुष्य परलोक के विषय में सही शिक्षा देते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने समझकर कहा, "यह दुष्ट मार है
।" "उसने दुष्ट मारा को पद्य में उत्तर दिया:

"यहाँ और उससे परे जो भी रूप विद्यमान हैं; फिर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, युवा देव मानवगमिया ने भगवान (बुद्ध) के संदर्भ में ये श्लोक पढ़े: "विपुल को पर्वतों में श्रेष्ठ कहा जाता है; राजगृह की पहाड़ियों में, सेता हिम-वस्त्रों (हिमालय) में श्रेष्ठ है; सूर्य आकाश में यात्रियों में श्रेष्ठ है। सागर जल का सबसे श्रेष्ठ स्रोत है; चंद्रमा रात्रि के प्रकाश में श्रेष्ठ है, परन्तु इस संसार में अपने देवताओं के साथ; बुद्ध को सर्वोच्च घोषित किया गया है।"

संयुक्त 3: कोसलन के साथ जुड़े हुए प्रवचन (कोसलसंयुत्त)
(i) प्रथम उपधारा ((बंधन)
112. युवा (दहारा)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा, "क्या गुरु गौतम भी यह दावा करते हैं, 'मैंने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है?'" 199 [बुद्ध

:]
"हे महाराज, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है, 'उसने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है', तो यह बात मेरे बारे में सही ढंग से कही जा सकती है। क्योंकि हे महाराज, मैंने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।"

[राजा पसेनदी (प्रसेनजीत):]
"हे गौतम जी, यहाँ तक कि वे तपस्वी और ब्राह्मण जो संप्रदायों और समूहों के प्रमुख हैं, समूहों के शिक्षक हैं, और जिन्हें जनमानस पवित्र पुरुष मानता है, जैसे पुराण कस्सपा, मक्खली गोसला, निगंथ नटपुत्त, संजय बेलत्थिपुत्त, पकुधा कच्चयन, अजित केशकंबली - इनसे भी जब मैंने पूछा कि क्या उन्हें अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो उन्होंने ऐसा दावा नहीं किया। 200 तो फिर गौतम जी को ऐसा दावा क्यों करना चाहिए, जबकि वे इतने युवा हैं और अभी-अभी दीक्षित हुए हैं?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, चार ऐसी बातें हैं जिन्हें 'युवा' कहकर तुच्छ नहीं समझना चाहिए।" 201 वे चार कौन से हैं? एक क्षत्रिय, महान राजा को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; एक सर्प को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; एक अग्नि को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; और एक भिक्षु (साधु) को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। ये चार हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"किसी कुलीन क्षत्रिय या
यशस्वी राजकुमार को 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए;

क्योंकि ऐसा हो सकता है कि मनुष्यों का यह स्वामी, यह क्षत्रिय, सिंहासन ग्रहण कर ले
और क्रोध में आकर किसी को कठोर दंड दे; शाही दंड से।
इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए, उससे बचना चाहिए। किसी गांव या जंगल में

संयोग से दिखाई देने वाले सर्प को 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए; क्योंकि वह भयंकर सर्प अनेक रूपों में प्रकट होकर रेंगता है और मूर्ख (बल) पर हमला करके उसे काट सकता है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए, उससे बचना चाहिए। किसी भयंकर आग को, जो बहुत कुछ भस्म कर देती है, 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए।" काली लकीरों वाली भीषण आग; मनुष्य को इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि इसमें ईंधन का भंडार जमा हो जाए, तो यह एक भीषण आग में बदल जाएगी।

यह मूर्खों (बल) पर आक्रमण करके उन्हें जला सकता है; चाहे वह पुरुष हो या स्त्री।
इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए इससे बचना चाहिए।

"जब आग जंगल को जला देती है; वह काली लकीरों वाली ज्वाला,
तो दिन-रात बीतने के साथ-साथ उसमें अंकुर फिर से जीवित हो उठते हैं।

लेकिन यदि कोई पूर्ण सद्गुणी भिक्षु (शील) किसी को अपने सद्गुण की अग्नि से जला दे, तो
उसे पुत्र और पशु प्राप्त नहीं होते; न ही उसके वंशज धनवान होते हैं।
वे निःसंतान और वारिसहीन हो जाते हैं; ताड़ के पेड़ों के ठूंठों के समान। 203

"इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने भले के लिए,

उसे हमेशा इन सभी के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए: भयंकर सर्प, धधकती आग, प्रसिद्ध क्षत्रिय,
और पूर्ण सद्गुणी भिक्षु।

जब यह कहा गया..." कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे महान, आदरणीय गुरुदेव! हे महान, आदरणीय गुरुदेव! भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला दिया हो। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से भगवान (बुद्ध) मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।”

---

113 एक व्यक्ति (पुरिसा बिना पुरुष)
सावत्थी में। तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, ऐसे कितने धर्म (गुण, नियम) हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, तीन धर्म हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह)। ये तीन धर्म हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं।

लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह); दुष्ट मन वाले व्यक्ति में
स्वयं से उत्पन्न होते हैं; हानि पहुंचाते हैं, जैसे उनका फल ही सरकंडे को नष्ट कर देता है।" 204 [71]

---

114 वृद्धावस्था और मृत्यु (जरामरण)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जन्म लेने वाले के लिए बुढ़ापा और मृत्यु के अलावा और क्या अपेक्षा की जा सकती है?" 205

[बुद्ध:]
"हे महाराज, जिसने जन्म लिया है, उसके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन धनी क्षत्रियों के लिए भी - जो धनवान हैं, अपार संपत्ति और सामर्थ्य से संपन्न हैं, जिनके पास प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी, खजाने और वस्तुएँ, धन और अनाज है - जन्म लेने के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन धनी ब्राह्मणों के लिए भी... धनी गृहस्थों के लिए - जो धनवान हैं... जिनके पास प्रचुर मात्रा में धन और अनाज है - जन्म लेने के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन अरहंत भिक्षुओं के लिए भी, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, और ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गए हैं: उनके लिए भी यह शरीर वृद्धावस्था और मृत्यु के अधीन है।" टूटना, निर्धारित किए जाने के अधीन। 206

"राजाओं के सुंदर रथ घिस जाते हैं।
यह शरीर भी क्षय होता है।
परन्तु अच्छे लोगों का धर्म (मार्ग, नियम) क्षय नहीं होता;
इसलिए अच्छे लोग अच्छे लोगों के साथ इसका प्रचार करते हैं।" 207

---

115 प्रिय (पिया, प्रिया के बजाय)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कौन स्वयं को प्रिय मानता है और कौन स्वयं को शत्रु मानता है?'" तब, आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आया: जो लोग शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, वे स्वयं को शत्रु समझते हैं। भले ही वे कहें, "हम स्वयं को प्रिय मानते हैं," फिर भी वे स्वयं को शत्रु ही मानते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे अपनी इच्छा से स्वयं के प्रति वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कोई शत्रु किसी शत्रु के प्रति करता है; इसलिए वे स्वयं को शत्रु मानते हैं। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से सलीके से व्यवहार

करते हैं, वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। भले ही वे कहें, "हम स्वयं को शत्रु मानते हैं," फिर भी वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे अपनी इच्छा से स्वयं के प्रति वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कोई प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के प्रति करता है; इसलिए वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। "

जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज!"

(बुद्ध फिर राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के पूरे कथन को दोहराते हैं और निम्नलिखित श्लोक जोड़ते हैं:

"यदि कोई स्वयं को प्रिय समझता है; तो उसे बुराई से नहीं जुड़ना चाहिए।
क्योंकि सुख आसानी से प्राप्त नहीं होता; उस व्यक्ति को जो कुकर्म करता है।

"जब अंत-निर्माता उसे पकड़ लेता है; जब वह मानव अवस्था को त्याग देता है।
वास्तव में अपना क्या कह सकता है? जाते समय वह क्या ले जाता है? वह
क्या है जो उसके साथ चलता है; एक ऐसी छाया की तरह जो कभी नहीं छूटती? 208

"दैवीय पुण्य और बुराई दोनों; जो मनुष्य इस जीवन में करता है:
यही वास्तव में अपना है; यही वह है जो जाते समय ले जाता है;
यही वह है जो उसके साथ चलता है; एक ऐसी छाया की तरह जो कभी नहीं छूटती।

"इसलिए अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के जीवन के लिए संचय के रूप में।
दिव्य पुण्य जीवों का आधार हैं; [जब वे] परलोक में उत्पन्न होते हैं।"

---

116. आत्म-रक्षित (अत्तारक्खिता सं. आत्म-रक्षित)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अब कौन अपनी रक्षा करता है और कौन खुद को असुरक्षित छोड़ देता है?'" तब, हे पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया: 'जो लोग शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। चाहे हाथियों की टुकड़ी, घुड़सवारों की टुकड़ी, रथों की टुकड़ी या पैदल सेना की टुकड़ी ही क्यों न उनकी रक्षा करे, फिर भी वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह सुरक्षा बाह्य है, आंतरिक नहीं; इसलिए वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगे रहते हैं, वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। चाहे हाथियों की टुकड़ी, घुड़सवारों की टुकड़ी, रथों की टुकड़ी या पैदल सेना की टुकड़ी ही क्यों न उनकी रक्षा करे, फिर भी वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह सुरक्षा आंतरिक है, बाह्य नहीं; इसलिए वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं।'

[बुद्धः]
"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है, महाराज!"

(बुद्ध ने राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संपूर्ण कथन को दोहराया और उसमें निम्नलिखित श्लोक जोड़ा:)

"शरीर पर संयम अच्छा है; वाणी पर संयम भी अच्छा है;
मन पर संयम अच्छा है; हर जगह संयम अच्छा है।
विवेकशील, हर जगह संयमी; ऐसा व्यक्ति सुरक्षित कहलाता है।"

---

117. कुछ (अप्पक संस्कृत अल्पा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'संसार में वे लोग बहुत कम हैं जो श्रेष्ठ संपत्ति प्राप्त करने पर भी नशे में चूर और आलसी नहीं हो जाते, इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त नहीं हो जाते और अन्य प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं करते। संसार में वे लोग कहीं अधिक हैं जो श्रेष्ठ संपत्ति प्राप्त करने पर भी नशे में चूर और आलसी हो जाते हैं, इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त हो जाते हैं और अन्य प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं।'

"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज!"

(बुद्ध ने राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के पूरे कथन को दोहराया और उसमें निम्नलिखित श्लोक जोड़ा:)

"वे अपने सुखों और धन के मोह में डूबे हुए हैं; लालची, इंद्रिय सुखों में मदहोश।
उन्हें एहसास नहीं है कि वे हद से आगे बढ़ गए हैं; जैसे हिरण जाल में फंस जाते हैं।
अंत में उन्हें कड़वा फल मिलता है; क्योंकि परिणाम वास्तव में बुरा होता है।" 209

---

118. जजमेंट हॉल (अड्डाकरण)
सावत्थी में। एक तरफ बैठे हुए। कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं न्याय कक्ष में बैठा हूँ, 210 तो मैं देखता हूँ कि धनी क्षत्रिय, धनी ब्राह्मण और धनी गृहस्थ - जिनके पास अपार धन-संपत्ति, सोना-चांदी, खजाने और वस्तुएँ, अनाज आदि हैं - भी इंद्रिय सुखों के लिए जानबूझकर झूठ बोलते हैं, और इसका कारण भी इंद्रिय सुख ही हैं। तब, हे पूज्यवर, मुझे यह विचार आता है: 'अब मेरा न्याय कक्ष से मन भर गया है! अब तो शुभ मुख वाले बुद्ध ही अपने निर्णयों से जाने जाएँगे।'" 211

"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज! धनी क्षत्रिय, धनी ब्राह्मण और धनी गृहस्थ भी... इंद्रिय सुखों के लिए जानबूझकर झूठ बोलते हैं, और इसका कारण भी इंद्रिय सुख ही हैं।" इंद्रिय सुखों के कारण। इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। वे

अपने सुखों और धन के मोह में डूबे हुए हैं; लालची, इंद्रिय सुखों में मदहोश।
उन्हें एहसास नहीं है कि वे हद से आगे बढ़ गए हैं; जैसे मछली जाल में फंस जाती है।
अंत में उन्हें कड़वा फल मिलता है; क्योंकि पाप का परिणाम वास्तव में बुरा होता है।

---

119. मल्लिका
श्रावस्ती के दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अपनी रानी मल्लिका के साथ महल के ऊपरी चबूतरे पर गए। तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने रानी मल्लिका से कहा, "मल्लिका, क्या कोई ऐसा है जो तुम्हें अपने से अधिक प्रिय हो?" 212
"हे महाराज, मुझे अपने से अधिक प्रिय कोई नहीं है। लेकिन क्या कोई ऐसा है, हे महाराज, जो आपको अपने से अधिक प्रिय हो?"
"मेरे लिए भी, मल्लिका, कोई ऐसा नहीं है जो मुझे अपने से अधिक प्रिय हो।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) महल से नीचे उतरे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को रानी मल्लिका के साथ हुई अपनी बातचीत सुनाई।

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर यह श्लोक सुनाया:

"मन से सभी दिशाओं का भ्रमण करने पर,
व्यक्ति को अपने से बढ़कर कोई प्रिय नहीं मिलता।
इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ही सबसे प्रिय मानता है;
अतः जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे दूसरों को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।"

---

120. बलिदान समारोह (यान्ना संस्कृत: यज्ञ)
सावत्थी में। उस अवसर पर कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के लिए एक महान यज्ञ का आयोजन किया गया था। यज्ञ के लिए पाँच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछिया, पाँच सौ बकरियाँ और पाँच सौ मेढ़े स्तंभ के पास लाए गए थे। उनके दास, सेवक और कर्मचारी, दंड और भय से प्रेरित होकर, आँसू भरी आँखों से विलाप करते हुए, तैयारियों में व्यस्त थे। 213

फिर, सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:
"हे पूज्यवर, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के लिए एक महान यज्ञ का आयोजन किया गया है। यज्ञ के लिए पांच सौ बैल ... स्तंभ के पास लाए गए हैं। और उनके दास ... विलाप करते हुए तैयारी में व्यस्त हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर
उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

"घोड़े का यज्ञ (अश्वमेध), मानव यज्ञ,
सम्मपासा, वाजपेय्य, निरग्गला;
ये महान यज्ञ, हिंसा से भरे हुए,
महान फल नहीं देते। 214

"सही आचरण वाले महान संत (ऋषि)
उस यज्ञ में शामिल नहीं होते जहाँ विभिन्न प्रकार के
बकरे, भेड़ और मवेशी मारे जाते हैं।" लेकिन जब पारिवारिक परंपरा के अनुसार हिंसा रहित यज्ञ किए जाते हैं, 215 जिनमें किसी भी प्रकार की बकरी, भेड़ या मवेशी की हत्या नहीं की जाती; तो सही आचरण वाले महान संत (ऋषि-मुनि) ऐसे यज्ञ में शामिल होते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा यज्ञ करना चाहिए, जो महान फलदायी हो। ऐसे यज्ञ करने वाले के लिए यह वास्तव में बेहतर है, कभी बुरा नहीं। ऐसा यज्ञ वास्तव में महान है और देवता भी प्रसन्न होते हैं।

---

121 बंधन (बंधन)
उस समय कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़ी संख्या में लोगों को बंधुआ बना रखा था - कुछ को रस्सियों से, कुछ को लकड़ी के जूतों से और कुछ को जंजीरों से। 216

फिर सुबह, कई भिक्षु सज-धज कर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी नगर गए। सावत्थी नगर से भिक्षा एकत्र करके लौटते समय उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्यवर, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़ी संख्या में लोगों को बंधुआ बना रखा है, कुछ को रस्सियों से, कुछ को लकड़ी के जूतों से और कुछ को जंजीरों से।"

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

"ज्ञानी कहते हैं कि वह बंधन
लोहे, लकड़ी या रस्सी का बना हुआ मजबूत नहीं है;
बल्कि आभूषणों और बालियों के प्रति आसक्ति है।
पत्नियों और बच्चों के लिए चिंता है।

ज्ञानी कहते हैं कि यही मजबूत बंधन है।
अपमानजनक, लचीला, जिससे निकलना कठिन है।
परन्तु वे इसे भी काट कर निकल जाते हैं,
उदासीन होकर, इंद्रिय सुखों का त्याग कर।" 217

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (निःसंतान)
122. सात जटिलला (सत्तजतिला)
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित श्रावस्ती में मिगारा की माता के महल में निवास कर रहे थे। 218 उस समय, संध्याकाल में, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और बाहरी द्वार के पास बैठे थे। तभी कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।
उसी समय सात जातिल, सात निगंथ, सात नग्न तपस्वी, सात एक वस्त्रधारी तपस्वी और सात ऐसे तपस्वी जिनके बगल में बाल थे, नाखून लंबे थे और शरीर पर लंबे बाल थे, वे अपनी आवश्यक वस्तुओं की गठरियाँ लिए हुए भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर से गुजरे। 219 तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठ गए और सात जातिलाओं, सात निगंथों, सात नग्न तपस्वियों, सात एक वस्त्रधारी तपस्वियों और सात तपस्वियों की ओर

श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम घोषित किया: "हे पूज्यवरों, मैं कोसल का राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) हूँ!... हे पूज्यवरों, मैं कोसल का राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) हूँ!"

फिर, कुछ ही समय बाद वे सात जातिला और सात तपस्वी चले गए। कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, संसार में जो लोग अरहंत हैं या जिन्होंने अरहंतत्व के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है, उनमें ये लोग शामिल हैं।" 220

[बुद्ध:]
"हे महाराज, आप गृहस्थ हैं, इंद्रिय सुखों में लिप्त रहते हैं, बच्चों से भरे घर में रहते हैं, काशियन चंदन का उपयोग करते हैं, मालाएँ, सुगंध और लेप लगाते हैं, सोना-चाँदी प्राप्त करते हैं, इसलिए आपके लिए यह जानना कठिन है कि 'ये अरहंत हैं या इन्होंने अरहंतत्व के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है।'

हे महाराज, किसी के साथ रहने से ही उसके
सद्गुण (शील) का पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े
समय में नहीं; सचेत व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा;
बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि दुष्ट व्यक्ति द्वारा।"
"हे महाराज, किसी व्यक्ति की ईमानदारी का
पता उससे व्यवहार करने से ही चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।
हे महाराज, विपत्तियों में ही किसी व्यक्ति की सामर्थ्य का
पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।
हे महाराज, किसी व्यक्ति से चर्चा करने से ही उसकी अंतर्दृष्टि का
पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।" 221

[राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) (प्रसेनजीत नहीं):]
"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है, हे पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह कहा है: 'हे महाराज, गृहस्थ होकर... आपके लिए यह जानना कठिन है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, दुष्ट द्वारा नहीं।'

"हे पूज्यवर, ये मेरे जासूस हैं, गुप्त एजेंट हैं, जो देश की जासूसी करके लौट रहे हैं। 222 पहले वे जानकारी एकत्र करते हैं और उसके बाद मैं उनसे उसे प्रकट करवाऊंगा।" 223 हे पूज्यवर, जब वे धूल और मैल धोकर, स्नान करके और सज-संवरकर, बाल और दाढ़ी संवारकर, सफेद वस्त्र पहनकर, पांचों इंद्रिय सुखों का आनंद लेंगे।

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“मनुष्य को उसके बाहरी रूप से आसानी से नहीं पहचाना जा सकता,
न ही किसी को उसकी शीघ्रता से पहचान पर भरोसा करना चाहिए।
क्योंकि संयमित दिखने वाले के वेश में
अनियंत्रित मनुष्य इस संसार में विचरण करते हैं।

जैसे मिट्टी से बनी नकली बाली,
जैसे सोने से मढ़ा हुआ पीतल का सिक्का।
कुछ लोग भेस बदलकर घूमते हैं;

भीतर से अशुद्ध, बाहर से सुंदर।"

---

123. पांच राजा (पंचराज)
सावत्थी में। उस अवसर पर, राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के नेतृत्व में पाँच राजा पाँच इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद ले रहे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: "इंद्रिय सुखों में सबसे प्रमुख क्या है?" 224 उनमें से कुछ ने कहा: "रूप सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "ध्वनियाँ सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "गंध सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "स्वाद सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "स्पर्श से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ सबसे प्रमुख हैं।" 225

क्योंकि वे राजा एक-दूसरे को समझाने में असमर्थ थे, इसलिए कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने उनसे कहा: "हे सज्जनों, आइए हम भगवान (बुद्ध) के पास जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करें। जैसा भगवान (बुद्ध) हमें उत्तर देंगे, वैसा ही हमें याद रखना चाहिए।"

"ठीक है, महोदय," उन राजाओं ने उत्तर दिया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के नेतृत्व में वे पाँच राजा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने अपनी सारी चर्चा भगवान (बुद्ध) को बताई और पूछा,
"हे पूज्यवर, इंद्रिय सुखों में सबसे श्रेष्ठ क्या है, चाहे रूप हों, सुगंध हों, ध्वनि हों, स्वाद हों या स्पर्श हों?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, मैं कहता हूँ कि पाँचों इंद्रिय सुखों में सबसे श्रेष्ठ वही है जो सबसे अधिक सुखद हो। 226 हे महाराज, जो रूप एक व्यक्ति को सुखद लगते हैं, वही रूप दूसरे को अप्रिय लग सकते हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ रूपों से प्रसन्न और पूर्णतः संतुष्ट हो जाता है, तो वह उन रूपों से ऊँचे या अधिक श्रेष्ठ किसी अन्य रूप की लालसा नहीं करता। उसके लिए वे रूप सर्वोच्च हैं; उसके लिए वे रूप अतुलनीय हैं।

"वही ध्वनियाँ... उसके लिए वे ध्वनियाँ अतुलनीय हैं।"

वही सुगंधें... उनके लिए वे सुगंधें अतुलनीय हैं।

वही स्वाद... उनके लिए वे स्वाद अतुलनीय हैं।

वही स्पर्शनीय वस्तुएँ जो एक व्यक्ति को सुखद लगती हैं, हे महाराज, दूसरे को अप्रिय लग सकती हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ स्पर्शनीय वस्तुओं से प्रसन्न और पूर्णतः संतुष्ट हो जाता है, तब वह उनसे उच्चतर या अधिक श्रेष्ठ किसी अन्य स्पर्शनीय वस्तु की लालसा नहीं करता। तब उनके लिए वे स्पर्शनीय वस्तुएँ सर्वोच्च होती हैं; उनके लिए वे स्पर्शनीय वस्तुएँ अतुलनीय होती हैं।

उस समय चंदनंगलिका नामक एक गृहस्थ अनुयायी उस सभा में बैठा था। तब चंदनंगलिका अपने आसन से उठा, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "हे भगवान (बुद्ध) मुझे प्रेरणा मिली है! मुझे प्रेरणा मिली है।" हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, चंदनंगलिका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। 227

तब गृहस्थ अनुयायी चंदनंगलिका ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, एक उपयुक्त श्लोक से उनकी प्रशंसा की गई:

"सुगंधित लाल कमल कोकनाडा की तरह
सुबह खिलता है, उसकी सुगंध अभी भी बरकरार है।
अंगिरसा (बुद्ध) को देखो, वह तेजस्वी हैं,
आकाश में चमकते सूर्य के समान। 228

तब उन पाँच राजाओं ने गृहस्थ शिष्य चंदनंगलिका को पाँच वस्त्र भेंट किए
। परन्तु गृहस्थ शिष्य चंदनंगलिका
ने वे पाँच वस्त्र भगवान (बुद्ध) को भेंट किए।

124 भोजन की बाल्टी माप (डोनापाका)
सावत्थी के पर्व पर, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने एक बाल्टी भर चावल और करी खाई। 229 फिर भी तृप्त होकर, हांफते हुए राजा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह जानकर कि राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) तृप्त हैं और हांफ रहे हैं, इस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"जब मनुष्य सदा ध्यानमग्न रहता है,
अपने भोजन में संयम रखता है,
तो उसके रोग कम हो जाते हैं;
वह अपने जीवन की रक्षा करते हुए धीरे-धीरे बूढ़ा होता है।"

उस समय ब्राह्मण युवक सुदस्सन कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के पीछे खड़े थे। तब राजा ने उससे कहा, "हे प्रिय सुदस्सन, आओ, भगवान (बुद्ध) से यह श्लोक सीख लो और जब भी मैं भोजन करूँ, मुझे सुनाओ। तब मैं तुम्हें प्रतिदिन सौ कहपना सदादान के रूप में दूंगा।" 230
"जी, प्रभु," ब्राह्मण युवक सुदस्सन ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) से यह श्लोक सीखने के बाद, जब भी राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) भोजन करते थे, ब्राह्मण युवक सुदस्सन यह श्लोक सुनाता था:

"जब मनुष्य सदा ध्यानमग्न रहता है,
भोजन में संयम रखता है,
तो उसके रोग कम हो जाते हैं;
वह धीरे-धीरे बूढ़ा होता है, अपने जीवन की रक्षा करता है।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने धीरे-धीरे अपने भोजन का सेवन कम कर दिया और अधिकतम एक पिंट उबले हुए चावल तक सीमित कर दिया। 231 कुछ समय बाद, जब उनका शरीर काफी दुबला हो गया। कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने अपने अंगों को हाथ से सहलाया और उस अवसर पर यह प्रेरणादायक वाणी बोली: "भगवान (बुद्ध) ने मुझ पर दोनों प्रकार के अच्छे कर्मों के प्रति दया दिखाई - वर्तमान जीवन से संबंधित अच्छे कर्म और भविष्य के जीवन से संबंधित अच्छे कर्म।" 232

125 युद्ध (1) (संगम1 सं. संग्राम)
सावत्थी में। तब मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह वंश के पुत्र थे, ने चार भागों (पैदल सैनिक, घुड़सवार, रथ और हाथी) की सेना जुटाकर कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के विरुद्ध काशी की ओर कूच किया। 233 राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने यह सूचना सुनी, तो उन्होंने भी चार भागों की सेना जुटाकर राजा अजातसत्तु के विरुद्ध काशी की ओर जवाबी कूच किया। तब मगध के राजा अजातसत्तु और कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के बीच युद्ध हुआ। उस युद्ध में राजा अजातसत्तु ने राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) को पराजित किया और पराजित होकर राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) अपनी राजधानी सावत्थी लौट गए।

फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह बताया। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, मगध के राजा अजातसत्तु के बुरे मित्र, बुरे
साथी और बुरे सहचर हैं। कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के अच्छे
मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचर हैं। फिर भी,
भिक्षुओं, आज के दिन राजा पसेनदी (प्रसेनजीत), पराजित होकर,
आज रात चैन से सोएंगे। 234

"विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित व्यक्ति को नींद नहीं आती।
शांतिप्रिय व्यक्ति चैन से सोता है; क्योंकि उसने विजय और पराजय को त्याग दिया है।" 235

---

126 युद्ध (2) (संगम2 सं. संग्राम)
(पिछली सूत्र के अनुसार आरंभ)

उस युद्ध में राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने राजा अजातसत्तु को परास्त किया और उसे जीवित ही बंदी बना लिया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के मन में यह विचार आया: "यद्यपि मगध के राजा अजातसत्तु ने मेरे विरुद्ध अपराध किया है, जबकि मैंने उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी वह मेरा भतीजा है। अब मैं उसके सभी हाथी सैनिकों, सभी घुड़सवार सैनिकों, सभी रथ सैनिकों और सभी पैदल सैनिकों को जब्त कर लूँ और उसे केवल उसके प्राणों के साथ जाने दूँ।"

तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने राजा अजातसत्तु के सभी हाथी सैनिकों, सभी घुड़सवार सैनिकों, सभी रथ सैनिकों और सभी पैदल सैनिकों को जब्त कर लिया और उसे केवल उसके प्राणों के साथ जाने दिया।

फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था वह बताया। तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“मनुष्य तब तक लूटता रहेगा जब तक उसका उद्देश्य पूरा होता रहेगा,
परन्तु जब दूसरे उसे लूटते हैं, तो लुटेरा स्वयं लूटा जाता है। 236

“नासमझ (नासमझ) सोचता है कि भाग्य उसके पक्ष में है; जब तक उसका पाप फलता-फूलता नहीं।
परन्तु जब पाप फलता-फूलता है, तो नासमझ (नासमझ) को कष्ट भोगना पड़ता है।

“हत्यारा हत्यारे को जन्म देता है; जो जीतता है, वह विजेता को जन्म देता है।”
गाली देने वाला गाली को जन्म देता है; निंदा करने वाला निंदा करने वाले को।
इस प्रकार कर्म के फल से लुटेरा स्वयं लूटा जाता है।” 237

---

127 मल्लिका
सावत्थी में, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत के बिना) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तभी एक व्यक्ति राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के पास आया और फुसफुसाकर उन्हें बताया, “हे भगवान, रानी मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।” यह सुनकर राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अप्रसन्न हो गए। 238

तब भगवान (बुद्ध) ने राजा
पसेनादि (प्रसेनजीत) के अप्रसन्न होने को समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“हे जनमानस के स्वामी, स्त्री पुरुष से भी श्रेष्ठ हो सकती है;
वह बुद्धिमान और गुणी हो सकती है; एक समर्पित पत्नी, जो अपनी सास का आदर करती है। 239

“जिस पुत्र को वह जन्म देती है; हे देश के स्वामी, वह वीर हो सकता है।
ऐसी धन्य स्त्री का पुत्र; राज्य पर शासन भी कर सकता है।” 240

---

128 सतर्कता (1) (अप्पमदा सं. अप्रमाद)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जो वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों के लिए लाभकारी हो?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, एक ऐसा धर्म है जो वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों के लिए लाभकारी है।"

[राजा:]
"पर हे पूज्यवर, वह एक धर्म क्या है?"

[बुद्ध:]
“हे महाराज, सजगता। जिस प्रकार सभी प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समा जाते हैं और हाथी का पदचिह्न अपने आकार के कारण उनका प्रमुख पदचिह्न कहलाता है, उसी प्रकार सजगता ही वह धर्म है जो दोनों प्रकार के लाभों को सुरक्षित करता है, वर्तमान जीवन के लाभ और भविष्य के लाभ। 241

“जो व्यक्ति दीर्घायु और स्वास्थ्य, सौंदर्य, स्वर्ग और कुलीन जन्म,
अनेक प्रकार के उच्च सुखों की प्राप्ति चाहता है, वह सजग रहता है।

बुद्धिमान लोग सजगता की प्रशंसा करते हैं; पुण्य कर्म करने में।
“जो बुद्धिमान सजग रहता है,

वह दोनों प्रकार के लाभों को सुरक्षित करता है: इस जीवन में प्रत्यक्ष लाभ और भविष्य के लाभ।”
जो दृढ़ रहता है, वह लाभ प्राप्त करके प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति कहलाता है।" 242

---

129 परोपकारी मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याणमित्र)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) का भली-भांति वर्णन किया है, और यह अच्छे मित्रों, अच्छे साथियों, अच्छे सहचरों के लिए है, बुरे मित्रों, बुरे साथियों, बुरे सहचरों के लिए नहीं।'" 243

[बुद्ध:]
"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज! मैंने धर्म का भली-भांति वर्णन किया है, और यह अच्छे मित्रों, अच्छे साथियों, अच्छे सहचरों के लिए है, बुरे मित्रों, बुरे साथियों, बुरे सहचरों के लिए नहीं।

"एक बार, महाराज, मैं शाक्यों के बीच रह रहा था, जहाँ नागरक नामक शाक्यों का एक नगर है। 244 तब भिक्षु आनंद मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: 'आदरणीय महोदय, यह ब्रह्मचर्य जीवन का आधा भाग है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छी सहचर्या।'

"जब यह कहा गया, हे महाराज, मैंने भिक्षु आनंद से कहा:
'ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, आनंद, अर्थात् अच्छा मित्र, अच्छा साथ, अच्छा सहचर्य। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। और आनंद, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। वह सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सही सती... विकसित करता है। समाधि (सम्मोहन) की अवस्था, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसके पास एक अच्छा मित्र, एक अच्छा साथी, एक अच्छा सहचर है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

“हे आनंद, निम्नलिखित विधि से भी यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा साथी है: हे आनंद, मुझ पर एक अच्छे मित्र के रूप में भरोसा करने से, पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; रोग के अधीन प्राणी रोग से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाते हैं। इस विधि से, आनंद, यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन ही उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम भाईचारा है।

अत: हे महाराज, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचरों वाला व्यक्ति बनूंगा।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। हे

महाराज, जब आपके अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचर हों, तो आपको एक ही धर्म (गुण, नियम) का सहारा लेकर रहना चाहिए: लाभकारी धर्म अवस्थाओं में सतर्कता (अप्पमदा)।

हे महाराज, जब आप सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हों, तो आपके हरम की स्त्रियाँ सोचेंगी: '
राजा सतर्कता का सहारा लेकर रह रहे हैं। अब
हम भी सतर्कता का सहारा लेकर रहें।'

हे महाराज, जब आप सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हों, तो आपके क्षत्रिय सामंत सोचेंगे...

आपकी सेना सोचेगी...

नगर और ग्रामीण क्षेत्रों में आपकी प्रजा सोचेगी:
'राजा सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हैं।' अब आओ, हम भी सजग रहें,
सजगता ही हमारा सहारा हो।

"हे महाराज, जब आप सजग रहेंगे, सजगता ही
आपका सहारा होगी, तो आप स्वयं सुरक्षित रहेंगे, आपके
हरम की स्त्रियाँ सुरक्षित रहेंगी, आपका
खजाना और भंडार सुरक्षित रहेगा।

जो उच्च धन की कामना करता है; वह निरंतर प्रयास करता है।
बुद्धिमान लोग सजगता की प्रशंसा करते हैं, पुण्य कर्म करने में,

सजग व्यक्ति ही बुद्धिमान होता है; वह दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त करता है;
इस जीवन में प्रत्यक्ष लाभ; और भविष्य के जीवन का लाभ;
दृढ़ रहने वाला व्यक्ति, लाभ प्राप्त करके; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति कहलाता है।"

---

130 निःसंतान (1) (संस्कृत अपुत्तक1)
सावत्थी में। तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, सावत्थी में एक धनवान गृहस्थ का निधन हो गया है। मैं उनकी निःसंतान संपत्ति को महल में पहुँचाने के बाद आया हूँ, क्योंकि उनका कोई वसीयतनामा नहीं था। 245 उनके पास अस्सी लाख सोने के सिक्के थे, चाँदी की तो बात ही छोड़िए, फिर भी, हे पूज्यवर, उस धनवान गृहस्थ का भोजन ऐसा था: वह खट्टी दलिया के साथ लाल चावल खाते थे। उनके वस्त्र ऐसे थे: वे तीन टुकड़ों वाला सूती वस्त्र पहनते थे। उनका वाहन ऐसा था: वे पत्तों की छत वाली एक जर्जर छोटी गाड़ी में घूमते थे।" 246

"ऐसा ही है, हे महाराज! ऐसा ही है, हे महाराज! जब कोई नीच व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है, तो वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही अपने माता-पिता को, न ही अपनी पत्नी और बच्चों को, न ही अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को, न ही अपने मित्रों और सहकर्मियों को; न ही वह तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए कोई अर्पण स्थापित करता है, जो ऊपर की ओर ले जाने वाला, स्वर्गिक फल देने वाला, सुख (सुख) प्रदान करने वाला और स्वर्ग की ओर ले जाने वाला हो। क्योंकि उसके धन का उचित उपयोग नहीं हो रहा है, इसलिए राजा उसे ले जाते हैं, या चोर उसे ले जाते हैं, या आग उसे जला देती है, या पानी उसे बहा ले जाता है, या अवांछित उत्तराधिकारी उसे ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में, हे महाराज, वह धन, जिसका उचित उपयोग नहीं हो रहा है, व्यर्थ जाता है, उपयोग में नहीं आता।

"मान लीजिए, हे महाराज, किसी ऐसे स्थान पर जहाँ मनुष्य नहीं रहते, वहाँ एक कमल का तालाब हो, जिसका पानी निर्मल, शीतल, मीठा और साफ हो, और जिसमें अच्छे घाट हों, जो रमणीय हो; परन्तु कोई भी उस जल को न तो ग्रहण करेगा, न उसमें स्नान करेगा, न ही किसी अन्य प्रयोजन के लिए उसका उपयोग करेगा। हे महाराज, ऐसे में वह जल उचित उपयोग न होने पर व्यर्थ ही चला जाएगा, न कि किसी काम का। इसी प्रकार, हे महाराज, जब कोई निम्न व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है... तो वह धन उचित उपयोग न होने पर व्यर्थ ही चला जाता है, न कि किसी काम का।

परन्तु, हे महाराज, जब कोई श्रेष्ठ व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है, तो वह स्वयं को प्रसन्न और आनंदित करता है, अपने माता-पिता को, अपनी पत्नी और बच्चों को, अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को, अपने मित्रों और सहकर्मियों को प्रसन्न और आनंदित करता है; और वह तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए एक अर्पण स्थापित करता है, जो स्वर्ग की ओर ले जाने वाला, सुखदायी और स्वर्ग की ओर अग्रसर करने वाला होता है। क्योंकि उसका धन उचित उपयोग में लाया जाता है, इसलिए राजा उसे छीन नहीं लेते, चोर उसे छीन नहीं लेते, अग्नि उसे जला नहीं देती, जल उसे बहा नहीं ले जाता, और अवांछित उत्तराधिकारी उसे नहीं ले जाते। ऐसी स्थिति में, हे महाराज, वह धन उचित उपयोग होने पर व्यर्थ ही चला जाता है, न कि किसी काम का।

"मान लीजिए, महाराज, किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक कमल का तालाब है, जिसका पानी साफ, ठंडा, मीठा और स्वच्छ है, और उसमें अच्छे घाट हैं, जो देखने में रमणीय हैं; और लोग उस पानी को लेते हैं, पीते हैं, स्नान करते हैं और अपने कामों में इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में, महाराज, वह पानी उचित उपयोग से उपयोगी होगा, व्यर्थ नहीं जाएगा। ठीक वैसे ही, महाराज, जब कोई श्रेष्ठ व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है... वह धन उचित उपयोग से उपयोगी होता है, व्यर्थ नहीं जाएगा।

"जैसे किसी सुनसान जगह का ठंडा पानी
बिना पिए ही वाष्पित हो जाता है।
वैसे ही जब कोई दुष्ट धन प्राप्त करता है,
तो वह न तो आनंद लेता है और न ही दान करता है।

"परन्तु जब बुद्धिमान व्यक्ति धन प्राप्त करता है,
तो वह आनंद लेता है और अपने कर्तव्य का पालन करता है।
अपने कुल का भरण-पोषण करके, दोषमुक्त होकर,
वह श्रेष्ठ व्यक्ति स्वर्गलोक प्राप्त करता है।"

---

131. निःसंतान (2) (संस्कृत अपुत्तक2)
तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, सावत्थी में एक धनवान गृहस्थ का निधन हो गया है। मैं उनकी निःसंतान संपत्ति को महल में पहुँचाने के बाद आया हूँ, क्योंकि उनका कोई वसीयतनामा नहीं था। उनके पास करोड़ों का सोना था, चाँदी की तो बात ही छोड़िए, फिर भी, हे पूज्यवर, उस धनवान गृहस्थ का भोजन ऐसा था: वे लाल चावल के साथ खट्टी दलिया खाते थे। उनके वस्त्र ऐसे थे: वे तीन टुकड़ों वाला सूती वस्त्र पहनते थे। उनका वाहन ऐसा था: वे पत्तों की छत वाली एक जर्जर छोटी गाड़ी में घूमते थे।"

"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है, महाराज! एक बार, महाराज, उस धनवान गृहस्थ ने तगरसिखी नामक एक पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी। 'संन्यासी को भिक्षा दो' कहकर वह अपने आसन से उठा और चला गया। परन्तु भिक्षा देने के बाद उसे पश्चात् पश्चाताप हुआ और उसने सोचा: 'यह अच्छा होता कि दास या मजदूर इसे खा लेते!' इतना ही नहीं, उसने अपने धन के लिए अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर दी। 247

"क्योंकि उस धनवान गृहस्थ ने पच्चेकबुद्ध तगरसिखी को भिक्षा दी थी, उस कर्म के फलस्वरूप वह सात बार शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। उसी कर्म के फलस्वरूप, उसने सात बार इसी श्रावस्ती नगर में धनवान का पद प्राप्त किया।" लेकिन क्योंकि उस गृहस्थ को दान देने पर पछतावा हुआ, उस कर्म के फलस्वरूप उसका मन उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र और उत्तम वाहनों के भोग में नहीं लगा, न ही पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के उत्तम योगों के भोग में। और क्योंकि उस गृहस्थ ने अपने भाई के इकलौते पुत्र की

हत्या धन-संपत्ति के लिए कर दी, उस कर्म के फलस्वरूप उसे कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगना पड़ा। उसी कर्म के फलस्वरूप उसने राजकोष को यह सातवाँ निःसंतान धन-संपत्ति प्रदान की है।

उस गृहस्थ के पुराने पुण्य पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं, और उसने कोई नया पुण्य अर्जित नहीं किया है। लेकिन आज, हे महाराज, वह गृहस्थ महान रोरुवा नरक में जल रहा है। 248

[राजा:] "तो, आदरणीय महाराज, क्या वह गृहस्थ धनवान रोरुवा नरक में पुनर्जन्म ले चुका है?"

[बुद्ध:] "जी हाँ, महाराज, वह गृहस्थ धनवान रोरुवा नरक में पुनर्जन्म ले चुका है।

अनाज, धन, चाँदी, सोना; या जो भी अन्य संपत्ति हो,
दास, मजदूर, संदेशवाहक, और वे जो किसी के आश्रित के रूप में रहते हैं:

बिना कुछ लिए ही जाना होगा; सब कुछ पीछे छोड़ना होगा
, सिवाय उसके जो शरीर से, वाणी से या मन से किया गया हो।

यही वास्तव में अपना है; यही साथ लेकर चलते हैं;
यही साथ-साथ चलते हैं; उस परछाई की तरह जो कभी नहीं छूटती।

इसलिए अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के लिए पुण्य संचय के रूप में।
परलोक में जीवों के पुण्य ही उनका सहारा होते हैं।

(iii) तीसरा उप-अध्याय (कोसलान पंचक)
132. व्यक्ति (पुग्गला)
सावत्थी में, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,
"हे महाराज, संसार में चार प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला, अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाला, प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाला, प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाला। 249

"और हे महाराज, अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला मनुष्य कैसे होता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म एक निम्न कुल में हुआ है - चांडलाओं, बांस श्रमिकों, शिकारियों, गाड़ी बनाने वालों या फूल बीनने वालों के कुल में - एक गरीब कुल में जहाँ भोजन और पेय कम है और जीवन यापन मुश्किल से होता है, जहाँ भोजन और वस्त्र मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप, बदसूरत, विकृत, जीर्ण रोग से ग्रसित है - अंधा, लंगड़ा या लकवाग्रस्त है। 250 वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जो भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन, मालाएँ, सुगंध और लेप, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्राप्त करता हो। वह शरीर, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"मान लीजिए, हे महाराज, कोई व्यक्ति अंधकार से अंधकार की ओर, या उदासी से उदासी की ओर, या कलंक से कलंक की ओर जाता है: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी प्रकार एक व्यक्ति अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ता है।

"और हे महाराज, कोई व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर कैसे बढ़ता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म एक नीच परिवार में हुआ है... जहाँ भोजन और वस्त्र मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप है... या लकवाग्रस्त है। वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जो भोजन... और प्रकाश प्राप्त करता हो। वह शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है।

"मान लीजिए, महाराज, कोई व्यक्ति जमीन से पालकी पर चढ़े, या पालकी से घोड़े पर, या घोड़े से हाथी पर, या हाथी से महल पर: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल ऐसा ही है। महाराज, इसी तरह मनुष्य अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होता है।"

"हे महाराज, कोई व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर कैसे अग्रसर होता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म उच्च कुल में, समृद्ध क्षत्रिय कुल में, समृद्ध ब्राह्मण कुल में, या समृद्ध गृहस्थ कुल में हुआ है - ऐसा कुल जो धनवान है, अपार संपत्ति से संपन्न है, [95] प्रचुर मात्रा में सोने-चांदी, खजाने और वस्तुओं, धन और अनाज से युक्त है; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंग का है। वह भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त करता है; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश प्राप्त करता है। वह शरीर, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"मान लीजिए, हे महाराज, कोई व्यक्ति महल से हाथी पर सवार हो, या हाथी से घोड़े पर, या घोड़े से पालकी पर, या पालकी से... जमीन से, या जमीन से पाताल लोक के अंधकार में: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी तरह एक व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर बढ़ता है।

और हे महाराज, एक व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर कैसे बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति उच्च कुल में पुनर्जन्म लेता है... प्रचुर धन और अनाज के साथ; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित, अत्यंत सुंदर रंग का है। वह भोजन... और प्रकाश प्राप्त करता है। वह शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण में लगा रहता है। ऐसा करने के बाद, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है।

मान लीजिए, हे महाराज, एक व्यक्ति पालकी से पालकी, या घोड़े से घोड़े, या हाथी से हाथी, या महल से महल जाता है: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी तरह एक व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर बढ़ता है।
"हे महाराज, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

(i) हे महाराज, जो व्यक्ति गरीब है; आस्थाहीन, कंजूस, कृपण,
बुरे इरादों वाला; गलत विचारों वाला, अनादर करने वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का अपमान करता है;
नास्तिक, उपहास करने वाला, जो भिखारियों को भोजन दान करने से रोकता है: हे जनस्वामी,

जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो वह भयानक नरक में जाता है; अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ता है। (ii) हे महाराज, जो व्यक्ति गरीब है; आस्थावान, उदार, अच्छे इरादों से दान करने वाला, एकाग्र मन वाला, जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का आदर करता है; जो धार्मिक आचरण का प्रशिक्षण लेता है; जो भिखारियों को भोजन दान करने से किसी को नहीं रोकता है। हे महाराज, जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो वह त्रिस्वर्ग में जाता है ; अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ता है।"

(iii) "हे राजा, जो धनी है; आस्थाहीन, कंजूस,
पापी इरादों वाला, गलत विचारों वाला, अनादर करने वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का अपमान करता है;
नास्तिक, उपहास करने वाला, जो दूसरों को भोजन दान करने से रोकता है;

हे राजा, जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो
वह
भयानक नरक में जाता है; प्रकाश से अंधकार की ओर।

(iv) "हे राजा, जो धनी है; आस्थावान, उदार,
अच्छे इरादों से दान करने वाला, एकाग्र मन वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का आदर करता है;
जो धार्मिक आचरण में प्रशिक्षित होता है; जो किसी को भोजन दान करने से नहीं रोकता;

हे राजा, जब ऐसा व्यक्ति मरता है,
तो वह
त्रिस्वर में जाता है; प्रकाश से प्रकाश की ओर।"

---

133. दादी (अय्यिका)
श्रावस्ती में। फिर, दोपहर के समय, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आए हैं?"

"आदरणीय महोदय, मेरी दादी का निधन हो गया है। वे वृद्ध, उम्रदराज, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुकी थीं, जन्म से 120 वर्ष की थीं। आदरणीय महोदय, मेरी दादी मुझे प्रिय और प्रिय थीं। हे आदरणीय महोदय, यदि हाथी रत्न के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता, तो मैं हाथी रत्न भी दान कर देता ताकि उनकी मृत्यु न हो। 251 यदि अश्व रत्न के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता... यदि किसी पुरस्कारित गाँव के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता... यदि देश के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता, तो मैं देश भी दान कर देता ताकि उनकी मृत्यु न हो।" [बुद्ध:] "हे महाराज, सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।" [राजा:] "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है! हे पूज्यवर, यह आश्चर्यजनक है! भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह से यह कहा है: 'हे महाराज, सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।'

[बुद्ध:]
"यही सच है, महाराज! यही सच है, महाराज! हे महाराज, सभी प्राणी
मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे
मृत्यु से बच नहीं सकते। जिस प्रकार कुम्हार के सभी बर्तन, चाहे कच्चे हों या
पके हुए, टूट जाते हैं, टूट जाते हैं और टूट जाते हैं,
उसी प्रकार सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु
में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।

सभी प्राणियों की मृत्यु होगी; क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु में होता है।"
वे अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोगेंगे; अपने पुण्य और बुरे कर्मों का फल भोगेंगे।
बुरे कर्म करने वाले नरक में जाएंगे; और पुण्य करने वाले सुखमय लोक में।

अतः मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के लिए संचय के रूप में।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा है; जब वे परलोक में जाते हैं।

---

134 विश्व (लोका)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, संसार में ऐसे कितने धर्म (गुण, नियम) हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं?" 252 [बुद्ध:] "हे महाराज, संसार में तीन धर्म हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह)। ये संसार के तीन धर्म हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं।

लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह); ये भीतर से उत्पन्न होते हैं।
ये दुष्ट मन वाले व्यक्ति को हानि पहुंचाते हैं; जैसे इसका फल ही सरकंडे को नष्ट कर देता है।"

---

135 तीरंदाजी (इस्सट्टा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, दान कहाँ देना चाहिए?" 253
[बुद्ध:] "जहाँ मन को विश्वास हो, वहीं दान दें, महाराज।" 254
[राजा:] "परन्तु, हे पूज्यवर, दान कहाँ फलदायी होता है?"
[बुद्ध:] "यह एक प्रश्न है, महाराज, 'दान कहाँ देना चाहिए?' और यह दूसरा, 'दान कहाँ फलदायी होता है?'" हे महाराज, जो गुणवान है उसे जो मिलता है वह महान फलदायी होता है, न कि अनैतिक व्यक्ति को। अब, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। हे महाराज, आपका क्या विचार है? मान लीजिए आप युद्ध में हैं और युद्ध होने वाला है। तभी एक

क्षत्रिय युवक आता है, जो अप्रशिक्षित, अकुशल, अनुभवहीन, डरपोक, भयभीत और भागने में प्रखर है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी? [राजा:] "बिल्कुल नहीं, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "फिर एक ब्राह्मण युवक आता है... एक वेस युवक... एक शुद्ध युवक... जो अप्रशिक्षित है... भागने में प्रखर है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "बिल्कुल नहीं, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "हे महाराज, आपका क्या विचार है? मान लीजिए आप युद्ध में हैं और लड़ाई होने वाली है। तभी एक क्षत्रिय युवक आता है, जो प्रशिक्षित, कुशल, अनुभवी, वीर, साहसी और निडर है, और अपने स्थान पर डटे रहने के लिए तैयार है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "निश्चित रूप से, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "तब एक ब्राह्मण युवक आता है... एक वेस युवक... एक
शुद्ध युवक... जो प्रशिक्षित है... अपने स्थान पर डटे रहने के लिए तैयार है।
क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको
ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "निश्चित रूप से, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "इसी प्रकार, हे महाराज, जब कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, चाहे वह किसी भी कुल का हो, यदि उसने पाँच गुणों का त्याग कर दिया है और पाँच गुणों को धारण करता है, तो उसे जो प्राप्त होता है वह अत्यंत फलदायी होता है। उसने किन पाँच गुणों का त्याग किया है? उसने इंद्रिय सुख का त्याग किया है; उसने द्वेष का त्याग किया है; उसने आलस्य और सुस्ती का त्याग किया है; उसने बेचैनी और पश्चाताप का त्याग किया है; उसने संशय का त्याग किया है। उसके पास कौन से पाँच गुण होते हैं? उसके पास प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के गुणों का समूह (स्कंध संस्कृत), प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि अवस्था का समूह (सम्मोहन) का समूह (सम्मोहन) का समूह (सम्मोहन से परे व्यक्ति की प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि का समूह) (पन्ना) का समूह (100], प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह (विमुक्ति संस्कृत संस्कृत) का समूह (सम्मोहन से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह) और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का समूह होता है। उसके पास ये पाँच गुण होते हैं। इस प्रकार, जिसने पाँच गुणों का त्याग कर दिया है और जिसके पास पाँच गुण हैं, उसे जो प्राप्त होता है वह अत्यंत फलदायी होता है। कारक बहुत फलदायी होते हैं। 255

"जैसे कोई राजा युद्ध छेड़ने के लिए उत्सुक हो; वह धनुष चलाने में कुशल युवक को नियुक्त करेगा।
बलवान और जोशीला; जन्म से कायर नहीं।

इसलिए चाहे वह निम्न कुल का ही क्यों न हो, नेक आचरण वाले व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए,
उस ज्ञानी व्यक्ति का जिसमें धैर्य और कोमलता के गुण विद्यमान हों। 256

"मनमोहक आश्रम बनाने चाहिए; और विद्वानों को उनमें निवास करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए;
जंगल में जलकुंड बनाने चाहिए; और ऊबड़-खाबड़ इलाकों पर पुल बनाने चाहिए।

"भोजन, पेय पदार्थ और खाने की वस्तुएँ, वस्त्र, बिस्तर और आसन दान करें।
विश्वास के साथ दान करें; विपश्यना ध्यान से जागृत लोगों के लिए

: "जैसे वर्षा का बादल गरजता हुआ, बिजली से घिरा हुआ, सौ चोटियों वाला,
पृथ्वी पर अपनी वर्षा बरसाता है, मैदान और घाटी दोनों को जलमग्न कर देता है,

वैसे ही ज्ञानी, निष्ठावान, विद्वान व्यक्ति भोजन तैयार होने पर
तृप्त होता है; भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले भिक्षु

प्रसन्न होकर दान बांटते हैं; और घोषणा करते हैं, 'दान दो, दान दो।'
क्योंकि यही उसका गर्जन है; जैसे आकाश वर्षा करता है,
वैसे ही पुण्य की वह विशाल वर्षा दान देने वाले पर बरसती है।"

---

136 पर्वतीय (पब्बतुपमा)

सावत्थी में। फिर, दोपहर के समय, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"
[राजा:] "हे पूज्यवर, अभी मैं उन राज-प्रबंधों में लगा हुआ था जो शीर्ष-अभिषिक्त क्षत्रिय राजाओं के लिए विशिष्ट हैं, जो संप्रभुता के नशे में चूर हैं, जो इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त हैं, जिन्होंने अपने देश में स्थिर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, और जिन्होंने पृथ्वी पर एक विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त करके शासन किया है।" 257
[बुद्ध:] "हे महाराज, आप क्या सोचते हैं? देखिए, पूर्व से एक व्यक्ति आपके पास आएगा, जो भरोसेमंद और विश्वसनीय है; पास आकर वह आपसे कहेगा: 'हे महाराज, आपको यह अवश्य जानना चाहिए: मैं पूर्व से आ रहा हूँ, और मैंने वहाँ बादलों के समान ऊँचा एक विशाल पर्वत देखा जो इस ओर आ रहा है और सभी जीवित प्राणियों को कुचल रहा है। हे महाराज, जो उचित लगे वही कीजिए।'" फिर पश्चिम से एक दूसरा व्यक्ति आपके पास आएगा... फिर उत्तर से एक तीसरा व्यक्ति आपके पास आएगा... फिर दक्षिण से एक चौथा व्यक्ति आएगा, जो भरोसेमंद और विश्वसनीय होगा; पास आकर वह आपसे कहेगा: 'हे महाराज, आपको यह अवश्य जानना चाहिए: मैं दक्षिण से आ रहा हूँ, और वहाँ मैंने बादलों के समान ऊँचा एक विशाल पर्वत देखा जो इस ओर आ रहा है और सभी जीवित प्राणियों को कुचल रहा है। हे महाराज, जो उचित लगे वही करें। हे महाराज, यदि ऐसा बड़ा संकट उत्पन्न हो जाए, मानव जीवन का ऐसा भयानक विनाश हो जाए, और मानव अवस्था इतनी कठिन हो, तो क्या किया जाना चाहिए?'

[राजा:] "हे पूज्यवर, यदि ऐसा बड़ा संकट आ पड़े, मानव जीवन का इतना भयानक विनाश हो जाए, और मानव अवस्था प्राप्त करना इतना कठिन हो, तो धम्म (मार्ग, नियम) का पालन करने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या किया जाना चाहिए?" 258

[बुद्ध:] "हे महाराज, मैं आपको सूचित करता हूँ, हे महाराज: वृद्धावस्था और मृत्यु आपके निकट आ रही है। हे महाराज, जब वृद्धावस्था और मृत्यु आपके निकट आ रही हो, तो क्या किया जाना चाहिए?"
[राजा:] "हे पूज्यवर, जब वृद्धावस्था और मृत्यु मेरे निकट आ रही हो, तो धम्म का पालन करने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या किया जाना चाहिए?"
हे पूज्यवर, ऐसे हाथी-युद्ध होते हैं जो राजत्व के नशे में चूर, इंद्रिय सुखों के लोभ में डूबे, अपने देश पर स्थिर नियंत्रण प्राप्त कर चुके और पृथ्वी पर विशाल भूभाग पर विजय प्राप्त कर शासन करने वाले शीर्ष अभिषिक्त खत्तीय राजाओं द्वारा लड़े जाते हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे हाथी-युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। 259 हे पूज्यवर, ऐसे घुड़सवार-युद्ध होते हैं जो शीर्ष अभिषिक्त खत्तीय राजाओं द्वारा लड़े जाते हैं... रथ-युद्ध होते हैं... पैदल सेना के युद्ध होते हैं... परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे पैदल सेना के युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। हे पूज्यवर, इस राज दरबार में ऐसे सलाहकार हैं जो शत्रुओं के आने पर उन्हें छल-कपट से विभाजित करने में सक्षम हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे छल-कपट के युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। इस राज दरबार में, हे पूज्यवर, तिजोरियों और भंडारगृहों में प्रचुर मात्रा में सोना और सोने का भंडार है, और इस धन से हम शत्रुओं के आने पर उन्हें शांत कर सकते हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तब धन-दौलत की इन लड़ाइयों का कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। हे पूज्यवर, जैसे-जैसे वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही है, मुझे धम्म के मार्ग पर चलने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या करना चाहिए?

[बुद्ध:] "जी, महाराज! जी, महाराज! जैसे-जैसे वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही है, मुझे धम्म के मार्ग पर चलने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या करना चाहिए?" भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे ठोस चट्टानों के विशाल पर्वत, आकाश तक पहुँचते हुए,
चारों ओर से घेरकर सबको कुचल देते हैं, वैसे ही वृद्धावस्था और मृत्यु आती हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, चांडाल और सफाई करने वाले

जीवों को रौंदती हुई , वे रास्ते में किसी को नहीं छोड़तीं; बल्कि सबको कुचल देती हैं। वहाँ हाथियों के लिए कोई जगह नहीं है; रथों और पैदल सेना के लिए भी नहीं। उन्हें छल से नहीं हराया जा सकता; न ही धन से। इसलिए, यहाँ एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने हित को ध्यान में रखते हुए , दृढ़ रहना चाहिए; बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भिक्षुओं का समुदाय) में। जब कोई धम्म के अनुसार आचरण करता है; शरीर, वाणी और मन से, तो इस जीवन में उसकी प्रशंसा होती है; और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।"

सम्युत्त 4: मृत्यु के देवता मारा के साथ संबंधित प्रवचन (मारासम्युत्त)
(i) पहला उप-अध्याय (जीवनकाल)
137. तपस्वी साधना (तपोकम्मा संस्कृत: तपो-कर्म)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। 260 तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "मैं सचमुच उस कठोर तपस्या से मुक्त हो गया हूँ! यह सचमुच अच्छा है कि मैं उस व्यर्थ कठोर तपस्या से मुक्त हो गया हूँ! यह अच्छा है कि स्थिर और ध्यानमग्न (सतिमा) होकर मैंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है!" 261

तब दुष्ट मारा (शैतान), अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जानकर, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उन्हें श्लोकों में संबोधित किया:

"तुम तप साधना से भटक गए हो; जिससे मनुष्य स्वयं को शुद्ध करते हैं।
अपवित्र होकर तुम स्वयं को शुद्ध समझते हो; तुमने पवित्रता का मार्ग खो दिया है।" 262

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"मैंने अमरता की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई किसी भी कठोर तपस्या को व्यर्थ समझा है; 263
क्योंकि ऐसी सभी तपस्याएँ व्यर्थ हैं; सूखी भूमि पर चप्पू और पतवार की तरह, 264

सद्गुण (शील), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न);
मैंने ज्ञान के मार्ग का विकास करके परम पवित्रता प्राप्त की है; तुम पराजित हो। अंत-निर्माता!" 265

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

138. राजा हाथी (हथिराजवन्ना सं. हस्ति-राज-वर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। 266 तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से एक विशाल हाथी के रूप में प्रकट होकर भगवान (बुद्ध) के पास आया। उसका सिर स्टीटाइट के एक विशाल टुकड़े जैसा था; उसके दांत शुद्ध चांदी जैसे थे; उसकी सूंड एक विशाल हल के डंडे जैसी थी। तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोक में संबोधित किया:

"तूने लंबी यात्रा की है; सुंदर और बदसूरत आकृतियाँ बनाई हैं।
हे दुष्ट, अपनी इस चालबाज़ी को बंद करो; तू पराजित हो गया है। अंत करने वाले!" 267

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध)

मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर
वहीं से गायब हो गया।

---

3 (3) सुन्दर (शुभ बिना शुभ)
उरुवेला में निवास करते समय, उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। तभी दुष्ट मारा (शैतान), भगवान (बुद्ध) में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उनके पास आया और उनसे कुछ ही दूरी पर, सुंदर और भयानक, अनेक प्रकार की चमकदार आकृतियाँ प्रकट कीं। तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"तूने बहुत लंबा सफर तय किया है; सुंदर और भयानक आकृतियाँ बनाई हैं।
हे दुष्ट, अपनी इस चालबाज़ी को बंद करो; तू पराजित हो गया। अंत करने वाले!

जो शरीर, वाणी और मन से संयमित हैं, वे
मारा के वश में न आएं; और न ही मारा के चेले बनें।" 268

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया। [105]

---

140 मारा का जाल (1) (मारपसा1 सं. मार-पाश)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 269
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) द्वारा, ध्यानमग्नता (सही प्रयास) द्वारा, मैंने अतुलनीय मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त की है, मैंने अतुलनीय मुक्ति का अनुभव किया है। आप भी, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) द्वारा, ध्यानमग्नता (सही प्रयास) द्वारा, अतुलनीय मुक्ति को प्राप्त करें, अतुलनीय मुक्ति का अनुभव करें।" 270 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 271

“तुम मारा के फंदे में फँसे हो; हे देव और मनुष्य,
तुम मारा के बंधन में फँसे हो; हे तपस्वी, तुम मुझसे बच नहीं पाओगे!” 272

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं मारा के फंदे से मुक्त हो गया हूँ; हे देव और मनुष्य,
मैं मारा के बंधन से मुक्त हो गया हूँ; तुम पराजित हो गए। अंत करने वाले!”

तब दुष्ट मारा... वहीं से गायब हो गया।

---

141. मारा का फंदा (2) (मारपासा2 सं. मार-पाश)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, मैं सभी दिव्य और मानवीय बंधनों से मुक्त हूँ। हे भिक्षुओं, तुम भी सभी दिव्य और मानवीय बंधनों से मुक्त हो। हे भिक्षुओं, जन कल्याण के लिए, जन सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और भलाई के लिए विचरण करो। कोई भी दो एक ही मार्ग पर न चलें। हे भिक्षुओं, उस धम्म का उपदेश दो जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ। पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में थोड़ी सी भी धूल है और वे धर्म (मार्ग, नियम) को न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धर्म को समझेंगे। हे भिक्षुओं, मैं भी

जाऊँगा..." धम्म का उपदेश देने के लिए उरुवेला में सेनानिगामा गए। 273 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 274

“तुम सभी फंदों से बंधे हो; दिव्य और मानवीय दोनों;
तुम महान बंधन से बंधे हो; हे तपस्वी, तुम मुझसे बच नहीं पाओगे!”

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं सभी फंदों से मुक्त हूँ; दिव्य और मानवीय दोनों;
मैं महान बंधन से मुक्त हूँ; तुम पराजित हो। अंत करने वाले!”

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

142. सर्प (सप्पा संस सर्प)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में खुले में बैठे थे, जब हल्की बारिश हो रही थी।

तभी दुष्ट मारा (शैतान) ने एक विशाल नाग का रूप धारण किया और भगवान (बुद्ध) के पास आया। उसका शरीर एक ही पेड़ के तने से बनी विशाल नाव के समान था; उसका फन एक बड़ी शराब बनाने वाली छलनी के समान था; उसकी आंखें कोसल के बड़े पीतल के बर्तनों के समान थीं; उसकी जीभ मुंह से ऐसे निकली हुई थी जैसे आकाश में गरजते समय बिजली चमकती है; उसके सांस लेने और छोड़ने की आवाज एक लोहार की धौंकनी में हवा भरने की आवाज के समान थी।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"जो निर्जन कुटियाओं में निवास करता है ,
वही संयमी ऋषि है।
उसे वहाँ सब कुछ त्यागकर रहना चाहिए;
यही उसके समान उचित है। 275

"यद्यपि अनेक जीव रेंगते हैं,
अनेक भय, मक्खियाँ, सर्प होते हैं, फिर भी
वह उनके कारण जरा भी विचलित नहीं होता।
अपनी निर्जन कुटिया में जाकर वह महान ऋषि

[बुद्ध] है:
"यद्यपि आकाश फट जाए, पृथ्वी कांप उठे,
और समस्त जीव भयभीत हो जाएँ, और
मनुष्य अपनी छाती पर बाण लहराएँ, फिर भी
प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी प्रकार की संपत्ति (उपाधि) में शरण नहीं लेता।" 276

तब दुष्ट मारा . . . वहीं लुप्त हो गया।

---

143. निद्रा (सुपति सं. सुषुप्ति)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। रात ढलने लगी, तब भगवान (बुद्ध) ने रात का अधिकांश समय खुले में इधर-उधर घूमते हुए बिताया, अपने पैर धोए, अपने निवास में प्रवेश किया और सिंह की मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) में लीन होकर, उठने के विचार में मग्न हो गए।
तभी दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"क्या, तुम सो रहे हो? क्यों सो रहे हो?
यह क्या है, तुम अभागे की तरह सो रहे हो? 277
तुम खाली झोपड़ी में सो रहे हो ?
यह क्या है, तुम सूरज उगने पर सो रहे हो?"

[भगवान (बुद्ध):]
"उसके भीतर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का वास नहीं रहा।
जो उसे कहीं भी ले जाने के लिए उलझाती और बांधती थी;
समस्त उपलब्धियों (उपाधि) के विनाश (खया/क्षय) के साथ
, प्रबुद्ध व्यक्ति सो रहा है। हे
मारा, तुम्हें इससे क्या लेना-देना है?" 278

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

144. प्रसन्नता (नंदति सं. आनंदति)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब दुष्ट मारा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनके समक्ष यह श्लोक बोला:

"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों में प्रसन्न होता है; जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं में प्रसन्न होता है।
प्राप्ति ही मनुष्य का आनंद है; प्राप्ति के बिना मनुष्य को आनंद नहीं मिलता।"

[भगवान (बुद्ध):
"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों के लिए दुखी होता है; जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं के लिए दुखी होता है।
प्राप्ति ही मनुष्य का दुख है; प्राप्ति के बिना मनुष्य को दुख नहीं मिलता।"

तब दुष्ट मारा वहीं से गायब हो गया।

---

145 जीवनकाल (1) (आयु1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,

"भिक्षुओं, मनुष्य का यह जीवनकाल अल्प है। उसे
भविष्य में जाना है। उसे लाभकारी कर्म करने चाहिए और
ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहिए; क्योंकि एक जन्म लेने वाले के लिए मृत्यु से बचना संभव नहीं है
। भिक्षुओं, जो दीर्घ जीवन जीता है, वह सौ वर्ष
या उससे थोड़ा अधिक जीता है।"

तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"मनुष्यों का जीवनकाल लंबा होता है; भले मनुष्य को इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए।
उसे दूध पीते बच्चे की तरह जीना चाहिए; जब तक मृत्यु न आ जाए।" 279

[भगवान (बुद्ध):]
"मनुष्यों का जीवनकाल छोटा होता है; भले मनुष्य को इसका तिरस्कार करना चाहिए।
उसे ऐसे जीना चाहिए जैसे उसका सिर जल रहा हो; मृत्यु के आगमन से बचना असंभव है।"

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

146 जीवनकाल (2) (आयु2)
(पिछली सूत्र की तरह आरंभ:)

तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"दिन और रातें उड़कर नहीं गुजरते; जीवन रुकता नहीं।
मनुष्यों का जीवनकाल चलता रहता है; जैसे रथ का पहिया धुरी पर घूमता है।" 280 <243>

[भगवान (बुद्ध):]
"दिन और रातें उड़कर गुजर जाते हैं; जीवन रुक जाता है।
मनुष्यों का जीवनकाल समाप्त हो जाता है; जैसे छोटी नदियों का पानी।"

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (शासन)
147. बोल्डर (पसाना बिना पाशान)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। तभी दुष्ट मार (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उनसे कुछ ही दूरी पर कई बड़े-बड़े पत्थरों को चकनाचूर कर दिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मार है
", श्लोक

467 में उससे कहा, "यदि तू इस गिद्ध शिखर को पूरी तरह से हिला भी दे, तो भी
ज्ञानी विचलित नहीं होते; क्योंकि वे पूर्णतः मुक्त हैं।"

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध)
मुझे जानते हैं, शुभ (शुगत) मुझे जानते हैं", दुखी और निराश होकर
वहीं से विमुख हो गया।

---

148. सिंह (किन्नुसिहा)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा से घिरे हुए धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में यह विचार आया, “यह तपस्वी गौतम एक विशाल सभा से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मैं इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित कर दूं।” 281 तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा और उनसे श्लोकों में कहा,

“अब तुम सभा में सिंह की तरह क्यों दहाड़ रहे हो?
क्योंकि तुम्हारे बराबर का एक है; तो तुम स्वयं को विजेता क्यों समझते हो?”

[भगवान (बुद्ध):]
“महावीर अपने सिंह की दहाड़ में दहाड़ते हैं;
तथागत, जो शक्तियों से संपन्न हैं, सभाओं में आत्मविश्वास से दहाड़ते हैं; उन्होंने संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।” 282

तब दुष्ट मारा को यह एहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वह वहीं गायब हो गया।

---

149. सकलिका (स्प्लिंटर)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध के पैर में पत्थर का टुकड़ा लग गया। उन्हें तीव्र पीड़ा हुई - वेदनाएँ कष्टदायी, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, पीड़ादायक और अप्रिय थीं। परन्तु भगवान बुद्ध ने ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर, बिना विचलित हुए, उन्हें सहन किया। तब भगवान बुद्ध ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़ा और एक पैर दूसरे पर रखकर सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर। 283 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे काव्यात्मक शब्दों में बोला,

“क्या आप स्तब्ध हैं या काव्य के नशे में चूर हैं?
क्या आपके पास पूरे करने के लिए पर्याप्त लक्ष्य नहीं हैं?
एकांत में अकेले रहकर
आप ऊंघते हुए क्यों सो रहे हैं?” 284

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं स्तब्ध या काव्य के नशे में चूर नहीं हूँ;
लक्ष्य प्राप्त कर लेने के बाद मैं दुःख से मुक्त हो गया हूँ।
एकांत में अकेले रहकर
मैं समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण होकर लेटा हूँ। यहाँ

तक कि जिनके सीने में तीर चुभा हुआ है
और पल-पल उनके हृदय को भेद रहा है
, वे भी सो जाते हैं;
तो मैं क्यों न सोऊँ; जब मेरा तीर निकाल लिया गया है? 285

“मैं भय से जागता नहीं हूँ; न ही मुझे सोने से डर लगता है।
रातें और दिन मुझे कष्ट नहीं देते,
मुझे संसार में कोई हानि नहीं दिखती।
इसलिए मैं शांति से सो सकता हूँ।
समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण।”

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

14 (4) उपयुक्त (पतिरूपा)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एकासला नामक ब्राह्मण गाँव में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) बड़ी संख्या में गृहस्थों से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में यह विचार आया, "यह तपस्वी गौतम गृहस्थों की बड़ी सभा से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित कर दूँ।"
तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे श्लोकों में कहा,

"यह आपके लिए उचित नहीं है कि आप दूसरों को उपदेश दें।
इस कार्य में लगे रहने पर संसार के आकर्षण और विकर्षण में न फँसें।" 286

[भगवान (बुद्ध):]
"उनके कल्याण के प्रति करुणा से भरे बुद्ध दूसरों को उपदेश देते हैं।
तथागत संसार के आकर्षण और विकर्षण से पूर्णतः मुक्त हैं।"

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

151. मानसिक (मानस)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 287

"आकाश में एक जाल चल रहा है; कोई मानसिक चीज जो घूम रही है 288
जिसके द्वारा मैं तुम्हें पकड़ लूंगा; तुम मुझसे बच नहीं पाओगे, तपस्वी!"

[भगवान (बुद्ध):]
"रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; और आनंददायक स्पर्शनीय वस्तुएं;
इन सब की इच्छा मुझमें विलीन हो गई है; तुम पराजित हो, अंत-निर्माता!"

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

152. भिक्षापात्र (पट्टा संस्कृत: पत्रा)
श्रावस्ती पर्व पर, भगवान बुद्ध पाँच आसक्त स्कंधों के विषय में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों के विषय में धर्म प्रवचन दे रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म को सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार के मन में विचार आया, "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उन्हें प्रेरित कर रहे हैं और आनंदित कर रहे हैं... जो अपना पूरा ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।"
उस समय अनेक भिक्षापात्र खुले में रखे हुए थे। तभी दुष्ट मार ने बैल का रूप धारण किया और उन भिक्षापात्रों के पास पहुँचा। तब एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा: "भिक्षु, भिक्षु! वह बैल भिक्षापात्र तोड़ सकता है।" यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु से कहा: "वह बैल नहीं है, भिक्षु। वह तो दुष्ट मार है, जो तुम्हें भ्रमित करने के लिए यहाँ आया है।" तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मार है," दुष्ट मार को श्लोकों में संबोधित किया:

"रूप, वेदना और बोध; चेतना और संस्कार,
'मैं यह नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है'; इस प्रकार व्यक्ति इससे विरक्त हो जाता है। 289

"यद्यपि वे उसे हर जगह खोजते हैं; मार और उसकी सेना उसे नहीं पाते।
इस प्रकार विरक्त, सुरक्षित; जो सभी बंधनों से परे चला गया है।" 290

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

153. संपर्क के लिए छह क्षेत्र
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में स्थित शिखरनुमा छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को छह लोकों (इंद्रियों का वस्तुओं से संपर्क; स्पर्श/पृथ्वी संपर्क) के विषय में धर्म प्रवचन दे रहे थे, जिससे वे उपदेशित, प्रेरित और प्रसन्न हो रहे थे। भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में विचार आया, "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उपदेश दे रहे हैं, प्रेरित कर रहे हैं और प्रसन्न कर रहे हैं... जो अपना पूर्ण ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।" तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे कुछ ही दूरी पर एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। 291 तब एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा, "भिक्षु, भिक्षु! ऐसा लगता है जैसे पृथ्वी फट रही हो।" यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु से कहा, "भिक्षु, पृथ्वी नहीं फट रही है। यह तो दुष्ट मारा है, जो तुम्हें भ्रमित करने के लिए यहाँ आया है।" तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," दुष्ट मारा को श्लोकों में संबोधित किया,

"रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; स्पर्श और सभी मानसिक वस्तुएँ;
यह संसार का भयानक प्रलोभन है; जिससे संसार मोहित है।

परन्तु जब वह इसे सही ढंग से पार कर लेता है; बुद्ध का ध्यानमग्न शिष्य
मारा के क्षेत्र को पार कर लेता है; सूर्य की तरह दीप्तिमान है।" 292

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

154. भिक्षा (पिंड)
एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच पंचशाला नामक ब्राह्मण गाँव में निवास कर रहे थे। उस समय पंचशाला में युवाओं का दान उत्सव चल रहा था। 293 फिर सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए पंचशाला में प्रवेश किया। उस समय दुष्ट मार (शैतान) ने पंचशाला के ब्राह्मण गृहस्थों को अपने वश में कर लिया था और उनके मन में यह विचार उत्पन्न कर दिया था, "संन्यासी गौतम को भिक्षा न लेने दें।"

तब भगवान (बुद्ध) अपने भिक्षापात्र को ठीक उसी प्रकार धोकर पंचशाला से निकल गए, जैसा कि भिक्षा मांगने के समय था। तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,
"हे तपस्वी, क्या आपने भिक्षा प्राप्त कर ली?"
[बुद्ध:] "हे दुष्ट, क्या यह तुमने ही किया था कि मुझे भिक्षा न मिले?"
[मारा:] "तो, आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) को दूसरी बार भिक्षा मांगने के लिए पंचशाला में प्रवेश करने दीजिए। मैं सुनिश्चित करूँगा कि भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मिले।" 294

[भगवान (बुद्ध):]
"हे मारा, तुमने तथागत पर आक्रमण करके दोष उत्पन्न किया है।
हे दुष्ट, क्या तुम सचमुच सोचते हो कि 'मेरा दोष फल नहीं देता'?

हम सचमुच सुखी हैं, हम जिनके पास कुछ भी नहीं है।
हम आनंद (पीति/प्रीति) का भोग करते हुए निवास करेंगे; जैसे प्रकाश की धारा के देव (देवदूत)।" 295

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं अंतर्धान हो गया।

---

155. किसान (कस्साका सं. कृषक)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्म प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में विचार आया: "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उन्हें प्रेरित कर रहे हैं और उन्हें आनंदित कर रहे हैं... जो अपना पूरा ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।" तब दुष्ट मार ने एक किसान का रूप धारण किया, जिसके कंधे पर एक बड़ा हल था, हाथ में एक लंबी अंकुश की छड़ी थी, उसके बाल बिखरे हुए थे, उसने

चमड़ी के वस्त्र पहने थे और उसके पैर कीचड़ से सने थे। वह भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे कहा: "हे तपस्वी, शायद आपने बैल देखे हों?"
[बुद्धः] "हे दुष्ट, बैल तुम्हारे लिए क्या हैं?"
[माराः] "हे तपस्वी, आँख मेरी है, रूप मेरे हैं, दृष्टि संपर्क (वस्तुओं के साथ इंद्रियों का स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र (विन्नान संस्कृत विज्ञान) मेरा है। हे तपस्वी, तुम
मुझसे बचकर कहाँ जा सकते हो? हे तपस्वी, कान मेरे हैं, ध्वनियाँ मेरी हैं...
हे तपस्वी, नाक मेरी है, गंध मेरी हैं... हे
तपस्वी, जीभ मेरी है, स्वाद मेरे हैं... हे तपस्वी, शरीर मेरा है, स्पर्शनीय
वस्तुएँ मेरी हैं... हे तपस्वी, मन मेरा है, धम्म
मेरा है, मन संपर्क (स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र
मेरा है। हे तपस्वी, तुम मुझसे बचकर कहाँ जा सकते हो?"

हे दुष्ट, आँख तुम्हारी है। रूप तुम्हारे हैं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और
उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ
आँख नहीं है, रूप नहीं हैं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र नहीं है - वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट। 297 कान
तुम्हारे हैं। हे दुष्ट, ध्वनियाँ तुम्हारी हैं, कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ कान नहीं हैं,
ध्वनियाँ नहीं हैं, कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र नहीं है -
वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट। नाक तुम्हारी है। हे दुष्ट,
गंधें तुम्हारी हैं, नाक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र
तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ नाक नहीं है, गंध नहीं है, नाक नहीं है।
स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। जीभ तुम्हारी है। हे दुष्ट, स्वाद
तुम्हारे हैं, जीभ का स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है;
परन्तु हे दुष्ट, जहाँ जीभ नहीं है, स्वाद नहीं है, जीभ का
स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। शरीर तुम्हारा है। हे दुष्ट, स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं
हे दुष्ट, तुम्हारा शरीर-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु,
हे दुष्ट, जहाँ न शरीर है, न स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं, न शरीर-
संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र है - वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। मन तुम्हारा है, हे दुष्ट, मानसिक घटनाएँ (धम्म)
तुम्हारी हैं, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है;
परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ न मन है, न मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं,
न मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र है -
वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट।"

[माराः]
"जिसके बारे में वे कहते हैं 'यह मेरा है'; और जो 'मेरा' के शब्दों में बोलते हैं;
यदि तुम्हारा मन इनमें विद्यमान है; तो तुम मुझसे बच नहीं पाओगे, हे तपस्वी।"

[बुद्धः]
"जिसके बारे में वे बात करते हैं वह मेरा नहीं है; मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो [अपने] की बात करते हैं।"
हे दुष्ट, तुम्हें यह जानना चाहिए; तुम मेरा मार्ग भी नहीं देख पाओगे।"

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

156. शासन (रज्ज बिना राज्य)

एक बार भगवान (बुद्ध) हिमालय क्षेत्र में एक छोटी सी वन कुटिया में कोसलवासियों के बीच निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में थे, उनके मन में यह विचार आया, “क्या धार्मिक रूप से शासन करना संभव है; बिना हत्या किए और दूसरों को हत्या के लिए उकसाए बिना, बिना ज़ब्ती किए और दूसरों को ज़ब्ती के लिए उकसाए बिना, बिना शोक किए और दूसरों को शोक पहुँचाए बिना?” 298

तब दुष्ट मारा (शैतान), जिसने स्वयं भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, कृपया धार्मिक रूप से शासन करें: बिना हत्या किए और दूसरों को हत्या के लिए उकसाए बिना, बिना ज़ब्ती किए और दूसरों को ज़ब्ती के लिए उकसाए बिना, बिना शोक किए और दूसरों को शोक पहुँचाए बिना।”

[बुद्धः]

“पर तुम क्या देखते हो, दुष्ट, कि तुम मुझसे ऐसा कहते हो?”

[माराः]

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति की चारों शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है, उन्हें वाहन बनाया है, उन्हें आधार बनाया है, उन्हें स्थिर किया है, स्वयं उनमें अभ्यास किया है और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया है। और, आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) चाहें, तो उन्हें केवल यह संकल्प करना होगा कि पर्वतों का राजा हिमालय स्वर्ण बन जाए, और वह स्वर्ण बन जाएगा।" 299

[बुद्धः]

"यदि कोई पर्वत स्वर्ण का बना हो; पूर्णतः ठोस स्वर्ण का बना हो, तो भी
एक व्यक्ति के लिए इसकी दुगुनी मात्रा भी पर्याप्त नहीं होगी; यह जानकर, समभाव से निवास करें। 300

"जिस व्यक्ति
ने दुख के स्रोत को देख लिया है, वह इंद्रिय सुखों की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकता है?"
संसार में (भौतिक) प्राप्ति (उपाधि) को बंधन मानकर,
व्यक्ति को इससे मुक्ति पाने का अभ्यास करना चाहिए। 301

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

(iii) तीसरा उप-अध्याय (मारा पंचक)

157. अनेक संख्या (साम्भाहुला)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शिलावती में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय बहुत से भिक्षु भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर निवास कर रहे थे - सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी। तब दुष्ट मार (शैतान) ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया, जिसकी बड़ी जटा थी, हिरण की खाल से बना वस्त्र पहने हुए, वृद्ध, छत के ब्रैकेट की तरह टेढ़ा, हांफता हुआ, और उदुंबर की लकड़ी का डंडा पकड़े हुए था। 302 वह उन भिक्षुओं के पास आया और उनसे कहा: “हे भिक्षुओं, आप युवावस्था में ही दीक्षा प्राप्त कर चुके हैं, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वोपरि, बिना इंद्रिय सुखों में लिप्त हुए। हे भिक्षुओं, मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद लें; जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है उसे त्याग कर समय लेने वाली चीजों का पीछा न करें।” 303

[भिक्षुओं:]

“हे ब्राह्मण, हमने प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाली चीजों का त्याग समय लेने वाली चीजों के लिए नहीं किया है। हमने समय लेने वाली चीजों का त्याग प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाली चीजों के लिए किया है। क्योंकि हे ब्राह्मण, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख समय लेने वाले, दुख से भरे, निराशा से भरे और उनसे उत्पन्न होने वाला खतरा कहीं अधिक है, जबकि यह धम्म (मार्ग, नियम) प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाला, तात्कालिक, दर्शन करने के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाने वाला है।”

यह सुनकर राक्षस मारा ने अपना सिर हिलाया, जीभ बाहर निकाली, माथे पर तीन झुर्रियाँ बनाईं और अपने डंडे पर झुककर चला गया। 304

तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और सब कुछ विस्तार से बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “वह ब्राह्मण नहीं था, भिक्षुओं। वह दुष्ट मारा था, जो तुम्हें भ्रमित करने आया था।”

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा: “ जिसने दुख के स्रोत को देख लिया है,

वह इंद्रिय सुखों की ओर कैसे आकर्षित हो सकता है ? भौतिक प्राप्ति (उपाधि) को संसार में बंधन के रूप में जानकर, व्यक्ति को इससे मुक्ति पाने का अभ्यास करना चाहिए।”

---

158. समिद्धि
एक बार भगवान (बुद्ध) शिलावती में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहे थे। 305 तब, जब पूज्य समिद्धि एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि मेरे गुरु अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं! यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि मैंने इस सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा ली है! यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि ब्रह्मचर्य जीवन में मेरे साथी गुणी और अच्छे चरित्र वाले हैं!"
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने पूज्य समिद्धि के मन के विचार को स्वयं जान लिया और उनके पास आकर, उनसे कुछ ही दूरी पर, एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। 306 तब पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “हे समिद्धि, वह धरती का फटना नहीं था। वह दुष्ट मारा था, जो तुम्हें भ्रमित करने आया था। हे समिद्धि, वापस जाओ और सतर्क, उत्साही और दृढ़ रहो।”
[समिद्धि:]
“जी, पूज्यवर,” पूज्य समिद्धि ने उत्तर दिया।
फिर वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।
दूसरी बार, जब पूज्य समिद्धि एकांतवास में अकेले थे, उनके मन में एक विचार आया... और दूसरी बार दुष्ट मारा ने एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। तब पूज्य समिद्धि ने समझकर, "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"मैंने आस्था से दीक्षा ली है; गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन की ओर।
मेरा ध्यान और अंतर्दृष्टि परिपक्व हैं; और मेरा मन समाधि की अवस्था में है।
आप जो चाहें रूप धारण करें; लेकिन आप मुझे कभी भयभीत नहीं कर सकते।" 307

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षु समिद्धि मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

159 गोधिका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य गोधिका इसिगिली ढलान पर स्थित काली चट्टान पर निवास कर रहे थे। तब, पूज्य गोधिका सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर निवास कर रहे थे, तब उन्हें क्षणिक मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मुक्ति से विमुख हो गए। 308 दूसरी बार, पूज्य गोधिका सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर निवास कर रहे थे, तब उन्हें क्षणिक मुक्ति प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मुक्ति से विमुख हो गए। तीसरी बार... चौथी बार... पाँचवीं बार... छठी बार, जब पूज्य गोधिका सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में थे, तब उन्हें क्षणिक मानसिक मुक्ति प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मानसिक मुक्ति से विमुख हो गए। सातवीं बार, जब पूज्य गोधिका सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में थे, तब उन्हें क्षणिक मानसिक मुक्ति प्राप्त हुई।

तब पूज्य गोधिका के मन में यह विचार आया: "मैं छह बार क्षणिक मानसिक मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) से विमुख हो चुका हूँ। मुझे छुरी का प्रयोग करना चाहिए।" 309 तब दुष्ट मारा (शैतान) ने पूज्य गोधिका के मन के विचार को स्वयं जानकर भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इन श्लोकों में कहा: 310

“हे महावीर, महान ज्ञान से परिपूर्ण; शक्ति और महिमा से प्रज्वलित!
समस्त शत्रुता और भय पर विजय प्राप्त करने वाले; मैं आपके चरणों की आराधना करता हूँ, हे दृष्टिवान!

“हे महावीर, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले; आपका शिष्य मृत्यु की कामना कर रहा है।
वह [आत्महत्या करने का] इरादा रखता है; हे प्रकाशमान!

“हे भगवान (बुद्ध), आपका शिष्य; जो शिक्षा में आनंदित है,
अपने मन के आदर्श की खोज में लगा हुआ प्रशिक्षु; हे सर्वप्रसिद्ध, अपना प्राण कैसे ले सकता है?” 311
उस समय पूज्य गोधिका ने चाकू का प्रयोग किया था। 312 तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"सत्यात्मा ऐसे ही कर्म करते हैं; वे प्राणविरक्ति से विरक्त होते हैं।
तृष्णा को जड़ से उखाड़कर, गोधिका ने परम निर्वाण प्राप्त किया है।"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "आओ, भिक्षुओं, हम इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर चलें, जहाँ गोधिका नामक कुल के व्यक्ति ने छुरी का प्रयोग किया है।" फिर भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "क्या तुम देखते हो, भिक्षुओं, वह धुएँ का बादल, वह अंधकार का बवंडर, जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे और मध्य दिशाओं में गतिमान है?" [भिक्षु:] "जी, आदरणीय।" [बुद्ध:]

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) अनेक भिक्षुओं के साथ इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर गए। दूर से भगवान (बुद्ध) ने पूज्य गोधिका को पलंग पर कंधे घुमाए लेटे हुए देखा। 313 उस समय धुएं का एक बादल, अंधेरे का एक बवंडर, पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर बढ़ रहा था। नीचे की ओर, और मध्यवर्ती तिमाहियों की ओर।

"हे भिक्षुओं, यह दुष्ट मारा है जो गोधिका नामक कुल के व्यक्ति की चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की खोज कर रहा है, और सोच रहा है: 'अब गोधिका नामक कुल के व्यक्ति की चेतना कहाँ स्थापित हो गई है?' परन्तु हे भिक्षुओं, चेतना स्थापित न होने के कारण गोधिका ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" 314
तब दुष्ट मारा पीले मखमल की लकड़ी का वीणा लेकर भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"ऊपर, नीचे और चारों ओर; चारों दिशाओं में और बीच में,
मैं खोज रहा हूँ, परन्तु नहीं पा रहा; गोधिका कहाँ चला गया है?"

[बुद्ध:]
"वह स्थिर पुरुष दृढ़ निश्चयी था; एक ध्यानी जो सदा ध्यान में लीन रहता था।
दिन-रात ध्यान में लगा रहता था; जीवन से भी आसक्ति नहीं रखता था।

मृत्यु की सेना पर विजय प्राप्त कर चुका था; पुनर्जन्म नहीं लेता था।"
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को जड़ सहित खींचकर, गोधिका ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। "

वह इतना दुखी हुआ कि उसका वीणा उसके बगल से गिर गया।

तब वह निराश आत्मा वहीं विलीन हो गई।" 315

---

160. सात वर्षों का प्रयास (सत्तवसानुबंध)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, चरवाहे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। उस समय शैतान (मारा) सात वर्षों से भगवान (बुद्ध) का पीछा कर रहा था, उन तक पहुँचने का प्रयास कर रहा था, लेकिन सफल नहीं हो पा रहा था। 316 तब शैतान (मारा) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोकों में कहा,

"क्या आप दुःख में डूबे हुए हैं, इसलिए वनों में ध्यान करते हैं?
क्या आपने धन खो दिया है या उसके लिए तरस रहे हैं?
या गाँव में कोई अपराध किया है?
आप लोगों से मित्रता क्यों नहीं करते?
आप किसी से घनिष्ठ संबंध क्यों नहीं बनाते?"

[भगवान (बुद्ध):]
"मैंने दुःख की जड़ को पूरी तरह से उखाड़ फेंका है।
मैं निर्दोष होकर दुःख से मुक्त ध्यान करता हूँ।
मैंने अस्तित्व के सभी लालच (भावो) को काट डाला है,
मैं दोषमुक्त होकर ध्यान करता हूँ, हे आलसी (पमादा) के सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे

सगे सगे
सगे सगे
सगे सगे
सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सत्कार के लिए क्या

लाभ है?" [मारा:] "यदि आपने मार्ग खोज लिया है; वह सुरक्षित मार्ग जो अमरता (निर्वाण) की ओर ले जाता है, तो आप अकेले उस मार्ग पर चलें; दूसरों को उपदेश देने का क्या लाभ है?" [भगवान (बुद्ध):] "जो लोग परलोक की ओर जा रहे हैं, वे पूछते हैं कि मृत्यु के पार क्या है। पूछे जाने पर, मैं उन्हें समझाता हूँ; वह सत्य है जो किसी भी प्रकार की प्राप्ति से परे है (उपाधि)।" 318 [मारा:] "मान लीजिए, आदरणीय महोदय, किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक कमल का तालाब है जिसमें एक केकड़ा रहता है। 319 तब कुछ लड़के-लड़कियाँ गाँव या कस्बे से निकलकर उस तालाब पर जाते। वे केकड़े को पानी से निकालकर ऊँची जगह पर रख देते। फिर, जब भी वह केकड़ा अपना एक पंजा बाहर निकालता, वे लड़के-लड़कियाँ उसे काटकर, तोड़कर और डंडों व पत्थरों से चूर-चूर कर देते। इस प्रकार, जब उसके सारे पंजे कटकर, टूटकर और चूर-चूर हो जाते, तो वह केकड़ा उस तालाब में वापस नहीं लौट पाता। ठीक उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, मेरे ये सारे विकृत, छल-कपट और कुटिल रूप भगवान (बुद्ध) द्वारा काट कर, तोड़ कर और चूर-चूर कर दिए गए हैं। अब, आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) के पास फिर से जाकर उनसे संपर्क करने में असमर्थ हूँ।" तब दुष्ट मारा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में निराशा के ये श्लोक पढ़े: 320 "एक कौआ इधर-उधर घूम रहा था; एक पत्थर जो चर्बी के ढेर जैसा दिखता था। 'चलो यहाँ कुछ नरम चीज़ ढूंढते हैं,' [उसने सोचा]; 'शायद यहाँ कुछ अच्छा और स्वादिष्ट मिल जाए।'

लेकिन क्योंकि उसे वहाँ कुछ भी स्वादिष्ट नहीं मिला, कौआ उस स्थान से चला गया।
ठीक उसी तरह जैसे वह कौआ पत्थर पर झपटा था; हम गौतम को निराश होकर छोड़ देते हैं।

---

161. मारा की बेटियाँ (मराधितु)
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) के समक्ष निराशा के ये श्लोक बोलकर उस स्थान से चला गया और भगवान (बुद्ध) से कुछ दूर जमीन पर पालथी मारकर बैठ गया। वह मौन, भयभीत, कंधे झुकाए, उदास, चिंतनशील, बोलने में असमर्थ और एक छड़ी से जमीन को खरोंचता रहा। 321
तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - दुष्ट मारा के पास आईं और उससे श्लोकों में बोलीं: 322

“हे पिता, आप इतने निराश क्यों हैं? वह कौन है जिसके लिए आप शोक मना रहे हैं? हम उसे कामवासना के जाल में फँसा लेंगे; जैसे वे वन के हाथी को फँसाते हैं। हम उसे कसकर बाँधकर वापस लाएँगे; और वह आपके वश में होगा।” 323

[मारा (शैतान):]
“अरहंत, संसार का सौभाग्यशाली (सुगतो) व्यक्ति, कामवासनाओं से आसानी से आकर्षित नहीं होता। वह मारा के क्षेत्र से परे चला गया है; इसलिए मैं इतना दुखी हूँ।”

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - भगवान (बुद्ध) के पास आईं और उनसे कहा: “हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।” परन्तु भगवान (बुद्ध) ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे उपाधियों के पूर्ण निर्वाह में विमुक्त (विमुक्त) थे। 324

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - एक तरफ चली गईं और आपस में सलाह करने लगीं: “मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। मान लीजिए कि हम प्रत्येक सौ कन्याओं के रूप में प्रकट हों।” तब मारा की तीनों पुत्रियाँ, प्रत्येक सौ कन्याओं के रूप में प्रकट होकर, भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा, "हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।" परन्तु भगवान (बुद्ध) ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे सभी कर्मों के पूर्ण निर्वाह में विमुक्त (विमुक्त) थे।

तब मारा की पुत्रियाँ एक तरफ चली गईं और फिर सलाह करने लगीं, "मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। मान लीजिए कि हम प्रत्येक सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में प्रकट हों जिन्होंने कभी जन्म नहीं दिया है।" तब मारा की तीनों पुत्रियाँ, प्रत्येक सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में प्रकट हुईं जिन्होंने कभी जन्म नहीं दिया है... सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में जिन्होंने एक बार जन्म दिया है... सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में जिन्होंने दो बार जन्म दिया है... सौ मध्यम आयु वर्ग की स्त्रियों के रूप में... सौ वृद्ध स्त्रियों के रूप में, भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा, "हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।" लेकिन भगवान (बुद्ध) ने इस पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे सभी प्राप्तियों के पूर्ण निर्वाह में विलीन हो चुके थे।

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - एक तरफ जाकर बोलीं: "हमारे पिता ने जो कहा वह सत्य है:

'अरहंत, संसार का सौभाग्यशाली (सुगतो) ...
इसलिए मैं इतना दुखी हूँ।'

यदि हमने ऐसी रणनीति अपनाकर किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण पर आक्रमण किया होता
जो कामवासना से मुक्त न हो, तो या तो उसका हृदय फट जाता,
या वह अपने मुँह से गर्म रक्त उगल देता।" या तो वह
पागल हो जाता या मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता; या फिर वह
सूखकर मुरझा जाता और नष्ट हो जाता।
मुरझाया हुआ, ठीक वैसे ही जैसे कटी हुई हरी घास सूखकर
मुरझा जाती है।

फिर मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - भगवान (बुद्ध) के पास आईं और एक तरफ खड़ी हो गईं। एक तरफ खड़ी होकर, मारा की पुत्री तन्हा ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

"क्या आप दुःख में डूबे हुए हैं, इसलिए वनों में ध्यान करते हैं?
क्या आपने धन खो दिया है या उसके लिए तरस रहे हैं?
या गाँव में कोई अपराध किया है?
आप लोगों से मित्रता क्यों नहीं करते?
आप किसी से घनिष्ठ संबंध क्यों नहीं बनाते?"

[भगवान (बुद्ध):]
"सुखद और मनभावन की सेना पर विजय प्राप्त करके
, एकांत ध्यान में रहकर मैंने सुख को पाया।
लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति। 325
इसलिए मैं लोगों से मित्रता नहीं करता।"

और न ही मैं कोई घनिष्ठ संबंध बनाऊँगा।"

तब मारा की पुत्री आरती ने भगवान (बुद्ध) से
श्लोक में कहा:

511 "यहाँ एक भिक्षु अक्सर कैसे निवास करता है
कि पाँच जलप्रपात पार करने के बाद, वह यहाँ छठा जलप्रपात पार कर लेता है?
वह कैसे ध्यान करता है कि इंद्रिय-संबंधी धारणाएँ (सन्ना संस्कृत: संग्या)
दूर रहती हैं और उसे जकड़ नहीं पातीं?" 326

[भगवान (बुद्ध):]
"शरीर से शांत, मन से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त)।
सृजन न करने वाला, ध्यानमग्न (सतिमा), संन्यासी,
धर्म (मार्ग, नियम) का ज्ञाता, विचार-मुक्त ध्यान करने वाला।
वह न तो उभयभीत होता है, न विघ्नता में बहता है, न कठोर होता है। 327

"जब एक भिक्षु यहाँ अक्सर इस प्रकार निवास करता है।
पाँच जलप्रपात पार करने के बाद, वह यहाँ छठा जलप्रपात पार कर लेता है।
जब वह इस प्रकार ध्यान करता है, तो इंद्रिय-संबंधी धारणाएँ
दूर रहती हैं और उसे जकड़ नहीं पातीं।"

तब मारा की पुत्री रागा ने भगवान (बुद्ध) को
श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा:

"उन्होंने अपने समूह और व्यवस्था के साथ रहकर तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का निवारण किया है;
निश्चय ही कई अन्य प्राणी पार करेंगे।
हाय, यह ऋषि बहुतों को छीन लेंगे
और उन्हें मृत्यु के राजा से परे ले जाएंगे।" 328

[भगवान (बुद्ध):]
"सचमुच तथागत, महान वीर (महावीर); सच्चे धम्म के माध्यम से नेतृत्व करते हैं।
जब वे धम्म के माध्यम से नेतृत्व कर रहे हैं; तो समझने वालों में ईर्ष्या क्या हो सकती है?" 329

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा -
दुष्ट मारा के पास पहुँचीं। मारा ने उन्हें दूर से आते देखा और
उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 330

"नासमझ! तुमने कमल के डंठलों से पर्वत को कुचलने का प्रयास किया;
अपने नाखूनों से पर्वत को खोदने का; अपने दाँतों से लोहे को चबाने का।

मानो, आपने अपने सिर से एक चट्टान उठाई; आपने खाई में पैर जमाने की कोशिश की;
मानो आपने अपनी छाती से किसी ठूंठ पर प्रहार किया हो; आप गौतम से निराश होकर विदा हुए।

वे सभी सौंदर्य से परिपूर्ण होकर उनके पास आए थे; तन्हा, आरती और राग।
लेकिन गुरु ने उन्हें वहीं उड़ा दिया; जैसे हवा, रुई के गिरे हुए गुच्छे को।

संयुक्त 5: भिक्खुनिस/ननों के साथ जुड़े हुए प्रवचन (भिक्खुनिससंयुत्त)
162 अलाविका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, सुबह, भिक्षुणी अलाविका ने वस्त्र धारण किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। 331 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह भिक्षा मांगने लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में एकांतवास के लिए चली गई। 332
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भिक्षुणी अलाविका के मन में भय, डर और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे एकांतवास से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आकर श्लोकों में उससे कहा:

"संसार में कोई मुक्ति नहीं है; तो तुम एकांतवास से क्या करोगी?
इंद्रिय सुखों का आनंद लो; बाद में पश्चाताप मत करो!"

तब भिक्षुणी अलाविका के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - किसी मनुष्य ने या किसी अन्य प्राणी ने?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मुझमें भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं एकांतवास से विमुख हो जाऊं।" तब भिक्षुणी अलाविका ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"संसार में एक मुक्ति का मार्ग है; जिसे मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से निकट से अनुभव किया है।
हे दुष्ट, आलसी (पमादा) के संबंधी; तुम उस अवस्था को नहीं जानते। 333

"इंद्रिय सुख तलवारों और खूंटियों के समान हैं; स्कंध (संग्रह) उनके काटने के तख्ते के समान हैं।
जिसे तुम इंद्रिय सुख (नंदी/आनंद) कहते हो; यह मेरे लिए आनंदहीन हो गया है।" 334

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी अलाविका मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

163 सोमा
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी सोम ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 335 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिनभर विश्राम करने के लिए गई। अंधवन में प्रवेश करके वह एक वृक्ष के नीचे दिनभर विश्राम करने के लिए बैठ गई। तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी सोम के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने के उद्देश्य से, उनके पास आया और श्लोक में उनसे कहा:

"वह अवस्था जिसे प्राप्त करना इतना कठिन है; जिसे संत (ऋषि-मुनि) प्राप्त कर सकते हैं
; वह एक स्त्री द्वारा, अपनी दो उंगलियों वाली अंतर्दृष्टि से, प्राप्त नहीं की जा सकती।" 336

तब भिक्षुणी के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - मनुष्य ने या अमानव ने?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, मुझे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से यह श्लोक पढ़ा है।" तब भिक्षुणी ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"नारीत्व का क्या महत्व है; जब मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से हो।
जब ज्ञान निरंतर प्रवाहित होता हो; जब कोई धर्म (मार्ग, नियम) को सही ढंग से देखता है (विपस्सतो, ध्यान में)। 337

"जिसके मन में यह विचार आए कि 'मैं स्त्री हूँ' या 'मैं पुरुष हूँ'
या 'मैं कुछ भी हूँ'; वह मारा के संबोधन के योग्य है।" 338

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भिक्खुनी सोम
मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

164 किसागोतामी

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी किसागोतमी ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 339 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह भिक्षा मांगने लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिन बिताने के लिए चली गई। अंधवन में प्रवेश करके वह दिन बिताने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।
तब शैतान, भिक्षुणी किसागोतमी के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उनके पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"अब, जब तुम्हारा पुत्र मर गया है; तुम अकेले आँसू भरे चेहरे के साथ क्यों बैठी हो?
अकेले ही जंगल में प्रवेश करके; क्या तुम किसी पुरुष की तलाश में हो?"

तब भिक्षुणी के मन में यह विचार आया: "यह श्लोक किसने पढ़ा है - मनुष्य ने या अमानव ने?" तब उसे यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मुझमें भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं समाधि अवस्था से विमुख हो जाऊं।"

तब भिक्षुणी किसागोतमी ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"मैंने पुत्रों की मृत्यु का दुख भोग लिया है; इसके साथ ही मनुष्यों की खोज समाप्त हो गई है।
मैं शोक नहीं करती, मैं रोती नहीं; और न ही मैं तुमसे डरती हूं, मित्र। 340

"हर जगह आनंद (नंदी/आनंद) नष्ट हो गया है; अंधकार का समूह पराजित हो गया है।
मृत्यु की सेना पर विजय प्राप्त कर ली है; मैं अपवित्रता से मुक्त होकर निवास करता हूँ।" 341

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी किसागोतमी
मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

165 विजया
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी विजया ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। 342 तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी विजया के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और छंदों में उससे कहा:

"तुम इतनी युवा और सुंदर हो; और मैं भी अपनी युवावस्था में हूँ।
आओ, हे श्रेष्ठ स्त्री, हम आनंद मनाएँ; पंचांग संगीत के साथ।" 343

तब भिक्षुणी विजया के मन में यह विचार आया: "अब यह कौन है...? यह दुष्ट मारा है... जो मुझे समाधि से विमुख करना चाहता है।"
तब भिक्षुणी विजया ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; और स्पर्श से आनंदित होने वाली वस्तुएँ
मैं तुम्हें ही अर्पित करती हूँ; क्योंकि हे मारा, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।

मैं इस घृणित, सड़े हुए शरीर से घृणा और अपमानित महसूस करती हूँ।
जो टूटने के अधीन और नाज़ुक है; मैंने इंद्रिय तृष्णा को जड़ से उखाड़ फेंका है। 344

"जो प्राणी सजीव हैं; और जो निराकार में विश्वास रखते हैं;
और वे भी जिन्होंने शांति प्राप्त की है; उन सभी का अंधकार नष्ट हो गया है।" 345

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्खुनी विजया मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

166. उप्पलावन्ना
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी उप्पलावन्ना ने वस्त्र धारण किए... वह फूलों से लदे साल के वृक्ष के चरणों में खड़ी थीं। 346

तब दुष्ट मारा, भिक्षुणी उप्पलावन्ना के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उनके पास आया और श्लोक में उनसे कहा:

"हे भिक्षुणी, फूलों से लदे साल के वृक्ष के पास आकर;
तुम उसके चरणों में अकेली खड़ी हो;
तुम्हारी सुंदरता के समान कोई नहीं;
भोली (नासमझ) लड़की, क्या तुम्हें दुष्टों से डर नहीं लगता?" 347

तब भिक्षुणी उप्पलावन्ना के मन में यह विचार आया: "
यह कौन है...? यह दुष्ट मारा है... जो मुझे
समाधि अवस्था से विमुख करना चाहता है।"
तब भिक्षुणी उप्पलावन्ना ने यह समझकर कि "यह
दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"लाखों दुष्टों के बावजूद;
जैसे तुम यहाँ आ जाओ,

मैं जरा भी विचलित नहीं होती, मुझे कोई भय नहीं होता;
हे मारा, अकेले में भी मैं तुमसे नहीं डरती। 348

"मैं स्वयं को विलीन कर सकती हूँ; या मैं तुम्हारे गर्भ में प्रवेश कर सकती हूँ।
मैं तुम्हारी भौहों के बीच खड़ी हो सकती हूँ; फिर भी तुम मुझे देख नहीं पाओगे।

"मैं अपने मन की स्वामी हूँ; आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) अच्छी तरह विकसित है;
मैं सभी बंधनों से मुक्त हूँ; इसलिए मैं तुमसे नहीं डरती, मित्र।" 349

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भिक्खुनी उप्पलावन्ना मुझे जानती हैं," दुखी और निराश होकर वहीं विलीन हो गया।

---

167. काला
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी (नन) चाला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के चरणों में बैठ गई। 350 तब दुष्ट मारा (शैतान) भिक्षुणी चाला के पास आया और उससे बोला: "भिक्षुणी, तुम्हें क्या नापसंद है?"
[नन:] "मैं पुनर्जन्म को नापसंद करती हूँ, मित्र।"

[मारा:]
"तुम पुनर्जन्म को क्यों नापसंद करती हो? एक बार जन्म लेने पर, व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है।
तुम्हें किसने यह समझाया है; 'भिक्षुणी, पुनर्जन्म को नापसंद करो'?"

[भिक्षुणी चाला:]
537 "क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु होती है; एक बार जन्म लेने पर, व्यक्ति को व्यथाओं का सामना करना पड़ता है;
बंधन, हत्या, पीड़ा; इसलिए पुनर्जन्म को नापसंद करना चाहिए। 351

"बुद्ध ने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दिया है; पुनर्जन्म से मुक्ति;
समस्त दुखों का त्याग; उन्होंने मुझे सत्य में स्थिर कर दिया है।

"जो प्राणी साकार रूप में निवास करते हैं; और जो निराकार में विश्वास रखते हैं
, वे निरोध (निरोध) को न समझ पाने के कारण, पुनर्जन्म लेते हैं।" 352

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी चाला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं विलीन हो गया।

---

168. उपकला
श्रावस्ती में। फिर, सुबह, भिक्षुणी उपाकला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। तभी दुष्ट मारा भिक्षुणी उपाकला के पास आया और उससे बोला, "भिक्षुणी, तुम कहाँ पुनर्जन्म लेना चाहती हो?"
[भिक्षुणी:] "मैं कहीं भी पुनर्जन्म नहीं लेना चाहती, मित्र।"

[मारा:]
"तवतिंसा और यम देव हैं; और तुषिता स्वर्ग के देव हैं,
वे देव हैं जो सृष्टि में आनंद लेते हैं; और वे देव हैं जो नियंत्रण रखते हैं।
अपना मन वहीं [उन स्वर्गों की ओर] लगाओ; और तुम्हें आनंद का अनुभव होगा।" 353

[भिक्खुनी उपचल:]
"तवतिंसा और यम देव हैं; और तुषिता स्वर्ग के देवता हैं,
वे देव जो सृष्टि में आनंद लेते हैं; और वे देव जो नियंत्रण रखते हैं।
वे अभी भी कामुक बंधन से बंधे हैं; वे फिर से मार के वश में आ जाते हैं।

"सारा लोक अग्नि में जल रहा है; सारा लोक जल रहा है।
सारा लोक धधक रहा है; सारा लोक कांप रहा है।

"जो कांपता या जलता नहीं; जहाँ सांसारिक लोग नहीं जाते।
जहाँ मार का कोई स्थान नहीं है; वहीं मेरा मन प्रसन्न होता है।" 354

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भिक्खुनी उपचल मुझे जानती हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

169. सिसुपाकाला
सावत्थी में, सुबह-सुबह, भिक्षुणी शिशुपकला ने वस्त्र धारण किए... और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गईं। तभी दुष्ट मारा (शैतान) भिक्षुणी शिशुपकला के पास आया और उनसे बोला, "भिक्षुणी, तुम किस मत को मानती हो?"
[भिक्षुणी:] "मित्र, मैं किसी के मत को नहीं मानती।" [

मारा:]
"तुमने किसके अधीन अपना सिर मुंडवाया है? तुम एक तपस्वी प्रतीत होती हो।
फिर भी तुम किसी मत को नहीं मानती; तो फिर भ्रमित होकर क्यों भटक रही हो?" 355

[भिक्षुणी शिशुपकला:]
"यहाँ बाहर मतों के अनुयायी हैं; वे अपने विचारों पर भरोसा रखते हैं।
मैं उनकी शिक्षाओं को नहीं मानती; वे धर्म (मार्ग, नियम) में कुशल नहीं हैं। [134]

"पर शाक्य वंश में जन्मी एक है; वह प्रबुद्ध, अद्वितीय,
सर्वविजयी, मार का वध करने वाला; जो सर्वत्र अजेय है।

सर्वत्र मुक्त और अनासक्त; वह (दिव्य) दृष्टि वाला जो (ध्यान में) सभी (स्वर्ग, नरक आदि) को देखता है।
"सभी कर्मों के अंत तक पहुँच चुका; उपाधियों के निर्वाह में मुक्त (विमुक्त)।
वह भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं; उनकी शिक्षा मुझे स्वीकार्य है।" 356

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भिक्षुणी शिशुपाला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

170. सेला

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी सेला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के चरणों में बैठ गई। 357 तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी सेला के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और श्लोक में उससे कहा:

"इस कठपुतली को किसने बनाया है? कठपुतली का निर्माता कहाँ है?
कठपुतली कहाँ से उत्पन्न हुई है? कठपुतली का अंत कहाँ होता है?" 358

तब भिक्षुणी सेला के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक पढ़ने वाला कौन है - मनुष्य है या अमानव?" तब उन्हें यह बात समझ में आई: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं समाधि अवस्था से विमुख हो जाऊं।"
तब भिक्षुणी सेला ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"यह कठपुतली स्वयं नहीं बनी है; न ही यह दुख किसी और के कारण उत्पन्न हुआ है।
यह किसी कारण पर निर्भर है; कारण के विखंडन से इसका अंत हो जाएगा।

जैसे जब कोई बीज खेत में बोया जाता है; वह दो कारकों पर निर्भर होकर बढ़ता है:
उसे मिट्टी के पोषक तत्वों और नमी की निरंतर आपूर्ति दोनों की आवश्यकता होती है:

ठीक उसी प्रकार स्कंध और धातुएँ; और इंद्रियों के ये छह संपर्क क्षेत्र (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श)
किसी कारण पर निर्भर हैं; कारण के विखंडन से इनका अंत हो जाएगा।" 359

तब दुष्ट मारा को यह एहसास हुआ, "भिक्खुनी सेला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वह वहीं गायब हो गया।

---

171. वजिरा
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी वजिरा ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 360 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद [135] जब वह भिक्षा मांगने के बाद लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिन बिताने के लिए चली गई। अंधवन में प्रवेश करके वह दिन बिताने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।
तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी वजिरा के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा:

"इस प्राणी की रचना किसने की है? इस प्राणी का रचयिता कहाँ है? यह
प्राणी कहाँ उत्पन्न हुआ है? यह प्राणी कहाँ समाप्त होता है?"

तब भिक्षुणी वजिरा के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - कोई मनुष्य है या कोई अमानव?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न करने और मुझे समाधि अवस्था से विमुख करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है।" तब भिक्षुणी वजिरा ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"अब तुम 'एक प्राणी' क्यों मान रहे हो? मारा, क्या यही तुम्हारा काल्पनिक विचार है?
यह तो केवल कर्म-संस्कारों का ढेर है; यहाँ कोई प्राणी नहीं है।

जैसे भागों के समूह के लिए 'रथ' शब्द का प्रयोग किया जाता है।
वैसे ही जब समूह (खंड संस्कृत स्कंध) विद्यमान होते हैं, तो 'एक प्राणी' की परंपरा होती है।"

"केवल दुख ही आता है; दुख ही रहता है और चला जाता है।
दुख के सिवा कुछ नहीं आता; दुख के सिवा कुछ नहीं जाता।" 361

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी वजिरा मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

संयुत्त 6: ब्रह्मा/प्रधान देवदूतों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्रह्मसंयुत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (अनुरोध)
172. ब्रह्मा का निवेदन
इस प्रकार मैंने सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 362 एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरी चराने वाले के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, तो उनके मन में यह विचार आया: "यह धर्म (मार्ग, नियम) जिसे मैंने खोजा है, गहरा, देखना कठिन, समझना कठिन, शांत और उदात्त है, तर्क के दायरे से परे, सूक्ष्म, केवल बुद्धिमानों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। परन्तु यह पीढ़ी आसक्ति में आनंदित होती है, आसक्ति में प्रसन्न होती है, आसक्ति में आनंद लेती है। 363 ऐसी पीढ़ी के लिए यह अवस्था देखना कठिन है, अर्थात् विशिष्ट कारण, प्रतीत्यसमुत्पाद। और यह अवस्था भी देखना कठिन है, अर्थात् सभी संस्कारों का शांत होना, सभी उपलब्धियों का त्याग, तृष्णा का विनाश, वैराग्य, निरोध, निर्वाण। 364 यदि मैं धर्म का उपदेश दूं और यदि दूसरे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए कष्टदायक होगा, यह कष्टदायक होगा।"
तब भगवान (बुद्ध) के मन में ये विस्मयकारी श्लोक आए, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे: 365

"मैंने इतनी कठिनाई से जो पाया; अब उपदेश देने का प्रयास बंद करो;
कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) से पीड़ित लोगों को; यह धम्म आसानी से समझ में नहीं आ सकता;

धारा के विपरीत जाना; गहरा, देखना कठिन, सूक्ष्म;
कामवासना से प्रज्वलित, अंधकार से ढके हुए लोग; इस गंभीर विषय को कभी नहीं समझ पाएंगे।"

जब भगवान (बुद्ध) ने ऐसा सोचा, तो उनका मन आराम से जीवन जीने की ओर झुक गया, न कि धम्म का उपदेश देने की ओर। 366

तब ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जानकर सोचा: "हाय, संसार नष्ट हो गया!" हाय, संसार का नाश होना तय है, क्योंकि तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का मन आराम से जीवन जीने की ओर झुका हुआ है, न कि धम्म का उपदेश देने की ओर। 367 फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष शीघ्र ही अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठे, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) धम्म का उपदेश दें; सौभाग्यशाली (सुगतो) धम्म का उपदेश दें। ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी कम है और वे धम्म न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं।" "कुछ लोग धम्म को समझेंगे।"

यह ब्रह्म सहमपति ने कहा। इसके बाद उन्होंने
आगे कहा,

"अतीत में मगधियों के बीच यह प्रकट हुआ। निर्वाण के द्वार खोल दो! उन्हें सुनने दो।"
एक अपवित्र धम्म (मार्ग, नियम) प्रकट हुआ, जिसे अभी भी दूषित लोगों ने गढ़ा था।"

वह धम्म जिसे निष्कलंक ने खोजा। 368

"जैसे कोई पर्वत शिखर पर खड़ा होकर
नीचे चारों ओर के लोगों को देख सकता है।
धम्म से बने महल पर चढ़ो।
वैसे ही, हे ज्ञानी, सर्वव्यापी दृष्टि से, स्वयं दुःख से मुक्त होकर, दुःख में डूबे हुए, पुनर्जन्म और क्षय से पीड़ित
लोगों को देखो । उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी! हे कारवां के नेता, ऋणमुक्त, संसार में विचरण करो। " हे भगवान (बुद्ध), धर्म का उपदेश दीजिए: कुछ लोग इसे समझेंगे। 369 तब भगवान (बुद्ध) ने ब्रह्मा के अनुरोध को समझकर, प्राणियों पर दया करते हुए, बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। 370 ऐसा करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में बहुत धूल थी, कुछ तेज बुद्धि वाले थे और कुछ सुस्त बुद्धि वाले, कुछ अच्छे गुण वाले और कुछ बुरे गुण वाले, कुछ आसानी से सीखने वाले और कुछ कठिन सीखने वाले, और कुछ ऐसे प्राणी जो परलोक में निंदा और भय देखते हुए निवास करते थे। 371 जैसे

नीले, लाल या सफेद कमलों के तालाब में, कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी में डूबे रहते हुए फलते-फूलते हैं, बिना पानी से ऊपर उठे; कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी के साथ समतल रहते हैं; कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं और पानी में बढ़ते हैं, लेकिन पानी से ऊपर उठकर बिना मैल लगे खड़े रहते हैं। जल - उसी प्रकार, बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक धूल थी, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन सीखने वाले, और कुछ ऐसे जो परलोक में निंदा और भय देखते हुए निवास करते थे। यह देखकर उन्होंने ब्रह्मा सहमपति को श्लोक में उत्तर दिया: "उनके लिए अमरता (निर्वाण) के द्वार खुले हैं; जिनके कान हैं वे विश्वास का त्याग करें। संकट को भांपते हुए, मैंने मनुष्यों के बीच परिष्कृत, उदात्त धम्म का उपदेश नहीं दिया, हे ब्रह्मा।" तब ब्रह्मा सहमपति ने यह सोचकर कि "भगवान (बुद्ध) ने धम्म (मार्ग, नियम) के उपदेश के संबंध में [मेरी प्रार्थना पर] अपनी सहमति दे दी है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और वहीं अंतर्धान हो गए। 372

---

173. श्रद्धा

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 373 एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "यदि कोई आदरहीन है तो वह दुख में रहता है। अब मैं किस तपस्वी या ब्राह्मण का आदर और सम्मान करूँ और उस पर निर्भर रहूँ?"

तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया: "शील गुणों के एक अपूर्ण समूह (खंड संस्कृत: स्कंध) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करना चाहूंगा। परन्तु इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, मुझे अपने से अधिक गुणों से परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता, जिसका मैं आदर, सम्मान कर सकूं और जिस पर आश्रित होकर निवास कर सकूं।

समाधि अवस्था के एक अपूर्ण समूह को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करना चाहूंगा। परन्तु... मुझे अपने से अधिक समाधि अवस्था में परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता।..."

"अपूर्ण ज्ञान-प्राप्ति (पन्ना) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उन पर आश्रित होकर निवास करूंगा। हालांकि... मुझे ज्ञान-प्राप्ति (पन्ना) में मुझसे अधिक परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं दिखता...

" "अपूर्ण मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उन पर आश्रित होकर निवास करूंगा।" हालांकि... मुझे अपने से अधिक पूर्ण रूप से मुक्त कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता...

"मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की अपूर्णता को पूरा करने के लिए ही मैं किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहूँगा। हालांकि... मुझे अपने से अधिक पूर्ण रूप से मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि वाला कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता, जिसका मैं आदर और सम्मान कर सकूँ और जिस पर मैं निर्भर रह सकूँ। 374

"तो फिर मैं इसी धर्म (मार्ग, नियम) का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहूँगा, जिसके प्रति मैं पूर्ण रूप से जागृत हो चुका हूँ।"

फिर, भगवान (बुद्ध) के मन में चल रहे विचार को स्वयं अपने मन से जानकर, जिस शीघ्रता से एक बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, उसी शीघ्रता से ब्रह्मा सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए अपने हाथ उठाए और उनसे कहा: "ऐसा ही है, हे भगवान! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, अतीत में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हुए, वे भी भगवान (बुद्ध) केवल धम्म का आदर करते थे, उसका सम्मान करते थे और उसी पर निर्भर रहते थे। भविष्य में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे, वे भी भगवान (बुद्ध) केवल धम्म का आदर करेंगे, उसका सम्मान करेंगे और उसी पर निर्भर रहेंगे। वर्तमान में जो भगवान (बुद्ध) अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, वे भी केवल धम्म का आदर करें, उसका आदर करें और उसी पर निर्भर रहें।" ये ब्रह्म सहमपति के वचन हैं। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"अतीत के बुद्ध; भविष्य के बुद्ध,
और जो वर्तमान में बुद्ध हैं; अनेकों के दुःखों को दूर करते हुए -

सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) का गहन आदर करते हुए; सभी
बुद्धों के लिए निवास कर चुके हैं, निवास करेंगे; और निवास करते हैं; यह एक प्राकृतिक नियम है।

इसलिए जो अपना भला चाहता है; आध्यात्मिक महानता की आकांक्षा रखता है, उसे
सच्चे धम्म का गहन आदर करना चाहिए; बुद्धों की शिक्षाओं का स्मरण करना चाहिए।" 375

---

174. ब्रह्मदेव

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक ब्राह्मण स्त्री का पुत्र ब्रह्मदेव था, जिसने गृहस्थ जीवन छोड़कर भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में संन्यासी जीवन व्यतीत किया था।

तब एकांत में निवास करते हुए, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी, पूज्य ब्रह्मदेव ने स्वयं इस ज्ञान को प्राप्त कर, दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।" और पूज्य ब्रह्मदेव अरहंतों में से एक बन गए। 376

फिर, सुबह, पूज्य ब्रह्मदेव ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में निरंतर भिक्षा मांगते हुए वे अपनी माता के निवास पर पहुँचे। 377 उस समय ब्राह्मण स्त्री, पूज्य ब्रह्मदेव की माता, ब्रह्मा को निरंतर भिक्षा दे रही थीं। 378 तब ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति के मन में यह विचार आया:
"यह ब्राह्मण स्त्री, पूज्य ब्रह्मदेव की माता, ब्रह्मा को निरंतर भिक्षा दे रही हैं। मुझे उनके पास जाकर उन्हें भिक्षा देने के लिए प्रेरित करना चाहिए।" फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, वैसे ही ब्रह्मा सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और पूज्य ब्रह्मदेव की माता के निवास में पुनः प्रकट हुए। तब, वायु में खड़े होकर, ब्रह्मा सहमपति ने ब्राह्मण स्त्री को श्लोकों में संबोधित किया:

"हे ब्राह्मणी, यहाँ से दूर ब्रह्मलोक है;
जहाँ आप निरंतर आहुति (भोजन) अर्पित करती हैं। हे
देवी, ब्रह्मा ऐसा भोजन नहीं खाते;
तो ब्रह्मा के मार्ग को न जानते हुए क्यों बड़बड़ा रही हैं? 379

"हे ब्राह्मणी, यह ब्रह्मादेव,
बिना किसी प्राप्ति (उपाधि) के, देवताओं (देवदूतों) से भी श्रेष्ठ हैं।
उनके पास कुछ नहीं है, वे किसी और का पोषण नहीं करते।
यह भिक्षु (साधु) भिक्षा मांगने आपके घर आया है।" 380

"दान के योग्य, ज्ञान के स्वामी, अंतर्मुखी,
वे मनुष्यों और देवताओं से दान के पात्र हैं।
समस्त बुराई को त्यागकर, वे निर्मल हैं।
शांत हृदय से वे भिक्षा मांगने आते हैं।

उनके लिए न कुछ पीछे है न आगे।
शांत, निर्मल, अविचलित, इच्छाहीन;
उन्होंने निर्बल और दृढ़ दोनों के प्रति दंड नहीं रखा है;
उन्हें अपना दान (भोजन) ग्रहण करने दें, जो सर्वोत्तम भिक्षा है। 381

"भीड़ से अलग, शांत मन से।
वे नाग के समान, शांत, अविचलित रहते हैं।

शुद्ध गुणों वाले भिक्षु।" मन में अच्छी तरह से मुक्त (विमुत्त सं. विमुक्त);
उसे अपना दान (भोजन) खिलाओ, जो उत्तम दान है। 382

"उन पर विश्वास रखते हुए, बिना किसी संदेह के,
अपनी भेंट उस योग्य व्यक्ति को अर्पित करो।
भविष्य के सुख की ओर ले जाने वाला पुण्य अर्जित करो।"
हे ब्राह्मणी, बाढ़ पार कर चुके ऋषि के दर्शन करके, उन्होंने

उन पर विश्वास रखते हुए, बिना किसी संदेह के,
अपनी भेंट उस योग्य व्यक्ति को अर्पित की।
बाढ़ पार कर चुके ऋषि के दर्शन करके,
उस स्त्री ने भविष्य के सुख की ओर ले जाने वाला पुण्य अर्जित किया। 384

---

175. ब्रह्मा बका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 385 एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) बका के मन में यह दुष्ट विचार उत्पन्न हुआ: "यह स्थायी है, यह स्थिर है, यह शाश्वत है, यह पूर्ण है, यह अविनाशी है। वास्तव में, यह वह स्थान है जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न नष्ट होता है और न पुनर्जन्म लेता है; और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।" 386

तब, ब्रह्मा बका के मन में उठे विचार को स्वयं जानकर, जिस शीघ्रता से एक बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन हो गए और उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। ब्रह्मा बका ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और उनसे कहा, "आह! आपका स्वागत है! बहुत समय हो गया है जब आपने यहाँ आने का अवसर लिया। वास्तव में, यह स्थायी है, यह स्थिर है, यह शाश्वत है, यह पूर्ण है, यह अविनाशी है। वास्तव में, यह वह स्थान है जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न नष्ट होता है और न ही पुनर्जन्म लेता है; और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने ब्रह्मा बक से कहा,
“हे भगवान, ब्रह्मा बक अज्ञान में डूबे हुए हैं! हे भगवान, ब्रह्मा बक अज्ञान में डूबे हुए हैं, क्योंकि वे वास्तव में अनित्य को स्थायी कहते हैं; वास्तव में अस्थिर को स्थिर कहते हैं; वास्तव में अशाब्दिक को शाश्वत कहते हैं; वास्तव में अपूर्ण को पूर्ण कहते हैं; वास्तव में नाशवान को अविनाशी कहते हैं; और उस लोक के संदर्भ में जहाँ जन्म होता है, वृद्ध होते हैं, मरते हैं, देह त्यागते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, वे कहते हैं: 'यद्यपि, यह वह स्थान है जहाँ जन्म नहीं होता, वृद्ध नहीं होते, मरते नहीं, देह त्यागते नहीं और पुनर्जन्म नहीं लेते'; और जब इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा मार्ग होता है, तो वे कहते हैं, 'इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा मार्ग नहीं है।'”

[ब्रह्मा बक:]
“हम बहत्तर, गौतम, थे हे दिव्य पुण्य-निर्माता;
अब हम पुनर्जन्म और वृद्धावस्था से परे शक्ति धारण करते हैं।
हे ज्ञान के स्वामी, यही ब्रह्म की हमारी अंतिम प्राप्ति है।
अनेक लोग हमारे लिए तरसते हैं। 387

[भगवान (बुद्ध):]
"यहाँ जीवन काल अल्प है, दीर्घ नहीं।
यद्यपि हे बका, तुम इसे दीर्घ समझते हो।
हे ब्रह्मा, मैं जानता हूँ कि तुम्हारा जीवन काल
एक लाख निरब्बुद है।" 388

[ब्रह्म बका:]
"हे भगवान (बुद्ध), [आप कहते हैं]: 'मैं अनंत दृष्टि वाला हूँ'
जिसने पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और दुःख पर विजय प्राप्त की है,

मेरी प्राचीन व्रत और शील साधना क्या थी?
मुझे यह बताइए ताकि मैं समझ सकूँ।" 389

[भगवान (बुद्ध):]
"आपने बहुतों को पानी पिलाया;
जो प्यासे थे, गर्मी से पीड़ित थे;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्‌गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ। 390

"जब एंटेलोप बैंक में लोगों का अपहरण किया गया, तो
आपने ले जाए जा रहे बंदियों को (मोक्ष में) मुक्त कराया।
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्‌गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ।

"जब गंगा नदी में
एक भयंकर नाग ने मानव मांस की लालसा में एक जहाज को पकड़ लिया,
तो आपने एक वीरतापूर्ण कार्य द्वारा उसे बलपूर्वक मुक्त कराया;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्‌गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ। [144]

"मैं आपका शिष्य था जिसका नाम कप्पा था;
आपने उसे बुद्धिमान और धर्मनिष्ठ समझा;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्‌गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ।" 391

[ब्रह्म बका:]
"निश्चित रूप से आप मेरी इस जीवन अवधि को जानते हैं;
आप दूसरों को भी जानते हैं, इसलिए आप बुद्ध हैं।
इस प्रकार आपकी यह तेजस्वी महिमा
ब्रह्म जगत को भी प्रकाशित करती है।"

---

176. एक निश्चित ब्रह्मा (अन्नतारब्रह्म)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के मन में यह दुष्ट विचार उत्पन्न हुआ: "यहाँ कोई तपस्वी या ब्राह्मण नहीं आ सकता।" तब, ब्रह्मा के मन में उठे इस विचार को स्वयं जानकर, जिस शीघ्रता से कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। भगवान (बुद्ध) उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पालथी मारकर बैठे थे और अग्नि तत्व (धातु) का ध्यान कर रहे थे। 392

तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" परम पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से पूज्य महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पालथी मारकर बैठे हुए और अग्नि तत्व का ध्यान करते हुए देखा। यह देखकर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को शीघ्रता से फैलाता या समेटता है, पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महामोग्गलाना पूर्वी दिशा में विलीन हो गए और भगवान (बुद्ध) से नीचे, ब्रह्मलोक के ऊपर पांव बैठे रहे।

तब पूज्य महाकस्सपा के मन में यह प्रश्न आया: "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य दृष्टि से पूज्य महाकस्सपा ने भगवान (बुद्ध) को ब्रह्मलोक के ऊपर पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य महाकस्सपा जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महाकप्पिन दक्षिण दिशा में विराजमान होकर ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य महाकप्पिन के मन में यह विचार आया, "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य दृष्टि से पूज्य महाकप्पिन ने भगवान (बुद्ध) को ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य महाकप्पिन जेतवन से अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। तब पूज्य महाकप्पिन पश्चिम दिशा में विराजमान होकर ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य अनुराधा के मन में यह विचार आया: “भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?” दिव्य दृष्टि से पूज्य अनुराधा ने भगवान (बुद्ध) को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य अनुराधा जेतवन से अंतर्धान हो गए और उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। तब पूज्य अनुराधा उत्तर दिशा में विराजमान हुए और उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य महामोग्गलाना ने उस ब्रह्मा को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

“हे मित्र, क्या आज भी तुम्हारा वही मत है; जो तुम्हारा पहले था?
क्या तुम्हें वह तेज दिखाई देता है; जो ब्रह्मलोक के तेज से भी बढ़कर है?” 393

“हे महोदय, अब मैं वह मत नहीं रखता; वह मत जो मैं पहले रखता था।
वास्तव में, मैं वह तेज देखता हूँ; जो ब्रह्मलोक के तेज से भी बढ़कर है।
आज मैं कैसे कह सकता हूँ कि ‘मैं शाश्वत और अमर हूँ’?” 394

तब, उस ब्रह्मा में एक अत्यावश्यकता का भाव उत्पन्न करके, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को समेट लेता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) उस ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और जेतवन में पुनः प्रकट हुए।

तब उस ब्रह्मा ने अपनी सभा के एक सदस्य से इस प्रकार कहा: “हे महोदय, आइए, पूज्य महामोग्गलाना के पास जाइए और उनसे कहिए: ‘श्री मोग्गलाना, क्या भगवान (बुद्ध) के कोई अन्य शिष्य हैं जो गुरु मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिना और अनुरुद्ध के समान शक्तिशाली और बलवान हैं?’”

“जी हाँ, महोदय,” ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने उत्तर दिया। तब वह पूज्य महामोग्गलाना के पास गए और उनसे पूछा: "हे मोग्गलाना, क्या भगवान (बुद्ध) के कोई अन्य शिष्य हैं जो गुरु मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिना और अनुराधा के समान शक्तिशाली और बलवान हों?"

तब पूज्य महामोग्गलाना ने ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

"त्रिपज्ञान धारण करने वाले, आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) से युक्त; दूसरों के मन को जानने में निपुण।" 395
बुद्ध के अनेक शिष्य हैं; जो अरहंत हैं और जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

तब ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने पूज्य महामोग्गलाना के कथन से प्रसन्न होकर ब्रह्मा के पास जाकर कहा: "प्रिय महोदय, पूज्य महामोग्गलाना कहते हैं:

'त्रिपज्ञान धारण करने वाले... जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।'

ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने यही कहा। ब्रह्मा उनके कथन से प्रसन्न हुए।

---

177. ब्रह्मलोक
(आलस्य पर)

श्रावस्ती के दिन। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। 396 तब स्वतंत्र ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सुब्रह्म ने स्वतंत्र ब्रह्मा शुद्धवास से कहा,
“हे प्रभु, भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने का यह उचित समय नहीं है। भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए हैं और एकांतवास में हैं। फलाँ ब्रह्मा लोक समृद्ध और खुशहाल है, और वहाँ का ब्रह्मा आलसी है। आइए, हे प्रभु, हम उस ब्रह्मा लोक में चलें और उस ब्रह्मा में आलस्य की भावना जगाएँ।”
“जी, हे प्रभु,” स्वतंत्र ब्रह्मा शुद्धवास ने उत्तर दिया।

फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को जल्दी से अंदर खींच लेता है या फिर उसी गति से स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के सामने से गायब हो गए और उस ब्रह्मलोक में फिर से प्रकट हो गए। ब्रह्मा ने उन ब्रह्माओं को दूर से आते देखा और उनसे कहा, "हे प्रभु, आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे प्रभु, हम भगवान (बुद्ध), जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, के सान्निध्य से आए हैं। हे प्रभु, आपको उस भगवान (बुद्ध), जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, की सेवा में जाना चाहिए।"

यह सुनकर ब्रह्मा ने उनकी सलाह मानने से इनकार कर दिया। अपने हजार रूपों का सृजन करके उन्होंने स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म से कहा, "हे प्रभु, क्या आप देख रहे हैं कि मुझमें कितनी शक्ति और सामर्थ्य है?"
[सुब्रह्मः] "मैं देख रहा हूँ, हे प्रभु, कि आपमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य है।"
[ब्रह्मा] "परन्तु, हे प्रभु, जब मैं इतना शक्तिशाली और बलवान हूँ, तो मुझे किस अन्य तपस्वी या ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए?"

तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म ने अपने दो हजार रूप बदलकर उस ब्रह्मा से कहा, "हे प्रभु, क्या आप देख रहे हैं कि मुझमें कितनी शक्ति और सामर्थ्य है?"
[ब्रह्मा] "मैं देख रहा हूँ, हे प्रभु, कि आपमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य है।"
[सुब्रह्मा] "हे प्रभु, वह भगवान (बुद्ध) आप और मुझसे भी अधिक शक्तिशाली और बलवान हैं। हे प्रभु, आपको उस भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध की सेवा करनी चाहिए।"
तब उस ब्रह्मा ने स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"तीन सौ सुपन्न, चार सौ हंस
और पाँच सौ बाज़:
हे ब्रह्मा, ध्यान करने वाले का यह महल
उत्तर दिशा को प्रकाशित करते हुए चमक रहा है।" 397

[स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्मः]
"यद्यपि तुम्हारा वह महल
उत्तर दिशा को प्रकाशित करते हुए चमकता है,
रूप की खामी, उसके निरंतर कंपन को देखकर,
ज्ञानी रूप में आनंद नहीं लेता है।" "398

फिर स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और सुधावास,
ब्रह्मा ने उस व्यक्ति में एक अत्यावश्यकता का भाव उत्पन्न कर दिया और
वे वहीं से गायब हो गए। और बाद में एक अवसर पर ब्रह्मा
भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः
प्रबुद्ध व्यक्ति की सेवा करने गए।

---

178. कोकालिका (1)

श्रावस्ती में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। तब, भिक्षु कोकालिका का उल्लेख करते हुए, स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 399

"यहाँ कौन बुद्धिमान व्यक्ति किसी असीम को मापकर परिभाषित करने का प्रयास करेगा?
जो किसी असीम को मापेगा, वह मेरे विचार से एक अवरुद्ध सांसारिक व्यक्ति होगा।" 400

---

179. कटामोडाकतिस्साका
सावत्थी में.... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... फिर, भिक्षु (भिक्षु) कटामोदकतिस्साका का उल्लेख करते हुए, स्वतंत्र ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सुद्धवास ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 401

"यहाँ कौन सा बुद्धिमान व्यक्ति किसी असीम को उसके माप से परिभाषित करने का प्रयास करेगा?
जो किसी असीम को मापेगा, वह मेरे विचार से एक अवरुद्ध मूर्ख होगा।"

---

180. तुरु ब्रह्मा
श्रावस्ती में। उस अवसर पर भिक्षु कोकालिका (जिन्होंने प्रमुख शिष्यों के विरुद्ध विद्रोह किया था) बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर, स्वतंत्र ब्रह्मा तुरु, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भिक्षु कोकालिका के पास आए। 402 पास आकर, वे हवा में खड़े हो गए और भिक्षु कोकालिका से बोले: "कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना सुसंस्कृत हैं।"
[कोकालिका:]
"आप कौन हैं, मित्र?"
[तुरु ब्रह्मा]:
"मैं स्वतंत्र ब्रह्मा तुडु हूँ।"
[कोकालिका:]
"क्या भगवान (बुद्ध) ने आपको पुनर्जन्म रहित घोषित नहीं किया था,
मित्र? तो फिर आप यहाँ वापस क्यों आए हैं? देखो तुमने कितना
पाप किया है।" 403

[ब्रह्म तुदु:]
"जब कोई व्यक्ति जन्म लेता है, तो उसके मुख में कुल्हाड़ी जन्म लेती है,
जिससे वह बचकाना (नासमझ) निंदात्मक वाणी बोलकर स्वयं को काटता है।

जो निंदा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है;
या प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है, वह
अपने मुख से अशुभ संकेत फेंकता है,
जिससे उसे सुख नहीं मिलता।" 404 "हास- प्यास में धन की हानि लाने वाला

अशुभ संकेत तुच्छ है , स्वयं सहित सब कुछ खो देता है; इससे कहीं बुरा है शुभ (सुगतो) के प्रति द्वेष रखने का अशुभ संकेत।" 405
"एक लाख निरब्बुदों और छत्तीस अन्य, और पाँच अब्बुदों के लिए, श्रेष्ठों की निंदा करने वाला नरक में जाता है, क्योंकि उसने उनके विरुद्ध बुरी वाणी और मन रखा है।" 406

---

181. कोकालिका (2)

श्रावस्ती, 407 को तब भिक्षु कोकालिका भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे पूज्यवर, सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।” यह सुनकर भगवान बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका से कहा, “कोकालिका, ऐसा मत कहो! कोकालिका, ऐसा मत कहो! सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे स्वभाव के हैं।”

दूसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा,

“हे पूज्यवर, यद्यपि मुझे भगवान बुद्ध पर विश्वास और भरोसा है, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।” फिर दूसरी बार भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से कहा, "कोकालिका, ऐसे मत बोलो!... सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"

तीसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"आदरणीय महोदय, यद्यपि भगवान (बुद्ध) पर मेरा विश्वास और भरोसा है, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।" फिर तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से कहा, "कोकालिका, ऐसे मत बोलो!... सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"

तब भिक्षु कोकालिका अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए। भिक्षु कोकालिका के जाने के कुछ ही समय बाद, उनका पूरा शरीर सरसों के दाने के आकार के फोड़ों से भर गया। फिर ये मूंग के आकार के हो गए; फिर वे चने के आकार के हो गए; फिर बेर की गुठलियों के आकार के; फिर बेर के फलों के आकार के; फिर मायरोबलन के आकार के; फिर कच्चे बेलुव फलों के आकार के; फिर पके बेलुव फलों के आकार के। जब वे पके बेलुव फलों के आकार के हो गए, तो वे फट गए और उनमें से मवाद और रक्त निकलने लगा। फिर, उस बीमारी के कारण भिक्षु कोकालिका की मृत्यु हो गई, और सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखने के कारण, उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पद्मा नरक में हुआ। 408

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा सहमपति, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हे आदरणीय, भिक्षु कोकालिका का निधन हो गया है, और सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखने के कारण, मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पद्मा नरक में हुआ है।" ब्रह्मा सहमपति ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात आगे बढ़ गई, तो ब्रह्मा सहमपति मेरे पास आए और मुझसे कहा: ... (जैसा ऊपर) ... यह कहकर उन्होंने मुझे प्रणाम किया और मुझे अपने दाहिनी ओर रखते हुए, वह वहीं से गायब हो गया।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,

“हे पूज्यवर, पद्मासन में जीवन काल कितना होता है?”

[बुद्ध:] "भिक्षु, पद्म नरक में जीवन काल लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।"

[भिक्षु:] "तो क्या इसकी तुलना किसी उपमा से की जा सकती है, आदरणीय गुरुदेव?" [152]

[बुद्ध:] "यह संभव है, भिक्षु। मान लीजिए, भिक्षु, तिल के बीजों से भरी एक कोसल गाड़ी में बीस माप तिल हों। हर सौ साल के अंत में एक व्यक्ति उसमें से एक बीज निकाल ले। इस प्रयास से तिल के बीजों से भरी वह कोसल गाड़ी एक अब्बुद नरक से भी अधिक तेज़ी से समाप्त हो सकती है। बीस अब्बुद नरक एक निरब्बुद नरक के बराबर हैं; बीस निरब्बुद नरक एक अब्बा नरक के बराबर हैं; बीस अब्बा नरक एक अतात नरक के बराबर हैं; बीस अतात नरक एक अहाहा नरक के बराबर हैं; बीस अहाहा नरक एक कुमुद नरक के बराबर हैं; बीस कुमुद नरक एक सोगंधिका नरक के बराबर हैं; बीस सोगंधिका नरक एक उप्पला नरक के बराबर हैं; बीस उप्पला नरक एक पुंडरीका नरक के बराबर हैं; और बीस पुंडरीका नरक एक पद्म नरक के बराबर हैं। अब, भिक्षु, भिक्षु कोकालिका का पद्मा नरक में पुनर्जन्म हुआ है क्योंकि उन्होंने सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखा था।" 409

यह भगवान (बुद्ध) ने कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जब कोई व्यक्ति जन्म लेता है, तो उसके मुंह में एक कुल्हाड़ी जन्म लेती है
जिससे वह बचकाना (नासमझ) निंदात्मक वाणी बोलते हुए स्वयं को काटता है।

जो निंदा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है;
या प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। "
अपने मुख से अशुभ चाल चलता है
जिससे उसे सुख नहीं मिलता। 404

"हास-
प्यास में धन की हानि लाने वाली अशुभ चाल तुच्छ है,
स्वयं सहित सब कुछ खो देती है;
इससे भी कहीं बुरा है
शुभ व्यक्ति (सुगातो) के प्रति द्वेष रखने की अशुभ चाल।" 405

"एक लाख निरब्बुदों
और छत्तीस और पाँच अब्बुदों के लिए,
श्रेष्ठों का अपमान करने वाला नरक में जाता है।
उनके विरुद्ध बुरी वाणी और मन रखने के कारण।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय (ब्रह्म पंचक)
182. सननकुमार
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सप्पिनी नदी के किनारे राजगृह में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सनंकुमार, जो सप्पिनी नदी के पूरे किनारे को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। 410 एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"क्षुद्र लोगों में श्रेष्ठ है; जिनका चिन्ह कुल है।
परन्तु ज्ञान और आचरण में सिद्ध पुरुष ही देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।"

ब्रह्मा सनंकुमार ने यही कहा। गुरु ने इसे स्वीकार किया। तब ब्रह्मा सनंकुमार ने यह सोचकर कि "गुरु ने मुझे स्वीकार कर लिया है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

---

183. देवदत्त
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार, देवदत्त के चले जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। 411 तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति, जो पूरे गिद्ध शिखर को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, देवदत्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे अपना फल ही विनाश लाता है; केले, बांस और सरकंडे का,
वैसे ही सम्मान बुरे व्यक्ति का नाश करता है; जैसे उसका भ्रूण खच्चर का नाश करता है।" 412

---

184. अंधकविंदा
एक बार भगवान (बुद्ध) अंधकविन्द में मगधियों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। जब रात काफी गहरी हो गई, तो ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े:

“एकांतवास में शरण लेनी चाहिए।

बंधनों से मुक्ति (मोक्ष) के लिए साधना करनी चाहिए।
लेकिन यदि वहां आनंद (नंदी आनंद) न मिले, तो
सतर्क और ध्यानमग्न होकर संघ में निवास करना चाहिए। 413

“परिवार-परिवार भिक्षा मांगते हुए, अपनी इंद्रियों को
सँभाल कर, विवेकपूर्ण और ध्यानमग्न होकर
एकांतवास में शरण लेनी चाहिए। ”
भय से मुक्त, निर्भयता में मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त)। 414

"जहाँ भयानक सर्प रेंगते हैं।
जहाँ बिजली चमकती है और आकाश गरजता है।
रात के घने अंधेरे में
एक भिक्षु निर्भय बैठा है। 415

"क्योंकि यह मैंने स्वयं देखा है; यह केवल सुनी-सुनाई बात नहीं है:
एक ही ब्रह्मचर्य जीवन में; एक हजार [अरिहंतों] ने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है। 416

"पाँच सौ और प्रशिक्षु हैं; और दस गुना दस गुना दस:
सभी [निर्वाण की धारा] में प्रवेश कर चुके हैं; कभी पशुलोक में पुनर्जन्म नहीं लेते।

"जहाँ तक शेष लोगों का सवाल है; जो, मेरी दृष्टि में, दिव्य पुण्य के भागीदार हैं,
मैं उन्हें गिन भी नहीं सकता; झूठ बोलने के डर से।" 417

---

185. अरुणावती

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक समय पहले अरुणावा नाम का एक राजा था जिसकी राजधानी का नाम अरुणावती था। भगवान (बुद्ध) सिखी, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, राजधानी अरुणावती में निवास करते थे। 418 भगवान (बुद्ध) सिखी के दो प्रमुख शिष्य अभिभू और संभव थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे।
तब भगवान (बुद्ध) सिखी ने भिक्षु अभिभू से कहा: 'आओ, ब्राह्मण, हम भोजन के समय तक किसी ब्रह्मलोक में चलें।' -'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया।
"फिर, भिक्षुओं, जिस प्रकार एक बलवान पुरुष शीघ्र ही अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी प्रकार भगवान (बुद्ध) सिखि, जो पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत हैं, और भिक्षु अभिभू राजधानी अरुणावती से लुप्त होकर ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए।

तब भगवान (बुद्ध) सिखि ने भिक्षु अभिभू को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे ब्राह्मण, ब्रह्मा और उनके अनुयायियों तथा उनकी सभा को धर्म प्रवचन दो।' - 'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। तब उन्होंने धर्म प्रवचन के माध्यम से ब्रह्मा और उनके अनुयायियों तथा उनकी सभा को शिक्षा दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया।" तब ब्रह्मा, उनके अनुयायियों और उनकी सभा ने इस पर आपत्ति जताई, शिकायत की और कहा: 'हे प्रभु, यह तो वास्तव में आश्चर्यजनक है! यह तो वास्तव में विस्मयकारी है! एक शिष्य गुरु की उपस्थिति में धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश कैसे दे सकता है?'

तब, हे भिक्षुओं, भगवान (बुद्ध) सिख ने भिक्षु अभिभू को इस प्रकार संबोधित किया: 'ब्राह्मण, ब्रह्मा, उनके अनुयायी और उनकी सभा इस पर खेद व्यक्त करते हुए कहते हैं, "हे प्रभु, यह तो वास्तव में आश्चर्यजनक है! यह तो वास्तव में विस्मयकारी है! एक शिष्य गुरु की उपस्थिति में धम्म का उपदेश कैसे दे सकता है?" तो हे ब्राह्मण, ब्रह्मा, उनके अनुयायियों और उनकी सभा में और भी अधिक तत्परता की भावना जगाइए।' - 'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने अपने शरीर को दृश्य रूप में, अदृश्य रूप में, शरीर के निचले भाग को दृश्य और ऊपरी भाग को अदृश्य रूप में, और शरीर के ऊपरी भाग को दृश्य और निचले भाग को अदृश्य रूप में धर्म का

उपदेश दिया। 419 इस पर भिक्षु, ब्रह्मा, ब्रह्मा के अनुयायी और ब्रह्मा की सभा आश्चर्यचकित और विस्मयचकित हो गए और कहने लगे: 'यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! तपस्वी के पास इतनी महान शक्ति और सामर्थ्य कैसे है!'

तब, हे भिक्षुओं, भिक्षु अभिभू ने पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत बुद्ध सिखि से कहा: 'हे पूज्यवर, मुझे याद है कि मैंने भिक्षु संघ के बीच ऐसा कहा था: "मित्रों, ब्रह्मलोक में खड़े होकर मैं अपनी वाणी को हजारों संसारों में सुना सकता हूँ।"' - 'अब समय आ गया है, हे ब्राह्मण!
अब समय आ गया है, हे ब्राह्मण! ब्रह्मलोक में खड़े होकर तुम्हें अपनी वाणी को हजारों संसारों में सुनाना चाहिए।' - 'जी, हे पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। तब, ब्रह्मलोक में खड़े होकर उन्होंने इन श्लोकों का पाठ किया: 420

"'अपनी ऊर्जा (वीर्य) को जगाओ, प्रयास करो! बुद्ध के उपदेशों में स्वयं को लगाओ।
मृत्यु की सेना को नष्ट करो; जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को नष्ट कर देता है।'"

"इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में, जो सचेत (अप्पमदा) रहता है, वह
जन्म-जन्म के भटकने का त्याग करके दुखों का अंत करेगा।"

"फिर, भिक्षुओं, ब्रह्मा और ब्रह्मा के अनुयायियों और ब्रह्मा की सभा में तत्परता की भावना उत्पन्न करके, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) सिखि, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, और भिक्षु अभिभू उस ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और राजधानी अरुणावती में पुनः प्रकट हुए। तब भगवान (बुद्ध) सिखि ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'भिक्षुओं, क्या आपने वे श्लोक सुने जो भिक्षु अभिभू ने ब्रह्मलोक में खड़े होकर पढ़े थे?' - 'जी, जी हाँ।' - 'भिक्षुओं, आपने कौन से श्लोक सुने?'" - 'हमने भिक्षु अभिभू के ये श्लोक सुने:

"अपनी ऊर्जा (वीर्य) को जगाओ, प्रयास करो! बुद्ध की शिक्षा में लग जाओ।
मृत्यु की सेना को ऐसे ही नष्ट कर दो जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को उखाड़ फेंकता है।

इस धर्म और अनुशासन में, जो सचेत रहता है, वह
जन्म-जन्म के भटकने का त्याग करके दुखों का अंत करेगा।"

ये वे श्लोक थे जो हमने भिक्षु अभिभू को ब्रह्मलोक में खड़े होकर सुनाते हुए सुना।' [बुद्ध सिख धर्म:] 'अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आपने भिक्षु अभिभू के वे श्लोक सुने जो उन्होंने ब्रह्मलोक में खड़े होकर सुनाए।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर, वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

---

186. अंतिम निब्बान (परिनिब्बाना)
एक बार भगवान (बुद्ध) अपने अंतिम निर्वाण के अवसर पर मल्लियों के साल के उपवन (सलवाना) उपवत्तना में कुसिनारा में दो साल के वृक्षों के बीच निवास कर रहे थे। 421 तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "अब मैं आप भिक्षुओं को संबोधित करता हूँ: संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अवश्य ही नष्ट हो जाएँगे। सजगता (अप्पमदा) द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करो।" यह तथागत का अंतिम वचन था।

तब भगवान (बुद्ध) ने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। प्रथम ध्यान से निकलकर उन्होंने द्वितीय ध्यान प्राप्त किया। द्वितीय ध्यान से निकलकर उन्होंने तृतीय ध्यान प्राप्त किया। तृतीय ध्यान से निकलकर उन्होंने चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया। चतुर्थ ध्यान से निकलकर उन्होंने अनंत ब्रह्मांड की चेतना प्राप्त की। अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से निकलकर उन्होंने अनंत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति प्राप्त की। अनंत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति से निकलकर उन्होंने शून्यता की शक्ति प्राप्त की। शून्यता की शक्ति से निकलकर उन्होंने न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति प्राप्त की। न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति से निकलकर उन्होंने बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) को प्राप्त किया।
[उल्टा] बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) से निकलकर उन्होंने न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति प्राप्त की। न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति से निकलकर उन्होंने शून्यता की शक्ति प्राप्त की। शून्यता की शक्ति से निकलकर उन्होंने अनंत चेतना की शक्ति प्राप्त की। चेतना की अनंतता की शक्ति से निकलकर उन्होंने अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति प्राप्त की। अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति से निकलकर उन्होंने चौथे ध्यान को प्राप्त किया। चौथे ध्यान से निकलकर उन्होंने तीसरे ध्यान को प्राप्त किया। तीसरे ध्यान से

निकलकर उन्होंने दूसरे ध्यान को प्राप्त किया। दूसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने पहले ध्यान को प्राप्त किया। पहले ध्यान से निकलकर उन्होंने दूसरे ध्यान को प्राप्त किया। दूसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने तीसरे ध्यान को प्राप्त किया। तीसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने चौथे ध्यान को प्राप्त किया। चौथे ध्यान से निकलकर इसके तुरंत बाद भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। 422 जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, तो उनके अंतिम निर्वाण के साथ ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने यह श्लोक पढ़ा:

"संसार के सभी प्राणी अंततः शरीर त्याग देंगे।
क्योंकि गुरु, संसार के अद्वितीय पुरुष
, शक्तियों से परिपूर्ण तथागत, बुद्ध ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" 423

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
अपने अंतिम निर्वाण के साथ, देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) ने यह श्लोक पढ़ा:

"वास्तव में संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर हैं; उनका स्वभाव उत्पन्न होना और लुप्त होना है।
उत्पन्न होने के बाद, वे समाप्त हो जाते हैं: उनका शमन (उपासमन) आनंदमय है।" 424

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
पूज्य आनंद ने यह
श्लोक पढ़ा: 425

"तब भय और घबराहट हुई।
जब समस्त उत्तम गुणों से परिपूर्ण बुद्ध ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।"

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
पूज्य अनुराधा ने इन श्लोकों का पाठ किया:

"श्वास का आना-जाना बंद हो गया; स्थिर मन वाले उस स्थिर पुरुष में
, जब वह शांत और एकाग्र था; उस दूरदर्शी ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। 426

"अविचलित मन से उन्होंने पीड़ा सहन की;
जैसे दीपक बुझ जाता है; मन को मुक्ति (विमोक्ष) प्राप्त हुई।" 427

सम्युत्त 7: ब्राह्मणों/पुजारियों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्राह्मणसम्युत्त)
(i) अराहंता खंड (अराहंतावग्गो)
187. धनंजनी
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण की पत्नी, धनंजनी नामक ब्राह्मण महिला, बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) में पूर्ण विश्वास रखती थी। 428 एक बार जब धनंजनी ब्राह्मण को भोजन परोस रही थी, तो वह ठोकर खा गई, जिसके बाद उसने तीन बार यह प्रेरणादायक वाणी कही:

"परमेश्वर (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम! परमेश्वर (
बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम!
परमेश्वर (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम!" 429

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने उससे कहा, "यह दुष्ट स्त्री छोटी-छोटी बातों पर उस मुंडेले तपस्वी की प्रशंसा करने लगती है! अब, हे दुष्ट स्त्री, मैं तुम्हारे उस गुरु के उपदेशों का खंडन करने जा रहा हूँ।" 430

“हे ब्राह्मण, इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के उपदेशों का खंडन कर सके। परन्तु जाओ, ब्राह्मण। जब तुम जाओगे, तब तुम्हें समझ आ जाएगा।”

तब भारद्वाज वंश का ब्राह्मण क्रोधित और असंतुष्ट होकर भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें प्रणाम किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से श्लोक 431 में कहा:

"किसका वध करके व्यक्ति चैन से सोता है? किसका वध करके शोक नहीं होता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है? आप किसका वध करने को उचित मानते हैं?"

[भगवान (बुद्ध):]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सोता है; क्रोध का वध करके व्यक्ति शोक नहीं करता;
हे ब्राह्मण, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है:
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ जन प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसका वध करके व्यक्ति शोक नहीं करता।"

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला दिया हो। मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में आता हूँ। क्या मुझे गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?”

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्च दीक्षा प्राप्त की। उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में रहकर, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य भारद्वाज ने स्वयं इस ज्ञान को प्राप्त कर, दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" 432 और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

188. दुर्व्यवहार (अक्कोसा)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण अकोषक भारद्वाज, जो एक गाली देने वाला भारद्वाज था, ने सुना: 433 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें कठोर शब्दों से अपशब्द कहे।

जब उसने बोलना समाप्त किया, तो भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:
“हे ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या तुम्हारे मित्र, सहकर्मी, रिश्तेदार और अतिथि तुमसे मिलने आते हैं?”
[भारद्वाज:] “कभी-कभी वे मिलने आते हैं, गुरु गौतम।”
[बुद्ध:] “तो क्या तुम उन्हें कुछ भोजन या नाश्ता देते हो?”
[भारद्वाज] "कभी-कभी मैं करता हूँ, गुरु गौतम।"
[बुद्ध] "पर यदि वे इसे आपसे ग्रहण नहीं करते, तो भोजन किसका है?"
[भारद्वाज] "यदि वे इसे मुझसे ग्रहण नहीं करते, तो भोजन हमारा ही है।"
[बुद्ध] "इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, हम - जो किसी को गाली नहीं देते, किसी को डांटते नहीं, किसी पर क्रोध नहीं करते - आपसे वह गाली, डांट और क्रोध ग्रहण नहीं करते जो आप हम पर बरसाते हैं। यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण! यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण!
" "हे ब्राह्मण, जो अपने ही गाली देने वाले को गाली देता है, जो डांटने वाले को डांटता है, जो डांटने वाले पर क्रोध करता है - उसे भोजन ग्रहण करने वाला, लेन-देन करने वाला कहा जाता है। परन्तु हम आपके भोजन में भाग नहीं लेते; हम लेन-देन नहीं करते। यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण!" यह अब भी तुम्हारा ही है, ब्राह्मण!”

[भारद्वाज:] “राजा और उनके अनुयायी तपस्वी गौतम को अरहंत समझते हैं, फिर भी क्या गुरु गौतम क्रोधित होते हैं?” 434

[भगवान (बुद्ध):]
“जो क्रोधहीन है, उसमें क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है? धर्मपरायण जीवन जीने वाले,
पूर्ण ज्ञान से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त), शांत रहने वाले स्थिर व्यक्ति में क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है? 435

“जो क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद देता है, वह अपने लिए स्थिति और खराब कर लेता है। क्रोधित
व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देने पर, व्यक्ति कठिन युद्ध भी जीत लेता है।

वह अपने और दूसरे दोनों के कल्याण के लिए साधना करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है, तब वह ध्यानमग्न (सतो) होकर अपनी शांति बनाए रखता है।”

"जब वह स्वयं और दूसरे दोनों के रोगों का निवारण कर देता है, तो
जो लोग उसे बचकाना (नासमझ) समझते हैं, वे धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल होते हैं।" 436

यह सुनकर ब्राह्मण अकोषक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है) मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। मुझे दीक्षा प्राप्त हो।" (पबज्जा) गुरु गौतम के मार्गदर्शन में, क्या मुझे उच्च दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त हो सकती है?

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्च दीक्षा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास करते हुए (जैसा कि 187 में है), पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

189. असुरिंदका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने सुना: 437 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें कठोर शब्दों से अपशब्द कहे।
जब उसकी बात समाप्त हुई, तो भगवान (बुद्ध) मौन रहे। तब ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे तपस्वी, आप हार गए! हे तपस्वी, आप हार गए!”

[भगवान (बुद्ध):]
“नासमझ व्यक्ति विजय प्राप्त कर लेता है; जब वह वाणी से कठोर प्रहार करता है;
परन्तु जो समझदार है, उसके लिए धैर्य ही सच्ची विजय है। 438

“जो क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद देता है; वह अपने लिए स्थिति और बिगाड़ लेता है।
क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देने से; कठिन युद्ध भी जीता जा सकता है।

“वह अपने और दूसरे के कल्याण के लिए अभ्यास करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; वह ध्यानमग्न (सतो) होकर शांत रहता है।

“जब वह अपने और दूसरे दोनों का निवारण कर लेता है;
तो जो लोग उसे नासमझ समझते हैं; वे धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल होते हैं।”

यह सुनकर ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)” और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

190 बिलंगिका

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज ने सुना: 439 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास आया और चुपचाप एक तरफ खड़ा हो गया। 440 तब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज के मन के विचार को स्वयं जान लिया और श्लोक में उनसे कहा:

“यदि कोई निर्दोष व्यक्ति,
एक पवित्र और निष्कलंक व्यक्ति के साथ अन्याय करता है, तो
वह पाप उसी नासमझ पर वापस आ पड़ता है,
जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।”

जब यह कहा गया, तो ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

191. अहिंसक

सावत्थी में, ब्राह्मण अहिंसक भारद्वाज, जो निर्मल भारद्वाज हैं, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। 441 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले: "मैं निर्मल अहिंसक हूँ, गुरु गौतम। मैं निर्मल अहिंसक हूँ, गुरु गौतम।"

[भगवान (बुद्ध):]
"यदि कोई अपने नाम के अनुरूप होता, तो तुम निर्मल होते।
परन्तु जो किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, शरीर, वाणी या मन से,
वही वास्तव में निर्मल है; क्योंकि वह दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

यह सुनकर ब्राह्मण अहिंसक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य अहिंसक भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

192. उलझा हुआ (जाटा)

श्रावस्ती में, ब्राह्मण जटा भारद्वाज, जो उलझनों के भारद्वाज हैं, भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"अंदर भी उलझन, बाहर भी उलझन; यह पीढ़ी उलझन में फंसी हुई है।
हे गौतम, मैं आपसे यह पूछता हूँ; इस उलझन को कौन सुलझा सकता है?"

[भगवान (बुद्ध):
"शील में स्थिर, बुद्धिमान, विकसित मन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला,
उत्साही और विवेकशील भिक्षु; वही इस उलझन को सुलझा सकता है।

जिनके मन से राग और द्वेष, अज्ञान सहित, दूर हो गए हैं। जिनके
दोष नष्ट हो गए हैं; उनके लिए यह उलझन सुलझ गई है। "

"जहाँ मन और शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; जहाँ कोई शेष नहीं रहता।
और रूप का आक्षेप (पतिघ) और बोध (सन्ना संस. संग्या) भी समाप्त हो जाता है; यहीं यह उलझन टूट जाती है।"

यह सुनकर ब्राह्मण जटा भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

193. सुद्धिका
श्रावस्ती में, ब्राह्मण सुद्धिका भारद्वाज भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"संसार में कोई भी ब्राह्मण कभी शुद्ध नहीं होता; चाहे वह सदाचारी और तपस्वी क्यों न हो;
ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति ही शुद्ध होता है; अन्य, सामान्य लोग नहीं।" 442

[भगवान (बुद्ध):]
"चाहे कोई कितने भी मंत्रों का जाप करे; वह जन्म से ब्राह्मण नहीं बन जाता;
यदि वह भीतर से भ्रष्ट और दूषित हो; और छल-कपट से अपना जीवन यापन करता हो ।

चाहे क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वेस हो, शुद्ध हो; चांडाल हो या सफाईकर्मी,
यदि कोई ऊर्जावान और दृढ़ हो; और अपने प्रयासों में सदा दृढ़ रहे,
तो वह परम पवित्रता प्राप्त करता है। " हे ब्राह्मण, जान लो कि यह सत्य है।

यह सुनकर ब्राह्मण सुद्धिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

194. अग्गिका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज के लिए घी सहित दूध-चावल रखे गए थे, जिन्होंने सोचा, "मैं अग्नि अनुष्ठान करूंगा, मैं अग्नि आहुति (यज्ञ और भोजन) दूंगा।" 443 फिर

, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह में निरंतर भिक्षा मांगते हुए, भगवान (बुद्ध) ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज के निवास के पास पहुंचे और एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मांगते हुए देखा और उन्हें श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"त्रिविध ज्ञान से संपन्न; उचित जन्म से, प्रचुर ज्ञान से युक्त;
ज्ञान और आचरण में निपुण; इस दूध-चावल के भोज में भाग लें।" 444

[भगवान (बुद्ध):]
"चाहे कोई अनेक मंत्रों का जाप करे; वह जन्म से ब्राह्मण नहीं बनता
यदि वह भीतर से भ्रष्ट और दूषित हो; छल से अनुयायी प्राप्त किए हों।

"जो अपने पिछले जन्मों को जान चुका हो; जो ध्यान में स्वर्ग और दुख लोक को देखता हो;
जो पुनर्जन्मों के विनाश (खयाल/क्षय) तक पहुँच चुका हो; दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में परिपूर्ण ऋषि।" 445

"इन तीन प्रकार के ज्ञान के माध्यम से; वह त्रिविध ज्ञान से संपन्न ब्राह्मण होता है।
ज्ञान और आचरण में निपुण; इस दूध-चावल के भोज में भाग लें।" <358>

[ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज:] "गुरु गौतम को भोजन करने दीजिए; योग्य ब्राह्मण ही है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों, वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन साक्षी करते हैं।
प्रबुद्ध पुरुष ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत होने के कारण, यही उनका आचरण नियम है।

"पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है, उन्हें
अन्य भोजन और पेय के साथ परोसें,
क्योंकि वे पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र हैं।" 446

यह सुनकर ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य अग्गिका भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

195 सुंदरिका

एक बार भगवान (बुद्ध) सुंदरिका नदी के किनारे कोसलवासियों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज सुंदरिका नदी के किनारे अग्नि यज्ञ और अग्निदान कर रहे थे। अग्नि यज्ञ और अग्निदान (यज्ञ एवं भोजन) करने के बाद ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज अपने आसन से उठे और चारों ओर देखते हुए सोचने लगे, "अब इस अग्नि-आराधित रोटी को कौन खाएगा?" 447
ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक वृक्ष के नीचे सिर ढके बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने अपने बाएं हाथ में अग्नि-आराधित रोटी और दाहिने हाथ में जलपात्र लेकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। जब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण के कदमों की आहट सुनी, तो उन्होंने अपना सिर खोल दिया। तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने सोचा, "यह योग्य व्यक्ति तो मुंडा हुआ है, यह योग्य व्यक्ति मुंडा हुआ है," और वापस लौटना चाहा; लेकिन उनके मन में यह विचार आया:
"यहाँ कुछ ब्राह्मण भी मुंडाए हुए हैं। मुझे उनके पास जाकर उनके जन्म के बारे में पूछना चाहिए।"

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज
भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "इस योग्य व्यक्ति का जन्म क्या है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जन्म के बारे में मत पूछो, आचरण के बारे में पूछो:
आग तो किसी भी लकड़ी से उत्पन्न होती है।
एक दृढ़ निश्चयी ऋषि, भले ही वह निम्न कुल का हो,
लज्जा से संयमित एक शुद्ध कुलीन है। 448

"आराधना करने वाले को इसका आह्वान करना चाहिए:
सत्य द्वारा वश में किया गया, वश में करने से परिपूर्ण।
जिसने ज्ञान की सीमा को प्राप्त कर लिया है,
पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करने वाला।"

फिर वह उचित दान करता है,
दान के योग्य व्यक्ति को। 449

[ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज:]
"निश्चित रूप से मेरा अनुष्ठान अच्छी तरह संपन्न हुआ है,
क्योंकि मैंने ऐसे ज्ञान-गुरु को देखा है।
क्योंकि मैंने आप जैसे लोगों को नहीं देखा था, इसलिए
अन्य लोगों ने अग्नि-अनुष्ठान का केक खाया।

गुरु गौतम को खाने दीजिए। योग्य व्यक्ति ब्राह्मण है।"

[भगवान (बुद्ध):] (जैसा कि 194 में है)
"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों, वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन देखने वाले करते हैं।
प्रबुद्ध व्यक्ति ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत मौजूद है, यही उनका आचरण नियम है।

पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है, उन्हें
भोजन और पेय से सेवा करें,
क्योंकि वह पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र हैं।"

[सुंदरिका भारद्वाज:] "तो, गुरु गौतम, क्या मुझे यह अग्नि-आहार की रोटी किसी और को दान कर देनी चाहिए?" "हे ब्राह्मण, इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत या तथागत के शिष्य के सिवा कोई ऐसा नहीं है जो इस अग्नि-आहार की रोटी को खाकर ठीक से पचा सके। 450 अतः, हे ब्राह्मण, इस अग्नि-आहार की रोटी को किसी ऐसे स्थान पर फेंक दो जहाँ वनस्पति कम हो या इसे ऐसे जल में डाल दो जहाँ कोई जीव-जंतु न हों।"

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने उस अग्नि-आहार की रोटी को ऐसे जल में डाल दिया जहाँ कोई जीव-जंतु नहीं थे। जल में डालने पर वह रोटी चटकने लगी, फुफकारने लगी और उससे भाप और धुआँ निकलने लगा। 451 जिस प्रकार दिनभर गर्म किया हुआ हल पानी में डालने पर चटकता, फुफकारता और भाप एवं धुआँ छोड़ता है, उसी प्रकार अग्नि-समाधि की रोटी को पानी में डालने पर चटकने, फुफकारने और भाप एवं धुआँ निकला।

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज भयभीत होकर
भगवान (बुद्ध) के पास गए और एक तरफ खड़े हो गए।
तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें श्लोकों से संबोधित करते हुए कहा,

“हे ब्राह्मण, लकड़ी जलाते समय यह मत सोचो कि
यह बाहरी कर्म पवित्रता लाता है; क्योंकि विद्वान कहते हैं कि जो बाहरी रूप से पवित्रता की खोज करता है, उसे
पवित्रता प्राप्त नहीं होती । हे ब्राह्मण, लकड़ी से बनी अग्नि का त्याग करके, मैं केवल आंतरिक प्रकाश को प्रज्वलित करता हूँ। सदा प्रज्वलित, मेरा मन सदा समाधि अवस्था में रहता है, मैं एक अरहंत हूँ जो ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है।” "हे ब्राह्मण, अहंकार तुम्हारा बोझ है, क्रोध धुआँ है, झूठी वाणी राख है; जीभ चम्मच है, हृदय वेदी है, और संयमित आत्मा मनुष्य का प्रकाश है। धम्म (मार्ग, नियम) सद्गुणों के घाटों वाला निर्मल, अच्छे लोगों द्वारा अच्छे लोगों के लिए प्रशंसित, जहाँ ज्ञान के स्वामी स्नान करने जाते हैं। और, निर्मल अंगों वाले, कठोर, दूर किनारे की ओर। 453 "सत्य, धम्म, संयम, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन। मध्य मार्ग पर आधारित ब्रह्म प्राप्ति: हे ब्राह्मण, धर्मी लोगों को प्रणाम करो; मैं उस व्यक्ति को धम्म से प्रेरित कहता हूँ।" 454 यह सुनकर ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य सुंदरिका भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

196. अनेक बेटियाँ (बहुधिता)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण के चौदह बैल खो गए थे। भारद्वाज वंश का वह ब्राह्मण उन बैलों की खोज करते हुए उस घने जंगल में गया जहाँ भगवान (बुद्ध) ठहरे हुए थे। वहाँ उसने भगवान (बुद्ध) को पाँवबाँटकर बैठे हुए, शरीर सीधा रखते हुए, अपने मुख के सामने ध्यान (सती) करते हुए देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उनके समक्ष ये श्लोक पढ़े:

“निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास चौदह बैल नहीं हैं [जो खो गए हैं]।
पिछले छह दिनों से दिखाई नहीं दिए हैं; इसलिए यह तपस्वी प्रसन्न है। 455

“निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास मुरझाए हुए तिल के पौधों का खेत नहीं है।”
कुछ के पास एक पत्ता है, कुछ के पास दो, इसलिए यह तपस्वी सुखी है। <366>

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; खाली खलिहान में चूहे
खुशी से नाचते हुए; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; एक कंबल जो सात महीनों से
कीड़ों के झुंड से ढका हुआ है; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; सात बेटियाँ विधवा हो गई हैं,
कुछ के पास एक बेटा है, कुछ के पास दो; इसलिए यह तपस्वी सुखी है। 456

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; एक सांवली पत्नी जिसके चेहरे पर चेचक के निशान हैं,
जो उसे लात मारकर जगाती है; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; लेनदार जो भोर में फोन करते हैं,
उसे डांटते हुए कहते हैं, 'भुगतान करो! भुगतान करो!'; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"हे ब्राह्मण, मेरे पास चौदह बैल नहीं हैं [जो खो गए हैं]।
पिछले छह दिनों से दिखाई नहीं दे रहे हैं; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ। हे

ब्राह्मण, मेरे पास मुरझाए तिल के पौधों का खेत नहीं है।
कुछ पर एक पत्ता है, कुछ पर दो; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ। हे

ब्राह्मण, मेरे पास खाली खलिहान में चूहे नहीं हैं
जो खुशी से नाच रहे हों; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात महीने से
कीड़ों से ढका कंबल नहीं है; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात विधवा पुत्रियाँ नहीं हैं।
कुछ के साथ एक बेटा है, कुछ के साथ दो; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात पुत्रियाँ नहीं हैं; सांवली रंगत वाली, चेचक के दागों से भरी पत्नी
जो मुझे लात मारकर जगाती है; इसीलिए, हे ब्राह्मण, मैं सुखी हूँ।

"निश्चित रूप से, हे ब्राह्मण, मेरे पास भोर होते ही आने वाले कर्जदार नहीं हैं, जो
मुझे डांटते हुए कहते हैं, 'भुगतान करो! भुगतान करो!'; इसीलिए, हे ब्राह्मण, मैं सुखी हूँ।"

जब यह कहा गया, तो भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए। 457 <369>

(ii) उपासकवग्गो (गृहस्थ अनुयायी अनुभाग)
197. काशी भारद्वाज
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 458 एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच दक्षिणागिरि में, ब्राह्मणों के गाँव एकनाला के पास निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण काशी भारद्वाज, जो हल चलाने वाले भारद्वाज थे, ने बुवाई के समय पाँच सौ हल अपने जोतों में बाँध रखे थे। 459 फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर उस स्थान पर गए जहाँ ब्राह्मण काशी भारद्वाज कार्य कर रहे थे।
उस समय ब्राह्मण काशी भारद्वाज द्वारा भोजन वितरण हो रहा था। 460 तब भगवान (बुद्ध) भोजन वितरण स्थल पर पहुँचे और एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मांगते हुए देखा और उनसे कहा,
"हे संन्यासी, मैं खेत जोतता और बोता हूँ, और बोने के बाद भोजन करता हूँ। हे संन्यासी, तुम्हें भी खेत जोतना और बोना चाहिए; फिर बोने के बाद भोजन करना चाहिए।"
[बुद्ध:] "हे ब्राह्मण, मैं भी खेत जोतता और बोता हूँ, और बोने के बाद भोजन करता हूँ।"

[काशी भारद्वाज] "परन्तु हमें गुरु गौतम का जुआ, हल, हल का फाल, अंकुश या बैल दिखाई नहीं देते; फिर भी गुरु गौतम कहते हैं, 'हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और जब मैं हल चलाकर बीज बो लेता हूँ, तब मैं भोजन करता हूँ।'"
तब ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

"आप हल चलाने वाले मनुष्य होने का दावा करते हैं; परन्तु मुझे आपका हल चलाना दिखाई नहीं देता।
यदि आप हल चलाने वाले हैं, तो मुझे उत्तर दीजिए; हम आपके हल चलाने को कैसे समझें?"

[भगवान (बुद्ध):]
"विश्वास बीज है, तप वर्षा है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि मेरा जुआ और हल है;
लज्जा ध्रुव है, मन जुआ-बंधन है; सती मेरा हल का फाल और अंकुश है।" 461

"शरीर से सावधान, वाणी से सावधान; भोजन के प्रति अपनी भूख पर संयम रखते हुए,
मैं सत्य को अपने निराई-गुड़ाई के औजार के रूप में और कोमलता को अपने

बंधनों से मुक्ति दिलाने वाले साधन के रूप में प्रयोग करता हूँ। 462 [173] "वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) मेरा बोझ ढोने वाला जानवर है; जो मुझे बंधनों से मुक्ति दिलाता है।
यह बिना रुके आगे बढ़ता है; जहाँ पहुँचकर कोई दुःख नहीं होता। 463

"इस प्रकार यह जुताई की जाती है; जिसका फल निर्वाण है।
इस जुताई के कार्य को पूरा करने के बाद; व्यक्ति सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

"गुरु गौतम को भोजन करने दो! योग्य तो किसान है, क्योंकि गुरु गौतम ऐसी जुताई करते हैं जिसका फल भी अमरता है।"

"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों; वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन साक्षी करते हैं।
प्रबुद्ध लोग ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।"
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत विद्यमान है, यही उनका आचरण नियम है।

"पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है,"
इसे भोजन और पेय के साथ परोसें।
क्योंकि वह पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र है। (जैसा कि 194 में है)

यह सुनकर ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने धर्म को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला दिया हो। मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

198. उदय
श्रावस्ती में। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। तब ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) के कटोरे में चावल भर दिए। दूसरी बार सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। तीसरी बार सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। 464 फिर तीसरी बार ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) के कटोरे में चावल भर दिए, जिसके बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा: "यह परेशान करने वाला तपस्वी गौतम बार-बार आता रहता है।" 465

[भगवान (बुद्ध):]
"बार-बार बीज बोए जाते हैं; बार-बार आकाशदेव वर्षा बरसाते हैं;

बार-बार किसान खेत जोतते हैं; बार-बार अनाज धरती पर आता है।

बार-बार भिक्षु भीख मांगते हैं; बार-बार दान देते हैं;
जब दानदाता बार-बार दान देते हैं; तो वे बार-बार स्वर्ग जाते हैं।

बार-बार दूध दुहा जाता है; बार-बार बछड़ा अपनी माँ के पास जाता है;
बार-बार कोई थकता और कांपता है; बार-बार मंदबुद्धि गर्भ में प्रवेश करता है;

बार-बार कोई जन्म लेता है और मरता है; बार-बार किसी को श्मशान ले जाया जाता है। बार-
बार पुनर्जन्म से मुक्ति पाने वाला, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में उज्ज्वल व्यक्ति बार-बार जन्म नहीं लेता!"

यह सुनकर ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम!" हे महान गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।

---

199. देवहिता
सावत्थी में। उस समय भगवान (बुद्ध) हवाओं से पीड़ित थे और पूज्य उपवन उनके सेवक थे। 466 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उपवन से कहा, "उपवन, मेरे लिए कुछ गर्म पानी लाओ।"

"जी, पूज्यवर," पूज्य उपवन ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने वस्त्र धारण किए और कटोरा और वस्त्र लेकर ब्राह्मण देवहित के निवास पर गए, जहाँ वे चुपचाप एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण देवहित ने पूज्य उपवन को चुपचाप एक तरफ खड़े देखा और उनसे श्लोक में कहा,

"हे पूजनीय, चुपचाप खड़े हैं; मुंडा सिर वाले, सिले हुए वस्त्र पहने हुए।
आप क्या चाहते हैं, क्या खोज रहे हैं; यहाँ क्या माँगने आए हैं?"

[आदरणीय उपवन:]
"अरहंत, संसार के सौभाग्यशाली (सुगतो), ऋषि, वायु ऋतुओं से पीड़ित हैं। हे
ब्राह्मण, यदि कोई गर्म जल हो तो कृपया ऋषि को अर्पित करें।

वे पूजनीय लोगों द्वारा पूजे जाते हैं; आदरणीय लोगों द्वारा सम्मानित किए जाते हैं।"
आदरणीय लोगों द्वारा आदरणीय; मैं इसे उन्हीं को अर्पित करना चाहता हूँ।”

तब ब्राह्मण देवहित ने एक व्यक्ति को गर्म पानी से भरा डंडा लाने का आदेश दिया और पूज्य उपवन को गुड़ की थैली भेंट की। तब पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को गर्म पानी से स्नान कराया और गुड़ को गर्म पानी में मिलाकर उन्हें अर्पित किया। तब भगवान (बुद्ध) का रोग शांत हो गया।

तब ब्राह्मण देवहित भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

“उचित दान कहाँ देना चाहिए? दान कहाँ महान फल देता है?
भिक्षा देने वाले के लिए, भेंट कैसे सफलता लाती है? 467

[भगवान (बुद्ध):]
“वह जिसने अपने पूर्व लोकों को जान लिया है; जो स्वर्ग और नरक लोक को देखता है (ध्यान में)।
जो पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) तक पहुँच चुके हैं; दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में परिपूर्ण ऋषि:

यहाँ उचित दान देना चाहिए; यहाँ दान देने से महान फल मिलता है।

इसी प्रकार, दान देने वाले को सफलता मिलती है - ठीक वैसे ही!"

यह सुनकर ब्राह्मण देवहित ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।" (जैसा कि 197 में है)

---

200 धनी व्यक्ति (महाशाला)
श्रावस्ती में, 468 तब एक धनी ब्राह्मण, जो मैला-कुचैला वस्त्र पहने हुए था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा, "हे ब्राह्मण, अब तुम इतने मैला-कुचैले वस्त्र क्यों पहने हो?"
[ब्राह्मण:] "हे गौतम जी, मेरे चारों पुत्रों ने अपनी पत्नियों के उकसावे पर मुझे घर से निकाल दिया है।"
[बुद्ध:] "तो हे ब्राह्मण, इन श्लोकों को याद कर लो और जब सभा भवन में तुम्हारे पुत्रों के साथ भीड़ एकत्रित हो, तब इनका पाठ करो:

"जिनके जन्म से मुझे प्रसन्नता हुई (नंदी/आनंद); और जिनकी सफलता की मैंने बहुत कामना की;
वे अपनी पत्नियों के उकसावे पर मुझे कुत्तों की तरह सूअरों को भगा रहे हैं।"

"ये दुष्ट लोग सचमुच नीच हैं; हालाँकि वे मुझे 'पिताजी, प्रिय पिताजी' कहकर पुकारते हैं।
ये पुत्रों के वेश में राक्षस हैं; बुढ़ापे में मुझे त्यागने के लिए।

"जैसे कोई बूढ़ा घोड़ा, जो अब किसी काम का नहीं, अपने चारे से दूर ले जाया जाता है,
वैसे ही इन लड़कों का बूढ़ा पिता; दूसरों के घरों में भिक्षा माँगता है।

"मेरे लिए वह लाठी बेहतर है जिसका मैं उपयोग करता हूँ; उन अवज्ञाकारी पुत्रों से;
क्योंकि लाठी जंगली बैल को भगा देती है; और जंगली कुत्ते को भी।

"अंधेरे में यह मेरे आगे चलती है; गहरे में यह मुझे सहारा देती है।
लाठी की कृपा शक्ति से; यदि मैं लड़खड़ा जाऊँ तो भी मैं दृढ़ रहता हूँ।"

तब उस धनी ब्राह्मण ने, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों को सीखकर, सभा भवन में अपने पुत्रों के साथ उपस्थित लोगों के सामने इनका पाठ किया:

"जिनके जन्म पर मुझे आनंद आया (नंदी/आनंद)..." (पहले की तरह)... यदि मैं लड़खड़ा जाऊं तो भी दृढ़ रहूंगा।"

तब पुत्र उस धनी ब्राह्मण को अपने घर ले गए, उसे स्नान कराया और प्रत्येक ने उसे एक जोड़ी वस्त्र दिए। तब उस धनी ब्राह्मण ने एक जोड़ी वस्त्र लेकर भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "गुरु गौतम, हम ब्राह्मण अपने गुरु के लिए गुरु-दावत मांगते हैं। कृपया गुरु गौतम मुझसे गुरु-दावत स्वीकार करें।" भगवान (बुद्ध) ने करुणावश स्वीकार कर लिया।

तब उस धनी ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"महान गुरु गौतम! महान गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) कृपया गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

201. मनत्थद्धा
सावत्थी में। उस समय सावत्थी में मनत्थाधा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहा था, जो अहंकार से भरा हुआ था। 469 वह न तो अपने माता-पिता को, न अपने गुरु को और न ही अपने बड़े भाई को प्रणाम करता था। उस समय भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा के बीच धर्म का उपदेश दे रहे थे। तब ब्राह्मण मनत्थाधा के मन में विचार आया: "यह तपस्वी गौतम एक विशाल सभा के बीच धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मुझे उनके पास जाना चाहिए। यदि तपस्वी गौतम मुझसे बात करें, तो मैं भी उनसे बात करूँगा। लेकिन यदि वे मुझसे बात न करें, तो मैं भी उनसे बात नहीं करूँगा।"

तब ब्राह्मण मनत्थाधा भगवान (बुद्ध) के पास गया और चुपचाप एक तरफ खड़ा हो गया, लेकिन भगवान (बुद्ध) ने उससे कोई बात नहीं की। तब ब्राह्मण मनत्थद्धा ने यह सोचकर कि "यह तपस्वी गौतम कुछ नहीं जानते" 470 वापस लौटना चाहा, परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण के मन के विचार को स्वयं जानकर ब्राह्मण मनत्थद्धा को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"अहंकार को बढ़ावा देना कभी अच्छा नहीं होता; हे ब्राह्मण, अपने कल्याण के लिए तत्पर रहने वाले
को तो उस उद्देश्य को बढ़ावा देना चाहिए जिसके कारण तुम यहाँ आए हो।" 471

तब ब्राह्मण मनत्थद्धा ने यह सोचकर कि "तपस्वी गौतम मेरे मन को जानते हैं," वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया। उन्होंने भगवान (बुद्ध) के चरणों को चूमा, अपने हाथों से उन्हें सहलाया और अपना नाम इस प्रकार घोषित किया:
"मैं मनत्थद्धा हूँ, गुरु गौतम! मैं मनत्थद्धा हूँ, गुरु गौतम!"
तब वह सभा विस्मय से भर गई और लोगों ने कहा: "यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज!" यह ब्राह्मण मनत्थद्धा न तो अपने माता-पिता को, न अपने गुरु को, न ही अपने बड़े भाई को प्रणाम करता है, फिर भी वह तपस्वी गौतम के प्रति इतना आदर दिखाता है।" 472
तब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण मनत्थद्धा से कहा:
"बस करो, ब्राह्मण! उठो और अपनी सीट पर बैठो, क्योंकि तुम्हारा मन मुझ पर विश्वास रखता है।"
तब ब्राह्मण मनत्थद्धा अपनी सीट पर बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा:

"किसके प्रति अहंकार से बचना चाहिए? किसके प्रति आदर दिखाना चाहिए? किसका सदा आदर करना चाहिए? किसका गहन आदर करना उचित है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"सर्वोच्च अपने माता-पिता को; फिर अपने बड़े भाई को;
फिर अपने गुरु को, जो चौथे हैं;
इनके प्रति अहंकार से बचना चाहिए;
इनके प्रति आदर दिखाना चाहिए;
इनका आदर करना चाहिए;
इनका गहन आदर करना उचित है।"

"अहंकार को नष्ट करके, विनम्र होकर, अरहंतों को प्रणाम करना चाहिए।
शांत हृदय वाले, अपने कार्य पूर्ण कर चुके; दोषमुक्त, अतुलनीय।"

यह सुनकर ब्राह्मण मनत्थद्धा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

202. पक्कानिका
सावत्थी में। उस समय विरोधाभासों में आनंद लेने वाला पच्चनिकासता नामक एक ब्राह्मण सावत्थी में निवास कर रहा था। तब ब्राह्मण पच्चनिकासता के मन में यह विचार आया: "मैं तपस्वी गौतम के पास जाऊं और उनकी हर बात का खंडन करूं।" उस समय भगवान (बुद्ध) खुले मैदान में टहल रहे थे। तब ब्राह्मण पच्चनिकासता भगवान (बुद्ध) के पास गए और टहलते हुए उनसे कहा: "हे तपस्वी, धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दीजिए!"

[भगवान (बुद्ध):]
"अच्छी सलाह समझना कठिन है; उस व्यक्ति के लिए जो विरोधाभासों में आनंद लेता है; उस
व्यक्ति के लिए जिसका मन भ्रष्ट है; जो आक्रामकता में लीन है।

"पर यदि किसी ने आक्रामकता को दूर कर दिया है; और अपने हृदय के अविश्वास को त्याग दिया है;
यदि किसी ने घृणा को त्याग दिया है; अच्छी तरह से कही गई सलाह को समझा जा सकता है।"

यह सुनकर ब्राह्मण पच्चनिकसाता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

203. नवकम्मिका
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज उस जंगल में कुछ काम कर रहे थे। 473 ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक साल के पेड़ की तलहटी में पांव मोड़े, शरीर सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने सोचा, "मुझे इस जंगल में काम करने में आनंद आता है। यह तपस्वी गौतम किस काम में आनंद लेते हैं?"

तब ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे श्लोक में कहा,

"हे भिक्षु, आप इस साल के जंगल में किस काम में लगे हैं? किस
काम में आपको आनंद आता है? हे गौतम, अकेले जंगल में?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जंगल में मुझे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है;
जड़ से काट दो, मेरा जंगल सूख गया है।
लकड़ी और बाण रहित, असंतोष से मुक्त,
मुझे जंगल में ही आनंद मिलता है।" 474

यह सुनकर ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

204. लकड़ी इकट्ठा करने वाले (कत्थहारा सं. काष्ठ-हारा)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण के कुछ शिष्य लकड़ी इकट्ठा करते हुए उस जंगल में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को उस जंगल में पांव जोड़कर, सीधा शरीर धारण किए हुए, ध्यान (सती) करते देखा। उन्हें देखकर वे भारद्वाज वंश के ब्राह्मण के पास गए और उनसे कहा, “हे गुरु, आपको यह जानना चाहिए कि फलाँ जंगल में एक तपस्वी पांव पांव जोड़कर, सीधा शरीर धारण किए हुए, ध्यान (सती) कर रहे हैं।”

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण उन ब्राह्मण शिष्यों के साथ उस जंगल में गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को वहाँ बैठे हुए देखा... (पहले की तरह)... उनके सामने ध्यान (सती) लगाए हुए। तब वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उन्हें श्लोक में संबोधित किया:

"एकांत, वीरान जंगल में प्रवेश करके।
घने जंगलों में जहाँ अनेक भय मंडराते हैं,
स्थिर शरीर के साथ, शांत, सुंदर।
हे भिक्षु, आप कितना सुंदर ध्यान लगाते हैं! 475

"जंगल में जहाँ कोई गीत या संगीत नहीं बजता,
एक एकाकी ऋषि ने जंगल का सहारा लिया है!
यह मुझे आश्चर्य होता है - कि आप
आनंदित मन से अकेले जंगल में निवास करते हैं।

"मेरा मानना है कि आप सर्वोच्च त्रिस्वर्ग,
जगत के दिव्य स्वामी की संगति की इच्छा रखते हैं।
इसलिए आप इस वीरान जंगल का सहारा लेते हैं:
आप यहाँ ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं।" 476

[भगवान (बुद्ध):]
"जो भी अनेक इच्छाएँ और सुख हैं,
जो अनेक तत्वों (धातुओं) से सदा जुड़े रहते हैं।
अज्ञान की जड़ से उत्पन्न सभी लालसाओं को
मैंने उनकी जड़ समेत नष्ट कर दिया है। 477

701 "मैं इच्छा रहित, अनासक्त, विरक्त हूँ;
समस्त धर्मों के प्रति मेरा दर्शन शुद्ध हो गया है।
शुभ - सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करके -
आत्मविश्वासी, ब्राह्मण, मैं एकाकी ध्यान करता हूँ।" 478

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

205. द मदर सपोर्टर (माटुपोसाका)
श्रावस्ती में, एक ब्राह्मण जो अपनी माता का सहारा था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे गुरु गौतम, मैं विधिपूर्वक भिक्षा मांगता हूँ और इस प्रकार अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता हूँ। क्या ऐसा करके मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ?"

"निःसंदेह, ब्राह्मण, ऐसा करके तुम अपना कर्तव्य निभा रहे हो।
जो विधिपूर्वक भिक्षा मांगता है और इस प्रकार अपने
माता-पिता का भरण-पोषण करता है, वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

जब कोई मनुष्य विधिपूर्वक अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता है, तो
माता-पिता की इस सेवा के कारण
ज्ञानी लोग इस संसार में उसकी प्रशंसा करते हैं; और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।"

यह सुनकर, अपनी माता का सहारा देने वाले ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है)... हे गुरु गौतम, मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

206. भिक्षु (भिक्खक)
सावत्थी में, एक भिक्षु ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "गुरु गौतम, मैं भी भिक्षु हूँ और आप भी भिक्षु हैं। इस संदर्भ में हम दोनों में क्या अंतर है?" 479

[भगवान (बुद्ध):]
"ऐसा नहीं है कि कोई
भिक्षा मांगने मात्र से भिक्षु बन जाता है।
यदि कोई गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है,
तो भी वह भिक्षु नहीं बन जाता। 480

"परन्तु जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है,
पुण्य संपन्न है और बुराई से मुक्त है,
जो संसार में विवेक के साथ निवास करता है,
वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।"

यह सुनकर भिक्षु ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "महान गुरु गौतम!" हे महान गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।

---

207. संगरवा

सावत्थी में। उस समय सावत्थी में संगरवा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहे थे। वे जल-शुद्धि के अनुयायी थे, जल द्वारा शुद्धि में विश्वास रखते थे और संध्या-रात्रि जल में स्नान करने के अभ्यास में लीन रहते थे।
फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, सावत्थी में संगरवा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहे हैं। वे जल-शुद्धि के अनुयायी हैं और संध्या-रात्रि जल में स्नान करने के अभ्यास में लीन रहते हैं। हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश ब्राह्मण संगरवा के निवास पर दर्शन करें तो यह अच्छा होगा।"
भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण संगरव के निवास पर गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, ब्राह्मण, कि आप जल-शुद्धि के साधक हैं, जो जल द्वारा शुद्धि में विश्वास रखते हैं, और जो संध्या और सूर्योदय के समय जल में स्नान करते हैं?"
[संगरव:] "जी, गुरु गौतम।"
[बुद्ध:] "यह सोचकर कि आपको इससे क्या लाभ होता है, ब्राह्मण?"
[संगरव:] "जी, गुरु गौतम, दिन में किए गए सभी बुरे कर्म सूर्यास्त के समय स्नान करके धुल जाते हैं। रात में किए गए सभी बुरे कर्म सूर्योदय के समय स्नान करके धुल जाते हैं।"

[भगवान (बुद्ध):]
"हे ब्राह्मण, धम्म (मार्ग, नियम) पुण्य (शील) के घाटों वाला
एक निर्मल झील है
, जहाँ ज्ञान के स्वामी स्नान करने जाते हैं
और निर्जलित होकर दूर तट पर पहुँचते हैं।" 481

यह सुनकर ब्राह्मण संगरव ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है) ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

208. खोमादुस्सा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम खोमदुस्सा था। 482 तब भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए खोमदुस्सा में प्रवेश किया।
उस समय खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थ किसी कार्य के लिए सभा में एकत्रित थे और हल्की बारिश हो रही थी। तब भगवान (बुद्ध) सभा के पास पहुँचे। खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और कहा, "ये मुंडे हुए तपस्वी कौन हैं? क्या इन्हें नियमों का ज्ञान नहीं है?" 483

तब भगवान (बुद्ध) ने खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"वह सभा अच्छी नहीं जहाँ अच्छे लोग अनुपस्थित हों;
जो धर्म का वचन नहीं देते वे अच्छे नहीं हैं।
परन्तु जिन्होंने कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और
धर्म (मार्ग/नियम) का त्याग कर रखा है, वे ही अच्छे हैं।"

यह सुनकर खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला दिया हो। हम गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाते हैं। हे गुरु गौतम, हमें उन गृहस्थ अनुयायियों के रूप में याद रखें जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।”

संयुत्त 8: वांगिसा के साथ जुड़े हुए प्रवचन (वांगीसासंयुत्त)
209. निक्खंत त्याग दिया
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 484 एक बार पूज्य वंगीसा अपने गुरु, पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। 485 उस समय पूज्य वंगीसा, जो नवदीक्षित थे और हाल ही में दीक्षा लेकर निकले थे, उन्हें उस निवास स्थान की देखभाल के लिए वहीं छोड़ दिया गया था। तभी कई सुंदर वस्त्र पहने महिलाएं उस निवास स्थान को देखने के लिए अग्गलावा पार्क में आईं। जब पूज्य वंगीसा ने उन महिलाओं को देखा, तो उनके मन में असंतोष उत्पन्न हुआ; उनके मन में वासना का प्रकोप छा गया। 486 तब उन्हें यह विचार आया: "यह तो मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं! यह तो मेरे लिए विपत्ति है, मुझे कोई लाभ नहीं हुआ कि मुझमें असंतोष उत्पन्न हो गया है, वासना ने मेरे मन को ग्रस्त कर लिया है। भला कोई और मेरे असंतोष को कैसे दूर कर सकता है और आनंद (नंदी/आनंद) कैसे उत्पन्न कर सकता है? मैं स्वयं ही अपने असंतोष को दूर कर आनंद उत्पन्न करूँ।"
तब पूज्य वंगीसा ने अपने असंतोष को दूर करके स्वयं ही आनंद उत्पन्न किया और उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

"हाय, यद्यपि मैं संन्यासी हूँ; घर छोड़कर संन्यासी जीवन में चला गया हूँ।
ये विचार अब भी मुझ पर हावी हैं; अंधकार के निर्लज्ज विचार। 487

"यद्यपि बलिष्ठ युवक, महान धनुर्धर; प्रशिक्षित पुरुष, धनुष के उस्ताद,
ऐसे हज़ार पुरुष जो भागते नहीं; मुझे चारों ओर से घेर लें, 488

और यदि स्त्रियाँ यहाँ आ जाएँ; तो भी इनकी संख्या इससे कहीं अधिक होगी।"
वे मुझे कभी विचलित नहीं कर सकते; क्योंकि मैं धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ता से खड़ा हूँ। 489

"मैंने यह प्रत्यक्षदर्शी के रूप में सुना है; सूर्य के सगे बुद्ध से,
निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग; वहीं मेरा मन प्रसन्न होता है। 490

"यदि, जब मैं इस प्रकार निवास कर रहा हूँ; तुम मेरे पास आओगे, हे दुष्ट,
मैं ऐसा कार्य करूँगा, हे मृत्यु, कि तुम मेरा मार्ग भी नहीं देख पाओगे।" 491

---

210. असंतोष (आरती)
एक बार पूज्य वांगिसा अपने गुरु पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। उस समय, जब पूज्य निग्रोधकप्पा भिक्षा मांगने के बाद लौटते, भोजन करने के बाद वे मंदिर में प्रवेश करते और या तो शाम को या अगले दिन बाहर निकलते। उस समय पूज्य
वांगिसा के मन में असंतोष उत्पन्न हो गया था; उनके मन में कामवासना घर कर गई थी। तब पूज्य वांगिसा को यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में हानि है, लाभ नहीं! यह मेरे लिए वास्तव में दुर्भाग्य है, मुझे इससे कोई लाभ नहीं हुआ है कि मेरे मन में असंतोष उत्पन्न हो गया है, कामवासना ने मुझे ग्रसित कर लिया है। भला कोई और मेरे असंतोष को कैसे दूर कर सकता है और मुझे आनंदित कर सकता है? मुझे स्वयं ही अपने असंतोष को दूर करना चाहिए और आनंद उत्पन्न करना चाहिए।"
तब पूज्य वंगीसा ने अपनी असंतुष्टि दूर करके और आनंद उत्पन्न करके उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

“असंतोष और आनंद (नंदी/आनंद) का त्याग करके; और गृहस्थ विचारों को पूरी तरह से त्यागकर;
किसी भी चीज़ के प्रति कामवासना नहीं पालनी चाहिए; कामवासना रहित, आनंद रहित व्यक्ति ही वास्तव में भिक्षु है। 492

“पृथ्वी और अंतरिक्ष में जो कुछ भी विद्यमान है; रूप से निर्मित, संसार में समाहित,
सब कुछ क्षणभंगुर है, क्षय होता है; ऋषि इस सत्य को जानकर निवास करते हैं। 493;

“मनुष्य अपनी उपलब्धियों (उपाधि) से बंधे हुए हैं; जो देखा, सुना, महसूस किया और अनुभव किया जाता है;
इसके प्रति इच्छा का त्याग करो, अविचलित रहो; जो यहाँ किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है, उसे ऋषि कहते हैं।” 494

"जो अपने ही विचारों में उलझे हुए हैं; लोगों में से बहुत से लोग गलत धर्म (मार्ग, नियम) पर स्थिर हैं:
जो कहीं भी उनके गुट में शामिल नहीं होता; और न ही भ्रष्ट वाणी बोलता है, वही भिक्षु है। 495

"समाधि में निपुण, लंबे समय से प्रशिक्षित; ईमानदार, विवेकशील, लालसा रहित।
शांति की अवस्था प्राप्त करने वाला ऋषि; परिनिर्वाण में लीन रहता है। 496

---

211. सुसंस्कृत (पेसला)
एक बार पूज्य वंगीसा अपने गुरु, पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। उस समय, पूज्य वंगीसा अपनी चतुराई के कारण अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं को नीचा समझते थे। 497 तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में हानि है, लाभ नहीं! यह मेरे लिए वास्तव में विपत्ति है, मुझे इससे कोई लाभ नहीं हुआ कि मैं अपनी चतुराई के कारण अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं को नीचा समझता हूँ।" तब पूज्य वंगीसा ने पश्चाताप
करते हुए उस समय ये श्लोक पढ़े:

"हे गौतम, अहंकार का त्याग करो; और अहंकार के मार्ग को पूरी तरह छोड़ दो।
अहंकार के मार्ग से आसक्त होकर; तुम लंबे समय से पश्चाताप कर रहे हो। 498

"अपमान से कलंकित लोग; अहंकार से मारे गए, नरक में गिरते हैं।
लोग लंबे समय तक शोक करते हैं; अहंकार से मारे गए, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"परन्तु भिक्षु कभी शोक नहीं करता; मार्ग का ज्ञाता सही ढंग से अभ्यास करता है।
वह प्रशंसा और सुख का अनुभव करता है; वास्तव में लोग उसे धर्म का द्रष्टा कहते हैं। 499

"इसलिए यहाँ नम्र और परिश्रमी बनो; बाधाओं को त्यागकर शुद्ध बनो।
अहंकार को पूरी तरह त्यागकर; ज्ञान से अंत-निर्धारक बनो, शांत बनो।" 500

---

212. आनंद
एक बार पूज्य आनंद सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र लेकर पूज्य वंगीसा के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। उस समय पूज्य वंगीसा के मन में असंतोष उत्पन्न हो गया था; उनके मन में कामवासना व्याप्त हो गई थी। 501 तब पूज्य वंगीसा ने पूज्य आनंद को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"मैं कामवासना से जल रहा हूँ; मेरा मन अग्नि से घिरा हुआ है।
कृपया मुझे इसे बुझाने का तरीका बताइए; हे गौतम, दया करके।" 502

[आदरणीय आनंद:]
"यह धारणा के उलटफेर (सन्ना संस. संग्या) के कारण है; कि आपका मन इसकी अग्नि में घिर जाता है।
सौंदर्य के कारण (निमित्त) से विमुख हो जाओ; जो कामुक (काम/यौन) वासना (राग) को उत्तेजित करता है। 503

"संस्कार ([कर्म] संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार-आदत) को पराया समझो; दुख समझो, स्वयं नहीं।
कामवासना की भीषण अग्नि बुझाओ; बार-बार मत जलो। 504

"शरीर की गंदगी पर मन को केंद्रित करो; एकाग्र (केंद्रित), समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से;
अपने ध्यान (सती) को शरीर पर लगाओ; घृणा (निबिद्दा) में लीन रहो। 505

"अकारण (अनिमित्त) पर ध्यान विकसित करो; और अहंकार की प्रवृत्ति का त्याग करो।
फिर, अहंकार को तोड़कर; तुम शांति में रहने वालों में से एक होगे।" 506

---

213. सुभाषित वक्ता (सुभाषिता)
श्रावस्ती में, 507 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को
इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जब वाणी में चार गुण होते हैं, तब वह अच्छी वाणी होती है, बुरी नहीं, और बुद्धिमानों के बीच वह निंदनीय नहीं होती। वे चार गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु केवल अच्छी वाणी बोलता है, बुरी नहीं। वह केवल धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलता है, अधर्म पर नहीं। वह केवल सुखद वाणी बोलता है, अप्रिय नहीं। वह केवल सत्य वाणी बोलता है, असत्य नहीं। जब वाणी में ये चार गुण होते हैं, तब वह अच्छी वाणी होती है, बुरी नहीं, और बुद्धिमानों के बीच वह निंदनीय नहीं होती।" 508 भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"सर्वोत्तम वचन, अच्छे लोगों का वचन, सर्वोपरि है; द्वितीय, धर्म का वचन बोलो, अधर्म का नहीं;
तृतीय, सुखद वचन बोलो, अप्रिय नहीं; चतुर्थ, सत्य बोलो, असत्य नहीं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, सौभाग्यशाली (सुगतो)!" 509
भगवान (बुद्ध) ने कहा: "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की:

"मनुष्य को केवल ऐसा वचन बोलना चाहिए; जिससे वह स्वयं को कष्ट न दे
और न ही दूसरों को हानि पहुंचाए; ऐसा वचन ही वास्तव में अच्छा वचन है।"

"मनुष्य को केवल मधुर वाणी ही बोलनी चाहिए; ऐसी वाणी जिसका सहर्ष स्वागत हो।
जब उससे कोई हानि न हो; और जो वाणी बोली जाए वह दूसरों को भी प्रसन्न करे।

सत्य वास्तव में अमर वाणी है; यह एक प्राचीन सिद्धांत है।
अच्छे लोग कहते हैं कि लक्ष्य और धर्म सत्य पर आधारित हैं। 510

"बुद्ध द्वारा निर्वाण प्राप्ति और
दुखों के अंत के लिए बोली गई निश्चयात्मक वाणी ही सर्वोत्कृष्ट वाणी है।" 511

---

214. सारिपुत्त
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, धाराप्रवाह और स्पष्ट था, जिसमें अर्थ भली-भांति व्यक्त हो रहा था। भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग/नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर रहे थे।
तब पूज्य वाग्गीसा के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे हैं, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट और भली-भांति व्यक्त हो रहा है, जिसमें अर्थ भली-भांति व्यक्त हो रहा है। और भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म सुन रहे हैं... मैं पूज्य सारिपुत्त की उनके समक्ष उपयुक्त श्लोकों से प्रशंसा करूं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और पूज्य सारिपुत्त की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "मुझे प्रेरणा मिली है, मित्र सारिपुत्त! मुझे प्रेरणा मिली है, मित्र सारिपुत्त!"
[सारिपुत्त:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, मित्र वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से पूज्य सारिपुत्त की उनके सामने प्रशंसा की:

"गहन ज्ञान से परिपूर्ण, बुद्धिमान; सच्चे और असत्य मार्ग में निपुण,
महान ज्ञान से परिपूर्ण सारिपुत्त; भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हैं।

वे संक्षेप में उपदेश देते हैं; वे विस्तार से बोलते हैं।
उनकी वाणी मैना पक्षी के समान है; प्रेरणापूर्ण प्रवचन देती है। " 512

"जब वह उन्हें शिक्षा देता है, तो वे सुनते हैं; उसकी मधुर वाणी को।
मन में उत्थान पाकर, आनंदित होकर; उसकी मनमोहक,
सुरीली और प्यारी आवाज से; भिक्षु अपने कान झुकाते हैं।"

---

215. पवाराना
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में मिगारा की माता के भवन में पाँच सौ भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अरहंत थे। उस अवसर पर - पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर - भगवान (बुद्ध) पवारना करने के लिए भिक्षु संघ से घिरे खुले में बैठे थे। 513 तब, मौन भिक्षु संघ का अवलोकन करने के बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "अब आओ, भिक्षुओं, मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूँ: क्या मेरा कोई ऐसा कर्म है, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, जिसे तुम अस्वीकार करोगे?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, “पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) का कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, हम अस्वीकार नहीं करते। क्योंकि, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) उस मार्ग के प्रवर्तक हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के निर्माता हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के उद्घोषक हैं जो पहले कभी घोषित नहीं किया गया। वे मार्ग के ज्ञाता हैं, मार्ग के खोजकर्ता हैं, मार्ग में निपुण हैं। और उनके शिष्य अब उस मार्ग का अनुसरण करते हुए निवास करते हैं और बाद में उस मार्ग के स्वामी बन जाते हैं। 514 और मैं, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) से निवेदन करता हूँ: क्या मेरा कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, ऐसा है जिसे भगवान (बुद्ध) अस्वीकार करेंगे?”

"हे सारिपुत्त, तुम्हारा कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, मैं अस्वीकार नहीं करता। क्योंकि हे सारिपुत्त, तुम ज्ञानी हो, महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, तीव्र प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, तीक्ष्ण प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो और भेदक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो। जिस प्रकार एक चक्र चलाने वाले राजा का सबसे बड़ा पुत्र अपने पिता द्वारा चलाए गए (संप्रभुता के) चक्र को उचित रूप से गतिमान रखता है, उसी प्रकार हे सारिपुत्त, तुम मेरे द्वारा चलाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के चक्र को उचित रूप से गतिमान रखते हो।" 515

"हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मेरे किसी भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, को अस्वीकार नहीं करते, तो क्या वे इन पांच सौ भिक्षुओं के किसी भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, को अस्वीकार करते हैं?"

"हे सारिपुत्त, इन पाँच सौ भिक्षुओं का कोई भी कर्म, शारीरिक या वाणी से, मैं अस्वीकार नहीं करता। क्योंकि इन पाँच सौ भिक्षुओं में से, हे सारिपुत्त, साठ भिक्षु त्रिगुण ज्ञान के धारक हैं, साठ भिक्षु छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों के धारक हैं, साठ भिक्षु दोनों प्रकार से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हैं, जबकि शेष प्रबुध्द अंतर्दृष्टि (पन्न) से मुक्त हैं।" 516

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "मुझे प्रेरणा मिली है, हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
भगवान (बुद्ध) ने कहा: "तो फिर अपनी प्रेरणा को व्यक्त करो, वांगिसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की उनके सामने स्तुति की।

आज पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुए हैं; पंद्रहवें दिन, शुद्धि के लिए,
जिन्होंने सभी बंधनों और बेड़ियों को काट डाला है; निर्मल संत (ऋषि-मुनि) जिन्होंने पुनर्जन्म के कारण को समाप्त कर दिया है,

“जैसे एक राजा, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट; अपने मंत्रियों के साथ,
इस विशाल पृथ्वी पर विचरण करता है; गहरे अंधकारमय सागर से घिरा हुआ,

वैसे ही वे युद्ध में विजयी की सेवा करते हैं; अद्वितीय कारवां नेता,
त्रिगुण ज्ञान धारण करने वाले शिष्य; जिन्होंने मृत्यु को बहुत पीछे छोड़ दिया है। 517

“सभी भगवान (बुद्ध) के सच्चे पुत्र हैं; यहाँ कोई व्यर्थ भूसा नहीं पाया जाता।

मैं सूर्य के सगे-संबंधी की पूजा करता हूँ; तृष्णा के बाण का नाश करने वाले।"

---

216. एक हजार से अधिक (पारोसहासा सं. पारो-सहस्र)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में, 1250 भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्मोपदेश देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उनका उत्साह बढ़ा रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर रहे थे।
तब पूज्य वाग्गीसा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्मोपदेश देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं। और वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म सुन रहे हैं... मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति करूँ।"

तब पूज्य वागीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "मुझे प्रेरणा मिली है, हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वागीसा।"
तब पूज्य वागीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की:

"यहाँ एक हजार से अधिक भिक्षु हैं; सौभाग्यशाली (सुगतो) की सेवा में,
क्योंकि वे निर्मल धर्म का उपदेश देते हैं; निर्वाण भय से परे है। 518

वे निष्कलंक धर्म सुनते हैं; पूर्णतः प्रबुद्ध द्वारा उपदेशित।
प्रबुद्ध वास्तव में प्रकाशमान हैं; भिक्षु संघ द्वारा सम्मानित।"

"हे भगवान (बुद्ध), आपका नाम 'नाग' है; आप ऋषियों में श्रेष्ठ ऋषि हैं।
वर्षा लाने वाले विशाल बादल की तरह, आप शिष्यों पर वर्षा बरसाते हैं। 519

"दिन के समय अपने निवास स्थान से निकलकर, गुरु के दर्शन की इच्छा से,
आपके शिष्य वंगीसा, हे महावीर, आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।"

[बुद्ध:] "क्या तुमने ये श्लोक पहले से सोच रखे थे, वंगीसा, या ये तुम्हें अनायास ही सूझे?" 520
[वंगीसा:] "मैंने ये श्लोक पहले से नहीं सोच रखे थे, आदरणीय महोदय; ये मुझे अनायास ही सूझे।"
[बुद्ध:] "तो फिर, वंगीसा, कुछ और श्लोकों को अपने मन में आने दो, जो पहले से सोचे-समझे न हों।"
[वंगीसा:] "जी, पूज्यवर," पूज्य वंगीसा ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने कुछ और श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की, जो पहले से सोचे-समझे नहीं थे:

"मारा के पथ के भटकाव को पार करके; आप मन की बंजरता को नष्ट करके जी रहे हैं।
उसे देखो, जो बंधन से मुक्त (मोक्ष में) है; अनासक्त, भागों में विभाजित। 521

"हमें बाढ़ के पार ले जाने के लिए; आपने अनेक पहलुओं सहित मार्ग प्रकट किया।"
धम्म के ऋषि अविचल खड़े हैं; उस अमर अवस्था (निर्वाण) में, जिसकी घोषणा आपने की है। 522

"प्रकाश उत्पन्न करने वाले ने सभी अवस्थाओं के पार जाकर, सभी अवस्थाओं की श्रेष्ठता को देखा;
स्वयं उसे जानकर और अनुभव करके, उन्होंने पाँचों को मुख्य विषय की शिक्षा दी। 523

"जब धम्म की इतनी अच्छी शिक्षा दी गई है,
तो इसे समझने वालों के लिए आलस्य (पमादा) क्या हो सकता है?
इसलिए, भगवान (बुद्ध) की शिक्षा में सजग रहते हुए,
सदा श्रद्धापूर्वक उसका अभ्यास करना चाहिए।"

---

217. कोंडन्ना

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य अन्ना कोंडन्ना, बहुत लंबे समय बाद, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया, उनके चरणों को चूमा, हाथों से उन्हें सहलाया और अपना नाम इस प्रकार घोषित किया: "मैं कोंडन्ना हूँ, भगवान (बुद्ध)! मैं कोंडन्ना हूँ, सौभाग्यशाली (सुगतो)!" 524
तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य अन्ना कोंडन्ना, बहुत लंबे समय बाद भगवान (बुद्ध) के पास आए हैं... भगवान (बुद्ध) के चरणों को चूमते हैं, उन्हें अपने हाथों से सहलाते हैं और उनके नाम का उच्चारण करते हैं... मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पूज्य अन्ना कोंडन्ना की स्तुति करूँ।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है! हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पूज्य अन्ना कोंडन्ना की उपयुक्त छंदों से प्रशंसा की:

"बुद्ध के वंशज, वरिष्ठ कोंडन्ना, जो अत्यंत परिश्रमी हैं,
सुखी निवास प्राप्त करते हैं; जो अक्सर एकांतवास में जाते हैं। 525

"शिष्य जो कुछ भी प्राप्त कर सकता है; जो गुरु की शिक्षाओं का अभ्यास करता है,
वह सब कुछ उसने प्राप्त किया है; जो सचेत रूप से अभ्यास करता है (अप्पमदा)।

"महान शक्ति वाले, त्रिगुण ज्ञान से परिपूर्ण; दूसरों के मन को समझने में कुशल
कोंडन्ना, बुद्ध के सच्चे उत्तराधिकारी; गुरु के चरणों में प्रणाम करते हैं।" 526

---

218. मोग्गलाना
एक बार भगवान (बुद्ध) इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर राजगृह में, पाँच सौ भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अर्हंत थे। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनके मन का अध्ययन किया और पाया कि वे मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और किसी भी प्रकार की उपाधि धारण नहीं कर सकते थे।
तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर राजगृह में निवास कर रहे हैं... तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनके मन का अध्ययन किया और पाया कि वे मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और किसी भी प्रकार की उपाधि धारण नहीं कर सकते थे। मैं भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में उपयुक्त श्लोकों से पूज्य महामोग्गलाना की स्तुति करता हूँ।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा,
"हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में उपयुक्त श्लोकों से पूज्य महामोग्गलाना की प्रशंसा की:

"जब ऋषि पर्वत की ढलान पर विराजमान हैं; दुख के पराकाष्ठा पर चले गए हैं।
उनके शिष्य उनकी सेवा में बैठे हैं; त्रिगुण ज्ञान से परिपूर्ण, जिन्होंने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है।

मोग्गलाना, आध्यात्मिक शक्ति में महान; ने उनके मन को अपने भीतर समाहित कर लिया।
और उनके मन को खोजते हुए; पूर्णतः मोक्ष में लीन, बिना किसी प्राप्ति के!"

"इस प्रकार अनेक गुणों से परिपूर्ण वे समस्त गुणों से परिपूर्ण गौतम की सेवा करते हैं;
जो समस्त गुणों से परिपूर्ण ऋषि हैं; और दुख के सुदूर तट पर चले गए हैं।" 527

---

219 गग्गारा
एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गर कमल सरोवर के किनारे एक विशाल भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिसमें पाँच सौ भिक्षु, सात सौ पुरुष अनुयायी, सात सौ स्त्री अनुयायी और हजारों देवता (देवदूत) शामिल थे। भगवान (बुद्ध) सौंदर्य और महिमा में उन सभी से कहीं अधिक तेजस्वी थे।

तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह भगवान (बुद्ध) चंपा में निवास कर रहे हैं... और हजारों देवता भी उनके साथ हैं। भगवान (बुद्ध) सौंदर्य और महिमा में उन सभी से कहीं अधिक तेजस्वी हैं। मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति उनके समक्ष करूं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "मुझे प्रेरणा मिली है। हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वंगीसा।" तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोक से
भगवान (बुद्ध) की स्तुति की : "जैसे चंद्रमा निर्मल आकाश में चमकता है; जैसे सूर्य निर्मल चमकता है। वैसे ही, हे अंगिरसा, हे महान ऋषि; अपनी महिमा से समस्त संसार को प्रकाशित कीजिए।"

---

220. वांगिसा
एक बार पूज्य वंगीसा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वंगीसा ने हाल ही में अरहंत पद प्राप्त किया था और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के सुख का अनुभव करते हुए उन्होंने ये श्लोक पढ़े: 528

“कविता में मग्न होकर मैं विचरण करता था; गाँव-गाँव, नगर-नगर।
तब मैंने बुद्ध के दर्शन किए; और मेरे भीतर आस्था जागृत हुई। 529

“उन्होंने मुझे धम्म (मार्ग, नियम); स्कंध (संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत स्कंध), इंद्रिय क्षेत्र और धातु (धातु) का उपदेश दिया।
उनसे धम्म सुनकर मैं संन्यासी जीवन में चला गया।”

"सचमुच, अनेकों के कल्याण के लिए; ऋषि ने ज्ञान प्राप्त किया।
भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए; जिन्होंने निश्चित मार्ग को पा लिया है और देख लिया है। 530

"मेरे लिए सचमुच स्वागत योग्य रहा है; बुद्ध की उपस्थिति में मेरा आना।
तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; बुद्ध की शिक्षा पूरी हो गई है।

अब मैं अपने पिछले निवासों को जानता हूँ; दिव्य दृष्टि शुद्ध हो गई है।
त्रिविध ज्ञान और आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) से युक्त; दूसरों के मन को जानने में कुशल।" 531

सम्युत्त 9: वनों में जुड़े प्रवचन (वनसम्युत्त)
221. एकांतवास (विवेक)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय, जब वह भिक्षु दिन भर के विश्राम के लिए गया, तो वह गृहस्थ जीवन से संबंधित बुरे (अकुशल, संस्कृत में अकुशल) विचारों में डूबा रहा। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उस भिक्षु पर दया करते हुए, उसका भला चाहते हुए, और उसमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से, उसके पास जाकर श्लोकों में उससे कहा:

"एकांत की इच्छा से तुम जंगल में आए;
फिर भी तुम्हारा मन बाहरी विचारों से भरा है।
हे मनुष्य, लोगों के प्रति अपनी इच्छा को दूर करो;
तब तुम सुखी और कामवासना से मुक्त हो जाओगे। 532

तुम्हें असंतोष का त्याग करना होगा, ध्यानमग्न होना होगा; हम तुम्हें अच्छे मार्ग की याद दिलाते हैं।
धूल भरी खाई को पार करना वास्तव में कठिन है; कामुक धूल को अपने ऊपर हावी न होने दें। 533

"जैसे कोई पक्षी मिट्टी से लथपथ होकर अपने
ऊपर चिपकी धूल झाड़ देता है,
वैसे ही एक भिक्षु, परिश्रमी और ध्यानमग्न होकर, अपने ऊपर चिपकी धूल झाड़ देता है।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उस भिक्षु में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हुआ।

---

222. उत्तेजन (उपथाना)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय जब वह भिक्षु दिनभर विश्राम करने के बाद सो गया। 534 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें परिश्रम की भावना जगाने के लिए वह उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा,

"उठो, भिक्षु, क्यों लेटे हो? तुम्हें नींद की क्या आवश्यकता है?
पीड़ित, दुखी, बाण से ग्रस्त व्यक्ति को भला नींद कैसे आ सकती है?

अपने भीतर उस विश्वास को पोषित करो, जिसके साथ तुमने गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यास लिया था
; आलस्य के वश में मत आओ।"

[भिक्षु:] 535
"इंद्रिय सुख क्षणभंगुर और अस्थिर होते हैं; यद्यपि मंदबुद्धि व्यक्ति उनमें लीन रहता है।"
जब वह मुक्त है, बंधनों में विरक्त है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें?

जब इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) के निवारण से; और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) के पारगमन से,
वह ज्ञान शुद्ध हो गया है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें? 536

जब अज्ञान को ज्ञान से तोड़कर; और विकारों के नाश (खयाय/क्षय) से,
वह दुःख रहित, निराशा से परे है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें?

जब वह ऊर्जावान और दृढ़ है, अपने प्रयासों में हमेशा दृढ़ है,
निर्वाण प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें? 537

---

223. कस्सपगोट्टा
एक बार पूज्य कस्सपगोत्ता कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय, जब वे दिन भर के विश्राम के लिए चले गए, तो उन्होंने एक शिकारी को उपदेश दिया। 538 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता (देवदूत) को पूज्य कस्सपगोत्ता पर दया आई, उनका भला चाहा और उनमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से वे उनके पास गए और छंदों में उनसे कहा:

"यह भिक्षु मुझे मंदबुद्धि लगता है; जो समय से पहले
ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों में भटकते हुए शिकारी को उपदेश दे रहा है; वह अल्प ज्ञान से रहित है, समझ से खाली है।

वह सुनता तो है पर समझता नहीं; देखता तो है पर ध्यान नहीं देता;
यद्यपि धम्म (धर्म, मार्ग) का उपदेश दिया जा रहा है; वह नासमझ है, अर्थ नहीं समझ पाता।"

"हे कस्सपा, यदि तुम दस दीपक भी उसके समक्ष ले आओ,
तब भी वह रूप-रूप नहीं देख पाएगा; क्योंकि उसके पास देखने की आंखें नहीं हैं।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर पूज्य कस्सपागोत्ता को एक अत्यावश्यक कार्य करने की आवश्यकता महसूस हुई।

---

224. एक संख्या (साम्बाहुला)
एक बार कई भिक्षु कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद, तीन माह बीत जाने पर वे भिक्षु भ्रमण पर निकल पड़े। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उन भिक्षुओं को न देखकर विलाप करते हुए यह श्लोक पढ़ा:

"आज मुझे असंतोष दिखाई देता है;
जब मैं यहाँ इतने सारे रिक्त स्थान देखता हूँ।
गौतम के शिष्य कहाँ चले गए;
वे ज्ञान से परिपूर्ण प्रतिभाशाली वक्ता?" 539

यह सुनकर एक अन्य देवता ने श्लोक में उत्तर दिया:

"वे मगध गए हैं, कोसल गए हैं, और कुछ वज्जीय भूमि में हैं।
बंधनों से मुक्त हिरणों की तरह; भिक्षु बिना निवास के निवास करते हैं।" 540

---

225. आनंद
एक बार पूज्य आनंद कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद गृहस्थों को उपदेश देने में अत्यधिक व्यस्त थे। 541 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता (देवदूत) को पूज्य आनंद पर दया आई, उनका भला चाहा और उनमें तत्परता की भावना जगाने के लिए वे उनके पास आए और श्लोक में उनसे कहा,

"वृक्ष की तलहटी में जंगल में प्रवेश करके, आपने अपने हृदय में निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
हे गौतम, ध्यान कीजिए और आलसी मत बनिए! इस शोर-शराबे से आपको क्या लाभ होगा?" 542

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर पूज्य आनंद में तत्परता की भावना उत्पन्न हुई।

नोट: आनंद भी बुद्ध की तरह गौतम वंश से संबंधित थे।

---

226. अनुराधा
एक बार पूज्य अनुराधा कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। तभी तावतिंसा स्वर्ग की एक देवी (देवदूत), जलिनी, जो पूज्य अनुराधा की पूर्व संगिनी थीं, उनके पास आईं और उनसे श्लोक में कहा: 543

"अपना ध्यान उस लोक की ओर लगाओ; जहाँ तुम अतीत में
तावतिंसा देवों (देवदूतों) के बीच निवास करते थे; जिनके लिए सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं।"

---

227. नागदत्ता
(भिक्खुनी उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित)

मैंने ऐसा सुना। एक समय पूज्य नागदत्त कोसल देश के एक वन क्षेत्र में रहते थे।
उस समय, पूज्य नागदत्त गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करते थे और बहुत देर से लौटते थे।
तब उस वन क्षेत्र में रहने वाले एक देवता ने करुणावश, पश्चाताप जगाने की इच्छा से, पूज्य नागदत्त के पास जाकर ये श्लोक कहे:

"नागदत्त, गाँव में प्रवेश करो; सही समय पर और जल्दी लौट आओ।
गृहस्थों के साथ अधिक समय तक संगति मत करो; मुझे खेद है, नागदत्त, सुख-दुख के भावों को साझा मत करो

; परिवारों के साथ संगति एक बंधन है
; मृत्यु का राजा शक्तिशाली है; उसके क्षेत्र में प्रवेश मत करो।"

तब देवता द्वारा पश्चाताप जगाए जाने पर पूज्य नागदत्त चिंतित हो गए।

---

228. कुलाघरानी
(भिक्खुनी उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित)

मैंने ऐसा सुना। एक समय कोसल देश के एक वन क्षेत्र में एक भिक्षु रहते थे।
उस समय वे अपना बहुत सारा समय एक परिवार के पास जाने में व्यतीत करते थे।
तब उस वन क्षेत्र में रहने वाली एक देवी ने करुणावश, पश्चाताप जगाने की इच्छा से, उस कुख्यात परिवार की स्त्री का रूप धारण किया और उस भिक्षु के पास गईं।
पास आकर उन्होंने उस भिक्षु से ये श्लोक कहे:

"सारी रात नदी के किनारे का चिंतन करो। लोग कहते हैं,
वह नदी के किनारे क्यों ऊपर-नीचे जा रहा है?

अनेक बाधक ध्वनियाँ हैं
जिन्हें तपस्वी को सहन करना चाहिए।
उन ध्वनियों से विचलित या थकना मत।

वन के जंगली जानवर ध्वनियों से कांपते हैं।
उन ध्वनियों को अनदेखा करो, वे तुम्हारे दायरे में नहीं आतीं।"

---

229. वज्जिअन राजकुमार (वज्जिपुत्त)
एक बार एक भिक्षु, जो वज्जी वंश का राजकुमार था, वैशाली के एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय वैशाली में रात भर चलने वाला एक उत्सव चल रहा था। वैशाली से आती वाद्ययंत्रों, घंटों और संगीत की कर्कश ध्वनि सुनकर वह भिक्षु विलाप करने लगा। 549 उस अवसर पर उसने यह श्लोक पढ़ा:

"हम जंगल में अकेले रहते हैं;
जंगल में त्यागे गए लट्ठे के समान।
इस तेजस्वी रात्रि में;
हमसे बदतर स्थिति में कौन है?"

तब उस घने जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें तत्परता की भावना जगाने के लिए वह उसके पास आया और श्लोक में उससे कहा:

"जैसे तुम जंगल में अकेले रहते हो; जंगल में त्यागे गए लट्ठे के समान।
बहुत से लोग तुमसे ईर्ष्या करते हैं; जैसे नरकवासी स्वर्ग जाने वालों से ईर्ष्या करते हैं।" 550

तब उस भिक्षु ने, उस देवता द्वारा प्रेरित होकर, एक तात्कालिकता का भाव प्राप्त किया।

---

230 सज्जया पाठ करना
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय वह भिक्षु पाठ में अत्यधिक तल्लीन था, लेकिन बाद में उसने विश्राम किया और मौन धारण किया। 551 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने, उस भिक्षु को धम्म का पाठ करते हुए न सुनकर, उसके पास जाकर श्लोकों में उससे कहा,

"भिक्षु, आप अन्य भिक्षुओं के साथ संगति में रहकर धम्म-श्लोकों का पाठ क्यों नहीं करते?
धम्म का पाठ करने से आत्मविश्वास बढ़ता है; इसी जीवन में पाठ करने वाले को स्तुति प्राप्त होती है।"

[भिक्षु:]
"पूर्व में मुझे धम्म-श्लोकों का प्रेम था; जब तक मैंने वैराग्य प्राप्त नहीं किया था।
परन्तु जब से मैंने वैराग्य प्राप्त किया है; [मैं उसमें लीन रहता हूँ] जिसे भले लोग
'अंतिम ज्ञान द्वारा सब कुछ त्याग देना' कहते हैं; जो कुछ भी देखा, सुना या अनुभव किया जाता है।" 552

---

231. हानिकारक विचार (अकुसलवित्तक सं. अकुशल-वितर्क)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय जब वह भिक्षु दिनभर के विश्राम के लिए चला गया, तो वह लगातार बुरे और हानिकारक विचारों में उलझा रहा, अर्थात् कामुकता, द्वेष और हानि पहुँचाने के विचार। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से वह उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा:

"ध्यानहीन मन लगाने के कारण, हे महोदय, आप अपने विचारों से ग्रस्त हैं। ध्यानहीन
मार्ग को त्यागकर, आपको ध्यानपूर्वक सोचना चाहिए।

अपने विचारों को गुरु पर आधारित करके।" धम्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा) और अपने सद्गुणों पर चलकर,
आप निश्चय ही आनंद की प्राप्ति करेंगे; तथा परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) भी प्राप्त करेंगे।
फिर जब आप आनंद से परिपूर्ण हो जाएंगे; तो आप दुखों का अंत कर देंगे।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उस भिक्षु में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हुआ।

---

232. मध्याह्न (मज्झान्हिका सं. मध्यानिका)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। तभी उस जंगल में निवास करने वाला देवदूत उस भिक्षु के पास आया और उसके सामने यह श्लोक बोला:

"जब दोपहर होती है, और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल जंगल भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना भयानक लगता है!"

[भिक्षु:]
790 "जब दोपहर होती है; और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल जंगल भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना आनंददायक लगता है!"

---

233. इंद्रियों में शिथिल (पकतिन्द्रिय)
एक बार कोसलों के बीच एक घने जंगल में कई भिक्षु निवास कर रहे थे। वे बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कठोर वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित, अपूर्ण समझ वाले (संपजन्न), समाधि अवस्था में नहीं, विचलित और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण खो चुके थे। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उन भिक्षुओं पर दया करते हुए, उनका भला चाहते हुए और उनमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से उनके पास जाकर श्लोकों से उन्हें संबोधित किया:

"पहले भिक्षु सुखी जीवन व्यतीत करते थे; गौतम के शिष्य।
वे इच्छाहीन होकर भिक्षा मांगते थे; वे इच्छाहीन होकर अपने आवासों का उपयोग करते थे।
संसार की अनित्यता को जानकर; उन्होंने दुखों का अंत किया।

परन्तु अब वे गाँव के मुखियाओं की तरह; अपने भरण-पोषण को कठिन बना लेते हैं।
वे खाते हैं, खाते हैं और फिर लेट जाते हैं; दूसरों के घरों में आसक्त।

"संघ को आदरपूर्वक प्रणाम करने के बाद, मैं यहाँ केवल कुछ के बारे में बात कर रहा हूँ:
वे त्यागे हुए हैं, बिना रक्षक के; वे मृतकों के समान हो गए हैं।

मेरा कथन आलस्य में रहने वालों (पमादा) के संदर्भ में है।

जहाँ तक सजगता में रहने वालों (अपमादा) की बात है; मैं उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उन भिक्षुओं में तत्परता की भावना उत्पन्न हुई। <440>

---

234. गंध का चोर (गंधत्थेना)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय, भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वह भिक्षु एक तालाब में उतरकर लाल कमल को सूंघता था। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें कुछ करने की प्रेरणा जगाने के लिए वह उसके पास गया और उससे श्लोक में कहा: 554

"जब तुम इस कमल को सूंघते हो; यह वस्तु तुम्हें नहीं दी गई है।
यह चोरी का एक कारण है; हे महोदय, तुम गंध के चोर हो।"

[भिक्षु:]
"मैं न लेता हूँ, न नुकसान पहुँचाता हूँ; मैं कमल को दूर से सूंघता हूँ;
तो आप किस कारण से कहते हैं; कि मैं गंध का चोर हूँ? 555

"जो कमल की डंठलों को उखाड़ता है; जो फूलों को नुकसान पहुँचाता है,
जिसका व्यवहार इतना कठोर है; उससे बात क्यों नहीं की जाती?" 556 [205]

[देवता:]
"जब कोई व्यक्ति कठोर और उग्र होता है; किसी दुपट्टे की तरह बुरी तरह मैला होता है, तो
मुझे उससे कुछ नहीं कहना होता; परन्तु मुझे तुमसे ही बात करनी चाहिए।

क्योंकि जो व्यक्ति निष्कलंक होता है; जो सदा पवित्रता की खोज में रहता है। उसके लिए
बुराई का एक बाल बराबर अंश भी बादल के समान बड़ा प्रतीत होता है।"

[भिक्षु:]
"हे आत्मा, निश्चय ही तुम मुझे समझते हो; और मुझ पर दया करते हो।
हे आत्मा, जब भी तुम ऐसा कोई कर्म देखो, मुझसे फिर बात करना।"

[देवता:]
"हम तुम्हारे सहारे नहीं रहते; न ही तुम्हारे किराए के सेवक हैं।
हे भिक्षु, तुम्हें स्वयं जानना चाहिए; अच्छे मार्ग (सुगति) का मार्ग।" 557

तब उस भिक्षु को, उस देवता द्वारा प्रेरित होकर, एक तात्कालिकता का भाव प्राप्त हुआ।

सम्युत्त 10: यक्षों/आत्माओं के साथ संबंधित प्रवचन (यक्षसम्युत्त)
235. इंदका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इन्द पर्वत की चोटी पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे, जो यक्ष इन्दक का निवास स्थान था। 558 तब यक्ष इन्दक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोकों में पूछा,

“जैसा कि बुद्ध कहते हैं कि रूप आत्मा नहीं है; तो फिर यह शरीर कैसे प्राप्त होता है?
हड्डियाँ और जिगर कहाँ से आते हैं? गर्भ में जन्म कैसे होता है?” 559

[भगवान (बुद्ध):]
“पहले कलला होता है; कलला से अब्बुद उत्पन्न होता है;

अब्बुद से पेसी उत्पन्न होता है; पेसी से घन उत्पन्न होता है; घन
से अंग निकलते हैं; सिर के बाल, शरीर के बाल और नाखून।

और जो कुछ भी माता खाती है; जो भोजन और पेय वह ग्रहण करती है,
उसी से गर्भ में पलने वाले जीव का पालन-पोषण होता है; माता के गर्भ में पलने वाले जीव का।" 560

---

236. सक्कनामाका
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब यक्ष सक्कनामक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"सभी बंधनों को त्यागकर, पूर्णतः मोक्ष प्राप्त कर चुके व्यक्ति के समान ,
हे तपस्वी, तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है कि तुम दूसरों को उपदेश दो।" 561

[भगवान (बुद्ध):]
"हे सक्क, यदि किसी कारणवश किसी से घनिष्ठता उत्पन्न हो जाए, तो
बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के प्रति करुणा से अपना मन विचलित नहीं करना चाहिए।

परन्तु यदि वह निर्मल और शुद्ध मन से दूसरों को उपदेश दे, तो
वह अपनी करुणा और सहानुभूति से बंध नहीं जाता।" 562

---

237. सुसिलोमा
एक बार भगवान (बुद्ध) गया में तंकिता शय्या पर निवास कर रहे थे, जो यक्ष सुसिलोमा का निवास स्थान था। 563 उस समय यक्ष खरा और यक्ष सुसिलोमा भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर से गुजर रहे थे। यक्ष खरा ने यक्ष सुसिलोमा से कहा, "वह एक तपस्वी है।" सुसिलोमा ने कहा,
"वह तपस्वी नहीं है; वह पाखंडी तपस्वी है। 564 मैं शीघ्र ही पता लगा लूंगा कि वह तपस्वी है या पाखंडी तपस्वी।"

तब यक्ष सुसिलोमा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनके ऊपर झुक गया। भगवान (बुद्ध) पीछे हट गए। तब यक्ष सुसिलोमा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "क्या आप मुझसे डरते हैं, तपस्वी?" सुसिलोमा ने कहा,
"मैं तुमसे नहीं डरता, मित्र। बस तुम्हारा स्पर्श अशुभ है।" 565
"मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ, हे तपस्वी। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें पागल कर दूँगा या तुम्हारा हृदय चीर दूँगा या तुम्हारे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक दूँगा।"
"हे मित्र, इस संसार में, इसके देवों, शैतान और ब्रह्मा सहित, इस पीढ़ी में, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवों और मनुष्यों सहित, मुझे कोई ऐसा नहीं दिखता जो मुझे पागल कर सके या मेरा हृदय चीर सके या मेरे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक सके। परन्तु जो चाहो पूछ लो, मित्र।" "

काम (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) का स्रोत क्या है?
असंतोष (नंदी/आनंद) और भय कहाँ से उत्पन्न होते हैं?
किससे उत्पन्न होकर मन के विचार
[किसी को इधर-उधर उछालते हैं] जैसे लड़के कौवे को उछालते हैं?" 566

[भगवान (बुद्ध):]
809 "काम (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) का स्रोत यहीं है;
इसी से असंतोष, आनंद (नंदी/आनंद) और भय उत्पन्न होते हैं;
इसी से उत्पन्न होकर मन के विचार
[मन को इधर-उधर उछालते हैं] जैसे लड़के कौवे को उछालते हैं। 567

"स्नेह से उत्पन्न, स्वयं से उत्पन्न, बरगद के वृक्ष की तने से निकली शाखाओं के समान;
अनेक प्रकार से, इंद्रिय सुखों से चिपके हुए (उपादान संस्कृत: आसक्ति), जैसे मालुवा लता जंगल में फैली होती है। 568

"जो इनके स्रोत को समझते हैं,
वे इसे दूर करते हैं - हे यक्ष, सुनो!
वे इस बाढ़ को पार कर लेते हैं, जिसे पार करना इतना कठिन है
, क्योंकि इससे पहले कोई नया जन्म नहीं हुआ है।" 569

---

238. मणिभद्दा
एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच मणिमलका मंदिर में निवास कर रहे थे, जो यक्ष मणिभद्द का निवास स्थान था। तब यक्ष मणिभद्द भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनकी उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए सदा अच्छा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति सुख में समृद्ध होता है।
ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए प्रतिदिन बेहतर होता जाता है, और वह शत्रुता से मुक्त हो जाता है।" 570

[भगवान (बुद्ध):]
"ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए सदा अच्छा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति सुख में समृद्ध होता है।
ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए प्रतिदिन बेहतर होता जाता है, परन्तु वह शत्रुता से मुक्त नहीं होता।

जिसका मन दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है,
जो सभी प्राणियों के प्रति प्रेम रखता है, उसका किसी से कोई शत्रुता नहीं होती।" 571

---

239. सानू
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक महिला अनुयायी का पुत्र सानु था, जिस पर यक्ष का साया था। 572 तब उस महिला अनुयायी ने विलाप करते हुए ये श्लोक पढ़े:

“जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, 573 जो उपोसथ पर्व के
आठों दिन पूर्ण रूप से मनाते हैं; चौदहवें या पंद्रहवें दिन,

पखवाड़े के आठवें दिन और विशेष तिथियों के दौरान, उनके
आसपास यक्ष क्रीड़ा नहीं करते; मैंने अरहंतों से यही सुना है।
परन्तु आज मैं स्वयं देख रही हूँ; यक्ष सानु को परेशान कर रहे हैं।”

[सानू में प्रवेश करने वाला यक्ष:]
"उन लोगों के साथ जो पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; जो उपोसथ दिनों का पालन करते हैं,
आठों कारकों में पूर्ण; चौदहवें या पंद्रहवें दिन,
और पखवाड़े के आठवें दिन; और विशेष अवधियों के दौरान।
यक्ष इधर-उधर क्रीड़ा नहीं करते; तुमने अरहंतों से जो सुना है वह अच्छा है।

"जब सानू जाग जाए तो उसे बताओ; यक्षों का यह आदेश;
कोई बुरा कर्म मत करो; चाहे खुलेआम हो या गुप्त रूप से।

यदि तुम कोई बुरा कर्म करो; या यदि तुम अभी कर रहे हो।
तुम कष्टों से मुक्त नहीं होगे; चाहे तुम उड़कर भाग जाओ।" 574

[सानू:] 575
"वे रोते हैं, माँ, मृतकों के लिए; या किसी ऐसे जीवित व्यक्ति के लिए जो दिखाई नहीं देता।
जब तुम देखती हो, माँ, कि मैं जीवित हूँ; हे माँ, तुम मेरे लिए क्यों रोती हो?"

[सानू की माँ:]
"वे रोते हैं, हे पुत्र, मृतकों के लिए; या किसी ऐसे जीवित व्यक्ति के लिए जो दिखाई नहीं देता;
लेकिन जब कोई घर लौटता है; इंद्रिय सुखों का त्याग करने के बाद;
वे इसके लिए भी रोते हैं, मेरे बेटे; क्योंकि जीवित होते हुए भी वह वास्तव में मर चुका है। 576

"मेरे प्रिय, धधकते अंगारों से निकाला गया, तुम धधकते अंगारों में डूबना चाहते हो;
मेरे प्रिय, नरक से निकाला गया, तुम नरक में डूबना चाहते हो।" 577

"आगे बढ़ो, तुम्हारा भाग्य अच्छा हो! हम अपना शोक किससे व्यक्त करें?
आग से बचाई गई वस्तु होने के बावजूद; तुम फिर से जलना चाहते हो।" 578

---

240. पियांकरा (सं. प्रियंकारा)
एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य अनुराधा भोर होते ही उठकर धर्म के श्लोकों का पाठ कर रहे थे। तभी यक्षिणी पियांकरा की माता ने अपने छोटे बच्चे को चुप कराते हुए कहा: 579

826 “पियांकर, कोई आवाज मत करो। एक भिक्षु धर्म के श्लोकों का पाठ कर रहा है।
धर्म के श्लोक को समझकर हम अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर सकते हैं।

हमें जीवों को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए; हमें जानबूझकर झूठ नहीं बोलना चाहिए।
हमें शील में स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए; शायद हम पिशाच लोक से मुक्त हो जाएंगे।”

---

241. पुनाबासु
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्म प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग/नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगा रहे थे। तभी पुणब्बासु की माता ने अपने छोटे बच्चों को चुप कराते हुए कहा: 580

“शांत रहो, उत्तरिका, शांत रहो, पुणब्बासु!
मैं धर्म सुनना चाहती हूँ; परम बुद्ध के धर्म का।

जब भगवान (बुद्ध) निर्वाण, सभी बंधनों से मुक्ति (मोक्ष) की बात करते हैं, तो
मेरे भीतर इस धर्म के प्रति गहरा स्नेह उत्पन्न हो गया है।”

"संसार में अपना पुत्र प्रिय है; संसार में अपना पति प्रिय है;
परन्तु मेरे लिए इस धम्म की खोज; इन सबसे भी अधिक प्रिय हो गई है।

क्योंकि न तो अपना पुत्र और न ही पति; चाहे प्रिय ही क्यों न हों, दुखों से मुक्ति दिला सकते हैं,
जैसे सच्चे धम्म को सुनने से जीवात्माओं के दुखों से मुक्ति मिलती है। 581

"दुखों से भरे इस संसार में, वृद्धावस्था और मृत्यु के बंधनों में जकड़े हुए,
मैं उस धम्म को सुनना चाहता हूँ; जिसे बुद्ध ने पूर्णतः ग्रहण किया था।
वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति के लिए; इसलिए चुप रहो, पुनाबासु!" 582

[पुनाबासु:]
"प्रिय माता, मैं कुछ नहीं बोल रहा हूँ; यह उत्तर भी मौन है।
केवल धम्म पर ध्यान दो; क्योंकि सच्चे धम्म को सुनना सुखद है।
क्योंकि हमने सच्चे धम्म को नहीं जाना है; इसलिए हम दुखी जीवन जी रहे हैं, माता।

"वह प्रकाश के निर्माता हैं; भ्रमित देवों और मनुष्यों के लिए;
प्रबुद्ध होकर, अपना अंतिम शरीर धारण किए हुए; दृष्टिवान ही धम्म का उपदेश देते हैं।

[पुनब्बासु की माता:]
"यह सौभाग्य है कि मेरा पुत्र इतना बुद्धिमान हो गया है; जिसे मैंने जन्म दिया और अपनी गोद में पाला-पोसा।
मेरा पुत्र परम प्रबुद्ध व्यक्ति के शुद्ध धम्म से प्रेम करता है।

पुनब्बासु, प्रसन्न रहो! आज मैं अंततः प्रकट हुई हूँ।
हे उत्तरा, मेरी बात भी सुनो; महान सत्य प्रकट होते हैं!" 583

---

242. सुदत्ता
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह के शीतल वन में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका किसी कार्य से राजगृह आए थे। 584 उन्होंने सुना,
“कहा जाता है कि संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं!” वे तुरंत भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने जाना चाहते थे, लेकिन उनके मन में यह विचार आया, “आज भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने का उचित समय नहीं है। मैं कल सुबह जल्दी भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने जाऊंगा।” वे बुद्ध का ध्यान लगाकर लेट गए और रात में तीन बार सुबह समझकर उठे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका श्मशान घाट के द्वार के पास पहुँचे। किसी अमानव ने द्वार खोला। फिर, जब गृहस्थ अनाथपिंडिका नगर से निकल रहे थे, तभी प्रकाश गायब हो गया और अंधेरा छा गया। उनके मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न हुआ और वे वापस लौटना चाहते थे। लेकिन अदृश्य यक्ष शिवक ने घोषणा की: 585

"एक लाख हाथी, एक लाख घोड़े, एक लाख खच्चर-चालित रथ,
एक लाख कन्याएँ; आभूषणों और कानों की बालियों से सजी हुई;
एक कदम आगे बढ़ने के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हैं। 586 "

आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ो, गृहस्थ!
आगे बढ़ना तुम्हारे लिए बेहतर है, पीछे मुड़ना नहीं।"

तब अंधकार छंट गया और गृहस्थ अनाथपिंडिका के सामने प्रकाश प्रकट हुआ, और उसके मन में उत्पन्न भय, कंपकंपी और आतंक शांत हो गया।

दूसरी बार... (इस पुनरावृति में पहले के श्लोक शामिल हैं)
... तीसरी बार गृहस्थ अनाथपिंडिका के सामने प्रकाश छंट गया और अंधकार छा गया। उसके मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न हुआ और वह पीछे मुड़ना चाहता था। लेकिन तीसरी बार अदृश्य यक्ष शिवक ने घोषणा की:

"एक लाख हाथियों के बराबर... एक कदम आगे बढ़ने से।"

"आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ना
तुम्हारे लिए बेहतर है, पीछे मुड़ना नहीं।"

तब अंधकार छंट गया और गृहस्थ अनाथपिंडिका को प्रकाश दिखाई दिया, और उसके मन में उत्पन्न भय, कंपकंपी और आतंक शांत हो गया।

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका शीतल वन में भगवान (बुद्ध) के पास गए। उस समय भगवान (बुद्ध) भोर के समय उठकर खुले में टहल रहे थे। भगवान (बुद्ध) ने दूर से गृहस्थ अनाथपिंडिका को आते देखा। वे चबूतरे से नीचे उतरे, तैयार आसन पर बैठ गए और गृहस्थ अनाथपिंडिका से कहा: "आओ, सुदत्त।" 587

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका ने यह सोचकर कि "भगवान (बुद्ध) ने मुझे मेरे नाम से पुकारा है," [उत्साहित और प्रसन्न होकर], 588 वहीं पर भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, मुझे आशा है, कि भगवान (बुद्ध) ने अच्छी नींद ली।

कि भगवान (बुद्ध) ने अच्छी नींद ली। [भगवान (बुद्ध):]
"वह ब्राह्मण जो पूरी तरह तृप्त हो चुका है, वह सदा ही चैन से सोता है।
जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता; जिसका हृदय शांत है, जो किसी भी प्रकार की प्राप्ति से रहित है (उपाधि)।

सभी आसक्तियों को त्यागकर, हृदय से चिंताओं को दूर करके,
वह शांत मन से सोता है; उसे मन की शांति प्राप्त हो जाती है।" 589

---

243. सुक्का (1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भिक्षुणी सुक्का, एक विशाल सभा से घिरी हुई, धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दे रही थीं। तब एक यक्ष, जिसे भिक्षुणी सुक्का पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर इन श्लोकों का पाठ करने लगा:

“राजगृह में इन लोगों को क्या हो गया है? ये ऐसे सो रहे हैं मानो इन्होंने मदिरा पी ली हो।
ये सुक्का की शरण में क्यों नहीं आते; जब वह अमरता (निर्वाण) का उपदेश देती हैं? 590

“परन्तु ज्ञानी तो मानो उसे पी जाते हैं; वह [धर्म] अप्रतिरोध्य है।
अमृतमय, पौष्टिक; जैसे यात्री बादल को पीते हैं।” 591

---

244. सुक्का (2)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय एक गृहस्थ अनुयायी ने भिक्षुणी सुक्का को भोजन कराया। तब एक यक्ष, जिसे भिक्षुणी सुक्का पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर यह श्लोक बोला:

"उसने बहुत पुण्य अर्जित किया है; वास्तव में यह गृहस्थ अनुयायी बुद्धिमान है।
जिसने सुक्का को भोजन कराया, वह सभी बंधनों से मुक्त हो गया।" 592

---

245. सिरा
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय एक गृहस्थ अनुयायी ने भिक्षुणी चिरा को एक वस्त्र भेंट किया। तब एक यक्ष, जिसे चिरा पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर यह श्लोक बोला:

"इसने बहुत पुण्य अर्जित किया है। वास्तव में यह गृहस्थ अनुयायी बुद्धिमान है।
जिसने चिरा को वस्त्र भेंट किया, वह सभी बंधनों से मुक्त हो गया है।"

---

246. अलावाका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) अलवी में निवास कर रहे थे, जो यक्ष अलवक का निवास स्थान था। 593 तब यक्ष अलवक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:
"निकल जाओ, तपस्वी!"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह निकल गया। 594
"अंदर आ जाओ, तपस्वी।"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह अंदर आ गया।
दूसरी बार... तीसरी बार यक्ष अलवक ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "निकल जाओ, तपस्वी!"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह निकल गया। "अंदर आ जाओ, तपस्वी।"

"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह अंदर आ गया।
चौथी बार यक्ष अलवक ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"निकल जाओ, तपस्वी।"
"मैं बाहर नहीं जाऊँगा, मित्र। जो करना है करो।"
"मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूँगा, तपस्वी। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें पागल कर दूँगा या तुम्हारा हृदय चीर दूँगा या तुम्हारे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक दूँगा।" 595
"मित्र, इस संसार में, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी में, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुझे कोई ऐसा नहीं दिखता जो मुझे पागल कर सके या मेरा हृदय चीर सके या मेरे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक सके। परन्तु जो चाहो पूछो, मित्र।" 596

[अलावक:]
"यहाँ मनुष्य का सबसे बड़ा खजाना क्या है? किसका सही अभ्यास सुख देता है?
वास्तव में सबसे मधुर स्वाद क्या है? वह व्यक्ति कैसे जीता है जिसे सर्वश्रेष्ठ जीवन जीने वाला कहा जाता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"यहाँ आस्था ही मनुष्य का सबसे बड़ा खजाना है; धर्म (मार्ग, नियम) का सही पालन सुख लाता है;
सत्य वास्तव में सबसे मधुर स्वाद है; कहते हैं कि प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से जीने वाला ही सर्वश्रेष्ठ जीवन जीता है।" 597

[अलवक:]
"बाढ़ को कैसे पार किया जाए? उबड़-खाबड़ समुद्र को कैसे पार किया जाए?
दुख पर कैसे विजय प्राप्त की जाए? पवित्रता कैसे प्राप्त की जाए?"

[भगवान (बुद्ध):]
"आस्था से बाढ़ पार की जाती है; सजगता (अप्पमदा) से उबड़-खाबड़ समुद्र को।
ऊर्जा (वीर्य) से दुख पर विजय प्राप्त की जाती है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पवित्रता प्राप्त की जाती है।" 598

[अलवक:]
"प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) कैसे प्राप्त की जाए? 599 धन कैसे पाया जाए?
ख्याति कैसे प्राप्त की जाए? मित्रों को अपने साथ कैसे बांधा जाए?
इस लोक से परलोक जाते समय शोक कैसे न किया जाए?"

[भगवान (बुद्ध):]
"अरहंतों के धर्म में आस्था रखने से; निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
सीखने की इच्छा से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) प्राप्त होती है; यदि कोई सजग और चतुर हो। 600

"उचित कार्य करने से, कर्तव्यनिष्ठ; पहल करने वाला धनवान बनता है।
सत्यनिष्ठा से प्रशंसा मिलती है; उपहार देने से मित्रता बढ़ती है।
इस प्रकार मनुष्य शोक नहीं करता; इस लोक से परलोक में जाते समय। 601

"गृहस्थ जीवन का निष्ठावान साधक, जिसमें ये चार गुण निवास करते हैं -
सत्य, धर्म, दृढ़ता, उदारता, वह अपने प्राण त्यागते समय शोक नहीं करता।

अब, दूसरों से भी पूछो; अनेक तपस्वियों और ब्राह्मणों से।
क्या यहाँ सत्य, आत्मसंयम, उदारता और धैर्य से बढ़कर कुछ है?" 602

[अलावक:]
"अब मुझे यह प्रश्न अनेक तपस्वियों और ब्राह्मणों से क्यों पूछना चाहिए?
आज मैं समझ गया हूँ; भविष्य के जीवन से संबंधित अच्छाई को। 603

"वास्तव में, मेरे लिए ही बुद्ध आए थे; अलवी में निवास करने के लिए।
आज मैं समझ गया हूँ; जहाँ दान का बहुत फल मिलता है।

मैं स्वयं यात्रा करूँगा; गाँव-गाँव, नगर-नगर जाकर।
प्रबुद्ध पुरुष को और धर्म की उत्कृष्टता को प्रणाम करूँगा।" 604

संयुत्त 11: देवताओं/स्वर्गदूतों के राजा सक्क[इंद्र] के साथ जुड़े हुए प्रवचन (सक्कसमुत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (सुवीरा)
247 सुविरा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने
आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया। 605 तब देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) ने युवा देव सुवीर को संबोधित करते हुए कहा: 'प्रिय सुवीर, ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। हे प्रिय सुवीर, जाओ और असुरों के विरुद्ध जवाबी आक्रमण करो।'" - 'जी, महाराज,' सुवीरा ने उत्तर दिया, परन्तु वह आलसी (पमादा) हो गया। 606 दूसरी बार सक्का ने सुवीरा को संबोधित किया...
परन्तु दूसरी बार सुवीरा आलसी हो गया। तीसरी बार सक्का ने सुवीरा को संबोधित किया... परन्तु तीसरी बार सुवीरा आलसी हो गया। तब, भिक्षुओं, सक्का ने सुवीरा को श्लोक में संबोधित किया:

"'जहाँ परिश्रम और प्रयास न करना पड़े; फिर भी सुख प्राप्त हो सके:
वहाँ जाओ, सुवीरा, और मुझे भी अपने साथ ले चलो। '

[सुवीरा:]
"'वह आलसी मनुष्य जो परिश्रम नहीं करता; और अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता,
फिर भी उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँ; मुझे यह वरदान दो, सक्का।' 607

[सक्का:]
"'वह जगह जहाँ आलसी मनुष्य जो परिश्रम नहीं करता; अनंत सुख प्राप्त कर सके:
वहाँ जाओ, सुवीरा, और मुझे भी अपने साथ ले चलो।'

[सुविरा:]
"हे परम देव, हमें सुख मिल सकता है; हे सक्का, बिना कर्म किए,
दुख रहित, निराशा रहित अवस्था; हे सक्का, मुझे यह वरदान प्रदान कीजिए।"

[सक्का:]
"यदि कहीं कोई ऐसा स्थान है; जहाँ बिना कर्म किए हानि न हो,
तो वही निर्वाण का मार्ग है; हे सुविरा, वहाँ जाइए
और मुझे भी अपने साथ ले जाइए।" 608

"इसलिए, भिक्षुओं, यदि देवों के स्वामी सक्का, अपने स्वयं के दिव्य पुण्य के फल पर विद्यमान, तावतिंसा देवों पर सर्वोच्च संप्रभुता और शासन का प्रयोग करते हुए, पहल और ऊर्जा शक्ति की प्रशंसा करने वाले हैं, तो आप लोगों के लिए, 609 जो इस सुस्पष्ट धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षित (प्रविष्ट) हुए हैं, यहाँ कितना अधिक उपयुक्त होगा कि आप अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य, अभी तक अप्राप्त की गई उपलब्धि और अभी तक अप्राप्त की गई अनुभूति के लिए परिश्रम, संघर्ष और प्रयास करें।"

---

248. सुसीमा
(यह सूत्र पिछले सूत्र 247 के समान है, सिवाय इसके कि इसमें एक युवा देव (देवदूत) का नाम सुसीमा है।)

---

249. ध्वज का शिखर (धजग्गा सं. ध्वज-अग्र)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!" 610
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार थे। तब देवों के स्वामी इंद्र ने तावतिंसा देवों को इस प्रकार संबोधित किया:

'प्रियजनों, जब देव युद्ध में लगे हों, यदि भय, घबराहट या आतंक उत्पन्न हो, तो उस समय मेरे ध्वज के शिखर की ओर देखना। क्योंकि जब आप मेरे ध्वज के शिखर की ओर देखेंगे, तो आपका सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा। 611

"'यदि आप मेरे ध्वज के शिखर की ओर नहीं देख सकते, तो आपको देव-राजा प्रजापति के ध्वज के शिखर की ओर देखना चाहिए। जब तुम उसके ध्वज के शिखर को देखोगे, तो तुम्हारा सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा।

"यदि तुम देवराज प्रजापति के ध्वज के शिखर को नहीं देख सकते, तो तुम्हें देवराज वरुण के ध्वज के शिखर को देखना चाहिए... यदि तुम देवराज वरुण के ध्वज के शिखर को नहीं देख सकते, तो तुम्हें देवराज ईशान के ध्वज के शिखर को देखना चाहिए... क्योंकि जब तुम उसके ध्वज के शिखर को देखोगे, तो तुम्हारा सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा।" 612

"भिक्षुओं, जो लोग देवों के स्वामी सक्का, या देवराज प्रजापति, या देवराज वरुण, या देवराज ईशान के ध्वज के शिखर को देखते हैं, उनका सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो भी सकता है और नहीं भी। इसका क्या कारण है?" क्योंकि देवताओं के स्वामी सक्का, कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह से रहित नहीं हैं; वे भयभीत, सजग, डरपोक और भागने में भी सक्षम हो सकते हैं।

"परन्तु, भिक्षुओं, मैं यह कहता हूँ: यदि तुम किसी वन में, किसी वृक्ष की तलहटी में, या किसी निर्जन कुटिया में गए हो और तुम्हारे मन में भय, घबराहट या आतंक उत्पन्न हो, तो उस समय मेरा स्मरण करना: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' भिक्षुओं, जब तुम मेरा स्मरण करोगे, तो तुम्हारे मन में जो भी भय, घबराहट या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

यदि तुम मेरा स्मरण नहीं कर सकते, तो तुम्हें धम्म (मार्ग, नियम) का इस प्रकार स्मरण करना चाहिए: धम्म का भगवान (बुद्ध) द्वारा भली-भांति वर्णन किया गया है, यह प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी लोगों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना है। भिक्षुओं, जब तुम धम्म का स्मरण करोगे, तो तुम्हारे मन में जो भी भय, घबराहट या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

यदि तुम धम्म (मार्ग, नियम) का स्मरण नहीं कर सकते, तो संघ (भाईचारे) का इस प्रकार स्मरण करो: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग, सीधे मार्ग, सच्चे मार्ग और उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्मों, आठ प्रकार के व्यक्तियों का यह संघ - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अद्वितीय पुण्य क्षेत्र है। क्योंकि जब तुम संघ का स्मरण करोगे, भिक्षुओं, तो तुम्हारे भीतर जो भी भय, झिझक या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

इसका क्या कारण है? क्योंकि, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष कामवासना (राग) से रहित, द्वेष (दोष/मोह) से रहित, मोह (मोह) से रहित हैं; वे साहसी, निडर, निर्भीक और अपने स्थान पर दृढ़ रहने वाले हैं।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

“जंगल में, वृक्ष की तलहटी में; या किसी खाली कुटिया में, हे भिक्षुओं,
आपको बुद्ध का स्मरण करना चाहिए; तब आप में कोई भय उत्पन्न नहीं होगा।

“पर यदि आप बुद्ध का स्मरण नहीं कर सकते; संसार में श्रेष्ठ, पुरुषों में श्रेष्ठ,
तो आपको धर्म का स्मरण करना चाहिए; जो मुक्तिदायक और सुस्पष्ट है।

“पर यदि आप धर्म का स्मरण नहीं कर सकते; जो मुक्तिदायक और सुस्पष्ट है,
तो आपको संघ का स्मरण करना चाहिए, जो दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।”

जो भिक्षु बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) का स्मरण करते हैं, उनके मन में
न तो कोई भय उत्पन्न होगा और न ही कोई भयानक आतंक।

---

250. वेपचिट्टी (राक्षसों का स्वामी)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"एक बार अतीत में, भिक्षु, देव (देवदूत) और असुर (राक्षस) युद्ध के लिए तैयार थे। तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे सज्जनों, देवों और असुरों के बीच होने वाले युद्ध में, यदि असुर जीतें और देव पराजित हों, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर असुरों के नगर में मेरे पास ले आओ।' और देवों के स्वामी सक्का ने तावतिंसा देवों को इस प्रकार संबोधित किया:
'हे सज्जनों, देवों और असुरों के बीच होने वाले युद्ध में, यदि देव जीतें और असुर पराजित हों, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म सभा भवन में मेरे पास ले आओ।'
भिक्षुओं, उस युद्ध में देवताओं की विजय हुई और असुर पराजित हुए। तब तावतिंसा देवताओं ने वेपचित्ति को उसके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म सभा भवन में सक्का के पास ले आए। 614 जब सक्का सुधम्म सभा भवन में प्रवेश कर रहे थे और बाहर जा रहे थे, तब वेपचित्ति, अपने चारों अंगों और गर्दन से बंधे हुए, उन्हें अभद्र और कठोर शब्दों से अपशब्द कहने लगे।
तब भिक्षुओं, सारथी मतली ने देवताओं के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"'वेपचित्ति के सामने, हे मगह, क्या यह भय या कमजोरी के कारण है
कि आप इतनी धीरज से उसके कठोर शब्दों को सहन करते हैं?'

[सक्का:]
'यह न तो भय के कारण है और न ही कमजोरी के कारण; कि मैं वेपचित्ति के प्रति धीरज रखता हूँ।
मुझ जैसा बुद्धिमान व्यक्ति भला कैसे बचकाने (नासमझ) से युद्ध कर सकता है?'"

[मटाली:]
"बचकाना (नासमझ) अपना क्रोध और भी अधिक प्रकट करेगा; यदि कोई उन्हें नियंत्रित न करे।
इसलिए कठोर दंड द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति को बचकाने (नासमझ) को रोकना चाहिए।" 615

[सक्का:]
"मैं स्वयं यही सोचता हूँ; बचकाने (नासमझ) को नियंत्रित करने का यही तरीका है:
जब कोई जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; तो वह ध्यानमग्न (सतो) होकर अपनी शांति बनाए रखता है।"

[मटाली:]
"हे वासव, मैं यह दोष देखता हूँ; धैर्यपूर्वक सहन करने के अभ्यास में:
जब बचकाना (नासमझ) आपके बारे में इस प्रकार सोचता है; "वह भय के कारण मुझे सहन करता है," तो
वह मूर्ख आपका और भी अधिक पीछा करेगा; जैसे बैल भागने वाले का पीछा करता है।"

[सक्का:]
"चाहे वह सोचे या न सोचे; "वह भय के कारण मुझे सहन करता है,"

अपने स्वयं के हित में परिणत होने वाले लक्ष्यों में; धैर्य से बेहतर कोई नहीं है।" 616

"'जब कोई बलवान व्यक्ति धैर्यपूर्वक किसी दुर्बल व्यक्ति को सहन करता है,
तो उसे परम धैर्य कहते हैं; दुर्बल व्यक्ति को सदा धैर्यवान रहना चाहिए। 617

"'वे उसे बल कहते ही नहीं; वह मूर्खता का बल है -
परन्तु कोई भी उस व्यक्ति की निंदा नहीं कर सकता; जो धर्म द्वारा संरक्षित होने के कारण बलवान है। 618 क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देना; कठिन लड़ाई जीतने वाला व्यक्ति होता है।

618 "'जो व्यक्ति क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से जवाब देता है; वह अपने लिए स्थिति और खराब कर लेता है।

"वह अपने और दूसरों दोनों के कल्याण के लिए अभ्यास करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है, तो वह ध्यानमग्न (सतो) होकर शांत रहता है।

जब वह अपने और दूसरों दोनों का निवारण कर देता है, तो
जो लोग उसे बचकाना (नासमझ) समझते हैं, वे धर्म में अकुशल हैं।"

"इसलिए, भिक्षुओं, यदि देवताओं के स्वामी सक्का, अपने दैवीय पुण्य के फल पर निर्वाह करते हुए, तावतिंसा देवताओं पर सर्वोच्च प्रभुत्व और शासन का प्रयोग करते हुए, धैर्य और कोमलता की प्रशंसा करते हैं, तो आप जैसे लोगों के लिए, जो इतने सुस्पष्ट धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षित (पबज्जित) हो चुके हैं, धैर्यवान और कोमल होना कितना अधिक उचित होगा।"

---

251. सुविचारित परामर्श से विजय (सुभाषितजय)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने देवों के स्वामी इंद्र से कहा, 'देवताओं के स्वामी, सुविचारित परामर्श से विजय हो।' [और इंद्र ने उत्तर दिया,] 'वेपचित्ति, सुविचारित परामर्श से विजय हो।' " तब भिक्षुओं, देवों और असुरों ने न्यायाधीशों का एक समूह नियुक्त किया और कहा, 'ये हमारे द्वारा कही गई अच्छी और बुरी बातों का पता लगाएंगे।'
"तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने देवों के स्वामी इंद्र से कहा, 'देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' यह सुनकर इंद्र ने वेपचित्ति से कहा, 'आप, वेपचित्ति, यहाँ के वरिष्ठ देव होने के नाते, एक श्लोक बोलिए।'" 619 जब यह कहा गया, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक सुनाया: 620

"'नासमझ (बचकाना) अपना क्रोध और भी अधिक प्रकट करेंगे; यदि कोई उन्हें नियंत्रित न करे।
इसलिए कठोर दंड द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति को नासमझ (बचकाना) को रोकना चाहिए।'

"हे भिक्षुओं, जब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह
श्लोक बोला, तो असुरों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब
वेपचित्ति ने सक्का से कहा: 'देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' जब
यह कहा गया, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने यह श्लोक सुनाया:

"'मैं स्वयं यही सोचता हूँ; नासमझ (बचकाना) को नियंत्रित करने का यही तरीका है,
जब कोई जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; तो ध्यानमग्न (सतो) व्यक्ति अपनी शांति बनाए रखता है।'

भिक्षुओं, जब देवताओं के स्वामी सक्का ने यह श्लोक कहा, तो देवताओं ने तालियाँ बजाईं, परन्तु असुर मौन रहे। तब सक्का ने वेपचित्ति से कहा, 'वेपचित्ति, एक श्लोक कहिए।' यह सुनकर असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक सुनाया: '

हे वासव, मुझे यह दोष दिखाई देता है; धैर्यपूर्वक सहन करने में:
जब कोई नासमझ (बौद्धिक) आपके बारे में इस प्रकार सोचता है; 'वह भय के कारण मुझे सहन करता है,'
तो वह मूर्ख आपका और भी पीछा करेगा; जैसे बैल भागने वाले का पीछा करता है।'

भिक्षुओं, जब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक कहा, तो असुरों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब वेपचित्ति ने सक्का से कहा, 'देवों के स्वामी, एक श्लोक कहिए।' जब यह कहा गया, तो देवताओं के स्वामी सक्का ने ये श्लोक पढ़े:

"चाहे वह सोचे कि मैं भय के कारण धैर्य रख रहा हूँ या नहीं,
बड़ी विपत्ति में धैर्य प्रकट नहीं होता।

यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति शांत रहता है और कमजोर के लिए सहन करता है,
तो उसे सर्वोच्च धैर्य कहा जाता है; कमजोर व्यक्ति हर समय सहन करता है।

कमजोरी को शक्ति कहा जाता है, जब वह बचकाना (नासमझ) होकर अपनी शक्ति दिखाता है।
धर्म द्वारा संरक्षित बलवान व्यक्ति अपना मार्ग नहीं बदलता।

इसलिए किसी को क्रोधित करना पाप है।"
जिसने किसी को क्रोधित किया, उसे क्रोधित न करने वाला व्यक्ति ही युद्ध जीतता है।

वह अपने और दूसरों दोनों के कल्याण के लिए व्यवहार करता है।
यदि कोई व्यक्ति स्वयं शांत (सतो) रहता है और ध्यानमग्न रहता है; यह जानते हुए कि दूसरा क्रोधित है,

तो वह अपने और दूसरे दोनों के घावों को भर देता है।
कहा जाता है, 'वे बचकाने (नासमझ) हैं; वे लोग धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल हैं।'

"हे भिक्षुओं, जब देवताओं के स्वामी सक्का ने ये श्लोक कहे, तो देवताओं ने तालियाँ बजाईं, परन्तु असुर मौन रहे। तब देवताओं और असुरों द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों के समूह ने यह कहा: 'असुरों के स्वामी वेपचित्ति द्वारा कहे गए श्लोक दंड और हिंसा के क्षेत्र में हैं; अतः उनमें संघर्ष, विवाद और कलह निहित है। परन्तु देवताओं के स्वामी सक्का द्वारा कहे गए श्लोक दंडहीनता और अहिंसा के क्षेत्र में हैं; अतः उनमें संघर्ष से मुक्ति, विवाद से मुक्ति और कलह से मुक्ति निहित है। देवताओं के स्वामी सक्का ने सुविचारित परामर्श से विजय प्राप्त की है।'

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का ने सुविचारित परामर्श से विजय प्राप्त की।"

---

252. पक्षियों के घोंसले (कुलवका)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। उस युद्ध में असुरों की जीत हुई और देव पराजित हुए। हार के बाद देव उत्तर की ओर पीछे हट गए जबकि असुर उनका पीछा करते रहे। तब देवों के स्वामी इंद्र ने अपने सारथी मतली को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

'हे मतली, अपने रथ के डंडे से दूर रहो;
रेशम-कपास के जंगलों में पक्षी घोंसला बनाते हैं; इन पक्षियों को घोंसलाहीन करने के बजाय
हम असुरों को अपने प्राण त्याग दें ।' 621 'जी, महाराज,' सारथी मतली ने उत्तर दिया और उसने अपने हजार घोड़ों के दल सहित रथ को वापस मोड़ दिया। तब, भिक्षुओं, असुरों के मन में यह विचार आया: 'अब इंद्र का रथ अपने हजार घोड़ों के दल सहित वापस मुड़ गया है। देव दूसरी बार असुरों से युद्ध करेंगे।' भय से व्याकुल होकर वे असुरों के नगर में प्रवेश कर गए। इस प्रकार भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का ने धर्म (धम्म) के बल पर विजय प्राप्त की।

---

253. किसी को भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए (नादुभिया)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) एकांतवास में थे, तो उनके मन में यह विचार आया: 'चाहे कोई मेरा कट्टर शत्रु ही क्यों न हो, मुझे उसके विरुद्ध भी अपराध नहीं करना चाहिए।'
तब, भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने सक्का के मन के विचार को स्वयं जान लिया और उनके पास गए। सक्का ने दूर से वेपचित्ति को आते देखा और उनसे कहा: 'रुको, वेपचित्ति, तुम पकड़े गए!' 622

[वेपचित्ति:] 'हे महोदय, जो विचार अभी आपके मन में आया है, उसे मत छोड़िए।' 623

[सक्का:] 'वेपचित्ति, शपथ लो कि तुम मेरे विरुद्ध अपराध नहीं करोगे।'

[वेपसिट्टी:]
"झूठे को जो भी बुराई मिलती है; नेक लोगों की निंदा करने वाले को जो भी बुराई मिलती है;
मित्रों के विश्वासघाती को जो भी बुराई मिलती है; कृतघ्न व्यक्ति को जो भी बुराई मिलती है,
वही बुराई उस व्यक्ति को भी लगती है; जो तुम्हारे विरुद्ध अपराध करता है, हे सुजा के पति।" 624

---

254. वेरोचना, असुरों के स्वामी (वेरोचना-असुरिंदा)
श्रावस्ती में जेतवन में। उस समय भगवान (बुद्ध) एक दिन के लिए विश्राम करने गए थे और एकांत में थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और असुरों के स्वामी वेरोचना भगवान (बुद्ध) के पास आए और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए।
तब असुरों के स्वामी वेरोचना ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 625

"मनुष्य को प्रयास करना चाहिए; जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।
लक्ष्य प्राप्त होने पर चमकते हैं; यह वेरोचना का वचन है।"

[सक्का:]
"मनुष्य को प्रयास करना चाहिए; जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।
प्राप्त होने पर चमकने वाले लक्ष्यों में; धैर्य से बढ़कर कोई नहीं है।" 626

[वेरोचना:]
"सभी प्राणी किसी न किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होते हैं; चाहे वह यहाँ हो या वहाँ, जैसा भी परिस्थिति अनुकूल हो।
परन्तु सभी प्राणियों के लिए संगति परम सुख है।
लक्ष्य प्राप्ति पर प्रकाशमान होते हैं; यही वेरोचना का वचन है।" 627

[सक्का:]
"सभी प्राणी किसी न किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होते हैं; चाहे वह यहाँ हो या वहाँ, जैसा भी परिस्थिति अनुकूल हो।
परन्तु सभी प्राणियों के लिए संगति परम सुख है।
प्राप्ति पर प्रकाशमान लक्ष्यों में धैर्य से बढ़कर कोई नहीं है।"

---

255. एक जंगल में संत (ऋषि संस ऋषि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (सन्यासियों), एक समय की बात है, कई गुणी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि-मुनि) जंगल के एक हिस्से में पत्तों की कुटियाओं में बस गए थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और असुरों के स्वामी वेपचित्ति उन संतों (ऋषियों-मुनि) के पास पहुँचे।
असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने अपने जूते पहने, अपनी तलवार कसकर बाँधी और छत्र ऊँचा करके मुख्य द्वार से आश्रम में प्रवेश किया; फिर उनकी ओर बाएँ मुड़कर वे उन गुणी और अच्छे चरित्र वाले संतों (ऋषियों-मुनि) के पास से गुजरे। परन्तु देवों के स्वामी सक्का ने अपने जूते उतारे, अपनी तलवार दूसरों को सौंप दी, अपना छत्र नीचे किया और एक साधारण द्वार से आश्रम में प्रवेश किया; फिर वह हवा से सुरक्षित किनारे पर खड़े होकर, अपने जुड़े हुए हाथों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए, उन संतों (ऋषियों सहित) को नमन अर्पित करने लगे जो गुणी और अच्छे चरित्र के थे।
"फिर, भिक्षुओं, उन संतों (ऋषियों सहित) ने सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

'अपने व्रतों से बंधे हुए संतों (ऋषियों सहित) की सुगंध,

उनके शरीर से निकलती हुई, हवा के साथ उड़ जाती है।
हे हजार नेत्रों वाले देवता, यहाँ से दूर हो जाओ।
क्योंकि हे देव-राजा, संतों (ऋषियों सहित) की सुगंध दुर्गंधयुक्त है।' 629

[सक्का:]
"'अपने व्रतों से बंधे हुए संतों (ऋषियों) की सुगंध
, उनके शरीरों से निकलकर हवा के साथ प्रवाहित हो;
हे पूज्यवरों, हम इस सुगंध के लिए तरसते हैं,
जैसे सिर पर फूलों की माला के लिए।
देवता इसे अप्रिय नहीं मानते।'" 630

---

256. समुद्र के निकट (समुद्दक)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक समय की बात है, बहुत से सदाचारी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि-मुनि) समुद्र तट पर पत्तों की कुटियाओं में बस गए थे। उस समय देव और असुर युद्ध के लिए तैयार थे। तब उन सदाचारी और अच्छे चरित्र वाले संतों (ऋषि-मुनि) के मन में यह विचार आया: 'देव धर्मात्मा हैं, असुर अधर्मी। हमें असुरों से खतरा हो सकता है। हमें असुरों के स्वामी संबारा के पास जाकर अपनी सुरक्षा की गारंटी मांगनी चाहिए।' 631
"फिर, हे भिक्षुओं, जिस शीघ्रता से एक बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से वे सद्गुणी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि रहित संत) समुद्र तट पर स्थित अपनी ऋषि-मरुस्थलों से लुप्त हो गए और असुरों के स्वामी संबारा के समक्ष प्रकट हुए। तब उन संतों (ऋषि रहित संत) ने संबारा को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"संबारा के पास आए संतों (ऋषि रहित संत) से सुरक्षा की गारंटी मांगिए।
क्योंकि आप उन्हें जो चाहें दे सकते हैं; चाहे वह खतरा हो या सुरक्षा।" 632

[संबारा:]
"मैं संतों (ऋषि रहित संत) को सुरक्षा प्रदान नहीं करूंगा; क्योंकि वे सक्का (देवदूतों के राजा इंद्र) के घृणित भक्त हैं;
यद्यपि आप मुझसे सुरक्षा की विनती करते हैं; मैं आपको केवल खतरा ही दूंगा।"

[संत (ऋषि):]
“यद्यपि हमने सुरक्षा माँगी है; आप हमें केवल संकट देते हैं।
यह हमें आपके हाथों से प्राप्त होता है; आप पर निरंतर संकट आए!

“जिस प्रकार का बीज बोया जाता है; उसी प्रकार का फल मिलता है।
अच्छा करने वाला अच्छा ही पाता है; बुराई का द्वार बुराई ही पाता है।
हे प्रिय, आपके द्वारा ही बीज बोया गया है; इस प्रकार आप फल का अनुभव करेंगे।”

"तब, भिक्षुओं ने असुरों के स्वामी संबारा को शाप दिया, और जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही वे गुणी और नेक संत संबारा के समक्ष से लुप्त हो गए और समुद्र तट पर स्थित अपनी पत्तियाँ की झोपड़ियों में पुनः प्रकट हो गए। परन्तु उन गुणी और नेक संतों द्वारा शाप दिए जाने के बाद, असुरों के स्वामी संबारा रात भर में तीन बार भयभीत हुए।" 633

(ii) दूसरा उप-अध्याय (सात व्रत)
257. व्रत (वातापदा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (सन्यासियों), अतीत में, जब देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) मनुष्य थे, तो उन्होंने सात व्रत लिए और उनका पालन करके सक्का का दर्जा प्राप्त किया। 634 वे सात व्रत क्या थे?

(1) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करूँ।"
(2) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं परिवार के बड़ों का आदर करूँ।"

(3) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं विनम्रता से बोलूँ।"
(4) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं विभाजनकारी बातें न करूँ।"
(5) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं कंजूसी के दाग से रहित मन से घर में रहूँ, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, 635 दान देने और साझा करने में आनंदित रहूँ।" (
6) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं सत्य बोलूँ।"
(7) “जब तक मैं जीवित रहूँ, क्रोध से मुक्त रहूँ, और यदि मुझमें क्रोध उत्पन्न हो, तो उसे शीघ्र ही दूर कर दूँ।”

“भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब उन्होंने इन सात व्रतों को ग्रहण किया और उनका पालन करके सक्का का दर्जा प्राप्त किया।

“जब कोई व्यक्ति अपने माता-पिता का सहारा बनता है; और परिवार के बड़ों का आदर करता है;
जब उसकी वाणी सौम्य और विनम्र होती है; और वह विभाजनकारी शब्दों से विरक्त रहता है;

जब वह नीचता को दूर करने का प्रयास करता है; सत्यवादी होता है, और क्रोध पर विजय प्राप्त करता है, तब
तावतिंसा देवता उसे “वास्तव में श्रेष्ठ व्यक्ति” कहते हैं।”

---

258. सक्का के नाम (सक्कानामा)
सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा:

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) मनुष्य रूप में थे, तब वे माघ नामक एक ब्राह्मण युवक थे; इसलिए उन्हें माघवा कहा जाता है। 636

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब वे नगर-नगर दान करते थे; इसलिए उन्हें पुरिन्ददा, शहरी दाता कहा जाता है। 637

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब वे उदारतापूर्वक दान करते थे; इसलिए उन्हें सक्का कहा जाता है। 638

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब उन्होंने विश्राम गृह (अवस्थम) बनवाया था; इसलिए उन्हें वासव कहा जाता है। 639

"भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का..." हे भिक्षु, एक क्षण में हजार बातों (सहस्स) का चिंतन करते हैं; इसलिए उन्हें सहस्सक्खा, हजार नेत्रों वाला कहा जाता है। 640

“भिक्षुओं, सक्का की पत्नी सूजा नामक असुर कन्या है; इसलिए उन्हें सूजा का पति, सुजामपति कहा जाता है। 641

“भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का, तावतिंसा देवताओं पर सर्वोच्च प्रभुत्व और शासन रखते हैं; इसलिए उन्हें देवताओं का स्वामी कहा जाता है।

“भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य थे, तब उन्होंने सात व्रत लिए और उनका पालन किया, जिससे उन्हें सक्का का दर्जा प्राप्त हुआ....”

(इस सूत्र का शेष भाग पूर्ववर्ती सूत्र 257 के समान है; भिक्षुओं, अतीत में, जब सक्का.......एक श्रेष्ठ व्यक्ति थे)

---

259. महाली

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी महाली भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) ने देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) को देखा है?"

"मैंने देवों के स्वामी सक्का को देखा है, महाली।" "

निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वह कोई ऐसा ही रहा होगा जो देवों के स्वामी सक्का जैसा दिखता होगा; क्योंकि देवों के स्वामी सक्का को देखना कठिन है।"

"मैं सक्का को जानता हूँ, महाली, और मैं उन गुणों को भी जानता हूँ जो सक्का के लिए आवश्यक हैं, जिनके द्वारा सक्का ने सक्का का दर्जा प्राप्त किया।

महाली, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य थे, तब वे माघा नाम के एक ब्राह्मण युवक थे।" इसलिए उन्हें मग़वा कहा जाता है..."

(यहाँ पिछले सूत्र 258 के अनुसार सक्का के नाम और सात व्रत आदि दिए गए हैं, अर्थात् 'भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य थे ....एक श्रेष्ठ व्यक्ति')

---

260. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अतीत में इसी राजगृह में एक गरीब, कृपण और निर्धन व्यक्ति रहता था। उसने तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन में आस्था, शील, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि धारण की। ऐसा करने के बाद, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवों की संगति में हुआ, जहाँ वह सौंदर्य और महिमा में अन्य देवों से भी अधिक तेजस्वी था। 642

"इस पर तावतिंसा देवों ने इस पर आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत करते हुए कहा: 'यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! क्योंकि पहले, जब यह युवा देव मनुष्य था, तब वह एक गरीब, कृपण और निर्धन व्यक्ति था। फिर भी, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवताओं की संगति में हुआ है, जहाँ वे सौंदर्य और महिमा के मामले में अन्य देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।'

"तब, भिक्षुओं, देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) ने तावतिंसा देवताओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'प्रियजनों, इस युवा देवता में दोष न निकालें। पूर्व में, जब यह युवा देवता मनुष्य थे, तब उन्होंने तथागत द्वारा घोषित धर्म और अनुशासन में आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबोधन (ज्ञान) का पालन किया। ऐसा करने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवताओं की संगति में हुआ है, जहाँ वे सौंदर्य और महिमा के मामले में अन्य देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।'

तब भिक्षुओं ने तावतिंसा देवताओं को उपदेश देते हुए, देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

"जब किसी को तथागत में अटूट और दृढ़ विश्वास होता है,
और सद्गुणों पर आधारित अच्छा आचरण होता है; तो वह श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है; 644

"जब किसी को संघ (भाईचारे) में विश्वास होता है; और उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, तो
वे कहते हैं कि वह गरीब नहीं है; उसका जीवन व्यर्थ नहीं जाता।

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति, बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए,
विश्वास और सद्‌गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, धम्म के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति समर्पित होना चाहिए।"

---

261. एक रमणीय स्थान (रामनेयका सं. रमणीक)
श्रावस्ती में जेतवन में। तब देवों के स्वामी इंद्र (सक्का) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, रमणीय स्थान क्या है?" [233]

[भगवान (बुद्ध):]

"पार्कों और वनों में स्थित मंदिर; सुनिर्मित कमल के तालाब,
ये एक रमणीय मनुष्य के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हैं।

चाहे गाँव हो या जंगल; घाटी हो या मैदान,
जहाँ कहीं भी अरहंत निवास करते हैं; वही वास्तव में रमणीय स्थान है।"

---

262. दान देना (यजमान)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब देवों के स्वामी, सक्का (इंद्र), भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को इन श्लोकों में संबोधित किया: 645

"उन लोगों के लिए जो दान देते हैं; उन जीवों के लिए जो पुण्य की खोज में लगे हैं;
सांसारिक प्रकार के पुण्य कर्म करने वाले; दान कहाँ महान फल देता है?" 646

[भगवान (बुद्ध):]
"चार मार्ग का अभ्यास करने वाले; और चार जो फल में स्थापित हैं,
यही सीधे आचरण का संघ है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि और सद्‌गुण से संपन्न। 647

"उन लोगों के लिए जो दान देते हैं; पुण्य की खोज में लगे प्राणियों के लिए,
सांसारिक प्रकार के पुण्य कर्म करते हुए, संघ को दान देना बहुत फलदायी होता है।

---

263. बुद्ध की पूजा (बुद्धवन्दना)
श्रावस्ती में जेतवन में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) एक दिन के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और प्रधान देवदूत ब्रह्मा सहमपति भगवान (बुद्ध) के पास आए और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। तब देवों के स्वामी सक्का ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी!
तुम्हारा बोझ हल्का हो गया है, हे ऋण मुक्त, संसार में विचरण करो।
तुम्हारा मन पूर्णतः मुक्त है (विमुक्त संस्कृत);
पंद्रहवीं रात के चंद्रमा के समान।" 648

[ब्रह्म सहमपति:] "हे देवों के स्वामी, तथागतों की पूजा इस प्रकार नहीं की
जानी चाहिए। तथागतों की
पूजा इस प्रकार की जानी चाहिए:

'उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी!'"
हे कारवां के नेता, ऋणमुक्त, संसार में विचरण करो।
हे भगवान (बुद्ध), धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दो,
वहाँ ऐसे लोग होंगे जो समझेंगे।

264. गृहस्थों की पूजा (गृहवंदना सं. गृहस्थ-वंदना)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक बार अतीत में, देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने अपने सारथी मतली से कहा: 'हे मित्र मतली, रथ को उसके हजार घोड़ों के साथ जोत दो। चलो सुंदर दृश्य देखने के लिए उद्यान चलते हैं।' - 'जी, महाराज,' सारथी मतली ने उत्तर दिया। तब उसने रथ को उसके हजार घोड़ों के साथ जोता और देवों के स्वामी सक्का को घोषणा की: 'हे महोदय, रथ जोत दिया गया है। आप अपनी सुविधानुसार आ सकते हैं।' 650
"तब, भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का, वेजयंत महल से उतरकर, आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विभिन्न दिशाओं को प्रणाम किया।" तब सारथी मतली ने सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"'त्रिवेद जानने वाले आपकी पूजा करते हैं, और पृथ्वी पर राज करने वाले सभी क्षत्रिय।
और चारों दिशाओं के महान राजा और तीस तेजस्वी;
तो हे सक्का, वह कौन सी आत्मा है; जिसे आप प्रणाम करते हैं?' 651

[सक्का:]
"त्रिवेद जानने वाले मेरी पूजा करते हैं, और पृथ्वी पर राज करने वाले सभी क्षत्रिय
और चारों दिशाओं के महान राजा और तीस तेजस्वी;

"पर मैं उनकी पूजा करता हूँ जो सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं; और जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लंबे समय से प्रशिक्षित हैं,
जो विधिवत दीक्षा प्राप्त कर चुके हैं; जिनका गंतव्य ब्रह्मचर्य है। 652

"'और वे गृहस्थ जो पुण्य कमाते हैं; सद्‌गुणों से परिपूर्ण गृहस्थ अनुयायी
जो विधिपूर्वक पत्नी का भरण-पोषण करते हैं; मैं इनकी भी पूजा करता हूँ, हे मतली;

[मातली:]
"'वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं; हे मेरे स्वामी सक्का, जिनकी आप पूजा करते हैं;
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; हे वासव, जिनकी आप पूजा करते हैं।'

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद; विभिन्न दिशाओं की पूजा करने के बाद,
देवराज मगहव, सूजा के पति; प्रधान, अपने रथ पर सवार हो गए।"

265. गुरु की पूजा (सत्थरवन्दना)
(जैसा कि ऊपर 264 से नीचे तक:)
"तब, भिक्षुओं, देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र), वेजयंत महल से अवतरित होकर, अपने हाथ जोड़कर आदरपूर्वक भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया। तब सारथी मतली ने देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

"'देव और मनुष्य दोनों; आपको विनम्रतापूर्वक प्रणाम करते हैं, वासव।
तो हे सक्का, वह कौन सा प्राण है; जिसे आप प्रणाम करते हैं?'

[सक्का:]
"'पूर्ण रूप से प्रबुद्ध, इस संसार में, अपने देवों के साथ,
पूर्ण नाम वाले गुरु; वही हैं जिनकी मैं पूजा करता हूँ, मतली। 653

"'जिनके लिए कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष); और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत/अविद्या) का निवारण हो गया है।
वे अरहंत जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; वही हैं जिनकी मैं पूजा करता हूँ, मतली।"

"'जो प्रशिक्षु विघटन में आनंदित होते हैं; जो
राग और द्वेष को दूर करने के लिए, अज्ञान से ऊपर उठने के लिए लगन से प्रशिक्षण लेते हैं:

मैं इन्हीं की पूजा करता हूँ, मताली।' 654

[मताली:]
"'जिनकी आप पूजा करते हैं, मेरे स्वामी सक्का; वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं।
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; जिनकी आप पूजा करते हैं, वासव।'

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद; भगवान (बुद्ध) की पूजा करने के बाद,
देवराज मगव, सूजा के पति; प्रधान, अपने रथ पर सवार हो गए।"

---

266. संघ की उपासना (संघवन्दन)
(ऊपर से नीचे तक:)

"तब, भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का (इंद्र), वेजयंत महल से अवतरित होकर, अपने जुड़े हुए हाथों से आदरपूर्वक अभिवादन करते हुए भिक्षुओं के संघ (भाईचारे) की पूजा की। तब सारथी मतली ने देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

"'ये ही हैं जिन्हें आपकी पूजा करनी चाहिए; वे मनुष्य जो सड़े हुए शरीर में फंसे हैं।
वे जो शव के भीतर डूबे हुए हैं; भूख और प्यास से पीड़ित हैं। 655

तो फिर आप उनसे ईर्ष्या क्यों करते हैं; वे जो तपस्वी के रूप में निवास करते हैं, वासव?
हमें संतों (ऋषियों के आचरण के बारे में बताइए; हमें सुनने दीजिए कि आप क्या कहना चाहते हैं।'

[सक्का:]
"'इसीलिए मैं उनसे ईर्ष्या करता हूँ; वे जो तपस्वी के रूप में निवास करते हैं, मतली;
वे जिस भी गाँव से प्रस्थान करते हैं; वे उसे बिना किसी चिंता के छोड़ देते हैं।

"'वे अपना सामान भंडार में नहीं रखते; न तो बर्तन में और न ही डिब्बे में।
दूसरों द्वारा तैयार की गई चीजों की तलाश करते हैं; वे प्रतिज्ञाओं में दृढ़ रहकर इसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं:

"वे बुद्धिमान जो अच्छी सलाह देते हैं; मौन धारण करते हैं, समभाव बनाए रखते हैं।
जब देवता असुरों से लड़ते हैं; और मनुष्य आपस में लड़ते हैं।

लड़ने वालों में वे नहीं लड़ते; हिंसक लोगों में वे शांत हो जाते हैं;
लालच करने वालों में वे नहीं लालच करते: मैं इन्हीं की पूजा करता हूँ, मताली।"

[मताली:]
"वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं; हे मेरे स्वामी सक्का, जिनकी आप पूजा करते हैं,
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; हे वासव, जिनकी आप पूजा करते हैं।"

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद, देव-राजा मगव, सूजा के पति, ने
भिक्षु संघ के मुखिया की पूजा करके अपने रथ पर सवार हो गए।"

(iii) तीसरा उपअध्याय (सक्का पेंटाड)
267. हत्या (चेत्वा)
श्रावस्ती में जेतवन में, देवों के स्वामी इंद्र, भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, देवों के स्वामी इंद्र ने भगवान बुद्ध से कहा,

“किसे मारकर चैन की नींद आती है? किसे मारकर शोक नहीं होता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म है? आप किसके वध को स्वीकार करते हैं?”

[भगवान बुद्ध ने कहा:]
“क्रोध को मारकर चैन की नींद आती है; क्रोध को मारकर शोक नहीं होता;
हे वासव, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है,
वही वध है जिसकी श्रेष्ठ लोग प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसे मारकर शोक नहीं होता।”

---

268. कुरूप (दुब्बानिया सं. दुर्वर्न्या)
श्रावस्ती में जेतवन में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, एक बार एक कुरूप और विकृत यक्ष देवों के स्वामी सक्का के आसन पर बैठ गया। 658 तब तावतिंसा देवताओं ने इस पर आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत की, और कहा: 'हे भगवान! यह तो वाकई आश्चर्यजनक है! हे भगवान! यह कुरूप और विकृत यक्ष देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) के आसन पर बैठ गया है!' लेकिन तावतिंसा देवताओं ने जितनी आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत की, उतना ही वह यक्ष अधिक से अधिक सुंदर, अधिक से अधिक आकर्षक और अधिक से अधिक सुंदर होता गया।

तब, भिक्षुओं, तावतिंसा देवता सक्का के पास गए और उनसे कहा: 'हे भगवान, एक कुरूप और विकृत यक्ष आपके आसन पर बैठ गया है। ... लेकिन देवताओं को इसमें जो भी दोष लगा हो... वह यक्ष और भी अधिक सुंदर, और भी अधिक आकर्षक, और भी अधिक सुंदर होता गया।'

[सक्का:] 'वह क्रोध भक्षण करने वाला यक्ष ही होगा।'

"तब, भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का उस क्रोध भक्षण करने वाले यक्ष के पास पहुँचे। 659 पास पहुँचकर उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठ गए, और अपने जुड़े हुए हाथों को उस यक्ष की ओर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम पुकारा: 'हे प्रभु, मैं सक्का, देवताओं का स्वामी हूँ! हे प्रभु, मैं सक्का, देवताओं का स्वामी हूँ!' जिस हद तक सक्का ने अपना नाम घोषित किया, उसी हद तक यक्ष और भी बदसूरत और विकृत होता चला गया, यहाँ तक कि वह वहीं गायब हो गया।

"तब, भिक्षुओं, अपने आसन पर बैठकर, तावतिंसा देवताओं को उपदेश देते हुए, देवताओं के स्वामी सक्का ने उस अवसर पर ये श्लोक पढ़े:

'मैं व्यथित मन वाला नहीं हूँ; न ही क्रोध के भंवर में आसानी से बह जाता हूँ।
मैं कभी लंबे समय तक क्रोधित नहीं होता; न ही क्रोध मुझमें बना रहता है। 660

'जब मैं क्रोधित होता हूँ तो मैं कठोर शब्द नहीं बोलता; और मैं अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता।
मैं अपने आप को अच्छी तरह से संयमित रखता हूँ; अपने भले के लिए।" 661

---

269. सांबरी जादू (सांबरिमया)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक बार असुरों के स्वामी वेपचित्ति बीमार थे, बहुत कष्ट में थे। 662 तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) वेपचित्ति के पास उनकी बीमारी के बारे में पूछने आए। वेपचित्ति ने दूर से सक्का को आते देखा और उनसे कहा, 'हे देवों के स्वामी, मुझे ठीक कर दीजिए।'
[सक्का:] 'हे वेपचित्ति, मुझे संबरी जादू (शत्रु को मारने की विधि) सिखाइए।' 663
[वेपचित्ति:] 'हे महोदय, मैं असुरों से अनुमति लिए बिना यह नहीं सिखाऊंगा।'
"तब, भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों से पूछा,
'क्या मैं देवों के स्वामी सक्का को संबरी जादू सिखा सकता हूँ?' 'हे महोदय, उन्हें संबरी जादू न सिखाएं।'" 664

"तब, हे भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने
देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

'हे मगहव, सक्का; देवों के राजा, सूजा के पति एक जादूगर को
भयानक नरक में भेजा जाता है; संबारा की तरह, सौ वर्षों के लिए।'" 665

270. अतिक्रमण (अक्काया)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर दो भिक्षुओं में झगड़ा हो गया और एक भिक्षु ने दूसरे के विरुद्ध अपराध किया। तब पहले भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के समक्ष अपना अपराध स्वीकार किया, परन्तु दूसरे ने उसे क्षमा नहीं किया।
तब अनेक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक ओर बैठ गए और उन्हें सारी घटना बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, दो प्रकार के अपरिपक्व (नासमझ) होते हैं: एक वह जो अपराध को अपराध नहीं मानता; और दूसरा वह जो दूसरे के अपराध स्वीकार करने पर धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार उसे क्षमा नहीं करता। ये दो प्रकार के अपरिपक्व (नासमझ) हैं।
"भिक्षुओं, दो प्रकार के बुद्धिमान लोग होते हैं: एक वह जो अपराध को अपराध मानता है; और वह जो दूसरे के पाप स्वीकार करने पर, धर्म के अनुसार उसे क्षमा कर देता है। ये दो प्रकार के बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

"एक बार अतीत में, भिक्षुओं, सक्का (इंद्र), देवों के स्वामी, सुधम्म सभा भवन में तावतिंसा देवों को उपदेश देते हुए, उस अवसर पर इस श्लोक का पाठ किया:

'क्रोध को अपने वश में रखो; अपनी मित्रता को भंग न होने दो।
निर्दोष व्यक्ति पर दोषारोपण न करो; फूट डालने वाली बातें न बोलो।
जैसे पर्वत हिमस्खलन; क्रोध दुष्ट लोगों को कुचल देता है।'" 667

271. नॉनएंगर (अकोढ़ा सं. अक्रोधा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने सुधम्म सभा भवन में तावतिंसा देवों को उपदेश देते हुए यह श्लोक पढ़ा:

'क्रोध को अपने ऊपर हावी न होने दो; जो क्रोधित हैं उन पर क्रोधित मत हो।
क्रोधहीनता और अहिंसा सदा निवास करती है; श्रेष्ठ जनों के हृदय में।
जैसे हिमस्खलन पर्वत को कुचल देता है; क्रोध दुष्टों को कुचल देता है।'" 668

संयुत्त निकाय का श्लोकों सहित ग्रंथ (सगथवग्ग) समाप्त हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन2-निदानवग्गा-वेर2

SN2-कारण-कारण की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का दूसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस खंड में भगवान बुद्ध जन्म से मृत्यु और फिर पुनर्जन्म के जीवन चक्र के कारण-कार्य का वर्णन करते हैं। वे यहाँ पहले दो सूत्रों में कारण-कार्य को प्रतीत्यसमुत्पाद (आश्रित उत्पत्ति) के रूप में वर्णित करते हैं और फिर शेष सूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन करते हैं। आश्रित उत्पत्ति का विचार यह है कि कैसे एक चीज दूसरी चीज को जन्म देती है, जिससे पुनर्जन्म का अंतहीन चक्र चलता रहता है। लेकिन ध्यान विधि का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति समाधि/ध्यान/ध्यान/ज़ेन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है और फिर आश्रित उत्पत्ति का अंत अनुभव कर सकता है, जो मोक्ष/मुक्ति/निर्वाण/मोक्ष का मार्ग है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
37: कुछ भी तुम्हारा नहीं है, शरीर भी नहीं; यह केवल पुराना कर्म है।
41: नरक और पुनर्जन्म के अन्य बुरे गंतव्यों से कैसे बचें और ज्ञानोदय की ओर सहज मार्ग कैसे सुनिश्चित करें।
63, 64: खाद्य पदार्थ, स्पर्श, चेतना और विज्ञान जैसे सांसारिक खतरे, अपने पुत्र का मांस खाने, खुले घाव, कोयले की खान और भाले से दंडित डाकू के समान हैं।

65: बुद्ध का मार्ग प्राचीन मुक्ति का मार्ग है। 66: बुद्ध
का मार्ग आंतरिक अन्वेषण का मार्ग है। 67:
मन, शरीर और चेतना एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, जैसे सरकंडों के दो ढेर एक दूसरे के सहारे खड़े हों।
95: बुद्ध द्वारा समाधि/ध्यान अवस्थाओं के संदर्भ में सात दिव्य तत्वों की व्याख्या की गई है।
100: सफलता के लिए ऊर्जा को जागृत रखें।
124-127: ब्रह्मांड का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है और यह युगों-युगों तक फैलता और सिकुड़ता रहता है।
128-131: एक युग अत्यंत लंबा होता है (विस्तार और फिर सिकुड़न का चक्र) और ऐसे अनेक युग घटित हो चुके हैं।
133: एक युग में किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म होते हैं कि उसकी हड्डियों से पर्वत बन सकता है।
137-142: पुनर्जन्म सत्य है; किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म हुए हैं कि सभी प्राणी एक दूसरे के माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री रहे हैं।
152: महत्वपूर्ण - 9 समाधि/ध्यान/सम्मोहन अवस्थाओं और 6 दिव्य शक्तियों के ज्ञान (अभिन) का वर्णन।
157-187: खतरे लाभ, सम्मान और प्रशंसा हैं
188-201: पुत्र राहुल को प्रवचन
202-222: अध्याय 8 से उन लोगों का वर्णन है जो अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण व्यथा भोगते हुए प्रेतों या भूतों (संस्कृत प्रेत) के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN1) अगला (SN3) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय: II. निदानवग्गा (कारण की पुस्तक)
1.1अध्याय 1: कार्य-कारण पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
1.1.1(i) बुद्ध
1.1.1.11. आश्रित उत्पत्ति (Paticcasamuppada sans. Pratitya-samutpad)
1.1.1.22. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण
1.1.1.33. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
1.1.1.44. विपस्सी (प्रारंभिक बुद्ध)
1.1.1.55. सिखी (एक और पूर्व बुद्ध)
1.1.1.66 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.77 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.88 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.99 (9) कस्पा (एक और पूर्व बुद्ध)
1.1.1.1010 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)
1.1.2(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
1.1.2.111. पोषण (आहार)
1.1.2.212. मोलियाफगना
1.1.2.313. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
1.1.2.414. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
1.1.2.515. कच्चनागोट्टा
1.1.2.616. धर्म/मार्ग पर वक्ता (धम्मकथिका)
1.1.2.717. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)
1.1.2.818 (8) टिंबारुका
1.1.2.919. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)
1.1.2.1020. कारण (पक्काय सं. प्रत्यय)
1.1.3(iii) दस शक्तियां अनुभाग (दसबालावग्गो)
1.1.3.121. दस शक्तियाँ (1) (दासबाला1)

1.1.3.222. दस शक्तियाँ (2) (दासबाला2)
1.1.3.323. निकटवर्ती कारण (उपनिषद)
1.1.3.424. अन्य संप्रदायों के संन्यासी (अन्नातिथिया सं. अन्या-तेत्रैया)
1.1.3.525.भूमिजा
1.1.3.626. उपवन
1.1.3.727. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
1.1.3.828. भिक्खु (सं. भिक्षु, साधु)
1.1.3.929. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.1.3.1030. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.1.4(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
1.1.4.131. जो कुछ हुआ है (भूता)
1.1.4.232. कलारा
1.1.4.333. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु1 सं. ज्ञान-वस्तु)
1.1.4.434. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
1.1.4.535. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (1) (अविज्जापच्चया1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.636. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.737. तुम्हारा नहीं (नटुम्हा)
1.1.4.838. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
1.1.4.939. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
1.1.4.1040. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
1.1.5(v) गृहस्थ अनुभाग (गहपतिवाग्गो सं. गृहपति-वर्ग)
1.1.5.141. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
1.1.5.242. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
1.1.5.343. दुःख (दुक्खा)
1.1.5.444. लोक (विश्व)
1.1.5.545. नाटिका में
1.1.5.646. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण)
1.1.5.747. जानूसोनी
1.1.5.848. लोकायटिक (विश्व-अस्तित्ववादी)
1.1.5.949. महान शिष्य (1) (अरियासवका सं. आर्य-श्रावक)
1.1.5.1050 महान शिष्य (2)
1.1.6(vi) पीड़ा धारा 133 (दुक्खावाग्गो सं. दुक्खा-वर्ग)
1.1.6.151. गहन जांच (परिविमांसा)
1.1.6.252. आसक्ति (उपादान)
1.1.6.353. बेड़ियाँ (1) (संयोजन1)
1.1.6.454. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
1.1.6.555. महान वृक्ष (1) (महारुक्ख1 सं. महा-वृक्ष)
1.1.6.656. महान वृक्ष (2) (महारुक्ख2 सं. महा-वृक्ष)
1.1.6.757. वृक्ष का पौधा (तरुणरुक्खा सं. तरूण-वृक्ष)
1.1.6.858. मन-और-शरीररूप(नामरूप)
1.1.6.959. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
1.1.6.1060. कारण (निदान)
1.1.7(vii) महान उप-अध्याय (महावग्गो संस्कृत महावर्ग)
1.1.7.161. अशिक्षित (1) (असुतव1 सं. अश्रुतव्य)
1.1.7.262. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
1.1.7.363. पुत्र का मांस रूपक (पुत्तममसुपमा सं. पुत्र-मान्स-उपमा)
1.1.7.464. यदि कामवासना विद्यमान हो (अत्थिरग संस्कृत अस्थि-राग)
1.1.7.565. नगर (नागरा)

1.1.7.666. अन्वेषण (सम्मासा)
1.1.7.767 नरकट के ढेर (नलकलापी)
1.1.7.868. कोसंबी
1.1.7.969. द सर्ज (उपायंती)
1.1.7.1070. सुसीमा
1.1.8(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनाब्रह्मण)
1.1.8.171. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)
1.1.8.272 जन्म, इत्यादि (जाति आदि)
1.1.9(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
1.1.9.173. एक शिक्षक (सत्थु)
1.2अध्याय 2: सफलता पर संबंधित प्रवचन (अभिसामयसाम्युत्त) {साम्युत्त-13}
1.2.174. नाखून (नखसिखा)
1.2.275. तालाब (पोखरानी)
1.2.376. संगम पर जल (1) (संभेज्जाउदक1)
1.2.477. संगम पर जल (2) (संभेज्जाउदक2)
1.2.578. पृथ्वी (1) (पथवी1)
1.2.679. पृथ्वी (2) (पथवी2)
1.2.780. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
1.2.881. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
1.2.982. पर्वत (1) (पब्बाटा1 सं. पर्वत)
1.2.1083. पर्वत (2) (पब्बाटा2 सं. पर्वत)
1.2.1184. पर्वत (3) (पब्बाटा3 सं. पर्वत)
1.3अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसाम्युत्त) {साम्युत्त-14}
1.3.1(i) विविधता अनुभाग (नानात्तवग्गो सं. नानात्व-वर्ग)
1.3.1.185. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
1.3.1.286. संपर्कों की विविधता
1.3.1.387. संपर्कों की विविधता नहीं
1.3.1.488. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (1) (वेदनाननत्त्व बिना वेदनानातव)
1.3.1.589. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनाननट्ट2 बिना वेदाना-नानतव)
1.3.1.690. बाह्य तत्वों की विविधता
1.3.1.791. धारणाओं की विविधता
1.3.1.892. खोजों की विविधता नहीं
1.3.1.993. बाह्य संपर्कों की विविधता (1)
1.3.1.1094. बाह्य संपर्कों की विविधता (2)
1.3.2(ii) दूसरा उप-अध्याय
1.3.2.195. सात तत्व
1.3.2.296. स्रोत के साथ (सा-निदान)
1.3.2.397. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
1.3.2.498. हीन प्रवृत्ति (हिनाधिमुक्तिका)
1.3.2.599. आगे-पीछे चलना (Cankama sans. Cankraman)
1.3.2.6100. श्लोकों सहित सूत्र
1.3.2.7101. विश्वास की कमी
1.3.2.8102. विश्वास की कमी वाले लोगों में निहित (असद्ध-मूलक सं. अश्रद्ध-मूलक)
1.3.2.9103. बेशर्म में निहित (अहिरिका-मुलाका)
1.3.2.10104. जो लोग अन्याय से भयभीत नहीं होते (अनोत्तप्पा-मूलक)
1.3.2.11105. अनसीखे में निहित (अप्पासुता-मुलाका)
1.3.2.12106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
1.3.3(iii) कम्मा खंड के पाठ्यक्रम (कम्मापथवग्गो सं. कर्म-पथ-वर्ग)

1.3.3.1107. समाधि में न होना (असमहिता)
1.3.3.2108. अनैतिक
1.3.3.3109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपाद सं. पंच-शिक्षा-पाद)
1.3.3.4110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
1.3.3.5111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
1.3.3.6112. अष्टांगिक मार्ग (अत्थांगिक संस्कृत)
1.3.3.7113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
1.3.4(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (कैटुथावागो संस। कैटुरथा-वर्ग)
1.3.4.1114. चार तत्व (चतुधातु)
1.3.4.2115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध सं. पूर्व-संबोधि)
1.3.4.3116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
1.3.4.4117. यदि कोई (नोसेडम) नहीं होता
1.3.4.5118. विशेष रूप से पीड़ित (एकांतदुक्खा)
1.3.4.6119. डिलाईट (अभिनन्द बिना अभिनन्दन)
1.3.4.7120. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)
1.3.4.8121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.3.4.9122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.3.4.10123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.4अध्याय 4: खोजे जाने योग्य आरंभ के बिना (अनामतग्गसमुत्त) {संयुत्त-15}
1.4.1(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
1.4.1.1124. घास और लकड़ी (तिनकत्था सं. तृण-काष्ठा)
1.4.1.2125. पृथ्वी (पथवी सं. पृथ्वी)
1.4.1.3126. आँसू (अस्सु संस्कृत अशरु)
1.4.1.4127. माँ का दूध (खिरा बिना क्षीरा)
1.4.1.5128. पर्वत (पब्बाता सं. पर्वत)
1.4.1.6129. सरसों का बीज (सासापा)
1.4.1.7130. शिष्य (सावक सं. श्रावक)
1.4.1.8131. गंगा नदी
1.4.1.9132. डंडा
1.4.1.10133. व्यक्ति (पुग्गला)
1.4.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुर्भाग्यपूर्ण)
1.4.2.1134. अभागा (दुग्गता सं. दुर्गति)
1.4.2.2135. सुखी (सुखिता सं. सुखी)
1.4.2.3136. तीस भिक्षु (तिम्सामत्ता)
1.4.2.4137-142.माता, पिता, भाई, बहन, बेटा, बेटी (मातु, पितु, भातु, भगिनी, पुत्त, धितु)
1.4.2.5143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापबट्टा सं. वेपुल्ला-पर्वत)
1.5अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
1.5.1144. संतोष
1.5.2145. गलत काम करने से बेखौफ (अनोट्टापी)
1.5.3146. चंद्रमा के समान (चंद्रउपमा संस्कृत: चंद्र-उपमा)
1.5.4147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
1.5.5148. पुराना (जिन्ना संस्कृत जीर्ण)
1.5.6149. निर्देश (1) (ओवादा1)
1.5.7150.निर्देश (2) (ओवादा2)
1.5.8151. निर्देश (3) (ओवादा3)
1.5.9152. झाना (आत्म-अवशोषित ट्रान्स) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (झानाभिन्न संस। ध्यान-अभि-ज्ञान)
1.5.10153. भिक्षुणियों का निवास स्थान (उपासया)
1.5.11154. वस्त्र (सिवारा)

1.5.12155. मृत्यु के बाद (परम्मारन)
1.5.13156. सच्चे धम्म का मिथ्याकरण (सद्धम्मप्पतिरूपक सं. सत्-धर्मप्य-अतिरूपा)
1.6अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासंयुत्त सं. लाभ-सत्कार-संयुत्त) {संयुत्त-17}
1.6.1(i) पहला उप-अध्याय (भयानक)
1.6.1.1157. भयानक (दारुना)
1.6.1.2158. हुक (बालिसा)
1.6.1.3159. कछुआ (कुम्मा)
1.6.1.4160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
1.6.1.5161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
1.6.1.6162. वज्रपात (असानी)
1.6.1.7163. विषैला बाण (दिद्धा)
1.6.1.8164. सियार (सिंगाला)
1.6.1.9165. आंधी (वेरम्भा)
1.6.1.10166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
1.6.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
1.6.2.1167. गोल्डन बाउल (सुवन्नापति)
1.6.2.2168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
1.6.2.3169 (10) सुवन्नानिक्खा, आदि।
1.6.3(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)
1.6.3.1170. एक महिला (मातुगामा)
1.6.3.2171. सबसे खूबसूरत लड़की (कल्याणी)
1.6.3.3172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकास सं. एक-पुत्र)
1.6.3.4173. इकलौती पुत्री (एकाधितु)
1.6.3.5174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.6.3.6175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.6.3.7176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.6.3.8177. त्वचा (चावी)
1.6.3.9178. रस्सी (राज्जू)
1.6.3.10179. भिक्खु (सं. भिक्षु, भिक्षु)
1.6.4(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
1.6.4.1180. विच्छेद (भिंडी)
1.6.4.2181. कुसलमूला जड़
1.6.4.3182. लाभकारी (कुसल) प्रकृति (कुशलधम्म)
1.6.4.4183. उज्ज्वल प्रकृति (सुक्कधम्म सं. शुक-धर्म)
1.6.4.5184. उनके जाने के कुछ ही समय बाद (अचिरापक्कंता)
1.6.4.6185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचराथसता)
1.6.4.7186. माता सुत्ता (मातु सं. मातृ)
1.6.4.8187. फादर सुट्टा, आदि (पितु आदि)
1.7अध्याय 7: राहुला (राहुलासयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-18}
1.7.1(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
1.7.1.1188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
1.7.1.2189. प्रपत्र आदि (रूपा)
1.7.1.3190. चेतना (विन्नाना संस्कृत विज्ञान)
1.7.1.4191. संपर्क (संपहस्सा संस्कृत स्पर्श)
1.7.1.5192. वेदना
1.7.1.6193. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
1.7.1.7194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
1.7.1.8195. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)

1.7.1.9196. तत्व (धातु)
1.7.1.10197. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
1.7.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
1.7.2.1198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
1.7.2.2199. प्रपत्र आदि।
1.7.2.3200. अंतर्निहित-प्रवृत्ति (अनुसया सं. अनुशय)
1.7.2.4201. छुटकारा पाना (अपागता)
1.8अध्याय 8. लक्खाना (लक्खानासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-19}
1.8.1(i) पहला उपअध्याय (पथमावग्गो सं. प्रथम-वर्ग)
1.8.1.1202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
1.8.1.2203. मांस का टुकड़ा (पेसी बिना पेशी)
1.8.1.3204. मांस का टुकड़ा (पिंडा)
1.8.1.4205. घाव वाला आदमी (निचवी)
1.8.1.5206. तलवार के बाल (एसिलोमा)
1.8.1.6207. भाले के बाल (सत्ती)
1.8.1.7208. तीरनुमा बाल (उसुलोमा)
1.8.1.8209. सुईनुमा बाल (एल) 350 (सुसिलोमा)
1.8.1.9210. सुईनुमा बाल (2) (सुसिलोमा2)
1.8.1.10211 कुटिया (कुंभंडा)
1.8.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
1.8.2.1212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)
1.8.2.2213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)
1.8.2.3214. घावों वाली महिला (निच्चवित्थी)
1.8.2.4215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
1.8.2.5216. तपती हुई महिला (ओकिलिनी बिना अकुलिनी के)
1.8.2.6217. बिना सिर वाला धड़ (असिसका सं. आशिसाका)
1.8.2.7218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
1.8.2.8219. दुष्ट भिक्खुनि (पापभिक्खुनि सं. पापभिक्षुनि)
1.8.2.9220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)
1.8.2.10221. दुष्ट नौसिखिया भिक्खु (पापसमनेरा सं. पाप-सरमानेरा)
1.8.2.11222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
1.9अध्याय 9: उपमाओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (ओपम्मासंयुत्त सं. उपमा-संयुक्त) {संयुत्त-20}
1.9.1223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
1.9.2224. नाखून (नखसिखा)
1.9.3225. परिवार (कुला)
1.9.4226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
1.9.5227. भाला (सत्ती)
1.9.6228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
1.9.7229. ड्रम पेग (एनी)
1.9.8230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
1.9.9231. नर हाथी (नाग)
1.9.10232. बिल्ली (बिलारा)
1.9.11233. सियार (1) (सिंगाला1)
1.9.12234. सियार (2) (सिंगाला2)
1.10अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्खुसंयुत्त) {संयुत्त-21}
1.10.1235. कोलिता (महामोग्गलाना)
1.10.2236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
1.10.3237. बैरल

1.10.4238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)
1.10.5239. सुजाता
1.10.6240. लकुंदक भद्दिया
1.10.7241. विशाखा
1.10.8242. नंदा
1.10.9243. टिस्सा
1.10.10244. एक भिक्षु जिसे वरिष्ठ (थेरानामाका) कहा जाता है
1.10.11245. महाकप्पिना
1.10.12246. सहायक (साथी)
संयुक्त निकाय: II. निदानवग्गा (कारण की पुस्तक)

नमो तस्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही (सम्मा) और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: कार्य-कारण पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
(i) बुद्ध
1. आश्रित उत्पत्ति (Paticcasamuppada sans. Pratitya-samutpad)
(पतीच्चसमुत्पाद का संक्षिप्त रूप)

मैंने (भगवान बुद्ध से) ऐसा सुना है, आनंद कहते हैं। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश दूंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं आगे बोलता हूँ।" - "जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
आश्रित उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; उपदान (संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दु:ख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दु:ख का मूल है । भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। निरोध: "परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है; चेतना समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) समाप्त हो जाता है; मन-शरीर (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रिय शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।" छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने के साथ, संपर्क का अंत (फस्सा/स्पर्श);

स्पर्श के समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है;
पुनर्जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए।

नोट: (क) इसे समझने के लिए, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में माना जा सकता है। और प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक स्पष्टीकरण दिया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञानोदय के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ के साथ-साथ दिव्य आनंद के कारण, जो कि सच्चा सुख है, उससे संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) (घ) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में समझा जा सकता है।
(घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान एक व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नत अति-अवस्था में रूपांतरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर, व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है।
(ङ) भौतिक जगत में अति-अवस्था के सादृश्य के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन-कंडेनसेट से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धाराएं संचारित कर सकते हैं और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम में रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है, लेकिन इन्हें केवल सादृश्य के रूप में ही माना जाना चाहिए। यह विचार कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकता है।
(f) अज्ञान को अति-अवस्था (अर्थात् गैर-निरस्ति या गैर-समाधि/ज्ञान/ज़ेन/सम्मोहन) को न जानने और अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है, दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(जी) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-और-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख किया गया है।

---

2. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण
(पटिच्चसमुत्पाद का विस्तृत विवरण; SN3-79 में और भी विस्तृत जानकारी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत सिखाऊंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और मनसिकारो, मैं बोलूंगा।" "
जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)

के कारण संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) उत्पन्न होते हैं।" तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था और मृत्यु, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है । हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों की वृद्धावस्था, उनका बूढ़ा होना, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, शक्ति का क्षय होना, इंद्रियों का क्षय होना: यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों का एकाकी होना, उनका नाश होना, विखंडन होना, लुप्त हो जाना, नश्वरता, मृत्यु, काल की समाप्ति, स्कंधों का विखंडन, शव का देह त्यागना: यही मृत्यु कहलाता है। 2 अतः इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था-मृत्यु कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, जन्म क्या है? विभिन्न प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में उतरना, उत्पत्ति, स्कंधों का प्रकटीकरण, इंद्रियों का प्राप्त होना। यही जन्म कहलाता है। 3

"और हे भिक्षुओं, अस्तित्व (भावो) क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व (भावो) हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व, निराकार-क्षेत्र का अस्तित्व। यही अस्तित्व (भावो) कहलाता है। 4 "और हे भिक्षुओं

, आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या है? चार प्रकार की आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। यही आसक्ति कहलाता है। 5

"और हे भिक्षुओं, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्या है?" भोग की ये छह श्रेणियाँ हैं: रूपों के प्रति भोग, ध्वनियों के प्रति भोग, गंधों के प्रति भोग, स्वादों के प्रति भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति भोग और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति भोग। इसे भोग (तन्हा संश्लेष) कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क (कान संपर्क) से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क (नाक संपर्क) से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क (जीभ संपर्क) से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क (शरीर संपर्क) से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क (मन संपर्क) से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, संपर्क क्या है? संपर्क की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। इसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। इन्हें छह इंद्रिय शक्तियाँ कहते हैं। और भिक्षुओं,

मनरूप क्या है? वेदना, अनुभूति, चेतना, संपर्क, मानसिक जागरूकता: इसे मन कहते हैं। चार महातत्व (पृथ्वी, वायु, जल और ऊष्मा) और इन चार महातत्वों से उत्पन्न रूप (धातु): इसे रूप कहते हैं। इस प्रकार, इस मन और इस रूप को एक साथ मनरूप कहते हैं।" 6.

भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना और मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं।

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? संस्कार (व्यवहार) तीन प्रकार के होते हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार) , मौखिक संस्कार (व्यवहार) और मानसिक संस्कार (व्यवहार) । इन्हें संस्कार कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अज्ञान क्या है? दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है। 8 आश्रित

उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के
कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-स्थिति) उत्पन्न होते हैं ; संस्कार (व्यवहार-स्थिति) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण भाव उत्पन्न होता है; जन्म (पुनर्जन्म) होता है ; जन्म (पुनर्जन्म) के कारण दुःख , वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है। भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। निरोध : लेकिन अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के समाप्त होने पर, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने पर, छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने पर, स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है; स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, वेदना (संवेदना) का अंत हो जाता है; वेदना (वेदना) के समाप्त होने पर, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का अंत हो जाता है; तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के समाप्त होने पर, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का अंत हो जाता है; आसक्ति (भावो) के समाप्त होने पर, पुनर्जन्म (जन्म) का अंत हो जाता है।

पुनर्जन्म का चक्र समाप्त होने के साथ ही, वृद्धावस्था और मृत्यु का चक्र समाप्त होने पर, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का जन्म होता है।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 9

नोट: (क) इसे समझने के लिए, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में माना जा सकता है। और प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो एआई तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक स्पष्टीकरण दिया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञानोदय के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो स्पष्ट अनुभव आधारित समझ के साथ-साथ दिव्य आनंद के कारण, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है, उसका संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) समाप्ति एक ऐसी घटना है जो दिव्य या अति-अवस्था समाधि/ध्यान अवस्था/ज़ेन के दौरान घटित होती है, जिसे इस प्रकार माना जा सकता है (घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/झान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से एक नई उन्नत परम अवस्था
में परिवर्तित हो सकता है, और जब वह परम अवस्था में होता है, तो वह इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है। (ङ
) भौतिक जगत में परम अवस्था के सादृश्य के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन-कंडेनसेट से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धाराएं संचारित कर सकते हैं और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम में परिवर्तन (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल इस विचार के सादृश्य के रूप में माना जाना चाहिए कि मनुष्य भी चेतना की कुछ परम अवस्थाओं में परिवर्तित हो सकते हैं।

(च) अज्ञान को न जानने और न अनुभव करने के रूप में समझा जा सकता है। अति अवस्था (अर्थात् गैर-निरस्ति या गैर-समाधि/ज्ञान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में अज्ञान की अवस्था, वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(जी) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।

---

3. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है?
अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं;
संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है;
चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं;
मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं;
छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है ;
स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है ;
वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।" [उत्पन्न होता है];
आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) [उत्पन्न होता है];
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म [होता है];
पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है।

भिक्षुओं, इसे ही कुमार्ग कहते हैं।

"और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? अज्ञान के पूर्णतः क्षीण होने और
निरोध के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार
(अनिच्छुक-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है;
चेतना के अंत के साथ मन-शरीर-रूप (नामरूप) का अंत होता है;
मन-शरीर-रूप (नामरूप) के अंत के साथ छह इंद्रियों का अंत होता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने पर स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है;
तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है।
यही समस्त दुःख का निरोध है। हे

भिक्षुओं, यही सही मार्ग कहलाता है।

---

4. विपस्सी (प्रारंभिक बुद्ध)
सावत्थी में। [बुद्ध:]
(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, विपस्सी बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब वे अभी भी एक बोधिसत्व थे और पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुए थे, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब प्राप्त होगी?'

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है (पच्चय सं. प्रत्यय)।' 14

"तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किसके कारण होता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब अस्तित्व का कारक होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व है।'

"फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका अस्तित्व (भावो) कैसे उत्पन्न होता है? अस्तित्व (भावो) किसके कारण होता है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' फिर, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका आसक्ति कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण होती है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब तृष्णा होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब वेदना होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा का कारण वेदना है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना (संवेदना) कैसे उत्पन्न होती है? वेदना (संवेदना) किस कारण उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है, तो वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) का कारण संपर्क (फस्सा/स्पर्श) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कैसे उत्पन्न होता है (पच्चया)? संपर्क (फस्सा/स्पर्श) किस कारण उत्पन्न होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक गहन अंतर्दृष्टि (मंसिकारा) प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब छह इंद्रियां अस्तित्व में आती हैं? छह इंद्रियों का कारण (पच्चया) क्या है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; इन छह इंद्रिय शक्तियों का कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब चेतना होती है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' फिर, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-स्थिति) होते हैं, तो चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-स्थिति) है।' 15

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संस्कार (व्यवहार-स्थिति) कैसे उत्पन्न होते हैं? संस्कार (व्यवहार-स्थिति) किसके कारण उत्पन्न होते हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व

में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त की: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का कारण अज्ञान है।

इस प्रकार अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) को कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है) "

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व में पहले कभी न सुने गए धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निवारण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; पुनर्जन्म के रुकने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व ही नहीं है तो पुनर्जन्म क्यों नहीं होता? किसके रुकने से पुनर्जन्म रुकता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ:
'जब अस्तित्व का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व के कारण (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व के कारण (भावो) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब आसक्ति नहीं होती (उपदान संस. आसक्ति), तो अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या आसक्ति उत्पन्न नहीं होती?' किस चीज के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है? तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब तृष्णा नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से तृष्णा का निरोध होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वेदना कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से वेदना का निरोध होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी निरोध हो जाता है।"

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में ही नहीं है, उससे संपर्क कैसे नहीं होता? किसके समाप्त होने से संपर्क समाप्त होता है?" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी समाप्त हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो छह इंद्रियां कैसे अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके निष्क्रिय होने से छह इंद्रियों का निष्क्रिय होना संभव होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान

कार्य का रुक जाना), तब छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।

" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कैसे अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?" तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व उपलब्धि प्राप्त की:
... 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने के साथ ही मन-शरीर रूप (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या (साधारण) चेतना उत्पन्न नहीं होती? किसके निरासण से चेतना का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना उत्पन्न नहीं होती; संस्कार (व्यवहार-आदत) के निरासण से (साधारण) चेतना का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? किसके निरासण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि (पन्ना) उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है।'

"इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के निवारण से चेतना का निवारण होता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।
" "'निराशा, निराशा' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

---

5. सिखी (एक और पूर्व बुद्ध)
सिख धर्म में बुद्ध के ज्ञानोदय और अरहत के प्रति सही जागृति से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

6 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
वेस्साभू बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

7 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
काकुसंध बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

8 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कोनागमना बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के रूप में सही ढंग से जागृत होने से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

9 (9) कस्पा (एक और पूर्व बुद्ध)
कश्यप बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के सही ज्ञानोदय से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

10 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)

(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, मुझे, अपने ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब मैं अभी भी एक बोधिसत्व था और पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट हो जाता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?'

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त हुई: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' 14

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व (भावो) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो अस्तित्व (भावो) कैसे होता है? अस्तित्व (भावो) किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब आसक्ति (उपदान संस. आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब वेदना (संवेदना) होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; " लालसा का कारण वेदना है।

" तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना कैसे उत्पन्न होती है? वेदना किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क होता है, तब वेदना उत्पन्न होती है; वेदना का कारण संपर्क है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क कैसे उत्पन्न होता है? संपर्क किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो छह इंद्रियां कैसे उत्पन्न होती हैं? छह इंद्रियां किसके द्वारा उत्पन्न होती हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं; छहों इंद्रियों का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो मन और शरीर (नामरूप) कैसे उत्पन्न होता है? मन और शरीर (नामरूप) का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब चेतना होती है, तो मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) है।' 15

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब कुछ विद्यमान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं? संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) का कारण अज्ञान ही है।'

"इस प्रकार अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) के कारण चेतना... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है)

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है? किसके निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है; पुनर्जन्म के निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या होता है? किसके निरासण से पुनर्जन्म का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व (भावो) के कारण के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब आसक्ति नहीं होती, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से तृष्णा का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के समाप्त होने से तृष्णा का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो वेदना क्यों नहीं उत्पन्न होती? किसके समाप्त होने से वेदना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या संपर्क स्थापित नहीं होता? किसके विलुप्त होने से संपर्क का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) की चेतना (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के विलुप्त होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का विलुप्त होना संभव हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके विलुप्त होने से छह इंद्रियों का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तो छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) नहीं होती, तो मन-शरीर (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या (साधारण) चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना अस्तित्व में नहीं आती; संस्कार (व्यवहार-आधार) के समाप्त होने से (सामान्य) चेतना का भी अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो संस्कार (व्यवहार-आधार) कैसे उत्पन्न नहीं होते? किसके समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) द्वारा मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत हो जाता है।'

इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने के साथ ही चेतना का अंत हो जाता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।
'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के विषय में, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
11. पोषण (आहार)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। 17 वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए हैं। 18

"भिक्षुओं, इन चार प्रकार के पोषणों का स्रोत क्या है, इनका उद्‌गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं?" इन चारों प्रकार के पोषक तत्वों का स्रोत तृष्णा है; इनका जन्म और उत्पत्ति तृष्णा से ही होती है। 19

"और इस तृष्णा का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति किससे होती है? इस तृष्णा का स्रोत वेदना है; इसकी उत्पत्ति वेदना से ही होती है।

और इस वेदना का स्रोत क्या है...? वेदना का स्रोत स्पर्श है... और इस स्पर्श का स्रोत क्या है...? स्पर्श का स्रोत छह इंद्रियां हैं... और इन छह इंद्रियों का स्रोत क्या है...? छह इंद्रियों का स्रोत नामरूप है... और इस नामरूप का स्रोत क्या है...? मन और शरीर (नामरूप) का

स्रोत चेतना है... और इस चेतना का स्रोत क्या है...? चेतना का स्रोत संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है... और इन संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं? संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत अज्ञान है, इनकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है; ये अज्ञान से ही उत्पन्न और निर्मित होते हैं।

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का भी अंत हो जाता है... यही इस समस्त दुख का अंत है। (1 और 2 के समान)

---

12. मोलियाफगना
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।" 20

यह सुनकर पूज्य मोलियाफग्गुण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, चेतना नामक पोषण का सेवन कौन करता है?" 21

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "मैं यह नहीं कहता कि 'कोई सेवन करता है।'" 22 यदि मैं कहूँ, 'कोई उपभोग करता है,' तो उस स्थिति में यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन उपभोग करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, पोषण चेतना [एक कारण] क्या है?' 23 तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: 'पोषण चेतना भविष्य के नवगठित अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) के उत्पादन का कारण है। 24 जब जो अस्तित्व में आया है वह विद्यमान होता है, तो छह इंद्रियाँ [अस्तित्व में आती हैं]; 25 छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है।'

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन संपर्क करता है?"
"यह एक वैध प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया।
"मैं यह नहीं कहता, 'कोई संपर्क करता है।'" यदि मैं कहूँ, 'संपर्क स्थापित होता है,' तो यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कौन स्थापित करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, संपर्क किस कारण से होता है?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: 'छह इंद्रियों के कारण संपर्क स्थापित होता है; संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है।'

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन अनुभव करता है?"
"यह वैध प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'अनुभूति स्थापित होती है।' यदि मैं कहूँ, 'अनुभूति स्थापित होती है,' तो यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन अनुभव करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, वेदना किस कारण से उत्पन्न होती है?'" यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: "संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है।"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन तृष्णा करता है?"
“यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है,” भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। “मैं यह नहीं कहता, ‘कोई तृष्णा करता है।’ यदि मैं कहूँ, ‘कोई तृष्णा करता है,’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा: ‘हे प्रभु, कौन तृष्णा करता है?’ परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, ‘हे प्रभु, तृष्णा किस कारण से उत्पन्न होती है?’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा। इसका मान्य उत्तर यह है:
‘संवेदना (वेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।’”

[मोलियाफाग्गुण:] “हे प्रभु, कौन आसक्ति करता है?”
“यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है,” भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। “मैं यह नहीं कहता, ‘कोई आसक्ति करता है।’ यदि मैं कहूँ, ‘कोई आसक्ति करता है,’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा: ‘हे प्रभु, कौन आसक्ति करता है?’” लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। चूंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, इसलिए यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, आसक्ति किस कारण से उत्पन्न होती है?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है:
'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;

आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है।'......
यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"लेकिन, फाग्गुणा, छह इंद्रियों के संपर्क के लिए शेषफल के साथ लुप्त होने और निरोध (निरोध) होने से संपर्क का अंत होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के अंत से संवेदना (वेदना) का अंत होता है; संवेदना (वेदना) के अंत से लालसा का अंत होता है; लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के अंत से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है।" अस्तित्व (भावो) के समाप्त होने के साथ ही पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस समस्त दुःख का अंत (निरोध) हो जाता है। (1 और 2 के समान)

---

13. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
सावत्थी में। भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते; 27 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (वेदना)... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर रूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। ब्राह्मणत्व। 28

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

14. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के बारे में जो इन धम्मों (धर्म, मार्ग), इनके उद्गम, इनके निरोध और इनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: वे कौन से धम्म (मार्ग, नियम) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निरोध को वे नहीं समझते और जिनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को वे नहीं समझते?

वे वृद्धावस्था और मृत्यु को नहीं समझते, न ही इसके उद्गम को, न इसके निरोध को और न इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को।" वे पुनर्जन्म, अस्तित्व (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर (नामरूप), चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते। ये वे धर्म (नियम, मार्ग) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निवारण को वे नहीं समझते और जिनके निवारण के मार्ग को वे नहीं समझते।

"मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी या ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों, इनके उद्गम, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं; वे कौन से धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्गम को वे समझते हैं, जिनके निवारण को वे समझते हैं और जिनके निवारण के मार्ग को वे समझते हैं?"

वे वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को वे समझते हैं।

मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिनय) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

15. कच्चनागोट्टा
सावत्थी में, पूज्य कच्चनगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहते हैं, 'सही दृष्टि, सही दृष्टि।' पूज्यवर, सही दृष्टि किस प्रकार है?"

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर द्वैत पर निर्भर है - अस्तित्व (भावो) और गैर-अस्तित्व की धारणा पर। 29 परन्तु जो ध्यान में संसार की उत्पत्ति को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में गैर-अस्तित्व की कोई धारणा नहीं होती। और जो ध्यान में निरोध को सही अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में अस्तित्व (भावो) की कोई धारणा नहीं होती। 30

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर आसक्ति, व्यथा (उपादान सं. आसक्ति) और निष्ठा से जकड़ा हुआ है। 31 परन्तु यह (सही दृष्टि वाला) व्यक्ति उस आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठा और अंतर्निहित प्रवृत्ति के कारण न तो संलग्न होता है और न ही उससे आसक्त होता है; वह 'मैं स्वयं' के बारे में कोई रुख नहीं अपनाता।" 32 उसे इस बात में कोई दुविधा या संदेह नहीं है कि जो कुछ उत्पन्न होता है वह केवल दुख का उत्पन्न होना है, और जो कुछ समाप्त होता है वह केवल दुख का समाप्त होना है। इस विषय में उसका ज्ञान दूसरों से स्वतंत्र है। कच्चना, सही दृष्टिकोण इसी प्रकार है। 33

"'सब कुछ विद्यमान है': कच्चाना, यह एक चरम सीमा है। 'सब कुछ विद्यमान नहीं है': यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं:
'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

---

16. धर्म/मार्ग पर वक्ता (धम्मकथिका)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:
"हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) का वक्ता, धर्म का वक्ता।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म का वक्ता होता है?"

"भिक्षु, यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निबिद्दा) और उसके निवारण (निरोध) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो वह धम्म का वक्ता भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 34 यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त हो जाती है, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 35

"भिक्षु, यदि कोई पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निबिद्दा) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है... अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के निवारण और समाप्ति के लिए अभ्यास करने वाला भिक्षु धम्म का वक्ता कहलाने योग्य है। यदि कोई अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त कर ली जाए, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है।

---

17. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। नग्न तपस्वी कश्यप ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्या वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे?"

[बुद्ध:] "यह प्रश्न पूछने का सही समय नहीं है, कश्यप। हम घरों के बीच प्रवेश कर चुके हैं।" 36
नग्न तपस्वी कस्सपा ने दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।”
[बुद्ध:] “कस्सापा, यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। हम घरों में प्रवेश कर चुके हैं।”

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हम गुरु गौतम से अधिक प्रश्न नहीं पूछना चाहते।"
[बुद्ध:] "तो कस्सपा, जो चाहो पूछो।"
[अचेलकस्सापा:] "गुरु गौतम, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?"
[बुद्ध:] "नहीं कस्सपा," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकस्सापा:] "तो, गुरु गौतम, क्या दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है?"
[बुद्ध:] "नहीं कस्सपा," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख स्वयं और परावर्तित दोनों होते हैं?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर, गुरु गौतम, क्या दुख संयोगवश उत्पन्न होता है, न तो स्वयं और न ही परावर्तित?" 37
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सप; दुख है।"
[अचेलकसप:] "तो क्या गुरु गौतम दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, कस्सप। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।"

[अचेलकस्सापा:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'हे गौतम गुरु, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी और द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह दोनों द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी के द्वारा भी उत्पन्न नहीं होता?' प्रत्येक स्थिति में आप यही कहेंगे:
'ऐसा नहीं है, कस्सपा।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सपा; दुख है।' जब पूछा जाए: 'तो क्या गुरु गौतम दुख को जानते और देखते नहीं हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, कस्सपा। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे दुख का अर्थ समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के बारे में सिखाएँ। 38

[बुद्ध:] कस्सपा, [यदि कोई सोचे,] 'कर्म करने वाला वही है जो [परिणाम] भोगता है' [तो वह कहता है] आदि से विद्यमान एक के संदर्भ में: 'दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है।' जब कोई इस प्रकार कहता है, तो यह शाश्वतवाद के समान है। 39 परन्तु, कस्सपा, [यदि कोई यह सोचे,] कि कर्म करने वाला एक है, परिणाम भोगने वाला दूसरा है, [तो वह कहता है] वेदना से ग्रस्त व्यक्ति के संदर्भ में: 'दु:ख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है।' जब कोई इस प्रकार कहता है, तो यह विनाशवाद के समान है। 40 इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 41 'अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दु:ख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निवारण से, चेतना के निवारण से... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।" (जैसा कि 1 और 2 में है)

यह सुनकर नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय गुरुदेव! महान, आदरणीय गुरुदेव! भगवान (बुद्ध) ने धर्म को अनेक प्रकार से स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को मार्ग दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ।" क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है? 42

[बुद्ध:] "कस्सपा, जो पहले किसी अन्य संप्रदाय का था और इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) और उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहता है। चार महीने के अंत में, यदि भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो उसे दीक्षा (पबज्जा) और भिक्षु की अवस्था में उच्चतर दीक्षा दे सकते हैं। लेकिन मैं व्यक्तिगत भिन्नताओं को मान्यता देता हूँ।" 43

[अचेलकस्सापा:] "हे पूज्यवर, यदि कोई पूर्व में किसी अन्य संप्रदाय का सदस्य, जो इस धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षा और उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहे, और यदि चार महीने के अंत में भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो उसे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा देकर भिक्षु का दर्जा प्रदान करें, तो मैं चार साल की परिवीक्षा पर रहूंगा। चार साल के अंत में, यदि भिक्षु मुझसे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो मुझे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा देकर भिक्षु का दर्जा प्रदान करें।"

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा प्राप्त की और उपसंपदा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्च दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा अरहंतों में से एक बन गए। 44

---

18 (8) टिंबारुका

श्रावस्ती में, तपस्वी तिंबरुक भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले:

[तिंबरुक:] "हे गौतम जी, क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?" 45
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [
तिंबरुक:] "तो हे गौतम जी, क्या सुख और दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होते हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिंबरुक:] "तो फिर, हे गौतम जी, क्या सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिम्बारुका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिम्बारुका:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि सुख और दुख नहीं हैं, तिम्बारुका; सुख और दुख हैं।" [तिम्बारुका:] "तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को जानते और देखते नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, तिम्बारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।" [तिम्बारुका:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'ऐसा कैसे है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?' या 'क्या वे किसी और द्वारा उत्पन्न होते हैं?' [23] या 'क्या वे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं?' या 'क्या वे किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं होते?' हर बार आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, तिम्बारुका।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?'" आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि सुख और दुख का कोई अस्तित्व नहीं है, तिंबारुका; सुख और दुख दोनों हैं।' जब पूछा जाता है: 'तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को नहीं जानते और न ही देखते हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को नहीं जानता और न ही देखता हूँ, तिंबारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुख का अर्थ समझाएँ। कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुख के बारे में सिखाएँ।

[बुद्ध:] "तिम्बारुका, [यदि कोई यह सोचे,] 'संवेदना और उसे महसूस करने वाला एक ही हैं,' [तो वह] आदि से विद्यमान एक के संदर्भ में कहता है: 'सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं।' मैं ऐसा नहीं कहता। 46 परन्तु, तिम्बारुका, [यदि कोई यह सोचे,] 'संवेदना एक है, उसे महसूस करने वाला दूसरा है,' [तो वह] संवेदना से ग्रस्त एक के संदर्भ में कहता है: 'सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं।'" मैं भी ऐसा नहीं कहता। 47 इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

यह सुनकर, नग्न तपस्वी तिंबरुक ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!... मैं मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

19. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए अपरिष्कृत लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है। केवल छह इंद्रियां हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - अपरिष्कृत व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। 48

"भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए बुद्धिमान लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है।" केवल छह इंद्रियाँ हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, यहाँ क्या अंतर है, क्या भेद है, ज्ञानी व्यक्ति और अपरिष्कृत (नासमझ) व्यक्ति में क्या अंतर है? "

हे पूज्यवर, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। 49 उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

[बुद्ध:] "तो सुनो और ध्यान रखो, हे भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"
"जी हे पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अज्ञान से अवरुद्ध और तृष्णा से जकड़े अपरिष्कृत (नासमझ) लोगों के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए अज्ञान का त्याग नहीं हुआ है और उसकी व्यथा पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति ने दुखों के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है। इसलिए, शरीर के टूटने पर अज्ञानी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है। नया शरीर धारण करने पर भी वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होता; दुखों से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।

भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए ज्ञानी पुरुष के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। ज्ञानी पुरुष ने उस अज्ञान का त्याग कर दिया है और उस तृष्णा का पूर्णतः नाश कर दिया है। इसका कारण क्या है? क्योंकि ज्ञानी पुरुष ने दुख के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है। इसलिए, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञानी पुरुष नया शरीर धारण नहीं करता। नया शरीर धारण न करने के कारण वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।
"हे भिक्षुओं, यही ज्ञानी और अपरिष्कृत व्यक्ति के बीच का भेद, यही अंतर, यही अंतर है, अर्थात् ब्रह्मचर्य का जीवन जीना।" 50

20. कारण (पक्काय सं. प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) और उससे उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धम्म) का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, यह प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व (धातु) फिर भी विद्यमान रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। 51 तथागत इसे जागृत करते हैं और इसे पार कर लेते हैं। 52 ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसे प्रकट करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! हे भिक्षुओं, पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'" 53

"'अस्तित्व (भावो) को कारण मानकर, पुनर्जन्म'... 'चिपकने (उपादान सं. असक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व(भावो)'... 'तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) को कारण मानकर, चिपटना'... 'संवेदना (वेदना) को कारण मानकर, तृष्णा'... 'संवेदना के संपर्क (वस्तु से इंद्रियों का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना)' ... 'छह इंद्रियों के संपर्क के कारण' ... 'नामरूप (मन और शरीर का रूप) के कारण, छह इंद्रियां' ... 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण, मन और शरीर का रूप (नामरूप)' ... 'संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) के कारण, चेतना' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण, संस्कार (व्यवहार)': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व फिर भी बना रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। तथागत इसे जागृत करते हैं और [26] इसे पार कर जाते हैं। ऐसा

करने के बाद, वह इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! अज्ञान को कारण मानकर, भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आधार) (उत्पन्न होते हैं)।' (जैसा कि 1 और 2 में है)
"इस प्रकार, भिक्षुओं, इसमें जो वास्तविकता है, जो त्रुटिहीनता है, जो अन्यथा नहीं है, जो विशिष्ट कारण है: इसे प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) कहा जाता है। 54

भिक्षुओं, ये आश्रित उत्पत्ति वाली घटनाएँ (धम्म) क्या हैं? भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु अनित्य, संखतो (अस्थायी), आश्रित उत्पत्ति वाली, विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन हैं। जन्म अनित्य है... अस्तित्व (भावो) अनित्य है... आसक्ति अनित्य है... तृष्णा (तन्हा संस/तृष्णा) अनित्य है... वेदना (संवेदना) अनित्य है... स्पर्श (संपर्क) अनित्य है... छह इंद्रियाँ अनित्य हैं... मन और शरीर (नामरूप) अनित्य हैं... चेतना (अस्थायी) अनित्य है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) अनित्य हैं... अज्ञान अनित्य, संखतो (अस्थायी), आश्रित उत्पत्ति वाली और निरोध के अधीन है। विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होना और समाप्ति। हे भिक्षुओं, इन्हें आश्रित उत्पत्ति (धम्म) कहा जाता है।

“हे भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इस आश्रित उत्पत्ति और इन आश्रित उत्पत्ति (धम्म) को स्पष्ट रूप से देख लेता है, तो यह असंभव है कि वह अतीत में वापस जाकर सोचे: 'क्या मैं अतीत में विद्यमान था? क्या मैं अतीत में विद्यमान नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? अतीत में मैं क्या था और क्या बन गया?' या यह कि वह भविष्य में आगे बढ़कर सोचे: 'क्या मैं भविष्य में विद्यमान रहूंगा? क्या मैं भविष्य में विद्यमान नहीं रहूंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? मैं क्या था और क्या बन जाऊंगा?' या यह कि वह वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से भ्रमित हो जाए: 'क्या मैं विद्यमान हूं? क्या मैं विद्यमान नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं?' यह प्राणी कहाँ से आया है और कहाँ जाएगा?' 56

"इसका क्या कारण है [कि यह असंभव है]? क्योंकि, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य ने सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद) और इन आश्रित उत्पत्ति (धम्म) को स्पष्ट रूप से देखा है।"

(iii) दस शक्तियां अनुभाग (दसबालावग्गो)
21. दस शक्तियाँ (1) (दासबाला1)
सावत्थी में। [बुद्ध:] "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 57 'ऐसा है रूप, ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है संवेदना (वेदना), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है अनुभूति (संज्ञा), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसे हैं संस्कार (आक्रामक व्यवहार), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय। 58 अतः जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान हो जाता है। 59 अर्थात्, इसके विद्यमान होने पर अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आधारभूतता) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। इसी प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 में है)।

---

22. दस शक्तियाँ (2) (दासबाला2)
सावत्थी में, "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान ग्रहण करते हुए सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 'ऐसा है रूप... (जैसा कि 21 में है)... इस समस्त दुख का यही निवारण (निरोध) है।' भिक्षुओं

, इस प्रकार मैंने धर्म (मार्ग, नियम) की अच्छी तरह व्याख्या की है, उसे स्पष्ट किया है, प्रकट किया है, प्रकट किया है, और उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं।" 60 हे भिक्षुओं, जब मैंने इस प्रकार धम्म की अच्छी तरह व्याख्या कर दी है, उसे स्पष्ट कर दिया है, प्रकट कर दिया है, उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं, तो यह उस कुल के अनुयायी के लिए पर्याप्त है जिसने विश्वास से दीक्षा ली है, ताकि वह अपनी ऊर्जा (वीर्य) को इस प्रकार जागृत कर सके: 'इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति से, पुरुष ऊर्जा शक्ति से, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' 61

भिक्षुओं, आलसी व्यक्ति दुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से दूषित रहता है, और वह बड़े पुण्य का उपेक्षित रहता है। 62 परन्तु ऊर्जावान व्यक्ति सुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से विरक्त रहता है, और वह बड़े पुण्य को प्राप्त करता है। निम्नतर के द्वारा परम को प्राप्त नहीं किया जाता, बल्कि परम के द्वारा ही परम को प्राप्त किया जाता है। 63 भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन मलाई के पेय के समान है; गुरु उपस्थित हैं। 64 अतः, भिक्षुओं, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक असिद्ध को सिद्ध करने के लिए अपनी ऊर्जा को जागृत करो, [इस विचार के साथ]: 'इस प्रकार हमारा यह दीक्षा संस्कार निष्फल नहीं, बल्कि फलदायी और उपजाऊ होगा; और जब हम दूसरों द्वारा दिए गए वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री का उपयोग करते हैं, तो उनके द्वारा हमारे लिए की गई ये सेवाएँ उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होंगी। 65 इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:

"हे भिक्षुओं, अपने हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; दूसरों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; और दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है।" 66

---

23. निकटवर्ती कारण (उपनिषद)
सावत्थी, 67 पर: "भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खया/क्षय) उसे होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, विपश्यना ध्यान का संदर्भ), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्‌गम है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (सन्ना, संज्ञा) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान, संस्कृत विज्ञान), ऐसा उसका उद्‌गम है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसके लिए विकारों का नाश होता है।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि नाश के संबंध में नाश (खया/क्षय) के ज्ञान का एक निकटवर्ती कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और विनाश के ज्ञान का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। 68

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस मुक्ति का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और मुक्ति का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वैराग्य।

मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस वैराग्य का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और वैराग्य का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: घृणा (निब्बिदा)।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि घृणा का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और घृणा का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: धम्मों (नियम, मार्ग और अनुभव) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि धम्मों का वास्तविक ज्ञान और दर्शन का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और धम्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि समाधि (सम्मोहन) अवस्था का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और समाधि (सम्मोहन) अवस्था का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: सुख।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि सुख का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और सुख का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: शांति।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और शांति का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: परमानंद (पीति/प्रीति)।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि परमानंद (पीति/प्रीति) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और परमानंद का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: प्रसन्नता।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि प्रसन्नता का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और प्रसन्नता का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विश्वास।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आस्था का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और आस्था का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: दुख। 69

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दुख का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और दुख का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पुनर्जन्म।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पुनर्जन्म का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और पुनर्जन्म का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अस्तित्व का कारक (भाव)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व के कारक (भाव) का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और अस्तित्व के कारक (भाव) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आसक्ति का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और आसक्ति का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा) का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और तृष्णा का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वेदना (संवेदना)।

"वेदना के लिए, यह कहना चाहिए: इंद्रियों का विषय से संपर्क। संपर्क के लिए: छह इंद्रिय शक्तियाँ। छह इंद्रिय शक्तियों के लिए: मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)। मन और शरीर के स्वरूप के लिए: चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। चेतना के लिए: संस्कार (आक्रामक व्यवहार)।

" "मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि संस्कार (व्यवहार) का भी एक निकटवर्ती कारण है; उनमें निकटवर्ती कारण का अभाव नहीं है। और संस्कार (व्यवहार) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहना चाहिए: अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है; चेतना को मुख्य कारण मानकर मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) को मुख्य कारण मानकर छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों को मुख्य कारण मानकर स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) को मुख्य कारण मानकर संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) को मुख्य कारण मानकर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; तृष्णा को मुख्य कारण मानकर आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति को मुख्य कारण मानकर अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) को मुख्य कारण मानकर पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म को मुख्य कारण मानकर दुख उत्पन्न होता है; दुख को मुख्य कारण मानकर विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास को मुख्य कारण मानकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है; प्रसन्नता को मुख्य कारण मानकर निकटवर्ती कारण, आनंद (पीति/प्रीति); आनंद को निकटवर्ती कारण मानकर, शांति (पसद्धि/प्रशब्धि); शांति को निकटवर्ती कारण मानकर, सुख (सुख); सुख को निकटवर्ती कारण मानकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था; समाधि (सम्मोहन) अवस्था को निकटवर्ती कारण मानकर, धर्मों (नियम, मार्ग) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन; धर्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन को निकटवर्ती कारण मानकर, घृणा (निब्बिद); घृणा को निकटवर्ती कारण मानकर, वैराग्य; वैराग्य को निकटवर्ती कारण मानकर, मुक्ति (विमुक्ति/विमुक्ति); मुक्ति को निकटवर्ती कारण मानकर, विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय)।

"जैसे, भिक्षुओं, जब पर्वत की चोटी पर भारी मात्रा में वर्षा होती है, तो पानी ढलान के साथ बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भर जाने से तालाब भर जाते हैं; ये सब भर जाने पर झीलें भर जाती हैं; ये सब भर जाने पर नदियाँ भर जाती हैं; और ये सब भर जाने पर विशाल सागर भर जाता है; 70

इसी प्रकार, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... मुक्ति को मुख्य कारण मानकर विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय) उत्पन्न होता है।

24. अन्य संप्रदायों के संन्यासी (अन्नातिथिया सं. अन्या-तेत्रैया)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन) में।
(i)

फिर, सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उससे कहा:

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 71 अब, मित्र सारिपुत्त, तपस्वी गौतम इस विषय में क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें तपस्वी गौतम द्वारा कही गई बात को ही बताना है और तथ्यों के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं करनी है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?” 72

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (विषय से स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। 73 इसी प्रकार, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण होता है। [34] इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं और न ही दूसरे के द्वारा, वह भी संपर्क (पच्चाय) के कारण होता है।

"मित्रों, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा, उनके लिए संपर्क (फस/स्पर्श) के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है।"

(ii)

पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों के बीच हुई पूरी बातचीत बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि दुख आश्रितता से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा, वह भी स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा, उनके लिए बिना संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करना असंभव है।"

"एक बार, आनंद, मैं यहीं राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहा था। फिर सुबह, मैंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तभी मेरे मन में विचार आया: 'राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।' तब मैं दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गया। मैंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर मैं एक तरफ बैठ गया। तब तपस्वियों ने मुझसे कहा, जब मैं एक तरफ बैठा था: ... (तपस्वियों ने वही प्रश्न पूछा जो उन्होंने सारिपुत्त से पूछा था और उन्हें वही उत्तर मिला) ... बिना स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उनका अनुभव करना असंभव है।"

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! कैसे संपूर्ण अर्थ एक ही वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है! क्या इसी अर्थ को विस्तार से, गहन और निहितार्थों से भरपूर तरीके से व्यक्त किया जा सकता है?" 74

"तो फिर, आनंद, आप स्वयं ही इस विषय को स्पष्ट करें।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत पुनर्जन्म है, पुनर्जन्म ही इसकी उत्पत्ति है; यह पुनर्जन्म से जन्म लेता है और उत्पन्न होता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। [37]

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत और मूल तत्व अस्तित्व का कारक (भावो) है; यह अस्तित्व के कारक (भावो) से ही उत्पन्न होता है... अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है... आसक्ति का स्रोत तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) है... तृष्णा का स्रोत वेदना (संवेदना) है... वेदना का स्रोत स्पर्श (संपर्क) है... संपर्क का स्रोत और मूल तत्व छह इंद्रिय शक्तियां हैं; यह छह इंद्रिय शक्तियों से ही उत्पन्न होता है। लेकिन छह इंद्रिय शक्तियों के अंत (निरोध) से संपर्क का भी अंत हो जाता है; स्पर्श के समाप्त होने पर, वेदना समाप्त हो जाती है; वेदना समाप्त होने पर, तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर, आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने पर, भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर, पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने पर, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुःख का अंत हो जाता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। (प्रश्न 1 और 2 के समान)

25.भूमिजा
सावत्थी में।
(i)

फिर, शाम को, पूज्य भूमिजा एकांतवास से बाहर निकले और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। 75 उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 76 हे मित्र सारिपुत्त, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या शिक्षा देते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना

है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए?” और हमें धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन के किसी भी तर्कसंगत परिणाम से आलोचना का कोई आधार न मिले?

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (फस/स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्र, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह संपर्क के कारण (पच्चय) होता है।"

"इसमें, हे मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो यह मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

(ii)

आदरणीय आनंद ने आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच यह बातचीत सुनी। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए वचन को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे बिना संपर्क (फस/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।

(iii)

"आनंद, जब शरीर होता है, तो शारीरिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब वाणी होती है, तो वाणी संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब मन होता है, तो मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं - और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) इसका कारण है।" 77

"आनंद, या तो स्वयं की पहल पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के उकसावे पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। 78

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं।

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दु:ख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"अज्ञान इन अवस्थाओं में समाहित है। 80 परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, वह शरीर (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है; वह वाणी (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करती है, अस्तित्वहीन हो जाती है; वह मन (मन) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है। 81 वह क्षेत्र (क्षेत्र) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान (स्थान) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह इंद्रिय (इंद्रिय) अस्तित्वहीन हो जाती है, वह आधार (आधार) अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।" 82

---

26. उपवन
सावत्थी में, पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 83

“पूज्यवर, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख दूसरे के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न होता है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा। अब, पूज्यवर, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे व्याख्या करनी चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?”

[बुद्ध:] "उपवन, मैंने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"उपवन, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"उपवन में, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

---

27. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... (जैसा कि 1 में है)। यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न प्राणियों की वृद्धावस्था... (जैसा कि 2 में है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। पुनर्जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; पुनर्जन्म के निवारण (निरोध) के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले

जाता है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... संवेदना (वेदना)?... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)?... चेतना?... संस्कार (व्यवहार-आधार)? ये तीन प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार)। अज्ञान के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग मोक्ष की ओर ले जाता है। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निवारण; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सत्त्व) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार कारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के उद्गम को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, 84 तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को (ध्यान, पस्सति में, विपश्यना ध्यान में) देखने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, जो अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा है, कहलाता है।" 85

---

28. भिक्खु (सं. भिक्षु, साधु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "यहाँ, भिक्षु (भिक्षु) वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (जैसा कि पिछले सूत्र 27 में) ... केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) की समाप्ति की ओर ले जाता है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें एसएन 5.8)।

जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है; जब वह पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति... तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर के स्वरूप (नामरूप)... चेतना... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार)... इनके उद्भव, इनके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध भिक्षु कहलाता है, जो इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान में) इस सच्चे धम्म को देखता है, जो प्रशिक्षु का ज्ञान, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखता है, जो ज्ञान की धारा में प्रवेश कर चुका है। धम्म, एक महान व्यक्ति है जो गहन प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, जो अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा है।

---

29. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते; 86 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रिय शक्तियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते: ये मैं इन पूजनीय भिक्षुओं को तपस्वियों में श्रेष्ठ या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ नहीं मानता, और न ही ये पूज्य भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उसके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं: मैं इन्हें

तपस्वियों में श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मानता हूँ, और न ही ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

---

30. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं (सन्यासियों), उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... नामरूप... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है।" संस्कार (व्यवहार-आधार)।

"परन्तु, भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करेंगे। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... संस्कार (व्यवहार-आधार), उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) से परे जाकर निवास करेंगे।"

(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
31. जो कुछ हुआ है (भूता)
एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे...
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,
"सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: '87

जिन्होंने धम्म (मार्ग, नियम) को समझ लिया है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से
उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर मुझे बताइए, हे महोदय।' 88

संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: 'जिन्होंने... मुझे बताइए, हे महोदय; ... संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?" दूसरी और तीसरी बार पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। 89

"सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'? सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'?"

[सारिपुत्त:] "आदरणीय महोदय, ध्यान में (पस्साति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है:
'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा देखकर; 'यह अस्तित्व में आया है', व्यक्ति अस्तित्व में आई चीज़ के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए अभ्यास कर रहा है। 90 ध्यान में सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' 91 सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से होती है,' व्यक्ति इसके पोषण से उत्पन्न होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। व्यक्ति (ध्यान में) सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है,' व्यक्ति समाप्त होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक प्रशिक्षु होता है।

"और हे पूज्यवर, आपने धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा है? हे पूज्यवर, व्यक्ति (ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है:

'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'यह अस्तित्व में आया है', जो अस्तित्व में आया है उसके प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है,' पोषण से इसकी उत्पत्ति के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण की समाप्ति के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्ति के अधीन है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वास्तविकता को देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने से, जो कुछ अस्तित्व में आया है, वह समाप्त हो जाएगा', जो समाप्त होने वाला है उसके प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के माध्यम से, अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है। 92 इसी प्रकार धम्म को समझा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब परायण के 'अजिता के प्रश्न' में कहा गया है:

'जिन्होंने धम्म को समझा है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर, मुझे बताइए, प्रिय महोदय।'
तो इसी प्रकार मैं संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त!... (बुद्ध यहाँ आदरणीय सारिपुत्त के पूरे कथन को पहले की तरह दोहराते हैं)
इसी प्रकार संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझा जाना चाहिए।"

---

32. कलारा
सावत्थी में।

(i)

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु मोलियाफग्गुण ने साधना त्याग दी है और निम्न लोक में लौट गए हैं।" 93
"तो निश्चय ही उस पूज्य भिक्षु को इस धर्म और अनुशासन में शांति नहीं मिली।"
"तो क्या पूज्य सारिपुत्त को इस धर्म और अनुशासन में शांति मिली है?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई दुविधा नहीं है, मित्र।"

[कालरा:] "परन्तु भविष्य के बारे में, मित्र?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई संदेह नहीं है, मित्र।"

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने अंतिम ज्ञान इस प्रकार प्रकट किया है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"
94

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, सारिपुत्त को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और आदरणीय सारिपुत्त के पास जाकर उनसे कहा, "गुरु आपको बुला रहे हैं, मित्र सारिपुत्त।"

"जी, मित्र," आदरणीय सारिपुत्त ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, सारिपुत्त, कि तुमने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म

नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, मैंने इस विषय को इन शब्दों में नहीं कहा।"

"सारिपुत्त, एक कुलवासी होने के नाते, चाहे जिस प्रकार से अंतिम ज्ञान की घोषणा करे, उसे उसी रूप में समझा जाना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, क्या मैंने भी ऐसा ही नहीं कहा था: 'आदरणीय महोदय, मैंने इस विषय को इन शब्दों में नहीं कहा'?"

"यदि हे सारिपुत्त, आपसे पूछा जाए: 'मित्र सारिपुत्त, आपने कैसे जाना, कैसे देखा कि आपने इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, हे पूज्यवर, [52] तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'पुनर्जन्म के स्रोत के विनाश (खया/क्षय) के साथ, मैंने यह समझा है: "जब [कारण] नष्ट हो जाता है, तो [परिणाम] नष्ट हो जाता है।" यह समझकर, मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" 96

"परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत (भाव) ही है; यह अस्तित्व के स्रोत (भाव) से ही उत्पन्न होता है।' आदरणीय महोदय, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" "

परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, अस्तित्व के स्रोत (भाव) का क्या अर्थ है...?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, अस्तित्व का मूल (भावो) आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) है...'" "

परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, आसक्ति का स्रोत क्या है...? तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न होती है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत (वेदना) है, इसकी उत्पत्ति (वेदना) है; यह संवेदना (वेदना) से उत्पन्न होती है।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे तुमसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, तुम्हें कैसे पता चला, तुमने कैसे देखा कि वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) अब तुममें नहीं रहता?' - इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?" 97

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। मित्रों, ये तीनों वेदनाएँ क्षणभंगुर हैं; जो क्षणभंगुर है वही दुख है। जब यह समझ में आया, तो वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) मुझमें नहीं रहा।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"बहुत खूब, सारिपुत्त! यह उसी बात को संक्षेप में समझाने का एक और तरीका है: 'जो कुछ भी महसूस किया जाता है, वह दुख में समाहित है।' 98 लेकिन, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, आपने किस प्रकार के उद्धार (विमोक्ष/विमोक्ष) से इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है"?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: [54] 'मित्रों, आंतरिक उद्धार के माध्यम से, सभी आसक्ति (उपादान संस. आसक्ति) के विनाश (खया/क्षय) के माध्यम से, मैं इस प्रकार ध्यान (सतो) में रहता हूँ कि मेरे भीतर दोष प्रवाहित नहीं होते और मैं स्वयं को तुच्छ नहीं समझता।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। 99

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! उसी बात को संक्षेप में समझाने का यह एक और तरीका है: 'मुझे तपस्वी द्वारा बताए गए दोषों के बारे में कोई दुविधा नहीं है; मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैंने उन्हें त्याग दिया है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, परम पूज्य अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए।

(ii)

फिर, भगवान (बुद्ध) के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था: 100 इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरे दिन प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें पूरे दिन विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा। यदि वे मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरी रात, एक दिन और रात, [55] दो दिन और रात, तीन, चार, पाँच, छह या सात दिन और रात - सात दिन और रात प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

तब भिक्षु कालरा (खत्तिया) अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने सिंह की गर्जना करते हुए कहा है: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था, इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

"भिक्षु, पूज्य सारिपुत्त ने धर्म (मार्ग, नियम) के उस तत्व (धातु) में पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, जिसके पूर्णतः प्रवेश के कारण यदि मैं उनसे उस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछूं, तो वे भी मुझे विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकेंगे।" 101

---

33. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु1 सं. ज्ञान-वस्तु)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान के चौवालीस मामलों का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और एकाग्र रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, ज्ञान के चौवालीस प्रकार क्या हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान, इसके उद्भव का ज्ञान, इसके निवारण का ज्ञान, इसके निवारण के मार्ग का ज्ञान। पुनर्जन्म का ज्ञान... अस्तित्व के कारक (भावो) का ज्ञान... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का ज्ञान... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का ज्ञान... वेदना (संवेदना) का ज्ञान... स्पर्श (फस/स्पर्श) का ज्ञान... छह इंद्रियों का ज्ञान... नामरूप (मन-शरीर) का ज्ञान... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का ज्ञान... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का ज्ञान, इनके उद्भव का ज्ञान, इनके निवारण का ज्ञान, इनके निवारण के मार्ग का ज्ञान। हे भिक्षुओं, ये चौवालीस प्रकार हैं।" ज्ञान का।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (परिभाषा 2 में दी गई है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। 102 इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, तत्काल प्राप्त और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, 103 वह अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि का प्रयोग करता है: 'अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके

निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ। भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों को वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ।' यह उसका निहितार्थ का ज्ञान है। 104

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और निहितार्थ का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि मंत्र सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को जानने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है।"

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... संस्कार (व्यवहार-आदत) क्या हैं?... (परिभाषाएँ 2 में दी गई हैं)... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत), उनके उद्गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, प्राप्त और गूढ़ सिद्धांत के माध्यम से वह भूतकाल और भविष्यकाल पर विधि का प्रयोग करता है... यही उसका परिणाम का ज्ञान है।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और परिणाम का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है... वह जो अमरता के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा होता है।"

---

34. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्तरह ज्ञान के विषय सिखाऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, वे सत्तरह ज्ञान के विषय क्या हैं? ज्ञान: 'वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' ज्ञान: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म था।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी, यदि पुनर्जन्म न होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होती।' ज्ञान: 'भविष्य में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि पुनर्जन्म न हो, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होगी।'" यह ज्ञान: 'धर्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन है।' 105

"यह ज्ञान: 'पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व का कारक (भावो) है।' ... यह ज्ञान: 'संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का कारण अज्ञान (अविज्ज सं. अविद्या) है।' यह ज्ञान: 'जब अज्ञान नहीं होता, तब संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान था।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी, यदि अज्ञान न होता, तो संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'भविष्य में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि अज्ञान न हो, तो संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) न होंगे।' ज्ञान: 'धम्म की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), क्षय, लुप्त होने और समाप्ति के अधीन है।'

"भिक्षुओं, इन्हें ज्ञान के सतहत्तर कारक कहा जाता है।"

नोट: यह एक अत्यंत गहन अर्थ वाला सूत्र है। सारतः इसका अर्थ यह है कि पिछले सूत्र 33 के अतिरिक्त, यदि सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त भी हो जाए, तो यह 'ज्ञान' स्वयं क्षय और विनाश (खया/क्षय) के अधीन है। इसलिए व्यक्ति को इस प्राप्त ज्ञान का 'उपयोग' करके बंधनों और बेड़ियों को तोड़ना चाहिए और अस्तित्व के कारक (भावो) से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह पुनः जन्म न ले, दूसरे शब्दों में, शाश्वत आनंद की निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सके।

---

35. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (1) (अविज्जापच्चया1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

जब उन्होंने यह कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। 106
"भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु एक ही बात है, और जिसके लिए यह वृषण और मृत्यु है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; केवल शब्दों में अंतर है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है। 107 इन दोनों अतिवादों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में धम्म (मार्ग, नियम) की शिक्षा देते हैं: 'पुनर्जन्म को कारण मानते हुए, वृषण और मृत्यु।' "आदरणीय महोदय

, पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' या चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म एक बात है, जिसके लिए यह जन्म है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें केवल शब्दों का अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर जन्म होता है।'

"आदरणीय महोदय, अब अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?"

"यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई यह कहे कि 'अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'अस्तित्व का कारक (भावो) एक चीज है, जिसके लिए यह अस्तित्व का कारक (भावो) है वह दूसरी चीज है' - ये दोनों कथन अर्थ में समान हैं; इनमें केवल शब्दों के प्रयोग में अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व का कारक (भावो)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को कारण मानकर, आसक्ति... वेदना (संवेदना) को कारण मानकर, तृष्णा... इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रिय का स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)... छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (संवेदना)... मन और शरीर के रूप (नामरूप) को कारण मानकर, छह इंद्रियां... [62] चेतना को कारण मानकर, मन-शरीर रूप (नामरूप)... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को कारण मानकर चेतना। "

आदरणीय महोदय, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?" "

यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई पूछे, 'संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?'" चाहे कोई कहे, 'संस्कार (व्यवहार-आधार) एक चीज है, जिसके लिए ये संस्कार (व्यवहार-आधार) मौजूद हैं वह दूसरी चीज है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें अंतर केवल शब्दों के प्रयोग में है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक हैं', तो ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक चीज है, शरीर दूसरी चीज है', तो भी ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है। इन दोनों अतिवादी विचारों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) का पालन किया जाता है।'

लेकिन अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, चाहे कितने ही प्रकार के दुष्प्रचार, चालबाज़ी और दुविधाएँ क्यों न हों - 'वृषण-मृत्यु क्या है, और किसके लिए है?' या 'वृषण-मृत्यु एक बात है, जिसके लिए यह है वह दूसरी बात है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी बात है' - ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

"अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और उसके समाप्त हो जाने के साथ ही, चाहे कितने भी प्रकार के दुष्प्रचार, युक्ति और दुविधाएँ हों - 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' ... 'संस्कार क्या हैं, और ये संस्कार किसके लिए हैं?' या 'संस्कार एक ही बात है, जिसके लिए ये संस्कार हैं वह दूसरा है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है' - ये सभी त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें।"

---

36. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
(यह सूत्र पिछले 35 सूत्रों के समान ही है, केवल इतना अंतर है कि इसमें भिक्षुओं को सामूहिक रूप से संबोधित किया गया है, और कोई भी ऐसा वार्ताकार नहीं है जो अनुचित प्रश्न पूछता हो। बुद्ध ने स्वयं ही अमान्य कथनों के प्रकारों का उल्लेख किया है।)

---

37. तुम्हारा नहीं (नटुम्हा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह शरीर न तो तुम्हारा है और न ही दूसरों का। 110 यह पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और निर्मित माना जाता है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। 111 इसमें, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य ध्यानपूर्वक और निकटता से प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके निरोध के साथ वह समाप्त हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। लेकिन शेषफल के साथ यह लुप्त हो जाता है।" और अज्ञान के अंत से संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के अंत से चेतना का अंत होता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

38. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, और जो भी योजना बनाई जाती है, और जिस भी ओर झुकाव होता है: यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस. विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो भविष्य के नए जीवन की उत्पत्ति होती है (पुनर्जन्म का कारण)। जब भविष्य के नए जीवन की उत्पत्ति होती है, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है। 112

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज की ओर झुकाव हो, तो यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।" 113

"लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो भविष्य में पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं होता। जब भविष्य में पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दुःख का निरोध है।" 114

---

39. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, अपनी योजनाओं और अपनी प्रवृत्तियों के साथ, यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। 115 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना ... तृष्णा ... आसक्ति ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"हे भिक्षुओं, यदि कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, परन्तु किसी ओर झुकाव रखे, तो यह चेतना के बने रहने का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन-शरीर रूप (नामरूप) के निरोधन के साथ ही छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

40. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो भी व्यक्ति इरादा करता है, जो भी योजना बनाता है, और जिस भी ओर उसका झुकाव होता है, वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो झुकाव उत्पन्न होता है। जब झुकाव होता है, तो आना-जाना होता है। जब आना-जाना होता है, तो मृत्यु और पुनर्जन्म होता है। 116 मृत्यु और पुनर्जन्म होने पर, भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज़ की ओर झुकाव हो, तो वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो कोई झुकाव नहीं होता। जब कोई झुकाव नहीं होता, तो आना-जाना नहीं होता। जब आना-जाना नहीं होता, तो मरना-मरना नहीं होता। जब मरना-मरना नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दुःख का निरोध है।

(v) गृहस्थ अनुभाग (गहपतिवाग्गो सं. गृहपति-वर्ग)
41. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
सावत्थी में। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्न के चार गुण आ जाते हैं, और उसने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख लिया है और उसमें पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।' 118

"वे पाँच भयानक शत्रुताएँ कौन सी हैं जो शांत हो गई हैं?" गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, ऐसे आचरण के कारण वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयंकर द्वेष उत्पन्न करता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। 119 इस प्रकार, जो जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, उसके लिए यह भयंकर द्वेष शांत हो जाता है।

जो व्यक्ति बिना दिए वस्तुएँ ग्रहण करता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है... जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं, ऐसे आचरण के कारण उसे वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयानक शत्रुता का सामना करना पड़ता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। अतः जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है जो आलस्य का आधार हैं, उसके लिए यह भयानक शत्रुता शांत हो जाती है।

ये पाँच भयानक शत्रुताएँ हैं जो शांत हो जाती हैं।

"उसमें सोतापन्ना (धारा-प्रवेश) के चार कारक कौन से हैं? 120 हे गृहस्थ, इस प्रकार श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

"वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"संघ (भाईचारे) में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सीधे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सच्चे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, विश्व के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।" '

"उसमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं - अटूट, अक्षुण्ण, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 121

"ये वे चार कारक हैं जो उसमें सोतापन्ना (प्रवाह-प्रवेश) के रूप में मौजूद हैं।"

और वह श्रेष्ठ विधि क्या है जिसे उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूरी तरह से समझ लिया है? 122 हे गृहस्थ, श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर इस प्रकार विचार करते हैं: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके निरोध के साथ वह विद्यमान हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को कारण मानकर चेतना (विन्नान विज्ञान) विद्यमान होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और विद्यमान होने से संस्कार (आक्रामक व्यवहार) विद्यमान हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के विद्यमान होने से चेतना विद्यमान हो जाती है। ... यही है। "इस संपूर्ण दुख के अंत का हल।"
"यह वह श्रेष्ठ विधि है जिसे उसने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है।

" "हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्ना के ये चार गुण आ जाते हैं, और उसने इस श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ, पशु जगत से मुक्त हो चुका हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूँ। मैं सोतापन्ना हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।"

---

42. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि यह "कई भिक्षुओं" को संबोधित है।)

---

43. दुःख (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख की उत्पत्ति और उसके निवारण के बारे में बताऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 123

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, दुख की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण, तृष्णा उत्पन्न होती है। यही दुख की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... नाक और गंधों पर निर्भरता से... जीभ और स्वादों पर निर्भरता से... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है।" स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... यही दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर रहने से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क (फस/स्पर्श) होता है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और निरोध से आसक्ति समाप्त होती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का निवारण होता है; भाव के निवारण से पुनर्जन्म समाप्त होता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का निवारण होता है। यही इस समस्त दुख का निवारण है। यही दुख का निवारण है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर रहने से... मन और मानसिक चेतना पर निर्भर रहने से... जब धम्म (प्रघटनाएं) उत्पन्न होती हैं, तो मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और मिट जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। यही दुःख का देहांत है।

---

44. लोक (विश्व)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें संसार की उत्पत्ति और उसके अंत के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 124

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, संसार की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर, नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा; तृष्णा के कारण आसक्ति; आसक्ति के कारण भाव; भाव के कारण पुनर्जन्म; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर... नाक और गंधों पर निर्भर होकर... जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भर होकर... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति... अस्तित्व का कारक (भाव)... पुनर्जन्म उत्पन्न होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

और भिक्षुओं, संसार का नश्वर होना क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का अंत हो जाता है; भाव का अंत होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही समस्त दुःख का अंत है। भिक्षुओं, यही संसार का नश्वर होना है। दुनिया का अंत।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और समाप्त हो जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भाव) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। हे भिक्षुओं, यही संसार का क्षय है।"

---

45. नाटिका में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उन्होंने यह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या दी: 125

"आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) के कारण, तृष्णा (तन्हा संस्कृतः तृष्णा); तृष्णा के कारण, आसक्ति (उपादान संस्कृतः आसक्ति)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"दृष्टि और रूपों पर निर्भरता से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध (निरोध) से आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत होता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। लेकिन उस तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और तृप्त होने से आसक्ति का भी अंत हो जाता है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत हो जाता है।
उसी समय एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) की बातें सुन रहा था। भगवान (बुद्ध) ने उसे वहाँ सुनते हुए देखा और उससे कहा, "क्या तुमने धम्म प्रवचन सुना, भिक्षु?"

"जी, पूज्यवर।"

"उस धम्म प्रवचन को सीखो, उसमें पारंगत हो जाओ और उसे याद रखो। वह धम्म प्रवचन ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों के लिए लाभकारी और प्रासंगिक है।"

---

46. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला,

"हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं?" 126

"'कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं': हे ब्राह्मण, यह एक चरम है।" [76]

"तो, हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला एक है और फल भोगने वाला दूसरा?"

“'कर्म करने वाला एक है, और परिणाम भोगने वाला दूसरा': हे ब्राह्मण, यही दूसरा चरम है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविद्या संस्कृत) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विज्ञान संस्कृत) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।'

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान गुरु गौतम!... मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

47. जानूसोनी
सावत्थी में, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले: 127

“हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?”

“'सब कुछ विद्यमान है': हे ब्राह्मण, यह एक चरम सीमा है।”

“तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?”

“'सब कुछ विद्यमान नहीं है': हे ब्राह्मण, यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं...(जैसा कि 46 में है)।”

यह सुनकर ब्राह्मण जनुस्सोनी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“महान, हे गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

48. लोकायटिक (विश्व-अस्तित्ववादी)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण, जो विश्व-अस्तित्ववादी था, 128 भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?"

"सब कुछ विद्यमान है: हे ब्राह्मण, यही सबसे प्राचीन ब्रह्मांड विज्ञान है।" 129
"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?"

"सब कुछ विद्यमान नहीं है: हे ब्राह्मण, यही दूसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ एक है?" 130

"सब कुछ एक है: हे ब्राह्मण, यही तीसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ अनेकता है?" 131

"सब कुछ अनेकता है: हे ब्राह्मण, यही चौथा ब्रह्मांड विज्ञान है।" इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य (मार्ग, चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं..."

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा;
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

49. महान शिष्य (1) (अरियासवका सं. आर्य-श्रावक)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक ज्ञानवान शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो वह कैसे अस्तित्व में आती है? जिसके उत्पन्न होने से वह कैसे उत्पन्न होती है? [जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या चेतना (विन्नन संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है?] 132 जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं?... जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है?'

"बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानवान शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। [जब अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होते हैं। जब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना होती है, तब मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है... जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।' वे इस प्रकार समझते हैं: 'इस प्रकार संसार की उत्पत्ति होती है।'

भिक्षुओं, एक ज्ञानी शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वह अस्तित्व में नहीं आता? जिसके निरोध के समाप्त होने से क्या समाप्त हो जाता है? [जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या चेतना उत्पन्न नहीं होती?] जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न नहीं होते?... जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'

बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह अस्तित्व में नहीं है, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने से वह समाप्त हो जाता है। [जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते। जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो (सामान्य) चेतना उत्पन्न नहीं होती।] जब कोई चेतना, मन-शरीर (नामरूप) का अस्तित्व नहीं होता... जब जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती। वह इस प्रकार समझता है: 'इस प्रकार संसार का अंत हो जाता है।'

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संसार की उत्पत्ति और उसके अंत को यथावत समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म का ज्ञाता, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, और अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ निश्चय पर खड़ा शिष्य कहलाता है।

---

50 महान शिष्य (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि कोष्ठकों में दिए गए वे अंश जो कुछ संस्करणों में अनुपस्थित हैं, यहाँ सभी संस्करणों में स्पष्ट रूप से शामिल हैं।)

(vi) पीड़ा धारा 133 (दुक्खावाग्गो सं. दुक्खा-वर्ग)
51. गहन जांच (परिविमांसा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु गहन शोध कर रहा हो, तो उसे दुखों के पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए किस प्रकार गहन शोध करना चाहिए?" 134

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान दो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"देखो, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु गहन अध्ययन करता है, तो वह इस प्रकार गहन अध्ययन करता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसका उद्गम क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? जब कोई चीज विद्यमान नहीं होती तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती?'

"गहन अध्ययन करने पर वह इस प्रकार समझता है: संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत पुनर्जन्म है, इसका उद्गम पुनर्जन्म है; यह पुनर्जन्म से उत्पन्न और पैदा होता है। जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो बुढ़ापा और मृत्यु जैसी चीजें भी नहीं होतीं।

वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 135 वह उस मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है। फिर

, आगे की खोज करते हुए, वह इस प्रकार गहनता से जांच करता है:
'इस पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसका उद्भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होता है?... इस अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत क्या है?... इस आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का स्रोत क्या है?... इस लालसा (वेदना) का स्रोत क्या है?... इस स्पर्श (फस/स्पर्श) का स्रोत क्या है?... इन छह इंद्रियों (ज्ञान) का स्रोत क्या है?... इस मन-शरीर (नामरूप) का स्रोत क्या है?... इस चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का स्रोत क्या है?' इन संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार संबंधी आदतों) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है? वे किससे जन्म लेते हैं और उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज विद्यमान नहीं होती तो संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न नहीं होते?'

"गहन जांच करने पर वह इस प्रकार समझता है:
'संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का स्रोत अज्ञान है; अज्ञान ही उनका मूल है; वे अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं। जब अज्ञान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न नहीं होते।'

वह संस्कार (व्यवहार-आदत), उनके उद्‌गम, उनके निवारण (निरोध) और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उस मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

भिक्षुओं, यदि कोई अज्ञान में डूबा हुआ व्यक्ति पुण्य संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना पुण्य संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अपराधी संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना अपराधी संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अविचलित संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना अविचलित संस्कार की ओर अग्रसर होती है। 136 परन्तु जब कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग करके सच्चे ज्ञान को जागृत कर लेता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय होने पर वह न तो पुण्य कर्म उत्पन्न करता है, न ही अपराधी, और न ही अविचलित कर्म। क्योंकि वह कर्म उत्पन्न नहीं करता, इसलिए वह संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। 137 विचलित न होने के कारण वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है:
'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है:
'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है।

जब उसे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तब वह समझ जाता है:
'मुझे एक ऐसी अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है जो शरीर के साथ समाप्त हो रही है।' जब उसे जीवन के साथ समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे एक ऐसी अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है जो जीवन के साथ समाप्त हो रही है।' 139 वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के टूटने के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, जिसमें आनंद नहीं लिया जाता, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 140

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति कुम्हार के भट्ठे से एक गर्म मिट्टी का बर्तन निकालकर उसे समतल जमीन पर रख दे: उसकी ऊष्मा वहीं समाप्त हो जाएगी और मिट्टी के टुकड़े शेष रह जाएंगे। उसी प्रकार, जब उसे शरीर के साथ समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है... जीवन के साथ समाप्त होने वाली... तो वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के टूटने के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, जिसमें आनंद नहीं लिया जाता, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 141

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, पुण्य कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) उत्पन्न कर सकता है, या दोषपूर्ण कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) या अविचलित कर्म (अनिच्छुक व्यवहार)?" "

नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) न हों, तो क्या कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) के निरोध से चेतना (विन्नान विज्ञान) का अनुभव किया जा सकता है?" 142

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी चेतना न हो, तो क्या चेतना के निरोध से मन और शरीर (नामरूप) का अनुभव किया जा सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी मन और शरीर (नामरूप) न हों... तो छह इंद्रियां भी नहीं होतीं।" ..... कोई संपर्क नहीं (फस्सा/स्पर्श) ... कोई संवेदना नहीं (वेदना) ... कोई लालसा नहीं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ... कोई आसक्ति नहीं (उपादान संस्कृत: आसक्ति) ... कोई अस्तित्व का कारक नहीं (भावो) ... कोई जन्म नहीं, पुनर्जन्म के समाप्त होने पर क्या वृद्धावस्था और मृत्यु का बोध होगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षुओं! यह बिल्कुल ऐसा ही है, अन्यथा नहीं! मुझ पर विश्वास रखो, भिक्षुओं, इस पर दृढ़ संकल्प करो। इस विषय में भ्रम और संदेह से मुक्त रहो। यही दुख का अंत है।" 143

---

52. आसक्ति (उपादान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे चिपका जा सकता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जिसमें दस, बीस, तीस या चालीस लट्ठे लकड़ी जल रही है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डालता है। इस प्रकार, उस पदार्थ से पोषित होकर, उससे प्रेरित होकर, वह विशाल अग्नि बहुत लंबे समय तक जलती रहेगी। ठीक उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे लगाव रखा जा सकता है, तो उसकी तृप्ति बढ़ती जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत हो जाता है। 145

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जो दस, बीस, तीस या चालीस भार लकड़ी को भस्म कर रही है, और कोई व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर या सूखी लकड़ी नहीं डालता है। इस प्रकार, जब ईंधन की पूर्व आपूर्ति समाप्त हो जाती है, तो वह बड़ी अग्नि, और अधिक ईंधन न मिलने के कारण, पोषण से रहित होकर बुझ जाएगी। इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, जिनसे जुड़ाव रखा जा सकता है, तो व्यथा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।" 146

---

53. बेड़ियाँ (1) (संयोजन1)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों (नियम, मार्ग) में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए रहता है, जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा है, और एक व्यक्ति उसमें तेल डालता है और समय-समय पर बाती को समायोजित करता है। इस प्रकार, उस तेल से पोषित होकर, उससे ऊर्जा प्राप्त करते हुए, वह तेल का दीपक बहुत लंबे समय तक जलता रहेगा।" इसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुख का अंत है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा था, और वह व्यक्ति उसमें तेल नहीं डालता था और न ही समय-समय पर बाती को समायोजित करता था। इस प्रकार, जब ईंधन का पूर्व भंडार समाप्त हो जाता है, तो वह तेल का दीपक, ईंधन न मिलने के कारण, निर्वाह के अभाव में बुझ जाता है। ठीक इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनव) को देखकर जीवन व्यतीत करता है, तो भोग-विलास समाप्त हो जाता है... इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है।

---

54. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

55. महान वृक्ष (1) (महारुक्ख1 सं. महा-वृक्ष)
सावत्थी में
[बुद्ध:] “भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।” 148

"हे भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भय (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति भी समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता, उसे खोदकर निकाल लेता और उसकी जड़ों को, यहाँ तक कि उसकी छोटी जड़ों और रेशों को भी, उखाड़ लेता। वह वृक्ष को टुकड़ों में काटता, टुकड़ों को फाड़ता और उन्हें पतले-पतले टुकड़ों में बदल देता। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाता, आग में जलाता और राख इकट्ठा करता। ऐसा करने के बाद, वह राख को तेज हवा में छानता या नदी की तेज धारा में बहा देता।" इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से काट दिया जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया जाएगा, मिटा दिया जाएगा ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृप्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 149

---

56. महान वृक्ष (2) (महारुक्ख2 सं. महा-वृक्ष)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

57. वृक्ष का पौधा (तरुणरुक्खा सं. तरूण-वृक्ष)
सावत्थी में

[बुद्ध:] “भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पौधा है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसकी जड़ों के आसपास की जगह साफ करता है, समय-समय पर उसे अच्छी मिट्टी देता है, समय-समय पर उसे पानी देता है। उस देखभाल और पोषण से पोषित होकर, वह पौधा बढ़ता और फैलता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।”

"हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक पौधा था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह पौधे को जड़ से काट देता... (जैसा कि 55 में है)... वह राख को तेज हवा में उड़ा देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह पौधा जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"

---

58. मन-और-शरीररूप(नामरूप)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है। 150 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो मन और शरीर (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन और शरीर (नामरूप) के निरोधन से छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो मन और शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।"

---

59. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है। 151 चेतना के कारण मन और शरीर का रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, और उसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाकर रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता। चेतना के निरोध (निरोध) के साथ ही मन और शरीर (नामरूप) का भी निरोध हो जाता है... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को उसके आधार से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

---

60. कारण (निदान)
एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है! यह प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) इतना गहरा और इतने अर्थपूर्ण है, फिर भी मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है।"

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गहरा और अर्थपूर्ण है। आनंद, इस धर्म (मार्ग, नियम) को न समझने और उसमें प्रवेश न करने के कारण ही यह पीढ़ी उलझे हुए धागे के गुच्छे, उलझी हुई घास-फूस के समान हो गई है और दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, संसार के अधोलोक से परे नहीं जा पाती।

आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भोग (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

हे आनंद, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हुई रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उसी से जीवन यापन करते हुए, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा बढ़ती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

हे आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरा (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"मान लीजिए, आनंद, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)। वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है।" इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

(vii) महान उप-अध्याय (महावग्गो संस्कृत महावर्ग)
61. अशिक्षित (1) (असुतव1 सं. अश्रुतव्य)
मैंने ऐसा ही सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' (विन्नान संस्कृत विज्ञान) कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक मनुष्य घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इसके प्रति वैराग्यवान नहीं हो सकता।" इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त हो जाना। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना प्राण मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। 156 परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। जैसे कोई बंदर जंगल में घूमते हुए एक शाखा को पकड़ता है, उसे छोड़ता है और दूसरी को पकड़ता है, फिर उसे छोड़ता है और तीसरी को पकड़ता है, उसी प्रकार जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। 157

"हे भिक्षुओं, इसमें ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक (योनिसो) चिंतन करता है।" आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के लिए स्वयं इस प्रकार: 158 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से, वह उत्पन्न होता है।

जब इसका अस्तित्व नहीं रहता, तो उसका भी अस्तित्व नहीं होता; इसके निरोध के साथ उसका भी निरोध हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निरोध हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निरोध के साथ चेतना का निरोध हो जाता है। इसी प्रकार इस समस्त दुख का निरोध हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (व्यवहार-आदत) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
(यह सूत्र पूर्व सूत्र के समान है, आरंभ से लेकर बंदर की उपमा तक। इसके बाद बंदर की उपमा को छोड़ दिया गया है और आगे इस प्रकार है:)

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त (विमुक्त) हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

"परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)' कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इससे मुक्त नहीं हो सकता। इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो जाओ। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना स्वरूप मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है।"

[बुद्ध:] "उसमें, हे भिक्षुओं, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्वयं प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) का ध्यान और चेतना बनाए रखता है, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने पर वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने पर वह समाप्त हो जाता है।'" भिक्षुओं, इंद्रियों के किसी वस्तु से स्पर्श (फस/स्पर्श) के अनुभव से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस सुखद स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई थी - समाप्त हो जाती है। कष्टदायक स्पर्श के अनुभव से कष्टदायक अनुभूति उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस कष्टदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई थी - समाप्त हो जाती है। न कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के अनुभव से न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस कष्टदायक और न सुखदायक है - समाप्त हो जाती है। उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली वेदना (संवेदना) जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, समाप्त हो जाती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु लकड़ियों को अलग करने और रख देने पर वह ऊष्मा समाप्त हो जाती है; उसी प्रकार, किसी स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण जो सुखदायक है, किसी स्पर्श (संवेदना) के कारण जो कष्टदायक है, किसी स्पर्श (संवेदना) के समाप्त होने पर जो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, वह संवेदना (वेदना) भी समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्पर्श के प्रति घृणा (निब्बिदा), वेदना के प्रति घृणा, संज्ञा के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य का अनुभव करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

63. पुत्र का मांस रूपक (पुत्तममसुपमा सं. पुत्र-मान्स-उपमा)
(यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है जहाँ बुद्ध ने इस रूपक के माध्यम से अनेक घटनाओं की व्याख्या की है।)

श्रावस्ती, 160 में भगवान बुद्ध कहते हैं: "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; दूसरा, स्पर्श; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, विज्ञान। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।

(1) भोजन

"और हे भिक्षुओं, भोजन को किस प्रकार देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक पति-पत्नी सीमित भोजन लेकर रेगिस्तान से गुजर रहे हैं। उनके साथ उनका इकलौता पुत्र है, जो उन्हें प्रिय और प्यारा है। रेगिस्तान के बीच में ही उनका सीमित भोजन समाप्त हो जाएगा, जबकि रेगिस्तान का शेष भाग पार करना बाकी रहेगा। पति-पत्नी सोचते: 'हमारा सीमित राशन खत्म हो चुका है, और इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा अभी पार करना बाकी है। चलो अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ा दें और उसका सूखा और मसालेदार मांस तैयार करें। अपने बेटे का मांस खाकर हम इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेंगे। हम तीनों न मरें!'

"तब, भिक्षुओं, पति-पत्नी अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ाते, सूखा और भुना हुआ मांस तैयार करते, और अपने बेटे का मांस खाकर वे रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेते। अपने बेटे का मांस खाते हुए वे अपनी छाती पीटते और रोते: 'हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो? हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो?'

"हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं?" क्या वे उस भोजन को मनोरंजन, आनंद या शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए खाएंगे? "

नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वे उस भोजन को केवल रेगिस्तान पार करने के लिए नहीं खाएंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।" "

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पौष्टिक भोजन को देखना चाहिए। 161 जब पौष्टिक भोजन को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना (राग) को पूरी तरह समझ लिया जाता है। 162 जब पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो कोई बंधन नहीं रहता जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य इस संसार में वापस आ सके। 163

(टिप्पणी 1: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि भोजन की कमी इच्छाओं को शांत करने के लिए है, [मुझे अच्छा भोजन चाहिए], परन्तु बुद्ध के मार्ग में यह भोग के लिए नहीं है, बल्कि इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और केवल शरीर को जीवित रखने के लिए पोषण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए, जबकि शरीर दुखों से भरे संसार, रेगिस्तान को पार करने का साधन है। इसमें एक छुपा हुआ अर्थ भी प्रतीत होता है। जीवन देने वाला भोजन भी किसी जीव से ही आता है। अतः जब कोई ध्यानमग्न व्यक्ति ज्ञानोदय की अवस्था में समस्त जीवन के स्रोत के साथ एकात्मता का अनुभव करता है, तो वह जो भोजन ग्रहण करता है, वह भी उसी जीवन स्रोत से आता हुआ प्रतीत होता है, जो पुत्र के मांस के रूप में एक रूपक के रूप में प्रकट होता है।)

(2) संपर्क (फस्सो संस्कृत स्पर्श)

"और हे भिक्षुओं, पोषण संपर्क को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक छिलका उतरी हुई गाय (घावों वाली) है। यदि वह किसी दीवार के सामने खड़ी हो, तो दीवार में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह किसी पेड़ के सामने खड़ी हो, तो पेड़ में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।" उस पर। यदि वह पानी में खड़ी रहती है, तो पानी में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह खुली हवा में खड़ी रहती है, तो खुली हवा में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। वह छिलका उतरी हुई गाय (जिसके शरीर पर घाव हैं) जिस भी स्थिति में खड़ी रहती है, वहाँ रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण संपर्क को इसी प्रकार देखना चाहिए। 164 जब पोषण संपर्क पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं। जब तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती है। 165

(टिप्पणी 2: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि इंद्रियों का संसार की वस्तुओं से संपर्क तीन प्रकार की संवेदनाओं को जन्म देता है: 1. सुखद, 2. अप्रिय और 3. न सुखद न अप्रिय, जिससे 'मैं अनुभव' होता है, लेकिन ये आनंद के लिए नहीं हैं; यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का कारण है, इसलिए संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और परिणामी संवेदनाओं को वैराग्य/समभाव से समझना चाहिए। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि संसार का इंद्रियों से संपर्क तंत्रिकाओं में संवेदनाओं या धाराओं को जन्म देता है जो बाहर से भीतर की ओर प्रवाहित होती हैं और ध्यान की जागृत अति-अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करती हैं।)

(3) मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता (मनोसंचेतना)

भिक्षुओं, पोषक तत्व मानसिक चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और उसमें बिना लौ या धुएँ के सुलगते हुए कोयले भरे हैं। एक व्यक्ति वहाँ आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख की कामना करता है और दुख से विमुख है। तभी दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। उस व्यक्ति की चेतना दूर जाने की होती है, उसकी तमन्ना दूर जाने की होती है, उसकी इच्छा दूर जाने की होती है (कोयले के गड्ढे से)। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह जानता है: 'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इसी कारण मेरी मृत्यु होगी या मुझे घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पोषक तत्व मानसिक चेतना को देखा जाना चाहिए। 166 जब पोषण संबंधी मानसिक संज्ञानात्मक जागरूकता को पूर्णतः समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की तृष्णाओं (सुखद, अप्रिय और न सुखद न अप्रिय) को भी पूर्णतः समझ लिया जाता है। मैं कहता हूँ, जब तीनों प्रकार की तृष्णाओं को पूर्णतः समझ लिया जाता है, तो एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। 167

(टिप्पणी 3: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता की प्रवृत्ति 'लालसा' की उत्पत्ति की ओर ले जाती है, अर्थात् 'मैं यह करना चाहता हूँ'। यह लालसा संतुष्टि के लिए नहीं है, बल्कि विपत्ति का कारण है, इसलिए इससे बचना/दूर करना आवश्यक है क्योंकि यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का भी कारण है। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के दौरान तंत्रिकाओं में धारा का प्रवाह भीतर से बाहर की ओर होता है, जिसकी तीव्रता अतीत में बनी लालसा और वर्तमान में इरादे के अनुसार होती है।)

(4) चेतना (विन्नानम संस्कृत विज्ञान)

"और हे भिक्षुओं, पोषण चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए कि वे एक डाकू, एक अपराधी को गिरफ्तार करके राजा के समक्ष लाते हैं और कहते हैं: 'हे प्रभु, यह व्यक्ति एक डाकू, एक अपराधी है। आप इसे जो भी दंड देना चाहें, दे दीजिए।'" राजा ने उनसे कहा: 'जाओ, सुबह इस आदमी पर सौ भाले चलाओ।' सुबह उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए। फिर दोपहर को राजा ने पूछा: 'हे लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी जीवित है, प्रभु।' - 'तो जाओ, और दोपहर को उस पर सौ भाले चलाओ।' दोपहर को उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए। फिर शाम को राजा ने पूछा: 'हे लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी जीवित है, प्रभु।' - 'तो जाओ, और शाम को उस पर सौ भाले चलाओ।' शाम को उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए।

"हे भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या वह आदमी तीन सौ भालों से घायल होने पर भी पीड़ा और कष्ट का अनुभव करेगा?"

"हे पूज्यवर, यदि उसे एक भाला भी मारा जाए तो भी वह पीड़ा और कष्ट का अनुभव करेगा, तीन सौ भालों की तो बात ही क्या है।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण चेतना को इसी प्रकार देखना चाहिए। 168 जब पोषण चेतना पूरी तरह समझ ली जाती है, तो मन और शरीर पूरी तरह समझ में आ जाते हैं। जब मन और शरीर पूरी तरह समझ लिए जाते हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती। 169

(टिप्पणी 4: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक (साधारण) चेतना 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ, मैं विद्यमान हूँ] की ओर ले जाती है। यह साधारण 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ] पुनर्जन्म से शुरू होती है और मृत्यु की ओर बढ़ती है जहाँ यह समाप्त होती है। इसलिए इसे ऐसा ही समझना चाहिए, ताकि इससे आसक्ति न हो, बल्कि बुद्ध के धम्म [मार्ग] का अनुसरण करते हुए, सद्गुण [शील], ध्यान/समाधि का उपयोग करते हुए दिव्य चेतना प्राप्त करने का प्रयास करें, जिससे दिव्य प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, जो भीतर निर्वाण/मुक्ति/मोक्ष की अवस्था की ओर ले जाती है, जो अविनाशी, सदा विद्यमान और शुद्ध आनंद है। इस सूत्र की विस्तृत व्याख्या अगले सूत्र 64 में की गई है। अत्तिरागा)

---

64. यदि कामवासना विद्यमान हो (अत्थिरग संस्कृत अस्थि-राग)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 63 की आगे की व्याख्या है। इसे व्यक्ति की दो प्रकार की अवस्थाओं से समझा जाना चाहिए, अर्थात् सांसारिक या ध्यानमग्न समाधि/समाधि)

एट सावत्थी।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से ही अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, सांसारिक चेतना (विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से ही अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और पुनर्जन्म की तलाश करने वालों की सहायता के लिए हैं।

"हे भिक्षुओं, यदि भोजन के प्रति राग (कामना) हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। 170 जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है, वहाँ मन और शरीर का अवतरण होता है (नामरूप)। 171 जहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का रूप (नामरूप) अवतरित होता है, वहाँ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का विकास होता है। 172 जहाँ संस्कार (व्यवहार) का विकास होता है, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म का कारण बनता है। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म होता है, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दु:ख, पीड़ा और निराशा से भरी होती है।

भिक्षुओं, यदि पोषण संबंधी स्पर्श, या पोषण संबंधी मानसिक चेतना, या पोषण संबंधी चेतना की लालसा हो, यदि आनंद (नंदी/आनंद) हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होकर विकसित होती है, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का नामरूप उतरता है। 171 जहाँ मन और शरीर का नामरूप उतरता है, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है, वहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है। जहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है, वहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरा होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है... मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से युक्त होती है। 173

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा न हो, यदि आनंद न हो, यदि तृष्णा न हो, तो चेतना स्थापित नहीं होती। वहाँ चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म का कारण) नहीं होता। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, मैं कहता हूँ कि वह स्थान दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक घर या हॉल है जिसकी छत नुकीली है और उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में खिड़कियाँ हैं। जब सूर्योदय होता है और प्रकाश की किरण किसी खिड़की से प्रवेश करती है, तो वह कहाँ स्थापित होगी?" "

पश्चिमी दीवार पर, आदरणीय।"

"यदि पश्चिमी दीवार न हो, तो वह कहाँ स्थापित होगी?"

"पृथ्वी पर, आदरणीय।"

"अगर धरती न होती, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"जल पर, आदरणीय महोदय।"

"अगर जल न होता, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"यह कहीं भी स्थापित नहीं होता, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, पौष्टिक स्पर्श, पौष्टिक मानसिक जागरूकता, पौष्टिक चेतना के प्रति राग न हो, यदि सांसारिक सुख न हो, यदि तृष्णा न हो, तो सांसारिक चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ सांसारिक चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का अवतरण नहीं होता। जहाँ मन और शरीर का अवतरण नहीं होता, वहाँ संस्कार का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार का विकास नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म नहीं होता। जहाँ पुनर्जन्म नहीं होता, वहाँ वृद्धावस्था नहीं आती। और मृत्यु। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कोई भविष्य नहीं है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है। 174

(नोट: यहाँ भगवान बुद्ध सूर्य और उसकी किरणों का एक घर में प्रवेश करने का उपमा देते हैं। इसी प्रकार चेतना की परम अवस्था का अनुभव तब होता है जब व्यक्ति का ध्यान सांसारिक चीजों जैसे इंद्रिय-संपर्क (फस्सा/स्पर्श), मानसिक बोध, सामान्य चेतना, पसंद और इच्छाओं में उलझा नहीं होता है। तब वह समाधि अवस्था में आत्म-नियंत्रित और निर्मल होकर स्वयं-प्रकाशित रहता है और इस प्रकार मोक्ष/निर्वाण के योग्य होता है।)

65. नगर (नागरा)
(बुद्ध का मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाला प्राचीन मार्ग है (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) ।) सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अफ़सोस, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?' 175

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?'" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब पुनर्जन्म होता है? ... अस्तित्व का कारक (भावो)? ... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)? ... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)? ... संवेदना (वेदना)? ... स्पर्श (फस/स्पर्श)? ... छह इंद्रियां? ... मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) होती है, तब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना का अस्तित्व कैसे होता है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है, तब चेतना का अस्तित्व होता है; चेतना का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।' 176

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'यह चेतना पीछे मुड़ जाती है; यह मन-शरीर रूप (नामरूप) से आगे नहीं बढ़ती। 177 इसी सीमा तक कोई जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, मर जाता है और पुनर्जन्म लेता है, अर्थात् जब चेतना का कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) होता है, और मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना होती है। 178 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।"

"'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है? किसके निरोध के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है।'

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या अर्थ है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... वेदना (संवेदना)?'" संपर्क (फस्सा/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर रूप (नामरूप)? किसके समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है? तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है।'

मुझे यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता, तब चेतना का अस्तित्व नहीं होता; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'मैंने ज्ञानोदय का यह मार्ग खोज लिया है, अर्थात् मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' 179

"'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, उन चीजों के संबंध में जो पहले कभी नहीं सुनी गई थीं, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति जंगल में घूमते हुए एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखता है जिस पर अतीत में लोग चलते थे। वह उस मार्ग का अनुसरण करता है और उसे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई देती है जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। तब वह व्यक्ति राजा या किसी राजमंत्री को सूचित करता है: 'हे प्रभु, जान लीजिए कि जंगल में घूमते हुए मैंने एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखी जिस पर अतीत में लोग चलते थे। मैंने उसका अनुसरण किया और मुझे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई दी जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। हे प्रभु, उस नगर का जीर्णोद्धार कीजिए!' फिर राजा या राजमंत्री नगर का जीर्णोद्धार करते, और कुछ समय बाद वह नगर सफल और समृद्ध हो जाता, घनी आबादी वाला, लोगों से भरा हुआ, विकास और विस्तार प्राप्त कर लेता।

“इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने अतीत के पूर्णतः प्रबुद्धों द्वारा अपनाए गए प्राचीन मार्ग, प्राचीन राह को देखा। 180 और वह प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन राह क्या है? वह केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। मैंने उस मार्ग का अनुसरण किया और ऐसा करने से मुझे वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने जन्म, अस्तित्व का कारक (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना है। 181 इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जानकर, मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इनकी व्याख्या की है। हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल और समृद्ध हुआ है, विस्तारित हुआ है, लोकप्रिय हुआ है, व्यापक हुआ है और देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हुआ है। 182

---

66. अन्वेषण (सम्मासा)
(बुद्ध का मार्ग अंतर्मुखी अन्वेषण का मार्ग है, जो चेतना की सर्वोच्च अवस्था (विन्नान संस्कृत विज्ञान) की खोज है।) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 183

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"क्या तुम अंतर्मुखी अन्वेषण में लगे हो, भिक्षुओं?" 184

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, मैं अंतर्मुखी अन्वेषण में लगा हुआ हूँ।"

"तुम अंतर्मुखी अन्वेषण कैसे करते हो, भिक्षु?"

तब भिक्षु ने व्याख्या की, परन्तु उसकी व्याख्या से भगवान (बुद्ध) संतुष्ट नहीं हुए। 185 तब पूज्य आनंद ने कहा:
"अब यही समय है, हे भगवान! अब यही समय है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) अंतर्मुखी अन्वेषण का उपदेश दें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान करो (मानसिकरो), आनंद, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अंतर्मुखी अन्वेषण में लीन रहते हुए भिक्षु इस प्रकार अन्वेषण करते हैं: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब विद्यमान होता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है? जब विद्यमान नहीं होता तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'" 186

"जैसे-जैसे वह अन्वेषण करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत (उपधि) है, इसका उद्‌गम है; यह अधिग्रहण से उत्पन्न होता है। 187 जब अधिग्रहण होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; जब अधिग्रहण नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती।'

"वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 188 वह इसी प्रकार अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

"फिर, अंतर्मुखी अन्वेषण में संलग्न होकर, वह इस प्रकार खोज करता है: 'इस प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत क्या है, इसका उद्‌भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होती है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो क्या प्राप्ति होती है? जब कोई चीज अनुपस्थित होती है तो क्या प्राप्ति नहीं होती?'

"जैसे-जैसे वह खोज करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत (तन्हा सं. तृष्णा) है, इसका उद्‌भव है; यह लालसा से उत्पन्न और निर्मित होती है। जब लालसा होती है, जब लालसा नहीं होती, तब प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती है।

वह प्राप्ति, उसके उद्‌गम, उसके निवारण और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उसी मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुखों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और प्राप्ति के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

फिर, अंतर्मुखी होकर वह यह खोज करता है: 'जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो कहाँ से उत्पन्न होती है? जब यह स्थिर होती है, तो किस पर स्थिर होती है?'

खोज करते हुए वह यह समझता है: 'संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, यहीं से यह लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है।' 189 और संसार में कौन सी वस्तु सुखद और मनभावन है? संसार में आँख सुखद और मनभावन है: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है। इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, शरीर और मन सुखद और मनभावन हैं: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है।

"भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखद और मनभावन प्रकृति वाली वस्तुओं को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित माना, उन्होंने लालसा का पोषण किया। लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का पोषण करने में उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का पोषण किया। प्राप्ति (उपाधि) का पोषण करने में उन्होंने दुख का पोषण किया। दुख का पोषण करने में वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं हुए; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं हुए।

भविष्य में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित करेंगे। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित करेंगे। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित करेंगे। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होंगे; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होंगे; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं होंगे।

वर्तमान में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित कर रहे हैं। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित कर रहे हैं। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी लें। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' अचानक, बिना सोचे-समझे, वह पेय पी लेता है - वह उसे अस्वीकार नहीं करता - और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घातक कष्ट सहना पड़ता है। 190

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हैं... भविष्य में... वर्तमान में जो भी संसार में सुखद और मनभावन है, उसे स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानते हैं: वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं। तृप्ति को पोषित करने से... वे कष्टों से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।" 191

“भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, उन्होंने तृष्णा का त्याग किया। तृष्णा का त्याग करके उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का त्याग किया। प्राप्ति का त्याग करके उन्होंने दुख का त्याग किया। दुख का त्याग करके वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हुए; वे दुख से मुक्त हुए,” मैं कहता हूँ।

“भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का त्याग करेंगे। तृष्णा का त्याग करके वे दुख से मुक्त होंगे,” मैं कहता हूँ।

"संन्यासी और ब्राह्मण वर्तमान में संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग या भययोग्य मानते हैं: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से पीड़ित, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं:
'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी सकते हैं। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'" तब वह व्यक्ति सोचेगा: 'मैं पानी, मट्ठा, दलिया या सूप से अपनी प्यास बुझा सकता हूँ, लेकिन मुझे वह पेय नहीं पीना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मुझे हानि होगी और लंबे समय तक कष्ट सहना पड़ेगा।' ऐसा सोचने के बाद, वह पेय नहीं पिएगा बल्कि उसे अस्वीकार कर देगा, और इस प्रकार वह मृत्यु या जानलेवा पीड़ा से बच जाएगा।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रहे हों... भविष्य में... वर्तमान में संसार में जो भी सुखदायक और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्मदायी, रोगदायी, भयभीत करने वाला मानते हों: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से... वे दुख से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।" 192

---

67 नरकट के ढेर (नलकलापी)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपतना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 193 फिर, शाम को, पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, क्या ऐसा है: क्या वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न होती है, या किसी और द्वारा, या स्वयं और किसी और दोनों द्वारा, या यह संयोगवश उत्पन्न हुई है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" 194

"मित्र कोत्थिता, वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न नहीं होती, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती। बल्कि, जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है।"

"मित्र सारिपुत्त, यह कैसे होता है: क्या जन्म स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... क्या अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... मन और शरीर (नामरूप) स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, या किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या संयोगवश उत्पन्न होते हैं, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती?"

"हे मित्र कोत्थिता, मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) न तो स्वयं द्वारा सृजित होता है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होता है; बल्कि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है।" "हे

मित्र सारिपुत्त, यह कैसे संभव है: क्या चेतना स्वयं द्वारा सृजित होती है, या किसी अन्य द्वारा, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा, या संयोगवश उत्पन्न होती है, न स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा?"

"हे मित्र कोत्थिता, चेतना न तो स्वयं द्वारा सृजित होती है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है; बल्कि मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है।" 195

"अब हम पूज्य सारिपुत्त के कथन को इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, मन-शरीर रूप (नामरूप) स्वयं द्वारा सृजित नहीं होता... बल्कि चेतना के कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है।' अब हम पूज्य सारिपुत्त के [दूसरे] कथन को भी इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, चेतना स्वयं द्वारा सृजित नहीं होती... बल्कि मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण चेतना अस्तित्व में आती है।' परन्तु हे मित्र सारिपुत्त, इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हारे लिए एक उपमा बनाता हूँ, क्योंकि यहाँ कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं। जैसे दो सरकंडों के गट्ठे एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, वैसे ही, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर के रूप (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) उत्पन्न होते हैं। ... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"मित्र, यदि कोई सरकंडों के उन गट्ठों में से एक को हटा दे, तो दूसरा गिर जाएगा, और यदि कोई दूसरे गट्ठे को हटा दे, तो पहला गिर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के समाप्त होने (निरोध) से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर (नामरूप) का अंत हो जाता है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।"

यह अद्‌भुत है, मित्र सारिपुत्त! यह आश्चर्यजनक है, मित्र सारिपुत्त! पूज्य सारिपुत्त ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है। हम पूज्य सारिपुत्त के इन छत्तीस आधारों पर दिए गए कथन से प्रसन्न हैं; 196 यदि, मित्र, कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के उद्देश्य से धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से साधना कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा, कोई भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

हे मित्र, यदि कोई भिक्षु पुनर्जन्म, अस्तित्व के कारक (भावो), आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्स/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर रूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने और उनके निवारण के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु अज्ञान के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि अज्ञान के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के माध्यम से, जो भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

---

68. कोसंबी

एक बार पूज्य मुसिला, पूज्य पवित्रा, पूज्य नारद और पूज्य आनंद, घोसीता उद्यान के कोसंबी में रह रहे थे। 197

तब पूज्य पवित्रा ने पूज्य मुसिला से कहा:
“मित्र मुसिला, आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने के अलावा, 198 क्या पूज्य मुसिला को यह व्यक्तिगत ज्ञान है कि ‘जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है’?”

"मित्र पवित्रा, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'जन्म को कारण मानकर, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'

"मित्र मुसिला, आस्था से परे... किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, क्या पूज्य मुसिला को इस प्रकार व्यक्तिगत ज्ञान है: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर, जन्म होता है'?... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) होता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) उत्पन्न होते हैं।' "

मित्र मुसिला, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को यह प्रत्यक्ष ज्ञान है: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) का भी अंत हो जाता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'... 'अज्ञान के अंत के साथ ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है।' "

"मित्र मुसिला, आस्था के अलावा, व्यक्तिगत पसंद के अलावा, मौखिक परंपरा के अलावा, तर्कपूर्ण विचार के अलावा, किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञान है कि: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है'?" 199

“मित्र पवित्र, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है।'” “

तब पूज्य मुसिला एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो गए हैं।”

यह सुनकर पूज्य मुसिला चुप रहे। 200

तब पूज्य नारद ने पूज्य पवित्र से कहा:
“मित्र पवित्र, अच्छा होगा यदि मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछी जाए। मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछिए और मैं आपको उत्तर दूंगा। 201

"तो फिर पूज्य नारद को उन प्रश्नों की श्रृंखला का उत्तर देने दीजिए। मैं पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछूंगा, और वे मुझे उत्तर देंगे।"

(यहाँ पूज्य पवित्र, पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछते हैं जो पूज्य मुसिला से पूछे गए थे, और वे ठीक उसी तरह उत्तर देते हैं।)

"तो पूज्य नारद एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

"मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, पुनर्जन्म के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है,' फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं। 202 मान लीजिए, मित्र, किसी रेगिस्तानी सड़क पर एक कुआँ है, लेकिन उसमें न तो रस्सी है और न ही बाल्टी। फिर एक आदमी आता है, जो गर्मी से परेशान, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वह कुएँ में देखता है और उसे यह ज्ञान होता है कि 'पानी है,' लेकिन वह उससे शारीरिक संपर्क (फस/स्पर्श) नहीं कर पाता। 203 इसी प्रकार, मित्र, यद्यपि मैंने

सही अंतर्दृष्टि (भावो) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, भावो के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है, फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं।" 204

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य पवित्र से पूछा: "हे मित्र पवित्र, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप पूज्य नारद के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे मित्र आनंद, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं पूज्य नारद के बारे में केवल अच्छी और अनुकूल बातें ही कहूंगा।" 205

---

69. द सर्ज (उपायंती)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

“भिक्षुओं, सागर के उफान से नदियाँ उफान पर आती हैं; नदियों के उफान से धाराएँ उफान पर आती हैं; धाराओं के उफान से झीलें उफान पर आती हैं; झीलों के उफान से तालाब उफान पर आते हैं। उसी प्रकार, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के उफान से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उफान पर आता है; संस्कार (व्यवहार) के उफान से चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उफान पर आती है; चेतना के उफान से मन और शरीर (नामरूप) उफान पर आता है; मन और शरीर (नामरूप) के उफान से छह इंद्रियाँ उफान पर आती हैं; छह इंद्रियाँ उफान पर आने से संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) उफान पर आता है; संपर्क (स्पर्श) उफान पर आने से संवेदना (वेदना) उफान पर आती है; संवेदना (वेदना) उफान पर आने से लालसा (तन्हा) उत्पन्न होती है। संस्कृत: तृष्णा का बढ़ना; तृष्णा का बढ़ना आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) को बढ़ाता है; आसक्ति का बढ़ना अस्तित्व के कारक (भावो) को बढ़ाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) का बढ़ना जन्म को बढ़ाता है; जन्म का बढ़ना वृद्धावस्था और मृत्यु को बढ़ाता है।

"भिक्षुओं, सागर के पीछे हटने से नदियाँ पीछे हटती हैं; नदियों के पीछे हटने से धाराएँ पीछे हटती हैं; धाराओं के पीछे हटने से झीलें पीछे हटती हैं; झीलों के पीछे हटने से तालाब पीछे हटते हैं। उसी प्रकार, समाधि की अवस्था के अनुभव से अज्ञान का पीछे हटना संस्कार (व्यवहार-आदत) को पीछे हटाता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के पीछे हटने से चेतना पीछे हटती है... पुनर्जन्म के पीछे हटने से वृद्धावस्था और मृत्यु पीछे हटती है।"

---

70. सुसीमा
मैंने भगवान बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे।

(i)
उस समय भगवान (बुद्ध) का आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। भिक्षु संघ का भी आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और भिक्षुओं को भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। परन्तु अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का आदर, सम्मान, आदर, श्रद्धा और श्रद्धा नहीं की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं हुईं।
उस समय तपस्वी सुसीमा राजगृह में कई तपस्वियों के साथ निवास कर रहे थे। उनके साथियों ने सुसीमा से कहा, “हे मित्र सुसीमा, आओ और तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करो। उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और हमें सिखाओ। हम भी उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करेंगे और उसका प्रचार करेंगे। इस प्रकार हम भी आदरणीय, सम्मानित और पूजनीय होंगे, और हमें भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त होंगी।”

“ठीक है मित्रों,” तपस्वी सुसीमा ने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “मित्र आनंद, मैं इस धर्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।”

तब पूज्य आनंद ने तपस्वी सुसीमा को अपने साथ लिया और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यह तपस्वी सुसीमा कहते हैं कि वे इस धम्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।"

"तो फिर, आनंद, उन्हें दीक्षा दीजिए।" तब तपस्वी सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा और उपसंपदा प्राप्त की। 206

(ii)
उस अवसर पर कई भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा, "हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" पूज्य सुसीमा ने यह सुनकर उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे अभिवादन किया और फिर एक तरफ बैठकर उनसे कहा: "क्या यह सच है कि आप पूज्य भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा है: 'हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है'?" 207

"हाँ, मित्र।"

तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि: एक होकर आप अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर आप एक हो जाते हैं; आप प्रकट होते हैं और विलीन हो जाते हैं; आप बिना किसी अवरोध के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चले जाते हैं मानो अंतरिक्ष में; आप पृथ्वी में ऐसे समा जाते हैं मानो वह जल हो; आप जल पर ऐसे चलते हैं मानो वह पृथ्वी हो, बिना डूबे; पालथी मारकर आप पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; आप अपने हाथों से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; आप ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक तक शरीर पर महारत हासिल कर लेते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप, शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकते हैं?"

"नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप आदरणीय लोग अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से घेरकर, समझ पाते हैं? क्या आप कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में समझते हैं; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझते हैं; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझते हैं; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अतुलनीय मन को अतुलनीय समझते हैं; समाधि अवस्था में स्थित मन को समाधि अवस्था में और एक समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले मन को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाला मन; मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त? "

नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, हे पूजनीय, क्या आप अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के क्रम में: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म हुआ। क्या तुम यहाँ पुनर्जन्म लेकर आए हो? क्या तुम्हें अपने अनेक अतीत के निवास स्थान, उनके तौर-तरीके और विवरण याद हैं? "

नहीं, मित्र।"

तो फिर, हे पूजनीय, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, इस प्रकार देखते और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं: 'वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर

आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से अच्छा आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं? इस प्रकार, हे पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को देखते हैं? क्या आप पुनर्जन्म, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के बारे में जानते हैं, और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे चलते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप पूज्यवर उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करते हैं जो रूपों से परे हैं, उन निराकार उपलब्धियों में, जिन्हें आपने शरीर से स्पर्श किया है?" 208

"नहीं, मित्र।"

"अब सुनिए, पूज्यवर: यह उत्तर और उन अवस्थाओं की अप्राप्ति, यह कैसे हो सकता है, मित्रों?" 209

"हम प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हैं, मित्र सुसीमा।" 210

"मित्रों, मैं पूज्यवरों द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से नहीं समझ पा रहा हूँ। अच्छा होगा यदि पूज्यवर मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं संक्षेप में कही गई बातों को विस्तार से समझ सकूँ।"

"हे सुसीमा, चाहे तुम समझो या न समझो, हम प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से मुक्त (विमुत्त) होते हैं।"

(iii)

तब पूज्य सुसीमा अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन भिक्षुओं के साथ हुई अपनी सारी बातचीत भगवान (बुद्ध) को बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"हे सुसीमा, पहले धम्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निर्वाण का ज्ञान।" 211

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं संक्षेप में कही गई बात को विस्तार से समझ सकूँ।"

"हे सुसीमा, चाहे तुम समझो या न समझो, पहले धम्म की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निर्वाण का ज्ञान। 212

"सुसीमा, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" 213 - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।"
"क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या वेदना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसलिए, सुसीमा, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की अनुभूति... किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-आधार)... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर, सुसीमा, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के कारण ही जन्म होता है'?... 'आसक्ति के कारण ही भाव होता है'?... 'तृष्णा के कारण ही आसक्ति होती है'?... 'वेदना के कारण ही तृष्णा होती है'?...

'क्या इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रियों का स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है?'... 'क्या छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या चेतना नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण होती है?'... 'क्या व्यवहार (आचरण-निर्धारण) के कारण चेतना उत्पन्न होती है?' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं'? "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत हो जाता है'?... 'आसक्ति के अंत के साथ भाव का अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है'?" "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या तुम विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग करती हो, इस प्रकार कि: एक होकर तुम अनेक बन जाती हो ... और उसका अभ्यास करती हो क्या आप ब्रह्म जगत तक शारीरिक प्रभुत्व रखती हैं? 214

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकती हैं, जो दूर और पास से आती हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझ सकती हैं, उन्हें अपने मन से समाहित करके?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आपको अपने अनेक पूर्व जन्मों की विधियाँ और विवरण याद हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य दृष्टि से प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकती हैं और समझ सकती हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप क्या शरीर से स्पर्श करके उन निराकार उपलब्धियों, उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करना संभव है जो रूपों से परे हैं? "

नहीं, पूज्यवर।"

"सुसीमा, अब सुनो: यह उत्तर और उन अवस्थाओं की अप्राप्यता, यह कैसे संभव है, सुसीमा?"

(iv)

तब पूज्यवर सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: "पूज्यवरवर, मैंने यह अपराध किया है कि मैं इतना बचकाना (नासमझ), इतना भ्रमित, इतना अयोग्य था कि मैं धम्म (मार्ग) का चोर बनकर निकल पड़ा।" इस सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में (कानून) का वर्णन किया गया है। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे मेरे इस अपराध के लिए क्षमा करें, जिसे भविष्य में संयम के लिए एक अपराध माना जाता है।

"सुसीमा, तुमने निश्चित रूप से एक अपराध किया है क्योंकि तुम इतने बचकाने (नासमझ), इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि तुमने इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में धम्म की चोरी की। 215 मान लो, सुसीमा, कि वे एक डाकू, एक अपराधी को गिरफ्तार करके राजा के सामने लाते हैं और कहते हैं: 'हे प्रभु, यह व्यक्ति एक डाकू, एक अपराधी है। आप इसे जो भी दंड देना चाहें, दे दीजिए।' राजा उनसे कहता: 'आओ, पुरुषों, इस आदमी के हाथों को एक मजबूत रस्सी से उसकी पीठ के पीछे कसकर बांध दो, उसका सिर मुंडवा दो और ढोल बजाते हुए उसे गली-गली और चौक-चौक घुमाओ। फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाओ और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दो।' सुसीमा, तुम क्या सोचते हो, क्या उस व्यक्ति को इस कारण कोई पीड़ा और कष्ट सहना पड़ेगा?"

"जी, आदरणीय।"

"यद्यपि उस व्यक्ति को इस कारण पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होगा, परन्तु इस सुस्पष्ट धम्म एवं अनुशासन में धम्म चोर बनकर दीक्षा लेना कहीं अधिक कष्टदायी, कहीं अधिक कड़वे परिणाम देता है और अंत में पाताल लोक की ओर ले जाता है। परन्तु क्योंकि तुम अपने अपराध को अपराध समझते हो और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हो, इसलिए हम तुम्हें क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध समझता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तभी वह श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।"

(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनाब्रह्मण)
71. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण (निरोध) और उसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर सकते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश कर सकते हैं और उसमें निवास कर सकते हैं।" और ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

72 जन्म, इत्यादि (जाति आदि)
भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो (जैसा कि पहले अनुच्छेद 71 में प्रत्येक के लिए और 1 और 2 के समान)
जन्म...
अस्तित्व का कारक (भावो)...
आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (
तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...
संवेदना (वेदना)...
स्पर्श (फस/स्पर्श)...
छह इंद्रियां...
मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)...
चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...
संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनकी उत्पत्ति, उनका निवारण (निरोध), और उनके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। "परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं, मैं उन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व

के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।"

(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
73. एक शिक्षक (सत्थु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को यथावत नहीं जानते और नहीं देखते, उन्हें इसे यथावत जानने के लिए एक गुरु की खोज करनी चाहिए। 217

"भिक्षुओं, जो
जन्म...
अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)...
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...
संवेदना (वेदना)
...
स्पर्श (फस/स्पर्श)...
छह इंद्रियां...
नामरूप...
चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...
संशय (बाध्यकारी व्यवहार),
इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को यथावत जानने और देखने वाले नहीं
हैं, उन्हें एक गुरु की खोज करनी चाहिए।" इसे
यथार्थ रूप में जानने के लिए।

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें इसे यथार्थ रूप में जानने के लिए प्रशिक्षण का अभ्यास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें प्रयास करना चाहिए... इच्छा जागृत करनी चाहिए... उत्साह जगाना चाहिए... निरंतर प्रयास करना चाहिए... जोश जगाना चाहिए... ऊर्जा (वीर्य) का प्रयोग करना चाहिए... दृढ़ता का अभ्यास करना चाहिए... ध्यान (सती) का अभ्यास करना चाहिए... पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास करना चाहिए... जागरूकता (अप्पमदा) का अभ्यास करना चाहिए ताकि इसे यथार्थ रूप में जान सकें।"

अध्याय 2: सफलता पर संबंधित प्रवचन (अभिसामयसाम्युत्त) {साम्युत्त-13}
74. नाखून (नखसिखा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन अधिक है: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है। यह विशाल पृथ्वी का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, जो दुख नष्ट और समाप्त हो गया है वह कहीं अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। 218 बाद वाला दुख नष्ट और समाप्त हुए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। हे भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।" 219

---

75. तालाब (पोखरानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब है जो पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, पानी से भरा हुआ है, इतना कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है, और एक आदमी कुश घास की नोक पर उसमें से थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी?" 220

"आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। यह तालाब के पानी का सौवां हिस्सा, हजारवां हिस्सा या एक लाखवां हिस्सा भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, एक सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है (जैसा कि 74 में है)। भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

76. संगम पर जल (1) (संभेज्जाउदक1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे संगम के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

77. संगम पर जल (2) (संभेज्जाउदक2)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ उनका सारा जल नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो या तीन बूंदों के। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल या शेष बची दो या तीन बूंदें?"

"आदरणीय महोदय, संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल अधिक है। शेष बची दो या तीन बूंदें नगण्य हैं। वे नष्ट होकर समाप्त हुए जल का सौवाँ भाग, हज़ारवाँ भाग या एक लाखवाँ भाग भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

78. पृथ्वी (1) (पथवी1)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें या विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें तुच्छ हैं। वे विशाल पृथ्वी के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

79. पृथ्वी (2) (पथवी2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी का सौवां, हजारवां या एक लाखवां भाग भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

80. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। आप क्या सोचते हैं, भिक्षुओं, कौन अधिक है: निकाली गई दो या तीन बूंदें या विशाल सागर का जल?"
"आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे विशाल सागर के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

81. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि विशाल सागर नष्ट हो जाए और उसमें से दो-तीन बूँदें ही शेष रह जाएँ। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट हो चुके विशाल सागर का जल या शेष बची दो-तीन बूँदें?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट हो चुके विशाल सागर का जल अधिक है। शेष बची दो-तीन बूँदें नगण्य हैं। वे नष्ट हो चुके विशाल सागर के जल का सौवाँ भाग, हज़ारवाँ भाग या एक लाखवाँ भाग भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

82. पर्वत (1) (पब्बाटा1 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है?"

"आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, बड़ा है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

" "इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

83. पर्वत (2) (पब्बाटा2 सं. पर्वत)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग के सौवें, हजारवें या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। बाद वाला दुख, नाश और निवारण किए गए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं होता, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म होते हैं। हे भिक्षुओं, धर्म के मार्ग में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

84. पर्वत (3) (पब्बाटा3 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे पर्वतों के राजा सिनेरु के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों की उपलब्धियाँ एक श्रेष्ठ शिष्य, एक सिद्ध दृष्टि वाले और पारलौकिक व्यक्ति की उपलब्धियों के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। भिक्षुओं, सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी उपलब्धियों में इतना महान है, दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में इतना महान है।"

अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसाम्युत्त) {साम्युत्त-14}
(i) विविधता अनुभाग (नानात्तवग्गो सं. नानात्व-वर्ग)
(आंतरिक पंचक)
85. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
(18 धातु/तत्व)
श्रावस्ती में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आंतरिक) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। 223 इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है?
आँख तत्व (धातु), रूप तत्व, आँख-चेतना तत्व;
कान तत्व, ध्वनि तत्व, कान-चेतना तत्व;
नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व;
जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व;
शरीर तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, शरीर-चेतना तत्व;
मन तत्व, मानसिक-घटना तत्व, मन-चेतना तत्व।
हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।" 224

---

86. संपर्कों की विविधता
(6 प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श; इंद्रियों का वस्तु से संपर्क))

श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है। और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख (धातु), कान (नाक), जीभ (जीभ), शरीर (शरीर), मन (मन)। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता कैसे उत्पन्न होती है? आँख के कारण आँख का संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; कान के कारण कान का संपर्क होता है; नाक के कारण नाक का संपर्क होता है; जीभ के कारण जीभ का संपर्क होता है; शरीर के कारण शरीर का संपर्क होता है; मन के कारण मन का संपर्क होता है। 225 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

87. संपर्कों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है। तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती।

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, यह कैसे होता है कि तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; कि तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती?

आँख तत्व के कारण आँख संपर्क (स्पर्श) उत्पन्न होता है; आँख तत्व आँख संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के कारण मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन तत्व मन संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता।" 226 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती।

---

88. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (1) (वेदनाननतत्त्व बिना वेदनानातव)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदना की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि अनुच्छेद 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदनाओं) की विविधता उत्पन्न होती है? नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। कान तत्व के आधार पर कान संपर्क उत्पन्न होता है; कान संपर्क के आधार पर कान संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नाक तत्व के आधार पर नाक संपर्क उत्पन्न होता है; नाक संपर्क के आधार पर नाक संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। जीभ तत्व के आधार पर जीभ संपर्क उत्पन्न होता है; जीभ संपर्क के आधार पर जीभ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। शरीर तत्व के आधार पर शरीर संपर्क उत्पन्न होता है; शरीर संपर्क के आधार पर शरीर संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व पर निर्भरता से मन-संपर्क उत्पन्न होता है; मन-संपर्क पर निर्भरता से मन-संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भरता से संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता पर निर्भरता से संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

89. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनाननत्त2 बिना वेदाना-नानतव)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है। संपर्क की विविधता वेदनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता संपर्क की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है? क्या संपर्कों की विविधता संवेदनाओं (वेदना) की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; क्या तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र संपर्क नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; नेत्र तत्व नेत्र संपर्क के आधार पर उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के आधार पर मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन संपर्क के आधार पर मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन संपर्क मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; मन का तत्व मन के संपर्क पर निर्भर नहीं होता।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है... तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(बाह्य पंचक)

---

90. बाह्य तत्वों की विविधता
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (बाहरी) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा...

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु), ध्वनि तत्व, गंध तत्व, स्वाद तत्व, स्पर्श तत्व, मानसिक घटना तत्व (धम्म)। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

---

91. धारणाओं की विविधता
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है; धारणाओं की विविधता के कारण ही इरादों की विविधता उत्पन्न होती है; इरादों की विविधता के कारण ही इच्छाओं की विविधता उत्पन्न होती है; इच्छाओं की विविधता के कारण ही भावनाओं की विविधता उत्पन्न होती है; भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु) ... (जैसा कि 90 में है) ... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" "और हे भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... कि भावनाओं की विविधता के कारण खोजों की विविधता उत्पन्न होती है?

" "रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा उत्पन्न होती है; रूप की धारणा के आधार पर रूप के संबंध में इरादा उत्पन्न होता है।" रूप के संबंध में इरादे पर निर्भर करते हुए रूप की इच्छा उत्पन्न होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए रूप के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; रूप के प्रति जुनून पर निर्भर करते हुए रूप की खोज उत्पन्न होती है... 227

"मानसिक घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा उत्पन्न होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है।

" "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... जुनूनों की विविधता पर निर्भर करते हुए खोजों की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

92. खोजों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इच्छाओं की विविधता भावनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इरादों की विविधता इच्छाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; धारणाओं की विविधता इरादों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती। 228

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि तत्वों की विविधता पर निर्भरता से धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि 91 में है)... कि भावनाओं की विविधता पर निर्भरता से खोजों की विविधता उत्पन्न होती है? क्या भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती... क्या तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व पर निर्भरता से रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है; [...रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से रूप की खोज उत्पन्न होती है। रूप के प्रति जुनून रूप की खोज पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की इच्छा रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप के संबंध में इरादा रूप की इच्छा पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की धारणा रूप के संबंध में इरादे पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप तत्व रूप की धारणा पर निर्भर नहीं होता।] ...229

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है। मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... मानसिक-घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होता।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर होकर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... आसक्ति की विविधता पर निर्भर होकर खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। आसक्ति की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती।"

---

93. बाह्य संपर्कों की विविधता (1)

सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है; धारणाओं की विविधता के कारण ही इरादों की विविधता उत्पन्न होती है; इरादों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों के साथ संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है; संवेदनाओं की विविधता के कारण ही इच्छाओं की विविधता उत्पन्न होती है; इच्छाओं की विविधता के कारण ही जुनूनों की विविधता उत्पन्न होती है; जुनूनों की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। 230

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु) (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व।" भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

"और भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... कि खोजों की विविधता के आधार पर ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा उत्पन्न होती है; रूप की धारणा के आधार पर रूप के प्रति आशय उत्पन्न होता है; रूप के प्रति आशय के आधार पर रूप से संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श) उत्पन्न होता है; रूप से संपर्क के आधार पर रूप से संपर्क से उत्पन्न वेदना उत्पन्न होती है; रूप से संपर्क से उत्पन्न वेदना के आधार पर रूप की इच्छा उत्पन्न होती है; रूप की इच्छा के आधार पर रूप के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; रूप के प्रति जुनून के आधार पर रूप की खोज उत्पन्न होती है।" रूप की खोज पर निर्भर करते हुए रूप का लाभ प्राप्त होता है...

"मनोवैज्ञानिक घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति अभिलाषा उत्पन्न होती है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श)... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना)... मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून... मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज; मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ प्राप्त होता है।

" भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... और खोजों की विविधता पर निर्भर करते हुए लाभों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

94. बाह्य संपर्कों की विविधता (2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों (धातु) की विविधता के कारण ही धारणाओं (सन्न संस. संज्ञा) की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; मनोभावों की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि अनुच्छेद 91 में है)... कि खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है? कि खोजों की विविधता लाभों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती... कि तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है... धम्म तत्व के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है... धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ उत्पन्न होता है। धम्म की खोज मानसिक घटनाओं (धम्म) के लाभ के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; धम्म की इच्छा मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से उत्पन्न वेदना (संवेदना) पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा मानसिक घटनाओं (धम्म) के

संपर्क पर निर्भर नहीं होता; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर नहीं होता।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के आधार पर अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं होती... तत्वों की विविधता अनुभूतियों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
95. सात तत्व
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये सात तत्व (धातु) हैं। कौन से सात? आभा तत्व (धातु), पवित्र तत्व (शुभ तत्व), अनंत आकाश का बोध, चेतना का बोध (विन्नान संस्कृत विज्ञान) तत्व, शून्यता का बोध, न-बोध-न-बोध का बोध, और बोध-संवेदना का अंत। ये सात तत्व हैं।" 231

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"हे आदरणीय महोदय, आभा तत्व और बोध-संवेदना के अंत (वेदना) के बारे में: ये तत्व किसके आधार पर ज्ञात किए जाते हैं?"

"भिक्षु, अंधकार पर निर्भर होकर आभा तत्व (धातु) का ज्ञान होता है। अपवित्रता पर निर्भर होकर पवित्र तत्व का ज्ञान होता है। रूप पर निर्भर होकर अनंत आकाश तत्व का ज्ञान होता है। अनंत चेतना तत्व का ज्ञान अनंत आकाश तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। शून्यता तत्व का ज्ञान अनंत चेतना तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। न-बोध-न-बोध तत्व का ज्ञान शून्यता के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। वेदना और बोध के निरोध का ज्ञान निरोध पर निर्भर होकर होता है।" 232

"परन्तु, आभा तत्व... बोध (संज्ञा) और वेदना के निरोध के विषय में: इन तत्वों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?"

"आभा तत्व, पवित्र तत्व, अनंत अंतरिक्ष का बोध, अनंत चेतना का बोध और शून्यता का बोध: इन तत्वों को बोध सहित प्राप्त करना है। न बोध और न अबोध का बोध: इस तत्व को संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के अवशेष सहित प्राप्त करना है। 233 बोध और संवेदना का अंत: इस तत्व को अंत की प्राप्ति के रूप में प्राप्त करना है।"

96. स्रोत के साथ (सा-निदान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, कामुक विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; दुर्भावना के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; हानि पहुँचाने के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं। और ऐसा क्यों है?

"धातु (इंद्रिय तत्व) पर निर्भर होकर कामुक बोध (सन्ना संस. संज्ञा) उत्पन्न होता है; 234 कामुक बोध पर निर्भर होकर कामुक अभिलाषा उत्पन्न होती है; कामुक अभिलाषा पर निर्भर होकर कामुक वासना उत्पन्न होती है; कामुक वासना पर निर्भर होकर कामुक खोज उत्पन्न होती है। कामुक खोज में लगे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति तीन प्रकार से गलत आचरण करता है - शरीर, वाणी और मन से।"

द्वेष तत्व के आधार पर द्वेष की अनुभूति उत्पन्न होती है; द्वेष की अनुभूति के आधार पर द्वेष का इरादा उत्पन्न होता है; द्वेष के इरादे के आधार पर द्वेष से प्रेरित इच्छा उत्पन्न होती है; द्वेष से प्रेरित इच्छा के आधार पर द्वेष से प्रेरित जुनून उत्पन्न होता है; द्वेष से प्रेरित जुनून के आधार पर द्वेष से प्रेरित खोज उत्पन्न होती है। द्वेष से प्रेरित खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है। हानि

पहुँचाने के तत्व के आधार पर हानि पहुँचाने की अनुभूति उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की अनुभूति के आधार पर हानि पहुँचाने का इरादा उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के इरादे के आधार पर हानि पहुँचाने की इच्छा उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की इच्छा के आधार पर हानि पहुँचाने का जुनून उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के जुनून के आधार पर हानि पहुँचाने की खोज उत्पन्न होती है। हानि पहुँचाने की खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के घने जंगल में गिरा दे। यदि वह उसे तुरंत अपने हाथों और पैरों से न बुझाए, तो घास और जंगल में रहने वाले जीव विपत्ति और आपदा का शिकार हो जाएँगे। ठीक इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न अधार्मिक धारणाओं को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, मिटाकर और नष्ट न कर दे, तो वह इसी जीवन में कष्ट, व्यथा, निराशा और बुखार में लीन रहता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसका बुरा अंजाम निश्चित है।

भिक्षुओं, त्याग का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; द्वेष न करने का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; अहिंसा का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं। और ऐसा क्यों है?

"त्याग तत्व (धातु) पर निर्भर होकर त्याग की अनुभूति (सन्ना संस. संग्य) उत्पन्न होती है; 237 त्याग की अनुभूति पर निर्भर होकर त्याग का इरादा उत्पन्न होता है; त्याग के इरादे पर निर्भर होकर त्याग की इच्छा उत्पन्न होती है; त्याग की इच्छा पर निर्भर होकर त्याग की अभिलाषा उत्पन्न होती है; त्याग की अभिलाषा पर निर्भर होकर त्याग की खोज उत्पन्न होती है। त्याग की खोज में लगे हुए, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; 238 अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित अभिलाषा उत्पन्न होती है; अहित की भावना से प्रेरित होकर, अहित की भावना से प्रेरित होकर एक खोज उत्पन्न होती है। अहित की भावना से प्रेरित होकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा के तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा की इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा की इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा की भावना उत्पन्न होती है; अहिंसा की भावना पर निर्भर होकर अहिंसा की खोज उत्पन्न होती है। अहिंसा की खोज में लगे रहकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के झुरमुट में गिरा दे। यदि वह उसे अपने हाथों और पैरों से तुरंत बुझा दे, तो घास और लकड़ी में रहने वाले प्राणियों पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आएगी। इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न हुई अधार्मिक धारणाओं को शीघ्र ही त्याग दे, उनका निवारण कर, उन्हें मिटा दे और उनका नाश कर दे, तो वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा और व्याकुलता के निवास करता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक शुभ गंतव्य (सुगति) की अपेक्षा की जा सकती है।

---

97. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,

"भिक्षुओं, किसी तत्व (धातु) पर निर्भर होकर एक बोध (संज्ञा) उत्पन्न होता है, एक दृष्टि उत्पन्न होती है, एक विचार उत्पन्न होता है।" 240

यह सुनकर आदरणीय सद्ध कच्चायन ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, जो पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हैं, उनके संबंध में यह दृष्टि कब उत्पन्न होती है? ये पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, यह दृष्टि किस पर निर्भर होकर प्रकट होती है?" 241

"हे कच्चयन, यह तत्व, अज्ञान का तत्व (अविज संस्कृत: अविद्या), शक्तिशाली है। कच्चयन, निम्न तत्व पर निर्भर होने से निम्न बोध, निम्न दृष्टि, निम्न विचार, निम्न संज्ञानात्मक जागरूकता, निम्न लालसा, निम्न इच्छा, निम्न व्यक्तित्व और निम्न वाणी उत्पन्न होती है। वह निम्न तत्वों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म निम्न है।

" कच्चयन, मध्यम तत्व पर निर्भर होने से मध्यम बोध, मध्यम दृष्टि, मध्यम विचार, मध्यम संज्ञानात्मक जागरूकता, मध्यम लालसा, मध्यम इच्छा, मध्यम व्यक्तित्व और मध्यम वाणी उत्पन्न होती है। वह मध्यम तत्वों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म मध्यम है।

"श्रेष्ठ तत्व कच्चयन पर निर्भर रहते हुए, श्रेष्ठ बोध, श्रेष्ठ दृष्टि, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ संज्ञानात्मक जागरूकता, श्रेष्ठ लालसा, श्रेष्ठ इच्छा, श्रेष्ठ व्यक्तित्व और श्रेष्ठ वाणी का उद्भव होता है। वह श्रेष्ठता की व्याख्या, शिक्षा, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करते हैं। उनका पुनर्जन्म, मैं कहता हूँ, श्रेष्ठ है।"

---

98. हीन प्रवृत्ति (हिनाधिमुक्तिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। 242 अतीत में, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते थे और एक होते थे... भविष्य में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं... वर्तमान में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं।"

---

99. आगे-पीछे चलना (Cankama sans. Cankraman)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय, भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, पूज्य सारिपुत्त कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे; पूज्य महामोग्गलाना, पूज्य महाकस्सपा, पूज्य अनुरुद्ध, पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त, पूज्य उपली और पूज्य आनंद भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे। और भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, देवदत्त भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा,
"भिक्षुओं, क्या आप सारिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ टहलते हुए देख रहे हैं?" 243

"जी, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं। क्या आप मोग्गलाना को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं में महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) है। क्या आप कस्सपा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु तपस्वी प्रथाओं के समर्थक हैं। क्या आप अनुराधा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के पास दिव्य दृष्टि है। क्या आप पूर्ण मंतानिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु धर्म (मार्ग, नियम) के वक्ता हैं। क्या आप उपली को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अनुशासन के पालनकर्ता हैं। क्या आप आनंद को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अत्यंत विद्वान हैं। क्या आप देवदत्त को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के मन में बुरी इच्छाएं हैं।

" "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। निम्न स्वभाव वाले निम्न स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं; अच्छे स्वभाव वाले अच्छे स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

---

100. श्लोकों सहित सूत्र
सावत्थी, 244 में लिखा है, "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जिस प्रकार मल मल से, मूत्र मूत्र से, थूक थूक से, मवाद मवाद से और रक्त रक्त से जुड़ता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, यह तत्वों के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जैसे दूध दूध से, तेल तेल से, घी घी से, शहद शहद से और गुड़ गुड़ से मिलता है, वैसे ही, भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"संगति से कामवासना का जंगल (राग) उत्पन्न होता है, 245 अनासक्ति से जंगल कट जाता है।"

जैसे कोई लकड़ी के तख्ते पर चढ़कर
विशाल समुद्र में डूब जाता है, वैसे

ही सद्गुणी व्यक्ति
आलसी व्यक्ति की संगति में रहने से डूब जाता है।

इसलिए ऐसे व्यक्ति से बचना चाहिए -

जो आलसी हो, ऊर्जाहीन हो (वीर्य से रहित हो)।

बुद्धिमानों की संगति में रहो।

दृढ़ ध्यानियों के साथ रहो,

एकांत में रहने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहो।

उनकी ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है।

---

101. विश्वास की कमी
सावत्थी में
[बुद्ध:] “भिक्षुओं, तत्व (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीनों के साथ एकत्रित होते हैं, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, जो कर्म से नहीं डरते, वे कर्म से नहीं डरते, अज्ञानी अज्ञानीों के साथ, आलसी आलसीओं के साथ, भ्रमित मन भ्रमितों के साथ, अज्ञानी अज्ञानियों के साथ, नासमझ आलसीओं के साथ, अज्ञानी आलसीओं के साथ, अज्ञानी भ्रमित मन के साथ, और अज्ञानी अज्ञानी के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

“भिक्षुओं, तत्व (धार्मिक) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। आस्थावान आस्थावानों के साथ एकत्रित होते हैं, लज्जावान लज्जावानों के साथ, कर्म से डरने वाले कर्म से डरने वालों के साथ, विद्वान विद्वानों के साथ, ऊर्जावान ऊर्जावानों के साथ, ध्यानमग्न सतिमा ध्यानमग्नों के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी यही स्थिति है।"

---

102. विश्वास की कमी वाले लोगों में निहित (असद्ध-मूलक सं. अश्रद्ध-मूलक)
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीन लोगों के साथ, निर्लज्ज लोगों के साथ, मूर्ख लोगों के साथ। जिनमें आस्था होती है, वे आस्थावान लोगों के साथ, लज्जावान लोगों के साथ, और बुद्धिमान लोगों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले चार भागों में "निर्लज्ज" और "लज्जावान" के स्थान पर दूसरे स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं:)

(ii) कुकर्म से निर्भीक, कुकर्म से भयभीत;...

(iii) अनपढ़, विद्वान; ...

(iv) आलसी, ऊर्जावान;...

(v) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

103. बेशर्म में निहित (अहिरिका-मुलाका)
(i)
भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, कुकर्म से निर्भय कुकर्म से, मूर्ख मूर्खों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग कुकर्म से भयभीत लोगों के साथ, बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। [अतीत में ऐसा था; भविष्य में ऐसा होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।]

(इस सूत्र के अगले तीन भागों में, दूसरे स्थान पर "कुकर्म से निर्भय" और "कुकर्म से भयभीत" के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) अनपढ़, विद्वान;...

(iii) आलसी, ऊर्जावान;...

(iv) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

104. जो लोग अन्याय से भयभीत नहीं होते (अनोत्तप्पा-मूलक)

(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत नहीं होते, वे कुकर्म से भयभीत न होने वालों के साथ, अज्ञानी अज्ञानी के साथ, और मूर्ख मूर्ख के साथ एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत होते हैं, वे कुकर्म से भयभीत होने वालों के साथ, विद्वान विद्वान के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमान के साथ एकजुट होते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले दो भागों में "अज्ञानी" और "विद्वान" के स्थान पर निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) आलसी, ऊर्जावान;

(iii) भ्रमित, ध्यानमग्न (सतिमा)।

---

105. अनसीखे में निहित (अप्पासुता-मुलाका)
(i)

भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अज्ञानी अज्ञानी से, आलसी आलसी से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ऊर्जावान ऊर्जावान से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(ii)

अज्ञानी अज्ञानी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ध्यानमग्न ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

---

106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
भिक्षुओं, हे तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। आलसी आलसी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। ऊर्जावान ऊर्जावान से, ध्यानमग्न सतीम ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(iii) कम्मा खंड के पाठ्यक्रम (कम्मापथवग्गो सं. कर्म-पथ-वर्ग)
107. समाधि में न होना (असमहिता)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती वे आस्थाहीन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, निर्लज्ज लोग निर्लज्ज लोगों के साथ, जो कुकर्म से नहीं डरते वे कुकर्म से नहीं डरते, जो समाधि अवस्था में नहीं होते वे समाधि अवस्था में नहीं होते, और जो अज्ञानी होते हैं वे अज्ञानी लोगों के साथ

एकत्रित और एकजुट होते हैं। आस्थावान लोग आस्थावान लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, लज्जा का भाव रखने वाले लोग लज्जा का भाव रखने वालों के साथ, कुकर्म से डरने वाले लोग कुकर्म से डरने वालों के साथ, समाधि अवस्था में रहने वाले समाधि अवस्था में रहने वालों के साथ, और बुद्धिमान लोग बुद्धिमानों के साथ।"

---

108. अनैतिक
(ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, सिवाय इसके कि "समाधि अवस्था में न होने वाली अवस्था" और "समाधि अवस्था में होने वाली अवस्था" को क्रमशः "अनैतिक" और "सद्‌गुणी" से प्रतिस्थापित किया गया है।)

---

109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपाद सं. पंच-शिक्षा-पाद)
श्रावस्ती में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का नाश करने वाले जीवन का नाश करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दी हुई वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करते हैं,

वे उन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं जो ऐसा करते हैं। जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल) से दूर रहने वाले जीवन ...

---

110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दिए वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो फूट डालने वाली बातें करते हैं... जो कठोर बातें करते हैं... जो व्यर्थ की बातों में लिप्त होते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं... बिना दिए वस्तुएँ लेने से... यौन दुराचार से... झूठे वाणी से... फूट डालने वाली वाणी से... कठोर वाणी से... व्यर्थ की बातों से दूर रहते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; वे ... (जैसा कि ऊपर 110 में जारी है:) ... जो लोभी हैं ... जो द्वेष रखते हैं ... गलत दृष्टिकोण वाले हैं, वे गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं ... (जैसा कि ऊपर है) जो लोभी नहीं हैं ... द्वेष रहित हैं ... सही दृष्टिकोण वाले हैं, वे सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

112. अष्टांगिक मार्ग (अत्थांगिक संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; गलत इरादे वाले... गलत वाणी वाले... गलत कर्म करने वाले... गलत आजीविका वाले... गलत प्रयास करने वाले... गलत ध्यान (सती) वाले... गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; सही इरादे वाले... सही वाणी वाले... सही कर्म करने वाले... सही आजीविका वाले... सही प्रयास करने वाले... सही ध्यान (सती) वाले... सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।"

---

113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए 8 + 2) गलत समाधि अवस्था ... गलत ज्ञान ... गलत मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) गलत मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए अनुसार) सही समाधि अवस्था ... सही ज्ञान ... सही मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) सही मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।" 246

(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (कैटुथावागो संस। कैटुरथा-वर्ग)

114. चार तत्व (चतुधातु)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु)। ये चार तत्व हैं।" 247

---

115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'पृथ्वी तत्व (धातु) के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है? जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व के संदर्भ में सांसारिक सुख

(असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?' "तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: पृथ्वी तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख (सुख) और सोमनस्सा: यही पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख है। पृथ्वी तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही पृथ्वी तत्व में खतरा है। पृथ्वी तत्व के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही पृथ्वी तत्व से मुक्ति है।" 248

"जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद: यही वायु तत्व में सांसारिक सुख है। वायु तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वायु तत्व में खतरा है। वायु तत्व के प्रति इच्छा और कामवासना का त्याग करना ही वायु तत्व से मुक्ति है।" 249

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया।" लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'"

---

116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में खतरे की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में खतरा कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व से मुक्ति की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख की खोज में निकला..." जल तत्व से मुक्ति, ऊष्मा तत्व से मुक्ति, वायु तत्व से मुक्ति का खतरा। वायु तत्व से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"अब तक, भिक्षुओं, क्योंकि मैं इन चार तत्वों (जैसा कि ऊपर बताया गया है) के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था... देवों और मनुष्यों के मामले में।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

117. यदि कोई (नोसेडम) नहीं होता
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व में सांसारिक भोग होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि पृथ्वी तत्व में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा (निब्बिद) न करते; परन्तु पृथ्वी तत्व में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि पृथ्वी तत्व से कोई मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि जल तत्व में सांसारिक भोग न होता... ऊष्मा तत्व में... वायु तत्व में, तो प्राणी उससे मोहित न होते... परन्तु वायु तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, संकट को संकट के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं।" 251

---

118. विशेष रूप से पीड़ित (एकांतदुक्खा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व (धातु) केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह वायु तत्व केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि वायु तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा (निब्बिद) नहीं होती। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह वायु तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा नहीं होती। परन्तु क्योंकि वायु तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

---

119. डिलाईट (अभिनन्द बिना अभिनन्दन)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो पृथ्वी तत्व (धातु) में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो पृथ्वी तत्व... वायु तत्व में आनंद नहीं लेता, वह दुख में आनंद नहीं लेता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं लेता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

120. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)

सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। 253 जल तत्व (धातु) ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है।

पृथ्वी तत्व ... वायु तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व।

जो तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीके को यथार्थ रूप से समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन चार तत्वों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख, संकट और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी नहीं मानता...

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के उद्भव और अपव्यय, सांसारिक भोग, भय और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी और ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।

---

123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो पृथ्वी तत्व (धातु), उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

अध्याय 4: खोजे जाने योग्य आरंभ के बिना (अनामतग्गसमुत्त) {संयुत्त-15}
(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
124. घास और लकड़ी (तिनकत्था सं. तृण-काष्ठा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। 254 अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति इस जंबूद्वीप में जो भी घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्ते हैं, उन्हें काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें नीचे रखते हुए (प्रत्येक के लिए) कहे: 'यह मेरी माता है, यह मेरी माता की माता है।' उस व्यक्ति की माता-पिता और दादी-नानी का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी इस जंबूद्वीप की घास, लकड़ी, शाखाएँ और पत्तियाँ सब समाप्त हो जाएँगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, इतने लंबे समय से आपने दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना, उनके प्रति वैराग्य होना और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

125. पृथ्वी (पथवी सं. पृथ्वी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई मनुष्य इस विशाल पृथ्वी को बेर के बीज के आकार की मिट्टी की गेंदों में तोड़कर नीचे रख दे और प्रत्येक गेंद के लिए कहे: 'यह मेरे पिता हैं, यह मेरे दादा हैं।' उस व्यक्ति के पूर्वजों और दादाओं का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी यह विशाल पृथ्वी समाप्त हो जाएगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा का भाव रखना, उनके प्रति वैराग्य का भाव रखना और उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

126. आँसू (अस्सु संस्कृत अशरु)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन सा अधिक है: इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - यह या चारों महामहासागरों का जल?" 255

"हे पूज्यवर, जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझते हैं, इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - केवल यही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबे मार्ग पर विचरण करते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक माता की मृत्यु का अनुभव किया है; अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक पिता की मृत्यु... भाई की मृत्यु... बहन की मृत्यु... पुत्र की मृत्यु... पुत्री की मृत्यु... रिश्तेदारों की हानि... धन की हानि... बीमारी से हानि का अनुभव किया है; जैसा कि आपने अनुभव किया है, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोने-धोने से, आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं की धारा चारों महामहासागरों के जल से भी अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है) है... सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।

---

127. माँ का दूध (खिरा बिना क्षीरा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में क्या श्रेष्ठ है: वह माता का दूध जो आपने इस दीर्घकालीन यात्रा में पान किया है - यह या चारों महामहासागरों का जल?"

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार, इस दीर्घकालीन यात्रा में हमने जो माता का दूध पान किया है - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में आपने जो माता का दूध पिया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से कहीं अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि 124 में है)... इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

128. पर्वत (पब्बाता सं. पर्वत)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय गुरुदेव, एक युग (कप्प/कल्प) कितना लंबा होता है?" 256

"एक युग (कप्प/कल्प) लंबा होता है, भिक्षु। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, आदरणीय गुरुदेव?"

"हाँ, भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक विशाल पत्थर का पर्वत है जो एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंचा है, जिसमें कोई छेद या दरार नहीं है, वह चट्टान का एक ठोस पिंड है। हर सौ वर्ष के अंत में एक मनुष्य उसे कशम के कपड़े से एक बार रगड़ता है। 257 इस प्रयास से वह विशाल पत्थर का पर्वत घिसकर नष्ट हो सकता है, परन्तु युग का अंत नहीं होगा। हे भिक्षु, युग इतना लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सैकड़ों युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाखों युगों में भटक चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

129. सरसों का बीज (सासापा)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, एक युग (कप्प कल्प) कितना लंबा होता है?"

"भिक्षु, एक युग लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष हैं, या इतने सौ वर्ष हैं, या इतने हजार वर्ष हैं, या इतने लाख वर्ष हैं।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, संभव है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक नगर है जिसकी लोहे की दीवारें एक योजन लंबी, एक योजन चौड़ी और एक योजन ऊंची हैं, और वह सरसों के दानों से भरा हुआ है जो चोटी के समान घने हैं। हर सौ वर्ष के अंत में एक व्यक्ति वहां से एक सरसों का दाना निकालता है। इस प्रयास से सरसों के दानों का विशाल ढेर भले ही समाप्त हो जाए, परन्तु युग का अंत न हो। हे भिक्षु, युग इतना ही लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सौ युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाख युगों तक विचरण कर चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

130. शिष्य (सावक सं. श्रावक)
सावत्थी में। [183] तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कितने युग (कल्प/कल्प) बीत चुके हैं?"

"भिक्षुओं, कई युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।" "

परन्तु क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, भिक्षुओं," भगवान (बुद्ध) ने कहा। भिक्षुओं, मान लीजिए कि यहाँ चार शिष्य हैं, जिनमें से प्रत्येक का जीवनकाल सौ वर्ष है, और वे सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, और प्रत्येक दिन उन्हें एक लाख युगों का स्मरण करना है। सौ वर्ष पूरे होने पर जब वे चारों शिष्य, जिनका जीवनकाल सौ वर्ष है, इस जीवन के अंत में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे, तब भी उनके द्वारा स्मरण न किए गए युग शेष रहेंगे। 258 उनका गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

131. गंगा नदी

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तभी एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला, “गुरु गौतम, कितने युग बीत चुके हैं?”

“ब्राह्मण, अनेक युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।” “

परन्तु क्या इसकी कोई उपमा दी जा सकती है, गुरु गौतम?”

“हाँ, संभव है,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। "मान लीजिए, ब्राह्मण, गंगा नदी के उद्गम स्थल और सागर में उसके प्रवेश स्थल के बीच रेत के कण हैं: इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने कण हैं, या इतने सौ कण हैं, या इतने हज़ार कण हैं, या इतने लाख कण हैं। ब्राह्मण, बीते हुए युग तो इससे भी कहीं अधिक हैं। इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, ब्राह्मण, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

132. डंडा

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी अपने तल पर, कभी अपने किनारे पर और कभी अपने शीर्ष पर गिरती है, वैसे ही प्राणी अज्ञान (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों की तरह ही इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 259 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

133. व्यक्ति (पुग्गला)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!" 260

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। यदि कोई उन्हें एकत्रित करे, तो एक व्यक्ति जो अज्ञान (संज्ञान) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकता रहे, वह अपने पीछे वेपुल्ला पर्वत के समान अस्थि-ढेर छोड़ जाएगा, और एकत्रित अस्थि-ढेर नष्ट नहीं होगा। 261 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"एक व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई हड्डियों का ढेर; एक युग (कप्प/कल्प) बीतने पर
पर्वत के समान ऊँचा ढेर बन जाएगा; ऐसा महान ऋषि ने कहा है।

यह इतना विशाल है; जितना
मगध पर्वत श्रृंखला में गिद्ध शिखर के उत्तर में स्थित ऊँचा वेपुल्ला पर्वत।

परन्तु जब कोई सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से (ध्यान में, पस्सति) देखता है; तो वह व्यक्ति, अधिक से अधिक सात बार और विचरण करके; सभी बंधनों को तोड़कर
दुख का अंत करता है।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुर्भाग्यपूर्ण)
134. अभागा (दुग्गता सं. दुर्गति)
एक बार, जब वे सावत्थी में निवास कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यह संसार अनादि है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। जब भी आप किसी को दुर्भाग्य या कष्ट में देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

135. सुखी (सुखिता सं. सुखी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... जब भी आप किसी को सुखी और भाग्यशाली देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

136. तीस भिक्षु (तिम्सामत्ता)
राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन) में, पावा से तीस भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए - सभी वनवासी, भिक्षापान करने वाले, वस्त्रधारी, त्रिगुण वस्त्र धारण करने वाले, फिर भी सभी बंधनों में जकड़े हुए थे। 262 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया:
"पावा से आए ये तीस भिक्षु सभी वनवासी, भिक्षापान करने वाले, वस्त्रधारी, त्रिगुण वस्त्र धारण करने वाले हैं, फिर भी सभी बंधनों में जकड़े हुए हैं। मैं इन्हें धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाऊँ कि जब वे इन्हीं स्थानों पर बैठे हों, तो अनासक्ति के कारण उनका मन विमुक्त हो जाए।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में कौन सा अधिक श्रेष्ठ है: वह रक्तधारा जो आपने इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए अपने सिर काटे जाने पर बहाई - यह या चारों महामहासागरों का जल?" "हे

पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, वह रक्तधारा जो हमने इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए अपने सिर काटे जाने पर बहाई - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से अधिक श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में भटकते हुए आपने जो रक्त बहाया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। हे भिक्षुओं, आप लंबे समय तक गाय रहे, और जब गाय के रूप में आपका सिर काट दिया गया, तो आपका बहाया गया रक्त चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। लंबे समय तक आप भैंस, भेड़, बकरी, हिरण, मुर्गी और सूअर रहे... लंबे समय तक आप चोर, लुटेरे और व्यभिचारी के रूप में गिरफ्तार हुए, और जब आपका सिर काट दिया गया, तो आपका बहाया गया रक्त चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)... इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। वे भिक्षु प्रसन्न होकर भगवान (बुद्ध) के कथन से आनंदित हुए। और जब यह व्याख्या हो रही थी, पावा के उन तीस भिक्षुओं के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

137-142.माता, पिता, भाई, बहन, बेटा, बेटी (मातु, पितु, भातु, भगिनी, पुत्त, धितु)
मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में जेतवन (जेतवन) में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में रह रहे थे।

वहीं से भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, संसार (पुनर्जन्म का चक्र) का कोई अंत नहीं है, अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) में डूबे और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से बंधे प्राणियों का कोई आरंभ नहीं बताया जा सकता, जो एक जन्म से दूसरे जन्म तक दौड़ते रहते हैं।

भिक्षुओं, इस लंबे पुनर्जन्म के चक्र में आपको ऐसा कोई प्राणी नहीं मिलेगा जो पहले आपकी माता...आपके पिता...आपके भाई...आपकी बहन...आपका पुत्र...आपकी पुत्री न रहा हो।"

इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, पुनर्जन्मों का यह चक्र अंतहीन है, इसका कोई आरंभिक बिंदु नहीं बताया जा सकता। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु नहीं देखा जा सकता। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी
संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापबट्टा सं. वेपुल्ला-पर्वत)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, अतीत में इस वेपुल्ला पर्वत को पचिनवंश कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को तिवर कहा जाता था। तिवरों का जीवनकाल 40,000 वर्ष था। वे चार दिनों में पचिनवंश पर्वत पर चढ़ सकते थे और चार दिनों में उतर सकते थे। उस समय पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत भगवान (बुद्ध) ककुसंध संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य विदुर और संजीव थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (पूर्व बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। भिक्षुओं, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर होते हैं, वे इतने अस्थिर और अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

"[एक अन्य समय में] अतीत में, भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को वंकाका कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को रोहितास कहा जाता था। रोहितासों का जीवनकाल 30,000 वर्ष था। 264 वे तीन दिनों में वंकाका पर्वत पर चढ़ सकते थे और तीन दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कोनागमना, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्यों के नाम भिय्योसा और उत्तरा थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार संबंधी आदतें) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

"[एक और समय पहले], हे भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को सुपस्सा कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को सुप्पिया कहा जाता था। सुप्पियों का जीवनकाल 20,000 वर्ष था। वे दो दिनों में सुपस्सा पर्वत पर चढ़ सकते थे और दो दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कस्सपा, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य तिस्सा और भारद्वाज थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, हे भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार-आदतों) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भिक्षुओं, वर्तमान में इस वेपुल्ला पर्वत को वेपुल्ला कहा जाता है, और वर्तमान में इन लोगों को मगधवासी कहा जाता है। मगधवासियों का जीवनकाल अल्प, सीमित और क्षणभंगुर होता है; जो दीर्घ जीवन जीता है वह सौ वर्ष या उससे थोड़ा अधिक जीता है। मगधवासी एक घंटे में वेपुल्ला पर्वत पर चढ़ते हैं और एक घंटे में उतर जाते हैं। वर्तमान में मैं संसार में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के रूप में अवतरित हुआ हूँ।
मेरे दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलाना हैं, जो एक उत्तम जोड़ी हैं। भिक्षुओं, एक समय आएगा जब इस पर्वत का नाम लुप्त हो जाएगा, जब ये लोग मर जाएंगे, और मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लूंगा। भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आदतें) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार-आदतों) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्यवान होना ही पर्याप्त है, और उनके प्रति उदासीन रहना ही पर्याप्त है। उनसे मुक्त हो जाओ।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"तिवारों ने इसे पचिनवंस कहा; रोहितासों ने वंकाका,
सुप्पिया लोगों ने सुपस्सा और मगध के लोगों ने वेपुल्ला कहा।

"अफ़सोस, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अनित्य हैं; वे उत्पन्न और नष्ट होते हैं।
एक बार उत्पन्न होने पर वे समाप्त हो जाते हैं; उनका निवारण आनंददायक है।" 265

अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
144. संतोष
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह वस्त्र के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। 266 यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे वस्त्र मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है। 267

"भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहता है... और यदि उसे ये सब मिल जाएं तो वह उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनका उपयोग करता है, उनमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है।"

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहेंगे, और किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करेंगे, और वस्त्र की प्राप्ति के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होंगे। यदि हमें वस्त्र न मिले तो हम विचलित नहीं होंगे, और यदि हमें वस्त्र मिल जाए तो हम उसका उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।

' 'हम किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहेंगे... और यदि हमें वे प्राप्त हों तो हम उनका उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से शिक्षा दूंगा। 268 शिक्षा प्राप्त करके, तुम तदनुसार अभ्यास करो।" 269

---

145. गलत काम करने से बेखौफ (अनोट्टापी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा को प्रणाम किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"मित्र, ऐसा कहा जाता है कि जो उत्साही नहीं है और जो कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है; परन्तु जो उत्साही है और कुकर्म से भयभीत है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य है, निर्वाण के योग्य है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य है। 270 यह किस प्रकार सच है, मित्र?"

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न नहीं करता:
'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए बुरे और हानिकारक भावों का त्याग न किया जाए, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत) भाव उत्पन्न न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही नहीं होता। 271

"और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत नहीं होता? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर भयभीत नहीं होता: 'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है' ... न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इस प्रकार वह कुकर्म से भयभीत नहीं होता।

"मित्र, इसी प्रकार जो उत्साही नहीं है और कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है।

" "और मित्र, उत्साही कैसे होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न करता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक बुरे भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'... और यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही होता है।

" "और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु इस विचार से भयभीत हो जाता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; और इस विचार से: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इसलिए वह कुकर्म से डरता है।

"हे मित्र, इसी प्रकार जो व्यक्ति कुकर्म से डरता है और उसके प्रति सजग रहता है, वह ज्ञान प्राप्त करने, निर्वाण प्राप्त करने और बंधन से अद्वितीय मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

146. चंद्रमा के समान (चंद्रउपमा संस्कृत: चंद्र-उपमा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाना चाहिए - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। 272 जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी पुराने कुएँ, खाई या नदी के किनारे को देखते समय अपने शरीर और मन को समेट लेता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास जाना चाहिए।

" "भिक्षुओं, कस्सपा परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाते हैं - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। भिक्षुओं, आपके विचार में किस प्रकार का भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा।" उससे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

फिर भगवान (बुद्ध) ने अंतरिक्ष में अपना हाथ हिलाया और कहा:

"भिक्षुओं, जिस प्रकार यह हाथ अंतरिक्ष में नहीं फंसता, न ही उससे बंधा रहता है, न ही उससे बंधता है, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' 274 वह दूसरों के लाभों पर उतना ही प्रसन्न और आनंदित होता है जितना अपने लाभों पर। ऐसा भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है।

"भिक्षुओं, जब कस्सपा परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' वह दूसरों की उपलब्धियों पर उतना ही प्रसन्न और प्रसन्न होता है जितना अपनी उपलब्धियों पर।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देना अशुद्ध कैसे है और धम्म का उपदेश देना शुद्ध कैसे है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है:
'हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर, वे धम्म में विश्वास प्राप्त करें! विश्वास प्राप्त करके, वे अपना विश्वास मुझ पर प्रकट करें!' 275 ऐसे भिक्षु द्वारा धम्म का उपदेश देना अशुद्ध है।"

लेकिन एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है। हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' इस प्रकार वह धम्म की अंतर्निहित उत्कृष्टता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देता है; वह करुणा और सहानुभूति से, कोमल चिंता से दूसरों को धम्म का उपदेश देता है। 276 ऐसे भिक्षु का धम्म का उपदेश शुद्ध है।

भिक्षुओं, कस्सपा दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) की अच्छी व्याख्या की गई है... हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' वह धम्म की अंतर्निहित श्रेष्ठता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं; वे करुणा और सहानुभूति से, कोमल प्रेम से दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं।

"भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।"

---

147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य है, और किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य नहीं है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक भिक्षु को परिवारों के पास इस विचार के साथ जाना चाहिए: 'वे मुझे दान दें, संकोच न करें! वे मुझे भरपूर दान दें, थोड़ा नहीं! वे मुझे उत्तम वस्तुएँ दान करें, घटिया वस्तुएँ नहीं! वे मुझे शीघ्र दान दें, विलंब न करें! वे मुझे विचारपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। यदि वे अधिक के बजाय थोड़ा दान देते हैं... यदि वे उत्तम वस्तुओं के बजाय पुरानी वस्तुओं का दान देते हैं... यदि वे शीघ्रता के बजाय विलंब से दान देते हैं... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं, एक भिक्षु परिवारों के पास इस विचार से जा सकता है:
'जब मैं दूसरों के परिवारों के बीच होता हूँ, तो मैं यह कैसे सोच सकता हूँ: "वे मुझे दान दें, संकोच न करें! ... वे मुझे आदरपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!"?' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख नहीं होता; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव नहीं होता। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य है।

भिक्षुओं, कश्यप परिवारों के पास इसी विचार के साथ जाते हैं... इसलिए यदि वे दान न दें... यदि वे विचारपूर्वक नहीं बल्कि लापरवाही से दान दें, तो उन्हें इससे कोई हानि नहीं होती; उन्हें इससे कोई पीड़ा या अप्रसन्नता नहीं होती।

भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।

---

148. पुराना (जिन्ना संस्कृत जीर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, अब तुम बूढ़े हो गए हो, और तुम्हारे ये पुराने चमड़े के वस्त्र तुम्हारे लिए बोझिल होंगे। इसलिए, हे कस्सपा, गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनो, निमंत्रण पर भोजन ग्रहण करो और मेरे निकट निवास करो।" 278

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से वनवासी रहा हूँ और वनवास की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं भिक्षाभोजन करता रहा हूँ और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं चिथड़े वस्त्र पहनता रहा हूँ और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं तीन वस्त्र धारण करता रहा हूँ और तीन वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मेरी इच्छाएँ कम रही हैं और इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं संतुष्ट रहा हूँ और संतोष की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं एकांत में रहा हूँ और एकांत की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं समाज से विरक्त रहा हूँ और समाज से विरक्त रहने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं ऊर्जावान रहा हूँ और ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।" 279

"हे कस्सपा, आप किस लाभ को ध्यान में रखते हुए इतने समय से वनवासी रहे हैं... (जैसा ऊपर वर्णित है)... और ऊर्जा उत्पन्न करने की प्रशंसा करते रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, दो लाभों पर विचार करते हुए। मैं अपने लिए इसी जीवन में एक सुखमय निवास देखता हूँ, और आने वाली पीढ़ियों के लिए करुणा रखता हूँ, यह सोचते हुए कि 'आने वाली पीढ़ियाँ मेरे उदाहरण का अनुसरण करें!' 280 क्योंकि जब वे सुनेंगे, 'बुद्ध के प्रबुद्ध शिष्य लंबे समय तक वनवासी रहे और वनवास की प्रशंसा करते रहे... वे ऊर्जावान थे और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा करते रहे,' तो वे तदनुसार अभ्यास करेंगे, और इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। हे पूज्यवर, इन दो लाभों पर विचार करते हुए, मैं लंबे समय से वनवासी रहा हूँ... और ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।"

"शाबाश, शाबाश, कस्सपा! तुम संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहे हो। इसलिए, कस्सपा, पुराने चमड़े के वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए वन में निवास करो।"

---

149. निर्देश (1) (ओवादा1)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।" 281

“हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। 28 वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। हे पूज्यवर, मैंने यहाँ आनंद के शिष्य भंडा नामक भिक्षु और अनुराधा के शिष्य अभिंजिका नामक भिक्षु को अपने ज्ञान के विषय में आपस में प्रतिस्पर्धा करते हुए देखा, वे कह रहे थे:
'आओ, भिक्षु, कौन अधिक बोल सकता है? कौन बेहतर बोल सकता है? कौन अधिक देर तक बोल सकता है?'”

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा:
“आओ, भिक्षु, भंडा और अभिंजिका को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।”

“जी, हे पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया, और वह उन भिक्षुओं के पास गया और उनसे कहा: “गुरु पूज्य भिक्षुओं को बुला रहे हैं।”

“जी, मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा कर रहे हो, कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है?”

“जी, पूज्यवर।”

“क्या तुमने मुझे कभी धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हुए देखा है: ‘आओ, भिक्षुओं, अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा करो और देखो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है’?”

“नहीं, पूज्यवर।”

“यदि तुमने मुझे इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हुए कभी नहीं देखा, तो तुम जैसे नासमझों को क्या पता है कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर तुम आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन कर रहे हो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है?”

तब उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: “आदरणीय गुरुदेव, हमने पाप किया है - हम इतने नासमझ, इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर हमने आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन किया कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है। आदरणीय गुरुदेव, भविष्य में संयम के लिए हमारे इस पाप को क्षमा करें।”

"निःसंदेह, भिक्षुओं, आपने एक अपराध किया है - आप कितने बचकाने (नासमझ), कितने भ्रमित और कितने अयोग्य) थे - कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा प्राप्त करने के बाद भी आप अपने ज्ञान के मामले में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे... लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानते हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध मानता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तो यही गुरु के अनुशासन में वृद्धि है।"

150.निर्देश (2) (ओवादा2)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ, या तुम दो।"

आदरणीय महोदय, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। आदरणीय महोदय, 283 जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है, वृद्धि नहीं। जैसे कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि घटती जाती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न रखता हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है। अवस्थाएँ, विकास नहीं।

"हे आदरणीय महोदय, आस्थाहीन व्यक्ति के लिए हानि का मामला है। लज्जाहीन व्यक्ति... जो कुकर्म से भयभीत नहीं होता... जो आलसी... नासमझ... क्रोधित... द्वेषपूर्ण होता है: उसके लिए हानि का मामला है। जब कोई भिक्षु प्रशिक्षक नहीं होते, तब भी हानि का मामला है।"

आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में, चाहे दिन हो या रात,

चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि बढ़ती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं।

आदरणीय महोदय, विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए यह हानि का मामला नहीं है। लज्जा रखने वाले व्यक्ति के लिए... जो पाप से भयभीत है... ऊर्जावान है... बुद्धिमान है... क्रोध रहित है... द्वेष रहित है: यह हानि का मामला नहीं है। जब भिक्षुओं में से कुछ गुरु भी हों, तो उसे कोई हानि नहीं होगी। "

बहुत खूब, कस्सपा!"

(बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के पूरे कथन को दोहराया।)

---

151. निर्देश (3) (ओवादा3)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।"

"हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देना कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और उपदेश को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते।"

"ठीक इसी प्रकार, कस्सपा, अतीत में वरिष्ठ भिक्षु वनवासी थे और वनवास की प्रशंसा करते थे; वे भिक्षाभोजन करते थे और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करते थे; वे चिथड़े वस्त्र पहनते थे और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करते थे; वे त्रिव वस्त्र धारण करते थे और त्रिव वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करते थे; उनकी इच्छाएँ कम थीं और वे इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करते थे; वे संतुष्ट थे और वे संतोष की प्रशंसा करते थे; वे एकांतवासी थे और वे एकांत की प्रशंसा करते थे; वे समाज से विरक्त थे और वे समाज से विरक्तता की प्रशंसा करते थे; वे ऊर्जावान थे और वे ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करते थे।

फिर, जब कोई भिक्षु वनवासी होता था और वनवास की प्रशंसा करता था..." जब वे ऊर्जावान होते और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलते, तो वरिष्ठ भिक्षु उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु साधना में तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ एक आसन है, बैठ जाओ।' तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु वनवासी होता है और वनवास की प्रशंसा में बोलता है... जब वह ऊर्जावान होता है और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलता है, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे तदनुसार अभ्यास करते, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होता।

"परन्तु अब, कस्सपा, वरिष्ठ भिक्षु वनवासी नहीं रहे और वनवास की प्रशंसा नहीं करते... वे ऊर्जावान नहीं रहे और वीर शक्ति (वीर्य) जगाने की प्रशंसा नहीं करते। अब वरिष्ठ भिक्षु उस भिक्षु को अपने आसन पर आमंत्रित करते हैं जो सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है, जो वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता है, और कहते हैं: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों की संगति के लिए तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ आसन है, बैठो।'" तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु प्रसिद्ध और विख्यात हो जाता है, जिसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे अपने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे इसी प्रकार अभ्यास करते हैं, और यही उनके लिए लंबे समय तक हानि और कष्ट का कारण बनता है।

"यदि, कस्सपा, सही ढंग से बोलते हुए यह कह सकता है: 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है; पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है,' 284 तो ठीक इसी प्रकार यह कहना उचित है।"

---

152. झाना (आत्म-अवशोषित ट्रान्स) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (झानाभिन्न संस। ध्यान-अभि-ज्ञान)
(महत्वपूर्ण: नौ झाना [ध्यानसमाधि] अवस्थाएं और छह दिव्य-ज्ञान(अभिन्न)\जादुई शक्तियां)

(1) पहला झाना (सांस ध्यान समाधि 1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(2) द्वितीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 2)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) से युक्त है, चिंतन और परीक्षण से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(3) तृतीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 3)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते हुए भी, समभाव में, ध्यान (सतिमा) करते हुए और पूर्णतः संबोध (संपजनो) करते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता हूँ; मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, ध्यानमग्न और सुखी है।' कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, तृतीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(4) चतुर्थ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 4)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख का त्याग करते हुए, और पहले से ही सुख और दुःख के लुप्त होते हुए, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) की शुद्धि को समाहित करता है।" कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चौथे ध्यान में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(5) पाँचवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 5)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, रूप की अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विभिन्न अनुभूतियों में विलीन न होकर, यह जानकर कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैं अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(6) छठा ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 6)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्ण रूप से परे जाकर, यह जानकर कि 'चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) अनंत है', मैं अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चेतना की अनंतता की क्षमता में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(7) सातवां ध्यान (संस्कृत)ध्यान समाधि 7)
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चेतना की अनंतता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शून्यता की शक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(8) आठवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 8)
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(9) नौवां ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 9)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी अपनी इच्छा अनुसार, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश करता है और निवास करता है।"

छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियाँ

1. जादू का दिव्य ज्ञान (इद्धि और रिद्धि)

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ; मैं प्रकट और लुप्त हो जाता हूँ; मैं दीवार, प्राचीर, पर्वत को अंतरिक्ष की तरह पार कर जाता हूँ; मैं पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता और बाहर निकलता हूँ जैसे वह जल हो; मैं जल पर बिना डूबे ऐसे चलता हूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर मैं पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता हूँ; मैं अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहलाता हूँ; मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

2. दिव्य श्रवण

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार मेरी इच्छा है कि मैं शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकूँ, चाहे वो दिव्य हों या मानवीय, दूर की हों या पास की। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकते हैं।

3. दूसरों के मन को जानना:
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझता हूँ। मैं राग से ग्रस्त मन को राग से ग्रस्त मन के रूप में, राग रहित मन को राग रहित मन के रूप में, दोष से ग्रस्त मन को दोष रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह रहित मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, पार करने योग्य मन को पार करने योग्य और पार न करने योग्य मन को पार न करने योग्य मन के रूप में, और समाधि अवस्था में स्थित मन को भी उसी रूप में समझता हूँ।" समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर ही माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त ही माना जाता है। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझते हैं।

4. पूर्व जन्मों का ज्ञान
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के दौरान: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मैंने कहीं और पुनर्जन्म लिया, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से दूर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करते हैं।

5. दिव्य दृष्टि
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मैं दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, (ध्यान में, पस्सतो) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

6. मुक्ति का ज्ञान (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)
"भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता हूँ, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता हूँ।" 285 कस्सपा भी विकारों के नाश (खयाल) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करता है।

---

153. भिक्षुणियों का निवास स्थान (उपासया)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य महाकस्सपा के पास गए और कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।" 286

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

दूसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।"

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "आओ, पूज्य कस्सपा, हम भिक्षुणियों के आश्रम चलें।"

तब, सुबह पूज्य महाकस्सपा ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ भिक्षुणियों के आश्रम गए। वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियाँ पूज्य महाकस्सपा के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। जब वे वहाँ बैठी थीं, पूज्य महाकस्सपा ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुणियों को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

तब भिक्षुणी थुल्लतिस्सा नाराज़ होकर इस प्रकार अपनी नाराज़गी व्यक्त करने लगीं: "महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात कैसे कर सकते हैं? महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात करना तो ऐसा ही है जैसे कोई सुई बेचने वाला सुई बनाने वाले को सुई बेच दे!" पूज्य

महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"हे मित्र आनंद, क्या मैं सुई बेचने वाला हूँ और आप सुई बनाने वाले, या मैं सुई बनाने वाला हूँ और आप सुई बेचने वाले?"

"धैर्य रखिए, पूज्य कस्सपा, स्त्रियाँ बचकानी (नासमझ) होती हैं।" 289

"रुको, मित्र आनंद! संघ को तुम्हारे बारे में और पूछताछ करने का अवसर मत दो। 290 हे मित्र आनंद, क्या तुम यह सोचते हो कि क्या भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष तुम्हें आगे लाकर कहा था: 'भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। आनंद भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे मित्र, मैं ही वह व्यक्ति था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, मैं जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... कस्सपा भी, जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।'

(यही आदान-प्रदान शेष ध्यान संबंधी उपलब्धियों और छह दिव्य ज्ञान (अभिन)/जादुई शक्तियों के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि पिछले सूत्र [2.152] में है।)

"हे मित्र, मैं ही वह था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से अनुभव किया है। कस्सपा भी विकारों के नाश (करश) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे उसने स्वयं दिव्य ज्ञान से अनुभव किया है।'

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 291

परन्तु भिक्षुणी थुलतस्सा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं। 292

---

154. वस्त्र (सिवारा)
एक बार पूज्य महाकस्सपा राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ दक्षिणागिरि में भ्रमण कर रहे थे। 293 उस समय पूज्य आनंद के तीस शिष्य, जिनमें से अधिकतर युवा थे, ने प्रशिक्षण त्याग दिया था और सांसारिक जीवन में लौट गए थे।

जब पूज्य आनंद ने दक्षिणागिरि में अपने इच्छित समय तक भ्रमण कर लिया, तो वे राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) लौट आए। वह पूज्य महाकस्सपा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य महाकस्सपा ने उनसे कहा, “मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम किन कारणों से बनाया कि भिक्षुओं को परिवारों के साथ तीन से अधिक के समूह में भोजन नहीं करना चाहिए?” 294

“हे पूज्य महाकस्सपा, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम तीन कारणों से बनाया: दुराचारी व्यक्तियों को रोकने और सुचारु भिक्षुओं की सुविधा के लिए, [इस उद्देश्य से कि] 'बुरे इरादों वाले लोग गुट बनाकर संघ में फूट न डालें!'; और परिवारों के प्रति सहानुभूति के कारण। 295 हे पूज्य महाकस्सपा, इन्हीं तीन कारणों से भगवान (बुद्ध) ने यह नियम बनाया।”

"तो फिर, हे मित्र आनंद, तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ क्यों भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं, अत्यधिक भोजन करते हैं और जागृति के प्रति समर्पित नहीं हैं? ऐसा लगता है मानो तुम फसलों को रौंदते हुए भटक रहे हो; ऐसा लगता है मानो तुम परिवारों को नष्ट करते हुए भटक रहे हो। हे मित्र आनंद, तुम्हारा दल बिखर रहा है, तुम्हारे युवा अनुयायी तुमसे दूर होते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

"मेरे सिर पर सफेद बाल उग रहे हैं। आदरणीय कस्सपा। क्या हम आदरणीय महाकस्सपा द्वारा युवक कहे जाने से बच नहीं सकते?" 296 [219]

"हे मित्र आनंद, यह केवल इसलिए है क्योंकि तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं... लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

भिक्षुणी थुलनंदा ने सुना: 297 "महाकस्सपा ने विदेह ऋषि, महाकस्सापा, को युवक कहकर उनका अपमान किया है।" तब, इससे नाराज़ होकर, उसने अपनी नाराज़गी इस प्रकार व्यक्त की: "महाकस्सपा, जो पहले एक अन्य संप्रदाय के सदस्य थे, वे विदेहन ऋषि आनंद को एक युवक कहकर उनका अपमान कैसे कर सकते हैं?"

पूज्य महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुलनंदा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"निश्चित रूप से, मित्र आनंद, भिक्षुणी थुलानंद ने वह कथन जल्दबाजी में, बिना सोचे-समझे कहा था। क्योंकि जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से मुझे भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु को स्वीकार करने का स्मरण नहीं है।

"मित्र, अतीत में, जब मैं गृहस्थ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है, दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन जीने वाले के लिए पूर्णतः शुद्ध, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जीना आसान नहीं है, जो पॉलिश किए हुए शंख के समान है। इसलिए मुझे अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करना चाहिए।' कुछ समय बाद मैंने कपड़े के टुकड़ों से एक बाहरी वस्त्र बनवाया; 299 तब, संसार में जो अरहंत थे, उन्हें आदर्श मानकर, मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, भगवा वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया।

"जब मैंने इस प्रकार संन्यास लिया (दीक्षित हुआ), तो मैं एक सड़क पर यात्रा कर रहा था, तभी मैंने भगवान (बुद्ध) को राजगृह और नालंदा के बीच बहुपुत्त मंदिर के पास बैठे हुए देखा। 300 उन्हें देखकर मैंने सोचा:
'यदि मुझे कभी गुरु के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी सौभाग्यशाली (सुगतो) के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी पूर्णतः प्रबुद्ध के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना

चाहूँगा।' तब मैंने वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।' 301

"जब मैंने यह कहा, तो भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'कस्सपा, यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो न जानता हो और न देखता हो, तुम्हारे जैसे एकाग्रचित्त शिष्य से कहे: "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ," तो उसका सिर फट जाएगा। परन्तु कस्सपा, मैं जानता हूँ, "मैं जानता हूँ"; देखता हूँ, मैं कहता हूँ, "मैं देखता हूँ।" 302

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं बड़ों, नवदीक्षितों और मध्यम वर्ग के लोगों के प्रति लज्जा और कुकर्म के भय की तीव्र भावना उत्पन्न करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए:
"जब भी मैं लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) से संबंधित किसी धर्म (मार्ग, नियम) को सुनूँ, तो मैं उसे उत्सुकतापूर्वक सुनूँगा, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगाऊँगा।" 303 तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं आनंद से संबंधित शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का कभी त्याग नहीं करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। 304

"तब, मुझे यह निर्देश देकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और चले गए। [221] हे मित्र, मैंने सात दिनों तक देश का भिक्षाभोजन ऋणी के रूप में खाया, परन्तु आठवें दिन मुझे अंतिम ज्ञान प्राप्त हुआ। 305

"तब, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) सड़क से नीचे उतरे और एक वृक्ष के चरणों में गए। मैंने अपने चिथड़ों के बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) यहाँ बैठें। इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।' भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और मुझसे कहा: 'हे कस्सपा, तुम्हारा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र कोमल है।' - 'आदरणीय महोदय, कृपया दयावश मेरा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र स्वीकार करें।' - 'तो क्या तुम मेरे पुराने चमड़े के वस्त्र पहनोगे?' - 'हाँ, आदरणीय महोदय।' इस प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) को अपना चिथड़े-चिथड़े का बाहरी वस्त्र अर्पित किया और उनसे उनका पुराना, फटा हुआ चमड़ा का वस्त्र ग्रहण किया। 307

"हे मित्र, यदि कोई सही ढंग से किसी के विषय में कह सकता है: 'वह भगवान (बुद्ध) का पुत्र है, उनकी छाती से जन्मा है, उनके मुख से जन्मा है, धम्म से जन्मा है, धम्म द्वारा सृजित है, धम्म का उत्तराधिकारी है, फटे-पुराने चमड़े के वस्त्र धारण करने वाला है,' तो यह बात मेरे विषय में ही सही ढंग से कही जा सकती है। 308

"मित्र, मैं जहाँ तक चाहूँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, [222] एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से युक्त.... (जैसा कि 9 में है)

"मित्र, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हुए।"

"मित्र, यह सोचना उतना ही उचित है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे एक हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 309

परन्तु भिक्षुणी थुलनंदा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं।

---

155. मृत्यु के बाद (परम्मारन)
एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र कस्सपा, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?” 310

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’ ।” “

तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?”

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ ।” [223]

“तो फिर, मित्र, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते?”

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते हैं।'"

"तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद

न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं?" "हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।'"

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह क्यों नहीं कहा है?"

"क्योंकि यह लाभहीन है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है।"

"और फिर, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने क्या कहा है?"

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: ‘यह दुख है,’ ‘यह दुख का कारण है,’ ‘यह दुख का निवारण है,’ और ‘यह दुख निवारण का मार्ग है।’” “

और हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा क्यों कहा है?”

“क्योंकि हे मित्र, यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे वैराग्य, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण प्राप्त होता है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा है।”

---

156. सच्चे धम्म का मिथ्याकरण (सद्धम्मप्पतिरूपक सं. सत्-धर्मप्य-अतिरूपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, इसका क्या कारण है कि पहले प्रशिक्षण के नियम कम थे और अधिक भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते थे, जबकि अब प्रशिक्षण के नियम अधिक हैं और कम भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते हैं?" 311
“यही बात है, कस्सपा। जब प्राणी पतित हो रहे होते हैं और सच्चा धम्म (मार्ग, नियम) लुप्त हो रहा होता है, तब प्रशिक्षण नियम तो अधिक होते हैं, लेकिन अंतिम ज्ञान में स्थापित भिक्षुओं की संख्या कम होती है। कस्सपा, सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए। परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। 312

“जैसे, कस्सपा, सोना तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में नकली सोना उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब नकली सोना उत्पन्न हो जाता है, तब सच्चा सोना लुप्त हो जाता है, वैसे ही सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है।”

"हे कस्सपा, सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), या वायु तत्व (धातु) नहीं है। यहाँ उत्पन्न होने वाले मूर्ख लोग ही सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण हैं।

सच्चा धम्म एक जहाज के डूबने की तरह अचानक लुप्त नहीं हो जाता। 313 हे कस्सपा, पाँच हानिकारक बातें हैं 314 जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे संघ (भाईचारे) के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धाहीन भाव से निवास करते हैं। 315 हे कस्सपा, ये पाँच हानिकारक बातें हैं जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

"हे कस्सपा, पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे संघ के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं। हे कस्सपा, ये पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं।"

अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासंयुत्त सं. लाभ-सत्कार-संयुत्त) {संयुत्त-17}
(i) पहला उप-अध्याय (भयानक)
157. भयानक (दारुना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:
"भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। 316 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

158. हुक (बालिसा)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। मान लीजिए एक मछुआरा गहरे तालाब में चारा लगा हुआ कांटा डालता है, और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। मछुआरे का कांटा निगलने के कारण उस मछली पर विपत्ति और विपत्ति आएगी, और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

'मछुआरा,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान का नाम है। 'चारा लगा हुआ कांटा': यह लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे चारा लगा हुआ कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है, जिस पर विपत्ति और विपत्ति आई है, और दुष्ट उसके साथ जो चाहे कर सकता है।" हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा अत्यंत घृणित, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

---

159. कछुआ (कुम्मा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक समय की बात है, एक झील में कछुओं का एक बड़ा परिवार लंबे समय से रहता था। 317 तब एक कछुए ने दूसरे से कहा: 'प्रिय कछुए, फलाँ-फलाँ क्षेत्र में मत जाना।' लेकिन वह कछुआ उस क्षेत्र में चला गया, और एक शिकारी ने उसे रस्सी वाले भाले से मारा। 318 तब वह कछुआ पहले वाले के पास पहुँचा। जब पहले कछुए ने उसे दूर से आते देखा, तो उसने उससे कहा: 'प्रिय कछुए, मुझे आशा है कि तुम उस क्षेत्र में नहीं गए।' - 'मैं उस क्षेत्र में गया था, प्रिय।' - 'मुझे आशा है कि तुम्हें चोट नहीं लगी होगी, प्रिय।' - 'मुझे चोट नहीं लगी है; लेकिन यह रस्सी लगातार मेरे पीछे-पीछे चल रही है।' - 'हे प्यारे कछुए, सचमुच तुम पर चोट लगी है, सचमुच तुम पर चोट लगी है! तुम्हारे पिता और दादा को भी इसी तरह की रस्सी के कारण विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ा था। अब जाओ, हे प्यारे कछुए, तुम अब हमारे बीच नहीं हो।'

"'शिकारी,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान (मारा) का नाम है। 'रस्सी वाला भाला': यह लाभ, सम्मान और प्रशंसा का नाम है। 'रस्सी': यह आनंद और कामवासना (राग) का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे रस्सी वाले भाले से घायल भिक्षु कहा जाता है, 319 जो विपत्ति और विपत्ति का शिकार हुआ है, और दुष्ट उसके साथ जैसा चाहे कर सकता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक हैं.... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक लंबी बालों वाली बकरी कंटीली झाड़ियों में प्रवेश करती है। वह जगह-जगह फंसती है, जगह-जगह जकड़ी जाती है, जगह-जगह बंध जाती है और जगह-जगह विपत्ति और विपत्ति का सामना करती है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या शहर में प्रवेश करता है। वह जगह-जगह फंसता है, जगह-जगह जकड़ा जाता है, जगह-जगह बंध जाता है और जगह-जगह विपत्ति और विपत्ति का सामना करता है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक भृंग है, जो गोबर खाता है, गोबर से भरा हुआ है, और उसके सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है। इस कारण वह अन्य भृंगों को तुच्छ समझेगी, यह सोचकर: 'मैं गोबर खाने वाली हूं, गोबर से भरी हुई हूं, और मेरे सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है।' इसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या कस्बे में जाता है। वहाँ वह जितना चाहे उतना भोजन करता है, उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है, और उसका भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में होता है। जब वह मठ लौटता है, तो वह भिक्षुओं के एक समूह के सामने अभिमान करता है: 'मैंने जितना चाहा उतना भोजन किया है, मुझे कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया गया है, और मेरा भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में है। मैं वह हूँ जो वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता हूँ, परन्तु इन अन्य भिक्षुओं का पुण्य और प्रभाव कम है, और वे वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं करते।' अत: लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के लालच में डूबे रहने के कारण, वह अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं का तिरस्कार करता है। इससे इस मूर्ख व्यक्ति को लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक चीजें हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

162. वज्रपात (असानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, वज्र किसे गिरेगा? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 320

'वज्र' हे भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं.... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

163. विषैला बाण (दिद्धा)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, विष से सने बाण से किसे भेदना चाहिए? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 3 ? 1

"'बाण,' भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

164. सियार (सिंगाला)
सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्या आपने रात ढलते समय किसी बूढ़े सियार के रोने की आवाज़ सुनी?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"

वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। 322 वह चाहे गुफा में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, वह चाहे खाली कुटिया में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

165. आंधी (वेरम्भा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, आकाश में आंधी के रूप में तेज हवाएं चल रही हैं। 323 यदि कोई पक्षी वहां जाता है, तो आंधी उसे इधर-उधर फेंकती है, और जैसे ही वह आंधी से इधर-उधर फेंका जाता है, उसके पैर एक तरफ, पंख दूसरी तरफ, सिर एक तरफ और शरीर एक तरफ हो जाता है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहां एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और आसक्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित किए बिना, अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित होकर भिक्षा मांगने के लिए किसी गांव या शहर में प्रवेश करता है। वह वहां कम वस्त्रों में सजी महिलाओं को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। कुछ अपना किसी को उसका वस्त्र, किसी को उसका कुंड, किसी को उसका आसन, और किसी को उसकी सुई-पेटी, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी आंधी में उड़ जाता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। भिक्षुओं, मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान के वश में है और शरीर के टूटने से ग्रस्त है, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मानहीनता से ग्रस्त है और दुख की अवस्था में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान और मानहीनता दोनों से ग्रस्त है और शरीर के टूटने से, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"चाहे उसे सम्मान से नवाजा जाए; अपमानित किया जाए, या दोनों ही दिए जाएं,
उसकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था अविचलित रहती है; क्योंकि वह असीम अवस्था में निवास करता है। 324

जब वह दृढ़ता से ध्यान करता है; सूक्ष्म दृष्टि वाला अंतर्दृष्टि-द्रष्टा (विपस्सकम),
आसक्ति के नाश में आनंदित होता है; उसे वास्तव में श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।" 325

(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
167. गोल्डन बाउल (सुवन्नापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के कटोरे में पिसी हुई चांदी के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर

झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के चूर्ण से भरे चांदी के कटोरे के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

169 (10) सुवन्ननिक्खा, आदि।
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: यह पूजनीय व्यक्ति एक सुवन्ननिक्ख के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... सौ सुवन्ननिक्खों के लिए भी नहीं... एक सिंगिनीक्ख के लिए भी नहीं... सौ सिंगिनीक्खों के लिए भी नहीं 326... सोने से भरी पृथ्वी के लिए भी नहीं... किसी भी भौतिक पुरस्कार के लिए भी नहीं... अपने जीवन के लिए भी नहीं... इस देश की सबसे सुंदर कन्या के लिए भी नहीं। 327 फिर भी कुछ समय बाद मैं उसे देखता हूँ, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त होकर जानबूझकर झूठ बोल रहा है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)
170. एक महिला (मातुगामा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही एकांत में स्त्री मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

171. सबसे खूबसूरत लड़की (कल्याणी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही देश की सबसे सुंदर कन्या, जब कोई उसके साथ एकांत में हो, तो मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकास सं. एक-पुत्र)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपने प्रियतम पुत्र से उचित विनती करते हुए, उससे इस प्रकार विनती कर सकती है: 'प्रिय, तुम्हें चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक के समान बनना चाहिए' क्योंकि यही मेरे गृहस्थ पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक। 328 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरे भिक्षु पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना। 'प्रिय, जब तक तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तक तुम्हें लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त न हो!'

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु (साधु) को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा हो, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... इसलिए आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

173. इकलौती पुत्री (एकाधितु)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपनी इकलौती प्रिय पुत्री से उचित विनती करते हुए इस प्रकार कह सकती है: 'प्रिय, तुम्हें गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी गृहस्थ महिला शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया। 329 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें भिक्षुणियों खेमा और उप्पलावन्ना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी भिक्षुणियों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् खेमा और उप्पलावन्ना। 'प्रिय, जब तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तुम लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त कर सकती हो और " तुम पर प्रशंसा न आए!"

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षुणी को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंची है, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद्), खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते: 330 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो सांसारिक सुख, खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करो और लीन रहो।

---

175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो उत्पत्ति और अपतटीयता, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के मामले में बचाव को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)।

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा, इसके उद्गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)। 331

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

177. त्वचा (चावी)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए सीधे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

178. रस्सी (राज्जू)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं। हड्डी को चीरकर वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बलवान व्यक्ति किसी के पैर को घोड़े के बालों की तनी हुई रस्सी से लपेटकर कसकर खींचे। यह पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ जाएगी। हड्डी को चीरकर वह मज्जा तक पहुँच जाएगी। उसी प्रकार, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा बाहरी त्वचा को चीरते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 177 में है)। वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

179. भिक्खु (सं. भिक्षु, भिक्षु)
श्रावस्ती पर्व पर भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा तो उस अर्हंत भिक्षु के लिए भी बाधा हैं, जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा,
"हे पूज्यवर, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा उस भिक्षु के लिए भी बाधा क्यों हैं जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं?"

हे आनंद, मैं यह नहीं कहता कि लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन की अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में बाधा हैं। बल्कि मैं यह कहता हूँ कि वे इस जीवन में उन सुखद निवासों की प्राप्ति में बाधा हैं जो सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। 332 हे आनंद, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक, इतने कड़वे, इतने नीच और बंधन से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, हे आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
180. विच्छेद (भिंडी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था, इसलिए उसने संघ में फूट डाल दी। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

181. कुसलमूला जड़
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और ग्रस्त हो गया था कि उसकी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) जड़ कट गई...(जैसा कि 157 में है)।" 333

---

182. लाभकारी (कुसल) प्रकृति (कुशलधम्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) स्वभाव कट गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

183. उज्ज्वल प्रकृति (सुक्कधम्म सं. शुक-धर्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का उज्ज्वल स्वभाव नष्ट हो गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

184. उनके जाने के कुछ ही समय बाद (अचिरापक्कंता)

एक बार, देवदत्त के जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ, देवदत्त के संदर्भ में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 334

"भिक्षुओं, देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे केले का वृक्ष, बांस या सरकंडा अपने ही पतन और विनाश के लिए फल देता है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे खच्चर अपने ही पतन और विनाश के लिए गर्भवती होती है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे केले, बांस और नरकट का फल ही विनाश लाता है;
जैसे खच्चर का भ्रूण नष्ट हो जाता है; वैसे ही सम्मान दुष्ट का नाश कर देता है।"

---

185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचराथसता)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास करते समय, राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा करने जा रहे थे, और उनके लिए पांच सौ बर्तनों में भोजन का प्रसाद भेजा गया था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, देवदत्त की उन्नति, मान-सम्मान और प्रशंसा से ईर्ष्या मत करो। जब तक राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा और पांच सौ घड़ों में भोजन का अर्पण होता रहेगा, तब तक देवदत्त को लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी।

जैसे जंगली कुत्ते की नाक पर पित्त छिड़कने से वह और भी जंगली हो जाता है, 335 वैसे ही, भिक्षुओं, जब तक राजकुमार अजातसत्तु देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा... देवदत्त को लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

186. माता सुत्ता (मातु सं. मातृ)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपनी माता के खातिर भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' 336 फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और अभिमानी था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक हैं; इतने कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा को अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

187. फादर सुत्ता, आदि (पितु आदि)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है, जिसके मन को मैंने अपने मन से ग्रहण किया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपने पिता के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... अपने पिता के लिए भी नहीं... अपने भाई के लिए भी नहीं... अपनी बहन के लिए भी नहीं... अपने बेटे के लिए भी नहीं... अपनी बेटी के लिए भी नहीं... अपनी पत्नी के लिए भी नहीं।' 336 कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था और वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक, कितनी कड़वी, कितनी नीच और बंधन से मुक्ति पाने में कितनी बाधक हैं! इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 7: राहुला (राहुलासयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-18}
(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 337

“पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।”

“राहुल, आपके विचार से आँख क्या है या क्षणिक?” - “क्षणिक, पूज्यवर।” - “क्षणिक क्या है, दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान... नाक... जीभ... शरीर... मन स्थायी हैं या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर है, वह दुखदायी है या सुखदायी?" - "दुखदायी, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"यह देखकर, हे राहुल, ज्ञानी शिष्य को आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। 338 जब वह मुक्त हो जाता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

189. प्रपत्र आदि (रूपा)
... "राहुल, आपके विचार से रूप... (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) स्थायी हैं या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूपों (जैसा कि 188 में है) के प्रति... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

190. चेतना (विन्नाना संस्कृत विज्ञान)
... "राहुल, आपके विचार से नेत्र-चेतना (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानवान शिष्य को नेत्र-चेतना के प्रति घृणा (निब्बिदा) और मन-चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

191. संपर्क (संपहस्सा संस्कृत स्पर्श)
... "राहुल, तुम्हारा क्या विचार है? नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) ... कान संपर्क ... नाक संपर्क ... जीभ संपर्क ... शरीर संपर्क ... मन संपर्क स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) और मन संपर्क के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

192. वेदना
... "हे राहुल, आपका क्या विचार है? क्या नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) ... कान संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... नाक संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... जीभ संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... शरीर संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... "हे

राहुल, इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) और मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

193. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
... "राहुल, आपका क्या विचार है कि रूपों की अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों की अनुभूति (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
... "राहुला, आपके विचार से रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता के प्रति घृणा का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

195. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
... "राहुल, आपके विचार से, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा, स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

196. तत्व (धातु)
... "राहुल, आपके विचार से पृथ्वी तत्व (धातु) (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना तत्व (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" 339 - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को पृथ्वी तत्व के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव होता है ... (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व के प्रति घृणा ... ऊष्मा तत्व के प्रति घृणा ... वायु तत्व के प्रति घृणा ... आकाश तत्व के प्रति घृणा ... चेतना तत्व के प्रति घृणा। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है ... वह समझता है:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

197. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
... "राहुल, आपके विचार से रूप (जैसा कि 188 में है) ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूप (जैसा कि 188 में है) के प्रति घृणा (निबिद्धा) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था (स्वयं) के लिए और कुछ नहीं है'।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)

198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)

(यह सूत्र 188 से सभी मामलों में समान है, सिवाय इसके कि इस सूत्र में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा मांगे।)

---

199. प्रपत्र आदि।

(ये नौ सूत्र 189-197 के समान ही हैं, सिवाय इसके कि इन सूत्रों में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा माँगे।)

---

200. अंतर्निहित-प्रवृत्ति (अनुसया सं. अनुशय)

सावत्थी में। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?" 340

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' 341

"किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"जब व्यक्ति ध्यान में (पासतो) इस प्रकार जानता और देखता है, राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।" [253]

---

201. छुटकारा पाना (अपागता)

सावत्थी में, पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?" 342

"हे राहुल, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।

(इसी प्रकार) "किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार की अनुभूति ... किसी भी प्रकार का संस्कार ... किसी भी प्रकार की चेतना , चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।"

इस प्रकार, राहुल, जब कोई व्यक्ति ध्यान में रहकर जानता और देखता है (पासातो), तब चेतना के साथ इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

अध्याय 8. लक्ख़ाना (लक्खानासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-19}
(i) पहला उपअध्याय (पथमावग्गो सं. प्रथम-वर्ग)
202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे। 343 फिर, सुबह, पूज्य महामोग्गलाना ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर पूज्य लक्खना के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र लक्खना, हम राजगृह में भिक्षा मांगने चलें।"

"ठीक है, मित्र," पूज्य लक्खना ने उत्तर दिया। फिर, जब वे गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो पूज्य महामोग्गलाना ने एक स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। 344 पूज्य लक्खना ने उनसे कहा: "मित्र मोग्गलाना, आपने किस कारण से मुस्कुराहट दिखाई?"

“यह प्रश्न पूछने का समय नहीं है, मित्र लक्खना। यह प्रश्न मुझसे तब पूछना जब हम भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में हों।
”

फिर, जब पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके लौटे, तो वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य लक्खना ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा: “यहाँ, जब पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक विशेष स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। मित्र मोग्गलाना, आपने ऐसा क्यों मुस्कुराया?”

"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक कंकाल को हवा में उड़ते हुए देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उसकी पसलियों पर चोंच मार रहे थे, उसे घायल कर रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। 345 तब मेरे मन में यह विचार आया: 'यह सचमुच अद्भुत है! यह सचमुच आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'" 346

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करके निवास करते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस प्राणी को देखा था, लेकिन मैंने उसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं उसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें हानि और पीड़ा होती।" बहुत समय से।

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में पशु कसाई हुआ करता था। उस कर्म के फलस्वरूप, वह कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगता रहा, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रहा है।" 347

(इस उप-अध्याय के शेष सूत्र पहले उप-अध्याय के समान ही हैं। पाली पाठ की तरह, इसलिए अनुवाद में यहाँ केवल वही वाक्यांश दिए गए हैं जो भिन्न हैं।)

---

203. मांस का टुकड़ा (पेसी बिना पेशी)
... "यहाँ, मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने हवा में मांस का एक टुकड़ा हिलता हुआ देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था।"...(जैसा कि 202 में है)

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में एक पशु कसाई था...(जैसा कि 202 में है)..." 348

---

204. मांस का टुकड़ा (पिंडा)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने मांस का एक टुकड़ा देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक मुर्गी काटने वाला था...."

---

205. घाव वाला आदमी (निचवी)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने घावों वाले एक आदमी को देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक भेड़ कसाई था...."

---

206. तलवार के बाल (एसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तलवारों के बाल हवा में लहरा रहे थे। वे तलवारें लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक सुअर काटने वाला था...."

---

207. भाले के बाल (सत्ती)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर भाले जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे भाले लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रहे थे और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हिरण का शिकारी था...."

---

208. तीरनुमा बाल (उसुलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तीरों के बाल हवा में उड़ रहे थे। वे तीर लगातार ऊपर उठते और उसके शरीर पर लगते रहे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में यातना देने वाला था...." 349

---

209. सुईनुमा बाल (एल) 350 (सुसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर लग रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में घोड़ों का प्रशिक्षक था...."

---

210. सुईनुमा बाल (2) (सुसिलोमा2)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ उसके सिर में घुसकर उसके मुँह से बाहर निकलीं; वे उसके मुँह में घुसकर उसकी छाती से बाहर निकलीं; वे उसकी छाती में घुसकर उसके पेट से बाहर निकलीं; वे उसके पेट में घुसकर उसकी जांघों से बाहर निकलीं; वे उसकी जांघों में घुसकर उसकी पिंडलियों से बाहर निकलीं; वे उसकी पिंडलियों में घुसकर उसके पैरों से बाहर निकलीं, और वह दर्द से चीख रहा था। ...

"वह प्राणी इसी राजगृह में निंदा करने वाला था...." 351

---

211 कुटिया (कुंभंडा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके अंडकोष हवा में तैरते हुए घड़ों की तरह थे। जब वह चलता था, तो उसे अपने अंडकोष कंधों पर उठाने पड़ते थे, और जब वह बैठता था तो अपने अंडकोषों के ऊपर बैठता था। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह का एक भ्रष्ट मजिस्ट्रेट था...." 352

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)

(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को देखा जिसका सिर गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में व्यभिचारी था...." 353

---

213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ, दोनों हाथों से गोबर खाते हुए देखा..."

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह का एक शत्रु ब्राह्मण था। बुद्ध कश्यप के समय में, उसने भिक्षु संघ को भोजन के लिए आमंत्रित किया। चावल के बर्तनों में गोबर भरकर, उसने भिक्षुओं से कहा: 'महोदय, इसमें से जितना चाहो उतना खाओ और बाकी अपने साथ ले जाओ।'..." 354

---

214. घावों वाली महिला (निच्चवित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक छिल चुकी स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में व्यभिचारिणी थी...." 355

---

215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक दुर्गंधयुक्त और बदसूरत स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में एक ज्योतिषी थी...."

---

216. तपती हुई महिला (ओकिलिनी बिना अकुलिनी के)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक स्त्री को देखा, जिसका शरीर झुलस रहा था, झुलस रहा था, कालिख से सना हुआ था, हवा में हिल रहा था, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...." 357

"वह स्त्री कलिहगा के राजा की मुख्य रानी थी, ईर्ष्यालु स्वभाव की, उसने राजा की एक पत्नी पर अंगीठी में भरे कोयले उड़ेल दिए...."

---

217. बिना सिर वाला धड़ (असिसका सं. आशिसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक बिना सिर का धड़ हवा में उड़ता हुआ देखा; उसकी आँखें और मुँह उसकी छाती पर थे। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर उसे नोंच रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हरिका नाम का एक जल्लाद था..."

---

218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह भिक्षु बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षु था...." 358

---

219. दुष्ट भिक्खुनि (पापभिक्खुनि सं. पापभिक्षुनि)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षुणी को हवा में विचरण करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह सुलग रहा था, जबकि वह पीड़ा से चीख रही थी। ..."

"वह भिक्षुणी बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षुणी थी...."

---

220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)

(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक प्रशिक्षु भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। ..."

"वह प्रशिक्षु भिक्षु [पिछले जन्म में] एक दुष्ट प्रशिक्षु भिक्षु था...."

---

221. दुष्ट नौसिखिया भिक्खु (पापसमनेरा सं. पाप-सरमानेरा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक नवोदित भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कुंड, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह नवोदित भिक्षु एक दुष्ट नवोदित भिक्षु था..."

---

222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक ननद को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह भड़क रहा था, और वह पीड़ा से चीख रही थी। मुझे यह विचार आया: 'यह वास्तव में अद्भुत है! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो दृष्टि और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस ननद को देखा था, लेकिन मैंने इसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं इसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और पीड़ा उठानी पड़ती।

वह ननद बुद्ध के समय में एक दुष्ट ननद थी।" कश्यप का उपदेश: उस कर्म के फलस्वरूप कई वर्षों, सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगने के कारण, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रही है।

अध्याय 9: उपमाओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (ओपम्मासंयुत्त सं. उपमा-संयुक्त) {संयुत्त-20}
223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जैसे किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियां छत की चोटी तक जाती हैं और जड़ पर आकर मिलती हैं, और छत के हट जाने पर सभी हट जाती हैं, उसी प्रकार सभी हानिकारक अवस्थाएं अज्ञान में निहित होती हैं और अज्ञान पर आकर मिलती हैं, और अज्ञान के उखड़ जाने पर सभी उखड़ जाती हैं। 359 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सचेत रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

224. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी लेकर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन बड़ा है: मेरे नाखून में ली गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?" "

आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी ली है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, यह नगण्य है, इसकी तुलना नहीं की जा सकती, यह अंश के बराबर भी नहीं है।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो प्राणी मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, वे अल्प हैं। परन्तु जो प्राणी मनुष्यों के बीच जन्म नहीं लेते, वे अधिक संख्या में हैं। 360 अत:, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

225. परिवार (कुला)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना आसान होता है जिनमें स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना आसान होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) का विकास और अभ्यास नहीं किया है। 36 !

"जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना कठिन होता है जिनमें स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना कठिन होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है।

इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि कोई सुबह सौ बर्तन भोजन दान करे, दोपहर में सौ बर्तन भोजन दान करे और शाम को सौ बर्तन भोजन दान करे, और यदि कोई दूसरा व्यक्ति गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के बराबर भी प्रेम और करुणा का भाव विकसित करे, चाहे सुबह हो, दोपहर हो या शाम, तो यह पहले वाले से अधिक फलदायी होगा।

" "इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और संवर्धन करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

227. भाला (सत्ती)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक नुकीला भाला है, और एक आदमी यह सोचकर आता है: 'मैं इस नुकीले भाले को अपने हाथ या मुट्ठी से मोड़कर, इसका आकार बिगाड़कर, इसे घुमाऊंगा।' 364 भिक्षुओं, क्या आपके विचार से उस आदमी के लिए ऐसा करना संभव होगा?"

नहीं, पूज्यवर। इसका क्या कारण है? क्योंकि उस नुकीले भाले को हाथ या मुट्ठी से मोड़ना, उसका आकार बिगाड़ना या उसे घुमाना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और कष्ट ही होगा।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और अभ्यास करता है, उसे अपना वाहन बनाता है, उसे अपना आधार बनाता है, उसे स्थिर करता है, उसमें अभ्यास करता है और उसे पूर्णतः सिद्ध करता है, तो यदि कोई अमानव यह सोचता है कि वह उसके मन को पराजित कर सकता है, तो उसे केवल थकान और कष्ट ही होगा।

अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, उसे अपना वाहन बनाएंगे, उसे अपना आधार बनाएंगे, उसे स्थिर करेंगे, उसमें अभ्यास करेंगे और उसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चारों दिशाओं में चार दृढ़ धनुषधारी, प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धारी खड़े हैं। 365 फिर एक व्यक्ति यह सोचते हुए आता है: 'मैं इन चारों दिशाओं में इन चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों को जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लूंगा और फिर उन्हें वापस ले आऊंगा।' भिक्षुओं, क्या यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है'?"

"आदरणीय महोदय, यदि वह एक धनुर्धारी द्वारा चलाए गए बाण को भी जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ ले और उसे वापस ले आए, तो यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है।' चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों के बारे में तो बात करने की आवश्यकता ही नहीं है!"

भिक्षुओं, वह मनुष्य जिस गति से चलता है, उससे भी अधिक तीव्र सूर्य और चंद्रमा हैं। वह मनुष्य जिस गति से चलता है, सूर्य और चंद्रमा जिस गति से चलते हैं, और सूर्य और चंद्रमा के आगे दौड़ने वाले देवता जिस गति से चलते हैं, जीवन उससे भी अधिक तीव्र गति से नष्ट हो जाता है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

---

229. ड्रम पेग (एनी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक समय पहले दशरहों के पास एक ढोल था जिसे सम्मनर कहते थे। 367 जब सम्मनर में दरार आ गई, तो दशरहों ने उसमें एक और कील ठोक दी। अंततः वह समय आया जब सम्मनर का मूल ढोल गायब हो गया और केवल कुछ कीलें ही बची रहीं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, भविष्य में भिक्षुओं के साथ भी यही होगा। जब तथागत द्वारा दिए गए वे प्रवचन, जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित हैं, पढ़े जा रहे होंगे, 368 तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक नहीं होंगे, न ही उन पर ध्यान देंगे, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे यह नहीं सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल की जानी चाहिए।" लेकिन जब वे प्रवचन, जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा निर्मित हैं, उनके शिष्यों द्वारा बोले जाते हैं, 369 का पाठ किया जाता है, तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए। इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, लुप्त हो जाएंगे।

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'जब तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, का पाठ किया जाता है, तो हम उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और हम सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अब लिच्छवी लकड़ी के गट्ठों को तकिये बनाकर रहते हैं; वे सचेत (अपमादा) और लगन से साधना करते हैं। मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह के पुत्र हैं, उन तक नहीं पहुँच पाते; वे उन पर अधिकार नहीं कर पाते। परन्तु भविष्य में लिच्छवी कोमल और कोमल हाथों-पैरों वाले हो जाएँगे; वे रुई के तकियों वाले नरम पलंगों पर सूर्योदय तक सोएँगे। तब मगध के राजा

अजातसत्तु उन तक पहुँच पाएंगे; तब वे उन पर अधिकार कर लेंगे।" तब दुष्ट मारा उन तक पहुँच प्राप्त कर लेगा; वह उन पर अधिकार कर लेगा।

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'लकड़ी के गट्ठों को तकिये के रूप में उपयोग करके, हम सचेत और लगन से साधना में लगे रहेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।" 370

---

231. नर हाथी (नाग)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक नवदीक्षित भिक्षु परिवारों से अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,

"आदरणीय भिक्षु, परिवारों से अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन जब उन्हें फटकारा गया, तो उसने कहा, "ये वरिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि वे परिवारों से मेलजोल कर सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं कर सकता?"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

“भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक जंगल में एक बड़ी झील थी, जिसके आसपास बड़े-बड़े हाथी रहते थे। 371 वे हाथी झील में डुबकी लगाते, अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, उन्हें अच्छी तरह धोकर मिट्टी समेत चबाते और निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

उनके बच्चे भी उन बड़े-बड़े हाथियों की तरह झील में डुबकी लगाते और अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, लेकिन उन्हें अच्छी तरह धोए बिना, चबाए बिना, मिट्टी समेत निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति नहीं बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ वरिष्ठ भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। 372 वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि होती है, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।

नवदीक्षित भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुकरण करते हुए, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे हुए, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखे बिना और उससे बचने का मार्ग समझे बिना करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि नहीं होती, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।" 373

"अतः, भिक्षुओं, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनसे आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करेंगे, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

232. बिल्ली (बिलारा)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक भिक्षु परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन चेतावनी मिलने के बावजूद उसने ऐसा करना नहीं छोड़ा।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक बार एक बिल्ली किसी गली, नाले या कूड़ेदान के पास खड़ी होकर एक छोटे चूहे की प्रतीक्षा कर रही थी, और सोच रही थी: 'जब यह छोटा चूहा भोजन के लिए बाहर आएगा, तो मैं उसे वहीं पकड़कर खा जाऊंगी।'" फिर वह चूहा भोजन की तलाश में निकला, और बिल्ली ने उसे पकड़ लिया और बिना चबाए जल्दी से निगल लिया। फिर उस छोटे चूहे ने बिल्ली की आंतें और पित्ताशय खा लिए, और इसी कारण बिल्ली की मृत्यु हो गई और उसे भीषण पीड़ा सहनी पड़ी।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान लगाए बिना, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे बिना, भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करता है। वह वहाँ कम वस्त्रों में सजी स्त्रियों को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह मृत्यु या भीषण पीड़ा को प्राप्त होता है। हे भिक्षुओं, यही श्रेष्ठ साधना में मृत्यु है: कि व्यक्ति साधना त्याग कर निम्न लोक में लौट जाता है। यही भीषण पीड़ा है: कि व्यक्ति एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है जिसका पुनर्वास संभव है।" 375

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'हम शरीर, वाणी और मन को संजोकर, सती ध्यान लगाकर और अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हुए भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।"

233. सियार (1) (सिंगाला1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही एक बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। फिर भी वह जहाँ चाहे जाता है, जहाँ चाहे खड़ा होता है, जहाँ चाहे बैठता है, जहाँ चाहे लेटता है, और उस पर ठंडी हवा भी चलती है। यहाँ शाक्य पुत्र के अनुयायी होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए भी यदि वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर सके तो यह अच्छा होगा। 376

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

234. सियार (2) (सिंगाला2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही किसी बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"उस बूढ़े सियार में शायद कुछ कृतज्ञता और धन्यवाद हो, लेकिन यहाँ मौजूद उस व्यक्ति में कोई कृतज्ञता और धन्यवाद नहीं है जो शाक्य पुत्र का अनुयायी होने का दावा करता है। 377

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कृतज्ञ और आभारी रहेंगे, और हम पर किए गए छोटे से छोटे उपकार को भी नहीं भूलेंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्खुसंयुत्त) {संयुत्त-21}
235. कोलिता (महामोग्गलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "महान मौन, महान मौन।" तो महान मौन क्या है?'" 379

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होती है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होती है। इसे ही श्रेष्ठ मौन कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब विचार सहित चेतना (सन्ना संस्कृत संज्ञा) और मन ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, पवित्र मौन के प्रति आलसी (पमादा) न हो। पवित्र मौन में अपने मन को स्थिर करो, पवित्र मौन में अपने मन को एकाग्र करो, पवित्र मौन में अपने मन को समाधि बना लो।' फिर, मित्रों, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैंने दूसरे ध्यान में

प्रवेश किया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।" 380

---

236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
सावत्थी में, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है?' तब मुझे यह विचार आया:
'संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है।'

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, यदि स्वयं गुरु भी रूपांतरित हो जाएँ, तो क्या आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?"

"मित्र, 382 यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु मेरे मन में यह विचार अवश्य आऊँगा:
'परम प्रभावशाली, परम शक्तिशाली और महान गुरु का देहांत हो गया है। यदि भगवान (बुद्ध) दीर्घकाल तक जीवित रहते, तो वे समस्त जन के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए जीवित रहते।' "

यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) दीर्घकाल से पूर्णतः उखड़ी हुई है 383 कि यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी उनमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो।"

---

237. बैरल
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में वेलुवन (गिलहरी अभयारण्य), एक ही घर में रह रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को नमस्कार किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र मोग्गलाना, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या पूज्य महामोग्गलाना ने आज का दिन शांतिपूर्ण निवास में बिताया है?"

"मैंने पूरा दिन एक साधारण से घर में बिताया, मित्र, लेकिन मैंने कुछ धम्म (मार्ग, नियम) पर चर्चा की।" 384

"पूजनीय महामोग्गलाना ने किसके साथ धम्म पर चर्चा की?"

"मैंने भगवान (बुद्ध) के साथ धम्म पर चर्चा की, मित्र।"

"परन्तु भगवान (बुद्ध) बहुत दूर हैं, मित्र। वे अब सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं। क्या पूजनीय महामोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) से संपर्क किया, या क्या भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से पूज्य महामोग्गलाना से संपर्क किया?"

"हे मित्र, मैंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया, न ही भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से मेरे पास आए। बल्कि, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया, और मैंने भगवान (बुद्ध) से संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया।" 385

"आदरणीय महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) के साथ किस प्रकार की धम्म चर्चा की?"

"यहाँ, मित्र, मैंने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, ऐसा कहा जाता है, "जिसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो, उसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो।" आदरणीय महोदय, ऊर्जा (वीर्य) किस प्रकार जागृत होती है?' तब भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'देखो, मोग्गलाना, एक भिक्षु (भिक्षु) अपनी ऊर्जावान शक्ति को जागृत करके इस प्रकार निवास करता है: "इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रहें, और मेरे शरीर में मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जावान शक्ति को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, पुरुष ऊर्जावान शक्ति, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।" 386 मोग्गलाना, इसी प्रकार ऊर्जावान शक्ति जागृत होती है।' मित्र, यही वह धम्म प्रवचन है जो मैंने भगवान (बुद्ध) से किया था। "

मित्र, पूज्य महामोग्गलाना की तुलना में हम हिमालय, पर्वतों के राजा, की तुलना में कुछ कंकड़ के समान हैं।" पूज्य महामोग्गलाना की आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य इतनी अधिक है कि यदि वे चाहें तो एक युग (कल्प/कल्प) तक जीवित रह सकते हैं। 387

"मित्र, पूज्य सारिपुत्त की तुलना में हम नमक के एक बड़े बर्तन के सामने नमक के कुछ दानों के समान हैं। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा, स्तुति और गुणगान किया है:

'जैसे सारिपुत्त सर्वोच्च हैं; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न), सद्‌गुण (शील) और शांति में।
वैसे ही एक भिक्षु जो उनसे परे चला गया है; अधिक से अधिक केवल उनके समर्थ हो सकता है।'
इस प्रकार दोनों महान नागों ने एक-दूसरे के इस उत्तम कथन और अभिव्यक्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की। 388

---

238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक नवदीक्षित भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके अपने निवास में प्रवेश करता और विश्राम करते हुए मौन बैठा रहता। वह वस्त्र बनाते समय अन्य भिक्षुओं की सेवा नहीं करता था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, उस भिक्षु को मेरे नाम से कहो कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह उस भिक्षु के पास जाकर उससे कहा, "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र।"

"जी, मित्र," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।
तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे भिक्षु, क्या यह सच है कि भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके आप अपने निवास स्थान में प्रवेश करते हैं और विश्राम करते हुए मौन रहते हैं, और वस्त्र बनाते समय भिक्षुओं की सेवा नहीं करते?"

"हे पूज्यवर, मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर अन्य भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, इस भिक्षु में दोष न निकालो। यह भिक्षु वह है जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, उन चार ध्यानों को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखदायक निवास प्रदान करते हैं। और वह वह है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"यह निर्वाण शिथिल प्रयासों से नहीं, न ही कमजोर प्रयासों से
प्राप्त होता है; यह मोक्ष समस्त दुखों से मुक्ति (मोक्ष) है।

यह युवा भिक्षु (मेरे पास) वास्तव में एक श्रेष्ठ पुरुष है:
वह अपना अंतिम शरीर धारण किए हुए है; उसने मारा (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त की है।"

---

239. सुजाता
सावत्थी में, पूज्य सुजाता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को यों कहा, "भिक्षुओं, यह कुलवासी दोनों दृष्टियों से सुंदर है। वह आकर्षक, सुंदर, मनमोहक और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया है और निवास किया है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... उन्होंने आगे कहा:

"यह भिक्षु परम सौंदर्य से परिपूर्ण है; उनका मन पूर्णतः एकाग्र है।
अनासक्ति से उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; वे विरक्त हैं, समस्त दुःखों से मुक्त हैं;

वे अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए हैं; उन्होंने मार (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त कर ली है।"

---

240. लकुंदक भद्दिया
सावत्थी में, पूज्य लकुंदक भद्दिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम उस भिक्षु को आते देख रहे हो, जो बदसूरत, कुरूप, विकृत और भिक्षुओं में तिरस्कृत है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... और आगे कहा:

"हंस, बगुले और मोर; हाथी और चित्तीदार हिरण;
ये सभी शेर से डरते हैं; चाहे उनका शरीर कितना भी बड़ा क्यों न हो।

इसी प्रकार मनुष्यों में; जो छोटा है और जिसे ज्ञान प्राप्त है (पन्ना),
वही वास्तव में महान है; न कि वह बचकाना (नासमझ) जिसका शरीर सुगठित है।"

---

241. विशाखा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त था। 391

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा कक्ष में पहुँचे। वे नियत आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कौन दे रहा है, उन्हें प्रेरित कर रहा है और प्रसन्न कर रहा है, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त है?"

"यह आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त थे, आदरणीय महोदय।"

तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा: "शाबाश, शाबाश, विशाखा! यह अच्छा है कि आप भिक्षुओं को इस प्रकार धम्म प्रवचन से उपदेश देते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"जब ज्ञानी व्यक्ति नासमझों के बीच होता है, तो
वे उसे नहीं पहचानते यदि वह बोलता नहीं, 392
परन्तु वे उसे तब पहचानते हैं जब वह बोलता है।

अमरता (निर्वाण) की ओर इशारा करते हुए,

उसे धम्म का प्रवचन और व्याख्या करनी चाहिए; उसे संतों का ध्वज ऊंचा उठाना चाहिए।
सुविचारित शब्द संतों का ध्वज हैं; क्योंकि धम्म संतों का ध्वज है।"

---

242. नंदा
सावत्थी में, तब पूज्य नंदा, जो भगवान (बुद्ध) के मामा के बेटे थे, ने अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहने, अपनी आँखों में काजल लगाया, एक चमकीला कटोरा लिया और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 393 भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"नंदा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, कि तुम अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहनो, अपनी आँखों में काजल लगाओ और एक चमकीला कटोरा धारण करो। हे नंदा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, यह उचित है कि तुम वनवासी बनो, भिक्षा ग्रहण करो, चिथड़े के वस्त्र पहनो और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहो।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... [उन्होंने] आगे यह भी कहा:

"मैं नंदा को वनवासी के रूप में कब देखूंगा; चिथड़ों से सिले हुए वस्त्र पहने हुए;
अजनबियों के जूठे टुकड़ों पर जीवन यापन करते हुए; इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन?"

फिर, कुछ समय बाद, पूज्य नंदा वनवासी बन गए, भिक्षाभोजन करने लगे, चिथड़ों के वस्त्र पहनने लगे और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहने लगे।

---

243. टिस्सा
सावत्थी में। तब पूज्य तिस्सा, जो भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई थे, 395 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए - दुखी, शोकाकुल, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"तिस्सा, तुम यहाँ दुखी, शोकाकुल, आँसू बहाते हुए क्यों बैठे हो?"

"क्योंकि, पूज्यवर, भिक्षुओं ने मुझे चारों ओर से तीखे शब्दों से घेर लिया है।" 396

“हे तिस्सा, ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम दूसरों को उपदेश देते हो, परन्तु स्वयं उपदेश सहन नहीं कर सकते। तिस्सा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार न करो। हे तिस्सा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जो विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, यह उचित है कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार करो।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

“तुम क्रोधित क्यों हो? क्रोधित मत हो! हे तिस्सा, क्रोधहीनता तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। क्रोध, अहंकार और तिरस्कार को दूर करना ही ब्रह्मचर्य जीवन है, हे तिस्सा।”

---

244. एक भिक्षु जिसे वरिष्ठ (थेरानामाका) कहा जाता है
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय, 397वें वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास में रहते थे और एकांतवास की प्रशंसा करते थे। वे अकेले ही भिक्षा मांगने गाँव जाते, अकेले ही लौटते, अकेले ही एकांत में बैठते और अकेले ही ध्यान करते थे।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय, यहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु हैं जो एकांतवास में रहते हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा,
"आओ, भिक्षु वरिष्ठ को मेरी ओर से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

“जी, पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्यवर के पास जाकर उनसे कहा: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र पूज्यवर।”

“जी, मित्र,” पूज्यवरवर ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, पूज्यवरवर, कि आप एकांतवासी हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं?”

“जी, पूज्यवर।”

“परन्तु कैसे, पूज्यवरवरवर, आप एकांतवासी कैसे हैं और एकांतवास की प्रशंसा कैसे करते हैं?”

“जी, पूज्यवरवर, मैं भिक्षा मांगने के लिए अकेले ही गाँव जाता हूँ, अकेले ही लौटता हूँ, अकेले ही एकांत में बैठता हूँ और अकेले ही ध्यान करता हूँ। इसी प्रकार मैं एकांतवासी हूँ और एकांतवास की प्रशंसा करता हूँ।”

"यह एकांतवास का एक तरीका है। हे गुरुदेव, मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण आप ध्यानपूर्वक सुनिए और मनन कीजिए (मानसिकरो), मैं इस पर चर्चा करूँगा।"

"जी हे गुरुदेव।"

"और कैसे? हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण क्या है? यहाँ, हे गुरुदेव, अतीत का त्याग कर दिया गया है, भविष्य का त्याग कर दिया गया है, और वर्तमान स्वरूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को पूरी तरह से दूर कर दिया गया है। 398 इसी प्रकार, हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ज्ञानी, सर्वविजयी, सर्वज्ञ;
सभी धर्मों (मार्ग, विधि) में निष्कलंक, सभी भोगों से मुक्त,
तृष्णा के नाश (खयाल/क्षय) में मुक्त;
मैं उस व्यक्ति को 'एकाकी निवास करने वाला' कहता हूँ।" 399

---

245. महाकप्पिना
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 400 भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, क्या आप उस भिक्षु को आते हुए देख रहे हैं, जो गोरे रंग का, दुबला-पतला और उभरी हुई नाक वाला है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: " जिनका चिन्ह कुल है, उनमें क्षत्रिय

श्रेष्ठ है । परन्तु ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है। सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। क्षत्रिय कवचधारी होकर चमकता है, ध्यानमग्न ब्राह्मण चमकता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात, हर समय महिमा से प्रकाशित होते हैं।"

---

246. सहायक (साथी)
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना के दो सहचर शिष्य भगवान बुद्ध के पास आए। भगवान बुद्ध ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप उन दो सहचर भिक्षुओं को आते देख रहे हैं, जो कप्पिना के शिष्य हैं?"

"जी, पूज्यवर।"

"वे भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उन्होंने पहले से ही प्राप्त न किया हो। और वे वे हैं जिन्होंने दिव्य ज्ञान से स्वयं उस सिद्धि को प्राप्त करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ये [दो] साथी भिक्षु; बहुत लंबे समय से एक साथ हैं। 401
सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) ने उन्हें एकजुट किया है; बुद्ध द्वारा घोषित धम्म में।

कप्पिन द्वारा उन्हें अच्छी तरह से अनुशासित किया गया है; श्रेष्ठ द्वारा घोषित धम्म में।
वे अपने अंतिम शरीर धारण किए हुए हैं; मारा (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त करके।"

संयुत्त निकाय का कारण-कार्य ग्रंथ (निदानवग्ग) समाप्त होता है।

SN3- समुच्चय की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का तीसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का दूसरा संस्करण है, जो संशोधित संस्करण है।)
पाँच स्कंध हैं: शरीर-रूप, वेदना, बोध, संशय (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये सभी इंद्रियों से जुड़े हुए हैं।
महत्वपूर्ण सूत्र:
48, 56, 79: स्कंधों की व्याख्या।
85: (यमक) - कई प्रश्नों के बारे में (सारिपुत्र द्वारा) अद्भुत व्याख्याएँ, जैसे कि क्या वह व्यक्ति नष्ट हो जाता है जो दोषों से मुक्त होकर बुद्ध के समान तथागत बन जाता है, और कैसे स्कंध वास्तव में शत्रु हैं।
89: (खेमक) - 'मैं हूँ' की समस्या।
95: स्कंध झाग, बुलबुले, मृगतृष्णा, केले के पेड़ और जादूगर की चाल के समान हैं।
101: ध्यान अंडों को सेने के समान है।
182: मारा (शैतान) क्या है?
206-311: निर्वाण में प्रवेश और उसके साथ ही झूठे विचारों का त्याग।
330: अन्यत्र उल्लिखित चार तत्वों के स्थान पर छह धातुएँ: पृथ्वी, जल, वायु, ऊष्मा, आकाश और चेतना।
332-340: निर्वाण की ओर ले जाने वाली नौ ध्यान अवस्थाएँ।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN2) अगला (SN4) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय: III.खांधवग्गा (समुच्चय की पुस्तक)
1.1अध्याय 1: समुच्चय पर संबंधित प्रवचन (खंडसम्युत्त) {सम्युत्त-22}
1.1.1(i) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - नकुलपिता खंड
1.1.1.11. नकुलपिता
1.1.1.22. देवदहा में
1.1.1.33. हलिद्दकानी (1)

1.1.1.44. हलिद्दकानी (2)
1.1.1.55. समाधि अवस्था
1.1.1.66. एकांतवास (पतिसलाना)
1.1.1.77. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (1) (उपादपरितासना)
1.1.1.88. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (2) (उपादपरितासना)
1.1.1.99. तीनों काल में अनित्य
1.1.1.1010. तीन काल में कष्ट (कालत्तयदुक्ख सं. काल-आत्मया-दुःख)
1.1.1.1111. तीन काल में अनात्म (कालत्तयानत्त सं. काल-आत्मया-अनात्म)
1.1.2(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - अनित्य खंड (अनिकवागो संस। अनित्य-वर्ग)
1.1.2.112. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
1.1.2.213 (2) पीड़ा (दुक्खा)
1.1.2.314. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.1.2.415. अनित्य क्या है (यादनिक्का सं. यदा-अनित्य)
1.1.2.516. यमदुक्खा क्या है?
1.1.2.617. अनात्म (यदानत्) क्या है?
1.1.2.718. कारण सहित अनित्य
1.1.2.819. कारण सहित पीड़ा (सहेतुदुक्खा)
1.1.2.920. नॉनसेल्फ विथ कॉज़ (सहेतुअनात्ता सं. सहेतु-अनात्म)
1.1.2.1021. आनंद
1.1.3(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द बर्डन सेक्शन (भरा)
1.1.3.122. बोझ
1.1.3.223. पूर्ण समझ (परिन्न संस्कृत परम-ज्ञान)
1.1.3.324. प्रत्यक्ष रूप से जानना (अभिज्ञान सं. अभि-ज्ञान)
1.1.3.425. इच्छा और वासना (चंदा-राग)
1.1.3.526. सांसारिक सुख (1) (अस्सादा 1 बिना असवाद के)
1.1.3.627. सांसारिक सुख (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
1.1.3.728. सांसारिक सुख (3) (अस्सादा 3 सं. असवाद)
1.1.3.829. आनंद (अभिनंदन)
1.1.3.930. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)
1.1.3.1031. दुख का मूल (अघामुला)
1.1.3.1132. नाजुक (पभंगु सं. प्र-भंगुर या प्रत्यक्ष-भंगुर)
1.1.4(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - आपका नहीं अनुभाग (नटुम्हकमवग्गो सं. न-त्वमवकम-वर्ग)
1.1.4.133. आपका नहीं (1) (नतुम्खम्1 सं. न-त्वमवकम)
1.1.4.234. तुम्हारा नहीं (2)
1.1.4.335. एक निश्चित भिक्षु (1) (अन्नतारभिक्खु1 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
1.1.4.436. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नतारभिक्खु2 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
1.1.4.537. आनंद (1)
1.1.4.638. आनंद (2)
1.1.4.739. धम्म के अनुसार (1) (अनुधम्म1 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.840. धम्म के अनुसार (2) (अनुधम्म2 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.941. धम्म के अनुसार (3) (अनुधम्म3 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.1042. धम्म के अनुसार (4) (अनुधम्म4 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.5(v) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - द्वीप खंड के रूप में स्व (अट्टदीपावगो संस। आत्म-द्वीप-वर्ग)
1.1.5.143. अपने आप को द्वीप मानकर (अट्टादिपा संस्कृत: अत्म-द्वीप)
1.1.5.244. मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
1.1.5.345 अनित्य (1) (अनिच्चा1 सं. अनित्य)
1.1.5.446. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सास. अनित्य)
1.1.5.547. चीजों के संबंध में तरीके (समनुपासना सं. सम्यक-अनुपश्यना)

1.1.5.648. समुच्चय (खंड सं. स्कंध)
1.1.5.749. सोना (1)
1.1.5.850. सोना (2)
1.1.5.951. आनंद का नाश (1)
1.1.5.1052. आनंद का नाश (2)
1.1.6(i) प्रभाग 2, मध्य पचास - अनुबंध अनुभाग (उपायवग्गो)
1.1.6.153. सगाई (उपाय)
1.1.6.254. बीज (बीजा)
1.1.6.355. प्रेरित उच्चारण (उदना)
1.1.6.456. क्लिंगिंग एग्रीगेट्स के चरण (उपदानपरिपवत्ता)
1.1.6.557. सात मामले (सत्तत्थाना)
1.1.6.658. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम्म-सम-बुद्ध सं. सम्यक-सम-बुद्ध)
1.1.6.759. अनात्मा का लक्षण (अनत्तलक्खन सं. अनात्म-लक्षण)
1.1.6.860. महाली
1.1.6.961. जलना (आदित्ता सान. आदित्य)
1.1.6.1062. भाषा के मार्ग (निरुत्तिपथ)
1.1.7(ii) प्रभाग 2, मध्य पचास - अरिहंत खंड (अरिहंतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)
1.1.7.163. आसक्ति में (उपाद्यमान)
1.1.7.264. गर्भ धारण करने में (मन्नामाना)
1.1.7.365. आनंद की खोज में (अभिनंदमन)
1.1.7.466. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
1.1.7.567. दुःख (दुक्खा)
1.1.7.668. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.1.7.769. जो स्वयं से संबंधित नहीं है (अनत्तनिया संस्कृत: अनत्मनिया)
1.1.7.870. जो कुछ भी आकर्षक प्रतीत होता है (रजनीयसंथिता)
1.1.7.971. राधा
1.1.7.1072. सुरधा
1.1.8(iii) खंड 2, मध्य पचास - भक्षण खंड (खज्जनिया संस्कृत: खदनिया)
1.1.8.173. सांसारिक सुख (अस्वाद के बिना)
1.1.8.274. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
1.1.8.375. उत्पत्ति (2) (समुदय1)
1.1.8.476. अरहंत (1)
1.1.8.577. अरहंत (2)
1.1.8.678. शेर
1.1.8.779. खा जाना (खजनिया सं. खडनिया)
1.1.8.880. भिक्षा मांगने वाला (पिंडोल्य)
1.1.8.981. पालिलिया
1.1.8.1082. पूर्णिमा की रात (पुन्नमा संस्कृत: पूर्णिमा)
1.1.9(iv) प्रभाग 2, मध्य पचास - वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुभाग (थेरावग्गो संस. स्थिवर-वर्ग)
1.1.9.183. आनंद
1.1.9.284. टिस्सा
1.1.9.385. यामाका
1.1.9.486. अनुराधा
1.1.9.587. वक्काली
1.1.9.688. असाजी
1.1.9.789. खेमाका
1.1.9.890. चन्ना
1.1.9.991. राहुल (1)

1.1.9.1092. राहुल (2)
1.1.10(v) प्रभाग 2, मध्य पचास - पुष्प खंड (पुप्फावग्गो सं. पुष्प-वर्ग)
1.1.10.193. नदी
1.1.10.294. फूल
1.1.10.395. फोम की एक गांठ (फेना-पिंड-उपमा)
1.1.10.496. गाय के गोबर का एक ढेर (गोमाया-पिंडा)
1.1.10.597. नाखून (नखसिखा)
1.1.10.698. सरल संस्करण (सुद्धिका)
1.1.10.799. पट्टा (1) (गद्दुलबद्ध)
1.1.10.8100. पट्टा (2) (गद्दुलबद्धा)
1.1.10.9101. कुल्हाड़ी का हैंडल (या जहाज) (वसीजाता)
1.1.10.10102. अनित्यता की धारणा
1.1.11(i) प्रभाग 3, अंतिम पचास - भाग अनुभाग (अंतावग्गो)
1.1.11.1103. भाग (अंता)
1.1.11.2104. दुख (दुक्खा)
1.1.11.3105. शरीर-पहचान (सक्कया सं. स-काया)
1.1.11.4106. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत परिज्ञान)
1.1.11.5107. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
1.1.11.6108. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
1.1.11.7109. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
1.1.11.8110. अरहंत
1.1.11.9111. इच्छा का परित्याग (1) (चंडप्पहन1 सं. चंड-प्राहन)
1.1.11.10112. इच्छा का परित्याग (2) (चंडप्पहन2 सं. चंड-प्राहन)
1.1.12(ii) प्रभाग 3, अंतिम पचास - धम्म खंड पर वक्ता (धम्मकथिकावग्ग सं. धर्म-कथिक-वर्ग)
1.1.12.1113. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
1.1.12.2114. सच्चा ज्ञान (विज्या संस्कृत विद्या)
1.1.12.3115. धम्म पर एक वक्ता (1) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
1.1.12.4116. धम्म पर एक वक्ता (2) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
1.1.12.5117. बंधन
1.1.12.6118. पूछताछ (l) (परिपुच्छिता1)
1.1.12.7119. पूछताछ (2) (परिपुच्छिता2)
1.1.12.8120. बंधनकारी चीजें (संयोजनीय)
1.1.12.9121. जिन चीजों से चिपका जा सकता है (उपदानीय)
1.1.12.10122. सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंत)
1.1.12.11123. निर्देश दिया (सुतावंता)
1.1.12.12124. कप्पा (1)
1.1.12.13125. कप्पा (2)
1.1.13(iii) भाग 3, अंतिम पचास - अज्ञानता अनुभाग (अविज्जा संस्कृत अविद्या)
1.1.13.1126. उत्पन्न होने के अधीन (1) (समुदायधम्म1 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.2127. उत्पन्न होने के अधीन (2) (समुदायधम्म2 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.3128. उत्पन्न होने के अधीन (3) (समुदायधम्म3 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.4129. सांसारिक भोग (1) (अस्सादा 1 सं. अस्वाद)
1.1.13.5130. सांसारिक-आनंद (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
1.1.13.6131. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
1.1.13.7132. उत्पत्ति (2) (समुदय2)
1.1.13.8133. कोत्थिता (1)
1.1.13.9134 कोत्थिता (2)
1.1.13.10135 कोत्थिता (3)

1.1.14(iv) डिवीजन 3, फाइनल फिफ्टी - हॉट एम्बर्स सेक्शन (कुक्कुलावग्गा सं. कोयला-वर्ग)
1.1.14.1136. गर्म अंगारे (कुक्कुला बिना कोयला)
1.1.14.2137. अनित्य (अनिच्च 1 सं. अनित्य)
1.1.14.3138. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सं. अनित्य)
1.1.14.4139. अनित्य (3) (अनिच्च 3 सं. अनित्य)
1.1.14.5140. पीड़ा (1) (दुक्खा1)
1.1.14.6141. पीड़ा (2) (दुक्खा2)
1.1.14.7142. पीड़ा (3) (दुक्खा3)
1.1.14.8143. अनात्म (1) (अनत्ता1 सं. अनात्म)
1.1.14.9144. अनात्म (2) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
1.1.14.10145. अनात्म (3) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
1.1.14.11146. घृणा में लीन (निब्बिदबाहुला)
1.1.14.12147. अनित्यता पर ध्यान (अनिकानुपासि सं. अनित्य-अनुपश्ययी)
1.1.14.13148. दुख पर ध्यान (दुक्खानुपासि सं. दुख-अनुपश्ययी)
1.1.14.14149. अनात्मा पर ध्यान (अनत्तनुपासि सं. अनात्म-अनुपश्ययी)
1.1.15(v) प्रभाग 3, अंतिम पचास - दृश्य अनुभाग (दिथिवाग्गो सं. दृष्टि-वर्ग)
1.1.15.1150. आंतरिक रूप से (अज्जट्टा)
1.1.15.2151 यह मेरा है (एतम्मामा)
1.1.15.3152. आत्मा (सोअत्ता संस्कृत सो-आत्म)
1.1.15.4153. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
1.1.15.5154. गलत दृष्टिकोण
1.1.15.6155. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कयदिथि सं. स-काया-दृष्टि)
1.1.15.7156. स्वयं का दृष्टिकोण (अत्तनुदित्थि सं. आत्म-अनु-दृष्टि)
1.1.15.8157. पालन (1) (अभिनिवेश1)
1.1.15.9158. पालन (2) (अभिनिवेश2)
1.1.15.10159. आनंद
1.2अध्याय 2: राधा (राधासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-23}
1.2.1(i) प्रथम मारा उप-अध्याय
1.2.1.1160. मारा(शैतान) (सं. मृत्युदेव)
1.2.1.2161. एक प्राणी (सत्ता)
1.2.1.3162. अस्तित्व की नाली (भवनेति सं. भाव-नेत्री)
1.2.1.4163. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत: परिज्ञान)
1.2.1.5164. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
1.2.1.6165. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
1.2.1.7166. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
1.2.1.8167. अरहंत
1.2.1.9168. इच्छा का परित्याग (1)
1.2.1.10169. इच्छा का परित्याग (2)
1.2.2(ii) द्वितीय मारा उप-अध्याय
1.2.2.1170. मारा (शैतान) (मृत्युदेव या कामदेव)
1.2.2.2171. मारा के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म/कामदेव-धर्म)
1.2.2.3172. अनित्य (अनिच्चा सं. अनित्य)
1.2.2.4173. अनित्य प्रकृति का (अनिचधम्म सं. अनित्य-धर्म)
1.2.2.5174. पीड़ा (दुक्खा)
1.2.2.6175. पीड़ादायक प्रकृति का (दुक्खधम्म सं. दुक्खधर्म)
1.2.2.7176. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.2.2.8177. निःस्वार्थ प्रकृति का (अनत्तधम्म सं.. अनात्म-धर्म)
1.2.2.9178. विनाश के अधीन (खायधम्म सं. क्षय-धर्म)

1.2.2.10179. पतन के अधीन (वयधम्म बिना वय-धर्म)
1.2.2.11180. उत्पन्न होने के अधीन (समुदायधम्म सं. समुदय-धर्म)
1.2.2.12181. समाप्ति के अधीन (निरोधधम्म सं. निरोध-धर्म)
1.2.3(iii) अनुरोध अनुभाग (अयाकनावग्गा सं. याकाना-वर्ग)
1.2.3.1182. मारा (मराडी-सुत्त-एकादशकम)
1.2.3.2183. मारा आदि के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म)
1.2.3.3184 से 193 तक।
1.2.4(iv) पास में बैठना (उपनिसिननावग्गो)
1.2.4.1194. मारा (शैतान)
1.2.4.2195 से 205 तक मारा (शैतान) के अधीन, इत्यादि।
1.3अध्याय 3: विचारों पर संबंधित प्रवचन (दिथिसंयुत्त सं. दृष्टि-संयुक्त) {संयुत्त-24}
1.3.1(i) स्ट्रीम-एंट्री सेक्शन (सोतापट्टी सं. स्ट्रोटापट्टी)
1.3.1.1206. वायु (वात)
1.3.1.2207. यह मेरा है (एतम-मामा)
1.3.1.3208. स्वयं (सोअट्टा संस्कृत सो-अत्म)
1.3.1.4209. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
1.3.1.5210. ऐसा नहीं है (नत्थिदिन्ना)
1.3.1.6211. अभिनय (करोटो)
1.3.1.7212. कारण (हेतु)
1.3.1.8213. महान दृश्य (महादिट्ठी सं. महा-दृष्टि)
1.3.1.9214. संसार शाश्वत है (सस्सतादिथि सं. शाश्वत-दृष्टि)
1.3.1.10215. संसार शाश्वत नहीं है
1.3.1.11216. दुनिया सीमित है (अंतःवा)
1.3.1.12217. विश्व अनंत है (अननातव)
1.3.1.13218. आत्मा और शरीर एक ही हैं (तम-जीवम्-तम-शरीरम्)
1.3.1.14219. आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं (अन्नम-जीवम-अन्नम-शरीरम बिना। अन्य-जीवम-अन्य-शरीरम)
1.3.1.15220. तथाद्गत अस्तित्व में है (होती-तथागतो)
1.3.1.16221. तथागत का अस्तित्व नहीं है (नहोति-तथागतो)
1.3.1.17222. तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी (Hoti-ca-naca-hotitathagato)
1.3.1.18223. तथागत न तो अस्तित्व में है और न ही अस्तित्व में है (नेवा-होति-ना-नहोति-तथागतो)
1.3.2(ii) द्वितीय गोइंग धारा 264 (दुतियागमनावग्गो)
1.3.2.1224. वायु (वात)
1.3.2.2225-241. यह मेरा है, इत्यादि।
1.3.2.3242. रूप से निर्मित एक स्व-आटा (रूपी-आटा)
1.3.2.4243. एक निराकार आत्मा
1.3.2.5244. एक आत्मा जिसमें रूप और निराकार दोनों शामिल हैं (रूपी-च-अरूपि-च-अत्ता संस। रूप्य-च-अरूप्य-च-एटीएम)
1.3.2.6245. आत्मा न तो आकार से युक्त है और न ही निराकार (नेव-रूपी-नारूपी-अत्ता संस। नेव-रूप्य-नारुप्य-आत्म)
1.3.2.7246. विशेष रूप से खुश (एकांतसुखी)
1.3.2.8247. विशेष रूप से दुखी (एकांतदुक्खी)
1.3.2.9248. सुखी और दुखी दोनों (सुखदुक्खी)
1.3.2.10249. न तो खुश और न ही दुखी (अदुक्खा-मा-सुखी)
1.3.3(iii) तृतीय यात्रा खंड (ततिया-गमन-वग्गो सं. तृतीय-गमन-वर्ग)
1.3.3.1250. हवाएँ नहीं (ना-वात)
1.3.3.2251-275 यह मेरा है, इत्यादि।
1.3.4(iv) चतुर्थ यात्रा खंड (चतुर्थ-गमन-वग्गो संस। चतुर्थ-गमन-वर्ग)
1.3.4.1276. हवाएँ नहीं (ना-वात)
1.3.4.2277.-301. यह मेरा है, इत्यादि।
1.4अध्याय 4: प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (ओक्कंतसंयुत्त) {संयुत्त-25}

1.4.1302. आँख (चक्खु)
1.4.2303. प्रपत्र (रूपा)
1.4.3304. चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान)
1.4.4305. संपर्क (संपहसा संस्कृत: सम-स्पर्श)
1.4.5306. अनुभूति (वेदना)
1.4.6307. धारणा (रूप-सन्ना बिना रूप-संज्ञा)
1.4.7308. संज्ञानात्मक जागरूकता (रूप-संवेदना)
1.4.8309. लालसा (रूप-तन्हा बिना रूप-तृष्णा)
1.4.9310. तत्व (पथविधातु)
1.4.10311. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
1.5अध्याय 5: उद्भव पर संबंधित प्रवचन (उपपादसंयुत्त सं. उत्पदा-संयुत्त) {संयुत्त-26}
1.5.1312. आँख (चक्खु)
1.5.2313. प्रपत्र (रूपा)
1.5.3314. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
1.5.4315. संपर्क (संपहसा सं. संस्पर्श)
1.5.5316. संवेदना
1.5.6317. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
1.5.7318. जागरूकता (संचेतना)
1.5.8319. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
1.5.9320. तत्व (धातु)
1.5.10321. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
1.6अध्याय 6: अशुद्धियों पर संबंधित प्रवचन (किलेसमसम्युत) {सम्युत्त-27}
1.6.1322. आँख
1.6.2323. रूप (रूपा)
1.6.3324. चेतना (विन्नाना सं. विज्ञान)
1.6.4325. संपर्क(फस्सा/स्पर्श) (संपहसा सं. संस्पर्श)
1.6.5326. अनुभूति(वेदना)
1.6.6327. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
1.6.7328. जागरूकता (संचेतना)
1.6.8329. तृष्णा(तन्हा सं. तृष्णा) (तन्हा सं. तृष्णा)
1.6.9330. तत्व (धातु)
1.6.10331. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
1.7अध्याय 7: सारिपुत्त से संबंधित प्रवचन (सारिपुत्तसम्युत्त) {सम्युत्त-28}
1.7.1332. एकांतवास से जन्मा (विवेकजा संस. विवेकज्या)
1.7.2333. बिना विचार के (अवितक्का सं. अवितार्क)
1.7.3334. आनंद (पीति सं. प्रीति)
1.7.4335. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
1.7.5336. अंतरिक्ष की अनंतता का संकाय (आकाश-अनन्त-आयतना संस्कृत: आकाश-अनन्त-आयतना)
1.7.6337. चेतना की अनंतता की क्षमता (Vinnan-ananc-ayatana sans. Vigyan-anant-ayatana)
1.7.7338. शून्यता की क्षमता (अकिंचन्न-आयतना)
1.7.8339. न तो-धारणा-न ही-गैर-धारणा का संकाय
1.7.9340. निरोध की प्राप्ति (निरोध-समापत्ति सं. निरोध-सम-प्राप्ति)
1.7.10341. सुचिमुखी
1.8अध्याय 8: नागों पर संबंधित प्रवचन (नागसम्युत्त) {सम्युत्त-29}
1.8.1342. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
1.8.2343. श्रेष्ठ (पानितातारा)
1.8.3344. उपोसथा (1)
1.8.4345-347. उपोसथा (2-4)

1.8.5348. उसने सुना है (1) (सुत सं. श्रुत)
1.8.6349-351. उसने सुना है (2-4) (सुता सं. श्रुता)
1.8.7352-361. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
1.8.8362-391. दान देने के सहयोग से (2-4) (जलाबुजादि-दान-उपकार)
1.9अध्याय 9: सुपन्नों पर संबंधित प्रवचन (सुपन्नसम्युत्त) {सम्युत्त-30}
1.9.1392. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
1.9.2393. वे ले जाते हैं (हरंती)
1.9.3394. उभयभावी (1) (द्वयकारी सं. द्वंदव्य-कारी)
1.9.4395-397 अस्पष्ट
1.9.5398-407. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
1.9.6408-437. दान देने के सहयोग से (जलाबुजादि-दान-उपकार)
1.10अध्याय 10: गंधब्बास पर संबंधित प्रवचन (गंधब्बासंयुक्त सं. गंधर्व-संयुक्त) {संयुत्त-31}
1.10.1438. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
1.10.2439. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
1.10.3440. दाता (1) (मूल-गंध-दाता)
1.10.4441-449. दाता (सार-गन्धादि-दाता)
1.10.5450-459. दान देने के सहयोग से (1) (मूल-गंध-दान-उपकार)
1.10.6460-549. दान देने के सहयोग से(2) (सार-गन्धादि-दान-उपकार)
1.11अध्याय 11: मेघ देवों पर संबंधित प्रवचन (वलाहकसयुत्त) {संयुत्त-32}
1.11.1550. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
1.11.2551. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
1.11.3552-561. दान देने के समर्थन से (1) (सीता-वलहक-दान-उपकारा)
1.11.4562-601. दान देने के सहयोग से (2) (उन्हा-वलाहका-दान-उपकार सं. उशना-)
1.11.5602. शीतल-मेघ देवता (सीता-वल्लाह)
1.11.6603. गर्म-बादल देवता (उंहा-वलाहका सं. उशना-)
1.11.7604. तूफान-बादल देवता (अभभा-वल्हाका)
1.11.8605. पवन-बादल देवता (वात-वल्हाक)
1.11.9606. वर्षा-मेघ देवता (वस्सा-वलाहा सं. वर्षा-)
1.12अध्याय 12: वाचागोट्टा (वाचागोट्टासंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-33}
1.12.1607. रूप (1) न जानने के कारण (रूप-अन्नन संस्कृत रूप-अज्ञ)
1.12.2608. संवेदन को न जानने के कारण (2) (वेदना-अन्न सं. वेदना-अज्ञान)
1.12.3609. धारणा न जानने के कारण (3) (सन्ना-अन्ना सं. संज्ञा-अज्ञान)
1.12.4610. संस्कार न जानने के कारण (4) (संस्कार-अन्ना सं. संस्कार-अज्ञान)
1.12.5611. अज्ञान चेतना के कारण(5) (विन्नाना-अन्नाना संस. विज्ञान-अज्ञ)
1.12.6612-616 रूप आदि न देखने के कारण (रूप-अदस्सनादि सं. रूप-दर्शन-आदि)
1.12.7617- 621. रूपों आदि को भेद न पाने के कारण (रूप-अनभिसामयदि)
1.12.8622-626. रूपों आदि को न समझने के कारण (रूप-अननुबोधादि)
1.12.9627-631. रूप आदि का भेदन न करने के कारण (रूप-अप्पेटिवधादि)
1.12.10632-636. रूप आदि का विवेक न करने के कारण (रूप-असल्लक्खनादि)
1.12.11637-641. रूपों आदि में भेदभाव न करने के कारण (रूप-अनुपालक्खनादि)
1.12.12642-646. रूपों आदि में अंतर न करने के कारण (रूप-अप्पच्चुपालक्खनादि)
1.12.13647-651. फॉर्म आदि की जांच न करने के कारण (रूप-असमपेक्खनादि)
1.12.14652-656. प्रपत्रों आदि की ठीक से जांच न करने के कारण (रूपा-अप्पच्चुपेक्खनादि)
1.12.15657-661. रूपों आदि को प्रत्यक्ष रूप से न जानने के कारण (रूप-अप्पच्चकम्मदि)
1.13अध्याय 13: ध्यान में समाधि अवस्थाओं पर संबंधित प्रवचन (झानसाम्युत्त) {साम्युत्त-34}
1.13.1662. समाधि आधारित प्राप्ति (समाधि-मूलक-समापत्ति सं. समाधि-मूलक-संप्राप्ति)
1.13.2663. समाधि आधारित रखरखाव (समाधि-मूलक-स्थिति सं. समाधि-मूलक-स्थिति)
1.13.3664. समाधि आधारित उद्भव (समाधि-मूलक-वुत्थन)

1.13.4665. समाधि आधारित प्लिन्सी (समाधि-मूलक-कल्लिता)
1.13.5666. समाधि आधारित वस्तु (समाधि-मूलक-अरम्मना)
1.13.6667. समाधि आधारित रेंज (समाधि-मुलाका-गोकारा)
1.13.7668. समाधि आधारित संकल्प (समाधि-मूलक-अभिनिहार)
1.13.8669. समाधि आधारित संपूर्णता (समाधि-मूलका-सक्कक्काकारी)
1.13.9670. समाधि आधारित दृढ़ता (समाधि-मूलक-सतक्काकारी)
1.13.10671. समाधि आधारित उपयुक्तता (समाधि-मूलक-सप्पयकारी)
1.13.11672. प्राप्ति आधारित रखरखाव (समापत्ति-मुलाका-तिथि)
1.13.12673. प्राप्ति आधारित उद्भव (समापत्ति-मुलाका-वुत्थन)
1.13.13674. प्राप्ति आधारित प्लिन्सी (समापट्टी-मुलाका-कल्लिता)
1.13.14675. प्राप्ति आधारित वस्तु (समापट्टी-मुलाका-अराम्मना)
1.13.15676. प्राप्ति आधारित रेंज (समापट्टी-मुलाका-गोकारा)
1.13.16677. प्राप्ति आधारित संकल्प(समापत्ति-मूलक-अभिनिहार)
1.13.17678. प्राप्ति आधारित संपूर्णता (समापट्टी-मुलाका-सक्काकाका)
1.13.18679. प्राप्ति आधारित दृढ़ता (समापत्ति-मुलाका-सताकाका)
1.13.19680. प्राप्ति आधारित उपयुक्तता (समापत्ति-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.20681. रखरखाव आधारित उद्भव (थिति-मुलाका-वुत्थना)
1.13.21682. रखरखाव आधारित लचीलापन, आदि (थिति-मूलक-कल्लिता)
1.13.22683. रखरखाव आधारित वस्तु, आदि (थिति-मुलका-अराम्मन)
1.13.23684. रखरखाव आधारित रेंज, आदि (थिति-मुलाका-गोकारा)
1.13.24685. रखरखाव आधारित संकल्प, आदि (थिति-मुलाका-अभिनिहार)
1.13.25686. रखरखाव आधारित संपूर्णता, आदि (थिति-मुलाका-सक्कक्काकारी)
1.13.26687. रखरखाव आधारित दृढ़ता, आदि (थिति-मुलाका-सताक्काकारी)
1.13.27688. रखरखाव आधारित उपयुक्तता, आदि (थिति-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.28689. उद्भव आधारित प्लिन्सी आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
1.13.29690. उद्भव आधारित वस्तु आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.30691. उद्भव आधारित रेंज आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.31692. उद्भव आधारित संकल्प आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.32693. उद्भव आधारित पूर्णता आदि (वुत्थाना-मूलक-कल्लित)
1.13.33694. उद्भव आधारित दृढ़ता आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.34695. उद्भव आधारित उपयुक्तता आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
1.13.35696. प्लिअन्सी आधारित वस्तु, आदि (कल्लिता-मुलका-अर्ममना)
1.13.36697. प्लैन्सी आधारित रेंज, आदि (कल्लिता-मुलाका-गोकारा)
1.13.37698. सहजता आधारित संकल्प, आदि (कल्लिता-मुलाका-अभिनिहार)
1.13.38699. प्लिन्सी आधारित संपूर्णता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सक्कक्काकारी)
1.13.39700. विनम्रता आधारित दृढ़ता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सताक्काकारी)
1.13.40701. प्लीएन्सी आधारित उपयुक्तता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.41702. वस्तु आधारित रेंज (अरम्मना-मुलाका-गोकारा)
1.13.42703. वस्तु आधारित संकल्प (अरम्मना-मुलाका-अभिनिहारा)
1.13.43704. वस्तु आधारित संपूर्णता (अरम्मना-मुलाका-सक्कक्का)
1.13.44705. वस्तु आधारित दृढ़ता (अरम्मना-मुलाका-सटाक्का)
1.13.45706. वस्तु आधारित उपयुक्तता (अरम्मना-मुलाका-सप्पाया)
1.13.46707. रेंज आधारित संकल्प (गोकारा-मुलाका-अभिनिहारा)
1.13.47708. रेंज आधारित थोरनेस (गोकारा-मुलाका-सक्कक्का)
1.13.48709. रेंज आधारित दृढ़ता (गोकारा-मुलाका-सटाका)
1.13.49710. रेंज आधारित उपयुक्तता (गोकारा-मुलाका-सप्पाया)
1.13.50711. संकल्प आधारित संपूर्णता (अभिनिहार-मुलाका-सक्काकाका)
1.13.51712. संकल्प आधारित दृढ़ता (अभिनिहारा-मूलका-सतक्का)

1.13.52713. संकल्प आधारित उपयुक्तता (अभिनिहार-मुलाका-सप्पाया)
1.13.53714. संपूर्णता आधारित दृढ़ता (सक्कक्का-मुलाका-सटाक्का)
1.13.54715. संपूर्णता आधारित उपयुक्तता (सक्कक्का-मुलाका-सप्पाया)
1.13.55716. दृढ़ता आधारित उपयुक्तता (सतक्का-मुलाका-सप्पाया)
संयुक्त निकाय: III.खांधवग्गा (समुच्चय की पुस्तक)

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: समुच्चय पर संबंधित प्रवचन (खंडसम्युत्त) {सम्युत्त-22}
(i) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - नकुलपिता खंड
1. नकुलपिता
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सुसुमार्गीरा में भेषकलावन (मिगदाये) नामक हिरण उद्यान में भग्गों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ नकुलपिता भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 1

"हे पूज्यवर, मैं वृद्ध हूँ, उम्र का बोझ मुझ पर है, मैं जीवन के अंतिम पड़ाव पर हूँ, मेरा शरीर कष्ट से ग्रस्त है और मैं अक्सर बीमार रहता हूँ। मुझे भगवान (बुद्ध) और आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन बहुत कम होते हैं। 2 हे पूज्यवर, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे उपदेश दें, क्योंकि इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

"हे गृहस्थ, ऐसा ही है! तुम्हारा यह शरीर पीड़ित है, बोझ से दबा हुआ है, बोझ से जकड़ा हुआ है। 3 यदि कोई इस शरीर को धारण करके क्षण भर के लिए भी स्वस्थ होने का दावा करे, तो यह केवल बचकानापन ही तो है? इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'यद्यपि मेरा शरीर पीड़ित है, तो भी मेरा मन पीड़ित नहीं होगा।' तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

तब गृहस्थ नकुलपिता, भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, पूज्य सारिपुत्त के पास गए। आदरणीय सारिपुत्त को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए, और आदरणीय सारिपुत्त ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या आज आपको भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में धर्म प्रवचन सुनने का अवसर मिला?"

"क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? अभी-अभी भगवान (बुद्ध) ने मुझे धर्म प्रवचन के अमृत से अभिषेक किया है।"

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने आपको किस प्रकार के धर्म प्रवचन के अमृत से अभिषेक किया है?"

"हे पूज्यवर, मैं भगवान (बुद्ध) के पास आया था...

(गृहस्थ नकुलपिता बुद्ध के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत दोहराते हैं।)

"हे पूज्यवर, ऐसे धर्म प्रवचन के अमृत से ही भगवान (बुद्ध) ने मेरा अभिषेक किया।"

"हे गृहस्थ, क्या आपके मन में यह विचार नहीं आया कि आप भगवान (बुद्ध) से यह प्रश्न करें कि शरीर और मन दोनों कैसे क्षुब्ध होते हैं, और शरीर तो क्षुब्ध होता है लेकिन मन नहीं?" "हे

पूज्यवर, हम दूर से इस कथन का अर्थ पूज्य सारिपुत्त से जानने आए हैं। यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो बहुत अच्छा होगा।"

"तो फिर सुनिए और ध्यान से (मानसिकरो), हे गृहस्थ, मैं बोलूंगा।"

"जी हे पूज्यवर," गृहस्थ नकुलपिता ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"हे गृहस्थ, शरीर और मन से पीड़ित व्यक्ति कैसे होता है? हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, 4 जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, या आत्मा को रूप धारण करने वाला, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मानता है। वह 'मैं रूप हूँ, रूप मेरा है' की धारणाओं से ग्रस्त रहता है। 5 इन धारणाओं से ग्रस्त रहने के कारण, उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को आत्मा के समान, या आत्मा को वेदना धारण करने वाला, या वेदना को आत्मा में, या आत्मा को वेदना में मानता है।" वह 'मैं ही वेदना हूँ, मेरी ही वेदना है' की धारणाओं में ग्रस्त रहता है। इन धारणाओं में ग्रस्त रहने के कारण उसकी वेदना बदलती रहती है। वेदना के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह अनुभूति को आत्मा, अनुभूति को आत्मा, अनुभूति को आत्मा में, या आत्मा को अनुभूति में मानता है। वह 'मैं ही अनुभूति हूँ, मेरी ही वेदना है' की धारणाओं में ग्रस्त रहता है। इन धारणाओं से ग्रस्त होकर जीने के कारण उसकी यह धारणा बदलती रहती है। धारणा में इस परिवर्तन के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं के रूप में, या स्वयं को संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से युक्त मानता है, या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं में, या स्वयं को संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) में मानता है। वह इस धारणा से ग्रस्त रहता है: 'मैं संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) हूँ, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) मेरे हैं।' इन धारणाओं से ग्रस्त होकर जीने के कारण उसके ये संस्कार बदलते रहते हैं। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) में इस परिवर्तन के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) को आत्मा, या आत्मा को चेतना से युक्त, या चेतना को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में मानता है। वह 'मैं चेतना हूँ, चेतना मेरी है' जैसे विचारों से ग्रस्त रहता है। इन विचारों से ग्रस्त रहने के कारण उसकी चेतना में परिवर्तन और रूपांतरण होता रहता है। चेतना के इस परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे

गृहस्थ, इसी प्रकार शरीर और मन दोनों व्यथित होते हैं।

"हे गृहस्थ, शरीर से पीड़ित होकर भी मन से पीड़ित न होने वाला व्यक्ति कैसे हो सकता है? हे गृहस्थ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। 7 वह 'मैं रूप हूँ, रूप मेरा है' के भावों से ग्रस्त नहीं रहता। क्योंकि वह इन भावों से मुक्त रहता है, इसलिए उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को वेदना धारण करने वाला मानता है, न ही वेदना को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को वेदना में मानता है। वह 'मैं वेदना हूँ, वेदना मेरी है' के भावों से ग्रस्त नहीं रहता।" जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी वेदना (संवेदना) में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। वेदना (संवेदना) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) को स्वयं के रूप में, स्वयं को अनुभूति से युक्त, अनुभूति को स्वयं में, या स्वयं को अनुभूति में नहीं मानता। वह 'मैं अनुभूति हूँ, अनुभूति मेरी है' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर जीवन व्यतीत नहीं करता। जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी अनुभूति में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। अनुभूति

(संवेदना) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। वह संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) को स्वयं के रूप में, स्वयं को संस्कार (आदत) से युक्त, या संस्कार (आदत) को स्वयं में, या स्वयं को संस्कार (आदत) में नहीं मानता। वह 'मैं संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) हूँ, संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) मेरे हैं' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर नहीं जीता। इन धारणाओं से मुक्त होकर जीने के कारण, उसके संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) बदलते रहते हैं। संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, स्वयं को चेतना से युक्त, चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में नहीं मानता। वह 'मैं चेतना हूँ, चेतना मेरी है' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर नहीं जीता। जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी चेतना में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। चेतना के इस परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

"हे गृहस्थ, इस प्रकार शरीर तो क्षुब्ध होता है, पर मन क्षुब्ध नहीं होता।" 8

यह पूज्य सारिपुत्त ने कहा। पूज्य सारिपुत्त के इस कथन से गृहस्थ नकुलपिता प्रसन्न हुए।

---

2. देवदहा में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम देवदहा था। तब पश्चिम की ओर जाने वाले कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, हम पश्चिमी प्रांत में निवास करने के लिए जाना चाहते हैं।" 9

"क्या आपने सारिपुत्त से विदा ली है, भिक्षुओं?"

"नहीं, हे पूज्यवर।"

"तो सारिपुत्त से विदा लें, भिक्षुओं। सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, वे ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले अपने भाइयों की सहायता करते हैं।" 10 [6]

"जी, हे पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी में बैठे थे। 11 तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने स्थानों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया। फिर, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, वे पूज्य सारिपुत्त के पास गए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र सारिपुत्त, हम पश्चिमी प्रांत में निवास करने के लिए जाना चाहते हैं। हमने गुरु से विदा ली है।"

"मित्रों, ऐसे बुद्धिमान क्षत्रिय, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ और बुद्धिमान तपस्वी हैं जो किसी भिक्षु (भिक्षु) से विदेश जाने पर प्रश्न करते हैं 12 - क्योंकि बुद्धिमान लोग, मित्रों, जिज्ञासु होते हैं: 'आपके गुरु क्या कहते हैं, वे क्या सिखाते हैं?'" मुझे आशा है कि आप पूज्यजनों ने शिक्षाओं को भली-भांति सीखा है, उन्हें भली-भांति आत्मसात किया है, उन पर भली-भांति ध्यान दिया है, उन पर भली-भांति विचार किया है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उन्हें भली-भांति आत्मसात किया है, ताकि उत्तर देते समय आप वही कहें जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; ताकि आप धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करें और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने।" 13

"हे मित्र, हम पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने के लिए दूर-दूर से आए हैं।" यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो वास्तव में अच्छा होगा। "

तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मित्रों, मैं बोलता हूँ।"

"जी, मित्रों," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, कुछ बुद्धिमान क्षत्रिय, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ और बुद्धिमान तपस्वी हैं जो किसी भिक्षु के विदेश जाने पर उससे प्रश्न करते हैं - क्योंकि बुद्धिमान लोग, मित्रों, जिज्ञासु होते हैं: 'आपके गुरु क्या कहते हैं, वे क्या सिखाते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको उत्तर देना चाहिए: 'हमारे गुरु, मित्रों, इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण की शिक्षा देते हैं।'"

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो कुछ ज्ञानी क्षुद्र ... ज्ञानी तपस्वी आपसे आगे प्रश्न पूछेंगे - क्योंकि ज्ञानी लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों, वे पूछेंगे: 'आपके गुरु इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण के बारे में क्या सिखाते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको उत्तर देना चाहिए: 'हमारे गुरु, मित्रों, रूप के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण, वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण, बोध (संज्ञा) के निवारण, संशय (आक्रामक व्यवहार) के निवारण, और चेतना (विज्ञान) के निवारण की शिक्षा देते हैं।'"

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो कुछ बुद्धिमान क्षत्रिय... बुद्धिमान तपस्वी आपसे आगे प्रश्न करेंगे - क्योंकि बुद्धिमान लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों: 'यह देखकर कि आपके गुरु रूप के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने, वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने... बोध... बोध... बोध (व्यवहार-आधार)... चेतना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने में क्या खतरा बताते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'यदि, मित्रों, कोई रूप के संबंध में कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, 14 तो रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ व्यक्ति में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।'" मित्रों, यदि कोई व्यक्ति वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के संबंध में कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, तो चेतना के परिवर्तन और बदलाव के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। इस खतरे को देखकर हमारे गुरु रूप के प्रति इच्छा और कामवासना (राग) को दूर करने और वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति इच्छा और कामवासना (राग) को दूर करने का उपदेश देते हैं।

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो हो सकता है कि कुछ बुद्धिमान क्षुद्र ... बुद्धिमान तपस्वी आपसे आगे प्रश्न पूछें - क्योंकि बुद्धिमान लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों: 'यह देखकर कि आपके गुरु रूप के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने, वेदना के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने ... बोध (सन्ना संस. संग्या) ... संखार (व्यवहार-अनुकूलन) ... चेतना को दूर करने से क्या लाभ प्रदान करते हैं?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'यदि कोई व्यक्ति रूप के प्रति कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित है, तो रूप परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित है, तो चेतना परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। इस लाभ को देखकर, हमारे गुरु रूप के प्रति कामवासना (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करना, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति कामवासना (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करना सिखाते हैं।'

हे मित्रों, यदि कोई व्यक्ति जो हानिकारक अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, इस जीवन में बिना कष्ट, निराशा और बुखार के सुखी रह सकता है, और यदि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे शुभ गंतव्य (सुगति) प्राप्त हो सकता है, तो भगवान (बुद्ध) हानिकारक अवस्थाओं के त्याग की प्रशंसा नहीं करते। परन्तु क्योंकि जो व्यक्ति हानिकारक अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, वह इस जीवन में कष्ट, निराशा और बुखार में रहता है, और क्योंकि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे अशुभ गंतव्य प्राप्त हो सकता है, इसलिए भगवान (बुद्ध) हानिकारक अवस्थाओं के त्याग की प्रशंसा करते हैं।

हे मित्रों, यदि कोई व्यक्ति जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, वह इस जीवन में कष्ट, निराशा और बुखार में रहता है, और यदि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे अशुभ गंतव्य प्राप्त हो सकता है, तो भगवान (बुद्ध) लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति की प्रशंसा नहीं करते। परन्तु जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश करके उनमें बना रहता है, वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा या व्याकुलता के रहता है, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर उसे सुखी प्राप्ति की आशा रहती है, इसलिए भगवान (बुद्ध) लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं।

यह बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। सारिपुत्त के इस कथन से वे भिक्षु प्रसन्न हो उठे।

---

3. हलिद्दकानी (1)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुरारघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। 16 तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने अत्तकवग्ग के 'मगंदिया के प्रश्न' में यह कहा है: 17

'घर छोड़कर
गाँव में विचरण करने वाले ऋषि किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखते; वे
इंद्रिय सुखों से मुक्त होकर, बिना किसी अपेक्षा के
लोगों से विवाद नहीं करते।'

हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का विस्तृत अर्थ क्या है?"

"हे गृहस्थ, रूप तत्व चेतना का घर है; जिसका मन रूप तत्व के प्रति वासना से जकड़ा हुआ है, उसे गृहस्थ ही भटकने वाला कहा जाता है। 18 वेदना तत्व चेतना का घर है... बोध तत्व चेतना का घर है... संस्कार तत्व चेतना का घर है; जिसका मन संस्कार तत्व के प्रति वासना से जकड़ा हुआ है, उसे गृहस्थ ही भटकने वाला कहा जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति गृहस्थ ही भटकता है। 19

"और हे गृहस्थ, एक संन्यासी कैसे भटकता है?" तथागत ने इच्छा, राग, आनंद और तृष्णा, उपादान और आसक्ति, रूप तत्व के प्रति मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और अंतर्निहित प्रवृत्तियों का त्याग कर दिया है। इन सभी को उन्होंने जड़ से काट दिया है, ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह नष्ट कर दिया है, ताकि भविष्य में इनका कोई उद्‌भव न हो। 20 अतः तथागत को संन्यासी के रूप में विचरण करने वाला कहा जाता है। इच्छा, राग, आनंद और तृष्णा, आसक्ति और लगाव, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठाएँ और संवेदना (वेदना) तत्व, बोध तत्व, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) तत्व और चेतना तत्व से संबंधित अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ: तथागत ने इन सभी का जड़ से त्याग कर, जड़ से काट कर, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिया है, ताकि भविष्य में इनका कोई प्रभाव न रहे। इसलिए तथागत को संन्यासी के रूप में विचरण करने वाला कहा जाता है। इसी प्रकार संन्यासी विचरण करते हैं।

"हे गृहस्थ, कोई घर में कैसे विचरण करता है? रूपों के निमित्त (कारण) से युक्त घर में फैलाव और परिसीमन द्वारा, व्यक्ति घर में विचरण करने वाला कहलाता है। 22 ध्वनियों के निमित्त, गंधों के निमित्त, स्वादों के निमित्त, स्पर्शनीय वस्तुओं के निमित्त, और मानसिक घटनाओं (धम्म) के निमित्त (कारण) से युक्त घर में फैलाव और परिसीमन द्वारा, व्यक्ति घर में विचरण करने वाला कहलाता है।

"हे गृहस्थ, कोई घर के बिना कैसे विचरण करता है?" रूपों के निमित्त (कारण) से युक्त निवास स्थान में फैलाव और सीमितता: तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इस प्रकार मिटा दिया है कि ये भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। इसलिए तथागत को निवास स्थान रहित विचरण करने वाला कहा जाता है। ध्वनियों के निमित्त, गंधों के निमित्त, स्वादों के निमित्त, स्पर्शनीय वस्तुओं के निमित्त, मानसिक घटनाओं (धम्म) के निमित्त (कारण) से युक्त निवास स्थान में फैलाव और सीमितता: तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इस प्रकार मिटा दिया है कि ये भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। इसलिए तथागत को निवास स्थान रहित विचरण करने वाला कहा जाता है। इसी तरह मनुष्य बिना निवास स्थान के भटकता रहता है। 23

"हे गृहस्थ, गाँव में कोई कैसे घनिष्ठ संबंध रखता है? हे गृहस्थ, यहाँ मनुष्य गृहस्थों के साथ रहता है: वह उनके साथ सुख-दुख में शामिल होता है, उनके सुख-दुख में प्रसन्न होता है और उनके दुख-दुख में दुखी होता है, और उनके कार्यों और कर्तव्यों में स्वयं को शामिल करता है। 24 इसी तरह गाँव में मनुष्य घनिष्ठ संबंध रखता है।

"हे गृहस्थ, गाँव में कोई किसी से घनिष्ठ संबंध कैसे नहीं रखता? हे गृहस्थ, यहाँ भिक्षु गृहस्थों के साथ नहीं रहता। वह उनके सुख-दुख में शामिल नहीं होता, उनके सुख-दुख में प्रसन्न नहीं होता और उनके दुख-दुख में दुखी नहीं होता, और उनके कार्यों और कर्तव्यों में स्वयं को शामिल नहीं करता। इसी तरह गाँव में कोई किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखता।

"हे गृहस्थ, कोई व्यक्ति इंद्रिय सुखों से कैसे मुक्त नहीं हो सकता? हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति इंद्रिय सुखों के संबंध में कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से रहित नहीं होता। इसी प्रकार व्यक्ति इंद्रिय सुखों से

मुक्त नहीं हो सकता।"

"हे गृहस्थ, अपेक्षाएँ कैसे पाली जाती हैं? 25 हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति सोचता है: 'काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी संवेदना (वेदना) हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो! काश भविष्य में मुझे ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी चेतना (विन्नान विज्ञान) हो!' इसी प्रकार अपेक्षाएँ पाली जाती हैं।

"हे गृहस्थ, अपेक्षा रहित कैसे रहा जाता है? हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति यह नहीं सोचता: 'काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो!... काश भविष्य में मुझे ऐसी चेतना हो!' इसी प्रकार अपेक्षा रहित रहा जाता है।"

"हे गृहस्थ, लोगों से विवाद कैसे किया जाए? यहाँ, हे गृहस्थ, कोई इस प्रकार की बातें करता है: 26 'तुम इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन को नहीं समझते। मैं इस धम्म और अनुशासन को समझता हूँ। क्या, तुम इस धम्म और अनुशासन को समझते हो! तुम गलत अभ्यास कर रहे हो। मैं सही अभ्यास कर रहा हूँ। जो बात पहले कही जानी चाहिए थी, वह तुमने बाद में कही; जो बात बाद में कही जानी चाहिए थी, वह तुमने पहले कही। मैं सुसंगत हूँ, तुम असंगत हो। जिस बात पर तुमने इतना समय लगाया, वह उलट गई है। तुम्हारा सिद्धांत खंडित हो गया है। जाओ अपने सिद्धांत को बचाने के लिए, क्योंकि तुम हार गए हो, या यदि संभव हो तो स्वयं को इससे मुक्त करो।' इसी प्रकार से लोग विवाद में उलझते हैं।

"हे गृहस्थ, लोगों से विवाद कैसे न किया जाए?" हे गृहस्थ, यहाँ कोई इस प्रकार की बातें नहीं करता: 'तुम्हें यह धम्म और अनुशासन समझ नहीं आता...' इसी प्रकार लोगों से वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

"इसलिए, हे गृहस्थ, जब भगवान (बुद्ध) ने अत्थकवग्ग के 'मगंदिया के प्रश्न' में कहा:

'घर छोड़कर बिना निवास के विचरण करने वाले
ऋषि किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखते; वे
इंद्रिय सुखों से मुक्त होकर, बिना किसी अपेक्षा के
लोगों से वाद-विवाद नहीं करते।'

भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझना चाहिए।"

---

4. हलिद्दकानी (2)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुरारघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने 'सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) के प्रश्न' में यह कहा है: 27 'वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तृष्णा के निवारण में मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे ही परम लक्ष्य, बंधन से परम सुरक्षा, परम ब्रह्मचर्य जीवन, परम उद्देश्य तक पहुँच जाते हैं और देवों (देवदूतों) और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं।' 28 हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस वचन का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

गृहस्थ, इच्छा, वासना, आनंद, तृष्णा, आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और धातु के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्तियों के विनाश (खया/क्षय), क्षीण होने, निरोध, त्याग और परित्याग के माध्यम से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है

। इस तत्व से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

"इस प्रकार, हे गृहस्थ, जब भगवान (बुद्ध) ने 'सक्का के प्रश्न' में कहा है: 'वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तृष्णा के निवारण में मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे ही परम लक्ष्य, बंधन से परम सुरक्षा, परम ब्रह्मचर्य जीवन, परम उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं' - तो इस प्रकार भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझना चाहिए।"

---

5. समाधि अवस्था
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, समाधि की अवस्था प्राप्त करो। समाधि की अवस्था में भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

" और वह किन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है? रूप की उत्पत्ति और क्षय; वेदना की उत्पत्ति और क्षय; संज्ञा की उत्पत्ति और क्षय; संशय की उत्पत्ति और क्षय; विज्ञान की उत्पत्ति और क्षय। 29

"हे भिक्षुओं, रूप का उद्‌गम क्या है? वेदना का उद्‌गम क्या है? बोध का उद्‌गम क्या है? संस्कार का उद्‌गम क्या है? चेतना का उद्‌गम क्या है?

हे भिक्षुओं, यहाँ व्यक्ति आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उसे थामे रहता है। और वह क्या है जिसमें व्यक्ति आनंद की खोज करता है, किसका स्वागत करता है और किससे जुड़ा रहता है? व्यक्ति रूप में आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उसे थामे रहता है। इसके फलस्वरूप आनंद उत्पन्न होता है। रूप में आनंद आसक्ति है। आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।" यही इस समस्त दुख का मूल है।

"मनुष्य वेदना में, बोध में, संस्कार में, चेतना में आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उससे जुड़ा रहता है। इसके परिणामस्वरूप आनंद उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

"हे भिक्षुओं, यही रूप का मूल है; यही वेदना का मूल है; यही बोध का मूल है; यही संस्कार में, यही संस्कार में, यही चेतना का मूल है। 30

"और हे भिक्षुओं, रूप का क्षय क्या है? वेदना का क्षय क्या है? बोध का क्षय क्या है? संस्कार में, जो व्यवहारिकता है, उसका क्षय क्या है?

यहाँ, हे भिक्षुओं, मनुष्य आनंद की खोज नहीं करता, स्वागत नहीं करता, जुड़ा नहीं रहता। और वह क्या है जिसमें व्यक्ति आनंद नहीं खोजता? जिसका व्यक्ति स्वागत नहीं करता? जिससे व्यक्ति जुड़ा नहीं रहता? व्यक्ति रूप में आनंद नहीं खोजता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता। परिणामस्वरूप, रूप में आनंद समाप्त हो जाता है। आनंद के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

मनुष्य वेदनाओं, बोध, संस्कारों, चेतना में आनंद नहीं खोजता, न ही उनका स्वागत करता है, न ही उनसे जुड़ा रहता है। इसके परिणामस्वरूप, चेतना में आनंद समाप्त हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है। हे

भिक्षुओं, यही रूप का क्षय है; यही वेदनाओं का क्षय है; यही बोध का क्षय है; यही संस्कारों का क्षय है; यही चेतना का क्षय है।

---

6. एकांतवास (पतिसलाना)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। 31 एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

और वह वास्तव में क्या समझता है? रूप की उत्पत्ति और क्षय; वेदना की उत्पत्ति और क्षय; संज्ञा की उत्पत्ति और क्षय; संशय की उत्पत्ति और क्षय; विज्ञान की उत्पत्ति और क्षय;

और भिक्षुओं, रूप की उत्पत्ति क्या है?..."

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले 5 सूत्रों के समान है।)

---

7. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (1) (उपादपरितासना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आसक्ति से उत्पन्न बेचैनी (उपदान सं. आसक्ति) और अनासक्ति से उत्पन्न शांत रहना सिखाऊंगा। 32 मैं यह सुनूंगा और ध्यानमग्न रहूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, आसक्ति के कारण व्याकुलता कैसे होती है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, या आत्मा को रूप धारण करने वाला, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है। उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन के साथ, उसकी चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) रूप परिवर्तन में लीन हो जाती है। रूप परिवर्तन की व्याकुलता से उत्पन्न व्याकुलता और मानसिक अवस्थाओं का समूह उसके मन को ग्रस्त रखता है। 33 क्योंकि उसका मन व्याकुल है, वह भयभीत, व्याकुल और चिंतित है, और आसक्ति के कारण वह व्याकुल हो जाता है।

वह वेदना को आत्मा के समान मानता है... बोध को आत्मा के समान मानता है... संज्ञा (Sangya) को स्वयं के रूप में... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं के रूप में... चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में। उसकी वह चेतना बदलती और रूपांतरित होती रहती है। चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसकी चेतना चेतना के परिवर्तन में लीन हो जाती है। चेतना के परिवर्तन में लीन होने से उत्पन्न बेचैनी और मानसिक अवस्थाओं का एक समूह उसके मन को ग्रस्त रखता है। क्योंकि उसका मन ग्रस्त है, वह भयभीत, व्यथित और चिंतित है, और आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण वह बेचैन हो जाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, आसक्ति के कारण बेचैनी होती है।

और, भिक्षुओं, अनासक्ति के द्वारा अशांति कैसे प्राप्त की जा सकती है?" हे भिक्षुओं, यहाँ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। उसका रूप बदलता रहता है। रूप के इस परिवर्तन के बावजूद, उसकी चेतना रूप परिवर्तन में लीन नहीं होती। रूप परिवर्तन की चिंता से उत्पन्न कोई भी व्याकुलता या मानसिक अवस्थाएँ उसके मन को ग्रस्त नहीं करतीं। क्योंकि उसका मन व्याकुल नहीं है, इसलिए वह भयभीत, व्याकुल या चिंतित नहीं होता, और अनासक्ति के कारण वह विचलित नहीं होता।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन के बावजूद, उसकी चेतना इस परिवर्तन में लीन नहीं रहती। चेतना के परिवर्तन से उत्पन्न कोई भी बेचैनी या मानसिक अवस्थाओं का समूह उसके मन को ग्रस्त नहीं करता। क्योंकि उसका मन लीन नहीं है, इसलिए वह भयभीत, व्याकुल या चिंतित नहीं होता, और अनासक्ति के कारण वह विचलित नहीं होता।

भिक्षुओं, अनासक्ति के कारण इसी प्रकार अविचलितता प्राप्त होती है।

---

8. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (2) (उपादपरितासना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आसक्ति से उत्पन्न बेचैनी (उपादान संस्कृत: आसक्ति) और अनासक्ति से उत्पन्न अबेचनी सिखाऊंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो...

और हे भिक्षुओं, आसक्ति से बेचैनी कैसे उत्पन्न होती है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप को इस प्रकार देखता है:
'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा स्वरूप है।' 34 उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को इस प्रकार देखता है... संज्ञा को इस प्रकार देखता है... संवेदन को इस प्रकार देखता है... संशय को इस प्रकार देखता है... चेतना को इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा स्वरूप है।'" उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार आसक्ति के कारण व्याकुलता उत्पन्न होती है।

और हे भिक्षुओं, अनासक्ति के कारण अव्याकुलता कैसे होती है? हे भिक्षुओं, यहाँ दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप को इस प्रकार नहीं देखता: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह वेदना को इस प्रकार नहीं देखता... बोध को इस प्रकार नहीं देखता... संस्कार को इस प्रकार नहीं देखता... चेतना को इस प्रकार नहीं देखता: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार से आसक्ति रहित रहने के द्वारा अविचलितता प्राप्त होती है।"

---

9. तीनों काल में अनित्य
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों का, वर्तमान काल तो नितांत ही है। ऐसा देखकर, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य भूतकाल के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूप के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और निरोध हो जाए।

वेदना क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है... संशय क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों का, वर्तमान काल तो नितांत ही है। ऐसा देखकर, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य भूतकाल की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल की चेतना में आनंद नहीं लेता।" और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्ति का अभ्यास कर रहा है।"

---

10. तीन काल में कष्ट (कालत्तयदुक्ख सं. काल-आत्मया-दुःख)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अतीत और भविष्य दोनों का दुखदायी है, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य अतीत के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान के रूप के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और समाप्त हो जाए।

" "संवेदना दुखदायी है... अनुभूति दुखदायी है... संशय दुखदायी है... चेतना दुखदायी है, अतीत और भविष्य दोनों का, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य अतीत की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की चेतना में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और समाप्त हो जाए।"

---

11. तीन काल में अनात्म (कालत्तयानत्त सं. काल-आत्मया-अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अतीत और भविष्य दोनों का अनात्म है, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अतीत के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान के रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए।

"संवेदना अनात्म है... अनुभूति अनात्म है... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) अनात्म है... चेतना अनात्म है, अतीत और भविष्य दोनों का, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अतीत की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की चेतना में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्ति का अभ्यास कर रहा है।"

(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - अनित्य खंड (अनिकवागो संस। अनित्य-वर्ग)
12. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, वेदना क्षणभंगुर है, चेतना क्षणभंगुर है, संशय क्षणभंगुर है, और चेतना क्षणभंगुर है। हे भिक्षुओं, ऐसा देखकर, दीक्षित शिष्य रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" वह समझता है:
"पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

13 (2) पीड़ा (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है, वेदना दुखदायी है, अनुभूति दुखदायी है, संस्कार दुखदायी हैं, चेतना दुखदायी है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

14. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म है, चेतना अनात्म है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

15. अनित्य क्या है (यादनिक्का सं. यदा-अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

16. यमदुक्खा क्या है?
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना दुखदायी है... बोध दुखदायी है... संस्कार दुखदायी हैं... चेतना दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।

' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

17. अनात्म (यदानत्) क्या है?
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसा वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना अनात्म है... बोध अनात्म है... संस्कार अनात्म है... चेतना अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसा वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

18. कारण सहित अनित्य
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब रूप क्षणभंगुर से उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है?

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब चेतना क्षणभंगुर से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? इस प्रकार

देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था का और कोई अंत नहीं है।'"

---

19. कारण सहित पीड़ा (सहेतुदुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी दुखदायी है। चूंकि रूप दुखदायी से उत्पन्न हुआ है, तो सुख कैसे हो सकता है?

वेदना दुखदायी है... अनुभूति दुखदायी है... संस्कार दुखदायी हैं... चेतना दुखदायी है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी दुखदायी है। चूंकि चेतना दुखदायी से उत्पन्न हुई है, तो सुख कैसे हो सकता है?

ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

20. नॉनसेल्फ विथ कॉज़ (सहेतुअनात्ता सं. सहेतु-अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूंकि रूप अनात्म से उत्पन्न हुआ है, तो वह आत्मा कैसे हो सकता है?

वेदना अनात्म है... अनुभूति अनात्म है... संस्कार अनात्म हैं... चेतना अनात्म है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूंकि चेतना अनात्म से उत्पन्न हुई है, तो वह आत्मा कैसे हो सकती है?

इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

21. आनंद
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"पूज्यवर, कहा जाता है, 'निरोध, निरोध।' किन धर्मों (मार्ग, नियम) के निरोध के माध्यम से निरोध की बात की जा रही है?"

"आनंद, रूप क्षणभंगुर, संखत, आश्रित उत्पत्ति वाला, विनाश के अधीन, पतन के अधीन, लुप्त होने के अधीन और अंतःस्राप्त है। इसके अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है।

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर, संखत, आश्रित उत्पत्ति वाली, विनाश के अधीन, पतन के अधीन, लुप्त होने के अधीन और अंतःस्राप्त है। इसके अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है। आनंद,

इन्हीं धर्मों के अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है।"

(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द बर्डन सेक्शन (भरा)
22. बोझ
सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बोझ, बोझ उठाने वाला, बोझ उठाना और बोझ उतारना सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, बोझ क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पाँच समुच्चय (कन्ध संस्कृत: स्कन्ध) जो आसक्ति के अधीन हैं। वे पाँच कौन से हैं? समुच्चय (रूप) जो आसक्ति के अधीन है, संवेदना (वेदना) जो आसक्ति के अधीन है, बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) जो आसक्ति के अधीन है, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) जो आसक्ति के अधीन है, चेतना (विज्ञान संस्कृत: आसक्ति के अधीन) जो आसक्ति के अधीन है। इसे ही बोझ कहते हैं।" 36
"हे भिक्षुओं, बोझ उठाने वाला कौन है? यह कहा जाना चाहिए: वह व्यक्ति, इस नाम और कुल का यह पूजनीय व्यक्ति। इसे बोझ उठाने वाला कहा जाता है। 37

"हे भिक्षुओं, बोझ उठाना क्या है? यह वह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जिसमें आनंद (नंदी/आनंद) और काम (राग) शामिल होते हैं, इधर-उधर आनंद की खोज; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, विनाश की तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)। इसे बोझ उठाना कहा जाता है। 38

"हे भिक्षुओं, बोझ उतारना क्या है? यह उसी तृष्णा का शेषरहित लुप्त होना और निरोध (निरोध) है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे बोझ उतारना कहा जाता है।" 39

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"पाँच स्कंध वास्तव में बोझ हैं।
बोझ उठाने वाला व्यक्ति है।
बोझ उठाना संसार में कष्ट है।
बोझ उतारना आनंदमय है।
भारी बोझ उतारकर,
दूसरा बोझ उठाए बिना
, तृष्णा को जड़ से उखाड़कर,
व्यक्ति भूख से मुक्त हो जाता है, पूर्णतः तृप्त हो जाता है।" 40

---

23. पूर्ण समझ (परिन्न संस्कृत परम-ज्ञान)
सावत्थी में। [27] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन धर्मों (मार्गों, नियमों) का उपदेश दूंगा जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए और पूर्ण समझ भी। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए? हे भिक्षुओं, रूप वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए; वेदना... संज्ञा (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विन्नाना (संज्ञा) वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। इन्हें पूर्णतः समझने योग्य धर्म कहा जाता है।

और हे भिक्षुओं, पूर्ण समझ क्या है? काम (राग) का विनाश (खयाय/क्षय), द्वेष (दोष/द्वेष) का विनाश, मोह (मोह) का विनाश। इसे पूर्ण समझ कहा जाता है।" 44

---

24. प्रत्यक्ष रूप से जानना (अभिज्ञान सं. अभि-ज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। वेदना, संवेदना, संशय, चेतना, विज्ञान आदि को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उनके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उनका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

भिक्षुओं, रूप को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में सक्षम हैं। वेदना, संवेदना, संशय, संवेदन आदि को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उनके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उनका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में सक्षम हैं।" 42

---

25. इच्छा और वासना (चंदा-राग)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। ऐसा करने से रूप का त्याग हो जाएगा, वह जड़ से कट जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा।

वेदना के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो... बोध (संज्ञा) के लिए... संशय (अनिवार्य व्यवहार) के लिए... चेतना (विज्ञान) के लिए। ऐसा करने से चेतना का त्याग हो जाएगा, वह जड़ से कट जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा।"

---

26. सांसारिक सुख (1) (अस्सादा 1 बिना असवाद के)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'सांसारिक सुख (असदो संस्कृतः असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, और रूप के मामले में इससे कैसे बचा जा सकता है? वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय, और चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के मामले में सांसारिक सुख क्या है, क्या खतरा है, और इनसे कैसे बचा जा सकता है?' 43

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'रूप पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही रूप में सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही रूप में खतरा है।' रूप के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही रूप से मुक्ति है।

"'संवेदना (वेदना) पर निर्भरता से, बोध पर निर्भरता से, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) पर निर्भरता से, चेतना पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही चेतना में सांसारिक सुख है। वह चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है: यही चेतना में खतरा है। चेतना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही चेतना से मुक्ति है।"

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच स्कंधों (खंड स्कंध) के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे बचने के तरीकों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, जो आसक्ति के अधीन हैं, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

27. सांसारिक सुख (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला था। सांसारिक सुख जो भी रूप में निहित है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

भिक्षुओं, मैं खतरे की खोज में निकला था। खतरे जो भी रूप में निहित है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि खतरे कितना व्यापक है।"

भिक्षुओं, मैं रूप से मुक्ति पाने के मार्ग पर निकला था। रूप से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि रूप से मुक्ति कितनी व्यापक है।

भिक्षुओं, मैं वेदना में सांसारिक सुख, वेदना में निहित खतरे, वेदना से मुक्ति, वेदना से मुक्ति, (इसी प्रकार) अनुभूति (संज्ञा) से मुक्ति, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से मुक्ति, और चेतना (विज्ञान) से मुक्ति पाने के मार्ग पर निकला था। चेतना से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि चेतना से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच स्कंधों (खंड स्कंध) के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे बचने के तरीकों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, जो आसक्ति के अधीन हैं, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

28. सांसारिक सुख (3) (अस्सादा 3 सं. असवाद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यदि रूप में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु क्योंकि रूप में सांसारिक भोग है, इसलिए प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि रूप में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा न करते; परन्तु क्योंकि रूप में भय है, इसलिए प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि रूप से मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु क्योंकि रूप से मुक्ति है, इसलिए प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि वेदना में सांसारिक भोग न होता... बोध में सांसारिक भोग न होता... संशय में सांसारिक भोग न होता... चेतना में सांसारिक भोग न होता... परन्तु क्योंकि चेतना से मुक्ति है, इसलिए प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

भिक्षुओं, जब तक प्राणी सांसारिक सुखों (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, भय को भय के रूप में और इन पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) के मामले में, जो आसक्ति के अधीन हैं, उनसे मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं; वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं।

---

29. आनंद (अभिनंदन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो रूप में आनंद ढूंढता है, वह दुख में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद ढूंढता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो वेदना में, चेतना में, संवेदन में, विज्ञान में आनंद ढूंढता है, वह दुख में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद ढूंढता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो रूप में, चेतना में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुख में आनंद नहीं ढूंढता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

30. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है। संवेदना (वेदना) का उद्भव... अनुभूति (संज्ञा) का उद्भव... संशय (अनिवार्य व्यवहार) का उद्भव... चेतना (विज्ञान) का उद्भव दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है।

रूप (चेतना) का निरोध, शांत होना और देहांत होना... दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत है।"

---

31. दुख का मूल (अघामुला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुःख और दुःख के मूल के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, दुःख क्या है? रूप दुःख है; वेदना दुःख है; संज्ञा दुःख है; संस्कार दुःख है; विज्ञान दुःख है। यही दुःख कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, दुःख का मूल क्या है? यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) है जो नवजन्म की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और राग होते हैं, इधर-उधर सुख की खोज; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। यही दुःख का मूल है।"

---

32. नाजुक (पभंगु सं. प्र-भंगुर या प्रत्यक्ष-भंगुर)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें नश्वर और अविचल का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, नश्वर क्या है और अविचल क्या है? रूप नश्वर है; उसका निरोध, शांत होना, देह त्यागना अविचल है। वेदना नश्वर है... बोध नश्वर है... संशय (संज्ञा) नश्वर है... चेतना (विज्ञान) नश्वर है; उसका निरोध, शांत होना, देह त्यागना अविचल है।"

(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - आपका नहीं अनुभाग (नटुम्हकमवग्गो सं. न-त्वमवकम-वर्ग)
33. आपका नहीं (1) (नतुम्खम्1 सं. न-त्वमवकम)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।46 और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। वेदना तुम्हारी नहीं है... चेतना तुम्हारी नहीं है... चेतना तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

" "मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें।" क्या आप सोचते हैं: 'लोग हमें उठा ले जा रहे हैं, जला रहे हैं, या हमारे साथ जो चाहें कर रहे हैं'? "

नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारे स्वरूप से संबंधित है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, रूप आपका नहीं है... चेतना आपकी नहीं है: इसका त्याग करो। जब आप इसका त्याग कर देंगे, तभी आपका कल्याण और सुख प्राप्त होगा।"

---

34. तुम्हारा नहीं (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें उपमा नहीं है।)

---

35. एक निश्चित भिक्षु (1) (अन्नतारभिक्खु1 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग/नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धर्म सुनकर मैं एकांतवास में, एकांत में, सचेत (अपमादा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"भिक्षु, यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। 47 यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस प्रवृत्ति के अनुसार नहीं किया जाता।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

हे पूज्यवर, यदि किसी व्यक्ति में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में संवेदना के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में बोध के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में संवेग (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में चेतना के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। हे

पूज्यवर, यदि किसी व्यंक्ति में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस आधार पर नहीं किया जाता है। यदि किसी में वेदना (संवेदना) की ओर, बोध की ओर, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) की ओर, चेतना की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसकी गणना इन आधारों पर नहीं की जाती।

"हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।" "

अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाते हैं। हे भिक्षु, यदि किसी में रूप (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है) की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसकी गणना इन आधारों पर नहीं की जाती। इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझना चाहिए।"

तब उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठकर, भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर प्रणाम किया और प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया। 48

---

36. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नतारभिक्खु2 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग/नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धर्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"भिक्षु, यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय संस्कृत: अनुषय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि किसी का मूल्यांकन किसी चीज़ के अनुसार किया जाता है, तो उसकी गणना उसी के अनुसार की जाती है। यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस अनुसार नहीं किया जाता; यदि किसी का मूल्यांकन किसी चीज़ के अनुसार न किया जाए, तो उसकी गणना उस अनुसार नहीं की जाती।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, यदि किसी में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है, तो उसका आकलन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी में संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है, तो उसका आकलन उसी के अनुसार किया जाता है। हे

पूज्यवर, यदि किसी में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) नहीं है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार नहीं किया जाता है; यदि किसी का मापन इसके अनुसार नहीं किया जाता, तो उसका मूल्यांकन भी इसके अनुसार नहीं होता। यदि किसी में वेदना, बोध, संस्कार, चेतना आदि की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मापन इसके अनुसार नहीं होता; यदि किसी का मापन इसके अनुसार नहीं किया जाता, तो उसका मूल्यांकन भी इसके अनुसार नहीं होता।

"हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।"

"बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझते हैं। हे भिक्षु, यदि किसी में रूप की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... तो उसका मूल्यांकन इसके अनुसार नहीं होता। मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझना चाहिए।"

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

37. आनंद (1)
सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। . . . भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा, जो एक तरफ बैठे थे:

"हे आनंद, यदि आपसे पूछा जाए: 'मित्र आनंद, वे कौन से धर्म (मार्ग, नियम) हैं जिनसे उत्पत्ति, पतन और यथार्थ में परिवर्तन देखा जा सकता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?" 50

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'मित्रों, रूप में उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और विज्ञान में उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है। मित्रों, ये वे धर्म हैं जिनमें उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है।' आदरणीय महोदय, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।"

"अच्छा, अच्छा, आनंद! हे आनंद, रूप से उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। वेदना, बोध, संस्कार और चेतना से उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे आनंद, ये वे धर्म हैं जिनसे उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर आपको इसी प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

38. आनंद (2)
सावत्थी में... भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय आनंद से कहा, जो एक तरफ बैठे थे:

"हे आनंद, यदि तुमसे पूछा जाए: 'मित्र आनंद, वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय हुआ, पतन हुआ और स्थिर धर्म में परिवर्तन हुआ? वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय होगा, पतन होगा और स्थिर धर्म में परिवर्तन होगा? वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय हुआ है, पतन हुआ है और स्थिर धर्म में परिवर्तन हुआ है?' - हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?"

आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'मित्रों, उस रूप के साथ जो बीत चुका है, समाप्त हो चुका है, परिवर्तित हो चुका है, एक उद्भव देखा गया, एक पतन देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया। वेदना... संज्ञा... संभाव्य... क्रिया... विज्ञान... चेतना के साथ जो बीत चुका है, समाप्त हो चुका है, परिवर्तित हो चुका है, एक उद्भव देखा गया, एक पतन

देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया। मित्रों, इन्हीं धर्मों के कारण उद्भव देखा गया, पतन देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया।

'मित्रों, उस रूप के साथ जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, प्रकट नहीं हुआ है, एक उद्भव देखा जाएगा, एक पतन देखा जाएगा, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा जाएगा। वेदना... संभाव्यता... संस्कार (व्यवहार-आधारभूत)... ऐसी चेतना जो अजन्मी है, अव्यक्त है, उसमें उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, इन्हीं धर्मों से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, जन्मी

, प्रकट हुई आकृति से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। वेदना (संवेदना)... बोध... संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आधारभूत)... ऐसी चेतना जो जन्मी है, प्रकट हुई है, उसमें उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, इन्हीं धर्मों से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है।

"हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"बहुत खूब, आनंद!"

(बुद्ध यहां पूज्यवर आनंद के पूरे उत्तर को दोहराते हुए कहते हैं:

"हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

39. धम्म के अनुसार (1) (अनुधम्म1 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास करता है, तो धम्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप, वेदना, चेतना, संशय और विज्ञान के प्रति घृणा (निबिद्धा) में लीन रहना चाहिए। 52 जो रूप और चेतना के प्रति घृणा में लीन रहता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है। जो रूप और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

---

40. धम्म के अनुसार (2) (अनुधम्म2 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास कर रहा होता है, तो धम्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर चिंतन करना चाहिए (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 39 में बताया गया है)... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

---

41. धम्म के अनुसार (3) (अनुधम्म3 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
... "उसे रूप में दुख पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए (अनुपसी) ... (जैसा कि ऊपर 39 में है)
... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

---

42. धम्म के अनुसार (4) (अनुधम्म4 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
... "उसे स्वरूप में अनात्म पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) रहना चाहिए ... (जैसा कि ऊपर 39 में है)
... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

(v) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - द्वीप खंड के रूप में स्व (अट्टदीपावगो संस। आत्म-द्वीप-वर्ग)
43. अपने आप को द्वीप मानकर (अट्टादिपा संस्कृत: अत्म-द्वीप)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अपने आप को एक द्वीप (अत्त-दीप) मानकर, अपने आप को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, धर्म (मार्ग, नियम) को एक द्वीप मानकर, धर्म को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, निवास करो। 53 जब तुम अपने आप को एक द्वीप मानकर, अपने आप को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, धर्म को एक द्वीप मानकर, धर्म को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, निवास करते हो, तो मूल तत्व की ही इस प्रकार जांच करनी चाहिए: 54 'दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कहाँ से उत्पन्न होती हैं? वे कैसे उत्पन्न होती हैं?'

"और, भिक्षुओं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कहाँ से उत्पन्न होती हैं? वे कैसे उत्पन्न होती हैं?" हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का दर्शन नहीं करता और उनके धर्म में अकुशल एवं अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का दर्शन नहीं करता और उनके धर्म में अकुशल एवं अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, आत्मा को रूप धारण करने वाला, रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है। उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को आत्मा मानता है... अनुभूति को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है (विन्नान), या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

परन्तु भिक्षुओं, जब कोई रूप की अनित्यता, उसके परिवर्तन, लुप्त होने और निरोध को समझ लेता है, और जब वह ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है कि वास्तव में क्या है: 'भूतकाल में भी और अब भी समस्त रूप अनित्य, दुखमय और परिवर्तनशील है,' तब दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का त्याग हो जाता है। इन भावों का त्याग करने से व्यक्ति विचलित नहीं होता। 55 अविचलित रहकर व्यक्ति सुखी रहता है। सुखी रहने वाले भिक्षु को इस मामले में शांत कहा जाता है। 56

"जब व्यक्ति संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिच्छुक व्यवहार) ... चेतना की अनित्यता, उसके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति को समझ लेता है, और जब वह सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से ध्यान में (पासतो) देखता है कि वास्तव में क्या है: 'भूतकाल में और अब भी समस्त चेतना अनित्य, दुखमय और परिवर्तनशील है,' तब दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का त्याग हो जाता है। इन भावों का त्याग करने से व्यक्ति विचलित नहीं होता। अविचलित रहकर व्यक्ति सुखी रहता है। सुखी रहने वाले भिक्षु को इस मामले में शांत कहा जाता है।"

---

44. मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें शरीर-सन्दुत्व (सक्काया) की उत्पत्ति और उसके निवारण (निरोध) का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और, भिक्षुओं, शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है... संवेदना (वेदना) को आत्मा मानता है... बोध (संज्ञा) को आत्मा मानता है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को आत्मा मानता है... चेतना (विज्ञान) को आत्मा मानता है... या आत्मा को चेतना में मानता है। भिक्षुओं, इसे ही शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग कहते हैं। जब यह कहा जाता है, 'शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग', तो यहाँ इसका अर्थ यह है: धर्मों (मार्ग, नियम) को देखने का वह तरीका जो दुख की उत्पत्ति की ओर ले जाता है।" 57

“हे भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही वेदना को आत्मा मानता है... न ही बोध को आत्मा मानता है... न ही संस्कार को आत्मा मानता है... न ही चेतना को आत्मा मानता है... न ही चेतना में स्थित आत्मा को। हे भिक्षुओं, यही शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग कहलाता है। जब यह कहा जाता है, 'शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग', तो यहाँ इसका अर्थ यह है: धर्मों को देखने का वह तरीका जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।”

---

45 अनित्य (1) (अनिच्चा1 सं. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, तो मन वैरागी हो जाता है और अनासक्ति के कारण विमुक्त हो जाता है। 58

"संवेदना क्षणभंगुर है... बोध क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है।" जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई ध्यान में (पासातो) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखता है, तो मन वैरागी हो जाता है और अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का मन रूप तत्व (धातु) के प्रति वैरागी हो जाए, तो वह अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है। यदि उसका मन वेदना तत्व (संवेदना तत्व) के प्रति, बोध तत्व (बोध तत्व) के प्रति, संशय तत्व (आक्रामक व्यवहार) तत्व (संज्ञा) के प्रति, चेतना तत्व (चेतना तत्व) के प्रति वैरागी हो जाए, तो वह अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाता है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाता है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होता।" विचलित न होकर, वे स्वयं निर्वाण प्राप्त करते हैं। वे समझते हैं: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।' 59

---

46. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सास. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है... वेदना क्षणभंगुर है... संज्ञा (संज्ञा) क्षणभंगुर है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) क्षणभंगुर हैं... चेतना (विज्ञान) क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार:
'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

जब कोई ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, तो वह अतीत के बारे में कोई विचार नहीं रखता। जब वह अतीत के बारे में कोई विचार नहीं रखता, तो वह भविष्य के बारे में कोई विचार नहीं रखता। जब वह भविष्य के बारे में कोई विचार नहीं रखता, तो उसमें हठधर्मी आसक्ति नहीं रहती।" 60 जब व्यक्ति में आसक्ति और आसक्ति नहीं रहती, तो मन रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति उदासीन हो जाता है और अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

"मुक्त होने पर मन स्थिर हो जाता है; स्थिर होने पर संतुष्ट हो जाता है; संतुष्ट होने पर विचलित नहीं होता। विचलित न होने पर व्यक्ति स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और समय नहीं है।'"

---

47. चीजों के संबंध में तरीके (समनुपासना सं. सम्यक-अनुपश्यना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो विभिन्न प्रकार से किसी भी चीज़ को आत्मा मानते हैं, वे सभी आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को, या उनमें से किसी एक को आत्मा मानते हैं। वे पाँच कौन से हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है।" वह वेदना (संवेदना) को आत्मा के रूप में, संज्ञा (संज्ञा) को आत्मा के रूप में, संखार (बाध्यकारी व्यवहार) को आत्मा के रूप में, विज्ञान (विन्नना) को आत्मा के रूप में, या चेतना से युक्त आत्मा के रूप में, या आत्मा को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में मानता है।

इस प्रकार, चीजों को देखने का यह तरीका और 'मैं हूँ' की धारणा उनमें लुप्त नहीं हुई है। 61 चूंकि 'मैं हूँ' लुप्त नहीं हुआ है, इसलिए पांचों इंद्रियों का अवतरण होता है - आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। 62 हे भिक्षुओं, मन है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं, अज्ञान का तत्व (धातु) है। जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अज्ञान से उत्पन्न किसी संवेदना (वेदना) से संपर्क करता है, तो उसे 'मैं हूँ' का अनुभव होता है; 'मैं यह हूँ' का अनुभव होता है; 'मैं रहूँगा' और 'मैं नहीं रहूँगा', 'मैं सजीव रहूँगा' और 'मैं निराकार रहूँगा', 'मैं बोधगम्य रहूँगा' और 'मैं अबोधगम्य रहूँगा' और 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा और न ही अबोधगम्य रहूँगा' - ये सभी उसे अनुभव होते हैं। 63

पांचों इंद्रियां वहीं बनी रहती हैं। भिक्षुओं के संदर्भ में, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अज्ञान का त्याग करके सच्चे ज्ञान को जागृत करता है। अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ, उसे 'मैं हूँ', 'मैं यह हूँ', 'मैं रहूँगा' और 'मैं नहीं रहूँगा', 'मैं सजीव रहूँगा' और 'मैं निराकार रहूँगा', 'मैं बोधगम्य रहूँगा' और 'मैं बोधगम्य नहीं रहूँगा' और 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा' जैसे विचार नहीं आते।

---

48. समुच्चय (खंड सं. स्कंध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें पाँच स्कंधों और आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के बारे में सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध क्या हैं? चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: इसे रूप स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो... इसे वेदना स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... इसे अनुभूति स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार हो... इसे संस्कार स्कंध कहते हैं।" चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) चाहे किसी भी प्रकार की हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: इसे चेतना का समूह कहते हैं। भिक्षुओं, इन्हें पाँच समूह कहा जाता है।

भिक्षुओं, आसक्ति के अधीन पाँच स्कंध क्या हैं? चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का... दूर हो या पास का, वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन रूप स्कंध (उपदान संस्कृत: आसक्ति) कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो... वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन संवेदना स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन अनुभूति स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आदत) हों... जो अशुद्ध हैं, जिनसे आसक्ति हो सकती है: इन्हें आसक्ति के अधीन संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की चेतना हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या दूर। या निकट, जो दूषित है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन चेतना समूह कहा जाता है। भिक्षुओं, इन्हें आसक्ति के अधीन पाँच समूह कहा जाता है। 65

---

49. सोना (1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास गए... तब भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ पुत्र सोना से कहा,

"सोना, जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण, रूप के आधार पर, जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है, स्वयं को इस प्रकार मानते हैं: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते? 66

"जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण, संवेदना (वेदना) के आधार पर... बोध (संज्ञा) के आधार पर... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के आधार पर... चेतना (विज्ञान) के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार मानते हैं: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?"

"सोना, जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण रूप के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार नहीं मानते: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' [49] या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?

"जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण संवेदना (वेदना) के आधार पर ... बोध के आधार पर ... संस्कार (व्यवहार-आधार) के आधार पर ... चेतना के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार नहीं मानते:
'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?

"सोना, आपके विचार में, रूप स्थायी है या अनित्य?" - "अनंत, आदरणीय महोदय।" - "अनंत क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या बोध (धारणा) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना (व्यवहार-निर्धारण) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना स्थायी है या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।" "

अत: सोना, चाहे उसका कोई भी रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ वैसे ही देखना चाहिए जैसे वे वास्तव में हैं, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की अनुभूति... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, समस्त चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य सोना को रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, अनुभूति के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

50. सोना (2)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास गए... भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ पुत्र सोना से कहा,

"सोना, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका अंत (निरोध) और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (अनिच्छुक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान)), उसकी उत्पत्ति, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते। 67

"परन्तु, सोना, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो रूप, उसके अंत को समझते हैं, उत्पत्ति, समाप्ति और समाप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग; जो वेदना, अनुभूति, संस्कार, चेतना, उत्पत्ति, समाप्ति और समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

51. आनंद का नाश (1)
सावत्थी में। भिक्षु (भिक्षु), ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) एक भिक्षु अनित्य रूप को देखता है जो वास्तव में अनित्य है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। सही ढंग से देखने पर, वह घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। आनंद (नंदी/आनंद) के विनाश (खया/क्षय) के साथ काम (राग) का विनाश होता है; काम के विनाश के साथ आनंद का विनाश होता है। आनंद और काम के विनाश के साथ मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है। 68

एक भिक्षु ध्यान में अनित्य संवेदना (वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... धारणा (संज्ञा संस्कृत ...वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... संशय (संज्ञा संस्कृत वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... यही उसका सही दृष्टिकोण है .... साथ आनंद और कामवासना के नाश (खया/क्षय) से मन मुक्त हो जाता है और पूर्णतः मुक्त माना जाता है।

---

52. आनंद का नाश (2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, शरीर के प्रति ध्यानमग्न रहो। शरीर की अनित्यता को पहचानो। जब कोई भिक्षु शरीर के प्रति ध्यानमग्न होता है और उसकी अनित्यता को पहचानता है, तो उसे शरीर के प्रति घृणा का अनुभव होता है। आनंद के नाश से राग का नाश होता है; और आनंद के नाश से आनंद का नाश होता है। आनंद और वासना के नाश से मन मुक्त हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है।

भिक्षुओं, वेदना के प्रति ध्यानमग्न रहो... बोध के प्रति... संशय के प्रति... चेतना के प्रति... आनंद और कामवासना का विनाश होने पर मन मुक्त हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है।

(i) प्रभाग 2, मध्य पचास - अनुबंध अनुभाग (उपायवग्गो)

53. सगाई (उपाय)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो व्यस्त है वह अमुक्त है; 69 जो विरक्त है वह मुक्त है (विमुक्त)। हे भिक्षुओं, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), खड़े होकर रूप में व्यस्त रह सकती है; रूप पर आधारित, रूप पर स्थापित, आनंद के एक अंश के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। या चेतना, खड़े होकर [संवेदना (वेदना) में व्यस्त ... अनुभूति (संज्ञा) में व्यस्त ...] संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) में व्यस्त रह सकती है; संस्कार (व्यवहार-आदत) पर आधारित, संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) पर स्थापित, आनंद के एक अंश के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। 70

"भिक्षुओं, यद्यपि कोई कहे: 'रूप से अलग, संवेदना (वेदना) से अलग, अनुभूति से अलग, संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसके विकास, वृद्धि और विस्तार का ज्ञान कराऊँगा' - यह असंभव है।

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने धातु (रूप तत्व) के लिए राग (काम) का त्याग कर दिया है, तो काम (काम) के त्याग से आधार कट जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता। 71 यदि उसने वेदना (संवेदना) तत्व के लिए काम (काम) का त्याग कर दिया है... बोध तत्व के लिए... संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आधारभूतता) तत्व के लिए... चेतना तत्व के लिए, तो काम (काम) के त्याग से आधार कट जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता।

"जब वह चेतना स्थापित नहीं होती, विकास नहीं करती, अउत्पादक होती है, तो वह मुक्त हो जाती है। 72 मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाती है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाती है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होती। अविचलित होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेती है। वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

54. बीज (बीजा)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के बीज हैं। कौन से पाँच? जड़ वाले बीज, तने वाले बीज, जोड़ वाले बीज, कलम वाले बीज और पाँचवाँ अंकुरित बीज। 73 यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से अप्रभावित, उपजाऊ और सुरक्षित रूप से बोए गए हों, लेकिन मिट्टी या जल न हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से क्षतिग्रस्त, अनुत्पादक और सुरक्षित रूप से बोए न गए हों, लेकिन मिट्टी और जल हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से अक्षुण्ण, उपजाऊ, सुरक्षित रूप से बोए गए हों और मिट्टी और जल हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"हाँ, पूज्यवर।"

भिक्षुओं, चेतना की चारों अवस्थाओं को पृथ्वी तत्व (धातु) के समान समझना चाहिए। आनंद (नंदी/आनंद) और राग (काम) को जल तत्व के समान समझना चाहिए। चेतना और उसके पोषक तत्वों को पाँच प्रकार के बीजों के समान समझना चाहिए। 74

"भिक्षुओं, खड़े होकर चेतना को रूप में लीन रहना चाहिए; रूप पर आधारित, रूप पर स्थापित, आनंद (नंदी/आनंद) के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। या खड़े होकर चेतना को वेदना (संवेदना) में लीन रहना चाहिए... अनुभूति (संज्ञा) में लीन रहना चाहिए... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) में लीन रहना चाहिए; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) पर आधारित, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) पर स्थापित, आनंद (अनुभव) के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है।"

भिक्षुओं, भले ही कोई कहे: 'रूप से अलग, वेदना से अलग, बोध से अलग, संस्कार से अलग, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसके विकास, वृद्धि और विस्तार को प्रकट करूँगा' - यह असंभव है।

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने रूप तत्व के प्रति कामवासना का त्याग कर दिया है, तो कामवासना के त्याग से ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई आधार नहीं रह जाता। यदि उसने वेदना तत्व के प्रति कामवासना का त्याग कर दिया है... बोध तत्व के प्रति... संस्कार तत्व के प्रति... चेतना तत्व के प्रति, तो कामवासना के त्याग से ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई आधार नहीं रह जाता।

जब वह चेतना अस्थिर होती है, विकास नहीं करती, सृजनहीन होती है, तब वह मुक्त होकर ही मुक्त होती है, स्थिर होती है; स्थिर होकर वह संतुष्ट होती है; संतुष्ट होकर वह विचलित नहीं होती। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करती है। वह समझती है:
"पुनर्जन्म का नाश हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

55. प्रेरित उच्चारण (उदना)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह प्रेरणाप्रद वचन दिया:
"ऐसा न भी हो, और न ही मेरे लिए हो; ऐसा नहीं होगा, और न ही मेरे लिए होगा" [56] इस प्रकार संकल्प करके, एक भिक्षु निम्न बंधनों को काट सकता है। 75

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"परन्तु हे पूज्यवर, एक भिक्षु, इस प्रकार संकल्प करके: 'ऐसा न भी हो, और न ही मेरे लिए हो; ऐसा नहीं होगा, और न ही मेरे लिए होगा,' निम्न बंधनों को कैसे काट सकता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ जनों का द्रष्टा नहीं है... वह रूप को आत्मा मानता है... या आत्मा को चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के रूप में देखता है।

वह वास्तव में अनित्य रूप को 'अनित्य रूप' के रूप में, अनित्य संवेदना (वेदना) को 'अनित्य संवेदना (वेदना)' के रूप में, अनित्य बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) को 'अनित्य बोध' के रूप में... अनित्य संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को 'अनित्य संस्कार (व्यवहार)' के रूप में... अनित्य चेतना को 'अनित्य चेतना' के रूप में नहीं समझता।"

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह पीड़ादायक रूप है, 'पीड़ादायक रूप'... पीड़ादायक संवेदना (वेदना) 'पीड़ादायक अनुभूति'... पीड़ादायक बोध 'पीड़ादायक बोध'... पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... पीड़ादायक चेतना 'पीड़ादायक चेतना'।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह निस्वार्थ रूप है, 'निस्वार्थ रूप'... निस्वार्थ संवेदना (वेदना) 'निस्वार्थ संवेदना (वेदना)'... निस्वार्थ बोध 'निस्वार्थ बोध'... निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... निस्वार्थ चेतना 'निस्वार्थ चेतना'।

वह वास्तव में यह नहीं समझता कि संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप' के रूप में समझना चाहिए... वेदना को 'संबद्ध संवेदना' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध धारणा को 'संबद्ध धारणा' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध संस्कार को 'संबद्ध संस्कार' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझना चाहिए।

वह वास्तव में यह नहीं समझता कि: 'रूप का नाश होगा'... 'वेदना का नाश होगा'... 'धारणा का नाश होगा'... 'संस्कार का नाश होगा'... 'चेतना का नाश होगा'। 76

"ज्ञान प्राप्त श्रेष्ठ शिष्य, भिक्षु (भिक्षु), जो श्रेष्ठों का द्रष्टा है... वह रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही चेतना में विद्यमान आत्मा (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) मानता है।

वह अनित्य रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में 'अनित्य रूप' के रूप में समझता है..." क्षणभंगुर चेतना को 'क्षणभंगुर चेतना' के रूप में।

"वह वास्तव में पीड़ादायक रूप को 'पीड़ादायक रूप' के रूप में समझता है... पीड़ादायक चेतना को 'पीड़ादायक चेतना' के रूप में।"

वह निस्वार्थ रूप को 'निस्वार्थ रूप' के रूप में समझता है... निस्वार्थ चेतना को 'निस्वार्थ चेतना' के रूप में

समझता है। वह संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप' के रूप में समझता है... संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझता है।

वह समझता है: 'रूप का नाश होगा'...
'संवेदना का नाश होगा'... 'बोध का नाश होगा'
... 'संज्ञा का नाश होगा'... 'व्यवहार का नाश होगा'...
'चेतना का नाश होगा'।

रूप, वेदना, बोध, संभाव और चेतना के नाश होने पर, वह भिक्षु यह संकल्प लेता है:
'ऐसा न भी हो, और ऐसा न भी हो, तो भी मेरे लिए नहीं होगा; "ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा," यह संकल्प निम्न बंधनों को काट सकता है। 77

"हे पूज्यवर, इस प्रकार संकल्प करके एक भिक्षु निम्न बंधनों को काट सकता है। परन्तु किसी को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा कि दोषों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाए?" 78 "

हे भिक्षु, यहाँ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति एक साधारण सी बात पर भयभीत हो जाता है। क्योंकि अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए यह बात भयभीत करने वाली है: 'ऐसा नहीं भी हो सकता है, और ऐसा मेरे लिए भी नहीं हो सकता है; ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा।' परन्तु ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य एक साधारण सी बात पर भयभीत नहीं होता। क्योंकि श्रेष्ठ शिष्य के लिए यह बात भयभीत करने वाली नहीं है: 'ऐसा नहीं भी हो सकता है, और ऐसा मेरे लिए भी नहीं हो सकता है; ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा।'" 79 [58]

"हे भिक्षु, चेतना खड़े-खड़े रूप में लीन हो सकती है... वेदना में लीन हो सकती है... बोध में लीन हो सकती है... संस्कार में लीन हो सकती है; संस्कार पर आधारित, संस्कार पर स्थापित, नंदी आनंद के साथ, यह वृद्धि, विस्तार और विकास की ओर अग्रसर हो सकती है।

"भिक्षु, यद्यपि कोई कहे: 'रूप से अलग, वेदना से अलग, बोध से अलग, संस्कार से अलग, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसकी वृद्धि, विस्तार और विकास का वर्णन करूँगा' - यह असंभव है।

"भिक्षु, यदि किसी भिक्षु ने धातु के लिए राग (काम) का त्याग कर दिया है, तो काम के त्याग के साथ ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता। यदि उसने वेदना (संवेदना) के लिए, बोध (बोध) के लिए, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के लिए, चेतना (चेतना) के लिए काम का त्याग कर दिया है, तो काम के त्याग के साथ ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता।"

जब वह चेतना अस्थिर होती है, विकास नहीं करती, सृजनहीन होती है, तब वह मुक्त हो जाती है (विमुक्त संस्कृत)। मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाती है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाती है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होती। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेती है। वह समझ जाती है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

हे भिक्षु, जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में), उसके लिए विकारों का तत्काल नाश (क्षय) हो जाता है।

---

56. क्लिंगिंग एग्रीगेट्स के चरण (उपदानपरिपवत्ता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध) हैं जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध, आसक्ति के अधीन संवेदना स्कंध, आसक्ति के अधीन अनुभूति स्कंध, आसक्ति के अधीन संस्कार स्कंध, आसक्ति के अधीन क्रिया स्कंध, और आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

जब तक मुझे चार अवस्थाओं में आसक्ति के अधीन इन पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया।" लेकिन जब मैंने इन सब बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लिया, तब मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"और हे भिक्षुओं, चार अवस्थाएँ कैसे हैं? मैंने रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना। मैंने वेदना, बोध, संस्कार, चेतना, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना।

"और हे भिक्षुओं, रूप क्या है? चार महाधातु और उनसे उत्पन्न रूप: यही रूप कहलाता है। पोषण की उत्पत्ति के साथ रूप की उत्पत्ति होती है। पोषण के निरोध के साथ रूप का निरोध होता है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग रूप के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।81

“जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार रूप, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और उसके अंत के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे उत्तम अभ्यास कर रहे हैं। जो उत्तम अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में आधार प्राप्त कर लिया है।82

“और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार रूप, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और उसके अंत के माध्यम से, अनासक्ति (विमुक्ति) द्वारा मुक्त हो जाते हैं, वे उत्तम रूप से मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त हैं, वे सिद्ध पुरुष हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।83

भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क से उत्पन्न वेदना। इसे ही वेदना कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था। इस प्रकार

प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इसे समझ पाते हैं, वे इसे समझ पाते हैं। वेदना (संवेदना), उसका उद्गम, उसका निवारण और निवारण के मार्ग का ज्ञान रखने वाले वे लोग जो वेदना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और निवारण के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे उत्तम अभ्यास कर रहे हैं। जो लोग उत्तम अभ्यास कर रहे हैं

, उन्होंने इस धम्म और अनुशासन में दृढ़ता प्राप्त कर ली है। "और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से वेदना (संवेदना) और उसके निवारण के मार्ग को जान लेते हैं... उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करना असंभव है।

" "और हे भिक्षुओं, अनुभूति (संज्ञा) क्या है? अनुभूति के ये छह प्रकार हैं: रूपों की अनुभूति, ध्वनियों की अनुभूति, गंधों की अनुभूति, स्वादों की अनुभूति, स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति। इसे अनुभूति कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर अनुभूति उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर अनुभूति समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अनुभूति के निवारण का मार्ग है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन पूर्ण पुरुषों के लिए, उनका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या हैं? संस्कार-आधार के ये छह वर्ग हैं: रूप संबंधी संस्कार, ध्वनि संबंधी संस्कार, गंध संबंधी संस्कार, स्वाद संबंधी संस्कार, स्पर्शनीय वस्तुओं संबंधी संस्कार और मानसिक घटनाओं (धम्म) संबंधी संस्कार। इन्हें संस्कार (व्यवहार-आधार) कहा जाता है। स्पर्श (फस/स्पर्श) के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। स्पर्श के समाप्त होने से

संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आधार) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन पूर्ण साधकों के लिए एक प्रकार का व्यक्ति, जिसका वर्णन करने के लिए कोई सटीक पैमाना नहीं है।

"और हे भिक्षुओं, सांसारिक चेतना (विन्नान संस्कृतः विज्ञान) क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे चेतना कहते हैं। मन और शरीर के उत्पन्न होने पर चेतना उत्पन्न होती है। मन और शरीर के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग चेतना के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था।86

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार सांसारिक चेतना, उसके उद्भव, उसके समाप्त होने और उसके समाप्त होने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, चेतना के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे अच्छा अभ्यास कर रहे हैं।" जो लोग अच्छी तरह अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में अपनी पकड़ मजबूत कर ली है।

"और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से (सांसारिक) चेतना, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को जान लेते हैं, चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और अंत के माध्यम से, अनासक्ति द्वारा मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे सिद्ध पुरुष (केवलिनो) होते हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

नोट: जब समाधि अवस्थाओं में आनंदमय दिव्य चेतना का अनुभव होता है (प्रारंभ में मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में, बाद में सार्वभौमिक रूप से), तो सांसारिक चेतना, संशय (अनिवार्य व्यवहार), बोध (संज्ञा) और संवेदना (वेदना) का अंत (निरोध) हो जाता है, साथ ही रूप पर ध्यान भी नहीं रहता।

---

57. सात मामले (सत्तत्थाना)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, इस धर्म और अनुशासन में, सात मामलों में निपुण और त्रिविध अन्वेषक भिक्षु को पूर्ण (केवली) कहा जाता है, वह जिसने पूर्णतः ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया है, सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति है। 87

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु सात मामलों में कैसे निपुण होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है; वह रूप के मामले में सांसारिक भोग, खतरे और उससे बचने के तरीके को समझता है।"

वह वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, इसके उद्गम, इसके अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। वह सांसारिक सुख, खतरे और चेतना से मुक्ति को समझता है।

भिक्षुओं, रूप क्या है? चार महा तत्व और उनसे उत्पन्न रूप ही रूप कहलाता है। पोषण की उत्पत्ति से रूप की उत्पत्ति होती है। पोषण के समाप्त होने से रूप समाप्त हो जाता है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग रूप के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

रूप पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और सोमनस्सा, यही रूप में सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, यही रूप में भय है। रूप के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रूप, उसके उद्भव, उसके अंत और उसके अंत के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और रूप से संबंधित सांसारिक सुख, भय और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और रूप के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और उसके अंत के लिए साधना करते हैं, वे अच्छी साधना कर रहे हैं। जो अच्छी साधना कर रहे हैं, उन्होंने इस धम्म और अनुशासन में स्थान प्राप्त कर लिया है।

और जो तपस्वी और ब्राह्मण रूप, उसके उद्भव, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और सांसारिक सुख, खतरे और रूप से विरक्ति, उसके लुप्त होने और अंत के द्वारा उससे बचने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, वे अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त), वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। पूर्णतः मुक्त लोग सिद्ध पुरुष होते हैं (केवलिनो)। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं हैं।

भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना के छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क से उत्पन्न वेदना (जैसा कि पिछले सूत्र में बताया गया है) ... मन संपर्क से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि ... सही समाधि अवस्था। वेदना

पर निर्भर सुख और आनंद उत्पन्न होना वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वेदना में खतरा है। वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही वेदना से मुक्ति है।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण वेदना, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, सांसारिक भोग, उसके खतरे और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, और वेदना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और निवारण के लिए साधना कर रहे हों, वे उत्तम साधना कर रहे हैं। जो उत्तम साधना कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म और अनुशासन में स्थान प्राप्त कर लिया है।

और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण वेदना और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, वे सिद्ध पुरुष हैं, उनका वर्णन करना संभव नहीं है।

भिक्षुओं, यह अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) क्या है? अनुभूति के ये छह प्रकार हैं: रूपों की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति। इसे अनुभूति कहते हैं। स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उत्पन्न होने पर अनुभूति उत्पन्न होती है। स्पर्श के समाप्त होने पर अनुभूति समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अनुभूति के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था।

अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) पर निर्भर सुख और आनंद (सोमनस्स) उत्पन्न होते हैं: यही अनुभूति में सांसारिक सुख है। वह अनुभूति अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही अनुभूति में खतरा है। अनुभूति के लिए इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग और निवारण: यही अनुभूति से मुक्ति है।

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हों... उन पूर्ण पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? ये छह प्रकार के संस्कार हैं: रूप संबंधी संस्कार... मानसिक घटनाओं (धम्म) संबंधी संस्कार। इसे संस्कार कहते हैं। स्पर्श उत्पन्न होने पर संस्कार उत्पन्न होते हैं। स्पर्श समाप्त होने पर संस्कार समाप्त हो जाते हैं। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था।

संस्कार पर निर्भर सुख और आनंद, यही संस्कार में निहित सांसारिक सुख है। संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होते हैं: यही संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का खतरा है। संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधारभूतता) से मुक्ति है।

“जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं।

” “और हे भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना... मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं। मन और शरीर (नामरूप) के उत्पन्न होने पर चेतना उत्पन्न होती है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग चेतना के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टिकोण...” सही समाधि अवस्था।

"चेतना पर निर्भर रहने से उत्पन्न होने वाला सुख और सोमनस: यही चेतना में सांसारिक सुख है। चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है: यही चेतना में खतरा है। चेतना के प्रति इच्छा और राग का त्याग और निवारण: यही चेतना से मुक्ति है।

" जो भी तपस्वी और ब्राह्मण चेतना, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, चेतना के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और चेतना के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और अंत के लिए अभ्यास करते हैं, वे अच्छा अभ्यास कर रहे हैं। जो लोग अच्छा अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म और अनुशासन में आधार प्राप्त कर लिया है।

और जो तपस्वी और ब्राह्मण चेतना, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और चेतना के सांसारिक सुख (असदो संस्कृतः असवाद), खतरे और चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और अंत (निरोध) के द्वारा उससे बचने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, वे अनासक्ति के द्वारा मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाते हैं, वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं, वे सिद्ध पुरुष होते हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं हैं। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु सात विधाओं में निपुण होता है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु त्रिविध अन्वेषक कैसे होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु तत्वों के माध्यम से, इंद्रियों के माध्यम से और प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) के माध्यम से अन्वेष करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु त्रिविध अन्वेषक होता है। 88

"हे भिक्षुओं, जो भिक्षु इन सातों मामलों में निपुण हो और त्रिविध अन्वेषक हो, इस धम्म और अनुशासन में उसे पूर्ण पुरुष, पूर्ण रूप से पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वाला, सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति कहा जाता है।"

---

58. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम्म-सम-बुद्ध सं. सम्यक-सम-बुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति, जो रूप के प्रति घृणा (निबिद्ध) के माध्यम से अनासक्ति द्वारा, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के द्वारा मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) होते हैं, उन्हें पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्त भिक्षु, जो रूप के प्रति घृणा (असक्ति) के माध्यम से अनासक्ति द्वारा, उसके लुप्त होने और निरोध के द्वारा मुक्त होते हैं, उन्हें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्त कहा जाता है। 89

"तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति, जो संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संखार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... के प्रति घृणा के माध्यम से अनासक्ति द्वारा मुक्त होते हैं..." चेतना (विन्नान, संस्कृतः विज्ञान), अपने लुप्त होने और समाप्त होने के कारण, पूर्णतः प्रबुद्ध कहलाती है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु, जो संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना के प्रति घृणा के माध्यम से आसक्ति से मुक्त होता है, अपने लुप्त होने और समाप्त होने के कारण, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु कहलाता है।

"तो, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु (विमुत्त, संस्कृतः विमुक्त) के बीच क्या अंतर है, क्या भिन्नता है, क्या भेद है?"

"आदरणीय गुरुदेव, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय गुरुदेव," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, उस मार्ग के प्रवर्तक हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के निर्माता हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के उद्घोषक हैं जो पहले कभी घोषित नहीं किया गया। वे मार्ग के ज्ञाता हैं, मार्ग के खोजकर्ता हैं, मार्ग में निपुण हैं। और उनके शिष्य अब उस मार्ग का अनुसरण करते हुए निवास करते हैं और बाद में उस मार्ग के स्वामी बन जाते हैं।

हे भिक्षुओं, यही तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु के बीच का भेद, अंतर और भिन्नता है।"

---

59. अनात्मा का लक्षण (अनत्तलक्खन सं. अनात्म-लक्षण)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 90 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पाँच भिक्षुओं के समूह को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, रूप अनात्म है। क्योंकि यदि, भिक्षुओं, रूप आत्मा होता, तो यह रूप कष्ट का कारण नहीं बनता, और यह संभव होता कि इसे रूप से धारण किया जाए: 'मेरा रूप ऐसा हो; मेरा रूप ऐसा न हो।'

परन्तु क्योंकि रूप अनात्म है, रूप कष्ट का कारण बनता है, और इसे रूप से धारण करना संभव नहीं है: 'मेरा रूप ऐसा हो; मेरा रूप ऐसा न हो।' 91

"संवेदना अनात्म है। . . . ." अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) अनात्म है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) अनात्म हैं... चेतना (विज्ञान संस्कृत: विज्ञान) अनात्म है। क्योंकि यदि, भिक्षुओं, चेतना आत्मा होती, तो यह चेतना कष्ट का कारण नहीं बनती, और चेतना से यह संभव होता: 'मेरी चेतना ऐसी हो; मेरी चेतना ऐसी न हो।' परन्तु क्योंकि चेतना अनात्म है, चेतना कष्ट का कारण बनती है, और चेतना से यह संभव नहीं है:
'मेरी चेतना ऐसी हो; मेरी चेतना ऐसी न हो।'

"भिक्षुओं, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" - "अस्थायी क्या है, दुख या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या बोध (धारणा) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना (व्यवहार-आदतनता) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना स्थायी है या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो क्षणभंगुर है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वैसे ही देखना चाहिए जैसे वे वास्तव में हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या पास, समस्त चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ वैसे ही देखा जाना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, यह देखकर कि दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए। और जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तब पाँचों भिक्षुओं के समूह के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

60. महाली
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी महाली भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, पुराण कस्सप कहते हैं: 'प्राणियों के अशुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के अशुद्ध होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के शुद्ध होते हैं।' इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?" 92

"हे महाली, प्राणियों के अशुद्ध होने का कारण है; प्राणी कारण सहित अशुद्ध होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कारण है; प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।"

"परन्तु, हे पूज्यवर, प्राणियों के अशुद्ध होने का कारण क्या है? प्राणी कारण सहित अशुद्ध कैसे होते हैं?"

"हे महाली, यदि यह रूप केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही समाया रहता, और आनंद में भी न डूबा रहता, तो प्राणी इससे मोहित न होते। परन्तु क्योंकि यह रूप सुखमय है, आनंद में डूबा रहता है, आनंद में ही समाया रहता है, और केवल दुख में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं। 93 इससे मोहित होकर वे इसके वश में हो जाते हैं, और इसके वश में होने से वे अपवित्र हो जाते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के अपवित्र होने का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण से अपवित्र होते हैं।

"हे महाली, यदि यह वेदना केवल दुखमय होती... यदि यह अनुभूति... ये संस्कार... यह चेतना केवल दुखमय होती... तो प्राणी इससे मोहित न होते। परन्तु क्योंकि चेतना सुखमय है... इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।" इसके प्रति आसक्त होकर वे इसके वश में हो जाते हैं, और इसके वश में होकर वे अपवित्र हो जाते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के अपवित्र होने का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित अपवित्र होते हैं। "

परन्तु, पूज्यवर, प्राणियों के शुद्धिकरण का कारण क्या है? प्राणी कारण सहित कैसे शुद्ध होते हैं?"

"हे महाली, यदि यह रूप केवल सुखमय होता, सुख में डूबा रहता, और दुख में न डूबा होता, तो प्राणियों को इसके प्रति घृणा (निबिद्दा) का अनुभव नहीं होता। परन्तु क्योंकि यह रूप दुखमय है, दुख में डूबा रहता है, दुख में डूबा रहता है, और केवल सुख में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वे वैराग्य प्राप्त करते हैं, और वैराग्य के द्वारा वे शुद्ध होते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के शुद्धिकरण का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।

"हे महाली, यदि यह वेदना (संवेदना) केवल सुखदायक होती... यदि यह अनुभूति... ये संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... यह चेतना केवल सुखदायक होती... तो प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव नहीं होता। परन्तु क्योंकि चेतना दुखदायी है... प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वे वैराग्यवान हो जाते हैं, और वैराग्य के द्वारा वे शुद्ध हो जाते हैं। [71] हे महाली, यह भी प्राणियों के शुद्धिकरण का एक कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।"

---

61. जलना (आदित्ता सान. आदित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप जल रहा है, वेदना जल रही है, चेतना जल रही है, संस्कार जल रहे हैं, चेतना जल रही है। 94 इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य को रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. भाषा के मार्ग (निरुत्तिपथ)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, भाषा के ये तीन मार्ग हैं, पदनाम के मार्ग हैं, वर्णन के मार्ग हैं, जो अमिश्रित हैं, जो कभी मिश्रित नहीं हुए, जो मिश्रित नहीं हो रहे हैं, जो मिश्रित नहीं होंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया जाता है। वे तीन क्या हैं?

"भिक्षुओं, जो भी रूप बीत गया हो, समाप्त हो गया हो, परिवर्तित हो गया हो: उस पर 'था' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'होगा'।

"जो भी संवेदना (वेदना)... जो भी बोध (संज्ञा)... जो भी संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... जो भी चेतना (विज्ञान) बीत गई हो, समाप्त हो गई हो, परिवर्तित हो गई हो: उस पर 'था' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'होगा'।"

भिक्षुओं, जो भी रूप अभी तक जन्म नहीं ले पाया है, जो प्रकट नहीं हुआ है, उसके लिए 'होगा' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'था'।

जो भी संवेदना (वेदना) ... जो भी बोध ... जो भी संस्कार (व्यवहार-आधारभूत) ... जो भी चेतना अभी तक जन्म नहीं ले पाई है, जो प्रकट नहीं हुई है, उसके लिए 'होगा' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'था'।

भिक्षुओं, जो भी रूप जन्म ले चुका है, जो प्रकट हो चुका है, उसके लिए 'है' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'था' या 'होगा'।

जो भी संवेदना (वेदना)... जो भी बोध... जो भी संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... जो भी चेतना उत्पन्न हुई है, प्रकट हुई है: उस पर 'है' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'था' या 'होगा'।

हे भिक्षुओं, ये भाषा के तीन मार्ग, नामकरण के मार्ग और वर्णन के मार्ग हैं, जो अमिश्रित हैं, जो कभी मिश्रित नहीं हुए, जो मिश्रित नहीं हो रहे हैं, जो मिश्रित नहीं होंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों ने अस्वीकार नहीं किया है।

हे भिक्षुओं, यहाँ तक कि उक्कला के वस्सा और बन्ना, जो अकारणता, कर्म की निरर्थकता और शून्यवाद के समर्थक थे, ने भी यह नहीं सोचा कि भाषा के इन तीन मार्गों, नामकरण के मार्गों और वर्णन के मार्गों की आलोचना या निंदा की जानी चाहिए।

इसका क्या कारण है? क्योंकि वे निंदा, आक्रमण और आलोचना से डरते हैं।

(ii) प्रभाग 2, मध्य पचास - अरिहंत खंड (अरिहंतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)
63. आसक्ति में (उपाद्यमान)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास कर सकूँ।" "

भिक्षु, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) से मनुष्य शैतान से बंध जाता है; आसक्ति न रखने से मनुष्य दुष्ट से मुक्त हो जाता है।" 97 [74]

"समझ गए, भगवान (बुद्ध)! समझ गए, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ किस प्रकार समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप से आसक्ति रखने से मनुष्य मार से बंध जाता है; उससे आसक्ति न रखने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय और चेतना से आसक्ति रखने से मनुष्य मार से बंध जाता है; उससे आसक्ति न रखने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा।"

"बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा।" भिक्षु, रूप से आसक्ति रखने से व्यक्ति मारा से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर पूर्ण रूप से वर्णित है)... इससे आसक्ति न रखने से व्यक्ति बुराई से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार से मैंने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ विस्तार से समझा जा सके।

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक हो गए।

---

64. गर्भ धारण करने में (मन्नामाना)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..." "

भिक्षु, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) में मनुष्य शैतान से बंधा रहता है; गर्भाधान न करने से मनुष्य शैतान से मुक्त हो जाता है।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय और चेतना की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।" "

अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ गए। हे भिक्षु, रूप की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार से मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझा जा सकता है।"

...और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

65. आनंद की खोज में (अभिनंदमन)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..." "

भिक्षु, आनंद की खोज में मनुष्य शैतान के बंधन में बंध जाता है; आनंद की खोज न करने से मनुष्य शैतान से मुक्त हो जाता है।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

हे पूज्यवर, रूप में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना में, बोध में, संशय में, और चेतना में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। हे

पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाया हूँ। "

बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ गए हैं। हे भिक्षु, रूप में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार से मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझा जा सकता है।

...और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

66. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..."

"भिक्षु, तुम्हें क्षणभंगुर हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, तुमने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप क्षणभंगुर है; मुझे इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना क्षणभंगुर है... संज्ञा (संज्ञा) क्षणभंगुर है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) क्षणभंगुर हैं... चेतना (विज्ञान) क्षणभंगुर है; मुझे इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाते हैं। रूप क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा जा सकता है।" [77]

... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

67. दुःख (दुक्खा)
(पूर्ववर्ती सूत्र 66 के अनुसार आरंभ)

... "भिक्षु, आपको कष्टदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

---

68. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज़ की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"...(जैसा कि 66 में है)

---

69. जो स्वयं से संबंधित नहीं है (अनत्तनिया संस्कृत: अनत्मनिया)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें उन चीजों की इच्छा का त्याग करना चाहिए जो स्वयं से संबंधित नहीं हैं
।"...(जैसा कि 66 में है)

---

70. जो कुछ भी आकर्षक प्रतीत होता है (रजनीयसंथिता)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें हर उस चीज़ की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए जो लुभावनी प्रतीत होती है।"...(जैसा कि 66 में है)

---

71. राधा
सावत्थी में। तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: 98

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे राधा, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है'।

किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) . . . किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासति) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"हे राधा, जब व्यक्ति इस प्रकार (ध्यान में, पासति) जान और देख लेता है, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य निमित्त के संबंध में, 'मैं' का भाव, 'मेरा' का भाव और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।"

तब पूज्य राधा . . . अरहंतों में से एक बन गईं।

---

72. सुरधा
सावत्थी में, पूज्य सुरधा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से ऊपर उठ जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

सुराधा, चाहे कोई भी रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल... दूर हो या पास - सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सभी रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखकर, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

चाहे कोई भी वेदना हो... चाहे कोई भी अनुभूति (संज्ञा) हो... चाहे कोई भी संस्कार (आक्रामक व्यवहार) हो... चाहे कोई भी चेतना हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या पास - सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सभी चेतना को उनके वास्तविक स्वरूप में देखकर, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

"हे सुरधा, जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में) जानता और देखता है, तब चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"

तब पूज्य सुरधा... अरहंतों में से एक बन गए।

(iii) खंड 2, मध्य पचास - भक्षण खंड (खज्जनिया संस्कृत: खदनिया)
73. सांसारिक सुख (अस्वाद के बिना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को सही ढंग से नहीं समझ पाता।

परन्तु भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के मार्ग को सही ढंग से समझ लेता है।"

---

74. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), भय और उससे मुक्ति को सही ढंग से नहीं समझ पाता।

परन्तु भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख, भय और उससे मुक्ति को सही ढंग से समझ लेता है।"

---

75. उत्पत्ति (2) (समुदय1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं (संतों), शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप, वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और मृत्यु, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं।"

---

76. अरहंत (1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है।

मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

"हे भिक्षुओं, जितने भी प्राणियों के निवास स्थान हैं, यहाँ तक कि अस्तित्व के शिखर तक भी, 99 वे संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं, वे सर्वश्रेष्ठ हैं, अर्थात् अरहंत हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"अरहंत वास्तव में धन्य हैं! उनमें तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं पाई जाती।
'मैं हूँ' का अहंकार कट जाता है; मोह (मोह) का जाल टूट जाता है।

"वे अविचलित अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं; उनके मन अविचल हैं;
वे संसार में निष्कलंक हैं; पवित्र, दोषरहित हैं।

"पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को पूर्णतः समझ चुके; सात गुणों में विचरण करने वाले, 101
वे प्रशंसनीय श्रेष्ठ पुरुष; बुद्ध के प्रिय पुत्र हैं।"

सात रत्नों से परिपूर्ण; त्रिविध प्रशिक्षण में प्रशिक्षित, 102
वे महान वीर (महावीर) भय और कांपते हुए विचरण करते हैं।

दस गुणों से परिपूर्ण; समाधि अवस्था में वे महान नाग
संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं; उनमें तृष्णा नहीं पाई जाती। 103

उनमें सिद्धों का ज्ञान उत्पन्न हो गया है; 'यह शरीर मेरा अंतिम शरीर है।'
ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों के संबंध में; वे अब दूसरों पर निर्भर नहीं रहते। [84]

वे विवेक में विचलित नहीं होते। 104; वे पुनर्जन्म के कारण से मुक्त हो जाते हैं (मोक्ष में)।
वश में किए जाने की अवस्था प्राप्त कर चुके वे संसार के विजेता हैं।

ऊपर, अगल-बगल और नीचे, उनमें आनंद का अभाव है।
वे साहसपूर्वक सिंह की दहाड़ लगाते हैं; प्रबुद्ध लोग संसार में सर्वोच्च हैं।

---

77. अरहंत (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें कुछ श्लोक हटा दिए गए हैं।)

---

78. शेर
सावत्थी में। "भिक्षुओं, संध्या के समय पशुओं का राजा सिंह अपनी मांद से निकलता है। बाहर आकर वह अंगड़ाई लेता है, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है और तीन बार सिंह की गर्जना करता है। फिर वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।

जब पशुओं का राजा सिंह गर्जना करता है, तो जो भी जानवर उसकी आवाज सुनते हैं, वे अधिकतर भय, घबराहट और आतंक से भर जाते हैं। जो बिलों में रहते हैं वे अपने बिलों में चले जाते हैं; जो पानी में रहते हैं वे पानी में चले जाते हैं; जो जंगलों में रहते हैं वे जंगलों में चले जाते हैं; और पक्षी हवा में उड़ जाते हैं। यहां तक कि गांवों, कस्बों और राजधानियों में मजबूत रस्सियों से बंधे हुए राजसी हाथी भी अपनी रस्सियों को तोड़कर भाग जाते हैं; भयभीत होकर वे पेशाब और शौच करते हैं और इधर-उधर भागते हैं। भिक्षुओं, पशुओं का राजा सिंह इतना शक्तिशाली, इतना राजसी और बलवान है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तथागत संसार में अवतरित होते हैं, जो पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध), वे धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश इस प्रकार देते हैं:
'रूप ऐसा है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है; वेदना ऐसी है... अनुभूति ऐसी है... संस्कार ऐसे हैं... चेतना ऐसी है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है।' 106

"तो, हे भिक्षुओं, जब वे देव जो दीर्घायु, सुंदर, सुख से परिपूर्ण और ऊंचे महलों में दीर्घकाल से निवास करते हैं, तथागत की धम्म शिक्षा सुनते हैं, तो वे अधिकतर भय, चिंता और आतंक से भर जाते हैं, [कहते हैं]: 'हे प्रभु, ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनित्य हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे; ऐसा प्रतीत होता है कि हम अस्थिर हैं, यद्यपि हम स्वयं को स्थिर समझते थे; ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनादि हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनित्य, अस्थिर, अनादि हैं, शरीर-सन्दु (सक्कय) में समाहित हैं।'" 107 “हे भिक्षुओं, तथागत इस संसार पर अपने देवताओं सहित अत्यंत शक्तिशाली और बलवान हैं।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

“जब बुद्ध दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा धर्मचक्र को गतिमान करते हैं, तो इस संसार के अद्वितीय गुरु, अपने देवताओं सहित, यह बात प्रकट करते हैं:

“शरीर-सम्भाव का निवारण (निरोध) और शरीर-सम्भाव का उद्‌भव। तथा अष्टांगिक मार्ग, जो दुखों के निवारण (उपासमन) की ओर ले जाता है।

” तब वे दीर्घायु देवता, सुंदर और महिमा से ओतप्रोत, सिंह की दहाड़ सुनकर भयभीत और आतंकित हो जाते हैं।

"'हमने देह-पहचान को पार नहीं किया है; ऐसा लगता है, महोदय, हम क्षणभंगुर हैं,' [ऐसा वे कहते हैं] अरहंत के इस कथन को सुनकर; जो मोक्ष प्राप्त स्थिर व्यक्ति हैं।"

---

79. खा जाना (खजनिया सं. खडनिया)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो अपने अनेक पूर्व निवासों का स्मरण करते हैं, वे सभी आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत) या उनमें से किसी एक का स्मरण करते हैं। 108 वे पाँच कौन से हैं?

"भिक्षुओं, जब इस प्रकार स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरा ऐसा रूप था,' तो केवल उसी रूप का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी वेदना थी,' तो केवल वेदना का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी अनुभूति थी,' तो केवल अनुभूति का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी संशय (आक्रामक व्यवहार) थी,' तो केवल संशय (व्यवहार) का स्मरण होता है।"

जब स्मरण करते हुए कहते हैं: 'मुझे अतीत में ऐसी चेतना (विन्नान, विज्ञान नहीं) थी', तो यह केवल चेतना ही है जिसका स्मरण किया जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आप इसे रूप क्यों कहते हैं? 109 'यह विकृत है', भिक्षुओं, इसलिए इसे रूप कहा जाता है। 110 किससे विकृत? ठंड से विकृत, गर्मी से विकृत, भूख से विकृत, प्यास से विकृत, मक्खियों, मच्छरों, हवा, सूर्य और सर्पों के संपर्क से विकृत। 'यह विकृत है', भिक्षुओं, इसलिए इसे रूप कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आप इसे संवेदना (वेदना) क्यों कहते हैं? 'यह संवेदना करता है', भिक्षुओं, इसलिए इसे संवेदना (वेदना) कहा जाता है। 111 और यह क्या संवेदना करता है? यह सुख संवेदना करता है, यह दुख संवेदना करता है, [87] यह न दुख संवेदना करता है, न सुख। भिक्षुओं, यह 'संवेदना' करता है, इसलिए इसे संवेदना (वेदना) कहा जाता है।

भिक्षुओं, आप इसे अनुभूति (संज्ञा) क्यों कहते हैं? भिक्षुओं, यह 'अनुभूत' करता है, इसलिए इसे अनुभूति कहा जाता है। और यह क्या अनुभव करता है? यह नीला, पीला, लाल और सफेद अनुभव करता है। भिक्षुओं, यह 'अनुभूत' करता है, इसलिए इसे अनुभूति कहा जाता है।

भिक्षुओं, आप इन्हें संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्यों कहते हैं? भिक्षुओं, ये संस्कार (संबद्ध व्यवहार-अनुकूलन) का निर्माण करते हैं, इसलिए इन्हें संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) कहा जाता है। 112 और वे किस संस्कार का निर्माण करते हैं? वे संस्कारित रूप का निर्माण रूप के रूप में करते हैं; 113 वे संस्कारित संवेदना (वेदना) का निर्माण संवेदना (वेदना) के रूप में करते हैं; वे संस्कारित अनुभूति का निर्माण अनुभूति के रूप में करते हैं; वे वातानुकूलित संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) को संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) के रूप में निर्मित करते हैं; वे वातानुकूलित चेतना को चेतना के रूप में निर्मित करते हैं। 'वे वातानुकूलित भिक्षुओं का निर्माण करते हैं', इसलिए उन्हें संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) कहा जाता है।

"और भिक्षुओं, आप इसे चेतना क्यों कहते हैं? 'यह ज्ञाता है', भिक्षुओं, इसलिए इसे चेतना कहा जाता है। और यह क्या ज्ञाता है? यह खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन और बेस्वाद ज्ञाता है। 'यह ज्ञाता है', भिक्षुओं।" इसलिए इसे चेतना कहा जाता है। 114

"इसमें, भिक्षुओं, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य सोचता है:
'मैं अब रूप के वश में हूँ। 115 अतीत में भी मैं रूप के वश में था, ठीक उसी प्रकार जैसे अब वर्तमान रूप के वश में हूँ। यदि मैं भविष्य के रूप में आनंद की खोज करूँ, तो भविष्य में भी मैं रूप के वश में हो जाऊँगा, ठीक उसी प्रकार जैसे अब वर्तमान रूप के वश में हूँ।' ऐसा सोचकर वह अतीत के प्रति उदासीन हो जाता है, भविष्य के रूप में आनंद की खोज नहीं करता, और वर्तमान रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, उसके लुप्त होने और समाप्त होने (निरोध) का।

"[वह इस प्रकार सोचता है:] 'मैं अब वेदना के वश में हूँ।' ...

'मैं अब अनुभूति (संज्ञा) के वश में हूँ।' ... 'मैं अब संस्कार (व्यवहार-आधार) के वश में हूँ।' ... 'मैं अब चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ (विन्नान, संस्कृत: विज्ञान)। अतीत में भी मैं चेतना द्वारा उसी प्रकार भस्म हुआ था जिस प्रकार वर्तमान चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ। यदि मैं भविष्य की चेतना में आनंद (नंदी/आनंद) खोजूँ, तो भविष्य में भी मैं चेतना द्वारा उसी प्रकार भस्म हो जाऊँगा जिस प्रकार वर्तमान चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ।' ऐसा सोचकर वह अतीत की चेतना के प्रति उदासीन हो जाता है, भविष्य की चेतना में आनंद नहीं खोजता, और वर्तमान चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्त होने का अभ्यास करता है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?" ... क्या वेदना ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?" 116
"अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप ... किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार का बोध ... किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो

या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।

"हे भिक्षुओं, इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो तोड़ता है, निर्माण नहीं करता; जो त्यागता है, आसक्ति नहीं रखता; जो बिखेरता है, संचय नहीं करता; जो बुझाता है, प्रज्वलित नहीं करता। 117

"और वह क्या है जिसे वह तोड़ता है, निर्माण नहीं करता? वह रूप को तोड़ता है, निर्माण नहीं करता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना को तोड़ता है, निर्माण नहीं करता।

और वह क्या है जिसका वह त्याग करता है और जिससे वह आसक्त नहीं रहता? वह रूप का त्याग करता है और उससे आसक्त नहीं रहता। वह वेदना, बोध, संस्कार, चेतना का त्याग करता है और उससे आसक्त नहीं रहता।

और वह क्या है जिसे वह बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता? वह रूप को बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता। वह वेदना, बोध, संस्कार, चेतना को बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता।

और वह क्या है जिसे वह बुझाता है और प्रज्वलित नहीं करता? वह रूप को बुझाता है और उसे प्रज्वलित नहीं करता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना को बुझाता है और उसे प्रज्वलित नहीं करता।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधारणा) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य का हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो न तो निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है; जो न तो त्यागता है और न ही आसक्ति रखता है, बल्कि त्याग के बाद भी बना रहता है; जो न तो बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर के बाद भी बना रहता है; जो न तो बुझाता है और न

ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा के बाद भी बना रहता है। 118 "और हे भिक्षुओं, वह क्या है जो न तो निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है? वह न तो रूप का निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है। वह न तो संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना का निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है।"

और वह क्या है जिसे वह न तो त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि त्याग कर ही रहता है? वह न तो रूप को त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि उसे त्याग कर ही रहता है। वह न तो वेदना, न ही बोध, न ही संस्कार, न ही चेतना को त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि उसे त्याग कर ही रहता है।

और वह क्या है जिसे वह न तो बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है? वह न तो रूप को बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है। वह न तो वेदना, न ही बोध, न ही संस्कार, न ही चेतना को बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है।

और वह क्या है जिसे वह न बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है? वह न तो रूप को बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है। वह न तो संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना को बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है।

"जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार मन से मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तो देवता इंद्र, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) और प्रजापति के साथ दूर से ही उसे प्रणाम करते हैं:

'हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम! हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, आपको प्रणाम! हम स्वयं प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानते कि आप किस पर ध्यान करते हैं।'" 119

---

80. भिक्षा मांगने वाला (पिंडोल्य)
एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने किसी विशेष कारण से भिक्षुओं को विदा किया और सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु में प्रवेश किया। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे दिनभर विश्राम करने के लिए विशाल वन में चले गए। विशाल वन में प्रवेश करके वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक बेलुव वृक्ष के नीचे बैठ गए।

फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में अकेले थे, तो उनके मन में यह विचार आया: 121 "मैंने भिक्षुओं के संघ को विदा कर दिया है। यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, और जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं। यदि वे मुझे नहीं देखेंगे तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। जैसे जब एक छोटा बछड़ा अपनी माँ को नहीं देखता तो उसमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है, वैसे ही यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, और जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं। यदि वे मुझे नहीं देखेंगे तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। जैसे जब छोटे पौधों को पानी नहीं मिलता तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है, वैसे ही यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। "जो हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में दीक्षित हुए हैं, यदि वे मुझे न देखें तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। मैं भिक्षुओं के संघ की सहायता उसी प्रकार करता हूँ जैसे मैंने अतीत में की है।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी क्षण ब्रह्मालोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) की ओर श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे कहा, "हे भगवान (बुद्ध) ऐसा ही है! ऐसा ही है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भिक्षुओं के संघ को भगवान (बुद्ध) ने विदा कर दिया है। यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं... (जैसा कि ऊपर उपमाओं सहित वर्णित है)... यदि वे भगवान (बुद्ध) के दर्शन न करें तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ में प्रसन्न हों! भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ का स्वागत करें! भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ की सहायता उसी प्रकार करें जैसे उन्होंने अतीत में की है।"

भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए। तब ब्रह्मा सहमपति ने भगवान (बुद्ध) की सहमति को समझकर, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर संध्या में भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और निग्रोध उद्यान में गए। वे नियत स्थान पर बैठ गए और आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि भिक्षु अकेले और जोड़े में, संकोचपूर्वक उनके पास आने लगे। 122 तब वे भिक्षु अकेले और जोड़े में, संकोचपूर्वक भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"भिक्षुओं, यह जीविका का सबसे नीच रूप है, अर्थात् भिक्षा मांगना। संसार में यह एक अपशब्द है: 123 'हे भिक्षा मांगने वाले; तू हाथ में भिक्षापात्र लेकर घूमता है!'" और फिर भी, हे भिक्षुओं, अच्छे कर्मों में लिप्त कुलवासी उस जीवन शैली को एक उचित कारण से अपनाते हैं। वे ऐसा राजाओं द्वारा विवश होकर नहीं करते, न ही चोरों द्वारा विवश होकर, न ही ऋण के कारण, न ही भय के कारण, और न ही जीविका कमाने के लिए। बल्कि वे ऐसा इस विचार से करते हैं: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा में। मैं पीड़ा में डूबा हुआ हूँ, पीड़ा से पीड़ित हूँ। शायद इस संपूर्ण पीड़ा के अंत का कोई मार्ग मिल जाए!'

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार इस कुलवासी ने दीक्षा ली है।" फिर भी वह लोभी है, इंद्रिय सुखों के लिए राग से प्रज्वलित है, द्वेष से भरा हुआ मन रखता है, घृणा से दूषित इरादे रखता है, भ्रमित है, पूर्ण बोध से रहित है, समाधि अवस्था में नहीं है, विचलित है, और उसकी इंद्रियां शिथिल हैं। जैसे अंत्येष्टि की चिता की लकड़ी, जो दोनों सिरों से जल रही हो और बीच में मल से सनी हो, न तो गांव में और न ही जंगल में लकड़ी के रूप में उपयोग की जा सकती है, ठीक उसी प्रकार मैं इस व्यक्ति के बारे में कह रहा हूँ: उसने गृहस्थ सुखों को न तो प्राप्त किया है, फिर भी वह वैराग्य के लक्ष्य को पूरा नहीं करता है।

भिक्षुओं, तीन प्रकार के हानिकारक विचार होते हैं: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने का विचार। 124 और हे भिक्षुओं, ये तीनों हानिकारक विचार कहाँ पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं? उस व्यक्ति के लिए जो ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में अच्छी तरह से स्थापित मन से रहता है, या उस व्यक्ति के लिए जो अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित करता है। हे भिक्षुओं, अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित करने के लिए यही पर्याप्त कारण है। हे भिक्षुओं, जब अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह बहुत फलदायी और लाभदायक होती है।

"हे भिक्षुओं, दो मत हैं: अस्तित्व का मत (भावो) और विनाश का मत। 125 इसमें, हे भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य इस प्रकार सोचता है: क्या संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिससे मैं बिना निंदनीय हुए जुड़ा रह सकूँ?" वह इस प्रकार समझते हैं: 'संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे मैं बिना दोष के जुड़ा रह सकूँ। क्योंकि यदि मैं किसी वस्तु से जुड़ा रहूँ, तो केवल रूप (उपादान संस्कृत: आसक्ति), केवल संवेदना (वेदना), केवल अनुभूति (संज्ञा), केवल संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और केवल चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) से ही जुड़ा रहूँगा। मेरे इसी आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होगा; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होगा; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी। यही इस समस्त दुःख का मूल कारण होगा।' 126

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि रूप स्थायी है या अस्थायी?... क्या संवेदना (वेदना)... बोध... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है, क्या वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'" 127

---

81. पालिलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे।

फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए कोसंबी में प्रवेश किया। कोसंबी में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद उन्होंने स्वयं अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और अपने निजी सेवकों को सूचित किए बिना, भिक्षु संघ से विदा लिए बिना, अकेले ही यात्रा पर निकल पड़े। 128

फिर, भगवान (बुद्ध) के प्रस्थान के कुछ ही समय बाद, एक भिक्षु पूज्य आनंद के पास आया और उनसे कहा:
“मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने स्वयं अपना आवास व्यवस्थित किया है, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया है, और अपने निजी सेवकों को सूचित किए बिना, भिक्षु संघ से विदा लिए बिना, अकेले ही यात्रा पर निकल पड़े हैं।”

“मित्र, जब भी भगवान (बुद्ध) इस प्रकार प्रस्थान करते हैं, तो वे एकांतवास करना चाहते हैं। ऐसे अवसर पर भगवान (बुद्ध) के साथ किसी को भी नहीं जाना चाहिए।”

तब भगवान (बुद्ध) विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए परिलय्यक पहुँचे। परिलय्यक में भगवान (बुद्ध) एक शुभ साल वृक्ष की तलहटी में निवास करने लगे। 129

तब कई भिक्षु पूज्य आनंद के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 130 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा, “मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। हम ऐसा प्रवचन सुनना चाहेंगे, मित्र आनंद।”

तब पूज्य आनंद उन भिक्षुओं के साथ परिलय्यक में, शुभ साल वृक्ष की तलहटी में भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुओं को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। उसी अवसर पर एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "कैसे पता चले, कैसे देखा जाए कि विकारों का तुरंत नाश (खयाल/क्षया) हो जाए?" 131

भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन में उठे विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैंने इस धम्म (मार्ग, नियम) का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। 132 मैंने ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। चार सही प्रयास... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि)... पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ... पाँच शक्तियाँ... ज्ञान के सात कारक... आर्य अष्टांगिक मार्ग का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। भिक्षुओं, मेरे द्वारा विवेकपूर्ण ढंग से उपदेशित इस धम्म के विषय में, एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: 'अपराधों के तत्काल नाश (खयाल/क्षय) के लिए कैसे जाना जाए, कैसे देखा जाए?'"

और हे भिक्षुओं, कैसे जानें, कैसे देखें, ताकि विकारों का तुरंत नाश हो सके? हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और अपने धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और अपने धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को ही आत्मा मानता है। हे भिक्षुओं, यह मानना ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है। 133 वह संस्कार (व्यवहार) - उसका स्रोत क्या है, उसकी उत्पत्ति क्या है, वह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अज्ञान से उत्पन्न वेदना से संपर्क में आता है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है: वहीं से वह संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, वह संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) अनित्य, सशर्त (संखता),
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; स्पर्श (फस्स/स्पर्श) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; अज्ञान अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। [97] जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, पस्सतो संदर्भ विपश्यना ध्यान में) जानता और देखता है,
भिक्षुओं, तो विकारों का तत्काल नाश हो जाता है।

वह रूप को आत्मा नहीं मानता, परन्तु आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है... (जैसा ऊपर बताया गया है)... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), हे भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप धारण करने वाला नहीं मानता, परन्तु वह रूप को आत्मा में मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है...

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप धारण करने वाला या रूप को आत्मा में मानता नहीं, परन्तु वह आत्मा को रूप में मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है...

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप में नहीं मानता, परन्तु वह वेदना को आत्मा... बोध (संज्ञा) को आत्मा... बोध (व्यवहार-निर्धारण) को आत्मा... बोध (व्यवहार-निर्धारण) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा वह दृष्टिकोण संस्कार (व्यवहार-आधार) है... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पासतो), भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खया/क्षय) हो जाता है।

"वह रूप को आत्मा नहीं मान सकता... [99] ... या चेतना में आत्मा को नहीं, बल्कि वह ऐसा दृष्टिकोण रखता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके चले जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।' 134 वह शाश्वतवादी दृष्टिकोण संस्कार (व्यवहार-आधार) है... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पासतो), भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खया/क्षय) हो जाता है।

"हो सकता है कि वह रूप को आत्मा न माने... या ऐसा [शाश्वतवादी] दृष्टिकोण न रखे, लेकिन उसका यह दृष्टिकोण है: 'मैं न भी हो सकता हूँ, और यह मेरे लिए न भी हो सकता है; मैं न तो होऊँगा, और यह मेरे लिए न भी होगा।' 135 वह विनाशवादी दृष्टिकोण एक संस्कार (व्यवहार-आधार) है...

"हो सकता है कि वह रूप को आत्मा न माने... या ऐसा [विनाशवादी] दृष्टिकोण न रखे, लेकिन वह सच्चे धम्म के विषय में भ्रमित, संशयपूर्ण और अनिर्णायक है। सच्चे धम्म के विषय में वह भ्रम, संशय और अनिर्णय ही एक संस्कार (व्यवहार-आधार) है। वह संस्कार (व्यवहार-आधार) - उसका स्रोत क्या है, उसकी उत्पत्ति क्या है, वह किससे उत्पन्न और पैदा हुआ है?" जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति

अज्ञान-संपर्क से उत्पन्न किसी वेदना (संवेदना) के संपर्क में आता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; तब संखर (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होता है। 136

"इसलिए, हे भिक्षुओं, वह संखर (आक्रामक व्यवहार) अनित्य, संकथित (संकल्पित),
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; वह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वह वेदना अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वह स्पर्श (फस/स्पर्श) अनित्य, संकथित, आश्रित रूप से उत्पन्न होता है
; वह अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। हे भिक्षुओं, जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, पस्सतो) जानता और देखता है, तो
विकारों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।" 137

---

82. पूर्णिमा की रात (पुन्नमा संस्कृत: पूर्णिमा)
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में, मिगारा की माता के निवास में, भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे। 138 उस अवसर पर - पंद्रहवें उपोसथ के दिन, पूर्णिमा की रात - भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ से घिरे खुले में बैठे थे।

तभी एक भिक्षु अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) से एक विषय के बारे में पूछना चाहता हूँ, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।" "तो

फिर, भिक्षु, अपने आसन पर बैठ जाइए और जो चाहें पूछिए।"

"जी, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया। तब वह अपने स्थान पर बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला:

"हे पूज्यवर, क्या ये पाँच समुच्चय (खंड संस्कृत: स्कंध) आसक्ति के अधीन नहीं हैं? अर्थात्, समुच्चय (आसक्त), संवेदना (वेदना) आसक्त, बोध (संज्ञा) आसक्त, संस्कार (आकस्मिक व्यवहार) आसक्त और चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) आसक्त हैं।"

"हे भिक्षु, ये पाँच समुच्चय (आसक्त) आसक्त हैं: अर्थात्, रूप समुच्चय (आसक्त), संवेदना (वेदना) आसक्त, बोध, संस्कार (व्यवहार) आसक्त और चेतना समुच्चय।"

“हे आदरणीय महोदय,” यह कहते हुए वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

“परन्तु, आदरणीय महोदय, ये पाँच स्कंद किसमें निहित हैं?”

“हे भिक्षु, ये पाँच स्कंद इच्छा में निहित हैं।” 139

“हे आदरणीय महोदय, क्या वह आसक्ति इन पाँच स्कंदों के समान है, या वह आसक्ति इन पाँच स्कंदों से भिन्न है?”

“भिक्षुओं, वह आसक्ति न तो इन पाँच स्कंदों के समान है, [101] और न ही इन पाँच स्कंदों से भिन्न है। बल्कि, उनके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही वहाँ आसक्ति है।” 140

“हे आदरणीय महोदय,” यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

“परन्तु, आदरणीय महोदय, क्या आसक्ति के अधीन पाँचों स्कंधों के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) में विविधता हो सकती है?”

“भिक्षु, ऐसा हो सकता है,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। “भिक्षु, किसी के मन में यह विचार आता है: ‘काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी वेदना हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो! काश भविष्य में मेरा ऐसा संस्कार हो! काश भविष्य में मेरी

ऐसी चेतना हो!' इस प्रकार, भिक्षु, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) में विविधता हो सकती है।"

"परमेश्वर, आदरणीय," यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा: "

परमेश्वर, 'स्कंध' शब्द स्कंधों पर किस प्रकार लागू होता है?"

भिक्षु, चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे रूप समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे संवेदना समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति (बोध) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे अनुभूति समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधारणा) हों, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे संस्कार समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की चेतना (विश्लेष्म-आधारणा) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे चेतना समूह कहते हैं। समूह। भिक्षु, इसी प्रकार 'समूह' शब्द का प्रयोग समूहों के लिए किया जाता है। "

आदरणीय महोदय," यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"आदरणीय महोदय, रूप समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? 141 वेदना समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... बोध समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... संस्कार समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... चेतना समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है?"

"हे भिक्षु, चार महान तत्व (धातु) रूप समूह की अभिव्यक्ति का कारण हैं। इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) वेदना समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। संपर्क बोध समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। संपर्क (फस्सा/स्पर्श) संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। मन और शरीर का रूप (नामरूप) चेतना समूह की अभिव्यक्ति का कारण है।"

"आदरणीय महोदय, शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा मानता है... बोध को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। इसी प्रकार शरीर-सन्दूक का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।"

"परन्तु, आदरणीय महोदय, शरीर-सन्दूक का दृष्टिकोण कैसे उत्पन्न नहीं होता?"

हे भिक्षु, यहाँ, ज्ञानी और श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, न ही चेतना को आत्मा में, न ही आत्मा को चेतना में। इसी प्रकार शरीर-पहचान का दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता।

हे पूज्यवर, रूप के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरा और उससे मुक्ति क्या है? वेदना के संदर्भ में सांसारिक सुख, खतरा और उससे मुक्ति क्या है? ... बोध के संदर्भ में क्या है? ... संस्कार (व्यवहार-आधार) के संदर्भ में क्या है? ... चेतना के संदर्भ में क्या है?

"हे भिक्षु, जो सुख और सोमनस्सा रूप पर निर्भर होकर उत्पन्न होते हैं, वही सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है, यही रूप का भय है। रूप के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है। जो सुख और सोमनस्सा वेदना पर निर्भर

होकर, बोध पर निर्भर होकर, संस्कार पर निर्भर होकर, चेतना पर निर्भर होकर उत्पन्न होते हैं, वही सांसारिक सुख है। चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है, यही चेतना का भय है। चेतना के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही चेतना से मुक्ति है।"

"हे आदरणीय महोदय," यह कहते हुए भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। तब उन्होंने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"आदरणीय महोदय, कैसे जानें, कैसे देखें ताकि इस सचेत शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे भिक्षु, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पस्सातो संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।"

"चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो... चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-आधार) हो... चाहे किसी भी प्रकार की चेतना हो, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पस्सातो संदर्भ: विपश्यना) सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।"

"हे भिक्षु, जब कोई इस प्रकार ध्यान में इस प्रकार जानता और देखता है (पासति), तब चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।"

उस समय एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "तो ऐसा प्रतीत होता है कि रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, बोध अनात्म है, संस्कार (व्यवहार-आधार) अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर, अनात्म द्वारा किए गए कर्म किस आत्मा को प्रभावित करेंगे?" 142

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"हे भिक्षुओं, यह संभव है कि यहाँ कोई मूर्ख, मंदबुद्धि और अज्ञानी व्यक्ति, जिसका मन तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से ग्रस्त है, यह सोचे कि वह गुरु के उपदेश को इस प्रकार पार कर सकता है: 'तो ऐसा प्रतीत होता है कि रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, बोध अनात्म है, संस्कार (व्यवहार-आदत) अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर, जो अनात्म है उसके द्वारा किए गए कर्म किस आत्मा को प्रभावित करेंगे?' हे भिक्षुओं, मैंने आपको विभिन्न शिक्षाओं के संबंध में यहाँ-वहाँ पूछताछ के माध्यम से प्रशिक्षित किया है। 143

"हे भिक्षु, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "क्या वेदना स्थायी है या अस्थायी?..." क्या बोध स्थायी है या अस्थायी? ... क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) स्थायी हैं या अस्थायी? ... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी है, क्या वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अतः... इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है" 144

ये दस प्रश्न हैं
जो भिक्षु पूछने आए थे:

दो स्कंधों के बारे में; क्या वही हो सकता है।
पदनाम और कारण; शरीर-पहचान (सक्कया) के बारे में दो,
सांसारिक-आनंद (असदो संस्कृत असवाद) पर एक-एक; और चेतना के साथ यह शरीर।

(iv) प्रभाग 2, मध्य पचास - वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुभाग (थेरावग्गो संस. स्थिवर-वर्ग)
83. आनंद
सावत्थी में, पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने आगे कहा:

"मित्रों, जब हम नवदीक्षित थे, तब पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने हमारी बहुत सहायता की थी। 145 उन्होंने हमें निम्नलिखित उपदेश दिया:

"आनंद, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं। और किसके आसक्ति से 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं? 146 रूप के आसक्ति से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं। वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के आसक्ति से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं।"

"मान लीजिए, मित्र आनंद, एक युवा स्त्री या पुरुष, जो आभूषणों का शौकीन हो, दर्पण में या शुद्ध, स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपनी छवि का अवलोकन करे: वह उसे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के साथ देखेगी, न कि आसक्ति के बिना। ठीक इसी प्रकार, 'मैं हूँ' का अनुभव रूप से आसक्ति के कारण होता है, न कि आसक्ति के बिना। 'मैं हूँ' का अनुभव वेदना (संवेदना) से, बोध से, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) से, ... चेतना से होता है, न कि आसक्ति के बिना।

"मित्र आनंद, आपके विचार में रूप स्थायी है या अस्थायी?" ... (जैसा कि पिछले सूत्र में है) ... "इस प्रकार देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' "

मित्रों, जब हम नवदीक्षित थे, तब पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने हमारी बहुत सहायता की थी। उन्होंने हमें उस उपदेश से अवगत कराया था। और जब मैंने उनके धम्म (मार्ग, नियम) के उपदेश सुने, तब मुझे धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। 147

---

84. टिस्सा
सावत्थी में। उस अवसर पर, भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई, पूज्य तिस्सा ने कई भिक्षुओं को सूचित किया: "मित्रों, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे नशा दिया गया हो, मैं भ्रमित हो गया हूँ, शिक्षाएँ अब मुझे स्पष्ट नहीं हैं। आलस्य और सुस्ती मेरे मन पर हावी हैं। मैं ब्रह्मचर्य का जीवन असंतुष्ट होकर व्यतीत कर रहा हूँ, और मुझे शिक्षाओं पर संदेह है।"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु को इस प्रकार संबोधित किया:
"आओ, भिक्षु तिस्सा को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

“जी, पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्य तिस्सा के पास जाकर उनसे कहा: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र तिस्सा।”

“जी, मित्र,” पूज्य तिस्सा ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, तिस्सा, कि आपने कई भिक्षुओं को इस प्रकार बताया था: 'मित्रों, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे नशा किया गया हो... और मुझे शिक्षाओं पर संदेह है'?”

“जी, पूज्यवर।”

“आप क्या सोचते हैं, तिस्सा, यदि कोई रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं है, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, तो उस रूप के परिवर्तन और रूपांतरण से क्या भीतर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?”

“जी, पूज्यवर।”

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो रूप के प्रति वासना से रहित नहीं है। यदि कोई व्यक्ति वेदना (इंद्रिय) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) के प्रति वासना से रहित नहीं है, और उसके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) से रहित नहीं है, तो उस चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ क्या दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?"

"जी, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो चेतना के प्रति वासना से रहित नहीं है। यदि कोई व्यक्ति रूप के प्रति वासना से रहित है, और उसके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) से रहित है, तो उस रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ क्या दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो रूप के प्रति वासना से रहित है। यदि कोई व्यक्ति वेदना (इंद्रिय) की वासना से रहित हो... बोध (बोध) की वासना से रहित हो... चेतना (चेतना) की वासना से रहित हो, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा से रहित हो, तो उस चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता उत्पन्न होती है।" और क्या भीतर निराशा उत्पन्न होती है?

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"वाह, वाह, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो चेतना की वासना से रहित है। तिस्सा, तुम क्या सोचते हो, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "इसलिए ... इस प्रकार देखकर ... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

"मान लो, तिस्सा, दो आदमी थे: एक मार्ग में अकुशल, दूसरा मार्ग में कुशल। मार्ग में अकुशल व्यक्ति कुशल व्यक्ति से मार्ग के बारे में एक प्रश्न पूछता, और बाद वाला कहता: 'आओ, भले आदमी, यह मार्ग है। इस पर थोड़ा आगे चलो और तुम्हें रास्ते में एक मोड़ दिखाई देगा। बाएँ हाथ की शाखा को छोड़ दो और दाएँ हाथ की शाखा पकड़ लो। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक घनी झाड़ी दिखाई देगी। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक विशाल दलदल दिखाई देगा। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक खड़ी चट्टान दिखाई देगी। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें समतल भूमि का एक रमणीय विस्तार दिखाई देगा।"

"मैंने यह उपमा, तिस्सा, अर्थ समझाने के लिए गढ़ी है। इसका अर्थ यह है: 'मार्ग में अकुशल व्यक्ति': यह सांसारिक व्यक्ति के लिए है। 'मार्ग में कुशल व्यक्ति': यह तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए है। 'दोराहा मार्ग': यह संदेह के लिए है। 'बाईं शाखा': यह गलत अष्टमार्ग के लिए है; अर्थात् गलत दृष्टिकोण... गलत समाधि अवस्था के लिए। 'दाईं शाखा': यह आर्य अष्टमार्ग के लिए है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था के लिए। '

घनी झाड़ी': यह अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के लिए है। 'विशाल दलदली भूमि': यह इंद्रिय सुखों के लिए है। 'खड़ी खाई': यह क्रोध के कारण निराशा के लिए है। 'समतल भूमि का रमणीय विस्तार': यह... निर्वाण।

"आनंदित हो, तिस्सा! आनंदित हो, तिस्सा! मैं तुम्हें सिखाने आया हूँ, तुम्हारी सहायता करने आया हूँ, तुम्हें उपदेश देने आया हूँ!"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य तिस्सा भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए। 150

---

85. यामाका
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय यमक नामक एक भिक्षु के मन में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हुआ: "जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।" 151

अनेक भिक्षुओं ने यह हानिकारक विचार यमक नामक भिक्षु के मन में उत्पन्न होने की सूचना प्राप्त की। फिर वे पूज्य यमका के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे मित्र यमका, क्या यह सच है कि आपके मन में ऐसा हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है कि 'भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?" यमका ने कहा, "

बिल्कुल सही, मित्रों। भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।"

"मित्र यमका, ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत अर्थ मत निकालो। भगवान (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान (बुद्ध) ऐसा नहीं कहेंगे: 'जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के टूटने के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।' "

फिर भी, भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बावजूद, पूज्य यमका ने हठपूर्वक उस हानिकारक विचार को पकड़ लिया, उस पर अडिग रहे और घोषणा की: "जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के टूटने के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।"

क्योंकि वे भिक्षु पूज्य यमका को उस हानिकारक विचार से विमुख नहीं कर सके, इसलिए वे अपने आसनों से उठे, पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई, और आगे कहा: "यह अच्छा होगा यदि पूज्य सारिपुत्त करुणावश भिक्षु यमका के पास जाएँ।" पूज्य सारिपुत्त ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए। वे पूज्य यमका के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "क्या यह सच है, मित्र यमका, कि आपके मन में ऐसा हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है: 'जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?"

"बिल्कुल, मित्र।"

"मित्र यमका, तुम्हारा क्या विचार है, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, मित्र।"... - "अतः ... ऐसा देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं बचा है।' 152

"मित्र यमका, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।" - "क्या आप तथागत को वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और विज्ञान के रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।" "मित्र यमका, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?"
- "नहीं, मित्र।" - "क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।"

- "क्या आप तथागत को वेदना में देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें संवेदन में देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें संवेदन से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।"

"हे मित्र यमका, क्या तुम रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना को एक साथ तथागत मानते हो?" - "नहीं, मित्र।"

"हे मित्र यमका, क्या तुम तथागत को निराकार, वेदना रहित, बोध रहित, संस्कार रहित और चेतना रहित मानते हो?" - "नहीं, मित्र।" 153

"परन्तु, मित्र, जब तुम तथागत को इस जीवन में वास्तविक और साकार रूप में नहीं देख पाते; 154 तो क्या यह कहना उचित है कि 'जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?"

"हे मित्र सारिपुत्त, पहले जब मैं अज्ञानी था, तब मैं उस हानिकारक विचार को मानता था, परन्तु अब जब मैंने पूज्य सारिपुत्त की यह धम्म शिक्षा सुनी है, तो मैंने उस हानिकारक विचार को त्याग दिया है और धम्म में प्रवेश कर लिया है।" 155

"यदि हे मित्र यमक, आपसे पूछा जाए: 'हे मित्र यमक, जब कोई भिक्षु अरहंत हो जाता है, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ उसका क्या होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, मित्र, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, रूप क्षणभंगुर है; जो क्षणभंगुर है वह दुख है; जो दुख है वह समाप्त हो गया है और बीत गया है। वेदना ... बोध ... संस्कार ... चेतना क्षणभंगुर है; जो क्षणभंगुर है वह दुख है; जो दुख है वह समाप्त हो गया है और बीत गया है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्र, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" 156

"वाह, वाह, मित्र यमका! अब, मित्र यमका, मैं आपको इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए एक उपमा देता हूँ। मान लीजिए, मित्र यमका, एक गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र है, जो धनवान है, उसके पास बहुत धन-संपत्ति है और वह अंगरक्षकों द्वारा संरक्षित है। तभी कोई व्यक्ति आता है जो उसे बर्बाद करना चाहता है, उसे हानि पहुँचाना चाहता है, उसे खतरे में डालना चाहता है, उसकी जान लेना चाहता है। उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता है: 'यह गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र धनवान है, उसके पास बहुत धन-संपत्ति है और वह अंगरक्षकों द्वारा संरक्षित है। बलपूर्वक उसकी जान लेना आसान नहीं होगा। मुझे उसके पास जाकर उसकी जान ले लेनी चाहिए।'

फिर वह उस गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र के पास जाकर कहता है: 'मैं आपकी सेवा करूँगा, महोदय।' तब गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र उसे अपना सेवक नियुक्त कर लेता है। वह व्यक्ति उसकी सेवा करता है, उसके सामने खड़ा होता है, उसके पीछे चलता है, उसकी हर इच्छा पूरी करता है, उसका आचरण सौम्य और वाणी मधुर होती है।" गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसे मित्र मानता था, 157 घनिष्ठ मित्र, और उस पर भरोसा करता था। परन्तु जब उस व्यक्ति को पता चलता था कि गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र ने उस पर भरोसा किया है, तो उसे अकेला पाकर वह तेज चाकू से उसकी हत्या कर देता था।

“हे मित्र यमका, जब वह व्यक्ति उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के पास जाकर उससे कहता था: 'मैं आपकी सेवा करूंगा, महोदय', तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना? और जब वह व्यक्ति उसकी सेवा करता था, उसके सामने खड़ा होता था, उसके पीछे जाता था, उसकी हर इच्छा पूरी करता था, उसका आचरण सुखद था, उसकी वाणी मधुर थी, तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना? और जब वह व्यक्ति उस पर अकेले में आकर तेज चाकू से उसकी हत्या कर देता था, तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना?”

“हाँ, मित्र।”

"इसी प्रकार, हे मित्र यमका, 158 अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है।

वह वेदना को आत्मा मानता है... अनुभूति को आत्मा मानता है... संशय को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है।

वह वास्तव में अनित्य रूप को 'अनित्य रूप' के रूप में नहीं समझता 159... अनित्य संवेदना को 'अनित्य संवेदना' के रूप में नहीं समझता... अनित्य अनुभूति को 'अनित्य अनुभूति' के रूप में नहीं समझता..." अनित्य संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को 'अनंत संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)' के रूप में... अनित्य चेतना को 'अनंत चेतना' के रूप में।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह पीड़ादायक रूप है, 'पीड़ादायक रूप'... पीड़ादायक संवेदना (वेदना) 'पीड़ादायक संवेदना (वेदना)'... पीड़ादायक अनुभूति 'पीड़ादायक अनुभूति'... पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... पीड़ादायक चेतना 'पीड़ादायक चेतना'।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह निस्वार्थ रूप है, 'निस्वार्थ संवेदना (वेदना)'... निस्वार्थ अनुभूति 'निस्वार्थ अनुभूति'... निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... निस्वार्थ चेतना 'निस्वार्थ चेतना'।

वह यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में यह संबद्ध रूप है, 'संबद्ध रूप'... संबद्ध संवेदना है, 'संबद्ध संवेदना'... संबद्ध बोध है, संबद्ध संस्कार है, और संबद्ध चेतना है। वह यह नहीं समझ पाता कि

वास्तव में यह घातक रूप है, 'घातक रूप'... घातक संवेदना है, घातक बोध है, घातक संस्कार है, और घातक चेतना है।

वह रूप में संलग्न हो जाता है, उससे आसक्त हो जाता है, और उसे 'मेरा स्व' मानकर उस पर स्थिर हो जाता है। 160 वह वेदना (इंद्रिय) में संलग्न हो जाता है... संज्ञा (संज्ञा) में... संस्कार (व्यवहार-आधार) में... चेतना में, उससे आसक्त हो जाता है और उसे 'मेरा स्व' मानकर उस पर स्थिर हो जाता है। आसक्ति के ये पाँच समूह (स्कंध (संज्ञा)) जिनमें वह संलग्न हो जाता है और जिनसे वह आसक्त रहता है, उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा पहुँचाते हैं।

"परन्तु, हे मित्र, ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठों का द्रष्टा है... रूप को आत्मा नहीं मानता, न आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न रूप को आत्मा में मानता है, न आत्मा को रूप में मानता है।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही चेतना से युक्त आत्मा को, न ही आत्मा में चेतना को, न ही चेतना में आत्मा को।

वह अनित्य रूप को 'अनित्य रूप', अनित्य वेदना को 'अनित्य वेदना', अनित्य बोध को 'अनित्य बोध', अनित्य संस्कार को 'अनित्य संस्कार', अनित्य चेतना को 'अनित्य चेतना' समझता है।

वह पीड़ादायक रूप को 'पीड़ादायक रूप', पीड़ादायक वेदना को 'पीड़ादायक वेदना', पीड़ादायक अनुभूति को 'पीड़ादायक अनुभूति', पीड़ादायक संस्कारों को 'पीड़ादायक संस्कारों' और पीड़ादायक चेतना को 'पीड़ादायक चेतना' के रूप में समझते हैं। वह निस्वार्थ

रूप को 'निस्वार्थ रूप', निस्वार्थ वेदना को 'निस्वार्थ अनुभूति', निस्वार्थ अनुभूति को 'निस्वार्थ अनुभूति', निस्वार्थ संस्कारों को 'निस्वार्थ संस्कारों' और निस्वार्थ चेतना को 'निस्वार्थ चेतना' के रूप में समझते हैं।

वह संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप', संबद्ध संवेदना को 'संबद्ध संवेदना', संबद्ध बोध को 'संबद्ध बोध', संबद्ध संभाव्यता को 'संबद्ध संभाव्यता' और संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझता है।

वह घातक रूप को 'घातक रूप', घातक संवेदना को 'घातक संवेदना', घातक बोध को 'घातक बोध', घातक संभाव्यता को 'घातक संभाव्यता' और घातक चेतना को 'घातक चेतना' के रूप में समझता है।

वह रूप से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे 'अपना' नहीं मानता। वह संवेदना से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे 'अपना' नहीं मानता। वह बोध से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। वह संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। वह चेतना से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। आसक्ति के ये पाँचों समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), जिनसे वह संलग्न नहीं होता और जिनसे वह आसक्त नहीं होता, उसे दीर्घकाल तक सुख और कल्याण प्रदान करते हैं।

"हे मित्र सारिपुत्त, यही कारण है कि जिन पूजनीय भिक्षुओं के पास ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने वाले ऐसे दयालु और परोपकारी भिक्षु हैं, वे उन्हें उपदेश और शिक्षा देते हैं। और अब जब मैंने पूज्य सारिपुत्त का यह धम्म उपदेश सुन लिया है, तो अनासक्ति के कारण मेरा मन विमुक्त हो गया है।" 161

पूज्य सारिपुत्त ने यही कहा। पूज्य सारिपुत्त के इस कथन से प्रसन्न होकर पूज्य यमका प्रसन्न हुए।

---

86. अनुराधा

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। 162 उस समय पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर एक वन कुटिया में निवास कर रही थीं। तभी अन्य संप्रदायों के कई तपस्वी पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

“मित्र अनुराधा, जब कोई तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - जो सर्वोच्च प्रकार के व्यक्ति, परम पुरुष, सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले हैं - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों के संदर्भ में करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या 'तथागत मृत्यु

के बाद विद्यमान नहीं रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।'"

यह सुनकर पूज्य अनुराधा ने उन तपस्वियों से कहा: "मित्रों, जब कोई तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - जो सर्वोच्च प्रकार के व्यक्ति, परम पुरुष, सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले हैं - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों से अलग करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते,' या 'मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।' तथागत न तो मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं और न ही मृत्यु के बाद नहीं। 164

जब यह कहा गया, तो उन तपस्वियों ने पूज्य अनुराधा से कहा: "यह भिक्षु अवश्य ही नवदीक्षित है, दीक्षा प्राप्त किए हुए (पबज्जित) नहीं है; या यदि वह वरिष्ठ है, तो वह अकुशल और बचकाना (नासमझ) होगा।"

तब अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों ने पूज्य अनुराधा को "नवदीक्षित" और "बचकाना (नासमझ)" कहकर अपमानित किया और अपने स्थानों से उठकर चले गए।

फिर, उन तपस्वियों के चले जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य अनुराधा के मन में यह विचार आया: "यदि दूसरे संप्रदायों के वे तपस्वी मुझसे और प्रश्न करें, तो मैं कैसे उत्तर दूँ ताकि मुझे वही कहना है जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और मैं उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत न करूँ? और मैं धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाऊँ ताकि मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और भगवान (बुद्ध) को सब कुछ बताया जो हुआ था, और पूछा: "यदि दूसरे संप्रदायों के वे तपस्वी मुझसे और प्रश्न करें, तो मैं कैसे उत्तर दूँ... ताकि मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

"अनुराधा, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।"... - "इसलिए... इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

अनुराधा, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप वेदना, संज्ञा, संवेदन, संस्कार, विज्ञान, चेतना को तथागत मानती हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - अनुराधा

, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप तथागत को वेदना में देखती हैं? क्या वे वेदना से भिन्न हैं? क्या वे संवेदन में हैं? क्या वे संवेदन से भिन्न हैं? क्या वे संस्कार में हैं? क्या वे संस्कार से भिन्न हैं? क्या वे चेतना में हैं? क्या वे चेतना से भिन्न हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

अनुराधा, आपका क्या विचार है? क्या आप रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना को एक साथ तथागत मानते हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अनुराधा, आपका क्या विचार है? क्या आप तथागत को निराकार, वेदना रहित, बोध रहित, संस्कार रहित और चेतना रहित मानते हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" "

परन्तु अनुराधा, जब आप तथागत को इस जीवन में वास्तविक और साकार रूप में नहीं देख पाते, तो क्या यह कहना उचित है कि 'मित्रों, जब तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - सर्वोच्च पुरुष, परम पुरुष, सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने वाले - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों से अलग करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या ... 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"शाबाश, शाबाश, अनुराधा! अनुराधा, पहले भी और अब भी, मैं तुम्हें न्यायसंगत दुख और दुख के निवारण (निरोध) के बारे में बताता हूँ।" 165

---

87. वक्काली
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वक्कली एक कुम्हार की कुटिया में बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। 166 तब पूज्य वक्कली ने अपने सेवकों को संबोधित करते हुए कहा:

"आओ, मित्रों, भगवान (बुद्ध) के पास आओ, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो: 'पूज्यवर, भिक्षु वक्कली बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं; वे भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।'" फिर कहिए: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश भिक्षु वक्कली के पास जाएँ तो अच्छा होगा।" "

जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किया और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य वक्कली के पास गए। पूज्य वक्कली ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और अपने पलंग पर करवट बदली। 167 भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "बस करो, वक्कली, अपने पलंग पर मत करवट बदलो। ये आसन तैयार हैं, मैं वहीं बैठ जाता हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और पूज्य वक्कली से बोले, "आशा है कि तुम ठीक हो, वक्कली, तुम्हारी सेहत में सुधार हो रहा है। आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, बढ़ना नहीं।"

"पूज्यवर, मेरी सेहत ठीक नहीं हो रही है, मेरी सेहत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, कम होना नहीं।"

"तो फिर, वक्कली, आशा है कि तुम पश्चाताप और पछतावे से व्याकुल नहीं हो।"

"जी हाँ, पूज्यवर, मुझे बहुत पश्चाताप और पछतावा है।"

"आशा है, वक्कली, कि तुम्हें सद्गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है।"

"पूज्यवर, सद्गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है।"

"तो फिर, वक्कली, यदि तुम्हें सद्गुणों के विषय में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो तुम पश्चाताप और अफसोस से क्यों व्याकुल हो?"

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने की इच्छा रखता रहा हूँ, परन्तु मेरी शारीरिक क्षमता नहीं रही है।"

"बस करो, वक्कली! तुम इस क्षुद्र शरीर को क्यों देखना चाहते हो? जो ध्यान में धम्म (सत्य, नियम) देखता है, वह मुझे देखता है; जो मुझे देखता है, वह धम्म को देखता है। 168 क्योंकि हे वक्कली, धम्म को ध्यान में देखने से मुझे देखा जा सकता है; और मुझे देखने से धम्म को देखा जा सकता है।"

"वक्काली, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" (इसी प्रकार संवेदना, चेतना, संस्कार और चेतना के लिए भी) - "इसलिए... ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य वक्काली को यह उपदेश देकर अपने आसन से उठकर गिद्ध शिखर पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य वक्काली ने अपने सेवकों से कहा: “आओ, मित्रों, मुझे इस पलंग पर उठाओ और मुझे इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर ले चलो। 169 मुझ जैसा व्यक्ति घरों के बीच मरने के बारे में कैसे सोच सकता है?”

“जी, मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्काली को पलंग पर उठाकर इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर ले गए।

भगवान (बुद्ध) ने उस दिन और रात का शेष समय गिद्ध शिखर पर्वत पर बिताया। फिर, जब रात काफी आगे बढ़ चुकी थी, दो अत्यंत सुंदर देवदूत भगवान (बुद्ध) के पास आए और उन्होंने गिद्ध शिखर पर्वत को पूरी तरह से प्रकाशित कर दिया। एक तरफ खड़े होकर, एक देवदूत ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, भिक्षु वक्कली मुक्ति (विमोक्ष) के लिए तत्पर हैं।" 170 दूसरे देवदूत ने कहा: "हे प्रभु, वे निश्चित रूप से पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त (विमुक्त) हो जाएंगे।" 171 देवताओं ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "आओ, भिक्षुओं, भिक्षु वक्कली के पास जाओ और उससे कहो: 'मित्र वक्कली, भगवान (बुद्ध) [122] और दो देवताओं का वचन सुनो। मित्र, पिछली रात, जब रात काफी आगे बढ़ चुकी थी, दो अत्यंत सुंदर देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली मोक्ष प्राप्त करने के लिए तत्पर हैं।" दूसरे देवता ने कहा: "निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वे पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त हो जाएंगे।" और भगवान (बुद्ध) तुमसे कहते हैं, मित्र वक्कली: "डरो मत, वक्कली, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी। तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।"

“जी, पूज्यवर,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्कली के पास जाकर उनसे कहा: “मित्र वक्कली, भगवान (बुद्ध) और दो देवताओं के वचन सुनो।”

तब पूज्य वक्कली ने अपने सेवकों से कहा: “आओ, मित्रों, मुझे पलंग से नीचे उतारो। मुझ जैसा व्यक्ति ऊंचे आसन पर बैठकर भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनने के बारे में कैसे सोच सकता है?”

“जी, मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्कली को पलंग से नीचे उतार दिया।

"कल रात, मित्र, दो अत्यंत सुंदर देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली मुक्ति (विमोक्ष) के लिए तत्पर हैं।' दूसरे देवता ने कहा: 'निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वे पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त हो जाएँगे।' और भगवान (बुद्ध) तुमसे कहते हैं, मित्र वक्कली: 'डरो मत, वक्कली, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी। तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।' "

तो फिर, मित्रों, मेरे नाम से भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो: 'आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली बीमार हैं, पीड़ित हैं, गंभीर रूप से बीमार हैं; वे भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।' तब कहें: "रूप क्षणभंगुर है: हे पूज्यवर, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो कुछ क्षणभंगुर है वह दुखदायी है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसके प्रति मुझमें कोई इच्छा, वासना या स्नेह नहीं है। वेदना क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है... हे पूज्यवर, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो कुछ क्षणभंगुर है वह दुखदायी है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसके प्रति मुझमें कोई इच्छा, वासना या स्नेह नहीं है।"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और फिर वे चले गए। फिर, उन भिक्षुओं के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य वक्काली ने चाकू का प्रयोग किया। 172

तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा, "आओ, भिक्षुओं, हम इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर चलें, जहाँ कुल के वक्काली ने चाकू का प्रयोग किया है।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध),
कुछ भिक्षुओं के साथ, इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर गए। भगवान (बुद्ध) ने दूर से पूज्य वक्काली को पलंग पर कंधे घुमाए लेटे हुए देखा।

उस समय धुएँ का एक बादल, अंधकार का एक बवंडर, पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर, नीचे की ओर और मध्य दिशाओं की ओर बढ़ रहा था। तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, क्या तुम उस धुएँ के बादल को, उस अंधकार के भंवर को देख रहे हो, जो पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर, नीचे की ओर और मध्य दिशाओं की ओर बढ़ रहा है?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"हे भिक्षुओं, वह दुष्ट मारा (शैतान) है जो कुल के वक्कली की चेतना की खोज कर रहा है, और सोच रहा है: 'कुल के वक्कली की चेतना अब कहाँ स्थापित है?' परन्तु हे भिक्षुओं, चेतना स्थापित न होने के कारण, कुल के वक्कलि ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

---

88. असाजी

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य असाजी कस्सपक उद्यान में बीमार, व्यथित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे।

(जैसा कि पिछले सूत्र 87 में है, नीचे तक:)

"हे असाजी, यदि आपको सद्गुण (शील) के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो आप पश्चाताप और खेद से क्यों व्याकुल हैं?"

"हे पूज्यवर, पहले जब मैं बीमार था, तब मैं शारीरिक संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) को समाधि में शांत करता रहता था, परन्तु अब मुझे समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं होती। 173 क्योंकि मुझे समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं होती, इसलिए मेरे मन में यह विचार आता है: 'मुझे भटकना नहीं चाहिए!' "

हे असाजी, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो समाधि की अवस्था को सार मानते हैं और समाधि की अवस्था को तपस्या के साथ जोड़ते हैं, 174 समाधि की अवस्था प्राप्त न कर पाने पर शायद सोचें, 'हमें भटकना नहीं चाहिए!'"

"आप क्या सोचते हैं, असाजी, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार और चेतना के लिए) - "इसलिए... इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' 175

"यदि उसे सुखद संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है: 'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे पीड़ादायक संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है: 'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है:
'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'"

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है।

जब उसे शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब उसे जीवन से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' वह समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'

"जैसे, असाजी, तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, वैसे ही, असाजी, जब एक भिक्षु को शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है..." ...जीवन के साथ

समाप्त होते हुए... वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन की समाप्ति के बाद, जो कुछ भी महसूस किया जाता है, खुश न होने पर, यहीं पर सब कुछ अच्छा लगने लगेगा।

---

89. खेमाका
एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु कोसंबी में स्थित घोषिता उद्यान में ठहरे हुए थे। उसी समय पूज्य खेमक बेर के वृक्ष उद्यान में रह रहे थे, वे बीमार और अत्यंत विक्षिप्त थे।

शाम को वे वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास से बाहर आए और पूज्य दासक से कहा, "हे मित्र दासक, आओ, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो:
'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: हमें आशा है कि तुम धैर्य रख रहे हो, हमें आशा है कि तुम स्वस्थ हो रहे हो। हमें आशा है कि तुम्हारी पीड़ा (वेदना) कम हो रही है, बढ़ नहीं रही है, और यह कमी ही ध्यान देने योग्य है, न कि वृद्धि।'"

"जी मित्रों," पूज्य दासक ने उत्तर दिया और वे पूज्य खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "मित्र, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें कम नहीं हो रही हैं, बल्कि बढ़ रही हैं, और यही बात ध्यान देने योग्य है कि वे कम नहीं हो रही हैं।"

तब आदरणीय दासका वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए और आदरणीय खेमाका की कही हुई बातें उन्हें बताईं। उन्होंने उससे कहा: "आओ, मित्र दासका, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'हे मित्र खेमक, बड़ों ने तुमसे कहा है: हे मित्र, इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, सजीव रूप, सजीव वेदना, सजीव अनुभूति, सजीव संस्कार, सजीव क्रिया और सजीव चेतना। क्या आदरणीय खेमक इन पाँचों सजीव स्कंधों में से किसी को आत्मा या आत्मा से संबंधित मानते हैं?'"

"जी हाँ, मित्रों," आदरणीय दासका ने उत्तर दिया और वे आदरणीय खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "इन पाँच स्कंदनों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, स्कंदन के अधीन रूप स्कंदन (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार)... स्कंदन के अधीन चेतना स्कंदन। इन पाँच स्कंदनों में से मैं किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानता।"

तब पूज्य दासक ने वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाकर पूज्य खेमक की कही बात बताई। उन्होंने उत्तर दिया, "हे मित्र दासक, आओ, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: हे मित्र, इन पाँच आसक्ति-ग्रस्त स्कंधों का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, आसक्ति-ग्रस्त रूप स्कंध (उपादान संक्रिया)... (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार)... आसक्ति-ग्रस्त चेतना स्कंध। यदि पूज्य खेमक इन पाँच आसक्ति-ग्रस्त स्कंधों में से किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानते, तो वे अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।'"

"जी, मित्रों," पूज्य दासक ने उत्तर दिया और वे पूज्य खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "इन पाँच स्कंदनों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंदन... आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंदन। मैं इन पाँच स्कंदनों में से किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानता, फिर भी मैं अर्हंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो गए हों। मित्रों, इन पाँच स्कंदनों के संबंध में 'मैं हूँ' की धारणा अभी तक मुझमें विलीन नहीं हुई है, परन्तु मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।" 176

तब आदरणीय दासक वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए और आदरणीय खेमाका की कही हुई बातें उन्हें बताईं। उन्होंने उत्तर दिया:
"आओ, मित्र दासका, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: मित्र खेमक, जब तुम इस 'मैं हूँ' की बात करते हो - तो तुम 'मैं हूँ' किसे कहते हो? क्या तुम रूप को 'मैं हूँ' कहते हो, या रूप से अलग 'मैं हूँ' कहते हो? क्या तुम वेदना... बोध... संस्कार... चेतना... को 'मैं हूँ' कहते हो, या चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहते हो?
मित्र खेमक, जब तुम इस 'मैं हूँ' की बात करते हो, तो तुम 'मैं हूँ' किसे कहते हो?" "

जी, मित्रों," पूज्य दासका ने उत्तर दिया, और वे पूज्य खेमक के पास गए और अपना संदेश दिया।

"बस करो, मित्र दासका! बार-बार इधर-उधर क्यों भाग रहे हो? मेरी छड़ी लाओ, मित्र। मैं स्वयं वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाता हूँ।"

फिर पूज्य खेमाका अपनी छड़ी के सहारे खड़े होकर वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। वरिष्ठ भिक्षुओं ने उनसे कहा,
"मित्र खेमाका, जब आप इस 'मैं हूँ' की बात करते हैं... तो आप 'मैं हूँ' से किस बात का जिक्र कर रहे हैं?"

"मित्रों, मैं रूप को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित नहीं करता, न ही रूप से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ। मैं वेदना को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित नहीं करता... न ही अनुभूति को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ... न ही संस्कार को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ... न ही चेतना को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ, न ही चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ। मित्रों, यद्यपि आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों के संबंध में 'मैं हूँ' की धारणा मुझमें अभी तक विलीन नहीं हुई है, फिर भी मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।"

"मान लीजिए, मित्रों, नीले, लाल या सफेद कमल की सुगंध है।" क्या कोई सही कह रहा होगा यदि वह कहे, 'सुगंध पंखुड़ियों की है,' या 'सुगंध डंठल की है,' 177 या 'सुगंध स्त्रीकेसर की है'? "

नहीं, मित्र।"

"और मित्रों, सही उत्तर देने के लिए कैसे उत्तर देना चाहिए?"

"सही उत्तर देते हुए, मित्र, उत्तर देना चाहिए: 'सुगंध फूल की है।'"

"इसी प्रकार, मित्रों, मैं रूप को 'मैं हूँ' नहीं कहता, न ही मैं रूप से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ। मैं वेदना को 'मैं हूँ' नहीं कहता... न ही अनुभूति को 'मैं हूँ'... न ही संस्कार को 'मैं हूँ'... न ही चेतना को 'मैं हूँ' कहता हूँ, न ही मैं चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ।" मित्रों, यद्यपि इन पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में मुझमें 'मैं हूँ' की धारणा अभी तक विलीन नहीं हुई है, फिर भी मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।

"मित्रों, यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर लेता है, फिर भी आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में, उसके भीतर एक अवशिष्ट अहंकार 'मैं हूँ', एक इच्छा 'मैं हूँ', एक अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय संस्कृत: अनुषय) 'मैं हूँ' शेष रहती है, जो अभी तक उखड़ी नहीं है। कुछ समय बाद वह आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों के उदय और पतन (उदय-व्यवहार) पर ध्यान लगाते हुए कहता है: 'ऐसा रूप है, ऐसा इसका उद्गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार) हैं... ऐसी चेतना है, ऐसा इसका उद्गम है, ऐसा इसका क्षय है।'" जब वह आसक्ति के अधीन पांचों स्कंधों में होने वाले उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो उसमें निहित अहंकार 'मैं हूं', इच्छा 'मैं हूं' और अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) 'मैं हूं' जो अभी तक जड़ से उखड़ी नहीं थी, वह जड़ से उखड़ जाती है।

"मान लीजिए, मित्रों, एक कपड़ा गंदा और दागदार हो गया है, और उसके मालिक उसे धोबी को देते हैं। धोबी उसे नमक, क्षार या गोबर से अच्छी तरह रगड़कर साफ पानी में धोएगा। यद्यपि वह कपड़ा शुद्ध और साफ हो जाएगा, फिर भी उसमें नमक, क्षार या गोबर की बची हुई गंध रह जाएगी जो अभी तक गायब नहीं हुई है। धोबी उसे वापस मालिकों को दे देगा। मालिक उसे एक सुगंधित डिब्बे में रखेंगे, और नमक, क्षार या गोबर की बची हुई गंध गायब हो जाएगी जो अभी तक गायब नहीं हुई है। 178

"इसी प्रकार, मित्रों, यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य ने पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, फिर भी, आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में, उसमें 'मैं हूँ' का अवशिष्ट अहंकार, 'मैं हूँ' की इच्छा और 'मैं हूँ' की अंतर्निहित प्रवृत्ति बनी रहती है जो अभी तक समाप्त नहीं हुई है।" जड़ से उखड़ गया... जब वह आसक्ति के अधीन पांच स्कंधों में उदय-अवरोह (उदय-व्य) का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हैं, तो शेष अहंकार 'मैं हूं', इच्छा 'मैं हूं', और अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) 'मैं हूं' जो अभी तक उखड़ी नहीं थी, वह उखड़ जाती है।"

यह सुनकर वरिष्ठ भिक्षुओं ने पूज्य खेमक से कहा: "हमने पूज्य खेमक को परेशान करने के लिए प्रश्न नहीं पूछे थे, बल्कि हमने सोचा था कि पूज्य खेमक भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं की विस्तार से व्याख्या, शिक्षण, प्रचार, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण

करने में सक्षम होंगे।" और पूज्य खेमाका ने भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं की विस्तृत व्याख्या, अध्यापन, प्रचार, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया है।"

पूज्य खेमाका ने यही कहा। पूज्य खेमाका के इस कथन से प्रसन्न होकर वरिष्ठ भिक्षु प्रसन्न हुए। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब साठ वरिष्ठ भिक्षुओं और पूज्य खेमाका के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

90. चन्ना
एक बार कई भिक्षु इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। तब, शाम को, पूज्य चन्ना एकांतवास से बाहर आए और अपनी चाबी लेकर एक-एक घर जाकर वरिष्ठ भिक्षुओं से कहने लगे:
"वरिष्ठ पूज्य भिक्षु मुझे उपदेश दें, मुझे धर्म का प्रवचन दें, मुझे धर्म का ऐसा उपदेश दें कि मैं धर्म को समझ सकूँ।" 179

जब यह कहा गया, तो वरिष्ठ भिक्षुओं ने पूज्य चन्ना से कहा: "हे मित्र चन्ना, रूप क्षणभंगुर है, वेदना क्षणभंगुर है, अनुभूति क्षणभंगुर है, संस्कार क्षणभंगुर हैं, चेतना क्षणभंगुर है। रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। सभी संस्कार क्षणभंगुर हैं; सभी घटनाएँ अनात्म हैं।" 180

तब पूज्य चन्ना के मन में यह विचार आया: "मैं भी इसी प्रकार सोचता हूँ: 'रूप क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है। रूप अनात्म है... चेतना अनात्म है। सभी संस्कार (व्यवहार-आदतें) क्षणभंगुर हैं; सभी घटनाएँ (धर्म) अनात्म हैं।' परन्तु मेरा मन समस्त संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को शांत करने, समस्त भोगों (उपाधि) का त्याग करने, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का नाश करने, वैराग्य, निरोध और निर्वाण की ओर अग्रसर नहीं होता; न ही वह विश्वास प्राप्त करता है, स्थिर होता है और उस पर संकल्प लेता है। इसके विपरीत, बेचैनी और आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है और मन यह सोचते हुए पीछे मुड़ जाता है: 'परन्तु मेरा 'स्व' कौन है?'" 181 परन्तु जो ध्यान में धम्म को देखता है, उसके साथ ऐसा नहीं होता। तो मुझे धम्म का ऐसा शिक्षण कौन दे सकता है जिससे मैं ध्यान में धम्म को देख सकूँ?

तब पूज्य चन्ना के मन में विचार आया: "यह पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास करते हैं, और गुरु ने उनकी प्रशंसा की है तथा ब्रह्मचर्य जीवन में उनके ज्ञानी भिक्षु उन्हें आदर देते हैं। पूज्य आनंद मुझे धम्म का ऐसा शिक्षण दे सकते हैं जिससे मैं धम्म को देख सकूँ। क्योंकि मुझे पूज्य आनंद पर इतना विश्वास है, इसलिए मैं उनसे मिलता हूँ।"

तब पूज्य चन्ना ने अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया, और कोसंबी में घोषिता उद्यान गए, जहाँ उन्होंने पूज्य आनंद से संपर्क किया और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद को सारी घटना बताई, साथ ही आगे कहा: "पूज्य आनंद मुझे उपदेश दें, मुझे मार्गदर्शन दें, मुझे इस प्रकार धर्म प्रवचन दें कि मैं धर्म को समझ सकूँ।"

"मैं पूज्य चन्ना से इतना भी प्रसन्न हूँ। शायद पूज्य चन्ना ने स्वयं को खोल दिया है और अपनी बांझपन को दूर कर लिया है। 182 हे मित्र चन्ना, ध्यान से सुनो, तुम धम्म को समझने में सक्षम हो।"

तभी पूज्य चन्ना के मन में एक उदात्त आनंद और प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हुआ, जब उन्होंने सोचा: "ऐसा लगता है कि मैं धम्म को समझने में सक्षम हूँ।"

[आदरणीय आनंद ने तब कहा:] "हे मित्र चन्ना, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना है, उनकी उपस्थिति में मैंने भिक्षु कच्चनगोत्त को दिए गए उपदेश को ग्रहण किया है: 183

"यह संसार, कच्चन, अधिकांशतः द्वैत पर आधारित है... (संयुत्त 12 में संपूर्ण सूत्र SN2:15 उद्धृत है)... यही इस संपूर्ण दुख का निवारण (निरोध) है।" "

इसलिए, हे मित्र आनंद, उन आदरणीय भिक्षुओं के लिए यही है जिनके पास ब्रह्मचर्य जीवन में ऐसे करुणामय और परोपकारी भिक्षु हैं, ताकि वे उन्हें उपदेश और शिक्षा दे सकें। और अब जब मैंने आदरणीय आनंद के इस धम्म उपदेश को सुन लिया है, तो मैंने धम्म में प्रवेश कर लिया है।"

---

91. राहुल (1)
श्रावस्ती, 184 में पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पसाति, विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संशय) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासति) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

'जब व्यक्ति ध्यान में (पासति) इस प्रकार जानता और देखता है, हे राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।'

---

92. राहुल (2)
सावत्थी में, पूज्य राहुल ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेत (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के प्रति, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

"राहुल, चाहे भूतकाल का रूप हो, भविष्यकाल का रूप हो या वर्तमान काल का... दूर हो या पास का - सभी रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है', व्यक्ति अनासक्ति से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है।

किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) हो..." किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) . . . किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - जब सभी चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखा जाए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है,' तो व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

"जब कोई (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में) इस प्रकार जानता और देखता है, 'राहुला', तो इस चेतन शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"

(v) प्रभाग 2, मध्य पचास - पुष्प खंड (पुप्फावग्गो सं. पुष्प-वर्ग)
93. नदी
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मान लीजिए एक पहाड़ी नदी तेज़ धारा के साथ नीचे की ओर बह रही है। यदि नदी के दोनों किनारों पर कास घास या कुश घास उगती, तो वह नदी को ढक लेती; यदि सरकंडे, नरकट या पेड़ उगते, तो वे भी नदी को ढक लेते। यदि कोई व्यक्ति धारा के साथ बहते हुए कास घास को पकड़ ले, तो वह टूट जाएगी और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा; यदि वह कुश घास को पकड़ ले, तो वह टूट जाएगी और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा; यदि वह सरकंडे, नरकट या पेड़ों को पकड़ ले, तो वे टूट जाएंगे और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। उसका वह रूप विघटित हो जाता है और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

वह वेदना को आत्मा मानता है।" ... अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) स्वयं के रूप में ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) स्वयं के रूप में ... चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) स्वयं के रूप में, या चेतना से युक्त स्वयं के रूप में, या स्वयं में चेतना के रूप में, या चेतना में स्वयं के रूप में। उसकी वह चेतना विघटित हो जाती है और इस प्रकार वह विपत्ति और विपत्ति का शिकार होता है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" ...(इसी प्रकार संवेदना, अनुभूति, संस्कार और चेतना के लिए) - "अत: ... ऐसा देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

94. फूल

सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं संसार से विवाद नहीं करता; बल्कि संसार ही मुझसे विवाद करता है। धम्म (मार्ग, नियम) का अनुयायी संसार में किसी से विवाद नहीं करता। जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान नहीं है, मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान नहीं है। और जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान है, मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान है। 185

"और वह क्या है, भिक्षुओं, जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान नहीं है, जिसके बारे में मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान नहीं है? वह रूप जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत है, परिवर्तन के अधीन नहीं है: इस पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि यह विद्यमान नहीं है, और मैं भी कहता हूँ कि यह विद्यमान नहीं है।" वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... विज्ञान (विन्नना) ... वह चेतना जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व नहीं है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व नहीं है।

"हे भिक्षुओं, संसार के ज्ञानी जिस बात पर सहमत हैं कि उसका अस्तित्व नहीं है, मैं भी यही कहता हूँ कि उसका अस्तित्व नहीं है।

" "और हे भिक्षुओं, वह क्या है जिसके बारे में संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि उसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि उसका अस्तित्व है? वह रूप जो क्षणिक, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व है। वेदना (संवेदना) ... अनुभूति ... संस्कार (व्यवहार) ... चेतना जो क्षणिक, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व है।

"भिक्षुओं, संसार के ज्ञानी लोग इसी बात पर सहमत हैं कि यह विद्यमान है, और मैं भी इसके विद्यमान होने की बात कहता हूँ।

भिक्षुओं, संसार में एक विश्व-घटना है, जिसका तथागत ने ज्ञान प्राप्त किया है और उसे पार किया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसकी घोषणा करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं।"

और वह कौन सी सांसारिक घटना है जिसे तथागत ने ज्ञान प्राप्त करके पार कर लिया है? हे भिक्षुओं, रूप ही वह सांसारिक घटना है जिसे तथागत ने ज्ञान प्राप्त करके पार कर लिया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं। जब तथागत द्वारा इसकी व्याख्या की जा रही हो... तो यदि कोई इसे न जानता हो और न देखता हो, तो मैं उस नासमझ, अंधे और दृष्टिहीन सांसारिक व्यक्ति के साथ क्या कर सकता हूँ जो न जानता हो और न देखता हो?

"वेदना (संवेदना)... बोध... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना संसार में घटित होने वाली एक घटना है, जिसे तथागत ने जागृत किया है और पार किया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं। जब तथागत द्वारा इसकी इस प्रकार व्याख्या और स्पष्टीकरण किया जा रहा हो, तो यदि कोई इसे न जानता हो और न देखता हो, तो मैं उस नासमझ, अंधे और दृष्टिहीन सांसारिक व्यक्ति के साथ क्या कर सकता हूँ, जो न जानता हो और न देखता हो?

भिक्षुओं, जैसे नीला, लाल या सफेद कमल जल में जन्म लेता है और जल में ही बढ़ता है, लेकिन जल से ऊपर उठकर वह जल से अछूता रहता है, वैसे ही तथागत संसार में जन्म लेकर संसार में पले-बढ़े, लेकिन संसार पर विजय प्राप्त करके वे संसार से अछूते रहते हैं।" 187

---

95. फोम की एक गांठ (फेना-पिंड-उपमा)

एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे अयोध्या में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 188

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि यह गंगा नदी अपने साथ झाग का एक बड़ा गोला बहाकर ले जा रही है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा, तो उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला झाग के गोले में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार का रूप (शरीर) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा, तो उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला रूप में क्या सार हो सकता है? 189

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि शरद ऋतु में, जब वर्षा हो रही हो और बड़ी-बड़ी बूँदें गिर रही हों, तो पानी का एक बुलबुला उठता है और पानी की सतह पर फूट जाता है। अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति इसका निरीक्षण करे, इस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक इसकी जांच करे, तो उसे यह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला जल के बुलबुले में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: भिक्षु इसका निरीक्षण करे, इस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक इसकी जांच करे, तो उसे यह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला वेदना में क्या सार हो सकता है? 190

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में, दोपहर के समय, एक मृगतृष्णा दिखाई देती है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका गहन अध्ययन करेगा, और उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला मृगतृष्णा में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो (सन्ना संस्कृत संज्ञा), चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करता है, उस पर ध्यान करता है और उसका गहन अध्ययन करता है, और उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला अनुभूति में क्या सार हो सकता है?"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति को केले के भीतरी भाग की आवश्यकता है, वह उसकी खोज में भटक रहा है, और एक तेज कुल्हाड़ी लेकर जंगल में प्रवेश करता है। वहाँ उसे एक विशाल केले के पेड़ का तना दिखाई देता है, सीधा, ताजा, बिना किसी फल-कली के। 192 वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपरी भाग को अलग कर देता है, और कुंडल को खोलता है। कुंडल को खोलने पर उसे उसमें कोमल लकड़ी भी नहीं मिलती, भीतरी भाग तो दूर की बात है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा, और ध्यानपूर्वक उसकी जाँच करेगा, और उसे वह खाली, खोखला, सारहीन प्रतीत होगा। केले के पेड़ के तने में भला क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उनका निरीक्षण करता है, उन पर ध्यान करता है, और ध्यानपूर्वक उनकी जाँच करता है। जब वह उनका अध्ययन करता है, तो वे उसे शून्य, खोखले और सारहीन प्रतीत होते हैं। आख़िर संस्कार (व्यवहार-आधार) में क्या सार हो सकता है? 193

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि एक जादूगर या जादूगर का शिष्य चौराहे पर कोई जादुई भ्रम प्रदर्शित करे। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करे, उस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन करे, तो वह उसे शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। आख़िर जादुई भ्रम में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे चेतना (विन्नान, विज्ञान) किसी भी प्रकार की हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करे, उस पर ध्यान करे और ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन करे, तो वह उसे शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। आख़िर चेतना में क्या सार हो सकता है?" 194

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा है। " यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"रूप झाग के गुच्छे के समान है; संवेदना (वेदना) पानी के बुलबुले के समान है;
बोध मृगतृष्णा के समान है; इच्छाएँ केले के तने के समान हैं;
और चेतना भ्रम के समान है; सूर्य के सन्यासी ने ऐसा समझाया।

यद्यपि कोई इस पर ध्यान करे; और इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करे,
यह खोखला और खाली ही प्रतीत होता है; जब कोई इस पर ध्यानपूर्वक विचार करता है। "

इस शरीर के संदर्भ में; व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले ने सिखाया है
कि तीन धर्मों (मार्ग, नियम) का त्याग करने पर; व्यक्ति (ध्यान में, पाषाण में, विपश्यना ध्यान में) इस रूप को त्यागा हुआ देखता है।

जब जीवन, ऊष्मा और चेतना; इस भौतिक शरीर से विमुख हो जाते हैं।
तब यह वहाँ त्यागा हुआ पड़ा रहता है; दूसरों के लिए भोजन, बिना संज्ञानात्मक जागरूकता के। 195

"यह निरंतरता ऐसी ही है; यह भ्रम, बचकाने (नासमझ) को बहकाने वाला।
इसे हत्यारा बनना सिखाया जाता है; यहाँ कोई सार नहीं पाया जा सकता। 196

"ऊर्जावान (वीर्य) से जागृत भिक्षु को; इस प्रकार समूह (खंड, संस्कृत में स्कंध) को देखना चाहिए,
चाहे दिन हो या रात, 197; बोधगम्य, सदा ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हुए।"

उसे सभी बंधनों को तोड़ देना चाहिए; और अपने लिए एक शरणस्थल बनाना चाहिए;
उसे प्रज्वलित होकर आगे बढ़ना चाहिए; अविनाशी अवस्था की लालसा रखते हुए।

---

96. गाय के गोबर का एक ढेर (गोमाया-पिंडा)
सावत्थी में, एक भिक्षु एक तरफ बैठे हुए भगवान (बुद्ध) से बोले:

"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बना रहे? हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसी संवेदना (वेदना)... कोई ऐसी अनुभूति (संज्ञा)... कोई ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... कोई ऐसी चेतना (विज्ञान) है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन से परे हो और जो शाश्वतता की तरह एक जैसा बना रहे। ऐसी कोई संवेदना (वेदना) नहीं है... कोई बोध नहीं है... कोई संस्कार (व्यवहार-आधार) नहीं है... कोई चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन से परे हो और जो शाश्वतता की तरह एक जैसी बनी रहे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने हाथ में गोबर का एक छोटा सा ढेर उठाया और उस भिक्षु से कहा, “भिक्षु, इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे हो, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे होता, तो दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में नहीं आता। 198 परन्तु क्योंकि इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे हो, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (ब्रह्मचर्य) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में आता है।

“भिक्षु, अतीत में मैं एक प्रधान क्षत्रिय राजा था। 199 मेरे पास 84,000 नगर थे, जिनमें प्रमुख राजधानी कुसवती थी। मेरे पास 84,000 महल थे, जिनमें से प्रमुख महल धम्म नामक था। मेरे पास नुकीली छतों वाले 84,000 हॉल थे, जिनमें से प्रमुख हॉल महान सभाघर नामक था। मेरे पास हाथीदांत, लकड़ी, सोने और चांदी से बने 84,000 पलंग थे, जिन पर लंबे बालों वाले फूलों से सजे आवरण बिछे थे, हिरण की खाल से बने उत्तम चादरें थीं, ऊपर लाल चंदोवे थे और दोनों सिरों पर लाल तकिए थे।

मेरे पास 84,000 नर हाथी थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से ढके थे, जिनमें से प्रमुख हाथी उपोसथा नामक शाही नर हाथी था। मेरे पास 84,000 घोड़े थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से

ढके थे, जिनमें से प्रमुख घोड़ा वलहका नामक शाही घोड़ा था। मेरे पास 84,000 रथ थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से ढके थे, जिनमें से प्रमुख रथ वेजयंत नामक रथ था।

मेरे पास 84,000 रत्न थे, जिनमें सबसे श्रेष्ठ रत्न था। मेरे पास 84,000 स्त्रियाँ थीं, जिनमें सबसे श्रेष्ठ रानी सुभद्दा थीं। मेरे पास क्षत्रिय जाति के 84,000 सामंत थे, जिनमें सबसे श्रेष्ठ सेनापति था। मेरे पास उत्तम जूट की रस्सियों और पीतल के दूध के बर्तनों से बंधी 84,000 गायें थीं। मेरे पास उत्तम लिनेन, रेशम, ऊन और सूती कपड़े की 84,000 कोटि थीं। मेरे पास 84,000 थालियाँ थीं जिन पर मुझे सुबह और शाम का भोजन परोसा जाता था।

उन 84,000 नगरों में से, हे 201 भिक्षुओं, उस समय मैं केवल एक नगर में निवास करता था: राजधानी कुसावती। उन 84,000 महलों में से, उस समय मैं केवल एक महल में निवास करता था: धम्म नामक महल। उन 84,000 शिखरित छतों वाले हॉलों में से, उस समय मैं केवल एक ही शिखरित छत वाले हॉल में निवास करता था: वह हॉल जिसका नाम 'महान सराय' था। उन 84,000 पलंगों में से, उस समय मैं केवल एक ही पलंग का उपयोग करता था, जो हाथीदांत, लकड़ी, सोने या चांदी से बना था।

उन 84,000 हाथियों में से, उस समय मैं केवल एक ही हाथी पर सवार होता था, जिसका नाम 'उपोसथा' था, जो शाही नर हाथी था। उन 84,000 घोड़ों में से, उस समय मैं केवल एक ही घोड़े पर सवार होता था, जिसका नाम 'वलाहका' था। उन 84,000 रथों में से, उस समय मैं केवल एक ही रथ पर सवार होता था, जिसका नाम 'वेजयंत

' था। उन 84,000 स्त्रियों में से, उस समय मेरी सेवा में केवल एक ही स्त्री थी, जो या तो क्षत्रिय कन्या थी या वेलामिक कन्या। उन 84,000 कोटि वस्त्रों में से केवल एक जोड़ी वस्त्र ही मैंने उस समय पहने थे, जो या तो महीन लिनेन, या महीन रेशम, या महीन ऊन, या महीन सूती कपड़े से बने थे। उन 84,000 थालियों में से केवल एक थाली ही ऐसी थी जिससे मैंने उपयुक्त करी के साथ अधिकतम एक माप चावल खाया था।

"इस प्रकार, हे भिक्षु, वे सभी संस्कार (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं, बदल चुके हैं। हे भिक्षु, संस्कार (व्यवहार) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय हैं। हे भिक्षु, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) महसूस करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।"

---

97. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बना रहे? क्या कोई ऐसी संवेदना (वेदना) ... कोई ऐसी अनुभूति (संज्ञा संस्कृत) ... कोई ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार-स्थिति) ... कोई ऐसी चेतना (विन्नाना संस्कृत संस्कृत) है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप नहीं है ... कोई ऐसी संवेदना (वेदना) नहीं है ... कोई ऐसी अनुभूति नहीं है ... कोई ऐसा संस्कार (व्यवहार-स्थिति) नहीं है ... कोई ऐसी चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और उस भिक्षु से कहा, "भिक्षु, इतना रूप भी नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय हो, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतना रूप स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय होता, तो दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में नहीं आता। परन्तु क्योंकि इतना रूप भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं है, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (ब्रह्मचर्य) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में आता है।

इतना वेदना... बोध... संस्कार (व्यवहार-आधार)... चेतना भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं है, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतनी चेतना होती..." लेकिन चूंकि इतनी चेतना भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे नहीं है, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन जीना ही समझ में आता है।

"भिक्षु, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" (इसी प्रकार वेदना, बोध, संस्कार और चेतना) - "इसलिए... ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

98. सरल संस्करण (सुद्धिका)

सावत्थी में, एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप, कोई ऐसी संवेदना (वेदना), कोई ऐसी धारणा (संज्ञा संश्लेष), कोई ऐसा संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), कोई ऐसी चेतना (विन्नान संश्लेष), विज्ञान है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो शाश्वतता के समान ही स्थिर रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप, कोई ऐसी संवेदना (वेदना), कोई ऐसी धारणा, कोई ऐसा संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), कोई ऐसी चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो शाश्वतता के समान ही स्थिर रहे।"

---

99. पट्टा (1) (गद्दुलबद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। 203

"भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब विशाल सागर सूखकर विलीन हो जाता है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, 204 परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों के दुख का अंत नहीं होता।"

भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब पर्वतों के राजा सिनेरु जलकर नष्ट हो जाते हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए भटकते प्राणियों के दुखों का अंत नहीं होता।

भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब महान पृथ्वी जलकर नष्ट हो जाती है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए भटकते प्राणियों के दुखों का अंत नहीं होता (तन्हा संस्कृत)।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कुत्ते को रस्सी से बांधकर किसी मजबूत खंभे से बांध दिया जाए: वह उसी खंभे के चारों ओर दौड़ता और घूमता रहेगा। ठीक उसी प्रकार, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप को आत्मा मानता है... वेदना को आत्मा मानता है... संज्ञा को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... विज्ञान को आत्मा मानता है... वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के चारों ओर दौड़ता और घूमता रहता है। 205 जैसे-जैसे वह इनके चारों ओर दौड़ता और घूमता रहता है, वह रूप से मुक्त नहीं होता, वेदना से मुक्त नहीं होता, संज्ञा से मुक्त नहीं होता, संस्कार से मुक्त नहीं होता, चेतना से मुक्त नहीं होता। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; वह दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और मृत्यु से मुक्त नहीं होता। निराशा; मैं कहता हूँ, दुख से मुक्ति नहीं

। परन्तु ज्ञानी शिष्य... रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही वेदना को आत्मा... न ही बोध को आत्मा... न ही संस्कार को आत्मा... न ही चेतना... वह रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के चारों ओर घूमना-फिरना बंद कर देता है। क्योंकि वह इनके चारों ओर घूमना-फिरना बंद कर देता है, इसलिए वह रूप से मुक्त हो जाता है, वेदना से मुक्त हो जाता है, बोध से मुक्त हो जाता है, संस्कार से मुक्त हो जाता है और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।

---

100. पट्टा (2) (गद्दुलबद्धा)
भिक्षुओं, यह संसार अनावृत है जिसका आरंभ ज्ञात नहीं है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं होता...

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक कुत्ते को रस्सी से बांधकर एक मजबूत खंभे से बांध दिया जाए। यदि वह चलता है, तो उस खंभे के निकट चलता है। यदि वह खड़ा होता है, तो उस खंभे के निकट खड़ा रहता है। यदि वह बैठता है, तो उस खंभे के निकट बैठता है। यदि वह लेटता है, तो उस खंभे के निकट लेटता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक प्राणी रूप को इस प्रकार देखता है: यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है। वह वेदना, संज्ञा, संवेदन, आशय और चेतना को इस प्रकार देखता है:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' यदि वह चलता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट चलता है। यदि वह खड़ा होता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट खड़ा होता है। यदि वह बैठता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट बैठता है। यदि वह लेटता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट लेटता है।

इसलिए, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार बार-बार विचार करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से कामवासना, द्वेष और मोह से दूषित है।' मन के विकारों से ही प्राणी दूषित होते हैं। मन के शुद्धिकरण से प्राणी पवित्र हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, क्या आपने 'चलते हुए' नामक चित्र देखा है?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"यहाँ तक कि 'चलते हुए' नामक वह चित्र भी मन द्वारा ही विविधतापूर्ण ढंग से बनाया गया है, परन्तु मन तो उस चित्र से भी अधिक विविधतापूर्ण है।"

"अत:, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) से दूषित है।' मन के दोषों से प्राणी दूषित होते हैं; मन के शुद्धिकरण से प्राणी पवित्र हो जाते हैं।"

भिक्षुओं, मुझे जीव जगत में किसी अन्य जीव जाति में इतनी विविधता नहीं दिखती जितनी पशु जगत में। पशु जगत के जीव भी मन के कारण विविध हो गए हैं, 208 परन्तु मन तो पशु जगत के जीवों से भी अधिक विविध है।

अत:, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से काम (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) से दूषित है।' मन के दोषों से जीव दूषित होते हैं; मन के शुद्धिकरण से जीव शुद्ध होते हैं।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, जब कोई अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कुछ भी उत्पन्न करता है, तो वह केवल रूप ही उत्पन्न करता है; केवल वेदना ही उत्पन्न करता है; केवल बोध ही उत्पन्न करता है; केवल संस्कार ही उत्पन्न करता है; केवल चेतना ही उत्पन्न करता है।

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "अत: इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

101. कुल्हाड़ी का हैंडल (या जहाज) (वसीजाता)
सावत्थी में। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खयाल/क्षय) उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पाषाणो (संदर्भ: विपश्यना ध्यान), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता (ध्यान में, पाषाणो)। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में, पाषाणो), क्या उसी के लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्भव है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (संज्ञा संस्कृत) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान संस्कृत संस्कृत विज्ञान) है, ऐसा उसका उद्भव है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पाषाणो), उसी के लिए विकारों का नाश होता है। 210

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु समर्पित नहीं रहता है विकास के लिए, भले ही उसके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो: 'हे, अनासक्ति से मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति से दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका क्या कारण है? यह कहा जाना चाहिए: विकास न होने के कारण। किसका विकास न होने के कारण? ध्यान के चार आधारों का विकास न होने के कारण... चार सही प्रयासों का... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) का... पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का... पाँच शक्तियों का... ज्ञान के सात कारकों का... आर्य अष्टांगिक मार्ग का। 211

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक मुर्गी के आठ, दस या बारह अंडे हैं जिन्हें उसने ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं है। भले ही उसके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो: 'हे, मेरे चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों के खोल को भेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!' फिर भी चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को भेदकर सुरक्षित रूप से बाहर नहीं निकल पाते। इसका कारण क्या है? क्योंकि आठ, दस या बारह अंडों वाली मुर्गी ने उन्हें ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं था।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास में लीन होकर नहीं रहता, भले ही उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हो:

'काश, अनासक्ति द्वारा मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति द्वारा दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विकास न होने के कारण। किसका विकास न होने के कारण? . . . आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास न होने के कारण।"

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास में लीन होकर रहता है, तो भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे कि 'काश मेरा मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाता है। इसका कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विकास के कारण। किस विकास के कारण? ध्यान के चार आधारों (सती) ... चार सही प्रयासों ... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) ... पाँच आध्यात्मिक क्षमताओं ... पाँच शक्तियों ... ज्ञान के सात कारकों ... आर्य अष्टांगिक मार्ग के विकास के कारण।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक मुर्गी के आठ, दस या बारह अंडे थे जिन्हें उसने ढककर, सेया और ठीक से पाला-पोसा था। भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे: 'काश मेरे चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को छेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!' फिर भी चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को छेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकलने में सक्षम होते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उस मुर्गी ने आठ, दस या बारह अंडों को ठीक से ढककर, सेते और उनका पालन-पोषण किया था।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, 212 जब कोई भिक्षु विकास में लीन रहता है, भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे:
'काश मेरा मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त है। इसका क्या कारण है? यह कहा जाना चाहिए: विकास के कारण। किस विकास के कारण? विकास के कारण... आर्य अष्टांगिक मार्ग के विकास के कारण।

"हे भिक्षुओं, जब कोई बढ़ई या बढ़ई का प्रशिक्षु अपनी कुल्हाड़ी के हैंडल को देखता है, तो उसे अपनी उंगलियों और अंगूठे के निशान दिखाई देते हैं, लेकिन वह नहीं जानता: 'आज कुल्हाड़ी का इतना हैंडल घिस गया है, कल इतना, पहले इतना।' लेकिन जब वह घिस जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि वह घिस गया है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु साधना में लीन रहता है, तो भले ही उसे यह ज्ञान न हो कि 'आज मेरे इतने दोष दूर हो गए, कल इतने, पहले इतने,' फिर भी जब वे दूर हो जाते हैं, तो उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वे दूर हो गए हैं।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक समुद्री जहाज है जिसका रस्सियाँ छह महीने तक पानी में रहने के कारण घिस चुकी हैं। 214 शीत ऋतु में उसे सूखी भूमि पर लाया जाता है और हवा और धूप से उसकी रस्सियाँ और भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। वर्षा के बादल से भीगने पर, रस्सियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु साधना में लीन रहता है, तो उसकी बेड़ियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं।"

---

102. अनित्यता की धारणा
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रिय-संबंधी वासनाओं (राग) का नाश करती है, यह अस्तित्व की वासनाओं (भावो) का नाश करती है, यह सभी अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) का नाश करती है, यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।" 215

"जैसे, भिक्षुओं, शरद ऋतु में एक हल चलाने वाला बड़े हल से जुताई करते हुए सभी जड़ों को काट देता है, वैसे ही, जब अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रिय-संबंधी वासनाओं (राग) का नाश करती है... यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

भिक्षुओं, जिस प्रकार एक सरकंडा काटने वाला सरकंडा काटता है, उसे ऊपर से पकड़ता है, हिलाता है, पटकता है और इधर-उधर पटकता है, उसी प्रकार जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रियजन्य (काम/यौन) (राग) को नष्ट कर देती है... यह 'मैं हूं' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार आमों के गुच्छे की डंडी कट जाने पर उससे जुड़े सभी आम उसके साथ गिर जाते हैं, उसी प्रकार जब अनिच्चा (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित हो जाती है... यह 'मैं हूं' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, नुकीली छत वाले घर की सभी कड़ियाँ छत के शिखर की ओर जाती हैं, शिखर की ओर ढलान बनाती हैं और अंत में शिखर पर आकर मिलती हैं, और शिखर को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित होती है... तो यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।" 216

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सुगंधित जड़ों में, काली ओरिस को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित होती है... तो यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सुगंधित कण्डराओं में, लाल चंदन को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा (अनित्य)) की अनुभूति (सन्न संज्ञा ...

भिक्षुओं, जिस प्रकार सुगंधित फूलों में चमेली को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र घुमाने वाले राजा के अधीन होते हैं और चक्र घुमाने वाले राजा को उनका प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती और चंद्रमा की चमक को उनका प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अपने प्रकाश और किरणों से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह समस्त इंद्रिय (काम/यौन) वासना (राग) को दूर कर देती है, यह अस्तित्व की वासना (भावो) को दूर कर देती है, यह समस्त अज्ञान को दूर कर देती है और 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

"और हे भिक्षुओं, अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित की जाती है जिससे यह समस्त इंद्रिय (काम/यौन) वासना (राग) को दूर कर देती है, अस्तित्व की वासना (भावो) को दूर कर देती है, समस्त अज्ञान को दूर कर देती है और 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है? 'ऐसा ही रूप है, ऐसी ही उत्पत्ति है, ऐसा ही उसका क्षय है; ऐसी है संवेदना (वेदना)... ऐसी है अनुभूति... ऐसे हैं संस्कार (अनिच्छुक व्यवहार)... ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान), ऐसी है इसकी उत्पत्ति, ऐसा है इसका अंत: इसी प्रकार अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, जिससे सभी इंद्रिय-संबंधी (राग) वासना, अस्तित्व के कारक (भाव) के प्रति सभी वासना, सभी अज्ञान और सभी अहंकार का उन्मूलन होता है।

(i) प्रभाग 3, अंतिम पचास - भाग अनुभाग (अंतावग्गो)
103. भाग (अंता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये चार भाग हैं। 217 वे चार क्या हैं? शरीर-सन्दुत्व (सक्कय) का भाग, शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का भाग, शरीर-सन्दुत्व की समाप्ति (निरोध) का भाग, और शरीर-सन्दुत्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग का भाग।

" "और हे भिक्षुओं, शरीर-सन्दुत्व का भाग क्या है? इसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच समूह (उपदान संस्कृत: आसक्ति)। वे पाँच क्या हैं? आसक्ति से ग्रस्त रूप समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), आसक्ति से ग्रस्त संवेदना समूह (वेदना समूह), आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति समूह (संज्ञा समूह), आसक्ति से ग्रस्त संस्कार समूह (आक्रामक व्यवहार) और आसक्ति से ग्रस्त चेतना समूह (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। इसे शरीर-सन्दुत्व का भाग कहा जाता है।"

भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव का मूल क्या है? यह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और कामवासनाएँ शामिल होती हैं, जो इधर-उधर सुख की खोज करती हैं; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। इसे शरीर-सम्भाव का मूल कहा जाता है।

भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव के अंत का मूल क्या है?

यह उसी तृष्णा का पूर्णतः लुप्त होना और अंत है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे शरीर-सम्भाव के अंत का मूल कहा जाता है।

भिक्षुओं, शरीर-सम्मोहन के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग कौन सा है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। यही शरीर-सम्मोहन के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

भिक्षुओं, ये चार भाग हैं।

---

104. दुख (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण (निरोध) और दुख निवारण का मार्ग सिखाऊंगा।

और हे भिक्षुओं, दुख क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति)। वे पाँच कौन से हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसे दुख कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुख का कारण क्या है? यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत) है जो पुनर्जन्म का कारण बनती है... इसे दुख का कारण कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? यह उसी तृष्णा का धीरे-धीरे लुप्त हो जाना और निवारण है... इसे दुख का निवारण कहते हैं।"

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। इसी को दुखों के निवारण (निरोध) का मार्ग कहा जाता है।

---

105. शरीर-पहचान (सक्कया सं. स-काया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें देह-सम्मोहन, देह-सम्मोहन का उद्गम, देह-सम्मोहन का निरोध और देह-सम्मोहन के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा।"

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले 104 सूत्रों के समान है, उचित प्रतिस्थापनों के साथ।)

---

106. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत परिज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन धर्मों (मार्गों, नियमों) का उपदेश दूंगा जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए, पूर्ण ज्ञान का और उस व्यक्ति का जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। 218 ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए? हे भिक्षुओं, रूप वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। वेदना... संज्ञा (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विन्नान (संज्ञा) वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। इन्हें पूर्णतः समझने योग्य धर्म कहा जाता है।
"और हे भिक्षुओं, पूर्ण ज्ञान क्या है? काम (राग) का नाश (खयाय/क्षय), द्वेष (दोष/द्वेष) का नाश (नष्ट/द्वेष) का नाश (नष्ट/मोह): इसे पूर्ण ज्ञान कहा जाता है। 219

"और हे भिक्षुओं, वह कौन है जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है (परिणेय)?" यह कहा जाना चाहिए: अरहंत, ऐसे नाम और वंश के पूजनीय व्यक्ति। इसे वह व्यक्ति कहा जाता है जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

---

107. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन पाँच आसक्ति के अधीन सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के मार्ग को नहीं समझते, मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

108. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
सावत्थी 220 में लिखा है, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन पाँच आसक्ति के अधीन उत्पत्ति और अपक्षय, सांसारिक भोग (असदो), भय और उससे मुक्ति को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता...

परन्तु भिक्षुओं, जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को यथावत समझते हैं... वे इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

109. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध। हे

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच आसक्ति के अधीन स्कंधों की उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो), खतरे और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।"

---

110. अरहंत
... “जब भिक्षु, आसक्ति के अधीन इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: असवाद) के मामले में उत्पत्ति और अपव्यय, सांसारिक भोग (असदो), खतरे और उससे बचने के तरीके को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेते हैं, और अनासक्ति के द्वारा भिक्षु मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, 221 तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है, जिसके दोष नष्ट हो गए हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गया है।”

---

111. इच्छा का परित्याग (1) (चंडप्पहन1 सं. चंड-प्राहन)
सावत्थी में कहा गया है, "भिक्षुओं, रूप के प्रति जो भी इच्छा हो, जो भी वासना हो, आनंद हो, तृष्णा हो - उसका त्याग कर दो। ऐसा करने से वह रूप जड़ से उखड़ जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, मिट जाएगा और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा। यही बात वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना पर भी लागू होती है।"

---

112. इच्छा का परित्याग (2) (चंडप्पहन2 सं. चंड-प्राहन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप के प्रति जो भी इच्छा हो, जो भी कामवासना, आनंद, लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), जो भी आसक्ति और मोह (उपादान संस्कृत: आसक्ति), मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठाएँ और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय) हों, उन्हें त्याग दें। इस प्रकार वह रूप जड़ से उखड़ जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट हो जाएगा, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। यही बात वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना पर भी लागू होती है।"

(ii) प्रभाग 3, अंतिम पचास - धम्म खंड पर वक्ता (धम्मकथिकावग्ग सं. धर्म-कथिक-वर्ग)
113. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
श्रावस्ती में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन रहता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, उसके उद्‌गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता।

वह वेदना, बोध, संशय, चेतना, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। यही अज्ञान कहलाता है, और इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन रहता है।"

---

114. सच्चा ज्ञान (विज्या संस्कृत विद्या)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुंचा जा सकता है?"

"हे भिक्षु, ज्ञानी शिष्य रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। वह वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इसी प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुंचा जा सकता है।"

---

115. धम्म पर एक वक्ता (1) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म पर बोलने वाला होता है?" 222

"भिक्षु, यदि कोई रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) उत्पन्न करने, उसके विलीन होने और निरोध के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई रूप के प्रति घृणा, उसके विलीन होने और निरोध के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई रूप के प्रति घृणा, उसके विलीन होने और निरोध के द्वारा अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"भिक्षु, यदि कोई वेदना, संवेदना, संशय, आक्रामक व्यवहार और चेतना के प्रति घृणा उत्पन्न करने के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो चेतना के लुप्त होने और उसके समाप्त होने की प्रक्रिया में, धम्म पर प्रवचन देने वाला भिक्षु कहलाता है। चेतना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और उसके समाप्त होने के उद्देश्य से साधना करने वाला भिक्षु धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहलाता है। यदि चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और उसके समाप्त होने के माध्यम से अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाता है।

---

116. धम्म पर एक वक्ता (2) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म पर बोलने वाला होता है? किस प्रकार कोई धर्म के अनुसार अभ्यास करता है? किस प्रकार कोई इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करता है?"

(इस सूत्र का शेष भाग पूर्ववर्ती 115 के समान है।)

---

117. बंधन
सावत्थी में। "यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। इसे, भिक्षुओं, रूप के बंधन में जकड़ा हुआ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है, जो आंतरिक और बाह्य बंधन में जकड़ा हुआ है, जो निकट और दूर के तट को नहीं देखता, जो बंधन में वृद्ध होता है, जो बंधन में मरता है, जो बंधन में ही इस लोक से परलोक जाता है।

वह संवेदना (वेदना) को आत्मा मानता है... बोध (संज्ञा) को आत्मा मानता है... संशय (आक्रामक व्यवहार) को आत्मा मानता है... चेतना (विज्ञान) को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। इसे, भिक्षुओं, चेतना के बंधन में जकड़ा हुआ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है... जो बंधन में ही इस लोक से परलोक जाता है।"

लेकिन, भिक्षुओं, ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य... रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। भिक्षुओं, यही वह ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जो रूप के बंधन से मुक्त है, जो आंतरिक और बाह्य बंधनों से मुक्त है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) निकट और दूर दोनों तटों को देखता है। मैं कहता हूँ, वह दुखों से मुक्त है।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता... न ही आत्मा को चेतना में। भिक्षुओं, यही वह ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जो चेतना के बंधन से मुक्त है... मैं कहता हूँ, वह दुखों से मुक्त है।

---

118. पूछताछ (l) (परिपुच्छिता1)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आप रूप को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षुओं! रूप को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"क्या आप संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षुओं! चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"इस प्रकार देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

119. पूछताछ (2) (परिपुच्छिता2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आप रूप को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"अच्छे भिक्षुओं! रूप को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"क्या आप संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संखार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"अच्छे भिक्षुओं! चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

120. बंधनकारी चीजें (संयोजनीय)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जो बंधन हैं और बंधन क्या है? सुनो

, भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधन हैं, और बंधन क्या है? रूप, भिक्षुओं, एक धर्म है जो बंधन है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) बंधन हैं। वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, एक धर्म है जो बंधन है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) बंधन हैं। इन्हें बंधनकारी धर्म कहा जाता है, और इसे बंधन।"

---

121. जिन चीजों से चिपका जा सकता है (उपदानीय)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जिनका पालन किया जा सकता है और वह आसक्ति (उपदान, संस्कृत: आसक्ति)। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिनका पालन किया जा सकता है, और वह आसक्ति क्या है? भिक्षुओं, रूप एक धर्म है जिसका पालन किया जा सकता है; इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, एक धर्म है जिसका पालन किया जा सकता है; इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। इन्हें ही वे धर्म कहते हैं जिनका पालन किया जा सकता है, और यही आसक्ति है।

---

122. सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंत)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में स्थित बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए, पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे, अभिवादन किया और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, वे कौन से धर्म हैं जिनका एक गुणी भिक्षु को ध्यानपूर्वक (योनिसो) पालन करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, एक गुणी भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) पर ध्यानपूर्वक (योनिसो) सचेत (मानसी) रहना चाहिए, क्योंकि वे अनित्य, दुखदायी, रोग, ट्यूमर, तीर, दुःख, पीड़ा, पराये, विघटनशील, शून्य और अनात्म हैं। 225 वे पाँच कौन से हैं? आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संवेदना स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त क्रिया स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंध। एक गुणी भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँचों स्कंधों पर ध्यानपूर्वक, अनित्य और अनात्म के रूप में सचेत रहना चाहिए।" हे मित्र, जब कोई गुणी भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो वह सोतापन्न के फल को प्राप्त कर सकता है। "

परन्तु, हे मित्र सारिपुत्त, सोतापन्न भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यानमग्न होना चाहिए?"

"हे मित्र कोत्थिता, सोतापन्न भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर अनित्य और अनात्म के रूप में ध्यानमग्न होना चाहिए। हे मित्र, जब कोई सोतापन्न भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो वह एक बार पुनर्जन्म के फल को प्राप्त कर सकता है।"

"लेकिन, मित्र सारिपुत्त, एक पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, एक पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर अनित्य ... अनात्म के रूप में ध्यान केंद्रित करना चाहिए। मित्र, जब एक पुनर्जन्म लेने वाला भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यान केंद्रित करता है, तो संभव है कि वह पुनर्जन्म न लेने के फल (अनगामी) को प्राप्त कर ले।" "

लेकिन, मित्र सारिपुत्त, एक पुनर्जन्म न लेने वाले भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, जो भिक्षु पुनर्जन्म रहित है, उसे आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों (उपदान सं. आसक्ति) पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए, क्योंकि ये क्षणिक हैं... अनात्म हैं। मित्र, जब कोई भिक्षु जो पुनर्जन्म रहित है (अनगामी), आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है, तो वह अरहंतत्व का फल प्राप्त कर सकता है।"

"परन्तु, मित्र सारिपुत्त, एक अरहंत भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए (मानसिकरो)?"

"मित्र कोत्थिता, एक अर्हंत भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए, जो अनित्य, दुखदायी, रोग, ट्यूमर, तीर, दुःख, पीड़ा, पराये, विघटनशील, शून्य और अनात्म हैं। मित्र, अर्हंत के लिए आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है

और जो उसने पहले ही कर लिया है, उसे दोहराने की भी आवश्यकता नहीं है। 226 परन्तु जब इन धम्मों का विकास और अभ्यास हो जाता है, तो वे इसी जीवन में सुखद निवास और सती ध्यान तथा संपजन्न की ओर ले जाते हैं।"

---

123. निर्देश दिया (सुतावंता)
(यह सूत्र पिछले 122 सूत्रों के समान ही है, सिवाय इसके कि प्रारंभिक
प्रश्न और उत्तर "एक दीक्षित भिक्षु" के शब्दों में व्यक्त किए गए हैं।)

---

124. कप्पा (1)
सावत्थी में। तब पूज्य कप्पा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस चेतना से युक्त शरीर (विन्नान संस्कृत विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

(शेष भाग 71 के समान है, परन्तु कप्पा को संबोधित है।)

---

125. कप्पा (2)
सावत्थी में, पूज्य कप्पा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस्कृत विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

(शेष भाग 72 के समान है, परन्तु कप्पा को संबोधित है।)

(iii) भाग 3, अंतिम पचास - अज्ञानता अनुभाग (अविज्जा संस्कृत अविद्या)
126. उत्पन्न होने के अधीन (1) (समुदायधम्म1 सं. समुदय-धर्म)
श्रावस्ती में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'अज्ञान, अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और कौन सा व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति उत्पत्ति के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप उत्पत्ति के अधीन है।' वह पतन के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप पतन के अधीन है।' वह उत्पत्ति और पतन के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप उत्पत्ति और पतन के अधीन है।' वह वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, क्रिया और चेतना को उसके उत्पत्ति और पतन के अधीन उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'चेतना उत्पत्ति और पतन के अधीन है।'"

"हे भिक्षु, इसे अज्ञान कहते हैं, और इस प्रकार मनुष्य अज्ञान में डूब जाता है।"

यह सुनकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"हे भिक्षु, ज्ञानी शिष्य उत्पत्ति के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप उत्पत्ति के अधीन है।' वह पतन के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप पतन के अधीन है।' वह उत्पत्ति और पतन के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप उत्पत्ति और पतन के अधीन है।' वह वेदना... बोध... संस्कार... चेतना को उत्पत्ति के अधीन... पतन के अधीन... उत्पत्ति और पतन के अधीन इस प्रकार समझता है: 'चेतना उत्पत्ति और पतन के अधीन है।'"

"हे भिक्षु, इसे ही सच्चा ज्ञान कहते हैं, और इसी मार्ग से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है।"

---

127. उत्पन्न होने के अधीन (2) (समुदायधम्म2 सं. समुदय-धर्म)

एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए, पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और कौन सी बात अज्ञान में लीन होने का कारण बनती है?"

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले सूत्र में अज्ञान पर हुए संवाद के समान है।)

---

128. उत्पन्न होने के अधीन (3) (समुदायधम्म3 सं. समुदय-धर्म)
बरनासी में, इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में, एक तरफ बैठे हुए, पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुंचा जा सकता है?"

(इस सूत्र का शेष भाग सूत्र 126 में सच्चे ज्ञान पर हुए संवाद के समान है।)

---

129. सांसारिक भोग (1) (अस्सादा 1 सं. अस्वाद)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में, एक तरफ बैठे हुए, पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार कोई व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में उससे बचने के तरीके को नहीं समझ पाता है। मित्र, यही अज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है।"

---

130. सांसारिक-आनंद (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"यहाँ, मित्र, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में उससे बचने के तरीके को समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

---

131. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' तो मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरा और रूप, संवेदना (वेदना), बोध (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में बचाव क्या है। मित्र, यही अज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है।"

---

132. उत्पत्ति (2) (समुदय2)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?" "

यहाँ, मित्र, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

---

133. कोत्थिता (1)
(यह 129 और 130 के संयुक्त रूप से समान है, सिवाय इसके कि यहाँ सारिपुत्त
प्रश्न पूछता है और महदकोत्थिता उत्तर देता है।)

---

134 कोत्थिता (2)
(131 और 132 के संयुक्त रूप से समान, सिवाय इसके कि यहाँ सारिपुत्त प्रश्न पूछता है और महदकोत्थिता उत्तर देता है।) [176]

---

135 कोत्थिता (3)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "मित्र कोत्थिता, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार कोई अज्ञान में डूबा रहता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। मित्र, इसे ही अज्ञान कहते हैं, और इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान में डूबा रहता है।"

यह कहने के बाद, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "मित्र कोत्थिता, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।'" अब, मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है? "

यहाँ, मित्र, ज्ञानी शिष्य रूप को समझता है। उसका उद्गम, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग। वह वेदना... बोध... संस्कार... चेतना, उसका उद्गम, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

(iv) डिवीजन 3, फाइनल फिफ्टी - हॉट एम्बर्स सेक्शन (कुक्कुलावग्गा सं. कोयला-वर्ग)
136. गर्म अंगारे (कुक्कुला बिना कोयला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप जलते अंगारों के समान है, वेदना जलते अंगारों के समान है, अनुभूति (संज्ञा) जलते अंगारों के समान है, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) जलते अंगारों के समान है, चेतना (विज्ञान) जलते अंगारों के समान है। इस प्रकार देखकर, भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है... चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

137. अनित्य (अनिच्च 1 सं. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आपको जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। और क्षणभंगुर क्या है? रूप क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

---

138. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सं. अनित्य)
"भिक्षुओं, तुम जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना (राग) का त्याग करो।"

(पिछली सूत्र के समान ही पूर्ण, "इच्छा" के स्थान पर "कामवासना" शब्द का प्रयोग करें।)

---

139. अनित्य (3) (अनिच्च 3 सं. अनित्य)
... "भिक्षुओं, तुम अनित्य चीज़ों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो।" ...

(137 के अनुसार "इच्छा" के स्थान पर "इच्छा (चंद) और कामवासना (राग)" का प्रयोग करके पूरा करें)

---

140. पीड़ा (1) (दुक्खा1)
"भिक्षुओं, आपको दुखदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।" और दुख क्या है? रूप दुखदायी है; आपको इसकी इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना दुखदायी है; आपको इसकी इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको दुखदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।

---

141. पीड़ा (2) (दुक्खा2)
... "भिक्षुओं, आप कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करें।"...
(शेष 140 के समान। कामवासना के स्थान पर इच्छा का प्रयोग करें)

---

142. पीड़ा (3) (दुक्खा3)
... "भिक्षुओं, आप कष्टदायी हर चीज के लिए कामवासना और चंद्रागो का त्याग करें।"...
(शेष भाग 140 के समान है। कामवासना के स्थान पर कामवासना और चंद्रागो का प्रयोग करें)

---

143. अनात्म (1) (अनत्ता1 सं. अनात्म)
"भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।" और अनात्म क्या है? रूप अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

---

144. अनात्म (2) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
... "भिक्षुओं, आप सभी को अनात्म के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।"
(शेष वाक्य 143 के समान है। कामवासना के स्थान पर इच्छा का प्रयोग करें।)

---

145. अनात्म (3) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
... "भिक्षुओं, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करके उस हर चीज के प्रति सजग रहना चाहिए जो अनात्म है।"...
(143 के समान, इच्छा के स्थान पर इच्छा और कामवासना का प्रयोग करें)

---

146. घृणा में लीन (निब्बिदबाहुला)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जो व्यक्ति आस्था से दीक्षा लेकर दीक्षा ग्रहण कर चुका है, उसके लिए धर्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप, वेदना, चेतना, संशय और विज्ञान के प्रति घृणा में लीन रहना चाहिए। 228 जो व्यक्ति रूप और चेतना के प्रति घृणा में लीन रहता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है। जो व्यक्ति रूप और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

---

147. अनित्यता पर ध्यान (अनिकानुपासि सं. अनित्य-अनुपश्ययी)
सावत्थी 229 में लिखा है, "भिक्षुओं (संतों), जो कुल के अनुयायी आस्था से दीक्षा लेकर निकले हैं, उनके लिए धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार यही उचित है: उन्हें रूप में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर रहना चाहिए (जैसा कि ऊपर 146 में है)... वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।"

---

148. दुख पर ध्यान (दुक्खानुपासि सं. दुख-अनुपश्ययी)
(जैसा कि 146 में है)... "उसे रूप में पीड़ा पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए... वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

---

149. अनात्मा पर ध्यान (अनत्तनुपासि सं. अनात्म-अनुपश्ययी)
(जैसा कि 146 में है)... "उसे स्वरूप में अनात्म पर ध्यानपूर्वक लीन रहना चाहिए... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

(v) प्रभाग 3, अंतिम पचास - दृश्य अनुभाग (दिथिवाग्गो सं. दृष्टि-वर्ग)
150. आंतरिक रूप से (अज्जट्टा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं?" 230

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। जब संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

" "भिक्षुओं, आपके विचार में रूप स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।"

"अस्थायी क्या दुख है या सुख?"

"दुख, आदरणीय महोदय।"

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति के बिना क्या सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"
"नहीं।" आदरणीय महोदय,

"क्या वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... स्थायी है या अस्थायी?... लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?" "

नहीं, आदरणीय महोदय।"

"ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

151 यह मेरा है (एतम्मामा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो क्या हम उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखकर, उसका पालन करके, उसे इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब रूप होता है, तो रूप से आसक्ति रखकर, उसका पालन करके, हम चीजों को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' जब वेदना... बोध... संशय... चेतना... विज्ञान... चेतना होती है, तो चेतना से आसक्ति रखकर, उसका पालन करके, हम चीजों को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।'

"भिक्षुओं, आपके विचार से रूप क्या है..." चेतना स्थायी है या अस्थायी?

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या कोई किसी चीज़ को इस प्रकार देख सकता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

152. आत्मा (सोअत्ता संस्कृत सो-आत्म)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसका पालन करने से, ऐसा विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके देह त्यागने के बाद, मैं वही रहूँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके देह त्यागने के बाद, मैं वही रहूँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान (विन्नान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: जो आत्मा है वही संसार है ... परिवर्तन के अधीन नहीं है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर ... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

153. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, उसका पालन करने से, ऐसा विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न भी हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न भी हो'?" 233

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न भी हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न भी हो'।" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से जुड़े रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न होऊं... और यह मेरे लिए न हो।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

154. गलत दृष्टिकोण
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस बात का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है?" 234

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति (रूप का पालन करने) के कारण, रूप का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति (चेतना का पालन करने) के कारण, चेतना का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है।

"भिक्षुओं, आपके विचार में रूप क्या है..." चेतना स्थायी है या अस्थायी?

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या गलत धारणा उत्पन्न हो सकती है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

155. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कयदिथि सं. स-काया-दृष्टि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किसका आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, किसका पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण (सक्कया-दिष्ठी) उत्पन्न होता है?" 235
"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्त होने से, रूप का पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा)... संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्त होने से, चेतना का पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।" ...

"इस प्रकार देखकर... वह समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

156. स्वयं का दृष्टिकोण (अत्तनुदित्थि सं. आत्म-अनु-दृष्टि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किसका आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) करने से, किसका पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है?" 236
"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ..."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति करने से, रूप का पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति करने से, चेतना का पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है।" ...

"इस प्रकार देखकर ... वह समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

157. पालन (1) (अभिनिवेश1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं?" 237

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से जुड़े रहने के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति के कारण, चेतना से जुड़े रहने के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं।" ...

"इस प्रकार देखकर ... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

158. पालन (2) (अभिनिवेश2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस चीज से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस चीज का पालन करने के कारण बंधन, आसक्ति, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
(ऊपर दिए गए अनुच्छेद 157 के अनुसार पूर्ण)

---

159. आनंद
सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।" 238

"आनंद, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील को इस प्रकार मानना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या अस्थायी?... क्या अनुभूति (संज्ञा) स्थायी है या अस्थायी?... क्या संस्कार (आक्रामक व्यवहार) स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अतः, आनंद, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, किसी भी रूप में हो...

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

अध्याय 2: राधा (राधासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-23}
(i) प्रथम मारा उप-अध्याय
160. मारा(शैतान) (सं. मृत्युदेव)
सावत्थी में। तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: "पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'मारा (शैतान), मारा।' पूज्यवर, मारा किस रूप में हो सकता है?" 240

"हे राधा, जब रूप होता है, तो उसमें मार, या हत्यारा, या मारा जाने वाला हो सकता है। 241 इसलिए, हे राधा, रूप को मार के रूप में देखो, उसे हत्यारा समझो, उसे मारे जाने वाला समझो। उसे एक रोग, एक ट्यूमर, एक तीर, एक दुःख, एक वास्तविक दुःख समझो। जो इसे इस प्रकार देखते हैं, वे सही ढंग से देखते हैं।

"जब वेदना (संवेदना) होती है... जब संज्ञा (संज्ञा) होती है... जब संस्कार (आक्रामक व्यवहार-स्थिति) होते हैं... जब विज्ञान (विन्नान (विज्ञान) होती है, हे राधा, तो उसमें मार, या हत्यारा, या मारा जाने वाला हो सकता है। इसलिए, हे राधा, चेतना को मार के रूप में देखो, उसे हत्यारा समझो, उसे मारे जाने वाला समझो। उसे एक रोग, एक ट्यूमर, एक तीर, एक दुःख, एक वास्तविक दुःख समझो। जो इसे इस प्रकार देखते हैं, वे सही देखते हैं।

"हे पूज्यवर, सही देखने का उद्देश्य क्या है?"

"हे राधा, सही देखने का उद्देश्य निब्दिदा है।" "

और हे पूज्यवर, निब्दिदा का उद्देश्य क्या है?"

"निब्दिदा का उद्देश्य वैराग्य है।"

"और हे पूज्यवर, वैराग्य का उद्देश्य क्या है?"

"वैराग्य का उद्देश्य मुक्ति है।"

"और हे पूज्यवर, मुक्ति का उद्देश्य क्या है?" "

मुक्ति का उद्देश्य निर्वाण है।" 242

"और हे पूज्यवर, निर्वाण का उद्देश्य क्या है?"

"हे राधा, तुम प्रश्न पूछने की सीमा से परे चली गई हो। 243

तुम प्रश्न पूछने की सीमा को समझ नहीं पाईं। क्योंकि, हे राधा, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन निर्वाण को आधार मानकर, निर्वाण को ही गंतव्य मानकर, निर्वाण को ही अंतिम लक्ष्य मानकर जिया जाता है।" 244

---

161. एक प्राणी (सत्ता)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने
भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'एक प्राणी, एक प्राणी।'
पूज्यवर, किस प्रकार से किसी को प्राणी कहा जाता है?"

"राधा, मनुष्य इच्छा, वासना, आनंद और रूप की लालसा में बुरी तरह फंसा हुआ है; इसलिए उसे प्राणी कहा जाता है। 244 मनुष्य इच्छा, वासना, आनंद और वेदना की लालसा में बुरी तरह फंसा हुआ है... अनुभूति की लालसा में... संशय की लालसा में... चेतना की लालसा में... इसलिए उसे प्राणी कहा जाता है।

मान लीजिए, राधा, कुछ छोटे लड़के या लड़कियां रेत के महल बना रहे हैं। जब तक उनमें उन रेत के किलों के प्रति कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तब तक वे उन्हें संजोते हैं, उनके साथ खेलते हैं, उन्हें अनमोल मानते हैं और उन पर अपना अधिकार जताते हैं। लेकिन जब उन छोटे लड़कों या लड़कियों में उन रेत के किलों के प्रति कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा खत्म हो जाती है, तो वे उन्हें अपने हाथों और पैरों से बिखेर देते हैं, तोड़ देते हैं, चकनाचूर कर देते हैं और उन्हें खेल से बाहर कर देते हैं।

"हे राधा, इसी प्रकार रूप को बिखेर दो, उसे नष्ट कर दो, उसे चूर-चूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो; तृष्णा के नाश (तन्हा संस. तृष्णा) का अभ्यास करो। वेदना को बिखेर दो... संज्ञा को बिखेर दो... संशय को बिखेर दो... चेतना को बिखेर दो, उसे नष्ट कर दो, उसे चूर-चूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो; तृष्णा के नाश का अभ्यास करो। हे राधा, तृष्णा का नाश ही निर्वाण है।"

---

162. अस्तित्व की नाली (भवनेति सं. भाव-नेत्री)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'अस्तित्व का माध्यम, अस्तित्व का माध्यम।' 246 हे पूज्यवर, अस्तित्व का माध्यम क्या है, और अस्तित्व के माध्यम का निरोध क्या है?"

"राधा, इच्छा, राग, आनंद, तृष्णा, आसक्ति और लगाव, मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और रूप संबंधी अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ: 247 इसे ही अस्तित्व का माध्यम कहा जाता है। इनके समाप्त होने से ही अस्तित्व के माध्यम का अंत हो जाता है।

"

(ये अगले सात सूत्र (106-112) के समान हैं, लेकिन राधा को संबोधित हैं।)

---

163. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत: परिज्ञान)
(106 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

164. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
(107 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

165. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
(108 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

166. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
(109 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

167. अरहंत
(110 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

168. इच्छा का परित्याग (1)
(111 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

169. इच्छा का परित्याग (2)
(112 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

(ii) द्वितीय मारा उप-अध्याय
170. मारा (शैतान) (मृत्युदेव या कामदेव)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'मारा (शैतान), मारा।' तो हे परमेश्वर, मारा क्या है?"

"राधा, रूप ही मारा है। वेदना ही मारा है, चेतना ही मारा है, संवेदना ही मारा है, संशय ही मारा है,
... चेतना ही मारा है। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

171. मारा के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म/कामदेव-धर्म)
श्रावस्ती में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'मरा (शैतान) के अधीन, मरा के अधीन।' 248 हे पूज्यवर, मरा के अधीन क्या है?"

"हे राधा, रूप मरा के अधीन है। वेदना मरा के अधीन है, चेतना मरा के अधीन है, संवेदना मरा के अधीन है, संस्कार मरा के अधीन है, चेतना मरा के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

172. अनित्य (अनिच्चा सं. अनित्य)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहते हैं, 'अस्थायी, अनिस्थायी।' तो हे प्रभु, अनिस्थायी क्या है?"

"राधा, रूप अनिस्थायी है। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, सब अनिस्थायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: '...इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'"

---

173. अनित्य प्रकृति का (अनिचधम्म सं. अनित्य-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहा जाता है, 'अस्थायी स्वभाव का, अनिस्थायी स्वभाव का।' तो हे प्रभु, अनिस्थायी स्वभाव का क्या है?"

"राधा, रूप अनिस्थायी स्वभाव का है। संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) अनिस्थायी स्वभाव की है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

174. पीड़ा (दुक्खा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहते हैं, 'दुख, दुख।' तो हे परमेश्वर, दुख क्या है?"

"राधा, रूप दुख है, वेदना दुख है, अनुभूति दुख है, संस्कार दुख है, चेतना दुख है। ऐसा देखकर... वे समझ गए: '...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

---

175. पीड़ादायक प्रकृति का (दुक्खधम्म सं. दुक्खधर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्य, कहते हैं, 'कष्टदायी प्रकृति का, कष्टदायी प्रकृति का।' हे पूज्य, कष्टदायी प्रकृति का क्या है?"

"राधा, रूप कष्टदायी प्रकृति का है। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना कष्टदायी प्रकृति की है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

176. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'अनात्म, अनात्म।' तो हे परमेश्वर, अनात्म क्या है?"

"राधा, रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

177. निःस्वार्थ प्रकृति का (अनत्तधम्म सं.. अनात्म-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्य, कहते हैं, 'निस्वार्थ स्वभाव, निस्वार्थ स्वभाव।' तो हे पूज्य, निस्वार्थ स्वभाव क्या है?"

"राधा, रूप निस्वार्थ है। संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) निस्वार्थ है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

178. विनाश के अधीन (खायधम्म सं. क्षय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्य, कहा जाता है, 'क्षय के अधीन, विनाश के अधीन।' तो हे पूज्य, विनाश के अधीन क्या है?"

"हे राधा, रूप विनाश के अधीन है। वेदना... बोध... संशय... चेतना... चेतना विनाश के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

179. पतन के अधीन (वयधम्म बिना वय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'पतन के अधीन, पतन के अधीन।' तो हे पूज्यवर, अब क्या पतन के अधीन है?"

"राधा, रूप पतन के अधीन है। वेदना... संज्ञा... संवेदन... क्रिया... विज्ञान... चेतना पतन के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

180. उत्पन्न होने के अधीन (समुदायधम्म सं. समुदय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'उत्पत्ति के अधीन, उत्पत्ति के अधीन।' तो हे परमेश्वर, अब उत्पत्ति के अधीन क्या है?"

"राधा, रूप उत्पत्ति के अधीन है। वेदना... संज्ञा... संवेदन... क्रिया... विज्ञान... चेतना उत्पत्ति के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

181. समाप्ति के अधीन (निरोधधम्म सं. निरोध-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहा जाता है, 'निरोध के अधीन, निरोध के अधीन' तो हे प्रभु, अब क्या निरोध के अधीन है?"

"राधा, रूप निरोध के अधीन है। वेदना निरोध के अधीन है... अनुभूति निरोध के अधीन है... संस्कार निरोध के अधीन है... चेतना निरोध के अधीन है... चेतना निरोध के अधीन है।" ऐसा देखकर... वे समझ गए: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

(iii) अनुरोध अनुभाग (अयाकनावग्गा सं. याकाना-वर्ग)
182. मारा (मराडी-सुत्त-एकादशकम)
श्रावस्ती में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "परमेश्वर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मार (शैतान) है, वह मार है। और राधा, मार क्या है? रूप मार है। संवेदना (वेदना) मार है... बोध (संज्ञा) मार है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) मार है... चेतना (विज्ञान) मार है। इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

183. मारा आदि के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म)
... "राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) दोनों का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मार (शैतान) के अधीन है... जो कुछ भी अनित्य है... जो कुछ भी अनित्य स्वभाव का है... जो कुछ भी दुखदायी है... जो कुछ भी अनात्म है... जो कुछ भी निस्वार्थ स्वभाव का है... जो कुछ भी क्षय/विनाश के अधीन है... जो कुछ भी पतन के अधीन है... जो कुछ भी उत्पन्न होने के अधीन है... जो कुछ भी निरोध के अधीन है। और हे राधा, कौन-सा कुछ निरोध के अधीन है? रूप निरोध के अधीन है। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना निरोध के अधीन है। ऐसा देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

184 से 193 तक।
(172 से 181 के समान)

(iv) पास में बैठना (उपनिसिननावग्गो)
194. मारा (शैतान)
श्रावस्ती में, भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठी हुई पूज्य राधा से कहा, "राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मारा (शैतान) है, वह यही है। और राधा, मारा क्या है?"... (अनुच्छेद 170 के अनुसार पूर्ण।)

---

195 से 205 तक मारा (शैतान) के अधीन, इत्यादि।
(सूत्र 171 से 181 के समान, लेकिन पूर्ववर्ती सूत्र की तरह प्रारंभ होता है)

अध्याय 3: विचारों पर संबंधित प्रवचन (दिथिसंयुत्त सं. दृष्टि-संयुक्त) {संयुत्त-24}
(i) स्ट्रीम-एंट्री सेक्शन (सोतापट्टी सं. स्ट्रोटापट्टी)
(निब्बान/निर्वाण की धारा में प्रवेश न करने वालों के बारे में गलत धारणाएँ और निर्वाण प्राप्त करने के बाद उनका परित्याग)
206. वायु (वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान है, तो किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़े रहते हैं'?" 249

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...

"जब कोई रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से जुड़े रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ चलती नहीं हैं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?
(इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के लिए) ... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति (उपादान (संस्कृत: आसक्ति) के बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और मन द्वारा विचरण किया जाता है: 250 क्या वह स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।"

"अस्थायी क्या है? दुख या सुख?"

"दुख, पूज्यवर।"

"परन्तु जो अस्थायी दुख है, उससे आसक्ति रखे बिना, और जो परिवर्तनशील है, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है, 251 और जब वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण (निरोध) और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और जिसका गंतव्य ज्ञान होता है।"

---

207. यह मेरा है (एतम-मामा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब रूप है, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान संस्कृत संस्कृत) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है, तो उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

208. स्वयं (सोअट्टा संस्कृत सो-अत्म)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके द्वारा नष्ट हो जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं'?" 252

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: जो आत्मा है वही संसार है; उसके द्वारा निकल जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है ... परिवर्तन के अधीन नहीं है।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह स्थितियों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है) ... तब उसे सोतापन्न (प्रवाह में प्रवेश करने वाला) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

209. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो किससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न होगा'?" 253

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न होगा।'" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान संस्कृत संस्कृत) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'मैं शायद न होऊं ... यह मेरे लिए नहीं होगा।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है ... तो उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

210. ऐसा नहीं है (नत्थिदिन्ना)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब किसी चीज़ से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किसी चीज़ का पालन करने से, इस प्रकार का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 254 'कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी भेंट नहीं की जाती, कुछ भी दान में नहीं दिया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार, न दूसरा संसार; न माता, न पिता; न ही स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न ही संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव किया है, और उन्हें दूसरों को ज्ञात कराते हैं। यह व्यक्ति चार महान तत्वों (धातु) से बना है। जब कोई मरता है, तो पृथ्वी पृथ्वी-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; जल जल-शरीर में लौटकर विलीन हो जाता है; अग्नि अग्नि-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; वायु वायु-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; इंद्रियां अंतरिक्ष में स्थानांतरित हो जाती हैं। [चार] पुरुष, पाँचवें के रूप में अर्थी के साथ, शव को ले जाते हैं। अंत्येष्टि भाषण जारी रहते हैं। श्मशान भूमि तक; हड्डियाँ सफेद हो जाती हैं; दाह संस्कार राख में समाप्त होता है। दान देना बचकाना (नासमझ) सिद्धांत है। जब कोई यह सिद्धांत कहता है कि [दान देना और इस प्रकार की बातें] होती हैं, तो यह खोखली, झूठी बकवास है। बचकाना (नासमझ) और बुद्धिमान, शरीर के टूटने के साथ ही एक समान नष्ट हो जाते हैं; मृत्यु के बाद उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता।"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं।..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध होता है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) होता है... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'कुछ भी दिया हुआ नहीं है... मृत्यु के बाद उनका अस्तित्व नहीं रहता।'...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

211. अभिनय (करोटो)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई अस्तित्व किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, किससे चिपके रहने से ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है; 255 'जब कोई कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई अंग-भंग करता है या दूसरों से करवाता है, जब कोई यातना देता है या दूसरों से यातना दिलवाता है, जब कोई दुख देता है या दूसरों से दुख दिलवाता है, जब कोई अत्याचार करता है या दूसरों से अत्याचार करवाता है, जब कोई डराता है या दूसरों से डराता है, जब कोई जीवन नष्ट करता है, बिना दिया हुआ लेता है, घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, चोरी करता है, राजमार्गों पर घात लगाता है, दूसरे की पत्नी को बहकाता है, झूठ बोलता है - तो करने वाले द्वारा कोई बुराई नहीं की जाती। यदि कोई तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई गंगा के दक्षिणी किनारे पर हत्या करते हुए जाए और वध करना, अंग-भंग करना और दूसरों से अंग-भंग करवाना, यातना देना और दूसरों से यातना दिलवाना, इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम। यदि कोई गंगा के उत्तरी तट पर दान देता और दूसरों से दान करवाता, भेंट चढ़ाता और दूसरों से भेंट चढ़ाता, तो इससे न तो कोई पुण्य प्राप्त होगा और न ही पुण्य का कोई परिणाम। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्मसंयम से, सत्य बोलने से, न तो कोई पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का कोई परिणाम।

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध होता है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) होता है... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'जब कोई व्यक्ति कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... तो न तो पुण्य होता है और न ही पुण्य का कोई परिणाम होता है/...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

212. कारण (हेतु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस बात का पालन करने से, इस प्रकार का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 256 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के शुद्ध होते हैं। [स्वयं द्वारा कोई कर्म नहीं है, दूसरों द्वारा कोई कर्म नहीं है, कोई पुरुष कर्म नहीं है।] कोई शक्ति नहीं है, कोई ऊर्जा नहीं है (वीर्य), कोई पुरुष शक्ति नहीं है, कोई पुरुष सहनशक्ति नहीं है। सभी प्राणी, सभी जीव, सभी आत्माएं, बिना किसी प्रभुत्व, शक्ति और ऊर्जा के हैं; भाग्य, परिस्थिति और प्रकृति द्वारा ढाले गए, वे छह श्रेणियों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं'?" 257

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण नहीं है... वे छह वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

213. महान दृश्य (महादिट्ठी सं. महा-दृष्टि)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान है, तो उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 258 'ये सात शरीर हैं जो अजन्मे हैं, उत्पन्न नहीं हुए हैं, सृजित नहीं हैं, निर्जन हैं, पर्वत शिखरों के समान स्थिर हैं, स्तंभों के समान स्थिर हैं। वे न तो गतिमान हैं, न परिवर्तित होते हैं, न ही एक दूसरे को अवरुद्ध करते हैं। इनमें से कोई भी दूसरों को सुख या दुख या सुख-दुख का कारण नहीं बन सकता। ये सात क्या हैं? वे हैं: पृथ्वी शरीर, जल शरीर, अग्नि शरीर, वायु

शरीर, सुख, दुख और आत्मा, जो सातवां है। ये सात शरीर अजन्मे हैं... [यहाँ न कोई हत्यारा है, न कोई वधकर्ता, न कोई श्रोता है, न कोई वक्ता है, न कोई ज्ञाता है, न कोई अंतरंग व्यक्ति है।] 259 यहाँ तक कि जो व्यक्ति किसी दूसरे का सिर तेज तलवार से काटता है, वह किसी को जीवन से वंचित नहीं करता; तलवार केवल सात शरीरों के बीच के स्थान से होकर गुजरती है। चौदह लाख प्रमुख गुण हैं। उत्पत्ति, 260, छह हजार, छह सौ; कर्म के पाँच सौ प्रकार हैं, पाँच प्रकार के कर्म हैं, तीन प्रकार के कर्म हैं, पूर्ण कर्म हैं, और आधा कर्म हैं; बासठ मार्ग हैं, बासठ उप-युग हैं, छह वर्ग हैं, मनुष्य के जीवन की आठ अवस्थाएँ हैं, उनतालीस सौ प्रकार के आजीवक हैं, उनतालीस सौ प्रकार के तपस्वी हैं, उनतालीस सौ नागों के निवास स्थान हैं, बीस सौ इंद्रियाँ हैं, तीस सौ नरक हैं, छत्तीस धूल के लोक हैं, सात प्रत्यक्षदर्शी लोक हैं, सात अप्रत्यक्षदर्शी लोक हैं, सात प्रकार के देवदूत हैं, सात प्रकार के मनुष्य हैं, सात प्रकार के राक्षस हैं, सात महान झीलें हैं, सात प्रकार की गांठें हैं, सात सौ अन्य प्रकार की गांठें हैं, सात चट्टानें हैं, सात सौ अन्य चट्टानें हैं, सात प्रकार के स्वप्न हैं, सात सौ अन्य प्रकार के स्वप्न, चौरासी लाख महान युग (कप्प/कल्प) जिनमें नासमझ और बुद्धिमान दोनों भटकते रहते हैं, जिसके बाद वे समान रूप से दुखों का अंत करते हैं। ऐसा कुछ नहीं है: "इस पुण्य (शील) या व्रत या तप या ब्रह्मचर्य जीवन से मैं अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व करूँगा या परिपक्व कर्मों को बार-बार अनुभव करके नष्ट करूँगा" - ऐसा नहीं है! सुख और दुख का निर्धारण होता है; संसार की सीमाएँ निश्चित हैं; न तो यह छोटा होता है और न ही बड़ा, न आगे बढ़ता है और न ही पीछे हटता है। जैसे, जब धागे का गोला फेंका जाता है, तो वह खुल कर भाग जाता है, उसी प्रकार नासमझ और बुद्धिमान दोनों ही धागे को खोलकर सुख और दुख से भाग जाते हैं। 262

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा संस्कृत)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आधार)... चेतना (विज्ञान संस्कृत) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'ये सात शरीर हैं जो अविकसित हैं... बचकाने (नासमझ) और बुद्धिमान, इन्हें खोलकर, सुख और दुख से भागो...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

214. संसार शाश्वत है (सस्सतादिथि सं. शाश्वत-दृष्टि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत है'?" 263

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ...
"जब रूप है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) है, तो चेतना के प्रति आसक्ति के कारण, चेतना के प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत है'। ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है) ... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

215. संसार शाश्वत नहीं है
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय है।"

---

216. दुनिया सीमित है (अंतःवा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसके प्रति आसक्ति से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार सीमित है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।" [215]

---

217. विश्व अनंत है (अननातव)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार अनंत है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "
भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना है।"

---

218. आत्मा और शरीर एक ही हैं (तम-जीवम्-तम-शरीरम्)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि आत्मा और शरीर एक ही हैं?" "

आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना है।"

---

219. आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं (अन्नम-जीवम-अन्नम-शरीरम बिना। अन्य-जीवम-अन्य-शरीरम)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है: आत्मा एक है, शरीर दूसरी?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय है।"

---

220. तथाद्गत अस्तित्व में है (होती-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसके प्रति आसक्ति से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

221. तथागत का अस्तित्व नहीं है (नहोति-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "
भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

222. तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी (Hoti-ca-naca-hotitathagato)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी?'

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

223. तथागत न तो अस्तित्व में है और न ही अस्तित्व में है (नेवा-होति-ना-नहोति-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते?'

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, तो रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा (गलत) विचार उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते।' जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संशय (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते।'

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप क्या है...? चेतना स्थायी है या अस्थायी? "

अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जो देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और मन द्वारा विचरण किया जाता है: क्या वह स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।"

"अस्थायी क्या दुख है या सुख?"

"दुख, पूज्यवर।"

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है, और जब वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो सोतापन्ना, जो अब अधोलोक से बंधा नहीं है, नियति में स्थिर है, और जिसका गंतव्य ज्ञान है।

(ii) द्वितीय गोइंग धारा 264 (दुतियागमनावग्गो)
224. वायु (वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ..."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहती हैं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... विज्ञान (विन्नाना (संज्ञा) होती है, तो चेतना से आसक्ति (उपादान (आसक्ति)) के कारण, चेतना से जुड़े रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जब दुख होता है, तो दुख से आसक्ति रखने, दुख से जुड़े रहने के कारण ही ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... लेकिन एक स्तंभ की तरह अडिग खड़े रहो।

225-241. यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र (225-241) पिछले सूत्रों (207-223) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त
प्रतिमान (224) पर आधारित हैं।)

---

242. रूप से निर्मित एक स्व-आटा (रूपी-आटा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा रूप से बनी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?" ... 266 (शेष 224 के समान)

---

243. एक निराकार आत्मा
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा निराकार है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?" (शेष 224 के समान)

---

244. एक आत्मा जिसमें रूप और निराकार दोनों शामिल हैं (रूपी-च-अरूपि-च-अत्ता संस। रूप्य-च-अरूप्य-च-एटीएम)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा रूप से भी बनी है और निराकार भी है, और मृत्यु के बाद भी अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

245. आत्मा न तो आकार से युक्त है और न ही निराकार (नेव-रूपी-नारूपी-अत्ता संस। नेव-रूप्य-नारुप्य-आत्म)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा न तो सजीव है और न ही निराकार है, और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

246. विशेष रूप से खुश (एकांतसुखी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा केवल सुखी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

247. विशेष रूप से दुखी (एकांतदुक्खी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा केवल दुखी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

248. सुखी और दुखी दोनों (सुखदुक्खी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा सुखी और दुखी दोनों है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

249. न तो खुश और न ही दुखी (अदुक्खा-मा-सुखी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा न तो सुखी है और न ही दु:खी और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

(iii) तृतीय यात्रा खंड (ततिया-गमन-वग्गो सं. तृतीय-गमन-वर्ग)
250. हवाएँ नहीं (ना-वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहती हैं'।" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (संज्ञा) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति (उपादान (संज्ञा) रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो कुछ भी अस्थायी है वह दुखदायी है। जब वह मौजूद होता है, तो उससे आसक्ति रखने से ही ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 267 'हवाएँ नहीं चलतीं ... लेकिन एक स्तंभ की तरह अडिग खड़े रहो।

251-275 यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र द्वितीय यात्रा (225-249) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त प्रतिमान पर आधारित हैं।)

(iv) चतुर्थ यात्रा खंड (चतुर्थ-गमन-वग्गो संस। चतुर्थ-गमन-वर्ग)
276. हवाएँ नहीं (ना-वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसका पालन करने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़े रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप का पालन करने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) होती है, तो चेतना से चिपके रहने से, चेतना से जुड़े रहने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ चलती नहीं हैं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप... वेदना... बोध... संस्कार... चेतना स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख है, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखमय और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।" "

इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप... किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार का बोध... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

277.-301. यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र द्वितीय यात्रा (225-249) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त प्रतिमान पर आधारित हैं।)

अध्याय 4: प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (ओक्कंतसंयुत्त) {संयुत्त-25}
302. आँख (चक्खु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलती रहती है। कान... नाक... जीभ... शरीर... मन क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलता रहता है। जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और इस प्रकार उन पर दृढ़ संकल्प करता है, वह आस्था-अनुयायी कहलाता है, वह जो सही मार्ग पर चल पड़ा है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर पहुँच गया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है। वह ऐसा कोई कर्म करने में असमर्थ है जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) का फल प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त करने में असमर्थ है। 268

"जिसके लिए इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन के बाद प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ स्वीकार किया जाता है, वह धम्म-अनुयायी कहलाता है, 269 वह जो सही मार्ग पर चल पड़ा है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर पहुँच गया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है।" वह ऐसा कोई कर्म करने में असमर्थ है जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह जलप्रवेश के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

"जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे जलप्रवेश करने वाला (सोतापन्न) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।" 270

---

303. प्रपत्र (रूपा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और उन पर दृढ़ संकल्प करता है, उसे आस्था-अनुयायी कहा जाता है, वह जो धर्म के निश्चित मार्ग पर चल पड़ा है...; वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना परलोक नहीं जा सकता।

जो इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ ग्रहण करता है, उसे धम्म-अनुयायी कहा जाता है, वह जो धर्म के निश्चित मार्ग पर चल पड़ा है... (शेष 302 के समान); वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना परलोक नहीं जा सकता।"

जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब अधोलोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य होता है।

---

304. चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नेत्र-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय ही उसका लक्ष्य होता है।"

---

305. संपर्क (संपहसा संस्कृत: सम-स्पर्श)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, दृष्टि संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, रूप बदलता रहता है। कान का संपर्क... नाक का संपर्क... जीभ का संपर्क... शरीर का संपर्क... मन का संपर्क क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, रूप बदलता रहता है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य है।"

---

306. अनुभूति (वेदना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना क्षणिक, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती है। कान के संपर्क से उत्पन्न वेदना... नाक के संपर्क से उत्पन्न वेदना... जीभ के संपर्क से उत्पन्न वेदना... शरीर के संपर्क से उत्पन्न वेदना... मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना क्षणिक, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

307. धारणा (रूप-सन्ना बिना रूप-संज्ञा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

308. संज्ञानात्मक जागरूकता (रूप-संवेदना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (सांसेतन) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

309. लालसा (रूप-तन्हा बिना रूप-तृष्णा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

310. तत्व (पथविधातु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व... आकाश तत्व... चेतना तत्व (विन्नान, संस्कृत: विज्ञान) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। 271 (शेष 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य है।"

---

311. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
सावत्थी में। भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलता रहता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और चेतना क्षणभंगुर हैं, परिवर्तनशील हैं, बदलती रहती हैं।

जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और उन पर दृढ़ संकल्प करता है, उसे आस्थावान अनुयायी कहा जाता है, वह व्यक्ति जिसने सत्य के निश्चित मार्ग पर प्रवेश किया है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर प्रवेश किया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है। वह ऐसा कोई कर्म नहीं कर सकता जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि के साथ स्वीकार करता है, उसे धर्म का अनुयायी कहा जाता है, वह व्यक्ति जिसने सत्य के निश्चित मार्ग पर प्रवेश किया है। सही मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर में प्रवेश कर जाता है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ जाता है। वह ऐसा कोई कर्म नहीं कर सकता जिसके कारण उसे नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेना पड़े; वह जलप्रवेश के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

"जो व्यक्ति इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे जलप्रवेश करने वाला (सोतापन्न) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय ही उसका लक्ष्य होता है।"

अध्याय 5: उद्भव पर संबंधित प्रवचन (उपपादसंयुत्त सं. उत्पदा-संयुत्त) {संयुत्त-26}
312. आँख (चक्खु)
सावत्थी में भिक्षुओं का कहना है, "आँख का उदय, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उदय, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था-मृत्यु का प्रकटीकरण है। 272 कान, नाक, जीभ, शरीर और मन का उदय, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उदय, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था-मृत्यु का प्रकटीकरण है। आँख

(जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोध, शांत होना और मन का देहांत दुख का देहांत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था-मृत्यु का देहांत है।"

---

313. प्रपत्र (रूपा)
श्रावस्ती में भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) का निरोध, शांत होना और देहांत होना दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

314. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
सावत्थी में भिक्षुओं का कहना है, "मन-चेतना की नेत्र-चेतना (साथ ही कान, नाक, जीभ, शरीर) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। मन-चेतना की

नेत्र-चेतना (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का देहांत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

315. संपर्क (संपहसा सं. संस्पर्श)
सावत्थी में कहा गया है, "भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) (कान, नाक, जीभ, शरीर आदि) का उत्पन्न होना, जारी रहना, उत्पादन और अभिव्यक्ति... मन के संपर्क से दुख उत्पन्न होता है, रोग जारी रहता है, बुढ़ापा और मृत्यु प्रकट होती है।

नेत्र संपर्क (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का समाप्त होना (निरोध), शांत होना और देहांत होना... मन के संपर्क से दुख का समाप्त होना, रोग का शांत होना और बुढ़ापा और मृत्यु का देहांत होता है।"

---

316. संवेदना
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न संवेदना (वेदना) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण (कान, नाक, जीभ, शरीर के संपर्क से भी)... मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। नेत्र

संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) का निरोध, शांत होना और देहांत (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

317. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) की अनुभूति का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(ऊपर वर्णित) की अनुभूति का निरोध, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति का देहांत होना दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

318. जागरूकता (संचेतना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति जागरूकता (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता का उद्भव दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

के प्रति जागरूकता (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोधन, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता का देहांत दुख का निरोधन, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

319. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) के प्रति लालसा (तन्हा संशय: तृष्णा) का उत्पन्न होना, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा का उत्पन्न होना, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(ऊपर वर्णित) के प्रति लालसा (तन्हा संशय: तृष्णा) का निरोध, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत है।"

---

320. तत्व (धातु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) तत्व का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। पृथ्वी

तत्व (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... चेतना तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का अंत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

321. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... संवेदना (वेदना) का... बोध (संज्ञा) का... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का... चेतना (विज्ञान) का... दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है।

रूप का निरोध, शांत होना और देह त्यागना... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... चेतना का दुख का अंत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देह त्याग है।"

अध्याय 6: अशुद्धियों पर संबंधित प्रवचन (किलेसमसम्युत) {सम्युत्त-27}
322. आँख
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का विकार (उपकिलेष) है। 273 कान के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ... नाक के लिए ... जीभ के लिए ... शरीर के लिए ... मन के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु (भिक्षु) इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर झुक जाता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।" 274

---

323. रूप (रूपा)

सावत्थी में लिखा है, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का उप्किलेष है। ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का उप्किलेष है। जब कोई भिक्षु इन छह मामलों में मानसिक उप्किलेष का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर झुक जाता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धम्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सुगम हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।"

---

324. चेतना (विन्नाना सं. विज्ञान)
भिक्षुओं, नेत्र-चेतना (कान, नाक, जीभ, स्पर्श) के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन-चेतना के लिए होती है, जो मन का विकार (उपकिलेसा) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेसा) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

---

325. संपर्क(फस्सा/स्पर्श) (संपहसा सं. संस्पर्श)
भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) (कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए भी)... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के लिए मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।

---

326. अनुभूति(वेदना)
भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (सम्मोहन) की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) (कानों, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए भी)... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (सम्मोहन) मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु (सम्मोहन) इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... [उसका मन] उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।

---

327. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) के बोध की इच्छा (चंद) और वासना (राग) मन की (धम्म) का बोध करना मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है) इस मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन उन धम्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा ही समझा जा सकता है।

---

328. जागरूकता (संचेतना)
"भिक्षुओं (साधुओं), में रूपों के प्रति जागरूकता की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) होती है... (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श के प्रति भी)। [234] ...मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता मन का एक विकार (उपकिलेसा) है। जब कोई भिक्षु (साधु) इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेसा) का त्याग कर देता है... [उसका मन] उन धम्मों (मार्ग, नियम) के संबंध में सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।"

---

329. तृष्णा(तन्हा सं. तृष्णा) (तन्हा सं. तृष्णा)
भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) के प्रति लालसा और अभिलाषा (चांड) और राग, मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है), तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

---

330. तत्व (धातु)
"भिक्खु (भिक्षु), पृथ्वी तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... जल तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... ताप तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... वायु तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... अंतरिक्ष तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... आकाश तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) चेतना (विन्ना सं. विज्ञान) तत्व (धातु) मन का भ्रष्टाचार (उपकिलेसा) है। जब एक भिक्षु (भिक्षु) ने इन छह मामलों में मानसिक भ्रष्टाचार (उपकिलेसा) को त्याग दिया है। (जैसा कि 322 में है)।

---

331. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)

भिक्षुओं, रूप, वेदना, बोध, संवेदन, संशय और चेतना के प्रति लालसा और राग, ये सभी मन के विकार (उपकिलेष) हैं। जब कोई भिक्षु इन पाँचों प्रकार के मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धर्मों (मार्गों और नियमों) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दैवीय ज्ञान (अभिन्य) द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

अध्याय 7: सारिपुत्त से संबंधित प्रवचन (सारिपुत्तसम्युत्त) {सम्युत्त-28}
332. एकांतवास से जन्मा (विवेकजा संस. विवेकज्या)
(प्रथम ध्यान/समाधि) एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र धारण करके सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद वापस लौटे, तो भोजन करने के बाद वे अंधवन (अंधों के वन) में दिनभर विश्राम करने के लिए चले गए। अंधवन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष के चरणों में दिनभर विश्राम करने के लिए बैठ गए।

शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में चले गए। आदरणीय आनंद ने दूर से आदरणीय सारिपुत्त को आते देखा और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा निर्मल और तेजस्वी है। आदरणीय सारिपुत्त ने आज का दिन किस निवास में बिताया है?" 275

"यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और निवास किया, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर भी, मित्र, मेरे मन में यह विचार नहीं आया, 'मैं प्रथम ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ,' या 'मैंने प्रथम ध्यान प्राप्त कर लिया है,' या 'मैं प्रथम ध्यान से बाहर आ गया हूँ।' "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए उनके मन में ऐसे विचार नहीं आए।" 276

---

333. बिना विचार के (अवितक्का सं. अवितार्क)
(द्वितीय ध्यान/समाधि) सावत्थी में.... (जैसा कि ऊपर 332 में है) ... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा और उनसे कहा: "मित्र सारिपुत्त, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। पूज्य सारिपुत्त ने आज का दिन किस निवास में बिताया है?"

"यहाँ, मित्र, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने द्वितीय ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं द्वितीय ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ' या 'मैंने द्वितीय ध्यान प्राप्त कर लिया है' या 'मैं द्वितीय ध्यान से बाहर आ गया हूँ'।" "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए उन्हें ऐसे विचार नहीं आए।"

---

334. आनंद (पीति सं. प्रीति)
(तृतीय ध्यान/समाधि) सावत्थी में... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"यहाँ, मित्र, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते ही, मैं समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) अवस्था में रहा, और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, मैंने शरीर के साथ सुख का अनुभव किया; मैं उस तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें निवास किया जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।' फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं तृतीय ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ....'" (पूर्ववर्ती सूत्र 333 के अनुसार पूर्ण)

---

335. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
(चौथा ध्यान/समाधि) सावत्थी में... (जैसा कि 332 में है)... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, सुख-दुख का त्याग करके और पहले ही सुख-दुख के दूर हो जाने के बाद, मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं चौथे ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

336. अंतरिक्ष की अनंतता का संकाय (आकाश-अनन्त-आयतना संस्कृत: आकाश-अनन्त-आयतना)
(पांचवां ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) के बोधों के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैंने अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

337. चेतना की अनंतता की क्षमता (Vinnan-ananc-ayatana sans. Vigyan-anant-ayatana)
(छठा ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं अनंत चेतना की अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

338. शून्यता की क्षमता (अकिंचन्न-आयतना)
(सातवाँ ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ मैंने चेतना की अनंतता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं शून्यता की क्षमता प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

339. न तो-धारणा-न ही-गैर-धारणा का संकाय
(आठवीं ध्यान अवस्था/समाधि) श्रावस्ती में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"मित्र, यहाँ मैंने शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करके, न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं न-बोध-न-बोध की शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

340. निरोध की प्राप्ति (निरोध-समापत्ति सं. निरोध-सम-प्राप्ति)
(निब्बान/निर्वाण/मोक्ष की ओर अग्रसर नौवां अंतिम ध्यान/समाधि) श्रावस्ती में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ मैंने न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश किया और निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मेरे मन में यह विचार नहीं आया, 'मैं बोध और वेदना की निरोध अवस्था प्राप्त कर रहा हूँ,' या 'मैंने बोध और वेदना की निरोध अवस्था प्राप्त कर ली है,' या 'मैं बोध और वेदना की निरोध अवस्था से बाहर आ गया हूँ।' "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत समय पहले ही पूर्णतः जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए मेरे मन में ऐसे विचार नहीं आए। उसे।"

---

341. सुचिमुखी
एक बार पूज्य सारिपुत्त राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह में निरंतर भिक्षा मांगने के बाद, 277 उन्होंने एक दीवार के सहारे बैठकर भिक्षाभोजन किया। तभी

महिला तपस्वी सुचिमुखी पूज्य सारिपुत्त के पास आईं और उनसे बोलीं, “हे तपस्वी, क्या आप नीचे की ओर मुख करके भोजन करते हैं?” 278

“मैं नीचे की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।” “

तो हे तपस्वी, क्या आप ऊपर की ओर मुख करके भोजन करते हैं?”

“मैं ऊपर की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।”

“तो हे तपस्वी, क्या आप चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?” 279

“मैं चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।”

"तो, हे तपस्वी, क्या आप मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?"

"मैं मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।"

"जब आपसे पूछा जाता है, 'हे तपस्वी, क्या आप नीचे की ओर मुख करके भोजन करते हैं?'
... 'क्या आप मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?' तो आप
उत्तर देते हैं, 'मैं इस प्रकार भोजन नहीं करता, बहन।' तो फिर आप कैसे भोजन करते हैं, हे तपस्वी?"

"बहन, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो भू-ज्योतिष की भ्रष्ट कला 280 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें नीचे की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो ज्योतिष की भ्रष्ट कला 281 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें ऊपर की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो संदेशवाहक बनकर और सामान पहुँचाकर अपना जीवन यापन करते हैं 282 - आजीविका का एक गलत साधन - उन्हें चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो हस्तरेखा शास्त्र की भ्रष्ट कला 283 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है।

बहन, मैं भू-ज्योतिष की भ्रष्ट कला या ज्योतिष की भ्रष्ट कला जैसे भ्रष्ट साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता/करती हूँ।" ज्योतिष विद्या से, या संदेशवाहक बनकर, या हस्तरेखा शास्त्र जैसी नीच कला से। मैं विधिपूर्वक भिक्षा मांगती हूँ और भिक्षा प्राप्त करने के बाद विधिपूर्वक ही भिक्षा ग्रहण करती हूँ।

फिर साध्वी सुचिमुखी राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक जाकर घोषणा करने लगीं: “शाक्य पुत्र के अनुयायी साध्वी विधिपूर्वक भोजन करते हैं; वे निष्कलंक भोजन करते हैं। शाक्य पुत्र के अनुयायी साध्वी साध्वी को भिक्षा दें।”

अध्याय 8: नागों पर संबंधित प्रवचन (नागसम्युत्त) {सम्युत्त-29}
(यह अध्याय नाग नामक अमानवीय प्राणियों के बारे में है, जो मनुष्यों को दिखाई नहीं देते और पश्चिम दिशा में निवास करते हैं, जैसा कि दिघनिकाय के अतनातिया सूत्र में वर्णित है।)
342. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), नागों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं। 284 वे चार क्या हैं? अंडों से उत्पन्न नाग, गर्भ से उत्पन्न नाग, नमी से उत्पन्न नाग, स्वतः उत्पन्न नाग। ये नागों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

343. श्रेष्ठ (पानितातारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नागों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं...

"भिक्षुओं, गर्भ से, जल से और स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं। जल से और स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से और गर्भ से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं। स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से, गर्भ से और जल से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं।

"भिक्षुओं, ये नागों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

344. उपोसथा (1)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, यहाँ कुछ वृहद नाग उपोसथ का पालन क्यों करते हैं और अपने शरीर के प्रति सजग नहीं रहते, इसका कारण क्या है?" 285

"हे भिक्षुओं, कुछ वृहद नाग ऐसा सोचते हैं: 'पूर्वजों हमने शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव रखा। 286 ऐसा करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के क्षोभ के साथ हमारा पुनर्जन्म हुआ। यदि आज हम शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण का अभ्यास करें, तो मृत्यु के बाद शरीर के क्षोभ के साथ हमारा पुनर्जन्म स्वर्गलोक में होगा। आइए, हम शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण का अभ्यास करें।'

"यही कारण है कि यहाँ कुछ अंडाणु-जन्म नाग उपोसथ का पालन करते हैं और अपने शरीर के प्रति चिंता का त्याग करते हैं।" [242]

345-347. उपोसथा (2-4)
(अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए भी यही प्रक्रिया दोहराई जाती है।)

---

348. उसने सुना है (1) (सुत सं. श्रुत)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुविधा में है। उसने सुना है: 'अंडाणु-जनित नाग दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर, काश मैं अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!' फिर, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर, वह अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

" "यही कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर यहाँ कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

349-351. उसने सुना है (2-4) (सुता सं. श्रुता)
(ये तीनों सूत्र अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए भी यही बात दोहराते हैं।)

352-361. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि [245] शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य कर रहा है। उसने सुना है: 'अंडाणु-जनित नाग दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले, मैं अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है। 287 फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह अंडाणुजनित नागों के साथ पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, अंडाणुजनित नागों के साथ पुनर्जन्म लेता है।"

362-391. दान देने के सहयोग से (2-4) (जलाबुजादि-दान-उपकार)
(ये तीनों दशक अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए पिछले दशक को दोहराते हैं।)

अध्याय 9: सुपन्नों पर संबंधित प्रवचन (सुपन्नसम्युत्त) {सम्युत्त-30}
(यह अध्याय सुपन्ना नामक गैर-मानव प्राणियों के बारे में है, जो मनुष्यों को दिखाई नहीं देते।)
392. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं। वे चार कौन से हैं? अंडों से उत्पन्न सुपन्न, गर्भ से उत्पन्न सुपन्न, नमी से उत्पन्न सुपन्न, और स्वतः उत्पन्न सुपन्न। ये सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

393. वे ले जाते हैं (हरंती)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सुपन्नों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं...

"भिक्षुओं, अंडों से उत्पन्न सुपन्न केवल अंडों से उत्पन्न नागों को ही ले जाते हैं, गर्भ से उत्पन्न, जल से उत्पन्न या स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। गर्भ से उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न और गर्भ से उत्पन्न नागों को ले जाते हैं, जल से उत्पन्न या स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। जल से उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न, गर्भ से उत्पन्न और जल से उत्पन्न नागों को ले जाते हैं, स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। स्वतः उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न, गर्भ से उत्पन्न, जल से उत्पन्न और स्वतः उत्पन्न नागों को ले जाते हैं।

"भिक्षुओं, ये सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

394. उभयभावी (1) (द्वयकारी सं. द्वंदव्य-कारी)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले कोई व्यक्ति अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य करता है। उसने सुना है: 'अंडजनित सुपन्न दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं', वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले, मैं अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!' फिर, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले, वह अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

" "यही कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले यहाँ कोई व्यक्ति अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

395-397 अस्पष्ट
(पहले की तरह, यही प्रक्रिया अन्य तीन प्रकार के सुपन्नाओं के लिए भी दोहराई जाती है।)

398-407. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति अंडे से जन्मे सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य कर रहा है। उसने सुना है: 'अंडे से जन्मे सुपन्न दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद, काश मैं अंडे से जन्मे सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है। फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह अंडाणुजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, अंडाणुजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

408-437. दान देने के सहयोग से (जलाबुजादि-दान-उपकार)
(ये तीनों दशक अन्य तीन प्रकार के सुपन्नाओं के लिए पिछले दशक की पुनरावृत्ति करते हैं।)

अध्याय 10: गंधब्बास पर संबंधित प्रवचन (गंधब्बासंयुक्त सं. गंधर्व-संयुक्त) {संयुत्त-31}
(यह अध्याय गंधर्व नामक अमानवीय प्राणियों के बारे में है, जो संस्कृत में गंधर्व कहलाते हैं और मनुष्यों को दिखाई नहीं देते।)

438. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गंधर्व संप्रदाय के देवों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गंधर्व संप्रदाय के देव कौन हैं? हे भिक्षुओं, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले 289 देव हैं, सुगंधित कोमल लकड़ी में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित छाल में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित टहनियों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित पत्तियों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित फूलों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित फलों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित रस में निवास करने वाले देव हैं, और सुगंधित सुगंधों में निवास करने वाले देव हैं।
हे भिक्षुओं, इन्हें गंधर्व संप्रदाय के देव कहा जाता है।"

---

439. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु से पहले कोई गंधर्व संप्रदाय के देवों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "हे

भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। 290 उसने सुना है: 'गंधर्व संप्रदाय के देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के टूटने के बाद मृत्यु से पहले, मैं गंधर्व संप्रदाय के देवों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह गंधर्व संप्रदाय के देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, गंधर्व संप्रदाय के देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

---

440. दाता (1) (मूल-गंध-दाता)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवदूतों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति देह, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। उसने सुना है: सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं। वह सोचता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद, मुझे भी सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवों की संगति में पुनर्जन्म मिले!'" वह सुगंधित जड़ों का दाता बन जाता है। फिर, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

441-449. दाता (सार-गन्धादि-दाता)
(यही प्रतिमान गंधबत्तों के अन्य समूहों - जैसे सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले आदि - के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि 440 में सूचीबद्ध है, जिनमें से प्रत्येक संबंधित प्रकार का दान दाता है।)

450-459. दान देने के सहयोग से (1) (मूल-गंध-दान-उपकार)
श्रावस्ती में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के क्षोभ से मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवदूतों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। उसने सुना है: 'सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।'

वह सोचता है: 'हे शरीर के क्षोभ से मृत्यु के बाद, मुझे भी सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवों की संगति में पुनर्जन्म मिले!' वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है।" फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

460-549. दान देने के सहयोग से(2) (सार-गन्धादि-दान-उपकार)
(सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले अन्य प्रकार के गंधबों आदि के लिए उपरोक्त प्रतिमान को दोहराएं।)

अध्याय 11: मेघ देवों पर संबंधित प्रवचन (वलाहकसयुत्त) {संयुत्त-32}
(देवताओं/बादलों के स्वर्गदूतों के अदृश्य लोक के बारे में)
550. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें बादल में निवास करने वाले देवों के बारे में सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो। ...

"और, भिक्षुओं, बादल में निवास करने वाले देव कौन हैं? 291 भिक्षुओं, शीतल बादल देव, गर्म बादल देव, तूफान बादल देव, वायु बादल देव और वर्षा बादल देव हैं।

"भिक्षुओं, इन्हें बादल में निवास करने वाले देव कहा जाता है।"

---

551. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
(यह अनुच्छेद 439 के समान है, जिसमें बादलों में निवास करने वाले देवों (देवदूतों) की संगति में पुनर्जन्म का वर्णन है।)

552-561. दान देने के समर्थन से (1) (सीता-वलहक-दान-उपकारा)
(440 के समान, शीतल बादल देवों की संगति में पुनर्जन्म के संबंध में।) 292

562-601. दान देने के सहयोग से (2) (उन्हा-वलाहका-दान-उपकार सं. उशना-)
(ये सूत्र पिछले सूत्रों की तरह ही, अन्य
प्रकार के बादल-निवास करने वाले देवताओं के बीच पुनर्जन्म के संबंध में प्रतिमान को दोहराते हैं।)

---

602. शीतल-मेघ देवता (सीता-वल्लाह)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ ठंड क्यों हो जाती है?"

भगवान ने जवाब दिया, "भिक्षु, शीतल बादल देव कहलाते हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है कि 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में लीन हो जाएँ", तो उनकी इच्छा के अनुसार यहाँ ठंड हो जाती है। भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ ठंड हो जाती है।"

---

603. गर्म-बादल देवता (उंहा-वलाहका सं. उशना-)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ गर्मी क्यों हो जाती है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कुछ ऐसे देवदूत हैं जिन्हें गर्म बादल देव कहा जाता है। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएँ,' तो उनकी इच्छा के अनुसार यहाँ गर्मी हो जाती है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ गर्मी हो जाती है।"

---

604. तूफान-बादल देवता (अभभा-वल्हाका)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ तूफ़ान क्यों आता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ तूफ़ान-बादल देव हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएँ,' तब उनकी इच्छा के अनुसार तूफ़ान आ जाता है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ तूफ़ान आ जाता है।"

---

605. पवन-बादल देवता (वात-वल्हाक)

... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी हवा क्यों चलती है?"

"हे भिक्षु, कुछ ऐसे देवदूत होते हैं जिन्हें पवन-बादल देव कहा जाता है। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएं,' तब उनकी इच्छा के अनुसार हवा चलने लगती है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी हवा चलती है।"

---

606. वर्षा-मेघ देवता (वस्सा-वलाहा सं. वर्षा-)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी बारिश क्यों होती है?"

"हे भिक्षु, वर्षा-बादल देव होते हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएं,' तब उनकी इच्छा के अनुसार वर्षा होती है। हे भिक्षु, यही कभी-कभी बारिश होने का कारण है।"

अध्याय 12: वाचागोट्टा (वाचागोट्टासंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-33}
607. रूप (1) न जानने के कारण (रूप-अन्नन संस्कृत रूप-अज्ञ)
सावत्थी में, तपस्वी वच्छगोत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। 294 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“गुरु गौतम, संसार में ये विभिन्न सैद्धांतिक विचार क्यों उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं', या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते', या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते', या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते'?”

"हे वच्छा, रूप, उत्पत्ति, निरोध और निरोध की समाप्ति के मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में अनेक प्रकार के मत उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही न्यस्त होते हैं।' हे वच्छा, यही वह कारण है जिसके कारण संसार में अनेक प्रकार के मत उत्पन्न होते हैं।" 295

---

608. संवेदन को न जानने के कारण (2) (वेदना-अन्न सं. वेदना-अज्ञान)
सावत्थी में...

"हे वच्छा, संवेदना (वेदना), उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग (निरोध) के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... या
'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित।' हे वच्छा, यही वह कारण है जिसके कारण संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं।"

---

609. धारणा न जानने के कारण (3) (सन्ना-अन्ना सं. संज्ञा-अज्ञान)
... "हे वच्छ, यह इसलिए है क्योंकि बोध (सन्ना संस. संग्या), इसकी उत्पत्ति, इसका अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग (निरोध) का ज्ञान न होने के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं...."

---

610. संस्कार न जानने के कारण (4) (संस्कार-अन्ना सं. संस्कार-अज्ञान)
... "हे वच्छा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) की स्थिति, उनके उद्गम, उनके निवारण (निरोध) और उनके निवारण के मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न प्रकार के संशयपूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं...."

---

611. अज्ञान चेतना के कारण(5) (विन्नाना-अन्नाना संस. विज्ञान-अज्ञ)
... "हे वच्छा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं...."

612-616 रूप आदि न देखने के कारण (रूप-अदस्सनादि सं. रूप-दर्शन-आदि)

... "हे वच्छ, रूप न देखने के कारण ही ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संखार (बाध्यकारी व्यवहार-आधार) ... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), इसकी उत्पत्ति, इसका निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं...." 296

617- 621. रूपों आदि को भेद न पाने के कारण (रूप-अनभिसामयदि)
... "हे वच्छा, यह इसलिए है क्योंकि हम ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान)), इसकी उत्पत्ति, इसका निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को पार नहीं कर पाते, इसीलिए संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं..."

622-626. रूपों आदि को न समझने के कारण (रूप-अननुबोधादि)
(पिछले वाक्य के समान, लेकिन "रूप को न समझ पाना," आदि पढ़ें।)

627-631. रूप आदि का भेदन न करने के कारण (रूप-अप्पेटिवधादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "भेदनशील रूप नहीं," आदि पढ़ें।)

632-636. रूप आदि का विवेक न करने के कारण (रूप-असल्लक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "रूप को न पहचान पाना," आदि पढ़ें।)

637-641. रूपों आदि में भेदभाव न करने के कारण (रूप-अनुपालक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "भेदभावपूर्ण रूप नहीं," आदि पढ़ें।)

642-646. रूपों आदि में अंतर न करने के कारण (रूप-अप्पच्चुपालक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "रूप का विभेदन नहीं कर रहा है," आदि पढ़ें।)

647-651. फॉर्म आदि की जांच न करने के कारण (रूप-असमपेक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "परीक्षा प्रपत्र नहीं" आदि पढ़ें।)

652-656. प्रपत्रों आदि की ठीक से जांच न करने के कारण (रूपा-अप्पच्चुपेक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "बारीकी से जांच नहीं करना," आदि पढ़ें।)

657-661. रूपों आदि को प्रत्यक्ष रूप से न जानने के कारण (रूप-अप्पच्चकम्मदि)
... "हे वच्छा, रूप, संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा, संज्ञा, संशय, बाध्यकारी व्यवहार, चेतना, विज्ञान, इसके उद्गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते'। हे वच्छा, यही कारण है कि संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और नहीं भी होते'।" "तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही उनका अस्तित्व समाप्त होता है।"

अध्याय 13: ध्यान में समाधि अवस्थाओं पर संबंधित प्रवचन (झानसाम्युत्त) {साम्युत्त-34}
662. समाधि आधारित प्राप्ति (समाधि-मूलक-समापत्ति सं. समाधि-मूलक-संप्राप्ति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था (विभिन्न दिव्य अवस्थाओं) की प्राप्ति में कुशल नहीं होता है।" 298

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था से संबंधित समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित प्राप्ति दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, इस प्रकार, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था से संबंधित समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित प्राप्ति दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई निकलती है, मलाई से मक्खन निकलता है, मक्खन से घी निकलता है, और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में निपुण तथा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में निपुण ध्यानी इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

---

663. समाधि आधारित रखरखाव (समाधि-मूलक-स्थिति सं. समाधि-मूलक-स्थिति)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल होता है, लेकिन (दीर्घ) समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं होता। 300

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

664. समाधि आधारित उद्भव (समाधि-मूलक-वुत्थन)
नोट: 301

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने (उससे बाहर निकलने पर नियंत्रण) में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

665. समाधि आधारित प्लिन्सी (समाधि-मूलक-कल्लिता)
नोट: 302

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन (एक दिव्य अवस्था से दूसरी दिव्य अवस्था में शीघ्रता से जाने) में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

666. समाधि आधारित वस्तु (समाधि-मूलक-अरम्मना)
(टिप्पणी: 303)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) के विषय (ध्यान का विषय, किस पर) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

667. समाधि आधारित रेंज (समाधि-मुलाका-गोकारा)
(टिप्पणी: 304)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विस्तार (संकीर्ण या व्यापक, शरीर के भीतर से ब्रह्मांड की अनंतता तक) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विस्तार में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विस्तार में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

668. समाधि आधारित संकल्प (समाधि-मूलक-अभिनिहार)
(टिप्पणी: 305)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में कुशल होता है।

यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में कुशल होता है, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

669. समाधि आधारित संपूर्णता (समाधि-मूलका-सक्कक्काकारी)
(टिप्पणी: 306)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता (तीव्रता और पूर्णता) में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे भिक्षुओं

, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था के प्रति और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

670. समाधि आधारित दृढ़ता (समाधि-मूलक-सतक्काकारी)
(टिप्पणी: 307)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर नहीं रहता (नियमित रूप से, बार-बार या समय-समय पर प्राप्त नहीं करता)।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

671. समाधि आधारित उपयुक्तता (समाधि-मूलक-सप्पयकारी)
(टिप्पणी: 308)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था की उपयुक्तता (निरवान/समाधि के संबंध में उपयुक्त या अनुपयुक्त अवस्था) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

672. प्राप्ति आधारित रखरखाव (समापत्ति-मुलाका-तिथि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था के पालन में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के पालन में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है और न ही उसके पालन में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और पालन दोनों में निपुण है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और पालन दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और उसे बनाए रखने में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

673. प्राप्ति आधारित उद्‌भव (समापत्ति-मुलाका-वुत्थन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण होता है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर आने में निपुण नहीं होता।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर आने में निपुण होता है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण नहीं होता।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न तो निपुण होता है और न ही बाहर आने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और बाहर आने दोनों में निपुण होता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और बाहर आने दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उद्‌भव दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

674. प्राप्ति आधारित प्लिन्सी (समापट्टी-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में कुशल है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में कुशल नहीं है।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में लचीलेपन में कुशल है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में

कुशल नहीं है।" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में न तो प्राप्ति में कुशल है और न ही लचीलेपन में।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और लचीलेपन दोनों में कुशल है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और लचीलेपन दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में निपुण प्राप्ति और लचीलेपन में पारंगत ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

675. प्राप्ति आधारित वस्तु (समापट्टी-मुलाका-अराम्मना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में निपुण नहीं है। "

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में न तो प्राप्ति में और न ही विषय में निपुण है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

676. प्राप्ति आधारित रेंज (समापट्टी-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की सीमा में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की सीमा में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा

दोनों में निपुण है। यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

677. प्राप्ति आधारित संकल्प(समापत्ति-मूलक-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था के निवारण में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के निवारण में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन)

अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और निवारण दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और निवारण दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और संकल्प दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

678. प्राप्ति आधारित संपूर्णता (समापट्टी-मुलाका-सक्काकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की पूर्णता में निपुण नहीं है। " "यहाँ

, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की पूर्णता में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन)

अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और पूर्णता दोनों में निपुण है।

" "यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और पूर्णता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और पूर्णतया निपुण ध्यानी इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

679. प्राप्ति आधारित दृढ़ता (समापत्ति-मुलाका-सताकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था में बने रहने में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था में बने रहने में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है और न ही उसमें बने रहने में।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और उसमें बने रहने दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और उसमें बने रहने दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और उसमें दृढ़ता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

680. प्राप्ति आधारित उपयुक्तता (समापत्ति-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की उपयुक्तता में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था

के संबंध में प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उपयुक्तता दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सिद्धि और उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

681. रखरखाव आधारित उद्भव (थिति-मुलाका-वुत्थना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर आने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर आने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उससे बाहर आने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर आने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर आने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

682. रखरखाव आधारित लचीलापन, आदि (थिति-मूलक-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उसे बनाए रखने में कुशल है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसे बनाए रखने दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसे बनाए रखने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

683. रखरखाव आधारित वस्तु, आदि (थिति-मुलका-अराम्मन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के विषय में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के विषय में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है और न ही उसके विषय में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव और विषय दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था के रखरखाव और विषय दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

684. रखरखाव आधारित रेंज, आदि (थिति-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही बाहर निकलने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और बाहर निकलने दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और बाहर निकलने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

685. रखरखाव आधारित संकल्प, आदि (थिति-मुलाका-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उससे बाहर निकलने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर निकलने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर निकलने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

686. रखरखाव आधारित संपूर्णता, आदि (थिति-मुलाका-सक्कक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से पूर्ण होने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को पूर्ण करने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही पूर्ण होने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और पूर्ण होने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और पूर्ण होने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

687. रखरखाव आधारित दृढ़ता, आदि (थिति-मुलाका-सताक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से दृढ़ता से बाहर आने में कुशल नहीं है।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उसमें दृढ़ता से बाहर आने में

कुशल है। "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसमें दृढ़ता से बाहर आने दोनों में कुशल है।

"इसलिए, हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसमें दृढ़ता से बाहर आने दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

688. रखरखाव आधारित उपयुक्तता, आदि (थिति-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था की उपयुक्तता में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की उपयुक्तता में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है और न ही उसकी उपयुक्तता में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव और उपयुक्तता दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था के रखरखाव और उपयुक्तता दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

689. उद्भव आधारित प्लिन्सी आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन लचीलेपन में नहीं... वह लचीलेपन में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और लचीलेपन दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और लचीलेपन दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

690. उद्भव आधारित वस्तु आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में निपुण है लेकिन विषय में नहीं... विषय में निपुण है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में निपुण है और न ही विषय में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और विषय दोनों में निपुण है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और विषय दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

691. उद्भव आधारित रेंज आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो निपुण है लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में और न सीमा में निपुण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और सीमा दोनों में निपुण है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और सीमा दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

692. उद्भव आधारित संकल्प आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में तो कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही संकल्प में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और संकल्प दोनों में कुशल है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और संकल्प दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

693. उद्भव आधारित पूर्णता आदि (वुत्थाना-मूलक-कल्लित)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन पूर्णता में नहीं... पूर्णता में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही पूर्णता में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और पूर्णता दोनों में कुशल है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और पूर्णता दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

694. उद्भव आधारित दृढ़ता आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन स्थिरता में नहीं... स्थिरता में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न स्थिरता में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और स्थिरता दोनों में कुशल है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और स्थिरता दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

695. उद्भव आधारित उपयुक्तता आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उद्भव में तो कुशल होता है, लेकिन उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में तो कुशल होता है, लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल होता है, न उपयुक्तता में... और न ही समाधि अवस्था के संबंध में उद्भव और उपयुक्तता दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में उद्भव और उपयुक्तता दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

696. प्लिअन्सी आधारित वस्तु, आदि (कल्लिता-मुलका-अर्रमना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

भिक्षुओं, यहाँ एक ध्यान करने वाला व्यक्ति लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन विषय में नहीं... विषय में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो विषय में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

भिक्षुओं, इसलिए, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है।"

---

697. प्लैन्सी आधारित रेंज, आदि (कल्लिता-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो सीमा में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सीमा और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सीमा और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

698. सहजता आधारित संकल्प, आदि (कल्लिता-मुलाका-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला व्यक्ति लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो संकल्प में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

699. प्लिन्सी आधारित संपूर्णता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सक्कक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन पूर्णता में नहीं... पूर्णता में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

"इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

700. विनम्रता आधारित दृढ़ता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सताक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... दृढ़ता में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

701. प्लीएन्सी आधारित उपयुक्तता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला व्यक्ति नम्रता में निपुण होता है, परन्तु उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में निपुण होता है, परन्तु नम्रता में नहीं... न उपयुक्तता में निपुण होता है, न नम्रता में... और न नम्रता में निपुण होता है... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध

में उपयुक्तता और नम्रता दोनों में निपुण होता है। इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला व्यक्ति जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और नम्रता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

702. वस्तु आधारित रेंज (अरम्मना-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, लेकिन उसके दायरे में नहीं... दायरे में तो कुशल होता है, लेकिन विषय में नहीं... न तो दायरे में और न ही विषय में कुशल... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दायरे और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दायरे और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है।"

---

703. वस्तु आधारित संकल्प (अरम्मना-मुलाका-अभिनिहारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में तो कुशल होता है, लेकिन विषय में नहीं... न तो संकल्प में कुशल होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

704. वस्तु आधारित संपूर्णता (अरम्मना-मुलाका-सक्कक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो निपुण होता है, पर उसकी पूर्णता में नहीं... या पूर्णता में निपुण होता है, पर विषय में नहीं... या तो पूर्णता में निपुण होता है, न ही विषय में... या समाधि अवस्था के संदर्भ में पूर्णता और विषय दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संदर्भ में पूर्णता और विषय दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

705. वस्तु आधारित दृढ़ता (अरम्मना-मुलाका-सटाक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो निपुण होता है, पर उसमें दृढ़ता नहीं होती... वह दृढ़ता में निपुण होता है, पर विषय में नहीं... वह न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संबंध में दृढ़ता और विषय दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में दृढ़ता और विषय दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

706. वस्तु आधारित उपयुक्तता (अरम्मना-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, पर उसकी उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में तो कुशल होता है, पर विषय में नहीं... न तो उपयुक्तता में कुशल होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संदर्भ में उपयुक्तता और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संदर्भ में उपयुक्तता और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

707. रेंज आधारित संकल्प (गोकारा-मुलाका-अभिनिहारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला संकल्प में तो निपुण होता है, पर उसकी सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, पर संकल्प में नहीं... न तो संकल्प में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और सीमा दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

708. रेंज आधारित थोरनेस (गोकारा-मुलाका-सक्कक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) की पूर्णता में निपुण होता है, परन्तु उसकी सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, परन्तु पूर्णता में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के संबंध में पूर्णता और सीमा दोनों में

निपुण होता है। इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के संबंध में पूर्णता और सीमा दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

709. रेंज आधारित दृढ़ता (गोकारा-मुलाका-सटाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यानी स्थिरता में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन स्थिरता में नहीं... स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण नहीं... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यानी जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

710. रेंज आधारित उपयुक्तता (गोकारा-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उपयुक्तता में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन उपयुक्तता में नहीं... न तो उपयुक्तता में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और सीमा दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

711. संकल्प आधारित संपूर्णता (अभिनिहार-मुलाका-सक्काकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता में निपुण होता है, परन्तु संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, परन्तु पूर्णता में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही संकल्प में... पूर्णता और संकल्प

दोनों में निपुण होता है।" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

712. संकल्प आधारित दृढ़ता (अभिनिहारा-मूलका-सतक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला दृढ़ता में निपुण होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही संकल्प में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और संकल्प दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

713. संकल्प आधारित उपयुक्तता (अभिनिहार-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में निपुण होता है, परन्तु संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, परन्तु उपयुक्तता में नहीं... न उपयुक्तता में निपुण होता है, न संकल्प में... उपयुक्तता और संकल्प

दोनों में निपुण होता है।" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

714. संपूर्णता आधारित दृढ़ता (सक्कक्का-मुलाका-सटाक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला दृढ़ता में कुशल होता है, लेकिन पूर्ण नहीं... पूर्ण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... न तो दृढ़ता में और न ही पूर्ण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और पूर्णता दोनों में निपुण होता है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और पूर्णता दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

715. संपूर्णता आधारित उपयुक्तता (सक्कक्का-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उपयुक्तता में कुशल होता है, लेकिन पूर्ण नहीं... पूर्ण होता है, लेकिन उपयुक्त नहीं... न उपयुक्त होता है, न पूर्ण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्त और पूर्ण दोनों प्रकार का साधक होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्त और पूर्ण दोनों प्रकार का ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

716. दृढ़ता आधारित उपयुक्तता (सतक्का-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला निरंतर होता है लेकिन वह नहीं जो उचित कार्य करता है... एक जो उचित कार्य करता है लेकिन निरंतर नहीं होता... न तो निरंतर और न ही उचित कार्य करने वाला... एक निरंतर कार्यकर्ता और वह जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उचित कार्य करता है।"

"हे भिक्षुओं, जो ध्यान में निरंतर लगा रहता है और समाधि अवस्था के लिए उचित कर्म करता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और उत्कृष्ट है।

जिस प्रकार, हे भिक्षुओं, गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान में निरंतर लगा रहता है और समाधि अवस्था के लिए उचित कर्म करता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और उत्कृष्ट है।"

संयुत्त निकाय का खंडवग्ग (ग्रन्थवग्ग) समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन4-सलायतनवग्गा-वेर2

एसएन4-छह इंद्रियों की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का चौथा खंड है। यह भिक्खु बोधि का दूसरा संस्करण है, जो संशोधित संस्करण है।)
इस खंड में छह इंद्रियों, अर्थात् आँख, नाक, जीभ, कान, स्पर्श और मन का विश्लेषण अनित्य, दुख, बंधन, प्रज्वलन, शून्यता, सर्प और अनात्म के रूप में किया गया है, जो ज्ञान की अवस्था के संदर्भ में है और उनकी समाप्ति की अवस्था को प्राप्त करने के तरीके के बारे में है जो समाधि/सम्मोहन और उनकी उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाती है, अंततः अंतिम मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत में विमुक्ति) तक।
महत्वपूर्ण सूत्र:
1: 'स्व' पर प्रश्न उठाया गया है
28: इंद्रियाँ प्रज्वलित हैं
65: मार (शैतान) कामुकता, मृत्यु और पुनर्जन्म का स्वामी है
68: संसार
81: दुख क्या है
83: अतीत के बुद्धों का वर्णन इंद्रिय-संपत्तियों के संदर्भ में नहीं किया जा सकता
85: संसार शून्य है
88: पुन्ना - अहिंसा और सहिष्णुता पर महत्वपूर्ण सूत्र;
94-96: निर्वाण के लिए इंद्रियों की रक्षा
97-100: समाधि (सम्मोहन)
101: आँख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन और उनके कार्य आपके नहीं हैं
120: जागरूकता
127: ब्रह्मचर्य का पालन कैसे करें
132: लोहिक - जन्म का महत्व व्यर्थ है, इंद्रियों की रक्षा आवश्यक है
136: सुख दुख है
146: कर्म का निवारण
228-229: सागर - प्रत्येक इंद्रिय अपने विषयों के सागर के समान है

230: इंद्रिय शक्तियाँ मछली पकड़ने के काँटों के समान हैं
232, 343: बंधन क्या है, यह वह इच्छा है जो किसी इंद्रिय द्वारा अपने विषय को महसूस करने पर उत्पन्न होती है
235: इंद्रिय शक्तियों का जलना
238: विषैले साँप - शत्रुओं का उदाहरण
239: दैनिक जीवन कैसे जिएं
241: नदी में लकड़ी का लट्ठा का उदाहरण
244: आचरण भिक्षु (संत)
245: अदृश्य किमसुका वृक्ष का विभिन्न लोगों द्वारा अलग-अलग वर्णन
246: मन को कैसे नियंत्रित करें
247: संयम - छह जानवर (इंद्रियां) मजबूत खंभे से बंधे हुए
248: 'मैं हूं' का भ्रम और मन के संयम के बारे में
267: समाधि की सभी अवस्थाओं को परिभाषित किया गया; सच्ची खुशी
269: संवेदनाओं पर महत्वपूर्ण प्रवचन
270: संवेदनाओं के कितने प्रकार हैं
279: पापी और निष्पाप में क्या अंतर है
332-340: सभी नौ ध्यान/समाधि अवस्थाएँ
348: समाधि और संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार आदि) पर महत्वपूर्ण सूत्र
349: मुक्ति के प्रकार
354: रंगमंच कलाकारों का भाग्य - नरक या पशु
355: योद्धाओं का भाग्य नरक
358: पत्थर के डूबने और मक्खन के तैरने का उदाहरण
360: बुद्ध द्वारा जैन शिक्षाओं का विश्लेषण
362: सोना और चांदी स्वीकार्य नहीं हैं
366-409: बिना शर्त - ध्यान और ज्ञानोदय पर गहन अंतर्दृष्टि

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN3) अगला (SN5-भाग 1) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय:4.सलायतनवग्गा-छह इंद्रिय संकाय
1.1अध्याय 1: छह इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (सलायतनसम्यत्त) {सम्यत्त-35}
1.1.1(i) भाग 1, मूल पचास - अनित्य (Aniccavaggo sans. Anitya-varg)
1.1.1.11. आंतरिक अनित्य 1 (अज्जतनिच्चा)
1.1.1.22. आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खा)
1.1.1.33. आंतरिक को अनात्म के रूप में देखना (अज्जतनात्म)
1.1.1.44. बाह्य रूप में अनित्य (बहिरानिका सं. बहिरा-अनित्य)
1.1.1.55. बाह्य पीड़ा (बहिरदुक्खा)
1.1.1.66. बाहरी रूप में गैर-स्वयं (बहिरनत्ता सं. बहिरा-अनात्म)
1.1.1.77. तीनों कालों में आंतरिक तत्व अनित्य है (अज्जहत्तनिकचतितानागत)
1.1.1.88. तीनों कालों में आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खतितनगत)
1.1.1.99. तीनों कालों में अनात्म के रूप में आंतरिक (अज्जततनत्ततितनगत)
1.1.1.1010. तीन काल में बाह्य के रूप में अनित्य
1.1.1.1111. तीन काल में पीड़ा के रूप में बाहरी (बहिरादुक्खतितानागता सं. बहिरा-दुक्खा-अतिता-अनागत)
1.1.1.1212. द एक्सटर्नल ऐज़ नॉनसेल्फ इन द थ्री टाइम्स (बहिरनट्टितनगता सं. बहिरा-अनात्म-अतिता-अनागत)
1.1.2(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - जोड़े अनुभाग (यमकावग्गो)

1.1.2.113. मेरे ज्ञानोदय से पहले (1) (पुब्बेसंबोध1 सं. पूर्व-संबोधि)
1.1.2.214. मेरे ज्ञानोदय से पहले (2) (पुब्बेसम्बोध2 सं. पूर्व-संबोधि)
1.1.2.315. सांसारिक सुख की तलाश (1) (अस्सादप्रियेसन1 संस. असवाद..)
1.1.2.416. सांसारिक सुख की तलाश (2) (अस्सादप्रियेसन2 संस. असवाद..)
1.1.2.517. यदि सांसारिक सुख न हो (1) (Noceassada1 sans. Noce-aswad)
1.1.2.618. यदि कोई (2) (Noceassada2 sans. Noce-aswad) नहीं होता
1.1.2.719. आनंद (1) (अभिनंद1)
1.1.2.820. (8) आनंद (2) (अभिनंद2)
1.1.2.921. दुःख का उत्पन्न होना (1) (दुक्खुप्पदा1 सं. दुक्ख-उत्पाद)
1.1.2.1022. दुःख का उत्पन्न होना (2) (दुक्खुप्पदा2 सं. दुक्ख-उत्पाद)
1.1.3(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द ऑल (सब्बा संस सर्व)
1.1.3.123. सर्व (सब्बा सं. सर्व)
1.1.3.224. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
1.1.3.325. दिव्य-ज्ञान और पूर्ण समझ के माध्यम से परित्याग (अभिज्ञान-परिपूर्णज्ञान-प्राहन)
1.1.3.426. पूर्ण समझ के बिना (1) (अपरिजानन1 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
1.1.3.527. पूर्ण समझ के बिना (2) (अपरिजानन2 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
1.1.3.628 जलना (आदित्ता, आदित्य के बिना)
1.1.3.729. बोझ से दबा हुआ (अद्धभूत)
1.1.3.830. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (समुग्घतसरुप्पा)
1.1.3.931. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (1) (समुग्घतसप्पय1)
1.1.3.1032. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (2) (समुग्घतसप्पय2)
1.1.4(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मवग्गो सं. जाति-धर्म-वर्ग)
1.1.4.133. पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
1.1.4.234.-42 (10) उम्र बढ़ने आदि के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
1.1.5(v) प्रभाग 1, मूल पचास - सभी अनित्य खंड है (सब्बानिकावगो संस। सर्व-अनित्य-वर्ग)
1.1.5.143-52 अनित्य, आदि (अनिचादि सं. अनित्य-आदि)
1.1.6(i) भाग 2, द्वितीय पचास - अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो संस्कृत अविद्या-वर्ग)
1.1.6.153. अज्ञान का त्याग (अविज्जापहन सं. अविद्या-प्रहन)
1.1.6.254. बंधनों का परित्याग
1.1.6.355. बंधनों को उखाड़ फेंकना (संयोजनसमुग्घात)
1.1.6.456-59 अपवित्रता आदि का परित्याग (असवपहन सं. आश्रव-प्राहन)
1.1.6.560. सभी आसक्ति का पूर्ण ज्ञान (सब्बुपादनपरिण)
1.1.6.661. सभी आसक्तियों का अंत (1) (सब्बुपादनपरियादन1)
1.1.6.762 सभी आसक्ति का अंत (2) (सब्बुपादनपरियादन2)
1.1.7(ii) डिवीजन 2, द सेकेंड फिफ्टी - मिगाजालवाग्गो
1.1.7.163 (1) मिगाजाला (1)
1.1.7.264. मिगाजाला (2)
1.1.7.365. समिद्धि (1)
1.1.7.466. समिद्धि (2)
1.1.7.567. समिद्धि (3)
1.1.7.668. समिद्धि (4)
1.1.7.769. उपसेना
1.1.7.870. उपवन
1.1.7.971. संपर्क के लिए छह इंद्रिय संकाय (1) (पथमाचफस्सायतन1 सं. प्रथम-चाहा-स्पर्श-आयतन)
1.1.7.1072. संपर्क के लिए छह इन्द्रिय संकाय (2)
1.1.7.1173. संपर्क के लिए छह संकाय (3)
1.1.8(iii) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - बीमार अनुभाग (गिलानावग्गो)
1.1.8.174. बीमार (1) (गिलाना)

1.1.8.275. बीमार (2) (गिलाना)
1.1.8.376. राधा (1)
1.1.8.477. राधा (2)
1.1.8.578. राधा (3)
1.1.8.679. अज्ञान का त्याग (1) (अविज्जापहन1 सं. अविद्या-प्रहन)
1.1.8.780. अज्ञान का त्याग (2) (अविज्जापहन2 सं. अविद्या-प्रहन)
1.1.8.881. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
1.1.8.982. विश्व (लोकपन्हा बिना लोक-प्रश्न)
1.1.8.1083. फग्गुनपन्हा (सं. फग्गुना-प्रश्न)
1.1.9(iv) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - चन्ना खंड (चन्नावग्गो)
1.1.9.184. विघटन के अधीन (पलोकधम्म)
1.1.9.285. संसार खाली है (शून्यता-लोक के बिना)
1.1.9.386. संक्षेप में धम्म (संखिटत्तधम्म सं. संक्षिप्त-धर्म)
1.1.9.487. चन्ना
1.1.9.588. पुन्ना
1.1.9.689. बहिया
1.1.9.790. उत्तेजित होना (1) (Eja1)
1.1.9.891. उत्तेजित होना (2) (Eja2)
1.1.9.992. दोहे (1)
1.1.9.1093. दोहे (युग्म)(2)
1.1.10(v) भाग 2, द्वितीय पचास - छक्कों का खंड (सलावाग्गो)
1.1.10.194. अनियंत्रित, असुरक्षित 68 (अदंतगुट्टा)
1.1.10.295. मालुंक्यपुत्त (सं. मलुक्य-पुत्र)
1.1.10.396. पतनशील धम्म (परिहनधम्म सं. परिहानी-धम्म)
1.1.10.497. सुस्ती से निवास करना (पामदविहारी सं. प्रमाद-विहारी)
1.1.10.598. संयम (संवर)
1.1.10.699. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)
1.1.10.7100. एकांतवास (पतिसलाना)
1.1.10.8101. तुम्हारा नहीं (1) (नटुमहाका1)
1.1.10.9102. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
1.1.10.10103. उद्दका
1.1.11(i) तीसरा भाग 3. तीसरा पचास - बंधन से मुक्ति (योगक्खेमिवग्गो संस्कृत: योगक्षेमी-वर्ग)
1.1.11.1104. बंधन से मुक्त (योगक्षेमी संस्कृत: योगक्षेमी)
1.1.11.2105. आसक्ति (उपादय) द्वारा
1.1.11.3106. दुख का उद्गम (दुक्खसमुदय)
1.1.11.4107. विश्व की उत्पत्ति (लोकसमुदाय)
1.1.11.5108. मैं सुपीरियर हूं (सेयोहामास्मि)
1.1.11.6109. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीय)
1.1.11.7110. चिपकने वाला कारण (उपदानिया)
1.1.11.8111. आंतरिक भाग को पूरी तरह समझना (1) (अज्जत्तिकायतनपरिजनन)
1.1.11.9112. बाह्य को पूर्णतः समझना (2) (बहिरयातनपरिजनन)
1.1.11.10113. सुनना (उपासुति)
1.1.12(ii) तीसरा भाग - लोकमगुनवग्गो (लोकमगुनवग्गो)
1.1.12.1114. मारा का फंदा (1) (मारपासा1)
1.1.12.2115. मारा का फंदा (2) (मारपासा2)
1.1.12.3116. लोकांतगमना (लोकांतगमना)
1.1.12.4117. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)
1.1.12.5118. सक्का का प्रश्न (सक्कपन्हा सं. शक्र-प्रश्न)

1.1.12.6119. पंचसिखा
1.1.12.7120. सारिपुत्त
1.1.12.8121. राहुला (राहुलोवाडा) को निर्देश
1.1.12.9122. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीयधम्म)
1.1.12.10123. चिपकने वाला कारण (उपदानियधम्म)
1.1.13(iii) तीसरा भाग - गृहस्थ (गृहपति, गृहपति का उपसंहार)
1.1.13.1124. वेसाली में
1.1.13.2125. वज्जियों के बीच
1.1.13.3126. नालंदा में
1.1.13.4127. भारद्वाज
1.1.13.5128. सोना
1.1.13.6129. घोसिता
1.1.13.7130. हलिद्दाकानी
1.1.13.8131. नकुलपिता
1.1.13.9132. लोहिक्का
1.1.13.10133. वेराहाकानी
1.1.14(iv) तीसरा भाग - देवदहा खंड
1.1.14.1134. देवदहा में 137
1.1.14.2135. अवसर (खाना सं. क्षण)
1.1.14.3136. फॉर्म्स1 में प्रसन्नता (रूपरमा)
1.1.14.4137. रूपों में आनंद (2) (रूपराम)
1.1.14.5138. तुम्हारा नहीं (l) 144 (नटुमहाका1)
1.1.14.6139. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
1.1.14.7140. आंतरिक कारण सहित अनित्य (अज्जतनिच्चहेतु)
1.1.14.8141. आंतरिक कारणों से होने वाला कष्ट (अज्जतदुक्खेतु)
1.1.14.9142. अनात्म सहित (आंतरिक) कारण (अज्जततनत्तहेतु)
1.1.14.10143-145. कारण सहित अनित्य, इत्यादि (बाह्य) (बहिरा..)
1.1.15(v) तीसरा भाग - नवपुराणवग्गो (नवपुराणवग्गो)
1.1.15.1146. कम्मा निरोध (कम्मानिरोध बिना कर्म-निरोध)
1.1.15.2147. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (1) (अनिच्चनिब्बनसप्पया)
1.1.15.3148-149. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (2-3)
1.1.15.4150. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (4) (निब्बानसप्पयपतिपाद)
1.1.15.5151. एक विद्यार्थी (अन्तीवासिका)
1.1.15.6152. ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य क्या है? (किमत्तीयब्रह्मचर्य)
1.1.15.7153. क्या कोई विधि है? (अत्तिनुखोपरीयया)
1.1.15.8154. इंद्रियों से सुसज्जित (इंद्रियसंपन्न)
1.1.15.9155. धम्मकथिकपुच्छ पर एक वक्ता (धम्मकथिकपुच्छ)
1.1.16(i) प्रभाग 4. चौथा पचास - आनंद खंड का विनाश (नंदिक्खायवग्गो सं. नंदी\आनंद-क्षय-वर्ग)
1.1.16.1156. आनंद का विनाश (1) (अज्जतानंदिक्खया)
1.1.16.2157. प्रसन्नता का नाश (2)
1.1.16.3158. आनंद का विनाश (3) (अज्जत्तानिकानन्दिक्खया)
1.1.16.4159. प्रसन्नता का नाश (4)
1.1.16.5160. जीवक का आम का बाग (1) (जीवकम्बवनसमाधि1)
1.1.16.6161. जीवक का आम का बाग (2) (जीवकंबवनसमाधि2)
1.1.16.7162. कोत्थिता (1)
1.1.16.8163 (8) कोत्थिता (2)
1.1.16.9164. कोत्थिता (3)
1.1.16.10165. गलत दृष्टिकोण का त्याग (मिच्छदित्थिपहना)

1.1.16.11166. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण का परित्याग
1.1.16.12167. स्वयं के दृष्टिकोण का परित्याग
1.1.17(ii) भाग 4. चौथा पचास - साठ गुना पुनरावृति श्रृंखला 160 (सत्थिपेय्यलावग्गो)
1.1.17.1168. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा (अज्जतनिच्चचंदा)
1.1.17.2169. क्षणभंगुर (आंतरिक) के प्रति वासना (अज्जतनिच्चरगा)
1.1.17.3170. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा(चंद) और वासना(राग)
1.1.17.4171-173 दुख की इच्छा (आंतरिक), आदि (दुक्खचंदादि)
1.1.17.5174-176. अनात्म (आंतरिक) की इच्छा, इत्यादि (अनत्तचंदादि)
1.1.17.6177-179. अनित्य (बाह्य) के प्रति इच्छा, इत्यादि (बहिरनिच्चचंदादि)
1.1.17.7180-182. कष्ट की इच्छा (बाह्य), आदि (बहिरदुक्खाचांदडी)
1.1.17.8183-185 अनात्म (बाह्य) आदि की इच्छा (बहिरनत्तचंदादि)
1.1.17.9186. अतीत अनित्य (आंतरिक) (अज्जतितितितिनिच्चा)
1.1.17.10187. भविष्य अनित्य (आंतरिक) (अज्जत्तनगतनिच्चा)
1.1.17.11188. वर्तमान क्षणिक (आंतरिक) (अज्जतपच्चुप्पननिच्चा)
1.1.17.12189-191. अतीत, आदि, आंतरिक पीड़ा के रूप में (अज्जततीतदिदुक्खा)
1.1.17.13192-194. अतीत, इत्यादि, अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जततितदियनत्ता)
1.1.17.14195-197. अतीत, इत्यादि, अनित्य (बाह्य) के रूप में (बहिरतिताडियानिक्का)
1.1.17.15198-200. अतीत, इत्यादि, पीड़ा (बाहिरतीतदिदुक्खा) के रूप में
1.1.17.16201-203. अतीत, इत्यादि, अनात्म (बाह्य) के रूप में (बहिरतीतदियनत्ता)
1.1.17.17204. अतीत की कौन सी चीज़ अनित्य है (आंतरिक) (अज्जततीतयदानिका)
1.1.17.18205. भविष्य का क्या अस्थाई है (आंतरिक) (अज्जत्तनगतयादानिका)
1.1.17.19206. वर्तमान (आंतरिक) में क्या क्षणभंगुर है (अज्जतपच्चुप्पन्नयदानिक्का)
1.1.17.20207-209. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदीयम्दुक्खा)
1.1.17.21210-212. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदियादनत्ता)
1.1.17.22213-215. अतीत की अनित्यता, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादानिका)
1.1.17.23216-218. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (बाहिरातीतदियमदुक्खा)
1.1.17.24219-221. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादनत्ता)
1.1.17.25222. इंद्रिय शक्तियाँ अनित्य (आंतरिक) हैं (अज्जतयातनानिच्च)
1.1.17.26223. इंद्रिय-संबंधी पीड़ा (अज्जतयातनदुक्खा)
1.1.17.27224. इंद्रिय शक्तियाँ अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जत्तयातनाअनत्ता)
1.1.17.28225. इन्द्रिय संकाय अनित्य (बाह्य) के रूप में
1.1.17.29226. इंद्रिय-शारीरिक पीड़ा (बाहिरयातनदुक्खा) के रूप में
1.1.17.30227. द सेंस फैकल्टीज़ एज़ नॉनसेल्फ (बाह्य)
1.1.18(iii) प्रभाग 4. चौथा पचास - महासागर (समुद्दवग्गो सं. समुद्र-वर्ग)
1.1.18.1228. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
1.1.18.2229. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
1.1.18.3230. मछुआरे की उपमा (बालिसिकोपामा)
1.1.18.4231. दुग्ध-रस वृक्ष (खिररुक्खोपमा सं. क्षीर-वृक्ष-उपमा)
1.1.18.5232. कोत्थिका
1.1.18.6233. कामाभू
1.1.18.7234. उदयी
1.1.18.8235. जलने पर व्याख्या (अदित्तप्रियाया सं. आदित्य-परियया)
1.1.18.9236. हाथों और पैरों की उपमा (1) (हत्थपादोपमा1 संस्कृत: हस्त-पाद-उपमा)
1.1.18.10237. हाथों और पैरों की उपमा (2) (हत्थपादोपमा2 संस्कृत. हस्त-पाद-उपमा)
1.1.19(iv) भाग 4. चौथा पचास - सांप (असिविसावग्गो)
1.1.19.1238. असिविसोपमा (सांपों की उपमा)
1.1.19.2239. रथ की उपमा (रथ-उपमा, संस्कृत: रथ-उपमा)
1.1.19.3240. कछुए की उपमा (कुम्मोपमा)

1.1.19.4241. महान लट्ठे की उपमा (1) (दारुक्खन्धोपमा1)
1.1.19.5242. महान लट्ठे की उपमा (2) (दारुक्खन्धोपमा2)
1.1.19.6243. भ्रष्टों पर व्याख्या (अवस्सुतपरीयया)
1.1.19.7244. दुखदायी अवस्थाएँ (दुक्खधम्म)
1.1.19.8245. किम्सुका वृक्ष उपमा (किम्सुकोपामा)
1.1.19.9246. वीणा की उपमा (विनोपमा संस्कृत: वीणा-उपमा)
1.1.19.10247. छह पशुओं की उपमा (छप्पनकोपमा)
1.1.19.11248. जौ का पूला (यवकलापिसु)
1.2अध्याय 2: संवेदनाओं पर संबंधित प्रवचन (वेदानासंयुत्त) {संयुत्त-36}
1.2.1(i) श्लोकों सहित खंड (सगाथावग्गो)
1.2.1.1249. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)
1.2.1.2250. सुख
1.2.1.3251. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
1.2.1.4252. अथाह खाई (पाताल)
1.2.1.5253. देखा जाना चाहिए (दत्ताब्बा सं. दृष्टव्य)
1.2.1.6254. द डार्ट (सल्ला सं. शल्य)
1.2.1.7255. बीमार वार्ड (1) (गेलन्ना1)
1.2.1.8256. बीमार वार्ड (2) (गेलन्ना2)
1.2.1.9257. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
1.2.1.10258. संपर्क में निहित (फस्सामुलका सं. स्पर्श-मुलक)
1.2.2(ii) अकेला खंड (राहोगतावगो)
1.2.2.1259. अकेला (रहोगता)
1.2.2.2260. आकाश (1) (अकासा1)
1.2.2.3261. आकाश (2) (अकासा2)
1.2.2.4262. गेस्ट हाउस (अगारा)
1.2.2.5263. आनंद (1)
1.2.2.6264. आनंद (2)
1.2.2.7265-266. कई भिक्षु
1.2.2.8267. पंचकंगा
1.2.2.9268. भिक्षु
1.2.3(iii) एक सौ आठ (अत्थासतपरिययवग्गो) का विषय
1.2.3.1269. शिवका
1.2.3.2270. एक सौ आठ (अत्थासता) का विषय
1.2.3.3271. एक निश्चित भिक्खु (अन्नताराभिक्कु)
1.2.3.4272. पहले (पब्बा सं. पूर्व)
1.2.3.5273. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)
1.2.3.6274. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
1.2.3.7275. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.2.3.8276. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.2.3.9277. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.2.3.10278. सरल संस्करण (शुद्धिका)
1.2.3.11279. निष्पाप (निरामी)
1.3अध्याय 3: महिलाओं पर संबंधित प्रवचन (मतुगमसाम्युत्त) {साम्युत्त-37}
1.3.1(i) प्रथम पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुरुद्ध के लिए: (i) अंधकार पक्ष)
1.3.1.1280. महिलाएं (मातुगामा)
1.3.1.2281. पुरुष (पुरिसा)
1.3.1.3282. विचित्र (एवेनिकडुक्खा)
1.3.1.4283. तीन गुण (तिहिधम्मेही)

1.3.1.5284. क्रोधित (कोधना)
1.3.1.6285-292. दुर्भावनापूर्ण, इत्यादि।
1.3.1.7293. पाँच (पैंकावेरा)
1.3.2(ii) द्वितीय पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुराद्ध के लिए: (ii) उज्ज्वल पक्ष)
1.3.2.1294. क्रोध रहित (अक्कोधन)
1.3.2.2295-302. बिना द्वेष, इत्यादि।
1.3.2.3303. पंचशील (पांच नियम)
1.3.3(iii) शक्तियां (बाला) धारा
1.3.3.1304. आत्मविश्वास (विसारादा)
1.3.3.2305. जीत हासिल करना (पसयहा)
1.3.3.3306. उसके नियंत्रण में (अभिभुय्या)
1.3.3.4307. एक (एका)
1.3.3.5308. उस संदर्भ में (अंगा)
1.3.3.6309. वे निष्कासित करते हैं (नासेन्टी)
1.3.3.7310. कारण (हेतु)
1.3.3.8311. परिस्थितियाँ (थाना सं. स्थान)
1.3.3.9312. आत्मविश्वासी (पंचसिलविसारदा)
1.3.3.10313. वृद्धि (वढ्ढि)
1.4अध्याय 4: जम्बूखडका से संबंधित प्रवचन (जम्बूखडकसंयुत्त) {संयुत्त-38}
1.4.1314. निब्बान पर एक प्रश्न (निब्बानपन्हा बिना निर्वाण-प्रश्न)
1.4.2315. अरिहंतशिप प्रश्न (अरहत्तपन्हा सं. अरिहंत-प्रश्न)
1.4.3316. धम्म के समर्थक (धम्मवादिपन्हा सं. धम्मवादि-प्रश्न)
1.4.4317. किस उद्देश्य से? (किमत्थिया संस्कृत किम-अर्थ्या)
1.4.5318. सांत्वना (अस्ससप्पट्टा)
1.4.6319. परम सांत्वना (परमस्ससप्पत्ता)
1.4.7320. संवेदना प्रश्न
1.4.8321. अपवित्रता प्रश्न (असवपन्हा सं. आश्रव-प्रश्न)
1.4.9322. अज्ञान प्रश्न (अविज्जापन्हा सं. अविद्या-प्रश्न)
1.4.10323. लालसा प्रश्न (तन्हापन्हा बिना तृष्णा-प्रश्न)
1.4.11324. बाढ़ संबंधी प्रश्न (ओघापन्हा)
1.4.12325. चिपके हुए प्रश्न (उपादानपन्हा)
1.4.13326. अस्तित्व प्रश्न (भावपन्हा सं. भाव-प्रश्न)
1.4.14327. दुख के प्रश्न (दुक्खपन्हा)
1.4.15328. शारीरिक पहचान संबंधी प्रश्न (सक्कायपन्हा)
1.4.16329. कठिन प्रश्न (दुक्करपन्हा सं. दुष्कर-प्रश्न)
1.5अध्याय 5: समन्दक (समन्दकसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-39}
1.5.1समंदक आदि द्वारा पूछे गए प्रश्न 330-331।
1.6अध्याय 6: मोग्गलाना से संबंधित प्रवचन (मोग्गलानासाम्युत्त) {साम्युत्त-40}
1.6.1332. प्रथम झाना/ट्रांस प्रश्न (पथमाझानपन्हा सं. प्रथम-ध्यान-प्रश्न)
1.6.2333. दूसरा झाना प्रश्न (दुतियाझानपन्हा सं. द्वितीय-ध्यान-प्रश्न)
1.6.3334. तीसरा झाना प्रश्न (तातियाझानपन्हा सं. तृतीया-ध्यान-प्रश्न)
1.6.4335. चौथा झाना प्रश्न
1.6.5336. अंतरिक्ष प्रश्नों की अनंतता का संकाय
1.6.6337. चेतना के अनंतता से संबंधित प्रश्न (Vinnanancayatanapanha sans. Vigyan-anant-ayatana-prashn)
1.6.7338. शून्यता की क्षमता
1.6.8339. न तो-धारणा-न-गैर-धारणा की क्षमता (नेव-सन्न-न-सन्न-अयतन-पन्हा संस। नैव-संज्ञ-न-संग्य-अ◌ायतन-प्रश्न)
1.6.9340. अनिमित्त (अनिमित्त)
1.6.10341. सक्कसुत्तम (सं. शक्र/इंद्र)

1.6.11342. कनाडा
1.7अध्याय 7: चित्त से संबंधित प्रवचन (चित्तसम्युत्त) {सम्युत्त-41}
1.7.1343. बंधन (संयोजन)
1.7.2344. इसिदत्ता (1)
1.7.3345. इसिदत्ता (2)
1.7.4346. महाका का चमत्कार (महाकापतिहार्य सं. महक-प्रतिहार्य)
1.7.5347. कामाभू (1)
1.7.6348. कामाभू (2)
1.7.7349. गोदात्ता
1.7.8350. निगंथा नटपुत्त (उर्फ महावीर)
1.7.9351. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)
1.7.10352. बीमारों को देखना (गिलानदासन संस्कृत: गिलानित-दर्शन)
1.8अध्याय 8: ग्राम प्रधानों से संबंधित प्रवचन (गमानिसामुत्त) {साम्युत्त-42}
1.8.1353. कनाडा
1.8.2354. तलपुटा
1.8.3355. योधाजीव (सं. युद्धजीवी)
1.8.4356. हत्थारोह
1.8.5357. अस्सारोहा (सं. अश्वारोहा)
1.8.6358. असिबंधकपुत्त
1.8.7359. खेत की उपमा (खेत्तुपमा)
1.8.8360. शंखध्वनि (शंखधाम)
1.8.9361. परिवार (कुला)
1.8.10362. मैनिकुलाका
1.8.11363. भद्रक
1.8.12364. रसिया
1.8.13365. पटलिया
1.9अध्याय 9: अप्रतिबंधित पर संबंधित प्रवचन (असंखतसम्युत्त) {सम्युत्त-43}
1.9.1(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
1.9.1.1366. शरीर निर्देशित ध्यान (कायगतसति सं. कायागत-स्मृति)
1.9.1.2367. शांति-समथ और अंतर्दृष्टि-विपश्यना ध्यान (समथ-विपश्यना)
1.9.1.3368. विचार और परीक्षण के साथ
1.9.1.4369. शून्यता समाधि/समाधि (सुन्नतसमाधि सं. शून्यता-समाधि)
1.9.1.5370. ध्यान की स्थापना 369 (सतीपत्थन सं. स्मृति-प्रस्थान)
1.9.1.6371. सही प्रयास (समप्पधना)
1.9.1.7372. आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंग (इद्धिपाद सं. रिद्धिपाद)
1.9.1.8373. आध्यात्मिक शक्तियाँ (इंद्रिय)
1.9.1.9374. शक्तियाँ (बाला)
1.9.1.10375. आत्मज्ञान के कारक (बोझंगा बिना बोधयांग)
1.9.1.11376. अष्टांगिक पथ (मग्गंगा सं. मार्गांग)
1.9.2(ii) दूसरा उप-अध्याय
1.9.2.1377. असन्खता
1.9.2.2378. अनिच्छुक 370 (एनाटॉमी)
1.9.2.3379-408 दोषमुक्त, इत्यादि (अनासवदी)
1.9.2.4409. गंतव्य (परायण)
1.10अध्याय 10: अघोषित पर संबंधित प्रवचन (अभ्यकतसम्युत्त) {सम्युत्त-44}
1.10.1410. खेमा
1.10.2411. अनुराधा
1.10.3412. सारिपुत्त और कोथिता (1)

1.10.4413. सारिपुत्त और कोथिता (2)
1.10.5414. सारिपुत्त और कोथिता (3)
1.10.6415. सारिपुत्त और कोथिता (4)
1.10.7416. मोग्गलाना
1.10.8417. वच्छगोत्ता
1.10.9418. वाद-विवाद हॉल (कुथुहलसाला)
1.10.10419. आनंद (क्या आत्मा का अस्तित्व है?)
1.10.11420. सभ्य कच्चाना
संयुक्त निकाय:4.सलायतनवग्गा-छह इंद्रिय संकाय

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: छह इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (सलायतनसम्यत्त) {सम्यत्त-35}
(i) भाग 1, मूल पचास - अनित्य (Aniccavaggo sans. Anitya-varg)
1. आंतरिक अनित्य 1 (अज्जतनिच्चा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 2 एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है। 3 जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

कान क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है।" जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

नाक क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

जीभ क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

शरीर क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

मन क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा का अनुभव करता है।
घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

(नोट: यहाँ 'स्व' की अवधारणा पर प्रश्न उठाया गया है [जिसे बुद्ध ने एक झूठी रचना माना था]। समाधि/सम्मोहन की अवस्थाओं में 'स्व' प्रत्येक अवस्था में अलग-अलग रूप में प्रकट होता है। समाधि/सम्मोहन की प्रारंभिक अवस्थाओं में 'स्व' मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर एक प्रज्वलित आनंदमय जागरूकता के रूप में प्रकट होता है, बाद में यह मानव शरीर से परे जाकर भौतिक अनंतता में विलीन हो जाता है, फिर यह शून्यता में विलीन हो जाता है और अंत में मुक्त निर्वाण अवस्था [नौवीं समाधि] में यह सब कुछ पार कर जाता है और 'स्व' या 'मैं' की भावना को खोकर पारलौकिक [पदार्थ से परे] संभवतः सार्वभौमिक हो जाता है।)

---

2. आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खा)
भिक्षुओं, आँख दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

कान दुखदायी है... नाक दुखदायी है... जीभ दुखदायी है... शरीर दुखदायी है... मन दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

3. आंतरिक को अनात्म के रूप में देखना (अज्जतनात्म)
भिक्षुओं, आँख अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

कान अनात्म है... नाक अनात्म है... जीभ अनात्म है... शरीर अनात्म है... मन अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

4. बाह्य रूप में अनित्य (बहिरानिका सं. बहिरा-अनित्य)
भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर हैं। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर हैं। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूपों के प्रति घृणा (निब्बिद) होती है, ध्वनियों के प्रति घृणा होती है, गंधों के प्रति घृणा होती है, स्वादों के प्रति घृणा होती है, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति घृणा होती है और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा होती है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है (विमुक्त)। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

5. बाह्य पीड़ा (बहिरदुक्खा)
भिक्षुओं, शरीर दुखदायी हैं। दुखदायी तत्व अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) दुखदायी हैं। दुखदायी तत्व अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

6. बाहरी रूप में गैर-स्वयं (बहिरनत्ता सं. बहिरा-अनात्म)

भिक्षुओं, रूप अनात्म हैं। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

7. तीनों कालों में आंतरिक तत्व अनित्य है (अज्जहत्तनिकचतितानागत)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख नश्वर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों ही, वर्तमान काल तो निःसंतान है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की आँख के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की आँख में आनंद नहीं खोजता; और वह वर्तमान की आँख से घृणा करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने (निरोध) का अभ्यास करता है।

कान नश्वर है... नाक नश्वर है... जीभ नश्वर है... शरीर नश्वर है... मन नश्वर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों ही, वर्तमान काल तो निःसंतान है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के मन के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वह लुप्त हो जाता है और समाप्त हो जाता है।"

---

8. तीनों कालों में आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खतितनगत)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, आँख भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के कष्ट से ग्रस्त है, वर्तमान की तो बात ही क्या। इस प्रकार देखने से... मन अपने लुप्त होने और निरोध के कारण व्यथित होता है।"

---

9. तीनों कालों में अनात्म के रूप में आंतरिक (अज्जततनत्ततितनगत)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, आँख भूतकाल और भविष्यकाल दोनों की अनात्म है, वर्तमान की तो बात ही क्या। इस प्रकार देखने पर... मन अनात्म है... क्योंकि यह लुप्त हो जाता है और समाप्त हो जाता है।"

---

10. तीन काल में बाह्य के रूप में अनित्य
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप क्षणभंगुर हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह है ही। हे भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं। ध्वनि

क्षणभंगुर है... गंध क्षणभंगुर है... स्वाद क्षणभंगुर है... स्पर्शनीय वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के क्षणभंगुर हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह ही है। हे भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं।

---

11. तीन काल में पीड़ा के रूप में बाहरी (बहिरादुक्खतितानागता सं. बहिरा-दुक्खा-अतिता-अनागत)
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप कष्टदायी हैं, वर्तमान काल की तो बात ही क्या। हे भिक्षुओं, इस प्रकार ज्ञान प्राप्त शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं खोजता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं (निरोध)। ध्वनियाँ

कष्टदायी हैं... गंधें कष्टदायी हैं... स्वाद कष्टदायी हैं... स्पर्शनीय वस्तुएँ कष्टदायी हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप कष्टदायी हैं, वर्तमान काल की तो बात ही क्या। हे भिक्षुओं, इस प्रकार ज्ञान प्राप्त शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं (निरोध)।

---

12. द एक्सटर्नल ऐज़ नॉनसेल्फ इन द थ्री टाइम्स (बहिरनट्टितनगता सं. बहिरा-अनात्म-अतिता-अनागत)
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप अनात्म हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह है ही। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं।

ध्वनियाँ अनात्म हैं... गंधें अनात्म हैं... स्वाद अनात्म हैं... स्पर्शनीय वस्तुएँ अनात्म हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के, वर्तमान काल तो निःसंदेह ही है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं।

(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - जोड़े अनुभाग (यमकावग्गो)
13. मेरे ज्ञानोदय से पहले (1) (पुब्बेसंबोध1 सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'आँख के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?

कान, नाक, जीभ, शरीर, मन के मामले में सांसारिक सुख क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'आँख पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही आँख का सांसारिक सुख है। आँख का क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होना: यही आँख का खतरा है। आँख के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही आँख से मुक्ति है।"

"कान, नाक, जीभ, शरीर और मन पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद ही मन का सांसारिक सुख है। मन का क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील होना ही मन का खतरा है। मन की इच्छा और राग का त्याग करना ही मन से मुक्ति है।" हे भिक्षुओं

, जब तक मैं इन छह आंतरिक इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा (पुनर्जन्म का कारण नहीं होगा)।'"

---

14. मेरे ज्ञानोदय से पहले (2) (पुब्बेसम्बोध2 सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, और रूपों के मामले में इससे कैसे बचा जा सकता है?

ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं, और मानसिक घटनाओं (धम्म) के मामले में सांसारिक सुख क्या है, इसमें क्या खतरा है, और इससे कैसे बचा जा सकता है?'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'रूपों पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही रूपों में सांसारिक सुख है। रूप अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं: यही रूपों में खतरा है। रूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही रूपों से मुक्ति है।"

"ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भर रहने से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स) ही मानसिक घटनाओं में सांसारिक सुख है। मानसिक घटनाएं क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं, यही मानसिक घटनाओं में खतरा है। मानसिक घटनाओं के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण ही मानसिक घटनाओं से मुक्ति है।"

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन छह बाह्य इंद्रियों से संबंधित सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

15. सांसारिक सुख की तलाश (1) (अस्सादप्रियेसन1 संस. असवाद..)
भिक्षुओं, मैं आँख में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। आँख में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख में सांसारिक सुख कितनी दूर तक फैला हुआ है।

भिक्षुओं, मैं आँख में खतरे की खोज में निकला। आँख में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख में खतरा कितनी दूर तक फैला हुआ है।
भिक्षुओं, मैं आँख से मुक्ति की खोज में निकला। आँख से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

भिक्षुओं, मैं आँख में सांसारिक सुख... खतरे... कान... नाक... जीभ... शरीर... मन से मुक्ति की खोज में निकला। मन से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने स्पष्ट रूप से देखा है कि मन से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन छह आंतरिक इंद्रियों के संदर्भ में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मैंने इन सबको यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लिया, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा (पुनर्जन्म का कारण नहीं है)।"

---

16. सांसारिक सुख की तलाश (2) (अस्सादप्रियेसन2 संस. असवाद..)
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 15 के समान है।)

---

17. यदि सांसारिक सुख न हो (1) (Noceassada1 sans. Noce-aswad)
भिक्षुओं, यदि आँख में सांसारिक सुख न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु आँख में सांसारिक सुख होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि आँख में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा न करते; परन्तु आँख में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि आँख से बचने का कोई रास्ता न होता, तो प्राणी उससे नहीं बचते; परन्तु आँख से बचने का रास्ता होने के कारण प्राणी उससे बच जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि कान में, नाक में, जीभ में, शरीर में, मन में सांसारिक सुख न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु मन से बचने का रास्ता होने के कारण प्राणी उससे बच जाते हैं।

भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन छह आंतरिक इंद्रियों के संदर्भ में सांसारिक सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में, भय को भय के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, शैतानों और ब्रह्माओं से, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों से, इसके देवों और मनुष्यों से, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते, और न ही वे अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों से मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, और अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं।

---

18. यदि कोई (2) (Noceassada2 sans. Noce-aswad) नहीं होता
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 17 के समान है।)

---

19. आनंद (1) (अभिनंद1)
भिक्षुओं, जो आँखों को प्रसन्न करने की इच्छा रखता है, वह दुखों में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद ढूंढता है, वह दुखों से मुक्त नहीं होता। जो कानों में... नाक में... जीभ में... शरीर में... मन में आनंद ढूंढता है, वह दुखों में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद ढूंढता है, वह दुखों से मुक्त नहीं होता।

जो आँखों में... मन में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुखों में आनंद नहीं ढूंढता। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुखों से मुक्त होता है।

---

20. (8) आनंद (2) (अभिनंद2)
(छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएँ और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 19 के समान।)

---

21. दुःख का उत्पन्न होना (1) (दुक्खुप्पदा1 सं. दुक्ख-उत्पाद)
भिक्षुओं, आँख का उत्पन्न होना, निरंतर रहना, उत्पादन होना और प्रकट होना दुख का उत्पन्न होना, रोग का निरंतर रहना और वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकट होना है। कान, नाक, जीभ, शरीर और मन का उत्पन्न होना दुख का उत्पन्न होना, रोग का निरंतर रहना और वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकट होना है।

आँख और मन का निरोध होना, शांत होना और देहांत होना दुख का निरोध होना, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत होना है।

---

22. दुःख का उत्पन्न होना (2) (दुक्खुप्पदा2 सं. दुक्ख-उत्पाद)
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 21 के समान है।)

(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द ऑल (सब्बा संस सर्व)
23. सर्व (सब्बा सं. सर्व)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सब कुछ सिखाऊँगा। 6 सुनो...

"और हे भिक्षुओं, यह सब क्या है? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुएँ, मन और मानसिक घटनाएँ (धर्म)। इसे ही सब कुछ कहते हैं। हे भिक्षुओं,

यदि कोई इस प्रकार कहे: 'इस सब को त्यागकर, मैं एक और सब कुछ प्रकट करूँगा' - तो यह उसकी ओर से केवल खोखला अभिमान होगा। 7 यदि उससे प्रश्न किया जाए तो वह उत्तर नहीं दे पाएगा और, इसके अलावा, उसे कष्ट होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, यह उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा।" 8

---

24. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें सब कुछ त्यागने का धर्म सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, सब कुछ त्यागने का धर्म क्या है? आँख का त्याग करना है, रूपों का त्याग करना है, नेत्र-चेतना का त्याग करना है, नेत्र-संपर्क (समाधि अवस्था में लौटना) का त्याग करना है, और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना), चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो, उसका भी त्याग करना है।" 9

“कानों का त्याग करना है... मन का त्याग करना है, मानसिक घटनाओं (धम्म) का त्याग करना है, मन-चेतना का त्याग करना है, मन-संपर्क का त्याग करना है, और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली हर संवेदना (वेदना) का त्याग करना है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी त्याग करना है। हे

भिक्षुओं, यही वह धम्म है जिसका अर्थ है सब कुछ त्यागना।”

---

25. दिव्य-ज्ञान और पूर्ण समझ के माध्यम से परित्याग (अभिज्ञान-परिपूर्णज्ञान-प्राहन)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सब कुछ त्यागने का धर्म सिखाऊंगा। 10 इसे सुनो...

और हे भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सब कुछ त्यागने का धर्म क्या है? दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा आँख का त्याग करना है, रूपों का त्याग करना है, नेत्र-चेतना का त्याग करना है, विषय के साथ नेत्र-संपर्क का त्याग करना है, और नेत्र-संपर्क के कारण

उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा त्याग करना है।"

"दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा कान का त्याग करना है...दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा मन का त्याग करना है, मानसिक घटनाओं (धम्म) का त्याग करना है, मन-चेतना का त्याग करना है, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का त्याग करना है, और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा त्याग करना है।

भिक्षुओं, यही वह धम्म है जिसका अर्थ है दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सभी का त्याग करना।"

---

26. पूर्ण समझ के बिना (1) (अपरिजानन1 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब तक आप सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानते और पूर्णतः नहीं समझते, जब तक आप उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। 11

"और हे भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते, जिसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और जिसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं?

"आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते, उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। रूपों को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते... आँख-चेतना... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से; फस्सा/स्पर्श)... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

"कान को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते... मन... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... इसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और इसका त्याग किए बिना, व्यक्ति दुख का नाश करने में असमर्थ है।

"यह, भिक्षुओं, वह सर्वस्व है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... व्यक्ति दुख का नाश करने में असमर्थ है।

"भिक्षुओं, सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है। [18]

"और हे भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है?

"आँख को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर... मन को... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को... इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है।

"यह, भिक्षुओं, वह सर्वस्व है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर... व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है।"

---

27. पूर्ण समझ के बिना (2) (अपरिजानन2 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
भिक्षुओं, जब तक आप सर्वथा को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते और पूर्णतः नहीं समझ लेते, जब तक आप उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं कर लेते और उसका त्याग नहीं कर देते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

और हे भिक्षुओं, यह सर्वथा क्या है...?

आँख, रूप, आँख-चेतना और धम्म (गुण, नियम) जिन्हें आँख-चेतना द्वारा जाना जाता है। कान, ध्वनियाँ, कान-चेतना और धम्म जिन्हें कान-चेतना द्वारा जाना जाता है... मन, मानसिक घटनाएँ (धम्म), मन-चेतना और धम्म जिन्हें मन-चेतना द्वारा जाना जाता है। हे

भिक्षुओं, यही वह सर्वथा है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, जिसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

लेकिन, भिक्षुओं, सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, उसके प्रति वैराग्य विकसित करके और उसका त्याग करके, मनुष्य दुख का नाश कर सकता है।

और, भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है...? (जैसा कि ऊपर बताया गया है)

"यही वह सर्वस्व है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, उसके प्रति वैराग्य विकसित करके और उसका त्याग करके मनुष्य दुख का नाश कर सकता है।"

---

28 जलना (आदित्ता, आदित्य के बिना)
एक बार भगवान (बुद्ध) गया के शीर्ष पर, गया में, एक हजार भिक्षुओं के साथ निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 13

"भिक्षुओं, सब कुछ जल रहा है। और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो जल रहा है? आँख जल रही है, रूप जल रहे हैं, आँख-चेतना जल रही है, आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श) जल रहा है, और आँख के संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी - वह भी जल रही है। किससे जल रही है? काम (राग) की अग्नि से, घृणा (दोष/द्वेष) की अग्नि से, मोह (मोह) की अग्नि से; पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

"कान जल रहा है... [20] ... मन जल रहा है... और मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी जलने वाली है। किस चीज से जल रही है? काम (राग) की आग से, घृणा (दोष/द्वेष) की आग से, मोह (मोह) की आग से; पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूपों, नेत्र-चेतना, नेत्र-संपर्क (फस्सा/स्पर्श), और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो; उसे कान के प्रति घृणा होती है... मन के प्रति घृणा होती है... मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा होती है... घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। जब वह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' उन्होंने समझा: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए। और जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तब उन हजार भिक्षुओं के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

29. बोझ से दबा हुआ (अद्धभूत)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, सब कुछ भारित है। 14 और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो भारित है? आँख भारित है, रूप भारित हैं, दृष्टि-चेतना भारित है, आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) भारित है, और आँख के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी भारित है। किससे भारित है? पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

कान भारित हैं... मन भारित है... किससे भारित हैं? पुनर्जन्म से... निराशा से, मैं कहता हूँ।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

30. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (समुग्घतसरुप्पा)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा...

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है? 15 हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आँख की कल्पना नहीं करता, आँख में कल्पना नहीं करता, आँख से कल्पना नहीं करता, और यह कल्पना नहीं करता कि 'आँख मेरी है।' 16 वह रूपों की कल्पना नहीं करता... आँख-चेतना की... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) की... और आँख-संपर्क (संपर्क) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की - चाहे वह सुखद हो या पीड़ादायक या न पीड़ादायक न सुखद - वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, और यह कल्पना नहीं करता कि 'वह मेरा है।'"

वह कान की कल्पना नहीं करता... वह मन की कल्पना नहीं करता... मानसिक घटनाओं (धम्म) की कल्पना नहीं करता... मन-चेतना की कल्पना नहीं करता... मन-संपर्क की कल्पना नहीं करता... और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की कल्पना नहीं करता... वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, यह नहीं सोचता कि 'वह मेरा है।'

वह सब कुछ की कल्पना नहीं करता, सब कुछ में कल्पना नहीं करता, सब कुछ से कल्पना नहीं करता, यह नहीं सोचता कि 'सब कुछ मेरा है।'

"चूंकि वह किसी भी प्रकार की कल्पना नहीं करता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्ति न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। अविचलित रहकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।' हे

भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।"

31. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (1) (समुग्घतसप्पय1)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। 18 इसे सुनो...

और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आँख की कल्पना नहीं करता, आँख में कल्पना नहीं करता, आँख से कल्पना नहीं करता, 'यह आँख मेरी है' की कल्पना नहीं करता। वह रूपों की कल्पना नहीं करता... आँख-चेतना की... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) की... और आँख-संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के संबंध में - चाहे वह सुखद हो या पीड़ादायक या न पीड़ादायक न सुखद - वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, 'वह मेरा है' की कल्पना नहीं करता।" भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने भीतर कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने से कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई 'मेरा' समझकर कल्पना करता है - वह कुछ और है। संसार, कुछ और बनकर, होने से आसक्त होकर, केवल होने में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है। 19

"वह कान की कल्पना नहीं करता... वह मन की कल्पना नहीं करता... और मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, यह नहीं समझता कि 'वह मेरा है'।" भिक्षुओं, जो कुछ भी मनुष्य अपने मन में सोचता है, जिस किसी में सोचता है, जिस किसी से सोचता है, जिस किसी को भी 'मेरा' समझता है, वह कुछ और है। संसार, जो कुछ भी हो रहा है, होने से आसक्त है, और केवल होने में ही आनंद पाता है।

"भिक्षुओं, जो कुछ भी स्कंध, धातु और इंद्रियों का सार है, मनुष्य उसे न तो अपने मन में सोचता है, न उसमें सोचता है, न उससे सोचता है, न यह सोचता है कि 'वह मेरा है'।"

"चूंकि वह किसी भी चीज को इस प्रकार नहीं सोचता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:

'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

"भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।" 20

---

32. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (2) (समुग्घतसप्पय2)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है?" भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? आँख स्थायी है या अस्थायी? - "स्थायी, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख है, पूज्यवर।" - "क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, पूज्यवर।"

"क्या रूप स्थायी हैं या अस्थायी?... क्या नेत्र-चेतना... क्या नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... क्या नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी - स्थायी है या अस्थायी?...

क्या कान स्थायी हैं या अस्थायी?... क्या मन... क्या मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "अस्थायी क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूपों, नेत्र-चेतना, नेत्र-संपर्क, और नेत्र-संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो। उसे कान के प्रति घृणा होती है... मन के प्रति... मन-संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा होती है... घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

"भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।"

(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मवग्गो सं. जाति-धर्म-वर्ग)
33. पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सब कुछ पुनर्जन्म के अधीन है। और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो पुनर्जन्म के अधीन है? आँख पुनर्जन्म के अधीन है। रूप... नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... जो भी संवेदना (वेदना) नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होती है... वह भी पुनर्जन्म के अधीन है।

कान... जीभ... शरीर... मन... जो भी संवेदना (वेदना) मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होती है... वह भी पुनर्जन्म के अधीन है।

" "इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य आँख के प्रति, रूपों के प्रति, नेत्र-चेतना के प्रति, नेत्र-संपर्क (संपर्क) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

34.-42 (10) उम्र बढ़ने आदि के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
34. "भिक्खुओं (भिक्षुओं), सभी बुढ़ापे (जराधम्म) के अधीन हैं... 35. सभी बीमारी (ब्याधिधम्म) के अधीन हैं... 36. सभी मृत्यु (मरणधम्म) के अधीन हैं... 37. सभी दुःख (सोकधम्म) के अधीन हैं... 38. सभी अपवित्रता (समकिलेसिकाधम्म) के अधीन हैं... .. 39. सभी विनाश (खायधम्म) के अधीन हैं... 40.सभी पतन के अधीन हैं (वयधम्म).... 41.सभी उत्पत्ति के अधीन हैं(समुदयधम्म)....42.सभी समाप्ति के अधीन हैं(निरोधधम्म)...." (प्रत्येक को पिछले 33 के रूप में पूरा किया जाना है।)

(v) प्रभाग 1, मूल पचास - सभी अनित्य खंड है (सब्बानिकावगो संस। सर्व-अनित्य-वर्ग)
43-52 अनित्य, आदि (अनिचादि सं. अनित्य-आदि)

43. सावत्थी में। भिक्षुओं, सब कुछ अनित्य है (अनित्य)... 44. सब कुछ दुखमय है (दुक्खा)... 45. सब कुछ अनात्म है (अनत्म)... 46. सब कुछ प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात करना है (अभिन्नेय)... 47. सब कुछ पूर्णतः समझना है (परिणेय)... 48. सब कुछ त्याग देना है (पहत्ब्बा)... 49. सब कुछ अनुभव करना है (सच्चिकतब्बा)... 50. सब कुछ दिव्य ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः समझना है (अभिन्नपरिणेय)... 51. सब कुछ पीड़ित है (उपद्दुत)... 52. सब कुछ दुखी है (उपसत्था)..." (प्रत्येक को 33 के अनुसार पूरा करना है।)

(i) भाग 2, द्वितीय पचास - अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो संस्कृत अविद्या-वर्ग)
53. अज्ञान का त्याग (अविज्जापहन सं. अविद्या-प्रहन)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"आदरणीय गुरुदेव, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) को त्यागने और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए कैसे जानें, कैसे देखें?"

"भिक्षु, जब कोई ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। 21 जब कोई ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... जब कोई ध्यान में मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य जानता और देखता है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। जब कोई इस प्रकार ध्यान में देखता और जानता है, भिक्षु, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

54. बंधनों का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, बंधनों से मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है, कैसे देखा जा सकता है?" 22
{बुद्ध का उत्तर उपरोक्त अनुच्छेद 53 में दिए गए अनुसार है।}

---

55. बंधनों को उखाड़ फेंकना (संयोजनसमुग्घात)
... "आदरणीय महोदय, बंधनों को कैसे उखाड़ा जाए, कैसे जाना जाए, कैसे देखा जाए?"

"भिक्षु, जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है, तो बंधन उखड़ जाते हैं। जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) रूपों को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है... (ऊपर बताए गए सभी)... जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) इस प्रकार देखा और जाना जाता है, भिक्षु, तो बंधन उखड़ जाते हैं।"

56-59 अपवित्रता आदि का परित्याग (असवपहन सं. आश्रव-प्राहन)
... "आदरणीय महोदय, कैसे जानें, कैसे देखें कि दोषों का त्याग कैसे किया जाए?... दोषों को जड़ से कैसे उखाड़ा जाए?... अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का त्याग कैसे किया जाए?... अंतर्निहित प्रवृत्तियों को जड़ से कैसे उखाड़ा जाए?" 23

"भिक्षु, जब ध्यान में आँख को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है, तो अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं। जब ध्यान में रूप को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है... (ऊपर बताए गए सभी अनुसार)... जब ध्यान में इस प्रकार देखा और जाना जाता है, भिक्षु, तो अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

नोट: अनात्म का ज्ञान समाधि/सम्मोहन की अवस्था में होता है। समाधि की अवस्था में भीतर एक नए सार का पता चलता है जिसके संदर्भ में शरीर और मन अनात्म के रूप में प्रकट होते हैं।

---

60. सभी आसक्ति का पूर्ण ज्ञान (सब्बुपादनपरिण)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के पूर्ण ज्ञान का धर्म सिखाऊंगा। 24 सुनो...

"और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति का पूर्ण ज्ञान क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क (स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है। इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य आँख, रूपों, आँख-चेतना, आँख-संपर्क और वेदना के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा मन मुक्त होता है।" इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मुझे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का पूर्ण ज्ञान हो गया है।'

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता में... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता में, मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) कहलाता है। स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है। इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य मन, मानसिक घटनाओं (धम्म), मन-चेतना, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा मन मुक्त हो जाता है। इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मुझे आसक्ति का पूर्ण ज्ञान हो गया है।'

"यही है, भिक्षुओं, समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के पूर्ण ज्ञान का धम्म।"

---

61. सभी आसक्तियों का अंत (1) (सब्बुपादनपरियादन1)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के निवारण का धर्म सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति का निवारण करने वाला धर्म क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: '
मैंने आसक्ति का निवारण कर लिया है।'

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धर्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है... इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मैंने आसक्ति का निवारण कर लिया है।' हे

भिक्षुओं, यही समस्त आसक्ति का निवारण करने वाला धर्म है।

---

62 सभी आसक्ति का अंत (2) (सब्बुपादनपरियादन2)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के निवारण का धर्म सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो..." "

और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति के निवारण का धर्म क्या है? हे भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, आँख स्थायी है या अस्थायी?"

... (अध्याय 32 के अनुसार पूरा किया जाना है)

"हे भिक्षुओं, यही समस्त आसक्ति के निवारण का धर्म है।"

(ii) डिवीजन 2, द सेकेंड फिफ्टी - मिगाजालवाग्गो
63 (1) मिगाजाला (1)
सावत्थी में। तब पूज्य मिगजाला भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 26

"पूज्यवर, कहा जाता है, 'अकेला रहने वाला, अकेला रहने वाला।' 27 पूज्यवर, किस प्रकार कोई अकेला रहने वाला होता है, और किस प्रकार कोई साथी के साथ रहता है?" 28

"हे मिगजाल, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो आनंद उत्पन्न होता है। आनंद के साथ मोह भी होता है। मोह के साथ बंधन भी होता है। हे मिगजाल, आनंद के बंधन में बंधा हुआ भिक्षु साथी के साथ रहने वाला कहलाता है।

हे मिगजाल, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ, नाक से सुनाई देने वाली गंध, जीभ से महसूस होने वाले स्वाद, शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ और मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ भी हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं।" यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की खोज करता है, तो उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है।

"मिगाजा, यद्यपि ऐसा भिक्षु वनों और उपवनों में, एकांत स्थानों में, जहाँ कम ध्वनि और शोर हो, एकांत हो, लोगों से छिपा हो, एकांत के लिए उपयुक्त हो, तब भी उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि तृष्णा (तन्हा संस्कृत) उसका साथी है, और उसने उसका त्याग नहीं किया है; इसलिए उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है।

"मिगाजा, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की खोज नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता, और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो आनंद समाप्त हो जाता है। जब आनंद नहीं होता, तो आसक्ति नहीं होती। जब आसक्ति नहीं होती, तो बंधन नहीं होता। हे मिगजाल, आनंद के बंधन से मुक्त (मोक्ष में) भिक्षु को एकांतवासी कहा जाता है।

“हे मिगजाल, कान से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं... नाक से सुनाई देने वाली गंध हैं... जीभ से सुनाई देने वाले स्वाद हैं... शरीर द्वारा स्पर्शित की जाने वाली वस्तुएँ हैं... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) नहीं खोजता... तो उसे एकांतवासी कहा जाता है।

हे मिगजाल, भले ही ऐसा भिक्षु किसी गाँव के आसपास रहता हो, भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदाय के शिक्षकों और उनके शिष्यों के साथ संगति करता हो, फिर भी उसे एकांतवासी कहा जाता है। इसका क्या कारण है?” क्योंकि तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उसकी साथी है, और उसने उसे त्याग दिया है; इसलिए उसे एकाकी कहा जाता है।

---

64. मिगाजाला (2)
तब पूज्य मिगजाल भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"मिगजाल, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो वांछनीय, प्यारे, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो आनंद उत्पन्न होता है। मैं कहता हूँ, मिगजाल, आनंद के उत्पन्न होने के साथ ही दुख उत्पन्न होता है।

" "मिगजाल, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ हैं..." नाक से पहचानी जाने वाली गंधें... जीभ से पहचाने जाने वाले स्वाद... शरीर द्वारा पहचाने जाने वाले स्पर्शनीय पदार्थ... मन द्वारा पहचाने जाने वाले मानसिक घटनाक्रम (धम्म) जो वांछनीय, प्यारे, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है, तो... आनंद उत्पन्न होता है। [38] हे मिगजाल, मैं कहता हूँ, आनंद के उत्पन्न होने के साथ ही दुख उत्पन्न होता है।

हे मिगजाल, आँखों से देखे जाने वाले रूप हैं जो वांछनीय, प्यारे, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं खोजता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो आनंद समाप्त हो जाता है। हे मिगजाल, आनंद के समाप्त होने (निरोध) के साथ ही दुख का अंत होता है।

हे मिगजाल, कानों से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ हैं... नाक से महसूस होने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्श से महसूस होने वाली वस्तुएँ... मन द्वारा महसूस होने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु इनमें आनंद नहीं लेता... तो आनंद समाप्त हो जाता है। हे मिगजाल, आनंद के समाप्त होने के साथ ही दुख का भी अंत हो जाता है।”

तब पूज्य मिगजाल, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहते हुए, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी, पूज्य मिगजाल ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: “पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।” और पूज्य मिगजाल एक हो गए। अरहंतों का।

---

65. समिद्धि (1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: 29
“परमेश्वर, कहा जाता है, 'मरा (शैतान), मररा।' हे पूज्यि, मररा किस प्रकार विद्यमान हो सकता है या मररा का वर्णन हो सकता है?” 30

“हे समिद्धि, जहाँ आँख है, जहाँ रूप हैं, जहाँ दृष्टि-चेतना है, जहाँ दृष्टि-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ मररा विद्यमान है या मररा का वर्णन है।

जहाँ कान हैं... मन है, जहाँ मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं, जहाँ मन-चेतना है, जहाँ मन-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ मररा विद्यमान है या मररा का वर्णन है।”

जहां आंख नहीं है, समिद्धि नहीं है, रूप नहीं हैं, दृष्टि-चेतना नहीं है, दृष्टि-चेतना द्वारा बोधित किए जाने योग्य कोई धम्म नहीं हैं, वहां न तो मारा का अस्तित्व है और न ही मारा का कोई वर्णन है।

जहां कान नहीं हैं... मन नहीं है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) नहीं हैं, मन-चेतना नहीं है, मन-चेतना द्वारा बोधित किए जाने योग्य कोई धम्म नहीं हैं, वहां न तो मारा का अस्तित्व है और न ही मारा का कोई वर्णन है।

---

66. समिद्धि (2)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'एक प्राणी, एक प्राणी।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई प्राणी या प्राणी का वर्णन हो सकता है?"

(उत्तर पूर्ववर्ती सूत्र 65 के समान है।)

---

67. समिद्धि (3)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'पीड़ा, पीड़ा।' आदरणीय
महोदय, पीड़ा किस प्रकार हो सकती है या पीड़ा का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है?" . . .(65 के समान)

---

68. समिद्धि (4)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'संसार, संसार।' आदरणीय महोदय, संसार या संसार का वर्णन किस प्रकार हो सकता है?"

"जहाँ आँख है, समिद्धि है, जहाँ रूप हैं, आँख-चेतना है, आँख-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म (गुण, नियम) हैं, वहाँ संसार विद्यमान है या संसार का वर्णन है।

जहाँ कान है... मन है, जहाँ मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं, मन-चेतना है, मन-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ संसार विद्यमान है या संसार का वर्णन है।"

जहां आंख नहीं है, समाधि अवस्था है, कोई रूप नहीं है, कोई दृष्टि-चेतना नहीं है, कोई धम्म नहीं है जिसे दृष्टि से जाना जा सके, वहां न तो संसार का अस्तित्व है और न ही संसार का कोई वर्णन।

जहां कान नहीं हैं... कोई मन नहीं है, कोई मानसिक घटना (धम्म) नहीं है, कोई मन-चेतना नहीं है, कोई धम्म नहीं है जिसे मन से जाना जा सके, वहां न तो संसार का अस्तित्व है और न ही संसार का कोई वर्णन।

नोट: यह समाधि अवस्था को भी संदर्भित करता है।

---

69. उपसेना
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य उपसेना राजगृह में शीतवन (सीतवन) के नागों की फन वाली गुफा (सप्पा-सोंडिक-पब्बरे) में निवास कर रहे थे। 31 उस समय एक सर्प पूज्य उपसेना के शरीर पर गिर पड़ा। तब पूज्य उपसेना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों, आओ, मेरे इस शरीर को पलंग पर उठाओ और इसे बाहर ले जाओ, इससे पहले कि यह यहीं भूसे की तरह बिखर जाए।" 32

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य उपासना से कहा, “हम पूज्य उपासना के शरीर में कोई परिवर्तन या उनकी इंद्रियों में कोई बदलाव नहीं देखते; फिर भी पूज्य उपासना कहते हैं: ‘मित्रों, आओ, मेरे इस शरीर को पलंग पर उठाओ और इसे बाहर ले जाओ, इससे पहले कि यह यहीं भूसे की तरह बिखर जाए।’”

“मित्र सारिपुत्त, जो सोचता है, ‘मैं आँख हूँ’ या ‘आँख मेरी है’; ‘मैं कान हूँ’ या ‘कान मेरा है’ ... ‘मैं मन हूँ’ या ‘मन मेरा है’, उसके लिए काम (राग) शरीर का परिवर्तन या इंद्रियों में बदलाव हो सकता है। परन्तु, मित्र सारिपुत्त, मुझे तो यह विचार नहीं आता, ‘मैं आँख हूँ’ या ‘आँख मेरी है’; ‘मैं कान हूँ’ या ‘कान मेरा है’ ... ‘मैं मन हूँ’ या ‘मन मेरा है’, तो मेरे शरीर में कोई परिवर्तन या मेरी इंद्रियों में कोई बदलाव क्यों होना चाहिए? "क्या इंद्रियां?" 33

"यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य उपसेना में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया है, इसलिए उन्हें यह विचार नहीं आता, 'मैं आँख हूँ' या 'आँख मेरी है'; 'मैं कान हूँ' या 'कान मेरा है' ... 'मैं मन हूँ' या 'मन मेरा है'।"

तब उन भिक्षुओं ने पूज्य उपसेना के शरीर को पलंग पर उठाया और उसे बाहर ले गए। फिर पूज्य उपसेना का शरीर वहीं मुट्ठी भर भूसे की तरह बिखर गया।

---

70. उपवन

तब पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'प्रत्यक्ष दृश्य धम्म (मार्ग, नियम), प्रत्यक्ष दृश्य धम्म।' 34 पूज्यवर, धम्म किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है?"

"यहाँ, उपवन, किसी रूप को आँख से देखकर, एक भिक्षु उस रूप के साथ-साथ उस रूप के प्रति वासना (राग) का अनुभव करता है। वह समझता है कि रूपों के प्रति वासना आंतरिक रूप से विद्यमान है, इस प्रकार: 'मेरे भीतर रूपों के प्रति वासना है।' क्योंकि ऐसा है, उपवन, इसलिए धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

" "इसके अलावा, उपवन, किसी ध्वनि को कान से सुनकर..." मन से किसी मानसिक घटना को जानने पर, भिक्षु उस मानसिक घटना के साथ-साथ उस मानसिक घटना के प्रति राग (कामना) का भी अनुभव करता है। वह समझता है कि मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कामना आंतरिक रूप से विद्यमान है, इस प्रकार: 'मेरे भीतर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कामना है।' हे उपवन, ऐसा होने पर धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है।

"परन्तु यहाँ, हे उपवन, आँख से किसी रूप को देखने पर, भिक्षु उस रूप के प्रति राग (कामना) का अनुभव किए बिना उस रूप का अनुभव करता है। वह समझता है कि रूपों के प्रति कामना आंतरिक रूप से विद्यमान नहीं है, इस प्रकार:
'मेरे भीतर रूपों के प्रति कोई कामना नहीं है।' हे उपवन, ऐसा होने पर, धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है।

"इसके अतिरिक्त, हे उपवन, कान से कोई ध्वनि सुनने पर... ... किसी मानसिक घटना को मन से जानने के बाद, भिक्षु उस मानसिक घटना का अनुभव बिना किसी राग (कामना) के करता है। वह समझता है कि मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आंतरिक रूप से कोई कामना नहीं होती, इसलिए वह कहता है: 'मुझमें आंतरिक रूप से मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कोई कामना नहीं है।' उपवन, ऐसा होने के कारण धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। 35

---

71. संपर्क के लिए छह इंद्रिय संकाय (1) (पथमाचफस्सायतन1 सं. प्रथम-चाहा-स्पर्श-आयतन)

"भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु इन छह इंद्रियों के संपर्क (वस्तु से इंद्रियों का संपर्क; स्पर्श) के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग (अस्वाद), संकट और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता, तो उसने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है; वह धर्म और अनुशासन से बहुत दूर है।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, मैं भ्रमित हूँ, क्योंकि मैं इन छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग, संकट और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पा रहा हूँ।" "

भिक्षु, क्या तुम आँख को इस प्रकार देखते हो:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' यही दुख का अंत है।

" "क्या आप कान को इस प्रकार देखते हैं...? क्या आप मन को इस प्रकार देखते हैं:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको मन को उसके वास्तविक स्वरूप में सही पन्ना (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' यही दुख का अंत है।"

---

72. संपर्क के लिए छह इन्द्रिय संकाय (2)
(पहले दो अनुच्छेद पिछले सूत्र 71 के समान हैं।)

"हे भिक्षु, क्या आप आँख को इस प्रकार देखते हैं:
'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, आदरणीय।"

"अच्छे भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ स्पष्ट रूप से देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इस प्रकार, संपर्क की यह पहली क्षमता (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) आपके द्वारा भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म का कारण) के लिए त्याग दी जाएगी। 37

"क्या आप कान को इस प्रकार देखते हैं...? इस प्रकार, संपर्क की यह दूसरी क्षमता आपके द्वारा भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म का कारण) के लिए त्याग दी जाएगी....

"क्या आप मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ मन को उसके वास्तविक स्वरूप में स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार संपर्क (फस्सा/स्पर्श) की इस छठी इंद्रिय को आप भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म के कारण) के लिए त्याग देंगे।"

---

73. संपर्क के लिए छह संकाय (3)
(पहले दो अनुच्छेद 71 के अनुसार।)

"हे भिक्षु, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील वस्तु को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या कान... मन स्थायी है या अस्थायी?" "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील वस्तु को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"हे भिक्षु, इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य को आँख के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है... मन के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

(iii) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - बीमार अनुभाग (गिलानावग्गो)
74. बीमार (1) (गिलाना)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
“हे पूज्यवर, फलाँ-फलाँ के एक नए दीक्षित भिक्षु हैं, जो अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं, और वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश उस भिक्षु की ओर ध्यान दें तो अच्छा होगा।”

तब, जब भगवान (बुद्ध) ने “नवदीक्षित” और “बीमार” शब्द सुने और यह समझ गए कि वह एक प्रसिद्ध भिक्षु नहीं हैं, तो वे उनके पास गए। उस भिक्षु ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और अपने पलंग पर करवट बदली। 38 भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा, “बस करो, भिक्षु, अपने पलंग पर मत करवट बदलो। ये आसन तैयार हैं, मैं वहीं बैठूँगा।”

तब भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और उस भिक्षु से बोले, “हे भिक्षु, आशा है कि तुम धैर्यवान हो, आशा है कि तुम स्वस्थ हो रहे हो। आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।”

“हे प्रभु, मैं धैर्यवान नहीं हूँ, मैं स्वस्थ नहीं हो रहा हूँ। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, न कि उनका कम होना।”

“तो हे भिक्षु, आशा है कि तुम पश्चाताप और पछतावे से व्याकुल नहीं हो।”

“जी हाँ, हे प्रभु, मुझे बहुत पश्चाताप और पछतावा है।” [47]

“हे भिक्षु, आशा है कि तुम्हें सद्‌गुण (शील) के संबंध में स्वयं को दोष देने के लिए कुछ भी नहीं है।”

“हे प्रभु, सद्‌गुण के संबंध में स्वयं को दोष देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।”

"तो फिर, भिक्षु, यदि आपको सद्‌गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो आप पश्चाताप और अफसोस से क्यों व्याकुल हैं?"

"मैं समझता हूँ, पूज्यवर, कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश सद्‌गुणों की शुद्धि के लिए नहीं दिया है।" "

यदि, भिक्षु, आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश सद्‌गुणों की शुद्धि के लिए नहीं दिया है, तो आप किस उद्देश्य से धर्म का उपदेश देने का मेरा अनुमान लगाते हैं?"

"पूज्यवर, मैं समझता हूँ कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म का उपदेश कामवासनाओं के नाश के लिए दिया है।" 39

“अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश कामवासना को दूर करने के लिए दिया है। क्योंकि धर्म का उपदेश मैंने कामवासना को दूर करने के लिए ही दिया है।

“भिक्षु, आपके विचार से आँख स्थायी है या अस्थायी?” - “अस्थायी, पूज्यवर।” ... “क्या कान... मन स्थायी है या अस्थायी?” - “अस्थायी, पूज्यवर।” - “अस्थायी क्या है? दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ गया: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर, वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुआ। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब उस भिक्षु के मन में धम्म का निर्मल, निष्कलंक दर्शन उत्पन्न हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।" 40

---

75. बीमार (2) (गिलाना)
(जैसा कि ऊपर 74 में है, नीचे तक:)

"यदि, भिक्षु (साधु), आप समझते हैं कि मैंने धर्म (धर्म, नियम) का उपदेश शील की शुद्धि के लिए नहीं दिया है, तो आप किस उद्देश्य से धर्म का उपदेश देना समझते हैं?"

"आदरणीय महोदय, मैं समझता हूँ कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म का उपदेश आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण (उपदान संस. आसक्ति) के लिए दिया है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण के लिए दिया है। क्योंकि धर्म का उपदेश मैंने आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण के लिए ही दिया है। 41

"भिक्षु, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" ... "क्या कान ... नाक ... जीभ ... शरीर ... मन ... मन-चेतना ... मन-संपर्क (विचार के साथ मन का स्पर्श) ... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी - स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "क्या जो अस्थायी है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे स्थायी मानना उचित है?" इस प्रकार: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - “नहीं, पूज्यवर।”

“ऐसा देखकर... वह समझ गया: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुआ। और जब यह प्रवचन चल रहा था, अनासक्ति के कारण उस भिक्षु का मन विमुक्त हो गया।

---

76. राधा (1)
तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा: "हे प्रभु, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

राधा, तुम्हें जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है; तुम्हें इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। रूप क्षणभंगुर हैं... नेत्र-चेतना क्षणभंगुर है... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है... नेत्र-संपर्क के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी क्षणभंगुर है; तुम्हें उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

कान... मन क्षणभंगुर है... मन-संपर्क (मन का विचार से स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह भी क्षणभंगुर है; तुम्हें उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। [49] राधा, तुम्हें जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

---

77. राधा (2)
(जैसा कि पहले 76 में बताया गया है)
... "राधा, तुम्हें कष्ट देने वाली हर चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

78. राधा (3)
(जैसा कि पहले 76 में बताया गया है)
... "राधा, तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

79. अज्ञान का त्याग (1) (अविज्जापहन1 सं. अविद्या-प्रहन)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।"

"और वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है, हे पूज्यवर?"

"हे भिक्षु, अज्ञान ही वह धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।" 42

"परन्तु, हे पूज्यवर, भिक्षु को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा, कि वह अज्ञान का त्याग करे और सच्चा ज्ञान प्राप्त करे?"

"भिक्षु, जब कोई भिक्षु ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। जब वह ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... जब वह ध्यान में मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य जानता और देखता है... तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।

जब, भिक्षु, ध्यान में इस प्रकार कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

80. अज्ञान का त्याग (2) (अविज्जापहन2 सं. अविद्या-प्रहन)
(ऊपर से नीचे तक:)

"परन्तु, आदरणीय महोदय, एक भिक्षु को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा, कि वह अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) का त्याग करके सच्चे ज्ञान को प्राप्त करे?"

"यहाँ, भिक्षु ने सुना है, 'किसी भी चीज़ का पालन करना उचित नहीं है।'" जब कोई भिक्षु यह सुनता है, 'किसी भी बात का पालन करने योग्य नहीं है,' तो वह प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जान लेता है। प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जानने के बाद, वह सब कुछ पूर्णतः समझ लेता है। पूर्णतः समझने के बाद, वह (ध्यान में, पस्सति) सभी निमित्त कारकों को भिन्न रूप से देखता है। 43 वह (ध्यान में, पस्सति) आँख को भिन्न रूप से देखता है, वह (ध्यान में, पस्सति) रूपों को भिन्न रूप से देखता है... मन के संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... उसे भी वह (ध्यान में, पस्सति) भिन्न रूप से देखता है।

"हे भिक्षु, जब कोई भिक्षु इस प्रकार जानता और देखता है, तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

81. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: [51] "हे पूज्यवर, अन्य संप्रदायों के तपस्वी हमसे पूछते हैं: 'मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' हे पूज्यवर, जब हमसे ऐसा पूछा जाता है, तो हम उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देते हैं: 'मित्रों, दुख को पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत

किया जाता है।' हे पूज्यवर, हमें आशा है कि जब हम ऐसा उत्तर देते हैं तो हम वही कहते हैं जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी प्रकार से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते; कि हम धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं, और हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता।" 44

“हे भिक्षुओं, जब तुम इस प्रकार उत्तर देते हो, तो तुम वही कहते हो जो मैंने कहा है, और मुझे तथ्यों के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं करते; तुम धम्म के अनुसार व्याख्या करते हो, और तुम्हारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता। क्योंकि, हे भिक्षुओं, मेरे अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) दुख को पूर्ण रूप से समझने के लिए ही व्यतीत किया जाता है।

“परन्तु, हे भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी तुमसे पूछें: ‘हे मित्रों, वह कौन सा दुख है जिसे पूर्ण रूप से समझने के लिए तपस्वी गौतम के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया जाता है?’ - इस प्रकार पूछे जाने पर, तुम्हें उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: ‘हे मित्रों, आँख दुख है: इसे पूर्ण रूप से समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया जाता है।’ शरीर दुखदायी हैं... जो भी संवेदना (वेदना) दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है... वह भी दुखदायी है... मन दुखदायी है... जो भी संवेदना (वेदना) मन संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है... वह भी दुखदायी है: इसी को पूर्ण रूप से समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। हे भिक्षुओं, यही वह दुख है जिसे पूर्ण रूप से समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।

"इस प्रकार पूछे जाने पर, हे भिक्षुओं, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

82. विश्व (लोकपन्हा बिना लोक-प्रश्न)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे बोला, “आदरणीय महोदय, कहा जाता है, ‘संसार, संसार।’ आदरणीय महोदय, किस प्रकार ‘संसार’ कहा जाता है?”

“भिक्षु, यह विघटनशील है, इसीलिए इसे संसार कहा जाता है। 45 और क्या विघटनशील है? भिक्षु, आँख विघटनशील है, रूप विघटनशील हैं, नेत्र-चेतना विघटनशील है, नेत्र-संपर्क विघटनशील है, और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) विघटनशील है... वह भी विघटनशील है। कान विघटनशील है... मन विघटनशील है... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटनशील है। भिक्षु, यह विघटनशील है, इसीलिए इसे संसार कहा जाता है।”

---

83. फग्गुनपन्हा (सं. फग्गुना-प्रश्न)
तब पूज्य फाग्गुना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, क्या कोई ऐसी आँख है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है? 46 क्या कोई ऐसा कान है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके?... क्या कोई ऐसा मन है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है?"

"हे फाग्गुना, ऐसी कोई आँख नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत: प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है। ऐसा कोई कान नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके... ऐसा कोई मन नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत: प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है।"

(iv) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - चन्ना खंड (चन्नावग्गो)
84. विघटन के अधीन (पलोकधम्म)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "पूज्यवर, कहा जाता है, 'संसार, संसार।' किस अर्थ में, पूज्यवर, इसे 'संसार' कहा जाता है?"

"आनंद, जो कुछ भी विघटन के अधीन है, उसे भगवान बुद्ध की साधना में संसार कहा जाता है। 47 और विघटन के अधीन क्या है? आनंद, आँख विघटन के अधीन है, यह... नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली

कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटन के अधीन है। कान विघटन के अधीन है... मन विघटन के अधीन है... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटन के अधीन है। आनंद, जो कुछ भी विघटन के अधीन है, उसे भगवान बुद्ध की साधना में संसार कहा जाता है।"

---

85. संसार खाली है (शून्यता-लोक के बिना)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'संसार खाली है, संसार खाली है।' किस अर्थ में कहा जाता है, पूज्यवर, 'संसार खाली है'?"

"आनंद, क्योंकि यह आत्मा और आत्मा से संबंधित किसी भी चीज से खाली है, इसलिए कहा जाता है, 'संसार खाली है'।" और वह क्या है जो स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है? हे आनंद, आँख स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। रूप स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित हैं। नेत्र-चेतना स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; स्पर्श) स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। मन के संपर्क (विचार से संपर्क; स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है।

हे आनंद, क्योंकि यह स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है, इसीलिए कहा जाता है, 'संसार खाली है।'

---

86. संक्षेप में धम्म (संखिटत्तधम्म सं. संक्षिप्त-धर्म)
एक तरफ बैठे हुए, पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"आनंद, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।"

(32 के अनुसार पूर्ण, "इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है" तक।) [55]

---

87. चन्ना
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। 48 उस समय पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महाचुंड और पूज्य चन्ना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे, और पूज्य चन्ना बीमार थे, गंभीर रूप से पीड़ित थे। तब, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए, पूज्य महाचुंड के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र चुंड, हम पूज्य चन्ना के पास जाकर उनकी बीमारी के बारे में पूछें।"

"जी, मित्र," पूज्य महाचुंड ने उत्तर दिया।

तब पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाचुंड पूज्य चन्ना के पास गए और उनसे अभिवादन का आदान-प्रदान किया, जिसके बाद वे निर्धारित स्थानों पर बैठ गए। तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य चन्ना से कहा: "मुझे आशा है कि आप ठीक हैं, मित्र चन्ना, मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हो रहे हैं। मुझे आशा है कि आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।"

"मित्र सारिपुत्त, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। 49 तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही स्पष्ट है, कम होना नहीं। जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर दे, वैसे ही तेज हवाएँ मेरे सिर को चीर रही हैं। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे कोई बलवान व्यक्ति मेरे सिर पर चमड़े का सख्त पट्टा कसकर बाँध दे, वैसे ही मेरे सिर में तेज दर्द हो रहा है। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से बैल का पेट चीर दे, वैसे ही तेज हवाएं मेरे पेट को चीर रही हैं। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे दो बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को दोनों भुजाओं से पकड़कर गर्म कोयलों के गड्ढे पर भून दें, वैसे ही मेरे शरीर में तेज जलन हो रही है। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। उनका कम होना नहीं, बल्कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है। "मैं चाकू का प्रयोग करूँगा, हे मित्र सारिपुत्त, मुझे जीने की कोई इच्छा नहीं है।"

"आदरणीय चन्ना चाकू का प्रयोग न करें। आदरणीय चन्ना जीवित रहें। हम चाहते हैं कि आदरणीय चन्ना जीवित रहें। यदि आदरणीय चन्ना को उचित भोजन न मिले, तो मैं उनके लिए उचित भोजन की खोज में जाऊँगा; यदि उन्हें उचित औषधि न मिले, तो मैं उनके लिए उचित औषधि की खोज में जाऊँगा; यदि उनके पास उचित सेवक न हो, तो मैं उनकी सेवा करूँगा। आदरणीय चन्ना चाकू का प्रयोग न करें। आदरणीय चन्ना जीवित रहें। हम चाहते हैं कि आदरणीय चन्ना जीवित रहें।"

"मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं है कि मुझे उपयुक्त भोजन की कमी है; मेरे पास उपयुक्त भोजन है। ऐसा नहीं है कि मुझे उपयुक्त औषधि की कमी है; मेरे पास उपयुक्त औषधि है। ऐसा नहीं है कि मुझे उचित सेवकों की कमी है; मेरे पास उचित सेवक हैं। इसके अलावा, मित्र, मैंने लंबे समय से गुरु की सेवा सुखद तरीके से की है, अप्रिय तरीके से नहीं; क्योंकि शिष्य के लिए गुरु की सेवा सुखद तरीके से करना उचित है, अप्रिय तरीके से नहीं। यह याद रखना, मित्र सारिपुत्त: भिक्षु चन्ना चाकू का प्रयोग निर्दोषता से करेंगे।" 51

"हम पूज्य चन्ना से एक विशेष विषय के बारे में पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।"

"पूछो, मित्र सारिपुत्त। जब मैं सुन लूंगा तो मुझे पता चल जाएगा।"

"मित्र चन्ना, क्या तुम आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों (गुणों, नियमों) को इस प्रकार देखते हो: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'? क्या तुम कान, कान-चेतना और कान-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखते हो...? क्या तुम मन, मन-चेतना और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखते हो:

'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'? मित्र सारिपुत्त, मैं आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'।" मैं कान, कान-चेतना और कान-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ... मैं मन, मन-चेतना और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"मित्र चन्ना, तुमने आँख से, आँख-चेतना से और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में ऐसा क्या देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है कि तुम उन्हें इस प्रकार देखते हो: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?" आपने कान में, मन में, मन-चेतना में और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में ऐसा क्या देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है कि आप उन्हें इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?

"मित्र सारिपुत्त, मैंने आँख में, आँख-चेतना में और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में निरोध (निरोध) को देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है, इसलिए मैं उन्हें इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' मैंने कान में, मन में, मन-चेतना में और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में निरोध को देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है, इसलिए मैं उन्हें इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'" 52

यह सुनकर पूज्य महाचुंडा ने पूज्य चन्ना से कहा, "अतः, मित्र चन्ना, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा का निरंतर ध्यान रखना चाहिए: 'आश्रित व्यक्ति में अस्थिरता होती है; स्वतंत्र व्यक्ति में अस्थिरता नहीं होती। जब अस्थिरता नहीं होती, तब शांति (पसाद्धि/प्रशाब्धि) होती है; जब शांति होती है, तब कोई प्रवृत्ति नहीं होती; जब कोई प्रवृत्ति नहीं होती, तब आना-जाना नहीं होता; जब आना-जाना नहीं होता, तब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता; जब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता, तब न तो यह है, न यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और पुनर्जन्म। यही दुख का अंत है।'" 53

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाचुंडा ने पूज्य चन्ना को यह उपदेश दिया, तो वे अपने आसनों से उठे और चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद, पूज्य चन्ना ने चाकू का प्रयोग किया। 54

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, पूज्य चन्ना ने चाकू का प्रयोग किया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य क्या होगा?"

"सारिपुत्त, क्या भिक्षु चन्ना ने आपके समक्ष ही अपनी निर्दोषता की घोषणा नहीं की थी?" 55

“पूज्यवर, पुब्बाविज्झना नाम का एक वज्जियन गाँव है। वहाँ पूज्य चन्ना के मित्रवत, घनिष्ठ और आतिथ्यप्रिय परिवार थे।” 56

“हे सारिपुत्त, पूज्य चन्ना के वास्तव में ये मित्रवत परिवार थे, घनिष्ठ परिवार, आतिथ्य सत्कार करने वाले परिवार; परन्तु मैं यह नहीं कहता कि इस हद तक कोई दोषी है। सारिपुत्त, जब कोई इस शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करता है, तब मैं कहता हूँ कि वह दोषी है। भिक्षु चन्ना के मामले में ऐसा नहीं हुआ। भिक्षु चन्ना ने चाकू का प्रयोग निर्दोषतापूर्वक किया। अतः, सारिपुत्त, तुम्हें यह याद रखना चाहिए।” 57

टिप्पणी: इसका अर्थ है कि चन्ना ने दूसरा शरीर धारण नहीं किया (पुनर्जन्म नहीं लिया) अतः उन्हें मुक्ति/निर्वाण प्राप्त हुआ।

---

88. पुन्ना

तब पूज्य पुन्ना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: 58 "पूज्यवर, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"पुन्ना, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे आनंद प्राप्त होता है। हे पुन्ना, आनंद की उत्पत्ति के साथ ही दुख उत्पन्न होता है, मैं कहता हूँ। हे पुन्ना, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ और मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे आनंद प्राप्त होता है। हे पुन्ना, आनंद की उत्पत्ति के साथ ही दुख उत्पन्न होता है, मैं कहता हूँ।

"पुन्ना, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप और मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो उसमें आनंद समाप्त हो जाता है।

हे पुन्ना, आनंद के समाप्त होने से दुख का अंत हो जाता है, मैं कहता हूँ।

"हे पुन्ना, अब जब तुमने मुझसे यह संक्षिप्त उपदेश प्राप्त कर लिया है, तो तुम किस देश में निवास करोगे?"

"हे पूज्यवर, सुनापरंत नामक एक देश है। मैं वहाँ निवास करूँगा।"

"पुन्ना, सुनापरंत के लोग जंगली और असभ्य हैं। यदि वे तुम्हारा अपमान करें, तो तुम क्या सोचोगे?"

"हे पूज्यवर, यदि सुनापरंत के लोग मेरा अपमान करें, तो मैं सोचूँगा: 'सुनापरंत के ये लोग उत्तम हैं, वास्तव में उत्तम हैं, क्योंकि वे मुझे मुक्का नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूँगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूँगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें मुक्के से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे मुक्के से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग उत्कृष्ट हैं, वास्तव में उत्कृष्ट हैं, क्योंकि वे मुझे मिट्टी के ढेले से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।" "

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें मिट्टी के ढेले से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?"

आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे मिट्टी के ढेले से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग उत्कृष्ट हैं, वास्तव में उत्कृष्ट हैं, क्योंकि वे मुझे छड़ी से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे प्रभु (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा। सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें लाठी से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे लाठी से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग श्रेष्ठ हैं, वास्तव में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मुझे चाकू से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें चाकू से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?"

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे चाकू से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग श्रेष्ठ हैं, वास्तव में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मुझे तेज चाकू से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"परन्तुना, यदि सुनापरंता के लोग तुम्हें तेज चाकू से मार डालें, तो तुम क्या सोचोगी?"

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे तेज चाकू से मार डालें, तो मैं सोचूँगी: भगवान (बुद्ध) के ऐसे शिष्य भी हुए हैं जो शरीर और जीवन से घृणा, अपमान और विरक्ति के कारण हमलावर की तलाश में निकले। 59 परन्तु मुझे तो बिना खोजे ही यह हमलावर मिल गया। तब मैं ऐसा सोचूँगी, हे प्रभु; तब मैं ऐसा सोचूँगी, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"बहुत खूब, पुन्ना! ऐसे आत्मसंयम और शांति से परिपूर्ण होकर तुम सुनापरंता देश में निवास कर सकोगी। अब, पुन्ना, तुम अपनी सुविधानुसार जा सकती हो।" 60

तब, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, पूज्य पुन्ना अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया। फिर उन्होंने अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और सुनापरंत देश की ओर प्रस्थान किया। विभिन्न चरणों में भटकते हुए, वे अंततः सुनापरंत देश पहुँचे, जहाँ वे निवास करने लगे। फिर, उस वर्षा ऋतु में, पूज्य पुन्ना ने पाँच सौ पुरुष और पाँच सौ स्त्री अनुयायियों को साधना में स्थापित किया, और स्वयं उसी वर्षा ऋतु में तीन सच्चे ज्ञानों को प्राप्त किया। और उसी वर्षा ऋतु में उन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया। 61

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: “पूज्यवर, पुन्ना नामक कुल के व्यक्ति, जिन्हें भगवान (बुद्ध) ने संक्षिप्त उपदेश दिया था, का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है? उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?”

भिक्षुओं, कुल के पुन्ना बुद्धिमान थे। उन्होंने धम्म के अनुसार अभ्यास किया और धम्म के कारण मुझे परेशान नहीं किया। कुल के पुन्ना ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

---

89. बहिया

तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"बाहिया, आपके विचार से आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अनंत, पूज्यवर।" (जैसा कि 32 से आगे है:) ... "वे समझते हैं: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, वे चले गए। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य बाहिया ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इस बात को अनुभव कर लिया और इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।" और पूज्य बाहिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

90. उत्तेजित होना (1) (Eja1)

भिक्षुओं, विचलित होना रोग है, विचलित होना ट्यूमर है, विचलित होना बाण के समान है। 62 अतः, भिक्षुओं, तथागत अविचलित रहते हैं, बाण रहित। अतः, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु चाहे, 'काश मैं अविचलित रहूँ, बाण रहित!' तो उसे आँख का ध्यान नहीं रखना चाहिए, आँख में ध्यान नहीं रखना चाहिए, आँख से ध्यान नहीं रखना चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह आँख मेरी है।' 63

उसे रूपों का ध्यान नहीं रखना चाहिए... आँख-चेतना का... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) का... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) का... उसे उसका ध्यान नहीं रखना चाहिए, उसमें ध्यान नहीं रखना चाहिए, उससे ध्यान नहीं रखना चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह मेरा है।'

उसे कान की कल्पना नहीं करनी चाहिए... उसे मन की कल्पना नहीं करनी चाहिए... मानसिक घटनाओं (धम्म) की... मन-चेतना की... मन-संपर्क की... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की... उसे उसकी कल्पना नहीं करनी चाहिए, उसमें कल्पना नहीं करनी चाहिए, उससे कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह मेरा है।'

उसे सब कुछ की कल्पना नहीं करनी चाहिए, सब में कल्पना नहीं करनी चाहिए, सब से कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'सब कुछ मेरा है।'

क्योंकि वह इस प्रकार किसी भी चीज की कल्पना नहीं करता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता। आसक्ति न होने के कारण (उपदान संस्कृत: आसक्ति), वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने के कारण, वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:

'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

---

91. उत्तेजित होना (2) (Eja2)
भिक्षुओं, विचलित होना एक रोग है, विचलित होना एक ट्यूमर है, विचलित होना एक बाण के समान है। इसलिए, भिक्षुओं, तथागत अविचलित, बाण रहित निवास करते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे, 'काश मैं अविचलित, बाण रहित निवास कर सकूँ!' तो उसे आँख, रूप, आँख-चेतना, आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) का विचार नहीं करना चाहिए... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के संबंध में... उसे उसका विचार नहीं करना चाहिए, उसमें विचार नहीं करना चाहिए, उससे विचार नहीं करना चाहिए, यह विचार नहीं करना चाहिए कि 'वह मेरा है।' भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने में सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने से सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने 'मेरा' समझता है - वह कुछ और है। संसार, भाव से आसक्त होकर, केवल भाव में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है। 64

"उसे कान की कल्पना नहीं करनी चाहिए... उसे मन की कल्पना नहीं करनी चाहिए... मानसिक घटनाओं (धम्म) की... मन-चेतना की... मन-संपर्क की... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की... उसे उसकी कल्पना नहीं करनी चाहिए, उसमें कल्पना नहीं करनी चाहिए, उससे कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए, 'वह मेरा है।' भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने में सोचता है, [67] जिससे कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने 'मेरा' समझता है - वह कुछ और है। संसार, भाव से आसक्त होकर, केवल भाव में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है।

भिक्षुओं, जो कुछ भी स्कंध, धातु और इंद्रिय शक्तियाँ हैं, वह उन्हें नहीं मानता, उनमें नहीं मानता, उनसे नहीं मानता, और न ही यह मानता है कि 'यह मेरा है।'

क्योंकि वह किसी भी चीज को इस प्रकार नहीं मानता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है।'

---

92. दोहे (1)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें द्वैत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, द्वैत क्या है? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुएँ, मन और मानसिक घटनाएँ (धम्म)। इसे ही द्वैत कहते हैं। हे

भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'इस द्वैत को त्यागकर मैं एक अन्य द्वैत का प्रचार करूंगा' - तो यह उसकी ओर से केवल खोखला अभिमान होगा। यदि उससे प्रश्न किया जाए तो वह उत्तर नहीं दे पाएगा और उसे क्रोध का सामना करना पड़ेगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, यह उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा।" 65

---

93. दोहे (युग्म)(2)
भिक्षुओं, चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) द्वैत पर निर्भर होती है। और हे भिक्षुओं, चेतना द्वैत पर निर्भर कैसे होती है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। आँख क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है; रूप क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाले होते हैं। इस प्रकार यह द्वैत गतिशील और डगमगाता हुआ क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाला होता है।

नेत्र-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। नेत्र-चेतना के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाला होता है। हे भिक्षुओं, जब नेत्र-चेतना एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?

इन तीनों धर्मों (गुणों, नियमों) के मिलन, मुठभेड़ और संगति को नेत्र संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) कहते हैं। नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। हे भिक्षुओं, जब नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है? हे भिक्षुओं

, संपर्क होने पर व्यक्ति अनुभव करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति इरादा करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति बोध करता है। 67 इस प्रकार ये धर्म भी गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से कान-चेतना उत्पन्न होती है... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। मन क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है; मानसिक घटनाएं (धम्म) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती रहती हैं। इस प्रकार यह द्वैत गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है।

मन-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती रहती है। मन-चेतना के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। हे भिक्षुओं, जब मन-चेतना एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भरता से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?"

इन तीनों धर्मों के मिलन, संवाद और संगति को मन-संपर्क (मन और विचार का स्पर्श) कहते हैं। मन-संपर्क भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। मन-संपर्क के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। हे भिक्षुओं, जब मन-संपर्क किसी क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है? हे

भिक्षुओं, संपर्क होने पर व्यक्ति अनुभव करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति अभिकल्पना करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति बोध करता है। इस प्रकार ये धर्म भी गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार चेतना द्वैत पर निर्भर होकर उत्पन्न होती है।

(v) भाग 2, द्वितीय पचास - छक्कों का खंड (सलावाग्गो)
94. अनियंत्रित, असुरक्षित 68 (अदंतगुट्टा)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय-संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हों - तो दुख का कारण बनते हैं। 69 वे छह कौन सी हैं?

"भिक्षुओं, आँख, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनती है। कान, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनता है। नाक, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण

बनती है। जीभ, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनती है।" स्पर्श (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हो - तो दुख का कारण बनता है। मन (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हो - तो दुख का कारण बनता है। ये छह इंद्रिय शक्तियां (स्पर्श) - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हों - तो दुख का कारण बनती हैं

। भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियां (स्पर्श) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, संरक्षित, नियंत्रित हों - तो सुख (सुख) का कारण बनती हैं। 70 वे छह कौन सी हैं?

"भिक्षुओं, आंख (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, संरक्षित, नियंत्रित हो - तो सुख का कारण बनती है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में कान - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में नाक - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में जीभ - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में स्पर्श (संपर्क) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। ये छह इंद्रिय-संवेदनाएँ (स्पर्श) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित, संरक्षित और संयमित हों - तो सुख प्रदान करती हैं।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"हे भिक्षुओं, केवल छह ही इंद्रियाँ (स्पर्श) संपर्क का कारण बनती हैं,
जहाँ अनियंत्रित होने पर दुख होता है।
जो इन्हें नियंत्रित करना जानते हैं
, वे निर्मल रहते हैं, और विश्वास को अपना साथी बनाते हैं।

मन को प्रसन्न करने वाले रूपों (नंदी/आनंद)
और आनंदहीन रूपों को देखकर,
राग के मार्ग को छोड़कर आनंदमय रूप की ओर अग्रसर हों।"
और यह सोचकर मन को दूषित न करो कि '[दूसरा] मुझे अप्रिय है।'

मधुर और कर्कश दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनकर,
मधुर ध्वनि से मोहित न हो।
कर्कश ध्वनि के प्रति घृणा का भाव त्याग दो।
और यह सोचकर मन को दूषित न करो कि
'[यह] मुझे अप्रिय है।'

सुगंधित, मनभावन खुशबू सूंघकर,
और सड़ी हुई दुर्गंध सूंघकर,
दुर्गंध के प्रति अरुचि का भाव त्याग दो ।
और सुंदर वस्तु के प्रति लालसा के वश में न हो।

मीठा और स्वादिष्ट स्वाद चखकर, और कभी-कभी कड़वा स्वाद चखकर, मीठे स्वाद का लालच न करो। कड़वे स्वाद के प्रति अरुचि न रखो।

सुखद स्पर्श से मोहित न हो, और
पीड़ादायक स्पर्श से भयभीत न हो।
सुखद और पीड़ादायक दोनों को समान दृष्टि से देखो।
किसी भी चीज से आकर्षित या विमुख न हो।

जब साधारण लोग अपनी छह इंद्रियों (प्रपंच/माया) से भ्रमित होकर
इस प्रकार अनुभव करते हैं और इंद्रियों के भ्रम में पड़कर साधना में जुट जाते हैं, तो वे

सांसारिक जीवन से बंधी सभी मानसिक अवस्थाओं से मुक्त होकर
त्याग के मार्ग पर विचरण करते हैं। 71

“जब मन इस प्रकार छह इंद्रियों से भली-भांति विकसित हो जाता है,
तो स्पर्श होने पर मन कहीं विचलित नहीं होता।
हे भिक्षुओं, कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) दोनों पर विजय प्राप्त करके,
जन्म-मृत्यु के परे उस पार निर्वाण की ओर प्रस्थान करो!”

---

95. मालुंक्यपुत्त (सं. मलुक्य-पुत्र)
तब पूज्य मालुनक्यपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: 72 “पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।”

“अब, मालुनक्यपुत्त, मैं युवा भिक्षुओं को क्या कहूँ जब आप जैसे भिक्षु - वृद्ध, उम्रदराज, वर्षों के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके - मुझसे संक्षेप में उपदेश माँगें?” 73

“हे पूज्यवर, यद्यपि मैं वृद्ध, उम्रदराज, वर्षों के बोझ से दबा हुआ, जीवन के अंतिम पड़ाव पर आ चुका हूँ, तो कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें, शुभ पुरुष (सुगतो) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें। शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूँ, शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूँ।”

“मालुंक्या तुम सोचते हो, मालुंक्यापुत्त, क्या तुम्हारे मन में उन रूपों के लिए कोई इच्छा, वासना (राग) या स्नेह है जिन्हें तुमने न तो देखा है और न ही कभी देखा है, जिन्हें तुम नहीं देखते और न ही यह सोचते हो कि उन्हें देखा जा सकता है?” 74

“नहीं, पूज्यवर।”

क्या आपके मन में उन ध्वनियों के प्रति कोई इच्छा, वासना (राग) या स्नेह है जो कानों से सुनी जा सकती हैं... उन गंधों के प्रति जो नाक से सुनी जा सकती हैं... उन स्वादों के प्रति जो जीभ से महसूस किए जा सकते हैं... उन स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति जो शरीर द्वारा महसूस की जा सकती हैं... उन मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जो मन द्वारा महसूस की जा सकती हैं जिन्हें आपने न तो कभी जाना है और न ही आप जानते हैं और न ही यह सोचेंगे कि उन्हें जाना जा सकता है? "

नहीं, आदरणीय महोदय।"

हे मालुख्यपुत्त, आपके द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए और बोध किए गए धर्मों (गुणों, नियमों) के संदर्भ में: जो देखा जाता है उसमें केवल देखा जाता है; जो सुना जाता है उसमें केवल सुना जाता है; जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है; जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है।

हे मालुख्यपुत्त, आपके द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए और बोध किए गए धर्मों के संदर्भ में, जब जो देखा जाता है उसमें केवल देखा जाता है, जो सुना जाता है उसमें केवल सुना जाता है, जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है, और जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है, तब, हे मालुख्यपुत्त, आप 'उससे' नहीं होंगे। हे मालुख्यपुत्त, जब आप 'उससे' नहीं होंगे, तब आप 'उसमें' नहीं होंगे। हे मालुख्यपुत्त, जब आप 'उसमें' नहीं होंगे, तब आप न तो यहाँ होंगे, न उससे परे होंगे और न ही इन दोनों के बीच में होंगे। यही दुख का अंत है।" 75

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का अर्थ मैं विस्तार से समझता/समझती हूँ:

"ध्यान में उलझे हुए रूप को देखकर; मनभावन चिन्ह (निमित्त, कारण) पर ध्यान देते हुए;
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे दृढ़ता से पकड़े रहता है।"

"दृश्य रूप से उत्पन्न होकर, भीतर अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।"

लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है। 76
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए ध्वनि सुनकर; सुखद संकेत (कारण, निमित्त) पर ध्यान देते हुए,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे कसकर पकड़े रहता है।

"श्रव्य ध्वनि से उत्पन्न होकर; भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए गंध सूंघकर; सुखद संकेत (कारण, निमित्त) पर ध्यान देते हुए,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे कसकर पकड़े रहता है।

"गंध से उत्पन्न होकर; भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए किसी स्वाद का आनंद लेने पर,
मन को मोह में डूबे रहने के कारण, निमित्त भाव से उसका अनुभव होता है और वह उस पर दृढ़ता से टिका रहता है।

स्वाद से उत्पन्न होकर, अनेक वेदनाएँ भीतर उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए किसी स्पर्श का अनुभव करने पर,
मन को मोह में डूबे रहने के कारण, निमित्त भाव से उसका अनुभव होता है और वह उस पर दृढ़ता से टिका रहता है।

स्पर्श से उत्पन्न होकर, अनेक वेदनाएँ भीतर उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान में लीन होकर किसी धर्म (यहाँ मन में विचार) का ज्ञान होने पर, मनभावन चिन्ह (निमित्त, कारण) पर ध्यान देने से,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है और उसे कसकर पकड़े रहता है।

धर्म (यहाँ मन में विचार) से उत्पन्न होकर, भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख भोगता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ता से ध्यानमग्न होकर किसी रूप को देखता है, तो वह रूपों के प्रति वासना से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे उदासीन मन से अनुभव करता है और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि रूप को देखते हुए भी,
और किसी संवेदना का अनुभव करते हुए भी, [दुख] समाप्त होता है, बढ़ता नहीं। 77
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर कोई ध्वनि सुनता है, तो वह ध्वनियों के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैराग्यपूर्ण मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि जैसे ही वह कोई ध्वनि सुनता है
और किसी अनुभूति का अनुभव करता है, [दुख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर कोई गंध सूंघता है, तो वह गंधों के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैराग्यपूर्ण मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि जैसे ही वह कोई गंध सूंघता है
और किसी अनुभूति का अनुभव करता है, [दुख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर किसी स्वाद का आनंद लेता है, तो वह स्वाद के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि स्वाद का आनंद लेते हुए भी,
और किसी अनुभूति का अनुभव करते हुए भी, [दुःख] उत्पन्न नहीं होता, बल्कि समाप्त हो जाता है।
इस प्रकार दुःख को दूर करने वाले के लिए निर्वाण निकट माना जाता है।

जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर किसी स्पर्श का अनुभव करता है, तो वह स्पर्श के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि स्पर्श का अनुभव करते हुए भी,
और किसी अनुभूति का अनुभव करते हुए भी, [दुःख] उत्पन्न नहीं होता, बल्कि समाप्त हो जाता है।
इस प्रकार दुःख को दूर करने वाले के लिए निर्वाण निकट माना जाता है।

जब कोई दृढ़तापूर्वक ध्यानमग्न होकर किसी धर्म (यहाँ मन में विचार) को जानता है, तो वह वस्तुओं के प्रति वासना से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न (सतो) है कि धर्म (यहाँ मन में विचार) को जानते हुए भी,
जब वह किसी संवेदना का अनुभव करता है, तो [दुःख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुःख को नष्ट करने वाले के लिए निर्वाण निकट कहा जाता है।

“हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।”

बुद्ध: “अच्छा, अच्छा, मालंक्यपुत्त! यह अच्छा है कि तुम मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझते हो।

(बुद्ध यहाँ उपरोक्त श्लोकों को पूर्ण रूप से दोहराते हैं।)

“हे मालंक्यपुत्त, इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा जाना चाहिए।”

तब पूज्य मलंक्यपुत्त, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे प्रस्थान कर गए। फिर एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य मलंक्यपुत्त ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त किया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है। जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य मलंक्यपुत्त अरहंतों में से एक बन गए।

96. पतनशील धम्म (परिहनधम्म सं. परिहानी-धम्म)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें हानि के अधीन व्यक्ति, हानि के अधीन न होने वाले व्यक्ति और छह निपुण इंद्रियों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, हानि कैसे होती है? 78 हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को अपनी आँखों से देखता है, तो उसके भीतर अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से जुड़ी बुरी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। 79 यदि भिक्षु उन्हें सहन करता है और उनका त्याग नहीं करता, उन्हें दूर नहीं करता, उनका अंत नहीं करता और उन्हें मिटा नहीं देता, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'"

"इसके अलावा, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से जुड़ी बुरी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन करता है और उनका त्याग नहीं करता, उन्हें दूर नहीं करता, उन्हें समाप्त नहीं करता और उन्हें मिटा नहीं देता, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि कहा है।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति हानि का भागी होता है।"

और हे भिक्षुओं, हानि से कैसे बचा जा सकता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को आँखों से देखता है, तो उसके मन में अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से संबंधित अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन न करे, बल्कि उनका त्याग कर दे, उन्हें दूर कर दे, उनका अंत कर दे और उन्हें मिटा दे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि नहीं कहा है।'

इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से संबंधित अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन न करे, बल्कि उनका त्याग कर दे, उन्हें दूर कर दे, उनका अंत कर दे और उन्हें मिटा दे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि नहीं कहा है।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार हानि नहीं होती है।

और भिक्षुओं, वे छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं जिन पर महारत हासिल की गई है? 80 यहाँ, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को आँख से देखता है, तो उसमें अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं होती हैं, न ही बंधनों से संबंधित कोई स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ। भिक्षु को यह समझना चाहिए: 'इस शक्ति पर महारत हासिल कर ली गई है। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने महारत हासिल की हुई शक्ति कहा है।'

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में न तो कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न होती है, न ही बंधनों से संबंधित कोई स्मृतियाँ या इरादे। भिक्षु को इसे इस प्रकार समझना चाहिए: 'इस इंद्रिय पर महारत प्राप्त कर ली गई है। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे महारत प्राप्त इंद्रिय कहा है।' भिक्षुओं, इन्हें ही महारत प्राप्त छह इंद्रिय शक्तियाँ कहा जाता है।

97. सुस्ती से निवास करना (पामदविहारी सं. प्रमाद-विहारी)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें आलसी (पमादा) और सजग (अपमादा) रहने वाले व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, आलसी कैसे रहा जाता है? यदि कोई नेत्र इंद्रिय पर संयम न रखे, तो उसका मन नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों में दूषित हो जाता है। मन दूषित होने पर आनंद नहीं होता। आनंद न होने पर प्रीति नहीं होती। आनंद न होने पर प्रशब्धि नहीं होती। प्रशब्धि नहीं होती। दुख में रहने वाले का मन समाधि अवस्था में नहीं जाता। जब मन समाधि अवस्था में नहीं होता, तो धम्म प्रकट नहीं होते। क्योंकि धम्म प्रकट नहीं होते, इसलिए उसे आलसी कहा जाता है।

यदि कोई श्रवण शक्ति पर संयम न रखते हुए उसमें लीन रहता है, तो उसका मन कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों से दूषित हो जाता है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। यदि कोई मन शक्ति पर संयम न रखते हुए उसमें लीन रहता है, तो उसका मन मन द्वारा बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धर्म) से दूषित हो जाता है। क्योंकि ये घटनाएँ (धर्म) प्रकट नहीं होतीं, इसलिए व्यक्ति को 'आलस्य में रहने वाला' माना जाता है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति आलस्य में रहता है।

और हे भिक्षुओं, सचेत कैसे रहा जाए? यदि कोई नेत्र इंद्रिय पर संयम रखकर मन को सजीव रखे, तो उसका मन नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों से दूषित नहीं होता। मन के दूषित न होने पर प्रसन्नता उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर परमानंद उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है। समाधि अवस्था में मन के कारण धर्म प्रकट होते हैं। धर्म प्रकट होने के कारण ही व्यक्ति को सचेत रहने वाला कहा जाता है।

"यदि कोई श्रवण शक्ति पर संयम बरते, तो उसका मन कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों से दूषित नहीं होता (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)... यदि कोई मन शक्ति पर संयम बरते, तो उसका मन बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धर्म) से दूषित नहीं होता... क्योंकि घटनाएँ (धर्म) प्रकट होती हैं, इसलिए व्यक्ति को 'जागरूक' माना जाता है।

" हे भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति जागरूक रहता है।

---

98. संयम (संवर)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें संयम और असंयम सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंयम क्या है? हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आकर्षक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'"

भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें कान से सुना जा सकता है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)... कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जिन्हें मन द्वारा अनुभव किया जा सकता है और जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'

भिक्षुओं, यही असंयम है।

हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज न करे, उनका स्वागत न करे और उनसे जुड़ा न रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि नहीं कहा है।'

हे भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से सुनाई देने वाली मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आकर्षक और इंद्रिय-लुभावन हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज न करे, उनका स्वागत न करे और उनसे जुड़ा न रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं को नहीं खो रहा हूँ।' क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे कोई हानि नहीं कहा है।

"भिक्षुओं, यही संयम है।"

---

99. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)
"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो। समाधि अवस्था में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। 84

"और वह किन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है? वह वास्तविकता को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है: 'आँख क्षणभंगुर है।'" वह यथार्थ को समझते हैं: 'रूप क्षणभंगुर हैं।'... 'दृष्टि-चेतना क्षणभंगुर है।'... 'दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है।'... 'दृष्टि संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी क्षणभंगुर है।'...(इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)...

"वह यथार्थ को समझते हैं: 'मन क्षणभंगुर है। (इसी प्रकार चेतना (विज्ञान), स्पर्श आदि के लिए)... वह यथार्थ को समझते हैं: 'मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी क्षणभंगुर है।'

"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो।" समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में रहने वाला भिक्षु चीजों को वैसे ही समझता है जैसे वे वास्तव में हैं।

---

100. एकांतवास (पतिसलाना)
"भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। एकांतवासी भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।"

(शेष भाग पूर्ववर्ती सूत्र 99 के समान है।)

---

101. तुम्हारा नहीं (1) (नटुमहाका1)
भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। 85 जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? आँख तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। रूप तुम्हारे नहीं हैं... आँख की चेतना तुम्हारी नहीं है... आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; स्पर्श) तुम्हारा नहीं है... आँख के संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

कान तुम्हारे नहीं हैं (इसी प्रकार नाक, जीभ, स्पर्श)... मन तुम्हारा नहीं है... मन के संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह यह भी तुम्हारा नहीं है: इसे त्याग दो। जब तुम इसे त्याग दोगे, तभी तुम्हारा कल्याण और सुख होगा।

"मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें। क्या तुम सोचोगे: 'लोग हमें ले जा रहे हैं, या जला रहे हैं, या हमारे साथ जैसा चाहें वैसा कर रहे हैं'?"

"नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवरवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारा विषय है।"

भिक्षुओं, आँख भी तुम्हारी नहीं है... (इसी प्रकार इसके रूप, चेतना (विन्नान, विज्ञान), स्पर्श और संवेदना भी)... मन के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) भी तुम्हारी नहीं है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। वह भी तुम्हारी नहीं है: उसका त्याग कर दो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो यही तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

---

102. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें उपमा नहीं है।)

---

103. उद्दका
भिक्षुओं, उद्दक रामपुत्त यह घोषणा किया करते थे:

"'यह, निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है;
यह, निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने निश्चय ही उस ट्यूमर की जड़
काटी है जो पहले कभी नहीं काटी गई!' 86 "भिक्षुओं, यद्यपि उद्दक रामपुत्त स्वयं ज्ञान का स्वामी नहीं थे, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैं ज्ञान का स्वामी हूँ।' यद्यपि वे स्वयं सर्वविजयी नहीं थे, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैं सर्वविजयी हूँ।' यद्यपि उन्होंने ट्यूमर की जड़ नहीं काटी थी, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैंने ट्यूमर की जड़ काटी है।' परन्तु यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही ढंग से कह सकता है: "'यह, निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है; यह, निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने निश्चय ही उस ट्यूमर की जड़ काटी है जो पहले कभी नहीं काटी गई!'" और हे भिक्षुओं, ज्ञान का स्वामी कैसे बनता है? जब कोई भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय वस्तु से संपर्क;

फस्सा/स्पर्श) के संबंध में उत्पत्ति, अपन, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के सत्य को यथावत समझ लेता है, तब वह भिक्षु ज्ञान का स्वामी होता है। और हे भिक्षुओं, कोई भिक्षु विश्व विजेता कैसे बनता है? जब कोई भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में उत्पत्ति, अपन, सांसारिक भोग, खतरे और उससे बचने के सत्य को यथावत समझ लेता है और अनासक्ति के द्वारा मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब वह भिक्षु विश्व विजेता बनता है। और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु उस ट्यूमर की जड़ को कैसे निकालता है जिसे पहले नहीं काटा गया था? 'ट्यूमर', हे भिक्षुओं: यह उस शरीर का नाम है जो चार महान तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न होता है, चावल और दलिया से निर्मित होता है, अनित्यता (अनिच्च संस्कृत: अनित्य) के अधीन है, रगड़ने और दबाने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है। 87 'ट्यूमर की जड़': यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का नाम है। जब एक भिक्षु तृष्णा का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, ताड़ के ठूंठ की तरह बना देता है, मिटा देता है ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो, ऐसे में भिक्षु ने उस ट्यूमर की जड़ को काट दिया है जिसे पहले नहीं काटा गया था। "भिक्षुओं, यद्यपि उद्दक रामपुत्त स्वयं ज्ञान-गुरु नहीं थे, उन्होंने घोषणा की: 'मैं ज्ञान-गुरु हूँ।'... लेकिन यहाँ, हे भिक्षुओं, एक सही अर्थ में बोलने वाला भिक्षु शायद कहेगा: "'यह तो निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है; यह तो निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने तो उस ट्यूमर की जड़ काट दी है जिसे पहले कभी नहीं काटा गया था!'"

(i) तीसरा भाग 3. तीसरा पचास - बंधन से मुक्ति (योगक्खेमिवग्गो संस्कृत: योगक्षेमी-वर्ग)
104. बंधन से मुक्त (योगक्षेमी संस्कृत: योगक्षेमी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले व्यक्ति के विषय पर धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा। 88 इसे सुनो...

"और हे भिक्षुओं, बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले व्यक्ति के विषय पर धर्म की व्याख्या क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे रूप हैं जो आँखों से दिखाई देते हैं, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, जड़ से काट दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। वे इनके त्याग के लिए प्रयास करने की घोषणा करते हैं। इसलिए तथागत को बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाला कहा जाता है।" 89

"हे भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं..., कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। तथागत ने इन सबका त्याग कर जड़ से काट दिया है, इन्हें ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर दिया है, ताकि भविष्य में इनका पुनरागमन न हो। वे इनके त्याग के लिए प्रयास करने की घोषणा करते हैं। इसलिए तथागत को बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाला कहा जाता है। हे

भिक्षुओं, यह बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले विषय पर धम्म की व्याख्या है।"

---

105. आसक्ति (उपादय) द्वारा
भिक्षुओं, जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसके आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं? 90

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो आँख से चिपके रहने से सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। जब कान होता है... मन होता है, तो मन से चिपके रहने से सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

" "भिक्षुओं, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?"

"आदरणीय महोदय।"

"अस्थायी से दुख आता है या सुख?"

"दुख आता है।"

"परन्तु, जो अस्थायी, दुखदायी और

परिवर्तनशील है, उससे चिपके बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन)... मन स्थायी है या अस्थायी?...परन्तु, जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे चिपके बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख (मन) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

106. दुख का उद्‌गम (दुक्खसमुदय)
(पिछले 105 के समान)

---

107. विश्व की उत्पत्ति (लोकसमुदाय)
(पिछले 105 के समान)

---

108. मैं सुपीरियर हूं (सेयोहामास्मि)
भिक्षुओं, जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो किस चीज से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किस चीज का पालन करने से, क्या यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'?

आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...

"भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो आँख से आसक्ति रखने से, आँख का पालन करने से, यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'। जब कान होते हैं... जब मन होता है, तो मन से आसक्ति रखने से, मन का पालन करने से, यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'।"

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? आँख... मन स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या यह विचार आ सकता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'" [89]

---

109. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीय)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बंधनकारी धर्मों और बंधन के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो... 92

"और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधनकारी हैं, और बंधन क्या है? हे भिक्षुओं, आँख एक धर्म है जो बंधनकारी है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) वहाँ बंधन है। कान एक धर्म है जो बंधनकारी है... मन एक धर्म है जो बंधनकारी है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) वहाँ बंधन है। इन्हें बंधनकारी धर्म कहा जाता है, और इसे बंधन।"

---

110. Clinging Causing (Upadaniya)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जिनसे आसक्ति रखी जा सकती है और आसक्ति (उपदान, संस्कृत: आसक्ति)। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिनसे आसक्ति रखी जा सकती है, और आसक्ति क्या है? भिक्षुओं, आँख एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। कान एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है... मन एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। इन्हें ही आसक्ति रखने योग्य धर्म कहते हैं, और इसे ही आसक्ति कहते हैं।

---

111. आंतरिक भाग को पूरी तरह समझना (1) (अज्जत्तिकायतनपरिजनन)
भिक्षुओं, आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश नहीं किया जा सकता। कान को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... मन को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश नहीं किया जा सकता। परन्तु आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... मन के प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश किया जा सकता है।

---

112. बाह्य को पूर्णतः समझना (2) (बहिरयातनपरिजनन)
(यह 111 के समान है, लेकिन इसे छह बाह्य इंद्रिय-संवेदनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है।)

---

113. सुनना (उपासुति)
(107 के समान)

(ii) तीसरा भाग - लोकमगुनवग्गो (लोकमगुनवग्गो)
114. मारा का फंदा (1) (मारपासा1)
भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो वह शैतान के जाल में फँसा हुआ भिक्षु कहलाता है; वह शैतान के बंधन में आ जाता है और शैतान उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए) और मन से अनुभव होने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है... तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

"भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जिसने मारा के जाल में प्रवेश नहीं किया है, जो मारा के वश में नहीं आया है; मारा का फंदा उससे खुल गया है, इसलिए वह मारा के बंधन से मुक्त है और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकता।

"भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)।" मन द्वारा अनुभव की जाने वाली वे मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता है... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता।

---

115. मारा का फंदा (2) (मारपासा2)
भिक्षुओं, ऐसी आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो वह आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियों में बंधा हुआ भिक्षु कहलाता है, जो शैतान के जाल में फँस गया है, जो शैतान के वश में आ गया है; [उस पर शैतान का फंदा लगा दिया गया है जिससे वह शैतान के बंधन में बँधा हुआ है] 95 और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

भिक्षुओं, ऐसी ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... ऐसी मानसिक घटनाएँ हैं जो मन से सुनी जा सकती हैं, जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की तलाश करता है... तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे आसक्त नहीं रहता, तो वह आँखों से दिखाई देने वाले रूपों में मुक्त भिक्षु कहलाता है, जो मार के जाल में नहीं फंसा है, जो मार के वश में नहीं आया है; [मारा का फंदा उससे खुल गया है, इसलिए वह मार के बंधन से मुक्त है] और राक्षस उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार नहीं कर सकता।

हे भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से दिखाई देने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) नहीं खोजता है... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार कुछ नहीं कर सकता।

---

116. लोकांतगमना (लोकांतगमना)
"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत को न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा करके वहाँ पहुँचा जा सकता है। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं हो सकता।" 96

यह कहकर भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए। 97 फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं ने सोचा, "हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने अपने आसन से उठकर अपने निवास में प्रवेश कर लिया है, संक्षेप में सारांश सुनाकर, उसका विस्तृत अर्थ नहीं समझाया है। अब भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए सारांश का विस्तृत अर्थ कौन समझाएगा?" तब उन्होंने विचार किया, "पूजनीय आनंद की स्तुति गुरु द्वारा की जाती है और ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने वाले उनके ज्ञानी भाई उन्हें सम्मान देते हैं; पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए इस सारांश का विस्तृत अर्थ बताए बिना ही उसका विस्तृत अर्थ समझाने में सक्षम हैं। आइए हम उनके पास जाकर इसका अर्थ पूछें।"

तब वे भिक्षु पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उन्हें सारी बात बताई, और कहा, "पूज्य आनंद हमें इसका अर्थ समझाएँ।"

[आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया:] "मित्रों, ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति जिसे सार तत्व की आवश्यकता हो, उसकी खोज में भटकता रहे और सार तत्व से युक्त विशाल वृक्ष की जड़ और तने को अनदेखा कर दे, यह सोचकर कि सार तत्व शाखाओं और पत्तों में ढूँढा जाना चाहिए। ठीक यही बात आप आदरणीय व्यक्तियों के साथ भी है: जब आप गुरु के सामने थे, तब आप भगवान (बुद्ध) के पास से यह सोचकर गुजरे कि मुझे अर्थ के बारे में पूछना चाहिए। क्योंकि, मित्रों, जानने पर भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखने पर वे देखते हैं; वे दृष्टि बन गए हैं, वे ज्ञान बन गए हैं, वे धर्म बन गए हैं, वे पवित्र बन गए हैं; वे व्याख्याकार, उद्घोषक, अर्थ के स्पष्टीकरणकर्ता, अमरता (निर्वाण) के दाता, धर्म (मार्ग, नियम) के स्वामी, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको भगवान (बुद्ध) से अर्थ पूछना चाहिए था। [95] जैसा उन्होंने आपको समझाया, वैसा ही आपको याद रखना चाहिए था।"

"हे मित्र आनंद, निश्चय ही भगवान (बुद्ध) जानते हैं, देखते हैं, वे स्वयं दृष्टि बन गए हैं... तथागत। यही वह समय था जब हमें भगवान (बुद्ध) से अर्थ पूछना चाहिए था, और जैसा उन्होंने हमें समझाया था, वैसे ही हमें उसे याद रखना चाहिए था। फिर भी, आदरणीय आनंद की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और ब्रह्मचर्य जीवन में उनके ज्ञानी भाइयों द्वारा उनका सम्मान किया जाता है; आदरणीय आनंद भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए इस सारांश का विस्तृत अर्थ बिना विस्तृत व्याख्या किए ही समझाने में सक्षम हैं। आदरणीय आनंद बिना किसी कठिनाई के इसकी व्याख्या करें।" "

तो सुनो, मित्रों, और जो मैं कहूँ उस पर ध्यान दो।"

"जी, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। आदरणीय आनंद ने यह कहा:

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश करने से पहले, संक्षेप में एक सारांश सुनाते हुए, बिना विस्तृत अर्थ बताए, अर्थात्: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जगत के अंत को न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा द्वारा पहुँचा जा सकता है। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि जगत के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं हो सकता', तो मैं

इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ: जिस जगत के द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है - उसे ही श्रेष्ठ साधक की साधना में जगत कहा जाता है। 98 और मित्रों, जगत में वह क्या है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है? आँख वह है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है। 99 कान... नाक... जीभ... शरीर... मन वह है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है। जिस संसार में मनुष्य संसार को देखता है, संसार की कल्पना करता है, उसे ही श्रेष्ठ साधक की साधना में संसार कहा जाता है।

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश करने से पहले, संक्षेप में एक सारांश सुनाते हुए, उसका विस्तृत अर्थ बताए बिना, अपने निवास में प्रवेश किया, अर्थात्: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत को यात्रा द्वारा जाना, देखा या पहुँचा नहीं जा सकता। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं होता,' मैं इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ। अब, मित्रों, यदि आप चाहें, तो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें।" "जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें समझाया है, उसी प्रकार तुम्हें इसे याद रखना चाहिए।"

"जी हां, मित्रों," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और अपने स्थानों से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को उनके जाने के बाद घटी सारी बातें बताईं, और आगे कहा: [97] "फिर, आदरणीय, हम आदरणीय आनंद के पास गए और उनसे इसका अर्थ पूछा। आदरणीय आनंद ने हमें इसका अर्थ इन शब्दों में, इन वाक्यांशों में समझाया।"

"आनंद बुद्धिमान हैं, भिक्षुओं, आनंद को महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त है। यदि तुमने मुझसे इसका अर्थ पूछा होता, तो मैं तुम्हें उसी प्रकार समझाता जिस प्रकार आनंद ने समझाया है। इसका यही अर्थ है, और इसलिए तुम्हें इसे याद रखना चाहिए।"

---

117. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)

भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'मेरा मन अक्सर उन पाँच इंद्रिय सुखों की ओर भटकता है जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, 100 परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं, या उन इंद्रिय सुखों की ओर जो वर्तमान में हैं, या थोड़ा-बहुत भविष्य में आने वाले हैं।' तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, 101 मुझे उन पाँच इंद्रिय सुखों के संबंध में सतर्कता (अपमादा), ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं।'

इसलिए, भिक्षुओं, आपके मामले में भी आपका मन अक्सर उन पाँच इंद्रिय सुखों की ओर भटकता है जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं, या उन इंद्रिय सुखों की ओर जो वर्तमान में हैं, या थोड़ा-बहुत भविष्य में आने वाले हैं। अतः, भिक्षुओं, अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उन पाँच इंद्रिय सुखों के संबंध में सतर्कता, ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करें, जिन्होंने हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ दिया है, परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और परिवर्तित हो चुके हैं।

“अतः, भिक्षुओं, उस शक्ति को समझना चाहिए, 102 जहाँ आँख काम करना बंद कर देती है और रूपों की अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) लुप्त हो जाती है। 103 उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ कान काम करना बंद कर देते हैं और ध्वनियों की अनुभूति लुप्त हो जाती है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ मन काम करना बंद कर देता है और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति लुप्त हो जाती है। उस शक्ति को समझना चाहिए।”

यह कहकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए। फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं ने विचार किया ... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे भी): ... पूज्य आनंद ने यह कहा:

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने संक्षेप में एक सारांश सुनाया, बिना उसका विस्तृत अर्थ बताए - अर्थात्: 'इसलिए, भिक्षुओं, उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ आँख काम करना बंद कर देती है और रूपों का बोध लुप्त हो जाता है... उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ मन काम करना बंद कर देता है और मानसिक घटनाओं (धम्म) का बोध लुप्त हो जाता है। उस शक्ति को समझना चाहिए' - मैं इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ: यह बात भगवान (बुद्ध) ने कही थी, मित्रों, छह इंद्रियों के निरोध (निरोध) के संदर्भ में। 104

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने संक्षेप में एक सारांश सुनाया, बिना उसका विस्तृत अर्थ बताए ... मैं समझता हूँ इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार है। अब, मित्रों, यदि आप चाहें, तो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें। जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) आपको इसका अर्थ समझाएँ, उसी प्रकार इसे याद रखें।

“जी हां, मित्रों,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और अपनी सीटों से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को उनके जाने के बाद घटी सारी बातें बताईं, और आगे कहा: “फिर, आदरणीय, हम आदरणीय आनंद के पास गए और उनसे इसका अर्थ पूछा। आदरणीय आनंद ने हमें इसका अर्थ इन शब्दों में, इन वाक्यांशों में समझाया।”

“आनंद बुद्धिमान हैं, भिक्षुओं, आनंद को गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त है। यदि आप मुझसे इसका अर्थ पूछते, तो मैं भी आपको उसी प्रकार समझाता जिस प्रकार आनंद ने समझाया है। इसका यही अर्थ है, और इसलिए आपको इसे याद रखना चाहिए।”

---

118. सक्का का प्रश्न (सक्कपन्हा सं. शक्र-प्रश्न)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा:

"हे आदरणीय महोदय, इसका क्या कारण है कि यहाँ कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते? और इसका क्या कारण है कि यहाँ कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं?"

हे देवों, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर हो जाती है और उनसे चिपक जाती है। आसक्ति से ग्रस्त भिक्षु निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता। 105

हे देवों, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से सुनाई देने वाली ऐसी मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर हो जाती है और उनसे चिपक जाती है। आसक्ति रखने वाला भिक्षु निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता।

हे देवों, यही कारण है कि कुछ प्राणी इस जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते। हे

देवों, यहाँ ऐसी आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। मन द्वारा देखी जाने वाली ऐसी मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं जो वांछनीय, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं खोजता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे आसक्त नहीं रहता, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर नहीं होती या उनसे आसक्त नहीं होती। आसक्ति रहित भिक्षु निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

हे देवों, यही कारण है कि कुछ प्राणी इस जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

---

119. Pancasikha
(वही स्थिति है, सिवाय इसके कि वार्ताकार गंधर्बों का पुत्र पंचसिखा है।) 106

---

120. सारिपुत्त
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तभी एक भिक्षु उनके पास आए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा,

"मित्र सारिपुत्त, मेरे साथ निवास करने वाले एक भिक्षु ने साधना त्याग कर सांसारिक जीवन में लौट गए हैं।"

"तो, मित्र, जब कोई इंद्रियों के द्वारों की रक्षा नहीं करता, अत्यधिक भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित नहीं होता, तब ऐसा संभव है। यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा नहीं करता, अत्यधिक भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित नहीं है, वह जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे। परन्तु, मित्र, यह संभव है कि कोई भिक्षु जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, संयमित भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित है, वह जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे।

" "और, मित्र, कोई इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता।" 107 क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह दृष्टि को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, दृष्टि की रक्षा करता है, दृष्टि को नियंत्रित करने का उपाय करता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद का अनुभव करके... शरीर से स्पर्शित वस्तु को महसूस करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह दृष्टि को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, दृष्टि की रक्षा करता है, दृष्टि को नियंत्रित करने का उपाय करता है। हे मित्र, इसी प्रकार इंद्रियों के द्वारों की रक्षा की जाती है।

"और हे मित्र, संयमपूर्वक भोजन कैसे किया जाता है? यहाँ, ध्यानपूर्वक (सावधानीपूर्वक), एक भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण और देखभाल के लिए, असुविधा को दूर करने के लिए, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) में सहायता करने के लिए भोजन ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि: इस प्रकार मैं पुरानी संवेदना (वेदना) को समाप्त करूँगा और नई संवेदना (वेदना) को उत्पन्न नहीं होने दूँगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।" 108 हे मित्र, इसी प्रकार संयमपूर्वक भोजन किया जाता है।

और हे मित्र, जागृति के प्रति समर्पित कैसे हुआ जाता है? यहाँ, दिन के समय, चलते-फिरते और बैठते हुए, भिक्षु अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में, वह उठने का विचार मन में रखते हुए, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करता है। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। हे मित्र, इसी प्रकार जागृति के प्रति समर्पित हुआ जाता है।

अतः, हे मित्र, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करेंगे; हम भोजन में संयम बरतेंगे; हम जागृति के प्रति समर्पित रहेंगे।' इस प्रकार, हे मित्र, तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

121. राहुला (राहुलोवाडा) को निर्देश

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 109 तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, उनके मन में यह विचार आया:
“राहुल में मुक्ति की अवस्थाएँ (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) परिपक्व हो चुकी हैं। मैं उसे विकारों के नाश (खय/क्षय) की ओर आगे ले जाऊँ।” 110

तब, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने चले गए। भिक्षा मांगने के बाद भोजन करने पर उन्होंने पूज्य राहुल को संबोधित करते हुए कहा: “हे राहुल, एक आसन लो। चलो आज के लिए अंधवन (अंधों के वन) में चलें।”

"जी, पूज्यवर," पूज्य राहुल ने उत्तर दिया और बैठने के लिए एक कपड़ा लेकर भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे चलने लगे।

उस अवसर पर हजारों देवता (देवदूत) भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे यह सोचकर चल रहे थे: "आज भगवान (बुद्ध) पूज्य राहुल को विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर आगे ले जाएंगे।" 111 तब भगवान (बुद्ध) अंधवन में उतरे और एक वृक्ष के नीचे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। पूज्य राहुल ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"राहुल, तुम क्या सोचते हो, आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अनस्थायी, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार मानना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या रूप स्थायी होते हैं या अस्थायी?" क्या नेत्र-चेतना... क्या नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; फस्सा/स्पर्श)... क्या संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा संस्कृत), संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-स्थिति) और चेतना (विन्नाना संस्कृत, विज्ञान) में शामिल कोई भी चीज जो

नेत्र-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है, स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" (शेष भाग पिछले अनुच्छेद के समान है।)

"क्या कान... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन स्थायी है या अस्थायी?... क्या मानसिक घटनाएँ (धम्म)... क्या मन-चेतना... क्या मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श)... क्या संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (व्यवहार-स्थिति) और चेतना में शामिल कोई भी चीज जो मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है, स्थायी है या अस्थायी? क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" - "क्षणभंगुर क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं।" आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर, राहुल, जो एक विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य हैं, आँख के प्रति घृणा (निब्बिदा), रूपों के प्रति घृणा, आँख-चेतना के प्रति घृणा, आँख-संपर्क के प्रति घृणा (फस्सा/स्पर्श); संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) और आँख-संपर्क से उत्पन्न चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं। वे कान के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं... मन के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं... संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-निर्धारण) और मन-संपर्क से उत्पन्न चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं। घृणा

का अनुभव करते हुए, वे वैराग्य हो जाते हैं। वैराग्य के माध्यम से उनका मन मुक्त हो जाता है (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त)। जब मन मुक्त हो जाता है, तब उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" वह समझ गए:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न होकर पूज्य राहुल प्रसन्न हुए। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब अनासक्ति के कारण पूज्य राहुल का मन विकारों से मुक्त हो गया, और उन हजारों देवताओं (देवदूतों) में धम्म का निर्मल, निष्कलंक दर्शन प्रकट हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।" 112

---

122. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीयधम्म)
(109 के समान, लेकिन छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से।)

---

123. चिपकने वाला कारण (उपदानियधम्म)
(110 के समान, लेकिन छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से।)

(iii) तीसरा भाग - गृहस्थ (गृहपति, गृहपति का उपसंहार)
124. वेसाली में
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब वैशाली के गृहस्थ उगा भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा... 113

(प्रश्न और उत्तर बिल्कुल वही हैं जो 118 में हैं।)

---

125. वज्जियों के बीच
एक बार भगवान (बुद्ध)
हत्थिगमा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। तब हत्थिगमा के गृहस्थ उगा ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे कहा... 114
8 (जैसा कि 118 में है।)

---

126. नालंदा में
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ उपली भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा... 115
(जैसा कि 118 में है।)

---

127. भारद्वाज

एक बार पूज्य पिंडोला भारद्वाज कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। 116 तब राजा उदेना पूज्य पिंडोला भारद्वाज के पास गए और उनसे अभिवादन किया। 117 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे गुरु भारद्वाज, इसका कारण क्या है कि ये युवा भिक्षु, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वांगीण काल में, जिन्होंने इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं हुए हैं, अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?” 118

"हे महाराज, सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: 'हे भिक्षुओं, अपनी माता के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी माता हैं; 119 अपनी बहनों के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी बहनें हैं; अपनी पुत्रियों के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी पुत्रियाँ हैं।' हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं।"

"मन अनियंत्रित है, हे भरद्वाज गुरु। कभी-कभी माता के समान वृद्ध स्त्रियों के प्रति भी राग भाव उत्पन्न हो जाते हैं; कभी बहन के समान वृद्ध स्त्रियों के प्रति; कभी पुत्री के समान युवा स्त्रियों के प्रति। क्या इसके अतिरिक्त कोई और कारण है कि ये युवा भिक्षु जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?"

"हे महाराज, सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: 'हे भिक्षुओं, पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे इस शरीर का अवलोकन करो, जो अनेक प्रकार की अशुद्धियों से भरा है: 120 "इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मेसेंटरी, पेट की सामग्री, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।" हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं।

"यह तो आसान है, हे भरद्वाज गुरु, उन भिक्षुओं के लिए जो शरीर से विकसित हैं, सद्‌गुणों (शील) से विकसित हैं, मन से विकसित हैं और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से विकसित हैं। परन्तु उन भिक्षुओं के लिए कठिन है जो शरीर से अविकसित हैं, सद्‌गुणों से अविकसित हैं, मन से अविकसित हैं और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से अविकसित हैं। कभी-कभी, यद्यपि कोई सोचता है, 'मैं शरीर को गंदा मानकर उसकी देखभाल करूँगा,' फिर भी वह उसे सुंदर देखता है। क्या इसके अलावा कोई और कारण है कि ये युवा भिक्षु ... अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?"

हे महाराज, सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: “भिक्षुओं, अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए निवास करो। किसी रूप को आँख से देखकर उसके निमित्त और विशेषताओं को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम आँख को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसके संयम का अभ्यास करो, आँख की रक्षा करो, आँख को संयमित करो। कान से कोई ध्वनि सुनकर... नाक से कोई गंध सूंघकर... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, उसके निमित्त और विशेषताओं को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम मन को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं।” लोभ और अप्रसन्नता तुम पर हावी न हो, इसलिए इसके संयम का अभ्यास करो, मन की शक्ति की रक्षा करो, मन के संयम का अभ्यास करो।' हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु ... अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और इसे निरंतर बनाए रखते हैं।

"यह अद्‌भुत है, हे भरद्वाज गुरु! यह आश्चर्यजनक है, हे भरद्वाज गुरु! सर्वज्ञ और प्रत्यक्ष भगवान (बुद्ध), जो अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, उन्होंने इसे कितनी खूबसूरती से कहा है। यही कारण है कि ये युवा भिक्षु, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से परिपूर्ण, जीवन के सर्वोपरि, जिन्होंने इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं हुए हैं, अपने पूरे जीवन में पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं। मेरे मामले में भी, जब मैं शरीर, वाणी और मन से असुरक्षित होकर, ध्यान स्थापित किए बिना, इंद्रियों पर संयम रखे बिना अपने हरम में प्रवेश करता हूँ, तो उस समय कामवासना मुझ पर अत्यधिक हावी हो जाती है। परन्तु जब मैं शरीर, वाणी और मन से सावधान होकर, ध्यान स्थापित करके, इंद्रियों पर संयम रखकर अपने हरम में प्रवेश करता हूँ, तो उस समय कामवासना मुझ पर इस प्रकार हावी नहीं होती।"

हे महानुभाव, भरद्वाज स्वामी! हे महानुभाव, भरद्वाज स्वामी! भरद्वाज स्वामी ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग, नियम) को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। हे महानुभाव, मैं भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से हे महानुभाव, मुझे जीवन भर के लिए शरण में आए हुए गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

---

128. सोना
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ का पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास आया... और उनसे कहा

(जैसा कि 118 में है)।

---

129. घोसिता
एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ घोषिता पूज्य आनंद के पास आए और उनसे कहा: "पूज्य आनंद, ऐसा कहा जाता है, 'तत्वों की विविधता (धातु), तत्वों की विविधता।' 122 हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?"

गृहस्थ, नेत्र तत्व विद्यमान है, और सुखदायक रूप, और नेत्र चेतना: किसी वस्तु के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। 123 नेत्र तत्व विद्यमान है, और अप्रिय रूप, और नेत्र चेतना: किसी पीड़ादायक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र तत्व विद्यमान है, और समता का आधार (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) रूप, और नेत्र चेतना: किसी पीड़ादायक या सुखदायक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, न पीड़ादायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है।

गृहस्थ, कान तत्व ... नाक तत्व ... जीभ तत्व ... शरीर तत्व ... मन तत्व, और सुखदायक मानसिक घटनाएँ (धम्म), और मन चेतना: पर निर्भर करते हुए सुखद अनुभव होने पर सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व, अप्रिय मानसिक घटनाएँ और मन-चेतना विद्यमान हैं: कष्टदायक अनुभव होने पर कष्टदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व, समभाव का आधार बनने वाली मानसिक घटनाएँ और मन-चेतना विद्यमान हैं: न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभव होने पर न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है।

"हे गृहस्थ, इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किया है।"

---

130. हलिद्दाकानी
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुराराघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए और उनसे कहा: 124

“पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: 'धातुओं की विविधता के कारण इंद्रियों के साथ विभिन्न संपर्क उत्पन्न होते हैं; इन संपर्कों की विविधता के कारण वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है।' 125 यह कैसे संभव है, पूज्यवर?”

“हे गृहस्थ, किसी रूप को देखकर एक भिक्षु उसे इस प्रकार समझता है: 'यह ऐसा है!'” 126 नेत्र चेतना होती है, और किसी वस्तु के संपर्क (संवेदना का स्पर्श) से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। 127 फिर, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु अप्रिय रूप को इस प्रकार समझता है: 'ऐसा ही है!' नेत्र चेतना होती है, और किसी पीड़ादायक संपर्क (संवेदना) से पीड़ादायक अनुभूति उत्पन्न होती है। फिर, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु समभाव का आधार (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) को इस प्रकार समझता है:
'ऐसा ही है!' नेत्र-चेतना होती है, और किसी ऐसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, जिसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभव किया जाता है, एक ऐसी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है जो न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक होती है।

"इसके अलावा, गृहस्थ, कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी स्पर्शित वस्तु को महसूस करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, एक भिक्षु सुखद घटना को इस प्रकार समझता है... [116] ... अप्रिय घटना को इस प्रकार... समभाव का आधार बनने वाली घटना को इस प्रकार:

'ऐसा ही है!' मन-चेतना होती है, और किसी ऐसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, जिसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभव किया जाता है, एक ऐसी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है जो न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक होती है।

"हे गृहस्थ, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है, और संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

131. नकुलपिता
एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन (मिगदाये) में, सुमसुमारागिरा में भग्गों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ नकुलपिता भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा... 128
(जैसा कि 118 में है।)

---

132. लोहिक्का
एक बार पूज्य महाकच्चना अवंती के लोगों के बीच मकरकटा में एक वन कुटिया में रह रहे थे। तभी ब्राह्मण लोहिच्च के कुछ शिष्य, जो ब्राह्मण थे, लकड़ियाँ इकट्ठा करते हुए पूज्य महाकच्चना की कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे कुटिया के चारों ओर पैर पटकने और शोर मचाने लगे, और शोर-शराबा करते हुए तरह-तरह की शरारतें करने लगे। 129 वे कहने लगे: “भगवान के चरणों की ये मुंडे हुए तपस्वी, दास, सांवली संतानें अपने दास भक्तों द्वारा आदरणीय, पूजनीय, सम्मानित और सम्मानित हैं।” 130

तब पूज्य महाकच्चना अपनी कुटिया से बाहर आए और उन ब्राह्मण युवकों से कहा: “शोर मत करो, बालकों। मैं तुम्हें धर्म (मार्ग, नियम) के बारे में बताऊंगा।” यह सुनकर वे युवक चुप हो गए। तब पूज्य महाकच्चना ने उन युवकों को श्लोकों से संबोधित करते हुए कहा:

“प्राचीन काल के वे पुरुष जो सद्गुणों में श्रेष्ठ थे।
वे ब्राह्मण जिन्होंने प्राचीन नियमों का स्मरण किया।
उनके इंद्रिय द्वार सुरक्षित और संरक्षित थे। उन्होंने
भीतर के क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी।

वे धम्म और ध्यान में आनंदित रहते थे।
वे ब्राह्मण जिन्होंने प्राचीन नियमों का स्मरण किया।
परन्तु ये लोग ‘हम पाठ करते हैं’ का दावा करते हुए पतित हो गए हैं।
कुल के अहंकार से व्याकुल होकर अधार्मिक जीवन जी रहे हैं।

क्रोध से अभिभूत होकर विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित होकर
वे दुर्बल और दृढ़ दोनों का उत्पीड़न करते हैं।”
"जिसके इंद्रिय द्वार असुरक्षित हों
, उसके द्वारा लिए गए सभी व्रत व्यर्थ हैं,
ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति स्वप्न में धन प्राप्त करता है: [118]

उपवास और जमीन पर सोना।
भोर में स्नान करना, तीनों वेदों का अध्ययन,
खुरदरी खाल, उलझे बाल और मैल; भजन, नियम और व्रत, तपस्या।
पाखंड, झुकी हुई लाठी, स्नान;

ये ब्राह्मणों के प्रतीक हैं; इनका उपयोग वे अपने सांसारिक लाभ को बढ़ाने के लिए करते हैं। 132
"एक मन जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से स्थिर हो; निर्मल और दोषरहित।
सभी सजीव प्राणियों के प्रति कोमल; "यही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने का मार्ग है।"

तब वे ब्राह्मण युवक क्रोधित और असंतुष्ट होकर ब्राह्मण लोहिच्च के पास गए और उनसे कहा, "देखिए, महोदय, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी महाकच्चन ब्राह्मणों के भजनों का घोर अपमान और तिरस्कार करते हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण लोहिच्च क्रोधित और असंतुष्ट हुए। लेकिन फिर उनके मन में विचार आया: "केवल इन युवकों से सुनी बातों के आधार पर तपस्वी महाकच्चन को अपशब्द कहना उचित नहीं है। मुझे उनसे जाकर पूछताछ करनी चाहिए।"

तब ब्राह्मण लोहिच्चा, उन ब्राह्मण युवकों के साथ, पूज्य महाकच्चना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकच्चना को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “गुरु कच्चना, क्या मेरे कुछ शिष्य ब्राह्मण युवक लकड़ियाँ इकट्ठा करते हुए इधर आए थे?”

“जी हाँ, ब्राह्मण।”

“क्या गुरु कच्चना ने उनसे कोई बातचीत की?”

“हाँ, मैंने उनसे बातचीत की।”

“गुरु कच्चना, आपने उनसे किस प्रकार की बातचीत की?”

“उन युवकों से मेरी बातचीत इस प्रकार हुई:

‘प्राचीन काल के वे पुरुष जो शील में श्रेष्ठ थे।
वे ब्राह्मण जो प्राचीन नियमों का स्मरण करते थे, ...
(पहले जैसा ही) ...
सभी प्राणियों के प्रति कोमल; यही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने का मार्ग है। ’

उन युवकों से मेरी ऐसी ही बातचीत हुई।”

गुरु कच्चना ने कहा, ‘इंद्रियों को खुला छोड़कर।’ किस प्रकार से, गुरु कच्चाना, क्या कोई 'इंद्रियों के द्वार असुरक्षित' होता है? "

यहाँ, हे ब्राह्मण, किसी रूप को आँख से देखकर, कोई व्यक्ति मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। 133 वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, जैसा वह वास्तव में है, नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, कोई व्यक्ति मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना रहता है... बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, इसी प्रकार कोई व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वार असुरक्षित' होता है।" "

यह अद्भुत है, गुरु कच्चाना! यह आश्चर्यजनक है।" गुरु कच्चाना! गुरु कच्चाना ने तो ऐसे व्यक्ति को 'इंद्रियों से असुरक्षित' घोषित कर दिया है जिसके इंद्रिय द्वार वास्तव में असुरक्षित हैं! लेकिन गुरु कच्चाना ने तो 'इंद्रियों से सुरक्षित' भी कहा था। किस अर्थ में, गुरु कच्चाना, 'इंद्रियों से सुरक्षित' कोई व्यक्ति होता है?

हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति किसी रूप को आँख से देखता है, तो वह न तो किसी मनभावन रूप पर मोहित होता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, जैसा वह वास्तव में है, समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर मोहित होता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विचलित होता है। वह शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है... बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, इसी प्रकार व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वारों को सुरक्षित' रखता है।

यह अद्भुत है। गुरु कच्चाना! यह आश्चर्यजनक है। गुरु कच्चाना! गुरु कच्चाना ने कैसे कहा है कि जिसके इंद्रियों के द्वार वास्तव में सुरक्षित हैं, वह 'इंद्रियों के द्वारों को सुरक्षित' रखने वाला है! महान, गुरु कच्चाना! महान, गुरु कच्चाना! धम्म को मास्टर कच्चना ने

अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है... (जैसा कि 127 में है)... आज से मास्टर कच्चना मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।

"मास्टर कच्चना लोहिच्च परिवार के पास उसी प्रकार जाएँ जैसे वे मकरकाटा में गृहस्थ अनुयायियों के परिवारों के पास जाते हैं। वहाँ के ब्राह्मण युवक और युवतियाँ मास्टर कच्चना को प्रणाम करेंगे, उनके सम्मान में खड़े होंगे, उन्हें आसन और जल अर्पित करेंगे, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

---

133. वेराहाकानी

एक बार पूज्य उदय्य ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में कमंडा में रह रहे थे। तभी वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के शिष्य एक ब्राह्मण युवक ने पूज्य उदय्य के पास आकर उन्हें प्रणाम किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और पूज्य उदय्य ने उसे धर्मोपदेश देकर प्रेरित किया और प्रसन्न किया। धर्मोपदेश से प्रेरित और प्रसन्न होकर वह ब्राह्मण युवक अपनी सीट से उठा, वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के पास गया और उनसे कहा, "देखिए, महोदया, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी उदय्य एक ऐसे धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं।"

“तो फिर, हे युवक, मेरी ओर से तपस्वी उदयी को कल के भोजन के लिए आमंत्रित कर।”

“जी महोदया,” युवक ने उत्तर दिया। फिर वह पूज्य उदयी के पास गया और उनसे कहा: “कृपा करके गुरु उदयी से निवेदन करें कि वे हमारे आदरणीय गुरु, वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के हाथों से कल का भोजन ग्रहण करें।”

पूज्य उदयी ने मौन रहकर सहमति दे दी। फिर, जब रात्रि बीत गई, तो सुबह पूज्य उदयी ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लिया और वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के निवास पर गए। वहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। फिर, ब्राह्मण महिला ने अपने हाथों से पूज्य उदयी को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब पूज्य उदयी ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कुंड रख दिया, तब ब्राह्मण महिला ने अपनी पांव पहनीं, एक ऊंचे आसन पर बैठ गईं, अपना सिर ढँक लिया और उनसे कहा:
“हे तपस्वी, धम्म का प्रचार कीजिए।” “बहन, ऐसा करने का अवसर आएगा,” कहकर वे अपने आसन से उठे और चले गए। 136

दूसरी बार वह ब्राह्मण युवक पूज्य उदयि के पास आया... (ऊपर से नीचे तक): ... “देखिए, महोदया, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी उदयि एक ऐसे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा, मध्य में अच्छा और अंत में अच्छा है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) प्रकट करते हैं जो पूर्णतः संपूर्ण और शुद्ध है।”

“इस तरह, युवक, तुम तपस्वी उदयि की प्रशंसा करते रहते हो, लेकिन जब मैंने उनसे कहा, 'प्रवचन का प्रचार करो, तपस्वी,' तो उन्होंने कहा, 'बहन, ऐसा करने का अवसर आएगा,' और वे अपने आसन से उठे और चले गए।”

“महोदया, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि आपने अपने पदचिह्न पहने, एक ऊंचे आसन पर बैठीं, अपना सिर ढँका और उनसे कहा: 'प्रवचन का प्रचार करो, तपस्वी।' क्योंकि ये पूज्य धम्म का आदर और सम्मान करते हैं।”

"तो फिर, हे युवक, कल के भोजन के लिए मेरी ओर से तपस्वी उदय को आमंत्रित कर देना।"

"जी महोदया," उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य उदयि के पास गए... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब पूज्य उदयि ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा रख दिया, तो ब्राह्मण महिला ने अपनी चप्पलें उतार दीं, एक नीची चौकी पर बैठ गईं, अपना सिर ढकने से मुक्त किया और उनसे कहा: "पूज्यवर, अरहंतों के अनुसार सुख और दुःख के लिए क्या आवश्यक है? और अरहंतों के अनुसार सुख और दुःख के अभाव के लिए क्या आवश्यक है?"

"बहन, अरहंतों का मानना है कि जब आँख होती है तो सुख और दुःख होते हैं, और जब आँख नहीं होती तो सुख और दुःख नहीं होते। अरहंतों का मानना है कि जब कान होते हैं तो सुख और दुःख होते हैं, और जब कान नहीं होते तो सुख और दुःख नहीं होते... अरहंतों का मानना है कि जब मन होता है तो सुख और दुःख होते हैं, और जब मन नहीं होता तो सुख और दुःख नहीं होते।"

यह सुनकर वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला ने पूज्य उदयि से कहा: "महान, पूज्यवर! महान, पूज्यवर! गुरु उदयि ने अनेक विधियों से धम्म को स्पष्ट किया है... (जैसा कि 127 में है)... आज से गुरु उदयि मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

(iv) तीसरा भाग - देवदहा खंड

134. देवदहा में 137

एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम देवदहा था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (अप्पमदा) का कार्य करना है, न ही मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह कहता हूँ कि उन्हें छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (फस्सा/स्पर्श) का कार्य नहीं करना है।

मैं उन भिक्षुओं के बारे में भी नहीं कहता जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो गए हैं, कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (फस्सा/स्पर्श) का कार्य करना है। ऐसा क्यों है?" उन्होंने अपना काम सतर्कता से किया है; वे आलसी (इन पमादा) होने में असमर्थ हैं।

लेकिन मैं उन भिक्षुओं के बारे में कहता हूँ जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं, कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के प्रति सजग रहने का कार्य करना है। ऐसा क्यों है? भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले कुछ रूप सुखद होते हैं और कुछ अप्रिय। [हमें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए कि] ये बार-बार अनुभव होने पर भी मन को ग्रस्त न करें। जब मन ग्रस्त नहीं होता, तो अथक ऊर्जा (वीर्य) जागृत होती है, ध्यान की निर्मल अवस्था स्थापित होती है, शरीर शांत और निर्मल हो जाता है, मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में एकाग्र हो जाता है। सजगता के इस फल को देखकर, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं को अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के प्रति सजग रहने का कार्य करना है

। भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो सुखद और अप्रिय दोनों हैं। [हमें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए कि] ये बार-बार अनुभव होने पर भी मन को परेशान न करें। जब मन इनसे मुक्त होता है, तो अथक ऊर्जा जागृत होती है, ध्यान की अवस्था निर्मल हो जाती है, शरीर शांत और तनावमुक्त हो जाता है, मन समाधि की अवस्था में एकाग्र हो जाता है। हे भिक्षुओं, इस जागरूकता के फल को देखकर मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं को अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में जागरूकता पर काम करना बाकी है।

---

135. अवसर (खाना सं. क्षण)

भिक्षुओं, यह आपके लिए एक बड़ा लाभ है, यह आपके लिए उत्तम लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने भिक्षुओं, 'इंद्रियों का वस्तुओं से संपर्क' नामक छह प्रकार की इंद्रियों के नरक को देखा है। (च-फस-आयतनिका) 138 वहाँ आँख से देखा गया कोई भी रूप अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं। कान से सुनी गई कोई भी ध्वनि... नाक से सूंघी गई कोई भी गंध... जीभ से चखा गया कोई भी स्वाद... शरीर से स्पर्श की गई कोई भी वस्तु... मन से अनुभव की गई कोई भी मानसिक घटना अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं।

भिक्षुओं, यह आपके लिए एक बड़ा लाभ है, यह आपके लिए उत्तम लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने भिक्षुओं, उस स्वर्ग को देखा है जिसे 'छह प्रकार की इंद्रिय क्रिया' कहा जाता है। (च-फस-आयतनिका) 139 वहाँ आँखों से देखा गया कोई भी रूप वांछनीय है, कभी अवांछनीय नहीं; सुंदर है, कभी अप्रिय नहीं; सुखद है, कभी अप्रिय नहीं। कानों से सुनी गई कोई भी ध्वनि... नाक से सूंघी गई कोई भी गंध... जीभ से चखा गया कोई भी स्वाद... शरीर से स्पर्श किया गया कोई भी अनुभव... मन से जाना गया कोई भी मानसिक अनुभव वांछनीय है, कभी अवांछनीय नहीं; सुंदर है, कभी अप्रिय नहीं; सुखद है, कभी अप्रिय नहीं।

"यह आपके लिए लाभ है, भिक्षुओं, यह आपके लिए अच्छा लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है।"

---

136. फॉर्म्स1 में प्रसन्नता (रूपरमा)
भिक्षु, देव और मनुष्य रूपों में आनंदित होते हैं, रूपों में प्रसन्न होते हैं, रूपों में आनंद लेते हैं। रूपों के परिवर्तन, लुप्त होने और निरोध के साथ, देव और मनुष्य दुख में निवास करते हैं। देव और मनुष्य ध्वनियों में आनंदित होते हैं... गंधों में आनंदित होते हैं... स्वादों में आनंदित होते हैं... स्पर्शनीय वस्तुओं में आनंदित होते हैं... मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंदित होते हैं, मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद लेते हैं, मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद लेते हैं। मानसिक घटनाओं (धम्म) के परिवर्तन, लुप्त होने और लुप्त होने के साथ, देव और मनुष्य दुख में निवास करते हैं।

लेकिन, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूपों के मामले में उत्पत्ति और लुप्त होने, सांसारिक आनंद (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के तरीके को यथावत समझ चुके हैं। वे रूपों में आनंदित नहीं होते, रूपों में आनंद नहीं लेते, रूपों में आनंद नहीं लेते। रूपों के परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति के साथ तथागत आनंदपूर्वक निवास करते हैं।

"उन्होंने ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) के मामले में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख, खतरे और बचाव को यथार्थ रूप में समझ लिया है। वे मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद नहीं लेते, मानसिक घटनाओं (धम्म) में प्रसन्न नहीं होते, मानसिक घटनाओं (धम्म) में प्रसन्न नहीं होते। मानसिक घटनाओं (धम्म) के परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति के साथ तथागत आनंदपूर्वक निवास करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा: 141

"रूप, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद,
स्पर्शनीय वस्तुएँ और मन के सभी विषय
वांछनीय, प्यारे और सुखद हैं।
जब तक यह कहा जाता है: 'वे हैं।'

इन्हें सुख माना जाता है।
संसार और उसके देवताओं द्वारा;
लेकिन जहाँ ये समाप्त होते हैं,
वहाँ वे दुख मानते हैं।

"महान लोगों ने
शरीर-सत्ता (सक्कय) के समाप्त होने को सुख माना है।
स्पष्ट दृष्टि रखने वालों का यह दृष्टिकोण
समस्त संसार के विपरीत है। 142

"जिसे दूसरे सुख कहते हैं,
उसे महान लोग दुख कहते हैं;
जिसे दूसरे दुख कहते हैं,
उसे महान लोग सुख मानते हैं।

"देखो, यह धर्म (मार्ग, नियम) समझना कठिन है:
यहाँ नासमझ लोग भ्रमित हो जाते हैं।
अवरुद्ध मन वालों के लिए यह अस्पष्ट है।
जो नहीं देखते, उनके लिए घोर अंधकार है।

"परन्तु अच्छे लोगों के लिए यह प्रकट होता है।
जो देखते हैं, उनके लिए यह प्रकाश है।
धर्म में अकुशल मंदबुद्धि लोग
इसकी उपस्थिति में भी इसे नहीं समझते।

"यह धर्म
उन लोगों द्वारा आसानी से नहीं समझा जा सकता जो अस्तित्व के लिए राग से ग्रस्त हैं,
जो अस्तित्व की धारा में बहते रहते हैं।
शैतान के दायरे में गहराई से डूबे हुए।

"कुलीनों के सिवा और कौन
इस अवस्था को समझ सकता है?
जब वे इस अवस्था को सही ढंग से जान लेते हैं, तो
दोषमुक्त लोग पूरी तरह से तृप्त हो जाते हैं।" 143

---

137. रूपों में आनंद (2) (रूपराम)
(यह सूत्र पहले वाले सूत्र के समान है, लेकिन इसमें श्लोक नहीं हैं।)

---

138. तुम्हारा नहीं (l) 144 (नटुमहाका1)
भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा। और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? आँख तुम्हारी नहीं है: उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा। कान तुम्हारा नहीं है... मन तुम्हारा नहीं है: उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा।

मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें। क्या तुम सोचोगे: 'लोग हमें ले जा रहे हैं, या जला रहे हैं, या हमारे साथ जैसा चाहें वैसा कर रहे हैं'?

नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवरवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारे स्वरूप से संबंधित है।

उसी प्रकार, भिक्षुओं, आँख तुम्हारी नहीं है... कान... मन तुम्हारा नहीं है... जब तुम इसे त्याग दोगे, तभी तुम्हारा कल्याण और सुख होगा।"

---

139. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, लेकिन इसे छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।)

---

140. आंतरिक कारण सहित अनित्य (अज्जतनिच्चहेतु)
भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है। 145 आँख की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब आँख क्षणभंगुर से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?

कान क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है। मन की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब मन क्षणभंगुर से उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है?

इस प्रकार देखकर, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के माध्यम से उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है:
'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

141. आंतरिक कारणों से होने वाला कष्ट (अज्जतदुक्खेतु)
"भिक्षुओं, आँख दुःख है। आँख की उत्पत्ति का कारण भी दुःख है। चूँकि आँख दुःख से उत्पन्न हुई है, तो वह सुख कैसे हो सकती है?

"कान दुःखी है.... मन दुःखी है। मन की उत्पत्ति का कारण भी दुःख है। चूँकि मन दुःख से उत्पन्न हुआ है, तो वह सुख कैसे हो सकता है?

"ऐसा देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

142. कारण सहित अनात्म (आंतरिक) (अज्झट्टनत्तहेतु)
"भिक्षुओं, आँख अनात्म है। आँख की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूँकि आँख अनात्म से उत्पन्न हुई है, तो वह आत्मा कैसे हो सकती है?

"कान अनात्म है..(इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन).. मन अनात्म है। मन की उत्पत्ति का कारण [131] भी अनात्म है। क्योंकि मन की उत्पत्ति उससे हुई है जो खुद नहीं है, तो वह खुद कैसे हो सकता है?

"ऐसा देखकर... वह समझता है: '... इस होने की स्थिति के लिए और कुछ नहीं है।'"

143-145. कारण, वगैरह के साथ नश्वर (बाहरी) (बहिरा..)
(ये तीन सुत्त 140-142 जैसे ही हैं, लेकिन छह बाहरी इंद्रियों यानी रूप, आवाज़, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के ज़रिए बताए गए हैं।)

(v) भाग 3. तीसरा पचास - नया और पुराना (नवपुराणवग्गो)
146. कर्म-निरोध के बिना कम्म समाप्ति (कम्मानिरोध)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें नए और पुराने कर्म, कर्मों के निवारण (निरोध) और कर्मों के निवारण के मार्ग के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा...

और भिक्षुओं, पुराना कर्म क्या है? आँख पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और नियंत्रित (संक्षिप्त) माना जाता है, जिसे महसूस किया जा सकता है। 146 कान पुराना कर्म है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। मन पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और नियंत्रित माना जाता है, जिसे महसूस किया जा सकता है। इसे पुराना कर्म कहते हैं।"

"भिक्षुओं, नया कर्म क्या है? शरीर, वाणी या मन से जो भी कर्म किया जाता है

, वही नया कर्म कहलाता है। भिक्षुओं, कर्म का निवारण क्या है? जब शारीरिक, वाणी और मानसिक क्रियाओं के निवारण से मुक्ति प्राप्त होती है, तो यही कर्म का निवारण कहलाता है।

भिक्षुओं, कर्म निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।

इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने पुराने कर्म, नए कर्म, कर्म निवारण और कर्म निवारण के मार्ग का उपदेश दिया है।" भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, भिक्षुओं, ये खाली कुटियाएँ हैं। ध्यान करो, भिक्षुओं, आलस्य मत करो, अन्यथा तुम्हें बाद में पछतावा होगा। यही हमारा तुम्हें उपदेश है।

147. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (1) (अनिच्चनिब्बनसप्पया)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग सिखाऊंगा। 147 ध्यान से सुनो....

"और हे भिक्षुओं, निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग क्या है? यहाँ, एक भिक्षु (ध्यान में, विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) रूपों को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) नेत्र-चेतना को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में, पस्सति) नेत्र-संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य देखता है, चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो या न सुखदायक हो।"

वह (ध्यान में, पस्सति) कान को अनित्य देखता है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... वह (ध्यान में) मन को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) मानसिक घटनाओं (धम्म) को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) मन-चेतना को अनित्य देखता है, वह

(ध्यान में) मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) को अनित्य देखता है, वह मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य देखता है, चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो।

"यही निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग है।"

148-149. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (2-3)
(पिछली सूत्र के समान, जिसमें "अस्थायी" के स्थान पर "पीड़ा" और "अनात्म" प्रतिस्थापित किया गया है।) [135]

---

150. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (4) (निब्बानसप्पयपतिपाद)
"भिक्षुओं, मैं आपको निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, आँख स्थायी है या अस्थायी?"... (सभी अनुच्छेद 32 के अनुसार)...

"इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

"भिक्षुओं, यही निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग है।"

---

151. एक विद्यार्थी (अन्तीवासिका)
भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन बिना शिष्यों और बिना गुरु के व्यतीत किया जाता है। 148 जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु होते हैं, वह सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहता है। जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु नहीं होते, वह सुख में रहता है।

और हे भिक्षुओं, जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु होते हैं, वह सुख में क्यों नहीं, कष्ट में क्यों रहता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी आकृति को अपनी आँखों से देखता है, तो उसके भीतर बंधनों से संबंधित दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। 149 वे उसके भीतर निवास करती हैं। क्योंकि वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ उसके भीतर निवास करती हैं, इसलिए उसे 'शिष्यों वाला' कहा जाता है। वे उस पर आक्रमण करती हैं। क्योंकि वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर आक्रमण करती हैं, इसलिए उसे 'गुरु वाला' कहा जाता है।

"इसके अलावा, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है... तो उसे 'गुरु प्राप्त करने वाला' कहा जाता है।

" "इसी प्रकार

, शिष्यों और गुरुओं वाला भिक्षु सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहता है।" "और हे भिक्षुओं, बिना शिष्यों और बिना गुरुओं वाला भिक्षु सुख में कैसे रह सकता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आँख से कोई रूप देखता है, तो उसमें बंधनों से जुड़ी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। वे उसके भीतर निवास नहीं करतीं। क्योंकि वे बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उसके भीतर निवास नहीं करतीं, इसलिए उसे 'शिष्यों रहित' कहा जाता है।"

"इसके अलावा, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है..." (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। मन से किसी मानसिक घटना को जानने वाला व्यक्ति 'बिना गुरु वाला' कहलाता है।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार बिना शिष्यों और बिना गुरु वाले भिक्षु सुख और आराम से रहते हैं।

हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन बिना शिष्यों और बिना गुरु के व्यतीत किया जाता है। शिष्यों और गुरु वाले भिक्षु सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहते हैं। बिना शिष्यों और बिना गुरु वाले भिक्षु सुख और आराम से रहते हैं।"

---

152. ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य क्या है? (किमत्तीयब्रह्मचर्य)
भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें, 'हे मित्रों, गौतम तपस्वी के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' तो आपको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, दुख को पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य

जीवन व्यतीत किया जाता है।' हे भिक्षुओं, यदि वे तपस्वी आपसे पूछें, 'हे मित्रों, वह कौन सा दुख है जिसे पूर्णतः समझने के लिए गौतम तपस्वी के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है?' तो आपको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए:

'हे मित्रों, आँख दुख है; इसे पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। रूप दुख हैं; इन्हें पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।' नेत्र-चेतना कष्टदायी है... नेत्र-संपर्क (इंद्रियों का किसी वस्तु से स्पर्श) कष्टदायी है... नेत्र-संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, कष्टदायी हो या न कष्टदायी हो - वह भी कष्टदायी है: इसी को पूर्णतः समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। कान कष्टदायी है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी)। मन कष्टदायी है... मन-संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) कष्टदायी है... वह भी कष्टदायी है: इसी को पूर्णतः समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। हे मित्रों, यही वह कष्ट है जिसके पूर्ण ज्ञान के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आप अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर दें।"

---

153. क्या कोई विधि है? (अत्तिनुखोपरीयया)
"क्या कोई ऐसी व्याख्या विधि है, भिक्षुओं, जिसके द्वारा एक भिक्षु - आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार, और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सके: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक ऐसी व्याख्या विधि है जिसके द्वारा भिक्षु - आस्था के बिना... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार किए बिना - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सकता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' और वह व्याख्या विधि क्या है? यहाँ, भिक्षु, किसी रूप को आँख से देखकर, यदि उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है, तो भिक्षु समझता है: 'उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है!'; या, यदि उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है, तो वह समझता है: 'उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है।'" 151 "चूंकि ऐसा है, तो क्या इन धर्मों (गुणों, नियमों) को आस्था से, या व्यक्तिगत पसंद से, या मौखिक परंपरा से, या तर्कपूर्ण चिंतन से, या किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से समझा जाना चाहिए?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"क्या इन धर्मों को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर नहीं समझा जाना चाहिए?"

"जी, पूज्यवर।"

"भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा एक भिक्षु अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार कर सकता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

"इसके अलावा, भिक्षुओं, कान से एक ध्वनि सुनकर..." किसी मानसिक घटना को मन से जानने के बाद, यदि भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) हो, तो भिक्षु समझता है:
'भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है'; या, यदि भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है, तो वह समझता है: 'भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है।' चूंकि ऐसा है, तो क्या इन धर्मों को आस्था से,

या व्यक्तिगत पसंद से, या मौखिक परंपरा से, या तर्कपूर्ण विचार से, या किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करके समझा जाना चाहिए?

"नहीं, आदरणीय महोदय। "

"क्या इन धर्मों को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर ही नहीं समझा जा सकता?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा एक भिक्षु - आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार, और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से विमुख होकर - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सकता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

154. इंद्रियों से सुसज्जित (इंद्रियसंपन्न)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'बुद्धि से सुसज्जित, बुद्धि से सुसज्जित।' 152 हे पूज्यवर, बुद्धि से सुसज्जित व्यक्ति किस प्रकार होता है?"

"हे भिक्षु, यदि कोई नेत्र इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (अनुपस्सी) नेत्र इंद्रिय के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है; यदि कोई श्रवण इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (उदय-व्य) कान इंद्रिय के प्रति घृणा का अनुभव करता है; ... यदि कोई मन इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (उदय-व्य) मन इंद्रिय के प्रति घृणा का अनुभव करता है, तो घृणा का अनुभव करते हुए व्यक्ति वैराग्यवान हो जाता है... जब [मन] मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" इससे यह समझ में आता है: 'पुनर्जन्म का देहांत हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और उद्देश्य नहीं है।' हे भिक्षु, इसी प्रकार मनुष्य को विवेक प्राप्त होता है।

---

155. धम्मकथिकपुच्छ पर एक वक्ता (धम्मकथिकपुच्छ)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई व्यक्ति धर्म पर बोलने वाला होता है?" 153

"भिक्षु, यदि कोई आँख के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई आँख के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि आँख के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"भिक्षु, यदि कोई कान के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, मन के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का उपदेशक भिक्षु कहा जा सकता है।" जो धम्म पर प्रवचन देते हैं। यदि कोई मन से घृणा उत्पन्न करने, उसे नष्ट करने और समाप्त करने के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि मन से घृणा उत्पन्न करने, उसे नष्ट करने और समाप्त करने के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

(i) प्रभाग 4. चौथा पचास - आनंद खंड का विनाश (नंदिक्खायवग्गो सं. नंदी\आनंद-क्षय-वर्ग)
156. आनंद का विनाश (1) (अज्जतानंदिक्खया)
भिक्षुओं, ध्यान में भिक्षु उस आँख को क्षणभंगुर देखता है जो वास्तव में क्षणभंगुर है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। 154 सही ढंग से देखने पर, वह घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। आनंद (नंदी/आनंद) के नाश (खया/क्षय) से काम (राग) का नाश होता है; काम (खया/क्षय) के नाश से आनंद का नाश होता है। आनंद और काम (खया/क्षय) के नाश होने पर मन पूर्णतः मुक्त (विमुक्त) हो जाता है।

भिक्षुओं, ध्यान में भिक्षु उस कान को क्षणभंगुर देखता है जो वास्तव में क्षणभंगुर है... उस मन को जो वास्तव में क्षणभंगुर है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। ... आनंद (नंदी/आनंद) और काम (खया/क्षय) के नाश (खया/क्षय) होने पर मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

---

157. प्रसन्नता का नाश (2)
(बाह्य इंद्रियों के लिए भी यही बात लागू होती है।)

---

158. आनंद का विनाश (3) (अज्जत्तानिकानन्दिक्खया)
भिक्षुओं, ध्यानपूर्वक आँख पर ध्यान दो। आँख की अनित्यता को पहचानो। जब कोई भिक्षु ध्यानपूर्वक आँख पर ध्यान देते हुए आँख की अनित्यता को पहचान लेता है, तो उसे आँख के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। आनंद के विनाश से राग का विनाश होता है; और आनंद के विनाश से आनंद का विनाश होता है। आनंद और कामवासना के विनाश से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है। भिक्षुओं

, ध्यानपूर्वक कान पर ध्यान दो... मन पर ध्यान दो। मन की अनित्यता (अनिच्चा) को उसके वास्तविक स्वरूप में पहचानो... आनंद और कामवासना के नाश (क्षय/क्षय) से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

---

159. प्रसन्नता का नाश (4)
(बाह्य इंद्रियों के लिए भी यही बात लागू होती है।)

---

160. जीवक का आम का बाग (1) (जीवकम्बवनसमाधि1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में जीवक के आम के बाग (जीवक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 156
"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो। जब कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो वस्तुएँ उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट हो जाती हैं। और क्या उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होता है? आँख उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होती है - अनित्य रूप में। रूप उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं - अनित्य रूप में। नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श)... नेत्र-संपर्क के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो, न सुखदायक हो - वह उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होती है - अनित्य रूप में।

कान उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होता है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। मन उसे उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है... मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) उसे उसके वास्तविक स्वरूप में, अनित्य रूप में प्रकट हो जाती है।

"भिक्षुओं, समाधि अवस्था का विकास करो। जब कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो
उसे सब कुछ उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है।"

---

161. जीवक का आम का बाग (2) (जीवकंबवनसमाधि2)
एक बार भगवान (बुद्ध) जीवक के आम के बाग (जीवक-अंबावन) में राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,
"भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। जब कोई भिक्षु एकांतवास में होता है, तो उसे सब कुछ अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है। और उसे क्या अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होता है?"

(यह सब पिछले सूत्र 161 के अनुसार है।)

---

162. कोत्थिता (1)
तब पूज्य महाकोत्थिता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: 158 "पूज्यवर, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

कोत्थिता, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो। रूप क्षणभंगुर हैं... नेत्र-चेतना क्षणभंगुर है... आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है... आँख के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

कान क्षणभंगुर है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी क्षणभंगुर हैं)। मन क्षणभंगुर है... मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

कोत्थिता, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

---

163 (8) कोत्थिता (2)
"कोत्थिता, तुम्हें कष्टदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"
... (पिछली सूत्र के अनुसार पूर्ण।)

---

164. कोत्थिता (3)
"कोत्थिता, तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

165. गलत दृष्टिकोण का त्याग (मिच्छदित्थिपहना)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, गलत दृष्टि को त्यागने के लिए कैसे जानना और देखना चाहिए?" 159

"भिक्षु, जब कोई ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो गलत दृष्टि का त्याग हो जाता है। जब कोई ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... आँख की चेतना को अनित्य... आँख के संपर्क को अनित्य... मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य मानता है... तो गलत दृष्टि का त्याग हो जाता है। जब कोई इस प्रकार ध्यान में जानता और देखता है, तभी गलत दृष्टि का त्याग होता है।"

---

166. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) शरीर-सन्दूक का त्याग कैसे किया जाए?"

"भिक्षु, जब ध्यान में आँख को अनित्य मान लिया जाता है, तो शरीर-सन्दूक का त्याग हो जाता है।"... (ऊपर दिए गए कथन को पूरा करें।)

---

167. स्वयं के दृष्टिकोण का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, आत्म-दर्शन का त्याग कैसे किया जाए, कैसे जाना जाए?"

"भिक्षु (साधु), जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनित्य मानकर उसका ज्ञान और दृष्टि समाप्त हो जाती है, तब आत्म-दर्शन का त्याग हो जाता है।"... (ऊपर दिए गए कथन को पूरा करें।)

(ii) भाग 4. चौथा पचास - साठ गुना पुनरावृति श्रृंखला 160 (सत्थिपेय्यलावग्गो)
168. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा (अज्जतनिच्चचंदा)
भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; इसके प्रति भी इच्छा का त्याग करो। भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो।

---

169. क्षणभंगुर (आंतरिक) के प्रति वासना (अज्जतनिच्चरगा)
भिक्षुओं, जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना (राग) का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; इसके प्रति कामवासना का त्याग करो। भिक्षुओं, जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना का त्याग करो।

---

170. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा(चंद) और वासना(राग)

भिक्षुओं, तुम जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; तुम इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। भिक्षुओं, तुम जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो।

171-173 दुख की इच्छा (आंतरिक), आदि (दुक्खचंदादि)
भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। और कष्ट क्या है? आँख कष्टदायी है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी)... मन कष्टदायी है; आपको इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।

174-176. अनात्म (आंतरिक) की इच्छा, इत्यादि (अनत्तचंदादि)
भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। ... आपको अनात्म के प्रति राग का त्याग करना चाहिए। ... आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। और अनात्म क्या है? आँख अनात्म है... मन अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए।

177-179. अनित्य (बाह्य) के प्रति इच्छा, इत्यादि (बहिरनिच्चचंदादि)
भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो... जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति राग का त्याग करो... जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? रूप क्षणभंगुर हैं... मानसिक घटनाएँ क्षणभंगुर हैं; उनके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो। भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो।

180-182. कष्ट की इच्छा (बाह्य), आदि (बहिरदुक्खाचांदडी)
भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। और कष्ट क्या है? रूप कष्टदायी हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) कष्टदायी हैं; आपको उनके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।

183-185 अनात्म (बाह्य) आदि की इच्छा (बहिरनत्तचंदादि)
भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको अनात्म के प्रति राग का त्याग करना चाहिए... आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। और अनात्म क्या है? रूप अनात्म हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं; आपको उनके प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए।

---

186. अतीत अनित्य (आंतरिक) (अज्जततितितिनिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन क्षणभंगुर था। ऐसा देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मन के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

---

187. भविष्य अनित्य (आंतरिक) (अज्जत्तनगतनिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... भविष्य का मन क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर, ज्ञानी शिष्य आँख (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मन के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। वह समझता है: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

188. वर्तमान क्षणिक (आंतरिक) (अज्जतपच्चुप्पननिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... वर्तमान मन क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर, ज्ञानी शिष्य को आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... मन के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। वह समझता है: '... इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

189-191. अतीत, आदि, आंतरिक पीड़ा के रूप में (अज्जततीतदिदुक्खा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन दुख भोग रहा है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

192-194. अतीत, इत्यादि, अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जततितिदियनत्ता)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन, अनात्म है। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

195-197. अतीत, इत्यादि, अनित्य (बाह्य) के रूप में (बहिरतिताडियानिक्का)
भिक्षुओं, उनके रूप (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित)... अतीत, भविष्य और वर्तमान के मानसिक घटनाक्रम (धर्म) क्षणभंगुर हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

198-200. अतीत, इत्यादि, पीड़ा (बाहिरतीतदिदुक्खा) के रूप में
भिक्षुओं के लिए, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के सभी रूप (श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श) दुखदायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: इस अवस्था में और कुछ नहीं रह सकता।

201-203. अतीत, इत्यादि, अनात्म (बाह्य) के रूप में (बहिरतीतदियनत्ता)
भिक्षुओं के लिए, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के सभी रूप (श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श) अनात्म हैं। इस प्रकार देखकर वे समझते हैं: "इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।"

---

204. अतीत की कौन सी चीज़ अनित्य है (आंतरिक) (अज्जततीतयदानिका)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन क्षणभंगुर था। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

205. भविष्य का क्या अस्थाई है (आंतरिक) (अज्जत्तनगतयादानिका)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... भविष्य का मन क्षणभंगुर होगा। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

206. वर्तमान (आंतरिक) में क्या क्षणभंगुर है (अज्जतपच्चुप्पन्नयदानिक्का)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... वर्तमान मन क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

207-209. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदीयम्दुक्खा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

210-212. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदियादनत्ता)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन, अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

213-215. अतीत की अनित्यता, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादानिका)

भिक्षुओं, रूपों (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) और भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल की मानसिक घटनाओं (धम्म) का अस्तित्व क्षणिक है। क्षणिक दुख है। दुख अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर वह समझता है:
'इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

216-218. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (बाहिरातीतदियमदुक्खा)
भिक्षुओं, रूप (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित)... अतीत, भविष्य और वर्तमान के मानसिक अनुभव (धम्म) दुखदायी हैं। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखने पर वे समझते हैं: 'इस अवस्था का कोई और अर्थ नहीं है।'

219-221. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादनत्ता)
भिक्षुओं, रूपों (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) और भूतकाल, भविष्य और वर्तमान के मानसिक अनुभवों (धम्म) में अनात्म निहित है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखने पर वे समझते हैं:
'इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

222. इंद्रिय शक्तियाँ अनित्य (आंतरिक) हैं (अज्जतयातनानिच्च)
भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन भी क्षणभंगुर हैं)। मन भी क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

---

223. इंद्रिय-संबंधी पीड़ा (अज्जतयातनदुक्खा)
"भिक्षुओं, आँख पीड़ित है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन भी पीड़ित हैं)... मन पीड़ित है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

---

224. इंद्रिय शक्तियाँ अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जत्तयातनाअनत्ता)
भिक्षुओं, आँख अनात्म है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... मन अनात्म है। इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

225. इन्द्रिय संकाय अनित्य (बाह्य) के रूप में
भिक्षुओं, शरीर क्षणभंगुर हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी क्षणभंगुर हैं)। मानसिक घटनाएँ (धर्म) भी क्षणभंगुर हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

226. इंद्रिय-शारीरिक पीड़ा (बाहिरयातनदुक्खा) के रूप में
भिक्षुओं, शरीर दुखदायी हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी)... मानसिक घटनाएँ (धर्म) दुखदायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

227. द सेंस फैकल्टीज़ एज़ नॉनसेल्फ (बाह्य)
भिक्षुओं, रूप अनात्म हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी)... मानसिक घटनाएँ (धर्म) अनात्म हैं। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

(iii) प्रभाग 4. चौथा पचास - महासागर (समुद्दवग्गो सं. समुद्र-वर्ग)
228. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति 'सागर, सागर' की बात करता है। परन्तु वह सागर, श्रेष्ठ साधु के अनुशासन में, केवल जल का एक विशाल पिंड, जल का एक विशाल विस्तार है। भिक्षुओं

, आँख मनुष्य के लिए सागर है; इसकी धारा रूपों से बनी होती है। 161 जो उस रूपों से बनी धारा का सामना कर लेता है, वह लहरों, भंवरों, शार्क और राक्षसों से भरे आँख के सागर को पार कर लेता है। 162 पार करके, परे जाकर, ब्राह्मण उच्च स्थान पर खड़ा होता है।

भिक्षुओं, कान मनुष्य के लिए सागर है। . . . मन मनुष्य के लिए सागर है; इसकी धारा मानसिक घटनाओं (धम्म) से बनी होती है। जो उस मानसिक घटनाओं (धम्म) से बनी धारा का सामना कर लेता है, वह लहरों, भंवरों, शार्क और राक्षसों से भरे मन के सागर को पार कर लेता है। पार करके, परे जाकर, ब्राह्मण उच्च स्थान पर खड़ा होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। इसके बाद सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जिसने इस कठिन सागर को पार कर लिया है,
जिसमें शार्क, राक्षस और लहरों जैसे खतरे हैं,
ज्ञान के उस स्वामी ने, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है,
संसार के अंत तक पहुँचकर, उसे ही पार किया हुआ कहा जाता है।"

---

229. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति 'सागर, सागर' की बात करता है। परन्तु वह सागर, हे भगवान के अनुशासन में वर्णित सागर नहीं है; वह तो केवल जल का एक विशाल पिंड है। हे

भिक्षुओं, यहाँ ऐसी आकृतियाँ हैं जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है, जो मनभावन, सुंदर, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। हे भगवान के अनुशासन में इसे सागर कहा जाता है। यहाँ यह संसार अपने देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, यह पीढ़ी अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, अपने देवों और मनुष्यों के साथ, अधिकतर डूबी हुई है, उलझी हुई त्वचा के समान, गुंथे हुए धागे के गोले के समान, उलझे हुए सरकंडों और घास के समान हो गई है, और दुख के तल, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ सकती।

"कानों द्वारा पहचानी जा सकने वाली ध्वनियाँ हैं... मन द्वारा पहचानी जा सकने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और मोहक हैं। यहाँ यह संसार अपने देवों (देवदूतों), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूतों) के साथ, यह पीढ़ी अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, अपने देवों और मनुष्यों के साथ, अधिकांशतः डूबी हुई है, उलझे हुए धागे के गुच्छे की तरह, उलझी हुई सरकंडों और झाड़ियों की तरह हो गई है, और दुख के तल, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ सकती। 164

"जिसने कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) को दूर कर दिया है; अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) के साथ;
उसने इस कठिन सागर को पार कर लिया है; जिसमें शार्क, राक्षस और लहरों का खतरा है।"

"बंधन दूर करने वाला, मृत्यु का त्याग करने वाला, बिना किसी प्राप्ति (उपाधि) के, जिसने
पुनर्जन्म के कारण न होने वाले दुखों का त्याग कर दिया है। वह
इस दुनिया से चला गया है, उसकी कोई माप नहीं है; मैं कहता हूँ,
उसने मृत्यु के राजा को भी चकित कर दिया है।"

---

230. मछुआरे की उपमा (बालिसिकोपामा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक मछुआरा गहरे पानी में चारा लगा हुआ कांटा डालता है और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। जिस मछली ने मछुआरे का कांटा निगला है, उस पर विपत्ति और विपत्ति आएगी और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, संसार में प्राणियों पर विपत्ति लाने और उनका वध करने के लिए ये छह कांटे मौजूद हैं।

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रियों को लुभाने वाले और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसे शैतान का कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है। उस पर विपत्ति और विपत्ति आएगी और शैतान उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ (इसी प्रकार गंध, स्वाद और स्पर्श) होती हैं... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) होती हैं जो आकर्षक और मोहक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद लेता है, तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूप होते हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक होते हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जिसने मार के फंदे को नहीं निगला, जिसने फंदे को तोड़ दिया, उसे नष्ट कर दिया। उस पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आई है, और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकता।

"हे भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें कान से सुना जा सकता है... कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जिन्हें मन द्वारा अनुभव किया जा सकता है और जो वांछनीय... लुभावनी होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकता।"

---

231. दुग्ध-रस वृक्ष (खिररुक्खोपमा सं. क्षीर-वृक्ष-उपमा)
भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के संबंध में, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी में कामवासना (राग) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, यदि घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, यदि मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, तो आँखों की पहुँच में आने वाले तुच्छ रूप भी मन को व्याकुल कर देते हैं, प्रमुख रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के संबंध में भी यही बात लागू होती है (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए भी)। मन द्वारा बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में भी यही बात लागू होती है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक दूध-रस का वृक्ष था - एक असत्था या एक बरगद या एक पिलक्खा या उदुंबरा - ताजा, युवा, कोमल। यदि कोई इसे तेज कुल्हाड़ी से जगह-जगह से तोड़ दे, तो क्या इसमें से रस निकलेगा? "

जी जी, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि इसमें रस होता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के संबंध में... यहाँ तक कि आँखों की पहुँच में आने वाले तुच्छ रूप भी मन को आसक्त कर लेते हैं, प्रमुख रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के संबंध में भी यही बात लागू होती है (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए)... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए भी।"

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के विषय में, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी में कामवासना (राग) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, यदि घृणा (दोष/द्वेष) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, यदि मोह (मोह) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, तो आँखों के दायरे में आने वाले प्रमुख रूप भी मन को आकर्षित नहीं करते, तुच्छ रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, घृणा (दोष/द्वेष) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, मोह (मोह) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो। यही बात कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के विषय में भी लागू होती है... मन से सुनाई देने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के विषय में भी।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक दूध देने वाला वृक्ष - असत्थ, बरगद, पिलक्खा या उदुम्बर - सूख गया हो, मुरझा गया हो, अपनी आयु खो चुका हो। "यदि कोई व्यक्ति इसे तेज कुल्हाड़ी से जगह-जगह से तोड़ दे, तो क्या इसमें से रस निकलेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। इसका कारण क्या है? क्योंकि इसमें रस नहीं है।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के विषय में... यहाँ तक कि आँखों की पहुँच में आने वाले प्रमुख रूप भी मन को आकर्षित नहीं करते, तुच्छ रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है, घृणा (दोष/द्वेष) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है, मोह (मोह) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है। यही बात कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के विषय में भी लागू होती है... (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श आदि के लिए)... मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले मानसिक बोध (धम्म) के लिए भी।

---

232. कोत्थिका
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र सारिपुत्त, क्या आँख रूपों का बंधन है या रूप आँख का बंधन हैं? क्या कान ध्वनियों का बंधन है या ध्वनियाँ कानों का बंधन हैं?... क्या मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं?”

"मित्र कोत्थिता, आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। कान न तो ध्वनियों का बंधन है और न ही ध्वनियाँ कान का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"मान लो, मित्र, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोत दिया जाए। क्या यह कहना सही होगा कि 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?"

"नहीं, मित्र।" "काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एकमात्र लगाम या जुआ है जिससे दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं: वही बंधन है।" "

इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है... न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) जो दोनों पर निर्भर होकर वहाँ उत्पन्न होती हैं: वही बंधन है।"

"यदि हे मित्र, आँख रूपों का बंधन होती या रूप आँख का बंधन होते, तो ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के लिए उपयुक्त नहीं होता। 168 परन्तु क्योंकि आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि उन पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही वहाँ बंधन हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त है।"

"यदि हे मित्र, कान ध्वनियों का बंधन होता या ध्वनियाँ कानों का बंधन होतीं (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए)... यदि मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन होता या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन होतीं, तो ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त नहीं होता। परन्तु क्योंकि मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इन दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त है।

" "इस प्रकार भी, हे मित्र, यह समझा जा सकता है कि ऐसा क्यों है: भगवान (बुद्ध) में आँख विद्यमान है, भगवान (बुद्ध) आँख से रूप देखते हैं, फिर भी कोई इच्छा (चंद) नहीं होती और..." भगवान (बुद्ध) में राग (काम) विद्यमान हैं; भगवान (बुद्ध) मन से पूर्णतः मुक्त हैं। भगवान (बुद्ध) में कान विद्यमान हैं, वे कानों से ध्वनि सुनते हैं... भगवान (बुद्ध) में नाक विद्यमान हैं, वे नाक से गंध सूंघते हैं... भगवान (बुद्ध) में जीभ विद्यमान हैं, वे जीभ से स्वाद का अनुभव करते हैं... भगवान (बुद्ध) में शरीर विद्यमान है, वे शरीर से स्पर्शित वस्तुओं का अनुभव करते हैं... भगवान (बुद्ध) में मन विद्यमान है, वे मन से मानसिक घटना का संज्ञान करते हैं, फिर भी भगवान (बुद्ध) में इच्छा (चंद) और राग (काम) नहीं है; भगवान (बुद्ध) मन से पूर्णतः मुक्त हैं।

"इस प्रकार, मित्र, यह समझा जा सकता है कि आँख न तो रूपों की बंधन है और न ही रूप आँख के बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं; कान न तो ध्वनियों के बंधन हैं और न ही ध्वनियाँ कान के बंधन हैं; मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन के बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।"

(पृष्ठ 343 भी देखें)

233. कामाभू
एक बार पूज्य आनंद और पूज्य कामभू कोसंबी में स्थित घोषिता उद्यान में रह रहे थे। शाम को पूज्य कामभू एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
“हे मित्र आनंद, क्या आँख रूपों का बंधन है या रूप आँख का बंधन हैं?... क्या मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं?”

"मित्र कामभू, आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं... मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"मान लो, मित्र, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोत दिया जाए। क्या यह कहना सही होगा कि 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?" "

नहीं, मित्र। काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एक ही जुए से बंधन है जिससे दोनों को जोता गया है।"

"इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है..." न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन की बेड़ियाँ हैं, बल्कि इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) जो इन दोनों पर निर्भर होकर मन में उत्पन्न होती हैं, वही वहाँ की बेड़ियाँ हैं।

---

234. उदयी
एक बार पूज्य आनंद और पूज्य उदयि, घोसीता उद्यान के कोसंबी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य उदयि एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद के पास पहुंचे। उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
“मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने अनेक प्रकार से इस शरीर के स्वरूप को इस प्रकार घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है:
‘इसी कारण यह शरीर अनात्म है।’ क्या इस चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के स्वरूप को भी इसी प्रकार समझाया जा सकता है — इसे इस प्रकार सिखाना, घोषित करना, स्थापित करना, प्रकट करना, विश्लेषण करना और स्पष्ट करना: ‘इसी कारण यह चेतना अनात्म है’?”

“हाँ, मित्र उदयि, यह संभव है। क्या नेत्र-चेतना आँख और रूपों पर निर्भर नहीं होती?”

“जी, मित्र।”

“यदि नेत्र-चेतना के उत्पन्न होने का कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो क्या नेत्र-चेतना को पहचाना जा सकता है?”

“नहीं, मित्र।”

“इस प्रकार, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है: ‘इसी कारण यह चेतना अनात्म है।’

क्या कान-चेतना कान और ध्वनियों पर निर्भर नहीं होती?... क्या मन-चेतना मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भर नहीं होती?” “

हाँ, मित्र।”

“यदि मन-चेतना के उत्पन्न होने का कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो क्या मन-चेतना को पहचाना जा सकता है?”

“नहीं, मित्र।”

“इस प्रकार भी, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है: ‘इसी कारण यह चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) अनात्म है।’

"मान लो, मित्र, एक व्यक्ति को लकड़ी की आवश्यकता है, वह लकड़ी की तलाश में भटक रहा है, और वह एक तेज कुल्हाड़ी लेकर जंगल में प्रवेश करता है। 169 वहाँ उसे एक बड़े केले के पेड़ का तना दिखाई देता है, सीधा, ताजा, बिना किसी फल-कली के। वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपरी भाग को अलग कर देता है, और कुंडल को खोलता है। कुंडल को खोलते ही उसे नरम लकड़ी भी नहीं मिलती, लकड़ी तो दूर की बात है।

"इसी प्रकार, एक भिक्षु इन छह इंद्रियों में संपर्क (फस/स्पर्श) के लिए न तो स्वयं को और न ही स्वयं से संबंधित किसी चीज को पहचानता है। चूंकि वह इस प्रकार किसी चीज को नहीं पहचानता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता। आसक्त न होने (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने के कारण वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है।" वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

235. जलने पर व्याख्या (अदित्तप्रियाया सं. आदित्य-परियया)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें अग्नि विषय पर धर्म की व्याख्या दूंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, अग्नि विषय पर धर्म की व्याख्या क्या है? भिक्षुओं, आँखों से देखने पर निमित्त भाव को चेहरे के माध्यम से समझने की अपेक्षा, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई लाल गर्म लोहे की सुई से आँख का छिन्न-भिन्न होना बेहतर होगा। 170 क्योंकि यदि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) से बंधी रहे, चाहे वह निमित्त भाव में हो, और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि वह दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई नुकीली लोहे की छड़ से कान की इंद्रिय का छिल जाना, कान से पहचानी जा सकने वाली ध्वनि में चेहरे के माध्यम से निमित्त चिन्ह को समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना निमित्त चिन्ह या चेहरे में सांसारिक भोग से बंधी रहे, और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई नुकीली कील से नाक की इंद्रिय का छिल जाना, नाक से पहचानी जा सकने वाली गंध में चेहरे के माध्यम से निमित्त चिन्ह को समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना सांसारिक सुखों से बंधी रहे (निमित्त भाव से), और यदि उसी समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखते हुए ही मैं ऐसा कह रहा हूँ।

भिक्षुओं, जीभ की इंद्रिय का जलते, धधकते और चमकते तेज धारदार यंत्र से छिल जाना, जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद में निमित्त चिन्ह को चेहरे के भावों से समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना निमित्त चिन्ह या चेहरे के भावों में सांसारिक भोग से बंधी रहे और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, शरीर की इंद्रिय का जलते, धधकते और चमकते तेज भाले से छिल जाना, शरीर से अनुभव किए जा सकने वाले स्पर्शनीय वस्तु में निमित्त चिन्ह को चेहरे के भावों से समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना सांसारिक सुखों से बंधी रहे (निमित्त भाव से), और यदि उसी समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखते हुए ही मैं ऐसा कह रहा हूँ।

"भिक्षुओं, सोना बेहतर होगा - क्योंकि मैं कहता हूँ कि नींद जीवितों के लिए बांझ, निष्फल और अचेतन है - बजाय ऐसे विचारों के जो उनके वश में आए व्यक्ति को संघ में फूट डालने के लिए प्रेरित करें। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ। 171

"इस विषय में, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य सोचता है: 'आँखों को जलती, धधकती और चमकती लाल लोहे की सुई से चीरना छोड़ दो। मुझे केवल इस पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए आँख क्षणभंगुर है, रूप क्षणभंगुर हैं, आँख-चेतना क्षणभंगुर है, आँख-संपर्क (वस्तु से इंद्रिय का

स्पर्श) क्षणभंगुर है, आँख-संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखद - वह भी क्षणभंगुर है।

"तेज, धधकती और चमकती लोहे की नुकीली छड़ी से कान को चीरना बंद करो। मेरा ध्यान केवल इस बात पर रहे: इसलिए कान क्षणभंगुर है, ध्वनियाँ क्षणभंगुर हैं, कान की चेतना क्षणभंगुर है, कान का स्पर्श क्षणभंगुर है, कान के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।

" "तेज, धधकती और चमकती नाखून काटने वाली नुकीली वस्तु से नाक को चीरना बंद करो। मेरा ध्यान केवल इस बात पर रहे: इसलिए नाक क्षणभंगुर है, गंध क्षणभंगुर हैं, नाक की चेतना क्षणभंगुर है, नाक का स्पर्श क्षणभंगुर है, नाक के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।"

"तेज धार वाले तेज रेजर से जीभ को चीरना बंद करो, जो जलता, धधकता और चमकता रहता है। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए जीभ क्षणभंगुर है, स्वाद क्षणभंगुर हैं, जीभ की चेतना क्षणभंगुर है, जीभ का स्पर्श क्षणभंगुर है, जीभ के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।

" "तेज धार वाले तेज भाले से शरीर को चीरना बंद करो, जो जलता, धधकता और चमकता रहता है। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए शरीर क्षणभंगुर है, स्पर्शनीय वस्तुएं क्षणभंगुर हैं, शरीर की चेतना क्षणभंगुर है, शरीर का स्पर्श क्षणभंगुर है, शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।"

"'सोना छोड़ो। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना है: इसलिए मन क्षणभंगुर है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर हैं, मन-चेतना क्षणभंगुर है, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।'

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूप, आँख-चेतना, आँख-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और आँख-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है—चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो... मन, मानसिक घटनाओं (धम्म), मन-चेतना, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति भी घृणा (निब्बिदा) होती है... घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है।

वैराग्य के माध्यम से [उसका मन] मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझते हैं:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है।'

"यही, भिक्षुओं, अग्नि विषय पर धम्म की व्याख्या है।"

---

236. हाथों और पैरों की उपमा (1) (हत्थपादोपमा1 संस्कृत: हस्त-पाद-उपमा)
भिक्षुओं, जब हाथ होते हैं, तो उठाना और रखना समझ में आता है। जब पैर होते हैं, तो आना-जाना समझ में आता है। जब अंग होते हैं, तो झुकना और फैलाना समझ में आता है। जब पेट होता है, तो भूख और प्यास समझ में आती है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो नेत्र संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। 172 जब कान होते हैं, तो कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। जब मन होता है, तो मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"हे भिक्षुओं, जब हाथ नहीं होते, तो उठाना और रखना समझ में नहीं आता। जब पैर नहीं होते, तो आना-जाना समझ में नहीं आता। जब अंग नहीं होते, तो झुकना और सीधा होना समझ में नहीं आता। जब पेट नहीं होता, तो भूख और प्यास समझ में नहीं आती।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब आंखें नहीं होतीं, तो नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते। जब कान नहीं होते, तो कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते। जब मन नहीं होता, तो मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते।"

---

237. हाथों और पैरों की उपमा (2) (हत्थपादोपमा2 संस्कृत. हस्त-पाद-उपमा)
भिक्षुओं, जब हाथ होते हैं, तो उठाना और रखना होता है...

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) के कारण उत्पन्न होते हैं... जब मन होता है, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, जब हाथ नहीं होते, तो उठाना और रखना नहीं होता...

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख नहीं होती... मन नहीं होता, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न नहीं होते।

(iv) भाग 4. चौथा पचास - सांप (असिविसावग्गो)
238. असिविसोपमा (सांपों की उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि चार भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले सांप हैं। 173 फिर एक व्यक्ति आता है जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और कष्टों से विमुख है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, ये चारों सांप भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले हैं। समय-समय पर इन्हें उठाना चाहिए; समय-समय पर इन्हें स्नान कराना चाहिए; समय-समय पर इन्हें भोजन कराना चाहिए; समय-समय पर इन्हें विश्राम देना चाहिए। 174 परन्तु यदि इनमें से कोई भी सांप तुम पर क्रोधित हो जाए, तो हे प्रभु, तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घातक कष्ट सहना पड़ेगा। जो भी करना हो, करो, हे प्रभु!'

तब, भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सांपों से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। वे उससे कहते: 'हे प्रभु, पाँच खूंखार शत्रु तुम्हारा पीछा कर रहे हैं, यह सोचकर कि "जहाँ भी हम उसे देखेंगे, वहीं उसकी जान ले लेंगे।" हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!'

"तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों और पाँच हत्यारे शत्रुओं से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। वे उससे कहते:
'हे स्वामी, छठा हत्यारा, तुम्हारा घनिष्ठ साथी, 175 तलवार लिए तुम्हारा पीछा कर रहा है, यह सोचकर कि 'जहाँ भी उसे देखूँगा, वहीं उसका सिर काट दूँगा।' हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!' "

तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों और पाँच हत्यारे शत्रुओं और छठे हत्यारे, तलवार लिए घनिष्ठ साथी से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। उसे एक खाली गाँव दिखाई देता। वह जिस भी घर में प्रवेश करता, वह खाली, वीरान, निर्जन होता। वह जिस भी बर्तन को पकड़ता, वह खाली, खोखला, निर्जन होता। वे उससे कहते: 'हे स्वामी, अभी गाँव पर हमला करने वाले डाकू 176 इस खाली गाँव पर धावा बोलेंगे। हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!'

"तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों, पाँच हत्यारे शत्रुओं, छठे हत्यारे - तलवार लिए हुए घनिष्ठ साथी - और गाँव पर हमला करने वाले डाकुओं से भयभीत होकर, वह व्यक्ति एक या दूसरी दिशा में भाग जाता। वह जल का एक विशाल विस्तार देखता जिसका निकटवर्ती किनारा खतरनाक और भयभीत करने वाला था, और जिसका दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और खतरे से मुक्त था, परन्तु निकटवर्ती किनारे से दूरवर्ती किनारे तक पार करने के लिए कोई नौका या पुल नहीं होता। 177

"तब वह व्यक्ति सोचता: यह जल का एक विशाल विस्तार है जिसका निकटवर्ती किनारा खतरनाक और भयभीत करने वाला है, और जिसका दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और खतरे से मुक्त है, परन्तु पार करने के लिए कोई नौका या पुल नहीं है। मैं घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ एकत्र करूँ और उन्हें एक बेड़ा बनाऊँ, ताकि उस बेड़े की सहायता से, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, मैं सुरक्षित रूप से दूरवर्ती किनारे तक पहुँच सकूँ।"

"तब वह व्यक्ति घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ इकट्ठा करके उन्हें एक बेड़ा बनाता था, ताकि उस बेड़े की सहायता से, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, वह सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच सके। पार करके, आगे बढ़कर, ब्राह्मण ऊँचे स्थान पर खड़ा होता है। 178

"मैंने यह उपमा, भिक्षुओं, एक अर्थ समझाने के लिए बनाई है। यहाँ इसका अर्थ यह है: 'भयंकर ऊष्मा और घातक विष वाले चार सर्प': यह चार महान तत्वों (धातु) का प्रतीक है - पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु) ।" 179

"'पांच हत्यारे शत्रु': यह आसक्ति से ग्रस्त पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) का नामकरण है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त भौतिक रूप, आसक्ति से ग्रस्त वेदना, आसक्ति से ग्रस्त संज्ञान, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार, आसक्ति से ग्रस्त विज्ञान और आसक्ति से ग्रस्त चेतना। 180

"'छठा हत्यारा, खींची हुई तलवार वाला घनिष्ठ साथी': यह आनंद और राग का नामकरण है। 181

"'खाली गाँव': यह छह आंतरिक इंद्रियों के लिए एक पदनाम है। भिक्षुओं, यदि कोई बुद्धिमान, सक्षम, समझदार व्यक्ति उन्हें आँख से देखे, तो वे खाली, खोखली, निर्जीव प्रतीत होती हैं। यदि वह उन्हें कान से... मन से देखे, तो वे खाली, खोखली, निर्जीव प्रतीत होती हैं।

'गाँव पर हमला करने वाले डाकू': यह छह बाहरी इंद्रियों के लिए एक पदनाम है। भिक्षुओं, आँख सुखद और अप्रिय रूपों से प्रभावित होती है। कान... नाक... जीभ... शरीर... मन सुखद और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धम्म) से प्रभावित होता है।"

"जल का विशाल विस्तार": यह चार बाढ़ों का प्रतीक है: कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), दृष्टियों की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।

"निकट तट, जो खतरनाक और भयभीत करने वाला है": यह शरीर-पहचान (सक्कया) का प्रतीक है। 182

"दूर तट, जो सुरक्षित और खतरे से मुक्त है": यह निर्वाण का प्रतीक है।

"नाव": यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है; अर्थात् सही दृष्टि (देखें SN5:8)... सही समाधि अवस्था।

"हाथों और पैरों से प्रयास करना": यह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने का प्रतीक है।

"पार कर गया, आगे बढ़ गया, ब्राह्मण उच्च भूमि पर खड़ा है": यह अरहंत का प्रतीक है।"

---

239. रथ की उपमा (रथ-उपमा, संस्कृत: रथ-उपमा)
भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त होकर एक भिक्षु इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण रहता है, और वह विकारों के नाश (क्षय) की नींव रखता है। वे तीन गुण क्या हैं? वह है जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, जो संयमित भोजन करता है, और जो सचेत रहता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, एक भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह आँख को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, आँख की रक्षा करता है, आँख को नियंत्रित करता है। कान से कोई ध्वनि सुनकर... किसी गंध को नाक से सूंघकर... किसी स्वाद को जीभ से चखकर... किसी वस्तु को शरीर से स्पर्श करके... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर भी भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह मन को अनियंत्रित छोड़ दे तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह मन को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, मन की रक्षा करता है, मन को संयमित करने का प्रयास करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक चबूतरे पर, उत्तम नस्ल के घोड़ों से जुता हुआ रथ समतल भूमि पर तैयार खड़ा है, हाथ में अंकुश लिए हुए। तब एक कुशल प्रशिक्षक, घोड़ों को वश में करने वाला सारथी, उस पर सवार होगा और अपने बाएं हाथ में लगाम और दाएं हाथ में अंकुश लेकर, अपनी इच्छानुसार किसी भी मार्ग से, जब चाहे, रथ चलाएगा और लौट आएगा। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु इन छह

इंद्रियों की रक्षा करने, उन्हें नियंत्रित करने, उन्हें वश में करने और उन्हें शांत करने का अभ्यास करता है। इस प्रकार, भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं।

"और, भिक्षु भोजन में संयमी कैसे होते हैं?" यहां, विवेकपूर्ण विचार करते हुए, भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण, कष्टों को दूर करने और ब्रह्मचर्य जीवन में सहायता करने के लिए भोजन
ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि: 'इस प्रकार मैं पुरानी संवेदना (वेदना) को समाप्त कर दूंगा और नई संवेदना (वेदना) को उत्पन्न नहीं होने दूंगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूंगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूंगा।' जिस प्रकार कोई व्यक्ति घाव भरने के लिए ही उस पर लेप लगाता है, या जिस प्रकार कोई भार ढोने के लिए ही धुरी पर तेल लगाता है, उसी प्रकार भिक्षु विवेकपूर्ण विचार करते हुए ब्रह्मचर्य जीवन में सहायता के लिए भोजन ग्रहण करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु भोजन में संयम बरतता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु किस प्रकार जागृति के प्रति समर्पित होता है? यहाँ, दिन के दौरान, चलते-फिरते और बैठते हुए, एक भिक्षु अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के पहले पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में, वह उठने के विचार को मन में धारण करने के बाद, एक पैर दूसरे पर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जागृति के प्रति समर्पित होता है।

हे भिक्षुओं, इन्हीं तीन गुणों के द्वारा एक भिक्षु इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, और वह मृत्यु के विनाश (खयाल/क्षय) की नींव रखता है। अपवित्रताएँ।"

---

240. कछुए की उपमा (कुम्मोपमा)
भिक्षुओं, अतीत में एक कछुआ 184 एक शाम नदी के किनारे भोजन की तलाश कर रहा था। उसी शाम एक सियार भी उसी नदी के किनारे भोजन की तलाश कर रहा था। जब कछुए ने दूर से सियार को भोजन की तलाश करते देखा, तो उसने अपने अंगों और गर्दन को अपने खोल के अंदर समेट लिया और चुपचाप बैठा रहा। 188 सियार ने

भी कछुए को दूर से भोजन की तलाश करते देखा था, इसलिए वह पास आया और पास में ही इंतजार करने लगा, यह सोचते हुए कि 'जब यह कछुआ अपने किसी अंग या गर्दन को बाहर निकालेगा, तो मैं उसे वहीं पकड़ लूंगा, बाहर खींच लूंगा और खा जाऊंगा।' लेकिन चूंकि कछुए ने अपने किसी भी अंग या गर्दन को बाहर नहीं निकाला, इसलिए सियार को उस तक पहुँचने का मौका नहीं मिला, तो उसने उसमें रुचि खो दी और चला गया।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, दुष्ट शैतान लगातार आपके आस-पास ही प्रतीक्षा कर रहा है, यह सोचकर कि 'शायद मैं आँख के माध्यम से या कान के माध्यम से ... या मन के माध्यम से उस तक पहुँच प्राप्त कर लूँगा।' अतः, भिक्षुओं, इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए निवास करो। किसी रूप को आँख से देखकर उसके निमित्त और गुणों को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम आँख को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसकी संयम विधि का अभ्यास करो, आँख की रक्षा करो, आँख को संयमित करो। कान से कोई ध्वनि सुनकर... नाक से कोई गंध सूंघकर... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, उसके निमित्त और गुणों को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम मन को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसकी संयम विधि का अभ्यास करो, मन की रक्षा करो, मन को संयमित करो।

"जब, भिक्षुओं, तुम निवास करते हो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए, दुष्ट मारा, आप तक पहुँचने में असफल होकर, आपमें रुचि खो देगा और चला जाएगा, ठीक वैसे ही जैसे सियार कछुए से दूर चला जाता है।

मन के विचारों को समेटते हुए,
जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है।
स्वतंत्र, दूसरों को परेशान न करते हुए, पूरी तरह से संतुष्ट,
एक भिक्षु किसी को दोष नहीं देगा। 186

---

241. महान लट्ठे की उपमा (1) (दारुक्खन्धोपमा1)
एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे कोसंबी में निवास कर रहे थे। उन्होंने देखा कि गंगा नदी की धारा एक विशाल लट्ठे को बहाकर ले जा रही है, और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, क्या तुम गंगा नदी की धारा में बहते हुए उस विशाल लट्ठे को देख रहे हो?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

हे भिक्षुओं, यदि वह लकड़ी का लट्ठा निकटवर्ती किनारे की ओर न भटके, दूरवर्ती किनारे की ओर न भटके, मध्यधारा में न डूबे, ऊँची भूमि पर न उछले, मनुष्यों द्वारा न फँसे, अमानवों द्वारा न फँसे, भंवर में न फँसे और आंतरिक रूप से न सड़ जाए, तो वह समुद्र की ओर झुकती हुई, ढलानदार और प्रवृत्त होगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी की धारा समुद्र की ओर झुकती हुई, ढलानदार और प्रवृत्त होती है।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यदि आप निकटवर्ती किनारे की ओर न भटकें, दूरवर्ती किनारे की ओर न भटकें, मध्यधारा में न डूबें, ऊँची भूमि पर न उछलें, मनुष्यों द्वारा न फँसे, अमानवों द्वारा न फँसे, भंवर में न फँसे और आंतरिक रूप से न सड़ें, तो आप निर्वाण की ओर झुकते हुए, ढलानदार और प्रवृत्त होंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि सही दृष्टि निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और मुड़ती है।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,
"हे पूज्यवर, निकटवर्ती किनारा क्या है? दूरवर्ती किनारा क्या है? मध्यधारा में डूबना क्या है? ऊँचे स्थान पर आ पहुँचना क्या है? मनुष्य किसे पकड़ लेते हैं, अमानव किसे पकड़ लेते हैं, भंवर में क्या फंस जाता है? आंतरिक सड़न क्या है?" "

भिक्षु: 'निकटवर्ती किनारा': यह छह आंतरिक इंद्रियों का नाम है। 'दूरवर्ती किनारा': यह छह बाह्य इंद्रियों का नाम है। 'मध्यधारा में डूबना': यह आनंद और राग का नाम है। 'ऊँचे स्थान पर आ पहुँचना': यह 'मैं हूँ' के अहंकार का नाम है।"

"और हे भिक्षु, मनुष्यों द्वारा वश में किया जाना क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति गृहस्थों के साथ रहता है; वह उनके साथ सुख-दुख में शामिल होता है, वह उनके सुख में प्रसन्न होता है और उनके दुख में दुखी होता है, और वह उनके कार्यों और कर्तव्यों में संलग्न रहता है। 187 इसे मनुष्यों द्वारा वश में किया जाना कहते हैं।

"और हे भिक्षु, अमानवों द्वारा वश में किया जाना क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति किसी विशेष देव वर्ग में पुनर्जन्म की आकांक्षा के साथ ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, यह सोचते हुए कि 'इस पुण्य (शील) या व्रत या तप (तप) या ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) से मैं देव (देवदूत) या देवों में से एक बन जाऊँगा।' इसे अमानवों द्वारा वश में किया जाना कहते हैं।

"'भंवर में फँस जाना': हे भिक्षु, यह इंद्रिय सुख के पाँच डोरों का नाम है।"

"और हे भिक्षु, आंतरिक सड़न क्या है? यहाँ व्यक्ति अनैतिक है, बुरे चरित्र का है, अपवित्र और संदिग्ध आचरण वाला है, अपने कार्यों में गुप्त है, तपस्वी होने का दावा करते हुए भी तपस्वी नहीं है, ब्रह्मचारी होने का दावा करते हुए भी ब्रह्मचारी नहीं है, आंतरिक रूप से सड़ी हुई, भ्रष्ट, पतित है। 188 इसे आंतरिक सड़न कहते हैं।"

उस समय ग्वाला नंदा भगवान (बुद्ध) के पास खड़ा था। तब उसने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, मैं निकटवर्ती तट की ओर नहीं भटकूँगा, दूरवर्ती तट की ओर नहीं भटकूँगा, मध्यधारा में नहीं डूबूँगा, ऊँचे स्थान पर नहीं पहुँचूँगा, मनुष्यों द्वारा नहीं पकड़ा जाऊँगा, अमानवों द्वारा नहीं पकड़ा जाऊँगा, भंवर में नहीं फँसूँगा, और आंतरिक रूप से भ्रष्ट नहीं होऊँगा। क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है? क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?"

"तो फिर, नंदा, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दो।"

"आदरणीय महोदय, गायें अपने बछड़ों के प्रति आसक्ति के कारण स्वतः ही वापस चली जाएँगी।"

"नंदा, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दो।"

तब ग्वाले नंदा ने गायों को उनके स्वामियों को लौटा दिया, भगवान (बुद्ध) के पास वापस आए और बोले, “हे पूज्यवर, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दिया गया है। क्या मैं भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त कर सकता हूँ, क्या मैं उच्चतर दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?”

तब ग्वाले नंदा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्चतर दीक्षा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्चतर दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर... पूज्य नंदा अरहंतों में से एक बन गए।

---

242. महान लट्ठे की उपमा (2) (दारुक्खन्धोपमा2)
एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे किंबिला में निवास कर रहे थे। उन्होंने देखा कि गंगा की धारा एक विशाल लट्ठे को बहाकर ले जा रही है, और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, क्या तुम गंगा की धारा में बहते हुए उस विशाल लट्ठे को देख रहे हो?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"... (जैसा ऊपर बताया गया है)...

यह सुनकर पूज्यवर किंबिला ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,
"हे पूज्यवर, तट के पास का क्या अर्थ है... आंतरिक सड़न क्या है?"

(उत्तर ऊपर दिए गए अनुसार है, सिवाय इसके:)

"और हे किंबिला, आंतरिक सड़न क्या है? हे किंबिला, यहाँ एक भिक्षु एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है, एक ऐसा अपराध जिसका पुनर्वास संभव नहीं है। 190 इसे आंतरिक सड़न कहते हैं।"

---

243. भ्रष्टों पर व्याख्या (अवस्सुतपरीयया)
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय कपिलवस्तु के शाक्यों के लिए एक नया सभा भवन अभी-अभी बनाया गया था और उसमें अभी तक कोई तपस्वी, ब्राह्मण या कोई भी मनुष्य नहीं रहा था। तब कपिलवस्तु के शाक्यों भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे पूज्यवर, कपिलवस्तु के शाक्यों के लिए एक नया सभा भवन अभी-अभी बनाया गया है और उसमें अभी तक कोई तपस्वी, ब्राह्मण या कोई भी मनुष्य नहीं रहा है। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) इसका उपयोग सर्वप्रथम करें। जब भगवान (बुद्ध) इसका उपयोग सर्वप्रथम कर लेंगे, तब कपिलवस्तु के शाक्यों इसका उपयोग करेंगे। इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।”

191 भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए। जब शाक्यों समझ गए कि भगवान (बुद्ध) सहमत हो गए हैं, तो वे अपने आसनों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, नए सभा भवन में गए। उन्होंने उसे पूरी तरह से चटाइयों से ढक दिया, आसन तैयार किए, एक बड़ा जल पात्र रखा और एक तेल का दीपक जलाया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उन्हें यह सूचना देते हुए कहा, "भगवान (बुद्ध) अपनी सुविधानुसार आएं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के संघ के साथ नए सभा भवन में गए। अपने पैर धोने के बाद, वे भवन में प्रवेश कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके केंद्रीय स्तंभ के पास बैठ गए। भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोने के बाद भवन में प्रवेश किया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके पश्चिमी दीवार के पास बैठ गए, उनके सामने भगवान (बुद्ध) विराजमान थे। कपिलवस्तु के शाक्यों ने भी अपने पैर धोकर हॉल में प्रवेश किया और पश्चिम की ओर मुख करके पूर्वी दीवार के पास बैठ गए, उनके सामने भगवान (बुद्ध) विराजमान थे।

भगवान (बुद्ध) ने रात भर शाक्यों को धर्मोपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया: "गौतमों, रात बीत गई है। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

"जी, पूज्यवर," उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे अपने स्थानों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, चले गए। फिर, कपिलवस्तु के शाक्यों के जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महामोग्गलाना को संबोधित करते हुए कहा: "मोग्गलाना, भिक्षुओं का संघ आलस्य और सुस्ती से मुक्त है। भिक्षुओं को धर्मोपदेश दीजिए। मेरी कमर में दर्द हो रहा है, इसलिए मैं थोड़ा आराम कर लूँ।" 193

"जी हाँ, आदरणीय महोदय," आदरणीय महामोग्गलाना ने उत्तर दिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने अपना बाहरी वस्त्र चार भागों में मोड़कर तैयार किया और सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, उठने के विचार को मन में धारण किया। तब पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्रों!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"मैं तुम्हें, मित्रों, भ्रष्ट और निर्जीव का उपदेश दूंगा
। 194 इसे सुनो और ध्यानमग्न (मानसिकरो) रहो, मैं बोलूंगा।"

"जी, मित्रों," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। आदरणीय महामोग्गलाना ने यह कहा:

"हे मित्रों, मनुष्य कैसे भ्रष्ट हो जाता है? यहाँ, आँख से एक रूप देखकर, एक भिक्षु (साधु) मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। 195 वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, के वास्तविक अर्थ को नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से एक ध्वनि सुनकर... मन से एक मानसिक घटना को जानकर, वह मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, जो वास्तव में है, के वास्तविक अर्थ को नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

"यह है हे मित्रों, ऐसे भिक्षु को कहते हैं जो आँखों से दिखाई देने वाले रूपों में, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों में, नाक से सुनाई देने वाली गंधों में, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों में, शरीर से महसूस होने वाले स्पर्शों में और मन से महसूस होने वाले मानसिक अनुभवों (धर्म) में भ्रष्ट हो चुका हो। जब कोई भिक्षु इस प्रकार रहता है, तो यदि मारा (शैतान) आँख के द्वारा उसके पास आता है, तो वह उस पर हावी हो जाता है। यदि मारा कानों के द्वारा... मन के द्वारा उसके पास आता है, तो वह उस पर हावी हो जाता है।

"मान लीजिए, मित्रों, सरकंडों या घास से बनी एक सूखी, मुरझाई हुई, अपनी चरम अवस्था से गुजर चुकी झोपड़ी है। यदि कोई व्यक्ति जलती हुई घास की मशाल लेकर पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, नीचे से या ऊपर से उसके पास आता है, चाहे वह किसी भी दिशा से आए, आग उसमें प्रवेश कर जाती है, आग उसे अपने वश में कर लेती है। ठीक इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, यदि मारा आँख के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो मारा उसमें प्रवेश कर जाता है, मारा उसे अपने वश में कर लेता है।"

जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो रूप उसे अभिभूत कर देते हैं; वह रूपों को अभिभूत नहीं करता। ध्वनियाँ उसे अभिभूत कर देती हैं; वह ध्वनियों को अभिभूत नहीं करता। गंधें उसे अभिभूत कर देती हैं; वह गंधों को अभिभूत नहीं करता। स्वाद उसे अभिभूत कर देते हैं; वह स्वादों को अभिभूत नहीं करता। स्पर्शनीय वस्तुएँ उसे अभिभूत कर देती हैं; वह स्पर्शनीय वस्तुओं को अभिभूत नहीं करता। मानसिक घटनाएँ (धम्म) उसे अभिभूत कर देती हैं; वह मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत नहीं करता। मित्रों, इसे वह भिक्षु कहते हैं जो रूपों से अभिभूत होता है, ध्वनियों से अभिभूत होता है, गंधों से अभिभूत होता है, स्वादों से अभिभूत होता है, स्पर्शनीय वस्तुओं से अभिभूत होता है, मानसिक घटनाओं (धम्म) से अभिभूत होता है - वह जो अभिभूत होता है और जो अभिभूत नहीं होता। अकुशल (अकुशल) अवस्थाओं ने उसे अभिभूत कर दिया है, ऐसी अवस्थाएँ जो अपवित्रता, जो नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जो कष्ट लाती है, जिसके परिणामस्वरूप पीड़ा होती है, और जो भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती है।

"मित्रों, इसी प्रकार मनुष्य भ्रष्ट होता है।"

हे मित्रों, कोई कैसे निष्कलंकित रहता है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो किसी मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ को समझता है, जिसमें वे सभी दुष्ट और

हानिकारक अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ को समझता है, जिसमें वे सभी दुष्ट और हानिकारक अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे

मित्रों, इसे ही वह भिक्षु कहते हैं जो प्रत्यक्ष रूपों में निष्कलंकित है। आँख से देखने पर भी, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों में भी, नाक से सुनाई देने वाली गंधों में भी, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों में भी, शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुओं में भी, और मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले मानसिक अनुभवों (धर्म) में भी। जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो यदि मारा (शैतान) आँख के माध्यम से उसके पास आता है, तो वह उस तक पहुँचने में असफल रहता है, उसे वश में करने में असफल रहता है। यदि मारा कानों के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो भी मारा उस तक पहुँचने में असफल रहता है, उसे वश में करने में असफल रहता है।

"मान लीजिए, मित्रों, एक शिखर वाला घर या एक हॉल है जो घनी मिट्टी से बना है और उस पर अभी-अभी प्लास्टर किया गया है। यदि कोई व्यक्ति जलती हुई घास की मशाल लेकर पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, नीचे से या ऊपर से उसके पास आता है, चाहे वह किसी भी दिशा से आए, आग उस तक नहीं पहुँच पाती, आग उस पर हावी नहीं हो पाती। ठीक इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, यदि मारा आँख के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो मारा उस तक नहीं पहुँच पाता, मारा उस पर हावी नहीं हो पाता।

जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो वह रूपों पर हावी हो जाता है; रूप उस पर हावी नहीं होते। वह ध्वनियों पर हावी हो जाता है; ध्वनियाँ उस पर हावी नहीं होतीं। वह गंधों पर हावी हो जाता है; गंधें उस पर हावी नहीं होतीं। वह स्वादों पर हावी हो जाता है; स्वाद उस पर हावी नहीं होते। वह स्पर्शनीय वस्तुओं पर हावी हो जाता है; स्पर्शनीय वस्तुएँ उसे अभिभूत नहीं करतीं। वह मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत करता है; मानसिक घटनाएँ (धम्म) उसे अभिभूत नहीं करतीं। हे मित्रों, इसे ही वह भिक्षु कहते हैं जो रूपों को, ध्वनियों को, गंधों को, स्वादों को, स्पर्शनीय वस्तुओं को, और मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत करता है - वह जो अभिभूत करता है और अभिभूत नहीं होता। उसने उन सभी हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं को अभिभूत कर दिया है जो दूषित करती हैं, पुनर्जन्म का कारण बनती हैं, कष्ट लाती हैं, पीड़ा का कारण बनती हैं, और भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनती हैं।

“हे मित्रों, इसी प्रकार मनुष्य निर्मल रहता है।”

तब भगवान (बुद्ध) उठे और पूज्य महामोग्गलाना को संबोधित करते हुए बोले, "शाबाश, शाबाश, मोग्गलाना! आपने भिक्षुओं को भ्रष्ट और निर्जीव के विषय पर बहुत अच्छी व्याख्या दी है।"

पूज्य महामोग्गलाना ने यही कहा। गुरु ने इसकी सराहना की। पूज्य महामोग्गलाना के इस कथन से भिक्षु प्रसन्न हुए।

---

244. दुखदायी अवस्थाएँ (दुक्खधम्म)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु दुख उत्पन्न करने वाली सभी अवस्थाओं के उद्‌भव और निवारण को यथावत समझ लेता है, तब वह इंद्रिय सुखों को इस प्रकार देख पाता है कि उन्हें देखने पर उसके भीतर इंद्रिय इच्छा, इंद्रिय स्नेह, इंद्रिय मोह और इंद्रिय वासना उत्पन्न नहीं होती; तब वह आचरण और निवास का ऐसा तरीका समझ लेता है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और इस प्रकार निवास करता है, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी नहीं होतीं। 196

"और हे भिक्षुओं, कोई भिक्षु दुख उत्पन्न करने वाली सभी अवस्थाओं के उद्‌भव और निवारण को यथावत कैसे समझता है? 197 'ऐसा है रूप, ऐसा है उसका उद्‌भव, ऐसा है उसका निवारण; ऐसी है संवेदना (वेदना)... ऐसा है बोध (संज्ञा संस्कृत)... ऐसा है संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... ऐसी है चेतना (विज्ञान संस्कृत)... ऐसा है इसका उद्‌गम, ऐसा है इसका अंत: इसी तरह एक भिक्षु उन सभी अवस्थाओं के उद्‌गम और अंत को समझता है जो दुख का कारण बनती हैं।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु इंद्रिय सुखों को इस प्रकार कैसे देखता है कि जब वह उन्हें देखता है तो उसके भीतर इंद्रिय सुखों के प्रति कोई इच्छा, इंद्रिय स्नेह, इंद्रिय मोह और इंद्रिय वासना सुप्त अवस्था में न रहे? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है। 198 एक व्यक्ति जीने की इच्छा से, मरने की इच्छा से नहीं, सुख की

कामना से और कष्टों से विमुख होकर आता है। तब दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। वह व्यक्ति अपने शरीर को इधर-उधर हिलाता है। क्यों? क्योंकि वह जानता है:
'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इस प्रकार मृत्यु या घातक कष्ट को प्राप्त हो जाऊँगा।' इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इंद्रिय सुखों को कोयले की भट्टी के समान देखता है, तो उसके भीतर इंद्रिय सुखों के प्रति कामुक इच्छा, कामुक स्नेह, कामुक मोह और कामुक वासना सुप्त नहीं रहती।

और हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु ने आचरण और निवास का ऐसा तरीका कैसे समझा है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और इस प्रकार निवास करता है, तो उस पर लोभ और अप्रसन्नता की हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ हावी नहीं होतीं? मान लीजिए कोई व्यक्ति काँटेदार जंगल में प्रवेश करता है। उसके आगे काँटे होंगे, उसके पीछे काँटे होंगे, उसके बाईं ओर काँटे होंगे, उसके दाईं ओर काँटे होंगे, उसके नीचे काँटे होंगे, उसके ऊपर काँटे होंगे। वह सजग होकर आगे बढ़ेगा, वह सजग होकर वापस आएगा, यह सोचते हुए कि 'मुझे कोई काँटा न चुभे!' इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन होता है, वह गुरु के साधना में काँटा कहलाता है। इसे 'काँटा' समझकर, संयम और असंयम को समझना चाहिए।

और हे भिक्षुओं, संयम कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, नहीं समझ पाता, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (पन्ना) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, नहीं समझ पाता, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार से... संयमहीनता।

"और हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो किसी मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ रूप से समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ रूप से समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार संयम है।"

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो कभी-कभी ध्यान की अवस्था में व्यवधान के कारण, बंधनों से संबंधित दुष्ट (अकुशल) स्मृतियाँ और इरादे उसके मन में उत्पन्न हो सकते हैं। उसकी ध्यान अवस्था के उत्पन्न होने में भले ही समय लगे, लेकिन वह शीघ्र ही उनका त्याग कर देता है, उन्हें दूर कर देता है, उनका अंत कर देता है, उन्हें मिटा देता है। 201 मान लीजिए कि एक व्यक्ति दिन भर गर्म की गई लोहे की थाली पर दो-तीन बूँदें गिराता है। बूँदें धीरे-धीरे गिर सकती हैं, लेकिन वे शीघ्र ही वाष्पीकृत होकर गायब हो जाएँगी। इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है... तो उसकी ध्यान अवस्था के उत्पन्न होने में भले ही समय लगे, लेकिन वह शीघ्र ही उनका त्याग कर देता है, उन्हें दूर कर देता है, उनका अंत कर देता है, उन्हें मिटा देता है।

इस प्रकार एक भिक्षु ने आचरण का ऐसा तरीका और निवास का ऐसा ढंग समझ लिया है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो दुष्ट (अकुशल) स्मृतियाँ और इरादे उसके मन में उत्पन्न हो जाते हैं। उस पर लोभ और क्रोध का भाव नहीं आता।

जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'आओ, हे भले, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दो? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हो? आओ, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लो और पुण्य कर्म करो।' हे भिक्षुओं, जब वह भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए।

मान लो, हे भिक्षुओं, कि जब गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, तो लोगों की एक बड़ी भीड़ फावड़ा और टोकरी लेकर यह सोचकर आती है: 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका देंगे।' भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की वह विशाल भीड़ गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका पाएगी? "

नहीं, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, और उसे पश्चिम की ओर झुकाना आसान नहीं है। लोगों की वह विशाल भीड़ केवल थकान और कष्ट ही पाएगी।" "इसी

प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं... [परन्तु] यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन लंबे समय से एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए।"

---

245. किम्सुका वृक्ष उपमा (किम्सुकोपामा)
एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के पास जाकर पूछा, “मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?” 202

“मित्र, जब भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; स्पर्श/संवेदना) के उद्भव और क्षय को यथावत समझ लेता है, तब उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।” 203

तब पहले भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के उत्तर से असंतुष्ट होकर दूसरे भिक्षु के पास जाकर पूछा, “मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?”

“मित्र, जब भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (खन्ध संस्कृत) के उद्भव और क्षय को यथावत समझ लेता है, तब उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।”

फिर, पहले भिक्षु ने दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर एक और भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"मित्र, जब भिक्षु चारों महान तत्वों (धातुओं) की उत्पत्ति और विनाश को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तभी उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।"

फिर, पहले भिक्षु ने दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर एक और भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"मित्र, जब भिक्षु यह सत्य समझ लेता है कि 'जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब निरोध के अधीन होता है,' तभी उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।"

तब पहले भिक्षु, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, भगवान (बुद्ध) के पास गए, सारी घटना बताई और पूछा: "हे पूज्यवर, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"भिक्षु, मान लीजिए कि एक व्यक्ति ने पहले कभी किमसुख का वृक्ष नहीं देखा था। 204 वह एक ऐसे व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुख का वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुख का वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा उत्तर दे सकता है: 'हे महोदय, किमसुख का वृक्ष काला होता है, जैसे जला हुआ ठूंठ।' उस समय किमसुख का वृक्ष उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में था।

"तब वह व्यक्ति, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, एक अन्य व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुख का वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है:
'महोदय, किमसुख का वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा व्यक्ति शायद जवाब दे: 'महोदय, किमसुका का पेड़ लाल रंग का होता है, जैसे मांस का टुकड़ा।' उस समय किमसुका का पेड़ उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की नज़र में था।

"फिर वह व्यक्ति, दूसरे के जवाब से असंतुष्ट होकर, किसी दूसरे व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुका का पेड़ देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुका का पेड़ कैसा दिखता है?' दूसरा व्यक्ति शायद जवाब दे:

'महोदय, किमसुका के पेड़ में छाल की पट्टियाँ लटकी होती हैं और फटी हुई फलियाँ होती हैं, जैसे बबूल के पेड़ में होती हैं। ' 205 उस अवसर पर किमसुका का पेड़ उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा कि दूसरे आदमी की दृष्टि में था।

"तब वह व्यक्ति, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, किसी अन्य व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुका वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुका वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा उत्तर दे सकता है: 'हे महोदय, किमसुका वृक्ष में बहुत सारे पत्ते और वनस्पति होती है और यह बरगद के वृक्ष की तरह भरपूर छाया देता है।' उस समय किमसुका वृक्ष उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में था।

"इसी प्रकार, हे भिक्षु, उन श्रेष्ठ पुरुषों ने भी अपनी दृष्टि के शुद्ध होने के कारण अपने विवेक के अनुसार उत्तर दिया। 206

"मान लीजिए, हे भिक्षु, एक राजा का सीमावर्ती नगर था जिसमें मजबूत प्राचीर, दीवारें और मेहराब थे और छह द्वार थे। 207 वहाँ तैनात द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होगा; वह अजनबियों को बाहर रखेगा और परिचितों को प्रवेश देगा। पूर्व से दो तेज दूत आएंगे और द्वारपाल से पूछेंगे:
'हे महोदय, इस नगर का स्वामी कहाँ है?'" वह उत्तर देता: 'वह केंद्रीय चौक में बैठा है।' तब दूतों की वह फुर्तीली जोड़ी नगर के स्वामी को वास्तविकता का संदेश देती और उसी मार्ग से वापस लौट जाती जिससे वे आए थे। इसी प्रकार, दूत पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से आते, अपना संदेश देते और उसी मार्ग से वापस लौट जाते जिससे वे आए थे।

"मैंने यह उपमा, भिक्षु, अर्थ समझाने के लिए बनाई है। यहाँ अर्थ यह है: 'नगर': यह उस शरीर का नाम है जो चार महान तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, उबले हुए चावल और दलिया से निर्मित है, अनित्यता के अधीन है, घिसने और नष्ट होने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है। 208 'छह द्वार': यह छह आंतरिक इंद्रियों का नाम है। 'द्वारपाल': यह ध्यान का नाम है। 'तेज़ गति से चलने वाले दूतों की जोड़ी': यह शांति (समथा/समभाव) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना-ध्यान) का प्रतीक है। 'नगर का स्वामी': यह चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) का प्रतीक है। 209 'केंद्रीय चौक': यह चार महान तत्वों - पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व का प्रतीक है। 'सत्य का संदेश': यह निर्वाण का प्रतीक है। 210 'जिस मार्ग से वे आए थे': यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

---

246. The Simile of the Lute (Vinopama sans. Vina-upama)
भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी के मन में नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के प्रति इच्छा, कामवासना, घृणा, द्वेष, मोह या विमुखता उत्पन्न हो, तो उसे अपने मन को इनसे इस प्रकार नियंत्रित करना चाहिए: 211 'यह मार्ग भययोग्य, खतरनाक, काँटों से भरा, घने जंगल से आच्छादित, पथभ्रष्ट, दुष्ट और अभाव से ग्रस्त है। 212 यह निम्न वर्ग के लोगों का मार्ग है; यह श्रेष्ठ वर्ग के लोगों का मार्ग नहीं है। यह तुम्हारे लिए नहीं है।' इस प्रकार नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के संबंध में मन को इन अवस्थाओं से नियंत्रित करना चाहिए। इसी प्रकार, कान द्वारा सुनी जा सकने वाली ध्वनियों के संबंध में भी... मन द्वारा देखी जा सकने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में भी।

मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जौ पक गया है और पहरेदार आलसी (पमादा में) है। यदि जौ का शौकीन बैल जौ के खेत में प्रवेश करता है, तो वह अपनी इच्छा अनुसार जितना चाहे उतना आनंद ले सकता है। उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति जो अपनी छह इंद्रियों पर संयम नहीं रखता, वह पांच प्रकार के कामुक सुखों में अपनी इच्छा अनुसार लिप्त हो जाता है। 213

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जौ पक गया है और पहरेदार चौकस है। यदि जौ का शौकीन कोई बैल जौ के खेत में प्रवेश करता है, तो पहरेदार उसे थूथन से मजबूती से पकड़ लेगा। थूथन को मजबूती से पकड़े हुए, वह उसके सींगों के बीच के बालों को मजबूती से पकड़ लेगा और उसे वहीं रोककर अपनी लाठी से उसकी जमकर पिटाई करेगा। पिटाई करने के बाद, वह बैल को भगा देगा। यह प्रक्रिया दूसरी और तीसरी बार भी हो सकती है। इस प्रकार, जौ का शौकीन वह बैल, चाहे वह गाँव गया हो या जंगल में, चाहे वह खड़े रहने का आदी हो या बैठने का, लाठी से मिली पिछली पिटाई को याद रखते हुए, उस जौ के खेत में फिर कभी प्रवेश नहीं करेगा।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु का मन अच्छी तरह से वश में हो जाता है, 214 छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में, तो वह आंतरिक रूप से स्थिर, शांत, एकीकृत और समाधि अवस्था में।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कोई राजा या राजमंत्री हो जिसने पहले कभी वीणा की ध्वनि न सुनी हो। वह वीणा की ध्वनि सुनकर कहे: 'हे प्रभु, यह ध्वनि इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मादक, इतनी सम्मोहक, इतनी मोहक किस बात की है?' वे उससे कहेंगे: 'हे प्रभु, यह

वीणा की ध्वनि है - इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मादक, इतनी सम्मोहक, इतनी मोहक।' वह उत्तर देगा: 'जाओ, वह वीणा मेरे पास लाओ।'

वे उसके पास वीणा लाते और कहते: 'हे प्रभु, यह वही वीणा है, जिसकी ध्वनि इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मदहोश करने वाली, इतनी मंत्रमुग्ध करने वाली, इतनी मोहक थी।' राजा कहते: 'मैं इस वीणा से तंग आ गया हूँ, महोदय। मुझे बस वही ध्वनि लाओ।' वे उत्तर देते: 'हे प्रभु, यह वीणा अनेक घटकों से बनी है, बहुत सारे घटकों से, और यह अपने अनेक घटकों के साथ बजाए जाने पर ध्वनि उत्पन्न करती है; अर्थात्, चर्मपत्र ध्वनि तख्ती, पेट, भुजा, शीर्ष, तार, पलेक्ट्रम और संगीतकार के उचित प्रयास पर निर्भर करती है। 215 अतः, हे प्रभु, यह वीणा, जो अनेक घटकों से बनी है, अपने अनेक घटकों के साथ बजाए जाने पर ध्वनि उत्पन्न करती है।'

राजा वीणा को दस या सौ टुकड़ों में तोड़ देते, फिर उन्हें चूर्ण-चूर्ण कर देते। उन्हें चूर-चूर करके, वह उन्हें आग में जलाकर राख कर देता था, और फिर उस राख को तेज हवा में बिखेर देता था या नदी की तेज धारा में बहा देता था। तब वह कहता था:
'सचमुच, महोदय, यह तथाकथित वीणा एक दयनीय वस्तु है, और वीणा कहलाने वाली कोई भी अन्य वस्तु भी। लोग इसके प्रति कितने आलसी (पमादा में) हैं, कितने मूर्ख हैं!' 216

"इसी प्रकार, भिक्षु रूप का अध्ययन रूप की सीमा तक करते हैं, वे वेदना का अध्ययन वेदना की सीमा तक करते हैं, वे अनुभूति (संज्ञा) का अध्ययन अनुभूति की सीमा तक करते हैं, वे संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का अध्ययन संस्कार की सीमा तक करते हैं, वे चेतना (विज्ञान) का अध्ययन चेतना की सीमा तक करते हैं। जैसे-जैसे वे रूप का अध्ययन रूप की सीमा तक करते हैं... चेतना का अध्ययन चेतना की सीमा तक करते हैं, वैसे-वैसे 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं हूँ' की जो भी धारणाएँ उनके मन में पहले थीं, वे अब उनके मन में नहीं रहतीं।" 217

---

247. छह पशुओं की उपमा (छप्पनकोपमा)
भिक्षुओं, मान लो अगर कोई घायल और सड़ता हुआ आदमी कांटेदार सरकंडों के जंगल में घुस जाए, 218 और कुश के कांटे उसके पैरों में चुभेंगे और सरकंडों की टहनियां उसके अंगों को काट देंगी। इस तरह उस आदमी को और भी ज़्यादा दर्द और परेशानी होगी। इसी तरह, भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु गाँव या जंगल में गया है, और उसे कोई ऐसा मिलता है जो उसे इस तरह डांटता है:

'यह आदरणीय व्यक्ति, इस तरह से काम कर रहा है, इस तरह का व्यवहार कर रहा है, यह एक गंदा गाँव का काँटा है।' उसे इस तरह 'काँटा' समझने के बाद, संयम और संयम को समझना चाहिए। 219

"और भिक्षुओं, संयम कैसे होता है? यहाँ, आँख से एक रूप देखकर, एक भिक्षु एक अच्छे रूप पर ध्यान देता है और एक बुरे रूप से दूर भागता है। वह शरीर का ध्यान लगाए बिना, सीमित मन के साथ रहता है, और वह यह नहीं समझता कि मन की मुक्ति (विमुक्ति रहित विमुक्ति) असल में क्या है, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, जिसमें वे बुरी हानिकारक (अकुशल रहित अकुशल) अवस्थाएँ बिना रुके खत्म हो जाती हैं। कान से कोई आवाज़ सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को पहचानने के बाद, वह एक अच्छी मानसिक घटना पर ध्यान देता है और एक बुरी मानसिक घटना से दूर हो जाता है। वह शरीर का ध्यान लगाए बिना, सीमित मन के साथ रहता है, और वह यह नहीं समझता कि मन की मुक्ति (विमुक्ति रहित पन्ना) असल में क्या है, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, जिसमें वे बुरी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ बिना रुके खत्म हो जाती हैं।

"मान लो, भिक्षुओं, एक आदमी छह जानवरों को पकड़ेगा - जिनके रहने की जगह और खाने की जगह अलग-अलग हैं - और उन्हें एक मज़बूत रस्सी से बांध देगा। वह एक साँप, एक मगरमच्छ, एक चिड़िया, एक कुत्ता, एक सियार और एक बंदर पकड़ेगा, और हर एक को एक मज़बूत रस्सी से बांध देगा। ऐसा करने के बाद, वह रस्सियों को बीच में एक गाँठ लगाकर एक साथ बांध देगा और उन्हें छोड़ देगा (मोक्ष/मोक्ष)। फिर वे छह जानवर जिनके रहने की जगह और खाने की जगह अलग-अलग हैं, हर एक अपने खाने की जगह और इलाके की तरफ खींचेगा। साँप एक तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो चींटियों के बिल में घुस जाऊँ।' मगरमच्छ दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो पानी में घुस जाऊँ।' चिड़िया दूसरी तरफ खींचेगी, यह सोचकर कि 'चलो आसमान में उड़ जाऊँ।' कुत्ता दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी गाँव में घुस जाऊँ।' सियार दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी श्मशान में घुस जाऊँ।' बंदर दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी जंगल में घुस जाऊँ।'
"जब ये छह जानवर थककर चूर हो जाते हैं, तो उनमें से जो सबसे बलवान होता है, वे उसके अधीन हो जाते हैं; वे उसके सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं और उसके वश में आ जाते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु ने शरीर-केंद्रित ध्यान का अभ्यास नहीं किया होता है, तो आँख सुखद रूपों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय रूप अरुचिकर लगते हैं; कान सुखद ध्वनियों की ओर आकर्षित होते हैं और अप्रिय ध्वनियाँ अरुचिकर लगती हैं; नाक सुखद गंधों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय गंधें अरुचिकर

लगती हैं; जीभ सुखद स्वादों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय स्वाद अरुचिकर लगते हैं; शरीर सुखद स्पर्श वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है और अप्रिय स्पर्श वस्तुएँ अरुचिकर लगती हैं; मन सुखद मानसिक घटनाओं (धर्म) की ओर आकर्षित होता है और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) अरुचिकर लगती हैं।

इसी प्रकार असंयम होता है।"

और हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही अप्रिय मानसिक घटना से विमुख होता है। [200] वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, बुद्धि द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार संयम है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति छह जानवरों को पकड़ता है - जो अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग चरागाहों में रहते हैं - और उन्हें एक मजबूत रस्सी से बाँध देता है। वह एक साँप, एक मगरमच्छ, एक पक्षी, एक कुत्ता, एक सियार और एक बंदर को पकड़ता और हर एक को एक मजबूत रस्सी से बाँध देता। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें एक मजबूत खंभे या स्तंभ से बाँध देता। फिर अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग भोजन क्षेत्रों वाले वे छह जानवर अपने-अपने भोजन क्षेत्र और क्षेत्र की दिशा में खींचते। साँप एक तरफ खींचता, यह सोचते हुए कि 'मुझे चींटियों के टीले में जाना है'... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... बंदर दूसरी तरफ खींचता, यह सोचते हुए कि 'मुझे जंगल में जाना है।'

जब ये छह जानवर थक जाते हैं, तो वे उस खंभे के पास खड़े हो जाते हैं, वहाँ बैठ जाते हैं, वहाँ लेट जाते हैं। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु शरीर-केंद्रित ध्यान का अभ्यास कर लेता है, तो उसकी आँख सुखद रूपों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय रूप उसे अरुचिकर लगते हैं; उसके कान सुखद ध्वनियों की ओर आकर्षित नहीं होते और न ही अप्रिय ध्वनियाँ उसे अरुचिकर लगती हैं; उसकी नाक सुखद गंधों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय गंधें उसे अरुचिकर लगती हैं; उसकी जीभ सुखद स्वादों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय स्वाद उसे अरुचिकर लगते हैं; उसका शरीर सुखद स्पर्श वस्तुओं की ओर आकर्षित नहीं होता और न ही अप्रिय स्पर्श वस्तुओं को उसे अरुचिकर लगता है; उसका मन सुखद मानसिक घटनाओं (धर्म) की ओर आकर्षित नहीं होता और न ही अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) को उसे अरुचिकर लगता है।

इसी प्रकार संयम रहता है।

"'एक मजबूत खंभा या स्तंभ': भिक्षुओं, यह शरीर-केंद्रित ध्यान के लिए एक पदनाम है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम शरीर-केंद्रित ध्यान का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

248. जौ का पूला (यवकलापिसु)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक चौराहे पर जौ का एक गट्ठा रखा है। फिर छह आदमी अपने हाथों में डंडे लेकर आते हैं और वे उन छह डंडों से जौ के गट्ठे पर प्रहार करते हैं। इस प्रकार वह गट्ठा अच्छी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। फिर एक सातवां आदमी अपने हाथ में डंडा लेकर आता है और वह उस गट्ठे पर सातवें डंडे से प्रहार करता है। इस प्रकार वह गट्ठा और भी अधिक अच्छी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार

, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति की आंखें सुखद और अप्रिय रूपों से प्रभावित होती हैं; उसके कान सुखद और अप्रिय ध्वनियों से प्रभावित होते हैं; उसकी नाक सुखद और अप्रिय गंधों से प्रभावित होती है; उसकी जीभ सुखद और अप्रिय स्वादों से प्रभावित होती है; उसके शरीर पर सुखद और अप्रिय स्पर्श वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है; और उसके मन पर सुखद और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) का प्रभाव पड़ता है। यदि वह अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति भविष्य में होने वाले नए जीवन (पुनर्जन्म का कारण) पर अपना मन लगाता है, 221 तो वह मूर्ख व्यक्ति और भी बुरी तरह से चोट खाता है, ठीक उसी तरह जैसे जौ की बाली को सातवें कोड़े से मारा जाता है।

"एक बार अतीत में, भिक्षु, देव (देवदूत) और असुर (राक्षस) युद्ध के लिए तैयार हुए थे। 222 तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे सज्जनों, यदि इस आगामी युद्ध में असुर जीतें और देव पराजित हों, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर असुरों के नगर में मेरे पास ले आओ।' और देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने तावतिंसा देवताओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे सज्जनों, यदि इस आगामी युद्ध में देव विजयी हों और असुर पराजित हों, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म में मेरे पास ले आइए, जो देवताओं का सभागृह है।

" उस युद्ध में देव विजयी हुए और असुर पराजित हुए। तब तावतिंसा देवताओं ने वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म में सक्का के पास ले आए, जो देवताओं का सभागृह है। और वहाँ असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांध दिया गया।

जब वेपचित्ति के मन में यह विचार आया: 'देव धर्मात्मा हैं, असुर अधर्मी हैं; अब मैं यहीं पर देवताओं के नगर में चला गया हूँ,' तब उन्होंने स्वयं को अपने अंगों और गर्दन के बंधनों से मुक्त पाया और दिव्य इंद्रिय सुख के पाँचों डोरों से परिपूर्ण होकर आनंदित हुए। परन्तु जब उनके मन में यह विचार आया: 'असुर धर्मात्मा हैं, देवता अधर्मी हैं; अब मैं असुरों के नगर में जाऊँगा,' तब उन्होंने स्वयं को अपने चारों अंगों और गर्दन के बंधनों से बंधा हुआ पाया और वे दिव्य इंद्रिय सुख के पाँचों डोरों से वंचित हो गए। हे भिक्षुओं,

वेपचित्ति का बंधन इतना सूक्ष्म था, परन्तु मार (शैतान) का बंधन उससे भी अधिक सूक्ष्म है। गर्भ धारण करने से व्यक्ति मार के बंधन में बंध जाता है; गर्भ धारण न करने से व्यक्ति उस दुष्ट से मुक्त हो जाता है। 223

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' (अस्मि) एक कल्पना है; 'मैं यह हूँ' एक कल्पना है; 'मैं होऊँगा' एक कल्पना है; 'मैं नहीं होऊँगा' एक कल्पना है; 'मैं रूप से बना रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं निराकार रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं बोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं अबोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा और न ही अबोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है। 224 कल्पना एक रोग है, कल्पना एक ट्यूमर है, कल्पना एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कल्पना रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' एक विक्षिप्तता है; 225 'मैं यह हूँ' एक विक्षिप्तता है; 'मैं रहूंगा' एक विक्षिप्तता है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष रहूंगा और न ही अप्रदर्शित' एक विक्षिप्तता है। विक्षिप्तता एक रोग है, विक्षिप्तता एक ट्यूमर है, विक्षिप्तता एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अविचलित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूं' एक धड़कन है; 'मैं यह हूं' एक धड़कन है; 'मैं रहूंगा' एक धड़कन है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष रहूंगा और न ही अप्रदर्शित' एक धड़कन है। धड़कन एक रोग है, धड़कन एक ट्यूमर है, धड़कन एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम धड़कन रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूं' एक 6-इंद्रिय-भ्रम है (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया); 'मैं यह हूँ' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है; 'मैं होऊंगा' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष होऊंगा और न ही अप्रत्यक्ष' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है। छठी इंद्रिय का भ्रम एक रोग है, छठी इंद्रिय का भ्रम एक ट्यूमर है, छठी इंद्रिय का भ्रम एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम छठी इंद्रिय के भ्रम से रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' अहंकार से ग्रस्त होना है; 226 'मैं यह हूँ' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं होऊंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं नहीं होऊंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं रूप से बना रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं निराकार रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं बोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं अबोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं न तो बोधशील रहूंगा और न ही अबोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है। अहंकार से ग्रस्त होना एक रोग है, अहंकार से ग्रस्त होना एक ट्यूमर है, अहंकार से ग्रस्त होना एक तीर के समान है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम ऐसे मन के साथ निवास करेंगे जिसमें अहंकार नष्ट हो गया हो।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 2: संवेदनाओं पर संबंधित प्रवचन (वेदानासंयुत्त) {संयुत्त-36}

(i) श्लोकों सहित खंड (सगाथावग्गो)

249. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद संवेदना (वेदना), दुखदायी संवेदना (वेदना), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना)। ये तीन संवेदनाएँ हैं।

समाधि अवस्था में, पूर्णतः संबोधित (संपजानो); बुद्ध का शिष्य, ध्यानमग्न (सतिमा)।
संवेदनाओं को समझता है; और संवेदनाओं के उद्गम को।

जहाँ वे अंततः समाप्त होती हैं; और उनके विनाश (खया/क्षया) की ओर ले जाने वाले मार्ग को।
संवेदनाओं के क्षय/विनाश के साथ; भिक्षु भूख रहित और पूर्णतः तृप्त हो जाता है। 227

---

250. सुख
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखदायक वेदना, दुखदायक वेदना, और न दुखदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं।

चाहे सुखदायक हो या दुखदायक; न दुखदायक न सुखदायक वेदना के साथ,
आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की, चाहे कोई भी वेदना हो: यह

जानकर कि "यह दुख है; नाशवान, विघटनशील,"
इन्हें बार-बार छूकर, इनके पतन को देखकर; व्यक्ति इनके प्रति अपनी आसक्ति खो देता है। 228

---

251. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) होती हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), दुखदायी संवेदना (वेदना), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना)। सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में काम (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अनुषय) का त्याग करना चाहिए। दुखदायी संवेदना (वेदना) के संबंध में घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अविद्या) का त्याग करना चाहिए। 229

“जब, भिक्षु सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में काम (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय), दुखदायी संवेदना (वेदना) के संबंध में घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अविद्या) का त्याग कर देता है, तब वह जिसे अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) के बिना भिक्षु कहा जाता है, 230 वह जो सही ढंग से देखता है। उन्होंने तृष्णा का नाश किया है, बंधनों को तोड़ा है, और अहंकार को पूर्णतः तोड़कर दुख का अंत किया है।

जब कोई सुख का अनुभव करता है,
यदि वह वेदना को नहीं समझता, तो
कामवासना की प्रवृत्ति बनी रहती है,
क्योंकि उसे इससे मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाई देता।

जब कोई पीड़ा का अनुभव करता है,
यदि वह वेदना को नहीं समझता, तो
घृणा की प्रवृत्ति बनी रहती है,
क्योंकि उसे इससे मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाई देता।

व्यापक अंतर्दृष्टि वाले ने
उस शांत वेदना के संदर्भ में शिक्षा दी है,
जो न पीड़ादायक है और न ही सुखदायक:
यदि कोई इसमें भी आनंद की तलाश करता है, तो
भी वह दुख से मुक्त नहीं होता। [206]

परन्तु जब कोई उत्साही भिक्षु
पूर्ण बोध (संपजन्न) की उपेक्षा नहीं करता, तो वह ज्ञानी व्यक्ति वेदना को पूर्णतः

समझ लेता है । वेदना को पूर्णतः समझ लेने के बाद वह दोषमुक्त हो जाता है। जीवन ही। धम्म (मार्ग, नियम) में खड़े होकर, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञान के स्वामी की गणना नहीं की जा सकती।

---

252. अथाह खाई (पाताल)
भिक्षुओं, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहता है, 'महासागर में अथाह खाई है,' 232 तो वह किसी ऐसी चीज़ के बारे में ऐसा कहता है जो अस्तित्वहीन और अवास्तविक है। भिक्षुओं, यह वास्तव में कष्टदायक शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) का नाम है, अर्थात् 'अथाह खाई'।

जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को कष्टदायक शारीरिक संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह रोता है, अपनी छाती पीटता है और व्याकुल हो जाता है। इसे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है जो अथाह खाई में ऊपर नहीं उठा है, जिसने वहाँ आधार नहीं पाया है।

लेकिन, भिक्षुओं, जब किसी दीक्षित शिष्य को वेदना का कष्टदायक शारीरिक अनुभव होता है, तो वह शोक, विलाप या शोक नहीं करता; वह रोता नहीं, सीना नहीं पीटता और व्याकुल नहीं होता। यही वह दीक्षित शिष्य कहलाता है जो अथाह सागर में ऊपर उठ गया है, जिसने वहाँ स्थान प्राप्त कर लिया है।

जो
उत्पन्न वेदनाओं,
जीवन को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं को सहन नहीं कर सकता, जो उनके
स्पर्श से कांप उठता है, जो

दुर्बल है
और जोर-जोर से रोता और विलाप करता है:
वह अथाह सागर में ऊपर नहीं उठा है,
न ही उसने वहाँ स्थान प्राप्त किया है।

परन्तु जो उन्हें सहन कर सकता है
- उत्पन्न वेदनाओं,
जीवन को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं को
- जो उनके स्पर्श से कांप नहीं उठता:
वह अथाह सागर में ऊपर उठ गया है
और उसने वहाँ स्थान भी प्राप्त कर लिया है।

---

253. देखा जाना चाहिए (दत्ताब्बा सं. द्दष्टव्य)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ होती हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखद वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। भिक्षुओं, सुखद वेदना को कष्टदायक समझना चाहिए; कष्टदायक वेदना को बाण के समान समझना चाहिए; और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना को क्षणभंगुर समझना चाहिए।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सुखद वेदना को कष्टदायक, कष्टदायक वेदना को बाण के समान और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना को क्षणभंगुर समझता है, तो वह सही द्दष्टि वाला भिक्षु कहलाता है। उन्होंने तृष्णा का नाश कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और अहंकार को पूर्णतः नष्ट करके दुखों का अंत कर दिया है।

जिसने सुख को दुखमय

और दुखमय को तीर के समान देखा है, जिसने
शांतिमय अनुभूति (वेदना) को क्षणभंगुर देखा है ,
जो न दुखमय है और न सुखमय:

वही सही दृष्टि वाला भिक्षु है,
जो संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझता है।
संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझकर,
वह इसी जीवन में दोषमुक्त है।
धर्म (मार्ग, नियम) में स्थिर रहकर, शरीर के विखंडन के साथ,
ज्ञान के स्वामी की गणना नहीं की जा सकती।

---

254. द डार्ट (सल्ला सं. शल्य)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को सुखद, कष्टदायी और न कष्टदायी तथा न सुखदायी अनुभूतियाँ होती हैं। ज्ञानी शिष्य को भी सुखद, कष्टदायी तथा न कष्टदायी तथा न सुखदायी अनुभूतियाँ होती हैं। तो, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में क्या अंतर है? "आदरणीय महोदय

, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण में लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध)
ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को वेदना का कष्टदायक अनुभव होता है, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह छाती पीटते हुए रोता है और व्याकुल हो जाता है। उसे दो प्रकार का कष्ट (वेदना) होता है - एक शारीरिक और एक मानसिक। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को एक बाण से मारा जाए, और फिर तुरंत बाद दूसरे बाण से मारा जाए, जिससे उस व्यक्ति को दो बाणों के कारण होने वाला कष्ट (वेदना) अनुभव हो। इसी प्रकार, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को वेदना का कष्टदायक अनुभव होता है... तो उसे दो प्रकार का कष्ट (वेदना) होता है - एक शारीरिक और एक मानसिक।

उसी कष्टदायक कष्ट (वेदना) के संपर्क में आने पर, वह उससे घृणा करता है। जब वह कष्टदायक कष्ट (वेदना) से घृणा करता है, तो इसके पीछे उस कष्टदायक कष्ट (वेदना) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है।" पीड़ादायक वेदना से ग्रस्त होकर वह इंद्रिय सुख में आनंद की तलाश करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को पीड़ादायक वेदना से मुक्ति का एकमात्र उपाय इंद्रिय सुख ही ज्ञात है। 235 जब वह इंद्रिय सुख में आनंद की तलाश करता है, तो इसके पीछे सुखदायक वेदना के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है। वह इन वेदनाओं के उद्भव और अंत, सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को सही ढंग से नहीं समझ पाता। जब वह इन बातों को नहीं समझता, तो इसके पीछे पीड़ादायक और सुखदायक दोनों प्रकार की वेदनाओं के प्रति अज्ञान (अविज्जा) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। यदि उसे कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। यदि उसे न कष्टदायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। हे भिक्षुओं, इसे अज्ञानी सांसारिक कहा जाता है जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से आसक्त है; जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से आसक्त है; जो दुख से आसक्त है, मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओं, जब ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य को कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह दुःख, शोक या विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और व्याकुल नहीं होता। 236 वह केवल एक अनुभूति (वेदना) का अनुभव करता है - शारीरिक अनुभूति, मानसिक नहीं। मान लीजिए कि वे किसी व्यक्ति को बाण से मारते हैं, लेकिन तुरंत बाद उसे दूसरे बाण से नहीं मारते, ताकि वह व्यक्ति केवल एक बाण से उत्पन्न अनुभूति (वेदना) का अनुभव करे। इसी प्रकार, जब दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है... तो उसे एक ही अनुभूति (वेदना) होती है - शारीरिक अनुभूति, मानसिक अनुभूति नहीं।

उस पीड़ादायक वेदना से संपर्क में आने पर भी, वह उसके प्रति कोई अरुचि नहीं रखता। चूंकि वह पीड़ादायक वेदना के प्रति अरुचि नहीं रखता, इसलिए पीड़ादायक वेदना के प्रति अरुचि की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) इसके पीछे नहीं है। पीड़ादायक वेदना से संपर्क में आने पर भी, वह इंद्रिय सुख में आनंद नहीं लेता। इसका कारण क्या है? क्योंकि शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य इंद्रिय सुख के अलावा पीड़ादायक वेदना से मुक्ति का मार्ग जानता है। चूंकि वह इंद्रिय सुख में आनंद नहीं लेता, इसलिए सुखदायक वेदना के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति इसके पीछे नहीं है। वह इन संवेदनाओं (वेदना) के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत समझता है। चूंकि वह इन बातों को समझता है, इसलिए न पीड़ादायक और न ही सुखदायक संवेदना (वेदना) के संबंध में अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) इसके पीछे नहीं है। इसके पीछे कुछ नहीं है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। यदि उसे कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। यदि उसे न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, इसे ही वह श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से विरक्त है; जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से विरक्त है; जो पीड़ा से विरक्त है, मैं कहता हूँ।

हे भिक्षुओं, यही वह भेद, वह अंतर, वह अंतर है जो ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है।"

ज्ञानी, विद्वान व्यक्ति
सुखद और कष्टदायक [मानसिक] अनुभूति (वेदना) का अनुभव नहीं करता। यही ज्ञानी और सांसारिक व्यक्ति
में बड़ा अंतर है । क्योंकि जो विद्वान धर्म (मार्ग, नियम) को समझ चुका है, जो इस संसार और परलोक को स्पष्ट रूप से देखता है, वह इससे विरक्त है।

वांछनीय धर्म (गुण, नियम) उनके मन को उत्तेजित नहीं करते।
अवांछनीय धर्मों के प्रति उनमें कोई घृणा नहीं है।

उनके लिए आकर्षण और विकर्षण का कोई अस्तित्व नहीं है;
दोनों का नाश हो चुका है।
धूल रहित, दुःख रहित अवस्था को जानकर,
भाव से परे जाने वाला व्यक्ति इसे सही ढंग से समझता है।

---

255. बीमार वार्ड (1) (गेलन्ना1)
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में शिखरनुमा छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और रोगी कक्ष में गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु को अपने समय की प्रतीक्षा ध्यानमग्न (सतिमा) और
पूर्णतः संबोधित (संपजानो) अवस्था में करनी चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

" "और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे ध्यानमग्न होता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यानमग्न अवस्था में, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न अवस्था में, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर निवास करता है।" वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धर्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं; वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न (सतिमा) होता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु वह है जो आगे बढ़ते और लौटते समय; आगे और पीछे देखते समय; अंगों को सिकोड़ते और फैलाते समय; वस्त्र धारण करते और ग्रहण-पात्र धारण करते समय; भोजन करते, पीते,

चबाते और चखते समय; शौच करते और मूत्र त्यागते समय; चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय पूर्ण बोध के साथ कार्य करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध का अभ्यास करता है।

एक भिक्षु को अपने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में समय व्यतीत करना चाहिए।
यही हमारा आपको निर्देश है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो), सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, तब यदि उसमें कोई सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें एक सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न हुई है। अब यह अनुभूति आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, बद्ध (संखत), आश्रित उत्पत्ति का है। अतः जब सुखद अनुभूति (वेदना) अनित्य, बद्ध, आश्रित उत्पत्ति के शरीर पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और वेदना में अनित्यता पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह पतन पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह मिटने पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह निरोध पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है और वह त्याग पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है। 238 इस प्रकार चिंतन करते हुए, वह शरीर और वेदना के संबंध में कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का त्याग कर देता है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, तब यदि उसमें कोई पीड़ादायक वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें पीड़ादायक वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, बद्ध और आश्रित है। अतः जब पीड़ादायक वेदना अनित्य, बद्ध और आश्रित शरीर पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और वेदना की अनित्यता पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, पतन, क्षीणता, समाप्ति और त्याग पर चिंतन करता है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, शरीर और वेदना के प्रति घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है। भिक्षुओं, जब

कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः संबोधित होकर, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ चिंतन करता है, यदि उसमें कोई ऐसी वेदना उत्पन्न होती है जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तो वह उसे इस प्रकार समझता है: '
मुझमें एक ऐसी वेदना उत्पन्न हुई है जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी।' यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, संखत और आश्रित है। अतः जब सुखहीन वेदना (न तो सुखदायक और न ही सुखदायक) एक अनित्य, संभलित और आश्रित शरीर पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और सुखहीन वेदना की अनित्यता पर ध्यान लगाता है, वह पतन, क्षीणता, निरोध और त्याग पर ध्यान लगाता है। इस प्रकार ध्यान लगाने से शरीर और सुखहीन वेदना के प्रति अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का वह त्याग कर देता है।

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है:
'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है:
'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, उसे यह अलग-थलग महसूस होता है।

जब भिक्षु को शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है:
'मुझे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब भिक्षु को जीवन से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है:
'मुझे जीवन से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) हो रही है।' वह समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के टूटने से, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा।' हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब भिक्षु को शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है... जीवन से जुड़ी हुई... तो वह

समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के टूटने से, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा।'

---

256. बीमार वार्ड (2) (गेलन्ना2)
(जैसा कि पिछले सूत्र में दूसरे आदेश तक बताया गया है:)

"भिक्षु को ध्यानमग्न और पूर्णतः बोधगम्य रहते हुए अपने समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए।
यही हमारा आपको निर्देश है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न, पूर्णतः बोधगम्य, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, यदि उसमें कोई सुखद वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें एक सुखद वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह वेदना आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) पर आश्रित। परन्तु यह संपर्क क्षणिक, संखतो और आश्रित है।" अतः जब सुखदायक अनुभूति (वेदना) किसी अनित्य, बद्ध और आश्रित संपर्क पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई हो, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर, संपर्क (फस/स्पर्श) और सुखदायक अनुभूति (वेदना) पर चिंतन करता है; वह पतन, लुप्त होने, निरोध और त्याग पर चिंतन करता है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, संपर्क (फस/स्पर्श) और सुखदायक अनुभूति (वेदना) के संबंध में कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, यदि उसमें कोई पीड़ादायक वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें पीड़ादायक वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस स्पर्श पर आश्रित। परन्तु यह स्पर्श क्षणिक, बद्ध और आश्रित है। अतः जब पीड़ादायक वेदना क्षणिक, बद्ध और आश्रित स्पर्श पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह ध्यानमग्न होकर अनित्यता, स्पर्श और पीड़ादायक संवेदनाओं पर ध्यान लगाता है; वह पतन, क्षीणता, समाप्ति और त्याग पर ध्यान लगाता है। इस प्रकार ध्यान लगाने से, स्पर्श और पीड़ादायक संवेदनाओं के प्रति अरुचि की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है।

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः संबोधित होकर, सजग होकर, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर ध्यान लगाता है, यदि उसमें न पीड़ादायक और न ही सुखदायक संवेदना उत्पन्न होती है, तो वह उसे इस प्रकार समझता है:
मुझमें एक ऐसी अनुभूति (वेदना) उत्पन्न हुई है जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक। यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) पर आश्रित। परन्तु यह स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) अनित्य, संखतो और आश्रित रूप से उत्पन्न है। तो जब यह न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) एक अनित्य, संखतो और आश्रित रूप से उत्पन्न स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो यह स्थायी कैसे हो सकती है? वह स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) और न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) की अनित्यता पर ध्यान केंद्रित करते हुए, पतन पर ध्यान केंद्रित करते हुए, क्षीण होने पर ध्यान केंद्रित करते हुए, निरोध पर ध्यान केंद्रित करते हुए और त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए चिंतन करते हैं। इस प्रकार चिंतन करते हुए, स्पर्श और पीड़ादायक एवं सुखदायक वेदना के संबंध में अंतर्निहित अज्ञान की प्रवृत्ति (अनुसय) का वह त्याग कर देता है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... तो वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न मिलने के कारण वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'"

---

257. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
भिक्षुओं, ये तीनों वेदनाएँ अनित्य, संबद्ध, आश्रितता से उत्पन्न, क्षय/नष्ट होने वाली, क्षीणता के अधीन, लुप्त होने वाली और निरोध के अधीन हैं। ये तीन क्या हैं? सुखद, दुखदायी और न दुखदायी। ये तीनों वेदनाएँ अनित्य, संबद्ध, आश्रितता से उत्पन्न, क्षय/नष्ट होने वाली, क्षीणता के अधीन, लुप्त होने वाली और निरोध के अधीन हैं।

---

258. संपर्क में निहित (फस्सामुलका सं. स्पर्श-मुलक)
भिक्षुओं, ये तीन संवेदनाएँ (वेदनाएँ) संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) से उत्पन्न होती हैं, और संपर्क ही इनका स्रोत और कारण है। ये तीन संवेदनाएँ कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), कष्टदायक संवेदना (वेदना), और न कष्टदायक न सुखद संवेदना (वेदना)।

भिक्षुओं, सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के आधार पर एक सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के निरोध (निरोध) के साथ ही, उससे संबंधित संवेदना (वेदना) - यानी उस सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई सुखद संवेदना (वेदना) - समाप्त हो जाती है।

किसी कष्टदायक स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण कष्टदायक वेदना उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित वेदना - यानी उस कष्टदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई कष्टदायक वेदना - समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है। किसी

न कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण भी कष्टदायक और न सुखदायक वेदना उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित वेदना - यानी उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई कष्टदायक वेदना - समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु जब लकड़ियों को अलग करके रख दिया जाता है तो उत्पन्न ऊष्मा शांत हो जाती है; 240 उसी प्रकार ये तीनों वेदनाएँ स्पर्श से उत्पन्न होती हैं, स्पर्श में ही निहित होती हैं और स्पर्श ही इनका स्रोत और कारण है। उचित संपर्कों (इंद्रिय विषयों से स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, संबंधित वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं; उचित संपर्कों के समाप्त होने पर संबंधित वेदनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं।

(ii) अकेला खंड (राहोगतावगो)
259. अकेला (रहोगता)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: भगवान (बुद्ध) ने तीन वेदियों का वर्णन किया है:

सुखद वेदियां, दुखदायी वेदियां और न दुखदायी न सुखदायी वेदियां। इन तीन वेदियों का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है। लेकिन भगवान (बुद्ध) ने कहा है: "जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, वह दुख में शामिल है।" अब भगवान (बुद्ध) ने यह किस संदर्भ में कहा है?"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! मैंने इन तीन वेदियों का वर्णन किया है: सुखद वेदियां, दुखदायी वेदियां और न दुखदायी न सुखदायी वेदियां। मैंने इन तीन वेदियों का वर्णन किया है। और मैंने यह भी कहा है: 'जो कुछ भी महसूस किया जाता है, वह दुख में शामिल होता है।' यह मैंने संस्कार (कर्म संस्कार, व्यवहार-आदतों) की अनित्यता (अनिच्च संस्कृत अनित्य) के संदर्भ में कहा है। यह मैंने संस्कार (व्यवहार-आदतों) के क्षय/विनाश (खय/क्षय) के अधीन होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के पतन के अधीन होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के लुप्त होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के निरोध (समाप्ति) के अधीन होने और संस्कार (व्यवहार-आदतों) के परिवर्तन के अधीन होने के संदर्भ में कहा है। 241

"तो, भिक्षु, मैंने संस्कार (कर्म संस्कार, बाध्यकारी-व्यवहार-आदतों) की क्रमिक समाप्ति का भी उपदेश दिया है।" 242 प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वाणी का अंत हो जाता है। द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विचार और परीक्षण समाप्त हो जाते हैं। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पीति/प्रीति आनंद समाप्त हो जाता है। चतुर्थ ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का श्वास लेना और श्वास छोड़ना समाप्त हो जाता है। अनंत आकाश की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का रूप-बोध समाप्त हो जाता है। अनंत चेतना की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अनंत आकाश की अनुभूति समाप्त हो जाती है। शून्यता की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अनंत चेतना की अनुभूति समाप्त हो जाती है। न-बोध-न-अनुभूति की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का शून्यता की अनुभूति समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति ने बोध और संवेदना का अंत (वेदना) प्राप्त कर लिया है, उसके लिए बोध और संवेदना का अंत हो जाता है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का अंत हो जाता है।

हे भिक्षु, मैंने कर्म संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार संबंधी आदतों) के क्रमिक शांत होने का भी उपदेश दिया है। प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की वाणी शांत हो जाती है। वेदना और बोध की शांति प्राप्त करने वाले की बोध और बोध शांत हो जाते हैं। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी राग शांत हो जाती है, द्वेष शांत हो जाता है और मोह शांत हो जाता है।

हे भिक्षु, ये छह प्रकार की शांति हैं। प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की वाणी शांत हो जाती है। द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले के विचार और परीक्षा शांत हो जाते हैं। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की पीति शांत हो जाती है। चतुर्थ ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की श्वास और श्वास शांत हो जाते हैं। जिस व्यक्ति ने बोध और संवेदना का अंत (वेदना) प्राप्त कर लिया है, उसकी बोध और संवेदना शांत हो जाती हैं। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) शांत हो जाते हैं।

---

260. आकाश (1) (अकासा1)
भिक्षुओं, जैसे आकाश में अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं: पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, धूल भरी और निर्जलित, ठंडी और गर्म, हल्की और तेज़; वैसे ही इस शरीर में भी अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं: सुखद, कष्टदायक और न कष्टदायक, न सुखदायक।

जैसे
आकाश में अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं।
पूर्व से और पश्चिम से।
उत्तर से और दक्षिण से।

धूल भरी और निर्जलित।
कभी ठंडी, कभी गर्म। कभी
तेज़, कभी हल्की -
अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं;

वैसे ही इस शरीर में भी
अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।
सुखद और कष्टदायक।
और न कष्टदायक, न सुखदायक।

परन्तु जब कोई उत्साही भिक्षु
पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) की उपेक्षा नहीं करता।
तब वह ज्ञानी व्यक्ति
सभी संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझ लेता है।

वेदना को पूर्णतः समझ लेने के कारण
वह इसी जीवन में दोषमुक्त हो जाता है।
शरीर के विखंडन के बावजूद धर्म (मार्ग, नियम) में स्थिर रहने वाले
उस ज्ञानी व्यक्ति की कोई सामर्थ्य नहीं होती।

---

261. आकाश (2) (अकासा2)
(पिछला पाठ समान है, लेकिन श्लोकों के बिना।)
"भिक्षुओं, जैसे आकाश में विभिन्न प्रकार की हवाएँ चलती हैं: पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, धूल भरी और निर्जलित हवाएँ, ठंडी और गर्म हवाएँ, हल्की और तेज हवाएँ; वैसे ही इस शरीर में विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, न दुखदायी और न सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।"

---

262. गेस्ट हाउस (अगारा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक अतिथिगृह है। लोग पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से आकर वहाँ ठहरते हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध आकर वहाँ ठहरते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओं, इस शरीर में विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है;

पापरहित सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापरहित दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापरहित न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। 244

---

263. आनंद (1)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध का मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?"

आनंद, ये तीन वेदनाएँ - सुखदायक वेदना, दुखदायक वेदना और न दुखदायक, सुखदायक वेदना - वेदना कहलाती हैं। इंद्रियों का विषय से संपर्क होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि (एसएन5:8 के अनुसार) और सही समाधि अवस्था। वेदना पर निर्भर सुख और आनंद उत्पन्न होने पर, यही वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है; यही वेदना में खतरा है। इच्छा और राग का त्याग और निवारण। वेदना: यही वेदना से मुक्ति है।

"तो, आनंद, मैंने कर्म संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) के क्रमिक निवारण का भी उपदेश दिया है... (जैसा कि 259 में है)... जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी कामवासना शांत हो जाती है, द्वेष शांत हो जाता है और मोह शांत हो जाता है।"

---

264. आनंद (2)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने बैठे हुए ही पूज्य आनंद से कहा,
“आनंद, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध का मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?”

“पूज्यवर, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।” “

तो सुनो और ध्यान लगाओ (मनसिकारो), आनंद। मैं बोलूंगा।”

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"आनंद, ये तीन वेदनाएँ - सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, और न दुखदायी न सुखद वेदना - वेदना कहलाती हैं..."
(जैसा कि पिछले सूत्र में है)

265-266. कई भिक्षु
('ये दोनों सूत्र 263-264 के समान हैं, सिवाय इसके कि प्रत्येक में आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।')

---

267. पंचकंगा
नोट: धारणा को धारणा के रूप में पढ़ें (संज्ञा संस्कृत)।
तब बढ़ई पाःचकःग पूज्य उदयि के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे पूछा,
"पूज्य उदयि, भगवान (बुद्ध) ने कितने प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन किया है?" 245

"हे बढ़ई, भगवान (बुद्ध) ने तीन प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन किया है: सुखद संवेदना (वेदना), पीड़ादायक संवेदना (वेदना), और न पीड़ादायक न सुखद संवेदना (वेदना)। ये तीन प्रकार की संवेदनाएं (वेदनाएं) हैं जिनका वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है।"

यह सुनकर बढ़ई पंचकंग ने पूज्य उदयि से कहा, “हे उदयि, भगवान (बुद्ध) ने तीन प्रकार की वेदनाओं की बात नहीं की है। उन्होंने दो प्रकार की वेदनाओं की बात की है: सुखद वेदना और पीड़ादायक वेदना। हे पूज्य, इस न पीड़ादायक और न ही सुखद वेदना के विषय में भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि यह शांति और परम सुख में समाहित है।”

पूज्य उदयि ने दूसरी और तीसरी बार अपना मत रखा, और बढ़ई पंचकंग ने भी दूसरी और तीसरी बार अपना मत रखा, परन्तु न तो पूज्य उदयि बढ़ई पंचकंग को मना सके और न ही बढ़ई पंचकंग पूज्य उदयि को।

पूज्य आनंद ने पूज्य उदयि और बढ़ई पंचकंग के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) को पूरी बातचीत बताई।
[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"आनंद, यह व्याख्या की एक सच्ची विधि थी जिसे बढ़ई पंचकंग ने भिक्षु उदयि से स्वीकार नहीं किया, और यह व्याख्या की एक सच्ची विधि थी जिसे भिक्षु उदयि ने बढ़ई पंचकंग से स्वीकार नहीं किया। मैंने दो प्रकार की वेदनाओं का वर्णन एक विधि से किया है; मैंने तीन प्रकार की वेदनाओं का वर्णन दूसरी विधि से किया है; मैंने पाँच प्रकार की वेदनाओं ... छह प्रकार की वेदनाओं ... अठारह प्रकार की वेदनाओं ... छत्तीस प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है; [225] और मैंने एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है। इस प्रकार, आनंद, मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश विभिन्न विधियों से दिया है।" 246

जब मैंने धम्म को विभिन्न व्याख्या विधियों से इस प्रकार समझाया है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग दूसरों द्वारा कही गई और अच्छी बातों को स्वीकार नहीं करेंगे, वे विवाद करेंगे, झगड़े करेंगे और एक-दूसरे पर शब्दों के वार करते रहेंगे। लेकिन जब मैंने धम्म को विभिन्न व्याख्या विधियों से इस प्रकार समझाया है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग दूसरों द्वारा कही गई और अच्छी बातों को स्वीकार करेंगे, वे एक-दूसरे का सम्मान करेंगे, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक होकर, एक-दूसरे को प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए, सद्भाव से रहेंगे।

आनंद, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँखों से दिखाई देते हैं, जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक होते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित होने वाली वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजित करने वाली हों। ये पाँच इंद्रिय सुख के सूत्र हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख के सूत्रों पर निर्भर सुख और आनंद को ही इंद्रिय सुख कहते हैं।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक अन्य प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक अन्य प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ विचार और चिंतन के शांत होने पर भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से परिपूर्ण है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद और सुख से युक्त है। यह उस प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक और प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, जब पीति/प्रीति भी लुप्त हो जाती है, तब एक भिक्षु समभाव में रहता है, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर वह शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह उस तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और निवास करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में रहने वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।' यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि उस सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, सुख और दुःख के त्याग के साथ, और पहले से ही सुख और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता

है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और जिसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है। यही वह अन्य प्रकार का सुख है जो पहले वाले सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। 247

“यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, ‘यही परम सुख (सुख) और आनंद (सोमनस्स) है जिसका प्राणी अनुभव करते हैं,’ मैं उन्हें यह स्वीकार नहीं करता। ऐसा क्यों? क्योंकि उस सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? यहां, आनंद, रूप-बोध से पूर्ण रूप से मुक्त होकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विविधता के बोधों पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यह उस प्रकार का दूसरा सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का सुख है। और वह दूसरा सुख क्या है? हे आनंद, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' भिक्षु अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक उत्कृष्ट और उदात्त एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, चेतना की अनंतता की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं' का ज्ञान प्राप्त करके, एक भिक्षु शून्यता की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक उत्कृष्ट और उदात्त एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ भिक्षु शून्यता की भावना को पूर्णतः पार करके, न-बोध-न-बोध की भावना में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

"यद्यपि कुछ लोग कहें कि 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इस सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ, न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, भिक्षु बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह अन्य प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। 248

"अब, हे आनंद, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार कहें: 'तपस्वी गौतम बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध की बात करते हैं, और उनका मानना है कि यह सुख में समाहित है। वह क्या है? वह कैसे है?'" जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी ऐसा कहें, हे आनंद, तो उन्हें यह कहा जाना चाहिए: 'हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) सुख की अवस्था का वर्णन केवल सुखद अनुभूति (वेदना) के संदर्भ में ही नहीं करते। बल्कि, हे मित्रों, जहाँ कहीं भी और जिस भी रूप में सुख पाया जाता है, तथागत उसका वर्णन सुख में शामिल होने के रूप में करते हैं।' 249

---

268. भिक्षु
"भिक्षुओं, मैंने दो प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन एक ही विधि से किया है... इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश विभिन्न विधियों से दिया है..."

(पिछला सूत्र पूर्ण है।)

(iii) एक सौ आठ (अत्थासतपरिययवग्गो) का विषय
269. शिवका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी मोलियाशिवका भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 250 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

“गुरु गौतम, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का मत और मत रखते हैं: 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है।' 251 इस विषय में गुरु गौतम क्या कहते हैं?”

"शिवका, यहाँ पित्त विकारों से कुछ संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: यह स्वयं ज्ञात है, और संसार में इसे सत्य माना जाता है। अब जब वे तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है,' तो वे स्वयं के ज्ञान से परे जाते हैं और संसार में जो सत्य माना जाता है, उससे भी परे जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत गलत है। 252

"शिवका, यहाँ कफ विकारों से कुछ संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं... वायु विकारों से उत्पन्न होती हैं..." उपरोक्त तीनों के असंतुलन से उत्पन्न... जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न... लापरवाही भरे व्यवहार से उत्पन्न... हमले से उत्पन्न... कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न: कुछ संवेदनाएँ (वेदना) यहाँ कर्म के फलस्वरूप कैसे उत्पन्न होती हैं, यह स्वयं ज्ञात है, और संसार में यही सत्य माना जाता है। 253 अब जब वे तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों के कारण होता है,' तो वे स्वयं के ज्ञान से परे जाते हैं और संसार में जो सत्य माना जाता है, उससे भी परे जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत गलत है।'

यह सुनकर तपस्वी मोलियाशिवका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।

पित्त, कफ और वात।
असंतुलन और जलवायु भी,
लापरवाही और आक्रमण,
और कर्म का फल आठवां है।

---

270. एक सौ आठ (अत्थासता) का विषय
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक सौ आठ विषयों पर धर्म की व्याख्या दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, एक सौ आठ विषयों पर धर्म की व्याख्या क्या है? मैंने दो प्रकार की वेदनाओं का वर्णन एक विधि से किया है; मैंने तीन प्रकार की वेदनाओं का वर्णन दूसरी विधि से किया है; मैंने पाँच प्रकार की वेदनाओं, छह प्रकार की वेदनाओं, अठारह प्रकार की वेदनाओं और छत्तीस प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है; और मैंने एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है।"

भिक्षुओं, दो प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? शारीरिक और मानसिक। इन्हें दो प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है।

भिक्षुओं, तीन प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। इन्हें तीन प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। भिक्षुओं

, पाँच प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव। इन्हें पाँच प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 254 भिक्षुओं

, छह प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदनाएँ... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदनाएँ। इन्हें छह प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, अठारह प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? आनंद से युक्त छह परीक्षाएँ, अप्रसन्नता से युक्त छह परीक्षाएँ, समभाव से युक्त छह परीक्षाएँ। इन्हें अठारह प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 255

"और हे भिक्षुओं, छत्तीस प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार का आनंद, त्याग पर आधारित छह प्रकार का आनंद; गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार की अप्रसन्नता, त्याग पर आधारित छह प्रकार की अप्रसन्नता; गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार का समभाव, त्याग पर आधारित छह प्रकार का समभाव। इन्हें छत्तीस प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 256

"और हे भिक्षुओं, एक सौ आठ प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? भूतकाल की छत्तीस वेदनाएँ, भविष्य की छत्तीस वेदनाएँ और वर्तमान की छत्तीस वेदनाएँ। इन्हें ही एक सौ आठ प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। हे

भिक्षुओं, यही एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं पर धम्म की व्याख्या है।"

---

271. एक निश्चित भिक्खु (अन्नताराभिक्कु)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना के उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?"

हे भिक्षु, तीन प्रकार की वेदनाएँ होती हैं: सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक, न सुखदायक वेदना। इन्हें ही वेदना कहते हैं। इंद्रियों के स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है। तृष्णा वेदना की उत्पत्ति का मार्ग है। स्पर्श समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था (देखें SN5:8)। वेदना

पर निर्भर सुख और आनंद से उत्पन्न होने वाला सुख ही वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वेदना का खतरा है। वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना ही वेदना से मुक्ति है।

---

272. पहले (पब्बा सं. पूर्व)
भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: “सम्मोहन (वेदना) क्या है? इसका उद्गम क्या है? इसके उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संवेदना का निरोध क्या है? संवेदना के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संवेदना में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है?”

“तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: ‘ये तीन संवेदनाएँ हैं... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... यही संवेदना से मुक्ति का मार्ग है।’”

---

273. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)
"'ये संवेदनाएँ (वेदनाएँ) हैं': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (मार्ग, नियम) के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) का उद्गम है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) के उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) का निरोध है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"'यही वह मार्ग है जो वेदना के निवारण की ओर ले जाता है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यही वेदना में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत असवाद) है'... 'यही वेदना में खतरा है'... 'यही वेदना से मुक्ति है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

274. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
(यह 271 के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें "एक निश्चित भिक्षु" के बजाय "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

275. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना।

वे तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु, जो इन तीनों वेदनाओं के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को यथार्थ रूप में नहीं समझते: 258 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (गुणों, नियमों) को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

276. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन तीन संवेदनाओं (वेदना) के मामले में उत्पत्ति और अपक्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और उससे मुक्ति को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (गुणों, नियमों) को यथावत समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते और निवास करते हैं।" ब्राह्मणत्व।"

---

277. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
"जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, वेदना, उसके उद्‌गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता... और न ही वे तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण, वेदना, उसके उद्‌गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी मानता हूँ... और वे तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

278. सरल संस्करण (शुद्धिका)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) हैं। वे तीन कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), पीड़ादायक संवेदना (वेदना), और न पीड़ादायक न सुखद संवेदना (वेदना)? 259

---

279. निष्पाप (निरामी)
भिक्षुओं, पापमय आनंद (पीति/प्रीति) है, निष्पाप आनंद है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद है। पापमय सुख (सुख) है, निष्पाप सुख है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख है। पापमय समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) है, निष्पाप समभाव (उपेक्खा) है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव (उपेक्खा) है। पापमय मुक्ति (विमोक्ष/विमोक्ष) है, निष्पाप मुक्ति है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप मुक्ति है।

और हे भिक्षुओं, पापमय आनंद क्या है? हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँख से देखे जा सकते हैं... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए)। शरीर द्वारा अनुभव की जा सकने वाली स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला आनंद पापमय आनंद (पीति/प्रीति) कहलाता है।

भिक्षुओं, निष्पाप आनंद क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन से

युक्त होता है, विचार और चिंतन से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। इसे निष्पाप आनंद कहते हैं।

भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, कामवासना (राग) से मुक्त, घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त, मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो आनंद उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद कहा जाता है। 260

"और, भिक्षुओं, पापमय सुख क्या है? भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? आँखों से दिखाई देने वाले रूप... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए)... शरीर द्वारा अनुभव की जाने वाली स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभाने वाली, उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर रहने वाला सुख: इसे पापमय सुख कहा जाता है।

और, भिक्षुओं, निष्पाप सुख क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... द्वितीय ध्यान में... आनंद के लुप्त हो जाने पर, वह समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हुए, और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव और ध्यानमग्न है, सुखी है। इसे निष्पाप सुख कहा जाता है।'

हे भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हों, कामवासना (राग) से मुक्त, द्वेष (दोष/मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो सुख उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख कहते हैं। हे

भिक्षुओं, पापमय समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) क्या है? हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँख से दिखाई देते हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श से)... स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला समभाव (उपेक्खा) ही पापमय समभाव कहलाता है।

हे भिक्षुओं, निष्पाप समभाव क्या है? सुख-दुख का त्याग करने और उससे पहले सुख-दुख के बीत जाने पर भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाहित करता है। हे

भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, कामवासना (राग) से मुक्त, घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त और मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो समभाव उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव कहा जाता है।

"हे भिक्षुओं, पाप से मुक्ति क्या है? रूप से संबंधित मुक्ति पाप से मुक्ति है। हे

भिक्षुओं, निष्पाप मुक्ति क्या है? निराकार से संबंधित मुक्ति निष्पाप मुक्ति है। 261 "हे भिक्षुओं, निष्पाप

से भी अधिक निष्पाप मुक्ति क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, कामवासना (राग) से मुक्त, द्वेष (दोष/मोह) से मुक्त, मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो मुक्ति प्राप्त होती है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप मुक्ति कहते हैं।"

अध्याय 3: महिलाओं पर संबंधित प्रवचन (मतुगमसाम्युत्त) {साम्युत्त-37}
(i) प्रथम पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुरुद्ध के लिए: (i) अंधकार पक्ष)
280. महिलाएं (मातुगामा)
भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत अप्रिय लगती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह सुंदर नहीं होती, धनी नहीं होती, गुणी नहीं होती; वह आलसी होती है; और वह संतान उत्पन्न नहीं करती। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत अप्रिय लगती है।

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत सुखद लगती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह सुंदर, धनी और गुणी होती है; वह चतुर और परिश्रमी होती है; और वह संतान उत्पन्न करती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत सुखद लगती है।

---

281. पुरुष (पुरिसा)
भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह सुंदर नहीं होता, धनी नहीं होता, गुणी नहीं होता; वह आलसी होता है; और वह संतान उत्पन्न नहीं करता। जब किसी पुरुष में ये पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है।

भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह सुंदर, धनी और गुणी होता है; वह चतुर और परिश्रमी होता है; और वह संतान उत्पन्न करता है। जब किसी पुरुष में ये पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है।

---

282. विचित्र (एवेनिकडुक्खा)
भिक्षुओं, पाँच प्रकार के ऐसे कष्ट हैं जो केवल स्त्रियों को होते हैं, 262 और जो पुरुषों को नहीं होते। वे पाँच कौन से हैं?

"हे भिक्षुओं, युवावस्था में भी एक स्त्री अपने पति के परिवार के साथ रहने चली जाती है और अपने रिश्तेदारों से अलग हो जाती है। यह स्त्रियों को होने वाला पहला कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री को मासिक धर्म होता है। यह स्त्रियों को होने वाला दूसरा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री गर्भवती हो जाती है। यह स्त्रियों को होने वाला तीसरा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री बच्चे को जन्म देती है। यह स्त्रियों को होने वाला चौथा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री को पुरुष की सेवा करनी पड़ती है। यह स्त्रियों को होने वाला पाँचवाँ कष्ट है...

"हे भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के कष्ट हैं जो केवल स्त्रियों को होते हैं, और जो पुरुषों को नहीं होते।"

---

283. तीन गुण (तिहिधम्मेही)
भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में तीन गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, वह सामान्यतः दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे तीन गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, सुबह के समय स्त्री स्वार्थ के दोष से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है; दोपहर के समय वह ईर्ष्या से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है; शाम के समय वह काम (राग) से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है। जब किसी स्त्री में ये तीन गुण होते हैं... तो वह सामान्यतः दुखमय अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

---

284. क्रोधित (कोधना)
तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: 263 "हे पूज्यवर, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, यह देखता हूँ कि शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, स्त्रियाँ दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती हैं। हे पूज्यवर, जब किसी स्त्री में कितने गुण होते हैं, तो उसका पुनर्जन्म इस प्रकार होता है?"

"हे अनुराधा, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में होता है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह अविश्वासी, निर्लज्ज, कुकर्म से भयभीत न होने वाली, क्रोधी और अज्ञानी (बल) होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो उसका पुनर्जन्म दुखमय अवस्था में... नरक में होता है।"

285-292. दुर्भावनापूर्ण, इत्यादि।

अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह अविश्वासी, निर्लज्ज, कुकर्म से निर्भीक, द्वेषी, ईर्ष्यालु, कंजूस, अनैतिक, अज्ञानी, आलसी, कुटिल बुद्धि वाली होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

---

293. पाँच (पैंकावेरा)
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह जीवन का नाश करती है, बिना माँगे वस्तुएँ लेती है, यौन दुराचार में लिप्त होती है, झूठ बोलती है और शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

(ii) द्वितीय पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुराद्ध के लिए: (ii) उज्ज्वल पक्ष)
294. क्रोध रहित (अक्कोधन)
तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, यह देखता हूँ कि शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु से पहले स्त्रीयाँ स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेती हैं। हे पूज्यवर, जब स्त्री में कितने गुण होते हैं, तब उसका पुनर्जन्म होता है?"

अनुराधा ने कहा, "हे अनुराधा, जब स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु से पहले उसका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर होता है। वे पाँच गुण क्या हैं?

उसमें विश्वास होता है, उसमें लज्जा होती है, वह कुकर्म से भयभीत होती है, वह क्रोध रहित होती है और वह बुद्धिमान होती है। जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तब उसका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर होता है।"

295-302. बिना द्वेष, इत्यादि।
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

उसमें आस्था होती है, उसमें लज्जा की भावना होती है, वह कुकर्म से डरती है, वह द्वेष रहित होती है, ईर्ष्या रहित होती है... कंजूस नहीं होती... अनैतिक आचरण वाली नहीं होती... गुणी होती है... विद्वान होती है... ऊर्जावान होती है... ध्यानमग्न (सतिमा) होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है।

---

303. पंचशील (पांच नियम)
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगती) यानी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहती है, बिना माँगे कुछ लेने से दूर रहती है, यौन दुराचार से दूर रहती है, झूठी वाणी से दूर रहती है, और शराब, मदिरा और आलस्य पैदा करने वाले मादक पदार्थों से दूर रहती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगती) यानी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है।

(iii) शक्तियां (बाला) धारा
304. आत्मविश्वास (विसारादा)
भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? सौंदर्य का गुण, धन का गुण, रिश्तेदारों का गुण, पुत्रों का गुण और सद्गुण का गुण। ये स्त्री के पाँच गुण हैं। जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में आत्मविश्वास से निवास करती है।

---

305. जीत हासिल करना (पसयहा)
"भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह अपने पति को वश में करके घर में निवास करती है।" 266

---

306. उसके नियंत्रण में (अभिभुय्या)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), स्त्री की पाँच शक्तियाँ होती हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब स्त्री इन पाँच शक्तियों को धारण करती है, तो वह अपने पति के साथ अपने वश में रहती है।"

---

307. एक (एका)
भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में एक शक्ति होती है, तो वह स्त्री को अपने वश में रखता है। वह एक शक्ति क्या है? अधिकार की शक्ति। जब कोई स्त्री अधिकार की शक्ति से वश में हो जाती है, तो न तो सौंदर्य की शक्ति, न धन की शक्ति, न रिश्तेदारों की शक्ति, न पुत्रों की शक्ति, और न ही सद्गुण (शील) की शक्ति उसे बचा सकती है।

---

308. उस संदर्भ में (अंगा)
भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? सौंदर्य, धन, सत्त्व, पुत्र प्राप्ति और शील।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य का गुण हो, परन्तु धन का गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य और धन दोनों गुण हों, तो वह इस मामले में पूर्ण है। भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य और धन दोनों गुण हों, परन्तु सत्त्व का

गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य, धन और सत्त्व तीनों गुण हों, और सत्त्व का गुण भी हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है। भिक्षुओं,

यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन और सत्त्व तीनों गुण हों, परन्तु पुत्र प्राप्ति का गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। लेकिन यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है।

"हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, परन्तु सद्गुण की शक्ति न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, और सद्गुण की शक्ति भी हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है।

ये स्त्री की पाँच शक्तियाँ हैं।"

---

309. वे निष्कासित करते हैं (नासेन्टी)
भिक्षुओं, स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं... सद्गुण (शील) का गुण।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता। 267 भिक्षुओं

, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य और धन का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन और सगे-संबंधियों का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, सगे-संबंधियों और पुत्रों का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता। भिक्षुओं,

यदि किसी स्त्री में सद्गुण का गुण हो, परन्तु सौंदर्य का गुण न हो, तो उसे परिवार में स्थान दिया जाता है; उसे परिवार से नहीं निकाला जाता। 268

"हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्‌गुण का गुण हो, पर धन का गुण न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते। हे

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्‌गुण का गुण हो, पर सगे संबंधियों पर प्रभुत्व न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते।

हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्‌गुण का गुण हो, पर पुत्रों पर प्रभुत्व न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते।

ये स्त्री के पाँच गुण हैं।"

---

310. कारण (हेतु)
भिक्षुओं, स्त्री की ये पाँच शक्तियाँ हैं (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 309 में बताया गया है)... सद्‌गुण (शील) की शक्ति।

भिक्षुओं, शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद स्त्री का पुनर्जन्म सुगति (सम्प्रदाय) के कारण स्वर्गलोक में नहीं होता, न ही सौंदर्य, न धन, न संबंधियों या पुत्रों के कारण। बल्कि सद्‌गुण की शक्ति के कारण ही स्त्री का पुनर्जन्म सुगति (सम्प्रदाय) के स्वर्गलोक में होता है।

ये स्त्री की पाँच शक्तियाँ हैं।

---

311. परिस्थितियाँ (थाना सं. स्थान)
भिक्षुओं, पाँच ऐसी स्थितियाँ/स्थान हैं जिन्हें पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है। वे पाँच क्या हैं?

वह यह कामना कर सकती है: 'काश मैं एक उपयुक्त परिवार में जन्म लूँ!' यह पहली स्थिति है जिसे पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है।

वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर, काश मेरा विवाह भी एक उपयुक्त परिवार में हो!' यह दूसरी स्थिति है। ... वह यह

कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर और एक उपयुक्त परिवार में विवाह करके, काश मैं बिना किसी प्रतिद्वंदी के घर में रह सकूँ!' 269 यह तीसरी स्थिति है।

... वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर ... बिना किसी प्रतिद्वंदी के घर में रहकर, काश मुझे पुत्रों की संतान हो!' यह चौथी स्थिति है। ...

वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर ... पुत्रों की संतान होने पर, काश मैं अपने पति के साथ अपने वश में रह सकूँ!' यह पाँचवीं स्थिति है...

"ये पाँच स्थितियाँ हैं जिन्हें पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है।

भिक्षुओं, पुण्य करने वाली स्त्री के लिए पाँच स्थितियाँ आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। वे पाँच क्या हैं?

" वह यह कामना कर सकती है: 'मुझे एक उपयुक्त परिवार में जन्म मिले!' यह पहली स्थिति है...

"वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर... पुत्रों को जन्म देकर, मैं अपने पति के साथ अपने वश में रहूँ!' यह पाँचवीं स्थिति है...

"ये पाँच स्थितियाँ हैं जिन्हें पुण्य करने वाली स्त्री के लिए आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।"

---

312. आत्मविश्वासी (पंचसिलविसारदा)

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में निश्चिंत होकर निवास करती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहती है, बिना माँगे कुछ लेने से दूर रहती है, यौन दुराचार से दूर रहती है, झूठी वाणी से दूर रहती है, और मदिरा, मादक पदार्थ और आलस्य उत्पन्न करने वाले पदार्थों से दूर रहती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में निश्चिंत होकर निवास करती है।

---

313. वृद्धि (वद्धि)
भिक्षुओं (सन्यासियों) के साथ-साथ, एक श्रेष्ठ शिष्या भी श्रेष्ठ विकास करती है और इस देहधारी अस्तित्व का सार, इसका सर्वश्रेष्ठ, प्राप्त करती है। वे पाँच क्या हैं? वह आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि में वृद्धि करती है। इन पाँच क्षेत्रों में वृद्धि करते हुए, एक श्रेष्ठ शिष्या श्रेष्ठ विकास करती है और इस देहधारी अस्तित्व का सार, इसका सर्वश्रेष्ठ, प्राप्त करती है। जब वह यहाँ आस्था और सद्‌गुण, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि, उदारता और ज्ञान में

वृद्धि करती है , तो गुणी शिष्या यहीं पर अपने लिए सार प्राप्त कर लेती है।

अध्याय 4: जम्बूखडका से संबंधित प्रवचन (जम्बूखडकसंयुत्त) {संयुत्त-38}
314. निब्बान पर एक प्रश्न (निब्बानपन्हा बिना निर्वाण-प्रश्न)
एक बार पूज्य सारिपुत्त मगध के नलकगम में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी जंबुखदक (271) पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले,

“मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'निर्वाण, निर्वाण।' अब निर्वाण क्या है?”

"काम (राग) का क्षय, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही है, मित्र, निर्वाण। 271

"पर, मित्र, क्या इस निर्वाण की प्राप्ति का कोई मार्ग है?" "हाँ, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग

है।" [252]

"और, मित्र, वह मार्ग क्या है, इस निर्वाण की प्राप्ति का वह मार्ग क्या है?"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग है।"

"यह मार्ग उत्कृष्ट है, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग उत्कृष्ट है। और, मित्र सारिपुत्त, केवल जागरूकता (अप्पमदा) ही पर्याप्त है।"

---

315. अरिहंतशिप प्रश्न (अरहत्तपन्हा सं. अरिहंत-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'अरहंतत्व, अरहंतत्व।' तो अरहंतत्व क्या है?"

"काम (राग) का क्षय, द्वेष (दोष) का विनाश, मोह (मोह) का विनाश: मित्र, यही अरहंतत्व कहलाता है।"

"पर मित्र, क्या इस अरहंतत्व की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, इस अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग है।"

"और मित्र, वह मार्ग क्या है?"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। मित्र, यही मार्ग है, यही अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग है।"

"हे मित्र, यह मार्ग उत्तम है, इस अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग उत्तम है। और हे मित्र सारिपुत्त, केवल सजगता (अप्पमदा) ही पर्याप्त है।"

---

316. धम्म के समर्थक (धम्मवादिपन्हा सं. धम्मवादि-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, संसार में धम्म के समर्थक कौन हैं? संसार में भली-भांति अभ्यास करने वाले कौन हैं? संसार में सौभाग्यशाली (सुगतो) कौन हैं?"

"मित्र, जो कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग के लिए धम्म का उपदेश देते हैं, वे संसार में धम्म के समर्थक हैं। जो कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे संसार में भली-भांति अभ्यास कर रहे हैं। जिनके लिए कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) जड़ से समाप्त हो गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट हो गए हैं, ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें, वे संसार में सौभाग्यशाली (सुगतो) हैं।" 272

"लेकिन, मित्र, क्या कोई मार्ग है, क्या इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का कोई तरीका है?"

"हाँ, मित्र, इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का मार्ग है।"

"और वह मार्ग क्या है, मित्र...?"

"वह है, मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग...."

"यह मार्ग उत्तम है, मित्र, इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का मार्ग उत्तम है। और यह पर्याप्त है, मित्र सारिपुत्त, केवल सजगता के लिए।"

---

317. किस उद्देश्य से? (किमत्थिया संस्कृत किम-अर्थ्या)
"हे सारिपुत्त, ब्रह्मचर्य का जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है? यह

जीवन गौतम गौतम के मार्गदर्शन में व्यतीत किया जाता है, ताकि दुखों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके।" "

परन्तु, क्या इस दुख को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

318. सांत्वना (अस्ससपत्ता)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'जिसने सांत्वना प्राप्त कर ली है, जिसने सांत्वना प्राप्त कर ली है।' मित्र, सांत्वना किस प्रकार प्राप्त की जाती है?" 273

"मित्र, जब कोई भिक्षु उत्पत्ति और उसके अंत, सांसारिक भोग (अस्वाद), खतरे और छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श) के मामले में उससे बचने के तरीके को यथावत समझ लेता है, तो वह सांत्वना प्राप्त कर लेता है।"

"परन्तु, मित्र, क्या इस सांत्वना की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, हाँ, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग..."

---

319. परम सांत्वना (परमस्ससपत्ता)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'जिसने परम शांति प्राप्त कर ली हो, जिसने परम शांति प्राप्त कर ली हो।' मित्र, परम शांति किस प्रकार प्राप्त की जाती है?"

"मित्र, जब कोई भिक्षु सांसारिक सुखों (असदो संस्कृत: अस्वाद), खतरे और छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के मामले में उनसे बचने के तरीके को यथावत समझ लेता है, और अनासक्ति के द्वारा विमुक्त हो जाता है, तब वह परम शांति प्राप्त करता है।"

"परन्तु, मित्र, क्या इस परम शांति की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

320. संवेदना प्रश्न
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'संवेदना, वेदना।' तो यह संवेदना क्या है?"

"मित्र, ये तीन संवेदनाएँ हैं: सुखद संवेदना, दुखदायी संवेदना और न दुखदायी, न सुखद संवेदना। ये तीन संवेदनाएँ हैं।" "

परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों संवेदनाओं को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

321. अपवित्रता प्रश्न (असवपन्हा सं. आश्रव-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'असंक्रमण (असावो), असंक्रमण (असावो)।' तो असंक्रमण क्या है?"

"मित्र, ये तीन प्रकार के असंक्रमण हैं: काम-असावो का असंक्रमण, भव-असावो का असंक्रमण और अज्ञान का असंक्रमण। ये तीन असंक्रमण हैं।" "

पर, मित्र, क्या इन तीनों असंक्रमणों से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

322. अज्ञान प्रश्न (अविज्जापन्हा सं. अविद्या-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' अज्ञान क्या है?"

"दुःख को न जानना, दुःख के कारण को न जानना, दुःख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुःख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है।" "

परन्तु, मित्र, क्या इस अज्ञान से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

323. लालसा प्रश्न (तन्हापन्हा बिना तृष्णा-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), लालसासा।' लालसासा क्या है?"

"मित्र, लालसासा तीन प्रकार की लालसासा होती है: इंद्रिय सुखों की लालसासा, अस्तित्व की लालसासा (भावो), और मृत्यु की लालसासा। ये तीन प्रकार की लालसासासा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) हैं।" "

पर मित्र, क्या इस लालसासासा का त्याग करने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

324. बाढ़ संबंधी प्रश्न (ओघापन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'बाढ़, बाढ़।' बाढ़ क्या होती है?"

"मित्र, ये चार बाढ़ें हैं: कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), दृष्टियों की बाढ़, और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत. अविद्या)। ये चार बाढ़ें हैं।" "

पर मित्र, क्या इन चारों बाढ़ों से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है...."

---

325. चिपके हुए प्रश्न (उपादानपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'चिपकना, चिपकना।' यह क्या है? '

मित्र, ये चार प्रकार के आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। ये चार प्रकार के आसक्ति हैं।" "

पर, मित्र, क्या इन चारों प्रकार के आसक्ति से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

326. अस्तित्व प्रश्न (भावपन्हा सं. भाव-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अस्तित्व, अस्तित्व।' तो अस्तित्व क्या है?"

"मित्र, तीन प्रकार के अस्तित्व हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व और निराकार रूप का अस्तित्व। ये तीन प्रकार के अस्तित्व हैं।" "

परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों प्रकार के अस्तित्व को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।"

---

327. दुख के प्रश्न (दुक्खपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'दुख, दुख।' तो दुख क्या है?"

"मित्र, दुख तीन प्रकार के होते हैं: दर्द के कारण दुख, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के कारण दुख, और परिवर्तन के कारण दुख। ये तीन प्रकार के दुख हैं।" 274

"परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों प्रकार के दुखों को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग..."

---

328. शारीरिक पहचान संबंधी प्रश्न (सक्कायपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'शरीर-सन्दुत्व (सक्कय), शरीर-सन्दुत्व।' तो शरीर-सन्दुत्व क्या है?"

"मित्र, आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को भगवान (बुद्ध) ने शरीर-सन्दुत्व कहा है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संवेदना स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अभिव्यंजक और आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंध। आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों को भगवान (बुद्ध) ने शरीर-सन्दुत्व कहा है।" "

परन्तु, मित्र, क्या इस शरीर-सन्दुत्व को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, इस शरीर-सन्दुत्व को पूर्णतः समझने का मार्ग है।"

"और हे मित्र, वह मार्ग क्या है, इस देह-पहचान की पूर्ण समझ का वह तरीका क्या है?"

"हे मित्र, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, हे मित्र, यही देह-पहचान की पूर्ण समझ का तरीका है।"

"उत्कृष्ट है वह मार्ग, हे मित्र, इस देह-पहचान की पूर्ण समझ का उत्कृष्ट तरीका। और हे मित्र सारिपुत्त, यह जागरूकता (अप्पमदा) के लिए पर्याप्त है।"

---

329. कठिन प्रश्न (दुक्करपन्हा सं. दुष्कर-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, इस धम्म और अनुशासन में क्या करना कठिन है?"

"मित्र, दीक्षा लेना इस धम्म और अनुशासन में कठिन है।"

"मित्र, दीक्षा प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए क्या करना कठिन है?" "मित्र, दीक्षा प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए
आनंद प्राप्त करना कठिन है।" "मित्र, आनंद प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए

क्या करना कठिन है?" "मित्र, आनंद प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए
धम्म के अनुसार अभ्यास करना कठिन है।"

"परन्तु, मित्र, यदि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार अभ्यास कर रहा है, तो क्या उसे अरहंत बनने में अधिक समय लगेगा?"

"अधिक समय नहीं लगेगा, मित्र।" 275

अध्याय 5: समन्दक (समन्दकसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-39}
समंदक आदि द्वारा पूछे गए प्रश्न 330-331।
एक बार पूज्य सारिपुत्त उक्काचेला में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। तब तपस्वी समंदक पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले,
“मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'निर्वाण, निर्वाण।' निर्वाण क्या है?”...

(इस सम्युत्त का शेष भाग पिछले सम्युत्तों 314-329 के समान है, सिवाय वार्ताकार समंदक के शारीरिक स्वरूप के।)

“परन्तु, मित्र, यदि कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास कर रहा हो, तो क्या उसे अरहंत बनने में अधिक समय लगेगा?”

“अधिक समय नहीं, मित्र।”

अध्याय 6: मोग्गलाना से संबंधित प्रवचन (मोग्गलानासाम्युत्त) {साम्युत्त-40}
332. प्रथम झाना/ट्रांस प्रश्न (पथमाझानपन्हा सं. प्रथम-ध्यान-प्रश्न)
एक बार पूज्य महामोग्गलाना सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!" 276

"मित्रों!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में अकेला था, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "प्रथम ध्यान, प्रथम ध्यान।" अब प्रथम ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांतवास से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होता है। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं।

"फिर, मित्रों, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया... जब मैं वहाँ निवास कर रहा था, तब इंद्रिय-बोध (संज्ञा) और मन-क्रिया (मानसिकरा) ने मुझे घेर लिया। 277

"फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, प्रथम ध्यान के विषय में आलसी (पामद में) न हो। प्रथम ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, प्रथम ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, प्रथम ध्यान में अपने मन को समाधि में ले जाओ।' फिर, मित्रों, एक बार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

333. दूसरा झाना प्रश्न (दुतियाझानपन्हा सं. द्वितीय-ध्यान-प्रश्न)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "द्वितीय ध्यान, द्वितीय ध्यान।" तो अब यह द्वितीय ध्यान क्या है?' 279

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है। इसे ही द्वितीय ध्यान कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैं दूसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया... जब मैं वहाँ लीन था, तब विचार और चिंतन के साथ-साथ चेतना और मानसिक क्रियाएँ मुझ पर हावी हो गईं।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और मुझसे कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, दूसरे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। दूसरे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, दूसरे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, दूसरे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैं दूसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

334. तीसरा झाना प्रश्न (तातियाझानपन्हा सं. तृतीया-ध्यान-प्रश्न)
"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में एकांत में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "तीसरा ध्यान, तीसरा ध्यान।" तो तीसरा ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ आया: 'यहाँ, जब आनंद (पीति/प्रीति) भी लुप्त हो जाता है, तब एक भिक्षु समभाव में रहता है, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर वह शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: "वह समभाव में रहने वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।" इसे ही तीसरा ध्यान कहते हैं।"

"फिर, मित्रों, जब आनंद भी लुप्त हो गया... मैं तीसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें विलीन हो गया। ...जब मैं वहाँ विलीन था, तब मुझे अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और मन-क्रिया (मानसिकारा) का अनुभव हुआ, जो आनंद से परिपूर्ण थी।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और मुझसे कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, तीसरे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। तीसरे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, तीसरे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, तीसरे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, बाद में, जब आनंद भी लुप्त हो गया (पीति/प्रीति), तब मैं समभाव और ध्यानमग्न अवस्था में विलीन रहा और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर मैंने शरीर के साथ सुख का अनुभव किया; मैंने तीसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह शांत, ध्यानमग्न और सुखी है।'

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

335. चौथा झाना प्रश्न
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, तब मेरे मन में एक विचार आया: 'कहा जाता है, "चौथा ध्यान, चौथा ध्यान।" तो चौथा ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह बात समझ में आई: 'यहाँ, सुख और दुःख का त्याग करने और पहले ही सुख और दुःख के बीत जाने के साथ, एक भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्ष संस्कृत: उपेक्षा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है। इसे ही चौथा ध्यान कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, सुख और दुःख का त्याग करके... मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया... जब मैं वहाँ निवास कर रहा था, तब सुख से युक्त मेरी चेतना (सन्ना संस. संग्या) और मन (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, चौथे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। चौथे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, चौथे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, चौथे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, बाद में, सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और दुःख के दूर हो जाने के बाद, मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी है और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है।"

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

336. अंतरिक्ष प्रश्नों की अनंतता का संकाय
(पांचवीं ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति, अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति।" अब अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघ) की धारणाओं के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देकर, यह जानते हुए कि "अंतरिक्ष अनंत है," एक भिक्षु अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर... मैंने अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब धारणा (सन्ना संस. संग्या) और ध्यान (मानसिकारा) रूपों के साथ मुझ पर हावी हो गए।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति के प्रति आलसी (पमादा) न हो। अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को समाधि (तत्त्व) में ले जाओ।' फिर, एक बार, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की धारणाओं के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैंने अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

337. चेतना के अनंतता से संबंधित प्रश्न (Vinnanancayatanapanha sans. Vigyan-anant-ayatana-prashn)
(छठी ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "चेतना की अनंतता की शक्ति (विन्नान संस्कृत: विज्ञान), चेतना की अनंतता की शक्ति।" तो चेतना की अनंतता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, अनंतता के स्थान की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि "चेतना अनंत है," एक भिक्षु चेतना की अनंतता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही चेतना की अनंतता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्णतः परे जाकर, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब अनंत अंतरिक्ष की शक्ति के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनंत चेतना की शक्ति के प्रति आलसी (पमादा) न हो। अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को समाधि (तत्त्व) में ले जाओ।' फिर, एक बार बाद में, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

338. शून्यता की क्षमता
(सातवीं ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "शून्यता की शक्ति, शून्यता की शक्ति।" अब शून्यता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, चेतना की अनंतता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि
"कुछ भी नहीं है," एक भिक्षु शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही शून्यता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, मैंने शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब चेतना की अनंतता की क्षमता के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, शून्यता की क्षमता के प्रति आलसी (पमादा) न हो। शून्यता की क्षमता में अपने मन को स्थिर करो, शून्यता की क्षमता में अपने मन को एकाग्र करो, शून्यता की क्षमता में अपने मन को समाधि (सम्मोहन) में डालो।' फिर, एक बार फिर, चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, मैंने शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।"

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है', तो यह बात मेरे बारे में सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

339. न तो-धारणा-न-गैर-धारणा की क्षमता (नेव-सन्न-न-सन्न-अयतन-पन्हा संस। नैव-संज्ञ-न-संग्य-अ◌ायतन-प्रश्न)
(आठवीं ध्यान/समाधि अवस्था)

... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "न-बोध-न-बोध की शक्ति, न-बोध-न-बोध की शक्ति।" तो अब यह न-बोध-न-बोध की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह बात समझ में आई: 'यहाँ, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करके, एक भिक्षु न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही न-बोध-न-बोध की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, मैंने न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब शून्यता की शक्ति के साथ-साथ बोध और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, न-बोध-न-बोध की शक्ति के विषय में आलसी (पमादा) न बनो। न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को समाधि में ले जाओ।' फिर, एक बार, शून्यता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, मैंने न-बोध-न-अवलोकन की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। इसे न-बोध-न-अवलोकन की क्षमता कहते हैं।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है', तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

340. अनिमित्त (अनिमित्त)
(नौवीं ध्यान/समाधि अवस्था - अंतिम निर्वाण)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था, अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।" अब अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था क्या है?' 280

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, सभी निमित्त कारकों पर ध्यान न देने से, एक भिक्षु अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, सभी कारणों (निमित्त) पर ध्यान न देकर, मैं अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें विलीन हो गया। जब मैं उसमें विलीन था, मेरी चेतना (विन्नान, विज्ञान) निमित्त कारणों के साथ-साथ चलती रही। 281

"फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति आलसी (पमादा) न बनो। अपने मन को अनिमित्त समाधि अवस्था में स्थिर करो, अनिमित्त समाधि अवस्था में अपने मन को एकाग्र करो, अनिमित्त समाधि अवस्था में अपने मन को समाधि में लीन करो। फिर, बाद में, सभी कारणों (निमित्त) पर ध्यान न देकर, मैं अनिमित्त समाधि अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें लीन रहा। "

मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

341. सक्कसुत्तम (सं. शक्र/इंद्र)
I. शरण और शुभ गंतव्य (सुगति)
एक बार पूज्य महामोग्गलाना सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तभी, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेजी से फैलाता या समेटता है, पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से लुप्त हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब देवताओं के स्वामी, इंद्र, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

“हे देवों के स्वामी, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है। बुद्ध की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं। हे देवों के स्वामी, धर्म (मार्ग, नियम) की शरण लेना उत्तम है। धर्म की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं। हे देवों के स्वामी, संघ (भाईचारा) की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं।”

"हे महामोग्गलाना जी, बुद्ध की शरण लेना... धम्म की शरण लेना... संघ की शरण लेना अच्छा है। संघ की शरण लेने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के क्षरण के बाद मृत्यु के समय एक शुभ स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं... सात सौ देवताओं... आठ सौ देवताओं... अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। 282 पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(संवाद ठीक ऊपर जैसा ही है।)

II. विश्वास और शुभ स्थान (सुगति)

तब देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे देवों के स्वामी, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि इस प्रकार है: 283 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवों और मनुष्यों के शिक्षक हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

हे देवों के स्वामी, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना सर्वथा: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने भली-भांति की है, यह प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। धम्म में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के बाद एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

हे देवों के स्वामी, संघ में दृढ़ विश्वास रखना सर्वथा: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है। अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। संघ में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक शुभ गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"हे देवों के स्वामी, हे शुभ, वह है जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का सृजित रूप है, जो अटूट, अक्षत, निष्कलंक, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अपंग, समाधि की अवस्था की ओर ले जाने वाला है।" "हे मोग्गलाना, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना...

धम्म में दृढ़ विश्वास रखना... संघ में दृढ़ विश्वास रखना... और श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का अटूट पालन करना... समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है।" "वरिष्ठों को प्रिय गुणों के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं, सात सौ देवताओं, आठ सौ देवताओं और अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर बताया गया है।)

III. शरण और दिव्य लाभ

तब देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं (देवदूतों) के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

हे देवों के स्वामी, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है। बुद्ध की शरण लेने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद कुछ प्राणी एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस प्रकार से अन्य देवों से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य आयु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य प्रसिद्धि, दिव्य प्रभुत्व और दिव्य रूप, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में। हे

देवों के स्वामी, धम्म (मार्ग, नियम) की शरण लेना उत्तम है... संघ (भाईचारा) की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण... और दिव्य रूप, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में। हे

श्री मोग्गलाना, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है... धम्म की शरण लेना उत्तम है... संघ की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण... और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।

फिर देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं... सात सौ देवताओं... आठ सौ देवताओं... अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर है।)

IV. विश्वास और दिव्य लाभ

फिर देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे देवताओं के स्वामी, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है: भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, 'प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' बुद्ध में अटूट विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस प्रकार से अन्य देवताओं से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य आयु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य प्रसिद्धि, दिव्य प्रभुत्व और दिव्य रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में।

हे देवों के स्वामी, धम्म में दृढ़ विश्वास रखना उत्तम है... संघ में दृढ़ विश्वास रखना उत्तम है... हे देवों के स्वामी, श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट धारण रखना उत्तम है... जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों के धारण के कारण... और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में निपुणता प्राप्त करने के कारण।

"हे श्री मोग्गलाना, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना... धम्म में दृढ़ विश्वास रखना... संघ में दृढ़ विश्वास रखना... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट पालन करना... समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस मामलों में अन्य देवताओं से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य जीवनकाल में, दिव्य सौंदर्य में, दिव्य सुख में, दिव्य प्रसिद्धि में, दिव्य प्रभुत्व में और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं, सात सौ देवताओं, आठ सौ देवताओं और अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर बताया गया है।)

---

342. कनाडा
फिर चंदन, एक युवा देव (देवदूत)...

फिर सुयम, एक युवा देव...

फिर संतुसिता, एक युवा देव...

फिर सुनीमिता, एक युवा देव...

फिर वासवत्ती, एक युवा देव...

(इसका विस्तृत वर्णन अनुच्छेद 341 में दिए गए विवरण के अनुसार किया जाएगा)

अध्याय 7: चित्त से संबंधित प्रवचन (चित्तसम्युत्त) {सम्युत्त-41}
343. बंधन (संयोजन)
एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में ठहरे हुए थे।

उस समय, जब वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई:
"मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म': क्या ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?"

कुछ वरिष्ठ भिक्षुओं ने उत्तर दिया: "मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म' अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं।" लेकिन कुछ अन्य वरिष्ठ भिक्षुओं ने उत्तर दिया:
"मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म' अर्थ में एक हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं।"

उसी समय, गृहस्थ चित्त किसी कार्य से मिगापथका आए थे। 285 तब गृहस्थ चित्त ने सुना: "कहा जाता है कि कई वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई..." तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "मैंने सुना है, आदरणीय महोदय, कि जब कई वरिष्ठ भिक्षु एक साथ बैठे थे, तब यह चर्चा शुरू हुई:
'मित्रों, "बंधन" और "बंधन करने वाले धर्म": क्या ये बातें अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक हैं और केवल अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?'"

"हाँ, गृहस्थ।"

"आदरणीय महोदय, 'बंधन' और 'बंधन करने वाले धर्म' अर्थ और वाक्यांश दोनों में भिन्न हैं। मैं इसके लिए एक उपमा दूंगा, क्योंकि यहां कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं।

मान लीजिए, आदरणीय महोदय, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोता गया है। 286 क्या यह कहना सही होगा कि: 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?"

"नहीं, गृहस्थ।" काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एकमात्र लगाम या जुआ है जिससे दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं: वही बंधन है। "

इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। कान ध्वनियों का बंधन नहीं है... नाक गंधों का बंधन नहीं है... जीभ स्वादों का बंधन नहीं है... शरीर स्पर्शनीय वस्तुओं का बंधन नहीं है..." मन, मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन नहीं है और न ही मानसिक घटनाएं (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इन दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को समझने के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की दृष्टि है।"

---

344. इसिदत्ता (1)

एक बार मच्छिकासंडा में जंगली आम के बाग में कई वरिष्ठ भिक्षु निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, कल का भोजन मुझसे ग्रहण करने की कृपा करें।"

वरिष्ठ भिक्षुओं ने मौन रहकर सहमति दे दी। तब गृहस्थ चित्त ने यह जानकर कि वरिष्ठ भिक्षुओं ने सहमति दे दी है, अपने स्थान से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

रात्रि बीत जाने पर, सुबह वरिष्ठ भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और गृहस्थ चित्त के निवास पर गए। वहाँ वे निर्धारित स्थानों पर बैठ गए। तब गृहस्थ चित्त ने वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा,

“आदरणीय भिक्षु, कहा जाता है, ‘धातुओं की विविधता, तत्वों की विविधता।’ हे आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?” 287

यह सुनकर आदरणीय मुख्य भिक्षु मौन रहे। गृहस्थ चित्त ने दूसरी और तीसरी बार भी यही प्रश्न पूछा, और दूसरी और तीसरी बार भी आदरणीय मुख्य भिक्षु मौन रहे। 288

उस समय आदरणीय इसिदत्त उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। 289 तब आदरणीय इसिदत्त ने आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा, “हे आदरणीय भिक्षु, मुझे चित्त के प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दीजिए।”

“उत्तर दीजिए, मित्र इसिदत्त।”

"अब, गृहस्थ, क्या आप इस प्रकार पूछ रहे हैं: 'आदरणीय वृहद, कहा जाता है, 'तत्वों की विविधता, तत्वों की विविधता।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?'"

"जी, आदरणीय महोदय।"

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों (धातु) की इस विविधता का वर्णन इस प्रकार किया है: नेत्र तत्व, रूप तत्व, नेत्र-चेतना तत्व... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन तत्व, मानसिक-घटना (धम्म) तत्व, मन-चेतना तत्व। गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन इसी प्रकार किया है।"

तब गृहस्थ चित्त, आदरणीय इसिदत्त के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने हाथों से वृहद भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन समाप्त कर लिया और अपने प्याले रख दिए, 290 तो वे अपने स्थानों से उठे और चले गए।

तब आदरणीय मुख्य भिक्षु ने आदरणीय इसिदत्ता से कहा:
"यह अच्छा है, मित्र इसिदत्ता, कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझा। मुझे उत्तर सूझा नहीं। इसलिए, मित्र इसिदत्ता, जब भी कभी ऐसा ही कोई प्रश्न उठे, तो आप उसका उत्तर अवश्य दें।" " 291

---

345. इसिदत्ता (2)
(पिछली सूत्र की तरह ही, आगे:)

तब गृहस्थ चित्त वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उनके बगल में बैठ गए और आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा,

“आदरणीय भिक्षु, संसार में अनेक मत हैं: ‘संसार शाश्वत है’ या ‘संसार शाश्वत नहीं है’; ‘संसार सीमित है’ या ‘संसार अनंत है’; ‘आत्मा और शरीर एक ही हैं’ या ‘आत्मा एक है, शरीर दूसरा’; ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं’ - ये और ब्रह्मजाल में वर्णित बासठ मत भी हैं। 292 अब ये मत कब विद्यमान होते हैं? ये मत कब अस्तित्वहीन होते हैं?”

यह सुनकर आदरणीय प्रधान भिक्षु मौन रहे। गृहस्थ चित्त ने दूसरी और तीसरी बार वही प्रश्न पूछा, और दूसरी और तीसरी बार भी आदरणीय प्रधान भिक्षु मौन रहे।

उस समय आदरणीय इसिदत्त उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। तब आदरणीय इसिदत्त ने आदरणीय प्रधान भिक्षु से कहा, "हे आदरणीय भिक्षु, मुझे गृहस्थ चित्त के प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दीजिए।"

"उत्तर दीजिए, मित्र इसिदत्त।"

"अब, गृहस्थ, क्या आप इस प्रकार पूछ रहे हैं: 'हे आदरणीय भिक्षु, संसार में अनेक मत उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... - ये और ब्रह्मजाल (सूत्र DN1) में वर्णित बासठ सैद्धांतिक मत। अब ये मत तब उत्पन्न होते हैं जब अस्तित्व में कोई चीज होती है? जब अस्तित्वहीन चीज होती है तो ये मत तब उत्पन्न नहीं होते?'" "

जी, आदरणीय महोदय।"

"गृहस्थ, संसार में उत्पन्न होने वाले विभिन्न मतों के विषय में, 'संसार शाश्वत है'... - ये और ब्रह्मजाल में वर्णित बासठ सैद्धांतिक मत: जब शरीर-सन्दुत्व का मत (सक्कय-दिष्ठी) होता है, तब ये मत उत्पन्न होते हैं; जब शरीर-सन्दुत्व का मत नहीं होता, तब ये मत उत्पन्न नहीं होते।" "

परन्तु, आदरणीय महोदय, शरीर-सन्दुत्व का मत कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का अनादर करता है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो अच्छे व्यक्तियों का अनादर करता है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा मानता है... संज्ञा (संस्कृत) को आत्मा मानता है... संस्कार (संज्ञा) को आत्मा मानता है... चेतना (संस्कृत) को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है।" "इसी तरह से शरीर-पहचान का दृष्टिकोण अस्तित्व में आता है।"

"और, आदरणीय महोदय, शरीर-पहचान का दृष्टिकोण अस्तित्व में क्यों नहीं आता?"

"हे गृहस्थ, यहाँ, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो अच्छे व्यक्तियों का आदर करता है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... न ही बोध को आत्मा मानता है... न ही संस्कार को आत्मा मानता है... न ही चेतना को आत्मा में मानता है... न ही आत्मा को चेतना में मानता है। इसी प्रकार शरीर-बोध का दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता।"

"आदरणीय महोदय, गुरु इसिदत्त कहाँ से आते हैं?"

"मैं अवंती से आता हूँ, गृहस्थ।"

"आदरणीय महोदय, अवंती के एक कुलवासी हैं जिनका नाम इसिदत्त है, जो हमारे एक अदृश्य मित्र हैं, जिन्होंने दीक्षा प्राप्त कर ली है। क्या आप उनसे कभी मिले हैं?"

"जी हाँ, गृहस्थ।"

“हे पूज्यवर, वह आदरणीय भिक्षु अब कहाँ निवास कर रहे हैं?”

यह सुनकर आदरणीय इसिदत्ता मौन रहे।

“क्या वे स्वामी इसिदत्ता हैं?”

“जी हाँ, गृहस्थ।”

“तो स्वामी इसिदत्ता मच्छिकासंडा के रमणीय जंगली आम के बाग में आनंदित हों। मैं स्वामी इसिदत्ता को वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ उपलब्ध कराने में तत्पर रहूँगा।”

“यह तो बहुत अच्छा कहा, गृहस्थ।”

तब चित्त, आदरणीय इसिदत्ता के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने हाथों से वरिष्ठ भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर उन्हें तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन कर लिया और अपने प्याले रख दिए, तो वे अपने स्थानों से उठे और चले गए।

तब आदरणीय प्रधान बुजुर्ग ने आदरणीय इसिदत्ता से कहा:
"हे मित्र इसिदत्ता, यह अच्छी बात है कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझ गया। मुझे तो उत्तर सूझ ही नहीं पाया। इसलिए, हे मित्र इसिदत्ता, भविष्य में जब भी ऐसा ही कोई प्रश्न उठे, तो आप उसका उत्तर अवश्य दें।"

तब आदरणीय इसिदत्ता ने अपना कमरा व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर मच्चिकासंडा से चले गए। जब वे मच्चिकासंडा से गए, तो वे हमेशा के लिए चले गए और फिर कभी वापस नहीं लौटे। 293

---

346. महाका का चमत्कार (महाकापतिहार्य सं. महक-प्रतिहार्य)
एक बार मच्चिकासंडा में जंगली आम के बाग में कई वरिष्ठ भिक्षु निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, कल मेरे गौशाला में मेरे द्वारा भोजन ग्रहण करने की सहमति दें।"

वरिष्ठ भिक्षुओं ने मौन रहकर सहमति दे दी। तब गृहस्थ चित्त ने यह जानकर कि वरिष्ठ भिक्षुओं ने सहमति दे दी है, अपने स्थान से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

रात्रि बीत जाने पर, सुबह वरिष्ठ भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने कुंड और वस्त्र लिए और गृहस्थ चित्त की गौशाला में गए। वहाँ वे निर्धारित आसनों पर बैठ गए।

तब गृहस्थ चित्त ने अपने हाथों से घी से बने स्वादिष्ट दूध-चावल से वरिष्ठ भिक्षुओं को भोजन कराया और उन्हें तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन कर लिया और अपने प्याले रख दिए, तो वे अपने आसनों से उठे और चले गए।

तब गृहस्थ चित्त ने कहा, "बचा हुआ दान कर दो," और वे वरिष्ठ भिक्षुओं के पीछे-पीछे चल दिए। उस समय भीषण गर्मी थी, और वरिष्ठ भिक्षु ऐसे चल रहे थे मानो भोजन के कारण उनके शरीर पिघल रहे हों।

उस समय पूज्य महाक उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। तब पूज्य महाक ने पूज्य वरिष्ठ भिक्षु से कहा, "हे पूज्य, यदि ठंडी हवा चले, बादलों का आवरण बन जाए और हल्की बारिश हो, तो अच्छा होगा।"

"यह अच्छा होगा, मित्र।"

तब पूज्य महाक ने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि ठंडी हवा चली, बादलों का आवरण बन गया और हल्की बारिश होने लगी।

तब गृहस्थ चित्त के मन में यह विचार आया, “इस संघ के सबसे कनिष्ठ भिक्षु में भी इतनी आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य है!”

फिर जब पूज्य महाका मठ में पहुँचे, तो उन्होंने पूज्य मुख्य भिक्षु से कहा, “क्या इतना काफी है, पूज्य भिक्षु?”

“बस इतना ही काफी है, मित्र महाका। जो किया गया है, वह पर्याप्त है, मित्र महाका, जो अर्पित किया गया है, वह पर्याप्त है।”

तब वरिष्ठ भिक्षु अपने-अपने निवासों पर चले गए और पूज्य महाका भी अपने निवास पर चले गए।

तब गृहस्थ चित्त पूज्य महाका के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “हे पूज्यवर, यदि गुरु महाका मुझे आध्यात्मिक शक्ति का कोई अलौकिक चमत्कार दिखाएँ तो अच्छा होगा।”

“तो, गृहस्थ, अपनी चादर बरामदे पर बिछाएँ और उस पर घास का एक गट्ठा बिखेर दें।”

"जी हां, आदरणीय महोदय," गृहस्वामी चित्त ने उत्तर दिया, और उसने अपना लबादा बरामदे पर फैला दिया और उस पर घास का एक गट्ठा बिखेर दिया।

फिर, जब वह अपने घर में प्रवेश कर कुंडी लगा चुके थे, तब पूज्य महाका ने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि कुंडी के छेद और दरवाजे की दरार से एक लौ निकली और घास को जला दिया, लेकिन उनके वस्त्र को नहीं। 295 गृहस्थ चित्त ने अपना वस्त्र झाड़ा और भयभीत होकर एक तरफ खड़े हो गए।

तब पूज्य महाका अपने घर से बाहर आए और गृहस्थ चित्त से बोले: "क्या इतना काफी है, गृहस्थ?"

"बस इतना ही काफी है, पूज्य महाका। जो किया गया है, वह पर्याप्त है, पूज्य महाका, जो अर्पित किया गया है, वह पर्याप्त है। स्वामी महाका मच्छिकासंडा के रमणीय जंगली आम के बाग में आनंदित हों। मैं स्वामी महाका को वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री प्रदान करने में तत्पर रहूंगा।"

"यह तो बहुत अच्छा कहा, गृहस्थ।"

तब पूज्य महाका ने अपना आवास व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर मच्छिकासंडा से प्रस्थान किया। जब उन्होंने मच्छिकासंडा छोड़ा, तो वे हमेशा के लिए चले गए और फिर कभी वापस नहीं लौटे।

---

347. कामाभू (1)
एक बार पूज्य कामाभू जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य कामाभू के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य कामाभू ने उनसे कहा,

“हे गृहस्थ, यह कहा गया है:

‘दोषरहित चक्र और सफेद चंदवा वाला एक तीली वाला रथ सरपट दौड़ता है। इसे आते हुए देखो, यह निर्मल है। धारा को काटा गया है, बिना किसी बंधन के।’ 296 हे

गृहस्थ, इस संक्षिप्त कथन का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?”

“क्या यह भगवान (बुद्ध) ने कहा है, पूज्यवर?”

“जी हाँ, गृहस्थ।”

“तो कृपया एक क्षण रुकिए, पूज्यवर, मैं इसके अर्थ पर विचार कर लूँ।”

फिर, एक क्षण के मौन के बाद, गृहस्थ चित्त ने पूज्य कामाभू से कहा:

“‘दोषरहित’: हे पूज्यवर, यह सद्गुणों का प्रतीक है।” 'सफेद शामियाना': यह मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) का प्रतीक है। 'एक तीली': यह ध्यान का प्रतीक है। 'घुमावदार रथ': यह आगे बढ़ने और लौटने का प्रतीक है। 'रथ': यह शरीर का प्रतीक है जो चार महान

तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, चावल और दलिया से निर्मित है, अनित्यता के अधीन है, घिसने और नष्ट होने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है।

"हे पूज्यवर, कामवासना (राग) कष्ट है; घृणा (दोष/द्वेष) कष्ट है; मोह (मोह) कष्ट है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उनके लिए ये त्याग दिए गए हैं, जड़ से काट दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिए गए हैं, मिटा दिए गए हैं ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'कष्टमुक्त' कहा जाता है।" 'आने वाला' अरहंत के लिए एक पदनाम है।

"'धारा': हे पूज्यवर, यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का पदनाम है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए यह त्याग दिया जाता है, जड़ से काट दिया जाता है, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिया जाता है, ताकि यह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'धारा विच्छेदित' कहा जाता है।

" हे पूज्यवर, कामवासना (राग) बंधन है; घृणा (दोष/द्वेष) बंधन है; मोह (मोह) बंधन है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए ये त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'बंधन से मुक्त' कहा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब भगवान (बुद्ध) ने कहा:

'दोषरहित पहिए और सफेद चंदवा के साथ, एक
तीली वाला रथ चल रहा है।
इसे आते हुए देखो, विपत्ति रहित,
नदी कटी हुई है, बंधन से मुक्त होकर

ही मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।

"यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को समझने के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की दृष्टि है।"

---

348. कामाभू (2)
एक बार पूज्य कामाभू जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य कामाभू के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “पूज्यवर, संस्कार कितने प्रकार के होते हैं?” 297

“हे गृहस्थ, तीन प्रकार के संस्कार होते हैं: शारीरिक संस्कार, मौखिक संस्कार और मानसिक संस्कार।” 298

“जी, पूज्यवर,” गृहस्थ चित्त ने कहा। तब, पूज्य कामभू के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, पूज्यवर, शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है? मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है? मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है?"

"श्वास लेना और श्वास छोड़ना, हे गृहस्थ, शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं; विचार और परीक्षण मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं; बोध (सन्ना संस. संग्या) और संवेदना (वेदना) मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं।"

"अच्छा, पूज्यवर," गृहस्थ चित्त ने कहा। फिर... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, आदरणीय महोदय, श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं? विचार और परीक्षण मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं? बोध और वेदना मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं?"

"गृहस्थ, श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक क्रियाएं हैं, ये धर्म (गुण, नियम) शरीर पर निर्भर हैं; इसीलिए श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं। पहले मनन और चिंतन किया जाता है, फिर वाणी निकलती है; इसीलिए चिंतन और

चिंतन वाणी-आधार (व्यवहार-आधार) हैं। बोध और वेदना मानसिक क्रियाएं हैं, ये धर्म मन पर निर्भर हैं; इसीलिए बोध और वेदना मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं।"

यह कहते हुए, "परमेश्वर, आदरणीय महोदय,"... फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परमेश्वर, बोध और वेदना के निरोध (निरोध) की प्राप्ति कैसे होती है?" 299

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु (सन्यासी) बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त करूँगा', या 'मैं बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर रहा हूँ', या 'मैंने बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर ली है'; [294] बल्कि उसका मन पहले से ही इस प्रकार विकसित हो चुका होता है कि वह उसे ऐसी अवस्था तक ले जाता है।" 300

“हे आदरणीय महोदय,” कहते हुए उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) को प्राप्त कर रहा होता है, तो उसमें सबसे पहले कौन सा संस्कार समाप्त होता है: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आदत), या मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत)?”

“गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) को प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले मौखिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) समाप्त होता है, उसके बाद शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत), और उसके बाद मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त होता है।” 301

"हे आदरणीय महोदय," कहते हुए... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति मर चुका है और जो भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर चुका है, उनमें क्या अंतर है?"

गृहस्थ, जो व्यक्ति मर चुका है, उसके शरीर के संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, वाणी के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, मानसिक संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं; उसकी प्राण शक्ति समाप्त हो चुकी है, उसकी शारीरिक ऊष्मा विलीन हो चुकी है, और उसकी इंद्रियाँ पूर्णतः निष्क्रिय हो चुकी हैं। जिस भिक्षु ने बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर ली है, उसके शरीर के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, वाणी के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, मानसिक संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं; परन्तु उसकी प्राण शक्ति समाप्त नहीं होती, उसकी शारीरिक ऊष्मा विलीन नहीं होती, और उसकी इंद्रियाँ शांत रहती हैं। 302 यही अंतर है एक मृत व्यक्ति और एक जीवित व्यक्ति में। "वह चला गया है, और एक भिक्षु जिसने बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति प्राप्त कर ली है।"

यह कहते हुए, "परमेश्वर,"... फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परमेश्वर, बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से कैसे उद्भव होता है?"

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध (सन्ना संस. संग्या) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव करूँगा', या 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर रहा हूँ', या 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर चुका हूँ'; बल्कि उसका मन पहले से ही इस प्रकार विकसित होता है कि वह उसे ऐसी अवस्था तक ले जाता है।" 303

"हे आदरणीय महोदय," कहते हुए... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आ रहा होता है, तो उसमें सबसे पहले कौन सा उत्पन्न होता है: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत)?" क्या यह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) है, या मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)?

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से उभर रहा होता है, तो सर्वप्रथम मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं, उसके बाद देहीय संस्कार (व्यवहार-आदत) और उसके बाद वाणी संबंधी संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं।" 304

"हे आदरणीय," कहते हुए उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से उभर चुका होता है, तो उसे कितने प्रकार के स्पर्श (फस/स्पर्श) स्पर्श करते हैं?"

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसे तीन प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) प्राप्त होते हैं: शून्यता का संपर्क (फस्सा/स्पर्श), अनिमित्त का संपर्क (फस्सा/स्पर्श), और अनिर्देशित संपर्क (फस्सा/स्पर्श)।" 305 "

हे आदरणीय महोदय," कहकर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसका मन किस ओर झुकता है, ढलान बनाता है और प्रवृत्त होता है?" "

गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसका मन एकांत की ओर झुकता है, ढलान बनाता है और प्रवृत्त होता है।" 306

"हे आदरणीय महोदय," चित्त गृहस्थ ने कहा। तब, पूज्य कामभू के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "पूज्यवर, बोध और संवेदना के निवारण (वेदना) की प्राप्ति में कितने धर्म (गुण, नियम) सहायक हैं?" "

जी, गृहस्थ, तुम वह प्रश्न अंत में पूछ रहे हो जो पहले पूछा जाना चाहिए था; परन्तु मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। बोध और संवेदना के निवारण (वेदना) की प्राप्ति में दो धर्म सहायक हैं: समभाव (शांति) और विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान)।" 307

---

349. गोदात्ता
एक बार पूज्य गोदात्ता जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य गोदात्ता के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य गोदात्ता ने बैठे-बैठे ही उनसे कहा: 308

"गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति), शून्यता से मन की मुक्ति, शून्यता से मन की मुक्ति और अनिमित्त से मन की मुक्ति: क्या ये धर्म (गुण, नियम) अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक ही हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?"

"हे पूज्यवर, एक विधि है जिससे ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, और एक विधि है जिससे वे अर्थ में एक हैं और केवल अभिव्यक्ति में भिन्न हैं।

और हे पूज्यवर, वह विधि क्या है जिससे ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं? यहाँ एक भिक्षु (सन्यासी) प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, जैसे स्वयं के लिए, वह प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है। वह करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से..." समभाव से परिपूर्ण मन (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के साथ, वह द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांश में निवास करता है। इस प्रकार ऊपर, नीचे, आर-पार और सर्वत्र, और सभी के लिए स्वयं के समान, वह समभाव से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। इसे मन की असीम मुक्ति कहा जाता है। 309

"और हे पूज्यवर, शून्यता द्वारा मन की मुक्ति क्या है? यहाँ, चेतना की अनंतता (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'कुछ भी नहीं है', एक भिक्षु शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। इसे शून्यता द्वारा मन की मुक्ति कहा जाता है। 310

"और हे पूज्यवर, शून्यता द्वारा मन की मुक्ति क्या है? यहां एक भिक्षु, जंगल में जाकर, किसी वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कुटिया में जाकर, सोचता है: 'यह स्वयं से रहित है, न ही स्वयं से संबंधित है।' इसे शून्यता द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) कहा जाता है। 311

"और हे पूज्यवर, मन की अनिमित्त मुक्ति क्या है? यहां, सभी कारणों (निमित्त) से अनभिज्ञ होकर, एक भिक्षु अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे मन की अनिमित्त मुक्ति कहा जाता है। 312

हे पूज्यवर, यही वह विधि है जिससे ये धर्म अर्थ और शब्द-रचना दोनों में भिन्न हैं। 313 और हे पूज्यवर, वह विधि क्या है जिससे ये धर्म अर्थ में एक हैं और केवल शब्द-रचना में भिन्न हैं? हे पूज्यवर

, कामवासना (राग) माप का कारक है, घृणा (दोष/द्वेष) माप का कारक है, मोह (मोह) माप का कारक है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए ये त्याग दिए गए हैं, जड़ से काट दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिए गए हैं, ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। मन की जितनी भी असीम मुक्ति हैं, उनमें से अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को प्रमुख घोषित किया गया है। 314 अब मन की वह अविचल मुक्ति कामवासना से रहित है, घृणा (दोष/द्वेष) से रहित है, मोह (मोह) से रहित है।

हे पूज्यवर, कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) - ये सब कुछ हैं। 315 जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। शून्यता से मन की जितनी भी मुक्ति होती है, उनमें से अविचल मन की मुक्ति को श्रेष्ठ घोषित किया जाता है। अब वह अविचल मन की मुक्ति कामवासना से रहित है, घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) से रहित है।

हे पूज्यवर, कामवासना (राग), निमित्त (कारण) उत्पन्न करती है, घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) निमित्त (कारण) उत्पन्न करती है। 316 जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उनके लिए ये दोष जड़ से समाप्त हो जाते हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिट जाते हैं, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं कि भविष्य में इनका कोई पुनरुत्पादन न हो। मन की अकारण मुक्ति (अनिमित्त) जिस हद तक होती है, उसमें अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को श्रेष्ठ घोषित किया जाता है। मन की वह अविचल मुक्ति कामवासना (राग) से, द्वेष (दोष/द्वेष) से और मोह (मोह) से रहित होती है।

"हे पूज्यवर, यही वह विधि है जिससे ये धर्म अर्थ में एक हैं, केवल शब्दों में भिन्न हैं।" 317

"हे गृहस्थ, यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को देखने वाली प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है।"

---

350. निगंथा नटपुत्त (उर्फ महावीर)
उस अवसर पर निगंथा नटपुत्त अपने कई अनुयायियों के साथ मच्छिकासंडा पहुंचे। 318 गृहस्थ चित्त ने यह सुना और अपने कई अनुयायियों के साथ निगंथा नटपुत्त के पास गए। 319 उन्होंने निगंथा नटपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। निगंथा नटपुत्त ने उनसे कहा,
"गृहस्थ, क्या आपको तपस्वी गौतम पर विश्वास है जब वे कहते हैं: 'विचार और परीक्षा के बिना समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, विचार और परीक्षा का निरोध होता है'?" 320

"इस विषय में, आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) पर विश्वास नहीं करता 321 जब वे कहते हैं: 'विचार और परीक्षा के बिना समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, विचार और परीक्षा का अंत होता है।'"

यह सुनकर निगंथ नटपुत्त ने गर्व से 322 अपने अनुयायियों की ओर देखा और कहा: "देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना सीधा है! कितना ईमानदार और खुला! जो यह सोचता है कि विचार और परीक्षा को रोका जा सकता है, वह शायद यह सोचे कि वह हवा को जाल में पकड़ सकता है या गंगा नदी की धारा को अपनी मुट्ठी से रोक सकता है।"

"आप क्या सोचते हैं, आदरणीय महोदय, कौन श्रेष्ठ है: ज्ञान या विश्वास?"

"ज्ञान, गृहस्थ, विश्वास से श्रेष्ठ है।"

"हे पूज्यवर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है। फिर, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ... फिर, अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने पर... मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ... फिर, अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख के त्याग के साथ... मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। " "हे पूज्यवर, चूंकि

मैं इस प्रकार जानता और देखता हूँ, तो मुझे किस अन्य तपस्वी या ब्राह्मण पर विश्वास करना चाहिए कि बिना चिंतन और परीक्षण के समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, चिंतन और परीक्षण का निरोध होता है?"

यह सुनकर निगंथा नटपुत्त ने अपने दल की ओर तिरछी नज़र से देखते हुए कहा, "देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना कुटिल है! कितना कपटी और छलपूर्ण है!"

"अभी-अभी, आदरणीय महोदय, हमने आपको यह कहते हुए समझा: 'देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना सीधा-सादा है! कितना ईमानदार और खुला है!' - लेकिन अब हम आपको यह कहते हुए समझते हैं: 'देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना कुटिल है! कितना कपटी और छलपूर्ण है!' यदि आपका पहला कथन सत्य है, आदरणीय महोदय, तो आपका दूसरा कथन असत्य है, जबकि यदि आपका पहला कथन असत्य है, तो आपका बाद वाला कथन सत्य है।

"आदरणीय महोदय, आगे ये दस उचित प्रश्न उठते हैं। जब आप इनका अर्थ समझ लें, तब आप अपने दल सहित मुझे उत्तर दें। 323 एक प्रश्न, एक सारांश, एक उत्तर। दो प्रश्न, दो सारांश, दो उत्तर। तीन... चार... पाँच... छह... सात... आठ... नौ... दस प्रश्न, दस सारांश, दस उत्तर।"

तब गृहस्थ चित्त अपने आसन से उठे और निगंथा नटपुत्त से ये दस उचित प्रश्न पूछे बिना ही चले गए। 324

---

351. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)
उस अवसर पर, गृहस्थ चित्त के पुराने मित्र और गृहस्थ जीवन में नग्न तपस्वी कस्सपा मच्छिकासंडा में आ गए थे। गृहस्थ चित्त को इसकी सूचना मिली और वे नग्न तपस्वी कस्सपा के पास गए। उन्होंने उनसे अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय कस्सपा, आपको संन्यास लिए हुए कितना समय हो गया है?"

"हे गृहस्थ, मुझे संन्यास लिए हुए तीस वर्ष हो गए हैं।"

"हे आदरणीय, इन तीस वर्षों में क्या आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई ऐसी अलौकिक उपलब्धि प्राप्त की है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, या कोई सुखमय निवास?"

"हे गृहस्थ, इन तीस वर्षों में मैंने ज्ञान और दृष्टि में कोई ऐसी अलौकिक उपलब्धि प्राप्त नहीं की है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, न ही कोई सुखमय निवास, बल्कि केवल नग्नता, मुंडा हुआ सिर और बैठने के लिए कंघी का उपयोग किया है।" 326

जब यह कहा गया, तो गृहस्थ चित्त ने उनसे कहा, "यह सचमुच अद्भुत है, महाराज! यह सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! धर्म (मार्ग, नियम) की कितनी अच्छी व्याख्या की गई है 327 कि तीस वर्षों के बाद भी आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई अलौकिक भेद प्राप्त नहीं किया है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, न ही आप सुख-सुविधाओं में रहते हैं, बल्कि केवल नग्न अवस्था में हैं, मुंडा सिर रखते हैं और अपने आसन को साफ करने के लिए केवल कंघी का उपयोग करते हैं।"

"लेकिन, गृहस्थ, आपको गृहस्थ बने हुए कितना समय हो गया है?"

"मेरे मामले में भी, आदरणीय महोदय, तीस वर्ष हो गए हैं।"

"इन तीस वर्षों में, गृहस्थ, क्या आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई अलौकिक भेद प्राप्त किया है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, या कोई सुख-सुविधाओं में रहने का स्थान प्राप्त किया है?"

"हे पूज्यवर, मैं ऐसा कैसे न करूँ? 328 क्योंकि मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने पर, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने पर... तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख के त्याग से... चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। इसके

अतिरिक्त, यदि मैं भगवान (बुद्ध) से पहले मर जाऊँ, तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि भगवान (बुद्ध) मेरे बारे में यह घोषणा करें: 'ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे चित्त गृहस्थ इस संसार में पुनर्जन्म ले सके।'" 329

जब यह कहा गया, तो नग्न तपस्वी कस्सपा ने गृहस्थ चित्त से कहा, "यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! धम्म की व्याख्या कितनी अच्छी तरह से की गई है, कि श्वेत वस्त्र पहने एक गृहस्थ भी श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सकता है।" एक सुखमय निवास।
क्या मुझे इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उच्चतर दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त हो सकती है?

तब गृहस्थ चित्त नग्न तपस्वी कस्सपा को वरिष्ठ भिक्षुओं के पास ले गया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, यह नग्न तपस्वी कस्सपा गृहस्थ जीवन से हमारा पुराना मित्र है। वरिष्ठ भिक्षु इसे दीक्षा (पबज्जा) दें, इसे उच्चतर दीक्षा प्रदान करें।" मैं उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री उपलब्ध कराने में तत्पर रहूंगा।

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की, उन्होंने उच्च दीक्षा ग्रहण की। और शीघ्र ही, अपनी उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा उन लोगों में से एक बन गए जो अरहंत।

---

352. बीमारों को देखना (गिलानदासन संस्कृत: गिलानित-दर्शन)
उस समय चित्त गृहस्थ बीमार थे, अत्यंत कष्ट में थे। तब अनेक उद्यान देवता, वन देवता, वृक्ष देवता, औषधीय जड़ी-बूटियों में निवास करने वाले देवता और वन के विशालकाय देवता एकत्रित हुए और चित्त गृहस्थ से बोले, "हे गृहस्थ, यह कामना कीजिए: 'काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!'"

यह सुनकर चित्त गृहस्थ ने उन देवताओं से कहा, "वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना होगा।"

यह सुनकर चित्त गृहस्थ के मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने उनसे कहा, "हे स्वामी, ध्यान में रहें। बकवास न करें।" चित्त ने कहा,

"मैंने ऐसा क्या कह दिया कि आप मुझसे इस प्रकार कह रहे हैं?"

आपने हमसे कहा था: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है, उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।'

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उद्यान देवता, वन देवता, वृक्ष देवता, औषधीय जड़ी-बूटियों में निवास करने वाले देवता और वन के विशालकाय देवता एकत्रित होकर मुझसे बोले: 'हे गृहस्थ, ऐसी कामना करो: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!"' और मैंने उनसे कहा: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।' हे

स्वामी, उन देवताओं को क्या लाभ दिखाई देता है कि वे आपसे ऐसा कहते हैं?

उन देवताओं को यह विचार आता है: 'यह चित्त गृहस्थ गुणी और अच्छे चरित्र का है। यदि वह कामना करे: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!" - क्योंकि वह गुणी है, उसकी यह कामना उसकी पवित्रता के कारण सफल होगी। धर्म का राजा उसे धार्मिक भेंट देगा।' 330 इस लाभ को देखकर, वे देवता एकत्रित हुए और बोले: 'हे गृहस्थ, ऐसी कामना करो: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला सम्राट बनूँ!"' और मैंने उनसे कहा: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।' "

तो हे गृहस्थ, हमें भी उपदेश दीजिए।"

"अतः, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: "भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

'हम धम्म में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: "भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"हम संघ में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्म, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।'

'हमारे परिवार में जो कुछ भी दान करने योग्य है, वह सब हम गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों के साथ निःसंकोच साझा करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

फिर, अपने मित्रों और सहकर्मियों, अपने रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों में बुद्ध, धम्म और संघ में विश्वास जगाकर और उन्हें उदारता का उपदेश देकर, गृहस्थ चित्त का देहांत हो गया।

अध्याय 8: ग्राम प्रधानों से संबंधित प्रवचन (गमानिसामुत्त) {साम्युत्त-42}
353. कनाडा
सावत्थी में। तब ग्राम प्रधान चंदा (क्रोधित) 332 भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, यहाँ किसी को क्रोधी क्यों माना जाता है? और यहाँ किसी को सौम्य क्यों माना जाता है?" 333

"हे मुखिया, यहाँ किसी ने कामवासना (राग) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने कामवासना का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है। उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है। उसने मोह (मोह) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने मोह (मोह) का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है।

हे मुखिया, यही कारण है कि यहाँ किसी को क्रोधी माना जाता है।"

"हे मुखिया, यहाँ किसी ने कामवासना का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने कामवासना (राग) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है। उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है। उसने मोह (मोह) का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने मोह (मोह) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है।

हे मुखिया, यही कारण है कि यहाँ किसी को सौम्य माना जाता है।"

यह सुनकर मुखिया चंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"महान, आदरणीय महोदय! महान, आदरणीय महोदय!" भगवान (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग, नियम) को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से भगवान (बुद्ध) मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

---

354. तलपुटा

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब मंडली के मुखिया तलपुता 334 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, मैंने पुराने समय के अभिनेताओं के बीच, गुरुओं की परंपरा में, यह कहावत सुनी है: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और असत्य से लोगों का मनोरंजन करता है, 335 तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हंसते हुए देवों (देवदूतों) की संगति में पुनर्जन्म लेता है।' इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?”

“बस करो, मुखिया, रहने दो! मुझसे यह मत पूछो!”

दूसरी और तीसरी बार, मंडली के मुखिया तलपुता ने कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने पुराने समय के अभिनेताओं के बीच, शिक्षकों की परंपरा में, यह कहते सुना है: ...। इस बारे में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?" "

निश्चित रूप से, मुखिया जी, जब मैं कहता हूँ, 'बस करो, मुखिया जी, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!' तो मेरी बात आपको समझ नहीं आ रही है।" लेकिन फिर भी, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक कामवासना (राग) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो कामवासना (राग) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें उत्तेजक चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें इच्छाओं के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो घृणा (दोष/द्वेष) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें क्रोधित करने वाली चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें घृणा (दोष/द्वेष) के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक मोह (मोह) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो मोह (मोह) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें भ्रमित करने वाली चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें मोह (मोह) के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं।

इस प्रकार, स्वयं मदमस्त और आलसी होकर, दूसरों को मदमस्त और आलसी बनाकर, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, वह 'नरक' में पुनर्जन्म लेता है। 'हंसी का।' 337 परन्तु यदि उसका ऐसा मत हो: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और असत्य से लोगों का मनोरंजन करता है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वह हंसते हुए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है' - तो यह उसका गलत मत है। मैं कहता हूँ, गलत मत वाले व्यक्ति के लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशुलोक।' 338

यह सुनकर मंडली का मुखिया तलपुता रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "तो जब मैंने कहा, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो!', तो क्या तुम मेरी बात समझ नहीं पाए?'" मुझसे यह मत पूछो!

मैं भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार नहीं रो रहा हूँ, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मुझे उन पुराने अभिनेताओं ने लंबे समय से धोखा दिया है, ठगा है और छल किया है जो गुरुओं की परंपरा में थे और कहते थे: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और झूठ से लोगों का मनोरंजन करता है, तो शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म हंसते हुए देवताओं की संगति में हुआ।

"हे महान, आदरणीय महोदय! हे महान, आदरणीय महोदय! भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। हे आदरणीय महोदय, क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है? क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?"

तब दल के मुखिया तलपुता ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की, उन्हें उच्चतर दीक्षा प्राप्त हुई। और जल्द ही, उच्चतर दीक्षा के कुछ ही समय बाद... आदरणीय तलपुता अरहंतों में से एक बन गए।

---

355. योधाजीव (सं. युद्धजीवी)
तब प्रधान योद्धाजीव (339) भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, मैंने प्राचीन काल के गुरुओं के वंश में योद्धाओं से यह सुना है: 'जब कोई योद्धा युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, और यदि दूसरे उसे युद्ध में संघर्ष करते हुए मार डालते हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह युद्ध में मारे गए देवों (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेता है।' 340 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"बस करो, प्रधान, रहने दो! मुझसे यह मत पूछो!"

दूसरी और तीसरी बार प्रधान योद्धाजीव ने कहा:
"हे पूज्यवर, मैंने प्राचीन काल के गुरुओं के वंश में योद्धाओं से यह सुना है: ... इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"निश्चित रूप से, मुखिया, जब मैं कहता हूँ, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!' तो मेरी बात आपको समझ नहीं आ रही है। लेकिन फिर भी, मैं आपको उत्तर दूंगा। मुखिया, जब कोई भाड़े का सैनिक युद्ध में संघर्ष करता है और अपना पूरा बल लगाता है, तो उसका मन पहले से ही नीचा, भ्रष्ट और इस विचार से गुमराह होता है: 'इन प्राणियों को मार डाला जाए, उनका वध किया जाए, उन्हें नष्ट कर दिया जाए, या उनका सफाया कर दिया जाए।' यदि दूसरे लोग युद्ध में संघर्ष करते हुए उसे मार डालते हैं और उसका अंत कर देते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह 'युद्ध में मारे गए लोगों के नरक' में पुनर्जन्म लेता है।" 341 परन्तु यदि उसका ऐसा मत हो कि "जब कोई भाड़े का सैनिक युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, और यदि दूसरे उसे मार डालते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ वह युद्ध में मारे गए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है" — तो यह उसका गलत मत है। मैं कहता हूँ, गलत मत रखने वाले व्यक्ति के लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशुलोक।"

यह सुनकर प्रधान योद्धाजीव रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "तो क्या मेरी बात तुम तक नहीं पहुँची जब मैंने कहा, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!'"

"हे पूज्यवर, मैं भगवान (बुद्ध) की कही बातों के कारण नहीं रो रहा हूँ, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मुझे पुराने समय के उन भाड़े के सैनिकों ने धोखा दिया है, ठगा है और छल किया है, जो गुरुओं की परंपरा में थे और कहते थे: 'भाड़े का सैनिक वह होता है जो युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, यदि दूसरे उसे युद्ध में संघर्ष करते हुए मार डालते हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह युद्ध में मारे गए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है।'

"हे महान, पूज्यवर!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

356. हत्थारोह
तब हाथी योद्धा हत्थारोह ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर कहा... (पाठ पिछले 355 के समान है, अंत में:) "...जो जीवन के लिए शरण लेने गए हैं।"

---

357. अस्सारोहा (सं. अश्वारोहा)
तब सरदार अस्सारोह, जो एक घुड़सवार योद्धा था, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा... और उनसे कहा:

(यह सब 355 में दिए गए कथन के समान है, सिवाय इसके कि इसे घुड़सवार योद्धा (अस्सारोह) के शब्दों में व्यक्त किया गया है, जो युद्ध में प्रयास और परिश्रम करता है।)

---

358. असिबंधकपुत्त
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब मुखिया असिबंधकपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, पश्चिमी क्षेत्र के ब्राह्मण - जो जलपात्र लेकर चलते हैं, जलीय पौधों की माला पहनते हैं, जल में लीन रहते हैं और पवित्र अग्नि की देखभाल करते हैं - कहा जाता है कि वे मृत व्यक्ति को ऊपर की ओर निर्देशित करते हैं, उसका मार्गदर्शन करते हैं और उसे स्वर्ग तक पहुंचाते हैं। 342 परन्तु भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, ऐसा कर सकते हैं कि शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, संपूर्ण विश्व एक शुभ गंतव्य (सुगति), एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके।"

"तो फिर, मुखिया जी, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न करूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। मुखिया जी, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन दुराचार करता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभी है, द्वेष से भरा है और गलत मत रखता है। तब लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर एकत्रित होकर प्रार्थना करेगी, स्तुति करेगी और आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करेगी और कहेगी: 'शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले, यह व्यक्ति स्वर्गलोक में, शुभ स्थान पर पुनर्जन्म ले।' मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और आदरपूर्वक प्रणाम करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, वह व्यक्ति स्वर्गलोक में, शुभ स्थान पर पुनर्जन्म लेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, कोई व्यक्ति एक विशाल पत्थर को गहरे तालाब में फेंक दे। फिर लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा हो जाए, और वे प्रार्थना करें, स्तुति करें और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करें, यह कहते हुए: 'हे अच्छे पत्थर, प्रकट हो! हे अच्छे पत्थर, उठो! हे अच्छे पत्थर, ऊँचे स्थान पर आ जाओ!' मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करने के कारण वह पत्थर प्रकट होगा, उठेगा और ऊँचे स्थान पर आ जाएगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसी प्रकार, मुखिया जी, यदि कोई व्यक्ति जीवन का नाश करने वाला हो... और गलत विचार रखता हो, तो भले ही लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा हो जाए... फिर भी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेगा।"

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन के क्षय (खयाल) से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, फूट डालने वाली वाणी से, कठोर वाणी से, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है, जो लोभी नहीं है, द्वेष रहित है, और सही दृष्टि रखता है। तब लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर एकत्रित हो जाए, और वे प्रार्थना करें, स्तुतिगान करें और आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करें और कहें: 'शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, यह व्यक्ति दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले।' मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति, और उनके आदरपूर्वक प्रणाम करने के कारण, शरीर के टूटने के बाद, वह व्यक्ति दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, एक व्यक्ति घी या तेल से भरे एक बर्तन को गहरे पानी के कुंड में डुबोकर तोड़ देता है। उसके टुकड़े या अंश नीचे डूब जाएंगे, लेकिन घी या तेल ऊपर उठ जाएगा। फिर लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा होकर प्रार्थना करेगी, स्तुति करेगी और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करेगी, और कहेगी: 'हे अच्छे घी या तेल, नीचे डूब जाओ! हे अच्छे घी या तेल, स्थिर हो जाओ! नीचे चले जाओ!' मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए परिक्रमा करने के कारण क्या वह घी या तेल नीचे डूबेगा, स्थिर होगा या नीचे जाएगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसी प्रकार, हे मुखिया, यदि कोई व्यक्ति जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहता है... जो सही दृष्टि रखता है, चाहे उसके चारों ओर बड़ी भीड़ जमा हो जाए... फिर भी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेगा।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

359. खेत की उपमा (खेत्तुपमा)
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब मुखिया असिबंधकपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) सभी प्राणियों के प्रति दयालु नहीं हैं?"

"जी, मुखिया, तथागत सभी प्राणियों के प्रति दयालु हैं।"

"तो फिर आदरणीय महोदय, ऐसा क्यों है कि भगवान (बुद्ध) कुछ लोगों को धर्म (मार्ग, नियम) का पूर्णतः उपदेश देते हैं, पर दूसरों को उतना पूर्णतः नहीं?"

"तो फिर, मुखिया जी, मैं आपसे इस बारे में प्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, मुखिया जी? मान लीजिए कि यहाँ एक किसान के पास तीन खेत हैं: एक उत्तम, एक मध्यम गुणवत्ता का और एक निम्न गुणवत्ता का - ऊबड़-खाबड़, खारी और बंजर भूमि वाला। आपका क्या विचार है, मुखिया जी? यदि वह किसान बीज बोना चाहता है, तो वह पहले कहाँ बोएगा: उत्तम खेत में, मध्यम गुणवत्ता वाले खेत में, या निम्न गुणवत्ता वाले खेत में, जो ऊबड़-खाबड़, खारी और बंजर भूमि वाला है?"

"यदि, आदरणीय महोदय, वह किसान बीज बोना चाहता है, तो वह उत्तम खेत में बोएगा। वहाँ बीज बोने के बाद, वह फिर मध्यम गुणवत्ता वाले खेत में बीज बोएगा। वहाँ बीज बोने के बाद, वह निम्न गुणवत्ता वाले खेत में बीज बो भी सकता है और नहीं भी। इसका क्या कारण है? क्योंकि कम से कम उसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में तो किया जा सकता है।"

"हे मुखिया, जिस प्रकार उत्तम खेत मेरे लिए उत्तम है, उसी प्रकार भिक्षु और भिक्षुणियाँ मेरे लिए हैं। मैं उन्हें उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।

"हे मुखिया, जिस प्रकार मध्यम गुणवत्ता का खेत मेरे लिए है, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायी मेरे लिए हैं। मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धर्म का उपदेश देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।"

"तो, मुखिया, ठीक उसी प्रकार जैसे वह खेत जो उबड़-खाबड़, खारा और खराब है, मेरे लिए तपस्वी, ब्राह्मण और अन्य संप्रदायों के तपस्वी हैं। फिर भी मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि यदि वे एक वाक्य भी समझ लें, तो इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, एक आदमी के पास तीन पानी के बर्तन हैं: एक बिना दरार वाला, जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता; दूसरा बिना दरार वाला, लेकिन जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है; और तीसरा दरार वाला, जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है। मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? यदि वह आदमी पानी जमा करना चाहता है, तो वह उसे पहले कहाँ जमा करेगा: उस बिना दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता; या उस बिना दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है; या उस दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है?"

"यदि, आदरणीय महोदय, वह व्यक्ति जल संग्रहित करना चाहता है, तो वह उसे बिना दरार वाले बर्तन में संग्रहित करेगा, जिससे जल रिसकर बाहर न निकले। वहाँ जल संग्रहित करने के बाद, वह उसे बिना दरार वाले बर्तन में संग्रहित करेगा, जिससे जल रिसकर बाहर निकल जाता है। वहाँ भी संग्रहित करने के बाद, वह शायद दरार वाले बर्तन में संग्रहित करे या न करे, जिससे जल रिसकर बाहर निकल जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि कम से कम उसका उपयोग बर्तन धोने के लिए तो किया जा सकता है।"

हे मुखिया, जिस प्रकार बिना दरार वाला घड़ा होता है जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार मेरे भिक्षु और भिक्षुणियाँ हैं। मैं उन्हें उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मेरे साथ अपने द्वीप, अपने आश्रय, अपने रक्षक और अपनी शरणस्थली के रूप में निवास करते हैं। फिर

, हे मुखिया, जिस प्रकार बिना दरार वाला घड़ा होता है जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार मेरे पुरुष और स्त्री अनुयायी हैं। मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।

"तो, मुखिया, जिस प्रकार पानी का घड़ा दरारों से रिसकर बह जाता है, उसी प्रकार तपस्वी, ब्राह्मण और अन्य संप्रदायों के तपस्वी मेरे लिए हैं। फिर भी मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धम्म का उपदेश देता हूँ; मैं

उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि यदि वे एक वाक्य भी समझ लें, तो इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

360. शंखध्वनि (शंखधाम)
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिका के आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब निगंथों के एक गृहस्थ शिष्य, असिबंधकपुत्त, जो मुखिया थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठे हुए उनसे कहा,

"हे मुखिया, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को धम्म (मार्ग, नियम) किस प्रकार सिखाते हैं?"

आदरणीय महोदय, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हैं: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी बिना दी हुई वस्तु लेता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी झूठ बोलता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। मनुष्य अपने सामान्य आचरण के अनुसार पुनर्जन्म की ओर अग्रसर होता है।' आदरणीय महोदय, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को इसी प्रकार धम्म का उपदेश देते हैं।

"हे मुखिया, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति के सामान्य आचरण के कारण ही पुनर्जन्म होता, तो निगंथ नटपुत्त के वचनानुसार कोई भी व्यक्ति दुखमय स्थिति में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता। हे मुखिया, आपका क्या विचार है? जीवन का विनाश करने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक घटना की तुलना दूसरी घटना से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो कौन सी घटना अधिक बार घटित होती है: जीवन का विनाश करने की घटनाएँ या जीवन का विनाश न करने की घटनाएँ?"

"हे पूज्यवर, जीवन का विनाश करने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक घटना की तुलना दूसरी घटना से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो जीवन का विनाश करने की घटनाएँ कम ही घटित होती हैं, जबकि जीवन का विनाश न करने की घटनाएँ अधिक होती हैं।"

तो, मुखिया जी, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति अपने सामान्य रहन-सहन के तरीके से पुनर्जन्म की ओर अग्रसर होता, तो निगंथा नटपुत्त के वचन के अनुसार कोई भी व्यक्ति दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता। "

आप क्या सोचते हैं, मुखिया जी? उस व्यक्ति के मामले में जो बिना दी हुई वस्तु लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है..." जो व्यक्ति झूठ बोलता है, यदि एक अवसर की तुलना दूसरे से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो कौन सा अवसर अधिक बार होता है: वे अवसर जब वह झूठ बोल रहा होता है या वे अवसर जब वह झूठ नहीं बोल रहा होता है?

"हे पूज्यवर, झूठ बोलने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक अवसर की तुलना दूसरे से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो उसके झूठ बोलने के अवसर कम होते हैं जबकि उसके झूठ न बोलने के अवसर अधिक होते हैं।"

"इसलिए, मुखिया जी, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति अपने सामान्य जीवन यापन के तरीके से [पुनर्जन्म की ओर] अग्रसर होता, तो निगंथ नटपुत्त के वचन के अनुसार कोई भी व्यक्ति दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता।"

"हे मुखिया, यहाँ एक शिक्षक का यह मत है: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है... जो कुछ भी उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।' तब एक शिष्य को उस शिक्षक पर पूरा विश्वास होता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'मेरे शिक्षक का यह मत है: "जो कोई भी जीवन का नाश करता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने भी जीवन का नाश किया है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य हूँ, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।' इस प्रकार वह ऐसा मत अपना लेता है। यदि वह उस कथन और उस मन की अवस्था को नहीं त्यागता है, और यदि वह उस मत को नहीं छोड़ता है, तो अपने कर्मों के अनुसार वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा। 344

"उसके मन में यह विचार आता है: 'मेरे शिक्षक का यह मत है: "जो कोई भी उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने वह ले लिया है जो मुझे नहीं दिया गया था, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह इस कथन को नहीं छोड़ता... तो वह मानो नरक में ही गिर जाएगा।

उसे यह विचार आता है: 'मेरे गुरु का यह सिद्धांत और विचार है: "जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, वह दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने यौन दुराचार किया है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह इस कथन को नहीं छोड़ता... तो वह मानो नरक में ही गिर जाएगा।

उसे यह विचार आता है: 'मेरे गुरु का यह सिद्धांत और विचार है: "जो कोई भी झूठ बोलता है, वह दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने झूठ बोला है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह उस कथन को नहीं त्यागता... तो वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा।

"परन्तु हे मुखिया, संसार में तथागत का जन्म होता है, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)। अनेक प्रकार से वे जीवन के क्षय/विनाश की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'जीवन के विनाश से दूर रहो।' वे बिना दी हुई वस्तुएँ लेने की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से दूर रहो।' वे यौन दुराचार की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'यौन दुराचार से दूर रहो।' वे झूठे वचन की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'झूठे वचन से दूर रहो।'

तब शिष्य को उस गुरु पर पूरा भरोसा होता है। वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से जीवन के क्षय/विनाश (खय/क्षय) की निंदा और भर्त्सना करते हैं, और कहते हैं: "जीवन के विनाश से दूर रहो।" अब मैंने जीवन का इतना विनाश कर दिया है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस पर खेद है, मेरा यह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' ऐसा सोचकर वह जीवन के विनाश का त्याग कर देता है और भविष्य में भी जीवन के विनाश से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; 345 इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अनचाही वस्तुएँ लेने की निंदा और भर्त्सना करते हैं, और कहते हैं: "अनचाही वस्तुएँ लेने से दूर रहो।" अब मैंने अनचाही वस्तुएँ इतनी मात्रा में ले ली हैं। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस बात का खेद है, फिर भी मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता। यह सोचकर वह अनचाही वस्तुएँ लेने का त्याग कर देता है और भविष्य में भी अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से यौन दुराचार की आलोचना और निंदा करते हैं, और कहते हैं: "यौन दुराचार से दूर रहो।" अब मैंने इतनी हद तक यौन दुराचार किया है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस बात का खेद है, फिर भी मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' विचार करने के बाद, वह यौन दुराचार का त्याग करता है और भविष्य में भी यौन दुराचार से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से झूठे वचन की आलोचना और निंदा करते हैं, और कहते हैं: "झूठे वचन से दूर रहो।" अब मैंने इतना झूठ बोला है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। लेकिन यद्यपि मुझे इस पर पछतावा है, मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' विचार करने के बाद, वह झूठे वचन का त्याग करता है और भविष्य में भी झूठे वचन से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

जीवन के विनाश (खया/क्षय) का त्याग करके, वह जीवन के विनाश से दूर रहता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है। यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से दूर रहता है। झूठी वाणी का त्याग करके, वह झूठी वाणी से दूर रहता है। विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित है। द्वेष और घृणा (दोष/द्वेष) का त्याग करके, उसका मन द्वेष रहित है। गलत मत का त्याग करके, वह सही मत का है।

फिर, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसका मन मग्न रहता है। प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण, वह द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांश में व्याप्त है। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और सर्वत्र, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेममयी (मैत्री) से ओतप्रोत, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से समस्त संसार में विराजमान है। जैसे एक सशक्त शंख बजाने वाला आसानी से चारों दिशाओं में अपना संकेत भेज सकता है, वैसे ही जब प्रेममयी (मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) इस प्रकार विकसित और पोषित की जाती है, तो किया गया कोई भी सीमित कर्म वहाँ नहीं रहता, वहाँ बना नहीं रहता। 346

"वह करुणा से परिपूर्ण मन से, परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहते हैं, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हैं। जैसे एक शक्तिशाली शंख बजाने वाला आसानी से अपनी ध्वनि चारों दिशाओं में भेज सकता है, वैसे ही जब समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तो किया गया कोई भी सीमित कर्म वहाँ नहीं रहता, वहाँ बना नहीं रहता।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

361. परिवार (कुला)
एक बार भगवान (बुद्ध), भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए नालंदा पहुँचे। वे वहाँ पावरिक-अंबावन में ठहरे।

उस समय नालंदा में अकाल पड़ा हुआ था, फसलें सूखकर भूसे में तब्दील हो गई थीं। 347 उस समय निगंथ नटपुत्त अपने कई निगंथ शिष्यों के साथ नालंदा में निवास कर रहे थे। तब निगंथ शिष्यों के मुखिया असिबंधकपुत्त, जो उनके गृहस्थ शिष्य थे, निगंथ नटपुत्त के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब निगंथ नटपुत्त ने उनसे कहा: "आओ, मुखिया, तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन करो। तब तुम्हारे बारे में यह अच्छी खबर फैलेगी कि 'मुखिया असिबंधकपुत्त ने इतने शक्तिशाली और बलवान तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन किया है।' "

पर हे पूज्यवर, मैं इतने शक्तिशाली और बलवान तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन कैसे करूँ?"

"जाओ, मुखिया, तपस्वी गौतम के पास जाओ और उनसे पूछो:
'हे पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से परिवार के प्रति सहानुभूति, परिवार की रक्षा और परिवार के प्रति करुणा की प्रशंसा नहीं करते?'" यदि आप इस प्रकार प्रश्न पूछकर तपस्वी गौतम से कहें, 'जी, मुखिया जी, तथागत अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और उनके प्रति करुणा की प्रशंसा करते हैं,' तो आपको उनसे कहना चाहिए: 'तो फिर, आदरणीय महोदय, अकाल के समय, अभाव के समय, जब फसलें नष्ट होकर भूसे में बदल गई हैं, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ भ्रमण पर क्यों हैं? भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खयाल/क्षय के लिए साधना कर रहे हैं।' जब आप तपस्वी गौतम के सामने यह दुविधा रखेंगे, तो वे न तो इसे अस्वीकार कर पाएंगे और न ही स्वीकार पाएंगे। '

जी, आदरणीय महोदय,' आसिबंधकपुत्त मुखिया ने उत्तर दिया। फिर वे अपने आसन से उठे और निगंथ नटपुत्त को अपने दाहिनी ओर बिठाकर उन्हें प्रणाम करने के बाद भगवान (बुद्ध) के पास चले गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले, "आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और परिवारों के प्रति करुणा की प्रशंसा नहीं करते?"

"जी, मुखिया, तथागत अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और परिवारों के प्रति करुणा की प्रशंसा करते हैं।"

"तो फिर, आदरणीय महोदय, अकाल के समय, अभाव के समय, जब फसलें नष्ट होकर भूसे में बदल गई हैं, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ भ्रमण पर क्यों हैं? भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खयाल/क्षय के लिए साधना कर रहे हैं।"

"हे मुखिया, मुझे 91 युग पहले का समय याद है, लेकिन मुझे ऐसा कोई परिवार याद नहीं आता जो केवल पका हुआ भिक्षा भोजन देने मात्र से नष्ट हो गया हो। बल्कि, जितने भी परिवार धनी हैं, जिनके पास बहुत धन-संपत्ति है, प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी है, प्रचुर संपत्ति और जीविका के साधन हैं, प्रचुर धन और अनाज है, वे सभी दान देने, सत्यनिष्ठा और आत्म-संयम के कारण ही धनी हुए हैं। 348

"हे मुखिया, परिवारों के विनाश के आठ कारण हैं। परिवार राजा के कारण, या चोरों के कारण, या आग के कारण, या पानी के कारण नष्ट हो जाते हैं; या वे अपना जमा किया हुआ धन नहीं पाते; 349 या कुप्रबंधित उद्यम विफल हो जाते हैं; या परिवार में कोई ऐसा फिजूलखर्ची करने वाला पैदा हो जाता है जो धन को बर्बाद कर देता है; और अनित्यता (अनिच्च संस्कृत अनित्य) आठवां कारण है। ये परिवारों के विनाश के आठ कारण हैं।" लेकिन जब तक परिवारों के विनाश के ये आठ कारण और वजहें मौजूद हैं, अगर कोई मेरे बारे में इस प्रकार कहे: 'भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खात्मा के लिए साधना कर रहे हैं', अगर वह इस कथन और इस मानसिकता को नहीं त्यागता, और अगर वह इस विचार को नहीं छोड़ता, तो अपने कर्मों के अनुसार वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा।

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

362. मैनिकुलाका

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय राजा के दल के सदस्य राजमहल में एकत्रित होकर बैठे थे, तभी यह चर्चा हुई:
“शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चाँदी जायज़ हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी स्वीकार करते हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी ग्रहण करते हैं।”

उस समय मुखिया मणिकूलक भी सभा में उपस्थित थे। तब मुखिया मणिकूलक ने सभा से कहा: “हे स्वामियों, ऐसा मत कहिए। शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चाँदी जायज़ नहीं हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी स्वीकार नहीं करते; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी ग्रहण नहीं करते। उन्होंने आभूषण और सोना त्याग दिया है; उन्होंने सोना और चाँदी का उपयोग छोड़ दिया है।” 350 और मणिकूलक उस सभा को समझाने में सफल रहा।

तब मणिकूलक भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठकर उसने भगवान (बुद्ध) को सारी घटना बताई और कहा, "हे पूज्यवर, मुझे आशा है कि मैंने जो उत्तर दिया है, वह भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही है, न कि मैंने उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत किया है; मैंने धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार ही व्याख्या की है, और मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता है।"

"हे मुखिया, आपने जब इस प्रकार उत्तर दिया, तो आपने वही कहा जो मैंने कहा था, और आपने मुझे तथ्यों के विपरीत कोई भ्रामक बात कहकर गुमराह नहीं किया; आपने धम्म के अनुसार व्याख्या की, और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं देता। क्योंकि, हे मुखिया, शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चांदी जायज़ नहीं हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोने और चांदी को स्वीकार नहीं करते; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोने और चांदी को ग्रहण नहीं करते। उन्होंने आभूषण और सोने का त्याग कर दिया है; उन्होंने सोने और चांदी का उपयोग छोड़ दिया है। यदि किसी के लिए सोना और चांदी जायज़ हैं, तो उसके लिए पांच इंद्रिय सुख के बंधन भी जायज़ हैं। यदि किसी के लिए पांच इंद्रिय सुख के बंधन जायज़ हैं, तो आप निश्चित रूप से उसे तपस्वी या शाक्य पुत्र के अनुयायी का चरित्र न रखने वाला मान सकते हैं।

"इसके अलावा, हे मुखिया, मैं यह कहता हूँ: 'भूसे की आवश्यकता वाले व्यक्ति को भूसा चाहिए; लकड़ी की आवश्यकता वाले व्यक्ति को लकड़ी चाहिए; जिसे गाड़ी की आवश्यकता हो, वह गाड़ी की तलाश कर सकता है; जिसे कामगार की आवश्यकता हो, वह कामगार की तलाश कर सकता है। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि सोने और चांदी को प्राप्त करने या हासिल करने का कोई तरीका है।

---

363. भद्रक

एक बार भगवान (बुद्ध) मल्लियनों के उरुवेलकप्पा नामक नगर में निवास कर रहे थे। तब मुखिया भद्रक भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के उद्‌भव और निवारण के विषय में उपदेश दें तो अच्छा होगा।" भद्रक ने कहा, "हे मुखिया

, यदि मैं तुम्हें अतीत के संदर्भ में दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूं, यह कहते हुए कि 'ऐसा अतीत में हुआ था', तो तुममें भ्रम और अविभ्रम उत्पन्न हो सकता है। और यदि मैं तुम्हें भविष्य के संदर्भ में दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूं, यह कहते हुए कि 'ऐसा भविष्य में होगा', तो तुममें भ्रम और अविभ्रम उत्पन्न हो सकता है। इसके बजाय, हे मुखिया, जब मैं यहीं बैठा हूं और तुम वहीं बैठे हो, मैं तुम्हें दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूंगा। इसे ध्यानपूर्वक सुनो और मननशील रहो, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," मुखिया भद्रक ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"मुखिया, तुम क्या सोचते हो? क्या उरुवेलकप्पा में ऐसे कोई लोग हैं जिनके कारण तुम्हें मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा होगी?" 351

"ऐसे लोग हैं, आदरणीय महोदय।" "

परन्तु क्या उरुवेलकप्पा में ऐसे कोई लोग हैं जिनके कारण तुम्हें ऐसी स्थिति में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा नहीं होगी?"

"ऐसे लोग हैं, आदरणीय महोदय।"

"मुखिया, इसका क्या कारण है कि उरुवेलकप्पा के कुछ लोगों के संबंध में तुम्हें मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा होगी, जबकि दूसरों के संबंध में तुम्हें ऐसा दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा नहीं होगी?"

"उरुवेलकप्पा में वे लोग, आदरणीय महोदय, जिनके प्रति मुझे मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी - वे ही लोग हैं जिनके प्रति मेरे मन में इच्छा और आसक्ति है। परन्तु उरुवेलकप्पा में वे लोग जिनके प्रति मेरे मन में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी - वे ही लोग हैं जिनके प्रति मेरे मन में कोई इच्छा और आसक्ति नहीं है।"

"मुखिया, इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि लागू करें: 352 'अतीत में जो भी दुःख उत्पन्न हुआ, वह सब इच्छा से उत्पन्न हुआ, इच्छा ही उसका स्रोत थी; क्योंकि इच्छा ही दुःख की जड़ है। भविष्य में जो भी दुःख उत्पन्न होगा, वह सब इच्छा से उत्पन्न होगा, इच्छा ही उसका स्रोत थी; क्योंकि इच्छा ही दुःख की जड़ है।'"

"यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह कहा है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।' 353 पूज्यवर, मेरा एक बेटा है जिसका नाम चिरावासी है, जो एक बाहरी घर में रहता है। मैं सुबह जल्दी उठकर एक आदमी को भेजता हूँ और कहता हूँ, 'जाओ, आदमी, और पता लगाओ कि चिरावासी कैसा है।' जब तक वह आदमी लौटता है, पूज्यवर, मैं परेशान रहता हूँ, यह सोचकर कि 'काश चिरावासी को कोई कष्ट न हुआ हो!' "

आप क्या सोचते हैं, मुखिया? यदि चिरावासी को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो क्या आपमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी?"

"पूज्यवर, यदि चिरावासी को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो मेरा जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाएगा, तो मुझमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कैसे उत्पन्न नहीं होगी?"

"इस तरह भी, मुखिया जी, इसे समझा जा सकता है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, इच्छा ही उसका स्रोत है; क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।'

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? चिरावासी की माता को देखने या उनके बारे में सुनने से पहले, क्या आपके मन में उनके लिए कोई इच्छा, लगाव या स्नेह था?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"तो क्या, मुखिया जी, उन्हें देखने या उनके बारे में सुनने के कारण ही आपके मन में यह इच्छा, लगाव और स्नेह उत्पन्न हुआ?"

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है?" यदि चिरावासी की माता को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो क्या आपमें शोक, विलाप, पीड़ा

, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी? "आदरणीय महोदय, यदि चिरावासी की माता को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो मेरा जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाएगा, तो मुझमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कैसे उत्पन्न नहीं होगी?"

"इस प्रकार भी, मुखिया, इसे समझा जा सकता है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, इच्छा ही उसका स्रोत है; क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।'"

---

364. रसिया
तब मुखिया रसिया भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि 'संन्यासी गौतम सभी प्रकार की तपस्या की निंदा करते हैं। वे कठोर जीवन जीने वाले किसी भी तपस्वी की स्पष्ट रूप से निंदा और निंदा करते हैं।' हे पूज्यवर, क्या ऐसा कहने वाले लोग भगवान (बुद्ध) के कहे हुए वचन को ही प्रकट करते हैं, न कि उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत करते हैं? क्या वे धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं ताकि उनके कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना के दायरे में न आए?"

"हे मुखिया, जो इस प्रकार बोलते हैं, वे मेरे कहे हुए को नहीं दोहराते, बल्कि असत्य और झूठ से मेरा गलत अर्थ निकालते हैं।

हे

मुखिया, संन्यासी जीवन में दीक्षित व्यक्ति को दो चरम सीमाओं का पालन नहीं करना चाहिए: इंद्रिय सुखों में सुख की खोज, जो नीच, अश्लील, सांसारिक लोगों का मार्ग, घृणित और लाभहीन है; और आत्म-यातना, जो कष्टदायी, घृणित और लाभहीन है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर न झुकते हुए, तथागत ने मध्य मार्ग को प्राप्त किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। तथागत द्वारा प्राप्त वह मध्य मार्ग क्या है, जो दृष्टि को जन्म देता है... निर्वाण की ओर ले जाता है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।" अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। यह वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने जागृत किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाता है। 354

II.

"हे मुखिया, संसार में विद्यमान ये तीन व्यक्ति हैं जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं। वे तीन कौन हैं? 355

(i) "यहाँ, हे मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही वह इसे साझा करता है और पुण्य कर्म करता है।

(ii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं है और पुण्य कर्म नहीं करता है।

(iii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(iv) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा द्वारा और बिना हिंसा के धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता है, न ही वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

"तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं और पुण्य कर्म नहीं करता।

(vi) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(vii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता, और न ही वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(viii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं और पुण्य कर्म नहीं करता।

(ix) "तो, मुखिया, यहाँ जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह बिना हिंसा के विधिपूर्वक धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने पर वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है। परन्तु वह धन से बंधा हुआ, उसके प्रति आसक्त, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को न देखते हुए, उससे बचने का मार्ग न समझते हुए, अपने धन का उपयोग करता है।

(x) "तो, मुखिया, यहाँ जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह बिना हिंसा के विधिपूर्वक धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने पर वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है। और वह धन से बंधा हुआ नहीं, उसके प्रति आसक्त नहीं, उसमें अंधाधुंध लीन नहीं, अपने धन का उपयोग उसमें निहित खतरे को देखते हुए, उससे बचने का मार्ग समझते हुए, अपने धन का उपयोग करता है।

III.

(i) उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता, न ही धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है, उसकी तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और न ही पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(ii) "उसमें, मुखिया, जो कामुक सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। और किस एक आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। कामुक सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है।

(iii) "उसमें, मुखिया, जो कामुक सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसका बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। उसकी आलोचना किस एक आधार पर की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यही वह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। और उसकी प्रशंसा किन दो आधारों पर की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह इसे साझा

करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की आलोचना इसी एक आधार पर की जा सकती है और प्रशंसा इन दो आधारों पर की जा सकती है।

(iv) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता, न ही धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। उसकी किस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। उसकी किन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध तरीके से, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और न ही पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(v) "उसमें, मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध और हिंसा के द्वारा धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(vi) "उसमें, मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और जो व्यक्ति हिंसा का प्रयोग किए बिना धन अर्जित करता है, स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, उसे दूसरों के साथ साझा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह हिंसा का प्रयोग किए बिना विधिपूर्वक धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह धन साझा करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन अर्जित करता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है।

(vii) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता, न ही धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(viii) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, लेकिन उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।

(ix) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसका बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, लेकिन जो उस धन का उपयोग उससे बंध कर, उससे आसक्त होकर करता है, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए, उससे बचने का रास्ता न समझते हुए - उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह धन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके प्रति आसक्त होकर, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए, उससे बचने का रास्ता न समझते हुए करता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।

(x) "हे मुखिया, जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसे बाँटता है, और पुण्य कर्म करता है, और उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करता है - उसकी चार आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। किन चार आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करता है' - यह चौथा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन चार आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।

IV.

"हे मुखिया, संसार में तीन प्रकार के तपस्वी विद्यमान हैं। वे तीन कौन से हैं?

(i) "हे मुखिया, यहाँ किसी तपस्वी ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, इस विचार से कि
'शायद मैं लाभकारी अवस्था प्राप्त कर सकूँ; शायद मैं ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठजन्य विशिष्टता प्राप्त कर सकूँ।' 356 वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, फिर भी वह लाभकारी अवस्था प्राप्त नहीं कर पाता और न ही ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठजन्य विशिष्टता प्राप्त कर पाता है।"

(ii) "हे मुखिया, फिर किसी कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी ने आस्था से प्रेरित होकर दीक्षा ली है... वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, और एक लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, फिर भी वह ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य अलौकिक विशिष्टता को प्राप्त नहीं कर पाता।

(iii) "हे मुखिया, फिर किसी कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी ने आस्था से प्रेरित होकर दीक्षा ली है... वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, एक लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, और ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य अलौकिक विशिष्टता को प्राप्त करता है।

V.

(i) "हे मुखिया, वह तपस्वी जो कठोर जीवन व्यतीत करता है और स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, फिर भी लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त नहीं करता या श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता, उसकी तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इस तपस्वी की इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(ii) "हे मुखिया, वह तपस्वी जो कठोर जीवन व्यतीत करता है और स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, और लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, फिर भी श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता, उसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उनकी आलोचना की जा सकती है? 'वे स्वयं को कष्ट और पीड़ा देते हैं' - यह पहला आधार है जिस पर उनकी आलोचना की जा सकती है। 'वे श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करते' - यह दूसरा आधार है जिस पर उनकी आलोचना की जा सकती है। किस एक आधार पर उनकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वे लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करते हैं' - यह एकमात्र आधार है जिस पर उनकी प्रशंसा की जा सकती है। कठोर जीवन जीने वाले इस तपस्वी की इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। [339]

(iii) "हे मुखिया, उसमें कठोर जीवन जीने वाला वह तपस्वी जो स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, और ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य असाधारण विशिष्टता प्राप्त करता है, उसकी एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य असाधारण विशिष्टता प्राप्त करता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इस कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी की इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।

VI.

"हे मुखिया, तीन प्रकार के क्षरण हैं जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, 357 तात्कालिक हैं, जो देखने के लिए आमंत्रित करते हैं, लागू होते हैं, और जिनका ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। वे तीन क्या हैं?"

(i) कोई व्यक्ति कामवासना से ग्रस्त है, और कामवासना (राग) के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। कामवासना का त्याग करने पर वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

(ii) कोई व्यक्ति द्वेष (दोष/द्वेष) से भरा हुआ है, और द्वेष (दोष/द्वेष) के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग करने पर वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

(iii) "कोई व्यक्ति मोह में लीन है, और मोह के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। मोह का क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, तथा व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किया जा सकता है।

" "हे मुखिया, ये तीन प्रकार के क्षय हैं जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, तत्काल होते हैं, और देखने के लिए आमंत्रित करते हैं, तथा व्यावहारिक हैं, और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किए जा सकते हैं।"

यह सुनकर मुखिया रसिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

365. पटलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) कोलियनों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ उत्तरा नामक एक कोलियन नगर था। तब मुखिया पतालिया भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि 'संन्यासी गौतम जादू-टोना जानते हैं।' 358 हे पूज्यवर, मुझे आशा है कि जो लोग कहते हैं, 'संन्यासी गौतम जादू-टोना जानते हैं,' वे भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही व्याख्या करें और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी प्रकार से गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; कि वे धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करें और उनके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने। क्योंकि हम भगवान (बुद्ध) को गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना चाहते, हे पूज्यवर।"

"हे मुखिया, जो लोग कहते हैं, 'संन्यासी गौतम जादू जानते हैं,' वे मेरे द्वारा कही गई बात को स्पष्ट करें और मुझे तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; वे धम्म के अनुसार व्याख्या करते हैं, और उनके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं देता।"

"तो, महोदय, हमने उन तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा कहे गए स्पष्ट सत्य पर विश्वास नहीं किया, जिन्होंने कहा, 'संन्यासी गौतम जादू जानते हैं।' वास्तव में, महोदय, तपस्वी गौतम एक जादूगर हैं!" 359

"हे मुखिया, क्या जो कहता है, 'मैं जादू जानता हूँ,' वह यह भी कहता है,
'मैं एक जादूगर हूँ'?"

"ऐसा ही है, भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"तो फिर, हे मुखिया, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर दें।

I.

(i) "आप क्या सोचते हैं, हे मुखिया?" क्या आप कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानते हैं? 360

"जी जी, मैं जानता हूँ।"

"क्या विचार है, मुखिया जी? कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों का काम क्या है?"

"उनका काम, जी जी, कोलियनों के लिए चोरों को पकड़ना और कोलियनों के संदेश पहुँचाना है।"

"क्या विचार है, मुखिया जी? क्या आप जानते हैं कि कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिक गुणी हैं या अनैतिक?"

"मैं जानता हूँ, जी जी, कि वे अनैतिक हैं, बुरे चरित्र के हैं। उन्हें संसार के अनैतिक, बुरे चरित्र वालों में गिना जाना चाहिए।"

"क्या कोई सही कह रहा होगा, मुखिया जी, यदि कोई कहे:
'पटालिया मुखिया कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानता है, जो अनैतिक, बुरे चरित्र के हैं।'" "क्या मुखिया पटलिया भी अनैतिक और बुरे चरित्र का है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। मैं कोलियनों के उन भाड़े के सैनिकों से बिल्कुल अलग हूँ जिनके सिर पर झुके हुए पगड़ीनुमा वस्त्र होते हैं। मेरा चरित्र उनसे बिल्कुल भिन्न है।"

"हे मुखिया, यदि आपके बारे में यह कहा जा सकता है कि 'पटालिया मुखिया कोलियों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानता है, जो अनैतिक और बुरे चरित्र के हैं, परन्तु पटालिया मुखिया अनैतिक या बुरे चरित्र का नहीं है,' तो तथागत के बारे में यह क्यों नहीं कहा जा सकता: 'तथागत जादू जानते हैं, परन्तु तथागत जादूगर नहीं हैं'? हे मुखिया, मैं जादू और जादू के परिणाम को समझता हूँ, और मैं यह भी समझता हूँ कि कैसे एक जादूगर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(ii) हे मुखिया, मैं जीवन के विनाश और जीवन के विनाश के परिणाम को समझता हूँ, और मैं यह भी समझता हूँ कि कैसे जीवन का विनाश करने वाला, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"मैं समझता हूँ, मुखिया, जो नहीं दिया गया है उसे लेना... यौन दुराचार... झूठ बोलना... फूट डालने वाला बोलना... कठोर बोलना... [343]... व्यर्थ की बातें... लोभ... दुर्भावना और घृणा (दोष/द्वेष)... गलत मत और गलत मत का परिणाम, और मैं समझता हूँ कि गलत मत रखने वाला व्यक्ति, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

II.

"हे मुखिया, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे सिद्धांत और मत रखते हैं कि: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है, उसे इसी जीवन में पीड़ा और दुःख का सामना करना पड़ता है। जो कोई भी जो नहीं दिया गया है उसे लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है, उसे इसी जीवन में पीड़ा और दुःख का सामना करना पड़ता है।'"

(i) "यहाँ कोई व्यक्ति, मुखिया, मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। लोग उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' [344] वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने राजा के शत्रु पर हमला किया और उसकी जान ले ली। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए इस व्यक्ति को मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(ii) "फिर, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति दिखाई देता है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है। वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महाराज, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महाराज, इस आदमी ने, जो राजा का शत्रु है, एक पुरुष या स्त्री की जान ली है। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर उसे यह दंड दिया है।' '
"आप क्या सोचते हैं, मुखिया जी, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने यह देखा है, आदरणीय महोदय, और मैंने इसके बारे में सुना है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"इसमें, मुखिया जी, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और विचार रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी जीवन को नष्ट करता है, उसे यहीं और अभी दर्द और दुख का अनुभव होता है,' तो क्या वे सच बोलते हैं या झूठ?"

"झूठ, आदरणीय महोदय।"

"क्या जो लोग खोखली झूठ बोलते हैं वे अच्छे हैं या बुरे?"

"अनैतिक, आदरणीय महोदय।"

"क्या जो लोग बुरे और बुरे चरित्र के हैं वे गलत काम कर रहे हैं या सही?"

"गलत काम कर रहे हैं, आदरणीय महोदय।"

"जो लोग गलत काम कर रहे हैं वे गलत विचार रखते हैं या सही?"

"गलत विचार, आदरणीय महोदय।"

"क्या गलत सोच रखने वालों पर भरोसा करना सही है?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

(iii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई माला पहने और सजे-धजे, नहाए-धोए, बाल और दाढ़ी कटवाए, औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो। वे उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'सर, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है, कि इसे माला पहनाई गई है और सजाया गया है... औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो?' वे जवाब देते हैं: 'सर, इस आदमी ने राजा के दुश्मन पर हमला किया और एक रत्न चुरा लिया। राजा उससे खुश हुआ और उसे इनाम दिया। इसीलिए इस आदमी को माला पहनाई गई है और सजाया गया है... औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो।'

(iv) "फिर, मुखिया, यहाँ कोई दिखता है जिसके हाथ पीछे एक मज़बूत रस्सी से कसकर बंधे हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की डरावनी धुन पर गली-गली, चौक-चौराहे घुमाया जा रहा है, और फिर दक्षिणी गेट से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दिया जाता है। वे उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'साहब, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है, कि उसके हाथ पीछे कसकर बंधे हुए हैं... शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दिया गया है?' वे जवाब देते हैं: 'साहब, यह आदमी, राजा का दुश्मन, किसी गाँव या जंगल से कुछ चुराता था, उसने चोरी की थी। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर ऐसी सज़ा दी।'

"आपको क्या लगता है, मुखिया, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने यह देखा है, आदरणीय सर, और मैंने इसके बारे में सुना है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"इसमें, मुखिया जी, जब वे साधु और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और नज़रिया रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी वह चीज़ लेता है जो उसे नहीं दी जाती, उसे यहीं और अभी दर्द और दुख होता है,' तो वे सच बोलते हैं या झूठ?... क्या गलत नज़रिया रखने वालों पर भरोसा करना सही है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"
(v) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। लोग उससे पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' उत्तर मिलता है: 'महोदय, इस व्यक्ति ने राजा के शत्रु की पत्नियों को बहकाया था। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए इस व्यक्ति को मालाओं से सजाया गया है... और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(vi) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति दिखाई देता है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, और उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है।" वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने अच्छे परिवारों की महिलाओं और लड़कियों को बहकाया। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर उसे यह दंड दिया।'

"मुखिया, आपका क्या विचार है, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने इसे देखा है, आदरणीय महोदय, और मैंने इसके बारे में सुना भी है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"तो, मुखिया, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और मत रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, उसे यहीं और अभी पीड़ा और दुख का अनुभव होता है,' तो क्या वे सच कहते हैं या झूठ?... क्या गलत मत रखने वालों पर भरोसा करना उचित है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

(vii) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने झूठे वादों से राजा का मनोरंजन किया। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए यह व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ है और स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(viii) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है।" वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने झूठे वादों से एक गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का विनाश कर दिया है। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर ऐसा दंड दिया।

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"मैंने इसे देखा है, आदरणीय महोदय, इसके बारे में सुना भी है, और आगे भी सुनूंगा।" "

तो, मुखिया जी, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, कहते हैं: 'झूठ बोलने वाला कोई भी व्यक्ति यहीं और अभी कष्ट और पीड़ा भोगता है,' तो क्या वे सत्य बोलते हैं या असत्य? ... क्या गलत मत रखने वालों पर विश्वास करना उचित है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।

III.

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! मेरे पास एक विश्रामगृह है जिसमें पलंग, आसन, जलपात्र और तेल का दीपक है। जब कोई तपस्वी या ब्राह्मण वहां रहने आता है, तो मैं अपनी सामर्थ्य और क्षमता के अनुसार उसके साथ विश्राम करता हूं। अतीत में, आदरणीय महोदय, चार शिक्षक - अलग-अलग मतों, अलग-अलग मान्यताओं और अलग-अलग प्राथमिकताओं वाले - उस विश्रामगृह में रहने आए थे।

(i) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 361 'दान, भेंट, दान में दी गई कोई वस्तु नहीं है; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; न संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हैं।'

(ii) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 'दान, भेंट और दान में दी गई वस्तुएँ हैं; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम है; यह संसार और दूसरा संसार है; माता और पिता हैं; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हैं।'

(iii) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 362 'जब कोई व्यक्ति स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं अंगभंग करता है या दूसरों से करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं यातना देता है या दूसरों से यातना दिलवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं दुःख देता है या दूसरों से दुःख दिलवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं अत्याचार करता है या दूसरों से अत्याचार करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं डराता है या दूसरों से डराता है, जब कोई व्यक्ति जीवन नष्ट करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, सेंधमारी करता है, राजमार्गों पर घात लगाता है, दूसरे की पत्नी को बहकाता है, झूठ बोलता है - तो ऐसा करने वाले से कोई बुराई नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के सभी जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई व्यक्ति गंगा के दक्षिणी तट पर हत्या और वध करता हुआ, स्वयं अंगभंग करता हुआ और दूसरों से अंगभंग करवाता हुआ, स्वयं यातना देता हुआ और दूसरों से यातना दिलवाता हुआ जाए, तो इससे न तो कोई

बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई गंगा के उत्तरी तट पर दान देता और दूसरों से दान करवाता, भेंट चढ़ाता और दूसरों से भेंट चढ़ाता रहे, तो इससे न तो पुण्य प्राप्त होगा और न ही पुण्य का फल। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्मसंयम से, सत्य बोलने से, न तो पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का फल।

(iv) एक शिक्षक का यह मत था: 'जब कोई स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई स्वयं अंग-भंग करता है या दूसरों से अंग-भंग करवाता है ... [350] ... तो करने वाले द्वारा बुराई की जाती है। यदि कोई तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे बुराई होगी और बुराई का फल भी होगा। यदि कोई गंगा के दक्षिणी किनारे पर हत्या और वध करता हुआ, अंग-भंग करता हुआ और दूसरों को अंग-भंग करवाता हुआ, यातना देता हुआ और दूसरों को यातना देता हुआ पाए, तो इससे बुराई और बुराई का फल मिलेगा। यदि कोई गंगा के उत्तरी किनारे पर दान देता हुआ और दूसरों से दान करवाता हुआ, भेंट चढ़ाता हुआ और दूसरों से भेंट चढ़ाता हुआ पाए, तो इससे पुण्य और पुण्य का फल मिलेगा। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से पुण्य और पुण्य प्राप्त होता है। "हे

पूज्यवर, मेरे मन में यह व्याकुलता और संदेह उत्पन्न हुआ कि इन आदरणीय तपस्वियों और ब्राह्मणों में से कौन सत्य बोलता है और कौन असत्य?" "

हे मुखिया, आपका व्याकुल होना उचित है, आपका संदेह होना उचित है। आपके मन में एक जटिल विषय को लेकर संदेह उत्पन्न हुआ है।"

मुझे भगवान (बुद्ध) पर इस प्रकार भरोसा है: 'भगवान (बुद्ध) मुझे धम्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाने में सक्षम हैं कि मैं इस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकूँ।'

IV.

"हे मुखिया, धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप इस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं। 363 और हे मुखिया, धम्म की समाधि अवस्था क्या है?

(i) "हे मुखिया, इसमें, जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) का त्याग करके, श्रेष्ठ शिष्य जीवन के विनाश से दूर रहता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है। यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से दूर रहता है। झूठी वाणी का त्याग करके, वह झूठी वाणी से दूर रहता है। विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित होता है।" द्वेष और द्वेष का त्याग करने के कारण, उसका मन द्वेष रहित हो जाता है। गलत मत का त्याग करने के कारण, वह सही मत का अनुयायी बन जाता है।

"तो, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो लोभ रहित, द्वेष रहित, संशय रहित, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - प्रेममय (मैत्री) मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, जैसे स्वयं के लिए, वह प्रेममय (मैत्री) मन से विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है।
वह सोचता है: 'इस गुरु का ऐसा सिद्धांत और मत है: "कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता... संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का अनुभव किया है, उन्हें दूसरों को ज्ञात नहीं कराते।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या बलवान। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ ही मेरा पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में होगा। [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यह धम्म (मार्ग, नियम) की समाधि (सम्मोहन) अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।

(ii) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सदा ध्यानमग्न रहता है - प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) से परिपूर्ण मन के साथ एक दिशा में व्याप्त रहता है..." बिना दुर्भावना के।

वह सोचता है: इस गुरु का यह मत और मत है: "दान किया जाता है, अर्पित किया जाता है... संसार में ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो सही ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं और अभ्यास करते हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को भी इसके बारे में बताते हैं।" यदि इस अच्छे गुरु की बात सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह कमजोर हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर मेरा पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में होगा। [जैसा वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) का जन्म होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यह धम्म की समाधि (सम्मोहन) अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था को त्याग सकते हैं।

(iii) "तो, मुखिया जी, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो लोभ रहित, द्वेष रहित, शांत, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न है - प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त है... बिना द्वेष के।

वह सोचता है: 'इस गुरु का यह मत है: "जब कोई कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... दान देकर, स्वयं को वश में करके, आत्म-संयम से, सत्य बोलकर, तो न तो पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का कोई फल मिलता है।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, मैं एक अच्छे स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूँगा।' [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।

(iv) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - प्रेममय (मैत्री) से ओतप्रोत मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है ...... बिना द्वेष के।

उन्होंने इस प्रकार सोचा: 'इस शिक्षक का यह सिद्धांत और मत है: "जब कोई व्यक्ति स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... दान देकर, स्वयं को वश में करके, आत्म-संयम से, सत्य बोलकर, तो पुण्य प्राप्त होता है और पुण्य का फल मिलता है।" यदि इस अच्छे शिक्षक का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर मेरा पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में होगा।' [जब वह ऐसा सोचता है] तो प्रसन्नता उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।"

V.

(i) "तो, मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, संशय रहित, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न है - करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से भरे मन से... समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) से भरे मन से,

इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह समभाव से भरे, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। "वह इस प्रकार

सोचता है: 'इस गुरु का ऐसा सिद्धांत और मत है: "कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता... संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक को स्वयं जान लिया है, कुछ भी दान नहीं करते, कुछ भी अर्पित नहीं करते... कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण जो इस संसार में रहते और सही ढंग से अभ्यास करते हैं, वे किसी को कुछ भी दान नहीं करते, कुछ भी अर्पित नहीं करते... कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा जान लेते हैं, वे ऐसा नहीं करते उन्हें दूसरों को ज्ञात कराओ। ... हे मुखिया, यह धम्म की समाधि अवस्था है। यदि तुम उसमें समाधि अवस्था प्राप्त कर लो, तो तुम उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हो।

(ii)-(iv) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है ... परोपकारी आनंद से भरे मन से ... समभाव (उपेक्खा) से भरे मन से ... बिना द्वेष के।

वह सोचता है: 'इस शिक्षक का सिद्धांत और मत यह है: "दान किया जाता है, अर्पित किया जाता है... संसार में ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो सही ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं और अभ्यास करते हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और दूसरों को भी इसके बारे में बताते हैं।" ... हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकते हैं।

वह सोचता है: 'इस शिक्षक का सिद्धांत और मत यह है: "जब कोई व्यक्ति कर्म करता है या दूसरों से कर्म करवाता है... [357] ... दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से, कोई दिव्य पुण्य नहीं मिलता और न ही दिव्य पुण्य का कोई परिणाम होता है।" ... हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि (सम्मोहन) की स्थिति प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकते हैं।

वह सोचता है: 'इस गुरु का यह मत है: "जब कोई स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई स्वयं को चोट पहुँचाता है या दूसरों से चोट पहुँचाता है... दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से पुण्य प्राप्त होता है और पुण्य का फल भी मिलता है।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह कमजोर हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, मैं एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूँगा।' [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रसन्न होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यह धर्म (मार्ग, नियम) पर आधारित समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।"

यह सुनकर मुखिया पटलिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

अध्याय 9: अप्रतिबंधित पर संबंधित प्रवचन (असंखतसम्युत्त) {सम्युत्त-43}
(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
366. शरीर निर्देशित ध्यान (कायगतसति सं. कायागत-स्मृति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही असंखत कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान: यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों के चरण हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं।" भिक्षुओं, ध्यान करो, (पमादा में) आलसी मत बनो, अन्यथा पश्चात में पछताओगे। यही हमारा तुम्हें निर्देश है।

---

367. शांति-समथ और अंतर्दृष्टि-विपश्यना ध्यान (समथ-विपश्यना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही असंखत कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? समभाव और विपश्यना (ध्यान): यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है। ...(बाकी अनुच्छेद 366 में दिए गए अनुसार है)

---

368. विचार और परीक्षण के साथ
... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीम अवस्था की ओर ले जाता है? विचार और चिंतन सहित समाधि; केवल चिंतन सहित, बिना विचार के समाधि; बिना विचार और चिंतन के समाधि: 367 यही असीम अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

---

369. शून्यता समाधि/समाधि (सुन्नतसमाधि सं. शून्यता-समाधि)
... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति (असंखत) की ओर ले जाता है? शून्य समाधि (सम्मोहन) अवस्था, अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था, दिशाहीन समाधि (सम्मोहन) अवस्था: 368 यही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

---

370. ध्यान की स्थापना 369 (सतीपत्थन सं. स्मृति-प्रस्थान)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? ध्यान के चार प्रतिष्ठान..."

---

371. सही प्रयास (समप्पधना)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? चार उचित प्रयास..."

---

372. आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंग (इद्धिपाद सं. रिद्धिपाद)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखत) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के चार अंग..."

---

373. आध्यात्मिक शक्तियाँ (इंद्रिय)
भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ...

---

374. शक्तियाँ (बाला)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? पाँच शक्तियाँ...."

---

375. आत्मज्ञान के कारक (बोझंगा बिना बोधयांग)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? ज्ञानोदय के सात कारक..."

---

376. अष्टांगिक पथ (मग्गंगा सं. मार्गांग)
... "भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असंखत (असंखत) की ओर ले जाता है? आर्य अष्टांगिक मार्ग: यही असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

अतः, भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंख्यत और असंख्यत की ओर ले जाने वाले मार्ग का उपदेश दिया है... यही हमारा तुम्हारे लिए उपदेश है।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
377. असन्खता
i. शांति (समथा/समभाव)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और, भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश (खयाल), द्वेष (दोष/समभाव) का नाश (नश) और मोह (मोह) का नाश (नश) - यही असंखत कहलाता है।

"और, भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शांति (समथा/समभाव) - यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...

"इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है... यही हमारा तुम्हें उपदेश है।"

ii. अंतर्दृष्टि (विपश्यना ध्यान)

... "और, भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?" अंतर्दृष्टि (विपश्यना ध्यान): इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

iii-viii. समाधि

(iii) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था (असंखत) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? विचार और परीक्षा सहित समाधि (सम्मोहन): इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(iv) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? केवल परीक्षा सहित, बिना विचार के समाधि (सम्मोहन)...."

(v) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? बिना विचार और परीक्षा के समाधि (सम्मोहन)...."

(vi) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शून्यता समाधि (सम्मोहन) अवस्था...."

(vii) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?" अनिमित्त समाधि अवस्था (सम्मोहन)..."

(viii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? अनिर्देशित समाधि अवस्था: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहते हैं..."

ix-xii. ध्यान के चार प्रतिष्ठान

(ix) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहते हैं..."

(x) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, वेदनाओं को ध्यान से देखता है, वह अत्यंत उत्साही, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है...."

(xi) ... “और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीम अवस्था की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु मन पर ध्यानमग्न होकर, वेदनाओं को ध्यान से देखता है, वह अत्यंत उत्साही, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होता है, संसार के प्रति लोभ और असंतोष को दूर करके..."

(xii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्गत की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, प्रसत्तात्मक रूप से, पूर्णत: निर्गत: निर्गत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

xiii-xvi. चार उचित प्रयास

(xiii) . . . "और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है: इसे ही असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(14) ... "और हे भिक्षुओं, असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (शक्ति) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है...."

(15) . . . "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है...."

(16) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की निरंतरता, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है ..."

17-20 आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के चार अंग

(17) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है: इसे पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(18) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो प्रयास के वीर्य (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है..."

(19) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है...."

(xx) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है: इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है..."

xxi-xxv. पाँच आध्यात्मिक क्षमताएँ

(xxi) . . . "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है: इसे ही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(22-25) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ऊर्जा-शक्ति की शक्ति विकसित करता है... ध्यान की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है: इसे ही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...." 26-30

। पाँच शक्तियाँ

(26) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है: इसे पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(27-30) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ऊर्जावान शक्ति विकसित करता है... ध्यान की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है: इसे पूर्णत: निर्तमन की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

31-37। ज्ञानोदय के सात कारक

(31) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्वात की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है: इसे निर्वात की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(xxxii-xxxvii) "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीमता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु धम्मविचय (अवस्थाओं के भेदभाव) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञान तत्व को... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञान तत्व को... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व को... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व को... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है: इसे असीमता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

38-16 आर्य अष्टांगिक मार्ग

(xxxviii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है: इसे निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...." [368]

(xxxix-xlv) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है: यही पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें पूर्णत: निर्धनता और पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक करुणामय गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा से, उनके कल्याण की कामना करते हुए करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों के चरण हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं।" भिक्षुओं, ध्यान करो, (पमादा में) आलसी मत बनो, अन्यथा पश्चात में पछताओगे। यही हमारा तुम्हें निर्देश है।

---

378. अनिच्छुक 370 (एनाटॉमी)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें उदासीनता और उदासीनता की ओर ले जाने वाले मार्ग का उपदेश दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, उदासीनता क्या है?..."

(इसका विस्तृत वर्णन अनुच्छेद 377 में किया जाएगा।) 371

379-408 दोषमुक्त, इत्यादि (अनासवदी)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें दोषमुक्त जीवन और दोषमुक्त जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्य और सत्य की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा... मैं तुम्हें सुदूर तट... सूक्ष्म... जिसे देखना अत्यंत कठिन है... अमर... स्थिर... अविनाशी... अप्रकट... इंद्रियों द्वारा अप्रभावित... शांत... अमर अवस्था (निर्वाण)... उदात्त... शुभ... सुरक्षित... तृष्णा का विनाश... अद्भुत... विस्मयकारी... रोगमुक्त... रोगमुक्त अवस्था... निर्वाण... निर्विकार... वैराग्य... पवित्रता... स्वतंत्रता... असंलग्न... द्वीप... आश्रय... शरण... शरण...

409. गंतव्य (परायण)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें गंतव्य और गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गंतव्य क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही गंतव्य कहलाता है। और हे भिक्षुओं, गंतव्य

तक पहुँचने का मार्ग क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान: यही गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें गंतव्य और गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान करो, आलसी (पमादा) मत बनो, अन्यथा तुम्हें बाद में पछतावा होगा। यह हमारा आपको निर्देश है।

(प्रत्येक का विस्तृत विवरण अनुच्छेद 377 में दिया गया है)

अध्याय 10: अघोषित पर संबंधित प्रवचन (अभ्यकतसम्युत्त) {सम्युत्त-44}
410. खेमा
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भिक्षुणी खेमा (373) कोसलवासियों के बीच भ्रमण करते हुए सावत्थी और साकेत के बीच स्थित तोरणवत्थु में निवास कर रही थीं। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत साकेत से सावत्थी की यात्रा करते हुए एक रात्रि के लिए तोरणवत्थु में ठहरे। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत ने एक व्यक्ति से कहा, "हे जन, जाकर पता लगाओ कि तोरणवत्थु में कोई ऐसा तपस्वी या ब्राह्मण है जिससे मैं आज मिल सकूँ।"

"जी प्रभु," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, परन्तु उसने तोरणवत्थु की पूरी परिक्रमा की, पर उसे वहाँ कोई ऐसा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं मिला जिससे राजा प्रसेनजीत मिल सकें। उस व्यक्ति ने तोरणवत्थु में निवास करने वाली भिक्षुणी खेमा को देखा, इसलिए वह राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के पास गया और उनसे कहा,

"हे प्रभु, तोरणवत्थु में कोई तपस्वी या ब्राह्मण नहीं है, जिनसे आप मिल सकें। परन्तु, हे प्रभु, वहाँ खेमा नाम की भिक्षुणी हैं, जो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध की शिष्या हैं। अब इस पूजनीय भिक्षुणी के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली हुई है कि 'वह बुद्धिमान, कुशल, ज्ञानी, निपुण वक्ता और प्रतिभाशाली हैं।' हे प्रभु, उनसे मिलें।"

तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भिक्षुणी खेमा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्य भिक्षुणी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?" 374

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'।"

"तो, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'।" "

तो फिर, पूज्य देवी, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते, ऐसा कैसे हो सकता है?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते'।"

"तो फिर, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'।"

"यह कैसे हो सकता है, पूज्य देवी? जब पूछा जाता है, 'यह कैसे हो सकता है, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?'" ...और जब पूछा जाता है, 'तो, पूज्यवर, क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन या अस्तित्वहीन हैं?' - तो हर बार आप कहती हैं: 'महाराज, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है।' तो फिर, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा ऐसा न कहे जाने का कारण क्या है?

"तो फिर, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न पूछूंगी। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, हे महाराज? क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है जो गंगा नदी में रेत के कणों को इस प्रकार गिन सके: 'रेत के इतने कण हैं,' या 'रेत के इतने सौ कण हैं,' या 'रेत के इतने हज़ार कण हैं,' या 'रेत के इतने लाखों कण हैं'?"

"नहीं, आदरणीय देवी।"

"तो फिर, हे महाराज, क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है जो विशाल सागर में पानी को इस प्रकार गिन सके: 'पानी के इतने गैलन हैं,' या 'पानी के इतने सैकड़ों गैलन हैं,' या 'पानी के इतने हज़ार गैलन हैं,' या 'पानी के इतने लाखों गैलन हैं'?"

"नहीं, आदरणीय देवी। इसका कारण क्या है? क्योंकि विशाल सागर गहरा है, अथाह है, और उसकी गहराई को मापना कठिन है।"

"इसी प्रकार, हे महान राजा, तथागत का वर्णन करने के लिए जिस रूप का प्रयोग किया जाता है, उसे तथागत ने जड़ से काट दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। हे महान राजा, तथागत रूप-परिकल्पना से मुक्त हैं; वे गहरे, असीम और विशाल सागर के समान अगम्य हैं। तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं, यह कथन लागू नहीं होता।

वह वेदना जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जाता है... वह अनुभूति जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जाता है... वे संस्कार (आक्रामक व्यवहार)" जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जा सकता है... वह चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जा सकता है, तथागत द्वारा त्याग दी गई है, जड़ से काट दी गई है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दी गई है, मिटा दी गई है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके। हे महान राजा, तथागत चेतना के संदर्भ में गणना से मुक्त हैं; वे गहरे, असीम, विशाल सागर के समान अगम्य हैं। 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व है' लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व नहीं है' लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी है' लागू नहीं होता; 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते' यह कथन लागू नहीं होता।

तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित), भिक्षुणी खेमा के कथन से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया।

फिर, एक बाद के अवसर पर... कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। "वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद कैसे विद्यमान रहते हैं?"

"हे महाराज, मैंने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं।'"

(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार, नीचे दिए गए कथन के अनुसार:)

"हे महाराज, मैंने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।'"

"हे पूज्यवर, यह कैसे हो सकता है? जब पूछा जाता है, 'हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद कैसे विद्यमान रहते हैं?' ... और जब पूछा जाता है, 'तो फिर, हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते?' - हर बार आप कहते हैं: 'हे महाराज, मैंने यह नहीं कहा है।' तो फिर, हे पूज्यवर, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने यह बात नहीं कही है?"

"तो फिर, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, हे महाराज? क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है... (ऊपर दिए गए कथनों के अनुसार ही आगे भी)... हे महाराज, तथागत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के संदर्भ में गणना से मुक्त (विमुक्त) हैं: वे गहरे, असीम और विशाल सागर के समान अगम्य हैं। 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व है' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व नहीं है' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व न तो है और न ही नहीं है' यह कथन लागू नहीं होता।"

"यह अद्‌भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, और उनमें कोई भिन्नता नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। 377 एक बार, पूज्यवर, मैंने भिक्षुणी खेमा से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। पूज्य भिक्षुणी ने मुझे इस विषय को ठीक उसी शब्दों और वाक्यांशों में समझाया, जैसे भगवान (बुद्ध) ने प्रयुक्त किए थे। यह अद्‌भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में उनमें कोई भिन्नता नहीं है। अब, पूज्यवर, हमें जाना होगा। हम व्यस्त हैं और हमारे पास बहुत काम है।"

"तो, महाराज, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर [380] अपने आसन से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

---

411. अनुराधा
(पिछले 410 के समान)

---

412. सारिपुत्त और कोथिता (1)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र सारिपुत्त, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?"

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'।"

(जैसा कि पिछले सूत्र में है:)

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते हैं'।"

"यह कैसे हो सकता है, मित्र? जब पूछा जाता है, 'मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?'" ...और जब पूछा जाता है, 'तो, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान?' - हर बार आप कहते हैं: 'मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है।' तो फिर, मित्र, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है? "

'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं': मित्र, यह रूप से जुड़ाव है। 378 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते': यह रूप से जुड़ाव है। तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और नहीं भी होते हैं': यह रूप से जुड़ाव है। तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान: यह रूप से जुड़ाव है।

"'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं': मित्र, यह संवेदना (वेदना) से जुड़ाव है... अनुभूति (संज्ञा) से जुड़ाव है... संशय (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन) से जुड़ाव है... चेतना (विज्ञान) से जुड़ाव है।" 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है। 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है। 'तथागत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है।

"हे मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।"

---

413. सारिपुत्त और कोथिता (2)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"अब, मित्र, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया?"

"मित्र, जो व्यक्ति रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता, जो उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानता और नहीं देखता, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं।'" जो व्यक्ति वेदना (संवेदना) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति संज्ञा (संज्ञा) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति संशय (आक्रामक व्यवहार) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति चेतना (विज्ञान) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता, जो व्यक्ति उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानता और नहीं देखता, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

लेकिन, मित्र, जो व्यक्ति (ध्यान में) रूप... वेदना (संवेदना)... को जानता और देखता है... धारणा... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना, जैसा कि वह वास्तव में है, जो इसके उद्गम, इसके अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।'

"यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसे घोषित नहीं किया है।"

---

414. सारिपुत्त और कोथिता (3)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"मित्र, अब इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की?"

"मित्र, वह व्यक्ति जो रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं है, जो रूप के प्रति इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'" वह व्यक्ति जो वेदना (इंद्रियों) की वासना से रहित नहीं है... जो संवेदना (बोध) की वासना से रहित नहीं है... जो संस्कार (आक्रामक व्यवहार) की वासना से रहित नहीं है... जो चेतना (विन्नान (विज्ञान) की वासना से रहित नहीं है... जो चेतना के लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा (तृष्णा)) से रहित नहीं है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

लेकिन, मित्र, जो रूप के प्रति वासना से रहित है... जो वेदना के प्रति वासना से रहित है... जो बोध के प्रति वासना से रहित है... जो संस्कार के प्रति वासना से रहित है... जो चेतना के प्रति वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।' मित्र

, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसे घोषित नहीं किया है।

415. सारिपुत्त और कोथिता (4)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकोत्थिता के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकोत्थिता का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे मित्र कोत्थिता, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?"

(ऊपर दिए गए सभी कथनों के अनुसार:)

"हे मित्र, इसका कारण और तर्क क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है?

" स्कंध (संस्कृत: स्कंध) में आनंद:

"मित्र, जो रूप में आनंद लेता है, रूप में प्रसन्न होता है, रूप में आनंदित होता है, और रूप के निरासण (निरोध) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही निरासन्न हैं।' जो वेदना में आनंद लेता है ... जो चेतना में आनंद लेता है (संस्कृत: संज्ञा) ... जो संशय में आनंद लेता है (संज्ञा) ... जो चेतना के निरासन () में आनंद लेता है, चेतना में आनंदित होता है, चेतना में आनंदित होता है, और चेतना के निरासण को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही निरासन्न हैं।'"

लेकिन, मित्र, जो रूप में आनंद नहीं लेता... जो वेदना में आनंद नहीं लेता... जो बोध में आनंद नहीं लेता... जो संस्कार में आनंद नहीं लेता... जो चेतना में आनंद नहीं लेता, जो चेतना में प्रसन्न नहीं होता, जो चेतना में आनंद नहीं लेता, और जो चेतना के वास्तविक अंत को जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

ii. अस्तित्व में आनंद (भावो)

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसका उल्लेख न करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"ऐसा हो सकता है, मित्र। वह व्यक्ति जो अस्तित्व में आनंदित होता है (भावो), जो अस्तित्व में प्रसन्न होता है (नंदी/आनंद), जो अस्तित्व में आनंद मनाता है, और जो अस्तित्व के वास्तविक अंत को न तो जानता है और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते।'"

लेकिन, मित्र, जो अस्तित्व में आनंद नहीं लेता, जो अस्तित्व में प्रसन्न नहीं होता, जो अस्तित्व में आनंद नहीं मनाता, और जो अस्तित्व के वास्तविक अंत को जानता है और (ध्यान में) जानता है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की है।"

iii. आसक्ति में आनंद (उपदान संस्कृत: आसक्ति)

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसकी घोषणा न किए जाने की व्याख्या करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"हो सकता है, मित्र।" जो व्यक्ति आसक्ति में आनंदित होता है, आसक्ति में प्रसन्न होता है, आसक्ति में आनंद लेता है, और आसक्ति के वास्तविक अंत को न तो जानता है और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं।'

परन्तु, मित्र, जो व्यक्ति आसक्ति में आनंदित नहीं होता, आसक्ति में आनंद नहीं लेता, आसक्ति में आनंद नहीं लेता, और जो आसक्ति के वास्तविक अंत को (ध्यान में) जानता और देखता है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।"

iv. तृष्णा में आनंद (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)

"पर मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसका उल्लेख न किए जाने की व्याख्या करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"हो सकता है, मित्र। जो तृष्णा में आनंद लेता है, जो तृष्णा में प्रसन्न होता है, जो तृष्णा में आनंदित होता है, और जो तृष्णा के निवारण को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ...या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'"

लेकिन, मित्र, जो तृष्णा में आनंद नहीं लेता, जो तृष्णा में प्रसन्न नहीं होता, जो तृष्णा में प्रसन्न नहीं होता, और जो तृष्णा के निवारण को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की है।"

v. कोई और विधि?

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसकी घोषणा न किए जाने की व्याख्या करने की कोई और विधि हो सकती है?"

"अब, मित्र सारिपुत्त, आपको इसमें कुछ और क्यों चाहिए? मित्र सारिपुत्त, जब कोई भिक्षु तृष्णा के विनाश (खयाल/क्षय) द्वारा मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, उसका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।" 379

---

416. मोग्गलाना

तब तपस्वी वच्छगोत्ता पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य महामोग्गलाना से बोले,

"हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत है?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि संसार शाश्वत है।"

"तो हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत नहीं है?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि संसार शाश्वत नहीं है।" "

तो फिर हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार सीमित है?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि संसार सीमित है।"

"तो हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार अनंत है?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी घोषित नहीं किया है कि 'संसार अनंत है।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित नहीं किया है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या आत्मा एक है और शरीर दूसरी?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी घोषित नहीं किया है कि 'आत्मा एक है और शरीर दूसरी।'" "

तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?" "वच्छा

, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित नहीं किया है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?"

"वच्चा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहते।' " "

तो फिर कैसे, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते?"

"वच्चा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते।' "

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह घोषित नहीं किया है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।' "

हे गुरु मोग्गलाना, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते'?" या फिर 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित रहते हैं'? और इसका कारण क्या है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?

"वच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आँख को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' वे कान...नाक...जीभ...शरीर...मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है'...या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित।' परन्तु, वच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, आँख को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' वे कान...मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।"

तब तपस्वी वच्छागत अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से अभिवादन किया और उनसे कहा:

"हे गौतम, क्या संसार शाश्वत है?"

(ऊपर से नीचे तक सब कुछ:)

"वच्छा, मैंने भी यह नहीं कहा है: तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं।"

"हे गौतम, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं'? और इसका क्या कारण है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?"

"वच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आँख ... मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं।'" लेकिन, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, वाच्छ, आँख... मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते। "

यह अद्भुत है, हे गुरु गौतम! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु गौतम! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, और उनमें कोई विचलन नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। अभी, हे गुरु गौतम, मैंने तपस्वी मोग्गलाना से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। तपस्वी मोग्गलाना ने मुझे इस विषय को ठीक उन्हीं शब्दों और वाक्यांशों में समझाया जिनका प्रयोग गुरु गौतम ने किया था। यह अद्भुत है, हे गुरु गौतम! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु गौतम! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में।"

---

417. वच्छगोत्ता

तब तपस्वी वच्छगोत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले,

“हे गौतम जी, क्या संसार शाश्वत है?”... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)

“हे गौतम जी, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे ‘संसार शाश्वत है’... या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविभाज्य’। और इसका क्या कारण है कि जब गौतम जी से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?”

वाच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी रूप को आत्मा मानते हैं, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानते हैं, या रूप को आत्मा में समाहित मानते हैं, या आत्मा को रूप में समाहित मानते हैं। वे वेदना को आत्मा मानते हैं... अनुभूति को आत्मा मानते हैं... संशय को आत्मा मानते हैं... चेतना को आत्मा मानते हैं, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानते हैं, या चेतना को आत्मा में समाहित मानते हैं, या आत्मा को चेतना में समाहित मानते हैं। इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविभाज्य।' परन्तु, वाच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूप को आत्मा नहीं मानते... या आत्मा को चेतना में समाहित नहीं मानते। इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।

तब तपस्वी वच्छगोत्ता अपने आसन से उठे और पूज्य महामोग्गलाना के पास गए। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और उनसे कहा,

“हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत है?”

(जैसा ऊपर लिखा है वैसा ही नीचे भी लिखा है:)

“वच्छ, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर’।”

“हे गुरु मोग्गलाना, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: ‘संसार शाश्वत है’... या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर’? और इसका क्या कारण है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?”

वाच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी रूप को आत्मा मानते हैं... या चेतना में समाहित आत्मा को। इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही

अवतरण करते हैं।' परन्तु, वाच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूप को आत्मा नहीं मानते... या चेतना में समाहित आत्मा को। इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।

"यह अद्भुत है, हे गुरु मोग्गलाना! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु मोग्गलाना! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार एक दूसरे से मेल खाते हैं और सहमत हैं, और उनमें कोई भिन्नता नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। अभी-अभी, हे गुरु मोग्गलाना, मैंने तपस्वी गौतम से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। तपस्वी गौतम ने मुझे इस विषय को ठीक उसी शब्दों और वाक्यांशों में समझाया, जैसे हे गुरु मोग्गलाना ने समझाया था। यह अद्भुत है, हे गुरु मोग्गलाना! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु मोग्गलाना! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार एक दूसरे से मेल खाते हैं और सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में।"

---

418. वाद-विवाद हॉल (कुथुहलसाला)
तब तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचे और उनसे अभिवादन का आदान-प्रदान किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हाल के दिनों में, गुरु गौतम, कई तपस्वी, ब्राह्मण और विभिन्न संप्रदायों के तपस्वी विमर्श कक्ष में एकत्रित हुए थे और एक साथ बैठे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: 380 यह पुराण कस्सपा - एक संप्रदाय के नेता, एक समूह के नेता, एक समूह के शिक्षक, कई लोगों द्वारा पवित्र माने जाने वाले प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु - अपने दिवंगत शिष्य के पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" और एक ऐसे शिष्य के मामले में जो सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति था, एक सर्वोच्च व्यक्ति था, जिसने सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त की थी, जब वह शिष्य दिवंगत हो जाता है तो वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा भी इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" यह मक्खली गोसला ... यह निगंथ नटपुत्त ... यह संजय बेलत्थिपुत्त ... यह पकुधा कच्चायना... यह अजित केशकंबली... जब वह शिष्य देहांत हो जाता है, तो वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करता है: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" यह तपस्वी गौतम - एक संप्रदाय के नेता, एक समूह के नेता, एक समूह के शिक्षक, अनेक लोगों द्वारा पवित्र माने जाने वाले प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु - देहांत हो चुके शिष्य के पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" परन्तु जो शिष्य सर्वोच्च प्रकार का, सर्वोच्च व्यक्ति, सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर चुका हो, उसके देहांत होने पर वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार नहीं करता: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" बल्कि, वह उसके बारे में घोषणा करता है: "उसने तृष्णा का नाश किया, बंधन तोड़ा, और अहंकार को पूर्णतः तोड़कर दुखों का अंत किया।" "

मुझमें व्याकुलता थी।" गुरु गौतम, संदेह उत्पन्न हुआ:
'संन्यासी गौतम के धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा जाए?' '

हे वच्छ, तुम्हारा व्याकुल होना उचित है, तुम्हारा संदेह होना उचित है। तुम्हारे मन में एक पेचीदा विषय को लेकर संदेह उत्पन्न हुआ है। मैं घोषणा करता हूँ, वच्छ, ईंधन से जलने वाले का पुनर्जन्म होता है, ईंधन रहित का नहीं। जैसे आग ईंधन से जलती है, ईंधन के बिना नहीं, वैसे ही, वच्छ, मैं घोषणा करता हूँ कि ईंधन से जलने वाले का पुनर्जन्म होता है, ईंधन रहित का नहीं।' 381

'हे गुरु गौतम, जब कोई ज्वाला हवा से उड़कर कुछ दूरी तक जाती है, तो गुरु गौतम उस समय उसका ईंधन किसे मानते हैं?'

'जब, वच्छ, कोई ज्वाला हवा से उड़कर कुछ दूरी तक जाती है, तो मैं घोषणा करता हूँ कि वह हवा से जलती है। क्योंकि उस समय हवा ही उसका ईंधन होती है।'

"और, हे गौतम गुरु, जब कोई प्राणी इस शरीर को त्याग देता है, परन्तु अभी तक दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं लेता, तो उस समय गुरु गौतम उसके लिए किस प्रकार का ईंधन घोषित करते हैं?"

"हे वच्छ, जब कोई प्राणी इस शरीर को त्याग देता है, परन्तु अभी तक दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं लेता, तो मैं घोषित करता हूँ कि वह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से संचालित होता है। 382 क्योंकि उस समय तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ही उसका ईंधन है।"

---

419. आनंद (क्या आत्मा का अस्तित्व है?)
तब तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा:

"अब क्या है? गुरु गौतम, क्या आत्मा है?"

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) चुप रहे।

"तो, गुरु गौतम, क्या आत्मा नहीं है?"

दूसरी बार भी भगवान (बुद्ध) चुप रहे।

तब तपस्वी वच्छगोत्ता अपने आसन से उठे और चले गए। फिर, तपस्वी वच्छगोत्ता के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब तपस्वी वच्छगोत्ता ने भगवान (बुद्ध) से प्रश्न किया, तो उन्होंने उत्तर क्यों नहीं दिया?"

"यदि, आनंद, जब तपस्वी वच्छगोत्ता ने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा है?'" यदि मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा है,' तो यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का पक्ष लेना होता जो शाश्वतवादी हैं। और यदि, जब उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा नहीं है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा नहीं है,' तो यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का पक्ष लेना होता जो विनाशवादी हैं।

"आनंद, यदि जब तपस्वी वच्छगोत्त ने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा है,' तो क्या यह मेरे द्वारा इस ज्ञान के उद्भव के अनुरूप होता कि 'सभी घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं'?" 384

"नहीं, पूज्यवर।"

"और यदि, जब उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा नहीं है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा नहीं है,' तो तपस्वी वच्छगोत्त, जो पहले से ही भ्रमित थे, और भी अधिक भ्रमित हो जाते, यह सोचते हुए, 'ऐसा लगता है कि जो आत्मा मेरे पास पहले थी, वह अब विद्यमान नहीं है।'" 388

---

420. सभ्य कच्चाना
एक बार पूज्य सबिया कच्चाना नाटिका में ईंट के भवन में रह रहे थे। तब तपस्वी वच्छगोत्ता पूज्य सबिया कच्चाना के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले,

“हे गुरु कच्चाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद भी विद्यमान रहते हैं?”

(पहले से अंत तक सभी के लिए यही क्रम लागू होता है:)

“तो फिर, हे गुरु कच्चाना, इसका कारण और तर्क क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख क्यों नहीं किया?”

"वच्चा, उन्हें 'रूप से युक्त' या 'रूपहीन' या 'बोधक' या 'अविवेकपूर्ण' या 'न तो बोधक और न ही अविवेकपूर्ण' कहने का कारण क्या है? यदि वह कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो उन्हें 'रूप से युक्त' या 'रूपहीन' या 'बोधक' या 'अविवेकपूर्ण' या 'न तो बोधक और न ही अविवेकपूर्ण' कैसे कहा जा सकता है?"

"हे गुरु कच्चाना, आपको निकले हुए कितना समय हो गया है?"

"ज्यादा समय नहीं, मित्र। तीन वर्ष।"

"हे मित्र, जिसने इतने कम समय में इतना कुछ प्राप्त किया है, उसने वास्तव में बहुत कुछ प्राप्त किया है, 386 उस व्यक्ति की तो बात ही क्या जिसने इससे भी अधिक प्राप्त किया है!"

संयुत्त निकाय का छह इंद्रिय बोध का ग्रंथ (सलायतनवग्ग) पूरा हो चुका है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन5-महावग्गा-वेर2-भाग1

SN5-महान पुस्तक-भाग1
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का पांचवा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस खंड में बड़े आकार के सूत्र संकलित हैं, इसलिए इसे महावग्ग कहा जाता है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
1: अज्ञान क्या है?
2: अच्छी संगति और ब्रह्मचर्य सफलता की ओर ले जाते हैं?
5, 6: ब्रह्मचर्य क्यों आवश्यक है? यह एक साधन है।
8: भगवान बुद्ध द्वारा समझाया गया अष्टांगिक मार्ग - सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।
12: संवेदनाओं के प्रकार (वेदना)
39-48: ब्रह्मचर्य क्या है (पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन) और इसके लाभ: अष्टांगिक मार्ग
कुछ स्पष्टीकरण- 161: खोज (एसाना);162: भेदभाव (विधा);163: अपवित्रता (असव);164: अस्तित्व (भाव);165: पीड़ा (दुक्ख);166: बांझपन (खिला);167: दाग (माला);168: परेशानियां (निघा);169: संवेदनाएं(वेदना);170-171: लालसा,प्यास (तन्हा);172: बाढ़ (ओघा);173। बांड (योग);174. चिपकना(उपादान);175. गांठें (गंथा सं. ग्रंथी);176. अंतर्निहित-प्रवृत्ति (अनुसया);177. कामुक आनंद की डोरियाँ (कामगुण);178: बाधाएँ (निवारण);179: चिपकने के अधीन एकत्रीकरण (उपदानकखंड);180: निचली बेड़ियाँ (ओरंभगिया);181: ऊँची बेड़ियाँ (उद्धमभगिया);214: उपक्किलेसा;215: अनुपक्किलेसा; 216: अयोनिसोमंसिकारा,
183, 232: बाधाओं के साथ-साथ ज्ञानोदय के कारकों के लिए पोषक तत्व

183-184: ज्ञानोदय के सात कारक (संबोज्जंग)
219-221: बाधाएँ
224: मृत्यु के स्वामी मारा (शैतान) को कैसे कुचलें
234,236: मन की अवस्थाएँ
238-257: वैराग्य और समाप्ति कैसे विकसित करें..
367-368: ध्यान के संबंध में व्याख्याएँ : 367 सम्पजानो ; 368 सती
369: धम्म (मार्ग, नियम) संक्षेप में - चार प्रकार के सतीपठन (ध्यान की स्थापना)
375: स्वयं को अपना शरणस्थल बनाओ (स्वयं में ध्यान करो)
384, 409, 527: ब्रह्मा इस बात का समर्थन करते हैं कि बुद्ध द्वारा सिखाया गया मार्ग ही बाढ़ पार करने का एकमात्र मार्ग है
471: जागृत व्यक्तियों की पाँच शक्तियाँ, श्रद्धा (विश्वास), ऊर्जा (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन), प्रबोध (अंतर्दृष्टि)
476: जो समझते हैं (जैसा कि 471 में है) उन्हें तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है
479-480: 471 की व्याख्या पाँच शक्तियों की
526: सतर्कता (अप्पमदा) बहुत महत्वपूर्ण है

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN4) अगला (SN5-भाग 2) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय:5.महावग्ग-महान पुस्तक
1.1अध्याय 1: मार्ग पर संबंधित प्रवचन (मग्गसाम्युत्त) {साम्युत्त-45}
1.1.1(i) अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो सं. अविद्या-वर्ग)
1.1.1.11. अज्ञान (संस्कृत: अविद्या)
1.1.1.22. आधा पवित्र जीवन (उपद्ध)
1.1.1.33. सारिपुत्त
1.1.1.44. जानूसोनी ब्राह्मण
1.1.1.55. किसलिए? (किमत्थिया)
1.1.1.66. एक निश्चित भिक्खु (1) (अन्नताराभिक्खु1)
1.1.1.77. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नताराभिक्खु2)
1.1.1.88. विश्लेषण (विभंग) - नोबेल अष्टांगिक मार्ग
1.1.1.99. स्पाइक (सुका)
1.1.1.1010. नंदिया
1.1.2(ii) निवास (विहारवग्गो)
1.1.2.111. निवास (1) (विहार1)
1.1.2.212. निवास (2) (विहार2)
1.1.2.313. एक प्रशिक्षु (सेक्खा बिना शिष्य)
1.1.2.414. उदय (1) (उप्पदा1 सं. उत्पद)
1.1.2.515. उदय (2) (उप्पदा2 सं. उत्पद)
1.1.2.616. शुद्धिकृत (1) (परिशुद्ध1)
1.1.2.717. शुद्धिकृत (2) (परिशुद्ध2)
1.1.2.818. द कॉक्स पार्क (1) (कुक्कुटारामा1)
1.1.2.919. द कॉक्स पार्क (2) (कुक्कुटारामा2)
1.1.2.1020. द कॉक्स पार्क (3) (कुक्कुटारामा3)
1.1.3(iii) गलतता अनुभाग (मिकचट्टावागो)
1.1.3.121. गलत होना (मिच्चात्ता)
1.1.3.222. हानिकारक राज्य (अकुशलधम्म सं. अकुशल-धर्म)

1.1.3.323. मार्ग (1) (पतिपदा1 सं. प्रतिपदा)
1.1.3.424. मार्ग (2) (पतिपदा 2 सं. प्रतिपदा)
1.1.3.525. निम्न पुरुष (1) (असप्पुरिषा1 सं. असत्पुरुष)
1.1.3.626. निम्न पुरुष (2) (असप्पुरिषा2 सं. असत्पुरुष)
1.1.3.727. घड़ा (कुंभ)
1.1.3.828. समाधि (सम्मोहन) अवस्था
1.1.3.929. वेदना
1.1.3.1030. उत्तिया
1.1.4(iv) अभ्यास अनुभाग (पतिपट्टिवग्गो)
1.1.4.131. अभ्यास (1) (पतिपत्ती1)
1.1.4.232. अभ्यास (2) (पतिपट्टी2)
1.1.4.333. उपेक्षित (विराद्ध)
1.1.4.434. आगे बढ़ना (परंगमा)
1.1.4.535. वैराग्य (1) (समन्ना1 सं. श्रामण्य)
1.1.4.636. वैराग्य (2) (समन्ना2 सं. श्रामण्य)
1.1.4.737. ब्राह्मणत्व (1) (ब्राह्मन्ना1 सं. ब्राह्मण्य)
1.1.4.838. ब्राह्मणत्व (2) (ब्राह्मण्ण2 सं. ब्राह्मण्य)
1.1.4.939. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (1) (ब्रह्मचर्य1)
1.1.4.1040. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (2) (ब्रह्मचर्य2)
1.1.5(v) अन्य संप्रदायों के तपस्वी धारा 30 (अन्नतित्तियपेय्यलावग्गो)
1.1.5.141. कामवासना का लुप्त होना (रागवीरगा)
1.1.5.242-48. बंधनों का त्याग, इत्यादि (संयोजनप्पहनादि)
1.1.6(vi) सूर्य पुनरावृति श्रृंखला (सुरियापेय्यलावग्गो)
1.1.6.149. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.6.250.-55 सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.6.356 (1) अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस. कल्याण-मित्र)
1.1.6.457-62. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.7(vii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (1)
1.1.7.163. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.7.264-69. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.7.370. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.7.471-76. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.8(viii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (2)
1.1.8.177. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.8.278-83. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.8.384. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.8.485-90 सद्गुण आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.9(ix) प्रथम गंगा पुनरावृति श्रृंखला 34
1.1.9.191. पूर्व की ओर झुका हुआ (1) (पैसिननिन्ना)
1.1.9.292-96. पूर्व की ओर झुका हुआ (2-6) (पैसिननिन्ना)
1.1.9.397-102. सागर (समुद्दानिन्ना)
1.1.10(x) दूसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.10.1103-108 (6) पूर्व की ओर झुका हुआ + 109-114 महासागर
1.1.11(xi) तीसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.11.1115-220 पूर्व की ओर झुका हुआ + 121-126 महासागर
1.1.12(xii) चौथी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.12.1127-132 पूर्व की ओर झुकाव + 133-138 महासागर
1.1.13(xiii) सतर्कता धारा 36 (अप्पमदा-पय्याला-वाग्गो)

1.1.13.1139. तथागत
1.1.13.2140. पदचिह्न (पाड़ा)
1.1.13.3141. रूफ पीक (कुटा)
1.1.13.4142. जड़ें
1.1.13.5143. हार्टवुड
1.1.13.6144. चमेली
1.1.13.7145. सम्राट
1.1.13.8146. चंद्रमा (कैंडिमा बिना कैंड्रामा)
1.1.13.9147. सूर्य
1.1.13.10148. कपड़ा
1.1.14(xiv) कठोर कर्म (बलकारनिया)
1.1.14.1149. कठोर (बाला)
1.1.14.2150. बीज (बीजा)
1.1.14.3151. नागा
1.1.14.4152. वृक्ष (रुक्खा)
1.1.14.5153. घड़ा (कुंभ)
1.1.14.6154. स्पाइक (सुका)
1.1.14.7155. आकाश (अकासा)
1.1.14.8156. वर्षा बादल (1) (मेघा1)
1.1.14.9157. वर्षा बादल (2) (मेघा2)
1.1.14.10158. जहाज (नवा)
1.1.14.11159. अतिथि गृह (अगांटुका)
1.1.14.12160. नदी (नाडी)
1.1.15(xv) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
1.1.15.1161. खोज (एसाना)
1.1.15.2162. भेदभाव (विधा)
1.1.15.3163. अशुद्धियाँ (आसव)
1.1.15.4164. अस्तित्व (भाव)
1.1.15.5165. दुख (दुख)
1.1.15.6166. बांझपन (खिला)
1.1.15.7167. दाग (माला)
1.1.15.8168. परेशानियाँ (निघा)
1.1.15.9169. संवेदनाएँ (वेदना)
1.1.15.10170. लालसा (तन्हा)
1.1.15.11171. प्यास (ताशिना सं. तृष्णा)
1.1.16(xvi) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.1.16.1172. बाढ़ (ओघा)
1.1.16.2173. बंधन (योग)
1.1.16.3174. आसक्ति (उपादान)
1.1.16.4175. गांठें (गंथा सं. ग्रंथी)
1.1.16.5176. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
1.1.16.6177. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)
1.1.16.7178. अवरोध (निवारण)
1.1.16.8179. आसक्ति के अधीन समुच्चय (उपदानक्खन्ध)
1.1.16.9180. निचले बंधन (ओरंभागिया)
1.1.16.10181. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
1.2अध्याय 2: ज्ञानोदय के कारकों पर संबंधित प्रवचन (बोज्झंगसाम्युत्त) {साम्युत्त-46}
1.2.1(i) पर्वतीय भाग (पब्बतवाग्गो)

1.2.1.1182. हिमालय (हिमवंता)
1.2.1.2183. शरीर का स्वरूप (काया)
1.2.1.3184. सद्गुण (शील) - ज्ञानोदय के सात कारक
1.2.1.4185. वस्त्र (वत्थ सं. वस्त्र)
1.2.1.5186. भिक्षु (भिक्खु सं. भिक्षु)
1.2.1.6187. कुंडलिया
1.2.1.7188. नुकीला घर (कुटागारा)
1.2.1.8189. उपवन
1.2.1.9190. उदय (1) (उप्पन्ना सं. उत्पन्न)
1.2.1.10191. उत्पन्न होना (2)
1.2.2(ii) तृतीय खंड (गिलानवाग्गो)
1.2.2.1192. जीवित प्राणी (पण सं. प्राणि)
1.2.2.2193. सूर्य की उपमा (1) (सूर्यउपमा1 सं. सूर्य-उपमा)
1.2.2.3194. सूर्य की उपमा (2) (सूर्यउपमा 2 सं. सूर्य-उपमा)
1.2.2.4195. आईएलएल (1) (गिलाना1 संस ग्लानी)
1.2.2.5196. आईएलएल (2) (गिलाना2 सं. ग्लानी)
1.2.2.6197. आईएलएल (3) (गिलाना3 सं. ग्लानी)
1.2.2.7198. गोइंग बियॉन्ड (परंगमा सं. परगम्य)
1.2.2.8199. उपेक्षित (विराद्ध)
1.2.2.9200. कुलीन या शाही (अरिया सं. आर्य)
1.2.2.10201. निबिदा
1.2.3(iii) उदयी
1.2.3.1202. आत्मज्ञान के लिए (बोधया)
1.2.3.2203. जागृति के लिए एक शिक्षण (बोज्जंगदेसाना सं. बोधयांग-देशना)
1.2.3.3204. एक आधार (थानिया)
1.2.3.4205. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
1.2.3.5206. अपरिहानिया (न हारना)
1.2.3.6207. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
1.2.3.7208. तृष्णा की समाप्ति (तन्हा-निरोध सं. तृष्णा-निरोध)
1.2.3.8209. प्रवेश में भाग लेना (निब्बेधभागिया)
1.2.3.9210. एक धम्म (एकधम्म सं. एक-धर्म)
1.2.3.10211. उदयी
1.2.4(iv) द हिंडरेंसेस सेक्शन (निवारणावग्गो)
1.2.4.1212. लाभकारी (1) (कुसल1 सं. कुशल)
1.2.4.2213. लाभकारी (2) (कुसल2 सं. कुशल)
1.2.4.3214. भ्रष्टाचार (उपकिलेसा)
1.2.4.4215. अनुपक्किलेसा
1.2.4.5216. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
1.2.4.6217. ध्यान संबंधी जागरूकता (योनिसोमनसिकारा)
1.2.4.7218. ज्ञानोदय (बोधि)
1.2.4.8219. अवरोध/अड़चनें (अवरोधन)
1.2.4.9220. वृक्ष (रुक्खा)
1.2.4.10221. अवरोध (निवारण)
1.2.5(v) व्हील-टर्निंग मोनार्क सेक्शन (कैक्कवट्टीवागो संस। चक्रवर्ती-वर्ग)
1.2.5.1222. भेदभाव (विधा)
1.2.5.2223. चक्रवर्ती सम्राट (चक्रवर्ती)
1.2.5.3224. मारा (सं. मृत्युदेव या कामदेव)
1.2.5.4225. अप्रकाशित (दुप्पन्ना सं. दुष्-प्रज्ञा)

1.2.5.5226. प्रबुद्ध-व्यावहारिक (पन्नवंता सं. प्रज्ञा-वंत)
1.2.5.6227. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
1.2.5.7228. समृद्ध
1.2.5.8229. सूर्य (आदित्य के बिना)
1.2.5.9230. आंतरिक कारक (अज्जट्टिकंगा)
1.2.5.10231. बाह्य कारक (बहिरंगा)
1.2.6(vi) चर्चाएँ (सकच्चावग्गो)
1.2.6.1232. पोषण (आहार)
1.2.6.2233. व्याख्या की विधि (परियया)
1.2.6.3234. अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)
1.2.6.4235. प्रेम और करुणा (मेट्टासहगत) के साथ
1.2.6.5236. संगरवा
1.2.6.6237. अभया
1.2.7(vii) अंदर-बाहर श्वास ध्यान (अनापानवग्गो सं. अन-अपान-वर्ग)
1.2.7.1238. कंकाल-अधिनियम-परिणाम
1.2.7.2239. कृमिग्रस्त (पुलावक)
1.2.7.3240. द लिविड (विनिलाका)
1.2.7.4241. द फिशर्ड (विचिडका)
1.2.7.5242. फूला हुआ (उद्धुमतक)
1.2.7.6243. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)
1.2.7.7244. करुणा
1.2.7.8245. परोपकारी आनंद (मुदिता)
1.2.7.9246. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
1.2.7.10247. श्वास ध्यान (अनापान)
1.2.8(viii) समाप्ति 119 (निरोध)
1.2.8.1248. अपवित्रता (असुभा)
1.2.8.2249. मृत्यु (मरना)
1.2.8.3250. भोजन के प्रति अरुचि (अहरेपटिकुला)
1.2.8.4251. अनभिराती (अनाभिराती)
1.2.8.5252. अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)
1.2.8.6253. दुख (दुक्खा)
1.2.8.7254. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.2.8.8255. परित्याग (पहाना)
1.2.8.9256. वैराग्य (विराग)
1.2.8.10257. निरोध (समाप्ति)
1.2.9(ix) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
1.2.9.1258-269. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
1.2.10(x) सतर्कता अनुभाग (अप्पामादावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
1.2.10.1270-279. तथागत, इत्यादि।
1.2.11(xi) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
1.2.11.1280-291. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
1.2.12(xii) खोज अनुभाग (एसानावाग्गो)
1.2.12.1292-301. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
1.2.13(xiii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.2.13.1302-310. बाढ़, आदि (ओघा)
1.2.13.2311. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
1.2.14(xiv) गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.2.14.1312-323. गंगा नदी - पूर्व दिशा की ओर

1.2.15(xv) सतर्कता अनुभाग (पुना-अप्पमदा-वाग्गो)
1.2.15.1324-333. तथागत, इत्यादि।
1.2.16(xvi) कठोर कर्म (पुनबलकारनिया)
1.2.16.1334-345. कठिन, इत्यादि (पुनाबलादी)
1.2.17(xvii) खोज (पुनैसनवग्गो)
1.2.17.1346-356. खोज आदि (पुणेसन)
1.2.18(xviii) बाढ़ खंड (पुनाओघवाग्गो)
1.2.18.1357-365. बाढ़, आदि (पुनाओघाड़ी)
1.2.18.2366. उच्चतर बेड़ियाँ
1.3अध्याय 3: ध्यान की स्थापना पर संबंधित प्रवचन (सतिपट्टनसाम्युत्त) {साम्युत्त-47}
1.3.1(i) अम्बापाली
1.3.1.1367. अंबपाली (संपजानो के संबंध में पूर्ण बोध (संपजन्ना))
1.3.1.2368. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.1.3369. एक भिक्षु
1.3.1.4370. साला में
1.3.1.5371. हानिकारक वस्तुओं का ढेर (अकुसलारसी)
1.3.1.6372. बाज़ (सकुनाग्घी)
1.3.1.7373. बंदर (मक्काटा सं. मार्कट)
1.3.1.8374. रसोइया (सूद)
1.3.1.9375. बीमारी (गिलाना)
1.3.1.10376. भिक्षुणियों का निवास स्थान
1.3.2(ii) नालंदा
1.3.2.1377. एक महान पुरुष (महापुरुष)
1.3.2.2378. नालंदा
1.3.2.3379. कुंडा
1.3.2.4380. उक्कासेला
1.3.2.5381. बहिया
1.3.2.6382. उत्तिया
1.3.2.7383. नोबल (आरिया, आर्या का संक्षिप्त रूप)
1.3.2.8384. ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)
1.3.2.9385. सेडाका
1.3.2.10386. देश की सबसे खूबसूरत लड़की
1.3.3(iii) सद्गुण और अवधि (सिलात्थितिवग्गो)
1.3.3.1387. सदाचार (सिला बिना शील)
1.3.3.2388. लोंड एंड्योरिंग (सिराथिति सं. सिरास्थयी)
1.3.3.3389. हानि (परिहाना सं. परिहानी)
1.3.3.4390. सरल संस्करण (शुद्ध)
1.3.3.5391. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण सं. अन्यत्तार-ब्राह्मण)
1.3.3.6392. आंशिक रूप से (पदेसा)
1.3.3.7393. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
1.3.3.8394. लोक (विश्व)
1.3.3.9395. सिरिवद्धा
1.3.3.10396. मनदिन्ना
1.3.4(iv) पहले अनसुना (अननुसुता सं. अनुश्रुत)
1.3.4.1397. अनसुना (अननुस्सुत संस्कृत अननुश्रुत)
1.3.4.2398. वैराग्य (विराग)
1.3.4.3399. उपेक्षित (विराद्ध)
1.3.4.4400. विकास (भाविता)

1.3.4.5401. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.4.6402. अंतिम ज्ञान (अन्न संस्कृत: अनन्य-ज्ञान)
1.3.4.7403. इच्छा (चंदा)
1.3.4.8404. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञानत्व)
1.3.4.9405. विकास (भावना)
1.3.4.10406. विश्लेषण (विभंग)
1.3.5(v) मृत्युहीन अवस्था (अमतावग्गा सं. अमृत-वर्ग)
1.3.5.1407. अमरता (अमता सान. अमृत)
1.3.5.2408. उत्पत्ति (समुदय)
1.3.5.3409. पथ (मग्गा सास. मार्ग)
1.3.5.4410. ध्यानमग्न (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.5.5411. लाभकारी का ढेर (कुशलरासी सं. कुशल-राशि)
1.3.5.6412. पतिमोक्ख का संयम (पतिमोक्खसंवर)
1.3.5.7413. कदाचार (दुकारिता सं. दश-चरित्र)
1.3.5.8414. मित्र (Mitta sans. Mitra)
1.3.5.9415. संवेदनाएँ (वेदना)
1.3.5.10416. अपवित्रताएँ (असव सं. आश्रव)
1.3.6(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालवग्गो)
1.3.6.1417-428. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि (गंगानाडियादी)
1.3.7(vii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
1.3.7.1429-438. तथागत, इत्यादि।
1.3.8(viii) कठोर कर्म (बलकारनिया)
1.3.8.1439-450. कठिन, इत्यादि (बलादी)
1.3.9(ix) खोज (एसानावग्गो)
1.3.9.1451-460. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
1.3.10(x) बाढ़ (ओघवाग्गो संस. ओघा-वर्ग)
1.3.10.1461-470. उच्चतर बंधन (उद्धमभागियादि)
1.4अध्याय 4: इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (इंद्रियसाम्युत्त) {साम्युत्त-48}
1.4.1(i) सरल संस्करण (शुद्धिकावग्गो सं. शुद्धि-वर्ग)
1.4.1.1471. सरल संस्करण (शुद्धिका सं. शुद्धि)
1.4.1.2472. स्ट्रीम-एंटरर (1) (सोतापन्ना1 सं. स्रोत-पैन)
1.4.1.3473. स्ट्रीम-एंटरर (2) (सोटापन्ना2 सान. स्ट्रोत-पान)
1.4.1.4474. अरिहंत (1) (सं. अरिहंत1)
1.4.1.5475. अरिहंत (2) (सं. अरिहंत2)
1.4.1.6476. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.1.7477. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.1.8478. देखा जाना (दत्ताब्बा सं. दृष्टव्य)
1.4.1.9479 विश्लेषण (1) (विभंग1)
1.4.1.10480. विश्लेषण (2) (विभंग2)
1.4.2(ii) नरम (मुदुतरवग्गो सं. मृदुतर-वर्ग)
1.4.2.1481. प्राप्ति (पतिलाभा सं. प्रति-लाभ)
1.4.2.2482. संक्षेप में (1) (संखित्त1 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.3483. संक्षेप में (2) (संखित्त2 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.4484. संक्षेप में (3) (संखित्त3 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.5485. विस्तार से (1) (विट्ठरा1 सं. विस्तार)
1.4.2.6486. विस्तार से (2) (विट्ठरा2 सं. विस्तार)
1.4.2.7487. विस्तार से (3) (विट्ठरा3 सं. विस्तार)
1.4.2.8488. अभ्यास करना (पतिपन्ना सं. प्रतिपन्ना)

1.4.2.9489. सुसज्जित (संपन्ना)
1.4.2.10490. अपवित्रताओं का नाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
1.4.3(iii) छह संकाय (चलिनरियावग्गो)
1.4.3.1491. पुनाभव का नवीकृत कारण (पुनब्भव)
1.4.3.2492. जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रिय)
1.4.3.3493. अंतिम ज्ञान का संकाय (अनिंद्रिय)
1.4.3.4494. एक बीज बोने वाला (एकबिजी)
1.4.3.5495. सरल संस्करण (शुद्धका)
1.4.3.6496. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
1.4.3.7497. अरहंत
1.4.3.8498. संबुद्ध
1.4.3.9499. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.3.10500. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.4(iv) सुख की इंद्रिय (सुखिंद्रिय)
1.4.4.1501. सरल संस्करण (शुद्धिका)
1.4.4.2502. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
1.4.4.3503. अरहंत
1.4.4.4504. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.4.5505. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.4.6506. विश्लेषण (1) (विभंग1)
1.4.4.7507. विश्लेषण (2) (विभंग2)
1.4.4.8508. विश्लेषण (3) (विभंग3)
1.4.4.9509. अग्नि-लाठियों की उपमा (कत्थोपमा सं. काष्ठ-उपमा)
1.4.4.10510. अनियमित क्रम (उप्पतिपतिका)
1.4.5(v) बुढ़ापा (जरा)
1.4.5.1511. वृद्धावस्था के अधीन (जरधम्म)
1.4.5.2512. ब्राह्मण (उन्नभब्राह्मण)
1.4.5.3513. सकेता
1.4.5.4514. पूर्वी गेटहाउस (पब्बाकोत्थका सं. पूर्व-कोष्ठक)
1.4.5.5515. पूर्वी पार्क (1) (पुब्बारामा1 सं. पूर्व-अरामा)
1.4.5.6516. पूर्वी पार्क (2) (पब्बाराम2 संस्कृत पूर्व-राम)
1.4.5.7517. पूर्वी पार्क (3) (पुब्बारामा3 सं. पूर्व-अरामा)
1.4.5.8518. पूर्वी पार्क (4) (पब्बाराम4 संस्कृत पूर्व-राम)
1.4.5.9519. पिंडोलाभरद्वाज
1.4.5.10520. अपाना में
1.4.6(vi) सूअर की गुफा खंड (सुकरखाटावग्गो)
1.4.6.1521. साला
1.4.6.2522. मल्लिकाएँ
1.4.6.3523. एक प्रशिक्षु (शिष्य के बिना)
1.4.6.4524. पदचिह्न (पाड़ा)
1.4.6.5525. हार्टवुड (सारा)
1.4.6.6526. स्थापित (पतितिता सं. प्रतिष्ठा)
1.4.6.7527. ब्रह्म सहमपति
1.4.6.8528. सूअर की गुफा (सुकरखाता)
1.4.6.9529. उत्पन्न होना (1) (उप्पदा1)
1.4.6.10530. उत्पन्न होना (2) (उप्पदा2)
1.4.7(vii) ज्ञानोदय अनुभाग के लिए अनुकूल (बोधिपक्खियावग्गो सं. बोधि-पक्ष-वर्ग)
1.4.7.1531. बंधन (संयोजन)

1.4.7.2532. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
1.4.7.3533. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञान)
1.4.7.4534. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
1.4.7.5535. फल (फल1)
1.4.7.6536. फल (फल 2)
1.4.7.7537. वृक्ष (1) (रुक्खा 1 सं. वृक्ष)
1.4.7.8538. वृक्ष (2) (रुक्खा2 सं. वृक्ष)
1.4.7.9539. वृक्ष (3) (रुक्खा3 सं. वृक्ष)
1.4.7.10540. वृक्ष (4) (रुक्ख4 सं. वृक्ष)
1.4.8(viii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यालवग्गो)
1.4.8.1541-552. पूर्व की ओर, आदि (पैसिनाडी सं. पश्चिम-नाडी)
1.4.9(ix) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
1.4.9.1553-564. तथागत, इत्यादि।
1.4.10(x) बलकारणीयवग्गो (बलकारणीयवग्गो)
1.4.10.1565-576. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
1.4.11(xi) खोज (एसानावग्गो)
1.4.11.1577-586. खोजें, आदि (एसाना)
1.4.12(xii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.4.12.1587-596. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
1.4.13(xiii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
1.4.13.1597-608. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
1.4.14(xiv) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
1.4.14.1609-618 तथागत, इत्यादि।
1.4.15(xv) कठोर कर्म धारा (बालकरणीयवग्गो)
1.4.15.1619-630 कठिन, इत्यादि।
1.4.16(xvi) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
1.4.16.1631-640 खोजें, इत्यादि।
1.4.17(xvii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
1.4.17.1641-650. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
संयुक्त निकाय:5.महावग्ग-महान पुस्तक

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: मार्ग पर संबंधित प्रवचन (मग्गसाम्युत्त) {साम्युत्त-45}
(i) अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो सं. अविद्या-वर्ग)
1. अज्ञान (संस्कृत: अविद्या)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

“भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं में प्रवेश का अग्रदूत है, जिसके साथ लज्जा और कुकर्म का भय भी जुड़ा रहता है। 1 अज्ञान में डूबे मूर्ख व्यक्ति के लिए गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। गलत

दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए गलत इरादे उत्पन्न होते हैं। गलत इरादे वाले व्यक्ति के लिए गलत वाणी उत्पन्न होती है। गलत वाणी वाले व्यक्ति के लिए गलत कर्म उत्पन्न होते हैं। गलत कर्म वाले व्यक्ति के लिए गलत आजीविका उत्पन्न होती है। गलत आजीविका वाले व्यक्ति के लिए गलत प्रयास उत्पन्न होते हैं। गलत प्रयास वाले व्यक्ति के लिए गलत ध्यान (सती) उत्पन्न होता है। गलत ध्यान वाले व्यक्ति के लिए गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, सच्चा ज्ञान लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश का अग्रदूत है, जिसके साथ लज्जा और कुकर्म का भय भी जुड़ा रहता है। 2 सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर चुके बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए सही इरादे उत्पन्न होते हैं। सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए सही कर्म उत्पन्न होते हैं। सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए सही आजीविका उत्पन्न होती है। सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए सही प्रयास उत्पन्न होते हैं। सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए सही ध्यान (सती) उत्पन्न होता है। सही ध्यान वाले व्यक्ति के लिए सही समाधि (सन्यास) अवस्था उत्पन्न होती है।" 3

---

2. आधा पवित्र जीवन (उपद्ध)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच रह रहे थे, जहाँ नागरक नाम का एक नगर था। 4 तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, यह ब्रह्मचर्य जीवन का आधा भाग है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छी संगति।" 5

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, आनंद, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ, अच्छा सहचर्य। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। 6

"और, आनंद, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। 7 वह सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सती... विकसित करता है।" सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, मोक्ष की ओर ले जाती है। आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसके पास एक अच्छा मित्र, एक अच्छा साथी, एक अच्छा सहचर है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

हे आनंद, इस विधि से भी यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम सहचर्य है: हे आनंद, मुझ पर मित्रवत विश्वास रखने से पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अधीन प्राणी दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाते हैं। हे आनंद, इस विधि से यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम सहचर्य है।

---

3. सारिपुत्त
सावत्थी में। तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा सौहार्द।" 8

"वाह, वाह, सारिपुत्त! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, सारिपुत्त, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा सौहार्द। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी या अच्छा सौहार्द होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन करेगा।

और सारिपुत्त, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी या अच्छा सौहार्द हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन कैसे करता है?"

(शेष भाग पिछले सूत्र के समान है।)

4. जानूसोनी ब्राह्मण

सावत्थी में। फिर, सुबह के समय, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। पूज्य आनंद ने ब्राह्मण जानूसोनी को घोड़ियों द्वारा खींचे जा रहे एक पूर्णतः श्वेत रथ में सावत्थी से प्रस्थान करते देखा। 9 रथ में जुते घोड़े श्वेत थे, उसके आभूषण श्वेत थे, रथ श्वेत था, उसकी गद्दी श्वेत थी, लगाम, अंकुश और चंदोबा श्वेत थे, उसकी पगड़ी, वस्त्र और चप्पलें श्वेत थीं, और उसे एक श्वेत चहचहाहट से हवा दी जा रही थी। यह देखकर लोगों ने कहा, "हे महाराज, यह वाहन वास्तव में दिव्य है! यह वास्तव में एक दिव्य वाहन प्रतीत होता है!" 10

फिर, जब पूज्य आनंद श्रावस्ती में भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "

हे पूज्यवर, आज सुबह मैंने वस्त्र धारण किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर श्रावस्ती में भिक्षा मांगने गया। मैंने ब्राह्मण जनुस्सोनी को घोड़ियों द्वारा खींचे गए एक श्वेत रथ में श्रावस्ती से प्रस्थान करते देखा... लोगों ने यह देखकर कहा, 'हे प्रभु, यह वाहन वास्तव में दिव्य है! यह तो सचमुच एक दिव्य वाहन प्रतीत होता है!' क्या इस धर्म (मार्ग, नियम) या अनुशासन में किसी दिव्य वाहन का उल्लेख करना संभव

है?" "हाँ, आनंद," भगवान (बुद्ध) ने कहा। "यह इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का नाम है: 'दिव्य वाहन', 'धर्म का वाहन' और 'युद्ध में अद्वितीय विजय'।"

"आनंद, जब सही दृष्टि विकसित और पोषित होती है, तो उसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण होता है। सही अभिकल्पना... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जब विकसित और पोषित होती है, [6] तो उसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण होता है।

" "इस प्रकार, आनंद, यह समझा जा सकता है कि यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का नाम कैसे है: 'दिव्य वाहन', 'धम्म का वाहन' और 'युद्ध में अतुलनीय विजय'।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"इसके विश्वास और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के गुण
हमेशा समान रूप से एक साथ जुड़े रहते हैं।" 11
लज्जा इसका ध्रुव है, मन इसका बंधन है, और
ध्यान (सती) इसका सतर्क सारथी है।

"रथ का आभूषण सद्गुण (शील) है,
इसका धुरा ध्यान है, और इसके पहिए बल (वीर्य) हैं;
समभाव (उपेक्खा) भार को संतुलित रखता है, और
इच्छाहीनता इसका आवरण है।

"सद्भावना, अहिंसा और एकांत:
ये रथ के शस्त्र हैं, और
सहनशीलता इसका कवच और ढाल है, 13
जैसे-जैसे यह बंधन से मुक्ति की ओर बढ़ता है।

"यह दिव्य वाहन, जो अतुलनीय है,
अपने भीतर से ही उत्पन्न होता है। 14
ज्ञानी लोग इसी वाहन में बैठकर संसार से विदा होते हैं।"
अंततः जीत उन्हीं की होगी।

---

5. किसलिए? (किमत्थिया)

सावत्थी में, कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक तरफ बैठे हुए, उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, अन्य संप्रदायों के तपस्वी हमसे पूछते हैं: 'मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का क्या उद्देश्य है?' हे पूज्यवर, जब हमसे ऐसा पूछा जाता है, तो हम उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देते हैं: 'मित्रों, दुखों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।' हे पूज्यवर, हमें आशा है कि जब हम ऐसा उत्तर देते हैं, तो हम भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही बोलते हैं और उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते; कि हम धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं, और हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता।"

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार उत्तर देते हैं, तो आप वही कहते हैं जो मैंने कहा है, न कि मुझे तथ्यों के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत करते हैं; आप धम्म के अनुसार व्याख्या करते हैं, और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता। क्योंकि, भिक्षुओं, मेरे अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) दुख के पूर्ण ज्ञान के लिए ही व्यतीत किया जाता है।

यदि, भिक्षुओं, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, मित्रों, क्या इस दुख के पूर्ण ज्ञान का कोई मार्ग है?' -तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हाँ, मित्रों, इस दुख के पूर्ण ज्ञान का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है, वह तरीका क्या है जिससे इस दुख को पूरी तरह समझा जा सकता है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (साम्राज्य 8 देखें)। यही मार्ग है, यही तरीका है जिससे इस दुख को पूरी तरह समझा जा सकता है।

भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

6. एक निश्चित भिक्खु (1) (अन्नताराभिक्खु1)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर, उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' हे पूज्यवर, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?" "हे भिक्षु

, यह अष्टमार्ग ही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। [8] काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/मोह) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"

---

7. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नताराभिक्खु2)
“हे पूज्यवर, कहा जाता है, ‘राग का निवारण, द्वेष का निवारण, मोह का निवारण।’ हे पूज्यवर, यह किसका नाम है?”

“हे भिक्षु, यह निर्वाण के तत्व (धातु) का नाम है: राग का निवारण, द्वेष का निवारण, मोह का निवारण। इस प्रकार विकारों के विनाश की बात की जाती है।” 15

यह सुनकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
“हे पूज्यवर, कहा जाता है, ‘अमरता, अमरता।’ हे पूज्यवर, अमरता क्या है? अमरता की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?”

"काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/द्वेष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही अमर अवस्था कहलाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अमर अवस्था की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टि (जैसा कि 8 में है)... सही समाधि अवस्था।"

---

8. विश्लेषण (विभंग) - नोबेल अष्टांगिक मार्ग
(आर्य अष्टांगिक मार्ग: 1. सही दृष्टिकोण 2. सही इरादा 3. सही वाणी 4. सही कर्म 5. सही आजीविका 6. सही प्रयास 7. सही ध्यान (सती) 8. सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था) सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं आपको आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दूंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। इसे ध्यान से सुनें और सचेत रहें, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। 16

"हे भिक्षुओं, सही दृष्टि क्या है? दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण (निरोध) का ज्ञान, दुख निवारण के मार्ग का ज्ञान: इसे सही दृष्टि कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, सही संकल्प क्या है? त्याग का संकल्प, द्वेष न करने का संकल्प, अहिंसा का संकल्प: इसे सही संकल्प कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, सही वाणी क्या है? झूठे वचनों से परहेज, फूट डालने वाले वचनों से परहेज, कठोर वचनों से परहेज, व्यर्थ की बातों से परहेज: यही सही वचन कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, सही कर्म क्या है? जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से परहेज, बिना दी हुई वस्तु न लेने से परहेज, यौन दुराचार से परहेज: यही सही कर्म कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, सही आजीविका क्या है? यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य गलत आजीविका छोड़कर सही आजीविका कमाता है: यही सही आजीविका कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, सही प्रयास (सम्मवयामो संस्कृत: सम्यक-व्यायम्) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है। ... वह अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है। ... वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (शक्ति) को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इसे ही सही प्रयास कहते हैं।

भिक्षुओं, सही ध्यान (सती) क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह मन को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह धर्मों को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसे ही सही ध्यान (सती) कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, सही समाधि अवस्था (सम्मासमाधि, संस्कृत सम्यक-समाधि) क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होता है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकत्वमय (एकोदिभावम) से युक्त होता है, विचार और चिंतन से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। आनंद (पीति/प्रीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः बोधगम्य (संपजनो) होकर, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न (सतिमा) और सुख में रहने वाला है।' सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही प्रसन्नता और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, और जिसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) का शुद्धिकरण शामिल है। इसे सही समाधि अवस्था कहा जाता है।

---

9. स्पाइक (सुका)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चावल या जौ की बाली गलत दिशा में हो (रक्त निकालने के लिए) और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। क्या वह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल सकती है? यह असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली गलत दिशा में है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, क्या यह असंभव है कि कोई भिक्षु गलत दृष्टि से, गलत मार्ग विकास से अज्ञान को भेदकर, सच्चे ज्ञान को जागृत करके निर्वाण प्राप्त कर ले? इसका कारण क्या है? क्योंकि उसकी दृष्टि गलत दिशा में है।

" "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चावल या जौ की बाली सही दिशा में हो (रक्त निकालने के लिए) और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। क्या यह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल सकती है? यह संभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सही दिशा में है।" इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, सही दृष्टि से चलने वाला और मार्ग का सही ढंग से अनुसरण करने वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसकी दृष्टि सही दिशा में निर्देशित है।

और भिक्षु ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार सही दृष्टि से चलने वाला और मार्ग का सही ढंग से अनुसरण करने वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत करता है और निर्वाण प्राप्त करता है।

---

10. नंदिया
श्रावस्ती में, तपस्वी नंदीय भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे गौतम गुरु, कितने धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है?"

"नंदीय, इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही अभिकल्पना, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (देखें SN5.8)। इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है।"

यह सुनकर तपस्वी नंदीय ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

(ii) निवास (विहारवग्गो)
11. निवास (1) (विहार1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं आधे महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता/चाहती हूँ। मेरे पास भिक्षा लाने वाले के अलावा कोई भी न आए।" 18

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान (बुद्ध) के पास भिक्षा लाने वाले के अलावा कोई नहीं आया।

फिर, जब आधा महीना बीत गया, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं उस स्थान के एक भाग में निवास कर रहा हूँ जहाँ मैं पूर्णतः प्रबुद्ध होने के बाद निवास करता था। 19 मैंने इस प्रकार समझा है: ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत दृष्टिकोण कारण के रूप में, और ज्ञात है सही दृष्टिकोण कारण के रूप में... ज्ञात है गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में, और ज्ञात है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में। ज्ञात है इच्छा कारण के रूप में, ज्ञात है विचार कारण के रूप में, और ज्ञात है अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) कारण के रूप में। 20

'जब इच्छा शांत नहीं होती, और विचार शांत नहीं होते, और अनुभूति शांत नहीं होती, तो वह कारण के रूप में ज्ञात होता है। [जब इच्छा शांत हो जाती है, और विचार शांत नहीं होते, और अनुभूति शांत नहीं होती, तो वह कारण के रूप में ज्ञात होता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और अनुभूतियाँ शांत नहीं होतीं, तो उसे ही कारण कहा जाता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और अनुभूतियाँ शांत हो जाती हैं, तो उसे ही कारण कहा जाता है। अभी तक प्राप्त न हुए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाता है। जब वह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो उसे भी कारण कहा जाता है।

---

12. निवास (2) (विहार2)

सावत्थी में, “भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता/चाहती हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।”

“जी, पूज्यवर,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान (बुद्ध) के पास केवल वही व्यक्ति आया जो उन्हें भिक्षा प्रदान करे।

फिर, जब वे तीन महीने बीत गए, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं उस स्थान के एक भाग में निवास कर रहा हूँ जहाँ मैं पूर्णतः प्रबुद्ध होने के बाद निवास करता था। मैंने इस प्रकार समझा है: ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत दृष्टिकोण कारण के रूप में, और गलत दृष्टिकोण का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही दृष्टिकोण कारण के रूप में, और सही दृष्टिकोण का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में, और गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है इच्छा कारण के रूप में, और इच्छा का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है विचार कारण के रूप में, और विचार का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) कारण के रूप में, और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। कारण के रूप में बोध।

"जब इच्छा शांत नहीं होती, विचार शांत नहीं होते, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है। [जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत नहीं होते, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है।] जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और बोध शांत हो जाते हैं, तब भी उसे कारण के रूप में जाना जाता है। अभी तक प्राप्त न हुए को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जब वह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब भी उसे कारण के रूप में जाना जाता है।"

---

13. एक प्रशिक्षु (सेक्खा बिना शिष्य)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'एक प्रशिक्षु, एक प्रशिक्षु।' प्रशिक्षु किस प्रकार होता है?" भगवान ने उत्तर दिया,

"हे भिक्षु, प्रशिक्षु का सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था धारण करने से ही प्रशिक्षु कहलाता है।"

---

14. उदय (1) (उप्पदा1 सं. उत्पद)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि प्रकट न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना प्रकट नहीं हो सकते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

15. उदय (2) (उप्पदा2 सं. उत्पद)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

16. शुद्धिकृत (1) (परिशुद्ध1)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), शुद्ध, निर्मल, उप्त्व रहित, यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

17. शुद्धिकृत (2) (परिशुद्ध2)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), शुद्ध, निर्मल, उप्त्व रहित, यदि उत्पन्न न हों तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

18. द कॉक्स पार्क (1) (कुक्कुटारामा1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद और पूज्य भद्दा पाटलिपुत्त के मुर्गे के उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य भद्दा एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से बोले,

“मित्र आनंद, कहते हैं, ‘अपवित्र जीवन, अपवित्र जीवन’। मित्र, अपवित्र जीवन क्या है?”

“वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी सूझबूझ उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न प्रशंसनीय है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: ‘मित्र आनंद, कहते हैं, “अपवित्र जीवन, अपवित्र जीवन”। मित्र, अपवित्र जीवन क्या है?”

“जी, मित्र।”

"हे मित्र, यह अष्टांगिक मार्ग ही अपवित्र जीवन है; अर्थात् गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (सती) और गलत समाधि अवस्था।"

---

19. द कॉक्स पार्क (2) (कुक्कुटारामा2)
पाटलिपुत्त में। "मित्र आनंद, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है और इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, कहा जाता है, "पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है और इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?" "

जी, मित्र।"

"हे मित्र, यह अष्टमार्ग ही ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/मोह) का नाश, मोह (मोह) का नाश: हे मित्र, यही ब्रह्मचर्य के पवित्र जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"

---

20. द कॉक्स पार्क (3) (कुक्कुटारामा3)
पाटलिपुत्त में। "मित्र आनंद, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' तो मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अनुयायी कौन है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?"
"वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न सराहनीय है। आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, ऐसा कहा जाता है, "पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य), पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य)।" मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का अनुयायी कौन है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का अंतिम लक्ष्य क्या है?
"जी, मित्र।"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। जो इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को धारण करता है, उसे पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का पालन करने वाला कहा जाता है।" वासना (राग) का विनाश (खाय \ क्षय), घृणा (दोसा\द्वेष) का विनाश (खाय \ क्षय), भ्रम (मोह) का विनाश (खाय \ क्षय): यह, मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) का अंतिम लक्ष्य है।

(iii) गलतता अनुभाग (मिकचट्टावागो)
21. गलत होना (मिच्चात्ता)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सही और गलत का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गलत क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, सही क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। इसे सही कहते हैं।"

---

22. हानिकारक राज्य (अकुशलधम्म सं. अकुशल-धर्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ क्या हैं? वे हैं: गलत दृष्टि (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इन्हें हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ क्या हैं? वे हैं: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इन्हें लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ कहा जाता है।"

---

23. मार्ग (1) (पतिपदा1 सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत मार्ग और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण (जैसा कि 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत मार्ग कहते हैं।

और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8)। इसे सही मार्ग कहते हैं।"

---

24. मार्ग (2) (पतिपदा 2 सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में। भिक्षुओं, चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, मैं कुटिल मार्ग की प्रशंसा नहीं करता। चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाला कुटिल मार्ग अपनाने के कारण वह लाभकारी धम्म (कुशल) की विधि को प्राप्त नहीं कर पाता। 24 और हे भिक्षुओं, कुटिल मार्ग क्या है? यह है: कुटिल दृष्टिकोण (जैसा कि 1 में है)... कुटिल समाधि अवस्था। इसे कुटिल मार्ग कहते हैं। चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाला कुटिल मार्ग अपनाने के कारण वह लाभकारी धम्म (कुशल) की विधि को प्राप्त नहीं कर पाता।

भिक्षुओं, चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, मैं कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाले कुटिल मार्ग की प्रशंसा करता हूँ। सही मार्ग। चाहे कोई गृहस्थ हो या दीक्षित (पबज्जित), जो सही ढंग से अभ्यास कर रहा हो, सही मार्ग का अनुसरण करने से उसे लाभकारी (कुशल) धम्म की विधि प्राप्त होती है। और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इसे ही सही मार्ग कहते हैं। चाहे कोई गृहस्थ हो या दीक्षित (पबज्जित), जो सही ढंग से अभ्यास कर रहा हो, सही मार्ग का अनुसरण करने से उसे लाभकारी (कुशल) धम्म की विधि प्राप्त होती है।

---

25. निम्न पुरुष (1) (असप्पुरिषा1 सं. असत्पुरुष)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें निम्न और श्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति क्या है? वह व्यक्ति जिसका दृष्टिकोण, इरादा, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, सती ध्यान और समाधि की अवस्था गलत है, उसे निम्न व्यक्ति कहते हैं। और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति क्या है?

वह व्यक्ति जिसका दृष्टिकोण, इरादा, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, ध्यान और समाधि की अवस्था सही है, उसे श्रेष्ठ व्यक्ति कहते हैं।"

---

26. निम्न पुरुष (2) (असप्पुरिषा2 सं. असत्पुरुष)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें निम्न व्यक्ति और निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। मैं तुम्हें श्रेष्ठ व्यक्ति और श्रेष्ठ व्यक्ति से भी श्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था में है। इसे निम्न व्यक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था, गलत ज्ञान, गलत मुक्ति। 25 इसे निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण सही है, सही इरादा सही है, सही वाणी सही है, सही कर्म सही है, सही आजीविका सही है, सही प्रयास सही है, सही ध्यान (सती) सही है, सही समाधि अवस्था सही है (देखें SN5.8)। इसे श्रेष्ठ व्यक्ति कहते हैं।"

और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण सही है... सही समाधि अवस्था, सही ज्ञान, सही मुक्ति (विमुक्ति)। यही वह व्यक्ति कहलाता है जो श्रेष्ठ व्यक्ति से श्रेष्ठ है।

---

27. घड़ा (कुंभ)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जैसे बिना सहारे का घड़ा आसानी से गिर जाता है, जबकि सहारे वाला घड़ा गिराना मुश्किल होता है, वैसे ही बिना सहारे का मन आसानी से गिर जाता है, जबकि सहारे वाले मन को गिराना मुश्किल होता है।

और हे भिक्षुओं, मन का आधार क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। यही मन का आधार है।

भिक्षुओं, जैसे बिना सहारे का घड़ा आसानी से गिर जाता है, वैसे ही बिना सहारे का मन गिराना मुश्किल होता है।"

---

28. समाधि (सम्मोहन) अवस्था
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें समाधि की श्रेष्ठ अवस्था, उसके आधार और सहायक तत्वों सहित सिखाऊंगा। 26 ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, समाधि की श्रेष्ठ अवस्था, उसके आधार और सहायक तत्व क्या हैं? वे हैं: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास और सही ध्यान (सती)। इन सात तत्वों से युक्त मन की एकाग्रता को ही समाधि की श्रेष्ठ अवस्था कहा जाता है, 'उसके आधार और सहायक तत्वों सहित'।"

---

29. वेदना
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये कौन सी तीन हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं।

भिक्षुओं, इन तीनों वेदनाओं की पूर्ण समझ प्राप्त करने के लिए अष्टमार्ग का अनुसरण करना चाहिए। अष्टमार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इन तीनों वेदनाओं की पूर्ण समझ प्राप्त करने के लिए अष्टमार्ग का अनुसरण करना चाहिए।"

---

30. उत्तिया
सावत्थी में। तब पूज्य उत्तिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान (बुद्ध) ने इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र बताए हैं। लेकिन वे पाँच सूत्र क्या हैं?'

"जी, जी, उत्तिया! ये पाँच सूत्र मैंने बताए हैं। वे पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने

वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ जो आकर्षक, प्यारी, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। ये पाँच सूत्र मैंने बताए हैं।

"आर्यमय अष्टांगिक मार्ग।" उत्तिया मार्ग का विकास इंद्रिय सुख के इन पाँच बंधनों को त्यागने के लिए किया जाता है। और आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इंद्रिय सुख के इन पाँच बंधनों को त्यागने के लिए किया जाता है।

(iv) अभ्यास अनुभाग (पतिपट्टिवग्गो)
31. अभ्यास (1) (पतिपत्ती1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही अभ्यास सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, गलत अभ्यास क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत अभ्यास कहते हैं।

और भिक्षुओं, सही अभ्यास क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे सही अभ्यास कहते हैं।"

---

32. अभ्यास (2) (पतिपट्टी2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत तरीके से अभ्यास करने वाले और सही तरीके से अभ्यास करने वाले के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और, भिक्षुओं, गलत तरीके से अभ्यास करने वाला कौन है? यहाँ व्यक्ति का दृष्टिकोण गलत है... समाधि की अवस्था गलत है। इसे गलत तरीके से अभ्यास करने वाला कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, सही तरीके से अभ्यास करने वाला कौन है? यहाँ व्यक्ति का दृष्टिकोण सही है, इरादा सही है, वाणी सही है, कर्म सही है, आजीविका सही है, प्रयास सही है, ध्यान (सती) सही है, समाधि की अवस्था सही है (देखें SN5.8)। इसे सही तरीके से अभ्यास करने वाला कहते हैं।" 27

---

33. उपेक्षित (विराद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग का त्याग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का त्याग किया है। जिन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का अनुसरण किया है।

और हे भिक्षुओं, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। जिन्होंने इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का त्याग किया है... जिन्होंने इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का अनुसरण किया है।"

---

34. आगे बढ़ना (परंगमा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, इन आठ धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से निकट तट से दूर तट तक जाने की प्रेरणा मिलती है। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निकट तट से दूर तट तक जाने की प्रेरणा मिलती है।" 29

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"मनुष्यों में बहुत कम लोग हैं

जो दूर तट तक जाते हैं।
बाकी लोग तो बस
किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

जब धर्म (मार्ग, नियम) की सही व्याख्या की जाती है,
तो जो लोग धर्म के अनुसार अभ्यास करते हैं,
वे ही
मृत्यु के उस क्षेत्र से परे जाते हैं जिसे पार करना इतना कठिन है। "

अंधकारमय गुणों को त्यागकर,
ज्ञानी व्यक्ति को प्रकाशमय गुणों का विकास करना चाहिए।
गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आकर,
जहाँ ध्यान में आनंद लेना कठिन हो

, वहाँ एकांत में उसे ध्यान में आनंद की खोज करनी चाहिए।
इंद्रिय सुखों को त्यागकर,
कुछ भी न रखते हुए, ज्ञानी व्यक्ति को
मानसिक विकारों से स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।

जिनके मन
ज्ञान के कारकों में अच्छी तरह विकसित हैं, जो अनासक्ति के माध्यम से आसक्ति के त्याग में ध्यान में
आनंद पाते हैं : वे विकारमुक्त प्रकाशमान व्यक्ति संसार में पूर्णतः विसर्जित हो जाते हैं।

---

35. वैराग्य (1) (समन्ना1 सं. श्रामण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वैराग्य और उसके फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वैराग्य क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही वैराग्य कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, वैराग्य के फल क्या हैं? सोतपत्ति (सात जन्मों में निर्वाण), एक जन्म में निर्वाण (सकदागामी), अनागमी (इस जीवन में निर्वाण), अरहंतत्व (पहले से ही प्राप्त निर्वाण)। इन्हें ही वैराग्य के फल कहते हैं।"

---

36. वैराग्य (2) (समन्ना2 सं. श्रामण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वैराग्य और वैराग्य के उद्देश्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वैराग्य क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही वैराग्य कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, वैराग्य का उद्देश्य क्या है? काम (राग) का नाश (खयाय/क्षय), घृणा (दोष/द्वेष) का नाश (खयाय/क्षय), मोह (मोह) का नाश (खयाय/क्षय)।
यही वैराग्य का उद्देश्य कहलाता है।"

---

37. ब्राह्मणत्व (1) (ब्राह्मन्ना1 सं. ब्राह्मण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणत्व के फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही ब्राह्मणत्व कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व के फल क्या हैं? (जैसा कि 35 में है) सोतापत्ति का फल, एक बार पुनर्जन्म का फल, अनजन्म का फल, अरहंतत्व का फल। इन्हें ही ब्राह्मणत्व के फल कहते हैं।"

---

38. ब्राह्मणत्व (2) (ब्राह्मण्ण2 सं. ब्राह्मण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही ब्राह्मणत्व कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व का लक्ष्य क्या है? काम (राग) का नाश, घृणा (दोष/द्वेष) का नाश, मोह (मोह) का नाश। यही ब्राह्मणत्व का लक्ष्य कहलाता है।"

---

39. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (1) (ब्रह्मचर्य1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्रह्मचर्य जीवन और उसके फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इसे ब्रह्मचर्य जीवन कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन के फल क्या हैं? (जैसा कि 35 में है) सोतापत्ति का फल, एक बार पुनर्जन्म का फल, अनजन्म का फल, अरहंतत्व का फल।" इन्हें ब्रह्मचर्य जीवन के फल कहा जाता है।

---

40. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (2) (ब्रह्मचर्य2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्रह्मचर्य जीवन और उसके उद्देश्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही ब्रह्मचर्य जीवन कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश। इसे ही ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य कहते हैं।

(v) अन्य संप्रदायों के तपस्वी धारा 30 (अन्नतित्तियपेय्यलावग्गो)
41. कामवासना का लुप्त होना (रागवीरगा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'हे मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' - तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन कामवासना (राग) के नाश के लिए व्यतीत किया जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, हे मित्रों, क्या कामवासना के नाश का कोई मार्ग है?' - तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, कामवासना के नाश का मार्ग है।'"

"भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है, वह कौन सा तरीका है जिससे कामवासना दूर होती है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही वह मार्ग है, यही वह तरीका है जिससे कामवासना दूर होती है। भिक्षुओं,

इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

42-48. बंधनों का त्याग, इत्यादि (संयोजनप्पहनादि)

भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'हे मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?'
- तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, बंधनों के त्याग के लिए... अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) के उन्मूलन के लिए... मार्ग के पूर्ण ज्ञान के लिए... दोषों के नाश (खय/क्षय) के लिए... सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति के लिए... ज्ञान और दृष्टि के लिए... आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के लिए भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।'

"तो, भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, मित्रों, क्या आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) अंतिम निर्वाण प्राप्त करने का कोई मार्ग है?' - तो इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: मित्रों, आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) अंतिम निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है, वह तरीका क्या है जिससे आसक्ति रहित होकर परम निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है? वह है आर्य अष्टांगिक मार्ग; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, यही तरीका है जिससे आसक्ति रहित होकर परम निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।

भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

(vi) सूर्य पुनरावृति श्रृंखला (सुरियापेय्यलावग्गो)
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित
49. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। 32 जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। और

एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष में परिपक्व होती है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

50.-55 सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग के उदय का अग्रदूत है, अर्थात् सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (योनिषे) में सिद्धि। 33 जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिषे) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और जो भिक्षु ध्यान (योनिषे) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में निपुण भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

56 (1) अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस. कल्याण-मित्र)

भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसका कोई अच्छा मित्र हो, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

57-62. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)

भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग के उदय का अग्रदूत है, अर्थात् सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि। जब एक भिक्षु ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और जो भिक्षु ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु मानसिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(vii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (1)

(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

63. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक होता है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो यह अपेक्षित है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

" और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

64-69. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)

भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (योनिसो) में सिद्धि... (जैसा कि 63 में है)... वह सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

70. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक होता है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का अच्छा मित्र होता है, तो यह अपेक्षित है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

" और एक भिक्षु जिसका अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

71-76. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा (इच्छा) में सिद्धि... आत्म (स्वयं) में सिद्धि... दृष्टि (दृष्टि) में सिद्धि... अप्पमदा (सचेतनता) में सिद्धि... ध्यान (योनि) में सिद्धि... (जैसा कि 70 में बताया गया है)... वह सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य काम (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनि) में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(viii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (2)
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

---

77. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण/नियम) नहीं दिखता जिसके द्वारा अजन्मा आर्य अष्टांगिक मार्ग उत्पन्न होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है, जितना कि यह: अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

78-83. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) दिखाई नहीं देता जिसके द्वारा अजन्मे आर्य अष्टांगिक मार्ग का उद्भव होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है जितना कि इस धर्म के द्वारा: शील में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... अप्पमदा में सिद्धि... ध्यान में सिद्धि...
(जैसा कि 77 में है)... वह सही समाधि अवस्था प्राप्त करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

84. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) नहीं दिखता जिसके द्वारा अजन्मा आर्य अष्टांगिक मार्ग उत्पन्न होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है, जितना कि यह: अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। वह सही

समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

85-90 सद्गुण आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) दिखाई नहीं देता जिसके द्वारा अजन्मे आर्य अष्टांगिक मार्ग का उद्भव होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इतनी प्रभावी ढंग से होता है जितना कि इस धर्म के द्वारा: शील में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... अप्पमद में सिद्धि... ध्यान में सिद्धि...

(जैसा कि अनुच्छेद 84 में है)... इससे वह सही समाधि अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य राग, द्वेष और मोह का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ix) प्रथम गंगा पुनरावृति श्रृंखला 34
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

---

91. पूर्व की ओर झुका हुआ (1) (पैसिननिन्ना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, उसी प्रकार जो भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है। और हे भिक्षुओं , एक भिक्षु

अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कैसे करता है जिससे वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

92-96. पूर्व की ओर झुका हुआ (2-6) (पैसिननिन्ना)
"भिक्षुओं, जिस प्रकार यमुना नदी... अचिरवती नदी... सरभु नदी... माही नदी... और जितनी भी बड़ी नदियाँ हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु, माही - सभी पूर्व दिशा की ओर झुकती हैं, उसी प्रकार जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"
(अनुच्छेद 91 के अनुसार पूर्ण।)

97-102. सागर (समुद्दानिन्ना)
"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी... और जितनी भी बड़ी नदियाँ हैं... वे सभी समुद्र की ओर झुकती हैं, उसी प्रकार जो भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास और विकास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"

(अनुच्छेद 91-96 के अनुसार पूर्ण।)

(x) दूसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

103-108 (6) पूर्व की ओर झुका हुआ + 109-114 महासागर

(इस संस्करण में 103-108, 91-96 के समान हैं, और 109-114, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है और उसका अभ्यास करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।"

(xi) तीसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(iii) अमरता की अवस्था इसके मूल स्वरूप के रूप में

115-220 पूर्व की ओर झुका हुआ + 121-126 महासागर

(इस संस्करण में 115-120, 91-96 के समान हैं, और 121-126, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित और पोषित करता है, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य अमरता है, अंतिम लक्ष्य अमरता है।"35

(xii) चौथी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(iv) निर्वाण संस्करण की ओर झुकाव

127-132 पूर्व की ओर झुकाव + 133-138 महासागर

(इस संस्करण में 127-132, 91-96 के समान हैं, और 133-138, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित और पोषित करता है, जो निर्वाण की ओर अग्रसर, ढलान और झुकाव रखती है।"

(xiii) सतर्कता धारा 36 (अप्पमदा-पय्याला-वाग्गो)
139. तथागत
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित,

सावत्थी में: "भिक्षुओं, चाहे कितने भी प्राणी हों - चाहे वे बिना पैरों वाले हों, दो पैरों वाले हों, चार पैरों वाले हों या अनेक पैरों वाले हों, चाहे वे सजीव हों या निराकार, चाहे वे बोधगम्य हों, अपज्ञेय हों या न बोधगम्य हों - तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, उनमें श्रेष्ठ घोषित किए गए हैं। इसी प्रकार, चाहे कितनी भी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाएँ हों, वे सभी सजगता (अप्पमदा) में निहित हैं, सजगता की ओर अभिसरित होती हैं, और सजगता उनमें श्रेष्ठ घोषित की गई है। 37 जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक सजग भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है?" यहां भिक्षु, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होते हैं। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामवासना (राग) का निवारण

... "यहाँ, भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है...."

(iii) अमरता को आधार मानते हुए

... "यहाँ, भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य अमरता है और अंतिम लक्ष्य अमरता है।"

(iv) निर्वाण संस्करण की ओर झुकाव

... "यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और प्रवृत्त होती है...."

(नोट: नीचे दिए गए प्रत्येक सूत्र, 140-148, की व्याख्या उपरोक्त सूत्र 139 में वर्णित चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)

---

140. पदचिह्न (पाड़ा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं और हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, अर्थात् आकार के लिहाज से, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ सजगता (अप्पमदा) में निहित होती हैं, सजगता पर केंद्रित होती हैं और सजगता उनमें सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है। (जैसा कि 8 में है)

---

141. रूफ पीक (कुटा)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार शिखर वाले भवन की सभी कड़ियाँ छत के शिखर की ओर झुकती हैं, ढलान बनाती हैं, और शिखर पर आकर मिलती हैं, और छत के शिखर को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार (जैसा कि 140 में है)"38

---

142. जड़ें
"भिक्षुओं (साधुओं) को, जिस प्रकार सभी सुगंधित जड़ों में काली ओरिस को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

143. हार्टवुड
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी सुगंधित लकड़ियों में लाल चंदन को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

144. चमेली
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी सुगंधित फूलों में चमेली को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

145. सम्राट
"भिक्षु (साधु), जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र घुमाने वाले राजा के अधीन होते हैं, और चक्र घुमाने वाले राजा को उनका मुखिया घोषित किया जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

146. चंद्रमा (कैंडिमा बिना कैंड्रामा)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती, और चंद्रमा की चमक को उनकी प्रमुख चमक घोषित किया जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

147. सूर्य
भिक्षुओं, जैसे शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ते हुए अपनी चमक, किरणों और विकिरण से अंतरिक्ष से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, ठीक उसी प्रकार...

---

148. कपड़ा
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी बुने हुए वस्त्रों में कसीयन वस्त्र श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाएँ सजगता में निहित होती हैं, सजगता पर केंद्रित होती हैं, और सजगता ही उनमें श्रेष्ठ है। जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक सजग भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सता) अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(xiv) कठोर कर्म (बलकारनिया)
(प्रत्येक सूत्र की व्याख्या उसी चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)
149. कठोर (बाला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी कठिन कर्म पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से जुड़े होते हैं, उसी प्रकार, शील पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं।

और हे भिक्षुओं, सद्‌गुण पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था का विकास करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार, सद्‌गुण पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं।"

---

150. बीज (बीजा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी प्रकार के बीज और पौधे पृथ्वी पर आधारित होकर बढ़ते, विकसित होते और फैलते हैं, उसी प्रकार, शील के आधार पर, भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करते हैं और इस प्रकार लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि और विस्तार प्राप्त करते हैं। भिक्षु ऐसा

कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि, विकास और विस्तार प्राप्त करता है।

---

151. नागा
"हिमालय पर्वतों के राजा नागों पर आधारित भिक्षु अपने शरीर का पोषण करते हैं और बल प्राप्त करते हैं। 39 जब वे अपने शरीर का पोषण कर लेते हैं और बल प्राप्त कर लेते हैं, तब वे सरोवरों में प्रवेश करते हैं। सरोवरों से वे झीलों में, फिर धाराओं में, फिर नदियों में और अंत में सागर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे महानता और शरीर की विशालता प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, शील पर आधारित भिक्षु, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं, और इस प्रकार वे लाभकारी अवस्थाओं में महानता और विशालता प्राप्त करते हैं।

"और एक भिक्षु ऐसा कैसे करता है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में महानता और विस्तार प्राप्त करता है।

---

152. वृक्ष (रुक्खा)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक वृक्ष पूर्व दिशा की ओर झुका हुआ है। यदि उसे जड़ से काट दिया जाए, तो वह किस दिशा में गिरेगा?" [48]

"जिस भी दिशा में वह झुका हुआ है, हे पूज्यवर, उसी दिशा में गिरेगा।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन-पोषण करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

" "और एक भिक्षु ऐसा कैसे करता है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

---

153. घड़ा (कुंभ)
भिक्षुओं, जिस प्रकार उल्टा किया हुआ घड़ा अपना पानी गिरा देता है और वापस नहीं लेता, उसी प्रकार जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह अकुशल (अशुभ) अवस्थाओं का त्याग कर देता है और उन्हें वापस नहीं लेता।

और भिक्षु ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है ताकि वह अकुशल (अशुभ) अवस्थाओं का त्याग कर देता है और उन्हें वापस नहीं लेता।

---

154. स्पाइक (सुका)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि धान या जौ की बाली सही दिशा में रखी हो और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। यह संभव है कि वह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल दे। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सही दिशा में रखी है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, सही दृष्टि और मार्ग के सही विकास वाले भिक्षु अज्ञान को भेदकर, सच्चे ज्ञान को जागृत करके निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उनकी दृष्टि सही दिशा में है।

और भिक्षु ऐसा कैसे करते हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु उचित दृष्टि से, मार्ग के उचित विकास के साथ, अज्ञान को भेदता है, सच्चे ज्ञान को जागृत करता है और निर्वाण को प्राप्त करता है।"

---

155. आकाश (अकासा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार आकाश में विभिन्न प्रकार की हवाएँ चलती हैं - पूर्वी हवाएँ, पश्चिमी हवाएँ, उत्तरी हवाएँ, दक्षिणी हवाएँ, धूल भरी हवाएँ और धूल रहित हवाएँ, ठंडी हवाएँ और गर्म हवाएँ, हल्की हवाएँ और तेज़ हवाएँ - उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो उसके लिए ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सती) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; चार सही प्रयास विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; पाँच आध्यात्मिक क्षमताएँ विकास द्वारा पूर्ण हो जाती हैं; पाँच शक्तियाँ विकास द्वारा पूर्ण हो जाती हैं; ज्ञान के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

और यह कैसे होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार जब एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तब उसके लिए ध्यान के चार आधार... ज्ञानोदय के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

---

156. वर्षा बादल (1) (मेघा1)
भिक्षुओं, जैसे ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब धूल और गंदगी का ढेर उमड़ता है, तो असमय आने वाला एक बड़ा वर्षा बादल उसे तितर-बितर कर देता है और वहीं शांत कर देता है; ठीक उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो जब भी कोई बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, तो वह उन्हें वहीं तितर-बितर कर देता है और शांत कर देता है।

और ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। [51] हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, ताकि जब भी अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ उत्पन्न हों, तो वह उन्हें तुरंत दूर कर दे और उनका निवारण कर दे।

157. वर्षा बादल (2) (मेघा2)
भिक्षुओं, जैसे जब कोई बड़ा वर्षा बादल उठता है, तो तेज हवा उसे तितर-बितर कर शांत कर देती है; उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो जब भी कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न होती है, तो वह उसे तितर-बितर करने के लिए प्रार्थना करता है।

और ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (ध्यान) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है ताकि जब भी कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न हो, तो वह उसे तितर-बितर करने के लिए प्रार्थना करे।

158. जहाज (नवा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक समुद्री जहाज है जिसके रस्सियाँ छह महीने तक पानी में रहने के कारण घिस चुकी हैं। 41 शीत ऋतु में उसे सूखी ज़मीन पर खींचा जाता है और हवा व धूप से उसकी रस्सियाँ और भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। बारिश के बादल से भीगने पर रस्सियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं। ठीक इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो उसके बंधन आसानी से टूटकर सड़ जाते हैं।

"ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे उसके बंधन आसानी से टूटकर नष्ट हो जाते हैं।

159. अतिथि गृह (अगांटुका)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक अतिथिगृह है। 42 पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से लोग आकर वहाँ ठहरते हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध आकर वहाँ ठहरते हैं। इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो वह दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा उन धर्मों (गुणों, नियमों) को पूर्णतः समझ लेता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का त्याग करता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा त्यागा जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का अहसास करता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा अहसास किया जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका दिव्य ज्ञान द्वारा विकास किया जाना चाहिए।

और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए? यह कहा जाना चाहिए: पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) आसक्ति (उपादान संस्कृत आसक्ति) के अधीन हैं। कौन से पाँच? आसक्ति के अधीन शरीर-रूप स्कंध (खंड संस्कृत) है, (इसी प्रकार) संवेदना (वेदना), अनुभूति (संज्ञा संस्कृत), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विज्ञान संस्कृत) (जैसा कि खंड 56 में है) आसक्ति के अधीन हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा पूर्णतः समझा जा सकता है।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा किन धर्मों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और अस्तित्व (भावो) के लिए तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। ये वे धर्म हैं जिनका त्याग दिव्य ज्ञान द्वारा करना चाहिए।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा किन धर्मों का अनुभव करना चाहिए? सच्चा ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। ये वे धर्म हैं जिनका अनुभव दिव्य ज्ञान द्वारा करना चाहिए।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा विकसित किए जाने वाले धर्म क्या हैं? समभाव और अंतर्दृष्टि। ये वे धर्म हैं जो दिव्य ज्ञान द्वारा विकसित किए जाने हैं।

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों को पूर्णतः समझ लेता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए... वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका विकास दिव्य ज्ञान द्वारा किया जाना चाहिए? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष

की अवस्था में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों को पूर्णतः समझ पाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए... वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका दिव्य ज्ञान द्वारा विकास किया जाना चाहिए।

---

160. नदी (नाडी)
"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जब गंगा नदी पूर्व की ओर ढलानदार होती है, तो लोगों की एक बड़ी भीड़ फावड़ा और टोकरी लेकर यह सोचकर आती है: 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर ढलानदार बना देंगे।' 43 भिक्षुओं, क्या आपको लगता है कि लोगों की वह बड़ी भीड़ गंगा नदी को पश्चिम की ओर ढलानदार बना पाएगी?"

"नहीं, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर ढलानदार है, और इसे पश्चिम की ओर ढलानदार बनाना आसान नहीं है। लोगों की वह बड़ी भीड़ केवल थकान और कष्ट ही पाएगी।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'हे श्रेष्ठ, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दें? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हैं? आइए, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लें और पुण्य कर्म करें।' वास्तव में, हे भिक्षुओं, जब वह भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है, तो उसके लिए साधना छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसका मन एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः उसके लिए निम्न लोक में लौटना असंभव है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कैसे करता है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (संत) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(xv) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
161. खोज (एसाना)
सावत्थी में

(i. दिव्य ज्ञान (अभिन्न))

"भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, और ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) के पवित्र जीवन की खोज। 44 ये तीन खोजें हैं। इन तीनों खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।

" "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (सता) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। इन तीनों खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।"

... "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। ...

"यह कौन सा आर्य अष्टांगिक मार्ग है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य (अमरता) है और अंतिम लक्ष्य (अमरता) है।" ... "यह कौन सा

आर्य अष्टांगिक मार्ग है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और प्रवृत्त होती है।" इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए

किया जाना है।

निम्नलिखित उप-खंडों (ii-iv) में से प्रत्येक को दिव्य ज्ञान पर उप-खंड में अपनाई गई विधि के अनुसार विस्तृत किया जाना है।

(ii. पूर्ण बोध)

"भिक्षुओं, ये तीन खोज हैं। वे तीन क्या हैं? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोज हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के पूर्ण बोध के लिए किया जाना है।"

(iii. पूर्ण विनाश)

"भिक्षुओं, ये तीन खोज हैं। वे तीन क्या हैं? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोज हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए किया जाना है।"...

(iv. त्याग)

"भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों खोजों के त्याग के लिए किया जाना है।"...

(नोट: निम्नलिखित प्रत्येक सूत्र की व्याख्या इस सूत्र 161 में प्रयुक्त चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)

---

162. भेदभाव (विधा)
भिक्षुओं, ये तीन भेद हैं। कौन से तीन? 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं समतुल्य हूँ' और 'मैं हीन हूँ'। ये तीन भेद हैं। इन तीनों भेदों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग

विकसित किया जाना चाहिए। "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षु, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (संध्या 5.8 देखें) विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को इन तीनों भेदों के दिव्य ज्ञान के लिए विकसित किया जाना चाहिए... ताकि इनका त्याग किया जा सके।"

---

163. अशुद्धियाँ (आसव)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के दोष हैं। कौन से तीन? कामुकता का दोष, भाव का दोष और अज्ञान का दोष। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

164. अस्तित्व (भाव)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के भाव होते हैं। वे कौन से तीन हैं? इंद्रिय-मंडल का भाव, सजीव सत्व का भाव और निराकार सत्व का भाव। ये तीन प्रकार के भाव हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार के भावों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनका त्याग करने के लिए किया जाना चाहिए।

---

165. दुख (दुख)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के दुख होते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? दर्द के कारण दुख, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के कारण दुख, और परिवर्तन के कारण दुख। 45 ये तीन प्रकार के दुख हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार के दुखों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

166. बांझपन (खिला)

भिक्षुओं, तीन प्रकार की बांझपन होती है। कौन सी तीन? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), और मोह (मोह)। ये तीन प्रकार की बांझपन हैं। इन तीनों प्रकार की बांझपन का दिव्य ज्ञान (अभिन) प्राप्त करने, इन्हें पूरी तरह समझने, इनका पूर्ण विनाश करने और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

167. दाग (माला)
भिक्षुओं, ये तीन दोष हैं। कौन से तीन? कामवासना (राग) का दोष, द्वेष (दोष/द्वेष) का दोष और मोह (मोह) का दोष। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण नाश (क्षय/अत्याचार) के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

168. परेशानियाँ (निघा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के कष्ट होते हैं। वे कौन से तीन हैं? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), और मोह (मोह)। ये तीन प्रकार के कष्ट हैं। इन तीनों प्रकार के कष्टों का दिव्य ज्ञान (अभिन) प्राप्त करने, इन्हें पूरी तरह समझने, इनका पूर्ण विनाश करने और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

169. संवेदनाएँ (वेदना)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये कौन सी तीन हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक, न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं। इन तीनों वेदनाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

170. लालसा (तन्हा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा और मृत्यु की तृष्णा। ये तीन प्रकार की तृष्णाएँ हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार की तृष्णाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए। आर्य

अष्टांगिक मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन प्रकार की तृष्णाओं (तन्हा संस. तृष्णा) के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

---

171. प्यास (ताशिना सं. तृष्णा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार की प्यास होती है। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की प्यास, अस्तित्व की प्यास (भावो), और मृत्यु की प्यास। ये तीन प्रकार की प्यास हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों प्रकार की प्यासों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए। आर्य

अष्टांगिक मार्ग क्या है? भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों प्रकार की प्यासों के दिव्य ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (क्षय/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

(xvi) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
सावत्थी में।
172. बाढ़ (ओघा)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार की बाढ़ें हैं। कौन सी चार? कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), विचारों की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये चार प्रकार की बाढ़ें हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों प्रकार की बाढ़ों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

173. बंधन (योग)
भिक्षुओं, ये चार बंधन हैं। कौन से चार? कामुकता का बंधन, अस्तित्व का बंधन (भावो), दृष्टियों का बंधन और अज्ञान का बंधन (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये चार बंधन हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

174. आसक्ति (उपादान)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार के आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या हैं? कौन से चार? इंद्रिय सुख से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और व्रतों से आसक्ति, और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। ये चार प्रकार की आसक्ति हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों प्रकार की आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के दिव्य ज्ञान (अभिन्य) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

175. गांठें (गंथा सं. ग्रंथी)
भिक्षुओं, ये चार गांठें हैं। कौन सी चार? लोभ की शारीरिक गांठ, द्वेष की शारीरिक गांठ, नियमों और प्रतिज्ञाओं की विकृत समझ की शारीरिक गांठ, और सत्य के हठधर्मी दावे का पालन करने की शारीरिक गांठ। 47 ये चार गांठें हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चार गांठों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना है।

---

176. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
भिक्षुओं, ये सात मूल प्रवृत्तियाँ (अनुसय) हैं। कौन सी सात? काम (राग) की ओर मूल प्रवृत्ति (अनुसय, संस्कृत: अनुषय), घृणा की ओर मूल प्रवृत्ति, विचारों की ओर मूल प्रवृत्ति, संदेह की ओर मूल प्रवृत्ति, अहंकार की ओर मूल प्रवृत्ति, अस्तित्व की लालसा (भावो) की ओर मूल प्रवृत्ति, और अज्ञान की ओर मूल प्रवृत्ति (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या)। ये सात मूल प्रवृत्तियाँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन सात मूल प्रवृत्तियों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

177. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। ये पाँच कौन सी हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाले और उत्तेजक होते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

178. अवरोध (निवारण)
भिक्षुओं, ये पाँच बाधाएँ हैं। कौन सी पाँच? कामुक इच्छा की बाधा, द्वेष की बाधा, आलस्य और सुस्ती की बाधा, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा, और संदेह की बाधा। ये पाँच बाधाएँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच बाधाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

179. आसक्ति के अधीन समुच्चय (उपदानक्खन्ध)
भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (कन्ध संस्कृत: स्कन्ध) हैं जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप (आसक्ति के अधीन), संवेदना (आसक्ति के अधीन), अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: आसक्ति के अधीन), संस्कार (आक्रामक व्यवहार) (आसक्ति के अधीन), चेतना (आसक्ति के अधीन)। ये पाँच स्कन्ध (आसक्ति के अधीन) हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच स्कन्ध (आसक्ति के अधीन) के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

180. निचले बंधन (ओरंभागिया)
भिक्षुओं, ये पाँच निम्न बंधन हैं। 49 वे पाँच कौन से हैं? शरीर-बोध (सक्कय-दित्थी), संदेह, नियमों और व्रतों की विकृत समझ, कामुक इच्छा, द्वेष। ये पाँच निम्न बंधन हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच निम्न बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

181. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं। 50 वे पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं। इन पाँच उच्च कोटि के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।

"यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (जैसा कि 8 में है) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। कौन से पाँच?... ... इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

"यह कौन सा आर्य अष्टांगिक मार्ग है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है... जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, जिसका गंतव्य (मृत्युस्थल) अमरता है और जिसका अंतिम लक्ष्य (मृत्युस्थल) अमरता है... जो निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को इन पाँच उच्च बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए।

अध्याय 2: ज्ञानोदय के कारकों पर संबंधित प्रवचन (बोज्झंगसाम्युत्त) {साम्युत्त-46}
(i) पर्वतीय भाग (पब्बतवाग्गो)
182. हिमालय (हिमवंता)
सावत्थी में, "भिक्षु (साधु), पर्वतों के राजा हिमालय, नागों पर आधारित होकर अपने शरीर का पोषण करते हैं और बल प्राप्त करते हैं। 51 जब वे अपने शरीर का पोषण कर लेते हैं और बल प्राप्त कर लेते हैं, तो वे सरोवरों में प्रवेश करते हैं। सरोवरों से वे झीलों में, फिर धाराओं में, फिर नदियों में और अंत में सागर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे महानता और शरीर की विशालता प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित होकर, सद्‌गुणों में स्थापित होकर, ज्ञान के सात कारकों का विकास और संवर्धन करते हैं, और इस प्रकार वे लाभकारी अवस्थाओं में महानता और विशालता प्राप्त करते हैं। 52

"और सद्‌गुणों पर आधारित होकर, सद्‌गुणों में स्थापित भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास कैसे करते हैं?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह वीर्य शक्ति (वीर्य) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह आनंद (पीति) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
वह समाधि (सम्मोहन) की अवस्था को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, ज्ञान के सात तत्वों को विकसित करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में महानता और विस्तार प्राप्त करता है।

---

183. शरीर का स्वरूप (काया)
(पाँच बाधाएँ और सात ज्ञानोदय कारक)

(i. बाधाओं के लिए पोषक तत्व)

श्रावस्ती में: "भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर, पोषक तत्वों से पोषित होकर, पोषक तत्वों पर निर्भर रहता है और पोषक तत्वों के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार पाँच बाधाएँ, पोषक तत्वों से पोषित होकर, पोषक तत्वों पर निर्भर होकर ही रह सकती हैं और पोषक तत्वों के बिना नहीं रह सकतीं। 53

"और हे भिक्षुओं, अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषक तत्व क्या है? हे भिक्षुओं, सौंदर्य का संकेत (निमित्त, कारण) है: 54 बार-बार उस पर ध्यान न करने से अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषक तत्व प्राप्त होता है।"

हे भिक्षुओं, अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, अप्रियता का संकेत (निमित्त, कारण) है: बार-बार उस पर ध्यान न देने से अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और उत्पन्न दुर्भावना बढ़ती और फैलती है। हे भिक्षुओं, अजन्मी

आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, असंतोष, सुस्ती, आलस्यपूर्ण अंगड़ाई, भोजन के बाद उनींदापन, मन की सुस्ती है: बार-बार ध्यान न देने से अजन्मी आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती बढ़ती और फैलती है।

भिक्षुओं, अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, मन की अस्थिरता है: 57 इस पर बार-बार ध्यानहीन चेतना (मानसिकारा) करने से अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण होता है।

भिक्षुओं, अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, संदेह के आधार धर्म (गुण, नियम) हैं: उन पर बार-बार ध्यानहीन चेतना (मानसिकारा) करने से अजन्मे संदेह उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण होता है।

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार पाँच बाधाएँ भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहकर पोषण के बिना जीवित नहीं रह सकतीं।

(ii. ज्ञान के कारकों के लिए पोषण)"

भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार ज्ञान के सात तत्व भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहते हैं और पोषण के बिना नहीं रह सकते।

और हे भिक्षुओं, ध्यान के अजन्मे ज्ञान तत्व (सती) के उत्पन्न होने और उत्पन्न ज्ञान तत्व (सती) के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो ध्यान के ज्ञान तत्व का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान करना (मानसिकारा) अजन्मे ज्ञान तत्व (सती) के उत्पन्न होने और उत्पन्न ज्ञान तत्व (सती) के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे धम्मविचय तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके प्रतिरूप हैं: 59 इन सभी का बार-बार ध्यान करना अजन्मे धम्मविचय तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है। भिक्षुओं, ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव

और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? ऊर्जा-शक्ति के उत्पन्न ज्ञानोदय कारक का विकास? हे भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व (धातु), प्रयास का तत्व (धातु), परिश्रम का तत्व (धातु) मौजूद हैं: 60 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण जागरूकता (मानसिकारा) देना ऊर्जा-शक्ति के अप्रकट ज्ञानोदय कारक के उदय और उत्पन्न ऊर्जा-शक्ति कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) के उद्भव और प्रकट आनंदमय प्रबोध के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंदमय प्रबोध का आधार हैं: उन पर बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अजन्मे आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) का उद्भव होता है और प्रकट आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता प्राप्त होती है।

भिक्षुओं, अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, शरीर की शांति और मन की शांति (पासद्धि/प्रशब्धि) है: 61 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण चेतना (मानसिकारा) प्रदान करना अजन्मे शांति तत्व के उद्भव और विकसित शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उद्भव और विकसित समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) और अविघटन का कारण (निमित्त) मौजूद हैं: 62 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण जागरूकता (मानसिकारा) देना समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अ-उत्पन्न ज्ञान कारक के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न ज्ञान कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान करना (मानसिकारा) समभाव (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार ये सात ज्ञान तत्व भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहते हैं और पोषण के बिना नहीं रह सकते।

---

184. सद्गुण (शील) - ज्ञानोदय के सात कारक

सात ज्ञानोदय कारक (संबोज्जंग)
"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो सद्गुणों में निपुण (शील-संपन्न), समाधि अवस्था में निपुण (सम्मोहन) हैं, ज्ञान में निपुण (नाना) हैं, मुक्ति में निपुण (विमुक्ति सं. विमुक्ति) हैं, मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में निपुण (विमुक्ति-नाना-दस्सन) हैं: मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं के दर्शन मात्र ही आशीर्वाद हैं; उनका श्रवण करना... उनके पास जाना... उनकी सेवा करना... उनका स्मरण करना... उनके पीछे दीक्षा लेना (पबज्जा) भी सहायक है, मैं कहता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि जब कोई ऐसे भिक्षुओं से धम्म (मार्ग, नियम) सुनता है तो वह दो प्रकार के वैराग्यों - शरीर और मन के वैराग्य - द्वारा निवास करता है। इस प्रकार वैराग्य में निवास करते हुए, वह उस धम्म का अभ्यास करता है और उस पर चिंतन भी करता है।

1. ध्यान (सती) ज्ञानोदय कारक (सती-संबोज्जंगो) : "जब भी (यस्मिम) समय (समये), भिक्षु (भिक्षु), इस प्रकार विमुख (वुपकत्थो) निवास करने वाला (विहारन्तो) भिक्षु (भिक्षु) उस धम्म (मार्ग) का अभ्यास (अनुस्सरति) करता है और उस पर चिंतन (अनु-वितक्केति) करता है, उस (तस्मिम) अवसर (समये) पर भिक्षु में ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक (संबोजंगो) जागृत (अरद्धो) होता है; उस (तस्मिम) अवसर (समये) पर भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक (संबोजंग) का अहसास (भवेति) करता है; उस अवसर पर ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक (संबोजंग) का अहसास (भावना) भिक्षु में पूर्णता (परिपुरिम) की ओर अग्रसर (गच्छति) होता है।" अतः, उस धम्म (मार्ग) में ध्यान करते हुए (विहारन्तो), ध्यान करते हुए (सतो), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसका परीक्षण (पविचिनाति), उस पर ध्यान लगाते हुए (पविचराति), उसका भली-भांति अध्ययन (परिविमांसामपज्जति) करना।
(नोट: इसका अर्थ है किसी अधिकृत स्रोत जैसे www.dhamma.org आदि से ध्यान विधि, जैसे विपश्यना, समाथा आदि सीखना, फिर उसे दैनिक अभ्यास में तथा सभी भावों और इच्छाओं के दौरान लागू करना; अच्छे या बुरे भावों के अंतर्निहित कारण-प्रभाव संबंधों को समझना और अंततः ध्यान से उन्हें शांत करना; फिर जागरूकता के संलयन/पृथक्करण का अनुभव करना और मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर शुद्ध प्रकाश (पन्ना) को महसूस करना, जो पुराने समय के कांच के दीपक की लौ के समान है)। 2. विवेक

और ज्ञान का कारक (धम्मविचय-संबोज्जंगो) जब भी कोई भिक्षु उस धम्म (मार्ग) पर ध्यान (सतो) लगाते हुए, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसका अध्ययन करता है, उस पर मनन करता है और उसका गहन विश्लेषण करता है, तब उस भिक्षु में धम्मविचय का ज्ञान जागृत होता है; उस समय वह धम्मविचय के ज्ञान का अनुभव करता है; उस समय धम्मविचय के ज्ञान की अनुभूति उसमें पूर्ण होती है। जब वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उस धम्म का अध्ययन करता है, उस पर मनन करता है और उसका गहन विश्लेषण करता है, तब उसकी ऊर्जा शक्ति निरंतर जागृत होती है। (नोट

(1 से जारी): भावनाओं के शांत होने और जागृत होने के बाद...) प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि [मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर], अब इसका उपयोग अच्छे और बुरे भावों को समझने/पहचानने के लिए किया जाता है। वास्तव में, मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर की प्रबुद्धता के अलावा सभी संवेदनाएँ और अवस्थाएँ बुरी हैं और उन्हें शांत करने की आवश्यकता है।

3. ऊर्जा शक्ति (वीर्य)/प्रयास ज्ञान कारक (वीर्य-संबोज्झंगो) : "जब भी कोई भिक्षु उस धम्म के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसका अध्ययन करता है, उस पर ध्यान देता है, उसकी जाँच करता है, उसकी ऊर्जा शक्ति (वीर्य) बिना शिथिल हुए जागृत होती है, उस अवसर पर भिक्षु द्वारा ऊर्जा शक्ति का ज्ञान कारक जागृत होता है; उस अवसर पर भिक्षु ऊर्जा शक्ति के ज्ञान कारक को अनुभव (भवेति) करता है; उस अवसर पर भिक्षु में ऊर्जा-शक्ति के ज्ञानोदय कारक की अनुभूति (भावना) पूर्णतया सिद्ध हो जाती है। इसके बाद, जागृत ऊर्जा शक्ति के साथ, आनंद का विकास होने लगता है। (नोट (2 से जारी): सही और गलत भावनाओं और इच्छाओं को संवेदनाओं द्वारा जानने के बाद, बुरी भावनाओं को दूर करने के लिए, उन्हें लुप्त होते देखने के लिए प्रयास और दृढ़ता की आवश्यकता होती है, जिससे आगे चलकर परमानंद का मार्ग प्रशस्त होता है।)

4. परमानंद (पीति/प्रीति) ज्ञान का कारक (पीति-संबोज्झंगो) : "जब भी भिक्षुओं के भीतर उनकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत होती है, तो उनमें आध्यात्मिक परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है; उस अवसर पर भिक्षु द्वारा परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक को जागृत किया जाता है; उस अवसर पर भिक्षु परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक का अहसास (भावति) करते हैं; उस अवसर पर भिक्षु में परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक का अहसास (भावना) पूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक परमानंद के उत्पन्न होने के साथ, शरीर और मन का शांत होना संभव हो जाता है।" (नोट) (3 से जारी): जब ध्यान का अभ्यास दृढ़ता से प्रतिदिन और लंबे समय तक किया जाता है, तो आनंद की अनुभूति होती है जो आगे चलकर शांति की ओर ले जाती है।

5. शांति-ज्ञानोदय कारक (पसाद्धि-संबोज्जंगो) भिक्षुओं, जब भी किसी भिक्षु के भीतर शरीर और मन शांत हो जाते हैं (पसद्धि, संस्कृत: प्रशब्धि), उस समय भिक्षु में शांति का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु शांति के प्रबुद्ध तत्व का अनुभव करता है; उस समय शांति के प्रबुद्ध तत्व की अनुभूति पूर्ण हो जाती है। शांत शरीर और सुखी मन के साथ, अगली समाधि संभव हो जाती है। (नोट (4 से जारी): जब ध्यान में आनंद का अनुभव होता है, जो सुखी अवस्था की ओर ले जाता है, तो व्यक्ति उसका आनंद लेता है और शरीर और मन से शांत हो जाता है और भीतर की ओर केंद्रित हो जाता है।)

6. आत्म-अवशोषक समाधि (समाधि-संबोज्झंगो) प्रबुद्ध तत्व जब भी किसी भिक्षु का शरीर शांत और मन (चित्त) प्रसन्न हो, तो वह समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में (9 समाधि अवस्थाओं में से किसी एक में) प्रवेश करता है। उस समय, भिक्षु में समाधि की आत्म-मग्न अवस्था का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय, भिक्षु समाधि की आत्म-मग्न अवस्था के ज्ञानोदय तत्व का अहसास (भावेति) होता है; उस समय, समाधि की आत्म-मग्न अवस्था के ज्ञानोदय तत्व का अहसास (भावना) भिक्षु में पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

7. समभाव-संबोध कारक (उपेक्खा-संबोधा) : "जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो वह अंतर्मुखी हो जाता है, उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा, उपेक्ष) का ज्ञान जागृत होता है; उस समय भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का अहसास (भावेति) करता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक की अनुभूति (भावना) पूर्ण हो जाती है।
(नोट (6 से जारी): समाधि अवस्था विकसित होने के बाद, उस अवस्था में हमेशा के लिए अटके रहने की आवश्यकता नहीं है, इसके बाद, आगे बढ़ने के लिए, समाधि की आनंदमय अवस्था को न पसंद करने और न नापसंद करने का समभाव (उपेक्खा) विकसित करना आवश्यक है और फिर..." समाधि अवस्था इन नौ अवस्थाओं में से अगली, उससे भी उच्च अवस्था में परिवर्तित हो जाएगी। अंतिम अवस्था में निर्वाण प्राप्त होता है।

ज्ञानोदय के लाभ:

"भिक्षुओं, जब ज्ञानोदय के इन सात कारकों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

1. व्यक्ति को इसी जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

2. यदि व्यक्ति को इसी जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है,
तो उसे मृत्यु के समय अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है।

3. यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या
मृत्यु के समय भी अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो पांचों का पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।
निम्न बंधनों से मुक्त होकर व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 65

4. "यदि व्यक्ति इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले ...
या इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

5. "यदि व्यक्ति इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले - ...
या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह
निर्वाण प्राप्त कर लेता है बिना किसी प्रयास के।

6. यदि कोई इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले...
या बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह परिश्रमपूर्वक निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

7. यदि कोई इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले...
या परिश्रमपूर्वक निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह
अकनित्थ लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में प्रवृत्त हो जाता है।

हे भिक्षुओं, जब ज्ञान के सात कारकों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाए, तो इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।

---

185. वस्त्र (वत्थ सं. वस्त्र)
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में स्थित अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

उन्होंने उत्तर दिया: "मित्रों।" आदरणीय सारिपुत्त ने कहा:

"मित्रों, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक हैं। कौन से सात? ध्यान (सती), अवस्थाओं का विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा)। ये ज्ञान प्राप्ति के सात कारक हैं। 66

"इन सात कारकों में से जिसमें मैं सुबह के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं सुबह के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ। जिसमें मैं दोपहर के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं दोपहर के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ। जिसमें मैं शाम के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं शाम के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ।"

"मित्रों, यदि मेरे मन में यह विचार आए, '[यह] ध्यान का ज्ञानोदय तत्व है,' तो मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह असीम है'; मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह पूर्णतः सिद्ध है।' जब तक यह बना रहता है, मैं समझता हूँ, 'यह बना रहता है।' यदि यह मुझमें क्षीण हो जाता है, तो मैं समझता हूँ, 'यह मुझमें किसी विशेष कारण से क्षीण हुआ है।' ...
(इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... ऊर्जावान शक्ति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय तत्व के लिए जैसा कि 182-184 में है)
"मित्रों, यदि मेरे मन में यह विचार आए, '[यह] समता (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व है,' तो मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह असीम है'; मुझे यह ख्याल आता है, 'यह पूरी तरह से परिपूर्ण हो गया है।' जब तक यह बना रहता है, मैं समझता हूँ, 'यह बना रहता है।' लेकिन अगर यह मुझमें कम हो जाता है, तो मैं समझता हूँ, 'यह मुझमें किसी खास कारण से कम हो गया है।'

"मान लीजिए, मित्रों, एक राजा या राजमंत्री के पास अलग-अलग रंगों के कपड़ों से भरी अलमारी है। सुबह वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह सुबह पहनेगा। दोपहर में वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह दोपहर में पहनेगा। शाम को वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह शाम को पहनेगा। इसी तरह, मित्रों, ज्ञान के इन सात कारकों में से जिस भी कारक में मैं सुबह... दोपहर में... शाम को ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं शाम को उसी कारक में ध्यान लगाता हूँ।

"यदि, मित्रों, मुझे यह ख्याल आता है, "[इसे] ध्यान का ज्ञानोदय कारक मान लें"... (ऊपर जैसा ही)... मैं समझता हूँ, "यह मुझमें किसी विशेष कारण से कम हो गया है।" (ऊपर जैसा ही दोहराया गया)

---

186. भिक्षु (भिक्खु सं. भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'ज्ञान के कारक, ज्ञान के कारक।' इन्हें किस अर्थ में ज्ञान के कारक कहा जाता है?"

"भिक्षु, ये ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है। यहाँ, भिक्षु, व्यक्ति ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... पीति प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति के ज्ञानोदय कारक... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। इन सात ज्ञानोदय कारकों के विकास के दौरान, व्यक्ति का मन... विमुत्त (संस्कृत: विमुक्त) कामुकता के दोष से, भाव के दोष से, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। जब यह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' व्यक्ति समझता है:
'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।' हे भिक्षु, ये ज्ञान की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञान के कारक कहा जाता है। (देखें 184)

---

187. कुंडलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में अंजनवन के हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी कुंडलिया भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले,

“गुरु गौतम, मैं मठों के आसपास रहता हूँ और सभाओं में जाता हूँ। भोजन के बाद, जब मैं नाश्ता कर लेता हूँ, तो मेरी आदत है कि मैं उद्यान-उद्यान-उद्यान में घूमता हूँ। वहाँ मैं कुछ तपस्वियों और ब्राह्मणों को अपने-अपने मतों को बचाने और दूसरों के मतों की निंदा करने के लिए चर्चा में लगे देखता हूँ। 67 परन्तु गुरु गौतम किस लाभ के लिए जीते हैं?”

“कुंडलिया, तथागत सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति) के लाभ और फल के लिए जीते हैं।” 68

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म (गुण, नियम) हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है?"

"ज्ञान के सात कारक, कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से ज्ञान के सात कारक पूर्ण होते हैं?"

"ध्यान की चार अवस्थाएँ (सती), कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से ज्ञान के सात कारक पूर्ण होते हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से ध्यान की चार अवस्थाएँ पूर्ण होती हैं?"

"तीन प्रकार के अच्छे आचरण, कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से ध्यान की चार अवस्थाएँ पूर्ण होती हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से तीन प्रकार के अच्छे आचरण पूर्ण होते हैं?"

"कुंडली, जब इंद्रियों पर संयम विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को पूर्ण करता है।

और हे कुंडली, इंद्रियों पर संयम कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे यह तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को पूर्ण करता है? हे कुंडली, जब कोई भिक्षु किसी मनभावन रूप को दृष्टि से देखता है, तो वह उसकी लालसा नहीं करता, न ही उससे उत्तेजित होता है, और न ही उसके प्रति कामवासना (राग) उत्पन्न करता है। उसका शरीर स्थिर और मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है। परन्तु जब वह किसी अप्रिय रूप को दृष्टि से देखता है, तो वह उससे भयभीत नहीं होता, न ही डरता है, न ही निराश होता है, और उसके मन में कोई दुर्भावना नहीं होती। 69 उसका शरीर स्थिर और मन स्थिर होता है, अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है।

"इसके अलावा, कुंडलिया, जब किसी सुखद ध्वनि को कान से सुनता है... किसी सुखद गंध को नाक से सूंघता है... किसी सुखद स्वाद को जीभ से महसूस करता है... किसी सुखद स्पर्श वस्तु को शरीर से स्पर्श करता है... किसी सुखद मानसिक घटना को मन से अनुभव करता है, तो भिक्षु उसकी लालसा नहीं करता, न ही उससे उत्तेजित होता है, न ही उसके प्रति वासना उत्पन्न करता है। परन्तु किसी अप्रिय मानसिक घटना को मन से अनुभव करने पर भी वह उससे भयभीत नहीं होता, न ही डरता है, न ही निराश होता है, और न ही उसके मन में कोई दुर्भावना होती है। उसका शरीर स्थिर होता है और उसका मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है।

"जब, कुंडलिया, किसी रूप को आँख से देखने के बाद, भिक्षु का शरीर स्थिर होता है और उसका मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है, सुखद और अप्रिय दोनों रूपों के संबंध में; जब कोई भिक्षु कान से ध्वनि सुनता है, नाक से गंध सूंघता है, जीभ से स्वाद का अनुभव करता है, शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करता है, मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसका शरीर और मन स्थिर होता है, वह आंतरिक रूप से शांत और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की मानसिक घटनाओं (धर्म) के संबंध में पूर्णतः मुक्त होता है, तब उसकी इंद्रियों पर नियंत्रण इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाता है कि वह तीनों प्रकार के अच्छे आचरण को पूरा करता है।

और हे कुंडलिया, तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे ध्यान के चारों सिद्धांतों को पूरा करें? हे कुंडलिया, यहाँ भिक्षु शारीरिक दुराचार का त्याग करके अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करता है; मौखिक दुराचार का त्याग करके अच्छे मौखिक आचरण का विकास करता है; मानसिक दुराचार का त्याग करके अच्छे मानसिक आचरण का विकास करता है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे ध्यान के चारों सिद्धांतों को पूरा करें।

और हे कुंडलिया, ध्यान के चारों सिद्धांत कैसे विकसित और पोषित किए जाते हैं ताकि वे ज्ञान के सात कारकों को पूरा करें? हे कुंडलिया, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धर्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं, वे पूर्णतः संबोधक (संपजानो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। इसी प्रकार ध्यान के चारों चरणों का विकास और संवर्धन होता है, जिससे ज्ञानोदय के सात कारक पूर्ण होते हैं।

"और हे कुंडलिया, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन कैसे किया जाता है ताकि वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण कर सकें? यहाँ, हे कुंडलिया, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है... (इसी प्रकार अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए देखें 182-184)... वह समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (सरोध) पर आधारित है।" मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्वता। इसी प्रकार ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन होता है, जिससे सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।" (जैसा कि 184 में है)

यह सुनकर तपस्वी कुंडलिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने कई प्रकार से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण में आए हुए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

188. नुकीला घर (कुटागारा)

"भिक्षुओं, जिस प्रकार किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियाँ छत की चोटी की ओर झुकी होती हैं, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास करता है, तो वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और ऐसा कैसे होता है?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके। (देखें 182-184)

---

189. उपवन
एक बार पूज्य उपवना और पूज्य सारिपुत्त, घोसीता उद्यान के कोसंबी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य उपवना के पास पहुँचे। उन्होंने उपवना का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र उपवना, क्या कोई भिक्षु स्वयं जान सकता है कि 'ध्यान (योनिसो) के द्वारा मैंने ज्ञान के सातों कारकों को इस प्रकार पूर्णतः सिद्ध कर लिया है कि वे सुखमय जीवन की ओर ले जाते हैं'?"

"हे सारिपुत्त, एक भिक्षु इसे स्वयं जान सकता है। हे मित्र, जब ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को जागृत किया जाता है, तो भिक्षु समझता है: 'मेरा मन पूर्णतः मुक्त (विमुत्त, विमुक्त) है; मैंने आलस्य और सुस्ती को जड़ से उखाड़ फेंका है और बेचैनी और पश्चाताप को पूरी तरह से दूर कर दिया है। मेरी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो गई है। मैं इसे एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में मानता हूँ, न कि सुस्ती से।' ... जब समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को जागृत किया जाता है, तो वह समझता है: 'मेरा मन पूर्णतः मुक्त है; मैंने आलस्य और सुस्ती को जड़ से उखाड़ फेंका है और बेचैनी और पश्चाताप को पूरी तरह से दूर कर दिया है। मेरी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो गई है। मैं इसे एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में मानता हूँ, न कि सुस्ती से।'

"हे मित्र, इसी प्रकार एक भिक्षु स्वयं जान सकता है:
'ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के द्वारा मैंने ज्ञानोदय के सातों कारकों को इस प्रकार पूर्णतः सिद्ध कर लिया है कि वे सुखमय जीवन की ओर ले जाते हैं।'" (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)

---

190. उदय (1) (उप्पन्ना सं. उत्पन्न)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकते। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) का ज्ञानोदय कारक... वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) का ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति (आनंद) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। (देखें 182-184) ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकते।

---

191. उत्पन्न होना (2)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) का ज्ञानोदय कारक... वीर्य (ऊर्जावान) का ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। (देखें 182-184) ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते।

(ii) तृतीय खंड (गिलानवाग्गो)
192. जीवित प्राणी (पण सं. प्राणि)

"भिक्षुओं, सभी जीवित प्राणी जो चारों मुद्राओं में धारण करते हैं - कभी चलते हैं, कभी खड़े होते हैं, कभी बैठते हैं, कभी लेटते हैं - वे सभी पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से जुड़े हुए चारों मुद्राओं में धारण करते हैं। उसी प्रकार, सद्‌गुण (शील) पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े हुए, एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है।

और वह ऐसा कैसे करता है?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों में स्थापित होकर, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

193. सूर्य की उपमा (1) (सूर्यउपमा1 सं. सूर्य-उपमा)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात कारकों, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य के ज्ञानोदय तत्व, पीति, प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञान तत्व, प्रशब्धि और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

194. सूर्य की उपमा (2) (सूर्यउपमा 2 सं. सूर्य-उपमा)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात कारकों, अर्थात् ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के उदय का अग्रदूत है। जब एक भिक्षु ध्यानमग्नता (मानसिकारा) में निपुण हो जाता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है। और

जो भिक्षु ध्यानमग्नता (मानसिकारा) में निपुण हो जाता है, वह ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

195. आईएलएल (1) (गिलाना1 संस ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। 70 उस समय पूज्य महाकस्सपा पिप्पली गुफा में बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। शाम को भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और पूज्य महाकस्सपा से कहा,

"मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हैं, कस्सपा, मुझे आशा है कि आप ठीक हो रहे हैं। मुझे आशा है कि आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।"

"पूज्यवर, मैं स्वस्थ नहीं हूँ, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मुझमें तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, न कि उनका कम होना।"

"हे कस्सपा, मैंने ज्ञान प्राप्ति के इन सात कारकों का सही वर्णन किया है; इनका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। वे कौन से सात कारक हैं? मैंने ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का सही वर्णन किया है; इसका विकास और

अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का सही वर्णन किया है; (देखें) 182-184) जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। हे कस्सपा, मैंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों का सही वर्णन किया है; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। "

निश्चित रूप से, हे भगवान (बुद्ध), ये ज्ञानोदय के कारक हैं! निश्चित रूप से, हे सौभाग्यशाली (सुगतो), ये ज्ञानोदय के कारक हैं!"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए और प्रसन्न हुए। और पूज्य महाकस्सपा उस बीमारी से ठीक हो गए। 71 इस प्रकार पूज्य महाकस्सपा अपनी बीमारी से ठीक हो गए।

---

196. आईएलएल (2) (गिलाना2 सं. ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उसी समय पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे... (ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, केवल नामों में परिवर्तन है)... इस प्रकार पूज्य महामोग्गलाना अपनी बीमारी से ठीक हो गए। [81]

---

197. आईएलएल (3) (गिलाना3 सं. ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) बीमार थे, अत्यंत कष्ट में थे। तब पूज्य महाचुंडा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महाचुंडा से कहा,

"हे चुंडा, ज्ञान प्राप्ति के मंत्रों का पाठ करो।"

हे पूज्यवर, ज्ञानोदय के इन सात कारकों का भगवान (बुद्ध) द्वारा सही वर्णन किया गया है; इनका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक भगवान (बुद्ध) द्वारा सही वर्णन किया गया है; इसका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्ष) के ज्ञानोदय कारक का भगवान द्वारा सही वर्णन किया गया है।) (बुद्ध); (देखें 182-184) जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। हे पूज्यवर, आत्मज्ञान के इन सात कारकों का भगवान (बुद्ध) ने सही वर्णन किया है; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। "

हे चुंडा, ये निश्चित रूप से आत्मज्ञान के कारक हैं! हे चुंडा, ये निश्चित रूप से आत्मज्ञान के कारक हैं!"

पूज्य महाचुंडा ने यही कहा। गुरु ने इसकी पुष्टि की। और भगवान (बुद्ध) उस बीमारी से ठीक हो गए। इस प्रकार भगवान (बुद्ध) अपनी बीमारी से मुक्त हो गए।

---

198. गोइंग बियॉन्ड (परंगमा सं. परगम्य)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाते हैं। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीर्य के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक (देखें 182-184)... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाते हैं। (184 के समान)

(इस सूत्र से जुड़े श्लोक ऊपर 197 में दिए गए श्लोकों के समान हैं।)

---

199. उपेक्षित (विराद्ध)

"भिक्षुओं, जिन्होंने ज्ञानोदय के सात कारकों की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ज्ञानोदय के सात कारकों का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

वे सात कारक कौन से हैं? ध्यान का ज्ञानोदय कारक, धम्मविचय का ज्ञानोदय कारक, वीर्य का ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति का ज्ञानोदय कारक, शांति का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, और समभाव का ज्ञानोदय कारक... (देखें 182-184)

"भिक्षुओं, जिन्होंने इन सात कारकों की उपेक्षा की है... जिन्होंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।"

---

200. कुलीन या शाही (अरिया सं. आर्य)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होते हैं; ये उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक... उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (उपेक्षय) की ओर ले जाते हैं। (देखें 182-184)

---

201. निबिदा
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के इन सात कारकों को विकसित और पोषित करने से पूर्ण घृणा (निब्बिद), वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये सात कारक कौन से हैं? ध्यान (सती), धम्मविचय, ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति), शांति (पसाधि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक... निर्वाण की ओर ले जाते हैं। (देखें 182-184)

(iii) उदयी
202. आत्मज्ञान के लिए (बोधया)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'ज्ञान के कारक, ज्ञान के कारक।' इन्हें किस अर्थ में ज्ञान के कारक कहा जाता है?"

"भिक्षु, ये ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है। यहाँ, भिक्षु, व्यक्ति ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... आनंद के ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति)... शांति के ज्ञानोदय कारक (पसाधि/प्रशब्धि)... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए भी यही बात लागू होती है।) व्यक्ति समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। ये सभी ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, भिक्षु, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है।" ज्ञानोदय।" (देखें 182-184)

---

203. जागृति के लिए एक शिक्षण (बोज्जंगदेसाना सं. बोधयांग-देशना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान प्राप्ति के सात कारक सिखाऊंगा
। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के सात कारक क्या हैं?
ध्यान (सती), अवस्थाओं का विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा)। ये ज्ञान प्राप्ति के सात कारक हैं। (देखें 182-184)

---

204. एक आधार (थानिया)
भिक्षुओं द्वारा, उन धर्मों (गुणों, नियमों) पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो इंद्रिय-संबंधी (काम/यौन) वासना (राग) का आधार हैं, अनपेक्षित इंद्रिय-संबंधी इच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने

(मानसिकारा करने) से जो द्वेष का आधार हैं, अनपेक्षित द्वेष उत्पन्न होता है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो आलस्य और सुस्ती का आधार हैं, अनपेक्षित आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो बेचैनी और पश्चाताप का आधार हैं, अनपेक्षित बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते हैं और फैलते हैं। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो संदेह का आधार हैं, अनपेक्षित संदेह उत्पन्न होता है और उत्पन्न होता है और फैलता है।

भिक्षुओं, ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक के आधार धम्मों पर बार-बार ध्यान (मानसिकारा) देने से, ध्यान का अजन्मा ज्ञानोदय कारक उत्पन्न होता है और उत्पन्न ज्ञानोदय कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक के आधार धम्मों पर बार-बार ध्यान (मानसिकारा) देने से, समता (उपेक्खा) का अजन्मा ज्ञानोदय कारक उत्पन्न होता है और उत्पन्न ज्ञानोदय कारक पूर्ण हो जाता है। विकास द्वारा।" (देखें 182-184)

---

205. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानहीन (अयोनिसो) मनसिकारा करता है, तो अजन्मी कामुक (यौन) इच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामुक इच्छा बढ़ती और फैलती है; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और उत्पन्न दुर्भावना बढ़ती और फैलती है; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप बढ़ते और फैलते हैं; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी शंका उत्पन्न होती है और उत्पन्न शंका बढ़ती और फैलती है। साथ ही, ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व (सती) उत्पन्न नहीं होता और ध्यान का उत्पन्न ज्ञान तत्व (समाधि) समाप्त हो जाता है... समता का अजन्मा ज्ञान तत्व (उपेक्खा) उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न ज्ञान तत्व (समाधि) समभाव (उपेक्खा) समाप्त हो जाता है।

"जब कोई ध्यानपूर्ण (योनिसो) चेतना (मानसिकारा) करता है, हे भिक्षुओं, तो अनवजह कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न हुई कामुक इच्छा का त्याग हो जाता है। जब कोई ध्यानपूर्ण चेतना करता है, तो अनवजह दुर्भावना... आलस्य और सुस्ती... बेचैनी और पश्चाताप... संदेह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न हुआ संदेह का त्याग हो जाता है।" इसके अलावा, ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और विकास द्वारा ध्यान का प्रकट ज्ञान तत्व पूर्ण हो जाता है (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञान तत्व, वीरता के ज्ञान तत्व, परमानंद के ज्ञान तत्व, शांति के ज्ञान तत्व, प्रशब्धि के ज्ञान तत्व, समाधि की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए भी यही बात लागू होती है)। समभाव का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और विकास द्वारा समभाव का प्रकट ज्ञान तत्व पूर्ण हो जाता है (देखें 182-184)।

---

206. अपरिहानिया (न हारना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें सात धर्म सिखाऊंगा जो हानि का कारण नहीं बनते। 72 ध्यान से सुनो...

“और हे भिक्षुओं, वे सात धर्म क्या हैं जो हानि का कारण नहीं बनते? वे हैं: ज्ञान के सात कारक। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। ये वे सात धर्म हैं जो हानि का कारण नहीं बनते।” (देखें 182-184)

---

207. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
"भिक्षुओं, तृष्णा के नाश (तन्हा संस. तृष्णा) की ओर ले जाने वाले मार्ग और तरीके का विकास करो। और तृष्णा के नाश की ओर ले जाने वाला मार्ग और तरीका क्या है? यह है: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक।" (देखें 182-184)

यह सुनकर, पूज्य उदय ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"पूज्यवर, ज्ञान के सात कारकों का विकास और संवर्धन कैसे किया जाता है ताकि वे तृष्णा के नाश की ओर ले जाएं?"

"यहाँ, उदयि, एक भिक्षु (सन्यासी) ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। जब वह ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है,

जो एकांत पर आधारित है... द्वेष रहित, तो तृष्णा का त्याग हो जाता है। तृष्णा के त्याग से कर्म का त्याग हो जाता है। कर्म के त्याग से दुख का त्याग हो जाता है...

(इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... वीरता के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन अवस्था)।

"वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। जब वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत पर आधारित है... बिना द्वेष के, तो तृष्णा का त्याग हो जाता है। तृष्णा के त्याग से कर्म का त्याग हो जाता है। कर्म के त्याग से दुख का त्याग हो जाता है। (देखें 182-184)

"इस प्रकार, उदयि, तृष्णा के विनाश (खयाय/क्षय) के साथ कर्म का विनाश होता है; कर्म के विनाश के साथ दुख का विनाश होता है।"

---

208. तृष्णा की समाप्ति (तन्हा-निरोध सं. तृष्णा-निरोध)
भिक्षुओं, तृष्णा के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का विकास करो। और तृष्णा के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? यह है: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। और भिक्षुओं

, यह कैसे संभव है कि ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो तृष्णा के निवारण (तृष्णा) की ओर ले जाते हैं?

"यहाँ, भिक्षु ध्यान के ज्ञान तत्व, धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) के ज्ञान तत्व, (इसी प्रकार ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) की अवस्था) के ज्ञान तत्व, और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होते हैं। (देखें 182-184) जब ज्ञान के सातों कारकों का इस प्रकार विकास और संवर्धन किया जाता है, तभी वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) के निरोध की ओर ले जाते हैं।"

---

209. प्रवेश में भाग लेना (निब्बेधभागिया)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञानोदय का मार्ग सिखाऊंगा। 73 ध्यान से सुनो....

"और हे भिक्षुओं, ज्ञानोदय का मार्ग क्या है? वह है: ज्ञानोदय के सात कारक। वे सात कौन से हैं?" ध्यान का ज्ञानोदय कारक (सती), अवस्थाओं के विवेक का ज्ञानोदय कारक (धम्मविचाय), ऊर्जा शक्ति का ज्ञानोदय कारक (वीर्य), परमानंद का ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति), शांति का ज्ञानोदय कारक (पसद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानोदय कारक, समभाव का ज्ञानोदय कारक (उपेक्खा)।" (देखें 182-184)

यह सुनकर पूज्य उदय ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"पूज्यवर, ज्ञानोदय के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे बोधगम्यता की ओर ले जाएं?"

"यहाँ, उदय, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है।" ध्यान की प्रबुद्धता से विकसित मन के साथ, वह लोभ (राग) के उस समूह में प्रवेश करता है और उसे विखंडित करता है जिसमें वह पहले कभी प्रवेश नहीं कर पाया था; वह घृणा (दोष/द्वेष) के उस समूह में प्रवेश करता है और उसे विखंडित करता है जिसमें वह पहले कभी प्रवेश नहीं कर पाया था; वह मोह के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है जिसे उसने पहले कभी भेदा या विखंडित नहीं किया था...

वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित कर चुके मन से वह राग के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है... द्वेष के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है जिसे उसने पहले कभी भेदा या विखंडित नहीं किया था। (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)

"हे उदयी, जब ज्ञान के सात कारक इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी वे भेदन की ओर ले जाते हैं।"

210. एक धम्म (एकधम्म सं. एक-धर्म)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) नहीं दिखता जो विकसित और अभ्यास करने पर उन धर्मों (गुणों, नियमों) के त्याग की ओर ले जाए जो बंधनकारी हैं, सिवाय इसके: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव का ज्ञान कारक। (जैसा कि 184 में है)

"और हे भिक्षुओं, ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि वे बंधनकारी धर्मों के त्याग की ओर ले जाएं?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। (इसी प्रकार अन्य भिक्षु भी) वह समभाव के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। जब ज्ञानोदय के सातों कारक इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तभी वे बंधनकारी धर्मों के त्याग की ओर ले जाते हैं।

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधन उत्पन्न करते हैं? आँख एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है; यहीं से ये बंधन, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं। कान एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है (नाक, जीभ, स्वाद आदि के लिए भी यही बात लागू होती है)। मन एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है; यहीं से ये बंधन, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं। इन्हें ही बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म कहा जाता है।

211. उदयी
एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। तब पूज्य उदयि भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है कि भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा, तथा लज्जा और अपराध के भय ने मुझे कितना सहारा दिया है। क्योंकि हे पूज्यवर, अतीत में जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे धम्म (मार्ग, नियम) या संघ (भाईचारा) की अधिक चिंता नहीं थी। परन्तु जब मैंने भगवान (बुद्ध) के प्रति अपनी भक्ति और श्रद्धा, तथा लज्जा और अपराध के भय पर विचार किया, तब मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला गया। भगवान (बुद्ध) ने मुझे धम्म इस प्रकार सिखाया: 'रूप ऐसा है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है; वेदना ऐसी है... बोध ऐसा है... संस्कार ऐसे हैं... चेतना ऐसी है, उत्पत्ति ऐसी है, इसका बीत जाना।'

"फिर, पूज्यवर, जब मैं पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) के आरोहण और हानि के साथ एक खाली कुटिया में रह रहा था, जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन थे, तब मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख का मूल है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण (निरोध) है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' पूज्यवर, मैंने धम्म में प्रवेश कर लिया है और वह मार्ग प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

मैंने ध्यान (सती) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है।' (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान के लिए... वीरता के ज्ञान के लिए... आनंद के ज्ञान के लिए... शांति के ज्ञान के लिए... समाधि की अवस्था के लिए)। मैंने समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है।' इस अवस्था के लिए अब और नहीं।' (देखें 182-184)

"यह, आदरणीय महोदय, वह मार्ग है जो मैंने प्राप्त किया है, जो..." मुझे आगे ले जाएगा... ऐसी स्थिति तक कि मैं समझ सकूंगा:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है... इस अवस्था का अब कोई महत्व नहीं है।"

"अच्छा, अच्छा, उदयि! सचमुच, उदयि, यही वह मार्ग है जो तुमने प्राप्त किया है, और जब तुम इसे विकसित और पोषित कर लोगे, तो यह तुम्हें उचित मार्ग पर रहते हुए ऐसी अवस्था की ओर ले जाएगा कि तुम समझ जाओगे: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था का अब कोई महत्व नहीं है।'"

(iv) द हिंडरेंसेस सेक्शन (निवारणावग्गो)
212. लाभकारी (1) (कुसल1 सं. कुशल)
भिक्षुओं, जो भी लाभकारी अवस्थाएँ हैं (कुशल, संस्कृत: कुशल), लाभकारी अवस्थाओं का अनुभव करने वाली अवस्थाएँ, लाभकारी अवस्थाओं से संबंधित अवस्थाएँ, सभी जागरूकता में निहित हैं (अप्पमदा), जागरूकता में अभिसरित होती हैं, और जागरूकता को उनमें प्रमुख घोषित किया गया है। जब कोई भिक्षु जागरूक होता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक जागरूक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु ध्यान (सती), अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और समभाव (उपेक्खा) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास करता है। (जैसा कि 184 में है)

---

213. लाभकारी (2) (कुसल2 सं. कुशल)
भिक्षुओं, सभी लाभकारी अवस्थाएँ (कुशल, संस्कृत: कुशल), लाभकारी अवस्थाओं में भाग लेना, लाभकारी अवस्थाओं से संबंधित होना, ये सभी ध्यान (योनिसो) में निहित हैं, ध्यान (मानसिकारा) में अभिसरित होती हैं और ध्यान (मानसिकारा) को उनमें प्रमुख घोषित किया गया है। जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिसो) में निपुण हो जाता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है?... (पिछली 212 की तरह ही।)

---

214. भ्रष्टाचार (उपकिलेसा)
भिक्षुओं, सोने में ये पाँच प्रकार के दोष (उपकिलेष) होते हैं, जिनसे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। वे पाँच कौन से दोष हैं? लोहा सोने का दोष (उपकिलेष) है, जिससे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। तांबा सोने का दोष (उपकिलेष) है... टिन सोने का दोष (उपकिलेष) है... सीसा सोने का दोष (उपकिलेष) है... चांदी सोने का दोष (उपकिलेष) है... ये सोने के पाँच दोष (उपकिलेष) हैं, जिनसे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, मन में ये पाँच प्रकार के दोष (उपकिलेष) होते हैं, जिनसे दूषित होने पर मन न तो लचीला होता है और न ही न तो लचीला, न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (सम्मोहन) अवस्था में उचित रूप से न होना। वे पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है, जिससे दूषित मन न तो लचीला होता है, न ही लचीला, न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (सम्मोहन) अवस्था में उचित रूप से न होना। [द्वेष मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है... आलस्य और सुस्ती मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है... बेचैनी और पश्चाताप मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है...] संदेह मन का एक विकार (उपकिलेसा) है....] 78 ये मन के पाँच विकार (उपकिलेसा) हैं, जिनसे दूषित मन न तो लचीला होता है, न ही सुगम और न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (तल्लीनता) की सही अवस्था में नहीं होता।

---

215. अनुपक्किलेसा
भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; इनका विकास और अभ्यास करने से सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति होती है। वे सात कौन से हैं? भिक्षुओं, ध्यान (सती) का ज्ञान कारक बाधाओं से मुक्ति है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान कारक... वीरता के ज्ञान कारक... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञान कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञान कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; इनका विकास और अभ्यास करने से सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति होती है।) सच्चे ज्ञान और

मुक्ति का फल। ज्ञानोदय के ये सात कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; जब इनका विकास और पोषण किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। (जैसा कि 184 में है)

---

216. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानहीन अवस्था में (मानसिकारा में) होता है, तो अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और बढ़ते और फैलते हैं; अजन्मा संदेह उत्पन्न होता है और बढ़ता और फैलता है।

---

217. ध्यान संबंधी जागरूकता (योनिसोमनसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानमग्न अवस्था (मानसिकारा) में होता है, तो ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व (सती) उत्पन्न होता है और ध्यान का उत्पन्न ज्ञान तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के ज्ञान तत्व... वीरता के ज्ञान तत्व... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए भी यही बात लागू होती है)। समभाव (उपेक्खा) का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और समभाव (उपेक्खा) का उत्पन्न ज्ञान तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। (देखें 182-184)

---

218. ज्ञानोदय (बोधि)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो विकास की ओर ले जाते हैं, हानि की ओर नहीं। वे सात कौन से हैं?

ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक, परमानंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो विकास की ओर ले जाते हैं, हानि की ओर नहीं। (जैसा कि 184 में है)

---

219. अवरोध/अड़चनें (अवरोधन)
भिक्षुओं, मन में ये पाँच अवरोध, बाधाएँ और दोष (उपकिलेसा) हैं, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करते हैं। ये पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा एक अवरोध, बाधा और दोष (उपकिलेसा) है, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती है। द्वेष एक अवरोध है... आलस्य और सुस्ती एक अवरोध है... बेचैनी और पश्चाताप एक अवरोध है... संदेह एक अवरोध है... जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करता है। ये मन के पाँच अवरोध, बाधाएँ और दोष (उपकिलेसा) हैं, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करते हैं।

भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक हैं जो मन के अवरोध, बाधा और दोष नहीं हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। वे सात कौन से हैं?
ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक एक अवरोधहीनता है.....
(इसी प्रकार अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए।)
समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक एक अवरोधहीनता है (देखें 182-184)।
ये ज्ञानोदय के सात कारक हैं जो मन के अवरोधहीन, बाधाहीन और विकृतियों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। "

हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य उत्सुकतापूर्वक धम्म (मार्ग, नियम) सुनता है, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है, और अपना पूरा मन उसमें लगाता है, तब उसमें पाँच बाधाएँ नहीं होतीं; उस समय ज्ञानोदय के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

पाँच बाधाएँ
"और वे पाँच बाधाएँ कौन सी हैं जो उस समय नहीं होतीं?
1. उस समय कामुक इच्छा की बाधा नहीं होती;
2. द्वेष की बाधा...
3. आलस्य और सुस्ती की बाधा...

4. बेचैनी और पश्चाताप की बाधा...
5. उस समय संदेह की बाधा नहीं होती।
ये पाँच बाधाएँ हैं जो उस समय नहीं होतीं।"

और वे सात कारक कौन से हैं जो उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होते हैं? ध्यान का कारक उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का कारक... वीरता (वीर्य) का कारक... परमानंद का कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का कारक... समाधि (सम्मोहन) का कारक)... समभाव (उपेक्खा) का कारक उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होता है। ये वे सात कारक हैं जो उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होते हैं।

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य उत्सुकतापूर्वक धम्म सुनता है, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है, और अपना पूरा मन उसमें लगाता है, तो उस समय उसमें ये पाँच बाधाएँ नहीं होतीं; उस अवसर पर ज्ञानोदय के ये सात कारक विकास के माध्यम से पूर्णता की ओर अग्रसर होते हैं।"

---

220. वृक्ष (रुक्खा)
भिक्षुओं, कुछ विशाल वृक्ष होते हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं, वे अन्य वृक्षों को घेरे रहते हैं, और जिन वृक्षों को वे घेरते हैं वे झुक जाते हैं, मुड़ जाते हैं और फट जाते हैं। और वे विशाल वृक्ष कौन से हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं? असत्थ, बरगद, पिलक्ख, उदुम्बर, कच्छक और कपित्थन: ये वे विशाल वृक्ष हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं, वे अन्य वृक्षों को घेरे रहते हैं, और जिन वृक्षों को वे घेरते हैं वे झुक जाते हैं, मुड़ जाते हैं और फट जाते हैं। 81 इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब यहाँ कोई कुलवासी इंद्रिय सुखों को त्यागकर गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, तो वह उन्हीं इंद्रिय सुखों के कारण, या उनसे भी बदतर अन्य सुखों के कारण झुक जाता है, मुड़ जाता है और फट जाता है।

ये पाँच, भिक्षुओं, अवरोध, बाधाएँ, मन को घेरने वाले और मन को कमजोर करने वाले हैं। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न)। वे पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा एक अवरोध है, मन को घेरने वाली एक बाधा है, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती है। द्वेष... आलस्य और सुस्ती... बेचैनी और पश्चाताप... संदेह एक अवरोध है... जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करता है। ये पाँच अवरोध हैं, बाधाएँ हैं, जो मन को घेरती हैं और पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती हैं।

भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन को अवरुद्ध नहीं करते, बाधा नहीं डालते और घेरे में नहीं लाते; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञान प्राप्ति कारक अवरोध नहीं है... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान प्राप्ति कारक अवरोध नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)... ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन को अवरुद्ध नहीं करते, बाधा नहीं डालते और घेरे में नहीं लाते; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

---

221. अवरोध (निवारण)
भिक्षुओं, ये पाँच बाधाएँ अंधत्व उत्पन्न करती हैं, दृष्टिहीनता और ज्ञान की कमी का कारण बनती हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के लिए हानिकारक हैं, कष्ट की ओर ले जाती हैं और निर्वाण से दूर ले जाती हैं। ये पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा की बाधा अंधत्व उत्पन्न करती है... द्वेष की बाधा... आलस्य और सुस्ती की बाधा... बेचैनी और पश्चाताप की बाधा... संदेह की बाधा अंधत्व उत्पन्न करती है... निर्वाण से दूर ले जाती है। ये पाँच बाधाएँ अंधत्व उत्पन्न करती हैं, दृष्टिहीनता और ज्ञान की कमी का कारण बनती हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के लिए हानिकारक हैं, कष्ट की ओर ले जाती हैं और निर्वाण से दूर ले जाती हैं।

भिक्षुओं, ज्ञान के ये सात कारक दृष्टि उत्पन्न करते हैं, ज्ञान उत्पन्न करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के विकास को बढ़ावा देते हैं, कष्ट से मुक्त करते हैं और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। ये सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक दृष्टि उत्पन्न करता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक)... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक निर्वाण की ओर ले जाने वाली दृष्टि उत्पन्न करता है। (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है) ज्ञानोदय के ये सात कारक दृष्टि उत्पन्न करते हैं, ज्ञान उत्पन्न करते हैं, प्रज्वलित अंतर्दृष्टि (पन्न) के विकास को बढ़ावा देते हैं, विक्षिप्तता से मुक्त करते हैं और निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

(v) व्हील-टर्निंग मोनार्क सेक्शन (कैक्कवट्टीवागो संस। चक्रवर्ती-वर्ग)
222. भेदभाव (विधा)
सावत्थी में। भिक्षुओं, अतीत में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने तीन भेदों का त्याग किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया था। भविष्य में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण तीन भेदों का त्याग करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए करेंगे क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया होगा। वर्तमान में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण तीन भेदों का त्याग करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए करेंगे क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया होगा। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, परमानंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। (देखें 182-184) अतीत के ब्राह्मण... भविष्य के ब्राह्मण... वर्तमान के ब्राह्मण तीनों भेदों का त्याग इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों को विकसित और पोषित किया है।

---

223. चक्रवर्ती सम्राट (चक्रवर्ती)
भिक्षुओं, चक्र घुमाते हुए सम्राट के प्रकट होने के साथ ही सात रत्न प्रकट होते हैं। वे कौन से सात रत्न हैं? चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, प्रबंधक रत्न और सेनापति रत्न प्रकट होते हैं। 83

"तथागत, भिक्षुओं, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ ही ज्ञान के कारकों के सात रत्न प्रकट होते हैं। वे कौन से सात रत्न हैं? ध्यान (सती) के ज्ञान कारक रत्न प्रकट होते हैं।" (इसी प्रकार, धम्मविचय (अवस्थाओं के भेद) के ज्ञानोदय कारक के लिए... वीरता (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का रत्न (देखें 182-184)। तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ ही, ज्ञानोदय के इन सात रत्नों का प्रकटीकरण होता है।

---

224. मारा (सं. मृत्युदेव या कामदेव)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें शैतान की सेना को पराजित करने का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, शैतान की सेना को पराजित करने का मार्ग क्या है? यह ज्ञान के सात कारक हैं। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक।"

---

225. अप्रकाशित (दुप्पन्ना सं. दुष्-प्रज्ञा)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और
उनसे बोला,

"हे पूज्यवर, लोग कहते हैं, 'अज्ञानी मंदबुद्धि।' हे पूज्यवर, किसी को 'अज्ञानी मंदबुद्धि' क्यों कहा जाता है?" भगवान ने जवाब दिया, "भिक्षुओं

, क्योंकि किसी ने ज्ञान के सात गुणों को विकसित और पोषित नहीं किया है, इसलिए उसे 'अज्ञानी मंदबुद्धि' कहा जाता है।" वे सात कौन से हैं? ध्यान का ज्ञानोदय कारक (सती), अवस्थाओं के विवेक का ज्ञानोदय कारक (धम्मविचय), ऊर्जा की शक्ति का ज्ञानोदय कारक (वीर्य), परमानंद का ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति), शांति का ज्ञानोदय कारक (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि की अवस्था का ज्ञानोदय कारक और समभाव का ज्ञानोदय कारक (उपेक्खा)। (देखें 182-184) इन सात ज्ञानोदय कारकों को विकसित और पोषित न करने के कारण ही व्यक्ति को 'अज्ञानी मंदबुद्धि' कहा जाता है।

---

226. प्रबुद्ध-व्यावहारिक (पन्नवंता सं. प्रज्ञा-वंत)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान (पन्नवंत) और सजग (अप्पमदा), प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार किसी को 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग' कहा जाता है?"

"भिक्षुओं, ज्ञानोदय के सात कारकों को विकसित और पोषित करने के कारण ही किसी को 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग' कहा जाता है। वे सात कारक कौन से हैं?" (जैसा कि पिछले प्रश्न क्रमांक 225 में है)

227. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'गरीब, गरीब।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई 'गरीब' कहलाता है?"

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास नहीं करता, उसे 'गरीब' कहा जाता है। वे कौन से सात कारक हैं?" (जैसा कि 184 में और जैसा कि पिछले प्रश्न में है)

---

228. समृद्ध
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'समृद्ध, समृद्ध।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई 'समृद्ध' कहलाता है?"

"भिक्षुओं, सात ज्ञान के कारकों को विकसित और पोषित करने के कारण ही कोई 'समृद्ध' कहलाता है। वे कौन से सात कारक हैं?" (जैसा कि 225 में है)

---

229. सूर्य (आदित्य के बिना)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात गुणों, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ज्ञान के सात गुणों का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह ज्ञान के सात गुणों का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, वीर्य के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति के ज्ञानोदय कारक, प्रशब्धि के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक के लिए भी यही बात लागू होती है)। वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (जैसा कि 184 में है), जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसका एक अच्छा मित्र होता है, ज्ञानोदय के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है।

---

230. आंतरिक कारक (अज्जट्टिकंगा)
भिक्षुओं, आंतरिक कारकों के संदर्भ में, मुझे ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मनसिकारा) के अलावा कोई अन्य कारक इतना सहायक नहीं दिखता जितना यह। जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मनसिकारा) में निपुण हो जाता है, तो यह अपेक्षित है कि वह ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करेगा। (कारक 184 के अनुसार)

---

231. बाह्य कारक (बहिरंगा)
भिक्षुओं, बाह्य कारकों के संदर्भ में, मुझे सात ज्ञानोदय गुणों के विकास में इससे अधिक सहायक कोई अन्य कारक नहीं दिखता: उत्तम मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई उत्तम मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सात ज्ञानोदय गुणों का विकास और संवर्धन करेगा। (कारक 184 के अनुसार)

(vi) चर्चाएँ (सकच्चावग्गो)
232. पोषण (आहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान प्राप्ति के पाँच अवरोधों और सात कारकों के संबंध में पोषण और अपोष सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

(i. अवरोधों के लिए पोषण) 84

"और हे भिक्षुओं, अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, सौंदर्य का कारण (निमित्त) है: उस पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषण है।"

भिक्षुओं, अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, घृणा उत्पन्न करने वाला निमित्त है: बार-बार उसका ध्यान न लगाकर मनसिकारा करना अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण है। भिक्षुओं, अजन्मी

आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, असंतोष, सुस्ती, आलस्य, भोजन के बाद की नींद, मन की सुस्ती है: बार-बार उनका ध्यान न लगाकर मनसिकारा करना अजन्मी आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, मन की अस्थिरता है: इस पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, संदेह के आधार धर्म (गुण, नियम) हैं: उन पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

(ii. ज्ञानोदय के कारकों के लिए पोषक तत्व)

"हे भिक्षुओं, ध्यान (सती) के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और प्रकट ध्यान के ज्ञानोदय कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषक तत्व क्या है? हे भिक्षुओं, ऐसे धर्म हैं जो ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा करना ही ध्यान के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और प्रकट ध्यान के ज्ञानोदय कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषक तत्व है। 8"

"हे भिक्षुओं, अजन्मे धम्मविचय ज्ञान के उत्पन्न होने और उत्पन्न धम्मविचय ज्ञान के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके विपरीत अवस्थाएँ हैं: इन सभी का बार-बार ध्यान करना (योनिसो) और मानसिक चिंतन करना ही अजन्मे धम्मविचय ज्ञान के उत्पन्न होने और उत्पन्न धम्मविचय ज्ञान के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है। 86

"हे भिक्षुओं, अजन्मे वीर्य-शक्ति ज्ञान के उत्पन्न होने और..." क्या जागृत ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त होती है? हे भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व (धातु), प्रयास का तत्व (धातु), परिश्रम का तत्व (धातु) मौजूद हैं: इन तत्वों को बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना ही "अपरिवर्तित ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के उदय और जागृत ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।" 87

"और हे भिक्षुओं, अपरिवर्तित आनंद (पीति/प्रीति) के प्रबुद्धता कारक के उदय और जागृत आनंद के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है?" भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंद के प्रबुद्धता कारक का आधार हैं: उन पर बार-बार ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा करना, आनंद के अजन्मे प्रबुद्धता कारक के उदय और विकसित प्रबुद्धता कारक (पीति/प्रीति) के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण प्रदान करता है। 88

"हे भिक्षुओं, अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, शरीर की शांति और मन की शांति (पासद्धि/प्रशब्धि) है: उन्हें बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना ही अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है।" 89

"हे भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) और अनावृतता का कारण (निमित्त) हैं: उन्हें बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है। 90

"हे भिक्षुओं, समता (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है?" समभाव (उपेक्खा)? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिकाध्य अभ्यास कराना, समभाव (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और उसके विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण प्रदान करता है। 91

(iii. बाधाओं का क्षीणन) 92

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणन है जो अजन्मी कामुक इच्छा को उत्पन्न होने से और उत्पन्न कामुक इच्छा को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, वह है अपवित्रता का कारण (निमित्त): बार-बार उस पर ध्यान (योनिषो) केंद्रित करना ही वह क्षीणन है जो अजन्मी कामुक इच्छा को उत्पन्न होने से और उत्पन्न कामुक इच्छा को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 93

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणन है जो अजन्मी दुर्भावना को उत्पन्न होने से और उत्पन्न दुर्भावना को बढ़ने और फैलने से रोकता है?" भिक्षुओं, प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) होती है: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अनवजह दुर्भावना उत्पन्न होने से रुकती है और उत्पन्न दुर्भावना को बढ़ने और फैलने से रोकती है। 94

"और, भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह आलस्य और सुस्ती को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती को बढ़ने और फैलने से रोकता है? भिक्षुओं, उत्तेजना, प्रयास और परिश्रम के तत्व होते हैं: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अनवजह आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होने से रुकती है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती को बढ़ने और फैलने से रोकती है। 95

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह बेचैनी और पश्चाताप को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, मन की शांति है: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करना ही वह पोषण है जो अनवजह बेचैनी और पश्चाताप को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 96

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह संदेह को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न संदेह को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुसल) और हानिकारक (अकुसल, संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके विपरीत अवस्थाएँ हैं: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करना ही वह पोषण है जो अनवजह संदेह को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न संदेह को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 97

(iv. ज्ञान के कारकों का क्षीण होना)

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणता है जो ध्यान (सती) के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और ध्यान के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो ध्यान के ज्ञान कारक का आधार हैं: बार-बार विचारमुक्त न होना (अमनसिकारा) वह क्षीणता है जो ध्यान के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और ध्यान के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणता है जो अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है?" भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल, संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ होती हैं, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ होती हैं, निम्न और उच्च अवस्थाएँ होती हैं, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ होती हैं और उनके विपरीत अवस्थाएँ भी होती हैं: बार-बार विचारमुक्त (अमंसिकारा) न होना वह अपोत्पाद है जो अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से रोकता है और अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के विकसित ज्ञान तत्व को पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपंगता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है? भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व है, प्रयास का तत्व है, परिश्रम का तत्व है: बार-बार विचार-मुक्त (अमनसिकारा) न होना ही वह अपंगता है जो ऊर्जा-शक्ति के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपंगता है जो आनंद के अजन्मे ज्ञान तत्व (पीति/प्रीति) को उत्पन्न होने से और उत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंद के ज्ञान तत्व का आधार हैं: बार-बार विचारमुक्त न होना (अमंसिकारा) वह अपंगता है जो आनंद के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व (पीति/प्रीति) को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है।

भिक्षुओं, वह कौन सी अपंगता है जो शांति के अजन्मे ज्ञान तत्व (पसाद्धि/प्रशब्धि) को उत्पन्न होने से और उत्पन्न शांति के ज्ञान तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है? भिक्षुओं, शरीर की शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) और मन की शांति दोनों ही हैं: बार-बार विचार-मुक्त (अमनसिकारा) न होना वह अपोत्पादन है जो शांति के अजन्मे ज्ञान तत्व को जागृत होने से रोकता है और शांति के जागृत ज्ञान तत्व (पसाद्धि/प्रशब्धि) को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपोत्पत्ति कारक है जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है? भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) है, अनासक्ति का कारण (निमित्त) है: बार-बार विचारमुक्त (अमानसिकरा) न होना ही वह अपोत्पत्ति कारक है जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपोत्पत्ति कारक है जो समभाव (उपेक्खा) के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समभाव (उपेक्खा) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है? भिक्षुओं, कुछ धर्म (गुण, नियम) हैं जो समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: बार-बार विचार-मुक्त (अमानसिक) न होना वह अपुष्टता है जो समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को उत्पन्न होने से रोकती है और उत्पन्न समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

---

233. व्याख्या की विधि (परियया)

फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। चलो दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलते हैं।"

तब वे भिक्षु दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उनसे कहा: "मित्रों, तपस्वी गौतम अपने शिष्यों को धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हैं: 'आओ, भिक्षुओं, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेषों) का त्याग करो जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करती हैं, और ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करो।'" हम भी अपने शिष्यों को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'आओ, मित्रों, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेष) का त्याग करो जो प्रबोध (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को दुर्बल करती हैं, और ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करो।' तो मित्रों, यहाँ तपस्वी गौतम और हमारे बीच क्या अंतर, क्या भिन्नता, क्या भेद है, अर्थात् एक धम्म शिक्षा और दूसरी धम्म शिक्षा के संबंध में, एक शिक्षण विधि और दूसरी शिक्षण विधि के संबंध में?' 98

तब उन भिक्षुओं ने उन तपस्वियों के कथन से न तो प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसका खंडन किया। प्रसन्नता व्यक्त किए बिना, खंडन किए बिना, वे अपने स्थान से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "हम इस कथन का अर्थ भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में जानेंगे।"

फिर, जब वे भिक्षु सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और उन्होंने उन तपस्वियों और अपने बीच हुई पूरी चर्चा उन्हें बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, जब दूसरे संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, क्या व्याख्या की कोई ऐसी विधि है जिससे पाँच बाधाएँ दस हो जाएँ और ज्ञान के सात कारक चौदह हो जाएँ?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे परेशान हो जाएंगे। इसका कारण क्या होगा? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मैं किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या तथागत के शिष्य या उनसे सुनने वाले के।

(i. पाँच दस हो जाते हैं)

"और हे भिक्षुओं, वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा पाँच बाधाएँ दस हो जाती हैं?

आंतरिक इंद्रिय भोगने की जो भी इच्छा होती है, वह बाधा होती है; बाह्य इंद्रिय भोगने की जो भी इच्छा होती है, वह भी बाधा होती है। 99 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में इंद्रिय भोगने की बाधा कहा गया है, वह दस हो जाती है, इस व्याख्या विधि द्वारा, दो प्रकार से।

आंतरिक के प्रति जो भी दुर्भावना है, वह बाधा है; बाहरी के प्रति जो भी दुर्भावना है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, दुर्भावना की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

आलस्य की बाधा है, वह बाधा है; सुस्ती की सुस्ती है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, आलस्य और सुस्ती की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

बेचैनी की बाधा है, वह बाधा है; पश्चाताप की भावना है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

आंतरिक के बारे में जो भी संदेह है, वह बाधा है; बाहरी के बारे में जो भी संदेह है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, संदेह की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

(ii. सात चौदह हो जाते हैं)

"और हे भिक्षुओं, वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा ज्ञान के सात कारक चौदह हो जाते हैं?

जो भी आंतरिक धर्मों (गुणों, नियमों) का ध्यान (सति) किया जाता है, वह ध्यान का ज्ञान कारक है; जो भी बाह्य धर्मों का ध्यान किया जाता है, वह भी ध्यान का ज्ञान कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में ध्यान का ज्ञान कारक कहा जाता है, वह इस व्याख्या विधि द्वारा दुगुना हो जाता है।"

जब भी कोई प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से आंतरिक रूप से धर्मों का भेद करता है, उनका परीक्षण करता है, उनकी जांच करता है, तो वह अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक है; जब भी कोई प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से बाह्य रूप से धर्मों का भेद करता है, उनका परीक्षण करता है, उनकी जांच करता है, तो वह भी अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में विभाजित हो जाता है।

शरीर में जो भी ऊर्जा (वीर्य) होती है, वह ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक है; मानसिक ऊर्जा में जो भी ऊर्जा होती है, वह भी ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में विभाजित हो जाता है।

"जो भी आनंद (पीति/प्रीति) विचार और विश्लेषण के साथ होता है, वह आनंद का ज्ञानवर्धक कारक है; जो भी आनंद बिना विचार और विश्लेषण के होता है, वह भी आनंद का ज्ञानवर्धक कारक है। 101 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह व्याख्या की इस विधि से दो गुना हो जाता है।"

शरीर की जो भी शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) होती है, वही शांति का ज्ञानवर्धक कारक है; मन की जो भी शांति होती है, वही शांति का ज्ञानवर्धक कारक है। 102 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में बँट जाता है। विचार

और चिंतन के साथ जो भी समाधि (सम्मोहन) अवस्था होती है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक है; विचार और चिंतन के बिना जो भी समाधि (सम्मोहन) अवस्था होती है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में बँट जाता है।

"आंतरिक धर्मों के प्रति जो समभाव (उपेक्खा) होता है, वही समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक है; बाह्य धर्मों (गुणों, नियमों) के प्रति जो समभाव (उपेक्खा) होता है, वही समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दुगुना हो जाता है।

भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा ज्ञानोदय के सात कारक चौदह हो जाते हैं।"

---

234. अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)
फिर, सुबह के समय, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया ... (जैसा कि 233 से आगे तक है:) ... 104 [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, जब मन सुस्त हो जाता है, तो उस समय ज्ञान के किन कारकों को विकसित करना असमय है, और किन कारकों को विकसित करना उचित है? फिर, मित्रों, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो उस समय ज्ञान के किन कारकों को विकसित करना असमय है, और किन कारकों को विकसित करना उचित है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे परेशान हो जाएंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं है। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मैं किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या तथागत के शिष्य या उनसे सुनने वाले के।

(i. सुस्त मन: असमय)

“हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करना असमय है। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मन सुस्त है और उसे धर्मों (गुणों, नियमों) से जागृत करना कठिन है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति छोटी सी आग को प्रज्वलित करना चाहता है। यदि वह उसमें गीली घास, गीला गोबर और गीली लकड़ी डाले, उस पर पानी छिड़के और मिट्टी बिखेर दे, तो क्या वह उस छोटी सी आग को प्रज्वलित कर पाएगा?"

"नहीं, आदरणीय।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना कठिन है।

(ii. सुस्त मन: उपयुक्त)

"हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा (वीर्य) और आनंद (पीति/प्रीति) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना उपयुक्त होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना आसान है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति छोटी सी आग को भड़काना चाहता है। यदि वह उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डाले, उस पर फूँके और उस पर मिट्टी न डाले, तो क्या वह छोटी सी आग को भड़का पाएगा?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो धम्मविचाय (अवस्थाओं के भेदभाव), ऊर्जा-शक्ति और आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान का विकास करना उचित होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना आसान है।

(iii. उत्तेजित मन: असमय)

"हे भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो धम्मविचाय (अवस्थाओं के भेदभाव), ऊर्जा-शक्ति और आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन उत्तेजित है और इन धर्मों से उसे शांत करना कठिन है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक बड़ी आग बुझाना चाहता है। यदि वह उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डाले, उस पर फूँके, और उस पर मिट्टी न डाले, तो क्या वह उस बड़ी आग को बुझा पाएगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक), वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) और पीति/प्रीति (आनंद) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, मन उत्तेजित होता है और इन धर्मों से उसे शांत करना कठिन होता है।

(iv. उत्तेजित मन: समयोचित)

"भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो शांति (प्रशद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना समयोचित होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, मन उत्तेजित होता है और इन धर्मों से उसे शांत करना आसान होता है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक बड़ी आग बुझाना चाहता है। यदि वह उसमें गीली घास, गीला गोबर और गीली लकड़ी डाले, उस पर पानी छिड़के और मिट्टी बिखेर दे, तो क्या वह उस बड़ी आग को बुझा पाएगा?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करना उचित होता है। क्यों? क्योंकि मन उत्तेजित होता है, भिक्षुओं, और इन धर्मों से उसे शांत करना आसान होता है।

" "परन्तु ध्यान (सती), भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, सदा उपयोगी होता है।" 105

---

235. प्रेम और करुणा (मेट्टासहगत) के साथ

एक बार भगवान (बुद्ध) कोलियों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ हलिद्दवासना नामक कोलियों का एक नगर था। 106 फिर, सुबह के समय, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। चलो दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलते हैं।"

तब वे भिक्षु दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उनसे कहा: “मित्रों, तपस्वी गौतम अपने शिष्यों को धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हैं: ‘आओ, भिक्षुओं, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेसा) का त्याग करो जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करती हैं, और प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति अपने समान, प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और सभी के प्रति अपने समान, करुणा से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। बिना शत्रुता, बिना द्वेष के। परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, परोपकारी आनंद से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम मन से, बिना शत्रुता, बिना द्वेष के, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम मन से, बिना शत्रुता, बिना द्वेष के, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो।

"मित्रों, हम भी अपने शिष्यों को इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हैं:
'आओ, मित्रों, पाँच बाधाओं का त्याग करो... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। प्रेममयी करुणा (मेत्तम/मैत्री)... करुणा... परोपकारी आनंद... समभाव (उपेक्खा)... द्वेष रहित। तो मित्रों, तपस्वी गौतम और हमारे बीच, अर्थात् एक धम्म शिक्षा और दूसरी के संबंध में, एक शिक्षण पद्धति और दूसरी के संबंध में, यहाँ क्या अंतर, क्या भिन्नता, क्या भेद है? 107

तब उन भिक्षुओं ने न तो उन तपस्वियों के कथन पर प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसका खंडन किया। प्रसन्नता व्यक्त किए बिना और खंडन किए बिना, वे अपने स्थानों से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "हम इस कथन का अर्थ भगवान (बुद्ध) के समक्ष जानेंगे।"

फिर, जब वे भिक्षु हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के बाद भिक्षा मांगने लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और उन्हें उन तपस्वियों और अपने बीच हुई पूरी चर्चा बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"भिक्षुओं, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, प्रेम (मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? 108 करुणा द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?' इस प्रकार पूछे जाने पर वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे क्रोधित हो जाएंगे। इसका कारण क्या होगा? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर होगा। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जहाँ देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत या उनके शिष्य या उनसे यह प्रश्न सुनने वाले के सिवा कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट नहीं कर सकता।

भिक्षुओं, प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षु, प्रेम और करुणा के साथ सती (ध्यान) के ज्ञान तत्व को विकसित करते हैं... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) के ज्ञान तत्व के लिए... वीरता (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञान तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए... प्रेम और करुणा के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व के लिए, एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित, परिपक्वता प्राप्त करते हुए। मोक्ष (मुक्ति)। 109 यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव में घृणित को देखते हुए निवास करूं,' तो वह घृणित को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'मैं घृणित में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव और घृणित दोनों में घृणित को देखते हुए निवास करूं,' तो वह घृणित को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'घृणित और निर्जीव दोनों में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे:
'निर्जीव और घृणित दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध करते हुए निवास करूं,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध करते हुए निवास करता है। संपजानो को समझने से, अन्यथा वह सौंदर्य की मुक्ति (विमोक्ष/विमोक्ष) में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, प्रेम (मैत्री/मेत्त) द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष सौंदर्य ही है, मैं यहाँ उस बुद्धिमान भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, करुणा द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत में विमुक्ति) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षु करुणा के साथ ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करते हैं (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... वीरता के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व के लिए)... एकांत, वैराग्य और समाप्ति पर आधारित करुणा के साथ समभाव के ज्ञानोदय तत्व के लिए, जो मोक्ष में परिपक्व होता है। यदि वह चाहें: 'क्या मैं यह अनुभव करते हुए निवास कर सकता हूँ...' 'अविकर्षणहीन में घृणास्पद,' वह उसमें घृणास्पद को अनुभव करते हुए निवास करता है... यदि वह चाहे: 'अविकर्षणहीन और घृणास्पद दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए निवास करूँ,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए उसमें निवास करता है। अन्यथा, रूपों की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की धारणाओं के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है,' वह अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, करुणा द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु परोपकारी आनंद के साथ ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य के ज्ञानोदय तत्व, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व, समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व और परोपकारी आनंद के साथ समता के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है)। यदि वह चाहे: 'क्या मैं घृणास्पद को देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह घृणास्पद को अनुभव करते हुए भी, 'अघृणित' में निवास करता है... यदि वह चाहे: 'अघृणित और घृणास्पद दोनों से बचकर, समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर निवास करूँ,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर उसमें निवास करता है। या फिर, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) अनंत है,' वह चेतना की अनंत शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। भिक्षुओं, परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष चेतना की अनंत शक्ति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति संस्कृत) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान तत्व के लिए... वीरता (वीर्य) के ज्ञान तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए... समभाव (उपेक्खा) के साथ समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व के लिए, एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित, परिपक्वता प्राप्त करते हुए। मोक्ष (मुक्ति)। यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'निर्जीव और निर्जीव दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) निवास करूं,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) निवास करता है। या फिर, चेतना की अनंतता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, वह शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष शून्यता की शक्ति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

---

236. संगरवा

श्रावस्ती में, 112 तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा,

"गुरु गौतम, इसका क्या कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे ही नहीं गए? इसका क्या कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक न जपे गए भजन भी मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे ही गए हैं?"

(i. भजन मन में क्यों नहीं लौटते?)

"ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति काम (राग) की वासना में ग्रस्त मन से रहता है, काम (राग) से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में उत्पन्न काम (राग) से मुक्ति का मार्ग क्या है, 113 उस समय वह न तो अपने भले को जान पाता है और न ही देख पाता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) कि वास्तव में उसका भला क्या है, न दूसरों का भला क्या है, और न ही दोनों का भला क्या है। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से गाए जा रहे हैं, मन में नहीं लौटते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो गाए ही नहीं गए हैं।

"मान लीजिए, ब्राह्मण, एक कटोरे में लाख, हल्दी, नीला या लाल रंग मिला हुआ पानी है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा कि वह वास्तव में क्या है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति कामवासना (राग) में ग्रस्त मन से रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त मन से रहता है, द्वेष से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में उत्पन्न द्वेष से मुक्ति का मार्ग क्या है, उस समय वह (ध्यान में) न तो अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी आग पर गर्म हो रहा है, जिसमें बुलबुले उठ रहे हैं और पानी उबल रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है। इसी

प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई द्वेष से ग्रस्त मन के साथ रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो कभी जपे ही नहीं गए।

"हे ब्राह्मण, जब कोई आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त मन से रहता है, आलस्य और सुस्ती से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में आलस्य और सुस्ती से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय वह न तो अपने भले को जान पाता है और न ही दूसरों के भले को, और न ही दोनों के भले को। तब तो वे भजन भी मन में नहीं आते जिनका पाठ नहीं किया गया है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक पानी का कटोरा है जो जलीय पौधों और शैवाल से ढका हुआ है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है। ठीक उसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त मन से रहता है... उस समय तो वे भजन भी मन में नहीं आते जिनका पाठ किया गया है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।"

"हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त हो, बेचैनी और पश्चाताप से अभिभूत हो, और उसे यह समझ न आए कि वास्तव में बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय वह (ध्यान में) न तो अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से जपे जा रहे हैं, मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो नहीं जपे गए हैं।

"मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी हवा से हिल रहा है, लहरें उठ रही हैं, घूम रही हैं, छोटी-छोटी तरंगें बन रही हैं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है।" इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

“हे ब्राह्मण, जब मन संदेह से ग्रस्त रहता है, संदेह से अभिभूत रहता है, और उत्पन्न संदेह से मुक्ति का वास्तविक मार्ग नहीं समझ पाता, उस समय ध्यान में न तो व्यक्ति अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

“मान लीजिए, हे ब्राह्मण, अंधेरे में एक मटमैला, गंदा, मैला पानी का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा। हे ब्राह्मण, जब मन संदेह से ग्रस्त होता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

हे ब्राह्मण, यही कारण है कि लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते। उन लोगों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।

(ii. भजन मन में बार-बार क्यों आते हैं?)

"ब्राह्मण, जब मन काम (राग) से ग्रस्त न हो, काम (राग) से अभिभूत न हो, और उत्पन्न काम (राग) से मुक्ति का सही अर्थ समझ ले, तब ध्यान में वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को सही रूप में जान और देख पाता है। तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, पहले पढ़े गए भजनों की तो बात ही छोड़िए।

मान लीजिए, ब्राह्मण, एक कटोरा ऐसा जल है जिसमें लाख, हल्दी, नीला या लाल रंग नहीं मिला है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे सही रूप में देख और जान पाएगा।" इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब किसी का मन इंद्रिय-संबंधी (काम/यौन) वासना (राग) से ग्रस्त नहीं होता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन

भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है। “मान लीजिए, हे ब्राह्मण,

एक कटोरा पानी है जिसे आग पर गर्म नहीं किया गया है, न ही उसमें बुलबुले उठ रहे हैं, न ही वह उबल रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब किसी का मन इंद्रिय-संबंधी (द्वेष) से ग्रस्त नहीं होता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब मन आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी का है जो जलीय पौधों और शैवालों से ढका नहीं है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब मन आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, मान लीजिए एक कटोरा पानी से भरा है जो हवा से हिलता नहीं, उसमें कोई लहर नहीं उठती, कोई भंवर नहीं बनता, कोई छोटी-छोटी तरंगें नहीं बनतीं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त नहीं होता... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो संदेह से ग्रस्त नहीं होता... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, मान लीजिए कि प्रकाश में एक साफ, निर्मल और निर्मल जल का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में देख और जान लेगा। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति संदेह से मुक्त मन से रहता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं किया गया हो, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका हो। हे ब्राह्मण,

यही कारण है कि वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं किया गया हो, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका हो।

"हे ब्राह्मण, ज्ञानोदय के ये सात कारक मन के अवरोधों, बाधाओं और विकारों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक अवरोधों से मुक्त है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक अवरोधों से मुक्त हैं... ज्ञानोदय के ये सात कारक मन के अवरोधों, बाधाओं और विकारों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं..." सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति।" (देखें 182-184)

यह सुनकर ब्राह्मण संगरव ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

237. अभया
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब राजकुमार अभय भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 114

“आदरणीय महोदय, पुराण कस्सप कहते हैं: 'ज्ञान और दृष्टि की कमी का कोई कारण नहीं है; ज्ञान और दृष्टि की कमी का कोई कारण नहीं है। ज्ञान और दृष्टि का कोई कारण नहीं है; ज्ञान और दृष्टि का कोई कारण नहीं है।' 115 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?” “

हे राजकुमार, ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण है; ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण है। ज्ञान और दृष्टि का कारण है; ज्ञान और दृष्टि का कारण है।”

(i. ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण)

“परन्तु, आदरणीय महोदय, ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण क्या है? ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण कैसे है?”

"हे राजकुमार, जब किसी का मन कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से ग्रस्त हो, कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से अभिभूत हो, और वह (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) इस प्रकार उत्पन्न कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से मुक्ति का मार्ग न तो जान पाए और न ही देख पाए: यह ज्ञान और दृष्टि के अभाव का कारण है; इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का अभाव कारण बनता है।

"हे राजकुमार, जब किसी का मन द्वेष से ग्रस्त हो... आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हो... बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त हो... संदेह से ग्रस्त हो, संदेह से अभिभूत हो, और वह (ध्यान में) इस प्रकार उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग न तो जान पाए और न ही देख पाए: यह भी ज्ञान और दृष्टि के अभाव का कारण है।" इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का अभाव भी कारण से होता है। "

हे पूज्यवर, इस धम्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या क्या है?"

"हे राजकुमार, इन्हें बाधाएँ कहते हैं।"

"निश्चित रूप से ये बाधाएँ हैं, हे भगवान (बुद्ध)! निश्चित रूप से ये बाधाएँ हैं, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! एक बाधा से भी पराजित व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं जान और देख सकता, पाँच बाधाओं से पराजित व्यक्ति की तो बात ही क्या है?

(ii. ज्ञान और दृष्टि का कारण)

"परन्तु, हे पूज्यवर, ज्ञान और दृष्टि का कारण क्या है? ज्ञान और दृष्टि का कारण कैसे होता है?"

"हे राजकुमार, यहाँ एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित कर चुके मन से वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में)। यही ज्ञान और दृष्टि का कारण है; इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का संबंध कारण से होता है..."

"पुनः, राजकुमार, एक भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित कर चुके मन से वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में)। यह भी ज्ञान और दृष्टि का एक कारण है। इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का संबंध कारण से होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, इस धम्म व्याख्या को क्या कहते हैं?"

"हे राजकुमार, इन्हें ज्ञान के कारक कहते हैं।"

"निःसंदेह ये ज्ञानोदय के कारक हैं। हे भगवान (बुद्ध)! निश्चय ही ये ज्ञानोदय के कारक हैं। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! ज्ञानोदय का एक भी कारक रखने वाला व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जान और देख सकता है, सातों ज्ञानोदय कारकों को रखने वाले की तो बात ही क्या है। गिद्ध शिखर पर्वत पर चढ़ने से मुझे जो शारीरिक और मानसिक थकान हुई थी, वह दूर हो गई है। मैंने धम्म का मार्ग प्रशस्त कर लिया है।" 116

(vii) अंदर-बाहर श्वास ध्यान (अनापानवग्गो सं. अन-अपान-वर्ग)
238. कंकाल-अधिनियम-परिणाम
(i. अत्यधिक फलदायी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित और पोषित की जाती है, तो यह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक होती है। 117

"और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित की जाती है ताकि यह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक हो? यहाँ, हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है।" इसी प्रकार कंकाल की धारणा विकसित और पोषित होती है, जिससे यह बहुत फलदायी और लाभदायक होती है।"

(ii. दो फलों में से एक)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की धारणा विकसित और पोषित हो जाती है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) का अवशेष हो, तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि दो फलों में से एक की प्राप्ति हो सके: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति का कोई अंश शेष रहे तो पुनर्जन्म रहित अवस्था? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। इसी प्रकार कंकाल की अनुभूति को विकसित और पोषित किया जाता है ताकि दो फलों में से एक की प्राप्ति हो सके: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति का कोई अंश शेष रहे तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

(iii. परम कल्याण)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह परम कल्याण की ओर ले जाती है।

और भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित होती है जिससे यह परम कल्याण की ओर ले जाती है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष में परिपक्व होता है। इसी प्रकार कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है जिससे यह परम कल्याण की ओर ले जाती है।"

(iv. बंधन से सुरक्षा)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह बंधन से परम कल्याण की ओर ले जाती है।

और भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित होती है जिससे यह बंधन से परम कल्याण की ओर ले जाती है?..."
(उपरोक्त सभी बातें समान हैं।)

(क्रिया: तात्कालिकता की भावना)

भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो इससे अत्यधिक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे अत्यधिक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हो?... (ऊपर दिए गए अनुसार)

(छठी विधि: आराम से निवास करना)

भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो इससे अत्यधिक आराम से निवास करने की अनुभूति होती है।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे अत्यधिक आराम से निवास करने की अनुभूति हो?...
(ऊपर दिए गए अनुसार)

(निम्नलिखित प्रत्येक सूत्र, 239-257, को 238 की छह गुना विधि के अनुसार विस्तृत किया जाना है)

---

239. कृमिग्रस्त (पुलावक)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब कृमिग्रस्त शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

240. द लिविड (विनिलाका)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब किसी सड़े हुए शव की अनुभूति (सन्ना संज्ञा) विकसित हो जाती है..."

---

241. द फिशर्ड (विचिडका)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब किसी फटे हुए शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

242. फूला हुआ (उद्धुमतक)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब फूले हुए शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

243. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)
"भिक्खुओं, जब दयालुता (मेत्ता\मैत्री) विकसित होती है..."

---

244. करुणा
"भिक्षुओं में जब करुणा विकसित हो जाती है..."

---

245. परोपकारी आनंद (मुदिता)
"भिक्षुओं में जब परोपकारी आनंद विकसित हो जाता है..."

---

246. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब समभाव (उपेक्खा) विकसित हो जाता है..."

---

247. श्वास ध्यान (अनापान)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब श्वास की सती साधना विकसित हो जाती है..."

(viii) समाप्ति 119 (निरोध)
248. अपवित्रता (असुभा)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब बेईमानी की धारणा (सन्न संस. संग्या) ..."

---

249. मृत्यु (मरना)
"भिक्खुओं, जब मृत्यु की धारणा (सन्न संस. संज्ञा) ..."

---

250. भोजन के प्रति अरुचि (अहरेपटिकुला)
"भिक्षुओं को जब भोजन की अरुचि का अहसास होता है..."

---

251. अनभिराती (अनाभिराती)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब उन्हें समस्त
संसार में आनंदहीनता की अनुभूति होती है..."

---

252. अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब अनित्यता (अनिच्च संस. अनित्य) की धारणा (सन्ना सं. संज्ञ) ..."

---

253. दुख (दुक्खा)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना संज्ञा) होती है..."

---

254. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
भिक्षुओं को जब दुख में अनात्म की अनुभूति होती है (सन्ना संज्ञा),

---

255. परित्याग (पहाना)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब परित्याग की धारणा (सन्न संस. संज्ञा)...

---

256. वैराग्य (विराग)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब वैराग्य की धारणा (सन्न संस. संज्ञा)...

---

257. निरोध (समाप्ति)
(i. अत्यधिक फलदायी)

"भिक्षुओं, जब निरोध की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो वह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक होती है।

और हे भिक्षुओं, निरोध की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक हो?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित, निश्चिंतता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इसी प्रकार निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित होता है, जिससे महान फल और लाभ प्राप्त होता है। (देखें 182-184)

(ii. दो फलों में से एक)

"भिक्षुओं, जब निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित हो जाता है, तो दो फलों में से एक की प्राप्ति होती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष हो, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

"और भिक्षुओं, निश्चिंतता का ज्ञान कैसे विकसित होता है... (जैसा कि पहले बताया गया है)?"

(iii-vi. महान लाभ, आदि)

"भिक्षुओं, जब निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित हो जाता है, तो यह महान लाभ की ओर ले जाता है... बंधन से महान सुरक्षा की ओर... एक महान तात्कालिकता की भावना की ओर... महान आराम में निवास की ओर। "

और यह ऐसा कैसे करता है?" यहां, भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करते हैं, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-शक्ति के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की ज्ञानोदय अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है)। वे एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करते हैं, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है और मोक्ष की प्राप्ति में

परिपक्व होता है। इसी प्रकार निश्चिंतता की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, जिससे महान लाभ, बंधन से महान सुरक्षा, महान तत्परता की भावना और महान आराम में निवास प्राप्त होता है। (देखें 182-184)

(ix) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
258-269. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार होकर बहती है, उसी प्रकार ज्ञान के सात गुणों को विकसित और पोषित करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर ढलानदार होकर बढ़ता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु ज्ञान के सात गुणों को कैसे विकसित और पोषित करता है जिससे वह निर्वाण की ओर ढलानदार होकर बढ़ता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, वीर्य के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति के ज्ञानोदय कारक, प्रशब्धि के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले सूत्रों के समानांतर ही की जानी है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं:
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(x) सतर्कता अनुभाग (अप्पामादावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
270-279. तथागत, इत्यादि।
"भिक्षुओं, चाहे कितने भी प्राणी हों - चाहे वे बिना पैरों वाले हों, दो पैरों वाले हों, चार पैरों वाले हों या अनेक पैरों वाले हों - ..."

(पूर्व में बताए गए ज्ञान के कारकों के समानांतर आगे विस्तार से बताया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही वस्त्र दसवें रूप में।"

(xi) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
280-291. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
"भिक्षुओं (साधुओं), जैसे-जैसे कोई भी कठिन कर्म किए जाते हैं...

(पिछले वाले के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा) 136

कठिन, बीज, और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश, और बादलों पर दो।

जहाज, अतिथिगृह, और नदी।"

(xii) खोज अनुभाग (एसानावाग्गो)
292-301. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) के पवित्र जीवन की खोज...

(पिछली खोजों के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

खोजें, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
वेदना, तृष्णा और प्यास।

(xiii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
302-310. बाढ़, आदि (ओघा)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार की जलधाराएँ हैं। कौन सी चार? कामुकता की जलधारा, अस्तित्व की जलधारा (भावो), विचारों की जलधारा, अज्ञान की जलधारा (अविज्जा सान. अविद्या)...

(पिछली व्याख्याओं के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

---

311. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए ज्ञान के सात कारकों का विकास करना आवश्यक है। ये

सात कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान कारक का विकास करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। ज्ञानोदय के इन सात कारकों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध,
समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(xiv) गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

312-323. गंगा नदी - पूर्व दिशा की ओर
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलान पर बहती है, उसी प्रकार भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

और वह ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। इसी प्रकार भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(कामवासना आदि के निवारण को अंतिम लक्ष्य बनाकर ज्ञान तत्वों के बारे में विस्तार से बताया जाएगा।)

पूर्व दिशा की ओर ढलान के बारे में छह
और सागर की ओर ढलान के बारे में छह।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं:
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(xv) सतर्कता अनुभाग (पुना-अप्पमदा-वाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

324-333. तथागत, इत्यादि।
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, हृदय की लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही वस्त्र दसवें स्थान पर।

(xvi) कठोर कर्म (पुनबलकारनिया)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

334-345. कठिन, इत्यादि (पुनाबलादी)
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, कील।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(xvii) खोज (पुनैसनवग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
346-356. खोज आदि (पुणेसन)
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

खोज, भेद, दोष।

अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(xviii) बाढ़ खंड (पुनाओघवाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
357-365. बाढ़, आदि (पुनाओघाड़ी)
(इसका विस्तृत विवरण उन ज्ञानोदय कारकों के माध्यम से दिया जाएगा जिनका अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

---

366. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविज्जा)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए ज्ञान के सात कारकों का विकास करना आवश्यक है। ये

सात कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान कारक का विकास करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का विकास करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है... जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, जिसका गंतव्य अमरता है, जिसका अंतिम लक्ष्य अमरता है... जो निर्वाण की ओर झुकता, ढलान बनाता और ढलान बनाता है। हे भिक्षुओं, ज्ञान के इन सात कारकों को इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए। 121

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 3: ध्यान की स्थापना पर संबंधित प्रवचन (सतिपट्ठनसाम्युत्त) {साम्युत्त-47}
(i) अम्बापाली
367. अंबपाली (संपजानो के संबंध में पूर्ण बोध (संपजन्ना))
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वेशाली में अंबपाली के उपवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!" 122

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) के लिए एक मार्ग है। 123 वे चार अवस्थाएँ क्या हैं?

"यहाँ, भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में निवास करता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।" 124 वह व्यक्ति वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है। वह मन पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है। वह धर्मों पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है।

"हे भिक्षुओं, यही प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति का एकमार्ग है, अर्थात् ध्यान के चार चरणों की प्राप्ति का।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। वे भिक्षु प्रसन्न होकर भगवान (बुद्ध) के कथन से आनंदित हुए।

---

368. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
एक बार भगवान (बुद्ध) वेशाली में अंबपाली के उपवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः ज्ञानवान (संपजनो) रहना चाहिए: यही हमारा आपको निर्देश है। 125

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे ध्यानमग्न होता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर (कयानुपसी) पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहता है, उत्साही, पूर्णतः ज्ञानवान (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदना में वेदना (संवेदना) पर ध्यानमग्न रहता है..." मन में मन... घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोध रखने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु वह है जो आगे बढ़ते और लौटते समय; आगे और पीछे देखते समय; अंगों को सिकोड़ते और फैलाते समय; वस्त्र धारण करते और ग्रहण-पात्र धारण करते समय; भोजन करते, पीते, चबाते और चखते समय; शौच करते और मूत्र त्यागते समय; चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय पूर्ण बोध के साथ कार्य करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध का अभ्यास करता है। हे

भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

---

369. एक भिक्षु
(चौथे सती-पठन/प्रतिष्ठा पर, अर्थात् काया, वेदना, चित्त और धम्म का त्रिविध तरीके से ध्यान करना - आंतरिक, बाह्य और दोनों आंतरिक+बाह्य) एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।"

"यहाँ कुछ नासमझ लोग मुझसे इसी तरह निवेदन करते हैं, परन्तु जब उन्हें धम्म का उपदेश दिया जाता है, तो वे केवल मेरे पीछे-पीछे चलने का ही मन बनाते हैं।" 126

"भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूँ; शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूँ।" "

तो फिर, भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के आरंभिक बिंदु को शुद्ध करो। और लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभिक बिंदु क्या है? शुद्ध सद्गुण (शील) और सीधा दृष्टिकोण। 127 तब, भिक्षु, जब तुम्हारा सद्गुण शुद्ध हो जाए और तुम्हारा दृष्टिकोण सीधा हो जाए, सद्गुण पर आधारित, सद्गुण पर स्थापित, तो तुम्हें ध्यान (सती) के चार आधारों को त्रिविध तरीके से विकसित करना चाहिए।

" "वे चार कौन से हैं?" (1) हे भिक्षु, शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (अनुपसी) (i) आंतरिक रूप से (अज्जतम्), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (ii) बाह्य रूप से (बहिद्ध), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के

प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। 128

"(2) संवेदनाओं (वेदना) पर ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) चिंतन करो (i) आंतरिक रूप से ... (ii) बाह्य रूप से ... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।

(3) मन पर ध्यानपूर्वक (i) आंतरिक रूप से ... (ii) बाह्य रूप से ... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।

(4) धर्म की घटनाओं पर ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए (अनुपस्सी), (i) आंतरिक रूप से... (ii) बाह्य रूप से... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"हे भिक्षु, जब तुम सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों में स्थापित, इन चारों ध्यान अवस्थाओं को इस प्रकार त्रिविध रूप से विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।"

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने स्थान से उठा और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया।

फिर, एकांतवास में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गए।

---

370. साला में
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच ब्राह्मणों के गाँव साला में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जिन्होंने अभी-अभी दीक्षा ली है, जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं, उन्हें ध्यान (सती) के चार प्रतिष्ठानों (पत्थाना/प्रतिष्ठान) के विकास में निर्देश, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए। वे चार कौन से हैं?

'आओ, मित्रों, शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहो, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए, एकाग्र, निर्मल मन से, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में, एकाग्र मन से, ताकि शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में जान सको। वेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए, संवेदनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने के लिए, उन पर ध्यान केंद्रित करें। मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए, मन पर ध्यान केंद्रित करें, ताकि मन को उसके वास्तविक स्वरूप में जान सकें। धर्मों को ध्यानपूर्वक देखते हुए, धर्मों पर ध्यान केंद्रित करें, ताकि धर्मों को उनके वास्तविक स्वरूप में जान सकें।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं: वे भी शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), एकाग्र, निर्मल मन से, समाधि अवस्था में, एकाग्र मन से, शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी संवेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... संवेदनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... मन को उसके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... घटनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गए हैं: वे भी शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, एकाग्र, निर्मल मन से समाधि

अवस्था में, एकाग्रचित्त मन से, शरीर से विरक्त। वे भी संवेदनाओं को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... संवेदनाओं से विरक्त। वे भी मन को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... मन से विरक्त। वे भी घटनाओं को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... घटनाओं से विरक्त।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, जो हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में आए हैं, उन्हें ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों (पत्थाना/प्रतिष्ठान) के विकास में आपके द्वारा निर्देश, स्थिरीकरण और सुदृढ़ीकरण किया जाना चाहिए।"

---

371. हानिकारक वस्तुओं का ढेर (अकुसलारसी)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यदि किसी को 'हानिकारक (अकुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह पाँच बाधाओं के बारे में ही कहेगा। क्योंकि यह संपूर्ण हानिकारक (अकुशल) का ढेर है, अर्थात् पाँच बाधाओं का। वे पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा की बाधा, द्वेष की बाधा, आलस्य और सुस्ती की बाधा, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा, संदेह की बाधा। यदि किसी को 'हानिकारक (अकुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह इन्हीं पाँच बाधाओं के बारे में कहेगा। क्योंकि यह संपूर्ण हानिकारक (अकुशल) का ढेर है, अर्थात् पाँच बाधाओं का।

यदि, भिक्षुओं, किसी को 'लाभदायक (कुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह चार स्थापनाओं के बारे में कहेगा।" ध्यान (सती) के बारे में यह कहना उचित है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का संपूर्ण संग्रह है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है। 129 यदि किसी चीज को 'लाभकारी (कुशल) का संग्रह' कहा जाए, तो वह इन चार ध्यान प्रतिष्ठानों के बारे में ही कहना उचित है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) चीजों का पूरा ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान।

---

372. बाज़ (सकुनाग्घी)
भिक्षुओं, एक बार एक बाज़ अचानक झपटा और एक बटेर को पकड़ लिया। 130 तब, जब बाज़ बटेर को ले जा रहा था, तो उसने विलाप किया: 'हम कितने दुर्भाग्यशाली थे, कितने कम पुण्य वाले! हम अपने क्षेत्र से भटककर दूसरों के क्षेत्र में आ गए। अगर आज हम अपने क्षेत्र में, अपने पैतृक क्षेत्र में ही रहते, तो यह बाज़ मुझसे लड़ाई में टिक नहीं पाता।' - 'पर तुम्हारा अपना क्षेत्र क्या है, बटेर, तुम्हारा पैतृक क्षेत्र क्या है?' - 'मिट्टी के ढेलों से ढका हुआ नया जोता हुआ खेत।'

तब बाज़ ने अपनी शक्ति पर विश्वास रखते हुए, अपनी शक्ति का घमंड न करते हुए, 131 बटेर को मोक्ष की अवस्था में छोड़ते हुए कहा: 'अब जाओ, बटेर, पर वहाँ भी तुम मुझसे बच नहीं पाओगे।'

"फिर, भिक्षुओं, बटेर मिट्टी के ढेलों से ढके एक नए जोते हुए खेत में गई। एक बड़े ढेले पर चढ़कर वह वहाँ खड़ी हो गई और बाज़ को संबोधित करते हुए बोली, 'आओ, मुझे पकड़ो, बाज़! आओ, मुझे पकड़ो, बाज़!'

"तब बाज़, अपनी शक्ति पर आश्वस्त होकर, अपनी शक्ति का घमंड न करते हुए, अपने दोनों पंख समेटकर अचानक बटेर पर झपटी। लेकिन जब बटेर को पता चला, 'बाज़ पास आ गई है,' तो वह उस ढेले के अंदर घुस गई, और बाज़ ने वहीं पर उसकी छाती को चूर-चूर कर दिया। ठीक ऐसा ही होता है, भिक्षुओं, जब कोई अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में प्रवेश करता है।"

अत: हे भिक्षुओं, अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में न जाओ। जो अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में जाते हैं, उन पर शैतान का कब्ज़ा हो जाता है; शैतान उन्हें अपने वश में कर लेता है। 132

“और वह क्या है जो भिक्षु का अपना क्षेत्र नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है? वह है इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ। वे पाँच कौन सी हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वे वस्तुएँ जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। ये इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ हैं। यही वह है जो भिक्षु का अपना क्षेत्र नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है।”

"भिक्षुओं, अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने पैतृक क्षेत्र में विचरण करो। जो लोग अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने पैतृक क्षेत्र में विचरण करते हैं, उन तक मारा नहीं पहुंच पाएगा; मारा उन पर हावी नहीं हो पाएगा।"

और भिक्षु का क्षेत्र, उसका अपना पैतृक क्षेत्र क्या है? यह ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सति) हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। वे वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में मन को देखते हुए, और धम्म में धम्म को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। यही भिक्षु का क्षेत्र है, उसका अपना पैतृक क्षेत्र है।

---

373. बंदर (मक्काटा सं. मार्कट)
"भिक्षुओं, हिमालय में, जो पर्वतों का राजा है, ऐसे ऊबड़-खाबड़ और पथरीले इलाके हैं जहाँ न तो बंदर जा सकते हैं और न ही मनुष्य; ऐसे भी ऊबड़-खाबड़ और पथरीले इलाके हैं जहाँ बंदर जा सकते हैं लेकिन मनुष्य नहीं; ऐसे भी समतल और रमणीय क्षेत्र हैं जहाँ बंदर और मनुष्य दोनों जा सकते हैं। वहाँ, बंदरों के रास्तों पर, शिकारी बंदरों को पकड़ने के लिए तारकोल के जाल बिछाते हैं।

जो बंदर बचकाने और लापरवाह नहीं होते, वे तारकोल को देखकर दूर से ही बच निकलते हैं। परन्तु जो बंदर बचकाना और लापरवाह होता है, वह तारकोल के पास जाकर उसे हाथ से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं अपना हाथ छुड़ा लूँगा' सोचकर वह दूसरे हाथ से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं दोनों हाथ छुड़ा लूँगा' सोचकर वह पैर से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं दोनों हाथ और पैर छुड़ा लूँगा' सोचकर वह दूसरे पैर से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है।" यह सोचकर कि 'मैं अपने दोनों हाथ-पैर मुक्त कर लूँगा', वह अपना थूथन उस पर लगाता है; वह वहीं फँस जाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह बंदर, पाँचों बिंदुओं से फँसा हुआ, वहाँ चीखता पड़ा है। उस पर विपत्ति और विपत्ति आई है और शिकारी उसके साथ जो चाहे कर सकता है। शिकारी उसे भाले से मारता है, उसी लकड़ी के टुकड़े से बाँध देता है, 133 और जहाँ चाहे चला जाता है। भिक्षुओं, यही होता है जब कोई अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में चला जाता है।

"इसलिए, भिक्षुओं, अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में न जाओ। जो लोग अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में चले जाते हैं, उन पर मारा (शैतान) का अधिकार हो जाता है; मारा उन पर अपना अधिकार जमा लेता है।

और वह क्या है जो भिक्षु का अपना स्थान नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है? वह है इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... यही वह है जो भिक्षु का अपना स्थान नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है। हे

भिक्षुओं, अपने ही स्थान पर, अपने ही पैतृक क्षेत्र में विचरण करो। जो अपने ही स्थान पर, अपने ही पैतृक क्षेत्र में विचरण करते हैं, उन तक मारा नहीं पहुँच पाएगा; मारा उन पर हावी नहीं हो पाएगा।

और भिक्षु का आश्रय स्थल, उसका पैतृक क्षेत्र क्या है? यह ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सती) हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। वह संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। यही भिक्षु का आश्रय स्थल है, उसका पैतृक क्षेत्र है।

---

374. रसोइया (सूद)
(i. अयोग्य रसोइया)

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया किसी राजा या राजमंत्री को तरह-तरह के व्यंजन परोसता है: खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन, और बेस्वाद।

वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया अपने स्वामी की पसंद को नहीं समझ पाता: 134 'आज मेरे स्वामी को यह व्यंजन पसंद आया, या उन्होंने यह व्यंजन उठाया, या उन्होंने यह व्यंजन अधिक खाया, या उन्होंने इसकी प्रशंसा की; या आज मेरे स्वामी को खट्टा व्यंजन पसंद आया, या उन्होंने खट्टा व्यंजन उठाया, या उन्होंने खट्टा व्यंजन अधिक खाया, या उन्होंने इसकी प्रशंसा की; या कड़वे व्यंजन... या चटपटे व्यंजन... या मीठे व्यंजन... या चटपटे व्यंजन... या हल्के व्यंजन... या नमकीन व्यंजन... या बेस्वाद व्यंजन मेरे स्वामी को पसंद आया... या उन्होंने बेस्वाद व्यंजन की प्रशंसा की।'

वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया वस्त्र, वेतन और बोनस जैसे उपहार प्राप्त नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया अपने स्वामी की पसंद को नहीं पहचानता।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन भिक्षु शरीर में शरीर को ध्यान से देख रहा है, वह पूरी तरह से संवेदनशील और ध्यानमग्न है, उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। जब वह शरीर में शरीर को ध्यान से देख रहा होता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में नहीं जाता, उसके विकार (उपकिलेष) दूर नहीं होते, और वह उस निमित्त (निमित्त) को नहीं पहचानता। 135 वह ध्यान में लीन होकर संवेदनाओं (वेदना) को देखता है... मन में मन... घटनाओं (धम्म) को घटनाओं (धम्म) में, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह ध्यान में लीन होकर घटनाओं (धम्म) को देखता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में नहीं जाता, उसके विकार (उपकिलेसा) नहीं छूटते, और वह निमित्त (निमित्त) का ग्रहण नहीं करता।

वह अपरिपक्व, अकुशल भिक्षु इस जीवन में सुखी निवास प्राप्त नहीं कर पाता, न ही उसे सती ध्यान और संपजन्न की पूर्ण समझ प्राप्त होती है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, वह अपरिपक्व, अकुशल भिक्षु अपने मन के निमित्त (संकेत) को नहीं पहचान पाता।

(ii. कुशल रसोइया)

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बुद्धिमान, कुशल रसोइया किसी राजा या राजमंत्री को विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसता है: खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन, सादा। 136

वह बुद्धिमान, कुशल रसोइया अपने स्वामी की पसंद को पहचान लेता है: 'आज यह व्यंजन मेरे स्वामी को पसंद आया... या उन्होंने सादे व्यंजन की प्रशंसा की।'

वह बुद्धिमान, कुशल और निपुण रसोइया वस्त्र, वेतन और बोनस जैसे उपहार प्राप्त करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह बुद्धिमान, कुशल और निपुण रसोइया अपने स्वामी की पसंद को पहचान लेता है।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई बुद्धिमान, कुशल और निपुण भिक्षु शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी) बैठा है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा) है, उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। जब वह शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी) बैठा होता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में चला जाता है, उसके विकार (उपकिलेसा) त्याग जाते हैं, और वह उस निमित्त (निमित्त) को पहचान लेता है। वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धम्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं, वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होते हैं। जब वे ध्यानमग्न होकर घटनाओं (धम्म) पर ध्यान लगाते हैं, तो उनका मन समाधि अवस्था में चला जाता है, उनके विकार (उपकिलेष) त्याग जाते हैं, और वे निमित्त (कारण) को ग्रहण कर लेते हैं।

"वह बुद्धिमान, योग्य और कुशल भिक्षु इसी जीवन में सुखद निवास प्राप्त करता है, और वह ध्यान और पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) प्राप्त करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, वह बुद्धिमान, योग्य और कुशल भिक्षु अपने मन के निमित्त (कारण) को ग्रहण कर लेता है।"

---

375. बीमारी (गिलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 137 एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में बेलुवागमक में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"आओ, भिक्षुओं, जहाँ भी वैशाली के आसपास तुम्हारे मित्र, परिचित और घनिष्ठ मित्र हों, वहाँ वर्षावास में प्रवेश करो। मैं स्वयं यहीं बेलुवागमक में वर्षावास में प्रवेश करूँगा।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और वे वैशाली के आसपास जहाँ भी उनके मित्र, परिचित और घनिष्ठ मित्र थे, वहाँ वर्षावास में प्रवेश कर गए, जबकि भगवान (बुद्ध) ने वहीं बेलुवागमक में वर्षावास में प्रवेश किया।

फिर, जब भगवान (बुद्ध) ने वर्षावास में प्रवेश किया, तो उन्हें एक गंभीर बीमारी हो गई और मृत्यु के समान भयानक पीड़ा ने उन्हें घेर लिया। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, बिना विचलित हुए, उन्हें सहन किया। तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया: "अपने सेवकों को संबोधित किए बिना और भिक्षु संघ से विदा लिए बिना अंतिम निर्वाण प्राप्त करना मेरे लिए उचित नहीं है। इसलिए, मैं अपनी ऊर्जा से इस रोग को वश में कर लूँ और संकल्पमय जीवन का निश्चय करके जीवित रहूँ।" 138 तब भगवान (बुद्ध) ने अपनी ऊर्जा से उस रोग को वश में कर लिया और संकल्पमय जीवन का निश्चय करके जीवित रहे। फिर भगवान

(बुद्ध) उस रोग से ठीक हो गए। ठीक होने के तुरंत बाद, वे अपने निवास से बाहर आए और निवास के पीछे छाया में तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यह अत्यंत प्रसन्नता है कि भगवान (बुद्ध) स्वस्थ हैं, यह अत्यंत प्रसन्नता है कि वे ठीक हो गए हैं! 139 परन्तु हे पूज्यवर, जब भगवान (बुद्ध) बीमार थे, तो मेरा शरीर मानो नशे में था, मैं भ्रमित हो गया था, मुझे शिक्षाएँ स्पष्ट नहीं थीं। फिर भी, मुझे इस बात से इतनी तसल्ली मिली कि भगवान (बुद्ध) भिक्षु संघ के विषय में कुछ घोषणा किए बिना अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे।"

आनंद, भिक्षु संघ अब मुझसे क्या अपेक्षा रखता है? मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दिया है, आनंद, भीतर और बाहर के बीच कोई भेद किए बिना। तथागत शिक्षाओं के मामले में किसी भी प्रकार से कठोर शिक्षक नहीं हैं। आनंद, यदि कोई सोचता है, 'मैं भिक्षु संघ का कार्यभार संभालूंगा' या 'भिक्षु संघ मेरे मार्गदर्शन में है', तो भिक्षु संघ के विषय में घोषणा करना उसका कर्तव्य है। लेकिन आनंद, तथागत के मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं भिक्षु संघ का कार्यभार संभालूंगा' या 'भिक्षु संघ मेरे मार्गदर्शन में है', तो तथागत भिक्षु संघ के विषय में घोषणा क्यों करेंगे? अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, आनंद, उम्र का बोझ मुझ पर है, जीवन के अंतिम पड़ाव पर आ गया हूँ। मेरी आयु अब अस्सी वर्ष की हो रही है। जैसे कोई पुरानी गाड़ी पट्टियों के संयोजन से चलती रहती है, 141 वैसे ही लगता है तथागत का शरीर पट्टियों के संयोजन से चलता रहता है।

हे आनंद, जब भी तथागत सभी निमित्त कारणों का अनासक्ति भाव रखकर और कुछ वेदनाओं का निरोध करके, अनिमित्त समाधि अवस्था में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं, उस समय तथागत का शरीर अधिक सुखी होता है। इसलिए, हे आनंद, अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, स्वयं में ही निवास करो; धम्म (मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में स्थित प्रकाश) को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, कैसे निवास करता है? हे आनंद, एक भिक्षु कैसे अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, धम्म को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, निवास करता है? यहाँ, हे आनंद, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) होकर ध्यान में निवास करता है। ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह (शुरुआत में) संवेदनाओं (वेदना) पर ध्यान लगाते हुए, मन में मन... (अंत में) घटनाओं (धम्म) पर ध्यान लगाते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजानो, भीतर और बाहर दोनों, अर्थात् मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर का प्रकाश और बाह्य शरीर भी), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"हे आनंद, वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो स्वयं को अपना द्वीप मानकर, स्वयं को अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, धम्म (मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर का प्रकाश) को अपना द्वीप मानकर, धम्म को अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, निवास करते हैं - हे आनंद, मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक तत्पर होंगे।" 143

---

376. भिक्षुणियों का निवास स्थान
फिर सुबह पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र धारण करके भिक्षुणियों के कक्ष में जाकर निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियां पूज्य आनंद के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा,

“हे पूज्य आनंद, यहाँ कई भिक्षुणियां हैं जो सती ध्यान की चार अवस्थाओं में सजग रहकर उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की साधना प्राप्त कर रही हैं।”

“जी हाँ, बहनों, जी हाँ! यह किसी से भी अपेक्षित है, बहनों - चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी - जो ध्यान की चार अवस्थाओं में सजग रहकर साधना करता है, वह उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की साधना प्राप्त करेगा।”

तब पूज्य आनंद ने उन भिक्षुणियों को धर्म के उपदेश से प्रेरित और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए। फिर पूज्य आनंद श्रावस्ती में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह सब बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
“ऐसा ही है, आनंद, ऐसा ही है! आनंद, जो भी भिक्षु हो या भिक्षुणी, ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) में अच्छी तरह से स्थापित मन से रहता है, उससे उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की विशिष्टता प्राप्त करने की अपेक्षा की जा सकती है।

“वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।” जब भिक्षु शरीर में शरीर का ध्यान करते हुए चिंतन कर रहा होता है, तो शरीर के कारण उसमें या तो शरीर में बुखार उत्पन्न होता है, या मन में सुस्ती आती है, या मन बाहरी विचारों में भटक जाता है। तब भिक्षु को अपना मन किसी प्रेरक कारण (निमित्त) की ओर लगाना चाहिए। 145 जब वह अपना मन किसी प्रेरक कारण (निमित्त) की ओर लगाता है, तो प्रसन्नता उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर उसे परमानंद (पीति/प्रीति) प्राप्त होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर में शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है। वह सोचता है: 'जिस उद्देश्य के लिए मैंने अपना मन लगाया था, वह पूरा हो गया है। अब मैं इसे वापस ले लूँ।' 146 अतः वह मन को वापस ले लेता है और न तो सोचता है और न ही जाँच करता है। वह समझता है: 'बिना विचार और जाँच के, आंतरिक ध्यान में लीन होकर, मैं प्रसन्न हूँ।' 147

"फिर, एक भिक्षु ध्यान में लीन होकर वेदनाओं पर ध्यान लगाता है... मन में मन... घटनाओं पर धम्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। जब वह घटनाओं पर ध्यान लगाता है, तो घटनाओं के आधार पर उसमें या तो शरीर में बुखार उत्पन्न होता है, या मन में सुस्ती आती है, या मन बाहरी रूप से विचलित हो जाता है। तब उस भिक्षु को अपना मन किसी प्रेरक कारण की ओर लगाना चाहिए। जब वह अपना मन किसी प्रेरक कारण की ओर लगाता है... तो वह समझता है: 'बिना विचार और परीक्षण के, आंतरिक रूप से ध्यानमग्न होकर, मैं प्रसन्न हूँ।' आनंद

, इसी प्रकार दिशा द्वारा विकास होता है।" 148

"और हे आनंद, बिना दिशा के विकास कैसे संभव है? अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है: 'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त), दिशाहीन है।' 149 तब वह आगे समझता है: 'मैं शरीर में शरीर पर ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा); मैं प्रसन्न हूँ।'

अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं संवेदनाओं में (वेदनाओं पर) ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न; मैं प्रसन्न हूँ।'

"अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त है, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं मन में मन को देखते हुए (अनुपस्सी) ध्यानमग्न रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न; मैं प्रसन्न हूँ।'

"अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त है, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं घटनाओं में घटनाओं (धम्म) को देखते हुए (संपजानो), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता हूँ; मैं प्रसन्न हूँ।'

"आनंद, इसी तरह बिना दिशा के विकास होता है।

इस प्रकार, आनंद, मैंने दिशा सहित विकास सिखाया है, मैंने बिना दिशा के विकास सिखाया है। आनंद, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा से, उनके कल्याण की कामना करते हुए करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, आनंद, ये खाली झोपड़ियाँ हैं। ध्यान करो, आनंद।" आलसी मत बनो, वरना बाद में पछताओगे। यही हमारी तुम्हें सलाह है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

(ii) नालंदा
377. एक महान पुरुष (महापुरुष)
सावत्थी में। तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, कहते हैं, 'महान पुरुष, महान पुरुष।' 150 पूज्यवर, किस प्रकार कोई व्यक्ति महान पुरुष होता है?"

"मैं कहता हूँ, सारिपुत्त, मुक्त मन से ही कोई व्यक्ति महान पुरुष होता है। मुक्त मन के बिना, मैं कहता हूँ, कोई व्यक्ति महान पुरुष नहीं होता।

" "और सारिपुत्त, मुक्त मन कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, सारिपुत्त, एक भिक्षु शरीर में शरीर को निहारते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।" जब वह शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए लीन रहता है, तो मन वैराग्यमय हो जाता है और अनासक्ति के कारण वह दोषों से मुक्त हो जाता है।

"वह वेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए, मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए, धम्म को ध्यानपूर्वक देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर लीन रहता है। जब वह धम्म को ध्यानपूर्वक देखते हुए लीन रहता है, तो मन वैराग्यमय हो जाता है और अनासक्ति के कारण वह दोषों से मुक्त हो जाता है।

"इस प्रकार, सारिपुत्त, व्यक्ति का मन मुक्त (विमुक्त, संस्कृतः विमुक्त) होता है। मैं कहता हूँ, सारिपुत्त, मुक्त मन वाला व्यक्ति महान पुरुष होता है। मैं कहता हूँ, मुक्त मन के बिना व्यक्ति महान पुरुष नहीं होता।"

---

378. नालंदा
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक-आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। 151 तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के मामले में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है।" "सारिपुत्त

, तुम्हारा यह प्रखर वचन वास्तव में महान है; तुमने एक निश्चित, स्पष्ट सिंह की दहाड़ लगाई है: 152 'पूज्यवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के मामले में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है।' क्या अब, सारिपुत्त, आपने अपने मन में उन सभी अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन को समाहित कर लिया है, जो अतीत में प्रकट हुए और इस प्रकार जानते थे:
'वे भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों (शील), ऐसे गुणों (पन्न) या ऐसी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) या ऐसे निवासों, या ऐसी मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के थे'? 153

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो, सारिपुत्त, क्या आपने अपने मन में उन सभी अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन को समाहित कर लिया है, जो भविष्य में प्रकट होंगे और इस प्रकार जानेंगे: 'वे भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों (या ऐसे गुणों) या ऐसी पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) या ऐसे निवासों, या ऐसी मुक्ति के होंगे'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो, सारिपुत्त, क्या आपने मेरे मन को - जो इस समय अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हूँ - अपने ज्ञान में समाहित कर लिया है और यह जान लिया है कि 'भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों, ऐसी अंतर्दृष्टि, ऐसे निवासों और ऐसी मुक्ति के स्वामी हैं'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"सारिपुत्त, जब आपको अतीत, भविष्य और वर्तमान के अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन का ज्ञान नहीं है, तो आप यह उदात्त, गर्जनापूर्ण कथन क्यों करते हैं और इस निश्चित, स्पष्ट सिंह की गर्जना क्यों करते हैं: 'पूज्यवरवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के विषय में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है'?"

"हे पूज्यवर, मुझे अतीत, भविष्य और वर्तमान के पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंतों के मन का कोई ज्ञान नहीं है, परन्तु मैंने धम्म (मार्ग, नियम) से अनुमान लगाकर यह समझा है। 154 मान लीजिए, हे पूज्यवर, एक राजा का एक सीमावर्ती नगर था जिसमें मजबूत प्राचीरें, दीवारें और मेहराब थे तथा केवल एक ही द्वार था। वहाँ तैनात द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होगा; ऐसा व्यक्ति जो अजनबियों को बाहर रखे और परिचितों को प्रवेश दे। नगर के चारों ओर बने मार्ग पर चलते समय उसे दीवारों में एक भी ऐसी दरार या छेद दिखाई नहीं देगा जो एक बिल्ली के निकलने के लिए भी काफी बड़ा हो। वह सोच सकता है:
'इस नगर में जो भी बड़े प्राणी प्रवेश करते हैं या बाहर जाते हैं, वे सभी इसी एक द्वार से प्रवेश करते हैं और बाहर जाते हैं।

' इसी प्रकार, हे पूज्यवर, मैंने धम्म से अनुमान लगाकर यह समझा है: अतीत में जितने भी पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत हुए, उन सभी बुद्धों ने सबसे पहले पाँचों नियमों का त्याग किया था। 155 हे पूज्यवर, भविष्य में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे, वे सभी भगवान (बुद्ध) सर्वप्रथम मन की पाँच बाधाओं, विकारों (उपकिलेसा) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करने वाले कारकों का त्याग करेंगे; और फिर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में अपने मन को सुस्थापित करके, वे प्रबुद्धता के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करेंगे; और इस प्रकार वे अतुलनीय पूर्ण प्रबुद्धता को प्राप्त करेंगे। और, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध), जो वर्तमान में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ने सर्वप्रथम मन की पाँच बाधाओं, विकारों (उपकिलेष) और प्रबोधन (ज्ञान) को कमजोर करने वाले कारकों का त्याग किया; और फिर, ध्यान की चार अवस्थाओं में अच्छी तरह से स्थापित होकर, उन्होंने ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित किया; और इस प्रकार वे अतुलनीय पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं। "

अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! इसलिए, सारिपुत्त, आपको भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इस धम्म व्याख्या को बार-बार सुनाना चाहिए। भले ही कुछ नासमझ लोगों को तथागत के विषय में भ्रम या अपवित्रता हो, इस धम्म व्याख्या को सुनकर तथागत के विषय में उनकी भ्रम या अपवित्रता दूर हो जाएगी।" 156

---

379. कुंडा
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 157 उस समय पूज्य सारिपुत्त मगधियों के बीच नलकगम में रह रहे थे - वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार थे - और नवोदित चुंडा उनका सेवक था। 158 तब, उस बीमारी के कारण, पूज्य सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।

नवोदित चुंडा, पूज्य सारिपुत्त का कुंड और वस्त्र लेकर सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में गया। वहाँ उसने पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। यह उनका कुंड और वस्त्र है।"

"मित्र चुंडा, हमें इस समाचार के बारे में भगवान (बुद्ध) से मिलना चाहिए। आओ, मित्र चुंडा, हम भगवान (बुद्ध) के पास चलते हैं और उन्हें यह बात बताते हैं।"

"जी, आदरणीय," नवोदित चुंडा ने उत्तर दिया।

तब आदरणीय आनंद और नवोदित चुंडा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। आदरणीय आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे आदरणीय, यह नवोदित चुंडा कहता है कि आदरणीय सारिपुत्त ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है, और यह उनका कुंड और वस्त्र है। आदरणीय, जब से मैंने यह सुना है कि आदरणीय सारिपुत्त ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी नशे में हो, मैं भ्रमित हो गया हूँ, और शिक्षाएँ अब मुझे स्पष्ट नहीं हैं।" 159

"आनंद, जब सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, तो क्या उन्होंने तुम्हारे गुणों (शील) का सार (खंड संस्कृत) छीन लिया, या तुम्हारी समाधि अवस्था (सम्मोहन) का सार, या तुम्हारी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) का सार, या तुम्हारी मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत संस्कृत) का सार, या मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का सार?" 160

"नहीं, उन्होंने नहीं छीना, पूज्यवर। लेकिन मेरे लिए पूज्य सारिपुत्त एक सलाहकार और परामर्शदाता थे, जिन्होंने मुझे शिक्षा दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। 161 वे धम्म (मार्ग, नियम) का अविचलित उपदेश देते थे; वे ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों के सहायक थे। हम पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के पोषण, धम्म के धन और धम्म की सहायता को याद करते हैं।"

लेकिन क्या मैंने पहले ही यह घोषणा नहीं की है, आनंद, कि हमें उन सभी से अलग होना पड़ेगा जो हमें प्रिय और प्रिय हैं? आनंद, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, वह संबद्ध (संक्षिप्त) और विघटन के अधीन होकर भी विघटित न हो!'? यह असंभव है। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी विशाल वृक्ष की सबसे बड़ी शाखा उसे तोड़ दे, जिसमें हृदय की लकड़ी हो: उसी प्रकार, आनंद, हृदय की लकड़ी से युक्त महान भिक्षु संघ में, सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। आनंद, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, वह संबद्ध (संक्षिप्त) और विघटन के अधीन होकर भी विघटित न हो!'? यह असंभव है।

इसलिए, हे आनंद, अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना, धम्म को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करो... (जैसा कि पहले कहा गया है)... हे आनंद, वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करते हैं; जो धम्म को अपना द्वीप मानकर, धम्म को अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करते हैं - हे आनंद, मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक उत्सुक होंगे।

---

380. उक्कासेला
एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के तट पर उक्काचेला में वज्जियों के बीच एक विशाल भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे थे, सारिपुत्त और मोग्गलाना के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद। 162 उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षु संघ के बीच खुले में बैठे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने मौन भिक्षु संघ का अवलोकन करते हुए भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, सारिपुत्त और मोग्गलाना के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद अब यह सभा मुझे खाली प्रतीत होती है। यह सभा मेरे लिए [पहले] खाली नहीं थी, 163 और मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि सारिपुत्त और मोग्गलाना कहाँ निवास कर रहे थे।

अतीत में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष प्रकट हुए, उनके भी सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान ही श्रेष्ठ शिष्य थे, जैसे मेरे थे।" भविष्य में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष उत्पन्न होंगे, उनके भी सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान ही श्रेष्ठ शिष्य होंगे।

"हे भिक्षुओं, शिष्यों के लिए यह अद्भुत है, यह आश्चर्यजनक है कि वे गुरु के निर्देशों का पालन करेंगे और उनकी नसीहतों का अनुपालन करेंगे, वे चारों सभाओं के प्रिय और प्रशंसनीय होंगे, उनका आदर और सम्मान किया जाएगा। 164 हे भिक्षुओं, तथागत के लिए यह अद्भुत है, यह आश्चर्यजनक है कि जब शिष्यों की ऐसी जोड़ी को परम निर्वाण प्राप्त हो जाता है, तो तथागत को कोई दुःख या विलाप नहीं होता।

"हे भिक्षुओं, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, जो संक्षिप्त (संक्षिप्त) है और विघटन के अधीन है, वह विघटित न हो!'? यह असंभव है।" यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी विशाल वृक्ष की सबसे बड़ी शाखाएँ उसे तोड़कर अलग कर दें: ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, उस महान भिक्षु संघ में, जो हृदय से युक्त है, सारिपुत्त और मोग्गलाना ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। हे भिक्षुओं, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, जो संबद्ध (संक्षिप्त) है और जो विघटन के अधीन है, वह विघटित न हो!'? यह असंभव है।

इसलिए, हे भिक्षुओं, अपने भीतर ही अपना द्वीप मानकर निवास करो, अपने आप को ही अपना आश्रय बनाओ, किसी और का आश्रय न लो; धम्म को ही अपना द्वीप मानकर निवास करो, धम्म को ही अपना आश्रय बनाओ, किसी और का आश्रय न लो... (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 375 में है)... वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो अपने भीतर ही अपना द्वीप मानकर निवास करते हैं, अपने आप

को ही अपना आश्रय बनाते हैं, किसी और का आश्रय नहीं लेते; धम्म को अपना द्वीप मानकर निवास करते हैं, धम्म को ही अपना आश्रय बनाते हैं, किसी और का आश्रय नहीं लेते - मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक उत्सुक होंगे।

---

381. बहिया
सावत्थी में। तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, बाहिया, लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के आरंभिक बिंदु को शुद्ध करो। 165 और लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभिक बिंदु क्या है? शुद्ध सद्‌गुण (शील) और सीधा दृष्टिकोण। तब, बाहिया, जब आपका सद्‌गुण शुद्ध हो जाए और आपका दृष्टिकोण सीधा हो जाए, सद्‌गुण पर आधारित, सद्‌गुण पर स्थापित, तो आपको ध्यान (सती) के चार आधारों को विकसित करना चाहिए।

" "वे चार कौन से हैं?" हे बाहिया, यहाँ शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में विलीन रहो, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में विलीन रहो (जैसा कि 369 में है)।

“हे बाहिया, जब तुम सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों पर स्थापित होकर ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करोगे, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रखोगे, हानि की नहीं।” तब

पूज्य बाहिया, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, प्रस्थान किया। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य बाहिया ने दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करते हुए, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त किया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।" और पूज्य बाहिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

382. उत्तिया
सावत्थी में। तब पूज्य उत्तिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे तक): ...

"हे उत्तिया, जब तुम सद्‌गुणों पर आधारित होकर, सद्‌गुणों में स्थिर होकर, ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सति) को इस प्रकार विकसित करोगे, तो तुम मृत्युलोक से परे हो जाओगे।"

तब पूज्य उत्तिया, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे... (जैसा कि पिछले सूत्र में है) ... और पूज्य उत्तिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

383. नोबल (आरिया, आर्या का संक्षिप्त रूप)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होती हैं; ये अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती हैं। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होती हैं; ये अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (संपजनो) की ओर ले जाती हैं।

---

384. ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरी चराने वाले के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, तब उनके मन में यह विचार आया: “यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का एक ही मार्ग है। वे चार अवस्थाएँ क्या हैं? यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... धर्मों में धर्मों को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। यही प्राणियों के शुद्धिकरण का एक ही मार्ग है।” ...अर्थात्, ध्यान के चार प्रतिष्ठान।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से ब्रह्मालोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। 166 उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, प्राणियों के शुद्धिकरण का यही एक मार्ग है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...अर्थात्, ध्यान के चार प्रतिष्ठान।"

ब्रह्मा सहमपति ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) के द्रष्टा,
करुणामय, उस एक मार्ग को जानते हैं

जिससे होकर उन्होंने अतीत में बाढ़ पार की थी,
जिससे होकर वे अब भी पार करेंगे।"

---

385. सेडाका
एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक बार एक कलाबाज ने अपना बाँस का खंभा खड़ा किया और अपने शिष्य मेदकथालिका से कहा: 167 'आओ, प्रिय मेदकथालिका, बाँस के खंभे पर चढ़ो और मेरे कंधों पर खड़े हो जाओ।' 'जी, गुरुजी' कहकर शिष्य मेदकथालिका बाँस के खंभे पर चढ़ गया और गुरुजी के कंधों पर खड़ा हो गया। तब कलाबाज ने शिष्य मेदकथालिका से कहा: 'तुम मेरी रक्षा करो, प्रिय मेदकथालिका, और मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इस प्रकार एक दूसरे की रक्षा करते हुए, हम अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे, अपना शुल्क लेंगे और बाँस के खंभे से सुरक्षित नीचे उतरेंगे।' यह सुनकर शिष्य मेदकथालिका ने उत्तर दिया: 'गुरुजी, यह तरीका सही नहीं है। आप स्वयं अपनी रक्षा करें, गुरुजी, और मैं स्वयं अपनी रक्षा करूँगा। इस प्रकार, हम दोनों स्वयं की रक्षा करते हुए अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे, अपना शुल्क लेंगे और बांस के खंभे से सुरक्षित उतर जाएँगे।' 168

"यही तरीका है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। "यह ठीक वैसा ही है जैसा शिष्य मेदकथालिका ने गुरुजी से कहा था। 'मैं स्वयं की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान (सती) का अभ्यास किया जाना चाहिए। 'मैं दूसरों की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान का अभ्यास किया जाना चाहिए। स्वयं की रक्षा करके, भिक्षुओं, हम दूसरों की रक्षा करते हैं; दूसरों की रक्षा करके, हम स्वयं की रक्षा करते हैं।"

"और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि स्वयं की रक्षा करके दूसरों की रक्षा की जा सकती है? ध्यान के चार चरणों के अभ्यास, विकास और साधना द्वारा। इसी प्रकार स्वयं की रक्षा करके दूसरों की रक्षा की जा सकती है। 169

"और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि दूसरों की रक्षा करके स्वयं की रक्षा की जा सकती है? धैर्य, अहिंसा, प्रेम (मैत्री) और सहानुभूति द्वारा। इसी प्रकार दूसरों की रक्षा करके स्वयं की रक्षा की जा सकती है। 170

'मैं अपनी रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान के पुण्य गुणों का अभ्यास किया जाना चाहिए। 'मैं दूसरों की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान के सती चरणों का अभ्यास किया जाना चाहिए। स्वयं की रक्षा करके, भिक्षुओं, दूसरों की रक्षा की जाती है; दूसरों की रक्षा करके, स्वयं की रक्षा की जाती है।"

---

386. देश की सबसे खूबसूरत लड़की
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच रह रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा: 171

"भिक्षुओं, मान लो कि 'इस देश की सबसे सुंदर कन्या! इस देश की सबसे सुंदर कन्या!' सुनकर लोगों की एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो जाए। अब वह देश की सबसे सुंदर कन्या सुंदर नृत्य करे और सुंदर गायन करे। 'इस देश की सबसे सुंदर कन्या नृत्य कर रही है! इस देश की सबसे सुंदर कन्या गा रही है!' सुनकर लोगों की और भी बड़ी भीड़ जमा हो जाती। 172 फिर एक आदमी आता, जो जीना चाहता, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता और दुख से विमुख रहता। कोई उससे कहता: 'हे भले आदमी, तुम्हें इस तेल से लबालब भरे कटोरे को भीड़ और देश की सबसे सुंदर लड़की के बीच लेकर चलना होगा। एक तलवार लिए आदमी तुम्हारे ठीक पीछे आएगा, और जहाँ कहीं भी थोड़ा सा भी तेल गिरेगा, वह वहीं तुम्हारा सिर काट देगा।'

"भिक्षुओं, क्या वह आदमी तेल के कटोरे पर ध्यान देना छोड़कर आलस्य के कारण अपना ध्यान बाहर की ओर लगाएगा?"

"नहीं, आदरणीय।"

"भिक्षुओं, मैंने यह उपमा एक अर्थ समझाने के लिए गढ़ी है। इसका अर्थ यह है: 'तेल से लबालब भरा कटोरा': यह शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का प्रतीक है।" अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम शरीर पर केंद्रित ध्यान का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें स्वयं को प्रशिक्षित करेंगे और इसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको अभ्यास करना चाहिए।

(iii) सद्गुण और अवधि (सिलात्थितिवग्गो)
387. सदाचार (सिला बिना शील)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद और पूज्य भद्दा पाटलिपुत्त में मुर्गे के उद्यान में रह रहे थे। शाम को पूज्य भद्दा एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा: 173

“मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित लाभकारी गुणों के बारे में उन्होंने क्या कहा है?”

“वाह, वाह, मित्र भद्दा! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित लाभकारी गुणों के बारे में उन्होंने क्या कहा है?'”

“जी, मित्र।”

भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित वे लाभकारी (कुशल) गुण उन्होंने ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) के विकास के उद्देश्य से बताए थे। वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया होता है।

भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित वे गुण उन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं के विकास के उद्देश्य से बताए थे।

---

388. लोंड एंड्योरिंग (सिराथिति सं. सिरास्थयी)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे पूज्य भद्दा ने पूज्य आनंद से कहा:

"मित्र आनंद, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म (मार्ग, नियम) लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों बना रहता है?"

"बहुत खूब, मित्र भद्दा! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी समझ उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों बना रहता है?'"

"जी, मित्र।"

"मित्र, ऐसा इसलिए है क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान (सति) विकसित और पोषित नहीं होते, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक नहीं टिकता। और ऐसा इसलिए है क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित होते हैं, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक टिकता है। वे चार कौन से हैं? मित्र, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर (जैसा कि 369 में है)।

"इन चारों प्रतिष्ठान (सति) के विकसित और पोषित न होने के कारण ही तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक नहीं टिकता।" और ध्यान की इन चार अवस्थाओं के विकास और संवर्धन के कारण ही तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी सच्चा धम्म लंबे समय तक कायम रहता है।

---

389. हानि (परिहाना सं. परिहानी)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"मित्र आनंद, सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) के लुप्त होने का कारण क्या है? और सच्चे धम्म में न लुप्त होने का कारण क्या है?" ...

"मित्र, जब ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति) विकसित और पोषित नहीं होतीं, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। और जब ध्यान की ये चार अवस्थाएँ विकसित और पोषित होती हैं, तब सच्चा धम्म लुप्त नहीं होता।"

---

390. सरल संस्करण (शुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति) हैं। वे चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। [174] वह संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए ध्यान में रहता है... मन में मन को... घटनाओं में धर्म को देखते हुए, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। ये ध्यान की चार अवस्थाएँ हैं।"

---

391. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण सं. अन्यत्तार-ब्राह्मण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा,

"गुरु गौतम, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म (मार्ग, नियम) लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों टिका रहता है?"

"हे ब्राह्मण, क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान (सती) विकसित और पोषित नहीं होते, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी नहीं रहता। और क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित होते हैं, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी रहता है। वे चार कौन से हैं? ...(जैसा कि 388 में है) ... क्योंकि ध्यान के ये चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित नहीं होते ... इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी रहता है।"

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
'महान, गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।'

---

392. आंशिक रूप से (पदेसा)
एक बार पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महामोग्गलाना और पूज्य अनुराधा साकेत में कंदकिवन नामक काँटेदार वन में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना एकांतवास से बाहर आए, पूज्य अनुराधा के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा,

“मित्र अनुराधा, कहते हैं, ‘एक प्रशिक्षु, एक प्रशिक्षु।’ मित्र, किस अर्थ में कोई प्रशिक्षु होता है?”

"मित्र, क्योंकि व्यक्ति ने ध्यान के चार गुणों (सति) को आंशिक रूप से विकसित कर लिया है, इसलिए वह प्रशिक्षु है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म का अवलोकन करते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। क्योंकि व्यक्ति ने ध्यान के इन चार गुणों को आंशिक रूप से विकसित कर लिया है, इसलिए वह प्रशिक्षु है।"

---

393. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, कहा जाता है, 'प्रशिक्षण से परे, प्रशिक्षण से परे।' मित्र, प्रशिक्षण से परे कौन होता है?"

"मित्र, क्योंकि जिसने ध्यान के चारों गुणों (सति) को पूर्णतः विकसित कर लिया है, वही प्रशिक्षण से परे है। वे चार गुण कौन से हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... क्योंकि जिसने ध्यान के इन चारों गुणों को पूर्णतः विकसित कर लिया है, वही प्रशिक्षण से परे है।"

---

394. लोक (विश्व)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराद्ध से कहा:

"पूज्य अनुराद्ध ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्र, क्योंकि मैंने ध्यान के चार चरणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए मैंने दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त की है। वे चार चरण कौन से हैं? मित्र, मैं यहाँ शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ। मित्र, क्योंकि मैंने ध्यान के इन चार चरणों का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए मैं इस हजार रूपों वाले संसार को प्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ।" 174

---

395. सिरिवड्ढा
एक बार पूज्य आनंद राजगृह में, बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ श्रीवद्ध गंभीर रूप से बीमार थे। तब गृहस्थ श्रीवद्ध ने एक व्यक्ति से कहा,

“हे जन, आदरणीय आनंद के पास आओ, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो:
‘हे प्रभु, गृहस्थ श्रीवद्ध गंभीर रूप से बीमार हैं; वे परम पूज्य आनंद के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।’ फिर कहो: ‘हे प्रभु, यदि परम पूज्य आनंद दया भाव से गृहस्थ श्रीवद्ध के निवास पर आएं तो अच्छा होगा।’”

“जी, स्वामी,” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया और पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। आदरणीय आनंद ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर सुबह, आदरणीय आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर गृहस्थ श्रीवद्ध के निवास पर गए। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और गृहस्थ श्रीवद्ध से बोले, “आशा है आप स्वस्थ हैं, गृहस्थ, आप ठीक हो रहे हैं। आशा है आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनकी कमी ही ध्यान देने योग्य है, न कि उनका बढ़ना।” श्रीवद्ध ने कहा, “

मैं स्वस्थ नहीं हूँ, आदरणीय, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मेरी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनकी वृद्धि ही ध्यान देने योग्य है, न कि उनका कम होना।"

"तो फिर, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार साधना करनी चाहिए: 'मैं शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा) होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहूंगा। मैं वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में मन को देखते हुए, धर्म में धर्म को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहूंगा।' तुम्हें इसी प्रकार साधना करनी चाहिए।"

हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाई गई ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सति) के विषय में, ये धर्म (गुण, नियम) मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। हे पूज्यवर, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर निवास करता हूँ। और भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाई गई इन पाँच निम्न बंधनों के विषय में, मैं अपने भीतर इनमें से किसी का भी त्याग नहीं देखता। हे गृहस्थ

, यह आपके लिए लाभ है! हे गृहस्थ, आपने पुनर्जन्म न लेने के फल की घोषणा की है।

---

396. मनदिन्ना
वही परिस्थिति। उस समय गृहस्थ मनदिन्ना बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ था। तब गृहस्थ मनदिन्ना ने एक व्यक्ति से इस प्रकार कहा:

"आओ, हे सज्जन" ... (जैसा ऊपर है) ...

"हे आदरणीय महोदय, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी स्थिति सुधर नहीं रही है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनकी वृद्धि ही स्पष्ट है, उनकी कमी नहीं। परन्तु, हे आदरणीय महोदय, जब मैं ऐसी पीड़ादायक संवेदना (वेदना) से प्रभावित होता हूँ, तो मैं शरीर में शरीर ... संवेदनाओं में संवेदनाएँ (वेदना) ... मन में मन ... घटनाओं में धर्म (धर्म) पर ध्यान केंद्रित करता हूँ, पूरी तरह से संवेदनशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। और भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए इन पाँच निम्न बंधनों में से, मुझे अपने भीतर इनमें से कोई भी बंधन अछूता नहीं दिखाई देता।"

"यह आपके लिए लाभ है, गृहस्थ! यह आपके लिए अच्छा लाभ है, गृहस्थ! आपने पुनर्जन्म न लेने के फल (अनगामी) की घोषणा की है।"

(iv) पहले अनसुना (अननुसुता सं. अनुश्रुत)
397. अनसुना (अननुस्सुत संस्कृत अननुश्रुत)
सावत्थी में। "यह शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियमों) के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ। 175

"'शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) विकसित किया जाना है' ... 'शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) विकसित हो चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि), सच्चा ज्ञान" और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"यह संवेदनाओं में संवेदनाओं का ध्यान (वेदनानुपस्सना) है" ...

"'यह मन में मन का ध्यान (चित्तनुपस्सना) है'...

'यह घटनाओं में धम्म का ध्यान (धम्मनुपस्सना) है'

इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धम्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'घटनाओं में घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना) विकसित किया जाना है'... 'घटनाओं में घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना) विकसित हो चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धम्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

398. वैराग्य (विराग)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो पूर्ण घृणा (निबिद्धा), वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं। वे

चार अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। हे भिक्षुओं,

ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो पूर्ण घृणा, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं।

---

399. उपेक्षित (विराद्ध)
भिक्षुओं, जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है। वे

चार कौन सी हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जिन्होंने उपेक्षा की है... जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

---

400. विकास (भाविता)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सती) जब विकसित और अभ्यासित की जाती हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाती हैं। वे चार कौन सी हैं? ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... ध्यान की ये चार अवस्थाएँ जब विकसित और अभ्यासित की जाती हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाती हैं।

---

401. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, भिक्षु को ध्यान (सतो) में लीन और पूर्णतः संबोध (संपजानो) करते हुए रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु किस प्रकार ध्यान (सतिमा) करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, का ध्यान करते हुए, पूरी तरह संबोध (संपजानो) करते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु ध्यानमग्न होता है।"

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) कैसे प्राप्त करता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होते ही समझी जाती हैं, बनी रहती हैं और समाप्त हो जाती हैं। विचार उत्पन्न होते ही समझे जाते हैं, बने रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं। धारणाएँ उत्पन्न होते ही समझी जाती हैं, बनी रहती हैं और समाप्त हो जाती हैं। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध प्राप्त करता है। 176

"हे भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।"

---

402. अंतिम ज्ञान (अन्न संस्कृत: अनन्य-ज्ञान)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं। ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए, पूरी तरह से संबोधित, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता है। हे

भिक्षुओं, जब ध्यान की इन चारों अवस्थाओं का विकास और अभ्यास हो जाता है, तो दो में से एक फल प्राप्त होता है: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष रहती है, तो पुनर्जन्म न लेने की अवस्था।

---

403. इच्छा (चंदा)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं। वे कौन सी चार अवस्थाएँ हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह इस प्रकार शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, तो शरीर के प्रति उसकी जो भी इच्छा होती है, वह त्याग जाती है। इच्छा के त्याग से ही अमरता (निर्वाण) प्राप्त होती है।

वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... घटनाओं में धर्म... संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, तो घटनाओं के प्रति उसकी जो भी इच्छा होती है, वह त्याग जाती है। इच्छाओं का त्याग करने से ही अमरता की अवस्था प्राप्त होती है।

---

404. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञानत्व)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं (सती)। ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। इस प्रकार शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान करने से शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर, निर्वाण की अवस्था प्राप्त होती है।

वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... धर्मों में धर्म... संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इस प्रकार धर्मों में धर्मों को देखते हुए ध्यान करने से धर्मों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। क्योंकि धर्म की घटनाओं को पूरी तरह से समझ लिया गया है, इसलिए अमरता की अवस्था प्राप्त हो जाती है।"

---

405. विकास (भावना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान के चार गुणों (सती) के विकास का उपदेश दूंगा। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, ध्यान के चार गुण क्या हैं? भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म, वेदना में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। भिक्षुओं, यही ध्यान के चार गुण हैं।

---

406. विश्लेषण (विभंग)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान की स्थापना (सती) सिखाऊंगा, 177 ध्यान की स्थापना और उसके विकास के बारे में, और ध्यान की स्थापना के विकास के मार्ग के बारे में। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए ध्यान में रहता है... मन में मन को... घटनाओं में धर्म को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसे ही ध्यान की स्थापना कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना का विकास क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर के पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर की उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। 178 वह संवेदनाओं (वेदना) की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है... वह मन की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है... वह घटनाओं (धम्म) की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह घटनाओं (धम्म) के पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह घटनाओं (धम्म) की उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संपजानो (समझदार), सतिमा (ध्यानशील), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त। इसे ध्यान की स्थापना का विकास कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना के विकास का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (जैसा कि ऊपर सूत्र 8 में है)। इसे ध्यान की स्थापना के विकास का मार्ग कहा जाता है।"

(v) मृत्युहीन अवस्था (अमतावग्गा सं. अमृत-वर्ग)
407. अमरता (अमता सान. अमृत)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, अपने मन को सती (चारों) ध्यान में अच्छी तरह से स्थापित करके ध्यान करें। अमरता (निर्वाण) को अपने से दूर न होने दें। 179

"किन चार में? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहता है... संवेदनाओं में वेदना... मन में मन... घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। भिक्षुओं, अपने मन को ध्यान की इन चार अवस्थाओं में अच्छी तरह से स्थापित करके ध्यान करें। अमरता को अपने से दूर न होने दें।"

---

408. उत्पत्ति (समुदय)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) की उत्पत्ति और क्षय के बारे में सिखाऊंगा। 180 ध्यान से सुनो।

"और हे भिक्षुओं, शरीर की उत्पत्ति क्या है? पोषण की उत्पत्ति के साथ शरीर की उत्पत्ति होती है। पोषण के निरोध (अवरोध) होने के साथ शरीर का क्षय होता है।

इंद्रियों के स्पर्श (संपर्क) की उत्पत्ति के साथ संवेदना की उत्पत्ति होती है। स्पर्श (संपर्क) के समाप्त होने के साथ संवेदना का क्षय होता है।

मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) की उत्पत्ति के साथ चेतना की उत्पत्ति होती है। मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने के साथ चेतना का क्षय (पारलौकिकता) होता है। 181

"मनसिकारा की उत्पत्ति के साथ ही धम्म की उत्पत्ति होती है। मनसिकारा के समाप्त होने के साथ ही धम्म की घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं।" 182

---

409. पथ (मग्गा सास. मार्ग)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 183

"भिक्षुओं, एक बार पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद, मैं उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरियों के बरगद के वृक्ष के नीचे निवास कर रहा था। तब, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय प्राप्त करने का एक ही मार्ग है ... (जैसा कि 384 में है) ... अर्थात्, ध्यान की चार अवस्थाएँ (सती)।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में आए विचार को स्वयं ब्रह्म (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने मन से जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या सटाता है, उसी शीघ्रता से ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए अपने जुड़े हुए हाथ मेरी ओर बढ़ाए और मुझसे कहा: 'ऐसा ही है। हे भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय गुरु, प्राणियों के शुद्धिकरण का यही एक मार्ग है...अर्थात ध्यान के चार केंद्र। "

यह, भिक्षुओं, ब्रह्मा सहमपति का कथन है। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"'पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) के द्रष्टा,
करुणामय, उस एक मार्ग को जानते हैं

जिससे अतीत में उन्होंने बाढ़ पार की थी।
जिससे वे अब भी पार करेंगे।'"

410. ध्यानमग्न (सती संस्कृत स्मृति)
भिक्षुओं, भिक्षु को सतो ध्यान में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु कैसे सतीमा में रहता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर रहता है। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म को देखते हुए, पूरी तरह से संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर रहता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

"भिक्षुओं, भिक्षु को ध्यानमग्न अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।"

411. लाभकारी का ढेर (कुशलरासी सं. कुशल-राशि)
भिक्षुओं, यदि किसी चीज़ को 'लाभदायक (कुशल संस्कृत कुशल) का ढेर' कहा जाए, तो यह चार ध्यान (सती) के बारे में ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का एक संपूर्ण ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान। वे चार कौन से हैं?

"यहाँ, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान लगाते हुए (अनुपसी) रहते हैं, वे उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।"

भिक्षुओं, यदि किसी चीज को 'लाभदायक (कुशल) का ढेर' कहा जाए, तो यह बात इन चार ध्यान प्रतिष्ठानों के बारे में कहना उचित होगा। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का संपूर्ण ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान।

412. पतिमोक्ख का संयम (पतिमोक्खसंवर)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, हे भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के आरंभ को शुद्ध करो। लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभ क्या है? हे भिक्षु, यहाँ पतिमोक्ख के संयम से बंधे रहो, अच्छे आचरण और उचित शरण में निपुण होकर, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, उनका अभ्यास करो। हे भिक्षु, जब तुम पतिमोक्ख के संयम से बंधे रहो... छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो, तब, सद्गुण (शील) पर आधारित होकर, सद्गुण पर स्थापित होकर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विकास करो।

" "वे चार कौन सी हैं?" हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, कर्म में कर्म, जगत के प्रति सजग, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम भाव से संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है।

"हे भिक्षु, जब तुम सद्गुणों पर आधारित होकर, सद्गुणों से स्थापित होकर, ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।"

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक हो गया।

413. कदाचार (दुकारिता सं. दश-चरित्र)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, हे भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के आरंभ को शुद्ध करो। लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभ क्या है? हे भिक्षु, शारीरिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करो। मौखिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे

मौखिक आचरण का विकास करो। मानसिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे मानसिक आचरण का विकास करो। हे भिक्षु, जब शारीरिक दुराचार का त्याग करके... आपने अच्छे मानसिक आचरण का विकास कर लिया हो, तब, सद्गुण (शील) पर आधारित, सद्गुण पर स्थापित होकर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विकास करो।

" वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, प्रवणता में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित, ध्यानमग्न, सतीम भाव से संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता है।

"हे भिक्षु, जब तुम सद्गुणों पर आधारित होकर, सद्गुणों से स्थापित होकर, ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।"

तब वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन जाता है।

---

414. मित्र (Mitta sans. Mitra)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो आपको ध्यान देने योग्य समझते हैं - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सती - उन्हें ध्यान के चार चरणों (सती) के विकास में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार चरण कौन से हैं? हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में धम्म को देखते हुए, पूरी तरह से संवेदनशील और ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है।

"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है... उन्हें ध्यान के इन चार चरणों के विकास में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।"

---

415. संवेदनाएँ (वेदना)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं। इन तीनों वेदनाओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए सती ध्यान की चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है। ये

चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, पर ध्यान लगाते हुए, उत्साही, पूर्ण रूप से संपजनो, ध्यानमग्न, सतीम, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यान लगाता है। हे भिक्षुओं

, इन तीनों वेदनाओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

416. अपवित्रताएँ (असव सं. आश्रव)
भिक्षुओं, ये तीन दोष हैं। कौन से तीन? कामुकता का दोष, अस्तित्व का दोष (भावो), अज्ञान का दोष (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) का विकास करना आवश्यक है।

कौन सी चार अवस्थाएँ? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, कर्मों में धर्म, कर्मों में धर्म का ध्यान करते हुए, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम भाव से विमुख होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान की इन

चार अवस्थाओं (सतिमा) का विकास करता है। हे भिक्षुओं, इन तीनों दोषों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालवग्गो)
417-428. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि (गंगानाडियादी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर झुकती है, उसी प्रकार ध्यान के चार गुणों (सती) को विकसित और पोषित करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु ध्यान के चार गुणों को कैसे विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन होकर, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान करता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यान के चार चरणों का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों का भी पिछले अध्याय के समानांतर ही वर्णन किया जाना है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(vii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
429-438. तथागत, इत्यादि।
(पहले बताए गए सती ध्यान के सिद्धांतों के समानांतर विस्तार से समझाया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही दसवें भाग के रूप में वस्त्र।

(viii) कठोर कर्म (बलकारनिया)
439-450. कठिन, इत्यादि (बलादी)
(पिछली व्याख्या के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(ix) खोज (एसानावग्गो)
451-460. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
(पिछली व्याख्या के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास। 185

(x) बाढ़ (ओघवाग्गो संस. ओघा-वर्ग)

461-470. उच्चतर बंधन (उद्धमभागियादि)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति कामवासना (राग), निराकार के प्रति कामवासना (अहंकार), बेचैनी (अविज्जा), अविद्या (अज्ञान)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए, और इनका त्याग करने के लिए, सती की चार अवस्थाओं का विकास करना चाहिए।

ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से समझने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह ध्यान में लीन होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धम्म) पर घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वे अत्यंत उत्साही, गहन बोध रखने वाले और ध्यानमग्न होते हैं, तथा संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान, उनके पूर्ण ज्ञान, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

बाढ़, बंधन, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(ध्यान की अवस्थाओं पर संबंधित प्रवचनों का विस्तृत वर्णन मार्ग पर संबंधित प्रवचनों के समान ही किया जाना है। 186)

अध्याय 4: इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (इंद्रियसाम्युत्त) {साम्युत्त-48}
(i) सरल संस्करण (शुद्धिकावग्गो सं. शुद्धि-वर्ग)
471. सरल संस्करण (शुद्धिका सं. शुद्धि)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।" 187

---

472. स्ट्रीम-एंटरर (1) (सोतापन्ना1 सं. स्रोत-पैन)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति (वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (सत्त्व), और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)।

भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँचों शक्तियों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न नामक श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।

---

473. स्ट्रीम-एंटरर (2) (सोटापन्ना2 सान. स्ट्रोत-पान)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच शक्तियों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्ना नामक श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।

---

474. अरिहंत (1) (सं. अरिहंत1)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

" "हे भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के तरीके को उनके वास्तविक स्वरूप में समझकर, अनासक्ति के द्वारा भिक्षु मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है,

जिसके दोष नष्ट हो गए हों, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया हो, जो करना आवश्यक था वह किया हो, बोझ उतार दिया हो, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया हो, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया हो, और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया हो।" 189

---

475. अरिहंत (2) (सं. अरिहंत2)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

जब भिक्षु इन पाँच शक्तियों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (अस्वाद), खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेते हैं, और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें अरहंत भिक्षु कहा जाता है... वह जो अंतिम ज्ञान के द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया हो।"

---

476. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन पाँच शक्तियों के संदर्भ में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

477. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो आस्था की शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। परन्तु भिक्षुओं

, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं। ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

478. देखा जाना (दत्ताब्बा सं. द्दष्टव्य)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, विश्वास की शक्ति कहाँ देखी जाती है? विश्वास की शक्ति यहाँ सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के चार कारकों में देखी जाती है। 191

भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति कहाँ देखी जाती है? ऊर्जा-शक्ति की शक्ति यहाँ चार सही प्रयासों में देखी जाती है। 192

भिक्षुओं, ध्यान (सती) की शक्ति कहाँ देखी जाती है? ध्यान की शक्ति यहाँ ध्यान के चार प्रतिष्ठानों में देखी जाती है।

भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की क्षमता कहाँ पाई जाती है? समाधि (सम्मोहन) की क्षमता यहाँ चारों ध्यान अवस्थाओं में पाई जाती है।

भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता कहाँ पाई जाती है? प्रदीप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता यहाँ चारों आर्य सत्यों में पाई जाती है। भिक्षुओं, ये पाँच क्षमताएँ हैं।

---

479 विश्लेषण (1) (विभंग1)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।

"और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के त्याग और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए जागृत ऊर्जा-शक्ति से युक्त रहता है; वह बलवान है, परिश्रम में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की साधना के दायित्व से विमुख नहीं होता। इसे ऊर्जा-शक्ति की शक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति की शक्ति क्या है? ध्यान (सती)? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न (सतीमा) अवस्था में है, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से परिपूर्ण है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। इसे ध्यान की शक्ति कहते हैं। 193

"और हे भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को लक्ष्य बनाकर। 194 इसे समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य अंतर्दृष्टिवान है; वह उद्भव और क्षय की ओर निर्देशित पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से परिपूर्ण है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है, जिससे दुख का पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) होता है। 195 इसे पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच क्षमताएँ हैं।" 196

---

480. विश्लेषण (2) (विभंग2)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति (वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (सता) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

और भिक्षुओं, विश्वास की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।

' और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के त्याग और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए जागृत ऊर्जा-शक्ति से युक्त रहता है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की खेती के दायित्व से विमुख नहीं होता। वह अजन्मी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है... वह ऊर्जा का उपयोग करते हुए, मन लगाकर प्रयास करता है। वह उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह अप्राप्त लाभकारी अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हुई लाभकारी अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे ऊर्जा का गुण कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, ध्यान का गुण क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न (सतीमा) होता है, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से युक्त होता है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है।" वह शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है। वह अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। इसे ध्यान की क्षमता कहते हैं।

भिक्षुओं, समाधि की अवस्था क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, श्रेष्ठ शिष्य समाधि की अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को अपना लक्ष्य बनाकर। इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और

उसमें निवास करता है, जो विचार और परीक्षण से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। विचार और परीक्षण के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता से युक्त होता है, विचार और परीक्षण से रहित होता है, और समाधि की अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। आनंद के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और ध्यानमग्न तथा पूर्णतः बोध से परिपूर्ण होकर, आनंद का अनुभव करता है। शरीर को त्यागकर, वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न (सतिमा) और सुख में रहने वाला है।' सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही सुख और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाधि (सम्मोहन) कहता है।

"और हे भिक्षुओं, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता क्या है? हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उद्भव और क्षय की दिशा में निर्देशित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) रखता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है, और दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) की ओर ले जाती है। वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है:
'यह दुख का मूल है।' वह इसे यथार्थ रूप से समझते हैं:
'यही दुखों का निवारण (निरोध) है।' वह इसे यथार्थ रूप से समझते हैं:
'यही दुखों के निवारण का मार्ग है।' इसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।"

(ii) नरम (मुदुतरवग्गो सं. मृदुतर-वर्ग)
481. प्राप्ति (पतिलाभा सं. प्रति-लाभ)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध)... (जैसा कि 480 में है)... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' इसे आस्था की शक्ति कहते हैं।

और भिक्षुओं, वीरता (वीर्य) की शक्ति क्या है? वह शक्ति जो चार सही प्रयासों के आधार पर प्राप्त होती है। इसे शक्ति की शक्ति कहते हैं।

और भिक्षुओं, सती (ध्यान) की शक्ति क्या है? वह ध्यान जो ध्यान के चार आधारों पर प्राप्त होता है। इसे ध्यान की शक्ति कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को लक्ष्य बनाकर। इसे समाधि (सम्मोहन) की शक्ति कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य अंतर्दृष्टिवान होता है; वह उद्भव और क्षय की दिशा में निर्देशित पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से युक्त होता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है, दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाता है। इसे पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति कहते हैं।

"ये, भिक्षुओं, पाँच शक्तियाँ हैं।"

---

482. संक्षेप में (1) (संखित्त1 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म रहित है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सोतापन्ना (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो धम्म का अनुयायी है; यदि और भी कमजोर हैं, तो आस्था का अनुयायी है। 198

483. संक्षेप में (2) (संखित्त2 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि ये शक्तियाँ इससे कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने वाला ... एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) ... धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना) ... धम्म का अनुयायी ... आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, शक्तियों में अंतर के कारण फलों में अंतर होता है; फलों में अंतर के कारण व्यक्तियों में अंतर होता है।

484. संक्षेप में (3) (संखित्त3 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह... एक अनुयायी है।

अतः, भिक्षुओं, जो इन्हें पूर्णतः सक्रिय करता है, वह पूर्णतः सफल होता है; जो इन्हें आंशिक रूप से सक्रिय करता है, वह आंशिक रूप से सफल होता है। भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ निष्फल नहीं हैं, ऐसा मैं कहता हूँ। 200

485. विस्तार से (1) (विट्ठरा1 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो निर्वाण पहुँचते ही प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो प्रयास के साथ निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सोतापन्ना (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो धम्म का अनुयायी है; यदि और भी कमजोर हैं, तो आस्था का अनुयायी है।

486. विस्तार से (2) (विट्ठरा2 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह निर्वाण प्राप्त करने वाला है (जैसा कि 485 में है)... यदि और भी कमजोर हैं, तो वह आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, शक्तियों में अंतर के कारण फलों में अंतर होता है; फलों में अंतर के कारण व्यक्तियों में अंतर होता है।

487. विस्तार से (3) (विट्ठरा3 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह निर्वाण प्राप्त करने वाला है (जैसा कि 485 में है) ... यदि और भी कमजोर हैं, तो वह आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, जो इन्हें पूर्णतः सक्रिय करता है, वह पूर्णतः सफल होता है; जो इन्हें आंशिक रूप से सक्रिय करता है, वह आंशिक रूप से सफल होता है। भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ निष्फल नहीं हैं, ऐसा मैं कहता हूँ।

488. अभ्यास करना (पतिपन्ना सं. प्रतिपन्ना)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अरहंतत्व के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने वाला (अनगामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह एक बार पुनर्जन्म लेने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है (सकदागामी); यदि और भी कमजोर हैं, तो वह सोतापन्न (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि फिर भी दुर्बल हो, तो व्यक्ति सोतापत्ति (धारा-प्रवेश के फल) की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है।

"परन्तु, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जिसमें ये पाँचों शक्तियाँ पूर्णतः अनुपस्थित हों, वह 'अजनबी' है, जो सांसारिकों के गुट में खड़ा है।" 202

---

489. सुसज्जित (संपन्ना)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'जो इंद्रियों से परिपूर्ण है, वही इंद्रियों से परिपूर्ण है।' 203 हे पूज्यवर, इंद्रियों से परिपूर्ण होने का क्या तरीका है?"

"हे भिक्षु, भिक्षु विश्वास की इंद्रिय विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की इंद्रिय विकसित करता है... ध्यान (सती) की इंद्रिय... समाधि (सम्मोहन) की इंद्रिय... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की इंद्रिय, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। हे

भिक्षु, इसी प्रकार इंद्रियों से परिपूर्ण होना संभव है।"

---

490. अपवित्रताओं का नाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, इन्हीं पाँच शक्तियों को विकसित और पोषित करके, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।

(iii) छह संकाय (चलिनरियावग्गो)
491. पुनाभव का नवीकृत कारण (पुनब्भव)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच शक्तियों के उद्भव और क्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), संकट और उससे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

492. जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रिय)
"भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? स्त्रीत्व शक्ति, पुरुषत्व शक्ति और जीवन शक्ति। ये तीन शक्तियाँ हैं।" 205

---

493. अंतिम ज्ञान का संकाय (अनिंद्रिय)
भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? 'मैं अभी तक अज्ञात को जानूँगा' की शक्ति, अंतिम ज्ञान की शक्ति, और अंतिम ज्ञान से संपन्न व्यक्ति की शक्ति। ये तीन शक्तियाँ हैं। 206

---

494. एक बीज बोने वाला (एकबिजी)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो निर्वाण पहुँचते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला है; [205] यदि और भी कमजोर हैं, तो प्रयास सहित निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बीज बोने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो कुल-कुल का पालन करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सात जन्मों का पालन करने वाला है; यदि फिर भी कमजोर हो, तो धम्म (मार्ग, कानून) का अनुयायी; यदि फिर भी कमजोर हो, तो आस्था का अनुयायी।" 207

---

495. सरल संस्करण (शुद्धका)
"भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। ये छह इंद्रियाँ हैं।" 208

---

496. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है।

---

497. अरहंत
"भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

जब भिक्षु इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को समझ लेते हैं और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें अरहंत भिक्षु कहा जाता है, जिनके दोष नष्ट हो जाते हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।"

---

498. संबुद्ध
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

भिक्षुओं, जब तक मुझे इन छह इंद्रियों के उद्‌भव और क्षय, सांसारिक सुख, भय और उनसे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, पूर्णतम ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सब का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, पूर्णतम ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'

---

499. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

500. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, नेत्र शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो कान शक्ति (कान, नाक, जीभ और शरीर शक्ति के लिए भी यही बात लागू होती है) और मन शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दैवीय ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में वैराग्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते और उसमें निवास नहीं कर पाते।

परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है)... वे इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर पाते और उसमें निवास कर पाते हैं।"

(iv) सुख की इंद्रिय (सुखिंद्रिय)
501. सरल संस्करण (शुद्धिका)
"भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, प्रसन्नता, अप्रसन्नता और समभाव। ये पाँच इंद्रियाँ हैं।" 210

---

502. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है।

---

503. अरहंत
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच इंद्रियाँ? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव। हे

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीके को उसके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाता है, तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया है।

---

504. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच इंद्रियाँ? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव।

हे भिक्षुओं, जो इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीकों को नहीं समझते (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है), वे इसी जीवन में वैराग्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते। परन्तु हे

भिक्षुओं, जो इन इंद्रियों को समझते हैं, वे इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

---

505. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो आनंद की अनुभूति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो आनंद की अनुभूति, दर्द की अनुभूति, अप्रसन्नता की अनुभूति, समभाव की अनुभूति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते... वे इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते और उसमें निवास नहीं कर पाते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है)... इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर पाते हैं और उसमें निवास कर पाते हैं।"

---

506. विश्लेषण (1) (विभंग1)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, सुख क्या है? शरीर में जो भी सुख हो, जो भी शारीरिक आराम हो, इंद्रियों के स्पर्श से जो भी सुखदायक आराम महसूस हो, भिक्षुओं, उसे सुख कहते हैं। भिक्षुओं, दुख क्या है

? शरीर में जो भी दर्द हो, जो भी शारीरिक असुविधा हो, इंद्रियों के स्पर्श से जो भी कष्टदायक असुविधा महसूस हो, भिक्षुओं, उसे दुख कहते हैं।

भिक्षुओं, आनंद क्या है? जो भी मानसिक सुख है, जो भी मानसिक शांति है, मन के संपर्क (विचार से मन का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से जो सुखद शांति (वेद्यितम्) प्राप्त होती है, हे भिक्षुओं, उसे आनंद की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुःख की शक्ति क्या है? जो भी मानसिक पीड़ा है, जो भी मानसिक बेचैनी है, मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो कष्टदायक बेचैनी (वेद्यितम्) प्राप्त होती है, हे भिक्षुओं, उसे दुःख की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) की शक्ति क्या है? जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से अनुभव किया जाता है (वेद्यितम्), जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक, हे भिक्षुओं, उसे समभाव (उपेक्खा) की शक्ति कहते हैं। 212

हे भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।

---

507. विश्लेषण (2) (विभंग2)
(पूर्ववर्ती सूत्र 506 के समान, लेकिन अंतिम दो अनुच्छेदों में परिवर्तन के साथ) "भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख इंद्रिय, दुख इंद्रिय, आनंद इंद्रिय, अप्रसन्नता इंद्रिय और समभाव इंद्रिय।

"और, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक सुख है, जो भी शारीरिक आराम है, 211 शरीर के संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से स्पर्श) से अनुभव किया गया सुखद आराम: इसे, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, दुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक पीड़ा है, जो भी शारीरिक असुविधा है, शरीर के संपर्क (संवेदियों का स्पर्श) से अनुभव किया गया कष्टदायक असुविधा: इसे, भिक्षुओं, दुख इंद्रिय कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, आनंद इंद्रिय क्या है? भिक्षुओं, मन के संपर्क से प्राप्त होने वाला सुखदायक विश्राम, आनंद की अनुभूति (वेद्यितम्), यही आनंद की अनुभूति कहलाती है। भिक्षुओं, दुःख की अनुभूति

क्या है? मन के संपर्क से प्राप्त होने वाला कष्टदायक बेचैनी, दुःख की अनुभूति (वेद्यितम्), यही दुःख की अनुभूति कहलाती है। भिक्षुओं, समभाव की अनुभूति क्या है? शारीरिक

और मानसिक रूप से प्राप्त होने वाली कोई भी अनुभूति जो न तो सुखदायक हो और न ही कष्टदायक, यही समभाव की अनुभूति कहलाती है। 212

"इसमें, हे भिक्षुओं, सुख और आनंद की इंद्रियों को सुखद अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए। दुख और दुःख की इंद्रियों को दुखदायी अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए। समभाव (उपेक्खा) की इंद्रियों को न तो दुखदायी और न ही सुखद अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए।

हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं।"

508. विश्लेषण (3) (विभंग3)
(पूर्ववर्ती सूत्र 506 के समान ही, लेकिन अंतिम दो अनुच्छेदों में परिवर्तन के साथ) "भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख इंद्रिय, दुःख इंद्रिय, आनंद इंद्रिय, दुःख इंद्रिय और समभाव इंद्रिय।

" "और, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक सुख है, जो भी शारीरिक आराम है, जो भी सुखदायक आराम (इंद्रियों का किसी वस्तु से संपर्क) से अनुभव किया जाता है: इसे ही सुख इंद्रिय कहते हैं।"

भिक्षुओं, पीड़ा की अनुभूति क्या है? शरीर में जो भी पीड़ा हो, जो भी शारीरिक कष्ट हो, शरीर के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो भी पीड़ादायक असुविधा (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही पीड़ा की अनुभूति कहते हैं। भिक्षुओं

, आनंद की अनुभूति क्या है? मन में जो भी मानसिक सुख हो, जो भी मानसिक शांति हो, मन के संपर्क (मन और विचार का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से जो भी सुखद शांति (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही आनंद की अनुभूति कहते हैं।

भिक्षुओं, अप्रसन्नता की अनुभूति क्या है? मन में जो भी मानसिक पीड़ा हो, जो भी मानसिक कष्ट हो, मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो भी पीड़ादायक असुविधा (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही अप्रसन्नता की अनुभूति कहते हैं।

भिक्षुओं, समभाव की अनुभूति क्या है? जो भी इंद्रिय बोध (वेद्यितम्) होता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, जो न तो सुखदायी होता है और न ही दुखदायी: भिक्षुओं, इसे समभाव (उपेक्खा) कहा जाता है। 212

"इसमें, भिक्षुओं, सुख और आनंद (सोमनस्स) को सुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए। दुख और दुःख को दुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए। समभाव (उपेक्खा) को न तो दुखदायी और न ही सुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए।

इस प्रकार, भिक्षुओं, व्याख्या की विधि के अनुसार, ये पाँच इंद्रियाँ, जो पहले पाँच थीं, तीन हो जाती हैं; और जो पहले तीन थीं, वे पाँच हो जाती हैं।"

509. अग्नि-लाठियों की उपमा (कत्थोपमा सं. काष्ठ-उपमा)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ (इन्द्रियानी) हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, किसी सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से सुख उत्पन्न होता है। सुख की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं सुख की अवस्था में हूँ।' वह समझता है: 'सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श के समाप्त होने पर, उस सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से उत्पन्न सुख भी समाप्त हो जाता है।' भिक्षुओं

, किसी कष्टदायक अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से दुख उत्पन्न होता है। कष्ट की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं कष्ट की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है: 'कष्टदायी अनुभव किए जाने वाले उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति शांत हो जाती है।'

हे भिक्षुओं, आनंदमय अनुभव किए जाने वाले सोमनस्सा (फस्सा/स्पर्श) के कारण आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। आनंद की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं आनंद की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है: 'कष्टदायी अनुभव किए जाने वाले उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुई आनंद की अनुभूति शांत हो जाती है।'

हे भिक्षुओं, अप्रसन्नता का अनुभव किए जाने वाले स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण अप्रसन्नता की अनुभूति उत्पन्न होती है। अप्रसन्नता की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं अप्रसन्नता की अवस्था में हूँ।'
यह समझा जाता है: 'उस अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, जो अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुआ था, वह भी समाप्त हो जाता है।' भिक्षुओं

, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के कारण उत्पन्न होने वाले अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से समभाव (उपेक्खा) की भावना उत्पन्न होती है। समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है:

'उस अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, जो अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुआ था, वह भी समाप्त हो जाता है।'

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु जब लकड़ियों को अलग करके रख दिया जाता है तो उत्पन्न ऊष्मा शांत हो जाती है; उसी प्रकार, सुखद अनुभव के लिए स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। आनंद की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं आनंद की अवस्था में हूँ।' वह समझता है (पजनति): 'सुखद अनुभव के लिए स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई आनंद की अनुभूति भी समाप्त हो जाती है।'
(इसी प्रकार)... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे पीड़ादायक अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे आनंददायक अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे अप्रसन्नता के साथ अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे समभाव (उपेक्खा) के साथ अनुभव किया जाता है, समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न होती है। समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में हूँ।' व्यक्ति समझता है: 'उस समभाव (उपेक्खा) के समाप्त होने के साथ ही, उस समभाव (उपेक्खा) के कारण उत्पन्न हुई समभाव (उपेक्खा) की क्षमता समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है।'

---

510. अनियमित क्रम (उप्पतिपतिका)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? पीड़ा इंद्री, अप्रसन्नता इंद्री, प्रसन्नता इंद्री, आनंद इंद्री और समभाव इंद्री।

(i. पीड़ा इंद्री)

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सचेत (अपमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर ध्यान करता है, तब उसमें पीड़ा इंद्री उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह पीड़ा इंद्री उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है (अनिवार्य व्यवहार), एक कारण है। 215 बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण (अनिवार्य व्यवहार), बिना कारण के इस पीड़ा इंद्री का उत्पन्न होना असंभव है।' वह पीड़ा इंद्री को समझता है; वह पीड़ा इंद्री के उद्गम को समझता है; वह पीड़ा इंद्री के निरोध को समझता है; और वह समझता है कि उत्पन्न पीड़ा इंद्री कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

और उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है? 216 हे भिक्षुओं, यहाँ पर, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) के साथ विचार और परीक्षा से युक्त होता है। और यहीं पर उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति पूरी तरह समाप्त हो जाती है। 217 हे

भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने पीड़ा की अनुभूति के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है

(ii. अप्रसन्नता की भावना)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ मन से ध्यान लगाता है, तो उसमें अप्रसन्नता की भावना उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: मुझमें यह अप्रसन्नता की भावना उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार, एक स्रोत, एक कारण संधार (व्यवहार-स्थिति), एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण संधार (व्यवहार-स्थिति), बिना कारण के अप्रसन्नता की भावना का उत्पन्न होना असंभव है।" वह अप्रसन्नता की भावना को समझता है; वह अप्रसन्नता की भावना के उद्गम को समझता है; वह अप्रसन्नता की भावना के निवारण को समझता है; और वह समझता है कि उत्पन्न अप्रसन्नता की भावना कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

"और उत्पन्न अप्रसन्नता की भावना कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है?" विचार और परीक्षा के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त होता है, विचार और परीक्षा से रहित होता है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण होता है। और यहीं पर उत्पन्न अप्रसन्नता का भाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। 219

"हे भिक्षुओं, इसे अप्रसन्नता के भाव के समाप्त होने को समझने वाला भिक्षु कहा जाता है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(iii. आनंद का भाव)

"यहाँ, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में रहता है, तो उसमें आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह आनंद की अनुभूति उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है, एक अभिकारक संक्रिया (व्यवहार-अनुकूलन) है, एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण के, बिना कारण के इस आनंद की अनुभूति का उत्पन्न होना असंभव है।' वह आनंद की अनुभूति को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के उद्गम को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के समापन को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

और उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है? आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त हो जाने के साथ, भिक्षु समभाव में रहता है और ध्यानमग्न (सतिमा) तथा पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न और सुखी निवास करने वाला है।' और यहीं पर उत्पन्न आनंद भाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। 220

"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने आनंद भाव के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(iv. आनंद भाव)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान करता है, तब उसमें आनंद भाव उत्पन्न होता है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह आनंद भाव उत्पन्न हुआ है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण संक्रिया (व्यवहार-निर्धारण), एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण संक्रिया (अनिवार्य-व्यवहार-निर्धारण), बिना कारण के उस आनंद भाव का उत्पन्न होना असंभव है।' वह आनंद भाव को समझता है; वह आनंद भाव के उद्गम को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के समाप्त होने को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

"और उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है? सुख और दुःख के त्याग के साथ, और उससे पहले सुख और दुःख के समाप्त हो जाने के साथ, भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। और यहीं पर उत्पन्न आनंद की अनुभूति पूरी तरह समाप्त हो जाती है। 221

"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने आनंद की अनुभूति के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(v. समभाव (उपेक्खा) की अनुभूति)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान करता है, तो उसमें समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है, एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण (अनिवार्य व्यवहार) और बिना कारण के इस समभाव (उपेक्खा) की क्षमता का उत्पन्न होना असंभव है।" वह समभाव (उपेक्खा) को समझता है; वह समभाव (उपेक्खा) के उद्गम को समझता है; वह समभाव (उपेक्खा) के समापन को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) कहाँ पर समाप्त हो जाता है।

"और उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) कहाँ पर समाप्त हो जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ पर, न-बोध-न-बोध की क्षमता को पूर्णतः पार करके, भिक्षु (भिक्षु) बोध (सन्न संस. संग्य) के समापन (निरोदम) का अनुभव करता है और उसमें निवास करता है। और यहीं पर उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) समाप्त हो जाता है।

हे भिक्षुओं, इसे समभाव (उपेक्खा) के समापन को समझने वाला भिक्षु कहा जाता है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।"

(v) बुढ़ापा (जरा)

511. वृद्धावस्था के अधीन (जरधम्म)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी उद्यान में मिगारा की माता के महल में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध संध्याकाल में एकांतवास से बाहर आए और सूर्य की अंतिम किरणों में अपनी पीठ सेंक रहे थे।

तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए। उनके पास पहुँचकर प्रणाम करते हुए और उनके अंगों की मालिश करते हुए उन्होंने कहा, "हे पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है! हे पूज्यवर! भगवान बुद्ध का रंग अब शुद्ध और तेजस्वी नहीं रहा, उनके अंग शिथिल और झुर्रीदार हो गए हैं, उनका शरीर झुका हुआ है, और उनकी इंद्रियों में कुछ परिवर्तन दिखाई देता है - आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर की इंद्रियों में।" 222

"ऐसा ही है, आनंद! यौवन में बुढ़ापा आता है; स्वास्थ्य में बीमारी आती है; और जीवित रहते मृत्यु आती है। रंगत निर्मल और तेजस्वी नहीं रहती, अंग शिथिल और झुर्रीदार हो जाते हैं, शरीर झुक जाता है, और इंद्रियों में कुछ परिवर्तन आ जाता है - नेत्र शक्ति में... शरीर शक्ति में।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"धिक्कार है तुम पर, धिक्कार है बुढ़ापे पर।
बुढ़ापा जो सुंदरता को फीका कर देता है! बढ़ती उम्र के नीचे

सुंदर कठपुतली का कितना कुछ
कुचला गया है।

जो सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है,
उसकी भी मंजिल मृत्यु ही है।

मृत्यु रास्ते में किसी को नहीं छोड़ती
, बल्कि सब कुछ कुचलते हुए आती है।" 224

---

512. ब्राह्मण (उन्नभब्राह्मण)

सावत्थी में, ब्राह्मण उन्नाभा भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले,

"हे गुरु गौतम, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं; ये एक-दूसरे के क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव नहीं करतीं। वे पाँच कौन सी हैं? आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। 225 हे गुरु गौतम, क्योंकि इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं, और ये एक-दूसरे के क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव नहीं करतीं, तो फिर ये किसका सहारा लेती हैं? और वह क्या है जो इनके क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव करता है?"

"ब्राह्मण, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं; ये एक-दूसरे के क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव नहीं करतीं। वे पाँच कौन सी हैं? आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। अब, ब्राह्मण, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं, और ये एक-दूसरे के क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव नहीं करतीं - ये मन का सहारा लेती हैं, और मन इनके क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव करता है।" 226

"पर, गुरु गौतम, मन किसका सहारा लेता है?"

"मन, ब्राह्मण, ध्यान (सती) का सहारा लेता है। " "

पर, गुरु गौतम, ध्यान किसका सहारा लेता है?" "

ध्यान (सती), ब्राह्मण, मुक्ति (विमुक्ति) का सहारा लेता है।" 227

"पर, गुरु गौतम, मुक्ति किसका सहारा लेती है?"

"मुक्ति, ब्राह्मण, निर्वाण का सहारा लेती है।"

"पर, गुरु गौतम, निर्वाण किसका सहारा लेता है?"

“हे ब्राह्मण, आप प्रश्न पूछने की सीमा से परे चले गए हैं। आप प्रश्न पूछने की सीमा को समझ नहीं पाए। क्योंकि, हे ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन निर्वाण को आधार, निर्वाण को गंतव्य और निर्वाण को अंतिम लक्ष्य मानकर व्यतीत किया जाता है।” 228

तब भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न होकर ब्राह्मण उन्नाभा अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, जिसके बाद वे उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर विदा हुए।

फिर, ब्राह्मण उन्नाभा के विदा होने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

“भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाले घर या हॉल में, पूर्व दिशा की ओर मुख वाली खिड़की के सामने, सूर्य उदय हो रहा है। जब उसकी किरणें खिड़की से प्रवेश करती हैं, तो वे कहाँ ठहरेंगी?”

“हे आदरणीय, पश्चिमी दीवार पर।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ब्राह्मण उन्नाभा ने तथागत में ऐसी आस्था प्राप्त की है जो स्थिर, गहरी जड़ें जमा चुकी, दृढ़ और अटल है। इसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत), मार (शैतान), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा हटाया नहीं जा सकता। यदि, हे भिक्षुओं, यदि ब्राह्मण उन्नाभा की इस समय मृत्यु हो जाए, तो ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे वह पुनः इस संसार में आ सके। 229

---

513. सकेता
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में अंजनवन में, मृग उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, क्या कोई ऐसी व्याख्या विधि है जिससे पाँचों इंद्रियाँ पाँच शक्तियाँ बन जाएँ और पाँचों शक्तियाँ पाँच इंद्रियाँ बन जाएँ?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" ...

"भिक्षुओं, व्याख्या की एक विधि है, जिसके द्वारा पाँच शक्तियाँ पाँच सामर्थ्य बन जाती हैं और पाँच शक्तियाँ पाँच शक्तियाँ बन जाती हैं। और वह व्याख्या विधि क्या है? जो विश्वास की शक्ति है, वही विश्वास की शक्ति है; जो विश्वास की शक्ति है, वही विश्वास की शक्ति है। 230 जो वीरता (वीर्य) की शक्ति है, वही वीरता (वीर्य) की शक्ति है; जो वीरता (वीर्य) की शक्ति है, वही वीरता (वीर्य) की शक्ति है। जो ध्यान (सती) की शक्ति है, वही ध्यान (ध्यान) की शक्ति है; जो ध्यान (ध्यान) की शक्ति है, वही ध्यान (ध्यान) की शक्ति है। समाधि (सम्मोहन) अवस्था समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति है; जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की क्षमता है। जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता है, वही पन्न (पन्न) की शक्ति है; जो पन्न (पन्न) की शक्ति है, वही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक नदी है जो पूर्व की ओर तिरछी, ढलानदार और झुकी हुई है, जिसके बीच में एक द्वीप है। व्याख्या की एक विधि है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है, लेकिन व्याख्या की एक विधि है जिसके द्वारा उसे दो धाराओं वाली माना जा सकता है।

और वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है? द्वीप के पूर्व और पश्चिम के जल को ध्यान में रखते हुए - यही वह व्याख्या विधि है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है। और वह

व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा उस नदी को दो धाराएँ माना जा सकता है? द्वीप के उत्तर और दक्षिण के जल को ध्यान में रखते हुए - यही वह व्याख्या विधि है जिसके द्वारा उस नदी को दो धाराएँ माना जा सकता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो आस्था की शक्ति है, वही आस्था की सामर्थ्य है (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की सामर्थ्य है, वही पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति है।

"भिक्षुओं, इन पांच शक्तियों के विकास और संवर्धन के कारण ही भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

514. पूर्वी गेटहाउस (पब्बाकोत्थका सं. पूर्व-कोष्ठक)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में पूर्वी द्वार पर निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

"सारिपुत्त, क्या तुम्हें विश्वास है कि जब आस्था की शक्ति विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (निर्वाण) अमरता की अवस्था होती है, उसका गंतव्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, और उसका अंतिम लक्ष्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है? (इसी प्रकार ऊर्जा (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (तल्ली) के लिए भी)... कि जब प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, उसका गंतव्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, और उसका अंतिम लक्ष्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है।"

आदरणीय महोदय, मैं इस विषय में भगवान (बुद्ध) पर विश्वास नहीं करता: 231 कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सन्यास))... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य मानती है। जिन लोगों ने इसे नहीं जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से संपर्क नहीं किया है, उन्हें इस विषय में दूसरों पर विश्वास करना होगा: कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सन्यास))... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य मानती है। लेकिन जिन लोगों ने इसे जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से संपर्क किया है, वे इस बारे में बिना किसी उलझन या संदेह के होंगे: कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता (अमता संस्कृत: अमृत) इसका आधार, अमरता इसकी मंजिल और अमरता इसका अंतिम लक्ष्य है।

"मैं उनमें से एक हूँ, आदरणीय महोदय, जिन्होंने इसे जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से संपर्क किया है।" मुझे इस बात में कोई शंका या असमंजस नहीं है कि आस्था की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (निर्वाण) अमरता की अवस्था होती है, अमरता की अवस्था उसका गंतव्य होती है, अमरता की अवस्था उसका अंतिम लक्ष्य होती है।"

"शाबाश, शाबाश सारिपुत्त! जिन्हें यह ज्ञात नहीं है... उन्हें इस बारे में दूसरों पर विश्वास करना होगा... लेकिन जिन्हें यह ज्ञात है... उन्हें इस बारे में कोई उलझन या संदेह नहीं होगा: कि विश्वास की शक्ति... (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता ही उसका आधार, अमरता ही उसका गंतव्य और अमरता ही उसका अंतिम लक्ष्य होती है।"

---

515. पूर्वी पार्क (1) (पुब्बारामा1 सं. पूर्व-अरामा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में, मिगारा की माता के निवास में थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"भिक्षुओं, क्योंकि एक विशेष गुण का विकास और संवर्धन करने से ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है। वह कौन सा गुण है? प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) का गुण। जिस श्रेष्ठ शिष्य के पास पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) होता है, उससे उत्पन्न विश्वास स्थिर हो जाता है, उससे उत्पन्न ऊर्जा (वीर्य) स्थिर हो जाती है, उससे उत्पन्न ध्यान (सती) स्थिर हो जाता है, उससे उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था स्थिर हो जाती है। 232 "भिक्षुओं

, क्योंकि इस एक गुण का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।" अस्तित्व का।

---

516. पूर्वी पार्क (2) (पब्बाराम2 संस्कृत पूर्व-राम)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने
दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"भिक्षुओं, क्योंकि दो शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे दो शक्तियाँ कौन सी हैं? महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और महान मुक्ति (विमुक्ति)। क्योंकि उसकी महान अंतर्दृष्टि (पन्ना) उसकी दृष्टि (पन्ना) है; उसकी महान मुक्ति उसकी समाधि अवस्था (सम्मोहन) की शक्ति है।

भिक्षुओं, क्योंकि इन दो शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'"

---

517. पूर्वी पार्क (3) (पुब्बारामा3 सं. पूर्व-अरामा)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, क्योंकि चार शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे चार शक्तियाँ कौन सी हैं? ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति।

" "भिक्षुओं, क्योंकि इन चार शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म (जैसा कि ऊपर बताया गया है) नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।"

---

518. पूर्वी पार्क (4) (पब्बाराम4 संस्कृत पूर्व-राम)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, क्योंकि पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति।

भिक्षुओं, क्योंकि इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म (जैसा कि ऊपर बताया गया है) नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'"

---

519. पिंडोलाभरद्वाज
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है....' पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने किस कारण से अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है?"

हे भिक्षुओं, पिंडोला भारद्वाज भिक्षु ने तीन शक्तियों का विकास और संवर्धन करके ही अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। वे तीन शक्तियां क्या हैं? सती (ध्यान), समाधि (सम्मोहन) और अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि)। इन्हीं तीन शक्तियों के विकास और संवर्धन के कारण भिक्षु पिंडोला भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। हे भिक्षुओं

, ये तीनों शक्तियां किसमें समाप्त होती हैं? ये विनाश (खयाल/क्षय) में समाप्त होती हैं। किसका विनाश? पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का। यह मानते हुए कि वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के विनाश में समाप्त होते हैं, 233 [225] भिक्षु पिंडोला भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान इस प्रकार घोषित किया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

---

520. अपाना में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) अंगों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ अपाना नामक अंगनों का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

"सारिपुत्त, क्या तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित और उन पर पूर्ण विश्वास रखने वाले श्रेष्ठ शिष्य के मन में तथागत या तथागत की शिक्षाओं के बारे में कोई शंका या भ्रम होता है?"

आदरणीय महोदय, तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित और उन पर पूर्ण विश्वास रखने वाला श्रेष्ठ शिष्य तथागत या उनकी शिक्षाओं के विषय में किसी भी प्रकार की दुविधा या संदेह नहीं रखता। यह स्वाभाविक है, आदरणीय महोदय, कि आस्थावान श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक अवस्थाओं का त्याग करने और लाभकारी अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए प्रज्वलित ऊर्जा से परिपूर्ण रहेगा; वह बलवान, दृढ़ और लाभकारी अवस्थाओं के संवर्धन के दायित्व से विमुख नहीं होगा। आदरणीय महोदय, उसकी यही ऊर्जा उसकी शक्ति का स्रोत है।

यह स्वाभाविक है, आदरणीय महोदय, कि आस्थावान और प्रज्वलित श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न रहेगा, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से परिपूर्ण होगा, और बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को भी याद रखेगा। हे पूज्यवर, उनका वह ध्यान ही उनकी ध्यान क्षमता है। हे

पूज्यवर, यह स्वाभाविक है कि आस्थावान, ऊर्जावान और स्थिर ध्यान वाला श्रेष्ठ शिष्य मोक्ष को लक्ष्य बनाकर समाधि अवस्था प्राप्त करेगा। हे पूज्यवर, उनका वह समाधि ही उनकी समाधि क्षमता है। हे पूज्यवर, यह

स्वाभाविक है कि आस्थावान, ऊर्जावान, स्थिर ध्यान वाला और समाधि अवस्था में मन वाला श्रेष्ठ शिष्य यह समझेगा: 'यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं होता।' परन्तु अज्ञान का

पूर्णतः मिट जाना और निरोध होना, अंधकार के समूह का अंत होना: यही शांति की अवस्था है, यही उदात्त अवस्था है, अर्थात् सभी संस्कारों का शांत होना, सभी उपलब्धियों का त्याग, भोग का विनाश, वैराग्य, नित्याग, निर्वाण। हे पूज्यवर, उनकी वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि ही उनकी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि है।

और, आदरणीय गुरुदेव, जब कोई शिष्य बार-बार इस प्रकार प्रयास करता है, बार-बार इस प्रकार ध्यान लगाता है, बार-बार समाधि अवस्था में इस प्रकार मन लगाता है, बार-बार प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से इस प्रकार समझता है, तो वह शिष्य पूर्ण विश्वास प्राप्त करता है: 'जिन धर्मों (गुणों, नियमों) के बारे में मैंने पहले केवल सुना था, अब मैं शरीर से उनका संपर्क करके और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उन्हें भेदकर उन्हें देख रहा हूँ।' आदरणीय गुरुदेव, उसका यही विश्वास उसकी आस्था शक्ति है। 234

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, जो शिष्य तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है, वह तथागत या तथागत की शिक्षाओं के बारे में किसी भी प्रकार की उलझन या संदेह नहीं रखता।"

(बुद्ध तब सारिपुत्त के शिष्य की आस्था शक्तियों के संबंध में दिए गए पूरे कथन को शब्दशः दोहराते हैं।)

(vi) सूअर की गुफा खंड (सुकरखाटावग्गो)
521. साला
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच साला नामक ब्राह्मण गाँव में ठहरे हुए थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, जिस प्रकार पशुओं में सिंह, जो पशुओं का राजा है, बल, गति और साहस के मामले में उनका श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को उनका श्रेष्ठ माना जाता है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, विश्वास की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। वीर्य की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। सती की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाता है। समाधि (सम्मोहन) की अवस्था ज्ञानोदय के लिए अनुकूल है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाती है। पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की अवस्था ज्ञानोदय के लिए अनुकूल है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाती है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं में शेर को उनका प्रमुख घोषित किया गया है, उसी प्रकार ज्ञानोदय के लिए अनुकूल अवस्थाओं में पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को उनका प्रमुख घोषित किया गया है, अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए।"

---

522. मल्लिकाएँ
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) मल्लिकों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ उरुवेलकप्पा नामक मल्लिकों का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, जब तक श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती, अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती। 236 परन्तु जब श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है।

"यह, भिक्षुओं, ठीक वैसे ही है जैसे नुकीली छत वाले घर में: जब तक छत की चोटी को ठीक से स्थापित नहीं किया जाता, तब तक शहतीरों में स्थिरता नहीं होती, तब तक शहतीरों में स्थिरता नहीं होती; लेकिन जब छत की चोटी अपनी जगह पर स्थापित हो जाती है, तब शहतीरों में स्थिरता आ जाती है, तब शहतीरों में दृढ़ता आ जाती है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तक श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती, तब तक उनमें दृढ़ता नहीं होती। लेकिन जब श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है, तब उनमें दृढ़ता आ जाती है। वे

चार कौन सी इंद्रियां हैं? विश्वास की इंद्री, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती) और समाधि (सम्मोहन) की इंद्री। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से युक्त श्रेष्ठ शिष्य के मामले में, उससे उत्पन्न विश्वास स्थिर हो जाता है; उससे उत्पन्न ऊर्जा-शक्ति स्थिर हो जाती है; उससे उत्पन्न ध्यान स्थिर हो जाता है; उससे उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) की अवस्था स्थिर हो जाती है।

523. एक प्रशिक्षु (शिष्य के बिना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसिता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

"भिक्षुओं, क्या कोई ऐसी विधि है जिससे एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझ सके कि 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ' और एक पारलौकिक भिक्षु, पारलौकिक अवस्था में रहते हुए, यह समझ सके कि 'मैं पारलौकिक हूँ'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, एक विधि है जिससे एक प्रशिक्षु भिक्षु... यह समझ सके कि 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ' और एक पारलौकिक भिक्षु... यह समझ सके कि 'मैं पारलौकिक हूँ'।"

"और हे भिक्षुओं, वह कौन सी विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ'?

हे भिक्षुओं, यहाँ एक प्रशिक्षु भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' यह वह विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ'।"

"फिर से, भिक्षुओं, एक प्रशिक्षु भिक्षु इस प्रकार विचार करता है:
'क्या यहाँ बाहर कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण है जो भगवान (बुद्ध) के समान वास्तविक, सच्चा और प्रासंगिक धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता हो?' वह इस प्रकार समझता है: 'यहाँ बाहर कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं है जो भगवान (बुद्ध) के समान वास्तविक, सच्चा और प्रासंगिक धर्म का उपदेश देता हो।' यह भी एक ऐसी विधि है जिसके माध्यम से एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु के स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ।'"

"फिर से, भिक्षुओं, एक प्रशिक्षु भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों को समझता है - विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना)। वह अभी तक शरीर से संपर्क स्थापित करके, उनके गंतव्य, उनकी पराकाष्ठा, उनके फल, उनके अंतिम लक्ष्य में निवास नहीं करता; बल्कि पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से उसे भेदकर वह (ध्यान में) देखता है। 238 यह भी एक विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु के स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ।'"

और हे भिक्षुओं, वह विधि क्या है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर स्थित होकर, यह समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे एक हूँ'? हे भिक्षुओं, प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों को समझता है - आस्था की शक्ति... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति। वह शरीर से संपर्क स्थापित करके, जो उनका गंतव्य, उनकी पराकाष्ठा, उनका फल, उनका अंतिम लक्ष्य है, उसमें प्रवेश करके, और उसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से भेदकर, वह (ध्यान में) देखता है। यह वह विधि है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर स्थित होकर, यह समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे एक हूँ'।

हे भिक्षुओं, फिर से, प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु छह शक्तियों को समझता है - आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। वह समझता है: 'ये छह इंद्रियां पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाएंगी, और कोई अन्य छह इंद्रियां कहीं भी किसी भी रूप में उत्पन्न नहीं होंगी।' यह भी एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे हूं।'

524. पदचिह्न (पाड़ा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समा जाते हैं, और हाथी के पदचिह्न को उसके आकार के कारण प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के चरणों में, 239 प्रबोधन (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता को प्रमुख माना जाता है, अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिए।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के चरण क्या हैं? हे भिक्षुओं, विश्वास की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। वीरता (वीर्य) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। सती (ध्यान) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। समाधि (सम्मोहन) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... उसी प्रकार, ज्ञानोदय की ओर ले जाने वाले चरणों में, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता को प्रमुख माना गया है, अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए।"

---

525. हार्टवुड (सारा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सुगंधित वृक्षों में लाल चंदन को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को प्रमुख माना जाता है।

... "और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ...पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति..."

---

526. स्थापित (पतितिता सं. प्रतिष्ठा)
भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु एक धर्म में स्थापित हो जाता है, तो उसकी पाँचों इंद्रियाँ पूर्णतः विकसित हो जाती हैं। वह कौन सा धर्म है? अप्पमद (जागरूकता) में।

और हे भिक्षुओं, जागरूकता क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु मन को विकारों और विकारग्रस्त अवस्थाओं से बचाता है। 240 इस प्रकार मन की रक्षा करते हुए, विश्वास की इंद्रिय पूर्ण रूप से विकसित होती है; ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की इंद्रिय... ध्यान (सती) की इंद्रिय... समाधि (सम्मोहन) की इंद्रिय... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की इंद्रिय पूर्ण रूप से विकसित होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार जब कोई भिक्षु एक धर्म में स्थापित हो जाता है, तो उसकी पाँचों इंद्रियाँ पूर्णतः विकसित हो जाती हैं।

---

527. ब्रह्म सहमपति
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में थे, उनके मन में यह विचार आया: "पांचों इंद्रियों का विकास और संवर्धन होने पर, उनका आधार (निर्वाण) ही अमरता है, उनका गंतव्य भी अमरता है, उनका अंतिम लक्ष्य भी अमरता है। वे पांच इंद्रियां कौन सी हैं? विश्वास की इंद्री, वीरता की इंद्री, सती की इंद्री, समाधि की इंद्री और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की इंद्री। इन पांचों इंद्रियों का विकास और संवर्धन होने पर, उनका आधार (निर्वाण) ही अमरता है, उनका गंतव्य भी अमरता है, उनका अंतिम लक्ष्य भी अमरता है।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से ब्रह्मलोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: “ऐसा ही है, हे भगवान! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, पाँचों इंद्रियों का अंतिम लक्ष्य अमरता है।

आदरणीय महोदय, एक समय मैंने पूर्णतः प्रबुद्ध कस्सपा के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया था। वहाँ वे मुझे भिक्षु सहक के नाम से जानते थे।” हे पूज्यवर, इन्हीं पाँचों इंद्रियों को विकसित और पोषित करके मैंने इंद्रिय सुखों की इच्छा का नाश किया और इस प्रकार, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, मैं ब्रह्मलोक में एक शुभ स्थान (सुगतो) में पुनर्जन्म लिया। वहाँ वे मुझे ब्रह्म सहमपति के नाम से जानते हैं। ऐसा ही है, हे भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: कि कैसे ये पाँचों इंद्रियाँ, जब विकसित और पोषित होती हैं, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य बनाती हैं।

---

528. सूअर की गुफा (सुकरखाता)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में वराह गुफा में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

“हे सारिपुत्त, क्या लाभ है यह विचार करते हुए कि जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो गए हों, वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण का पालन करे?” 241

“हे पूज्यवर, बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा को लाभ मानते हुए, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो गए हों, वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण का पालन करे।”

"बहुत खूब, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यह उस भिक्षु के लिए लाभ है जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं और वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान का आचरण करता है।

और, सारिपुत्त, वह कौन सा लाभ है जिसके लिए वह भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान का आचरण करने पर बंधनों से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करता है?" "

हे पूज्यवर, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो चुके हैं, वह आस्था की शक्ति विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति... ध्यान (सती) की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है।" हे पूज्यवर, यही वह अतुलनीय सुरक्षा है जो एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण से प्राप्त करता है। "

वाह, वाह, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यही वह अतुलनीय सुरक्षा है जो एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण से प्राप्त करता है।

और, सारिपुत्त, वह सर्वोच्च सम्मान क्या है जिसके साथ एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है?"

"हे पूज्यवर, यहाँ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, गुरु, धर्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा), प्रशिक्षण और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति आदर और श्रद्धा भाव से निवास करता है। 242 हे पूज्यवर, यही वह सर्वोच्च सम्मान है जिसके साथ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यही वह सर्वोच्च सम्मान है जिसके साथ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है।"

---

529. उत्पन्न होना (1) (उप्पदा1)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं। वे पाँच कौन सी शक्तियाँ हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

---

530. उत्पन्न होना (2) (उप्पदा2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं। वे पाँच कौन सी शक्तियाँ हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) (बुद्ध) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

(vii) ज्ञानोदय अनुभाग के लिए अनुकूल (बोधिपक्खियावग्गो सं. बोधि-पक्ष-वर्ग)
531. बंधन (संयोजन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये बंधनों के त्याग की ओर ले जाती हैं। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और अभ्यास की गई हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो सौभाग्यशाली (सुगतो) (बुद्ध) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

---

532. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और पोषण करने से अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का उन्मूलन होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)। ये पाँच शक्तियाँ...

---

533. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञान)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और पोषण करने से पाठ्यक्रम की पूर्ण समझ प्राप्त होती है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ...

---

534. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने से विकारों का नाश होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने से बंधनों का त्याग होता है, अंतर्निहित प्रवृत्तियों का उन्मूलन होता है, मार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है और विकारों का नाश होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

---

535. फल (फल1)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष रहती है, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

---

536. फल (फल 2)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

मनुष्य को इसी जीवन में शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यदि वह इसी जीवन में शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त न करे, तो मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त होता है। यदि वह इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त न करे, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है... मृत्यु के समय ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... परिश्रम सहित निर्वाण प्राप्त कर लेता है... और फिर नदी के विपरीत दिशा में अग्रसर होकर अकनित्त लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। हे

भिक्षुओं, जब इन पाँचों शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तब इन सात फलों और लाभों की प्राप्ति होती है।

---

537. वृक्ष (1) (रुक्खा 1 सं. वृक्ष)
भिक्षुओं, जिस प्रकार जंबुद्वीप के वृक्षों में गुलाब-सेब का वृक्ष प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्रमुख मानी जाती है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, आस्था की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। (अन्य जैसा कि 531 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार जंबुद्वीप के वृक्षों में गुलाब-सेब (जमुन) का वृक्ष प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) प्रमुख मानी जाती है।

538. वृक्ष (2) (रुक्खा2 सं. वृक्ष)
भिक्षुओं, जिस प्रकार स्वर्ग में तावतिंसा देवों के वृक्षों में मूंगा वृक्ष (परिच्छत्तक संस्कृत: पारिजात) 243 को प्रमुख बताया गया है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को प्रमुख बताया गया है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? आस्था की शक्ति... (जैसा कि 531 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति... अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिए।

539. वृक्ष (3) (रुक्खा3 सं. वृक्ष)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार असुरों (राक्षसों के लोक) के वृक्षों में चित्तपतली वृक्ष (तुरही पुष्प वृक्ष) 244 को प्रमुख घोषित किया गया है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुकूल अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की क्षमता को प्रमुख घोषित किया गया है ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... अर्थात्, ज्ञान प्राप्ति के लिए।"

540. वृक्ष (4) (रुक्ख4 सं. वृक्ष)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) के लिए, जिस प्रकार सुपन्न वृक्षों में कुटसिंबली वृक्ष को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि को प्रमुख माना जाता है... (उपरोक्त सभी)... अर्थात्, ज्ञान प्राप्ति के लिए।"

(viii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यालवग्गो)
541-552. पूर्व की ओर, आदि (पैसिनाडी सं. पश्चिम-नाडी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और अभ्यास कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। वह ऊर्जा-शक्ति की शक्ति का विकास करता है... सती की शक्ति का... समाधि की शक्ति का... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।"

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ix) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
553-564. तथागत, इत्यादि।
(पूर्व 541-552 के समानांतर संकायों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।

दसवें के रूप में वस्त्र सहित।

(x) बलकारणीयवग्गो (बलकारणीयवग्गो)
565-576. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
(पिछली धारा 541-552 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा)

परिश्रमी, बीज और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(xi) खोज (एसानावग्गो)
577-586. खोजें, आदि (एसाना)
(पिछली धारा 541-552 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

खोज, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध दुख,

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(xii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
587-596. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
(पिछले अनुच्छेद 541-552 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होती है।"

"इन पांच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए, और इन पांच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध,
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(xiii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

597-608. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आस्था की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।

हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुकता है।

(xiv) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
609-618 तथागत, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xv) कठोर कर्म धारा (बालकरणीयवग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
619-630 कठिन, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xvi) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
631-640 खोजें, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xvii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
641-650. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए। ये

पाँच कौन से हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आस्था की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति का, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।

इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपादान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध, निम्न और उच्चतर बंधन।

(इन सभी का विस्तृत वर्णन पाँच इंद्रियों के माध्यम से किया जाएगा, जिनका अंतिम
लक्ष्य कामवासना, घृणा (दोष/द्वेष) और मोहभंग का निवारण करना है।)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन5-महावग्गा-वेर2-भाग2

SN5-महान पुस्तक-भाग 2
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] के पाँचवें खंड का निरंतरता है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस पुस्तक में बड़े आकार के सूत्रों का संग्रह है, इसलिए इसे महावग्ग (महान पुस्तक) कहा जाता है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
651-662: चार महान प्रयास;
822: बुद्ध ने जीने की इच्छा का त्याग करने का निर्णय लिया;
823: ज्ञानोदय और आध्यात्मिक शक्तियों के चार अंगों पर महत्वपूर्ण सूत्र;
899, 900: ध्यान की चार स्थापनाएँ (सती);
923-934: चार ध्यान;
976: पाँच उच्चतर बंधन;
977: अनापान (श्वास ध्यान);
981, 984: श्वास ध्यान के लाभ;
997: एक कुलीन व्यक्ति के चार गुण (तीन रत्नों में विश्वास और पंचशील सद्गुणों का अभ्यास);
1024: मृत्यु के समय क्या करना चाहिए; बीमारों को सांत्वना।
1071: चार आर्य सत्य
1079, 1080: गलत प्रकार की बातें
1081: महत्वपूर्ण: धम्मचक्कपवत्तना - आर्य अष्टांगिक मार्ग और चार आर्य सत्यों द्वारा धम्मचक्र को गतिमान करना
1100: दुख के बारे में
1101: बुद्ध ने अपने हाथों में कुछ पत्ते लेकर यह दर्शाया है कि उन्होंने केवल इतना ही उपदेश दिया है।
1117, 1118, 1172-1201: मनुष्य का जन्म दुर्लभ है, इसलिए इसका उपयोग मुक्ति के लिए करें (विमुक्ति)।
1119-1131: जो लोग मार्ग का अनुसरण करते हैं और ध्यान करते हैं, उनके पाप बहुत कम रह जाते हैं।
1134-1171: नैतिकता का पालन करने वाले बहुत कम हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN5-भाग 1) अगला (SN-परिवर्तन) >>>>

अंतर्वस्तु

1संयुक्त निकाय:5.महावग्ग-महान पुस्तक-भाग2
1.1अध्याय 5: सही प्रयासों पर संबंधित प्रवचन (सम्मप्पधनासम्युत्म) {सम्युत-49}
1.1.1(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यलावग्गो)
1.1.1.1651-662. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
1.1.2(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
1.1.2.1663-672. तथागत, इत्यादि।
1.1.3(iii) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
1.1.3.1673-684. ज़ोरदार, आदि (बालकारनियादि)
1.1.4(iv) खोज (एसाना)
1.1.4.1685-694. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
1.1.5(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.1.5.1695-704. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
1.2अध्याय 6: शक्तियों पर संबंधित प्रवचन (बालसम्युत्त) {सम्युत्त-50}
1.2.1(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
1.2.1.1705-716. शक्तियां, इत्यादि (बलादी)
1.2.2(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
1.2.2.1717- 726. तथागत, इत्यादि।
1.2.3(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
1.2.3.1727-738. कठिन, इत्यादि।
1.2.4(iv) खोज (एसानावग्गो)
1.2.4.1739-748 खोजें, इत्यादि।
1.2.5(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.2.5.1749-758. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
1.2.6(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
1.2.6.1759-770. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
1.2.7(vii) सतर्कता अनुभाग
1.2.7.1771-780 तथागत, इत्यादि।
1.2.8(viii) कठिन कर्मों की धारा
1.2.8.1781 - 791 कठिन, इत्यादि।
1.2.9(ix) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
1.2.9.1792-802. खोजें, इत्यादि।
1.2.10(x) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.2.10.1803-812 बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
1.3अध्याय 7: आध्यात्मिक शक्तियों के अंग (इद्धिपादसंयुक्त सं. रिद्धिपाद-संयुक्त) {संयुत्त-51}
1.3.1(i) कैपलावाग्गो
1.3.1.1813. निकटवर्ती तट (अपारा) से
1.3.1.2814. उपेक्षित (विराद्ध)
1.3.1.3815. नोबल
1.3.1.4816. मोक्ष (निब्बिडा)
1.3.1.5817. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिपदेसा सं. रिद्धिपाद)
1.3.1.6818. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
1.3.1.7819. भिक्षु (सं. भिक्षु)
1.3.1.8820. बुद्ध
1.3.1.9821. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)

1.3.1.10822. तीर्थ (सेतिया सं. चैत्य)
1.3.2(ii) हवेली खंड का हिलना (पसदकम्पनवाग्गो सं. प्रसाद-कम्पन-वर्ग)
1.3.2.1823. पहले (पुब्बा सं. पूर्वा)
1.3.2.2824. महान फल (महाफला) का
1.3.2.3825. इच्छा के कारण समाधि/सम्मोहन (चंदासमाधि)
1.3.2.4826. मोग्गलाना
1.3.2.5827. ब्राह्मण उन्नाभा
1.3.2.6828. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.3.2.7829. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.3.2.8830. एक भिक्षु (सं. भिक्षु अर्थात तपस्वी)
1.3.2.9831. एक शिक्षण (इद्दिदेसाना सं. रिद्धि-आदि-देसाना)
1.3.2.10832. विश्लेषण (विभंग)
1.3.3(iii) लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)
1.3.3.1833. पथ (मग्गा संस. मार्ग)
1.3.3.2834. लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)
1.3.3.3835. एक भिक्षु (सं. भिक्षु)
1.3.3.4836. सरल संस्करण (सं. शुद्धिका)
1.3.3.5837. फल (1) (फला1)
1.3.3.6838. फल (2) (फला2)
1.3.3.7839. आनंद (1)
1.3.3.8840. आनंद (2)
1.3.3.9841. भिक्षुओं की संख्या (1)
1.3.3.10842. भिक्षुओं की संख्या (2)
1.3.3.11843. मोग्गलाना
1.3.3.12844. तथागत
1.3.4(iv) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
1.3.4.1845-856. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
1.3.5(v) सतर्कता अनुभाग (अप्पमदवग्गो सं. अप्रमदवर्ग)
1.3.5.1857-866. तथागत, इत्यादि।
1.3.6(vi) कठोर कर्म (बालकारनियावाग्गो)
1.3.6.1867-878. कठिन, इत्यादि।
1.3.7(vii) खोज (एसानावग्गो)
1.3.7.1879-888. खोज आदि (एसानादी)
1.3.8(viii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
1.3.8.1889-897. बाढ़, आदि।
1.3.8.2898. उच्चतर बेड़ियाँ
1.4अध्याय 8: अनुरुद्ध से संबंधित प्रवचन (अनुरुद्धसम्युत्त) {सम्युत्त-52}
1.4.1(i) अकेला (राहोगतावग्गो)
1.4.1.1899. अकेला (1) (रहोगता1)
1.4.1.2900. अकेला (2) (रहोगता2)
1.4.1.3901. सुतानु
1.4.1.4902. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(1) (कंडाकी1)
1.4.1.5903. थॉर्नबश-ग्रोव (कंडाकिवाना) (2) (कंडाकी2)
1.4.1.6904. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(3) (कंडाकी3)
1.4.1.7905. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
1.4.1.8906. सलाला-वृक्ष झोपड़ी (सलालागरा)
1.4.1.9907. अम्बपाली का उपवन (अम्बापालिवन सं. आम्रपाली-वन)
1.4.1.10908 गंभीर रूप से बीमार (बल्हगिलाना)

1.4.2(ii) दूसरा उप-अध्याय
1.4.2.1909. एक हजार कल्प (कप्पासहसा सं. कल्प-सहस्र)
1.4.2.2910. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिविधा)
1.4.2.3911. दिव्य कान (दिब्बासोता संस्कृत: दिव्या-स्त्रोता)
1.4.2.4912. मन को समाहित करना (चेतोपरिया)
1.4.2.5913. द पॉसिबल (थाना)
1.4.2.6914. कम्मा का उपक्रम (कम्मासमादना)
1.4.2.7915. सर्वत्र नेतृत्व करना (सब्बत्थगामिनी)
1.4.2.8916. विविध तत्व (नाना-धातु)
1.4.2.9917. विविध स्वभाव (नानादिमुट्टी)
1.4.2.10918. संकायों की डिग्रियाँ (इंद्रियपरोपरीअत्ता)
1.4.2.11919. ध्यान आदि (संस्कृत ध्यान)
1.4.2.12920. विगत निवास (पुब्बेनिवास सं. पूर्व-निवास)
1.4.2.13921. दिव्य नेत्र (दिब्बाचक्खु संस्कृत: दिव्या-चक्षु)
1.4.2.14922. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
1.5अध्याय 9: झानस/आत्म-अवशोषण (झानसयुत्त) पर संबंधित प्रवचन {संयुत्त-53}
1.5.1(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
1.5.1.1923-934. गंगा नदी - पूर्व की ओर, झनादी आदि।
1.5.2(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
1.5.2.1935-944. तथागत, इत्यादि।
1.5.3(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
1.5.3.1945-956. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
1.5.4(iv) खोज (एसानावग्गो)
1.5.4.1957-966 खोजें, आदि (एसाना)
1.5.5(v) बाढ़ (ओघावाग्गो)
1.5.5.1967-975. बाढ़, आदि।
1.5.5.2976. उच्चतर बेड़ियाँ
1.6अध्याय 10: श्वास संबंधी संबंधित प्रवचन (अनपानसाम्युत्त) {साम्युत्त-54}
1.6.1(i) एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्मवग्गो)
1.6.1.1977. एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्म)
1.6.1.2978. आत्मज्ञान के कारक (बोज्झांगा सं. बोधयांग)
1.6.1.3979. सरल संस्करण (शुद्धिका)
1.6.1.4980. फल (1) (फला1)
1.6.1.5981. फल (2) (फला2)
1.6.1.6982. अरित्था
1.6.1.7983. महाकप्पिना
1.6.1.8984. दीपक की उपमा (पादिपोपमा संस्कृत: प्रदीप-उपमा)
1.6.1.9985. वेसाली में
1.6.1.10986. किम्बिला
1.6.2(ii) द्वितीय उप-अध्याय (आनंद)
1.6.2.1987. इच्छानंगला में
1.6.2.2988. असमंजस में (कंखेय्या)
1.6.2.3989. आनंद (1)
1.6.2.4990. आनंद (2)
1.6.2.5991. भिक्षु (1)
1.6.2.6992. भिक्षु (2)
1.6.2.7993. बेड़ियाँ (संयोजनाप्पना सं. संयोग-प्राहन)
1.6.2.8994. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ

1.6.2.9995. पाठ्यक्रम (अद्धनपरिन्ना)
1.6.2.10996. अशुद्धियों का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
1.7अध्याय 11: धारा-प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (सोतापत्तिसम्युत्त) {सम्युत्त-55}
1.7.1(i) बांस गेट (वेलुद्वारावग्गो)
1.7.1.1997. व्हील-टर्निंग मोनार्क (कैक्कवत्तीराजा सं. चक्रवर्ती-राजा)
1.7.1.2998. ब्रह्मचर्य में दृढ़ (ब्रह्मचरयोगधा)
1.7.1.3999. दिघावु
1.7.1.41000. सारिपुत्त (1)
1.7.1.51001. सारिपुत्त (2)
1.7.1.61002. चेम्बरलेन्स (थापति)
1.7.1.71003. बांस द्वार के लोग (वेलुडवरेय्या)
1.7.1.81004. ईंटों का हॉल (1) (गिंजकवासथा1)
1.7.1.91005. ईंटों का हॉल (2) (गिंजकवासथा2)
1.7.1.101006. ईंटों का हॉल (3) (गिंजकवासथा3)
1.7.2(ii) हजार गुना राजकारमा उद्यान
1.7.2.11007 हजार भिक्षुणियों का संघ (सहसभिक्खुनीसंघ)
1.7.2.21008. ब्राह्मण
1.7.2.31009. वरिष्ठ भिक्षु आनंद
1.7.2.41010. बुरी नियति का भय (1) (दुग्गतिभय1 सं. दुर्गति-भाय)
1.7.2.51011. बुरी नियति में गिरने का भय (2) (दुग्गतिविनिपताभया)
1.7.2.61012. मित्र और सहकर्मी (1) (मिट्टामक्का1)
1.7.2.71013. मित्र और सहकर्मी (2) (मिट्टामक्का1)
1.7.2.81014. देवों का दर्शन (1) (देवचरिका1)
1.7.2.91015. देवों का दर्शन (2) (देवकारिका2)
1.7.2.101016. देवों का दर्शन (3) (देवचरिका3)
1.7.3(iii) सरानिवग्गो
1.7.3.11017. महानामा (1)
1.7.3.21018. महानामा (2)
1.7.3.31019. गोधासक्का
1.7.3.41020. सरनानिसाक्का (1)
1.7.3.51021. सरनानिसाक्का (2)
1.7.3.61022. अनाथपिंडिका (1)
1.7.3.71023. अनाथपिंडिका (2)
1.7.3.81024. भयानक वैमनस्य (1) (भयवेरुपसन्त1)
1.7.3.91025. भयानक वैमनस्य (2) (भयवेरुपसन्त2)
1.7.3.101026. नंदका लिच्चवी
1.7.4(iv) दिव्य-योग्य धारा की धाराएँ (पुन्नभिसंदवग्गो सं. पुण्य..)
1.7.4.11027. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (पुन्नभिसन्द1)
1.7.4.21028. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (पुन्नभिसन्द2)
1.7.4.31029. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (पुन्नभिसन्द3)
1.7.4.41030. दिव्य अवस्थाएँ (1) (देवपद1)
1.7.4.51031 दिव्य अवस्थाएँ (2) (देवपद2)
1.7.4.61032. देवताओं के समान (देवसभाग सं. देव-सा-भाग्य)
1.7.4.71033. महानामा
1.7.4.81034. वर्षा (वसा सं. वर्षा)
1.7.4.91035. कालीगोधा
1.7.4.101036. नंदिया
1.7.5(v) छंद के साथ दिव्य-योग्यता की धाराएँ (सगाथापुन्नभिसंदा संस। सगाथा-पुण्य..)

1.7.5.11037. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (अभिसन्द1)
1.7.5.21038. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (अभिसन्द2)
1.7.5.31039. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (अभिसन्द3)
1.7.5.41040. समृद्ध (1) (महाद्धाना1)
1.7.5.51041. धनी (2) (महाद्धाना2)
1.7.5.61042. सरल संस्करण (शुद्धका)
1.7.5.71043. नंदिया
1.7.5.81044. भद्दिया
1.7.5.91045. महानामा
1.7.5.101046. अंग (अंग)
1.7.6(vi) प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि वाला (सपन्नवग्गो सं. स-प्रज्ञा-वर्ग)
1.7.6.11047. श्लोकों सहित (सगाथक)
1.7.6.21048. वन हू स्पेंड द रेन्स (वस्सामवुत्थ सं. वर्षम-उत्तिष्ठ)
1.7.6.31049. धम्मदिन्ना
1.7.6.41050. बीमार (गिलाना)
1.7.6.51051. धारा-प्रवेश का फल (सोतापत्तिफला)
1.7.6.61052. एक बार पुनर्जन्म का फल (सकदागमिफला)
1.7.6.71053. पुनर्जन्म न लेने का फल (अनगामिफल)
1.7.6.81054. अरहंतशिप का फल (अरहतफला)
1.7.6.91055. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि की प्राप्ति (पन्नापतिलाभ सं. प्रज्ञा-प्रति-लाभ)
1.7.6.101056. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विकास (पन्नवुद्धि सं. प्रज्ञा-वृद्धि)
1.7.6.111057. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विस्तार (पन्नवेपुल्ला सं. प्रज्ञा-विपुला)
1.7.7(vii) महान प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि खंड (महापन्नवग्गो सं. महा-प्रज्ञा-वर्ग)
1.7.7.11058. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की महानता (महापन्न संस्कृत: महा-प्रज्ञा)
1.7.7.21059 - 1070. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की व्यापकता, आदि।
1.8अध्याय 12: सत्य पर संबंधित प्रवचन (सच्चसंयुत्त सं. सत्य-संयुक्त) {संयुत्त-56}
1.8.1(i) आत्म-अवशोषण अनुभाग (समाधिवग्गो)
1.8.1.11071 समाधि (स्व-मग्नता)
1.8.1.21072. एकांतवास (पतिसाला)
1.8.1.31073. कुलपुत्र (1) (कुलपुत्त1 सं. कुलपुत्र)
1.8.1.41074 कुल के लोग (2) (कुलपुत्त2 सं. कुलपुत्र)
1.8.1.51075. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण1 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
1.8.1.61076. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण2 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
1.8.1.71077. विचार (विटक्का सं. वितर्क)
1.8.1.81078. विचार (सिंटा संस सिंटान)
1.8.1.91079. विवादात्मक वार्ता (विग्गाहिककथा)
1.8.1.101080. निरर्थक बातें (तिराच्चनकथा)
1.8.2(ii) धम्म के चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तनवग्गो)
1.8.2.11081. धम्म चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तना)
1.8.2.21082. तथागत का दर्शन
1.8.2.31083. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
1.8.2.41084. आंतरिक इंद्रिय क्रियाकलाप (अज्जत्तिकायतन)
1.8.2.51085. स्मरण (1) (धारणा1)
1.8.2.61086. स्मरण (2) (धारणा2)
1.8.2.71087. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
1.8.2.81088. सच्चा ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)
1.8.2.91089. निहितार्थ (संकासन)
1.8.2.101090. वास्तविक (तथा)

1.8.3(iii) कोटिगमावग्गो
1.8.3.11091. कोटिगामा (1) 386
1.8.3.21092. कोटिगामा (2) 387
1.8.3.31093. पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्ध)
1.8.3.41094. अरहंत
1.8.3.51095. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
1.8.3.61096. मित्र (Mitta sans. Mitra)
1.8.3.71097. वास्तविक (तथा)
1.8.3.81098. लोक (विश्व)
1.8.3.91099. पूर्णतः समझा जाना (परिन्नेय)
1.8.3.101100. गवमपति
1.8.4(iv) सिम्पापा-वन (सिसापावना) खंड (सिसापावनवग्गो)
1.8.4.11101. सिंसपावन (सिसपवन)
1.8.4.21102. बबूल (खदिरापत्ता)
1.8.4.31103. डंडा (डंड)
1.8.4.41104. कपड़े (सेल)
1.8.4.51105. सौ भाले (सत्तीसत)
1.8.4.61106. प्राणी (पण सं. प्राणि)
1.8.4.71107. सूर्य (1) (सूर्य1 सं. सूर्य)
1.8.4.81108. सूर्य (2) (सूरिया2 सान. सूर्य)
1.8.4.91109. इंद्र का स्तंभ (इंदखिल सं. इंद्र-कील)
1.8.4.101110. तर्क की तलाश (वदत्तिका)
1.8.5(v) अवक्षेप खंड (पापटावग्गो संस. प्रपात-वर्ग)
1.8.5.11111. विश्व के बारे में सोचना (लोकसिंता संस. लोकासिंता)
1.8.5.21112. द प्रिसिपिस (पापट संस. प्रपाट)
1.8.5.31113. महाप्रलय (महापरिलाहा)
1.8.5.41114. नुकीला घर (कुटागारा)
1.8.5.51115. बाल 404 (वाला बिना बाल)
1.8.5.61116. अंधकार (अंधकार)
1.8.5.71117. छेद वाला जुआ (l) 408 (चिग्गलयुगा1)
1.8.5.81118. छेद वाला जुआ (2) (चिग्गलयुगा2)
1.8.5.91119. सिनेरु (1) (सिनेरुपब्बताराज1 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
1.8.5.101120. सिनेरु (2) (सिनेरुपब्बताराज2 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
1.8.6(vi) द ब्रेकथ्रू (अबीसमया)
1.8.6.11121. नाखून 412 (नखसिखा)
1.8.6.21122. तालाब (पोखरानी)
1.8.6.31123. संगम पर जल (1) (संभेज्जा1)
1.8.6.41124. संगम पर जल (2) (संभेज्जा2)
1.8.6.51125. पृथ्वी (1) (महापृथ्वी1 सं. महापृथ्वी)
1.8.6.61126. पृथ्वी (2) (महापथवी2 सं. महापृथ्वी)
1.8.6.71127. महासागर (1) (महासमुद्र1 सं. महासमुद्र)
1.8.6.81128. महासागर (2) (महासमुद्दा2 सं. महासमुद्र)
1.8.6.91129. पर्वत उपमा (1) (पब्बतुपमा1 सं. पर्वत-उपमा)
1.8.6.101130. पर्वत (2) (पब्बतुपमा2 सं. पर्वत-उपमा)
1.8.7(vii) प्रथम कच्चा अनाज पुनरावृति श्रृंखला 413
1.8.7.11131. अन्यत्र (अन्नात्र सं. अत्यन्तर)
1.8.7.21132. बाहरी देश (प्रत्यन्तर के बिना)
1.8.7.31133. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना संस्कृत प्रज्ञा)

1.8.7.41134. मदिरा एवं मादक पेय (सुरमेराया)
1.8.7.51135. जलजनित (ओडाका)
1.8.7.61136. जो माता (मत्तेय्या) का सम्मान करते हैं
1.8.7.71137. जो पिता का आदर करते हैं (पेत्तेय्या)
1.8.7.81138. जो तपस्वियों (समन्ना) का सम्मान करते हैं
1.8.7.91139. जो ब्राह्मणों का आदर करते हैं (ब्राह्मण)
1.8.7.101140. जो बड़ों का सम्मान करते हैं (पकाइका)
1.8.8(viii) दूसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.8.11141. जीवित प्राणियों की हत्या 415 (पनतीपता सं. प्राणि-पता)
1.8.8.21142. जो दिया न गया हो उसे ग्रहण करना (अदिन्नादना)
1.8.8.31143. यौन दुराचार
1.8.8.41144. मिथ्याभाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वाद)
1.8.8.51145. विभाजनकारी भाषण (पेसुन्ना)
1.8.8.61146. कठोर भाषण (फरुसावाका)
1.8.8.71147. व्यर्थ की बातें (संफप्पलापा)
1.8.8.81148. बीज जीवन (बीजागामा)
1.8.8.91149. अनुचित समय (विकलाभोजन)
1.8.8.101150. सुगंध एवं मलहम (गंधविलेपना)
1.8.9(ix) तीसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.9.11151. नृत्य और गायन (नक्कागिता)
1.8.9.21152. उच्च तल (उच्चसायन)
1.8.9.31153. सोना और चांदी (जटरूपराजता)
1.8.9.41154. कच्चा अनाज (अमाकधन्ना)
1.8.9.51155. कच्चा मांस (अमकमंसा)
1.8.9.61156. लड़कियाँ (कुमारिका)
1.8.9.71157. दास (दासिदास)
1.8.9.81158. बकरियाँ और भेड़ें (अजेलाका)
1.8.9.91159. मुर्गी और सूअर (कुक्कुटासुकारा)
1.8.9.101160. हाथी (हत्थिगवस्सा)
1.8.10(x) चौथी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.10.11161. खेत (खेत्तवत्थु)
1.8.10.21162. ख़रीदना और बेचना (कायाविक्कया सं. क्राय-विक्रया)
1.8.10.31163. संदेश (दुतेय्या)
1.8.10.41164. झूठे वजन (तुलकुटा)
1.8.10.51165. रिश्वतखोरी (उकोटाना)
1.8.10.61166-1171. अंग-भंग करना, इत्यादि (छेदनदी)
1.8.11(xi) पाँच गंतव्यों की पुनरावृति श्रृंखला
1.8.11.11172. मनुष्य के रूप में निधन (1) (मनुस्साकुटिनिरया सं. मनुष्य-कुटि-निरया)
1.8.11.21173. मनुष्य के रूप में निधन (2) (मनुसा-कुटी-तिराचना)
1.8.11.31174. मनुष्य के रूप में निधन (3)
1.8.11.41175-1177. मनुष्य के रूप में निधन (मनुसा-कुटी-देवनिराया)
1.8.11.51178-1180. देवों के रूप में निधन (देवकुटिनरायडी)
1.8.11.61181-1183. देवों के रूप में निधन (देवमुनस्सानिरायदी)
1.8.11.71184-1186. नर्क से दूर जाना (निरायमानुस्सानिरयादि)
1.8.11.81187-1189. नर्क से निधन ((निरायदेवनिरयादि)
1.8.11.91190-1192. पशु जगत से विदा होना (तिराच्चनमनुस्सनिरायदी)
1.8.11.101193-1195. पशु जगत से प्रस्थान (तिराच्चनदेवनिरायदी)
1.8.11.111196-1198. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीमनुस्सनिरायदी)

1.8.11.121199-1200. भूतलोक से प्रस्थान (पेट्टिदेवनिरायदी)
1.8.11.131201. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीदेवपेट्टीविसाया)
संयुक्त निकाय:5.महावग्ग-महान पुस्तक-भाग2

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 5: सही प्रयासों पर संबंधित प्रवचन (सम्मप्पधनासम्युत्म) {सम्युत-49}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यलावग्गो)
651-662. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, ये चार उचित प्रयास हैं। वे चार क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ देखें:
1. एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
2. वह उत्पन्न हुए हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
3. वह अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
4. वह उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है। प्रयास, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन को लगाता है और प्रयास करता है। ये चार सही प्रयास हैं। 245

"भिक्षुओं, जैसे गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, ढलान बनाती है और आगे बढ़ती है, वैसे ही जो भिक्षु चार सही प्रयासों को विकसित और पोषित करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है, ढलान बनाता है और आगे बढ़ता है।"

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु किस प्रकार चार उचित प्रयासों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है...

वह अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है... वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। ये चार उचित प्रयास हैं
। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु चार उचित प्रयासों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके। ढलानें, और निर्वाण की ओर झुकाव।

(इस अध्याय के शेष सूत्र भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर ही विस्तृत किए जाने हैं।)

पूर्व की ओर झुकी हुई छह ढलानें
और समुद्र की ओर झुकी हुई छह ढलानें।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं,
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
663-672. तथागत, इत्यादि।

(पिछली धारा 139-148 के समानांतर चार सही प्रयासों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
दसवें के रूप में वस्त्र सहित।

(iii) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
673-684. ज़ोरदार, आदि (बालकारनियादि)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी कठिन कर्म पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से स्थापित होकर किए जाते हैं, उसी प्रकार शील पर आधारित और सद्गुण से स्थापित होकर भिक्षु चारों सही प्रयासों का विकास और अभ्यास करते हैं।

और हे भिक्षुओं, सद्गुण पर आधारित और सद्गुण से स्थापित होकर भिक्षु चारों सही प्रयासों का विकास और अभ्यास कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करते हैं; वे प्रयास करते हैं, वीर्य शक्ति को जागृत करते हैं, मन लगाते हैं और प्रयास करते हैं। वह उत्पन्न हुई अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है। वह अउत्पन्न लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है। वह उत्पन्न हुई लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। ये चार सही प्रयास हैं।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्गुण पर आधारित, सद्गुण पर स्थापित, चार सही प्रयासों का विकास और अभ्यास करता है।"

(पिछले अनुच्छेद 149-160 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथिगृह और नदी।

(iv) खोज (एसाना)
685-694. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भाव) की खोज, और ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं। इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए चार उचित प्रयास विकसित किए जाने चाहिए।

कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव के लिए, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।

"इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन) की प्राप्ति, उनके पूर्ण ज्ञान, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए इन चार उचित प्रयासों को विकसित करना आवश्यक है।"

(पिछली धारा 161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।

अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदना (वेदना), लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
695-704. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
(पिछली धारा 171-179 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार उचित प्रयास विकसित किए जाने चाहिए।

"ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करते हैं... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव के लिए, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वे प्रयास करते हैं, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करते हैं, मन लगाते हैं और प्रयास करते हैं।"

"इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान की प्राप्ति, उनके पूर्ण बोध, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए इन चार उचित प्रयासों को विकसित करना आवश्यक है।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध,
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 6: शक्तियों पर संबंधित प्रवचन (बालसम्युत्त) {सम्युत्त-50}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
705-716. शक्तियां, इत्यादि (बलादी)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? श्रद्धा की शक्ति, वीरता की शक्ति, सती की शक्ति, समाधि की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलान पर बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु इन पाँच शक्तियों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर ढलान पर बहता है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति का विकास करता है... ध्यान की शक्ति का... समाधि की शक्ति का... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके।"

(इस वचन के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले वचनों के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी) 92-102.)

पूर्व की ओर झुके हुए छह
और समुद्र की ओर झुके हुए छह।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं,
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
717- 726. तथागत, इत्यादि।
(पूर्व 139-148 के समानांतर शक्तियों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
दसवें के रूप में वस्त्र के साथ।

(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
727-738. कठिन, इत्यादि।
(पिछली धारा 149-160 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(iv) खोज (एसानावग्गो)
739-748 खोजें, इत्यादि।
(पिछली धारा 161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
749-758. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
(पिछली धारा 171-179 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी, अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए पाँच शक्तियों का विकास किया जाना चाहिए।

"ये पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) भी कहा जाता है, जैसा कि धारा 471, 480 में है), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होती है।"

"इन पांच शक्तियों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध, स्कंध
(खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
759-770. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार पंच शक्तियों का विकास और साधना करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पंच शक्तियों का विकास और साधना कैसे करता है जिससे वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (जैसा कि 705 में है) भी कहा गया है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पांच शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके।"

(vii) सतर्कता अनुभाग
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
771-780 तथागत, इत्यादि।

(viii) कठिन कर्मों की धारा
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
781 - 791 कठिन, इत्यादि।

(ix) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
792-802. खोजें, इत्यादि।

(x) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
803-812 बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)

भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए पाँच शक्तियों का विकास करना आवश्यक है। ये

पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (जैसा कि 705 में है) भी कहा गया है), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करते हैं, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है।

"इन पांच शक्तियों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख के बंधन, अवरोध,
स्कंध संस्कृत: स्कंध, निम्न और उच्चतर बंधन।

(इन सभी को पांच शक्तियों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाना है, जिनका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है।)

अध्याय 7: आध्यात्मिक शक्तियों के अंग (इद्धिपादसंयुक्त सं. रिद्धिपाद-संयुक्त) {संयुत्त-51}
(i) कैपलावाग्गो
813. निकटवर्ती तट (अपारा) से
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। 246 वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह मन और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

---

814. उपेक्षित (विराद्ध)
भिक्षुओं, जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चार इंद्रियों की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का उपयोग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (रिद्धि) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

वे कौन सी चार इंद्रियां हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जिन्होंने उपेक्षा की है... जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए इन चार इंद्रियों का उपयोग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (रिद्धि) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

---

815. नोबल

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होते हैं; ये उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। वे

चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग... उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (संस्कार) की ओर ले जाते हैं।

---

816. मोक्ष (निब्बिडा)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो पूर्ण मोक्ष, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। वे

चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय के कारण समाधि अवस्था प्राप्त करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा बल (वीर्य) के कारण समाधि अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय के कारण समाधि अवस्था। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग... निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

---

817. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिपदेसा सं. रिद्धिपाद)
भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वर्तमान में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न की है, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वे

चार इंद्रियां क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण हों... भविष्य में हों... वर्तमान में हों, वे सभी आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।"

---

818. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जो तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाएंगे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा। वर्तमान में जो तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है। वे

चार इंद्रियां क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में, भविष्य में और वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

819. भिक्षु (सं. भिक्षु)

भिक्षुओं, अतीत में जितने भी भिक्षुओं ने दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इसी जीवन में विमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त की और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जितने भी भिक्षु दोषों के नाश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध (इसा (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध ((प्रबुद्ध ((इसा ((प्रबुद्ध () से ही (s) से मुक्ति (.) से)))))))))))))))))))))))))))))))))))) से मुक्त मन की मुक्ति, पन्न ()))))))))))) से मुक्त मन की मुक्ति, पन्न ())) में प्रवेश किया और निवास किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति ()) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वर्तमान में जितने भी भिक्षु दोषों के नाश () द्वारा इसी जीवन में विमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, पन्ना ())) में प्रवेश किया और निवास किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (... अपने लिए दिव्य ज्ञान से युक्त, सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।

"वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में... भविष्य में... वर्तमान में जो भी भिक्षु मन की दोषमुक्त मुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

820. बुद्ध

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं (इद्धि/रिद्धि)। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। तथागत को अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।

---

821. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)

"'यह आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है।' इस प्रकार,

भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ। 247

"'इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करने वाली आध्यात्मिक शक्ति के उस आधार को विकसित किया जाना है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

"इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया गया है - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "यह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार है जो प्रयास की ऊर्जा (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित किया जा चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह आध्यात्मिक शक्ति का आधार है जो मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

"मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित हो चुका है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"यह प्रयास के अन्वेषण और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"प्रयास और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित हो चुका है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

822. तीर्थ (सेतिया सं. चैत्य)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 248 एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो भोजन करने के बाद उन्होंने पूज्य आनंद से कहा,

"आनंद, बैठने के लिए एक कपड़ा ले लो। चलो आज के लिए चपाल मंदिर चलते हैं।"

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया और बैठने के लिए एक कपड़ा लेकर भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे चल दिए। फिर भगवान (बुद्ध) चपाल मंदिर गए और वहाँ तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा,

"हे आनंद, वैशाली अत्यंत सुंदर है। उदेना मंदिर, गौतमका मंदिर, सत्तम्बा मंदिर, बहुपुत्त मंदिर, सारंददा मंदिर और चपाल मंदिर अत्यंत सुंदर हैं। हे आनंद, जिसने भी आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया हो, उन्हें अपना वाहन बनाया हो, उन्हें आधार बनाया हो, उन्हें स्थिर किया हो, उनमें अभ्यास किया हो और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया हो, वह चाहे तो युगों तक या शेष युगों तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत ने भी आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, उन्हें अपना वाहन बनाया है, उन्हें आधार बनाया है, उन्हें स्थिर किया है, उनमें अभ्यास किया है और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया है। यदि वे चाहें तो तथागत युगों तक या शेष युगों तक जीवित रह सकते हैं।" 249

परन्तु यद्यपि पूज्य आनंद को भगवान (बुद्ध) द्वारा इतना स्पष्ट संकेत दिया गया था, इतना स्पष्ट इशारा दिया गया था, फिर भी वे उसे समझ नहीं पाए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से यह प्रार्थना नहीं की: "हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) युगों तक जीवित रहें! सौभाग्यशाली (सुगतो) युगों तक जीवित रहें, जनसमूह के कल्याण के लिए, जनसमूह के सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवदूतों और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए।" उनका मन शैतान (मार) के वश में इतना अधिक था। 250

दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "आनंद, वैशाली बहुत ही मनभावन हैं। हे आनंद, जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है... वे चाहें तो युग भर या शेष युग तक जीवित रह सकते हैं... तथागत चाहें तो युग भर या शेष युग तक जीवित रह सकते हैं।" फिर भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "हे आनंद, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

परन्तु फिर भी, यद्यपि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को इतना स्पष्ट संकेत दिया था, फिर भी वे उसे समझ नहीं पाए... उनका मन मार से इतना ग्रस्त था।

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, और वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, और अपना दाहिना भाग उनकी ओर करके पास ही एक वृक्ष के चरणों में बैठ गए।

फिर, पूज्य आनंद के जाने के कुछ ही समय बाद, दुष्ट मारा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:
"पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! शुभ (शुगत) को अब अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!" यह कथन, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने कहा: 251 'हे दुष्ट, मैं तब तक अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा जब तक मेरे पास ऐसे भिक्षु (भिक्षु) न हों जो बुद्धिमान, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधन से मुक्त, विद्वान, धर्म (मार्ग, नियम) के पालनकर्ता हों, धर्म के अनुसार अभ्यास करते हों, उचित तरीके से अभ्यास करते हों, तदनुसार आचरण करते हों; जिन्होंने अपने गुरु के सिद्धांत को सीखा हो और उसकी व्याख्या कर सकें, उसे सिखा सकें, उसका प्रचार कर सकें, उसे स्थापित कर सकें, उसे प्रकट कर सकें, उसका विश्लेषण कर सकें और उसे स्पष्ट कर सकें; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्क सहित पूर्णतः खंडन कर सकें और 'प्रभावी धम्म का उपदेश दो।' 252 परन्तु हे पूज्यवर, इस समय भगवान (बुद्ध) के पास ज्ञानवान भिक्षु शिष्य हैं... जो प्रभावकारी धम्म का उपदेश दे सकते हैं। हे पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दो! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!

और हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
'हे दुष्ट, मैं तब तक अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा जब तक मेरे पास भिक्षुणी शिष्य न हों... जब तक मेरे पास ज्ञानवान स्त्री शिष्य न हों... जो प्रभावकारी धम्म का उपदेश दे सकें।' लेकिन हे पूज्यवर, वर्तमान में भगवान (बुद्ध) की शिष्याएँ बुद्धिमान, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधनों से मुक्त, विद्वान, धम्म की समर्थक, धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाली, उचित मार्ग पर चलने वाली और तदनुसार आचरण करने वाली हैं; जिन्होंने अपने गुरु के उपदेशों को सीखा है और उन्हें समझा सकती हैं, सिखा सकती हैं, घोषित कर सकती हैं, स्थापित कर सकती हैं, प्रकट कर सकती हैं, विश्लेषण कर सकती हैं और स्पष्ट कर सकती हैं; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्क सहित पूर्णतः खंडन कर सकती हैं और प्रभावी धम्म का उपदेश दे सकती हैं। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! सौभाग्यशाली (शुगतो) अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय है!

और यह कथन हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा कहा गया था।
“हे दुष्ट, जब तक मेरा यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध नहीं हो जाता, तब तक मुझे अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं होगा।” हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) का वह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध हो चुका है। 253 हे पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब शुभ (शुगत) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!”

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने दुष्ट मारा से कहा:
“चिंता मत करो, हे दुष्ट। तथागत के अंतिम निर्वाण में अब अधिक समय नहीं लगेगा।” तीन महीने बाद तथागत को अंतिम निर्वाण प्राप्त होगा।

तब भगवान (बुद्ध) ने चपाला मंदिर में ध्यान (सतो) करते हुए और पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) के साथ अपने प्राण संस्कार (कारण) का त्याग कर दिया। 254 और जब भगवान (बुद्ध) ने अपने प्राण संस्कार (कारण) का त्याग कर दिया, तब एक भयंकर भूकंप आया, जो भयावह और डरावना था, और गरज से आकाश कांप उठा।

तब, इसका अर्थ समझकर, भगवान (बुद्ध) ने उस अवसर पर यह प्रेरणादायक वाणी कही:

"अतुलनीय और निरंतर अस्तित्व (भावो) की तुलना करते हुए,

ऋषि ने अस्तित्व (भावो) के संस्कार (आधार) का त्याग कर दिया।

भीतर से आनंदित होकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में, उन्होंने
निरंतर आत्म-अस्तित्व (भावो) को कवच की तरह तोड़ दिया।" 255

(ii) हवेली खंड का हिलना (पसदकम्पनवाग्गो सं. प्रसाद-कम्पन-वर्ग)
823. पहले (पुब्बा सं. पूर्वा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अब आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के अंगों के विकास का कारण क्या है?' मेरे मन में यह विचार आया: 'यहाँ, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है, यह सोचते हुए:
"इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभव में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में;" "जैसे रात में, वैसे दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है। 256

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास की ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है, यह सोचते हुए: "इस प्रकार मेरी ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तनावपूर्ण; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभव में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास और चिंतन के मन और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है: "इस प्रकार मेरा मन न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावग्रस्त; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।" और वह आगे और पीछे के बोध में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से, वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास और चिंतन के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है: "इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावग्रस्त; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।" और वह आगे और पीछे के बोध में लीन रहता है:

"जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता है: 257 एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है; वह प्रकट होता है और विलीन हो जाता है; वह बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चला जाता है मानो अंतरिक्ष में; वह पृथ्वी में ऐसे समाहित होता है और बाहर निकलता है मानो वह जल हो; वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वह पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता है; अपने हाथों से वह इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है और सहलाता है; वह ब्रह्मा जगत तक शरीर पर पूर्ण नियंत्रण रखता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, शुद्ध और मानव से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के संकुचन (विनाश) के अनेक युग, संसार के विस्तार के अनेक युग, संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग। इस प्रकार: "वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मेरे सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से

निकलकर मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मेरे सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरी ऐसी आयु थी; वहां से गुजरकर, मेरा यहां पुनर्जन्म हुआ।" इस प्रकार वह अपने अनेक पिछले निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों के साथ याद करता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंग इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से समाहित करके समझ लेता है। वह कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में, कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में, घृणा से ग्रस्त मन को घृणा रहित मन के रूप में, दोष रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उन्नत मन को उन्नत और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपोमुखी मन को अपोमुखी मन के रूप में, और समाधि अवस्था के मन को भी उसी रूप में समझता है। समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त माना जाता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंग इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु, शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखता है और वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: "ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय स्वर्गलोक में एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखता है और समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

"जब आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

824. महान फल (महाफला) का

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं। और भिक्षुओं, ऐसा कैसे होता है कि आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।' और वह आगे और पीछे के बीच इस प्रकार बोध करता है: 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है।

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है... वह शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त करता है... (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करके।"

---

825. इच्छा के कारण समाधि/सम्मोहन (चंदासमाधि)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, इच्छा के आधार पर मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, 258 तो इसे इच्छा के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहा जाता है। वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव की इच्छा उत्पन्न करता है, उनके लिए अक्षय, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इन्हें प्रयास की परिस्थितियाँ (संस्कार) कहा जाता है। 259 इस प्रकार यह इच्छा और इच्छा के कारण उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रयास की ये परिस्थितियाँ (संस्कार): इसे आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहा जाता है जो इच्छा और प्रयास के स्वैच्छिक रूपों के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई भिक्षु ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) पर आधारित समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, तो इसे ऊर्जा-शक्ति के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहा जाता है। वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की कामना करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इन्हें परिश्रम का संधार कहा जाता है। अतः यह ऊर्जा-शक्ति और परिश्रम के इस संधार के कारण उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था को आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहा जाता है, जो परिश्रम के संधार के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है। भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, अन्वेषण के आधार पर मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, तो इसे अन्वेषण के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहते हैं। 261 वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इन्हें प्रयास का संशय (आधार) कहते हैं। इस प्रकार यह अन्वेषण, अन्वेषण के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रयास का यह संशय: यही उस आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहलाता है जो अन्वेषण और प्रयास के संशय के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है।

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, तो इसे मन के कारण प्राप्त समाधि अवस्था कहते हैं। 260 वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की कामना करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इन्हें परिश्रम का संशय कहते हैं। अतः यह मन, मन के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और परिश्रम का यह संशय, मन के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और परिश्रम के संशय से युक्त आध्यात्मिक शक्ति का आधार कहलाता है।

---

826. मोग्गलाना
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित श्रावस्ती में मिगारा की माता के भवन में निवास कर रहे थे। उस समय भवन के भूतल पर निवास करने वाले कई भिक्षु बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कठोर वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित मन वाले, पूर्ण बोधहीन (संपजन्न), समाधि अवस्था में न रहने वाले, विचलित और अपनी इंद्रियों में शिथिल थे। 262

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महामोग्गलाना को यों कहा, “मोग्गलाना, मिगारा माता के भवन के भूतल पर निवास करने वाले तुम्हारे ब्रह्मचर्य बंधुओं में बेचैनी है... उनकी इंद्रियां शिथिल हैं। हे मोग्गलाना, इन भिक्षुओं में परिश्रम की भावना जगाओ।”

“जी, पूज्यवर,” पूज्य महामोग्गलाना ने उत्तर दिया। तब उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से मिगारा माता के भवन को हिलाकर रख दिया। 263 तब वे भिक्षु भयभीत और अचंभित होकर एक तरफ खड़े हो गए और बोले, “यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! हवा नहीं चल रही है, और मिगारा माता के इस भवन की नींव गहरी है और यह मजबूती से स्थापित है, अचल है, अविचल है; फिर भी यह हिल रहा है, कांप रहा है और थरथरा रहा है।”

तब भगवान (बुद्ध) उन भिक्षुओं के पास गए और उनसे कहा, "भिक्षुओं, तुम क्यों एक तरफ खड़े होकर भयभीत और भयभीत हो रहे हो?"

"यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! हवा नहीं चल रही है, और मिगारा माता का यह महल गहरी नींव से स्थिर और दृढ़ है, अचल और अविचल है; फिर भी यह हिल गया, कांप गया, थरथरा गया।"

"भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने तुममें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से अपने पैर के अंगूठे से मिगारा माता के महल को हिलाया, थरथराया और थरथराया। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और बलवान हो गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

तो सुनो, भिक्षुओं... भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान हो गए हैं। यहाँ, भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। उन्होंने ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण की है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास, चिंतन के अन्वेषण और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण, और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा। ... इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है।

"यह है, भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं... वे ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत रखते हैं... 264

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए इसी जीवन में वे विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इस जीवन में ही, वे मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।"

---

827. ब्राह्मण उन्नाभा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। तब ब्राह्मण उन्नाभा पूज्य आनंद के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 265 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से बोले, “हे गुरु आनंद, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?”

“हे ब्राह्मण, इच्छाओं का त्याग करने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।”

“परन्तु, हे गुरु आनंद, क्या इस इच्छा का त्याग करने का कोई मार्ग है?”

“हाँ, हे ब्राह्मण, इस इच्छा का त्याग करने का मार्ग है।”

“परन्तु, हे गुरु आनंद, वह मार्ग क्या है, वह मार्ग क्या है जिससे इस इच्छा का त्याग किया जा सकता है?”

"हे ब्राह्मण, यहाँ एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है। वह ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था का आधार विकसित करता है (जैसा कि 823 में है)। मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... खोज और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। हे ब्राह्मण, यही मार्ग है, यही इच्छा के त्याग का मार्ग है।"

"ऐसी स्थिति में, हे आनंद स्वामी, यह स्थिति अनंत है, समाप्त नहीं हो सकती। 266 इच्छा के माध्यम से ही इच्छा का त्याग करना असंभव है।"

तो फिर, ब्राह्मण, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है, ब्राह्मण, क्या आपके मन में पहले यह इच्छा थी, 'मैं पार्क जाऊँगा,' और पार्क जाने के बाद क्या वह इच्छा शांत हो गई? "

जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'मैं पार्क जाऊँगा' सोचकर ऊर्जा उत्पन्न की थी, और पार्क जाने के बाद क्या वह ऊर्जा शांत हो गई?"

"जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'मैं पार्क जाऊँगा' का मन बना लिया था, और पार्क जाने के बाद क्या वह संकल्प शांत हो गया?"

"जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'क्या मुझे पार्क जाना चाहिए?' के बारे में सोचा था, और पार्क जाने के बाद क्या वह विचार शांत हो गया?"

"जी हाँ।"

"यह बिलकुल वैसा ही है, ब्राह्मण, जैसा कि एक अरहंत भिक्षु के साथ होता है, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो गया है। पहले उसके मन में अरहंतत्व की प्राप्ति की इच्छा थी, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह इच्छा शांत हो गई। पहले उसने अरहंतत्व की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न की थी, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह ऊर्जा शांत हो गई। पहले उसने अरहंतत्व प्राप्त करने का मन बना लिया था, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह संकल्प शांत हो गया। पहले उसने अरहंतत्व की प्राप्ति के लिए अन्वेषण किया था, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह अन्वेषण शांत हो गया। 268

"आप क्या सोचते हैं?" हे ब्राह्मण, विचार करो, ऐसी स्थिति में क्या यह स्थिति समाप्त होने योग्य है या अनंत काल तक चलने वाली है?

"निश्चित रूप से, हे गुरु आनंद, ऐसी स्थिति में, यह स्थिति समाप्त होने योग्य है, अनंत काल तक चलने वाली नहीं। 269 हे महान गुरु आनंद! आज से गुरु आनंद मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

828. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) से संपन्न हुए, वे सभी इसलिए थे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और संवर्धन से संपन्न होंगे, वे सभी इसलिए होंगे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा। वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और संवर्धन से संपन्न हैं, वे सभी इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।

" वे चार इंद्रियां कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो ऊर्जा-

बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, और प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है।

"भिक्षुओं, अतीत में, भविष्य में, और वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से संपन्न हैं, वे सभी इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

829. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं (सन्यासियों), अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मणों ने विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग किया, वे इस प्रकार थे कि: एक होकर अनेक हो गए... उन्होंने शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त किया - उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था।

भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करेंगे, वे इस प्रकार होंगे कि: एक होकर अनेक हो जाएंगे... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त करेंगे - उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा।"

"वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं... वे शरीर से लेकर ब्रह्म जगत तक पराक्रम का अधिकार रखते हैं - वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है। वे

चार इंद्रियां कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है।"

"भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण हों... भविष्य में हों... वर्तमान में हों... वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।"

---

830. एक भिक्षु (सं. भिक्षु अर्थात तपस्वी)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वह दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता है।

" "वे चार क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था..." साधना और परिश्रम के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वह दोषों के नाश द्वारा इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

831. एक शिक्षण (इद्धदिदेसाना सं. रिद्धि-आदि-देसाना)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि), आध्यात्मिक शक्ति का आधार, आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों का विकास और आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों के विकास की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है... वह शरीर से लेकर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक पर अधिकार रखता है। इसे आध्यात्मिक शक्ति कहते हैं।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? यह वह मार्ग और अभ्यास है जो आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने, आध्यात्मिक शक्ति अर्जित करने की ओर ले जाता है। 270 इसे आध्यात्मिक शक्ति का आधार कहते हैं।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों का विकास क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इसे आध्यात्मिक शक्ति के अंगों का विकास कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के विकास का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इसे आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के विकास का मार्ग कहा जाता है।"

---

832. विश्लेषण (विभंग)

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं।

और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे अत्यंत फलदायी और लाभदायक हों?

भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।' और वह आगे और पीछे के बीच इस प्रकार बोध करता है: 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(i. इच्छा का आधार के रूप में विश्लेषण)

"और हे भिक्षुओं, वह इच्छा क्या है जो बहुत शिथिल है? यह वह इच्छा है जो आलस्य से ग्रस्त है, आलस्य से जुड़ी है। 271 इसे बहुत शिथिल इच्छा कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वह इच्छा क्या है जो बहुत तनावपूर्ण है? यह वह इच्छा है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ी है। इसे बहुत तनावपूर्ण इच्छा कहते हैं।

हे भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित इच्छा क्या है? यह वह इच्छा है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त होती है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ी होती है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित इच्छा कहते हैं।

हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित इच्छा क्या है? यह वह इच्छा है जो पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होती है। इसे बाह्य रूप से विचलित इच्छा कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले' का बोध करते हुए निवास करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु द्वारा 'जैसा पहले' और 'जैसा संग्य' का बोध भली-भांति समझा जाता है, उस पर ध्यान दिया जाता है, उस पर विचार किया जाता है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से भली-भांति भेद किया जाता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले' का बोध करते हुए निवास करता है। 272

और हे भिक्षुओं, भिक्षु 'जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे' कैसे निवास करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु इस शरीर का अवलोकन पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे हुए, अनेक प्रकार की अशुद्धियों से परिपूर्ण रूप में करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मेसेंटरी, पेट की सामग्री, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।' हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु 'जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे' निवास करता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु दिन में जैसा, वैसे ही रात में; रात में जैसा, वैसे ही दिन में? हे भिक्षुओं, रात में भिक्षु उसी प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है, जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, जिस प्रकार वह दिन में आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। या फिर दिन में वह उसी प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है, जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, जिस प्रकार वह रात में आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु दिन में जैसा, वैसे ही रात में; रात में जैसा, वैसे ही दिन में रहता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु प्रकाश की अनुभूति को भलीभांति समझता है; दिन की अनुभूति को भलीभांति समझता है। 273 हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(ii. ऊर्जा-शक्ति का आधार के रूप में विश्लेषण) हे

भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है जो बहुत शिथिल है? यह ऊर्जा-शक्ति है जो शिथिलता से ग्रस्त है, शिथिलता से जुड़ी है। इसे ही अत्यधिक शिथिल ऊर्जा-शक्ति कहते हैं।

भिक्षुओं, अति तनावग्रस्त ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ी हुई है। इसे अति तनावग्रस्त ऊर्जा कहते हैं।

भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ी हुई है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित ऊर्जा कहते हैं।

भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होती है, बार-बार विचलित होती है। इसे बाह्य रूप से विचलित ऊर्जा कहते हैं... (ऊपर दिए गए सभी विवरण के अनुसार)

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(iii. मन का आधार के रूप में विश्लेषण)

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो बहुत शिथिल है? वह मन है जो आलस्य से ग्रस्त है, आलस्य से जुड़ा हुआ है। इसे बहुत शिथिल मन कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो बहुत तनावग्रस्त है? वह मन है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ा हुआ है। इसे बहुत तनावग्रस्त मन कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो आंतरिक रूप से संकुचित है? वह मन है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ा हुआ है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित मन कहते हैं।"

"और हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित मन क्या है? यह वह मन है जो इंद्रिय सुख के पाँच डोरियों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होता है, बार-बार व्याकुल होता है। इसे बाह्य रूप से विचलित मन कहते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, खुले और मुक्त मन से, प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(iv. अन्वेषण का विश्लेषण आधार के रूप में)

"और हे भिक्षुओं, अति शिथिल अन्वेषण क्या है? यह वह अन्वेषण है जो आलस्य से युक्त है, आलस्य से जुड़ा है। इसे अति शिथिल अन्वेषण कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अति तनावपूर्ण अन्वेषण क्या है? यह वह अन्वेषण है जो बेचैनी से युक्त है, बेचैनी से जुड़ा है। इसे अति तनावपूर्ण अन्वेषण कहते हैं।"

"हे भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित ध्यान क्या है? यह आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त ध्यान है, जो आलस्य और सुस्ती से जुड़ा हुआ है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित ध्यान कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित ध्यान क्या है? यह पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित, बार-बार विचलित होने वाला ध्यान है। इसे बाह्य रूप से विचलित ध्यान कहते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, खुले और मुक्त मन से, प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। हे

भिक्षुओं, जब आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो वे बहुत फलदायी और लाभदायक होते हैं।"

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित कर लिया जाता है, तो भिक्षु अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है... वह शरीर पर ब्रह्म जगत (प्रधान देवदूत) तक प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है..."

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

(छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों का विस्तृत वर्णन [जैसा कि 2.152 में है] किया जाना चाहिए।)

(iii) लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)

833. पथ (मग्गा संस. मार्ग)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के अंगों के विकास का मार्ग और अभ्यास क्या है?' मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है ... (जैसा कि 823 में पूर्ण रूप से है) ... जो अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है.... इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है।

"'जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो एक भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर, वह अनेक हो जाता है; अनेक रूपों में रहकर वह एक हो जाता है... वह ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है...

"'जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।'"

(छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों का विस्तृत वर्णन किया जाना चाहिए [जैसा कि 2.152 में है]।)

---

834. लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)
सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) को याद है कि वे कभी आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्म लोक (प्रधान देवदूत) गए थे?" 274

"मुझे याद है, आनंद, कि मैं आध्यात्मिक शक्ति से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्म लोक गया था।"

"परन्तु, पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) को याद है कि वे कभी आध्यात्मिक शक्ति से चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के साथ ब्रह्म लोक गए थे?" 275

"मुझे याद है, आनंद, कि मैं आध्यात्मिक शक्ति से चार महान तत्वों से बने इस शरीर के साथ ब्रह्म लोक गया था।"

"भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्मलोक में जा सकते हैं, और वे चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के साथ आध्यात्मिक शक्ति से ब्रह्मलोक में जाने को याद करते हैं: यह भगवान (बुद्ध) की ओर से अद्भुत और आश्चर्यजनक है, हे पूज्यवर।"

"आनंद, तथागत अद्भुत हैं और अद्भुत गुणों से युक्त हैं; तथागत आश्चर्यजनक हैं और आश्चर्यजनक गुणों से युक्त हैं।

" "आनंद, जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में विलीन कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और उत्फुल्लित अनुभूति में प्रवेश करके निवास करते हैं, उस अवसर पर तथागत का शरीर अधिक उत्फुल्लित, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है।"

हे आनंद, जिस प्रकार दिनभर गर्म करने से लोहे का गोला हल्का, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है, उसी प्रकार जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में समाहित कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय और प्रकाशमान अनुभूति में लीन होकर निवास करते हैं, तब तथागत का शरीर हल्का, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है।

हे आनंद, जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में समाहित कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय और प्रकाशमान अनुभूति में लीन होकर निवास करते हैं, तब तथागत का शरीर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ उठता है। वे अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; (जैसा कि 823 में है) वे ब्रह्म जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व रखते हैं।

हे आनंद, जिस प्रकार रुई का एक छोटा गुच्छा हल्का होने के कारण हवा से उड़कर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ जाता है, उसी प्रकार जब तथागत अपने शरीर को मन में और मन को शरीर में विलीन कर लेते हैं, और जब वे आनंदमय और उत्कट अवस्था में शरीर के प्रति लीन होकर चिंतन करते हैं, तब तथागत का शरीर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ जाता है। वे अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; ...वे ब्रह्म जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व रखते हैं।

---

835. एक भिक्षु (सं. भिक्षु)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) की

अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं।

भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए भिक्षु, दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, इसे स्वयं अनुभव करते हुए। दिव्य ज्ञान (अभिन्न)।" 278

---

836. सरल संस्करण (सं. शुद्धिका)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के ये चार अंग हैं। कौन से चार? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (अनुष्ठान) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को... अन्वेषण और प्रयास के संशय (अनुष्ठान) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं।

---

837. फल (1) (फला1)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का अवशेष हो, तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था।"

---

838. फल (2) (फला2)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं (इद्धि/रिद्धि)। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त हो सकते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?"

"इस जीवन में ही व्यक्ति को परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यदि इस जीवन में ही परम ज्ञान प्राप्त न हो, तो मृत्यु के समय प्राप्त होता है। यदि इस जीवन में न ही मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त हो, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के साथ ही व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता है... मृत्यु के समय ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... परिश्रम सहित निर्वाण प्राप्त कर लेता है... और फिर नदी के विपरीत दिशा में अग्रसर होकर अकनित्त लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। हे

भिक्षुओं, जब आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग विकसित और पोषित हो जाते हैं, तब इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

---

839. आनंद (1)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?"

(बुद्ध के उत्तर ठीक वही हैं जो अनुच्छेद 831 में हैं।)

840. आनंद (2)
तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?"

(बुद्ध ने अपने ही प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी प्रकार दिया है जैसे 831 में दिया था।)

841. भिक्षुओं की संख्या (1)
तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
“हे पूज्यवर, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?”

(बुद्ध के उत्तर ठीक वही हैं जो अध्याय 831 में दिए गए हैं।)

842. भिक्षुओं की संख्या (2)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए... भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?" (बुद्ध ने

अपने ही प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी प्रकार दिया है जैसा कि 831 में है।)

843. मोग्गलाना
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु मोग्गलाना ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके इतना शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "

भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं। वे चार कौन सी हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।'" और वह आगे और पीछे के अनुभवों को समझते हुए इस प्रकार चिंतन करता रहा है:
'जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन विकसित किया है। उन्होंने ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है (जैसा कि 823 में है)... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, यह सोचते हुए:
'इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।'... इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन विकसित किया है।

"भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।"

"भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व रखते हैं...

भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा वे इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।" 279

---

844. तथागत
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि तथागत ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके इतना शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास, चिंतन के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है। इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभवों को समझते हुए इस प्रकार चिंतन करता रहा है: 'जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है। उन्होंने ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण; और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।'... इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है।

"भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।"

भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व रखते हैं...

भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, जिसे वे स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से अनुभव करते हैं।

(iv) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
845-856. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... खोज और प्रयास के संस्कार (व्यवहार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।"

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर इसी प्रकार की जानी है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(v) सतर्कता अनुभाग (अप्पमदवग्गो सं. अप्रमदवर्ग)
857-866. तथागत, इत्यादि।
(139-148 के समानांतर आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली,

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही दसवें के रूप में वस्त्र।

(vi) कठोर कर्म (बालकारनियावाग्गो)
867-878. कठिन, इत्यादि।
(149-60 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(vii) खोज (एसानावग्गो)
879-888. खोज आदि (एसानादी)
(161-170 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

खोज, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध पीड़ा,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(viii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
889-897. बाढ़, आदि।
(इसका विस्तृत विवरण पृष्ठ 171-179 के समानांतर दिया जाएगा।)

---

898. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति कामवासना (राग), निराकार के प्रति कामवासना (राग), अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने

के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) विकसित करनी चाहिए। ये चार कौन से हैं

? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... जांच और प्रयास के संस्कार (व्यवहार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।

"आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को इन पांच उच्च बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए, और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 8: अनुरुद्ध से संबंधित प्रवचन (अनुरुद्धसम्युत्त) {सम्युत्त-52}
(i) अकेला (राहोगतावग्गो)
899. अकेला (1) (रहोगता1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 280 तब, जब पूज्य अनुराधा एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खय/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का पालन किया है।"

तब पूज्य महामोग्गलाना ने स्वयं पूज्य अनुराधा के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से पूज्य अनुराधा के समक्ष प्रकट हुए और उनसे कहा:

"हे मित्र अनुराधा, एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का किस हद तक पालन किया है?"

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; 281 वह शरीर में क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में उत्पत्ति और क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए: वह शरीर में उत्पत्ति के स्वरूप पर

ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में उत्पत्ति और क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।"

वह शरीर के आंतरिक और बाह्य उद्भव के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं; वह शरीर के आंतरिक और बाह्य पतन के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं; वह शरीर के आंतरिक और बाह्य उद्भव और पतन के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं - उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

यदि वह चाहें: 282 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए रहूँ', तो वह उसमें निर्मल को देखते हुए रहते हैं। यदि वह चाहें: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए रहूँ', तो वह उसमें निर्मल को देखते हुए रहते हैं। यदि वह चाहें:
'क्या मैं घृणास्पद को निर्घ्य में और घृणास्पद में देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह घृणास्पद को उसमें देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'क्या मैं निर्घ्य को घृणास्पद में और निर्घ्य में देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह निर्घ्य को उसमें देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'निर्घ्य और घृणास्पद दोनों से बचते हुए, क्या मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए निवास कर सकता हूँ?' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए उसमें निवास करता है।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, पतन के स्वरूप, उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर आंतरिक रूप से, बाह्य रूप से, आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की संवेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करते हैं - वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

यदि उनकी इच्छा हो: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए चिंतन करूं,' तो वे निर्मल को देखते हुए चिंतन करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो: 'निर्मल और निर्मल दोनों से बचते हुए, समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करूं,' तो वे समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करते हैं।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, पतन के स्वरूप, उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर आंतरिक रूप से, बाह्य रूप से, आंतरिक और बाह्य रूप से ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है - वह पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

यदि वह चाहे: 'मैं अप्रतिकूल में घृणित को देखते हुए चिंतन करूं', तो वह उसमें घृणित को देखते हुए चिंतन करता है; यदि वह चाहे: 'अप्रतिकूल और घृणित दोनों से बचते हुए, समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) चिंतन करता है', तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) चिंतन करता है।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, अवनति के स्वरूप, आंतरिक रूप से धम्म के स्वरूप, बाह्य रूप से धम्म के स्वरूप, आंतरिक और बाह्य दोनों स्वरूपों में उत्पत्ति और अवनति के स्वरूप पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करते हैं - वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक और ध्यानमग्न रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

यदि उनकी इच्छा हो: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए चिंतन करूं', तो वे निर्मल को देखते हुए चिंतन करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो: 'निर्मल और निर्मल दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करूं', तो वे समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करते हैं।

मित्र, इसी प्रकार से... कि ध्यान (सती) के ये चारों प्रतिष्ठान एक भिक्षु द्वारा स्थापित किए गए हैं।"

---

900. अकेला (2) (रहोगता2)
सावत्थी में, जब पूज्य अनुराधा एकांतवास में थे, तब उनके मन में यह विचार आया: “जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुखों के पूर्ण नाश (खयाल) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का पालन किया है।”

तब पूज्य महामोग्गलाना ने अपने मन से पूज्य अनुराधा के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से पूज्य अनुराधा के समक्ष प्रकट हुए और उनसे कहा:

“हे मित्र अनुराधा, एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का किस हद तक पालन किया है?”

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर

(अनुपसी) बाहरी रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक और बाहरी रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा)

रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे संवेदनाओं पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक रूप से ... संवेदनाओं पर ध्यान लगाकर (वेदना) बाहरी रूप से ... ध्यान लगाकर आंतरिक और बाह्य रूप से वेदनाओं में वेदनाओं में तल्लीन, पूर्णतः संबोध करने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने वाला।

वह मन में आंतरिक रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं... मन में बाहरी रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं... मन में आंतरिक और बाहरी रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं, वे पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

वे ध्यान लगाकर आंतरिक रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं... मन में बाहरी रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं... मन में आंतरिक और बाहरी रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं, वे पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतिमा) होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। हे

मित्र, इसी प्रकार एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का अभ्यास किया है।

---

901. सुतानु
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सुतनु नदी के किनारे सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्रों, मैंने ध्यान के चार चरणों (सती) को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार चरण कौन से हैं? मित्रों, मैं शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ।

मैं वेदनाओं को देखते हुए, मन को देखते हुए, धर्मों को स्पष्ट रूप से समझते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न होकर ध्यान लगाता हूँ।"

"मित्रों, इन चार ध्यान विधियों को विकसित और पोषित करने के कारण ही मैंने दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त की है। इसके अलावा, मित्रों, इन चार ध्यान विधियों को विकसित और पोषित करने के कारण ही मैंने निम्न अवस्था को निम्न के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना; मैंने मध्यम अवस्था को मध्यम के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना; और मैंने उच्च अवस्था को उच्च के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना।" 283

---

902. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(1) (कंडाकी1)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना साकेत में कंदकिवन (काँटेदार वन) में निवास कर रहे थे। 284 तब, शाम को, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना एकांतवास से बाहर आए, पूज्य अनुराधा के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, एक प्रशिक्षु भिक्षु को किन धर्मों (गुणों, नियमों) में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए?"

"मित्र सारिपुत्त, एक प्रशिक्षु भिक्षु को ध्यान के चार स्थानों (सती) में प्रवेश करना चाहिए और वहीं निवास करना चाहिए। वे चार स्थान कौन से हैं? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म का ध्यान लगाते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। एक प्रशिक्षु भिक्षु को ध्यान के इन चार स्थानों में प्रवेश करना चाहिए और वहीं निवास करना चाहिए।"

---

903. थॉर्नबश-ग्रोव (कंडाकिवाना) (2) (कंडाकी2)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) साकेत में। एक तरफ बैठे पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराद्ध से कहा:

"मित्र अनुराद्ध, वे कौन से धर्म (गुण, नियम) हैं जिनमें प्रशिक्षण से परे भिक्षु को प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए?"

"मित्र सारिपुत्त, प्रशिक्षण से परे भिक्षु को ध्यान के चार प्रतिष्ठानों (सती) में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए। वे चार कौन से हैं? यहाँ, मित्र, भिक्षु शरीर मंश शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में निवास करता है। प्रशिक्षण से परे भिक्षु को ध्यान के इन चार प्रतिष्ठानों में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए।"

---

904. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(3) (कंडाकी3)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) साकेत में। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्र, मैंने ध्यान के चार निरूपणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार निरूपण कौन से हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यान लगाता हूँ। मित्र, मैंने ध्यान के इन

चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त, मित्र, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे प्रत्यक्ष रूप से हजार रूपों का ज्ञान प्राप्त हुआ है।" 285

---

905. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) सावत्थी में, पूज्य अनुराधा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्रों!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य अनुराधा ने आगे कहा:

"मित्रों, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति), जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश (खयाय/क्षय) करती हैं। वे चार क्या हैं? मित्रों, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म, ध्यान में लीन (अनुपसी) रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो तृष्णा का नाश करती हैं।"

---

906. सलाला-वृक्ष झोपड़ी (सलालागरा)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में एक सलाला वृक्ष की कुटिया में रह रहे थे। वहाँ पूज्य अनुराधा ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया...

"मित्रों, गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है। मान लीजिए कि लोगों का एक बड़ा समूह फावड़ा और टोकरी लेकर आता है, यह सोचकर कि 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका देंगे।' 286 मित्रों, क्या आपको क्या लगता है, क्या लोगों का वह बड़ा समूह गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका पाएगा?" "

नहीं, मित्र। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, और इसे पश्चिम की ओर झुकाना आसान नहीं है। लोगों का वह बड़ा समूह केवल थकान और कष्ट ही पाएगा।"

"इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु ध्यान के चार गुणों (सती) का अभ्यास और विकास कर रहा होता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'हे श्रेष्ठ, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दें? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हैं? आइए, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लें और पुण्य कर्म करें।' वास्तव में, मित्रों, जब वह भिक्षु ध्यान के चार गुणों का अभ्यास और विकास कर रहा होता है, तो उसके लिए प्रशिक्षण छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसका मन एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः उसके लिए प्रशिक्षण छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है।

" "और मित्रों, एक भिक्षु ध्यान के चार गुणों का अभ्यास और विकास कैसे करता है?" मित्रों, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म, अत्यंत ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहता है।

"मित्रों, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यान के चारों गुणों का विकास और अभ्यास करता है।"

---

907. अम्बपाली का उपवन (अम्बापालिवन सं. आम्रपाली-वन)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा और पूज्य सारिपुत्त अंबपाली के उपवन में वैशाली में निवास कर रहे थे। फिर, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए... एक तरफ बैठकर, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, आपकी इंद्रियां शांत हैं, आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। पूज्य अनुराधा आजकल आमतौर पर किस निवास में रहते हैं?"

"अब, मित्र, मैं आमतौर पर ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में सुस्थापित मन से रहता हूँ। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में रहता हूँ... संवेदनाओं में संवेदनाएँ (वेदना)... मन में मन... घटनाओं में धम्म (धर्म)... उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"मित्र, वह भिक्षु (भिक्षु), जो अरहंत है, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गया है, वह आमतौर पर ध्यान की इन चार अवस्थाओं में सुस्थापित मन से रहता है।"

"यह हमारे लिए लाभ है, मित्र, यह हमारे लिए पूर्णतः लाभ है।" "मित्र, हम उस समय पूज्य अनुराधा की उपस्थिति में ही उपस्थित थे जब उन्होंने इस प्रकार की गर्जनापूर्ण वाणी बोली।"

---

908 गंभीर रूप से बीमार (बल्हगिलाना)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा श्रावस्ती में अंधों के उपवन (अंधवन) में रह रहे थे, वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे कहा:

"पूज्य अनुराधा आमतौर पर किस निवास में रहते हैं ताकि उत्पन्न शारीरिक पीड़ादायक संवेदनाएं (वेदना) उनके मन को व्याकुल न करें?"

"मित्रों, क्योंकि मैं ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) में सुस्थापित मन से रहता हूँ, इसलिए उत्पन्न शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) मेरे मन को ग्रस्त नहीं करतीं। वे चार अवस्थाएँ क्या हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, घटनाओं पर गहन ध्यान (अनुपसी) देता हूँ, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"मित्रों, क्योंकि मैं ध्यान की इन चार अवस्थाओं में सुस्थापित मन से रहता हूँ, इसलिए उत्पन्न शारीरिक पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मेरे मन को ग्रस्त नहीं करतीं।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
909. एक हजार कल्प (कप्पासहसा सं. कल्प-सहस्र)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्रों, मैंने ध्यान के चार निरूपणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार निरूपण कौन से हैं? मित्रों, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ।

मित्रों, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। मित्रों, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे हजार युगों (कल्पकल्प) का स्मरण है।"

---

910. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिविधा)
(संख्या 899 के अनुसार)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसीलिए मैं विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ... (संख्या 823 के अनुसार)... मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर प्रभुत्व रखता हूँ।"

---

911. दिव्य कान (दिब्बासोता संस्कृत: दिव्या-स्रोता)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, जिसके कारण शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ दिव्य श्रवण तत्व से मैं दोनों प्रकार की ध्वनियाँ, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन पाता हूँ।"

---

912. मन को समाहित करना (चेतोपरिया)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझता हूँ, उन्हें अपने मन से घेरकर। मैं कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझता हूँ... एक अमुक्त मन को अमुक्त मन के रूप में समझता हूँ।"

---

913. द पॉसिबल (थाना)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं संभव को संभव और असंभव को असंभव समझता हूँ।" 287

---

914. कम्मा का उपक्रम (कम्मासमादना)
(जैसा कि 899 में है)। "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में अतीत, भविष्य और वर्तमान कर्म के परिणाम को संभाव्यता और कारण दोनों के माध्यम से समझता हूँ।"

---

915. सर्वत्र नेतृत्व करना (सब्बत्थगामिनी)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं समझता हूं कि
वास्तव में यही वह मार्ग है जो हर जगह ले जाता है।"

---

916. विविध तत्व (नाना-धातु)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में दुनिया को उसके अनेक और विविध तत्वों (धातु) के साथ समझता हूँ।"

---

917. विविध स्वभाव (नानादिमुट्टी)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं प्राणियों के स्वभाव में विविधता को वास्तव में समझता हूँ।"

---

918. संकायों की डिग्रियाँ (इंद्रियपरोपरीअत्ता)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों की आध्यात्मिक क्षमताओं में परिपक्वता की डिग्री को वास्तव में समझता हूँ।"

---

919. ध्यान आदि (संस्कृत ध्यान)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार स्थापनाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में ध्यान, मुक्ति (विमोक्ष), समाधि (सम्मोहन) अवस्थाओं और उपलब्धियों के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्‌भव को समझता हूँ।"

---

920. विगत निवास (पुब्बेनिवास सं. पूर्व-निवास)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मुझे अपने अनेक पूर्व जन्म याद आते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म (जैसा कि 823 में है)... संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग... इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्म, उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद आते हैं।"

---

921. दिव्य नेत्र (दिब्बाचक्खु संस्कृत: दिव्या-चक्षु)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ... (जैसा कि 823 में है)... और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्म के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।"

---

922. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, जिसके कारण दोषों के नाश (खया/क्षय) से, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैं स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से अनुभव करता हूँ।"

अध्याय 9: झानस/आत्म-अवशोषण (झानसयुत्त) पर संबंधित प्रवचन {संयुत्त-53}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
923-934. गंगा नदी - पूर्व की ओर, झनादी आदि।
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ये चार ध्यान अवस्थाएँ हैं। कौन सी चार? हे भिक्षुओं, यहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभावम) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। आनंद (पीति/प्रीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में, ध्यानमग्न होकर और स्पष्ट रूप से समझते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह है समभाव, ध्यानमग्न, सुख में रहने वाला। सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और अप्रसन्नता के बीत जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। ये चार ध्यान हैं। 288

"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, उसी प्रकार जो भिक्षु चारों ध्यानों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"

हे भिक्षुओं, चार ध्यानों का विकास और अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर कैसे अग्रसर होता है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त और अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर भिक्षु प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार चार ध्यानों का विकास और अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
935-944. तथागत, इत्यादि।
(139-148 के समानांतर ध्यान के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ में वस्त्र दसवें के रूप में।

(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
945-956. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
(149-160 के समानांतर विस्तृत विवरण दिया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(iv) खोज (एसानावग्गो)
957-966 खोजें, आदि (एसाना)
(161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध पीड़ा,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ (ओघावाग्गो)
967-975. बाढ़, आदि।
(इसका विस्तृत विवरण पृष्ठ 171-179 के समानांतर दिया जाएगा।)

---

976. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविज्जा)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार ध्यान अवस्थाओं का विकास करना चाहिए। ये

चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं (अकुशल संस्कृत) से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।

"इन चार ध्यानों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध,
समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 10: श्वास संबंधी संबंधित प्रवचन (अनपानसाम्युत्त) {साम्युत्त-54}
(i) एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्मवग्गो)
977. एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्म)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) जब विकसित और अभ्यास किया जाता है, तो वह बहुत फलदायी और लाभदायक होता है। वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है? श्वास का ध्यान (सती)। और भिक्षुओं, श्वास के ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि वह बहुत फलदायी और लाभदायक हो?

"भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है। 289

"लंबी श्वास लेते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी श्वास ले रहा हूँ'; या लंबी श्वास छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी श्वास छोड़ रहा हूँ'। छोटी श्वास लेते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी श्वास ले रहा हूँ'; या छोटी श्वास छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी श्वास छोड़ रहा हूँ'।" वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संशय (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' 290

"वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (आनंद) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (खुशी) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'खुशी का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'मानसिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संखार (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संखार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 291

"वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा' - वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 292

वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए (अनुपस्सी), मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए (अनित्यता), मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध पर ध्यान करते हुए (निरोध पर), मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध पर ध्यान करते हुए,

मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। 293

"हे भिक्षुओं, जब श्वास का ध्यान (सती) इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी यह बहुत फलदायी और लाभदायक होता है।"

---

978. आत्मज्ञान के कारक (बोज्झांगा सं. बोधयांग)
भिक्षुओं, श्वास ध्यान (सती) जब विकसित और अभ्यासित किया जाता है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित श्वास ध्यान के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। वह धम्मविचय के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित श्वास ध्यान के साथ समभाव की ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास ध्यान को विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो।

---

979. सरल संस्करण (शुद्धिका)
भिक्षुओं, श्वास ध्यान (सती) जब विकसित और अभ्यासित किया जाता है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... (सभी 977 के अनुसार) ... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास ध्यान को विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो।"

---

980. फल (1) (फला1)
(पिछली सूत्र के समान ही, निम्नलिखित अतिरिक्त के साथ:)

"जब, भिक्षुओं, श्वास की ध्यान (सती) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का कोई अवशेष हो, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।"

---

981. फल (2) (फला2)
(979 के सभी कथनों के अनुसार, निम्नलिखित अतिरिक्त कथन के साथ:)

"हे भिक्षुओं, जब श्वास की सती साधना इस प्रकार विकसित और अभ्यासित हो जाती है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

"इसी जीवन में व्यक्ति को परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

"यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो उसे मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त होता है।

"यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के साथ ही वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले... या इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है, बिना किसी प्रयास के।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है, परिश्रम के साथ।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले... या परिश्रम के साथ निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) के साथ ही वह अकनित्त लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में बहने लगता है।

"जब, भिक्षुओं, श्वास की ध्यान (सती) को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

---

982. अरित्था
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, क्या तुम श्वास का ध्यान (सति) करते हो?"

यह सुनकर पूज्य अरित्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, मैं श्वास का ध्यान करता हूँ।"

"परन्तु, अरित्त, तुम श्वास का ध्यान कैसे करते हो?"

"मैंने भूतकाल के इंद्रिय सुखों की इच्छा का त्याग कर दिया है, पूज्यवर, मैंने भविष्य के इंद्रिय सुखों की इच्छा से मुक्ति पा ली है, और मैंने धर्मों के प्रति घृणा की भावना को आंतरिक और बाह्य रूप से पूर्णतः दूर कर दिया है। मैं ध्यानमग्न होकर श्वास लेता हूँ, ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता हूँ। इसी प्रकार, पूज्यवर, मैं श्वास का ध्यान करता हूँ।" "

यह श्वास का ध्यान है, अरित्त, मैं यह नहीं कहता कि यह नहीं है। परन्तु श्वास का ध्यान कैसे पूर्ण होता है, अरित्त, ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बताऊंगा।" 294

“जी, पूज्यवर,” पूज्य अरित्थ ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

“और अरित्थ, श्वास ध्यान का विस्तृत अभ्यास कैसे किया जाता है? अरित्थ, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: ‘त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास लेता हूँ’; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: ‘त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास छोड़ता हूँ’।

“इस प्रकार, अरित्थ, श्वास ध्यान का विस्तृत अभ्यास किया जाता है।”

---

983. महाकप्पिना
सावत्थी के पर्व पर, उस अवसर पर पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर, पाण्डित्यपूर्वक पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे हुए थे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें पास ही पाण्डित्यपूर्वक, पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने भिक्षुओं से कहा,

"भिक्षुओं, क्या आप इस भिक्षु के शरीर में कोई कंपन या थरथराहट देखते हैं?"

"पूज्यवर, जब भी हम उस पूज्यवर को देखते हैं, चाहे वह संघ के बीच में बैठे हों या एकांत में अकेले बैठे हों, हम उनके शरीर में कभी कोई कंपन या थरथराहट नहीं देखते।"

भिक्षुओं, वह भिक्षु बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से उस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसके विकास और साधना से न तो शरीर में कंपन होता है और न ही मन में। और वह कौन सी समाधि अवस्था है जिसके विकास और साधना से न तो शरीर में कंपन होता है और न ही मन में?

भिक्षुओं, श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था का विकास और साधना करने पर शरीर में कंपन नहीं होता और न ही मन में कंपन होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था का विकास और साधना कैसे की जाती है जिससे शरीर में कंपन नहीं होता और न ही मन में कंपन होता है?

"देखो, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में जाकर, किसी वृक्ष की छाया में या किसी खाली कुटिया में बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास छोड़ूंगा'।

"हे भिक्षुओं, जब श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तब शरीर में कोई कंपन या कंपकंपी नहीं होती, न ही मन में कोई कंपन या कंपकंपी होती है।"

---

984. दीपक की उपमा (पादिपोपमा संस्कृत: प्रदीप-उपमा)
भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होती है। और भिक्षुओं, श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेते हुए'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ते हुए'।"

"भिक्षुओं, श्वास ध्यान के द्वारा समाधि अवस्था को इसी प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक होती है।

मैं भी, भिक्षुओं, अपने ज्ञानोदय से पूर्व, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, सामान्यतः इसी निवास में रहता था। इस निवास में रहते हुए न तो मेरा शरीर और न ही मेरी आँखें थकती थीं, और मेरा मन आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) होने के कारण विकारों से मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो गया था।"

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'न तो मेरा शरीर और न ही मेरी आँखें थकें और मेरा मन आसक्ति से मुक्त होकर (उपदान सं. आसक्ति) दोषों से मुक्त हो जाए,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। 296

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'गृहस्थ जीवन से जुड़ी स्मृतियों और इरादों का त्याग कर दिया जाए,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

इसलिए, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 297 'मैं अप्रिय को अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय और अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय और अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'अप्रिय और अप्रिय दोनों से बचते हुए' घृणास्पद, क्या मैं समभाव, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोधगम्य (संपजानो) अवस्था में रह सकता हूँ? श्वास के ध्यान द्वारा इसी समाधि (तंद्रा) अवस्था पर बारीकी से ध्यान दिया जाना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं विचार और परीक्षा के शांत होने पर, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभावम) से युक्त है, विचार और परीक्षा से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने के साथ, समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) तथा पूर्णतः संबोधित (संपजानो) अवस्था में रहूँ, तो मैं शरीर के साथ सुख का अनुभव करूँ; मैं उस तृतीय ध्यान में प्रवेश करूँ और निवास करूँ जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: "वह समभाव और ध्यानमग्न है, जो सुखी है" - तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं, सुख और दु:ख के त्याग के साथ, तथा पहले से ही सुख और दु:ख के लुप्त होने के साथ, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करूँ और निवास करूँ, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करूँ और निवास करूँ' - तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं रूपों की धारणाओं से पूर्णतः मुक्त होकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि "अंतरिक्ष अनंत है," अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ', तो श्वास ध्यान के द्वारा इस समाधि (तल्ली) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्णतः मुक्त होकर, यह जानते हुए कि "चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) अनंत है," अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ', तो श्वास ध्यान के द्वारा इस समाधि (तल्ली) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, इस ज्ञान के साथ कि "कुछ भी नहीं है," शून्यता की क्षमता में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ,' तो श्वास ध्यान के द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं शून्यता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'न तो बोध और न ही अबोध की क्षमता में प्रवेश करो और उसमें निवास करो' श्वास के ध्यान के माध्यम से इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर बारीकी से ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश कर सकूँ और उसमें निवास कर सकूँ,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

भिक्षुओं, जब श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाए, तो यदि उसे कोई सुखद वेदना का अनुभव हो, तो वह समझे: 'यह क्षणिक है'; वह समझे: 'इससे लगाव नहीं रखा जा सकता'; वह समझे: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता'। 298 यदि उसे कोई पीड़ादायक वेदना का अनुभव हो, तो वह समझे: 'यह क्षणिक है'; वह समझे: 'इससे लगाव नहीं रखा जा सकता'; वह समझे: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता'। यदि उसे न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई बंधन नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'

यदि उसे सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कष्टदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है।

जब उसे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है।' जब उसे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे

जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है।' वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु को शरीर से समाप्त होने वाली, जीवन से समाप्त होने वाली कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन के समाप्त होने के बाद, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'"

---

985. वेसाली में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। 299 उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को अनेक प्रकार से (वैराग्य और वैराग्य के लिए) शरीर की अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे थे, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे थे, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे थे। 300 (नोट: ब्रह्मचर्य में स्थापित होने, आत्म-प्रशंसा से बचने और विपरीत लिंग के आकर्षण से बचने के लिए, अशुद्धता ध्यान में, शरीर के विभिन्न 32 अशुद्ध तत्वों (धातु) के साथ-साथ सड़ते हुए शव, सड़े हुए शव, कीड़े लगे शव आदि की उपमा पर विचार करना होता है।)

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, मैं आधे महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।" 301

“जी, पूज्यवर,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भिक्षा लाने वाले भिक्षु के सिवा कोई भी भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया।

तब उन भिक्षुओं ने सोचा, “भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे थे, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे थे, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे थे,” और वे अशुद्धता ध्यान के अनेक पहलुओं और कारकों के विकास में लीन हो गए। इस शरीर से घृणा, अपमान और अरुचि के कारण, उन्होंने किसी आक्रमणकारी की तलाश की। एक ही दिन में दस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया, या एक ही दिन में बीस या तीस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया। 302

तब, जब आधा माह बीत गया, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद से कहा,
“आनंद, भिक्षु संघ इतना क्षीण क्यों प्रतीत होता है?” 303

“आदरणीय महोदय, ऐसा इसलिए है क्योंकि [भगवान (बुद्ध) ने अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दिया था, अशुद्धता की प्रशंसा की थी, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा की थी, और वे भिक्षु,] 304 यह सोचकर कि 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे हैं, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे हैं, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे हैं' अशुद्धता ध्यान के अनेक पहलुओं और कारकों के विकास में लीन हो गए। इस शरीर से घृणा, अपमानित और निराश होकर, उन्होंने एक हमलावर की तलाश की; एक ही दिन में दस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया, या एक ही दिन में बीस या तीस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया। आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) कोई अन्य विधि समझाएँ तो यह अच्छा होगा ताकि यह भिक्षु संघ अंतिम ज्ञान में स्थापित हो सके।”

"तो फिर, आनंद, वे सभी भिक्षु जो वैशाली पर आश्रित होकर जीवन यापन कर रहे हैं, सभाघर में एकत्रित हो जाओ।"

“जी, पूज्यवर,” पूज्य आनंद ने उत्तर दिया और वेशाली पर आश्रित सभी भिक्षुओं को सभागृह में एकत्रित किया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, “भिक्षु संघ एकत्रित हो गया है, पूज्यवर। भगवान (बुद्ध) अपनी सुविधानुसार आएं।”

तब भगवान (बुद्ध) सभा कक्ष में गए, नियत स्थान पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त यह समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और यह उत्पन्न होने वाली किसी भी हानिकारक (अकुशल) अवस्था को तुरंत नष्ट कर देती है। 305

"हे भिक्षुओं, जैसे ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में, जब धूल और गंदगी का ढेर उठ खड़ा होता है, तो असमय आने वाला एक बड़ा वर्षा बादल उसे तुरंत नष्ट कर देता है, 306 उसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है,

तो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और यह उत्पन्न होने वाली किसी भी हानिकारक (अकुशल) अवस्था को तुरंत नष्ट कर देती है। और ऐसा कैसे होता है?"

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास छोड़ूँगा'। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था विकसित और पोषित होती है, जो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और जब भी अकुशल जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें तुरंत दूर कर देती है।"

---

986. किम्बिला
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) किंबिला के वेलुवन (बांस के वन) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, "किंबिला, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (संत) की अवस्था कैसे विकसित और पोषित की जाती है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?"

यह सुनकर पूज्य किंबिला मौन रहे। दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, "किंबिला, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (संत) की अवस्था कैसे विकसित और पोषित की जाती है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?" तीसरी बार पूज्य किंबिला मौन रहे।

जब ऐसा हुआ, तो पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"अब समय आ गया है, हे भगवान! अब समय आ गया है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) समाधि अवस्था में श्वास ध्यान करते हुए बोलें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो फिर, आनंद, सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्य," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे आनंद, श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह महान फलदायी और लाभदायक हो? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु, जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और ध्यान को अपने सामने स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेना'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ना'।

(i. कायानुपस्सना)

जब भी, 307 आनंद, एक भिक्षु, लंबी साँस लेते समय यह जानता है: 'मैं लंबी साँस लेता हूँ'; या, लंबी साँस छोड़ते समय यह जानता है: 'मैं लंबी साँस छोड़ता हूँ'; छोटी साँस लेते समय यह जानता है: 'मैं छोटी साँस लेता हूँ'; या, छोटी साँस छोड़ते समय यह जानता है: 'मैं छोटी साँस छोड़ता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं साँस लेता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं साँस छोड़ता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संखार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) को शांत करते हुए, मैं साँस लेता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संखार (व्यवहार-आदत) को शांत करते हुए, मैं साँस छोड़ता हूँ' - उस अवसर पर भिक्षु शरीर में शरीर पर ध्यान-दर्शन (अनुपसी) में लीन रहता है, पूरी तरह से बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए। क्या कारण? मैं इसे एक विशेष प्रकार का शरीर कहता हूँ, आनंद, अर्थात् श्वास लेना और श्वास छोड़ना। 308 अत:, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

(ii. वेदनानुपस्सना का ध्यान)

"जब भी, आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (सुख) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (सुख) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, वेदनाओं पर गहन ध्यान (अनुपसी) लगाता है। इसका कारण क्या है? मैं इसे एक विशेष प्रकार की वेदना, आनंद कहता हूँ, अर्थात् श्वास ग्रहण और श्वास त्याग पर गहन ध्यान। 309 अतः, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, पूरी तरह से संवेदनमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न अवस्था में रहता है। (iii

. मन का ध्यान (चित्तनुपस्सना))

"जब भी, आनंद, कोई भिक्षु इस प्रकार साधना करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' - उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसका कारण क्या है? मैं कहता हूँ, आनंद, कि ध्यान से समाधि (सम्मोहन) अवस्था का विकास नहीं होता। जो भ्रमित है और जिसे पूर्ण बोध (संपजन्न) नहीं है, उसके लिए श्वास लेना आवश्यक है। इसलिए, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु मन में मन को देखते हुए, तल्लीन, पूर्ण बोध (संपजन्न), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करके ध्यान लगाता है।

(iv. घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना))

"जब भी, आनंद, कोई भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता (अनित्य संस्कृत अनित्य) पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'अनित्यता (अनित्य संस्कृत) पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होने पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होने पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), ध्यानमग्न अवस्था में, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, लीन रहता है। लोभ और अप्रसन्नता के त्याग को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, वह समभाव (उपेक्खा) से निकट दृष्टि से देखता है। 310 इसलिए, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु संसार में घटनाओं (धम्म) पर ध्यानपूर्वक, उत्सुकता से, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करके निवास करता है।
"मान लीजिए, आनंद, किसी चौराहे पर मिट्टी का एक बड़ा टीला है। यदि कोई रथ या गाड़ी पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से आए, तो वह उस टीले को समतल कर देगी। 311 इसी प्रकार, आनंद, जब कोई भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और धम्म में धम्म का ध्यान करते हुए ध्यान लगाता है, तो वह अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं को समतल कर देता है।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (आनंद)
987. इच्छानंगला में
(वर्षा ऋतु में बुद्ध कैसे निवास करते थे) एक बार भगवान (बुद्ध) इच्छानंगला वन में इच्छानंगला में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भिक्षा प्रदान करने वाले के अलावा कोई भी भगवान (बुद्ध) के पास नहीं आया।

फिर, जब वे तीन महीने बीत गए, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'मित्रों, वर्षा ऋतु में भगवान (बुद्ध) सामान्यतः किस निवास में निवास करते थे?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'वर्षा ऋतु में निवास के दौरान, मित्रों, भगवान (बुद्ध) सामान्यतः श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सत्त्व) अवस्था में निवास करते थे।'

"यहाँ, भिक्षुओं, मैं ध्यानमग्न होकर श्वास लेता हूँ, ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता हूँ। लंबी श्वास लेते समय मुझे पता चलता है: 'मैं लंबी श्वास ले रहा हूँ'; लंबी श्वास छोड़ते समय मुझे पता चलता है: 'मैं लंबी श्वास छोड़ रहा हूँ'। छोटी श्वास लेते समय मुझे पता चलता है: 'मैं छोटी श्वास ले रहा हूँ'; छोटी श्वास छोड़ते समय मुझे पता चलता है: 'मैं छोटी श्वास छोड़ रहा हूँ'। मुझे पता है: 'संपूर्ण शरीर का अनुभव करते हुए मैं श्वास लूँगा।'... मुझे पता है: 'त्याग पर ध्यान (अनुपसी) करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 312

"यदि कोई भिक्षु, सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है', तो वह श्वास ध्यान की समाधि अवस्था के बारे में ही सही ढंग से कह सकता है।

भिक्षुओं, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा रखते हुए निवास करते हैं: उनके लिए श्वास ध्यान की समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती है।" वे भिक्षु जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, वे जो अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो चुके हैं: उनके लिए श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो इसी जीवन में सुखद निवास और ध्यान एवं पूर्ण बोध (संपजन्न) की ओर ले जाती है। 313

"यदि कोई, भिक्षुओं, सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है', तो यह श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था के बारे में ही सही ढंग से कहा जा सकता है।"

---

988. असमंजस में (कंखेय्या)
एक बार पूज्य लोमसावंगिस निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्यों महानामा पूज्य लोमसावंगिस के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, क्या ऐसा है कि प्रशिक्षु का निवास तथागत के निवास के समान है, या प्रशिक्षु का निवास एक है और तथागत का निवास दूसरा है?"

"हे मित्र महानामा, ऐसा नहीं है कि प्रशिक्षु का निवास तथागत के निवास के समान है; बल्कि, प्रशिक्षु का निवास एक है और तथागत का निवास दूसरा है। मित्र महानामा

, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हुए निवास करते हैं, वे पाँच बाधाओं का त्याग करके निवास करते हैं। 314 वे पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी, पश्चाताप और संशय जैसी बाधाएँ। वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं... इन पाँच बाधाओं का त्याग करके निवास करते हैं।

लेकिन, मित्र महानामा, उन अर्हंत भिक्षुओं के लिए, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो गए हैं, पाँचों अवरोधों का त्याग हो चुका है, उन्हें जड़ से काट दिया गया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया गया है, मिटा दिया गया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। 315 वे पाँच कौन से अवरोध हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह के अवरोध। अर्हंत भिक्षुओं के लिए... इन पाँच

अवरोधों का 86 त्याग हो चुका है, उन्हें जड़ से काट दिया गया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया गया है, मिटा दिया गया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों।

"मित्र महानामा, निम्नलिखित विधि से भी यह समझा जा सकता है कि कैसे एक प्रशिक्षु का निवास एक बात है और तथागत का निवास दूसरी बात।

"एक बार, हे मित्र महानामा, भगवान (बुद्ध) इच्छानंगल वन में इच्छानंगल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।'

(यहाँ वे पिछले सूत्र की संपूर्ण सामग्री को दोहराते हैं, यहाँ तक कि:)

"'हे भिक्षुओं, यदि कोई सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है,' तो यह समाधि (सम्मोहन) अवस्था में श्वास के ध्यान से ही सही ढंग से कहा जा सकता है।'

"इस विधि से, हे मित्र महानामा, यह समझा जा सकता है कि एक प्रशिक्षु का निवास एक बात है और तथागत का निवास दूसरी बात है।"

---

989. आनंद (1)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, क्या कोई एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने से चार धर्मों (विशेषताओं, नियम) की पूर्ति होती है? और क्या चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से सात धर्मों की पूर्ति होती है? और क्या सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से दो धर्मों की पूर्ति होती है?" भगवान ने उत्तर दिया,

"आनंद, एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने से चार धर्मों की पूर्ति होती है; चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से सात धर्मों की पूर्ति होती है; और सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से दो धर्मों की पूर्ति होती है।"

"परन्तु, आदरणीय महोदय, वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से चारों धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से चार धर्म हैं, जिनके विकास और अभ्यास से सात धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से सात धर्म हैं, जिनके विकास और अभ्यास से दो धर्म पूर्ण होते हैं?"

"आनंद, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सता) ही वह एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से ध्यान के चारों आधार पूर्ण होते हैं। ध्यान के चारों आधार, जब विकसित और विकसित होते हैं, तो ज्ञान के सात कारकों को पूर्ण करते हैं। ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और विकसित होते हैं, तो सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण करते हैं।

(i. ध्यान के चारों आधारों को पूर्ण करना)
" "आनंद, श्वास के ध्यान द्वारा समाधि (सता) की अवस्था को कैसे विकसित और विकसित किया जाता है ताकि वह ध्यान के चारों आधारों को पूर्ण करे?" यहां, आनंद नामक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाते हैं। वे अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान मुद्रा में बैठकर, सतीम अवस्था में श्वास लेते हैं और सतीम अवस्था में ही श्वास छोड़ते हैं। वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूंगा'; वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास त्यागूंगा।'

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु लंबी साँस लेते हुए यह जानता है: 'मैं लंबी साँस लेता हूँ' ... (जैसा कि 986 में है) ... जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'शारीरिक संखार (बाध्यकारी व्यवहार) को शांत करते हुए, मैं साँस छोड़ूँगा' - उस समय भिक्षु शरीर में शरीर पर ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए, चिंतन में लीन रहता है। इसका कारण क्या है? हे आनंद, मैं इसे एक विशेष प्रकार का शरीर कहता हूँ, अर्थात् साँस लेना और साँस छोड़ना। इसलिए, हे आनंद, उस समय भिक्षु

शरीर में शरीर पर ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए चिंतन में लीन रहता है।

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पीति/प्रीति का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संशय (अनिवार्य व्यवहार) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु वेदनाओं पर गहन ध्यान लगाते हुए, संवेदनाओं में ध्यान मग्न रहता है, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। इसका कारण क्या है? हे आनंद, मैं इसे एक विशेष प्रकार की वेदना कहता हूँ, अर्थात् श्वास ग्रहण और श्वास त्याग पर गहन ध्यान। इसलिए, हे आनंद, उस समय भिक्षु वेदनाओं पर गहन ध्यान लगाते हुए, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु वेदनाओं में ध्यान मग्न रहता है, तो वह संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है

। भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहते हैं। इसका कारण क्या है? मैं कहता हूँ, आनंद, कि जो व्यक्ति भ्रमित है और जिसे पूर्ण बोध (संपजन्न) नहीं है, उसके लिए श्वास के ध्यान से समाधि (सम्मोहन) अवस्था का विकास नहीं होता। इसलिए, आनंद, उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहते हैं।

"हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु इस प्रकार साधना करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वह इस प्रकार साधना करता है:
'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, प्रखर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से लोभ और अप्रसन्नता के त्याग को देखकर, वह समभाव (उपेक्खा) से निकट दृष्टि से देखता है। अतः, हे आनंद, उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, प्रखर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है।

"यह है, आनंद, जब श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है कि वह ध्यान के चार सिद्धांतों को पूरा करती है।

(ii. ज्ञानोदय के सात कारकों को पूरा करना)

"और आनंद, ध्यान के चार सिद्धांत कैसे विकसित और पोषित किए जाते हैं ताकि वे ज्ञानोदय के सात कारकों को पूरा करें?"

"हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु शरीर में स्थित शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) लीन रहता है, उस समय उस भिक्षु में अविचलित ध्यान स्थापित हो जाता है। 316 हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में अविचलित ध्यान स्थापित हो जाता है, उस समय उस भिक्षु में ध्यान का ज्ञानोदय तत्व जागृत हो जाता है; उस समय वह भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है; उस समय ध्यान का ज्ञानोदय तत्व उस भिक्षु में विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

इस प्रकार ध्यान लगाकर (सतो) वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उस धम्म का विवेक निरूपण करता है, उसकी परीक्षा लेता है, उसका अध्ययन करता है।" जब भी आनंद, जो इस प्रकार ध्यान (सतो) करते हुए निवास करने वाला भिक्षु है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उस धम्म का विवेक करता है, उसकी जांच करता है, उसका अध्ययन करता है, उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान जागृत होता है; उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान विकसित होता है; उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जब कोई भिक्षु प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से धम्म का विवेक करता है, उसका परीक्षण करता है, उसकी जांच करता है, तो उसकी ऊर्जा (वीर्य) निरंतर जागृत रहती है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु की ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है क्योंकि वह अंतर्दृष्टि (पन्ना) से धम्म का विवेक करता है, उसका परीक्षण करता है, उसकी जांच करता है, उस समय भिक्षु में ऊर्जा (वीर्य) का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस

समय भिक्षु में ऊर्जा (वीर्य) का प्रबुद्ध तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में ऊर्जा-शक्ति का प्रबुद्ध तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जब उसकी ऊर्जा जागृत होती है, तो उसमें निष्पाप (पवित्र) आनंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में, जिसकी ऊर्जा शक्ति जागृत होती है, निष्पाप (पवित्र) आनंद उत्पन्न होता है, उस समय भिक्षु में आनंद का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु आनंद के प्रबुद्ध तत्व (पीति/प्रीति) का विकास करता है; उस समय भिक्षु में आनंद का प्रबुद्ध तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जिसका मन परमानंद से उन्नत होता है, उसका शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु का मन परमानंद से उन्नत होता है और उसका शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं, उस समय भिक्षु में शांति का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में शांति के ज्ञानोदय तत्व का विकास होता है; उस समय भिक्षु में शांति का ज्ञानोदय तत्व विकसित होकर पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जिसका शरीर शांत और प्रसन्न होता है, उसका मन समाधि अवस्था में पहुँच जाता है। हे आनंद, जब भी किसी शांत और प्रसन्न शरीर वाले भिक्षु का मन समाधि अवस्था में पहुँचता है, तो उस समय उस भिक्षु में समाधि अवस्था का ज्ञान जागृत होता है; उस समय वह समाधि अवस्था के ज्ञान का विकास करता है; उस समय वह समाधि अवस्था के ज्ञान की पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

वह समाधि अवस्था में लीन मन को समभाव (उपेक्ष संस्कृत: उपेक्षा) से निकट से देखता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में लीन मन को समभाव (उपेक्खा) से देखता है, उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु वेदनाओं पर ध्यान लगाकर, मन पर मन, और धर्म पर ध्यान केंद्रित करता है, तब उस भिक्षु में निर्मल ध्यान स्थापित हो जाता है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में निर्मल ध्यान स्थापित हो जाता है, तब उस भिक्षु में ध्यान का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय वह भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है; उस समय ध्यान का ज्ञानोदय तत्व उस भिक्षु में विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

(यह सब ध्यान की प्रथम स्थापना के संदर्भ में ही समझाया जाना चाहिए।)

वह ऐसा व्यक्ति बन जाता है जो समाधि अवस्था में स्थित मन को समभाव से देखता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में स्थित मन को समभाव (उपेक्खा) से ध्यानपूर्वक देखता है, तब उस भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है।

हे आनंद, जब ध्यान के चारों तत्व इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी वे ज्ञानोदय के सात तत्वों को पूर्ण करते हैं।

(iii. सच्चे ज्ञान और मुक्ति की पूर्ति)

हे आनंद, ज्ञानोदय के सात तत्वों को किस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण कर सकें?

"यहाँ, आनंद, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। वह धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है... वीरता के ज्ञानोदय तत्व को... पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व को... शांति के ज्ञानोदय तत्व को... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व को... समभाव के ज्ञानोदय तत्व को, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।

आनंद, जब ज्ञानोदय के सातों तत्व इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।"

990. आनंद (2)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा,

"आनंद, क्या कोई एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से चार धर्मों (विशेषताओं, नियम) की पूर्ति होती है? और क्या चार धर्म ऐसे हैं, जिनके विकास और अभ्यास से सात धर्मों की पूर्ति होती है? और क्या सात धर्म ऐसे हैं, जिनके विकास और अभ्यास से दो धर्मों की पूर्ति होती है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"आनंद, एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर चार धर्म पूर्ण होते हैं; चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर सात धर्म पूर्ण होते हैं; और सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर दो धर्म पूर्ण होते हैं।

" "और आनंद, वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर चार धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर सात धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर दो धर्म पूर्ण होते हैं?" आनंद, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) ही वह धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर ध्यान के चारों प्रतिष्ठान पूर्ण होते हैं। ध्यान की चारों अवस्थाएँ, जब विकसित और पोषित होती हैं, तो ज्ञान के सात कारकों को पूर्ण करती हैं। ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण करते हैं।

"आनंद, श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि यह ध्यान की चारों अवस्थाओं को पूर्ण करे?

" "यहाँ, आनंद, एक भिक्षु, जंगल में जाकर... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे भी)... आनंद, जब ज्ञान के सात कारकों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति को पूर्ण करते हैं।"

---

991. भिक्षु (1)
(यह 989 के समान ही है, सिवाय इसके कि आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

992. भिक्षु (2)
(यह 990 के समान ही है, सिवाय इसके कि आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

993. बेड़ियाँ (संयोजनाप्पना सं. संयोग-प्राहन)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में विकसित और अभ्यास करने से बंधनों का त्याग हो जाता है।"

---

994. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ
"भिक्षुओं (साधुओं) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है, जब इसे विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) को जड़ से उखाड़ने की ओर ले जाती है।"

---

995. पाठ्यक्रम (अद्धनपरिन्ना)
"भिक्षुओं (साधुओं) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है, जब इसे विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह पाठ्यक्रम की पूर्ण समझ की ओर ले जाती है।"

---

996. अशुद्धियों का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यासित की जाती है, तो विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती है।

और हे भिक्षुओं, श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाए जिससे बंधनों का त्याग हो, अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का उन्मूलन हो, मार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो और विकारों का नाश हो?

"देखो, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, सतीमा करते हुए श्वास लेता है और सतीमा करते हुए श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास छोड़ूंगा'।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था विकसित और पोषित की जाती है, जिससे बंधनों का त्याग, अंतर्निहित प्रवृत्तियों का उन्मूलन, मार्ग का पूर्ण ज्ञान और दोषों का नाश होता है।"

अध्याय 11: धारा-प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (सोतापत्तिसम्युत्त) {सम्युत्त-55}
(i) बांस गेट (वेलुद्वारावग्गो)
997. व्हील-टर्निंग मोनार्क (कैक्कवत्तीराजा सं. चक्रवर्ती-राजा)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यद्यपि एक चक्र-घुलने वाला सम्राट, जिसने चारों महाद्वीपों पर सर्वोच्च संप्रभु शासन किया है, 317 शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में, तावतिंसा स्वर्ग के देवों (देवदूतों) की संगति में, और वहाँ नंदनवन (नंदनवन) में, अप्सराओं के दल के साथ, दिव्य इंद्रिय सुख के पाँच डोरों से युक्त होकर, स्वयं का आनंद लेता है, फिर भी, क्योंकि उसमें चार धर्म (गुण, नियम) नहीं हैं, वह नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त नहीं होता है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त नहीं होता है। 318 यद्यपि, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य भिक्षा के ढेर से अपना जीवन यापन करता है और चिथड़े-चिथड़े वस्त्र पहनता है, फिर भी, क्योंकि उसमें..." चार धर्मों से मुक्त होकर, वह नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त हो जाता है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त हो जाता है।

"वे चार क्या हैं? हे भिक्षुओं,
(1) श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 319 भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्धो), सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण (विज्जाचरणसंपन्नो), सौभाग्यशाली (सुगतो), जगत के ज्ञाता (लोकविदु), अतुलनीय (अनुत्तरो), वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता (पुरिसदम्मसारथी), देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक (सत्थ देवमनुस्सनम्), प्रबुद्ध (बुद्धो), भगवान (भगवती) हैं।"

(2) "वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह से व्याख्या की गई है (स्वक्खतो), प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है (संदित्थिको), तत्काल उपलब्ध है (अकालिको), देखने के लिए आमंत्रित करता है (एहिपस्सिको), लागू करने योग्य है (ओपनेय्यिको), बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।'

(3) "वह संघ (भाईचारे) में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (सुप्पतिपन्नो), सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (उजुप्पतिपन्नो), सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (नयप्पतिपन्नो), उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है (सामिच्चिप्पतिपन्नो); अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान (अहुनेय्यो), आतिथ्य (पहुनेय्यो), भेंट (दक्खिनय्यो), हाथ जोड़कर (आदरपूर्वक) प्रणाम (अंजलिकारणियो) के योग्य है, और संसार के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र (अनुत्तरम पुन्नक्खेतम) है।

(4) "वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों (5 पंचशील - सत्य, अहिंसा, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, नशीले पदार्थों का सेवन न करना) से युक्त है - अटूट, अविभाजित, निष्कलंक, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 320

"उसके पास ये चारों धर्म हैं। और, भिक्षुओं, चारों महाद्वीपों पर प्रभुत्व प्राप्त करने और चारों धर्मों को प्राप्त करने में से, चारों महाद्वीपों पर प्रभुत्व प्राप्त करना, चारों धर्मों को प्राप्त करने के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।" 321

---

998. ब्रह्मचर्य में दृढ़ (ब्रह्मचरयोगधा)
भिक्षुओं, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर स्थिर भाग्य वाला होता है और जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय होता है। 322 "वे

चार क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) में ... संघ में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से अविभाजित है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है (जैसा कि 997 में है)।

"भिक्षुओं, इन चार धर्मों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर स्थिर भाग्य वाला होता है और जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। इसके बाद, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जिनके पास आस्था और सद्गुण (शील) हैं, जो
धर्म (मार्ग, नियम) के प्रति विश्वास और दृष्टि रखते हैं, वे समय आने पर पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन पर आधारित

सुख (सुख) प्राप्त करते हैं ।" 323

---

999. दिघावु
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय दिघावु नामक गृहस्थ अनुयायी बीमार और विक्षिप्त था। तब दिघावु ने अपने पिता, गृहस्थ ज्योतिका से कहा, "हे गृहस्थ, आइए भगवान (बुद्ध) के पास जाइए, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम कीजिए और कहिए, 'हे आदरणीय महोदय, दिघावु नामक गृहस्थ अनुयायी बीमार और विक्षिप्त है; वह भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करता है।'" फिर कहिए: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश गृहस्थ भक्त दिघावु के निवास पर आएँ तो अच्छा होगा।"

"जी हाँ," गृहस्थ ज्योतिका ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर गृहस्थ भक्त दिघावु के निवास पर गए। वे नियत आसन पर बैठ गए और गृहस्थ भक्त दिघावु से कहा:
"मुझे आशा है कि दिघावु, तुम स्वस्थ हो, तुम्हें लाभ हो रहा है। मुझे आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही महत्वपूर्ण है, न कि उनका बढ़ना।"

"आदरणीय महोदय, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही स्पष्ट है, कम होना नहीं।"

"इसलिए, दिघावु, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाला बनूँगा,
जैसा कि (997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। मैं धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखने वाला बनूँगा ... संघ (भाईचारे) में ... मैं श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करने वाला बनूँगा ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म (गुण, नियम) मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध में, धर्म में और संघ में दृढ़ विश्वास है। ... मुझमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।"

अतः, दिघावु, धारा-प्रवेश के इन चार कारकों पर स्थापित होकर, आपको सच्चे ज्ञान से युक्त छह अन्य धर्मों का विकास करना चाहिए। यहाँ, दिघावु, सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यानपूर्वक चिंतन करें, अनित्य में दुख का

अनुभव करें, दुख में अनात्म का अनुभव करें, परित्याग का अनुभव करें, लुप्त होने का अनुभव करें और निरोध का अनुभव करें। 324 इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सच्चे ज्ञान के इन छह धर्मों के संबंध में, ये धर्म मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन्हीं धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। आदरणीय महोदय, मैं सभी संस्कारों में अनित्यता का ध्यान (अनुपस्सी) लगाता हूँ, अनित्य में दुख का अनुभव करता हूँ, दुख में अनात्म का अनुभव करता हूँ, त्याग का अनुभव करता हूँ, क्षीण होने का अनुभव करता हूँ और अंत का अनुभव करता हूँ। परन्तु आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आता है: 'मेरे जाने के बाद, यह गृहस्थ ज्योतिका व्यथित न हो जाए।' "

इस बात की चिंता मत करो, प्रिय दिघावु। आओ, प्रिय दिघावु, भगवान (बुद्ध) जो तुमसे कह रहे हैं, उस पर ध्यान दो।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने गृहस्थ शिष्य दिघावु को यह उपदेश देकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया। फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, गृहस्थ शिष्य दिघावु का निधन हो गया।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"आदरणीय, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षिप्त उपदेश दिए गए दिघावु नामक गृहस्थ शिष्य का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?"

"भिक्षुओं, गृहस्थ शिष्य दिघावु बुद्धिमान थे। उन्होंने धर्म (मार्ग/नियम) के अनुसार अभ्यास किया और धर्म के कारण मुझे कष्ट नहीं दिया। भिक्षुओं, पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के साथ गृहस्थ शिष्य दिघावु स्वतः जन्म लेने वाले हो गए हैं, और उस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त करेंगे।"

1000. सारिपुत्त (1)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य आनंद एकांतवास से बाहर आए... एक तरफ बैठकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"मित्र सारिपुत्त, भगवान (बुद्ध) द्वारा जिन लोगों को सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) घोषित किया गया है, वे किन गुणों के कारण पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानते हैं?"

"हे मित्र आनंद, चार धर्मों (गुणों, नियमों) के धारण के कारण ही भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धारा-प्रवेशक घोषित किया है, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है और जिनका गंतव्य ज्ञान है। वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) यहाँ, मित्र, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियम) में ... संघ में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

"हे मित्र, इन्हीं चार धर्मों के धारण के कारण ही भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धारा-प्रवेशक घोषित किया है, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है और जिनका गंतव्य ज्ञान है।"

1001. सारिपुत्त (2)
तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"सारिपुत्त, यह कहा जाता है: 'सोतापत्ति का कारक, सोतापत्ति का कारक।' सारिपुत्त, सोतापत्ति का कारक क्या है?" "हे

पूज्यवर, श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति सोतापत्ति का कारक है। सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) को सुनना सोतापत्ति का कारक है। ध्यानमग्नता सोतापत्ति का कारक है। धम्म के अनुसार अभ्यास सोतापत्ति का कारक है।" 325

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, श्रेष्ठ व्यक्तियों का साथ धारा में प्रवेश का कारक है। सच्चे धम्म को सुनना धारा में प्रवेश का कारक है। ध्यानमग्नता (योनिषे) धारा में प्रवेश का कारक है। धम्म के अनुसार अभ्यास धारा में प्रवेश का कारक है।

" "सारिपुत्त, यह कहा गया है: 'धारा, धारा।' अब, सारिपुत्त, धारा क्या है?"

"यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, आदरणीय महोदय, धारा है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग धारा है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"सारिपुत्त, यह कहा गया है: 'धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्न), धारा में प्रवेश करने वाला।" सारिपुत्त, अब आप समझिए, 'सोतापन्न' किसे कहते हैं?

"हे पूज्यवर, जो इस अष्टमार्ग का अनुसरण करता है, उसे ही 'सोतापन्न' कहते हैं: इस नाम और कुल के पूज्यवर।"

"बहुत खूब, सारिपुत्त! जो इस अष्टमार्ग का अनुसरण करता है, वही 'सोतापन्न' कहलाता है: इस नाम और कुल के पूज्यवर।"

1002. चेम्बरलेन्स (थापति)
सावत्थी में। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि "तीन महीने बाद, जब उनका वस्त्र तैयार हो जाएगा, तो भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे।"

उसी समय, दरबारी 326 इसिदत्ता और पुराण किसी काम से साधुका में ठहरे हुए थे। उन्होंने सुना, "कहा जाता है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि तीन महीने बाद, जब उनका वस्त्र तैयार हो जाएगा, तो भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे।"

तब दरबारी इसिदत्ता और पुराण ने एक व्यक्ति को रास्ते में खड़ा कर दिया और उससे कहा, "हे जन, जब तुम भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखो, जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, तो हमें सूचित करना।" दो-तीन दिन खड़े रहने के बाद उस व्यक्ति ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखा। उन्हें देखकर वह व्यक्ति दरबारी इसिदत्ता और पुराण के पास गया और उनसे कहा, "महोदय, यह भगवान (बुद्ध) आ रहे हैं, जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं। आप अपनी सुविधानुसार आ सकते हैं।"

तब दरबारी इसिदत्ता और पुराण भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे चलने लगे। फिर भगवान (बुद्ध) मार्ग छोड़कर एक वृक्ष की छाया में गए और उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। दरबारी इसिदत्ता और पुराण ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती से कोसलों के बीच भ्रमण के लिए निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर दुःख और असंतोष उत्पन्न होता है कि भगवान (बुद्ध) हमसे दूर रहेंगे।" फिर जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती से कोसलों के बीच भ्रमण के लिए निकल पड़े हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर दुःख और अप्रसन्नता उत्पन्न होती है: 'भगवान (बुद्ध) हमसे दूर हैं।'

"आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच से मल्लीय देश के भ्रमण के लिए निकलेंगे... कि वे कोसलों के बीच से मल्लीय देश के भ्रमण के लिए निकल पड़े हैं... कि वे मल्लीयों के बीच से वज्जीय देश के भ्रमण के लिए निकलेंगे..." जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मल्लियों में से वज्जिया देश की यात्रा पर निकले हैं... जब हम वज्जियाओं में से कसिया देश की यात्रा पर निकलेंगे... जब हम यह सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कसियाओं में से मगध की यात्रा पर निकले हैं, तो हमारे मन में यह सोचकर अत्यंत दुःख और अप्रसन्नता उत्पन्न होती है:
'भगवान (बुद्ध) हमसे दूर रहेंगे।'

लेकिन, आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच से कसिअन देश की यात्रा पर निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर उमंग और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट होंगे।' फिर जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच से कसिअन देश की यात्रा पर निकल चुके हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर उमंग और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट हैं।'

इसके अलावा, आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कसिअनियों के बीच से वज्जिअन देश की यात्रा पर निकलेंगे... कि वे कसिअनियों के बीच से वज्जिअन देश की यात्रा पर निकल चुके हैं... कि वे वज्जिअनियों के बीच से मल्लीय देश की यात्रा पर निकलेंगे... जब हमें पता चलता है कि भगवान वज्जियों में से मल्लियन देश की यात्रा पर निकले हैं... जब हमें पता चलता है कि भगवान मल्लियनों में से कोसल की यात्रा पर निकलेंगे... जब हमें पता चलता है कि भगवान कोसल के लोगों में से सावत्थी की यात्रा पर निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर अपार हर्ष और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट होंगे।' हे पूज्यवर, जब हम सुनते हैं कि भगवान सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर अपार हर्ष और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट हैं।'

अतः, गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल भरा मार्ग है। दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। " हे दरबारी, आपके लिए बस सतर्क रहना ही काफी है (अप्पमदा)।"

"आदरणीय महोदय, हम एक और बंधन के अधीन हैं जो पहले वाले से भी अधिक बंधनकारी है और माना जाता है।" "

परन्तु, हे दरबारी, वह दूसरा बंधन क्या है जिसके आप अधीन हैं, जो पहले वाले से भी अधिक बंधनकारी है और माना जाता है?"

"हे दरबारी महोदय, जब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) अपने आनंद उद्यान में भ्रमण करना चाहते हैं, तो उनके हाथियों को तैयार करने के बाद हमें राजा की प्रिय और प्रिय पत्नियों को उनके आसनों पर, एक आगे और एक पीछे, बिठाना होता है। अब, हे दरबारी महोदय, उन महिलाओं की सुगंध एक सुगंधित डिब्बे की तरह होती है जिसे कुछ देर के लिए खोला गया हो; ऐसा ही उन शाही महिलाओं के साथ होता है जो इत्र लगाती हैं। साथ ही, हे दरबारी महोदय, उन महिलाओं का शारीरिक स्पर्श रुई के गुच्छे जैसा होता है; ऐसा ही उन शाही महिलाओं के साथ होता है जिन्हें इतनी कोमलता से पाला-पोसा जाता है।" अब उस अवसर पर, आदरणीय महोदय, हाथियों की रक्षा करनी होगी, उन महिलाओं की रक्षा करनी होगी, और हमारी भी रक्षा करनी होगी, फिर भी हमें उन महिलाओं के प्रति कभी भी कोई दुर्भावना उत्पन्न करने का आशय नहीं है। आदरणीय महोदय, यह वह दूसरा बंधन है जिसके हम अधीन हैं, जो पहले वाले बंधन से भी अधिक कठोर है और कठोर माना जाता है।

इसलिए, हे दरबारियों, गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है। दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। हे दरबारियों, आपके लिए बस सतर्क रहना ही पर्याप्त है। हे दरबारियों, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियम) से युक्त है, सोतापन्न है, पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और ज्ञान ही उसका गंतव्य है। वे

चार क्या हैं? हे दरबारियों, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह कंजूसी के दाग से मुक्त मन से घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला। 327 इन चार धर्मों को धारण करने वाला एक श्रेष्ठ शिष्य धारा-प्रवेशक होता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, जिसका गंतव्य ज्ञान है।

"चैंबरलेन, आप बुद्ध में... धम्म में... संघ में दृढ़ विश्वास रखते हैं... इसके अलावा, आपके परिवार में जो कुछ भी दान देने योग्य है, उसे आप बिना किसी संकोच के गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों में बाँट देते हैं। बढ़ई, आप क्या सोचते हैं, कोसलन में कितने लोग आपके समान हैं, अर्थात् दान देने और साझा करने के मामले में?"

"हे पूज्यवर, यह हमारे लिए लाभ की बात है, हे पूज्यवर, कि भगवान (बुद्ध) हमें इतनी अच्छी तरह समझते हैं।"

1003. बांस द्वार के लोग (वेलुडवरेय्या)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ कोसलवासियों के बीच भ्रमण कर रहे थे, जब वे कोसलवासियों के एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे जिसका नाम बैम्बू गेट था। तब बांस द्वार के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: “हे महोदय, ऐसा कहा जाता है कि शाक्य वंश से निकले शाक्य पुत्र तपस्वी गौतम, भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे और बांस द्वार पहुँच गए हैं। अब उस गुरु गौतम के विषय में यह शुभ सूचना फैली है कि भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इस

संसार को इसके देवताओं (देवदूतों), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित, इस पीढ़ी को इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, जान लिया है और इसे दूसरों को भी बता रहे हैं। वे एक ऐसे धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा है और अंत में भी अच्छा है। मध्य मार्ग, अंत में उत्तम, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं। ऐसे अरहंतों को देखना सुखद है।

फिर बाँस द्वार के वे ब्राह्मण गृहस्थ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप करके एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को अपना नाम और कुल बताया और एक तरफ बैठ गए। कुछ मौन रहे और एक तरफ बैठ गए।

बाँस द्वार के उन ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे गुरु गौतम, हमारी ऐसी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और आशाएँ हैं: 'हम बच्चों से भरे घर में निवास करें! हम काशियन चंदन का आनंद लें! हम मालाएँ, सुगंध और लेप धारण करें! हमें सोना और चाँदी प्राप्त हो! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से हम एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लें!' हमारी ऐसी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और आशाएँ हैं, इसलिए हे गुरु गौतम, हमें धम्म का ऐसा उपदेश दें कि हम बच्चों से भरे घर में निवास कर सकें (जैसा कि पहले था) और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से हम एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लें।" "

मैं तुम्हें, गृहस्थों, अपने लिए उपयुक्त धम्म की व्याख्या सिखाऊँगा। 328 इसे सुनो और ध्यान रखो (मनसिकारो), मैं बोलूँगा।"

"जी जी," बांस द्वार के उन ब्राह्मण गृहस्थों ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

गृहस्थों, धम्म की व्याख्या स्वयं पर कैसे लागू होती है? गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'मैं वह हूँ जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता; मैं सुख चाहता हूँ और दुख से विमुख हूँ। क्योंकि मैं जीने की इच्छा रखता हूँ और दुख से विमुख हूँ, इसलिए यदि कोई मेरा प्राण ले ले, तो यह मुझे प्रसन्न नहीं करेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे का प्राण ले लूँ - जो जीने की इच्छा रखता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और दुख से विमुख है - तो यह भी उसे प्रसन्न नहीं करेगा। जो मुझे अप्रिय है, वह दूसरे को भी अप्रिय है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं प्राण-क्षय से विरक्त रहता है, दूसरों को प्राण-क्षय से विरक्त रहने का उपदेश देता है और प्राण-क्षय से विरक्त रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है। 329

"फिर, हे गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'यदि कोई मुझसे वह ले ले जो मैंने नहीं दिया, अर्थात् चोरी करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से वह ले लूँ जो उसने नहीं दिया, अर्थात् चोरी करूँ, तो यह भी दूसरे को अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ करता है, दूसरों को भी अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ करने का निर्देश देता है, और अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

"फिर, हे गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: 'यदि कोई मेरी पत्नियों के साथ व्यभिचार करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे की पत्नियों के साथ व्यभिचार करूँ, तो यह दूसरे को भी अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं यौन दुराचार से परहेज़ करता है, दूसरों को भी यौन दुराचार से परहेज़ करने का निर्देश देता है, और यौन दुराचार से परहेज़ की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

"फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'यदि कोई मेरे कल्याण को झूठे वचनों से हानि पहुँचाए, तो यह मुझे प्रसन्न और स्वीकार्य नहीं होगा। अब यदि मैं किसी दूसरे के कल्याण को झूठे वचनों से हानि पहुँचाऊँ, तो यह उसे भी प्रसन्न और स्वीकार्य नहीं होगा। जो मुझे अप्रिय और अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय और अप्रिय लगता है। मैं दूसरे को वह कैसे पीड़ित कर सकता हूँ जो मुझे अप्रिय

और अप्रिय लगता है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं झूठे वचनों से दूर रहता है, दूसरों को भी झूठे वचनों से दूर रहने की शिक्षा देता है, और झूठे वचनों से दूर रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह मौखिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

"फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: 'यदि कोई मुझसे कठोर शब्दों में बात करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से कठोर शब्दों में बात करूँ, तो यह भी उसे अप्रिय लगेगा...' इस प्रकार उसका यह वाणीगत आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: 'यदि कोई मुझसे निरर्थक और व्यर्थ की बातों में बात करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से निरर्थक और व्यर्थ की बातों में बात करूँ, तो यह भी उसे अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे को वह कष्ट कैसे दे सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?' यह सोचकर वह स्वयं व्यर्थ की बातों से दूर रहता है, दूसरों को भी व्यर्थ की बातों से दूर रहने की शिक्षा देता है, और व्यर्थ की बातों से दूर रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह वाणीगत आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।"

"(जैसा कि 997 में है) बुद्ध में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' [356] उनका धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है ... संघ (भाईचारे) में .... उनमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं, जो अटूट हैं ... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"जब, गृहस्थों, श्रेष्ठ शिष्य इन सात अच्छे गुणों और इन चार वांछनीय अवस्थाओं को धारण कर लेता है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं सोतापन्न हूँ, अब पाताल लोक से बंधा नहीं हूँ, भाग्य में स्थिर हूँ। ज्ञान प्राप्ति ही मेरा लक्ष्य है।

यह सुनकर बाँस द्वार के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, "हे महान गुरु गौतम!... हम गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाते हैं। आज से भगवान (बुद्ध) हमें जीवन भर के लिए शरण लेने आए गृहस्थ अनुयायियों के रूप में याद रखें।"

1004. ईंटों का हॉल (1) (गिंजकवासथा1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 330 एक बार भगवान (बुद्ध) नातिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, सलहा नामक भिक्षु का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? नंदा नामक भिक्षुणी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? सुदत्त नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? सुजाता नामक स्त्री गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?"

"आनंद, भिक्षु सलहा, जिनका निधन हो गया, ने इसी जीवन में विकारों के नाश (खया/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (चेतो-विमुक्ति) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न-विमुक्ति) द्वारा मुक्ति प्राप्त की, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया। भिक्षुणी नंदा, जिनका निधन हो गया, ने पांच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ स्वतः जन्म लेने वाले बन गए, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया। सुदत्त, जिनका निधन हो गया, ने तीन बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के कम होने के साथ एक बार पुनर्जन्म लेने वाले बन गए, जो इस लोक में केवल एक बार फिर (सकदागामी) आकर दुखों का अंत करेंगे।" 331 सुजाता नाम की जिस स्त्री का निधन हो गया, उसने तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ सोतापण (धारा-प्रवेशक) का दर्जा प्राप्त कर लिया था, वह अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य बना चुकी थी।

"आनंद, मनुष्य की मृत्यु होना आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु यदि प्रत्येक बार किसी की मृत्यु होने पर तुम मेरे पास आकर इस विषय पर प्रश्न करो, तो तथागत के लिए यह कष्टदायी होगा। इसलिए, आनंद, मैं तुम्हें धर्म का दर्पण नामक धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि वह चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह कह सकता है:
'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूं, पशु लोक से मुक्त हो चुका हूं, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूं, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूं, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूं, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूं। मैं सोतापण (धारा-प्रवेशक) हूं, अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य बना चुका हूं।'

"और हे आनंद, वह धम्म व्याख्या क्या है, धम्म का दर्पण क्या है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि चाहे तो, स्वयं अपने बारे में इस प्रकार कह सकता है? हे आनंद, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धम्म में ... संघ (भाईचारे) में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है..." जिससे समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है।

"आनंद, यही वह धम्म व्याख्या है, धम्म का दर्पण है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि चाहे तो, स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ... मैं सोतापन्न हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं, नियति में स्थिर, और ज्ञान ही मेरा गंतव्य है।"

1005. ईंटों का हॉल (2) (गिंजकवासथा2)
एक तरफ बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"पूज्यवर, अशोक नामक भिक्षु का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक भिक्षुणी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक स्त्री गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा?"

"आनंद, भिक्षु अशोक, जो अपने सभी दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इस जीवन में ही मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति संस्कृत) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्ति प्राप्त की, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया... (बाकी सब पिछले सूत्र 1004 के समान है)...

"आनंद, यह वह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या है, धम्म का दर्पण है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि वह चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ... मैं सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) हूँ, अब पाताल लोक से बंधा नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और ज्ञान ही मेरा गंतव्य है।'"

1006. ईंटों का हॉल (3) (गिंजकवासथा3)
एक तरफ बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"पूज्यवर, नाटिका में कक्कटा नामक पुरुष अनुयायी की मृत्यु हो गई है। उनका गंतव्य क्या है, उनका अगला जन्म क्या होगा? नाटिका में कलिंग, निकता, कटिसाहा, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा नामक पुरुष अनुयायी की भी मृत्यु हो गई है। उनका गंतव्य क्या है, उनका अगला जन्म क्या होगा?"

"आनंद, जो कक्कटा नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी थे और जिनकी मृत्यु हो गई, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) से वे स्वतः जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त कर चुके थे, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार कलिंग, निकता, कटिसाहा, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी भी इसी प्रकार

मृत हुए। नाटिका में पचास से अधिक पुरुष गृहस्थ अनुयायी भी पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल) से मुक्त होकर स्वतः जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त कर चुके थे, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया था।" नाटिका में मरने वाले नब्बे वर्ष से अधिक आयु के पुरुष गृहस्थ अनुयायी, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन गए हैं, जो इस संसार में केवल एक बार फिर आकर दुखों का अंत करेंगे। नाटिका में मरने वाले पाँच सौ छह पुरुष गृहस्थ अनुयायी, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, सोतापन्न बन गए हैं, जो अब परलोक से बंधे नहीं हैं, और ज्ञानोदय को अपने गंतव्य के रूप में लेकर नियति में स्थिर हो गए हैं। 332

"आनंद, मनुष्य की मृत्यु होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु यदि प्रत्येक बार किसी की मृत्यु होने पर तुम मेरे पास आकर इस विषय पर प्रश्न करो, तो तथागत को कष्ट होगा। इसलिए, आनंद, मैं तुम्हें धर्म का दर्पण नामक धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा...

" "और आनंद, वह धर्म की व्याख्या, धर्म का दर्पण क्या है...?"

(सूत्र 1004 का शेष भाग)

(ii) हजार गुना राजकारमा उद्यान

1007 हजार भिक्षुणियों का संघ (सहसभिक्खुनीसंघ)

एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में राज उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक हजार भिक्षुणियों का एक संघ भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुणियों से कहा:
"भिक्षुणियों, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त है, सोतापन्न है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं है, जिसका भाग्य स्थिर है, और जिसका गंतव्य ज्ञान है। वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुणियों, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ में... उनमें श्रेष्ठ पुरुषों के प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"भिक्षुण शिष्या, हे भिक्षुणियों, जो इन चार धर्मों को धारण करती है, वह धारा में प्रवेश करने वाली है, अधोलोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य है।"

1008. ब्राह्मण

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ब्राह्मण 'ऊपर की ओर जाने' नामक एक मार्ग का प्रचार करते हैं। वे शिष्य को इस प्रकार उपदेश देते हैं: 'हे हे जन, सुबह जल्दी उठो और पूर्व दिशा की ओर मुख करके चलो। किसी गड्ढे, चट्टान, पेड़ के ठूंठ, काँटेदार जगह, गाँव के तालाब या गंदे नाले से मत बचो। तुम जहाँ भी गिरोगे, मृत्यु को स्वीकार करोगे। इसलिए, हे जन, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, तुम्हारा पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में होगा।

" अब ब्राह्मणों, भिक्षुओं का यह अभ्यास बचकाना (नासमझ) मार्ग है, मूर्खतापूर्ण मार्ग है; यह निर्विरोध, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। लेकिन मैं, भिक्षुओं, परम पूज्य के अनुशासन में ऊपर की ओर जाने वाले मार्ग की घोषणा करता हूँ, वह मार्ग जो पूर्ण घृणा, वैराग्य, निश्चिंतता, शांति, दिव्य ज्ञान, प्रबुद्धता और निर्वाण की ओर ले जाता है।

"और हे भिक्षुओं, वह ऊपर की ओर जाने वाला मार्ग क्या है, जो पूर्ण घृणा (निब्बिद) ... निर्वाण की ओर ले जाता है? (जैसा कि 997 में है) यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ (भाईचारा) में... उनमें श्रेष्ठों के प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"यह, भिक्षुओं, ऊपर की ओर जाने वाला वह मार्ग है, जो पूर्ण वैराग्य, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।"

1009. वरिष्ठ भिक्षु आनंद

एक बार पूज्य आनंद और पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा,

“मित्र आनंद, कितने धर्मों का त्याग करने और कितने धर्मों का पालन करने के कारण भगवान (बुद्ध) ने लोगों के बारे में कहा है: 'यह सोतापन्न है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं है, जिसका भाग्य निश्चित है और जिसका गंतव्य ज्ञान है'?”

"मित्र, चार धर्मों के त्याग और चार धर्मों के पालन के कारण ही भगवान (बुद्ध) लोगों को ऐसा घोषित करते हैं। वे चार धर्म कौन से हैं?

मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में बुद्ध के प्रति जो अविश्वास होता है, वह किसी में नहीं होता, जिसके कारण शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद वह दुख के लोक में, बुरे भाग्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।" और व्यक्ति को बुद्ध में वह दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है जो एक ज्ञानी शिष्य को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है: भगवान (बुद्ध) देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। (जैसा कि 997 में है) '

व्यक्ति को धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति वह अविश्वास नहीं होता जो एक अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। और व्यक्ति को धम्म में वह दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है जो एक ज्ञानी शिष्य को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह से व्याख्या की गई है ... जिसे बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना चाहिए।'

"जिस प्रकार का अविश्वास अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में संघ के प्रति होता है, वह उसमें नहीं होता; इसी अविश्वास के कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में होता है। वहीं, जिस प्रकार का दृढ़ विश्वास ज्ञानी शिष्य में होता है, वही उसमें संघ के प्रति होता है; इसी कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्ग लोक में होता है। भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण करता है... संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।"

"मित्र, मनुष्य में वह अनैतिकता नहीं होती जो अज्ञानी सांसारिक में पाई जाती है, जिसके कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में होता है। और मनुष्य में वे गुण होते हैं जो ज्ञानी शिष्य में पाए जाते हैं, जिसके कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्ग लोक में होता है: वे गुण जो श्रेष्ठों को प्रिय हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"मित्र, इन्हीं चार धर्मों के त्याग और इन्हीं धर्मों के पालन के कारण भगवान (बुद्ध) ने लोगों के बारे में कहा है: 'यह सोतापन्न है, पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और इसका गंतव्य ज्ञान है।'"

1010. बुरी नियति का भय (1) (दुग्गतिभय1 सं. दुर्गति-भाय)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) का पालन करता है, बुरे भाग्य के भय से मुक्त हो जाता है। वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) में ... संघ (भाईचारे) में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है। वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों का पालन करता है, बुरे भाग्य के भय से मुक्त हो जाता है।

1011. बुरी नियति में गिरने का भय (2) (दुग्गतिविनिपताभया)
"भिक्षुओं, चार धर्मों का ज्ञाता श्रेष्ठ शिष्य परलोक के भय से मुक्त हो जाता है। वे चार धर्म कौन से हैं?"

(पिछली सूत्र और 997 में दिए गए विवरण के अनुसार पूर्ण)

1012. मित्र और सहकर्मी (1) (मिट्टामक्का1)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो इस बात से अवगत हैं कि आपकी बात सुनी जानी चाहिए - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - आप उन्हें सोतापत्ति (धारा-प्रवेश) के चार कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) आपको उन्हें बुद्ध में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' आपको उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में ... संघ में ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों में, अटूट ... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाले दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए।

जिन पर आपको दया आती है ... आप उन्हें धारा-प्रवेश के इन चार कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।"

1013. मित्र और सहकर्मी (2) (मिट्टामक्का1)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो इस बात से अवगत हैं कि आपकी बात सुनी जानी चाहिए - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - उन्हें आप सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार कारकों) में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) आपको उन्हें बुद्ध में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए: भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" "

भिक्षुओं, चार प्रमुख तत्वों (धातु) - पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व - में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाले श्रेष्ठ शिष्य में परिवर्तन नहीं हो सकता। परिवर्तन यह है कि बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाला श्रेष्ठ शिष्य नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म ले। यह असंभव है।

आपको उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में, संघ (भाईचारे) में, श्रेष्ठों को प्रिय गुणों में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और उन्हें समाधि की अवस्था की ओर ले जाना चाहिए।"

भिक्षुओं, चारों महातत्वों में परिवर्तन हो सकता है... परन्तु उन श्रेष्ठ शिष्यों में परिवर्तन नहीं हो सकता जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त हैं। परिवर्तन यह है कि श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त हैं, नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लें। यह असंभव है।

जिन पर आपको दया आती है... उन्हें आप इन चार सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और उन्हें स्थापित करें।

1014. देवों का दर्शन (1) (देवचरिका1)
श्रावस्ती 335 को, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेज़ी से फैलाता या समेटता है, वैसे ही पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से विलीन हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब तावतिंसा स्वर्ग के कई देवता पूज्य महामोग्गलाना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। पूज्य महामोग्गलाना ने उन देवताओं से कहा:

"हे मित्रों, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि (997 में) 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"मित्रों, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना ... संघ में विश्वास रखना ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।" "हे मोग्गलाना

, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना ... धम्म में विश्वास रखना ... संघ (भाईचारे) में विश्वास रखना ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है।" श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्रिय गुणों के कारण, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक अच्छे गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

1015. देवों का दर्शन (2) (देवकारिका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 1014 के समान है, सिवाय इसके कि जहाँ कहीं भी "अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म लेते हैं" लिखा है, वर्तमान सूत्र में "अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म ले चुके हैं" लिखा है।)

1016. देवों का दर्शन (3) (देवचरिका3)
फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेजी से फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस समेट लेता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब तावतिंसा स्वर्ग के कई देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उन देवताओं से कहा:

"हे मित्रों, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि (997 में) 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।

"हे मित्रों, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना ... संघ (भाईचारा) में विश्वास रखना ... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।" "

हे महोदय, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना ... धम्म में विश्वास रखना ... संघ में विश्वास रखना ... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।"

(iii) सरानिवग्गो
1017. महानामा (1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे पूज्यवर, यह कपिलवस्तु समृद्ध, घनी आबादी वाला, भीड़भाड़ वाला और संकरी सड़कों वाला है। 336 संध्या पर, जब मैं भगवान (बुद्ध) या आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन के बाद कपिलवस्तु में प्रवेश कर रहा होता हूँ, तो मुझे एक भटका हुआ हाथी, एक भटका हुआ घोड़ा, एक भटका हुआ रथ, एक भटकी हुई गाड़ी और एक भटका हुआ आदमी मिलता है। 337 उस समय, हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है, धर्म (मार्ग, नियम) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है, संघ (भाईचारे) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'यदि इस क्षण मेरी मृत्यु हो जाए, तो मेरा गंतव्य क्या होगा, मेरा भविष्य का पुनर्जन्म क्या होगा?'”

“महोदय, भयभीत मत हो! महानामा, भयभीत मत हो! तुम्हारी मृत्यु से मुझे कोई हानि नहीं होगी।” यदि आप बुरे हैं, तो आपकी मृत्यु बुरी नहीं होगी। 338 जब किसी व्यक्ति का मन लंबे समय तक आस्था, सद्गुण (शील), ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सुदृढ़ हो जाता है, तो यहीं कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, सियार या विभिन्न प्राणी उसके शरीर को खा जाते हैं, जो रूप से बना होता है, चार महान तत्वों (धातु) से निर्मित होता है, माता-पिता से उत्पन्न होता है, चावल और दलिया से बना होता है, अनित्य (अनित्य) के अधीन होता है, घिसने और मिटने के अधीन होता है, टूटने और बिखरने के अधीन होता है। परन्तु उसका मन, जो लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सुदृढ़ हो जाता है - जो ऊपर की ओर जाता है, विशिष्टता की ओर जाता है। 339

"मान लीजिए, महानामा, एक आदमी घी या तेल के बर्तन को पानी के गहरे कुंड में डुबोकर तोड़ देता है। इसके सभी टुकड़े और अंश नीचे डूब जाएंगे, लेकिन वहां का घी या तेल ऊपर उठ जाएगा। ठीक वैसे ही, महानामा, जब किसी व्यक्ति का मन लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मजबूत होता है, तो यहीं कौवे... या विभिन्न जीव उसके शरीर को खा जाते हैं... लेकिन उसका मन, जो लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मजबूत हुआ है - वह ऊपर उठता है, विशिष्टता की ओर जाता है।

"महोदय, डरो मत! महानामा, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी, तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।"

1018. महानामा (2)
(ऊपर से नीचे तक:)

"महोदय, डरो मत! महानामा, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी, तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा। एक श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त होता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है। वे चार कौन से हैं? यहाँ, महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धर्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से अटूट रूप से युक्त है... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

मान लो, महानामा, एक वृक्ष पूर्व की ओर झुका हुआ है। यदि इसे जड़ से काट दिया जाए, तो यह किस दिशा में गिरेगा? "

जिस भी दिशा में यह झुका हुआ हो, आदरणीय महोदय, उसी दिशा में गिरेगा।"

"उसी प्रकार, हे महानामा, इन चारों धर्मों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य निर्वाण की ओर झुका हुआ है।"

1019. गोधासक्का
कपिलवस्तु में, महानामा शाक्य ने गोधा शाक्य के पास जाकर उनसे कहा, "हे गोधा, किसी व्यक्ति को सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) के रूप में पहचानने के लिए उसमें कितने धर्म (गुण, नियम) होने चाहिए? वह व्यक्ति पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानता है।" "हे

महानामा, जब किसी व्यक्ति में तीन धर्म होते हैं, तो मैं उसे सोतापन्न मानता हूँ, वह पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानता हूँ।

वे तीन कौन से हैं? यहाँ, महानामा (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास रखता है। जब किसी व्यक्ति में ये तीन धर्म होते हैं, तो मैं उसे सोतापन्न मानता हूँ... जिसका गंतव्य ज्ञान प्राप्ति है। लेकिन, महानामा, किसी व्यक्ति को सोतापन्न मानने के लिए उसमें कितने धर्म होने चाहिए?

"हे गोधा, जब किसी व्यक्ति में चारों धर्म होते हैं, तो मैं उसे धारा में प्रवेश करने वाला मानता हूँ... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति है। वे कौन से चार धर्म हैं? यहाँ, गोधा (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त है, जो अटूट रूप से समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। जब किसी व्यक्ति में ये चारों धर्म होते हैं, तो मैं उसे धारा में प्रवेश करने वाला मानता हूँ... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति है।"

"रुको, महानामा! रुको, महानामा! केवल भगवान (बुद्ध) ही जान सकते हैं कि उसमें ये धर्म हैं या नहीं।"

"आओ, गोधा, हमें भगवान (बुद्ध) के पास जाना चाहिए। उनके पास जाकर हम उन्हें इस विषय की सूचना देंगे।"

तब शाक्य महानामा और शाक्य गोधा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब शाक्य महानामा ने उनकी बातचीत का वर्णन करते हुए कहा:

"हे पूज्यवर, धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ दूसरा पक्ष ले सकता है। भगवान (बुद्ध) जो भी पक्ष लेंगे, मैं भी वही पक्ष लूंगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे विश्वासवान व्यक्ति के रूप में याद रखें। 340

"हे पूज्यवर, धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ एवं भिक्षुणी संघ दूसरा पक्ष ले सकते हैं... भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ एवं पुरुष अनुयायी दूसरा पक्ष ले सकते हैं... भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ, पुरुष अनुयायी एवं स्त्री अनुयायी दूसरा पक्ष ले सकते हैं। भगवान (बुद्ध) जिस भी पक्ष का अनुसरण करेंगे, मैं भी उसी पक्ष का अनुसरण करूंगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे आत्मविश्वासी व्यक्ति के रूप में याद रखें।

"हे पूज्यवर, यहाँ धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं, और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी, स्त्री गृहस्थ अनुयायी, और यह संसार अपने देवों (देवदूतों), मार (शैतान), और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), इस पीढ़ी के तपस्वियों और ब्राह्मणों, देवों और मनुष्यों सहित, दूसरा पक्ष ले सकते हैं। भगवान (बुद्ध) जो भी पक्ष लेंगे, मैं भी वही पक्ष लूँगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे विश्वासवान व्यक्ति के रूप में याद रखें।"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "हे गोधा, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप शाक्य महानामा के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे पूज्यवर, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं शाक्य महानामा के बारे में केवल वही कहूँगा जो अच्छा और अनुकूल हो।" 342 [375]

1020. सरनानिसाक्का (1)
कपिलवस्तु में। उस अवसर पर शाक्य शरनानी 343 की मृत्यु हो गई थी, और भगवान (बुद्ध) ने उन्हें परलोक से मुक्त, नियति में स्थिर और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य घोषित किया था। तब अनेक शाक्य एकत्रित होकर इस पर शोक व्यक्त करने लगे, बड़बड़ाने लगे और शिकायत करने लगे, "यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! यह तो सचमुच अद्भुत है, महाराज! अब यहाँ कौन परलोक

(सोतापन्न) नहीं बनना चाहेगा जब भगवान (बुद्ध) ने शाक्य शरनानी को मृत्यु के बाद परलोक घोषित कर दिया है... और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य बताया है? शाक्य शरनानी प्रशिक्षण के लिए बहुत कमजोर थे; उन्होंने मादक पेय पिया था!" 344

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी लंबे समय तक बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण में रहा हो, तो वह परलोक कैसे जा सकता है? क्योंकि यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कहे: 'वह एक गृहस्थ अनुयायी था जिसने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी,' तो यह बात शाक्य सरकानी के बारे में सही कही जा सकती है। महानामा, शाक्य सरकानी ने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी, तो वह परलोक कैसे जा सकता है?

"यहाँ, महानामा, किसी व्यक्ति को बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' और यही बात धम्म और संघ में भी लागू होती है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं, और उन्होंने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त कर ली है। विकारों के नाश (खया/क्षय) द्वारा इसी जीवन में वे विकारों से मुक्त मन की मुक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं, अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति में, जिसे वे स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से अनुभव करते हैं। यह व्यक्ति, महानामा, नरक, पशु जगत और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है। 345

"हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) से परिपूर्ण है, फिर भी उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) से वह स्वतः जन्म लेने वाला बन गया है, और उस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना ही निर्वाण प्राप्त करने वाला है। हे महानामा, यह व्यक्ति भी नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।"

"हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेगा। हे महानामा, यह व्यक्ति भी नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक से, बुरे गंतव्यों से, पाताल लोक से मुक्त है।

हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले नहीं हैं, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले हैं, और न ही उन्होंने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त की है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के साथ वे सोतापन्ना हैं, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, नियति में स्थिर हैं, और ज्ञान ही उनका गंतव्य है। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास नहीं रखता। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) या तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, और उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। फिर भी, उसमें ये पाँच धम्म (गुण, नियम) हैं: विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति, और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं को वह पर्याप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) के साथ मनन करने के बाद स्वीकार करता है। यह व्यक्ति भी, महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशु लोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में। 346

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास नहीं रखता।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले या तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले नहीं हैं, और उन्होंने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उनमें ये पाँच धर्म हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। और तथागत में उनकी पर्याप्त आस्था है, उनके प्रति पर्याप्त भक्ति है। यह व्यक्ति भी, हे महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में, न पाताल लोक में।

"महानमा, यदि ये महान साल वृक्ष, अच्छी और बुरी बातों को समझ सकते, तो मैं इन्हें सोतापन्ना घोषित करता, जो अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानते। तो फिर, शाक्य सरकानी, तो और भी अधिक? महामा, शाक्य सरकानी ने अपनी मृत्यु के समय प्रशिक्षण ग्रहण किया था।" 347

1021. सरनानिसाक्का (2)
कपिलवस्तु में। उस अवसर पर शाक्य सरकानी का निधन हो गया था, और भगवान (बुद्ध) ने उन्हें परलोक से मुक्त, नियति में स्थिर और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य घोषित किया था। तब अनेक शाक्य एकत्रित होकर इस पर शोक व्यक्त करने लगे, बड़बड़ाने लगे और शिकायत करने लगे, “यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! यह तो सचमुच अद्‌भुत है, महाराज! अब यहाँ कौन परलोक (सोतापन्न) नहीं होगा जब भगवान (बुद्ध) ने शाक्य सरकानी को उनकी मृत्यु के बाद परलोक घोषित कर दिया है... और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य बताया है? शाक्य सरकानी तो प्रशिक्षण पूरा करने में असफल रहे थे!” 348

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी लंबे समय तक बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण लेता है, तो वह पाताल लोक में कैसे जा सकता है?... महानामा, शाक्य सरकानी ने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी, तो वह पाताल लोक में कैसे जा सकता है?
(कृपया 997 और 1020 देखें)
"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति पूरी तरह से बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है, इस प्रकार: 349 भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" और यही बात धम्म और संघ के संबंध में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला, तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला है, और उसने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त कर ली है। विकारों के नाश (खय/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में वह मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करता है। यह व्यक्ति, महानामा, नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त हो जाता है।

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, फिर भी उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के साथ वह इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त करने वाला, या मृत्यु के समय अंतिम ज्ञान प्राप्त करने वाला, या बीच में ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, या मृत्यु के पहुँचते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, या बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला, या प्रयास सहित निर्वाण प्राप्त करने वाला, या अकनित्थ लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में अग्रसर होने वाला बन गया है। 350 यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।"

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेगा। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त है।

यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले नहीं हैं, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले हैं, और उन्होंने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के साथ वे धारा-प्रवेशक हैं, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, नियति में स्थिर हैं, और ज्ञान ही उनका गंतव्य है। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त है।

"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति बुद्ध के प्रति पूर्णतः समर्पित नहीं है और उन पर पूर्ण विश्वास नहीं रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" और इसी प्रकार धम्म और संघ के संदर्भ में, वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उसमें ये पाँच धर्म (गुण, नियम) हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं को वह पर्याप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) के साथ मनन करने के बाद ग्रहण करता है। यह व्यक्ति भी, महानामा, वह है जो न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में।

"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति बुद्ध के प्रति पूर्णतः समर्पित नहीं है और उन पर पूर्ण विश्वास नहीं रखता है... और इसी प्रकार धम्म और संघ के संदर्भ में, वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उसमें ये पाँच धर्म हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। और उसे तथागत पर पूर्ण विश्वास है, उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा है। यह व्यक्ति भी, महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुखों के लोक में, न बुरे गंतव्यों में, न पाताल लोक में।

"मान लीजिए, महानामा, एक बंजर खेत है, एक खराब ज़मीन है, जहाँ पेड़-पौधों के ठूंठ साफ नहीं किए गए हैं, और वहाँ बोए गए बीज टूट-फूट जाएँ, हवा और धूप से खराब हो जाएँ, बंजर हो जाएँ, ठीक से न बोए जाएँ, और आसमान से पर्याप्त बारिश न हो। क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे महानामा, यहाँ एक धम्म की व्याख्या गलत तरीके से की गई है, उसका प्रचार गलत तरीके से किया गया है, वह मुक्तिदायक नहीं है, शांति के लिए अनुकूल नहीं है, और उसका प्रचार एक अपूर्ण व्यक्ति द्वारा किया गया है। मैं कहता हूँ, यह खराब खेत के समान है। और शिष्य उस धम्म में निवास करता है, उसके अनुसार अभ्यास करता है, उचित अभ्यास करता है, और तदनुसार आचरण करता है। मैं कहता हूँ, यह खराब बीज के समान है।

"मान लीजिए, हे महानामा, एक अच्छा खेत है, एक अच्छी जमीन है, ठूंठों से अच्छी तरह साफ की गई है, और वहाँ बोए गए बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, हवा और धूप से अप्रभावित, उपजाऊ, सुरक्षित रूप से बोए गए हैं, और आकाश से उचित वर्षा हो रही है। क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे महानामा, यहाँ एक धम्म की व्याख्या अच्छी तरह से की गई है, उसका प्रचार अच्छी तरह से किया गया है, वह मुक्तिदायक है, शांति के लिए अनुकूल है, और उसका प्रचार एक पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा किया गया है। मैं कहता हूँ, यह अच्छे खेत के समान है।" और शिष्य उस धम्म में निवास करता है, उसके अनुसार अभ्यास करता है, उचित अभ्यास करता है, और उसी के अनुरूप आचरण करता है। मैं कहता हूँ, यह अच्छे बीज के समान है। तो फिर, शाक्य सरकानी कितना अधिक श्रेष्ठ होगा? महानामा, शाक्य सरकानी वह था जिसने मृत्यु के समय प्रशिक्षण पूर्ण किया।

1022. अनाथपिंडिका (1)
सावत्थी में। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार थे। तब उन्होंने एक व्यक्ति से कहा,

“हे जनमानस, आदरणीय सारिपुत्त के पास जाइए, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम कीजिए और कहिए:
‘हे जनमानस, गृहस्थ अनाथपिंडिका बीमार हैं, गंभीर रूप से बीमार हैं; वे आदरणीय सारिपुत्त के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।’ फिर कहिए: ‘हे जनमानस, यदि आदरणीय सारिपुत्त करुणावश गृहस्थ अनाथपिंडिका के निवास पर आएं तो अच्छा होगा।’”

“जी, स्वामी,” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया और वह आदरणीय सारिपुत्त के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और अपना संदेश दिया। आदरणीय सारिपुत्त ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ गृहस्थ अनाथपिंडिका के निवास पर गए। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और गृहस्थ अनाथपिंडिका से बोले, “आशा है आप स्वस्थ हैं, गृहस्थ, आप ठीक हो रहे हैं। आशा है आपकी वेदनाएँ कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, बढ़ना नहीं।” अनाथपिंडिका ने कहा, “मैं

स्वस्थ नहीं हूँ, पूज्यवर, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मेरी वेदनाएँ तीव्र हो रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, कम होना नहीं।”

"हे गृहस्थ, बुद्ध के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण शरीर के क्षत-विक्षत होने पर वह मृत्यु के बाद दुख के लोक में, बुरे भाग्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। और बुद्ध के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: (जैसा कि 997 और 1020 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" जैसे ही तुम अपने भीतर बुद्ध के प्रति इस दृढ़ विश्वास का चिंतन करोगे, तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

"हे गृहस्थ, धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह ... दुख के लोक में ... नरक में पुनर्जन्म लेता है। और धम्म के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने अच्छी तरह से की है ... बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना चाहिए।" जब आप अपने भीतर धम्म में दृढ़ विश्वास का विचार करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो सकते हैं।

हे गृहस्थ, संघ के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। और संघ के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... संसार के लिए पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।' अपने मन में संघ के प्रति इस दृढ़ विश्वास का चिंतन करते ही तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, वह अनैतिकता मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होती है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। और तुममें वे गुण हैं जो श्रेष्ठों को प्रिय हैं, अटूट रूप से समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। अपने मन में उन गुणों का चिंतन करते ही तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, आपमें वह गलत दृष्टिकोण नहीं है जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। आपका दृष्टिकोण सही है। जब आप अपने भीतर उस सही दृष्टिकोण का चिंतन करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, आपमें वह गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान, गलत समाधि अवस्था, गलत ज्ञान, गलत मुक्ति (विमुक्ति) नहीं है जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। आपका इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था, सही ज्ञान और सही मुक्ति है। 351 "जब आप अपने भीतर उस सही मुक्ति का विचार करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो जाएँगे।"

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका के कष्ट तुरंत दूर हो गए।

फिर गृहस्थ अनाथपिंडिका ने अपने थाले से पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद को भोजन परोसा। जब पूज्य सारिपुत्त ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और हाथ-काँटा धो लिया, तो गृहस्थ अनाथपिंडिका एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए, और पूज्य सारिपुत्त ने इन श्लोकों से उनका धन्यवाद किया:

"जब किसी को तथागत में
अटूट और दृढ़ विश्वास होता है,

और उसका आचरण शील पर आधारित होता है, तो वह
श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है;

"जब किसी को संघ में विश्वास होता है
और उसका दृष्टिकोण सुधर जाता है,

तो लोग कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,
उसका जीवन व्यर्थ नहीं है।

"इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को
बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए, विश्वास और सद्गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, धम्म के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति

समर्पित होना चाहिए ।”

तब पूज्य सारिपुत्त ने गृहस्थ अनाथपिंडिका को इन श्लोकों से धन्यवाद देकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया।

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "आनंद, तुम दिन के मध्य में कहाँ से आ रहे हो?"

"पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका को पूज्य सारिपुत्त ने ऐसा उपदेश दिया है।"

"आनंद, सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, सारिपुत्त को महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त है, क्योंकि वे दस गुणों में सोतपत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के चार कारकों का विश्लेषण कर सकते हैं।"

1023. अनाथपिंडिका (2)
(इस सूत्र की शुरुआत पिछले सूत्र की तरह ही है, सिवाय इसके कि अनाथपिंडिका आनंद को आमंत्रित करते हैं, नीचे तक:)

"हे पूज्यवर, मैं सहन नहीं कर पा रहा/रही हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही मुख्य कारण है, उनका कम होना नहीं।"

"गृहस्थ, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए भय, कंपकंपी और मृत्यु का डर है। 352 वे चार क्या हैं?

"यहाँ, गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को बुद्ध के प्रति अविश्वास है, और जब वह अपने भीतर बुद्ध के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो भय, कंपकंपी और मृत्यु का डर उत्पन्न होता है।"

"हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति अविश्वास होता है, और जब वह अपने भीतर धम्म के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को संघ (भाईचारे) के प्रति अविश्वास होता है, और जब वह अपने भीतर संघ के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अनैतिक होता है, और जब वह अपने भीतर उस अनैतिकता पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

इन चारों धर्मों से युक्त अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।"

"गृहस्थ, चार धर्मों से युक्त ज्ञानी शिष्य को मृत्यु का कोई भय, कोई घबराहट या डर नहीं होता। वे चार धर्म कौन से हैं?

यहाँ, गृहस्थ, ज्ञानी शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। जब वह अपने भीतर बुद्ध में इस दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का कोई भय, घबराहट या डर नहीं होता।

फिर, गृहस्थ, ज्ञानी शिष्य धर्म में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: धर्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने अच्छी तरह से की है ... जिसे ज्ञानी स्वयं अनुभव कर सकते हैं।" जब वह अपने भीतर धम्म में दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

"हे गृहस्थ, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य संघ में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।" जब वह अपने भीतर संघ में दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

"हे गृहस्थ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठों को प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान रहते हैं... जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। जब वह अपने भीतर श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का चिंतन करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

इन चारों धर्मों से युक्त उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य को मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।"

"मैं भयभीत नहीं हूँ, आदरणीय आनंद। मुझे क्यों भयभीत होना चाहिए? क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास है। और जहाँ तक भगवान (बुद्ध) द्वारा गृहस्थों को सिखाए गए इन प्रशिक्षण नियमों का संबंध है, तो मुझे अपने भीतर कोई उल्लंघन नहीं दिखाई देता।" "

यह आपके लिए लाभ है, गृहस्थ! यह आपके लिए उत्तम लाभ है, गृहस्थ! आपने सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) का फल प्रकट किया है।"

1024. भयानक वैमनस्य (1) (भयवेरुपसन्त1)
[या अनाथपिंडिका (3)] (यह सुत्त एसएन2:41 या संयुत्त12:41 के समान है)

1025. भयानक वैमनस्य (2) (भयवेरुपसन्त2)
सावत्थी में, कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और एक तरफ बैठ गए। जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

(जैसा कि पिछले सूत्र में है; यह SN2:42 या Samyutta12.42 के समान है)

1026. नंदका लिच्चवी
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवियों के मंत्री नंदक भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"नंदक, तुम एक श्रेष्ठ शिष्य हो जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से परिपूर्ण हो, सोतापन्न हो, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हो, नियति में स्थिर हो, और ज्ञान ही तुम्हारा लक्ष्य है।" वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, नंदक (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते हुए कहता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ (भाईचारा) में... उनमें श्रेष्ठ पुरुषों के प्रिय गुण अटूट रूप से मौजूद हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं। इन चार धर्मों को धारण करने वाला श्रेष्ठ शिष्य धारा-प्रवेशक होता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, जिसका भाग्य स्थिर होता है और जिसका गंतव्य ज्ञान होता है।

"इसके अलावा, नंदक, इन चार धर्मों को धारण करने वाला श्रेष्ठ शिष्य दीर्घायु होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह सौंदर्य से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह सुख से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह प्रसिद्धि से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह संप्रभुता से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। अब मैं यह बात नंदक, किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण से सुने बिना कह रहा हूँ; बल्कि, मैं वही कहता हूँ जो मैंने स्वयं जाना, देखा और समझा है।"

यह सुनकर एक व्यक्ति ने लिच्छवियों के मंत्री नंदका से कहा, "महाराज, आपके स्नान का समय हो गया है।" नंदका

ने कहा, "अब इस बाहरी स्नान की आवश्यकता नहीं है। यह आंतरिक स्नान ही पर्याप्त है, अर्थात् भगवान (बुद्ध) में विश्वास।"

(iv) दिव्य-योग्य धारा की धाराएँ (पुन्नभिसंदवग्गो सं. पुण्य..)
1027. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (पुन्नभिसन्द1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन सी धाराएँ हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' यह पुण्य की पहली धारा है, लाभकारी (कुशल) धारा है, सुख के पोषक तत्व हैं।"

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि इस प्रकार है: धम्म का भगवान (बुद्ध) द्वारा सुस्पष्ट वर्णन किया गया है... जिसे ज्ञानी स्वयं अनुभव कर सकते हैं। यह पुण्य का दूसरा स्रोत है...

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ (भाईचारे) में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि इस प्रकार है: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... जो संसार के लिए पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है। यह पुण्य का तीसरा स्रोत है...

"हे गृहस्थ, एक दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण रहता है, जो अटूट होते हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। यह पुण्य का चौथा स्रोत है...

"ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत, सुख के पोषक तत्व।"

1028. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (पुन्नभिसन्द2)
भिक्षुओं, पुण्य के ये चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन से हैं?

(जैसा कि 997 में पहले तीन के लिए है, चौथा इस प्रकार

है:) "फिर से, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य घर में रहता है, जिसका मन कंजूसी के दाग से मुक्त होता है, जो उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, दान देने और बांटने में आनंदित होता है। यह पुण्य का चौथा स्रोत है।

ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं।"

1029. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (पुन्नभिसन्द3)
भिक्षुओं, पुण्य के ये चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन से हैं?

(जैसे पहले तीन के लिए 997)

भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है, उसे उत्पत्ति और मृत्यु से संबंधित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, जिससे दुख का पूर्ण नाश होता है। यह पुण्य का चौथा स्रोत है...।

ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं।

1030. दिव्य अवस्थाएँ (1) (देवपद1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, देवताओं की ये चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण और उनके शुद्धिकरण के लिए हैं। 353 वे चार क्या हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) ... देवताओं
और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" यह देवताओं की पहली दिव्य अवस्था है...

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य को धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास होता है... संघ (भाईचारा) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण होता है, जो उसे समाधि की अवस्था तक ले जाते हैं। यह देवताओं की चौथी दिव्य अवस्था है...

"ये देवताओं की चार दिव्य अवस्थाएँ हैं, जो अशुद्ध प्राणियों के शुद्धिकरण और अशुद्ध प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए हैं।"

1031 दिव्य अवस्थाएँ (2) (देवपद2)
"भिक्षुओं, देवताओं की ये चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण और उनके शुद्धिकरण के लिए हैं। वे चार कौन सी हैं? 354
(जैसा कि 997 में है)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... वह सोचता है: 'देवों की दिव्य अवस्था क्या है?' वह इस प्रकार समझता है: 'मैंने सुना है कि वर्तमान में देवता अहिंसा को सर्वोच्च मानते हैं, और मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। निश्चय ही मैं दिव्य अवस्थाओं में से एक में निवास करता हूँ।' यह देवताओं की पहली दिव्य अवस्था है...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारे) में...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है..." समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हुए। वह सोचता है: 'देवताओं की दिव्य अवस्था क्या है?' वह इस प्रकार समझता है: 'मैंने सुना है कि वर्तमान में देवता अनियंत्रण को सर्वोच्च मानते हैं, और मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। निश्चय ही मैं दिव्य अवस्थाओं में से एक में निवास करता हूँ।' यह देवताओं की चौथी दिव्य अवस्था है...

"ये देवताओं की चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, अपवित्र प्राणियों के पापों के शुद्धिकरण के लिए हैं।"

1032. देवताओं के समान (देवसभाग सं. देव-सा-भाग्य)
भिक्षुओं, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में चार धर्म (गुण, नियम) होते हैं, तो देव प्रसन्न होते हैं और उसकी अपने समान होने की बात करते हैं। वे चार कौन से हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन देवों (देवदूतों) को, जो यहाँ [मानव जगत में] देह त्याग कर वहाँ [स्वर्गिक जगत में] पुनर्जन्म लेकर बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते थे, यह विचार आता है: 'चूंकि श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में वही दृढ़ विश्वास रखता है जो हमने वहाँ देह त्याग कर यहाँ पुनर्जन्म लेने पर रखा था, वह देवों के समक्ष आएगा।'

"भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह परम पूज्यों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के लिए सहायक होते हैं। उन देवताओं को, जो इस मानव जगत में देह त्याग कर स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेकर परम पूज्यों के प्रिय गुणों को धारण किए हुए थे, यह विचार आता है: 'चूंकि श्रेष्ठ शिष्य में वही गुण हैं जो हममें थे जब हमने वहां देह त्याग कर यहां पुनर्जन्म लिया था, इसलिए वह देवताओं के समक्ष उपस्थित होगा।'

"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन चारों धर्मों को धारण करता है, तो देवता प्रसन्न होते हैं और उसकी अपने साथ समानता की बात करते हैं।"

1033. महानामा
एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार होता है?"

"महानामा, जब कोई बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण लेता है, तब वह गृहस्थ अनुयायी होता है।"

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार सद्गुण (शील) में सिद्ध होता है?"

"महानामा, जब गृहस्थ अनुयायी जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और मदिरा, मादक पदार्थों और आलस्य (पमाद) का आधार बनने वाले मादक पदार्थों से दूर रहता है, तब वह सद्गुण में सिद्ध होता है।"

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार आस्था में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी आस्थावान व्यक्ति होता है। वह तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इस प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी आस्था में सिद्ध होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार उदारता में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी कंजूसी के दाग से रहित मन से घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला होता है। इस प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी उदारता में सिद्ध होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी ही बुद्धिमान है, वह उत्पत्ति और क्षय के संदर्भ में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त करता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, और दुखों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) की ओर ले जाती है। इस प्रकार गृहस्थ अनुयायी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में सिद्ध हो जाता है।"

1034. वर्षा (वसा सं. वर्षा)
भिक्षुओं, जैसे किसी पर्वत की चोटी पर जब वर्षा की मोटी बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भरने से तालाब भर जाते हैं; इनके भरने से झीलें भर जाती हैं; इनके भरने से नदियाँ भर जाती हैं; इनके भरने से विशाल सागर भर जाता है; ठीक उसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, ये धर्म (गुण, नियम) - बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा) में दृढ़ विश्वास, और श्रेष्ठों को प्रिय सद्गुण - आगे बढ़ते रहते हैं और आगे बढ़कर विकारों के विनाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। 357

1035. कालीगोधा
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर शाक्य स्त्री कालीगोधा के निवास पर गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब शाक्य स्त्री कालीगोधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गोधा, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से परिपूर्ण है, सोतापन्न है, अब पाताल लोक से बंधी नहीं है, नियति में स्थिर है, और उसका गंतव्य ज्ञान है। वे चार क्या हैं?

" यहाँ, गोधा, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखती है, इस प्रकार (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखती है... संघ (भाईचारा) में (जैसा कि 997 में है)... वह कंजूसी के दाग से मुक्त मन से घर में रहती है, उदार, खुले हाथों वाली, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में प्रसन्न होती है।

"हे गोधा, इन चार धर्मों को धारण करने वाली एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या, धारा-प्रवेशित है, अब पाताल लोक से बंधी नहीं है, नियति में स्थिर है, जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धारा-प्रवेश (सोतापत्ति) के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म मुझमें विद्यमान हैं, और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करती हूँ। क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ में दृढ़ विश्वास है। इसके अलावा, मेरे परिवार में जो कुछ भी दान देने योग्य है, वह सब मैं गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों में निःसंकोच बाँट देती हूँ।"

"यह आपके लिए लाभ है, गोधा! यह आपके लिए बहुत अच्छा लाभ है, गोधा! आपने धारा-प्रवेश के फल की घोषणा की है।"

1036. नंदिया
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य नंदीय भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार गुण) पूर्णतः अनुपस्थित हों, तो क्या वह श्रेष्ठ शिष्य आलसी (पमादा) होगा?"

"नंदीय, मैं कहता हूँ कि जिसमें सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार गुण) (जैसा कि 997 में है) पूर्णतः अनुपस्थित हों, वह 'पृथ्वीवासी' है, जो सांसारिकों के समूह में है। परन्तु नंदीय, आलसी और सजग (पमादा) शिष्य कैसे श्रेष्ठ होते हैं, इस विषय पर ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बताऊंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," शाक्य नंदीय ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे नंदीय, आलस्य में रहने वाला (पमादा में) श्रेष्ठ शिष्य कैसे हो सकता है? यहाँ, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि (997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में अपने दृढ़ विश्वास से संतुष्ट होकर, वह दिन में विवेक और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास नहीं करता। जब वह इस प्रकार आलसी अवस्था में रहता है, तो उसे प्रसन्नता नहीं होती। 359 जब प्रसन्नता नहीं होती, तो पीति भी नहीं होती। जब पीति नहीं होती, तो शांति भी नहीं होती। जब शांति नहीं होती, तो वह दुख में लीन रहता है। व्यथित व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में नहीं जाता। जब मन समाधि अवस्था में नहीं होता, तो धम्म प्रकट नहीं होते। क्योंकि धम्म प्रकट नहीं होते, इसलिए उसे 'आलस्य में रहने वाला' माना जाता है।

"फिर से, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ में दृढ़ विश्वास रखता है (जैसा कि 997 में है)... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों (शील) से परिपूर्ण है, जो अटूट हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। श्रेष्ठों को प्रिय उन गुणों (शील) से संतुष्ट होकर, वह दिन में एकांतवास और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास नहीं करता। जब वह इस प्रकार आलसी अवस्था में रहता है, तो उसे कोई आनंद नहीं मिलता... क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट नहीं होतीं, इसलिए उसे 'आलसी अवस्था में रहने वाला' माना जाता है।"

"इस प्रकार, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य आलसी अवस्था (पमादा) में रहने वाला होता है।"

"और हे नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य वह कैसे होता है जो सचेत (अपमदा में) रहता है? यहाँ, नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में अपने उस दृढ़ विश्वास से संतुष्ट न होकर, वह दिन में एकांत (विवेक) और रात में एकांतवास (पतिसल्लना) के लिए और अधिक प्रयास करता है। जब वह इस प्रकार सचेत रहता है, तो प्रसन्नता (पमोज्ज संस्कृत: प्रमुदिता) उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर उसे परमानंद (पीति) प्राप्त होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत (पसाद्ध कायो/पसाद्धि) हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुखम) का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में चला जाता है। जब मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में होता है, तो घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं। क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं, इसलिए उसे 'सचेत (अप्पाद में) रहने वाला' माना जाता है।

"नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है... जिससे समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से संतुष्ट न होकर वह दिन में विवेक और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास करता है। जब वह इस प्रकार सचेत (अपमदा) अवस्था में रहता है, तो प्रसन्नता (पमोज्ज संस्कृत: प्रमुदिता) उत्पन्न होती है... जैसा कि ऊपर बताया गया है... क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं, इसलिए उसे 'सचेत (अपमदा) अवस्था में रहने वाला' माना जाता है।"

"नंदिया, इस प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य सचेत (अपमदा) अवस्था में रहने वाला होता है।"

(v) छंद के साथ दिव्य-योग्यता की धाराएँ (सगाथापुन्नभिसंदा संस। सगाथा-पुण्य..)
1037. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (अभिसन्द1)
(प्रारंभ 1033 के समान है, आगे इस प्रकार जारी है:)

"जब, भिक्षुओं, किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ (कुशल संस्कृत: कुशल) होती हैं, तो उसके पुण्य का माप इस प्रकार लेना आसान नहीं है: 'उसके पुण्य की धारा, कुशल लाभकारी धारा, सुख का पोषण (बस इतना ही है'; बल्कि, इसे अनगिनत, अथाह, विशाल पुण्य के रूप में गिना जाता है।

"भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर में पानी का माप इस प्रकार लेना आसान नहीं है: 'इतने गैलन पानी है,' या 'इतने सौ गैलन पानी है,' या 'इतने हज़ार गैलन पानी है,' या 'इतने लाखों गैलन पानी है,' बल्कि इसे अनगिनत, "जल का असीम, विशाल भंडार; उसी प्रकार, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ होती हैं... तो उसे भी असीम, असीम, विशाल पुण्य भंडार माना जाता है।" भगवान

(बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे अनेक नदियाँ, जिनका उपयोग जनसमूह करते हैं,
बहती हुई अंततः सागर में मिलती हैं।
जल का विशाल भंडार, असीम सागर,
रत्नों के ढेरों का भयानक भंडार;

उसी प्रकार पुण्य की धाराएँ ज्ञानी पुरुष तक पहुँचती हैं - जो
भोजन, पेय और वस्त्र दाता है,
पलंग, आसन और चादर प्रदान करने वाला है -
जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र में ले जाती हैं।"

1038. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (अभिसन्द2)
भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं... कौन सी चार?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारा) में...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य कंजूसी के दाग से रहित मन (चित्त) के साथ घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला।

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ, लाभकारी (कुशल संस्कृत) धाराएँ होती हैं, तो उसके पुण्य का माप इस प्रकार करना आसान नहीं है: 'उसका पुण्य का प्रवाह, लाभकारी (कुशल) प्रवाह, पोषण इतना ही है। सुख को पुण्य का अथाह भंडार माना जाता है; बल्कि इसे अनगिनत, असीम, विशाल पुण्य भंडार के रूप में गिना जाता है।

"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही नदियों के संगम स्थल पर जल की मात्रा का अनुमान लगाना आसान नहीं है... बल्कि इसे अनगिनत, असीम, विशाल जल भंडार के रूप में गिना जाता है; उसी प्रकार जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य के ये चार स्रोत होते हैं... तो इसे अनगिनत, असीम, विशाल पुण्य भंडार के रूप में गिना जाता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जिस प्रकार अनेक नदियाँ जनसमूह द्वारा उपयोग की जाती हैं, वे
बहती हुई अंत में सागर में मिल जाती हैं।
जल का विशाल भंडार, असीम सागर।"
रत्नों के ढेरों का भयानक भंडार;

"इस प्रकार पुण्य की धाराएँ ज्ञानी पुरुष तक पहुँचती हैं
- भोजन, पेय और वस्त्र
दाता, पलंग और आसन प्रदान करने वाला 360 -
जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र में ले जाती हैं।"
(श्लोक 1037 के समान)

1039. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (अभिसन्द3)
"भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं... कौन सी चार?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में।"

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है, वह उद्‌भव और क्षय के प्रति निर्देशित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) रखता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, जिससे दुखों का पूर्ण नाश (खया/क्षय) होता है। यह पुण्य की चौथी धारा है। ...

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं। ...

"हे भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ, लाभकारी धाराएँ (कुशल संस्कृत में कुशल) होती हैं, तो उसके पुण्य का मापन इस प्रकार करना आसान नहीं है: 'केवल इतना ही उसका पुण्य है, लाभकारी धारा (कुशल धारा), सुख का पोषण'; बल्कि, इसे अनगिनत, अतुलनीय, विशाल पुण्य के रूप में गिना जाता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जो पुण्य की इच्छा रखता है, वह कुशल अवस्था में स्थापित होकर
निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने का मार्ग विकसित करता है;
जिसने धम्म के सार को प्राप्त कर लिया है।
विनाश में आनंदित होकर भी वह 'मृत्यु का राजा आएगा'
सोचकर नहीं विक्षुब्ध होता है।
" 361

1040. समृद्ध (1) (महाद्धाना1)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) का स्वामी है, धनवान और संपत्ति का मालिक कहलाता है। 362 वे चार क्या हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धर्म (मार्ग, नियमों) में... संघ (भाईचारे) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट भंडार रखता है... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाता है।

वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों का स्वामी है, धनवान और संपत्ति का मालिक कहलाता है।"

1041. धनी (2) (महाद्धाना2)
"भिक्षुओं (साधुओं) के अनुसार, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य धनी, अपार संपत्ति वाला और विख्यात कहलाता है। वे चार धर्म कौन से हैं?"

(शेष भाग पिछले 1040 के समान है)

1042. सरल संस्करण (शुद्धका)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त है, सोतापन्न कहलाता है, पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है। वे चार कौन से हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) ... संघ (भाईचारे) ... में दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों से युक्त है, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।"

1043. नंदिया
कपिलवस्तु में। भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठे हुए शाक्य नंदीय से कहा:

(शेष भाग पिछले 1042 के अनुसार है)

1044. भद्दिया
(यह वही पत्र है जो 1042 में शाक्य भादिया को संबोधित था।)

1045. महानामा
(यह वही पत्र है जो 1042 में शाक्य महानामा को संबोधित था।)

1046. अंग (अंग)
भिक्षुओं, सोतापत्ति के लिए ये चार अंग हैं। वे कौन से चार अंग हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों का संगति, सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धम्म के अनुसार अभ्यास। ये चार अंग हैं जो सोतापत्ति के लिए आवश्यक हैं।

(vi) प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि वाला (सपन्नवग्गो सं. स-प्रज्ञा-वर्ग)
1047. श्लोकों सहित (सगाथक)
(प्रारंभिक भाग 1042 के समान है)

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: 364

"जब किसी को तथागत में
अटूट और दृढ़ विश्वास हो,
और उसका आचरण शील पर आधारित हो , तो
वह श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है;

"जब किसी को संघ में विश्वास हो
और उसका दृष्टिकोण सुधर गया हो,
तो लोग कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,
उसका जीवन व्यर्थ नहीं है।

" "इसलिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाले व्यक्ति को,
बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए,
विश्वास और सद्‌गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, और
धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति समर्पित होना चाहिए।"

1048. वन हू स्पेंड द रेन्स (वस्सामवुत्थ सं. वर्षम-उत्तिष्ठ)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उसी समय एक भिक्षु, जो सावत्थी में वर्षा ऋतु बिताकर आए थे, किसी कार्य से कपिलवस्तु पहुंचे। कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना, "सुना है कि एक भिक्षु, जो सावत्थी में वर्षा ऋतु बिताकर आए हैं, कपिलवस्तु पहुंचे हैं।"

तब कपिलवस्तु के शाक्य उस भिक्षु के पास गए और उन्हें प्रणाम किया, फिर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, हमें आशा है कि भगवान (बुद्ध) स्वस्थ और बलवान हैं।"

"हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) स्वस्थ और बलवान हैं।"

"हे पूज्यवर, हमें आशा है कि सारिपुत्त और मोग्गलाना भी स्वस्थ और बलवान हैं।"

"सरिपुत्त और मोग्गलाना, मित्रों, स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।

हम आशा करते हैं, पूज्यवर, कि संघ के भिक्षु स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।"

"संघ के भिक्षु, मित्रों, स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।"

"क्या आपने इस वर्षा ऋतु में भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में कुछ सुना और सीखा, पूज्यवर?"

"भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, मित्रों, मैंने यह सुना और सीखा: 'भिक्षुओं, वे भिक्षु अल्प हैं जो दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, दिव्य ज्ञान के साथ इसे स्वयं अनुभव करते हैं।'" वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने पाँच निम्न बंधनों का पूर्ण नाश करके स्वतः जन्म लिया है और इस संसार से पुनर्जन्म लिए बिना ही निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।

"इसके अलावा, मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'भिक्षुओं, वे भिक्षु अल्प हैं जिन्होंने स्वतः जन्म लिया है...। वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने तीन बंधनों का पूर्ण नाश करके और लोभ (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन गए हैं और इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेंगे।'

"इसके अलावा, मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'वे भिक्षु अल्प हैं जो ... एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन चुके हैं... वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, सोतापन्न (धारा में प्रवेश करने वाले) बन गए हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है, और जिनका गंतव्य ज्ञान है।'"

1049. धम्मदिन्ना
एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ शिष्य धम्मदिन्ना अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। 365 एक तरफ बैठकर गृहस्थ शिष्य धम्मदिन्ना ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्यवर, हमें उपदेश दीजिए और ऐसा उपदेश दीजिए जिससे हमारा कल्याण और सुख दीर्घकालिक रूप से प्राप्त हो।" "

अतः, धम्मदिन्ना, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए:
'समय-समय पर हम तथागत द्वारा दिए गए उन गहन, गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित प्रवचनों का अध्ययन करेंगे।'
तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।" 366

"आदरणीय महोदय, हमारे लिए यह आसान नहीं है कि हम बच्चों से भरे घर में रहें, कासियन चंदन का आनंद लें, मालाएँ, सुगंध और मलहम धारण करें, समय-समय पर सोना और चाँदी प्राप्त करें, फिर भी तथागत द्वारा दिए गए उन गहन, अर्थपूर्ण, अलौकिक और शून्यता से संबंधित प्रवचनों में लीन होकर चिंतन करें। जैसा कि हम पाँच साधना नियमों में स्थापित हैं, भगवान (बुद्ध) हमें धम्म (मार्ग, नियम) का और अधिक ज्ञान दें।" "

अतः, धम्मदिन्न, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:
'हम बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखेंगे... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में... हम श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करेंगे... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म (गुण, नियम) हममें विद्यमान हैं और हम इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं। क्योंकि, आदरणीय महोदय, हमें बुद्ध, धर्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। हम श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण हैं, जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं।"

"यह आपके लिए लाभ है, धम्मदिन्न! यह आपके लिए उत्तम लाभ है, धम्मदिन्न! आपने प्रवाह-प्रवेश का फल प्रकट किया है।"

1050. बीमार (गिलाना)
एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि "तीन माह बाद, वस्त्र पूर्ण हो जाने पर, भगवान (बुद्ध) यात्रा पर निकलेंगे।"

शाक्य महानामा ने सुना, "कहा जाता है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि तीन माह बाद, वस्त्र पूर्ण हो जाने पर, भगवान (बुद्ध) यात्रा पर निकलेंगे।"

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए एक वस्त्र बना रहे हैं... अब मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह नहीं सुना और न ही सीखा है कि एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, उसे दूसरे बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी द्वारा कैसे उपदेश दिया जाना चाहिए

। महानामा, एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, उसे दूसरे बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी द्वारा चार प्रकार की सांत्वनाओं से सांत्वना दी जानी चाहिए: 'आदरणीय को सांत्वना दी जाए। आपने बुद्ध में इस प्रकार विश्वास की पुष्टि की है: (जैसा कि 997 में है) "भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" आपने धम्म (मार्ग, नियम) में विश्वास की पुष्टि की है... संघ में... आपके पास श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं, जो अटूट हैं... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।'

"एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, को इन चार सांत्वनाओं से सांत्वना देने के बाद, उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या आप अपने माता-पिता के बारे में चिंतित हैं?' यदि वह कहता है: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'लेकिन, हे महोदय, आप मृत्यु के अधीन हैं। चाहे आप अपने माता-पिता के बारे में चिंतित हों या न हों, आपकी मृत्यु तो निश्चित है। इसलिए कृपया अपने माता-पिता के बारे में अपनी चिंता छोड़ दें।'

"यदि वह कहता है: 'मैंने अपने माता-पिता के बारे में अपनी चिंता छोड़ दी है,' तो उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या आप अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंतित हैं?' यदि वह कहता है: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'लेकिन, हे महोदय, आप मृत्यु के अधीन हैं। चाहे आप अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंतित हों या न हों, आपकी मृत्यु तो निश्चित है। इसलिए कृपया अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में अपनी चिंता छोड़ दें।'

यदि वह कहे: 'मैंने अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंता छोड़ दी है,' तो उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या तुम मानवीय इंद्रिय सुख के पाँच बंधनों के बारे में चिंतित हो?' यदि वह कहे: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, दिव्य इंद्रिय सुख मानवीय इंद्रिय सुखों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ हैं। इसलिए कृपया अपना मन (चित्त) मानवीय इंद्रिय सुखों से हटाकर चार महान राजाओं के लोक के देवों (देवदूतों) पर केंद्रित करो।'

यदि वह कहे: 'मेरा मन (चित्त) मानवीय इंद्रिय सुखों से हटकर चार महाराजों के लोक के देवताओं पर केंद्रित हो गया है,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, तावतिंसा देवता चार महाराजों के लोक के देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान हैं। अतः कृपया अपना मन चार महाराजों के लोक के देवताओं से हटाकर तावतिंसा देवताओं पर केंद्रित करें।'

यदि वह कहे: 'मेरा मन चार महाराजों के लोक के देवताओं से हटकर तावतिंसा देवताओं पर केंद्रित हो गया है,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, तावतिंसा देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान यम देवता... तुषिता देवता... निम्मनारति देवता... परनिम्मितवासवत्ती देवता हैं...

मित्र, ब्रह्मा लोक परनिम्मितवासवत्ती देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान है।' अतः कृपया अपना मन परनिमित्तवासवत्ती देवताओं से हटाकर ब्रह्म जगत पर केंद्रित करें। 369

"यदि वह कहता है: 'मेरा मन परनिमित्तवासवत्ती देवताओं से हटाकर ब्रह्म जगत पर केंद्रित हो गया है' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, ब्रह्म जगत भी अनित्य, अस्थिर और शरीर-सन्दु में समाहित है। अतः कृपया अपना मन ब्रह्म जगत से हटाकर शरीर-सन्दु के निवारण (निरोध) की ओर निर्देशित करें।' 370

"यदि वह कहता है: 'मेरा मन (चित्त) ब्रह्म जगत से हटा लिया गया है; मैंने अपने मन को शरीर-पहचान के अंत की ओर निर्देशित किया है,' तब, महानामा, मैं कहता हूँ कि इस प्रकार मन से मुक्त (विमुक्त) एक गृहस्थ अनुयायी और सौ वर्षों से मन से मुक्त एक भिक्षु (सन्यासी) में कोई अंतर नहीं है, 371 अर्थात्, एक मुक्ति (विमुक्ति) और दूसरी मुक्ति में कोई अंतर नहीं है।" 372

1051. धारा-प्रवेश का फल (सोतापत्तिफला)
भिक्षुओं, इन चार धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से सोतपत्ति (धारा-प्रवेश) का फल प्राप्त होता है। वे चार कौन से हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धर्म के अनुसार अभ्यास। इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से सोतपत्ति (धारा-प्रवेश) का फल प्राप्त होता है।

1052. एक बार पुनर्जन्म का फल (सकदागमिफला)
"भिक्षुओं, इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से पुनर्जन्म के फल (सकदागामी) की प्राप्ति होती है। वे चार कौन से हैं?..." (जैसा कि ऊपर 1051 में वर्णित है)।

1053. पुनर्जन्म न लेने का फल (अनगामिफल)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"... पुनर्जन्म न लेने के फल की प्राप्ति की ओर ले जाता है..."

1054. अरहंतशिप का फल (अरहतफला)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"...अरहंत पद के फल की प्राप्ति की ओर ले जाता है...."

1055. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि की प्राप्ति (पन्नापतिलाभ सं. प्रज्ञा-प्रति-लाभ)
(1051 से प्रारंभ)
"प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की प्राप्ति की ओर ले जाता है...."

1056. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विकास (पन्नवुद्धि सं. प्रज्ञा-वृद्धि)
(1051 से प्रारंभ)
"... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के विकास की ओर ले जाता है...."

1057. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विस्तार (पन्नवेपुल्ला सं. प्रज्ञा-विपुला)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के विस्तार की ओर ले जाता है...."

(vii) महान प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि खंड (महापन्नवग्गो सं. महा-प्रज्ञा-वर्ग)
1058. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की महानता (महापन्न संस्कृत: महा-प्रज्ञा)
भिक्षुओं, इन चार धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की महानता प्राप्त होती है। वे चार कौन से हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धर्म के अनुसार अभ्यास। इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की महानता प्राप्त होती है।

1059 - 1070. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की व्यापकता, आदि।
भिक्षुओं, ये चार धर्म (गुण, नियम) जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की व्यापकता की ओर ले जाते हैं... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की विशालता की ओर... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की गहराई की ओर... अद्वितीय अंतर्दृष्टि (पन्न) की अवस्था की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की व्यापकता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की प्रचुरता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शीघ्रता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) के उल्लास की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) के आनंद की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शीघ्रता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की तीक्ष्णता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की भेदनशीलता की ओर। 374 वे चार क्या हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यान (योनिसो), मानसिक जागरूकता, धर्म के अनुसार अभ्यास। ये चार धर्म, जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो अंतर्दृष्टि (पन्न) की भेदनशीलता की ओर ले जाते हैं। अंतर्दृष्टि (पन्ना)।"

अध्याय 12: सत्य पर संबंधित प्रवचन (सच्चसंयुत्त सं. सत्य-संयुक्त) {संयुत्त-56}
(i) आत्म-अवशोषण अनुभाग (समाधिवग्गो)

1071 समाधि (स्व-मग्नता)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, समाधि का अभ्यास करो। समाधि की अवस्था में भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। 375

"और वह वास्तव में क्या समझता है? वह वास्तव में समझता है: 'यह दुख है।' वह वास्तव में समझता है: 'यह
दुख का मूल है।' वह वास्तव में समझता है: 'यह
दुख का निवारण (निरोध) है।' वह वास्तव में समझता है:
'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, समाधि का अभ्यास करो। जो भिक्षु स्वयं में लीन होता है, वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है।' 376 यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख का मूल है।' यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही दुखों का निवारण है।' यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही दुखों के निवारण का मार्ग है।'

1072. एकांतवास (पतिसाला)
भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो (पतिसल्लना)। एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

और वह वास्तव में क्या समझता है? वह वास्तव में समझता है: (जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है।'... 'यह दुख का कारण है।'... 'यह दुख का निवारण (निरोध) है।'... 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1073. कुलपुत्र (1) (कुलपुत्त1 सं. कुलपुत्र)
भिक्षुओं, अतीत में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया। भविष्य में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया। वर्तमान में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया है, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया है। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जिन कुलवासियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने के लिए ही इस मार्ग पर चले हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो कि 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करो कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1074 कुल के लोग (2) (कुलपुत्त2 सं. कुलपुत्र)
भिक्षुओं, अतीत में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को भी समझा। भविष्य में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को समझा। वर्तमान में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को समझा। वे चार सत्य

कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जिन कुलियों ने सत्य को जान लिया है... वे सभी सत्य को जान लेंगे... वे सभी इन चार आर्य सत्यों को जान लेंगे।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1075. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण1 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
भिक्षुओं, अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मणों ने वास्तविकता को पूर्णतः समझा, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए। भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझेंगे, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ जाएंगे। वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझ चुके हैं, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए हैं। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझ चुके हैं... पूर्णतः समझेंगे... पूर्णतः समझ चुके हैं, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए हैं।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख है।' ...यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही वह मार्ग है जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।'

1076. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण2 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
भिक्षुओं, अतीत में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया। भविष्य में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया। वर्तमान में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया है, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया है। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को ... और भविष्य में ... वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को इन चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख के निवारण का मार्ग है।'

1077. विचार (विटक्का सं. वितर्क)
भिक्षुओं, बुरे और हानिकारक विचार न सोचें; अर्थात् कामुक विचार, दुर्भावना के विचार, हानि पहुँचाने के विचार। क्यों? हे भिक्षुओं, ये विचार लाभकारी नहीं हैं, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, [418] और निब्बिदा, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिन, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाते। हे

भिक्षुओं, जब आप विचार करें, तो आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' क्यों? भिक्षुओं, ये विचार लाभकारी हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित हैं, और घृणा, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

1078. विचार (सिंटा संस सिंटान)
भिक्षुओं, बुरे और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) तरीके से मत सोचो: 377 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं'। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निब्बिद (घृणा), वैराग्य, निरोध (निरोध), शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता।

जब तुम ऐसा सोचते हो, भिक्षुओं, आपको सोचना चाहिए: (जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और निर्धनता, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1079. विवादात्मक वार्ता (विग्गाहिककथा)
भिक्षुओं, वाद-विवाद में मत पड़ो, 378 यह कहते हुए: 'तुम इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन को नहीं समझते। मैं इस धम्म और अनुशासन को समझता हूँ। क्या, तुम इस धम्म और अनुशासन को समझते हो! तुम गलत अभ्यास कर रहे हो। मैं सही अभ्यास कर रहा हूँ। जो पहले कहा जाना चाहिए था, वह तुमने बाद में कहा; जो बाद में कहा जाना चाहिए था, वह तुमने पहले कहा। मैं सुसंगत हूँ, तुम असंगत हो। जिस बात पर तुमने इतना समय लगाया, वह उलट गई है। तुम्हारा सिद्धांत खंडित हो गया है। जाओ अपने सिद्धांत को बचाने के लिए, क्योंकि तुम हार गए हो, या यदि संभव हो तो स्वयं को इससे मुक्त करो।' किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बात लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित नहीं है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

"भिक्षुओं, जब आप बात करें, तो आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बात लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।'

1080. निरर्थक बातें (तिराच्चनकथा)
भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार की व्यर्थ बातों में न लगें, अर्थात् राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें; सेनाओं, खतरों और युद्धों के बारे में बातें; भोजन, पेय, वस्त्र और बिस्तरों के बारे में बातें; मालाओं और सुगंधों के बारे में बातें; रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, कस्बों, शहरों और देशों के बारे में बातें; स्त्रियों और वीरों के बारे में बातें
; गली-मोहल्ले की बातें और कुएँ पर की जाने वाली बातें; बीते दिनों में दिवंगत हुए लोगों के बारे में बातें; व्यर्थ की गपशप; संसार और समुद्र के बारे में अटकलें; यह या वह बनने के बारे में बातें। इसका क्या कारण है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बातें लाभहीन हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

भिक्षुओं, जब आप बात करें, तो आपको इन विषयों पर बात करनी चाहिए: 'यह दुख है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह चर्चा लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और विरक्ति, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाती है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

(ii) धम्म के चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तनवग्गो)
1081. धम्म चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पाँच भिक्षुओं के समूह को संबोधित करते हुए कहा,

“भिक्षुओं, संन्यासी जीवन में दीक्षित व्यक्ति को इन दो अतिवादी मार्गों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। वे दो कौन से मार्ग हैं? इंद्रिय सुखों में सुख की खोज, जो नीच, सांसारिक लोगों का घिनौना, घृणित और निष्लापपूर्ण मार्ग है; और आत्म-यातना, जो कष्टदायी, घृणित और निष्लापपूर्ण है। तथागत ने इन दोनों अतिवादी मार्गों में से किसी की ओर न झुकते हुए मध्य मार्ग को प्राप्त किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

और हे भिक्षुओं, तथागत द्वारा प्राप्त वह मध्य मार्ग क्या है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति और दिव्य ज्ञान की ओर ले जाता है?” क्या यह वह मध्य मार्ग है जो ज्ञानोदय से निर्वाण की ओर ले जाता है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था। हे भिक्षुओं, यही वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने जागृत किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाता है।

भिक्षुओं, अब यह दुख का आर्य सत्य है: पुनर्जन्म दुख है, वृद्धावस्था दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है; अप्रिय चीजों से जुड़ाव दुख है; सुखद चीजों से वियोग दुख है; इच्छा की प्राप्ति न होना दुख है; संक्षेप में, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंध (कन्ध संस्कृत) दुख हैं।

भिक्षुओं, अब यह दुख के मूल का आर्य सत्य है: यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) है जो नंदी आनंद और राग के साथ पुनर्जन्म की ओर ले जाती है, इधर-उधर सुख की खोज करती है; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा।

"अब, हे भिक्षुओं, यही दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य है: यह उसी तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का पूर्णतः लुप्त होना और निवारण है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव।

अब, हे भिक्षुओं, यही दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य है: यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

'यह दुख का आर्य सत्य है': इस प्रकार, हे भिक्षुओं, धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना आवश्यक है: इस प्रकार

, हे भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुख के उद्गम का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुख के उद्गम के इस महान सत्य का त्याग करना चाहिए': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'दुख के उद्गम के इस महान सत्य का त्याग कर दिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'यह दुख के निवारण (निरोध) का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'दुखों के निवारण का यह महान सत्य अनुभव किया जाना है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुखों के निवारण का यह महान सत्य अनुभव किया जा चुका है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुख निवारण मार्ग का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुख निवारण मार्ग के इस महान सत्य का विकास किया जाना है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'दुख निवारण मार्ग के इस महान सत्य का विकास हो चुका है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"हे भिक्षुओं, जब तक इन चार आर्य सत्यों के तीन चरणों और बारह पहलुओं के मेरे ज्ञान और दृष्टि का पूर्णतः इस प्रकार शुद्धिकरण नहीं हुआ था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का दावा नहीं किया। परन्तु जब इन चार आर्य सत्यों के तीन चरणों और बारह पहलुओं के मेरे ज्ञान और दृष्टि का पूर्णतः इस प्रकार शुद्धिकरण हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का दावा किया। मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरे मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है। यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है। अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'" कारण)।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पांच भिक्षुओं के समूह को भगवान (बुद्ध) का यह कथन सुनकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब पूज्य कोंडन्ना को धम्म (मार्ग, नियम) का निर्मल दर्शन हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।"

और जब भगवान (बुद्ध) ने धम्म (मार्ग, नियम) का चक्र चला दिया, तब पृथ्वी पर रहने वाले देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में, इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में, भगवान (बुद्ध) ने धम्म के इस अद्वितीय चक्र को चला दिया है, जिसे न तो कोई तपस्वी, न ब्राह्मण, न देव (देवदूत), न मार, न ब्रह्मा, न ही संसार में कोई रोक सकता है।" पृथ्वी पर निवास करने वाले देवताओं की घोषणा सुनकर, चार महान राजाओं के राज्य के देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में... इस अद्वितीय धम्म चक्र को भगवान (बुद्ध) द्वारा गतिमान किया गया है, जिसे संसार में कोई भी रोक नहीं सकता।" चार महान राजाओं के राज्य के देवताओं की घोषणा सुनकर, तावतिंसा देव... यम देव... तुषिता देव... निम्मनारति देव... परनिम्मितवासवत्ती देव... ब्रह्मा के समूह के देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में, इसिपताना के मिग्दायी उद्यान में, इस अद्वितीय धम्म चक्र को भगवान (बुद्ध) द्वारा गतिमान किया गया है, जिसे संसार में कोई भी तपस्वी, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या कोई भी रोक नहीं सकता।"

इस प्रकार उसी क्षण, उसी पल, उसी क्षण, यह घोषणा ब्रह्म जगत तक फैल गई, और यह दस हजार प्रकार की विश्व व्यवस्था कांप उठी, हिल उठी और थरथरा उठी, और जगत में एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट हुआ जो देवताओं की दिव्य महिमा से भी बढ़कर था।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह प्रेरणाप्रद वचन कहा:
"कोंडन्ना सचमुच समझ गए! कोंडन्ना सचमुच समझ गए!" इस प्रकार पूज्य कोंडन्ना को "अन्ना कोंडन्ना - कोंडन्ना जो समझ गए" नाम प्राप्त हुआ।

1082. तथागत का दर्शन
"यह दुख का महान सत्य है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में तथागतों के दर्शन में ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। (जैसा कि 1081 में है)

"दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझ लिया गया है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "यह दुख के उद्‌गम का महान सत्य है... दुख के उद्‌गम के इस महान सत्य का त्याग करना है... दुख के उद्‌गम के इस महान सत्य का त्याग कर दिया गया है": इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुखों के निवारण (निरोध) का महान सत्य है' ... 'दुखों के निवारण के इस महान सत्य को अनुभव करना है' ... 'दुखों के निवारण के इस महान सत्य को अनुभव कर लिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में तथागतों की दृष्टि में ज्ञान ... और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है' ... 'दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के इस महान सत्य को विकसित करना है' ... 'दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के इस महान सत्य को विकसित कर लिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में तथागतों की दृष्टि में ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

1083. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।
(जैसा कि 1081 में है)
"और हे भिक्षुओं, दुख का आर्य सत्य क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति); अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप (रूप), आसक्ति से ग्रस्त संवेदना (वेदना), आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति (संज्ञा), आसक्ति से ग्रस्त संस्कार (संज्ञा), आसक्ति से ग्रस्त संशय (आक्रामक व्यवहार), और आसक्ति से ग्रस्त चेतना (विन्नान संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति)।" इसे दुख का आर्य सत्य कहा जाता है

। "हे भिक्षुओं, दुख के कारण का आर्य सत्य क्या है? यह वह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और राग शामिल होते हैं, जो इधर-उधर सुख की खोज करते हैं; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। इसे दुख के कारण का आर्य सत्य कहा जाता है।

" "हे भिक्षुओं, दुख के निवारण का आर्य सत्य क्या है? यह उसी तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) का पूर्णतः लुप्त हो जाना और निवारण है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे दुख के निवारण का आर्य सत्य कहा जाता है।"

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। इसे ही दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है।

भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं।

अतः भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुखों के निवारण का मार्ग है।'

1084. आंतरिक इंद्रिय क्रियाकलाप (अज्जत्तिकायतन)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

और भिक्षुओं, दुख का आर्य सत्य क्या है? यह कहा जाना चाहिए: छह आंतरिक इंद्रिय शक्तियाँ। वे कौन सी हैं? आँख, श्रवण शक्ति, गंध शक्ति, स्वाद शक्ति, स्पर्श शक्ति और मन शक्ति। इसे ही दुख का आर्य सत्य कहा जाता है।

(सूत्र का शेष भाग 1083 के समान है।)

1085. स्मरण (1) (धारणा1)
"भिक्षुओं, क्या आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।"

"परन्तु, भिक्षु, आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य कैसे याद हैं?"

"आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित प्रथम आर्य सत्य के रूप में दुख याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित द्वितीय आर्य सत्य के रूप में दुख का कारण याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित तृतीय आर्य सत्य के रूप में दुख का निवारण (निरोध) याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चतुर्थ आर्य सत्य के रूप में दुख के निवारण का मार्ग याद है। इस प्रकार, आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए चार आर्य सत्यों को याद रखते हैं। भिक्षु, दुख मेरे द्वारा सिखाया गया पहला आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख का कारण मेरे द्वारा सिखाया गया दूसरा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख का निवारण मेरे द्वारा सिखाया गया तीसरा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख निवारण का मार्ग मेरे द्वारा सिखाया गया चौथा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। इस प्रकार, भिक्षु, मेरे द्वारा सिखाए गए चार आर्य सत्यों को याद रखें।

इसलिए, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'"

1086. स्मरण (2) (धारणा2)
“भिक्षुओं, क्या आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?”

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।”

“परन्तु कैसे, भिक्षु, आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?”

हे पूज्यवर, मुझे दुख याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया पहला आर्य सत्य है। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे: 'यह तपस्वी गौतम द्वारा सिखाया गया दुख का पहला आर्य सत्य नहीं है; इस पहले आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख का एक और पहला आर्य सत्य बताऊंगा' - तो यह असंभव है।

मुझे दुख का कारण याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया दूसरा आर्य सत्य है... मुझे दुख का निवारण (निरोध) याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया तीसरा आर्य सत्य है; मुझे दुख निवारण का मार्ग याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया चौथा आर्य सत्य है। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे: 'यह तपस्वी गौतम द्वारा सिखाया गया दुख निवारण का चौथा आर्य सत्य नहीं है; दुख निवारण के इस चौथे आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख निवारण के एक और चौथे आर्य सत्य का प्रचार करूंगा' - तो यह असंभव है।

"हे पूज्यवर, मैं इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण करता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण करते हैं। हे भिक्षु, दुख मेरा पहला आर्य सत्य है; इसे इसी प्रकार स्मरण कीजिए। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे... (जैसा ऊपर)... यह तपस्वी गौतम द्वारा उपदेशित दुख निवारण मार्ग का चौथा आर्य सत्य नहीं है; दुख निवारण मार्ग के इस चौथे आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख निवारण मार्ग का एक और चौथा आर्य सत्य प्रकट करूँगा - यह असंभव है।

" "हे भिक्षु, इसी प्रकार मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण कीजिए।"

अत:, हे भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह दुख है... (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।

1087. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है?"

"भिक्षु, दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) के मार्ग को न जानना: यही अज्ञान कहलाता है, भिक्षु, और इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है।

अतः, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: दुख के निवारण का मार्ग यही है।"

1088. सच्चा ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"भिक्षु, दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण (निरोध) का ज्ञान, दुख के निवारण के मार्ग का ज्ञान: यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, भिक्षु, और इसी मार्ग से सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।

अतः, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1089. निहितार्थ (संकासन)
"यह दुख का महान सत्य है: मैंने इसका ज्ञान कराया है। इस कथन, 'यह दुख का महान सत्य है,' में असंख्य सूक्ष्मताएँ, असंख्य विवरण और असंख्य निहितार्थ निहित हैं। 384

"'यह दुख के उद्गम का महान सत्य है' (जैसा कि 1081 में है)। 'यह दुख के निवारण (निरोध) का महान सत्य है' ... 'यह दुख के निवारण के मार्ग का महान सत्य है': मैंने इसका ज्ञान कराया है। इस कथन, 'यह दुख के निवारण के मार्ग का महान सत्य है,' में असंख्य सूक्ष्मताएँ, असंख्य विवरण और असंख्य निहितार्थ निहित हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)। यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1090. वास्तविक (तथा)
"भिक्षुओं, ये चार बातें वास्तविक, अचूक हैं, अन्यथा नहीं। 385 वे चार बातें क्या हैं?

(जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है': हे भिक्षुओं, यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। 'यह दुख का कारण है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। 'यह दुख का निवारण (निरोध) है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। [431] 'यह दुख के निवारण का मार्ग है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं।

"हे भिक्षुओं, ये चार बातें वास्तविक, अचूक हैं, अन्यथा नहीं।

"इसलिए, हे भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

(iii) कोटिगमावग्गो
1091. कोटिगामा (1) 386

(देखें 1071 और 1081) एक बार भगवान (बुद्ध) कोटिगामा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों को न समझने और उनमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं। वे चार सत्य क्या हैं?

हे भिक्षुओं, दुख के आर्य सत्य को न समझने और उसमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं। दुख के कारण, दुख के निवारण (निरोध) के आर्य सत्य, दुख के निवारण के आर्य सत्य, दुख के निवारण के आर्य सत्य, और दुख के निवारण के आर्य सत्य को न समझने और उनमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं।"

"हे भिक्षुओं, दुख के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के कारण के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के निवारण के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के निवारण के मार्ग के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। अस्तित्व (भावो) की लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश हो गया है; अस्तित्व (भावो) का मार्ग नष्ट हो गया है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा: " चार आर्य सत्यों को

उनके वास्तविक स्वरूप में न देखने के कारण , हम अनेक प्रकार के पिछले जन्मों में भटकते रहे । अब इन सत्यों को देख लिया गया है; अस्तित्व (भावो) का मार्ग टूट गया है; दुख का मूल नष्ट हो गया है: अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।"

1092. कोटिगामा (2) 387
"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख का मूल है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है': इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके, इस जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।" इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में निवास करो।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
गुरु सुगतो ने आगे कहा:

"जो लोग दुख को नहीं समझते,
जो दुख के मूल को नहीं जानते,
और न ही यह जानते हैं कि दुख
कहाँ समाप्त होता है;
जो उस मार्ग को नहीं जानते

जो दुख के निवारण (उपसमन) की ओर ले जाता है:
वे मन की मुक्ति (विमुक्ति)

और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति से वंचित हैं; वे
अंत करने में असमर्थ हैं।
वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के चक्र में लगे रहते हैं।"
लेकिन जो लोग दुख को समझते हैं,
जो दुख के मूल कारण को जानते हैं,

और जहाँ दुख पूरी तरह समाप्त हो जाता है,
जहाँ वह बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाता है;

जो उस मार्ग को समझते हैं
जो दुख के निवारण (उपसमन) की ओर ले जाता है:
वे मन की मुक्ति
और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति से संपन्न होते हैं;
अंत करने में सक्षम होने के कारण,
वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के चक्र में नहीं पड़ते।

1093. पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। तथागत को अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है क्योंकि उन्होंने इन चारों आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः जान लिया है। इसलिए

, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1094. अरहंत
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, अतीत में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाए। भविष्य में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाएंगे, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाएंगे। वर्तमान में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाए हैं।

" वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं... जो भविष्य में पूरी तरह से समझ पाएंगे... जो वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ चुके हैं।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1095. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खयाल/क्षय) उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, विपश्यना ध्यान के संदर्भ में), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। 388 जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? विकारों का नाश उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख का कारण है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' जो इस प्रकार जानता है, जो (ध्यान में) इस प्रकार देखता है, उसी के लिए विकारों का नाश होता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1096. मित्र (Mitta sans. Mitra)

भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो आपको अपना मार्गदर्शक समझते हैं - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - उन्हें शिक्षा दें, उन्हें स्थापित करें और उन्हें चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सहायता करें। वे

चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

जिन पर आपको दया आती है... उन्हें शिक्षा दें, उन्हें स्थापित करें और उन्हें इन चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सहायता करें।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1097. वास्तविक (तथा)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। भिक्षुओं, ये चारों आर्य सत्य वास्तविक और अचूक हैं, अन्यथा नहीं। इसीलिए इन्हें आर्य सत्य कहा जाता है। 389

अतः भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1098. लोक (विश्व)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। ये चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। इस संसार में, जहाँ देव, शैतान और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत ही श्रेष्ठ हैं। इसीलिए इन्हें आर्य सत्य कहा जाता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1099. पूर्णतः समझा जाना (परिन्नेय)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। ये चार आर्य सत्य हैं। भिक्षुओं

, इन चार आर्य सत्यों में से एक आर्य सत्य ऐसा है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए; एक आर्य सत्य ऐसा है जिसका त्याग करना चाहिए; एक आर्य सत्य ऐसा है जिसे अनुभव करना चाहिए; और एक आर्य सत्य ऐसा है जिसका विकास करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, वह कौन सा आर्य सत्य है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए? दुख के आर्य सत्य को पूर्णतः समझना चाहिए; दुख के कारण के आर्य सत्य का त्याग करना चाहिए; दुख के निवारण के आर्य सत्य को जानना चाहिए; दुख के निवारण के आर्य सत्य का विकास करना चाहिए।

अतः, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1100. गवमपति
एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु सहजाति में चैत्यों के बीच रह रहे थे। उस समय जब वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह बातचीत शुरू हुई: "मित्र, क्या जो व्यक्ति (विपश्यना ध्यान में) दुख देखता है, क्या वह दुख के कारण को भी देख पाता है, दुख के निवारण (निरोध) को भी देख पाता है और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी देख पाता है?"

जब यह कहा गया, तो पूज्य गवमपति ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा है: 'भिक्षुओं, जो ध्यान में दुख देखता है, वह दुख के कारण को भी देखता है, दुख के निवारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है। जो ध्यान में दुख के कारण को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के निवारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है। जो ध्यान में दुख के निवारण को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के कारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है।' जो ध्यान में दुख के निवारण के मार्ग को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के कारण को भी देखता है, और दुख के निवारण को भी देखता है।" पीड़ा का।" 390

(iv) सिम्पापा-वन (सिसापावना) खंड (सिसापावनवग्गो)
1101. सिंसपावन (सिसपवन)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में एक सिप्सपवन में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने हाथ में कुछ सिप्सप के पत्ते लेकर भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं, आप क्या मानते हैं कि अधिक संख्या में कौन हैं: मेरे हाथ में लिए हुए ये कुछ सिप्सप के पत्ते या ऊपर सिप्सपवन में मौजूद पत्ते?”

“आदरणीय, भगवान (बुद्ध) के हाथ में लिए हुए सिप्सप के पत्ते अल्प हैं, परन्तु ऊपर सिप्सपवन में मौजूद पत्ते असंख्य हैं।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने प्रत्यक्ष रूप से जो बातें जानी हैं, परन्तु तुम्हें नहीं सिखाई हैं, वे अनेक हैं, जबकि जो बातें सिखाई हैं, वे अल्प हैं। और हे भिक्षुओं, मैंने वे अनेक बातें क्यों नहीं सिखाईं? क्योंकि वे लाभहीन हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, और निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिन, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जातीं। अतः मैंने उन्हें नहीं सिखाया।

और हे भिक्षुओं, मैंने क्या सिखाया है? मैंने सिखाया है: 'यह दुख है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख का कारण है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख का निवारण है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। और हे भिक्षुओं, मैंने यह क्यों सिखाया है?" क्योंकि यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और घृणा, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। इसलिए मैंने इसका उपदेश दिया है।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

1102. बबूल (खदिरापत्ता)
भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के कारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण (निरोध) के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य मार्ग के आर्य सत्य को जाने बिना, मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

जिस प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'बबूल के पत्तों या चीड़ की सुइयों या कुम्हार के पत्तों की टोकरी बनाकर, 391 मैं जल या ताड़ का फल लाऊंगा, 392 यह असंभव होगा; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना... मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

लेकिन, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के महान सत्य को जानकर, वास्तविक दुख के कारण को जानकर, वास्तविक दुख के निवारण को जानकर, वास्तविक दुख के निवारण के मार्ग को जानकर, मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। जिस

प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'कमल के पत्तों, कीनो के पत्तों या मलुवा के पत्तों की टोकरी बनाकर, मैं जल या ताड़ का फल लाऊंगा,' तो यह संभव है; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के महान सत्य को जानकर... मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। अतः

, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1103. डंडा (डंड)
भिक्षुओं, जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी नीचे गिरती है, कभी ऊपर, उसी प्रकार मनुष्य अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते रहते हैं; कभी इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 394 इसका कारण क्या है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1104. कपड़े (सेल)
"भिक्षुओं, यदि किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए, तो क्या किया जाना चाहिए?"

"आदरणीय महोदय, यदि किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए, तो उसे बुझाने के लिए असाधारण इच्छाशक्ति, असाधारण प्रयास, जोश और उत्साह, निरंतर प्रयास और सती ध्यान तथा पूर्ण ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।" 395

"भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने धधकते वस्त्रों या सिर को समभाव से देख सकता है, उन पर ध्यान न देते हुए (मानसिकारा), लेकिन जब तक वह चार आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझ लेता, तब तक उसे समझने के लिए असाधारण इच्छा, असाधारण प्रयास, जोश और उत्साह, निरंतर लगन और ध्यान एवं पूर्ण बोध का अभ्यास करना चाहिए। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1105. सौ भाले (सत्तीसत)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति सौ वर्ष का हो सकता है। कोई उससे कहे: 'हे जन, सुबह सौ भाले तुम पर बरसेंगे; दोपहर को सौ भाले बरसेंगे; शाम को सौ भाले बरसेंगे। 396 और हे जन, प्रतिदिन तीन सौ भालों से घायल होकर तुम सौ वर्ष का जीवन जीओगे; और फिर सौ वर्ष बीत जाने के बाद तुम चार आर्य सत्यों को प्राप्त करोगे, जिन्हें तुमने पहले प्राप्त नहीं किया था।' भिक्षुओं,

अपने कुल के हित में इस प्रस्ताव को स्वीकार करना उचित है। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है; भालों के प्रहारों, तलवारों के प्रहारों, कुल्हाड़ियों के प्रहारों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं किया जा सकता। और भले ही ऐसा हो, भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि चार आर्य सत्यों की प्राप्ति दुख या अप्रसन्नता के साथ होती है। बल्कि, चार आर्य सत्यों की प्राप्ति केवल सुख और आनंद के साथ होती है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।

1106. प्राणी (पण सं. प्राणि)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जंबुद्वीप में मौजूद सभी घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तों को काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह समुद्र के बड़े जीवों को बड़े खंभों पर, मध्यम आकार के जीवों को मध्यम आकार के खंभों पर और छोटे जीवों को छोटे खंभों पर टांग दे। फिर भी, भिक्षुओं, जंबुद्वीप की सारी घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तों के समाप्त हो जाने के बाद भी समुद्र के स्थूल जीव समाप्त नहीं होंगे। समुद्र के वे छोटे जीव जिन्हें आसानी से खंभों पर नहीं टांगा जा सकता, उनकी संख्या इससे भी अधिक होगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि उनके शरीर अत्यंत सूक्ष्म हैं।

भिक्षुओं, दुख का लोक इतना विशाल है। दृष्टि में सिद्ध पुरुष, जो दुख के उस विशाल तल से मुक्त है, वह वास्तव में समझता है: 'यही दुख है।' (जैसा कि 1071 में है)... 'यही दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।'

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख है,' 'यही दुख का कारण है,' 'यही दुख का निवारण है।'

1107. सूर्य (1) (सूर्य1 सं. सूर्य)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप, अर्थात् सही दृष्टि, के ज्ञान का अग्रदूत है। यह अपेक्षित है कि सही दृष्टि वाला भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझेगा: 'यह दुख है।' (जैसा कि 1071 में है)... 'यह दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।' अतः,

भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।', 'यह दुख का कारण है।', 'यह दुख का निवारण है।'

1108. सूर्य (2) (सूरिया2 सान. सूर्य)
भिक्षुओं, जब तक संसार में सूर्य और चंद्रमा का उदय नहीं होता, तब तक प्रकाश और तेज का कोई प्रकटीकरण नहीं होता; तब तक घोर अंधकार छाया रहता है; दिन-रात का भेद नहीं हो पाता, माह-पखवाड़े का भेद नहीं हो पाता, ऋतुओं और वर्ष का भेद नहीं हो पाता। परन्तु

भिक्षुओं, जब संसार में सूर्य और चंद्रमा का उदय होता है, तब प्रकाश और तेज का प्रकटीकरण होता है; तब न तो घोर अंधकार होता है, न ही घोर अंधकार; तब दिन-रात का भेद हो पाता है, माह-पखवाड़े का भेद हो पाता है, ऋतुओं और वर्ष का भेद हो पाता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तक संसार में तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का जन्म नहीं होता, तब तक महान प्रकाश और दीप्ति का प्रकटीकरण नहीं होता, बल्कि घोर अंधकार छा जाता है; तब तक चारों आर्य सत्यों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण या स्पष्टीकरण नहीं होता।

परन्तु, भिक्षुओं, जब संसार में तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का जन्म होता है, तब महान प्रकाश और दीप्ति का प्रकटीकरण होता है; तब न तो घोर अंधकार छाता है, न ही घोर अंधकार; तब चारों आर्य सत्यों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण होता है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य... (जैसा कि 1071 में है)..." दुःख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुःख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1109. इंद्र का स्तंभ (इंदखिल सं. इंद्र-कील)
"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' - वे किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए सोचते हैं: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, रुई का एक हल्का गुच्छा, हवा से उड़कर, समतल जमीन पर आ गिरा। पूर्वी हवा उसे पश्चिम की ओर ले जाती; पश्चिमी हवा उसे पूर्व की ओर ले जाती; उत्तरी हवा उसे दक्षिण की ओर ले जाती; दक्षिणी हवा उसे उत्तर की ओर ले जाती। इसका कारण क्या है? गुच्छे के हल्केपन के कारण।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए सोचते हैं: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।' इसका क्या कारण है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है।

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह समझते हैं कि 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए यह नहीं सोचते: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।'

"मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक लोहे का स्तंभ या इंद्र का स्तंभ 398 था जिसका आधार गहरा था, जो मजबूती से स्थापित था, अचल था, अविचल था। चाहे पूरब, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कितनी भी तेज़ हवा चले, वह स्तंभ नहीं हिलेगा, न ही डगमगाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि स्तंभ का आधार गहरा है और वह मज़बूती से जमा हुआ है।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' को यथावत समझते हैं, वे किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखकर यह नहीं सोचते: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चय ही वह है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, हे भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को स्पष्ट रूप से देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

"इसलिए, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' "यही दुख का मूल कारण है," "यही दुख का निवारण है," यह समझने का प्रयास करना चाहिए: "यही दुख के निवारण का मार्ग है।"

1110. तर्क की तलाश (वदत्तिका)
भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु सत्य को समझ ले कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है', और फिर कोई तपस्वी या ब्राह्मण आए - चाहे वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से हो - तर्क की तलाश में, यह सोचते हुए कि 'मैं उसके तर्क का खंडन करूँगा', तो यह असंभव है कि वह उस भिक्षु को हिला सके, कांप सके या थरथरा सके।

मान लीजिए, भिक्षुओं, 399 सोलह गज लंबा एक पत्थर का स्तंभ है: उसका आठ गज भाग जमीन में धंसा हुआ है, आठ गज भाग जमीन के ऊपर है। भले ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से हवा का एक जोरदार झोंका आए - स्तंभ नहीं हिलेगा, कांपेगा या थरथराएगा। इसका क्या कारण है? क्योंकि इसकी नींव गहरी है और यह दृढ़ता से स्थापित है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' को सही-सही समझ ले, और फिर कोई तपस्वी या ब्राह्मण आ जाए... तो यह असंभव है कि वह उस भिक्षु को हिला सके, कांपने पर मजबूर कर सके। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसने चार आर्य सत्यों को स्पष्ट रूप से देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है) और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(v) अवक्षेप खंड (पापटावग्गो संस. प्रपात-वर्ग)
1111. विश्व के बारे में सोचना (लोकसिंता संस. लोकासिंता)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक बार एक व्यक्ति राजगृह से निकलकर सुमगधा कमल सरोवर गया, यह सोचकर कि 'मैं संसार का चिंतन करूँगा।' 400 फिर वह सुमगधा कमल सरोवर के किनारे बैठ गया और संसार का चिंतन करने लगा। तब, भिक्षुओं, उस व्यक्ति ने देखा कि चार भागों वाली सेना सरोवर के किनारे एक कमल के डंठल में प्रवेश कर रही है। यह देखकर उसने सोचा: 'मैं पागल हो गया हूँ! मैं विक्षिप्त हो गया हूँ! मैंने कुछ ऐसा देख लिया है जो संसार में विद्यमान नहीं है।'" वह व्यक्ति शहर लौट आया और लोगों की एक बड़ी भीड़ को बताया: 'महोदय, मैं पागल हो गया हूँ! मैं विक्षिप्त हो गया हूँ! मैंने कुछ ऐसा देखा है जो दुनिया में मौजूद नहीं है।'

[उन्होंने उससे कहा:] 'लेकिन, भले आदमी, तुम पागल कैसे हो? तुम विक्षिप्त कैसे हो? और तुमने ऐसा क्या देखा है जो दुनिया में मौजूद नहीं है?'

'देखो, भले आदमी, मैं राजगृह से निकला और सुमगधा कमल तालाब के पास पहुँचा... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... मैंने तालाब के किनारे एक कमल के डंठल में चार टुकड़ियों वाली सेना को प्रवेश करते देखा। इसीलिए मैं पागल हो गया हूँ, इसीलिए मैं विक्षिप्त हो गया हूँ, और यही वह चीज़ है जो मैंने देखी है जो दुनिया में मौजूद नहीं है।'

'ज़रूर तुम पागल हो, भले आदमी! ज़रूर तुम विक्षिप्त हो! और तुमने जो देखा है वह दुनिया में मौजूद नहीं है।'

फिर भी, भिक्षुओं, उस व्यक्ति ने जो देखा वह वास्तव में वास्तविक था, अवास्तविक नहीं। एक बार अतीत में, देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। उस युद्ध में देव विजयी हुए और असुर पराजित हुए। अपनी पराजय से असुर भयभीत हो गए और कमल के डंठल से होकर असुर नगर में प्रवेश कर गए, जिससे देव आश्चर्यचकित रह गए।

अतः, भिक्षुओं, संसार के बारे में यह सोचकर मत सोचो कि
'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं।' ऐसा क्यों? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निब्बिद (घृणा), वैराग्य, निरोध (निरोध), शांति, अभिन (दिव्य ज्ञान), ज्ञानोदय, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है।

भिक्षुओं, जब आप चिंतन करें, तो आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह चिंतन लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे घृणा, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

1112. द प्रिसिपिस (पापट संस. प्रपाट)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "आओ, भिक्षुओं, हम आज के लिए पतिभाना शिखर पर चलें।"

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) कई भिक्षुओं के साथ पतिभाना शिखर पर गए। एक भिक्षु ने पतिभाना शिखर के नीचे खड़ी चट्टान को देखकर भगवान (बुद्ध) से कहा, "वह चट्टान वास्तव में खड़ी है, आदरणीय; वह चट्टान अत्यंत भयानक है। लेकिन क्या कोई और चट्टान है, आदरणीय, इससे भी अधिक खड़ी और भयानक?"

"है, भिक्षु।"

"लेकिन कौन सी चट्टान है, आदरणीय, इससे भी अधिक खड़ी और भयानक?"

हे भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का मूल है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में आनंद लेते हैं। ऐसे संस्कारों (व्यवहार) में आनंद लेते हुए, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं। वृद्धावस्था से मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं। ऐसे संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करके वे पुनर्जन्म के चक्र में गिर पड़ते हैं, वृद्धावस्था के चक्र में गिर पड़ते हैं, मृत्यु के चक्र में गिर पड़ते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के चक्र में गिर पड़ते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते। 402

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों

(व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म के चक्र में नहीं गिरते, न ही वृद्धावस्था के चक्र में, न ही मृत्यु के चक्र में, न ही दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के चक्र में। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख के निवारण का मार्ग है'।

1113. महाप्रलय (महापरिलाहा)
"भिक्षुओं, एक नरक है जिसका नाम है महाप्रलय। वहाँ आँखों से जो भी रूप दिखाई देता है, वह अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं। 403 कानों से जो भी ध्वनि सुनाई देती है... नाक से जो भी गंध आती है... जीभ से जो भी स्वाद मिलता है... शरीर से जो भी स्पर्श होता है... मन से जो भी अनुभव होता है, वह अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, वह प्रलय वास्तव में भयानक है; वह प्रलय वास्तव में बहुत भयानक है। लेकिन क्या हे पूज्यवर, उससे भी अधिक भयानक और डरावनी कोई और प्रलय है?"

"है, भिक्षु।"

"लेकिन हे पूज्यवर, वह कौन सी प्रलय है जो उससे भी अधिक भयानक और डरावनी है?"

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' - वे ऐसे संस्कारों में आनंदित होते हैं जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का कारण बनते हैं। ऐसे संस्कारों में आनंदित होकर वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनने वाले संस्कार उत्पन्न करते हैं। वे संस्कार (व्यवहार-आधार) जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाते हैं। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) उत्पन्न करने के कारण, वे पुनर्जन्म की अग्नि में जलते हैं, वृद्धावस्था की अग्नि में जलते हैं, मृत्यु की अग्नि में जलते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की अग्नि में जलते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते।

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म की अग्नि से, वृद्धावस्था की अग्नि से, मृत्यु की अग्नि से, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की अग्नि से नहीं जलते। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख के निवारण का मार्ग है'।"

1114. नुकीला घर (कुटागारा)
भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के कारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निरोध के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य मार्ग के आर्य सत्य को जाने बिना, मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

जिस प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे, 'छत वाले घर की निचली मंजिल बनाए बिना, मैं ऊपरी मंजिल बनाऊंगा', यह असंभव होगा; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना... मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

लेकिन, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'मैंने दुख के वास्तविक स्वरूप, दुख के कारण, दुख के निवारण, दुख के निवारण के मार्ग को पूरी तरह से जान लिया है, और इस ज्ञान से मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। जैसे

, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'मैंने शिखर वाले घर की निचली मंजिल बना ली है, तो मैं ऊपरी मंजिल बनाऊंगा', तो यह संभव है; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे:
'मैंने दुख के वास्तविक स्वरूप, दुख के वास्तविक स्वरूप को जान लिया है... तो मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1115. बाल 404 (वाला बिना बाल)
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। उन्होंने प्रशिक्षण कक्ष में कई लिच्छवी युवकों को धनुर्विद्या का अभ्यास करते देखा। वे एक छोटे से छेद से दूर से तीर चला रहे थे, तीर का अगला सिरा तीर के पिछले हिस्से से टकरा रहा था और उनका निशाना अचूक नहीं हो रहा था। यह देखकर उनके मन में विचार आया, "ये लिच्छवी युवक तो वाकई प्रशिक्षित हैं! ये लिच्छवी युवक तो वाकई कुशल हैं, क्योंकि वे एक छोटे से छेद से दूर से तीर चला रहे हैं, तीर का अगला सिरा तीर के पिछले हिस्से से टकरा रहा है

और उनका निशाना अचूक नहीं हो रहा है।" फिर, वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब पूज्य आनंद भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ उन्होंने देखा था, वह सब बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "आनंद, तुम किसे अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण मानते हो: एक बहुत छोटे से छेद से दूर से तीर चलाना, नोक से नोक तक, बिना चूके, या सात भागों में विभाजित बाल के सिरे को तीर की नोक से भेदना?" 406

"हे पूज्यवर, सात भागों में विभाजित बाल के सिरे को तीर की नोक से भेदना अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण है।"

"परन्तु, आनंद, वे लोग इससे भी अधिक कठिन चीज़ को भेदते हैं जो उसे यथार्थ रूप में भेदते हैं: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', जो उसे यथार्थ रूप में भेदते हैं: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।
" "अतः, आनंद, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' (जैसा ऊपर बताया गया है)। यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1116. अंधकार (अंधकार)
"भिक्षुओं, संसार में ऐसे स्थान हैं, जो अंधकार और उदासी से भरे 407 निर्जन और अथाह क्षेत्र हैं, जहाँ सूर्य और चंद्रमा का इतना शक्तिशाली प्रकाश भी नहीं पहुँचता।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, वह अंधकार वास्तव में बहुत बड़ा है; वह अंधकार वास्तव में बहुत बड़ा है। परन्तु हे पूज्यवर, क्या उससे भी बड़ा और भयानक कोई अंधकार है?"

"है, भिक्षु।"

"परन्तु हे पूज्यवर, वह कौन सा अंधकार है जो उससे भी बड़ा और भयानक है?"

हे भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख का मूल है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में आनंदित होते हैं। ऐसे संस्कारों (व्यवहार) में आनंदित होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं। वृद्धावस्था, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करती है, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करती है। ऐसे संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करके वे पुनर्जन्म के अंधकार में गिरते हैं, वृद्धावस्था के अंधकार में गिरते हैं, मृत्यु के अंधकार में गिरते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अंधकार में गिरते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे कष्टों से मुक्त नहीं होते।

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म के अंधकार में नहीं गिरते, न ही वृद्धावस्था के अंधकार में, न ही मृत्यु के अंधकार में, न ही शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अंधकार में। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह पीड़ा है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह पीड़ा के निवारण का मार्ग है।'"

1117. छेद वाला जुआ (1) 408 (चिग्गलयुगा1)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति एक छेद वाला जुआ विशाल सागर में फेंकता है, और वहाँ एक अंधा कछुआ है जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है। भिक्षुओं, क्या वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा? "

यदि वह कभी ऐसा करेगा, आदरणीय महोदय, तो यह बहुत लंबे समय के बाद ही होगा।"

मैं कहता हूँ, सौ वर्षों में एक बार सतह पर आने वाला वह अंधा कछुआ, उस एक छेद वाले जुए में अपनी गर्दन जितनी जल्दी डाल लेगा, उतनी जल्दी वह बच्चा (नासमझ) जो एक बार पाताल लोक जा चुका है, मनुष्य अवस्था में वापस नहीं आ पाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि यहाँ, भिक्षुओं, धम्म (सही मार्ग) द्वारा निर्देशित कोई आचरण नहीं है, कोई धार्मिक आचरण नहीं है, कोई लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) कर्म नहीं है, कोई पुण्य (पुण्य) कर्म नहीं है। यहाँ परस्पर भक्षण, कमजोरों का भक्षण व्याप्त है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है'। उन्हें यह समझाया जाना चाहिए: 'यही वह मार्ग है जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।'

1118. छेद वाला जुआ (2) (चिग्गलयुगा2)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि यह विशाल पृथ्वी जल का एक विशाल पिंड बन गई है, और एक मनुष्य उस पर एक छेद वाला जुआ फेंकता है। एक पूर्वी हवा उसे पश्चिम की ओर धकेलती है; एक पश्चिमी हवा उसे पूर्व की ओर धकेलती है; एक उत्तरी हवा उसे दक्षिण की ओर धकेलती है; एक दक्षिणी हवा उसे उत्तर की ओर धकेलती है। एक अंधा कछुआ है जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, क्या वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा? "हे

पूज्यवर, यह संयोग ही होगा कि वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मनुष्य का जन्म संयोगवश ही होता है; संयोगवश ही तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष संसार में प्रकट होते हैं; संयोगवश ही तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन संसार में प्रकाशमान होते हैं। हे भिक्षुओं, आपने

मनुष्य का जन्म प्राप्त कर लिया है; तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष संसार में प्रकट हुए हैं; तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन संसार में प्रकाशमान हैं।

अतः, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1119. सिनेरु (1) (सिनेरुपब्बताराज1 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रखता है। 410 भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: वहां रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। पर्वतों के राजा सिनेरु की तुलना में, मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका पूर्णतः नष्ट और समाप्त हुआ दुख अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। नष्ट और समाप्त हुए दुख के पूर्व विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1120. सिनेरु (2) (सिनेरुपब्बताराज2 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि पर्वतों के राजा सिनेरु का नाश हो जाए और सात मूंग के दाने शेष रह जाएं। 411 भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: पर्वतों के राजा सिनेरु का वह भाग जो नाश हो गया है या शेष बचे सात मूंग के दाने?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु का वह भाग जो नाश हो गया है, अधिक है। शेष बचे सात मूंग के दाने नगण्य हैं। सिनेरु के नाश होने वाले भाग की तुलना में शेष बचे सात मूंग के दाने अतुलनीय हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका पूर्णतः नष्ट और समाप्त हुआ दुख अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। नष्ट और समाप्त हुए दुख के पूर्व समूह की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(vi) द ब्रेकथ्रू (अबीसमया)
1121. नाखून 412 (नखसिखा)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

"भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?" "आदरणीय महोदय

, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, वह थोड़ी सी मिट्टी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका नाश और निवारण किया गया दुख अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। नाश और निवारण किए गए पहले दुख के विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख निवारण का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

1122. तालाब (पोखरानी)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, जो पानी से भरा हुआ है और इतना भरा है कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है। एक व्यक्ति कुश घास की नोक पर थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी? "

आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। तालाब के पानी की तुलना में कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1123. संगम पर जल (1) (संभेज्जा1)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय महोदय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई ये दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। संगम के जल की तुलना में निकाली गई ये दो या तीन बूँदें नगण्य हैं, इनकी तुलना नहीं की जा सकती, ये अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... अतः यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1124. संगम पर जल (2) (संभेज्जा2)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं—अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही—वहाँ उनका सारा जल नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो-तीन बूंदों के। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल या शेष बची दो-तीन बूंदें? “

आदरणीय महोदय, संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल अधिक है; शेष बची दो-तीन बूंदें नगण्य हैं। नष्ट होकर समाप्त हुए जल की तुलना में शेष बची दो-तीन बूंदें नगण्य हैं; उनकी गणना नहीं की जा सकती, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।”

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1125. पृथ्वी (1) (महापृथ्वी1 सं. महापृथ्वी)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आप किसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें या विशाल पृथ्वी?

आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें तुच्छ हैं। विशाल पृथ्वी की तुलना में, बेर के दाने के आकार की वे सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें तुच्छ हैं; उनकी गणना नहीं की जा सकती, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1126. पृथ्वी (2) (महापथवी2 सं. महापृथ्वी)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: नष्ट हो चुकी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां? "

आदरणीय महोदय, नष्ट हो चुकी पृथ्वी अधिक है। शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। नष्ट हो चुकी पृथ्वी की तुलना में शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1127. महासागर (1) (महासमुद्र1 सं. महासमुद्र)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: निकाली गई दो या तीन बूँदें या विशाल सागर का जल?

आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें विशाल सागर के जल की तुलना में नगण्य हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है) यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1128. महासागर (2) (महासमुद्दा2 सं. महासमुद्र)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि विशाल सागर नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो-तीन बूंद पानी के। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: विशाल सागर का वह पानी जो नष्ट होकर समाप्त हो गया है या शेष दो-तीन बूंद पानी?

आदरणीय महोदय, विशाल सागर का वह पानी जो नष्ट होकर समाप्त हो गया है, अधिक है। शेष दो-तीन बूंद पानी नगण्य है। नष्ट होकर समाप्त हुए पानी की तुलना में शेष दो-तीन बूंद पानी की गणना नहीं की जा सकती, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1129. पर्वत उपमा (1) (पब्बतुपमा1 सं. पर्वत-उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आप किसे अधिक महत्व देते हैं: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है? "

आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, अधिक महत्व रखता है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, की तुलना में सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1130. पर्वत (2) (पब्बतुपमा2 सं. पर्वत-उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़? "

आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग की तुलना में शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका नाश और निवारण किया गया दुख अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। नाश और निवारण किए गए पहले दुख के विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(vii) प्रथम कच्चा अनाज पुनरावृति श्रृंखला 413
1131. अन्यत्र (अन्नात्र सं. अत्यन्तर)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

“भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?”

“आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह विशाल पृथ्वी के सामने तुच्छ है; वह थोड़ी सी मिट्टी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती; वह अंश के बराबर भी नहीं है।

” “इसी प्रकार, भिक्षुओं, मनुष्य जाति में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु मनुष्य जाति के अलावा अन्यत्र पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक हैं।” 414 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे

चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1132. बाहरी देश (प्रत्यन्तर के बिना)
(1131 के समान)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया...

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मध्य लोकों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु असभ्य बर्बरों के बीच सुदूर लोकों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं..."

1133. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना संस्कृत प्रज्ञा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जिनके पास प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की श्रेष्ठ दृष्टि होती है। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) में डूबे हुए और भ्रमित हैं..."

1134. मदिरा एवं मादक पेय (सुरमेराया)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मदिरा, मादक पेय और उन मादक पदार्थों से परहेज करते हैं जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मदिरा, मादक पेय और उन मादक पदार्थों से परहेज नहीं करते जो आलस्य का आधार हैं...."

1135. जलजनित (ओडाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, ऊँचे स्थानों पर जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जल में जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं...."

1136. जो माता (मत्तेय्या) का सम्मान करते हैं
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अपनी माता का आदर करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अपनी माता का आदर नहीं करते...."

1137. जो पिता का आदर करते हैं (पेत्तेय्या)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पिता का आदर करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अपने पिता का आदर नहीं करते...."।

1138. जो तपस्वियों (समन्ना) का सम्मान करते हैं
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं, परन्तु तपस्वियों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक हैं...."

1139. जो ब्राह्मणों का आदर करते हैं (ब्राह्मण)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, ब्राह्मणों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ब्राह्मणों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं...."

1140. जो बड़ों का सम्मान करते हैं (पकाइका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, परिवार में बड़ों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु परिवार में बड़ों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक हैं..."

(viii) दूसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1141. जीवित प्राणियों की हत्या 415 (पनतीपता सं. प्राणि-पता)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो जीवन के विनाश से परहेज नहीं करते...."

1142. जो दिया न गया हो उसे ग्रहण करना (अदिन्नादना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बिना दी गई वस्तुएँ ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो बिना दी गई वस्तुएँ ग्रहण करने से परहेज नहीं करते... ।"

1143. यौन दुराचार
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो यौन दुराचार से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो यौन दुराचार से परहेज नहीं करते...."

1144. मिथ्याभाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वाद)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो झूठी वाणी से विरक्त रहते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो झूठी वाणी से विरक्त नहीं रहते...."

1145. विभाजनकारी भाषण (पेसुन्ना)
"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, विभाजनकारी वाणी से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु विभाजनकारी वाणी से परहेज न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं..."

1146. कठोर भाषण (फरुसावाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, कठोर वाणी से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु कठोर वाणी से परहेज न करने वाले प्राणी अधिक हैं...."

1147. व्यर्थ की बातें (संफप्पलापा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो व्यर्थ की बातों से विरक्त रहते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो व्यर्थ की बातों से विरक्त नहीं रहते...."

1148. बीज जीवन (बीजागामा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बीज और वनस्पति को नुकसान पहुँचाने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो बीज और वनस्पति को नुकसान पहुँचाने से परहेज नहीं करते...."

1149. अनुचित समय (विकलाभोजन)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अनुचित समय पर भोजन करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अनुचित समय पर भोजन करने से परहेज नहीं करते...."

1150. सुगंध एवं मलहम (गंधविलेपना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो माला धारण करने, सुगंध लगाने और मलहम से खुद को सुशोभित करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते..."

(ix) तीसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1151. नृत्य और गायन (नक्कागिता)

(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1152. उच्च तल (उच्चसायन)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो ऊंचे और विलासितापूर्ण पलंगों और आसनों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1153. सोना और चांदी (जटरूपराजता)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो सोना और चांदी ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1154. कच्चा अनाज (अमाकधन्ना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, कच्चे अनाज का सेवन न करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जो ऐसा नहीं करते, वे अधिक संख्या में हैं...."

1155. कच्चा मांस (अमकमंसा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, कच्चे मांस का सेवन न करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ऐसे प्राणी अधिक हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1156. लड़कियाँ (कुमारिका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो स्त्रियों और कन्याओं को ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1157. दास (दासिदास)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पुरुष और स्त्री दासों को स्वीकार करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1158. बकरियाँ और भेड़ें (अजेलाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बकरियों और भेड़ों का सेवन नहीं करते। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते। ..."

1159. मुर्गी और सूअर (कुक्कुटासुकारा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मुर्गे और सूअर का मांस ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1160. हाथी (हत्थिगवस्सा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, हाथी, गाय, घोड़े और घोड़ी को ग्रहण करने से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ऐसे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

(x) चौथी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1161. खेत (खेत्तवत्थु)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो खेतों और भूमि को ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा परहेज नहीं करते...."

1162. ख़रीदना और बेचना (कायाविक्कया सं. क्राय-विक्रया)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो खरीद-फरोख्त से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1163. संदेश (दुतेय्या)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो संदेश और कार्य करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1164. झूठे वजन (तुलकुटा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो झूठे बाटों, झूठी धातुओं और झूठे मापों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1165. रिश्वतखोरी (उकोटाना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, रिश्वतखोरी, छल और कपट के कुटिल मार्गों से दूर रहने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जो इन मार्गों से दूर नहीं रहते, वे अधिक संख्या में हैं..."

1166-1171. अंग-भंग करना, इत्यादि (छेदनदी)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अंग-भंग, हत्या, बंधन, लूटपाट, डकैती और हिंसा से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक हैं जो ऐसा नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

(xi) पाँच गंतव्यों की पुनरावृति श्रृंखला
1172. मनुष्य के रूप में निधन (1) (मनुस्साकुटिनिरया सं. मनुष्य-कुटि-निरया)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

“भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?”

“आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, हे भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा

है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

अत:, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है' और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1173. मनुष्य के रूप में निधन (2) (मनुसा-कुटी-तिराचना)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य जगत में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद पशु जगत में पुनर्जन्म लेते हैं...."

1174. मनुष्य के रूप में निधन (3)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1175-1177. मनुष्य के रूप में निधन (मनुसा-कुटी-देवनिराया)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1178-1180. देवों के रूप में निधन (देवकुटिनरायडी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद देवों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1181-1183. देवों के रूप में निधन (देवमुनस्सानिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1184-1186. नर्क से दूर जाना (निरायमानुस्सानिरयादि)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं...."

1187-1189. नर्क से निधन ((निरायदेवनिरयादि)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद देवों (स्वर्गदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1190-1192. पशु जगत से विदा होना (तिराच्चनमनुस्सनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1193-1195. पशु जगत से प्रस्थान (तिराच्चनदेवनिरायदी)
(1172 के समान)

... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं। ..."

1196-1198. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीमनुस्सनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1199-1200. भूतलोक से प्रस्थान (पेट्टिदेवनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद देवों (स्वर्गदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

1201. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीदेवपेट्टीविसाया)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद पशुलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद देवों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद प्रेतलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

" "अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: यही दुख है।" यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख का मूल कारण है।' यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख का निवारण है।' यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख निवारण का मार्ग है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए।

संयुत्त निकाय का महावग्ग पूरा हुआ।

भिक्कु बी.बोधि के संस्करण और उनके स्पष्टीकरण में परिवर्तन किया।

संबद्ध प्रवचन (साम्युत्त निकाय)

नोट: 1. पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'China' में।
2. sans. का अर्थ है संस्कृत भाषा का शब्द।

भिक्कू बी. बोधि के संस्करण में हुए परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ

आभार : भिक्कु बी. बोधि को बहुत-बहुत धन्यवाद कि साम्युत्त निकाय का संपूर्ण अनुवाद अब मानव जाति के लिए उपलब्ध है, जो आधुनिक अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं था, जिसके आधार पर यह प्रयास किया गया है।

परिवर्तन की आवश्यकता : बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य शरीर के विकारों को दूर करना, आध्यात्मिक जागृति लाना और इस प्रकार पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ना, यानी मुक्ति (निर्वाण/मोक्ष) प्राप्त करना है। पश्चिम में विकसित भाषाओं में ऐसे शब्द बहुत कम हैं जो इस लक्ष्य को पूरा कर सकें, जो शाब्दिक रूप से संसार से परे है, अर्थात् पारलौकिक प्रकृति का है, जबकि भारत और पूर्वी देशों के स्थानीय

शब्द ऐसे शब्दों से समृद्ध हैं। इसलिए, जब पाली पाठ का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद किया जाता है, तो परिणाम उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। अतः, नीचे दिए गए कुछ शब्दों का प्रयोग/प्रतिस्थापन किया जाता है और कभी-कभी मूल पाली शब्दों को भी शामिल किया जाता है ताकि इसे समझना आसान हो और यह सभी के लिए उपयोगी हो, जिसमें भिक्षु, ध्यान करने वाले और बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करने वाले भी शामिल हैं।
समरूपता बनाए रखने के लिए, इस वेबसाइट (tipitaka.org से) पर उपलब्ध पाली संस्करण पीडीएफ के अनुसार सूत्रों के क्रम संख्या में परिवर्तन किए गए हैं।

परिवर्तनों की तालिका:

पुराना	**परिवर्तन**	**विवरण**
अधिग्रहण	अधिग्रहण (उपाधि)	धन और विशेषताओं दोनों के बारे में
कल्प	aeon(kappa\kalpa)	ब्रह्मांड का जीवनचक्र (विस्तार और संकुचन)
सकल	समुच्चय (खंड सं. स्कंध)	5 नग, रूप (रूप), संवेदनाएं (वेदना), धारणा (सन्न\संज्ञ), स्वैच्छिक कंडीशनिंग (संस्कार) और चेतना (विन्नान\विज्ञान)
मनौती	शमन (उपसमन)	इंद्रियों के लिए प्रयुक्त
असुरों	असुर (राक्षस)	स्वर्गदूतों/देवताओं के विरोधी और हमेशा युद्धरत
ध्यान	सचेत (मानसिकारा)	समान; मन और जागरूकता के संदर्भ में प्रयुक्त
तपस्या	मितव्ययिता (तपा)	तप; भोग-विलास से रहित होकर ध्यानमग्न जीवन व्यतीत करना।
न तो बोध और न ही अबोध का आधार	न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 8वीं अवस्था
शून्यता का आधार	शून्यता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 7वीं अवस्था
चेतना की अनंतता का आधार	चेतना की अनंतता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की छठी अवस्था
अंतरिक्ष की अनंतता का आधार	अंतरिक्ष की अनंतता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 5वीं अवस्था
सुंदरता	पवित्र (शुभ संस्कृत शुभ)	शुभ का प्रयोग शुभ या पवित्र के लिए किया जाता है।
देखो	देखो	सरलीकरण
भिक्षु	भिक्षु (भिक्षु)	संस्कृत शब्द भिक्षु है; मनुष्यों में सबसे पूजनीय, दान देने के योग्य।
भिक्षुणी	भिक्षुणी (नन)	संस्कृत शब्द भिक्षुणी है; मनुष्यों में सबसे पूजनीय, दान देने के योग्य।
जन्म	पुनर्जन्म	पुनर्जन्म शब्द मृत्यु के बाद की नवीकृत अवस्था के लिए सबसे उपयुक्त है।
हे भगवान!	भगवान बुद्ध)	केवल उपयुक्त शब्द
अंधों का उपवन	अंधावाना	
किनारा	पुनर्जन्म	
ब्रह्मा	ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)	देवताओं/देवदूतों से भी ऊँचा
सावधानीपूर्वक सोच	ध्यानमग्न (योनिसो) सचेत (मनसिकारा)	ध्यान में सजगता
लापरवाह सोच	गैर-ध्यानशील (अयोनिसो) ध्यानमग्न (मानसिकारा)	चीजों, लोगों आदि के बारे में सांसारिक सोच।

कामुक (दोस्तों के लिए)	पापी(अमिस)	
समापन	निरोध (समाप्ति)	ध्यान की वह उच्च अवस्था जब इंद्रिय-संवेदनाएं अवरुद्ध होने लगती हैं
स्पष्ट समझ	पूर्ण बोध (संपजन्ना)	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में बाह्य (शरीर) और आंतरिक (मस्तिष्क और रीढ़) दोनों प्रकार की जागरूकता होती है।
स्पष्ट रूप से समझना	पूरी तरह से समझना (sampajano)	ऊपर की तरह
पकड़	चिपकना(उपादान सं. असक्ति)	सांसारिक सुखों/भावनाओं के लिए
पूरी तरह से शानदार	पूर्ण मोक्ष (परिनिब्बान)	नौवीं समाधि की अंतिम अवस्था
केंद्रित	समाधि अवस्था	ध्यान से संबंधित
एकाग्रता	समाधि (सम्मोहन) अवस्था	ध्यान से संबंधित
स्थिति, कंडीशनिंग	कारण (पक्काया)	पैकाया के लिए
सशर्तता (कारणता)	करणीय संबंध	
वातानुकूलित	वातानुकूलित (संकहत) या कारण (पकाया)	पाली शब्द के अनुसार प्रयुक्त; दुनिया के साथ संवाद करते हुए चरित्र का विकास
स्थितियाँ	कारण या वजहें	पैकाया के लिए
चेतना	चेतना (vinnana sans. vigyan)	जागरूकता से संबंधित
समाप्त	उत्तम (केवली)	संस्कृत शब्द कैवल्य अवस्था है
संपर्क	संपर्क (फस्सा/स्पर्श)	जब इंद्रिय वस्तु इंद्रिय अंग के संपर्क में हो
विचार	ध्यान में देखना (अनुपसी)	ध्यान में समभाव से अवलोकन करना
खतरे पर विचार करना	खतरा देखकर (आदिनाव)	
संतुष्टि पर विचार करना	आनंद देखना (असदो संस. असवद)	सांसारिक सुख बंधन की ओर ले जाता है
चिंतन	ध्यान	ध्यान का वह अभ्यास जिसमें सोचना बंद करके भीतर की घटनाओं का अवलोकन किया जाता है
भ्रष्टाचार	भ्रष्टाचार (उपकिलेसा)	
तीव्र इच्छा	लालसा (तन्हा संस. तृष्णा)	
अमर	निर्वाण (अमर अवस्था)	इसका प्रयोग अमृत के लिए भी किया जाता है।
गिरावट	हानि (परिहानी, हानी के लिए)	पाली शब्द के लिए संशोधित
आनंद	आनंद (नंदी/आनंद)	सांसारिक सुख में
उद्धार	मुक्ति (विमोक्खा\विमोक्ष)	
माया	मोह (भ्रम)	सांसारिक घटनाओं में सत्य के अलावा किसी और चीज का अवलोकन/विश्वास करना

इच्छा	इच्छा (चांद)	सांसारिक सुखों के लिए
विनाश	विनाश (खया/क्षय)	गिरावट के लिए भी प्रयोग किया जाता है
देव, देवता	देव, देवता (भगवान, देवदूत)	उच्चतर लोकों का
धम्म	धम्म (मार्ग)	इस शब्द के अलग-अलग अर्थ भी हो सकते हैं जैसे सत्य, चरित्र, गुण आदि।
(अप्पमादा के लिए) लगन	सतर्कता (अप्पमदा)	सतर्क रहना
प्रत्यक्ष ज्ञान	दिव्य ज्ञान (अभिन)	आध्यात्मिक शक्ति के लिए भी, SN2.152 में व्याख्या की गई है; यहाँ देखें: अभिन्ना
राज्यों के बीच भेदभाव	राज्यों का भेदभाव (धम्मविचय)	घटनाओं को समझना
तत्व	तत्व(धातु)	अर्थात् पृथ्वी (ठोस), द्रव, गैसीय, ऊष्मा और आत्म-जागरूक मन
ऊर्जा	ऊर्जावान शक्ति (वीर्य)	दृढ़ निश्चयी, बहादुर से संबंधित
समभाव	समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)	देखी गई चीजों और घटनाओं में लिप्त न होना
उपदेश देना, उपदेश	निर्देश देना, निर्देश	शब्द का सरलीकरण
अस्तित्व	अस्तित्व (भावो); अस्तित्व का कारक (भावो)	निरंतर बदलती दुनिया
गुणगान	प्रशंसा की	शब्द का सरलीकरण
किराया, लाभ	ठहरना, निवास करना; ठहरना, निवास करना	
अनुभूति	वेदना (संवेदना)	उपयोग को सही किया गया
(वेद्यितम के लिए) भावना	जानना (वेद्यितम्)	सुधार
मूर्ख	बचकाना (नासमझ)	'बाला' का अर्थ है बच्चा; कम आपत्तिजनक होने के लिए एक नरम शब्द सुझाया गया है।
धैर्य	ताकत	सरलीकरण
भाग्यशाली व्यक्ति	भाग्यशाली व्यक्ति (सुगातो)	बुद्ध के लिए
उपहार	दान	
देना	दान करना	
आगे बढ़ते हुए	दीक्षा (प्रवेश)	संस्कृत शब्द प्रवर्ज्य
आगे बढ़ गया	आगे बढ़ गया (आरंभ किया, पबज्जित)	संस्कृत शब्द प्रवरज्यित
संतुष्टि	सांसारिक भोग(असादो संस. अस्वद)	'स्वादिष्ट' शब्द से उत्पन्न
महान नायक	महावीर	बुद्ध के लिए
ख़ुशी	सुख	शरीर का
नफरत	घृणा (दोष/द्वेष)	नापसंदगी के लिए, नापसंद करना
नायक	वीर (वीर); महावीर (महावीर)	

पवित्र जीवन	ब्रह्मचर्य जीवन (पवित्र ब्रह्मचर्य)	और इसमें ध्यान भी शामिल है
बेघर	एकांतवासी	तपस्वी जीवन
पहचान	शारीरिक पहचान (सक्काया)	संस्कृत शब्द 'सत्काया', जिसका अर्थ है स्वयं को भौतिक शरीर से जोड़ना।
पहचान दृश्य	शरीर पहचान दृष्टिकोण (सक्काया-दित्थी)	ऊपर जैसा ही, लेकिन इसमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए, यानी भौतिकवाद, जो अध्यात्मवाद के विपरीत है।
अज्ञान	अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)	नहीं जानना
अनस्थिरता	अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)	बौद्ध धर्म में भौतिकवाद का केंद्रीय विचार यह है कि सभी भौतिक और इंद्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली घटनाएं क्षणभंगुर हैं, इसलिए उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।
चोट	टकराव (पतिघा)	
अंतर्दृष्टि	अंतर्दृष्टि (विपस्सना ध्यान)	विपश्यना शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है ध्यान की वह मुख्य तकनीक जिसमें समभाव के साथ अवलोकन का उपयोग करके वास्तविक प्रकृति को प्रकट किया जाता है।
कम्मा	कर्म	यह विचार कि कर्म के परिणाम होते हैं, कई जन्मों/जीवनों तक भी व्याप्त है।
मुक्ति	मुक्ति (विमुक्ति सं. विमुक्ति)	मोक्ष के समान
रोशनी	आभा या आलोक	
प्रिय दयालुपना	प्रेममयी दया (मेट्टा/मैत्री)	करुणा, सद्भावना
वासना	वासना (राग)	सांसारिक सुखों का
मारा	मारा (शैतान)	मृत्यु, रोग और साथ ही धन और सांसारिक सुखों के स्वामी।
योग्यता	ईश्वरीय पुण्य	वह दिव्य धन जो मृत्यु के बाद भी बना रहता है, उसका संचय उच्चतर अवस्थाओं अर्थात् स्वर्ग आदि की ओर ले जाता है।
सावधान	ध्यानमग्न (सतिमा)	सती शब्द ध्यान से संबंधित है, यह संस्कृत शब्द स्मृति से उत्पन्न हुआ है।
ध्यानपूर्वक	ध्यान करना (सतो) या ध्यानमग्न (सतो)	सती शब्द का एक अन्य रूप
सचेतन	ध्यान (सती)	बौद्ध धर्म में सती शब्द का अर्थ ध्यान होता है, जो संस्कृत शब्द स्मृति से उत्पन्न हुआ है।
नाम और प्रपत्र	मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)	दोनों के लिए उपयोग किया जाता है क्योंकि वे आपस में जुड़े हुए हैं।
लापरवाही	आलस	पमाडा के लिए, आलसी, सतर्क नहीं
वापस न लौटने वाला	पुनर्जन्म न लेने वाला (अनागामी)	जो व्यक्ति समाधि की उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसके कारण उसे पृथ्वी लोक में वापस नहीं लौटना पड़ता, बल्कि वह स्वर्ग में जन्म लेता है और फिर निर्वाण प्राप्त करता है।
यज्ञ	दान (भोजन का)	
एक बार लौटने वाला	एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी)	जो व्यक्ति समाधि की उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसके कारण उसे केवल एक बार पृथ्वी लोक में लौटने का अधिकार मिलता है, तब वह महादूतों के बीच जन्म लेता है और फिर निर्वाण प्राप्त करता है।
समन्वय	उपसंपदा (ऑर्डिनेशन)	दीक्षा के बाद

धारणा	धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)	घटनाओं की समझ
घटना	घटनाएँ (धम्म)	आंतरिक घटनाओं को समझने के लिए धम्म शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् अच्छे कर्म शांति की ओर ले जाते हैं।
आनंद और खुशी	खुशी (सुख) और आनंद (सोमनसा)	सुख शारीरिक सुख है और सोमनस्सा मानसिक शांति और स्थिरता है।
प्रसार	6 संवेदी धोखा (पापंका सं. प्रपंच/माया)	
शुद्ध आवास	शुद्ध निवास (शुद्धवास)	एक प्रकार का उच्च स्वर्ग
उत्साह	आनंद (पिति/प्रीति)	ध्यान में आंतरिक आनंद का अनुभव होता है।
मुक्त करना	मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष)	मोक्ष का एक अन्य उपयोग
पुनर्जीवित अस्तित्व	नया अस्तित्व (पुनर्जन्म)	पुनर्जन्म बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है, जिसके अनुसार सभी प्राणी अपने कर्मों के फल के अनुसार पुनर्जन्म लेते हैं।
वापस करना	पुनर्जन्म	पहले जैसा ही
तबदीली	घृणा (निब्बिडा)	सांसारिक घटनाओं से दूर रहकर आंतरिक आध्यात्मिक अवस्था की ओर बढ़ना।
वृद्धि और गिरावट	उदय और पतन (उदय-ब्या)	यह विचार कि सभी भौतिक घटनाएँ परिवर्तनशील हैं; अनिच्छुनित्य के विपरीत है।
त्याग करना	अग्नि अनुष्ठान (यज्ञ)	अग्नि पूजा की प्राचीन प्रथा
सक्का	सक्का (इंद्र)	330 मिलियन देवी-देवताओं के स्वर्ग में विराजमान देवदूतों का राजा।
संघा	संघ (भाईचारा)	भिक्षुओं का
देखता है	देखता है (ध्यान में, passato)	
आत्म अवशोषण	स्वयं में लीन होना (समाधि)	समाधि अवस्था के लिए एक और शब्द
कामुक	कामुक (काम/यौन)	
शांति	शांति (समथा/समभाव)	समभाव के समान
संकेत	कारणवाचक (निमित्त)	सही उपयोग; उन घटनाओं के लिए प्रयुक्त जो (सांसारिक) बंधन का कारण बनती हैं।
चिह्नहीन	अनिमित्त (अकारण)	पिछले के विपरीत
सर ई	भगवान	
मारे गए	मारा गया	
आध्यात्मिक शक्ति	आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि\ऋद्धि)	विशेष आध्यात्मिक क्षमताएँ
आध्यात्मिक (निरामियों के लिए)	निष्पाप (निरामी)	
घोड़ा	घोड़ा	सरलीकरण
कलंक	कलंक	शब्द का सरलीकरण
अध्यापक	शिक्षक (सत्था)	बुद्ध के लिए प्रयुक्त एक अन्य शब्द
दस विश्व प्रणालियाँ	दस विश्व प्रणालियाँ (दश	या अस्तित्व के दस आयाम जिन्हें बुद्ध देख सकते थे

	लोक धातु)	
चीज़, चीज़ें	धम्म (मार्ग, गुण, नियम), धम्म	धम्म शब्द का एक अन्य प्रयोग; अब संशोधित
मैंने ऐसा सुना है	मैंने बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)।	आनंद बुद्ध के प्रत्येक प्रवचन से पहले 'एव मेई सुतम' वाक्यांश का प्रयोग करते थे।
टाई	जंजीरें, बंधन	
शांति	शांति (पासद्धि\ प्रश्रब्धि)	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था उत्पन्न होने से पहले शरीर, भावनाओं और मन की स्थिरता
असंपीड़ित	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में नहीं	
असुविधाजनक	बिना शर्त (असंखता)	वे क्रियाएँ जिनसे चरित्र में कोई बाध्यकारी/परिवर्तन नहीं होता
अंतर्निहित प्रवृत्ति	अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसेति सं. अनुशय)	छिपे हुए इरादों से संबंधित
मन का एकीकरण	मन की विलक्षणता (एकोदिभवम)	अविचल मन
बेकार	हानिकारक (अकुसल सं. अकुशल)	
गायब हो जाने	गिरावट (vaya, khaya के लिए)	
गुण	सद्गुण (शील)	अहिंसा, सत्यवादिता, चोरी न करना, नशा न करना और यौन संबंध से परहेज जैसे नैतिक मूल्यों का पालन करना।
इच्छाशक्ति	संज्ञानात्मक जागरूकता (चेतना)	संसेताना/चेतना के लिए
स्वैच्छिक संरचनाएँ	संखारा (बाध्यकारी व्यवहार कंडीशनिंग)	कर्मों के कारण चरित्र/व्यवहार में परिवर्तन की घटनाएँ
ध्यानपूर्वक विचरण करें	ध्यानमग्न रहना (सती रहना)	
रमता जोगी	तपस्वी	उपयोग में सुधार
पौष्टिक	लाभकारी (कुशल सं. कुशल)	उपयोग को सही किया गया
बुद्धि	प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना)	ध्यान में जो कुछ उत्पन्न होता है, विशेषकर मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर आत्मज्ञान की अनुभूति, जिसके प्रकट होने से सभी बुरे लक्षण दब जाते हैं (संस्कार)।

अंगुत्तरा निकया

त्रिपिटक की संरचना
करने के लिए

त्रिपिटक
विनय पिटक
सुत्त पिटक
दीघा निकया
मज्झिमा निकया
सम्युत्त निकया
अंगुत्तरा निकया
खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय

पाली संस्करण : संस्करण 2 के पाठों के प्रत्येक खंड में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

प्रस्तावना : अंगुत्तरा निकाय ("क्रमिक प्रवचनों का संग्रह") सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से चौथा निकाय है। अंगुत्तरा निकाय में बुद्ध द्वारा कहे गए सूत्र संख्यात्मक क्रम में संकलित हैं, अर्थात् 'एक' के ग्रंथों में प्रत्येक विषय के लिए उपदेश हैं, जबकि 'दो' के ग्रंथों में दो विषयों के लिए उपदेश हैं, और इसी प्रकार आगे भी। हालांकि, गहन अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि आरंभिक ग्रंथों में रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े सरल विषय हैं, जबकि बाद के ग्रंथों में उच्चतर विषय हैं और अंतिम अध्यायों में समाधि अवस्थाओं और ध्यान से संबंधित विषयों को व्याख्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार, अंगुत्तरा निकाय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली सांसारिक घटनाओं से लेकर उच्चतर घटनाओं तक चरण दर चरण आगे बढ़ता है। अंगुत्तरा निकाय की एक और बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बुद्ध द्वारा संप्रेषित किया जाने वाला सारा ज्ञान सरल भाषा में समाहित है। अतः यह अनुशंसा की जाती है कि अंगुत्तरा निकाय को बिना किसी अंतराल या अंतराल के, आरंभ से अंत तक, अंतिम अध्यायों तक निरंतर पढ़ा जाए। मूल अर्थों को यथासंभव यथार्थ बनाए रखने का प्रयास किया गया है, यद्यपि आध्यात्मिक/दिव्य पहलुओं की पूर्ण समझ के लिए पाली संस्करण का पठन और ध्यान का अभ्यास आवश्यक है। पाली को आध्यात्मिक जागृति की भाषा माना जा सकता है।
कुछ महत्वपूर्ण सूत्र इस प्रकार हैं:
2:4.2 माता-पिता का ऋण चुकाना; 3.16 आत्मसंयम; 3.61 चार महान सत्य;
4:23 तथागत (बुद्ध; पूर्णतः प्रबुद्ध) क्या हैं?; 5:23 मन को शुद्ध करने से प्राप्त मानसिक शक्तियाँ; 5:24 अनैतिक मार्ग, अनैतिकता के बुरे परिणाम, जैसे ब्रह्मचर्य तोड़ना आदि; 5:28 पाँच प्रकार की समाधि का विस्तृत वर्णन (2:26 और 5:27 में भी); 5:75 और 5:76 ब्रह्मचारी योद्धा (योद्धजीव) के समान है; 5.192 ब्राह्मण क्या है; 5.211 भिक्षुओं/पवित्रों का अपमान करने से होने वाले पाँच खतरे; 6.2 अलौकिक शक्तियाँ; 6.18 अहिंसा; 6.60 हठ: समाधि अवस्था भी खो सकती है। 6.63 बुद्ध दूसरों के मन को कैसे जान सकते हैं; 7.49 धारणाएँ (सन्ना) - वैराग्य कैसे विकसित करें; 7.50 और 7.51 कामुकता; 7.55 गंतव्य - निर्वाण पर; 7.56 तिस्सा - ब्रह्मों और उनके ज्ञान पर व्याख्यान; 7.61 उनींदापन, आलस्य, इनसे कैसे निपटें; 7.62 करुणा/दया ब्रह्म जगत की ओर ले जाती है; 7.64 क्रोध; 7.66 संसार का विनाश; 7.71 विद्यार्थी का विकास; 7.72 अग्नि (अनैतिकता के लिए); 7.74 मनुष्य का जीवन अल्प है; 8.11 जैसे चूजा अंडे का छिलका तोड़ता है; 8.36 क्रिया फल (कर्म); 8.40 बुरे कर्मों के परिणाम; 8.41 और 8.42 उपोसथ; 8.46 देवता (देवियाँ); 8.47 एक अच्छी पत्नी। 8.64, 8.65, 8.66 जागृति की प्रक्रिया; 9.18-9.19 उपोसथ और देवता; 9.21 भारत के बारे में (जम्बुद्वीप); 9.27 धारा में प्रवेश की शर्तें; 9.31 ध्यान/समाधि के प्रभाव; 9.32, 9.33 और 9.36 ध्यान की नौ अवस्थाएँ; 9.34 निर्वाण सुख/आनंद है; 9.39 दुष्ट मारा को कैसे पराजित करें; 9.41 ज्ञानोदय प्रक्रिया का विस्तृत विवरण; 10:21 बुद्ध की दस शक्तियाँ क्या हैं?; 10.29 ब्रह्मांड; 10.46

उपोसथ (उपवास) और ध्यान के लाभ; 10.60 अनित्यता और विस्तृत अनापान; 10.61 अविज्जा; 10.69 और 10.70 भिक्षुओं को अनुमत दस प्रकार के प्रवचन। 10.89 संतों पर झूठा आरोप लगाना - कोकालिका (देखें 11.6) विपत्ति; 10.97 अहनेय्या - महान कौन है; 10.99 उपली - अभ्यास कैसे करें; 10.170 निकटवर्ती तट और दूरवर्ती तट; 10.176 पवित्रता; 10.177 मृतकों के लिए दान; 10.216, 10.219 कर्म और पुनर्जन्म; 10.217-10.218 कर्म; 11.1-11.3 शील (नैतिकता) का महत्व; 11.9 समाधि अवस्था: ध्यानमग्न व्यक्ति की पूजा इंद्र, ब्रह्मा और देवता करते हैं; 11.10 क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं - ब्रह्मा सनत्कुमार कहें; 11.11 ध्यान कैसे करें (विस्तार से); 11.16 करुणा के लाभ; 11.17 ग्वाला: बौद्ध धर्म का अभ्यास कैसे करें

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1अंगुत्तर निकाय संस्करण 2-नया और पूर्ण
2अंगुत्तरा निकाय का श्लोक-दर-श्लोक अनुवाद
3अंगुत्तरा निकया संस्करण 1 - पुराना और अपूर्ण
4अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
5हिंदी संस्करण (AN1 से AN3)
6मूल पाली संस्करण

00:02
41:20

अंगुत्तर निकाय संस्करण 2-नया और पूर्ण
AN1. एक की पुस्तक - संस्करण 2 3
AN2. दो की पुस्तक - संस्करण 2 47
AN3. तीन की पुस्तक - संस्करण 2 99
AN4. चार की पुस्तक - संस्करण 2 271
AN5. पांच की पुस्तक - संस्करण 2 507
AN6. छह की पुस्तक - संस्करण 2 718
AN7. सात की पुस्तक - संस्करण 2 846
AN8. आठ की पुस्तक - संस्करण 2 951
AN9. नौ की पुस्तक - संस्करण 2 1075
AN10. दस की पुस्तक - संस्करण 1154
AN11. ग्यारह की पुस्तक – संस्करण 1347
भिक्कू बी. बोधि के संस्करण में परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ 1380
अंगुत्तरा निकाय का श्लोक-दर-श्लोक अनुवाद
AN1-एकजनों की पुस्तक-श्लोक दर श्लोक 1383

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 1.एक की पुस्तक

———————————————————————

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

———————————————————————

यह अंगुत्तरा निकाय का पहला भाग है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

अगला (AN2) >>>>

अंतर्वस्तु

11. एककनिपात की पुस्तक (एककनिपात)

1.1I. मन की आसक्तियाँ (रूपादि-वग्गो)

1.2द्वितीय. बाधा खंड का परित्याग (निवारण-पहाना-वाग्गो)

1.3तृतीय. बोझिल (अकममानिया-वाग्गो)

1.4चतुर्थ. अदम्य धारा (अदंता-वाग्गो)

1.5वी. स्पाइक सेक्शन (पनिहिताच्चा-वाग्गो)

1.6VI. चित्त (चेतना) प्रकाशमान है।

1.7सातवीं. ऊर्जा का जागरण आदि खंड (विरियारम्भादि-वग्गो)

1.8आठवीं. अच्छी मित्रता आदि अनुभाग (कल्याणमित्तदि-वाग्गो)

1.9नौवीं. आलस्य आदि धारा (पामदादी-वाग्गो)

1.10X. दूसरा सुस्ती आदि खंड (दुतिया-पमादादी-वाग्गो)

1.11XI. बुरा-धम्म धारा (अधम्म-वाग्गो)

1.12बारहवीं. गैर अपराध धारा (अनापत्ति-वाग्गो)

1.13XIII. एक व्यक्ति अनुभाग (एकपुग्गला-वाग्गो)

1.14XIV. अग्रणी (शिष्य) अनुभाग (एटाडग्गा-वाग्गो)

1.14.1i. पहला उप-अध्याय (भिक्षु) 188-197

1.14.2ii. द्वितीय उप-अध्याय 198-208

1.14.3iii. तीसरा उप-अध्याय 209-218

1.14.4iv. चौथा उप-अध्याय 219-234

1.14.5वी. पांचवां उपअध्याय (नन/भिक्कुनिस) 235-247

1.14.6vi. छठा उप-अध्याय (पुरुष गृहस्थ अनुयायी) 248-257

1.14.7vii. सातवाँ उप-अध्याय (महिला गृहस्थ अनुयायी) 258 — 267

1.15XV. असंभव 149 (अत्थाना)

1.16XVI. एक बात 159[एकधम्म]

1.16.1i. पहला उपअध्याय

1.16.2ii. दूसरा उप-अध्याय

1.16.3iii. तीसरा उप-अध्याय 172

1.16.4iv. जंबुद्वीप (भारत) पुनरावृत्ति श्रृंखला [चौथा उप-अध्याय] 322 365

1.17सत्रहवाँ भाग: आत्मविश्वास बढ़ाने वाले गुण

1.18XVIII. उंगली चटकाने वाला अनुभाग

1.19XIX. माइंडफुलनेस (ध्यान) शरीर की ओर निर्देशित [204] (कायगाता-सती-वाग्गो)

1.20XX. मृत्युहीन धारा 214 (अमाता-वाग्गो सं. अमृत वर्ग)

1. एककनिपात की पुस्तक (एककनिपात)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

शत्रुओं पर विजय पाने वाले, सत्यनिष्ठा से पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान को प्रणाम।

I. मन की आसक्तियाँ (रूपादि-वग्गो)

(अर्थ : रूप-रूप, सद्दो-आवाज, गंधो-गंध, रसो-स्वाद, फोत्थब्बो-स्पर्श)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे स्त्री के रूप के अलावा कोई और रूप (रूप) दिखाई नहीं देता जो पुरुष के मन को इतना मोहित करता हो। स्त्री का रूप पुरुष के मन को मोहित करता है।"

2

"भिक्षुओं, मुझे स्त्री की आवाज के समान कोई और आवाज नहीं दिखती जो पुरुष के मन को इतना मोहित कर ले। स्त्री की आवाज पुरुष के मन को मोहित कर लेती है।"

3

"भिक्षुओं, मुझे स्त्री की गंध के समान कोई और गंध नहीं दिखती जो मनुष्य के मन को इतना मोहित कर ले। स्त्री की गंध मनुष्य के मन को मोहित कर लेती है।" 18

4

"भिक्षुओं, मुझे स्त्री के स्वाद के अलावा कोई और ऐसा स्वाद नहीं दिखता जो पुरुष के मन को इतना मोहित कर ले। स्त्री का स्वाद पुरुष के मन को मोहित कर लेता है।" 19

5

भिक्षुओं, मुझे स्त्री के स्पर्श के समान कोई और स्पर्श दिखाई नहीं देता जो मनुष्य के मन को इतना मोहित कर ले। स्त्री का स्पर्श मनुष्य के मन को मोहित कर लेता है।

6

"भिक्षुओं, मुझे पुरुष के रूप के अलावा कोई और रूप (रूप) दिखाई नहीं देता जो स्त्री के मन को इतना मोहित कर ले। पुरुष का रूप ही स्त्री के मन को मोहित कर लेता है।"

7

"भिक्षुओं, मुझे पुरुष की ध्वनि के अलावा कोई और ऐसी ध्वनि दिखाई नहीं देती जो स्त्री के मन को इतना मोहित कर ले। पुरुष की ध्वनि ही स्त्री के मन को मोहित कर लेती है।"

8

"भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई दूसरी गंध नहीं दिखती जो किसी स्त्री के मन को पुरुष की गंध की तरह इतना मोहित कर ले। पुरुष की गंध ही स्त्री के मन को मोहित कर लेती है।"

9

"भिक्षुओं, मुझे पुरुष के स्वाद के अलावा कोई और ऐसा स्वाद नहीं दिखता जो स्त्री के मन को इतना मोहित कर ले। पुरुष का स्वाद ही स्त्री के मन को मोहित कर लेता है।"

10

"भिक्षुओं (संतों), मुझे ऐसा कोई दूसरा स्पर्श नहीं दिखता जो किसी स्त्री के मन को पुरुष के स्पर्श जितना मोहित कर दे। पुरुष का स्पर्श ही स्त्री के मन को मोहित कर देता है।" [3]

द्वितीय. बाधा खंड का परित्याग (निवारण-पहाना-वाग्गो)

(निवारण-आवरण/परतें, पहाना-हटाना, वाग्गो-खण्ड)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

11

भिक्षुओं, मुझे आकर्षण के लक्षण के अलावा और कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न हो और उत्पन्न होकर इतनी बढ़ जाए। 23 क्योंकि जो व्यक्ति आकर्षण के लक्षण पर लापरवाही से ध्यान देता है, उसकी अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न होती है और बढ़ती जाती है।

12

भिक्षुओं, मुझे घृणास्पद वस्तु के चिह्न के अलावा कोई और ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जिससे अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती हो और उत्पन्न दुर्भावना इतनी अधिक बढ़ती और फैलती हो। 24 क्योंकि जो व्यक्ति घृणास्पद वस्तु के चिह्न पर लापरवाही से ध्यान देता है, उसमें अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और उत्पन्न दुर्भावना बढ़ती और फैलती है।

13

भिक्षुओं, मुझे असंतोष, सुस्ती, आलसी अंगड़ाई, भोजन के बाद की नींद और मन की आलस्य के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाही सुस्ती और नींद उत्पन्न होती हो और बढ़ती और फैलती हो। सुस्त मन वाले व्यक्ति के लिए अनचाही सुस्ती और नींद उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है।

14

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा कारण नहीं दिखता जिससे अनवजह बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न हो और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप इतना बढ़ और फैल जाए जितना कि अशांत मन। 26 अशांत मन वाले व्यक्ति में अनवजह बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप इतना बढ़ और फैल जाता है।" [4]

15

भिक्षुओं, मुझे लापरवाही से ध्यान देने के अलावा और कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनपेक्षित संदेह उत्पन्न होता हो और उत्पन्न संदेह इतना बढ़ता और फैलता हो। 27 क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसमें अनपेक्षित संदेह उत्पन्न होता है और उत्पन्न संदेह बढ़ता और फैलता है।

16

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा कारण नहीं दिखता जिससे अचेतन कामुक इच्छा उत्पन्न न हो और उत्पन्न कामुक इच्छा का त्याग हो, सिवाय उस अप्रियता के चिह्न के। 29 क्योंकि जो व्यक्ति अप्रियता के चिह्न पर ध्यान देता है, उसकी अचेतन कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामुक इच्छा का त्याग हो जाता है।" 30

17

"भिक्षुओं, मुझे प्रेम-कृपा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति के अलावा कोई और ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जिससे अनचाही दुर्भावना उत्पन्न न हो और उत्पन्न दुर्भावना का त्याग हो जाए। 31 जो प्रेम-कृपा द्वारा मन की मुक्ति पर ध्यान देता है, उसकी अनचाही दुर्भावना उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न दुर्भावना का त्याग हो जाता है।" 32

18

भिक्षुओं, मुझे उत्तेजना, दृढ़ता और परिश्रम के तत्व के अलावा और कोई कारण नहीं दिखता जिससे अनवजित सुस्ती और उनींदापन उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न सुस्ती और उनींदापन का त्याग होता है। 33 क्योंकि जिसने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत कर लिया है, उसमें अनवजित सुस्ती और उनींदापन उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न सुस्ती और उनींदापन का त्याग हो जाता है। 34

19

भिक्षुओं, मुझे मन की शांति के सिवा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाही बेचैनी और पश्चाताप न उत्पन्न हो और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप का त्याग हो जाए। 35 शांत मन वाले व्यक्ति में अनचाही बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप का त्याग हो जाता है। 36

20

"भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाहा संदेह उत्पन्न न हो और उत्पन्न संदेह दूर हो जाए। 37 क्योंकि जो ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसका अनचाहा संदेह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न संदेह दूर हो जाता है।" 38

तृतीय. बोझिल (अकममानिया-वाग्गो)

(अकम्मानिया-कठोर/जिद्दी)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

21

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित होने पर इतनी अनियंत्रित हो। अविकसित मन ही अनियंत्रित होता है।"

22

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो विकसित होने पर इतनी सुगम हो। एक विकसित मन ही सुगम होता है।"

23

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसका अविकसित होना इतना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो। अविकसित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

24

"भिक्षुओं, मुझे मन के विकास के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो इतने महान कल्याण की ओर ले जाती हो। एक विकसित मन ही महान कल्याण की ओर ले जाता है।"

25

"भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित और अप्रकट होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो: मन, जब अविकसित और अप्रकट होता है, तो बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

26

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो विकसित और प्रकट होने पर इतना महान लाभ प्रदान करती हो। मन, जब विकसित और प्रकट होता है, तो महान लाभ प्रदान करता है।

27

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित और अविकसित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अविकसित और अविकसित मन ही बड़ा नुकसान पहुंचाता है।

28

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती, जिसे विकसित और सँवारा जा सके और जिससे इतना महान लाभ प्राप्त हो सके। मन, जब विकसित और सँवारा जाता है, तो महान लाभ की ओर ले जाता है।

29

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित और अविकसित होने पर इतना कष्ट देती हो। मन, जब अविकसित और अविकसित होता है, तो कष्ट देता है।

30

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती, जिसे विकसित और पोषित करने से इतना सुख मिलता हो। मन, जब विकसित और पोषित होता है, तो सुख प्रदान करता है।

चतुर्थ. अदम्य धारा (अदंता-वाग्गो)

(अदांता अनटेम्ड/वाइल्ड)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

31

भिक्षुओं, 'मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।'

32

"भिक्षुओं, मुझे मन के सिवा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जिसे वश में करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। वश में किया हुआ मन ही महान लाभ की ओर ले जाता है।"

33

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और चीज [7] दिखाई नहीं देती, जिस पर असुरक्षा बरतने से इतना बड़ा नुकसान होता हो। असुरक्षित मन से बहुत नुकसान होता है।"

34

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसकी रक्षा करने से इतना बड़ा लाभ प्राप्त होता हो। एक संरक्षित मन ही बड़े लाभ की ओर ले जाता है।"

35

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो असुरक्षित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। असुरक्षित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

36

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसकी रक्षा करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। संरक्षित मन ही महान लाभ की ओर ले जाता है।"

37

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

38

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसे संयमित करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। संयमित मन महान लाभ की ओर ले जाता है।"

39

भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित, बेकाबू, असुरक्षित और बेकाबू होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित, बेकाबू, असुरक्षित और बेकाबू मन ही बड़ा नुकसान पहुंचाता है।

40

"भिक्षुओं, मुझे मन के सिवा कोई और वस्तु दिखाई नहीं देती, जिसे वश में करने, सुरक्षित रखने, संरक्षित करने और नियंत्रित करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। मन, जब वश में किया जाता है, सुरक्षित रखा जाता है, संरक्षित किया जाता है और नियंत्रित किया जाता है, तो महान लाभ की ओर ले जाता है।" [8]

वी. स्पाइक सेक्शन (पनिहिताच्चा-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

41

भिक्षुओं, मान लीजिए पहाड़ी धान या जौ की एक बाली गलत दिशा में गिर गई हो और उसे हाथ या पैर से दबा दिया जाए। यह असंभव है कि वह हाथ या पैर को छेदकर खून निकाले। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली गलत दिशा में गिरी है। ठीक उसी प्रकार, यह असंभव है कि भटके हुए मन वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत करे और निर्वाण प्राप्त करे। इसका कारण क्या है? क्योंकि मन भटका हुआ है।

42

भिक्षुओं, मान लीजिए कि पहाड़ी धान या जौ की एक सुव्यवस्थित बाली को हाथ या पैर से दबाया जाए। संभव है कि वह हाथ या पैर को छेद दे और खून निकल आए। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सुव्यवस्थित है। इसी प्रकार, एक सुव्यवस्थित मन वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन सुव्यवस्थित है।

43

"हे भिक्षुओं, मैंने अपने मन से एक मानसिक रूप से भ्रष्ट व्यक्ति के मन को घेर लिया है और मैं समझता हूँ कि यदि यह व्यक्ति इस समय मर जाए, तो उसे सीधे नरक में पहुँचा दिया जाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन भ्रष्ट है। मानसिक भ्रष्टता के कारण ही शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

44

"हे भिक्षुओं, मैंने एक शांत मन वाले व्यक्ति के मन को अपने मन से ग्रहण किया है और मैं समझता हूँ कि यदि [9] यह व्यक्ति इस समय मर जाए तो उसे स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाएगा जैसे उसे वहाँ लाया गया हो। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन शांत है। 42 मन की शांति के कारण ही शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

45

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक तालाब का पानी मैला, गंदा और कीचड़ भरा है। तब किनारे पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें तैरते और आराम करते हुए सीप, कंकड़, मछलियों के झुंड नहीं देख सकता। इसका कारण क्या है? क्योंकि पानी मैला है। ठीक उसी प्रकार, एक मैले मन वाले भिक्षु के लिए अपना भला, दूसरों का भला, या दोनों का भला जानना या श्रेष्ठ भिक्षुओं के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त करना असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन मैला है। 43

46

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक साफ, शांत और निर्मल जल का तालाब है। उस तालाब के किनारे खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़-पत्थर और मछलियों के झुंड को तैरते और विश्राम करते हुए देख सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि जल निर्मल है। ठीक इसी प्रकार, निर्मल मन वाले भिक्षु के लिए अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को जानना और श्रेष्ठ लोगों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में असाधारण विशिष्टता प्राप्त करना संभव है। 44 इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन निर्मल है।

47

"भिक्षुओं, जिस प्रकार चंदन को लचीलेपन और सुगमता के मामले में सर्वश्रेष्ठ वृक्ष घोषित किया गया है, उसी प्रकार मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जो विकसित और पोषित होने पर इतनी लचीली और सुगम हो। एक विकसित और पोषित मन लचीला और सुगम होता है।" [10]

48

"भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो इतनी जल्दी बदलती हो। 45 मन कितनी जल्दी बदलता है, इसका उपमा देना आसान नहीं है।"

49

"हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है, परन्तु यह आकस्मिक दोषों से दूषित है।" 46

50

"भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है और यह आकस्मिक दोषों से मुक्त है।"

VI. चित्त (चेतना) प्रकाशमान है।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

51

"हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है, परन्तु यह आकस्मिक दोषों से दूषित है। अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता; अतः मैं कहता हूँ कि अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति के मन का कोई विकास नहीं होता।" 47

52

"भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है और आकस्मिक दोषों से मुक्त है। ज्ञानी शिष्य इसे यथार्थ रूप में समझता है; अतः मैं कहता हूँ कि ज्ञानी शिष्य के लिए मन का विकास संभव है।" 48

53

"भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु क्षण भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) का भाव धारण करे, तो वह ध्यान (सम्मोहन) से रहित भिक्षु कहलाता है, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं करता। 49 तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने अधिक प्रशंसनीय होंगे!"

54

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) का भाव विकसित कर ले, तो वह ध्यान (सम्मोहन) से रहित भिक्षु कहलाता है, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने महान होंगे!

55

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) के भाव में तल्लीन हो जाए, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जो ध्यान (सम्मोहन) से रहित नहीं है, जो गुरु की शिक्षाओं पर अमल करता है, जो उनकी सलाह मानता है और जो देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने महान होंगे!

56

भिक्षुओं, जो भी अकुशल गुण हानिकारक हैं, जो अकुशल गुणों में भाग लेते हैं और उनसे संबंधित हैं, उन सभी का अग्रदूत मन है। 50 मन पहले उत्पन्न होता है, उसके बाद अकुशल गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं।

57

भिक्षुओं, चाहे वे किसी भी प्रकार के हानिकारक (अकुशल) गुणों का सेवन करें, लाभकारी (कुशल) गुणों का उपयोग करें और लाभकारी (कुशल) गुणों से संबंधित हों, इन सभी का अग्रदूत मन है। मन पहले उत्पन्न होता है, उसके बाद लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं।

58

भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जो अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को कम करे। 51 आलस्य में अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।

59

भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो जागृति की तरह अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और अकुशल (हानिकारक) गुणों को कम करे। जो जागृत होता है, उसके लिए अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और अकुशल (हानिकारक) गुण कम हो जाते हैं।

60

भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अकारण हानिकारक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे। आलसी व्यक्ति में अकारण हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।

सातवीं. ऊर्जा का जागरण आदि खंड (विरियारम्भादि-वग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

61

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत होने पर अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों। जिस व्यक्ति में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत हो जाती है, उसमें अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।

62

भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज दिखाई नहीं देती जो अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे, जैसा कि प्रबल इच्छा करती है। 52 प्रबल इच्छा वाले व्यक्ति में अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।

63

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि इच्छाओं की कमी से होता है। 53 जिन लोगों की इच्छाएं कम होती हैं, उनके लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।

64

भिक्षुओं, मुझे असंतोष के कारण अजन्मे अकुशल गुणों का उत्पन्न होना और लाभकारी गुणों का क्षय होना भी दिखाई नहीं देता। 54 जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं है, उसमें अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और लाभकारी गुण क्षय होते हैं।

65

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे संतोष के कारण अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों। 55 जो संतुष्ट है, उसके लिए अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम होते हैं।" [13]

66

भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो अस्वाभाविक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न (कुशल) गुणों को कम करे, सिवाय लापरवाही से ध्यान देने के। क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसके अस्वाभाविक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।

67

भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के समान कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुणों को कम करे। जो व्यक्ति ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।

68

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न हों और लाभकारी गुण नष्ट हों, जैसा कि पूर्ण ज्ञान की कमी से होता है। जो पूर्ण रूप से ज्ञानी नहीं होता, उसमें अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और लाभकारी गुण नष्ट हो जाते हैं।

69

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) से होता है। 56 पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।

70

"भिक्षुओं, मुझे बुरी मित्रता के समान कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अव्यक्त हानिकारक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे। बुरे मित्रों के साथ रहने वाले व्यक्ति में अव्यक्त हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।" [14]

आठवीं. अच्छी मित्रता आदि अनुभाग (कल्याणमित्तदि-वाग्गो)

(कल्याण-शुभकामनाएं; मित्र-दोस्त)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

71

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कार्य दिखाई नहीं देता जो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुणों को कम करे, जैसा कि अच्छी मित्रता करती है। अच्छे मित्रों के साथ रहने वाले व्यक्ति के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं। 57

72

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न हों और लाभकारी गुण नष्ट हों, जैसा कि अकुशल गुणों का अनुसरण और उनका अनासक्ति करना होता है। अकुशल गुणों का अनुसरण और लाभकारी गुणों का अनासक्ति करना अजन्मे अकुशल गुणों को उत्पन्न करता है और लाभकारी द्वैत को नष्ट करता है।

73

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करने से होता है। लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करने से अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) कम हो जाते हैं।

74

भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो अनादि ज्ञान के तत्वों को उत्पन्न होने से रोकती हो और उत्पन्न ज्ञान के तत्वों को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचने से रोकती हो, सिवाय लापरवाही से ध्यान देने के। क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसके अनादि ज्ञान के तत्व उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न ज्ञान के तत्व विकास द्वारा पूर्णता तक नहीं पहुंचते।

75

भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के अलावा कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो ज्ञान के अजन्मे तत्वों को उत्पन्न करे और ज्ञान के उत्पन्न तत्वों को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचाए। [15] जो ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके लिए ज्ञान के अजन्मे तत्व उत्पन्न होते हैं और ज्ञान के उत्पन्न तत्व विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचते हैं।

76

"भिक्षुओं, सगे संबंधियों का देहांत नगण्य है। सबसे बुरी चीज जो खोनी पड़ती है वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)।"

77

भिक्षुओं, रिश्तेदारों की संख्या में वृद्धि महत्वहीन है। सबसे अच्छी वृद्धि तो पन्ना (दिव्य ज्ञान) में ही होनी चाहिए। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करेंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

78

भिक्षुओं, धन की हानि नगण्य है। सबसे बुरी चीज जो खोनी पड़ती है वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)।"

79

भिक्षुओं, धन की वृद्धि महत्वहीन है। सबसे उत्तम चीज जिसमें वृद्धि करनी चाहिए वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करेंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

80

"भिक्षुओं, यश का खोना तुच्छ है। सबसे बुरी चीज जो खोनी पड़ती है वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)।"

81

"भिक्षुओं, यश में वृद्धि महत्वहीन है। सबसे अच्छी चीज जिसमें वृद्धि करनी चाहिए वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।" [16]

नौवीं. आलस्य आदि धारा (पामदादी-वाग्गो)

(पमादा की असावधानी/आलस्य)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

82

"भिक्षुओं, मुझे आलस्य से अधिक हानि पहुँचाने वाली कोई और वस्तु दिखाई नहीं देती। आलस्य अत्यंत हानि का कारण बनता है।"

83

"भिक्षुओं, मुझे जागरूकता से बढ़कर कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो इतनी बड़ी भलाई की ओर ले जाए। जागरूकता ही बड़ी भलाई की ओर ले जाती है।"

84-85

(84) "भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो इतनी बड़ी हानि पहुँचाती हो... (85) ... जो ऊर्जा के संचार (प्रयास/वीर्य) के समान कोई बड़ी भलाई पहुँचाती हो: .

86. ". तीव्र इच्छा . . . (87) . . . इच्छाओं की कमी . . ."

88 ".1. असंतोष (89) . . . संतोष ..."

90 "...लापरवाही से ध्यान देना...(91) ...सावधानी से ध्यान देना..."

92 ". . . पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना) . . . (93) . . . पूर्ण समझ।"

94 "... बुरी दोस्ती . . . (95) . . . अच्छी दोस्ती ..."

96 "...हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण और लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करना... (97) ... लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण और हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करना। लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण और हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करना महान कल्याण की ओर ले जाता है।"

X. दूसरा सुस्ती आदि खंड (दुतिया-पमादादी-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

98

"आंतरिक कारकों में, हे भिक्षुओं, मुझे आलस्य से अधिक हानि पहुँचाने वाला एक भी कारक दिखाई नहीं देता। आलस्य अत्यंत हानि का कारण बनता है।"

99

"भिक्षुओं, आंतरिक कारकों में मुझे एक भी ऐसा कारक नहीं दिखता जो सतर्कता के समान महान कल्याण की ओर ले जाता हो। [17] सतर्कता महान कल्याण की ओर ले जाती है।"

100 "भिक्षुओं, आंतरिक कारकों में मुझे आलस्य के समान कोई ऐसा कारक नहीं दिखता जो इतना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो... (101) ... जो ऊर्जा के संचार (प्रयास/वीर्य) के समान कोई बड़ा लाभ पहुंचाता हो..." 60

102 "...प्रबल इच्छा... 103 ...इच्छाओं की अल्पता..."

104 . . असंतोष .'. . 105 . . . संतोष . .

106 . . लापरवाही से ध्यान देना . . . (107) . . . सावधानीपूर्वक ध्यान देना ..."

108 . . पूर्ण बोध का अभाव (संपजन्ना) . . . 109 . . . पूर्ण बोध (संपजन्ना)..."

110 "भिक्षुओं, बाह्य कारकों में मुझे ऐसा एक भी कारक नहीं दिखता जो बुरी मित्रता जितना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो...."

111 "भिक्षुओं, मुझे बाह्य कारकों में कोई कारक दिखाई नहीं देता।"

यहां तक कि एक भी कारक जो अच्छी दोस्ती जैसी महान भलाई की ओर ले जाता है।

112 "भिक्षुओं, आंतरिक कारकों में मुझे एक भी ऐसा कारक नहीं दिखता जो हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और लाभकारी (कुशल) गुणों का अनुसरण न करने जितना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो..."

113 . . . जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों का अनुसरण न करने के समान ही महान कल्याण की ओर ले जाता है। लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करना और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करना महान कल्याण की ओर ले जाता है।

114

भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अच्छे धम्म (मार्ग) के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हो। आलस्य ही अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण है।

115

"भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे ऐसा कोई भी साधन दिखाई नहीं देता जो अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने में जागरूकता की तरह सहायक हो। [18] जागरूकता ही अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाती है।"

116 "भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे आलस्य के अलावा कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हो..."

117 . . . जिससे अच्छे धम्म की निरंतरता, उसका पतन न होना और उसका लुप्त न होना सुनिश्चित होता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) के जागरण के रूप में...

118 "...प्रबल इच्छा ...119... इच्छाओं की कमी . ."

120 . . असंतोष . . . 121 . . . संतोष ..."

122 . . लापरवाही से ध्यान देना . . . 123. . . सावधानीपूर्वक ध्यान देना . . ."

124 "... पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना)... 125 ... पूर्ण समझ..."

126 "...बुरी दोस्ती... 127 ...अच्छी दोस्ती ..."

128 "... हानिकारक (अकुसल) गुणों (धम्म) की खोज और लाभकारी (कुसल) की खोज न करना, योग्य है... 129 ...। लाभकारी (कुसल) गुणों की खोज और हानिकारक (अकुसल) गुणों (धम्म) की खोज। लाभकारी (कुसल) गुणों (धम्म) की खोज और हानिकारक (अकुसल) की खोज न करना। गुण (धम्म) अच्छे धम्म की निरंतरता, गैर-गिरावट और गैर-लुप्ति की ओर ले जाता है।"

130

"भिक्षुओं, जो भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के हितैषी होते हैं, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के लिए कारण बनते हैं। 61 ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म को लुप्त कर देते हैं।"

131 — 139

(131) "भिक्षुओं, वे भिक्षु जो धम्म (मार्ग) को गैर-धम्म के रूप में व्याख्या करते हैं... (132) ... अनुशासनहीनता को अनुशासन के रूप में... (133) ... अनुशासनहीनता के रूप में... (134) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और उच्चारित नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा कहा और उच्चारित किया गया है... (135) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और उच्चारित किया गया है, उसे उनके द्वारा कहा और उच्चारित नहीं किया गया है... (136) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा अभ्यास किया गया है... (137) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास किया गया है, उसे अभ्यास नहीं किया गया है।" उसके द्वारा. . . (138) . . . जो तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है, (139) . . . जो तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है, वह अनेक लोगों के लिए हानि, अनेक लोगों के लिए दुख, अनेक लोगों के लिए विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के लिए कष्ट का कारण बनता है। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धम्म (मार्ग) को लुप्त कर देते हैं। 63

XI. बुरा-धम्म धारा (अधम्म-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

140

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो बुरे धर्म (गलत मार्ग) को बुरे धर्म के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य कर रहे हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य कमाते हैं और इस अच्छे धर्म को कायम रखते हैं।"

141 — 149

(141) "भिक्षुओं, वे भिक्षु जो धम्म (मार्ग) को धम्म के रूप में समझाते हैं... (142) ... बुरे अनुशासन को बुरे अनुशासन के रूप में... (143) ... अनुशासन को अनुशासन के रूप में... (144) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा नहीं कहा और नहीं बोला गया है, उसे उनके द्वारा नहीं कहा और नहीं बोला गया है... (145) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और बोला गया है, उसे उनके द्वारा कहा और नहीं बोला गया है... [20] (146) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है... (147) ... जो अभ्यास किया गया है... तथागत (बुद्ध) द्वारा बताए गए आचरणों का पालन किया जाता है... (148) ... तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित न किए गए आचरणों का पालन किया जाता है... (149) ... तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित आचरणों का पालन किया जाता है, वे हैं अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए कार्य करना। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म का पालन करते हैं।

बारहवीं. गैर अपराध धारा (अनापत्ति-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

150

“भिक्षुओं, जो भिक्षु अहिंसा को अहिंसा बताते हैं, वे अनेक लोगों के हित में कार्य करते हैं, अनेक लोगों को दुखी करते हैं, अनेक लोगों, देवताओं और मनुष्यों के विनाश, हानि और पीड़ा का कारण बनते हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म को लुप्त होने का कारण बनते हैं।”

151 — 159

(151) "भिक्षु (मठवासी), वे भिक्षु जो अपराध को अपराध नहीं बताते... (152) ... एक हल्के अपराध को गंभीर अपराध बताते हैं... (153) ... एक गंभीर अपराध को हल्के अपराध बताते हैं... (154) ... एक घोर अपराध को घोर अपराध नहीं बताते... (155) ... एक ऐसे अपराध को जो घोर नहीं है, घोर अपराध बताते हैं... (156) ... एक उपचार योग्य अपराध को अउपचार योग्य अपराध बताते हैं... [21] (157) ... एक अउपचार योग्य अपराध को उपचार योग्य अपराध बताते हैं (158) ... एक ऐसे अपराध को जिसका निवारण संभव है, बिना निवारण वाले अपराध बताते हैं... (159) ... एक ऐसे अपराध को जिसका निवारण संभव नहीं है, निवारण योग्य अपराध बताते हैं, वे अनेक लोगों के नुकसान, अनेक लोगों के दुख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा के लिए कार्य कर रहे हैं। देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य। 66 ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धम्म (मार्ग) को लुप्त कर देते हैं।

160

"भिक्षुओं, जो भिक्षु अपराध न करने की व्याख्या करते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य कर रहे हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म का पालन करते हैं।"

161 -169

(161) "भिक्षु (मठवासी), वे भिक्षु जो किसी अपराध को अपराध के रूप में समझाते हैं... (162) ... हल्के अपराध को हल्के अपराध के रूप में समझाते हैं... (163) ... गंभीर अपराध को गंभीर अपराध के रूप में समझाते हैं... (164) ... घोर अपराध को घोर अपराध के रूप में समझाते हैं... (165) ... जो अपराध घोर नहीं है उसे घोर अपराध नहीं समझाते... (166) ... उपचार योग्य अपराध को उपचार योग्य अपराध के रूप में समझाते हैं... (167) ... अउपचार योग्य अपराध को अउपचार योग्य अपराध के रूप में समझाते हैं... (168) ... निवारण योग्य अपराध को निवारण योग्य अपराध के रूप में समझाते हैं... (169) ... बिना निवारण वाले अपराध को बिना निवारण वाले अपराध के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, कल्याण और खुशी के लिए कार्य कर रहे हैं।" देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस अच्छे धम्म को बनाए रखते हैं।" [22]

XIII. एक व्यक्ति अनुभाग (एकपुग्गला-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

170

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, संसार के प्रति करुणा, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए संसार में अवतरित होता है। 67 वह एक व्यक्ति कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह एक व्यक्ति है जो संसार में अवतरित होता है... देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए।

171-174

"भिक्षुओं, संसार में एक व्यक्ति का अवतार दुर्लभ है... (172)... संसार में एक असाधारण व्यक्ति का उदय हुआ है... (173)... एक व्यक्ति की मृत्यु पर अनेक लोग शोक मनाते हैं... (174) 68... संसार में एक अद्वितीय, अतुलनीय, बेजोड़, अद्वितीय, बेमिसाल, बेमिसाल, दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में श्रेष्ठ। 70 वह कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह व्यक्ति है जो संसार में उदय हुआ है, जो... दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में श्रेष्ठ है।"

175-186

"भिक्षुओं (मठवासियों), एक व्यक्ति का प्रकटीकरण महान दृष्टि का प्रकटीकरण है... (175) महान प्रकाश का प्रकटीकरण... (176) महान प्रकाश का प्रकटीकरण... (177) महान दीप्ति का प्रकटीकरण... (178) छह अतुलनीय चीजों का प्रकटीकरण... (179) चार विश्लेषणात्मक ज्ञान की प्राप्ति... (180) अनेक तत्वों का भेदन... (181) तत्वों की विविधता का भेदन... (182) सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति [23]... (183) धारा-प्रवेश (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति... (184) एक बार लौटने के फल की प्राप्ति (1 पुनर्जन्म (सकदागामी)... (185)... अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) के फल की प्राप्ति... (186)... अरहंतत्व के फल की प्राप्ति। वह कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह व्यक्ति है जिसका प्रकटीकरण महान दृष्टि का प्रकटीकरण है... अरहंतत्व के फल की प्राप्ति।

187

भिक्षुओं, मुझे एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को सारिपुत्त की तरह उचित रूप से गतिमान रखता हो। सारिपुत्त तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को उचित रूप से गतिमान रखता है।

XIV. अग्रणी (शिष्य) अनुभाग (एटाडग्गा-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

i. पहला उप-अध्याय (भिक्षु) 188-197

(188) "भिक्षुओं, मेरे भिक्षु शिष्यों में वरिष्ठता में सबसे श्रेष्ठ अन्नकोंडन्ना हैं।" 74

(189) "...महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वालों में सारिपुत्त हैं।" 75

(190) "...मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) रखने वालों में महामोग्गलाना भी शामिल हैं।" 76

(191) "...तपस्या प्रथाओं का प्रतिपादन करने वालों में महाकस्सपा भी शामिल हैं।" 77

(192) "...दिव्य दृष्टि रखने वालों में अनुराधा भी शामिल है।" 78

(193) "...प्रतिष्ठित परिवारों में से भद्दिया कलिगोधायपुत्त हैं।" 79

(194) "...मधुर आवाज वालों में लकुंतका भद्दिया भी शामिल हैं।" 80

(195) "...सिंह की दहाड़ रखने वालों में पिंडोला भारद्वाज भी शामिल हैं।" 81

(196) "...धम्म (मार्ग) पर बोलने वालों में पुरिना मंतानिपुत्त भी शामिल हैं।" 82

(197) "...संक्षेप में कही गई बात का अर्थ विस्तार से समझाने वालों में महाकच्चना भी शामिल है।" [24]

---

ii. द्वितीय उप-अध्याय 198-208

(198) "भिक्षुओं (मठवासियों), मेरे उन भिक्षु शिष्यों में जो मन से शरीर का सृजन करते हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ चुल्लपंथक हैं।" 83

(199) ". . . मानसिक रूपांतरण में कुशल लोगों में कुल्लापंथक शामिल हैं।"

(200) "...धारणा (सन्ना/संज्ञा) के रूपांतरण में निपुण लोगों में महापंथक भी शामिल हैं," 84

(201) "...उनमें से एक सुभूति हैं जो बिना किसी संघर्ष के निवास करते हैं।" 85

(202) ...दान के योग्य लोगों में सुभूति भी शामिल हैं।"

(203) "...वनवासियों में रेवता खदिरावनिया हैं।" 86

(204) "...ध्यान करने वालों में कंखारेवत भी शामिल हैं।" 87

(205) "...ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने वालों में सोना कोलिविसा भी शामिल है।" 88

(206) "...इनमें उत्कृष्ट वक्ताओं में सोना कुटिकन्ना भी शामिल हैं।" 89

(207) "...लाभ प्राप्त करने वालों में सिवाह भी शामिल है।" 90

(208) "...विश्वास के माध्यम से संकल्पित लोगों में वक्कल भी शामिल हैं।" 91

---

iii. तीसरा उप-अध्याय 209-218

(209) "भिक्षुओं (भिक्षुओं), मेरे भिक्षु शिष्यों में से जो प्रशिक्षण की इच्छा रखते हैं, उनमें सबसे आगे राहुल हैं।"

(210) "...उन लोगों में से जो आस्था के कारण [सन्यासी जीवन में] चले गए हैं, उनमें रत्थपाल भी शामिल हैं।" 93

(211) "...भोजन टिकट लेने वालों में सबसे पहले कुंडाधना का नाम आता है..." 94

(212) "...प्रेरित काव्य रचने वालों में वाग्गीसा भी शामिल हैं।" 95

(213) ". . . सभी मामलों में विश्वास जगाने वालों में उपसेना वाहगंतपुत्त हैं;" 96 .

(214) "...आवास आवंटित करने वालों में डब्बा मल्लपुत्त भी शामिल हैं।" 97

(215) "...देवताओं (देवदूतों) को प्रसन्न करने वाले और उन्हें प्रिय लगने वालों में पिलिन्दवच्छ भी शामिल है।" 98

(216) "...प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) शीघ्र प्राप्त करने वालों में बहिया दारुचिरिया है।" 99

(217) "...बहुभाषी लोगों में कुमार कस्सपा भी शामिल हैं।" 100

(218) "...विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों में महाकोत्थिता भी शामिल है।" 101

---

iv. चौथा उप-अध्याय 219-234

(219) "मेरे भिक्षु शिष्यों में, जो विद्वान हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ आनंद हैं।" 102

(220) "... अच्छी याददा वालों में आनंद भी है।" [25]

(221) ...तेजी से समझने वालों में आनंद भी शामिल है।" 103

(222) "...दृढ़ संकल्पियों में आनंद भी शामिल है।" 104

(223) "... निजी परिचारकों में आनंद है।"

(224) . . बड़े दल-भंगिमाओं वाले लोगों में उरुवेला भी शामिल है

kassapa." 105 'अगर

(225) "...उन लोगों में से जो परिवारों में विश्वास जगाते हैं

कलुदयी।" 106

(226) "...अच्छे स्वास्थ्य वालों में बक्कुला भी शामिल है।" 107

(227) "...पूर्व जन्मों को याद करने वालों में शोभिता भी शामिल है।" 108

(228) "...अनुशासन के समर्थकों में उपाली भी शामिल हैं।" 109

(229) "...भिक्षुओं को उपदेश देने वालों में नंदका भी शामिल हैं।" 110

(230) "...इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करने वालों में नंदा भी शामिल हैं।" 111

(231) "...भिक्षुओं को उपदेश देने वालों में महा कप्पिन भी शामिल हैं।" 112

(232) "...अग्नि तत्व में निपुणता रखने वालों में सागाता भी शामिल है।" 113

(233) "...वाक्पटु प्रवचन प्राप्त करने वालों में राधा भी शामिल हैं।" 114

(234) "...मोटे वस्त्र पहनने वालों में मोगराजा भी शामिल है।" 115

वी. पांचवां उपअध्याय (नन/भिक्कुनिस) 235-247

(235) "भिक्खु (भिक्षु), वरिष्ठता में मेरे भिक्खुनी (नन) शिष्यों में सबसे अग्रणी महापजापति गौतमी हैं।" 116

(236) "...महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वालों में खेमा भी शामिल है।" 117

(237) "... मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) वाले लोगों में उप्पला वन्ना है।" 118

(238) "...अनुशासन का पालन करने वालों में पटाकारा भी शामिल हैं।" 119

(239) "...धम्म पर बोलने वालों में धम्म दिन्ना भी शामिल है।" 120

(240) "...ध्यानियों में नंदा भी शामिल हैं।" 121

(241) "...जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करते हैं उनमें सोना भी शामिल है।" 122

(242) "...दिव्य दृष्टि रखने वालों में सकुला भी शामिल है।" 123

(243) "...प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) शीघ्र प्राप्त करने वालों में भद्दा कुंडलकेश है।" 124

(244) "...पूर्व जन्मों को याद करने वालों में भद्दा कपिला भी शामिल हैं।" 125

(245) "... उन लोगों में से जो महान प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) प्राप्त करते हैं, भद्दा कक्काना हैं," 126

(246) "...मोटे वस्त्र पहनने वालों में किसागोतामी भी शामिल है।" 127

(247) "...विश्वास के माध्यम से संकल्पित लोगों में सिगालामाता भी शामिल है।" 128

---

vi. छठा उप-अध्याय (पुरुष गृहस्थ अनुयायी) 248-257

(248) "मेरे पुरुष गृहस्थ अनुयायियों में से, शरण लेने वाले पहले भिक्षु (भिक्षु) तपस्सा और भल्लिका हैं।" [26] 129

(249) ...दानदाताओं में गृहस्थ सुदत्ता अनाथपिंडिका भी शामिल हैं।" 130

(250) "...धम्म पर बोलने वालों में मच्चिकासंद का गृहस्थ चित्त भी शामिल है।" 131

(251) "...दूसरों को आकर्षित करने और उनका भरण-पोषण करने के चार साधनों का उपयोग करने वालों में अलावी का हत्थका भी शामिल है।" 132

(252) ...उत्कृष्ट दान देने वालों में महानमा शाक्य है।" 133

(253) "...जो लोग प्रसन्नतापूर्वक दान करते हैं उनमें वैशाली का गृहस्थ उगा भी शामिल है।" 134

(254) "... संघ के सेवकों में गृहस्थ उग्गता है।" 135

(255) "...अटूट विश्वास रखने वालों में सूरा अंबत्था भी शामिल हैं।" 136

(256) "...लोगों पर विश्वास रखने वालों में जीवक कोमरभच्च भी शामिल हैं।" 137

(257) "...जिन पर भरोसा किया जाता है उनमें गृहस्थ नकुलपिता भी शामिल हैं।" 138

---

vii. सातवाँ उप-अध्याय (महिला गृहस्थ अनुयायी) 258 — 267

(258) "भिक्षुओं (सन्यासियों), मेरी महिला गृहस्थ अनुयायियों में सबसे पहले शरण लेने वाली सुजाता है, जो सेनानी की पुत्री है।" 139

(259) "... दानदाताओं में विशाखा मिगारमाता भी शामिल हैं।" 140

(260) "... विद्वानों में खुज्जुत्तारा भी शामिल हैं।" 141

(261) "...उन लोगों में जो प्रेम और करुणा (मेट्टा) में निवास करते हैं, उनमें समवती भी शामिल हैं।" 142

(262) "...ध्यानियों में उत्तरा नंदमाता हैं।" 543

(263) "...उत्कृष्ट दान देने वालों में कोलियन पुत्री सुप्पावासा भी शामिल है।" 144

(264) "...बीमारों की सेवा करने वालों में महिला अनुयायी सुप्पिया भी शामिल है।" 145

(265) ... अटूट विश्वास रखने वालों में कटियानी भी शामिल हैं।

(266) "...जिनके साथ घनिष्ठ संबंध हैं उनमें गृहिणी नकुलमाता भी शामिल हैं।" 147

(267) ...जिनका विश्वास सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है, उनमें कुलाघरिका की महिला अनुयायी काली भी शामिल है।" 148

XV. असंभव 149 (अत्थाना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

268

"यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि दृष्टि में सिद्ध कोई (प्रबुद्ध) व्यक्ति किसी भी सशर्त घटना (संहार/संस्कार/भावना) को स्थायी मान सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है [27] कि कोई सांसारिक व्यक्ति किसी सशर्त घटना (संहार/संस्कार/भावना) को स्थायी मान सकता है; ऐसी संभावना है।" 150

269

भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि दृष्टि में सिद्ध पुरुष किसी भी सत्वभूत घटना (संहार/संस्कार/भावनाओं) को सुखद समझे; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि सांसारिक पुरुष कुछ सत्वभूत घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को सुखद समझे; ऐसी संभावना है।

270

"भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि ज्ञान में निपुण व्यक्ति किसी भी चीज़ को आत्मा मान सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि सांसारिक व्यक्ति किसी चीज़ को आत्मा मान ले; ऐसी संभावना है।" 152

271 — 276

(271) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी माता का वध कर सकता है... (272) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपने पिता का वध कर सकता है... (273) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति किसी अरहंत का वध कर सकता है... (274) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति घृणा के भाव से तथागत का रक्त बहा सकता है... (275) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति संघ में फूट डाल सकता है... (276) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मान सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि कोई सांसारिक व्यक्ति बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मान सकता है; ऐसी संभावना है।" 153

277

"यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि दो पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत 154 [28] एक ही विश्व व्यवस्था में समकालीन रूप से प्रकट हो सकें; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि एक पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत एक ही विश्व व्यवस्था में प्रकट हो सकें; ऐसी संभावना है।" 155

278

"भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि एक ही विश्व व्यवस्था में दो चक्र-चालक सम्राट एक साथ उत्पन्न हो सकें; ऐसी कोई संभावना नहीं है। 156 परन्तु यह संभव है कि एक ही विश्व व्यवस्था में एक चक्र-चालक सम्राट उत्पन्न हो सके; ऐसी संभावना है।"

279 -283

(279) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि कोई स्त्री पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत हो सकती है... (280) ...कि कोई स्त्री चक्र चलाने वाली सम्राट हो सकती है... (281) ...कि कोई स्त्री सक्का (इंद्र) का पद धारण कर सकती है... (282) ...कि कोई स्त्री मार का पद धारण कर सकती है... (283) ...कि कोई स्त्री ब्रह्मा का पद धारण कर सकती है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि कोई पुरुष ब्रह्मा का पद धारण कर सकता है; ऐसी संभावना है।" 157

284 -286

(284) "हे भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि शारीरिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके... (285) ... कि मौखिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके... (286) ... कि मानसिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि मानसिक दुराचार से अवांछित, अप्रिय, अप्रिय परिणाम प्राप्त हो सके [शारीरिक दुराचार से... मौखिक दुराचार से...]; ऐसी संभावना है।"

287— 289

(287) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है [29] . . . (288) . . . कि मौखिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है ... (289) . . . कि मानसिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन यह संभव है कि मानसिक अच्छे आचरण से वांछित, सुखद परिणाम उत्पन्न हो सकता है [शारीरिक अच्छे आचरण से . . . मौखिक अच्छे आचरण से . . .]; ऐसी संभावना है।" 153

290 - 292

(290) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके... (291) ... कि मौखिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके... (292) ... कि मानसिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव

है कि शारीरिक दुराचार ... मौखिक दुराचार ... में लिप्त व्यक्ति, मानसिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में पुनर्जन्म ले सके... बुरी नियति, निम्न लोक में, नरक में; ऐसी संभावना है।

293 -295

(293) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले (294) ... कि मौखिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले ... (295) ... कि मानसिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले; ऐसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन यह संभव है [30] कि कोई व्यक्ति [शारीरिक अच्छे आचरण में ... मौखिक अच्छे आचरण में ...] मानसिक अच्छे आचरण में संलग्न हो, उस कारण से, इसलिए, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म होना संभव है।

XVI. एक बात 159[एकधम्म]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

i. पहला उपअध्याय

296

भिक्षुओं, एक ऐसी चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। 160 वह एक चीज क्या है? बुद्ध का स्मरण। 161 यही वह एक चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा... निर्वाण प्राप्त होता है।

297

(297) "भिक्षुओं, एक ऐसी चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्दिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। वह एक चीज क्या है? धम्म का स्मरण... संघ का स्मरण... सद्गुणों का स्मरण... उदारता का स्मरण... देवताओं का स्मरण... श्वास का ध्यान... मृत्यु का ध्यान... शरीर का ध्यान... शांति का स्मरण... यही वह एक चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्दिदा और निर्वाण प्राप्त होता है।"

---

ii. दूसरा उप-अध्याय

298

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न हों और उत्पन्न होकर इतनी वृद्धि और विस्तार हो जितना कि गलत दृष्टिकोण से होता है। गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर बढ़ते और विस्तार होते हैं।

299

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण इतने अधिक बढ़ें और फैलें जितना सही दृष्टि से होता है। [31] सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ते और फैलते हैं।"

300

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न न हों और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण इतने अधिक कम हो जाएँ जितना कि गलत दृष्टिकोण। 165 गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) कम हो जाते हैं।

301

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न न हों और उत्पन्न अकुशल गुण कम हो जाएँ, सिवाय सही दृष्टि के। 166 सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण कम हो जाते हैं।

302

"भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज नजर नहीं आती जिससे अनपेक्षित गलत विचार उत्पन्न हो और उत्पन्न गलत विचार इतना बढ़ जाए जितना कि लापरवाही से ध्यान देने से। लापरवाही से ध्यान देने वाले व्यक्ति के लिए अनपेक्षित गलत विचार उत्पन्न होता है और उत्पन्न गलत विचार बढ़ता ही जाता है।" 167

303

"भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज दिखाई नहीं देती जिससे अजन्मा सही दृष्टिकोण उत्पन्न हो और उत्पन्न सही दृष्टिकोण में इतनी वृद्धि हो जितनी कि सजग ध्यान से होती है। सजग ध्यान से देखने पर अजन्मा सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है और उत्पन्न सही दृष्टिकोण में वृद्धि होती है।" 168

304

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिसके कारण शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं, सिवाय गलत दृष्टि के। गलत दृष्टि रखने वाले प्राणी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

305

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता [32] जिसके कारण शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, प्राणी अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं, सिवाय सही दृष्टि के। सही दृष्टि रखने वाले प्राणी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

306

भिक्षुओं, गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, उसके द्वारा उस दृष्टिकोण के अनुसार किए गए सभी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म, और उसकी सभी आत्म-जागरूकता, लालसा, प्रवृत्ति और संस्कार, सभी अवांछित, अप्रिय और हानि एवं पीड़ा की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण गलत है। मान लीजिए, भिक्षुओं, नीम, खीरा या करेला का एक बीज नम मिट्टी में बोया गया। मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करता है, वे सभी उसके कड़वे, तीखे और अप्रिय स्वाद का कारण

बनते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज खराब है। इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, सभी अवांछित, अप्रिय और हानि एवं पीड़ा की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण गलत है।

307

भिक्षुओं, सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, वह जो भी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म करता है, और जो भी उसकी (आत्म)जागरूकता, लालसा, झुकाव और चरित्र (संस्कार) होते हैं, वे सब वांछित, वांछनीय और सुखद, कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि अच्छी है। मान लीजिए, भिक्षुओं, गन्ने, पहाड़ी चावल या अंगूर का एक बीज नम मिट्टी में बोया गया। मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करता है, वे सब उसके मीठे, सुखद और लजीज स्वाद की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज अच्छा है। इसी प्रकार, सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए... सब कुछ वांछित, वांछनीय और सुखद, कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि अच्छी है।

---

iii. तीसरा उप-अध्याय 172

308

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो संसार में अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और कष्ट के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्पन्न होता है। वह कौन है? वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है और जिसकी सोच भ्रामक है। वह अनेक लोगों को अच्छे धर्म से दूर ले जाता है और उन्हें बुरे धर्म में स्थापित करता है। यही वह व्यक्ति है जो संसार में अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और कष्ट के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्पन्न होता है।

309

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट होता है। वह एक व्यक्ति कौन है? वह सही दृष्टिकोण और उचित परिप्रेक्ष्य वाला व्यक्ति है। वह अनेक लोगों को बुरे धर्म से दूर करके अच्छे धर्म में स्थापित करता है। यही वह एक व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट होता है।

310

"भिक्षुओं, मुझे गलत मत से बढ़कर कोई और निंदनीय बात नहीं दिखती। गलत मत ही सबसे निंदनीय बात है।"

311

"भिक्षुओं, मुझे मक्खली जैसा कोई और व्यक्ति नहीं दिखता जो इतने सारे लोगों की हानि, इतने सारे लोगों के दुख, इतने सारे लोगों के विनाश, हानि और इतने सारे लोगों, देवताओं (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कष्ट के लिए इतना अधिक कार्य कर रहा हो। 175 जिस प्रकार नदी के मुहाने पर लगाया गया जाल अनेक मछलियों के लिए हानि, कष्ट, विपत्ति और आपदा लाता है, उसी प्रकार मक्खली भी मानो "लोगों के लिए एक जाल" है 176 जो अनेक प्राणियों की हानि, कष्ट, विपत्ति और आपदा के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है।" [34]

312

भिक्षुओं, जो व्यक्ति गलत ढंग से व्याख्या किए गए धम्म और अनुशासन में दूसरों को प्रोत्साहित करता है, जिसे वह प्रोत्साहित करता है, और जो इस प्रकार प्रोत्साहित होकर उसके अनुसार अभ्यास करता है, वे सभी बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म गलत ढंग से व्याख्या किया गया है।

313

भिक्षुओं, जो व्यक्ति सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दूसरों को प्रोत्साहित करता है, जिसे वह प्रोत्साहित करता है, और जो इस प्रकार प्रोत्साहित होकर उसके अनुसार अभ्यास करता है, वे सभी बहुत पुण्य अर्जित करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।

314

"भिक्षुओं, जिनके धर्म और अनुशासन की व्याख्या ठीक से नहीं की गई है, उनमें संयम का ज्ञान दान देने वाले को होना चाहिए, न कि दान प्राप्त करने वाले को। 177 इसका कारण क्या है? क्योंकि उस धर्म की व्याख्या ठीक से नहीं की गई है।"

315

"भिक्षुओं (सम्भावों) को सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन के साथ संयम का ज्ञान होना चाहिए, दान देने वाले को नहीं। 178 इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म (मार्ग) सुस्पष्ट है।"

316

"भिक्षुओं, जो कोई भी गलत ढंग से व्याख्या किए गए धम्म और अनुशासन में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाता है, वह दुख में रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म गलत ढंग से व्याख्या किया गया है।"

317

"भिक्षुओं, जो कोई भी सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में आलसी होता है, वह दुख में लीन रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।"

318

"भिक्षुओं, जो भी धर्म और अनुशासन की गलत व्याख्या में आलसी होता है, वह सुख में रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उस धर्म की गलत व्याख्या की गई है।"

319

"भिक्षुओं, जो कोई भी सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाता है, वह सुखी रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।"

320

"भिक्षुओं, जिस प्रकार मल की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है, उसी प्रकार मैं अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की थोड़ी सी मात्रा की भी प्रशंसा नहीं करता, यहाँ तक कि एक पल के लिए भी नहीं।" 179

321

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिस प्रकार मूत्र की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... लार की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... मवाद की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... [35]... रक्त की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है, उसी प्रकार मैं अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की थोड़ी सी मात्रा की भी प्रशंसा नहीं करता, यहाँ तक कि एक उंगली चटकाने के लिए भी नहीं।"

---

iv. जंबुद्वीप (भारत) पुनरावृत्ति श्रृंखला [चौथा उप-अध्याय] 322 365

322 "जिस प्रकार, इस जंबूद्वीप (भारत) में भिक्षुओं (भिक्षुओं) के लिए रमणीय उद्यान, उपवन, भूदृश्य और कमल के तालाब अल्प हैं, जबकि पहाड़ियाँ और ढलानें, पार करने में कठिन नदियाँ, ठूंठ और काँटों वाले स्थान और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ अधिक संख्या में हैं, उसी प्रकार शुष्क भूमि पर जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; जल में जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं।"

323 "...इसी प्रकार, मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणियों की संख्या अधिक है। ...इसी प्रकार, मध्य प्रांतों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; बाहरी प्रांतों में असभ्य विदेशियों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणियों की संख्या अधिक है।" 184

324 "...इसी प्रकार, बुद्धिमान, समझदार, चतुर और अच्छी तथा बुरी बातों का अर्थ समझने में सक्षम प्राणी अल्प हैं; जबकि मूर्ख, बेवकूफ और मंदबुद्धि प्राणी अधिक हैं, जो अच्छी और बुरी बातों का अर्थ समझने में असमर्थ हैं।"

325 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जिन्हें पन्ना (दिव्य ज्ञान) की श्रेष्ठ दृष्टि प्राप्त है ; उन प्राणियों की संख्या कहीं अधिक है जो भ्रमित और अज्ञान में डूबे हुए हैं।" 185

326 . . इसी प्रकार तथागत (बुद्ध) के दर्शन पाने वाले प्राणी अल्प हैं; उन्हें न देख पाने वाले प्राणियों की संख्या कहीं अधिक है।

327 . . इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जिन्हें तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है; [36] इससे कहीं अधिक वे हैं जिन्हें इसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है।"

328 "...इसी प्रकार, धम्म को सुनकर उसे मन में धारण करने वाले प्राणी अल्प हैं; धम्म को सुनकर उसे मन में धारण न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं।"

329 ". : . इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच नहीं करते हैं।"

330 "...इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो धम्म का अर्थ और उसे समझते हैं तथा उसके अनुसार अभ्यास करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो धम्म का अर्थ और उसे नहीं समझते तथा उसके अनुसार अभ्यास नहीं करते।" 186

331 "...इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो तात्कालिकता उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति तात्कालिकता की भावना विकसित करते हैं; उन प्राणियों की संख्या अधिक है जो तात्कालिकता उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति तात्कालिकता की भावना विकसित नहीं करते हैं।" 187

332 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो तात्कालिकता की भावना से प्रेरित होने पर सावधानीपूर्वक प्रयास करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो तात्कालिकता की भावना से प्रेरित होने पर सावधानीपूर्वक प्रयास नहीं करते हैं।"

333 "इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), मन की एकाग्रता (एकगचित्त, संस्कृत: एकग्रचित्त), जो मुक्ति पर आधारित है, प्राप्त करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), मन की एकाग्रता, जो मुक्ति पर आधारित है, प्राप्त नहीं करते हैं।" 188

334 . . इसी प्रकार, स्वादिष्ट भोजन का उत्तम स्वाद प्राप्त करने वाले प्राणी अल्प हैं; ऐसे प्राणी कहीं अधिक हैं जिन्हें ऐसा भोजन प्राप्त नहीं होता, बल्कि वे कटोरे में परोसे गए जूठे टुकड़ों पर ही जीवन यापन करते हैं।

335 "...इसी प्रकार, अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त करने वाले प्राणी अल्प हैं; अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त न करने वाले अधिक हैं। 189 अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त करेंगे।' [37]

336-338 "हे भिक्षुओं, जिस प्रकार इस जंबूद्वीप (भारत) में रमणीय उद्यान, उपवन, प्राकृतिक दृश्य और कमल के तालाब अल्प हैं, जबकि पहाड़ियाँ और ढलानें, दुर्गम नदियाँ, कंद और काँटों वाले स्थान और ऊबड़-खाबड़ पर्वत अधिक हैं, उसी प्रकार मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में, पशु जगत में, व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक हैं।" 191

339-341 : ...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे प्राणी कहीं अधिक हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।'

342-344 "...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो देवों (देवदूतों/देवताओं) के रूप में मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों/देवताओं) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे प्राणी कहीं अधिक हैं जो देवों (देवदूतों/देवताओं) के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

345-347 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो देवों (देवदूतों/ईश्वरों) के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो देवों (देवदूतों/ईश्वरों) के रूप में मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

348-350 "...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो नरक से निकलने के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो नरक से निकलने के बाद नरक में ही पुनर्जन्म लेते हैं... पशु जगत में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में।"

351-353 . .इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ही पुनर्जन्म लेते हैं... पशु जगत में... . . . . . व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में।"

354-356 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशुलोक में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

357-359 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों/देवताओं) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। अधिक संख्या में वे हैं [38] जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

360-362 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। ऐसे प्राणी कहीं अधिक हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... पीड़ित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

363-365 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। उनसे कहीं अधिक वे प्राणी हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... पीड़ित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

सत्रहवाँ भाग: आत्मविश्वास बढ़ाने वाले गुण

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

———————————————————————

366-381 "भिक्षुओं (साधुओं), यह निश्चित रूप से एक प्रकार का लाभ है, अर्थात्, (378) वनवासी होना, (379) भिक्षा से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करना, (380) चिथड़े के वस्त्र धारण करना, (381) केवल तीन वस्त्र धारण करना, 193 (382) धम्म पर वक्ता होना, (383) अनुशासन का पालन करने वाला होना, (384) महान विद्वत्ता, (385) दीर्घकालीन होना, (386) उचित आचरण होना, (387) अनुचरों का होना, (388) एक बड़ा अनुचर होना, (389) अच्छे परिवार से आना, (390) सुंदर होना, (391) एक उत्कृष्ट वक्ता होना, (392) कम इच्छाएँ रखना, (393) अच्छा स्वास्थ्य होना।"

———————————————————————

———————————————————————

XVIII. उंगली चटकाने वाला अनुभाग

———————————————————————

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

———————————————————————

382

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी पहली ध्यान अवस्था (सम्मोहन) प्राप्त कर लेता है, तो वह ध्यान से रहित भिक्षु नहीं कहलाता, जो गुरु की शिक्षाओं पर अमल करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे और भी अधिक ध्यानशील होंगे!

383 — 389

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... प्रेम और करुणा से मन की मुक्ति ... करुणा से मन की मुक्ति ... परोपकारी आनंद से मन की मुक्ति ... उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्षा) से मन की मुक्ति प्राप्त कर लेता है, तो वह ध्यान से रहित भिक्षु नहीं कहलाता, जो गुरु की शिक्षाओं पर अमल करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं करता। तो फिर, जो लोग इसका अभ्यास करते हैं, वे कितने अधिक गुणवान होंगे!

390-393

"...शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है, [197] उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती (ध्यान करते हुए), संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए... संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है... मन में मन को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है... घटनाओं में धम्म को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती (ध्यान करते हुए), संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए...

394-397

"... उत्पन्न न हुए अकुशल गुणों (धम्म) के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... उत्पन्न हुए अकुशल गुणों (धम्म) के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... (408) उत्पन्न न हुए लाभकारी गुणों (कुशल) के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... उत्पन्न हुए लाभकारी गुणों (धम्म)

के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है..."

398 — 401

"...इच्छा और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... मन और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... अन्वेषण और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है..."

402 — 406

... आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... सतीत्व (ध्यान/सतीत्व) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति विकसित करता है... दिव्य ज्ञान (पन्न) की शक्ति विकसित करता है...

407 - 411 आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... ध्यान (सती/ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है...

412 - 418

"...सती ध्यान (ध्यान/सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...धर्म (घटनाओं के विवेक) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...वीर्य (ऊर्जा/वीर्य) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है [40]...पीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...शांति के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...समाधि (आत्म-लीनता/सन्यास) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्ष/उपेक्ष) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है..."

419 -426

"...सही दृष्टिकोण विकसित करता है...सही इरादा विकसित करता है...सही वाणी विकसित करता है...सही कर्म विकसित करता है...सही आजीविका विकसित करता है...सही प्रयास विकसित करता है...सही ध्यान (सती/सजगता) विकसित करता है...सही समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) विकसित करता है..."

427— 434

"... आंतरिक रूप से रूपों को समझने वाला, बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'जान, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को समझने वाला, बाहरी रूप से असीम, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से असीम, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से नीले रंग के, नीले रंग के, नीले आभा वाले, नीले रंग के, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से पीले रंग के रूपों को देखता है, पीले रंग का, पीले रंगत वाला, पीले रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न देख पाने वाला, बाह्य रूप से रूपों को देखता है, लाल रंग के, लाल रंग के, लाल रंगत वाले, लाल रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'...

आंतरिक रूप से रूपों को न देख पाने वाला, बाह्य रूप से रूपों को देखता है, सफेद रंग के, सफेद रंगत वाले, सफेद रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ...'

435 -442

...रूप धारण करने वाला रूपों को देखता है... [41] आंतरिक रूप से रूपों को न देखने वाला बाहरी रूप से रूपों को देखता है... केवल 'सुंदर' पर केंद्रित है... रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने के साथ, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देने के साथ, 'अंतरिक्ष अनंत है' को समझते हुए, अनंत अंतरिक्ष के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है... अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ, 'चेतना अनंत है' को समझते हुए, अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का बोध करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अबोध) के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है... न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह बोध (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है...

443 — 452

... पृथ्वी कसीना का विकास करता है... 200 जल कसीना का विकास करता है... अग्नि कसीना का विकास करता है... वायु कसीना का विकास करता है... नीला कसीना का विकास करता है... पीला कसीना का विकास करता है... लाल कसीना का विकास करता है... सफेद कसीना का विकास करता है... आकाश कसीना का विकास करता है... चेतना कसीना का विकास करता है...

453 — 462

"...अनाकर्षकता की अनुभूति विकसित करता है...मृत्यु की अनुभूति विकसित करता है...भोजन की अरुचि की अनुभूति विकसित करता है...संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की अनुभूति विकसित करता है...अनित्यता की अनुभूति विकसित करता है...अनित्य में पीड़ा की अनुभूति विकसित करता है...पीड़ा में अनात्म की अनुभूति विकसित करता है...त्याग की अनुभूति विकसित करता है...वैराग की अनुभूति विकसित करता है...निरस्तता की अनुभूति विकसित करता है...

463 — 472

... अनित्यता (अनित्यता/अनित्यता) की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... अनात्म की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... [42] मृत्यु की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... भोजन की अरुचि की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... कंकाल की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... कृमिग्रस्त शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... पीले पड़े शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... फटे हुए शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... फूले हुए शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... :"

473 -482

बुद्ध का स्मरण विकसित होता है... धम्म का स्मरण विकसित होता है... संघ का स्मरण विकसित होता है... सद्गुणों का स्मरण विकसित होता है... दान देने का स्मरण विकसित होता है... देवताओं का स्मरण विकसित होता है... श्वास का ध्यान (सामंजस्य/सती) विकसित होता है... मृत्यु का ध्यान (सामंजस्य/सती) विकसित होता है... शरीर के प्रति सजगता (सामंजस्य/सती) विकसित होती है... शांति का स्मरण विकसित होता है...

483 - 492

"...प्रथम ध्यान के साथ आस्था की क्षमता विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की क्षमता विकसित करता है... ध्यान (सती) की क्षमता विकसित करता है... समाधि (स्व-लीन/सन्यास) की क्षमता विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की क्षमता विकसित करता है...

आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... ध्यान (सती) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (स्व-लीन/सन्यास) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है..."

493-562

"... दूसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... ... तीसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... प्रेमपूर्ण दया (मेत्ता) के साथ... करुणा के साथ... परोपकारी आनंद के साथ... उदासीनता (अंदर ही अंदर समाहित/उपेक्खा) के साथ... विश्वास की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... सती (ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सम्मोहन) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है... विश्वास की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... सती (ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सम्मोहन) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है।" मैं भिक्षुओं से कहता हूँ, "वह भिक्षु कहलाता है जो ध्यान (सम्मोहन अवस्था) से रहित न हो, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करे, जो उनकी सलाह माने और जो देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ न करे। तो फिर, जो लोग इसका अभ्यास करते हैं, वे और भी अधिक बुद्धिमान होंगे!"

XIX. माइंडफुलनेस (ध्यान) शरीर की ओर निर्देशित [204] (कायगाता-सती-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

563

"भिक्षुओं, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने मन से विशाल सागर को समाहित कर लेता है, उसमें सागर में गिरने वाली सभी धाराएँ समाहित हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार जो कोई भी शरीर को लक्षित करते हुए सती (यानी विपश्यना) का अभ्यास और विकास करता है, वह सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को समाहित कर लेता है।" 203

564-570

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और पोषित की जाती है, (576) तो वह तीव्र तत्परता की भावना उत्पन्न करती है 200 ... (577) महान कल्याण की ओर ले जाती है (578) बंधन से महान सुरक्षा की ओर ले जाती है ... (579) सती ध्यान और पूर्ण बोध की ओर ले जाती है ... (580) ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति की ओर ले जाती है ... (581) इसी जीवन में सुखद निवास की ओर ले जाती है ... (582) ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। वह एक बात क्या है? शरीर के प्रति निर्देशित सजगता। यही वह एक बात है, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है।

571

भिक्षुओं, जब एक चीज विकसित और पोषित होती है, तो शरीर शांत हो जाता है, मन शांत हो जाता है, विचार और परीक्षा शांत हो जाते हैं, और सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती (ध्यान)। [44] जब यह एक चीज विकसित और पोषित होती है, तो शरीर शांत हो जाता है... और धम्म के सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

572

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण त्याग दिए जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण त्याग दिए जाते हैं।

573

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ते और फैलते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ते और फैलते हैं।

574

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, (586) तो अज्ञान का त्याग हो जाता है... (587) सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है... (588) 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है... (589) अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं... (590) बंधन टूट जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है... सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है... 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है... अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं... बंधन टूट जाते हैं।

575 -576

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, (591) तो वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा भेद की ओर ले जाती है... (592) अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की ओर ले जाती है। 211 वह एक बात क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। यही वह एक बात है, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा भेद की ओर ले जाती है... अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की ओर ले जाती है।

577 -579

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, (593) तो अनेक तत्वों का ज्ञान प्राप्त होता है... (594) तत्वों की विविधता का ज्ञान प्राप्त होता है... (595) अनेक तत्वों का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। 212 वह एक चीज क्या है? वह शरीर पर केंद्रित सती ध्यान है। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो विभिन्न तत्वों का ज्ञान प्राप्त होता है... तत्वों की विविधता का ज्ञान प्राप्त होता है... विभिन्न तत्वों का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

580 — 583

भिक्षुओं, एक ही बात है, जब उसका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो वह (596) धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... (597) एक बार लौटने (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... (598) अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है [45]... (599) अरहंतत्व के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। वह एक बात क्या है? वह शरीर पर केंद्रित सती ध्यान है। यही वह एक बात है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति होती है... एक बार लौटने के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। अरहंत पद के फल की प्राप्ति के लिए।"

584 -599

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो (600) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति होती है... (601) बुद्धि की वृद्धि होती है... (602) पन्ना (दिव्य ज्ञान) का विस्तार होता है... (603) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की महानता होती है ... (604) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की विविधता होती है... (605) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की विशालता होती है... (606) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की गहराई होती है... (607) अतुलनीय

पन्ना (दिव्य ज्ञान) की अवस्था होती है ... (608) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की व्यापकता होती है... (609) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्रचुरता होती है... (610) पन्ना की तीव्र प्राप्ति होती है। (दिव्य ज्ञान)... (611) पन्ना (दिव्य ज्ञान) के उत्तोलन की ओर... (612) पन्ना (दिव्य ज्ञान) के आनंद की ओर... (613) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शीघ्रता की ओर... (614) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की तीक्ष्णता की ओर ... (615) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की भेदनशीलता की ओर ।213 वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। यही वह चीज है, जिसे विकसित और पोषित करने पर पन्ना (दिव्य ज्ञान) की भेदनशीलता प्राप्त होती है ।

XX. मृत्युहीन धारा 214 (अमाता-वाग्गो सं. अमृत वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

600

"भिक्षु (सन्यासी), वे अमरता (अमृत) का सेवन नहीं करते जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का अभ्यास नहीं करते। वे अमरता (अमृत) का सेवन करते हैं जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का अभ्यास करते हैं।"

601

भिक्षुओं, जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) नहीं किया है, उन्हें अमरता (अमृत) प्राप्त नहीं हुई है। जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) किया है, उन्हें अमरता (अमृत) प्राप्त हुई है।

602

"भिक्षु (मठवासी), वे अमरत्व (अमृत) से विमुख हो जाते हैं जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान से विमुख हो जाते हैं। वे अमरत्व (अमृत) से विमुख नहीं होते जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान से विमुख नहीं होते।"

603

"भिक्षुओं ने अमरता (अमृत) की उपेक्षा की है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का त्याग किया है। [46] जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का त्याग किया है, उन्होंने अमरता (अमृत) का पालन किया है।"

604

"भिक्षु (संतों), वे अमरत्व (अमृत) के प्रति आलसी होते हैं जो शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) के प्रति आलसी होते हैं। वे अमरत्व (अमृत) के प्रति आलसी नहीं होते जो शरीर पर केंद्रित ध्यान के प्रति आलसी नहीं होते।"

605

"भिक्षुओं (संतों) ने अमरता (अम्रता/अमृत) को भुला दिया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान को भुला दिया है। उन्होंने अमरता (अम्रता/अमृत) को नहीं भुलाया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान को नहीं भुलाया है।"

606

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) की प्राप्ति नहीं की है, जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) का अभ्यास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) का अभ्यास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) की प्राप्ति की है।"

607

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) का विकास नहीं किया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती) का विकास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती) का विकास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) का विकास किया है।"

608

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) की साधना नहीं की है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का अभ्यास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का अभ्यास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) की साधना की है।"

609

"भिक्षुओं (सन्तुओं) ने अमरत्व (अमृत) को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जाना है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) को प्रत्यक्ष रूप से जाना है।"

610

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) को पूरी तरह से नहीं समझा है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को पूरी तरह से नहीं समझा है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को पूरी तरह से समझ लिया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) को पूरी तरह से समझ लिया है।"

611

"भिक्षुओं (संतों) ने अमरत्व (अम्रत/अमृत) को नहीं जाना है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को नहीं जाना है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को जाना है, उन्होंने अमरत्व (अम्रत/अमृत) को जान लिया है।"

द बुक ऑफ द वन्स पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 2.दो की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का दूसरा भाग है। यह भिक्खु बी. बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN1) अगला (AN3) >>>>

अंतर्वस्तु

1दो की किताब (दुकाननिपात)

1.1I. कर्म क्रिया खंड (कम्मा-करण-वग्गा)

1.1.11. दोष (वज्जा)

1.1.22. प्रयास (पढ़ना)

1.1.33. पीड़ा उत्पन्न होना (तपनीय)

1.1.44 पीड़ा उत्पन्न न करना (अतापनिया)

1.1.55 ज्ञात (उपनेट)

1.1.66 बंधन (संयोजन)

1.1.77 अंधकार (कान्हा संस्कृत: कृष्ण)

1.1.88 उजकारा (सुक्का)

1.1.99 चरित्र (कैरिया सं. कैरिट्रा)

1.1.1010 वर्ष ऋतु में प्रवेश करना

1.2द्वितीय. अनुशासित अंक (अधिकरण)

1.3तृतीय. बाल (बचकाना)

1.4चतुर्थ. एकमत

1.5वी. सभा (पेरिसा सं. परिषद)

1.6VI. लोग (पुग्गला)

1.7VII. सुख

1.8आठवीं. एक आधार के साथ (सा-निमित्त)

1.99. धम्म (मार्ग)

1.10X. बाला (बचकाना/नासमझ)

1.11XI. ऐसी इच्छाएँ जिनमें त्यागना कठिन है (आसा-दु-पजाहा)

1.12बारहवीं. आकांक्षी (अयाचना)

1.13XIII. दान (दाना)

1.14XIV. उदारता (संथारा)

1.15XV. ध्यानात्मक प्रभाव (समापट्टी)

1.16XVI. क्रोध (कोढ़ा सं. क्रोध)

1.17XVII. अकुसला (हानिकारक)

1.18XVIII. विशिष्ट अशोक शृंखला [335] (विनय)

1.19XIX. कामवासना (राग) और इसी प्रकार पुनरावृति। श्रृंखला [338]

दो की पुस्तक (दुकानिपाता)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

00:00

00:00

I. कर्म क्रिया अनुभाग (कम्मा-करण-वग्गा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1. दोष (वज्जा)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" "आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, ये दो दोष हैं। कौन से दो? वर्तमान जीवन से संबंधित दोष और भविष्य के जीवन से संबंधित दोष। और वर्तमान जीवन से संबंधित दोष क्या है? यहाँ, कोई देखता है कि जब राजा किसी लुटेरे, किसी अपराधी को गिरफ्तार करते हैं, तो वे उसे अनेक प्रकार के

दंड देते हैं: वे उसे कोड़ों से पिटवाते हैं, बेंत से पिटवाते हैं, लाठियों से पिटवाते हैं; वे उसके हाथ काट देते हैं, उसके पैर काट देते हैं, उसके हाथ और पैर दोनों काट देते हैं; उसके कान काट देते हैं, उसकी नाक काट देते हैं, उसके कान और नाक दोनों काट देते हैं; वे उसे दलिया के बर्तन, 'पॉलिश किए हुए खोल की छाल', 'राहु के मुख', 'अग्नि की माला', 'ज्वलित हाथ', 'घास की पत्तियों' [48], 'छाल की पोशाक', 'हिरण', 'मांस के हुक', 'सिक्कों', 'लाइ अचार', 'धुरी की पिन' और 'लुढ़की हुई पल्लियास' के अधीन करते हैं; और वे उस पर उबलता हुआ तेल छिड़कते हैं, और वे उसे कुत्तों से कुतरवाते हैं, और वे उसे जिंदा खंभों पर लटका देते हैं, और वे तलवार से उसका सिर काट देते हैं। 216

उसके मन में यह विचार आता है: 'जब राजा किसी लुटेरे या अपराधी को गिरफ्तार करते हैं, तो उसके बुरे कर्मों के कारण उसे अनेक दंड देते हैं: उसे कोड़ों से पिटवाते हैं... तलवार से उसका सिर कटवा देते हैं। अब यदि मैं ऐसा कोई बुरा कर्म करूँ और राजा मुझे गिरफ्तार कर लें, तो वे मुझे भी वही दंड देंगे। वे मुझे कोड़ों से पिटवाएंगे... तलवार से मेरा सिर कटवा देंगे।' इस जीवन के पाप से भयभीत होकर वह दूसरों की संपत्ति नहीं लूटता। 217 इसे ही इस जीवन का पाप कहा जाता है।

"और भविष्य के जीवन से संबंधित दोष क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार विचार करता है: 'शारीरिक दुराचार का भविष्य के जीवन में बुरा, कष्टदायी परिणाम होता है; वाणी का दुराचार का भविष्य के जीवन में बुरा, कष्टदायी परिणाम होता है; मानसिक दुराचार का भविष्य के जीवन में बुरा, कष्टदायी परिणाम होता है। अब यदि मैं शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहूँ, तो शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, मैं दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लूँगा!' [49] भविष्य के जीवन से संबंधित दोष से भयभीत होकर, वह शारीरिक दुराचार का त्याग करता है और शारीरिक अच्छे आचरण का विकास करता है; वह वाणी के दुराचार का त्याग करता है और वाणी के अच्छे आचरण का विकास करता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग करता है और मानसिक अच्छे आचरण का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे भविष्य के जीवन से संबंधित दोष कहा जाता है। "ये, भिक्षुओं, दो दोष हैं। अतः, भिक्षुओं, आप इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करें: 'हम वर्तमान जीवन से संबंधित दोष से डरेंगे; हम भविष्य के जीवन से संबंधित दोष से डरेंगे। हम दोषों से डरेंगे और दोषों में खतरा देखेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। यह आशा की जाती है कि जो व्यक्ति दोषों से डरता है और दोषों में खतरा देखता है, वह सभी दोषों से मुक्त हो जाएगा।

---

2. प्रयास (पधाना)

भिक्षुओं, संसार में दो प्रकार के प्रयास करना कठिन है। वे कौन से दो प्रयास हैं? पहला, गृहस्थों का प्रयास जो घर में रहकर भिक्षुओं को वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन सामग्री दान करते हैं; और दूसरा, गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने वालों का प्रयास जो सभी प्राप्तियों का त्याग करते हैं। ये दो प्रयास संसार में करना कठिन हैं।

"हे भिक्षुओं, इन दो प्रयासों में सबसे प्रमुख प्रयास समस्त प्राप्ति का त्याग करना है। 219 अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम समस्त प्राप्ति का त्याग करने का प्रयास करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

3. पीड़ा उत्पन्न करना (तपनीय)

भिक्षुओं, ये दो बातें पीड़ा का कारण बनती हैं। वे दो बातें क्या हैं? यहाँ, किसी ने शारीरिक दुराचार किया है लेकिन शारीरिक सत्कार नहीं किया; मौखिक दुराचार किया है लेकिन मौखिक सत्कार नहीं किया; मानसिक दुराचार किया है लेकिन मानसिक सत्कार नहीं किया। वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने शारीरिक दुराचार किया है'; वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने शारीरिक सत्कार नहीं किया है'; वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने मौखिक दुराचार किया है'; वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने मौखिक सत्कार नहीं किया है'; वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने मानसिक दुराचार किया है'; वह पीड़ा में है, [यह सोचकर]: 'मैंने मानसिक सत्कार नहीं किया है'। भिक्षुओं, यही दो बातें पीड़ा का कारण बनती हैं।

---

4 पीड़ा उत्पन्न न करना (अतापनिया)

भिक्षुओं, ये दो बातें हैं जो पीड़ा का कारण नहीं बनतीं। [50] वे दो बातें क्या हैं? यहाँ, किसी ने शारीरिक रूप से अच्छा आचरण किया है और शारीरिक दुराचार से परहेज किया है; मौखिक रूप से अच्छा आचरण किया है और मौखिक दुराचार से परहेज किया है; मानसिक रूप से अच्छा आचरण किया है और मानसिक दुराचार से परहेज किया है। उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने शारीरिक रूप से अच्छा आचरण किया है'; उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने शारीरिक दुराचार से परहेज किया है'; उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने मौखिक रूप से अच्छा आचरण किया है'; उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने मौखिक दुराचार से परहेज किया है'; उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने मानसिक दुराचार से परहेज किया है'; उसे पीड़ा नहीं होती, [यह जानकर]: 'मैंने मानसिक दुराचार से परहेज किया है'। भिक्षुओं, ये दो बातें हैं जो पीड़ा का कारण नहीं बनतीं।

---

5 ज्ञात (उपन्नत)

"भिक्षुओं, मैंने स्वयं दो बातें जानी हैं: लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति असंतोष और निरंतर प्रयास। 221

मैंने अथक परिश्रम किया, और संकल्प लिया: 'इच्छा से, केवल मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, लेकिन मैं तब तक अपनी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) में शिथिलता नहीं डालूँगा जब तक कि मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुषोचित बल, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है। 222 हे भिक्षुओं, आलस्य से ही मैंने ज्ञान प्राप्त किया; आलस्य से ही मैंने बंधन से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त की। 223 हे भिक्षुओं, यदि तुम भी अथक परिश्रम करोगे, और संकल्प लोगे: 'इच्छा से, केवल मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, लेकिन मैं तब तक अपनी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) में शिथिलता नहीं डालूँगा जब तक कि मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुषोचित बल, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' तुम भी शीघ्र ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इस जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को जान लोगे, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके तुम उसमें निवास करोगे। अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करो: 'हम अथक परिश्रम करेंगे, [संकल्पित होकर]: "चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा (वीर्य) को तब तक शिथिल नहीं होने दूँगा जब तक मैं उस लक्ष्य को प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, ऊर्जा (वीर्य) और परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।" तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।'

---

6 बंधन (संयोजन)

भिक्षुओं, ये दो बातें हैं। वे कौन सी दो बातें हैं? बंधनकारी वस्तुओं में संतुष्टि देखना और बंधनकारी वस्तुओं में अनासक्ति (अनुपसी) देखना। 224 जो बंधनकारी वस्तुओं में संतुष्टि देखता है, वह [51] कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग नहीं करता। कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग न करने से व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं होता; मैं कहता हूँ कि वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो व्यक्ति ध्यान में लीन होकर बंधनकारी वस्तुओं से विरक्त हो जाता है, वह राग, द्वेष और मोह का त्याग कर देता है। राग, द्वेष और मोह का त्याग करने से वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाता है; वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ। भिक्षुओं, ये दो बातें हैं।

---

7 अंधकार (कान्हा संस्कृत: कृष्ण)

"भिक्षुओं, ये दो अंधकारमय गुण हैं। कौन से दो? नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। यही दो अंधकारमय गुण हैं।"

---

8 उज्ज्वल (सुक्का)

"भिक्षुओं, ये दो उज्ज्वल गुण हैं। वे दो कौन से हैं? नैतिक लज्जा और नैतिक भय। 225 यही दो उज्ज्वल गुण हैं।"

---

9 चरित्र (कैरिया सं. कैरिट्रा)

भिक्षुओं, ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा करते हैं। वे दो गुण कौन से हैं? नैतिक लज्जा और नैतिक भय। यदि ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा न करते, तो यहाँ माता, मौसी, गुरुओं की पत्नियों और अन्य सम्मानित व्यक्तियों के प्रति संयम नहीं देखा जाता। 226 संसार बकरियों और भेड़ों, मुर्गियों और सूअरों, कुत्तों और सियार की तरह अनैतिक हो जाता। परन्तु क्योंकि ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा करते हैं, इसलिए यहाँ माता, मौसी, गुरुओं की पत्नियों और अन्य सम्मानित व्यक्तियों के प्रति संयम देखा जाता है।

---

10 वर्षा ऋतु में प्रवेश करना

"भिक्षुओं (मठवासियों), वर्षा ऋतु में प्रवेश करने के ये दो अवसर हैं। 227 कौन से दो? पहला और दूसरा। ये वर्षा ऋतु में प्रवेश करने के दो अवसर हैं।" [52] .

II. अनुशासनात्मक मुद्दे (अधिकरण)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

11

भिक्षुओं, ये दो शक्तियाँ हैं। कौन सी दो? चिंतन की शक्ति और विकास की शक्ति। और चिंतन की शक्ति क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार चिंतन करता है: 'शारीरिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन दोनों में बुरा होता है; वाणी का दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन दोनों में बुरा होता है; मानसिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन दोनों में बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह शारीरिक दुराचार का त्याग कर अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करता है; वह वाणी का त्याग कर अच्छे वाणी के आचरण का विकास करता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग कर अच्छे मानसिक आचरण का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे चिंतन की शक्ति कहते हैं।

और विकास की शक्ति क्या है? विकास की शक्ति प्रशिक्षुओं की शक्ति है। 229 प्रशिक्षु की शक्ति पर भरोसा करके व्यक्ति कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग कर देता है। कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने के बाद व्यक्ति कोई हानिकारक कार्य (अकुशल) नहीं करता; वह किसी भी बुरे कार्य का अनुसरण नहीं करता। इसे ही विकास की शक्ति कहते हैं। भिक्षुओं, ये दो शक्तियाँ हैं।

12

भिक्षुओं, ये दो शक्तियाँ हैं। कौन सी दो? चिंतन की शक्ति और विकास की शक्ति। और चिंतन की शक्ति क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार चिंतन करता है: 'शारीरिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है; वाणी का दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है; मानसिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह शारीरिक दुराचार का त्याग करके शारीरिक सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह वाणी का त्याग करके वाणी का सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग करके मानसिक सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे चिंतन की शक्ति कहते हैं।

"और विकास की शक्ति क्या है? यहाँ, [53] एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित सती (ध्यान) के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है, जो मुक्ति में परिपक्व होता है। वह घटनाओं के विवेक (धम्म) के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है... ऊर्जा (वीर्य) के ज्ञानोदय तत्व का... आनंद (पीति) के ज्ञानोदय तत्व का... शांति (पासद्धि) के ज्ञानोदय तत्व का... समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के ज्ञानोदय तत्व का... उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व का जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, जो मुक्ति में परिपक्व होता है। इसे ही विकास की शक्ति कहते हैं।" "हे भिक्षुओं, ये दो शक्तियाँ हैं।"

13

भिक्षुओं, ये दो शक्तियाँ हैं। कौन सी दो? चिंतन की शक्ति और विकास की शक्ति। और चिंतन की शक्ति क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार चिंतन करता है: 'शारीरिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है; वाणी का दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है; मानसिक दुराचार का फल वर्तमान जीवन और भविष्य जीवन में बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह शारीरिक दुराचार का त्याग करके शारीरिक सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह वाणी का त्याग करके वाणी का सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग करके मानसिक सुवाह्य आचरण का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे चिंतन की शक्ति कहते हैं।

और विकास की शक्ति क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में, सचेत (ध्यानशील/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर सहित सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, सचेत (ध्यानशील/सती) है, जो निवास करता है...' खुशी से। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और उदासी के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इसे विकास की शक्ति कहा जाता है। "ये, भिक्षुओं, दो शक्तियाँ हैं।"

14

भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) के पास दो प्रकार के धम्म उपदेश हैं। वे दो कौन से हैं? संक्षेप में और विस्तार से। 230 तथागत (बुद्ध) के पास दो प्रकार के धम्म उपदेश हैं।

15

भिक्षुओं, यदि किसी विशेष अनुशासन संबंधी मुद्दे के संबंध में, 231 अपराध करने वाला भिक्षु और उसे फटकारने वाला भिक्षु दोनों अपने-अपने बारे में गहन चिंतन न करें, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा [54] लंबे समय तक कटुता और द्वेष का कारण बनेगा और भिक्षु चैन से नहीं रह पाएंगे। लेकिन यदि अपराध करने वाला भिक्षु और उसे फटकारने वाला भिक्षु दोनों अपने-अपने बारे में गहन चिंतन करें, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा लंबे समय तक कटुता और द्वेष का कारण नहीं बनेगा और भिक्षु चैन से रह पाएंगे।

और अपराध करने वाला भिक्षु अपने आत्मचिंतन कैसे करता है? यहाँ, अपराध करने वाला भिक्षु इस प्रकार आत्मचिंतन करता है: 'मैंने शरीर से एक विशेष अकुशल अपराध किया है। 232 उस भिक्षु ने मुझे ऐसा करते देखा। यदि मैंने शरीर से कोई विशेष अकुशल अपराध न किया होता, तो वह मुझे ऐसा करते नहीं देखता। परन्तु क्योंकि मैंने शरीर से कोई विशेष अकुशल अपराध किया, इसलिए उसने मुझे ऐसा करते देखा। जब उसने मुझे शरीर से कोई विशेष अकुशल अपराध करते देखा, तो वह अप्रसन्न हो गया। अप्रसन्न होकर उसने अपनी अप्रसन्नता मुझसे व्यक्त की। क्योंकि उसने अपनी अप्रसन्नता मुझसे व्यक्त की, इसलिए मैं भी अप्रसन्न हो गया। अप्रसन्न होकर मैंने दूसरों को सूचित किया। इस प्रकार इस मामले में मैंने ही अपराध किया, ठीक वैसे ही जैसे कोई यात्री अपने माल पर सीमा शुल्क से बचने पर करता है। 233 इसी प्रकार अपराध करने वाला भिक्षु अपने आत्मचिंतन करता है। वह स्वयं।

और निंदक भिक्षु स्वयं पर गहन चिंतन कैसे करता है? यहाँ, निंदक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'इस भिक्षु ने शरीर से एक विशेष अकुशल दुराचार किया है। मैंने उसे ऐसा करते देखा। यदि इस भिक्षु ने शरीर से कोई विशेष अकुशल दुराचार न किया होता, तो मैं उसे ऐसा करते नहीं देखता। [55] परन्तु क्योंकि उसने शरीर से एक विशेष अकुशल दुराचार किया, इसलिए मैंने उसे ऐसा करते देखा। जब मैंने उसे शरीर से कोई विशेष अकुशल दुराचार करते देखा, तो मैं अप्रसन्न हो गया। अप्रसन्न होकर मैंने उससे अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की। 234 क्योंकि मैंने उससे अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की, इसलिए वह अप्रसन्न हो गया। अप्रसन्न होकर उसने दूसरों को सूचित किया। इस प्रकार इस मामले में मैं ही वह था जिसने अपराध किया, ठीक वैसे ही जैसे कोई यात्री अपने माल पर सीमा शुल्क से बचने पर करता है। इसी प्रकार निंदक भिक्षु अपने आप पर गहन चिंतन करता है। वह स्वयं।

हे भिक्षुओं, यदि किसी विशेष अनुशासन संबंधी मुद्दे के संबंध में, अपराध करने वाला भिक्षु और उसे फटकारने वाला भिक्षु दोनों अपने-अपने आत्मचिंतन न करें, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा लंबे समय तक कटुता और द्वेष का कारण बनेगा और भिक्षुओं को चैन नहीं मिलेगा। परन्तु यदि अपराध करने वाला भिक्षु और उसे फटकारने वाला भिक्षु दोनों अपने-अपने आत्मचिंतन का अभ्यास करें, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा लंबे समय तक कटुता और द्वेष का कारण नहीं बनेगा और भिक्षुओं को चैन मिलेगा।

16

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला, “हे गौतम गुरु, ऐसा क्यों होता है कि शरीर के क्षरण के बाद कुछ प्राणी मृत्यु के बाद दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “हे ब्राह्मण, धर्म के विपरीत आचरण, अधर्मी आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षरण के बाद मृत्यु के बाद दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।” 235

"पर ऐसा क्यों है, हे गुरु गौतम, कि शरीर के क्षरण के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं?" बुद्ध: "हे ब्राह्मण, धम्म के अनुसार आचरण, धार्मिक आचरण [56] के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

17

तब ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले, “हे गौतम गुरु, ऐसा क्यों है कि शरीर के क्षोभ के बाद कुछ प्राणी मृत्यु के लोक में, बुरे भाग्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं?”

"हे ब्राह्मण, कर्मों और अकर्मों के फलस्वरूप ही कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय दुख लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।" "हे गुरु गौतम, ऐसा क्यों होता है कि कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं?" "हे ब्राह्मण, कर्मों और अकर्मों के फलस्वरूप ही कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।" 236 "गुरु गौतम ने संक्षेप में जो कथन कहा है, उसका विस्तृत अर्थ मुझे समझ नहीं आया। यदि गुरु गौतम मुझे 'ओह अम्मा' सिखा दें, तो मैं इसका विस्तृत अर्थ समझ पाऊंगा।" "तो हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।" [57]

“जी हां,” ब्राह्मण जानूसोनी ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

हे ब्राह्मण, यहाँ किसी ने शारीरिक दुराचार के कर्म किए हैं, न कि शारीरिक सुख के; उसने मौखिक दुराचार के कर्म किए हैं, न कि मौखिक सुख के; उसने मानसिक दुराचार के कर्म किए हैं, न कि मानसिक सुख के। अतः किए गए और न किए गए कर्मों के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के समय दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु किसी ने शारीरिक सुख के कर्म किए हैं, न कि शारीरिक दुराचार के; उसने मौखिक सुख के कर्म किए हैं, न कि मौखिक दुराचार के; उसने मानसिक सुख के कर्म किए हैं, न कि मानसिक दुराचार के। अतः किए गए और न किए गए कर्मों के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के समय अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... [जैसा कि 2:16 में है] ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

18

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "आनंद, मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार नहीं करना चाहिए।" "हे भंते, चूंकि भगवान (बुद्ध) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार नहीं करना चाहिए, तो इस प्रकार कार्य करने में क्या खतरा है?" "आनंद, मैंने स्पष्ट रूप से कहा है कि शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार और मानसिक दुराचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से यह खतरा उत्पन्न होता है: व्यक्ति स्वयं को दोषी ठहराता है; ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी निंदा करते हैं; उसके बारे में बुरी अफवाहें फैलती हैं; वह भ्रमित अवस्था में मरता है; और शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। मैंने स्पष्ट रूप से कहा है कि शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार और मानसिक दुराचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से यह खतरा उत्पन्न होता है।"

"मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, आनंद, [58] कि शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से अच्छे आचरण के कर्म करने चाहिए।" "चूँकि, भंते, भगवान (बुद्ध) ने निश्चित रूप से कहा है कि शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से अच्छे आचरण के कर्म करने चाहिए, तो ऐसा करने से क्या लाभ अपेक्षित है?" "आनंद, मैंने निश्चित रूप से कहा है कि शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से अच्छे आचरण के कर्म करने चाहिए क्योंकि ऐसा करने से यह लाभ अपेक्षित है: व्यक्ति स्वयं को दोष नहीं देता; ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी प्रशंसा करते हैं; व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है; व्यक्ति बिना किसी भ्रम के मरता है; और शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, व्यक्ति एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है। मैंने निश्चित रूप से कहा है कि शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से अच्छे आचरण के कर्म करने चाहिए क्योंकि ऐसा करने से यह लाभ अपेक्षित है।"

19

भिक्षुओं, अकुशल कर्मों का त्याग करो! अकुशल कर्मों का त्याग संभव है। यदि अकुशल कर्मों का त्याग संभव न होता, तो मैं यह न कहता: 'भिक्षुओं, अकुशल कर्मों का त्याग करो!' परन्तु क्योंकि अकुशल कर्मों का त्याग संभव है, इसलिए मैं कहता हूँ: 'भिक्षुओं, अकुशल कर्मों का त्याग करो!' यदि अकुशल कर्मों का त्याग हानि और पीड़ा का कारण होता, तो मैं तुम्हें इसका त्याग करने के लिए न कहता। परन्तु क्योंकि अकुशल कर्मों का त्याग कल्याण और सुख की ओर ले जाता है, इसलिए मैं कहता हूँ: 'भिक्षुओं, अकुशल कर्मों का त्याग करो!'

भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास करो! लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास संभव है। यदि लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास संभव न होता, तो मैं यह न कहता: 'भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास करो!' परन्तु क्योंकि लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास संभव है, इसलिए मैं कहता हूँ: 'भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास करो!' यदि लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास हानि और पीड़ा का कारण बनता, तो मैं तुम्हें इसका विकास करने के लिए न कहता। परन्तु क्योंकि लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास कल्याण और सुख की ओर ले जाता है, इसलिए मैं कहता हूँ: 'भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) गुणों का विकास करो!'

---

20 [237]

भिक्षुओं, ये दो बातें हैं जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे दो बातें क्या हैं? [59] गलत ढंग से लिखे गए शब्द और वाक्यांश तथा गलत ढंग से व्याख्या किया गया अर्थ। 238 जब शब्द और वाक्यांश गलत ढंग से लिखे जाते हैं, तो उनका अर्थ गलत ढंग से व्याख्या किया जाता है। यही दो बातें अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

21

भिक्षुओं, ये दो बातें हैं जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवक्रमण न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे दो बातें क्या हैं? सुस्पष्ट शब्द और वाक्यांश तथा सुस्पष्ट अर्थ। 239 जब शब्द और वाक्यांश सुस्पष्ट रूप से लिखे जाते हैं, तो उनका अर्थ भी सुस्पष्ट होता है। यही दो बातें उत्तम धम्म की निरंतरता, अवक्रमण न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं।

III. बाल (बचकाना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

22

"भिक्षुओं, दो प्रकार के बल (बचकाना) होते हैं। वे कौन से दो हैं? एक वह जो अपने अपराध को अपराध नहीं मानता और दूसरा वह जो धर्म के अनुसार, स्वीकारोक्ति करने वाले के अपराध को स्वीकार नहीं करता। ये दो प्रकार के बल (बचकाना) हैं। [240] "भिक्षुओं, दो

प्रकार के ज्ञानी होते हैं। वे कौन से दो हैं? एक वह जो अपने अपराध को अपराध मानता है और दूसरा वह जो धर्म के अनुसार, स्वीकारोक्ति करने वाले के अपराध को स्वीकार करता है। ये दो प्रकार के ज्ञानी हैं।"

23

"भिक्षुओं, ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत चित्रण करते हैं। कौन से दो? एक घृणा से भरा हुआ और घृणा को अपने मन में पालता हुआ, और दूसरा अपनी गलतफहमी के कारण आस्था से परिपूर्ण। ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत चित्रण करते हैं।" 241

---

24 [242]

भिक्षुओं, ये दो तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालते हैं। वे दो कौन हैं? [60] एक वह जो तथागत (बुद्ध) द्वारा न कहे गए वचन की व्याख्या इस प्रकार करता है जैसे उसने कहा हो, और दूसरा वह जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहे गए वचन की व्याख्या इस प्रकार करता है जैसे उसने कहा न हो। ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालते हैं। भिक्षुओं, ये दो तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ नहीं निकालते। वे दो कौन हैं? एक वह जो तथागत (बुद्ध) द्वारा न कहे गए वचन की व्याख्या इस प्रकार करता है जैसे उसने कहा न हो, और दूसरा वह जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहे गए वचन की व्याख्या इस प्रकार करता है जैसे उसने कहा हो। ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ नहीं निकालते।

25

"भिक्षुओं, ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालते हैं। कौन से दो? एक जो ऐसे प्रवचन की व्याख्या करता है जिसका अर्थ स्पष्ट है, और उसे स्पष्ट अर्थ वाले प्रवचन के रूप में प्रस्तुत करता है, और दूसरा जो ऐसे प्रवचन की व्याख्या करता है जिसका अर्थ स्पष्ट है, और उसे स्पष्ट अर्थ वाले प्रवचन के रूप में प्रस्तुत करता है। ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालते हैं।" [243]

26

भिक्षुओं, ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ नहीं निकालते। वे कौन से दो हैं? एक वह जो किसी ऐसे प्रवचन की व्याख्या करता है जिसका अर्थ स्पष्ट है, और दूसरा वह जो किसी ऐसे प्रवचन की व्याख्या करता है जिसका अर्थ स्पष्ट है। ये दोनों तथागत (बुद्ध) का गलत अर्थ नहीं निकालते।

27

"भिक्षुओं (मठवासियों), गुप्त कर्म करने वाले के लिए दो गंतव्यों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: नरक या पशुलोक। [244]
"स्पष्ट कर्म करने वाले के लिए दो गंतव्यों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: देवलोक या मनुष्यलोक।"

---

28 [245]

भिक्षुओं, जो गलत मत रखते हैं, उनके लिए दो में से एक गंतव्य निश्चित है: नरक या पशुलोक।

29

"भिक्षुओं, सही दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति के लिए दो गंतव्यों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: देवलोक या मनुष्यलोक।"

30

भिक्षुओं, अनैतिक व्यक्ति के लिए दो ही स्थान हैं: नरक या पशुलोक। सद्गुणी व्यक्ति के लिए दो ही स्थान हैं: देवलोक या मनुष्यलोक।

31

"भिक्षुओं (सन्यासियों), दो लाभों को देखते हुए, मैं जंगलों और वनों में एकांतवास में शरण लेता हूँ। 247 वे दो लाभ क्या हैं? मैं अपने लिए इसी जीवन में एक सुखद निवास देखता हूँ [61] और मुझे आने वाली पीढ़ियों के लिए करुणा है। 248 इन दो लाभों को देखते हुए, मैं जंगलों और वनों में एकांतवास में शरण लेता हूँ।"

32

भिक्षुओं, ये दो बातें सच्चे ज्ञान से संबंधित हैं। [249] वे दो बातें क्या हैं? समभाव (समाथा) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना)। समभाव विकसित होने पर क्या लाभ होता है? मन का विकास होता है। मन विकसित होने पर क्या लाभ होता है? कामवासना (राग) का त्याग होता है। अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित होने पर क्या लाभ होता है? ज्ञान (दिव्य ज्ञान) का विकास होता है। ज्ञान (दिव्य ज्ञान) विकसित होने पर क्या लाभ होता है? अज्ञान का त्याग होता है। [250] कामवासना (राग) से दूषित मन मुक्त नहीं होता, और अज्ञान से दूषित ज्ञान (दिव्य ज्ञान) का विकास नहीं होता। अतः, भिक्षुओं, कामवासना (राग) के मिटने से मन मुक्त होता है, और अज्ञान के मिटने से ज्ञान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति होती है। [251]

IV. एकमत (समाचित्त)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

33

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बुरे और अच्छे व्यक्ति के लोक के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।" "जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: . .

और बुरे व्यक्ति का स्तर क्या है? बुरा व्यक्ति कृतघ्न और निःकृतज्ञ होता है। क्योंकि कृतघ्नता और निःकृतज्ञता को बुरे लोग ही बढ़ावा देते हैं। कृतघ्नता और निःकृतज्ञता पूरी तरह से बुरे व्यक्ति के स्तर से संबंधित हैं। और अच्छे व्यक्ति का स्तर क्या है? अच्छा व्यक्ति

कृतज्ञ और आभारी होता है। क्योंकि कृतज्ञता और कृतज्ञता को अच्छे लोग ही बढ़ावा देते हैं। कृतज्ञता और कृतज्ञता पूरी तरह से अच्छे व्यक्ति के स्तर से संबंधित हैं।

34

भिक्षुओं, दो ऐसे व्यक्ति हैं जिनका प्रतिफल आसानी से नहीं चुकाया जा सकता। वे कौन से दो व्यक्ति हैं? माता-पिता। यदि कोई अपनी माता को एक कंधे पर [62] और अपने पिता को दूसरे कंधे पर उठाकर सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहे; और उनकी सेवा करते हुए, उन्हें मलहम लगाए, उनकी मालिश करे, उन्हें स्नान कराए और उनके अंगों को रगड़े, और वे वहीं मूत्र और मल त्याग करें, तब भी उसने अपने माता-पिता के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया होगा और न ही उनका प्रतिफल चुकाया होगा। यदि कोई अपने माता-पिता को सात रत्नों से परिपूर्ण इस विशाल पृथ्वी पर सर्वोच्च स्वामी और शासक के रूप में स्थापित कर दे, तब भी उसने अपने माता-पिता के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया होगा और न ही उनका प्रतिफल चुकाया होगा। इसका कारण क्या है? माता-पिता अपने बच्चों के लिए बहुत बड़े सहायक होते हैं; वे उनका पालन-पोषण करते हैं, उन्हें भोजन कराते हैं और उन्हें संसार का ज्ञान कराते हैं। लेकिन, भिक्षुओं, यदि कोई अपने माता-पिता के विश्वास में कमी होने पर उन्हें प्रोत्साहित करे, उन्हें विश्वास में स्थिर करे और उन्हें दृढ़ करे; यदि कोई अपने माता-पिता के अनैतिक होने पर उन्हें प्रोत्साहित करे, उन्हें सद्गुणों में दृढ़ करे और उन्हें दृढ़ करे; यदि कोई अपने माता-पिता के कंजूस होने पर उन्हें प्रोत्साहित करे, उन्हें उदारता में दृढ़ करे और उन्हें दृढ़ करे; यदि कोई अपने माता-पिता के नासमझ होने पर उन्हें प्रोत्साहित करे, उन्हें दृढ़ करे और उन्हें पन्ना (दिव्य ज्ञान) में दृढ़ करे: इस प्रकार, व्यक्ति ने अपने माता-पिता के लिए पर्याप्त किया है, उन्हें प्रतिफल दिया है और उनके लिए पर्याप्त से अधिक किया है।' 252

35

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला, "गुरु गौतम क्या कहते हैं, वे क्या घोषणा करते हैं?" "ब्राह्मण, मैं कर्म और अकर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करता हूँ।" 253 "परन्तु गुरु गौतम किस प्रकार कर्म और अकर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं?"

मैं शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार के संबंध में अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों (धम्म) के संबंध में अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ। मैं अच्छे शारीरिक, वाणी और मानसिक आचरण के संबंध में कर्म का प्रतिपादन करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के कुशल गुणों (धम्म) के संबंध में कर्म का प्रतिपादन करता हूँ। हे ब्राह्मण, इसी प्रकार मैं कर्म का सिद्धांत और अकर्म का सिद्धांत प्रतिपादित करता हूँ।

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग) को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरे हुए को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

36

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, [63] उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “हे भंते, संसार में कौन भेंट के योग्य है, और कहाँ भेंट दी जानी चाहिए?” “हे गृहस्थ, संसार में दो ही भेंट के योग्य हैं: प्रशिक्षु और प्रशिक्षण से परे (अरहंत/प्रबुद्ध)। 254 ये दो ही संसार में भेंट के योग्य हैं और इन्हीं को भेंट दी जानी चाहिए।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहने के बाद, गुरु सुगत (भगवान बुद्ध) ने आगे यह कहा:

इस संसार में प्रशिक्षु और प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके व्यक्ति

दान करने वालों के उपहारों के पात्र हैं;

शरीर, वाणी और मन से शुद्ध,

वे दान करने वालों के लिए क्षेत्र हैं;

उन्हें जो कुछ दिया जाता है वह महान फल देता है।

37

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त पूर्वी उद्यान में मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों, भिक्षुओं!" 255 "मित्र!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, मैं तुम्हें आंतरिक रूप से बंधे हुए और बाह्य रूप से बंधे हुए व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। 256 ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।" "जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"और हे मित्रों, आंतरिक रूप से विवश व्यक्ति कौन है? यहाँ, एक भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक निश्चित क्रम में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ से विमुख होकर, वह एक प्रतिवर्ती है, जो इस अवस्था में लौटता है। इसे आंतरिक रूप से विवश व्यक्ति कहा जाता है, जो एक प्रतिवर्ती है, जो इस अवस्था में लौटता है। 257 [64]

हे मित्रों, बाह्य बंधनों में जकड़ा हुआ व्यक्ति कौन है? यहाँ, भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी भय देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति प्राप्त करके, वह उसमें निवास करता है। 238 शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक निश्चित क्रम में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ से विमुख होकर, वह अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न लेने वाला) होता है, जो इस अवस्था में वापस नहीं आता। इसे बाह्य बंधनों में जकड़ा हुआ व्यक्ति कहा जाता है, जो अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न लेने वाला) होता है, जो इस अवस्था में वापस नहीं आता। 259

"हे मित्रों, भिक्षु गुणी होता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। वह इंद्रिय सुखों से विरक्ति, उनके प्रति वैराग्य और उनके निवारण का अभ्यास करता है। 260 वह जन्म की अवस्थाओं से विरक्ति, उनके प्रति वैराग्य और उनके निवारण का अभ्यास करता है। 261 वह तृष्णा के नाश का अभ्यास करता है। वह लोभ के नाश का अभ्यास करता है। 262 शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक निश्चित क्रम में पुनर्जन्म लेता है! वहाँ से निकलकर, वह अजन्मा होता है, जो इस अवस्था में वापस नहीं आता। इसे बाह्य रूप से बंधनों में जकड़ा हुआ व्यक्ति कहा जाता है, जो अजन्मा (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं लेने वाला, अनागामी) होता है, जो इस अवस्था में वापस नहीं आता।" 263

तब कई समान विचारधारा वाले देवता (देवदूत) 264 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा, "भंते, पूर्वी उद्यान में मिगारमाता के भवन में, पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को आंतरिक और बाह्य रूप से बंधे हुए व्यक्ति के बारे में उपदेश दे रहे हैं। सभा रोमांचित है। हे भंते, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश पूज्य सारिपुत्त के पास जाएँ तो अच्छा होगा।" 265 भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए। फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर

खींच लेता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) जेतवन से अंतर्धान हो गए और पूर्वी उद्यान में मिगारमाता के भवन में पूज्य सारिपुत्त की उपस्थिति में पुनः प्रकट हुए। वे तैयार आसन पर बैठ गए। आदरणीय सारिपुत्त [65] ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय सारिपुत्त से कहा:

"हे सारिपुत्त, यहाँ अनेक समरूप देवताओं ने मेरे पास आकर मुझे प्रणाम किया, मेरे एक ओर खड़े हो गए और बोले: 'भंते, पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में, पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को आंतरिक और बाह्य रूप से बंधे हुए व्यक्ति के विषय में उपदेश दे रहे हैं। सभा रोमांचित है। हे भंते, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश पूज्य सारिपुत्त के पास जाएँ तो अच्छा होगा।' "वे देवता - दस, बीस, तीस, चालीस, पचास और यहाँ तक कि साठ की संख्या में - सुई की नोक जितनी छोटी जगह में भी खड़े हैं, फिर भी एक-दूसरे के स्थान का अतिक्रमण नहीं करते। हे सारिपुत्त, शायद आप सोच रहे हों: 'निश्चित रूप से, वहीं पर उन देवताओं ने अपने मन को इस प्रकार विकसित किया होगा कि दस... और यहाँ तक कि साठ की संख्या में भी सुई की नोक जितनी छोटी जगह में खड़े हैं।' फिर भी एक दूसरे के अतिक्रमण न करें। लेकिन इसे इस तरह से नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि, यहीं पर उन देवताओं (देवदूतों) ने अपने मन को इस प्रकार विकसित किया कि दस... और यहाँ तक कि साठ की संख्या में भी सुई की नोक जितनी छोटी जगह में खड़े होकर भी एक दूसरे के अतिक्रमण न करें। [266]

अत: हे सारिपुत्त, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हमारी इंद्रियाँ और मन शांत रहेंगे। 267 तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए। जब तुम्हारी इंद्रियाँ और मन शांत होंगे, तो तुम्हारा शारीरिक कर्म शांत होगा, तुम्हारा वाणी कर्म शांत होगा और तुम्हारा मानसिक कर्म शांत होगा। [यह सोचते हुए:] 'हम अपने साथी भिक्षुओं की केवल शांतिपूर्ण सेवा करेंगे,' हे सारिपुत्त, तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए। हे सारिपुत्त, अन्य संप्रदायों के वे तपस्वी जो धम्म की इस व्याख्या को सुनने से वंचित रह गए।'

38

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य महाकच्चना कद्दमा झील के किनारे वारणा में निवास कर रहे थे। [66] तब ब्राह्मण अरमदंडा पूज्य महाकच्चना के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे गुरु कच्चना, ऐसा क्यों होता है कि क्षत्रिय क्षत्रियों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से और गृहस्थ गृहस्थों से लड़ते हैं?" "हे ब्राह्मण, कामवासना (राग) के प्रति आसक्ति, उसके बंधन, उसके प्रति आसक्ति, उसके प्रति आसक्ति, उसे दृढ़ता से पकड़े रहने के कारण ही क्षत्रिय क्षत्रियों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से और गृहस्थ गृहस्थों से लड़ते हैं।"

"हे कच्चान, ऐसा क्यों होता है कि तपस्वी तपस्वियों से लड़ते हैं?" "हे ब्राह्मण, यह इसलिए होता है क्योंकि विचारों के प्रति वासना (राग) के पालन-पोषण, उसके बंधन, उसके आसक्ति, उसके प्रति आसक्ति और उस पर दृढ़ता से टिके रहने के कारण तपस्वी तपस्वियों से लड़ते हैं।"

"क्या संसार में कोई ऐसा है जिसने इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना (राग) के प्रति इस आसक्ति, दृढ़ता से पकड़े रहने और विचारों के लिए कामवासना (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग) के प्रति इस आसक्ति (राग), वशीकरण (आसक्ति (राग) ...

यह सुनकर ब्राह्मण अरमादंडा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, अपना दाहिना घुटना जमीन पर टिकाया, भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक प्रणाम किया और तीन बार यह प्रेरणादायक वचन दोहराया:

भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, को प्रणाम! भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, को प्रणाम! भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, को प्रणाम! वास्तव में, उस भगवान (बुद्ध) ने इंद्रिय सुखों के प्रति राग के लगाव, उसके बंधन, उस पर आसक्ति, उस पर आसक्ति, उस पर दृढ़ता से टिके रहने और उस पर दृढ़ता से टिके रहने पर विजय प्राप्त कर ली है।

"उत्कृष्ट, गुरु कच्चाना! उत्कृष्ट, गुरु कच्चाना! गुरु कच्चाना ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। गुरु कच्चाना, मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु कच्चाना, मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

39

एक बार पूज्य महाकच्चना मधुरा में गुंडा वन में निवास कर रहे थे। तब ब्राह्मण कंदरायर्त पूज्य महाकच्चना के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "मैंने सुना है, गुरु कच्चना: 'तपस्वी कच्चना वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था से पीड़ित, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं। यह सत्य है, क्योंकि गुरु कच्चना वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था से पीड़ित, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं। यह उचित नहीं है। गुरु कच्चना" 269

"ब्राह्मण, भगवान (बुद्ध), अरहंत, [68] पूर्णतः प्रबुद्ध, जो सब कुछ जानते और देखते हैं, उन्होंने वृद्ध और युवा की अवस्था का वर्णन किया है। चाहे कोई वृद्ध हो—जन्म से अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का—यदि वह इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, उनमें लीन रहता है, 270 इंद्रिय सुखों की तीव्र इच्छा से ग्रस्त रहता है, इंद्रिय सुखों के विचारों में डूबा रहता है, और इंद्रिय सुखों की खोज में उत्सुक रहता है, तो उसे नासमझ (बचकाना) वृद्ध माना जाता है। परन्तु चाहे कोई युवा हो, काले घने बालों वाला, यौवन के वरदान से परिपूर्ण, जीवन के सर्वोपरि, यदि वह इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेता, उनमें लीन नहीं रहता, इंद्रिय सुखों की तीव्र इच्छा से ग्रस्त नहीं रहता, इंद्रिय सुखों के विचारों में डूबा नहीं रहता, और इंद्रिय सुखों की खोज में उत्सुक नहीं रहता, तो उसे बुद्धिमान वृद्ध माना जाता है।"

यह सुनकर ब्राह्मण कंदरायहा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और युवा भिक्षुओं के चरणों में सिर झुकाकर बोले: "आप बड़े भिक्षुओं, आप बड़ों के स्तर पर हैं; हम युवक, युवकों के स्तर पर हैं।"

"उत्कृष्ट, गुरु कच्चाना! . . . [जैसा कि 2:37 में है] . . . गुरु कच्चाना मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

40

भिक्षुओं, जब लुटेरे शक्तिशाली होते हैं, तो राजा कमजोर हो जाते हैं। उस समय राजा को अपनी राजधानी में प्रवेश करते समय, बाहर जाते समय या दूरदराज के प्रांतों का भ्रमण करते समय निश्चिंतता रहती है। उस समय ब्राह्मण और गृहस्थ भी अपने नगरों और गांवों में प्रवेश करते समय, बाहर जाते समय या बाहर काम करते समय निश्चिंत नहीं रहते। इसी प्रकार, जब दुष्ट भिक्षु शक्तिशाली होते हैं, तो अच्छे भिक्षु कमजोर हो जाते हैं। उस समय अच्छे भिक्षु संघ के बीच चुपचाप बैठे रहते हैं या दूरदराज के प्रांतों में चले जाते हैं। इससे अनेक लोगों को हानि होती है, अनेक लोग दुखी होते हैं, अनेक लोगों, देवताओं और मनुष्यों का विनाश, हानि और कष्ट होता है। [69]

भिक्षुओं, जब राजा बलवान होते हैं, तब लुटेरे कमजोर होते हैं। उस समय राजा अपनी राजधानी में प्रवेश करते समय, बाहर जाते समय और दूर-दराज के प्रांतों का भ्रमण करते समय निश्चिंत रहते हैं। उस समय ब्राह्मण और गृहस्थ भी अपने नगरों और गांवों में प्रवेश करते समय, बाहर जाते समय और बाहर के कार्यों में लगे रहते हैं। इसी प्रकार, जब सलीकेदार भिक्षु बलवान होते हैं, तब दुष्ट भिक्षु कमजोर होते हैं। उस समय दुष्ट भिक्षु संघ के बीच चुपचाप बैठे रहते हैं या दूसरे लोकों की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। 273 यह अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, कल्याण और सुख के लिए है, चाहे वे देव हों या मनुष्य।

41

41.1 "भिक्षुओं, मैं दो प्रकार के लोगों के कुकर्म की प्रशंसा नहीं करता; एक गृहस्थ और दूसरा संन्यासी। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, कुकर्म का पालन करने वाले सच्चे मार्ग, लाभकारी धम्म (कुशल) को प्राप्त नहीं कर पाते। 275

41.2 "भिक्षुओं, मैं दो प्रकार के लोगों के सही अभ्यास की प्रशंसा करता हूँ: एक गृहस्थ और दूसरा संन्यासी। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, सही ढंग से अभ्यास करने वाले सही अभ्यास के कारण ही वे सच्चे मार्ग, लाभकारी धम्म (कुशल) को प्राप्त करते हैं।"

42

भिक्षुओं, वे भिक्षु जो गलत ढंग से प्राप्त प्रवचनों के माध्यम से धम्म के अर्थ और सार को त्याग देते हैं, जिनकी शब्दावली सही शब्दावली की मात्र दिखावटी होती है, वे अनेक लोगों के लिए हानि, दुःख, विनाश, हानि और पीड़ा का कारण बनते हैं, चाहे वे देव हों या मनुष्य। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और अच्छे धम्म को लुप्त कर देते हैं।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो सुशिक्षित प्रवचनों के साथ धम्म के अर्थ और अनुरूपता का पालन करते हैं, जिनकी शब्दावली मात्र दिखावटी नहीं है, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और खुशी के लिए कार्य कर रहे हैं। ये भिक्षु (भिक्षु) बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और अच्छे धम्म को बनाए रखते हैं।" [70]

वी. सभाएं (पेरिसा सं. परिषद)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

43

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? सतही सभा और गहरी सभा। और सतही सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु बेचैन, अहंकारी, अभिमानी, बातूनी, बेतरतीब बातों वाले, अव्यवस्थित ध्यान वाले, पूर्ण बोध से रहित, असामंजस्यपूर्ण, भटकते मन वाले और शिथिल इंद्रियों वाले होते हैं, उसे सतही सभा कहते हैं।

और गहन सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु बेचैन, अहंकारी, अभिमानी, बातूनी और निरर्थक बातों से रहित होते हैं, बल्कि सती ध्यान स्थापित कर लेते हैं, पूर्णतः बोध रखते हैं, समाधि में लीन रहते हैं, एकाग्रचित्त होते हैं और इंद्रियों को संयमित रखते हैं, उसे गहन सभा कहते हैं। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में गहन सभा सर्वोपरि है। 278

44

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? विभाजित सभा और सामंजस्यपूर्ण सभा। और विभाजित सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु आपस में बहस और झगड़े करते हैं, विवाद में पड़ते हैं और एक-दूसरे को तीखे शब्दों से घायल करते हैं, उसे विभाजित सभा कहते हैं। 279

“और सामंजस्यपूर्ण सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु एकमत होकर, सद्भाव से, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक दूसरे में घुलमिलकर, एक दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए निवास करते हैं, उसे सामंजस्यपूर्ण सभा कहते हैं। “हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में सामंजस्यपूर्ण सभा सर्वोपरि है।”

45

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? निम्न श्रेणी की सभा और श्रेष्ठ श्रेणी की सभा। [71] और निम्न श्रेणी की सभा क्या है? इस प्रकार की सभा में वरिष्ठ भिक्षु विलासी और लापरवाह होते हैं, पतन में अग्रणी होते हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाते। अगली पीढ़ी के लोग भी उनका अनुसरण करते हैं। 280 वे भी विलासी और लापरवाह हो जाते हैं, पतन में अग्रणी होते हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाते। अभी तक अवास्तविक। इसे निम्न स्तर की सभा कहा जाता है।

और अग्रणी भिक्षुओं की सभा क्या है? इस प्रकार की सभा में वरिष्ठ भिक्षु विलासी और लापरवाह नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने और अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण करती है। वे भी विलासी और लापरवाह नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने और अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। इसे ही अग्रणी भिक्षुओं की सभा कहते हैं। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में अग्रणी भिक्षुओं की सभा सबसे श्रेष्ठ है। 281

46

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? श्रेष्ठों की सभा और नीचों की सभा। और नीचों की सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का कारण है'; यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का निवारण है'; यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है', उसे नीचों की सभा कहते हैं।

"और श्रेष्ठों की सभा क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु (भिक्षु) यह समझते हैं कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; यह समझते हैं कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का कारण है'; [72] यह समझते हैं कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का निवारण है'; यह समझते हैं कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है', उसे श्रेष्ठों की सभा कहा जाता है। 252 "हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में श्रेष्ठों की सभा सर्वोपरि है।"

47

भिक्षुओं, सभाएँ दो प्रकार की होती हैं। कौन सी दो? सभा की निम्नतम श्रेणी और सभा की उत्तम श्रेणी। और सभा की निम्नतम श्रेणी क्या है? वह सभा जिसमें भिक्षु इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ते हैं, उसे सभा की निम्नतम श्रेणी कहा जाता है। 283

"सर्वसम्मति का सर्वश्रेष्ठ कौन सा है? वह सभा जिसमें भिक्षु इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण कुटिल मार्ग पर नहीं चलते, उसे सर्वश्रेष्ठ सभा कहते हैं। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में सर्वश्रेष्ठ सभा सर्वोपरि है।"

48

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? एक वह सभा जो व्यर्थ की बातों में प्रशिक्षित होती है, प्रश्नोत्तर में नहीं, और दूसरी वह सभा जो प्रश्नोत्तर में प्रशिक्षित होती है, व्यर्थ की बातों में नहीं। 284 और वह सभा क्या है जो व्यर्थ की बातों में प्रशिक्षित होती है, प्रश्नोत्तर में नहीं? यहाँ, इस प्रकार की सभा में, जब तथागत (बुद्ध) द्वारा दिए गए वे प्रवचन पढ़े जाते हैं जो गहरे अर्थ वाले, संसार से परे, शून्यता से जुड़े हुए हैं, तो भिक्षु उन्हें सुनना नहीं चाहते, उन पर ध्यान नहीं देते, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाते हैं; वे नहीं सोचते कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और ज्ञान करना चाहिए। परन्तु जब वे प्रवचन पढ़े जाते हैं जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा रचित हैं, शिष्यों द्वारा बोले गए हैं, तो वे उन्हें सुनना चाहते हैं, उन पर ध्यान देते हैं, और उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाते हैं; वे सोचते हैं कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और ज्ञान करना चाहिए। 285 और उन शिक्षाओं को सीखने के बाद, वे नहीं वे आपस में उनके बारे में पूछताछ करते हैं या उनकी गहन जांच करते हैं, [73] [पूछते हैं]: 'यह कैसे है? इसका क्या अर्थ है?' वे अस्पष्ट बातों का खुलासा नहीं करते और अस्पष्ट बातों को स्पष्ट नहीं करते, या कई पेचीदा बिंदुओं के बारे में अपनी उलझन दूर नहीं करते। इसे व्यर्थ की बातों में प्रशिक्षित सभा कहा जाता है, पूछताछ में नहीं।

और वह सभा किस काम की जो प्रश्नोत्तर में प्रशिक्षित हो, न कि व्यर्थ की बातों में? यहाँ, इस प्रकार की सभा में, जब वे प्रवचन सुनाए जाते हैं जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा रचित हैं, शिष्यों द्वारा बोले गए हैं, तो भिक्षु उन्हें सुनना नहीं चाहते, उन पर ध्यान नहीं देते, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाते हैं; वे उन शिक्षाओं को अध्ययन और सीखना उचित नहीं समझते। परन्तु जब तथागत (बुद्ध) द्वारा बोले गए वे प्रवचन सुनाए जाते हैं जो गहन हैं, अर्थ में गहन हैं, संसार से परे हैं, शून्यता से जुड़े हैं, तो भिक्षु उन्हें सुनना चाहते हैं, उन पर ध्यान देते हैं, और उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाते हैं; वे उन शिक्षाओं को अध्ययन और सीखना उचित समझते हैं। और उन शिक्षाओं को सीखने के बाद, वे एक दूसरे से उनके बारे में प्रश्नोत्तर करते हैं और उनका गहन विश्लेषण करते हैं, [पूछते हैं]: 'यह कैसे है? इसका अर्थ क्या है?' वे अस्पष्ट बातों को प्रकट करते हैं, अस्पष्टताओं को स्पष्ट करते हैं और अनेक उलझनों को सुलझाते हैं। इसे प्रश्नोत्तर में प्रशिक्षित सभा कहते हैं, न कि व्यर्थ की बातों में। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दोनों प्रकार की सभाओं में, प्रश्नोत्तर में प्रशिक्षित सभा श्रेष्ठ है, न कि व्यर्थ की बातों में।

49

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? एक वह सभा जो सांसारिक वस्तुओं को महत्व देती है, अच्छे धम्म को नहीं, और दूसरी वह सभा जो अच्छे धम्म को महत्व देती है, सांसारिक वस्तुओं को नहीं। 286 और वह सभा क्या है जो सांसारिक वस्तुओं को महत्व देती है, अच्छे धम्म को नहीं? यहाँ, इस प्रकार की सभा में भिक्षु श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थों की उपस्थिति में एक-दूसरे की प्रशंसा करते हुए कहते हैं: 'अमुक भिक्षु दोनों प्रकार से मुक्त हैं; अमुक भिक्षु पन्ना (दिव्य ज्ञान) से मुक्त हैं; [74] अमुक भिक्षु शरीर साक्षी हैं; अमुक भिक्षु दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं; अमुक भिक्षु आस्था से मुक्त हैं; अमुक भिक्षु धम्म के अनुयायी हैं; अमुक भिक्षु आस्था के अनुयायी हैं; अमुक भिक्षु गुणी और अच्छे चरित्र वाले हैं; अमुक भिक्षु अनैतिक और बुरे चरित्र वाले हैं।' 287 इस प्रकार वे प्राप्त करते हैं वे इन लाभों से बंधे रहते हैं, इनके प्रति आसक्त रहते हैं, इनमें अंधाधुंध लीन रहते हैं, इनमें निहित खतरे को नहीं देखते, इनसे मुक्ति का मार्ग नहीं समझते। इसे सांसारिक वस्तुओं को महत्व देने वाली सभा कहा जाता है, न कि अच्छे धर्म को।

और वह सभा कौन सी है जो सांसारिक वस्तुओं की बजाय अच्छे धर्म को महत्व देती है? इस प्रकार की सभा में भिक्षु श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थों के सामने एक-दूसरे की प्रशंसा नहीं करते, यह कहते हुए कि 'अमुक भिक्षु दोनों ही दृष्टियों से मुक्त है... अमुक अनैतिक और बुरे चरित्र का है।' वे इस प्रकार लाभ प्राप्त करते हैं, जिनका उपयोग वे उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित होकर, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करते हैं। इसे ही सांसारिक वस्तुओं की बजाय

अच्छे धर्म को महत्व देने वाली सभा कहते हैं। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में से, सांसारिक वस्तुओं की बजाय अच्छे धर्म को महत्व देने वाली सभा सर्वोपरि है।

50

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? अधर्मी सभा और धर्मी सभा। और अधर्मी सभा क्या है? इस सभा में धम्म (मार्ग) के विपरीत अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं और धम्म के अनुसार अनुशासनात्मक कार्य नहीं किए जाते; अनुशासन के विपरीत अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं और अनुशासन के अनुसार अनुशासनात्मक कार्य नहीं किए जाते। धम्म के विपरीत अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या की जाती है और धम्म के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती; अनुशासन के विपरीत अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या की जाती है और अनुशासन के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती। भिक्षुओं, इसे अधर्मी सभा कहते हैं। यह अधर्मी होने के कारण ही इस सभा में धम्म के विपरीत अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं... [75] ... और अनुशासन के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती। 288

"और धार्मिक सभा क्या है? इस सभा में धम्म के अनुसार अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं और धम्म के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्य नहीं किए जाते; अनुशासन के अनुसार अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं और अनुशासन के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्य नहीं किए जाते। धम्म के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या की जाती है और धम्म (मार्ग) के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती; अनुशासन के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या की जाती है और अनुशासन के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती। हे भिक्षुओं, इसे ही धार्मिक सभा कहते हैं। धार्मिक होने के कारण ही इस सभा में धम्म के अनुसार अनुशासनात्मक कार्य किए जाते हैं और अनुशासन के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यों की व्याख्या नहीं की जाती। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में धार्मिक सभा सर्वोपरि है।"

51

"भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? एक वह सभा जो धम्म (मार्ग) के विपरीत कार्य करती है और दूसरी वह सभा जो धम्म के अनुसार कार्य करती है [जैसा कि 2:49 में है]..."

"भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में से, धम्म के अनुसार कार्य करने वाली सभा सर्वोपरि है।"

52

भिक्षुओं, दो प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी दो? एक वह सभा जो अधार्मिक (गलत मार्ग) की बात करती है और दूसरी वह सभा जो धम्म की बात करती है। और वह सभा क्या है जो अधार्मिक (गलत मार्ग) की बात करती है? यहाँ, इस प्रकार की सभा में भिक्षु एक अनुशासनिक मुद्दे पर चर्चा करते हैं, जो धम्म के अनुरूप हो सकता है या धम्म के विपरीत हो सकता है। 289 इस मुद्दे पर चर्चा करने के बाद, वे एक-दूसरे को समझाने का प्रयास नहीं करते और न ही स्वयं को समझाने देते हैं; वे विचार-विमर्श नहीं करते और न ही विचार-विमर्श का स्वागत करते हैं। समझाने और विचार-विमर्श करने की शक्ति का उपयोग न करते हुए, [76] अपनी राय छोड़ने को तैयार न होते हुए, वे उस अनुशासनिक मुद्दे को और भी दृढ़ता से गलत तरीके से पकड़ लेते हैं, और अपनी स्थिति पर अडिग रहते हुए घोषणा करते हैं: 'केवल यही सत्य है; इसके अलावा कुछ भी गलत है।' इसे अधार्मिक (गलत मार्ग) की बात करने वाली सभा कहा जाता है।

और वह सभा क्या है जो धम्म का उपदेश देती है? इस प्रकार की सभा में भिक्षु किसी अनुशासन संबंधी मुद्दे पर विचार करते हैं, जो धम्म के अनुरूप हो भी सकता है और उसके विपरीत भी। मुद्दे पर विचार करने के बाद, वे एक-दूसरे को समझाते हैं और स्वयं भी दूसरों की बात मानते हैं; वे विचार-विमर्श करते हैं और विचार-विमर्श का स्वागत करते हैं। समझाने और विचार-विमर्श करने की शक्ति से युक्त,

अपने मत को त्यागने के लिए तत्पर, वे उस अनुशासन संबंधी मुद्दे को और अधिक दृढ़ता से नहीं पकड़ते, न ही अपने मत पर अड़े रहकर यह घोषणा करते हैं: 'केवल यही सत्य है; इसके अतिरिक्त सब कुछ गलत है।' इसे ही धम्म का उपदेश देने वाली सभा कहते हैं। हे भिक्षुओं, ये दो प्रकार की सभाएँ हैं। इन दो प्रकार की सभाओं में, धम्म का उपदेश देने वाली सभा सर्वोपरि है।

VI. लोग (पुग्गला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

53

भिक्षुओं, संसार में दो ऐसे व्यक्ति हैं जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, देवों और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए अवतरित होते हैं। वे कौन से दो हैं? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और चक्र चलाने वाले सम्राट। ये दो ही व्यक्ति संसार में अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, देवों और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए अवतरित होते हैं। 290

54

"भिक्षुओं, संसार में दो असाधारण व्यक्ति प्रकट हो रहे हैं। [77] वे दो कौन हैं? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और चक्र घुमाने वाले सम्राट। ये दो असाधारण व्यक्ति हैं जो संसार में प्रकट हो रहे हैं।"

55

भिक्षुओं, दो ऐसे व्यक्ति हैं जिनके निधन पर अनेक लोग शोक मनाते हैं। वे कौन से दो व्यक्ति हैं? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति और चक्र घुमाने वाले सम्राट। ये दो ऐसे व्यक्ति हैं जिनके निधन पर अनेक लोग शोक मनाते हैं।

56

"भिक्षुओं, ये दो व्यक्ति स्तूप के योग्य हैं। 291 वे दो कौन हैं? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और चक्र घुमाने वाले सम्राट। ये दो ही स्तूप के योग्य हैं।"

57

"भिक्षुओं, ये दो प्रबुद्ध हैं। कौन से दो? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और पच्चेकबुद्ध 92। ये दो प्रबुद्ध हैं।"

58

"भिक्षुओं, दो ऐसे हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते। वे कौन से दो हैं? एक भिक्षु जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हों और एक शुद्ध नस्ल का हाथी। ये दो ही हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते।" 293

59

"भिक्षुओं, दो ऐसे हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते। वे कौन से दो हैं? एक भिक्षु जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हों और एक उत्तम नस्ल का घोड़ा। ये दो ही हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते।"

60

भिक्षुओं, दो ऐसे हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते। वे कौन से दो हैं? एक भिक्षु जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हों और एक सिंह, जो पशुओं का राजा है। ये दो ही हैं जो वज्रपात से भयभीत नहीं होते।

61

"भिक्षुओं (मठवासियों), दो कारणों से फ़ॉन मनुष्य भाषा नहीं बोलते। 294 वे दो कारण क्या हैं? [विचार करते हुए:] 'हमें झूठ नहीं बोलना चाहिए, और हमें किसी दूसरे को तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। इन्हीं दो कारणों से फ़ॉन मनुष्य भाषा नहीं बोलते।' [78]

62

भिक्षुओं, स्त्रियाँ दो बातों में असंतुष्ट और अतृप्त होकर मरती हैं। वे दो बातें क्या हैं? यौन संबंध और बच्चे को जन्म देना। स्त्रियाँ इन दो बातों में असंतुष्ट और अतृप्त होकर मरती हैं।

63

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बुरे और अच्छे लोगों के साथ सहवास के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।" "जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

और बुरे लोगों के बीच सहवास कैसे होता है, और बुरे लोग एक साथ कैसे रहते हैं? यहाँ, एक वरिष्ठ भिक्षु के मन में यह विचार आता है: 'एक वरिष्ठ भिक्षु—या मध्यम स्तर का भिक्षु या कनिष्ठ भिक्षु—को मुझे सुधारना नहीं चाहिए। 295 मुझे किसी वरिष्ठ भिक्षु, या मध्यम स्तर के भिक्षु या कनिष्ठ भिक्षु को नहीं सुधारना चाहिए। यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु मुझे सुधारता है, तो वह बिना सहानुभूति के, न कि सहानुभूतिपूर्वक ऐसा कर सकता है। तब मैं उसे "नहीं!" कहूँगा और उसे परेशान करूँगा, 296 और [अपनी गलती] देखकर भी मैं उसका प्रायश्चित नहीं करूँगा। यदि मध्यम स्तर का भिक्षु मुझे सुधारता है... यदि कनिष्ठ भिक्षु मुझे सुधारता है, तो वह बिना सहानुभूति के, न कि सहानुभूतिपूर्वक ऐसा कर सकता है। तब मैं उसे "नहीं!" कहूँगा और उसे परेशान करूँगा, और [अपनी गलती] देखकर भी मैं उसका प्रायश्चित नहीं करूँगा। मध्यम स्तर के भिक्षु के मन में भी यही विचार आता है... एक कनिष्ठ भिक्षु से: 'एक वरिष्ठ भिक्षु - या मध्यम स्तर का भिक्षु या कनिष्ठ भिक्षु - मुझे सुधार न दे। मुझे भी किसी वरिष्ठ भिक्षु को नहीं सुधारना चाहिए... [79] ... और [अपना अपराध] देखकर भी मैं उसका प्रायश्चित नहीं करूँगा।' इसी प्रकार बुरे लोगों में सहवास होता है, और इसी प्रकार बुरे लोग एक साथ रहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अच्छे भिक्षुओं में सहवास कैसे होता है, और अच्छे भिक्षु एक साथ कैसे रहते हैं? यहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु के मन में यह विचार आता है: 'एक वरिष्ठ भिक्षु, एक मध्यम श्रेणी का भिक्षु और एक कनिष्ठ भिक्षु मुझे सुधारें। मुझे एक वरिष्ठ भिक्षु, एक मध्यम श्रेणी के भिक्षु और एक कनिष्ठ भिक्षु को सुधारना चाहिए। यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु मुझे सुधारें, तो वे सहानुभूतिपूर्वक ऐसा कर सकते हैं, सहानुभूतिहीन नहीं। तब मैं उन्हें 'अच्छा!' कहूँगा और उन्हें परेशान नहीं करूँगा, और अपनी गलती देखकर उसका प्रायश्चित करूँगा। यदि कोई मध्यम श्रेणी का भिक्षु मुझसे बात करे... यदि कोई कनिष्ठ भिक्षु मुझे सुधारें, तो वे सहानुभूतिपूर्वक ऐसा कर सकते हैं, सहानुभूतिहीन नहीं। तब मैं उन्हें 'अच्छा!' कहूँगा और उन्हें परेशान नहीं करूँगा, और अपनी गलती देखकर उसका प्रायश्चित करूँगा। यह विचार एक मध्यम श्रेणी के भिक्षु के मन में भी आता है... एक कनिष्ठ भिक्षु के मन में भी।" [भिक्षु]: 'एक वरिष्ठ [भिक्षु]— एक मध्यम स्तर का और एक कनिष्ठ [भिक्षु]— मुझे सुधारें। मैं एक वरिष्ठ [भिक्षु] को सुधारूँ... और [अपनी गलती] देखकर उसका प्रायश्चित करूँ।' इसी प्रकार अच्छे लोगों में सहवास होता है, और इसी प्रकार अच्छे लोग एक साथ रहते हैं।

64

भिक्षुओं, जब किसी अनुशासन संबंधी मुद्दे पर दोनों पक्षों के बीच शब्दों का आदान-प्रदान, विचारों में उद्दंडता, और आक्रोश, कड़वाहट और झुंझलाहट [80] आंतरिक रूप से हल नहीं हो जाती, 298 तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा लंबे समय तक कटुता और शत्रुता को जन्म देगा, और भिक्षु चैन से नहीं रह पाएंगे। भिक्षुओं, जब किसी अनुशासन संबंधी मुद्दे पर दोनों पक्षों के बीच शब्दों का आदान-प्रदान, विचारों में उद्दंडता, और आक्रोश, कड़वाहट और झुंझलाहट आंतरिक रूप से हल नहीं हो जाती, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अनुशासन संबंधी मुद्दा लंबे समय तक कटुता और शत्रुता को जन्म नहीं देगा, और भिक्षु चैन से रह पाएंगे।

VII. सुख

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

65

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो प्रकार? गृहस्थ का सुख और संन्यासी का सुख। 300 ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दो प्रकार के सुखों में संन्यासी का सुख सर्वोपरि है।

66

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? इंद्रिय सुख और वैराग्य का सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में वैराग्य का सुख सर्वोपरि है।

67

"भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? एक, प्राप्ति से जुड़ा सुख और दूसरा, प्राप्ति रहित सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में, प्राप्ति रहित सुख सर्वोपरि है।" 301

68

भिक्षुओं, दो प्रकार की खुशियाँ होती हैं। कौन सी दो? [81] दोषयुक्त खुशी और दोषरहित खुशी। ये दो प्रकार की खुशियाँ हैं। इन दो प्रकार की खुशियों में दोषरहित खुशी सर्वोपरि है।

69

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? सांसारिक सुख और आध्यात्मिक सुख। 302 ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दो प्रकार के सुखों में आध्यात्मिक सुख सर्वोपरि है।

70

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? श्रेष्ठ सुख और नीच सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में श्रेष्ठ सुख सर्वोपरि है।

71

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? शारीरिक सुख और मानसिक सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में मानसिक सुख सर्वोपरि है।

72

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो प्रकार? एक सुख जिसमें पिति लीन हो और दूसरा सुख जिसमें पिति लीन न हो। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में पिति लीन न होने वाला सुख सर्वोपरि है।

73

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो प्रकार? सुखदायक सुख और उदासीनता का सुख (अंतर्मुखी ध्यान/उपेक्खा)। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में उदासीनता का सुख (अंतर्मुखी ध्यान/उपेक्खा ध्यान) सर्वोपरि है। 304

74

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का सुख और समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के बिना सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दो प्रकार के सुखों में, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का सुख सर्वोपरि है।

75

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? एक सुख जो आनंद (पीति) की उपस्थिति पर आधारित है और दूसरा सुख (पीति) के अभाव पर आधारित है। [82] ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दो प्रकार के सुखों में से, आनंद (पीति) के अभाव पर आधारित सुख सर्वोपरि है। 305

76

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो? भौतिक सुख पर आधारित सुख और उदासीनता (अंतर्मुखी ध्यान/उपेक्षा) पर आधारित सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में, उदासीनता (अंतर्मुखी ध्यान/उपेक्षा) पर आधारित सुख सर्वोपरि है।

77

भिक्षुओं, दो प्रकार के सुख होते हैं। कौन से दो प्रकार? एक शरीर पर आधारित सुख और दूसरा निराकार पर आधारित सुख। ये दो प्रकार के सुख हैं। इन दोनों प्रकार के सुखों में निराकार पर आधारित सुख सर्वोपरि है। 306

आठवीं. एक आधार के साथ (सा-निमित्त)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

78

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुणों का कोई आधार होता है, वे बिना आधार के उत्पन्न नहीं होते। इस आधार का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण उत्पन्न नहीं होते। 307

79

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुणों का उद्भव किसी स्रोत से होता है, स्रोत के बिना नहीं। इस स्रोत का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण उत्पन्न नहीं होते।

80

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) बुरे गुण (धम्म) किसी कारण से उत्पन्न होते हैं, बिना कारण के नहीं। इस कारण का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) बुरे गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते।

81

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) कर्मों के कारण उत्पन्न होते हैं, कर्मों के बिना नहीं। इन कर्मों का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते। 308

82

"भिक्षुओं (मठवासियों), अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) किसी शर्त के साथ उत्पन्न होते हैं, बिना शर्त के नहीं। इस शर्त का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते।" [83]

83

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण रूप के साथ ही उत्पन्न होते हैं, रूप के बिना नहीं। इस रूप का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण उत्पन्न नहीं होते।

84

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण वेदना के साथ ही उत्पन्न होते हैं, वेदना के बिना नहीं। वेदना का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण उत्पन्न नहीं होते।

85

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) चेतना (सन्ना/संज्ञा) के साथ उत्पन्न होते हैं, चेतना (सन्ना/संज्ञा) के बिना नहीं। इस चेतना (सन्ना/संज्ञा) का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते।

86

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण चेतना के साथ ही उत्पन्न होते हैं, चेतना के बिना नहीं। चेतना का त्याग करने पर ये अकुशल (हानिकारक) गुण उत्पन्न नहीं होते।

87

भिक्षुओं, अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) बद्धता के आधार पर उत्पन्न होते हैं, न कि बद्धता के बिना। बद्धता का त्याग करने से ये अकुशल (हानिकारक) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते।

---

9. धम्म (मार्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

88

"भिक्षुओं, ये दो धर्म हैं। कौन से दो? मन की मुक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति। यही दो धर्म हैं।" 309

---

89 - 98

भिक्षुओं, ये दो धर्म हैं। वे कौन से दो धर्म हैं? (89) परिश्रम और अनासक्ति... (90) मन (नाम) और रूप (शरीर)... (91) सच्चा ज्ञान और मुक्ति... (92) अस्तित्व का दृष्टिकोण (भाव/पुनर्जन्म का कारण) और विनाश का दृष्टिकोण... (93) नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही... (94) नैतिक लज्जा और नैतिक भय... (95) सुधारना कठिन होना और बुरी मित्रता... (96) सुधारना आसान होना और अच्छी मित्रता... (97) तत्वों में निपुणता और ध्यान में निपुणता... [84] (98) अपराधों के संबंध में निपुणता और अपराधों से पुनर्वास में निपुणता। ये दो धर्म हैं।

X. बाला (बचकाना/नासमझ)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

99

भिक्षुओं, दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। कौन से दो प्रकार के? एक वह जो अपने ऊपर न आने वाली विपत्ति की जिम्मेदारी लेता है और दूसरा वह जो अपने ऊपर आने वाली विपत्ति की जिम्मेदारी नहीं लेता। यही दो प्रकार के मूर्ख हैं।

100

"भिक्षुओं, दो प्रकार के ज्ञानी पुरुष होते हैं। वे कौन से दो प्रकार के पुरुष हैं? एक वह जो अपने ऊपर आने वाली विपत्तियों की जिम्मेदारी लेता है और दूसरा वह जो अपने ऊपर न आने वाली विपत्तियों की जिम्मेदारी नहीं लेता: 310 ये दो प्रकार के ज्ञानी पुरुष हैं।"

101

भिक्षुओं, दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। वे कौन से दो प्रकार के मूर्ख हैं? एक वह जो निषिद्ध को जायज़ समझता है और दूसरा वह जो जायज़ को निषिद्ध समझता है। 3 ये दो प्रकार के मूर्ख होते हैं।

102

भिक्षुओं, दो प्रकार के ज्ञानी लोग होते हैं। कौन से दो प्रकार के? एक वह जो अस्वीकार्य को अस्वीकार्य मानता है और दूसरा वह जो स्वीकार्य को स्वीकार्य मानता है। यही दो प्रकार के ज्ञानी लोग हैं।

103

भिक्षुओं, दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। कौन से दो प्रकार के? एक वह जो अपराध न होने को भी अपराध समझता है और दूसरा वह जो अपराध होने को अपराध न होने के रूप में देखता है। यही दो प्रकार के मूर्ख होते हैं।

104

"भिक्षुओं, दो प्रकार के ज्ञानी लोग होते हैं। वे कौन से दो प्रकार के होते हैं? एक वह जो अपराध न होने को अपराध नहीं मानता और दूसरा वह जो अपराध होने को अपराध मानता है। यही दो प्रकार के ज्ञानी लोग हैं।" [85]

105

भिक्षुओं, दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। कौन से दो प्रकार? एक वह जो अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म समझता है और दूसरा वह जो धर्म को अधर्म (गलत मार्ग) समझता है। यही दो प्रकार के मूर्ख हैं।

106

भिक्षुओं, दो प्रकार के ज्ञानी व्यक्ति होते हैं। कौन से दो? एक वह जो अधर्म (गलत मार्ग) को अधर्म (गलत मार्ग) के रूप में देखता है और दूसरा वह जो धर्म को धर्म के रूप में देखता है...ये दो प्रकार के ज्ञानी व्यक्ति हैं।

107

भिक्षुओं, दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। कौन से दो प्रकार के? एक वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासन समझता है और दूसरा वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासनहीनता समझता है। यही दो प्रकार के मूर्ख होते हैं।

108

भिक्षुओं, दो प्रकार के ज्ञानी व्यक्ति होते हैं। कौन से दो? एक वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासनहीनता के रूप में देखता है और दूसरा वह जो अनुशासन को अनुशासन के रूप में देखता है। यही दो प्रकार के ज्ञानी व्यक्ति हैं।

109

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो किसी ऐसे मामले पर पश्चाताप करता है जिस पर पश्चाताप करने की आवश्यकता नहीं है, और दूसरा वह जो किसी ऐसे मामले पर पश्चाताप नहीं करता जिस पर पश्चाताप करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं।

110

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो किसी ऐसे मामले के लिए पश्चाताप नहीं करता जिसके लिए पश्चाताप करना आवश्यक नहीं है, और दूसरा वह जो किसी ऐसे मामले के लिए पश्चाताप करता है जिसके लिए पश्चाताप करना आवश्यक है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते।

111

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं। वे कौन से दो हैं? एक वह जो निषिद्ध को जायज़ समझता है और दूसरा वह जो जायज़ को निषिद्ध समझता है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं।

112

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। वे कौन से दो हैं? एक वह जो अस्वीकार्य को अस्वीकार्य मानता है और दूसरा वह जो स्वीकार्य को स्वीकार्य मानता है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते।

113

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं। वे दो कौन हैं? [86] एक वह जो अपराध न होने को अपराध समझता है और दूसरा वह जो अपराध होने को अपराध न समझने वाला है। 312 इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं।

114

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अपराध न होने को अपराध नहीं समझता और दूसरा वह जो अपराध होने को अपराध समझता है। 313 इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते।

115

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं। वे कौन से दो प्रकार के व्यक्ति हैं? एक वह जो अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म समझता है और दूसरा वह जो धर्म को अधर्म (गलत मार्ग) समझता है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं।

116

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अधर्म (गलत मार्ग) को अधर्म (गलत मार्ग) के रूप में देखता है और दूसरा वह जो धर्म को धर्म के रूप में देखता है। 314 इन दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। 77

117

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासन समझता है और दूसरा वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासनहीन समझता है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष बढ़ जाते हैं।

118

भिक्षुओं, दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अनुशासनहीनता को अनुशासनहीनता के रूप में देखता है और दूसरा वह जो अनुशासन को अनुशासन के रूप में देखता है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए दोष नहीं बढ़ते।

XI. ऐसी इच्छाएँ जिन्हें त्यागना कठिन है (आसा-दु-पजाहा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

119

"भिक्षुओं, इन दो इच्छाओं का त्याग करना कठिन है। कौन सी दो? लाभ की इच्छा और जीवन की इच्छा। इन दो इच्छाओं का त्याग करना कठिन है।" 315 [87]

120

भिक्षुओं, संसार में दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ हैं। वे कौन से दो प्रकार के व्यक्ति हैं? एक जो दूसरों की सहायता करने में पहल करता है और दूसरा जो कृतज्ञ और आभारी है। संसार में दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ हैं।

121

भिक्षुओं, संसार में दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ हैं। वे कौन से दो प्रकार के व्यक्ति हैं? एक जो संतुष्ट है और दूसरा जो संतुष्टि प्रदान करता है। संसार में ये दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ हैं।

122

"भिक्षुओं, इन दो प्रकार के व्यक्तियों को संतुष्ट करना कठिन है। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अपने लाभ को संचित करता है और दूसरा वह जो अपने लाभ को लुटा देता है। 316 इन दो प्रकार के व्यक्तियों को संतुष्ट करना कठिन है।"

123

भिक्षुओं, इन दो प्रकार के व्यक्तियों को संतुष्ट करना आसान है। वे कौन से दो प्रकार हैं? एक वह जो अपने लाभ का संचय नहीं करता और दूसरा वह जो अपने लाभ को बर्बाद नहीं करता। इन दो प्रकार के व्यक्तियों को संतुष्ट करना आसान है।

124

भिक्षुओं, राग उत्पन्न होने के लिए ये दो शर्तें हैं। वे दो शर्तें क्या हैं? आकर्षक और उदासीन ध्यान। यही दो शर्तें हैं जिनसे प्रेम उत्पन्न होता है। 317

125

भिक्षुओं, द्वेष उत्पन्न होने के दो कारण होते हैं। वे दो कारण क्या हैं? घृणा और लापरवाही भरी दृष्टि। यही दो कारण हैं जिनसे द्वेष उत्पन्न होता है।

126

भिक्षुओं, गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होने के लिए ये दो स्थितियाँ हैं। वे दो क्या हैं? दूसरे व्यक्ति का कथन और लापरवाही से ध्यान देना। ये दो स्थितियाँ गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होने का कारण हैं।

127

भिक्षुओं, सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए ये दो शर्तें हैं। वे दो शर्तें क्या हैं? दूसरे व्यक्ति का वचन और ध्यानपूर्वक सुनना। यही दो शर्तें सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए आवश्यक हैं।

128

"भिक्षुओं, दो प्रकार के अपराध होते हैं। कौन से दो? [88] एक हल्का अपराध और एक गंभीर अपराध। ये दो प्रकार के अपराध हैं।" 318

129

भिक्षुओं, दो प्रकार के अपराध होते हैं। कौन से दो? एक गंभीर अपराध और दूसरा गंभीर अपराध नहीं। ये दो प्रकार के अपराध हैं।

130

भिक्षुओं, दो प्रकार के अपराध होते हैं। कौन से दो? एक निवारण योग्य अपराध और एक असाध्य अपराध। ये दो प्रकार के अपराध हैं।

XII. आकांक्षी (अयाचना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

131

"भिक्षुओं, आस्था से परिपूर्ण और सही आकांक्षा रखने वाले भिक्षु को इस प्रकार आकांक्षा रखनी चाहिए: 'मैं सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनूँ!' यही मेरे भिक्षु शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना।"

132

"भिक्षुओं, आस्थावान और सही आकांक्षा रखने वाली भिक्षुणी को यह आकांक्षा रखनी चाहिए: 'मैं खेमा और उप्पलावन की भिक्षुणियों के समान बनूँ!' यही मेरी शिष्याओं, अर्थात् खेमा और उप्पलावन की भिक्षुणियों के लिए आदर्श और मानदंड है।" 320

133

"भिक्षुओं (सम्मोहनों), आस्थावान और सही आकांक्षा रखने वाले एक पुरुष उपासक को इस प्रकार आकांक्षा करनी चाहिए: 'मैं चित्त गृहस्थ और अलवी के हत्थक के समान बनूँ!' यही मेरे पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलवी के हत्थक।" 321

134

"भिक्षुओं (सन्यासियों), आस्था से परिपूर्ण, सही आकांक्षा रखने वाली महिला अनुयायी को इस प्रकार आकांक्षा रखनी चाहिए: 'मैं कुज्जुत्तारा और वेलुकांतकी नंदमाता जैसी महिला अनुयायी बन जाऊं।' यही मेरी महिला शिष्यों, अर्थात् कुज्जुत्तारा और वेलुकांतकी नंदमाता के लिए मानक और मानदंड है।"

---

135 [323]

भिक्षुओं, दो गुणों से युक्त: अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दो गुण क्या हैं? बिना जांच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है। बिना जांच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है। इन दो गुणों से युक्त अज्ञानी,

अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

भिक्षुओं में दो गुण होते हैं: बुद्धिमान, योग्य और नेक भिक्षु स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दो गुण क्या हैं? छानबीन और विश्लेषण करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। छानबीन और विश्लेषण करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है। इन दो गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक भिक्षु स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

---

136 [324]

"दो गुणों से युक्त भिक्षु, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दो गुण क्या हैं? बिना जांच-पड़ताल किए, वह संदेह के योग्य बात पर विश्वास कर लेता है। बिना जांच-पड़ताल किए, वह विश्वास के योग्य बात पर संदेह करता है। इन दो गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। [90]

"भिक्षुओं में दो गुण होते हैं: बुद्धिमान, योग्य और नेक भिक्षु स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखते हैं; वे निष्कलंक होते हैं और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होते हैं; और वे बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। वे दो गुण क्या हैं? जांच-पड़ताल करने के बाद, वे संदेह के योग्य मामले पर संदेह करते हैं। जांच-पड़ताल करने के बाद, वे विश्वास के योग्य मामले पर विश्वास करते हैं। इन दो गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक भिक्षु स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखते हैं; वे निष्कलंक होते हैं और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होते हैं; और वे बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं।"

137

भिक्षुओं, दो व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने से, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दो कौन हैं? उसकी माता और उसके पिता। इन दोनों व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने से, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

भिक्षुओं, दो व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह बुद्धिमानों के बीच निर्दोष और निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। वे दो कौन हैं? उसकी माता और उसके पिता। इन दोनों व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह बुद्धिमानों के बीच निर्दोष और निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

138

"भिक्षुओं, दो व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने पर, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दो कौन हैं? तथागत (बुद्ध) और तथागत (बुद्ध) का एक शिष्य। 325 इन दो व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने पर, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।" [91]

भिक्षुओं, दो व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह बुद्धिमानों के बीच निर्दोष और निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। वे दो कौन हैं? तथागत (बुद्ध) और तथागत (बुद्ध) का एक शिष्य। इन दोनों व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह बुद्धिमानों के बीच निर्दोष और निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

139

भिक्षुओं, ये दो धर्म हैं। कौन से दो? अपने मन को शुद्ध करना और संसार की किसी भी वस्तु से आसक्ति न रखना। 326 यही दो धर्म हैं।

140

भिक्षुओं, ये दो धर्म हैं। कौन से दो? क्रोध और शत्रुता। यही दो धर्म हैं।

141

भिक्षुओं, ये दो धर्म हैं। कौन से दो? क्रोध का निवारण और शत्रुता का निवारण। यही दो धर्म हैं।

XIII. दान (दाना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

142

भिक्षुओं, दो प्रकार के दान होते हैं। कौन से दो? भौतिक वस्तुओं का दान और धम्म (दिव्य) का दान। ये दो प्रकार के दान हैं। इन दोनों प्रकार के दानों में धम्म का दान सर्वोपरि है।

143

"भिक्षुओं, दो प्रकार की भेंटें होती हैं। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं की भेंट और धम्म की भेंट। ये दो प्रकार की भेंटें हैं। इन दो प्रकार की भेंटों में धम्म की भेंट सर्वोपरि है।" [92]

144

भिक्षुओं, उदारता दो प्रकार की होती है। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं के प्रति उदारता और धम्म के प्रति उदारता। ये दो प्रकार की उदारता हैं। इन दो प्रकार की उदारता में, धम्म के प्रति उदारता सर्वोपरि है।

145

भिक्षुओं, त्याग के दो प्रकार होते हैं। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं का त्याग और धम्म का त्याग। ये दो प्रकार के त्याग हैं। इन दोनों प्रकार के त्याग में धम्म का त्याग सर्वोपरि है।

146

भिक्षुओं, धन के दो प्रकार होते हैं। कौन से दो प्रकार? भौतिक धन और धर्म का धन। ये दो प्रकार के धन हैं। इन दोनों प्रकार के धन में धर्म का धन सर्वोपरि है।

147

भिक्षुओं, दो प्रकार के भोग होते हैं। कौन से दो? भौतिक वस्तुओं का भोग और धम्म का भोग। इन दो प्रकार के भोगों में धम्म का भोग सर्वोपरि है।

148

भिक्षुओं, दो प्रकार की साझेदारी होती है। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं की साझेदारी और धम्म की साझेदारी। ये दो प्रकार की साझेदारी हैं। इन दोनों प्रकार की साझेदारी में, धम्म की साझेदारी सर्वोपरि है।

149

भिक्षुओं, अनुकूल संबंध बनाए रखने के ये दो तरीके हैं। 327 वे दो तरीके क्या हैं? भौतिक वस्तुओं के साथ अनुकूल संबंध बनाए रखना और धम्म के साथ अनुकूल संबंध बनाए रखना। ये दो तरीके अनुकूल संबंध बनाए रखने के हैं। इन दोनों तरीकों में से, धम्म के साथ अनुकूल संबंध बनाए रखना सर्वोपरि है।

150

भिक्षुओं, दो प्रकार की सहायता उपलब्ध है। कौन सी दो प्रकार की सहायता? भौतिक वस्तुओं से संबंधित सहायता और धम्म (दिव्य मार्ग) से संबंधित सहायता। ये दो प्रकार की सहायता हैं। इन दोनों प्रकार की सहायता में धम्म (दिव्य मार्ग) से संबंधित सहायता सर्वोपरि है।

151

"भिक्षुओं, करुणा दो प्रकार की होती है। 328 कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं के प्रति करुणा और धर्म (दिव्य) के प्रति करुणा। ये दो प्रकार की करुणा हैं। इन दो प्रकार की करुणा में, धर्म (दिव्य) के प्रति करुणा सर्वोपरि है।" [93]

XIV. उदारता (संथारा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

152

भिक्षुओं, दो प्रकार की उदारता होती है। 329 वे दो प्रकार कौन से हैं? भौतिक वस्तुओं के प्रति उदारता और धर्म (दिव्य) के प्रति उदारता। ये दो प्रकार की उदारता हैं। इन दो प्रकार की उदारता में धर्म के प्रति उदारता सर्वोपरि है।

153

भिक्षुओं, आतिथ्य सत्कार दो प्रकार का होता है। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं से आतिथ्य सत्कार और धम्म से आतिथ्य सत्कार। ये दो प्रकार के आतिथ्य सत्कार हैं। इन दोनों प्रकार के आतिथ्य सत्कार में धम्म से आतिथ्य सत्कार सर्वोपरि है।

154

भिक्षुओं, दो प्रकार की खोजें होती हैं। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं की खोज और धम्म की खोज। ये दो प्रकार की खोजें हैं। इन दोनों प्रकार की खोजों में, धम्म की खोज सर्वोपरि है।

155

भिक्षुओं, दो प्रकार की खोजें होती हैं। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं की खोज और धम्म की खोज। ये दो प्रकार की खोजें हैं: इन दोनों प्रकार की खोजों में, धम्म की खोज सर्वोपरि है।

156

भिक्षुओं, दो प्रकार की खोज होती है। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं की खोज और धम्म की खोज। ये दो प्रकार की खोज हैं। इन दोनों प्रकार की खोजों में, धम्म की खोज सर्वोपरि है।

157

भिक्षुओं, दो प्रकार की श्रद्धा होती है। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं की श्रद्धा और धम्म की श्रद्धा। ये दो प्रकार की श्रद्धा हैं। इन दोनों प्रकार की श्रद्धा में धम्म की श्रद्धा सर्वोपरि है।

158

भिक्षुओं, अतिथि को भेंट करने के लिए दो प्रकार के उपहार हैं। 330 वे दो प्रकार क्या हैं? भौतिक वस्तुओं का उपहार और धम्म का उपहार। अतिथि को भेंट करने के लिए ये दो प्रकार के उपहार हैं। इन दो प्रकार के उपहारों में से धम्म का उपहार सर्वोपरि है।

159

"भिक्षुओं, सफलता दो प्रकार की होती है। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं से संबंधित सफलता और धम्म से संबंधित सफलता। ये दो प्रकार की सफलताएँ हैं। इन दो प्रकार की सफलताओं में से, धम्म (मार्ग) से संबंधित सफलता सर्वोपरि है।" [94]

160

भिक्षुओं, दो प्रकार की उन्नति होती है। कौन सी दो? भौतिक वस्तुओं में उन्नति और धम्म में उन्नति। ये दो प्रकार की उन्नति हैं। इन दोनों प्रकार की उन्नति में धम्म में उन्नति सर्वोपरि है।

161

भिक्षुओं, दो प्रकार के रत्न होते हैं। कौन से दो? भौतिक रत्न और धम्म रत्न। ये दो प्रकार के रत्न हैं। इन दोनों प्रकार के रत्नों में धम्म रत्न सर्वोपरि है।

162

भिक्षुओं, संचय के दो प्रकार होते हैं। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं का संचय और धर्म का संचय। ये दो प्रकार के संचय हैं। इन दोनों प्रकार के संचय में धर्म का संचय सर्वोपरि है।

163

भिक्षुओं, दो प्रकार के विस्तार होते हैं। कौन से दो प्रकार? भौतिक वस्तुओं में विस्तार और धम्म में विस्तार। ये दो प्रकार के विस्तार हैं। इन दोनों प्रकार के विस्तारों में, धम्म में विस्तार सर्वोपरि है।

XV. ध्यानात्मक प्राप्ति (समापट्टी)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

164

"भिक्षुओं, ये दो गुण हैं। कौन से दो? ध्यान की अवस्था में प्रवेश करने की कुशलता और ध्यान की अवस्था से बाहर निकलने की कुशलता। यही दो गुण हैं।" 531

165-180

भिक्षुओं, ये दो गुण हैं। वे दो क्या हैं? (165) सत्यनिष्ठा और नम्रता... (166) धैर्य और सौम्यता... (167) वाणी की कोमलता और आतिथ्य सत्कार... (168) अहिंसा और पवित्रता... (169) इंद्रियों के द्वारों को न रोकना और भोजन में संयम... (170) इंद्रियों के द्वारों को रोकना और भोजन में संयम... (171) चिंतन की शक्ति और विकास की शक्ति... (172) सती ध्यान की शक्ति और समाधि की शक्ति... [95]... (173) समभाव और विपश्यना... (174) सद्‌गुणों में विफलता और दृष्टि में विफलता... (175) सद्‌गुणों की संपदा... दृष्टिकोण की संपदा (संपदा)... (176) सद्‌गुणी आचरण की पवित्रता और दृष्टिकोण की पवित्रता... (177) दृष्टिकोण की पवित्रता और अपने दृष्टिकोण के अनुसार प्रयास करना... (178) लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के संबंध में असंतोष और प्रयास में अथका... (179) उलझन और पूर्ण समझ (संपजन्न) का अभाव... (180) सती ध्यान और पूर्ण समझ (संपजन्न)। ये दो गुण हैं।

XVI. क्रोध (कोढ़ा सं. क्रोध)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

181-185 [332]

भिक्षुओं, ये दो गुण हैं। कौन से दो? (181) क्रोध और शत्रुता... (182) निंदा और उद्दंडता... (183) ईर्ष्या और कंजूसी... (184) छल और धूर्तता... (185) नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो गुण हैं।

---

186 -190

भिक्षुओं, ये दो गुण हैं। वे दो कौन से हैं? (186) क्रोध और शत्रुता का अभाव... (187) निंदा और उद्दंडता का अभाव... (188) ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... (189) छल और धूर्तता का अभाव... (190) नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो गुण हैं।

XVII. अकुसला (हानिकारक)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

191 - 200

भिक्षुओं को दो गुणों से युक्त होने पर दुख भोगना पड़ता है। वे दो गुण क्या हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। इन दो गुणों से युक्त होने पर दुख भोगना पड़ता है।

भिक्षुओं को दो गुण प्राप्त होते हैं, जिससे वे सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। वे दो गुण क्या हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। इन दो गुणों से युक्त व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत करता है।

भिक्षुओं, ये दो गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे दो गुण कौन से हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये दो गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे दो गुण कौन से हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं।

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में दो गुण होने पर उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दो गुण कौन से हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता; ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। इन दो गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं को, जिनमें दो गुण होते हैं, स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दो गुण क्या हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और धूर्तता का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। इन दो गुणों के होने पर, व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में दो गुण होते हैं, शरीर के क्षोभ के साथ मृत्यु के बाद, कोई व्यक्ति दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। वे दो गुण क्या हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। इन दो गुणों से युक्त व्यक्ति, शरीर के क्षोभ के साथ मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में दो गुण होते हैं, शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद, वे यहाँ एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दो गुण क्या हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। इन दो गुणों से युक्त, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वे यहाँ एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

भिक्षुओं, ये दो हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) हैं। वे कौन से दो हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) हैं।

भिक्षुओं, ये दो लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध न करना और शत्रुता न करना... निंदा न करना और उद्दंडता न करना... ईर्ष्या न करना और कंजूसी न करना... छल न करना और धूर्तता न करना... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) हैं।

भिक्षुओं, ये दो निंदनीय गुण हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो निंदनीय गुण हैं।

भिक्षुओं, ये दो निष्कलंक गुण हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध न करना और शत्रुता न करना... निंदा न करना और उद्दंड न होना... ईर्ष्या न करना और कंजूसी न करना... छल न करना और धूर्तता न करना... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो निष्कलंक गुण हैं।

भिक्षुओं, ये दो गुण हैं जिनका परिणाम दुख होता है। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो गुण हैं जिनका परिणाम दुख होता है।

भिक्षुओं, ये दो गुण हैं जिनका परिणाम सुख होता है। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो गुण हैं जिनका परिणाम सुख होता है।

भिक्षुओं, दो ऐसे गुण हैं जिनसे दुख होता है। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो गुण दुख का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, सुख की प्राप्ति के लिए ये दो गुण आवश्यक हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। यही दो गुण सुख की प्राप्ति का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये दो कष्टदायक गुण हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता... निंदा और उद्दंडता... ईर्ष्या और कंजूसी... छल और धूर्तता... नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही। ये दो कष्टदायक गुण हैं।

भिक्षुओं, ये दो अहानिकारक गुण हैं। वे कौन से दो गुण हैं? क्रोध और शत्रुता का अभाव... निंदा और अभिमान का अभाव... ईर्ष्या और कंजूसी का अभाव... छल और कपट का अभाव... नैतिक लज्जा और नैतिक भय। ये दो अहानिकारक गुण हैं।

XVIII. अनुशासन पुनरावृत्ति श्रृंखला [335] (विनय)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

201

भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए प्रशिक्षण नियम इन दो कारणों से निर्धारित किए हैं। वे दो कारण क्या हैं? संघ के कल्याण और संघ की सहजता के लिए... अनुशासनहीन व्यक्तियों को नियंत्रण में रखने और सुशासन वाले भिक्षुओं के आराम से रहने के लिए... इस जीवन से संबंधित दोषों को रोकने और भविष्य के जन्मों से संबंधित दोषों को दूर करने के लिए... इस जीवन से संबंधित शत्रुता को रोकने और भविष्य के जन्मों से संबंधित शत्रुता को दूर करने के लिए... इस जीवन से संबंधित दोषों को रोकने और भविष्य के जन्मों से संबंधित दोषों को दूर करने के लिए... इस जीवन से संबंधित खतरों को रोकने और भविष्य के जन्मों से संबंधित खतरों को दूर करने के लिए... इस जीवन से संबंधित हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) के निवारण के लिए और भविष्य के जन्मों से संबंधित हानिकारक गुणों के निवारण के लिए... गृहस्थों पर दया करने और बुरी इच्छाओं वाले गुटों को रोकने के लिए... ताकि अविश्वासियों में

आत्मविश्वास उत्पन्न हो और आत्मविश्वासियों का आत्मविश्वास बढ़े... अच्छे धम्म की निरंतरता और अनुशासन को बढ़ावा देने के लिए। इन्हीं दो कारणों से तथागत (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए प्रशिक्षण नियम निर्धारित किए हैं।

---

202 — 230

"भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) (202) ने अपने शिष्यों के लिए पतिमोक्खा का विधान इन्हीं दो कारणों से किया है। . . [इस सूत्र और आगे आने वाले सूत्रों की व्याख्या ऊपर बताए अनुसार की जानी चाहिए] . . 337

(203) . . पतिमोक्खा का पाठ निर्धारित किया है

(204) "... ने पतिमोक्खा के निलंबन का प्रावधान किया है ..."

(205) . .ने निमंत्रण समारोह निर्धारित किया है. . ."

(206) ...ने निमंत्रण समारोह के निलंबन का प्रावधान किया है..."

(207) ". . . निंदा का कानूनी कार्य निर्धारित किया है . ."

(208) "...ने निर्भरता के कानूनी कृत्य को निर्धारित किया है..."

(209) "...ने देश निकाला की कानूनी प्रक्रिया निर्धारित की है..."

(210) "...ने सुलह के कानूनी अधिनियम को निर्धारित किया है..."

(211) ". . . ने निलंबन के कानूनी अधिनियम को निर्धारित किया है . . ."

(212) "...ने परिवीक्षा लगाने का प्रावधान किया है..."

(213) "...ने शुरुआत में वापस भेजने का प्रावधान किया है..."

(214) "...ने प्रायश्चित लागू करने का प्रावधान किया है..."

(215) "...ने पुनर्वास निर्धारित किया है ..."

(216) ". . ने बहाली निर्धारित की है. ."

(217) "...ने हटाने का निर्देश दिया है ..."

(218) "...ने पूर्ण दीक्षा निर्धारित की है ..."

(219) ". . ने एक कानूनी कार्य निर्धारित किया है जिसमें एक गति शामिल है. ."

(220) "...ने एक कानूनी अधिनियम निर्धारित किया है जिसमें दूसरे [कारक] के रूप में एक प्रस्ताव शामिल है ..."

(221) "...ने एक कानूनी अधिनियम निर्धारित किया है जिसमें चौथे [कारक] के रूप में एक प्रस्ताव शामिल है..."

(222) "...ने [प्रशिक्षण नियम] निर्धारित किया है जबकि ऐसा कोई नियम नहीं था

इससे पहले निर्धारित किया गया था...

(223) "...ने [पहले से निर्धारित प्रशिक्षण नियम में] एक संशोधन जोड़ा है..."

(224) "... ने उपस्थिति के आधार पर निष्कासन निर्धारित किया है ..."

(225) "...स्मरण के कारण हटाने का निर्देश दिया है..."

(226) "...ने [अतीत के] पागलपन के कारण निष्कासन निर्धारित किया है..."

(227) "...ने [अपराध की] स्वीकृति निर्धारित की है..."

(228) ". . .ने बहुमत की राय निर्धारित की है. ."

(229) "...ने गंभीर दुराचार की घोषणा का प्रावधान किया है..."

(230) "...ने घास से ढकने का विधान किया है। वे दो कारण क्या हैं? संघ के कल्याण के लिए और संघ की सुगमता के लिए... अच्छे धम्म की निरंतरता के लिए और अनुशासन को बढ़ावा देने के लिए। इन्हीं दो कारणों से तथागत (बुद्ध) ने घास से ढकने का विधान किया है।"

XIX. कामवासना (राग) और इसी प्रकार पुनरावृति। श्रृंखला [338]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

231

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए दो चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे दो चीजें क्या हैं? समभाव (समथ ध्यान) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना)। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन दो चीजों का विकास करना आवश्यक है।

232-246

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... कामवासना (राग) के पूर्ण नाश के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... कामवासना (राग) के नाश के लिए... कामवासना (राग) के लुप्त होने के लिए... कामवासना (राग) के मार्ग के लुप्त होने के लिए... कामवासना (राग) के निवारण के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए, इन दो चीजों का विकास करना है। वे दो चीजें क्या हैं? समभाव (समथ ध्यान) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना)। कामवासना (राग) के त्याग के लिए, इन दो चीजों का विकास करना है। भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण नाश के लिए... त्याग के लिए... नाश के लिए... लुप्त होना... लुप्त हो जाना... रुक जाना... त्याग देना... घृणा का त्याग... मोह का त्याग... क्रोध का त्याग... शत्रुता का त्याग... निंदा का त्याग... अभिमान का त्याग... ईर्ष्या का त्याग... कंजूसी का त्याग... छल का त्याग... धूर्तता का त्याग... हठ का त्याग... उग्रता का त्याग... अहंकार का त्याग... घमंड का त्याग... नशा का त्याग... आलस्य का त्याग, इन दो चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे दो चीजें क्या हैं? समभाव (समथ ध्यान) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना)। आलस्य के त्याग के लिए, इन दो चीजों का विकास करना आवश्यक है।

द बुक ऑफ द टूज़ पूरी हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 3.तीनों की पुस्तक

———————————————————————

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

———————————————————————

यह अंगुत्तरा निकाय का तीसरा भाग है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

———————————————————————

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

———————————————————————

<<<< पिछला (AN2) अगला (AN4) >>>>

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1त्रिकों की पुस्तक (टिकानिपाता)

1.1पहले पचास

1.1.1I. मूर्ख (बाला)

1.1.1.11. खतरा (भया)

1.1.1.22 विशेषताएँ (लक्खना)

1.1.1.33. सोच (सिंटी)

1.1.1.44. अपराध (अक्काया)

1.1.1.55 लापरवाही से (अयोनिसो)

1.1.1.66 हानिकारक (अकुसाला सं. अकुशल)

1.1.1.77 निंदनीय (सवज्जा)

1.1.1.88 कष्टदायक (सबयबज्जा)

1.1.1.99. मैम्ड (खाता संस्कृत क्षत)

1.1.1.1010 दाग (माला)

1.1.2II. रथकार (रथकारा)

1.1.2.111 सुप्रसिद्ध (नाटा)

1.1.2.212 स्मरणीय (सरनिया संस. स्मरणीय)

1.1.2.313 अपेक्षा (असमसा सं. आकांक्षा)

1.1.2.414 व्हील-टर्निंग (कैक्कवट्टी सं. चक्रवर्ती)

1.1.2.515 राजा सैकेटाना 349

1.1.2.616 अचूक (अपन्नक)

1.1.2.717 स्वयं (अत्त-ब्यबाधा)

1.1.2.818 देव (देवदूत/देवता) (देवलोक)

1.1.2.919 दुकानदार (1) (पापनिका1)

1.1.2.1020 दुकानदार (2) (पापानिका2)

1.1.3III. व्यक्ति (पुग्गला)

1.1.3.121 समिद्ध

1.1.3.222 मरीज़ (गिलाना)

1.1.3.323 चरित्र/व्यवहार (संस्कार बिना संस्कार)

1.1.3.424 सहायक (बहुकारा)

1.1.3.525 हीरा (वजिरुपमा)

1.1.3.626 से संबद्ध होना (सेवितब्बा)

1.1.3.727 घृणा (जिगुच्चितब्बा)

1.1.3.828 गोबर जैसी वाणी (गुठभानी)

1.1.3.929 अंधा (अंधा)

1.1.3.1030 उलटा (अवकुज्जा)

1.1.4IV. देवदूत (दिव्य संदेशवाहक)

1.1.4.131 ब्रह्मा (सब्रह्मक)

1.1.4.232 आनंद

1.1.4.333 सारिपुत्त 368

1.1.4.434 कारण (निदान)

1.1.4.535 हत्थका

1.1.4.636 संदेशवाहक 379 (देवदूत)

1.1.4.737 (7) राजा (1) (चतुम्हाराजा)

1.1.4.838 (8) राजा (2)

1.1.4.939 नाजुक (सुखुमाला)

1.1.4.1040 अधिकारी (अधिपतेय्या)

1.1.5वी. लघु अध्याय (कुलवाग्गो)

1.1.5.141 वर्तमान (सम्मुखीभव)

1.1.5.242 मामले (तिथाना)

1.1.5.343 लाभ (अत्थवास)

1.1.5.444 सहज प्रवाह (कथापवत्ती)

1.1.5.545 बुद्धिमान (पंडित)

1.1.5.646 गुणी (सिलवंता)

1.1.5.747 संस्कार (भावना) लक्षण (संखतलखना)

1.1.5.848 असंस्कार (असंस्कार) लक्षण (असन्खतलक्खाना)

1.1.5.949 पर्वतों का राजा (पब्बटा-राजा)

1.1.5.1050 अभ्यास उत्साह (अटप्पा-कारनिया)

1.1.5.1151 एक मास्टर चोर (महा-कोरा सं. चोर)

1.2दूसरा पचास

1.2.1(6)I. ब्राह्मण

1.2.1.152 दो ब्राह्मण (1)

1.2.1.253 दो ब्राह्मण (2)

1.2.1.354 एक ब्राह्मण

1.2.1.455. परिभजक (घूमने वाला तपस्वी)

1.2.1.556 निब्बाना (निब्बूता)

1.2.1.657 जनसंख्या में कमी (पालोका)

1.2.1.758 वच्छगोत्ता

1.2.1.859 टिकान्ना

1.2.1.960 जानूसोनी

1.2.1.1061 संगरवा

1.2.2(7)II. महावग्गो (महावग्गो)

1.2.2.162 संप्रदायवादी (तित्थयातनादिसुत्तम)

1.2.2.263 तीन खतरे

1.2.2.364 वेनागपुरा (नागपुर)

1.2.2.465 सरभा

1.2.2.566 केसापुट्टिया 4S5

1.2.2.667 सलहा

1.2.2.7बातचीत के 68 आधार (कथावत्थु)

1.2.2.869 अन्य संप्रदाय (अन्नतित्तिया)

1.2.2.9हानि के 70 मूल कारण (अकुसला-मूला)

1.2.2.1071 उपोसथा (उपवास)

1.2.3III. आनंद खंड

1.2.3.172 चन्ना

1.2.3.273 अजीवका

1.2.3.374 महानम सक्यान

1.2.3.475 निगंथा (जैन)

1.2.3.576 को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए (निवेसाका)

1.2.3.677 अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण)1 (भाव1)

1.2.3.778 अस्तित्व (कारणात्मक)2 [चेतन क्रिया और आकांक्षा] (भाव2)

1.2.3.879 स्थापना (सिलब्बता संस्कृत: शीलव्रत)

1.2.3.980 सुगंध (गंध जटा)

1.2.3.1081 अभिभू (चुलानिका)

1.2.4IV. तपस्वी (समना)

1.2.4.182 तपस्वी (समना)

1.2.4.283 गधा 518 (गर्धबा)

1.2.4.384 खेत (खेट्टा)

1.2.4.485 युवा वज्जि (वज्जिपुत्त)

1.2.4.586 प्रशिक्षु (सेक्खा)

1.2.4.687 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (1) (पथम-सिक्ख-सुत्तम)

1.2.4.788 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (2) (दुतिया-सिक्खा-सुत्तम)

1.2.4.889 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (3) (तातिया-सिक्खा-सुत्तम)

1.2.4.990 प्रशिक्षण (1) (पथम-सिक्खट्टय-सुत्तम)

1.2.4.1091 प्रशिक्षण (2) (दुतिया-सिक्खट्टया-सुत्तम)

1.2.4.1192 पंचधा (संकव)

1.2.5V. नमक का एक टुकड़ा 533 (लोनाका-पल्ला)

1.2.5.193 अत्यावश्यक (अक्कायिका)

1.2.5.294 विवेकाधिकार (पविवेक)

1.2.5.395 शरद ऋतु 537 (सारदा सं. शरद)

1.2.5.496 सभाएं (पेरिसा बिना परिषद)

1.2.5.597 थोरब्रेड (1) (पथमा-अजानिया)

1.2.5.698 थोरब्रेड (2) (दुतिया-अजानिया)

1.2.5.799 थोरब्रेड (3) (तातिया-अजानिया)

1.2.5.8100 छाल का कपड़ा (पोत्थाका)

1.2.5.9101 नमक का एक टुकड़ा

1.2.5.10102 मृदा निष्कासनकर्ता (पम्सुधोवका)

1.2.5.11103 ए गोल्डस्मिथ 565

1.3तीसरा पचास

1.3.1I. ज्ञानोदय

1.3.1.1104 आत्मज्ञान से पहले (पुब्बेवा-संबोध-सुत्तम)

1.3.1.2105 संतुष्टि (1) [563] (पथमा-असदा-सुत्तम)

1.3.1.3106 संतुष्टि (2) (दुतिया-असदा-सुत्तम)

1.3.1.4107 तपस्वी एवं ब्राह्मण [569] (समना ब्राह्मण)

1.3.1.5108 विलाप (रन्ना)

1.3.1.6109 कोई तृप्ति नहीं (अतिति सं. अतृप्ति)

1.3.1.7110 असुरक्षित (अरक्षिता सं. अरक्षित)

1.3.1.8111 विफलता (ब्यपन्ना सं. व्यय)

1.3.1.9112 कारण (1) (निदाना1)

1.3.1.10113 कारण (2) (निदाना2)

1.3.2II. दुख के लोक की ओर अग्रसर (अपायिका-वग्गो)

1.3.2.1114 दुख के लोक की ओर अग्रसर (अपयिका-सुत्तम)

1.3.2.2115 दुर्लभ (दुल्लभा सं. दुर्लभ)

1.3.2.3116 अथाह (अप्पमेय्या सं. अप्रमनिया)

1.3.2.4117 भेद (अनेंजा सं. अनेन्या)

1.3.2.5118 असफलताएँ और उपलब्धियाँ (सम्पदा) (विपत्ति-सम्पदा)

1.3.2.6119 पासे (अपन्नका)

1.3.2.7120 गतिविधि (कम्मंता)

1.3.2.8121 पवित्रता (1) (सोसेय्या1 सं. शुचिता)

1.3.2.9122 पवित्रता (2) (सोसेय्या2 सं. शुचिता)

1.3.2.10123 संतत्व (मनीय्या संस. मुनित्वा)

1.3.3III. कुसिनारा [584]

1.3.3.1124 कुसिनारा

1.3.3.2125 तर्क (बंधन)

1.3.3.3126 गोतमका

1.3.3.4127 भरंडू

1.3.3.5128 हत्थाका

1.3.3.6129 प्रदूषण (कटुविया)

1.3.3.7130 अनुरुद्ध (1)

1.3.3.8131 अनुरुद्ध (2)

1.3.3.9132 छिपा हुआ (पटिच्चन्ना)

1.3.3.10पत्थर पर उकेरी गई 133 पंक्तियाँ

1.3.4IV. एक योद्धा (योद्धाजीव)

1.3.4.1134 एक योद्धा (योद्धाजीव)

1.3.4.2135) सभाएं (पेरिसा बिना परिषद्)

1.3.4.3136 एक मित्र (मित्ता सं. मित्रा)

1.3.4.4137 उदय (उप्पदा सं. उत्पद)

1.3.4.5138 एक बाल कम्बल (केस-कम्बाला बिना केश-कम्बाला)

1.3.4.6139 धन (संपदा)

1.3.4.7140 विकास 605 (बुद्धि सं. वृद्धि)

1.3.4.8141 घोड़े (1) (अस्साखालुंका सं. अश्व..)

1.3.4.9142 घोड़े (2) (अस्सापरस्सा सं. अश्वपुरुष)

1.3.4.10143 घोड़े (3) (अस्सजानिया संस अश्व-जना)

1.3.4.11144 मोर अभयारण्य (एल) 607 (मोरा-निवापा1 सं. मयूरा..)

1.3.4.12145 मोर अभयारण्य (2) (मोरा-निवापा2 संस. मयूरा..)

1.3.4.13146 मोर अभयारण्य (3) (मोरा-निवापा3 सं. मयूरा..)

1.3.5V. शुभ (मंगल-वग्गो)

1.3.5.1147 हानिकारक (अकुसाला सं. अकुशल)

1.3.5.2148 निंदनीय (सवज्जा)

1.3.5.3149 अधर्मी (विसमा)

1.3.5.4150 अशुद्ध (असुची)

1.3.5.5151 अपंग (1) (खाता1 बिना क्षता)

1.3.5.6152 अपंग (2) (खाता2 सं. क्षता)

1.3.5.7153 अपंग (3) (खाता3 सं. क्षता)

1.3.5.8154 अपंग (4) (खाता4 सं. क्षता)

1.3.5.9155 श्रद्धांजलि (वंदना)

1.3.5.10156 सुप्रभात (पब्बन्हा सं. पूरवन्हा)

1.3.6VI. अभ्यास के तरीके [609] (अचेलाका)

1.3.6.1157 (सती ध्यान की स्थापना) [610]

1.3.6.2158—163 (सही प्रयास, आदि) [613]

1.3.7VII. कर्म के मार्ग (कर्म/कार्यों की श्रृंखला) (कर्म-पथपेय्यलम संस्कृत कर्म..)

1.3.7.1164-183 [614]

1.3.8आठवीं. वासना (राग) आदि श्रृंखला 615 (राग-पय्यालम)

त्रिकों की पुस्तक (टिकानिपाता)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. मूर्ख (बाला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1. खतरा (भया)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, जो भी संकट उत्पन्न होते हैं, वे सब मूर्खों के कारण उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। जो भी विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे सब मूर्खों के कारण उत्पन्न होती हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। जो भी दुर्भाग्य उत्पन्न होते हैं, वे सब मूर्खों के कारण उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। जिस प्रकार सरकंडे या घास से बने घर में लगी आग, नुकीली छत वाले, अंदर-बाहर से प्लास्टर किए हुए, हवा रहित, कुंडी लगे और खिड़कियाँ बंद घर को भी जला देती है; उसी प्रकार, जो भी संकट उत्पन्न होते हैं... वे सब मूर्खों के कारण उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। (1) इस प्रकार, भिक्षुओं, मूर्ख संकट लाते हैं, बुद्धिमान संकट नहीं लाते; (2) मूर्ख विपत्ति लाते हैं, बुद्धिमान विपत्ति नहीं लाते; (3) मूर्ख दुर्भाग्य लाते हैं, बुद्धिमान दुर्भाग्य नहीं लाते। बुद्धिमान से कोई संकट नहीं होता; बुद्धिमान से कोई विपत्ति नहीं आती; बुद्धिमान से कोई दुर्भाग्य नहीं आता। व्यक्ति।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन तीन गुणों से बचेंगे जिनके कारण व्यक्ति मूर्ख कहलाता है, और हम उन तीन गुणों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे जिनके कारण व्यक्ति बुद्धिमान कहलाता है।' इसी मार्ग पर आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। [102]

---

2 विशेषताएँ (लक्खना)

भिक्षुओं, मूर्ख व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है; बुद्धिमान व्यक्ति की पहचान भी उसके कर्मों से होती है। पन्ना (दिव्य ज्ञान) अपनी अभिव्यक्ति में चमकता है। 339

भिक्षुओं, जिसमें तीन गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार। जिसमें ये तीन गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए। जिसमें तीन गुण हों, उसे बुद्धिमान समझा जाना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? शारीरिक सुवाह, वाणी सुवाह और मानसिक सुवाह। जिसमें ये तीन गुण हों, उसे बुद्धिमान समझा जाना चाहिए।

अतः, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन तीन गुणों से बचेंगे जिनके कारण व्यक्ति मूर्ख कहलाता है, और हम उन तीन गुणों का पालन करेंगे जिनके कारण व्यक्ति बुद्धिमान कहलाता है।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

3. सोच (सिंटी)

भिक्षुओं, मूर्ख व्यक्ति में मूर्खता के ये तीन लक्षण, ये तीन संकेत और ये तीन अभिव्यक्तियाँ होती हैं। 340 वे तीन क्या हैं? यहाँ, मूर्ख व्यक्ति बुरा सोचता है, बुरा बोलता है और बुरा काम करता है। यदि मूर्ख व्यक्ति बुरा न सोचता, बुरा न बोलता और बुरा काम न करता, तो बुद्धिमान लोग उसे कैसे पहचानते: 'यह व्यक्ति मूर्ख है, बुरा है'? परन्तु क्योंकि मूर्ख व्यक्ति बुरा सोचता है, बुरा न बोलता है और बुरा काम करता है, इसलिए बुद्धिमान लोग उसे पहचानते हैं: 'यह व्यक्ति मूर्ख है, बुरा है।' ये मूर्ख व्यक्ति के तीन लक्षण, ये तीन संकेत और ये तीन अभिव्यक्तियाँ हैं।

"बुद्धिमान व्यक्ति में ये तीन गुण होते हैं, ये तीन लक्षण होते हैं, ये तीन अभिव्यक्तियाँ होती हैं। वे तीन क्या हैं? यहाँ, एक बुद्धिमान व्यक्ति अच्छी तरह सोचता है, अच्छी तरह बोलता है और अच्छी तरह कार्य करता है। यदि बुद्धिमान व्यक्ति अच्छी तरह नहीं सोचता, अच्छी तरह नहीं बोलता और अच्छी तरह कार्य नहीं करता, तो बुद्धिमान लोग उसे कैसे पहचानते: 'यह व्यक्ति बुद्धिमान है, एक अच्छा इंसान है'? [103] लेकिन क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति अच्छी तरह सोचता है, अच्छी तरह बोलता है और अच्छी तरह कार्य करता है, इसलिए बुद्धिमान लोग उसे पहचानते हैं: 'यह टेलो बुद्धिमान है, एक अच्छा इंसान है।' ये बुद्धिमान व्यक्ति के तीन गुण हैं, ये तीन लक्षण होते हैं, ये तीन अभिव्यक्तियाँ होती हैं।"

अतः... [जैसा कि 3:2 में है]... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। 341

---

4. अपराध (अक्काया)

भिक्षुओं, वह व्यक्ति जिसमें तीन गुण हों, मूर्ख कहलाता है। वे तीन गुण क्या हैं? (1) वह अपने अपराध को अपराध नहीं मानता। (2) जब वह अपने अपराध को अपराध मानता है, तो वह धर्म के अनुसार उसका प्रायश्चित नहीं करता। (3) जब कोई दूसरा व्यक्ति उसके सामने अपना अपराध स्वीकार करता है, तो वह धर्म के अनुसार उसे स्वीकार नहीं करता। वह व्यक्ति जिसमें ये तीनों गुण हों, मूर्ख कहलाता है।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को ही ज्ञानी कहा जाना चाहिए। वे तीन गुण क्या हैं? (1) वह अपराध को अपराध के रूप में देखता है। (2) जब वह अपराध को अपराध के रूप में देखता है, तो वह धर्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है। (3) जब कोई दूसरा व्यक्ति उसके सामने अपना अपराध स्वीकार करता है, तो वह धर्म के अनुसार उसे स्वीकार करता है। इन तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को ही ज्ञानी कहा जाना चाहिए।

इसलिए... आपको इसी तरह से खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

5 लापरवाही से (अयोनिसो)

भिक्षुओं, जिसमें तीन गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए। वे तीन गुण क्या हैं? (1) वह लापरवाही से प्रश्न पूछता है; (2) वह लापरवाही से प्रश्न का उत्तर देता है; (3) जब कोई दूसरा व्यक्ति सावधानीपूर्वक, सुविचारित और सुसंगत शब्दों और वाक्यों में प्रश्न का उत्तर देता है, तो वह उसे स्वीकार नहीं करता। जिसमें ये तीनों गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए। वे तीन गुण क्या हैं? (1) वह सावधानीपूर्वक प्रश्न पूछता है; (2) वह सावधानीपूर्वक प्रश्न का उत्तर देता है; (3) जब कोई दूसरा व्यक्ति सुविचारित और सुसंगत शब्दों और वाक्यों में सावधानीपूर्वक प्रश्न का उत्तर देता है, तो वह उसे स्वीकार करता है। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए।

इसलिए... आपको इसी तरह से खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

6 हानिकारक (अकुसाला सं. अकुशल)

भिक्षुओं, जो तीन गुणों से युक्त हो, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए। वे तीन गुण क्या हैं? [104] हानिकारक (अकुशल) शारीरिक क्रिया, हानिकारक (अकुशल) वाणी क्रिया और हानिकारक (अकुशल) मानसिक क्रिया। जो इन तीनों गुणों से युक्त हो, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? लाभकारी (कुशल) शारीरिक क्रिया, लाभकारी (कुशल) वाणी और लाभकारी (कुशल) मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए।

इसलिए... आपको इसी तरह से खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

7 निंदनीय (सवज्जा)

भिक्षुओं, जिसमें तीन गुण हों, उसे मूर्ख समझना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? निंदनीय शारीरिक कर्म, निंदनीय वाणी और निंदनीय मानसिक कर्म। जिसमें ये तीनों गुण हों, उसे मूर्ख समझना चाहिए।

"तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को ही बुद्धिमान माना जाना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? दोषरहित शारीरिक क्रिया, दोषरहित वाणी और दोषरहित मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को ही बुद्धिमान माना जाना चाहिए।"

इसलिए... आपको इसी तरह से खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

8 कष्टदायक (सबयबज्जा)

भिक्षुओं, जिसमें तीन गुण हों, उसे मूर्ख समझना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? कष्टदायी शारीरिक क्रिया, कष्टदायी वाणी और कष्टदायी मानसिक क्रिया। जिसमें ये तीनों गुण हों, उसे मूर्ख समझना चाहिए।

"तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए। वे तीन गुण कौन से हैं? कष्टरहित शारीरिक क्रिया, कष्टरहित वाणी और कष्टरहित मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान माना जाना चाहिए।"

इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन तीन गुणों से बचेंगे जिनके कारण व्यक्ति मूर्ख कहलाता है, और हम उन तीन गुणों को अपनाएंगे और उनका पालन करेंगे जिनके कारण व्यक्ति बुद्धिमान कहलाता है? इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए?' [105]

---

9. मैम्ड (खाता संस्कृत क्षत)

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे तीन गुण क्या हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार। इन तीन गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को निर्बल और अक्षुण्ण रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे तीन गुण क्या हैं? शारीरिक सुवाह्य आचरण, वाणी सुवाह्य आचरण और मानसिक सुवाह्य आचरण। इन तीन गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और अक्षुण्ण रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

---

10 दाग (माला)

भिक्षुओं, जो तीन गुणों से युक्त होते हैं और तीन दोषों का त्याग नहीं करते, उन्हें नरक में ऐसे डाल दिया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे तीन दोष क्या हैं? (1) अनैतिक होना और अनैतिकता के दोष का त्याग न करना। (2) ईर्ष्यालु होना और ईर्ष्या के दोष का त्याग न करना। (3) कंजूस होना और कंजूसी के दोष का त्याग न करना। इन तीन गुणों से युक्त होने और इन तीन दोषों का त्याग न करने पर, उन्हें नरक में ऐसे डाल दिया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।

"भिक्षुओं (सन्यासियों) को तीन गुणों से युक्त और तीन दोषों का त्याग करने पर स्वर्ग में ऐसे प्रवेश मिलता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे तीन क्या हैं? (1) वे गुणी होते हैं और अनैतिकता के दोष का त्याग कर चुके होते हैं। (2) वे ईर्ष्यालु नहीं होते और ईर्ष्या के दोष का त्याग कर चुके होते हैं। (3) वे कंजूस नहीं होते और कंजूसी के दोष का त्याग कर चुके होते हैं। इन तीन गुणों से युक्त और इन तीन दोषों का त्याग करने पर स्वर्ग में ऐसे प्रवेश मिलता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।" [106]

II. रथकार (रथकारा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 सुप्रसिद्ध (नाटा)

"भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त एक प्रसिद्ध भिक्षु अनेक लोगों के नुकसान, अनेक लोगों के दुख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा का कारण बन रहा है। देवताओं और मनुष्यों के लिए। वे तीन गुण क्या हैं? वह उन्हें असंगत शारीरिक क्रिया, असंगत वाणी और असंगत [मानसिक] गुणों के लिए प्रोत्साहित करता है। 342 इन तीन गुणों से युक्त एक प्रसिद्ध भिक्षु अनेक लोगों के नुकसान, अनेक लोगों के दुख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा का कारण बन रहा है, देवताओं और मनुष्यों के लिए।

"भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त एक प्रसिद्ध भिक्षु अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य करता है। वे तीन गुण क्या हैं? वह उन्हें सामंजस्यपूर्ण शारीरिक क्रिया, सामंजस्यपूर्ण वाणी और सामंजस्यपूर्ण मानसिक गुणों के लिए प्रोत्साहित करता है। इन तीन गुणों से युक्त एक प्रसिद्ध भिक्षु अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, कल्याण और सुख के लिए, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य करता है।"

---

12 स्मरणीय (सरनिया संस. स्मरणीय)

भिक्षुओं, एक प्रधान क्षत्रिय राजा को जीवन भर इन तीन स्थानों को याद रखना चाहिए। वे तीन स्थान कौन से हैं? (1) पहला स्थान जहाँ उसका जन्म हुआ। (2) दूसरा स्थान जहाँ उसे क्षत्रिय राजा के रूप में प्रधान बनाया गया। (3) और तीसरा स्थान जहाँ युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद वह विजयी हुआ और युद्धक्षेत्र में अग्रणी बना। ये तीन स्थान हैं जिन्हें एक प्रधान क्षत्रिय राजा को जीवन भर याद रखना चाहिए। [107]

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक भिक्षु को अपने जीवन भर इन तीन स्थानों को याद रखना चाहिए। वे तीन स्थान कौन से हैं? (1) पहला स्थान वह है जहाँ उसने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग दिया। (2) दूसरा स्थान वह है जहाँ उसने सत्य को समझा: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। (3) और तीसरा स्थान वह है जहाँ उसने दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, प्रभात (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास किया। 343 ये तीन स्थान हैं जिन्हें एक भिक्षु को अपने जीवन भर याद रखना चाहिए।"

---

13 अपेक्षा (असमसा सं. आकांक्षा)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? एक जो अपेक्षा रहित है, एक जो अपेक्षा से परिपूर्ण है, और एक जिसने अपेक्षा पर विजय प्राप्त कर ली है।

(1) "हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कौन है जो अपेक्षा नहीं रखता? यहाँ, एक व्यक्ति का पुनर्जन्म निम्न कुल में हुआ है—चांडलाओं, बाँस श्रमिकों, शिकारियों, गाड़ी बनाने वालों या फूल बीनने वालों के कुल में—एक ऐसा कुल जो गरीब है, जिसके पास भोजन और पेय कम है, जिसका जीवन यापन कठिन है, जहाँ भोजन और वस्त्र मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप, बदसूरत, बौना, और बहुत सी बीमारियों से ग्रस्त है: अंधा, अपंग, लंगड़ा या लकवाग्रस्त। उसे भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त नहीं होते; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। वह सुनता है: 'क्षत्रियों ने फलाँ-फलाँ क्षत्रिय का अभिषेक किया है।' उसे यह विचार नहीं आता: 'क्षत्री मेरा अभिषेक कब करेंगे?' इसे ही अपेक्षाहीन व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) "और वह व्यक्ति जो आशा से परिपूर्ण है, वह क्या है? [108] यहाँ, एक प्रधान क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र, जिसका राज्याभिषेक होना तय है, परन्तु अभी तक नहीं हुआ है, अविचल अवस्था में है। 345 वह सुनता है: क्षत्रियों ने फलाँ क्षत्रिय का राज्याभिषेक कर दिया है। उसके मन में आता है: 'क्षत्रिय मेरा राज्याभिषेक कब करेंगे?' यही आशा से परिपूर्ण व्यक्ति कहलाता है।"

(3) और वह व्यक्ति कौन है जिसने अपेक्षा पर विजय प्राप्त कर ली है? उदाहरण के लिए, एक प्रधान क्षत्रिय राजा सुनता है: 'फलां क्षत्रिय का क्षत्रियों द्वारा अभिषेक किया गया है।' उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मुझे भी क्षत्रिय कब अभिषेक करेंगे?' इसका कारण क्या है? क्योंकि अभिषेक होने पर उसकी पूर्व अपेक्षा समाप्त हो गई। यही अपेक्षा पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति कहलाता है।

ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में पाए जाते हैं।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, भिक्षुओं में भी तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? एक जो अपेक्षाहीन है, एक जो अपेक्षा से परिपूर्ण है, और एक जो अपेक्षा पर विजय प्राप्त कर चुका है।"

(1) "हे भिक्षुओं, अपेक्षाहीन व्यक्ति कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति अनैतिक, बुरे चरित्र वाला, अपवित्र और संदिग्ध आचरण वाला, अपने कार्यों में गुप्त, तपस्वी होते हुए भी तपस्वी नहीं, ब्रह्मचारी होते हुए भी ब्रह्मचारी नहीं, भीतर से सड़ा हुआ, भ्रष्ट और पतित है। वह सुनता है: 'अमुक भिक्षु ने अपने दोषों का नाश करके, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है।' उसे यह विचार नहीं आता: 'मैं भी कब अपने दोषों का नाश करके, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करूँगा और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँगा?' यही अपेक्षाहीन व्यक्ति कहलाता है।"

(2) "और वह व्यक्ति कौन है जो आशाओं से परिपूर्ण है? यहाँ, एक भिक्षु गुणी और अच्छे चरित्र का है। वह [109] सुनता है: 'अमुक भिक्षु ने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।' उसके मन में यह विचार आता है: 'मैं भी कब दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करूँगा, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँगा?' इसे आशाओं से परिपूर्ण व्यक्ति कहा जाता है।

(3) और वह व्यक्ति कौन है जिसने अपेक्षा पर विजय प्राप्त कर ली है? यहाँ, भिक्षु एक अरहंत है, वह जिसके दोष नष्ट हो गए हैं। वह सुनता है: 'अमुक भिक्षु ने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।' उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं भी कब दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करूँगा, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँगा?' इसका कारण क्या है? क्योंकि मुक्ति प्राप्त करने पर उसकी पिछली मुक्ति की अपेक्षा समाप्त हो गई। इसे अपेक्षा पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति कहा जाता है।

"हे भिक्षुओं, भिक्षुओं के बीच ये तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।"

---

14 व्हील-टर्निंग (कैक्कवट्टी सं. चक्रवर्ती)

"भिक्षुओं (साधुओं), यहां तक कि एक चक्र चलाने वाला सम्राट, एक धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता है, वह भी अपने ऊपर एक राजा के बिना चक्र नहीं चलाता।"

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परन्तु, हे भंते, चक्र घुमाने वाले राजा से भी श्रेष्ठ राजा कौन है, वह धर्मात्मा राजा कौन है जो धम्म के अनुसार शासन करता है?"

"यह धम्म है, भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा। 346 "यहाँ, हे भिक्षु, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट, धर्म के अनुसार शासन करने वाला एक धर्मी राजा, जो केवल धर्म पर निर्भर रहता है, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करता है, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानता है, अपने दरबार में लोगों को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करता है। फिर, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट, धर्म के अनुसार शासन करने वाला एक धर्मी राजा, जो केवल धर्म पर निर्भर रहता है, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करता है, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानता है, अपने क्षत्रिय सामंतों, अपनी सेना, [110] ब्राह्मणों और गृहस्थों, नगर और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों, तपस्वियों और ब्राह्मणों, और पशुओं और पक्षियों को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करता है। इन सभी प्राणियों को ऐसा

धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करने के बाद, वह चक्र-घुमाने वाला सम्राट, धर्म के अनुसार शासन करने वाला एक धर्मी राजा, केवल धर्म के माध्यम से ही चक्र घुमाता है, 347 एक ऐसा पहिया जिसे कोई भी शत्रुतापूर्ण मनुष्य वापस नहीं घुमा सकता। 348

(1) "इसी प्रकार, हे भिक्षु, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धर्म के धर्मी राजा, केवल धर्म पर निर्भर रहते हुए, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करते हुए, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानकर, शारीरिक क्रियाओं के संबंध में धार्मिक संरक्षण, आश्रय और रक्षा प्रदान करते हुए कहते हैं: 'ऐसी शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए; ऐसी शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करना चाहिए।'"

(2) "फिर तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धर्म के धर्मी राजा, धर्म पर ही भरोसा करते हुए, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करते हुए, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानते हुए, मौखिक कर्म के संबंध में धार्मिक संरक्षण, आश्रय और रक्षा प्रदान करते हुए कहते हैं: 'ऐसे मौखिक कर्म का अभ्यास करना चाहिए; ऐसे मौखिक कर्म का अभ्यास नहीं करना चाहिए।'

(3) "फिर तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धर्म के धर्मी राजा, धर्म पर ही भरोसा रखते हुए, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करते हुए, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानते हुए, मानसिक कर्म के संबंध में धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते हुए कहते हैं: 'ऐसे मानसिक कर्म का अभ्यास करना चाहिए; ऐसे मानसिक कर्म का अभ्यास नहीं करना चाहिए।'

"शारीरिक क्रिया, वाणी क्रिया और मानसिक क्रिया के संबंध में ऐसी धार्मिक सुरक्षा, आश्रय और रक्षा प्रदान करके, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धम्म के धर्मी राजा, केवल धम्म के माध्यम से ही धम्म के अद्वितीय चक्र को गतिमान करते हैं, एक ऐसा चक्र जिसे किसी भी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार में किसी के द्वारा भी वापस नहीं मोड़ा जा सकता है।"

---

15 राजा सैकेटाना 349

एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण पार्क में बरनासी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" [तस्वीर]

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, अतीत में सचेतना नामक एक राजा था। तब राजा सचेतना ने एक सारथी से कहा, 'मित्र सारथी, छह माह बाद एक युद्ध होगा। क्या तुम मेरे लिए नए पहिए बना सकते हो?' सारथी ने उत्तर दिया, 'जी, मैं बना सकता हूँ।' छह माह से छह दिन कम समय में सारथी ने एक पहिया तैयार कर दिया। राजा सचेतना ने फिर सारथी से पूछा, 'छह दिन बाद एक युद्ध होगा। क्या नए पहिए तैयार हो गए हैं?' सारथी ने उत्तर दिया, 'जी, पिछले छह माह से छह दिन कम समय में मैंने एक पहिया तैयार कर दिया है।' - 'परन्तु, मित्र सारथी, क्या तुम अगले छह दिनों में मेरे लिए दूसरा पहिया भी बना सकते हो?' - 'जी, मैं बना सकता हूँ।' सारथी ने उत्तर दिया। फिर, अगले छह दिनों में सारथी ने दूसरा पहिया भी तैयार कर दिया। वह नए पहिए राजा सचेतना के पास लाया और बोला, 'यह नए पहिए हैं जो X ने आपके लिए बनाए हैं, जी,' — 'हे मेरे रथ निर्माता, छह महीने से छह दिन कम समय में बने पहिए और छह दिन में बने पहिए में क्या अंतर है? मुझे तो कोई अंतर नहीं दिखता।' — 'अंतर है, स्वामी। अंतर को ध्यान से देखिए।'

फिर रथ बनाने वाले ने उस पहिये को घुमाया जिसे पूरा करने में छह दिन लगे थे। वह अपनी शक्ति के अनुसार घूमता रहा, 350 और फिर लड़खड़ाकर खाई में गिर गया। लेकिन वह पहिया जिसे पूरा करने में छह महीने [112] से छह दिन कम लगे थे, अपनी शक्ति के अनुसार घूमता रहा और फिर धुरी पर जड़े हुए की तरह स्थिर हो गया। 351

"[राजा ने पूछा:] 'हे मित्र रथ निर्माता, ऐसा क्यों है कि जिस पहिए को पूरा करने में छह दिन लगे, वह अपनी गति के अनुसार लुढ़का और फिर लड़खड़ाकर जमीन पर गिर गया, जबकि जिस पहिए को पूरा करने में छह महीने से छह दिन कम लगे, वह अपनी गति के अनुसार लुढ़का और फिर धुरी पर स्थिर होकर रुक गया?'"

"[रथकार बनाने वाले ने उत्तर दिया:] 'हे स्वामी, जिस पहिये को पूरा करने में छह दिन लगे, उसका किनारा टेढ़ा, दोषपूर्ण और खराब है; उसकी तीलियाँ भी टेढ़ी, दोषपूर्ण और खराब हैं; और उसका केंद्र भी टेढ़ा, दोषपूर्ण और खराब है। इसी कारण वह बल के साथ लुढ़का और फिर लड़खड़ाकर जमीन पर गिर गया। परन्तु जिस पहिये को पूरा करने में छह महीने से छह दिन कम लगे, उसका किनारा टेढ़ा, दोषपूर्ण और खराब नहीं है; उसकी तीलियाँ भी टेढ़ी, दोषपूर्ण और खराब नहीं हैं; और उसका केंद्र भी टेढ़ा, दोषपूर्ण और खराब नहीं है। इसी कारण वह बल के साथ लुढ़का और फिर धुरी पर जड़े हुए की तरह स्थिर हो गया।"

भिक्षुओं, हो सकता है कि आप सोचें: 'उस समय रथ बनाने वाला कोई और था,' लेकिन आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए। उस समय मैं स्वयं रथ बनाने वाला था। तब मैं लकड़ी की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, दोषों और खामियों में निपुण था। लेकिन अब मैं अरहंत हूँ, पूर्णतः प्रबुद्ध, (1) शरीर की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, दोषों और खामियों में निपुण; (2) वाणी की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, दोषों और खामियों में निपुण; और (3) मन की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, दोषों और खामियों में निपुण।

"कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जिसने शरीर, वाणी और मन की कुटिलता, दोषों और खामियों का त्याग नहीं किया है [113] वह इस धम्म और अनुशासन से गिर गया है, ठीक उसी तरह जैसे छह दिनों में बनकर तैयार हुआ पहिया [जमीन पर गिर गया]।

"कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जिसने शरीर, वाणी और मन की कुटिलता, दोषों और कमियों का त्याग कर दिया है, वह इस धम्म और अनुशासन में उसी प्रकार स्थापित हो जाता है, जैसे छह महीने से छह दिन कम समय में बनकर तैयार हुआ चक्र [स्थिर रहा]।"

अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करो: 'हम शरीर की कुटिलता, दोषों और खामियों का त्याग करेंगे; हम वाणी की कुटिलता, दोषों और खामियों का त्याग करेंगे; हम मन की कुटिलता, दोषों और खामियों का त्याग करेंगे।' इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

16 अचूक (अपन्नक)

"भिक्षुओं (मठवासियों) में तीन गुण होते हैं: एक भिक्षु निर्दोष मार्ग का अभ्यास करता है और दोषों के नाश की नींव रखता है। 352 वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, भोजन में संयम बरतता है और जागृति पर ध्यान केंद्रित करता है। 353

(1) "हे भिक्षुओं, एक भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, एक भिक्षु उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो उसे लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ घेर सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय पर संयम रखता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, एक भिक्षु उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह मन की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो उसे लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ घेर सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह मन की रक्षा करता है।" वह मन की शक्ति को नियंत्रित करता है। इसी प्रकार भिक्षु इंद्रिय शक्तियों के द्वारों की रक्षा करता है। [114]

(2) "भिक्षु भोजन में संयम कैसे बरतता है? यहाँ, ध्यानपूर्वक विचार करने पर, भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण और रखरखाव के लिए, हानि से बचने के लिए, और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में सहायता करने के लिए भोजन ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि: 'इस प्रकार मैं पुरानी वेदना को समाप्त करूँगा और नई वेदना को जागृत नहीं होने दूँगा, और मैं स्वस्थ और दोषरहित रहूँगा और शांति से रहूँगा।' इस प्रकार भिक्षु भोजन में संयम बरतता है।"

(3) "एक भिक्षु किस प्रकार जागृति पर ध्यान केंद्रित करता है? यहाँ, दिन के दौरान, चलते-फिरते और बैठते हुए, एक भिक्षु अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। रात्रि के पहले पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में, वह उठने का विचार मन में रखते हुए, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है, ध्यानमग्न और

पूर्णतः बोध करते हुए। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। इस प्रकार एक भिक्षु जागृति पर ध्यान केंद्रित करता है।"

"जो भिक्षु इन तीनों गुणों से युक्त होता है, वह निर्दोष मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है और उसने दोषों के नाश की नींव रख दी होती है।"

---

17 स्वयं (अत्त-ब्यबाधा)

भिक्षुओं, ये तीन गुण स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट और हम दोनों के कष्ट का कारण बनते हैं। वे तीन कौन से गुण हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार। ये तीन गुण स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट और हम दोनों के कष्ट का कारण बनते हैं।

"ये तीन [अन्य] गुण स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट और दोनों के कष्ट का कारण नहीं बनते। वे तीन कौन से हैं? शारीरिक सुव्यवहार/वाक्य सुव्यवहार और मानसिक सुव्यवहार। ये तीन गुण स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट और दोनों के कष्ट का कारण नहीं बनते।" [115]

---

18 देव (देवदूत/देवता) (देवलोक)

"भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे इस प्रकार पूछें: 'मित्रों, क्या आप देवलोक में पुनर्जन्म के लिए तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं?' तो क्या आप घृणा, अपमान और तिरस्कार से भर नहीं जाएंगे?"

"हां, भंते।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, चूंकि तुम दिव्य जीवन, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य महिमा और दिव्य अधिकार से घृणा, अपमानित और निराश हो, तो तुम्हें शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार से और भी अधिक घृणा, अपमानित और निराश होना चाहिए।"

---

19 दुकानदार (1) (पापनिका1)

भिक्षुओं, तीन कारकों से युक्त एक दुकानदार न तो अप्राप्त धन अर्जित कर सकता है और न ही अर्जित धन को बढ़ा सकता है। वे तीन कारक क्या हैं? यहाँ, एक दुकानदार सुबह, दोपहर और शाम को अपने काम में लगन से नहीं बैठता। इन तीन कारकों से युक्त एक दुकानदार न तो अप्राप्त धन अर्जित कर सकता है और न ही अर्जित धन को बढ़ा सकता है।

इसी प्रकार, तीन कारकों से युक्त भिक्षु न तो अप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को प्राप्त कर सकता है और न ही पूर्वप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को बढ़ा सकता है। वे तीन कारक क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सुबह, दोपहर या शाम को समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) के विषय में लगन से ध्यान नहीं लगाता है। इन तीन कारकों से युक्त भिक्षु न तो अप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को प्राप्त कर सकता है और न ही पूर्वप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को बढ़ा सकता है। [116]

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त होकर एक दुकानदार अप्राप्त धन अर्जित करने और पहले से अर्जित धन को बढ़ाने में सक्षम होता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, एक दुकानदार सुबह, दोपहर और शाम को लगन से अपने काम में लगा रहता है। इन तीन गुणों से युक्त होकर एक दुकानदार अप्राप्त धन अर्जित करने और पहले से अर्जित धन को बढ़ाने में सक्षम होता है।

इसी प्रकार, तीन गुणों से युक्त भिक्षु अप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को प्राप्त करने और पूर्वप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को बढ़ाने में सक्षम होता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सुबह, दोपहर और शाम को समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) के किसी विषय पर

लगन से ध्यान लगाता है। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु अप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को प्राप्त करने और पूर्वप्राप्त लाभकारी (कुशल) अवस्था को बढ़ाने में सक्षम होता है।

---

20 दुकानदार (2) (पापानिका2)

"भिक्षुओं (साधुओं) में तीन गुण होते हैं, जिससे दुकानदार शीघ्र ही अपार धन-संपत्ति प्राप्त कर लेता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, दुकानदार की दृष्टि तेज होती है, वह जिम्मेदार होता है और उसके संरक्षक होते हैं।"

(1) "और हे भिक्षुओं, एक दुकानदार की नज़र कितनी तेज़ होती है? यहाँ, एक दुकानदार किसी वस्तु के बारे में जानता है: 'यदि इस वस्तु को इस कीमत पर खरीदा जाए और इस कीमत पर बेचा जाए, तो इसमें इतनी पूंजी लगेगी और इतना लाभ होगा।' इस प्रकार एक दुकानदार की नज़र तेज़ होती है।"

(2) "और दुकानदार किस प्रकार उत्तरदायी होता है? यहाँ, दुकानदार वस्तुओं की खरीद-बिक्री में कुशल होता है। इसी प्रकार एक दुकानदार उत्तरदायी होता है।"

(3) "एक दुकानदार के हितैषी कैसे होते हैं? यहाँ, धनी, संपन्न, समृद्ध गृहस्थ और गृहस्थों के पुत्र उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह अच्छा दुकानदार पैनी नजर रखता है और जिम्मेदार है; वह अपनी पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण करने में सक्षम है और समय-समय पर हमें भी भुगतान करता है।' इसलिए वे उसके पास धन जमा करते हुए कहते हैं: 'हे मित्र दुकानदार, इससे धन कमाकर अपनी पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण करो और समय-समय पर हमें भी भुगतान करो।' इस प्रकार एक दुकानदार के हितैषी होते हैं।"

"इन तीन कारकों के होने से एक दुकानदार शीघ्र ही अपार और प्रचुर धन प्राप्त कर लेता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही विशाल और प्रचुर लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त कर लेता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु की दृष्टि तेज होती है, वह जिम्मेदार होता है और उसके उपकारी होते हैं।"

(1) "और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु की दृष्टि कैसे तीव्र होती है? यहाँ, एक भिक्षु (भिक्षु) इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह पीड़ा है'... 'यह पीड़ा के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक भिक्षु की दृष्टि तीव्र होती है।"

(2) "भिक्षु किस प्रकार उत्तरदायित्व रखता है? यहाँ, भिक्षु ने अकुशल गुणों (धम्म) का त्याग करने और कुशल गुणों (धम्म) को ग्रहण करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, और कुशल गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता। इसी प्रकार भिक्षु उत्तरदायित्व रखता है।"

(3) "एक भिक्षु को संरक्षक कैसे मिलते हैं? यहाँ, समय-समय पर एक भिक्षु उन भिक्षुओं के पास जाता है जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, 354 और पूछता है: 'यह कैसे है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूजनीय भिक्षु उसे वह प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट को स्पष्ट करते हैं, और अनेक पेचीदा बिंदुओं के बारे में उसकी उलझन को दूर करते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु (भिक्षु) को संरक्षक मिलते हैं।" [118]

"इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही विशाल और प्रचुर लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त कर लेता है।"

III. व्यक्ति (पुग्गला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 समिद्ध

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य सावित्था और पूज्य महाकोत्थिता, पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य सावित्था से कहा:

"मित्र सविथा, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति विद्यमान पाए जाते हैं। वे कौन से तीन हैं? शरीर दर्शी, दृष्टि प्राप्त व्यक्ति और आस्था द्वारा मुक्त व्यक्ति। 355 ये तीन प्रकार के व्यक्ति संसार में विद्यमान पाए जाते हैं। इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों में से आप किसे सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानते हैं?"

"मित्र सारिपुत्त, उन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से, मैं आस्था द्वारा मुक्त हुए व्यक्ति को सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानता हूँ। 356 इसका कारण क्या है? क्योंकि इस व्यक्ति की आस्था शक्ति सर्वोपरि है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "मित्र कोत्थिता, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति विद्यमान पाए जाते हैं... [119] इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों में से आप किसे सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानते हैं?"

"मित्र सारिपुत्त, उन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से, मैं देहधारी साक्षी को सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस व्यक्ति में समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) की क्षमता प्रबल होती है।"

तब पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र सारिपुत्त, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं... इन तीनों प्रकार के व्यक्तियों में से आप किसे सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानते हैं?"

"मित्र कोत्थिता, उन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से, मैं दृष्टि प्राप्त व्यक्ति को सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ मानता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस व्यक्ति की पन्ना (दिव्य ज्ञान) क्षमता सर्वोपरि है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य सवित्था और पूज्य महाकोत्थिता से कहा, "मित्रों, हम सबने अपने-अपने आदर्श के अनुसार व्याख्या कर दी है। आइए, हम भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें इस विषय की जानकारी दें। जब वे हमें इसका अर्थ समझाएंगे, तो हम इसे ध्यान में रखेंगे।"

"जी हां, मित्र," पूज्य सवित्थ और पूज्य महाकोत्थिता ने उत्तर दिया। तब पूज्य सारिपुत्त, पूज्य सवित्थ और पूज्य महाकोत्थिता भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। [120] पूज्य सारिपुत्त ने उन्हें सारी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "सारिपुत्त, इस विषय पर निश्चित घोषणा करना और यह कहना आसान नहीं है कि 'इन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से, यह व्यक्ति सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।'"

(1) "यह संभव है कि आस्था द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति अर्हतत्व के लिए अभ्यास कर रहा हो, जबकि शरीर साक्षी और दृष्टि प्राप्त कर चुके व्यक्ति एक बार जन्म लेने वाले (एक बार पुनर्जन्म, सकदागामी) या एक बार जन्म न लेने वाले (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी) हो सकते हैं। सारिपुत्त, इस विषय पर निश्चित घोषणा करना और यह कहना आसान नहीं है कि 'इन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से यह व्यक्ति सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।'"

(2) "यह संभव है कि जो व्यक्ति शारीरिक साक्षी है वह अरहंतत्व के लिए अभ्यास कर रहा हो, जबकि आस्था से मुक्त और दृष्टि प्राप्त व्यक्ति एक बार जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) या एक बार जन्म न लेने वाले (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी) हों। सारिपुत्त, इस विषय पर निश्चित घोषणा करना और यह कहना आसान नहीं है कि 'इन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से यह व्यक्ति सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।'"

(3) "यह संभव है कि दृष्टि प्राप्त व्यक्ति अरहंत पद के लिए साधना कर रहा हो, जबकि आस्था और शरीर साक्षी द्वारा मुक्त व्यक्ति एक बार जन्म लेने वाले (सकदागामी) या जन्म न लेने वाले (अनगामी) हों। सारिपुत्त, इस विषय पर कोई निश्चित घोषणा करना और यह कहना आसान नहीं है कि 'इन तीन प्रकार के व्यक्तियों में से यह व्यक्ति सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।'"

---

22 मरीज़ (गिलाना)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के रोगी पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार के रोगी हैं? (1) यहाँ, एक रोगी उचित भोजन, उचित औषधि [121] और योग्य परिचारक मिले या न मिले, वह अपने रोग से ठीक नहीं होगा। (2) दूसरा रोगी उचित भोजन, उचित औषधि और योग्य परिचारक मिले या न मिले, वह अपने रोग से ठीक हो जाएगा। (3) एक अन्य रोगी अपने रोग से तभी ठीक होगा जब उसे उचित भोजन मिले, न मिलने पर नहीं; केवल तभी ठीक होगा जब उसे उचित औषधि मिले, न मिलने पर नहीं; और केवल तभी ठीक होगा जब उसे योग्य परिचारक मिले, न मिलने पर नहीं।

"भोजन, औषधि और एक कुशल परिचारक विशेष रूप से उस रोगी के लिए निर्धारित किए गए हैं जो उचित भोजन मिलने पर ही स्वस्थ होगा, न मिलने पर नहीं; उचित औषधि मिलने पर ही स्वस्थ होगा, न मिलने पर नहीं; और कुशल परिचारक मिलने पर ही स्वस्थ होगा, न मिलने पर नहीं। लेकिन इस रोगी के कारण अन्य रोगियों की भी सेवा की जानी चाहिए। ये तीन प्रकार के रोगी संसार में पाए जाते हैं।"

भिक्षुओं, संसार में रोगियों के समान तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे तीन कौन से हैं? (1) यहाँ, कुछ व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर नहीं चलेंगे, चाहे उन्हें तथागत (बुद्ध) के दर्शन हों या न हों, और चाहे उन्हें तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन सुनने को मिले या न हों। 358 (2) फिर एक अन्य व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलेंगे, चाहे उन्हें तथागत (बुद्ध) के दर्शन हों या न हों, और चाहे उन्हें तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन सुनने को मिले या न हों। (3) और एक अन्य व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर तभी चलेंगे जब उन्हें तथागत (बुद्ध) के दर्शन होंगे, न कि यदि वे उन्हें देखने में असफल रहते हैं; केवल तभी जब उसे तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन सुनने को मिले, न कि यदि वह इसे सुनने में असफल रहता है। [122]

धम्म की शिक्षा विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए निर्धारित की गई है जो उचित (कुशल) गुणों (धम्म) में सत्यता के मार्ग पर चलना चाहता है, बशर्ते उसे तथागत (बुद्ध) के दर्शन हों, न कि उनके दर्शन; बशर्ते उसे तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म (मार्ग) और अनुशासन सुनने का अवसर मिले, न कि न सुनने का। इस व्यक्ति के कारण ही अन्य लोगों को भी धम्म की शिक्षा दी जानी चाहिए। ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान रोगियों के समान पाए जाते हैं।

---

23 चरित्र/व्यवहार (संस्कार बिना संस्कार)

"भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ कुछ व्यक्ति कष्टदायक शारीरिक लक्षण/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), कष्टदायक वाणी/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और कष्टदायक मानसिक लक्षण/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) उत्पन्न करते हैं। 389 परिणामस्वरूप, उनका पुनर्जन्म कष्टदायक संसार में होता है। जब उनका पुनर्जन्म कष्टदायक संसार में होता है, तो कष्टदायक संपर्क उन्हें स्पर्श करते हैं। कष्टदायक संपर्कों से स्पर्श होने पर, वे केवल पीड़ादायक कष्टदायक संवेदनाएँ (वेदना) अनुभव करते हैं, जैसे कि नरक के प्राणियों के मामले में होता है।

(2) "कोई अन्य व्यक्ति अहानिकारक शारीरिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), अहानिकारक वाणी/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और अहानिकारक मानसिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) उत्पन्न करता है। फलस्वरूप, वह अहानिकारक संसार में पुनर्जन्म लेता है। जब वह अहानिकारक संसार में पुनर्जन्म लेता है, तो अहानिकारक स्पर्श उसे स्पर्श करते हैं। अहानिकारक स्पर्शों से स्पर्श होने पर, वह अहानिकारक संवेदनाओं (वेदना) का अनुभव करता है, जो अनन्य रूप से सुखद होती हैं, जैसे तेजस्वी देवों (देवदूतों/देवताओं) के मामले में। 360

(3) "एक अन्य प्राणी शारीरिक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के व्यवहार उत्पन्न करता है, साथ ही पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के मौखिक और मानसिक व्यवहार भी उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप, [123] उसका पुनर्जन्म पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संसार में होता है। जब उसका पुनर्जन्म पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संसार में होता है, तो पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संपर्कों से स्पर्श होने पर, वह पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार की संवेदनाओं (वेदना), मिश्रित सुख और दुख का अनुभव करता है, जैसा कि मनुष्यों, कुछ देवताओं और कुछ निम्न लोकों के प्राणियों के मामले में होता है। 361

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

24 सहायक (बहुकारा)

"भिक्षुओं, ये तीन व्यक्ति एक दूसरे के सहायक हैं। वे कौन से तीन व्यक्ति हैं?"

(1) "वह व्यक्ति जिसके माध्यम से दूसरा व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में गया है। यह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का सहायक है।"

(2) "पुनः, वह व्यक्ति जिसके माध्यम से दूसरा व्यक्ति यह समझ पाता है कि वास्तव में क्या है; 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' यह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए सहायक होता है।" 362

(3) "फिर, वह व्यक्ति जिसके माध्यम से, दोषों के नाश के साथ, दूसरा व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है, वह व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए सहायक होता है।"

"ये तीनों व्यक्ति एक दूसरे व्यक्ति के लिए सहायक हैं।"

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि इन तीनों व्यक्तियों से अधिक किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने वाला कोई नहीं है। मैं यह भी कहता हूँ कि इन तीनों व्यक्तियों को प्रणाम करके, उनके लिए उठ खड़े होकर, आदरपूर्वक अभिवादन करके, उचित आचरण करके और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन भेंट करके उनका प्रतिफल देना आसान नहीं है।"

---

25 हीरा (वजिरुपमा)

"भिक्षुओं (संतों), संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। [124] वे तीन कौन से हैं? एक जिसका मन खुले घाव के समान है, एक जिसका मन बिजली के समान है, और एक जिसका मन हीरे के समान है।

(1) "हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसा है जिसका मन खुले घाव के समान है? यहाँ, ऐसा व्यक्ति क्रोधशील और आसानी से चिढ़ जाता है। थोड़ी सी आलोचना भी उसे क्रोधित कर देती है और वह उग्र, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह चिड़चिड़ापन, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करता है। जैसे किसी मवाद भरे घाव पर यदि कोई छड़ी या कांटा चुभोया जाए तो उससे और अधिक द्रव निकलता है, वैसे ही यहाँ ऐसा व्यक्ति क्रोधशील है... और चिड़चिड़ापन, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करता है। ऐसे व्यक्ति को खुले घाव के समान मन वाला कहा जाता है।"

(2) "और वह व्यक्ति कौन है जिसका मन बिजली के समान है? यहाँ, कोई व्यक्ति यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। जैसे रात के घने अंधेरे में, अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति बिजली की चमक से आकृतियाँ देख सकता है, वैसे ही कोई व्यक्ति यहाँ यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' ऐसे व्यक्ति को बिजली के समान मन वाला कहा जाता है।"

(3) “और वह व्यक्ति कौन है जिसका मन हीरे के समान है? यहाँ, दोषों के नाश होने पर, कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करता है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है। जैसे हीरा किसी भी चीज को काट सकता है, चाहे वह रत्न हो या पत्थर, उसी प्रकार, दोषों के नाश होने पर, कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करता है और उसमें निवास करता है। ऐसे व्यक्ति को हीरे के समान मन वाला कहा जाता है।”

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

26 से संबद्ध होना (सेवितब्बा)

"भिक्षुओं (मठवासियों), संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे तीन कौन से हैं? (1) एक व्यक्ति ऐसा है जिसके साथ संगति नहीं करनी चाहिए, जिसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और जिसकी सेवा नहीं करनी चाहिए; (2) एक व्यक्ति ऐसा है जिसके साथ संगति करनी चाहिए, जिसका अनुसरण करना चाहिए और जिसकी सेवा करनी चाहिए; और (3) [125] एक व्यक्ति ऐसा है जिसके साथ आदर और सम्मान के साथ संगति करनी चाहिए, जिसका अनुसरण करना चाहिए और जिसकी सेवा करनी चाहिए।"

(1) "और हे भिक्षुओं, किस प्रकार के व्यक्ति से संगति नहीं रखनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए? यहाँ, कुछ व्यक्ति सद्गुणों (शील), ध्यान (समाधि) और दिव्य ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में हीन होते हैं। ऐसे व्यक्ति से सहानुभूति और करुणा के सिवा संगति नहीं रखनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए।"

(2) और किस प्रकार के व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए, किसका अनुसरण करना चाहिए और किसकी सेवा करनी चाहिए? यहाँ, कोई व्यक्ति शील, समाधि और दिव्य ज्ञान में समान है। ऐसे व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए। इसका क्या कारण है? [क्योंकि हम यह मानते हैं:] 'चूंकि हम शील के मामले में समान हैं, इसलिए हम शील पर चर्चा करेंगे और यह हमारे बीच सहजता से प्रवाहित होगी और हम सहज महसूस करेंगे। चूंकि हम समाधि के मामले में समान हैं, इसलिए हम समाधि पर चर्चा करेंगे और यह हमारे बीच सहजता से प्रवाहित होगी और हम सहज महसूस करेंगे। चूंकि हम दिव्य ज्ञान के मामले में समान हैं, इसलिए हम दिव्य ज्ञान पर चर्चा करेंगे और यह हमारे बीच सहजता से प्रवाहित होगी और हम सहज महसूस करेंगे। इसलिए ऐसे व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए।'

(3) और किस प्रकार के व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और आदर एवं सम्मान के साथ उसकी सेवा करनी चाहिए? यहाँ, कोई व्यक्ति सद्गुणों (शील), समाधि और दिव्य ज्ञान में श्रेष्ठ है। ऐसे व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और आदर एवं सम्मान के साथ उसकी सेवा करनी चाहिए। इसका क्या कारण है? [क्योंकि व्यक्ति विचार करता है:] 'इस प्रकार मैं उन सद्गुणों (शील) को पूरा करूँगा जिन्हें मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में उन सद्गुणों (शील) की सहायता करूँगा जिन्हें मैंने पूरा कर लिया है। मैं उन समाधि की अवस्थाओं को पूरा करूँगा जिन्हें मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में उन समाधि की अवस्थाओं की सहायता करूँगा जिन्हें मैंने पूरा कर लिया है। मैं उन सद्गुणों (शील) को पूरा करूँगा जिन्हें मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में उन सद्गुणों (शील) की सहायता करूँगा जिन्हें मैंने पूरा कर लिया है। मैंने जो दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है, उसका सार। 363 अतः ऐसे व्यक्ति के साथ आदरपूर्वक संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा आदरपूर्वक करनी चाहिए।

"ये भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।" [126]

अपने से कमतर व्यक्ति के साथ संगति करने वाला व्यक्ति पतन की ओर जाता है;

अपने बराबर के व्यक्ति के साथ संगति करने वाला व्यक्ति पतन की ओर नहीं जाता;

श्रेष्ठ व्यक्ति की सेवा करने से व्यक्ति का शीघ्र विकास होता है;

इसलिए आपको अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए।

---

27 घृणा (जिगुच्छितब्बा)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे तीन प्रकार क्या हैं? (1) एक व्यक्ति ऐसा है जिससे घृणा करनी चाहिए, जिसके साथ संगति नहीं करनी चाहिए, जिसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और जिसकी सेवा नहीं करनी चाहिए; (2) एक व्यक्ति ऐसा है जिससे उदासीनता (अंदर की ओर विलीन होकर/उपेक्खा) रखनी चाहिए, जिसके साथ संगति नहीं करनी चाहिए, जिसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और जिसकी सेवा नहीं करनी चाहिए; और (3) एक व्यक्ति ऐसा है जिसके साथ संगति करनी चाहिए, जिसका अनुसरण करना चाहिए और जिसकी सेवा करनी चाहिए।

(1) "हे भिक्षुओं, किस प्रकार के व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उससे संगति नहीं करनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए? यहाँ, कोई व्यक्ति अनैतिक, बुरे चरित्र वाला, अपवित्र, संदिग्ध आचरण वाला, गुप्त रूप से कार्य करने वाला, तपस्वी होते हुए भी न होने वाला, ब्रह्मचारी होते हुए भी न होने वाला, भीतर से सड़ा हुआ, भ्रष्ट और पतित है। ऐसे व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उससे संगति नहीं करनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए। इसका कारण क्या है? भले ही कोई ऐसे व्यक्ति का अनुसरण न करे, फिर भी उसके बारे में बुरी अफवाह फैलती है: 'उसके बुरे मित्र, बुरे साथी और बुरे सहपाठी हैं।' जिस प्रकार मल से होकर गुजरने वाला साँप, भले ही वह किसी को काटे नहीं, फिर भी उसे लहूलुहान कर देता है, उसी प्रकार, भले ही कोई ऐसे व्यक्ति का अनुसरण न करे, फिर भी उसके बारे में बुरी अफवाह फैलती है: 'उसके बुरे मित्र, बुरे साथी और बुरे सहपाठी हैं।' अतः ऐसे व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उससे संगति नहीं करनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए।"

(2) और किस प्रकार के व्यक्ति को उदासीनता (अंदर ही अंदर सिमटकर/उपेक्खा) से देखा जाना चाहिए, जिसके साथ संगति न की जाए, जिसका अनुसरण न किया जाए और जिसकी सेवा न की जाए? यहाँ, कुछ व्यक्ति क्रोधी [127] होते हैं और आसानी से चिढ़ जाते हैं। यहाँ तक कि अगर उनकी थोड़ी सी भी आलोचना की जाए तो वे अपना आपा खो देते हैं और चिढ़ जाते हैं, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाते हैं; वे चिड़चिड़ापन, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करते हैं। जैसे एक मवाद भरे घाव को अगर किसी छड़ी या टुकड़े से मारा जाए तो उससे और भी अधिक मवाद निकलता है, वैसे ही... जैसे तिन्दुका वृक्ष की जलती हुई लकड़ी को अगर किसी छड़ी या टुकड़े से मारा जाए तो वह और भी अधिक चटकने और सुलगने लगती है, वैसे ही... जैसे मल का गड्ढा अगर किसी छड़ी या टुकड़े से मारा जाए तो और भी अधिक दुर्गंधयुक्त हो जाता है, वैसे ही कुछ व्यक्ति यहाँ क्रोधी होते हैं और... चिड़चिड़ापन, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करते हैं। ऐसे व्यक्ति को उदासीनता (अंदर ही अंदर सिमटकर/उपेक्खा) से देखा जाना चाहिए, उसके साथ संगति करना, उसका अनुसरण करना और उसकी सेवा करना। किस कारण से? [इस विचार से:] 'वह मेरा अपमान कर सकता है, मुझे गाली दे सकता है और मुझे हानि पहुँचा सकता है।' इसलिए ऐसे व्यक्ति को उदासीनता (अंदर ही अंदर उपेक्षा) से देखना चाहिए, उसके साथ संगति नहीं करनी चाहिए, उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए और उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए।

(3) और किस प्रकार के व्यक्ति की संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए? यहाँ, कोई व्यक्ति गुणी और अच्छे चरित्र का है। ऐसे व्यक्ति की संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए। इसका कारण क्या है? भले ही कोई ऐसे व्यक्ति के उदाहरण का अनुसरण न करे, फिर भी उसके बारे में अच्छी बातें फैलती हैं: 'उसके अच्छे मित्र हैं, अच्छे साथी हैं, अच्छे सहपाठी हैं।' अतः ऐसे व्यक्ति की संगति करनी चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

[एक आयत संलग्न है जो 3:26 में दी गई आयत के समान है,]

---

28 गोबर जैसी वाणी (गुठभानी)

"भिक्षुओं (मठवासियों), संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। [128] वे तीन कौन से हैं? एक जिसकी वाणी गोबर के समान है, एक जिसकी वाणी फूलों के समान है, और एक जिसकी वाणी शहद के समान है।"

(1) "हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कौन है जिसकी वाणी गोबर के समान है? यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने सगे-संबंधियों के समक्ष, अपने संघ या न्यायालय में बुलाया जाए और साक्षी के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाए: 'हे हे जन, जो कुछ तुम जानते हो, बताइए', तो वह न जानते हुए कहता है, 'मैं जानता हूँ', या जानते हुए कहता है, 'मैं नहीं जानता'; न देखते हुए कहता है, 'मैं देखता हूँ', या देखते हुए कहता है, 'मैं नहीं देखता', इस प्रकार वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है। 364 इसे ही गोबर के समान वाणी वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) और वह व्यक्ति कौन है जिसकी वाणी फूलों के समान है? यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों के समक्ष, अपने संघ या न्यायालय में बुलाया जाए और उससे साक्षी के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाए: 'हे महोदय, जो कुछ आप जानते हैं, बताइए,' तो न जानते हुए वह व्यक्ति कहता है, 'मैं नहीं जानता', या जानते हुए कहता है, 'मैं जानता हूँ'; न देखते हुए वह कहता है, 'मैं नहीं देखता', या देखते हुए कहता है, 'मैं देखता हूँ'; वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ नहीं बोलता। यही वह व्यक्ति कहलाता है जिसकी वाणी फूलों के समान है।

(3) और वह व्यक्ति कौन है जिसकी वाणी शहद के समान है? यहाँ, कोई व्यक्ति कठोर वाणी का त्याग करके, कठोर वाणी से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कोमल, कानों को भाने वाले और मनभावन होते हैं, जो हृदय को छूते हैं, शिष्ट होते हैं, अनेकों को प्रिय होते हैं और अनेकों को प्रसन्न करते हैं। यही वह व्यक्ति है जिसकी वाणी शहद के समान है।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

29 अंधा (अंधा)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? अंधा व्यक्ति, एक आँख वाला व्यक्ति और दो आँख वाला व्यक्ति।

(1) "हे भिक्षुओं, अंधा व्यक्ति क्या है? यहाँ, किसी व्यक्ति में उस प्रकार की दृष्टि [129] का अभाव है जिससे वह अप्राप्त धन अर्जित कर सके और अर्जित धन को बढ़ा सके, और उसमें उस प्रकार की दृष्टि का भी अभाव है जिससे वह लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म), निंदनीय और निर्दोष गुणों, निम्न और उच्च गुणों, अंधकार और प्रकाश गुणों और उनके विपरीत गुणों को जान सके। इसे ही अंधा व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) "एक आँख वाला व्यक्ति कौन है? यहाँ, किसी व्यक्ति की आँख ऐसी होती है जिससे वह अप्राप्त धन अर्जित कर सकता है और अर्जित धन को बढ़ा सकता है, लेकिन उसमें वह आँख नहीं होती जिससे वह लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म), निंदनीय और निर्दोष गुणों, निम्न और उच्च गुणों, अंधकारमय और प्रकाशमय गुणों और उनके विपरीत गुणों को जान सके। इसे ही एक आँख वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(3) "दो आँखों वाला व्यक्ति कौन है? यहाँ, किसी व्यक्ति की ऐसी आँख होती है जिससे वह अप्राप्त धन अर्जित कर सकता है और अर्जित धन को बढ़ा सकता है, और उसकी ऐसी आँख भी होती है जिससे वह लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल) गुणों

(धम्म), निंदनीय और निर्दोष गुणों, निम्न और उच्च गुणों, अंधकारमय और प्रकाशमय गुणों और उनके विपरीत गुणों को जान सकता है। इसे दो आँखों वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

उसके पास न तो इतना धन है

और न ही वह पुण्य कर्म करता है;

दृष्टिहीन व्यक्ति

दोनों ही मामलों में अशुभ चाल चलता है।

जिस व्यक्ति को एक आंख वाला बताया गया है,

वह एक पाखंडी है जो धन की लालसा रखता है,

(कभी) धार्मिक रूप से

(और कभी) अधार्मिक रूप से।

चोरी-छिपे और कपटपूर्ण कृत्यों

तथा झूठे वचनों के द्वारा

कामुक सुखों में लिप्त व्यक्ति

धन संचय करने में निपुण होता है।

यहाँ से नरक में जाकर

एक आँख वाला व्यक्ति पीड़ा भोगता है।

दो आँखों वाला व्यक्ति सबसे श्रेष्ठ माना जाता है ।

उसका धन 365 उसके अपने परिश्रम से अर्जित होता है,

और वह भी उचित कर्मों से।

फिर वह

व्यक्ति पूर्ण निश्चय के साथ, एकाग्र मन से दान करता है।

वह एक उत्तम अवस्था में पुनर्जन्म लेता है

, जहाँ जाने के बाद शोक नहीं होता।

अंधे और एक आंख वाले व्यक्ति से दूर रहना चाहिए ,

बल्कि दो आंखों वाले व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिए, क्योंकि वही

सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति है।

---

30 उलटा (अवकुज्जा)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन हैं? एक वह व्यक्ति जिसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) उल्टा होता है, एक वह व्यक्ति जिसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) गोद के समान होता है, और एक वह व्यक्ति जिसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) चौड़ा होता है।

(1) "हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कौन है जिसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) उल्टा है? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धम्म (मार्ग) सुनने के लिए मठ जाता है। भिक्षु उसे सही अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म सिखाते हैं; वे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) प्रकट करते हैं। जब वह अपनी सीट पर बैठा होता है, तो वह आरंभ, मध्य या अंत की उस बात पर ध्यान नहीं देता। अपनी सीट से उठने के बाद भी, वह आरंभ, मध्य या अंत की उस बात पर ध्यान नहीं देता। जैसे, जब कोई घड़ा उल्टा कर दिया जाता है, तो उसमें डाला गया पानी बह जाता है और वहाँ नहीं रहता, उसी प्रकार, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धम्म सुनने के लिए मठ जाता है। ... अपनी सीट से उठने के बाद भी, वह आरंभ की उस बात पर ध्यान नहीं देता।" मध्य में, या अंत में। इसे उलटे पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला व्यक्ति कहा जाता है।

(2) "और वह व्यक्ति कौन है जिसके पास गोद के समान पन्ना (दिव्य ज्ञान) है? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धम्म सुनने के लिए मठ जाता है। भिक्षु उसे सही अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म सिखाते हैं; वे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) प्रकट करते हैं। जब वह अपनी सीट पर बैठा होता है, तो वह आरंभ, मध्य और अंत में उस प्रवचन पर ध्यान देता है। परन्तु अपनी सीट से उठने के बाद, वह आरंभ, मध्य या अंत में उस प्रवचन पर ध्यान नहीं देता। जैसे, जब किसी व्यक्ति के लप्समम के बीज, चावल के दाने, केक और बेर पर विभिन्न खाद्य पदार्थ बिखरे होते हैं - यदि वह उस सीट से उठते समय अपना ध्यान (ध्यान/सती) खो देता है, [131] तो वह उन्हें चारों ओर बिखेर देगा, उसी प्रकार, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धम्म सुनने के लिए मठ जाता है। भिक्षु, परन्तु अपने आसन से उठने के बाद, वह आरंभ में, मध्य में या अंत में उस प्रवचन पर ध्यान नहीं देता। इसे ही गोद के समान ज्ञान (दिव्य ज्ञान) वाला व्यक्ति कहा जाता है।

(3) "विस्तृत ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धर्म का उपदेश सुनने के लिए मठ जाता है। भिक्षु उसे उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धर्म का उपदेश देते हैं; वे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) प्रकट करते हैं। जब वह अपने आसन पर बैठा होता है, तो वह आरंभ, मध्य और अंत में उस उपदेश पर ध्यान देता है। अपने आसन से उठने के बाद, वह फिर से आरंभ, मध्य और अंत में उस उपदेश पर ध्यान देता है। जैसे, जब कोई घड़ा सीधा रखा जाता है, तो उसमें डाला गया पानी वहीं रहता है और बहता नहीं है, उसी प्रकार, कोई व्यक्ति अक्सर भिक्षुओं से धर्म का उपदेश सुनने के लिए मठ जाता है। ... अपने आसन से उठने के बाद, वह फिर से आरंभ, मध्य और अंत में उस उपदेश पर ध्यान देता है। इसे विस्तृत ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति कहा जाता है।" विस्तृत पन्ना (दिव्य ज्ञान)।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।"

जिस व्यक्ति का पन्ना (दिव्य ज्ञान) उलटा होता है,

जो मूर्ख और विवेकहीन होता है, वह

अक्सर भिक्षुओं के पास

धम्म का उपदेश सुनने जाता है।

फिर भी वह व्यक्ति

प्रवचन के

आरंभ, मध्य और अंत में कुछ भी नहीं समझ पाता,

क्योंकि उसमें पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पूर्ण अभाव होता है।

जिस व्यक्ति के पास गोद के समान पन्ना (दिव्य ज्ञान) होता है,

उसे पहले वाले से श्रेष्ठ माना जाता है।

वह भी अक्सर भिक्षुओं के पास

(उनसे धम्म का उपदेश सुनने के लिए) जाता है।

अपनी सीट पर बैठे-बैठे

वह भाषण की

शुरुआत, मध्य और अंत के शब्दों को समझ लेता है।

लेकिन उठने के बाद वह न केवल समझ पाता है,

बल्कि जो कुछ सीखा था उसे भूल भी जाता है।

व्यापक ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वाला व्यक्ति

इन सबमें श्रेष्ठ माना जाता है।

वह भी अक्सर भिक्षुओं के पास

धम्म का उपदेश सुनने के लिए जाता है।

अपनी सीट पर बैठे-बैठे ही

वह भिक्षु द्वारा दिए गए प्रवचन के

आरंभ, मध्य और अंत में प्रयुक्त शब्दों को समझ लेता है।

यह उत्तम इरादों वाला,

एकाग्रचित्त व्यक्ति, जो कुछ सुनता है उसे ग्रहण करता है।

धम्म के अनुसार अभ्यास करके

वह दुखों का अंत कर सकता है।

IV. देवदूत (दिव्य संदेशवाहक)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 ब्रह्मा (सब्रह्मक)

(1) भिक्षुओं, वे परिवार ब्रह्मा के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं। (2) वे परिवार प्रथम गुरुओं के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं। (3) वे परिवार दानयोग्य लोगों के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं।

भिक्षुओं, 'ब्रह्म' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। 'प्रथम शिक्षक' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। 'दान योग्य' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। इसका क्या कारण है? माता-पिता अपने बच्चों के लिए सहायक होते हैं: वे उनका पालन-पोषण करते हैं, उन्हें पोषण देते हैं और उन्हें संसार से परिचित कराते हैं।

माता-पिता को "ब्रह्मा"

और "प्रथम गुरु" कहा जाता है।

वे अपने बच्चों से उपहार प्राप्त करने के योग्य हैं,

क्योंकि वे अपनी संतान के प्रति करुणा रखते हैं।

इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति को उनका आदर करना चाहिए,

उन्हें उचित सम्मान देना चाहिए,

उन्हें भोजन और पेय पदार्थ,

वस्त्र और बिस्तर प्रदान करना चाहिए,

उनकी मालिश और स्नान कराना चाहिए

और उनके पैर धोना चाहिए।

माता-पिता की इस सेवा के कारण ,

बुद्धिमान लोग इस संसार में प्रशंसा पाते हैं

और मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनंदित होते हैं।

---

32 आनंद

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, क्या कोई भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) इस चेतन शरीर के संबंध में उसका 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति न रहे; (2) सभी बाह्य वस्तुओं के संबंध में उसका 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति न रहे; और (3) वह मन की उस मुक्ति में प्रवेश कर उसमें निवास कर सके, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, जिसके माध्यम से उसमें प्रवेश करने और निवास करने वाले के लिए 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रह जाती?" 366 "हाँ, आनंद।" "परन्तु भंते, वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता है?" [133] "यहाँ, आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार सोचता है: 'यह शांतिदायक है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी गतिविधियों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निर्वाण।' इस प्रकार, आनंद, एक भिक्षु समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि इस चेतन शरीर के संबंध में उसका 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति न रहे; सभी बाह्य वस्तुओं के संबंध में उसका 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति न रहे; और वह मन की उस मुक्ति में प्रवेश करके निवास करेगा, जो पाण्ड (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, जिसके माध्यम से उसमें प्रवेश करने और निवास करने वाले के लिए 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रह जाती। और इसी संदर्भ में मैंने परायण में, 'के प्रश्न' में कहा था। पुन्नका': 367

संसार के उतार-चढ़ाव को समझकर, वह संसार की किसी भी बात से विचलित नहीं होता। शांत, निर्मल, चिंतामुक्त, इच्छाहीन, वह पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर चुका है।

---

33 सारिपुत्त 368

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"सारिपुत्त, मैं धम्म (मार्ग) का संक्षिप्त उपदेश दे सकता हूँ; मैं धम्म का विस्तृत उपदेश दे सकता हूँ; मैं धम्म का संक्षिप्त और विस्तृत दोनों उपदेश दे सकता हूँ। जो लोग इसे समझ सकते हैं, वे ही दुर्लभ हैं।"

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)। यही समय है सुगत (भगवान बुद्ध) का। भगवान (बुद्ध) को धम्म का संक्षिप्त उपदेश देना चाहिए; उन्हें धम्म का विस्तृत उपदेश देना चाहिए; उन्हें धम्म का संक्षिप्त और विस्तृत दोनों रूप में उपदेश देना चाहिए। ऐसे लोग होंगे जो धम्म को समझ सकेंगे।"

अत: सारिपुत्त, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: (1) इस चेतन शरीर के संबंध में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रहेगी; (2) सभी बाह्य वस्तुओं के संबंध में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रहेगी; और (3) हम मन की उस मुक्ति में प्रवेश करेंगे और निवास करेंगे, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, जिसके माध्यम से उसमें प्रवेश करने और निवास करने वाले के लिए 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रह जाती। सारिपुत्त, इसी प्रकार तुम्हें अभ्यास करना चाहिए।

"जब, सारिपुत्त, एक भिक्षु [134] में इस चेतन शरीर के संबंध में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रहती; जब उसमें सभी बाह्य वस्तुओं के संबंध में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रहती; और जब वह मन की उस मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, जिसके माध्यम से उसमें प्रवेश करने और निवास करने वाले के लिए 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति नहीं रह जाती, तब उसे तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का नाश करने वाला, बंधन से मुक्त और अहंकार को पूर्णतः तोड़कर दुख का अंत करने वाला भिक्षु कहा जाता है। और इसी संदर्भ में मैंने परायण में, 'उदय के प्रश्न' 360 में कहा था।"

" इंद्रिय संवेदनाओं (सन्ना/संग्या) और निराशा दोनों का त्याग ;

सुस्ती का निवारण,

पश्चाताप का निवारण; 370

" धर्म पर चिंतन के बाद प्राप्त शुद्ध उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) और सती ध्यान (ध्यान/सती) :

यही अंतिम ज्ञान द्वारा मुक्ति है,

अज्ञान का नाश है।" 371

---

34 कारण (निदान)

भिक्षुओं, कर्म की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है; द्वेष कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है; मोह कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है।

(1) हे भिक्षुओं, लोभ से उत्पन्न, लोभ के कारण या लोभ से उत्पन्न कोई भी कर्म, जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, फलित होता है। जहाँ कहीं भी वह कर्म फलित होता है, वहीं व्यक्ति को उसका फल भोगना पड़ता है, चाहे इसी जीवन में, या अगले पुनर्जन्म में, या किसी अन्य अवसर पर। 372

(2) "घृणा से उत्पन्न, घृणा के कारण या घृणा से पैदा हुआ कोई भी कर्म, जहाँ कहीं भी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है, वहीं फलता-फूलता है। जहाँ कहीं भी वह कर्म फलता-फूलता है, वहीं व्यक्ति को उसका फल भोगना पड़ता है, चाहे इसी जीवन में, या अगले पुनर्जन्म में, या किसी अन्य अवसर पर।"

(3) "मोह से उत्पन्न, मोह से पैदा हुआ, मोह के कारण हुआ, मोह से उत्पन्न हुआ कोई भी कर्म जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, फल देता है। जहाँ कहीं भी वह कर्म फल देता है, [135] वहीं व्यक्ति को उसका परिणाम भुगतना पड़ता है, चाहे इसी जीवन में हो, या अगले जन्म में, या किसी बाद के अवसर पर।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि साबुत, अक्षुण्ण, हवा और सूर्य की गर्मी से अप्रभावित, उपजाऊ और अच्छी तरह से संरक्षित बीज अच्छी तरह से तैयार खेत में बो दिए जाएं और उन्हें पर्याप्त वर्षा मिले: इस प्रकार, वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और परिपक्व होंगे। इसी प्रकार, लोभ, घृणा, मोह, मोह से उत्पन्न, मोह के कारण या मोह से उत्पन्न कोई भी कर्म, जहां भी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है, वहीं फलता-फूलता है। जहां भी वह कर्म फलता-फूलता है, वहीं व्यक्ति को उसका फल भोगना पड़ता है, चाहे इसी जीवन में, या अगले जन्म में, या किसी अन्य अवसर पर।

"कर्म की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं।"

भिक्षुओं, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन अन्य कारण हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; घृणा रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; और मोह रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है।

(1) "हे भिक्षुओं, लोभ रहित कर्म से उत्पन्न, लोभ रहित कारण से उत्पन्न, लोभ रहित कर्म से उत्पन्न कोई भी कर्म लोभ के समाप्त होने पर त्याग दिया जाता है; वह जड़ से काट दिया जाता है, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिया जाता है, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके?" 373

(2) "कोई भी कर्म (कर्म/कर्म) जो अहिंसा से उत्पन्न हुआ हो, अहिंसा से प्रेरित हो, अहिंसा से उत्पन्न हुआ हो, घृणा के समाप्त होने पर त्याग दिया जाता है; वह जड़ से काट दिया जाता है, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिया जाता है, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।"

(3) "मोहहीनता से उत्पन्न, मोहहीनता से उत्पन्न, मोहहीनता के कारण, मोहहीनता से उत्पन्न कोई भी कर्म मोहहीनता के समाप्त होने पर त्याग दिया जाता है; यह जड़ से काट दिया जाता है, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिया जाता है ताकि यह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।"

मान लीजिए भिक्षुओं, कुछ बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, [136] हवा और सूर्य की गर्मी से अप्रभावित, उपजाऊ और अच्छी तरह संरक्षित हैं। फिर एक व्यक्ति उन्हें आग में जलाकर राख कर देता है और राख को तेज हवा में बिखेर देता है या नदी की तेज धारा में बहा देता है। इस तरह, वे बीज जड़ से कट जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। इसी प्रकार, कोई भी कर्म जो लोभ रहित* . . घृणा रहित . . . मोह रहित (मोह रहित) से उत्पन्न होता है, मोह रहित (मोह रहित) से उत्पन्न होता है, मोह रहित (मोह रहित) से उत्पन्न होता है, मोह रहित (मोह रहित) से उत्पन्न होता है, मोह रहित (मोह रहित) से त्याग दिया जाता है; यह जड़ से कट जाता है, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता है, ताकि यह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो।

"भिक्षुओं, ये कर्म की उत्पत्ति के तीन कारण हैं।"

लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न अज्ञानी व्यक्ति द्वारा किए गए कर्म ,

चाहे वे थोड़े हों या अधिक,

यहीं अनुभव किए जाने हैं:

इसके लिए कोई अन्य स्थान नहीं है। 374

इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति को

लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न किसी भी कर्म का त्याग करना चाहिए।

ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षु को

सभी बुरे मार्गों का त्याग करना चाहिए। 375

---

35 हत्थका

एक बार भगवान (बुद्ध) अलवी में एक गौशाला में गायों के रास्ते पर बिछे पत्तों के ढेर पर विराजमान थे। तभी अलवी के हत्थक (376) व्यायाम के लिए टहलते हुए भगवान (बुद्ध) को वहाँ बैठे हुए देखा। तब वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, क्या भगवान (बुद्ध) ने अच्छी नींद ली?"

"जी हां, राजकुमार, मुझे अच्छी नींद आई। मैं दुनिया के उन कुछ लोगों में से एक हूं जिन्हें अच्छी नींद आती है।"

"पर, भंते, सर्दियों की रातें ठंडी होती हैं। यह आठ दिनों का अंतराल है, वह समय जब बर्फ गिरती है। 377 मवेशियों के खुरों से रौंदी गई ज़मीन खुरदरी है, पत्तों का फैलाव कम है, [137] पेड़ों पर पत्ते कम हैं, गेरुए वस्त्र ठंडक देते हैं, और ठंडी हवा चलती है। फिर भी भगवान (बुद्ध) कहते हैं: 'हाँ, राजकुमार, मैं अच्छी तरह सोया। मैं संसार में उन लोगों में से हूँ जो अच्छी तरह सोते हैं।"

"तो फिर, राजकुमार, मैं इस मामले में आपसे प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है, राजकुमार? एक गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का घर नुकीली छत वाला, अंदर और बाहर से प्लास्टर किया हुआ, हवा रहित, कुंडी लगे हुए और खिड़कियाँ बंद वाला हो सकता है। वहाँ उसका पलंग कालीनों, कंबलों और आवरणों से ढका हो सकता है, जिस पर हिरण की खाल का उत्कृष्ट आवरण हो, ऊपर चंदवा हो और दोनों सिरों पर लाल तकिए हों। एक तेल का दीपक जल रहा होगा और उसकी चारों पत्नियाँ अत्यंत सुखद तरीके से उसकी सेवा कर रही होंगी। आपका क्या विचार है, क्या वह अच्छी नींद सोएगा या नहीं, या इस बारे में आपका क्या विचार है?

"वह चैन से सोएगा, भंते। वह दुनिया के उन लोगों में से एक होगा जो चैन से सोते हैं।"

(1) "हे राजकुमार, आपका क्या विचार है? क्या उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र में काम (राग) से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक ज्वर उत्पन्न हो सकती है, जो उसे इस प्रकार सताएगी कि वह ठीक से सो नहीं पाएगा?"

"हां, भंते।"

"उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र में कामवासना (राग) से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक ज्वर उत्पन्न हो सकती है, जो उसे इस प्रकार सताएगी कि उसे नींद नहीं आएगी; परन्तु तथागत (बुद्ध) ने ऐसी कामवासना (राग) का त्याग कर उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। इसलिए मुझे अच्छी नींद आई है।"

(2) "राजकुमार, आपका क्या विचार है? क्या उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र में घृणा से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक ज्वर उत्पन्न हो सकती है... (3) ...मोह से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक ज्वर, जो उसे इस प्रकार सताएगी कि वह ठीक से सो नहीं पाएगा?"

"हां, भंते।"

"उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र में मोह (मोह) के कारण शारीरिक और मानसिक बुखार उत्पन्न हो सकता है, जो उसे इतना कष्ट देगा कि वह ठीक से सो नहीं पाएगा; परन्तु तथागत (बुद्ध) ने ऐसे मोह (मोह) का त्याग कर उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, [138] उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। इसलिए मैं अच्छी तरह सोया हूँ।"

निर्वाण प्राप्त कर चुके,

शांत हो चुके, प्राप्ति से रहित और

इंद्रिय सुखों से अछूते ब्राह्मण को सदा अच्छी नींद आती है ।

सभी मोह-मायाओं को त्यागकर,

हृदय की पीड़ा को दूर करके,

शांत व्यक्ति

मन की शांति प्राप्त करके अच्छी नींद सोता है। 378

---

36 संदेशवाहक 379 (देवदूत)

"भिक्षुओं, ये तीन दिव्य दूत हैं। 380 वे तीन कौन हैं?"

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति ने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया है। फलस्वरूप, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ नरक के रक्षक उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर यमराज के सामने ले जाते हैं, 381 [कहते हैं]: 'हे महाराज, इस व्यक्ति ने अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार नहीं किया; इसने तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रति उचित व्यवहार नहीं किया; और इसने परिवार के बड़ों का सम्मान नहीं किया। महाराज, आप इसे उचित दंड दें!'"

(1) "तब राजा यम ने प्रथम दिव्य दूत के बारे में उससे प्रश्न, पूछताछ और जिरह की: 'हे भले मनुष्य, क्या तुमने मनुष्यों के बीच प्रकट होने वाले प्रथम दिव्य दूत को नहीं देखा?' और उसने उत्तर दिया: 'नहीं, भगवान, मैंने उसे नहीं देखा।'

तब यमराज ने उससे कहा, "परन्तु हे जन, क्या तूने मनुष्यों में कभी किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का हो, दुर्बल हो, छत के खंभे की तरह झुका हुआ हो, टेढ़ा-मेढ़ा चलता हो, छड़ी के सहारे लड़खड़ाता हो, बीमार हो, जवानी खो चुका हो, दांत टूटे हों, बाल सफेद और कम हों या गंजे हों, त्वचा झुर्रीदार हो और अंग धब्बेदार हों?" और उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जी, भगवान, मैंने ऐसा देखा है।"

तब यमराज ने उससे कहा: 'हे भले मनुष्य, क्या तुम्हें, एक बुद्धिमान और परिपक्व व्यक्ति होने के नाते, यह बात नहीं सूझी: "मैं भी बुढ़ापे के अधीन हूँ, मैं बुढ़ापे से मुक्त नहीं हूँ। अब मुझे अपने शरीर, वाणी और मन से भलाई करनी चाहिए"?' [139] - 'नहीं, भगवान, मैं नहीं कर सका। मैं आलसी था।'

तब यमराज कहते हैं, "हे हे जन, आलस्य के कारण तूने अपने शरीर, वाणी और मन से कोई अच्छा कर्म नहीं किया। निश्चय ही, लोग तेरे आलस्य के अनुरूप ही तेरे साथ व्यवहार करेंगे। तेरा वह बुरा कर्म न तो तेरे माता-पिता ने किया है, न तेरे भाई-बहन ने, न तेरे मित्रों और साथियों ने, न तेरे रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों ने, न देवताओं ने, न तपस्वियों और ब्राह्मणों ने। बल्कि तूने ही वह बुरा कर्म किया है, और तुझे स्वयं उसका फल भोगना होगा।"

(2) "जब यमराज ने प्रथम दैवीय दूत के बारे में उससे पूछताछ, विचार-विमर्श और जिरह की, तो उसने फिर से द्वितीय दैवीय दूत के बारे में उससे पूछताछ, विचार-विमर्श और जिरह की: 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच प्रकट हुए द्वितीय दैवीय दूत को नहीं देखा?' और उसने उत्तर दिया: 'नहीं, भगवान, मैंने उसे नहीं देखा।'"

तब यमराज ने उससे कहा: 'परन्तु, हे भले मनुष्य, क्या तूने कभी मनुष्यों में किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा जो बीमार, पीड़ित, गंभीर रूप से अस्वस्थ हो, अपने ही मूत्र और मल में पड़ा हो, जिसे कुछ लोग उठा रहे हों और कुछ लोग नीचे रख रहे हों?' और उसने उत्तर दिया: 'जी, भगवान, मैंने यह देखा है।'

तब यमराज ने उससे कहा, "हे स्वामी, क्या तुम्हें, एक बुद्धिमान और परिपक्व व्यक्ति होने के नाते, यह बात नहीं सूझी कि "मैं भी रोगग्रस्त हूँ, मैं रोग से मुक्त नहीं हूँ। अब मुझे अपने शरीर, वाणी और मन से भलाई करनी चाहिए?" — "नहीं, भगवान, मैं ऐसा नहीं कर सका। मैं आलसी था।"

तब यमराज कहते हैं: [140] 'हे हे जन, आलस्य के कारण तूने अपने शरीर, वाणी और मन से कोई अच्छा कर्म नहीं किया। निश्चय ही, लोग तेरे आलस्य के अनुरूप ही तेरे साथ व्यवहार करेंगे। तेरा वह बुरा कर्म न तो तेरे माता-पिता ने किया, न तेरे भाई-बहन ने, न तेरे मित्रों और साथियों ने, न तेरे रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों ने, न देवताओं ने, न तपस्वियों और ब्राह्मणों ने। बल्कि तूने ही वह बुरा कर्म किया है, और तुझे स्वयं उसका फल भोगना होगा।' ...

(3) "जब यमराज ने दूसरे दिव्य दूत के बारे में उससे पूछताछ, विचार-विमर्श और जिरह की, तो उन्होंने फिर से तीसरे दिव्य दूत के बारे में उससे पूछताछ, विचार-विमर्श और जिरह की: 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच प्रकट हुए तीसरे दिव्य दूत को नहीं देखा?' और उसने उत्तर दिया: 'नहीं, भगवान, मैंने उसे नहीं देखा।'"

तब यमराज ने उससे कहा: 'परन्तु, हे भले मनुष्य, क्या तुमने कभी मनुष्यों में किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो एक, दो या तीन दिन पहले मरा हो, और जिसका शव फूला हुआ, पीला और सड़ रहा हो?' और उसने उत्तर दिया: 'जी, भगवान, मैंने ऐसा देखा है।'

तब यमराज ने उससे कहा, "हे स्वामी, क्या तुम्हें, एक बुद्धिमान और परिपक्व व्यक्ति होने के नाते, यह बात नहीं सूझी कि मैं भी मृत्यु के अधीन हूँ, मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ। तो क्या मुझे अपने शरीर, वाणी और मन से अच्छा कार्य करना चाहिए?" "नहीं, भगवान, मैं ऐसा नहीं कर सका। मैं आलसी था।"

तब यमराज कहते हैं, "हे हे जन, आलस्य के कारण तूने अपने शरीर, वाणी और मन से कोई अच्छा कर्म नहीं किया। निश्चय ही, लोग तेरे आलस्य के अनुरूप ही तेरे साथ व्यवहार करेंगे। तेरा वह बुरा कर्म न तो तेरे माता-पिता ने किया है, न तेरे भाई-बहन ने, न तेरे मित्रों और साथियों ने, न तेरे रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों ने, न देवताओं ने, न तपस्वियों और ब्राह्मणों ने। बल्कि तूने ही वह बुरा कर्म किया है, और तुझे स्वयं उसका फल भोगना होगा।"

"जब, भिक्षुओं, राजा यम ने तीसरे दिव्य दूत के बारे में उससे पूछताछ, विचार-विमर्श और जिरह की, तो वह चुप हो गया। [141] तब नरक के रक्षकों ने उसे पंच प्रकार की यातनाएँ दीं। उन्होंने एक हाथ में लाल गर्म लोहे का खंभा गाड़ दिया और दूसरे हाथ में भी; उन्होंने एक पैर में लाल गर्म लोहे का खंभा गाड़ दिया और दूसरे पैर में भी; उन्होंने उसकी छाती के बीचोंबीच लाल गर्म लोहे का खंभा गाड़ दिया। वहाँ उसे पीड़ादायक, कष्टदायक और चुभने वाली संवेदनाएँ (वेदना) महसूस हुईं, 382 फिर भी जब तक उसका बुरा कर्म समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं हुई।"

इसके बाद नरक के रक्षक उसे नीचे गिरा देते हैं और कुल्हाड़ियों से उसकी वेदना भेदते हैं। वहाँ उसे असहनीय पीड़ा, क्षोभ और चुभन का अनुभव होता है, फिर भी जब तक उसका बुरा कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं। इसके बाद नरक के रक्षक उसे उल्टा लटका देते हैं और कुल्हाड़ियों से उसकी वेदना भेदते हैं। इसके बाद नरक के रक्षक उसे रथ में जोतकर जलती, धधकती और चमकती हुई जमीन पर आगे-पीछे दौड़ाते हैं। इसके बाद नरक के रक्षक उसे जलते, धधकते और चमकते हुए कोयलों के एक बड़े ढेर पर ऊपर-नीचे चढ़ाते हैं। इसके बाद नरक के रक्षक उसे उल्टा लटकाकर जलते, धधकते और चमकते हुए लाल-गर्म तांबे के कड़ाहे में डाल देते हैं। वहाँ वह झाग के भंवर में पकता है। और जैसे-जैसे वह झाग के भंवर में पकता है, उसे कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी इधर-उधर

धकेला जाता है। वहाँ उसे असहनीय पीड़ा, क्षोभ और चुभन का अनुभव होता है। उसे वेदनाएं तो होती हैं, लेकिन जब तक उसका बुरा कर्म समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे महानर में फेंक देते हैं। अब, भिक्षुओं, उस महानर के बारे में:

"इसके चार कोने और चार दरवाजे हैं

और इसे अलग-अलग हिस्सों में बांटा गया है;

यह लोहे की दीवारों से घिरा हुआ है

और लोहे की छत से बंद है।"

"इसका फर्श भी लोहे का बना है

और इसे तब तक गर्म किया जाता है जब तक कि यह आग की लपटों से चमकने न लगे।

इसका चूल्हा पूरे सौ योजन का है

जिसे यह सर्वव्यापी रूप से कवर करता है।"

"एक बार, हे भिक्षुओं, अतीत में राजा यम ने सोचा: 'संसार में जो लोग बुरे कर्म करते हैं, उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। काश, मैं मनुष्य बन जाऊँ! काश, संसार में तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का जन्म हो! काश, मैं उस भगवान (बुद्ध) की सेवा कर सकूँ! काश, भगवान (बुद्ध) मुझे धर्म का उपदेश दें, और मैं उनके धर्म को समझ सकूँ!'"

"भिक्षुओं (सन्यासियों), मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण से सुनी हुई बात को दोहरा नहीं रहा हूँ, बल्कि मैं उस विषय पर बोल रहा हूँ जिसे मैंने स्वयं जाना, देखा और समझा है।"

ईश्वरीय दूतों द्वारा चेतावनी दिए जाने के बावजूद,

जो लोग

लंबे समय तक आलसी बने रहते हैं, वे दुःख में डूबे रहते हैं

और निम्न लोक में चले जाते हैं।

लेकिन यहाँ वे भले लोग हैं जो

दिव्य दूतों द्वारा चेतावनी दिए जाने पर भी, धर्म के प्रति

कभी आलसी नहीं होते ; जिन्होंने आसक्ति को जन्म-मृत्यु का कारण मानकर, अनासक्ति के द्वारा जन्म-मृत्यु के अंत से मुक्ति प्राप्त कर ली है: वे सुखी लोग हैं जिन्होंने सुरक्षा प्राप्त कर ली है; 383 उन्होंने इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लिया है। सभी शत्रुता और संकटों पर विजय प्राप्त करके, उन्होंने सभी दुखों को पार कर लिया है।

---

37 (7) राजा (1) (चतुम्हाराजा)

भिक्षुओं (मठवासियों), (1) पखवाड़े की आठवीं तिथि को, चारों महान राजाओं के मंत्री और सभा सदस्य इस संसार में विचरण करते हैं, 384 [यह सोचते हुए]: 'हम आशा करते हैं कि बहुत से लोग अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करते हों, तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रति उचित व्यवहार करते हों, परिवार के बड़ों का आदर करते हों, उपोसथ का पालन करते हों, अतिरिक्त व्रत के दिनों का पालन करते हों और पुण्य कर्म करते हों।' 385 (2) पखवाड़े की चौदहवीं तिथि को, चारों महान राजाओं के पुत्र इस संसार में विचरण करते हैं, [यह सोचते हुए]: 'हम आशा करते हैं कि बहुत से लोग अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करते हों... [143] ...और पुण्य कर्म करते हों।' (3) पंद्रहवीं तिथि को, उपोसथ के दिन, चारों महान राजा स्वयं इस संसार में विचरण करते हैं, [यह सोचते हुए]: 'हम आशा करते हैं कि बहुत से लोग अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करते हों... और पुण्य कर्म करते हों।

"हे भिक्षुओं, यदि माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करने वाले और पुण्य कर्म करने वाले लोगों की संख्या कम हो, तो जब चारों महान राजा सुधम्म सभा भवन में मिलते हैं और साथ बैठे होते हैं, तो वे तावतिंसा देवताओं को यह सूचना देते हैं: 'हे महोदय, माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करने वाले और पुण्य कर्म करने वाले लोगों की संख्या कम हो।' तब, इस कारण तावतिंसा देवता अप्रसन्न हो जाते हैं और कहते हैं: 'हाय, देवताओं की संख्या घटेगी और असुरों की संख्या बढ़ेगी!'"

लेकिन यदि बहुत से लोग अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करते हैं और पुण्य कर्म करते हैं, तो चारों महान राजा सुधम्म सभा भवन में उपस्थित होकर तावतिंसा देवताओं को यह सूचना देते हैं: 'हे महोदय, बहुत से लोग अपने माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार करते हैं, तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रति उचित आचरण करते हैं, परिवार के बड़ों का आदर करते हैं, उपोसथ का पालन करते हैं, अतिरिक्त व्रतों का पालन करते हैं और पुण्य कर्म करते हैं। तब तावतिंसा देवता प्रसन्न होकर कहते हैं: 'सचमुच, स्वर्गिक मंडली फलेगी-फूलेगी और असुरों की मंडली का पतन होगा!'

भिक्षुओं (सन्यासियों) ने एक बार अतीत में, जब देवों (देवदूतों/देवताओं) के शासक सक्का (इंद्र) तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) का मार्गदर्शन कर रहे थे, तब उन्होंने यह श्लोक पढ़ा: 386

"जो व्यक्ति मेरे समान बनना चाहता है, उसे चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को तथा विशेष पखवाड़ों के दौरान आठों कारकों में पूर्ण

उपोसथा का पालन करना चाहिए ।" 387

"हे भिक्षुओं, इस श्लोक का पाठ देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) ने गलत तरीके से किया था, सही तरीके से नहीं। इसका उच्चारण गलत था, सही नहीं। इसका कारण क्या है? क्योंकि देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) कामवासना (राग), द्वेष (दोष) और मोह (मोह) से रहित नहीं हैं। परन्तु उस भिक्षु के मामले में जो अरहंत है—जिसके सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, जिसने जन्म के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, जो अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो गया है—उसके लिए यह कहना उचित है:

"'वह व्यक्ति जो मेरे जैसा हो... और विशेष पखवाड़े के दौरान।'"

"इसका क्या कारण है? क्योंकि वह भिक्षु कामवासना (राग), घृणा और मोह (मोह) से रहित है।"

---

38 (8) राजा (2)

भिक्षुओं ने एक बार अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) तावतिंसा देवों का मार्गदर्शन कर रहे थे, तब उन्होंने यह श्लोक पढ़ा था: 388

"'वह व्यक्ति जो मेरे जैसा हो... और विशेष पखवाड़े के दौरान।'"

"हे भिक्षुओं, इस श्लोक का पाठ देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) ने गलत तरीके से किया था, सही तरीके से नहीं। इसका उच्चारण गलत था, सही नहीं। इसका कारण क्या है? क्योंकि देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं हैं; वे दुख से मुक्त नहीं हैं, मैं कहता हूँ। परन्तु उस भिक्षु के मामले में जो अरहंत है—जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं...जो अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो गया है—उसके लिए यह कहना उचित है:

"'वह व्यक्ति जो मेरे जैसा होगा ... और विशेष पखवाड़े के दौरान।' [145]

"इसका क्या कारण है? क्योंकि वह भिक्षु पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त है, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त है; वह दुख से मुक्त है, मैं कहता हूँ।"

---

39 नाजुक (सुखुमाला)

भिक्षुओं, मेरे पिता के निवास पर मेरा अत्यंत कोमल, बल्कि अत्यंत कोमल पालन-पोषण हुआ। मेरे आनंद के लिए कमल के तालाब बनाए गए थे: उनमें से एक में नीले कमल खिलते थे, दूसरे में लाल कमल और तीसरे में सफेद कमल। 389 मैं केवल काशी से प्राप्त चंदन का ही प्रयोग करता था और मेरा सिर का वस्त्र, जैकेट, निचला वस्त्र और ऊपरी वस्त्र सभी काशी के कपड़े से बने थे। 390 दिन-रात मेरे ऊपर एक सफेद चंदवा रहता था ताकि ठंड और गर्मी, धूल, घास और ओस मुझ पर न जमे।

मेरे पास तीन महल थे: एक सर्दियों के लिए, एक गर्मियों के लिए और एक बरसात के मौसम के लिए। 393 मैं बरसात के चार महीने बरसात के महल में बिताता था, जहाँ संगीतकार मेरा मनोरंजन करते थे, जिनमें से कोई भी पुरुष नहीं था, 392 और मैं महल से बाहर नहीं निकलता था। जबकि दूसरे लोगों के घरों में दासों, श्रमिकों और नौकरों को भोजन में खट्टी दलिया के साथ टूटा हुआ चावल दिया जाता था, मेरे पिता के निवास में उन्हें उत्तम पहाड़ी चावल, मांस और उबले हुए चावल दिए जाते थे।

(1) "ऐसी शान-शौकत और नाजुक जीवन के बीच, मेरे मन में यह विचार आया: 'एक अनपढ़ सांसारिक व्यक्ति, यद्यपि स्वयं वृद्धावस्था के अधीन है, पर वृद्धावस्था से मुक्त नहीं है, जब वह किसी दूसरे वृद्ध व्यक्ति को अपनी स्थिति को अनदेखा करते हुए देखता है तो उसे घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव होता है। 393 अब मैं भी वृद्धावस्था के अधीन हूँ और वृद्धावस्था से मुक्त नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में, यदि मैं किसी दूसरे वृद्ध व्यक्ति को देखकर घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करूँ, तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा।' जब मैंने इस प्रकार विचार किया, तो मेरी यौवन की मोहताज पूरी तरह से त्याग गई।"

(2) "[फिर, मेरे मन में यह विचार आया:] 'एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति, यद्यपि स्वयं रोगग्रस्त होता है, रोग से मुक्त नहीं, किसी अन्य बीमार व्यक्ति को देखकर घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करता है, अपनी स्थिति को अनदेखा करते हुए। अब मैं भी रोगग्रस्त हूँ और रोग से मुक्त नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में, यदि मैं किसी अन्य बीमार व्यक्ति को देखकर घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करूँ, तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा।' जब मैंने इस प्रकार चिंतन किया, तो स्वास्थ्य के प्रति मेरा मोह पूरी तरह से समाप्त हो गया।"

(3) "[फिर से मेरे मन में यह विचार आया:] 'एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति, यद्यपि स्वयं मृत्यु के अधीन है, मृत्यु से मुक्त नहीं, किसी अन्य मृत व्यक्ति को देखकर घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करता है, अपनी स्थिति को अनदेखा करते हुए। अब मैं भी मृत्यु के अधीन हूँ और मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में, यदि मैं किसी अन्य मृत व्यक्ति को देखकर घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करूँ, तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा।' जब मैंने इस प्रकार चिंतन किया, तो जीवन के प्रति मेरा मोह पूरी तरह से समाप्त हो गया।"

भिक्षुओं, तीन प्रकार के नशे होते हैं। 394 वे तीन क्या हैं? यौवन का नशा, स्वास्थ्य का नशा और जीवन का नशा। (1) एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति, यौवन के नशे में चूर होकर, शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के समय, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। (2) एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति, स्वास्थ्य के नशे में चूर होकर, शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के समय, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। (3) एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति, जीवन के नशे में चूर होकर, शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के समय, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"जवानी के नशे में चूर होकर भिक्षु प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है; या स्वास्थ्य के नशे में चूर होकर वह प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है; या जीवन के नशे में चूर होकर वह प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

"संसार के वे लोग जो बीमारी,

बुढ़ापे और मृत्यु के अधीन हैं, अपनी प्रकृति के अनुसार

जीवन यापन करने वाले अन्य लोगों से घृणा करते हैं। 395"

"यदि मैं ऐसे स्वभाव वाले प्राणियों से घृणा करने लगूँ ,

तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा

क्योंकि मेरा स्वभाव भी वैसा ही है।"

"इस प्रकार निवास करते हुए, मैंने

बिना किसी प्राप्ति के अवस्था को जान लिया था, और त्याग में सुरक्षा पाकर

मैंने सभी व्यसनों -

स्वास्थ्य,

यौवन और जीवन के व्यसन - पर विजय प्राप्त कर ली थी।" 396

"तब मुझमें उत्साह उत्पन्न हुआ

क्योंकि मैंने निर्वाण को स्पष्ट रूप से देख लिया था।

अब मैं

इंद्रिय सुखों में लिप्त होने में असमर्थ हूँ।

ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) पर भरोसा करते हुए,

मैं कभी पीछे नहीं हटूँगा।" 397

---

40 अधिकारी (अधिपतेय्या)

भिक्षुओं, ये तीन प्राधिकार हैं। कौन से तीन? स्वयं को प्राधिकार मानते हुए, संसार को प्राधिकार मानते हुए और धम्म को प्राधिकार मानते हुए। 398

(1) "और हे भिक्षुओं, स्वयं को अपना अधिकार मानने का क्या अधिकार है? यहाँ, वन में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु (सन्यासी) इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में वस्त्र, भिक्षा, आवास, या यह या वह बनने के लिए नहीं गया, 399 बल्कि [इस विचार के साथ]: "मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा में। मैं दुःख में डूबा हुआ हूँ, दुःख से पीड़ित हूँ। शायद दुःख के इस पूरे समूह का अंत देखा जा सकता है।" [148] गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने वाले के रूप में, मेरे लिए उन इंद्रिय सुखों की खोज करना उचित नहीं होगा जो मैंने त्याग दिए हैं, या उनसे भी बदतर हों।' फिर वह इस प्रकार चिंतन करता है: 'मेरे भीतर ऊर्जा निरंतर जागृत रहेगी; ध्यान (सती) बिना किसी भ्रम के स्थापित होगा; मेरा शरीर शांत और अशांत रहेगा; मेरा मन एकाग्रम और एकाग्रता से भरा रहेगा।' स्वयं को अपना अधिकार मानकर, वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग करता है और लाभकारी (कुशल) का विकास करता है; वह निंदनीय का त्याग करता है और निष्कलंक का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे ही स्वयं को अपना अधिकार मानना कहते हैं।

(2) "हे भिक्षुओं, संसार को अपना अधिकार मानकर क्या है? यहाँ, वन में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में वस्त्र के लिए नहीं गया... बल्कि [इस विचार के साथ]: "मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु में लीन हूँ..." शायद इस पूरे दुख के अंत का कोई रास्ता दिखाई दे। गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बनने के कारण, मेरे मन में कामुक विचार, दुर्भावना के विचार या हानि पहुँचाने के विचार आ सकते हैं। परन्तु संसार विशाल है। संसार के इस विशाल संसार में ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जिनके पास दिव्य शक्ति और दृष्टि है और जो दूसरों के मन को जानते हैं। वे दूर से ही चीजों को देख लेते हैं, परन्तु पास होने पर भी वे स्वयं दिखाई नहीं देते; वे अपने मन से दूसरों के मन को जान लेते हैं। वे मुझे इस प्रकार जानते होंगे: 'इस कुल के व्यक्ति को देखो: यद्यपि यह आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बना है, परन्तु यह अकुशल अवस्थाओं से दूषित है।' ऐसे देवता भी हैं जिनके पास दिव्य शक्ति और दृष्टि है और जो दूसरों के मन को जानते हैं। वे दूर से भी देख लेते हैं, परन्तु पास होने पर भी वे स्वयं दिखाई नहीं देते; वे भी अपने मन से दूसरों के मन को जान लेते हैं। वे भी मुझे इस प्रकार जानते होंगे: "इस कुलवासी को देखो: यद्यपि इसने आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाया है, फिर भी यह अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं से दूषित है।" फिर वे इस प्रकार चिंतन करते हैं: 'मुझमें ऊर्जा निरंतर जागृत रहेगी; ध्यान (सती) बिना किसी भ्रम के स्थापित होगा; मेरा शरीर शांत रहेगा; मेरा मन समाधि में लीन और एकाग्र (एकगग् संस्कृत: एकग्र) होगा।' संसार को अपना अधिकार मानकर, वे अकुशल (हानिकारक) का त्याग कर कुशल (सुखदायक) का विकास करते हैं; वे निंदनीय (हानिकारक) का त्याग कर निर्दोष (हानिकारक) का विकास करते हैं; वे स्वयं को पवित्रता में बनाए रखते हैं। इसे ही संसार को अपना अधिकार मानना कहते हैं।

(3) "हे भिक्षुओं, धम्म को अपना अधिकार क्यों मानना चाहिए? यहाँ, वन में, वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में वस्त्र के लिए नहीं गया... बल्कि इस विचार से गया: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में लीन हूँ... शायद इस पूरे दुख के अंत का कोई मार्ग दिखाई दे।' धम्म का भगवान (बुद्ध) द्वारा भली-भांति वर्णन किया गया है, जो प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। मेरे कुछ साथी भिक्षु हैं जो इसे जानते और देखते हैं। इस भली-भांति वर्णित धम्म और अनुशासन में गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने वाले व्यक्ति के लिए आलसी और सुस्त होना अनुचित होगा।" फिर वे इस प्रकार चिंतन करते हैं: 'मेरे भीतर ऊर्जा निरंतर जागृत रहेगी; ध्यान (सती) बिना किसी भ्रम के स्थापित होगा; मेरा शरीर शांत और अशांत रहेगा; मेरा मन एकाग्रम और एकाग्रता से भरा रहेगा।' धम्म को अपना आधार मानकर वे हानिकारक (अकुशल) का त्याग करते हैं और लाभकारी (कुशल) का विकास करते हैं; वे निंदनीय का त्याग करते हैं और निर्दोष का विकास करते हैं; वे स्वयं को पवित्र बनाए रखते हैं। इसे ही धम्म को अपना आधार मानना कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये तीन ही प्रमुख अधिकारी हैं।"

जो व्यक्ति बुरा कर्म करता है, उसके लिए

संसार में कोई स्थान "छिपा हुआ" नहीं है।

हे मनुष्य, तुम्हारा अंतर्मन जानता है

कि वह सत्य है या असत्य। 400

वास्तव में, महोदय, आप साक्षी स्वरूप

अपने अच्छे स्वरूप को तुच्छ समझते हैं; आप अपने भीतर विद्यमान

दुष्ट स्वरूप को छुपाते हैं ।401 [150]

देव और तथागत

संसार में अधर्मी लोगों को अन्यायपूर्ण कार्य करते हुए देखते हैं।

इसलिए

स्वयं को सर्वोपरि मानते हुए सचेत रहना चाहिए;

संसार को सर्वोपरि मानते हुए सजग और ध्यानमग्न रहना चाहिए;

और धम्म को

सर्वोपरि मानते हुए धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए।

सच्चे परिश्रम से साधक कभी पतित नहीं होता।

मारा को पराजित करके

और अंत के निर्माता पर विजय प्राप्त करके,

साधक पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है।

ऐसा ऋषि, ज्ञानी, संसार का ज्ञाता,

किसी भी चीज से स्वयं को नहीं जोड़ता। 402

वी. लघु अध्याय (कुलवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

41 वर्तमान (सम्मुखीभव)

भिक्षुओं, जब तीन बातें मौजूद हों, तो आस्थावान कुलवासी बहुत पुण्य अर्जित करता है। वे तीन बातें क्या हैं? (1) जब आस्था मौजूद हो, तो आस्थावान कुलवासी बहुत पुण्य अर्जित करता है। (2) जब दान करने योग्य वस्तु मौजूद हो, तो आस्थावान कुलवासी बहुत पुण्य अर्जित करता है। (3) जब दान के योग्य व्यक्ति मौजूद हों, तो आस्थावान कुलवासी बहुत पुण्य अर्जित करता है। जब ये तीनों बातें मौजूद हों, तो आस्थावान कुलवासी बहुत पुण्य अर्जित करता है।

---

42 मामले (तिथाना)

भिक्षुओं, तीन स्थितियों में आस्था और विश्वास की अवधारणा समझी जा सकती है। वे तीन स्थितियाँ क्या हैं? जब व्यक्ति सदाचारी लोगों के दर्शन की इच्छा रखता है; जब व्यक्ति उत्तम धम्म सुनने की इच्छा रखता है; और जब व्यक्ति कंजूसी के दाग से मुक्त, उदार, त्याग में प्रसन्न, दान-पुण्य में समर्पित, दान देने और साझा करने में प्रसन्न मन से घर में निवास करता है। इन तीनों स्थितियों में ही व्यक्ति में आस्था और विश्वास की अवधारणा समझी जा सकती है।

जो व्यक्ति सद्गुणी लोगों को देखना चाहता है,

जो अच्छे धर्म को सुनना चाहता है,

जिसने कंजूसी के दाग को दूर कर दिया है,

उसे आस्थावान व्यक्ति कहा जाता है। [151]

---

43 लाभ (अत्थवास)

भिक्षुओं, जब तीन लाभ दिखाई देते हैं, तो दूसरों को धम्म (मार्ग) का उपदेश देना ही पर्याप्त है। वे तीन लाभ क्या हैं? (1) धम्म का उपदेश देने वाला व्यक्ति अर्थ और धम्म का अनुभव करता है। (2) धम्म का श्रोता भी अर्थ और धम्म का अनुभव करता है। (3) धम्म का उपदेश देने वाला और सुनने वाला दोनों ही अर्थ और धम्म का अनुभव करते हैं। इन तीन लाभों को देखते हुए, दूसरों को धम्म का उपदेश देना ही पर्याप्त है।

---

44 सहज प्रवाह (कथापवत्ती)

भिक्षुओं, तीन स्थितियों में वार्ता सुचारू रूप से प्रवाहित होती है। वे तीन स्थितियाँ क्या हैं? (1) जब धम्म का उपदेशक अर्थ और धम्म का अनुभव करता है। (2) जब धम्म का श्रोता अर्थ और धम्म का अनुभव करता है। (3) जब धम्म का उपदेशक और श्रोता दोनों अर्थ और धम्म का अनुभव करते हैं। इन तीनों स्थितियों में वार्ता सुचारू रूप से प्रवाहित होती है।

---

45 बुद्धिमान (पंडित)

भिक्षुओं, बुद्धिमानों और भले लोगों द्वारा ये तीन बातें बताई गई हैं। वे तीन बातें क्या हैं? (1) दान देना बुद्धिमानों और भले लोगों द्वारा बताया गया है। (2) भिक्षु दीक्षा लेना बुद्धिमानों और भले लोगों द्वारा बताया गया है। (3) माता-पिता की सेवा करना बुद्धिमानों और भले लोगों द्वारा बताया गया है। ये तीनों बातें बुद्धिमानों और भले लोगों द्वारा बताई गई हैं।

अच्छे लोग दान,

अहिंसा, आत्मसंयम, आत्म-नियंत्रण,

माता-पिता की सेवा

और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के शांतिपूर्ण अनुयायियों की सेवा का उपदेश देते हैं। 404

ये वे अच्छे कर्म हैं

जिनका अनुसरण बुद्धिमान व्यक्ति को करना चाहिए।

दूरदृष्टि वाला श्रेष्ठ व्यक्ति

शुभ लोक में जाता है।

---

46 गुणी (सिलवंता)

"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब सद्गुणी संन्यासी किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर निवास करते हैं, तो वहाँ के लोग तीन तरीकों से बहुत पुण्य कमाते हैं। वे तीन तरीके क्या हैं? [152] शरीर, वाणी और मन से। जब सद्गुणी संन्यासी किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर निवास करते हैं, तो वहाँ के लोग इन तीन तरीकों से बहुत पुण्य कमाते हैं।"

---

47 संस्कार (भावना) लक्षण (संखतलखना)

भिक्षुओं, संस्कार (भावना/परिस्थितिजन्य घटना, अर्थात् इंद्रिय सुख) को परिभाषित करने वाले ये तीन लक्षण हैं। 405 वे तीन क्या हैं? एक उद्भव देखा जाता है, एक लुप्त होना देखा जाता है, और उसके बने रहने के दौरान उसका परिवर्तन देखा जाता है। ये तीन लक्षण संस्कार (भावना/परिस्थितिजन्य घटना) को परिभाषित करते हैं।

---

48 असंस्कार (असंस्कार) लक्षण (असन्खतलक्खाना)

असंस्कार (भावहीन/अबद्ध/सदाहस्थ घटना) के लक्षण (असंखटलक्खना) "भिक्षुओं, असंस्कार (भावहीन/अबद्ध) को परिभाषित करने वाले ये तीन लक्षण हैं। 406 वे तीन क्या हैं? न तो इसका उद्भव होता है, न ही इसका लुप्त होना दिखाई देता है, और इसके बने रहने के दौरान इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। ये तीन लक्षण असंस्कार (भावहीन/अबद्ध) को परिभाषित करते हैं।"

नोट: गैर-संस्कार से तात्पर्य समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की दिव्य अवस्था से प्रतीत होता है, अर्थात् वह अतिचेतना जो उत्पन्न नहीं होती, बल्कि वह हमेशा विद्यमान रहती है, उसे केवल खोजे जाने की आवश्यकता होती है।

---

49 पर्वतों का राजा (पब्बटा-राजा)

"भिक्षुओं (साधुओं) के अनुसार, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर आधारित विशाल साल के वृक्ष तीन प्रकार से उगते हैं। वे तीन प्रकार क्या हैं? (1) वे शाखाओं, पत्तियों और पत्तों के रूप में उगते हैं; (2) वे छाल और टहनियों के रूप में उगते हैं; और (3) वे कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी के रूप में उगते हैं। हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर आधारित विशाल साल के वृक्ष इन तीन प्रकार से उगते हैं।"

इसी प्रकार, जब परिवार का मुखिया आस्थावान होता है, तो उस पर निर्भर परिवार के लोग तीन प्रकार से उन्नति करते हैं। वे तीन प्रकार क्या हैं? (1) वे आस्था में उन्नति करते हैं; (2) वे सदाचारी व्यवहार में उन्नति करते हैं; और (3) वे (दिव्य) ज्ञान में उन्नति करते हैं। जब परिवार का मुखिया आस्थावान होता है, तो उस पर निर्भर परिवार के लोग इन तीनों प्रकार से उन्नति करते हैं।

जैसे किसी विशाल वन क्षेत्र में

चट्टानी पर्वत पर निर्भर होकर उगने वाले पेड़ महान "वन स्वामी" बन सकते हैं, वैसे ही, जब यहाँ किसी परिवार के मुखिया में आस्था और सद्गुण होते हैं, तो उसकी पत्नी, बच्चे और रिश्तेदार सभी उस पर निर्भर हो जाते हैं; वैसे ही उसके मित्र, उसका पारिवारिक दायरा और उस पर निर्भर लोग भी। [153]

जो लोग नैतिक रूप से सजग होते हैं, वे

उस गुणी व्यक्ति के अच्छे आचरण,

उदारता और अच्छे कर्मों को देखकर

उसका अनुकरण करते हैं।

धर्म के अनुसार,

अच्छे गंतव्य की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चलकर,

सुख की इच्छा रखने वाले लोग

देवलोक में आनंदित होते हैं।

---

50 अभ्यास उत्साह (अटप्पा-कारनिया)

भिक्षुओं, तीन स्थितियों में तप का अभ्यास करना चाहिए। वे तीन स्थितियाँ क्या हैं? (1) अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) के उत्पन्न न होने के लिए तप का अभ्यास करना चाहिए। (2) अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के उत्पन्न होने के लिए तप का अभ्यास करना चाहिए। (3) उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने के लिए तप का अभ्यास करना चाहिए जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायी, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली हों। इन तीनों स्थितियों में तप का अभ्यास करना चाहिए।

जब कोई भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) के अजन्मे होने के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के उत्पन्न होने के लिए, और उत्पन्न हुई शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने के लिए उत्साह का अभ्यास करता है जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक, अप्रिय और जीवन शक्ति को नष्ट करने वाली होती हैं, तो उसे दुख का पूर्ण अंत करने के लिए उत्साही, सतर्क और सती भिक्षु कहा जाता है।

---

51 एक मास्टर चोर (महा-कोरा सं. चोर)

"भिक्षुओं (साधुओं) में तीन कारक होते हैं, एक कुशल चोर घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, डकैती करता है और राजमार्गों पर घात लगाता है। वे तीन कारक क्या हैं? यहाँ, एक कुशल चोर असमान परिस्थितियों, घने जंगलों और शक्तिशाली लोगों पर निर्भर करता है।"

(1) "और एक माहिर चोर किस प्रकार विषम परिस्थितियों पर निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर उन नदियों पर निर्भर करता है जिन्हें पार करना कठिन होता है और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर। इस प्रकार एक माहिर चोर विषम परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

(2) "और एक माहिर चोर झाड़ियों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर गन्ने की झाड़ी, [154] पेड़ों की झाड़ी, एक छोटा जंगल, 407 या एक बड़े घने जंगल पर निर्भर करता है। इस तरह एक माहिर चोर झाड़ियों पर निर्भर करता है।

(3) "और एक माहिर चोर शक्तिशाली लोगों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर राजाओं या राजमंत्रियों पर निर्भर करता है। वह सोचता है: "यदि कोई मुझ पर किसी बात का आरोप लगाएगा तो ये राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे। यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाएगा, तो वे राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे। इसी तरह एक माहिर चोर शक्तिशाली लोगों पर निर्भर करता है।"

"इन तीन कारकों के होने से ही एक माहिर चोर घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, डकैती करता है और राजमार्गों पर घात लगाकर हमला करता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त एक दुष्ट भिक्षु स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है, निंदनीय होता है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र होता है, और बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु असमान, घने जंगलों और शक्तिशाली लोगों पर निर्भर रहता है।"

(1) "और एक दुष्ट भिक्षु विषमता पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु अधार्मिक शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों में संलग्न होता है। इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु विषमता पर निर्भर करता है।"

(2) "और एक दुष्ट भिक्षु झाड़ियों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु गलत दृष्टिकोण रखता है, एक चरमपंथी दृष्टिकोण अपनाता है। इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु झाड़ियों पर निर्भर करता है।"

(3) "और एक दुष्ट भिक्षु शक्तिशाली लोगों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु राजाओं या राजमंत्रियों पर निर्भर करता है। वह सोचता है: 'यदि कोई मुझ पर किसी बात का आरोप लगाए, तो ये राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे। यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाए, तो वे राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे।' इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु शक्तिशाली लोगों पर निर्भर करता है। [155]

"इन तीन गुणों के कारण ही एक दुष्ट भिक्षु स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है, निंदनीय होता है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र होता है, और बहुत से पुण्य उत्पन्न करता है।"

दूसरा पचास

(6)I. ब्राह्मण

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

52 दो ब्राह्मण (1)

फिर दो वृद्ध, उम्रदराज, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके, एक सौ बीस वर्ष के दो ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आए और उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हम ब्राह्मण हैं। हे गुरु गौतम, जो एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध हैं। हमने न तो कोई अच्छा और लाभकारी कार्य किया है और न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है। हे गुरु गौतम, हमें उपदेश दें और ऐसा मार्गदर्शन करें जिससे हमारा दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त हो!"

"हे ब्राह्मणों, तुम सचमुच बूढ़े हो चुके हो, उम्र के बोझ से दबे हो, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके हो, एक सौ बीस वर्ष के हो चुके हो, परन्तु तुमने न तो कोई अच्छा और लाभकारी कर्म किया है, न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है। निश्चय ही यह संसार वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से बह जाता है। परन्तु यद्यपि संसार वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से बह जाता है, फिर भी जब कोई व्यक्ति इस दुनिया से चला जाता है, तो शारीरिक, वाणी और मानसिक संयम ही आश्रय, पनाहगाह, द्वीप, शरण और सहारा प्रदान करता है।"

जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है,

वृद्धों के लिए कोई आश्रय नहीं है।

मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,

व्यक्ति को ऐसे पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख प्रदान करें। 408

जब कोई इस जीवन से विदा होता है, तो

शरीर, वाणी और मन पर आत्म-नियंत्रण

और जीवित रहते हुए किए गए पुण्य कर्म ही

उसे सुख की ओर ले जाते हैं। [156]

---

53 दो ब्राह्मण (2)

फिर दो ब्राह्मण, जो वृद्ध, उम्रदराज, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके थे, जिनकी आयु एक सौ बीस वर्ष थी, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा:

"हम ब्राह्मण हैं। हे गुरु गौतम, आप वृद्ध हैं... एक सौ बीस वर्ष के। लेकिन हमने न तो कोई अच्छा और लाभकारी कार्य किया है, न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है। हे गुरु गौतम, हमें उपदेश दें और ऐसा मार्गदर्शन करें जिससे हमारा कल्याण और सुख दीर्घकाल तक बना रहे!"

"हे ब्राह्मणों, तुम सचमुच बूढ़े हो चुके हो, उम्र के बोझ से दबे हो, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके हो, एक सौ बीस वर्ष के हो चुके हो, परन्तु तुमने न तो कोई अच्छा और लाभकारी कर्म किया है, न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है। निश्चय ही यह संसार वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से जल रहा है। परन्तु यद्यपि संसार वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से जल रहा है, फिर भी जब कोई इस दुनिया से विदा हो जाता है, तो शारीरिक, वाणी और मानसिक संयम ही आश्रय, पनाहगाह, द्वीप, शरण और सहारा प्रदान करता है।"

जब किसी के घर में आग लग जाती है,

तो बाहर निकाला गया बर्तन

ही उसके लिए उपयोगी होता है,

न कि वह बर्तन जो अंदर जल गया हो।

अतः, क्योंकि संसार

वृद्धावस्था और मृत्यु की ज्वाला से घिरा हुआ है, इसलिए

दान देकर इसकी भरपाई करनी चाहिए:

जो दिया जाता है, वह उचित रूप से वसूल हो जाता है। 409

जब कोई इस जीवन से विदा होता है, तो

शरीर, वाणी और मन पर आत्म-नियंत्रण

और जीवित रहते हुए किए गए पुण्य कर्म ही

उसे सुख प्रदान करते हैं।

---

54 एक ब्राह्मण

तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"गुरु गौतम, ऐसा कहा जाता है: 'प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म, प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म।' 420 धम्म किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, लागू करने योग्य, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है?"

(1) "जो ब्राह्मण काम (राग) से उत्तेजित होकर, कामना से ग्रस्त होकर, मन में उसी का वास रखकर [157] स्वयं को, दूसरों को और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब काम (राग) का त्याग हो जाता है, तो वह न तो स्वयं को, न दूसरों को और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है।

(2) घृणा से भरा हुआ, घृणा से ग्रस्त, और घृणा से ग्रस्त मन वाला व्यक्ति स्वयं को, दूसरों को और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब घृणा का त्याग हो जाता है, तो वह स्वयं को, दूसरों को या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा नहीं रखता, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है।

(3) "जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त है, जिसका मन मोह में डूबा हुआ है, वह स्वयं को, दूसरों को और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह स्वयं को, दूसरों को या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा नहीं रखता, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक और दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग) को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

---

55. परिभजक (घूमने वाला तपस्वी)

तब एक ब्राह्मण तपस्वी भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"गुरु गौतम; ऐसा कहा जाता है: 'प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म, प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म। धम्म किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है?"

(1) "ब्राह्मण, जो काम (राग) से उत्तेजित होकर, चाहत से ग्रस्त होकर, मन में लीन होकर, अपने कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों के कष्ट का इरादा करता है, और मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब काम (राग) का त्याग हो जाता है, तो वह अपने

कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों के कष्ट का इरादा नहीं करता, और उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं होता। [158] काम (राग) से उत्तेजित होकर, काम (राग) से ग्रस्त होकर, मन में लीन होकर, देह, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होता है। परन्तु जब काम (राग) का त्याग हो जाता है, तो वह देह, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त नहीं होता। काम (राग) से उत्तेजित होकर, काम (राग) से ग्रस्त होकर, मन में लीन होकर, अपने भले, दूसरों के भले, या दोनों के भले को सही-सही नहीं समझ पाता। परन्तु जब काम (राग) का त्याग हो जाता है, तो वह जो इसे वास्तव में अपने हित में, दूसरों के हित में और दोनों के हित में समझता है। हे ब्राह्मण, इसी मार्ग से धम्म प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है... और ज्ञानी व्यक्ति इसे स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

(2) "घृणा से भरा हुआ, घृणा से अभिभूत..."

(3) जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त होकर, अपने आप को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह अपने आप को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा नहीं रखता, और न ही उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव होता है। जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त होकर, अपने आप को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त नहीं रहता। जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त होकर, अपने आप को, दूसरों को, या दोनों को वास्तव में क्या भला है, यह नहीं समझ पाता। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, जब वह इसे त्याग देता है, तो वह समझता है कि यह वास्तव में उसका अपना भला है, दूसरों का भला है और दोनों का भला है। इसी तरह से धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक और देखने के लिए आमंत्रित करने वाला होता है, यह व्यावहारिक होता है और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाता है।

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

56 निब्बाना (निब्बूता)

तब ब्राह्मण जनुसोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"गुरु गौतम, ऐसा कहा जाता है: 'प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला निर्वाण, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला निर्वाण। निर्वाण किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है?'" [159]

(1) “ब्राह्मण, जो काम (राग) से उत्तेजित होकर, काम (राग) में डूबा हुआ हो, और काम (राग) से ग्रस्त मन से, स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब काम (राग) का त्याग हो जाता है, तो वह स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा नहीं रखता, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार निर्वाण प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है।”

(2) "घृणा से भरा हुआ, घृणा से ग्रस्त ...

(3) जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त है, जिसका मन मोह में डूबा हुआ है, वह स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा नहीं रखता, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार निर्वाण प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है।

"हे ब्राह्मण, जब कोई कामवासना (राग) की पूर्णतः नाश, घृणा (घृणा) की पूर्णतः नाश और मोह (मोह) की पूर्णतः नाश का अनुभव करता है, तो इसी प्रकार निर्वाण प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, तत्काल प्राप्त होता है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक होता है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाता है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने आया है।"

---

57 जनसंख्या में कमी (पालोका)

फिर एक धनी ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"हे गुरु गौतम, मैंने वृद्ध ब्राह्मणों को सुना है जो उम्र के बोझ से दबे हुए हैं, गुरुओं के गुरु हैं, वे कहते हैं: 'पहले यह संसार इतना घनी आबादी वाला था कि ऐसा लगता था मानो लोगों के बीच कोई जगह ही न हो। गाँव, कस्बे और राजधानियाँ इतनी पास-पास थीं कि उनके बीच से मुर्गे उड़ सकते थे।' 411 हे गुरु गौतम, ऐसा क्यों है कि वर्तमान में लोगों की संख्या घट गई है, जनसंख्या में कमी देखी जा रही है, 412 और गाँव, [160] कस्बे, शहर और जिले लुप्त हो गए हैं?" 413

(1) "हे ब्राह्मण, वर्तमान में लोग अधर्म (पाप) में लिप्त हैं, अधर्मी लोभ से ग्रस्त हैं, और गलत धर्म से पीड़ित हैं। 414 परिणामस्वरूप, वे शस्त्र उठाकर एक दूसरे का वध करते हैं। अतः बहुत से लोग मरते हैं। यही कारण है कि वर्तमान में जनसंख्या में कमी आई है, जनसंख्या में गिरावट देखी जा रही है, और गाँव, कस्बे, शहर और जिले लुप्त हो गए हैं:

(2) "फिर, वर्तमान में लोग अधर्म (पाप) में लिप्त हैं, अधर्मी लोभ से ग्रस्त हैं, गलत धर्म से पीड़ित हैं। जब ऐसा होता है, तो पर्याप्त वर्षा नहीं होती। परिणामस्वरूप, अकाल पड़ता है, अनाज की कमी हो जाती है; फसलें खराब होकर भूसे में बदल जाती हैं। इसलिए बहुत से लोग मर जाते हैं। यही एक और कारण है कि वर्तमान में लोगों की संख्या में गिरावट आई है, जनसंख्या में कमी देखी जा रही है, और गाँव, कस्बे, शहर और जिले लुप्त हो गए हैं।"

(3) "फिर, वर्तमान में लोग अधर्म (पाप) में लिप्त हैं, अधर्मी लोभ से ग्रस्त हैं, गलत धर्म से पीड़ित हैं। जब ऐसा होता है, तो यक्ष जंगली अमानवीय आत्माओं (अमानुस्से) को मुक्त कर देते हैं। 415 इसलिए बहुत से लोग मर जाते हैं। यही एक और कारण है कि वर्तमान में लोगों की संख्या घट गई है, जनसंख्या में कमी आई है, और गाँव, कस्बे, शहर और जिले लुप्त हो गए हैं।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

58 वच्छगोत्ता

तब तपस्वी वच्छगोत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे बोले:

"गुरु गौतम, मैंने सुना है: 'संन्यासी गौतम कहते हैं: "भिक्षा केवल मुझे ही दी जानी चाहिए, [161] दूसरों को नहीं; भिक्षा केवल मेरे शिष्यों को ही दी जानी चाहिए, दूसरों के शिष्यों को नहीं। केवल मुझे दी गई भिक्षा ही फलदायी है, दूसरों को दी गई भिक्षा नहीं; केवल मेरे शिष्यों को दी गई भिक्षा ही फलदायी है, दूसरों के शिष्यों को दी गई भिक्षा नहीं।"' क्या जो लोग ऐसा कहते हैं वे गुरु गौतम के कहे हुए वचन को ही बताते हैं और उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते? क्या वे धम्म (मार्ग) के अनुसार व्याख्या करते हैं ताकि उन पर कोई उचित आलोचना या निंदा का आधार न बने? 416 क्योंकि हम गुरु गौतम को गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना चाहते।"

हे वच्छा, जो कहते हैं कि तपस्वी गौतम कहते हैं: "दान केवल मुझे ही देना चाहिए... केवल मेरे शिष्यों को दिया गया दान ही फलदायी होता है, दूसरों के शिष्यों को दिया गया दान नहीं", वे मेरे कहे हुए वचन को नहीं दोहराते, बल्कि असत्य और असत्य कथन से मेरा गलत अर्थ निकालते हैं। जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है, वह तीन लोगों के लिए बाधा और ठोकर उत्पन्न करता है। वे तीन कौन हैं? वह दानकर्ता के पुण्य प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करता है, दान प्राप्त करने वालों को दान मिलने से रोकता है, और इस प्रकार वह स्वयं को भी अपंग और घायल कर लेता है। जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है, वह इन तीनों लोगों के लिए बाधा और ठोकर उत्पन्न करता है।

लेकिन, वच्छा, मैं कहता हूँ कि यदि कोई बर्तन धोने का पानी कूड़ेदान या गटर में इस विचार से भी फेंक दे कि 'यहाँ के जीव इससे अपना जीवन यापन कर सकें', तो भी पुण्य प्राप्त होता है। फिर मनुष्यों को दान देने से कितना अधिक पुण्य प्राप्त होता है! परन्तु मैं कहता हूँ कि

सदाचारी व्यक्ति को दिया गया दान अनैतिक व्यक्ति को दिए गए दान से अधिक फलदायी होता है। और सबसे योग्य प्राप्तकर्ता वह है जिसने पाँचों गुणों का त्याग कर पाँचों गुणों को धारण किया हो।

"उसने किन पाँच कारकों का त्याग किया है? कामुक (यौन) इच्छा, द्वेष, सुस्ती [162] और उनींदापन, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह। ये वे पाँच कारक हैं जिनका उसने त्याग किया है।"

और उनमें कौन से पाँच गुण मौजूद हैं? सद्‌गुणपूर्ण आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, और प्रशिक्षण से परे मुक्ति का ज्ञान और दर्शन। ये पाँच गुण उनमें मौजूद हैं।

"मैं इस प्रकार कहता हूँ कि जो व्यक्ति पाँचों गुणों का त्याग कर पाँचों गुणों को धारण करता है, उसे जो कुछ भी दिया जाता है वह बहुत फलदायी होता है।"

किसी भी प्रकार के पशुओं में,

चाहे वे काले, सफेद, लाल, सुनहरे,

चित्तीदार, एकसमान या कबूतर के रंग के हों,

पालतू बैल

वही होता है जो भार वहन कर सकता है,

बलवान होता है और अच्छी गति से आगे बढ़ता है।

वे बोझ को सीधे उसी पर लादते हैं;

उन्हें उसके रंग से कोई लेना-देना नहीं होता।

इसी प्रकार, मनुष्यों में भी,

किसी भी प्रकार के पुनर्जन्म में—

चाहे वे क्षत्रिय हों, ब्राह्मण हों, वेस्स हों,

शुद्ध, चांडल हों या सफाईकर्मी हों—

किसी भी प्रकार के लोगों में,

सुसंस्कृत और अच्छे व्यवहार वाला व्यक्ति जन्म लेता है:

वह जो धम्म में दृढ़, आचरण में सदाचारी,

वाणी में सत्यनिष्ठ, नैतिक लज्जा से युक्त होता है;

जिसने पुनर्जन्म और मृत्यु का त्याग कर दिया है,

ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में परिपूर्ण है,

बोझ से मुक्त, अनासक्त,

जिसने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है, जो दोषों से मुक्त है;

जो संसार की सभी चीजों से परे जाकर

अनासक्ति के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर चुका है: उस निर्मल क्षेत्र में बोया गया

अर्पण वास्तव में विशाल होता है ।

अज्ञानी,

बुद्धिहीन, मंदबुद्धि और अज्ञानी लोग

पवित्र व्यक्तियों की सेवा नहीं करते

, बल्कि अपना दान बाहर के लोगों को देते हैं।

लेकिन जो लोग पवित्र व्यक्तियों,

ऋषि माने जाने वाले बुद्धिमान व्यक्तियों की सेवा करते हैं,

और जिनकी सुगत (भगवान बुद्ध) में आस्था

गहरी और दृढ़ है,

वे देवलोक जाते हैं

या अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं।

क्रमिक चरणों में आगे बढ़ते हुए,

वे बुद्धिमान व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करते हैं। [163]

---

59 टिकान्ना

तब ब्राह्मण टिकन्ना भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा और

फिर उनसे अभिवादन का आदान-प्रदान करने के बाद, एक तरफ बैठे ब्राह्मण टिकन्ना ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, उन ब्राह्मणों की प्रशंसा की जिन्होंने त्रिविध ज्ञान में महारत हासिल की थी: "ये वे ब्राह्मण हैं जो त्रिविध ज्ञान में निपुण हैं; ये वे ब्राह्मण हैं जो त्रिविध ज्ञान में निपुण हैं।"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "पर हे ब्राह्मण, ब्राह्मण उस ब्राह्मण का वर्णन कैसे करते हैं जो त्रिविध ज्ञान का ज्ञाता हो?"

"हे गौतम गुरु, यहाँ एक ब्राह्मण हैं जो अपने माता-पिता दोनों की ओर से श्रेष्ठ कुल के हैं, शुद्ध वंश के हैं, और सातवीं पीढ़ी तक उनकी वंशावली निर्विवाद और निष्कलंक है। वे भजनों के पाठकर्ता और संरक्षक हैं, तीनों वेदों के शब्दकोश, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और

व्युत्पत्ति के ज्ञाता हैं, और पाँचवें वेद के रूप में इतिहास के ज्ञाता हैं; भाषा विज्ञान और व्याकरण में निपुण, वे प्राकृतिक दर्शन और महान पुरुष के लक्षणों में पूर्णतः पारंगत हैं। ब्राह्मण इसी प्रकार से त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता ब्राह्मण का वर्णन करते हैं।"

"वरुद्ध के अनुशासन में त्रिविध ज्ञान का पारंगत ब्राह्मण, उस ब्राह्मण से बिल्कुल भिन्न होता है जो ब्राह्मणों द्वारा वर्णित त्रिविध ज्ञान का पारंगत होता है।"

"पर किस प्रकार? गुरु गौतम, क्या कोई व्यक्ति भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान का स्वामी बन सकता है? यदि गुरु गौतम मुझे धम्म का ऐसा उपदेश दें जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान का स्वामी कैसे बना जाता है, तो यह अच्छा होगा।"

"तो फिर, ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी जी," ब्राह्मण टिकन्ना ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

हे ब्राह्मण, इंद्रिय सुखों से विरक्त और अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल होते हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर वह समभाव में, सती और सचेत होकर, पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर सहित सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सतीमोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, सती और सुखी है।' सुख और दुख के त्याग के साथ, और पहले से ही आनंद और निराशा के बीत जाने के साथ; [164] वह चौथे ध्यान (सतीव्र अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती/ध्यान) का शुद्धिकरण होता है।

(1) जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) होता है, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित होता है, तब वह उसे अपने पूर्व जन्मों के स्मरण के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। वह अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, कई युगों का विश्व-विनाश, कई युगों का विश्व-विकास, कई युगों का विश्व-विनाश और विश्व-विकास, इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मेरा ऐसा अनुभव था।' सुख-दुख का ऐसा ही मेरा जीवनकाल था; वहाँ से निकलकर मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा नाम ऐसा ही रखा गया, मैं ऐसे कुल का था, मेरा रूप-रंग ऐसा था, मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा ही मेरा अनुभव था, मेरा जीवनकाल ऐसा ही था; वहाँ से निकलकर मेरा पुनर्जन्म यहाँ हुआ। इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है।

'यह उनके द्वारा प्राप्त किया गया पहला सच्चा ज्ञान है। अज्ञान का निवारण हुआ है, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ है; अंधकार का निवारण हुआ है, प्रकाश का उदय हुआ है, जैसा कि तब होता है जब कोई सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहता है।'

(2) "जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) होता है, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित होता है, तो वह उसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली देखता है, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु ये प्राणी जिन्होंने शरीर से अच्छे आचरण किए, जिन लोगों ने श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टिकोण रखा और सही दृष्टिकोण पर आधारित कर्म किए, वे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, वे प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखते हैं और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं।

"यह उनके द्वारा प्राप्त किया गया दूसरा सच्चा ज्ञान है। अज्ञान का निवारण हुआ है, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ है; अंधकार का निवारण हुआ है, प्रकाश का उदय हुआ है, जैसा कि तब होता है जब कोई सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहता है।"

(3) "जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाधि में) होता है, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित होता है, तो वह उसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'" वह वास्तविकता को समझता है: 'ये हैं दोष'; वह वास्तविकता को समझता है: 'यह दोषों का मूल है'; वह वास्तविकता को समझता है: 'यह दोषों का निवारण है'; वह वास्तविकता को समझता है: 'यह दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'

जब वह इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है और देखता है, तो उसका मन कामुकता के दोष से, अस्तित्व के दोष से (भाव/पुनर्जन्म का कारण) और अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। जब वह मुक्त हो जाता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई अधिकार नहीं है।'

"यह उनके द्वारा प्राप्त किया गया तीसरा सच्चा ज्ञान है। अज्ञान का निवारण हुआ है, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ है; अंधकार का निवारण हुआ है, प्रकाश का उदय हुआ है, जैसा कि तब होता है जब कोई सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहता है।"

जिसका सद्गुण न डगमगाता है,

जो सजग और ध्यानमग्न है,

जिसका मन एकाग्र

(एकग्ग संस्कृत: एकग्र) है, जो पूरी तरह से आत्म-मग्न (समाहित) है;

"ज्ञानी, अंधकार का निवारण करने वाला,

त्रिविध ज्ञान का वाहक, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाला;

जिसे सभी का त्याग करने वाला,

देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों का उपकारक कहा जाता है।"

"तीनों ज्ञानों से परिपूर्ण,

जो मोह से रहित होकर निवास करते हैं;

लोग उनकी पूजा करते हैं, बुद्ध

गौतम, जो अपना अंतिम शरीर धारण करते हैं।"

जो अपने पिछले जन्मों के निवासों को जानता है,

जो स्वर्ग और दुख के लोक को देखता है,

और जिसने पुनर्जन्म के विनाश को प्राप्त कर लिया है,

वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) में निपुण ऋषि है। 419

"इन तीन प्रकार के ज्ञान के माध्यम से ही

व्यक्ति त्रिगुण ज्ञान प्राप्त ब्राह्मण बनता है।

मैं उसे त्रिगुण ज्ञान का स्वामी कहता हूँ,

न कि उस दूसरे को जो मंत्रों का उच्चारण करता है।"

"हे ब्राह्मण, इसी प्रकार से व्यक्ति परमपिता के अनुशासन में त्रिविध ज्ञान का स्वामी बन जाता है।"

"गुरु गौतम, जो भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता हैं, वे ब्राह्मणों की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता से बिल्कुल भिन्न हैं। और ब्राह्मणों की विद्या में त्रिविध ज्ञान का ज्ञाता भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

60 जानूसोनी

तब ब्राह्मण जनुसोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"हे गौतम गुरु, जिसके पास भी कोई यज्ञ, स्मृति भोज, भोग-विलास या दान करने के लिए कुछ हो, वह उसे उन ब्राह्मणों को दान कर दे जो त्रिविध ज्ञान में पारंगत हों।" 420

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "पर हे ब्राह्मण, ब्राह्मण उस ब्राह्मण का वर्णन कैसे करते हैं जो त्रिविध ज्ञान का ज्ञाता हो?"

"हे गौतम गुरु, यहाँ एक ब्राह्मण दोनों तरफ से उत्तम कुल का है... [जैसा कि 3:58 में है]... और महान पुरुष के लक्षणों में निपुण है। ब्राह्मण इसी प्रकार त्रिविध ज्ञान के स्वामी का वर्णन करते हैं।"

"वरिष्ठ के अनुशासन में त्रिविध ज्ञान के पारखी ब्राह्मण, ब्राह्मणों द्वारा वर्णित ब्राह्मण से बिल्कुल भिन्न होता है।"

"पर किस प्रकार से? गुरु गौतम, क्या कोई व्यक्ति भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान का स्वामी होता है? यदि गुरु गौतम मुझे धम्म का ऐसा उपदेश दें जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि भगवान की विद्या में त्रिविध ज्ञान का स्वामी कैसे बना जाता है, तो यह अच्छा होगा।"

"तो फिर, ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां," ब्राह्मण जानूसोनी ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"यहाँ, हे ब्राह्मण, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... [सभी 3:58 के अनुसार, नीचे तक:] [167]... यह उसके द्वारा प्राप्त तीसरा सच्चा ज्ञान है। अज्ञान का निवारण हुआ है, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ है; अंधकार का निवारण हुआ है, प्रकाश का उदय हुआ है, जैसा कि तब होता है जब कोई सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहता है।"

"सद्‌गुणों और नियमों का पालन करने में परिपूर्ण,

दृढ़ निश्चयी और संयमी,

जिसका मन एकाग्र

(एकगग्ग संस्कृत: एकग्र) और पूर्णतः आत्म-मग्न (समाहित) हो।"

जो अपने पिछले जन्मों के निवासों को जानता है,

जो स्वर्ग और दुख के लोक को देखता है,

और पुनर्जन्म के विनाश तक पहुँच चुका है,

वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) में परिपूर्ण ऋषि है। [168]

"इन तीन प्रकार के ज्ञान के माध्यम से ही

व्यक्ति त्रिगुण ज्ञान प्राप्त ब्राह्मण बनता है।

मैं उसे त्रिगुण ज्ञान का स्वामी कहता हूँ,

न कि उस दूसरे को जो मंत्रों का उच्चारण करता है।"

"हे ब्राह्मण, इसी प्रकार से व्यक्ति परमपिता के अनुशासन में त्रिविध ज्ञान का स्वामी बन जाता है।"

"गुरु गौतम की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता, ब्राह्मणों की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता से बिल्कुल भिन्न होते हैं। और ब्राह्मणों की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता, गुरु गौतम की विद्या में त्रिविध ज्ञान के ज्ञाता के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होते।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

———————————————————

61 संगरवा

तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। फिर एक तरफ बैठकर ब्राह्मण संगरव ने भगवान (बुद्ध) से यह कहा:

"गुरु गौतम, हम ब्राह्मण यज्ञ करते हैं और दूसरों को भी यज्ञ करने के लिए प्रेरित करते हैं। स्वयं यज्ञ करने वाला और दूसरों को यज्ञ करने के लिए प्रेरित करने वाला, दोनों ही पुण्य कर्म करते हैं, जो अनेक लोगों के लिए लाभकारी होता है, अर्थात् यज्ञ पर आधारित कर्म। परन्तु जो अपने परिवार को त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, वह केवल स्वयं को ही वश में करता है, केवल स्वयं को ही शांत करता है और केवल स्वयं को ही निर्वाण की ओर ले जाता है। ऐसे में, वह पुण्य कर्म करता है, जो केवल एक व्यक्ति के लिए लाभकारी होता है, अर्थात् संन्यासी जीवन में प्रवेश करने पर आधारित कर्म।"

"तो फिर, ब्राह्मण, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है, ब्राह्मण? यहाँ, तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट होते हैं, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों और मनुष्यों के गुरु, एक प्रबुद्ध, एक भगवान (बुद्ध)। वे कहते हैं: 'आओ, यही मार्ग है, यही

तरीका है। इसके अनुसार अभ्यास करते हुए, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की अद्वितीय पराकाष्ठा का अनुभव किया है और इसे दूसरों को भी बताया है। आओ, तुम भी इसी प्रकार अभ्यास करो। इसके अनुसार अभ्यास करते हुए, तुम भी प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की अद्वितीय पराकाष्ठा का अनुभव करोगे और उसमें निवास करोगे।" इस प्रकार शिक्षक इस धम्म का उपदेश देते हैं और अन्य लोग [169] तदनुसार अभ्यास करते हैं। ऐसे सैकड़ों, हजारों, लाखों लोग हैं जो ऐसा करते हैं। आपका क्या विचार है? जब ऐसा है, तो क्या भिक्षु बनने का वह कार्य एक पुण्यकारी अभ्यास है जो एक व्यक्ति तक सीमित है या अनेक लोगों तक?

"जब ऐसा हो, तो गुरु गौतम, यह एक पुण्यकारी अभ्यास है जो कई लोगों तक फैलता है, अर्थात् यह भिक्षु बनने की दिशा में आगे बढ़ने पर आधारित है।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने ब्राह्मण सहगारव से कहा, "हे ब्राह्मण, इन दोनों प्रथाओं में से कौन सी आपको अधिक सरल और कम हानिकारक लगती है, और कौन सी अधिक फलदायी और लाभकारी है?"

तब ब्राह्मण सहगारव ने पूज्य आनंद से कहा, "मैं गुरु गौतम और गुरु आनंद को आदर और प्रशंसा के योग्य मानता हूँ।" 422

दूसरी बार पूज्य आनंद ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा हूँ कि आप किसे आदर और प्रशंसा के योग्य मानते हैं। मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि इन दोनों प्रथाओं में से कौन सी आपको सरल, कम हानिकारक और अधिक फलदायी लगती है?"

लेकिन दूसरी बार ब्राह्मण सहगारवा ने उत्तर दिया: "मैं गुरु गौतम और गुरु आनंद को आदर और प्रशंसा के योग्य मानता हूँ।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने ब्राह्मण से कहा: "ब्राह्मण, मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा हूँ कि आप किसे आदर और प्रशंसा के योग्य मानते हैं। मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि इन दोनों प्रथाओं में से कौन सी आपको सरल और कम हानिकारक लगती है, और साथ ही अधिक फलदायी और लाभकारी भी है?"

लेकिन तीसरी बार ब्राह्मण सहगारव ने उत्तर दिया: "मैं गुरु गौतम और गुरु आनंद को आदर और प्रशंसा के योग्य मानता हूँ।" [170]

तब भगवान (बुद्ध) ने सोचा, "तीसरी बार भी ब्राह्मण सहगारव, आनंद द्वारा पूछे गए एक उचित प्रश्न का उत्तर देने में हिचकिचा रहा है। मुझे उसे छोड़ देना चाहिए।" तब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण सहगारव से कहा, "हे ब्राह्मण, आज राजमहल में जब राजा के दल एकत्रित होकर बैठे थे, तब उनके बीच क्या बातचीत हुई?"

"बातचीत इस प्रकार हुई। गुरु गौतम ने कहा: 'पहले भिक्षुओं की संख्या कम थी, लेकिन अलौकिक मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) प्रदर्शित करने वाले भिक्षु अधिक थे। लेकिन अब भिक्षुओं की संख्या अधिक है, लेकिन अलौकिक मानसिक शक्ति प्रदर्शित करने वाले भिक्षु कम हैं।' आज राजा के दल के बीच यही चर्चा हुई।"

"हे ब्राह्मण, तीन प्रकार के चमत्कार होते हैं। वे कौन से तीन हैं? मानसिक शक्ति का चमत्कार (जादू/इद्धि), मन पढ़ने का चमत्कार और शिक्षा का चमत्कार। 423"

(1) "हे ब्राह्मण, मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का चमत्कार क्या है? यहाँ, एक भिक्षु अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है; वह प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है; वह बिना किसी अवरोध के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चला जाता है मानो अंतरिक्ष में; वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो; वह जल पर ऐसे चलता है मानो वह पृथ्वी हो, बिना डूबे; पालथी मारकर वह पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता है; वह अपने हाथ से इतने शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है और सहलाता है; वह ब्रह्म जगत के समान सुंदर शरीर पर महारत हासिल करता है। इसे ही मानसिक शक्ति का चमत्कार कहते हैं।"

(2) "और हे ब्राह्मण, मन-पढ़ने का चमत्कार क्या है? एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी संकेत के माध्यम से, 24 यह घोषणा करता है: 'तुम्हारा विचार ऐसा है, तुम ऐसा सोच रहे हो, तुम्हारा मन ऐसी अवस्था में है।' और चाहे वह अनेक घोषणाएँ करे, वे ठीक-ठीक वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं।"

"फिर भी, कोई व्यक्ति किसी संकेत के आधार पर [मन की स्थिति] घोषित नहीं करता, [171] बल्कि वह लोगों, आत्माओं या देवताओं (देवदूतों) की [बोलने की] आवाज़ सुनता है और फिर घोषणा करता है: 'तुम्हारा विचार ऐसा है, तुम ऐसा सोच रहे हो, तुम्हारा मन ऐसी अवस्था में है। और भले ही वह कई घोषणाएँ करे, वे बिलकुल वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं।"

"फिर, कोई व्यक्ति किसी चिह्न के आधार पर या लोगों, आत्माओं या देवताओं (देवदूतों) की आवाज़ सुनकर [मन की स्थिति] की घोषणा नहीं करता, बल्कि वह किसी विषय पर विचार और विश्लेषण करते समय विचारों के प्रसार की आवाज़ सुनता है और फिर घोषणा करता है: 'आपका विचार ऐसा है, आप ऐसा सोच रहे हैं, आपका मन ऐसी अवस्था में है।' और भले ही वह कई घोषणाएँ करे, वे बिल्कुल वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं।"

"फिर, कोई व्यक्ति किसी चिह्न के आधार पर, या लोगों, आत्माओं, या देवताओं (देवदूतों) की [भाषण देने की] आवाज़ सुनकर, या किसी विषय पर विचार और विश्लेषण करते समय विचारों के प्रसार की आवाज़ सुनकर [मन की स्थिति] की घोषणा नहीं करता, बल्कि वह अपने स्वयं के मन से उस व्यक्ति के मन को ग्रहण करता है जिसने बिना विचार और विश्लेषण के समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त कर ली है और वह समझ जाता है: 'इस व्यक्ति की मानसिक गतिविधियाँ इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि इसके तुरंत बाद वह यह विचार करेगा। 426 और भले ही वह कई घोषणाएँ करे, वे ठीक वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं। इसे मन-पढ़ने का चमत्कार कहा जाता है।"

(3) "हे ब्राह्मण, उपदेश का चमत्कार क्या है? यहाँ, कोई दूसरों को इस प्रकार उपदेश देता है: 'इस तरह सोचो, उस तरह नहीं! इस पर ध्यान दो, उस पर नहीं! इसे छोड़ दो और उसमें प्रवेश करो और उसमें निवास करो!' यही उपदेश का चमत्कार कहलाता है।" 427

"हे ब्राह्मण, ये तीन प्रकार के आश्चर्य हैं। इन तीनों आश्चर्यों में से कौन सा आश्चर्य आपको सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ लगता है?"

"इनमें से, हे गुरु गौतम, जब कोई व्यक्ति इस चमत्कार का प्रदर्शन करता है, जिसके द्वारा वह विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करता है... ब्रह्म जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता है, तो केवल वही व्यक्ति इस चमत्कार का अनुभव करता है और यह केवल उसी को प्राप्त होता है। यह चमत्कार मुझे किसी जादू की चाल जैसा लगता है।"

"हे गुरु गौतम, जब कोई व्यक्ति इस चमत्कार का प्रदर्शन करता है, जिसके द्वारा वह किसी संकेत के आधार पर दूसरे की मनस्थिति का वर्णन करता है... लोगों, आत्माओं या देवताओं (देवदूतों) की आवाज़ सुनकर... जब वह किसी विषय पर विचार और विश्लेषण कर रहा होता है, तब विचारों के प्रसार की आवाज़ सुनकर... अपने मन से उस व्यक्ति के मन को समाहित करके जिसने समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त कर ली है, जो विचार और विश्लेषण से रहित है, जिससे वह समझता है: [172] 'इस व्यक्ति की मानसिक गतिविधियाँ इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि इसके तुरंत बाद वह यह विचार करेगा। और, भले ही वह कई घोषणाएँ करे, वे ठीक वैसी ही होती हैं, अन्यथा नहीं। फिर से, केवल वही व्यक्ति जो इस चमत्कार का प्रदर्शन करता है, इसका अनुभव करता है और यह केवल उसी को घटित होता है। यह चमत्कार भी मुझे एक जादुई चाल जैसा लगता है।"

"परन्तु, हे गौतम गुरु, जब कोई व्यक्ति इस चमत्कार का प्रदर्शन करता है और दूसरों को इस प्रकार निर्देश देता है: 'इस तरह सोचो, उस तरह नहीं! इस पर ध्यान दो, उस पर नहीं! इसे त्याग दो और उसमें प्रवेश करो और निवास करो!'— यह चमत्कार मुझे उन तीनों चमत्कारों में सबसे उत्कृष्ट और उदात्त लगता है।"

यह विस्मयकारी और अद्भुत है। हे गुरु गौतम, उन्होंने इसे कितनी खूबसूरती से व्यक्त किया है! हम गुरु गौतम को इन तीन चमत्कारों को करने में सक्षम मानते हैं। क्योंकि गुरु गौतम अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग करते हैं... शरीर से लेकर ब्रह्म जगत तक, वे शरीर पर पूर्ण अधिकार रखते हैं। गुरु गौतम अपने मन से समाधि (स्व-लीनता/समाधि) प्राप्त व्यक्ति के मन को समाहित कर लेते हैं, जो विचार और परीक्षा से रहित होता है, और वे समझते हैं: 'इस व्यक्ति की मानसिक गतिविधियाँ इस प्रकार हैं कि इसके तुरंत बाद वह यह विचार सोचेगा।' और गुरु गौतम [दूसरों को] इस प्रकार निर्देश देते हैं: 'इस तरह सोचो, उस तरह नहीं! इस पर ध्यान दो, उस पर नहीं! इस (विचार) को त्याग दो और उसमें प्रवेश करो और लीन हो जाओ!'

"निश्चित रूप से, ब्राह्मण, आपके शब्द ताक-झांक और दखलंदाजी भरे हैं। 428 फिर भी, मैं आपको उत्तर दूंगा। मैं अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग करता हूँ... ब्रह्म जगत तक शरीर पर मेरा पूर्ण अधिकार है। मैं अपने मन से उस व्यक्ति के मन

को समाहित कर लेता हूँ जिसने समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है जो विचार और परीक्षा से रहित है, जिससे मैं समझ जाता हूँ: 'इस व्यक्ति की मानसिक गतिविधियाँ इस प्रकार हैं कि इसके तुरंत बाद वह यह विचार सोचेगा।' और मैं [दूसरों को] इस प्रकार निर्देश देता हूँ: 'इस तरह सोचो, उस तरह नहीं! इस पर ध्यान दो, उस पर नहीं! इस (विचार) को त्याग दो और उसमें प्रवेश करो और लीन हो जाओ!'"

लेकिन, गुरु गौतम, क्या गुरु गौतम के अलावा कोई और भिक्षु है जो इन तीन चमत्कारों को कर सकता है?

"यहाँ केवल एक सौ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ या पाँच सौ भिक्षु ही नहीं हैं, बल्कि इससे भी अधिक हैं जो इन तीन चमत्कारों को कर सकते हैं।" "पर वे भिक्षु इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" [173] "यहाँ, ब्राह्मण, भिक्षुओं के इस संघ में।" "उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में आया है।"

---

(7)II. महावग्गो (महावग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

62 संप्रदायवादी (तित्थयातनादिसुत्तम)

"भिक्षुओं (मठवासियों), ये तीन संप्रदायगत सिद्धांत हैं 429, जिन पर जब बुद्धिमानों द्वारा प्रश्न उठाए जाते हैं, पूछताछ की जाती है और जिरह की जाती है, और उनके निष्कर्ष तक पहुँचाया जाता है, तो अंततः वे निरंकुश हो जाते हैं। 430 वे तीन सिद्धांत क्या हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का मत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो भी अनुभव होता है—चाहे सुख हो, दुख हो, या दुख-सुख का अभाव हो—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है।' (2) कुछ अन्य तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का मत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो भी अनुभव होता है—चाहे सुख हो, दुख हो, या दुख-सुख का अभाव हो—वह सब ईश्वर की सृजनात्मक क्रिया का परिणाम है।' (3) और कुछ अन्य तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का मत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो भी अनुभव होता है—चाहे सुख हो, दुख हो, या दुख-सुख का अभाव हो—वह सब बिना किसी कारण या शर्त के घटित होता है।' 431

"भिक्षुओं, मैंने उन तपस्वियों और ब्राह्मणों से संपर्क किया जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो कुछ भी अनुभव होता है - चाहे सुख हो, दुख हो, या न दुख हो न सुख - वह सब पिछले कर्मों के कारण होता है,' 432 और मैंने उनसे कहा: 'क्या यह सच है कि आप पूज्यवर ऐसा सिद्धांत और मत रखते हैं?' जब मैंने उनसे यह पूछा, तो उन्होंने इसकी पुष्टि की। [174] तब मैंने उनसे कहा: 'ऐसी स्थिति में, यह पिछले कर्मों के कारण ही है कि आप जीवन का नाश करते हैं, जो नहीं दिया गया है उसे लेते हैं, यौन क्रियाओं में लिप्त होते हैं, झूठ बोलते हैं, फूट डालने वाली बातें करते हैं, कठोर बातें करते हैं, व्यर्थ की बातों में लिप्त होते हैं; आप लालसा से भरे होते हैं, द्वेषपूर्ण मन रखते हैं और गलत विचार रखते हैं।' 433

जो लोग अपने अतीत के कर्मों को ही मूल सत्य मानते हैं, उनमें न तो उचित कर्म करने की इच्छा होती है और न ही अनुचित कर्मों से बचने की, और न ही वे इस दिशा में कोई प्रयास करते हैं। चूंकि वे यह नहीं समझते कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इसलिए वे भ्रमित मन के होते हैं, वे स्वयं को सुरक्षित नहीं रखते, और ऐसे में उन्हें 'संन्यासी' कहना भी उचित नहीं होगा। यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का मेरा पहला उचित खंडन था जो इस प्रकार का सिद्धांत और दृष्टिकोण रखते हैं।

(2) "तब, हे भिक्षुओं, मैं उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के पास गया जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो कुछ भी अनुभव होता है—चाहे सुख हो, दुख हो, या न दुख हो न सुख—वह सब ईश्वर की सृजनात्मक गतिविधि के कारण होता है,' और मैंने उनसे कहा: 'क्या यह सच है कि आप पूज्यवर ऐसा सिद्धांत और मत रखते हैं?' जब मैंने उनसे यह पूछा, तो उन्होंने इसकी पुष्टि की। तब मैंने उनसे कहा: ऐसे में, यह ईश्वर की सृजनात्मक गतिविधि के कारण ही है कि आप जीवन का नाश करें, जो नहीं दिया गया है उसे ग्रहण करें, यौन क्रियाओं में लिप्त हों, झूठ बोलें, फूट डालने वाली बातें करें, कठोर बातें करें, व्यर्थ की बातों में लिप्त हों; आप लालसा से भरे हों, द्वेषपूर्ण मन रखें और गलत विचार रखें।"

जो लोग ईश्वर की सृजनात्मक गतिविधि को ही मूल सत्य मानते हैं, उनमें न तो यह इच्छा होती है कि क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए, और न ही वे इस संबंध में कोई प्रयास करते हैं। चूंकि वे यह नहीं समझते कि क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए, इसलिए वे भ्रमित मन के होते हैं, वे स्वयं को सुरक्षित नहीं रखते, और यहां तक कि उन्हें 'तपस्वी' कहना भी उचित नहीं होगा। यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का मेरा दूसरा वैध खंडन था जो इस प्रकार का सिद्धांत और दृष्टिकोण रखते हैं। [175]

(3) "तब, हे भिक्षुओं, मैं उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के पास गया जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं: 'इस व्यक्ति को जो भी अनुभव होता है—चाहे सुख हो, दुख हो, या न दुख हो—वह सब बिना किसी कारण या शर्त के होता है,' और मैंने उनसे कहा: 'क्या यह सच है कि आप पूज्यवर ऐसा सिद्धांत और मत रखते हैं?' जब मैंने उनसे यह पूछा, तो उन्होंने इसकी पुष्टि की। तब मैंने उनसे कहा: 'ऐसी स्थिति में, यह बिना किसी कारण या शर्त के है कि आप जीवन का नाश करें, जो नहीं दिया गया है उसे ग्रहण करें, यौन क्रियाओं में लिप्त हों, झूठ बोलें, फूट डालने वाली बातें करें, कठोर बातें करें, व्यर्थ की बातों में लिप्त हों; आप लालसा से भरे हों, द्वेषपूर्ण मन रखें और गलत मत रखें।'

जो लोग कारण और परिस्थिति के अभाव को ही मूल सत्य मानते हैं, उनमें न तो उचित कर्म करने की इच्छा होती है और न ही अनुचित कर्मों से बचने की, और न ही वे इस संबंध में कोई प्रयास करते हैं। चूंकि वे किसी भी बात को सत्य और वैध नहीं मानते, इसलिए वे भ्रमित मन के होते हैं, स्वयं को सुरक्षित नहीं रखते, और यहां तक कि उन्हें 'संन्यासी' कहना भी उचित नहीं होगा। यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का मेरा तीसरा वैध खंडन था जो इस प्रकार के सिद्धांत और दृष्टिकोण को मानते हैं।

"भिक्षुओं, ये तीन संप्रदायगत सिद्धांत हैं, जिन पर जब बुद्धिमानों द्वारा प्रश्न उठाए जाते हैं, पूछताछ की जाती है और जिरह की जाती है, और जब इन्हें निष्कर्ष तक पहुँचाया जाता है, तो अंततः निष्क्रियता की स्थिति उत्पन्न होती है।"

लेकिन, भिक्षुओं, मेरे द्वारा सिखाया गया यह धम्म अखंडित, निष्कलंक, निर्दोष और बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा निरोधित नहीं है। 434 और मेरे द्वारा सिखाया गया वह धम्म क्या है जो अखंडित, निष्कलंक, निर्दोष और बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा निरोधित नहीं है?

"'ये छह तत्व हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है। 'ये संपर्क के लिए छह इंद्रियां हैं'... 'ये अठारह मानसिक परीक्षाएं हैं'... 'ये चार आर्य सत्य हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म (मार्ग) है जो अखंडित, निष्कलंक, निर्दोष और बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है।"

जब यह कहा गया: 'ये छह तत्व ([लोक] धातु) हैं: भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है,' तो ऐसा क्यों कहा गया? ये छह तत्व हैं: पृथ्वी तत्व (पथवी), जल तत्व (अपो), अग्नि तत्व (तेजो), वायु तत्व (वायो), आकाश तत्व (आस्कस), और चेतना तत्व (विन्नान)। 435 जब यह कहा गया: 'ये छह तत्व हैं': भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है, तो इसी कारण ऐसा कहा गया। नोट: दुनिया 6 घटनाओं (लोक धातु) से बनी है: पृथ्वी (ठोसता), जल (तरलता), अग्नि (ऊष्मा), वायु (गैस)। स्थान (आयतन) और चेतना (जागरूकता)

जब यह कहा गया: 'ये संसार से संपर्क करने के लिए छह इंद्रियां (आयतन) हैं: हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धर्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है,' तो ऐसा क्यों कहा गया? संपर्क के लिए ये छह इंद्रियां हैं: आंख, कान, नाक,

जीभ, शरीर और मन। जब यह कहा गया: 'ये संसार से संपर्क करने के लिए छह इंद्रियां हैं: हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धर्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है,' तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

जब यह कहा गया कि 'ये अठारह मानसिक परीक्षाएँ हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया अखंडित धम्म है: .. बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित, ऐसा क्यों कहा गया? 436 किसी रूप को आँख से देखकर, व्यक्ति उस रूप की परीक्षा करता है जो आनंद (सोमनस्स) का आधार है; वह उस रूप की परीक्षा करता है जो उदासी (डोमनस्स) का आधार है; वह उस रूप की परीक्षा करता है जो उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) का आधार है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना (विचार) को जानकर, व्यक्ति उस मानसिक घटना की परीक्षा करता है जो आनंद का आधार है; वह उस मानसिक घटना की परीक्षा करता है जो उदासी का आधार है; वह उस मानसिक घटना की परीक्षा करता है जो... उदासीनता (भीतर विलीनता/उपेक्खा) का आधार। जब यह कहा गया: 'ये अठारह मानसिक परीक्षाएँ हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अप्रतिबंधित है, इसी कारण यह कहा गया था।

जब यह कहा गया: 'ये चार आर्य सत्य हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म (मार्ग) है जो अखंडित है... बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा निरोधित नहीं है, यह क्यों कहा गया? छह तत्वों पर निर्भरता से [भविष्य के] भ्रूण का अवतरण होता है। 437 जब अवतरण होता है, तब मन (नाम) और शरीर (रूप) होते हैं; मन (नाम) और शरीर (रूप) की स्थिति के साथ, छह इंद्रिय क्षेत्र होते हैं; छह इंद्रिय क्षेत्रों की स्थिति के साथ, संपर्क होता है; संपर्क की स्थिति के साथ, वेदना (संवेदना) होती है। अब जो महसूस करता है, उसके लिए मैं घोषणा करता हूँ: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है' और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

भिक्षुओं, दुख का आर्य सत्य क्या है? पुनर्जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, बीमारी दुख है, मृत्यु [177] दुख है; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा दुख है; इच्छा पूरी न होना दुख है; संक्षेप में, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंध दुख हैं। इसे ही दुख का आर्य सत्य कहते हैं।

भिक्षुओं, दुख की उत्पत्ति का आर्य सत्य क्या है? अज्ञान की स्थिति में, चरित्र/व्यवहार (संस्कार) उत्पन्न होता है; चरित्र/व्यवहार (संस्कार) की स्थिति में, चेतना उत्पन्न होती है; चेतना की स्थिति में, मन (नाम) और शरीर (शरीर) उत्पन्न होते हैं; मन (नाम) और शरीर (शरीर) की स्थिति में, छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रियों की स्थिति में, स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श की स्थिति में, संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) की स्थिति में, तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा (तृष्णा) की स्थिति में, आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति की स्थिति में, अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की स्थिति में, पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म की स्थिति में, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। दुःख। इसे दुःख की उत्पत्ति का महान सत्य कहा जाता है। 436

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का आर्य सत्य क्या है? अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निवारण के साथ ही गुणों (संस्कार) का निवारण होता है; गुणों/व्यवहार (संस्कार) के निवारण के साथ ही (शारीरिक) चेतना का निवारण होता है; चेतना के निवारण के साथ ही मन (नाम) और रूप (शरीर) का निवारण होता है; मन (नाम) और रूप (शरीर) के निवारण के साथ ही छह इंद्रियों का निवारण होता है; छह इंद्रियों के निवारण के साथ ही संपर्क का निवारण होता है; संपर्क के निवारण के साथ ही संवेदना (वेदना) का निवारण होता है; संवेदना (वेदना) के निवारण के साथ ही तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का निवारण होता है; तृष्णा के निवारण के साथ ही आसक्ति का निवारण होता है; आसक्ति के निवारण के साथ ही अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का निवारण होता है; जन्म का कारण (भाव), पुनर्जन्म का अंत; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा समाप्त हो जाती है। यही समस्त दुःख का अंत है। इसी को दुःख के अंत का महान सत्य कहते हैं।

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का आर्य सत्य क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिकल्पना, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता) और सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन)। यही दुखों के निवारण का आर्य सत्य कहलाता है।

"जब यह कहा गया कि 'ये चार आर्य सत्य हैं': हे भिक्षुओं, यह मेरे द्वारा सिखाया गया धम्म है जो अखंडित, निष्कलंक, निर्दोष और बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा निरोधित नहीं है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।" [178]

---

63 तीन खतरे

"भिक्षुओं (संतों), अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति माता और पुत्र को अलग करने वाले इन तीन खतरों की बात करता है। 439 वे तीन खतरे कौन से हैं?"

(1) एक समय ऐसा आता है जब भीषण प्रलय मच जाती है। जब प्रलय मच जाती है, तो वह गांवों, कस्बों और शहरों को जलाकर राख कर देती है। जब गांव, कस्बे और शहर जल रहे होते हैं, तो मां को अपना बेटा नहीं मिलता और बेटे को अपनी मां नहीं मिलती। यही वह पहला संकट है जो मां और बेटे को अलग करता है, जिसके बारे में अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति बात करता है।

(2) “फिर एक समय ऐसा आता है जब एक बड़ा वर्षा बादल उठता है। जब वह बड़ा वर्षा बादल उठता है, तो एक भयंकर प्रलय आती है। जब प्रलय आती है, तो गाँव, कस्बे और शहर बह जाते हैं। जब गाँव, कस्बे और शहर बह रहे होते हैं, तो माँ को अपना बेटा नहीं मिलता और बेटे को अपनी माँ नहीं मिलती। यह दूसरा संकट है जो माँ और बेटे को अलग करता है, जिसके बारे में अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति बात करता है।”

(3) "फिर, जंगल में भयंकर उथल-पुथल का समय आता है, जब ग्रामीण लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भागने लगते हैं। जब जंगल में भयंकर उथल-पुथल होती है और ग्रामीण लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भागने लगते हैं, तब माँ को अपना बेटा नहीं मिलता और बेटे को अपनी माँ नहीं मिलती। यही वह तीसरा संकट है जो माँ और बेटे को अलग करता है, जिसके बारे में अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति बात करता है।"

"ये वे तीन खतरे हैं जो मां और बेटे को अलग करते हैं, जिनके बारे में अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति बात करता है।"

"भिक्षुओं, माता-पुत्र के पुनर्मिलन के समय तीन प्रकार के खतरे उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति माता-पुत्र को अलग करने वाले खतरे बताता है। 440 वे तीन कौन से हैं?"

(1) "एक समय ऐसा आता है जब भीषण प्रलय मच जाती है। जब भीषण प्रलय मच जाती है, तो वह गांवों, कस्बों और शहरों को जला देती है। जब गांव, कस्बे और शहर जल रहे होते हैं, तो कभी-कभी ऐसा अवसर आता है जब माँ [179] अपने बेटे को और बेटा अपनी माँ को पाता है। माँ और बेटे के पुनर्मिलन का यह पहला संकट है जिसे अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति माँ और बेटे को अलग करने वाले संकट के रूप में वर्णित करता है।"

(2) "फिर, एक समय ऐसा आता है जब एक बड़ा वर्षा बादल उठता है। जब बड़ा वर्षा बादल उठता है, तो एक भयंकर बाढ़ आती है। जब भयंकर बाढ़ आती है, तो गाँव, कस्बे और शहर बह जाते हैं। जब गाँव, कस्बे और शहर बह रहे होते हैं, तो कभी-कभी ऐसा अवसर आता है जब माँ अपने बेटे को और बेटा अपनी माँ को पाता है। यह दूसरा संकट है जब माँ और बेटे का पुनर्मिलन होता है, जिसे अनपढ़ सांसारिक व्यक्ति माँ और बेटे को अलग करने वाले संकट के रूप में बताता है।"

(3) "फिर, जंगल में भयंकर उथल-पुथल का समय आता है, जब ग्रामीण लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भागने लगते हैं। जब जंगल में भयंकर उथल-पुथल होती है और ग्रामीण लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भाग रहे होते हैं, तो कभी-कभी ऐसा अवसर आता है जब माँ अपने बेटे को और बेटा अपनी माँ को पा लेता है। यह तीसरा संकट है जब माँ और पुत्र का पुनर्मिलन होता है, जिसे अनपढ़ सांसारिक व्यक्ति माँ और पुत्र को अलग करने वाले संकट के रूप में वर्णित करता है।"

"मां और बेटे के पुनर्मिलन के दौरान ये तीन खतरे उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति मां और बेटे को अलग करने वाले खतरे के रूप में वर्णित करता है।"

भिक्षुओं, माता और पुत्र को अलग करने वाले ये तीन खतरे हैं। 441 वे तीन खतरे कौन से हैं? वृद्धावस्था का खतरा, बीमारी का खतरा और मृत्यु का खतरा।

(1) "जब बेटा बूढ़ा हो रहा होता है, तो माँ अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाती: 'मैं बूढ़ी हो जाऊँ, लेकिन मेरा बेटा बूढ़ा न हो!' और जब माँ बूढ़ी हो रही होती है, तो बेटा अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाता: 'मैं बूढ़ा हो जाऊँ, लेकिन मेरी माँ बूढ़ी न हो!'"

(2) "जब बेटा बीमार पड़ जाता है, तो माँ अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाती: 'मैं बीमार पड़ जाऊँ, लेकिन मेरा बेटा बीमार न पड़े!' और जब माँ बीमार पड़ जाती है, तो बेटा अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाता: 'मैं बीमार पड़ जाऊँ, लेकिन मेरी माँ बीमार न पड़े!'"

(3) "जब बेटा मर रहा होता है, तो माँ अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकती: 'मुझे मरने दो, लेकिन मेरा बेटा न मरे!' और जब माँ मर रही होती है, तो बेटा अपनी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकता: 'मुझे मरने दो, लेकिन मेरी माँ न मरे!'"

"ये तीन खतरे हैं जो माँ और बेटे को अलग करते हैं। [180]

भिक्षुओं, एक मार्ग है, एक ऐसा रास्ता है जो माता-पुत्र के पुनर्मिलन के समय इन तीन संकटों से मुक्ति और विजय दिलाता है, और उन तीन संकटों से भी जो माता-पुत्र को अलग करते हैं। और वह मार्ग क्या है? वह यही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता) और सही समाधि (स्व-लीनता)। यही वह मार्ग है जो माता-पुत्र के पुनर्मिलन के समय इन तीन संकटों से मुक्ति और विजय दिलाता है, और उन तीन संकटों से भी जो माता-पुत्र को अलग करते हैं।

---

64 वेनागपुरा (नागपुर)

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसलों में भ्रमण कर रहे थे, जब वे वेनागपुरा नामक कोसल के ब्राह्मण गाँव पहुँचे। वेनागपुरा के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: “सुना जाता है कि शाक्य वंश से निकले तपस्वी गौतम वेनागपुरा आए हैं। अब उस गुरु गौतम के बारे में यह शुभ सूचना फैली है कि “भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवदूतों/देवताओं के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।” अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इस संसार को, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं), मार और ब्रह्मा सहित, इस जनसंख्या को, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों सहित, भली-भांति जान लेने के बाद, वह इसे दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं। वे एक ऐसे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, उचित अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का प्रकटीकरण करते हैं। ऐसे अरहंतों को देखना सौभाग्य की बात है।

तब वेनागपुरा के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने उनसे अभिवादन किया [181] और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद एक तरफ बैठ गए; कुछ ने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने अपना नाम और कुल बताया और एक तरफ बैठ गए; कुछ चुप रहे और एक तरफ बैठ गए। तब वेनागपुरा के ब्राह्मण वच्छगोत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। हे गौतम गुरु, उनकी इंद्रियां कितनी शांत हैं और उनकी त्वचा का रंग कितना शुद्ध और तेजस्वी है। जैसे शरद ऋतु में पीला बेर शुद्ध और तेजस्वी होता है, वैसे ही गौतम गुरुओं की इंद्रियां शांत हैं और उनकी त्वचा का रंग शुद्ध और तेजस्वी है। जैसे डंठल से तोड़ा गया ताड़ का फल शुद्ध और तेजस्वी होता है, वैसे ही गौतम गुरुओं की इंद्रियां शांत हैं और उनकी त्वचा का रंग शुद्ध और तेजस्वी है। जैसे किसी कुशल सुनार द्वारा भट्टी में बड़ी कुशलता से गढ़ा गया उत्तम सोने का आभूषण, लाल ब्रोकेड पर रखा हुआ, चमकता है और प्रकाशमान होता है, वैसे ही गौतम गुरुओं की इंद्रियां शांत हैं और उनकी त्वचा का रंग शुद्ध और तेजस्वी है।"

"चाहे कितने ही उच्च और आलीशान बिस्तर हों—अर्थात् सोफा, दीवान, लंबे बालों वाला कंबल, विभिन्न रंगों का कंबल, सफेद कंबल, फूलों की डिज़ाइन वाला ऊनी कंबल, रुई का रजाई, जानवरों की आकृतियों से सजा ऊनी कंबल, दोहरी किनारी वाला ऊनी कंबल, एक किनारी वाला ऊनी कंबल, रत्नों से जड़ी रेशमी चादर, रेशम के धागों से बनी और रत्नों से जड़ी चादर, नर्तकी का गलीचा, हाथी का गलीचा, घोड़े का गलीचा, रथ का गलीचा, हिरण की खाल का गलीचा, कदली हिरण की खाल से बना बिस्तर, ऊपर चंदवा और दोनों सिरों पर लाल तकिए वाला पलंग—गुरु गौतम निःसंदेह ये सब बिना किसी परेशानी या कठिनाई के आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।" 442

"ब्राह्मण, इस प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण बिस्तर उन लोगों को दुर्लभ रूप से प्राप्त होते हैं जो संन्यासी जीवन में चले गए हैं, और यदि वे प्राप्त भी हो जाते हैं, तो उनकी अनुमति नहीं है।"

"परन्तु, ब्राह्मण, तीन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण पलंग हैं जो इस समय मैं बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेता हूँ। वे तीन कौन से हैं? [182] दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग, दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग और श्रेष्ठ उच्च और विलासितापूर्ण पलंग। 443 ये तीन प्रकार के उच्च और विलासितापूर्ण पलंग हैं जो इस समय मैं बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेता हूँ।"

(1) "परन्तु, हे गौतम स्वामी, वह दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग क्या है जिसे आप इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेते हैं?"

"हे ब्राह्मण, जब मैं किसी गाँव या नगर में आश्रित होकर रहता हूँ, तो सुबह मैं वस्त्र धारण करता हूँ, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए उस गाँव या नगर में जाता हूँ। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, मैं किसी उपवन में जाता हूँ। वहाँ मुझे जो घास या पत्ते मिलते हैं, उन्हें इकट्ठा करके एक ढेर बना लेता हूँ और बैठ जाता हूँ। अपने पैरों को क्रॉस करके और शरीर को सीधा करके, मैं अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित करता हूँ। फिर, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैं प्रथम ध्यान (सन्यास अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें लीन रहता हूँ, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल होते हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान (सन्यास अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें लीन रहता हूँ, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि (स्व-लीनता/सन्यास) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते हैं।" पीति (आनंद) के लुप्त होने के साथ ही, मैं समभाव और सतीत्व में पूर्णतः बोध रखते हुए शरीर के साथ सुख का अनुभव करता हूँ; मैं उस तीसरे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, सतीत्व में रहने वाला और सुखी है।' सुख-दुख का त्याग करके, और पहले ही प्रसन्नता-निःसंवेदन के लुप्त हो जाने के साथ, मैं चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान) द्वारा सतीत्व की शुद्धि होती है।

"हे ब्राह्मण, जब मैं ऐसी अवस्था में होता हूँ, यदि मैं इधर-उधर चलता हूँ, तो उस समय मेरा इधर-उधर चलना दिव्य होता है। 444 यदि मैं खड़ा होता हूँ, तो उस समय मेरा खड़ा होना दिव्य होता है। यदि मैं बैठा होता हूँ, तो उस समय मेरा बैठना दिव्य होता है। यदि मैं लेट जाता हूँ, तो उस समय यह मेरा दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग होता है। यह वह [183] दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग है जिसे मैं इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर सकता हूँ।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम! गुरु गौतम के अलावा और कौन है जो बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से इतना दिव्य और आलीशान बिस्तर प्राप्त कर सकता है?"

(2) "परन्तु, हे गौतम स्वामी, वह दिव्य उच्च और विलासितापूर्ण पलंग क्या है जिसे आप इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेते हैं?"

"हे ब्राह्मण, जब मैं किसी गाँव या नगर पर निर्भर होकर निवास करता हूँ, तो सुबह मैं वस्त्र धारण करता हूँ, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए उस गाँव या नगर में जाता हूँ। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, मैं किसी उपवन में जाता हूँ। वहाँ मुझे जो घास या पत्ते मिलते हैं, उन्हें इकट्ठा करके एक ढेर बना लेता हूँ और बैठ जाता हूँ। अपने पैरों को क्रॉस करके और शरीर को सीधा करके, मैं अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित करता हूँ। फिर मैं प्रेम और करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता हूँ, इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, जैसे मैं स्वयं के लिए हूँ, मैं प्रेम और करुणा से भरे मन से, विशाल, उच्च, असीम, बिना द्वेष और बिना दुर्भावना के, संपूर्ण जगत में व्याप्त रहता हूँ। मैं करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता हूँ... परोपकारी आनंद से भरे मन से... एक ऐसा मन जो उदासीनता से ओतप्रोत है (भीतर समाहित/उपेक्खा), उसी प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांश भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए,

जैसे कि स्वयं के लिए, मैं उदासीनता से ओतप्रोत (भीतर समाहित/उपेक्खा) मन से, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, समस्त संसार में व्याप्त हूँ।

"हे ब्राह्मण, जब मैं ऐसी अवस्था में होता हूँ, यदि मैं इधर-उधर चलता हूँ, तो उस समय मेरा चलना दिव्य होता है। यदि मैं खड़ा होता हूँ, तो उस समय मेरा खड़ा होना दिव्य होता है। यदि मैं बैठा होता हूँ, तो उस समय मेरा बैठना दिव्य होता है। यदि मैं लेट जाता हूँ, तो उस समय यह मेरा दिव्य उच्च और सुखदायक पलंग होता है। यह वही दिव्य उच्च और सुखदायक पलंग है जिसे मैं इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर सकता हूँ।" [184]

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम! गुरु गौतम के अलावा और कौन बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से इतना ऊंचा और आलीशान पलंग प्राप्त कर सकता है?"

(3) "परन्तु, हे गौतम स्वामी, वह उत्तम ऊँचा और विलासितापूर्ण पलंग क्या है जो आप इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेते हैं?"

"हे ब्राह्मण, जब मैं किसी गाँव या नगर में आश्रित होकर निवास करता हूँ, तो सुबह मैं वस्त्र धारण करता हूँ, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर उस गाँव या नगर में भिक्षा मांगने जाता हूँ। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, मैं किसी उपवन में जाता हूँ। वहाँ मुझे जो घास या पत्ते मिलते हैं, उन्हें इकट्ठा करके एक ढेर बना लेता हूँ और बैठ जाता हूँ। अपने पैरों को क्रॉस करके और शरीर को सीधा करके, मैं अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित करता हूँ। तब मैं इस प्रकार समझता हूँ: मैंने लोभ का त्याग कर दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। मैंने घृणा का त्याग कर दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। मैंने मोह का त्याग कर दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। 445"

"हे ब्राह्मण, जब मैं ऐसी अवस्था में हूँ, यदि मैं इधर-उधर चलता हूँ, तो उस समय मेरा चलना श्रेष्ठ है। यदि मैं खड़ा हूँ, तो उस समय मेरा खड़ा होना श्रेष्ठ है। यदि मैं बैठा हूँ, तो उस समय मेरा बैठना श्रेष्ठ है। यदि मैं लेट जाता हूँ, तो उस समय यही मेरा श्रेष्ठ, ऊँचा और आरामदायक पलंग है। यही वह श्रेष्ठ, ऊँचा और आरामदायक पलंग है जिसे मैं इस समय बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर सकता हूँ।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम! गुरु गौतम के अलावा और कौन बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से इतना उत्तम और आलीशान पलंग प्राप्त कर सकता है?"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धर्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग रूपों को देख सकें। अब हम गुरु गौतम की शरण में, धर्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाते हैं। गुरु गौतम हमें उन गृहस्थ अनुयायियों के रूप में समझें जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

65 सरभा

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय सरभा नामक एक तपस्वी ने हाल ही में इस धर्म और अनुशासन को त्याग दिया था। 446 वह राजगृह में एक सभा को बता रहे थे: "मैंने शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों का धर्म (मार्ग) सीखा है। उनका धर्म सीखने के बाद, मैंने उस धर्म और अनुशासन को त्याग दिया।"

फिर एक सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तभी उन्होंने राजगृह में एक सभा को संबोधित करते हुए तपस्वी सरभा को ऐसा कथन करते हुए सुना। जब वे भिक्षु राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके लौटे, तो वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, तपस्वी सरभा, जिन्होंने हाल ही में इस धर्म और अनुशासन को त्याग दिया है, राजगृह में एक सभा को बता रहे थे: 'मैंने शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों का धर्म (मार्ग) सीखा है। उनका धर्म सीखने के बाद, मैंने वह धर्म और अनुशासन त्याग दिया।' हे भंते, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) सप्पिनिका नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में जाएँ और करुणावश तपस्वी सरभा के पास जाएँ।" भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सप्पिनिका नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में गए। वे तपस्वी सरभा के पास पहुँचे, उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और उनसे कहा: "क्या यह सच है, सरभा, कि तुम कहते रहे हो: मैंने शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों का धर्म सीखा है। उनका धर्म सीखने के बाद, मैंने उस धर्म और अनुशासन को छोड़ दिया?" यह सुनकर तपस्वी सरभा चुप रहे।

दूसरी बार भगवान (बुद्ध) ने तपस्वी सरभा से कहा, "हे सरभा, मुझे बताओ, तुमने शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों का धर्म कैसे सीखा है? यदि तुमने इसे पूर्णतः नहीं सीखा है, तो मैं इसे पूर्ण कर दूंगा। परन्तु यदि तुमने इसे पूर्णतः सीख लिया है, तो मैं प्रसन्न होऊंगा।" परन्तु दूसरी बार भी तपस्वी सरभा मौन रहे।

तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने तपस्वी सरभा से कहा: 447 "हे सरभा, मुझे बताओ, तुमने शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों का धर्म कैसे सीखा है? यदि तुमने इसे पूर्णतः नहीं सीखा है, तो मैं इसे पूर्ण कर दूंगा। परन्तु यदि तुमने इसे पूर्णतः सीख लिया है, तो मैं प्रसन्न होऊंगा।" परन्तु तीसरी बार भी तपस्वी सरभा मौन रहे।

तब उन तपस्वियों ने तपस्वी सरभा से कहा, "हे सरभा, तपस्वी गौतम ने तुम्हें तुम्हारी हर माँग पूरी करने का प्रस्ताव दिया है। हे सरभा, बोलो! तुमने शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों का धर्म कैसे सीखा है? यदि तुमने इसे पूर्णतः नहीं सीखा है, तो तपस्वी गौतम इसे तुम्हारे लिए पूर्ण कर देंगे। परन्तु यदि तुमने इसे पूर्णतः सीख लिया है, तो वे प्रसन्न होंगे।" यह सुनकर तपस्वी सरभा मौन, व्याकुल, झुके हुए, उदास, स्तब्ध और अवाक बैठे रहे।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह जानकर कि तपस्वी सरभा चुपचाप, व्याकुल, झुके हुए, उदास, स्तब्ध और मौन बैठे हैं, उन तपस्वियों से कहा:

(1) "यदि कोई मेरे बारे में कहे: 'यद्यपि आप पूर्णतः प्रबुद्ध होने का दावा करते हैं, तो भी आप इन विषयों में पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हैं' [187] तो मैं उससे इस विषय पर गहन प्रश्न पूछ सकता हूँ, उससे पूछताछ कर सकता हूँ और उससे जिरह कर सकता हूँ। 49 जब मैं उससे गहन प्रश्न पूछ रहा हूँ, उससे पूछताछ कर रहा हूँ और जिरह कर रहा हूँ, तो यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह तीन परिणामों में से एक या दूसरे का शिकार न हो: वह या तो टालमटोल वाला उत्तर देगा और चर्चा को किसी अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ देगा; [या] क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करेगा; या तपस्वी सरभा की तरह चुपचाप, व्याकुल, झुका हुआ, उदास, स्तब्ध और मौन बैठा रहेगा। 450

(2) "हे तपस्वियों, यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'यद्यपि आप अपने दोषों के नाश होने का दावा करते हैं, तो भी आपने इन दोषों को पूरी तरह नाश नहीं किया है,' तो मैं उससे इस विषय पर गहन प्रश्न पूछूंगा, उससे पूछताछ करूंगा और उससे जिरह करूंगा। जब मैं उससे गहन प्रश्न पूछूंगा, उससे जिरह करूंगा और जिरह करूंगा, तो यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह तीन परिणामों में से किसी एक का सामना न करे: वह या तो टालमटोल वाला उत्तर देगा और चर्चा को किसी अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ देगा; [या] क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करेगा; या तपस्वी सरभा की तरह चुपचाप, व्याकुल, झुका हुआ, उदास, स्तब्ध और मौन बैठा रहेगा।"

(3) "हे तपस्वियों, यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'धम्म का अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर नहीं ले जाता, जो उस लक्ष्य के लिए है जिसके लिए आप इसका उपदेश देते हैं', तो मैं उससे इस विषय पर गहन प्रश्न पूछ सकता हूँ, उससे पूछताछ कर सकता हूँ और उससे जिरह कर सकता हूँ। जब मैं उससे गहन प्रश्न पूछूँ, उससे पूछताछ करूँ और जिरह करूँ, तो यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह तीन परिणामों में से किसी एक का सामना न करे: वह या तो टालमटोल वाला उत्तर देगा और चर्चा को किसी अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ देगा, [या] क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करेगा, या तपस्वी सरभा की तरह चुपचाप, व्याकुल, झुका हुआ, उदास, दुखी और मौन बैठा रहेगा।"

फिर भगवान (बुद्ध) ने सप्पिनिका नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में तीन बार सिंह के समान दहाड़ लगाई और वायु में ऊपर उठकर चले गए। 52

फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, उन तपस्वियों ने तपस्वी सरभा को खूब खरी-खोटी सुनाई, 453 [कहते हुए:] "जैसे एक विशाल जंगल में एक बूढ़ा सियार सोचता है: मैं शेर की दहाड़ मारूंगा और फिर भी केवल सियार की तरह ही रोता और चिल्लाता है, वैसे ही, हे मित्र सरभा, तपस्वी गौतम की अनुपस्थिति में यह दावा करते हुए कि 'मैं शेर की दहाड़ मारूंगा,' [188] तुम केवल सियार की तरह ही रोते और चिल्लाते रहे। जैसे, हे मित्र सरभा, एक चूजा सोचता है: 'मैं मुर्गे की तरह गाऊंगा,' और फिर भी केवल चूजे की तरह ही गाता है, वैसे ही, हे मित्र सरभा, तपस्वी गौतम की अनुपस्थिति में यह दावा करते हुए कि 'मैं मुर्गे की तरह गाऊंगा,' तुम केवल चूजे की तरह ही गाते रहे। 454 जैसे, हे मित्र सरभा, एक बैल खाली गौशाला में गहरी आवाज में रंभाने की सोचता है, वैसे ही, हे मित्र सरभा, तपस्वी गौतम की अनुपस्थिति में तुमने सोचा कि तुम ऐसा कर सकते हो गहरी गर्जना करो।" [इस तरह] उन तपस्वियों ने तपस्वी सरभा को शब्दों से जमकर फटकारा।

---

66 केसापुट्टिया 4S5

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे, जब वे कलामों के कस्बे केशपुत्त पहुँचे। केशपुत्त के कलामों ने सुना: "सुना जाता है कि शाक्य वंश से निकले तपस्वी गौतम केशपुत्त आए हैं। अब उस गुरु गौतम के बारे में यह शुभ सूचना फैली है कि 'वह भगवान (बुद्ध) पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत हैं... [जैसा कि 3:63 में है]... [और] पूर्णतः शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराते हैं।' ऐसे अरहंतों को देखना सौभाग्य की बात है।"

तब केशपुत्त के कलाम भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए... [जैसा कि 3:63 पर है]... कुछ चुप रहे और एक तरफ बैठ गए। एक तरफ बैठे कलामों ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण केशपुत्त आते हैं। वे अपने सिद्धांतों की व्याख्या और स्पष्टीकरण करते हैं, परन्तु दूसरों के सिद्धांतों की निंदा, अपमान, उपहास और निंदा करते हैं। परन्तु कुछ अन्य तपस्वी और ब्राह्मण केशपुत्त आते हैं, [189] और वे भी अपने सिद्धांतों की व्याख्या और स्पष्टीकरण करते हैं, परन्तु दूसरों के सिद्धांतों की निंदा, अपमान, उपहास और निंदा करते हैं। भंते, हम असमंजस में हैं कि इन अच्छे तपस्वियों में से कौन सत्य बोलता है और कौन असत्य। 7

"हे कलामस, तुम्हारा व्याकुल होना उचित है, तुम्हारा संशय होना उचित है; तुम्हारे मन में एक पेचीदा विषय को लेकर संदेह उत्पन्न हो गया है। 456 आओ, कलामस, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, शास्त्रों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमानित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन करने के बाद किसी मत को स्वीकार करना, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है', मत मानो। 457 परन्तु जब हे कलामस, तुम स्वयं जान लो: 'ये बातें अकुशल हैं; ये बातें निंदनीय हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा निंदनीय हैं; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से हानि और पीड़ा होती है,' तब तुम्हें इन्हें त्याग देना चाहिए।"

(1) "कलमास, आपका क्या विचार है? जब किसी व्यक्ति में लालच उत्पन्न होता है, तो क्या वह उसके कल्याण के लिए होता है या उसके लिए हानिदायक होता है?" 453

"उसके नुकसान के लिए, भंते।"

"लालची कलामस, जो लोभ से ग्रस्त है, उसका मन लोभ में डूबा हुआ है, वह जीवन का नाश करता है, दूसरों की पत्नियों के साथ अनैतिक संबंध रखता है और झूठ बोलता है; और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा?"

"हां, भंते।"

(2) "कलमास, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में घृणा उत्पन्न होती है, तो क्या वह उसके कल्याण के लिए होती है या उसके नुकसान के लिए?"

"उसके नुकसान के लिए, भंते।"

"कलमास, एक ऐसा व्यक्ति जो घृणा से भरा हुआ है, घृणा से ग्रस्त है, जिसका मन घृणा से ग्रस्त है, जीवन को नष्ट करता है... और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा सहनी पड़ेगी?"

"हां, भंते।"

(3) "कलमास, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में मोह उत्पन्न होता है, तो क्या वह उसके कल्याण के लिए होता है या उसके लिए हानिदायक होता है?"

"उसके नुकसान के लिए, भंते।" [190]

"कलमस, एक ऐसा व्यक्ति जो भ्रम में डूबा हुआ है, मोह से ग्रस्त है, जिसका मन मोह में लीन है, वह जीवन का नाश करता है... और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा?"

"हां, भंते।"

"कलमास, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी (कुसल) हैं या हानिकारक (अकुसल)?" - "हानिकारक (अकुसल), भंते।" - "दोषी या निर्दोष?" - "दोषी, भंते।" - "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई या प्रशंसा की गई?" - "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई, भंते।" - "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, क्या इनसे हानि और पीड़ा होती है या नहीं, या तुम इसे कैसे लेते हो?" - "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, इनसे हानि और पीड़ा होती है। इसलिए हम इन्हें ग्रहण करते हैं।"

इसलिए, कलामास, जब हमने कहा: 'आओ, कलामास, मौखिक परंपरा का अनुसरण मत करो... बल्कि जब तुम स्वयं जान लो: "ये बातें हानिकारक (अकुसला) हैं; ये बातें निंदनीय हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा निंदित हैं; इन बातों को अपनाने और अभ्यास करने से हानि और पीड़ा होती है," तो तुम्हें इन्हें त्याग देना चाहिए,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।

"हे कलामों, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, शास्त्रों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमान आधारित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन के बाद किसी मत को स्वीकार करने, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है' के आधार पर मत चलो। बल्कि जब तुम स्वयं जान लो कि 'ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निष्कलंक हैं; इन बातों की बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा की जाती है; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से कल्याण और सुख प्राप्त होता है', तब तुम्हें इनके अनुसार जीवन जीना चाहिए।"

(1) "कलमास, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में लोभ रहित भावना उत्पन्न होती है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए होती है या उसके लिए हानि के लिए?"

"भंते, उसके कल्याण के लिए।"

"कलमस, एक ऐसा व्यक्ति जो लोभ रहित है, लोभ से ग्रस्त नहीं है, जिसका मन लोभ से ग्रस्त नहीं है, जो जीवन का नाश नहीं करता, जो किसी को नहीं दिया गया है उसे नहीं लेता, किसी दूसरे की पत्नी के साथ दुर्व्यवहार नहीं करता, न ही झूठ बोलता है; और न ही वह दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। [191] क्या इससे उसे लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

(2) "कलमास, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में घृणा का अभाव उत्पन्न होता है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए होता है या उसके लिए हानि के लिए?"

"भंते, उसके कल्याण के लिए।"

"कलमस, वह व्यक्ति जो घृणा से रहित है, घृणा से ग्रस्त नहीं है, जिसका मन घृणा से ग्रस्त नहीं है, जो जीवन का विनाश नहीं करता... न ही वह दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसका दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

(3) "कलमास, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में मोह (अविमुखता) उत्पन्न होती है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए होती है या उसके लिए हानि के लिए?"

"भंते, उसके कल्याण के लिए।"

"कलमस, जो व्यक्ति मोह से मुक्त है, जिसका मन मोह में लीन नहीं है, वह जीवन का विनाश नहीं करता... न ही दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। क्या इससे उसे दीर्घकाल तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

"कलमास, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं या हानिकारक (अकुशल)?" "लाभकारी (कुशल), भंते।" - "निंदनीय या निर्दोष?" "निर्दोष, भंते।" - "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई या प्रशंसा की गई?" - "बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा की गई, भंते।" - "स्वीकृत और पालन किए जाने पर, क्या इनसे कल्याण और सुख प्राप्त होता है या नहीं, या तुम इसे कैसे लेते हो?" - "स्वीकृत और पालन किए जाने पर, इनसे कल्याण और सुख प्राप्त होता है। इसलिए हम इन्हें स्वीकार करते हैं।"

इसलिए, कलामास, जब हमने कहा: 'आओ, कलामास, मौखिक परंपरा पर मत चलो... बल्कि जब तुम स्वयं जान लो: "ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निष्कलंक हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं; ये बातें, यदि स्वीकार की जाएं और अपनाई जाएं, तो कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं," तो तुम्हें [192] उनके अनुसार जीवन जीना चाहिए, इसी कारण यह कहा गया था।

"तब, कलामास, वह श्रेष्ठ शिष्य, जो लालसा से रहित, द्वेष से रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः ज्ञाता, सदा सजग (ध्यानमग्न/सती) है, प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... करुणा से परिपूर्ण मन से... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से... उदासीनता (भीतर लीन/उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह उदासीनता (भीतर लीन/उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है।"

“यह श्रेष्ठ शिष्य, कलामास, जिसका मन इस प्रकार से द्वेष रहित, दुर्भावना रहित, निर्मल और शुद्ध है, ने इसी जीवन में चार आश्वासन प्राप्त कर लिए हैं।”

“उसे जो पहला आश्वासन मिला है, वह यह है: यदि दूसरा लोक है, और यदि अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम होता है, तो संभव है कि शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, मेरा पुनर्जन्म एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गीय लोक में होगा।”

"दूसरी निश्चितता जो उसने प्राप्त की है वह यह है: यदि कोई दूसरा लोक नहीं है, और अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल और परिणाम नहीं है, तब भी यहीं, इसी जीवन में, मैं बिना किसी द्वेष और दुर्भावना के, कष्टों से मुक्त होकर सुख में रहता हूँ।"

“तीसरा आश्वासन जो उसने प्राप्त किया है वह यह है: 'मान लो कि बुराई करने वाले पर बुराई आती है। तो, जब मेरे मन में किसी के प्रति कोई बुरी मंशा नहीं है, तो मुझे कष्ट कैसे हो सकता है, क्योंकि मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है?' 459 ' .

“उसे जो चौथा आश्वासन प्राप्त हुआ है, वह यह है: 'मान लीजिए कि बुराई करने वाले पर कोई बुराई नहीं आती। तब मैं स्वयं को दोनों ही दृष्टियों से शुद्ध पाता हूँ। 460

“इस श्रेष्ठ शिष्य, कलामास, जिसका मन इस प्रकार द्वेष रहित, दुर्भावना रहित, निर्मल और शुद्ध है, ने इसी जीवन में इन चारों आश्वासनों को प्राप्त कर लिया है।” 461

“ऐसा ही है। भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है। सुगत (भगवान बुद्ध)! यह श्रेष्ठ शिष्य जिसका मन इस प्रकार बिना द्वेष, बिना दुर्भावना, निर्मल और शुद्ध है, [193] ने इसी जीवन में चार आश्वासन प्राप्त कर लिए हैं।

“पहली निश्चितता जो उसने प्राप्त की है... [जैसा ऊपर है, नीचे तक:] ... चौथी निश्चितता जो उसने प्राप्त की है वह यह है: 'मान लीजिए कि बुराई करने वाले पर कोई विपत्ति नहीं आती। तब यहीं मैं स्वयं को दोनों दृष्टियों से शुद्ध पाता हूँ/

“यह श्रेष्ठ शिष्य, भंते, जिसका मन इस प्रकार से शत्रुता रहित, द्वेष रहित, निर्मल और शुद्ध है, उसने इसी जीवन में इन चार आश्वासनों को प्राप्त कर लिया है।”

“उत्कृष्ट, भंते! ... हम भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाते हैं। भगवान (बुद्ध) हमें उन गृहस्थ अनुयायियों के रूप में स्वीकार करें जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

67 सलहा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य नंदका पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में रह रहे थे। तब मिगार के पोते सलहा और पेखुनिया के पोते रोहाना पूज्य नंदका के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य नंदका ने सलहा से कहा:

"आओ, सलहा, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, शास्त्रों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमानित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन के बाद किसी मत को स्वीकार करने, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है', मत मानो। परन्तु जब तुम स्वयं जान लो: 'ये बातें हानिकारक (अकुशल) हैं; ये बातें निंदनीय हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा निंदनीय हैं; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से हानि और पीड़ा होती है, तब तुम्हें इन्हें त्याग देना चाहिए।"

(1) "सलाहा, तुम्हें क्या लगता है, क्या लालच है?"

"हां, भंते।"

"मेरा कहना है कि इसका अर्थ है लालसा। एक लालची व्यक्ति, जो लालसा से भरा होता है, जीवन को नष्ट करता है, बिना माँगे चीज़ें ले लेता है, दूसरे की पत्नी के साथ व्यभिचार करता है और झूठ बोलता है; और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट सहना पड़ेगा?"

"हां, भंते।"

(2) "सलहा, तुम्हें क्या लगता है, क्या नफरत है?"

"हां, भंते।"

"मेरा मानना है कि इसका अर्थ दुर्भावना है। घृणा से भरा, दुर्भावना से ग्रसित व्यक्ति जीवन को नष्ट करता है... और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा सहनी पड़ेगी?"

"हां, भंते।"

(3) "सलाहा, तुम्हें क्या लगता है, क्या कोई मोह (मोह) है?"

"हां, भंते।"

"मेरा मानना है कि इसका अर्थ अज्ञान है। अज्ञान में डूबा हुआ भ्रमित व्यक्ति जीवन को नष्ट करता है... और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा सहनी पड़ेगी?"

"हां, भंते।"

"सला, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी (कुसला) हैं या हानिकारक (अकुसला)?" - "हानिकारक (अकुसला), भंते।" - "दोषी या निर्दोष?" - "दोषी, भंते।" - "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई या प्रशंसा की गई?" - "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई, भंते।" - "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, क्या इनसे हानि और पीड़ा होती है या नहीं, या तुम इसे कैसे लेते हो?" [195] - "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, इनसे हानि और पीड़ा होती है। इसलिए हम इसे ग्रहण करते हैं।"

इसलिए, सलहा, जब हमने कहा: "आओ, सलहा, मौखिक परंपरा का अनुसरण मत करो... बल्कि जब तुम स्वयं जान लो: 'ये बातें हानिकारक (अकुसला) हैं; ये बातें निंदनीय हैं; बुद्धिमानों द्वारा इनकी निंदा की जाती है; इन बातों को अपनाने और अभ्यास करने से हानि और पीड़ा होती है', तो तुम्हें इन्हें त्याग देना चाहिए, इसी कारण से यह कहा गया था।"

"आओ, सलहा, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, शास्त्रों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमान आधारित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन के बाद किसी मत को स्वीकार करने, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है' के आधार पर मत चलो। बल्कि जब तुम स्वयं जान लो कि 'ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निष्कलंक हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से कल्याण और सुख प्राप्त होता है,' तब तुम्हें इनके अनुसार जीवन जीना चाहिए।"

(1) "सलाहा, तुम्हारा क्या विचार है, क्या लालच न होना जैसी कोई चीज है?"

"हां, भंते।"

"मेरा मानना है कि इसका अर्थ है लालसा का अभाव। लोभ रहित, लालसा रहित व्यक्ति जीवन का नाश नहीं करता, अनधिकृत वस्तुएँ नहीं लेता, दूसरे की पत्नी के साथ अनैतिक संबंध नहीं बनाता, न ही झूठ बोलता है; और न ही वह दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसे दीर्घकाल तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

(2) "सलाहा, तुम्हारा क्या विचार है, क्या घृणा नहीं होती?"

"हां, भंते।"

"मेरा मानना है कि इसका अर्थ सद्भावना है। एक व्यक्ति जो द्वेष रहित है, सद्भावना से भरा है, वह जीवन का विनाश नहीं करता... न ही वह दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसका कल्याण और सुख दीर्घकाल तक बना रहेगा?"

"हां, भंते।"

(3) "सलाहा, तुम्हारा क्या विचार है, क्या मोह (मोह) नहीं होता?"

"हां, भंते।"

"मेरा कहना है कि इसका अर्थ है सच्चा ज्ञान। एक भ्रममुक्त व्यक्ति, [196] जिसने सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, जीवन का विनाश नहीं करता... न ही वह दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसका कल्याण और सुख लंबे समय तक बना रहेगा?"

"हां, भंते।"

"सलाह, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं या हानिकारक (अकुशल)?" "लाभकारी (कुशल), भंते-" - "दोषी या निर्दोष?" - "निर्दोष, भंते।" "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई या प्रशंसा की गई?" - "बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा की गई, भंते।" - "स्वीकृत और अपनाई गई, क्या इनसे कल्याण और सुख प्राप्त होता है या नहीं, या तुम इसे कैसे लेते हो?" - "स्वीकृत और अपनाई गई, इन बातों से कल्याण और सुख प्राप्त होता है। इसलिए हम इन्हें अपनाते हैं।"

इसलिए, सलहा, जब हमने कहा: 'आओ, सलहा, मौखिक परंपरा का अनुसरण मत करो... बल्कि जब तुम स्वयं जान लो: "ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निर्दोष हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं; ये बातें, यदि स्वीकार की जाएं और अपनाई जाएं, तो कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं," तो तुम्हें इनके अनुसार जीवन जीना चाहिए, इसीलिए यह कहा गया था।

"तब, सलहा, वह श्रेष्ठ शिष्य, जो इस प्रकार लालसा से रहित, द्वेष से रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः ज्ञाता, सदा सजग (ध्यानमग्न/सती) है, प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... करुणा से परिपूर्ण मन से... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से... उदासीनता से परिपूर्ण (भीतर समाहित/उपेक्खा) मन से, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह उदासीनता से परिपूर्ण (भीतर समाहित/उपेक्खा) मन से, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से, समस्त संसार में व्याप्त रहता है।"

तब वह इस प्रकार समझता है: 'यह है; निम्न है; उच्च है; और जो कुछ भी बोध (सन्ना/संग्य) से संबंधित है, उससे आगे भी मुक्ति है।' 462 जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन कामुकता के दोष से, अस्तित्व के दोष (भावो/पुनर्जन्म का कारण) से और अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। [197] जब वह मुक्त हो जाता है, तो यह ज्ञान प्राप्त होता है: '[यह] मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

वह इस प्रकार समझता है: 'पहले लोभ था; वह हानिकारक (अकुशल) था। अब लोभ नहीं है; इसलिए यह लाभकारी (कुशल) है। पहले घृणा थी; वह हानिकारक (अकुशल) थी। अब लोभ नहीं है; इसलिए यह लाभकारी (कुशल) है। पहले मोह था; वह हानिकारक (अकुशल) था। अब मोह नहीं है; इसलिए यह लाभकारी (कुशल) है।' ...

"इस प्रकार इसी जीवन में वह भूख से मुक्त होकर, तृप्त और शांत होकर, परमानंद का अनुभव करता है, स्वयं दिव्य बन जाता है।" 463

बातचीत के 68 आधार (कथावत्थु)

भिक्षुओं, बातचीत के ये तीन आधार हैं। वे तीन क्या हैं? (1) अतीत का जिक्र करते हुए, कोई कहेगा: 'ऐसा अतीत में था' (2) भविष्य का जिक्र करते हुए, कोई कहेगा: 'ऐसा भविष्य में होगा' (3) वर्तमान का जिक्र करते हुए, कोई कहेगा: 'ऐसा अभी, इस समय है।'

भिक्षुओं, बातचीत के संदर्भ में ही किसी व्यक्ति को बातचीत के योग्य या अयोग्य समझा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति से कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर स्पष्ट रूप से दिया जाना चाहिए और वह स्पष्ट रूप से उत्तर न दे; यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर भेद करके दिया जाना चाहिए और वह भेद किए बिना उत्तर दे; यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर प्रतिप्रश्न के साथ दिया जाना चाहिए और वह प्रतिप्रश्न पूछे बिना उत्तर दे; यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसे अलग रखा जाना चाहिए और वह उसे अलग न रखे, तो ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति बातचीत के योग्य नहीं है। 464

लेकिन यदि इस व्यक्ति से कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर स्पष्ट रूप से दिया जाना चाहिए और वह स्पष्ट रूप से उत्तर दे; [यदि उससे] कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर भेद करने के बाद दिया जाना चाहिए और वह भेद करने के बाद उत्तर दे; [यदि उससे] कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसका उत्तर प्रतिप्रश्न के साथ दिया जाना चाहिए और वह प्रतिप्रश्न के साथ उत्तर दे; [यदि उससे] कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए जिसे अलग रखा जाना चाहिए और वह उसे अलग रख दे, तो ऐसी स्थिति में यह व्यक्ति बोलने के योग्य है।

भिक्षुओं, बातचीत के संदर्भ में ही किसी व्यक्ति को बातचीत के योग्य या अयोग्य समझा जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह अपने पक्ष और विरोधी पक्ष के प्रति दृढ़ न रहे; यदि वह अपनी रणनीति पर अडिग न रहे; यदि वह ज्ञात तथ्य के बारे में अपने कथन पर अडिग न रहे; यदि वह प्रक्रिया पर अडिग न रहे, तो ऐसे में वह व्यक्ति बातचीत के योग्य नहीं है।

लेकिन यदि इस व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाता है और वह अपनी स्थिति और विरोधी स्थिति के संबंध में दृढ़ रहता है; यदि वह अपनी रणनीति में दृढ़ रहता है; यदि वह ज्ञात तथ्य के बारे में अपने कथन में दृढ़ रहता है; यदि वह प्रक्रिया में दृढ़ रहता है, तो ऐसे मामले में यह व्यक्ति बोलने के योग्य है।

भिक्षुओं, बातचीत के संदर्भ में ही किसी व्यक्ति को बातचीत के योग्य या अयोग्य समझा जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह टालमटोल वाला उत्तर दे, चर्चा को अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ दे और क्रोध, घृणा और कटुता प्रदर्शित करे, तो ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति बातचीत के अयोग्य है।

लेकिन अगर इस व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाता है और वह टालमटोल वाला जवाब नहीं देता, चर्चा को किसी अप्रासंगिक विषय की ओर नहीं मोड़ता, या क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करता, तो ऐसे मामले में यह व्यक्ति बात करने के योग्य है।

भिक्षुओं, बातचीत के संदर्भ में ही किसी व्यक्ति को बातचीत के योग्य या अयोग्य समझा जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह प्रश्नकर्ता को अभिभूत कर दे, उसे कुचल दे, उसका उपहास करे और उसकी किसी छोटी सी गलती को पकड़ ले, तो 466 ऐसे मामले में वह व्यक्ति बातचीत के अयोग्य है।

लेकिन अगर इस व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाता है और वह [प्रश्नकर्ता को] अभिभूत नहीं करता, न ही उसे कुचलता है, न ही उसका उपहास करता है, न ही उसकी किसी मामूली गलती को पकड़ता है, तो ऐसे मामले में यह व्यक्ति बोलने के योग्य है।

भिक्षुओं, बातचीत के संदर्भ में ही किसी व्यक्ति को सहायक अवस्था वाला या सहायक अवस्था वाला समझा जाना चाहिए। जो व्यक्ति ध्यान से नहीं सुनता, वह सहायक अवस्था में नहीं होता; जो सुनता है, वह सहायक अवस्था में होता है। सहायक अवस्था वाला व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से एक बात को जानता है, एक बात को पूर्णतः समझता है, एक बात का त्याग करता है और एक बात को अनुभव करता है। प्रत्यक्ष रूप से एक बात को जानकर, एक बात को पूर्णतः समझकर, एक बात का त्याग करके और एक बात को अनुभव करके ही वह सही मोक्ष प्राप्त करता है। 467

"यही, भिक्षुओं, वार्ता का लक्ष्य है, चर्चा का लक्ष्य है, सहायक स्थिति का लक्ष्य है, सुनने का लक्ष्य है, अर्थात् अनासक्ति के माध्यम से मन की मुक्ति।" [199]

जो लोग झगड़ालू इरादे से बोलते हैं,

अपनी राय में अड़े रहते हैं, अभिमान से फूले हुए होते हैं,

नीच होते हैं, सद्गुणों पर हमला करते हैं, 468

एक दूसरे पर हमला करने के अवसर तलाशते हैं।

जब उनका विरोधी

बुरी बातें बोलता है और गलती करता है तो वे आपस में प्रसन्न होते हैं,

उसकी घबराहट और हार पर खुशी मनाते हैं;

लेकिन श्रेष्ठ जन ऐसी बातों में शामिल नहीं होते।

यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति उचित समय जानकर,

बिना झगड़ालू या अहंकारी हुए, बोलना चाहे , तो उसे श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा अपनाए जाने वाले, धम्म और अर्थ से जुड़े वचन

बोलने चाहिए ।469

वह उद्दंड या आक्रामक नहीं होता,

उसका मन घमंडी नहीं होता, और

वह ईर्ष्या से मुक्त होकर

सही ज्ञान के आधार पर बोलता है।

उसे अच्छी तरह से व्यक्त की गई बातों की सराहना करनी चाहिए

, लेकिन बुरी तरह से कही गई बातों पर हमला नहीं करना चाहिए।

उसे

दूसरों की कमियां निकालने का अभ्यास नहीं करना चाहिए, न ही उनकी गलतियों को उजागर करना चाहिए;

उसे अपने प्रतिद्वंदी को दबाना या कुचलना नहीं चाहिए,

न ही झूठे शब्द बोलने चाहिए।

वास्तव में, अच्छे लोगों के बीच चर्चा

ज्ञान और आत्मविश्वास के लिए होती है।

उच्च वर्ग के लोग इसी प्रकार चर्चा करते हैं;

यही उच्च वर्ग के लोगों की चर्चा है।

यह समझकर बुद्धिमान व्यक्ति को

अहंकार नहीं करना चाहिए, बल्कि चर्चा करनी चाहिए।

---

69 अन्य संप्रदाय (अन्नतित्थिया)

भिक्षु (सन्यासी), अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछ सकते हैं: 'मित्रों, ये तीन चीजें हैं। कौन सी तीन? लोभ, घृणा और मोह। ये तीन हैं। मित्रों, इनके बीच क्या भेद, क्या अंतर, क्या फर्क है?' यदि आपसे यह पूछा जाए, तो आप क्या उत्तर देंगे?'

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

“तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।” “जी, भंते,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे ऐसा प्रश्न पूछें, [200] तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, कामवासना (राग) थोड़ी निंदनीय है परन्तु धीरे-धीरे मिटती है; घृणा बहुत निंदनीय है परन्तु शीघ्र मिटती है; मोह (मोह) बहुत निंदनीय है और धीरे-धीरे मिटती है।" 171

(1) "[मान लीजिए वे पूछते हैं:] 'लेकिन, मित्रों, अजन्मी कामवासना क्यों उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामवासना क्यों बढ़ती और फैलती है?' आपको उत्तर देना चाहिए: 'आकर्षक वस्तु। जो व्यक्ति लापरवाही से आकर्षक वस्तु पर ध्यान देता है, उसकी अजन्मी कामवासना उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है। मित्रों, यही अजन्मी कामवासना उत्पन्न होने और उत्पन्न कामवासना बढ़ने और फैलने का कारण है।'

(2) "[मान लीजिए वे पूछते हैं:] लेकिन हे मित्रों, अजन्मी घृणा (दोष संस्कृत: द्वेष) के उत्पन्न होने और उत्पन्न घृणा के बढ़ने और फैलने का कारण क्या है? आपको उत्तर देना चाहिए: 'एक घृणित वस्तु। जो व्यक्ति लापरवाही से किसी घृणित वस्तु पर ध्यान देता है, उसमें अजन्मी घृणा उत्पन्न होती है और उत्पन्न घृणा बढ़ती और फैलती है। हे मित्रों, यही कारण है कि अजन्मी घृणा उत्पन्न होती है और उत्पन्न घृणा बढ़ती और फैलती है।"

(3) "[मान लीजिए वे पूछते हैं:] 'लेकिन हे मित्रों, अजन्मा मोह (मोह) क्यों उत्पन्न होता है और उत्पन्न मोह (मोह) क्यों बढ़ता और फैलता है?' आपको उत्तर देना चाहिए: 'लापरवाह ध्यान। जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसके लिए अजन्मा मोह (मोह) उत्पन्न होता है और उत्पन्न मोह (मोह) क्यों बढ़ता और फैलता है। हे मित्रों, यही कारण है कि अजन्मा मोह (मोह) उत्पन्न होता है और उत्पन्न मोह (मोह) क्यों बढ़ता और फैलता है।"

(1) "[मान लीजिए वे पूछते हैं:] 'लेकिन हे मित्रों, अजन्मी कामवासना क्यों नहीं उठती और उठी हुई कामवासना क्यों त्याग दी जाती है?' आपको उत्तर देना चाहिए: 'एक अप्रिय वस्तु। जो व्यक्ति अप्रिय वस्तु पर ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसकी अजन्मी कामवासना नहीं उठती और उठी हुई कामवासना त्याग दी जाती है। हे मित्रों, यही कारण है कि अजन्मी कामवासना नहीं उठती और उठी हुई कामवासना त्याग दी जाती है।

(2) "[मान लीजिए वे पूछते हैं:] 'लेकिन हे मित्रों, इसका क्या कारण है कि अजन्मा द्वेष (दोष संस्कृत: द्वेष) उत्पन्न होता है और उत्पन्न द्वेष का त्याग हो जाता है?' आपको उत्तर देना चाहिए: 'प्रेमपूर्ण करुणा द्वारा मन की मुक्ति। जो व्यक्ति प्रेमपूर्ण करुणा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति पर ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके लिए अजन्मा द्वेष उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न द्वेष का त्याग हो जाता है। हे मित्रों, यही कारण है कि अजन्मा द्वेष उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न द्वेष का त्याग हो जाता है।'

(3) "[मान लीजिए वे पूछते हैं: 'लेकिन हे मित्रों, इसका क्या कारण है कि अजन्मा मोह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न मोह का त्याग हो जाता है?' आपको उत्तर देना चाहिए: 'सावधानीपूर्वक ध्यान देना। जो व्यक्ति ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके लिए अजन्मा मोह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न मोह का त्याग हो जाता है। हे मित्रों, यही कारण है कि अजन्मा मोह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न मोह का त्याग हो जाता है।'"

ध्यान दें: यहाँ कामवासना (राग) का अर्थ सांसारिक वस्तुओं (वस्तुओं, प्राणियों/लोगों आदि) के प्रति आकर्षण है। द्वेष (दोष, संस्कृत: द्वेष) का अर्थ सांसारिक चीजों से अरुचि है और मोह (मोह) का अर्थ अंधा मन, भ्रमित मन (अर्थात वह व्यक्ति जो मानता है कि यह संसार और इसके सुख वांछनीय हैं) है।

हानि के 70 मूल कारण (अकुसला-मूला)

"भिक्खुओं (भिक्षुओं), ये तीन हानिकारक (अकुसल) जड़ें हैं। कौन सी तीन? हानिकारक (अकुसल) जड़, लालच (लोभो); हानिकारक (अकुसल) जड़, घृणा (दोसो सं. दवेश); और हानिकारक (अकुसल) जड़, भ्रम (मोह)।

(1) भिक्षुओं, जो भी लोभ उत्पन्न होता है, वह हानिकारक (अकुशल) है। लोभग्रस्त व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से जो भी कर्म करता है, वह भी हानिकारक (अकुशल) है। जब लोभग्रस्त व्यक्ति, लोभ से ग्रस्त होकर, मन से लोभित होकर, किसी दूसरे को झूठे बहाने से कष्ट

पहुँचाता है—हत्या, कारावास, ज़ब्ती, निंदा या निर्वासन द्वारा—यह सोचकर कि: मैं शक्तिशाली हूँ, मुझे शक्ति चाहिए—तो वह भी हानिकारक (अकुशल) है। इस प्रकार, लोभ से उत्पन्न, लोभ के कारण, लोभ से उत्पन्न और लोभ से ग्रस्त अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) उसमें उत्पन्न होते हैं।

(2) “जो भी घृणा (दोष संस द्वेष) उत्पन्न होती है, वह हानिकारक (अकुसल) है। घृणा से परिपूर्ण व्यक्ति द्वारा शरीर, वाणी और मन से किया गया प्रत्येक कर्म भी हानिकारक (अकुसल) है। जब घृणा से परिपूर्ण व्यक्ति, घृणा से ग्रस्त होकर, मन में घृणा का भाव रखकर, किसी दूसरे को यह सोचकर कष्ट पहुँचाता है कि: मैं शक्तिशाली हूँ, [202] मुझे शक्ति चाहिए, तो वह भी हानिकारक (अकुसल) है। इस प्रकार, घृणा से उत्पन्न, घृणा के कारण, घृणा से प्रेरित और घृणा से ग्रस्त अनेक हानिकारक (अकुसल) गुण उसमें उत्पन्न होते हैं।

(3) "जो भी मोह उत्पन्न होता है, वह अकुशल होता है। जो भी कर्म मोहग्रस्त व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से करता है, वह भी अकुशल होता है। जब कोई मोहग्रस्त व्यक्ति मोह से ग्रस्त होकर, मन में मोह मग्न होकर, किसी झूठे बहाने से दूसरे को कष्ट पहुँचाता है... [यह सोचकर]: 'मैं शक्तिशाली हूँ, मुझे शक्ति चाहिए,' तो वह भी अकुशल होता है। इस प्रकार, मोह से उत्पन्न अनेक अकुशल गुण उसमें उत्पन्न होते हैं; जो मोह के कारण होते हैं, मोह से उत्पन्न होते हैं और मोह से ग्रस्त होते हैं। "ऐसे व्यक्ति को, भिक्षुओं, अनुचित समय पर बोलने वाला, झूठ बोलने वाला, अनुत्पादक, अधार्मिक (गलत मार्ग पर चलने वाला) और अनुशासनहीन बोलने वाला कहा जाता है। और ऐसे व्यक्ति को अनुचित समय पर बोलने वाला क्यों कहा जाता है..." अनुशासनहीनता की बात कौन करता है? यह व्यक्ति हत्या, कारावास, संपत्ति ज़ब्ती, निंदा या देश निकाला जैसे झूठे बहाने बनाकर दूसरे पर अत्याचार करता है - यह सोचकर कि: मैं शक्तिशाली हूँ, मुझे शक्ति चाहिए। इसी प्रकार, जब उससे तथ्यों के अनुसार बात की जाती है, तो वह [निंदा करने वाले को] तुच्छ समझता है, वह [अपनी गलतियों को] स्वीकार नहीं करता। जब उससे तथ्यों के विपरीत बात की जाती है, तो वह कही गई बात को समझने का प्रयास नहीं करता।

'इस कारण से यह असत्य है; इस कारण से यह तथ्य के विपरीत है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को अनुचित समय पर बोलने वाला, झूठ बोलने वाला, लाभहीन बोलने वाला, गैर-धम्म (गलत मार्ग) पर चलने वाला और अनुशासनहीन बोलने वाला कहा जाता है।'

"ऐसा व्यक्ति, जो लोभ से उत्पन्न अकुशल गुणों (धम्म) से ग्रस्त है, ... मोह से उत्पन्न गुणों (मोह) से ग्रस्त है, और जिसका मन इन गुणों से ग्रस्त है, वह इसी जीवन में कष्ट, पीड़ा, व्यथा और बुखार में लीन रहता है, और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक बुरा गंतव्य अपेक्षित है।"

मान लीजिए कि एक वृक्ष 473 तीन मलुवा लताओं से घिरा हुआ है। उस पर विपत्ति और विपत्ति दोनों ही विपत्तियाँ आएँगी। ठीक इसी प्रकार, लोभ [203] से उत्पन्न, घृणा से उत्पन्न, मोह (मोह) से उत्पन्न, अकुशल गुणों (धम्म) से ग्रस्त व्यक्ति, जिसका मन इन गुणों से ग्रस्त है, इसी जीवन में कष्ट, पीड़ा, व्यथा और बुखार में लीन रहता है, और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक बुरा गंतव्य निश्चित है। ये तीन अकुशल जड़ें हैं।

भिक्षुओं, ये तीन लाभकारी (कुशल) मूल हैं। वे तीन कौन से हैं? लाभकारी (कुशल) मूल, लोभ रहित होना; लाभकारी (कुशल) मूल, घृणा रहित होना; और लाभकारी (कुशल) मूल, मोह रहित होना।

(1) भिक्षुओं, जो कुछ भी लोभ रहित होता है, वह लाभकारी (कुशल) है। जो भी कर्म लोभ रहित व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से करता है, वह भी लाभकारी (कुशल) है। जब लोभ रहित व्यक्ति, लोभ से ग्रस्त न होकर, लोभ से ग्रस्त मन से रहित होकर, किसी दूसरे को झूठे बहाने से – हत्या, कारावास, ज़ब्ती, निंदा या निर्वासन द्वारा – यह सोचकर कष्ट नहीं पहुँचाता कि 'मैं शक्तिशाली हूँ, मुझे शक्ति चाहिए', तो वह भी लाभकारी (कुशल) है। इस प्रकार अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उसमें उत्पन्न होते हैं, जो लोभ रहित होने से उत्पन्न होते हैं, लोभ रहित होने के कारण होते हैं, लोभ रहित होने से उत्पन्न होते हैं और लोभ रहित होने की स्थिति से उत्पन्न होते हैं।

(2) “जो कुछ भी घृणा रहित होता है, वह लाभकारी (कुशल) है। जो भी कर्म घृणा रहित व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से करता है, वह भी लाभकारी (कुशल) है। जब कोई घृणा रहित व्यक्ति, घृणा से ग्रस्त हुए बिना, और घृणा से प्रेरित हुए बिना, किसी झूठे बहाने से दूसरे

को कष्ट नहीं पहुँचाता... तो वह भी लाभकारी (कुशल) है। इस प्रकार, घृणा रहित, घृणा रहित, घृणा रहित से उत्पन्न और घृणा रहित से बद्ध अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उसमें उत्पन्न होते हैं।"

(3) "जो कुछ भी मोहहीनता से उत्पन्न होता है, वह लाभकारी (कुशल) है। जो व्यक्ति मोहहीन है, वह शरीर, वाणी और मन से जो भी कर्म करता है, वह भी लाभकारी (कुशल) है। जब कोई व्यक्ति मोहहीन होकर, मोह से ग्रस्त हुए बिना, किसी झूठे बहाने से दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाता, तो वह भी लाभकारी (कुशल) है। इस प्रकार [204] अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उसमें उत्पन्न होते हैं, जो मोहहीनता से उत्पन्न होते हैं, मोहहीनता से उत्पन्न होते हैं, मोहहीनता से व्युत्पन्न होते हैं और मोहहीनता से वातानुकूलित होते हैं।"

भिक्षुओं, ऐसे व्यक्ति को उचित समय पर बोलने वाला, तथ्यों के अनुसार बोलने वाला, लाभकारी वचन बोलने वाला, धर्म का उपदेश देने वाला और अनुशासन का उपदेश देने वाला कहा जाता है। और ऐसे व्यक्ति को उचित समय पर बोलने वाला और अनुशासन का उपदेश देने वाला क्यों कहा जाता है? यह व्यक्ति किसी दूसरे को झूठे बहाने से कष्ट नहीं पहुँचाता—हत्या, कारावास, संपत्ति ज़ब्त करना, निंदा करना या देश निकाला देना—यह सोचकर कि मैं शक्तिशाली हूँ, मुझे शक्ति चाहिए। इस प्रकार, जब तथ्यों के अनुसार उससे बात की जाती है, तो वह अपनी गलतियों को स्वीकार करता है; वह निंदा करने वाले का तिरस्कार नहीं करता। जब तथ्यों के विपरीत बात की जाती है, तो वह कही गई बात को स्पष्ट करने का प्रयास करता है: फलाँ-फलाँ कारण से यह असत्य है; फलाँ-फलाँ कारण से यह तथ्यों के विपरीत है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को उचित समय पर बोलने वाला, तथ्यों के अनुसार बोलने वाला, लाभकारी वचन बोलने वाला, धर्म का उपदेश देने वाला और अनुशासन का उपदेश देने वाला कहा जाता है।

ऐसा व्यक्ति लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न अकुशल गुणों को जड़ से त्याग देता है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर देता है, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। वह इसी जीवन में सुखपूर्वक रहता है, बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के, और इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

मान लीजिए कि एक पेड़ तीन मलुवा लताओं से घिरा हुआ है। फिर एक आदमी फावड़ा और टोकरी लेकर आता है। वह लताओं को जड़ से काट देता है, उन्हें खोदकर निकाल लेता है और उनकी जड़ों को, यहाँ तक कि उनकी छोटी-छोटी जड़ों और रेशों को भी, खींचकर निकाल लेता है। वह लताओं को टुकड़ों में काटता है, टुकड़ों को फाड़ता है और उन्हें पतले टुकड़ों में बदल देता है। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाता है, आग में जलाता है, [205] उन्हें राख में बदल देता है और राख को तेज हवा में उड़ा देता है या नदी की तेज धारा में बहा देता है। इस तरह, वे मलुवा लताएँ जड़ से कट जाती हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाती हैं ताकि वे भविष्य में फिर से न उग सकें।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ऐसा व्यक्ति लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न अकुशल गुणों (धम्म) को जड़ से त्याग देता है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर देता है, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। वह इसी जीवन में सुखपूर्वक रहता है, बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के, और इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करता है। ये तीन लाभकारी (कुशल) मूल हैं।"

---

71 उपोसथा (उपवास)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब उपोसथ के दिन विशाखा मिगारमाता भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"विशाखा, तुम दिन के बीच में क्यों आ गई हो?"

"आज भंते, मैं उपोसथ व्रत कर रहा हूँ।"

"विशाखा, उपोसथ तीन प्रकार के होते हैं। वे तीन कौन से हैं? ग्वालों का उपोसथ, निगंथों (जैनों) का उपोसथ, 474 और कुलीनों का उपोसथ।"

(1) "हे विशाखा, ग्वालों का उपोसथा कैसे देखा जाता है? मान लीजिए, विशाखा, शाम को एक ग्वाला गायों को उनके मालिकों को लौटाता है। वह इस प्रकार सोचता है: 'आज गायें फलाँ स्थान पर चरीं और फलाँ स्थान पर पानी पिया। कल गायें फलाँ स्थान पर चरेंगी और फलाँ स्थान पर पानी पिएंगी।' इसी प्रकार, यहाँ उपोसथा का अवलोकन करने वाला कोई व्यक्ति इस प्रकार सोचता है: 'आज मैंने यह और वह भोजन खाया; आज मैंने इस और उस प्रकार का भोजन किया। [206] कल मैं यह और वह भोजन खाऊँगा; कल मैं इस और उस प्रकार का भोजन करूँगा।' इस प्रकार वह दिन भर मन में लोभ और लालसा लिए रहता है। इसी प्रकार ग्वालों का उपोसथा देखा जाता है। इस प्रकार देखा गया ग्वालों का उपोसथा न तो बहुत फलदायी और लाभदायक है, न ही असाधारण रूप से उज्ज्वल और व्यापक है।

(2) "हे विशाखा, निगंथों (जैनों) का उपोसत कैसे मनाया जाता है? हे विशाखा, निगंथ (जैन) नामक तपस्वी हैं। वे अपने शिष्यों को इस प्रकार आदेश देते हैं: 'हे हे जन, पूर्व दिशा में सौ योजन से अधिक दूरी पर रहने वाले जीवों के प्रति हिंसा का दंड त्याग दो। पश्चिम दिशा में सौ योजन से अधिक दूरी पर रहने वाले जीवों के प्रति हिंसा का दंड त्याग दो। उत्तर दिशा में सौ योजन से अधिक दूरी पर रहने वाले जीवों के प्रति हिंसा का दंड त्याग दो। दक्षिण दिशा में सौ योजन से अधिक दूरी पर रहने वाले जीवों के प्रति हिंसा का दंड त्याग दो।' इस प्रकार वे उन्हें कुछ जीवों के प्रति सहानुभूति और करुणा रखने का आदेश देते हैं, लेकिन दूसरों के प्रति नहीं। उपोसत के दिन, वे अपने शिष्यों को इस प्रकार आदेश देते हैं: 'हे हे जन, सभी वस्त्र त्यागकर यह पाठ करो: 'मैं कहीं भी किसी का नहीं हूँ, और न ही कहीं भी किसी का कुछ है जो मेरा हो।' मेरा। 476 परन्तु उसके माता-पिता जानते हैं: 'यह हमारा पुत्र है' और वह जानता है: 'ये मेरे माता-पिता हैं।' उसकी पत्नी और बच्चे जानते हैं: 'यह हमारा सहारा है' और वह जानता है: 'ये मेरी पत्नी और बच्चे हैं।' उसके दास, श्रमिक और सेवक जानते हैं: 'यह हमारा स्वामी है' और वह जानता है: 'ये मेरे दास, श्रमिक और सेवक हैं।' इस प्रकार, जब उन्हें सत्य का पालन करने का आदेश दिया जाना चाहिए, तब निगंथ उन्हें झूठी बातें करने का आदेश देते हैं। मैं कहता हूँ, यह झूठी बातें हैं। जब वह रात बीत जाती है, तो वह उन वस्तुओं का उपयोग करता है जो उसे दी नहीं गई हैं। मैं कहता हूँ, यह वह लेना है जो दिया नहीं गया है (चोरी)। निगंथों के उपोसथा का पालन इसी प्रकार किया जाता है। जब कोई निगंथों के मार्ग में उपोसथा का पालन करता है, तो वह उपोसथा न तो बहुत फलदायी और लाभकारी होती है, न ही असाधारण रूप से तेजस्वी और व्यापक होती है।

(3) "हे विशाखा, श्रेष्ठों (बुद्धों के मार्ग) का उपोसथा कैसे किया जाता है? [207] परिश्रम से दूषित मन शुद्ध होता है। 477 और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' जब एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है, और मन के दोष उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे किसी का सिर, जब गंदा होता है, परिश्रम से शुद्ध हो जाता है।

"और हे विशाखा, परिश्रम से गंदे सिर को कैसे साफ किया जाता है? शुद्धिकरण के लिए लेप, मिट्टी, जल और व्यक्ति के उचित प्रयास से। इसी प्रकार, जब सिर गंदा होता है, तो परिश्रम से साफ होता है। इसी प्रकार, दूषित मन भी परिश्रम से साफ होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे साफ होता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करता है: 'भगवान (बुद्ध) ...देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। जब एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसे ब्रह्मा के उपोसथ का अवलोकन करने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है, जो ब्रह्मा के साथ निवास करता है, और ब्रह्मा का ध्यान करने से ही उसका मन शांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं।" 478 इसी प्रकार परिश्रम द्वारा दूषित मन शुद्ध होता है।

"विशाखा, दूषित मन परिश्रम से शुद्ध होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? यहाँ, विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग) का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म का भली-भांति वर्णन किया गया है, यह प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है, और मन के दोष [208] उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे शरीर, जब गंदा होता है, परिश्रम से शुद्ध हो जाता है।"

"हे विशाखा, परिश्रम से गंदे शरीर को कैसे शुद्ध किया जाता है? स्नान करने वाले ब्रश, चूने के पाउडर, जल और व्यक्ति के उचित प्रयास से। इसी प्रकार, जब शरीर गंदा होता है, तो परिश्रम से शुद्ध होता है। इसी प्रकार, दूषित मन भी परिश्रम से शुद्ध होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? हे विशाखा, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है', जिसे ज्ञानी स्वयं अनुभव कर सकते हैं। जब एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसे धम्म के उपोसथ का पालन करने वाला, धम्म के साथ रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है, और धम्म का चिंतन करने से ही उसका मन शांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार परिश्रम से दूषित मन शुद्ध होता है।"

"हे विशाखा, दूषित मन परिश्रम से शुद्ध होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्तियों का, आठ प्रकार के व्यक्तियों का - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है, और मन के दोष उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे एक गंदा कपड़ा परिश्रम से साफ हो जाता है।"

"और हे विशाखा, परिश्रम से गंदे कपड़े को कैसे साफ किया जाता है? [209] ऊष्मा, क्षार, गोबर, जल और व्यक्ति के उचित प्रयास से। इसी प्रकार परिश्रम से गंदा कपड़ा साफ होता है। उसी प्रकार, दूषित मन परिश्रम से साफ होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे साफ होता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अभ्यास कर रहा है... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र। जब एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसे संघ के उपोसथ का अवलोकन करने वाला, संघ के साथ रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है, और संघ का चिंतन करने से ही उसका मन शांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार दूषित मन को शुद्ध किया जाता है।" परिश्रम द्वारा शुद्ध किया गया।

"हे विशाखा, दूषित मन परिश्रम से शुद्ध होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, जो अटूट, दोषरहित, निर्मल, बेदाग, मुक्तिदायक, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-मग्नता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के दोष उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे परिश्रम से गंदा दर्पण साफ हो जाता है।"

"और हे विशाखा, परिश्रम से गंदा दर्पण कैसे साफ होता है? तेल, राख, कपड़े के रोल और व्यक्ति के उचित प्रयास से। इसी प्रकार परिश्रम से गंदा दर्पण साफ होता है। उसी प्रकार, दूषित मन परिश्रम से साफ होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे साफ होता है? [210] हे विशाखा, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य अपने निरंतर पुण्य कर्मों का स्मरण करता है... जिससे समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त होती है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य अपने पुण्य कर्मों का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो पुण्य कर्मों के उपोसथ का पालन करता है, जो पुण्य कर्मों के साथ रहता है, और पुण्य कर्मों का चिंतन करने से ही उसका मन शांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार परिश्रम से दूषित मन साफ होता है।"

"हे विशाखा, दूषित मन परिश्रम से शुद्ध होता है। और परिश्रम से दूषित मन कैसे शुद्ध होता है? यहाँ, विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य देवताओं का स्मरण करते हुए कहते हैं: 'चार महान राजाओं द्वारा शासित देवता हैं, तावतिंसा देवता, यम देवता, तुषिता देवता, सृष्टि में आनंदित होने वाले देवता, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवता, ब्रह्मा के साथ रहने वाले देवता, और इनसे भी उच्चतर देवता। 479 मुझे भी उन देवताओं के समान ही आस्था है, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ; मुझमें भी ऐसा ही सद्गुण है... ऐसा ही ज्ञान है... ऐसी ही उदारता है।" उन देवताओं (देवदूतों) के पास ऐसा ही दिव्य ज्ञान था, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ। जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने और उन देवताओं (देवदूतों) में निहित आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और दिव्य ज्ञान का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के दोष उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे परिश्रम से अशुद्ध सोना शुद्ध हो जाता है।

"और हे विशाखा, अशुद्ध सोने को परिश्रम से कैसे शुद्ध किया जाता है? भट्टी, नमक, लाल चाक, फूंक मारने वाली पाइप और चिमटे की सहायता से, और व्यक्ति के उचित प्रयास से। इसी प्रकार अशुद्ध सोने को परिश्रम से शुद्ध किया जाता है। उसी प्रकार, दूषित मन को भी परिश्रम से शुद्ध किया जाता है। [211] और दूषित मन को परिश्रम से कैसे शुद्ध किया जाता है? यहाँ, हे विशाखा, एक श्रेष्ठ शिष्य देवताओं (देवदूतों) का स्मरण करते हुए कहते हैं: 'चार महान राजाओं द्वारा शासित देवता (देवदूत/देवता) हैं... और इनसे भी ऊँचे देवता (देवदूत/देवता) हैं। मुझमें भी ऐसा ही विश्वास... ऐसा ही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) है जैसा उन देवताओं (देवदूतों) के पास था, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने और उन देवताओं में विद्यमान आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का स्मरण करता है, तो उसका मन शांत हो जाता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो देवताओं (देवदूतों) के उपोसथा का अवलोकन करता है, जो देवताओं (देवदूतों) के साथ निवास करता है, और देवताओं (देवदूतों) का ध्यान करने से ही उसका मन शांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और मन के विकार दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार परिश्रम से दूषित मन शुद्ध होता है।

(i) "इस महान शिष्य, विशाखा, ने इस प्रकार चिंतन किया: 480 'जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे जीवन-हत्या का त्याग करते हैं और उससे दूर रहते हैं; दंड (हिंसा) और शस्त्र को त्यागकर, वे विवेकशील और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से निवास करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी जीवन-हत्या का त्याग करूंगा और उससे दूर रहूंगा; दंड (हिंसा) और शस्त्र को त्यागकर, मैं भी विवेकशील और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से निवास करूंगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूंगा और उपोसथ का पालन करूंगा।'

(ii) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज़ करते हैं; वे केवल दी हुई वस्तुएँ ही लेते हैं, केवल दी हुई वस्तुओं की ही अपेक्षा करते हैं, और हृदय से ईमानदार होते हैं, चोरी से रहित होते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज़ करूँगा; मैं केवल दी हुई वस्तुएँ ही स्वीकार करूँगा, केवल दी हुई वस्तुओं की ही अपेक्षा करूँगा, और हृदय से ईमानदार रहूँगा, चोरी से रहित। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।"

(hi) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे यौन क्रिया का त्याग करते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, अलग रहते हैं, यौन संबंध से परहेज करते हैं, जो आम आदमी का अभ्यास है। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी यौन क्रिया का त्याग करूँगा और ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, अलग रहूँगा, यौन संबंध से परहेज करूँगा, जो आम आदमी का अभ्यास है। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा। [212]

(iv) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे झूठे वचनों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं; वे सत्य बोलते हैं, सत्य का पालन करते हैं; वे विश्वसनीय और भरोसेमंद होते हैं, संसार को धोखा नहीं देते। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी झूठे वचनों का त्याग करूँगा और उनसे दूर रहूँगा; मैं सत्य का वक्ता और सत्य का अनुयायी बनूँगा, विश्वसनीय और भरोसेमंद बनूँगा, संसार को धोखा नहीं दूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।"

(v) "अरहंत जीवन भर आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं। आज रात-दिन मैं भी आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करूँगा और उनसे दूर रहूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।"

(6) "अरहंत जीवन भर दिन में एक बार भोजन करते हैं, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी दिन में एक बार भोजन करूँगा, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।"

(vii) "अरहंत जब तक जीवित रहते हैं, वे नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करते हैं, और माला धारण करके तथा सुगंध और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी नृत्य, गायन,

वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करूँगा, और माला धारण करके तथा सुगंध और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।”

(viii) “अरहंत अपने जीवन भर ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग नहीं करते; वे एक छोटे पलंग या पुआल की चटाई पर लेटते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग नहीं करूँगा; मैं एक छोटे पलंग या पुआल की चटाई पर लेटूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।”

"हे विशाखा, इसी प्रकार से श्रेष्ठ पुरुषों के उपोसथा का पालन किया जाता है। जब कोई श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में उपोसथा का पालन करता है, तो यह बहुत फलदायी और लाभदायक होता है, असाधारण रूप से उज्ज्वल और सर्वव्यापी होता है।"

"यह किस हद तक महान फलदायी और लाभदायक है? यह किस हद तक असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी है? मान लीजिए, विशाखा, कोई इन सोलह महान देशों पर संभगवानता और राजत्व का प्रयोग करे, जो सात बहुमूल्य तत्वों से भरपूर हैं, 482 [213] अर्थात्, [देश] अंगन (बंगाल), मगध, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेति, वाहग, कुरु, पांचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवंती, गांधार और कंबोजन: 483 तो यह उन आठ तत्वों में पूर्ण उपोसथ पालन के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि मानवीय राजत्व दिव्य सुख की तुलना में तुच्छ है।"

"चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं के लिए, एक रात और एक दिन पचास मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं का जीवनकाल पाँच सौ दिव्य वर्ष होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठ कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।"

तावतिंसा देवताओं के लिए एक रात और एक दिन सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। तावतिंसा देवताओं का जीवनकाल एक हजार दिव्य वर्ष होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठों तत्वों में पूर्ण उपोसथा का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, तावतिंसा देवताओं के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।

यमदेवों के लिए एक रात और एक दिन दो सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। यमदेवों का जीवनकाल दो हजार दिव्य वर्ष होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठ कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यमदेवों के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में [214] मैंने कहा था कि मनुष्य का राजत्व दिव्य सुख के तुलनीय नहीं है।

तुषिता देवों के लिए एक रात और एक दिन चार सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। तुषिता देवों का जीवनकाल चार हजार दिव्य वर्ष होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठों तत्वों में पूर्ण उपोसथ का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय तुषिता देवों के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि मनुष्य का राजत्व दिव्य सुख के तुल्य तुच्छ है।

सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के लिए एक रात और एक दिन आठ सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल आठ हजार दिव्य वर्ष होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठों तत्वों में पूर्ण उपोसथ का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।

"दूसरों द्वारा सृजित वस्तुओं को नियंत्रित करने वाले देवताओं के लिए एक रात और एक दिन सोलह सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। देवताओं का जीवनकाल सोलह हजार दिव्य वर्ष

होता है। हे विशाखा, यह संभव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष जो इन आठों तत्वों में पूर्ण उपोसथ का पालन करता है, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, देवताओं के साथ पुनर्जन्म ले। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख के आगे मानव राजत्व व्यर्थ है।"

किसी को भी जीवित प्राणी की हत्या नहीं करनी चाहिए और न ही बिना माँगी वस्तु लेनी चाहिए;

झूठ नहीं बोलना चाहिए और न ही मादक पदार्थों का सेवन करना चाहिए;

यौन क्रिया और व्यभिचार से बचना चाहिए;

रात में या अनुचित समय पर भोजन नहीं करना चाहिए।

माला नहीं पहननी चाहिए और न ही इत्र लगाना चाहिए;

नीची पलंग या जमीन पर बिछी चटाई पर सोना चाहिए; कहते हैं कि यही बुद्ध द्वारा घोषित

आठ प्रकार के उपोसथ हैं , जिन्होंने दुखों का अंत किया।

सूर्य और चंद्रमा जहाँ तक घूमते हैं,

प्रकाश बिखेरते हैं, देखने में इतने सुंदर,

अंधकार को दूर करने वाले, आकाश में विचरण करते हुए,

वे आकाश में चमकते हैं, 465 दिशाओं को रोशन करते हैं।

इस क्षेत्र में जो भी धन-संपत्ति विद्यमान है—

मोती, रत्न, और उत्कृष्ट बेरिल, 486

सींग का सोना और पर्वतीय सोना,

और हताका नामक प्राकृतिक सोना—487

वे आठों कारकों में पूर्ण उपोसथा के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हैं ,

ठीक वैसे ही जैसे तारों के सभी समूह

चंद्रमा की चमक से मेल नहीं खाते। 488

अत: गुणी स्त्री या पुरुष,

उपोसथा के आठों पहलुओं का पूर्ण पालन करके

और पुण्य को सुख का स्रोत बनाकर,

निर्दोष रूप से स्वर्गिक अवस्था में प्रवेश करता है।

III. आनंद खंड

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

72 चन्ना

एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी नगर के पास अनथपिंडिका द्वारा दिए गए जेतवन में ठहरे हुए थे। तब तपस्वी चन्ना पूज्य आनंद के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा:

"मित्र आनंद, क्या आप कामवासना (राग), घृणा (दोसो संस द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग की सलाह देते हैं?"

"हाँ, दोस्त।" [216]

लेकिन आपने ऐसा कौन सा खतरा देखा है जिसके कारण आप कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग का विधान करते हैं?

(1) हे मित्र, कामवासना से उत्तेजित होकर, कामवासना में डूबा हुआ मन अपने लिए, दूसरों के लिए और दोनों के लिए कष्ट का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब कामवासना का त्याग हो जाता है, तो वह न तो अपने लिए, न दूसरों के लिए और न ही दोनों के लिए कष्ट का इरादा रखता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता।

कामवासना से उत्तेजित, कामवासना में डूबा हुआ, मन में लीन रहने वाला व्यक्ति देह, वाणी और मन से दुराचार करता है। परन्तु कामवासना का त्याग करने पर व्यक्ति देह, वाणी और मन से दुराचार नहीं करता। कामवासना से उत्तेजित, कामवासना में डूबा हुआ, मन में लीन रहने वाला व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में कामवासना में ही उसका, दूसरों का और हम सबका भला है। परन्तु कामवासना का त्याग करने पर व्यक्ति यह समझ पाता है कि वास्तव में कामवासना में ही उसका, दूसरों का और हम सबका भला है। कामवासना अंधत्व, दृष्टिहीनता और अज्ञान की ओर ले जाती है; यह ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में बाधक है, दुख से जुड़ी है और निर्वाण की ओर नहीं ले जाती।

(2) "घृणा से भरा हुआ, घृणा से ग्रस्त ...

(3) "मोह से ग्रस्त, मोह में डूबा हुआ व्यक्ति, जिसका मन मोह से ग्रस्त है, अपने कष्ट, दूसरों के कष्ट और दोनों के कष्ट का इरादा करता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह अपने कष्ट, दूसरों के कष्ट या दोनों के कष्ट का इरादा नहीं करता, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता।"

"मोह से ग्रस्त, मोह में डूबा हुआ व्यक्ति, जिसका मन मोह से ग्रस्त है, शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त नहीं होता। मोह से ग्रस्त, मोह में डूबा हुआ व्यक्ति, जिसका मन मोह से ग्रस्त है, अपने हित, दूसरों के हित और दोनों के हित को सही मायने में नहीं समझ पाता। परन्तु जब मोह का त्याग हो जाता है, तो व्यक्ति अपने हित, दूसरों के हित और दोनों के हित को सही मायने में समझ पाता है। मोह अंधता, दृष्टिहीनता और ज्ञान की कमी की ओर ले जाता है; यह पन्ना (दिव्य ज्ञान) में बाधक है, दुख से जुड़ा है और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता।"

"काम (राग), दुष्य (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) में इन खतरों को देखकर, हम इनके त्याग की सलाह देते हैं।"

लेकिन क्या कोई मार्ग है, मित्र, क्या कामवासना (राग), दुष्य (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग का कोई रास्ता है?

"मित्र, कामवासना, घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) से मुक्ति पाने का एक मार्ग है।"

लेकिन वह मार्ग क्या है, वह तरीका क्या है जिससे कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग किया जा सकता है?

"यह वही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है, अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन)। यही वह मार्ग है, जो कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग की ओर ले जाता है।"

"हे मित्र, यह मार्ग उत्तम है, काम (राग), द्वेष और मोह (मोह) के त्याग का मार्ग उत्तम है। हे मित्र आनंद, बस सतर्क रहना ही पर्याप्त है।"

---

73 अजीवका

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक गृहस्थ, जो आजीवकों का शिष्य था, पूज्य आनंद के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

(1) "भंते आनंद, जिनका धम्म भली-भांति समझाया गया है? (2) संसार में कौन अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं? (3) संसार में कौन सुगत (भगवान बुद्ध) हैं?" 491

"तो फिर, गृहस्वामी, मैं इस मामले में आपसे प्रश्न करूंगा। आपको जो उचित लगे, वैसा उत्तर देना चाहिए।"

(1) "हे गृहस्थ, तुम क्या सोचते हो? क्या कामवासना (राग), घृणा (दोषो सान. द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग की शिक्षा देने वालों का धम्म (मार्ग) अच्छी तरह से समझाया गया है या नहीं, या तुम इसे कैसे समझते हो?" [218]

"जो लोग कामवासना (राग), घृणा और मोह (मोह) के त्याग का उपदेश देते हैं, उनका धम्म भली-भांति समझाया गया है। अतः मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

(2) "हे गृहस्थ, आपका क्या विचार है? क्या राग, दोष और मोह का त्याग करने का अभ्यास करने वाले संसार में सही मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं या नहीं, या आप इसे कैसे समझते हैं?"

"जो लोग कामवासना (राग), दुष्य (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने का अभ्यास करते हैं, वे संसार में अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। इसलिए मैं इसे मानता हूँ।"

(3) "हे गृहस्थ, आपका क्या विचार है? क्या वे लोग जिन्होंने कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) का त्याग कर दिया है, उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकते हैं, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देते हैं, ताकि वे संसार में भविष्य में उत्पन्न होने वाले सुगतों (भगवान बुद्ध) के अधीन न रहें, या आप इस बारे में क्या सोचते हैं?"

"जिन्होंने कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) का जड़ से त्याग कर उन्हें ताड़ के पेड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर दिया है, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों, वे संसार में सुगत (भगवान बुद्ध) हैं। मेरा यही मानना है।"

"इस प्रकार, हे गृहस्थ, आपने कहा है: 'जो लोग काम (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग का उपदेश देते हैं, उनका धर्म भली-भांति समझाया गया है।' आपने कहा है: 'जो लोग काम (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग का अभ्यास करते हैं, वे संसार में शुभ मार्ग का अनुसरण करते हैं।' और आपने कहा है: 'जिन्होंने काम (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का जड़ से त्याग कर उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर दिया है, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों, वे संसार में सुगत (भगवान बुद्ध) हैं।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, भंते, कि यहाँ न तो अपने धर्म की प्रशंसा की गई है और न ही दूसरों के धर्म की निंदा की गई है, बल्कि केवल धर्म का उसके अपने क्षेत्र में उपदेश दिया गया है। अर्थ स्पष्ट किया गया है, लेकिन स्वयं को इसमें शामिल नहीं किया गया है।" 492

"भंते आनंद, आप कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) के त्याग का धर्म सिखाते हैं, [219] अतः आपका धर्म सुविचारित है। आप कामवासना (राग), द्वेष और मोह (मोह) के त्याग का अभ्यास कर रहे हैं, अतः आप संसार में उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। आपने कामवासना (राग), द्वेष और मोह (मोह) का जड़ से त्याग कर उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उनका ऐसा संहार कर दिया है कि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों, अतः आप संसार में सुगत (भगवान बुद्ध) हैं।"

"उत्कृष्ट, भंते! उत्कृष्ट, भंते! परम आनंद ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। भंते आनंद, मैं अब भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। परम आनंद मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

74 महानम सक्यान

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) हाल ही में बीमारी से ठीक हुए थे। तब शाक्य महानामा ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा;

"हे भंते, मैंने बहुत समय से भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझा है: 'ज्ञान उसे प्राप्त होता है जो समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में होता है, न कि उसे जो समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से रहित होता है। क्या समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) ज्ञान से पहले आती है, भंते, या ज्ञान समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से पहले आता है?"

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) अभी हाल ही में अपनी बीमारी से ठीक हुए हैं, फिर भी यह महानामा शाक्य उनसे एक बहुत ही गहन प्रश्न पूछ रहे हैं। मैं महानामा शाक्य को एक तरफ ले जाकर उन्हें धम्म का उपदेश देता हूँ।"

तब पूज्य आनंद ने महानमा शाक्य का हाथ पकड़कर उसे एक तरफ ले गए और उससे कहा: "भगवान (बुद्ध) ने प्रशिक्षु के सद्गुणी आचरण और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्गुणी आचरण, प्रशिक्षु की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) [220] और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), प्रशिक्षु के पन्ना (दिव्य ज्ञान) और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) के बारे में बात की है।

(1) "और हे महानामा, प्रशिक्षु का सद्गुणी आचरण क्या है? यहाँ, भिक्षु सद्गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और सुचारु आचरण से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनका अभ्यास करता है। इसे प्रशिक्षु का सद्गुणी आचरण कहा जाता है।"

(2) "और प्रशिक्षु की समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) क्या है? 493 यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। [जैसा कि 3:58 पर है] ... चौथी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... इसे प्रशिक्षु की समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) कहा जाता है।"

(3) "और प्रशिक्षु का पन्ना (दिव्य ज्ञान) क्या है? यहाँ, एक भिक्षु इसे वास्तव में समझता है: 'यह दुख है' . . . [जैसा कि 3:12 में है] . . . 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसे प्रशिक्षु का पन्ना (दिव्य ज्ञान) कहा जाता है।"

जब यह श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सद्गुणपूर्ण आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में निपुण हो जाता है, और दोषों का नाश हो जाता है, तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव कर लेता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है। 494

"इसी प्रकार, हे महानामा, भगवान (बुद्ध) ने प्रशिक्षु के सदाचारी आचरण और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सदाचारी आचरण के बारे में; प्रशिक्षु की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के बारे में; प्रशिक्षु के पन्ना (दिव्य ज्ञान) और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) के बारे में बताया है।"

---

75 निगंथा (जैन)

एक बार पूज्य आनंद वैशाली में विशाल वनक्षेत्र में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तभी लिच्छवी अभय और लिच्छवी पंडितकुमार पूज्य आनंद के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। 495 तब लिच्छवी अभय ने पूज्य आनंद से कहा:

"भंते, निगंथ नटपुत्त सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने का दावा करते हुए कहते हैं, [कहते हैं]: "जब मैं चलता हूँ, खड़ा होता हूँ, सोता हूँ और जागता हूँ, तब भी ज्ञान और दृष्टि निरंतर मेरे साथ रहती है। 496 वे तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों का नाश करने और नए कर्मों का सृजन न करके पुल को ध्वस्त करने का विधान करते हैं। 497 [221] इस प्रकार, कर्मों के नाश से दुख का नाश होता है। दुख के नाश से वेदना का नाश होता है। वेदना के नाश से सभी दुख दूर हो जाते हैं। इस प्रकार, सीधे दिखाई देने वाली इस शुद्धि के द्वारा दुख पर विजय प्राप्त होती है। 498 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"अभय, भगवान (बुद्ध), जो अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं और सब कुछ जानते और देखते हैं, उन्होंने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए इन तीन प्रकार के शुद्धिकरण का विधिवत वर्णन किया है। वे तीन कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, अभय, एक भिक्षु गुणी है... [जैसा कि 3:73 में है]... प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनमें अभ्यास करता है, वह कोई नया कर्म नहीं बनाता और बार-बार संपर्क में आने वाले पुराने कर्मों का अंत करता है। 499 यह क्षीणन प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक है, जो देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

(2) "हे अभय, जब यह भिक्षु सद्गुणों में निपुण होकर, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... [जैसा कि 3:58 में है]... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था)। वह कोई नया कर्म नहीं करता और बार-बार संपर्क में आने वाले पुराने कर्मों का अंत करता है। कर्मों का क्षीण होना प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक और प्रत्यक्ष होता है, जो देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक होता है और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।"

(3) "हे अभय, जब यह भिक्षु इस प्रकार सद्गुणों और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) में निपुण हो जाता है, तब दोषों के नाश के साथ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, ज्ञान द्वारा मुक्ति (पन्न) का अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है। वह कोई नया कर्म नहीं सृजित करता है और पुराने कर्मों को, जिनसे वह बार-बार संपर्क में आया है, समाप्त कर देता है। यह नाश प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक और प्रत्यक्ष है, जो देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। 500

"हे अभय, ये तीन प्रकार के शुद्धिकरण हैं जिनका उचित वर्णन भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो सब कुछ जानते और देखते हैं, ने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए किया है।"

यह सुनकर लिच्छवी पंडितकुमार ने लिच्छवी अभय से कहा: "हे मित्र अभय, क्या तुम पूज्य आनंद को उनके सुविचारित शब्दों के लिए धन्यवाद नहीं देते?"

"हे मित्र, मैं पूज्य आनंद के सुस्पष्ट शब्दों के लिए उनका धन्यवाद कैसे न करूँ? [222] यदि कोई पूज्य आनंद के सुस्पष्ट शब्दों के लिए उनका धन्यवाद न करे, तो उसका सिर फट जाएगा!"

---

76 को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए (निवेसाका)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: '

"आनंद, जिन लोगों के प्रति आपके मन में करुणा है और जो आपको उचित समझते हैं, चाहे वे मित्र हों या साथी, रिश्तेदार हों या परिवार के सदस्य, उन्हें आपको तीन बातों में प्रोत्साहित करना चाहिए, स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए। वे तीन बातें क्या हैं?"

(1) "उन्हें बुद्ध में अटूट विश्वास में प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) . . . [जैसा कि 3:70 में है] . . . देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के शिक्षक, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध) हैं।

(2) "उन्हें धम्म (मार्ग) में अटूट विश्वास के साथ प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए, इस प्रकार: 'धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं... [जैसा कि 3:70 में है]... बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।

(3) "उन्हें संघ में अटूट विश्वास के साथ प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है... [जैसा कि 3:70 में है] ... . संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।

"आनंद, हो सकता है कि चारों महान तत्वों—पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व और वायु तत्व—में परिवर्तन हो, परन्तु बुद्ध में अटूट विश्वास रखने वाले श्रेष्ठ शिष्य में परिवर्तन नहीं हो सकता। इस संदर्भ में परिवर्तन यह है कि बुद्ध में अटूट विश्वास रखने वाला यह श्रेष्ठ शिष्य नरक में, पशुलोक में या व्यथित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म ले सकता है। ऐसा असंभव है। [223]

"आनंद, हो सकता है कि चारों महा तत्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—में परिवर्तन हो, परन्तु उस श्रेष्ठ शिष्य में परिवर्तन नहीं हो सकता जो धम्म में, संघ में अटूट विश्वास रखता हो। इस संदर्भ में परिवर्तन यह है कि संघ में अटूट विश्वास रखने वाला यह श्रेष्ठ शिष्य नरक में, पशुलोक में या व्यथित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म ले। ऐसा असंभव है।"

"आनंद, जिन लोगों के प्रति आपके मन में करुणा है और जो सोचते हैं कि आपकी बात सुनी जानी चाहिए, चाहे वे मित्र हों या साथी, रिश्तेदार हों या परिवार के सदस्य, उन्हें इन तीन बातों में आपके द्वारा प्रोत्साहित, स्थिर और सफल बनाया जाना चाहिए।"

---

77 अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण)1 (भाव1)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, ऐसा कहा जाता है: 'अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण), अस्तित्व (भावो)। भंते, किस प्रकार अस्तित्व (भावो) है?" 503

(1) "हे आनंद, यदि इंद्रिय जगत में कर्म (कर्म/कार्य) परिपक्व न हो रहे हों, तो क्या इंद्रिय जगत के अस्तित्व को समझा जा सकेगा?"

"नहीं, भंते।"

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए, कर्म (कर्म/कार्य) वह क्षेत्र है, चेतना बीज है, और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) वह नमी है जिससे उनकी चेतना निम्नतम लोक में स्थापित हो सके। इस प्रकार भविष्य में नवगठित अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का सृजन होता है।" 504

(2) "हे आनंद, यदि रूप जगत में कर्म (कर्म/कार्य) परिपक्व न हो रहे हों, तो क्या रूप-मंडल के अस्तित्व को समझा जा सकेगा?"

नहीं, भंते।

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए, कर्म (कार्य) वह क्षेत्र है, चेतना वह बीज है, और तृष्णा वह नमी है जिससे उनकी चेतना मध्यम स्तर पर स्थापित हो सके। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म (भावो/पुनर्जन्म का कारण) की उत्पत्ति होती है।"

(3) "यदि, आनंद, निराकार क्षेत्र में कर्म (कर्म/कर्म) परिपक्व न हो रहे हों, तो क्या निराकार-क्षेत्र अस्तित्व को पहचाना जा सकेगा?" [224]

"नहीं, भंते।"

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए, कर्म (कार्य) वह क्षेत्र है, चेतना बीज है, और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) वह नमी है जिससे उनकी चेतना उच्चतर लोक में स्थापित हो सके। इस प्रकार भविष्य में नवगठित अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का सृजन होता है।"

"आनंद, इसी प्रकार अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) है।"

---

78 अस्तित्व (कारणात्मक)2 [चेतन क्रिया और आकांक्षा] (भाव2)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"भंते, ऐसा कहा जाता है: अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण), अस्तित्व (भावो)। भंते, किस प्रकार अस्तित्व (भावो) है?"

(1) "हे आनंद, यदि इंद्रिय जगत में कर्म (कर्म/कार्य) परिपक्व न हो रहे हों, तो क्या इंद्रिय-मंडल के अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का पता लगाया जा सकेगा?"

"नहीं, भंते।"

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए, कर्म (कार्य/कर्म) क्षेत्र है, चेतना बीज है, और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उनके सचेतन कर्म और निम्न लोक में स्थापित होने की आकांक्षा के लिए नमी है। इस प्रकार भविष्य में नवगठित अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का सृजन होता है।"

(2) "हे आनंद, यदि रूप जगत में कर्म (कर्म/कार्य) परिपक्व न हो रहे हों, तो क्या रूप-मंडल के अस्तित्व को समझा जा सकेगा?"

"नहीं, भंते।"

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए कर्म (कार्य) क्षेत्र है, चेतना बीज है और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उनके सचेतन कर्म और मध्य लोक में स्थापित होने की आकांक्षा के लिए नमी है। इस प्रकार भविष्य में नवगठित अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का सृजन होता है।"

(3) "हे आनंद, यदि निराकार जगत में कर्म (कर्म/कार्य) फलित न हो रहे हों, तो क्या निराकार जगत का अस्तित्व देखा जा सकेगा?"

"नहीं, भंते।"

"इस प्रकार, आनंद, अज्ञान से बाधित और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जकड़े प्राणियों के लिए कर्म (कार्य) क्षेत्र है, चेतना बीज है और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उनके सचेतन कर्म और उच्चतर लोक में स्थापित होने की आकांक्षा के लिए नमी है। इस प्रकार भविष्य में नवजन्म (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का सृजन होता है।"

"आनंद, इसी प्रकार अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) है।" [225]

---

79 स्थापना (सिलब्बता संस्कृत: शीलव्रत)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। . . . तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"आनंद, क्या सभी आचरण और अनुष्ठान, [तपस्वी] जीवन शैली और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) सार के रूप में स्थापित होने पर फलदायी होते हैं?" 506

"ऐसा पूरी तरह से नहीं है, भंते।"

"तो फिर, आनंद, उनमें अंतर करो।"

"भंते, मान लीजिए कोई आचरण और नियम, संयमपूर्ण जीवनशैली और ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उन्हें सार मानकर। यदि अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं, तो ऐसे आचरण और नियम, संयमपूर्ण जीवनशैली और ब्रह्मचर्य, जिन्हें सार मानकर स्थापित किया गया है, निष्फल हैं। परन्तु यदि अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं, तो ऐसे आचरण और नियम, संयमपूर्ण जीवनशैली और ब्रह्मचर्य, जिन्हें सार मानकर स्थापित किया गया है, फलदायी हैं।"

आदरणीय आनंद ने यही कहा। गुरुजी सहमत हो गए। तब आदरणीय आनंद ने यह सोचकर कि "गुरुजी सहमत हो गए हैं," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और फिर बाईं ओर मुड़ गए।

फिर, पूज्य आनंद के जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आनंद एक प्रशिक्षु हैं (अरहंत नहीं), लेकिन उनके समान ज्ञान प्राप्त करना आसान नहीं है।"

---

80 सुगंध (गंध जटा)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"भंते, तीन सुगंधें ऐसी हैं जो हवा के साथ फैलती हैं, लेकिन हवा के विपरीत नहीं। वे तीन कौन सी हैं? जड़ों की सुगंध, लकड़ी की सुगंध और फूलों की सुगंध। ये तीनों सुगंधें हवा के साथ फैलती हैं, लेकिन हवा के विपरीत नहीं। क्या कोई ऐसी सुगंध है जो हवा के साथ, हवा के विपरीत और हवा के साथ-साथ दोनों दिशाओं में फैलती हो?"

"आनंद, एक ऐसी सुगंध है जो हवा के साथ फैलती है, [2263 हवा के विपरीत, और हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों ओर]।"

"लेकिन, भंते, ये कैसी खुशबू है?"

"हे आनंद, जिस भी गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में गया हो; वह गुणी और अच्छे चरित्र का हो, जीवन-नष्ट करने, बिना माँगी वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार, झूठी वाणी और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता हो, जो आलस्य

का आधार हैं; और वह कंजूसी के दाग से रहित हृदय से घर में रहता हो, उदार, दानशील, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और बाँटने में प्रसन्न रहता हो— ऐसे में, सभी क्षेत्रों के तपस्वी और ब्राह्मण उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं: फलाँ गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में गया है... दान देने और बाँटने में प्रसन्न रहता है।"

"देवता (देवदूत) और आत्माएँ भी प्रशंसा करते हुए कहती हैं: 'अमुक गाँव या कस्बे में एक पुरुष या स्त्री ने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली है... वह गुणी और अच्छे चरित्र का है... दान देने और साझा करने में आनंदित होता है।'

"आनंद, यह वह सुगंध है जो हवा के साथ, हवा के विपरीत और हवा के साथ-साथ विपरीत दिशा में भी फैलती है।"

फूलों की सुगंध हवा के विपरीत नहीं फैलती, न चंदन, तगारा, 508 या चमेली की सुगंध। परन्तु अच्छे लोगों की सुगंध हवा के विपरीत फैलती है: अच्छे व्यक्ति की सुगंध हर दिशा में व्याप्त हो जाती है। 509

---

81 अभिभू (चुलानिका)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे . . . [227] . . . और उनसे कहा:

"भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: 'अभिभू, भगवान (बुद्ध) सिखि (पूर्व में बुद्ध), ब्रह्म जगत में रहते हुए, हजार गुना विश्व व्यवस्था में अपनी वाणी का प्रसार किया। 510 भंते, भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, अपनी वाणी को कितनी दूर तक पहुंचा सकते हैं?"

"वह आनंद के शिष्य थे। तथागत (बुद्ध) अतुलनीय हैं।" 511

दूसरी बार पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना... भंते, भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, अपनी वाणी को कितनी दूर तक पहुंचा सकते हैं?"

"वह आनंद के शिष्य थे। तथागत (बुद्ध) अतुलनीय हैं।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना है... भंते, भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, अपनी वाणी को कितनी दूर तक पहुंचा सकते हैं?"

"क्या तुमने सुना है, आनंद, एक हजार गुना लघु विश्व प्रणाली के बारे में?"

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)। यही समय है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)। भगवान (बुद्ध) को बोलना चाहिए। भगवान (बुद्ध) से यह सुनकर भिक्षु इसे अपने मन में धारण करेंगे।"

"तो फिर, आनंद, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "जिस संसार में सूर्य और चंद्रमा घूमते हैं और अपनी चमक से दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, उसके हजार गुना को हजार गुना लघु जगत प्रणाली कहा जाता है। 512 उस हजार गुना जगत प्रणाली में हजार चंद्रमा, हजार सूर्य, हजार शिनेरु पर्वतों के राजा, हजार जंबूदीप (भारत), हजार अपरागोयन, हजार उत्तरकुर, हजार पुब्बाविदेह, 513 और हजार चार महान महासागर; हजार चार महान राजा, हजार देवताओं के स्वर्ग, जिन पर चार महान राजाओं का शासन है, हजार तावतिंसा स्वर्ग, हजार यम स्वर्ग, हजार तुषिता स्वर्ग, सृष्टि में आनंदित होने वाले हजार देवताओं के स्वर्ग, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले हजार देवताओं के स्वर्ग, हजार ब्रह्म जगत हैं।

(2) "एक ऐसा संसार जो हजार गुना हजार गुना लघु संसार प्रणाली है, उसे हजार की घात दो वाली मध्यम संसार प्रणाली कहा जाता है। 514 (3) एक ऐसा संसार जो हजार गुना हजार की घात दो वाली मध्यम संसार प्रणाली है, उसे हजार की घात तीन वाली महान संसार प्रणाली कहा जाता है। आनंद, तथागत (बुद्ध) हजार की घात तीन वाली महान संसार प्रणाली में अपनी वाणी को जहाँ तक चाहें पहुँचा सकते हैं।"

"लेकिन हे भंते, तथागत (बुद्ध) हजार की घात एक तिहाई विशाल विश्व व्यवस्था में अपनी वाणी को अपनी इच्छानुसार किस प्रकार से संप्रेषित कर सकते हैं?"

"आनंद, यहाँ तथागत (बुद्ध) अपने प्रकाश से हजार की घात एक तिहाई विशाल विश्व व्यवस्था को व्याप्त करते हैं। जब वे प्राणी उस प्रकाश को ग्रहण करते हैं, तब तथागत (बुद्ध) अपनी वाणी को प्रक्षेपित करते हैं और उन्हें उसकी ध्वनि सुनाते हैं। आनंद, इसी प्रकार तथागत (बुद्ध) हजार की घात एक तिहाई विशाल विश्व व्यवस्था में अपनी वाणी को जहाँ तक चाहें, पहुँचा सकते हैं।" 515

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"यह मेरा सौभाग्य है! मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि मेरे शिक्षक ने मुझे यह सौभाग्य दिया है।"

यह बहुत शक्तिशाली और बलवान है।"

यह सुनकर पूज्य उदय ने पूज्य आनंद से कहा, "हे मित्र आनंद, तुम्हारे गुरु इतने शक्तिशाली और सामर्थ्यवान हैं, इससे तुम्हें क्या लेना-देना है?" 516

जब यह कहा गया, तो भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उदयि से कहा: "ऐसा मत कहो, उदयि! ऐसा मत कहो, उदयि! 517 उदयि, यदि आनंद राग से मुक्त हुए बिना मर जाए, तो अपने विश्वास के कारण वह सात बार देवताओं के बीच स्वर्गीय राजत्व और इस जंबूद्वीप में सात बार महान राजत्व का प्रयोग करेगा। परन्तु इसी जीवन में आनंद को परम निर्वाण प्राप्त होगा।" [229]

IV. तपस्वी (समना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

82 तपस्वी (समना)

भिक्षुओं, तपस्वी को तीन प्रकार के तपस्वी कार्यों का पालन करना चाहिए। वे तीन कौन से हैं? (1) उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण लेना, (2) उच्चतर मन का प्रशिक्षण लेना और (3) उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेना। ये तीन तपस्वी कार्य हैं जिनका पालन तपस्वी को करना चाहिए।

अत:, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे; हम उच्चतर मन का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे; हम उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

83 गधा 518 (गर्धबा)

भिक्षुओं, मान लीजिए एक गधा मवेशियों के झुंड के ठीक पीछे चल रहा है, [यह सोचते हुए]: 'मैं भी एक गाय हूँ। मैं भी एक गाय हूँ।' 519 (1) लेकिन उसका रूप गायों जैसा नहीं होगा, (2) उसकी रेंकने की आवाज़ गायों जैसी नहीं होगी, और (3) उसके पदचिह्न गायों जैसे नहीं होंगे। फिर भी वह मवेशियों के झुंड के ठीक पीछे चलता है, [यह सोचते हुए]: 'मैं भी एक गाय हूँ। मैं भी एक गाय हूँ।'

"इसी प्रकार, एक भिक्षु भिक्षुओं के संघ के ठीक पीछे चल रहा होगा, [यह सोचते हुए]: 'मैं भी एक भिक्षु हूँ। मैं भी एक भिक्षु हूँ।' (1) परन्तु उच्च सद्गुणों का प्रशिक्षण लेने की उसकी इच्छा अन्य भिक्षुओं जैसी नहीं होती; (2) उच्च मन का प्रशिक्षण लेने की उसकी इच्छा अन्य भिक्षुओं जैसी नहीं होती; (3) उच्च ज्ञान (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेने की उसकी इच्छा अन्य भिक्षुओं जैसी नहीं होती। फिर भी वह भिक्षुओं के संघ के ठीक पीछे चलता है, [यह सोचते हुए]: 'मैं भी एक भिक्षु हूँ, मैं भी एक भिक्षु हूँ।'"

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे; हम उच्चतर मन का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे; हम उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा रखेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

84 खेत (खेट्टा)

भिक्षुओं, किसान के ये तीन प्रारंभिक कार्य हैं। वे तीन क्या हैं? (1) यहाँ, किसान सबसे पहले खेत की अच्छी तरह जुताई और हैरो करता है। (2) इसके बाद, वह उचित समय पर बीज बोता है। (3) और फिर वह समय-समय पर खेत की सिंचाई और जल निकासी करता है। ये किसान के तीन प्रारंभिक कार्य हैं।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, भिक्षु के तीन प्रारंभिक कार्य हैं। वे तीन क्या हैं? (1) उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण लेना, (2) उच्चतर मन का प्रशिक्षण लेना, और (3) उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेना। ये भिक्षु के तीन प्रारंभिक कार्य हैं।"

अतः, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उच्चतर सद्गुणों, उच्चतर मन और उच्चतर ज्ञान (दिव्य ज्ञान) के प्रशिक्षण के लिए तीव्र इच्छा रखेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

85 युवा वज्जि (वज्जिपुत्त)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब एक वज्जी भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा:

"भंते, हर छह महीने में डेढ़ सौ से अधिक प्रशिक्षण नियम पाठ के लिए आते हैं। मैं उन सबका अभ्यास नहीं कर सकता।"

"क्या आप तीन प्रशिक्षणों में प्रशिक्षण ले सकते हैं, भिक्खु: उच्च सात्विक व्यवहार में प्रशिक्षण (आधि-सिल-सिक्खाय), उच्च मन में प्रशिक्षण (आधि-चित्त-सिक्खाय), और उच्च पन्ना में प्रशिक्षण (दिव्य ज्ञान/आधि-पन्ना-सिक्खाय)?"

"मैं कर सकता हूँ, भंते।"

इसलिए, हे भिक्षु, तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में लगन रखो: उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण। जैसे-जैसे तुम इनमें लगन रखोगे, कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करोगे। कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने से तुम कोई भी हानिकारक कार्य (अकुशल) नहीं करोगे और न ही किसी बुरे कार्य का सहारा लोगे।

फिर, कुछ समय बाद, उस भिक्षु ने उच्चतर सद्गुणों, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लिया। [231] जैसे-जैसे उसने [231] इनका प्रशिक्षण लिया, उसने कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग कर दिया। कामवासना (राग),

घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग के साथ, उसने कोई भी हानिकारक (अकुशल) कार्य नहीं किया और किसी भी बुरे कार्य का सहारा नहीं लिया।

---

86 प्रशिक्षु (सेक्खा)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे बोला: "भंते, कहा जाता है: 'एक प्रशिक्षु, एक प्रशिक्षु,' कोई किस प्रकार से प्रशिक्षु होता है?"

"वह प्रशिक्षण देता है, भिक्षु, इसलिए उसे प्रशिक्षु कहा जाता है। और वह किस बात का प्रशिक्षण देता है? वह उच्चतर सद्‌गुणों (अधिशील) का प्रशिक्षण देता है; वह उच्चतर मन (अधिचित्त) का प्रशिक्षण देता है; वह उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान/अधिपन्न) का प्रशिक्षण देता है। वह प्रशिक्षण देता है, भिक्षु, इसलिए उसे प्रशिक्षु कहा जाता है।"

प्रशिक्षु जब

सीधे मार्ग पर प्रशिक्षण लेता है, तो

सर्वप्रथम विनाश का ज्ञान उत्पन्न होता है,

जिसके तुरंत बाद अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है। 520

इसके बाद, जब अस्तित्व के बंधन (भाव/पुनर्जन्म का कारण) टूट जाते हैं,

तो अंतिम ज्ञान से मुक्त व्यक्ति को

यह ज्ञान प्राप्त होता है:

"मेरी मुक्ति अविचल है।" 521

---

87 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (1) (पथम-सिक्ख-सुत्तम)

भिक्षुओं, प्रत्येक छह महीने में डेढ़ सौ से अधिक प्रशिक्षण नियम पाठ के लिए प्रकाशित होते हैं; जो कुलवासी अपना भला चाहते हैं, वे इनका अभ्यास करते हैं। ये सभी तीन प्रशिक्षणों के अंतर्गत आते हैं। वे तीन कौन से हैं? उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण। ये तीन प्रशिक्षण हैं जिनमें ये सब समाहित है।

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सद्‌गुणों का पालन करता है, परन्तु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास केवल सीमित मात्रा में ही करता है। वह छोटे और गौण प्रशिक्षण नियमों के उल्लंघन में अपकृत्य करता है और फिर स्वयं को सुधारता है। 522 इसका क्या कारण है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। 523 परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, 524 उसका आचरण स्थिर और दृढ़ रहता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, [232] वह एक धारा-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) है, निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं, नियति में स्थिर, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य है।"

एक अन्य भिक्षु सद्गुणों का पालन करता है, परन्तु समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करता है। वह लघु एवं गौण प्रशिक्षण नियमों का उल्लंघन करता है, फिर भी स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के विषय में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका आचरण स्थिर और दृढ़ रहता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने से वह एक बार फिर इस संसार में लौटकर दुखों का अंत करने वाला होता है।

एक अन्य भिक्षु सद्गुणों का पालन करते हुए समाधि में लीन हो जाता है, परन्तु प्राण (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करता है। वह लघु एवं गौण प्रशिक्षण नियमों का उल्लंघन करता है, फिर भी स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य जीवन के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के विषय में, ब्रह्मचर्य जीवन के अनुरूप, उसका आचरण स्थिर और दृढ़ रहता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से वापस लौटे बिना ही वहाँ परम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

एक अन्य भिक्षु सद्गुणों, समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन करता है। वह छोटे-मोटे प्रशिक्षण नियमों के उल्लंघन में दोषी हो जाता है, फिर भी स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में, ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका आचरण स्थिर और दृढ़ रहता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। दोषों के नाश के साथ, वह इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो आंशिक साधना करता है, उसे आंशिक सफलता मिलती है; जो पूर्ण साधना करता है, उसे पूर्णता प्राप्त होती है। मैं कहता हूँ, ये प्रशिक्षण नियम व्यर्थ नहीं हैं।"

---

88 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (2) (दुतिया-सिक्खा-सुत्तम)

भिक्षुओं, प्रत्येक छह महीने में डेढ़ सौ से अधिक प्रशिक्षण नियम पाठ के लिए आते हैं; जो कुलवासी अपना भला चाहते हैं [233] वे इनका अभ्यास करते हैं। ये सभी तीन प्रशिक्षणों के अंतर्गत आते हैं। वे तीन कौन से हैं? उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण। ये तीन प्रशिक्षण हैं जिनमें यह सब समाहित है।

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सद्गुणों का पालन करता है, परन्तु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास केवल सीमित मात्रा में करता है। वह छोटे और गौण प्रशिक्षण नियमों के उल्लंघन में अपकृत्य करता है और फिर स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका व्यवहार स्थिर और दृढ़ होता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनका अभ्यास करता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से वह अधिकतम सात बार मोक्ष प्राप्त करने वाला होता है, जो देवताओं (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के बीच अधिकतम सात बार विचरण और भ्रमण करने के बाद दुखों का अंत करता है। 525 तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से वह कुल-कुल मोक्ष प्राप्त करने वाला होता है, जो अच्छे परिवारों के बीच दो या तीन बार विचरण और भ्रमण करने के बाद तीन बंधनों के पूर्ण नाश से, वह एक बीज प्राप्त करने वाला है जो मानव जीवन में एक बार फिर जन्म लेकर (भाव/पुनर्जन्म का कारण) दुखों का अंत करता है। तीन बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह के कम होने से, वह एक बार जन्म लेने वाला (एक बार पुनर्जन्म, सकदागामी) है जो इस संसार में केवल एक बार फिर आकर दुखों का अंत करता है।

एक अन्य भिक्षु सद्गुणों और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) का पालन करता है, परन्तु पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करता है। वह लघु एवं गौण प्रशिक्षण नियमों का उल्लंघन करता है, फिर भी स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में,

ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका आचरण स्थिर और दृढ़ है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह एक छलांग ऊपर की ओर, अकनित्त लोक की ओर अग्रसर होता है... परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करने वाला... बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त करने वाला... उतरते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला... इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला। 526

एक अन्य भिक्षु सद्‌गुणों, समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन करता है। वह [234] छोटे और गौण प्रशिक्षण नियमों के संबंध में अपराध करता है और स्वयं को सुधार लेता है। इसका क्या कारण है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा है कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका व्यवहार स्थिर और दृढ़ है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनमें अभ्यास करता है। दोषों के नाश के साथ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करके, वह उसमें निवास करता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो आंशिक साधना करता है, उसे आंशिक सफलता मिलती है; जो पूर्ण साधना करता है, उसे पूर्णता प्राप्त होती है। मैं कहता हूँ, ये प्रशिक्षण नियम व्यर्थ नहीं हैं।"

---

89 प्रशिक्षण की प्रक्रिया (3) (तातिया-सिक्खा-सुत्तम)

भिक्षुओं, प्रत्येक छह महीने में डेढ़ सौ से अधिक प्रशिक्षण नियम पाठ के लिए प्रकाशित होते हैं; जो कुलवासी अपना भला चाहते हैं, वे इनका अभ्यास करते हैं। ये सभी नियम इन तीन प्रशिक्षणों के अंतर्गत आते हैं। वे तीन कौन से हैं? उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण। ये तीन प्रशिक्षण हैं जिनमें ये सब समाहित है।

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सद्‌गुण, एकाग्रता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन करता है। वह छोटे और गौण प्रशिक्षण नियमों के उल्लंघन में गलती करता है और फिर स्वयं को सुधार लेता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मैंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा करने में असमर्थ है। परन्तु ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण नियमों के संबंध में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुरूप, उसका व्यवहार स्थिर और दृढ़ होता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके वह उनका अभ्यास करता है। दोषों के नाश के साथ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है।"

यदि वह पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह अंतराल में ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यदि वह पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह उतरते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... प्रयास से निर्वाण प्राप्त कर लेता है... एक छलांग ऊपर की ओर, अकनित्थ लोक की ओर।

यदि वह तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने से इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह एक बार जन्म लेने वाला (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करता है। यदि वह तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह एक बीज प्राप्त करने वाला है, जो मनुष्य रूप में एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करता है। यदि वह तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह कुल-कुल प्राप्त करने वाला है, जो अच्छे परिवारों में दो या तीन बार विचरण करने के बाद दुखों का अंत करता है। यदि वह तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से इसे प्राप्त और भेद नहीं पाता, तो वह अधिकतम सात बार जन्म लेने वाला है, जो देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करने के बाद दुखों का अंत करता है। अधिकतम सात बार करने से कष्ट का अंत हो जाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो पूर्णतः साधना करता है, उसे पूर्णता प्राप्त होती है; जो आंशिक साधना करता है, उसे आंशिक सफलता मिलती है। मैं कहता हूँ, ये प्रशिक्षण नियम व्यर्थ नहीं हैं।"

---

90 प्रशिक्षण (1) (पथम-सिक्खट्टय-सुत्तम)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के प्रशिक्षण हैं। कौन से तीन? उच्चतर सद्‌गुणी आचरण का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण।

और हे भिक्षुओं, उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, एक भिक्षु सद्‌गुणी होता है... प्रशिक्षण नियमों का पालन करने के बाद, वह उनका अभ्यास करता है। इसे ही उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण कहा जाता है।

और हे भिक्षुओं, उच्चतर मन का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, कुशाप जैसी अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... इसे ही उच्चतर मन का प्रशिक्षण कहा जाता है।

भिक्षुओं, उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसे ही उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के प्रशिक्षण हैं।"

---

91 प्रशिक्षण (2) (दुतिया-सिक्खट्टया-सुत्तम)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के प्रशिक्षण हैं। कौन से तीन? उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण, उच्चतर मन का प्रशिक्षण और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण।

और हे भिक्षुओं, उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, एक भिक्षु सद्‌गुणी होता है... प्रशिक्षण नियमों का पालन करने के बाद, वह उनका अभ्यास करता है। इसे ही उच्चतर सद्‌गुणों का प्रशिक्षण कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, उच्चतर मन का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है... [236] चतुर्थ ध्यान (समाधि अवस्था) में... इसे ही उच्चतर मन का प्रशिक्षण कहा जाता है।"

और हे भिक्षुओं, उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण क्या है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव करता है, और उसमें प्रवेश करने के बाद, वह उसमें निवास करता है।

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के प्रशिक्षण हैं।"

ऊर्जावान, बलवान और दृढ़ निश्चयी,

ध्यानमग्न, सचेत (ध्यान/सती) और अपनी इंद्रियों को सुरक्षित रखते हुए,

व्यक्ति को उच्चतर सद्‌गुण,

उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास करना चाहिए।

जैसा पहले, वैसा बाद में;

जैसा बाद में, वैसा पहले;

जैसा नीचे, वैसा ऊपर;

जैसा ऊपर, वैसा नीचे;

जैसे दिन में, वैसे ही रात में;

जैसे रात में, वैसे ही दिन में, असीम समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता) से

सभी दिशाओं पर विजय प्राप्त करते हुए 528

वे उसे मार्ग का प्रशिक्षु कहते हैं,

जिसका आचरण पूरी तरह से शुद्ध हो चुका है।

वे उसे संसार में प्रबुद्ध,

एक बुद्धिमान व्यक्ति कहते हैं जिसने साधना को पूर्ण कर लिया है। 29

तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश से मुक्त हुए व्यक्ति के लिए,

चेतना के समाप्त होने के साथ ही

मन की मुक्ति

दीपक के बुझने के समान है। 530

---

92 पंचधा (संकव)

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे, जब वे कोसल के पाखधा नगर पहुँचे। तब वे पाखधा के निकट ही निवास करने लगे।

उस समय भिक्षु कस्सपगोत्ता पहकाधा में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धम्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। फिर, जब भगवान (बुद्ध) प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धम्म (मार्ग) पर प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे, तब भिक्षु कस्सपगोत्ता अधीर और कड़वे हो गए, [यह सोचकर]: "यह तपस्वी बहुत कठोर है।" 531

फिर, पाखधा में अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय निवास करने के बाद, भगवान (बुद्ध) राजगृह की यात्रा पर निकल पड़े। यात्रा करते-करते, भगवान (बुद्ध) अंततः राजगृह पहुँचे। [237] वहाँ, राजगृह में, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास करने लगे। फिर,

भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षु कस्सपगोत्ता पश्चाताप और खेद से भर गया, [सोचते हुए]: "यह मेरा दुर्भाग्य और हानि है कि जब भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धम्म (मार्ग) प्रवचन देकर उपदेश दे रहे थे, प्रोत्साहित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे, तब मैं अधीर और कठोर हो गया, [सोचते हुए]: "यह तपस्वी बहुत कठोर है। अब मुझे भगवान (बुद्ध) के पास जाकर अपने अपराध को स्वीकार करना चाहिए।"

तब भिक्षु कस्सपगोत्ता ने अपना कमरा साफ किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और राजगृह के लिए निकल पड़े। अंततः वे राजगृह पहुँचे और गिद्ध शिखर पर्वत पर गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा:

"भंते, एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलन के पंकधा नगर में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। जब वे उपदेश दे रहे थे और उन्हें प्रसन्न कर रहे थे, तब मैं अधीर और कड़वी भावना से भर गया, यह सोचकर कि 'यह तपस्वी बहुत कठोर है।' फिर, पंकधा में अपनी इच्छा अनुसार निवास करने के बाद, भगवान (बुद्ध) राजगृह की यात्रा पर निकल पड़े। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, मैं पश्चाताप और खेद से भर गया, यह सोचकर कि 'यह मेरा दुर्भाग्य और हानि है कि जब भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धर्म प्रवचन देकर उपदेश दे रहे थे और उन्हें प्रसन्न कर रहे थे, तब मैं अधीर और कड़वी भावना से भर गया, यह सोचकर कि 'यह तपस्वी बहुत कठोर है।' अब मुझे भगवान (बुद्ध) के पास जाकर अपने अपराध का पश्चाताप करना चाहिए।"

"भंते, मैंने एक अपराध [238] किया है कि जब भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धम्म प्रवचन द्वारा उपदेश दे रहे थे, प्रोत्साहित कर रहे थे, प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे, तब मैंने नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से अधीर और कड़वाहट का भाव अपना लिया, यह सोचते हुए कि 'यह तपस्वी बहुत कठोर है।' भंते, भगवान (बुद्ध) मेरे इस अपराध को भविष्य में संयम के लिए किए गए अपराध के रूप में स्वीकार करें।"

"निश्चित रूप से, कस्सपा, आपने एक अपराध किया है क्योंकि जब मैं भिक्षुओं को प्रशिक्षण नियमों से संबंधित धम्म पर प्रवचन देकर प्रोत्साहित, प्रेरित और प्रसन्न कर रहा था, तब आपने इतनी नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से अधीर और कड़वे हो गए, यह सोचते हुए कि 'यह तपस्वी बहुत कठोर है।' लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानते हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम इसे स्वीकार करते हैं। क्योंकि गुरु के अनुशासन में वृद्धि इसी में है कि व्यक्ति अपने अपराध को अपराध माने, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करे और भविष्य में संयम का पालन करे।"

(1) "हे कस्सपा, यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु प्रशिक्षण लेने की इच्छा न रखता हो और प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा न करता हो; यदि वह प्रशिक्षण न लेने की इच्छा रखने वाले अन्य भिक्षुओं को प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित न करता हो; और यदि वह प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखने वाले भिक्षुओं की सच्ची, वास्तविक और समयोचित प्रशंसा न करता हो, तो मैं ऐसे वरिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि अन्य भिक्षु, [यह सुनकर] कि 'गुरु उसकी प्रशंसा करते हैं', उससे संगति कर सकते हैं, और जो उससे संगति करते हैं वे उसके उदाहरण का अनुसरण कर सकते हैं। यदि वे उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और कष्ट होगा। इसलिए मैं ऐसे वरिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।"

(2) "हे कस्सपा, यदि कोई मध्यम स्तर का भिक्षु... (3) यदि कोई कनिष्ठ भिक्षु प्रशिक्षण लेने की इच्छा न रखता हो और प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा न करता हो; यदि वह प्रशिक्षण न लेने की इच्छा रखने वाले अन्य भिक्षुओं को प्रशिक्षण में प्रोत्साहित न करता हो; और यदि वह प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखने वाले भिक्षुओं की सच्ची, वास्तविक और समयोचित प्रशंसा न करता हो, तो मैं ऐसे कनिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि अन्य भिक्षु, [यह सुनकर]: 'गुरु उसकी प्रशंसा करते हैं,' उससे संगति कर सकते हैं, और जो उससे संगति करते हैं [239] वे उसके उदाहरण का अनुसरण कर सकते हैं। यदि वे उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और कष्ट होगा। इसलिए मैं ऐसे कनिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।"

(1) "हे कस्सपा, यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखता है और प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा करता है; यदि वह उन अन्य भिक्षुओं को प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित करता है जो प्रशिक्षण लेने की इच्छा नहीं रखते; और यदि वह प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखने वाले भिक्षुओं की सच्ची, वास्तविक और समयोचित प्रशंसा करता है, तो मैं ऐसे वरिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा करता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि अन्य भिक्षु, [यह सुनकर] कि 'गुरु उसकी प्रशंसा करते हैं', उससे संगति कर सकते हैं, और जो उससे संगति करते हैं वे उसके

उदाहरण का अनुसरण कर सकते हैं। यदि वे उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, तो इससे उन्हें दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। अतः मैं ऐसे वरिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा करता हूँ।"

(2) "हे कस्सपा, यदि कोई मध्यम स्तर का भिक्षु... (3) यदि कोई कनिष्ठ भिक्षु प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखता है और प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा करता है; यदि वह प्रशिक्षण न लेने की इच्छा रखने वाले अन्य भिक्षुओं को प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहित करता है; और यदि वह प्रशिक्षण लेने की इच्छा रखने वाले भिक्षुओं की सच्ची, वास्तविक और समयोचित प्रशंसा करता है, तो मैं ऐसे कनिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा करता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि अन्य भिक्षु, [यह सुनकर]: 'गुरु उसकी प्रशंसा करते हैं/ उससे संगति कर सकते हैं, और जो उससे संगति करते हैं वे उसके उदाहरण का अनुसरण कर सकते हैं। यदि वे उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, तो इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। इसलिए मैं ऐसे कनिष्ठ भिक्षु की प्रशंसा करता हूँ।"

V. नमक का एक टुकड़ा 533 (लोनाका-पल्ला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

93 अत्यावश्यक (अक्कायिका)

भिक्षुओं, किसान के ये तीन अत्यावश्यक कार्य हैं। 534 वे तीन कार्य क्या हैं? (1) सर्वप्रथम, किसान शीघ्रतापूर्वक और पूर्णतः खेत की जुताई करता है और उसे शीघ्रतापूर्वक और पूर्णतः समतल करता है। (2) इसके बाद, वह शीघ्रतापूर्वक बीज बोता है। (3) और फिर वह शीघ्रतापूर्वक [240] खेत की सिंचाई और जल निकासी करता है। ये किसान के तीन अत्यावश्यक कार्य हैं।

"इस किसान के पास कोई मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) या आध्यात्मिक सामर्थ्य नहीं है [जिससे वह आदेश दे सके]: 'मेरी फसलें आज से उगना शुरू हो जाएं! वे कल पक जाएं! वे परसों फल देने लगें!' लेकिन, ऋतुओं के परिवर्तन के साथ, एक समय आता है जब फसलें उगती हैं, पकती हैं और फल देती हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, भिक्षु के तीन अत्यावश्यक कार्य हैं। वे तीन क्या हैं? (1) उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण लेना, (2) उच्चतर मन का प्रशिक्षण लेना, और (3) उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेना। ये भिक्षु के तीन अत्यावश्यक कार्य हैं।"

"इस भिक्षु के पास कोई मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) या आध्यात्मिक सामर्थ्य नहीं है [जिससे वह आदेश दे सके]: 'आज, कल या परसों मेरा मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाए!' बल्कि, जैसे-जैसे यह भिक्षु उच्च सद्गुणी आचरण, उच्च मन और उच्च पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अभ्यास करता है, एक ऐसा अवसर आता है जब उसका मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाता है।"

अतः, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उच्चतर सद्गुणों, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) के प्रशिक्षण को ग्रहण करने की तीव्र इच्छा रखेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

94 विवेकाधिकार (पविवेक)

"भिक्षुओं (साधुओं) और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों ने तीन प्रकार के विवेक का विधान किया है। वे तीन कौन से हैं? वस्त्रों के संबंध में विवेक, भिक्षा के संबंध में विवेक और आवास के संबंध में विवेक।" 535

"भिक्षुओं, अन्य संप्रदायों के तपस्वी वस्त्रों के संबंध में यही विवेकपूर्ण वस्त्र धारण करते हैं: वे भांग के वस्त्र, भांग मिश्रित वस्त्र, कफ़न, चिथड़े के वस्त्र, वृक्ष की छाल, हिरण की खाल, हिरण की खाल की पट्टियों से बने वस्त्र, कुश घास, छाल या लकड़ी के बुरादे से बने वस्त्र, सिर के बालों या पशु ऊन से बना कंबल, [241] उल्लू के पंखों से बना आवरण धारण करते हैं। यही अन्य संप्रदायों के तपस्वी वस्त्रों के संबंध में विवेकपूर्ण वस्त्र धारण करते हैं।"

"अन्य संप्रदायों के तपस्वी भिक्षा भोजन के संबंध में यही विवेकपूर्ण आचरण निर्धारित करते हैं: वे हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल का झाग, तिल का आटा, घास या गोबर खाते हैं। वे वन की जड़ों और फलों पर निर्भर रहते हैं; वे गिरे हुए फलों का सेवन करते हैं। अन्य संप्रदायों के तपस्वी भिक्षा भोजन के संबंध में यही विवेकपूर्ण आचरण निर्धारित करते हैं।"

"अन्य संप्रदायों के तपस्वी आवास के संबंध में विवेकपूर्ण तरीके से यही सलाह देते हैं: जंगल, वृक्ष की तलहटी, श्मशान भूमि, जंगलों और वनों में दूरस्थ आवास, खुला आकाश, भूसे का ढेर, भूसे का घर। अन्य संप्रदायों के तपस्वी आवास के संबंध में विवेकपूर्ण तरीके से यही सलाह देते हैं।"

"अन्य संप्रदायों के तपस्वियों द्वारा बताए गए विवेक के ये तीन प्रकार हैं।"

"इस धम्म और अनुशासन में, भिक्षुओं के लिए तीन प्रकार के विवेक होते हैं। वे तीन कौन से हैं?"

"यहाँ, (1) एक भिक्षु गुणी है; उसने अनैतिकता का त्याग कर दिया है और उससे एकांतवास में रहता है। (2) वह सही दृष्टिकोण रखता है; उसने गलत दृष्टिकोण का त्याग कर दिया है और उससे एकांतवास में रहता है। 536 (3) वह ऐसा व्यक्ति है जिसके भ्रम नष्ट हो गए हैं: उसने दोषों का त्याग कर दिया है और उनसे एकांतवास में रहता है।

जब कोई भिक्षु गुणी होता है, जिसने अनैतिकता का त्याग कर उससे एकांतवास किया हो; जब वह सही दृष्टिकोण वाला होता है, जिसने गलत दृष्टिकोण का त्याग कर उससे एकांतवास किया हो; जब वह ऐसा होता है जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हों, जिसने दोषों का त्याग कर उनसे एकांतवास किया हो, तब उसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने सर्वोच्च स्तर प्राप्त किया हो, जिसने सार को प्राप्त किया हो, जो शुद्ध हो और सार में स्थापित हो।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक किसान के खेत में धान पक गया है; किसान तुरंत पौधों को कटवाएगा। फिर वह तुरंत पौधों को इकट्ठा करवाएगा। फिर वह तुरंत [242] उन्हें [खलिहान में] ले जाएगा। फिर वह तुरंत उन्हें ढेर लगाएगा, उनकी पिसाई करवाएगा, भूसा और भूसी अलग करवाएगा और फटककर साफ करेगा। फिर वह तुरंत उसे लाकर कूटवाएगा और भूसी अलग करवाएगा। इस प्रकार, किसान के धान के दाने सबसे आगे होंगे, सार को प्राप्त करेंगे, शुद्ध होंगे और सार में स्थापित होंगे।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु गुणी होता है... सही दृष्टिकोण वाला होता है... जिसने दोषों का त्याग कर उनसे एकांतवास किया होता है, तब उसे सर्वोत्कृष्ट, सार को प्राप्त करने वाला, शुद्ध और सार में स्थापित भिक्षु कहा जाता है।"

---

95 शरद ऋतु 537 (सारदा सं. शरद)

भिक्षुओं, जिस प्रकार शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अपने प्रकाश और किरणों से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में निष्कलंक, निर्मल धम्म-दृष्टि उत्पन्न होती है, तब दृष्टि के उत्पन्न होने के साथ ही वह तीन बंधनों का त्याग कर देता है: व्यक्तिगत अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह और आचरण एवं अनुष्ठानों की गलत समझ। 538

इसके बाद, जब वह लालसा और द्वेष की दो अवस्थाओं से विमुख हो जाता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न

परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होती है, जिसमें चिंतन और आत्मनिरीक्षण भी शामिल होता है; हे भिक्षुओं, यदि उस अवसर पर श्रेष्ठ शिष्य का देहांत हो जाए, तो ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे वह इस संसार में लौट सके। 539

---

96 सभाएं (पेरिसा बिना परिषद)

"भिक्षुओं (मठवासियों), तीन प्रकार की सभाएँ होती हैं। 540 वे तीन कौन सी हैं? अग्रणी की सभा, विभाजित सभा और सामंजस्यपूर्ण सभा। [243]

(1) "हे भिक्षुओं, अग्रणी भिक्षुओं की सभा क्या है? इस प्रकार की सभा में वरिष्ठ भिक्षु विलासी और शिथिल नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, और अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। अगली पीढ़ी के भिक्षु भी उनका अनुसरण करते हैं। वे भी विलासी और शिथिल नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, और अभी तक अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। इसे ही अग्रणी भिक्षुओं की सभा कहते हैं।"

(2) "और विभाजित सभा क्या है? यहाँ, वह सभा जिसमें भिक्षु बहस और झगड़े में पड़ जाते हैं और एक दूसरे को चुभने वाले शब्दों से घायल करते हैं, उसे विभाजित सभा कहा जाता है।

(3) "और सामंजस्यपूर्ण सभा क्या है? यहाँ, वह सभा जिसमें भिक्षु सामंजस्य में, सद्भाव से, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह घुलमिलकर, एक दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए निवास करते हैं, उसे सामंजस्यपूर्ण सभा कहा जाता है।

जब भिक्षु एकता और सद्भाव में, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक होकर, एक-दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए निवास करते हैं, तब वे बहुत पुण्य कमाते हैं। उस समय भिक्षु दिव्य धाम में निवास करते हैं, अर्थात् परोपकारी आनंद के माध्यम से मन की मुक्ति में। जब व्यक्ति आनंदित होता है, तो उसे परमानंद (पीति) प्राप्त होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) में लीन हो जाता है।

जैसे, जब वर्षा होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी बूँदों के रूप में पानी बरसता है, तो वह ढलान से नीचे बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; ये भरकर तालाबों को भर देते हैं; ये भरकर झीलों को भर देते हैं; ये भरकर धाराओं को भर देते हैं; ये भरकर नदियों को भर देते हैं; और ये भरकर सागर को भर देते हैं; ठीक उसी प्रकार, जब भिक्षु सद्भाव में, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक होकर, एक-दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए निवास करते हैं, तो उस अवसर पर वे बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। उस अवसर पर भिक्षु दिव्य धाम में निवास करते हैं, अर्थात् परोपकारी आनंद के माध्यम से मन की मुक्ति में। जब व्यक्ति आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) हो जाता है।

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की सभाएँ हैं।"

---

97 थोरब्रेड (1) (पथमा-अजानिया)

भिक्षुओं (सन्यासियों) में तीन गुण होते हैं: राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, राजा के उत्तम नस्ल के घोड़े में सुंदरता, शक्ति और गति होती है। इन तीनों गुणों के कारण, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा... राजत्व का प्रतीक माना जाता है।

इसी प्रकार, तीन गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य होता है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सौंदर्य, शक्ति और गति से युक्त होता है।

(1) "भिक्षु में सौंदर्य कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त होता है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। इसी प्रकार भिक्षु में सौंदर्य होता है।"

(2) "भिक्षु को बल कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, भिक्षु हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करता है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। इसी प्रकार भिक्षु को बल प्राप्त होता है।"

(3) "और भिक्षु को गति कैसे प्राप्त होती है? यहाँ, भिक्षु इसे वास्तव में समझता है: 'यह दुख है' और 'यह दुख का मूल है', [245] और 'यह दुख का निवारण है' और 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इसी प्रकार भिक्षु को गति प्राप्त होती है।"

"इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

---

98 थोरब्रेड (2) (दुतिया-अजानिया)

[सभी 3:96 के समान हैं, केवल कारक (3) में निम्नलिखित अंतर है:]

"और एक भिक्षु को गति कैसे प्राप्त होती है? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, एक भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस लौटे बिना ही अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार एक भिक्षु को गति प्राप्त होती है।"

"इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु... विश्व के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र है।"

---

99 थोरब्रेड (3) (तातिया-अजानिया)

[सभी 3:96 के समान, केवल कारक (3) में निम्नलिखित अंतर के साथ:] [246]

"और भिक्षु को गति कैसे प्राप्त होती है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव कर लिया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इस प्रकार भिक्षु को गति प्राप्त होती है।"

"इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु... विश्व के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र है।"

---

100 छाल का कपड़ा (पोत्थाका)

भिक्षुओं, जब छाल से बना कपड़ा नया होता है, तो वह भद्दा, असुविधाजनक और कम मूल्यवान होता है। जब वह पुराना हो जाता है, तब भी वह भद्दा, असुविधाजनक और कम मूल्यवान होता है। वे पुराने कपड़े का उपयोग बर्तन साफ करने के लिए करते हैं या उसे कूड़े के ढेर में फेंक देते हैं।

(1) (i) 543 "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यदि कोई कनिष्ठ भिक्षु अनैतिक हो, बुरे चरित्र का हो, तो मैं कहता हूँ, यह उसकी कुरूपता है। [247] जैसे छाल से बना कपड़ा कुरूप होता है, वैसे ही, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी वैसा ही है।

(ii) "जो लोग उससे संगति करते हैं, उसकी शरण लेते हैं, उसकी सेवा करते हैं और उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, उनके लिए यह लंबे समय तक हानि और पीड़ा का कारण बनता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी असुविधा है। जिस प्रकार छाल से बना कपड़ा असुविधाजनक होता है, उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।"

(iii) "जब वह वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन स्वीकार करता है, तो यह [स्वीकृति] उन लोगों के लिए कोई बड़ा फलदायी या लाभकारी नहीं है जो ऐसी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। मैं कहता हूँ, यह उसके तुच्छ मूल्य का होने का प्रमाण है। जिस प्रकार छाल से बना कपड़ा तुच्छ मूल्य का होता है, उसी प्रकार, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी वैसा ही है।"

(2) "यदि कोई मध्यम स्तर का भिक्षु ...

(3) "यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु अनैतिक है, बुरे चरित्र का है, तो मैं कहता हूँ, यह उसकी कुरूपता में गिना जाता है... [जैसा कि ऊपर बताया गया है]... जैसे छाल से बना कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी वैसा ही है।"

"यदि ऐसा कोई वरिष्ठ भिक्षु संघ के बीच में बोलता है, तो भिक्षु उससे कहते हैं: 'तुम्हें, जो एक अकुशल और नासमझ हो, बोलने का अधिकार किसने दिया? क्या तुम भी खुद को बोलने का हकदार समझते हो?' तब वह क्रोधित और असंतुष्ट हो जाता है और ऐसी बात कहता है जिसके कारण संघ उसे निष्कासित कर देता है, मानो छाल से बने वस्त्र को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया गया हो।" 544

भिक्षुओं, जब काशी का कपड़ा नया होता है, तो वह सुंदर, आरामदायक और बहुत मूल्यवान होता है। [248] जब वह पहना हुआ होता है, तब भी काशी का कपड़ा सुंदर, आरामदायक और बहुत मूल्यवान होता है। जब वह पुराना हो जाता है, तब भी काशी का कपड़ा सुंदर, आरामदायक और बहुत मूल्यवान होता है। वे काशी के पुराने कपड़े का उपयोग रत्नों को लपेटने के लिए करते हैं या उसे सुगंधित डिब्बे में रखते हैं।

(1) (i) "इसी प्रकार, यदि कोई कनिष्ठ भिक्षु गुणी और अच्छे चरित्र का हो, तो मैं कहता हूँ कि यह उसकी सुंदरता के समान है। जैसे काशी का कपड़ा सुंदर होता है, वैसे ही, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी वैसा ही है।"

(ii) "जो लोग उससे संगति करते हैं, उसकी शरण लेते हैं, उसकी सेवा करते हैं और उसके उदाहरण का अनुसरण करते हैं, उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी सुखदायकता है। जिस प्रकार काशी का कपड़ा सुखदायक होता है, उसी प्रकार यह व्यक्ति भी सुखदायक है।"

(iii) "जब वह वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन स्वीकार करता है, तो यह [स्वीकृति] उन लोगों के लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होती है जो [ऐसी वस्तुएँ भेंट करते हैं]। मैं कहता हूँ, यह उसके बहुमूल्य होने का प्रमाण है। जिस प्रकार काशी का कपड़ा बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी बहुमूल्य है।"

(2) "यदि कोई मध्यम स्तर का भिक्षु ...

(3) "यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु गुणी और अच्छे चरित्र का हो, तो मैं कहता हूँ कि यही उसकी सुंदरता है। . . . [ऊपर बताए अनुसार] . . . जैसे काशी का कपड़ा बहुत मूल्यवान होता है, वैसे ही, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति भी वैसा ही है।"

"यदि ऐसा कोई वरिष्ठ भिक्षु संघ के बीच में बोलता है, [249] तो भिक्षु कहते हैं: 'कृपया आदरणीय लोग शांत रहें। एक वरिष्ठ भिक्षु धम्म और अनुशासन पर बोल रहे हैं।' उनके उन शब्दों को उसी प्रकार संरक्षित किया जाना चाहिए, जैसे वे काशी से लाए गए वस्त्र को सुगंधित डिब्बे में रखते हैं। 545

अत: हे भिक्षुओं, तुम इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करो: 'हम काशी के वस्त्र के समान होंगे, छाल से बने वस्त्र के समान नहीं।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

101 नमक का एक टुकड़ा

भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे कि 'मनुष्य कर्म का फल ठीक उसी प्रकार भुगतता है जिस प्रकार उसने उसे सृजित किया है', तो ऐसे में ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं होगा और दुखों का पूर्ण अंत करने का कोई अवसर भी नहीं मिलेगा। 346 परन्तु यदि कोई इस प्रकार कहे कि 'जब कोई व्यक्ति किसी विशेष प्रकार का कर्म सृजित करता है, तो उसे उसका फल ठीक उसी प्रकार मिलता है', तो ऐसे में ब्रह्मचर्य जीवन संभव है और दुखों का पूर्ण अंत करने का अवसर मिलता है। 347

"यहाँ, भिक्षुओं, किसी व्यक्ति ने तुच्छ बुरे कर्म किए हैं फिर भी वह उसे नरक की ओर ले जाता है, जबकि यहाँ किसी अन्य व्यक्ति ने ठीक वही तुच्छ कर्म किए हैं फिर भी उसका अनुभव इसी जीवन में होता है, बिना किसी अंश के भी, प्रचुर मात्रा में तो दूर की बात है।"

"किस प्रकार का व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है जो उसे नरक की ओर ले जाता है? यहाँ, कुछ व्यक्ति शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित हैं; वे सीमित हैं और उनका चरित्र नीच है, 548 और वे दुख में रहते हैं। 549 जब ऐसा व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो वह उसे नरक की ओर ले जाता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है और फिर भी उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बिना एक अंश भी दिखाई दिए, प्रचुर मात्रा में फल तो दूर की बात है? यहाँ, कोई व्यक्ति शरीर, सद्गुण, मन और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में विकसित है। वह असीम है और उसका चरित्र उदात्त है, और वह असीम रूप से निवास करता है। 550 जब ऐसा व्यक्ति बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बिना एक अंश भी दिखाई दिए, प्रचुर मात्रा में फल तो दूर की बात है। 551

(1) "मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पानी से भरे एक छोटे कटोरे में नमक का एक टुकड़ा डाल दे। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या नमक का वह टुकड़ा कटोरे में मौजूद थोड़ी मात्रा में पानी को नमकीन और पीने योग्य नहीं बना देगा?"

"हां, भंते। किस कारण से? क्योंकि कटोरे में पानी सीमित है, इसलिए नमक का वह टुकड़ा उसे नमकीन और पीने लायक नहीं बना देगा।"

लेकिन मान लीजिए कि कोई व्यक्ति गंगा नदी में नमक का एक टुकड़ा डाल दे। भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या नमक का वह टुकड़ा गंगा नदी को खारा और पीने योग्य नहीं बना देगा?

"नहीं, भंते। किस कारण से? क्योंकि गंगा नदी में पानी की मात्रा बहुत अधिक है, इसलिए नमक का वह टुकड़ा इसे खारा और पीने योग्य नहीं बनाएगा।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ किसी व्यक्ति ने तुच्छ बुरे कर्म किए हैं, फिर भी वह उसे नरक की ओर ले जाता है, जबकि यहाँ किसी अन्य व्यक्ति ने ठीक वही तुच्छ कर्म किए हैं, फिर भी उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बिना किसी अंश के, प्रचुर मात्रा में फल की तो बात ही छोड़िए।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो तुच्छ बुरे कर्म करता है और नरक में जाता है? यहाँ, कुछ व्यक्ति शरीर, सद्गुण, मन और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होते हैं। जब ऐसा व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो वह नरक में चला जाता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है और फिर भी उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, जबकि उसका एक अंश भी दिखाई नहीं देता, प्रचुर मात्रा में फल मिलना तो दूर की बात है? यहाँ, कोई व्यक्ति शरीर, सद्गुण, मन और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से परिपूर्ण है। जब ऐसा व्यक्ति बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, जबकि उसका एक अंश भी दिखाई नहीं देता, प्रचुर मात्रा में फल मिलना तो दूर की बात है।"

(2) "यहाँ, भिक्षुओं, किसी को आधा कहपना, एक कहपना, [251] या सौ कहपना [चोरी करने] के लिए कैद किया जाता है, 553 जबकि किसी अन्य को उतनी ही राशि [चोरी करने] के लिए कैद नहीं किया जाता है।

"आधे कहपना, एक कहपना या सौ कहपना चोरी करने के लिए किस तरह के व्यक्ति को जेल भेजा जाता है? यहाँ, कोई गरीब है, जिसके पास थोड़ी संपत्ति और धन है। ऐसे व्यक्ति को आधे कहपना, एक कहपना या सौ कहपना चोरी करने के लिए जेल भेजा जाता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसे आधा कहपना, एक कहपना या सौ कहपना चुराने पर कारावास नहीं होता? यहाँ, कोई व्यक्ति धनी है, जिसके पास बहुत धन और संपत्ति है। ऐसा व्यक्ति आधा कहपना, एक कहपना या सौ कहपना चुराने पर कारावास नहीं होता।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, किसी व्यक्ति ने तुच्छ बुरे कर्म किए हैं, फिर भी वह उसे नरक की ओर ले जाता है, जबकि यहाँ किसी अन्य व्यक्ति ने ठीक वही तुच्छ कर्म किए हैं, फिर भी उसे इसी जीवन में बिना किसी अवशेष के, यहाँ तक कि एक अंश भी दिखाई दिए बिना, प्रचुर मात्रा में अवशेष की तो बात ही छोड़िए, भोगना पड़ता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो तुच्छ बुरे कर्म करता है और नरक में जाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से अविकसित है... और उसमें ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की कमी है। जब ऐसा व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो वह नरक में जाता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है और फिर भी उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बिना एक अंश भी दिखाई दिए, प्रचुर मात्रा में फल तो दूर की बात है? यहाँ, कोई व्यक्ति शरीर, सद्‌गुण, मन और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में विकसित है। जब ऐसा व्यक्ति बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बिना एक अंश भी दिखाई दिए, प्रचुर मात्रा में फल तो दूर की बात है।"

(3) "भिक्षुओं (मठवासियों), भेड़ व्यापारी या कसाई का मामला लो, [252] जो किसी ऐसे व्यक्ति को फांसी दे सकता है, कैद कर सकता है, जुर्माना लगा सकता है या अन्यथा दंडित कर सकता है जिसने उसकी एक भेड़ चुराई है, लेकिन किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा नहीं कर सकता जिसने उसकी भेड़ चुराई है।

"भेड़ का व्यापारी या कसाई किस प्रकार के व्यक्ति को भेड़ चुराने के लिए फांसी दे सकता है, कैद कर सकता है, जुर्माना लगा सकता है या अन्य दंड दे सकता है? एक गरीब व्यक्ति, जिसके पास कम संपत्ति और धन हो। भेड़ का व्यापारी या कसाई ऐसे व्यक्ति को भेड़ चुराने के लिए फांसी दे सकता है, कैद कर सकता है, जुर्माना लगा सकता है या अन्य दंड दे सकता है।"

"भेड़ चुराने पर भेड़ व्यापारी या कसाई किस प्रकार के व्यक्ति को फांसी, कारावास, जुर्माना या अन्य दंड नहीं दे सकता? एक ऐसा व्यक्ति जो धनी हो, जिसके पास बहुत पैसा और दौलत हो, जैसे कोई राजा या राजमंत्री। भेड़ व्यापारी या कसाई ऐसे व्यक्ति को भेड़ चुराने पर फांसी, कारावास, जुर्माना या अन्य दंड नहीं दे सकता; वह केवल उससे विनती कर सकता है: 'महोदय, मेरी भेड़ लौटा दीजिए या मुझे उसका भुगतान कर दीजिए।'"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, किसी व्यक्ति ने तुच्छ बुरे कर्म किए हैं फिर भी वह उसे नरक की ओर ले जाता है, जबकि यहाँ किसी अन्य व्यक्ति ने ठीक वही तुच्छ कर्म किए हैं फिर भी उसे इसी जीवन में बिना किसी अवशेष के, यहाँ तक कि थोड़े से भी अवशेष के बिना, भुगतना पड़ता है, प्रचुर मात्रा में अवशेष तो दूर की बात है।"

"किस प्रकार का व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है जो उसे नरक की ओर ले जाता है? यहाँ, कुछ व्यक्ति शरीर, सद्‌गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित हैं; वे सीमित हैं और उनका चरित्र नीच है, और वे दुख में रहते हैं। जब इस प्रकार का [253] व्यक्ति तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो वह उसे नरक की ओर ले जाता है।"

"ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है और फिर भी उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, जबकि उसका एक अंश भी दिखाई नहीं देता, प्रचुर मात्रा में फल मिलना तो दूर की बात है? यहाँ, कोई व्यक्ति शरीर, सद्‌गुण, मन और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से परिपूर्ण है। वह असीम है, उसका चरित्र उदात्त है और वह असीम रूप से निवास करता है। जब ऐसा व्यक्ति बिल्कुल वही तुच्छ बुरे कर्म करता है, तो उसका फल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, जबकि उसका एक अंश भी दिखाई नहीं देता, प्रचुर मात्रा में फल मिलना तो दूर की बात है।"

भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे कि 'कर्म का फल ठीक उसी प्रकार भुगता जाता है जिस प्रकार उसने उसे सृजित किया है', तो ऐसे में ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है और दुखों का पूर्ण अंत करने का कोई अवसर भी नहीं मिलता। परन्तु यदि कोई इस प्रकार कहे कि 'जब कोई व्यक्ति किसी विशेष प्रकार का कर्म सृजित करता है, तो उसे उसका फल ठीक उसी प्रकार भुगतना पड़ता है', तो ऐसे में ब्रह्मचर्य जीवन संभव है और दुखों का पूर्ण अंत करने का अवसर मिलता है।

---

102 मृदा निष्कासनकर्ता (पम्सुधोवका)

भिक्षुओं, सोने में कई प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं: मिट्टी, कंकड़ और बजरी। मिट्टी हटाने वाला या उसका शिष्य पहले सोने को एक पात्र में डालकर धोता है, फिर उसे साफ करता है। जब ये अशुद्धियाँ निकल जाती हैं, तो सोने में मध्यम आकार की अशुद्धियाँ रह जाती हैं: महीन कंकड़ और मोटी रेत। मिट्टी हटाने वाला या उसका शिष्य उसे फिर से धोता है, फिर उसे साफ करता है। जब ये अशुद्धियाँ निकल जाती हैं, तो सोने में सूक्ष्म अशुद्धियाँ रह जाती हैं: महीन रेत और काली धूल। इसलिए मिट्टी हटाने वाला या उसका शिष्य उसे फिर से धोता है, फिर उसे साफ करता है। जब ये अशुद्धियाँ निकल जाती हैं, तो केवल सोने के कण ही रह जाते हैं।

"सुनार या उसका प्रशिक्षु अब सोने को एक पिघलने वाले बर्तन में डालता है, और उसे हवा देता है, पिघलाता है, [254] और गलाता है। लेकिन जब यह हो भी जाता है, तब भी सोना अभी तक स्थिर नहीं होता है और अशुद्धियाँ पूरी तरह से नहीं हटाई जाती हैं। 555 सोना अभी तक लचीला, सुचारु और चमकदार नहीं है, बल्कि अभी भी भंगुर है और काम के लिए ठीक से उपयुक्त नहीं है।

लेकिन जब सुनार या उसका शागिर्द सोने को लगातार हवा से तराशता, पिघलाता और आकार देता रहता है, तो एक समय ऐसा आता है जब सोना जम जाता है और उसमें से सारी अशुद्धियाँ निकल जाती हैं, जिससे सोना लचीला, संभालने में आसान और चमकदार हो जाता है, और काम के लिए पूरी तरह से उपयुक्त हो जाता है। तब सुनार उससे जिस भी प्रकार का आभूषण बनाना चाहे—चाहे कंगन हो, झुमके हों, हार हो या सोने की माला—वह अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु उच्च मन में लीन होता है, (1) उसमें स्थूल दोष होते हैं: शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार। एक गंभीर, योग्य भिक्षु उन्हें त्याग देता है, दूर करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। जब ऐसा हो जाता है, (2) उसमें मध्यम दोष रह जाते हैं: कामुक विचार, द्वेष के विचार और हानि पहुँचाने के विचार। एक गंभीर, योग्य भिक्षु उन्हें त्याग देता है, दूर करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। जब ऐसा हो जाता है, (3) उसमें सूक्ष्म दोष रह जाते हैं: अपने रिश्तेदारों के बारे में विचार, अपने देश के बारे में विचार और अपनी प्रतिष्ठा के बारे में विचार। 557 एक गंभीर, योग्य भिक्षु उन्हें त्याग देता है, दूर करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। जब ऐसा हो जाता है, तब धम्म से संबंधित विचार रह जाते हैं। 558 वह समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) शांत और उदात्त नहीं है, न ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।" पूर्ण शांति, 559 एकीकरण प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि [अशुद्धियों] को बलपूर्वक दबाकर नियंत्रित और परास्त किया गया है। 560

लेकिन, भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब उसका मन आंतरिक रूप से स्थिर, शांत, एकीकृत और आत्म-मग्न (समाधि/समाधि) हो जाता है। वह समाधि (आत्म-मग्नता/समाधि) शांत और उदात्त होती है, जो पूर्ण समाधि शांति से प्राप्त होती है और एकीकरण तक पहुँचती है; इसे [अपवित्रताओं को] बलपूर्वक दबाकर नियंत्रित या रोका नहीं जाता है। 561 तब, उपयुक्त आधार होने पर, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है, जिसकी ओर वह अपना मन झुकाता है। 562 [255]

"यदि वह चाहे: 563 'मैं विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग कर सकूँ: एक होकर अनेक बन सकूँ; अनेक होकर एक बन सकूँ; प्रकट और लुप्त हो सकूँ; बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत से होकर अंतरिक्ष में जा सकूँ; पृथ्वी में ऐसे गोता लगा सकूँ जैसे वह जल हो; जल पर बिना डूबे ऐसे चल सकूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा कर सकूँ; अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहला सकूँ; ब्रह्म जगत तक शरीर पर महारत हासिल कर सकूँ', तो वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।"

"यदि वह चाहे: 'क्या मैं, दिव्य श्रवण शक्ति के साथ, जो शुद्ध है और मानवीय श्रवण शक्ति से परे है, दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकता हूँ, दिव्य और मानवीय, दूर और पास की ध्वनियों को,' तो वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।"

यदि वह चाहे: 'मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से घेरकर समझ सकूँ। मैं कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को मोह से मुक्त मन

के रूप में समझ सकूँ; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझ सकूँ; उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी समझ सकूँ; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपोमुखी मन को अपोमुखी समझ सकूँ; आत्ममग्न मन को आत्ममग्न और असामंजस्यपूर्ण मन को असामंजस्यपूर्ण समझ सकूँ।' मुक्त मन मुक्त ही रहता है और अमुक्त मन अमुक्त ही रहता है। 564 वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए उपयुक्त आधार हो।

यदि वह चाहे: 'क्या मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद कर सकता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, विश्व-विनाश के अनेक युग, विश्व-विकास के अनेक युग, विश्व-विनाश और विश्व-विकास के अनेक युग इस प्रकार: "वहाँ [256] मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से गुजरकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ है"— क्या मैं इस प्रकार अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके पहलुओं और विवरणों सहित याद कर सकता हूँ? उपयुक्त आधार होने पर वह इसे साकार करने में सक्षम है।

यदि वह चाहे: 'क्या मैं, अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझ सकता हूँ कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: "ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का पालन किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। - इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैं प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और समझ सकूँ कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है। उपयुक्त आधार होने पर वह इसे अनुभव करने में सक्षम है।

यदि वह यह इच्छा करे: 'मैं दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव करूँ, और उसमें प्रवेश करने के बाद, उसमें निवास करूँ', तो वह इसे प्राप्त करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।

---

103 ए गोल्डस्मिथ 565

उच्चतर मन (अधि-चित्त) "भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु उच्चतर मन के प्रति समर्पित होता है, तो उसे समय-समय पर तीन लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। 566 (1) समय-समय पर उसे समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) के लक्षण पर ध्यान देना चाहिए, (2) समय-समय पर परिश्रम के लक्षण पर, और (3) समय-समय पर उदासीनता (भीतर ध्यान केंद्रित करना/उपेक्खा) के लक्षण पर ध्यान देना चाहिए।"

यदि कोई भिक्षु जो उच्च मन के प्रति समर्पित है, केवल समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है, तो संभव है कि उसका मन आलस्य की ओर प्रवृत्त हो जाए। यदि वह केवल परिश्रम की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है, तो संभव है कि उसका मन बेचैनी की ओर प्रवृत्त हो जाए। यदि [257] वह केवल उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है, तो संभव है कि उसका मन दोषों के नाश के लिए उचित रूप से आत्म-लीन (सम्मोहन/सम्मोहन) न हो पाए। परन्तु जब कोई भिक्षु जो उच्च मन के प्रति समर्पित है, समय-समय पर समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की अवस्था पर, समय-समय पर परिश्रम की अवस्था पर और समय-समय पर उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) की अवस्था पर ध्यान देता है, तो उसका मन लचीला, सुगम और प्रकाशमान, कोमल और दोषों के नाश के लिए उचित रूप से आत्म-लीन (सम्मोहन/सम्मोहन) हो जाता है। दाग।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक सुनार या उसका शागिर्द भट्ठी तैयार करे, तवे को गर्म करे, चिमटे से थोड़ा सोना लेकर तवे में डाले। फिर वह समय-समय पर उस पर फूँक मारे, उस पर पानी छिड़के और बीच-बीच में देखता रहे। यदि सुनार या उसका शागिर्द केवल सोने पर

फूँक मारता रहे, तो संभव है कि सोना जल जाए। यदि वह केवल सोने पर पानी छिड़कता रहे, तो संभव है कि सोना ठंडा हो जाए। यदि वह केवल देखता रहे, तो संभव है कि सोना उचित आकार का न हो पाए। लेकिन यदि सुनार या उसका शागिर्द समय-समय पर उस पर फूँक मारे, उस पर पानी छिड़के और बीच-बीच में देखता रहे, तो सोना लचीला, सुचारु, चमकदार और काम के लिए उपयुक्त हो जाएगा। फिर सुनार उससे जो भी आभूषण बनाना चाहे—चाहे कंगन हो, झुमके हों, हार हो या सोने की माला—वह अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है।

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु उच्चतर मन के प्रति समर्पित होता है, तो उसे समय-समय पर तीन लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। समय-समय पर उसे समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के लक्षण पर ध्यान देना चाहिए, समय-समय पर परिश्रम के लक्षण पर और समय-समय पर उदासीनता (भीतर ध्यान केंद्रित करना/उपेक्खा) के लक्षण पर ध्यान देना चाहिए।"

"यदि कोई भिक्षु उच्चतर मन के प्रति समर्पित होकर केवल समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करे, [258] तो संभव है कि उसका मन आलस्य की ओर विवश हो जाए। यदि वह केवल परिश्रम की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करे, तो संभव है कि उसका मन बेचैनी की ओर विवश हो जाए। यदि वह केवल उदासीनता (भीतर ध्यान केंद्रित करना/उपेक्खा) की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करे, तो संभव है कि उसका मन दोषों के नाश के लिए उचित रूप से आत्म-लीन (सम्मोहन/सम्मोहन) न हो पाए। परन्तु जब वह समय-समय पर समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की अवस्था पर, समय-समय पर परिश्रम की अवस्था पर और समय-समय पर समभाव की अवस्था पर ध्यान देता है, तो उसका मन कोमल, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है, भंगुर नहीं, बल्कि दोषों के नाश के लिए उचित रूप से आत्म-लीन (सम्मोहन/सम्मोहन) हो जाता है। तब, उपयुक्त आधार होने पर, वह वास्तविक साधना में सक्षम हो जाता है।" प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी अवस्था का अभिकल्पन करना, जिसकी ओर वह अपना मन झुका सकता है।

यदि वह चाहे: 'क्या मैं विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का उपयोग कर सकता हूँ 7 . . . [सभी 3:101 के अनुसार, यहाँ तक:] . . ; यदि वह चाहे: 'क्या मैं दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को स्वयं अनुभव कर सकता हूँ, और उसमें प्रवेश करके, उसमें निवास कर सकता हूँ' तो वह इसे अनुभव करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।

तीसरा पचास

I. ज्ञानोदय

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

104 आत्मज्ञान से पहले (पुब्बेवा-संबोध-सुत्तम)

"भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं मात्र एक बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: (1) 'संसार में क्या तृप्ति (असदो संस्कृत असवाद) है? (2) इसमें क्या खतरा (अदिनवो) है? (3) इससे क्या मुक्ति (निसारणा) है?' 567

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'संसार पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद ही संसार में संतुष्टि है। संसार क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है, यही संसार में खतरा है। संसार के प्रति इच्छा और कामवासना (राग) का त्याग और परित्याग ही संसार से मुक्ति है।"

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे संसार में वास्तविक सुखों का, खतरे का और उससे बचने के उपाय का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विद हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य विद हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे संसार में वास्तविक सुखों का, खतरे का और उससे बचने के उपाय का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य विद हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।"

"मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरे मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब और कोई नवजन्म (भाव/पुनर्जन्म का कारण) नहीं है'।"

---

105 संतुष्टि (1) [563] (पथमा-असदा-सुत्तम)

(1) "भिक्षुओं, मैं संसार में संतुष्टि (असद) की खोज में निकला। संसार में जो भी संतुष्टि (असद, असवाद रहित) है, वह मुझे मिल गई। मैंने अपने दिव्य ज्ञान से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि संसार में संतुष्टि कितनी दूर तक फैली हुई है।"

(2) "मैं संसार में खतरे (आदिनाव) की खोज में निकला। संसार में जो भी खतरा है, वह मुझे मिल गया। मैंने अपने दिव्य ज्ञान से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि संसार में खतरा कितना व्यापक है।"

(3) "मैंने संसार से मुक्ति (निसारणा) की खोज में प्रस्थान किया। संसार से जो भी मुक्ति संभव है—वह मैंने पा ली। मैंने अपने दिव्य ज्ञान से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि संसार से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।"

भिक्षुओं, जब तक मुझे संसार में मिलने वाले सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में, संकटों को संकट के रूप में और उनसे मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तब तक मैंने इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं), मार और ब्रह्मा के साथ, इस पीढ़ी में, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के साथ, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे संसार में मिलने वाले सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में, संकटों को संकट के रूप में और उनसे मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात हुआ, तब मैंने इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के साथ, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरे मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब और कोई नवजन्म अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

106 संतुष्टि (2) (दुतिया-असदा-सुत्तम)

भिक्षुओं, (1) यदि संसार में सुख न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु संसार में सुख होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। (2) यदि संसार में भय न होता, तो प्राणी उससे विरक्त न होते; परन्तु संसार में भय होने के कारण प्राणी उससे विरक्त हो जाते हैं। (3) यदि संसार से मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु संसार से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, जब तक प्राणी संसार में मिलने वाले सुख को सुख के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे बचने के उपाय को बचने के उपाय के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, जिसमें देव (देवदूत/भगवान), मार और ब्रह्मा हैं, इस संसार से, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य हैं, से मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे विवशता से मुक्त मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी संसार में मिलने वाले सुख को सुख के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे बचने के उपाय को बचने के उपाय के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, जिसमें देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य हैं, मुक्त हो जाते हैं, इससे विरक्त हो जाते हैं, और विवशता से मुक्त मन से निवास करते हैं।

---

107 तपस्वी एवं ब्राह्मण [569] (समना ब्राह्मण)

"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो (1) संसार में मिलने वाली संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, (2) खतरे को खतरे के रूप में और (3) उससे बचने को बचाव के रूप में नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

"परन्तु वे तपस्वी और ब्राह्मण जो संसार में सुख को सुख के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।" [261]

---

108 विलाप (रन्ना)

भिक्षुओं, (1) भगवान की साधना में गाना विलाप के समान है। (2) भगवान की साधना में नाचना पागलपन है। (3) भगवान की साधना में दांत दिखाते हुए अत्यधिक हंसना बचकानापन है। इसलिए, भिक्षुओं, गाने और नाचने के विषय में इस पुल को तोड़ दो। जब तुम धम्म में आनंदित होकर मुस्कुराते हो, तो बस मुस्कुराओ। 570

---

109 कोई तृप्ति नहीं (अतिति सं. अतृप्ति)

भिक्षुओं, तीन ऐसी चीजें हैं जिनमें लिप्त होने से तृप्ति नहीं मिलती (तित्ति संस्कृत: तृप्ति)। वे तीन चीजें कौन सी हैं? (1) सोने में लिप्त होने से तृप्ति नहीं मिलती। (2) शराब और मदिरा के सेवन से तृप्ति नहीं मिलती। (3) यौन संबंध बनाने से तृप्ति नहीं मिलती। ये तीन चीजें हैं जिनमें लिप्त होने से तृप्ति नहीं मिलती।

---

110 असुरक्षित (अरक्षिता सं. अरक्षित)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, जब मन असुरक्षित होता है, तो शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएं भी असुरक्षित हो जाती हैं।"

जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म संरक्षित नहीं होते, उसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म दूषित हो जाते हैं। 573 जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म दूषित हो जाते हैं, उसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म सड़ जाते हैं। जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म सड़ जाते हैं, उसकी मृत्यु अच्छी नहीं होगी। 572

"मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाले घर की छप्पर ठीक से नहीं बनाई गई है: तो छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें असुरक्षित हो जाती हैं; छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें दूषित हो जाती हैं; छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें सड़ जाती हैं।"

"इसी प्रकार, हे गृहस्थ, [262] जब मन असुरक्षित होता है, तो शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएँ असुरक्षित हो जाती हैं। . . . जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म भ्रष्ट हैं, उसकी मृत्यु अच्छी नहीं होगी।"

"हे गृहस्थ, जब मन सुरक्षित रहता है, तो शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएं सुरक्षित रहती हैं।"

जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म सुरक्षित हैं, उसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म दूषित नहीं होते।

जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म दूषित नहीं होते, उसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कार्य भ्रष्ट नहीं होते। जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म भ्रष्ट नहीं होते, उसकी मृत्यु सुखद होती है।

मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाला घर अच्छी तरह से छप्पर से ढका हुआ है: तो छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें सुरक्षित रहती हैं; छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें दूषित नहीं होतीं; छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें सड़ती नहीं हैं।

"इसी प्रकार, हे गृहस्थ, जब मन, शरीर और वाणी की रक्षा हो; और मानसिक कर्मों की रक्षा हो... तो जिसके शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्म भ्रष्ट नहीं होते, उसे सुखद मृत्यु प्राप्त होगी।"

---

111 विफलता (ब्यपन्ना सं. व्यय)

तब भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ अनाथपिंडिका से कहा:

"गृहस्थ, जब मन कमजोर हो जाता है, तो शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएं भी विफल हो जाती हैं; जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म विफल हो जाते हैं, उसकी मृत्यु सुखद नहीं होती।"

मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाले घर की छप्पर ठीक से नहीं बनाई गई है: तो छत का शिखर, शहतीरें और दीवारें सब ढह जाती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब मन विफल हो जाता है, तो शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएं विफल हो जाती हैं। जिसके शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म विफल हो जाते हैं, उसकी मृत्यु सुखद नहीं होती।

"हे गृहस्थ, जब मन दृढ़ रहता है, तो शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्म भी दृढ़ रहते हैं। जिसके शरीर, वाणी और मन के कर्म दृढ़ रहते हैं, उसे सुखद मृत्यु प्राप्त होती है।"

"मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाला घर अच्छी तरह से छप्पर से ढका हुआ है: तो छत का शिखर, [263] शहतीरें और दीवारें नहीं गिरतीं। ठीक उसी प्रकार, जब मन विफल नहीं होता, तो शारीरिक, वाणी और मानसिक क्रियाएँ विफल नहीं होतीं। जिसके शरीर, वाणी और मन के कर्म विफल नहीं होते, उसे अच्छी मृत्यु प्राप्त होगी।"

---

112 कारण (1) (निदाना1)

भिक्षुओं, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ (अनैतिक) कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; घृणा (अनैतिक) कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; मोह (अनैतिक) कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है।

(1) "लालच से उत्पन्न, लालच से पैदा हुआ, लालच के कारण हुआ या लालच से उत्पन्न कोई भी कर्म हानिकारक (अकुशल) और निंदनीय है तथा दुख का कारण बनता है। वह कर्म कर्मों की उत्पत्ति का कारण बनता है, न कि कर्मों की समाप्ति का।" 573

(2) "घृणा से उत्पन्न कोई भी कर्म... (3) मोह से उत्पन्न, मोह से उत्पन्न, मोह से उत्पन्न कोई भी कर्म अकुशल और निंदनीय है और दुख का कारण बनता है। वह कर्म कर्मों की उत्पत्ति का कारण बनता है, न कि कर्मों की समाप्ति का।"

ये कर्मों की उत्पत्ति के तीन कारण हैं। 574

भिक्षुओं, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन अन्य कारण हैं। 575 वे तीन क्या हैं? लोभ रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; घृणा रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; मोह रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है।

(1) "अनासक्ति से उत्पन्न, अनिच्छुक, अनिच्छुक के कारण या अनिच्छुक से उत्पन्न कोई भी कर्म लाभकारी और दोषरहित होता है और सुख प्रदान करता है। वह कर्म (गलत कर्मों) के निवारण की ओर ले जाता है, न कि कर्मों के सृजन की ओर।"

(2) "कोई भी कर्म जो घृणा रहित होकर किया गया हो... (3) कोई भी कर्म जो मोह रहित होकर किया गया हो, मोह रहित होकर उत्पन्न हुआ हो, मोह रहित होकर किया गया हो, या मोह रहित होकर उत्पन्न हुआ हो, वह लाभकारी और निष्फल होता है और सुख प्रदान करता है। वह कर्म (गलत) कर्मों के निवारण की ओर ले जाता है, न कि कर्मों के सृजन की ओर।"

"कर्म की उत्पत्ति के ये तीन [अन्य] कारण हैं।"

---

113 कारण (2) (निदाना2)

भिक्षुओं, कर्म की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं... वे तीन क्या हैं? (1) अतीत में घटी उन चीजों के संदर्भ में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। (2) भविष्य में घटी उन चीजों के संदर्भ में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। (3) वर्तमान में विद्यमान उन चीजों के संदर्भ में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं।

(1) "हे भिक्षुओं, अतीत में घटी उन चीजों के संदर्भ में इच्छा कैसे उत्पन्न होती है जो इच्छा और राग का आधार हैं? व्यक्ति अतीत में घटी उन चीजों के बारे में सोचता है और उनका मानसिक विश्लेषण करता है जो इच्छा और राग का आधार हैं। ऐसा करने पर इच्छा उत्पन्न होती है। जब इच्छा उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति उन चीजों से बंध जाता है। इस मानसिक आसक्ति को ही मैं बंधन कहता हूँ। इसी प्रकार अतीत में घटी उन चीजों के संदर्भ में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और राग का आधार हैं।"

(2) "और भविष्य में होने वाली उन चीजों के संबंध में इच्छा कैसे उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं? व्यक्ति भविष्य में होने वाली उन चीजों के बारे में सोचता है और मानसिक रूप से उनका विश्लेषण करता है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। ऐसा करने पर इच्छा उत्पन्न होती है। जब इच्छा उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति उन चीजों से बंध जाता है। मानसिक आसक्ति को ही मैं बंधन कहता हूँ। इसी प्रकार भविष्य में होने वाली उन चीजों के संबंध में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं।"

(3) "और वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के संदर्भ में इच्छा कैसे उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं? व्यक्ति वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के बारे में सोचता है और मानसिक रूप से उनका विश्लेषण करता है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। ऐसा करने पर इच्छा उत्पन्न होती है। जब इच्छा उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति उन वस्तुओं से बंध जाता है। मानसिक आसक्ति को ही मैं बंधन कहता हूँ। इसी प्रकार वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के संदर्भ में इच्छा उत्पन्न होती है जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं।"

"कर्म (कर्म/कर्मों) की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं। 576 [265]

भिक्षुओं, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन अन्य कारण हैं। वे तीन क्या हैं? इच्छा अतीत में घटित उन चीजों के संदर्भ में उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। इच्छा भविष्य में घटित उन चीजों के संदर्भ में उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं। इच्छा वर्तमान में विद्यमान उन चीजों के संदर्भ में उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और कामवासना (राग) का आधार हैं।

(1) "हे भिक्षुओं, अतीत में घटी उन चीजों के प्रति इच्छा कैसे उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं? व्यक्ति अतीत में घटी उन चीजों के भविष्य के परिणाम को समझ लेता है जो इच्छा और राग का आधार हैं। भविष्य के परिणाम को समझकर वह उनसे बचता है। 577 उनसे बचकर वह मन से वैराग्यमय हो जाता है और प्राण (दिव्य ज्ञान) से परिपूर्ण होकर देखता है। 578 इस प्रकार अतीत में घटी उन चीजों के प्रति इच्छा उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं।"

(2) "हे भिक्षुओं, भविष्य में होने वाली उन चीजों के प्रति इच्छा कैसे उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं? व्यक्ति भविष्य में होने वाली उन चीजों के परिणाम को समझ लेता है जो इच्छा और राग का आधार हैं। परिणाम को समझकर वह उनसे दूर रहता है। उनसे दूर रहकर वह वैराग्यमय हो जाता है और दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर देखता है। इस प्रकार भविष्य में होने वाली उन चीजों के प्रति इच्छा उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं।"

(3) "हे भिक्षुओं, वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के प्रति इच्छा कैसे उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं? व्यक्ति वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के भावी परिणाम को समझता है जो इच्छा और राग का आधार हैं। भावी परिणाम को समझकर वह उससे बचता है। उससे बचकर वह मन से वैराग्यमय हो जाता है और दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर देखता है। इस प्रकार वर्तमान में विद्यमान उन वस्तुओं के प्रति इच्छा उत्पन्न नहीं होती जो इच्छा और राग का आधार हैं।"

"कर्म की उत्पत्ति के ये तीन [अन्य] कारण हैं।"

II. दुख के लोक की ओर अग्रसर (अपायिका-वग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

114 दुख के लोक की ओर अग्रसर (अपयिका-सुत्तम)

भिक्षुओं, तीन ऐसे हैं जो यदि अपने इस दोष का त्याग नहीं करते हैं, तो वे दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य हैं। वे तीन कौन हैं? [266] (1) वह जो ब्रह्मचारी न होते हुए भी ब्रह्मचारी होने का दावा करता है; (2) वह जो ब्रह्मचारी जीवन जी रहे एक शुद्ध ब्रह्मचारी पर ब्रह्मचर्य का उल्लंघन करने का निराधार आरोप लगाता है; और (3) वह जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखता है: "इंद्रिय सुखों में कोई दोष नहीं है," और फिर इंद्रिय सुखों में लिप्त हो जाता है। 579 ये तीन ऐसे हैं जो यदि अपने इस दोष का त्याग नहीं करते हैं, तो वे दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य हैं।

---

115 दुर्लभ (दुल्लभा सं. दुर्लभ)

भिक्षुओं, संसार में तीन व्यक्तियों का प्रकटीकरण दुर्लभ है। वे तीन कौन हैं? (1) तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। (2) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश देने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (3) कृतज्ञ और आभारी व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। इन तीनों व्यक्तियों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है।

---

116 अथाह (अप्पमेय्या सं. अप्रमनिया)

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? एक जिसे आसानी से मापा जा सकता है (सुप्पमेय्यो), एक जिसे मापना कठिन है (दुप्पमेय्यो), और एक जिसे मापा नहीं जा सकता (अप्पमेय्यो)।

(1) "हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कौन है जिसका आसानी से आकलन किया जा सकता है? यहाँ, ऐसा व्यक्ति बेचैन, अहंकारी, आत्मसंतुष्ट, बातूनी, बातों में अस्पष्टता रखने वाला, उलझन में रहने वाला, पूर्ण समझ से रहित (संपजन्न), असामहित (असमाहित), भटकते मन वाला और इंद्रियों के शिथिल होने वाला होता है। इसे ही आसानी से आकलन किया जाने वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) “और वह व्यक्ति कौन है जिसका आकलन करना कठिन है? यहाँ, ऐसा व्यक्ति जो बेचैन, अहंकारी और आत्म-प्रशंसक नहीं है; वह बातूनी और बेतरतीब बातों वाला नहीं है; उसकी सती ध्यान साधना स्थापित है और वह पूर्णतः समर्थ है, समाधि में लीन है, एकाग्रचित्त है, और उसकी इंद्रियाँ संयमित हैं। यही वह व्यक्ति कहलाता है जिसका आकलन करना कठिन है।”

(3) "और वह व्यक्ति कौन है जो अतुलनीय है? यहाँ, भिक्षु एक अरहंत है, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं। इसे अतुलनीय व्यक्ति कहा जाता है।"

"ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं" [267]

---

117 भेद (अनेंजा सं. अनेन्या)

"भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं?"

(1) हे भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति रूप-बोधों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है, इंद्रियों के प्रभाव से उत्पन्न संवेदनाओं (सन्ना/संज्ञा) का निवारण कर लेता है, और विविधता की संवेदनाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान नहीं देता, तो वह 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उसमें आनंदित होता है, उसकी इच्छा करता है और उसमें तृप्ति पाता है। यदि वह उसमें दृढ़ रहे, उस पर एकाग्र रहे, उसमें बार-बार निवास करे और मृत्यु के समय उसे न खोए, तो उसका पुनर्जन्म अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ होता है। अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल 20,000 युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो उसका पुनर्जन्म अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ होता है। देवों (देवदूतों/देवताओं) के पास रहने वाला व्यक्ति या तो नरक में जाता है, पशु जगत में जाता है, या पीड़ित आत्माओं (भूतों) के लोक में जाता है। 580 परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल व्यतीत कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, अर्थात् जब भविष्य का गंतव्य और पुनर्जन्म होता है। 581

(2) “फिर, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, ‘चेतना अनंत है’ का अनुभव करते हुए, कोई व्यक्ति अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उसका आनंद लेता है, उसकी इच्छा करता है और उसमें तृप्ति पाता है। यदि वह उसमें दृढ़ रहे, उस पर एकाग्र रहे, उसमें निरंतर निवास करे और मृत्यु के समय उसे न खोए, तो वह अनंत चेतना के आधार पर स्थित देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल 40,000 युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह या तो नरक, पशुलोक या व्यथित आत्माओं के लोक में जाता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य वहीं रहता है। वह अपने पूरे जीवन वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त करता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है [268] जो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति के बीच है, अर्थात् जब भविष्य का गंतव्य और पुनर्जन्म होता है।

(3) “हे भिक्षुओं, चेतना की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, ‘कुछ नहीं है’ का अनुभव करते हुए, कोई व्यक्ति यहाँ शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उसमें आनंदित होता है, उसकी इच्छा करता है और उसमें तृप्ति पाता है। यदि वह उसमें दृढ़ रहे, उस पर एकाग्र रहे, उसमें निरंतर निवास करे और मृत्यु के समय उसे न खोए, तो वह शून्यता के आधार के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल 60,000 युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का संपूर्ण जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह या तो नरक, पशुलोक या व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में जाता है।” लेकिन भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही वह अंतर है, वही भिन्नता है, वही भेद है जो ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, यानी जब भविष्य में गंतव्य और पुनर्जन्म का सवाल आता है।

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।"

---

118 असफलताएँ और उपलब्धियाँ (सम्पदा) (विपत्ति-सम्पदा)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की विफलताएँ (विपत्ति) हैं। वे तीन क्या हैं? सद्गुणपूर्ण आचरण में विफलता, मन में विफलता (विपत्ति), और दृष्टि में विफलता (विपत्ति)।

(1) "और सद्गुणों में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ, कोई जीवन नष्ट करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर बोलता है और व्यर्थ की बातों में लिप्त होता है। इसे सद्गुणों में विफलता (विपत्ति) कहा जाता है।"

(2) "मन में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति लालसा से भरा हुआ है और उसके मन में दुर्भावना है। इसे मन में विफलता (विपत्ति) कहते हैं।"

(3) "दृष्टि में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति गलत दृष्टिकोण रखता है और उसका परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: "कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; कोई भी प्राणी स्वतः पुनर्जन्म नहीं लेता; संसार में ऐसे कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हों और स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव कर लें और दूसरों को भी इसका ज्ञान कराएँ।" इसे दृष्टि में विफलता (विपत्ति) कहते हैं।

"पुण्य आचरण में विफलता (विपत्ति) के कारण, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। मन की विफलता (विपत्ति) के कारण... दृष्टि की विफलता (विपत्ति) के कारण, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"ये, भिक्षुओ, तीन असफलताएं (विपत्ति) हैं।

भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदा) हैं। वे तीन क्या हैं? सद्गुणपूर्ण आचरण में सिद्धि (संपदा), मन में सिद्धि (संपदा), और दृष्टि में सिद्धि (संपदा)।

(1) "और सद्गुणों में संपदा क्या है? यहाँ, व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने से, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, फूट डालने वाली वाणी से, कठोर वाणी से और व्यर्थ की बातों से परहेज़ करता है। इसे सद्गुणों में संपदा कहा जाता है।"

(2) "और मन में संपदा क्या है? यहाँ, व्यक्ति लालसा रहित है और उसका मन द्वेष से मुक्त है। इसे मन में संपदा कहते हैं।"

(3) "संपदा (संपदा) क्या है? यहाँ, सही दृष्टि और सही परिप्रेक्ष्य रखने वाला व्यक्ति इस प्रकार है: 'जो दिया जाता है, बलिदान किया जाता है और अर्पित किया जाता है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम होता है; यह संसार और परलोक है; माता-पिता हैं; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं।' इसे संपदा (संपदा) कहा जाता है। [270]

"पुण्य कर्मों में संपदा के कारण, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, प्राणी एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। मन में संपदा के कारण... दृष्टि में संपदा के कारण, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, प्राणी एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदा) हैं।"

---

119 पासे (अपन्नका)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की विफलताएँ (विपत्ति) हैं। वे तीन क्या हैं? सद्गुणपूर्ण आचरण में विफलता, मन में विफलता (विपत्ति), और दृष्टि में विफलता (विपत्ति)।

और सद्गुणपूर्ण आचरण में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ कोई जीवन का नाश करता है... [जैसा कि 3:117 में है]... इसे दृष्टि में विफलता (विपत्ति) कहा जाता है।

"पुण्य आचरण में विफलता (विपत्ति) के कारण, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। मन की विफलता (विपत्ति) के कारण... दृष्टि की विफलता (विपत्ति) के कारण, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"जिस प्रकार पासा, ऊपर उछालने पर जहाँ भी गिरता है, वहीं स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार सद्गुणों में विफलता (विपत्ति) के कारण... मन की विफलता (विपत्ति) के कारण... दृष्टि की विफलता (विपत्ति) के कारण, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"ये, भिक्षुओ, तीन असफलताएं (विपत्ति) हैं।

भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदा) हैं। वे तीन क्या हैं? सद्गुणपूर्ण आचरण में सिद्धि (संपदा), मन में सिद्धि (संपदा), और दृष्टि में सिद्धि (संपदा)।

और हे भिक्षुओं, सद्गुणपूर्ण आचरण में संपदा क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन के विनाश से परहेज करता है... [जैसा कि 3:117 में है]... इसे ही संपदा कहा जाता है।

"पुण्य कर्मों में संपदा के फलस्वरूप, शरीर के क्षोभ के साथ मृत्यु के बाद, प्राणी स्वर्गलोक में एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं। मन में संपदा के फलस्वरूप... दृष्टि में संपदा के फलस्वरूप, शरीर के क्षोभ के साथ मृत्यु के बाद, प्राणी स्वर्गलोक में एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं।"

जिस प्रकार पासा ऊपर उछालने पर जहाँ गिरता है वहीं स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार सद्गुणों में संपदा (संपदा) के कारण... मन में संपदा (संपदा) के कारण... दृष्टि में संपदा (संपदा) के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, प्राणी एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"हे भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं।"

---

120 गतिविधि (कम्मंता)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की विफलताएँ (विपत्ति) हैं। वे तीन क्या हैं? कर्म में विफलता, आजीविका में विफलता (विपत्ति) और दृष्टि में विफलता (विपत्ति)।

(1) "और कर्म में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ, कोई जीवन को नष्ट करता है... और व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है। इसे कर्म में विफलता (विपत्ति) कहते हैं।"

(2) "और आजीविका में विफलता (विपत्ति) क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति गलत आजीविका का है और गलत प्रकार की आजीविका से जीविका कमाता है। इसे आजीविका में विफलता (विपत्ति) कहा जाता है।"

(3) "दृष्टि में विफलता (विपत्ति) क्या है? [271] यहाँ, कोई व्यक्ति गलत दृष्टिकोण रखता है और उसका परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'कुछ भी दिया हुआ नहीं है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा

स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया हो और फिर दूसरों को उनका ज्ञान कराते हों। इसे दृष्टि में विफलता (विपत्ति) कहा जाता है।

ये तीन विफलताएँ (विपत्ति) हैं।

भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदा) हैं। वे तीन क्या हैं? कर्म में सिद्धि (संपदा), जीविका में सिद्धि (संपदा), और दृष्टि में सिद्धि (संपदा)।

(1) "और कर्म में संपदा क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं के विनाश से और व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। इसे कर्म में संपदा कहते हैं:

(2) "और आजीविका में संपदा क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति सही आजीविका का है और सही प्रकार की आजीविका से जीविका कमाता है। इसे आजीविका में संपदा कहा जाता है।"

(3) "संपदा क्या है? यहाँ, किसी का सही दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'जो दिया गया है, वही है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं।' इसे संपदा कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये तीन सिद्धियाँ (संपदा) हैं।"

121 पवित्रता (1) (सोसेय्या1 सं. शुचिता)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की पवित्रताएँ हैं। वे कौन सी तीन हैं? शारीरिक पवित्रता, वाणी की पवित्रता और मानसिक पवित्रता!

(I) "शारीरिक पवित्रता क्या है? यहाँ, व्यक्ति जीवन को नष्ट करने से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से और यौन दुराचार से परहेज करता है। इसे शारीरिक पवित्रता कहा जाता है।"

(2) "और मौखिक शुद्धता क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बकवास से परहेज करता है। इसे मौखिक शुद्धता कहा जाता है।"

(3) "और मानसिक शुद्धता क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति लालसा रहित, द्वेष रहित, [272] और सही दृष्टिकोण रखता है। इसे मानसिक शुद्धता कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये तीन शुद्धि हैं।"

---

122 पवित्रता (2) (सोसेय्या2 सं. शुचिता)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की पवित्रताएँ हैं। वे कौन सी तीन हैं? शारीरिक पवित्रता, वाणी की पवित्रता और मानसिक पवित्रता।

(1) "और शारीरिक पवित्रता क्या है? यहाँ, एक भिक्षु जीवन के विनाश से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से और यौन गतिविधि से परहेज करता है। इसे शारीरिक पवित्रता कहा जाता है।"

(2) "और वाणी की शुद्धता क्या है? यहाँ, भिक्षु झूठे वचन, फूट डालने वाले वचन, कठोर वचन और व्यर्थ की बातों से परहेज़ करता है। इसे वाणी की शुद्धता कहते हैं।"

(3) "और मानसिक शुद्धता क्या है? 583 यहाँ, जब किसी भिक्षु में कामुक इच्छा होती है, तो वह समझता है: 'मुझमें कामुक इच्छा है'; या जब उसमें कामुक इच्छा नहीं होती, तो वह समझता है: 'मुझमें कामुक इच्छा नहीं है'; और वह यह भी समझता है कि अजन्मी कामुक इच्छा कैसे उत्पन्न होती है, उत्पन्न हुई कामुक इच्छा का त्याग कैसे होता है, और त्यागी हुई कामुक इच्छा भविष्य में फिर से कैसे उत्पन्न नहीं होती है।

"जब उसमें दुर्भावना होती है... जब उसमें सुस्ती और आलस्य होता है... जब उसमें बेचैनी और पश्चाताप होता है... [273]... जब उसमें संदेह होता है, तो वह समझता है: 'मुझमें संदेह है'; या जब उसमें संदेह नहीं होता है, तो वह समझता है: 'मुझमें संदेह नहीं है'; और वह यह भी समझता है कि अनहोनी संदेह कैसे उत्पन्न होती है, कैसे उत्पन्न संदेह का त्याग होता है, और कैसे त्यागी हुई संदेह भविष्य में फिर से उत्पन्न नहीं होती है। इसे मानसिक शुद्धता कहते हैं।"

"भिक्षुओं, ये तीन शुद्धि हैं।"

शरीर से शुद्ध, वाणी से शुद्ध,

मन से शुद्ध, दोषरहित

-

वे शुद्ध व्यक्ति को, पवित्रता में सिद्ध पुरुष को,

"

वह जिसने बुराई को धो डाला है" कहते हैं।

---

123 संतत्व (मनीय्या संस. मुनित्वा)

भिक्षुओं, तीन प्रकार की संतता होती है। वे कौन से तीन प्रकार हैं? शारीरिक संतता, वाणी की संतता और मानसिक संतता।

(1) "और शारीरिक पवित्रता क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन के विनाश से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से और यौन गतिविधि से परहेज करता है। इसे शारीरिक पवित्रता कहा जाता है।"

(2) "और मौखिक पवित्रता क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति झूठे भाषण से, फूट डालने वाले भाषण से, कठोर भाषण से और व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। इसे मौखिक पवित्रता कहा जाता है।"

(3) "मानसिक संतत्व क्या है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान से, इसी जीवन में, मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इसे ही मानसिक संतत्व कहते हैं।"

"हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संतता हैं।"

शरीर से ऋषि, वाणी से ऋषि,

मन से ऋषि, दोषरहित:

वे मौन में परिपूर्ण ऋषि को

"वह जिसने सब कुछ त्याग दिया है" कहते हैं। [274]

III. कुसिनारा [584]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

124 कुसिनारा

एक बार भगवान (बुद्ध) कुसिनारा में बलिहारणा वन के घने जंगल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया...

"हे भिक्षुओं, एक भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर रहता है। एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसके पास आता है और उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि वह चाहे तो भिक्षु स्वीकार कर लेता है। रात्रि बीत जाने पर, सुबह भिक्षु वस्त्र धारण करता है, अपना कुंड और वस्त्र लेकर उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के निवास पर जाता है। वह तैयार की गई चौकी पर बैठता है और वह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से उसे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता है और तृप्त करता है। (1) उसके मन में यह विचार आता है: 'कितना अच्छा है कि यह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से मुझे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता है और तृप्त करता है!' (2) उसके मन में यह भी विचार आता है: 'काश भविष्य में भी यह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से मुझे इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता रहे और तृप्त करता रहे!'" (3) वह उस भोजन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके प्रति आसक्त, उसमें अंधाधुंध लीन होकर करता है, उसमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए और उससे बचने के उपाय को न समझते हुए। वह उसके संबंध में कामुक विचार रखता है; वह दुर्भावना के विचार रखता है; वह हानि पहुँचाने के विचार रखता है। मैं कहता हूँ कि ऐसे भिक्षु को जो कुछ दिया जाता है, वह अधिक फलदायी नहीं होता। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षु आलसी है।

"यहाँ, एक भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर रहता है। एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसके पास आता है और उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि वह चाहे तो भिक्षु स्वीकार कर लेता है। रात्रि बीत जाने पर, सुबह भिक्षु वस्त्र धारण करता है, अपना कुंड और वस्त्र लेकर उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के निवास पर जाता है। वह तैयार की गई चौकी पर बैठता है और वह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से उसे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता है और तृप्त करता है। (1) उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'कितना अच्छा है कि यह गृहस्थ [275] या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से मुझे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता है और तृप्त करता है!' (2) उसके मन में यह विचार भी नहीं आता: 'हे भविष्य में भी, यह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र अपने हाथों से मुझे इसी प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसता रहे और तृप्त करे!'" (3) वह उस भोजन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, बल्कि उसमें निहित खतरे को पहचानते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करता है। वह उसके संबंध में त्याग के विचार करता है; वह सद्भावना के विचार करता है; वह अहिंसा के विचार करता है। मैं कहता हूँ कि ऐसे भिक्षु को जो कुछ भी दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षु सचेत रहता है।

---

125 तर्क (बंधन)

"भिक्षुओं, जहाँ कहीं भी भिक्षु आपस में बहस और झगड़े करते हुए एक-दूसरे को तीखे शब्दों से घायल करते हैं, वहाँ मेरा ध्यान उस ओर लगाने में भी असहजता होती है, वहाँ जाने की तो बात ही छोड़िए। मैं उनके बारे में यह निष्कर्ष निकालता हूँ: 'निश्चित रूप से, उन पूजनीय भिक्षुओं ने तीन चीजों का त्याग कर तीन अन्य चीजों का अभ्यास किया है।'"

उन्होंने किन तीन चीजों का त्याग किया है? त्याग का विचार, सद्भावना का विचार और अहिंसा का विचार। यही तीन चीजें हैं जिनका उन्होंने त्याग किया है।

उन्होंने किन तीन चीजों का पोषण किया है? कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुंचाने के विचार। यही तीन चीजें हैं जिनका उन्होंने पोषण किया है।

"जहाँ कहीं भी भिक्षु वाद-विवाद और झगड़े में पड़ जाते हैं और विवाद में पड़ जाते हैं... मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ: 'निश्चित रूप से, उन पूजनीय भिक्षुओं ने इन तीन चीजों का त्याग कर इन तीन [अन्य] चीजों का अभ्यास किया है।'

"'भिक्षुओं, जहाँ कहीं भी भिक्षु एकमत होकर, सद्भाव से, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक दूसरे में समाहित होकर, एक दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए निवास करते हैं, वहाँ जाने में मुझे कोई संकोच नहीं होता, ध्यान लगाने की तो बात ही अलग है। मैं निष्कर्ष निकालता हूँ: 'निःसंदेह, उन पूजनीय भिक्षुओं ने तीन चीजों का त्याग कर तीन अन्य चीजों का पालन किया है।'

"'वे तीन चीजें क्या हैं जिन्हें उन्होंने त्याग दिया है? [276] कामुक विचार, दुर्भावना के विचार और हानि पहुँचाने के विचार। ये तीन चीजें हैं जिन्हें उन्होंने त्याग दिया है।

उन्होंने किन तीन चीजों का अभ्यास किया है? त्याग का विचार, सद्भावना का विचार और अहिंसा का विचार। यही तीन चीजें हैं जिनका उन्होंने अभ्यास किया है।

"जहाँ कहीं भी भिक्षु सद्भाव से निवास कर रहे हैं... मेरा निष्कर्ष यह है: 'निश्चित रूप से, उन पूजनीय भिक्षुओं ने इन तीन चीजों का त्याग कर इन तीन [अन्य] चीजों का अभ्यास किया है।"

---

126 गोतमका

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में गौतमक मंदिर में निवास कर रहे थे। 585 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया...

भिक्षुओं, (1) मैं धम्म का उपदेश प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा देता हूँ, प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना नहीं। (2) मैं धम्म (मार्ग) का उपदेश आधार सहित देता हूँ, आधारहीन नहीं। (3) मैं धम्म का उपदेश प्रतिकारक के रूप में देता हूँ, प्रतिकार रहित नहीं। 586 क्योंकि मैं धम्म का उपदेश प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा देता हूँ, प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना नहीं; क्योंकि मैं धम्म का उपदेश आधार सहित देता हूँ, आधारहीन नहीं; क्योंकि मैं धम्म का उपदेश प्रतिकारक के रूप में देता हूँ, प्रतिकार रहित नहीं, इसलिए मेरे उपदेश पर अमल किया जाना चाहिए, मेरे निर्देशों पर अमल किया जाना चाहिए। आपके लिए इतना ही काफी है कि आप प्रसन्न हों, इतना ही काफी है कि आप आनंदित हों: "भगवान (बुद्ध) पूर्णतः प्रबुद्ध हैं! भगवान (बुद्ध) ने धम्म की अच्छी व्याख्या की है! संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है!"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए। और जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तब हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्था कांप उठी।

---

127 भरंडू

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसल पर्वतों के बीच भ्रमण कर रहे थे, जब वे कपिलवस्तु पहुँचे। महानामा नामक शाक्य ने सुना, "भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु पहुँच गए हैं।" तब महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"जाओ, महानामा, और कपिलवस्तु में एक उपयुक्त विश्राम गृह ढूँढ़ो जहाँ हम रात भर ठहर सकें।" [277]

“जी, भंते,” महानामा ने उत्तर दिया। फिर वे कपिलवस्तु में प्रवेश कर गए और पूरे शहर में खोजबीन की, लेकिन उन्हें कोई उपयुक्त विश्रामगृह नहीं मिला जहाँ भगवान (बुद्ध) रात्रि विश्राम कर सकें। अतः वे भगवान (बुद्ध) के पास लौट आए और उनसे कहा: “भंते,

कपिलवस्तु में कोई उपयुक्त विश्रामगृह नहीं है जहाँ भगवान (बुद्ध) रात्रि विश्राम कर सकें। परन्तु भरंडु कलामा, जो पूर्व में भगवान (बुद्ध) के सह-भिक्षु थे, [यहाँ हैं]। 587 भगवान (बुद्ध) रात्रि उनके आश्रम में व्यतीत करें।"

"जाओ, महानामा, और मेरे लिए एक चटाई तैयार करो।"

"जी हां, भंते," महानामा ने उत्तर दिया। फिर वे भारंदु के आश्रम गए, चटाई बिछाई, पैर धोने के लिए पानी रखा, भगवान (बुद्ध) के पास लौटे और कहा:

"हे भंते, मैंने चटाई बिछा दी है और पैर धोने के लिए पानी रख दिया है। भगवान (बुद्ध) अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) भरंडु के आश्रम में गए, उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठे और अपने चरण धोए। तब महानामा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) के साथ रहने का यह उचित समय नहीं है, क्योंकि वे थके हुए हैं। मैं उनसे कल मिलूंगा।" फिर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"महानामा, संसार में तीन प्रकार के शिक्षक पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार के शिक्षक हैं?"

(1) "यहाँ, महानामा, कुछ शिक्षक इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का निर्देश देते हैं, लेकिन रूपों या संवेदनाओं (वेदना) का नहीं। (2) एक अन्य शिक्षक इंद्रिय सुखों और रूपों की पूर्ण समझ का निर्देश देते हैं, लेकिन संवेदनाओं (वेदना) का नहीं। (3) एक अन्य शिक्षक इंद्रिय सुखों, रूपों और संवेदनाओं (वेदना) की पूर्ण समझ का निर्देश देते हैं। ये तीन प्रकार के शिक्षक हैं जो संसार में विद्यमान हैं। क्या इन तीनों प्रकार के शिक्षकों का लक्ष्य एक ही है या भिन्न-भिन्न?"

जब यह कहा गया, तो कलामा भारंदु ने महानामा से कहा: "महानामा, आप भी यही कहिए।" लेकिन भगवान (बुद्ध) ने महानामा से कहा: "महानामा, आप कुछ और कहिए।"

दूसरी बार... तीसरी बार भरंडु कलामा ने महानामा से कहा: "वही कहो, महानामा।" लेकिन भगवान (बुद्ध) ने महानामा से कहा: "कुछ और कहो, महानामा।"

तब भारंदु के मन में यह विचार आया: "संन्यासी गौतम ने प्रभावशाली महानामा शाक्य के समक्ष तीन बार मेरा खंडन किया है। बेहतर होगा कि मैं कपिलवस्तु छोड़ दूं।"

फिर कलाम भारंडु कपिलवस्तु छोड़कर चले गए। जब वे कपिलवस्तु छोड़कर गए, तो वे हमेशा के लिए चले गए और कभी वापस नहीं लौटे।

---

128 हत्थाका

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो युवा देव (देवदूत/भगवान) हत्थक, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पास पहुँचकर, [यह सोचते हुए:] "मैं भगवान (बुद्ध) के सामने खड़ा होऊंगा," वे नीचे धंस गए, उतर गए और स्थिर नहीं रह सके। जैसे घी या तेल रेत पर डालने पर नीचे धंस जाता है, उतर जाता है और स्थिर नहीं रहता, वैसे ही युवा देव (देवदूत/भगवान) हत्थक, [यह सोचते हुए:] "मैं भगवान (बुद्ध) के सामने खड़ा होऊंगा," नीचे धंस गए, उतर गए और स्थिर नहीं रह सके। [279]

तब भगवान (बुद्ध) ने हत्थक से कहा: "एक स्थूल शरीर बनाओ, हत्थक।"

"जी, भंते," हत्थक ने उत्तर दिया। फिर उसने एक स्थूल शरीर बनाया, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। तब भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"हत्थका, क्या वे शिक्षाएँ जो तुम्हें अतीत में, जब तुम मनुष्य थे, याद आती थीं, अब तुम्हें याद आ रही हैं?" 589

"भंते, वे शिक्षाएँ जो मुझे अतीत में, मनुष्य रूप में रहते हुए, याद थीं, अब मुझे याद आ रही हैं; और वे शिक्षाएँ जो मुझे अतीत में, मनुष्य रूप में रहते हुए, याद नहीं थीं, अब मुझे याद आ रही हैं। 590 जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) अब भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से घिरे हुए हैं, उसी प्रकार मैं अन्य युवा देवताओं (देवदूतों/देवताओं) से घिरा हुआ हूँ। युवा देवता (देवदूत/देवता) दूर से भी मेरे पास आते हैं, [यह सोचकर]: 'हम युवा देवता (देवदूत/देवता) हत्थक से धम्म सुनेंगे।'"

"हे भंते, मैं तीन बातों में अतृप्त और अतृप्त होकर मरा। वे तीन बातें क्या थीं? (1) मैं भगवान (बुद्ध) के दर्शन में अतृप्त और अतृप्त होकर मरा। (2) मैं अच्छे धम्म (बुद्ध का मार्ग) को सुनने में अतृप्त और अतृप्त होकर मरा। (3) मैं संघ (भिक्षुओं का संघ) की सेवा में अतृप्त और अतृप्त होकर मरा। मैं इन तीनों बातों में अतृप्त और अतृप्त होकर मरा।"

" भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने,

अच्छे धम्म को सुनने

और संघ की सेवा करने से मुझे कभी तृप्ति नहीं होती थी। "

उच्चतर सद्गुणों का प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए,

मैंने अच्छे धर्म का उपदेश सुनकर आनंद उठाया। हत्थका इन तीनों चीजों से पर्याप्त रूप से लाभान्वित न होकर

अविहा 591 (उच्चतर स्वर्ग) में पुनर्जन्म ले चुका है।

---

129 प्रदूषण (कटुविया)

एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण पार्क में बरनासी में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और भिक्षा मांगने के लिए बरनासी में प्रवेश किया। [280] पशुओं को जोतने वाले अंजीर के वृक्ष के पास भिक्षा मांगते हुए, 592 भगवान (बुद्ध) ने एक असंतुष्ट भिक्षु को देखा, जो बाहरी संतुष्टि की तलाश में था, 593 वह भ्रमित मन का था, पूर्ण समझ से रहित था, असामहित था, उसका मन भटक रहा था और उसकी इंद्रियां शिथिल थीं। उसे देखकर उन्होंने उस भिक्षु से कहा:

"भिक्षु! अपने आप को अपवित्र मत करो। 594 हे भिक्षु, यह अपरिहार्य है कि मक्खियाँ उस व्यक्ति का पीछा करेंगी और उस पर हमला करेंगी जिसने अपने आप को अपवित्र कर लिया है और दुर्गंध से दूषित हो गया है।" 595

तब, भगवान (बुद्ध) द्वारा इस प्रकार प्रेरित किए जाने पर, उस भिक्षु में तत्परता की भावना उत्पन्न हुई। 595

जब भगवान (बुद्ध) बनारस में भिक्षा मांगने गए थे, भोजन करने के बाद, जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, आज सुबह मैंने प्राण त्यागे, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए बनारस में प्रवेश किया। पशुओं को जोतने वाले अंजीर के वृक्ष के पास भिक्षा मांगते हुए मैंने एक असंतुष्ट भिक्षु को देखा जो बाहरी सुख की तलाश में था, उसका मन व्याकुल था, वह पूर्ण रूप से बोधहीन था, उसका ध्यान भंग था, उसका मन भटक रहा था और उसकी इंद्रियां शिथिल थीं। उसे देखकर मैंने उस भिक्षु से कहा: 'भिक्षु, भिक्षु! अपने आप को अपवित्र मत करो; यह अपरिहार्य है, भिक्षु, कि मक्खियां उसका पीछा करेंगी और उस पर हमला करेंगी जो अपवित्र हो गया है और दुर्गंध से दूषित हो गया है।' तब, मेरे इस प्रकार उपदेश से उस भिक्षु को चिंता हुई। यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा: "हे भंते, 'अपवित्रता' से क्या तात्पर्य है? 'दुर्गंध' क्या है?" और ये 'मक्खियाँ' क्या हैं?

(1) "हे भिक्षु, लालसा ही 'अशुद्धता' कहलाती है। (2) दुर्भावना 'दुर्गंध' है। (3) बुरे (अकुशल) विचार 'मक्खियाँ' हैं। यह अपरिहार्य है कि मक्खियाँ उस व्यक्ति का पीछा करेंगी और उस पर हमला करेंगी जिसने स्वयं को अशुद्ध कर लिया है और दुर्गंध से दूषित हो गया है।" [281]

कामवासना (राग) पर आधारित विचार रखने वाली मक्खियाँ, इंद्रियों के मामले में बेलगाम, आँख और कान के मामले में असुरक्षित

व्यक्ति का पीछा करती रहेंगी ।

जो भिक्षु अपवित्र है,

दुर्गंध से दूषित है,

वह निर्वाण से बहुत दूर है

और केवल दुख ही भोगता है।

चाहे गाँव हो या जंगल,

बचकाना नासमझ व्यक्ति,

अपने लिए शांति प्राप्त किए बिना,

मक्खियों द्वारा पीछा किया जाता रहता है। 597

लेकिन जो लोग सदाचारी आचरण में निपुण हैं

और पन्ना (दिव्य ज्ञान) और शांति में आनंदित होते हैं,

वे शांतिप्रिय लोग

मक्खियों का नाश करके सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

---

130 अनुरुद्ध (1)

तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैं देखता हूँ कि शरीर के क्षत-विक्षत होने पर, मृत्यु के बाद स्त्रियाँ अधिकतर दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेती हैं। स्त्रियों में ऐसे कौन से गुण होते हैं जिनके कारण शरीर के क्षत-विक्षत होने पर, मृत्यु के बाद वे दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेती हैं?"

"जब किसी स्त्री में तीन गुण होते हैं, अनुरुद्ध, तो शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे तीन गुण क्या हैं?"

(1) "हे अनुरुद्ध, सुबह के समय स्त्री कंजूसी के कलंक से ग्रस्त मन से घर में रहती है। (2) दोपहर के समय वह ईर्ष्या से ग्रस्त मन से घर में रहती है। (3) और शाम को वह कामवासना (राग) से ग्रस्त मन से घर में रहती है। जब उसमें ये तीनों गुण होते हैं, तो शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, स्त्री दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है।"

---

131 अनुरुद्ध (2)

तब पूज्य अनुराद्ध पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, [282] वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, इस हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्था का अवलोकन करता हूँ। मुझमें ऊर्जा निरंतर जागृत है; मेरा ध्यान (सती) बिना किसी भ्रम के स्थापित है; मेरा शरीर शांत है; मेरा मन समाधि में लीन और एकाग्र है। फिर भी, अनासक्ति के कारण मेरा मन अभी तक दोषों से मुक्त नहीं हुआ है।"

[आदरणीय सारिपुत्त ने कहा:] (1) "मित्र अनुरुद्ध, जब तुम सोचते हो: 'शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से मैं हजार गुना विश्व व्यवस्था का अवलोकन करता हूँ' तो यह तुम्हारा अहंकार है।

(2) "और जब तुम सोचते हो: 'मुझमें ऊर्जा बिना शिथिल हुए जागृत है; मेरा ध्यान (सती) बिना भ्रम के स्थापित है; मेरा शरीर बिना अशांति के शांत है; मेरा मन एकाग्र (समाहिता) और एकाग्र (एकग्गा संस्कृत एकग्र) है' तो यही तुम्हारी बेचैनी है।

(3) "और जब तुम सोचते हो: 'फिर भी मेरा मन अनासक्ति के द्वारा भी दोषों से मुक्त नहीं हुआ है', तो यही तुम्हारा पश्चाताप है। अच्छा होगा कि तुम इन तीनों गुणों का त्याग कर दो और इन पर ध्यान देना बंद कर दो। इसके बजाय, अपने मन को अमर (अमृत) तत्व की ओर लगाओ।"

कुछ समय बाद पूज्य अनुराधा ने उन तीनों गुणों का त्याग कर उनका पालन करना बंद कर दिया। इसके बजाय, उन्होंने अपना ध्यान अमरता (अमृत) तत्व की ओर लगाया। फिर, एकांत में रहते हुए, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, पूज्य अनुराधा ने इसी जीवन में ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्रत्यक्ष ज्ञान से जान लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें लीन हो गए। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना, "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।" और पूज्य अनुराधा अरहंतों में से एक बन गए।

---

132 छिपा हुआ (पटिच्चन्ना)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं जो गुप्त रहने पर फलती-फूलती हैं, प्रकट होने पर नहीं। वे तीन बातें क्या हैं? (i) स्त्रियाँ गुप्त रहने पर फलती-फूलती हैं, प्रकट होने पर नहीं। (2) ब्राह्मणों के भजन गुप्त रहने पर फलते-फूलते हैं, प्रकट होने पर नहीं। (3) और गलत विचार गुप्त रहने पर फलते-फूलते हैं, प्रकट होने पर नहीं। ये तीन बातें गुप्त रहने पर फलती-फूलती हैं, प्रकट होने पर नहीं।

भिक्षुओं, ये तीन चीजें हैं जो प्रकट होने पर ही चमकती हैं, छिपी रहने पर नहीं। वे तीन चीजें कौन सी हैं? (1) चंद्रमा प्रकट होने पर चमकता है, छिपा रहने पर नहीं। (2) सूर्य प्रकट होने पर चमकता है, छिपा रहने पर नहीं। (3) तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन प्रकट होने पर ही चमकते हैं, छिपे रहने पर नहीं। ये तीन चीजें प्रकट होने पर ही चमकती हैं, छिपी रहने पर नहीं।

पत्थर पर उकेरी गई 133 पंक्तियाँ

भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? एक वह जो पत्थर पर उकेरी गई रेखा के समान है, दूसरा वह जो जमीन पर उकेरी गई रेखा के समान है, और तीसरा वह जो पानी पर उकेरी गई रेखा के समान है।

(1) "और किस प्रकार का व्यक्ति पत्थर पर खुदी हुई रेखा के समान होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर क्रोधित होता है, और उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है। जिस प्रकार पत्थर पर खुदी हुई रेखा हवा और पानी से तुरंत नहीं मिटती बल्कि लंबे समय तक बनी रहती है, उसी प्रकार कोई व्यक्ति अक्सर क्रोधित होता है, और उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है। इसे ही पत्थर पर खुदी हुई रेखा के समान व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) और किस प्रकार का व्यक्ति जमीन पर खुदी हुई रेखा के समान होता है? यहाँ, कुछ लोग अक्सर क्रोधित होते हैं, लेकिन उनका क्रोध लंबे समय तक नहीं टिकता। जैसे जमीन पर खुदी हुई रेखा हवा और पानी से जल्दी मिट जाती है और लंबे समय तक नहीं टिकती, वैसे ही कुछ लोग अक्सर क्रोधित होते हैं, लेकिन उनका क्रोध लंबे समय तक नहीं टिकता। ऐसे व्यक्ति को जमीन पर खुदी हुई रेखा के समान कहा जाता है।

(3) "और किस प्रकार का व्यक्ति जल में उकेरी गई रेखा के समान होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति, यहाँ तक कि जब उससे कठोर और अप्रिय तरीके से बात की जाती है, तब भी अपने विरोधी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखता है, उससे मेलजोल रखता है और उसका अभिवादन करता है। जैसे जल में उकेरी गई रेखा शीघ्र ही लुप्त हो जाती है और लंबे समय तक नहीं टिकती, वैसे ही कोई व्यक्ति, यहाँ तक कि जब उससे कठोर और अप्रिय तरीके से बात की जाती है, तब भी अपने विरोधी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखता है, उससे मेलजोल रखता है और उसका अभिवादन करता है। इसे जल में उकेरी गई रेखा के समान व्यक्ति कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।"

IV. एक योद्धा (योद्धाजीव)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

134 एक योद्धा (योद्धाजीव)

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त एक योद्धा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का कारक माना जाता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, एक योद्धा दूरगामी निशानेबाज, सटीक निशानेबाज और विशालकाय शरीर को भेदने वाला होता है। इन तीन गुणों से युक्त एक योद्धा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का कारक माना जाता है। इसी प्रकार, तीन गुणों से युक्त एक भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का पात्र होता है। वे तीन गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु दूरगामी निशानेबाज, सटीक निशानेबाज और विशालकाय शरीर को भेदने वाला होता है।

(1) "और यदि कोई भिक्षु लंबी दूरी का निशानेबाज हो तो क्या होगा? यहाँ, किसी भी प्रकार का रूप— चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट— भिक्षु सभी रूपों को सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'" किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) . . . [285] . . . किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा/संज्ञा) . . . किसी भी प्रकार के लक्षण/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) . . . किसी भी प्रकार की चेतना — चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट — एक भिक्षु सभी चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इसी प्रकार एक भिक्षु दूरदृष्टि में निपुण होता है।

(2) "एक भिक्षु कैसे निशानेबाज होता है? यहाँ, एक भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक भिक्षु निशानेबाज होता है।"

(3) "और भिक्षु किस प्रकार एक विशाल शरीर को विभाजित करता है? यहाँ, भिक्षु अज्ञान के विशाल समूह को विभाजित करता है। इसी प्रकार भिक्षु एक विशाल शरीर को विभाजित करता है।"

"इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

---

135) सभाएं (पेरिसा बिना परिषद्)

"भिक्षुओं (मठवासियों), ये तीन प्रकार की सभाएँ होती हैं। कौन सी तीन? व्यर्थ की बातों में प्रशिक्षित सभा, पूछताछ में प्रशिक्षित सभा और सीमाओं तक प्रशिक्षित सभा। ये तीन प्रकार की सभाएँ हैं।" 600 [286] .

---

136 एक मित्र (मित्ता सं. मित्रा)

भिक्षुओं, ऐसे मित्र की संगति करनी चाहिए जिसमें तीन गुण हों। वे तीन गुण क्या हैं? (1) भिक्षु वह देता है जो देना कठिन होता है। (2) वह वह करता है जो करना कठिन होता है। (3) वह धैर्यपूर्वक वह सहन करता है जो सहन करना कठिन होता है। ऐसे मित्र की संगति करनी चाहिए जिसमें ये तीनों गुण हों।

---

137 उदय (उप्पदा सं. उत्पद)

(1) "भिक्षुओं, चाहे तथागत (बुद्ध) उत्पन्न हों या न हों, वह नियम, धम्म की वह स्थिरता, धम्म का वह निश्चित मार्ग अटल रहता है: 601 'सभी बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) अनित्य हैं।' एक तथागत (बुद्ध) इस बात को जागृत करते हैं और इसे भेदते हैं, और फिर वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं और इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं: 'सभी बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) अनित्य हैं।' 602

(2) "भिक्षुओं, चाहे तथागत (बुद्ध) उत्पन्न हों या न हों, वह नियम, धम्म की वह स्थिरता, धम्म का वह निश्चित मार्ग अटल रहता है: 'सभी बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) दुखदायी हैं।' तथागत (बुद्ध) इस बात को जागृत करते हैं और इसे भेदते हैं, और फिर वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं और इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं: 'सभी बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) दुखदायी हैं।'"

(3) "भिक्षुओं (मठवासियों), चाहे तथागत (बुद्ध) उत्पन्न हों या न हों, वह नियम, धम्म की वह स्थिरता, धम्म का वह निश्चित मार्ग, अटल रहता है: 'सभी घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं।' तथागत (बुद्ध) इस बात को जागृत करते हैं और इसे भेदते हैं, और फिर वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसकी घोषणा करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं और इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं: 'सभी घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं।'"

---

138 एक बाल कम्बल (केस-कम्बाला बिना केश-कम्बाला)

भिक्षुओं के लिए, बालों से बना कंबल सबसे घटिया बुना हुआ वस्त्र माना जाता है। 603 बालों से बना कंबल सर्दी में ठंडा और गर्मी में गर्म होता है, बदसूरत, दुर्गंधयुक्त और असुविधाजनक होता है। इसी प्रकार, मक्खली का सिद्धांत विभिन्न तपस्वियों के सिद्धांतों में सबसे घटिया माना जाता है। 604 खोखले मक्खली का सिद्धांत और मत है: 'कोई कर्म नहीं, कोई कर्म नहीं, कोई ऊर्जा नहीं' [287]

(1) "भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं), भगवान (बुद्धों), अरहंतों, अतीत के पूर्णतः प्रबुद्ध लोगों ने कर्म (कर्म/कार्यों) का सिद्धांत, कर्मों का सिद्धांत, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) का सिद्धांत सिखाया। फिर भी खोखला मनुष्य मखली अपने इस दावे से उनका खंडन करता है: 'न तो कर्म (कर्म/कार्यों) का अस्तित्व है, न कोई कर्म का, न कोई ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) का।'"

(2) भविष्य के भगवान (बुद्ध), अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष भी कर्म (कर्म/कार्यों) का सिद्धांत, कर्मों का सिद्धांत और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) का सिद्धांत सिखाएंगे। फिर भी खोखला मनुष्य मखली अपने इस दावे से उनका खंडन करता है: 'न तो कर्म (कर्म/कार्यों) का अस्तित्व है, न कोई कर्म का, न कोई ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) का।'

(3) "इस समय मैं अरहंत हूँ, पूर्णतः प्रबुद्ध हूँ, और मैं कर्म का सिद्धांत, कर्मों का सिद्धांत, ऊर्जा का सिद्धांत सिखाता हूँ। फिर भी खोखला मनुष्य मखली अपने इस दावे से मेरा खंडन करता है: 'न कर्म है, न कोई कर्म है, न कोई ऊर्जा है।'"

"जिस प्रकार नदी के मुहाने पर लगाया गया जाल अनेक मछलियों को हानि, पीड़ा, विपत्ति और आपदा पहुंचाता है, ठीक उसी प्रकार खोखला मनुष्य मखली भी एक प्रकार से 'लोगों के लिए जाल' है, जो अनेक प्राणियों को हानि, पीड़ा, विपत्ति और आपदा पहुंचाने के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है।"

---

139 धन (संपदा)

भिक्षुओं, ये तीन धन हैं। कौन से तीन? आस्था का धन, सद्गुणों का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन। यही तीन धन हैं।

---

140 विकास 605 (बुद्धि सं. वृद्धि)

भिक्षुओं, तीन प्रकार की वृद्धि होती है। वे कौन से तीन प्रकार हैं? आस्था में वृद्धि, सद्गुणपूर्ण आचरण में वृद्धि और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि। ये तीन प्रकार की वृद्धि हैं।

---

141 घोड़े (1) (अस्साखालुंका सं. अश्व..)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के जंगली घोड़ों और जंगली घोड़ों के समान तीन प्रकार के व्यक्तियों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

“जी हां, भंते,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, जंगली घोड़ों के तीन प्रकार क्या हैं? [288] (1) यहाँ, एक प्रकार के जंगली घोड़े में गति तो है, लेकिन सुंदरता या उचित अनुपात नहीं। (2) दूसरे प्रकार के जंगली घोड़े में गति और सुंदरता तो है, लेकिन उचित अनुपात नहीं। (3) और एक अन्य प्रकार के जंगली घोड़े में गति, सुंदरता और उचित अनुपात तीनों हैं। ये जंगली घोड़ों के तीन प्रकार हैं।"

और हे भिक्षुओं, जंगली घोड़े के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं? (1) यहाँ, एक प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति तो है, लेकिन सुंदरता या सुडौल शरीर नहीं। (2) दूसरे प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, लेकिन सुडौल शरीर नहीं। (3) और एक तीसरे प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति, सुंदरता और सुडौल शरीर तीनों ही हैं।

(1) "और जो व्यक्ति जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति तो होती है, पर सुंदरता या सुडौल शरीर क्यों नहीं? यहाँ, एक भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है।' और 'यह दुख का कारण है।' और 'यह दुख का निवारण है।' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। परन्तु जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह हिचकिचाता है और उत्तर नहीं देता।"

मैं कहता हूँ, यही उसकी सुंदरता की कमी है। और उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन सामग्री नहीं मिलती। मैं कहता हूँ, यही उसके उचित अनुपात की कमी है; इस प्रकार, एक जंगली घोड़े के समान व्यक्ति में गति तो होती है, लेकिन सुंदरता या उचित अनुपात नहीं होते।

(2) "और एक ऐसा व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं? यहाँ, एक भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है', ... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और अविचलित रहता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी सुंदरता है। परन्तु उसे वस्त्र ... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसके सही अनुपात का अभाव है। इस प्रकार [289] एक ऐसा व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं।"

(3) “और एक व्यक्ति जंगली घोड़े के समान गति, सौंदर्य और उचित अनुपात कैसे धारण करता है? यहाँ, एक भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है,' और 'यह दुख का कारण है,' और 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और संकोच नहीं करता। मैं कहता हूँ, यही उसका सौंदर्य है। और वह वस्त्र प्राप्त करता है... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त करता है। मैं कहता हूँ, यही उसका उचित अनुपात है। इस प्रकार एक व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, गति, सौंदर्य और उचित अनुपात धारण करता है।”

"हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो जंगली घोड़ों के समान हैं।"

---

142 घोड़े (2) (अस्सापरस्सा सं. अश्वपुरुष)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के अच्छे घोड़ों और तीन प्रकार के अच्छे घोड़ों के समान व्यक्तियों के बारे में सिखाऊंगा। 606 सुनो..."

भिक्षुओं, अच्छे घोड़ों के तीन प्रकार क्या हैं? (1) यहाँ, एक प्रकार का अच्छा घोड़ा गति तो रखता है, लेकिन उसमें सुंदरता या सुडौलपन नहीं होता। (2) दूसरे प्रकार का अच्छा घोड़ा गति और सुंदरता दोनों रखता है, लेकिन उसमें सुडौलपन नहीं होता। (3) एक अन्य प्रकार का अच्छा घोड़ा गति, सुंदरता और सुडौलपन तीनों रखता है। यही अच्छे घोड़ों के तीन प्रकार हैं।

और हे भिक्षुओं, अच्छे घोड़ों के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं? (1) यहाँ, एक प्रकार का व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति तो होती है, लेकिन सौंदर्य या उचित अनुपात नहीं होता। (2) दूसरे प्रकार का व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति और सौंदर्य दोनों होते हैं, लेकिन उचित अनुपात नहीं होता। (3) फिर भी एक तीसरे प्रकार का व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति, सौंदर्य और उचित अनुपात तीनों होते हैं। [290]

(1) "और जो व्यक्ति अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति तो होती है, पर सौंदर्य या सुडौल शरीर क्यों नहीं? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। परन्तु जब उससे धर्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह हिचकिचाता है और उत्तर नहीं देता। मैं कहता हूँ, यही उसकी सुंदरता का अभाव है। और उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन भी प्राप्त नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसके सुडौल शरीर का अभाव है। इस प्रकार, जो व्यक्ति अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति तो होती है, पर सौंदर्य या सुडौल शरीर नहीं।"

(2) "और एक ऐसा व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, एक भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और अविचलित रहता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी सुंदरता है। परन्तु उसे वस्त्र और बीमारों के लिए भोजन नहीं मिलता। मैं कहता हूँ, यही उसके सही अनुपात का अभाव है। इस प्रकार एक ऐसा व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं।"

(3) "और एक अच्छे घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात कैसे होते हैं? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, एक भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और विचलित नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसका सौंदर्य है। और वह वस्त्र प्राप्त करता है... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त करता है। मैं कहता हूँ, यही उसका उचित अनुपात है। इस प्रकार एक अच्छे घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात होते हैं।"

"भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के व्यक्ति अच्छे घोड़ों के समान हैं।"

---

143 घोड़े (3) (अस्सजानिया संस अश्व-जना)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़ों और तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के व्यक्तियों के बारे में सिखाऊंगा। सुनो... [291]

भिक्षुओं, तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़े कौन-कौन से हैं? यहाँ, एक प्रकार का उत्तम नस्ल का घोड़ा... गति, सुंदरता और सही अनुपात से युक्त है। ये तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़े हैं।

"और हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के व्यक्ति कौन से हैं? यहाँ, एक प्रकार के व्यक्ति में गति, सुंदरता और सही अनुपात होते हैं।"

और एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष में गति, सौंदर्य और सुगठित शरीर का गुण कैसे होता है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और संकोच नहीं करता। यही उसका सौंदर्य है। और वह वस्त्र प्राप्त करता है... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त करता है। यही उसका सुगठित शरीर है। इस प्रकार एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष में गति, सौंदर्य और सुगठित शरीर का गुण होता है।

"ये भिक्षुओं, तीन प्रकार के उत्तम और शुद्ध संस्कार वाले व्यक्ति हैं।"

---

144 मोर अभयारण्य (एल) 607 (मोरा-निवापा1 सं. मयूरा..)

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में तपस्वियों के उद्यान, मोर अभयारण्य में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: ...

"भिक्षुओं में तीन गुण होते हैं, और वे देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जो परम लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं, बंधनों से परम सुरक्षा प्राप्त कर चुके हैं, परम ब्रह्मचर्य जीवन जी चुके हैं, और परम उद्देश्य को प्राप्त कर चुके हैं। वे तीन गुण क्या हैं? (1) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्गुणों का समूह, (2) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) का समूह, और (3) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह। 608 इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं... और परम उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं।"

---

145 मोर अभयारण्य (2) (मोरा-निवापा2 संस. मयूरा..)

"भिक्षु (मनोभक्षी), तीन गुणों से युक्त भिक्षु, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है: वह जो परम निष्कर्ष पर पहुँच चुका है, बंधनों से परम सुरक्षा प्राप्त कर चुका है, परम ब्रह्मचर्य जीवन जी चुका है और परम लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है। वे तीन गुण क्या हैं? [292] (1) मानसिक शक्ति का चमत्कार (जादू/इद्धि), (2) मन-पठन का चमत्कार (आदेशना), और (3) उपदेश का चमत्कार (अनुशासना)। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है... और परम लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है।"

नोट: यह जादू यानी इद्धि (जादुई शक्तियां), आदेशना (दूसरों के मन को पढ़ना), अनुशासना (दूसरों को अपने निर्देशानुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करना) के बारे में है।

---

146 मोर अभयारण्य (3) (मोरा-निवापा3 सं. मयूरा..)

"भिक्षु (मनोभक्षी), तीन गुणों से युक्त भिक्षु, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है: वह जो परम लक्ष्य तक पहुँच चुका है, बंधनों से परम सुरक्षा प्राप्त कर चुका है, परम आध्यात्मिक जीवन जी चुका है और परम उद्देश्य को प्राप्त कर चुका है। वे तीन गुण क्या हैं? (1) सही दृष्टिकोण, (2) सही ज्ञान और (3) सही मुक्ति। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है... और परम उद्देश्य को प्राप्त कर चुका है।"

V. शुभ (मंगल-वग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

147 हानिकारक (अकुसाला सं. अकुशल)

भिक्षुओं, जिनमें तीन गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? हानिकारक (अकुशल) शारीरिक क्रिया, हानिकारक (अकुशल) वाणी और हानिकारक (अकुशल) मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों वाले व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? लाभकारी (कुशल) शारीरिक क्रिया, लाभकारी (कुशल) वाणी क्रिया और लाभकारी (कुशल) मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

नोट: अकुसला का अर्थ है हानिकारक

---

148 निंदनीय (सवज्जा)

भिक्षुओं, जिनमें तीन गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? निंदनीय शारीरिक कर्म, निंदनीय वाणी कर्म और निंदनीय मानसिक कर्म। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।

"तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? निष्कलंक शारीरिक कर्म, निष्कलंक वाणी कर्म और निष्कलंक मानसिक कर्म। इन तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।" [293]

---

149 अधर्मी (विसमा)

भिक्षुओं, जिनमें तीन गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो: वे तीन गुण क्या हैं? अधार्मिक शारीरिक कर्म, अधार्मिक वाणी कर्म और अधार्मिक मानसिक कर्म। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण कौन से हैं? धार्मिक शारीरिक कर्म, धार्मिक वाणी और धार्मिक मानसिक कर्म। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

150 अशुद्ध (असुची)

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? अशुद्ध शारीरिक कर्म, अशुद्ध वाणी कर्म और अशुद्ध मानसिक कर्म। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण कौन से हैं? शुद्ध शारीरिक क्रिया, शुद्ध वाणी और शुद्ध मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

151 अपंग (1) (खाता1 बिना क्षता)

भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे तीन गुण क्या हैं? हानिकारक (अकुशल) शारीरिक क्रिया, हानिकारक (अकुशल) वाणी और हानिकारक (अकुशल) मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त होने के कारण... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

तीन गुणों से युक्त, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट रहित रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे तीन गुण क्या हैं? लाभकारी (कुशल) शारीरिक क्रिया, लाभकारी (कुशल) वाणी और लाभकारी (कुशल) मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त होकर वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

---

152 अपंग (2) (खाता2 सं. क्षता)

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में तीन गुण होते हैं... निंदनीय शारीरिक कर्म, निंदनीय वाणी कर्म और निंदनीय मानसिक कर्म..."

"तीन गुणों से युक्त... दोषरहित शारीरिक क्रिया, दोषरहित वाणी और दोषरहित मानसिक क्रिया..."

---

153 अपंग (3) (खाता3 सं. क्षता)

"भिक्षुओं (मठवासियों) में तीन गुण होते हैं... अधर्मी शारीरिक कर्म, अधर्मी वाणी कर्म और अधर्मी मानसिक कर्म। , . . [294]

"भिक्षुओं में तीन गुण होते हैं... धार्मिक शारीरिक कर्म, धार्मिक वाणी कर्म और धार्मिक मानसिक कर्म।"

---

154 अपंग (4) (खाता4 सं. क्षता)

"भिक्षुओं (साधुओं) में तीन गुण होते हैं... अशुद्ध शारीरिक क्रिया, अशुद्ध मौखिक क्रिया और अशुद्ध मानसिक क्रिया..."

भिक्षुओं में तीन गुण होते हैं... शुद्ध शारीरिक क्रिया, शुद्ध वाणी और शुद्ध मानसिक क्रिया। इन तीनों गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों द्वारा उसकी निंदा नहीं की जा सकती; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

---

155 श्रद्धांजलि (वंदना)

"भिक्षुओं, तीन प्रकार की प्रणाम विधियाँ हैं। वे कौन सी तीन विधियाँ हैं? देह से, वाणी से और मन से। ये तीन प्रकार की प्रणाम विधियाँ हैं।"

---

156 सुप्रभात (पब्बन्हा सं. पूरवन्हा)

भिक्षुओं, जो लोग सुबह के समय शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में संलग्न होते हैं, उनकी सुबह शुभ हो। जो लोग दोपहर के समय शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में संलग्न होते हैं, उनकी दोपहर शुभ हो। और जो लोग शाम के समय शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में संलग्न होते हैं, उनकी शाम शुभ हो।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को दान देने वालों के लिए वास्तव में शुभ और मंगलमय

सुबह और आनंदमय उदय,

एक अनमोल क्षण और एक आनंदमय घड़ी

आएगी ।

शरीर और वाणी के नेक कर्म,

नेक विचार और आकांक्षाएँ:

जब कोई नेक कर्म करता है

तो उसे नेक लाभ प्राप्त होते हैं।

जिन लोगों को ऐसे लाभ प्राप्त होते हैं,

वे बुद्ध की शिक्षाओं में उन्नति करते हैं।

आप और आपके सभी संबंधी

स्वस्थ और सुखी रहें!

VI. अभ्यास के तरीके [609] (अचेलाका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

157 (सती ध्यान की स्थापना) [610]

भिक्षुओं, साधना के ये तीन मार्ग हैं। वे तीन कौन से हैं? स्थूल साधना मार्ग, कष्टदायक साधना मार्ग और मध्यम साधना मार्ग। 611

(1) "हे भिक्षुओं, अभ्यास का स्थूल मार्ग क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखता है: 'इंद्रिय सुखों में कोई दोष नहीं है।' और फिर इंद्रिय सुखों में लिप्त हो जाता है। इसे ही अभ्यास का स्थूल मार्ग कहा जाता है।"

(2) "और अभ्यास का कठोर तरीका क्या है? 612 यहाँ, कोई व्यक्ति नग्न अवस्था में जाता है, परंपराओं को अस्वीकार करता है, अपने हाथों को चाटता है, पूछे जाने पर नहीं आता, पूछे जाने पर नहीं रुकता; वह लाया गया भोजन या विशेष रूप से बनाया गया भोजन या भोजन के निमंत्रण को स्वीकार नहीं करता; वह किसी बर्तन से, किसी कटोरे से, किसी दहलीज के पार, किसी छड़ी के पार, किसी मूसल के पार, दो लोगों के साथ भोजन करने से, किसी गर्भवती महिला से, किसी बच्चे को दूध पिलाने वाली महिला से, किसी पुरुष द्वारा रखी गई महिला से, जहाँ भोजन वितरित करने का किया जाता है, जहाँ कोई कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता है, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती हैं, कुछ भी ग्रहण नहीं करता; वह मछली या मांस स्वीकार नहीं करता; वह शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता।

वह एक घर में भिक्षा मांगने के दौरान एक निवाला खाता है; वह दो घरों में दो निवाले खाता है... वह सात घरों में सात निवाले खाता है। वह एक थाली, दो थाली... सात थाली खाकर दिन गुजारता है। वह दिन में एक बार, दो दिन में एक बार... सात दिन में एक बार भोजन करता है; इस प्रकार वह हर पखवाड़े में एक बार तक नियमित अंतराल पर भोजन करने का अभ्यास करता है।

वह हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की मैल, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और फलों पर निर्भर रहता है; वह गिरे हुए फलों को खाता है।

"वह भांग के वस्त्र, भांग मिश्रित कपड़े के वस्त्र, कफ़न के वस्त्र, चिथड़े के वस्त्र; पेड़ की छाल, मृग की खाल, मृग की खाल की पट्टियों से बने वस्त्र; कुसा घास, छाल के कपड़े, या लकड़ी के बुरादे के कपड़े से बने वस्त्र; सिर के बालों [296] या पशु ऊन से बना एक लबादा; उल्लू के पंखों से बना एक आवरण पहनता है।

वह व्यक्ति है जो बाल और दाढ़ी नोचता है, और ऐसा करने का अभ्यास करता है। वह व्यक्ति है जो लगातार खड़ा रहता है, और बैठने का त्याग करता है। वह व्यक्ति है जो लगातार उकड़ू बैठा रहता है, और उकड़ू बैठने की मुद्रा में ही लगा रहता है। वह व्यक्ति है जो कांटों की गद्दी का उपयोग करता है; वह कांटों की गद्दी को अपना बिस्तर बनाता है। वह दिन में तीन बार, शाम सहित, जल स्नान करने का अभ्यास करता है। इस प्रकार वह अनेक तरीकों से शरीर को कष्ट और पीड़ा पहुँचाने का अभ्यास करता है। इसे कष्टदायी अभ्यास कहा जाता है।

(3) "मध्य मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षु शरीर को शरीर में देखते हुए (अनुपसी में) तल्लीन रहता है, पूर्णतः बोध करते हुए, सती भाव से ध्यान लगाता है, संसार के प्रति लालसा और निराशा को त्यागकर। वह वेदनाओं को वेदनाओं में देखते हुए (अनुपसी में) तल्लीन रहता है... मन को मन में... धर्मों को धर्मों में देखते हुए, पूर्णतः बोध करते हुए, सती भाव से ध्यान लगाता है, संसार के प्रति लालसा और निराशा को त्यागकर। इसे मध्य मार्ग कहते हैं।"

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के तीन मार्ग हैं।"

158—163 (सही प्रयास, आदि) [613]

(158) "भिक्षुओं, अभ्यास के ये तीन मार्ग हैं। वे तीन कौन से हैं? स्थूल अभ्यास मार्ग, कष्टदायक अभ्यास मार्ग और मध्यम अभ्यास मार्ग।"

(1) "और हे भिक्षुओं, अभ्यास का स्थूल मार्ग क्या है? . . . [जैसा कि 3:156 में है] . . . इसे अभ्यास का स्थूल मार्ग कहा जाता है।

(2) "और अभ्यास का कठोर तरीका क्या है? . . . [जैसा कि 3:156 में है] . . . इसे अभ्यास का कठोर तरीका कहा जाता है।

(3) "और अभ्यास का मध्य मार्ग क्या है? यहाँ, एक भिक्षु अजन्मे बुरे/हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न बुरे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है... अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव की इच्छा, उनके पतन न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा; [297] वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है।

(159) "...वह मनोवृत्ति (जादू/इद्धि) के आधार का विकास करता है जो इच्छा और प्रयास के कार्यों के कारण समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) धारण करती है। वह मनोवृत्ति (जादू/इद्धि) के आधार का विकास करता है जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और प्रयास के कार्यों के कारण समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) धारण करती है... जो मन और प्रयास के कार्यों के कारण समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) धारण करती है... जो अन्वेषण और प्रयास के कार्यों के कारण समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) धारण करती है...।"

(160) "...वह आस्था की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती ध्यान की शक्ति, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति, और दिव्य ज्ञान की शक्ति विकसित करता है: ..."

(161) "...वह आस्था की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती ध्यान (ध्यान/सतीत्व) की शक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति, और दिव्य ज्ञान (पन्न) की शक्ति विकसित करता है...."

(162) "...वह सती (ध्यान/सती) के ज्ञानोदय कारक, घटनाओं के विवेक के ज्ञानोदय कारक, वीरता (प्रयास/वीर्य) के ज्ञानोदय कारक, पीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक, शांति (पासद्धि) के ज्ञानोदय कारक, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक, और उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है..."

(163) . . वह सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) विकसित करता है। इसे अभ्यास का मध्य मार्ग कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के तीन मार्ग हैं।"

VII. कर्म के मार्ग (कर्म/कार्यों की श्रृंखला) (कर्म-पथपेय्यलम संस्कृत कर्म..)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

164-183 [614]

(164) "भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? (1) जो स्वयं जीवन का नाश करता है, (2) जो दूसरों को जीवन का नाश करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) जो जीवन के नाश का समर्थन करता है। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

(165) "भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीन गुण क्या हैं? (1) वह स्वयं जीवन-नष्ट करने से परहेज करता है, (2) दूसरों को जीवन-नष्ट करने से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) जीवन-नष्ट करने से परहेज करने का समर्थन करता है। इन तीन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

(166) ". . . (1) व्यक्ति वह लेता है जो उसे स्वयं नहीं दिया गया है, (2) दूसरों को वह लेने के लिए प्रोत्साहित करता है जो उसे नहीं दिया गया है, और (3) वह लेने का अनुमोदन करता है जो उसे नहीं दिया गया है. . ."

(167) ". . . (1) व्यक्ति स्वयं को जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करता है, (2) दूसरों को भी वह लेने से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो उसे नहीं दिया गया है, और (3) वह लेने से परहेज करने का समर्थन करता है जो उसे नहीं दिया गया है...."

(168) "... (1) व्यक्ति स्वयं यौन दुराचार में संलग्न होता है, (2) दूसरों को [298] यौन दुराचार में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) यौन दुराचार में संलग्न होने का अनुमोदन करता है। .

(169) (1) व्यक्ति स्वयं यौन दुराचार से परहेज करता है, (2) दूसरों को यौन दुराचार से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) यौन दुराचार से परहेज करने का समर्थन करता है। ..."

(170) ". . (1) व्यक्ति स्वयं झूठ बोलता है, (2) दूसरों को झूठ बोलने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) झूठे भाषण का समर्थन करता है। ..."

(171) "... (1) व्यक्ति स्वयं झूठे भाषण से परहेज करता है, (2) दूसरों को झूठे भाषण से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) झूठे भाषण से परहेज करने का समर्थन करता है। ., ."

(172) "...(1) व्यक्ति स्वयं विभाजनकारी बातें करता है, (2) दूसरों को विभाजनकारी बातें करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) विभाजनकारी भाषण का समर्थन करता है। ..."

(173) .(1) व्यक्ति स्वयं विभाजनकारी भाषण से परहेज करता है, (2) दूसरों को विभाजनकारी भाषण से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) विभाजनकारी भाषण से परहेज करने का समर्थन करता है। ..."

(174) ": . . (1) व्यक्ति स्वयं कठोर बोलता है, (2) दूसरों को कठोर बोलने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) कठोर वाणी का अनुमोदन करता है. . ."

(175) ". /.(1) व्यक्ति स्वयं कठोर वाणी से परहेज करता है, (2) दूसरों को कठोर वाणी से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) कठोर वाणी से परहेज करने का समर्थन करता है। ..."

(176) "... (1) व्यक्ति स्वयं व्यर्थ की बातों में लिप्त होता है, (2) दूसरों को व्यर्थ की बातों में लिप्त होने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) व्यर्थ की बातों में लिप्त होने का अनुमोदन करता है।"

(177) ", . . (1) व्यक्ति स्वयं व्यर्थ की बातों से परहेज करता है, (2) दूसरों को व्यर्थ की बातों से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) व्यर्थ की बातों से परहेज करने का समर्थन करता है। ..."

(178) ". . . (1) व्यक्ति स्वयं लालसा से भरा होता है, (2) दूसरों को लालसा में प्रोत्साहित करता है, और (3) लालसा को स्वीकार करता है।

(179) ". . . (1) व्यक्ति स्वयं लालसा रहित है, (2) दूसरों को लालसा रहित होने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) लालसा रहित होने का अनुमोदन करता है. . . [299]

(180) . . (1) व्यक्ति स्वयं दुर्भावना रखता है, (2) दूसरों को दुर्भावना में प्रोत्साहित करता है, और (3) दुर्भावना का अनुमोदन करता है. . .

(181) ". . . (1) व्यक्ति स्वयं द्वेष रहित होता है, (2) दूसरों को द्वेष रहित होने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) द्वेष रहित होने का अनुमोदन करता है... ।"

(182) ". . . (1) व्यक्ति स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है, (2) दूसरों को गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) गलत दृष्टिकोण का समर्थन करता है. . ."

(183) (1) व्यक्ति स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है, (2) दूसरों को सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) सही दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इन तीनों गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

आठवीं. वासना (राग) आदि श्रृंखला 615 (राग-पय्यालम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

184

भिक्षुओं, कामवासना (राग) के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए तीन चीजों [616] का विकास करना आवश्यक है। वे तीन चीजें क्या हैं? शून्य समाधि (स्व-लीनता/समाधि), चिह्नरहित समाधि (स्व-लीनता/समाधि), और इच्छारहित समाधि (स्व-लीनता/समाधि)। [617] कामवासना (राग) के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए इन तीन चीजों का विकास करना आवश्यक है।

185 — 353

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके अंत के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए, इन तीन चीजों का विकास करना आवश्यक है।

भिक्षुओं (सन्यासियों), प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... ईर्ष्या... कंजूसी... छल... चालाकी... हठ... उग्रता... अहंकार... घमंड... नशा... “आलस्य से मुक्ति पाने के लिए तीन चीजों का विकास करना चाहिए। वे तीन क्या हैं? शून्य समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), चिह्नरहित समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), और इच्छारहित समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन)। आलस्य से मुक्ति पाने के लिए इन तीन चीजों का विकास करना चाहिए।” भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए।

द बुक ऑफ द थ्रीज़ पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 4.चारों की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का चौथा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN3) अगला (AN5) >>>>

अंतर्वस्तु

1द बुक ऑफ द फोर (चतुक्कनिपाटा)

1.1पहले पचास

1.1.1आई. भंडागामवग्गो

1.1.1.11 अनुबुद्ध

1.1.1.22 गिरे हुए (पापतिता)

1.1.1.33 अपंग (1) (खाता1 सं. क्षत्)

1.1.1.44 अपंग (2) (खाता2 सं. क्षत)

1.1.1.55 धारा के साथ (अनु-सोटा संस्कृत अनु-स्ट्रोटा)

1.1.1.66. अल्पज्ञानी (अप्पस्सुता संस. अल्प-श्रुता)

1.1.1.77 वे सजाते हैं (शोभना सं. शोभना)

1.1.1.88आत्मविश्वास (वेसाराज)

1.1.1.99 तृष्णा का उदय (तन्हुप्पा सं. तृष्णा-उत्पाद)

1.1.1.1010 बंधन (योग)

1.1.2II. पैदल चलने वाला भाग (Caravaggo sans. Chara-varga)

1.1.2.111 चलना [639]

1.1.2.212. सद्गुणपूर्ण आचरण (शीला सान. शील)

1.1.2.313 प्रयास करना (प्रस्थान के बिना पढ़ना)

1.1.2.414. संयम (संवर)

1.1.2.515 घोषणाएँ (पन्नत्ती)

1.1.2.616 विशेषज्ञता (सोखुम्मा)

1.1.2.717 गलत पाठ्यक्रम (1) (agati1)

1.1.2.818 गलत पाठ्यक्रम (2) (agati2)

1.1.2.919 गलत पाठ्यक्रम (3) (agati3)

1.1.2.1020 भोजन का एक समनुदेशक (भट्टुद्देसका)

1.1.3III. उरुवेला

1.1.3.121 उरुवेला (एल) 649

1.1.3.222 उरुवेला (2)

1.1.3.323 लोक (विश्व)

1.1.3.424 कलाका

1.1.3.525 ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य)

1.1.3.626 धोखेबाज 673 (कुहा)

1.1.3.727 संतोष (संतुष्टि सं. संतुष्टि)

1.1.3.828 कुलीन वंशावली 678 (आर्य-वंश बिना आर्य-वंश)

1.1.3.929 धम्म कारक (धम्मपद)

1.1.3.1030 तपस्वी (परिब्बाजक सं. परिवज्रका)

1.1.4IV. चक्र भाग (चक्कावग्गो)

1.1.4.131 पहिया (चक्र के बिना कक्का)

1.1.4.232 रिश्तों को कायम रखना (संगहा सं. संग्रह)

1.1.4.333 सिंह (सिहा बिना सिंघा)

1.1.4.434 विश्वास (अग्गप्पसाद)

1.1.4.535 वासाकारा

1.1.4.636 डोना

1.1.4.737 गैर-गिरावट (अपरिहानी)

1.1.4.838 पीछे हटना (पतिलीन)

1.1.4.939 उज्जया

1.1.4.1040 उदय

1.1.5वी. रोहितासावग्गो

1.1.5.141. समाधि-भावना (ध्यानमग्न अवस्था)

1.1.5.242 प्रश्न (पन्हा-व्याकरण सं. प्रश्न-व्याकरण)

1.1.5.343 क्रोध (1) (कोढ़ा1 सं. क्रोध)

1.1.5.444 क्रोध (2) (कोढ़ा1 सं. क्रोध)

1.1.5.545 रोहितास्सा (एल) [723]

1.1.5.646 रोहितास्सा (2)

1.1.5.747 सुविदुरा (दूर-दूर)

1.1.5.848 विशाखा 727

1.1.5.949 विपल्लस (इनवर्जन)

1.1.5.1050 दोष (उपक्किलेशा संस्कृत उपक्लेश)

1.2दूसरा पचास

1.2.1I. पुण्य की धाराएँ (पुन्नभिसन्द)

1.2.1.1योग्यता की 51 धाराएँ (1) (पुन्नभिसन्ध1 सं. पुण्य..)

1.2.1.252 पुण्य की धाराएँ (2) 737 (पुन्ना-भिसंदा2 सं. पुण्य..)

1.2.1.353 साथ रहना (1) (संवसा1)

1.2.1.454 (4) साथ रहना (2) (संवसा2)

1.2.1.555 जीवन में एकरूपता (1) (समजीवी1)

1.2.1.656 (6) जीवन में समान (2) (समजीवी2)

1.2.1.757 सुप्पवास

1.2.1.858 सुदत्ता

1.2.1.959 भोजन

1.2.1.1060 आम आदमी का उचित अभ्यास (Gihisamici sans. Gruhi..)

1.2.2द्वितीय. योग्य कर्म अनुभाग (पट्टकमवाग्गो)

1.2.2.161 पुण्य कर्म (पट्ट-कर्म)

1.2.2.262 स्वतंत्रता मोर्चा ऋण (अनन्या)

1.2.2.363 ब्रह्मा 752 के साथ

1.2.2.464 हेल 753 (निरया)

1.2.2.565 प्रपत्र (रूपा)

1.2.2.666 कामवासना के साथ (सरगा)

1.2.2.767 सांप (अहिराज)

1.2.2.868 देवदत्ता

1.2.2.969. प्रयास (पधाना)

1.2.2.1070 अधर्मी 762 (अधम्मिक सं. अधर्मिक)

1.2.3III. अचूक (अपन्नक)

1.2.3.171. प्रयास (पधाना)

1.2.3.272 सम्यक दृष्टि (सम्मा-दिट्ठी सं. सम्यक दृष्टि)

1.2.3.373. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सतपुरुष)

1.2.3.474 सर्वोपरि (1) (अग्गा1 संस्कृत आगरा)

1.2.3.575 सर्वोपरि (2)(अग्गा2 संस्कृत आगरा)

1.2.3.676 कुसिनारा

1.2.3.777 अकल्पनीय मामले (अचिन्तय्या)

1.2.3.878 प्रसाद (दक्षिणा बिना दक्षिणा)

1.2.3.979 व्यवसाय (वनिज्जा सं. वाणीज्य)

1.2.3.1080 कंबोजा

1.2.4चतुर्थ. अडिग (मैकला संस. अकला)

1.2.4.181 जीवन का विनाश (पानीपत सं. प्राणि-पाता)

1.2.4.282 असत्य भाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वड़ा)

1.2.4.383 तिरस्कार (अवन्नाराहा सं. अवरणीय-अराहा)

1.2.4.484 क्रोध (कोढ़ा स्नस. क्रोध)

1.2.4.585 अंधकार 775 (तमोतामा)

1.2.4.686 बेंट डाउन (ओनाटोनाटा)

1.2.4.787 पुत्र (पुत्त)

1.2.4.888 बंधन (संयोजन)

1.2.4.989 सम्यक दृष्टि (सम्मादिथि सं. सम्यक-दृष्टि)

1.2.4.1090 समुच्चय (खंड बिना स्कंध)

1.2.5V. असुर अनुभाग

1.2.5.191 असुर

1.2.5.292 समाधि (1)

1.2.5.393 समाधि (2)

1.2.5.494 समाधि (3)

1.2.5.595 श्मशान की लकड़ी (चावलाटा)

1.2.5.696 वांट (राग-विनय)

1.2.5.797 तेज बुद्धि वाला (खिप्पानिसांती)

1.2.5.898 स्वयं का कल्याण (अत्तहिता संस्कृत: आत्मा-हिता)

1.2.5.999 प्रशिक्षण नियम (सिक्खपाद सं. शिष्यपाद)

1.2.5.10100 पोटालिया

1.3तीसरा पचास

1.3.1I. बादल (वलहका)

1.3.1.1101 बादल (1) (वलाहाका)

1.3.1.2102 बादल (2) (वलाहाका)

1.3.1.3103 बर्तन (कुंभ)

1.3.1.4पानी के 104 तालाब (उदकरहाड़ा)

1.3.1.5105 आम (अंबा सं. अमरा)

1.3.1.6106 आम2 (अंबा2 संस अमरा)

1.3.1.7107 (7) चूहे (म्यूज़िका सं. मशक)

1.3.1.8108 बैल (बालीबड्डा)

1.3.1.9109 पेड़ (रुक्खा सं. वृक्ष)

1.3.1.10110 वाइपर (असिविसा)

1.3.2II. केसी अनुभाग

1.3.2.1111 केसी

1.3.2.2112 स्पीड (जावा)

1.3.2.3113 गोड (पटोडा)

1.3.2.4114 नर हाथी (नाग)

1.3.2.5115 विलेख (थाना)

1.3.2.6116 सतर्कता (अप्पमदा सं. अप्रमाद)

1.3.2.7117 रखवाली (अरक्खा सं. अरक्षण)

1.3.2.8118 प्रेरक 801 (संवेजानिया सं. संवेगा)

1.3.2.9119 खतरे (1) (भया1)

1.3.2.10120 खतरे (2) (भया2)

1.3.3तृतीय. ख़तरे अनुभाग (भयावग्गो)

1.3.3.1121 आत्म-निन्दा (अत्तनुवदा)

1.3.3.2122 तरंगें [806] (उमिभया)

1.3.3.3123 अंतर (1) (नाना कराना1)

1.3.3.4124 अंतर (2) (नाना कराना2)

1.3.3.5125 प्रेम-कृपा (1) (मेटा1 सं. मैत्री)

1.3.3.6126 प्रेम-कृपा (2) (मेटा2 सं. मैत्री)

1.3.3.7127 आश्चर्यजनक तथागत(बुद्ध)(1) (तथागताचार्य1)

1.3.3.8128 आश्चर्यजनक तथागत(बुद्ध)(2) (तथागताचार्य2)

1.3.3.9129 आश्चर्यजनक आनंद (आनंदचार्य) [825]

1.3.3.10130 अद्‌भुत सम्राट (चक्कावत्तिआचरिया)

1.3.4IV. व्यक्ति (पुग्गला)

1.3.4.1131 बेड़ियाँ

1.3.4.2132 विवेक (पतिभाना)

1.3.4.3133 शीघ्र समझ का (उग्घटितन्नु)

1.3.4.4134 प्रयास (उत्थानफल)

1.3.4.5135 निंदनीय (सा-वज्जा)

1.3.4.6136 सदाचारी व्यवहार (1) (सिला1 सं. शील)

1.3.4.7137 सदाचारी व्यवहार (2) (सिला2 संस. शील)

1.3.4.8138 निकेत (निकत्था)

1.3.4.9139 धम्म वक्ता (धम्मकथिका)

1.3.4.10140 वक्ता (वादी)

1.3.5वी. ग्लो (अभा)

1.3.5.1141 ग्लो (अभा)

1.3.5.2142 मूलांक (पभा सं. प्रभा)

1.3.5.3143 बत्तियाँ (आलोका)

1.3.5.4144 लस्ट्रेस (ओभासा)

1.3.5.5145 प्रकाशक (पज्जोटा सं. प्रज्वलित)

1.3.5.6146 बार (1) (कला1)

1.3.5.7147 बार (2) (कला2)

1.3.5.8148 बुरा आचरण (1) (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

1.3.5.9149 अच्छा आचरण (2) (सुच्चरित संस. सद्धरित्र)

1.3.5.10150 एसेंस (सारा)

1.4चौथा पचास

1.4.1I. इंद्रिय शक्तियाँ

1.4.1.1151 इंद्रिय संकाय

1.4.1.2152 आस्था (सद्धबाला सं. श्रद्धाबाला)

1.4.1.3153 पन्ना (दिव्य ज्ञान) (पन्नबल संस्कृत: प्रज्ञाबल)

1.4.1.4154 ध्यान की शक्ति (सतिबाला सं. स्मृतिबाला)

1.4.1.5155 प्रतिबिंब (पतिसंखानाबाला)

1.4.1.6156 इऑन (कप्पा संस्कृत कल्प)

1.4.1.7157 रोग

1.4.1.8158 पतन (परिहानी)

1.4.1.9159 भिक्षुणी (भिक्षुणी)

1.4.1.10160 एक सुगत (बुद्ध) का अनुशासन [847] (सुगत-विनय)

1.4.2II. अभ्यास के तरीके (पतिपदा)

1.4.2.1161 संक्षेप में [849] (संखित्त सं. संक्षिप्त)

1.4.2.2162 विस्तार से (वित्थरा सं. विस्तारा)

1.4.2.3163 अनाकर्षकता (असुभा सं. अशुभा)

1.4.2.4164 क्षमा (1) (खमा1 सं. क्षमा)

1.4.2.5165 रोगी (2) (खेमा1 सं. क्षेमा)

1.4.2.6166 दोनों (उभय)

1.4.2.7167 मोग्गलाना

1.4.2.8168 सारिपुत्त

1.4.2.9169 परिश्रम के माध्यम से (सासंखार)

1.4.2.10170 युगनद्धा में (युगनद्धा)

1.4.3III. सचेतन क्रिया (संचेतनिया)

1.4.3.1171 सचेतन क्रिया (चेतना) 863

1.4.3.2172 विश्लेषण (विभक्ति सं. विभक्ति)

1.4.3.3173 कोत्थिता

1.4.3.4174 आनंद

1.4.3.5175 उपवन

1.4.3.6176 आकांक्षी [886] (अयाकाना)

1.4.3.7177 राहुल

1.4.3.8178 जलाशय (जम्बाली)

1.4.3.9179 निब्बाना

1.4.3.10180 महान संदर्भ [891] (महापदेश)

1.4.4IV. ब्राह्मण

1.4.4.1181 योद्धा (योद्धाजीव)

1.4.4.2182 गारंटर (पतिभोग)

1.4.4.3183 हर्ड (सुता)

1.4.4.4184 निडर (अभय)

1.4.4.5185 ब्राह्मण सत्य (ब्राह्मणसच्च)

1.4.4.6186 अकुमेन (उमग्गा)

1.4.4.7187 वासाकारा

1.4.4.8188 उपका

1.4.4.9189 बोध (सच्चीकरणीय)

1.4.4.10190 उपोसथा

1.4.5V. महान अध्याय

1.4.5.1191 इसके बाद कान (सोतानुगाता)

1.4.5.2192 तथ्य (थाना)

1.4.5.3193 भद्दिया

1.4.5.4194 सपुगम

1.4.5.5195 वप्पा

1.4.5.6196 सलहा

1.4.5.7197 मल्लिका

1.4.5.8198 स्व-पीड़ा 927 (अट्टनतापा)

1.4.5.9199 तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)

1.4.5.10200 स्नेह (पेमा सं. प्रेम)

1.5पांचवां पचास

1.5.1I. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सतपुरुष)

1.5.1.1201 प्रशिक्षण नियम (सिक्खपाद बिना शिक्षापद)

1.5.1.2202 विश्वास से रहित (असद्ध बिना अश्रद्ध)

1.5.1.3203 सात कर्म (सत्तकम्मा बिना...कर्म)

1.5.1.4204 दस कर्म (दसकम्मा सं. दास-कर्म)

1.5.1.5205 अष्टांगिक (अट्ठांगिका सं. अष्टांगिक)

1.5.1.6206 दस गुना पथ

1.5.1.7207 बुरा चरित्र (1) (पापधम्म1 बिना पाप-धर्म)

1.5.1.8208 बुरा चरित्र (2) (पापधम्म2 बिना पाप-धर्म)

1.5.1.9209 बुरा चरित्र (3) (पापधम्म3 बिना पाप-धर्म)

1.5.1.10210 (10) बुरा चरित्र (4) (पापधम्म1 बिना पाप-धर्म)

1.5.2II. सभा (परिसा परिषद रहित सभा)

1.5.2.1211 विधानसभा (पेरिसा सं. परिषद)

1.5.2.2212 दृश्य (दिट्ठी बिना दृष्टि)

1.5.2.3213 कृतघ्नता (अकातन्नुता)

1.5.2.4214 जीवन का विनाश (पनातिपति)

1.5.2.5215 पथ (1) (मग्गा1 सं. मार्ग)

1.5.2.6216 पथ (2) (मग्गा2 सं. मार्ग)

1.5.2.7अभिव्यक्ति के 217 पाठ्यक्रम (1) (वोहरपथा1)

1.5.2.8अभिव्यक्ति के 218 पाठ्यक्रम (2) (वोहरपथा2)

1.5.2.9219 नैतिक रूप से निर्लज्ज (अहिरिका)

1.5.2.10220 अनैतिक (दुस्सिला संस्कृत दुश्शील)

1.5.3III. कदाचार

1.5.3.1221 कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

1.5.3.2222 (2) दृश्य (दिट्ठी बिना दृष्टि)

1.5.3.3223 कृतघ्नता (अकातन्नुता)

1.5.3.4224 जीवन का विनाश (पनातिपति)

1.5.3.5225 पथ (1) (मग्गा1 सं. मार्ग)

1.5.3.6226 पथ (2) (मग्गा2 संस्कृत मार्ग)

1.5.3.7अभिव्यक्ति के 227 पाठ्यक्रम (1) (वोहरपथ)

1.5.3.8अभिव्यक्ति के 228 पाठ्यक्रम (2) (वोहरपथ)

1.5.3.9229 नैतिक रूप से निर्लज्ज (अहिरिका)

1.5.3.10230 नासमझ (दुप्पन्ना सं. दुष्प्रज्ञ)

1.5.3.11231 कवि

1.5.4IV. कर्म (कर्म के बिना)

1.5.4.1232 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

1.5.4.2233 विस्तार से (वित्थरा सं. विस्तारा)

1.5.4.3234 सोनाकायना

1.5.4.4235 प्रशिक्षण नियम (1) (सिक्खपाद1 सं. शिष्यपाद)

1.5.4.5236 प्रशिक्षण नियम (2) (सिक्खपाद2 सं. शिष्यपाद)

1.5.4.6237 नोबल पथ (अरियामग्गा सं. आर्य-मार्ग)

1.5.4.7238 आत्मज्ञान कारक (बोज्झांगा सं. बोध्यांगा)

1.5.4.8239 निंदनीय (सवज्जा)

1.5.4.9240 अहानिकारक (अब्यबज्जा)

1.5.4.10241 तपस्वी (समान सं. श्रमण)

1.5.4.11अच्छे व्यक्ति के 242 लाभ (सप्पुरिसा-निसंसा)

1.5.5वी. ख़तरे और भय (अपपत्ति-भाया)

1.5.5.1243 विच्छेदक (संघ-भेदक)

1.5.5.2244 अपराध (अपत्तिभया)

1.5.5.3245 प्रशिक्षण (सिक्खनिसंसा)

1.5.5.4246 लेटना (सेय्या सं. शैय्या)

1.5.5.5247 स्तूप के योग्य (थुपा-राहा)

1.5.5.6248 पन्ना (दिव्य ज्ञान) की वृद्धि (पन्ना-बुद्धि सं. प्रज्ञा-वृद्धि)

1.5.5.7249 सहायक (बहुकारा)

1.5.5.8250 घोषणाएँ (1) (वोहारा1)

1.5.5.9251 घोषणाएँ (2) (वोहारा2)

1.5.5.10252 घोषणाएँ (3) (वोहारा3)

1.5.5.11253 घोषणाएँ (4) (वोहारा4)

1.5.6VI. प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिज्ञान सं. अभिज्ञान)

1.5.6.1254 प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिज्ञान सं. अभिज्ञान)

1.5.6.2255 Quests (परियेसन)

1.5.6.3256 निर्वाह (संगहवत्थु सं. संग्रह-वस्तु)

1.5.6.4257 मलुक्यपुत्त (सं. मलुक्य-पुत्र)

1.5.6.5258 परिवार/कुल (कुला)

1.5.6.6259 थोरब्रेड (1) (अजानिया)

1.5.6.7260 थोरब्रेड (2) (अजानिया2)

1.5.6.8261 शक्तियां (बाला)

1.5.6.9262 वन (अरन्ना सं. अरण्य)

1.5.6.10263 क्रिया (कर्म बिना कर्म)

1.5.7VII. कर्मों के मार्ग (कर्मपथ संस्कृत: कर्म-पथ)

1.5.7.1264 जीवन का विनाश (पनातिपति)

1.5.7.2265 - 273 जो नहीं दिया गया है उसे लेना, इत्यादि।

1.5.8आठवीं. वासना (राग) और आगे दोहराव श्रृंखला (राग)

1.5.8.1274 ध्यान साधना (सती) की विधियाँ

1.5.8.2275 चार सही प्रयास

1.5.8.3276 मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के चार आधार

1.5.8.4277 -303

1.5.8.5304 — 783

द बुक ऑफ द फोर (चतुक्कनिपाटा)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

आई. भंडागामवग्गो

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 अनुबुद्ध

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भंडागामा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: 618 “भिक्षुओं (मठवासियों), चार बातों को न समझने और उनमें पारंगत न होने के कारण ही हम इतने लंबे समय तक (पुनर्जन्मों में) भटकते रहे हैं। 619 वे चार बातें क्या हैं?

"भिक्षुओं, उत्तम सद्गुणों, उत्तम समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता), उत्तम पन्ना (दिव्य ज्ञान) और उत्तम मुक्ति को न समझने और उनमें प्रवेश न करने के कारण ही हम इतने लंबे समय तक भटकते और भटकते रहे हैं।"

"उत्कृष्ट सद्गुणपूर्ण आचरण को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। उत्कृष्ट समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। उत्कृष्ट पन्ना (दिव्य ज्ञान) को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। उत्कृष्ट मुक्ति को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की लालसा (तन्हा/तृष्णा) का नाश हो चुका है; अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का मार्ग नष्ट हो चुका है; अब कोई नया अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।"

यह वही है जो भगवान (बुद्ध) ने कहा। यह कहने के बाद, सुगत (भगवान बुद्ध), गुरु ने आगे यह कहा: [2]

"पुण्य आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान),

और अतुलनीय मुक्ति,

इन सभी बातों को महान गौतम ने

स्वयं समझा था।"

इन बातों को प्रत्यक्ष रूप से जानकर

बुद्ध ने भिक्षुओं को धम्म (मार्ग) का उपदेश दिया।

गुरु, दुखों का अंत करने वाले,

दूरदर्शी, ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

---

2 गिरे हुए (पापतिता)

सावत्थी में: "भिक्षुओं, जिसके पास चार चीजें नहीं होतीं, वह इस धर्म और अनुशासन से भटक गया माना जाता है। वे चार चीजें क्या हैं? (1) जिसके पास उत्तम सद्गुणी आचरण नहीं होता, वह इस धर्म और अनुशासन से भटक गया माना जाता है। (2) जिसके पास उत्तम समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) नहीं होती... (3) जिसके पास उत्तम पन्ना (दिव्य ज्ञान) नहीं होता... (4) जिसके पास उत्तम मुक्ति नहीं होती, वह इस धर्म और अनुशासन से भटक गया माना जाता है। जिसके पास ये चारों चीजें नहीं होतीं, वह इस धर्म और अनुशासन से भटक गया माना जाता है।"

लेकिन, भिक्षुओं, इस धर्म और अनुशासन में चार चीजों से युक्त व्यक्ति सुरक्षित माना जाता है। वे चार चीजें क्या हैं? (1) जो व्यक्ति उत्तम सद्गुणों से युक्त है, वह इस धर्म और अनुशासन में सुरक्षित माना जाता है। (2) जो व्यक्ति उत्तम समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से युक्त है... (3) जो व्यक्ति उत्तम पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त है... (4) जो व्यक्ति उत्तम मुक्ति से युक्त है, वह इस धर्म और अनुशासन में सुरक्षित माना जाता है। इन चारों चीजों से युक्त व्यक्ति इस धर्म और अनुशासन में सुरक्षित माना जाता है।

ढहकर गिर पड़े, वे दूर चले जाते हैं;

लालची फिर लौट आते हैं।

कार्य पूरा हो गया, आनंद में ही आनंद मिलता है;

सुख से ही सुख प्राप्त होता है। 623

---

3 अपंग (1) (खाता1 सं. क्षत्)

"भिक्षुओं (सन्यासियों), चार गुणों से युक्त, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय [3] है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत अधिक पाप उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं?"

(1) बिना जांच-पड़ताल किए वह उस व्यक्ति की प्रशंसा करता है जो निंदा का पात्र है। (2) बिना जांच-पड़ताल किए वह उस व्यक्ति की निंदा करता है जो प्रशंसा का पात्र है।

(3) बिना जांच-पड़ताल किए, वह संदेह के योग्य मामले पर विश्वास कर लेता है। (4) बिना जांच-पड़ताल किए, वह विश्वास के योग्य मामले पर संदेह करता है। इन चारों गुणों से युक्त, नासमझ, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत अधिक पाप उत्पन्न करता है।

"भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त बुद्धिमान, सक्षम और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों द्वारा उसकी निंदा नहीं की जा सकती; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं?"

(1) "जांच-पड़ताल करने के बाद, वह निंदा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है। (2) जांच-पड़ताल करने के बाद, वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (3) जांच-पड़ताल करने के बाद, वह संदेह के योग्य मामले पर संदेह करता है। (4) जांच-पड़ताल करने के बाद, वह विश्वास के योग्य मामले पर विश्वास करता है। इन चारों गुणों से युक्त, बुद्धिमान, सक्षम और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।"

जो निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है,

या प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है, वह

अपने मुख से एक अशुभ तीर चलाता है

जिससे उसे कोई सुख नहीं मिलता। 624

पासे में दुर्भाग्यपूर्ण चाल

चलकर अपनी सारी संपत्ति खो देना

, स्वयं सहित सब कुछ खो देना मामूली बात है; लेकिन सुगत (भगवान बुद्ध) के प्रति द्वेष रखना

कहीं अधिक दुर्भाग्यपूर्ण चाल है । 625

एक लाख छत्तीस

निरब्बुद और पाँच निरब्बुद के लिए,

श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करने वाला नरक में जाता है,

क्योंकि उसने उन्हें बुरी वाणी और मन से बदनाम किया है। 626

---

4 अपंग (2) (खाता2 सं. क्षत)

भिक्षुओं, चार व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने पर, अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार कौन हैं? (1) अपनी माता के प्रति कुकर्म करने पर, अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। (2) अपने पिता के प्रति कुकर्म करने पर... (3) तथागत (बुद्ध) के प्रति कुकर्म करने पर... (4) तथागत (बुद्ध) के शिष्य के प्रति कुकर्म करने पर... इन चारों व्यक्तियों के प्रति कुकर्म करने पर, अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह इससे बहुत अधिक नकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, चार व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। वे चार कौन हैं? (1) अपनी माता के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। (2) अपने पिता के प्रति उचित व्यवहार करने पर... (3) तथागत (बुद्ध) के प्रति उचित व्यवहार करने पर... (4) तथागत (बुद्ध) के शिष्य के प्रति उचित व्यवहार करने पर... इन चारों व्यक्तियों के प्रति उचित व्यवहार करने पर, बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट से बचाए रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

जो व्यक्ति

अपने माता-पिता,

प्रबुद्ध तथागत (बुद्ध),

या अपने शिष्य के प्रति गलत व्यवहार करता है, [5]

वह बहुत अधिक पाप उत्पन्न करता है।

माता-पिता के प्रति उस अनुचित आचरण के कारण ,

बुद्धिमान लोग इस संसार में उसकी आलोचना करते हैं

और मृत्यु के बाद वह दुख के लोक में जाता है।

जो व्यक्ति

अपने मातृभूमि पिता

या अपने शिष्य के प्रति सही व्यवहार करता है,

वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

माता-पिता के प्रति उस धर्मपरायण आचरण के कारण ,

बुद्धिमान लोग इस संसार में प्रशंसा पाते हैं

और मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनंदित होते हैं। 627

---

5 धारा के साथ (अनु-सोटा संस्कृत अनु-स्ट्रोटा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? धारा के साथ बहने वाला; धारा के विपरीत बहने वाला; आंतरिक रूप से दृढ़; और वह जो पार कर चुका है और उससे भी आगे बढ़ चुका है, वह ब्राह्मण जो उच्च स्थान पर स्थित है। 628

(1) "और वह व्यक्ति कौन है जो धारा के साथ बहता है? यहाँ, कोई व्यक्ति कामुक सुखों में लिप्त होता है और बुरे कर्म करता है। इसे धारा के साथ बहने वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) "धारा के विपरीत चलने वाला व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति न तो इंद्रिय सुखों में लिप्त होता है और न ही बुरे कर्म करता है। पीड़ा और निराशा में भी, आँसू भरी आँखों से रोते हुए, वह पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है। यही धारा के विपरीत चलने वाला व्यक्ति कहलाता है।"

(3) "और वह व्यक्ति कौन है जो आंतरिक रूप से दृढ़ है? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, कोई व्यक्ति स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त करता है। इसे आंतरिक रूप से दृढ़ व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और वह कौन है जिसने पार कर लिया है और आगे बढ़ गया है, वह ब्राह्मण जो उच्च भूमि पर खड़ा है? [6] यहाँ, छोटे-छोटे दोषों के नाश के साथ, किसी व्यक्ति ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इसे ही पार कर लेने वाला और आगे बढ़ जाने वाला व्यक्ति, वह ब्राह्मण जो उच्च भूमि पर खड़ा है, कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

वे लोग जो इंद्रिय सुखों में अनियंत्रित हैं, कामवासना (राग) से मुक्त नहीं हैं, यहाँ इंद्रिय सुखों का आनंद ले रहे हैं, बार-बार पुनर्जन्म और वृद्धावस्था में लौट रहे हैं, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) में डूबे हुए हैं, वे ही "धारा के साथ बहने वाले" हैं।

इसलिए, सती साधना में निपुण एक बुद्धिमान व्यक्ति, जो इंद्रिय सुखों और बुरे कर्मों का सहारा नहीं लेता, उसे कष्टदायी होने पर भी इंद्रिय सुखों का त्याग कर देना चाहिए: ऐसे व्यक्ति को "धारा के विपरीत चलने वाला" कहा जाता है।

जिसने पाँच दोषों का त्याग कर दिया है,

एक सिद्ध प्रशिक्षु, 630 प्रतिगामी नहीं,

मन की महारत प्राप्त कर ली है, उसकी इंद्रियाँ शांत हैं:

इस व्यक्ति को "आंतरिक रूप से दृढ़" कहा जाता है।

जिसने ऊँच-नीच के सभी ज्ञान को भस्म कर दिया है,

उन्हें इस प्रकार जला दिया है कि वे लुप्त हो गए हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो गया है:

वह ऋषि जिसने ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) व्यतीत किया है,

संसार के अंत तक पहुँच गया है, उसे

"परलोक का मार्ग प्रशस्त करने वाला" कहा जाता है।

---

6. अल्पज्ञानी (अप्पस्सुता संस. अल्प-श्रुता)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक अल्पज्ञानी जो अपने ज्ञान पर ध्यान नहीं देता; एक अल्पज्ञानी जो अपने ज्ञान पर ध्यान देता है; एक अतिज्ञानी जो अपने ज्ञान पर ध्यान नहीं देता; और एक अतिज्ञानी जो अपने ज्ञान पर ध्यान देता है।

(1) "और वह व्यक्ति अल्पज्ञानी कैसे है जो अपने ज्ञान पर ध्यान नहीं देता? [7] यहाँ, किसी ने कम ज्ञान प्राप्त किया है—अर्थात, प्रवचनों (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याओं, छंदों (गाथाओं), प्रेरित कथनों (उदना), उद्धरणों (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाओं (जातक), आश्चर्यजनक वृत्तांतों और प्रश्न-उत्तरों 631 का—पर वह अपने ज्ञान का अर्थ नहीं समझता; वह धम्म को नहीं समझता; और वह धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता। इस प्रकार, वह व्यक्ति अल्पज्ञानी है जो अपने ज्ञान पर ध्यान नहीं देता।"

(2) "और जो व्यक्ति अपने ज्ञान पर केंद्रित है, वह अल्पज्ञानी कैसे है? यहाँ, किसी ने प्रवचनों और प्रश्नोत्तरों का अल्पज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु अपने ज्ञान का अर्थ समझकर और धम्म को समझकर वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। इस प्रकार, जो व्यक्ति अपने ज्ञान पर केंद्रित है, वह अल्पज्ञानी कहलाता है।"

(3) "वह व्यक्ति जो बहुत ज्ञानी है, वह अपने ज्ञान पर ध्यान क्यों नहीं देता? यहाँ, किसी ने बहुत कुछ सीखा है—अर्थात् प्रवचनों का... प्रश्न-उत्तरों का—परन्तु वह अपने ज्ञान का अर्थ नहीं समझता; वह धम्म को नहीं समझता; और वह धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता। इस प्रकार, वह व्यक्ति बहुत ज्ञानी है जो अपने ज्ञान पर ध्यान नहीं देता।"

(4) और जो व्यक्ति अपने ज्ञान पर एकाग्रचित्त है, वह किस प्रकार ज्ञानवान कहलाता है? यहाँ, किसी व्यक्ति ने बहुत कुछ सीखा है—अर्थात् प्रवचनों का... प्रश्न-उत्तरों का— और अपने ज्ञान का अर्थ समझकर तथा धम्म को समझकर वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। इस प्रकार, जो व्यक्ति अपने ज्ञान पर एकाग्रचित्त है, वह ज्ञानवान कहलाता है।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

यदि किसी व्यक्ति के पास ज्ञान की कमी है

और वह सद्गुणों में स्थिर नहीं है,

तो लोग उसकी आलोचना दोनों ही मामलों में करते हैं,

सद्गुणपूर्ण व्यवहार और ज्ञान के मामले में।

यदि किसी व्यक्ति के पास ज्ञान कम हो,

परन्तु वह सद्गुणों में भलीभांति दृढ़ हो,

तो लोग उसके सदाचारी आचरण की प्रशंसा करते हैं;

उसका ज्ञान सफल हो गया है। 32

यदि कोई व्यक्ति अत्यधिक विद्वान है

परन्तु सद्गुणों में स्थिर नहीं है, तो

वे उसकी सद्गुणहीनता के लिए उसकी आलोचना करते हैं;

उसका ज्ञान सफल नहीं हुआ। [8]

यदि कोई व्यक्ति अत्यधिक विद्वान है

और सद्गुणों में स्थिर है, तो

लोग उसकी दोनों ही बातों,

सदाचार और ज्ञान, के लिए उसकी प्रशंसा करते हैं।

जब बुद्ध का कोई शिष्य अत्यंत विद्वान हो,

धम्म का ज्ञाता हो, और

शुद्ध पर्वतीय स्वर्ण के सिक्के के समान पन्ना (दिव्य ज्ञान) से परिपूर्ण हो, तो भला

उसे दोष देने का अधिकार किसे है?

यहां तक कि देव (देवदूत/भगवान) भी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं;

ब्रह्मा भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

---

7 वे सजाते हैं (शोभना सं. शोभना)

"भिक्षुओं (मठवासियों), ये चार प्रकार के व्यक्ति जो सक्षम, अनुशासित, आत्मविश्वासी, विद्वान, धम्म के ज्ञाता और धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाले होते हैं, संघ की शोभा बढ़ाते हैं। वे चार कौन से हैं?"

(1) "योग्य, अनुशासित, आत्मविश्वासी, विद्वान, धम्म के ज्ञाता और धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु संघ की शोभा बढ़ाता है। (2) योग्य भिक्षुणी (भिक्षुणी)... (3) योग्य पुरुष गृहस्थ अनुयायी... (4) योग्य, अनुशासित, आत्मविश्वासी, विद्वान, धम्म के ज्ञाता और धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाली स्त्री गृहस्थ अनुयायी संघ की शोभा बढ़ाती है।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), ये चार प्रकार के व्यक्ति जो सक्षम, अनुशासित, आत्मविश्वासी, विद्वान, धम्म के समर्थक और धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाले होते हैं, संघ की शोभा बढ़ाते हैं।"

जो व्यक्ति सक्षम और आत्मविश्वासी हो,

विद्वान हो, धम्म का ज्ञाता हो, और

धम्म के अनुरूप अभ्यास करता हो,

उसे संघ का आभूषण कहा जाता है।

सद्‌गुणों में निपुण भिक्षु,

विद्वान भिक्षुणी,

आस्थावान पुरुष अनुयायी,

आस्थावान स्त्री अनुयायी:

ये वे हैं जो संघ को सुशोभित करते हैं;

ये संघ के आभूषण हैं।

8आत्मविश्वास (वेसाराज)

"भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) में चार प्रकार का आत्मविश्वास होता है, जिसके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, [9] सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं। 633 वे चार कौन से हैं?"

(1) "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार में कोई भी मुझे यह कहकर फटकार सके कि: 'यद्यपि तुम पूर्णतः प्रबुद्ध होने का दावा करते हो, परन्तु तुम इन विषयों में पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हो।' क्योंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निश्चिंत, निर्भय और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूँ।"

(2) "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति मुझे यह कहकर फटकार सके कि: 'यद्यपि तुम अपने दोषों के नाश होने का दावा करते हो, तुमने इन दोषों को पूरी तरह से नाश नहीं किया है।' क्योंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निश्चिंत, निर्भय और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूँ।"

(3) "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति मुझे यह कहकर फटकार सके कि 'जिन चीजों को तुमने बाधक बताया है, वे उनमें संलग्न होने वाले को बाधक नहीं बना सकतीं।' क्योंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निश्चिंत, निर्भय और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूँ।"

(4) "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार में कोई भी मुझे यह कहकर फटकार सके: 'धम्म का अभ्यास करने वाले को वह पूर्ण दुख-निवारण नहीं मिलता जिसके लिए तुम उसका उपदेश देते हो।' 634 चूंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निश्चिंत, निर्भय और आत्मविश्वासी रहता हूँ।"

"हे भिक्षुओं, ये वे चार प्रकार के आत्मविश्वास हैं जो तथागत (बुद्ध) में पाए जाते हैं, जिनके द्वारा वे प्रमुख बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को गतिमान करते हैं।"

विभिन्न रूपों में प्रतिपादित,

तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अपनाए गए ये सैद्धांतिक मार्ग

तथागत (बुद्ध) तक नहीं पहुँचते,

जो आत्मविश्वास से परिपूर्ण हैं और

सैद्धांतिक मार्गों से परे जा चुके हैं। 635

पूर्णतः, सब कुछ पर विजय प्राप्त करके, उन्होंने समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से प्रेरित होकर

धर्म के चक्र को गतिमान किया । प्राणी ऐसे व्यक्ति को प्रणाम करते हैं। देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ, जो अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म) से परे चले गए हैं। [10]

---

9 तृष्णा का उदय (तन्हुप्पा सं. तृष्णा-उत्पाद)

भिक्षुओं, भिक्षु में तृष्णा उत्पन्न होने के ये चार तरीके हैं। वे चार तरीके कौन से हैं? वस्त्रों, भिक्षा, आवास या जीवन यापन के लिए भिक्षु में तृष्णा उत्पन्न होती है। 636 ये चार तरीके हैं जिनसे भिक्षु में तृष्णा उत्पन्न होती है।

तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) को अपना साथी बनाकर

मनुष्य इस दीर्घकाल में भटकता रहता है।

एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाते हुए

वह संसार पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता।

इस खतरे को जानते हुए

कि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) ही दुख का मूल कारण है,

तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से मुक्त, अभिलाषा से रहित,

एक भिक्षु को ध्यानपूर्वक भ्रमण करना चाहिए।

10 बंधन (योग)

भिक्षुओं, ये चार बंधन हैं। कौन से चार? कामुकता का बंधन, अस्तित्व का बंधन (भाव/पुनर्जन्म का कारण), दृष्टिकोण का बंधन और अज्ञान का बंधन।

(1) "हे भिक्षुओं, कामुकता का बंधन क्या है? यहाँ, व्यक्ति कामुकता से संबंधित उनके उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझ पाता। जब व्यक्ति इन बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, तब कामुकता से संबंधित राग, आनंद, आसक्ति, मोह, प्यास, जुनून, आसक्ति और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उसके भीतर गहराई से विद्यमान हो जाती हैं। इसे ही कामुकता का बंधन कहते हैं।"

(2) "इंद्रिय बंध ऐसा ही है। और अस्तित्व का बंध कैसा है? यहाँ व्यक्ति अस्तित्व की अवस्थाओं के संबंध में उत्पत्ति और क्षय, तृप्ति, संकट और मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझ पाता। 637 जब व्यक्ति इन बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, तब अस्तित्व के प्रति राग, आनंद, आसक्ति, मोह, प्यास, जुनून, आसक्ति और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) अस्तित्व की अवस्थाओं के संबंध में व्यक्ति के भीतर गहराई से विद्यमान हो जाती हैं। इसे ही अस्तित्व का बंध कहते हैं।"

(3) "इंद्रिय बंध और अस्तित्व बंध ऐसे ही होते हैं। और दृष्टि बंध कैसे होता है? यहाँ, व्यक्ति दृष्टि के संबंध में उत्पत्ति और क्षय, तृप्ति, खतरा और पलायन को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता। जब व्यक्ति इन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, [11] तब दृष्टि के प्रति राग, दृष्टि में आनंद, दृष्टि के प्रति आसक्ति, दृष्टि के प्रति मोह, दृष्टि के प्रति प्यास, दृष्टि के प्रति जुनून, दृष्टि के प्रति आसक्ति और दृष्टि के प्रति तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) गहरी चेतना में विद्यमान हो जाती है; इसे दृष्टि बंध कहते हैं।"

(4) "इंद्रिय बंधन, अस्तित्व बंधन और दृष्टि बंधन इस प्रकार हैं। और अज्ञान का बंधन कैसे होता है? यहाँ व्यक्ति छह इंद्रियों के संपर्क में आने वाले अनुभवों के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, तृप्ति, भय और पलायन को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझ पाता। जब व्यक्ति इन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, तब छह इंद्रियों के संपर्क में आने वाले अनुभवों के संदर्भ में उसके भीतर अज्ञान और अनभिज्ञता गहराई से विद्यमान हो जाती है। इसे ही अज्ञान का बंधन कहते हैं। इंद्रिय बंधन, अस्तित्व बंधन, दृष्टि बंधन और अज्ञान बंधन इस प्रकार हैं।"

"मनुष्य अकुशल (अशुल) बुरी अवस्थाओं से जकड़ा हुआ है जो अपवित्र करने वाली, पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाली, कष्टदायी, दुख में परिपक्व होने वाली और भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाने वाली होती हैं; इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य 'बंधन से सुरक्षित नहीं' है। ये चार बंधन हैं।"

भिक्षुओं, ये चार प्रकार के बंधन हैं जिन्हें तोड़ा जा सकता है। वे चार कौन से हैं? कामुकता का बंधन, अस्तित्व का बंधन, दृष्टियों का बंधन और अज्ञान का बंधन।

(1) "हे भिक्षुओं, कामुकता के बंधन का टूटना क्या है? यहाँ व्यक्ति कामुकता से संबंधित उनके उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। जब व्यक्ति इन बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब कामुकता से संबंधित कामवासना (राग), कामुकता से मिलने वाला आनंद, कामुकता से भरा स्नेह, कामुकता से भरा मोह, कामुकता से भरी प्यास, कामुकता से भरी वासना, कामुकता से भरी आसक्ति और कामुकता की लालसा (तन्हा/तृष्णा) उसमें नहीं रहती। इसे ही कामुकता के बंधन का टूटना कहते हैं।"

(2) "इस प्रकार है कामुकता का बंधन टूटना। और जीवन का बंधन कैसे टूटता है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन की अवस्थाओं के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, तृप्ति, संकट और मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। जब कोई इन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप

में समझ लेता है, तब जीवन की अवस्थाओं के संदर्भ में व्यक्ति के भीतर जीवन के प्रति कामवासना (राग), जीवन में आनंद, जीवन के प्रति स्नेह, जीवन के प्रति आसक्ति, जीवन के प्रति प्यास, जीवन के प्रति जुनून, जीवन के प्रति लगाव और जीवन के प्रति लालसा (तन्हा/तृष्णा) नहीं रहती। इसे ही जीवन का बंधन टूटना कहते हैं।"

(3) "इस प्रकार हैं कामुकता का बंधन टूटना और अस्तित्व का बंधन टूटना (भाव/पुनर्जन्म का कारण)। और दृष्टियों का बंधन कैसे टूटता है? यहाँ, व्यक्ति दृष्टियों के संबंध में उत्पत्ति और क्षय, संतुष्टि, खतरे और [12] मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। जब कोई इन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तो दृष्टियों के प्रति वासना (राग), दृष्टियों में आनंद, दृष्टियों के प्रति आसक्ति, दृष्टियों के प्रति प्यास, दृष्टियों के प्रति जुनून, दृष्टियों के प्रति लगाव और दृष्टियों के प्रति तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति के भीतर नहीं रहती। इसे दृष्टियों का बंधन टूटना कहते हैं।"

(4) "इंद्रिय बंधन का टूटना, अस्तित्व बंधन का टूटना और दृष्टि बंधन का टूटना इस प्रकार है। और अज्ञान बंधन का टूटना कैसे संभव है? यहाँ, व्यक्ति छह इंद्रियों के संपर्क में उत्पत्ति और क्षय, संतुष्टि, खतरे और पलायन को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। जब व्यक्ति इन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तो छह इंद्रियों के संपर्क में अज्ञान और अज्ञानता उसके भीतर नहीं रहती। इसे अज्ञान बंधन का टूटना कहते हैं। इंद्रिय बंधन का टूटना, अस्तित्व बंधन का टूटना, दृष्टि बंधन का टूटना और अज्ञान बंधन का टूटना इस प्रकार है।"

"जो व्यक्ति अकुशल (अशुल) बुरी अवस्थाओं से विरक्त हो जाता है, जो अपवित्र करने वाली, पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाली, कष्टदायी, दुख में परिपक्व होने वाली और भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाने वाली होती हैं, उन्हें वह 'बंधन से मुक्त' कहता है। ये बंधनों के चार विच्छेद हैं।"

कामुकता के बंधन

और अस्तित्व के बंधन से जकड़े हुए,

विचारों के बंधन से जकड़े हुए,

अज्ञान से प्रेरित होकर,

प्राणी संसार में चलते रहते हैं,

पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में बंधे रहते हैं।

लेकिन इंद्रिय सुखों और अस्तित्व के बंधन को पूर्णतः समझकर ,

विचारों के बंधन को उखाड़कर

और अज्ञान को विलीन करके,

ऋषियों ने सभी बंधनों को तोड़ दिया है;

वे बंधन से परे चले गए हैं। 63a [13]

II. पैदल चलने वाला भाग (Caravaggo sans. Chara-varga)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 चलना [639]

(1) "भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु के मन में चलते समय कामुक विचार, द्वेष का विचार या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न होता है, और वह उसे सहन करता है, उसका त्याग नहीं करता, उसे दूर नहीं करता, उसे समाप्त नहीं करता और उसे मिटा नहीं देता, तो वह भिक्षु उत्साह और नैतिक भय से रहित कहा जाता है; वह चलते समय निरंतर आलसी और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) से रहित रहता है।

(2) यदि किसी भिक्षु के मन में खड़े-खड़े कामुक विचार उत्पन्न हो... (3) यदि किसी भिक्षु के मन में बैठे-बैठे कामुक विचार उत्पन्न हो... (4) यदि किसी भिक्षु के मन में जागते हुए लेटे-लेटे कामुक विचार, द्वेष का विचार या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न हो, और वह उसे सहन करे, उसका त्याग न करे, उसे दूर न करे, उसे समाप्त न करे और उसे मिटा न दे, तो उस भिक्षु को उत्साह और नैतिक भय से रहित कहा जाता है; वह जागते हुए लेटे-लेटे लगातार आलसी और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) से रहित रहता है।

(1) "लेकिन, भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु के मन में चलते समय कामुक विचार, द्वेष का विचार या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न होता है, और वह उसे सहन नहीं करता बल्कि उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है, तो उस भिक्षु को उत्साही और कुकर्म से भयभीत कहा जाता है; वह चलते समय निरंतर और सतत ऊर्जावान और दृढ़ रहता है।"

(2) "यदि किसी भिक्षु के मन में खड़े-खड़े कामुक विचार उत्पन्न हो... (3) यदि किसी भिक्षु के मन में बैठे-बैठे कामुक विचार उत्पन्न हो... (4) यदि किसी भिक्षु के मन में जागते हुए लेटे-लेटे कामुक विचार, द्वेष का विचार या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न हो, और वह उसे सहन न करे, बल्कि उसका त्याग कर दे, उसे दूर कर दे, उसे समाप्त कर दे, [14] और उसे मिटा दे, तो उस भिक्षु को उत्साही और कुकर्म से भयभीत कहा जाता है; वह चलते-फिरते निरंतर ऊर्जावान और दृढ़ रहता है।"

चलते-फिरते हो या खड़े हो,

बैठे हो या लेटे हो,

जो व्यक्ति

गृहस्थ जीवन से जुड़े बुरे विचारों में डूबा रहता है, वह भ्रामक चीजों के प्रति आसक्त होकर

एक भयावह मार्ग पर चल पड़ा है : ऐसा भिक्षु सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

लेकिन जो व्यक्ति चलते,

खड़े होते, बैठे या लेटे हुए भी

अपने विचारों को शांत कर लेता है

और विचारों को शांत करने में आनंद लेता है,

ऐसा भिक्षु ही

सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

---

12. सद्गुणपूर्ण आचरण (शीला सान. शील)

भिक्षुओं, सदाचारी आचरण का पालन करते हुए, पतिमोक्ख का ध्यान रखते हुए निवास करो। पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त रहो, सूक्ष्म दोषों में भी खतरे को पहचानो। इन दोषों को स्वीकार करने के बाद, प्रशिक्षण नियमों का पालन करो। जब तुम यह कर लो, तो आगे क्या करना चाहिए?

(1) "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु चलते समय लालसा और द्वेष से मुक्त हो गया हो; यदि उसने सुस्ती और उन्मत्तता, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह का त्याग कर दिया हो; 640 यदि उसकी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) बिना शिथिल हुए जागृत हो; यदि उसका ध्यान (ध्यान/सती) स्थापित और निर्मल हो; यदि उसका शरीर शांत और अविचलित हो; यदि उसका मन आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) और एकाग्र (एकग्गा संस्कृत एकग्र) हो, तो उस भिक्षु को उत्साही और कुकर्म से भयभीत कहा जाता है; वह निरंतर और सतत रूप से चलते समय ऊर्जावान और दृढ़ रहता है।

(2) "यदि कोई भिक्षु खड़े-खड़े ही लालसा और द्वेष से मुक्त हो जाए... (3) यदि कोई भिक्षु बैठे-बैठे ही लालसा और द्वेष से मुक्त हो जाए... [15] ... (4) यदि कोई भिक्षु जागते हुए लेटे-लेटे ही लालसा और द्वेष से मुक्त हो जाए; यदि उसने सुस्ती, उन्मत्तता, बेचैनी, पश्चाताप और संदेह को त्याग दिया हो; यदि उसकी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) बिना शिथिल हुए जागृत हो; यदि उसकी जागरूकता स्थिर और स्पष्ट हो; यदि उसका शरीर शांत और अविचलित हो; यदि उसका मन आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) और एकाग्र हो, तो उस भिक्षु को उत्साही और कुकर्म से भयभीत कहा जाता है; वह जागते हुए लेटे-लेटे ही निरंतर ऊर्जावान और दृढ़ रहता है।"

चलने में संयमित, खड़े होने में संयमित,

बैठने और लेटने में संयमित;

संयमित होकर, एक भिक्षु अपने अंगों को अंदर की ओर खींचता है,

और संयमित होकर, उन्हें फैलाता है।

ऊपर, आर-पार और नीचे,

जहाँ तक संसार फैला हुआ है, वह एक ऐसा व्यक्ति है जो समुच्चय के रूप में ऐसे घटनाक्रमों (धम्म) के

उद्भव और लुप्त होने का सूक्ष्म अध्ययन करता है ।

जो मन की समता (समथा) के लिए अनुकूल है, उसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला , सदा सचेत (ध्यान करने वाला/सती) रहने वाला,

ऐसे भिक्षु

को निरंतर दृढ़ निश्चयी कहा जाता है।

---

13 प्रयास करना (प्रस्थान के बिना पढ़ना)

भिक्षुओं, ये चार उचित प्रयास हैं। वे चार क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु अजन्मे अहानिकारक अकुशल अवस्थाओं के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। (2) वह उत्पन्न अहानिकारक अकुशल अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। (3) वह अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। (4) वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की निरंतरता, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। ये चार उचित प्रयास हैं।

जो लोग सही ढंग से प्रयास करते हैं,

वे मारा के क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेते हैं;

वे अनासक्त हो जाते हैं,

पुनर्जन्म और मृत्यु के भय से परे हो जाते हैं।

वे संतुष्ट और शांत हैं,

क्योंकि उन्होंने मारा और उसके वाहन (शरीर) पर विजय प्राप्त कर ली है;

उन सुखी लोगों ने

नामुची की समस्त सेनाओं को परास्त कर दिया है। 641

---

14. संयम (संवर)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार के प्रयास हैं। कौन से चार? संयम द्वारा प्रयास, त्याग द्वारा प्रयास, विकास द्वारा प्रयास और संरक्षण द्वारा प्रयास।

(1) "हे भिक्षुओं, संयम द्वारा प्रयास करना क्या है? यहाँ, किसी आकृति को आँख से देखकर, भिक्षु उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है, वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय का संयम अपनाता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, भिक्षु उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह मन की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है, वह मन की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह मन की इंद्रिय का संयम अपनाता है। इसे ही संयम द्वारा प्रयास करना कहते हैं।"

(2) "त्याग द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु (साधु) उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता; वह उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है। वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को सहन नहीं

करता... अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं को जब भी वे उत्पन्न हों; वह उनका त्याग करता है, उन्हें दूर करता है, उन्हें समाप्त करता है और उन्हें मिटा देता है। इसे त्याग द्वारा प्रयास कहा जाता है।"

(3) "और विकास द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु सती (ध्यान/सती) के ज्ञान तत्व का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य (विराग) और समाप्ति पर आधारित है, और मुक्ति में परिपक्व होता है। वह घटनाओं के विवेक (धम्म) के ज्ञान तत्व का विकास करता है... ऊर्जा (प्रयास/विरिया) के ज्ञान तत्व का... आनंद (पीति) के ज्ञान तत्व का... शांति (पासद्धि) के ज्ञान तत्व का... समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के ज्ञान तत्व का... उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का, जो एकांत, वैराग्य और समाप्ति पर आधारित है, और मुक्ति में परिपक्व होता है। इसे विकास द्वारा प्रयास कहा जाता है। [17]

(4) "और संरक्षण द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की एक उत्कृष्ट वस्तु की रक्षा करता है: 642 कंकाल की अनुभूति (सन्ना/संग्य), कृमिग्रस्त शव की अनुभूति (सन्ना/संग्य), पीले पड़े शव की अनुभूति (सन्ना/संग्य), सड़ते हुए शव की अनुभूति (सन्ना/संग्य), फटे हुए शव की अनुभूति (सन्ना/संग्य), फूले हुए शव की अनुभूति (सन्ना/संग्य)। इसे संरक्षण द्वारा प्रयास कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के प्रयास हैं।"

संयम और त्याग,

विकास और संरक्षण: सूर्य के सन्यासी ने

इन चार साधनाओं की शिक्षा दी थी। इन्हीं के द्वारा एक उत्साही भिक्षु यहाँ दुखों का नाश प्राप्त कर सकता है।

---

15 घोषणाएँ (पन्नत्ती)

"भिक्षुओं, श्रेष्ठ भिक्षुओं की ये चार घोषणाएँ हैं। वे चार कौन सी हैं?"

(1) शरीर धारण करने वालों में सबसे श्रेष्ठ राहु हैं, जो असुरों के स्वामी हैं। 643 (2) इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वालों में सबसे श्रेष्ठ राजा मंधाता हैं। 644 (3) अधिकार का प्रयोग करने वालों में सबसे श्रेष्ठ मार हैं। (4) इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को सबसे श्रेष्ठ घोषित किया गया है। ये चार घोषणाएँ हैं जो श्रेष्ठ व्यक्तियों की घोषणा करती हैं।

राहु शरीरधारी देवताओं में सर्वोपरि है,

मंधाता इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले देवताओं में सर्वोपरि है;

मार शासकों में सर्वोपरि है,

जो शक्ति और यश से ओतप्रोत है।

इस संसार में , ऊपर, नीचे और चारों ओर फैले हुए सभी देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ ,

जहाँ तक संसार का विस्तार है,

बुद्ध को सर्वोपरि घोषित किया गया है।

---

16 विशेषज्ञता (सोखुम्मा)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार की विशेषज्ञताएँ हैं। 645 वे चार क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु रूप (ज्ञान) की सर्वोच्च विशेषज्ञता रखता है। वह रूप (ज्ञान) की किसी अन्य विशेषज्ञता को इससे अधिक उत्कृष्ट या उदात्त नहीं देखता; वह रूप (ज्ञान) की किसी अन्य विशेषज्ञता की इससे अधिक उत्कृष्ट या उदात्त इच्छा नहीं रखता। (2) वह संवेदना (वेदना) [18] [18] की सर्वोच्च विशेषज्ञता रखता है... (3) ... अनुभूति (संज्ञा) की सर्वोच्च विशेषज्ञता... (4) ... अपने गुणों/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) को जानने की सर्वोच्च विशेषज्ञता। वह अपने गुणों/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) की किसी अन्य विशेषज्ञता को इससे अधिक उत्कृष्ट या उदात्त नहीं देखता; वह रूप (ज्ञान) की किसी अन्य विशेषज्ञता की इच्छा नहीं रखता। किसी अन्य व्यक्ति की तुलना में अपने गुणों/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) को अधिक उत्कृष्ट या श्रेष्ठ जानना।

"ये चार प्रकार की विशेषज्ञताएं हैं।"

रूप (स्वरूप) की विशेषज्ञता,

संवेदनाओं (वेदना) की उत्पत्ति,

अनुभूति (संज्ञा) के उत्पन्न होने

और लुप्त होने के ज्ञान से;

अपने गुणों/व्यवहार (संस्कार) को पराये

, दुखमय और स्वयं से भिन्न जानकर,

वास्तव में वह भिक्षु जो सही दृष्टि रखता है,

शांत अवस्था में आनंदित होता है। वह मार और उसके वाहन (शरीर) पर विजय प्राप्त करके

अपना अंतिम शरीर धारण करता है ।

17 गलत पाठ्यक्रम (1) (agati1)

भिक्षुओं, गलत मार्ग अपनाने के ये चार तरीके हैं। कौन से चार? व्यक्ति इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण गलत मार्ग अपनाता है। ये चार तरीके हैं गलत मार्ग अपनाने के।

यदि कोई व्यक्ति इच्छा, घृणा, भय या मोह (मनोभाव) के कारण

धम्म का उल्लंघन करता है, तो

उसकी प्रसिद्धि

कृष्ण पक्ष में चंद्रमा की तरह फीकी पड़ जाती है।

---

18 गलत पाठ्यक्रम (2) (agati2)

भिक्षुओं, गलत मार्ग पर न चलने के ये चार तरीके हैं। वे चार तरीके कौन से हैं? मनुष्य इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता। गलत मार्ग पर न चलने के ये चार तरीके हैं।

यदि कोई व्यक्ति इच्छा, घृणा, भय या मोह (मोह) के माध्यम से धम्म का उल्लंघन नहीं करता है , तो

उसकी प्रसिद्धि

शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान पूर्ण हो जाती है।

---

19 गलत पाठ्यक्रम (3) (agati3)

भिक्षुओं, गलत मार्ग अपनाने के ये चार तरीके हैं। वे चार क्या हैं? [19] व्यक्ति इच्छा के कारण गलत मार्ग अपनाता है [जैसा कि 4:17 में है]... ये गलत मार्ग अपनाने के चार तरीके हैं।

भिक्षुओं, गलत मार्ग पर न चलने के ये चार तरीके हैं। वे चार कौन से हैं? कोई भी व्यक्ति इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... [जैसा कि 4:18 में है]... ये गलत मार्ग पर चलने के चार तरीके हैं।

यदि कोई व्यक्ति इच्छा, घृणा, भय या मोह (मोह) के कारण

धम्म का उल्लंघन करता है, तो

उसकी प्रसिद्धि

कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की तरह फीकी पड़ जाती है।

यदि कोई व्यक्ति इच्छा, घृणा, भय या मोह (मोह) के माध्यम से धम्म का उल्लंघन नहीं करता है , तो

उसकी प्रसिद्धि

शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान पूर्ण हो जाती है।

---

20 भोजन का एक समनुदेशक (भट्टुद्देसका)

भिक्षुओं, यदि भोजन परोसने वाले किसी व्यक्ति में चार गुण हों, तो उसे नरक में ऐसे डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण गलत मार्ग अपनाता है। यदि भोजन परोसने वाले किसी व्यक्ति में ये चार गुण हों, तो उसे नरक में ऐसे डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, यदि भोजन परोसने वाले में चार गुण हों, तो वह स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह इच्छा, घृणा, मोह या भय के कारण गलत मार्ग नहीं अपनाता। यदि भोजन परोसने वाले में ये चार गुण हों, तो वह स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

वे लोग जो इंद्रिय सुखों में अनियंत्रित हैं, जो अधर्मी हैं, जो धम्म का आदर नहीं करते, जो इच्छा, घृणा और भय के कारण भटक गए हैं, 648 उन्हें दूषित सभा कहा जाता है।

ऐसा ज्ञानी तपस्वी ने कहा है। अतः वे अच्छे व्यक्ति जो प्रशंसनीय हैं, धम्म में दृढ़ हैं, कोई बुराई नहीं करते, इच्छा, घृणा और भय से अविचलित हैं, उन्हें विशिष्ट सभा कहा जाता है। ऐसा ज्ञानी तपस्वी ने कहा है। [20]

III. उरुवेला

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 उरुवेला (एल) 649

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, " भिक्षुओं?"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (संतों), एक बार पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद मैं उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे बकरियों के बरगद के पेड़ के पास निवास कर रहा था। तब एकांत में अकेले रहते हुए मेरे मन में यह विचार आया: आदर और श्रद्धा के बिना रहना कष्टदायी है। अब मैं किस तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान करूँ और उस पर निर्भर रहूँ?"

तब मुझे यह विचार आया: (1) यदि मेरे सद्गुणों का सत्कार अपूर्ण होता, तो उसे पूर्ण करने के लिए मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करता। परन्तु इस संसार में, जहाँ देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विद हैं, और इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य विद हैं, मुझे अपने से अधिक सद्गुणों में निपुण कोई अन्य तपस्वी या ब्राह्मण नहीं दिखाई देता, जिसका मैं आदर, सम्मान और जिस पर आश्रित होकर निवास कर सकूँ।

(2) यदि मेरी समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) अपूर्ण हो, तो उसे पूर्ण करने के लिए मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करूंगा। परन्तु... मुझे अपने से अधिक समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में निपुण कोई अन्य तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता।

(3) "यदि मेरा कुल ज्ञान (दिव्य ज्ञान) अपूर्ण होता, तो उसे पूर्ण करने के लिए मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहता। परन्तु... मुझे कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण मुझसे अधिक ज्ञानवान नहीं दिखाई देता। ..."

(4) "यदि मेरी मुक्ति की समग्र प्राप्ति अपूर्ण होती, तो उसे पूर्ण करने के लिए मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करता। परन्तु इस संसार में, जहाँ देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विद हैं, और इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य विद हैं, मुझे अपने से अधिक सिद्ध मुक्ति प्राप्त कोई अन्य तपस्वी या ब्राह्मण नहीं दिखाई देता, जिसका मैं आदर, सम्मान और जिस पर आश्रित होकर निवास कर सकूँ।"

मुझे यह विचार आया: 'तो फिर मुझे केवल इसी धम्म का आदर, सम्मान और उस पर ही निर्भर रहना चाहिए, जिसके बारे में मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका है।'

"तब ब्रह्मा सहमपति [21] ने अपने मन से मेरे मन में प्रतिबिंबित प्रतिबिंब को जान लिया और ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे समक्ष इस प्रकार प्रकट हुए जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींचता है। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर झुके, आदरपूर्वक मुझे प्रणाम किया और कहा: 'ऐसा ही है, भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, सुगत (भगवान बुद्ध)! भंते, जो अतीत में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध थे—वे भगवान (बुद्ध) भी केवल धम्म का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहते थे: जो भविष्य में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे—वे भगवान (बुद्ध) भी केवल धम्म का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहेंगे। जो भगवान (बुद्ध) वर्तमान में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, वे भी केवल धम्म का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहेंगे। धम्म।'

"ब्रह्म सहमपति ने यही कहा था। इतना कहने के बाद उन्होंने आगे यह कहा:

"अतीत के सिद्ध बुद्ध,

भविष्य के बुद्ध

और वर्तमान बुद्ध

जो अनेकों के दुःखों को दूर करते हैं:

वे सभी अच्छे धम्म का आदर करते हुए निवास करते थे, अब निवास करते हैं

और [भविष्य में] निवास करेंगे। "

यही बुद्धों का स्वभाव है।

अत: जो व्यक्ति कल्याण की कामना करता है, और

महानता की आकांक्षा रखता है, उसे बुद्धों की शिक्षाओं का स्मरण करते हुए

अच्छे धम्म का आदर करना चाहिए ।

"ब्रह्म सहमपति ने यही कहा था। फिर उन्होंने मुझे प्रणाम किया और मुझे अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए। तब, ब्रह्मा के अनुरोध और अपने लिए उचित बात को समझते हुए, मैंने उस धम्म (मार्ग) का आदर, सम्मान और पालन किया, जिस पर मैं पूर्णतः प्रबुद्ध हो चुका था। और अब जब संघ ने महानता प्राप्त कर ली है, तो मैं संघ का भी आदर करता हूँ।" [22]

---

22 उरुवेला (2)

भिक्षुओं, एक बार पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद मैं उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे बकरियों के बरगद के वृक्ष के पास निवास कर रहा था। तभी कई वृद्ध, उम्रदराज, जीवन के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके ब्राह्मण मेरे पास आए और मुझसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और मुझसे बोले:

"हमने सुना है, गुरु गौतम: 'संन्यासी गौतम वृद्ध, उम्रदराज, उम्र के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं।' यह सत्य है, क्योंकि गुरु गौतम वृद्ध, उम्रदराज, उम्र के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं। यह उचित नहीं है, गुरु गौतम।" 651

तब मुझे यह बात समझ में आई: इन पूजनीय लोगों को यह नहीं पता कि एक बुजुर्ग क्या होता है या वे कौन से गुण हैं जो किसी को बुजुर्ग बनाते हैं। चाहे कोई व्यक्ति कितना भी बूढ़ा हो - जन्म से अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का - यदि वह अनुचित समय पर बोलता है, झूठ बोलता है, अनुत्पादक बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन के विपरीत बोलता है, यदि वह अनुचित समय पर व्यर्थ, तर्कहीन, बेतुकी और अनुत्पादक बातें बोलता है, तो उसे एक नासमझ (बचकाना) बुजुर्ग माना जाता है।

लेकिन भले ही कोई व्यक्ति युवा हो, काले बालों वाला युवक हो, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न हो, जीवन के चरम पर हो, यदि वह उचित समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, लाभकारी बोलता है, धम्म और अनुशासन पर बोलता है, और यदि वह उचित समय पर ऐसे शब्द बोलता है जो रिकॉर्ड करने योग्य हों, तर्कसंगत हों, संक्षिप्त हों और लाभकारी हों, तो उसे एक बुद्धिमान बुजुर्ग माना जाता है।

भिक्षुओं, ऐसे चार गुण हैं जो किसी को वरिष्ठ बनाते हैं। वे चार गुण कौन से हैं?

(1) "यहाँ, भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त रहता है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनमें अभ्यास करता है।"

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है," [23] वह जो कुछ सीखा है उसे याद रखता है और उसे संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मन से जांचा है और दृष्टि से भली-भांति समझा है।

(3) "वह ऐसा व्यक्ति है जो इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चार ध्यान (तन्विता) प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं।

(4) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"ये चार गुण हैं जो किसी को बुजुर्ग बनाते हैं।"

वह मंदबुद्धि व्यक्ति जिसका मन अशांत है

, जो बहुत बकवास करता है,

जिसके विचार अस्थिर हैं,

जो बुरी शिक्षा में आनंद लेता है,

बुरे विचार रखता है, अनादर करता है,

वह एक बड़े व्यक्ति के कद से बहुत दूर है।

परन्तु जो सद्गुणों में परिपूर्ण,

विद्वान और विवेकशील,

दृढ़ता के कारकों में आत्मसंयमित,

जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) से अर्थ को स्पष्ट रूप से देखता है;

समस्त घटनाओं से परे,

बंजर नहीं, विवेकशील; 653

जिसने जन्म-मृत्यु का त्याग कर दिया हो, जो

ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में परिपूर्ण हो,

जिसमें कोई दोष न हो —

वही भिक्षु है जिसे मैं 'वरिष्ठ' कहता हूँ।

दोषों के नाश होने पर

भिक्षु को 'वरिष्ठ' कहा जाता है।

---

23 लोक (विश्व)

भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) संसार के प्रति पूर्णतः जागृत हो चुके हैं; तथागत (बुद्ध) संसार से विरक्त हैं। तथागत (बुद्ध) संसार की उत्पत्ति के प्रति पूर्णतः जागृत हो चुके हैं; तथागत (बुद्ध) ने संसार की उत्पत्ति का त्याग कर दिया है। तथागत (बुद्ध) संसार के अंत के प्रति पूर्णतः जागृत हो चुके हैं; तथागत (बुद्ध) ने संसार के अंत का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तथागत (बुद्ध) संसार के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग के प्रति पूर्णतः जागृत हो चुके हैं; तथागत (बुद्ध) ने संसार के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग का विकास कर दिया है।

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), इस संसार में इसके देवों (देवदूतों/देवताओं), मार और ब्रह्मा के साथ, इस जनसंख्या में इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के बीच, जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, [24]

मन द्वारा परखा जाता है—वह सब कुछ जिसके प्रति तथागत (बुद्ध) पूर्णतः जागृत हो चुके हैं; इसलिए उन्हें तथागत (बुद्ध) कहा जाता है। 656 .

(2) “भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) उस रात के बीच के अंतराल में जो कुछ भी बोलते, कहते या समझाते हैं, जब वे पूर्णतम ज्ञान प्राप्त करते हैं और जब वे अंतिम निर्वाण प्राप्त करते हैं, 657 वह सब कुछ सत्य है, अन्यथा नहीं; इसलिए उन्हें तथागत (बुद्ध) कहा जाता है। 658

(3) “भिक्षुओं, जैसा तथागत (बुद्ध) कहते हैं, वैसा ही वे करते हैं; जैसा वे करते हैं, वैसा ही वे बोलते हैं। क्योंकि वे जैसा बोलते हैं वैसा ही करते हैं और जैसा करते हैं वैसा ही बोलते हैं, इसलिए उन्हें तथागत (बुद्ध) कहा जाता है।” 659

(4) "भिक्षुओं, इस संसार में, जहाँ देव (देवता), मार और ब्रह्मा विद हैं, इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवता) और मनुष्य विद हैं, तथागत (बुद्ध) ही सर्वविजयी, अजेय, सर्वज्ञानी और भगवानत्वशाली हैं; अतः उन्हें तथागत (बुद्ध) कहा जाता है।"

समस्त संसार को प्रत्यक्ष रूप से जानने के कारण—

संसार में जो कुछ भी है, उसे यथावत जानने

के कारण—वह समस्त संसार से विरक्त हो जाता है,

समस्त संसार से विरक्त हो जाता है।

वह सभी बाधाओं को दूर करने वाला,

सभी बंधनों को खोलने वाला ज्ञानी है।

वह परम शांति,

निर्वाण को प्राप्त कर चुका है, जो भय से परे है।

वह बुद्ध हैं, उनके सारे दोष नष्ट हो चुके हैं,

वे निर्भीक हैं, उनके सारे संदेह दूर हो चुके हैं;

उन्होंने सभी कर्मों का नाश कर लिया है और

वे सभी प्राप्तियों के निर्वाह में मुक्त हो चुके हैं।

वह भगवान (बुद्ध) हैं, बुद्ध हैं,

वह अतुलनीय सिंह हैं;

इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/भगवान) हैं,

उन्होंने ब्रह्मा के चक्र को गतिमान किया।

इस प्रकार, वे सभी देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य

जिन्होंने बुद्ध की शरण ली है

, एकत्रित होकर उन्हें प्रणाम करते हैं,

जो संशय से मुक्त महान व्यक्ति हैं।

जब उसे वश में किया जाता है, तो वह सर्वश्रेष्ठ वश में करने वाला होता है; जब

वह शांतिप्रिय होता है, तो वह शांति लाने वालों में सबसे दूरदर्शी होता है;

जब उसे मुक्त किया जाता है, तो वह मुक्तिदाताओं का मुखिया होता है;

जब वह पार कर जाता है, तो वह पार कराने वालों में सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक होता है।

इस प्रकार वे सचमुच उस महान व्यक्ति को प्रणाम करते हैं जो संकोच से मुक्त है।

इस संसार में, देवताओं सहित,

कोई भी आपकी बराबरी नहीं कर सकता।

---

24 कलाका

[मैंने ऐसा सुना है।] 660 एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में, कालका उद्यान में निवास कर रहे थे। 665 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: [25]

"भिक्षुओं, इस संसार में, जहाँ देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं; इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं; जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, खोजा या मन द्वारा परखा जाता है—वह सब मुझे ज्ञात है। भिक्षुओं, इस संसार में, जहाँ देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं; इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं; जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, खोजा या मन द्वारा परखा जाता है—वह सब मुझे प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात है। तथागत (बुद्ध) को भी यह ज्ञात था, परन्तु तथागत (बुद्ध) इसके अधीन नहीं हुए।"

भिक्षुओं, यदि मैं कहूँ, 'इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ... जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मन द्वारा परखा जाता है - वह मैं नहीं जानता,' तो यह मेरी ओर से एक झूठ होगा।

भिक्षुओं, यदि मैं कहूँ, 'इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ... जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मन द्वारा परखा जाता है - उसे मैं जानता भी हूँ और नहीं भी जानता,' तो यह भी बिलकुल एक ही बात होगी। 664

भिक्षुओं, यदि मैं कहूँ, 'इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ... जो कुछ भी देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा, मन द्वारा परखा जाता है—वह मैं न तो जानता हूँ और न ही नहीं जानता,' तो यह मेरी ओर से एक दोष होगा। 665

(1) अतः, जो कुछ देखा जा सकता है, उसे देखकर तथागत (बुद्ध) न तो देखे हुए को गलत समझते हैं, न ही अनदेखे को, न ही देखे जा सकने वाले को, और न ही देखने वाले को। 666 (2) जो कुछ सुना जा सकता है, उसे सुनकर वे न तो सुने हुए को गलत समझते हैं, न ही अनसुने को, न ही सुने जा सकने वाले को, और न ही सुनने वाले को; (3) जो कुछ महसूस किया जा सकता है, उसे महसूस करके वे न तो महसूस किए गए को गलत समझते हैं, न ही महसूस किए गए को, और न ही महसूस किए जा सकने वाले को, और न ही महसूस करने वाले को। (4) जो कुछ जाना जा सकता है, उसे जानकर वे न तो जाने हुए को गलत समझते हैं, न ही न जाने हुए को, और न ही जाने जा सकने वाले को, और न ही जानने वाले को।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से स्थिर रहते हैं, तथागत (बुद्ध) भी स्थिर हैं। 667 और मैं कहता हूँ, उस स्थिर व्यक्ति से अधिक उत्कृष्ट या श्रेष्ठ कोई स्थिर व्यक्ति नहीं है।"

आत्मसंयमित लोगों के बीच, स्थिर बुद्ध किसी भी देखी, सुनी या महसूस की गई बात को, जिसे दूसरों ने सत्य माना हो,

स्पष्ट रूप से सत्य या असत्य नहीं मानते । 668 क्योंकि वे इस बाण को देख चुके हैं 669 जिससे लोग चिपके रहते हैं और जुड़े रहते हैं, [26] (कहते हुए) "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ, यह बिल्कुल ऐसा ही है," तथागत (बुद्ध) किसी भी बात से चिपके नहीं रहते।

---

25 ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य)

"भिक्षुओं, यह ब्रह्मचर्य जीवन लोगों को धोखा देने और उन्हें फुसलाने के लिए नहीं, न ही लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के लिए, न ही वाद-विवाद में जीत के लिए, और न ही इस विचार से कि 'लोग मुझे इस रूप में जानें', बल्कि यह ब्रह्मचर्य जीवन संयम, त्याग, वैराग्य और समाप्ति के लिए जिया जाता है।" 670

भगवान (बुद्ध) ने ब्रह्मचर्य जीवन का उपदेश दिया, जो

परंपरा पर आधारित नहीं था, बल्कि निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग था, और संयम और त्याग

के लिए जिया जाता था । 671

यह महान प्राणियों का मार्ग है, 672

महान ऋषियों द्वारा अनुसरण किया जाने वाला मार्ग है।

जो लोग

बुद्ध द्वारा सिखाई गई शिक्षाओं के अनुसार इसका अभ्यास करते हैं,

गुरु के मार्गदर्शन पर अमल करते हैं,

वे दुखों का अंत करेंगे।

---

26 धोखेबाज 673 (कुहा)

(1) “भिक्षुओं, जो भिक्षु छलकारी, हठी, बातूनी, ढोंगी, अभिमानी और असामंजस्यपूर्ण हैं, वे मेरे भिक्षु नहीं हैं। 674 (2) वे इस धर्म और अनुशासन से भटक गए हैं, और वे इस धर्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त नहीं करते हैं। (3) परन्तु जो भिक्षु ईमानदार, सच्चे, दृढ़, आज्ञाकारी और पूर्णतः समाधि में लीन हैं, वे मेरे भिक्षु हैं। (4) वे इस धर्म और अनुशासन से नहीं भटके हैं, और वे इस धर्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करते हैं।”

जो लोग कपटी, हठी, बातूनी,

ढोंगी, अभिमानी और असामंजस्यपूर्ण (असमहित) होते हैं,

वे उस धम्म में प्रगति नहीं करते

जो पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति ने सिखाया है।

लेकिन जो लोग ईमानदार और सच्चे,

दृढ़, आज्ञाकारी और पूरी तरह से आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) होते हैं, वे

उस धम्म (मार्ग) में प्रगति करते हैं

जिसे पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति ने सिखाया है।

---

27 संतोष (संतुष्टि सं. संतुष्टि)

"भिक्षुओं, ये चार तुच्छ वस्तुएँ हैं, जो आसानी से प्राप्त हो जाती हैं और निंदनीय हैं। वे चार कौन सी हैं?"

(1) "फटे-पुराने वस्त्र अन्य वस्त्रों के बीच तुच्छ हैं, आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं [27] और निर्दोष हैं। (2) भिक्षा का एक टुकड़ा भोजन के बीच तुच्छ है, आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और निर्दोष है। (3) पेड़ की जड़ आवास के बीच तुच्छ है, आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और निर्दोष है। (4) सड़ा हुआ मूत्र औषधियों के बीच तुच्छ है, आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और निर्दोष है,' 75

"ये चार तुच्छ वस्तुएँ हैं, जो आसानी से प्राप्त हो जाती हैं और निष्पाप हैं। जब कोई भिक्षु तुच्छ और आसानी से प्राप्त होने वाली वस्तुओं से संतुष्ट हो जाता है, तो मैं कहता हूँ कि उसमें तपस्वी जीवन के एक गुण मौजूद हैं।"

जब कोई निर्दोष, तुच्छ और आसानी से प्राप्त होने वाली चीजों से संतुष्ट रहता है ; जब किसी का मन आवास, वस्त्र, पेय और भोजन के कारण

व्याकुल नहीं होता , तो उसे कहीं भी कोई बाधा नहीं आती।676

ये गुण, जिन्हें

तपस्वी जीवन के अनुरूप कहा जा सकता है,

एक भिक्षु 677 द्वारा प्राप्त किए जाते हैं

जो संतुष्ट और सतर्क होता है।

---

28 कुलीन वंशावली 678 (आर्य-वंश बिना आर्य-वंश)

"भिक्षुओं, ये चार श्रेष्ठ वंश हैं, जो आदिम, दीर्घकालिक, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी अछूते नहीं रहे हैं, जो न तो अछूते हैं और न ही अछूते रहेंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। वे चार कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह वस्त्र के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। 679 यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे वस्त्र मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए। फिर भी वह इस कारण से स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। जो भिक्षु इसमें कुशल, परिश्रमी, पूर्णतः बोधशील और सदा सजग (ध्यान/सती) है, उसे प्राचीन, आदिम श्रेष्ठ वंश में स्थित कहा जाता है।"

(2) "भिक्षु किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह भिक्षा भोजन के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। यदि उसे भिक्षा भोजन न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे कुछ भिक्षा भोजन मिले तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए। [28] फिर भी वह इस कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। जो भिक्षु इसमें कुशल, परिश्रमी, पूर्णतः बोधशील और सदा सजग (ध्यानशील/सती) है, उसे प्राचीन, आदिम, श्रेष्ठ वंश में स्थित कहा जाता है।"

(3) "भिक्षु किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह आवास के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। यदि उसे आवास न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे आवास मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए। फिर भी वह इस कारण से स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। जो भिक्षु इसमें कुशल, परिश्रमी, पूर्णतः समझदार और सदा सचेत (ध्यान/सती) होता है, उसे प्राचीन, आदिम श्रेष्ठ वंश में स्थित कहा जाता है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु विकास में आनंद पाता है, विकास से प्रसन्न होता है, त्याग में आनंद पाता है, त्याग से प्रसन्न होता है। 680 फिर भी वह इस कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। जो भिक्षु इसमें कुशल, परिश्रमी, पूर्णतः बोधशील और सदा सचेत (ध्यान/सती) रहता है, उसे प्राचीन, आदिम श्रेष्ठ वंश में खड़ा माना जाता है।"

"ये, भिक्षुओं, चार श्रेष्ठ वंश हैं, आदिम, लंबे समय से चले आ रहे, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी मिलावट रहित नहीं, जो न तो मिलावट वाले हैं और न ही मिलावट वाले होंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है।"

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन चार श्रेष्ठ वंशों से युक्त होता है, यदि वह पूर्व दिशा में निवास करता है तो वह असंतोष पर विजय प्राप्त करता है; असंतोष उसे पराजित नहीं कर सकता; यदि वह पश्चिम दिशा में निवास करता है तो भी असंतोष पर विजय प्राप्त करता है; यदि वह उत्तर दिशा में निवास करता है तो भी असंतोष पर विजय प्राप्त करता है; यदि वह दक्षिण दिशा में निवास करता है तो भी असंतोष पर विजय प्राप्त करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह एक दृढ़ व्यक्ति है जो असंतोष और प्रसन्नता दोनों पर विजय प्राप्त करता है।

असंतोष दृढ़ व्यक्ति को पराजित नहीं कर सकता, 681

(क्योंकि) दृढ़ व्यक्ति असंतोष से पराजित नहीं होता, 682

दृढ़ व्यक्ति असंतोष को पराजित करता है,

क्योंकि दृढ़ व्यक्ति असंतोष का पराजयकर्ता है। (29)

कर्मों का त्याग कर चुके उस निर्धारक को कौन रोक सकता है ? शुद्ध सोने के सिक्के के

समान उस व्यक्ति पर दोष लगाने का अधिकार किसे है ? यहां तक कि देवदूत भी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं; ब्रह्मा भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

---

29 धम्म कारक (धम्मपद)

"भिक्षुओं, ये चार धम्म तत्व हैं, 683 मूल, जो लंबे समय से चले आ रहे हैं, पारंपरिक हैं, प्राचीन हैं, शुद्ध हैं और कभी भी इनमें कोई मिलावट नहीं हुई है, और न ही भविष्य में होगी, और जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों ने अस्वीकार नहीं किया है। वे चार कौन से हैं?"

(1) "अनासक्ति एक धर्म तत्व है, जो आदिम, दीर्घकालिक, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी अशुद्ध न हुआ हो, जो न तो अशुद्ध हो रहा है और न ही अशुद्ध होगा, जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकृत नहीं किया गया है। (2) सद्भावना एक धर्म तत्व है, जो आदिम, दीर्घकालिक है... (3) सही सती ध्यान एक धर्म तत्व है, जो आदिम, दीर्घकालिक है... (4) सही समाधि एक धर्म तत्व है, जो आदिम, दीर्घकालिक है और जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकृत नहीं किया गया है।

"ये चार धम्म कारक हैं, जो मूल, दीर्घकालिक, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी अशुद्ध न हुए हैं, जिनमें न तो अशुद्धता है और न ही भविष्य में अशुद्धता होगी, और जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है।"

व्यक्ति को मनोकामना से मुक्त होकर , सद्भावपूर्ण हृदय से रहना चाहिए ।

उसे सचेत (ध्यान/सती)

और एकाग्रचित्त (एकग्रचित्त) रहना चाहिए,

आंतरिक रूप से पूर्णतः आत्म-मग्न (समाहित) होना चाहिए।

---

30 तपस्वी (परिब्बाजक सं. परिवज्रका)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय सप्पिनी नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में कई प्रसिद्ध तपस्वी निवास कर रहे थे, जिनमें अन्नभार, वरधरा, तपस्वी शकुलुदयी और अन्य प्रसिद्ध तपस्वी शामिल थे।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सप्पिनी नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में गए। वे वहाँ तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और वहाँ उपस्थित लोगों से बोले:

तपस्वियों, ये चार धम्म (धार्मिक) कारक हैं जो...

आदिम, [30] लंबे समय से चले आ रहे, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और पहले कभी मिलावट रहित नहीं, जो मिलावट नहीं कर रहे हैं और न ही मिलावट करेंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। वे चार कौन से हैं?

(1) "अनासक्ति एक ऐसा धम्म तत्व है जो मौलिक, प्राचीन, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी अशुद्ध न हुआ हो, जो न तो अशुद्ध हो रहा है और न ही होगा, जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकृत नहीं किया गया है। (2) सद्भावना एक मौलिक, प्राचीन धम्म तत्व है... (3) सही ध्यान (सती/सजगता) एक मौलिक, प्राचीन धम्म तत्व है... (4) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) एक मौलिक, प्राचीन धम्म तत्व है... जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकृत नहीं किया गया है।"

"ये चार धम्म कारक हैं जो मौलिक, लंबे समय से चले आ रहे, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी मिलावट रहित नहीं हैं, जिनमें न तो मिलावट हो रही है और न ही होगी, और जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है।"

(1) "हे तपस्वियों, यदि कोई कहे: 'मैं इस धर्म तत्व, यानी अनासक्ति को अस्वीकार कर दूँगा और किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करूँगा जो अनासक्ति से परिपूर्ण हो, इंद्रिय सुखों के प्रति अत्यधिक आसक्ति रखता हो,' तो मैं उसे इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'उसे आने दो, बोलने दो और बातचीत करने दो। मुझे देखने दो कि वह कितना महान है!' वास्तव में, उसके लिए अनासक्ति को धर्म तत्व के रूप में अस्वीकार करना और किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करना असंभव होगा जो अनासक्ति से परिपूर्ण हो, इंद्रिय सुखों के प्रति अत्यधिक आसक्ति रखता हो।"

(2) यदि कोई कहे: 'मैं सद्भावना के इस धम्म कारक को अस्वीकार कर दूंगा और एक ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करूंगा जिसके मन में द्वेष और घृणा का भाव है,' तो मैं उसे इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'उसे आने दो, बोलने दो और बातचीत करने दो। मुझे देखने दो कि वह कितना महान है!' वास्तव में, उसके लिए सद्भावना को धम्म कारक के रूप में अस्वीकार करना और एक ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करना असंभव होगा जिसके मन में द्वेष और घृणा का भाव हो।

(3) यदि कोई कहे: 'मैं सही ध्यान (सती/सजगता) के इस धम्म तत्व को अस्वीकार कर दूंगा और किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करूंगा जिसका मन भ्रमित है और जिसमें पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभाव है,' तो मैं उसे इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'उसे आने दो, बोलने दो और बातचीत करने दो। मुझे देखने दो कि वह कितना महान है!' वास्तव में, उसके लिए सही ध्यान (सती/सजगता) को धम्म तत्व के

रूप में अस्वीकार करना और किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करना असंभव होगा जिसका मन भ्रमित है और जिसमें पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभाव है।

(4) "यदि कोई कहे: 'मैं सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) के इस धम्म कारक को अस्वीकार कर दूंगा और एक ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करूंगा जो असामहिता से विचलित है और जिसका मन भटकता रहता है' तो मैं उसे इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'उसे आने दो, बोलने दो, [31] और बातचीत करने दो। मुझे देखने दो कि वह कितना महान है!' वास्तव में, उसके लिए सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) को धम्म कारक के रूप में अस्वीकार करना और एक ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण की ओर इशारा करना असंभव होगा जो असामहिता से विचलित है और जिसका मन भटकता रहता है।

"यदि हे तपस्वियों, कोई यह सोचता है कि इन चार धम्म कारकों की निंदा और खंडन किया जाना चाहिए, तो इसी जीवन में वह चार उचित आलोचनाओं और निंदा के आधारों का पात्र हो जाता है। 684 वे चार क्या हैं?"

यदि आप इस धर्म तत्व, यानी अनासक्ति का तिरस्कार और खंडन करते हैं, तो आपको उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भी पूजा और प्रशंसा के योग्य मानना चाहिए जो लालसा से भरे हुए हैं और इंद्रिय सुखों के प्रति अत्यधिक आसक्त हैं। यदि आप इस धर्म तत्व, यानी सद्भावना का तिरस्कार और खंडन करते हैं, तो आपको उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भी पूजा और प्रशंसा के योग्य मानना चाहिए जिनके मन में दुर्भावना और घृणा का भाव है। यदि आप इस धर्म तत्व, यानी सती/सजगता का तिरस्कार और खंडन करते हैं, तो आपको उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भी पूजा और प्रशंसा के योग्य मानना चाहिए जो भ्रमित मन वाले हैं और पूर्ण बोध से रहित हैं। यदि आप इस धर्म तत्व, यानी समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) का तिरस्कार और खंडन करते हैं, तो आपको उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भी पूजा और प्रशंसा के योग्य मानना चाहिए जो असामहित हैं और जिनका मन भटकता रहता है।

"हे तपस्वियों, यदि कोई यह सोचता है कि इन चार धम्म सिद्धांतों की निंदा और खंडन किया जाना चाहिए, तो इसी जीवन में वह इन चार उचित आलोचनाओं और निंदा के आधारों का पात्र हो जाता है। यहां तक कि उक्कला के तपस्वी वस्सा और भान्हा, जो अकारणता, निष्क्रियता और शून्यवाद के समर्थक थे, उन्होंने भी यह नहीं सोचा कि इन चार धम्म सिद्धांतों की निंदा और खंडन किया जाना चाहिए। इसका कारण क्या था? निंदा, आक्रमण और खंडन के भय से।" 685

सद्भावना वाला, सदा सचेत (ध्यान/सती),

भीतरी तौर पर अच्छी तरह से आत्म-मग्न (समाहित/समाधि में),

लालसा को दूर करने का प्रशिक्षण लेने वाला,

सचेत कहलाता है। [32]

IV. चक्र भाग (चक्कावग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 पहिया (चक्र के बिना कक्का)

भिक्षुओं, ये चार चक्र हैं। जब ये चार चक्र घूमते हैं, तो जिन देवताओं और मनुष्यों के पास ये चक्र होते हैं, वे शीघ्र ही महानता और धन की प्रचुरता प्राप्त कर लेते हैं: वे चार चक्र कौन से हैं? उपयुक्त स्थान में निवास करना, अच्छे व्यक्तियों पर भरोसा करना, सही संकल्प और भूतकाल में किए गए पुण्य कर्म। 686 ये चार चक्र हैं। जब ये चार चक्र घूमते हैं, तो जिन देवताओं और मनुष्यों के पास ये चक्र होते हैं, वे शीघ्र ही महानता और धन की प्रचुरता प्राप्त कर लेते हैं।

जब कोई व्यक्ति उपयुक्त स्थान पर निवास करता है

और नेक लोगों से मित्रता करता है,

जब उसने सही संकल्प लिए हों

और अतीत में पुण्य कर्म किए हों , तो उसे

अनाज, धन, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा के साथ-साथ सुख भी प्राप्त होता है।

---

32 रिश्तों को कायम रखना (संगहा सं. संग्रह)

भिक्षुओं, सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के ये चार साधन हैं। वे चार कौन से हैं? दान देना, मधुर वाणी, परोपकारी आचरण और निष्पक्षता। 68 ये सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के चार साधन हैं।

दान देना, मधुर वाणी,

परोपकारी आचरण और

विभिन्न सांसारिक परिस्थितियों में निष्पक्षता,

जैसा कि प्रत्येक मामले के लिए उपयुक्त हो:

अनुकूल संबंध बनाए रखने के ये साधन

एक चलते हुए रथ के मुख्य आधार के समान हैं।

यदि सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के ऐसे साधन न हों ,

तो न तो माता और न ही पिता अपने बच्चों से

सम्मान और आदर प्राप्त कर सकेंगे ।

लेकिन चूंकि अनुकूल संबंध बनाए रखने के ये साधन मौजूद हैं ,

इसलिए बुद्धिमान लोग उनका सम्मान करते हैं;

इस प्रकार वे महानता प्राप्त करते हैं

और उनकी बहुत प्रशंसा की जाती है। [33]

---

33 सिंह (सिहा बिना सिंघा)

भिक्षुओं, संध्याकाल में पशुओं का राजा सिंह अपनी मांद से निकलता है, शरीर फैलाता है, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है और तीन बार सिंह की गर्जना करता है। फिर वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।

शेर की दहाड़ सुनकर अधिकतर जानवर डर, घबराहट और दहशत से भर जाते हैं। बिलों में रहने वाले अपने बिलों में घुस जाते हैं; पानी में रहने वाले पानी में चले जाते हैं; जंगलों में रहने वाले जंगलों में चले जाते हैं; और पक्षी आकाश की ओर भाग जाते हैं। यहाँ तक कि गाँवों, कस्बों और राजधानियों में मजबूत रस्सियों से बंधे राजसी हाथी भी अपनी रस्सियाँ तोड़कर भाग निकलते हैं; डर के मारे वे पेशाब और मल त्याग करते हुए इधर-उधर भागने लगते हैं। शेर जानवरों में इतना शक्तिशाली है, जानवरों का राजा है, इतना राजसी और बलवान है।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब तथागत (बुद्ध) संसार में अवतरित होते हैं, जो पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध पुरुष, भगवान (बुद्ध), वे धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हैं: '(1) ऐसा है व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण), (2) ऐसा है व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का उद्गम, (3) ऐसा है व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का अंत, (4) ऐसा है व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के अंत का मार्ग।' 688

"जब वे देव (देवदूत/देवता) जो दीर्घायु, सुंदर, सुख से परिपूर्ण और ऊंचे महलों में दीर्घकाल तक निवास करते हैं, तथागत (बुद्ध) के धम्म उपदेश सुनते हैं, तो वे अधिकतर भय, तत्परता और आतंक से भर जाते हैं, इस प्रकार: 669 'ऐसा लगता है कि हम वास्तव में अनित्य हैं, यद्यपि हम स्वयं को स्थायी समझते थे; ऐसा लगता है कि हम वास्तव में क्षणभंगुर हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे; ऐसा लगता है कि हम वास्तव में अनात्म हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे। ऐसा लगता है कि हम अनित्य, क्षणभंगुर, अनात्म हैं, व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) में समाहित हैं।' 690 तथागत (बुद्ध) इतने शक्तिशाली हैं, वे इस संसार में अपने देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ इतने राजसी और पराक्रमी हैं।" [34]

जब प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के माध्यम से बुद्ध, जो इस संसार में अपने देवों (देवदूतों/देवताओं) सहित

अद्वितीय गुरु हैं , धम्म के चक्र को गतिमान करते हैं,

वह व्यक्तिगत अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण), इसका निवारण,

व्यक्तिगत अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) की उत्पत्ति और दुख को शांत करने वाले

अष्टमार्ग का उपदेश देते हैं।

तब तो लंबी आयु वाले, सुंदर और महिमा से परिपूर्ण देवता भी शेर की दहाड़ सुनकर

भयभीत और आतंकित हो जाते हैं ।

"ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनित्य हैं,

व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से परे नहीं हैं," [वे कहते हैं], जब वे पूर्णतः मुक्त, स्थिर

अरहंत के वचन सुनते हैं ।

---

34 विश्वास (अग्गप्पसाद)

"भिक्षुओं, विश्वास के ये चार प्रमुख प्रकार हैं। वे चार कौन से हैं?"

(1) "जितने भी प्राणी हैं, चाहे वे निराकार हों या दो पैर वाले, चार पैर वाले या अनेक पैर वाले, चाहे सजीव हों या निराकार, चाहे बोधगम्य हों या अबोधगम्य, या न बोधगम्य हों या अबोधगम्य, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, उन सब में सर्वोपरि घोषित किए जाते हैं। जो बुद्ध पर विश्वास रखते हैं, वे सर्वोपरि पर विश्वास रखते हैं, और जो सर्वोपरि पर विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम सर्वोपरि होता है।"

(2) "जिस हद तक धर्म (धर्म) बद्ध हैं, उनमें श्रेष्ठ अष्टमार्ग सर्वोपरि घोषित किया गया है। जो श्रेष्ठ अष्टमार्ग में विश्वास रखते हैं, वे सर्वोपरि धर्म में विश्वास रखते हैं, और जो सर्वोपरि धर्म में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम सर्वोपरि होता है।"

(3) "जिस हद तक धम्म (घटनाएं) बद्ध या अनिरक्त हैं, उनमें वैराग (वैराग) सर्वोपरि घोषित किया गया है, अर्थात् अहंकार का नाश, प्यास का निवारण, आसक्ति का उखाड़ना, चक्र का अंत, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निश्चिंतता, निर्वाण। जो धम्म में विश्वास रखते हैं, वे सर्वोपरि में विश्वास रखते हैं, और जो सर्वोपरि में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम सर्वोपरि होता है।"

(4) "जितने भी संघ या समूह हैं, तथागत (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित किया गया है, अर्थात् चार युग्मों के व्यक्तियों में, आठ प्रकार के व्यक्तियों में—भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंटों के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। [35] जो संघ में विश्वास रखते हैं, वे श्रेष्ठ में विश्वास रखते हैं, और जो श्रेष्ठ में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम श्रेष्ठ होता है।"

"ये आत्मविश्वास के चार प्रमुख प्रकार हैं।"

जो लोग सर्वोपरि धर्म के प्रति आश्वस्त हैं,

सर्वोपरि धर्म को जानते हैं,

सर्वोपरि बुद्ध में आश्वस्त हैं—

जो अतुलनीय हैं, और भेंट के योग्य हैं;

जो लोग सर्वोत्कृष्ट धम्म में विश्वास रखते हैं,

वैराग्य की आनंदमय शांति में;

जो लोग सर्वोत्कृष्ट संघ में विश्वास रखते हैं,

पुण्य के अतुलनीय क्षेत्र में;

जो लोग श्रेष्ठ व्यक्तियों को दान देते हैं, उन्हें

श्रेष्ठ प्रकार के पुण्य प्राप्त होते हैं:

श्रेष्ठ आयु, सौंदर्य, यश,

अच्छी प्रतिष्ठा, सुख और शक्ति।

जो ज्ञानी व्यक्ति सर्वोपरि

धम्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए, सर्वोपरि धम्म पर लीन

होकर, देव (देवदूत/भगवान) या मनुष्य बनकर आनंदित होता है, वह

सर्वोपरि प्राप्ति कर प्रसन्न होता है।

---

35 वासाकारा

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकर भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, हम चार गुणों से युक्त व्यक्ति को महान ज्ञानवान (दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण) कहते हैं। वे चार गुण क्या हैं? (1) वह विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक पारंगत है। (2) वह विभिन्न कथनों का अर्थ समझता है, जिससे वह कह सकता है: "इस कथन का यह अर्थ है; उस कथन का यह अर्थ है।" (3) उसकी स्मृति अच्छी है; वह बहुत पहले कही और की गई बातों को याद रखता है! (4) वह गृहस्थ के विविध कार्यों को कुशलतापूर्वक और लगन से करता है; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनमें उचित विवेक रखता है। हम इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को महान ज्ञानवान (दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण) कहते हैं। यदि गुरु गौतम को लगता है कि मेरी बात स्वीकार्य है, तो वे इसे स्वीकार्य बनाएं। यदि उन्हें लगता है कि मेरी बात अस्वीकार्य है, तो वे इसे अस्वीकार करें।"

"मैं न तो आपके [कथन] का समर्थन करता हूँ, ब्राह्मण, और न ही इसे अस्वीकार करता हूँ। [36] बल्कि, मैं चार [अन्य] गुणों से युक्त व्यक्ति को महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला महान पुरुष बताता हूँ। वे चार गुण क्या हैं? (1) वह अनेक लोगों के कल्याण और सुख के लिए अभ्यास कर रहा है; वह वह है जिसने अनेक लोगों को श्रेष्ठ मार्ग में, अर्थात् धम्म की अच्छाई में, धम्म के लाभ में स्थापित किया है। 693 (2) वह जो चाहे सोचता है, सोचता है और जो नहीं सोचना चाहता, नहीं सोचता; वह जो चाहे इरादा करता है, करता है और जो नहीं करना चाहता, नहीं करता; इस प्रकार उसने विचार के मार्गों पर मानसिक भगवानत्व प्राप्त कर लिया है। (3) वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (4) दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से, इसी जीवन में, स्वयं को दोषरहित मुक्ति का अनुभव कराया है।" पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मन/मुक्ति प्राप्त करना, और उसमें प्रवेश करने के बाद, वह उसमें निवास करता है।

"मैं न तो आपके [कथन] का समर्थन करता हूँ, ब्राह्मण, और न ही इसे अस्वीकार करता हूँ। लेकिन मैं इन चारों गुणों से युक्त व्यक्ति को महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला महान पुरुष कहता हूँ।"

यह विस्मयकारी और अद्‌भुत है। हे गुरु गौतम, हे गुरु गौतम ने इसे कितनी खूबसूरती से व्यक्त किया है। और हम गुरु गौतम को इन चार गुणों से युक्त मानते हैं: (1) क्योंकि वे अनेक लोगों के कल्याण और सुख के लिए साधना करते हैं; उन्होंने अनेक लोगों को श्रेष्ठ मार्ग में, अर्थात् धम्म की अच्छाई में, धम्म के लाभ में स्थापित किया है। (2) वे जो चाहें सोचते हैं, वह सोचते हैं और जो न चाहें, वह नहीं सोचते; वे जो चाहें, वह ठानते हैं और जो न चाहें, वह नहीं ठानते; इस प्रकार उन्होंने विचार के मार्गों पर मानसिक आधिपत्य प्राप्त कर लिया है। (3) वे इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेते हैं, जो सुखद निवास स्थान हैं। (4) दोषों के नाश के साथ, उन्होंने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। इसे।"[37]

"निश्चित रूप से, ब्राह्मण, आपके शब्द ताक-झांक और अतिक्रमणकारी हैं। 694 फिर भी, मैं आपको उत्तर दूंगा। (1) वास्तव में, मैं अनेक लोगों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहा हूँ; मैंने अनेक लोगों को श्रेष्ठ मार्ग में, अर्थात् धम्म की अच्छाई में, धम्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में स्थापित किया है। (2) मैं जो सोचना चाहता हूँ वही सोचता हूँ और जो नहीं सोचना चाहता वह नहीं सोचता; मैं जो इरादा करना चाहता हूँ वही करता हूँ और जो नहीं करना चाहता वह नहीं करता; इस प्रकार मैंने विचार के मार्गों पर मानसिक

भगवानत्व प्राप्त कर लिया है। (3) मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करता हूँ जो सुखद निवास स्थान हैं। (4) दोषों के नाश के साथ, मैंने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके, मैं उसमें निवास करता हूँ।"

वह जिसने समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए

मृत्यु के जाल से मुक्ति पाई; जिसने देवताओं और मनुष्यों के लाभ के लिए

धम्म, विधि का प्रकटीकरण किया ; वह जिसमें अनेक लोग दर्शन और श्रवण करके विश्वास प्राप्त करते हैं;

जो मार्ग और अपतटीय मार्ग दोनों में निपुण है;

वह निष्कलंक जिसने अपना कार्य पूर्ण कर लिया;

वह प्रबुद्ध जो अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए है,

उसे "महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला महान पुरुष" कहा जाता है।

---

36 डोना

एक बार भगवान (बुद्ध) उक्कत्था और सेतव्य के बीच राजमार्ग पर यात्रा कर रहे थे। ब्राह्मण दोना भी उक्कत्था और सेतव्य के बीच राजमार्ग पर यात्रा कर रहे थे। ब्राह्मण दोना ने तब भगवान (बुद्ध) के पदचिह्नों के हजार तीलियों वाले पहिए देखे, जो उनके रिम और हब सहित, हर तरह से पूर्ण थे। 95 और सोचा: "यह आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है! ये निश्‍चित रूप से किसी मनुष्य के पदचिह्न नहीं हो सकते!" [38]

तब भगवान (बुद्ध) राजमार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए, अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित कर लिया। भगवान (बुद्ध) के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए, ब्राह्मण डोना ने भगवान (बुद्ध) को वृक्ष के नीचे बैठे देखा—सुंदर, विश्वास जगाने वाले, शांत इंद्रियों और शांत मन वाले, सर्वोच्च संयम और समता (समथा) प्राप्त कर चुके, एक नियंत्रित और सुरक्षित हाथी की तरह। तब वह भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

(1) "क्या आप देव (देवदूत/भगवान) हो सकते हैं, महोदय?" 696

मैं देव (देवदूत/भगवान) नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।

(2) "क्या आप गंधब्बा बन सकते हैं, महोदय?" 697

"मैं गंधब्बा नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।"

(3) "क्या आप यक्ष बन सकते हैं, महोदय?"

"मैं यक्ष नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।"

(4) "क्या आप एक इंसान हो सकते हैं, महोदय?"

"मैं ब्राह्मण मनुष्य नहीं बनूंगा।"

जब आपसे पूछा जाए: 'क्या आप देव (देवदूत/भगवान) बन सकते हैं, महोदय?' तो आप कहते हैं: 'मैं देव (देवदूत/भगवान) नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।' जब आपसे पूछा जाए: 'क्या आप गंधर्व बन सकते हैं, महोदय?' तो आप कहते हैं: 'मैं गंधर्व नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।' जब आपसे

पूछा जाए: 'क्या आप यक्ष बन सकते हैं, महोदय?' तो आप कहते हैं: 'मैं यक्ष नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।' जब आपसे पूछा जाए: 'क्या आप मनुष्य बन सकते हैं, महोदय?' तो आप कहते हैं: 'मैं मनुष्य नहीं बनूंगा, ब्राह्मण।' तो फिर आप क्या बन सकते हैं, महोदय?

(1) "ब्राह्मण, मैंने उन दोषों का त्याग कर दिया है जिनके कारण मैं देव (देवदूत/भगवान) बन सकता था; मैंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उन्हें मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। (2) मैंने उन दोषों का त्याग कर दिया है जिनके कारण मैं गण धब्बा बन सकता था... (3) ... यक्ष बन सकता था... (4) ... मनुष्य बन सकता था; मैंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उन्हें मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। जैसे नीला, लाल या सफेद कमल का फूल, यद्यपि जल में जन्म लेता है और जल में ही बढ़ता है, जल से ऊपर उठकर खड़ा रहता है [39], वैसे ही, यद्यपि मैं संसार में जन्म लेता हूँ और संसार में ही बढ़ता हूँ, मैंने संसार पर विजय प्राप्त कर ली है और संसार से अछूता रहता हूँ। हे ब्राह्मण, मुझे याद रखना... बुद्ध।

मैंने उन सभी दोषों को नष्ट कर दिया है जिनके कारण

मेरा पुनर्जन्म देव (देवदूत/भगवान)

या आकाश में विचरण करने वाले गंधर्व के रूप में हो सकता था;

जिनके कारण मैं यक्ष की अवस्था में पहुँच सकता था

या मनुष्य के रूप में वापस आ सकता था: 698

मैंने इन दोषों को दूर कर दिया है।

जैसे सुंदर सफेद कमल

जल से अपवित्र नहीं होता, वैसे ही

मैं संसार से अपवित्र नहीं हुआ हूँ;

अतः, हे ब्राह्मण, मैं बुद्ध हूँ। 699

---

37 गैर-गिरावट (अपरिहानी)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु पतन से अछूता रहता है और निर्वाण के निकट होता है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सद्गुणों में निपुण होता है, इंद्रियों को वश में रखता है, खान-पान में संयम बरतता है और सचेत रहता है।

(1) "भिक्षु सद्गुणों में कैसे सिद्ध होता है? यहाँ, भिक्षु सद्गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय का पालन करता है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। इस प्रकार भिक्षु सद्गुणों में सिद्ध होता है।"

(2) "भिक्षु (साधु) इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय के संयम का पालन करता है। कान से ध्वनि सुनकर; नाक से गंध सूंघकर; जीभ से स्वाद चखकर; शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके; मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह मन की इंद्रिय को

अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; वह मन की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय के संयम का पालन करता है।" मन की शक्ति। इसी प्रकार एक भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है।

(3) "भिक्षु भोजन में संयम कैसे बरतता है? यहाँ, ध्यानपूर्वक विचार करने पर, भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण और रखरखाव के लिए, हानि से बचने के लिए, और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में सहायता करने के लिए भोजन ग्रहण करता है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मैं पुरानी भावना (वेदना) को समाप्त करूँगा और नई भावना (वेदना) को जागृत नहीं करूँगा, 700 और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूँगा और आराम से रहूँगा।' इस प्रकार भिक्षु भोजन में संयम बरतता है।"

(4) "एक भिक्षु जागृति पर कैसे ध्यान केंद्रित करता है? यहाँ, दिन के दौरान, चलते-फिरते और बैठते हुए, एक भिक्षु अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। रात्रि के पहले पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में वह उठने का विचार मन में रखते हुए, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध करते हुए। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करता है। इस प्रकार एक भिक्षु जागृति पर ध्यान केंद्रित करता है।"

"इन चार गुणों से युक्त भिक्षु पतन से अप्रतिम होता है और निर्वाण के निकट होता है।"

सदाचारी आचरण में स्थिर,

इंद्रियों पर संयमित,

खान-पान में संयमी,

जागृत रहने का ध्यान रखने वाला:

एक भिक्षु इस प्रकार

दिन-रात अथक परिश्रम करते हुए,

लाभकारी गुणों (धम्म) का विकास करते हुए,

बंधन से मुक्ति प्राप्त करता है।

जो भिक्षु सतर्कता में आनंद लेता है,

आलस्य के खतरे को देखकर, वह

पतन से अछूता रहता है;

वह निर्वाण के निकट होता है। 702

---

38 पीछे हटना (पतिलीन)

"भिक्षु (मठवासी), वह भिक्षु जिसने व्यक्तिगत सत्यों का निराकरण कर दिया है, खोज का पूर्णतः त्याग कर दिया है और शारीरिक गतिविधियों को शांत कर दिया है, उसे पीछे हट गया कहा जाता है। 703

(1) "और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु ने व्यक्तिगत सत्यों का खंडन कैसे किया है? 704 यहाँ, साधारण तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा माने जाने वाले सामान्य व्यक्तिगत सत्य चाहे जो भी हों—अर्थात्, 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं'— एक भिक्षु ने इन सभी का त्याग कर खंडन किया है, इन्हें छोड़ दिया है, अस्वीकार कर दिया है, त्याग दिया है और त्याग दिया है। 705 इसी प्रकार एक भिक्षु ने व्यक्तिगत सत्यों का निवारण किया है।

(2) "एक भिक्षु ने खोज का पूर्णतः त्याग कैसे किया है? यहाँ, एक भिक्षु ने इंद्रिय सुखों की खोज और अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की खोज को त्याग दिया है और आध्यात्मिक जीवन की खोज को शांत कर दिया है। 06 इसी प्रकार एक भिक्षु ने खोज का पूर्णतः त्याग किया है।"

(3) "एक भिक्षु ने शारीरिक क्रियाओं को कैसे शांत किया है? यहाँ, सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही आनंद और उदासी के दूर हो जाने के साथ, एक भिक्षु चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इस प्रकार एक भिक्षु ने शारीरिक क्रियाओं को शांत किया है। 707

(4) "और भिक्षु किस प्रकार पीछे हटता है? यहाँ, भिक्षु 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंकता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, उसे मिटा देता है ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके। इसी प्रकार भिक्षु पीछे हटता है।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), एक भिक्षु जिसने व्यक्तिगत सत्यों का निवारण कर दिया है, पूरी तरह से खोज का त्याग कर दिया है, और शारीरिक गतिविधि को शांत कर दिया है, उसे पीछे हटने वाला कहा जाता है।" [42]

इंद्रिय सुखों की खोज,

अस्तित्व की खोज (भाव/पुनर्जन्म का कारण),

ब्रह्मचर्य जीवन की खोज;

"यही सत्य है" की दृढ़ पकड़,

ऐसे दृष्टिकोण जो अतिशयोक्तिपूर्ण हैं: 708

जो व्यक्ति कामवासना (राग) से पूर्णतः विरक्त हो चुका हो,

तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश से मुक्त हो चुका हो, वह

ऐसी खोज को त्याग देता है

और उसके दृष्टिकोण जड़ से उखड़ जाते हैं।

वह शांत, सजग (ध्यानमग्न/सती) भिक्षु, जो

स्थिर, अजेय और

अहंकार से मुक्त होकर प्रबुद्ध हो चुका है,

उसे ही पीछे हटने वाला भिक्षु कहा जाता है।

---

39 उज्जया

तब ब्राह्मण उज्जैन भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"क्या गुरु गौतम बलिदान की प्रशंसा करते हैं?"

"हे ब्राह्मण, मैं सभी यज्ञों की प्रशंसा नहीं करता, न ही सभी यज्ञों की प्रशंसा करने से परहेज़ करता हूँ। (1) मैं उस हिंसक यज्ञ की प्रशंसा नहीं करता जिसमें गाय, बकरी, भेड़, मुर्गी और सूअर मारे जाते हैं, जिसमें विभिन्न प्राणियों को वध के लिए ले जाया जाता है। (2) इसका कारण क्या है? क्योंकि अरहंत और अरहंतत्व के मार्ग पर चल चुके लोग हिंसक यज्ञ में भाग नहीं लेते।"

(3) "परन्तु मैं अहिंसक यज्ञ की प्रशंसा करता हूँ जिसमें मवेशी, बकरियाँ, भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर नहीं मारे जाते, जहाँ विभिन्न प्राणियों का वध नहीं किया जाता, अर्थात् नियमित दान, पारिवारिक परंपरा के अनुसार दिया जाने वाला यज्ञ। 709 (4) इसका कारण क्या है? क्योंकि अरहंत और अरहंत पद के मार्ग पर चलने वाले लोग अहिंसक यज्ञ में भाग लेते हैं।" 710

अश्वमेध यज्ञ, मानव यज्ञ,

सम्मपासा, वजपेय्य, [43] निरग्गला: 711

ये बड़े यज्ञ, हिंसा से भरे हुए, 712

महान फल नहीं लाते।

सही आचरण के महान द्रष्टा ऐसे

बलिदान में शामिल नहीं होते

जहाँ बकरियाँ, भेड़ें, मवेशी आदि हों।

और विभिन्न प्राणियों की बलि दी जाती है।

लेकिन जब वे नियमित रूप से पारिवारिक रीति-रिवाज के अनुसार

हिंसा रहित बलिदान चढ़ाते हैं, तो

बकरियों, भेड़ों, मवेशियों

या अन्य प्राणियों की बलि नहीं दी जाती है।

सही आचरण के महान ऋषि यही बलिदान देते हैं।

बुद्धिमान व्यक्ति को यह बलिदान देना चाहिए;

यह बलिदान बहुत फलदायी होता है।

ऐसा बलिदान करने वाले के लिए

यह वास्तव में बेहतर है, कभी बुरा नहीं।

ऐसा बलिदान सचमुच विशाल है

और देवता (देवदूत) भी प्रसन्न होते हैं।

---

40 उदय

तब ब्राह्मण उदयि भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

(गद्य भाग 4:39 के समान है।)

जब कोई यज्ञ समयोचित और स्वीकार्य हो,

अच्छी तरह से तैयार हो और अहिंसक हो, [44] तो

ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के आत्म-नियंत्रित अनुयायी

ऐसे यज्ञ में भाग लेते हैं।

संसार में वे लोग जिन्होंने आवरण हटा दिए हैं, 713

समय और गंतव्य से परे जाने वाले, 714

वे बुद्ध जो यज्ञ में निपुण हैं 15

इस प्रकार के यज्ञ की प्रशंसा करते हैं।

उपयुक्त दान तैयार करने के बाद,

चाहे वह साधारण प्रकार का हो या मृतक की स्मृति में, व्यक्ति ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के अनुयायियों के लिए उपजाऊ खेत में विश्वासपूर्वक निःस्वार्थता करता है ।

जब विधिपूर्वक प्राप्त की गई वस्तु को

विधिपूर्वक, विधिपूर्वक,

भेंट के योग्य लोगों को अर्पित किया जाता है, तो

बलिदान विशाल होता है और देवता (देवदूत) प्रसन्न होते हैं।

विश्वास से परिपूर्ण ज्ञानी व्यक्ति,

उदार मन से इस प्रकार त्याग करने के बाद,

सुखमय संसार में,

दुःख रहित लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेता है।

वी. रोहितासावग्गो

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

41. समाधि-भावना (ध्यानमग्न अवस्था)

भिक्षुओं, समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की ये चार अवस्थाएँ हैं। वे चार कौन सी हैं? (1) समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की एक अवस्था है जो इसी जीवन में सुखपूर्वक निवास करने की ओर ले जाती है। (2) समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की एक अवस्था है जो ज्ञान और दृष्टि प्राप्त करने की ओर ले जाती है। (3) समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की एक अवस्था है जो आत्म-मग्न (समाहित/समाहिता) ध्यान और पूर्ण बोध की ओर ले जाती है। (4) समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की एक अवस्था है जो दोषों के नाश की ओर ले जाती है।

(1) "हे भिक्षुओं, समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की वह अवस्था क्या है जो इसी जीवन में सुखमय निवास की ओर ले जाती है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते हैं। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में, सचेत (ध्यानमग्न/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर सहित सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है।" जिसे श्रेष्ठ जन घोषित करते हैं: वह समभाव वाला, सती (ध्यानमग्न), सुखी जीवन जीने वाला है। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और उदासी के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना) द्वारा आत्म-मग्न (सम्मोहन) ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इसे समाधि (सम्मोहन) का विकास कहा जाता है जो इसी जीवन में सुखी जीवन जीने की ओर ले जाता है। 717

(2) "समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) का वह विकास क्या है जो ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति की ओर ले जाता है? 718 यहाँ, एक भिक्षु प्रकाश की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान देता है; वह दिन की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर इस प्रकार ध्यान केंद्रित करता है: 'जैसे दिन में, वैसे ही रात में; जैसे रात में, वैसे ही दिन में।' 719 इस प्रकार, खुले और निश्चिंत मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। यही समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) का वह विकास है जो ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति की ओर ले जाता है।"

(3) "समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) का वह विकास क्या है जो आत्म-मग्न (समाहित/समाहिता) ध्यान और पूर्ण बोध की ओर ले जाता है? यहाँ, एक भिक्षु वेदना (संवेदना) को उत्पन्न होते ही, बने रहते ही और लुप्त होते ही जानता है; वह संज्ञा (संज्ञा) को उत्पन्न होते ही, बने रहते ही और लुप्त होते ही जानता है; वह विचारों को उत्पन्न होते ही, बने रहते ही और लुप्त होते ही जानता है। 720 यही समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) का वह विकास है जो आत्म-मग्न (समाहिता/समाहिता) ध्यान और पूर्ण बोध (संपजन्न) की ओर ले जाता है।"

(4) "और समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की वह अवस्था क्या है जो दोषों के नाश की ओर ले जाती है? यहाँ, एक भिक्षु आसक्ति के अधीन पाँच स्कंधों में उत्पत्ति और अपाप का चिंतन करता है: 'ऐसा है रूप, ऐसी है उत्पत्ति, ऐसा है अपाप; ऐसी है वेदना... ऐसी है संज्ञा/संज्ञा... ऐसे हैं संस्कार/संस्कार... ऐसी है चेतना, ऐसी है उत्पत्ति, ऐसा है अपाप।' यही समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) की वह अवस्था है जो दोषों के नाश की ओर ले जाती है।"

"ये समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) के चार विकास हैं। और इसी के संदर्भ में मैंने परायण में, 'पुन्नक के प्रश्न' में कहा था:

संसार के उतार-चढ़ाव को समझकर,

वह संसार की किसी भी बात से विचलित नहीं होता।

शांत, निर्मल, चिंतामुक्त, इच्छाहीन,

वह पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर चुका है।

---

42 प्रश्न (पन्हा-व्याकरण सं. प्रश्न-व्याकरण)

भिक्षुओं, प्रश्नों के उत्तर देने के ये चार तरीके हैं। 722 वे चार तरीके क्या हैं? (1) एक प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से देना होता है; (2) एक प्रश्न का उत्तर भेद करते हुए देना होता है; (3) एक प्रश्न का उत्तर प्रतिप्रश्न के साथ देना होता है; और (4) एक प्रश्न को अलग रखना होता है। ये प्रश्नों के उत्तर देने के चार तरीके हैं।

एक प्रकार के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर दिया जाता है,

दूसरे का उत्तर अंतर स्पष्ट करने के बाद दिया जाता है;

तीसरे के लिए प्रतिप्रश्न पूछना चाहिए,

लेकिन चौथे को छोड़ देना चाहिए।

जब कोई भिक्षु प्रत्येक प्रकार के प्रश्न का उचित उत्तर देना जानता है ,

तो उसे

चारों प्रकार के प्रश्नों में कुशल कहा जाता है।

उस पर हमला करना कठिन है, उसे हराना कठिन है, वह

गहरा है, उस पर आक्रमण करना कठिन है; वह लाभकारी और हानिकारक

दोनों ही चीजों में निपुण है ।

बुद्धिमान व्यक्ति हानिकारक चीजों से दूर रहता है

और लाभकारी चीजों को अपनाता है।

लाभकारी मार्ग पर चलकर ही

दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को बुद्धिमान कहा जाता है।

---

43 क्रोध (1) (कोढ़ा1 सं. क्रोध)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) वह जो क्रोध को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; (2) वह जो निंदा को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; (3) वह जो लाभ को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; और (4) वह जो मान को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं। संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) वह जो क्रोध की अपेक्षा अच्छे धर्म को महत्व देता है; (2) वह जो निंदा की अपेक्षा अच्छे धर्म को महत्व देता है; (3) वह जो लाभ की अपेक्षा अच्छे धर्म को महत्व देता है; (4) वह जो मान-सम्मान की अपेक्षा अच्छे धर्म को महत्व देता है। संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

जो भिक्षु क्रोध और निंदा को महत्व देते हैं,

जो लाभ और मान-सम्मान को महत्व देते हैं, वे पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए

उत्तम धम्म में प्रगति नहीं कर पाते ।

लेकिन जो लोग अच्छे धम्म को महत्व देते हैं,

जो अतीत में भी इसी प्रकार रहते थे और अब भी इसी प्रकार रहते हैं, वे वास्तव में पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए

धम्म में वृद्धि करते हैं ।

---

44 क्रोध (2) (कोढ़ा1 सं. क्रोध)

भिक्षुओं, ये चार बातें उत्तम धर्म के विरुद्ध हैं। वे कौन सी चार बातें हैं? (1) क्रोध को महत्व देना, जो उत्तम धर्म का विरुद्ध है; (2) निंदा को महत्व देना, जो उत्तम धर्म का विरुद्ध है; (3) लाभ को महत्व देना, जो उत्तम धर्म का विरुद्ध है; और (4) मान को महत्व देना, जो उत्तम धर्म का विरुद्ध है। ये चार बातें उत्तम धर्म के विरुद्ध हैं।

भिक्षुओं, ये चार अन्य बातें हैं जो उत्तम धर्म के अनुरूप हैं। वे चार बातें क्या हैं? (1) क्रोध के बजाय उत्तम धर्म का महत्व; (2) निंदा के बजाय उत्तम धर्म का महत्व; (3) लाभ के बजाय उत्तम धर्म का महत्व; और (4) मान के बजाय उत्तम धर्म का महत्व। ये चार अन्य बातें उत्तम धर्म के अनुरूप हैं।

जो भिक्षु क्रोध और निंदा को महत्व देते हैं,

जो लाभ और सम्मान को महत्व देते हैं,

वे उपजाऊ खेत में सड़े हुए बीजों के समान हैं:

वे अच्छे धम्म में नहीं बढ़ते हैं।

लेकिन जो लोग अच्छे धम्म को महत्व देते हैं,

जो अतीत में भी इसी प्रकार रहते थे और अब भी इसी प्रकार रहते हैं,

वे नम औषधीय पौधों के समान हैं:

वे धम्म में बढ़ते हैं।

---

45 रोहितास्सा (एल) [723]

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो चुकी थी, अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत/भगवान) रोहितास्सा, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और बोले: "हे भंते, क्या यह संभव है कि यात्रा करके संसार के उस छोर को जाना, देखा या पहुँचा जा सके, जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता और मरता नहीं, [48] न मरता है और न पुनर्जन्म लेता है?"

"मैं कहता हूँ, मित्र, कि यात्रा करने से मनुष्य संसार के उस छोर को जान, देख या पहुँच नहीं सकता जहाँ मनुष्य का जन्म नहीं होता, जहाँ वह बूढ़ा होकर मरता नहीं, जहाँ वह देहांत नहीं करता और पुनर्जन्म नहीं लेता।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, भंते, कि भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: मैं कहता हूँ, मित्र, कि यात्रा करने से मनुष्य संसार के उस छोर को जान, देख या पहुँच नहीं सकता जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता और मरता नहीं, और न ही मरता है और न ही पुनर्जन्म लेता है।"

"हे भंते, अतीत में मैं भोज का पुत्र रोहितास्सा नामक एक ऋषि था, जो मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) से युक्त था और आकाश में यात्रा करने में सक्षम था। मेरी गति ताड़ के वृक्ष की छाया में दृढ़ धनुष वाले प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धर द्वारा आसानी से चलाए गए प्रकाश बाण के समान थी। मेरे कदम इतने विशाल थे कि मैं पूर्वी सागर से पश्चिमी सागर तक पहुँच सकता था। फिर, जब मैं ऐसी गति और ऐसे विशाल कदमों से चल रहा था, तो मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई: मैं यात्रा करके संसार के अंत तक पहुँचूँगा। सौ वर्ष का जीवनकाल होने के कारण, मैंने सौ वर्ष तक बिना रुके यात्रा की, सिवाय खाने, पीने, चबाने और स्वाद लेने के लिए, शौच और मूत्र त्यागने के लिए, और नींद से थकान दूर करने के लिए; फिर भी मैं संसार के अंत तक पहुँचे बिना ही मार्ग में ही मर गया।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, भंते, कि भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: मैं कहता हूँ, मित्र, कि यात्रा करने से मनुष्य संसार के उस छोर को जान, देख या पहुँच नहीं सकता जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता और मरता नहीं, और न ही मरकर पुनर्जन्म लेता है।"

"मैं कहता हूँ, मित्र, कि यात्रा करने से मनुष्य उस संसार के अंत को जान, देख या पहुँच नहीं सकता जहाँ जन्म नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता और मृत्यु नहीं होती, मृत्यु नहीं होती और पुनर्जन्म नहीं होता: फिर भी मैं कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुख का अंत नहीं हो सकता। इसी असीम शरीर में, जो चेतना (सन्न/संज्ञा) और मन से परिपूर्ण है, मैं (1) संसार, (2) संसार की उत्पत्ति, (3) संसार का अंत और (4) संसार के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग की घोषणा करता हूँ।" [49]

संसार के अंत तक

यात्रा करके कभी नहीं पहुंचा जा सकता;

फिर भी संसार के अंत तक पहुंचे बिना

दुखों से मुक्ति नहीं मिलती।

इसलिए ज्ञानी, संसार का ज्ञाता,

जिसने संसार के अंत तक पहुंचकर ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है,

संसार के अंत को जानकर शांति प्राप्त करता है और

इस लोक या किसी अन्य लोक की इच्छा नहीं रखता।

---

46 रोहितास्सा (2)

फिर जब वह रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत/भगवान) रोहितास्सा, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और बोले:

"क्या यह संभव है, भंते, कि यात्रा करके संसार के उस छोर को जाना, देखा या पहुँचा जा सके, जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता और मरता नहीं, और न ही मरकर पुनर्जन्म लेता है?"

[इसके बाद जो कुछ भी आता है वह 4:45 के समान है, जिसमें छंद भी शामिल हैं, लेकिन प्रथम पुरुष कथावाचक स्वर में बोला गया है।] [50]

---

47 सुविदुरा (दूर-दूर)

"भिक्षुओं, ये चार जोड़े अत्यंत एक दूसरे से बहुत दूर हैं। वे चार कौन से हैं? (1) आकाश और पृथ्वी। (2) समुद्र के निकट और दूर के किनारे। (3) वह स्थान जहाँ सूर्योदय होता है और वह स्थान जहाँ सूर्यास्त होता है। (4) अच्छे का उपदेश और बुरे का उपदेश। ये चार जोड़े अत्यंत एक दूसरे से बहुत दूर हैं।" [51]

आकाश और पृथ्वी बहुत दूर हैं,

सागर का दूर का किनारा दूर कहा जाता है,

और इसी प्रकार सूर्योदय और सूर्यास्त के स्थान

में भी बहुत अंतर है।

लेकिन वे कहते हैं कि

अच्छे और बुरे लोगों की शिक्षाएँ और भी अधिक भिन्न होती हैं। 726

अच्छे लोगों की संगति स्थिर होती है;

जब तक वह बनी रहती है, तब तक वह एक जैसी रहती है।

परन्तु बुरे लोगों की संगति चंचल होती है;

इस प्रकार अच्छे लोगों की शिक्षा बुरे लोगों की शिक्षा

से बहुत दूर होती है।

---

48 विशाखा 727

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त सभा भवन में भिक्षुओं को धर्म प्रवचन दे रहे थे, उनका उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण, व्यापक और निर्बाध था।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन की ओर बढ़े। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, "भिक्षुओं, सभा भवन में भिक्षुओं को धर्म प्रवचन से उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और आनंद कौन दे रहा है, जो परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण, व्यापक और अबाधित वाणी में दिया गया है?"

"यह आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त थे, भंते।"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त से कहा: "शाबाश, शाबाश, विशाखा! यह अच्छा है कि तुम सभा भवन में भिक्षुओं को धम्म (मार्ग) प्रवचन से उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्नता प्रदान कर रहे हो, जो परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण, व्यापक और अबाधित वाणी में बोला गया हो।"

जब ज्ञानी व्यक्ति अज्ञानी लोगों के बीच होता है,

तो वे उसे नहीं पहचान पाते यदि वह बोलता नहीं। 725 परन्तु जब वह बोलता है और अमरता (अमृत्य) की शिक्षा देता है, तो

वे उसे पहचान लेते हैं ।

उन्हें धम्म का पाठ और व्याख्या करनी चाहिए;

उन्हें ऋषियों का ध्वज बुलंद करना चाहिए।

सुविचारित शब्द ही ऋषियों का ध्वज हैं:

क्योंकि धम्म ही ऋषियों का ध्वज है। [52]

---

49 विपल्लस (इनवर्जन)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार की धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), मन की धारणाएँ और दृष्टिकोण हैं। 729 वे चार क्या हैं? (1) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की धारणा जो अनित्य को स्थायी मान लेती है; (2) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की धारणा जो दुखदायी को सुखदायी मान लेती है; 730 (3) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की धारणा जो अनात्म को आत्म मान लेती है; (4) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की धारणा जो अनाकर्षक को आकर्षक मान लेती है। ये धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की चार प्रकार की धारणाएँ हैं।

भिक्षुओं, ये चार प्रकार की धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), मन की धारणाएँ और दृष्टिकोण हैं। ये चार कौन सी हैं? (1) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण जो अनित्य को अनित्य मानता है; (2) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण जो दुख को दुख मानता है; (3) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण जो अनात्म को अनात्म मानता है; (4) वह धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण जो अनाकर्षक को अनाकर्षक मानता है। ये धारणा (सन्ना/संज्ञा), मन और दृष्टिकोण की चार प्रकार की धारणाएँ हैं।

अनित्य में स्थायित्व देखना,

दुख में सुख देखना,

अनात्म में आत्मा देखना,

और अनाकर्षक में आकर्षण देखना,

प्राणी गलत विचारों का सहारा लेते हैं,

उनके मन विक्षिप्त हो जाते हैं, उनकी धारणा (सन्ना/संज्ञा) विकृत हो जाती है।

ऐसे लोग मारा के बंधन में जकड़े रहते हैं

और बंधन से मुक्ति नहीं पा सकते।

वे संसार में निरंतर

जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसे रहते हैं।

लेकिन जब बुद्ध संसार में प्रकट होते हैं,

एक तेजस्वी प्रकाश बिखेरते हुए,

वे उस धम्म को प्रकट करते हैं जो

दुख को शांत करने की ओर ले जाता है।

इसे सुनकर बुद्धिमान लोगों ने

अपना विवेक वापस पा लिया है।

उन्होंने अनित्य को अनित्य

और दुख को दुख के रूप में देखा है।

उन्होंने अनात्म को अनात्म के रूप में

और अनाकर्षक को अनाकर्षक के रूप में देखा है।

सही दृष्टि प्राप्त करके

उन्होंने सभी दुखों पर विजय प्राप्त कर ली है। [53]

---

50 दोष (उपक्किलेशा संस्कृत उपक्लेश)

भिक्षुओं, सूर्य और चंद्रमा के ये चार दोष हैं जिनके कारण सूर्य और चंद्रमा न तो चमकते हैं, न ही प्रकाशमान होते हैं और न ही विकिरण करते हैं। वे चार दोष क्या हैं? बादल सूर्य और चंद्रमा का दोष हैं जिनके कारण सूर्य और चंद्रमा न तो चमकते हैं, न ही विकिरण करते हैं; कोहरा सूर्य और चंद्रमा का दोष है 732 . . . धुआँ और धूल सूर्य और चंद्रमा का दोष हैं . . . और असुरों के स्वामी राहु सूर्य और चंद्रमा का दोष हैं जिनके कारण सूर्य और चंद्रमा न तो चमकते हैं, न ही विकिरण करते हैं और न ही विकिरण करते हैं। ये सूर्य और चंद्रमा के चार दोष हैं जिनके कारण सूर्य और चंद्रमा न तो चमकते हैं, न ही विकिरण करते हैं और न ही विकिरण करते हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों और ब्राह्मणों में चार दोष होते हैं, जिनके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते। वे चार दोष कौन से हैं?"

(1) कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो मदिरा और शराब पीते हैं और उससे परहेज नहीं करते। यह तपस्वियों और ब्राह्मणों का पहला दोष है, जिसके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते।

(2) "कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो यौन संबंध में लिप्त रहते हैं और यौन संबंध से परहेज नहीं करते। यह तपस्वियों और ब्राह्मणों का दूसरा दोष है, जिसके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते।"

(3) कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो सोना और चांदी स्वीकार करते हैं और सोना और चांदी लेने से परहेज नहीं करते। यह तपस्वियों और ब्राह्मणों का तीसरा दोष है, जिसके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते।

(4) कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो कुटिल जीविका से जीविका कमाते हैं और कुटिल जीविका से विमुख नहीं होते। यही तपस्वियों और ब्राह्मणों का चौथा दोष है, जिसके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते।

"ये तपस्वियों और ब्राह्मणों के चार दोष हैं [54], जिनके कारण कुछ तपस्वी और ब्राह्मण प्रकाशमान, प्रज्वलित और प्रकाशमान नहीं होते।" 733

कुछ तपस्वी और ब्राह्मण

कामवासना (राग) और घृणा से ग्रस्त होकर इधर-उधर भटकते हैं;

अज्ञान से विवश मनुष्य

सुखद चीजों में आनंद की तलाश करते हैं।

वे शराब और मदिरा पीते हैं,

यौन गतिविधियों में लिप्त होते हैं;

अज्ञानी लोग

चांदी और सोना स्वीकार करते हैं।

कुछ तपस्वी और ब्राह्मण

गलत तरीके से जीवन यापन करते हैं। ये वे दोष हैं जिनका वर्णन सूर्य के सन्यासी

बुद्ध ने किया है।

इनसे अपवित्र होकर,

कुछ तपस्वी और ब्राह्मण—

अशुद्ध, धूल भरे प्राणी— 734

न तो चमकते हैं और न ही दमकते हैं।

अंधकार में डूबे हुए,

तृष्णा के दास (तन्हा/तृष्णा), बहते हुए,

वे नया जीवन (भावो/पुनर्जन्म) ग्रहण करते हैं

और उस भयानक श्मशान भूमि को भर देते हैं।

दूसरा पचास

I. पुण्य की धाराएँ (पुन्नभिसन्द)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

योग्यता की 51 धाराएँ (1) (पुन्नभिसन्ध1 सं. पुण्य..)

भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग की ओर ले जाने वाले - जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, यानी व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। वे चार धाराएँ कौन सी हैं? 735

(1) जब कोई भिक्षु दिए गए वस्त्र का उपयोग करते हुए असीम एकाग्रता में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा, सुख का पोषण प्राप्त होता है... जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। (2) जब कोई भिक्षु दिए गए भिक्षा भोजन का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा, सुख का पोषण प्राप्त होता है... जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। [55] (3) जब कोई भिक्षु दिए गए आवास का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा, सुख का पोषण प्राप्त होता है... जो . . , व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। (4) जब कोई भिक्षु बीमारों के लिए दी गई औषधियों और सामग्री का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीनता/समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, तो उसे असीम पुण्य की धारा, लाभकारी (कुशल) की धारा, सुख का पोषण प्राप्त होता है . . . जो व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है।

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुसल) तत्वों की धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग के लिए सहायक - जो वांछित, अभिलाषा और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं।"

भिक्षुओं, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ, लाभकारी (कुशल) धाराएँ होती हैं, तो उसके पुण्य को इस प्रकार मापना आसान नहीं है: 'केवल इतना ही उसका पुण्य प्रवाह, लाभकारी (कुशल) प्रवाह, सुख का पोषण है; ... जो ... व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है'; बल्कि, इसे सीधे तौर पर पुण्य के एक अगणनीय, असीम, विशाल भंडार के रूप में गिना जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर में पानी को इस प्रकार मापना आसान नहीं है: 'इतने गैलन पानी है,' या 'इतने सैकड़ों गैलन पानी है,' या 'इतने हजारों गैलन पानी है,' या 'इतने लाखों गैलन पानी है'; बल्कि इसे केवल पानी के एक अथाह, असीम, विशाल भंडार के रूप में माना जाता है; ठीक उसी प्रकार, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन चार पुण्य धाराओं से युक्त होता है... तो इसे भी केवल पुण्य के एक अथाह, असीम, विशाल भंडार के रूप में माना जाता है।

जैसे लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली अनेक नदियाँ,

नीचे की ओर बहते हुए, महासागर में पहुँचती हैं,

जो जल का विशाल भंडार है, असीम सागर है,

रत्नों के ढेर का भयानक भंडार है; [56]

वैसे ही पुण्य की धाराएँ उस बुद्धिमान व्यक्ति तक पहुँचती हैं

जो भोजन, पेय और वस्त्र दाता है;

वे पलंगों, कुर्सियों और आवरणों के दाता तक उसी प्रकार पहुँचते हैं

जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र तक ले जाती हैं।

---

52 पुण्य की धाराएँ (2) 737 (पुन्ना-भिसंदा2 सं. पुण्य..)

भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग की ओर ले जाने वाले - जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। वे चार धाराएँ कौन सी हैं?

(1) "यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' यह पुण्य की पहली धारा है।"

(2) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।' यह पुण्य का दूसरा स्रोत है। ..."

(3) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।' यह पुण्य की तीसरी धारा है। . . ."

(4) "पुनः, एक श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठों द्वारा प्रिय, अटूट, दोषरहित, निष्कलंक, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला सद्‌गुणपूर्ण आचरण होता है। यह पुण्य की चौथी धारा है।"

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुसल) तत्वों की धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग के लिए सहायक - जो वांछित, अभिलाषा और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं।"

जब किसी की आस्था तथागत (बुद्ध) में

अटूट और दृढ़ होती है,

और उसका आचरण अच्छा होता है, जो

श्रेष्ठ लोगों को प्रिय और प्रशंसित होता है;

जब किसी को संघ में विश्वास होता है

और उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, तब

वे कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,

उसका जीवन व्यर्थ नहीं गया है।

अत: बुद्धिमान व्यक्ति को

बुद्धों की शिक्षाओं को याद रखते हुए,

आस्था और सदाचारी व्यवहार,

विश्वास और धम्म के दर्शन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। 738

---

53 साथ रहना (1) (संवसा1)

एक बार भगवान बुद्ध मधुरा और वेरांजा के बीच राजमार्ग पर यात्रा कर रहे थे। कई गृहस्थ पुरुष और महिलाएं भी उसी राजमार्ग पर यात्रा कर रहे थे। तब भगवान बुद्ध राजमार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। गृहस्थ पुरुषों और महिलाओं ने भगवान बुद्ध को वहां बैठे देखा और उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा:

"गृहस्थों, साथ रहने के ये चार तरीके हैं। वे चार क्या हैं? एक पापी दूसरे पापी के साथ रहता है; एक पापी किसी देवी के साथ रहता है; एक देव (देवदूत/भगवान) किसी पापी के साथ रहता है; एक देव (देवदूत/भगवान) किसी देवी (देवदूत/देवी) के साथ रहता है।"

(1) "हे गृहस्थों, एक दुष्ट दूसरे दुष्ट के साथ कैसे रहता है? [58] यहाँ पति जीवन का नाश करने वाला, बिना माँगे वस्तुएँ लेने वाला, यौन दुराचार में लिप्त, झूठ बोलने वाला और आलस्य के आधार मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का सेवन करने वाला है; वह अनैतिक और बुरे चरित्र का है; वह कंजूसी के कलंक से ग्रस्त हृदय से घर में रहता है; वह संन्यासियों और ब्राह्मणों का अपमान और निंदा करता है। और उसकी पत्नी भी जीवन का नाश करने वाली है... वह संन्यासियों और ब्राह्मणों का अपमान और निंदा करती है। इस प्रकार एक दुष्ट दूसरे दुष्ट के साथ रहता है।"

(2) "और एक दुष्ट व्यक्ति किसी देवी (देवी) के साथ कैसे रहता है? यहाँ पति जीवन का संहार करने वाला है... वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान और निंदा करता है। परन्तु उसकी पत्नी जीवन के संहार से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और आलस्य के आधार मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहती है; वह गुणी और अच्छे चरित्र की होती है; वह कंजूसी के दाग से मुक्त हृदय से घर में रहती है; वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान या निंदा नहीं करती। इसी प्रकार एक दुष्ट व्यक्ति किसी देवी (देवदूत/देवी) के साथ रहता है।"

(3) "और एक देव (देवदूत/भगवान) एक पापी के साथ कैसे रहता है? यहाँ पति वह है जो जीवन का विनाश नहीं करता... वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान या निंदा नहीं करता। परन्तु उसकी पत्नी जीवन का विनाश करने वाली है... वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान और निंदा करती है। इसी प्रकार एक देव (देवदूत/भगवान) एक पापी के साथ रहता है।"

(4) "और एक देव (देवदूत/ईश्वर) एक स्त्री देव के साथ कैसे रहता है? यहाँ, पति वह है जो जीवन के विनाश से परहेज करता है... वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान या निंदा नहीं करता। और उसकी पत्नी भी जीवन के विनाश से परहेज करती है... वह तपस्वियों और ब्राह्मणों का अपमान या निंदा नहीं करती। इसी प्रकार एक देव (देवदूत/ईश्वर) एक स्त्री देव (देवदूत/ईश्वर) के साथ रहता है। [59]

"ये साथ रहने के चार तरीके हैं।"

जब पति-पत्नी दोनों ही अनैतिक,

कंजूस और दुर्व्यवहारी होते हैं, तो वे एक साथ दुखदायी जीवन व्यतीत करते हैं।

पति अनैतिक,

कंजूस और हिंसक है,

लेकिन पत्नी गुणी,

दानशील और उदार है।

वह एक देवी (परी/देवी) है जो

एक दुष्ट पति के साथ रहती है।

पति सदाचारी,

दानशील और उदार है,

परन्तु उसकी पत्नी अनैतिक,

कंजूस और दुर्व्यवहार करने वाली है।

वह

एक देवदूत (देवदूत/भगवान) पति के साथ रहने वाली एक दुष्ट स्त्री है।

पति-पत्नी दोनों ही आस्थावान,

दानशील और संयमी हैं,

धार्मिक जीवन जीते हैं और

एक-दूसरे से मधुर शब्दों में बात करते हैं।

तब उन्हें अनेक लाभ प्राप्त होते हैं

और वे सुखी रहते हैं। जब दोनों में एकरूपता होती है, तो

उनके शत्रु दुखी हो जाते हैं ।

यहां धम्म का अभ्यास करने के बाद, वे

सद्गुणी आचरण और अनुष्ठानों में उसी प्रकार से भाग लेते हैं, और

[मृत्यु के बाद] देवलोक में आनंदित होकर,

वे इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं।

---

54 (4) साथ रहना (2) (संवसा2)

भिक्षुओं, साथ रहने के ये चार तरीके हैं। वे चार तरीके कौन से हैं? एक पापी दूसरे पापी के साथ रहता है; एक पापी किसी देवी के साथ रहता है; एक देवी किसी पापी के साथ रहती है; एक देवी किसी देवी के साथ रहती है।

[श्लोकों सहित शेष भाग 4:53 के समान है, परन्तु भिक्षुओं को संबोधित है।] [60—61]

———————————————————————

55 जीवन में एकरूपता (1) (समजीवी1)

एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान में स्थित सुमसुमारागिरा में भगों के बीच निवास कर रहे थे। फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र धारण किया और गृहस्थ नकुलपिता के निवास पर गए, जहाँ वे तैयार आसन पर बैठ गए। तब गृहस्थ नकुलपिता और गृहिणी नकुलमाता भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। 740 तब गृहस्थ नकुलपिता ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, जब मैं छोटा था और नकुलमाता का विवाह मुझसे हुआ था, तब से मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उसके विरुद्ध विचार में भी कोई अपराध किया हो, कर्म से तो दूर की बात है। भंते, हम कामना करते हैं कि हम न केवल इस जीवन में, बल्कि भविष्य के जन्मों में भी एक-दूसरे से मिलें।"

गृहिणी नकुलमाता ने बदले में भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, जब मैं एक युवती थी और मेरा विवाह युवा गृहस्थ नकुलपिता से हुआ था, तब से मुझे याद नहीं कि मैंने कभी विचार में भी उनके विरुद्ध कोई अपराध किया हो, कर्म से तो बिल्कुल भी नहीं। हे भंते, हम न केवल इस जीवन में बल्कि भविष्य के जन्मों में भी एक-दूसरे से मिलना चाहते हैं।" [62]

गृहस्थों, यदि पति-पत्नी दोनों इस जीवन में ही नहीं बल्कि भविष्य के जन्मों में भी एक-दूसरे को देखना चाहते हैं, तो उन्हें एक ही आस्था, एक ही सदाचारी व्यवहार, एक ही उदारता और एक ही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) रखना चाहिए। तब वे इस जीवन में ही नहीं बल्कि भविष्य के जन्मों में भी एक-दूसरे को देख सकेंगे।

पति और पत्नी दोनों ही आस्थावान,

परोपकारी और आत्मसंयमित हैं, वे

धार्मिकता से अपना जीवन व्यतीत करते हैं और

एक-दूसरे से मधुर शब्दों में बात करते हैं।

तब उन्हें अनेक लाभ प्राप्त होते हैं

और वे शांति से रहते हैं। जब दोनों में सद्गुणों की समानता पाई जाती है तो

उनके शत्रु दुखी हो जाते हैं ।

यहां धम्म का अभ्यास करने के बाद, वे

सद्गुणी आचरण और अनुष्ठानों में उसी प्रकार से भाग लेते हैं, और

[मृत्यु के बाद] देवलोक में आनंदित होकर,

वे इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं।

———————————————————————

56 (6) जीवन में समान (2) (समजीवी2)

भिक्षुओं, यदि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे को न केवल इस जीवन में बल्कि भविष्य के जन्मों में भी देखना चाहते हैं, तो उन्हें एक ही आस्था, एक ही सदाचारी व्यवहार, एक ही उदारता और एक ही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) रखना चाहिए। तब वे न केवल इस जीवन में बल्कि भविष्य के जन्मों में भी एक दूसरे को देख सकेंगे।

[ये आयतें 4:55 की आयतों के समान हैं]

---

57 सुप्पवास

एक बार भगवान (बुद्ध) सज्जनेला नामक कोलियन नगर के पास कोलियनों के बीच निवास कर रहे थे। फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र लिया और कोलियन पुत्री सुप्पवासा के निवास पर गए, जहाँ वे तैयार आसन पर बैठ गए। 741 तब कोलियन पुत्री सुप्पवासा [63] ने अपने हाथों से भगवान (बुद्ध) को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान (बुद्ध) ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कुंड रख दिया, तो कोलियन पुत्री सुप्पवासा एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

सुप्पवासा, एक श्रेष्ठ महिला शिष्या जो भोजन दान करती है, प्राप्तकर्ताओं को चार चीजें प्रदान करती है। वे चार चीजें क्या हैं? वह जीवन, सौंदर्य, सुख और शक्ति प्रदान करती है। (1) जीवन दान करने के कारण, वह स्वयं भी जीवन का भागीदार होती है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (2) सौंदर्य दान करने के कारण, वह स्वयं भी सौंदर्य का भागीदार होती है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (3) सुख दान करने के कारण, वह स्वयं भी सुख का भागीदार होती है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (4) शक्ति दान करने के कारण, वह स्वयं भी शक्ति का भागीदार होती है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। सुप्पवासा, एक श्रेष्ठ महिला शिष्या जो भोजन दान करती है, प्राप्तकर्ताओं को ये चार चीजें प्रदान करती है।

जब कोई व्यक्ति उत्तम आचरण वाले, धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को

शुद्ध, स्वादिष्ट और सुगंधयुक्त भोजन देता है, तो पुण्य को पुण्य से जोड़ने वाले उस दान को संसार के जानकार अत्यंत फलदायी मानते हैं ।742

ऐसी उदारता को याद करने वाले लोग

आनंद से प्रेरित होकर संसार में निवास करते हैं।

कंजूसी के दाग और उसकी जड़ को मिटाकर,

निर्दोष होकर वे स्वर्गलोक में प्रवेश करते हैं।

---

58 सुदत्ता

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, भोजन देने वाला एक श्रेष्ठ शिष्य, प्राप्तकर्ताओं को चार चीजें देता है। वे चार चीजें क्या हैं? [64] वह जीवन, सौंदर्य, सुख और शक्ति देता है। (-1) जीवन देकर वह स्वयं भी जीवन का भागीदार बनता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (2) सौंदर्य देकर वह स्वयं भी सौंदर्य का भागीदार बनता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (3) सुख देकर वह स्वयं भी सुख का भागीदार बनता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। (4) शक्ति देकर वह स्वयं भी शक्ति का भागीदार बनता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। गृहस्थ, भोजन देने वाला एक श्रेष्ठ शिष्य, प्राप्तकर्ताओं को ये चार चीजें देता है।"

जो व्यक्ति संयमी लोगों को समय पर आदरपूर्वक भोजन देता है, जो दूसरों द्वारा दिए गए भोजन को खाते हैं, वह उन्हें चार चीजें प्रदान करता है: जीवन, सौंदर्य, सुख और शक्ति। जो व्यक्ति जीवन और सौंदर्य प्रदान करता है, जो सुख और शक्ति प्रदान करता है, वह जहां भी पुनर्जन्म लेता है, वहां दीर्घायु और प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

---

59 भोजन

"भिक्षुओं, जब कोई दानदाता भोजन देता है, तो वह प्राप्तकर्ताओं को चार चीजें देता है। वे चार चीजें क्या हैं? ... [जैसा कि पिछले सूत्र में है] ... भिक्षुओं, जब कोई दानदाता भोजन देता है, तो वह प्राप्तकर्ताओं को ये चार चीजें देता है।"

[ये आयतें 4:58 के समान हैं।] [65]

---

60 आम आदमी का उचित अभ्यास (Gihisamici sans. Gruhi..)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, एक श्रेष्ठ शिष्य जो चार गुणों से युक्त है, गृहस्थ के लिए उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है, एक ऐसा मार्ग जो यश की प्राप्ति और स्वर्ग की ओर ले जाता है। वे चार गुण क्या हैं?"

"हे गृहस्थ, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य भिक्षुओं के संघ को वस्त्र देकर, भिक्षा देकर, आवास प्रदान करके, और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन उपलब्ध कराकर उनकी सेवा करता है।"

"गृहस्थ, इन चार गुणों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य गृहस्थ के लिए उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है, एक ऐसा मार्ग जो यश की प्राप्ति और स्वर्ग की ओर ले जाता है।"

जब ज्ञानी व्यक्ति

गृहस्थों के लिए उचित मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो वे

सदाचारी भिक्षुओं को

वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्रदान करके उनकी सेवा करते हैं।

उन दोनों के लिए दिन-रात

पुण्य बढ़ता रहता है;

उत्तम कर्म करने के कारण

वे स्वर्गिक अवस्था को प्राप्त करते हैं।

द्वितीय. योग्य कर्म अनुभाग (पट्टकमवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

61 पुण्य कर्म (पट्ट-कर्म)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: [66]

"गृहस्थ, संसार में ये चार चीजें हैं जिनकी कामना की जाती है, जो वांछनीय हैं, जो सुखद हैं, लेकिन जो मुश्किल से ही प्राप्त होती हैं। वे चार चीजें कौन सी हैं?"

(1) "मनुष्य सोचता है: 'मुझे सही तरीके से धन प्राप्त हो!' संसार में यही पहली चीज है जिसकी कामना की जाती है... और जो संसार में बहुत कम ही प्राप्त होती है। ..."

(2) "धर्मपूर्वक धन अर्जित करने पर व्यक्ति सोचता है: 'मुझे और मेरे रिश्तेदारों और गुरुओं को प्रसिद्धि मिले!' 744 यह दूसरी बात है... जो संसार में शायद ही कभी प्राप्त होती है।

(3) "धर्मपूर्वक धन अर्जित करने और अपने लिए तथा अपने रिश्तेदारों और गुरुओं के लिए प्रसिद्धि प्राप्त करने पर, व्यक्ति सोचता है: 'काश मैं दीर्घायु होऊं और दीर्घ जीवन का आनंद लूं!' यह तीसरी बात है... जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है।"

(4) "धर्मपूर्वक धन अर्जित करके, अपने और अपने रिश्तेदारों और गुरुओं के लिए प्रसिद्धि प्राप्त करके, दीर्घायु होकर और दीर्घ जीवन का आनंद लेकर, व्यक्ति सोचता है: 'शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, मुझे एक अच्छे गंतव्य में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म मिले!' यह चौथी बात है... जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है।"

"ये चार चीजें हैं जिनकी कामना की जाती है, जो वांछनीय होती हैं, जो मनभावन होती हैं, और जो संसार में शायद ही कभी प्राप्त होती हैं।"

"हे गृहस्थ, उन चार चीजों को प्राप्त करने के लिए चार अन्य चीजें हैं। वे चार चीजें क्या हैं? विश्वास में सिद्धि (संपदा), सद्गुणपूर्ण व्यवहार में सिद्धि (संपदा), उदारता में सिद्धि (संपदा), और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा)।"

(1) "हे गृहस्थ, विश्वास में संपदा क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य विश्वास से परिपूर्ण है; वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में सिद्ध हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इसे ही विश्वास में संपदा कहा जाता है।"

(2) "और सद्गुणी आचरण में संपदा क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य जीवन के विनाश से दूर रहता है... शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे सद्गुणी आचरण में संपदा कहा जाता है।"

(3) "और उदारता में संपदा क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य कंजूसी के दाग से मुक्त मन से घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और बाँटने में आनंदित होता है। इसे उदारता में संपदा कहा जाता है।"

(4) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में संपदा क्या है? [67] यदि कोई लालसा और अधर्मी लोभ से ग्रस्त हृदय से निवास करता है, तो वह उन कार्यों को करता है जिनसे बचना चाहिए और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करता है, जिससे उसकी प्रसिद्धि और सुख नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई दुर्भावना से ग्रस्त हृदय से . . . सुस्ती और उन्मत्तता से . . . बेचैनी और पश्चाताप से . . . संदेह से ग्रस्त हृदय से निवास करता है, तो वह उन कार्यों को करता है जिनसे बचना चाहिए और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करता है, जिससे उसकी प्रसिद्धि और सुख नष्ट हो जाते हैं।"

"हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य को यह समझ आ जाए कि 'लालच और अधर्मी लोभ मन को दूषित करते हैं,' तो वह इनका त्याग कर देता है। जब उसे यह समझ आ जाए कि 'द्वेष मन को दूषित करता है,' तो वह इसका त्याग कर देता है। जब उसे यह समझ आ जाए कि 'सुस्ती और आलस्य मन को दूषित करते हैं,' तो वह इनका त्याग कर देता है। जब उसे यह समझ आ जाए कि 'बेचैनी और पश्चाताप

मन को दूषित करते हैं,' तो वह इनका त्याग कर देता है। जब उसे यह समझ आ जाए कि 'संदेह मन को दूषित करता है,' तो वह इसका त्याग कर देता है।"

"हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य ने यह समझ लिया हो कि 'लालसा और अधर्मी लोभ मन को दूषित करते हैं' और उनका त्याग कर दिया हो; जब उसने यह समझ लिया हो कि 'द्वेष... सुस्ती और उनींदापन... बेचैनी और पश्चाताप... संदेह मन को दूषित करते हैं' और उनका त्याग कर दिया हो, तब वह महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला, व्यापक पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला, सर्वव्यापी दृष्टि वाला श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है। इसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा) कहा जाता है।"

"ये चार [अन्य] चीजें हैं जो उन चार चीजों को प्राप्त करने की ओर ले जाती हैं जिनकी कामना की जाती है, जो वांछनीय हैं, जो सुखद हैं और जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं।"

"ऊर्जावान परिश्रम से अर्जित धन, भुजाओं के बल से संचित धन, माथे के पसीने से अर्जित धन, न्यायसंगत ढंग से प्राप्त धन से, वह श्रेष्ठ शिष्य चार पुण्य कर्म करता है। वे चार कर्म कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, गृहस्थ, परिश्रमपूर्वक अर्जित धन से... उचित परिश्रम से कमाए गए धन से, श्रेष्ठ शिष्य स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में अपना भरण-पोषण करता है; वह अपने माता-पिता को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण करता है; वह अपनी पत्नी और बच्चों, अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण करता है; वह अपने मित्रों और साथियों को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण करता है। यह धन के सदुपयोग का पहला उदाहरण है, जिसका उचित उपयोग किया गया है और एक योग्य उद्देश्य के लिए प्रयोग किया गया है।"

(2) "फिर, परिश्रमपूर्वक और धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य आग, बाढ़, राजाओं, चोरों या अप्रिय उत्तराधिकारियों से होने वाली हानियों से बचाव के लिए प्रावधान करता है; वह स्वयं को उनसे सुरक्षित रखता है: यह धन का दूसरा उदाहरण है जिसका सदुपयोग किसी योग्य कार्य के लिए किया गया है।"

(3) "फिर, परिश्रमपूर्वक और धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य पाँच आहुति देता है: रिश्तेदारों, अतिथियों, पूर्वजों, राजा और देवताओं (देवदूतों) को। यह धन के सदुपयोग का तीसरा उदाहरण है... एक नेक कार्य के लिए।"

(4) "फिर, परिश्रमपूर्वक अर्जित धन से... धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भिक्षा का एक उत्थानकारी अर्पण स्थापित करता है - एक ऐसा अर्पण जो स्वर्गीय है, 746 सुखदायी है, स्वर्ग की ओर ले जाता है - जो नशा और आलस्य से दूर रहते हैं, जो धैर्य और नम्रता में स्थिर रहते हैं, जो स्वयं को वश में रखते हैं, शांत करते हैं और निर्वाण के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करते हैं। यह धन के सदुपयोग का चौथा उदाहरण है, जिसका उचित उपयोग किया गया है और एक योग्य कार्य के लिए प्रयोग किया गया है।"

"हे गृहस्थ, ये चार पुण्य कर्म हैं जो एक श्रेष्ठ शिष्य परिश्रमपूर्वक अर्जित धन से करता है, जो उसने अपने परिश्रम से, अपनी भुजाओं के बल से, अपने माथे के पसीने से कमाया है, जो उचित रूप से अर्जित धन है। जब कोई व्यक्ति इन चार पुण्य कर्मों के अलावा किसी अन्य कार्य पर अपना धन व्यतीत करता है, तो वह धन व्यर्थ हो जाता है, फिजूलखर्ची हो जाती है, व्यर्थ खर्च हो जाता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति इन चार पुण्य कर्मों पर अपना धन व्यतीत करता है, तो वह धन उचित उपयोग में लाया जाता है, उचित प्रयोग में लाया जाता है, एक पुण्य कार्य के लिए उपयोग किया जाता है।"

मैंने धन का आनंद लिया है,

अपने आश्रितों का भरण-पोषण किया है

और विपत्तियों पर विजय प्राप्त की है।

मैंने उत्थानकारी दान दिया है

और पाँचों आहुतियाँ संपन्न की हैं।

मैंने गुणी भिक्षुओं और

संयमी ब्रह्मचारियों की सेवा की है। 747

"मैंने वह सब उद्देश्य प्राप्त कर लिया है जो

घर पर रहने वाले एक बुद्धिमान व्यक्ति को

धन की इच्छा रखने में हो सकता है;

मैंने जो किया है उससे मुझे कोई पछतावा नहीं है।"

इस बात को याद करके मनुष्य

श्रेष्ठ धर्म में दृढ़ रहता है।

इस जीवन में लोग उसकी प्रशंसा करते हैं

और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।

---

62 स्वतंत्रता मोर्चा ऋण (अनन्या)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

गृहस्थ, समय और अवसर के अनुसार, इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले एक सामान्य व्यक्ति को चार प्रकार के सुख प्राप्त हो सकते हैं। वे चार कौन से हैं? स्वामित्व का सुख, आनंद का सुख, ऋणमुक्ति का सुख और निष्कलंकता का सुख। 748

(1) "हे गृहस्थ, स्वामित्व का सुख क्या है? यहाँ, एक कुलवासी ने अथक परिश्रम से धन अर्जित किया है, अपनी भुजाओं के बल से इकट्ठा किया है, अपने माथे के पसीने से कमाया है, यह धन उचित रूप से अर्जित किया गया है। जब वह सोचता है, मैंने अथक परिश्रम से धन अर्जित किया है... उचित रूप से अर्जित किया है, तो उसे सुख और आनंद का अनुभव होता है। इसे ही स्वामित्व का सुख कहते हैं।"

(2) "आनंद का सुख क्या है? यहाँ, एक कुलवासी अपने परिश्रम से अर्जित धन का आनंद लेता है, जो उसकी भुजाओं के बल से, उसके माथे के पसीने से कमाया गया है, जो उचित रूप से अर्जित किया गया है, और उससे वह अपने धन का आनंद लेता है और पुण्य कर्म करता है। जब वह सोचता है, 'मैं अपने परिश्रम से अर्जित धन का आनंद लेता हूँ और पुण्य कर्म करता हूँ,', तो उसे सुख और आनंद का अनुभव होता है। इसे ही आनंद का सुख कहते हैं।"

(3) "ऋण से मुक्ति का सुख क्या है? यहाँ, एक कुलवासी पर किसी का कोई ऋण नहीं है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। जब वह सोचता है, 'मुझ पर किसी का कोई ऋण नहीं है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा', तो उसे सुख और आनंद का अनुभव होता है। इसे ही ऋण से मुक्ति का सुख कहते हैं।"

(4) "और निष्पापता का सुख क्या है? हे गृहस्थ, देखो, एक श्रेष्ठ शिष्य निष्पाप शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्मों से संपन्न है। [70] जब वह सोचता है, मैं निष्पाप शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्मों से संपन्न हूँ, तो उसे सुख और आनंद का अनुभव होता है। इसे निष्पापता का सुख कहते हैं।"

"इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला एक सामान्य व्यक्ति समय और अवसर के अनुसार चार प्रकार के सुख प्राप्त कर सकता है।"

ऋण से मुक्ति की खुशी को जानने के बाद,

व्यक्ति को स्वामित्व की खुशी को याद करना चाहिए।

आनंद का अनुभव करते हुए,

मनुष्य तब पन्ना (दिव्य ज्ञान) से चीजों को स्पष्ट रूप से देख पाता है।

चीजों को स्पष्ट रूप से देखते हुए, बुद्धिमान व्यक्ति

दोनों प्रकार के सुखों को जानता है।

दूसरा,

निर्दोषता के आनंद के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। 751

---

63 ब्रह्मा 752 के साथ

(1) भिक्षुओं, वे परिवार ब्रह्मा के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं। (2) वे परिवार प्रथम गुरुओं के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं। (3) वे परिवार प्रथम देवताओं के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं। (4) वे परिवार दानयोग्य लोगों के साथ निवास करते हैं जहाँ घर में माता-पिता का आदर उनके बच्चे करते हैं।

"'ब्रह्म, भिक्षुओं' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। 'प्रथम गुरु' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। 'प्रथम देवता' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। 'दान योग्य' माता-पिता के लिए एक उपाधि है। और क्यों? माता-पिता अपने बच्चों के लिए बहुत सहायक होते हैं: वे उनका पालन-पोषण करते हैं, उन्हें दुनिया दिखाते हैं।"

माता-पिता को "ब्रह्म"

और "प्रथम गुरु" कहा जाता है। वे अपने बच्चों के प्रति करुणा रखते हैं

, इसलिए वे अपने बच्चों से उपहार प्राप्त करने के योग्य हैं । अतः एक बुद्धिमान व्यक्ति को उनका आदर करना चाहिए और उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

हमें उन्हें भोजन और पेय पदार्थ,

कपड़े और बिस्तर उपलब्ध कराने चाहिए,

उनकी मालिश और स्नान कराना चाहिए

और उनके पैर धोने चाहिए।

माता-पिता की उस सेवा के कारण ,

बुद्धिमान लोग इस संसार में प्रशंसा पाते हैं

और मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनंदित होते हैं। [71]

---

64 हेल 753 (निरया)

भिक्षुओं, जिसमें चार गुण होते हैं, उसे नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है और झूठ बोलता है। जिसमें ये चार गुण होते हैं, उसे नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

जीवन का विनाश करना, बिना माँगे वस्तुएँ लेना,

झूठी बातें बोलना

और दूसरों की पत्नियों के साथ व्यभिचार करना:

बुद्धिमान लोग ऐसे कृत्यों की प्रशंसा नहीं करते।

---

65 प्रपत्र (रूपा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) वह जो रूप के आधार पर निर्णय लेता है, जिसका विश्वास रूप पर आधारित होता है। (2) वह जो वाणी के आधार पर निर्णय लेता है, जिसका विश्वास वाणी पर आधारित होता है। (3) वह जो तपस्या के आधार पर निर्णय लेता है, जिसका विश्वास तपस्या पर आधारित होता है। (4) वह जो धर्म के आधार पर निर्णय लेता है, जिसका विश्वास धर्म पर आधारित होता है। संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

जो लोग रूप के आधार पर निर्णय लेते हैं

और जो वाणी के आधार पर अनुसरण करते हैं, वे

कामवासना और राग के वश में आ चुके हैं;

वे लोग नहीं समझते। 755

जो भीतर का ज्ञान नहीं रखता

और बाहर का दृश्य नहीं देखता, वह '

चारों ओर से अवरुद्ध एक मूर्ख की तरह है, जो

वाणी के वश में आ जाता है।'

जो व्यक्ति भीतरी बातों को नहीं जानता,

फिर भी बाहरी रूप को स्पष्ट रूप से देखता है,

फल को बाहरी रूप से देखकर,

वह भी वाणी के बहकावे में आ जाता है।

लेकिन जो व्यक्ति भीतर की बातों को समझता है और जो बिना किसी बाधा के

बाहर की चीजों को स्पष्ट रूप से देखता है , वह बातों से बहक नहीं जाता।

---

66 कामवासना के साथ (सरगा)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? कामवासना (राग), घृणा करने वाले, भ्रमित और अहंकारी। संसार में यही चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।" [72]

मोहक चीजों से मोहित प्राणी,

जो कुछ भी मनभावन लगता है उसमें आनंद की तलाश करते हैं,

मोह से बंधे नीच प्राणी, 756

अपने बंधन को बढ़ाते हैं।

अज्ञानी लोग कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) से उत्पन्न

हानिकारक (अकुशल) कर्म (कर्म/कार्य) करते हैं: कष्टदायक कर्म जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं।

अज्ञान से विवश,

अंधे, दृष्टिहीन लोग,

अपने स्वभाव के अनुसार,

इस बारे में इस प्रकार नहीं सोचते। 757

67 सांप (अहिराज)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उसी समय सावत्थी में एक भिक्षु को सांप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। 758 तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा: "भंते, सावत्थी में एक भिक्षु को सांप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई।"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “हे भिक्षुओं, उस भिक्षु ने प्रेम और करुणा (मेट्टा) की भावना से सर्पों के चारों वंशों को व्याप्त नहीं किया। यदि उसने ऐसा किया होता, तो उसे सर्प ने न काटा होता और उसकी मृत्यु न हुई होती। वे चार वंश कौन से हैं? विरुपाक्ख वंश, एरापथ वंश, छब्यपुत्त वंश और काला गौतम वंश। निश्चय ही, उस भिक्षु ने प्रेम और करुणा की भावना से सर्पों के इन चारों वंशों को व्याप्त नहीं किया। यदि उसने ऐसा किया होता, तो उसे सर्प ने न काटा होता और उसकी मृत्यु न हुई होती।”

"मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ कि आप अपनी सुरक्षा, बचाव और संरक्षण के लिए इन चारों नाग वंशों में प्रेम और करुणा (मेट्टा) का भाव व्याप्त करें।"

मुझे विरुपाक्खा नागों के प्रति प्रेम और दया है;

एरापथ नागों के प्रति भी मेरे मन में प्रेम है;

मुझे छब्यपुत्त नागों के प्रति प्रेम और दया है;

काले गौतम नागों के प्रति भी मेरे मन में प्रेम है।

मैं बिना पैरों वाले प्राणियों के प्रति प्रेम और दया भाव रखता हूँ;

दो पैरों वाले प्राणियों के प्रति भी मेरे मन में प्रेम और दया भाव है।

मैं चार पैरों वाले प्राणियों के प्रति प्रेम और दया भाव रखता हूँ;

अनेक पैरों वाले प्राणियों के प्रति भी मेरे मन में प्रेम और दया भाव है।

मुझे निराकार प्राणियों से हानि न हो;

दो पैरों वाले प्राणियों से मुझे कोई हानि न हो;

चार पैरों वाले प्राणियों से मुझे कोई हानि न हो;

अनेक पैरों वाले प्राणियों से मुझे कोई हानि न हो।

सभी प्राणियों, सभी जीवित चीजों,

सभी जीवों, सभी को

सौभाग्य प्राप्त हो;

किसी पर भी कोई विपत्ति न आए।

बुद्ध असीम हैं, धम्म असीम है,

संघ असीम है; रेंगने वाले जीव, सर्प, बिच्छू,

कनखजूरे, मकड़ी, छिपकली और चूहे सीमित हैं। मैंने

सुरक्षा बनाई है, मैंने रक्षा की है। जीव पीछे हटें। मैं

भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करता हूँ, सात पूर्णतः

प्रबुद्धों को प्रणाम करता हूँ। 760

---

68 देवदत्ता

एक बार देवदत्त के चले जाने के तुरंत बाद भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। 761 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने देवदत्त के संदर्भ में भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, देवदत्त की उपलब्धि, सम्मान और प्रशंसा ही उसके अपने विनाश का कारण बनी। (1) जिस प्रकार केले का वृक्ष फल देकर अपना ही विनाश कर लेता है, उसी प्रकार देवदत्त की उपलब्धि, सम्मान और प्रशंसा ही उसके अपने विनाश का कारण बनी। (2) जिस प्रकार बाँस फल देकर अपना ही विनाश कर लेता है, उसी प्रकार देवदत्त की उपलब्धि, सम्मान और प्रशंसा ही उसके अपने विनाश का कारण बनी। (3) जिस प्रकार सरकंडा फल देकर अपना ही विनाश कर लेता है, उसी प्रकार देवदत्त की उपलब्धि, सम्मान और प्रशंसा ही उसके अपने विनाश का कारण बनी। (4) जिस प्रकार खच्चर गर्भवती होकर अपना ही विनाश कर लेती है, उसी प्रकार देवदत्त की उपलब्धि, सम्मान और प्रशंसा ही उसके अपने विनाश का कारण बनी।"

जैसे इसका फल केले को नष्ट कर देता है,

जैसे इसका फल बांस और नरकट को नष्ट कर देता है,

जैसे इसका भ्रूण खच्चर को नष्ट कर देता है,

वैसे ही सम्मान दुष्ट मनुष्य को नष्ट कर देता है।

---

69. प्रयास (पधाना)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार के प्रयास हैं। कौन से चार? संयम द्वारा प्रयास, त्याग द्वारा प्रयास, विकास द्वारा प्रयास और संरक्षण द्वारा प्रयास।

(1) "हे भिक्षुओं, संयम द्वारा प्रयास करना क्या है? यहाँ, भिक्षु अजन्मे अकुशल गुणों (धम्म) के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे संयम द्वारा प्रयास करना कहते हैं।"

(2) "त्याग द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु उत्पन्न बुरे (अकुशल) गुणों के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे त्याग द्वारा प्रयास कहा जाता है।"

(3) "और विकास द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु अविकसित लाभकारी (कुशल) गुणों के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे ही विकास द्वारा प्रयास कहा जाता है।"

(4) "और संरक्षण द्वारा प्रयास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे संरक्षण द्वारा प्रयास कहा जाता है।"

ये चार प्रयास हैं।

संयम और त्याग,

विकास और संरक्षण: सूर्य के सन्यासी द्वारा सिखाए गए

इन चार प्रयासों के माध्यम से, जो भिक्षु इनमें उत्साही होता है, वह दुखों का नाश प्राप्त कर सकता है।

---

70 अधर्मी 762 (अधम्मिक सं. अधर्मिक)

भिक्षुओं, जब राजा अधर्मी होते हैं, 763 तो राजसी सामंत अधर्मी हो जाते हैं। जब राजसी सामंत अधर्मी होते हैं, तो ब्राह्मण और गृहस्थ अधर्मी हो जाते हैं। 764 जब ब्राह्मण और गृहस्थ अधर्मी होते हैं, तो नगरों और गांवों के लोग अधर्मी हो जाते हैं। जब नगरों और गांवों के लोग अधर्मी होते हैं, तो सूर्य और चंद्रमा अपनी राह से भटक जाते हैं। जब सूर्य और चंद्रमा अपनी राह से भटक जाते हैं, तो नक्षत्र और तारे अपनी राह से भटक जाते हैं। जब नक्षत्र और तारे अपनी राह से भटक जाते हैं, तो दिन और रात अपनी राह से भटक जाते हैं... महीने और पखवाड़े अपनी राह से भटक जाते हैं... ऋतुएँ और वर्ष अपनी राह से भटक जाते हैं। जब ऋतुएँ और वर्ष अपनी राह से भटक जाते हैं, तो हवाएँ अनियमित रूप से चलने लगती हैं। जब हवाएँ अनियमित रूप से चलने लगती हैं, तो देवता (देवदूत) नाराज हो जाते हैं। जब देवता (देवदूत) नाराज हो जाते हैं, तो पर्याप्त वर्षा नहीं होती। जब पर्याप्त वर्षा नहीं होती, तो फसलें अनियमित रूप से पकती हैं। जब लोग पकी हुई फसलें खाते हैं, तो अनियमित रूप से, वे अल्पायु, बदसूरत, कमजोर और बीमार हो जाते हैं। 765

भिक्षुओं, जब राजा धर्मपरायण होते हैं, तो राजसी सामंत धर्मपरायण हो जाते हैं। जब राजसी सामंत धर्मपरायण होते हैं, तो ब्राह्मण और गृहस्थ धर्मपरायण हो जाते हैं। जब ब्राह्मण और गृहस्थ धर्मपरायण होते हैं, तो नगर और ग्रामीण क्षेत्र के लोग धर्मपरायण हो जाते हैं। जब नगर और ग्रामीण क्षेत्र के लोग धर्मपरायण होते हैं, तो सूर्य और चंद्रमा अपने मार्ग पर चलते हैं। जब सूर्य और चंद्रमा अपने मार्ग पर चलते हैं, तो नक्षत्र और तारे अपने मार्ग पर चलते हैं। जब नक्षत्र और तारे अपने मार्ग पर चलते हैं, तो दिन और रात अपने मार्ग पर चलते हैं... महीने और पखवाड़े अपने मार्ग पर चलते हैं... ऋतुएँ और वर्ष अपने मार्ग पर चलते हैं। जब ऋतुएँ और वर्ष अपने मार्ग पर चलते हैं, तो हवाएँ नियमित रूप से और स्थिर रूप से चलती हैं। जब हवाएँ नियमित रूप से और स्थिर रूप से चलती हैं, तो देवता (देवदूत) क्रोधित नहीं होते। जब देवता (देवदूत) क्रोधित नहीं होते, तो पर्याप्त वर्षा होती है। जब पर्याप्त वर्षा होती है, तो फसलें समय पर पकती हैं। जब लोग समय पर पकी हुई फसलें खाते हैं, तो वे दीर्घायु होते हैं। सुंदर, मजबूत और स्वस्थ।"

जब मवेशी किसी नदी को पार कर रहे होते हैं, यदि मुखिया बैल टेढ़ा-मेढ़ा जाता है, तो बाकी सभी बैल भी टेढ़े-मेढ़े जाते हैं क्योंकि उनका नेता टेढ़ा-मेढ़ा गया है।

इसी प्रकार, मनुष्यों में भी,

जब मुखिया माने जाने वाला व्यक्ति

अधर्मी व्यवहार करता है, तो

अन्य लोग भी ऐसा ही करते हैं। [76] यदि राजा अधर्मी हो तो

पूरा राज्य निराश हो जाता है ।

जब मवेशी किसी जलधारा को पार कर रहे हों,

यदि मुखिया बैल सीधे पार चला जाता है, तो

बाकी सभी बैल भी सीधे पार चले जाते हैं

क्योंकि उनका नेता सीधा चला गया है।

इसी प्रकार, मनुष्यों में भी,

जब मुखिया

उचित आचरण करता है, तो

अन्य लोग भी वैसा ही करते हैं। यदि राजा धर्मी हो, तो

सारा राज्य प्रसन्न होता है ।

III. अचूक (अपन्नक)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

71. प्रयास (पधाना)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु अचूक मार्ग का अनुसरण कर रहा है और उसने दोषों के नाश की नींव रखी है। 766 वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु गुणी, विद्वान, ऊर्जावान और बुद्धिमान है। इन चार गुणों से युक्त भिक्षु अचूक मार्ग का अनुसरण कर रहा है और उसने दोषों के नाश की नींव रखी है।

---

72 सम्यक दृष्टि (सम्मा-दिट्ठी सं. सम्यक दृष्टि)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु अचूक मार्ग का अनुसरण कर रहा है और उसने दोषों के नाश की नींव रखी है। वे चार गुण कौन से हैं? त्याग का विचार, सद्भावना का विचार, अहिंसा का विचार और सही दृष्टिकोण। 767 इन चार गुणों से युक्त भिक्षु [77] अचूक मार्ग का अनुसरण कर रहा है और उसने दोषों के नाश की नींव रखी है।

---

73. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सतपुरुष)

"भिक्षुओं, चार गुणों वाला व्यक्ति बुरा समझा जा सकता है। वे चार गुण कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक बुरा व्यक्ति दूसरों के दोषों को बिना पूछे भी उजागर कर देता है, तो पूछे जाने पर वह कितना अधिक उजागर करेगा। परन्तु जब उससे पूछा जाता है, तो प्रश्नों के द्वारा प्रेरित होकर वह दूसरों के दोषों के बारे में बिना किसी अंतराल या चूक के, पूर्णतः और विस्तार से बताता है। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति बुरा है।

(2) "एक बुरा व्यक्ति दूसरों के गुणों का खुलासा तब भी नहीं करता जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तो बिना पूछे तो वह और भी कम करता है। लेकिन जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तो भले ही उसे प्रश्नों द्वारा प्रेरित किया जाए, वह दूसरों के गुणों के बारे में अधूरी जानकारी और कमियों के साथ बोलता है, पूरी तरह या विस्तार से नहीं। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति बुरा है।'"

(3) "फिर, एक बुरा व्यक्ति अपने दोषों को पूछे जाने पर भी प्रकट नहीं करता, तो बिना पूछे तो और भी कम। लेकिन जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तो भले ही प्रश्नों द्वारा प्रेरित किया जाए, वह अपने दोषों के बारे में अपूर्णता और चूक के साथ बोलता है, पूर्ण रूप से या विस्तार से नहीं। इससे यह समझा जा सकता है: यह व्यक्ति एक बुरा व्यक्ति है।"

(4) "एक बुरा व्यक्ति अपने गुणों का खुलासा तब भी कर देता है जब उससे पूछा नहीं जाता, तो पूछे जाने पर वह और भी अधिक करता है। लेकिन जब उससे पूछा जाता है, तो प्रश्नों के माध्यम से वह बिना किसी अंतराल या चूक के, पूरी तरह और विस्तार से अपने गुणों के बारे में बताता है। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति बुरा है।'"

"इन चार गुणों वाले व्यक्ति को बुरा व्यक्ति समझा जा सकता है।"

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति चार गुणों से युक्त होता है, उसे अच्छा व्यक्ति समझा जा सकता है। वे चार गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, एक अच्छा व्यक्ति पूछे जाने पर भी दूसरों के दोषों का खुलासा नहीं करता, तो बिना पूछे तो और भी कम। परन्तु जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तब, यद्यपि प्रश्नों द्वारा प्रेरित होकर, वह दूसरों के दोषों के बारे में अंतराल और चूक के साथ बोलता है, [78] पूरी तरह या विस्तार से नहीं। इससे समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति एक अच्छा व्यक्ति है।'

(2) "फिर, एक अच्छा व्यक्ति दूसरों के गुणों को बिना पूछे भी प्रकट करता है, तो पूछे जाने पर वह कितना अधिक प्रकट करेगा। लेकिन जब उससे उनके गुणों के बारे में पूछा जाता है, तो वह प्रश्नों के माध्यम से बिना किसी अंतराल या चूक के, पूरी तरह और विस्तार से दूसरों के गुणों के बारे में बताता है। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति एक अच्छा इंसान है।'"

(3) "फिर, एक अच्छा व्यक्ति अपने दोषों को पूछे जाने पर भी प्रकट करता है, तो पूछे जाने पर कितना अधिक। लेकिन जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तो प्रश्नों के माध्यम से वह बिना किसी अंतराल या चूक के, पूरी तरह और विस्तार से अपने दोषों के बारे में बताता है। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति एक अच्छा इंसान है।'"

(4) "फिर, एक अच्छा व्यक्ति अपने गुणों का खुलासा पूछे जाने पर भी नहीं करता, तो बिना पूछे तो और भी कम। लेकिन जब उससे उनके बारे में पूछा जाता है, तो प्रश्नों के माध्यम से वह अपने गुणों के बारे में अधूरी जानकारी और कम शब्दों में बताता है, पूरी तरह या विस्तार से नहीं। इससे यह समझा जा सकता है: 'यह व्यक्ति अच्छा है।'"

"इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को अच्छा व्यक्ति समझा जा सकता है।"

भिक्षु (मठवासी), 768 जब दुल्हन को पहली बार घर में लाया जाता है, चाहे रात हो या दिन, तो शुरुआत में वह अपनी सास, ससुर, पति और यहाँ तक कि दासों, श्रमिकों और नौकरों के प्रति तीव्र नैतिक शर्म और भय की भावना रखती है। लेकिन कुछ समय बाद, उनके साथ रहने और घनिष्ठता के परिणामस्वरूप, वह अपनी सास, ससुर और पति से कहती है: 'चले जाओ! तुम्हें क्या पता?'

"इसी प्रकार, जब यहाँ कोई भिक्षु गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, चाहे रात में हो या दिन में, तो प्रारंभ में वह भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों, स्त्री गृहस्थ अनुयायियों और यहाँ तक कि मठ के कर्मचारियों और नौसिखियों के प्रति तीव्र नैतिक लज्जा और भय की भावना रखता है। परन्तु कुछ समय बाद, उनके साथ रहने और घनिष्ठता के फलस्वरूप, वह अपने गुरु और उपदेशक से भी कहता है: 'चले जाओ! तुम्हें क्या पता?'"

अत: हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम नवविवाहित दुल्हन के समान मन से निवास करेंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

74 सर्वोपरि (1) (अग्गा1 संस्कृत आगरा)

भिक्षुओं, ये चार बातें सर्वोपरि हैं: कौन सी चार? सर्वोपरि सद्गुणपूर्ण आचरण, सर्वोपरि समाधि, सर्वोपरि ज्ञान और सर्वोपरि मुक्ति। यही चार बातें सर्वोपरि हैं।

---

75 सर्वोपरि (2)(अग्गा2 संस्कृत आगरा)

"भिक्षुओं, ये चार बातें सर्वोपरि हैं। वे कौन सी चार बातें हैं? सर्वोपरि रूप, सर्वोपरि वेदना, सर्वोपरि अनुभूतियाँ और सर्वोपरि अवस्थाएँ। यही चार बातें सर्वोपरि हैं।" 769

---

76 कुसिनारा

एक बार भगवान (बुद्ध) उपवत्तना में मल्लों के साल के वन में दो साल के पेड़ों के बीच कुसिनारा में निवास कर रहे थे, जब उन्हें अंतिम निर्वाण प्राप्त हुआ था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, ऐसा हो सकता है कि किसी एक भिक्षु को भी बुद्ध, धम्म या संघ, मार्ग या अभ्यास के बारे में कुछ संदेह या अनिश्चितता हो। 770 तो पूछो, भिक्षुओं। बाद में पश्चाताप मत करो, यह सोचकर कि 'हमारे गुरु हमारे सामने उपस्थित थे, फिर भी हम उनकी उपस्थिति में भगवान (बुद्ध) से प्रश्न नहीं कर सके।'

यह सुनकर भिक्षु चुप हो गए। दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया... और तीसरी बार भी भिक्षु चुप रहे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, हो सकता है कि आप गुरु के प्रति आदर के कारण प्रश्न न पूछें। तो अपने प्रश्न किसी मित्र से पूछें।" यह सुनकर भी भिक्षु चुप रहे। तब पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, भंते! मुझे विश्वास है कि इस संघ में एक भी भिक्षु ऐसा नहीं है जिसे बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या साधना के बारे में कोई संदेह या अनिश्चितता हो।"

"आनंद, तुम विश्वास से बोल रहे हो, लेकिन तथागत (बुद्ध) यह बात निःसंदेह जानते हैं। क्योंकि इन पाँच सौ भिक्षुओं में से सबसे छोटा भिक्षु भी सात जन्मों का मार्ग प्रशस्त करने वाला (सोतपत्ति) है, जो निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं है, जिसका भाग्य निश्चित है और जो ज्ञानोदय की ओर अग्रसर है।"

---

77 अकल्पनीय मामले (अचिन्तय्या)

भिक्षुओं, ये चार अकल्पनीय विषय हैं 771 जिनका विचार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; जो इनका विचार करने का प्रयास करता है, उसे या तो पागलपन या निराशा का सामना करना पड़ता है। वे चार कौन से हैं? (1) बुद्धों का क्षेत्र एक अकल्पनीय विषय है जिसका विचार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; जो इसका विचार करने का प्रयास करता है, उसे या तो पागलपन या निराशा का सामना करना पड़ता है। (2) ध्यान में लीन व्यक्ति का क्षेत्र एक अकल्पनीय विषय है। (3) कर्मों का परिणाम एक अकल्पनीय विषय है। (4) संसार के बारे में चिंतन एक अकल्पनीय विषय है जिसका विचार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; जो इसका विचार करने का प्रयास करता है, उसे या तो पागलपन या निराशा का सामना करना पड़ता है। 772 ये चार अकल्पनीय विषय हैं जिनका विचार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; जो इनका विचार करने का प्रयास करता है, उसे या तो पागलपन या निराशा का सामना करना पड़ता है।

---

78 प्रसाद (दक्षिणा बिना दक्षिणा)

भिक्षुओं, भेंटों के ये चार शुद्धिकरण हैं। 773 वे चार क्या हैं? (1) एक भेंट है जो दाता के माध्यम से शुद्ध होती है लेकिन प्राप्तकर्ता के माध्यम से नहीं; (2) एक भेंट है जो प्राप्तकर्ता के माध्यम से शुद्ध होती है लेकिन दाता के माध्यम से नहीं; (3) एक भेंट है जो न तो दाता और न ही प्राप्तकर्ता के माध्यम से शुद्ध होती है; (4) एक भेंट है जो दाता और प्राप्तकर्ता दोनों के माध्यम से शुद्ध होती है। [81]

(1) "हे भिक्षुओं, दानदाता के द्वारा दान कैसे शुद्ध होता है, जबकि प्राप्तकर्ता के द्वारा नहीं? यहाँ दानदाता गुणी और अच्छे चरित्र का है, परन्तु प्राप्तकर्ता अनैतिक और बुरे चरित्र के हैं। इसी प्रकार दानदाता के द्वारा दान शुद्ध होता है, जबकि प्राप्तकर्ता के द्वारा नहीं।"

(2) “और भेंट प्राप्तकर्ताओं के द्वारा कैसे शुद्ध होती है, दाता के द्वारा नहीं? यहाँ, दाता अनैतिक और बुरे चरित्र का है, परन्तु प्राप्तकर्ता गुणी और अच्छे चरित्र के हैं। इस प्रकार भेंट प्राप्तकर्ताओं के द्वारा शुद्ध होती है, दाता के द्वारा नहीं।”

(3) "और कोई भेंट दाता या प्राप्तकर्ता के द्वारा कैसे शुद्ध नहीं होती? यहाँ, दाता अनैतिक और बुरे चरित्र का है, और प्राप्तकर्ता भी अनैतिक और बुरे चरित्र के हैं। इस प्रकार कोई भेंट दाता या प्राप्तकर्ता के द्वारा शुद्ध नहीं होती।"

(4) "दानदाता और प्राप्तकर्ता दोनों के माध्यम से भेंट कैसे शुद्ध होती है? यहाँ, दानदाता गुणी और अच्छे चरित्र का है, और प्राप्तकर्ता भी गुणी और अच्छे चरित्र के हैं। इस प्रकार दानदाता और प्राप्तकर्ता दोनों के माध्यम से भेंट शुद्ध होती है।"

"ये चार प्रकार की भेंटों का शुद्धिकरण है।"

---

79 व्यवसाय (वनिज्जा सं. वाणीज्य)

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, (1) ऐसा क्यों है कि यहाँ एक व्यक्ति के लिए उसका व्यवसाय असफल (विपत्ति) हो जाता है? (2) ऐसा क्यों है कि दूसरे के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता? (3) ऐसा क्यों है कि किसी अन्य के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं को पूरा करता है? (4) और ऐसा क्यों है कि किसी अन्य के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं से कहीं अधिक सफल होता है?"

(1) "यहाँ, सारिपुत्त, कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाता है और उसे अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ माँगने के लिए आमंत्रित करता है, [82] परन्तु उसे वह वस्तु नहीं देता जो माँगी गई थी। जब वह वहाँ से चला जाता है, यदि वह इस संसार में वापस आता है, तो वह जो भी व्यवसाय करता है, वह असफल (विपत्ति) हो जाता है।"

(2) कोई दूसरा व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाता है और उसे अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ माँगने के लिए आमंत्रित करता है। वह उसे वस्तुएँ तो दे देता है, पर उसकी अपेक्षाएँ पूरी नहीं करता। जब वह वहाँ से इस दुनिया से चला जाता है, और यदि वह इस दुनिया में वापस आता है, तो वह जो भी काम करता है, वह उसकी अपेक्षाएँ पूरी नहीं करता।

(3) कोई दूसरा व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाता है और उसे अपनी आवश्यकता की वस्तु मांगने के लिए आमंत्रित करता है। वह उसे वह वस्तु देता है और उसकी अपेक्षाओं को पूरा करता है। जब वह वहां से इस दुनिया से चला जाता है, यदि वह इस दुनिया में वापस आता है, तो वह जो भी व्यवसाय करता है, वह उसकी अपेक्षाओं को पूरा करता है।

(4) कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाता है और उसे अपनी आवश्यकता की वस्तु मांगने के लिए आमंत्रित करता है। वह उसे वह वस्तु प्रदान करता है और उसकी अपेक्षाओं से कहीं अधिक देता है। जब वह वहां से इस दुनिया से चला जाता है, यदि वह इस दुनिया में वापस आता है, तो वह जो भी व्यवसाय करता है, वह उसकी अपेक्षाओं से कहीं अधिक सफल होता है।

"यही कारण है कि यहाँ किसी एक व्यक्ति का व्यवसाय असफल (विपत्ति) हो जाता है, किसी दूसरे व्यक्ति के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता, किसी तीसरे व्यक्ति के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं को पूरा करता है, और किसी तीसरे व्यक्ति के लिए उसी प्रकार का व्यवसाय उसकी अपेक्षाओं से कहीं अधिक सफल होता है।"

---

80 कंबोजा

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"भंते, ऐसा क्यों है कि महिलाएं परिषद में नहीं बैठतीं, न ही व्यापार करती हैं, और न ही कंबोजा जाती हैं?" 774

"आनंद, स्त्रियाँ क्रोधशील होती हैं; ईर्ष्यालु होती हैं; कंजूस होती हैं; नासमझ होती हैं। इसीलिए स्त्रियाँ सभाओं में नहीं बैठतीं, व्यापार में शामिल नहीं होतीं और न ही कंबोजा जाती हैं।"

चतुर्थ. अडिग (मैकला संस. अकला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

81 जीवन का विनाश (पानीपत सं. प्राणि-पाता)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? एक जीवन का नाश करता है, बिना दी हुई वस्तुएँ लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है और झूठ बोलता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? वह व्यक्ति जीवन-नष्ट करने से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से और झूठी वाणी से विमुख रहता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

82 असत्य भाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वड़ा)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? झूठ बोलने वाला, फूट डालने वाला, कठोर बोलने वाला और व्यर्थ की बातों में लिप्त रहने वाला। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। [84]

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह व्यक्ति जो झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

83 तिरस्कार (अवन्नाराहा सं. अवरणीय-अराहा)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए, निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करना। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए, प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करना। (3) बिना जाँच-पड़ताल किए, संदेह के योग्य बात पर विश्वास करना। (4) बिना जाँच-पड़ताल किए, विश्वास के योग्य बात पर संदेह करना। इन चारों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? (1) गहन छानबीन करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। (2) गहन छानबीन करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (3) गहन छानबीन करने के बाद, वह संदेह के योग्य मामले पर संदेह करता है। (4) गहन छानबीन करने के बाद, वह विश्वास के योग्य मामले पर विश्वास करता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

84 क्रोध (कोढ़ा स्नस. क्रोध)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? एक व्यक्ति क्रोध को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; एक व्यक्ति निंदा को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; एक व्यक्ति लाभ को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं; एक व्यक्ति सम्मान को महत्व देता है, अच्छे धर्म को नहीं। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। [85]

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह धर्म का सम्मान करता है, क्रोध का नहीं; वह धर्म का सम्मान करता है, निंदा का नहीं; वह धर्म का सम्मान करता है, लाभ का नहीं; वह धर्म का सम्मान करता है, मान का नहीं। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

85 अंधकार 775 (तमोतामा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला, अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाला, प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाला और प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाला।

(1) "हे भिक्षुओं, मनुष्य अंधकार से अंधकार की ओर कैसे बढ़ रहा है? यहाँ, कोई व्यक्ति नीच कुल में पुनर्जन्म लेता है - चांडाल, बाँस श्रमिक, शिकारी, गाड़ी बनाने वाले या फूल बीनने वालों के कुल में 776 - एक ऐसा कुल जो गरीब है, जिसके पास भोजन और पेय कम है, जिसका जीवन यापन कठिन है, जहाँ भोजन और वस्त्र बड़ी मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप, बदसूरत, बौना, बहुत सी बीमारियों से ग्रस्त - अंधा, अपंग, लंगड़ा या लकवाग्रस्त है। उसे भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त नहीं होते; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। फलस्वरूप, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार मनुष्य अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ रहा है।"

(2) “और कोई व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर कैसे अग्रसर होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति एक निम्न परिवार में पुनर्जन्म लेता है... जहाँ भोजन और वस्त्र कठिनाई से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप है... या लकवाग्रस्त है। उसे भोजन... और प्रकाश नहीं मिलता। वह शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगा रहता है। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गीय लोक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार एक व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होता है।”

(3) "और कोई व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर कैसे अग्रसर होता है? [86] यहाँ, कोई व्यक्ति उच्च कुल में पुनर्जन्म लेता है—एक समृद्ध क्षत्रिय कुल, एक समृद्ध ब्राह्मण कुल, या एक समृद्ध गृहस्थ कुल—एक ऐसा कुल जो धनवान है, अपार संपत्ति से युक्त है, प्रचुर मात्रा में सोने-चांदी से युक्त है, प्रचुर खजाने और सामान से युक्त है, प्रचुर धन और अनाज से युक्त है; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। उसे भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त होते हैं; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। फलस्वरूप, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार एक व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर अग्रसर होता है।"

(4) "और कोई व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर कैसे बढ़ता है? यहाँ, कोई व्यक्ति उच्च कुल में पुनर्जन्म लेता है... प्रचुर धन और अनाज के साथ; और वह सुंदर है... अत्यंत सुंदर रंगत वाला। उसे भोजन... और प्रकाश प्राप्त होता है। वह शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगा रहता है। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार एक व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर बढ़ता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

86 बेंट डाउन (ओनाटोनाटा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? जो और अधिक झुकता है, जो झुकता है और उठता है, जो उठता है और उठता है, और जो उठता है और अधिक उठता है।

"ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में पाए जाते हैं।"

---

87 पुत्र (पुत्त)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अविचल तपस्वी, लाल कमल तपस्वी, श्वेत कमल तपस्वी और तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी।"

(1) "और हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति कैसे अविचल तपस्वी होता है? यहाँ, एक भिक्षु मार्ग का अभ्यास करने वाला प्रशिक्षु है जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा रखता है। जैसे [87] एक प्रधान-अभिषेकित क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र—जो अभिषेक के योग्य है लेकिन अभी तक अभिषेक नहीं हुआ है—अविचल अवस्था प्राप्त कर लेता, 779 वैसे ही एक भिक्षु मार्ग का अभ्यास करने वाला प्रशिक्षु है जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा रखता है। 780 इसी प्रकार एक व्यक्ति अविचल तपस्वी होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव कर लिया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है; फिर भी वह शरीर के संपर्क में आकर आठ मुक्ति में निवास नहीं करता। इसी प्रकार एक व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी होता है।" 781

(3) "और कोई व्यक्ति लाल कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव कर लिया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है; और वह शरीर के साथ आठ मुक्ति का संपर्क स्थापित करके उसमें निवास करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति लाल कमल तपस्वी होता है।"

(4) "और तपस्वियों में एक कोमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु आमतौर पर वही वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; 783 वह आमतौर पर वही भिक्षाभोजन ग्रहण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह भिक्षाभोजन ग्रहण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; वह आमतौर पर वही आवास धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह आवास धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; वह आमतौर पर वही औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट की गई हों, शायद ही कभी वह जो उसे विशेष रूप से भेंट न की गई हों। उसके साथी भिक्षु, जिनके साथ वह रहता है, आमतौर पर उसके साथ शरीर, वाणी और मन से सुखद व्यवहार करते हैं, शायद ही कभी अप्रिय व्यवहार करते हैं। वे आमतौर पर उसे वही भेंट करते हैं जो उसे पसंद हो, शायद ही कभी अप्रिय भेंट करते हैं। पित्त, कफ, वायु या इनके संयोजन से उत्पन्न असुविधा; 784 जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न असुविधा; लापरवाहीपूर्ण व्यवहार से उत्पन्न असुविधा; हमले से उत्पन्न असुविधा; या कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न असुविधाएँ—ये उसमें अक्सर उत्पन्न नहीं होतीं। 785 वह शायद ही कभी बीमार होता है। वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन की चार ध्यान अवस्थाओं (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेता है, जो सुखद निवास स्थान हैं। दोषों के नाश के साथ, उसने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति का अनुभव किया है, [88] पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इस प्रकार वह तपस्वियों में एक कोमल तपस्वी है।

भिक्षुओं, यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है: 'वह तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी है', तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है। क्योंकि मैं आमतौर पर वही वस्त्र धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया गया है, शायद ही कभी ऐसा वस्त्र धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही भिक्षाभोजन ग्रहण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया

गया है, शायद ही कभी ऐसा भिक्षाभोजन ग्रहण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही आवास धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया गया है, शायद ही कभी ऐसा आवास धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री का उपयोग करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट की गई हैं, शायद ही कभी ऐसी औषधियों और भोजन सामग्री का उपयोग करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं की गई हों। जिन भिक्षुओं के साथ मैं रहता हूँ, वे आमतौर पर मेरे साथ देह, वाणी और मन से सुखद व्यवहार करते हैं, शायद ही कभी अप्रिय व्यवहार करते हैं। वे आमतौर पर मुझे वही भेंट करते हैं जो मुझे पसंद है, शायद ही कभी अप्रिय भेंट करते हैं। पित्त, कफ, वात या इनके संयोजन से उत्पन्न असुविधा; जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न असुविधा; लापरवाहीपूर्ण व्यवहार से उत्पन्न असुविधा; हमले से उत्पन्न असुविधा; या कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न असुविधाएँ मुझमें अक्सर उत्पन्न नहीं होतीं। मैं शायद ही कभी बीमार पड़ता हूँ। मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन की चार ध्यान अवस्थाएँ प्राप्त कर लेता हूँ, जो सुखद निवास स्थान हैं। दोषों के नाश के साथ, मैंने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, दैवीय ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके मैं उसमें निवास करता हूँ। यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है कि वह तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी है, तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है।

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

88 बंधन (संयोजन)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अविचल तपस्वी, श्वेत कमल तपस्वी, लाल कमल तपस्वी और तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी।

(1) "और हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति कैसे अविचलित तपस्वी होता है? यहाँ, तीन बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, [89] एक भिक्षु धारा-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) होता है, जो अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अविचलित तपस्वी होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने से, एक भिक्षु एक बार जन्म लेने वाला (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) होता है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर आकर दुखों का अंत करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी होता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति लाल कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, एक भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला होता है, जो उस लोक से वापस आए बिना ही वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार एक व्यक्ति लाल कमल तपस्वी होता है।"

(4) "और एक व्यक्ति तपस्वियों में कोमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इस प्रकार एक व्यक्ति तपस्वियों में कोमल तपस्वी होता है।"

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

89 सम्यक दृष्टि (सम्मादिथि सं. सम्यक-दृष्टि)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अविचल तपस्वी, श्वेत कमल तपस्वी, लाल कमल तपस्वी और तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी।

(1) "और हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति कैसे अविचलित तपस्वी होता है? यहाँ, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादे, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही चेतना और सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) वाला होता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अविचलित तपस्वी होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादे, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति वाला होता है; फिर भी वह शरीर से संपर्क में रहकर आठ मुक्ति में निवास नहीं करता। [90] इसी प्रकार एक व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी होता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति लाल कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही इरादे, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति वाला होता है; और वह शरीर के साथ आठ मुक्ति का संपर्क स्थापित करके निवास करता है। इस प्रकार एक व्यक्ति लाल कमल तपस्वी होता है।"

(4) "और कोई व्यक्ति तपस्वियों में कोमल तपस्वी कैसे हो सकता है? यहाँ, एक भिक्षु आमतौर पर वही वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी ऐसा वस्त्र जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो... [जैसा कि 4:87 में है]... यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है: 'वह तपस्वियों में कोमल तपस्वी है,' तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है।"

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।" 786

---

90 समुच्चय (खंड बिना स्कंध)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अविचल तपस्वी, श्वेत कमल तपस्वी, लाल कमल तपस्वी और तपस्वियों में सबसे कोमल तपस्वी।

(1) "और हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति कैसे अविचल तपस्वी होता है? यहाँ, एक भिक्षु (भिक्षु) एक प्रशिक्षु है जिसने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा में रहता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अविचल तपस्वी होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु आसक्ति के अधीन पाँचों स्कंधों में उत्पन्न होने और विलीन होने का अवलोकन (अनुपसी में) करते हुए ध्यान लगाता है: 'ऐसा रूप है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसी अनुभूति (संज्ञा) है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसे व्यक्ति के गुण/व्यवहार (संस्कार) हैं, ऐसा उनका उद्‌गम है, ऐसा उनका क्षय है; ऐसी चेतना है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है'; फिर भी वह आठ मुक्ति के शरीर से संपर्क में रहकर ध्यान नहीं लगाता। इसी प्रकार एक व्यक्ति श्वेत कमल तपस्वी होता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति लाल कमल तपस्वी कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु आसक्ति के अधीन पाँच स्कंधों में उत्पन्न होने और विलीन होने का अवलोकन (अनुपसी में) करते हुए निवास करता है: 'ऐसा रूप है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी अनुभूति (संज्ञा) है... ऐसे लक्षण/व्यवहार (संस्कार) हैं... ऐसी चेतना है, ऐसा इसका उद्‌गम है, [91] ऐसा इसका क्षय है'; और वह शरीर से आठ मुक्ति का संपर्क रखते हुए निवास करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति लाल कमल तपस्वी होता है।"

(4) "और कोई व्यक्ति तपस्वियों में कोमल तपस्वी कैसे हो सकता है? यहाँ, एक भिक्षु आमतौर पर वही वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी ऐसा वस्त्र जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो... [जैसा कि 4:87 में है] ... यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है: 'वह तपस्वियों में कोमल तपस्वी है' तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

V. असुर अनुभाग

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

91 असुर

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? असुर अपने अनुयायियों के साथ, असुर देवों के साथ, देव असुर असुरों के साथ, और देव देव देवों के साथ।

(1) "हे भिक्षुओं, असुरों के दल वाला व्यक्ति असुर कैसे हो सकता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अनैतिक, बुरे चरित्र का है, और उसका दल भी अनैतिक, बुरे चरित्र का है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति असुरों के दल वाला असुर होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति देवों (देवदूतों/देवताओं) के दल के साथ असुर कैसे हो सकता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अनैतिक, बुरे चरित्र का है, परन्तु उसका दल गुणी, अच्छे चरित्र का है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति देवों (देवदूतों/देवताओं) के दल के साथ असुर होता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति असुरों के दल के साथ देव (देवदूत/देवता) कैसे हो सकता है? [92] यहाँ, कोई व्यक्ति गुणी, अच्छे चरित्र का है, परन्तु उसका दल अनैतिक, बुरे चरित्र का है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति असुरों के दल के साथ देव होता है।

(4) "और कोई व्यक्ति देवों (देवदूतों/देवताओं) के दल के साथ देव (देवता/देवता) कैसे होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति गुणी, अच्छे चरित्र वाला होता है, और उसका दल भी गुणी, अच्छे चरित्र वाला होता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति देवों (देवदूतों/देवताओं) के दल के साथ देव (देवता/देवता) होता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

92 समाधि (1)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) कुछ व्यक्ति मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त करते हैं, लेकिन घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (पन्न) प्राप्त नहीं करते। (2) कुछ अन्य व्यक्ति घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (पन्न) प्राप्त करते हैं, लेकिन मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त नहीं करते। (3) एक अन्य व्यक्ति न तो मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त करता है और न ही घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (पन्न) प्राप्त करता है। (4) और एक अन्य व्यक्ति मन की आंतरिक समता (शमथा) और घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (पन्न) दोनों प्राप्त करता है। ये संसार में पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।

---

93 समाधि (2)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) कुछ व्यक्ति मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त करते हैं, लेकिन घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान प्राप्त नहीं करते। (2) कुछ अन्य व्यक्ति घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान प्राप्त करते हैं, लेकिन मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त नहीं करते। (3) एक अन्य व्यक्ति न तो मन की आंतरिक समता (शमथा) प्राप्त करता है और न ही घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान प्राप्त करता है। (4) और एक अन्य व्यक्ति मन की आंतरिक समता (शमथा) और घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान प्राप्त करता है।

(1) "भिक्षुओं, इनमें से जो व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त कर लेता है, परन्तु घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाता, उसे मन की आंतरिक समता (समथा) पर आधारित होकर घटनाओं में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। फिर, कुछ समय बाद, वह मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त कर लेता है।"

(2) "जो व्यक्ति घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर लेता है, लेकिन मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त नहीं करता, उसे घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर आधारित होना चाहिए और मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। तब, कुछ समय बाद, वह घटनाओं के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) और मन की आंतरिक समता (समथा) दोनों प्राप्त कर लेता है।"

(3) “जिस व्यक्ति को न तो मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त होती है और न ही घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त होता है, उसे इन दोनों लाभकारी (कुशल) गुणों को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध (संपजन्न) का प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करता है, उसी प्रकार उस व्यक्ति को इन दोनों लाभकारी (कुशल) गुणों को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करना चाहिए। फिर, कुछ समय बाद, उसे मन की आंतरिक समता और धम्म में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना प्राप्त हो जाता है। विपश्यना (अंतर्दृष्टि) (धम्म)।

(4) "जो व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्च पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर लेता है, उसे उन्हीं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर दोषों (आसवों) के नाश (खया सं. क्षय) तक पहुँचने का और प्रयास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

94 समाधि (3)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) हे भिक्षुओं, यहाँ कुछ व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करते हैं, परन्तु घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं करते। [94] (2) कुछ अन्य व्यक्ति घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करते हैं, परन्तु मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त नहीं करते। (3) एक अन्य व्यक्ति न तो मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करता है और न ही घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करता है। (4) और एक अन्य व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त करता है।

(1) "भिक्षुओं, इनमें से जो व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त कर लेता है, परन्तु घटनाओं के विषय में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाता, उसे उस व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो घटनाओं (धम्म) के विषय में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर लेता है और उससे पूछना चाहिए: 'हे मित्र, संहार/संस्कार/भावनाओं को कैसे देखा जाना चाहिए? संहार/संस्कार/भावनाओं का अन्वेषण कैसे किया जाना चाहिए? विपश्यना (अंतर्दृष्टि) द्वारा संहार/संस्कार/भावनाओं का बोध कैसे किया जाना चाहिए?'" तब दूसरा व्यक्ति उसे इस मामले को देखकर और समझकर इस प्रकार उत्तर देता है: 'संबद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को इस प्रकार देखा जाना चाहिए, इस प्रकार खोजा जाना चाहिए, इस प्रकार अंतर्दृष्टि (विपश्यना) द्वारा समझा जाना चाहिए।' 768 फिर, कुछ समय बाद, वह मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त करता है।

(2) "जो व्यक्ति घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करता है, लेकिन मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त नहीं करता, उसे मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करने वाले व्यक्ति के पास जाकर उससे पूछना चाहिए: 'हे मित्र,

मन को कैसे स्थिर किया जाए? मन को कैसे शांत किया जाए? मन को कैसे एकीकृत किया जाए? मन को कैसे आत्म-मग्न (समाधि/समाहिता) किया जाए?' तब दूसरा व्यक्ति उसे अपने अनुभव और समझ के अनुसार उत्तर देता है: 'मन को इस प्रकार स्थिर, इस प्रकार शांत, इस प्रकार एकीकृत और इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहिता/समाहिता) किया जाना चाहिए।' 789 फिर, कुछ समय बाद, वह घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) और मन की आंतरिक समता (समथा) दोनों प्राप्त कर लेता है।

(3) "जिस व्यक्ति को न तो मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त होती है और न ही घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त होता है, उसे इन दोनों को प्राप्त करने वाले व्यक्ति के पास जाकर उससे पूछना चाहिए: 'हे मित्र, मन को कैसे स्थिर किया जाए? मन को कैसे शांत किया जाए? मन को कैसे एकीकृत किया जाए? मन को कैसे आत्म-मग्न (समाधि/समहिता) किया जाए? बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को कैसे देखा जाए? बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) का कैसे अन्वेषण किया जाए? बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को अंतर्दृष्टि (विपश्यना) द्वारा कैसे समझा जाए?'" तब दूसरा व्यक्ति उसे इस विषय को देखकर और समझकर उत्तर देता है: 'मन को इस प्रकार स्थिर, इस प्रकार शांत, इस प्रकार एकीकृत, इस प्रकार आत्म-मग्न (समाधि/समाहित) करना चाहिए। बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को इस प्रकार देखना चाहिए, इस प्रकार खोजना चाहिए, इस प्रकार अंतर्दृष्टि (विपश्यना) द्वारा समझना चाहिए।' फिर, कुछ समय बाद, [95]-वह मन की आंतरिक समता (समाथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त करता है।

(4) "जो व्यक्ति मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का उच्च पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर लेता है, उसे उन्हीं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर दोषों के नाश के लिए और प्रयास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

95 श्मशान की लकड़ी (चावलाटा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) वह जो न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है; (2) वह जो दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, लेकिन अपने कल्याण के लिए नहीं;

(3) वह व्यक्ति जो स्वयं के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं, और (4) वह व्यक्ति जो स्वयं के कल्याण और दूसरों के कल्याण दोनों के लिए अभ्यास कर रहा है।

(1) "मान लो, भिक्षुओं, एक दाह संस्कार की लकड़ी दोनों सिरों से जल रही हो और बीच में गोबर से सनी हो: उसे न तो गाँव में और न ही जंगल में लकड़ी के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार, मैं कहता हूँ, वह व्यक्ति है जो न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है।"

(2) भिक्षुओं, इनमें से जो व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, न कि अपने स्वयं के कल्याण के लिए, वह पहले दो व्यक्तियों में अधिक श्रेष्ठ और श्रेष्ठ है। (3) जो व्यक्ति अपने स्वयं के कल्याण के लिए साधना करता है, न कि दूसरों के कल्याण के लिए, वह पहले तीन व्यक्तियों में अधिक श्रेष्ठ और श्रेष्ठ है।

(4) जो व्यक्ति स्वयं और दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास करता है, वह इन चारों व्यक्तियों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा, सबसे प्रमुख, सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम है। जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, वैसे ही जो व्यक्ति स्वयं और दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास करता है, वह इन चारों व्यक्तियों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा, सबसे प्रमुख, सबसे उत्तम और सबसे उत्तम है। [96]

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

96 वांट (राग-विनय)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) वह जो स्वयं के कल्याण के लिए साधना करता है, परन्तु दूसरों के कल्याण के लिए नहीं; (2) वह जो दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, परन्तु स्वयं के कल्याण के लिए नहीं; (3) वह जो न तो स्वयं के कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है; और (4) वह जो स्वयं के कल्याण और दूसरों के कल्याण दोनों के लिए साधना करता है।

(1) "हे भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास कैसे करता है, जबकि वह दूसरों के कल्याण के लिए नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिए अभ्यास करता है, परन्तु दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास करता है, जबकि वह दूसरों के कल्याण के लिए नहीं।"

(2) और कोई व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कैसे कर रहा है, जबकि वह स्वयं अपने कल्याण के लिए अभ्यास नहीं कर रहा है? यहाँ, कोई व्यक्ति दूसरों को कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) दूर करने के लिए प्रोत्साहित करता है, परन्तु स्वयं अपनी कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) दूर करने का अभ्यास नहीं करता। इस प्रकार वह व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, जबकि वह स्वयं अपने कल्याण के लिए अभ्यास नहीं कर रहा है।

(3) और जो व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, वह कैसे है? यहाँ, कोई व्यक्ति न तो अपने राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिए अभ्यास करता है, और न ही दूसरों को उनके राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार, व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है।

(4) "और कोई व्यक्ति अपने और दूसरों के कल्याण के लिए कैसे अभ्यास करता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिए अभ्यास करता है, और वह दूसरों को भी अपने राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिए प्रोत्साहित करता है। [97] इस प्रकार एक व्यक्ति अपने और दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास करता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

97 तेज बुद्धि वाला (खिप्पानिसांती)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) वह जो स्वयं के कल्याण के लिए साधना करता है, परन्तु दूसरों के कल्याण के लिए नहीं; (2) वह जो दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, परन्तु स्वयं के कल्याण के लिए नहीं; (3) वह जो न तो स्वयं के कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है; और (4) वह जो स्वयं के कल्याण और दूसरों के कल्याण दोनों के लिए साधना करता है।

(1) "हे भिक्षुओं, ऐसा व्यक्ति कैसे है जो अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, न कि दूसरों के कल्याण के लिए? यहाँ, कोई व्यक्ति लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं पर शीघ्र ध्यान देता है, सुनी हुई शिक्षाओं को याद रख पाता है और उनका अर्थ समझता है। अर्थ और धम्म को समझकर वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। परन्तु वह एक अच्छा वक्ता नहीं है; उसकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण नहीं है; और वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्नता नहीं देता। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, न कि दूसरों के कल्याण के लिए।"

(2) "और कैसे एक व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन अपने कल्याण के लिए नहीं? यहाँ, कुछ व्यक्ति लाभकारी(कुशल) शिक्षाओं पर ध्यान देने में तेज नहीं है, उसने जो शिक्षाएँ सुनी हैं उन्हें ध्यान में रखने में असमर्थ है, और उसने जो शिक्षाएँ रखी हैं, उनके अर्थ की जांच नहीं करता है। अर्थ और धम्म की कोई समझ न होने के कारण, वह धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता है। हालाँकि, वह अच्छी डिलीवरी के साथ एक अच्छा वक्ता है; वह वाणी से उपहार में मिला है जो परिष्कृत, स्पष्ट, स्पष्ट, अर्थ

को व्यक्त करने वाला है; और वह अपने साथी भिक्षुओं को निर्देश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है, और प्रसन्न करता है। यह इस तरह से है कि एक व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन अपने कल्याण के लिए नहीं। [98]

(3) "और कैसे एक व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है? यहाँ, कुछ व्यक्ति लाभकारी(कुशल) शिक्षाओं पर ध्यान देने में तेज नहीं है ... वह धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता है। इसके अलावा, वह अच्छी डिलीवरी के साथ एक अच्छा वक्ता नहीं है। और वह अपने साथी साधुओं को निर्देश नहीं देता, प्रोत्साहित नहीं करता, प्रेरित नहीं करता, और खुश नहीं करता। इस तरह से एक व्यक्ति न तो अपने भले के लिए और न ही दूसरों के भले के लिए अभ्यास कर रहा है।

(4) "और कोई व्यक्ति अपने भले और दूसरों के भले के लिए कैसे अभ्यास कर रहा है? यहाँ, कोई व्यक्ति फायदेमंद (कुशल) शिक्षाओं पर ध्यान देने में तेज़ है... वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। इसके अलावा, वह एक अच्छा वक्ता है और अच्छी डिलीवरी भी करता है... और वह अपने साथी साधुओं को निर्देश देता है, प्रोत्साहित नहीं करता, प्रेरित नहीं करता, और खुश नहीं करता। इस तरह से एक व्यक्ति अपने भले और दूसरों के भले के लिए अभ्यास कर रहा है।

"ये, भिक्षुओं, दुनिया में पाए जाने वाले चार तरह के लोग हैं।"

---

98 अपना भला (अत्तहिता बिना आत्म-हित)

"भिक्षुओं, दुनिया में ये चार तरह के लोग पाए जाते हैं। कौन से चार? (1) जो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है लेकिन दूसरों की भलाई के लिए नहीं; (2) जो दूसरों की भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है लेकिन अपनी भलाई के लिए नहीं; (3) जो न तो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है और न ही दूसरों की भलाई के लिए; और (4) जो अपनी भलाई और दूसरों की भलाई दोनों के लिए प्रैक्टिस कर रहा है। ये दुनिया में पाए जाने वाले चार तरह के लोग हैं।"

---

99 ट्रेनिंग रूल्स (शिक्षकपद बिना शिष्यपद)

"भिक्षुओं, दुनिया में ये चार तरह के लोग पाए जाते हैं। कौन से चार? (1) जो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है [99] लेकिन दूसरों की भलाई के लिए नहीं; (2) जो दूसरों की भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है लेकिन अपनी भलाई के लिए नहीं; (3) जो न तो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है और न ही दूसरों की भलाई के लिए; और (4) जो अपनी भलाई और दूसरों की भलाई दोनों के लिए प्रैक्टिस कर रहा है।

(1) "और कैसे, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास करता है लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति खुद जीवन के विनाश से दूर रहता है लेकिन दूसरों को जीवन के विनाश से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। वह खुद जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है लेकिन दूसरों को जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। वह खुद यौन दुराचार से दूर रहता है लेकिन दूसरों को यौन दुराचार से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। वह खुद मिथ्या भाषण से दूर रहता है लेकिन दूसरों को मिथ्या भाषण से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। वह खुद शराब, वाइन और नशीले पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं, लेकिन दूसरों को उनसे दूर रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता है। यह इस तरह है कि एक व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं।

(2) "और कैसे कोई व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है लेकिन अपने कल्याण के लिए नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति खुद जीवन के विनाश से दूर नहीं रहता है लेकिन वह दूसरों को जीवन के विनाश से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। . . वह खुद शराब, वाइन और नशीली चीज़ों से दूर नहीं रहता, जो आलस की वजह हैं, लेकिन वह दूसरों को इनसे दूर रहने के लिए बढ़ावा देता है। इस तरह एक इंसान दूसरों की भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा होता है, अपनी भलाई के लिए नहीं।

(3) "और कोई इंसान न तो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है और न ही दूसरों की भलाई के लिए? यहाँ, कोई इंसान खुद ज़िंदगी की बर्बादी से दूर नहीं रहता और दूसरों को ज़िंदगी की बर्बादी से दूर रहने के लिए बढ़ावा नहीं देता। . . . वह खुद शराब, वाइन और नशीली चीज़ों से दूर नहीं रहता, जो आलस की वजह हैं, और दूसरों को भी इनसे दूर रहने के लिए बढ़ावा नहीं देता। इस तरह कोई इंसान न तो अपनी भलाई के लिए प्रैक्टिस कर रहा है और न ही दूसरों की भलाई के लिए।

(4) "और कोई इंसान अपनी भलाई और दूसरों की भलाई, दोनों के लिए प्रैक्टिस कैसे कर रहा है? यहाँ, कोई इंसान खुद ज़िंदगी की बर्बादी से दूर रहता है और दूसरों को भी ज़िंदगी की बर्बादी से दूर रहने के लिए बढ़ावा देता है। . . . वह खुद शराब, वाइन और नशीली चीज़ों से दूर रहता है, जो आलस की वजह हैं, और दूसरों को भी इनसे दूर रहने के लिए बढ़ावा देता है। इस तरह वह अपनी भलाई और दूसरों की भलाई, दोनों के लिए प्रैक्टिस कर रहा है। "भिक्षुओं, ये दुनिया में पाए जाने वाले चार तरह के लोग हैं।" [1001]

---

100 पोटलिया

फिर तपस्वी पोटलिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे नमस्ते किया। जब उन्होंने नमस्ते और अच्छी बातचीत की, तो तपस्वी पोटलिया एक तरफ बैठ गए, और भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "पोटालिया, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) यहाँ, कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा करता है जो निंदा का पात्र है, और उसकी निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती है; परन्तु वह किसी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा नहीं करता जो प्रशंसा का पात्र है, यद्यपि उसकी प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित होती। (2) कोई अन्य व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करता है जो प्रशंसा का पात्र है, और उसकी प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित होती है; परन्तु वह किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा नहीं करता जो निंदा का पात्र है, यद्यपि उसकी निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती। (3) एक अन्य व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा नहीं करता जो निंदा का पात्र है, यद्यपि उसकी निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती; और वह किसी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा भी नहीं करता जो प्रशंसा का पात्र है, यद्यपि उसकी प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित होती। (4) और एक अन्य व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा करता है जो निंदा का पात्र है, और उसकी निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती है; और वह किसी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा भी करता है जो निंदा का पात्र है।" प्रशंसा के योग्य है, और यह प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित है। ये चार प्रकार के व्यक्ति संसार में विद्यमान पाए जाते हैं। अब, पोटालिया, इन चारों प्रकार के व्यक्तियों में से कौन सा व्यक्ति आपको सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ प्रतीत होता है?

"हे गौतम जी, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। 790 [101] इन चारों में से, मुझे सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ वह व्यक्ति प्रतीत होता है जो निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा नहीं करता, भले ही निंदा सटीक, सत्य और समयोचित हो; और जो प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा नहीं करता, भले ही प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित हो। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे गौतम जी, श्रेष्ठ तो उदासीनता (भीतर में समा जाना/उपेक्खा) है।"

"हे पोटालिया, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। इन चारों में से सबसे उत्कृष्ट और महान वह है जो निंदा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है और वह निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती है; और जो प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा भी करता है और वह प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित होती है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे पोटालिया, श्रेष्ठता किसी विशेष परिस्थिति में बोलने के उचित समय के ज्ञान में निहित है।" 791

"हे गौतम जी, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। इन चारों में से, मुझे सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ठ वह व्यक्ति प्रतीत होता है जो निंदा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है और वह निंदा सटीक, सत्य और समयोचित होती है; और जो प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा भी करता है और वह प्रशंसा सटीक, सत्य और समयोचित होती है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे गौतम जी, श्रेष्ठता किसी विशेष परिस्थिति में बोलने के उचित समय के ज्ञान में निहित है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग

आकृतियों को देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।" [102]

तीसरा पचास

I. बादल (वलहका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

101 बादल (1) (वलाहाका)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, चार प्रकार के बादल होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो गरजता है लेकिन वर्षा नहीं करता; एक जो वर्षा करता है लेकिन गरजता नहीं; एक जो न तो गरजता है और न ही वर्षा; और एक जो गरजता और वर्षा दोनों करता है। ये चार प्रकार के बादल हैं। इसी प्रकार, संसार में बादलों के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार के व्यक्ति हैं? एक जो गरजता है लेकिन वर्षा नहीं करता; एक जो वर्षा करता है लेकिन गरजता नहीं; एक जो न तो गरजता है और न ही वर्षा; और एक जो गरजता और वर्षा दोनों करता है।

(1) "और हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसे हो सकता है जो गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता? यहाँ, कोई व्यक्ति केवल बातें करता है, कर्म नहीं करता। इसी प्रकार वह व्यक्ति गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता।"

(2) "और वह व्यक्ति कैसा है जो बारिश तो करता है पर गरजता नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति करने वाला है, बोलने वाला नहीं। इसी तरह वह व्यक्ति बारिश तो करता है पर गरजता नहीं। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो बारिश तो करता है पर गरजता नहीं।"

(3) "और वह व्यक्ति कैसा है जो न तो गरजता है और न ही बारिश करता है? यहाँ, कोई व्यक्ति न तो बोलने वाला है और न ही करने वाला। इसी तरह वह व्यक्ति है जो न तो गरजता है और न ही बारिश करता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो न तो गरजता है और न ही बारिश करता है।"

(4) "और वह व्यक्ति कैसे है जो गरजता भी है और बारिश भी करता है? यहाँ, कोई व्यक्ति बोलने वाला भी है और करने वाला भी। इसी तरह से वह व्यक्ति गरजता भी है और बारिश भी करता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उस बादल के समान है जो गरजता भी है और बारिश भी करता है।"

"हे भिक्षुओं, ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं जो बादलों के समान संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।" [103J]

---

102 बादल (2) (वलाहाका)

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के बादल हैं। कौन से चार? [जैसा ऊपर बताया गया है]..."

(1) "और हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसे हो सकता है जो गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म में पारंगत है—सूत्र, गद्य-पद, व्याख्याएँ, गाथाएँ, प्रेरित कथन, इतिवुत्तक, जातक कथाएँ, अद्‌भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर—पर वह वास्तव में यह नहीं समझता: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता तो है पर वर्षा नहीं करता।"

(2) "और वह व्यक्ति कैसा है जो बारिश तो करता है लेकिन गरजता नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म— प्रवचनों... प्रश्न-उत्तर—में पारंगत नहीं है, परन्तु वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति बारिश तो करता है लेकिन गरजता नहीं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो बारिश तो करता है लेकिन गरजता नहीं।"

(3) "और वह व्यक्ति कैसे हो सकता है जो न तो गरजता है और न ही वर्षा करता है? यहाँ, व्यक्ति धम्म— प्रवचनों... प्रश्न-उत्तर—में पारंगत नहीं है, और वह इसे यथार्थ रूप में नहीं समझता: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो न तो गरजता है और न ही वर्षा करता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बादल के समान है जो न तो गरजता है और न ही वर्षा करता है।"

(4) "और वह व्यक्ति कैसे है जो गरजता भी है और वर्षा भी करता है? यहाँ, वह व्यक्ति धम्म में पारंगत है— प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण, पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), अद्‌भुत वृत्तांत, और प्रश्न-उत्तर—और वह इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है,' और 'यह दुख का मूल है,' और 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति गरजता भी है और वर्षा भी करता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उस बादल के समान है जो गरजता भी है और वर्षा भी करता है। [104]

"भिक्षुओं, ये समय जगत में विद्यमान बादलों के समान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

103 बर्तन (कुंभ)

भिक्षुओं, चार प्रकार के पात्र होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो खाली और ढका हुआ है; एक जो भरा हुआ और खुला है; एक जो खाली और खुला है; और एक जो भरा हुआ और ढका हुआ है। ये चार प्रकार के पात्र हैं। इसी प्रकार, संसार में पात्र के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार के व्यक्ति हैं? एक जो खाली और ढका हुआ है; एक जो भरा हुआ और खुला है; एक जो खाली और खुला है; और एक जो भरा हुआ और ढका हुआ है।

(1) "हे भिक्षुओं, मनुष्य किस प्रकार खाली और ढका हुआ होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे-पीछे जाने, आगे-पीछे देखने, अंगों को समेटने और फैलाने, वस्त्र धारण करने और बाह्य वस्त्र एवं कुंड धारण करने के तरीके से विश्वास जगाता है; परन्तु वह वास्तव में यह नहीं समझता: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार मनुष्य खाली और ढका हुआ होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक खाली और ढके हुए बर्तन के समान है।"

(2) "और एक व्यक्ति कैसे परिपूर्ण और खुला होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से, और अपने बाहरी वस्त्र और कटोरा ले जाने से विश्वास नहीं जगाता; बल्कि वह इसे जैसा है वैसा ही समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी मार्ग में व्यक्ति परिपूर्ण और खुला होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक भरे हुए और खुले बर्तन के समान है।"

(3) "और कोई व्यक्ति कैसे खाली और खुला होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से विश्वास नहीं जगाता... और अपने बाहरी वस्त्र और कटोरा ले जाने से; और वह वास्तव में यह नहीं समझता कि 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी तरह से एक व्यक्ति खाली और खुला होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक खाली और खुले बर्तन के समान है।"

(4) "और कोई व्यक्ति कैसे परिपूर्ण और ढका हुआ होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे बढ़ने और लौटने के तरीके से, आगे और बगल में देखने से, अंगों को सिकोड़ने और फैलाने से, अपने वस्त्र पहनने और अपना बाहरी वस्त्र और कटोरा ले जाने से विश्वास जगाता है; [105] और वह वास्तव में समझता है: 'यह दुख है,' और 'यह दुख का मूल है,' और 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इसी तरह से एक व्यक्ति परिपूर्ण और ढका हुआ होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक भरे हुए और ढके हुए बर्तन के समान है।"

"ये भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले घड़ों के समान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

पानी के 104 तालाब (उदकरहाड़ा)

भिक्षुओं, चार प्रकार के जलकुंड होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो उथला है पर गहरा प्रतीत होता है; एक जो गहरा है पर उथला प्रतीत होता है; एक जो उथला है और उथला प्रतीत होता है; और एक जो गहरा है और गहरा प्रतीत होता है। ये चार प्रकार के जलकुंड हैं। 793 इसी प्रकार, संसार में पाए जाने वाले जलकुंडों के समान चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। वे कौन से चार प्रकार के हैं? एक जो उथला है पर गहरा प्रतीत होता है; एक जो गहरा है पर उथला प्रतीत होता है; एक जो उथला है और उथला प्रतीत होता है; और एक जो गहरा है और गहरा प्रतीत होता है।

(1) "और हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसे है जो सतही होते हुए भी गहरा प्रतीत होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे-पीछे चलने, आगे-पीछे देखने, अंगों को समेटने और फैलाने, वस्त्र धारण करने और बाह्य वस्त्र एवं कुंड धारण करने के तरीके से विश्वास जगाता है; परन्तु वह वास्तव में यह नहीं समझता: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक व्यक्ति सतही होते हुए भी गहरा प्रतीत होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस उथले जलकुंड के समान है जो गहरा प्रतीत होता है। [106]

(2) और वह व्यक्ति कैसा है जो गहरा तो है पर उथला प्रतीत होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से, और अपने वस्त्र और कटोरा ले जाने से विश्वास नहीं जगाता; बल्कि वह वास्तविकता को समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक व्यक्ति गहरा तो होता है पर उथला प्रतीत होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस गहरे तालाब के समान है जो उथला प्रतीत होता है।

(3) और वह व्यक्ति कैसा है जो खोखला है और खोखला प्रतीत होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से विश्वास नहीं जगाता... और अपने वस्त्र और कटोरा ले जाने के तरीके से; और वह वास्तव में यह नहीं समझता: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी तरह से एक व्यक्ति खोखला होता है और खोखला प्रतीत होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक उथले और उथले प्रतीत होने वाले जलकुंड के समान है।

(4) और वह व्यक्ति कैसे है जो गहरा है और गहरा प्रतीत होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे बढ़ने और लौटने के तरीके, आगे और बगल में देखने, अंगों को सिकोड़ने और फैलाने, अपने वस्त्र पहनने और अपना बाहरी वस्त्र और कटोरा ले जाने के तरीके से विश्वास जगाता है; और वह जैसा वास्तव में है वैसा ही समझता है: 'यह दुख है,' और 'यह दुख का कारण है,' और 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी तरह से एक व्यक्ति गहरा होता है और गहरा प्रतीत होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति गहरे और गहरे प्रतीत होने वाले जल के कुंड के समान है।

"ये भिक्षु, संसार में विद्यमान जल के कुंडों के समान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

105 आम (अंबा सं. अमरा)

भिक्षुओं, चार प्रकार के आम होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो कच्चा है पर पका हुआ दिखता है; एक जो पका हुआ है पर कच्चा दिखता है; एक जो कच्चा है और कच्चा दिखता है; और एक जो पका हुआ है और पका हुआ दिखता है। ये चार प्रकार के आम हैं। इसी प्रकार, संसार में आमों के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो कच्चा है पर पका हुआ दिखता है; एक जो पका हुआ है पर कच्चा दिखता है; एक जो कच्चा है और कच्चा दिखता है; और एक जो पका हुआ है और पका हुआ दिखता है।

(1) "और हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसे अपरिपक्व होकर भी पका हुआ प्रतीत हो सकता है? [107] यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे-पीछे चलने, आगे-पीछे देखने, अंगों को समेटने और फैलाने, वस्त्र धारण करने और बाह्य वस्त्र एवं कुंड धारण करने के तरीके से विश्वास जगाता है; परन्तु वह वास्तव में यह नहीं समझता: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक व्यक्ति अपरिपक्व होकर भी पका हुआ प्रतीत होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस आम के समान है जो कच्चा होकर भी पका हुआ प्रतीत होता है।"

(2) "और वह व्यक्ति कैसा है जो परिपक्व होते हुए भी अपरिपक्व प्रतीत होता है?" यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से, और अपने वस्त्र और कटोरा ले जाने से विश्वास नहीं जगाता; बल्कि वह वास्तविकता को समझता है: 'यह पीड़ा है'... 'यह पीड़ा के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक व्यक्ति परिपक्व होते हुए भी अपरिपक्व प्रतीत होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस आम के समान है जो पका हुआ होते हुए भी अपरिपक्व प्रतीत होता है।

(3) और जो व्यक्ति अपरिपक्व है और अपरिपक्व प्रतीत होता है, वह कैसा है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आने-जाने के तरीके से विश्वास नहीं जगाता... और अपने वस्त्र और कटोरा ले जाने के तरीके से; और वह वास्तव में यह नहीं समझता कि 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी तरह से एक व्यक्ति अपरिपक्व है और अपरिपक्व प्रतीत होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल एक कच्चे आम के समान है जो कच्चा है और कच्चा प्रतीत होता है।

(4) "और एक परिपक्व और परिपक्व दिखने वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने आगे-पीछे चलने, आगे-पीछे देखने, अंगों को समेटने और फैलाने, वस्त्र पहनने, बाहरी वस्त्र और कटोरा धारण करने के तरीके से विश्वास जगाता है; और वह वास्तव में समझता है: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक व्यक्ति परिपक्व होता है और परिपक्व दिखता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति एक पके हुए और पके हुए आम के समान है।"

"ये भिक्षुओं, संसार में पाए जाने वाले आमों के समान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

106 आम2 (अंबा2 संस अमरा)

[इस सूत्र का कोई पाठ किसी भी संस्करण में नहीं मिलता। वग्ग के अंत में उद्दाना श्लोक कहता है: द्वे होंति अंबानी, "दो आम हैं," संभवतः इसी कारण बे ने इसे यह शीर्षक दिया है। एमपी केवल इतना कहता है, "छठा स्पष्ट है।" सी और बे दोनों ने इस टिप्पणी का उल्लेख करते हुए एक टिप्पणी लिखी है: "टीका कहती है, 'छठा स्पष्ट है' लेकिन यह प्रामाणिक पाठ में नहीं मिलता।"]

---

107 (7) चूहे (म्यूज़िका सं. मशक)

भिक्षुओं, चूहे चार प्रकार के होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो बिल बनाता है लेकिन उसमें नहीं रहता; एक जो बिल में रहता है लेकिन बिल नहीं बनाता; एक जो न तो बिल बनाता है और न ही उसमें रहता है; और एक जो बिल बनाता भी है और उसमें रहता भी है। ये चार प्रकार के चूहे हैं। इसी प्रकार, संसार में चूहे के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार के हैं? एक जो बिल बनाता है लेकिन उसमें नहीं रहता; एक जो बिल में रहता है लेकिन बिल नहीं बनाता; एक जो न तो बिल बनाता है और न ही उसमें रहता है; और एक जो बिल बनाता भी है और उसमें रहता भी है। [108]

(1) "और हे भिक्षुओं, वह व्यक्ति कैसे है जो गड्ढा तो बनाता है, पर उसमें रहता नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म—सूत्रों, गद्य-पदों के मिश्रण, व्याख्याओं, गाथाओं, प्रेरित कथनों (उदान), उद्धरणों (इतिवुत्तक), जातक कथाओं, अद्‌भुत वृत्तांतों और प्रश्न-उत्तरों—में पारंगत तो है, पर वह इसे वास्तव में नहीं समझता: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति गड्ढा तो बनाता है, पर उसमें रहता नहीं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस चूहे के समान है जो गड्ढा तो बनाता है, पर उसमें रहता नहीं।"

(2) "और वह व्यक्ति कैसे है जो एक गड्ढे में रहता है लेकिन कोई गड्ढा नहीं बनाता? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म— प्रवचनों... प्रश्न-उत्तर—में पारंगत नहीं होता, परन्तु वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति एक गड्ढे में रहता है लेकिन कोई गड्ढा नहीं बनाता। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस चूहे के समान है जो एक गड्ढे में रहता है लेकिन कोई गड्ढा नहीं बनाता।"

(3) "और वह व्यक्ति कैसे है जो न तो गड्ढा खोदता है और न ही उसमें रहता है? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म— प्रवचनों... प्रश्न-उत्तर—में पारंगत नहीं है, और वह इसे वास्तव में नहीं समझता: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो न तो गड्ढा खोदता है और न ही उसमें रहता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस चूहे के समान है जो न तो गड्ढा खोदता है और न ही उसमें रहता है।"

(4) "और वह व्यक्ति कैसे है जो गड्ढा बनाता भी है और उसमें रहता भी है? यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म (मार्ग) में महारत हासिल कर लेता है—सूत्र, गद्य और पद्य का मिश्रण, व्याख्याएँ, श्लोक, प्रेरित कथन, उद्धरण, जातक कथाएँ, अद्‌भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर—और वह इसे यथार्थ रूप में समझ लेता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का मूल है', 'यह दुख का निवारण है' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। इसी प्रकार वह व्यक्ति गड्ढा बनाता भी है और उसमें रहता भी है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस चूहे के समान है जो गड्ढा बनाता भी है और उसमें रहता भी है।"

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के प्राणी हैं जो चूहों के समान संसार में पाए जाते हैं।"

---

108 बैल (बालीबद्दा)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार के बैल होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? [109] एक वह जो अपने पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, दूसरों के पशुओं के प्रति नहीं; एक वह जो दूसरों के पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, अपने पशुओं के प्रति नहीं; एक वह जो अपने पशुओं और दूसरों के पशुओं दोनों के प्रति क्रोधित होता है; और एक वह जो न तो अपने पशुओं के प्रति और न ही दूसरों के पशुओं के प्रति क्रोधित होता है। ये चार प्रकार के बैल हैं। इसी प्रकार, संसार में बैलों के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार के हैं? एक वह जो अपने पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, दूसरों के पशुओं के प्रति नहीं; एक वह जो दूसरों के पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, अपने पशुओं के प्रति नहीं; एक वह जो अपने पशुओं और दूसरों के पशुओं दोनों के प्रति क्रोधित होता है; और एक वह जो न तो अपने पशुओं के प्रति और न ही दूसरों के पशुओं के प्रति क्रोधित होता है।

(1) "और हे भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने पशुओं के प्रति क्रोधित क्यों होता है, जबकि दूसरों के पशुओं के प्रति नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति अपने दल को डराता है, लेकिन दूसरों के दल को नहीं। इसी प्रकार, कोई व्यक्ति अपने पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, जबकि दूसरों के पशुओं के प्रति नहीं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बैल के समान है जो अपने पशुओं के प्रति क्रोधित होता है, जबकि दूसरों के पशुओं के प्रति नहीं।"

(2) और कोई व्यक्ति दूसरों के पशुओं पर क्रोधित क्यों होता है, जबकि अपने पशुओं पर नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति दूसरों के दल को डराता है, लेकिन अपने दल को नहीं। इसी प्रकार, कोई व्यक्ति दूसरों के पशुओं पर क्रोधित होता है, जबकि अपने पशुओं पर नहीं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस बैल के समान है जो दूसरों के पशुओं पर क्रोधित होता है, जबकि अपने पशुओं पर नहीं।

(3) और कोई व्यक्ति अपने पशुओं और दूसरों के पशुओं दोनों के प्रति कैसे क्रोधित होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति दूसरों के दल और अपने दल दोनों को डराता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अपने पशुओं और दूसरों के पशुओं दोनों के प्रति क्रोधित होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बैल के समान है जो अपने पशुओं और दूसरों के पशुओं दोनों के प्रति क्रोधित होता है।

(4) और कोई व्यक्ति अपने पशुओं पर और दूसरों के पशुओं पर क्रोधित क्यों नहीं होता? यहाँ, कोई व्यक्ति न तो अपने दल को डराता है और न ही दूसरों के दल को। इसी प्रकार, कोई व्यक्ति न तो अपने पशुओं पर और न ही दूसरों के पशुओं पर क्रोधित होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बैल के समान है, जो न तो अपने पशुओं पर और न ही दूसरों के पशुओं पर क्रोधित होता है।

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान बैल के समान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

109 पेड़ (रुक्खा सं. वृक्ष)

भिक्षुओं, ये चार प्रकार के वृक्ष हैं। वे कौन से चार हैं? [110] एक जो कोमल लकड़ी का है और कोमल लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; एक जो कोमल लकड़ी का है और कठोर लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; एक जो कठोर लकड़ी का है और कोमल लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; और एक जो कठोर लकड़ी का है और कठोर लकड़ी के वृक्षों से घिरा है। ये चार प्रकार के वृक्ष हैं। इसी प्रकार, संसार में वृक्षों के समान चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? एक जो कोमल लकड़ी का है और कोमल लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; एक जो कोमल लकड़ी का है और कठोर लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; एक जो कठोर लकड़ी का है और कोमल लकड़ी के वृक्षों से घिरा है; और एक जो कठोर लकड़ी का है और कठोर लकड़ी के वृक्षों से घिरा है।

(1) "हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति कोमल लकड़ी का बना हो और उसके चारों ओर कोमल लकड़ी के वृक्ष हों, वह कैसा होता है? यहाँ, एक व्यक्ति अनैतिक है, बुरे चरित्र का है, और उसका अनुयायी भी अनैतिक है, बुरे चरित्र का है। इसी प्रकार, एक व्यक्ति कोमल लकड़ी का बना होता है और उसके चारों ओर कोमल लकड़ी के वृक्ष होते हैं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस वृक्ष के समान है जो कोमल लकड़ी का बना हो और उसके चारों ओर कोमल लकड़ी के वृक्ष हों।"

(2) "और एक व्यक्ति जो कोमल लकड़ी का बना हो, लेकिन कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा हो, वह कैसे हो सकता है? यहाँ, एक व्यक्ति अनैतिक, बुरे चरित्र का है, लेकिन उसके अनुयायी गुणी, अच्छे चरित्र के हैं। इसी तरह एक व्यक्ति कोमल लकड़ी का बना होता है, लेकिन कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार के पेड़ के समान है जो कोमल लकड़ी का बना हो, लेकिन कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा हो।"

(3) "और वह व्यक्ति कैसा है जो कठोर लकड़ी का बना हो लेकिन उसके चारों ओर नरम लकड़ी के पेड़ हों? यहाँ, एक व्यक्ति गुणी और अच्छे चरित्र का है, परन्तु उसका अनुयायी अनैतिक और बुरे चरित्र का है। ठीक इसी प्रकार, एक व्यक्ति कठोर लकड़ी का बना होता है लेकिन उसके चारों ओर नरम लकड़ी के पेड़ होते हैं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई कठोर लकड़ी का बना पेड़ नरम लकड़ी के पेड़ों से घिरा हो।"

(4) "और एक व्यक्ति कठोर लकड़ी से बना होता है और कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा होता है, ऐसा कैसे कहा जा सकता है? यहाँ, एक व्यक्ति गुणी और अच्छे चरित्र वाला है, और उसके अनुयायी भी गुणी और अच्छे चरित्र वाले हैं। इसी प्रकार एक व्यक्ति कठोर लकड़ी से बना होता है और कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा होता है। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार है जैसे एक कठोर लकड़ी से बना और कठोर लकड़ी के पेड़ों से घिरा हुआ वृक्ष।"

"हे भिक्षुओं, ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान वृक्षों के समान पाए जाते हैं।"

---

110 वाइपर (असिविसा)

भिक्षुओं, चार प्रकार के विषैले साँप होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक वह जिसका विष शीघ्र निकलता है लेकिन घातक नहीं होता; दूसरा वह जिसका विष घातक होता है लेकिन शीघ्र नहीं निकलता; तीसरा वह जिसका विष शीघ्र और घातक दोनों होता है; और चौथा वह जिसका विष न तो शीघ्र निकलता है और न ही घातक। ये चार प्रकार के विषैले साँप हैं। [111] इसी प्रकार, संसार में विषैले साँपों के समान चार प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक वह जिसका विष शीघ्र निकलता है लेकिन घातक नहीं होता; तीसरा वह जिसका विष घातक होता है लेकिन शीघ्र नहीं निकलता; चौथा वह जिसका विष शीघ्र और घातक दोनों होता है; और चौथा वह जिसका विष न तो शीघ्र निकलता है और न ही घातक।

(1) "और हे भिक्षुओं, ऐसा व्यक्ति कैसे है जिसका विष शीघ्रता से प्रकट होता है, परन्तु घातक नहीं? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर क्रोधित होता है, परन्तु उसका क्रोध अधिक देर तक नहीं रहता। इसी प्रकार, ऐसा व्यक्ति है जिसका विष शीघ्रता से प्रकट होता है, परन्तु घातक नहीं। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस विषैले साँप के समान है जिसका विष शीघ्रता से प्रकट होता है, परन्तु घातक नहीं।"

(2) "और वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका विष तो तीव्र होता है, पर तुरंत प्रकट नहीं होता? यहाँ, व्यक्ति को अक्सर क्रोध नहीं आता, परन्तु उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति ऐसा होता है जिसका विष तो तीव्र होता है, पर तुरंत प्रकट नहीं होता। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस विषैले साँप के समान है जिसका विष तो तीव्र होता है, पर तुरंत प्रकट नहीं होता।"

(3) "और वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका विष शीघ्रता से उभरता है और घातक होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति अक्सर क्रोधित हो जाता है, और उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है। इसी तरह वह व्यक्ति ऐसा होता है जिसका विष शीघ्रता से उभरता है और घातक होता है। इसलिए, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस विषैले साँप के समान है जिसका विष शीघ्रता से उभरता है और घातक होता है।"

(4) "और वह व्यक्ति कैसा है जिसका विष न तो शीघ्र प्रकट होता है और न ही घातक? यहाँ, व्यक्ति को बार-बार क्रोध नहीं आता और उसका क्रोध भी लंबे समय तक नहीं रहता। इसी प्रकार वह व्यक्ति ऐसा है जिसका विष न तो शीघ्र प्रकट होता है और न ही घातक। अतः मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस विषैले साँप के समान है जिसका विष न तो शीघ्र प्रकट होता है और न ही घातक।"

"ये भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले सर्पों के समान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।" [112]

II. केसी अनुभाग

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

111 केसी

तब अश्व प्रशिक्षक केसी भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। तब भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"केसी, तुम एक कुशल घुड़सवार प्रशिक्षक के रूप में जाने जाते हो, आखिर घोड़े को वश में करने के लिए उसे अनुशासित कैसे किया जाता है?"

"भंते, मैं एक तरह के घोड़े को नरमी से, दूसरी तरह के घोड़े को सख्ती से और तीसरी तरह के घोड़े को नरमी और सख्ती दोनों से अनुशासित करता हूँ।"

"लेकिन, केसी, अगर तुम्हारे द्वारा वश में किया जाने वाला घोड़ा इनमें से किसी भी तरीके से अनुशासन नहीं मानता है, तो तुम उससे कैसे निपटोगी?"

"भंते, अगर मेरे द्वारा वश में किया जाने वाला घोड़ा इनमें से किसी भी विधि से अनुशासन नहीं मानता, तो मैं उसे मार डालता हूँ। क्यों? ताकि मेरे गुरु संघ पर कोई कलंक न लगे। लेकिन, भंते, भगवान (बुद्ध) वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं। भला भगवान (बुद्ध) किसी व्यक्ति को वश में करने के लिए कैसे अनुशासित करते हैं?"

मैं एक प्रकार के व्यक्ति को कोमल ढंग से, दूसरे प्रकार के व्यक्ति को कठोर ढंग से, और तीसरे प्रकार के व्यक्ति को कोमल और कठोर दोनों तरह से अनुशासित करता हूँ। (1) हे केशी, यह कोमल विधि है: 'शारीरिक सुवाह्य आचरण ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; वाणी का सुवाह्य आचरण ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; मानसिक सुवाह्य आचरण ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; देव (देवदूत/भगवान) ऐसे हैं, मनुष्य ऐसे हैं। (2) यह कठोर विधि है: 'शारीरिक दुराचार ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; वाणी का दुराचार ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; मानसिक दुराचार ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; नरक ऐसा है, पशुलोक ऐसा है, और पीड़ित आत्माओं का क्षेत्र ऐसा है। (3) यह कोमल और कठोर विधि है: 'शारीरिक सुवाह्य आचरण ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; शारीरिक दुराचार ऐसा है, और उसका परिणाम ऐसा है; वाणी का सुवाह्य आचरण ऐसा है।' ऐसा है मौखिक अच्छे आचरण का परिणाम; ऐसा है मौखिक दुराचार, ऐसा है मौखिक दुराचार का परिणाम। ऐसा है मानसिक अच्छा आचरण, ऐसा है मानसिक अच्छे आचरण का परिणाम; ऐसा है मानसिक दुराचार, ऐसा है मानसिक दुराचार का परिणाम। ऐसे हैं देव (देवदूत/भगवान), ऐसे हैं मनुष्य; ऐसा है नरक, ऐसा है पशु जगत, ऐसा है पीड़ित आत्माओं का क्षेत्र।

"परन्तु, भंते, यदि कोई व्यक्ति जिसे तुम वश में करना चाहते हो, इन विधियों में से किसी से भी अनुशासन नहीं मानता, [113] तो भगवान (बुद्ध) उससे कैसे निपटते हैं?"

(4) "यदि मेरे द्वारा वश में किया जाने वाला कोई व्यक्ति इनमें से किसी भी विधि से अनुशासन नहीं मानता, तो मैं उसे मार डालता हूँ।"

"परन्तु, भंते, भगवान (बुद्ध) के लिए जीवन का विनाश करना उचित नहीं है। फिर भी वे कहते हैं, 'तो मैं उसे मार डालता हूँ।'"

"यह सत्य है, केशी, कि तथागत (बुद्ध) के लिए जीवन का विनाश करना उचित नहीं है। परन्तु जब कोई व्यक्ति, जिसे वश में किया जाना है, सौम्य विधि, कठोर विधि, या सौम्य एवं कठोर दोनों विधियों से अनुशासन नहीं मानता, तो तथागत (बुद्ध) यह समझते हैं कि उससे बात करना और उसे उपदेश देना उचित नहीं है, और उनके ज्ञानी साथी भिक्षु भी यही सोचते हैं। क्योंकि, केशी, यही बुद्ध की शिक्षा में 'हत्या' है: तथागत (बुद्ध) यह समझते हैं कि किसी से बात करना और उसे उपदेश देना उचित नहीं है, और उसके ज्ञानी साथी भिक्षु भी यही सोचते हैं कि किसी से बात करना और उसे उपदेश देना उचित नहीं है।"

"हे भंते, उसका वध वास्तव में उचित ही हुआ है, जब तथागत (बुद्ध) यह सोचते हैं कि उससे बात नहीं करनी चाहिए और उसे उपदेश नहीं देना चाहिए, और उसके बुद्धिमान साथी भिक्षु भी यही सोचते हैं कि उससे बात नहीं करनी चाहिए और उसे उपदेश नहीं देना चाहिए।"

"उत्कृष्ट, भंते! उत्कृष्ट, भंते! भगवान (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। भगवान (बुद्ध) मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

112 स्पीड (जावा)

"भिक्षुओं (साधुओं) में चार गुण होते हैं, जो राजा के उत्तम नस्ल के घोड़े के समान होते हैं। यह घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है। वे चार गुण क्या हैं? सत्यनिष्ठा, गति, धैर्य और सौम्यता। इन चार गुणों से युक्त होने के कारण, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजत्व का प्रतीक माना जाता है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे चार गुण कौन से हैं? सत्यनिष्ठा, शीघ्रता, धैर्य और नम्रता। इन चार कारकों

से युक्त [114] भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

---

113 गोड (पटोडा)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़े पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, एक विशेष प्रकार का उत्तम नस्ल का घोड़ा अंकुश की छाया देखते ही उत्तेजित हो जाता है और सोचने लगता है: 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या कार्य देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या करूँ?' ऐसा ही एक उत्तम नस्ल का घोड़ा यहाँ है। यह दुनिया में पाया जाने वाला पहला उत्तम नस्ल का घोड़ा है।"

(2) "एक प्रकार का उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा अंकुश की छाया देखते ही न तो विचलित होता है और न ही उसमें कोई तत्परता उत्पन्न होती है, परन्तु अंकुश से उसके बाल टकराने पर वह विचलित हो जाता है और तत्परता का भाव उत्पन्न कर लेता है, यह सोचते हुए: 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या कार्य देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' ऐसा ही एक प्रकार का उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा है। यह दुनिया में पाया जाने वाला दूसरा प्रकार का उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा है।"

(3) "एक और, एक विशेष प्रकार का उत्तम नस्ल का घोड़ा अंकुश की छाया देखते ही या अंकुश से अपने बालों पर चोट लगते ही न तो विचलित होता है और न ही उसमें कोई तत्परता उत्पन्न होती है, परन्तु अंकुश से अपनी खाल पर चोट लगने पर वह विचलित होता है और तत्परता उत्पन्न करता है, यह सोचते हुए: 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या कार्य देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' ऐसा ही एक विशेष नस्ल का उत्तम नस्ल का घोड़ा है। यह विश्व में पाया जाने वाला तीसरा प्रकार का उत्तम नस्ल का घोड़ा है।"

(4) "फिर, एक प्रकार का उत्कृष्ट शुद्ध नस्ल का घोड़ा न तो डंडे की छाया देखकर उत्तेजित होता है और न ही उसमें कोई जल्दबाजी की भावना उत्पन्न होती है, न ही जब उसके बालों पर डंडे से प्रहार किया जाता है, न ही जब उसकी खाल पर डंडे से प्रहार किया जाता है, बल्कि वह उत्तेजित होता है और उसमें जल्दबाजी की भावना उत्पन्न होती है जब उसकी हड्डी पर डंडे से प्रहार किया जाता है, यह सोचते हुए: [115] 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या कार्य देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' ऐसा ही एक प्रकार का उत्कृष्ट शुद्ध नस्ल का घोड़ा है। यह दुनिया में पाया जाने वाला उत्कृष्ट शुद्ध नस्ल के घोड़े का चौथा प्रकार है।

"ये दुनिया में पाई जाने वाली उत्कृष्ट नस्ल के घोड़ों की चार किस्में हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के उत्तम और श्रेष्ठ व्यक्ति पाए जाते हैं। वे चार कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, एक विशेष प्रकार का श्रेष्ठ पुरुष सुनता है: फलाँ गाँव या नगर में कोई स्त्री या पुरुष बीमार पड़ गया है या मर गया है। वह इससे विचलित हो जाता है और उसे तुरंत कार्रवाई करने की आवश्यकता महसूस होती है। विचलित होकर वह सावधानीपूर्वक प्रयास करता है। दृढ़ निश्चय के साथ वह शरीर से ही परम सत्य को अनुभव करता है और उसे अपने प्राणों (दिव्य ज्ञान) से भेदकर उसे देखता है। 795 मैं कहता हूँ कि यह श्रेष्ठ पुरुष उस श्रेष्ठ घोड़े के समान है जो अंकुश की छाया देखते ही विचलित हो जाता है और तुरंत कार्रवाई करने की आवश्यकता महसूस करता है। ऐसा ही एक प्रकार का श्रेष्ठ पुरुष है। संसार में पाया जाने वाला यह पहला प्रकार का श्रेष्ठ पुरुष है।"

(2) "एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष यह सुनकर विचलित नहीं होता कि फलाँ गाँव या कस्बे में कोई स्त्री या पुरुष बीमार पड़ गया है या मर गया है। बल्कि वह स्वयं किसी बीमार या मरे हुए स्त्री या पुरुष को देखता है। इससे वह विचलित हो जाता है और उसे तत्परता का भाव प्राप्त होता है। विचलित होकर वह सावधानीपूर्वक प्रयास करता है। दृढ़ निश्चय के साथ वह शरीर से ही परम सत्य को अनुभव करता है और उसमें भेदन (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करके उसे देखता है। मैं कहता हूँ कि यह श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष के समान है जो अंकुश लगने पर विचलित हो जाता है और तत्परता का भाव प्राप्त कर लेता है। ऐसा एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष होता है। संसार में पाए जाने वाले श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष का यह दूसरा प्रकार है।"

(3) "एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष यह सुनकर विचलित नहीं होता कि फलाँ गाँव या कस्बे में कोई स्त्री या पुरुष बीमार पड़ गया है या मर गया है, न ही वह स्वयं किसी स्त्री या पुरुष को बीमार या मृत देखता है। बल्कि, उसके किसी रिश्तेदार या परिवार के सदस्य के बीमार या मृत पड़ने पर वह विचलित हो जाता है और उसे तुरंत कार्रवाई करने की आवश्यकता महसूस होती है। [116] विचलित होकर वह सावधानीपूर्वक प्रयास करता है, दृढ़ निश्चय के साथ वह शरीर से ही परम सत्य को अनुभव करता है और उसमें प्राण (दिव्य ज्ञान) का संचार करके उसे देखता है। मैं कहता हूँ कि यह श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष के समान है जो अंकुश लगने पर विचलित हो जाता है और तुरंत कार्रवाई करने की आवश्यकता महसूस करता है। ऐसा ही एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष होता है। यह संसार में पाए जाने वाले श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष का तीसरा प्रकार है।"

(4) "एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष यह नहीं सुनता कि फलां गांव या कस्बे में कोई स्त्री या पुरुष बीमार पड़ गया है या मर गया है, न ही वह स्वयं किसी बीमार या मरते हुए स्त्री या पुरुष को देखता है, न ही उसके किसी रिश्तेदार या परिवार के सदस्य के बीमार पड़ने या मरने को देखता है। बल्कि, वह स्वयं पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) से ग्रस्त होता है। वह इससे विचलित होता है और तत्परता का भाव प्राप्त करता है। विचलित होकर वह सावधानीपूर्वक प्रयास करता है। दृढ़ निश्चय के साथ वह शरीर से ही परम सत्य का अनुभव करता है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से शरीर को भेदकर उसे देखता है। मैं कहता हूं कि यह श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष के समान है जो अंकुश लगने पर विचलित होता है और तत्परता का भाव प्राप्त करता है। ऐसा ही एक प्रकार का श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष है। यह संसार में विद्यमान श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष का चौथा प्रकार है।"

"हे भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के श्रेष्ठ और शुद्ध कुलीन व्यक्ति हैं।"

---

114 नर हाथी (नाग)

"भिक्षुओं (साधुओं), राजा के सांड हाथी के चार गुण होते हैं, इसलिए वह राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, राजा का सांड हाथी वह है जो सुनता है, जो विनाश करता है, जो धैर्यपूर्वक सहन करता है और जो आगे बढ़ता है।"

(1) "और हे भिक्षुओं, राजा का नर हाथी किस प्रकार ध्यान से सुनता है? यहाँ, हाथी प्रशिक्षक उसे जो भी कार्य सौंपता है, चाहे उसने वह कार्य पहले किया हो या नहीं, राजा का नर हाथी उस पर ध्यान देता है, उस पर तत्पर रहता है, अपना पूरा मन उस पर लगाता है और उत्सुकता से सुनता है। इसी प्रकार राजा का नर हाथी ध्यान से सुनता है।"

(2) "और राजा का बैल हाथी किस प्रकार विनाशक होता है? यहाँ, जब राजा का बैल हाथी युद्ध में प्रवेश करता है, तो वह हाथियों और हाथी सवारों को नष्ट कर देता है; वह घोड़ों और घुड़सवारों को नष्ट कर देता है; [117] वह रथों और रथ चालकों को नष्ट कर देता है; वह पैदल सेना को नष्ट कर देता है। इस प्रकार राजा का बैल हाथी विनाशक होता है।"

(3) "और राजा का हाथी धैर्यपूर्वक सहन करने वाला कैसे होता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में प्रवेश करता है, तो वह धैर्यपूर्वक भाले, तलवार, तीर और कुल्हाड़ियों से होने वाले प्रहारों को सहन करता है; वह ढोल, केतली, शंख और ढोल की गड़गड़ाहट को सहन करता है। इसी प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक सहन करने वाला होता है।"

(4) "और राजा का नर हाथी किस प्रकार चलता है? यहाँ, राजा का नर हाथी तुरंत उस क्षेत्र में चला जाता है जहाँ हाथी प्रशिक्षक उसे भेजता है, चाहे वह पहले कभी वहाँ गया हो या नहीं। इस प्रकार राजा का नर हाथी चलता है।"

"इन चार गुणों से युक्त होने के कारण, राजा का हाथी राजा के योग्य होता है, राजा का सहायक होता है और राजत्व के एक कारक के रूप में गिना जाता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु वह है जो सुनता है, जो विनाश करता है, जो धैर्यपूर्वक सहन करता है, और जो आगे बढ़ता है।"

(1) "हे भिक्षुओं, एक भिक्षु वह कैसे होता है जो सुनता है? यहाँ, जब तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म (मार्ग) और अनुशासन का उपदेश दिया जा रहा होता है, तो एक भिक्षु उस पर ध्यान देता है, उस पर एकाग्रता से विचार करता है, अपना पूरा मन उस पर लगाता है और उत्सुकतापूर्वक सुनता है। इसी प्रकार एक भिक्षु वह होता है जो सुनता है।"

(2) "और भिक्षु विनाशक कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता, बल्कि उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है। वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को सहन नहीं करता... समय-समय पर उत्पन्न होने वाली किसी भी अन्य बुरी (अकुशल) अवस्था को सहन नहीं करता, बल्कि उनका त्याग करता है, उन्हें दूर करता है, उन्हें समाप्त करता है और उन्हें मिटा देता है। इसी प्रकार भिक्षु विनाशक होता है।"

(3) "भिक्षु वह कैसे होता है जो धैर्यपूर्वक सहन करता है? यहाँ, भिक्षु धैर्यपूर्वक सर्दी और गर्मी; भूख और प्यास; मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क; अभद्र और अपमानजनक वाणी; [118] वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने में सक्षम होता है जो पीड़ादायक, कष्टदायी, तीखी, चुभने वाली, कष्टदायक, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली होती हैं। इसी प्रकार भिक्षु वह होता है जो धैर्यपूर्वक सहन करता है।"

(4) "और भिक्षु कैसे वह है जो जाता है? यहाँ, भिक्षु शीघ्र ही उस क्षेत्र में जाता है जहाँ वह इस लंबे समय में पहले कभी नहीं गया है, अर्थात् सभी गतिविधियों के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश, वैराग्य, निश्वास, निर्वाण (निब्बान) की ओर। इस प्रकार भिक्षु वह है जो जाता है।"

"इन चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य होता है... विश्व के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र।"

---

115 विलेख (थाना)

भिक्षुओं, कर्मों के ये चार प्रकार हैं। 796 वे चार क्या हैं? (1) एक ऐसा कर्म है जो करने में अप्रिय है और जिससे हानि होगी। (2) एक ऐसा कर्म है जो करने में अप्रिय है और जिससे लाभ होगा। (3) एक ऐसा कर्म है जो करने में सुखद है और जिससे हानि होगी। (4) एक ऐसा कर्म है जो करने में सुखद है और जिससे लाभ होगा।

(1) "भिक्षुओं, सर्वप्रथम उस कर्म पर विचार करो जो करने में अप्रिय हो और जिससे हानि सिद्ध हो। यह कर्म दो आधारों पर नहीं किया जाना चाहिए: क्योंकि यह करने में अप्रिय है और इससे हानि सिद्ध होगी। यह कर्म दोनों आधारों पर नहीं किया जाना चाहिए।"

(2) "इसके बाद, उस कर्म का उदाहरण लीजिए जो करने में अप्रिय है, पर लाभप्रद सिद्ध होगा। इसी उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि पुरुष शक्ति, पुरुष ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और पुरुष परिश्रम के संदर्भ में कौन मूर्ख है और कौन बुद्धिमान। मूर्ख इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'यद्यपि यह कर्म करने में अप्रिय है, फिर भी [119] इससे लाभ होगा।' अतः वह वह कर्म नहीं करता, और उसका उससे परहेज करना हानिकारक सिद्ध होता है। परन्तु बुद्धिमान इस प्रकार चिंतन करता है: 'यद्यपि यह कर्म करने में अप्रिय है, फिर भी इससे लाभ होगा।' अतः वह वह कर्म करता है, और इससे लाभ सिद्ध होता है।

(3) "अब उस कर्म का उदाहरण लीजिए जो करने में सुखद तो है, लेकिन हानिप्रद सिद्ध होगा। इसी उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि पुरुष शक्ति, ऊर्जा और परिश्रम के मामले में कौन मूर्ख है और कौन बुद्धिमान। मूर्ख व्यक्ति यह नहीं सोचता कि 'यद्यपि यह कर्म करने में सुखद है, फिर भी हानिप्रद सिद्ध होगा।' अतः वह कर्म करता है और हानिप्रद सिद्ध होता है। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचता है कि 'यद्यपि यह कर्म करने में सुखद है, फिर भी हानिप्रद सिद्ध होगा।' अतः वह कर्म नहीं करता और उससे परहेज करना लाभकारी सिद्ध होता है।"

(4) "इसके बाद, उस कार्य का उदाहरण लें जिसे करना सुखद है और जो लाभकारी सिद्ध होगा। इस कार्य को दोनों आधारों पर किया जाना चाहिए: क्योंकि यह करना सुखद है और क्योंकि यह लाभकारी सिद्ध होता है। इस कार्य को दोनों आधारों पर किया जाना चाहिए।"

"भिक्षुओं, ये कर्म के चार प्रकार हैं।"

---

116 सतर्कता (अप्पमदा सं. अप्रमाद)

"भिक्षुओं, चार ऐसे अवसर हैं जब सतर्कता का अभ्यास करना चाहिए। वे चार कौन से हैं?"

(1) शारीरिक दुराचार का त्याग करो और शारीरिक सुवाह्य आचरण विकसित करो; इसमें आलसी मत बनो। (2) मौखिक दुराचार का त्याग करो और मौखिक सुवाह्य आचरण विकसित करो; इसमें आलसी मत बनो। (3) मानसिक दुराचार का त्याग करो और मानसिक सुवाह्य आचरण विकसित करो; इसमें आलसी मत बनो। (4) गलत दृष्टिकोण का त्याग करो और सही दृष्टिकोण विकसित करो; इसमें आलसी मत बनो। [120]

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु शारीरिक दुराचार का त्याग करके शारीरिक सुवाह्य आचरण अपना लेता है; जब वह मौखिक दुराचार का त्याग करके मौखिक सुवाह्य आचरण अपना लेता है; जब वह मानसिक दुराचार का त्याग करके मानसिक सुवाह्य आचरण अपना लेता है; जब वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके सही दृष्टिकोण अपना लेता है, तब उसे भविष्य में मृत्यु से भय नहीं होना चाहिए।" 797

---

117 रखवाली (अरक्खा सं. अरक्षण)

"भिक्षुओं (साधुओं), जो अपने कल्याण के लिए तल्लीन हैं, उन्हें चार प्रकार से सतर्कता, ध्यान (सती/ध्यान) और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए। वे चार कौन से हैं?"

(1) “मेरा मन कामवासना (राग) जगाने वाली चीजों से उत्तेजित न हो!” अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करने वाले व्यक्ति को इस प्रकार सतर्कता, ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

(2) "मेरा मन घृणा उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति घृणा से न भर जाए!" अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करने वाले व्यक्ति को सतर्कता, ध्यान (सती) और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

(3) "'मेरा मन भ्रम पैदा करने वाली चीजों से भ्रमित न हो!' अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करने वाले व्यक्ति को इस प्रकार सतर्कता, ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

(4) "'मेरा मन उन चीजों से मदहोश न हो जाए जो मदहोश करती हैं!' 799 अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करने वाले व्यक्ति को सतर्कता, ध्यान (सती) और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु का मन कामवासना (राग) उत्पन्न करने वाली चीजों से उत्तेजित नहीं होता क्योंकि उसने कामवासना (राग) से मुक्ति पा ली है; जब उसका मन घृणा उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति घृणा से भरा नहीं होता क्योंकि उसने घृणा से मुक्ति पा ली है; जब उसका मन मोह उत्पन्न करने वाली चीजों से भ्रमित नहीं होता क्योंकि उसने मोह (मोह) से मुक्ति पा ली है; जब उसका मन मदहोश करने वाली चीजों से मदहोश नहीं होता क्योंकि उसने मदहोशी से मुक्ति पा ली है, तब वह न तो डरता है, न कांपता है, न थरथराता है और न ही भयभीत होता है, और न ही वह अन्य तपस्वियों के शब्दों से विचलित होता है।" 800

---

118 प्रेरक 801 (संवेजानिया सं. संवेगा)

भिक्षुओं, आस्थावान कुल के इन चार प्रेरणादायक स्थानों को अवश्य देखना चाहिए। वे चार स्थान कौन से हैं? (1) वह स्थान जहाँ तथागत (बुद्ध) का जन्म हुआ था, वह एक प्रेरणादायक स्थान है जिसे आस्थावान कुल के व्यक्ति को अवश्य देखना चाहिए। (2) वह स्थान जहाँ तथागत (बुद्ध) को अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह एक प्रेरणादायक स्थान है जिसे आस्थावान कुल के व्यक्ति को अवश्य देखना चाहिए। (3) वह स्थान जहाँ तथागत (बुद्ध) ने अद्वितीय धम्म चक्र को गतिमान किया था, वह एक प्रेरणादायक स्थान है

जिसे आस्थावान कुल के व्यक्ति को अवश्य देखना चाहिए। (4) वह स्थान जहाँ तथागत (बुद्ध) ने निर्वाण तत्व द्वारा पूर्ण निर्वाण प्राप्त किया था, वह एक प्रेरणादायक स्थान है जिसे आस्थावान कुल के व्यक्ति को अवश्य देखना चाहिए। [121] हे भिक्षुओं, ये चार प्रेरणादायक स्थान हैं जिन्हें अवश्य देखना चाहिए। किसी ऐसे कबीले के सदस्य द्वारा देखा जाए जो आस्थावान हो।" 802

---

119 खतरे (1) (भया1)

भिक्षुओं, ये चार खतरे हैं। कौन से चार? पुनर्जन्म का खतरा, वृद्धावस्था का खतरा, बीमारी का खतरा और मृत्यु का खतरा। ये चार खतरे हैं।

---

120 खतरे (2) (भया2)

भिक्षुओं, ये चार खतरे हैं। कौन से चार? आग का खतरा, बाढ़ का खतरा, राजा से खतरा और चोर से खतरा। ये चार खतरे हैं।

तृतीय. ख़तरे अनुभाग (भयावग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

121 आत्म-निन्दा (अत्तनुवदा)

भिक्षुओं, ये चार खतरे हैं। कौन से चार? आत्म-निंदा का खतरा, दूसरों द्वारा निंदा का खतरा, दंड का खतरा और बुरे गंतव्य का खतरा।

(1) "हे भिक्षुओं, आत्मनिंदा का खतरा क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार विचार करता है: 'यदि मैं शारीरिक, वाणी या मानसिक दुराचार में लिप्त हो जाऊँ, तो क्या मैं अपने आचरण के कारण स्वयं को धिक्कार नहीं दूँगा?' आत्मनिंदा के खतरे से भयभीत होकर, वह शारीरिक दुराचार का त्याग कर शारीरिक सुवाह्य आचरण अपनाता है; वह वाणी दुराचार का त्याग कर वाणी सुवाह्य आचरण अपनाता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग कर मानसिक सुवाह्य आचरण अपनाता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे ही आत्मनिंदा का खतरा कहते हैं।"

(2) "और दूसरों द्वारा निंदा का खतरा क्या है? [122] यहाँ, कोई इस प्रकार विचार करता है: 'यदि मैं शारीरिक, मौखिक या मानसिक दुराचार में लिप्त हो जाऊँ, तो क्या दूसरे मेरे व्यवहार के कारण मेरी निंदा नहीं करेंगे?' दूसरों द्वारा निंदा के खतरे से भयभीत होकर, वह शारीरिक दुराचार का त्याग कर अच्छे शारीरिक आचरण को अपनाता है; वह मौखिक दुराचार का त्याग कर अच्छे मौखिक आचरण को अपनाता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग कर अच्छे मानसिक आचरण को अपनाता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे ही दूसरों द्वारा निंदा का खतरा कहा जाता है।"

(3) "और दंड का क्या खतरा है? 803 यहाँ, कोई देखता है कि जब राजा किसी अपराध करने वाले चोर को गिरफ्तार करते हैं, तो वे उसे अनेक प्रकार के दंड देते हैं: वे उसे कोड़ों से पिटवाते हैं, बेंत से पीटते हैं, लाठियों से पिटवाते हैं; वे उसके हाथ काट देते हैं, उसके पैर काट देते हैं, उसके हाथ और पैर दोनों काट देते हैं; उसके कान काट देते हैं, उसकी नाक काट देते हैं, उसके कान और नाक दोनों काट देते हैं; वे उसे 'दलिया' के बर्तन, 'पॉलिश किए हुए शंख से बनी दाढ़ी', 'राहु के मुख', 'अग्नि की माला', 'ज्वलित हाथ', 'घास की पत्तियों', 'छाल

की पोशाक', 'हिरण', 'मांस के हुक', 'सिक्कों', 'लाइ अचार', 'धुरी की पिन', 'लुढ़कती हुई पल्लिया' के अधीन करते हैं; और वे उस पर उबलता हुआ तेल छिड़कवाते हैं, और वे उसे कुत्तों से कुतरवाते हैं, और वे उसे जिंदा सूली पर चढ़ा देते हैं।" एक खूंटी लगाई गई, और उन्होंने तलवार से उसका सिर काट दिया।

उसके मन में यह विचार आता है: 'जब राजा किसी चोर को अपराध करते हुए गिरफ्तार करते हैं, तो वे उसे उसके बुरे कर्मों के कारण कई तरह की सजाएँ देते हैं: वे उसे कोड़ों से पिटवाते हैं... वे तलवार से उसका सिर कटवा देते हैं। अब अगर मैं ऐसा कोई बुरा काम करूँ, और राजा मुझे गिरफ्तार कर लें, तो वे मुझे भी वही सजाएँ देंगे। वे मुझे कोड़ों से पिटवाएँगे... वे तलवार से मेरा सिर कटवा देंगे।' सजा के भय से वह दूसरों की संपत्ति लूटने नहीं जाता। इसे ही सजा का भय कहते हैं। [1231]

(4) "और बुरे अंजाम का खतरा क्या है? यहाँ, कोई इस प्रकार विचार करता है: 'शारीरिक दुराचार के बुरे परिणाम आने वाले जन्मों में होते हैं; वाणी के बुरे परिणाम होते हैं; मानसिक दुराचार के बुरे परिणाम आने वाले जन्मों में होते हैं। अब यदि मैं शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहूँ, तो शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, मैं दुख के लोक में, बुरे अंजाम में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लूँगा। बुरे अंजाम के खतरे से भयभीत होकर, वह शारीरिक दुराचार का त्याग कर अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करता है; वह वाणी के दुराचार का त्याग कर अच्छे वाणी के आचरण का विकास करता है; वह मानसिक दुराचार का त्याग कर अच्छे मानसिक आचरण का विकास करता है; वह स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। इसे ही बुरे अंजाम का खतरा कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये चार खतरे हैं।" 805

122 तरंगें [806] (उमिभया)

भिक्षुओं, जल में प्रवेश करने वाले को चार प्रकार के खतरों का सामना करना पड़ता है। वे चार खतरे कौन से हैं? लहरों का खतरा, मगरमच्छों का खतरा, भंवरों का खतरा और भयंकर मछलियों का खतरा। जल में प्रवेश करने वाले को इन्हीं चार खतरों का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, गृहस्थ जीवन छोड़कर धर्म और अनुशासन में संन्यासी बनने वाले कुल के अनुयायी को भी चार प्रकार के खतरों का सामना करना पड़ता है। वे चार खतरे कौन से हैं? लहरों का खतरा, मगरमच्छों का खतरा, भंवरों का खतरा और भयंकर मछलियों का खतरा।

(1) "और हे भिक्षुओं, लहरों का खतरा क्या है? यहाँ, एक कुल का व्यक्ति गृहस्थ जीवन से विमुख होकर संन्यासी जीवन में इस विचार के साथ चला गया है: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा में। मैं दुख में डूबा हुआ हूँ, दुख से पीड़ित हूँ। शायद इस पूरे दुख के समूह का अंत हो सकता है।' फिर, उसके इस प्रकार संन्यासी जीवन में जाने के बाद, उसके साथी भिक्षु उसे उपदेश और निर्देश देते हैं: 'तुम्हें इस तरह आगे बढ़ना चाहिए, इस तरह लौटना चाहिए; [124] इस तरह आगे देखना चाहिए, इस तरह बगल में देखना चाहिए; अपने अंगों को इस तरह समेटना चाहिए, उन्हें इस तरह फैलाना चाहिए; तुम्हें अपने वस्त्र इस तरह पहनने चाहिए और अपने बाह्य वस्त्र और कुंड को इस तरह ले जाना चाहिए।' वह सोचता है: 'पहले, जब मैं गृहस्थ था, तब मैं दूसरों को उपदेश और शिक्षा देता था। लेकिन अब ये [भिक्षु], जो मेरे पुत्र या पोते की आयु के हैं, मुझे उपदेश और शिक्षा देने का साहस कर रहे हैं।' क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न लोक में लौट जाता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने लहरों के खतरे के कारण प्रशिक्षण त्याग दिया और निम्न लोक में लौट गया। "लहरों का खतरा" क्रोध और चिड़चिड़ापन का प्रतीक है। इसे ही लहरों का खतरा कहा जाता है।

(2) "और कुंभिल मगरमच्छों का क्या खतरा है? यहाँ, एक कुलवासी ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, इस विचार के साथ: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा में। मैं दुख में डूबा हुआ हूँ, दुखों से पीड़ित हूँ। शायद इस पूरे दुख के चक्र का अंत हो सकता है।' फिर, उसके इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करने के बाद, उसके साथी भिक्षु उसे उपदेश और निर्देश देते हैं: 'तुम इसका सेवन कर सकते हो, परन्तु उसका नहीं; तुम इसे खा सकते हो, परन्तु उसका नहीं; तुम इसका स्वाद ले सकते हो, परन्तु उसका नहीं; तुम इसे पी सकते हो, परन्तु उसका नहीं। तुम वही खा सकते हो, चख सकते हो और ग्रहण कर सकते हो जो अनुमत है, न कि जो अनुमत नहीं है। तुम उचित समय के भीतर खा सकते हो, चख सकते हो और ग्रहण कर सकते हो, उचित समय के बाहर नहीं।' वह सोचता है: 'पहले, जब मैं गृहस्थ था, तो मैं जो चाहता था, वह सब ग्रहण करता था और जो नहीं चाहता था, वह नहीं ग्रहण करता था। मैं जो चाहता था, वह खाता था और जो नहीं चाहता था, वह नहीं खाता था। मैं जो

चाहता था, वह चखता था और जो नहीं चाहता था, वह नहीं चखता था। मैं जो चाहता था, वह पीता था और जो नहीं चाहता था, वह नहीं पीता था। मैंने उचित समय के भीतर और उचित समय के बाहर, दोनों तरह से ग्रहण, खाया, चखा और पिया। [125] लेकिन अब जब निष्ठावान गृहस्थ हमें उचित समय के बाहर दिन में स्वादिष्ट चीजें खाने को देते हैं, तो ये [भिक्षु] हमारे मुंह पर पट्टी बांध देते हैं।' क्रोधित और असंतुष्ट होकर, वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। इसे मगरमच्छों के खतरे के कारण प्रशिक्षण छोड़कर निम्न जीवन में लौटने वाला भिक्षु कहा जाता है। 'मगरमच्छों का खतरा' अत्यधिक भोजन करने का एक नाम। इसे मगरमच्छों का खतरा कहा जाता है।

(3) "और अवतारों के भंवरों का क्या खतरा है? यहाँ, एक कुलवासी आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर हो गया है, इस विचार के साथ: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा में। मैं दुख में डूबा हुआ हूँ, दुखों से पीड़ित हूँ। शायद इस पूरे दुख के चक्र का अंत संभव हो सके।'" फिर, इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करने के बाद, वह सुबह वस्त्र धारण करता है, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करता है, और भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या कस्बे में प्रवेश करता है, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित किए बिना, इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए। वह वहाँ किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लेते हुए देखता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'पहले, जब मैं गृहस्थ था, तब मैं पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लेता था। मेरे परिवार में धन है। मैं उस धन का आनंद भी ले सकता हूँ और पुण्य कर्म भी कर सकता हूँ। अब मुझे साधना छोड़ देनी चाहिए और निम्न जीवन में लौट जाना चाहिए ताकि मैं उस धन का आनंद भी ले सकूँ और पुण्य कर्म भी कर सकूँ।' अतः वह साधना छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने भंवरों के खतरे के कारण साधना छोड़ दी और निम्न जीवन में लौट गया। 'भंवरों का खतरा' इंद्रिय सुख के पांचों स्रोतों को दिया गया एक नाम है। इसे ही 'भंवरों का खतरा' कहा जाता है।

(4) "और भयंकर मछली (सुसुका) का क्या खतरा है? यहाँ, एक कुलवासी ने विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, इस विचार के साथ: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा में। मैं दुख में डूबा हुआ हूँ, दुख से पीड़ित हूँ। शायद इस पूरे दुख के समूह का अंत हो सकता है।' फिर, इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करने के बाद, वह सुबह वस्त्र धारण करता है, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए जाता है, शरीर, वाणी और मन पर कोई नियंत्रण नहीं रखता, सचेतनता स्थापित नहीं करता, इंद्रियों को अनियंत्रित रखता है। वहाँ वह स्त्रियों को अस्त-व्यस्त और ढीले वस्त्रों में देखता है। उन्हें देखकर उसके मन में कामवासना (राग) उत्पन्न हो जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न लोक में लौट जाता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने भयंकर मछली के खतरे के कारण साधना त्याग दी और निम्न लोक में लौट गया। 'भयंकर मछली का खतरा' स्त्रियों के लिए प्रयुक्त शब्द है।

"हे भिक्षुओं, ये वे चार खतरे हैं जिनका सामना उस कुलवासी को करना पड़ सकता है जो गृहस्थ जीवन से विमुख होकर इस धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन व्यतीत करने के लिए प्रस्थान करता है।"

---

123 अंतर (1) (नाना करना1)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त और अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, कोई व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होता है, जिसमें चिंतन और आत्मनिरीक्षण भी शामिल होता है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें तृप्ति पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर एकाग्र रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है और मृत्यु के समय इसे नहीं खोता है, तो वह ब्रह्मा की संगति के देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है। ब्रह्मा की संगति के देवताओं का जीवनकाल एक युग होता है। 818 सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या व्यथित आत्माओं के लोक में जाता है। 609 परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है। जीवन, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का संपूर्ण जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो

वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त करता है। 810 यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति के बीच है, अर्थात् जब भविष्य का गंतव्य और पुनर्जन्म होता है। 811 [127]

(2) "फिर, कोई व्यक्ति, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, दूसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, बिना विचार और परीक्षा के। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर केंद्रित रहता है, अक्सर इसमें निवास करता है और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह प्रकाशमान देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। प्रकाशमान देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल दो युगों का होता है। 812 सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या पीड़ित आत्माओं के लोक में जाता है। लेकिन भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है और जब वह जब कोई व्यक्ति उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का संपूर्ण जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही वह अंतर है, वही भिन्नता है, वही भेद है जो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति में होता है, अर्थात् भविष्य की मंजिल और पुनर्जन्म के समय।

(3) "फिर, कुछ व्यक्ति, जब उनकी पीति (आनंद) भी लुप्त हो जाती है, तो वे समभाव में रहते हैं और सती (ध्यान करते हुए) और पूर्णतः बोध रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हैं; वे उस तृतीय ध्यान (तंद्रा) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में रहने वाला, सती (ध्यान करते हुए) और सुखी है।'" वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा रखता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहे, इस पर एकाग्र रहे, अक्सर इसमें लीन रहे और मरने पर इसे न खोए, तो उसका पुनर्जन्म तेजस्वी देवों (देवदूतों/देवदूतों) के साथ होता है। तेजस्वी देवों (देवदूतों/देवदूतों) का जीवनकाल चार युगों का होता है। 813 सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवदूतों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या व्यथित आत्माओं के लोक में जाता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवदूतों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में परम निर्वाण प्राप्त करता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति में है, अर्थात्; जब भविष्य का गंतव्य और पुनर्जन्म।

(4) "फिर, कोई व्यक्ति सुख और दुख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और उदासी के टल जाने के बाद, चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। [128] यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर एकाग्र रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है, और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह महान फल वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। महान फल वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल पाँच सौ युगों का होता है। 314 सांसारिक व्यक्ति वहाँ जीवन भर रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या पीड़ित आत्माओं के लोक में जाता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य वहाँ जीवन भर रहता है।" जीवन, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का संपूर्ण जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह उसी अवस्था में अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही वह अंतर है, वही भिन्नता है, वही भेद है जो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति में है, अर्थात् भविष्य की मंजिल और पुनर्जन्म के समय।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

124 अंतर (2) (नाना कराना2)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं; इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... कोई व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... वह वहाँ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना से संबंधित सभी घटनाओं (धम्म) का चिंतन करता है, जो अनित्य, पीड़ा,

रोग, फोड़ा, तीर, दुःख, कष्ट, पराये, विघटनशील, शून्य और अनात्म के रूप में हैं। 815 मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह शुद्ध लोकों के देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। 816 यह पुनर्जन्म सांसारिक लोगों के साथ साझा नहीं किया जाता है।

(2) "फिर, कोई व्यक्ति, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, दूसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। (3) आनंद (पीति) के लुप्त होने पर... वह तीसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... (4) सुख और दुख के त्याग के साथ, और पहले आनंद और निराशा के लुप्त होने के साथ, वह चौथे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। वह (ध्यान में) रूप, संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा/संज्ञा), चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), और चेतना से संबंधित सभी घटनाओं (धम्म) को अनित्य, पीड़ा, रोग, फोड़े, तीर, दुःख, कष्ट, पराया, विघटनकारी, खाली आदि के रूप में देखता है। अनात्म। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह शुद्ध लोकों के देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। यह पुनर्जन्म सांसारिक लोगों के साथ साझा नहीं किया जाता है।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

125 प्रेम-कृपा (1) (मेटा1 सं. मैत्री)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति प्रेममयी (मेट्टा) मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, [129] इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेममयी (मेट्टा) मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है, जो विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर एकाग्र रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है, और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह ब्रह्मा की संगति के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। 817 ब्रह्मा की संगति के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल एक युग है। सांसारिक व्यक्ति वहाँ जीवन भर रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक में जाता है, पशु जगत में, या पीड़ित आत्माओं के लोक में। परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) का पूरा जीवनकाल व्यतीत कर लेता है, तो उसी अवस्था में उसे परम निर्वाण प्राप्त होता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, अर्थात् भविष्य की मंजिल और पुनर्जन्म के समय।

(2) "फिर, कोई व्यक्ति करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह करुणा से भरे विशाल, उदात्त, असीम, बिना द्वेष और बिना दुर्भावना वाले मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर केंद्रित रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह प्रकाश की धारा वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। प्रकाश की धारा वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल दो युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या पीड़ित आत्माओं के लोक में जाता है। लेकिन भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो उसी अवस्था में उसे परम निर्वाण प्राप्त होता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, यानी जब भविष्य में मृत्यु और पुनर्जन्म का सामना करना पड़ता है।

(3) "फिर, कोई व्यक्ति परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह परोपकारी आनंद से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, बिना द्वेष और बिना दुर्भावना वाले मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी

इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर केंद्रित रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह तेजस्वी देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। तेजस्वी देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल चार युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक, पशुलोक या पीड़ित आत्माओं के लोक में जाता है। लेकिन भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो उसी अवस्था में उसे परम निर्वाण प्राप्त होता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, यानी जब भविष्य में गंतव्य और पुनर्जन्म का सवाल आता है।

(4) "फिर, कोई व्यक्ति यहाँ एक दिशा में उदासीनता (भीतर समाहित/उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से व्याप्त रहता है, इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह समस्त संसार में उदासीनता (भीतर समाहित/उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से व्याप्त रहता है, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर एकाग्र रहता है, इसमें बार-बार निवास करता है और मरने पर इसे नहीं खोता है, तो वह महान फल वाले देवताओं (देवदूतों/देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेता है। महान फल वाले देवताओं (देवदूतों/देवदूतों) का जीवनकाल पाँच सौ युगों का होता है। सांसारिक व्यक्ति वहाँ जीवन भर रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/देवदूतों) का पूरा जीवनकाल पूरा कर लेता है, तो वह नरक में जाता है। कुछ लोग पशु जगत में, या पीड़ित आत्माओं के लोक में चले जाते हैं। परन्तु भगवान (बुद्ध) का शिष्य जीवन भर वहीं रहता है, और जब वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) का पूरा जीवनकाल व्यतीत कर लेता है, तो उसी अवस्था में उसे परम निर्वाण प्राप्त होता है। यही वह अंतर है, यही वह भिन्नता है, यही वह भेद है जो ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है, अर्थात् भविष्य की मंजिल और पुनर्जन्म के समय।

"ये, भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।" [130]

---

126 प्रेम-कृपा (2) (मेटा2 सं. मैत्री)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति एक दिशा में मेत्ता से भरे मन से व्याप्त होकर निवास करता है, इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, आर-पार और सर्वत्र, तथा सभी के प्रति, जैसा कि स्वयं के प्रति, वह मेत्ता से भरे मन से सम्पूर्ण जगत में व्याप्त होकर निवास करता है, विशाल, श्रेष्ठ, अपरिमित, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। वह ध्यान में रूप, वेदना, सन्ना/संज्ञा, चरित्र/व्यवहार, तथा चेतना से सम्बन्धित जो भी घटनाएँ (धम्म) हैं, उन्हें क्षणभंगुर, दुःख, रोग, फोड़े, तीर, दुख, क्लेश, पराया, विघटित, शून्य, अनात्मा के रूप में देखता है। शरीर के टूटने पर, मृत्यु के पश्चात, वह शुद्ध परमात्मा के देवों (स्वर्गदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। (2) "फिर, कोई व्यक्ति करुणा से ओतप्रोत मन के साथ एक चौथाई में व्याप्त होकर निवास करता है... (3)... परोपकारी आनंद... (4)... उदासीनता (भीतर वापस लेना/उपेक्षा), इसी तरह दूसरी तिमाही, तीसरी तिमाही और चौथी तिमाही में। इस तरह ऊपर, नीचे, पार और हर जगह, और सभी के प्रति स्वयं की तरह, वह उदासीनता (भीतर वापस लेना/उपेक्षा) से ओतप्रोत, विशाल, ऊंचा, अथाह, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से पूरे विश्व में व्याप्त रहता है। वह रूप, वेदना, संज्ञा, चरित्र/व्यवहार, और चेतना से जुड़ी हर चीज़ (धम्म) पर विचार करता है, उसे कुछ समय का नहीं, दुख, बीमारी, फोड़ा, तीर, दुख, तकलीफ, पराया, टूटने वाला, खाली, खुद से अलग मानता है। शरीर के टूटने के बाद, मौत के बाद, वह पवित्र जगहों के देवों (फ़रिश्ते/भगवान) के साथ दोबारा जन्म लेता है। यह एक ऐसा पुनर्जन्म है जो दुनिया वालों के साथ शेयर नहीं किया जाता।

"भिक्षुओं, ये दुनिया में पाए जाने वाले चार तरह के लोग हैं।"

---

127 अचंभित करने वाले तथागत (बुद्ध)(1) (तथागताचार्य1)

"भिक्षुओं, एक तथागत (बुद्ध), एक अरहंत, एक पूर्ण ज्ञानी के प्रकट होने के साथ, चार अचंभित करने वाली और अद्भुत चीजें प्रकट होती हैं। 818 कौन सी चार?

(1) "हे भिक्षुओं, जब कोई बोधिसत्व तुषिता स्वर्ग से विदा होकर सजग और पूर्ण बोध (संपजन्न) के साथ अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तब इस संसार में, जहाँ देव (देवदूत/ईश्वर), मार और ब्रह्मा विद हैं, इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/ईश्वर) और मनुष्य विद हैं, एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/ईश्वर) की दिव्य महिमा से भी कहीं अधिक है। यहाँ तक कि उन संसारिक अंतरालों में भी, जो निर्जन और अगाध हैं, अंधकार और अपार अंधकार के उन क्षेत्रों में जहाँ सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं, नहीं पहुँचता, 819 वहाँ भी एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/ईश्वर) की दिव्य महिमा से भी कहीं अधिक है। वहाँ पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी इस प्रकाश से एक दूसरे को पहचानते हैं और कहते हैं: 'यद्यपि, ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ अन्य प्राणी भी पुनर्जन्म लेकर आए हैं।'" 820 [131] यह पहली आश्चर्यजनक और अद्भुत बात है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ प्रकट होती है।

(2) "फिर, जब कोई बोधिसत्व पूर्ण चेतना और बोध के साथ अपनी माता के गर्भ से जन्म लेता है, तब इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/ईश्वर), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव (देवदूत/ईश्वर) और मनुष्य हैं, एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/ईश्वर) की दिव्य महिमा से भी बढ़कर होता है। उन संसारिक कालखंडों में भी... [प्राणी] कहते हैं: वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ अन्य प्राणी पुनर्जन्म लेकर आए हैं। यह दूसरी विस्मयकारी और अद्भुत बात है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर प्रकट होती है।"

(3) "फिर, जब तथागत (बुद्ध) अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं, तब इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/देवता) की दिव्य महिमा से भी बढ़कर होता है। उन सांसारिक कालखंडों में भी... [प्राणी] कहते हैं: 'वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य प्राणी यहाँ पुनर्जन्म लेकर आए हैं।' यह तीसरा आश्चर्यजनक और अद्भुत तथ्य है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर प्रकट होता है।"

(4) "फिर, जब तथागत (बुद्ध) धम्म के अतुलनीय चक्र को गतिमान करते हैं, तब इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/ईश्वर), मार और ब्रह्मा हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव (देवदूत/ईश्वर) और मनुष्य हैं, एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/ईश्वर) की दिव्य महिमा से भी बढ़कर होता है। यहां तक कि उन संसारिक अंतरालों में भी, जो खाली और अथाह हैं, अंधकार और अपार अंधकार के क्षेत्रों में, जहां सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं, नहीं पहुंचता, वहां भी एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट होता है, जो देव (देवदूत/ईश्वर) की दिव्य महिमा से भी बढ़कर होता है। वहां पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी इस प्रकाश से एक-दूसरे को पहचानते हैं और कहते हैं: 'वास्तव में, ऐसा लगता है कि यहां अन्य प्राणी भी पुनर्जन्म लेकर आए हैं।'" यह चौथी आश्चर्यजनक और अद्भुत बात है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ प्रकट होती है।

"भिक्षुओं, ये चार विस्मयकारी और अद्भुत बातें हैं जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ प्रकट होती हैं।"

---

128 आश्चर्यजनक तथागत(बुद्ध)(2) (तथागताचार्य2)

"भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर, चार आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें प्रकट होती हैं। वे चार बातें क्या हैं?"

(1) "लोग आसक्ति में आनंद लेते हैं, आसक्ति में प्रसन्न होते हैं, आसक्ति में मग्न होते हैं। लेकिन जब तथागत (बुद्ध) अनासक्ति के बारे में धम्म का उपदेश देते हैं, तो लोग सुनने की इच्छा रखते हैं, और वे ध्यान से सुनते हैं और उसे समझने का प्रयास करते हैं। तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर प्रकट होने वाली यह पहली आश्चर्यजनक और अद्‌भुत बात है।"

(2) "लोग अहंकार में आनंद लेते हैं, अहंकार में प्रसन्न होते हैं, अहंकार में मग्न होते हैं। [132] परन्तु जब तथागत (बुद्ध) अहंकार के निवारण हेतु धम्म का उपदेश देते हैं, तो लोग सुनना चाहते हैं, वे ध्यान से सुनते हैं और उसे समझने का निश्चय करते हैं। यह दूसरी विस्मयकारी और अद्‌भुत बात है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट होने पर प्रकट होती है।

(3) "लोग उत्तेजना में आनंद लेते हैं, उत्तेजना में प्रसन्न होते हैं, उत्तेजना में आनंदित होते हैं। लेकिन जब तथागत (बुद्ध) शांति की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश देते हैं, तो लोग सुनना चाहते हैं, वे ध्यान से सुनते हैं और उसे समझने का प्रयास करते हैं। यह तीसरा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत तथ्य है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर प्रकट होता है।"

(4) "लोग अज्ञान में डूबे रहते हैं, अंडे की तरह पूरी तरह से ढके रहते हैं। 824 लेकिन जब तथागत (बुद्ध) अज्ञान को दूर करने के लिए धम्म का उपदेश देते हैं, तो लोग सुनने की इच्छा रखते हैं, और वे ध्यान से सुनते हैं और उसे समझने का निश्चय करते हैं। यह चौथा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत तथ्य है जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने पर प्रकट होता है।"

"भिक्षुओं, ये चार विस्मयकारी और अद्‌भुत बातें हैं जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ प्रकट होती हैं।"

---

129 आश्चर्यजनक आनंद (आनंदचार्य) [825]

भिक्षुओं, आनंद के बारे में ये चार आश्चर्यजनक और अद्‌भुत बातें हैं। वे चार बातें क्या हैं?

(1) "यदि भिक्षुओं का कोई समूह आनंद से मिलने आता है, तो वे उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि आनंद उनसे धम्म पर प्रवचन देते हैं, तो वे उनके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और आनंद के मौन होने पर भी भिक्षुओं का वह समूह अतृप्त रहता है।"

(2) "यदि भिक्षुणियों का कोई समूह आनंद से मिलने आता है, तो वे उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि आनंद उनसे धम्म पर प्रवचन देते हैं, तो वे उनके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और भिक्षुणियों का वह समूह आनंद के मौन होने पर भी तृप्त नहीं होता।"

(3) "यदि पुरुष गृहस्थ अनुयायियों की कोई सभा आनंद से मिलने आती है, तो वे उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं। यदि आनंद उनसे धम्म पर प्रवचन देते हैं, तो वे उनके भाषण से भी प्रसन्न होते हैं, और आनंद के मौन होने पर भी पुरुष गृहस्थ अनुयायियों की वह सभा अतृप्त रहती है।"

(4) "यदि स्त्री-दास अनुयायियों का कोई समूह आनंद से मिलने आता है, तो वे उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि आनंद उनसे धम्म पर प्रवचन देते हैं, तो वे उनके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और जब आनंद मौन हो जाते हैं तब भी स्त्री-दास अनुयायियों का वह समूह अतृप्त रहता है।"

"भिक्षुओं, ये आनंद के बारे में चार आश्चर्यजनक और अद्‌भुत बातें हैं।" [133]

---

130 अद्‌भुत सम्राट (चक्कावत्तिआचरिया)

भिक्षुओं, चक्र घुमाने वाले सम्राट के बारे में ये चार आश्चर्यजनक और अद्‌भुत बातें हैं। वे चार बातें क्या हैं?

(1) "यदि क्षत्रियों की कोई सभा किसी चक्र घुमाने वाले सम्राट को देखने आती है, तो वे उसे देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि चक्र घुमाने वाला सम्राट उनसे बात करता है, तो वे उसके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और जब चक्र घुमाने वाला सम्राट मौन हो जाता है, तब भी क्षत्रियों की वह सभा अतृप्त रहती है।

(2) "यदि ब्राह्मणों की कोई सभा किसी चक्र-घुमाने वाले सम्राट को देखने आती है, तो वे उसे देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि चक्र-घुमाने वाला सम्राट उनसे बात करता है, तो वे उसके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और ब्राह्मणों की वह सभा चक्र-घुमाने वाले सम्राट के मौन होने पर भी तृप्त नहीं होती।"

(3) "यदि गृहस्थों की कोई सभा चक्र घुमाने वाले सम्राट को देखने आती है, तो वे उसे देखकर प्रसन्न होते हैं। यदि चक्र घुमाने वाला सम्राट उनसे बात करता है, तो वे उसके भाषण से भी प्रसन्न होते हैं, और गृहस्थों की वह सभा चक्र घुमाने वाले सम्राट के मौन होने पर भी तृप्त नहीं होती।"

(4) 'यदि तपस्वियों की कोई सभा चक्र घुमाते हुए सम्राट को देखने आती है, तो वे उसे देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि चक्र घुमाते हुए सम्राट उनसे बात करते हैं, तो वे उनके भाषण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, और तपस्वियों की वह सभा तब भी तृप्त नहीं होती जब चक्र घुमाते हुए सम्राट मौन हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, ये चक्र चलाने वाले सम्राट के बारे में चार आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें हैं।"

"तो, भिक्षुओं, आनंद के बारे में ये चार आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें हैं। वे चार क्या हैं?... [4:129 के अनुसार पूरा]..."

"भिक्षुओं, ये आनंद के बारे में चार आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें हैं।"

IV. व्यक्ति (पुग्गला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

131 बेड़ियाँ

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

"(1) हे भिक्षुओं, यहाँ किसी व्यक्ति ने निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों, या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग नहीं किया है। 826 [134] (2) किसी अन्य व्यक्ति ने निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, परन्तु पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का नहीं। (3) किसी अन्य व्यक्ति ने निम्न बंधनों और पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों का त्याग कर दिया है, परन्तु अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का नहीं। (4) और किसी अन्य व्यक्ति ने निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों, और अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग कर दिया है।"

(1) "किस प्रकार का व्यक्ति निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों, या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग नहीं करता है? एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी)। 827 इस व्यक्ति ने निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों, या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग नहीं किया है।"

(2) "वह किस प्रकार का व्यक्ति है जिसने निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, परन्तु पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का नहीं? वह जो धारा के विपरीत दिशा में बंधा हुआ है और अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर है। 826 इस व्यक्ति ने निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, परन्तु पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों या अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का नहीं।"

(3) "वह किस प्रकार का व्यक्ति है जिसने निम्न बंधनों और पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों को त्याग दिया है, परन्तु अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को नहीं त्यागा है? वह व्यक्ति जो इस अंतराल में अंतिम निर्वाण प्राप्त करता है। 829 इस व्यक्ति ने निम्न बंधनों और पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों को त्याग दिया है, परन्तु अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को नहीं त्यागा है।"

(4) "किस प्रकार के व्यक्ति ने निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों और अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग किया है? अरहंत ने। क्योंकि इस व्यक्ति ने निम्न बंधनों, पुनर्जन्म प्राप्त करने के बंधनों और अस्तित्व प्राप्त करने के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग किया है।"

"ये भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।" [135]

---

132 विवेक (पतिभाना)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक वह जिसकी विवेकशक्ति तीक्ष्ण है परन्तु सहज नहीं; एक वह जिसकी विवेकशक्ति सहज है परन्तु तीक्ष्ण नहीं; एक वह जिसकी विवेकशक्ति तीक्ष्ण और सहज दोनों है; और एक वह जिसकी विवेकशक्ति न तो तीक्ष्ण है और न ही सहज। संसार में यही चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

---

133 शीघ्र समझ का (उग्घटितन्नु)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो शीघ्रता से समझ जाता है; एक जो विस्तार से समझता है; एक जिसे मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है; और एक जिसके लिए शब्द ही सर्वोपरि है। संसार में पाए जाने वाले ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं।" 831

---

134 प्रयास (उत्थानफल)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक जो अपने कर्मों के फल से जीवन यापन करता है, परन्तु अपने कर्मों के फल से नहीं; एक जो अपने कर्मों के फल से जीवन यापन करता है, परन्तु अपने प्रयासों के फल से नहीं; एक जो अपने प्रयासों और कर्मों दोनों के फल से जीवन यापन करता है; और एक जो न तो अपने प्रयासों के फल से और न ही अपने कर्मों के फल से जीवन यापन करता है। संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

---

135 निंदनीय (सा-वज्जा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? निंदनीय, अति निंदनीय, अल्प निंदनीय और निर्दोष।

(1) "और हे भिक्षुओं, कोई व्यक्ति कैसे निंदनीय होता है? यहाँ, व्यक्ति निंदनीय शारीरिक क्रिया, निंदनीय वाणी और निंदनीय मानसिक क्रिया में संलग्न होता है। इसी प्रकार व्यक्ति निंदनीय होता है। [136]

(2) "और कोई व्यक्ति मुख्यतः दोषी कैसे होता है? यहाँ, व्यक्ति शारीरिक क्रिया करता है जो मुख्यतः दोषी होती है, मौखिक क्रिया करता है जो मुख्यतः दोषी होती है, और मानसिक क्रिया करता है जो मुख्यतः दोषी होती है। इसी प्रकार से कोई व्यक्ति मुख्यतः दोषी होता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति थोड़ा दोषी कैसे होता है? यहाँ, एक व्यक्ति शारीरिक क्रिया में संलग्न होता है जो अधिकतर निर्दोष होती है, मौखिक क्रिया में संलग्न होता है जो अधिकतर निर्दोष होती है, और मानसिक क्रिया में संलग्न होता है जो अधिकतर निर्दोष होती है: इसी तरह से एक व्यक्ति थोड़ा दोषी होता है।

(4) "और कोई व्यक्ति कैसे निर्दोष होता है? यहाँ, व्यक्ति निर्दोष शारीरिक क्रिया, निर्दोष वाणी और निर्दोष मानसिक क्रिया में संलग्न होता है। इसी प्रकार व्यक्ति निर्दोष होता है।"

"ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।" 833

---

136 सदाचारी व्यवहार (1) (सिला1 सं. शील)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? (1) हे भिक्षुओं, यहाँ कुछ व्यक्ति पुण्य कर्म, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन नहीं करते। (2) एक अन्य व्यक्ति पुण्य कर्म का पालन तो करता है, पर समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन नहीं करता। (3) एक अन्य व्यक्ति पुण्य कर्म और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) का पालन तो करता है, पर पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन नहीं करता। (4) और एक अन्य व्यक्ति पुण्य कर्म, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का पालन करता है। संसार में ये चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

---

137 सदाचारी व्यवहार (2) (सिला2 संस. शील)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति सद्गुणी आचरण को महत्व नहीं देता या सद्गुणी आचरण को अधिकार नहीं मानता, वह ऐसा नहीं करता

समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन) को महत्व देता है या समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन) को अधिकार के रूप में स्वीकार करता है, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) को महत्व नहीं देता है या पन्ना (दिव्य ज्ञान) को अधिकार के रूप में स्वीकार नहीं करता है।

(2) "दूसरा व्यक्ति सद्गुणी आचरण को महत्व देता है और सद्गुणी आचरण को अधिकार मानता है, परन्तु समाधि (स्व-लीनता/समाधि) को महत्व नहीं देता और न ही समाधि (स्व-लीनता/समाधि) को अधिकार मानता है, और न ही पन्ना (दिव्य ज्ञान) को महत्व देता है और न ही पन्ना (दिव्य ज्ञान) को अधिकार मानता है।

(3) "एक अन्य व्यक्ति सद्गुणी आचरण को महत्व देता है और सद्गुणी आचरण को अधिकार मानता है, समाधि (स्व-लीनता/समाधि) को महत्व देता है और समाधि (स्व-लीनता/समाधि) को अधिकार मानता है, लेकिन पन्ना (दिव्य ज्ञान) को महत्व नहीं देता है और न ही पन्ना (दिव्य ज्ञान) को अधिकार मानता है।

(4) "और एक अन्य व्यक्ति सद्गुणी आचरण को महत्व देता है और सद्गुणी आचरण को अधिकार मानता है, समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) को महत्व देता है और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) को अधिकार मानता है, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) को महत्व देता है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) को अधिकार मानता है।

"ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।"

---

138 निकेत (निकत्था)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? एक वह जिसने शरीर से तपस्या की है, परन्तु मन से नहीं; एक वह जिसने शरीर से तपस्या नहीं की है, परन्तु मन से; एक वह जिसने न शरीर से और न मन से तपस्या की है; और एक वह जिसने शरीर और मन दोनों से तपस्या की है।

(1) "हे भिक्षुओं, ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई व्यक्ति शरीर से तो तपस्या करे, पर मन से तपस्या न करे? यहाँ, कोई व्यक्ति जंगलों और वनों में एकांतवास में जाता है, परन्तु वहाँ वह कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि करने के विचार करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति शरीर से तो तपस्या कर लेता है, परन्तु मन से तपस्या नहीं करता।"

(2) "और कोई व्यक्ति शरीर से एकांतवास पर न जाकर मन से एकांतवास पर कैसे जाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति जंगलों और वनों में एकांतवास में नहीं जाता, बल्कि वह त्याग, सद्भावना और अहिंसा के विचार करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति शरीर से एकांतवास पर नहीं जाता, बल्कि मन से एकांतवास पर जाता है।"

(3) "और कोई व्यक्ति न तो शरीर से और न ही मन से एकांतवास पर कैसे जाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति जंगलों और वनों में एकांतवास में नहीं जाता, [138] और वह कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने के विचार सोचता है। इस प्रकार से कोई व्यक्ति न तो शरीर से और न ही मन से एकांतवास पर जाता है।"

(4) “और कोई व्यक्ति शरीर और मन दोनों से कैसे एकांतवास पर जाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति जंगलों और वनों में स्थित एकांतवासों में जाता है, और वहाँ वह त्याग, सद्भावना और अहिंसा के विचार करता है। इस प्रकार व्यक्ति शरीर और मन दोनों से एकांतवास पर जाता है।”

"ये भिक्षुओं, संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

139 धम्म वक्ता (धम्मकथिका)

"भिक्षुओं, धम्म (मार्ग) के चार प्रकार के वक्ता होते हैं। वे कौन से चार प्रकार के वक्ता हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ कोई धम्म वक्ता कम बोलता है और उसका भाषण निरर्थक है, और उसकी सभा सार्थक और निरर्थक में अंतर करने में कुशल नहीं है। ऐसी सभा द्वारा ऐसे धम्म वक्ता को धम्म वक्ता माना जाता है।"

(2) "एक अन्य धम्म वक्ता कम बोलता है, परन्तु उसका भाषण अर्थपूर्ण होता है, और उसकी सभा अर्थपूर्ण और निरर्थक में अंतर करने में निपुण होती है। ऐसी सभा द्वारा ऐसे धम्म वक्ता को धम्म वक्ता माना जाता है।"

(3) "एक अन्य धम्म (मार्ग) वक्ता बहुत बोलता है, परन्तु उसका भाषण निरर्थक होता है, और उसकी सभा सार्थक और निरर्थक में अंतर करने में कुशल नहीं होती। ऐसी सभा ऐसे धम्म वक्ता को ही धम्म वक्ता मानती है।"

(4) "और एक अन्य धम्म वक्ता बहुत बोलता है और [उसका भाषण] अर्थपूर्ण होता है, और उसकी सभा अर्थपूर्ण और निरर्थक में अंतर करने में कुशल होती है। ऐसी सभा द्वारा ऐसे धम्म वक्ता को धम्म वक्ता माना जाता है।"

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के धम्म वक्ता हैं।"

---

140 वक्ता (वादी)

भिक्षुओं, ये चार वक्ता हैं। कौन से चार? [139] (1) एक वक्ता ऐसा है जो अर्थ को तो पूर्णतः व्यक्त करता है, पर वाक्य रचना को नहीं। (2) एक वक्ता ऐसा है जो वाक्य रचना को तो पूर्णतः व्यक्त करता है, पर अर्थ को नहीं। (3) एक वक्ता ऐसा है जो अर्थ और वाक्य रचना दोनों को पूर्णतः व्यक्त करता है। (4) और एक वक्ता ऐसा है जो न तो अर्थ को पूर्णतः व्यक्त करता है और न ही वाक्य रचना को। ये चार वक्ता हैं। यह असंभव और अकल्पनीय है कि जो व्यक्ति चारों विश्लेषणात्मक ज्ञान रखता हो, वह न तो अर्थ को पूर्णतः व्यक्त कर सके और न ही वाक्य रचना को। 835

वी. ग्लो (अभा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

141 ग्लो (अभा)

भिक्षुओं, ये चार प्रकाश हैं। कौन से चार? चंद्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, अग्नि का प्रकाश और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश। ये चार प्रकाश हैं। इन चारों प्रकाशों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश सर्वोपरि है।

---

142 मूलांक (पभा सं. प्रभा)

भिक्षुओं, ये चार प्रकाश हैं। कौन से चार? चंद्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, अग्नि का प्रकाश और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश। ये चार प्रकाश हैं। इन चारों प्रकाशों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश सर्वोपरि है।

---

143 बत्तियाँ (आलोका)

भिक्षुओं, ये चार प्रकाश हैं। कौन से चार? चंद्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, अग्नि का प्रकाश और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश। ये चार प्रकाश हैं। इन चारों प्रकाशों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश सर्वोपरि है।

---

144 लस्ट्रेस (ओभासा)

"भिक्षुओं, ये चार प्रकाश हैं। कौन से चार? चंद्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, अग्नि का प्रकाश और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश। [140] ये चार प्रकाश हैं। इन चारों प्रकाशों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रकाश सर्वोपरि है।"

---

145 प्रकाशक (पज्जोटा सं. प्रज्वलित)

भिक्षुओं, ये चार प्रकाशमान पिंड हैं। कौन से चार? चंद्रमा एक प्रकाशमान पिंड है, सूर्य एक प्रकाशमान पिंड है, अग्नि एक प्रकाशमान पिंड है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) एक प्रकाशमान पिंड है। ये चार प्रकाशमान पिंड हैं। इन चारों प्रकाशमान पिंडों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) सर्वोपरि है।

---

146 बार (1) (कला1)

भिक्षुओं, ये चार काल हैं। कौन से चार? धम्म सुनने का काल, धम्म पर चर्चा करने का काल, समभाव (समथान) का काल, और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का काल। ये चार काल हैं।

---

147 बार (2) (कला2)

भिक्षुओं, इन चारों काल को उचित रूप से विकसित और समन्वित करने से धीरे-धीरे दोषों का नाश होता है। वे चार काल कौन से हैं? धम्म सुनने का समय, धम्म पर चर्चा करने का समय, समभाव (समथान) का समय और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का समय। इन चारों काल को उचित रूप से विकसित और समन्वित करने से धीरे-धीरे दोषों का नाश होता है।

"जैसे, जब बारिश होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी बूंदों के रूप में पानी बरसता है, तो पानी ढलान के साथ बहता है और दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; ये भरकर तालाबों को भर देते हैं; ये भरकर झीलों को भर देते हैं; ये भरकर धाराओं को भर देते हैं; ये भरकर नदियों को भर देते हैं; और ये भरकर विशाल महासागर को भर देते हैं; उसी प्रकार, ये चारों काल, सही ढंग से विकसित और समन्वित होने पर, धीरे-धीरे दोषों के विनाश में परिणत होते हैं।" [141]

---

148 बुरा आचरण (1) (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

भिक्षुओं, चार प्रकार के मौखिक दुराचार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? झूठा वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बातें। ये चार प्रकार के मौखिक दुराचार हैं।

---

149 अच्छा आचरण (2) (सुच्चरित संस. सद्चरित्र)

भिक्षुओं, चार प्रकार के सुचारु आचरण होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? सत्यवादी वाणी, विभाजनरहित वाणी, सौम्य वाणी और विवेकपूर्ण वाणी। ये चार प्रकार के सुचारु आचरण हैं।

---

150 एसेंस (सारा)

भिक्षुओं, ये चार सार तत्व हैं। कौन से चार? सद्गुणी आचरण का सार, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का सार, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का सार और मुक्ति का सार। ये चार सार तत्व हैं।

चौथा पचास

I. इंद्रिय शक्तियाँ

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

151 इंद्रिय संकाय

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? श्रद्धा (सद्धा/श्रद्धा), ऊर्जा (वीर्य/प्रयास), सती (ध्यान) और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन)। ये चार शक्तियाँ हैं।

---

152 आस्था (सद्धबाला सं. श्रद्धाबाला)

"भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान) की शक्ति और समाधि (स्व-लीन/तल्लीनता) की शक्ति। ये चार शक्तियाँ हैं।" [142]

---

153 पन्ना (दिव्य ज्ञान) (पन्नबल संस्कृत: प्रज्ञाबल)

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, निष्कलंकता की शक्ति और संघ की शक्ति। ये चार शक्तियाँ हैं।

---

154 ध्यान की शक्ति (सतिबाला सं. स्मृतिबाला)

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? सती ध्यान की शक्ति, समाधि की शक्ति, दोषरहितता की शक्ति और संघ की शक्ति। ये चार शक्तियाँ हैं।

---

155 प्रतिबिंब (पतिसंखानाबाला)

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? चिंतन की शक्ति, विकास की शक्ति, दोषरहितता की शक्ति और संघ की शक्ति। ये चार शक्तियाँ हैं।

---

156 इऑन (कप्पा संस्कृत कल्प)

"भिक्षुओं, युग के ये चार अगणनीय विभाजन हैं। 838 वे चार कौन से हैं?"

(1) "वह समय जिसके दौरान एक युग समाप्त हो जाता है, जिसकी गणना 'इतने वर्षों' या 'इतने सैकड़ों वर्षों' या 'इतने हज़ार वर्षों' या 'इतने लाखों वर्षों' के रूप में आसानी से नहीं की जा सकती है।" 839

(2) "वह समय जिसके दौरान एक युग विघटन की अवस्था में रहता है, जिसकी गणना आसानी से 'इतने वर्षों' या 'इतने सैकड़ों वर्षों' या 'इतने हज़ार वर्षों' या 'इतने लाखों वर्षों' के रूप में नहीं की जा सकती है।"

(3) "वह समय जिसके दौरान एक युग विकसित होता है, जिसकी गणना आसानी से 'इतने वर्षों' या 'इतने सैकड़ों वर्षों' या 'इतने हज़ार वर्षों' या 'इतने लाखों वर्षों' के रूप में नहीं की जा सकती है।

(4) "वह समय जिसके दौरान एक युग विकास की अवस्था में रहता है, जिसकी गणना आसानी से 'इतने वर्षों' या 'इतने सैकड़ों वर्षों' या 'इतने हज़ार वर्षों' या 'इतने लाखों वर्षों' के रूप में नहीं की जा सकती है।"

"भिक्षुओं, ये एक युग के चार अगणनीय विभाजन हैं।"

---

157 रोग

भिक्षुओं, दो प्रकार के रोग होते हैं। कौन से दो? [143] शारीरिक रोग और मानसिक रोग। ऐसे लोग मिलते हैं जो एक, दो, तीन, चार और पाँच वर्ष; दस, बीस, तीस, चालीस और पचास वर्ष; और यहाँ तक कि सौ वर्ष और उससे भी अधिक समय तक शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने का दावा कर सकते हैं। लेकिन जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, उनके अलावा संसार में ऐसे लोग मिलना कठिन है जो एक क्षण के लिए भी मानसिक रूप से स्वस्थ रहने का दावा कर सकें।

भिक्षुओं, भिक्षु को ये चार रोग होते हैं। वे चार क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु में तीव्र इच्छाएँ होती हैं, वह कष्ट भोगता है, और किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, या बीमारों के लिए औषधि और भोजन से संतुष्ट नहीं होता। (2) क्योंकि उसमें तीव्र इच्छाएँ होती हैं, वह कष्ट भोगता है, और किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधि और भोजन से संतुष्ट नहीं होता, इसलिए वह यश, लाभ, सम्मान और प्रशंसा की बुरी इच्छाओं के आगे झुक जाता है। (3) वह यश, लाभ, सम्मान और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए स्वयं को उत्तेजित करता है, प्रयास करता है और मेहनत करता है। (4) वह धूर्तता से परिवारों के पास जाता है, धूर्तता से बैठता है, धूर्तता से धम्म पर प्रवचन देता है, और धूर्तता से अपने मल-मूत्र को रोके रखता है। ये भिक्षु को होने वाले चार रोग हैं।

अत: हे भिक्षुओं, तुम इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करो: 'हम तीव्र इच्छाओं के वश में नहीं रहेंगे और कष्ट नहीं सहेंगे, तथा किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधि और बीमारों के लिए भोजन से असंतुष्ट नहीं होंगे। हम मान्यता, लाभ, सम्मान और प्रशंसा की बुरी इच्छाओं के आगे नहीं झुकेंगे। हम मान्यता, लाभ, सम्मान और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए स्वयं को उत्तेजित नहीं करेंगे, न ही प्रयास करेंगे और न ही परिश्रम करेंगे। हम धीरजपूर्वक सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क को सहन करेंगे; अभद्र और अपमानजनक वाणी को सहन करेंगे; हम उत्पन्न होने वाली वेदनाओं (वेदाना) को सहन करेंगे जो पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायी और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली हों।' हे भिक्षुओं, इसी प्रकार तुम स्वयं को प्रशिक्षित करो।

---

158 पतन (परिहानी)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, [144] भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो आंतरिक रूप से चार बातों का अवलोकन करता है, वह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है: मैं लाभकारी (कुशल) गुणों में पतित हो रहा हूँ। इसे भगवान (बुद्ध) पतन कहते हैं। वे चार बातें क्या हैं? काम (राग) की अधिकता, घृणा (घृणा) की अधिकता, मोह (मोह) की अधिकता, और उसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) नेत्र संभव और असंभव के गहन मामलों में प्रवेश नहीं करता। 842 कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो आंतरिक रूप से इन चार बातों का अवलोकन करता है, वह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है: 'मैं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में पतित हो रहा हूँ। इसे भगवान (बुद्ध) पतन कहते हैं।'"

"मित्रों, कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो आंतरिक रूप से चार बातों का अवलोकन करता है, वह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है: मैं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में क्षीण नहीं हो रहा हूँ। इसे भगवान (बुद्ध) द्वारा अवनति कहा जाता है। वे चार बातें क्या हैं? काम (राग) का कम होना, घृणा का कम होना, मोह (मोह) का कम होना, और उनकी पन्ना (दिव्य ज्ञान) दृष्टि संभव और असंभव के गहन विषयों में

विचरण करती है। कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो आंतरिक रूप से इन चार बातों का अवलोकन करता है, वह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है: मैं लाभकारी (कुशल) गुणों में क्षीण नहीं हो रहा हूँ। इसे भगवान (बुद्ध) द्वारा अवनति कहा जाता है।"

---

159 भिक्षुणी (भिक्षुणी)

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में, घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक भिक्षुणी ने एक व्यक्ति से कहा, "हे सज्जन, आ, गुरु आनंद के पास जाइए और मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम कीजिए।" तब आप कहें, "भंते, फलां भिक्षुणी बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। वे गुरु आनंद के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करती हैं।" तब आप कहें, "हे भंते, यदि दयावश गुरु आनंद भिक्षुणियों के निवास स्थान पर उस भिक्षुणी से मिलने आएं तो अच्छा होगा।"

"जी हां, महोदया," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया। फिर वह पूज्य आनंद के पास पहुंचा, [145] उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और अपना संदेश दिया। पूज्य आनंद ने मौन रहकर सहमति दी।

तब पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र लिया और भिक्षुणियों के कक्ष में चले गए। जब उस भिक्षुणी ने दूर से पूज्य आनंद को आते देखा, तो उसने सिर से नीचे तक अपने आप को ढक लिया और अपने पलंग पर लेट गई। 43 तब पूज्य आनंद उस भिक्षुणी के पास गए, नियत आसन पर बैठ गए और उससे कहा:

"बहन, यह शरीर पोषण से उत्पन्न हुआ है; पोषण पर निर्भर रहने पर पोषण का त्याग करना चाहिए। यह शरीर तृष्णा से उत्पन्न हुआ है; तृष्णा पर निर्भर रहने पर तृष्णा का त्याग करना चाहिए। यह शरीर अहंकार से उत्पन्न हुआ है; अहंकार पर निर्भर रहने पर अहंकार का त्याग करना चाहिए। यह शरीर संभोग से उत्पन्न हुआ है, परन्तु संभोग के विषय में भगवान (बुद्ध) ने पुल को ध्वस्त करने की घोषणा की है।"

(1) जब यह कहा गया: 'बहन, यह शरीर पोषण से उत्पन्न हुआ है; पोषण पर निर्भर रहते हुए पोषण का त्याग करना चाहिए,' तो ऐसा क्यों कहा गया? बहन, ध्यानपूर्वक विचार करने पर, एक भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण, हानि से बचने और ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) में सहायता करने के लिए भोजन ग्रहण करता है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मैं पुरानी वेदना को समाप्त करूँगा और नई वेदना को उत्पन्न नहीं होने दूँगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूँगा और शांति से रहूँगा।' कुछ समय बाद, पोषण पर निर्भर रहते हुए, वह पोषण का त्याग कर देता है। 45 जब यह कहा गया: 'बहन, यह शरीर पोषण से उत्पन्न हुआ है; पोषण पर निर्भर रहते हुए पोषण का त्याग करना चाहिए,' तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

(2) "जब यह कहा गया: 'यह शरीर तृष्णा से उत्पन्न हुआ है; तृष्णा पर निर्भर रहते हुए, तृष्णा का त्याग करना चाहिए,' तो यह किस कारण से कहा गया? हे बहन, यहाँ एक भिक्षु सुनता है: 'अमुक नाम के भिक्षु ने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।' वह सोचता है: "मैं कब दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव करूँगा, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँगा?" कुछ समय बाद, तृष्णा पर निर्भर रहते हुए, वह तृष्णा का त्याग कर देता है।" जब यह कहा गया: 'यह शरीर तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से उत्पन्न हुआ है; तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) पर निर्भर रहते हुए, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का त्याग करना चाहिए', तो इसी कारण से यह कहा गया था।

(3) "जब यह कहा गया: 'यह शरीर अहंकार से उत्पन्न हुआ है; अहंकार पर निर्भरता में अहंकार का त्याग करना चाहिए।' यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, बहन, एक भिक्षु सुनता है: 'अमुक नाम के भिक्षु ने, दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।' वह सोचता है: 'उस पूजनीय भिक्षु ने, दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। क्यों, मैं भी ऐसा कर

सकता हूँ!'" कुछ समय बाद, अहंकार पर निर्भरता में रहते हुए, वह अहंकार का त्याग कर देता है। जब यह कहा गया था: 'यह शरीर अहंकार से उत्पन्न हुआ है; अहंकार पर निर्भरता में रहते हुए, अहंकार का त्याग करना चाहिए', तो इसी कारण से यह कहा गया था।

(4) "हे बहन, यह शरीर यौन संबंध से उत्पन्न हुआ है, परन्तु यौन संबंध के विषय में भगवान (बुद्ध) ने पुल के विध्वंस की घोषणा की है।" 846

तब उस भिक्षुणी ने अपने पलंग से उठकर अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और पूज्य अरंदा के चरणों में सिर झुकाकर पूज्य आनंद से कहा, “भंते, मैंने जो नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से व्यवहार किया, उससे मैंने पाप किया है। हे भंते, भगवान आनंद मेरे इस पाप को भविष्य में संयम के लिए पाप मानकर स्वीकार करें।”

"निश्चित रूप से, बहन, आपने जो नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से व्यवहार किया, वह एक अपराध है। लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानती हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करती हैं, इसलिए हम इसे स्वीकार करते हैं। क्योंकि यह भगवान के अनुशासन में वृद्धि है कि कोई अपने अपराध को अपराध माने, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करे और भविष्य में संयम का पालन करे।" [147]

---

160 एक सुगत (बुद्ध) का अनुशासन [847] (सुगत-विनय)

"भिक्षुओं, जब तक सुगत (भगवान बुद्ध) या सुगत (भगवान बुद्ध) का अनुशासन संसार में रहता है, यह अनेक लोगों के कल्याण के लिए, अनेक लोगों की खुशी के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए होता है।"

"और हे भिक्षुओं, सुगत (भगवान बुद्ध) कौन हैं? यहाँ तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट होते हैं, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)। यही सुगत (भगवान बुद्ध) हैं।"

और सुगत (भगवान बुद्ध) का अनुशासन क्या है? वे सही अर्थ और शब्दों के साथ उस धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा, मध्य में अच्छा और अंत में अच्छा है; वे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करते हैं। यही सुगत (भगवान बुद्ध) का अनुशासन है। अतः जब तक सुगत (भगवान बुद्ध) या सुगत (भगवान बुद्ध) का अनुशासन संसार में रहता है, तब तक यह अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, संसार के प्रति करुणा, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण, सुख और भलाई के लिए होता है।

भिक्षुओं, ये चार बातें हैं जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे चार बातें कौन सी हैं?

(1) "यहाँ भिक्षु ऐसे प्रवचन सीखते हैं जो गलत तरीके से सीखे गए हैं, जिनमें शब्द और वाक्यांश गलत ढंग से लिखे गए हैं। 843 जब शब्द और वाक्यांश गलत ढंग से लिखे जाते हैं, तो अर्थ की गलत व्याख्या होती है। यही पहली बात है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है।"

(2) "भिक्षुओं को सुधारना कठिन है और उनमें ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें सुधारना कठिन बनाते हैं। वे अधीर होते हैं और आदरपूर्वक उपदेश स्वीकार नहीं करते। यही दूसरा कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

(3) "फिर, वे भिक्षु जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, वे आदरपूर्वक दूसरों को प्रवचन नहीं देते। उनके देहांत हो जाने पर, प्रवचन जड़ से ही कट जाते हैं, और उन्हें संरक्षित करने वाला कोई नहीं बचता। यही तीसरा कारण है जो उत्तम धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

(4) "फिर, वरिष्ठ भिक्षु विलासी [148] और लापरवाह हैं, पतन में अग्रणी हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य, अभी तक अप्राप्य के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं जगाते। अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण

करती है। वे भी विलासी और लापरवाह हो जाते हैं, पतन में अग्रणी हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य, अभी तक अप्राप्य के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं जगाते। यह चौथा कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

"ये चार बातें हैं जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं।"

भिक्षुओं, ये चार अन्य बातें हैं जो अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और विस्मृति न होने की ओर ले जाती हैं। वे चार बातें क्या हैं?

(1) "यहाँ भिक्षु सुस्थापित प्रवचनों का अध्ययन करते हैं, जिनमें सुस्थापित शब्द और वाक्यांश होते हैं। जब शब्द और वाक्यांश सुस्थापित होते हैं, तो उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। यही वह प्राथमिक कारक है जो उत्तम धम्म की निरंतरता, उसके क्षय न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाता है।"

(2) "भिक्षुओं को सुधारना आसान होता है और उनमें ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें सुधारना आसान बनाते हैं। वे धैर्यवान होते हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करते हैं। यही वह दूसरी बात है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने का कारण बनती है।"

(3) "फिर, वे भिक्षु जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, आदरपूर्वक दूसरों को प्रवचन देते हैं। उनके देहांत होने पर भी प्रवचन जड़ से नष्ट नहीं होते, क्योंकि उन्हें संरक्षित करने वाले मौजूद होते हैं। यही वह तीसरा कारण है जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवनति और विलोपन न होने का कारण बनता है।"

(4) "फिर, वरिष्ठ भिक्षु विलासी और लापरवाह नहीं होते, बल्कि वे पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य और अभी तक अप्राप्त की गई अनुभूति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत करते हैं। अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण करती है। वे भी विलासी और लापरवाह नहीं होते, बल्कि वे पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य और अभी तक अप्राप्त की गई अनुभूति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत करते हैं। यही वह चौथा तत्व है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपाप्यता की ओर ले जाता है। [149]

"भिक्षुओं, ये चार बातें हैं जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवक्रमण न होने और लुप्त न होने की ओर ले जाती हैं।"

II. अभ्यास के तरीके (पतिपदा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

161 संक्षेप में [849] (संखित्त सं. संक्षिप्त)

भिक्षुओं, साधना के ये चार तरीके हैं। वे कौन से चार तरीके हैं? (1) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ पीड़ादायक साधना; (2) त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ पीड़ादायक साधना; (3) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद साधना; और (4) त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद साधना। 850 ये साधना के चार तरीके हैं।

---

162 विस्तार से (वित्थरा सं. विस्तारा)

भिक्षुओं, साधना के ये चार तरीके हैं। वे चार कौन से हैं? (1) वह साधना जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ कष्टदायी होती है; (2) वह साधना जो त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ कष्टदायी होती है; (3) वह साधना जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद होती है; और (4) वह साधना जो त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद होती है।

(1) "हे भिक्षुओं, वह साधना क्या है जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से पीड़ादायक होती है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वभाव से कामवासना (राग) के प्रति प्रबल प्रवृत्त होता है और अक्सर कामवासना (राग) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। स्वभाव से वह घृणा के प्रति प्रबल प्रवृत्त होता है और अक्सर घृणा से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। स्वभाव से वह मोह (मोह) के प्रति प्रबल प्रवृत्त होता है और अक्सर मोह (मोह) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल उत्पन्न होती हैं: विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान) की शक्ति, समाधि (स्व-लीन) की शक्ति और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति; क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल हैं, इसलिए वह दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को सुस्ती से प्राप्त करता है। 851 इसे सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से पीड़ादायक साधना कहते हैं।"

(2) "वह साधना क्या है जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ कष्टदायी होती है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वभाव से कामवासना (राग) . . . घृणा . . . मोह (मोह) के प्रति प्रबल प्रवृत्त होता है और अक्सर मोह (मोह) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। उसमें ये पाँच शक्तियाँ प्रमुखता से उत्पन्न होती हैं: [150] विश्वास की शक्ति . . . पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुख होती हैं, वह शीघ्र ही दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसे ही वह साधना कहते हैं जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ कष्टदायी होती है।"

(3) "और वह अभ्यास क्या है जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ सुखद होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वभाव से कामवासना (राग) के प्रति प्रबल प्रवृत्त नहीं होता और कामवासना (राग) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। स्वभाव से वह घृणा के प्रति प्रबल प्रवृत्त नहीं होता और घृणा से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। स्वभाव से वह मोह (मोह) के प्रति प्रबल प्रवृत्त नहीं होता और मोह (मोह) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव नहीं करता। ये पाँच गुण उसमें दुर्बल उत्पन्न होते हैं: विश्वास का गुण... ज्ञान का गुण। क्योंकि ये पाँच गुण उसमें दुर्बल हैं, इसलिए वह दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को धीरे-धीरे प्राप्त करता है। इसे ही वह अभ्यास कहते हैं जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ सुखद होता है।"

(4) "प्रथम प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रसन्न करने वाला अभ्यास क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वभाव से कामवासना (राग) . . . घृणा . . . मोह (मोह) के प्रति प्रबल प्रवृत्त नहीं होता और मोह (मोह) से उत्पन्न पीड़ा और निराशा का अनुभव अक्सर नहीं करता। उसमें ये पाँच शक्तियाँ प्रमुखता से उत्पन्न होती हैं: आस्था की शक्ति . . . पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुख हैं, वह शीघ्र ही दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसे ही प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रसन्न करने वाला अभ्यास कहते हैं।"

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के चार तरीके हैं।"

---

163 अनाकर्षकता (असुभा सं. अशुभा)

[प्रारंभिक अनुच्छेद ऊपर दिए गए अनुसार है।]

(1) "हे भिक्षुओं, वह साधना क्या है जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से पीड़ादायक होती है? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता को निहारते हुए, भोजन की अरुचि को अनुभव करते हुए, समस्त संसार में अनाकर्षकता को निहारते हुए, सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता को निहारते हुए (ध्यान/अनुपसी में) रहता है; और उसे मृत्यु का बोध (सन्न/संज्ञा) आंतरिक रूप से सुस्थापित होता है। वह इन पाँच प्रशिक्षार्थियों पर निर्भर रहता है: विश्वास की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। 852 ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल रूप से उत्पन्न होती हैं: विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान/सती) की शक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की

शक्ति। इन पाँचों शक्तियों के दुर्बल होने के कारण, व्यक्ति दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को धीमी गति से प्राप्त करता है। इसे धीमी प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से युक्त कष्टदायी साधना कहते हैं।

(2) "वह साधना क्या है जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ कष्टदायी होती है? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता को निहारते हुए (अनुपसी में) ध्यान लगाता है... और उसे मृत्यु का ज्ञान (सन्ना/संज्ञा) आंतरिक रूप से अच्छी तरह स्थापित होता है। वह इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों पर निर्भर रहता है: विश्वास की शक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुखता से जागृत होती हैं: विश्वास की शक्ति... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ प्रमुख हैं, वह शीघ्र ही दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसे ही वह साधना कहते हैं जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्ना) के साथ कष्टदायी होती है।"

(3) "और वह साधना क्या है जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान से सुखद हो? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और परीक्षा शामिल होती है। विचार और परीक्षा के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, बिना विचार और परीक्षा के। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, वह शरीर के साथ सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में है, सती (ध्यानमग्न), सुख में रहने वाला। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही आनंद और उदासी के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान (सती अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/सती) द्वारा सती (ध्यानमग्नता) का शुद्धिकरण होता है। वह इन पाँच अभ्यासी शक्तियों पर निर्भर रहता है: विश्वास की शक्ति... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल रूप से उत्पन्न होती हैं: विश्वास की शक्ति... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ दुर्बल हैं, वह दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को धीरे-धीरे प्राप्त करता है। इसे सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के साथ सुखदायी अभ्यास कहा जाता है।

(4) "और वह साधना क्या है जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रसन्न करती है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... [152] चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में। वह इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों पर निर्भर रहते हुए निवास करता है: विश्वास की शक्ति... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुखता से जागृत होती हैं: विश्वास की शक्ति... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ प्रमुख हैं, वह शीघ्र ही दोषों के नाश की तात्कालिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसे ही शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से प्रसन्न करने वाली साधना कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के चार तरीके हैं।"

---

164 क्षमा (1) (खमा1 सं. क्षमा)

भिक्षुओं, अभ्यास के ये चार तरीके हैं। कौन से चार? अधीर अभ्यास, धैर्यपूर्ण अभ्यास, वशीकरण अभ्यास और शांत करने वाला अभ्यास।

(1) "और हे भिक्षुओं, अधीर अभ्यास क्या है? इसमें, जो व्यक्ति अपमान करता है, वह उसका अपमान करता है, जो उसे डांटता है, वह उसे डांटता है, और जो उससे बहस करता है, उससे बहस करता है। इसे अधीर अभ्यास कहते हैं।"

(2) "और धैर्यपूर्ण व्यवहार क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति अपमान करने वाले का अपमान नहीं करता, डांटने वाले को डांटता नहीं है, और बहस करने वाले से बहस नहीं करता। इसे ही धैर्यपूर्ण व्यवहार कहते हैं।"

(3) "और संयम साधना क्या है? यहाँ, किसी आकृति को आँख से देखकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय पर संयम का कार्य करता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह मन की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; [153] वह मन की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह मन की इंद्रिय पर संयम का कार्य करता है। इसे संयम साधना कहा जाता है।" अभ्यास।

(4) "और शांत करने का अभ्यास क्या है? यहाँ, एक भिक्षु उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता; वह उसे त्याग देता है, दूर करता है, शांत करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। 853 वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को... बुरे हानिकारक (अकुशल) विचारों को जब भी वे उत्पन्न होते हैं; वह उन्हें त्याग देता है, दूर करता है, शांत करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। इसे शांत करने का अभ्यास कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के चार तरीके हैं।"

---

165 रोगी (2) (खेमा1 सं. क्षेमा)

भिक्षुओं, साधना के ये चार तरीके हैं। वे कौन से चार तरीके हैं? अधीर साधना, धैर्यवान साधना, वशीकरण साधना और शांत करने की साधना।

(1) "हे भिक्षुओं, अधीर साधना क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास, मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क, अभद्र और अपमानजनक वाणी को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता; वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने में असमर्थ होता है जो पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायी और जीवन शक्ति को नष्ट करने वाली होती हैं। इसे अधीर साधना कहते हैं।"

(2) "और धैर्यवान अभ्यास क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति धैर्यपूर्वक सर्दी और गर्मी सहन करता है... अभद्र और अपमानजनक वाणी को सहन करता है; वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने में सक्षम होता है जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, कष्टदायी, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली होती हैं। इसे ही धैर्यवान अभ्यास कहते हैं।"

(3) . "और हे भिक्षुओं, वशीकरण का अभ्यास क्या है? . . . [जैसा कि 4:164 में है]..."

(4) "और हे भिक्षुओं, शांत करने का अभ्यास क्या है? . . . [जैसा कि 4:164 में है] ...

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के चार तरीके हैं।" [154]

---

166 दोनों (उभय)

भिक्षुओं, साधना के ये चार तरीके हैं। वे चार कौन से हैं? (1) वह साधना जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ कष्टदायी होती है; (2) वह साधना जो त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ कष्टदायी होती है; (3) वह साधना जो सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद होती है; और (4) वह साधना जो त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के साथ सुखद होती है।

(1) "सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ कष्टदायी अभ्यास विधि को दोनों कारणों से निम्नतर घोषित किया गया है: क्योंकि यह कष्टदायी है और क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) सुस्त है। अभ्यास की यह विधि दोनों कारणों से निम्नतर घोषित की गई है।"

(2) "प्रसारण की वह विधि जो त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ कष्टदायी होती है, उसे कष्टदायी होने के कारण निम्नतर घोषित किया जाता है।

(3) "सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से सुखद अभ्यास विधि को उसकी सुस्ती के कारण निम्नतर घोषित किया गया है।

(4) "प्रथा को सुहावना बनाने वाली और प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने वाली अभ्यास विधि को दोनों कारणों से श्रेष्ठ घोषित किया गया है: क्योंकि अभ्यास सुहावना है और क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) शीघ्र प्राप्त होता है। इस विधि को दोनों कारणों से श्रेष्ठ घोषित किया गया है।"

"भिक्षुओं, ये अभ्यास के चार तरीके हैं।"

---

167 मोग्गलाना

तब पूज्य सारिपुत्त पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य महामोग्गलाना से बोले, "मित्र मोग्गलाना, साधना के ये चार तरीके हैं। वे कौन से चार हैं? (1) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान से पीड़ादायक साधना; (2) शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से पीड़ादायक साधना (अभिन); (3) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान से सुखदायक साधना (अभिन); और (4) शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से सुखदायक साधना (अभिन)। इन चारों साधना तरीकों में से किस एक तरीके से आपका मन अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हुआ?" [155]

"हे मित्र सारिपुत्त, इन चार साधना विधियों में से, शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से परिपूर्ण कष्टदायी विधि के द्वारा ही मेरे मन को अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्ति मिली।" 854

---

168 सारिपुत्त

तब पूज्य महामोग्गलाना पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे कहा:

"मित्र सारिपुत्त, साधना के ये चार तरीके हैं। वे कौन-से तरीके हैं? (1) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त कष्टदायक साधना; (2) शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त कष्टदायक साधना; (3) सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त सुखदायक साधना; और (4) शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त सुखदायक साधना। इन चारों में से किस साधना के माध्यम से अनासक्ति के कारण आपका मन दोषों से मुक्त हुआ?"

"हे मित्र मोग्गलाना, अभ्यास के इन चार तरीकों में से, वह तरीका जो शीघ्र प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के साथ सुखद है, उसके माध्यम से ही मेरा मन अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हुआ।"

---

169 परिश्रम के माध्यम से (सासंखार)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) यहाँ, कुछ व्यक्ति इसी जीवन में परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करते हैं। (2) कुछ अन्य व्यक्ति शरीर के विखंडन के साथ परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करते हैं। (3) कुछ अन्य व्यक्ति इसी जीवन में बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त करते हैं। (4) और कुछ अन्य व्यक्ति शरीर के विखंडन के साथ बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त करते हैं।

(1) "हे भिक्षुओं, मनुष्य इस जीवन में परिश्रम द्वारा निर्वाण कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता का अवलोकन करते हुए, भोजन की अरुचि का अनुभव करते हुए, समस्त संसार में अनाकर्षकता का अवलोकन करते हुए, समस्त बद्ध घटनाओं

(संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता का अवलोकन करते हुए (ध्यान/अनुपसी में) रहता है; और उसे मृत्यु का बोध (सन्न/संज्ञा) [156] आंतरिक रूप से सुस्थापित होता है। वह इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों पर निर्भर रहता है: विश्वास की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुखता से उत्पन्न होती हैं: विश्वास, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य), सजगता और समाधि (स्वयं) की शक्ति। ये पाँचों शक्तियाँ (सम्मोहन/तल्लीनता) और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्रमुख हैं, इसलिए व्यक्ति इसी जीवन में परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार व्यक्ति इसी जीवन में परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है।

(2) "और शरीर के विखंडन के साथ परिश्रम द्वारा व्यक्ति निर्वाण कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है... और उसे मृत्यु का ज्ञान (सन्ना/संज्ञा) आंतरिक रूप से अच्छी तरह स्थापित होता है। वह इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों पर निर्भर रहता है: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान)। ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल रूप से उत्पन्न होती हैं: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान)। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ दुर्बल हैं, इसलिए वह शरीर के विखंडन के साथ परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति शरीर के विखंडन के साथ परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है।"

(3) “और मनुष्य इस जीवन में बिना किसी प्रयास के निर्वाण कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में। वह इन पाँच प्रशिक्षार्थियों पर निर्भर रहते हुए निवास करता है: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें प्रमुखता से जागृत होती हैं: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ प्रमुख होती हैं, इसलिए वह इस जीवन में बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य इस जीवन में बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त करता है।”

(4) "और शरीर के विखंडन के साथ बिना किसी प्रयास के निर्वाण कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में। वह इन पाँच प्रशिक्षु शक्तियों पर निर्भर रहते हुए निवास करता है: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ उसमें दुर्बल रूप से उत्पन्न होती हैं: विश्वास की शक्ति... और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। क्योंकि ये पाँच शक्तियाँ दुर्बल हैं, इसलिए वह शरीर के विखंडन के साथ बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति शरीर के विखंडन के साथ बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त करता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

170 युगनद्धा में (युगनद्धा)

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा: [157]

"मित्रों, जिस भी भिक्षु या भिक्षुणी ने मेरी उपस्थिति में अरहंतत्व की प्राप्ति की घोषणा की है, उसने इन चार मार्गों 857 या उनमें से किसी एक मार्ग से ऐसा किया है। वे चार मार्ग कौन से हैं?..."

(1) "यहाँ, एक भिक्षु समभाव से पहले अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित करता है। जैसे-जैसे वह समभाव से पहले अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। 858 वह इस मार्ग का अनुसरण करता है; इसे विकसित करता है और इसका अभ्यास करता है। जैसे-जैसे वह इस मार्ग का अनुसरण, विकास और अभ्यास करता है, बंधन त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं। 859

(2) "फिर, एक भिक्षु अंतर्दृष्टि (विपश्यना) से पहले समभाव (समथा) विकसित करता है। 860 जैसे-जैसे वह अंतर्दृष्टि (विपश्यना) से पहले समभाव (समथा) विकसित करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका अभ्यास करता है। जैसे-जैसे वह इस मार्ग का अनुसरण, विकास और अभ्यास करता है, बंधन त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

(3) "फिर, एक भिक्षु समभाव (समथा) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का एक साथ विकास करता है। 861 जैसे-जैसे वह समभाव (समथा) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का एक साथ विकास करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका अभ्यास करता है। जैसे-जैसे वह इस मार्ग का अनुसरण, विकास और अभ्यास करता है, बंधन त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

(4) "फिर एक भिक्षु का मन धम्म के विषय में बेचैनी से ग्रस्त हो जाता है। 862 परन्तु एक ऐसा अवसर आता है जब उसका मन आंतरिक रूप से स्थिर, शांत, एकाग्र और एकाग्र हो जाता है। तब उसमें मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका अभ्यास करता है। जैसे-जैसे वह इस मार्ग का अनुसरण, विकास और अभ्यास करता है, बंधन त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

"हे मित्रों, जिस भी भिक्षु या भिक्षुणी ने मेरी उपस्थिति में अरहंतत्व की प्राप्ति की घोषणा की है, उसने इन चार मार्गों या उनमें से किसी एक मार्ग का अनुसरण किया है।"

III. सचेतन क्रिया (संचेतनिया)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

171 सचेतन क्रिया (चेतना) 863

भिक्षुओं, जब शरीर होता है, तब शारीरिक सचेतन क्रिया [158] के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; जब वाणी होती है, तब वाणी सचेतन क्रिया के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; जब मन होता है, तब मानसिक सचेतन क्रिया के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं—अज्ञान स्वयं ही स्थिति है। 864

भिक्षुओं, या तो व्यक्ति स्वयं ही उस शारीरिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार) का प्रदर्शन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर दूसरों द्वारा उस शारीरिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार) को उत्पन्न कराया जाता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। या तो पूर्ण बोध (संपजन्न) के साथ व्यक्ति उस शारीरिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार) का प्रदर्शन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर पूर्ण बोध के बिना व्यक्ति उस शारीरिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार) का प्रदर्शन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। 866

भिक्षुओं, या तो व्यक्ति स्वयं उस वाणी/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर दूसरों द्वारा प्रेरित होकर वह वाणी/व्यवहार (संस्कार/आचरण) करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। या तो पूर्ण बोध (संपजन्न) के साथ व्यक्ति उस वाणी/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर पूर्ण बोध के बिना व्यक्ति उस वाणी/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, या तो व्यक्ति स्वयं उस मानसिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर दूसरों द्वारा प्रेरित होकर वह मानसिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/आचरण) करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। या तो पूर्ण बोध (संपजन्न) के साथ व्यक्ति उस मानसिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं, या फिर पूर्ण बोध के बिना व्यक्ति उस मानसिक चरित्र/व्यवहार (संस्कार/आचरण) का पालन करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"अज्ञान इन अवस्थाओं में समाहित है। 866 परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और समाप्त हो जाने पर वह शरीर अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण मन में सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; वह वाणी अस्तित्वहीन हो जाती है जिसके कारण मन में सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; वह मन अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण मन में सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। 867 वह क्षेत्र अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान [159] अस्तित्वहीन हो जाता है, वह आधार अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण मन में सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। 868

भिक्षुओं, व्यक्तित्व की ये चार उपलब्धियाँ हैं। 869 वे चार क्या हैं? (1) व्यक्तित्व की एक ऐसी उपलब्धि है जिसमें स्वयं की सचेतन क्रिया संचालित होती है, न कि दूसरों की सचेतन क्रिया। (2) व्यक्तित्व की एक ऐसी उपलब्धि है जिसमें स्वयं की सचेतन क्रिया संचालित होती है, न कि स्वयं की सचेतन क्रिया। (3) व्यक्तित्व की एक ऐसी उपलब्धि है जिसमें स्वयं की सचेतन क्रिया और दूसरों की सचेतन क्रिया दोनों संचालित होती हैं। (4) और व्यक्तित्व की एक ऐसी उपलब्धि है जिसमें न तो स्वयं की सचेतन क्रिया और न ही दूसरों की सचेतन क्रिया संचालित होती है। ये हैं... व्यक्तित्व की चार उपलब्धियाँ।

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “भंते, भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ मैं विस्तार से इस प्रकार समझता हूँ: (1) उस वैयक्तिकता की प्राप्ति में जिसमें व्यक्ति की स्वयं की सचेतन क्रिया संचालित होती है, न कि दूसरों की सचेतन क्रिया, उसी के कारण प्राणी उस समूह से विदा हो जाते हैं। (2) उस वैयक्तिकता की प्राप्ति में जिसमें दूसरों की सचेतन क्रिया संचालित होती है, न कि व्यक्ति की स्वयं की सचेतन क्रिया, उसी के कारण प्राणी उस समूह से विदा हो जाते हैं। (3) उस वैयक्तिकता की प्राप्ति में जिसमें व्यक्ति की स्वयं की सचेतन क्रिया और दूसरों की सचेतन क्रिया दोनों संचालित होती हैं, उसी के कारण प्राणी उस समूह से विदा हो जाते हैं। (4) परन्तु, भंते, किस प्रकार के देवों (देवदूतों/देवताओं) को उस वैयक्तिकता की प्राप्ति के रूप में समझा जाना चाहिए जिसमें न तो व्यक्ति की स्वयं की सचेतन क्रिया संचालित होती है और न ही दूसरों की सचेतन क्रिया।” न ही दूसरों की सचेत क्रियाएं संचालित होती हैं?" 873

"हे सारिपुत्त, वे उस क्षेत्र (आयतन) के देव (देवदूत/देवता) हैं जो न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति से ग्रसित है।"

"हे भंते, ऐसा क्यों है कि उस समूह से मरने वाले कुछ प्राणी पुनरावर्ती होते हैं, जो इस अवस्था में वापस आते हैं, जबकि [160] अन्य गैर-पुनरावर्ती (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी) होते हैं, जो इस अवस्था में वापस नहीं आते?" 874

"हे सारिपुत्त, यहाँ एक व्यक्ति ने निम्न बंधनों का त्याग नहीं किया है। इसी जीवन में वह न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, इस पर एकाग्र रहता है, इसमें निरंतर निवास करता है और मृत्यु के समय इसे नहीं खोता है, तो वह न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है। जब वह वहाँ से चला जाता है, तो वह एक प्रतिवर्ती होता है जो इस अवस्था में वापस आता है।"

लेकिन यहाँ किसी दूसरे व्यक्ति ने निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है। इसी जीवन में वह उस अवस्था में प्रवेश करता है और निवास करता है जहाँ न तो चेतना (सन्न/संज्ञा) होती है और न ही अचेतना। वह उसमें आनंदित होता है, उसकी इच्छा करता है और उसमें तृप्ति पाता है। यदि वह उसमें दृढ़ रहे, उस पर एकाग्र रहे, उसमें लगातार निवास करे और मृत्यु के समय उसे न खोए, तो उसका पुनर्जन्म देवताओं के साथ उसी अवस्था में होता है जहाँ न तो चेतना (सन्न/संज्ञा) होती है और न ही अचेतना। जब वह वहाँ से चला जाता है, तो वह अजन्मा (पारिवारिक पुनर्जन्म रहित, अनागामी) होता है, जो इस अवस्था में वापस नहीं आता।

"हे सारिपुत्त, यही कारण है कि इस समूह से कुछ प्राणी जो इस दुनिया से चले जाते हैं, वे पुनरावर्ती होते हैं, जो इस अवस्था में वापस आते हैं, जबकि अन्य पुनरावर्ती (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी) होते हैं, जो इस अवस्था में वापस नहीं आते हैं।"

---

172 विश्लेषण (विभक्ति सं. विभक्ति)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

(1) "मित्रों, पूर्ण दीक्षा के आधे महीने बाद, मैंने अर्थ के विभाजन और निरूपण के माध्यम से उसके विश्लेषणात्मक ज्ञान को प्राप्त किया। 875 मैं इसे अनेक तरीकों से समझाता हूँ, सिखाता हूँ, घोषित करता हूँ, स्थापित करता हूँ, प्रकट करता हूँ, विश्लेषण करता हूँ और स्पष्ट करता हूँ। 876 जो कोई भी भ्रमित या अनिश्चित हो, वह मुझसे प्रश्न लेकर आए; मैं उसे अपने उत्तर से संतुष्ट करूँगा। 877 हमारे शिक्षक, जो हमारे उपदेशों में अत्यंत कुशल हैं, उपस्थित हैं। 878

(2) "मेरे पूर्ण दीक्षा ग्रहण के आधे महीने बाद मैंने धम्म के विभाजन और निरूपण के माध्यम से उसके विश्लेषणात्मक ज्ञान को प्राप्त किया। मैं अनेक तरीकों से उसकी व्याख्या करता हूँ, उसे सिखाता हूँ, उसका प्रचार करता हूँ, उसे स्थापित करता हूँ, उसे प्रकट करता हूँ, उसका विश्लेषण करता हूँ और उसे स्पष्ट करता हूँ। जो कोई भी भ्रमित या अनिश्चित हो, वह मुझसे प्रश्न लेकर आ सकता है; मैं उसे अपने उत्तर से संतुष्ट करूँगा। हमारे गुरु, जो हमारे उपदेशों में अत्यंत कुशल हैं, उपस्थित हैं।"

(3) "मेरे पूर्ण दीक्षा संस्कार के आधे महीने बाद मैंने भाषा के विभाजन और संरचना के माध्यम से उसके विश्लेषणात्मक ज्ञान को प्राप्त किया। मैं इसे अनेक तरीकों से समझाता हूँ, सिखाता हूँ, घोषित करता हूँ, स्थापित करता हूँ, प्रकट करता हूँ, विश्लेषण करता हूँ और स्पष्ट करता हूँ। जो कोई भी उलझन में हो या अनिश्चित हो, वह मुझसे प्रश्न लेकर आ सकता है; मैं उसे अपने उत्तर से संतुष्ट करूँगा। हमारे शिक्षक, जो हमारी शिक्षाओं में अत्यंत कुशल हैं, उपस्थित हैं।"

(4) "मेरे पूर्ण दीक्षा संस्कार के आधे महीने बाद, मैंने इसके विभाजन और निरूपण के माध्यम से विवेक के विश्लेषणात्मक ज्ञान को प्राप्त किया। मैं इसे अनेक तरीकों से समझाता हूँ, सिखाता हूँ, घोषित करता हूँ, स्थापित करता हूँ, प्रकट करता हूँ, विश्लेषण करता हूँ और स्पष्ट करता हूँ। जो कोई भी भ्रमित या अनिश्चित हो, वह मुझसे प्रश्न लेकर आ सकता है; मैं उसे अपने उत्तर से संतुष्ट करूँगा। हमारे शिक्षक, जो हमारी शिक्षाओं में अत्यंत कुशल हैं, उपस्थित हैं।"

---

173 कोत्थिता

तब पूज्य महाकोत्थिता पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से पूछा:

(1) "मित्र, छह इंद्रियों के निरंतर लुप्त होने और संपर्क स्थापित करने की क्षमता समाप्त होने के साथ, क्या कुछ और भी बचा है?" 879

"ऐसा मत कहो, दोस्त।"

(2) "छह इंद्रियों के संपर्क के लिए शेषफल के लुप्त होने और समाप्ति के साथ, क्या और कुछ नहीं है?"

"ऐसा मत कहो, दोस्त।"

(3) "संपर्क के लिए छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और समाप्ति के साथ, क्या कुछ और भी है और कुछ और भी नहीं है?"

"ऐसा मत कहो, दोस्त।"

(4) "संपर्क के लिए छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और समाप्त होने के साथ, क्या न तो कुछ और है और न ही कुछ और नहीं है?"

"ऐसा मत कहो, मित्र।" 880

मित्र, जब तुमसे पूछा जाए: 'छह इंद्रियों के निरंतर क्षीण होने और समाप्त होने के साथ, क्या कुछ और भी है?' तो तुम कहोगे: 'ऐसा मत कहो, मित्र।' और जब तुमसे पूछा जाए: 'छह इंद्रियों के निरंतर क्षीण होने और समाप्त होने के साथ, क्या कुछ और नहीं है?... क्या कुछ और भी है और कुछ भी नहीं है?... क्या न तो कुछ और है और न ही कुछ भी नहीं है?' [प्रत्येक स्थिति में] तुम कहोगे: 'ऐसा मत कहो, मित्र।' इस कथन का अर्थ किस प्रकार समझा जाना चाहिए?

(1) "मित्र, यदि कोई कहता है: 'समाधि/सम्मोहन में छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और संपर्क के लिए उनके समाप्त होने के साथ, कुछ और है तो वह उस चीज को बढ़ाता है जिसे बढ़ाना नहीं चाहिए। 881 (2) यदि कोई कहता है: 'मित्र, छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और संपर्क के लिए उनके समाप्त होने के साथ, कुछ और नहीं है तो वह उस चीज को बढ़ाता है जिसे बढ़ाना नहीं चाहिए। (3) यदि कोई कहता है: 'मित्र, छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और संपर्क के लिए उनके समाप्त होने के साथ, कुछ और भी है और कुछ और नहीं भी है तो वह उस चीज को बढ़ाता है जिसे बढ़ाना नहीं चाहिए। (4) यदि कोई कहता है: 'मित्र, छह इंद्रियों के शेषफल के लुप्त होने और संपर्क के लिए उनके समाप्त होने के साथ, न तो कुछ और है और न ही कुछ और नहीं है तो वह उस चीज को बढ़ाता है जिसे बढ़ाना नहीं चाहिए।

"मित्र, छह इंद्रियों के संपर्क की सीमा जितनी दूर तक फैली है, उतनी ही दूर तक इंद्रिय-भ्रम (प्रपंच) की सीमा भी फैली है। छह इंद्रियों के धीरे-धीरे लुप्त होने और समाप्त होने के साथ ही इंद्रिय-भ्रम (प्रपंच) का भी अंत हो जाता है, इंद्रिय-भ्रम (प्रपंच) शांत हो जाता है।"

---

174 आनंद

तब पूज्य आनंद ने पूज्य महा कोत्थिता के पास जाकर उनसे अभिवादन किया।

[यह सूत्र 4:173 के बिल्कुल समान है, सिवाय इसके कि यहाँ आनंद प्रश्न पूछते हैं और महाकोत्थिता उत्तर देते हैं।] 883 [163]

---

175 उपवन

तब पूज्य उपवन पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे कहा:

(1) "मित्र सारिपुत्त, क्या ज्ञान के माध्यम से कोई व्यक्ति लक्ष्य-निर्माता बनता है?" 884

"ऐसा नहीं है, दोस्त।"

(2) "तो क्या कोई आचरण के माध्यम से लक्ष्य-निर्माता बन जाता है?"

"ऐसा नहीं है, दोस्त।"

(3) "तो क्या कोई ज्ञान और आचरण के माध्यम से लक्ष्य-निर्माता बन जाता है?"

"ऐसा नहीं है, दोस्त।"

(4) "तो क्या कोई व्यक्ति ज्ञान और आचरण के अलावा किसी अन्य माध्यम से लक्ष्य-निर्माता बनता है?"

"ऐसा नहीं है, दोस्त।"

जब आपसे पूछा जाए: 'मित्र सारिपुत्त, क्या ज्ञान के माध्यम से कोई व्यक्ति लक्ष्य-प्राप्त होता है?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, मित्र।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो क्या आचरण के माध्यम से कोई व्यक्ति लक्ष्य-प्राप्त होता है? ...ज्ञान और आचरण के माध्यम से? ...ज्ञान और आचरण के अलावा अन्य तरीकों से?' [प्रत्येक स्थिति में] आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, मित्र।' तो फिर किस प्रकार कोई व्यक्ति लक्ष्य-प्राप्त होता है?

(1) हे मित्र, यदि कोई ज्ञान के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त कर ले, तो आसक्ति रखने वाला भी लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। (2) यदि कोई आचरण के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त कर ले, तो आसक्ति रखने वाला भी लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। (3) यदि कोई ज्ञान और आचरण के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त कर ले, तो आसक्ति रखने वाला भी लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। (4) यदि कोई ज्ञान और आचरण के अलावा किसी अन्य माध्यम से लक्ष्य प्राप्त कर ले, तो सांसारिक व्यक्ति ही लक्ष्य प्राप्त कर लेगा; क्योंकि सांसारिक व्यक्ति ज्ञान और आचरण से रहित होता है।

"मित्र, आचरण में कमी वाला व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न ही देखता है। आचरण में निपुण व्यक्ति [164] चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने और देखने से व्यक्ति लक्ष्य-निर्माता बन जाता है।" 885

---

176 आकांक्षी [886] (अयाकाना)

(1) "भिक्षुओं, आस्था से परिपूर्ण, सही आकांक्षा रखने वाले भिक्षु को इस प्रकार आकांक्षा रखनी चाहिए: 'मैं सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनूँ!' यही मेरे भिक्षु शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना।"

(2) "भिक्षुओं, आस्था से परिपूर्ण, सही आकांक्षा रखने वाली भिक्षुणी को इस प्रकार आकांक्षा करनी चाहिए: 'मैं खेमा और उप्पलावन की भिक्षुणियों के समान बनूँ!' यही मेरी भिक्षुणी शिष्यों, अर्थात् खेमा और उप्पलावन की भिक्षुणियों के लिए मानक और मानदंड है।"

(3) "भिक्षुओं (मठवासियों), आस्थावान पुरुष अनुयायी, सही आकांक्षा रखते हुए, इस प्रकार आकांक्षा करें: 'मैं चित्त गृहस्थ और अलाव्ल के हत्थक के समान बनूँ!' यही मेरे पुरुष गृहस्थ शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलाव्ल के हत्थक।"

(4) "भिक्षुओं (साधुओं), आस्थावान और सही आकांक्षा रखने वाली स्त्री-शैतान को इस प्रकार आकांक्षा करनी चाहिए: 'काश मैं कुज्जुत्तरा और वेलुकांतकी नंदमाता जैसी स्त्री-शैतान बन जाऊं!' यही मेरी स्त्री-शैतान शिष्यों, अर्थात् कुज्जुत्तरा और वेलुकांतकी नंदमाता के लिए आदर्श और मानदंड है।"

---

177 राहुल

तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: 887

(1) "राहुला, आंतरिक पृथ्वी तत्व और बाह्य पृथ्वी तत्व एक ही पृथ्वी तत्व हैं। इसे सही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' सही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर, व्यक्ति पृथ्वी तत्व से विरक्त हो जाता है; वह मन को पृथ्वी तत्व से अलग कर लेता है। 888

(2) "राहुला, आंतरिक जल तत्व और बाह्य जल तत्व [1651] केवल जल तत्व ही हैं। इसे सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ यथार्थ रूप में देखा जाना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ; यह मेरा स्व नहीं है।' इसे सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ यथार्थ रूप में देखने पर, व्यक्ति जल तत्व से विरक्त हो जाता है; वह मन को जल तत्व से अलग कर लेता है।

(3) "राहुल, आंतरिक अग्नि तत्व और बाह्य अग्नि तत्व, दोनों ही अग्नि तत्व हैं। इसे सही ज्ञान से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' सही ज्ञान से इसे यथार्थ रूप में देखने पर, व्यक्ति अग्नि तत्व से विरक्त हो जाता है; उसका मन अग्नि तत्व से विरक्त हो जाता है।"

(4) "राहुल, आंतरिक वायु तत्व और बाह्य वायु तत्व एक ही वायु तत्व हैं। इसे सही ज्ञान से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' सही ज्ञान से इसे यथार्थ रूप में देखने पर व्यक्ति वायु तत्व से विरक्त हो जाता है; मन वायु तत्व से विरक्त हो जाता है।"

"हे राहुल, जब कोई भिक्षु इन चार तत्वों में स्वयं या स्वयं से संबंधित किसी भी चीज को नहीं पहचानता, तो उसे तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का त्याग करने वाला, बंधनों से मुक्त और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुखों का अंत करने वाला भिक्षु कहा जाता है।"

---

178 जलाशय (जम्बाली)

"भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण पर ध्यान देता है। 889 ऐसा करते समय, उसका मन इसकी ओर प्रवृत्त नहीं होता, न ही आत्मविश्वास प्राप्त करता है, न ही स्थिर होता है और न ही इस पर ध्यान केंद्रित करता है। इस भिक्षु से व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण को प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति गोंद लगे हाथ से किसी शाखा को पकड़ ले। उसका हाथ उससे चिपक जाएगा, उससे जुड़ जाएगा और उससे जकड़ जाएगा। उसी प्रकार, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है...। इस भिक्षु से व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण को प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।"

(2) "यहाँ, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। [166] वह व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण पर ध्यान देता है। ऐसा करते समय, उसका मन उस ओर प्रवृत्त होता है, आत्मविश्वास प्राप्त करता है, स्थिर हो जाता है और उस पर ध्यान केंद्रित करता है। इस भिक्षु से व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण को प्राप्त करने की अपेक्षा की जा सकती है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति स्वच्छ हाथ से एक शाखा को पकड़ ले। उसका हाथ उससे चिपकेगा नहीं, उससे जुड़ेगा नहीं, उससे जकड़ा नहीं जाएगा। उसी प्रकार, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... इस भिक्षु से व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण को प्राप्त करने की अपेक्षा की जा सकती है।"

(3) "यहाँ, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह अज्ञान के विखंडन पर ध्यान देता है। ऐसा करते समय, उसका मन अज्ञान की ओर प्रवृत्त नहीं होता, न ही उस पर विश्वास प्राप्त करता है, न ही स्थिर होता है और न ही उस पर एकाग्र होता है। इस भिक्षु से अज्ञान के विखंडन की प्राप्ति की अपेक्षा नहीं की जा सकती। मान लीजिए कि एक जलाशय कई वर्षों पुराना है। एक व्यक्ति उसके प्रवेश द्वार बंद कर दे और निकास द्वार खोल दे, और पर्याप्त वर्षा न हो। ऐसी स्थिति में, यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि जलाशय का तटबंध टूट जाएगा। उसी प्रकार, एक भिक्षु मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। इस भिक्षु से अज्ञान के विखंडन की प्राप्ति की अपेक्षा नहीं की जा सकती।"

(4) "यहाँ, एक भिक्षु प्रवेश करता है और मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करता है। वह अज्ञान के विघटन पर ध्यान देता है। ऐसा करते समय, उसका मन अज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है, आत्मविश्वास प्राप्त करता है, स्थिर हो जाता है और उस पर एकाग्र हो जाता है। इस भिक्षु से अज्ञान के विघटन की प्राप्ति की अपेक्षा की जा सकती है। मान लीजिए कि एक जलाशय कई वर्षों पुराना है। एक व्यक्ति उसके प्रवेश द्वार खोल दे और निकास द्वार बंद कर दे, और पर्याप्त वर्षा हो। ऐसी स्थिति में, यह अपेक्षा की जा सकती है कि जलाशय का तटबंध टूट जाएगा। उसी प्रकार, एक भिक्षु प्रवेश करता है और मन की एक निश्चित शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करता है।

वह अज्ञान के विघटन पर ध्यान देता है। [167] ऐसा करते समय, उसका मन अज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है, आत्मविश्वास प्राप्त करता है, स्थिर हो जाता है और उस पर एकाग्र हो जाता है। इस भिक्षु से अज्ञान के विघटन की प्राप्ति की अपेक्षा की जा सकती है।

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान पाए जाने वाले चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

179 निब्बाना

तब पूज्य आनंद पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, ऐसा क्यों है कि कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते?"

"हे मित्र आनंद, यहाँ कुछ प्राणी इसे ठीक से नहीं समझते: 'ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) क्षय से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) स्थिरता से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) भेद से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) भेद से संबंधित हैं।' इसीलिए यहाँ कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते।"

"हे मित्र सारिपुत्त, ऐसा क्यों है कि कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं?"

"हे मित्र आनंद, यहाँ कुछ प्राणी इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) क्षय से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) स्थिरता से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) भेद से संबंधित हैं; ये धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) भेद से संबंधित हैं।' इसीलिए कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।" 890

---

180 महान संदर्भ [891] (महापदेश)

एक बार भगवान (बुद्ध) आनंद मंदिर के पास भोगनगर में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), मैं तुम्हें ये चार महान संदर्भ सिखाऊंगा। 892 [168] ध्यान से सुनो और गौर करो; मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, वे चार महान संदर्भ क्या हैं?

(1) "हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कह सकता है: 'भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: 'यह धम्म है; यह अनुशासन है; यह गुरु की शिक्षा है!'" उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। इसे स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए और फिर प्रवचनों में उनकी खोज करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। 893 यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, [आप पाते हैं कि] वे प्रवचनों में शामिल नहीं हैं और अनुशासन में नहीं देखे जाते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन नहीं है। इस भिक्षु ने इसे गलत तरीके से सीखा है।' इसलिए आपको इसे त्याग देना चाहिए।

लेकिन एक भिक्षु कह सकता है: 'भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: 'यह धम्म है; यह अनुशासन है; यह गुरु की शिक्षा है!' उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। इसे स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए और फिर प्रवचनों में उनकी खोज

करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, आप पाते हैं कि वे प्रवचनों में शामिल हैं और अनुशासन में देखे जा सकते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। इस भिक्षु ने इसे अच्छी तरह से सीखा है।' आपको इस प्रथम महान संदर्भ को याद रखना चाहिए।

(2) "तब एक भिक्षु कह सकता है: 'अमुक निवास में एक संघ वरिष्ठ और प्रतिष्ठित भिक्षुओं के साथ निवास कर रहा है। मैंने उस संघ की उपस्थिति में यह सुना; और उनकी उपस्थिति में यह सीखा:

"यह धम्म है; यह अनुशासन है; यह गुरु की शिक्षा है।" उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। इसे स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए और फिर प्रवचनों में उनकी खोज करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, [आप पाते हैं कि] वे प्रवचनों में शामिल नहीं हैं और अनुशासन में नहीं देखे जाते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन नहीं है। [169] उस संघ ने इसे गलत तरीके से सीखा है।' इसलिए आपको इसे त्याग देना चाहिए। . .

लेकिन... यदि आप प्रवचनों में उनकी खोज करें और अनुशासन में उन्हें ढूंढें, और पाएं कि वे प्रवचनों में शामिल हैं और अनुशासन में देखे जा सकते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। उस संघ ने इसे भली-भांति सीखा है।' आपको इस दूसरे महान संदर्भ को याद रखना चाहिए।

(3) तब कोई भिक्षु कह सकता है: 'अमुक निवास में अनेक वरिष्ठ भिक्षु निवास करते हैं जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के ज्ञाता हैं, अनुशासन के ज्ञाता हैं, रूपरेखाओं के ज्ञाता हैं। उन वरिष्ठों की उपस्थिति में मैंने यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: "यही धम्म है; यही अनुशासन है; यही गुरु का उपदेश है!"' उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए और फिर प्रवचनों में उनकी खोज करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, [आप पाते हैं कि] वे प्रवचनों में शामिल नहीं हैं और अनुशासन में नहीं पाए जाते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन नहीं है। उन वरिष्ठों ने इसे गलत तरीके से सीखा है।' अतः आपको इसे त्याग देना चाहिए।

लेकिन... यदि आप प्रवचनों में इनकी खोज करें और अनुशासन में इन्हें ढूंढें, और पाएं कि ये प्रवचनों में शामिल हैं और अनुशासन में देखे जा सकते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। इसे उन वरिष्ठों ने अच्छी तरह से सीखा है।' आपको इस तीसरे महान संदर्भ को याद रखना चाहिए।

(4) "तब एक भिक्षु कह सकता है: फलां-फलां निवास में एक वरिष्ठ भिक्षु निवास करते हैं [170] जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के ज्ञाता हैं, अनुशासन के ज्ञाता हैं, रूपरेखाओं के ज्ञाता हैं। उस वरिष्ठ भिक्षु की उपस्थिति में मैंने यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: 'यह धम्म है; यह अनुशासन है; यह गुरु की शिक्षा है!' उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। इसे स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए और फिर प्रवचनों में उनकी खोज करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, [आप पाते हैं कि] वे प्रवचनों में शामिल नहीं हैं और अनुशासन में नहीं देखे जाते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन नहीं है। उस वरिष्ठ भिक्षु ने इसे गलत तरीके से सीखा है।' इसलिए आपको इसे त्याग देना चाहिए।

लेकिन एक भिक्षु कह सकता है: "अमुक निवास में एक वरिष्ठ भिक्षु निवास करते हैं जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के ज्ञाता हैं, अनुशासन के ज्ञाता हैं, रूपरेखाओं के ज्ञाता हैं। उस वरिष्ठ भिक्षु की उपस्थिति में मैंने यह सुना; उनकी उपस्थिति में मैंने यह सीखा: 'यही धम्म है; यही अनुशासन है; यही गुरु की शिक्षा है!'" उस भिक्षु के कथन को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। इसे स्वीकार या अस्वीकार किए बिना, आपको उन शब्दों और वाक्यांशों को अच्छी तरह से सीखना चाहिए

और फिर प्रवचनों में उनकी खोज करनी चाहिए और अनुशासन में उन्हें खोजना चाहिए। यदि, प्रवचनों में उनकी खोज करने और अनुशासन में उन्हें खोजने पर, [आप पाते हैं कि] वे प्रवचनों में शामिल हैं और अनुशासन में देखे जा सकते हैं, तो आपको यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: 'निश्चित रूप से, यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। उस वरिष्ठ भिक्षु ने इसे अच्छी तरह से सीखा है।' आपको इस चौथे महान संदर्भ को याद रखना चाहिए।"

"भिक्षुओं, ये चार महान संदर्भ हैं।" 894

IV. ब्राह्मण

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

181 योद्धा (योद्धाजीव)

"भिक्षुओं (साधुओं) में चार गुण होते हैं, एक योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का सहायक होता है और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, एक योद्धा युद्ध कौशल में निपुण होता है, लंबी दूरी का निशानेबाज होता है, सटीक निशानेबाज होता है और एक विशाल शरीर को विच्छेदित करने में सक्षम होता है।"

इन चार गुणों से युक्त एक योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का सहायक होता है और राजत्व का एक कारक माना जाता है। [171] इसी प्रकार, चार गुणों से युक्त एक भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का पात्र होता है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु निशानेबाजी में कुशल होता है, लंबी दूरी का निशानेबाज होता है, सटीक निशानेबाज होता है और एक विशाल शरीर को विच्छेदित करने वाला होता है।

(1) "हे भिक्षुओं, भिक्षु स्थानों में कैसे निपुण होता है? यहाँ, भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरे को पहचानता हुआ निवास करता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। इस प्रकार भिक्षु स्थानों में निपुण होता है।"

(2) "एक भिक्षु दूरदृष्टि वाला निशानेबाज कैसे होता है? यहाँ, किसी भी प्रकार का रूप— चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट— एक भिक्षु सभी रूपों को सही पन्न (दिव्य ज्ञान) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'। किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की अनुभूति... किसी भी प्रकार के संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना— चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट— एक भिक्षु सभी चेतना को सही पन्न (दिव्य ज्ञान) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'। इसी प्रकार एक भिक्षु दूरदृष्टि वाला निशानेबाज होता है।" लंबी दूरी का निशानेबाज।

(3) "एक भिक्षु (साधु) निशानेबाज कैसे होता है? यहाँ, एक भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'। इसी प्रकार एक भिक्षु निशानेबाज होता है।"

(4) "और भिक्षु किस प्रकार एक विशाल शरीर को विभाजित करता है? यहाँ, भिक्षु अज्ञान के विशाल समूह को विभाजित करता है। इस प्रकार भिक्षु एक विशाल शरीर को विभाजित करने वाला होता है।"

"इन चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।" [172]

---

182 गारंटर (पतिभोग)

भिक्षुओं, चार चीजों के विरुद्ध कोई गारंटर नहीं हो सकता, न कोई तपस्वी, न कोई ब्राह्मण, न कोई देव (देवता), न मार, न ब्रह्मा, और न ही संसार में कोई और। वे चार चीजें कौन सी हैं?

(1) "कोई भी गारंटी नहीं दे सकता, न तो कोई तपस्वी... न ही दुनिया में कोई और, कि जो बुढ़ापे के अधीन है वह बूढ़ा नहीं होगा।"

(2) "कोई भी गारंटी नहीं दे सकता, न तो कोई तपस्वी...; न ही दुनिया में कोई भी, कि जो बीमारी के अधीन है वह बीमार नहीं पड़ेगा।"

(3) "कोई भी गारंटी नहीं दे सकता, न तो कोई तपस्वी... न ही संसार में कोई और, कि जो मृत्यु के अधीन है वह नहीं मरेगा।"

(4) "कोई भी गारंटी नहीं दे सकता, न तो कोई तपस्वी... न ही संसार में कोई और, कि बुरे कर्म - दूषित, पुनर्जन्म के लिए सहायक (भाव/पुनर्जन्म का कारण), कष्टदायी, दुख में परिपक्व, भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाने वाले - अपना परिणाम नहीं देंगे।"

"भिक्षुओं, इन चार चीजों के विरुद्ध कोई गारंटर नहीं हो सकता, न कोई तपस्वी, न कोई ब्राह्मण, न कोई देव (देवदूत/भगवान), न मारा, न ब्रह्मा, और न ही संसार में कोई और।"

---

183 हर्ड (सुता)

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकर भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। . . . फिर एक तरफ बैठकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, मेरा यह मत है कि जब कोई देखी हुई वस्तु के बारे में यह कहता है कि 'मैंने ऐसा देखा', तो इसमें कोई दोष नहीं है; जब कोई सुनी हुई वस्तु के बारे में यह कहता है कि 'मैंने ऐसा सुना', तो इसमें कोई दोष नहीं है; जब कोई महसूस की हुई वस्तु के बारे में यह कहता है कि 'मैंने ऐसा महसूस किया', तो इसमें कोई दोष नहीं है; जब कोई जानी हुई वस्तु के बारे में यह कहता है कि 'मैंने ऐसा जाना', तो इसमें कोई दोष नहीं है।"

(1) "मैं यह नहीं कहता, ब्राह्मण, कि देखी गई हर चीज़ के बारे में बात की जाए, न ही मैं यह कहता हूँ कि जो कुछ भी नहीं देखा गया उसके बारे में बात नहीं की जानी चाहिए। (2) मैं यह नहीं कहता कि सुनी गई हर चीज़ के बारे में बात की जाए, न ही मैं यह कहता हूँ कि जो कुछ भी नहीं सुना गया उसके बारे में बात नहीं की जानी चाहिए। (3) मैं यह नहीं कहता कि इंद्रियों द्वारा अनुभव की गई हर चीज़ के बारे में बात की जाए, न ही मैं यह कहता हूँ कि इंद्रियों द्वारा अनुभव न की गई किसी भी चीज़ के बारे में बात नहीं की जानी चाहिए। (4) मैं यह नहीं कहता कि बोध की गई हर चीज़ के बारे में बात की जाए, न ही मैं यह कहता हूँ कि बोध न की गई किसी भी चीज़ के बारे में बात नहीं की जानी चाहिए। क्योंकि, ब्राह्मण, यदि कोई व्यक्ति देखी गई चीज़ के बारे में बात करता है, तो अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं, तो मैं कहता हूँ कि उसे देखी गई चीज़ के बारे में बात नहीं करनी चाहिए। परन्तु यदि कोई व्यक्ति देखी गई चीज़ के बारे में बात करता है, तो अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं, तो मैं कहता हूँ कि उसे देखी गई चीज़ के बारे में बात करनी चाहिए।"

(2) "यदि कोई सुनी हुई बात के बारे में बोलने पर अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और धम्म कम हो जाता है, तो मैं कहता हूँ कि उसे सुनी हुई बात नहीं बोलनी चाहिए। परन्तु यदि कोई सुनी हुई बात के बारे में बोलने पर अकुशल गुण कम हो जाते हैं और धम्म बढ़ जाता है, तो मैं कहता हूँ कि उसे सुनी हुई बात बोलनी चाहिए।"

(3) "यदि कोई व्यक्ति अपने द्वारा अनुभव की गई बातों के बारे में बोलते समय अकुशल गुणों में वृद्धि और धम्म गुणों में कमी देखे, तो मैं कहता हूँ कि उसे अपने द्वारा अनुभव की गई बातों के बारे में नहीं बोलना चाहिए। परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने द्वारा अनुभव की गई बातों के बारे में बोलते समय अकुशल गुणों में कमी और धम्म गुणों में वृद्धि देखे, तो मैं कहता हूँ कि उसे अपने द्वारा अनुभव की गई बातों के बारे में बोलना चाहिए।"

(4) "यदि किसी व्यक्ति द्वारा बोधित विषय पर बोलने से अकुशल गुण बढ़ते हैं और लाभकारी गुण घटते हैं, तो मैं कहता हूँ कि उसे बोधित विषय पर नहीं बोलना चाहिए। परन्तु यदि किसी व्यक्ति द्वारा बोधित विषय पर बोलने से अकुशल गुण घटते हैं और लाभकारी गुण बढ़ते हैं, तो मैं कहता हूँ कि उसे बोधित विषय पर बोलना चाहिए।"

तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकरा, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और चले गए।

---

184 निडर (अभय)

तब ब्राह्मण जनुसोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। . . . फिर एक तरफ बैठकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, मेरा यह मत और विचार है कि मृत्यु के अधीन कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो मृत्यु से भयभीत और डरा हुआ न हो।"

"हे ब्राह्मण, कुछ लोग मृत्यु से भयभीत और डरे हुए होते हैं, परन्तु कुछ लोग मृत्यु से भयभीत और डरे हुए नहीं होते।"

"और हे ब्राह्मण, मृत्यु के अधीन वे कौन हैं जो मृत्यु से भयभीत और डरे हुए हैं?"

(1) "यहाँ, कोई व्यक्ति कामवासना (राग), इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और इंद्रिय सुखों की लालसा (तन्हा/तृष्णा) से रहित नहीं है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'हाय, मेरे प्रिय इंद्रिय सुख मुझे छोड़ देंगे, और मुझे उन इंद्रिय सुखों को छोड़ना पड़ेगा।' वह शोक करता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह छाती पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। यह मृत्यु के अधीन वह व्यक्ति है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत है।"

(2) "फिर भी, कोई व्यक्ति कामवासना (राग), इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से रहित नहीं होता। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'हाय, मेरा यह प्रिय शरीर मुझे छोड़ देगा, और मुझे इस शरीर को छोड़ना पड़ेगा।' वह शोक करता है, व्याकुल होता है और पश्चाताप करता है; वह छाती पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। यह भी मृत्यु के अधीन है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत है।"

(3) “फिर, किसी ने न तो कोई अच्छा और लाभकारी (कुशल) काम किया है और न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है, बल्कि उसने बुराई, क्रूरता और अपवित्रता का काम किया है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'हाय, मैंने न तो कोई अच्छा और लाभकारी (कुशल) काम किया है और न ही अपने लिए कोई आश्रय बनाया है, बल्कि मैंने बुराई, क्रूरता और अपवित्रता का काम किया है। जब मैं मर जाऊंगा, तो मुझे उचित दंड मिलेगा।' वह शोक करता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। यह भी मृत्यु के अधीन है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत है।”

(4) "यहाँ भी कोई व्यक्ति उत्तम धम्म के विषय में उलझन में है, संशय में है और अनिर्णय की स्थिति में है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल कर देने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'हाय, मैं उत्तम धम्म के विषय में उलझन में हूँ, संशय में हूँ और अनिर्णय की स्थिति में हूँ।' वह दुखी होता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। यह भी मृत्यु के अधीन एक व्यक्ति है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत है।"

"ये चारों मृत्यु के अधीन हैं जो मृत्यु से भयभीत और आतंकित हैं। [175]

"और हे ब्राह्मण, मृत्यु के अधीन कौन हैं जो मृत्यु से भयभीत और डरे नहीं हैं?"

(1) "यहाँ, वह व्यक्ति कामवासना (राग), इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और इंद्रिय सुखों की लालसा (तन्हा/तृष्णा) से रहित है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह यह नहीं सोचता: 'हाय, मेरे प्रिय इंद्रिय सुख मुझे छोड़ देंगे, और मुझे उन इंद्रिय सुखों को छोड़ना पड़ेगा।' वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता और विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और भ्रमित नहीं होता। यह वह व्यक्ति है जो मृत्यु के अधीन है, लेकिन मृत्यु से भयभीत नहीं होता।"

(2) "फिर, एक ऐसा व्यक्ति है जो कामवासना (राग), इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और देह के प्रति लालसा (तन्हा/तृष्णा) से रहित है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह यह नहीं सोचता: 'हाय, मेरा यह प्रिय शरीर मुझे छोड़ देगा, और मुझे इस शरीर को छोड़ना पड़ेगा।' वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और भ्रमित नहीं होता। यह भी मृत्यु के अधीन है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत नहीं होता।"

(3) “फिर, एक व्यक्ति ने बुराई, क्रूरता और अपवित्रता का कार्य नहीं किया, बल्कि अच्छा और लाभकारी (कुशल) कार्य किया और अपने लिए आश्रय बनाया। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'निःसंदेह, मैंने कोई बुराई, क्रूरता और अपवित्रता का कार्य नहीं किया, बल्कि मैंने अच्छा और लाभकारी (कुशल) कार्य किया और अपने लिए आश्रय बनाया। जब मैं मर जाऊंगा, तो मुझे उचित भाग्य प्राप्त होगा।' वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता और विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और भ्रमित नहीं होता। यह भी मृत्यु के अधीन है, जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत नहीं है।”

(4) "फिर, एक व्यक्ति अविचलित, संशयमुक्त और उत्तम धम्म के प्रति दृढ़ निश्चयी है। जब वह किसी गंभीर और दुर्बल करने वाली बीमारी से ग्रसित हो जाता है, तो वह सोचता है: 'मैं अविचलित, संशयमुक्त और उत्तम धम्म के प्रति दृढ़ निश्चयी हूँ।' वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता और विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और भ्रमित नहीं होता। [176] यह भी मृत्यु के अधीन वह व्यक्ति है जो मृत्यु से भयभीत और भयभीत नहीं है।"

"हे ब्राह्मण, ये चार ऐसे हैं जो मृत्यु के अधीन हैं, फिर भी मृत्यु से भयभीत नहीं होते।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! . . [4:100 बजे] . . . गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

185 ब्राह्मण सत्य (ब्राह्मणसच्च)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय सप्पिनी नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में कई प्रसिद्ध तपस्वी निवास कर रहे थे, जिनमें अन्नभार, वरधरा, सकुलुदयी और अन्य प्रसिद्ध तपस्वी शामिल थे। फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सप्पिनी नदी के किनारे स्थित तपस्वियों के उद्यान में गए। उस समय अन्य संप्रदायों के तपस्वी भी एकत्रित होकर एक साथ बैठे थे, तभी यह संवाद हुआ: "ब्राह्मण सत्य ऐसे हैं, ब्राह्मण सत्य ऐसे हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) उन तपस्वियों के पास गए, उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और उनसे पूछा: “हे तपस्वियों, अभी आप किस चर्चा में लगे हुए थे? वह कौन सी बातचीत चल रही थी?”

"हे गौतम गुरु, हम सब यहाँ एकत्रित होकर बैठे थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई: 'ब्राह्मणों के सत्य यही हैं, ब्राह्मणों के सत्य यही हैं।'"

"सन्यासियों, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से इन चार ब्राह्मण सत्यों का अनुभव करके इनका प्रचार किया है। वे चार सत्य कौन से हैं?"

(1) "हे तपस्वियों, यहाँ एक ब्राह्मण कहता है: 'सभी प्राणियों को बख्शा जाना चाहिए।' ऐसा कहकर ब्राह्मण सत्य बोलता है, असत्य नहीं। इस कारण वह स्वयं को 'तपस्वी' या 'ब्राह्मण' नहीं समझता। वह यह भ्रम भी नहीं पालता कि 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ।' बल्कि, उस सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वह केवल प्राणियों के प्रति सहानुभूति और करुणा से प्रेरित होकर अभ्यास कर रहा है।"

(2) "फिर एक ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: [177] 'सभी इंद्रिय सुख क्षणभंगुर, दुखद और परिवर्तनशील हैं।' ऐसा कहकर ब्राह्मण सत्य बोलता है, असत्य नहीं। इस कारण वह स्वयं को 'तपस्वी' या 'ब्राह्मण' नहीं समझता। वह यह भ्रम नहीं पालता कि 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ।' बल्कि, इस सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानकर वह केवल इंद्रिय सुखों से विरक्ति (निबिद्दा) के लिए, उनके लुप्त होने और समाप्त होने के लिए साधना करता है।"

(3) "फिर एक ब्राह्मण कहता है: 'सभी अवस्थाएँ अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं।' ऐसा कहकर ब्राह्मण सत्य बोलता है, असत्य नहीं। इस कारण वह स्वयं को 'तपस्वी' या 'ब्राह्मण' नहीं समझता। वह यह भ्रम भी नहीं पालता कि 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ।' बल्कि, इस सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानकर वह केवल अवस्थाओं से विरक्ति (निब्बिद) के लिए, उनके लुप्त होने और समाप्त होने के लिए साधना करता है।"

(4) "फिर, हे तपस्वियों, एक ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'मैं कहीं भी किसी का नहीं हूँ, और न ही कहीं भी कोई ऐसी चीज़ है जो मेरी हो।' 896 इस प्रकार बोलते हुए, एक ब्राह्मण सत्य बोलता है, असत्य नहीं। वह इस कारण स्वयं को 'तपस्वी' या 'ब्राह्मण' नहीं समझता। वह यह भ्रम नहीं करता कि 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ'। बल्कि, वह इस सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानता है कि वह शून्यता के मार्ग का अभ्यास कर रहा है। 897

"हे तपस्वियों, ये वे चार ब्राह्मण सत्य हैं जिनका मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव करके प्रचार किया है।"

---

186 अकुमेन (उमग्गा)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

(1) "भंते, संसार किसके द्वारा निर्देशित है? संसार किसके द्वारा घसीटा जाता है? जो उत्पन्न हुआ है, क्या वह उसके वश में हो जाता है?" 898

"शाबाश, शाबाश भिक्षु! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है। आपका विवेक उत्कृष्ट है। आपका प्रश्न उत्तम है। क्योंकि आपने यह पूछा है: 'भंते, संसार किसके द्वारा निर्देशित होता है? संसार किसके द्वारा घसीटा जाता है? जो उत्पन्न हुआ है, क्या वह उसके वश में हो जाता है?'"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षु, संसार मन द्वारा निर्देशित है; यह मन द्वारा इधर-उधर घसीटा जाता है; जब मन जागृत हो जाता है, [संसार] उसके नियंत्रण में आ जाता है।" [178]

“अच्छा, भंते,” कहते हुए वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

(2) "हे भंते, कहा जाता है, 'धम्म का विद्वान, धम्म का विद्वान।' धम्म का विद्वान किस प्रकार होता है?"

"शाबाश, शाबाश भिक्षु! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है। आपका विवेक उत्कृष्ट है। आपका प्रश्न उत्तम है। आपने इस प्रकार पूछा है: 'हे भंते, कहा जाता है, "धर्म का विद्वान, धर्म का विद्वान।" धर्म का विद्वान किस प्रकार कहलाता है?'"

"हां, भंते।"

"मैंने अनेक शिक्षाएँ दी हैं, भिक्षु: प्रवचन (सूत्र), गद्य और पद्य का मिश्रण, व्याख्याएँ (गाथाएँ), प्रेरित वचन (उदन), उद्धरण, जातक कथाएँ (जन्म कथाएँ), अद्भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। यदि कोई व्यक्ति चार पंक्तियों के श्लोक का अर्थ और धम्म भी सीख ले और उसके अनुसार अभ्यास करे, तो यही उसके लिए 'धम्म का विद्वान' कहलाने के लिए पर्याप्त है।"

“अच्छा, भंते,” कहते हुए वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

(3) "कहा जाता है, भंते, 'ज्ञानी, गहन ज्ञान से परिपूर्ण; ज्ञानी, गहन ज्ञान से परिपूर्ण/ किस प्रकार कोई गहन ज्ञान से परिपूर्ण होता है?"

"शाबाश, शाबाश भिक्षु! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है। आपका विवेक उत्कृष्ट है। आपका प्रश्न उत्तम है। आपने पूछा है: 'हे भंते, कहा जाता है, "ज्ञानी, गहन ज्ञान से परिपूर्ण; ज्ञानी, गहन ज्ञान से परिपूर्ण।" गहन ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति किस प्रकार ज्ञानी होता है?'"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षु, एक भिक्षु ने सुना है: 'यह दुख है,' और उसने इस ज्ञान को अपने भेदकर इसका अर्थ समझ लिया है। उसने सुना है: 'यह दुख का मूल है,' और उसने इस ज्ञान को अपने भेदकर इसका अर्थ समझ लिया है। उसने सुना है: 'यह दुख का निवारण है,' और उसने इस ज्ञान को अपने भेदकर इसका अर्थ समझ लिया है। उसने सुना है: 'यह दुख निवारण का मार्ग है,' और उसने इस ज्ञान को अपने भेदकर इसका अर्थ समझ लिया है। इसी मार्ग से गहन ज्ञान प्राप्त होता है।"

“अच्छा, भंते,” कहते हुए वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

(4) "कहा जाता है, भंते, 'महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला एक बुद्धिमान व्यक्ति, महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला एक बुद्धिमान व्यक्ति।' किस प्रकार कोई महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) वाला बुद्धिमान व्यक्ति होता है?" [179]

"शाबाश, शाबाश भिक्षु! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है। आपका विवेक उत्कृष्ट है। आपका प्रश्न उत्तम है। आपने इस प्रकार पूछा है: 'हे भंते, कहा जाता है, "एक महान ज्ञानी (दिव्य ज्ञान) वाला बुद्धिमान व्यक्ति, एक महान ज्ञानी (दिव्य ज्ञान) वाला बुद्धिमान व्यक्ति।" किस प्रकार कोई महान ज्ञानी (दिव्य ज्ञान) वाला बुद्धिमान व्यक्ति होता है?'"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षु, यहाँ महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त ज्ञानी व्यक्ति न तो स्वयं को कष्ट पहुँचाना चाहता है, न दूसरों को, और न ही दोनों को। बल्कि, जब वह चिंतन करता है, तो वह केवल अपने कल्याण, दूसरों के कल्याण, दोनों के कल्याण और समस्त विश्व के कल्याण के बारे में ही सोचता है। 900 इसी प्रकार व्यक्ति महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त ज्ञानी व्यक्ति होता है।"

---

187 वासाकारा

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकर भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। . . . फिर एक तरफ बैठकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा:

(1) "मास्टर गौतम, क्या कोई बुरा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में जान सकता है: 'यह व्यक्ति बुरा व्यक्ति है'?"

"हे ब्राह्मण, यह असंभव और अकल्पनीय है कि एक बुरा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: 'यह व्यक्ति बुरा है'।"

(2) "तो क्या कोई बुरा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के बारे में यह जान सकता है: 'यह व्यक्ति अच्छा व्यक्ति है'?"

"यह भी असंभव और अकल्पनीय है कि एक बुरा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: 'यह व्यक्ति अच्छा है।'"

(3) "तो क्या एक अच्छा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के बारे में जान सकता है: 'यह व्यक्ति एक अच्छा व्यक्ति है'?"

"ऐसा संभव है कि एक अच्छा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति को पहचान सके: 'यह व्यक्ति एक अच्छा इंसान है'।"

(4) "तो क्या कोई अच्छा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में जान सकता है: 'यह व्यक्ति बुरा व्यक्ति है'?"

"ऐसा भी संभव है कि एक अच्छा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में जानता हो: 'यह व्यक्ति बुरा है।'"

यह आश्चर्यजनक और विस्मयकारी है। गुरु गौतम, गुरु गौतम ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: 'हे ब्राह्मण, यह असंभव और अकल्पनीय है कि एक बुरा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में जान सके... [जैसा कि ऊपर बताया गया है]... यह भी संभव है कि एक अच्छा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में जान सके: "यह व्यक्ति बुरा है।"'

एक बार गुरु गौतम, ब्राह्मण तोदेय्या की सभा के सदस्य दूसरों की निंदा करते हुए कह रहे थे: 'यह राजा एलय्या मूर्ख है, क्योंकि वह तपस्वी रामपुत्त पर पूर्ण विश्वास रखता है और उन्हें प्रणाम करके, उनके सामने उठकर, आदरपूर्वक अभिवादन करके और उनके प्रति उचित शिष्टाचार का पालन करके उन्हें सर्वोच्च सम्मान देता है। 901 राजा एलय्या के ये सामंत - यमक, मोग्गल्ला, उगा, नविन्दक, गंधब्बा और अग्गिवेशा - भी मूर्ख हैं, क्योंकि वे भी तपस्वी रामपुत्त पर पूर्ण विश्वास रखते हैं और उन्हें प्रणाम करके, उनके सामने उठकर, आदरपूर्वक अभिवादन करके और उनके प्रति उचित शिष्टाचार का पालन करके उन्हें सर्वोच्च सम्मान देते हैं।' तब ब्राह्मण तोदेय्या ने उन्हें इस प्रकार समझाया: 'महोदय, कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों से संबंधित मामलों में, फरमानों और घोषणाओं के मामले में, क्या राजा इलेय्या उन लोगों से भी अधिक बुद्धिमान और चतुर नहीं हैं जो वास्तव में चतुर हैं?'

"[उन्होंने उत्तर दिया:] जी हाँ, महाराज, कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों से संबंधित मामलों में, फरमानों और घोषणाओं के मामले में, राजा एलय्या बुद्धिमान और बहुत चतुर लोगों से भी अधिक चतुर हैं।"

"लेकिन, महोदय, [उन्होंने कहा,] 'यह इसलिए है क्योंकि तपस्वी रामपुत्त बुद्धिमान राजा एलय्या से अधिक बुद्धिमान हैं, कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों, आदेशों और घोषणाओं से संबंधित मामलों में इस चतुर [राजा] से अधिक चतुर हैं, इसलिए राजा एलय्या को उन पर पूरा भरोसा है और वे उन्हें सम्मान देकर, उनके लिए उठकर, आदरपूर्वक उनका अभिवादन करके और उनके प्रति उचित शिष्टाचार का पालन करके उन्हें सर्वोच्च सम्मान देते हैं।'

"'महोदय, आप क्या सोचते हैं कि कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों, फरमानों और घोषणाओं से संबंधित मामलों में, राजा एजेय्या के सामंत - यमक, मोग्गल्ला, [181] उगा, नविन्दकी, गंधब्बा, अग्गिवेशा - उन लोगों से भी अधिक बुद्धिमान और चतुर हैं जो बहुत चतुर हैं?'"

"जी हाँ, महोदय, कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों से संबंधित मामलों में, फरमानों और घोषणाओं के मामले में, राजा एलय्या के सामंत - यमाका... अग्गिवेस्सा - बुद्धिमान और बहुत चतुर लोगों से भी अधिक चतुर हैं।"

"लेकिन, महोदय, तपस्वी रामपुत्त राजा एलय्या के सामंतों से अधिक बुद्धिमान हैं, कार्यों और प्रशासनिक कर्तव्यों, आदेशों और घोषणाओं से संबंधित मामलों में उन चतुर [सामंतों] से भी अधिक कुशल हैं, इसीलिए राजा एलय्या के सामंत उन पर पूर्ण विश्वास रखते हैं और उन्हें सम्मानपूर्वक प्रणाम करके, उनके लिए खड़े होकर, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके और उनके प्रति उचित शिष्टाचार का पालन करके उन्हें सर्वोच्च सम्मान देते हैं।" 902

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम, आपने इसे कितनी खूबसूरती से कहा है: 'यह असंभव और अकल्पनीय है कि एक बुरा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: "यह व्यक्ति बुरा है।" यह भी असंभव और अकल्पनीय है कि एक बुरा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: "यह व्यक्ति अच्छा है।" यह संभव है कि एक अच्छा व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: "यह व्यक्ति अच्छा है।" यह भी संभव है कि एक अच्छा व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति के बारे में यह जान सके: "यह व्यक्ति बुरा है।" और अब, गुरु गौतम, हमें जाना होगा। हम व्यस्त हैं और हमारे पास बहुत काम है।"

"हे ब्राह्मण, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकरा, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और चले गए।

188 उपका

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब उपक मंदिकापुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"भंते, मेरा यह मत और विचार है कि यदि कोई दूसरों की आलोचना करता है और उसे किसी भी तरह से प्रमाणित नहीं करता है, तो वह दोषी और अपराधी है।"

"यदि उपका, कोई दूसरों की आलोचना करता है और उसे प्रमाणित नहीं करता, तो वह दोषी और दंडनीय है। परन्तु तुम दूसरों की आलोचना करते हो और उसे प्रमाणित नहीं करते, इसलिए तुम दोषी और दंडनीय हो।"

"भंते, जैसे कोई मछली को पानी से बाहर निकलते हुए बड़े फंदे से पकड़ लेता है, ठीक वैसे ही, जब मैं बाहर निकला, तो भगवान (बुद्ध) ने मुझे वाद-विवाद में एक बड़े फंदे से पकड़ लिया।"

(1) "उपक, मैंने घोषणा की है: 'यह हानिकारक (अकुसला) है।' तथागत (बुद्ध) ने इस विषय पर असीमित शब्दों और वाक्यांशों के साथ असीमित धम्म शिक्षाएँ दी हैं, [घोषणा करते हुए]: 'ऐसे और ऐसे कारणों से, यह हानिकारक (अकुसला) है।'"

(2) "उपक, मैंने घोषणा की है: 'जो हानिकारक (अकुशल) है, उसका त्याग करना चाहिए।' तथागत (बुद्ध) ने इस विषय पर असीमित धम्म उपदेश दिए हैं, असीमित शब्दों और वाक्यांशों में, [घोषणा करते हुए]: 'ऐसे और ऐसे कारणों से, जो हानिकारक (अकुशल) है, उसका त्याग करना चाहिए।'

(3) "उपक, मैंने घोषणा की है: 'यह लाभकारी (कुशल) है।' तथागत (बुद्ध) के पास इस विषय में असीमित धम्म शिक्षाएँ हैं, असीमित शब्दों और वाक्यांशों के साथ, [घोषणा करते हुए]: 'ऐसे और ऐसे कारणों से, यह लाभकारी (कुशल) है।"

(4) "उपक, मैंने घोषणा की है: 'जो लाभकारी (कुशल) है, उसका विकास किया जाना चाहिए।' तथागत (बुद्ध) ने इस विषय में असीमित धम्म शिक्षाएँ दी हैं, असीमित शब्दों और वाक्यांशों के साथ, [घोषणा करते हुए]: 'ऐसे और ऐसे कारणों से, जो लाभकारी (कुशल) है, उसका विकास किया जाना चाहिए।"

तब उपक मंदिकापुत्त, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की। फिर वे मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त के पास गए और उन्हें भगवान (बुद्ध) के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत बताई।

जब उसने ये कहा, तो राजा अजातसत्तु क्रोधित और असंतुष्ट हो गए और उपक मंदिकापुत्त से बोले, "यह नमक बनाने वाले का लड़का कितना दुस्साहसी है! कितना अशिष्ट और कितना निर्भीक है कि यह सोचता है कि वह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पर हमला कर सकता है। चले जाओ, उपक, यहाँ से! मेरी दृष्टि से दूर हो जाओ!"

---

189 बोध (सच्चीकरणीय)

"भिक्षुओं (संतों), ये चार बातें हैं जिन्हें जानना आवश्यक है। वे चार बातें कौन सी हैं? [183]

"कुछ बातें शरीर द्वारा अनुभव की जानी हैं; कुछ बातें स्मृति द्वारा अनुभव की जानी हैं; कुछ बातें आंखों द्वारा अनुभव की जानी हैं; कुछ बातें पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा अनुभव की जानी हैं।"

(1) हे भिक्षुओं, शरीर द्वारा किन बातों का अनुभव किया जा सकता है? हे भिक्षुओं, शरीर द्वारा आठ मोक्षों का अनुभव किया जा सकता है। (2) और स्मृति द्वारा किन बातों का अनुभव किया जा सकता है? स्मृति द्वारा अपने पिछले जन्मों के निवासों का अनुभव किया जा सकता है। (3) और नेत्र द्वारा किन बातों का अनुभव किया जा सकता है? नेत्र द्वारा प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म का अनुभव किया जा

सकता है। (4) और दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा किन बातों का अनुभव किया जा सकता है? दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा दोषों के नाश का अनुभव किया जा सकता है।

"भिक्षुओं, ये चार चीजें हैं जिन्हें प्राप्त करना है।"

---

190 उपोसथा

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, उपोसथ के दिन, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ से घिरे बैठे थे। तब, पूरी तरह से मौन भिक्षुओं के संघ का अवलोकन करने के बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, यह सभा व्यथा से मुक्त है; यह सभा व्यथा रहित, शुद्ध और सार में स्थिर है। ऐसा भिक्षु संघ, ऐसी सभा संसार में दुर्लभ है। ऐसा भिक्षु संघ, ऐसी सभा दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य है; संसार के लिए अद्वितीय पुण्य क्षेत्र है। ऐसे भिक्षु संघ, ऐसी सभा को दिया गया थोड़ा सा दान भी प्रचुर हो जाता है, जबकि अधिक दान तो और भी प्रचुर हो जाता है। ऐसे भिक्षु संघ, ऐसी सभा को देखने के लिए कई योजन की यात्रा करना भी उचित है, चाहे कंधे पर थैला ही क्यों न हो। ऐसा है यह भिक्षु संघ। [184]

इस संघ में ऐसे भिक्षु हैं जिन्होंने देवों (देवदूतों/भगवानों) की अवस्था प्राप्त कर ली है। इस संघ में ऐसे भिक्षु हैं जिन्होंने ब्रह्माओं की अवस्था प्राप्त कर ली है। इस संघ में ऐसे भिक्षु हैं जिन्होंने अविचलितता प्राप्त कर ली है। इस संघ में ऐसे भिक्षु हैं जिन्होंने श्रेष्ठता की अवस्था प्राप्त कर ली है।

(1) "एक भिक्षु ने देव की अवस्था कैसे प्राप्त की? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते हैं। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, वह शरीर के साथ सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में है, सती (ध्यानमग्न), वह व्यक्ति जो आनंद में रहता है। सुख-दुख का त्याग करके, और सुख-दुख के पहले ही बीत जाने के बाद, वह चौथी ध्यान अवस्था (सती) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/सती) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु देव (देवदूत/भगवान) की अवस्था प्राप्त करता है।

(2) "एक भिक्षु ब्रह्म की अवस्था कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, एक भिक्षु प्रेममयी (मेट्टा) मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेममयी (मेट्टा) मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। वह करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से भरे मन से... उदासीनता (भीतर लीन/उपेक्खा) से भरे मन से, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह उदासीनता (भीतर लीन/उपेक्खा) मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है।" विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। इसी प्रकार एक भिक्षु ब्रह्म की अवस्था प्राप्त करता है।

(3) "एक भिक्षु ने अविचलितता कैसे प्राप्त की? यहाँ, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने से, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, वह अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता

है और निवास करता है। शून्यता के आधार पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, वह प्रवेश करता है और निवास करता है..." वह अवस्था (आयतन) न तो प्रत्यक्ष और न ही अप्रत्यक्ष है। इसी प्रकार भिक्षु अविचलित अवस्था को प्राप्त करता है।

(4) "और एक भिक्षु (साधु) ने श्रेष्ठ अवस्था कैसे प्राप्त की? यहाँ, एक भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार एक भिक्षु ने श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की है।" [185]

V. महान अध्याय

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

191 इसके बाद कान (सोतानुगाता)

"भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से पढ़कर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका भली-भांति अध्ययन करके उनका पालन करता है, तो चार लाभों की अपेक्षा की जा सकती है। वे चार लाभ क्या हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु धम्म में पारंगत होता है: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), अद्‌भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। उसने उन शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से सुनाकर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन करके उनका अवलोकन किया है। वह व्याकुल मन से परास्त हो जाता है और देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ, सुखी लोग उसे धम्म के अंश सुनाते हैं। 904 उसकी स्मृति का उदय धीमा होता है, परन्तु फिर वह प्राणी शीघ्र ही भेद्यता प्राप्त कर लेता है। यह पहला लाभ है जिसकी अपेक्षा तब की जाती है जब कोई शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से सुनाकर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन करके उनका अवलोकन करता है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु धम्म में पारंगत हो जाता है: प्रवचनों और प्रश्न-उत्तरों में। उसने उन शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से सुनाकर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से भलीभांति समझकर उनका अवलोकन किया है। वह व्याकुल मन से इसलोक में विलीन हो जाता है और देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ, सुखी लोग उसे धम्म के अंश नहीं सुनाते, बल्कि एक ऐसा भिक्षु जो मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) से परिपूर्ण है और जिसने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, देवों (देवदूतों/देवताओं) की सभा को धम्म का उपदेश देता है। उसे यह आभास होता है: 'यही वह धम्म और अनुशासन है जिसमें मैंने पूर्व में ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत किया था।' उसकी स्मृति का उदय धीमा होता है, परन्तु फिर वह प्राणी शीघ्र ही बोधगम्य हो जाता है। मान लीजिए कोई व्यक्ति ढोल की ध्वनि में निपुण हो: राजमार्ग पर यात्रा करते समय वह ढोल की ध्वनि सुन सकता है और उसे जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। वह ध्वनि को लेकर असमंजस में या अनिश्चित होता; बल्कि वह निष्कर्ष निकालता: 'यह ढोल की ध्वनि है।' इसी प्रकार, एक भिक्षु धम्म (मार्ग) [186] में पारंगत हो जाता है, ... उसकी स्मृति का उदय धीमा होता है, परन्तु वह शीघ्र ही बोधगम्यता प्राप्त कर लेता है। यह दूसरा लाभ है जिसकी अपेक्षा तब की जाती है जब कोई शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से पढ़कर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका भली-भांति अध्ययन करके उनका अनुपालन करता है।

(3) "फिर, एक भिक्षु धम्म में महारत हासिल करता है: प्रवचनों और प्रश्न-उत्तरों में। उसने उन शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से सुनाकर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से भलीभांति समझकर उनका अवलोकन किया है। वह व्याकुल मन से इस दुनिया से विदा होता है और देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ, सुखी लोग उसे धम्म के अंश नहीं सुनाते, न ही

मन पर महारत हासिल कर चुका कोई भिक्षु देवों (देवदूतों/देवताओं) की सभा को धम्म की शिक्षा देता है। परन्तु एक युवा देव (देवदूत/देवता) देवों (देवदूतों/देवताओं) की सभा को धम्म की शिक्षा देता है। उसे यह आभास होता है: 'यही वह धम्म और अनुशासन है जिसमें मैंने पूर्व में ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत किया था।'" उनकी स्मृति का विकास धीमा होता है, लेकिन फिर वे शीघ्र ही पारंगत हो जाते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति शंख की ध्वनि में निपुण हो। राजमार्ग पर यात्रा करते समय यदि उन्हें शंख की ध्वनि सुनाई दे, तो वे उस ध्वनि को लेकर बिल्कुल भी भ्रमित या अनिश्चित नहीं होंगे; बल्कि वे यही निष्कर्ष निकालेंगे: 'यह शंख की ध्वनि है।' ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु धम्म में पारंगत हो जाता है... उनकी स्मृति का विकास धीमा होता है, लेकिन फिर वे शीघ्र ही पारंगत हो जाते हैं। यह तीसरा लाभ है जो तब प्राप्त होता है जब कोई व्यक्ति शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से पढ़कर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन करके उनका अनुपालन करता है।

(4) "फिर, एक भिक्षु धम्म में महारत हासिल करता है: प्रवचनों और प्रश्न-उत्तरों में। उसने उन शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से सुनाकर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से भलीभांति समझकर उनका अनुसरण किया है। वह व्याकुल मन से इस दुनिया से विदा होता है और देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेता है। वहाँ, सुखी लोग उसे धम्म के अंश नहीं सुनाते, न ही मन पर महारत हासिल कर चुका कोई भिक्षु देवों (देवदूतों/देवताओं) की सभा को धम्म (मार्ग) सिखाता है, न ही कोई युवा देव (देवदूत/देवता) देवों (देवदूतों/देवताओं) की सभा को धम्म सिखाता है। फिर भी, स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला एक प्राणी स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले दूसरे प्राणी को याद दिलाता है: 'क्या आपको याद है, प्रिय महोदय? क्या आपको याद है कि हम पहले कहाँ ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करते थे?'" दूसरा कहता है: 'मुझे याद है, महोदय। मुझे याद है।' उसकी स्मृति धीरे-धीरे जागृत होती है, लेकिन फिर वह व्यक्ति शीघ्र ही विशिष्टता प्राप्त कर लेता है। मान लीजिए दो मित्र कीचड़ में साथ खेले थे। संयोगवश वे जीवन में बाद में एक-दूसरे से मिलते हैं। तब एक मित्र दूसरे से कहता है: 'क्या तुम्हें यह याद है, मित्र? क्या तुम्हें वह याद है, मित्र?' और दूसरा कहता है: [187] 'मुझे याद है, मित्र, मुझे याद है।' इसी प्रकार, एक भिक्षु धम्म में महारत हासिल करता है... उसकी स्मृति धीरे-धीरे जागृत होती है, लेकिन फिर वह व्यक्ति शीघ्र ही विशिष्टता प्राप्त कर लेता है। यह चौथा लाभ है जो तब प्राप्त होता है जब कोई शिक्षाओं को सुनकर, मौखिक रूप से पढ़कर, मन से उनका परीक्षण करके और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन करके उनका अनुपालन करता है।

"जब कोई व्यक्ति शिक्षाओं को सुनकर, उनका मौखिक पाठ करके, उनका मन से विश्लेषण करके और उन्हें देखकर भली-भांति समझ लेता है, तो उसे ये चार लाभ प्राप्त होने की अपेक्षा होती है।"

---

192 तथ्य (थाना)

"भिक्षुओं, चार तथ्यों से लोगों के बारे में चार तथ्य जाने जा सकते हैं। वे चार तथ्य कौन से हैं?"

(1) "एक साथ रहने से उनके सदाचारी व्यवहार का पता चल सकता है, और यह केवल लंबे समय के बाद ही, आकस्मिक रूप से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।"

(2) "उनके साथ व्यवहार करने से ही उनकी सत्यनिष्ठा का पता चल सकता है, और यह भी लंबे समय के बाद ही, लापरवाही से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।"

(3) विपत्ति में उनका धैर्य तभी जाना जा सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, यूँ ही नहीं; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।

(4) "उनका पन्ना (दिव्य ज्ञान) बातचीत के द्वारा जाना जा सकता है, और यह केवल लंबे समय के बाद ही, आकस्मिक रूप से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।"

(1) "कहा गया था: 'एक साथ रहने से ही उनके सदाचारी व्यवहार का पता चल सकता है, और यह भी लंबे समय के बाद ही, आकस्मिक रूप से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।' यह किसलिए कहा गया था?"

"यहाँ, भिक्षुओं, किसी दूसरे व्यक्ति के साथ रहने से, व्यक्ति उसे इस प्रकार जान पाता है: 'इस पूज्यवर का आचरण लंबे समय से टूटा हुआ, दोषपूर्ण, कलंकित और दागदार रहा है, और वह निरंतर सद्‌गुणी आचरण का पालन नहीं करता है। यह पूज्यवर अनैतिक है, सद्‌गुणी नहीं।'

लेकिन दूसरे मामले में, किसी दूसरे व्यक्ति के साथ रहने से, व्यक्ति उसे इस प्रकार जान पाता है: 'इस पूजनीय व्यक्ति का आचरण लंबे समय से अटूट, निर्दोष, बेदाग और निष्कलंक रहा है, [188] और वह निरंतर सदाचारी व्यवहार का पालन करता है। यह पूजनीय व्यक्ति सदाचारी है, अनैतिक नहीं।'

"इसी कारण यह कहा गया था: 'एक साथ रहने से ही उनके सदाचारी व्यवहार का पता चल सकता है, और वह भी लंबे समय के बाद, आकस्मिक रूप से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।'

(2) "आगे यह भी कहा गया: 'उनके साथ व्यवहार करने से ही उनकी ईमानदारी का पता चल सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, लापरवाही से नहीं; एक सतर्क व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।' यह किसलिए कहा गया था?"

"यहाँ, भिक्षुओं, किसी व्यक्ति से व्यवहार करते समय, उसे इस प्रकार जाना जाता है: 'यह पूज्यवर एक व्यक्ति से एक प्रकार से, दो से दूसरे प्रकार से, तीन से तीसरे प्रकार से और अनेक से अनेक व्यक्तियों से तीसरे प्रकार से व्यवहार करते हैं। एक मामले में उनका व्यवहार दूसरे मामले में उनके व्यवहार से भिन्न होता है। 905 यह पूज्यवर दूसरों के साथ अपने व्यवहार में अपवित्र हैं, ऐसे व्यवहारों में शुद्ध नहीं हैं।'

लेकिन दूसरे मामले में, किसी व्यक्ति से व्यवहार करते समय, उसे इस प्रकार जाना जाता है: 'जिस प्रकार वह एक व्यक्ति से व्यवहार करता है, उसी प्रकार वह दो, तीन या अनेक लोगों से व्यवहार करता है। एक मामले में उसका व्यवहार दूसरे मामले में उसके व्यवहार से भिन्न नहीं होता। यह पूजनीय व्यक्ति दूसरों के साथ अपने व्यवहार में शुद्ध है, ऐसे व्यवहार में अशुद्ध नहीं है।'

"इसी कारण यह कहा गया था: 'उनके साथ व्यवहार करने से ही उनकी ईमानदारी का पता चल सकता है, और वह भी लंबे समय के बाद, लापरवाही से नहीं; एक सतर्क व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।'

(3) "आगे यह भी कहा गया: 'दुर्भाग्य में ही उनकी सहनशीलता का पता चल सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, यूँ ही नहीं; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।' यह किसलिए कहा गया था?"

"यहाँ, भिक्षुओं, किसी व्यक्ति को सगे-संबंधियों, धन या स्वास्थ्य की हानि का दुख होता है, परन्तु वह इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'संसार में मनुष्य का जीवन ऐसा है कि आठ सांसारिक परिस्थितियाँ संसार के चारों ओर घूमती हैं, और संसार इन आठ सांसारिक परिस्थितियों के चारों ओर घूमता है, अर्थात् लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुख।' अतः जब उसे सगे-संबंधियों, धन या स्वास्थ्य की हानि होती है, तो वह शोक करता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह छाती पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है।"

लेकिन एक अन्य मामले में, कोई व्यक्ति रिश्तेदारों, [189] धन या स्वास्थ्य की हानि से पीड़ित होता है, लेकिन वह इस प्रकार चिंतन करता है: 'संसार में मानव जीवन ऐसा है कि आठ सांसारिक परिस्थितियाँ संसार के चारों ओर घूमती हैं, और संसार इन आठ सांसारिक परिस्थितियों के चारों ओर घूमता है, अर्थात् लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुख।' इस प्रकार जब वह रिश्तेदारों, धन या स्वास्थ्य की हानि से पीड़ित होता है, तो वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता और विलाप नहीं करता; वह अपनी छाती पीटते हुए नहीं रोता और भ्रमित नहीं होता।

इसी कारण यह कहा गया था: 'दुर्भाग्य में ही उनकी सहनशीलता का पता चल सकता है, और वह भी लंबे समय के बाद, यूं ही नहीं; एक सचेत व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।'

(4) "आगे यह भी कहा गया: 'उनका पन्ना (दिव्य ज्ञान) वार्तालाप द्वारा ही जाना जा सकता है, और वह भी लंबे समय के बाद, आकस्मिक रूप से नहीं; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।' यह किसलिए कहा गया था?"

"यहाँ, भिक्षुओं, जब किसी से बातचीत करते हैं, तो यह पता चलता है: 'इस पूज्यवर के आरंभ करने, प्रश्न पूछने और उसे प्रस्तुत करने के तरीके से यह प्रतीत होता है कि वे बुद्धिमान नहीं, बल्कि मूर्ख हैं। इसका कारण क्या है? यह पूज्यवर गहन, शांत, उदात्त, तर्क से परे, सूक्ष्म और बुद्धिमानों को बोध होने योग्य विषयों पर बात नहीं करते। जब यह पूज्यवर धम्म पर बोलते हैं, तो वे न तो संक्षेप में और न ही विस्तार से उसके अर्थ की व्याख्या, शिक्षण, वर्णन, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण कर पाते हैं। यह पूज्यवर बुद्धिमान नहीं, बल्कि मूर्ख हैं।" जैसे कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति तालाब के किनारे खड़ा होकर किसी छोटी मछली को पानी से बाहर निकलते हुए देखे तो वह सोचेगा: 'मछली के निकलने के तरीके, उससे बनने वाली लहरों और उसकी ताकत को देखकर लगता है कि यह छोटी मछली है, बड़ी नहीं,' ठीक उसी तरह, किसी व्यक्ति से बातचीत करते समय पता चलता है: 'इस आदरणीय व्यक्ति के प्रश्न पूछने के कारण को देखकर लगता है कि वह बुद्धिमान नहीं बल्कि नासमझ है।'

लेकिन एक अन्य मामले में, किसी से बातचीत करते समय, व्यक्ति को पता चलता है: 'जिस तरह से यह पूज्यवर किसी प्रश्न को आरंभ करते हैं, उसे सूत्रबद्ध करते हैं और प्रस्तुत करते हैं, उससे यह प्रतीत होता है कि वे बुद्धिमान हैं, मूर्ख नहीं। इसका क्या कारण है? यह पूज्यवर गहन, शांत, उदात्त, तर्क से परे, सूक्ष्म और बुद्धिमानों के लिए बोधगम्य विषयों पर बात करते हैं। जब यह पूज्यवर धम्म पर बोलते हैं, तो वे संक्षेप में और विस्तार से दोनों तरह से उसके अर्थ की व्याख्या, शिक्षण, वर्णन, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करने में सक्षम होते हैं। यह पूज्यवर बुद्धिमान हैं, मूर्ख नहीं।' जैसे कि यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति किसी तालाब के किनारे खड़ा होकर एक बड़ी मछली को निकलते हुए देखे, [190] तो वह सोचेगा: 'जिस तरह से यह मछली निकलती है, इससे बनने वाली लहरों और इसकी ताकत से यह प्रतीत होता है कि यह एक बड़ी मछली है, छोटी नहीं,' उसी प्रकार, किसी से बातचीत करते समय, व्यक्ति को पता चलता है: 'जिस तरह से यह पूज्यवर आरंभ करते हैं, जब कोई व्यक्ति प्रश्न बनाता है और पूछता है, तो वह बुद्धिमान है, मूर्ख नहीं।

"इसी कारण यह कहा गया था: 'उनका पन्ना (दिव्य ज्ञान) वार्तालाप के माध्यम से जाना जा सकता है, और यह केवल लंबे समय के बाद ही, आकस्मिक रूप से नहीं; एक चौकस व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा; और एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि मूर्ख व्यक्ति द्वारा।'

"भिक्षुओं, ये चार तथ्य [लोगों के बारे में] हैं जिन्हें चार अन्य तथ्यों से जाना जा सकता है।"

---

193 भद्दिया

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी भद्दिया भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

"भंते, मैंने यह सुना है: 'संन्यासी गौतम एक जादूगर हैं जो एक ऐसी जादुई शक्ति जानते हैं जिससे वे अन्य संप्रदायों के गुरुओं के शिष्यों को परिवर्तित कर देते हैं।' क्या ऐसा कहने वाले लोग भगवान (बुद्ध) के कहे हुए वचन को ही प्रकट करते हैं और उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते? क्या वे धम्म (मार्ग) के अनुसार व्याख्या करते हैं ताकि उन पर कोई उचित आलोचना या निंदा का आधार न बने? क्योंकि हम भगवान (बुद्ध) को गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना चाहते।" 907

"हे भद्दिया, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, शास्त्रों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमानित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन के बाद किसी मत को स्वीकार करने, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है', मत जाओ। परन्तु जब तुम स्वयं जान लो कि 'ये बातें अकुशल हैं; ये बातें निंदनीय हैं; बुद्धिमानों द्वारा इनकी निंदा की जाती है; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से हानि और पीड़ा होती है,' तब तुम इन्हें त्याग दो।" 908

(1) "भद्दिया, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में लालच उत्पन्न होता है, तो क्या वह उसके कल्याण के लिए होता है या उसके नुकसान के लिए?"

"उसके नुकसान के लिए, भंते।"

"लालची भड़िया, जो लोभ से ग्रस्त है, उसका मन लोभ में डूबा हुआ है, वह जीवन का नाश करता है, दूसरों की पत्नियों के साथ अनैतिक संबंध रखता है और झूठ बोलता है; और वह दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा?"

"हां, भंते।"

(2) "भद्दिया, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में घृणा... (3) ... भ्रम... (4) ... उग्रता उत्पन्न होती है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए है या उसके नुकसान के लिए?" 909

"उसके नुकसान के लिए, भंते।"

"भड़िया, एक उग्र स्वभाव का व्यक्ति, क्रोध से ग्रस्त होकर और उसी आवेश में डूबा हुआ, जीवन का नाश करता है... और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। क्या इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा?"

"हां, भंते।"

भद्दिया, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी हैं या हानिकारक? भंते, हानिकारक। भंते, क्या ये निंदनीय हैं या निर्दोष? भंते, क्या ये निंदनीय हैं या बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित? भंते, बुद्धिमानों द्वारा निंदनीय। भंते, क्या इन्हें स्वीकार करने और अपनाने से हानि और पीड़ा होती है? या तुम इसे कैसे लेते हो? भंते, क्या इन्हें स्वीकार करने और अपनाने से हानि और पीड़ा होती है? इसलिए हम इन्हें स्वीकार करते हैं।

"इस प्रकार, भद्दिया, जब हमने कहा: 'आओ, भद्दिया, मौखिक परंपरा [192] पर मत चलो ... परन्तु जब तुम स्वयं जान लो: "ये बातें हानिकारक (अकुसला) हैं; ये बातें निंदनीय हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा निंदित हैं; ये बातें, यदि अपनाई और अभ्यास की जाएं, तो हानि और पीड़ा की ओर ले जाती हैं," तो तुम्हें इन्हें त्याग देना चाहिए', इसी कारण यह कहा गया था।

"आओ, भद्दिया, मौखिक परंपरा, शिक्षा की वंशावली, सुनी-सुनाई बातों, ग्रंथों के संग्रह, तार्किक तर्क, अनुमान आधारित तर्क, तर्कपूर्ण चिंतन, मनन के बाद किसी मत को स्वीकार करने, वक्ता की दिखावटी योग्यता, या यह सोचकर कि 'संन्यासी हमारा गुरु है' के आधार पर मत चलो। बल्कि जब तुम स्वयं जान लो कि 'ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निष्कलंक हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं; इन बातों को स्वीकार करने और अपनाने से कल्याण और सुख प्राप्त होता है', तब तुम्हें इनके अनुसार जीवन जीना चाहिए।"

(1) "भद्दिया, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में लोभ रहित भाव उत्पन्न होता है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए होता है या उसके लिए हानि के लिए?"

"भंते, उसके कल्याण के लिए।"

"भड़िया, वह व्यक्ति जो लोभ रहित हो, लोभ से ग्रस्त न हो, जिसका मन लोभ में डूबा न हो, जो जीवन का नाश न करे, दूसरों की वस्तु न ले, किसी दूसरे की पत्नी के साथ दुर्व्यवहार न करे, और न ही झूठ बोले; और न ही दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करे। क्या इससे उसे दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

(2) "भद्दिया, तुम क्या सोचते हो? जब किसी व्यक्ति में अहिंसा... (3) ... मोह... (4) ... उग्रता का अभाव उत्पन्न होता है, तो क्या यह उसके कल्याण के लिए है या उसके लिए हानिदायक है?"

"भंते, उसके कल्याण के लिए।"

"भड़िया, एक शांत स्वभाव का व्यक्ति, जो उग्रता से ग्रस्त नहीं होता, जिसका मन उग्रता से ग्रस्त नहीं होता, वह जीवन का विनाश नहीं करता... न ही दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्या इससे उसे दीर्घकाल तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा?"

"हां, भंते।"

भद्दिया, तुम्हारा क्या विचार है? क्या ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं या हानिकारक (अकुशल)? — "लाभकारी (कुशल), भंते।" — "निंदनीय या निर्दोष?" — "निर्दोष, भंते।" — "बुद्धिमानों द्वारा निंदा की गई या प्रशंसा की गई?" — "बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा की गई, भंते।" [193] — "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, क्या इनसे कल्याण और सुख प्राप्त होता है या नहीं, या तुम इसे कैसे लेते हो?" — "स्वीकृत और ग्रहण किए जाने पर, इनसे कल्याण और सुख प्राप्त होता है। इसलिए हम इसे ग्रहण करते हैं।"

"इस प्रकार, भद्दिया, जब हमने कहा: 'आओ, भद्दिया, मौखिक परंपरा का अनुसरण मत करो... बल्कि जब तुम स्वयं जान लो: "ये बातें लाभकारी (कुशल) हैं; ये बातें निर्दोष हैं; ये बातें बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं; ये बातें, यदि स्वीकार की जाएं और अपनाई जाएं, तो कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं," तो तुम्हें इनके अनुसार जीवन जीना चाहिए,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

भद्दिया, संसार के भले लोग अपने शिष्यों को इस प्रकार प्रोत्साहित करते हैं: 'हे भले मनुष्य, तुम लोभ को निरंतर दूर करो। जब तुम लोभ को निरंतर दूर करोगे, तो तुम लोभ से उत्पन्न कोई भी कर्म नहीं करोगे, चाहे वह देह, वाणी या मन से हो। तुम घृणा को निरंतर दूर करो। जब तुम घृणा को निरंतर दूर करोगे, तो तुम घृणा से उत्पन्न कोई भी कर्म नहीं करोगे, चाहे वह देह, वाणी या मन से हो। तुम मोह को निरंतर दूर करो। जब तुम मोह को निरंतर दूर करोगे, तो तुम मोह से उत्पन्न कोई भी कर्म नहीं करोगे, चाहे वह देह, वाणी या मन से हो। तुम उग्रता को निरंतर दूर करो। जब तुम उग्रता को निरंतर दूर करोगे, तो तुम उग्रता से उत्पन्न कोई भी कर्म नहीं करोगे, चाहे वह देह, वाणी या मन से हो।'

जब यह कहा गया, तो लिच्छवी भद्दिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"उत्कृष्ट, भंते! . . . [4:111 पर] .. . भगवान (बुद्ध)

मुझे एक आम अनुयायी समझो जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

"अब, भद्दिया, क्या मैंने तुमसे कहा था: 'आओ, भद्दिया, मेरे शिष्य बनो और मैं तुम्हारा गुरु बनूंगा?'"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"परन्तु, भद्दिया, यद्यपि मैं इस प्रकार बोलता हूँ और अपने उपदेशों की घोषणा इस प्रकार करता हूँ, फिर भी कुछ तपस्वी और ब्राह्मण असत्य, निराधार, झूठे और गलत तरीके से मेरा गलत अर्थ निकालते हैं जब वे कहते हैं: 'तपस्वी गौतम एक जादूगर हैं जो एक ऐसी जादुई शक्ति जानते हैं जिससे वे अन्य संप्रदायों के गुरुओं के शिष्यों को परिवर्तित कर देते हैं।'"

"हे भंते, यह परिवर्तनकारी जादू कितना उत्तम है! यह परिवर्तनकारी जादू कितना अच्छा है! यदि मेरे प्रिय सगे-संबंधी और परिवार के सदस्य इस परिवर्तन से परिवर्तित हो जाएँ, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख होगा। यदि सभी क्षत्रिय इस परिवर्तन से परिवर्तित हो जाएँ, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख होगा। यदि सभी ब्राह्मण... वेस... शुद्ध इस परिवर्तन से परिवर्तित हो जाएँ, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख होगा।"911

"ऐसा ही है, भद्दिया, ऐसा ही है! यदि सभी क्षत्रिय इस परिवर्तन द्वारा अकुशल गुणों का त्याग करके लाभकारी गुणों (धम्म) को अपना लें, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि सभी ब्राह्मण, वेस्स और शुद्ध इस परिवर्तन द्वारा अकुशल गुणों (धम्म) का त्याग करके लाभकारी गुणों (धम्म) को अपना लें, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि यह संसार, अपने देवताओं, मार और ब्रह्मा सहित, यह जनसंख्या, अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, अपने देवताओं और मनुष्यों सहित, इस परिवर्तन द्वारा अकुशल गुणों (धम्म) का त्याग करके लाभकारी गुणों (धम्म) को अपना लें, तो इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा।" यदि ये विशाल साल के वृक्ष हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करके लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को अपना लें, तो यह परिवर्तन इन विशाल साल के वृक्षों के लिए भी लंबे समय तक कल्याण और सुख का कारण बनेगा, यदि वे ऐसा चुन सकें। 912 तो मनुष्य के लिए यह कितना अधिक होगा!

---

194 सपुगम

एक बार पूज्य आनंद कोलियन नगर सपुगम के पास कोलियनों के बीच निवास कर रहे थे। तभी सपुगम से कुछ युवा कोलियन पूज्य आनंद के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य आनंद ने उनसे कहा:

"ब्याग्घपज्जों, पवित्रता के लिए प्रयास करने के ये चार कारक हैं 913 जिन्हें भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जानने और देखने वाले [195] ने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय पाने, पीड़ा और निराशा दूर करने, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए सही ढंग से समझाया है। वे चार कौन से हैं? सद्गुणी आचरण की पवित्रता के लिए प्रयास करने का कारक, मन की पवित्रता के लिए प्रयास करने का कारक, दृष्टि की पवित्रता के लिए प्रयास करने का कारक और मुक्ति की पवित्रता के लिए प्रयास करने का कारक। 914

(1) "और हे ब्याग्घपज्जों, सद्गुणों की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक क्या है? यहाँ, एक भिक्षु सद्गुणी है... [जैसा कि 4:181 में है]... वह उनमें अभ्यास करता है। इसे सद्गुणों की शुद्धता कहा जाता है। इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सजगता और पूर्ण बोध (संपजन्न) [इस आशय से लागू किया गया]: 'मैं सद्गुणों की शुद्धता को, जिसे मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है, इसी प्रकार पूरा करूँगा या विभिन्न पहलुओं में सद्गुणों की शुद्धता में, जिसे मैंने पूरा किया है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँगा' 915 - इसे सद्गुणों की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक कहा जाता है।"

(2) "हे ब्याग्घपज्जों, मन की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे मन की शुद्धता कहते हैं। इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और संपज्ञान (इस आशय से) कि 'मैं जिस प्रकार मन की शुद्धता को अभी तक पूर्ण नहीं कर पाया हूँ, उसे पूर्ण कर लूँ या विभिन्न पहलुओं में पूर्ण की गई मन की शुद्धता में ऋण (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँ'— इसे मन की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक कहते हैं।"

(3) "और हे ब्याग्घपज्जों, दृष्टि की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक क्या है? यहाँ, एक भिक्षु इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसे दृष्टि की शुद्धता कहा जाता है। 916 इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध [इस आशय के साथ]: 'मैं इसी प्रकार दृष्टि की शुद्धता को पूर्ण करूँगा जिसे मैंने अभी तक पूर्ण नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में दृष्टि की शुद्धता में पन्ना (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँगा जिसे मैंने पूर्ण कर लिया है' - इसे दृष्टि की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक कहा जाता है।"

(4) "और हे ब्याग्घपज्जों, मुक्ति की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक क्या है? वही श्रेष्ठ शिष्य, सद्गुणपूर्ण आचरण की शुद्धता के लिए प्रयास करने के इस कारक, [196] मन की शुद्धता के लिए प्रयास करने के इस कारक और दृष्टिकोण की शुद्धता के लिए प्रयास करने के इस कारक से युक्त होकर, आसक्ति उत्पन्न करने वाली चीजों से अपने मन को अलग करता है और मुक्ति लाने वाली चीजों के माध्यम से अपने मन को मुक्त करता है। इस प्रकार वह सही मुक्ति प्राप्त करता है। इसे मुक्ति की शुद्धता कहा जाता है। 917 इच्छा,

प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और संपजन्न (इस आशय से किया गया) — 'मैं इसी प्रकार उस मुक्ति की शुद्धता को पूर्ण करूँगा जिसे मैंने अभी तक पूर्ण नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में उस मुक्ति की शुद्धता में पन्ना (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँगा जिसे मैंने पूर्ण कर लिया है' — इसे मुक्ति की शुद्धता के लिए प्रयास करने का कारक कहा जाता है।

"हे ब्याग्घपज्जों, ये वे चार कारक हैं जो परम ज्ञानी और साक्षी भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध ने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए उचित रूप से प्रतिपादित किए हैं।"

---

195 वप्पा

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तभी निगंथों के शिष्य वप्पथे शाक्य ने पूज्य महामोग्गलाना के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे वप्पा, यदि कोई शरीर, वाणी और मन से बंधा हुआ है, तो अज्ञान के मिटने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ, क्या आपको ऐसा कुछ दिखाई देता है जिसके कारण भविष्य के जन्मों में उस व्यक्ति पर पीड़ादायक संवेदना (वेदना) उत्पन्न करने वाले दोष आ सकते हैं?"

"मुझे ऐसी संभावना दिखती है, भंते। अतीत में किसी ने कोई बुरा कर्म किया होगा जिसका फल अभी तक नहीं मिला है। इसी कारण भविष्य में किसी व्यक्ति पर पीड़ादायक वेदना (कलंक) का प्रभाव पड़ सकता है।" 918

जब पूज्य महामोग्गलाना और शाक्य वप्पा के बीच यह बातचीत चल रही थी, उसी शाम भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए [197] और सभाघर में गए। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और पूज्य महामोग्गलाना से बोले: "हे मोग्गलाना, अभी आप किस चर्चा में लगे हुए थे? और आपकी वह बातचीत क्या थी जो चल रही थी?"

[यहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने शाक्य वप्पा के साथ अपनी पूरी बातचीत का वर्णन किया है, और अंत में कहा है:]

"हे भंते, यही बातचीत मैं शाक्य वप्पा से कर रहा था जब भगवान (बुद्ध) वहाँ पहुँचे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने शाक्य वप्पा से कहा, "हे वप्पा, यदि तुम जो स्वीकार करने योग्य है उसे स्वीकार करो और जो अस्वीकार करने योग्य है उसे अस्वीकार करो; और यदि जब तुम मेरे शब्दों का अर्थ न समझ पाओ, तो मुझसे उनके बारे में और प्रश्न पूछो, यह कहते हुए: 'यह कैसे है, भंते? इसका क्या अर्थ है?'; तब हम इस पर चर्चा कर सकते हैं।"

"भंते, मैं भगवान (बुद्ध) के समक्ष जो स्वीकार करना चाहिए, उसे स्वीकार करूँगा और जो अस्वीकार करना चाहिए, उसे अस्वीकार करूँगा; और जब मुझे उनके शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आएगा, तो मैं उनसे इस बारे में और प्रश्न पूछूँगा, 'भंते, यह कैसे है? इसका क्या अर्थ है?' तो आइए इस पर चर्चा करें।"

(1) "वप्पा, आपका क्या विचार है? शारीरिक कर्मों के कारण उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और ज्वरकारी दोष, उनसे परहेज करने पर उत्पन्न नहीं होते। व्यक्ति कोई नया कर्म नहीं बनाता और बार-बार संपर्क में आने से पुराने कर्मों का भी अंत कर देता है। 919 [198]। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू होता है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। वप्पा, क्या आपको ऐसा कुछ दिखाई देता है जिसके कारण भविष्य के जन्मों में ऐसे व्यक्ति पर कष्टदायी वेदना उत्पन्न करने वाले दोष आ सकते हैं?"

"नहीं, भंते।"

(2) "हे वप्पा, आपका क्या विचार है? वाणी के वचनों से उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और ज्वरकारी दोष, उनसे परहेज करने पर उत्पन्न नहीं होते। व्यक्ति कोई नया कर्म नहीं बनाता और बार-बार संपर्क में आने से पुराने कर्मों का भी अंत हो जाता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, जो व्यक्ति को आकर देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक होता है, और ज्ञानी व्यक्ति स्वयं

इसका अनुभव कर सकता है। हे वप्पा, क्या आपको ऐसा कुछ दिखाई देता है जिसके कारण भविष्य के जन्मों में ऐसे व्यक्ति पर कष्टदायी वेदना उत्पन्न करने वाले दोष आ सकते हैं?"

"नहीं, भंते।"

(3) "हे वप्पा, आपका क्या विचार है? मानसिक कार्यों से उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और ज्वरकारी दोष, उनसे परहेज करने पर उत्पन्न नहीं होते। व्यक्ति कोई नया कर्म नहीं बनाता और बार-बार संपर्क में आने से पुराने कर्मों का भी अंत कर देता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, जो व्यक्ति को आकर देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक होता है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाता है। हे वप्पा, क्या आपको ऐसा कुछ दिखाई देता है जिसके कारण भविष्य के जन्मों में ऐसे व्यक्ति पर कष्टदायी वेदना उत्पन्न करने वाले दोष आ सकते हैं?"

"नहीं, भंते।"

(4) "हे वप्पा, आपका क्या विचार है? अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ, अज्ञान की स्थिति से उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और पीड़ादायक दोष अब नहीं रहते। वह कोई नया कर्म नहीं बनाता और बार-बार संपर्क में आने वाले पुराने कर्मों का भी अंत कर देता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, जो देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक होता है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा स्वयं अनुभव किया जा सकता है। हे वप्पा, क्या आपको ऐसा कुछ दिखाई देता है जिसके कारण भविष्य के जन्मों में ऐसे व्यक्ति पर कष्टदायी वेदना उत्पन्न करने वाले दोष आ सकते हैं?"

"नहीं, भंते।"

इस प्रकार पूर्णतः मन से मुक्त भिक्षु, वप्पा, छह स्थिर अवस्थाओं को प्राप्त करता है। किसी रूप को आँख से देखकर वह न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सजग और पूर्ण ज्ञान में लीन रहता है। 920 किसी ध्वनि को कान से सुनकर... किसी गंध को नाक से सूंघकर... किसी स्वाद का अनुभव जीभ से करके... किसी वस्तु को शरीर से स्पर्श करके... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर वह न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सजग और पूर्ण ज्ञान में लीन रहता है।

जब उसे शरीर से जुड़ी किसी वेदना का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर से जुड़ी किसी वेदना का अनुभव हो रहा है।' जब उसे जीवन से जुड़ी किसी वेदना का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन से जुड़ी किसी वेदना का अनुभव हो रहा है।' वह समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के टूटने से, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा।' 921

"मान लीजिए, वप्पा, किसी ठूंठ के कारण छाया दिखाई देती है। तब [199] एक आदमी फावड़ा और टोकरी लेकर आएगा। वह ठूंठ को जड़ से काट देगा, उसे खोदकर निकाल देगा और उसकी जड़ों को, यहाँ तक कि महीन जड़ों और रेशों को भी, उखाड़ देगा। वह ठूंठ को टुकड़ों में काटेगा, टुकड़ों को फाड़ेगा और उन्हें पतले टुकड़ों में बदल देगा। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाएगा, आग में जलाएगा और राख बना देगा। ऐसा करने के बाद, वह राख को तेज हवा में उड़ा देगा या नदी की तेज धारा में बहा देगा। इस प्रकार, उस ठूंठ पर निर्भर छाया जड़ से कट जाएगी, ताड़ के ठूंठ की तरह मिट जाएगी, इस प्रकार कि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। 922

"इसी प्रकार, वप्पा, मन से पूर्णतः मुक्त भिक्षु छह स्थिर निवासों को प्राप्त करता है। किसी रूप को दृष्टि से देखकर... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर, वह न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सचेतन और पूर्णतः बोध में रहता है। जब वह शरीर में समाप्त होने वाली किसी संवेदना (वेदना) का अनुभव करता है, तो वह समझता है... 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'"

जब यह कहा गया, तो निगंथों (जैनों) के शिष्य, शाक्य वप्पा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मान लो, भंते, एक व्यक्ति लाभ की लालसा में घोड़ों को पालने का काम करता है, लेकिन उसे लाभ नहीं होता, बल्कि केवल थकान और कष्ट ही मिलते हैं। ठीक उसी प्रकार, लाभ की लालसा में, मैं नासमझ निगंथों की सेवा करता हूँ, लेकिन मुझे लाभ नहीं होता, बल्कि केवल थकान और कष्ट ही मिलते हैं। आज से,

नासमझ निगंथों पर मेरा जो भी विश्वास था, मैं उसे तेज हवा में उड़ा देता हूँ या नदी की धारा में बहा देता हूँ। "उत्कृष्ट, भंते! . . . [200] . . . भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

196 सलहा

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी साल्हा और लिच्छवी अभय भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब लिच्छवी साल्हा ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण दो बातों के द्वारा जलप्रलय पार करने का दावा करते हैं: सद्‌गुणपूर्ण आचरण के शुद्धिकरण द्वारा और तपस्या और वैराग्य के द्वारा। 923 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"मैं कहता हूँ, सलहा, कि सद्‌गुणों का शुद्धिकरण तपस्या का एक कारक है। परन्तु वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तपस्या और वैराग्य का समर्थन करते हैं, जो तपस्या और वैराग्य को सार मानते हैं, और जो तपस्या और वैराग्य का पालन करते हैं, वे जलप्रलय को पार करने में असमर्थ हैं। 924 इसके अलावा, वे तपस्वी और ब्राह्मण जिनका शारीरिक, वाणी और मानसिक आचरण अशुद्ध है, और जिनकी आजीविका अशुद्ध है, वे ज्ञान और दृष्टि, अतुलनीय ज्ञानोदय के लिए असमर्थ हैं।"

"मान लो, सालहा, एक आदमी नदी पार करना चाहता है और एक तेज कुल्हाड़ी लेकर एक जंगल में जाता है। वहाँ उसे एक बड़ा, सीधा, ताजा, बिना फल की कली वाला साल का पौधा दिखाई देता है। वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपर का हिस्सा काट देता है, सारी शाखाएँ और पत्ते पूरी तरह से हटा देता है, कुल्हाड़ी से उसकी छंटाई करता है, फिर छोटी कुल्हाड़ी से उसकी छंटाई करता है, खुरचनी से उसे खुरचता है, पत्थर से उसे चमकाता है और नदी पार करने के लिए निकल पड़ता है। सालहा, तुम्हें क्या लगता है? क्या वह आदमी नदी पार कर पाएगा?"

"नहीं, भंते। किस कारण से? क्योंकि यद्यपि उस साल के पौधे को बाहरी रूप से पूरी तरह से तैयार कर लिया गया है, [201] वह भीतर से शुद्ध नहीं हुआ है। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि साल का पौधा डूब जाएगा और मनुष्य को विपत्ति और आपदा का सामना करना पड़ेगा।"

"इसी प्रकार, हे सलहा, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तपस्या और वैराग्य का समर्थन करते हैं, जो तपस्या और वैराग्य को सार मानते हैं, और जो तपस्या और वैराग्य का पालन करते हैं, वे जलप्रलय पार करने में असमर्थ हैं। साथ ही, वे तपस्वी और ब्राह्मण जिनका शारीरिक, वाणी और मानसिक व्यवहार अशुद्ध है, और जिनकी आजीविका अशुद्ध है, वे ज्ञान और दृष्टि, अतुलनीय ज्ञानोदय प्राप्त करने में असमर्थ हैं।"

"परन्तु, सलहा, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तपस्या और वैराग्य का समर्थन नहीं करते, जो तपस्या और वैराग्य को सार नहीं मानते, और जो तपस्या और वैराग्य का पालन नहीं करते, वे जलप्रपात पार करने में सक्षम हैं। साथ ही, वे तपस्वी और ब्राह्मण जिनका शारीरिक, वाणी और मानसिक आचरण शुद्ध है, और जिनकी आजीविका शुद्ध है, वे ज्ञान और दृष्टि, अतुलनीय ज्ञानोदय के योग्य हैं।"

"मान लो, सालहा, एक आदमी नदी पार करना चाहता है और एक तेज कुल्हाड़ी लेकर एक जंगल में जाता है। वहाँ उसे एक बड़ा, सीधा, ताजा, बिना फल वाली कली का पौधा दिखाई देता है। वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपर का हिस्सा काट देता है, सारी शाखाएँ और पत्ते हटा देता है, कुल्हाड़ी से उसकी छंटाई करता है, फिर छोटी छेनी से उसे अच्छी तरह साफ करता है, खुरचनी से उसे खुरचता है, पत्थर से उसे चमकाता है और उससे एक नाव बनाता है। फिर वह उसमें चप्पू और पतवार लगाता है और नदी पार करने के लिए निकल पड़ता है। सालहा, तुम्हें क्या लगता है? क्या वह आदमी नदी पार कर पाएगा?"

"जी हां, भंते। किसलिए? क्योंकि उस साल के पौधे को बाहर से अच्छी तरह तैयार किया गया है, अंदर से शुद्ध किया गया है, नाव का रूप दिया गया है और उसमें चप्पू और पतवार लगाई गई है। इसलिए यह उम्मीद की जा सकती है कि साल का पौधा डूबेगा नहीं और वह आदमी सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुंच जाएगा।"

(1) "इसी प्रकार, सलहा, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तपस्या और वैराग्य का समर्थन नहीं करते, जो तपस्या और वैराग्य को सार नहीं मानते, और जो तपस्या और वैराग्य का पालन नहीं करते, वे जलप्रपात पार करने में सक्षम हैं। साथ ही, वे तपस्वी और ब्राह्मण [202] जिनका शारीरिक, वाणी और मानसिक आचरण शुद्ध है, और जिनकी आजीविका शुद्ध है, वे ज्ञान और दृष्टि, अतुलनीय ज्ञानोदय के योग्य हैं।"

"यद्यपि एक योद्धा को तीरंदाजी के अनेक करतबों का ज्ञान होता है, फिर भी वह राजा बनने, राजा का सहायक बनने और राजत्व का एक कारक माने जाने के योग्य तभी होता है जब उसमें तीन गुण हों। वे तीन गुण क्या हैं? वह लंबी दूरी का निशानेबाज हो, सटीक निशानेबाज हो और विशालकाय शरीर को भेदने में सक्षम हो।"

(2) "जैसे योद्धा लंबी दूरी का निशानेबाज होता है, वैसे ही श्रेष्ठ शिष्य को सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त होती है। चाहे कोई भी रूप हो—भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट—सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त श्रेष्ठ शिष्य सभी रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) से इस प्रकार देखता है: "यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो... चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो—चाहे किसी के भी संस्कार हों... चाहे जो भी हो।" चेतना चाहे किसी भी प्रकार की हो—भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट—सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में लीन एक श्रेष्ठ शिष्य सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है और कहता है: 'यह मेरी नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

(3) "जिस प्रकार योद्धा एक कुशल निशानेबाज होता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ शिष्य का भी सही दृष्टिकोण होता है। सही दृष्टिकोण वाला श्रेष्ठ शिष्य यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का कारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

(4) "जिस प्रकार योद्धा एक विशाल शरीर को विच्छेदित कर देता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ शिष्य को भी उचित मुक्ति प्राप्त होती है। उचित मुक्ति प्राप्त श्रेष्ठ शिष्य अज्ञान के विशाल समूह को विच्छेदित कर देता है।" 925

---

197 मल्लिका

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब रानी मल्लिका भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: 926 [203]

(1) "भंते, ऐसा क्यों है कि यहाँ कुछ स्त्रियाँ (i) बदसूरत, कुरूप और भद्दी हैं; (ii) गरीब, निर्धन और निर्धन हैं; और (iii) उनका कोई प्रभाव नहीं है? (2) और ऐसा क्यों है कि कुछ (i) बदसूरत, कुरूप और भद्दी हैं; लेकिन (ii) धनी, अपार संपत्ति वाली; और (iii) प्रभावशाली हैं? (3) और ऐसा क्यों है कि यहाँ कुछ स्त्रियाँ (i) सुंदर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण हैं, जिनका रंग अत्यंत सुंदर है; लेकिन (ii) गरीब, निर्धन और निर्धन हैं; और (iii) उनका कोई प्रभाव नहीं है? (4) और ऐसा क्यों है कि कुछ (i) सुंदर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण हैं, जिनका रंग अत्यंत सुंदर है; (ii) धनी, अपार संपत्ति वाली; और (iii) प्रभावशाली हैं?"

(1) "हे मल्लिका, यहाँ (i) कुछ स्त्री क्रोधी और आसानी से चिढ़ जाती हैं। थोड़ी सी आलोचना भी उन्हें क्रोधित कर देती है और वे चिड़चिड़ी, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाती हैं; वे क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करती हैं, (ii) वे तपस्वियों या ब्राह्मणों को भोजन और पेय; वस्त्र और वाहन; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश व्यवस्था जैसी वस्तुएँ दान नहीं करतीं, (iii) और वे ईर्ष्यालु होती हैं, जो दूसरों को दिए गए लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष और ईर्ष्या करती हैं। जब वे उस अवस्था से इस संसार में लौट आती हैं, जहाँ कहीं भी उनका पुनर्जन्म होता है (i) वे कुरूप, विकृत और बदसूरत होती हैं; (ii) गरीब, निर्धन और निर्धन होती हैं; और (iii) उनका प्रभाव नहीं होता है।

(2) "दूसरी स्त्री (i) क्रोध की प्रवृत्ति वाली और आसानी से चिढ़ जाने वाली होती है। . . (ii) परन्तु वह तपस्वियों या ब्राह्मणों को वस्तुएँ दान करती है। . . (iii) और वह ईर्ष्या रहित होती है, वह जो दूसरों को दिए गए लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या नहीं करती। जब वह उस अवस्था से चली जाती है, यदि वह इस संसार में वापस आती है, जहाँ कहीं भी [204] उसका पुनर्जन्म होता है (i) वह कुरूप, विकृत और बदसूरत होती है; (ii) परन्तु वह धनी होती है, उसके पास बहुत धन और संपत्ति होती है; और (iii) प्रभावशाली होती है।

(3) "एक और स्त्री (i) क्रोध करने की प्रवृत्ति वाली या अक्सर चिढ़ने वाली नहीं होती। भले ही उसकी बहुत आलोचना की जाए, वह अपना आपा नहीं खोती और चिड़चिड़ी, शत्रुतापूर्ण और हठी नहीं होती; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करती, (ii) परन्तु वह तपस्वियों या ब्राह्मणों को वस्तुएँ नहीं देती। . . . (iii) और वह ईर्ष्यालु होती है, जो दूसरों को दिए गए लाभ, मान-सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष और ईर्ष्या करती है। जब वह उस अवस्था से चली जाती है, यदि वह इस संसार में वापस आती है, जहाँ कहीं भी उसका पुनर्जन्म होता है (i) वह सुंदर, आकर्षक और सुशोभित होती है, रंगत की सर्वोच्च सुंदरता से युक्त होती है; (ii) परन्तु वह गरीब, निर्धन, कम धन वाली होती है; (iii) और प्रभावहीन होती है।

(4) "और एक अन्य स्त्री (i) क्रोध करने की प्रवृत्ति वाली या अक्सर चिढ़ने वाली नहीं होती। . . . (ii) और वह तपस्वियों या ब्राह्मणों को वस्तुएँ दान करती है। . . . (iii) और वह ईर्ष्या रहित होती है, जो दूसरों को दिए गए लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या नहीं करती। जब वह उस अवस्था से इस दुनिया से चली जाती है, यदि वह इस दुनिया में वापस आती है, जहाँ कहीं भी उसका पुनर्जन्म होता है (i) वह सुंदर, आकर्षक और सुशोभित होती है, रंगत की सर्वोच्च सुंदरता से युक्त होती है; (ii) धनी होती है, अपार धन और संपत्ति वाली होती है; और (iii) प्रभावशाली होती है।

"मल्लिका, यही कारण है कि यहाँ कुछ स्त्रियाँ (i) बदसूरत, कुरूप और भद्दी हैं; (ii) गरीब, निर्धन और निर्धन हैं; और (iii) उनका कोई प्रभाव नहीं है। यही कारण है कि कुछ (i) बदसूरत, कुरूप और भद्दी हैं; लेकिन (ii) धनी, अपार संपत्ति वाली; और (iii) प्रभावशाली हैं। यही कारण है कि यहाँ कुछ स्त्रियाँ (i) सुंदर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण हैं, जिनका रंग अत्यंत सुंदर है; लेकिन (ii) गरीब, निर्धन और निर्धन हैं; और (iii) उनका कोई प्रभाव नहीं है। यही कारण है कि कुछ (i) सुंदर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण हैं, जिनका रंग अत्यंत सुंदर है; (ii) धनी, अपार संपत्ति वाली; और (iii) प्रभावशाली हैं।"

यह सुनकर रानी मल्लिका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे भंते, मेरा मानना है कि (i) पिछले जन्म में मैं क्रोधशील और अक्सर चिढ़ जाती थी; यहाँ तक कि थोड़ी सी आलोचना पर भी मैं अपना आपा खो बैठती थी और चिढ़ जाती थी, [205] शत्रुतापूर्ण, हठी और क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करती थी। इसलिए अब मैं बदसूरत, कुरूप और भद्दी हूँ। (ii) लेकिन मेरा मानना है कि पिछले जन्म में मैंने तपस्वियों या ब्राह्मणों को वस्तुएँ दान की थीं... बिस्तर, आवास और प्रकाश। इसलिए अब मैं धनी हूँ, मेरे पास अपार धन और संपत्ति है। (iii) और मेरा मानना है कि पिछले जन्म में मैं ईर्ष्या रहित थी, दूसरों को दिए गए लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या नहीं करती थी। इसलिए अब मैं प्रभावशाली हूँ। इस दरबार में क्षत्रिय, ब्राह्मण और गृहस्थ परिवारों की लड़कियाँ हैं जिन पर मेरा अधिकार है।”

आज से, हे भंते, (i) मैं क्रोध करने और बार-बार चिढ़ने की प्रवृत्ति नहीं रखूंगा। यहां तक कि जब मेरी बहुत आलोचना की जाएगी तब भी मैं अपना आपा नहीं खोऊंगा और चिढ़कर, शत्रुतापूर्ण और हठी नहीं बनूंगा; मैं क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करूंगा। (ii) और मैं तपस्वियों या ब्राह्मणों को वस्तुएँ दान करूंगा: भोजन और पेय; वस्त्र और वाहन; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। (iii) और मैं ईर्ष्यालु नहीं बनूंगा, जो दूसरों को दिए गए लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा और पूजा से ईर्ष्या, द्वेष और ईर्ष्या करता है।

"उत्कृष्ट, भंते! . . . [4:111 पर] . . . भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

198 स्व-पीड़ा 927 (अट्टनतापा)

भिक्षुओं, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? (1) एक प्रकार का व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और पीड़ा देने का अभ्यास करता है। (2) दूसरे प्रकार का व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और पीड़ा देने का अभ्यास करता है। (3) एक और प्रकार का

व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और पीड़ा देने का अभ्यास करता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और पीड़ा देने का अभ्यास करता है। (4) और एक और प्रकार का व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही पीड़ा देने का अभ्यास करता है, [206] और न ही दूसरों को पीड़ा देता है और न ही पीड़ा देने का अभ्यास करता है। क्योंकि वह न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को, इसलिए इसी जीवन में वह भूख रहित, तृप्त और शीतल, आनंद का अनुभव करते हुए, स्वयं दिव्य बन जाता है। 928

(1) "हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा पहुँचाने का अभ्यास करता है, वह कैसे है? 929 यहाँ, एक व्यक्ति नग्न रहता है, रीति-रिवाजों का उल्लंघन करता है, अपने हाथ चाटता है, बुलाए जाने पर नहीं आता, बुलाए जाने पर नहीं रुकता; वह लाया हुआ भोजन या विशेष रूप से बनाया गया भोजन या भोजन का निमंत्रण स्वीकार नहीं करता; वह बर्तन से, कटोरे से, दहलीज के पार से, छड़ी के पार से, मूसल के पार से, साथ में भोजन करने वाले दो लोगों से, गर्भवती महिला से, बच्चे को दूध पिलाने वाली महिला से, पुरुष द्वारा रखी गई महिला से, जहाँ भोजन वितरित करने का दिया जाता है, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता है, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती हैं, कुछ भी ग्रहण नहीं करता; वह मछली या मांस ग्रहण नहीं करता, वह शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता। वह एक घर में [भिक्षा पर], एक निवाला भोजन पर रहता है; वह दो घरों में, दो निवाले भोजन पर रहता है... वह सात घरों में, सात निवाले भोजन पर रहता है। वह एक दिन में एक थाली पर, दो थालियों पर रहता है।" वह दिन में सात थालियों में भोजन करता है। वह दिन में एक बार, दो दिन में एक बार... सात दिन में एक बार; इस प्रकार, वह हर पखवाड़े तक नियमित अंतराल पर भोजन करने का अभ्यास करता है।

वह हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की मैल, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और फलों पर निर्भर रहता है; वह गिरे हुए फलों को खाता है।

वह भांग के वस्त्र, भांग मिश्रित कपड़े के वस्त्र, कफन से बने वस्त्र, चिथड़ों से बने वस्त्र, पेड़ की छाल से बने वस्त्र, हिरण की खाल से बने वस्त्र, हिरण की खाल की पट्टियों से बने वस्त्र, कुसा घास से बने वस्त्र, छाल के कपड़े या लकड़ी के बुरादे से बने कपड़े; सिर के बालों या जानवरों की ऊन से बना लबादा, उल्लू के पंखों से बना आवरण पहनता है।

वह व्यक्ति है जो बाल और दाढ़ी नोचता है, बाल और दाढ़ी नोचने का अभ्यास करता है। वह व्यक्ति है जो लगातार खड़ा रहता है, बैठने का त्याग करता है। वह व्यक्ति है जो लगातार उकडू बैठा रहता है, उकडू बैठने की मुद्रा बनाए रखने में लगा रहता है। वह व्यक्ति है जो कांटों का गद्दा इस्तेमाल करता है; वह कांटों के गद्दे को अपना बिस्तर बनाता है। वह शाम समेत दिन में तीन बार पानी से स्नान करने का अभ्यास करता है। [207] इस प्रकार वह अनेक तरीकों से शरीर को कष्ट देने और उसे पीड़ा पहुँचाने का अभ्यास करता है। इसी तरह व्यक्ति स्वयं को कष्ट देता है और स्वयं को यातना देने का अभ्यास करता है।

(2) और जो व्यक्ति दूसरों को सताता है और उन्हें यातना देने का काम करता है, वह कैसे कहलाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति भेड़ काटने वाला, सूअर काटने वाला, पक्षी पकड़ने वाला, जंगली जानवरों को फँसाने वाला, शिकारी, मछुआरा, चोर, जल्लाद, जेल का वार्डन, या ऐसा ही कोई अन्य रक्तरंजित व्यवसाय करने वाला हो सकता है। इस प्रकार, कोई व्यक्ति दूसरों को सताता है और उन्हें यातना देने का काम करता है।

(3) "और वह व्यक्ति कैसा है जो स्वयं को पीड़ा देता है और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को भी पीड़ा देता है? यहाँ, कोई व्यक्ति प्रधान-अभिषिक्त क्षत्रिय राजा या धनी ब्राह्मण है। उसने नगर के पूर्व में एक नया यज्ञ मंदिर बनवाया, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, खुरदुरे हिरण की खाल से वस्त्र पहना, घी और तेल से शरीर को चिकना किया और हिरण के सींग से अपनी पीठ खुजलाई। वह अपनी प्रधान रानी और ब्राह्मण महायाजक के साथ यज्ञ मंदिर में प्रवेश करता है। वहाँ वह घास से ढकी नंगी भूमि पर लेट जाता है। राजा एक ही रंग के बछड़े वाली गाय के पहले थन के दूध पर जीवित रहता है, जबकि प्रधान रानी दूसरे थन के दूध पर और ब्राह्मण महायाजक तीसरे थन के दूध पर जीवित रहता है; चौथे थन का दूध वे अग्नि में डाल देते हैं, और बछड़ा बचे हुए दूध पर जीवित रहता है। वह कहता है: 'ऐसा ही हो।' बहुत से बैलों का बलिदान किया जाए, बहुत से बछड़ों का बलिदान किया जाए, बहुत सी बछियों का बलिदान किया जाए, बहुत सी बकरियों का बलिदान किया जाए, बहुत सी भेड़ों का बलिदान किया जाए, बलिदान के खंभों के लिए बहुत से पेड़ काटे जाएं, और बलिदान के लिए घास काटी जाए। [208] फिर उसके दास, दूत और सेवक तैयारी करते हैं। वे आँसू भरी आँखों से रोते हैं,

सजा की धमकियों और भय से प्रेरित होते हैं। इसी तरह एक व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को भी पीड़ा देता है।

(4) "और वह व्यक्ति कैसे है जो स्वयं को कष्ट नहीं देता और न ही स्वयं को कष्ट देने का अभ्यास करता है, और न ही दूसरों को कष्ट देता है और न ही दूसरों को कष्ट देने का अभ्यास करता है—वह व्यक्ति जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट न देने के कारण इसी जीवन में भूख रहित, तृप्त और शीतल, आनंद का अनुभव करते हुए, स्वयं दिव्य बन जाता है?"

हे भिक्षुओं, यहाँ तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट होते हैं, जो पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध) हैं। उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इस संसार को, इसके देवों, मार और ब्रह्मा सहित, इस जनसंख्या को, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवों और मनुष्यों सहित, जान लिया है और इसे दूसरों को ज्ञात कराते हैं। वे उस धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, उचित अर्थ और शब्दों के साथ; वे पूर्णतः शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करते हैं।

"एक गृहस्थ, गृहस्थ पुत्र या किसी अन्य कुल में जन्मा व्यक्ति इस धम्म को सुनता है। तब वह तथागत (बुद्ध) में आस्था प्राप्त करता है और इस प्रकार विचार करता है: 'गृहस्थ जीवन भीड़भाड़ वाला और धूल भरा है; संन्यासी जीवन में प्रवेश करना खुला और विशाल है। घर में रहते हुए ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीना आसान नहीं है, जो पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध शंख के समान है। मान लीजिए कि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र पहनकर गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता हूँ। बाद में, छोटी या बड़ी संपत्ति का त्याग करके, छोटे या बड़े रिश्तेदारों के समूह को छोड़कर, वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र पहनकर गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है।"

इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करके और भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीवन शैली को अपनाकर, जीवन-विनाश का त्याग करके, वह जीवन-विनाश से दूर रहता है; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, सचेत और दयालु होकर, वह सभी प्राणियों के प्रति करुणामय रहता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है; [209] वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही चाहता है जो दिया गया है, और चोरी के विचारों के बिना ईमानदारी से रहता है। यौन गतिविधि का त्याग करके, वह ब्रह्मचर्य का पालन करता है, अलग रहता है, यौन संबंध से दूर रहता है, जो आम आदमी का अभ्यास है।

वह झूठे वचनों का त्याग करके झूठ से दूर रहता है; वह सत्य बोलता है, सत्य का पालन करता है; वह विश्वसनीय और भरोसेमंद है, संसार को धोखा नहीं देता। वह फूट डालने वाले वचनों का त्याग करके फूट डालने वाले वचनों से दूर रहता है; वह यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों से अलग करने के लिए कहीं और नहीं दोहराता, न ही वह दूसरों से सुनी हुई बातों को दूसरों से अलग करने के लिए दोहराता है; इस प्रकार वह विभाजित लोगों को एकजुट करने वाला, एकता का समर्थक, सद्भाव का आनंद लेने वाला, सद्भाव में प्रसन्न होने वाला, सद्भाव को बढ़ावा देने वाले वचन बोलने वाला है। वह कठोर वचनों का त्याग करके कठोर वचनों से दूर रहता है; वह कोमल, कानों को भाने वाले, मनभावन, हृदय को छूने वाले, शिष्ट वचन बोलता है जो बहुतों को प्रिय और स्वीकार्य होते हैं। वह व्यर्थ की बातों का त्याग करके व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह उचित समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, लाभकारी बोलता है, धर्म पर बोलता है। अनुशासन; वह उचित समय पर ऐसे शब्द बोलता है जो रिकॉर्ड करने योग्य, तर्कसंगत, संक्षिप्त और लाभकारी हों।

वह बीजों और पौधों को नुकसान नहीं पहुँचाता। वह दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करता है। वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज़ करता है। वह मालाएँ पहनने और सुगंध और मलहम लगाने से खुद को सजाने-संवारने से परहेज़ करता है। वह ऊँचे और बड़े पलंगों से परहेज़ करता है। वह सोना और चाँदी, कच्चा अनाज, कच्चा मांस, स्त्रियाँ और लड़कियाँ, पुरुष और महिला दास, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गे और सूअर, हाथी, मवेशी, घोड़े और घोड़ियाँ, खेत और ज़मीन लेने से परहेज़ करता है। वह संदेशवाहकों के रूप में जाने और सामान पहुँचाने से परहेज़ करता है; खरीद-फरोख्त से; बाट, धातुओं और माप में धोखाधड़ी से; रिश्वत लेने, छल करने, कपट करने और कपट से। वह चोट पहुँचाने, हत्या करने, बाँधने, डकैती, लूटपाट और हिंसा से परहेज़ करता है।

वह अपने शरीर की रक्षा के लिए वस्त्रों और पेट भरने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है, और जहाँ कहीं भी जाता है, केवल इन्हीं को अपने साथ लेकर जाता है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, [210] अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है,

उसी प्रकार एक भिक्षु अपने शरीर की रक्षा के लिए वस्त्रों और पेट भरने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है, और जहाँ कहीं भी जाता है, केवल इन्हीं को अपने साथ लेकर जाता है। इन सभी उत्तम सद्‌गुणों से युक्त होकर वह अपने भीतर निष्कलंक आनंद का अनुभव करता है।

किसी आकृति को आँखों से देखकर भी वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को पकड़ नहीं पाता। क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह दृष्टि की रक्षा करता है, दृष्टि को नियंत्रित करता है। किसी ध्वनि को कान से सुनकर, किसी गंध को नाक से सूंघकर... किसी स्वाद को जीभ से चखकर... किसी वस्तु को शरीर से स्पर्श करके... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर भी वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को पकड़ नहीं पाता। क्योंकि यदि वह अपने मन को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह मन की रक्षा करता है, मन को नियंत्रित करता है। इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम के कारण वह अपने भीतर निर्मल आनंद का अनुभव करता है।

वह आगे बढ़ने और लौटने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह आगे देखने और पीछे देखने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह अपने अंगों को मोड़ने और फैलाने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह अपने वस्त्र पहनने और अपने बाहरी वस्त्र और कटोरे को ले जाने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह खाने, पीने, भोजन ग्रहण करने और स्वाद लेने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह शौच और मूत्र त्यागने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बात करने और चुप रहने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है।

"उत्कृष्ट सद्‌गुणों, इंद्रियों के संयम, सती ध्यान और संपजन्न जैसी पूर्ण चेतना से युक्त होकर वह एकांत स्थान पर शरण लेता है: जैसे जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, घनी झाड़ियाँ, खुला स्थान या भूसे का ढेर।"

भोजन करने के बाद, अपने भ्रमण से लौटने पर, वह अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, शरीर को सीधा करता है और अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित करता है। संसार के प्रति लालसा का त्याग करके, वह लालसा से मुक्त मन से रहता है; वह अपने मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष और घृणा का त्याग करके, वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा से मुक्त मन से रहता है; वह अपने मन को द्वेष और घृणा से शुद्ध करता है। सुस्ती और आलस्य का त्याग करके, [211] वह सुस्ती और आलस्य से मुक्त, प्रकाश का बोध करते हुए, सचेत (सती) और पूर्णतः बोध करते हुए रहता है; वह अपने मन को सुस्ती और आलस्य से शुद्ध करता है। बेचैनी और पश्चाताप का त्याग करके, वह बिना किसी व्याकुलता के, आंतरिक रूप से शांत मन से रहता है; वह अपने मन को बेचैनी और पश्चाताप से शुद्ध करता है। संदेह का त्याग करके, वह संदेह से परे जाकर, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के बारे में अविचलित होकर रहता है; वह अपने मन को संदेह से शुद्ध करता है।

इस प्रकार इन पाँच बाधाओं, मन के दोषों, पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करने वाले गुणों का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, और अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते हैं। आनंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में, सचेत (सती) होकर और पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर से सुख का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सती) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: वह समभाव में, सचेत (सती) होकर, वह है जो... वह आनंदपूर्वक निवास करता है। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और निराशा के बीत जाने के बाद, वह चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सचेतनता (सती) का शुद्धिकरण होता है।

जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) हो जाता है, शुद्ध, निर्मल, अशुद्धियों से मुक्त, लचीला, स्थिर और अविचलित हो जाता है, तो वह उसे पिछले जन्मों के स्मरण के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है... [जैसा कि 3:58 §1 में है] ... प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर... [जैसा कि 3:58 §2 में है] ... दोषों के नाश के ज्ञान की ओर। वह इसे यथार्थ रूप में समझता है:

'यह दुख है'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख का निवारण है'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'ये दोष हैं'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दोषों का मूल है'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दोषों का निवारण है'; वह इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।

जब वह इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है और देखता है, तो उसका मन कामुकता के दोष से, अस्तित्व के दोष से (पुनर्जन्म का कारण) और अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई अधिकार नहीं है।'

"इसी प्रकार वह व्यक्ति होता है जो न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही स्वयं को पीड़ा देने का अभ्यास करता है, और न ही दूसरों को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को पीड़ा देने का अभ्यास करता है - वह व्यक्ति, जो न तो स्वयं को और न ही दूसरों को पीड़ा देता है, इसी जीवन में भूख रहित, तृप्त और शीतल होकर आनंद का अनुभव करता है, और स्वयं दिव्य बन जाता है।"

"भिक्षुओं, ये संसार में विद्यमान चार प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

199 तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के बारे में सिखाऊंगा—वह फँसाने वाली, बहने वाली, व्यापक और चिपचिपी 932—जिससे यह संसार घुटकर और लिपटा हुआ है, और जिससे यह एक उलझी हुई डोरी, एक गाँठदार धागे का गोला, सरकंडों और झाड़ियों का ढेर बन गया है, [212] जिससे यह दुख के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ पाता। ध्यान से सुनो; मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

और हे भिक्षुओं, वह तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) क्या है—वह फँसाने वाली, बहने वाली, व्यापक और चिपचिपी—जिसने इस संसार को जकड़ लिया है और घेर लिया है, और जिससे यह एक उलझी हुई डोरी, एक गाँठदार धागे का गोला, सरकंडों और झाड़ियों का ढेर बन गई है, जिससे यह दुख के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ पाती?

भिक्षुओं, आंतरिक तृष्णा से संबंधित अठारह प्रकार की तृष्णाएं (तन्हा/तृष्णा) हैं और बाह्य तृष्णा से संबंधित अठारह प्रकार की तृष्णाएं (तन्हा/तृष्णा) हैं।

और आंतरिक से संबंधित तृष्णा की अठारह धाराएँ क्या हैं? जब 'मैं हूँ' की धारणा होती है, तब 'मैं ऐसा हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हूँ', 'मैं अन्यथा हूँ', 'मैं स्थायी हूँ', 'मैं क्षणभंगुर हूँ', 'मैं हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं अन्यथा हो सकता हूँ', 'मैं हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं अन्यथा हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं अन्यथा हो सकता हूँ' जैसी धारणाएँ भी होती हैं। ये आंतरिक से संबंधित तृष्णा की अठारह धाराएँ हैं।

और बाह्य से संबंधित तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) की अठारह धाराएँ क्या हैं? 934 जब यह धारणा होती है, 'मैं इसके कारण हूँ,' 935 तो ये धारणाएँ भी होती हैं: 'मैं इसके कारण ऐसा हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हूँ,' 'मैं इसके कारण अलग हूँ,' 'मैं इसके कारण स्थायी हूँ,' 'मैं इसके कारण क्षणभंगुर हूँ,' 'मैं इसके कारण हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण अलग हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ,' 'मैं इसके कारण अलग हूँगा,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँगा,' 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँगा,' 'मैं इसके कारण अलग हो सकता हूँगा,' ये बाह्य से संबंधित तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) की अठारह धाराएँ हैं।

इस प्रकार आंतरिक से संबंधित अठारह तृष्णा धाराएँ हैं, और बाह्य से संबंधित अठारह तृष्णा धाराएँ हैं। इन्हें छत्तीस तृष्णा धाराएँ कहा जाता है। ऐसी छत्तीस तृष्णा धाराएँ भूतकाल से संबंधित हैं, छत्तीस भविष्य से संबंधित हैं, [213] और छत्तीस वर्तमान से संबंधित हैं। इस प्रकार कुल एक सौ आठ तृष्णा धाराएँ हैं।

"यही वह तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) है— जो फँसाने वाली, बहने वाली, व्यापक और चिपचिपी है— जिससे यह संसार घुटकर और लिपटकर रह गया है, और जिससे यह एक उलझी हुई डोरी, एक गाँठदार धागे का गोला, सरकंडों और झाड़ियों का ढेर बन गया है, जिससे यह दुख के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ पाता।" 936

---

200 स्नेह (पेमा सं. प्रेम)

भिक्षुओं, ये चार चीजें जन्म लेती हैं। वे चार क्या हैं? स्नेह से स्नेह उत्पन्न होता है; स्नेह से घृणा उत्पन्न होती है; घृणा से स्नेह उत्पन्न होता है; और घृणा से घृणा उत्पन्न होती है।

(1) "हे भिक्षुओं, स्नेह से स्नेह कैसे उत्पन्न होता है? यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे के लिए वांछनीय, प्रेमयोग्य और सुखद है। दूसरे लोग उस व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जो वांछनीय, प्रेमयोग्य और सुखद हो। दूसरे व्यक्ति के मन में यह विचार आता है: 'दूसरे लोग उस व्यक्ति के साथ, जो मेरे लिए वांछनीय, प्रेमयोग्य और सुखद है, ऐसा व्यवहार करते हैं जो वांछनीय, प्रेमयोग्य और सुखद हो।' इस प्रकार वह उनके प्रति स्नेह उत्पन्न करता है। इसी प्रकार स्नेह से स्नेह उत्पन्न होता है।"

(2) "और स्नेह से घृणा कैसे उत्पन्न होती है? यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे के लिए वांछनीय, प्रिय और सुखद है। दूसरे उस व्यक्ति के साथ इस तरह व्यवहार करते हैं जो अवांछनीय, अप्रिय और अप्रिय है।

दूसरे व्यक्ति के मन में यह विचार आता है: 'दूसरे लोग उस व्यक्ति के साथ, जो मुझे प्यारा, प्रिय और अच्छा लगता है, वैसा व्यवहार करते हैं जैसा मुझे नापसंद, अप्रिय और नापसंद है।' इस प्रकार वह उनसे घृणा करने लगता है। इसी प्रकार स्नेह से घृणा का जन्म होता है।

(3) "और घृणा से स्नेह कैसे उत्पन्न होता है? यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे के लिए अवांछनीय, अप्रिय और नापसंद करने योग्य है। दूसरे लोग उस व्यक्ति के साथ अवांछनीय, अप्रिय और नापसंद करने योग्य व्यवहार करते हैं। दूसरे व्यक्ति के मन में यह विचार आता है: 'दूसरे लोग उस व्यक्ति के साथ, जो मेरे लिए अवांछनीय, अप्रिय और नापसंद करने योग्य है, अवांछनीय, अप्रिय और नापसंद करने योग्य व्यवहार करते हैं।' इस प्रकार वह उनके प्रति स्नेह उत्पन्न करता है। इसी प्रकार घृणा से स्नेह उत्पन्न होता है।"

(4) "और घृणा से घृणा कैसे उत्पन्न होती है? यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे के लिए अवांछनीय, अप्रिय [214] और अरुचिकर है। दूसरे उस व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जो वांछनीय/प्रिय और सुखद होता है। दूसरे के मन में यह विचार आता है: 'दूसरे उस व्यक्ति के साथ, जो मेरे लिए अवांछनीय, अप्रिय और अरुचिकर है, ऐसा व्यवहार करते हैं जो वांछनीय, प्रिय और सुखद है।' इस प्रकार वह उनके प्रति घृणा उत्पन्न करता है। इसी प्रकार घृणा से घृणा उत्पन्न होती है।"

"ये चार चीजें जन्म लेती हैं।"

जब कोई भिक्षु इंद्रिय सुखों से एकांत में रहकर प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, उस समय उसमें स्नेह से उत्पन्न स्नेह नहीं होता, स्नेह से उत्पन्न घृणा नहीं होती, घृणा से उत्पन्न स्नेह नहीं होता और घृणा से उत्पन्न घृणा नहीं होती।

"जब विचार और चिंतन शांत हो जाते हैं और भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तृतीय ध्यान में... चतुर्थ ध्यान में... उस समय उसमें स्नेह से उत्पन्न स्नेह नहीं होता, स्नेह से उत्पन्न घृणा नहीं होती, घृणा से उत्पन्न स्नेह नहीं होता और घृणा से उत्पन्न घृणा नहीं होती।"

जब भिक्षु दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर लेता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है, तब वह आसक्ति से उत्पन्न आसक्ति का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके; वह आसक्ति से उत्पन्न घृणा का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके; वह घृणा से उत्पन्न आसक्ति का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके; और वह घृणा से उत्पन्न घृणा का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके।

"इसे भिक्षु कहा जाता है जो न तो कुछ उठाता है और न ही कुछ दूर धकेलता है, जो क्रोधित नहीं होता, न ही प्रज्वलित होता है और न ही चिंतन करता है।"

"और एक भिक्षु कैसे सीखता है? 937 यहाँ, एक भिक्षु रूप को आत्मा के रूप में, या आत्मा को रूप धारण करने वाले के रूप में, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है। वह संवेदना (वेदना) को आत्मा के रूप में देखता है... [215]... बोध (संज्ञा/संज्ञा) को आत्मा के रूप में... अपने चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) को आत्मा के रूप में... चेतना को आत्मा के रूप में, या आत्मा को चेतना धारण करने वाले के रूप में, या चेतना को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में देखता है। इसी प्रकार एक भिक्षु सीखता है।"

और एक भिक्षु कैसे ग्रहण नहीं करता? यहाँ, एक भिक्षु रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... अपने संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, न ही चेतना को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को चेतना में मानता है। इसी प्रकार एक भिक्षु ग्रहण नहीं करता।

"और एक भिक्षु कैसे दूर भगाता है? यहाँ, एक भिक्षु अपमान करने वाले का अपमान करता है, डांटने वाले को डांटता है, और बहस करने वाले से बहस करता है। इसी तरह एक भिक्षु दूर भगाता है।"

और एक भिक्षु कैसे किसी को दूर नहीं धकेलता? यहाँ, एक भिक्षु अपमान करने वाले का अपमान नहीं करता, डांटने वाले को डांटता नहीं है, और बहस करने वाले से बहस नहीं करता। इसी तरह एक भिक्षु किसी को दूर नहीं धकेलता।

"और एक भिक्षु कैसे तपता है? जब 'मैं हूँ' की धारणा होती है, तो 'मैं ऐसा हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हूँ', 'मैं अलग हूँ', 'स्थायी हूँ', 'मैं क्षणभंगुर हूँ', 'मैं हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं अलग हो सकता हूँ', 'मैं हो सकता हूँ', 'मैं ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं बिल्कुल ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं अलग हो सकता हूँ', 'मैं होऊंगा', 'मैं ऐसा होऊंगा/मैं बिल्कुल ऐसा होऊंगा', 'मैं अलग होऊंगा' जैसी धारणाएँ भी होती हैं। इसी प्रकार एक भिक्षु तपता है।"

और भिक्षु कैसे क्रोधित नहीं होता? जब 'मैं हूँ' की धारणा नहीं होती, तो 'मैं ऐसा हूँ' जैसी धारणाएँ भी नहीं होतीं... [216] ... 'मैं कुछ और हो जाऊँगा।' इसी तरह भिक्षु क्रोधित नहीं होता।

और एक भिक्षु किस प्रकार प्रज्वलित होता है? जब यह धारणा होती है कि 'मैं इसके कारण हूँ', तो ये धारणाएँ भी उत्पन्न होती हैं: 'मैं इसके कारण ऐसा हूँ', 'मैं इसके कारण ऐसा हूँ', 'मैं इसके कारण अलग हूँ', 'मैं इसके कारण स्थायी हूँ', 'मैं इसके कारण क्षणभंगुर हूँ', 'मैं इसके कारण हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण ऐसा हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण अलग हो सकता हूँ', 'मैं इसके कारण होऊँगा', 'मैं इसके कारण ऐसा होऊँगा', 'मैं इसके कारण ऐसा होऊँगा', 'मैं इसके कारण ऐसा होऊँगा', 'मैं इसके कारण अलग होऊँगा'। इसी प्रकार एक भिक्षु प्रज्वलित होता है।

और एक भिक्षु कैसे प्रज्वलित नहीं होता? जब यह धारणा नहीं होती कि 'मैं इस कारण से हूँ', तब यह धारणा भी नहीं होती कि 'मैं इस कारण से ऐसा हूँ' ... 'मैं इस कारण से अलग हो जाऊँगा'। इसी प्रकार एक भिक्षु प्रज्वलित नहीं होता।

और एक भिक्षु किस प्रकार चिंतन करता है? 938. यहाँ, एक भिक्षु ने 'मैं हूँ' की धारणा को जड़ से नहीं त्यागा है, उसे ताड़ के ठूंठ की तरह नहीं बनाया है, उसे मिटा नहीं दिया है ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके। इसी प्रकार एक भिक्षु चिंतन करता है।

"और एक भिक्षु चिंतन कैसे नहीं करता? यहाँ, एक भिक्षु ने 'मैं हूँ' की धारणा को त्याग दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके। इसी प्रकार एक भिक्षु चिंतन नहीं करता।" [217]

पांचवां पचास

I. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सतपुरुष)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

201 प्रशिक्षण नियम (सिक्खपाद बिना शिक्षापद)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बुरे व्यक्ति और बुरे व्यक्ति से भी कमतर व्यक्ति के बारे में, अच्छे व्यक्ति और अच्छे व्यक्ति से भी श्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो; मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है, झूठ बोलता है, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। यही बुरा व्यक्ति कहलाता है।"

(2) "और बुरे व्यक्ति से भी नीच कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति स्वयं जीवन का नाश करता है और दूसरों को भी जीवन का नाश करने के लिए उकसाता है; वह स्वयं वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है और दूसरों को भी वह लेने के लिए उकसाता है जो उसे नहीं दिया गया है; वह स्वयं यौन दुराचार में लिप्त होता है और दूसरों को भी यौन दुराचार में लिप्त होने के लिए उकसाता है; वह स्वयं झूठ बोलता है और दूसरों को भी झूठ बोलने के लिए उकसाता है; वह स्वयं शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं, और दूसरों को भी शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करने के लिए उकसाता है, जो आलस्य का आधार हैं। यही व्यक्ति बुरे व्यक्ति से भी नीच है।"

(3) "अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन की हानि से दूर रहता है, जो बिना माँगे कुछ लेने से दूर रहता है, जो यौन दुराचार से दूर रहता है, जो झूठी बातों से दूर रहता है, और जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं। यही व्यक्ति अच्छा कहलाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं जीवन-विनाश से दूर रहता है और दूसरों को भी जीवन-विनाश से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह स्वयं अनचाही वस्तुएँ लेने से दूर रहता है और दूसरों को भी अनचाही वस्तुएँ लेने से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह स्वयं यौन दुराचार से दूर रहता है और दूसरों को भी यौन दुराचार से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह स्वयं झूठी वाणी से दूर रहता है और दूसरों को भी झूठी वाणी से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह स्वयं मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं, और दूसरों को भी मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।" [218]

---

202 विश्वास से रहित (असद्ध बिना अश्रद्ध)

[4:201 के अनुसार आरंभ।]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो आस्थाहीन, नैतिक रूप से निर्लज्ज, नैतिक रूप से लापरवाह, अज्ञानी, आलसी, भ्रमित और मूर्ख है। यही बुरा व्यक्ति कहलाता है।"

(2) "और बुरे व्यक्ति से हीन कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं आस्थाहीन है और दूसरों को भी आस्थाहीन होने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं नैतिक रूप से निर्लज्ज है और दूसरों को भी नैतिक रूप से निर्लज्ज होने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं नैतिक रूप से लापरवाह है और दूसरों को भी नैतिक रूप से लापरवाह होने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं ज्ञान में कमी रखता है और दूसरों को भी ज्ञान में कमी रखने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं आलसी है और दूसरों को भी आलस्य के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं भ्रमित है और दूसरों को भी भ्रमित होने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं अज्ञानी है और दूसरों को भी ज्ञान की कमी के लिए प्रेरित करता है। इसे ही बुरे व्यक्ति से हीन कहा जाता है।"

(3) "अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो आस्था से परिपूर्ण है, नैतिक लज्जा और नैतिक भय से ग्रस्त है; और विद्वान, ऊर्जावान, सती (ध्यानमग्न) और बुद्धिमान है। इसे ही अच्छा व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं आस्था में सिद्ध है और दूसरों को आस्था में सिद्ध होने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं नैतिक लज्जा रखता है और दूसरों को नैतिक लज्जा रखने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं नैतिक भय रखता है और दूसरों को नैतिक भय रखने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं विद्वान है और दूसरों को सीखने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं ऊर्जावान है और दूसरों को ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं सचेत (ध्यान/सती) है और दूसरों को सचेतनता (ध्यान/सती) स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं बुद्धिमान है और दूसरों को पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्ध होने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।"

---

203 सात कर्म (सत्तकम्मा बिना...कर्म)

[4:201 के अनुसार आरंभ।] [219]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? यहाँ, कोई जीवन नष्ट करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर बोलता है, और व्यर्थ की बातों में लिप्त होता है।

(2) "और बुरे व्यक्ति से भी नीच कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं जीवन का नाश करता है और दूसरों को भी जीवन का नाश करने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है और दूसरों को भी व्यर्थ की बातों में लिप्त रहने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही बुरे व्यक्ति से भी नीच कहा जाता है।"

(3) "अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन के विनाश से परहेज़ करता है... व्यर्थ की बातों से परहेज़ करता है। इसे ही अच्छा व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं जीवन-विनाश से दूर रहता है और दूसरों को भी जीवन-विनाश से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं व्यर्थ की बातों से दूर रहता है और दूसरों को भी व्यर्थ की बातों से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।"

---

204 दस कर्म (दसकम्मा सं. दास-कर्म)

[4:201 के अनुसार आरंभ।] [220]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन का नाश करता है... व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है; वह लालसा से भरा रहता है, द्वेष रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है। यही बुरा व्यक्ति कहलाता है।"

(2) "और बुरे व्यक्ति से भी नीच कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं जीवन का विनाश करता है और दूसरों को भी जीवन का विनाश करने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही बुरे व्यक्ति से भी नीच कहा जाता है।"

(3) "अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन के विनाश से दूर रहता है... व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्भावपूर्ण और सही दृष्टिकोण वाला होता है। यही अच्छा व्यक्ति कहलाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं जीवन-विनाश से दूर रहता है और दूसरों को भी जीवन-विनाश से दूर रहने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं निर्धन है और दूसरों को भी निर्धनता के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं सद्भावपूर्ण है और दूसरों को भी सद्भावपूर्ण रहने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं सही दृष्टि रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टि रखने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।"

205 अष्टांगिक (अट्ठांगिका सं. अष्टांगिक)

[4:201 के अनुसार आरंभ।]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति गलत दृष्टिकोण, गलत इरादे, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (ध्यान/सती) और गलत समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) वाला है। [221] इसे बुरा व्यक्ति कहा जाता है।

(2) "और बुरे व्यक्ति से हीन कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में लीन रहता है और दूसरों को भी गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में प्रेरित करता है। इसे ही बुरे व्यक्ति से हीन कहा जाता है।"

(3) "अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति सही दृष्टिकोण, सही इरादे, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता) और सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) वाला होता है। इसे अच्छा व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ वह व्यक्ति जो स्वयं सही दृष्टि रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टि रखने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में रहता है और दूसरों को भी सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में प्रेरित करता है। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।"

---

206 दस गुना पथ

[4:201 के अनुसार आरंभ।]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा व्यक्ति कौन है? [222] यहाँ, कोई व्यक्ति गलत दृष्टिकोण वाला है... गलत समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), गलत ज्ञान और गलत मुक्ति वाला है। इसे बुरा व्यक्ति कहा जाता है।

(2) "और बुरे व्यक्ति से हीन कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं गलत मुक्ति का पालन करता है और दूसरों को भी गलत मुक्ति का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही बुरे व्यक्ति से हीन कहा जाता है।"

(3) "और...अच्छा व्यक्ति कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति सही दृष्टिकोण वाला... सही समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता), सही ज्ञान और सही मुक्ति वाला है। इसे ही अच्छा व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति जो स्वयं सही दृष्टि रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टि रखने के लिए प्रेरित करता है... वह स्वयं सही मुक्ति प्राप्त करता है और दूसरों को भी सही मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ कहा जाता है।"

---

207 बुरा चरित्र (1) (पापधम्म1 बिना पाप-धर्म)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें सिखाऊंगा कि क्या बुरा है और उससे भी बुरा क्या है। और मैं तुम्हें सिखाऊंगा कि क्या अच्छा है और उससे भी बेहतर क्या है। सुनो..."

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा क्या है? यहाँ, कोई जीवन का विनाश करता है... और गलत दृष्टिकोण रखता है। इसे बुरा कहा जाता है।"

(2) "और उस बुराई से भी बदतर क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं जीवन को नष्ट करता है और दूसरों को भी जीवन को नष्ट करने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण रखने के लिए प्रेरित करता है। इसे उस बुराई से भी बदतर कहा जाता है।"

(3) "और अच्छा क्या है? यहाँ, कोई जीवन के विनाश से परहेज़ करता है... और सही दृष्टिकोण रखता है। [223] इसे अच्छा कहा जाता है।

(4) "और उस अच्छाई से बेहतर क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं जीवन-विनाश से परहेज़ करता है और दूसरों को भी जीवन-विनाश से परहेज़ करने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही उस अच्छाई से बेहतर कहा जाता है।"

---

208 बुरा चरित्र (2) (पापधम्म2 बिना पाप-धर्म)

[4:207 पर आरंभिक दृश्य।]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरा क्या है? यहाँ, किसी का दृष्टिकोण गलत है... गलत मुक्ति है। इसे बुरा कहा जाता है।"

(2) "और उस बुराई से भी बदतर क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं गलत मुक्ति का पालन करता है और दूसरों को भी गलत मुक्ति का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही उस बुराई से भी बदतर कहा जाता है।"

(3) "और अच्छा क्या है? यहाँ, कोई सही दृष्टिकोण रखता है... सही मुक्ति का। इसे अच्छा कहा जाता है।"

(4) "और उस अच्छाई से बेहतर क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं सही मुक्ति प्राप्त करता है और दूसरों को भी सही मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही उस अच्छाई से बेहतर कहा जाता है।"

---

209 बुरा चरित्र (3) (पापधम्म3 बिना पाप-धर्म)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक बुरे चरित्र वाले व्यक्ति के बारे में और उससे भी बुरे चरित्र वाले व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। मैं तुम्हें एक अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति के बारे में और उससे भी बेहतर चरित्र वाले व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। सुनो..."

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरे चरित्र का कौन है? यहाँ, कोई जीवन का नाश करता है... और गलत मत रखता है। इसे बुरे चरित्र का कहा जाता है।"

(2) "और इससे भी बदतर चरित्र वाला कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं जीवन का विनाश करता है और दूसरों को भी जीवन का विनाश करने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे और भी बदतर चरित्र वाला कहा जाता है।"

(3) "अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति कौन होता है? यहाँ, वह व्यक्ति जीवन के विनाश से परहेज करता है... और सही दृष्टिकोण रखता है। इसे ही अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और इससे भी श्रेष्ठ चरित्र वाला कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति स्वयं जीवन-विनाश से दूर रहता है और दूसरों को भी जीवन-विनाश से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही श्रेष्ठ चरित्र वाला कहा जाता है।"

---

210 (10) बुरा चरित्र (4) (पापधम्म1 बिना पाप-धर्म)

[4:209 पर आरंभिक दृश्य।]

(1) "और हे भिक्षुओं, बुरे चरित्र वाला व्यक्ति कौन होता है? यहाँ, किसी व्यक्ति का गलत दृष्टिकोण है... गलत मुक्ति का। इसे बुरे चरित्र वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(2) "और इससे भी बदतर चरित्र वाला कौन है? यहाँ, कोई व्यक्ति स्वयं गलत दृष्टिकोण रखता है [225] और दूसरों को भी गलत दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं गलत मुक्ति का पालन करता है और दूसरों को भी गलत मुक्ति के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे और भी बदतर चरित्र वाला कहा जाता है।"

(3) "अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति कौन होता है? यहाँ, कोई व्यक्ति सही दृष्टिकोण रखता है... सही मुक्ति का। इसे अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति कहा जाता है।"

(4) "और इससे भी श्रेष्ठ चरित्र वाला कौन है? यहाँ, वह व्यक्ति स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है और दूसरों को भी सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है... वह स्वयं सही मुक्ति का मार्ग अपनाता है और दूसरों को भी सही मुक्ति के मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसे ही श्रेष्ठ चरित्र वाला कहा जाता है।"

II. सभा (परिसा परिषद रहित सभा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

211 विधानसभा (पेरिसा सं. परिषद)

भिक्षुओं, ये चार बातें किसी सभा की कमियाँ हैं। कौन सी चार? एक भिक्षु जो अनैतिक हो, बुरे चरित्र का हो; एक भिक्षुणी जो अनैतिक हो, बुरे चरित्र की हो; एक पुरुष गृहस्थ अनुयायी जो अनैतिक हो, बुरे चरित्र का हो; और एक स्त्री गृहस्थ अनुयायी जो अनैतिक हो, बुरे चरित्र की हो। ये चारों बातें किसी सभा की कमियाँ हैं।

"भिक्षुओं, ये चार किसी सभा के आभूषण हैं। कौन से चार? एक गुणी, अच्छे चरित्र वाला भिक्षु; [226] एक गुणी, अच्छे चरित्र वाली भिक्षुणी; एक गुणी, अच्छे चरित्र वाला पुरुष गृहस्थ अनुयायी; और एक गुणी, अच्छे चरित्र वाली स्त्री गृहस्थ अनुयायी। ये चारों किसी सभा के आभूषण हैं।"

---

212 दृश्य (दिट्ठी बिना दृष्टि)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार, मानसिक दुराचार और गलत दृष्टिकोण। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? शारीरिक सुवाह्य आचरण, वाणी का सुवाह्य आचरण, मानसिक सुवाह्य आचरण और सही दृष्टिकोण। इन चारों गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

213 कृतघ्नता (अकातन्नुता)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार, मानसिक दुराचार और कृतघ्नता। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? शारीरिक सुवाह्य आचरण, वाणी का सुवाह्य आचरण, मानसिक सुवाह्य आचरण और कृतज्ञता। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

214 जीवन का विनाश (पनातिपति)

[4:214-19 4:213 के समान ही पैटर्न का अनुसरण करते हैं, जिसमें निम्नलिखित गुण क्रमशः नरक और स्वर्ग में पुनर्जन्म के लिए जिम्मेदार हैं।]

"...एक व्यक्ति जीवन का नाश करता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे छीन लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है और झूठ बोलता है..."

"...जीवन की हत्या से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से, यौन दुराचार से और झूठे भाषण से परहेज़ किया जाता है। ..." [227]

---

215 पथ (1) (मग्गा1 सं. मार्ग)

"...एक का दृष्टिकोण, इरादा, वाणी और कर्म सब गलत हैं। ..."

"... एक व्यक्ति सही दृष्टिकोण, सही इरादे, सही वाणी और सही कर्म वाला होता है।

---

216 पथ (2) (मग्गा2 सं. मार्ग)

"...एक गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (ध्यान/सती) और गलत समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का अनुसरण करता है। ..."

"...सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता) और सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में विश्वास रखने वाला व्यक्ति..."

अभिव्यक्ति के 217 पाठ्यक्रम (1) (वोहरपथा1)

"...एक कहता है कि उसने वह देखा है जो उसने नहीं देखा; एक कहता है कि उसने वह सुना है जो उसने नहीं सुना; एक कहता है कि उसने वह महसूस किया है जो उसने महसूस नहीं किया; एक कहता है कि उसने वह जान लिया है जो उसने नहीं जाना... 239

"...एक कहता है कि उसने वह नहीं देखा जो उसने नहीं देखा; एक कहता है कि उसने वह नहीं सुना जो उसने नहीं सुना; एक कहता है कि उसने वह नहीं महसूस किया जो उसने नहीं महसूस किया; एक कहता है कि उसने वह नहीं जाना जो उसने नहीं जाना..."

अभिव्यक्ति के 218 पाठ्यक्रम (2) (वोहरपथा2)

"...एक कहता है कि उसने वह नहीं देखा जो उसने देखा है; एक कहता है कि उसने वह नहीं सुना जो उसने सुना है; एक कहता है कि उसने वह नहीं महसूस किया जो उसने महसूस किया है; एक कहता है कि उसने वह नहीं जाना जो उसने जाना है..."

"...एक व्यक्ति कहता है कि उसने वह देखा है जो उसने देखा है; एक व्यक्ति कहता है कि उसने वह सुना है जो उसने सुना है; एक व्यक्ति कहता है कि उसने वह महसूस किया है जो उसने महसूस किया है; एक व्यक्ति कहता है कि उसने वह जाना है जो उसने जाना है..."

---

219 नैतिक रूप से निर्लज्ज (अहिरिका)

"...एक व्यक्ति आस्थाहीन, अनैतिक, नैतिक रूप से निर्लज्ज और नैतिक रूप से लापरवाह होता है।"

"...व्यक्ति आस्थावान, गुणी और नैतिक लज्जा तथा नैतिक भय से परिपूर्ण होता है..."

---

220 अनैतिक (दुस्सिला संस्कृत दुस्शील)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? वह आस्थाहीन, अनैतिक, आलसी और मूर्ख होता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

"भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? [228] जो आस्थावान, गुणी, ऊर्जावान और बुद्धिमान हो। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

III. कदाचार

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

221 कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

भिक्षुओं, चार प्रकार के मौखिक दुराचार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? झूठा वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बातें। ये चार प्रकार के मौखिक दुराचार हैं।

भिक्षुओं, चार प्रकार के सुचारु आचरण होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? सत्यवादी वाणी, कठोर वाणी, सौम्य वाणी और विवेकपूर्ण वाणी। ये चार प्रकार के सुचारु आचरण हैं।

---

222 (2) दृश्य (दिट्ठी बिना दृष्टि)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार, मानसिक दुराचार और गलत दृष्टिकोण। इन चार गुणों से युक्त होने के कारण... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

"भिक्षु (साधु), चार अन्य गुणों से युक्त, बुद्धिमान, योग्य, नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट रहित रखता है; वह निर्दोष है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा से परे है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? शारीरिक सुव्यवहार, मौखिक सुव्यवहार, मानसिक सुव्यवहार और सही दृष्टिकोण। इन चार गुणों से युक्त होकर... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।" [229]

---

223 कृतघ्नता (अकातन्नुता)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार, मानसिक दुराचार और कृतघ्नता। इन चार गुणों से युक्त होने के कारण... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

"भिक्षुओं, चार अन्य गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को निर्बल और अक्षुण्ण रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण कौन से हैं? शारीरिक सुव्यवहार, मौखिक सुव्यवहार, मानसिक सुव्यवहार और कृतज्ञता। इन चार गुणों से युक्त होकर... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।"

---

224 जीवन का विनाश (पनातिपति)

"...वह जीवन को नष्ट करता है, जो दिया नहीं गया उसे छीन लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है और झूठ बोलता है..."

"...वह जीवन की हत्या से परहेज करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करता है, यौन दुराचार से परहेज करता है और झूठी बातों से परहेज करता है..."

---

225 पथ (1) (मग्गा1 सं. मार्ग)

"...उसकी सोच, इरादा, वाणी और कर्म सब गलत हैं..."

"...वह सही दृष्टिकोण, सही इरादे, सही वाणी और सही कर्म वाला है..."

---

226 पथ (2) (मग्गा2 संस्कृत मार्ग)

"...उसकी आजीविका, प्रयास, सती ध्यान और समाधि गलत हैं। ..."

"...वह सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता) और सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में लीन है..."

अभिव्यक्ति के 227 पाठ्यक्रम (1) (वोहरपथ)

"...वह कहता है कि उसने वह देखा है जो उसने नहीं देखा; वह कहता है कि उसने वह सुना है जो उसने नहीं सुना; वह कहता है कि उसने वह महसूस किया है जो उसने महसूस नहीं किया; वह कहता है कि उसने वह जाना है जो उसने नहीं जाना।"

"...वह कहता है कि उसने वह नहीं देखा जो उसने नहीं देखा; वह कहता है कि उसने वह नहीं सुना जो उसने नहीं सुना; वह कहता है कि उसने वह महसूस नहीं किया जो उसने महसूस नहीं किया; वह कहता है कि उसने वह नहीं जाना जो उसने नहीं जाना..."

अभिव्यक्ति के 228 पाठ्यक्रम (2) (वोहरपथ)

"...वह कहता है कि उसने वह नहीं देखा जो उसने देखा है; वह कहता है कि उसने वह नहीं सुना जो उसने सुना है; वह कहता है कि उसने वह नहीं महसूस किया जो उसने महसूस किया है; वह कहता है कि उसने वह नहीं जाना जो उसने जाना है।"

"...वह कहता है कि उसने जो देखा है, वह देखा है; वह कहता है कि उसने जो सुना है, वह सुना है; वह कहता है कि उसने जो महसूस किया है, वह महसूस किया है; वह कहता है कि उसने जो जाना है, वह समझा है।"

---

229 नैतिक रूप से निर्लज्ज (अहिरिका)

"...वह आस्थाहीन, अनैतिक, नैतिक रूप से निर्लज्ज और नैतिक रूप से लापरवाह है..."

"...वह आस्थावान, गुणी और नैतिक लज्जा और नैतिक भय से परिपूर्ण है... [230]

---

230 नासमझ (दुप्पन्ना सं. दुष्प्रज्ञ)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त, अज्ञानी, अयोग्य और दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वह क्या है? वह आस्थाहीन, अनैतिक, आलसी और अज्ञानी है। इन चार गुणों से युक्त होने के कारण... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

"भिक्षुओं, चार अन्य गुणों से युक्त बुद्धिमान, सक्षम और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट रहित रखता है; वह निर्दोष है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? वह आस्थावान, गुणी, ऊर्जावान और बुद्धिमान होता है। इन चार गुणों से युक्त होकर... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।"

---

231 कवि

भिक्षुओं, कवियों के चार प्रकार होते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? चिंतनशील कवि, कथात्मक कवि, उपदेशात्मक कवि और प्रेरणादायक कवि। 940 ये कवियों के चार प्रकार हैं।

IV. कर्म (कर्म के बिना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

232 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

भिक्षुओं, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव से इन चार प्रकार के कर्मों का वर्णन किया है। ये चार प्रकार कौन से हैं? एक है अंधकारमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय होता है; एक है प्रकाशमय कर्म, जिसका फल उज्ज्वल होता है; एक है अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों होता है; और एक ऐसा कर्म, जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका फल भी अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों होता है; और एक ऐसा कर्म, जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, तथा एक ऐसा कर्म, जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है। ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनका मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव से वर्णन किया है।

---

233 विस्तार से (वित्थरा सं. विस्तारा)

भिक्षुओं, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इन चार प्रकार के कर्मों का वर्णन किया है। वे चार कौन से हैं? एक है अंधकारमय कर्म जिसका फल अंधकारमय होता है; एक है प्रकाशमय कर्म जिसका फल प्रकाशमय होता है; एक है अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों होता है; और एक ऐसा कर्म जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका फल भी अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों नहीं होता; और एक ऐसा कर्म जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है।

(1) "हे भिक्षुओं, अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल क्या हैं? यहाँ, कोई व्यक्ति कष्टदायी शारीरिक व्यवहार, कष्टदायी वाणी और कष्टदायी मानसिक व्यवहार करता है। 942 परिणामस्वरूप, वह एक कष्टदायी संसार में पुनर्जन्म लेता है। ऐसे संसार में पुनर्जन्म लेने पर, उसे कष्टदायी स्पर्श प्राप्त होते हैं। कष्टदायी स्पर्शों से स्पर्श होने पर, वह केवल कष्टदायी वेदनाएँ (पीड़ा) अनुभव करता है, जैसे नरक के प्राणियों को होती हैं। इसे अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल कहा जाता है।"

(2) "और उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति कष्ट रहित शारीरिक व्यवहार (संस्कार), कष्ट रहित वाणी व्यवहार (संस्कार), और कष्ट रहित मानसिक व्यवहार (संस्कार) करता है। 943 परिणामस्वरूप, वह कष्ट रहित संसार में पुनर्जन्म लेता है। 944 जब वह ऐसे संसार में पुनर्जन्म लेता है, तो उसे कष्ट रहित संपर्क प्राप्त होते हैं। कष्ट रहित संपर्कों से स्पर्शित होकर, वह केवल

सुखदायक, कष्ट रहित संवेदनाओं (वेदना) का अनुभव करता है, जैसे तेजस्वी देवों के मामले में होता है। 945 इसे उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल कहा जाता है।"

(3) "अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म, जिसका परिणाम अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों हो, क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति शारीरिक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के व्यवहार, मौखिक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के व्यवहार, और मानसिक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के व्यवहार करता है। परिणामस्वरूप, उसका पुनर्जन्म पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संसार में होता है। जब उसका ऐसे संसार में पुनर्जन्म होता है, [232] तो पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार के संपर्कों से स्पर्श होने पर, वह पीड़ादायक और गैर-पीड़ादायक दोनों प्रकार की संवेदनाओं, मिश्रित सुख और दुख का अनुभव करता है, जैसा कि मनुष्यों, कुछ देवताओं और कुछ अन्य प्राणियों में होता है। निम्न लोक। इसे अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म (कर्म/कार्य) कहा जाता है, जिसका परिणाम भी अंधकारमय और प्रकाशमय होता है।

(4) "वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका फल भी अंधकारमय है और जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है? अंधकारमय फल वाले कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म, प्रकाशमय फल वाले कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म, और अंधकारमय और प्रकाशमय फल वाले कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म: यही कर्म कहलाता है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका फल भी अंधकारमय है और जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है।"

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनकी घोषणा मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा करने के बाद की है।"

234 सोनाकायना

तब ब्राह्मण शिखमोग्गलाना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। . . . फिर एक तरफ बैठकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"पुराने समय में, गुरु गौतम, बहुत समय पहले, ब्राह्मण शिष्य सोनाकायना मेरे पास आए और बोले: "संन्यासी गौतम सभी कर्मों से विरक्ति का उपदेश देते हैं। परन्तु कर्मों से विरक्ति का उपदेश देकर वे संसार के विनाश का समर्थन करते हैं। हे गुरु, यह संसार, जिसका सार कर्म है, कर्मों के फलस्वरूप ही चलता है।"

[भगवान (बुद्ध):] "हे ब्राह्मण, मुझे तो ब्राह्मण शिष्य सोनाकायना को देखने का भी आभास नहीं है। फिर ऐसी चर्चा कैसे हो सकती थी? हे ब्राह्मण, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव (अभिन) से इन चार प्रकार के कर्मों का प्रतिपादन किया है। वे चार कौन से हैं?"

[सूत्र का शेष भाग 4:233 के समान है..] [233]

---

235 प्रशिक्षण नियम (1) (सिक्खपाद1 सं. शिष्यपाद)

(4:233 पर आरंभिक दृश्य)

(1) "हे भिक्षुओं, अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल क्या हैं? यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है, झूठ बोलता है, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल कहा जाता है।"

(2) "और उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने से बचता है, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से बचता है, यौन दुराचार से बचता है, झूठी वाणी से बचता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल कहा जाता है।"

(3) "अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म, जिसका परिणाम अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों हो, क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति शारीरिक और गैर-अकारण दोनों प्रकार के व्यवहार करता है, मौखिक और मानसिक दोनों प्रकार के व्यवहार करता है। परिणामस्वरूप, उसका

पुनर्जन्म ऐसे संसार में होता है जो पीड़ादायक और गैर-अकारण दोनों है। ऐसे संसार में पुनर्जन्म होने पर, उसे पीड़ादायक और गैर-अकारण दोनों प्रकार के संपर्क प्राप्त होते हैं। पीड़ादायक और गैर-अकारण दोनों प्रकार के संपर्कों से स्पर्श होने पर, उसे पीड़ादायक और गैर-अकारण दोनों प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) प्राप्त होती हैं, जिनमें सुख और दुख दोनों मिश्रित होते हैं, जैसा कि मनुष्यों और कुछ अन्य प्राणियों में होता है। देव (देवदूत/भगवान) और कुछ निम्न लोकों के प्राणी। इसे अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म कहा जाता है, जिसका परिणाम भी अंधकारमय और प्रकाशमय होता है।

(4) और वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, तथा जिसका परिणाम भी अंधकारमय है, तथा जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है? अंधकारमय कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म, प्रकाशमय कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म, और अंधकारमय और प्रकाशमय कर्मों का त्याग करने का सचेतन कर्म, जो अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों हैं, और जिनका परिणाम भी अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों है: यही कर्म कहलाता है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, तथा जिसका परिणाम भी अंधकारमय है, तथा जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है।

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनकी घोषणा मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा करने के बाद की है।"

---

236 प्रशिक्षण नियम (2) (सिक्खपाद2 सं. शिष्यपाद)

(4:233 पर आरंभिक दृश्य)

(1) "और हे भिक्षुओं, अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल क्या है? यहाँ, कोई अपनी माता का वध करता है, अपने पिता का वध करता है, किसी अरहंत का वध करता है, घृणा के भाव से तथागत (बुद्ध) का रक्त बहाता है, या संघ में फूट डालता है। [235] इसे अंधकारमय कर्म और अंधकारमय फल कहा जाता है।"

(2) "और उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी बातों से, फूट डालने वाली बातों से, कठोर बातों से और व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्भावपूर्ण और सही दृष्टिकोण वाला होता है। इसे उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल फल कहा जाता है।"

(3) "और अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म (कर्म/कार्य) क्या है जिसका परिणाम अंधकारमय और प्रकाशमय हो? . . . [जैसा कि 4:235 में है] . . : इसे अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म (कर्म/कार्य) कहा जाता है जिसका परिणाम अंधकारमय और प्रकाशमय हो।"

(4) "वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका परिणाम भी अंधकारमय है और न प्रकाशमय, वह कर्म जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है? ... [जैसा कि 4:235 में है] ... इसे ही वह कर्म कहते हैं जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका परिणाम भी अंधकारमय है और न प्रकाशमय, वह कर्म जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है।"

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनकी घोषणा मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा करने के बाद की है।"

---

237 नोबल पथ (अरियामग्गा सं. आर्य-मार्ग)

"भिक्षुओं, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव (अभिन) के आधार पर चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है। वे चार कौन से हैं?"

(4:233 से लेकर 236 तक सभी)

और वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका फल भी न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, वह कर्म जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान

(सती/सजगता) और सही समाधि: यही वह कर्म कहलाता है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका फल भी न अंधकारमय है और जो कर्मों के नाश की ओर ले जाता है।

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनकी घोषणा मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा करने के बाद की है।"

---

238 आत्मज्ञान कारक (बोज्झांगा सं. बोध्यांगा)

"भिक्षुओं, मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव (अभिन) के आधार पर चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है। वे चार कौन से हैं?"

(4:233 से लेकर 237 तक सभी)

और वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका परिणाम भी न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, वह कर्म जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है? सती ध्यान का ज्ञान, घटनाओं के विवेक का ज्ञान, वीरता का ज्ञान, पीति का ज्ञान, शांति का ज्ञान, समाधि का ज्ञान और उदासीनता का ज्ञान: यही वह कर्म कहलाता है जो न अंधकारमय है और न ही प्रकाशमय, जिसका परिणाम भी न अंधकारमय है और जो कर्मों के विनाश की ओर ले जाता है।

"भिक्षुओं, ये चार प्रकार के कर्म हैं जिनकी घोषणा मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिनय) द्वारा करने के बाद की है।"

---

239 निंदनीय (सवज्जा)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? निंदनीय शारीरिक कर्म, निंदनीय वाणी, निंदनीय मानसिक कर्म और निंदनीय दृष्टिकोण। इन चारों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण कौन से हैं? दोषरहित शारीरिक कर्म, दोषरहित वाणी कर्म, दोषरहित मानसिक कर्म और दोषरहित दृष्टि। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

240 अहानिकारक (अब्यबज्जा)

"भिक्षुओं (मठवासियों), चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? कष्टदायी शारीरिक क्रिया, कष्टदायी वाणी, कष्टदायी मानसिक क्रिया और कष्टदायी दृष्टि। इन चारों गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। [238]

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? कष्ट रहित शारीरिक क्रिया, कष्ट रहित वाणी, कष्ट रहित मानसिक क्रिया और कष्ट रहित दृष्टि। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

241 तपस्वी (समान सं. श्रमण)

"भिक्षुओं, 'केवल यहीं एक तपस्वी, दूसरा तपस्वी, तीसरा तपस्वी और चौथा तपस्वी होता है। अन्य संप्रदाय तपस्वियों से रहित हैं।' 947 इसी प्रकार तुम्हें अपने सिंह की गर्जना सही ढंग से करनी चाहिए।"

(1) "हे भिक्षुओं, प्रथम तपस्वी कौन है? यहाँ, तीन बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, भिक्षु धारा-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) बन जाता है, निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहता, नियति में स्थिर होकर ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होता है। यही प्रथम तपस्वी है।"

(2) "दूसरा तपस्वी कौन है? यहाँ, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने के साथ, एक भिक्षु एक बार फिर इस संसार में लौटकर दुखों का अंत करने वाला होता है। यही दूसरा तपस्वी है।"

(3) "तीसरा तपस्वी कौन है? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, एक भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से वापस आए बिना ही वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यही तीसरा तपस्वी है।"

(4) "और चौथा तपस्वी कौन है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान से, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यही चौथा तपस्वी है।"

"भिक्षुओं, 'केवल यहीं एक तपस्वी, दूसरा तपस्वी, तीसरा तपस्वी और चौथा तपस्वी है। अन्य संप्रदायों में तपस्वी नहीं हैं।' इसी प्रकार तुम्हें अपने सिंह के समान दहाड़ का सही उच्चारण करना चाहिए।" [239]

अच्छे व्यक्ति के 242 लाभ (सप्पुरिसा-निसंसा)

भिक्षुओं, एक अच्छे व्यक्ति पर भरोसा करने से चार लाभ प्राप्त होते हैं। वे चार लाभ क्या हैं? एक तो उत्तम सद्गुणों में वृद्धि; दूसरा उत्तम समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में वृद्धि; तीसरा उत्तम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि; और चौथा उत्तम मुक्ति में वृद्धि। एक अच्छे व्यक्ति पर भरोसा करने से ये चारों लाभ प्राप्त होते हैं।

वी. ख़तरे और भय (अपपत्ति-भाया)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

243 विच्छेदक (संघ-भेदक)

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"क्या वह अनुशासनात्मक मामला सुलझ गया है, आनंदा?" 948

"भंते, उस अनुशासनहीनता के मुद्दे का समाधान कैसे हो सकता है? पूज्य अनुराधा के शिष्य बहिया अभी भी संघ में फूट डालने पर तुले हुए हैं, लेकिन पूज्य अनुराधा इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहना चाहते।"

"लेकिन, आनंद, अनुराद्ध ने संघ के बीच अनुशासन संबंधी मुद्दों पर कब ध्यान दिया है? क्या आपको, सारिपुत्त और मोग्गलाना को, उत्पन्न होने वाले किसी भी अनुशासन संबंधी मुद्दे को हल नहीं करना चाहिए?"

"इन चार लाभों को देखकर, दुष्ट भिक्षु आनंद संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है। वे चार लाभ क्या हैं?"

(1) "यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु अनैतिक, बुरे चरित्र का, अपवित्र, संदिग्ध आचरण वाला, अपने कार्यों में गुप्त, तपस्वी होते हुए भी संन्यासी नहीं, ब्रह्मचारी होते हुए भी ब्रह्मचारी नहीं, [240] भीतर से सड़ा हुआ, भ्रष्ट, पतित होता है। उसे यह विचार आता है: 'यदि भिक्षुओं को पता चल जाए कि मैं अनैतिक... पतित हूँ, और वे एकजुट हैं, तो वे मुझे निष्कासित कर देंगे, परन्तु यदि वे गुटों में बँट जाएँ तो वे मुझे निष्कासित नहीं करेंगे।' इस पहले लाभ को देखकर, एक दुष्ट भिक्षु संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है।

(2) "एक दुष्ट भिक्षु गलत मत रखता है; वह अतिवादी मत का सहारा लेता है। उसके मन में यह विचार आता है: यदि भिक्षुओं को पता चल जाए कि मैं गलत मत रखता हूँ, कि मैं अतिवादी मत का सहारा लेता हूँ, और वे एकजुट हों, तो वे मुझे निष्कासित कर देंगे, परन्तु यदि वे गुटों में बँट जाएँ तो वे मुझे निष्कासित नहीं करेंगे।" इस दूसरे लाभ को देखकर दुष्ट भिक्षु संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है।

(3) "एक दुष्ट भिक्षु कुटिल जीविका का पालन करता है; वह कुटिल जीविका से अपना जीवन यापन करता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यदि भिक्षुओं को पता चल जाए कि मैं कुटिल जीविका का पालन करता हूँ और कुटिल जीविका से अपना जीवन यापन करता हूँ, और वे एकजुट हों, तो वे मुझे निष्कासित कर देंगे, परन्तु यदि वे गुटों में बँट जाएँ तो वे मुझे निष्कासित नहीं करेंगे।' इस तीसरे लाभ को देखकर, एक दुष्ट भिक्षु संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है।"

(4) "फिर, एक दुष्ट भिक्षु लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का इच्छुक होता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'यदि भिक्षुओं को पता चल जाए कि मैं लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का इच्छुक हूँ, और वे एकजुट हो जाएँ, तो वे मेरा आदर, सम्मान, आदर और पूजा नहीं करेंगे; परन्तु यदि वे गुटों में बँट जाएँ, तो वे मेरा आदर, सम्मान, आदर और पूजा करेंगे।' इस चौथे लाभ को देखकर, एक दुष्ट भिक्षु संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है।"

"इन चारों लाभों को देखकर, दुष्ट भिक्षु आनंद संघ में फूट डालने में प्रसन्न होता है।"

---

244 अपराध (अपत्तिभया)

"भिक्षुओं, अपराध करने के ये चार खतरे हैं। वे चार क्या हैं?"

(1) "मान लो, भिक्षुओं, कि वे किसी चोर, किसी अपराधी को गिरफ्तार करके राजा के सामने पेश करें और कहें: 'महाराज, यह एक चोर, एक अपराधी है। महाराज, इस पर दंड लगाइए।' राजा उनसे कहेंगे: [241] 'जाओ, सज्जनों, और इस आदमी की बाहों को एक मजबूत रस्सी से उसकी पीठ के पीछे कसकर बांध दो, उसका सिर मुंडवा दो, और ढोल की अशुभ थाप के साथ उसे गली-गली, चौक-चौक घुमाओ। फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाओ और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दो।' राजा के आदमियों ने आदेशानुसार कार्य किया और उस व्यक्ति का सिर शहर के दक्षिण में काट डाला। किनारे पर खड़ा कोई व्यक्ति सोच सकता था: 'सचमुच, इस आदमी ने कोई जघन्य, निंदनीय अपराध किया होगा, जिसकी सज़ा सिर कलम करना है, क्योंकि राजा के आदमियों ने उसके हाथ एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बांध दिए... और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट डाला। वास्तव में, मैं कभी ऐसा जघन्य, निंदनीय, सिर कलम करने लायक अपराध नहीं करूँगा।'

इसी प्रकार, जब किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने पराजिका अपराधों के संबंध में खतरे की ऐसी तीव्र अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली हो, तो यह अपेक्षा की जा सकती है कि जिसने कभी पराजिका अपराध नहीं किया है, वह ऐसा अपराध नहीं करेगा; और जिसने ऐसा अपराध किया है, वह धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करेगा।

(2) "मान लीजिए, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने आप को काले वस्त्र में लपेट ले, अपने बाल खोल दे, अपने कंधे पर गदा रख ले और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहे: 'हे सज्जनों, मैंने एक निंदनीय, दंडनीय, बुरा कर्म किया है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।' किनारे पर खड़ा कोई व्यक्ति सोच सकता है: 'वास्तव में, इस व्यक्ति ने अवश्य ही एक निंदनीय, दंडनीय, बुरा कर्म किया होगा, क्योंकि उसने अपने आप को काले वस्त्र में लपेट लिया है, अपने बाल खोल दिए हैं, अपने कंधे पर गदा रख ली है और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहता है: "हे सज्जनों, मैंने एक निंदनीय, दंडनीय, बुरा कर्म किया है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।" [242] वास्तव में, मुझे कभी भी ऐसा निंदनीय, दंडनीय, बुरा कर्म नहीं करना चाहिए।'

इसी प्रकार, जब किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने संघादिशेष अपराधों के संबंध में खतरे की ऐसी तीव्र समझ (सन्ना/संग्या) विकसित कर ली हो, तो यह अपेक्षा की जा सकती है कि जिसने कभी संघादिशेष अपराध नहीं किया है, वह ऐसा अपराध नहीं करेगा, और जिसने ऐसा अपराध किया है, वह धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करेगा। 951

(3) "मान लीजिए, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने आप को काले कपड़े में लपेट ले, अपने बाल खोल दे, अपने कंधे पर राख की बोरी रख ले और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहे: 'हे सज्जनों, मैंने एक निंदनीय, निंदनीय, बुरा कर्म किया है, जिसका दंड राख की बोरी है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।' किनारे पर खड़ा कोई व्यक्ति सोच सकता है: 'सचमुच, इस व्यक्ति ने अवश्य ही एक निंदनीय, निंदनीय, बुरा कर्म किया होगा, जिसका दंड राख की बोरी है, क्योंकि इसने अपने आप को काले कपड़े में लपेट लिया है, अपने बाल खोल दिए हैं, अपने कंधे पर राख की बोरी रख ली है और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहता है: 'हे सज्जनों, मैंने एक निंदनीय, निंदनीय, बुरा कर्म किया है, जिसका दंड राख की बोरी है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।' वास्तव में, मैं कभी भी ऐसा निंदनीय, बुरा कर्म नहीं करूँगा, जिसका दंड राख की बोरी हो।'

इसी प्रकार, जब किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने पचित्ति अपराधों के संबंध में खतरे की ऐसी तीव्र समझ (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली हो, तो यह अपेक्षा की जा सकती है कि जिसने कभी पचित्ति अपराध नहीं किया है, वह ऐसा अपराध नहीं करेगा, और जिसने ऐसा अपराध किया है, वह धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करेगा। 953

(4) "मान लीजिए, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने आप को काले कपड़े में लपेट ले, अपने बाल खोल दे और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहे: 'हे सज्जनों, मैंने एक बुरा, निंदनीय, दंडनीय कर्म किया है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।' किनारे पर खड़ा कोई व्यक्ति सोच सकता है: 'सचमुच, इस व्यक्ति ने एक बुरा, निंदनीय, दंडनीय कर्म किया होगा, क्योंकि उसने अपने आप को काले कपड़े में लपेट लिया है, अपने बाल खोल दिए हैं और लोगों की एक बड़ी भीड़ से कहता है: [243] "हे सज्जनों, मैंने एक बुरा, निंदनीय, दंडनीय कर्म किया है। मुझे वह करने दीजिए जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।" वास्तव में, मुझे कभी भी ऐसा बुरा, निंदनीय, दंडनीय कर्म नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार, जब किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने पतिदेशीय अपराधों के संबंध में खतरे की ऐसी तीव्र समझ (सन्ना/संग्या) विकसित कर ली हो, तो यह अपेक्षा की जा सकती है कि जिसने कभी पतिदेशीय अपराध नहीं किया है, वह ऐसा अपराध नहीं करेगा, और जिसने ऐसा अपराध किया है, वह धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करेगा। 954

"भिक्षुओं, ये चार अपराध के खतरे हैं।"

---

245 प्रशिक्षण (सिक्खनिसंसा)

भिक्षुओं, यह ब्रह्मचर्य जीवन प्रशिक्षण को लाभ मानकर, पन्ना (दिव्य ज्ञान) को मार्गदर्शक मानकर, मुक्ति को मूल मानकर और सती ध्यान को अपना अधिकार मानकर व्यतीत किया जाता है।

(1) "हे भिक्षुओं, प्रशिक्षण से क्या लाभ है? यहाँ, उचित आचरण संबंधी प्रशिक्षण 956 मैंने अपने शिष्यों को निर्धारित किया है ताकि जो आत्मविश्वासहीन हैं वे आत्मविश्वास प्राप्त करें और जो आत्मविश्वासी हैं वे अपने आत्मविश्वास में वृद्धि करें। इस उचित आचरण संबंधी प्रशिक्षण को ठीक उसी प्रकार ग्रहण करें जैसे मैंने अपने शिष्यों को निर्धारित किया है, इसे अटूट, त्रुटिरहित, बेदाग और निष्कलंक रखते हुए, ताकि जो आत्मविश्वासहीन हैं वे आत्मविश्वास प्राप्त करें और जो आत्मविश्वासी हैं वे अपने आत्मविश्वास में वृद्धि करें। इन्हें ग्रहण करने के बाद, प्रशिक्षण नियमों का अभ्यास करें।"

"पुनः, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण 957 का मैंने अपने शिष्यों को दुखों के पूर्णतः नाश के लिए विधान किया है। इस ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूलभूत प्रशिक्षण को ठीक उसी प्रकार ग्रहण किया जाता है जिस प्रकार मैंने अपने शिष्यों को दुखों के पूर्णतः नाश के लिए, उन्हें अक्षुण्ण, दोषरहित, निष्कलंक और बेदाग रखते हुए, इसका विधान किया है। इन्हें ग्रहण करने के बाद, व्यक्ति प्रशिक्षण नियमों का अभ्यास करता है। इसी प्रकार यह प्रशिक्षण अपना लाभ देता है।"

(2) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) इसका पर्यवेक्षक कैसे है? यहाँ, मैंने अपने शिष्यों को दुखों के पूर्णतः नाश के लिए ये शिक्षाएँ दी हैं। इन शिक्षाओं का पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उसी प्रकार विश्लेषण किया जाता है जिस प्रकार मैंने अपने शिष्यों को दुखों के पूर्णतः नाश के लिए ये शिक्षाएँ दी हैं। इसी प्रकार पन्ना (दिव्य ज्ञान) इसका पर्यवेक्षक है। [958]

(3) "और मुक्ति इसका मूल तत्व कैसे है? यहाँ, मैंने अपने शिष्यों को दुख के पूर्ण विनाश के लिए शिक्षाएँ दी हैं। मुक्ति के माध्यम से व्यक्ति उन शिक्षाओं का अनुभव ठीक उसी प्रकार करता है जिस प्रकार मैंने उन्हें अपने शिष्यों को दुख के पूर्ण विनाश के लिए सिखाया है। इसी प्रकार मुक्ति इसका मूल तत्व है।"

(4) "और सती ध्यान (ध्यान) इसका अधिकार कैसे है? व्यक्ति का सती ध्यान आंतरिक रूप से इस प्रकार स्थापित होता है: मैं अच्छे आचरण से संबंधित उस प्रशिक्षण को पूरा करूँगा जिसे मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में अच्छे आचरण से संबंधित उस प्रशिक्षण में पन्ना (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँगा जिसे मैंने पूरा कर लिया है।" [960] और व्यक्ति का सती ध्यान आंतरिक रूप से इस प्रकार स्थापित होता है: मैं ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूल सिद्धांतों से संबंधित उस प्रशिक्षण को पूरा करूँगा जिसे मैंने अभी तक पूरा नहीं किया है या विभिन्न पहलुओं में ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूल सिद्धांतों से संबंधित उस प्रशिक्षण में पन्ना (दिव्य ज्ञान) से सहायता करूँगा जिसे मैंने पूरा कर लिया है।" और मनन (सती ध्यान) आंतरिक रूप से इस प्रकार स्थापित होता है: 'मैं इसी प्रकार उन शिक्षाओं का गहन अध्ययन (दिव्य ज्ञान) से करूँगा जिनका मैंने अभी तक अध्ययन नहीं किया है, या उन शिक्षाओं में विभिन्न पहलुओं से सहायता करूँगा जिनका मैंने अध्ययन किया है।' और मनन (सती ध्यान) आंतरिक रूप से इस प्रकार स्थापित होता है: 'मैं इसी प्रकार उस धम्म का मोक्ष के माध्यम से अनुभव करूँगा जिसका मैंने अभी तक अनुभव नहीं किया है, या उस धम्म में विभिन्न पहलुओं से सहायता करूँगा जिसका मैंने अनुभव किया है।' इसी प्रकार मनन (सती ध्यान) ही इसका आधार है।

अत: जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, यह ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) प्रशिक्षण को लाभ के रूप में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) को मार्गदर्शक के रूप में, मुक्ति को अपने मूल में और सती (ध्यान) को अपने अधिकार के रूप में लेकर जिया जाता है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।

---

246 लेटना (सेय्या सं. शैय्या)

भिक्षुओं, लेटने की ये चार मुद्राएँ हैं। कौन सी चार? शव की मुद्रा, कामुक की मुद्रा, सिंह की मुद्रा और तथागत (बुद्ध) की मुद्रा।

(1) "और शव की मुद्रा क्या होती है? शव आमतौर पर अपनी पीठ के बल सपाट पड़े होते हैं। इसे शव की मुद्रा कहा जाता है।

(2) "और कामुक व्यक्ति की मुद्रा क्या है? कामुक व्यक्ति आमतौर पर अपनी बाईं ओर लेटता है। इसे कामुक व्यक्ति की मुद्रा कहा जाता है।

(3) "और सिंह की मुद्रा क्या है? सिंह, जो पशुओं का राजा है, अपनी दाहिनी ओर लेटता है, एक पैर को दूसरे से ढककर और अपनी पूंछ को जांघों के बीच दबाकर। जब वह जागता है, तो वह अपने अगले पैरों को ऊपर उठाता है और अपने पिछले पैरों की ओर देखता है। यदि सिंह को अपने शरीर में कोई अव्यवस्था या सूजन दिखाई देती है, तो वह अप्रसन्न होता है। यदि उसे अपने शरीर में कोई अव्यवस्था या सूजन दिखाई नहीं देती है, तो वह प्रसन्न होता है। इसे सिंह की मुद्रा कहा जाता है।"

(4) तथागत (बुद्ध) की मुद्रा क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, तथागत प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं... चतुर्थ ध्यान में। इसे तथागत (बुद्ध) की मुद्रा कहा जाता है।

"ये चार मुद्राएँ हैं।"

---

247 स्तूप के योग्य (थुपा-राहा)

"भिक्षुओं, ये चार स्तूप के योग्य हैं। कौन से चार? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध; पच्चेकबुद्ध; तथागत (बुद्ध) का शिष्य; और विश्व सम्राट। ये चार स्तूप के योग्य हैं।" 961

---

248 पन्ना (दिव्य ज्ञान) की वृद्धि (पन्ना-बुद्धि सं. प्रज्ञा-वृद्धि)

भिक्षुओं, ये चार बातें पन्ना (दिव्य ज्ञान) की वृद्धि की ओर ले जाती हैं। वे चार बातें क्या हैं? अच्छे व्यक्तियों की संगति, अच्छे धम्म का श्रवण, ध्यानपूर्वक चिंतन और धम्म के अनुसार अभ्यास। ये चार बातें पन्ना (दिव्य ज्ञान) की वृद्धि की ओर ले जाती हैं। 962

---

249 सहायक (बहुकारा)

"भिक्षुओं, ये चार बातें मनुष्य के लिए सहायक हैं। वे चार बातें क्या हैं? अच्छे व्यक्तियों की संगति, अच्छे धम्म का श्रवण, ध्यानपूर्वक चिंतन और धम्म के अनुसार अभ्यास। [246] ये चार बातें मनुष्य के लिए सहायक हैं।"

---

250 घोषणाएँ (1) (वोहारा1)

भिक्षुओं, ये चार नीच कथन हैं। कौन से चार? जो आपने नहीं देखा उसे देखने का दावा करना, जो आपने नहीं सुना उसे सुनने का दावा करना, जो आपने नहीं महसूस किया उसे महसूस करने का दावा करना, जो आपने नहीं जाना उसे जानने का दावा करना। ये चार नीच कथन हैं।

---

251 घोषणाएँ (2) (वोहारा2)

भिक्षुओं, ये चार श्रेष्ठ कथन हैं। वे चार क्या हैं? यह कहना कि आपने वह नहीं देखा जो आपने नहीं सुना जो आपने नहीं सुना जो आपने नहीं महसूस किया जो आपने महसूस नहीं किया जो आपने महसूस नहीं किया जो आपने नहीं जाना जो आपने नहीं जाना। ये चार श्रेष्ठ कथन हैं।

---

252 घोषणाएँ (3) (वोहारा3)

भिक्षुओं, ये चार नीच कथन हैं। कौन से चार? जो देखा है उसे न देखने का कहना, जो सुना है उसे न सुनने का कहना, जो महसूस किया है उसे न महसूस करने का कहना, और जो जाना है उसे न जानने का कहना। ये चार नीच कथन हैं।

---

253 घोषणाएँ (4) (वोहारा4)

भिक्षुओं, ये चार श्रेष्ठ घोषणाएँ हैं। वे चार कौन सी हैं? जो देखा है उसे कहना, जो सुना है उसे कहना, जो महसूस किया है उसे कहना, जो जाना है उसे कहना, जो जाना है उसे कहना। ये चार श्रेष्ठ घोषणाएँ हैं।

VI. प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिज्ञान सं. अभिज्ञान)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

254 प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिज्ञान सं. अभिज्ञान)

भिक्षुओं, ये चार बातें हैं। वे चार बातें क्या हैं? (1) वे बातें हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा पूर्णतः समझा जा सकता है। (2) वे बातें हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा त्यागा जा सकता है। (3) वे बातें हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा विकसित किया जा सकता है। (4) वे बातें हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

(1) "और हे भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) द्वारा पूर्णतः क्या समझा जा सकता है? आसक्ति के अधीन पाँच समूह। इन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जा सकने वाला कहा जाता है।"

(2) "प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा किन चीजों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान और अस्तित्व के लिए तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) (भावो/पुनर्जन्म का कारण)। इन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा त्यागी जाने वाली चीजें (अभिन) कहा जाता है।"

(3) "प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा विकसित की जाने वाली वस्तुएँ क्या हैं? समभाव (समथा) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना)। इन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा विकसित की जाने वाली वस्तुएँ कहा जाता है।"

(4) "प्रत्यक्ष ज्ञान से क्या-क्या चीजें प्राप्त होती हैं? सच्चा ज्ञान और मुक्ति। इन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से प्राप्त होने वाली चीजें कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये चार चीजें हैं।"

---

255 Quests (परियेसन)

भिक्षुओं, ये चार नीच खोजें हैं। 965 वे चार क्या हैं? (1) जो स्वयं वृद्धावस्था के अधीन है, वह केवल वृद्धावस्था से संबंधित चीजों की ही खोज करता है; (2) जो स्वयं रोग के अधीन है, वह केवल रोग से संबंधित चीजों की ही खोज करता है; (3) जो स्वयं मृत्यु के अधीन है, वह केवल मृत्यु से संबंधित चीजों की ही खोज करता है; और (4) जो स्वयं अपवित्रता के अधीन है, वह केवल अपवित्रता से संबंधित चीजों की ही खोज करता है। ये चार नीच खोजें हैं।

भिक्षुओं, ये चार प्रमुख खोज हैं। वे चार क्या हैं? (1) जो स्वयं वृद्धावस्था के अधीन है, वृद्धावस्था के खतरे को समझकर अमरता की खोज करता है; बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा, निर्वाण; (2) जो स्वयं रोग के अधीन है, रोग के खतरे को समझकर रोगमुक्त, बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा, निर्वाण; (3) जो स्वयं मृत्यु के अधीन है, मृत्यु के खतरे को समझकर अमरता की खोज करता है; बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा, निर्वाण; (4) जो स्वयं अपवित्रता के अधीन है, अपवित्रता के खतरे को समझकर निष्कलंक, बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा, निर्वाण। ये चार प्रमुख खोज हैं।

---

256 निर्वाह (संगहवत्थु सं. संग्रह-वस्तु)

भिक्षुओं, सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के ये चार साधन हैं। वे चार क्या हैं? दान देना, मधुर वाणी, परोपकारी आचरण और निष्पक्षता। ये सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के चार साधन हैं।

---

257 मलुक्यपुत्त (सं. मलुक्य-पुत्र)

तब पूज्य मलुक्यपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: 967 "भंते, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"मालुंक्यापुत्त, अब हम युवा भिक्षुओं से क्या कहें जब आप जैसे वृद्ध, कमजोर और उम्रदराज व्यक्ति तथागत (बुद्ध) से संक्षिप्त उपदेश मांगें?"

"भंते, हे भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! हे सुगत (भगवान बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूँ; शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूँ।"

"हे मालुक्यपुत्त, भिक्षु के लिए तृष्णा के ये चार स्रोत हैं। वे चार क्या हैं? भिक्षु में तृष्णा वस्त्रों, भिक्षा, आवास या जीवन यापन के लिए उत्पन्न होती है। 968 ये भिक्षु के लिए तृष्णा के चार स्रोत हैं। [249] हे मालुक्यपुत्त, जब कोई भिक्षु तृष्णा का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर देता है, जिससे वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो, तो उसे तृष्णा का नाश करने वाला, बंधन तोड़ने वाला और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुखों का अंत करने वाला भिक्षु कहा जाता है।"

तब पूज्य मलुक्यपुत्त, भगवान (बुद्ध) द्वारा इस प्रकार प्रेरित होकर, अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, पूज्य मलुक्यपुत्त ने अल्पकाल में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य जीवन के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को जान लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे लीन हो गए। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी जन्म-मृत्यु का कोई आरोहण नहीं है।" और पूज्य मलुक्यपुत्त अरहंतों में से एक बन गए।

---

258 परिवार/कुल (कुला)

भिक्षुओं, धन की प्रचुरता प्राप्त करने के बाद जो भी परिवार दीर्घकाल नहीं रह पाते, वे सभी चार कारणों से या उनमें से किसी एक विशेष कारण से दीर्घकाल नहीं रह पाते। वे चार कारण क्या हैं? (1) वे खोई हुई वस्तु की खोज नहीं करते; (2) वे जीर्ण-शीर्ण वस्तु का जीर्ण-शीर्ण होना नहीं सुधारते; (3) वे अत्यधिक खाने-पीने में लिप्त रहते हैं; या (4) वे किसी अनैतिक स्त्री या पुरुष को अपना मुखिया नियुक्त करते हैं। धन की प्रचुरता प्राप्त करने के बाद जो भी परिवार दीर्घकाल नहीं रह पाते, वे सभी इन चार कारणों से या उनमें से किसी एक विशेष कारण से दीर्घकाल नहीं रह पाते। 969

भिक्षुओं, धन की प्रचुरता प्राप्त करने के बाद जो भी परिवार दीर्घकाल तक टिके रहते हैं, वे सभी चार कारणों से, या उनमें से किसी एक विशेष कारण से, दीर्घकाल तक टिके रहते हैं। वे चार कारण क्या हैं? (1) वे खोई हुई चीजों की खोज करते हैं; (2) वे जीर्ण-शीर्ण चीजों का जीर्णोद्धार करते हैं; (3) वे खाने-पीने में संयम बरतते हैं; और (4) वे किसी गुणी स्त्री या पुरुष को अपना मुखिया नियुक्त करते हैं। धन की प्रचुरता प्राप्त करने के बाद जो भी परिवार दीर्घकाल तक टिके रहते हैं, वे सभी इन चार कारणों से, या उनमें से किसी एक विशेष कारण से, दीर्घकाल तक टिके रहते हैं। [250]

---

259 थोरब्रेड (1) (अजानिया)

भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) के लिए, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा चार गुणों से युक्त होता है, जो राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है। 970 वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, राजा के उत्तम नस्ल के घोड़े में सुंदरता, शक्ति, गति और उचित अनुपात होते हैं। इन चार गुणों से युक्त होने के कारण, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा... राजत्व का प्रतीक माना जाता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य; आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सौंदर्य, बल, गति और उचित अनुपात से युक्त होता है।"

(1) "भिक्षु में सौंदर्य कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त होता है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। इसी प्रकार भिक्षु में सौंदर्य होता है।"

(2) "भिक्षु को बल कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को प्रेरित किया है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। इसी प्रकार भिक्षु को बल प्राप्त होता है।"

(3) "भिक्षु को गति कैसे प्राप्त होती है? यहाँ, भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसी प्रकार भिक्षु को गति प्राप्त होती है।"

(4) "और एक भिक्षु सही अनुपात कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, भिक्षु वह है जो वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु सही अनुपात प्राप्त करता है। [251]

"इन चार गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

---

260 थोरब्रेड (2) (अजानिया2)

[सब कुछ 4:259 के समान है, केवल निम्नलिखित अंतर के साथ:] 971 (3) "और एक भिक्षु (साधु) गति कैसे प्राप्त करता है? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु गति प्राप्त करता है।" [252]

---

261 शक्तियां (बाला)

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? ऊर्जा की शक्ति (प्रयास/वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (स्व-लीन/सम्मोहन), और पन्ना की शक्ति (दिव्य ज्ञान)। ये चार शक्तियाँ हैं।

---

262 वन (अरन्ना सं. अरण्य)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त भिक्षु वनों और झाड़ियों में एकांतवास करने के योग्य नहीं होते। वे चार गुण क्या हैं? [वे सोचते हैं] (1) कामुक विचार, (2) द्वेषपूर्ण विचार, और (3) हानि पहुँचाने के विचार; और (4) वे नासमझ, मूर्ख और मंदबुद्धि होते हैं। इन चार गुणों से युक्त भिक्षु वनों और झाड़ियों में एकांतवास करने के योग्य नहीं होते।

"चार अन्य गुणों से युक्त भिक्षु वनों और झाड़ियों में एकांतवास करने के योग्य होता है। वे चार गुण क्या हैं? (1) वह त्याग के विचार रखता है, (2) सद्भावना का भाव रखता है, और (3) अहिंसा का भाव रखता है; और (4) वह बुद्धिमान होता है, मूर्ख या मंदबुद्धि नहीं। इन चार गुणों से युक्त भिक्षु वनों और झाड़ियों में एकांतवास करने के योग्य होता है।"

---

263 क्रिया (कर्म बिना कर्म)

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में चार गुण होते हैं, अज्ञानी, अयोग्य, दुष्ट व्यक्ति स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है; वह निंदनीय है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? निंदनीय शारीरिक कर्म, निंदनीय वाणी, निंदनीय मानसिक कर्म और निंदनीय दृष्टि। [253] इन चार गुणों से युक्त होने के कारण... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।"

भिक्षुओं, चार अन्य गुणों से युक्त बुद्धिमान, योग्य और नेक व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और चोट रहित रखता है; वह निर्दोष होता है और बुद्धिमानों की दृष्टि में निंदा से परे होता है; और वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे चार गुण क्या हैं? निर्दोष शारीरिक कर्म, निर्दोष वाणी कर्म, निर्दोष मानसिक कर्म और निर्दोष दृष्टि। इन चार गुणों से युक्त होकर... वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

VII. कर्मों के मार्ग (कर्मपथ संस्कृत: कर्म-पथ)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

264 जीवन का विनाश (पनातिपति)

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह स्वयं जीवन का नाश करता है; वह दूसरों को जीवन का नाश करने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह जीवन के नाश का समर्थन करता है; और वह जीवन के नाश की प्रशंसा करता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? वह स्वयं जीवन-नष्ट करने से परहेज करता है; वह दूसरों को भी जीवन-नष्ट करने से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह जीवन-नष्ट करने से परहेज करने का समर्थन करता है; और वह जीवन-नष्ट करने से परहेज करने की प्रशंसा करता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

265 - 273 जो नहीं दिया गया है उसे लेना, इत्यादि।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? 972 (1) वह स्वयं वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है... [254] ... यौन दुराचार में लिप्त रहता है... झूठ बोलता है... फूट डालता है... कठोर बोलता है... [255] ... व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है... लालसा से भरा रहता है... द्वेष रखता है... गलत मत रखता है; (2) वह दूसरों को गलत मत में प्रोत्साहित करता है; (3) वह गलत मत का समर्थन करता है; और (4) वह गलत मत की प्रशंसा करता है। इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चार गुण क्या हैं? (1) वह स्वयं अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है... सही दृष्टिकोण रखता है; (2) वह दूसरों को सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है; (3) वह सही दृष्टिकोण का समर्थन करता है; और (4) वह सही दृष्टिकोण की प्रशंसा करता है। [256] इन चार गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

आठवीं. वासना (राग) और आगे दोहराव श्रृंखला (राग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

274 ध्यान साधना (सती) की विधियाँ

भिक्षुओं, राग के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए चार चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे चार चीजें क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु शरीर को शरीर में देखते हुए, पूरी तरह से समझते हुए, सती भाव से ध्यान लगाते हुए, संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए ध्यान में रहता है। (2) वह वेदनाओं को वेदनाओं में देखते हुए ध्यान में रहता है... (3) मन को मन में देखते हुए... (4) घटनाओं को घटनाओं में देखते हुए, पूरी तरह से समझते हुए, सती भाव से ध्यान लगाते हुए, संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए। राग के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए इन चार चीजों का विकास करना आवश्यक है।

---

275 चार सही प्रयास

भिक्षुओं, राग के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए चार चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे चार चीजें क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु अजन्मे अहानिकारक अकुशल अवस्थाओं के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपने मन को लगाता है और परिश्रम करता है। (2) वह उत्पन्न अहानिकारक अकुशल अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है... (3) ... अजन्मे लाभकारी अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है... (4) ... उत्पन्न लाभकारी अवस्थाओं के रखरखाव, उनके अवनति, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, अपने मन को लगाता है और परिश्रम करता है। राग के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए इन चार चीजों का विकास करना आवश्यक है।

---

276 मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के चार आधार

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए चार चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे चार चीजें क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु उस मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है जो इच्छा और कर्मों के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन रहती है। (2) वह उस मानसिक शक्ति (जादू) का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन रहती है... (3) ...जो मन के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन रहती है... (4) ...जो खोज और कर्मों के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन रहती है। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन चार चीजों का विकास करना आवश्यक है।

---

277 -303

"भिक्षुओं (संतों), कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... [257]... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके रुकने के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए, इन चार चीजों का विकास करना चाहिए।" 97

---

304 — 783

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा के लिए... मोह के लिए... क्रोध के लिए... शत्रुता के लिए... निंदा के लिए... उद्दंडता के लिए... ईर्ष्या के लिए... कंजूसी के लिए... छल के लिए... धूर्तता के लिए... हठ के लिए... उग्रता के लिए... अहंकार के लिए... घमंड के लिए... नशा के लिए... आलस्य के लिए, इन चार चीजों का विकास करना है। वे चार क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु ध्यान (अनुपसी) में रहते हुए देखता है... शरीर में शरीर . . . (2) . . . संवेदनाओं में भावनाएँ (वेदना) . . . (3) . . . मन में मन . . . (4) . . . घटनाओं में धम्म, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती (ध्यान करते हुए), संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए। (1) यहाँ, एक भिक्षु अजन्मे बुरे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है . . . (2) . . . उत्पन्न बुरे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग के लिए . . . (3) . . . अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए . . . (4) . . . उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव के लिए, उनके अवनति, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है। ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। (1) यहाँ, एक भिक्षु मनोकामना के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... (2) ...जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करता है... (3) ...जो मन के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करता है... (4) ...जो अन्वेषण और प्रयास के कार्यों के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करता है। आलस्य के त्याग के लिए, इन चार चीजों को विकसित करना आवश्यक है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

द बुक ऑफ द फोर का काम पूरा हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 5.पांचों की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का पांचवा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN4) अगला (AN6) >>>>

अंतर्वस्तु

1पंचकनिपाता की पुस्तक

1.1पहले पचास

1.1.1I. प्रशिक्षु की शक्तियाँ (सेखाबाला सं. शिष्य-बाला)

1.1.1.11 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

1.1.1.22 विस्तार से (विट्ठता सं. विस्तारा)

1.1.1.33. दुख (दुक्खा)

1.1.1.44. मानो वहाँ लाया गया हो (यथाभट)

1.1.1.55 प्रशिक्षण (सिक्खा सं. शिक्षा)

1.1.1.66 प्रवेश करना (समापत्ति)

1.1.1.77 कामुक सुख (काम)

1.1.1.88 फॉलिंग अवे (कैवाना)

1.1.1.99 अनादरपूर्ण (1) (अगरवा1)

1.1.1.1010 अनादरपूर्ण (2) (अगरवा2)

1.1.2II. शक्तियाँ (बाला)

1.1.2.111. पहले कभी नहीं सुना गया (अननुस्सुता)

1.1.2.212 शिखर (1) (कुटा)

1.1.2.313 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

1.1.2.414 विस्तृत रूप से (विट्ठता)

1.1.3=15 देखा जाना (दत्तब्बा सं. दृष्टव्य)

1.1.3.116 शिखर (2) (पुनाकुटा)

1.1.3.217 कल्याण (1) (हिता1)

1.1.3.318 कल्याण (2) (हिता2)

1.1.3.419 कल्याण (3) (हिता3)

1.1.3.520 कल्याण (4) (हिता4)

1.1.4तृतीय. पंचांगिका

1.1.4.121 अनादरपूर्ण (1) (अगरवा1)

1.1.4.222 अनादरपूर्ण (2) (अगरवा2)

1.1.4.323 दोष (उपक्किलेशा संस्कृत उपक्लेश)

1.1.4.424 अनैतिक (दुस्सिल)

1.1.4.525 सहायता प्राप्त (अनुगहिता)

1.1.4.626 मुक्ति (विमुत्तयातन)

1.1.4.727 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन अवस्था)

1.1.4.828 पंचगुणित (पंचांगिका)

1.1.4.929. चलते हुए ध्यान (चंकमा संस्कृत: चंकरामना)

1.1.4.1030 नागिता

1.1.5IV. सुमना-वग्गो

1.1.5.131 सुमाना

1.1.5.232 कुंडी [1003]

1.1.5.333 उगाहा

1.1.5.434 सिहा (सिहा सेनापति सं. सिंघा/शेर)

1.1.5.535 दान के लाभ (दाननिसंसा)

1.1.5.636 समय पर दान (कलादान)

1.1.5.737 भोजन का दान (भोजन)

1.1.5.838 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)

1.1.5.939 Son (Putta sans. Putra)

1.1.5.1040 साल के पेड़ [1018]

1.1.6वी. मुंडा राजा अनुभाग (मुंडा-राजा-वाग्गो)

1.1.6.141 उपयोग (आदिया)

1.1.6.242. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सद्पुरुष)

1.1.6.343 इच्छा की गई (इत्था)

1.1.6.444 मनभावनता प्रदान करने वाला (मनपदायी)

1.1.6.545 योग्यता की धाराएँ 1035 (पुन्नभिसन्द)

1.1.6.646 उपलब्धियाँ (संपदा)

1.1.6.747 धन (धन)

1.1.6.848 अप्राप्य परिस्थितियाँ (अलब्बनियाथाना)

1.1.6.949 कोसला

1.1.6.1050 नारदा

1.2दूसरा पचास

1.2.1I. बाधा अनुभाग (निवारणावग्गो)

1.2.1.151 आवरण/बाधाएं (अवराना)

1.2.1.252 हानिकारक ढेर (अकुशलरासी सं. अकुशल-राशि)

1.2.1.353 कारक (पधानियंगा)

1.2.1.454 अवसर (समय)

1.2.1.555 माता और पुत्र (मातापुत्त)

1.2.1.656 उपदेशक (उपज्झाय सं. उपाध्याय)

1.2.1.757 विषय-वस्तु

1.2.1.858 लिच्छवी युवक

1.2.1.959 वृद्धावस्था में साधु जीवन में चले गए (1) (वुद्धपब्बजिता सं. वृद्ध प्रवरजिता)

1.2.1.1060 वृद्धावस्था में साधु जीवन में चले गए (2) (वुद्धपब्बजिता सं. वृद्ध प्रवरजिता)

1.2.2द्वितीय. संज्ञान (सन्ना सं. संज्ञा)

1.2.2.161 धारणाएँ (1)(सन्ना1 सं. संज्ञा)

1.2.2.262 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

1.2.2.363 वृद्धि (1) (वधि1 सं. वृद्धि)

1.2.2.464 विकास (2) (वद्धि2 सं. वृद्धि)

1.2.3=65 चर्चा (सकच्छा)

1.2.3.166 जीवन शैली (सजीव)

1.2.3.267 मानसिक शक्ति (जादू) के आधार (1) (इद्धिपाद1)

1.2.3.368 मानसिक शक्ति (जादू) के आधार (2) (इद्धिपाद 2)

1.2.3.469 मोहभंग (निब्बिडा)

1.2.3.570 दशों का नाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)

1.2.4III. योद्धा (योद्धाजीव)

1.2.4.171 मन की मुक्ति (1) (सीटोविमुट्टीफला1 सं. सेटो-विमुक्ति-फला)

1.2.4.272 मन की मुक्ति (2) (सीटोविमुट्टीफला2 सं. सेटो-विमुक्ति-फला)

1.2.4.373 वह जो धम्म में निवास करता है (1) (धम्मविहारी1 सं. धर्म-विहारी)

1.2.4.474 वह जो धम्म में निवास करता है (2) (धम्मविहारी2 सं. धर्म विहारी)

1.2.4.575 योद्धा (1) (योद्धाजीव1)

1.2.4.676 योद्धा (2) (योद्धाजीव2)

1.2.4.777 भविष्य के संकट (1) (अनागत-भय1)

1.2.4.878 भविष्य के संकट (2) (अनागत-भाया2)

1.2.4.979 भविष्य के संकट (3) (अनागत-भय3)

1.2.4.1080 भविष्य के संकट (4) (अनागत-भाया4)

1.2.5IV. वरिष्ठ भिक्षु (थेरा संस्कृत: स्थिवरा)

1.2.5.181 उत्तेजक राग

1.2.5.282 अभाव रहित (वितराग)

1.2.5.383 एक षड्यंत्रकारी (कुहाका)

1.2.5.484 विश्वासहीन (असद्ध बिना अश्रद्ध)

1.2.5.585. धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता (अक्खमा)

1.2.5.686 विश्लेषणात्मक ज्ञान (पतिसंभिदपट्टा)

1.2.5.787 सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंता)

1.2.5.888 वरिष्ठ भिक्षु (थेरा संस्कृत: स्थिवरा)

1.2.5.989 एक प्रशिक्षु (1) (सेखा1 सं. शिष्य)

1.2.5.1090 एक प्रशिक्षु (2) (सेखा2 सं. शिष्य)

1.2.6वी. काकुधवग्गा

1.2.6.191 धन (1) (संपदा1)

1.2.6.292 धन (2) (संपदा2)

1.2.6.393 घोषणाएँ (व्याकरण सं. व्यक्त-करण)

1.2.6.494 आराम से रहना (फासुविहार)

1.2.6.595 अविचल (अकुप्पा)

1.2.6.696 जो कुछ सीखा है (सुताधारा)

1.2.6.797 वार्ता (कथा)

1.2.6.898 एक वनवासी (अरन्नक)

1.2.6.999 सिंह (सिहा बिना सिंघा)

1.2.6.10100 ककुधा थेरा

1.3तीसरा पचास

1.3.1I. आराम से रहना (फासुविहार)

1.3.1.1101 डरपोकपन (सरज्जा)

1.3.1.2102 संदिग्ध (उसंकिता सं. शंकित)

1.3.1.3103 एक महान चोर (महा-कोरा)

1.3.1.4104 एक प्रसन्न तपस्वी [1116] (समानसुखुमाला)

1.3.1.5105 आराम (फासुविहार)

1.3.1.6106 आनंद

1.3.1.7107 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

1.3.1.8108 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (असेखा सं. आशीष्य)

1.3.1.9109 चारों दिशाओं में घर पर (Catuddisa sans. Caturdisha)

1.3.1.10110 वन (अरन्ना सं. अरण्य)

1.3.2द्वितीय. अंधकविन्द [1120]

1.3.2.1111 परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपाका)

1.3.2.2112 एक परिचारक भिक्षु (पच्चसमाना)

1.3.2.3113 सम्यक समाधि (सम्मा-समाधि सं. सम्यक-समाधि)

1.3.2.4114 अंधकविंदा

1.3.2.5115 कंजूस नन (मच्चरिनी)

1.3.2.6116 स्तुति (वन्नना सं. वंदना)

1.3.2.7117 ईर्ष्यालु (इस्सुकिनी)

1.3.2.8118 गलत दृश्य (मिचदिट्ठिका सं. मिथ्या-दृष्टि)

1.3.2.9119 गलत भाषण (मिचावाका सं. मिथ्या-वाका)

1.3.2.10120 गलत प्रयास (मिचावयामा)

1.3.3III. बीमार (गिलाना)

1.3.3.1121. बीमार (गिलाना सैंस. ग्लानी)

1.3.3.2122 माइंडफुलनेस (ध्यान) की स्थापना (सतिसुपत्थिता सं. स्मृति-सु-प्रतिष्ठिता)

1.3.3.3123 एक परिचारक (1) (उपत्थक1 सं. उपष्टक)

1.3.3.4124 एक परिचारक (2) (उपत्थक2 सं. उपष्टक)

1.3.3.5125 जीवन शक्ति (1) (अनयुस्स1)

1.3.3.6126 जीवन शक्ति (2) (अनयुस्स2)

1.3.3.7127 अलग रहना (वापाका)

1.3.3.8128 एक तपस्वी का सुख (समानसुख सं. श्रमणसुखा)

1.3.3.9129 घाव (परिकुप्पा)

1.3.3.10130 आपदाएँ (ब्यासन)

1.3.4IV. राजा

1.3.4.1131 पहिया घुमाना (1) (चक्कनुवत्तन1 सं. चक्रानुवर्तन)

1.3.4.2132 पहिया घुमाना (2) (चक्कनुवत्तन2 सं. चक्रानुवर्तन)

1.3.4.3133 धर्मी राजा 1133 (धम्मराज सं. धर्मराज)

1.3.4.4134 किसी भी दिशा में (यस्सामदिसम सं. यथादिशा)

1.3.4.5135 तड़प (पत्थाना1)

1.3.4.6136 तड़प (2) (पत्थाना2)

1.3.4.7137 छोटी नींद (अप्पमसुपति सं. अल्पा-सुशुप्ति)

1.3.4.8138 भोजन का उपभोक्ता (भट्टदक)

1.3.4.9139 धैर्यपूर्वक खड़ा नहीं रह सकता (अक्खामा बिना अक्षमा)

1.3.4.10140 जो सुनता है (सोता संस. श्रोता)

1.3.5वी. टी.एल.के.एन.ए ...

1.3.5.1141 देने के बाद, व्यक्ति अवजानति का तिरस्कार करता है।

1.3.5.2142 उल्लंघन करता है (अरभाति)

1.3.5.3143 सरंददा

1.3.5.4144 टिकंदकी

1.3.5.5145 नरक (निरया)

1.3.5.6146 मित्र (मित्ता सं. मित्रा)

1.3.5.7147 बुरे व्यक्ति का दान (असप्पुरिसादना संस्कृत: असदपुरुषदाना)

1.3.5.8148 अच्छे व्यक्ति का दान (सप्पुरिसादना संस्कृत: सद्पुरुषदाना)

1.3.5.9149 अस्थायी रूप से मुक्त (1) (समयविमुत्त1 सं. समय-विमुक्ति)

1.3.5.10150 (10) अस्थायी रूप से मुक्त (2) (समयविमुत्त2 सं. समय-विमुक्ति)

1.4चौथा पचास

1.4.1I. अच्छा धम्म (सद्धम्म)

1.4.1.1151 धार्मिकता का निश्चित मार्ग1 [1149] (सममत्तनीयमा1)

1.4.1.2152 धर्म का निश्चित मार्ग (2) (सममत्तनीयमा2)

1.4.1.3153 धर्म का निश्चित मार्ग (3) (सम्मत्तनीयम2)

1.4.1.4154 अच्छे धम्म का पतन (1) (सद्धम्मसम्मोसा1 सं. सद्-धर्मस्य..)

1.4.1.5155 अच्छे धम्म का पतन (2) (सद्धम्मसम्मोसा2 सं. सद्-धर्मस्य..)

1.4.1.6156 अच्छे धम्म का पतन (3) (सद्धम्मसम्मोसा3 सं. सद्-धर्मस्य..)

1.4.1.7157 गलत तरीके से संबोधित वार्ता (दुक्कथा संस्कृत: दुश-कथा)

1.4.1.8158 डरपोकपन [1153] (सरज्जा)

1.4.1.9159 उदयि

1.4.1.10160 दूर करना कठिन (दुप्पतिविनोदय)

1.4.2II. आक्रोश (अघट)

1.4.2.1161 आक्रोश दूर करना (1) (अघाट पतिविनय1)

1.4.2.2162 आक्रोश दूर करना (2) (अघाट पतिविनय1)

1.4.2.3163 चर्चाएँ (सकच्छा)

1.4.2.4164 जीवन शैली (सजीव)

1.4.2.5165 प्रश्न पूछना (पन्हा पुच्चा सं. प्रश्न-पुच्चा)

1.4.2.6166 निरोध (Cessation)

1.4.2.7167 निंदा करना (कोडाना)

1.4.2.8168 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

1.4.2.9169 शीघ्र बोध (खिप्पानिसन्ती)

1.4.2.10170 भद्दाजी

1.4.3तृतीय. द ले फॉलोअर (उपासका)

1.4.3.1171 कायरता (सरज्जा)

1.4.3.2172 आत्म-विश्वास (विसारदा)

1.4.3.3173 नरक (निरया)

1.4.3.4174 शत्रु (वेरा सं. वैर)

1.4.3.5175 कैंडला

1.4.3.6176 आनंद (पिति सान. प्रीति)

1.4.3.7177 व्यापार (वनिज्जा)

1.4.3.8178 राजा

1.4.3.9179 ए लेमैन (गिही सं. गृही)

1.4.3.10180 गावेसी

1.4.4चतुर्थ. वनवासी (अरन्नवग्गो सं. अरण्य-वर्ग)

1.4.4.1181 वनवासी (अरन्निका)

1.4.4.2182-190 चिथड़े-मटके वस्त्र आदि धारण करने वाले (सिवारा)

1.4.5वी. ब्राह्मण

1.4.5.1191 सोना

1.4.5.2192 डोना ब्राह्मण

1.4.5.3193 संगरवा [1191]

1.4.5.4194 करणपाली

1.4.5.5195 पिंगियानी

1.4.5.6196 महान स्वप्न (महा सुपिना सं. महा स्वप्न)

1.4.5.7197 Rain (Vassa sans. Varsha)

1.4.5.8198 भाषण (वाका सं. वचना)

1.4.5.9199 परिवार/कुल (कुला)

1.4.5.10200 पलायन (निसारनिया सं. निस्साराना)

1.5पांचवां पचास

1.5.1आई. किमिला

1.5.1.1201 किमिला

1.5.1.2202 धम्म सुनना (धम्म स्सवना सं. धर्म श्रवण)

1.5.1.3203 थोरब्रेड [1211] (अस्साजानिया सं. अश्व..)

1.5.1.4204 शक्तियां (बाल)

1.5.1.5205 मानसिक बांझपन 1212 (चेतोखिला)

1.5.1.6206 बंधन [1214] (विनीबंध)

1.5.1.7207 चावल का दलिया (यागू बिना खीर)

1.5.1.8208 ब्रश करना (दंतकत्था)

1.5.1.9209 स्वर-संयोजन (गीतासर)

1.5.1.10210 भ्रमित मन के साथ (मुत्थसती)

1.5.2II. अपमान करने वाला (अक्कोसाका)

1.5.2.1211 अपमान करने वाला (अक्कोसाका)

1.5.2.2212 तर्कों का खंडन (भंडानकारक)

1.5.2.3213 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

1.5.2.4224 बोलना' बहुत (बहुभानी सं. बहु-वाणी)

1.5.2.5215 अधीरता (1) (अक्खन्ति सं. अशांति)

1.5.2.6226 अधीरता (2) (अक्खन्ति2 सं. अशांति)

1.5.2.7227 विश्वास जगाने में असमर्थ (1) (अपसादिका1)

1.5.2.8218 विश्वास जगाने में असमर्थ (2) (अपसादिका2)

1.5.2.9219 अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)

1.5.2.10220 मधुरा (मथुरा शहर)

1.5.3III. लंबी यात्रा (दिघाचारिका)

1.5.3.1221 लंबी भटकन (1) (दिघाकारिका1)

1.5.3.2222 लंबी भटकन (2) (दिघाकारिका2)

1.5.3.3223 (3) बहुत लंबे समय तक निवास करना (अतिनिवासा)

1.5.3.4224 कंजूस (मच्छरी)

1.5.3.5225 वह व्यक्ति जो परिवारों से मिलने जाता है (1) (कुलुपाका1)

1.5.3.6226 जो परिवारों से मिलने जाता है (2) (कुलुपाका2)

1.5.3.7227 धन (भोग)

1.5.3.8228 देर रात का भोजन (उस्सुरभट्ट)

1.5.3.9229 काला साँप (1) (कान्हासप्पा1 सं. कृष्ण-सर्प)

1.5.3.10230 काला साँप (2) (कान्हा सप्पा सं. कृष्णा सर्प)

1.5.4IV. निवासी (आवासिका)

1.5.4.1231 निवासी (आवासिका)

1.5.4.2232 मनभावन (पिया सं. प्रिया)

1.5.4.3233 सौंदर्यीकरण (शोभना)

1.5.4.4234 बहुत मददगार (बहुपकारा)

1.5.4.5235 दयालु (अनुकम्पा)

1.5.4.6236 वह जो तिरस्कार का पात्र हो (1) (अवन्नारहा1)

1.5.4.7237 निंदा के योग्य व्यक्ति (2) (अवन्नारहा2)

1.5.4.8238 वह जो तिरस्कार का पात्र हो (3) (अवन्नाराहा3)

1.5.4.9239 कृपणता (1) (मैकचरिया1)

1.5.4.10240 कृपणता (2) (मैकचरिया2)

1.5.5वी. कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

1.5.5.1241 कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

1.5.5.2242 शारीरिक दुराचार (कायदुच्चरिता सं. काया दुष्चरित्र)

1.5.5.3243 मौखिक कदाचार

1.5.5.4244 मानसिक दुराचार (मनोदुच्चरिता सं. मनो दुष्चरित्र)

1.5.5.5245 दुराचार पर एक और (दुश्चरित्रा2 सं. दुश्चरित्रा)

1.5.5.6246 शारीरिक दुराचार पर एक और (कायादुकारिता2 सं. काया दुष्चरित्र)

1.5.5.7247 मौखिक कदाचार पर एक और (वासीदुक्कारिता2 सं. वाका दुष्चरित्र)

1.5.5.8248 मानसिक दुराचार पर एक और (मनोदुकारिता2 सं. मनो दुष्चरित्र)

1.5.5.9249 ए चार्नेल ग्राउंड (शिवथिका)

1.5.5.10250 किसी व्यक्ति पर विश्वास (पुग्गलप्पसाद)

1.6छठा पचास

1.6.1I. पूर्ण समन्वय [1235] (उपसम्पदा)

1.6.1.1252 पूर्ण दीक्षा कौन दे सकता है (उपसंपदेतब्बा)

1.6.1.2252 निर्भरता (निस्सया)

1.6.1.3253 नौसिखिया (सामनेरा)

1.6.1.4254 कंजूसी (मच्छरिया)

1.6.1.5255 कृपणता का परित्याग (मैकचरियाप्पहाना)

1.6.1.6256 प्रथम झाना (ट्रान्स अवस्था) (पथमा झा सं. प्रथम ध्यान)

1.6.1.7257-263 दूसरा झाना (ट्रान्स अवस्था), आदि [1239] (दुतियाझाना..)

1.6.1.8264 प्रथम झाना (ट्रान्स अवस्था) पर एक और (अपरापथमाझाना)

1.6.1.9265—271 दूसरे झाना पर (ट्रान्स अवस्था), आदि (अपरादुतियाझाना)

1.7अध्याय के अतिरिक्त प्रवचन [1240]

1.7.1I. सहमत पुनरावृत्ति श्रृंखला (सम्मुतिपेय्यालम)

1.7.1.1272 भोजन का एक निर्दिष्टी (भट्टुद्देसका)

1.7.1.2273-285 आवास आदि नियुक्त करने वाला (सेनसनपन्नपका)

1.7.2द्वितीय. प्रशिक्षण नियम दोहराव श्रृंखला (सिक्खपदपेय्यलम)

1.7.2.1286 एक भिक्षु (मठवासी)

1.7.2.2287-292 भिक्षुणी (भिक्षुणी) आदि

1.7.2.3293 एक आजीवका

1.7.2.4294 — 302 ए निगांथा, इत्यादि।

1.7.3III वासना (राग) और आगे की पुनरावृत्ति श्रृंखला (रागपेय्यलम)

पंचकनिपाता की पुस्तक

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. प्रशिक्षु की शक्तियाँ (सेखाबाला सं. शिष्य-बाला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ये पाँच प्रशिक्षु शक्तियाँ हैं। 974 कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच प्रशिक्षु शक्तियाँ हैं। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम विश्वास की शक्ति, एक प्रशिक्षु शक्ति, प्राप्त करेंगे; हम नैतिक लज्जा की शक्ति, एक प्रशिक्षु शक्ति, प्राप्त करेंगे; हम नैतिक भय की शक्ति, एक प्रशिक्षु शक्ति, प्राप्त करेंगे; हम ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, एक प्रशिक्षु शक्ति, प्राप्त करेंगे; हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, एक प्रशिक्षु शक्ति, प्राप्त करेंगे।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।" [यह भगवान (बुद्ध) ने कहा। प्रसन्न होकर, वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए।] 975 [2]

---

2 विस्तार से (वित्थता सं. विस्तारा)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, प्रशिक्षुओं की ये पाँच शक्तियाँ हैं। वे पाँच कौन सी हैं? आस्था की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति।"

(1) "और हे भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इसे ही आस्था की शक्ति कहते हैं।"

(2) "नैतिक लज्जा की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को नैतिक लज्जा का बोध होता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से लज्जित होता है; वह अकुशल गुणों को ग्रहण करने से लज्जित होता है। इसे नैतिक लज्जा की शक्ति कहा जाता है।"

(3) "नैतिक भय की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य कुकर्म से भयभीत होता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से भयभीत होता है; वह अकुशल गुणों को प्राप्त करने से भयभीत होता है। इसे नैतिक भय की शक्ति कहा जाता है।"

(4) "और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को प्रेरित किया है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। इसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति कहा जाता है।"

(5) "पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान है; वह उस पन्न (दिव्य ज्ञान) से युक्त है जो उद्भव और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। 977 इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति कहा जाता है।"

"ये पाँच प्रशिक्षु शक्तियाँ हैं, इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम विश्वास की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति, धारण करेंगे; हम नैतिक लज्जा की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति, धारण करेंगे; हम नैतिक भय की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति, धारण करेंगे; हम ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति, धारण करेंगे; हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति, धारण करेंगे।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

3. दुख (दुक्खा)

"भिक्षुओं में पाँच गुण होते हैं, फिर भी वे इसी जीवन में कष्टों, पीड़ाओं और बुखार से ग्रस्त रहते हैं, और शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय उनका भाग्य बुरा ही होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु आस्थाहीन, नैतिक रूप से निर्लज्ज, नैतिक रूप से लापरवाह, आलसी और मूर्ख होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु इसी जीवन में कष्टों, पीड़ाओं और बुखार से ग्रस्त रहते हैं, और शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय उनका भाग्य बुरा ही होता है।"

भिक्षु (भिक्षु), पाँच अन्य गुणों से युक्त होकर, इस जीवन में सुखपूर्वक निवास करते हैं— बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के— और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, उनके लिए एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होते हैं, नैतिक लज्जा का भाव रखते हैं, नैतिक भय रखते हैं, और ऊर्जावान और बुद्धिमान होते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, भिक्षु इस जीवन में सुखपूर्वक निवास करते हैं— बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के— और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, उनके लिए एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है।

---

4. मानो वहाँ लाया गया हो (यथाभट)

"भिक्षुओं (मठवासियों), पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु आस्थाहीन, नैतिक रूप से निर्लज्ज, नैतिक रूप से लापरवाह, आलसी और मूर्ख होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। [4]

"भिक्षुओं में पाँच अन्य गुण होते हैं, और उन्हें स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होता है, नैतिक लज्जा का भाव रखता है, नैतिक भय रखता है, और ऊर्जावान एवं बुद्धिमान होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

---

5 प्रशिक्षण (सिक्खा सं. शिक्षा)

भिक्षुओं, कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो प्रशिक्षण त्यागकर निम्न जीवन में लौट जाता है, इस जीवन में ही पाँच उचित आलोचनाओं और निंदा के आधारों का पात्र बनता है। वे पाँच क्या हैं? (1) 7 आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास नहीं रखा। (2) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों के विकास में नैतिक लज्जा का भाव नहीं रखा। (3) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में नैतिक भय नहीं रखा। (4) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं रखी। (5) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में पन्ना (दिव्य ज्ञान) नहीं रखा। कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है, उसे इसी जीवन में इन पांच उचित आलोचनाओं और निंदा के आधारों का सामना करना पड़ता है।

भिक्षुओं, कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, पीड़ा और निराशा में भी, आँसू भरी आँखों से रोते हुए, इसी जीवन में प्रशंसा के पाँच उचित कारण प्राप्त करता है। वे पाँच क्या हैं? (1) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति आस्था रखी है। (2) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति नैतिक लज्जा का भाव रखा है। (3) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति नैतिक भय रखा है। (4) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) रखी है। (5) आपने लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्राप्त किया है। कोई भी भिक्षु या भिक्षुणी जो पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीता है, दर्द और निराशा के साथ भी, आँसू भरे चेहरे से रोते हुए, [5] इसी जीवन में प्रशंसा के इन पाँच उचित कारणों को प्राप्त करता है।"

---

6 प्रवेश करना (समापत्ति)

(1) "भिक्षुओं, जब तक लाभकारी गुणों के विकास में आस्था दृढ़ बनी रहती है, तब तक हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश करना संभव नहीं है। परन्तु जब आस्था लुप्त हो जाती है और अविश्वास हावी हो जाता है, तब हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश करना संभव हो जाता है।"

(2) "जब तक लाभकारी गुणों को विकसित करने में नैतिक लज्जा की भावना दृढ़ता से स्थापित रहती है, तब तक हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर चलना संभव नहीं है। परन्तु जब नैतिक लज्जा की भावना लुप्त हो जाती है और व्यक्ति नैतिक निर्लज्जता से ग्रस्त हो जाता है, तब हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर चलना संभव हो जाता है।"

(3) "जब तक लाभकारी गुणों को विकसित करने में नैतिक भय दृढ़ता से स्थापित रहता है, तब तक हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश नहीं होता। परन्तु जब नैतिक भय लुप्त हो जाता है और नैतिक भय का अभाव हावी हो जाता है, तब हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश होता है।"

(4) जब तक ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के संवर्धन में स्थिर रहती है, तब तक हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश नहीं होता। परन्तु जब ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) समाप्त हो जाती है और आलस्य हावी हो जाता है, तब हानिकारक (अकुशल) मार्ग पर प्रवेश होता है।

(5) "जब तक धर्म (दिव्य ज्ञान) लाभकारी गुणों (धम्म) के संवर्धन में दृढ़ रहता है, तब तक अकुशल (हानिकारक) मार्ग पर चलना संभव नहीं है। परन्तु जब अकुशल (हानिकारक) ज्ञान लुप्त हो जाता है और अकुशल (हानिकारक) ज्ञान का अभाव ग्रस्त हो जाता है, तब अकुशल (हानिकारक) मार्ग पर चलना संभव हो जाता है।"

---

7 कामुक सुख (काम)

"भिक्षु (साधु), अधिकांशतः इंद्रिय सुखों में लीन रहते हैं। जब कोई कुलवासी हंसिया और डंडा त्यागकर गृहस्थ जीवन छोड़कर घर-बार त्याग देता है, तो उसे आस्था के कारण संन्यासी कहा जा सकता है। इसका कारण क्या है? किसी भी प्रकार का इंद्रिय सुख एक युवक को प्राप्त हो सकता है। निम्न, मध्यम और श्रेष्ठ सभी इंद्रिय सुखों को केवल इंद्रिय सुख ही माना जाता है। [6]

मान लीजिए एक छोटा बच्चा, जो नासमझ है और पीठ के बल लेटा हुआ है, अपनी नर्स की लापरवाही के कारण अपने मुंह में कोई छड़ी या कंकड़ डाल लेता है। उसकी नर्स तुरंत उसकी देखभाल करेगी और उसे निकालने की कोशिश करेगी। अगर वह उसे जल्दी नहीं निकाल पाती, तो वह अपने बाएं हाथ से बच्चे के सिर को सहारा देगी और अपने दाहिने हाथ की उंगली से उसे निकालकर देगी, चाहे खून ही क्यों न निकल आए। ऐसा क्यों? बच्चे को कुछ तकलीफ तो होगी ही - मैं इससे इनकार नहीं करता - लेकिन नर्स को उसकी भलाई और कल्याण के लिए, उस पर दया करके ऐसा करना ही होगा। हालांकि, जब बच्चा बड़ा हो जाता है और समझदार हो जाता है, तो नर्स उसकी परवाह करना छोड़ देगी, यह सोचकर: 'अब बच्चा अपना ख्याल खुद रख सकता है। वह आलसी नहीं होगा।'

"इसी प्रकार, जब तक कोई भिक्षु लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति आस्था, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति लज्जा, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति नैतिक भय, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण नहीं हो जाता, तब तक वह सिद्ध नहीं हो सकता।"

मुझे अब भी उसकी देखभाल करनी होगी। लेकिन जब वह भिक्षु धर्मपरायणता में निपुण हो जाए, धर्मपरायणता में निपुण हो जाए, धर्मपरायणता में निपुण हो जाए, तब मैं उसके बारे में निश्चिंत हो जाता हूँ, यह सोचकर कि 'भिक्षु अब अपनी देखभाल स्वयं कर सकता है। वह आलसी नहीं होगा।' 978

---

8 फॉलिंग अवे (कैवाना)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु धर्म से भटक जाता है और उत्तम धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) विश्वासहीन भिक्षु धर्म से भटक जाता है और उत्तम धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। (2) नैतिक रूप से निर्लज्ज भिक्षु... (3) नैतिक रूप से लापरवाह भिक्षु... (4) आलसी भिक्षु... (5) अज्ञानी भिक्षु धर्म से भटक जाता है और उत्तम धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु धर्म से भटक जाता है और उत्तम धर्म में स्थापित नहीं हो पाता।

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त भिक्षु धर्म से विमुख नहीं होते, बल्कि उत्तम धर्म में स्थापित रहते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) आस्था से युक्त भिक्षु धर्म से विमुख नहीं होते, बल्कि उत्तम धर्म में स्थापित रहते हैं। (2) नैतिक लज्जा से युक्त भिक्षु... (3) नैतिक भय से युक्त भिक्षु... (4) ऊर्जावान भिक्षु... (5) बुद्धिमान भिक्षु धर्म से विमुख नहीं होते, बल्कि उत्तम धर्म में स्थापित रहते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु धर्म से विमुख नहीं होते, बल्कि उत्तम धर्म में स्थापित रहते हैं।

---

9 अनादरपूर्ण (1) (अगरवा1)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु धर्म से विमुख हो जाता है और अच्छे धर्म में स्थापित नहीं हो पाता; वे पाँच गुण क्या हैं? (1) अनादरपूर्ण और असावधान, आस्थाहीन भिक्षु धर्म से विमुख हो जाता है और अच्छे धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। (2) अनादरपूर्ण और असावधान, नैतिक रूप से निर्लज्ज भिक्षु... (3) अनादरपूर्ण और असावधान, नैतिक रूप से लापरवाह भिक्षु... (4) अनादरपूर्ण और असावधान, आलसी भिक्षु... (5) अनादरपूर्ण और असावधान, मूर्ख भिक्षु धर्म से विमुख हो जाता है और अच्छे धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। इन पाँच गुणों से युक्त, अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु धर्म में स्थापित नहीं हो पाता। [8]

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त, आदरणीय और विनम्र भिक्षु धर्म के मार्ग से नहीं भटकता, बल्कि उसमें स्थापित रहता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) श्रद्धा से परिपूर्ण और विनम्र भिक्षु धर्म के मार्ग से नहीं भटकता, बल्कि उसमें स्थापित रहता है। (2) नैतिक लज्जा का भाव रखने वाला और विनम्र भिक्षु... (3) नैतिक भय रखने वाला और विनम्र भिक्षु... (4) ऊर्जावान और विनम्र भिक्षु... (5) बुद्धिमान और विनम्र भिक्षु धर्म के मार्ग से नहीं भटकता, बल्कि उसमें स्थापित रहता है। इन पाँच गुणों से युक्त, आदरणीय और विनम्र भिक्षु धर्म के मार्ग से नहीं भटकता, बल्कि उसमें स्थापित रहता है।

---

10 अनादरपूर्ण (2) (अगरवा2)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) अनादरपूर्ण और असावधान, आस्थाहीन भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। (2) अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु जो नैतिक रूप से निर्लज्ज है... (3) अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु जो नैतिक रूप से लापरवाह है... (4) अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु जो आलसी है... (5) अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु जो नासमझ है, इस धम्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। इन पाँच गुणों से युक्त, अनादरपूर्ण और असावधान भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने के लिए।

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त, एक आदरणीय और विनम्र भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) आस्था से परिपूर्ण आदरणीय और विनम्र भिक्षु इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम होता है। (2) नैतिक लज्जा का भाव रखने वाला आदरणीय और विनम्र भिक्षु... (3) नैतिक भय रखने वाला आदरणीय और विनम्र भिक्षु... [9]... (4) ऊर्जावान आदरणीय और विनम्र भिक्षु... (5) बुद्धिमान आदरणीय और विनम्र भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करने में सक्षम होता है। इन पाँच गुणों से युक्त, एक आदरणीय और विनम्र भिक्षु वृद्धि प्राप्त करने में सक्षम होता है। इस धम्म और अनुशासन में प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना।"

II. शक्तियाँ (बाला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11. पहले कभी नहीं सुना गया (अननुस्सुता)

"भिक्षुओं, मैं यह दावा करता हूँ कि मैंने उन चीजों के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) की प्राप्ति कर ली है जिनके बारे में मैंने पहले कभी नहीं सुना था।" 979

"तथागत (बुद्ध) की ये पाँच शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं। 980 वे पाँच कौन सी हैं? विश्वास की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं जो तथागत (बुद्ध) के पास हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।" [10]

---

12 शिखर (1) (कुटा)

भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार की प्रशिक्षण शक्तियाँ हैं। ये पाँच कौन सी हैं? आस्था की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच प्रशिक्षण शक्तियाँ हैं। इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति सर्वोपरि है, जो अन्य सभी शक्तियों को स्थिर रखती है, उन्हें एकीकृत करती है। जिस प्रकार शिखर वाली छत वाले घर का शिखर मुख्य भाग होता है, जो अन्य सभी भागों को स्थिर रखता है, उन्हें एकीकृत करता है, उसी प्रकार इन पाँच प्रशिक्षण शक्तियों में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति सर्वोपरि है, जो अन्य सभी शक्तियों को स्थिर रखती है, उन्हें एकीकृत करती है।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: (1) 'हम विश्वास की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति; (2) नैतिक लज्जा की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति; (3) नैतिक भय की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति; (4) ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति; (5) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, एक प्रशिक्षु की शक्ति।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।'

---

13 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति (प्रयास/वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (स्व-लीन/सन्दूक), और ज्ञान की शक्ति (दिव्य ज्ञान)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

---

14 विस्तृत रूप से (विट्ठता)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान) की शक्ति, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति और दिव्य ज्ञान (पन्न) की शक्ति।

(1) "और हे भिक्षुओं, विश्वास की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य विश्वास से संपन्न है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं... [जैसा कि 5:2 में है] ... प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' [11] इसे विश्वास की शक्ति कहा जाता है।

(2) "और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को प्रेरित किया है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। इसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति कहा जाता है।"

(3) "और सती ध्यान की शक्ति क्या है? यहाँ, श्रेष्ठ शिष्य सती ध्यान में है, सर्वोच्च सती ध्यान और सतर्कता से परिपूर्ण है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। इसे ही सती ध्यान की शक्ति कहते हैं।"

(4) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की शक्ति क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसमें मन की परम शांति और एकीकरण होता है और जो समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, बिना विचार और चिंतन के। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, वह शरीर के साथ सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में है, सती (ध्यानमग्न), जो आनंद में रहता है। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और उदासी के दूर हो जाने के बाद, वह चौथी ध्यान (सती अवस्था) में प्रवेश

करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो दुखदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/सती) द्वारा सती (ध्यानमग्नता) का शुद्धिकरण होता है। इसे समाधि (स्व-लीनता/सतीत्व) की शक्ति कहा जाता है।

(5) "पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उस पन्न (दिव्य ज्ञान) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।"

= 15 देखने योग्य (दत्तब्बा सं. दृष्टव्य)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान) की शक्ति, समाधि (स्व-अवशोषण/तंद्रा) की शक्ति, [12] और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति।

(1) "हे भिक्षुओं, आस्था की शक्ति कहाँ देखी जा सकती है? आस्था की शक्ति सात पुनर्जन्मों (सोतपत्ति) के चार कारकों में देखी जा सकती है।" 82 (2) और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति कहाँ देखी जा सकती है? ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति चारों सही प्रयासों में देखी जा सकती है। (3) और ध्यान (सती) की शक्ति कहाँ देखी जा सकती है? ध्यान (सती) की शक्ति ध्यान (सती) की चारों अवस्थाओं में देखी जा सकती है। (4) और समाधि (स्व-लीन/सन्यास) की शक्ति कहाँ देखी जा सकती है? समाधि (स्व-लीन/सन्यास) की शक्ति चारों ध्यान अवस्थाओं में देखी जा सकती है। (5) और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति कहाँ देखी जा सकती है? ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति चारों आर्य सत्यों में देखी जा सकती है।

"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।"

---

16 शिखर (2) (पुनाकुटा)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती ध्यान की शक्ति, समाधि की शक्ति और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं। इन पाँच शक्तियों में, ज्ञान की शक्ति सर्वोपरि है, जो सभी को एकाग्र रखती है, जो उन्हें एकीकृत करती है, जैसे कि शिखर वाली छत वाले घर का शिखर मुख्य भाग होता है, जो सभी को एकाग्र रखता है, उसी प्रकार इन पाँच शक्तियों में, ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति सर्वोपरि है, जो सभी को एकाग्र रखती है, जो उन्हें एकीकृत करती है।

---

17 कल्याण (1) (हिता1)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु अपने स्वयं के कल्याण के लिए अभ्यास करता है, न कि दूसरों के कल्याण के लिए। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण है, परन्तु दूसरों को सद्गुणों में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; (2) वह स्वयं समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) में निपुण है, परन्तु दूसरों को एकाग्रता में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; (3) वह स्वयं ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण है, परन्तु दूसरों को ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; (4) वह स्वयं मुक्ति में निपुण है, परन्तु दूसरों को मुक्ति में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; (5) वह स्वयं मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) में निपुण है, परन्तु दूसरों को मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। [13] इन पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु अपने स्वयं के कल्याण के लिए साधना करता है, न कि दूसरों के कल्याण के लिए।

---

18 कल्याण (2) (हिता2)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, न कि अपने स्वयं के कल्याण के लिए। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु स्वयं सद्‌गुणों में सिद्ध नहीं होता, परन्तु वह दूसरों को सद्‌गुणों में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करता है; (2) वह स्वयं समाधि में सिद्ध नहीं होता, परन्तु वह दूसरों को समाधि में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करता है; (3) वह स्वयं ज्ञान में सिद्ध नहीं होता, परन्तु वह दूसरों को ज्ञान में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करता है; (4) वह स्वयं मोक्ष में सिद्ध नहीं होता, परन्तु वह दूसरों को मोक्ष में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करता है; (5) वह स्वयं मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में सिद्ध नहीं होता, परन्तु वह दूसरों को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करता है। इन पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु दूसरों के कल्याण के लिए साधना करता है, न कि स्वयं के कल्याण के लिए। अपने स्वयं के कल्याण के लिए।"

---

19 कल्याण (3) (हिता3)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु स्वयं सद्‌गुणों में निपुण नहीं होते और न ही दूसरों को सद्‌गुणों में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; (2) वे स्वयं समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में निपुण नहीं होते और न ही दूसरों को समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; (3) वे स्वयं ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण नहीं होते और न ही दूसरों को ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; (4) वे स्वयं मोक्ष में निपुण नहीं होते और न ही दूसरों को मोक्ष में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; (5) वे स्वयं मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में निपुण नहीं होते और न ही दूसरों को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में निपुण होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)। [14] इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु न तो अपने कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए साधना करते हैं। न तो स्वयं के कल्याण के लिए और न ही दूसरों के कल्याण के लिए।"

---

20 कल्याण (4) (हिता4)

भिक्षु (भिक्षु), पाँच गुणों से युक्त होकर, अपने और दूसरों के कल्याण के लिए साधना करते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु स्वयं सद्‌गुणों में निपुण होते हैं और दूसरों को भी सद्‌गुणों में निपुण होने के लिए प्रेरित करते हैं; (2) वे स्वयं समाधि में निपुण होते हैं और दूसरों को भी समाधि में निपुण होने के लिए प्रेरित करते हैं; (3) वे स्वयं ज्ञान में निपुण होते हैं और दूसरों को भी ज्ञान में निपुण होने के लिए प्रेरित करते हैं; (4) वे स्वयं मोक्ष में निपुण होते हैं और दूसरों को भी मोक्ष में निपुण होने के लिए प्रेरित करते हैं; (5) वे स्वयं मोक्ष के ज्ञान और दर्शन में निपुण होते हैं और दूसरों को भी मोक्ष के ज्ञान और दर्शन में निपुण होने के लिए प्रेरित करते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, भिक्षु अपने और दूसरों के कल्याण के लिए साधना करते हैं।

तृतीय. पंचांगिका

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 अनादरपूर्ण (1) (अगरवा1)

"(1) भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु अनादरपूर्ण और असावधान होता है, और उसका व्यवहार अपने साथी भिक्षुओं के अनुकूल नहीं होता, तो उसके लिए उचित आचरण के गुण का पालन करना असंभव है। [15] (2) उचित आचरण के गुण का पालन किए बिना, उसके लिए प्रशिक्षु के गुण का पालन करना असंभव है। (3) प्रशिक्षु के गुण का पालन किए बिना, उसके लिए सद्गुणी आचरण का पालन करना असंभव है। (4) सद्गुणी आचरण का पालन किए बिना, उसके लिए सही दृष्टिकोण का पालन करना असंभव है। (5) सही दृष्टिकोण का पालन किए बिना, उसके लिए सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का पालन करना असंभव है। 983 "(l) परन्तु, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आदरपूर्ण और असावधान होता है, और उसका व्यवहार अपने साथी भिक्षुओं के अनुकूल होता है, तो उसके लिए उचित आचरण के कर्तव्य का पालन करना संभव है। (2) उचित आचरण का कर्तव्य पूरा करने के बाद, उसके लिए प्रशिक्षु का कर्तव्य पूरा करना संभव है। (3) प्रशिक्षु का कर्तव्य पूरा करने के बाद, उसके लिए सद्गुणी आचरण करना संभव है। (4) सद्गुणी आचरण करने के बाद, उसके लिए सही दृष्टिकोण अपनाना संभव है। (5) सही दृष्टिकोण अपनाने के बाद, उसके लिए सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करना संभव है।

---

22 अनादरपूर्ण (2) (अगरवा2)

(1) भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु अनादरपूर्ण और असभ्य होता है, और उसका व्यवहार अपने साथी भिक्षुओं के अनुकूल नहीं होता, तो उसके लिए उचित आचरण के गुण का पालन करना असंभव है। (2) उचित आचरण के गुण का पालन किए बिना, उसके लिए प्रशिक्षु के गुण का पालन करना असंभव है। (3) प्रशिक्षु के गुण का पालन किए बिना, उसके लिए सद्गुणों के समूह का पालन करना असंभव है। (4) सद्गुणों के समूह का पालन किए बिना, उसके लिए एकाग्रता के समूह का पालन करना असंभव है। (5) समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) के समूह का पालन किए बिना, उसके लिए पन्ना (दिव्य ज्ञान) के समूह का पालन करना असंभव है।

"(1) परन्तु, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आदरपूर्ण और विनम्र होता है, और उसका व्यवहार अपने साथी भिक्षुओं के अनुकूल होता है, तो वह उचित आचरण के गुण को पूरा कर सकता है। (2) उचित आचरण के गुण को पूरा करने के बाद, वह प्रशिक्षु के गुण को पूरा कर सकता है। (3) प्रशिक्षु के गुण को पूरा करने के बाद, वह सद्गुणों के समूह को पूरा कर सकता है। (4) सद्गुणों के समूह को पूरा करने के बाद, वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के समूह को पूरा कर सकता है। [16] (5) समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के समूह को पूरा करने के बाद, वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) के समूह को पूरा कर सकता है।"

---

23 दोष (उपक्किलेशा संस्कृत उपक्लेश)

भिक्षुओं, 984 सोने में ये पाँच दोष होते हैं, जिनके कारण सोना लचीला, सुचारु और चमकदार नहीं रहता, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। वे पाँच कौन से हैं? लोहा, तांबा, टिन, सीसा और चांदी। ये सोने के पाँच दोष हैं, जिनके कारण सोना लचीला, सुचारु और चमकदार नहीं रहता, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। लेकिन जब सोना इन पाँच दोषों से मुक्त हो जाता है, तो वह लचीला, सुचारु और चमकदार हो जाता है, लचीला और काम के लिए उपयुक्त हो जाता है। तब उससे किसी भी प्रकार का आभूषण बनाना चाहे—चाहे कंगन हो, झुमके हों, हार हो या सोने की माला—वह अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। 985

भिक्षुओं, मन में पाँच प्रकार के दोष होते हैं, जिनसे दूषित मन लचीला, सुगम और प्रकाशमान नहीं रहता, बल्कि भंगुर और उचित रूप से समाधि में लीन नहीं हो पाता, जिससे दोषों का नाश नहीं हो पाता। वे पाँच कौन से हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, सुस्ती और उन्मत्तता, बेचैनी और पश्चाताप, और संशय। ये मन के पाँच दोष हैं, जिनसे दूषित मन लचीला, सुगम और प्रकाशमान नहीं रहता, बल्कि भंगुर और उचित रूप से समाधि में लीन नहीं हो पाता, जिससे दोषों का नाश नहीं हो पाता। परन्तु जब मन इन पाँच दोषों से मुक्त हो जाता है, तो वह लचीला, सुगम, प्रकाशमान, कोमल और उचित रूप से समाधि में लीन हो जाता है, जिससे दोषों का नाश होता है। तब, उपयुक्त आधार होने पर, व्यक्ति किसी भी अनुभूति को प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली अवस्था, जिसकी ओर मन को प्रेरित किया जा सकता है। 986

यदि कोई यह इच्छा करे: 'काश मैं अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग कर सकूँ; एक होकर अनेक बन सकूँ; अनेक होकर एक बन सकूँ; प्रकट और लुप्त हो सकूँ; किसी दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार अंतरिक्ष की तरह निर्बाध रूप से जा सकूँ; पृथ्वी में जल की तरह समाहित और बहिर्मुख हो सकूँ; जल पर पृथ्वी की तरह बिना डूबे चल सकूँ; पालथी मारकर पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण कर सकूँ; अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहला सकूँ; शरीर पर ब्रह्म जगत तक भगवानत्व प्राप्त कर सकूँ।' तो उपयुक्त आधार होने पर वह इसे साकार करने में सक्षम है।

"यदि कोई यह इच्छा करे: 'क्या मैं, दिव्य श्रवण शक्ति के साथ, जो शुद्ध है और मानवीय श्रवण शक्ति से परे है, दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकता हूँ, दिव्य और मानवीय, दूर और पास की ध्वनियों को, तो उपयुक्त आधार होने पर वह इसे साकार करने में सक्षम है।"

यदि कोई चाहे तो: 'मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से समाहित करके समझ सकूँ। मैं कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; [18] घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को मोह से रहित मन के रूप में समझ सकूँ; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझ सकूँ; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझ सकूँ; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपरिभाज्य मन को अपरिभाज्य समझ सकूँ; आत्ममग्न मन को आत्ममग्न और असामंजस्यपूर्ण मन को असामहिता; मुक्त मन मुक्त ही रहता है और अमुक्त मन अमुक्त ही रहता है; उपयुक्त आधार होने पर व्यक्ति इसे अनुभव करने में सक्षम होता है।

यदि कोई चाहे तो: 'क्या मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद कर सकता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के विघटन के अनेक युग, संसार के विकास के अनेक युग, संसार के विघटन और संसार के विकास के अनेक युग इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु होती थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु होती थी; वहाँ से गुजरकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ" — क्या मैं इस प्रकार अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) के पहलुओं और विवरणों को याद कर सकता हूँ, उपयुक्त आधार होने पर इसे महसूस किया जा सकता है। [19]

यदि कोई चाहे तो: 'क्या मैं, अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझ सकता हूँ कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं;' परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का पालन किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं" — इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैं प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझ सकूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं, उपयुक्त आधार होने पर इसे अनुभव किया जा सकता है।

यदि कोई चाहे: "मैं दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सकूँ, और उसमें प्रवेश करने के बाद, उसमें निवास कर सकूँ, तो उपयुक्त आधार होने पर वह इसे अनुभव करने में सक्षम है।"

24 अनैतिक (दुस्सिल)

भिक्षुओं (सन्यासियों), (1) अनैतिक व्यक्ति के लिए, सद्गुणों से रहित व्यक्ति के लिए, (2) सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) अपने निकटवर्ती कारण से वंचित हो जाती है। जब सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) नहीं होती, तो सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से रहित व्यक्ति के लिए, (3) चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन अपने निकटवर्ती कारण से वंचित हो जाता है। जब चीजों के

वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन नहीं होता, तो चीजों के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान और दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन संस्कृत: यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) से रहित व्यक्ति के लिए, (4) विरंजक और वैराग्य अपने निकटवर्ती कारण से वंचित हो जाते हैं। जब विरंजक और वैराग्य नहीं होते, तो विरंजक और वैराग्य से रहित व्यक्ति के लिए, (5) मुक्ति के ज्ञान और दर्शन अपने निकटवर्ती कारण से वंचित हो जाते हैं। 987

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्ते कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; उसकी छाल, [20] कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं। ठीक उसी प्रकार, एक अनैतिक व्यक्ति, जो सद्गुणों से रहित है, के लिए उचित एकाग्रता अपने मूल कारण से वंचित रहती है। जब उचित समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) नहीं होती... तो मुक्ति का ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) अपने मूल कारण से वंचित रहता है।

भिक्षुओं, (1) एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी हो, (2) सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) उसका निकटतम कारण है। जब सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) हो, तो सही समाधि प्राप्त व्यक्ति के लिए, (3) चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन उसका निकटतम कारण है। जब चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन हो (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन), तो चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन प्राप्त व्यक्ति के लिए, (4) निब्बिदा और वैराग्य उसका निकटतम कारण है। जब विरग्य और वैराग्य हो, तो विरग्य और वैराग्य प्राप्त व्यक्ति के लिए, (5) मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका निकटतम कारण है।

मान लीजिए एक पेड़ है जिसमें शाखाएँ और पत्ते हैं। फिर उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक उसी प्रकार, एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी है, सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) उसका मूल कारण है। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) होती है... तब मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका मूल कारण होता है।

---

25 सहायता प्राप्त (अनुगहिता)

भिक्षुओं, जब सही दृष्टिकोण पाँच कारकों द्वारा समर्थित होता है, तो इसका फल मन की मुक्ति होता है, मन की मुक्ति इसका फल और लाभ दोनों है; इसका फल पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति इसका फल और लाभ दोनों है। 988 वे पाँच क्या हैं? [21] यहाँ, सही दृष्टिकोण सद्गुणी आचरण, विद्या, चर्चा, शांति और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) द्वारा समर्थित है। जब सही दृष्टिकोण इन पाँच कारकों द्वारा समर्थित होता है, तो इसका फल मन की मुक्ति होता है, मन की मुक्ति इसका फल और लाभ दोनों है; इसका फल पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति इसका फल और लाभ दोनों है।

---

26 मुक्ति (विमुत्तयातन)

भिक्षुओं, मुक्ति के ये पाँच आधार हैं, जिनके माध्यम से यदि कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर निवास करता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविभाजित दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, और वह बंधन से अब तक अछूती, अतुलनीय मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वे पाँच कौन से हैं?

(1) "यहाँ, हे भिक्षुओं, गुरु या गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु किसी भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है। गुरु या गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु जिस भी प्रकार से भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है, ठीक उसी प्रकार भिक्षु को धम्म के अर्थ और धम्म में प्रेरणा का अनुभव होता है। 990 ऐसा करने पर, उसमें आनंद उत्पन्न होता है। जब वह आनंदित होता है, तो उसे परमानंद (पीति) प्राप्त होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि/समाहित) हो जाता है। 991 यही मुक्ति का पहला आधार है, जिसके माध्यम से यदि कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविभाजित दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, और वह बंधन से अब तक प्राप्त न हुई अतुलनीय सुरक्षा को प्राप्त कर लेता है।"

(2) "फिर, न तो गुरु और न ही गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु किसी भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है, बल्कि वह स्वयं दूसरों को उसी प्रकार विस्तार से धम्म की शिक्षा देता है जैसा उसने सुना और सीखा है; जिस भी प्रकार से भिक्षु [22] दूसरों को उसी प्रकार विस्तार से धम्म की शिक्षा देता है जैसा उसने सुना और सीखा है, ठीक उसी प्रकार, उस धम्म के संबंध में, वह धम्म के अर्थ में प्रेरणा और धम्म में प्रेरणा का अनुभव करता है। ऐसा करने पर, उसमें आनंद उत्पन्न होता है: जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन आत्म-मग्न (समाधि/समाहित) हो जाता है। यह मुक्ति का दूसरा आधार है, जिसके माध्यम से, यदि कोई भिक्षु सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविघटित दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, और वह मुक्ति की अवस्था में पहुँच जाता है। गुलामी से अब तक अप्रतिम, अद्वितीय सुरक्षा।

(3) "फिर, न तो गुरु और न ही गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु किसी भिक्षु को धम्म का उपदेश देता है, और न ही वह स्वयं दूसरों को धम्म (मार्ग) का विस्तृत उपदेश देता है जैसा उसने सुना और सीखा है, बल्कि वह धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। भिक्षु जिस भी प्रकार से धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, ठीक उसी प्रकार, उस धम्म के संबंध में, वह धम्म के अर्थ में प्रेरणा और धम्म में प्रेरणा का अनुभव करता है। ऐसा करने पर, उसमें आनंद उत्पन्न होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि) में लीन हो जाता है। यह मुक्ति का तीसरा आधार है, जिसके माध्यम से, यदि कोई भिक्षु सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसका अविनाशी मन..." सभी कलंक पूरी तरह से नष्ट हो जाते हैं, और वह अब तक अछूती, अद्वितीय बंधन से मुक्ति की सुरक्षा प्राप्त कर लेता है।

(4) "फिर, न तो गुरु और न ही गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु किसी भिक्षु को धम्म की शिक्षा देता है, न ही वह दूसरों को धम्म की विस्तृत शिक्षा देता है जैसा उसने सुना और सीखा है, न ही वह धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, बल्कि वह धम्म पर मनन करता है, {23] उसकी परीक्षा लेता है और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। भिक्षु जिस भी प्रकार से धम्म पर मनन करता है, उसकी परीक्षा लेता है और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, ठीक उसी प्रकार, उस धम्म के संबंध में, वह धम्म के अर्थ में प्रेरणा और धम्म में प्रेरणा का अनुभव करता है। ऐसा करने पर, उसमें आनंद उत्पन्न होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि) में लीन हो जाता है। यह मुक्ति का चौथा आधार है, जिसके माध्यम से, यदि कोई भिक्षु जब वह सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी हो जाता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अनसुलझे दोष पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं, और वह बंधन से अब तक अछूती, अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त कर लेता है।

(5) "फिर, न तो गुरु और न ही गुरु के पद पर आसीन कोई साथी भिक्षु किसी भिक्षु को धम्म (मार्ग) सिखाता है, न ही वह दूसरों को धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, न ही वह धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, न ही वह धम्म पर मनन, परीक्षण और मानसिक निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, बल्कि उसने समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के किसी विशेष विषय को भली-भांति ग्रहण किया है, उस पर भली-भांति ध्यान दिया है, उसे भली-भांति बनाए रखा है और उसमें पन्ना (दिव्य ज्ञान) से भली-भांति प्रवेश किया है। जिस भी प्रकार से भिक्षु ने समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के किसी विशेष विषय को भली-भांति ग्रहण किया है, उस पर भली-भांति ध्यान दिया है, उसे भली-भांति बनाए रखा है और उसमें पन्ना (दिव्य ज्ञान) से भली-भांति प्रवेश किया है, ठीक उसी प्रकार, उस धम्म के संबंध में, वह अर्थ में प्रेरणा और धम्म में प्रेरणा का अनुभव करता है। ऐसा करने पर, उसमें आनंद उत्पन्न होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होती है। परमानंदित व्यक्ति के लिए मन शांत हो जाता है, शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर सुख का अनुभव होता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि में लीन हो जाता है। यह मुक्ति का पाँचवाँ आधार है, जिसके द्वारा यदि कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, [24] तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविभाजित दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, और वह बंधन से अब तक अप्राप्त अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त कर लेता है।

"हे भिक्षुओं, ये मुक्ति के पाँच आधार हैं, जिनके माध्यम से यदि कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर रहता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविभाजित दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, और वह बंधन से अब तक अप्राप्त अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त कर लेता है।"

---

27 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन अवस्था)

"भिक्षु (सन्यासी), सजग और सचेत रहकर (ध्यान/सती अवस्था में) असीम समाधि (स्व-लीन/सता) प्राप्त करते हैं। 992 जब आप सजग और सचेत रहकर (ध्यान/सती अवस्था में) असीम एकाग्रता प्राप्त करते हैं, तो पाँच प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होते हैं जो व्यक्तिगत रूप से आपके होते हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न होने वाला ज्ञान: 'यह समाधि (स्व-लीन/सता) वर्तमान में सुखद है और भविष्य में इसका परिणाम सुखद होगा' (2) व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न होने वाला ज्ञान: 'यह समाधि (स्व-लीन/सता) श्रेष्ठ और आध्यात्मिक है' (3) व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न होने वाला ज्ञान: 'यह समाधि (स्व-लीन/सता) नीच व्यक्तियों द्वारा अभ्यास नहीं की जाती है' (4) व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न होने वाला ज्ञान: 'यह समाधि (स्व-लीन/सता) शांत और उदात्त है, पूर्ण शांति से प्राप्त होती है, और एकीकरण तक पहुँचती है; इसे बलपूर्वक [अपवित्रताओं] को दबाकर नियंत्रित या रोका नहीं जाता है।" 3 (5) वह ज्ञान उत्पन्न होता है जो व्यक्तिगत रूप से आपका है: 'मैं इस समाधि (स्व-लीन/सत्त्व) में सचेत रूप से प्रवेश करता हूँ और सचेत रूप से इससे बाहर निकलता हूँ।' भिक्षुओं, सजग और निरंतर सचेत (ध्यान/सती) रहते हुए, असीम समाधि (स्व-लीन/सत्त्व) विकसित करते हैं। जब आप सजग और सचेत (ध्यान/सती) रहते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सत्त्व) विकसित करते हैं, तो ये पाँच प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होते हैं जो व्यक्तिगत रूप से आपके हैं।" [25]

---

28 पंचगुणित (पंचांगिका)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें पंचगुणित सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के विकास का शिक्षण दूंगा। 995 ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और भिक्षुओं, पांच कारकों वाली सही समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) का विकास क्या है?"

(1) "यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, जिसमें चिंतन और आत्मनिरीक्षण शामिल होता है। वह एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख को अपने शरीर में इस प्रकार समाहित करता है कि उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग ऐसा न रहे जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख से अछूता रहे। जैसे एक कुशल स्नान कराने वाला या उसका प्रशिक्षु धातु के पात्र में स्नान पाउडर का ढेर लगाता है और धीरे-धीरे पानी छिड़कते हुए उसे तब तक गूंथता है जब तक कि नमी उसके पाउडर के गोले को गीला न कर दे, उसे पूरी तरह से भिगो न दे और अंदर-बाहर तक समाहित न कर दे, फिर भी गोला रिसता नहीं है; उसी प्रकार, भिक्षु एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख को अपने शरीर में इस प्रकार समाहित करता है कि उनके पूरे शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं है जो एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और सुख से अछूता हो। यही उत्तम पंचगुणित समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) का प्रथम विकास है।

(2) "फिर, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, भिक्षु दूसरी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की जलन से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होती है, बिना विचार और परीक्षा के। वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख को अपने शरीर में इस प्रकार समाहित कर लेता है कि उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग ऐसा नहीं रह जाता जो समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख से अछूता हो। जैसे मान लीजिए कोई झील है जिसका जल नीचे से ऊपर की ओर आता है और पूर्व, पश्चिम, उत्तर, [26] या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और झील समय-समय पर वर्षा से भरती नहीं है, तो झील में

ऊपर से फूटने वाला ठंडा जल झील को इस प्रकार समाहित कर लेता है कि झील में पानी भर जाता है। संपूर्ण झील का कोई भी भाग शीतल जल से अछूता न रहे; उसी प्रकार भिक्षु समाधि से उत्पन्न परमानंद और सुख को अपने शरीर में व्याप्त कर लेता है, जिससे उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग समाधि से उत्पन्न परमानंद और सुख से अछूता न रह जाए। यही उत्तम पंचगुणित समाधि का दूसरा विकास है।

(3) "फिर, जब पीति (आनंद) भी लुप्त हो जाती है, तो भिक्षु समभाव में रहता है और सती (ध्यान करते हुए) और पूर्णतः बोध रखते हुए, वह शरीर के साथ सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान (सता) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में रहने वाला, सती (ध्यान करते हुए) और सुखी है।' वह निर्धन आनंद (पीति) को इस शरीर में इस प्रकार समाहित कर देता है कि उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग निर्धन आनंद (पीति) से अछूता नहीं रह जाता। जैसे नीले, लाल या सफेद कमलों से भरे तालाब में, कुछ कमल जो पानी में ही जन्म लेते हैं और बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और उससे बाहर नहीं निकलते, और ठंडा पानी उन्हें जड़ से लेकर सिरे तक भिगोकर रख देता है, जिससे उन कमलों का कोई भी भाग ठंडा पानी से अछूता नहीं रह जाता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु निर्धन आनंद (पीति) को इस शरीर में इस प्रकार समाहित कर देता है कि उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग निर्धन आनंद (पीति) से अछूता नहीं रह जाता। यह पांच गुणों वाली सही समाधि (स्व-लीनता/समाधि) का तीसरा विकास है।

(4) "फिर, सुख [27] और दुख के त्याग के साथ, और पहले से ही आनंद और निराशा के बीत जाने के साथ, एक भिक्षु चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती/ध्यान) का शुद्धिकरण होता है।"

वह शुद्ध प्रकाशमान मन से इस शरीर में व्याप्त होकर बैठता है, जिससे उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शुद्ध प्रकाशमान मन से अछूता नहीं रहता। जैसे कोई व्यक्ति सिर से नीचे तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो, जिससे उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग सफेद कपड़े से अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध प्रकाशमान मन से इस शरीर में व्याप्त होकर बैठता है, जिससे उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शुद्ध प्रकाशमान मन से अछूता नहीं रहता। यह उत्तम पंचगुणित समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) का चौथा विकास है।

(5) "एक भिक्षु ने पुनरावलोकन के विषय को भली-भांति ग्रहण कर लिया है, उस पर भली-भांति ध्यान दिया है, उसे भली-भांति बनाए रखा है और उसमें पन्ना (दिव्य ज्ञान) का भली-भांति प्रवेश किया है। जैसे एक व्यक्ति दूसरे को देखता है—जैसे खड़ा व्यक्ति बैठे हुए व्यक्ति को देखता है, या बैठा हुआ व्यक्ति लेटे हुए व्यक्ति को देखता है—वैसे ही, एक भिक्षु ने पुनरावलोकन के विषय को भली-भांति ग्रहण कर लिया है, उस पर भली-भांति ध्यान दिया है, उसे भली-भांति बनाए रखा है और उसमें पन्ना (दिव्य ज्ञान) का भली-भांति प्रवेश किया है। यह पांच कारकों वाली उत्तम समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) का पांचवा विकास है।"

जब भिक्षुओं ने इस प्रकार से उत्तम पंचगुणित समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का विकास और अभ्यास कर लिया हो, तब उपयुक्त आधार होने पर वे प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं, जिस ओर वे अपना मन लगाते हैं। 997

मान लीजिए कि एक स्टैंड पर पानी से भरा एक जग रखा है, जो पानी से लबालब भरा है ताकि कौवे उसमें से पानी पी सकें। यदि कोई बलवान व्यक्ति उसे किसी भी दिशा में झुकाए, तो क्या पानी बाहर आएगा?

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब श्रेष्ठ पंचगुणित सही समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तो उपयुक्त आधार होने पर, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है, जिसकी ओर वह अपना मन झुकाता है।"

"मान लीजिए समतल जमीन पर एक चार-तरफा तालाब है, जो एक तटबंध से घिरा हुआ है और पानी से लबालब भरा हुआ है, जिससे कौवे भी पानी पी सकते हैं। यदि कोई बलवान व्यक्ति किसी भी तरफ से तटबंध हटा दे, तो क्या पानी बाहर आएगा?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब इस प्रकार से उत्तम पंचगुणित सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) विकसित और पोषित हो जाती है, तब उपयुक्त आधार होने पर, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है, जिसकी ओर वह अपना मन झुकाए।"

मान लीजिए कि एक समतल चौराहे पर, उत्तम नस्ल के घोड़ों से जुता हुआ एक रथ खड़ा है, जिसके हाथ में अंकुश तैयार है, ताकि एक कुशल प्रशिक्षक, सारथी, उस पर सवार होकर, अपने बाएं हाथ में लगाम और दाएं हाथ में अंकुश लेकर, जब चाहे और जहां चाहे जा सके और लौट सके। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब इस प्रकार से श्रेष्ठ पंचगुणित सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) विकसित और पोषित हो जाती है, तो उपयुक्त आधार होने पर, वह प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है, जिसकी ओर वह अपना मन लगाता है।

"यदि वह चाहे: 'मैं अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग कर सकूँ: [29] [जैसा कि 5:23 में है] एक होकर अनेक हो जाऊँ; अनेक होकर एक हो जाऊँ; प्रकट और लुप्त हो जाऊँ; बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत से होकर अंतरिक्ष में जा सकूँ; पृथ्वी में ऐसे गोता लगा सकूँ जैसे वह जल हो; जल पर बिना डूबे ऐसे चल सकूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा कर सकूँ; अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहला सकूँ; ब्रह्म जगत तक शरीर पर भगवानत्व स्थापित कर सकूँ।' तो उपयुक्त आधार होने पर व्यक्ति इसे साकार करने में सक्षम है।"

यदि कोई चाहे तो: 'मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझ सकूँ। मैं कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; [18] घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में और निर्जन मन को निर्जन मन के रूप में समझ सकूँ; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझ सकूँ; उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी समझ सकूँ; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपोमुखी मन को अपोमुखी समझ सकूँ; आत्ममग्न मन को आत्ममग्न और असामंजस्यपूर्ण मन को असामहिता; मुक्त मन मुक्त ही रहता है और अमुक्त मन अमुक्त ही रहता है; उपयुक्त आधार होने पर व्यक्ति इसे अनुभव करने में सक्षम होता है।

यदि कोई चाहे तो: 'क्या मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद कर सकता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के विघटन के अनेक युग, संसार के विकास के अनेक युग, संसार के विघटन और संसार के विकास के अनेक युग इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु होती थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु होती थी; वहाँ से गुजरकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ है" - क्या मैं इस प्रकार अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके पहलुओं और विवरणों सहित याद कर सकता हूँ, उपयुक्त आधार होने पर इसे अनुभव किया जा सकता है।

यदि कोई चाहे तो: 'क्या मैं, अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझ सकता हूँ कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं;' परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का पालन किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं" — इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैं प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझ सकूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं, उपयुक्त आधार होने पर इसे अनुभव किया जा सकता है।

यदि कोई चाहे: "मैं दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सकूँ, और उसमें प्रवेश करने के बाद, उसमें निवास कर सकूँ, तो उपयुक्त आधार होने पर वह इसे अनुभव करने में सक्षम है।"

---

29. चलते हुए ध्यान (चंकमा संस्कृत: चंकरामना)

भिक्षुओं, चलने-फिरने वाली ध्यान साधना के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? [30] व्यक्ति यात्रा करने में सक्षम हो जाता है; वह प्रयास करने में सक्षम हो जाता है; वह स्वस्थ हो जाता है; जो कुछ खाया, पिया, ग्रहण किया और चखा है, वह ठीक से पच जाता है; चलने-फिरने वाली ध्यान साधना से प्राप्त समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) दीर्घकालिक होती है। 998 ये चलने-फिरने वाली ध्यान साधना के पाँच लाभ हैं।

---

30 नागिता

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसलवासियों के बीच भ्रमण कर रहे थे, जब वे इच्छानंगला नामक कोसल के ब्राह्मण गाँव में पहुँचे। वहाँ भगवान (बुद्ध) इच्छानंगला के घने वन में निवास कर रहे थे। इच्छानंगला के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: "ऐसा कहा जाता है कि शाक्य वंश से निकले तपस्वी गौतम इच्छानंगला पहुँच गए हैं और अब इच्छानंगला के घने वन में निवास कर रहे हैं। अब उस गुरु गौतम के बारे में यह शुभ सूचना फैली है कि 'वह भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इस संसार को, इसके देवताओं, मार और ब्रह्मा सहित, इस जनसंख्या को, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, जान लिया है और इसे दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं। वे ऐसे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं। ऐसे अरहंतों को देखना सौभाग्य की बात है।

फिर, जब रात बीत गई, तो इच्चानंगला के ब्राह्मण गृहस्थों ने तरह-तरह का भोजन लेकर इच्चानंगला के घने जंगल में चले गए। वे प्रवेश द्वार के बाहर शोर मचाते हुए खड़े हो गए। [31] उस समय पूज्य नागिता भगवान (बुद्ध) के सेवक थे। भगवान (बुद्ध) ने पूज्य नागिता से कहा, "नागीता, इतना शोर कौन मचा रहा है? ऐसा लगता है जैसे मछुआरे मछली पकड़ने आए हों।"

"भंते, ये इच्छानंगल के ब्राह्मण गृहस्थ हैं जो अनेक प्रकार का प्रचुर भोजन लेकर आए हैं। वे प्रवेश द्वार के बाहर खड़े हैं, [इसे] भगवान (बुद्ध) और भिक्षुओं के संघ को अर्पित करने की इच्छा से।"

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग का यह आनंद, एकांत का आनंद, शांति का आनंद, ज्ञान का यह आनंद प्राप्त नहीं करता, वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार करे।"

हे भंते, अब भगवान (बुद्ध) की सहमति हो, हे सौभाग्यशाली, अब भगवान (बुद्ध) की सहमति का समय आ गया है। अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। जैसे जब भारी बारिश की बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता है, वैसे ही अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि भगवान (बुद्ध) का आचरण सदाचारी है और उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त है।

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले, और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग के इस आनंद को प्राप्त नहीं करता... वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार कर सकता है। [32]

(1) नागिता, जो कुछ खाया, पिया, ग्रहण किया और चखा जाता है, अंततः मल-मूत्र के रूप में निकल जाता है: यही उसका परिणाम है। (2) प्रिय वस्तुओं के परिवर्तन और रूपांतरण से दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा उत्पन्न होती है: यही उसका परिणाम है। (3) जो व्यक्ति अनाकर्षकता के चिह्न पर ध्यान लगाता है, उसमें सुंदरता के चिह्न के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है: यही उसका परिणाम है। (4) जो व्यक्ति छह इंद्रियों के संपर्क के लिए अनित्यता (अनित्यता) को ध्यान से देखता है, उसमें संपर्क के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है: यही उसका परिणाम है। (5) जो व्यक्ति आसक्ति के अधीन पांच स्कंधों में उत्पन्न होने और लुप्त होने को ध्यान से देखता है, उसमें आसक्ति के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है: यही उसका परिणाम है।

IV. सुमना-वग्गो

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 सुमाना

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब राजकुमारी सुमना, दस सौ सैनिकों, पाँच सौ रथों और पाँच सौ दरबारी कन्याओं के साथ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचीं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। फिर राजकुमारी सुमना ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे भंते, यहाँ भगवान (बुद्ध) के दो शिष्य आस्था, सद्गुण और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में समान हो सकते हैं, लेकिन एक उदार है जबकि दूसरा नहीं। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन [33] के साथ, वे दोनों एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेंगे। जब वे देव (देवदूत/भगवान) बन जाएंगे, तो क्या उनमें कोई भेद या अंतर रह जाएगा?"

“सुमन, ऐसा होगा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। “उदार पुरुष, देव (देवदूत/भगवान) बनकर, पाँच प्रकार से अन्य पुरुषों से श्रेष्ठ होगा: दिव्य आयु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य महिमा और दिव्य अधिकार। उदार पुरुष, देव (देवदूत/भगवान) बनकर, इन पाँचों प्रकार से अन्य पुरुषों से श्रेष्ठ होगा।”

"लेकिन, भंते, अगर ये दोनों वहां से चले जाएं और फिर से मनुष्य बन जाएं, तो क्या उनमें अभी भी कोई भेद या अंतर रह जाएगा?"

“सुमन, ऐसा होगा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। “जब वे पुनः मनुष्य बनेंगे, तो उदार व्यक्ति पाँच प्रकार से दूसरे से श्रेष्ठ होगा: मानव आयु, मानव सौंदर्य, मानव सुख, मानव विनम्रता और मानव अधिकार। जब वे पुनः मनुष्य बनेंगे, तो उदार व्यक्ति इन पाँच प्रकार से दूसरे से श्रेष्ठ होगा।”

लेकिन, भंते, यदि ये दोनों गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले जाएं, तो क्या उनमें अभी भी कोई भेद या अंतर रह जाएगा?

"ऐसा होगा, सुमना," भगवान (बुद्ध) ने कहा। उदार व्यक्ति, संन्यासी जीवन में जाने के बाद, पाँच प्रकार से दूसरों से श्रेष्ठ होगा। 1001 (1) वह सामान्यतः वही वस्त्र धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, और शायद ही कभी ऐसा वस्त्र धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो। (2) वह सामान्यतः वही भिक्षा भोजन ग्रहण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, और शायद ही कभी ऐसा भिक्षा भोजन ग्रहण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो। (3) वह सामान्यतः वही आवास धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, और शायद ही कभी ऐसा आवास धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो। (4) वह सामान्यतः वही औषधियाँ और बीमारों के लिए वही भोजन सामग्री धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट की गई हो, और शायद ही कभी ऐसी औषधियाँ और भोजन सामग्री धारण करेगा जो उसे विशेष रूप से भेंट न की गई हो। (5) उसके साथी संन्यासी, जिनके साथ वह रहता है, सामान्यतः शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाओं द्वारा उसके साथ सुखद व्यवहार करेंगे, शायद ही कभी

अप्रिय व्यवहार करेंगे। वे सामान्यतः उसे वही भेंट करेंगे जो उसे पसंद हो, शायद ही कभी अप्रिय भेंट करेंगे। उदार व्यक्ति, संन्यासी जीवन में जाने के बाद जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] प्रवेश करेगा, वह इन पांच तरीकों से दूसरों से श्रेष्ठ होगा।

लेकिन, भंते, यदि दोनों अरहंत पद प्राप्त कर लें, तो क्या अरहंत पद प्राप्त करने के बाद भी उनमें कोई भेद या अंतर रह जाएगा?

"इस मामले में, सुमना, मैं घोषणा करता हूँ, एक की मुक्ति और दूसरे की मुक्ति में कोई अंतर नहीं होगा।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, भंते! सचमुच, दान देने और पुण्य कर्म करने का अच्छा कारण है, क्योंकि ये कर्म तब सहायक होंगे जब कोई देव (देवदूत/भगवान) बनेगा, [पुनः] मनुष्य बनेगा, या प्राण त्याग देगा।"

"ऐसा ही है, सुमना! ऐसा ही है, सुमना! सचमुच, दान देने और पुण्य कर्म करने का अच्छा कारण है, क्योंकि ये कर्म तब सहायक होंगे जब कोई देव (देवदूत/भगवान) बनेगा, [पुनः] मनुष्य बनेगा, या प्राण त्याग देगा।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहने के बाद, गुरु सुगत (भगवान बुद्ध) ने आगे यह कहा:

"जैसे अंतरिक्ष के गोले में गतिमान निर्मल चंद्रमा

अपनी चमक से

दुनिया के सभी तारों को फीका कर देता है,"

अत: सदाचारी आचरण में निपुण,

आस्थावान व्यक्ति,

उदारता के मामले में

संसार के सभी कंजूसों से कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है।

"जैसे सौ चोटियों वाला वर्षा बादल,

गरजता हुआ, बिजली से घिरा हुआ,

धरती पर वर्षा बरसाता है,

मैदानों और निचले इलाकों को जलमग्न कर देता है,

वैसे ही पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य,

दूरदृष्टि से परिपूर्ण बुद्धिमान व्यक्ति, पांच विशिष्ट मामलों में

कंजूस व्यक्ति से श्रेष्ठ होता है : दीर्घायु और यश, सौंदर्य और सुख। [1002] धनवान होकर, मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।"

---

32 कुंडी [1003]

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। तब राजकुमारी चुंडी, पाँच सौ रथों और पाँच सौ दरबारी महिलाओं के साथ, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचीं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। फिर राजकुमारी चुंडी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, मेरे भाई राजकुमार चुंडा हैं। वे कहते हैं: 'जब भी कोई पुरुष या स्त्री बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है और जीवन-विनाश, अनधिकृत वस्तुओं के सेवन, यौन दुराचार, झूठी वाणी और आलस्य के मूल कारण मदिरा, शराब और मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहता है, तो मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर उसका पुनर्जन्म केवल अच्छे स्थान पर होता है, बुरे स्थान पर नहीं। मैं भगवान (बुद्ध) से पूछता हूँ: 'हे भंते, किस प्रकार के गुरु पर विश्वास करना चाहिए, ताकि मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर उसका पुनर्जन्म केवल अच्छे स्थान पर हो, बुरे स्थान पर नहीं? किस प्रकार के धम्म पर विश्वास करना चाहिए, ताकि मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर उसका पुनर्जन्म केवल अच्छे स्थान पर हो, बुरे स्थान पर नहीं? किस प्रकार के संघ पर विश्वास करना चाहिए, ताकि मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर उसका पुनर्जन्म केवल अच्छे स्थान पर हो, बुरे स्थान पर नहीं। क्या बुरा गंतव्य? किस प्रकार का पुण्य कर्म करना चाहिए ताकि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, व्यक्ति का पुनर्जन्म केवल अच्छे गंतव्य में हो, न कि बुरे गंतव्य में?

(1) "चुंडी, चाहे कितने भी प्राणी हों, चाहे वे बिना पैरों वाले हों या दो पैरों वाले, चार पैरों वाले या अनेक पैरों वाले, चाहे वे सजीव हों या निराकार, चाहे वे बोधगम्य हों या अबोधगम्य हों या न बोधगम्य हों, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, उन सब में श्रेष्ठ घोषित किए जाते हैं। जो बुद्ध पर विश्वास रखते हैं, वे श्रेष्ठ पर विश्वास रखते हैं, और जो श्रेष्ठ पर विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम श्रेष्ठ ही होता है।"

(2) "हे चुंडी, जहाँ तक धर्म (धर्म) की परिबद्धता है, वहाँ तक श्रेष्ठ अष्टमार्ग सर्वोपरि है। जो श्रेष्ठ अष्टमार्ग में विश्वास रखते हैं, वे सर्वोपरि धर्म में विश्वास रखते हैं, और जो सर्वोपरि धर्म में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम भी सर्वोपरि होता है।"

(3) "हे चुंडी, चाहे धम्म किसी भी प्रकार की घटना हो, चाहे वह सशर्त हो या निर्शर्त, उनमें वैराग्य सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वथा सर्वनाश, प्यास का नाश, आसक्ति का उखाड़ना, चक्र का अंत, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निब्बान, निर्वाण। जो [36] धम्म में, वैराग्य में विश्वास रखते हैं, वे सर्वथा सर्वथा में विश्वास रखते हैं, और जो सर्वथा सर्वथा में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम सर्वथा सर्वथा होता है।"

(4) हे चुंडी, जितने भी संघ या समूह हैं, तथागत (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित किया गया है, अर्थात् चारों युग्मों, आठ प्रकार के व्यक्तियों में—भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। जो संघ में विश्वास रखते हैं, वे श्रेष्ठ संघ में विश्वास रखते हैं, और जो श्रेष्ठ संघ में विश्वास रखते हैं, उनका परिणाम श्रेष्ठ होता है।

(5) "हे चुंडी, जहाँ तक सद्‌गुण का भाव है, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा प्रिय सद्‌गुण ही उनमें श्रेष्ठ घोषित किया गया है, अर्थात् वह सद्‌गुण अटूट, दोषरहित, निष्कलंक, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अगोचर और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला हो। जो लोग श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा प्रिय सद्‌गुण का पालन करते हैं, वे श्रेष्ठ सद्‌गुण का पालन करते हैं, और जो लोग श्रेष्ठ सद्‌गुण का पालन करते हैं, उनका परिणाम भी श्रेष्ठ होता है।"

जो लोग सर्वोत्कृष्ट

धम्म को जानने में विश्वास रखते हैं, जो सर्वोत्कृष्ट

बुद्ध में विश्वास रखते हैं, जो

अतुलनीय हैं और भेंट के योग्य हैं;

जो लोग सर्वोत्कृष्ट धम्म में विश्वास रखते हैं,

वैराग्य की आनंदमय शांति में;

जो लोग सर्वोत्कृष्ट संघ में विश्वास रखते हैं,

पुण्य के अतुलनीय क्षेत्र में;

जो लोग श्रेष्ठ व्यक्तियों को उपहार देते हैं, उनके लिए

श्रेष्ठ प्रकार के पुण्य में वृद्धि होती है:

श्रेष्ठ आयु, सौंदर्य और यश,

अच्छी प्रतिष्ठा, सुख और शक्ति।

जो ज्ञानी व्यक्ति सर्वोच्च धर्म का पालन करता है,

सर्वोच्च धर्म पर एकाग्र (समाधि/समाहित) होकर,

देव (देवदूत/भगवान) या मनुष्य बनकर,

सर्वोच्चता प्राप्त करने पर प्रसन्न होता है।

---

33 उगाहा

एक बार भगवान (बुद्ध) भद्दिया में जातीय वन में निवास कर रहे थे। तब मेंदक के पोते उगाह ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, भगवान (बुद्ध) और तीन अन्य भिक्षु 1008 कल का भोजन मुझसे स्वीकार करने के लिए सहमत हों।" [37]

भगवान (बुद्ध) ने मौन रहकर सहमति दी। तब उगाहा ने यह समझकर कि भगवान (बुद्ध) ने सहमति दे दी है, अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

फिर, जब रात बीत गई, तो सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र धारण किया और उगाह के निवास पर गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब, मेंडक के पोते उगाह ने अपने हाथों से भगवान (बुद्ध) को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे और उन्हें तृप्त किया।

जब भगवान (बुद्ध) ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा रख दिया, तो उगाहा एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, मेरी ये बेटियाँ अपने पतियों के परिवारों में जा रही हैं। भगवान (बुद्ध) उन्हें उपदेश दें और मार्गदर्शन करें।"

उन्हें इस तरह से सहायता प्रदान करें जिससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और खुशी प्राप्त हो सके।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उन लड़कियों से कहा:

(1) "तो फिर, लड़कियों, तुम्हें अपने आप को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारे माता-पिता हमें जिस भी पति से मिलाएँ—जो हमारी भलाई की इच्छा से, हमारा कल्याण चाहते हुए, हम पर दया करते हुए, हमारे प्रति करुणा से कार्य करते हुए—हम उसके सामने उठेंगी और उसके पीछे लौटेंगी, जो भी करना आवश्यक हो, उसे करेंगी, हमारा आचरण सुखद और हमारी वाणी मधुर होगी।' तुम्हें अपने आप को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(2) "और तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन लोगों का आदर, सम्मान, आदर और आदर करेंगे जिनका हमारे पति आदर करते हैं— उनके माता-पिता, तपस्वियों और ब्राह्मणों का— और जब वे आएँ तो हम उन्हें आसन और जल प्रदान करेंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(3) "और तुम्हें अपने आप को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने पति के घरेलू कामों में, चाहे बुनाई हो या सिलाई, कुशल और मेहनती होंगे; हम उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनके बारे में सही निर्णय लेंगे।' तुम्हें अपने आप को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(4) "और तुम्हें अपने आप को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम पता लगाएंगे कि हमारे पति के घरेलू सहायकों - चाहे वे दास हों, संदेशवाहक हों या [38] मजदूर हों - ने क्या किया है और क्या नहीं किया है; हम बीमारों की स्थिति का पता लगाएंगे; और हम प्रत्येक को भोजन का उचित हिस्सा वितरित करेंगे।' तुम्हें अपने आप को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(5) "और तुम्हें अपने आप को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने पति द्वारा घर लाई गई हर आय की रक्षा करेंगे—चाहे वह धन हो या अनाज, चाँदी हो या सोना—और हम फिजूलखर्ची नहीं करेंगे; चोर, अपव्ययी या उसकी कमाई को बर्बाद करने वाले नहीं होंगे।' तुम्हें अपने आप को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"हे कन्या, जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह सौम्य शरीर वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेती है।" 1009

वह अपने पति से घृणा नहीं करती,

उस व्यक्ति से जो लगातार उसका साथ देता है,

जो हमेशा उत्साह और उत्सुकता से

उसकी हर इच्छा पूरी करता है।

और न ही अच्छी स्त्री

ईर्ष्या से प्रेरित होकर अपने पति को डांटती है; 1010

बुद्धिमान स्त्री

उन सभी का आदर करती है जिनका उसका पति आदर करता है।

वह सुबह जल्दी उठती है, लगन से काम करती है,

घरेलू नौकरों का प्रबंधन करती है;

वह अपने पति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करती है

और उसकी कमाई की संपत्ति की रक्षा करती है।

जो स्त्री

अपने पति की इच्छाओं और आकांक्षाओं का पालन करते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती है, वह "मनभावन" कहलाने वाले

देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के बीच पुनर्जन्म लेती है ।

---

34 सिहा (सिहा सेनापति सं. सिंघा/शेर)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब सेनापति सिहा {39] भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: 1011

"भंते, क्या दान देने का कोई प्रत्यक्ष फल बता सकते हैं?"

"यही है, सिहा," भगवान (बुद्ध) ने कहा।

(1) "दानदाता, सिहा, उदार दाता, बहुत से लोगों को प्रिय और प्रसन्न करने वाला होता है। यह दान का प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला फल है।"

(2) "फिर, अच्छे लोग एक दाता, एक उदार दाता का सहारा लेते हैं। यह भी दान का प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला फल है।"

(3) "फिर, एक दाता, एक उदार दाता, अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यह भी दान का प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला फल है।"

(4) "फिर, कोई दानदाता, कोई उदार दाता, चाहे वह क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, गृहस्थ हो या तपस्वी हो, जिस भी सभा में उपस्थित होता है, वह आत्मविश्वास और संयम के साथ उपस्थित होता है। 1013 यह भी दान का प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला फल है।"

(5) "फिर, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, एक दाता, एक उदार दाता, एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गीय लोक में पुनर्जन्म लेता है। यह भविष्य के जन्मों से संबंधित दान का फल है।" 1014

जब यह कहा गया, तो सेनापति सिहा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा घोषित दान के उन चार प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले फलों के विषय में उन पर विश्वास नहीं करता। मैं उन्हें भी जानता हूँ। क्योंकि मैं एक दानदाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और मैं बहुतों का प्रिय और प्रशंसनीय हूँ। मैं एक दानदाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और बहुत से अच्छे लोग मेरी शरण में आते हैं। मैं एक दानदाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और मैंने संघ के दानदाता, प्रायोजक और समर्थक के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की है। मैं [40] एक दानदाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और मैं जिस भी सभा में जाता हूँ—चाहे वह क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों की हो—मैं आत्मविश्वास और संयम के साथ जाता हूँ। मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा घोषित दान के उन चार प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले फलों के विषय में उन पर विश्वास नहीं करता। मैं उन्हें भी जानता हूँ। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) मुझसे कहते हैं: 'सिहा, शरीर के विखंडन के

बाद, मृत्यु के बाद, एक दाता, एक उदार दाता, एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है,' मुझे यह नहीं पता, और मैं भगवान (बुद्ध) में आस्था के साथ आगे बढ़ता हूँ।

"ऐसा ही है, सिहा, ऐसा ही है! शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, एक दाता, एक उदार दाता, एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गीय लोक में पुनर्जन्म लेता है।"

दान देने से वह प्रिय हो जाता है और अनेक लोग उसकी शरण में आते हैं।

उसे अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और उसकी प्रसिद्धि बढ़ती है।

उदार व्यक्ति शांत

और आत्मविश्वास से सभा में प्रवेश करता है।

अत: सुख की प्राप्ति के लिए, ज्ञानी व्यक्ति कंजूसी के कलंक को मिटाकर

दान करते हैं । जब वे त्रिस्वर्ग में विराजमान हो जाते हैं, तो वे लंबे समय तक देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) की संगति में आनंदित रहते हैं।

लाभकारी (कुशल) कर्म करने का अवसर पाकर,

वे यहाँ से स्वयंप्रकाशित होकर

नंदन (स्वर्ग के उद्यान) में विचरण करते हैं, [1015] जहाँ वे पाँच इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर

आनंदित, प्रसन्न और मग्न होते हैं । अनासक्त स्थिर बुद्ध के वचन को पूरा करके, सुगत (भगवान बुद्ध) के शिष्य स्वर्ग में आनंदित होते हैं।

---

35 दान के लाभ (दाननिसंसा)

भिक्षुओं, दान देने के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति अनेक लोगों का प्रिय और प्रिय होता है। (2) अच्छे लोग उसकी शरण में आते हैं। (3) व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (4) व्यक्ति गृहस्थों के कर्तव्यों में अपूर्ण नहीं होता। (5) शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, व्यक्ति स्वर्गलोक में, एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है। ये दान देने के पाँच लाभ हैं।

दान देने से व्यक्ति प्रिय हो जाता है,

वह अच्छे कर्तव्य का पालन करता है;

अच्छे आत्मसंयमित भिक्षु

हमेशा दान करते हैं।

वे उस धम्म (मार्ग) का उपदेश देते हैं

जो समस्त दुखों का निवारण करता है, और

जिसे समझकर

निष्कलंक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है।

---

36 समय पर दान (कलादान)

भिक्षुओं, ये पाँच सामयिक दान हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) आगंतुक को दान देना। (2) यात्रा पर निकलने वाले व्यक्ति को दान देना। (3) रोगी को दान देना। (4) अकाल के समय दान देना। (5) नई फसल और फल सबसे पहले पुण्यजनों को भेंट करना। ये पाँच सामयिक दान हैं।

उचित समय पर, वे बुद्धिमान,

परोपकारी और उदार लोग स्थिर और ईमानदार

, नेक लोगों को समयोचित दान देते हैं ; स्पष्ट मन से दिया गया दान विशाल होता है।

जो लोग ऐसे कार्यों में आनंदित होते हैं

या अन्य सेवाएँ प्रदान करते हैं , वे भी

पुण्य से वंचित नहीं रहते;

वे भी पुण्य के भागीदार होते हैं।

इसलिए, प्रतिगामी मन से नहीं, बल्कि निर्धन मन से, ऐसा

दान देना चाहिए जिससे भरपूर फल प्राप्त हो। पुण्य ही परलोक में

जीवों का आधार होते हैं (जब वे उत्पन्न होते हैं)। [42]

---

37 भोजन का दान (भोजन)

भिक्षुओं, भोजन दान करने वाला व्यक्ति प्राप्तकर्ताओं को पाँच वस्तुएँ देता है। वे पाँच वस्तुएँ क्या हैं? जीवन, सौंदर्य, सुख, शक्ति और विवेक। 1016 (1) जीवन देने वाला व्यक्ति, चाहे दिव्य हो या मनुष्य, जीवन का भागीदार होता है। (2) सौंदर्य देने वाला व्यक्ति, चाहे दिव्य हो या मनुष्य, सौंदर्य का भागीदार होता है। (3) सुख देने वाला व्यक्ति, चाहे दिव्य हो या मनुष्य, सुख का भागीदार होता है। (4) शक्ति देने वाला व्यक्ति, चाहे दिव्य हो या मनुष्य, शक्ति का भागीदार होता है। (5) विवेक देने वाला व्यक्ति, चाहे दिव्य हो या मनुष्य, विवेक का भागीदार होता है। भोजन दान करने वाला व्यक्ति प्राप्तकर्ताओं को ये पाँच वस्तुएँ देता है।

बुद्धिमान व्यक्ति जीवन,

शक्ति, सौंदर्य और विवेक का दाता होता है।

बुद्धिमान व्यक्ति सुख का दाता होता है

और बदले में सुख प्राप्त करता है।

जीवन, शक्ति, सौंदर्य, सुख और विवेक प्रदान करने वाला व्यक्ति जहां भी पुनर्जन्म लेता है, वहां

दीर्घायु और प्रसिद्ध होता है ।

---

38 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)

भिक्षुओं, आस्थावान कुल के अनुयायी को ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) जब संसार में भले लोग करुणा दिखाते हैं, तो वे सर्वप्रथम आस्थावान व्यक्ति पर करुणा दिखाते हैं, अनास्थावान व्यक्ति पर नहीं। (2) जब वे किसी के पास जाते हैं, तो सर्वप्रथम आस्थावान व्यक्ति के पास जाते हैं, अनास्थावान व्यक्ति के पास नहीं। (3) जब वे भिक्षा ग्रहण करते हैं, तो सर्वप्रथम आस्थावान व्यक्ति से भिक्षा ग्रहण करते हैं, अनास्थावान व्यक्ति से नहीं। (4) जब वे धर्म का उपदेश देते हैं, तो सर्वप्रथम आस्थावान व्यक्ति को धर्म का उपदेश देते हैं, अनास्थावान व्यक्ति को नहीं। (5) शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के समय, आस्थावान व्यक्ति का पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में होता है। ये पाँच लाभ आस्थावान कुल के अनुयायी को प्राप्त होते हैं।

"जैसे समतल भूमि पर चौराहे पर एक विशाल बरगद का पेड़ चारों ओर के पक्षियों के लिए आश्रय स्थल बन जाता है, वैसे ही [43] आस्था से संपन्न कुल पुरुष कई लोगों के लिए आश्रय स्थल बन जाता है: भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और महिला गृहस्थ अनुयायियों के लिए।"

एक विशाल वृक्ष, जिसका तना,

शाखाएँ, पत्ते और फल विशाल हों,

जड़ें मजबूत हों और जो फल से लदा हो,

अनेक पक्षियों का आश्रय होता है।

आकाश में उड़ने के बाद,

पक्षी इस रमणीय स्थान पर आकर ठहरते हैं:

जिन्हें छाया की आवश्यकता होती है वे इसकी छाया में विश्राम करते हैं; जिन्हें फल की आवश्यकता होती है वे इसके फल का आनंद लेते हैं।

ठीक इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति गुणी, आस्थावान, विनम्र, आज्ञाकारी, सौम्य, स्वागतशील और कोमल होता है

, तो संसार में पुण्य के क्षेत्र माने

जाने

वाले

लोग—जो

कामवासना (राग) और घृणा से रहित,

मोह (मोह) से रहित और निष्कलंक होते हैं—

ऐसे व्यक्ति की शरण लेते हैं।

वे उसे वह धम्म सिखाते हैं

जो समस्त दुखों का निवारण करता है,

जिसे समझकर

निष्कलंक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है।

---

39 Son (Putta sans. Putra)

"भिक्षुओं (सन्यासियों) ने पाँच संभावनाओं पर विचार करते हुए माता-पिता अपने परिवार में पुत्र की प्राप्ति की कामना की। वे पाँच संभावनाएँ क्या हैं? (1) 'हमारे द्वारा पोषित होने के कारण, वह हमारा भरण-पोषण करेगा। (2) या वह हमारे लिए काम करेगा। (3) हमारे वंश का विस्तार होगा। (4) वह उत्तराधिकार का प्रबंधन करेगा, (5) या फिर, हमारे देहांत के बाद, वह हमारी ओर से दान देगा।' इन पाँच संभावनाओं पर विचार करते हुए माता-पिता अपने परिवार में पुत्र की प्राप्ति की कामना करते हैं।"

पांच संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए,

बुद्धिमान लोग पुत्र की कामना करते हैं।

"वह हमारा सहारा बनेगा

या हमारे लिए काम करेगा।

वंश का विस्तार होगा,

वह विरासत का प्रबंधन करेगा,

या फिर हमारे देहांत के बाद

वह हमारी ओर से भेंट चढ़ाएगा।"

इन संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए,

बुद्धिमान लोग पुत्र की कामना करते हैं।

इसलिए अच्छे लोग,

कृतज्ञ और आभारी होकर,

अपने माता-पिता का समर्थन करते हैं,

यह याद करते हुए कि उन्होंने अतीत में उनकी कैसे मदद की थी; [44]

वे उनके लिए वही करते हैं जो आवश्यक है,

जैसा कि उन्होंने अतीत में स्वयं के लिए किया था।

उनकी सलाह का पालन करते हुए,

अपने पालन-पोषण करने वालों का सम्मान करते हुए,

पारिवारिक वंश को आगे बढ़ाते हुए,

आस्थावान और गुणी:

यह पुत्र प्रशंसा के योग्य है।

---

40 साल के पेड़ [1018]

"भिक्षुओं (साधुओं) के अनुसार, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर आधारित विशाल साल के वृक्ष पाँच प्रकार से उगते हैं। वे पाँच प्रकार क्या हैं? (1) वे शाखाओं, पत्तियों और पत्तों में उगते हैं; (2) वे छाल में उगते हैं; (3) वे टहनियों में उगते हैं; (4) वे कोमल लकड़ी में

उगते हैं; और (5) वे भीतरी लकड़ी में उगते हैं। हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर आधारित विशाल साल के वृक्ष इन पाँच प्रकार से उगते हैं।"

इसी प्रकार, जब परिवार का मुखिया [1019] आस्था से परिपूर्ण होता है, तो परिवार के वे लोग जो उस पर निर्भर हैं, पाँच प्रकार से उन्नति करते हैं। वे पाँच प्रकार क्या हैं? (1) वे आस्था में उन्नति करते हैं; (2) वे सदाचारी व्यवहार में उन्नति करते हैं; (3) वे ज्ञान में उन्नति करते हैं; (4) वे उदारता में उन्नति करते हैं; और (5) वे ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में उन्नति करते हैं। जब परिवार का मुखिया आस्था से परिपूर्ण होता है, तो परिवार के वे लोग जो उस पर निर्भर हैं, इन पाँच प्रकार से उन्नति करते हैं।

जिस प्रकार किसी विशाल वन क्षेत्र में

पथरीले पहाड़ पर उगने वाले वृक्ष महान वन स्वामी बन सकते हैं, उसी प्रकार जब किसी परिवार के मुखिया में आस्था और सद्‌गुण होते हैं, तो उसकी पत्नी, बच्चे और रिश्तेदार सभी उस पर निर्भर हो जाते हैं; उसी प्रकार उसके साथी, उसका परिवार और उस पर आश्रित लोग भी।

विवेकशील लोग

उस गुणी व्यक्ति के अच्छे आचरण,

उदारता और अच्छे कर्मों को देखकर

उसके अनुकरण का मार्ग अपनाते हैं।

धम्म के अनुसार यहाँ रहने से,

अच्छे गंतव्य की ओर ले जाने वाले मार्ग पर,

जो लोग इंद्रिय सुखों की इच्छा रखते हैं, वे

देव (देवदूत/भगवान) लोक में आनंदित होते हैं; [45]

वी. मुंडा राजा अनुभाग (मुंडा-राजा-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

41 उपयोग (आदिया)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

गृहस्वामी, धन के ये पाँच उपयोग हैं। वे पाँच कौन से हैं? 1020

(1) "यहाँ, हे गृहस्थ, परिश्रमपूर्वक अर्जित धन से, अपनी भुजाओं के बल से संचित धन से, अपने माथे के पसीने से कमाए गए धन से, जो धार्मिक रूप से अर्जित किया गया हो, वह श्रेष्ठ शिष्य स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में अपना भरण-पोषण उचित रूप से करता है; वह अपने माता-पिता को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण उचित रूप से करता है; वह अपनी पत्नी और बच्चों, अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण उचित रूप से करता है। धन का यह पहला उपयोग है।"

(2) "फिर, परिश्रमपूर्वक और न्यायपूर्वक अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य अपने मित्रों और साथियों को प्रसन्न और संतुष्ट करता है तथा उन्हें सुखमय बनाए रखता है। यह धन का दूसरा उपयोग है।"

(3) "फिर, परिश्रमपूर्वक और धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य आग या बाढ़, राजाओं या डाकुओं या अवांछित उत्तराधिकारियों के कारण होने वाली हानियों से बचाव के लिए अपने धन का प्रबंध करता है; वह स्वयं को उनसे सुरक्षित रखता है। यह धन का तीसरा उपयोग है।"

(4) "फिर, परिश्रमपूर्वक किए गए परिश्रम से प्राप्त धन से... धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य पाँच आहुति देता है: रिश्तेदारों, अतिथियों, पूर्वजों, राजा और देवताओं (देवदूतों) को। यह धन का चौथा उपयोग है।"

(5) "फिर, ऊर्जावान परिश्रम से अर्जित धन से... [46]... धार्मिक रूप से अर्जित धन से, श्रेष्ठ शिष्य उन तपस्वियों और ब्राह्मणों को भिक्षा का एक उत्थानकारी अर्पण स्थापित करता है - एक स्वर्गीय भिक्षा, जो सुख का परिणाम है, स्वर्ग की ओर ले जाती है - जो नशा और आलस्य से दूर रहते हैं, जो धैर्य और नम्रता में स्थिर रहते हैं, जो स्वयं को वश में रखते हैं, शांत करते हैं और निर्वाण के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करते हैं। यह धन का पाँचवाँ उपयोग है।"

"हे गृहस्थ, ये धन के पाँच उपयोग हैं। हे गृहस्थ, यदि किसी श्रेष्ठ शिष्य का धन इन पाँचों तरीकों से उपयोग करने पर समाप्त हो जाए, तो वह सोचता है: मैंने इन पाँचों तरीकों से धन का उपयोग किया और मेरा धन समाप्त हो गया। अतः उसे कोई खेद नहीं है। परन्तु यदि किसी श्रेष्ठ शिष्य का धन इन पाँचों तरीकों से उपयोग करने पर बढ़ जाए, तो वह सोचता है: मैंने इन पाँचों तरीकों से धन का उपयोग किया और मेरा धन बढ़ गया। अतः, दोनों ही स्थिति में उसे कोई खेद नहीं है।"

मैंने धन का आनंद लिया है,

अपने आश्रितों का भरण-पोषण किया है

और विपत्तियों पर विजय प्राप्त की है।

मैंने उत्थानकारी दान दिया है

और पाँचों आहुतियाँ संपन्न की हैं।

मैंने गुणी भिक्षुओं और

आत्म-संयमित ब्रह्मचारियों की सेवा की है।

"मैंने धन की कामना करने वाले

एक बुद्धिमान व्यक्ति के सभी उद्देश्यों को पूरा कर लिया है; मैंने जो किया है, उसका मुझे कोई पछतावा नहीं है।" यह याद करके मनुष्य धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहता है। इस जीवन में लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।

42. अच्छा व्यक्ति (सप्पुरिशा संस्कृत: सद्पुरुष)

भिक्षुओं, जब किसी परिवार में कोई अच्छा व्यक्ति जन्म लेता है, तो यह अनेकों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। यह (1) उसके माता-पिता, (2) उसकी पत्नी और बच्चों, (3) उसके दासों, श्रमिकों और सेवकों, (4) उसके मित्रों और साथियों, और (5) तपस्वियों और ब्राह्मणों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। जिस प्रकार एक विशाल वर्षा बादल, सभी फसलों का पोषण करते हुए, अनेकों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए प्रकट होता है, उसी प्रकार, [47] जब किसी परिवार में कोई अच्छा व्यक्ति जन्म लेता है, तो यह अनेकों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। यह उसके माता-पिता ... तपस्वियों और ब्राह्मणों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है।

धर्म के मार्ग पर चलने वाले, अनेकों के कल्याण हेतु अपने धन का प्रबंधन करने वाले व्यक्ति की रक्षा देवता (देवदूत) करते हैं। धर्म में दृढ़, विद्वान और सदाचारी आचरण एवं नियमों का पालन करने वाले व्यक्ति का यश कभी नहीं त्यागता।

धर्म में स्थिर,

सदाचारी आचरण में निपुण,

सत्य के वक्ता,

लज्जाभाव से युक्त,

शुद्ध सोने के सिक्के के समान पवित्र , भला कौन उन्हें दोष देने के योग्य है ?

देव भी उनकी प्रशंसा करते हैं;

ब्रह्मा भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

---

43 इच्छा की गई (इत्था)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

गृहस्थ, संसार में ये पाँच चीजें हैं जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन होती हैं, और जो दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं। वे पाँच चीजें कौन सी हैं? गृहस्थ, लंबी आयु की कामना की जाती है, जो मनभावन होती है, और जो दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है। सौंदर्य... सुख... यश... स्वर्ग की कामना की जाती है, जो मनभावन होती है, और जो दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है। ये पाँच चीजें हैं जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन होती हैं, और जो दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं।

"हे गृहस्थ, ये पाँच चीज़ें, जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन हैं और संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं, मैं कहता हूँ, प्रार्थनाओं या आकांक्षाओं के माध्यम से प्राप्त नहीं होतीं। यदि ये पाँच चीज़ें, जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन हैं और संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं, प्रार्थनाओं [48] या आकांक्षाओं के माध्यम से प्राप्त की जा सकतीं, तो यहाँ किसे किसी चीज़ की कमी होती?"

(1) "हे गृहस्थ, जो श्रेष्ठ शिष्य दीर्घायु की कामना करता है, उसे दीर्घायु के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, न ही उसमें प्रसन्न होना चाहिए और न ही निष्क्रिय रूप से उसकी लालसा करनी चाहिए। 1023 जो श्रेष्ठ शिष्य दीर्घायु की कामना करता है, उसे दीर्घायु के लिए सहायक मार्ग का अभ्यास करना चाहिए। 1024 क्योंकि जब वह दीर्घायु के लिए सहायक मार्ग का अभ्यास करता है, तो उसे दीर्घायु प्राप्त होती है, और वह स्वर्गीय या सांसारिक दीर्घायु प्राप्त करता है।"

(2) "गृहस्थ, वह श्रेष्ठ शिष्य जो सौंदर्य की कामना करता है... (3) ...जो सुख की कामना करता है... (4) ...जो यश की कामना करता है, उसे यश के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, न ही उसमें आनंद लेना चाहिए और न ही निष्क्रिय रूप से उसकी लालसा करनी चाहिए। यश की कामना करने वाले श्रेष्ठ शिष्य को यश प्राप्ति के मार्ग का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि जब वह यश प्राप्ति के मार्ग का अभ्यास करता है, तो उसे यश प्राप्त होता है, और वह दिव्य या सांसारिक यश प्राप्त करता है।"

(5) "हे गृहस्थ, स्वर्ग की कामना करने वाले श्रेष्ठ शिष्य को स्वर्ग के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, न ही उसमें प्रसन्न होना चाहिए और न ही निष्क्रिय रूप से उसकी लालसा करनी चाहिए। स्वर्ग की कामना करने वाले श्रेष्ठ शिष्य को स्वर्ग की ओर ले जाने वाले मार्ग का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि जब वह स्वर्ग की ओर ले जाने वाले मार्ग का अभ्यास करता है, तो वह स्वर्ग की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है, और वह स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।" 1025

जो व्यक्ति दीर्घायु, सौंदर्य, प्रसिद्धि, [1026]

ख्याति, स्वर्ग, उच्च परिवार और निरंतर मिलने वाले

उच्च सुखों की कामना करता है, उसके लिए बुद्धिमान लोग पुण्य कर्म करने में सतर्कता की प्रशंसा करते हैं।

सजग रहकर, ज्ञानी व्यक्ति

दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त करता है:

इस जीवन का लाभ

और भविष्य के जीवन का लाभ।

लाभ प्राप्त करने पर, दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को

पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वाला कहा जाता है।

---

44 मनभावनता प्रदान करने वाला (मनपदायी)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास कर रहे थे। सुबह के समय, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र धारण किया और वैशाली के गृहस्थ उगा के निवास पर गए, जहाँ वे नियत आसन पर बैठ गए। तब वैशाली के गृहस्थ उगा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना और सीखा: जो प्रसन्नतादायक वस्तु देता है, उसे प्रसन्नतादायक वस्तु ही प्राप्त होती है। भंते, मेरी साल के फूलों की दलिया प्रसन्नतादायक है। 1028 कृपा करके भगवान (बुद्ध) इसे मुझसे स्वीकार करें।" कृपा करके भगवान (बुद्ध) ने इसे स्वीकार कर लिया।

"भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना और सीखा: 'जो प्रसन्नतादायक वस्तु देता है, उसे प्रसन्नतादायक वस्तु ही प्राप्त होती है। भंते, बेर से सजा हुआ मेरा सूअर का मांस प्रसन्नतादायक है। 1029 कृपा करके भगवान (बुद्ध) इसे मुझसे स्वीकार करें।" कृपा करके भगवान (बुद्ध) ने इसे स्वीकार कर लिया।

"भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना और सीखा: 'जो प्रसन्नतादायक वस्तु देता है, उसे प्रसन्नतादायक वस्तु ही प्राप्त होती है। भंते, मेरी भुनी हुई सब्जी की डंठलें प्रसन्नतादायक हैं। भगवान (बुद्ध) दयावश इन्हें मुझसे स्वीकार करें।" भगवान (बुद्ध) ने दयावश इन्हें स्वीकार किया।

"भंते, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'जो प्रसन्नतादायक देता है, उसे प्रसन्नतादायक ही प्राप्त होती है। भंते, मेरे उबले हुए पहाड़ी चावल, जिनमें से काले दाने निकाल दिए गए हैं, विभिन्न चटनी और मसालों के साथ, प्रसन्नतादायक हैं। भगवान (बुद्ध) दयापूर्वक इसे मुझसे स्वीकार करें।" भगवान (बुद्ध) ने दयापूर्वक स्वीकार कर लिया। [50]

"भंते, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना और सीखा: 'जो प्रसन्नतादायक वस्तु देता है, उसे प्रसन्नतादायक वस्तु ही प्राप्त होती है।' भंते, काशी से लाए मेरे वस्त्र प्रसन्नतादायक हैं। कृपा करके भगवान (बुद्ध) इन्हें मुझसे स्वीकार कर लें।" कृपा करके भगवान (बुद्ध) ने इन्हें स्वीकार कर लिया।

"भंते, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'जो प्रसन्नतादायक वस्तु देता है, उसे प्रसन्नतादायक वस्तु ही प्राप्त होती है। भंते, मेरा पलंग, जो गलीचों, कंबलों और आवरणों से ढका है, हिरण की खाल के उत्तम आवरण से, ऊपर चंदवा और दोनों सिरों पर लाल तकियों से सुशोभित है, प्रसन्नतादायक है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह भगवान (बुद्ध) के लिए उचित नहीं है, फिर भी चंदन का यह तख्ता एक हजार से अधिक का है। 1031 दया करके भगवान (बुद्ध) इसे मुझसे स्वीकार करें।" भगवान (बुद्ध) ने दया करके इसे स्वीकार कर लिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने वैशाली के गृहस्थ उगा के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार व्यक्त की:

"जो व्यक्ति प्रसन्नता का दाता है, वह भी प्रसन्नता का भागी होता है,

जब वह धर्मी लोगों को स्वेच्छा से

वस्त्र, बिस्तर, भोजन, पेय पदार्थ

और विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ देता है।"

"अरहंतों को त्यागे और अर्पित किए गए धन के लिए खेत के समान जानकर

; जो रोका नहीं जाता, 1032

अच्छा व्यक्ति वह देता है जो देना कठिन होता है:

सुखद वस्तुओं का दाता सुखद वस्तु प्राप्त करता है।"

फिर, वैशाली के गृहस्थ उगा के प्रति आभार व्यक्त करने के बाद, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और चले गए। कुछ समय बाद, वैशाली के गृहस्थ उगा का देहांत हो गया। उनकी मृत्यु के बाद, वैशाली के गृहस्थ उगा का पुनर्जन्म मन से निर्मित [देवताओं (देवदूतों)] के एक विशेष समूह में हुआ। 1033 उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) अनाथपिंडिका उद्यान, जेतवन में सावत्थी में निवास कर रहे थे। फिर, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत/भगवान) उगा, जो पूरे [51] जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "उग्गा, मुझे आशा है कि यह वैसा ही है जैसा तुम चाहते थे।"

"हाँ, भंते, यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा मैंने चाहा था।"

तब भगवान (बुद्ध) ने युवा देव (देवदूत/भगवान) उगा को इन श्लोकों से संबोधित किया:

"मनभावन देने वाला मनभावन ही पाता है;

श्रेष्ठ देने वाला फिर श्रेष्ठ ही पाता है;

उत्कृष्ट देने वाला उत्कृष्ट ही पाता है;

सर्वश्रेष्ठ देने वाला सर्वश्रेष्ठ अवस्था तक पहुँचता है।"

"सर्वश्रेष्ठ देने

वाला, सबसे आगे रहने वाला,

उत्कृष्ट देने वाला व्यक्ति

दीर्घायु होता है और

जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, वहाँ प्रसिद्ध होता है।" 1034

---

45 योग्यता की धाराएँ 1035 (पुन्नभिसन्द)

भिक्षुओं, पुण्य की ये पाँच धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं—स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग की ओर ले जाने वाले—जो वांछित, वांछनीय और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। वे पाँच धाराएँ कौन सी हैं?

(1) जब कोई भिक्षु दिए गए वस्त्र का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन हो जाता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा और सुख का पोषण प्राप्त होता है, जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। (2) जब कोई भिक्षु दिए गए भिक्षा भोजन का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन हो जाता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा और सुख का पोषण प्राप्त होता है, जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। (3) जब कोई भिक्षु दिए गए आवास का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में लीन हो जाता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) तत्वों की धारा और सुख का पोषण प्राप्त होता है, जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। किसी के कल्याण और सुख के लिए। (4) जब कोई भिक्षु दिए गए पलंग और कुर्सी का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) का प्रवाह, सुख का पोषण प्राप्त होता है... जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। (5) जब कोई भिक्षु दिए गए बीमारों के लिए औषधियों और भोजन सामग्री का उपयोग करते हुए असीम समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें लीन रहता है, [52] तो उसे असीम पुण्य, लाभकारी (कुशल) का प्रवाह, सुख का पोषण प्राप्त होता है... जो उसके कल्याण और सुख की ओर ले जाता है।

"ये पुण्य की पाँच धाराएँ हैं, लाभकारी (कुसल) तत्वों की धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग के लिए सहायक - जो वांछित, अभिलाषा और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं।"

भिक्षुओं, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये पाँच धाराएँ, लाभकारी (कुशल) धाराएँ होती हैं, तो उसके पुण्य को इस प्रकार मापना आसान नहीं है: 'केवल इतना ही उसका पुण्य प्रवाह, लाभकारी (कुशल) प्रवाह, सुख का पोषण - स्वर्गीय... है जो... व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है'; बल्कि, इसे सीधे तौर पर पुण्य के एक अगणनीय, असीम, विशाल समूह के रूप में गिना जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर में पानी को मापना आसान नहीं है, जैसे कि 'इतने गैलन पानी है', या 'इतने सौ गैलन पानी है', या 'इतने हज़ार गैलन पानी है', या 'इतने लाखों गैलन पानी है', बल्कि इसे केवल पानी के एक अथाह, असीम, विशाल भंडार के रूप में माना जाता है; उसी प्रकार, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच पुण्य धाराओं से युक्त होता है... तो इसे केवल पुण्य के एक अथाह, असीम, विशाल भंडार के रूप में माना जाता है।

जैसे लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली अनेक नदियाँ,

नीचे की ओर बहते हुए, महासागर में पहुँचती हैं,

जो जल का विशाल भंडार है, असीम सागर है,

रत्नों के ढेर का भयानक भंडार है; [53]

वैसे ही पुण्य की धाराएँ उस बुद्धिमान व्यक्ति तक पहुँचती हैं

जो भोजन, पेय और वस्त्र दाता है;

वे पलंगों, कुर्सियों और आवरणों के दाता तक उसी प्रकार पहुँचते हैं

जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र तक ले जाती हैं।

---

46 उपलब्धियाँ (संपदा)

भिक्षुओं, ये पाँच सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं। ये पाँच कौन सी हैं? आस्था में सिद्धि (संपदा), सद्गुणपूर्ण व्यवहार में सिद्धि (संपदा), विद्या में सिद्धि (संपदा), उदारता में सिद्धि (संपदा), और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा)। ये पाँच सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं।

---

47 धन (धन)

भिक्षुओं, धन के पाँच प्रकार होते हैं। वे पाँच कौन से हैं? आस्था का धन, सद्गुणों का धन, ज्ञान का धन, उदारता का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन।

(1) "हे भिक्षुओं, आस्था का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इसे ही आस्था का धन कहा जाता है।"

(2) "और सद्गुणों का धन क्या है? यहाँ, एक नेक शिष्य जीवन के विनाश से दूर रहता है, जो कुछ दिया नहीं गया है उसे लेने से दूर रहता है, यौन दुराचार से दूर रहता है, झूठी बातों से दूर रहता है, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे ही सद्गुणों का धन कहा जाता है।"

(3) "और ज्ञान का खजाना क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य ने बहुत कुछ सीखा है, जो कुछ सीखा है उसे याद रखता है और उसे संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। 1037

(4) "और उदारता का धन क्या है? यहाँ, एक नेक शिष्य अपने घर में कंजूसी के दाग से रहित हृदय से रहता है, वह उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान में समर्पित, देने और साझा करने में प्रसन्न होता है। इसे उदारता का धन कहा जाता है।"

(5) "पन्न (दिव्य ज्ञान) का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उस पन्न (दिव्य ज्ञान) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) का धन कहा जाता है।"

"ये, भिक्षुओं, पाँच प्रकार के धन हैं।" [54]

जब किसी व्यक्ति की आस्था तथागत (बुद्ध) में

अटूट और दृढ़ होती है,

और उसका आचरण अच्छा और सदाचारी होता है, जो

श्रेष्ठ लोगों द्वारा प्रिय और प्रशंसित होता है;

जब किसी व्यक्ति का संघ में विश्वास होता है

और उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, तब

वे कहते हैं कि वह व्यक्ति निर्धन नहीं है,

उसका जीवन व्यर्थ नहीं गया है।

इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति को

बुद्धों की शिक्षाओं को याद रखते हुए,

आस्था और सदाचारी आचरण,

विश्वास और धम्म के दर्शन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

---

48 अप्राप्य परिस्थितियाँ (अलब्बनियाथाना)

भिक्षुओं, ये पाँच स्थितियाँ ऐसी हैं जो किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य हैं। वे पाँच स्थितियाँ कौन सी हैं? (1) 'वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्ध न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव, मार या ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (2) 'रोग के अधीन प्राणी रोगग्रस्त न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (3) 'मृत्यु के अधीन प्राणी की मृत्यु न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (4) 'नष्ट होने के अधीन प्राणी का विनाश न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (5) 'जो वृद्ध हो!' 'नुकसान के अधीन है, खोया नहीं जा सकता!': यह एक ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या ब्राह्मण, किसी देव (देवदूत/भगवान), मारा या ब्रह्मा, या संसार में किसी के लिए भी अप्राप्य है।

(1) "भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए, जो बुढ़ापे के अधीन है, वह बूढ़ा हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'मैं अकेला नहीं हूँ जिसके लिए बुढ़ापे के अधीन है। सभी प्राणियों के लिए जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, बुढ़ापे के अधीन है, वह बूढ़ा हो जाता है। यदि मैं बुढ़ापे के अधीन होने पर शोक करूँ, व्याकुल होऊँ, विलाप करूँ, सीना पीट कर रोऊँ और भ्रमित हो जाऊँ, तो मेरी भूख मर जाएगी और मेरा चेहरा बदसूरत हो जाएगा। मैं अपना काम नहीं कर पाऊँगा, मेरे शत्रु प्रसन्न होंगे और मेरे मित्र दुखी हो जाएँगे।' इस प्रकार, जब वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्ध हो जाता है, तो वह शोक करता है, क्षीण होता है, विलाप करता है, सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। इसे अशिक्षित सांसारिक कहा जाता है जो दुःख के विषैले बाण से ग्रस्त

होकर केवल स्वयं को ही पीड़ा देता है। "फिर, अशिक्षित सांसारिक प्राणी के लिए, [551 जो रोग के अधीन है वह बीमार पड़ जाता है... (3) ... जो मृत्यु के अधीन है वह मर जाता है... (4) ... जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है... (5) ... जो हानि के अधीन है वह खो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'मैं अकेला नहीं हूँ जिसके लिए हानि के अधीन प्राणी खो जाता है। सभी प्राणियों के लिए जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, हानि के अधीन प्राणी खो जाता है। यदि मैं शोक करूं, व्याकुल हो जाऊं, विलाप करूं, सीना पीटते हुए रोऊं और जो खो सकता है उसे खोने पर भ्रमित हो जाऊं, तो मेरी भूख मर जाएगी और मेरा चेहरा बदसूरत हो जाएगा। मैं अपना काम नहीं कर पाऊंगा, मेरे शत्रु प्रसन्न होंगे और मेरे मित्र दुखी हो जाएंगे। इस प्रकार, जो खो सकता है उसे खोने पर, वह शोक करता है, व्याकुल हो जाता है, विलाप करता है, सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। इसे अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है जो दु:ख के विषैले तीर से घायल होकर केवल स्वयं को ही पीड़ा देता है।

(1) "भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य के लिए, जो बुढ़ापे के अधीन है, वह बूढ़ा हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह इस प्रकार चिंतन करता है: मैं अकेला नहीं हूँ जिसके लिए बुढ़ापे के अधीन है। सभी प्राणियों के लिए जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, बुढ़ापे के अधीन है, वह बूढ़ा हो जाता है। यदि मैं बुढ़ापे के अधीन होने पर शोक करूँ, व्याकुल होऊँ, विलाप करूँ, छाती पीट कर रोऊँ और भ्रमित हो जाऊँ, तो मेरी भूख मर जाएगी और मेरा चेहरा बदसूरत हो जाएगा। मैं अपना काम नहीं कर पाऊँगा, मेरे शत्रु प्रसन्न होंगे और मेरे मित्र दुखी हो जाएँगे।" अत: जब वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्ध हो जाता है, तो वह शोक नहीं करता, क्षीण नहीं होता, विलाप नहीं करता, सीना पीटकर रोता नहीं और भ्रमित नहीं होता। इसे ही ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है, जिसने दु:ख के विषैले बाण को निकाल दिया है, जिससे अनपढ़ सांसारिक व्यक्ति केवल स्वयं को पीड़ा देता है। दु:ख रहित, बाणों से मुक्त, श्रेष्ठ शिष्य निर्वाण प्राप्त करता है। 1039

(2) "फिर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो रोग के अधीन है वह बीमार हो जाता है... (3) ... जो मृत्यु के अधीन है वह मर जाता है... (4) ... जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है... (5) ... जो हानि के अधीन है वह खो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अकेला नहीं हूँ जिसके लिए हानि के अधीन कुछ खो जाता है। सभी प्राणियों के लिए जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, हानि के अधीन [56] कुछ खो जाता है। यदि मैं हानि के अधीन कुछ खो जाने पर शोक करूँ, व्याकुल हो जाऊँ, विलाप करूँ, सीना पीट कर रोऊँ और भ्रमित हो जाऊँ, तो मेरी भूख मर जाएगी और मेरा चेहरा बदसूरत हो जाएगा। मैं अपना काम नहीं कर पाऊँगा, मेरे शत्रु प्रसन्न होंगे और मेरे मित्र उदास हो जाएँगे।' अत: जब हानि योग्य वस्तु खो जाती है, तो वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, विलाप नहीं करता, सीना पीटकर रोता नहीं और भ्रमित नहीं होता। यही वह ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जिसने दु:ख के विषैले तीर को निकाल दिया है, जिससे अनपढ़ सांसारिक व्यक्ति केवल स्वयं को पीड़ा देता है। दु:ख रहित, तीरों से मुक्त, श्रेष्ठ शिष्य निर्वाण प्राप्त करता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच स्थितियाँ हैं जो किसी तपस्वी या ब्राह्मण, किसी देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार में किसी के लिए भी अप्राप्य हैं।"

"दु:ख और विलाप करने से यहाँ थोड़ी सी भी भलाई प्राप्त नहीं हो सकती। 1040

यह जानकर कि कोई दुखी और उदास है,

उसके शत्रु प्रसन्न होते हैं।"

"जब बुद्धिमान व्यक्ति विपत्तियों में विचलित नहीं होता,

और यह जानता है कि क्या अच्छा है, तो

उसके शत्रु यह देखकर दुखी हो जाते हैं

कि उसके चेहरे के भाव नहीं बदलते।"

"जहाँ कहीं भी कोई अपना भला पा सकता है,

चाहे किसी भी तरीके से हो - जप, मंत्र,

कहावत, दान या परंपरा 1041 के द्वारा - वहाँ

उसे ठीक उसी तरह से प्रयास करना चाहिए।"

लेकिन अगर किसी को यह समझ आ जाए कि 'यह अच्छाई

मुझे या किसी और को नहीं मिल सकती,

तो उसे शोक किए बिना स्थिति को स्वीकार कर लेना चाहिए,

यह सोचते हुए कि 'कर्म बहुत प्रबल है; अब मैं क्या कर सकता हूँ?'" [57]

---

49 कोसला

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कोसल के राजा पसेनादि भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। [उस समय रानी मल्लिका का निधन हो चुका था।] 1042 तभी एक व्यक्ति राजा पसेनादि के पास आया और उनके कान में फुसफुसाया, "महाराज, रानी मल्लिका का अभी-अभी निधन हो गया है।" यह सुनकर राजा पसेनादि व्यथित और दुखी हो गए, और वे कंधे झुकाकर, नीचे की ओर मुख करके, उदास और मौन बैठे रहे।

तब भगवान (बुद्ध) ने राजा की दशा जानकर उससे कहा:

"हे महाराज, ये पाँच ऐसी स्थितियाँ हैं जो किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य हैं।"

[इस सूतसी का शेष भाग 5:48 के समान है, जिसमें आयतें भी शामिल हैं।]

---

50 नारदा

एक बार पूज्य नारद पाटलिपुत्त में मुर्गे के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय राजा मुंडा की पत्नी, रानी भद्दा, जो उन्हें बहुत प्रिय थीं, का निधन हो गया था। उनकी मृत्यु के बाद से, उन्होंने स्नान नहीं किया, अभिषेक नहीं किया, भोजन नहीं किया और न ही कोई काम किया। वे दिन-रात रानी भद्दा के पार्थिव शरीर पर ध्यान लगाते रहे। तब राजा मुंडा ने अपने कोषाध्यक्ष पियाका से कहा: "तो फिर, मित्र पियाका, [58] रानी भद्दा के पार्थिव शरीर को तेल से भरे लोहे के पात्र में विसर्जित करो और उसे दूसरे लोहे के पात्र में बंद कर दो ताकि हम रानी भद्दा के पार्थिव शरीर को और अधिक समय तक देख सकें।"

"जी महाराज," कोषाध्यक्ष पियाका ने उत्तर दिया। फिर उसने रानी भद्दा के शरीर को तेल से भरे एक लोहे के पात्र में डुबो दिया और उसे एक और लोहे के पात्र में बंद कर दिया।

तब कोषाध्यक्ष पियाका के मन में यह विचार आया: "राजा मुंडा की पत्नी, रानी भद्दा का देहांत हो गया है, और वह उन्हें बहुत प्रिय थीं। उनके निधन के बाद से, वे न स्नान करते हैं, न अभिषेक करते हैं, न भोजन करते हैं और न ही कोई काम करते हैं। दिन-रात वे रानी के पार्थिव शरीर पर ही चिंतन करते रहते हैं। राजा मुंडा किस तपस्वी या ब्राह्मण के पास जाएँ, ताकि उनका धर्मोपदेश सुनकर वे दुःख के बाण से मुक्त हो जाएँ?"

तब पियाका के मन में यह विचार आया: "पूज्य नारद पाटलिपुत्त में, मुर्गे के उद्यान में निवास कर रहे हैं। अब इस पूज्य नारद के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली हुई है कि 'वे बुद्धिमान, सक्षम, समझदार, विद्वान, कुशल वक्ता, वाक्पटु, परिपक्व और अरहंत हैं।' मान लीजिए कि राजा मुंडा पूज्य नारद के दर्शन करने जाएँ: शायद यदि वे पूज्य नारद का धम्म सुनें, तो वे दुःख के बाण को त्याग दें।"

तब कोषाध्यक्ष पियाका राजा मुंडा के पास गए और उनसे कहा, "महाराज, पूज्य नारद पाटलिपुत्त में मुर्गे के उद्यान में निवास कर रहे हैं। अब इस पूज्य नारद के बारे में यह अच्छी खबर फैली है कि 'वे बुद्धिमान हैं... और एक अरहंत हैं।' महाराज, आपको पूज्य नारद से मिलना चाहिए। शायद, जब आप पूज्य नारद का धर्म सुनेंगे, तो आप दुःख के बाण को त्याग देंगे।" [राजा ने कहा:] "तो फिर, मित्र पियाका, [59] पूज्य नारद को सूचित करो। भला मुझ जैसा व्यक्ति उनके राज्य में रहने वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण के पास बिना उन्हें सूचित किए कैसे जा सकता है?"

"जी, महाराज," पियाका ने उत्तर दिया। फिर वह पूज्य नारद के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, राजा मुंडा की पत्नी, रानी भद्दा, जो उन्हें प्रियतम थीं, का देहांत हो गया है। रानी के देहांत के बाद से वे न स्नान करते हैं, न अभिषेक करते हैं, न भोजन करते हैं और न ही कोई कार्य करते हैं। दिन-रात वे रानी के पार्थिव शरीर पर विलीन रहते हैं। हे भंते, यदि पूज्य नारद राजा मुंडा को इस प्रकार धर्म का उपदेश दें कि वे दुःख के बाण से मुक्त हो सकें, तो यह अच्छा होगा।"

"तो फिर राजा मुंडा अपनी सुविधानुसार आ सकते हैं।"

तब कोषाध्यक्ष पियाका अपने आसन से उठे, पूज्य नारद को प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की और राजा मुंडा के पास गए। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, पूज्य नारद ने अपनी सहमति दे दी है। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

"तो फिर, मेरे मित्र पियाका, सबसे बेहतरीन रथ तैयार करवाओ!"

"जी महाराज," पियाका ने उत्तर दिया, और बेहतरीन रथों को तैयार करवाने के बाद उसने राजा मुंडा से कहा: "महाराज, सबसे उत्तम रथ तैयार हो चुके हैं। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब राजा मुंडा एक सुंदर रथ पर सवार हुए और अन्य रथों के साथ पूरे राजसी वैभव के साथ नारद के दर्शन के लिए मुर्गे के उद्यान की ओर चल पड़े। वे रथ से उतनी दूर तक गए जहाँ तक रथ ले जाने योग्य था, फिर वे रथ से उतरकर पैदल उद्यान में प्रवेश कर गए। वे नारद के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। [60] तब नारद ने उनसे कहा:

"हे महाराज, ये पाँच स्थितियाँ ऐसी हैं जो किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य हैं। वे पाँच कौन सी हैं? (1) 'वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्ध न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (2) 'रोग के अधीन प्राणी रोगग्रस्त न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (3) 'मृत्यु के अधीन प्राणी की मृत्यु न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (4) 'नष्ट होने के अधीन प्राणी का विनाश न हो!': यह ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है। (5) 'हानि के अधीन प्राणी की हानि न हो!': यह एक ऐसी स्थिति है जो किसी तपस्वी या ब्राह्मण, किसी देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए अप्राप्य है।

[इसका अगला भाग 5:48 के समान है, जिसमें छंद भी शामिल हैं।] [61—62]

यह सुनकर राजा मुंडा ने पूज्य नारद से पूछा, "भंते, धम्म की इस व्याख्या का नाम क्या है?"

"हे महाराज, धम्म की इस व्याख्या को दुःख के बाण को निकालना कहा जाता है।" 1043

"हे भंते, निश्चय ही यह दुःख के बाण का निष्कासन है! निश्चय ही यह दुःख के बाण का निष्कासन है! क्योंकि धम्म की यह व्याख्या सुनकर मैंने दुःख के बाण का त्याग कर दिया है।"

तब राजा मुंडा ने कोषाध्यक्ष पियाका से कहा: "ठीक है, मित्र पियाका, रानी भद्दा के शरीर का दाह संस्कार करवाओ और उनके लिए एक स्मारक बनवाओ। आज से मैं स्नान करूँगा, तेल लगाऊँगा, भोजन करूँगा और अपना काम करूँगा।" [63]

दूसरा पचास

I. बाधा अनुभाग (निवारणावग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

51 आवरण/बाधाएं (अवराना)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, मन के ये पाँच आवरण/अवरोध, बाधाएँ, बोझ हैं, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करते हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) कामुक इच्छा मन का एक अवरोध, बाधा, बोझ है, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करती है। (2) द्वेष... (3) सुस्ती और उनींदापन... (4) बेचैनी और पश्चाताप... (5) संदेह मन का एक अवरोध, बाधा, बोझ है, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करती है। ये मन के पाँच आवरण/अवरोध, बाधाएँ, बोझ हैं, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करते हैं।

भिक्षुओं, मन के इन पाँच आवरणों/अवरोधों, बाधाओं, बोझों का त्याग किए बिना, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करते हैं, यह असंभव है कि कोई भिक्षु अपने शक्तिहीन और कमजोर पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ अपना भला, दूसरों का भला, [64] या दोनों का भला जान सके, या श्रेष्ठों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सके। मान लीजिए कि एक नदी पहाड़ से नीचे बह रही है, लंबी दूरी तय कर रही है, तेज धारा के साथ, अपने साथ बहुत सारा कचरा बहाकर। फिर, उसके दोनों किनारों पर, एक आदमी सिंचाई नहरें खोलता है। 1044 ऐसी स्थिति में, नदी के मध्य में धारा बिखर जाएगी, फैल जाएगी और विभाजित हो जाएगी, जिससे नदी अब लंबी दूरी तक तेज धारा के साथ, बहुत सारा कचरा बहाकर नहीं बह पाएगी। उसी प्रकार, इन पाँच बाधाओं का त्याग किए बिना... यह असंभव है कि कोई भिक्षु... ज्ञान में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सके। और महान लोगों के योग्य दूरदृष्टि।

लेकिन, भिक्षुओं, मन के इन पाँच आवरणों/अवरोधों, बाधाओं, बोझों, जो बुद्धि को कमजोर करते हैं, का त्याग करके, एक भिक्षु अपने प्रबल पन्ना (दिव्य ज्ञान) से अपना भला, दूसरों का भला और दोनों का भला जान सकता है, और श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में एक अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सकता है। मान लीजिए कि एक नदी पहाड़ से नीचे बह रही है, लंबी दूरी तक तीव्र धारा के साथ बह रही है, और अपने साथ बहुत सारा कचरा बहाकर ला रही है। फिर एक व्यक्ति उसके दोनों किनारों पर सिंचाई नहरों को बंद कर देता है। ऐसी स्थिति में, नदी के मध्य में धारा विक्षेपित, फैली और विभाजित नहीं होगी, जिससे नदी लंबी दूरी तक तीव्र धारा के साथ बह सके और अपने साथ बहुत सारा कचरा बहाकर ला सके। उसी प्रकार, इन पाँच अवरोधों का त्याग करके... एक भिक्षु... श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में एक अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सकता है। [65]

52 हानिकारक ढेर (अकुशलरासी सं. अकुशल-राशि)

भिक्षुओं, 'हानिकारक (अकुशल) अवरोधों का ढेर' कहने का अर्थ है कि ये पाँच अवरोध पूर्णतः हानिकारक (अकुशल) अवरोध हैं। 1045 क्योंकि ये पाँच अवरोध पूर्णतः हानिकारक (अकुशल) अवरोध हैं। कौन से पाँच? कामुक (यौन) इच्छा का अवरोध, द्वेष का अवरोध, सुस्ती और उन्मत्तता का अवरोध, बेचैनी और पश्चाताप का अवरोध, और संदेह का अवरोध। भिक्षुओं, 'हानिकारक (अकुशल) अवरोधों का ढेर' कहने का अर्थ है कि ये पाँच अवरोध पूर्णतः हानिकारक (अकुशल) अवरोध हैं।

---

53 कारक (पधानियंगा)

"भिक्षुओं, प्रयास में सहायता करने वाले ये पाँच कारक हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

(2) "वह शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होता है, उसका पाचन तंत्र संतुलित होता है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और प्रयास के लिए उपयुक्त होता है।

(3) "वह ईमानदार और खुला है, वह व्यक्ति जो शिक्षक और अपने बुद्धिमान साथी भिक्षुओं के सामने खुद को वैसे ही प्रकट करता है जैसा वह वास्तव में है।

(4) "उसने हानिकारक (अकुशल) गुणों को त्यागने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है।"

(5) "वह बुद्धिमान है; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) है जो उत्पत्ति और क्षय को पहचानता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच कारक हैं जो प्रयास में सहायक होते हैं।"

---

54 अवसर (समय)

"भिक्षुओं (मठवासियों), प्रयास करने के लिए ये पाँच प्रतिकूल अवसर हैं। वे पाँच कौन से हैं? [66]

(1) "यहाँ एक भिक्षु वृद्ध है, वृद्धावस्था से ग्रस्त है। यह प्रयास करने का पहला प्रतिकूल अवसर है।

(2) "फिर, एक भिक्षु बीमार है, बीमारी से ग्रस्त है। यह प्रयास करने का दूसरा प्रतिकूल अवसर है।

(3) "फिर अकाल है, फसल खराब है, ऐसा समय है जब भिक्षा भोजन प्राप्त करना कठिन है और अनाज बीनकर जीवन यापन करना आसान नहीं है। 1046 यह प्रयास करने का तीसरा प्रतिकूल अवसर है।

(4) "फिर, जंगल में खतरा और अशांति है, और ग्रामीण इलाकों के लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भाग रहे हैं। यह संघर्ष करने का चौथा प्रतिकूल अवसर है।

(5) "फिर संघ में फूट पड़ जाती है, और संघ में फूट पड़ने पर आपसी अपमान, निंदा, तिरस्कार और अस्वीकृति होती है। 1047 तब अविश्वासी लोग आत्मविश्वास प्राप्त नहीं कर पाते, जबकि कुछ आत्मविश्वासी लोग अपना मन बदल लेते हैं। यह प्रयास करने का पाँचवाँ प्रतिकूल अवसर है।"

"ये प्रयास करने के लिए पांच प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं।"

भिक्षुओं, परिश्रम करने के लिए ये पाँच अनुकूल अवसर हैं। वे पाँच कौन से हैं?

(1) "यहाँ एक भिक्षु युवा है, काले बालों वाला एक युवक है जो यौवन के आशीर्वाद से संपन्न है, जीवन के चरम पर है। यह प्रयास करने का पहला अनुकूल अवसर है।

(2) "भिक्षु शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होता है, उसका पाचन संतुलित होता है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और साधना के लिए उपयुक्त होता है। यह साधना के लिए दूसरा अनुकूल अवसर है।"

(3) "फिर, भोजन प्रचुर मात्रा में है; अच्छी फसल हुई है [67] और भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में है, जिससे कोई भी आसानी से अपना भरण-पोषण कर सकता है। यह प्रयास करने का तीसरा अनुकूल अवसर है।

(4) "फिर, लोग सद्भाव से, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह घुलमिलकर, एक-दूसरे को स्नेह भरी निगाहों से देखते हुए रह रहे हैं। यह प्रयास करने का चौथा अनुकूल अवसर है।"

(5) "फिर, संघ शांति से निवास कर रहा है—सद्भाव से, सामंजस्यपूर्ण ढंग से, बिना किसी विवाद के, एक ही पाठ के साथ। जब संघ में सामंजस्य होता है, तब कोई परस्पर अपमान, कोई परस्पर निंदा, कोई परस्पर तिरस्कार और कोई परस्पर अस्वीकृति नहीं होती। तब अविश्वासियों का आत्मविश्वास बढ़ता है और आत्मविश्वासियों का आत्मविश्वास और भी बढ़ जाता है। 1048 यह प्रयास करने का पाँचवाँ अनुकूल अवसर है।"

"प्रयास करने के लिए ये पाँच अनुकूल अवसर हैं।"

---

55 माता और पुत्र (मातापुत्त)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक माता और पुत्र, जो क्रमशः एक भिक्षुणी और एक भिक्षु थे, सावत्थी के वर्षावास में आए थे। वे अक्सर एक-दूसरे को देखना चाहते थे, माता अपने पुत्र को और पुत्र अपनी माता को। क्योंकि वे अक्सर एक-दूसरे को देखते थे, उनके बीच एक बंधन बन गया; बंधन बनने से अंतरंगता उत्पन्न हुई; अंतरंगता के कारण कामवासना (राग) को अवसर मिल गया। 1049 कामवासना (राग) के वश में होकर, अपने प्रशिक्षण को छोड़े बिना और अपनी कमजोरी को स्वीकार किए बिना, उन्होंने यौन संबंध बनाए! 1050

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था उसका वर्णन किया। [68] [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

भिक्षुओं, क्या उस मूर्ख ने सोचा था: 'माँ अपने पुत्र से प्रेम नहीं करती, न ही पुत्र अपनी माँ से?' (1) भिक्षुओं, मुझे स्त्री के रूप के समान कोई दूसरा रूप इतना मोहक, कामुक, मादक, आकर्षक, मोहक और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में इतना बड़ा बाधक नहीं दिखता। जो प्राणी स्त्री के रूप के प्रति राग से ग्रस्त हैं— लालची, उससे बंधे हुए, मोह में डूबे हुए और उसमें अंधाधुंध लीन— स्त्री के रूप के वश में रहकर दीर्घकाल तक व्यथित रहते हैं। (2) मुझे कोई दूसरी ध्वनि... (3) ... कोई दूसरी गंध... (4) ... कोई दूसरा स्वाद... (5) ... कोई दूसरा स्पर्श इतना मोहक, कामुक, मादक नहीं दिखता। स्त्री का स्पर्श मोहक, मोहक और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में उतना ही बड़ा बाधक है जितना कि किसी स्त्री का स्पर्श। जो प्राणी स्त्री के स्पर्श के लिए तरसते हैं—लालची, उस पर बंधे हुए, मोहित और उसमें अंधाधुंध लीन—वे स्त्री के स्पर्श के वश में रहकर लंबे समय तक व्यथा भोगते हैं।

भिक्षुओं, चलते समय स्त्री पुरुष के मन को मोह लेती है; खड़े होने पर... बैठे होने पर... लेटने पर... हंसने पर... बोलने पर... गाने पर... रोने पर स्त्री पुरुष के मन को मोह लेती है। सूजी हुई अवस्था में भी स्त्री पुरुष के मन को मोह लेती है। यहां तक कि मृत अवस्था में भी स्त्री

पुरुष के मन को मोह लेती है। हे भिक्षुओं, यदि किसी बात के बारे में सही कहा जा सकता है: 'पूरी तरह से मार का जाल', तो यह बात स्त्री के बारे में ही कही जा सकती है।

कोई व्यक्ति किसी खूंखार दुश्मन से बात कर सकता है,

कोई व्यक्ति किसी बुरी आत्मा से बात कर सकता है,

कोई व्यक्ति उस सांप के पास भी जा सकता है

जिसका डंक निश्चित मृत्यु का कारण बनता है;

लेकिन किसी महिला से, अकेले में,

कभी बात नहीं करनी चाहिए।

वे एक नज़र और मुस्कान से,

अस्त-व्यस्त पोशाक से

और मधुर वाणी से उस व्यक्ति को बांध लेते हैं जिसका मन भ्रमित हो ।

[1054] ऐसे व्यक्ति के पास जाना सुरक्षित नहीं है,

भले ही वह सूजी हुई और मृत हो।

स्त्री के शरीर में इंद्रिय सुख के ये पाँच तत्व देखे जाते हैं:

रूप, ध्वनि, स्वाद और गंध,

और साथ ही सुखद स्पर्श।

जो लोग इंद्रिय सुखों की बाढ़ में बह जाते हैं

और उन्हें पूरी तरह समझ नहीं आती, वे संसार, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र

में धंसते चले जाते हैं।

लेकिन जिन लोगों ने इंद्रिय सुखों को पूरी तरह से समझ लिया है, वे

किसी भी तरफ से भय के बिना जीवन जीते हैं।

संसार में रहते हुए उन्होंने सभी दोषों का नाश कर लिया है और वे संसार से परे चले गए हैं।

---

56 उपदेशक (उपज्झाय सं. उपाध्याय)

तब एक भिक्षु अपने गुरु के पास गया और उनसे कहा, “भंते, मेरा शरीर अब ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे नशा दिया गया हो, मैं भ्रमित हो गया हूँ, और शिक्षाएँ अब मेरे लिए स्पष्ट नहीं हैं। सुस्ती और उनींदापन मेरे मन पर हावी हैं। मैं ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) असंतुष्ट होकर जी रहा हूँ और शिक्षाओं के बारे में संदेह है।” 1056

तब गुरु अपने शिष्य को भगवान (बुद्ध) के पास ले गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को अपने शिष्य की कही हुई बातें बताईं। [70] [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"ऐसा ही है, भिक्षु! (1) जब कोई इंद्रियों के द्वार पर लापरवाह रहता है, (2) खाने में अति करता है, (3) और जागृत रहने का ध्यान नहीं रखता; (4) जब लाभकारी गुणों में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का अभाव होता है (5) और रात्रि के आरंभिक और पश्चात चरणों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को विकसित करने के प्रयास में तल्लीन नहीं रहता, तो शरीर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसे नशा कराया गया हो, व्यक्ति दिशाहीन हो जाता है, और शिक्षाएँ उसके लिए स्पष्ट नहीं रह जातीं। मन सुस्त और उनींदा रहता है। व्यक्ति ब्रह्मचर्य जीवन असंतुष्ट होकर जीता है और शिक्षाओं के प्रति संशय में रहता है।"

अतः, भिक्षु, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: (1) 'मैं अपनी इंद्रियों के द्वारों में सतर्क रहूंगा, (2) भोजन में संयमी रहूंगा, (3) और जागृत रहने का प्रयास करूंगा; (4) मैं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) रखूंगा (5) और रात्रि के आरंभिक और पश्चात दोनों चरणों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को विकसित करने के प्रयास में एकाग्र रहूंगा।' भिक्षु, इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

तब, भगवान (बुद्ध) से ऐसा उपदेश पाकर, वह भिक्षु अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, थोड़े ही समय में उस भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इस जीवन में ही ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) की उस अतुलनीय सिद्धि को स्वयं अनुभव कर लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गए।

फिर, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उस भिक्षु ने अपने गुरु के पास जाकर उनसे कहा, "भंते, अब मेरा शरीर ऐसा प्रतीत नहीं होता जैसे उस पर नशा किया गया हो, मैं भली-भांति सचेत हो गया हूँ और शिक्षाएँ मुझे स्पष्ट रूप से समझ आ रही हैं। सुस्ती और आलस्य मेरे मन पर हावी नहीं होते। मैं आनंदपूर्वक ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता हूँ और शिक्षाओं के बारे में मुझे कोई संदेह नहीं है।"

तब गुरु अपने शिष्य को भगवान (बुद्ध) के पास ले गए। [71] उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को अपने शिष्य की कही हुई बातें बताईं। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"ऐसा ही है, भिक्षु! जब कोई इंद्रियों के द्वारों में सतर्क रहता है, खान-पान में संयमी होता है और जागृत रहने का ध्यान रखता है; जब किसी को लाभकारी गुणों (धम्म) का ज्ञान (विपश्यना) होता है और वह रात्रि के आरंभिक और पश्चात चरणों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को विकसित करने के प्रयास में तल्लीन रहता है, तो उसका शरीर ऐसा प्रतीत नहीं होता मानो उसे नशा कराया गया हो, वह भली-भांति सचेत हो जाता है और शिक्षाएं उसे स्पष्ट रूप से समझ आती हैं। मन में सुस्ती और आलस्य नहीं छाते। वह ब्रह्मचर्य जीवन आनंदपूर्वक व्यतीत करता है और शिक्षाओं के प्रति उसका कोई संदेह नहीं रहता।"

अतः, भिक्षुओं, 1057 आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: (1) 'हम इंद्रियों के द्वारों में सतर्क रहेंगे, (2) भोजन में संयम बरतेंगे, और (3) जागृत रहने का प्रयास करेंगे; (4) हम लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) प्राप्त करेंगे (5) और रात्रि के आरंभिक और पश्चात चरणों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को विकसित करने के प्रयास में एकाग्र रहेंगे।' भिक्षुओं, इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।'

---

57 विषय-वस्तु

भिक्षुओं, ये पाँच विषय हैं जिन पर स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी, सभी को अक्सर चिंतन करना चाहिए। 1058 वे पाँच विषय क्या हैं? (1) स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी, सभी को अक्सर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं वृद्धावस्था के अधीन हूँ; मैं वृद्धावस्था से मुक्त नहीं हूँ।' (2) स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी, सभी को अक्सर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं रोग के अधीन हूँ; मैं रोग से मुक्त नहीं हूँ।' (3) स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी, सभी को अक्सर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं मृत्यु के अधीन हूँ; मैं मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ।' (4) स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी, सभी को अक्सर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मुझे अपने प्रिय और प्रिय सभी लोगों और वस्तुओं से विमुख होना पड़ेगा।' 105 '(5) स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या संन्यासी, उसे अक्सर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ; कर्म ही मेरा मूल हैं, कर्म ही मेरे संबंधी हैं, कर्म ही मेरा सहारा हैं; मैं अपने अच्छे या बुरे कर्मों का उत्तराधिकारी हूँगा।'

(1) "किसलिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार यह चिंतन करना चाहिए: 'मैं वृद्धावस्था के अधीन हूँ; मैं वृद्धावस्था से मुक्त नहीं हूँ"? युवावस्था में मनुष्य अपनी युवावस्था के नशे में चूर रहते हैं, और जब वे अपनी युवावस्था के नशे में चूर होते हैं तो वे शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होते हैं। परन्तु जब कोई इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो युवावस्था का नशा या तो पूरी तरह से त्याग जाता है या कम हो जाता है। इसी लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार यह चिंतन करना चाहिए: 'मैं वृद्धावस्था के अधीन हूँ; मैं वृद्धावस्था से मुक्त नहीं हूँ।'"

(2) "और किस लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं रोग के अधीन हूँ; मैं रोग से मुक्त नहीं हूँ"? स्वस्थ अवस्था में प्राणी अपने स्वास्थ्य के नशे में चूर रहते हैं, और जब वे अपने स्वास्थ्य के नशे में चूर होते हैं तो वे शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होते हैं। परन्तु जब कोई इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो स्वास्थ्य का नशा या तो पूरी तरह से त्याग दिया जाता है या कम हो जाता है। इसी लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं रोग के अधीन हूँ; मैं रोग से मुक्त नहीं हूँ।'"

(3) "और किस लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं मृत्यु के अधीन हूँ; मैं मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ"? अपने जीवनकाल में प्राणी जीवन के नशे में चूर रहते हैं, और जब वे जीवन के नशे में चूर होते हैं तो वे शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होते हैं। (73) परन्तु जब कोई इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो जीवन का नशा या तो पूरी तरह से त्याग दिया जाता है या कम हो जाता है। इसी लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं मृत्यु के अधीन हूँ; मैं मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ।'

(4) "और किस लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मुझे अपने प्रिय और मनभावन सभी लोगों और वस्तुओं से विमुख और पृथक होना पड़ेगा'? प्राणियों में अपने प्रिय और मनभावन लोगों और वस्तुओं के प्रति इच्छा और राग उत्पन्न होते हैं, और इस राग से उत्तेजित होकर वे शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होते हैं। परन्तु जब कोई इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो प्रिय और मनभावन सभी लोगों और वस्तुओं के प्रति इच्छा और राग या तो पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं या कम हो जाते हैं। इसी लाभ के लिए किसी स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मुझे अपने प्रिय और मनभावन सभी लोगों और वस्तुओं से विमुख और पृथक होना पड़ेगा।'

(5) "और किस लाभ के लिए स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ; कर्म ही मेरा मूल हैं, कर्म ही मेरे सगे हैं, कर्म ही मेरा सहारा हैं; मैं जो भी कर्म करूँ, चाहे अच्छे हों या बुरे,

मैं उनका उत्तराधिकारी हूँगा'? लोग शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं। परन्तु जब कोई इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो ऐसा दुराचार या तो पूरी तरह त्याग दिया जाता है या कम हो जाता है। इसी लाभ के लिए स्त्री या पुरुष, गृहस्थ या संन्यासी को बार-बार इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ; मेरे पास कर्म ही मेरा मूल है, कर्म ही मेरा रिश्तेदार है, कर्म ही मेरा सहारा है; मैं अपने अच्छे या बुरे कर्मों का उत्तराधिकारी स्वयं ही बनूंगा।

(1) "यह महान शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: [74] 'मैं अकेला नहीं हूँ जो वृद्धावस्था के अधीन हूँ, वृद्धावस्था से मुक्त नहीं हूँ। सभी प्राणी जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, वृद्धावस्था के अधीन हैं; कोई भी वृद्धावस्था से मुक्त नहीं है।' जैसे-जैसे वह इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका पोषण करता है। ऐसा करने से, बंधन पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं। 5060 .

(2) "यह महान शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अकेला नहीं हूँ जो रोग के अधीन हूँ, रोग से मुक्त नहीं हूँ। सभी प्राणी जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, रोग के अधीन हैं; कोई भी रोग से मुक्त नहीं है।' जैसे-जैसे वह इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका पोषण करता है। ऐसा करने से, बंधन पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

(3) "यह महान शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अकेला ही मृत्यु के अधीन नहीं हूँ, मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ। सभी प्राणी जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, मृत्यु के अधीन हैं; कोई भी मृत्यु से मुक्त नहीं है।' जब वह इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, तो मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका पोषण करता है। ऐसा करने से, बंधन पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

(4) "यह महान शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: मैं अकेला नहीं हूँ जिसे सभी प्रिय और मनभावन वस्तुओं से विमुख होना पड़ता है। सभी प्राणी जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, उन्हें सभी प्रिय और मनभावन वस्तुओं से विमुख होना पड़ता है।" जैसे-जैसे वह इस विषय पर बार-बार चिंतन करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसका पोषण करता है। ऐसा करने से बंधन पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।

(5) "यह श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अकेला नहीं हूँ जो अपने कर्मों का स्वामी हूँ, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ; जिसका मूल, संबंध और आश्रय कर्मों से ही है; जो अपने अच्छे या बुरे कर्मों का उत्तराधिकारी होगा। सभी प्राणी जो आते-जाते हैं, जो मरते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, अपने कर्मों के स्वामी हैं, अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं; सभी का मूल, संबंध और आश्रय कर्मों से ही है; सभी अपने अच्छे या बुरे कर्मों के उत्तराधिकारी होंगे, कि वे करते हैं' [75] जैसे-जैसे वह अक्सर इस विषय पर चिंतन करता है, मार्ग उत्पन्न होता है। वह इस मार्ग का अनुसरण करता है, इसे विकसित करता है और इसे पोषित करता है। ऐसा करते हुए, बेड़ियाँ पूरी तरह से त्याग दी जाती हैं और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखाड़ दी जाती हैं।

"संसार के लोग जो बीमारी, [1061]

बुढ़ापा और मृत्यु के अधीन हैं

, वे उन लोगों से घृणा करते हैं जो अपनी प्रकृति के अनुसार अस्तित्व में हैं।

"यदि मैं ऐसे स्वभाव वाले प्राणियों से घृणा करने लगूँ ,

तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा

क्योंकि मेरा स्वभाव भी वैसा ही है।"

इस प्रकार निवास करते हुए, मैंने

बिना किसी प्राप्ति के अवस्था को जान लिया था, और इस प्रकार

मैंने सभी व्यसनों पर विजय प्राप्त कर ली थी—

स्वास्थ्य,

यौवन और जीवन के व्यसन पर—

क्योंकि मैंने त्याग में ही सुरक्षा देखी थी। [1062]

"तब मुझमें उत्साह उत्पन्न हुआ

क्योंकि मैंने निर्वाण को स्पष्ट रूप से देख लिया था।

अब मैं

इंद्रिय सुखों में लिप्त होने में असमर्थ हूँ।

ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) पर भरोसा करते हुए,

मैं कभी पीछे नहीं हटूंगा।"

---

58 लिच्छवी युवक

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो वे विशाल वन में प्रवेश कर गए और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गए।

उस अवसर पर कई लिच्छवी युवक अपने धनुषों को लेकर कुत्तों के झुंड के साथ विशाल वन में टहल रहे थे, तभी उन्होंने भगवान (बुद्ध) को एक वृक्ष के नीचे दिनभर विश्राम करते हुए देखा। उन्हें देखकर उन्होंने अपने धनुष नीचे रख दिए, कुत्तों को एक तरफ हटा दिया और उनके पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया [76] और श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर चुपचाप उनकी सेवा में खड़े रहे।

उस समय लिच्छवी युवक महानामा बड़े वन में टहलते हुए व्यायाम कर रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि कुछ लिच्छवी युवक भगवान (बुद्ध) के समक्ष हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए चुपचाप खड़े हैं। तब वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और प्रेरणा से यह शब्द कहा: "ये वज्जी बनेंगे! ये वज्जी बनेंगे!"

(भगवान (बुद्ध) ने कहा;) "पर हे महानामा, तुम ऐसा क्यों कहते हो: 'वे वज्जी होंगे! वे वज्जी होंगे!'?"

"हे भंते, ये लिच्छवी युवक हिंसक, उबड़-खाबड़ और उद्दंड हैं। ये परिवारों में उपहार के रूप में छोड़ी गई किसी भी मिठाई को, चाहे वह गन्ने की हो, बेर की हो, केक हो, पाई हो या चीनी की गोलियां हों, लूट लेते हैं और फिर उन्हें खा जाते हैं। ये प्रतिष्ठित परिवारों की महिलाओं और लड़कियों की पीठ पर लात मारते हैं। 1063 अब ये भगवान (बुद्ध) के समक्ष हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए चुपचाप खड़े हैं।"

"महानामा, जिस भी कुल के व्यक्ति में पाँच गुण पाए जाते हैं—चाहे वह एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय राजा हो, एक ग्रामीण सज्जन हो, सेनापति हो, ग्राम प्रधान हो, संघ प्रमुख हो, या विभिन्न कुलों पर निजी शासन करने वाला कोई व्यक्ति हो—उसमें केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, महानामा, ऊर्जावान परिश्रम से अर्जित धन से, अपनी भुजाओं के बल से संचित धन से, अपने माथे के पसीने से कमाए गए धन से, धार्मिक रूप से अर्जित धन से, एक कुल का व्यक्ति अपने माता-पिता का आदर, सम्मान, आदर और आदर करता है। [77] उसके माता-पिता, आदरणीय, सम्मानित और पूजनीय होने के कारण, उस पर दया भाव रखते हैं और सोचते हैं: 'तुम दीर्घायु हो और तुम्हारी आयु लंबी हो।' जब किसी कुल के व्यक्ति के माता-पिता उस पर दया भाव रखते हैं, तो उससे केवल वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(2) "फिर, महानामा, जो अपने परिश्रम से अर्जित धन, अपनी भुजाओं के बल से संचित धन, अपने माथे के पसीने से कमाए गए धन, जो धार्मिक रूप से अर्जित किया गया हो, वह अपने कुल का पुरुष अपनी पत्नी और बच्चों, अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों का आदर, सम्मान, आदर और आदर करता है। आदर, सम्मान और आदर पाकर, वे उस पर दया भाव रखते हैं और सोचते हैं, 'आप दीर्घायु हों!' जब किसी कुल के पुरुष की पत्नी और बच्चे, दास, श्रमिक और सेवक उस पर दया भाव रखते हैं, तो उससे केवल उन्नति की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(3) "फिर, महानामा, जो अपने परिश्रम से अर्जित धन, अपनी भुजाओं के बल से संचित धन, अपने माथे के पसीने से कमाए गए धन, सही ढंग से अर्जित धन से संपन्न है, वह अपने कुल का पुरुष अपने पड़ोसी खेतों के मालिकों और जिनके साथ वह व्यापार करता है, उनका आदर, सम्मान और आदर करता है। 1064 आदर, सम्मान और आदर पाकर, वे उस पर दया भाव रखते हैं और सोचते हैं, 'आपकी आयु दीर्घायु हो!' जब पड़ोसी खेतों के मालिक और जिनके साथ वह व्यापार करता है, किसी कुल के पुरुष पर दया भाव रखते हैं, तो उससे केवल वृद्धि की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(4) "फिर, महानामा, ऊर्जावान परिश्रम से अर्जित धन से, भुजाओं के बल से संचित धन से, माथे के पसीने से कमाए गए धन से, धार्मिक रूप से अर्जित धन से, एक कुलवासी आहुति देने वाले देवताओं का आदर, सम्मान और पूजा करता है। 1065 आदर, सम्मान और पूजा पाकर, वे उस पर दया भाव रखते हैं और सोचते हैं: 'आप दीर्घायु हों!' जब आहुति देने वाले देवता (देवदूत) किसी कुलवासी पर दया करते हैं, तो उससे केवल वृद्धि की ही अपेक्षा की जाती है, पतन की नहीं।"

(5) "फिर, महानामा, अपने परिश्रम से अर्जित धन से, अपनी भुजाओं के बल से संचित धन से, अपने माथे के पसीने से कमाए धन से, धार्मिक रूप से अर्जित धन से, एक कुलवासी तपस्वियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान, आदर और पूजा करता है। आदर, सम्मान, आदर और पूजा पाकर, वे उस पर दया भाव रखते हैं और सोचते हैं: 'आप दीर्घायु हों!' जब तपस्वियों और ब्राह्मणों को किसी कुलवासी पर दया आती है, तो उससे केवल उन्नति की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

"महानामा, ये पाँच गुण जिस भी कुल के व्यक्ति में पाए जाते हैं - चाहे वह एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय राजा हो, एक ग्रामीण सज्जन हो, सेना का सेनापति हो, ग्राम प्रधान हो, संघ प्रमुख हो, या विभिन्न कुलों पर निजी शासन करने वाला कोई व्यक्ति हो - केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

वह अपने माता-पिता के प्रति हमेशा अपने कर्तव्य का पालन करता है;

वह अपनी पत्नी और बच्चों के कल्याण को बढ़ावा देता है।

वह अपने घर के लोगों

और अपने आश्रितों की देखभाल करता है।

बुद्धिमान, परोपकारी और गुणी व्यक्ति

अपने दोनों प्रकार के रिश्तेदारों के भले के लिए कार्य करता है, चाहे वे इस दुनिया से

चले गए हों या अभी जीवित हों।

वह तपस्वियों और ब्राह्मणों,

और देवताओं (देवदूतों) को लाभ पहुंचाता है; वह घर पर धार्मिक जीवन जीते हुए

आनंद उत्पन्न करने वाला है ।

अच्छे कर्म करने के कारण

वह आदर और प्रशंसा के योग्य है।

लोग इस संसार में उसकी स्तुति करते हैं

और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।

---

59 वृद्धावस्था में साधु जीवन में चले गए (1) (वुड्ढपब्बजिता सं. वृद्ध प्रवरजिता)

भिक्षुओं, वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति का मिलना दुर्लभ है जिनमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण कौन से हैं? वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति का मिलना दुर्लभ है जो (1) बुद्धिमान हो; (2) उचित आचरण वाला हो; (3) विद्वान हो; (4) धर्म पर प्रवचन दे सके; और (5) अनुशासन का ज्ञाता हो। वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति का मिलना दुर्लभ है जिनमें ये पाँच गुण हों।

---

60 वृद्धावस्था में साधु जीवन में चले गए (2) (वुड्ढपब्बजिता सं. वृद्ध प्रवरजिता)

भिक्षुओं, वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति को पाना दुर्लभ है जिनमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण कौन से हैं? वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति को पाना दुर्लभ है जो आसानी से सुधर जाता हो; [79] (2) जो अपने ज्ञान को दृढ़ता से धारण करता हो; (3) जो शिक्षा को आदरपूर्वक ग्रहण करता हो; (4) जो धम्म पर प्रवचन दे सकता हो; और (5) जो अनुशासन का ज्ञाता हो। वृद्धावस्था में संन्यासी बनने वाले ऐसे व्यक्ति को पाना दुर्लभ है जिनमें ये पाँच गुण हों।

द्वितीय. संज्ञान (सन्ना सं. संज्ञा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

61 धारणाएँ (1)(सन्ना1 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये पाँच ज्ञान/समझ/धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। वे पाँच कौन सी हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा), मृत्यु की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा), खतरे की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा), भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा), और समस्त

संसार में आनंदहीनता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा)। ये पाँच अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं।

---

62 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये पाँचों धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की ओर ले जाती हैं। वे पाँच कौन सी हैं? अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की धारणा, अनात्म की धारणा, मृत्यु की धारणा, भोजन की अरुचि की धारणा और समस्त संसार में आनंदहीनता की धारणा। 1067 [80] ये पाँचों धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की ओर ले जाती हैं।

---

63 वृद्धि (1) (वधि1 सं. वृद्धि)

भिक्षु (सन्यासी), पाँच मार्गों से विकास करते हुए, एक श्रेष्ठ पुरुष शिष्य श्रेष्ठ विकास से उन्नति करता है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करता है। वे पाँच मार्ग कौन से हैं? वह आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में उन्नति करता है। इन पाँच मार्गों से उन्नति करते हुए, एक श्रेष्ठ पुरुष शिष्य श्रेष्ठ विकास से उन्नति करता है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करता है।

जो व्यक्ति आस्था और सदाचारी आचरण में,

पन्ना (दिव्य ज्ञान) में, उदारता में और विद्या में वृद्धि करता है—

ऐसा विवेकशील श्रेष्ठ व्यक्ति

स्वयं ही इस जीवन का सार आत्मसात कर लेता है।

---

64 विकास (2) (वद्धि2 सं. वृद्धि)

भिक्षुओं (सन्यासियों) की तरह, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या भी पाँच प्रकार से उन्नति करती है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करती है। वे पाँच कौन से गुण हैं? वह आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और दिव्य ज्ञान में उन्नति करती है। इन पाँच गुणों में उन्नति करते हुए, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या श्रेष्ठ गुण से उन्नति करती है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करती है।

जो आस्था और सदाचारी आचरण में,

पन्ना (दिव्य ज्ञान) में, उदारता में और विद्या में बढ़ती है—

ऐसी सदाचारी गृहस्थ अनुयायी

अपने लिए इस जीवन का सार आत्मसात कर लेती है।

= 65 चर्चा (सकच्छा)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में पाँच गुण होते हैं, तो उसके साथी भिक्षुओं के लिए उससे चर्चा करना उचित होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण है, और वह सद्गुणों में संपदा (सिद्धि) पर चर्चा में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देता है। (2) वह स्वयं समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में निपुण है, और वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) पर चर्चा में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देता है। (3) वह स्वयं ज्ञान (पन्न) में निपुण है, और वह ज्ञान (पन्न) में संपदा (सिद्धि) पर चर्चा में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देता है।

(4) वह स्वयं मोक्ष में सिद्ध है, और मोक्ष में सिद्धि (संपदा) पर चर्चा के दौरान उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देता है। (5) वह स्वयं मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में सिद्ध है, और मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में सिद्धि (संपदा) पर चर्चा के दौरान उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देता है। जब किसी भिक्षु में ये पाँच गुण होते हैं, तो उसके साथी भिक्षुओं के लिए उससे चर्चा करना उचित होता है।

---

66 जीवन शैली (सजीव)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में पाँच गुण होते हैं, तो उसके साथी भिक्षुओं के लिए उसके साथ रहना उचित होता है। 1068 वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण है, और वह सद्गुणों में निपुणता पर चर्चा के दौरान पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। (2) वह स्वयं समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में निपुण है, और वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में निपुणता (संपदा) पर चर्चा के दौरान पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। (3) वह स्वयं ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुण है, और वह ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में निपुणता (संपदा) पर चर्चा के दौरान पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। (4) वह स्वयं मुक्ति (मुक्ति) में निपुण है, और वह मुक्ति (संपदा) में निपुणता (संपदा) पर चर्चा के दौरान पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। (5) वह स्वयं मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में निपुण है, और वह मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में निपुणता (संपदा) पर चर्चा के दौरान पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)। जब किसी भिक्षु में ये पाँच गुण होते हैं, तो उसके साथी भिक्षुओं के लिए उसके साथ रहना उचित होता है।

---

67 मानसिक शक्ति (जादू) के आधार (1) (इद्धिपाद1)

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु या भिक्षुणी पाँच चीजों का विकास और अभ्यास करता है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: [82] या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान या, यदि कोई अवशेष शेष रहता है, तो अनागामी अवस्था (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं)। वे पाँच क्या हैं?

(1) यहाँ, एक भिक्षु इच्छा और परिश्रम के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से युक्त मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। (2) वह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और परिश्रम के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से युक्त मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। (3) वह मन और परिश्रम के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से युक्त मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। (4) वह खोज और परिश्रम के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से युक्त मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। 1069 (5) उत्साह स्वयं पाँचवाँ है। 1070

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पांच चीजों का विकास और अभ्यास करता है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान प्राप्त करना, या यदि कोई शेष रह जाता है, तो पुनर्जन्म न लेने की अवस्था (अनगामी) प्राप्त करना।"

---

68 मानसिक शक्ति (जादू) के आधार (2) (इद्धिपाद 2)

"भिक्षुओं, मुझे ज्ञान प्राप्त होने से पहले, जब मैं मात्र एक बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मैंने पाँच चीजों का विकास और अभ्यास किया। वे पाँच चीजें कौन सी थीं?"

(1) मैंने इच्छा और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित किया। (2) मैंने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित किया। (3) मैंने मन और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित किया। (4) मैंने अन्वेषण और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति का आधार विकसित किया। (5) उत्साह स्वयं पाँचवाँ था।

"चूंकि मैंने इन चीजों को पांचवें तत्व के रूप में उत्साहपूर्वक विकसित और पोषित किया था, इसलिए उपयुक्त आधार होने के कारण, मैं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम था, जिसकी ओर मैंने अपना मन लगाया।"

"यदि मैं चाहूँ: 'मैं अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग कर सकूँ: एक होकर अनेक बन सकूँ... [जैसा कि 5:23 में है]... मैं ब्रह्म जगत तक शरीर पर भगवानत्व प्राप्त कर सकूँ।' मैं इसे साकार करने में सक्षम था, क्योंकि इसके लिए एक उपयुक्त आधार था... [जैसा कि 5:23 में है]...."

"यदि मैं चाहूँ: [83] 'मैं दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करूँ, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँ, तो मैं उसे अनुभव करने में सक्षम था, क्योंकि वहाँ एक उपयुक्त आधार था।"

---

69 मोहभंग (निब्बिडा)

भिक्षुओं, इन पाँचों चीजों का विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। वे पाँच कौन सी हैं? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता का अवलोकन करते हुए, भोजन की अरुचि का अनुभव करते हुए, समस्त संसार में आनंदहीनता का अनुभव करते हुए, सभी बद्ध घटनाओं में अनित्यता का अवलोकन करते हुए ध्यान में लीन रहता है; और उसे मृत्यु का ज्ञान आंतरिक रूप से अच्छी तरह स्थापित होता है। इन पाँचों चीजों का विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय प्राप्त होता है। निर्वाण।"

---

70 दशों का नाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)

भिक्षुओं, इन पाँचों चीजों को विकसित और अभ्यास करने से दोषों का नाश होता है। वे पाँच कौन सी हैं? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता का अवलोकन (अनुपसी में) करता है, भोजन की अरुचि का अनुभव करता है, समस्त संसार में अनाकर्षकता का अनुभव करता है, सभी बद्ध घटनाओं में अनित्यता का अवलोकन (अनुपसी में) करता है; और उसे मृत्यु का ज्ञान आंतरिक रूप से अच्छी तरह स्थापित होता है। इन पाँचों चीजों को विकसित और अभ्यास करने से दोषों का नाश होता है। [84]

III. योद्धा (योद्धाजीव)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

71 मन की मुक्ति (1) (सीटोविमुट्टीफला1 सं. सेटो-विमुक्ति-फला)

भिक्षुओं, जब इन पाँचों चीजों का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो मन की मुक्ति इनका फल और लाभ होती है; इन्हें पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति इनका फल और लाभ होती है। 1071 वे पाँच क्या हैं?

यहां, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता का अवलोकन (अनुपसी में) करते हुए, भोजन की अरुचि का अनुभव करते हुए, समस्त संसार में आनंदहीनता का अवलोकन करते हुए, सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता का अवलोकन (अनुपसी में) करते हुए, मृत्यु की अनुभूति (संज्ञा) को आंतरिक रूप से स्थापित करते हैं। इन पांचों चीजों को विकसित और पोषित करने पर मन की मुक्ति प्राप्त होती है, मन की मुक्ति ही इनका फल और लाभ है; इनसे ज्ञान (पन्न) द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, और यही ज्ञान (पन्न) द्वारा मुक्ति का फल है।

जब कोई भिक्षु मन से मुक्त हो जाता है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से मुक्त हो जाता है, तो उसे खाई में भरी हुई चौखट को हटाने वाला, स्तंभ को उखाड़ फेंकने वाला, बिना बोल्ट वाला, ध्वज झुका हुआ, बोझ उतारकर अलग हुआ भिक्षु कहा जाता है। 1072

और भिक्षु ने उस बाधा को कैसे हटाया है? यहाँ, भिक्षु ने अज्ञान का त्याग कर उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के पेड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। इसी प्रकार भिक्षु ने उस बाधा को हटाया है।

"और भिक्षु खाई को कैसे भरता है? यहाँ, भिक्षु पुनर्जन्म के चक्र में भटकने का त्याग कर देता है, जो नए जीवन का कारण बनता है; वह इसे जड़ से काट देता है, इसे ताड़ के ठूंठ की तरह बना देता है, इसे मिटा देता है ताकि यह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो। इस प्रकार भिक्षु खाई को भरता है।"

"और भिक्षु ने स्तंभ को कैसे उखाड़ा? [85] यहाँ, भिक्षु ने तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का त्याग कर उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। इसी प्रकार भिक्षु ने स्तंभ को उखाड़ा है।"

और भिक्षु किस प्रकार बंधनमुक्त होता है? यहाँ, भिक्षु ने पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उन्हें मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। इसी प्रकार भिक्षु बंधनमुक्त होता है।

और ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और अनासक्त भिक्षु कैसे श्रेष्ठ होता है? यहाँ, भिक्षु ने 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंका है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। इसी प्रकार, ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और अनासक्त भिक्षु श्रेष्ठ होता है।

---

72 मन की मुक्ति (2) (सीटोविमुट्टीफला2 सं. सेटो-विमुक्ति-फला)

भिक्षुओं, जब इन पाँच चीजों का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो मन की मुक्ति इनका फल और लाभ दोनों है; इनसे पारस ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। ये पाँच चीजें क्या हैं? अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति और वैराग्य की अनुभूति। 1073 जब इन पाँच चीजों का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो मन की मुक्ति इनका फल और लाभ दोनों है; इनसे पारस ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है।

जब कोई भिक्षु मन से मुक्त हो जाता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है, तो उसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने चौखट हटा दी हो, खाई भर दी हो, स्तंभ उखाड़ दिया हो, एक निहाई हुआ भिक्षु, एक महान भिक्षु जिसका ध्वज नीचे झुका हुआ हो, जिसका बोझ उतर गया हो, जो अनासक्त हो।

"और वह भिक्षु कैसा होता है जिसने क्रॉस बार हटा दिया हो? ... [सभी 5:71 के अनुसार, नीचे:] [86] ... इसी तरह एक भिक्षु ध्वज झुकाकर, बोझ उतारकर, अनासक्त होकर महान होता है।"

---

73 वह जो धम्म में निवास करता है (1) (धम्मविहारी1 सं. धर्म-विहारी)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला:

"कहा जाता है, भंते, 'जो धम्म में निवास करता है, जो धम्म में निवास करता है' 1074 भिक्षु किस प्रकार धम्म में निवास करने वाला होता है?"

(1) "हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु धम्म (मार्ग) का अध्ययन करता है: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), आश्चर्यजनक वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। वह दिन भर धम्म का अध्ययन करता है, परन्तु एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। इसे अध्ययन में लीन भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु। [87]

(2) "एक भिक्षु दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक उपदेश देता है, जैसा उसने सुना और सीखा है। वह दिनभर धम्म का प्रचार करता रहता है, परन्तु एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। ऐसे भिक्षु को प्रचार में लीन रहने वाला भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु।"

(3) "एक भिक्षु धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। वह दिन भर पाठ में व्यतीत करता है, परन्तु एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। ऐसे भिक्षु को पाठ में लीन रहने वाला भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला।"

(4) “एक भिक्षु (भिक्षु) धम्म का चिंतन, परीक्षण और मानसिक निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। वह दिन भर धम्म के चिंतन में व्यतीत करता है, परन्तु एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। ऐसे भिक्षु को चिंतन में लीन भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु।”

(5) “यहाँ भिक्षु धम्म का अध्ययन करता है— प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), आश्चर्यजनक वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर—परन्तु वह दिन भर केवल धम्म का अध्ययन नहीं करता। वह एकांतवास की उपेक्षा नहीं करता, परन्तु मन की आंतरिक समता (समथा) में लगा रहता है। 1076 इसी प्रकार भिक्षु धम्म में निवास करता है।”

“इस प्रकार, हे भिक्षु, मैंने सीखने में लीन, संवाद में लीन, पाठ में लीन, चिंतन में लीन और धम्म में निवास करने वाले को शिक्षा दी है। जो कुछ एक करुणामय शिक्षक को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए करुणा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं। ध्यान करो, हे भिक्षु, आलसी मत बनो। बाद में पछताने का कोई कारण न हो। यही हमारा तुम्हें उपदेश है।” [88]

---

74 वह जो धम्म में निवास करता है (2) (धम्मविहारी2 सं. धर्म विहारी)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला:

“भंते, ऐसा कहा जाता है, 'जो धम्म में निवास करता है, वही धम्म में निवास करता है।' भिक्षु किस प्रकार धम्म में निवास करता है?”

(1) “हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु धम्म (मार्ग) का अध्ययन करता है—सूत्र, गद्य-पद, व्याख्याएँ, गाथाएँ, प्रेरित कथन, इतिवुत्तक, जातक कथाएँ, अद्भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर—परन्तु वह इससे आगे बढ़कर इसके अर्थ को दैवीय ज्ञान से नहीं समझता। 1077 इसे विद्या में लीन भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु।”

(2) “एक भिक्षु दूसरों को धम्म का विस्तृत उपदेश देता है जैसा उसने सुना और सीखा है, परन्तु वह आगे बढ़कर पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उसका अर्थ नहीं समझता। ऐसे भिक्षु को उपदेश में लीन रहने वाला भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला।

(3) "एक भिक्षु धम्म का विस्तृत पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, लेकिन वह आगे बढ़कर पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उसका अर्थ नहीं समझता। इसे पाठ में लीन भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु।"

(4) “एक भिक्षु धम्म पर मनन करता है, उसका परीक्षण करता है और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है, लेकिन वह आगे बढ़कर पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उसका अर्थ नहीं समझता। इसे विचार में लीन भिक्षु कहा जाता है, न कि धम्म में निवास करने वाला भिक्षु।”

(5) "यहाँ भिक्षु धम्म का अध्ययन करता है— प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), अद्भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर—पर वह इससे आगे बढ़कर पन्ना (दिव्य ज्ञान) से इसका अर्थ समझता है। इसी प्रकार भिक्षु धम्म में निवास करता है।"

"इस प्रकार, भिक्षु, मैंने सीखने में लीन, संवाद में लीन, पाठ में लीन, चिंतन में लीन और धम्म में निवास करने वाले को शिक्षा दी है। एक करुणामय शिक्षक को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए जो कुछ करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं। ध्यान करो, भिक्षु, आलसी मत बनो। बाद में पछताने का कोई कारण न हो। यही हमारा तुम्हें उपदेश है।"

---

75 योद्धा (1) (योद्धाजीव1)

"भिक्षुओं, संसार में पाँच प्रकार के योद्धा पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई योद्धा धूल का बादल देखकर 1078 डूब जाता है, लड़खड़ा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। संसार में पाया जाने वाला यह पहला प्रकार का योद्धा है।"

(2) "फिर, कुछ योद्धा धूल के बादल को सहन कर सकते हैं, लेकिन जब वे झंडों के शिखर देखते हैं, तो वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, स्वयं को संभाल नहीं पाते और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाते। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला दूसरे प्रकार का योद्धा है।"

(3) "फिर, कुछ योद्धा धूल के बादल और झंडों की लपटों को सहन कर सकते हैं, लेकिन जब वे शोर सुनते हैं, तो वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, खुद को संभाल नहीं पाते और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाते। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला तीसरे प्रकार का योद्धा है।"

(4) "फिर, कुछ योद्धा धूल के बादल, झंडों की लपटों और शोर को सहन कर सकते हैं, लेकिन वे प्रहारों से घायल हो जाते हैं। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला चौथा प्रकार का योद्धा है।"

(5) "फिर, कुछ योद्धा धूल के बादल, झंडों की लपटें, शोरगुल और प्रहार सहन कर सकते हैं। उस युद्ध में विजय प्राप्त करके, वे विजयी होकर युद्धक्षेत्र के शीर्ष पर विराजमान होते हैं। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला पाँचवाँ प्रकार का योद्धा है।"

"ये दुनिया में पाए जाने वाले पांच प्रकार के योद्धा हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं में भी योद्धाओं के समान पाँच प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई भिक्षु जब धूल का बादल देखता है, तो वह निराश हो जाता है, टूट जाता है, स्वयं को संभाल नहीं पाता और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का पालन नहीं कर पाता। वह प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट करता है, प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। 1079 उसके मामले में धूल का बादल क्या है? भिक्षु सुनता है: 'अमुक गाँव या कस्बे में स्त्रियाँ या लड़कियाँ सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर हैं।' यह सुनकर वह निराश हो जाता है, डगमगा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाता। वह प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट कर देता है, प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। यही उसके मामले में धूल का बादल है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो धूल का बादल देखकर डगमगा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह पहला व्यक्ति है।

(2) "फिर, कुछ भिक्षु धूल के बादल को सहन कर सकते हैं, परन्तु जब वे झंडों के शिखर देखते हैं, तो वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, स्वयं को संभाल नहीं पाते और ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर पाते। वे प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट करते हैं, प्रशिक्षण छोड़ देते हैं और निम्न जीवन में लौट जाते हैं। उनके मामले में झंडों के शिखर क्या हैं? भिक्षु यह नहीं सुनते कि 'अमुक गाँव या कस्बे में स्त्रियाँ या लड़कियाँ सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर हैं,' बल्कि वे स्वयं एक स्त्री या कन्या को देखते हैं जो सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर है। उसे देखकर वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, स्वयं को संभाल नहीं पाते और [91] ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर पाते। वे प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट करते हैं, प्रशिक्षण छोड़ देते हैं और निम्न जीवन में लौट जाते हैं। उनके मामले में ये झंडों के शिखर हैं। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई योद्धा धूल के बादल को सहन कर सकता है, परन्तु झंडों के शिखर देखकर भयभीत हो जाता है, डगमगा जाता है, हिम्मत नहीं जुटा पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह दूसरा प्रकार का व्यक्ति है।

(3) "फिर, कुछ भिक्षु धूल के बादल और झंडों की लपटों को सहन कर सकते हैं, परन्तु जब वे शोर सुनते हैं, तो वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, स्वयं को संभाल नहीं पाते और ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर पाते। वे प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट कर देते हैं, प्रशिक्षण छोड़ देते हैं और निम्न जीवन में लौट जाते हैं। उनके मामले में शोर क्या है? जब भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कुटिया में जाते हैं, तो एक स्त्री उनके पास आती है, उन पर मुस्कुराती है, उनसे बातें करती है, उन पर हंसती है और उन्हें चिढ़ाती है। जब स्त्री उन पर मुस्कुरा रही होती है, उनसे बातें कर रही होती है, उन पर हंस रही होती है और उन्हें चिढ़ा रही होती है, तो वे डूब जाते हैं, लड़खड़ा जाते हैं, स्वयं को संभाल नहीं पाते और ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर पाते। वे प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट कर देते हैं, प्रशिक्षण छोड़ देते हैं और निम्न जीवन में लौट जाते हैं। यही उनके मामले में शोर है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो धूल के बादल को सहन कर सकता है। धूल और झंडों के शिखरों के बीच, वह शोर सुनकर धंस जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह तीसरा प्रकार का व्यक्ति है।

(4) "फिर, कुछ भिक्षु धूल के बादल, झंडों की लपटों और शोरगुल को सहन कर सकते हैं, लेकिन वे एक प्रहार से घायल हो जाते हैं। उनके मामले में प्रहार क्या है? जब भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में, [92] या किसी खाली कुटिया में जाते हैं, तो एक स्त्री उनके पास आती है, उनके बगल में बैठ जाती है या लेट जाती है और उन्हें आलिंगन करती है। ऐसा करने पर, वह प्रशिक्षण छोड़े बिना और अपनी कमजोरी प्रकट किए बिना उसके साथ यौन संबंध बनाते हैं। यही उनके मामले में प्रहार है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो धूल के बादल, झंडों की लपटों और शोरगुल को सहन कर सकता है, लेकिन जो एक प्रहार से घायल हो जाता है। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह चौथा प्रकार का व्यक्ति है।"

(5) "फिर, कुछ भिक्षु धूल के बादल, झंडों की फूँक, शोरगुल और प्रहार सहन कर लेते हैं। उस युद्ध में विजय प्राप्त करके वे विजयी होकर युद्धक्षेत्र के अग्रणी बन जाते हैं। उनके मामले में विजय क्या है? जब भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कुटिया में जाते हैं, तो एक स्त्री उनके पास आती है, उनके बगल में बैठ जाती है या लेट जाती है और उन्हें आलिंगन करती है। परन्तु वे अपने आप को छुड़ा लेते हैं, मुक्त हो जाते हैं और जहाँ चाहें वहाँ चले जाते हैं।"

वह एकांत स्थान पर शरण लेता है: जंगल, वृक्ष की तलहटी, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, वन पर्वतमाला, खुला आकाश, भूसे का ढेर। जंगल में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली झोपड़ी में जाकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने सती (ध्यान) स्थापित करता है। संसार के प्रति लालसा का त्याग करके, वह लालसा से मुक्त मन से रहता है; वह अपने मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष और घृणा का त्याग करके, वह द्वेष से मुक्त मन से, सभी प्राणियों के प्रति करुणा से भरा रहता है; वह अपने मन को द्वेष और घृणा से शुद्ध करता है। सुस्ती और आलस्य का त्याग करके, वह सुस्ती और आलस्य से मुक्त, प्रकाश के प्रति सजग, सचेत (ध्यान) और पूर्णतः बोधगम्य रहता है; वह अपने मन को सुस्ती और आलस्य से शुद्ध करता है। बेचैनी और पश्चाताप का त्याग करके, वह बिना किसी व्याकुलता के, आंतरिक रूप से शांत मन से रहता है; वह अपने मन को बेचैनी और पश्चाताप से शुद्ध करता है। संदेह का त्याग करके, वह संदेह से परे जाकर, [93] लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के बारे में अविचलित रहता है; वह अपने मन को संदेह से शुद्ध करता है।

"मन की उन पाँच बाधाओं, विकारों का त्याग करके, जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करते हैं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था), जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान (ध्यान) की शुद्धि होती है।"

जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाधि में) होता है, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित होता है, तब वह उसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। 1080 वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' वह यथार्थ को समझता है: 'ये दोष हैं।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दोषों का मूल है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दोषों का निवारण है।' वह यथार्थ को समझता है: 'यह दोषों के निवारण का मार्ग है।' जब वह इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है और देखता है, तो उसका मन कामुक इच्छाओं, अस्तित्व के भावों और अज्ञान के दाग से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, आध्यात्मिक जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई अधिकार नहीं है।' यही उसकी विजय है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो धूल के बादल, झंडों की लपटों, शोरगुल और प्रहार को सहन कर सकता है, और जो उस युद्ध में विजयी होकर युद्धक्षेत्र के अग्रणी स्थान पर विराजमान होता है। भिक्षुओं, ऐसा ही एक व्यक्ति यहाँ है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला यह पाँचवाँ योद्धा के समान व्यक्ति है।

"भिक्षुओं में पाए जाने वाले योद्धाओं के समान पांच प्रकार के व्यक्ति ये हैं।"

---

76 योद्धा (2) (योद्धाजीव2)

"भिक्षुओं, संसार में पाँच प्रकार के योद्धा पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई योद्धा तलवार और ढाल लेकर, [94] धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है। वह युद्ध में संघर्ष करता है और अपना बल लगाता है, परन्तु उसके शत्रु उसे मार डालते हैं और उसका वध कर देते हैं। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। संसार में पाया जाने वाला यह प्रथम प्रकार का योद्धा है।"

(2) "फिर, कोई योद्धा तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है। वह युद्ध में पूरी ताकत लगाता है, पर उसके शत्रु उसे घायल कर देते हैं। उसके साथी उसे उठाकर उसके रिश्तेदारों के पास ले जाते हैं। रिश्तेदारों के पास ले जाते समय ही रास्ते में उसकी मृत्यु हो जाती है, पहुँचने से पहले ही। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला दूसरे प्रकार का योद्धा है।"

(3) "फिर, कोई योद्धा तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है। वह युद्ध में पूरी ताकत लगाता है, परन्तु उसके शत्रु उसे घायल कर देते हैं। उसके साथी उसे उठाकर उसके रिश्तेदारों के पास ले जाते हैं। उसके रिश्तेदार उसकी देखभाल करते हैं, परन्तु इसी दौरान वह उस चोट से मर जाता है। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला तीसरे प्रकार का योद्धा है।"

(4) "फिर, कोई योद्धा तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है। वह युद्ध में पूरी ताकत लगाता है, पर उसके शत्रु उसे घायल कर देते हैं। उसके साथी उसे उठाकर उसके रिश्तेदारों के पास ले जाते हैं। उसके रिश्तेदार उसकी देखभाल करते हैं और उसकी सेवा करते हैं, और परिणामस्वरूप वह उस चोट से उबर जाता है। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला चौथा प्रकार का योद्धा है।"

(5) "फिर, कोई योद्धा तलवार और ढाल उठाता है, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में प्रवेश करता है। उस युद्ध में विजय प्राप्त करके वह विजयी होकर निकलता है [95] और युद्धक्षेत्र के अग्रणी स्थान पर आसीन होता है। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक योद्धा है। यह संसार में पाया जाने वाला पाँचवाँ प्रकार का योद्धा है;

"ये दुनिया में पाए जाने वाले पांच प्रकार के योद्धा हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं में भी योद्धाओं के समान पाँच प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर आश्रित होकर रहता है। सुबह वह वस्त्र धारण करता है, अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर उस गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है, शरीर, वाणी और मन असंयमित रहते हुए, बिना सजगता स्थापित किए, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए। वहाँ वह स्त्रियों को अस्त-व्यस्त और ढीले वस्त्रों में देखता है। उन्हें देखकर उसके मन में कामवासना (राग) उत्पन्न होती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह अपनी कमजोरी को प्रकट किए बिना और साधना का त्याग किए बिना यौन संबंध बनाता है। मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है, और जिसके शत्रु उसे युद्ध में संघर्ष करते हुए मार डालते हैं। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह पहला व्यक्ति है।"

(2) "फिर, कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर रहता है। सुबह वह वस्त्र धारण करता है, अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर उस गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है, शरीर, वाणी और मन असंयमित रहते हुए, बिना सचेतनता स्थापित किए, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए। वहाँ वह स्त्रियों को अस्त-व्यस्त और ढीले वस्त्रों में देखता है। उन्हें देखकर उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह शारीरिक और मानसिक रूप से (कामवासना (राग) के बुखार से) जलता है। वह सोचता है: 'मैं मठ [96] लौट जाऊँ और भिक्षुओं को बताऊँ: "मित्रों, मैं कामवासना (राग) से ग्रस्त हूँ, कामवासना (राग) से पीड़ित हूँ। मैं ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का पालन नहीं कर सकता।" प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट कर देने के कारण, मैं प्रशिक्षण छोड़ दूंगा और निम्न जीवन में लौट जाऊंगा। मठ लौटते समय, पहुँचने से पहले ही, वह प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट कर देता है, प्रशिक्षण छोड़ देता है और रास्ते में ही निम्न जीवन में लौट जाता है। मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है, युद्ध में संघर्ष करते हुए अपने शत्रुओं द्वारा घायल हो जाता है, और फिर उसे उसके रिश्तेदारों के पास ले जाया जाता है, लेकिन पहुँचने से पहले ही रास्ते में उसकी मृत्यु हो जाती है। हे भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान यह दूसरा प्रकार का व्यक्ति है।

(3) "फिर, कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर रहता है। सुबह वह वस्त्र धारण करता है, अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर उस गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने जाता है, शरीर, वाणी और मन असंयमित होते हैं, ध्यान स्थापित नहीं किया होता, उसकी इंद्रियाँ अनियंत्रित होती हैं। वहाँ वह स्त्रियों को अस्त-व्यस्त और ढीले वस्त्रों में देखता है। उन्हें देखकर उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह शारीरिक और मानसिक रूप से कामवासना (राग) के बुखार से जल उठता है। वह सोचता है: 'मैं मठ लौटकर भिक्षुओं को बताऊँ: "मित्रों, मैं कामवासना (राग) से ग्रस्त हूँ, कामवासना (राग) से पीड़ित हूँ।" मैं ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर सकता। प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट होने के कारण, मैं प्रशिक्षण छोड़ दूंगा और निम्न जीवन में लौट जाऊंगा। वह मठ लौटकर भिक्षुओं को सूचित करता है: 'मित्रों, मैं कामवासना (राग) से ग्रस्त हूं, कामवासना (राग) से पीड़ित हूं।

मैं ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन नहीं कर सकता। प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट होने के कारण, मैं प्रशिक्षण छोड़ दूंगा और निम्न जीवन में लौट जाऊंगा।' तब उनके साथी भिक्षु उन्हें उपदेश और निर्देश देते हैं: [97] 'मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख कम संतुष्टि, अधिक पीड़ा और कष्ट प्रदान करते हैं, और उनमें खतरा अधिक है। 108' कंकाल के उपमा से भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख कम संतुष्टि, अधिक पीड़ा और कष्ट प्रदान करते हैं, और उनमें खतरा अधिक है। मांस के टुकड़े के उपमा से... घास की मशाल के उपमा से... कोयले के गड्ढे के उपमा से... सपने के उपमा से... उधार ली गई वस्तुओं के उपमा से... पेड़ पर फलों के उपमा से... कसाई के चाकू और ब्लॉक के उपमा से... तलवार के खंभे के उपमा से... सांप के सिर के उपमा से, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े से संतोष देते हैं, बहुत दुख और पीड़ा देते हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है। ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का आनंद लो। यह मत सोचो कि तुम प्रशिक्षण का पालन करने में असमर्थ हो, इसे छोड़ दो और निम्न जीवन में लौट जाओ। जब उनके साथी भिक्षु उन्हें इस प्रकार उपदेश और निर्देश दे रहे थे, तब उन्होंने विरोध किया: 'मित्रों, यद्यपि भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े से संतोष देते हैं, बहुत दुख और पीड़ा देते हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है, फिर भी मैं ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन करने में असमर्थ हूँ। प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी प्रकट करते हुए, मैं प्रशिक्षण छोड़ दूंगा और निम्न जीवन में लौट जाऊंगा।' प्रशिक्षण में अपनी कमजोरी उजागर होने पर, वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ठीक उस योद्धा के समान है जो तलवार और ढाल उठाता है, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में उतरता है, युद्ध में संघर्ष और परिश्रम करते हुए अपने शत्रुओं द्वारा घायल हो जाता है, और फिर उसे [98] ले जाकर उसके रिश्तेदारों के पास लाया जाता है।जो उसकी देखभाल करते हैं और उसकी सेवा करते हैं, लेकिन जो उस चोट से मर जाता है। ऐसा एक व्यक्ति यहाँ है, भिक्षुओं। यह भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा के समान तीसरा प्रकार का व्यक्ति है।

(4) “फिर, कुछ भिक्षु किसी निश्चित गाँव या शहर पर निर्भर होकर रहते हैं। सुबह होने पर, वे कपड़े पहनते हैं, अपना चोगा और कटोरा लेते हैं, और शरीर, वाणी और मन को बेपरवाह, बिना होश में आए, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित किए बिना, भिक्षा के लिए उस गाँव या शहर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे अस्त-व्यस्त और ढीले-ढाले कपड़ों में महिलाओं को देखते हैं। जब वह उन्हें देखते हैं, तो उनके मन में कामवासना व्याप्त हो जाती है। कामवासना से भरे उनके मन में, [कामवासना के बुखार से] शारीरिक और मानसिक रूप से जलन होती है। वह सोचते हैं: 'मुझे मठ में वापस जाना चाहिए और भिक्षुओं को बताना चाहिए: 'दोस्तों, मैं कामवासना से ग्रस्त हूँ, कामवासना से पीड़ित हूँ। मैं ब्रह्मचर्य (पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन) को बनाए नहीं रख सकता। ट्रेनिंग में अपनी कमज़ोरी बताने के बाद, मैं ट्रेनिंग छोड़ दूँगा और निचले जीवन में लौट जाऊँगा।' वह मठ में लौटता है और भिक्षुओं को बताता है: 'दोस्तों, मैं कामवासना (राग) से ग्रस्त हूँ, कामवासना (राग) से दबा हुआ हूँ। मैं ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) नहीं रख सकता। ट्रेनिंग में अपनी कमज़ोरी बताने के बाद, मैं ट्रेनिंग छोड़ दूँगा और निचले जीवन में लौट जाऊँगा।' तब उसके साथी भिक्षुओं ने उसे प्रोत्साहित करते हुए निर्देश दिया: 'मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि कामुक सुख कम संतुष्टि, अधिक दुख और पीड़ा प्रदान करते हैं, और उनमें खतरा अधिक है। कंकाल की उपमा के साथ ... [99] ... साँप के सिर की उपमा के साथ, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि कामुक सुख कम संतुष्टि, अधिक दुख और पीड़ा प्रदान करते हैं, और उनमें खतरा अधिक है। ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्यपूर्ण पवित्र जीवन) का आनंद लो। यह मत सोचो कि तुम प्रशिक्षण का पालन करने में असमर्थ हो, इसे त्याग दो, और निम्न जीवन में लौट जाओ।' जब उसके साथी साधु उसे इस तरह समझा रहे थे और सिखा रहे थे, तो वह कहता है: 'मैं कोशिश करूँगा, दोस्तों, मैं करता रहूँगा, मुझे मज़ा आएगा। मैं यह नहीं सोचूँगा कि मैं ट्रेनिंग को फॉलो नहीं कर पाऊँगा' इसे छोड़ दो, और नीचे की ज़िंदगी में लौट जाओ। मैं कहता हूँ, यह इंसान उस योद्धा जैसा है जो तलवार और ढाल उठाता है, धनुष और तरकश से लैस होकर लड़ाई में उतरता है, जो लड़ाई में कोशिश करते और मेहनत करते हुए अपने दुश्मनों से घायल हो जाता है, और फिर उसे उठाकर उसके रिश्तेदारों के पास लाया जाता है, जो उसकी देखभाल करते हैं और उसकी देखभाल करते हैं, और फिर वह उस चोट से ठीक हो जाता है। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक इंसान है। यह भिक्षुओं में पाया जाने वाला योद्धा जैसा चौथा तरह का इंसान है। (5) "फिर, कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे पर निर्भर होकर रहता है। सुबह वह वस्त्र धारण करता है, अपना वस्त्र और भिक्षापात्र लेता है, और शरीर, वाणी और मन को संयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित करके और इंद्रियों को नियंत्रित करते हुए भिक्षा के लिए उस गाँव या कस्बे में प्रवेश करता है। किसी आकृति को आँख से देखकर, वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय को नियंत्रित करता है। कान से कोई ध्वनि सुनकर... नाक से कोई गंध सूंघकर... जीभ से कोई स्वाद चखकर... [100]... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह मन की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़

दे, तो वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं समझता। अनियंत्रित, हानिकारक (अकुशल) लालसा और निराशा की अवस्थाएँ उसे घेर सकती हैं, इसलिए वह उन पर संयम बरतता है; वह मन की शक्ति की रक्षा करता है, वह मन की शक्ति को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने से लौटने पर, वह किसी एकांत स्थान पर जाता है: जंगल, वृक्ष की तलहटी, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, जंगल का ऊँचा इलाका, खुला आकाश, पुआल का ढेर। जंगल में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली झोपड़ी में जाकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान (सती) स्थापित करता है। संसार की लालसा को त्यागकर... [जैसा कि 5:75 में है]... वह अपने मन को संदेह से शुद्ध करता है।

"मन के इन पाँच अवरोधों, उन विकारों का त्याग करके जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करते हैं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान में, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान (ध्यान) की शुद्धि होती है।"

जब उसका मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) होता है, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित होता है, तब वह उसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। वह यथार्थ को समझता है: 'यही दुख है'... 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।' मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उस योद्धा के समान है जो तलवार और ढाल लेकर, धनुष और तरकश से सुसज्जित होकर युद्ध के मैदान में प्रवेश करता है और उस युद्ध में विजय प्राप्त करके विजयी होकर युद्धक्षेत्र के अग्रणी स्थान पर विराजमान होता है। भिक्षुओं, यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में पाया जाने वाला यह योद्धा के समान पाँचवाँ प्रकार का व्यक्ति है।

"भिक्षुओं में पाए जाने वाले योद्धाओं के समान पांच प्रकार के व्यक्ति ये हैं।"

---

77 भविष्य के संकट (1) (अनागत-भय1)

"भिक्षुओं, जब एक वनवासी भिक्षु पाँच भावी संकटों पर विचार करता है, तो उसके लिए यह पर्याप्त है कि वह सतर्क, उत्साही, [101] और दृढ़ संकल्पित होकर उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तत्पर रहे जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक वनवासी भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अब वन में एकाकी निवास कर रहा हूँ। परन्तु यहाँ रहते हुए मुझे साँप काट सकता है, बिच्छू डंक मार सकता है, या कनखजूरा डंक मार सकता है। इससे मेरी मृत्यु हो सकती है, जो मेरे लिए एक बाधा होगी। अब मुझे उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, ...

(2) “फिर, एक वनवासी भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: ‘मैं अब वन में एकाकी निवास कर रहा हूँ। परन्तु यहाँ रहते हुए, मैं ठोकर खाकर गिर सकता हूँ, या जो भोजन मैंने खाया है वह मुझे हानि पहुँचा सकता है, या मेरा पित्त, कफ या वातस्फीति मेरे भीतर उग्र हो सकती है। इसके कारण मेरी मृत्यु हो सकती है, जो मेरे लिए एक बाधा होगी। अब मुझे अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए।’ यह दूसरा भावी संकट है, जिसके विचार में वनवासी भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास करना ही पर्याप्त है... अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए।”

(3) “फिर, एक वनवासी भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: ‘मैं अब वन में एकाकी निवास कर रहा हूँ। परन्तु यहाँ रहते हुए मेरा सामना शेर, बाघ, तेंदुआ, भालू या लकड़बग्घा जैसे जंगली जानवरों से हो सकता है, और वे मेरी जान ले सकते हैं। इसके कारण मेरी मृत्यु हो जाएगी, [102] जो मेरे लिए एक बाधा होगी। अब मुझे अभी तक अप्राप्त, अभी तक न प्राप्त, अभी तक अप्राप्त की गई प्राप्ति के लिए

ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए। यह तीसरा भविष्य का खतरा है, जिसके विचार में वनवासी भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास करना ही पर्याप्त है... अभी तक अप्राप्त की गई प्राप्ति के लिए।

(4) “फिर, एक वनवासी भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: ‘मैं अब वन में एकाकी निवास कर रहा हूँ। परन्तु यहाँ रहते हुए मेरा सामना किसी अपराध से भाग रहे या उसकी योजना बना रहे बदमाशों से हो सकता है और वे मेरी जान ले सकते हैं। इसके कारण मेरी मृत्यु हो जाएगी, जो मेरे लिए एक बाधा होगी। अब मुझे उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगानी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उस उपलब्धि के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उस अनुभूति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।’ यह चौथा भावी खतरा है, जिसके विचार में वनवासी भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास करना ही पर्याप्त है... उस अनुभूति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।”

(5) "फिर, एक वनवासी भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अब वन में एकाकी निवास कर रहा हूँ। परन्तु वन में जंगली आत्माएँ हैं, 1082 और वे मेरा प्राण छीन सकती हैं। इससे मेरी मृत्यु हो जाएगी, जो मेरे लिए एक बाधा होगी। अब मुझे उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, ...

"हे भिक्षुओं, ये पाँच भावी संकट हैं, जिनके विचार में वनवासी भिक्षु के लिए सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, अभी तक अप्राप्त की प्राप्ति, अभी तक अप्राप्त की सिद्धि और अभी तक अप्राप्त की सिद्धि के लिए निवास करना ही पर्याप्त है।" [103]

---

78 भविष्य के संकट (2) (अनागत-भाया2)

"भिक्षुओं, जब एक वनवासी भिक्षु पाँच भावी संकटों पर विचार करता है, तो उसके लिए अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति, अप्राप्त उपलब्धियों की उपलब्धि और अप्राप्त अनुभवों की प्राप्ति के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ संकल्पित रहना ही पर्याप्त है। वे पाँच संकट कौन से हैं?"

(1) "यहाँ एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अभी युवा हूँ, काले बालों वाला एक युवक हूँ, जिसे यौवन का आशीर्वाद प्राप्त है, जीवन के सर्वोपरि अवस्था में हूँ। परन्तु एक समय आएगा जब बुढ़ापा इस शरीर को घेर लेगा। अब जब कोई वृद्ध हो जाता है, बुढ़ापे से ग्रस्त हो जाता है, तो बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होता; जंगलों और वनों में एकांतवास में जाना आसान नहीं होता। उस अवांछित, अवांछनीय, अप्रिय स्थिति के आने से पहले, मुझे पहले से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उसके लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए। इस प्रकार जब मैं उस अवस्था में होऊँगा, तो मैं वृद्ध होने पर भी आराम से रहूँगा।' यह पहला भावी संकट है जिसके मद्देनजर भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ संकल्पित रहना ही पर्याप्त है... उस अनुभूति की प्राप्ति के लिए जो अभी तक अप्राप्त है;

(2) "एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अब शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होता हूँ; मेरा पाचन संतुलित है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और साधना के लिए उपयुक्त है। परन्तु एक समय आएगा जब रोग इस शरीर को घेर लेगा। अब जब कोई बीमार होता है, रोग से ग्रस्त होता है, तो बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होता; जंगलों और वनों में एकांतवास में जाना आसान नहीं होता। उस अवांछित, अवांछनीय, अप्रिय स्थिति के आने से पहले, मुझे पहले से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उसके लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए। [104] इस प्रकार जब मैं उस स्थिति में होऊँगा, तो बीमार होने पर भी मैं आराम से रहूँगा।' यह दूसरा भावी खतरा है, जिसके मद्देनजर भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ संकल्पित रहना ही पर्याप्त है... उस अनुभूति की प्राप्ति के लिए जो अभी तक अप्राप्त है।

(3) "फिर एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'अभी भोजन प्रचुर मात्रा में है; अच्छी फसल हुई है और भिक्षा भोजन भी प्रचुर है, जिससे आसानी से अनाज बीनकर जीवन यापन किया जा सकता है। परन्तु एक समय अकाल का आएगा, फसल खराब होगी, जब भिक्षा भोजन प्राप्त करना कठिन होगा और अनाज बीनकर जीवन यापन करना आसान नहीं होगा। अकाल के समय लोग उन स्थानों पर

पलायन करते हैं जहाँ भोजन प्रचुर मात्रा में होता है तथा वहाँ रहने की परिस्थितियाँ तंग और भीड़भाड़ वाली होती हैं। अब जब रहने की परिस्थितियाँ तंग और भीड़भाड़ वाली हैं, तो बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं है; जंगलों और वनों में दूर-दराज के आवासों में शरण लेना आसान नहीं है। इससे पहले कि वह अवांछित, अवांछनीय, अप्रिय स्थिति मुझ पर आ पड़े, मुझे पहले से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उसके लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए। इस प्रकार जब मैं उस अवस्था में होऊंगा, तो अकाल में भी निश्चिंत रहूंगा।' यह तीसरा भावी संकट है, जिसके मद्देनजर भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ रहना ही पर्याप्त है... उस अनुभूति की प्राप्ति के लिए जो अभी तक अप्राप्त है।

(4) "फिर एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'लोग अब सद्भाव और सामंजस्य में, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक-दूसरे में घुलमिलकर, स्नेह भरी दृष्टि से एक-दूसरे को देखते हुए रह रहे हैं। परन्तु एक समय आएगा जब संकट का, जंगल में उथल-पुथल का, जब ग्रामीण लोग अपने वाहनों पर सवार होकर चारों ओर भागेंगे। संकट के समय लोग उन स्थानों पर पलायन करते हैं जहाँ सुरक्षा हो, और वहाँ रहने की परिस्थितियाँ तंग और भीड़भाड़ वाली होती हैं। [105] अब जब रहने की परिस्थितियाँ तंग और भीड़भाड़ वाली हैं, तो बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं है; जंगलों और वनों में दूर-दराज के आवासों में शरण लेना आसान नहीं है। इससे पहले कि वह अवांछित, अवांछनीय, अप्रिय स्थिति मुझ पर आ पड़े, मुझे पहले से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उस उपलब्धि के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उस अनुभूति के लिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। अभी तक अप्राप्त। अतः जब मैं उस अवस्था में होऊंगा, तो संकट के समय में भी निश्चिंत रहूंगा।' यह चौथा भावी संकट है, जिसके मद्देनजर भिक्षु के लिए अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ रहना ही पर्याप्त है।

(5) "एक भिक्षु फिर इस प्रकार चिंतन करता है: 'संघ अभी सहजता से, सामंजस्य में, बिना किसी विवाद के, एक ही पाठ के साथ निवास कर रहा है। परन्तु एक समय आएगा जब संघ में विभाजन होगा। अब जब संघ में विभाजन हो, तो बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं है; जंगलों और वनों में एकांतवास में जाना आसान नहीं है। उस अवांछित, अवांछनीय, अप्रिय स्थिति के आने से पहले, मुझे पहले से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, उसके लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए। इस प्रकार जब मैं उस स्थिति में होऊंगा, तो संघ में विभाजन होने पर भी मैं सहजता से निवास करूंगा।' यह पाँचवाँ भावी संकट है, जिसके मद्देनजर भिक्षु के लिए सतर्क, उत्साही और दृढ़ निश्चयी रहना ही पर्याप्त है... उस अनुभूति की प्राप्ति के लिए जो अभी तक अप्राप्त है।

"हे भिक्षुओं, ये पाँच भावी संकट हैं, जिनके विचार में भिक्षु के लिए सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर वर्तमान प्राप्ति के लिए, अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, वर्तमान में अप्राप्त लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए, वर्तमान में अप्राप्त लक्ष्यों की अनुभूति के लिए रहना ही पर्याप्त है।"

---

79 भविष्य के संकट (3) (अनागत-भय3)

"भिक्षुओं, ये पाँच भविष्य के खतरे अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होंगे। आपको इन्हें पहचानना चाहिए [106] और इनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) भविष्य में ऐसे भिक्षु होंगे जो शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। 1053 वे दूसरों को पूर्ण दीक्षा तो देंगे, लेकिन उन्हें उच्चतर सद्गुण, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अनुशासित नहीं कर पाएंगे। ये [शिष्य] भी शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। वे बदले में दूसरों को पूर्ण दीक्षा तो देंगे, लेकिन उन्हें उच्चतर सद्गुण, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अनुशासित नहीं कर पाएंगे। ये [शिष्य] भी शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। इस प्रकार, भिक्षुओं, धम्म के भ्रष्ट होने से अनुशासन भ्रष्ट होता है, और अनुशासन के भ्रष्ट होने से धम्म भ्रष्ट होता है। 1084 यह पहला

भविष्य का संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानें और इसे छोड़ने का प्रयास करें।

(2) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। वे दूसरों को आश्रित रखेंगे, परन्तु उन्हें उच्चतर सद्गुण, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अनुशासित नहीं कर सकेंगे। ये [शिष्य] भी शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। वे बदले में दूसरों को आश्रित रखेंगे, परन्तु उन्हें उच्चतर सद्गुण, उच्चतर मन और उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अनुशासित नहीं कर सकेंगे। ये [शिष्य] भी शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। इस प्रकार, भिक्षुओं, धम्म के भ्रष्ट होने से अनुशासन भ्रष्ट होता है, और अनुशासन के भ्रष्ट होने से धम्म भ्रष्ट होता है। यह दूसरा भविष्य का संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इसे त्यागने का प्रयास करें। [107]

(3) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। धम्म से संबंधित चर्चाओं और प्रश्नोत्तरों में लगे रहने के कारण वे अंधकारमय धम्म में विलीन हो जाएँगे, परन्तु इसे पहचान नहीं पाएँगे। इस प्रकार, हे भिक्षुओं, धम्म के भ्रष्ट होने से अनुशासन भ्रष्ट होता है, और अनुशासन के भ्रष्ट होने से धम्म भ्रष्ट होता है। यह भविष्य में उत्पन्न होने वाला तीसरा संकट है। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

(4) “भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। जब तथागत (बुद्ध) द्वारा दिए गए वे प्रवचन, जो गहन, अर्थपूर्ण, संसार से परे और शून्यता से जुड़े होंगे, पढ़े जाएँगे, तो वे उन्हें सुनना नहीं चाहेंगे, उन पर ध्यान नहीं देंगे और न ही उन्हें समझने का प्रयास करेंगे; वे यह नहीं सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और ज्ञान करना चाहिए। 1087 परन्तु जब वे प्रवचन, जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा रचित हैं और शिष्यों द्वारा बोले गए हैं, पढ़े जाएँगे, तो वे उन्हें सुनना चाहेंगे, उन पर ध्यान देंगे और उन्हें समझने का प्रयास करेंगे; वे यह सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार, भिक्षुओं, धम्म के भ्रष्ट होने से अनुशासन भ्रष्ट होता है, और अनुशासन के भ्रष्ट होने से धम्म भ्रष्ट होता है। यह अब तक का चौथा भविष्य का संकट है। जो अभी उत्पन्न नहीं हुआ है, वह भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इसे त्यागने का प्रयास करना चाहिए।

(5) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होंगे। वरिष्ठ भिक्षु - शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में अविकसित होने के कारण - विलासी और शिथिल होंगे, पतन में अग्रणी होंगे, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करेंगे; वे अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाएंगे। अगली पीढ़ी के लोग उनके उदाहरण का अनुसरण करेंगे। वे भी विलासी और शिथिल होंगे, पतन में अग्रणी होंगे, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करेंगे; वे भी अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्य को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाएंगे। अभी तक जो हासिल नहीं हुआ है, उसे हासिल करने के लिए, अभी तक जो हासिल नहीं हुआ है, उसे हासिल करना होगा। इस प्रकार, भिक्षुओं, धम्म के भ्रष्ट होने से साधना में भ्रष्टता आती है, और साधना में भ्रष्टता से धम्म में भ्रष्टता आती है। यह पाँचवाँ भविष्य का संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, ये पाँच भविष्य के संकट हैं जो अभी तक प्रकट नहीं हुए हैं, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होंगे। आपको इन्हें पहचानना चाहिए और इनसे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

---

80 भविष्य के संकट (4) (अनागत-भाया4)

भिक्षुओं, भविष्य में उत्पन्न होने वाले ये पाँच संकट अभी तक प्रकट नहीं हुए हैं। आपको इन्हें पहचानना चाहिए और इनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। वे पाँच संकट कौन से हैं?

(1) "भविष्य में ऐसे भिक्षु होंगे जो उत्तम वस्त्रों की लालसा रखेंगे। वे फटे-पुराने वस्त्रों का प्रयोग त्याग देंगे, जंगलों और वनों में स्थित एकांतवास छोड़ देंगे, और गाँवों, कस्बों और राजधानियों में एकत्रित होकर वहीं निवास करेंगे; और वे वस्त्र की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के अनुचित और कुटिल कार्यों में संलग्न होंगे। यह भविष्य का पहला अप्रतिम है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इसे त्यागने का प्रयास करना चाहिए। [109]

(2) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो उत्तम भिक्षाभोजन की इच्छा रखेंगे। वे भिक्षा मांगने का काम छोड़ देंगे, जंगलों और वनों में एकांतवास त्याग देंगे, और गांवों, कस्बों और राजधानियों में आकर वहीं निवास करेंगे, अपनी जीभ से उत्तम भोजन की खोज करेंगे; और वे भिक्षाभोजन के लिए अनेक प्रकार के अनुचित और कुटिल कार्यों में संलग्न होंगे। यह भविष्य का दूसरा संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

(3) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो उत्तम आवास की कामना करेंगे। वे वृक्ष की तलहटी में निवास करना छोड़ देंगे, जंगलों और वनों में एकांत आवासों को त्याग देंगे, और गांवों, कस्बों और राजधानियों में एकत्रित होकर वहीं निवास करेंगे; और आवास की प्राप्ति के लिए वे अनेक प्रकार के अनुचित और कुकर्मों में लिप्त होंगे। यह भविष्य का तीसरा संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

(4) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो भिक्षुणियों (भिक्षुणियों), महिला प्रशिक्षुओं और नौसिखियों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करेंगे।1088 जब वे ऐसे घनिष्ठ संबंध स्थापित करेंगे, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) से असंतुष्ट होकर जीवन व्यतीत करेंगे, कोई अपवित्र अपराध करेंगे, 1089 या प्रशिक्षण त्यागकर निम्न जीवन में लौट जाएंगे। यह चौथा भविष्य का संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

(5) "भविष्य में फिर ऐसे भिक्षु होंगे जो मठ के कार्यकर्ताओं और नौसिखियों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करेंगे। जब वे ऐसे घनिष्ठ संबंध स्थापित करेंगे, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे विभिन्न प्रकार के संचित सामानों का उपयोग करेंगे [110] और भूमि और वनस्पति के संबंध में स्थूल संकेत देंगे। 1090 यह पाँचवाँ भविष्य का संकट है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होगा। आपको इसे पहचानना चाहिए और इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, ये पाँच भविष्य के संकट हैं जो अभी तक प्रकट नहीं हुए हैं, लेकिन भविष्य में उत्पन्न होंगे। आपको इन्हें पहचानना चाहिए और इनसे बचने का प्रयास करना चाहिए।"

IV. वरिष्ठ भिक्षु (थेरा संस्कृत: स्थिवरा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

81 उत्तेजक राग

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह कामवासना (राग) से भरा रहता है जो कामवासना (राग) को उत्तेजित करती है; (2) वह घृणा (घृणा) से भरा रहता है जो घृणा (घृणा) को उत्तेजित करती है; (3) वह भ्रम पैदा करने वाली चीजों से भ्रमित रहता है; (4) वह भ्रम पैदा करने वाली चीजों से विचलित रहता है; (5) और वह नशा पैदा करने वाली चीजों से मदहोश रहता है। इन पाँच गुणों से

युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है।"

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रिय और सम्माननीय लगता है और वे उसका आदर और सम्मान करते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह कामवासना उत्पन्न करने वाली वस्तु के प्रति राग से ग्रस्त नहीं होता; (2) वह घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तु के प्रति घृणा से ग्रस्त नहीं होता; (3) वह भ्रम उत्पन्न करने वाली वस्तु से भ्रमित नहीं होता; (4) वह भ्रम उत्पन्न करने वाली वस्तु से विचलित नहीं होता; (5) और वह नशा उत्पन्न करने वाली वस्तु से मदहोश नहीं होता। इन पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रिय और सम्माननीय लगता है और वे उसका आदर और सम्मान करते हैं।

82 अभाव रहित (वितराग)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह कामवासना (राग) से रहित नहीं है; वह घृणा (मोह) से रहित नहीं है; वह निंदा करने वाला है; और वह अभिमानी है। इन पाँच गुणों से युक्त होने के बावजूद, वह साथी भिक्षुओं द्वारा सम्मानित नहीं होता है।"

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय लगता है और उनका आदर और सम्मान पाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह कामवासना (राग) से रहित होता है; वह घृणा (मोह) से रहित होता है; वह निंदा नहीं करता; और वह अभिमानी नहीं होता। इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... वह उनका आदर पाता है।

---

83 एक षड्यंत्रकारी (कुहाका)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह षड्यंत्रकारी, चापलूस, चुगलखोर, नीचा दिखाने वाला और लाभ के बदले लाभ कमाने वाला होता है। 1091 इन पाँच गुणों से युक्त ... न ही उनका आदर करता है। [112]

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रसन्न करता है तथा उनका आदर और सम्मान करता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह षड्यंत्रकारी, चापलूस, धूर्त, नीचा दिखाने वाला या लाभ के लिए लाभ कमाने वाला नहीं होता। इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... वह उनका आदर करता है।

---

84 विश्वासहीन (असद्ध बिना अश्रद्ध)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह आस्थाहीन, नैतिक रूप से निर्लज्ज, नैतिक रूप से लापरवाह, आलसी और मूर्ख होता है। इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... न ही उन्हें सम्मान मिलता है।

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय लगता है और उनका आदर और सम्मान पाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह आस्थावान होता है, नैतिक लज्जा का भाव रखता है, नैतिक भय रखता है और ऊर्जावान एवं बुद्धिमान होता है। इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... वह उनका आदर पाता है।

---

85. धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता (अक्खमा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है और न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता। [113] इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... न ही उन्हें सम्मान मिलता है।"

भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय लगता है और उनका आदर और सम्मान पाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन कर सकता है। इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण... वह उनका आदर पाता है।

---

86 विश्लेषणात्मक ज्ञान (पतिसंभिदपट्टा)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रसन्न करता है तथा उनका आदर और सम्मान करता है। वे पाँच गुण क्या हैं? उन्होंने अर्थ का विश्लेषणात्मक ज्ञान, धम्म का विश्लेषणात्मक ज्ञान, भाषा का विश्लेषणात्मक ज्ञान और विवेक का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। 1092 वे अपने साथी भिक्षुओं के लिए किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को कुशलतापूर्वक और लगन से करते हैं; उन्हें उचित ढंग से पूरा करने और व्यवस्थित करने के लिए उनमें उचित विवेक होता है। इन पाँच गुणों से युक्त... और उनके द्वारा सम्मानित।

---

87 सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंता)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय लगता है और उनका आदर और सम्मान करता है। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(1) "वह गुणी है; वह पतिमोक्खा द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त है, सूक्ष्म दोषों में खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनमें अभ्यास करता है।"

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है, सीखी हुई बातों को याद रखता है और उन्हें संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों, [114] और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, 1093 जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों — ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से जांचा है और दृष्टि से भली-भांति समझा है।

(3) "वह अच्छी प्रस्तुति वाला एक अच्छा वक्ता है; वह ऐसे भाषण से संपन्न है जो परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला है।

(4) वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, उन चार ध्यानों को प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं।

(5) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"इन पांच गुणों से युक्त, भिक्षुओं, एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रसन्न करता है और उनके द्वारा आदरणीय और सम्मानित होता है।"

---

88 वरिष्ठ भिक्षु (थेरा संस्कृत: स्थिवरा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के लिए कार्य कर रहा है। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(1) एक बुजुर्ग व्यक्ति लंबे समय से संन्यासी जीवन व्यतीत कर रहा है। (2) वह सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है तथा उसके साथ कई लोग हैं, जिनमें गृहस्थ और संन्यासी शामिल हैं। (3) वह वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। (4) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है और उसे संचित करता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, शब्दशः सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। (5) वह गलत दृष्टिकोण रखता है और उसका परिप्रेक्ष्य विकृत है।

वह बहुत से लोगों को अच्छे धम्म (मार्ग) से दूर ले जाता है और उन्हें बुरे धम्म में स्थापित करता है। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु वृहत्तर वर्ष के हैं और वृहत्तर संन्यासी जीवन व्यतीत कर चुके हैं' [115] वे उनके उदाहरण का अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध हैं तथा उनके साथ गृहस्थों और संन्यासियों सहित अनेक लोगों का समूह है' वे उनके उदाहरण का अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ एवं भोजन प्राप्त करते हैं' वे उनके उदाहरण का अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, जो कुछ सीखा है उसे याद रखते हैं और जो कुछ सीखा है उसे संचित करते हैं' वे उनके उदाहरण का अनुसरण करते हैं।

"इन पांच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के हितैषी होने के लिए कार्य कर रहा होता है।"

"भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, कल्याण और सुख, देवताओं और मनुष्यों के लिए कार्य कर रहा है। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(1) एक बुजुर्ग व्यक्ति लंबे समय से संन्यासी जीवन व्यतीत कर रहा है। (2) वह सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है तथा उसके साथ कई लोग आते हैं, जिनमें गृहस्थ और संन्यासी शामिल हैं। (3) वह वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ एवं भोजन सामग्री प्राप्त करता है। (4) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है और ज्ञान का भंडार रखता है। आरंभ में जो शिक्षाएँ अच्छी होती हैं... उन्हें उसने अच्छी तरह से समझ लिया है। (5) उसका दृष्टिकोण सही है और उसकी दृष्टि उचित है।

वे अनेक लोगों को बुरे धर्म से दूर करके अच्छे धर्म में स्थापित करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु वृहत्तर वर्ष के हैं और वृहत्तर संन्यासी जीवन व्यतीत कर चुके हैं,' लोग उनका अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध हैं तथा उनके साथ गृहस्थों और संन्यासियों सहित अनेक लोग जुड़े हुए हैं,' लोग उनका अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ एवं भोजन सामग्री प्राप्त करते हैं,' लोग उनका अनुसरण करते हैं। यह सोचकर कि 'वरिष्ठ भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, जो कुछ सीखा है उसे याद रखते हैं और उसका संचय करते हैं,' लोग उनका अनुसरण करते हैं।

"इन पाँच गुणों से युक्त एक वरिष्ठ भिक्षु अनेक लोगों के कल्याण के लिए, अनेक लोगों की खुशी के लिए, [116] अनेक लोगों, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के भले, कल्याण और खुशी के लिए कार्य कर रहा है।"

---

89 एक प्रशिक्षु (1) (सेखा1 सं. शिष्य)

भिक्षुओं, ये पाँच गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे पाँच कौन से गुण हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद और संगति में आनंद; और वह अपने मन की मुक्ति की सीमा का पुनरावलोकन नहीं करता। 1095 ये पाँच गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे पाँच गुण कौन से हैं? काम में आनंद न लेना, बातचीत में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, संगति में आनंद न लेना; और वह अपने मन की मुक्ति की सीमा का आत्मनिरीक्षण करता है। ये पाँच गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं।

---

90 एक प्रशिक्षु (2) (सेखा2 सं. शिष्य)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं?

(1) "यहाँ, एक प्रशिक्षु भिक्षु के पास अनेक कार्य और कर्तव्य होते हैं और वह विभिन्न कार्यों में सक्षम होता है, इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। यही वह पहली बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती है।"

(2) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु दिन भर किसी तुच्छ काम में लगा रहता है, इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। यही दूसरी बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती है।"

(3) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु गृहस्थों और भिक्षुओं के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है, गृहस्थों के लिए अनुपयुक्त तरीके से सामाजिक मेलजोल करता है, 1097 इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) के लिए स्वयं को समर्पित नहीं करता है। यह तीसरी बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती है।"

(4) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करता है और दिन में बहुत देर से लौटता है, इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) के लिए स्वयं को समर्पित नहीं करता है। यह चौथा दोष है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनता है।"

(5) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु को हृदय को खोलने में सहायक तपस्वी जीवन से संबंधित प्रवचन, अर्थात् इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंध न जाने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने, सदाचारी व्यवहार, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, मुक्ति के ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) पर प्रवचन, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से सुनने का अवसर नहीं मिलता; अतः वह एकांतवास की उपेक्षा करता है और मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित नहीं करता। यह पाँचवाँ कारण है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनता है।"

"ये पांच चीजें प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं।"

भिक्षुओं, ये पाँच बातें प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं?

(1) "यहाँ, प्रशिक्षु भिक्षु के पास बहुत से कार्य और कर्तव्य नहीं होते; यद्यपि वह किए जाने वाले विभिन्न कार्यों में सक्षम होता है, फिर भी वह एकांतवास की उपेक्षा नहीं करता बल्कि मन की आंतरिक समता (समथा) में संलग्न रहता है। यही वह पहली बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकती है।"

(2) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु अपना दिन किसी तुच्छ काम में नहीं व्यतीत करता, इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा नहीं करता, बल्कि मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित करता है। यही दूसरी बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन न होने का कारण बनती है।"

(3) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु गृहस्थों और भिक्षुओं के साथ घनिष्ठ संबंध नहीं बनाता, गृहस्थों के लिए अनुपयुक्त तरीके से सामाजिक मेलजोल नहीं करता, इसलिए वह एकांत की उपेक्षा नहीं करता बल्कि मन की आंतरिक समता (समथा) के लिए स्वयं को समर्पित करता है। [118] यह तीसरी बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन न होने की ओर ले जाती है।

(4) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु किसी गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश नहीं करता और न ही दिन में बहुत देर से लौटता है, इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा नहीं करता बल्कि मन की आंतरिक समता (समथा) में स्वयं को समर्पित करता है। यह चौथी बात है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन न होने का कारण बनती है।"

(5) "फिर, एक प्रशिक्षु भिक्षु को बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, हृदय को खोलने वाले तपस्वी जीवन से संबंधित प्रवचन सुनने को मिलते हैं, अर्थात् इच्छाओं की कमी पर प्रवचन... मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर प्रवचन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन); इसलिए वह एकांतवास की उपेक्षा नहीं करता बल्कि मन की आंतरिक समता (समथा) में संलग्न रहता है। यह पाँचवाँ कारण है जो प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकता है।"

"ये पांच चीजें प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं।"

वी. काकुधवग्गा

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

91 धन (1) (संपदा1)

"भिक्षुओं, ये पाँच धन हैं। कौन से पाँच? आस्था का धन, सद्गुणों का धन, ज्ञान का धन, उदारता का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन। ये पाँच धन हैं।" [119]

---

92 धन (2) (संपदा2)

भिक्षुओं, ये पाँच धन हैं। कौन से पाँच? सद्गुणों का धन, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का धन, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन, मुक्ति का धन और मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का धन। ये पाँच धन हैं।

---

93 घोषणाएँ (व्याकरण सं. व्यक्त-करण)

भिक्षुओं, अंतिम ज्ञान की ये पाँच घोषणाएँ हैं। 1098 वे पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति अपनी मंदबुद्धि और मूर्खता के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है; (2) व्यक्ति बुरी इच्छाओं से प्रेरित होकर अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है; (3) व्यक्ति पागल और मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है; (4) व्यक्ति स्वयं को अधिक महत्व देने के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है; और (5) व्यक्ति सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है। ये अंतिम ज्ञान की पाँच घोषणाएँ हैं।

---

94 आराम से रहना (फासुविहार)

भिक्षुओं, आरामदेह निवास के पाँच प्रकार हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है... (2) ... द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था)

में... (3) ... तृतीय ध्यान में... (4) ... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में। (5) दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। ये पाँच प्रकार के आरामदेह निवास हैं।

---

95 अविचल (अकुप्पा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त होकर, एक भिक्षु थोड़े ही समय में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है। 1099 वे पाँच गुण क्या हैं? [120] यहाँ, एक भिक्षु ने अर्थ का विश्लेषणात्मक ज्ञान, धम्म का विश्लेषणात्मक ज्ञान, भाषा का विश्लेषणात्मक ज्ञान और विवेक का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है; और वह अपने मन की मुक्ति की सीमा का पुनरावलोकन करता है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, एक भिक्षु थोड़े ही समय में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है।"

---

96 जो कुछ सीखा है (सुताधारा)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, जो भिक्षु सती ध्यान और अनापान का अभ्यास करते हैं, वे अल्पकाल में ही अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु के कम कार्य होते हैं, कम कार्यभार होते हैं, उनका भरण-पोषण आसान होता है, और वे जीवन की आवश्यकताओं से सहज रूप से संतुष्ट रहते हैं। (2) वे कम खाते हैं और भोजन के प्रति संयमी रहते हैं। (3) वे कम ही ऊंघते हैं और सतर्कता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। (4) उन्होंने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखते हैं और उसे संचित करते हैं। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उन्होंने बहुत सीखा है, मन में संजोकर रखा है, मौखिक रूप से सुनाया है, लोगों ने उनका गहन अध्ययन किया है और दृष्टि से भलीभांति समझा है। (5) वे समीक्षा करते हैं... जिस हद तक उसका मन मुक्त हो जाता है। इन पांच चीजों से युक्त, श्वास की सती साधना (ध्यान) करने वाला भिक्षु थोड़े ही समय में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

---

97 वार्ता (कथा)

"भिक्षुओं में पाँच गुण होते हैं, श्वास की जागरूकता विकसित करने वाला भिक्षु थोड़े ही समय में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु के कार्य कम होते हैं... (2) वह कम खाता है... (3) उसे कम ही ऊंघ आती है... [121] (4) वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, हृदय को खोलने वाले तपस्वी जीवन से संबंधित प्रवचन, अर्थात् इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंधे न रहने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने, सद्गुणी आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, और मुक्ति के ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) पर प्रवचन सुनता है। (5) वह सीमा का पुनरावलोकन करता है जिससे उसका मन मुक्त हो जाता है। इन पाँचों चीजों से युक्त भिक्षु श्वास की सती साधना (अनपान) विकसित करते हुए अल्पकाल में ही अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

---

98 एक वनवासी (अरन्नक)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, श्वास की एकाग्रता (अनपान) का अभ्यास करने वाला भिक्षु अल्पकाल में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु के कार्य अल्प होते हैं... (2) वह कम खाता है... (3) उसे कम ही ऊंघ आती है... (4) वह वनवासी होता है और एकांतवास में रहता है। (5) वह अपने मन की मुक्ति की सीमा का आत्मनिरीक्षण करता है। इन पाँच गुणों से युक्त, श्वास की एकाग्रता (सती) का अभ्यास करने वाला भिक्षु अल्पकाल में अविचल अवस्था को प्राप्त कर लेता है।"

---

99 सिंह (सिहा बिना सिंघा)

भिक्षुओं, संध्याकाल में पशुओं का राजा सिंह अपनी मांद से निकलता है, शरीर फैलाता है, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है और तीन बार सिंह गर्जना करता है। फिर वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।

(1) "यदि वह हाथी को लात मारता है, तो वह हमेशा गंभीरता से लात मारता है, लापरवाही से नहीं। 1100 (2) यदि वह भैंस को लात मारता है... (3) ...गाय को... (4) ...तेंदुए को... (5) यदि वह किसी छोटे जानवर को, यहाँ तक कि खरगोश या बिल्ली को भी लात मारता है, तो वह गंभीरता से लात मारता है, लापरवाही से नहीं। किस कारण से? [सोचते हुए:] 'मेरी ट्रेनिंग व्यर्थ न जाए।'

भिक्षुओं, सिंह तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रतीक है। जब तथागत (बुद्ध) किसी सभा को धम्म का उपदेश देते हैं, तो यह उनकी सिंह गर्जना होती है। (1) यदि तथागत (बुद्ध) भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हैं, तो वे गंभीरता से उपदेश देते हैं, न कि लापरवाही से। (2) यदि तथागत (बुद्ध) भिक्षुणियों को धम्म का उपदेश देते हैं... (3) ... पुरुष गृहस्थ अनुयायियों को... (4) ... स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को, तो वे गंभीरता से उपदेश देते हैं, न कि लापरवाही से। (5) यदि तथागत (बुद्ध) सांसारिक लोगों को, यहाँ तक कि अन्नवाहकों और शिकारियों को भी धम्म का उपदेश देते हैं, तो वे गंभीरता से उपदेश देते हैं, न कि लापरवाही से। इसका कारण क्या है? क्योंकि तथागत (बुद्ध) सभी का आदर करते हैं। धम्म, धम्म के प्रति श्रद्धा:

---

100 ककुधा थेरा

मैंने ऐसा सुना है। 1102 एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। उस समय, पूज्य महामोग्गलाना के सेवक, कोलियन पुत्र ककुधा का हाल ही में निधन हो गया था और वे मन से निर्मित देवताओं के एक समूह में पुनर्जन्म लेकर आए थे। 11031 उनका शरीर मगध के एक गाँव के खेतों से दो या तीन गुना बड़ा था, लेकिन उन्होंने अपने शरीर से न तो स्वयं को और न ही दूसरों को अवरुद्ध किया। 1104

तब युवा देव (देवदूत/भगवान) काकुधा पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और [123] उनसे कहा: "भंते, देवदत्त के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई: 'मैं भिक्षुओं के संघ का नेतृत्व करूँगा।' और इस विचार के उत्पन्न होते ही देवदत्त ने अपनी वह मानसिक शक्ति खो दी।" 1103 युवा देव (देवदूत/भगवान) काकुधा ने यही कहा। फिर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

तब पूज्य महामोग्गलाना भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और सारी घटना का वर्णन किया। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "परन्तु, मोग्गलाना, क्या तुमने अपने मन से उनके मन को भलीभांति समझा है और युवा देव (देवदूत/भगवान) काकुधा के इस कथन को समझा है कि 'युवा देव (देवदूत/भगवान) काकुधा जो कुछ भी कहते हैं वह सब सत्य है, अन्यथा नहीं'?"

"हां, भंते।"

"इस कथन पर ध्यान दो, मोग्गलाना! अब वह मूर्ख व्यक्ति स्वयं ही अपने आप को खतरे में डाल देगा।"

मोग्गलाना, दुनिया में पाँच प्रकार के शिक्षक पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं? [124]

(1) "यहाँ, एक ऐसा शिक्षक है जिसका आचरण अपवित्र है, वह दावा करता है: 'मैं शुद्ध आचरण वाला हूँ। मेरा आचरण शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' उसके शिष्य उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह आदरणीय शिक्षक, यद्यपि अपवित्र आचरण वाला है, दावा करता है: 'मैं शुद्ध आचरण वाला हूँ। मेरा आचरण शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' अब यदि हम यह बात आम लोगों को बताएँ तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। हम उसके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उसे पसंद न आए? इसके अलावा, उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के

लिए औषधियाँ और भोजन सामग्री से सम्मानित किया जाता है। व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है।' 1106 उसके शिष्य ऐसे शिक्षक के आचरण को छिपाते हैं, और ऐसा शिक्षक अपने शिष्यों से अपने आचरण को छिपाए रखने की अपेक्षा करता है।

(2) "फिर, एक शिक्षक जिसकी आजीविका अपवित्र है, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसकी आजीविका पवित्र है। मेरी आजीविका पवित्र, शुद्ध और निर्मल है।' उसके शिष्य उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह आदरणीय शिक्षक, यद्यपि अपवित्र आजीविका वाला है, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसकी आजीविका पवित्र है। मेरी आजीविका पवित्र, शुद्ध और निर्मल है।' अब यदि हम यह बात आम लोगों को बताएँ तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। हम उसके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उसे पसंद न आए? इसके अलावा, उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन सामग्री देकर सम्मानित किया जाता है। व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है।' उसके शिष्य उसकी आजीविका के संबंध में उसका संरक्षण करते हैं, और ऐसा शिक्षक अपने शिष्यों से अपनी आजीविका के संबंध में संरक्षण की अपेक्षा करता है।

(3) "फिर, कोई ऐसा शिक्षक जिसका धम्म (मार्ग) अपवित्र है, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसका धम्म शिक्षण पवित्र है। मेरा धम्म शिक्षण पवित्र, शुद्ध और निष्कलंक है।' उसके शिष्य उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह आदरणीय शिक्षक, यद्यपि अपवित्र धम्म शिक्षण वाला है, [125] दावा करता है: "मैं वह हूँ जिसका धम्म शिक्षण पवित्र है। मेरा धम्म शिक्षण पवित्र, शुद्ध और निष्कलंक है।" अब यदि हम यह बात आम लोगों को बताएँ तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। हम उसके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उसे पसंद न आए? इसके अलावा, उसे वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन सामग्री से सम्मानित किया जाता है। किसी व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है।' उसके शिष्य ऐसे शिक्षक को उसके धम्म शिक्षण के संबंध में संरक्षण देते हैं, और ऐसा शिक्षक अपने शिष्यों से अपने धम्म शिक्षण के संबंध में संरक्षण की अपेक्षा करता है।

(4) "फिर, एक शिक्षक जिसकी व्याख्याएँ अपवित्र हैं, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसकी व्याख्याएँ पवित्र हैं। मेरी व्याख्याएँ पवित्र, शुद्ध और निष्कलंक हैं।' उसके शिष्य उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह आदरणीय शिक्षक, यद्यपि अपवित्र व्याख्याएँ देता है, दावा करता है: "मैं वह हूँ जिसकी व्याख्याएँ पवित्र हैं। मेरी व्याख्याएँ पवित्र, शुद्ध और निष्कलंक हैं।" अब यदि हम यह बात आम लोगों को बताएँ तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। हम उसके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उसे पसंद न आए? इसके अलावा, उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाएँ और भोजन सामग्री से सम्मानित किया जाता है। व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है।' उसके शिष्य उसकी व्याख्याओं के संबंध में उसका संरक्षण करते हैं, और ऐसा शिक्षक अपने शिष्यों से अपनी व्याख्याओं के संबंध में संरक्षण की अपेक्षा करता है।

(5) "फिर, एक ऐसा शिक्षक जिसका ज्ञान और दृष्टि अपवित्र है, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसका ज्ञान और दृष्टि पवित्र है। मेरा ज्ञान और दृष्टि पवित्र, शुद्ध और निर्मल है।' उसके शिष्य उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह आदरणीय शिक्षक, यद्यपि अपवित्र ज्ञान और दृष्टि वाला है, दावा करता है: 'मैं वह हूँ जिसका ज्ञान और दृष्टि पवित्र है। मेरा ज्ञान और दृष्टि पवित्र, शुद्ध और निर्मल है।' अब यदि हम यह बात आम लोगों को बताएँ तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। हम उसके साथ ऐसा व्यवहार कैसे कर सकते हैं जो उसे पसंद न आए? [126] इसके अलावा, उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन सामग्री देकर सम्मानित किया जाता है। व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है।' उसके शिष्य ऐसे शिक्षक को उसके ज्ञान और दृष्टि के संबंध में सुरक्षित रखते हैं, और ऐसा शिक्षक अपने शिष्यों से अपने ज्ञान और दृष्टि के संबंध में सुरक्षित रहने की अपेक्षा करता है।

"विश्व में पांच प्रकार के शिक्षक पाए जाते हैं।"

(1) "परन्तु, मोग्गलाना, मैं वह हूँ जिसका आचरण शुद्ध है और मैं दावा करता हूँ: 'मैं वह हूँ जिसका आचरण शुद्ध है। मेरा आचरण शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' मेरे शिष्य मेरे आचरण के संबंध में मुझे नहीं ढकते, और न ही मैं अपने शिष्यों से अपने आचरण के संबंध में ढके जाने की अपेक्षा करता हूँ। (2) मैं वह हूँ जिसकी आजीविका शुद्ध है और मैं दावा करता हूँ: 'मैं वह हूँ जिसकी आजीविका शुद्ध है। मेरी आजीविका शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' मेरे शिष्य मेरी आजीविका के संबंध में मुझे नहीं ढकते, और न ही मैं अपने शिष्यों से अपनी आजीविका के संबंध में ढके जाने की अपेक्षा करता हूँ। (3) मैं वह हूँ जिसका धम्म (मार्ग) उपदेश शुद्ध है और मैं दावा करता हूँ: 'मैं वह हूँ जिसका धम्म उपदेश शुद्ध है। मेरा धम्म उपदेश शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' मेरे शिष्य मेरे धम्म उपदेशों के संबंध में मुझे छिपाते नहीं हैं, और मैं अपने शिष्यों से अपने धम्म उपदेशों के संबंध में छिपाए जाने की अपेक्षा नहीं करता/करती। (4) मैं वह हूँ जिसकी

व्याख्याएँ शुद्ध हैं और मैं दावा करता/करती हूँ: 'मैं वह हूँ जिसकी व्याख्याएँ शुद्ध हैं। मेरी व्याख्याएँ शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक हैं।' मेरे शिष्य मेरी व्याख्याओं के संबंध में मुझे छिपाते नहीं हैं, और मैं अपने शिष्यों से अपने व्याख्याओं के संबंध में छिपाए जाने की अपेक्षा नहीं करता/करती। (5) मैं वह हूँ जिसका ज्ञान और दृष्टि शुद्ध है और मैं दावा करता/करती हूँ: 'मैं वह हूँ जिसका ज्ञान और दृष्टि शुद्ध है। मेरा ज्ञान और दृष्टि शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक है।' मेरे शिष्य मेरे ज्ञान और दृष्टि के संबंध में मुझे छिपाते नहीं हैं, और मैं अपने शिष्यों से अपने ज्ञान और दृष्टि के संबंध में छिपाए जाने की अपेक्षा नहीं करता/करती। [127]

तीसरा पचास

I. आराम से रहना (फासुविहार)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

101 डरपोकपन (सरज्जा)

भिक्षुओं, प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करने वाले ये पाँच गुण हैं। 1108 वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण और गुणी, विद्वान, ऊर्जावान और बुद्धिमान है। (1) आस्थाहीन व्यक्ति में जो भी भय होता है, वह आस्था से परिपूर्ण व्यक्ति में नहीं होता; अतः यह गुण प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करता है। (2) अनैतिक व्यक्ति में जो भी भय होता है, वह गुणी व्यक्ति में नहीं होता; अतः यह गुण प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करता है। (3) अज्ञानी व्यक्ति में जो भी भय होता है, वह विद्वान व्यक्ति में नहीं होता; अतः यह गुण प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करता है। (4) आलसी व्यक्ति में जो भी भय होता है, वह ऊर्जावान व्यक्ति में नहीं होता; अतः यह गुण प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करता है। (5) नासमझ व्यक्ति में जो भी भय होता है, वह बुद्धिमान व्यक्ति में नहीं होता। बुद्धिमान; इसलिए यह गुण प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करता है। ये पाँच गुण हैं जो प्रशिक्षु में आत्मविश्वास पैदा करते हैं।" [128]

---

102 संदिग्ध (उसंकिता सं. शंकित)

"भिक्षुओं (मठवासियों) पर पाँच आधारों पर संदेह किया जाता है और उन्हें 'दुष्ट भिक्षु' माना जाता है, भले ही उनका चरित्र अटल हो। [1110 वे पाँच आधार क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु अक्सर वेश्याओं, विधवाओं, अविवाहित महिलाओं, हिजड़ों या भिक्षुणियों (नन) के पास जाता है। [1111] इन्हीं पाँच आधारों पर एक भिक्षु पर संदेह किया जाता है और उन्हें 'दुष्ट भिक्षु' माना जाता है, भले ही उनका चरित्र अटल हो।"

---

103 एक महान चोर (महा-कोरा)

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, एक कुशल चोर घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, डकैती करता है और राजमार्गों पर घात लगाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, एक कुशल चोर (1) विषम परिस्थितियों पर, (2) घने जंगलों पर, और (3) शक्तिशाली लोगों पर निर्भर करता है; (4) वह रिश्वत देता है, और (5) वह अकेला चलता है।"

(1) "और एक माहिर चोर किस प्रकार विषम परिस्थितियों पर निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर उन नदियों पर निर्भर करता है जिन्हें पार करना कठिन होता है और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर। इस प्रकार एक माहिर चोर विषम परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

(2) "और एक माहिर चोर झाड़ियों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर बेंत की झाड़ी, पेड़ों की झाड़ी, एक छोटा जंगल या एक बड़े घने जंगल पर निर्भर करता है। इस तरह एक माहिर चोर झाड़ियों पर निर्भर करता है।"

(3) "और एक माहिर चोर शक्तिशाली लोगों पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक माहिर चोर राजाओं या राजमंत्रियों पर निर्भर करता है। वह सोचता है: 'यदि कोई [129] मुझ पर किसी बात का आरोप लगाता है, तो ये राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे।' यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाता है, तो वे राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देते हैं। इसी तरह एक माहिर चोर शक्तिशाली लोगों पर निर्भर करता है।"

(4) "एक माहिर चोर रिश्वत कैसे देता है? यहाँ, एक माहिर चोर धनी होता है, जिसके पास बहुत धन और संपत्ति होती है। वह सोचता है: 'यदि कोई मुझ पर किसी बात का आरोप लगाए, तो मैं उसे रिश्वत दे दूँगा।' यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाता है, तो वह उसे रिश्वत दे देता है। इसी तरह एक माहिर चोर रिश्वत देता है।"

(5) "और एक माहिर चोर अकेले कैसे चलता है? यहाँ, एक माहिर चोर अपने छापे 1113 पूरी तरह अकेले ही अंजाम देता है। किस कारण से? [इस सोच के साथ:] 'मेरी गुप्त योजनाएँ 1114 दूसरों तक नहीं फैलनी चाहिए!' इसी तरह एक माहिर चोर अकेले चलता है।

"इन पांच कारकों के होने से ही एक माहिर चोर घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, डकैती करता है और राजमार्गों पर घात लगाकर हमला करता है।"

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त दुष्ट भिक्षु स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है, निंदनीय होता है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र होता है, तथा बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, दुष्ट भिक्षु (1) विषमता पर निर्भर रहता है, (2) झाड़ियों पर निर्भर रहता है, और (3) शक्तिशाली लोगों पर निर्भर रहता है; (4) वह रिश्वत देता है और (5) अकेला चलता है।

(1) "और एक दुष्ट भिक्षु विषमता पर कैसे निर्भर करता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु अधार्मिक शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों में संलग्न होता है। इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु विषमता पर निर्भर करता है।"

(2) "और एक दुष्ट भिक्षु झाड़ियों पर कैसे निर्भर करता है? [130] यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु गलत दृष्टिकोण रखता है; उसने एक चरमपंथी दृष्टिकोण अपनाया है। 1115 इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु झाड़ियों पर निर्भर करता है।

(3) "और एक दुष्ट भिक्षु शक्तिशाली लोगों पर कैसे निर्भर रहता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु राजाओं या राजमंत्रियों पर निर्भर रहता है। वह सोचता है: 'यदि कोई मुझ पर किसी बात का आरोप लगाएगा, तो ये राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देंगे।' यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाता है, तो वे राजा या राजमंत्री मामले को खारिज कर देते हैं। इसी प्रकार एक दुष्ट भिक्षु शक्तिशाली लोगों पर निर्भर रहता है।"

(4) "दुष्ट भिक्षु रिश्वत कैसे देता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। वह सोचता है: 'यदि कोई मुझ पर किसी बात का आरोप लगाए, तो मैं उसे इनमें से किसी एक लाभ से शांत कर दूँगा।' यदि कोई उस पर किसी बात का आरोप लगाता है, तो वह उसे अपने किसी लाभ से शांत कर देता है। इस प्रकार एक दुष्ट भिक्षु रिश्वत देता है।"

(5) "एक दुष्ट भिक्षु अकेले कैसे चलता है? यहाँ, एक दुष्ट भिक्षु सीमावर्ती क्षेत्रों में अपने लिए एकांत निवास स्थापित करता है। वहाँ के परिवारों के पास जाकर वह लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार एक दुष्ट भिक्षु अकेले चलता है।"

"इन पांच गुणों के कारण ही एक दुष्ट भिक्षु स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है, निंदनीय होता है और बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र होता है, और बहुत से पुण्य उत्पन्न करता है।"

---

104 एक प्रसन्न तपस्वी [1116] (समानसुखुमाला)

"भिक्षु (मठवासी), पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु तपस्वियों में सुखी तपस्वी होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह सामान्यतः वही वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह वस्त्र धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; वह सामान्यतः वही भिक्षाभोजन ग्रहण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह भिक्षाभोजन ग्रहण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; वह सामान्यतः वही आवास धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट किया गया हो, शायद ही कभी वह आवास धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट न किया गया हो; वह सामान्यतः वही औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री धारण करता है जो उसे विशेष रूप से भेंट की गई हों, शायद ही कभी वह जो उसे विशेष रूप से भेंट न की गई हों। [131] (2) उसके साथी भिक्षु, जिनके साथ वह निवास करता है, सामान्यतः उसके प्रति देह, वाणी और मन से सुखद व्यवहार करते हैं, शायद ही कभी अप्रिय व्यवहार करते हैं। वे सामान्यतः उसे वही भेंट करते हैं जो उसे प्रसन्न करती है, शायद ही कभी अप्रिय भेंट करते हैं। (3) पित्त, कफ, वायु या इनके संयोजन से उत्पन्न असुविधा; असुविधा जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न असुविधा; लापरवाहीपूर्ण व्यवहार से उत्पन्न असुविधा; हमले से उत्पन्न असुविधा; या कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न असुविधाएँ—ये सब उसे अक्सर नहीं होतीं। वह शायद ही कभी बीमार पड़ता है। (4) वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इसी जीवन में चार ध्यान अवस्थाओं को सहजता से प्राप्त कर लेता है, जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, उसने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इन्हीं पाँच गुणों के कारण भिक्षु तपस्वियों में सुखी तपस्वी होता है।

"यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है कि वह तपस्वियों में सबसे सुखी तपस्वी है, तो यह बात मेरे बारे में ही कही जा सकती है। (1) क्योंकि मैं आमतौर पर वही वस्त्र धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया गया है, शायद ही कभी ऐसा वस्त्र धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही भिक्षाभोजन ग्रहण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया गया है, शायद ही कभी ऐसा भिक्षाभोजन ग्रहण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही आवास धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट किया गया है, शायद ही कभी ऐसा आवास धारण करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं किया गया हो; मैं आमतौर पर वही औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री का उपयोग करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट की गई हैं, शायद ही कभी ऐसी औषधियों और भोजन सामग्री का उपयोग करता हूँ जो मुझे विशेष रूप से भेंट नहीं की गई हों। (2) जिन भिक्षुओं के साथ मैं रहता हूँ, वे आमतौर पर मेरे साथ शरीर, वाणी और मन से सुखद व्यवहार करते हैं, शायद ही कभी अप्रिय व्यवहार करते हैं। वे आमतौर पर मुझे वही भेंट करते हैं जो मुझे पसंद है, शायद ही कभी अप्रिय भेंट करते हैं। (3) पित्त, कफ, वात या इनके संयोजन से उत्पन्न होने वाली बेचैनी; जलवायु परिवर्तन; लापरवाहीपूर्ण व्यवहार से उत्पन्न असुविधा; हमले से उत्पन्न असुविधा; या कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न असुविधा — ये [132] मुझमें अक्सर उत्पन्न नहीं होतीं। मैं शायद ही कभी बीमार पड़ता हूँ। (4) मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करता हूँ जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, मैंने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके, मैं उसमें निवास करता हूँ। यदि, भिक्षुओं, किसी के बारे में सही कहा जा सकता है: 'वह तपस्वियों में एक सुखी तपस्वी है,' तो यह ठीक मेरे बारे में ही कहा जा सकता है।

---

105 आराम (फासुविहार)

भिक्षुओं, सुखमय रहने के ये पाँच साधन हैं। 1117 वे पाँच क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण दया का भाव रखता है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से। (2) वह अपने साथी भिक्षुओं के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण दया (मेट्टा) का भाव रखता है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से। (3) वह अपने साथी भिक्षुओं के प्रति मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण दया (मेट्टा) का भाव रखता है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से। (4) वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से अपने साथी भिक्षुओं के साथ अटूट, दोषरहित, निर्मल, बेदाग, मुक्तिदायक, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाले सद्गुणों का पालन करते हुए सुखमय रहता है। (5) वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से अपने साथी भिक्षुओं के साथ उस महान और मुक्तिदायक दृष्टिकोण का पालन करते हुए सुखमय रहता है, जो उस पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। हे भिक्षुओं, ये सुखमय रहने के पाँच साधन हैं। आराम से रहना।"

---

106 आनंद

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"(1) भंते, संघ में रहते हुए भिक्षु किस प्रकार निश्चिंत रह सकता है?"

"जब, आनंद, [133] एक भिक्षु स्वयं सद्गुणी आचरण में निपुण हो, लेकिन दूसरों को सद्गुणी आचरण के संबंध में उपदेश न दे, 1118 इस हद तक वह संघ में रहते हुए आराम से रह सकता है।"

(2) "पर, भंते, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे भिक्षु संघ में रहते हुए आराम से रह सके?"

"हाँ, आनंद। जब कोई भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण हो, लेकिन दूसरों को सद्गुणों के लिए उपदेश न दे, और स्वयं का आत्मनिरीक्षण करे, लेकिन दूसरों का नहीं, तो इस हद तक वह संघ में रहते हुए निश्चिंत रह सकता है।"

(3) "पर, भंते, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे भिक्षु संघ में रहते हुए आराम से रह सके?"

"आनंद, ऐसा संभव है। जब कोई भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण हो, लेकिन दूसरों को सद्गुणों का उपदेश न दे, और स्वयं का आत्मनिरीक्षण करे, लेकिन दूसरों का नहीं, और वह प्रसिद्ध न हो, लेकिन प्रसिद्धि की कमी से विचलित न हो, तो इस हद तक वह संघ में रहते हुए सहज महसूस कर सकता है।"

(4) "पर, भंते, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे भिक्षु संघ में रहते हुए आराम से रह सके?"

"आनंद, ऐसा संभव है। जब कोई भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण हो, परन्तु दूसरों को सद्गुणों का उपदेश न दे; वह स्वयं का आत्मनिरीक्षण करे, परन्तु दूसरों का नहीं; वह प्रसिद्ध न हो, परन्तु प्रसिद्धि की कमी से विचलित न हो; और वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन की चार अवस्थाओं (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर ले, जो सुखद निवास स्थान हैं, तो इस हद तक वह संघ में रहते हुए सहजता से रह सकता है।"

(5) "पर, भंते, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे भिक्षु संघ में रहते हुए आराम से रह सके?"

"आनंद, ऐसा संभव है। जब कोई भिक्षु स्वयं सद्गुणों में निपुण हो, परन्तु दूसरों को सद्गुणों के लिए उपदेश न दे; और वह स्वयं का आत्मनिरीक्षण करे, परन्तु दूसरों का नहीं; [134] और वह प्रसिद्ध न हो, परन्तु प्रसिद्धि के अभाव से विचलित न हो; और वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर ले; और दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर लिया हो, और उसमें प्रवेश करके, वह उसमें निवास करता हो, इस हद तक वह संघ में रहते हुए सहजता से रह सकता है और, आनंद, मैं कहता हूँ कि सहजता से रहने का इससे अधिक उत्कृष्ट या उदात्त कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

---

107 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

"भिक्षु, पाँच गुणों से युक्त, दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु सद्गुणों में निपुण, समाधि में निपुण, ज्ञान में निपुण, मुक्ति में निपुण और मुक्ति के ज्ञान एवं दृष्टि में निपुण है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

---

108 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (असेखा सं. आशीष्य)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य होते हैं... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु में प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्‌गुणों का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह, और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) का समूह होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य होते हैं... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र।" [135]

---

109 चारों दिशाओं में घर पर (Catuddisa sans. Caturdisha)

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में पाँच गुण होते हैं, एक भिक्षु चारों दिशाओं में सहज महसूस करता है। 1119 वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, एक भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है और उसे संचित करता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से जांचा है और दृष्टि से भलीभांति समझा है। (3) वह किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियों और भोजन से संतुष्ट रहता है। (4) वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चारों दिशाओं को प्राप्त करता है। ध्यान (सम्मोहन की अवस्थाएँ) जो उच्चतर मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु चारों दिशाओं में सहज महसूस करता है।

---

110 वन (अरन्ना सं. अरण्य)

पाँच गुणों से युक्त भिक्षु, वनों और झाड़ियों में स्थित एकांतवास में रहने के योग्य होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु गुणी होते हैं... वे उनमें साधना करते हैं। (2) उन्होंने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से पारंगत हैं। (3) उन्होंने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है; वे बलवान हैं, प्रयास में दृढ़ हैं, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की साधना के कर्तव्य का त्याग नहीं करते। (4) वे इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करते हैं जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं के लिए मन की दोषरहित मुक्ति का अनुभव किया है। [136] मुक्ति वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा ज्ञान प्राप्त कर उसमें प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु जंगलों और वनों में दूरस्थ आवासों में रहने के योग्य होता है।

द्वितीय. अंधकविन्द [1120]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

111 परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपाका)

"भिक्षुओं, जिनमें जीवित गुण होते हैं, परिवारों में अतिथि के रूप में जाने वाला भिक्षु उन्हें अप्रिय और नापसंद होता है, और न तो वे उसका सम्मान करते हैं और न ही उसे महत्व देते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह मात्र परिचय के आधार पर घनिष्ठता का अनुमान लगाता है; (2) वह ऐसी वस्तुएँ बाँटता है जो उसकी नहीं हैं; (3) वह विभाजित लोगों के साथ संगति करता है; (4) वह कान में फुसफुसाता है; और (5) वह अत्यधिक अनुरोध करता है। इन पाँच गुणों से युक्त, परिवारों में अतिथि के रूप में जाने वाला भिक्षु उन्हें अप्रिय और नापसंद होता है, और न तो वे उसका सम्मान करते हैं और न ही उसे महत्व देते हैं।"

"भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त, जो भिक्षु परिवारों में अतिथि के रूप में जाते हैं, वे परिवारों को प्रसन्न करते हैं और उनका आदर करते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे मात्र परिचय के आधार पर घनिष्ठता नहीं जताते; (2) वे ऐसी वस्तुएँ नहीं बाँटते जो उनकी नहीं हैं; (3) वे विभाजित लोगों के साथ संगति नहीं करते; (4) वे कान में फुसफुसाते नहीं; और (5) वे अत्यधिक अनुरोध नहीं करते। [137] इन पाँच गुणों से युक्त, जो भिक्षु परिवारों में अतिथि के रूप में जाते हैं, वे परिवारों को प्रसन्न करते हैं और उनका आदर करते हैं।"

---

112 एक परिचारक भिक्षु (पच्चसमाना)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को अपने साथ भिक्षु के रूप में नहीं ले जाना चाहिए। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह बहुत पीछे या बहुत पास चलता है; (2) वह आपका कटोरा भर जाने पर नहीं लेता; (3) जब आपकी बात आपत्तिजनक हो तो वह आपको नहीं रोकता; (4) वह बोलते समय आपको बार-बार टोकता है; और (5) वह मूर्ख, नासमझ और मंदबुद्धि है। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भिक्षु के रूप में अपने साथ नहीं ले जाना चाहिए।

"भिक्षुओं, जिनमें पाँच अन्य गुण हों, उन्हें सेवक भिक्षु के रूप में साथ ले जाया जा सकता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह न तो बहुत पीछे चलता है और न ही बहुत पास; (2) वह आपका कटोरा भर जाने पर उसे उठा लेता है; (3) जब आपकी वाणी आपत्तिजनक हो, तो वह आपको रोकता है; (4) वह आपके बोलते समय आपको बार-बार नहीं टोकता; और (5) वह बुद्धिमान, समझदार और चतुर होता है। इन पाँच गुणों वाले व्यक्ति को सेवक भिक्षु के रूप में साथ ले जाया जा सकता है।"

---

113 सम्यक समाधि (सम्मा-समाधि सं. सम्यक-समाधि)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ होते हैं। वे पाँच गुण कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिनमें पाँच अन्य गुण होते हैं, वे सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करने और उसमें रहने में सक्षम होते हैं। वे पाँच गुण कौन से हैं? [138] यहाँ, एक भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन कर सकता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक भिक्षु सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करने और उसमें रहने में सक्षम होता है।"

---

114 अंधकविंदा

एक बार भगवान (बुद्ध) अंधकविन्द में मगधियों के बीच निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"आनंद, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जो हाल ही में संन्यासी जीवन में आए हैं, जो अभी-अभी इस धम्म और अनुशासन में शामिल हुए हैं, उन्हें आप पाँच बातों में प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित करें। वे पाँच बातें क्या हैं?"

(1) उन्हें पतिमोक्खा के संयम में इस प्रकार प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए: 'आओ, मित्रों, सदाचारी बनो; पतिमोक्खा द्वारा संयमित रहो, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त रहो, छोटी-छोटी गलतियों में भी खतरा देखो। प्रशिक्षण नियमों को अपनाकर, उनमें अभ्यास करो।'

(2) उन्हें इस प्रकार इंद्रिय-सम्मोहन में प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए: 'आओ, मित्रों, इंद्रिय-सम्मोहन के द्वारों की रक्षा करो; सती ध्यान को अपना रक्षक बनाओ; सती ध्यान में रहते हुए सचेत और सतर्क रहो, एक संरक्षित मन धारण करो, एक ऐसा मन जो सती ध्यान की सुरक्षा में हो।'

(3) "उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, उन्हें शांत किया जाना चाहिए और इस प्रकार अपनी वाणी को सीमित करने में उन्हें स्थापित किया जाना चाहिए: 'आओ, मित्रों, ज्यादा बात मत करो। अपनी वाणी पर सीमा लगाओ।'

(4) "उन्हें शारीरिक एकांत में इस प्रकार प्रोत्साहित, व्यवस्थित और स्थापित किया जाना चाहिए: 'आओ, मित्रों, वनवासी बनो। जंगलों और वन उपवनों में दूरस्थ आवासों में शरण लो।'

(5) "उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, स्थिर किया जाना चाहिए और सही परिप्रेक्ष्य में स्थापित किया जाना चाहिए, इस प्रकार: 'आओ, मित्रों, सही दृष्टिकोण रखो और सही परिप्रेक्ष्य रखो।' 1122 [139]

"आनंद, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जो हाल ही में संन्यासी जीवन में प्रवेश कर चुके हैं, जो अभी-अभी इस धम्म और अनुशासन में आए हैं, उन्हें इन पांच बातों में आपके द्वारा प्रोत्साहित, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए।"

115 कंजूस नन (मच्चरिनी)

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में पाँच गुण होते हैं, तो भिक्षुणी (भिक्षुणियों) को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह आवास, परिवार, लाभ, स्तुति और धर्म के प्रति कंजूस होती है। 1123 इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, जिनमें पाँच अन्य गुण होते हैं, भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह आवास, परिवार, लाभ, स्तुति और धर्म के प्रति कंजूस नहीं होती। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

116 स्तुति (वन्नना सं. वंदना)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करती है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करती है। (3) बिना जाँच-पड़ताल किए वह संदेह के योग्य बात पर विश्वास करती है। (4) बिना जाँच-पड़ताल किए वह विश्वास के योग्य बात पर संदेह करती है। (5) वह आस्था से दिए गए दान को व्यर्थ कर देती है। 1124 इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में पाँच अन्य गुण होते हैं, और भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है जैसे कि उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) जाँच-परख करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करती है। (2) जाँच-परख करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करती है। [140] (3) जाँच-परख करने के बाद, वह संदेह के योग्य मामले पर संदेह करती है। (4) जाँच-परख करने के बाद, वह विश्वास के योग्य मामले पर विश्वास करती है। (5) वह आस्था से दिए गए दान को व्यर्थ नहीं करती। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है जैसे कि उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

---

117 ईर्ष्यालु (इस्सुकिनी)

पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करती है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करती है। (3) वह ईर्ष्यालु (4) और कंजूस (5) होती है। (5) वह श्रद्धा से दिए गए दान को व्यर्थ कर देती है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में पाँच अन्य गुण होते हैं, और इसी गुण के कारण भिक्षुणी स्वर्ग में ऐसे पहुँचती है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। (1) गहन जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करती है। (2) गहन जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करती है। (3) वह ईर्ष्या (4) और कंजूसी (5) से मुक्त होती है। वह आस्था से दिए गए दान को व्यर्थ नहीं करती। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी स्वर्ग में ऐसे पहुँचती है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

118 गलत दृश्य (मिचदिट्ठिका सं. मिथ्या-दृष्टि)

"भिक्षुओं (सम्मोहनों), पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी (भिक्षुणियों) को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करती है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करती है। (3) उसका दृष्टिकोण गलत है (4) और उसके इरादे गलत हैं। (5) वह आस्था से दिए गए दान को व्यर्थ कर देती है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी (भिक्षुणियों) को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो, [141]

"भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) जाँच-परख करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करती है। (2) जाँच-परख करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करती है। (3) उसका दृष्टिकोण सही होता है (4) और उसके इरादे सही होते हैं। (5) वह आस्था से दिए गए दान को व्यर्थ नहीं करती। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुणी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

119 गलत भाषण (मिचावाका सं. मिथ्या-वाका)

[जैसा कि 5:118 में है, लेकिन नरक और स्वर्ग की ओर ले जाने वाले तीसरे और चौथे गुणों को क्रमशः निम्नलिखित से बदल दें:

. . . (3) वह गलत वाणी और (4) गलत कर्म करती है. . . .

(3) वह सही वाणी और (4) सही कर्म वाली है।

---

120 गलत प्रयास (मिचावयामा)

[जैसा कि 5:118 में है, लेकिन नरक और स्वर्ग की ओर ले जाने वाले तीसरे और चौथे गुणों को क्रमशः निम्नलिखित से बदल दें:]

"... (3) वह गलत प्रयास और (4) गलत ध्यान (ध्यान/सती) की है। [142]

(3) वह सही प्रयास और (4) सही ध्यान (सती/सचेतनता) की अनुयायी है..."

III. बीमार (गिलाना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

121. बीमार (गिलाना सैंस. ग्लानी)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। फिर, शाम के समय, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और आश्रम की ओर गए, जहाँ उन्होंने एक दुर्बल और बीमार भिक्षु को देखा। तब वे तैयार आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, यदि पाँच बातें किसी दुर्बल और बीमार भिक्षु से विमुख न हों, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है: कुछ ही समय में, दोषों के नाश होने पर, वह इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, प्रभात (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को स्वयं अनुभव करेगा, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करेगा। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु शरीर की अनाकर्षकता को निहारते हुए, भोजन की अरुचि को अनुभव करते हुए, समस्त संसार में अनाकर्ष का अनुभव करते हुए, [143] सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) का चिंतन करते हुए (ध्यान/अनुपसी में) निवास करता है; और उसे मृत्यु का बोध (सन्न/संज्ञा) आंतरिक रूप से सुस्थापित है। यदि ये पाँच बातें किसी दुर्बल और बीमार भिक्षु से विमुख न हों, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है: 'कुछ ही समय में, उसके सभी दोषों के नाश होने पर, वह स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, प्रभात (दिव्य ज्ञान) को प्राप्त कर लेगा, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करेगा। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु ध्यान (अनुपसी) में शरीर की अनाकर्षकता को निहारते हुए, भोजन की अरुचि को अनुभव करते हुए, समस्त संसार में अनाकर्ष का अनुभव करते हुए ([143]) निवास करता है; और उसे मृत्यु का बोध (सन्न/संज्ञा) आंतरिक रूप से सुस्थापित है। समय के साथ, दोषों के नाश होने पर, वह स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करेगा, और उसमें प्रवेश करने के बाद, वह उसमें निवास करेगा।

---

122 माइंडफुलनेस (ध्यान) की स्थापना (सतिसुपत्थिता सं. स्मृति-सु-प्रतिष्ठिता)

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी पाँच चीजों का विकास और अभ्यास करता है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि कोई अवशेष शेष रहता है, तो अनागामी अवस्था (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं)। वे पाँच क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु ने घटनाओं के उद्‌भव और क्षय को समझने वाले प्रभात (दिव्य ज्ञान) को प्राप्त करने के लिए आंतरिक रूप से सती (ध्यान) स्थापित कर रखी है; 112 वह शरीर की अनाकर्षकता को निहारते हुए, भोजन की अरुचि को समझते हुए, संपूर्ण संसार में आनंदहीनता को निहारते हुए, और सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता को निहारते हुए (ध्यान/अनुपसी) ध्यान में लीन रहता है। यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पांच गुणों का विकास और अभ्यास करता है, तो उसे दो में से एक फल प्राप्त होने की उम्मीद होती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान प्राप्त हो जाए, या यदि कुछ शेष रह जाए तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था (अनगामी) प्राप्त हो जाए।

---

123 एक परिचारक (1) (उपत्थक1 सं. उपष्टक)

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच गुणों के कारण रोगी की देखभाल करना कठिन होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह हानिकारक कार्य करता है। (2) वह लाभकारी कार्यों में संयम नहीं बरतता। (3) वह अपनी दवा नहीं लेता। (4) वह अपने दयालु सेवक को अपने लक्षणों का सही-सही वर्णन नहीं करता; वह स्थिति के अनुसार यह नहीं बताता कि उसकी स्थिति बिगड़ रही है, सुधर रही है या वैसी ही बनी हुई है। (5) वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली होती हैं। [144] इन पाँच गुणों के कारण रोगी की देखभाल करना कठिन होता है।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच अन्य गुण होने से रोगी की देखभाल करना आसान होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे लाभकारी कार्य करते हैं। (2) वे लाभकारी कार्यों में संयम बरतते हैं। (3) वे नियमित रूप से दवा लेते हैं। (4) वे अपने दयालु सेवक को अपने लक्षणों का सटीक वर्णन करते हैं; वे आवश्यकतानुसार बताते हैं कि उनकी स्थिति बिगड़ रही है, सुधर रही है या वैसी ही बनी हुई है। (5) वे पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को धैर्यपूर्वक सहन कर सकते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त रोगी की देखभाल करना आसान होता है।"

---

124 एक परिचारक (2) (उपत्थक2 सं. उपष्टक)

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, फिर भी एक सेवक रोगी की देखभाल करने के योग्य नहीं होता। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह औषधि तैयार करने में असमर्थ होता है। (2) वह लाभकारी और हानिकारक का ज्ञान नहीं रखता, इसलिए वह हानिकारक वस्तुएँ देता है और लाभकारी वस्तुएँ नहीं देता। (3) वह भौतिक लाभों के लिए रोगी की देखभाल करता है, न कि प्रेम और करुणा (मेट्टा) की भावना से। (4) उसे मल, मूत्र, उल्टी या थूक साफ करने में घृणा होती है। (5)

वह समय-समय पर रोगी को धर्म प्रवचन से उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में असमर्थ रहता है। इन पाँच गुणों से रहित परिचारक रोगी की देखभाल करने के योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिनमें पाँच अन्य गुण होते हैं, वे रोगी की देखभाल करने के योग्य होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह औषधि तैयार करने में सक्षम होता है। (2) वह जानता है कि क्या लाभकारी है और क्या हानिकारक, इसलिए वह हानिकारक को रोककर लाभकारी प्रदान करता है। (3) वह भौतिक पुरस्कारों के लिए नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण करुणा के भाव से रोगी की देखभाल करता है। (4) उसे मल, मूत्र, उल्टी या थूक को साफ करने में कोई घृणा नहीं होती। (5) वह समय-समय पर धम्म प्रवचन द्वारा रोगी को उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में सक्षम होता है। [145] इन पाँच गुणों से युक्त, एक सेवक रोगी की देखभाल करने के योग्य होता है।"

---

125 जीवन शक्ति (1) (अनयुस्स1)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो जीवन शक्ति को कम करती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? हानिकारक कर्म करना; लाभकारी कर्मों में संयम न बरतना; पाचन क्रिया खराब होना; भिक्षा के लिए अनुचित समय पर चलना; ब्रह्मचर्य का पालन न करना। ये पाँच बातें जीवन शक्ति को कम करती हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो जीवन शक्ति बढ़ाती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? लाभकारी कर्म करना; लाभकारी कर्मों में संयम बरतना; पाचन क्रिया अच्छी होना; उचित समय पर भिक्षा मांगने जाना; ब्रह्मचर्य का पालन करना। ये पाँच बातें ही जीवन शक्ति बढ़ाती हैं।

---

126 जीवन शक्ति (2) (अनयुस्स2)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो प्राण शक्ति को कम करती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? हानिकारक कर्म करना; लाभकारी कर्मों में संयम न बरतना; पाचन शक्ति में कमी; अनैतिक आचरण; बुरे मित्र होना। ये पाँच बातें प्राण शक्ति को कम करती हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो जीवन शक्ति बढ़ाती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? लाभकारी कर्म करना; लाभकारी कर्मों में संयम बरतना; पाचन शक्ति अच्छी होना; गुणी होना; अच्छे मित्र होना। ये पाँच बातें ही जीवन शक्ति बढ़ाती हैं।

---

127 अलग रहना (वापाका)

"भिक्षुओं, जिनमें पाँच गुण होते हैं, वे संघ से अलग रहने के योग्य नहीं होते। वे पाँच गुण क्या हैं? वे किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट नहीं होते; वे किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से संतुष्ट नहीं होते; वे किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्ट नहीं होते; वे बीमारों के लिए किसी भी प्रकार की औषधियों और भोजन से संतुष्ट नहीं होते; और वे कामुक विचारों में लीन रहते हैं। इन पाँच गुणों के कारण, भिक्षु संघ से अलग रहने के योग्य नहीं होते।"

"भिक्षुओं, पाँच अन्य गुणों से युक्त भिक्षु संघ से अलग रहने के योग्य होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? [146] वे किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहते हैं; वे किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहते हैं; वे किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्ट रहते हैं; वे बीमारों के लिए किसी भी प्रकार की औषधियों और भोजन से संतुष्ट रहते हैं; 1127 और वे त्याग के विचारों में लीन रहते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु संघ से अलग रहने के योग्य होते हैं।"

---

128 एक तपस्वी का सुख (समानसुख सं. श्रमणसुखा)

भिक्षुओं, तपस्वी के लिए पाँच प्रकार के कष्ट होते हैं। वे पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट नहीं होता; वह किसी भी प्रकार के भिक्षाभोजन से संतुष्ट नहीं होता; वह किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्ट नहीं होता; वह किसी भी प्रकार की औषधियों और बीमारों के लिए भोजन से संतुष्ट नहीं होता; और वह असंतुष्ट रहकर ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है। ये तपस्वी के लिए पाँच प्रकार के कष्ट हैं।

भिक्षुओं, तपस्वी के लिए पाँच प्रकार के सुख होते हैं। वे पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है; वह किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है; वह किसी भी प्रकार के आवास से संतुष्ट रहता है; वह बीमारों के लिए किसी भी प्रकार की औषधियों और भोजन से संतुष्ट रहता है; और वह ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का निर्वाह करते हुए संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। तपस्वी के लिए ये पाँच प्रकार के सुख हैं।

---

129 घाव (परिकुप्पा)

"भिक्षुओं, ये पाँच असाध्य दोष हैं जो दुख के लोक की ओर ले जाते हैं, जो नरक की ओर ले जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं? कोई अपनी माता का प्राण छीन लेता है; कोई अपने पिता का प्राण छीन लेता है; कोई अरहंत का प्राण छीन लेता है; घृणा के भाव से कोई तथागत (बुद्ध) का रक्त बहाता है; कोई संघ में फूट डालता है। ये पाँच असाध्य दोष हैं जो दुख के लोक की ओर ले जाते हैं, जो नरक की ओर ले जाते हैं।" [147]

---

130 आपदाएँ (ब्यासन)

भिक्षुओं, ये पाँच विपत्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? सगे-संबंधियों की मृत्यु से विपत्ति, धन की हानि से विपत्ति, रोग से विपत्ति, पुण्य कर्म से संबंधित विपत्ति और दृष्टि से संबंधित विपत्ति। 1129 शरीर के क्षोभ के साथ मृत्यु के बाद प्राणी दुःख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेते हैं, बल्कि पुण्य कर्म से संबंधित विपत्ति और दृष्टि से संबंधित विपत्ति के कारण मृत्यु के बाद प्राणी दुःख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। ये पाँच विपत्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं। ये पाँच क्या हैं? संबंधियों के प्रति सिद्धि, धन के प्रति सिद्धि, स्वास्थ्य के प्रति सिद्धि, सद्‌गुणों के प्रति सिद्धि और दृष्टि के प्रति सिद्धि। शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के समय प्राणी शुभ स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं लेते कि वे संबंधियों के प्रति सिद्धि, धन के प्रति सिद्धि या स्वास्थ्य के प्रति सिद्धि के कारण जन्म लेते हैं। सद्‌गुणों के प्रति सिद्धि और दृष्टि के प्रति सिद्धि के कारण ही शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के समय प्राणी शुभ स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। ये पाँच सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं।

IV. राजा

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

131 पहिया घुमाना (1) (चक्कनुवत्तन1 सं. चक्रानुवर्तन)

"भिक्षुओं (साधुओं), पाँच गुणों से युक्त, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट केवल धम्म के माध्यम से ही चक्र को गतिमान करता है, 1130 एक ऐसा चक्र जिसे [148] मानव रूप में कोई शत्रु प्राणी नहीं मोड़ सकता। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, चक्र-घुमाने वाला सम्राट वह है जो जानता है कि क्या अच्छा है, जो धम्म को जानता है, जो उचित माप को जानता है, जो उचित समय को जानता है और जो सभा को जानता है। इन पाँच गुणों से युक्त, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट केवल धम्म के माध्यम से ही चक्र को गतिमान करता है, एक ऐसा चक्र जिसे मानव रूप में कोई शत्रु प्राणी नहीं मोड़ सकता।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, केवल धम्म के माध्यम से धम्म के अद्वितीय चक्र को गतिमान करते हैं, एक ऐसा चक्र जिसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा वापस नहीं मोड़ा जा सकता। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वह हैं जो अच्छाई को जानते हैं, जो धम्म को जानते हैं, जो उचित माप को जानते हैं, जो उचित समय को जानते हैं और जो सभा को जानते हैं। 1131 इन पाँच गुणों से युक्त तथागत (बुद्ध)... केवल धम्म के माध्यम से धम्म के अद्वितीय चक्र को गतिमान करते हैं, एक ऐसा चक्र जिसे संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा वापस नहीं मोड़ा जा सकता।"

---

132 पहिया घुमाना (2) (चक्कनुवत्तन2 सं. चक्रानुवर्तन)

"भिक्षुओं (मठवासियों), पाँच गुणों से युक्त, चक्र चलाने वाले सम्राट का सबसे बड़ा पुत्र, केवल धम्म के माध्यम से, अपने पिता द्वारा स्थापित चक्र को निरंतर चलाता रहता है, एक ऐसा चक्र जिसे मानव रूप में कोई शत्रु प्राणी नहीं मोड़ सकता। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, चक्र चलाने वाले सम्राट का सबसे बड़ा पुत्र वह है जो अच्छाई को जानता है, जो धम्म को जानता है, जो उचित माप को जानता है, जो उचित समय को जानता है और जो सभा को जानता है। इन पाँच गुणों से युक्त, चक्र चलाने वाले सम्राट का सबसे बड़ा पुत्र, केवल धम्म के माध्यम से, अपने पिता द्वारा स्थापित चक्र को निरंतर चलाता रहता है, एक ऐसा चक्र जिसे मानव रूप में कोई शत्रु प्राणी नहीं मोड़ सकता। [149]

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त सारिपुत्त, केवल धम्म के माध्यम से, तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के उस अद्वितीय चक्र को निरंतर घुमाते रहते हैं, जिसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा वापस नहीं घुमाया जा सकता। 1132 वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, सारिपुत्त वह हैं जो अच्छाई को जानते हैं, जो धम्म को जानते हैं, जो उचित माप को जानते हैं, जो उचित समय को जानते हैं और जो सभा को जानते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त सारिपुत्त, केवल धम्म के माध्यम से, तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के उस अद्वितीय चक्र को निरंतर घुमाते रहते हैं, जिसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा वापस नहीं घुमाया जा सकता।"

---

133 धर्मी राजा 1133 (धम्मराज सं. धर्मराज)

"भिक्षुओं (साधुओं), यहां तक कि एक चक्र चलाने वाला सम्राट, एक धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता है, वह भी अपने ऊपर एक राजा के बिना चक्र नहीं चलाता।"

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परन्तु, हे भंते, चक्र घुमाने वाले राजा से भी श्रेष्ठ राजा कौन हो सकता है, एक ऐसा धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता हो?"

“यह धम्म (धर्म) है, भिक्षु,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। “यहाँ, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट, एक धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता है, केवल धम्म पर भरोसा करता है, धम्म का आदर, सम्मान और पूजा करता है, धम्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानता है, और अपने दरबार में लोगों को धार्मिक सुरक्षा, आश्रय और रक्षा प्रदान करता है। फिर, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट, एक धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता है... अपने क्षत्रिय सामंतों; अपनी सेना; ब्राह्मणों और गृहस्थों; नगर और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों; तपस्वियों और ब्राह्मणों; पशुओं और पक्षियों को धार्मिक सुरक्षा, आश्रय और रक्षा प्रदान करता है। [150] ऐसी धार्मिक सुरक्षा, आश्रय और रक्षा प्रदान करने के बाद, वह चक्र-घुमाने वाला सम्राट, एक धर्मात्मा राजा जो धम्म के अनुसार शासन करता है, केवल धम्म के माध्यम से ही चक्र को घुमाता है, एक ऐसा चक्र जिसे मानव रूप में कोई भी शत्रु प्राणी वापस नहीं घुमा सकता।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षु, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धर्म के धर्मी राजा, केवल धर्म पर निर्भर रहते हुए, धर्म का आदर, सम्मान और पूजा करते हुए, धर्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानते हुए, भिक्षुओं को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते हुए कहते हैं: (1) 'ऐसे शारीरिक कर्मों का अभ्यास करना चाहिए; ऐसे शारीरिक कर्मों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (2) ऐसे वाक् कर्मों का अभ्यास करना चाहिए; ऐसे वाक् कर्मों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (3) ऐसे मानसिक कर्मों का अभ्यास करना चाहिए; ऐसे मानसिक कर्मों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (4) ऐसी आजीविका का अभ्यास करना चाहिए; ऐसी आजीविका का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (5) ऐसे गाँव या नगर में शरण लेनी चाहिए; ऐसे गाँव या नगर में शरण नहीं लेनी चाहिए।'

फिर से, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, धम्म के धर्मात्मा राजा, केवल धम्म पर भरोसा करते हुए, धम्म का आदर, सम्मान और पूजा करते हुए, धम्म को अपना मानक, ध्वज और अधिकार मानते हुए, भिक्षुणियों (नन) को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते हैं... पुरुष गृहस्थ अनुयायियों को... स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को, यह कहते हुए: 'ऐसे शारीरिक कर्मों का अभ्यास करना चाहिए... ऐसे वाणी कर्मों का अभ्यास करना चाहिए... ऐसे मानसिक कर्मों का अभ्यास करना चाहिए... ऐसी आजीविका का अभ्यास करना चाहिए; ऐसी आजीविका का अभ्यास नहीं करना चाहिए। ऐसे गाँव या नगर में शरण लेनी चाहिए; ऐसे गाँव या नगर में शरण नहीं लेनी चाहिए।'

"इस प्रकार की धार्मिक सुरक्षा, आश्रय और रक्षा प्रदान करके, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, [151] धम्म के धर्मी राजा, केवल धम्म के माध्यम से धम्म के अतुलनीय चक्र को गतिमान करते हैं, एक ऐसा चक्र जिसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, या ब्रह्मा, या संसार में किसी के द्वारा भी वापस नहीं मोड़ा जा सकता है।"

---

134 किसी भी दिशा में (यस्सामदिसम सं. यथादिशा)

"भिक्षुओं (साधुओं), चाहे वह किसी भी क्षेत्र में निवास करे, एक अभिषिक्त क्षत्रिय राजा, जिसके पास पाँच गुणधर्म होते हैं, अपने राज्य में निवास करता है। वे पाँच कौन से हैं?"

"(1) यहाँ, एक प्रधान-अभिषिक्त खत्तीय राजा अपने माता-पिता दोनों की ओर से उच्च कुल का है, शुद्ध वंश का है, और सातवीं पीढ़ी तक जन्म के संबंध में निर्विवाद और निष्कलंक है। 1134 (2) वह धनी है, अपार संपत्ति और संपदा से युक्त है, उसके खजाने और भंडारगृह भरे हुए हैं। (3) वह शक्तिशाली है, उसके पास चार भागों की सेना है जो उसकी आज्ञा का पालन करती है। (4) उसका सलाहकार बुद्धिमान, सक्षम और समझदार है, जो अतीत, भविष्य और वर्तमान से संबंधित लाभों पर विचार करने में सक्षम है। 135 (5) उसके ये चार गुण उसकी प्रसिद्धि को बढ़ाते हैं। प्रसिद्धि सहित इन पाँचों गुणों से युक्त होकर, वह अपने राज्य में, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में निवास करे, उसी में रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि विजयी लोगों के लिए ऐसा ही होता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में निवास करे, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु मन से मुक्त रहता है। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

"(1) यहाँ, एक भिक्षु (भिक्षु) गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनमें अभ्यास करता है। [152] यह प्रधान अभिषिक्त क्षत्रिय राजा के उच्च कुल में होने के समान है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है, और जो सीखा है उसे संचित करता है।

वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन की घोषणा करती हों— ऐसी शिक्षाओं का उन्होंने बहुत अध्ययन किया है, उन्हें मन में संजोकर रखा है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका विश्लेषण किया है और दृष्टि से अच्छी तरह से समझा है। यह प्रधान अभिषिक्त क्षत्रिय राजा के धनवान होने, अपार धन-संपत्ति से संपन्न होने, भरे हुए खजानों और भंडारगृहों के समान है। (3) उन्होंने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है; वे बलवान हैं, प्रयास में दृढ़ हैं, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करते। यह प्रधान अभिषिक्त क्षत्रिय राजा के शक्तिशाली होने के समान है। (4) वे बुद्धिमान हैं; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति जानता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। यह उस प्रकार है जैसे प्रधान क्षत्रिय राजा के पास एक अच्छा सलाहकार हो।(5) उसके ये चार गुण उसकी मुक्ति में सहायक होते हैं। मुक्ति सहित इन पाँचों गुणों से युक्त होने के कारण, वह चाहे जिस भी क्षेत्र में निवास करे, वह मन से मुक्त रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि मन से मुक्त लोगों के लिए ऐसा ही होता है।

---

135 तड़प (पत्थाना1)

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच गुण होते हैं, एक प्रधान राज्याभिषेकित क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र राजत्व की लालसा रखता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, प्रधान राज्याभिषेकित क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र अपने माता और पिता दोनों ओर से उत्तम कुल का है, शुद्ध वंश का है, और सातवीं पीढ़ी तक जन्म के संबंध में निर्दोष और बेदाग है। (2) वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंग का है। (3) वह अपने माता-पिता को प्रसन्न और प्रिय है। (4) वह नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को प्रसन्न और प्रिय है। (5) वह प्रधान राज्याभिषेकित क्षत्रिय राजाओं की कलाओं में प्रशिक्षित और निपुण है, चाहे वह हाथी की सवारी हो, घुड़सवारी हो, रथ चलाना हो, तीरंदाजी हो या तलवारबाजी हो। [153]

उसके मन में यह विचार आता है: (1) 'मैं दोनों ओर से उत्तम कुल का हूँ... जन्म से निर्दोष हूँ, तो मुझे राजत्व की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए? (2) मैं सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंग का हूँ, तो मुझे राजत्व की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए? (3) मैं अपने माता-पिता को प्रिय और आज्ञाकारी हूँ, तो मुझे राजत्व की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए? (4) मैं नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को प्रिय और आज्ञाकारी हूँ, तो मुझे राजत्व की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए? (5) मैं प्रधान राज्याभिषेकित क्षत्रिय राजाओं की कलाओं में प्रशिक्षित और निपुण हूँ, चाहे वह हाथी की सवारी हो, घुड़सवारी हो, रथ चलाना हो, तीरंदाजी हो या तलवारबाजी हो, तो मुझे राजत्व की इच्छा क्यों नहीं होनी चाहिए?' इन पाँचों गुणों से युक्त, प्रधान राज्याभिषेकित क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र राजत्व की इच्छा रखता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दोषों के नाश की कामना करता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? (1) यहाँ, भिक्षु आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं... देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।'" (2) वह शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होते हैं, उनका पाचन तंत्र संतुलित होता है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और साधना के लिए उपयुक्त होता है। (3) वे ईमानदार और खुले दिल के होते हैं, जो गुरु और अपने बुद्धिमान साथी भिक्षुओं के सामने अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। (4) उन्होंने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत की है; वे बलवान और दृढ़ हैं, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की साधना के कर्तव्य का त्याग नहीं करते। (5) वे बुद्धिमान हैं; उनके पास उत्पत्ति और क्षय को समझने वाला दिव्य ज्ञान है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।

"उसे यह बात सूझती है: (1) 'मैं आस्था से परिपूर्ण हूँ; मैं तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता हूँ: "भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं... देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)," तो मुझे [154] दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (2) मैं शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होता हूँ, मेरा पाचन संतुलित है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और साधना के लिए उपयुक्त है, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (3) मैं ईमानदार और खुला हूँ; मैं गुरु और अपने बुद्धिमान साथी भिक्षुओं के सामने स्वयं को वैसे ही प्रकट करता हूँ जैसा मैं वास्तव में हूँ, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (4) मैंने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) के त्याग के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (5) मैं बुद्धिमान हूँ; मेरे पास पन्ना (दिव्य) है (ज्ञान)... [जो] दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाता है, तो मुझे दोषों के विनाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए?'

"इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु दोषों के नाश की कामना करता है।"

---

136 तड़प (2) (पत्थाना2)

"एक प्रधान क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र, जो पाँच गुणों से युक्त है, वायसराय बनने की इच्छा रखता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, प्रधान क्षत्रिय राजा का सबसे बड़ा पुत्र सातवीं पीढ़ी तक उच्च कुल का है। (2) वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। (3) वह अपने माता-पिता को प्रसन्न और संतुष्ट करता है। (4) वह सशस्त्र बलों को प्रसन्न और संतुष्ट करता है। (5) वह बुद्धिमान, सक्षम और समझदार है, जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान के लाभों पर विचार करने में सक्षम है।"

उसके मन में यह विचार आता है: (1) मैं उच्च कुल का हूँ... सातवीं पीढ़ी तक, तो मैं वायसराय बनने की इच्छा क्यों न रखूँ? (2) मैं सुंदर हूँ; आकर्षक, सुशोभित, अत्यंत सुंदर रंग का, तो मैं वायसराय बनने की इच्छा क्यों न रखूँ? (3) मैं अपने माता-पिता को प्रिय और स्वीकार्य हूँ, तो मैं वायसराय बनने की इच्छा क्यों न रखूँ? [155] (4) मैं सशस्त्र बलों को प्रिय और स्वीकार्य हूँ, तो मैं वायसराय बनने की इच्छा क्यों न रखूँ? (5) मैं बुद्धिमान, सक्षम और समझदार हूँ, अतीत, भविष्य और वर्तमान से संबंधित लाभों पर विचार करने में सक्षम हूँ, तो मैं वायसराय बनने की इच्छा क्यों न रखूँ?' इन पाँचों गुणों से युक्त, एक प्रमुख खत्तीय राजा का सबसे बड़ा पुत्र वायसराय बनने की इच्छा रखता है।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दोषों के नाश की कामना करता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु गुणी है... वह उनमें साधना करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से भलीभांति ज्ञान प्राप्त किया है। (3) वह ऐसा व्यक्ति है जिसका मन सती ध्यान की चार अवस्थाओं में सुस्थापित है। (4) उसने ऊर्जा (वीर्य) जागृत की है... लाभकारी (कुशल) गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है। (5) वह बुद्धिमान है; उसके पास वह ज्ञान है... जो दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।

उसे यह विचार आता है: (1) 'मैं गुणी हूँ... मैं उनका अभ्यास करता हूँ, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (2) मैंने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से पारंगत हूँ, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (3) मैं वह हूँ जिसका मन चारों प्रकार की चेतना में सुस्थापित है, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (4) मैंने हानिकारक

(अकुशल) गुणों (धम्म) के त्याग के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाई है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के पालन-पोषण के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है, तो मुझे दोषों के नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? (5) मैं बुद्धिमान हूँ; मेरे पास वह (दिव्य ज्ञान) है... [156] जो दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है, तो मुझे नाश की कामना क्यों नहीं करनी चाहिए? दाग?'

"इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु दोषों के नाश की कामना करता है।"

---

137 छोटी नींद (अप्पमसुपति सं. अल्पा-सुशुप्ति)

भिक्षुओं, ये पाँच रात में कम सोते हैं, लेकिन अधिकतर जागते रहते हैं। कौन से पाँच? एक स्त्री जो पुरुष पर मोहित है, एक पुरुष जो स्त्री पर मोहित है, एक चोर जो चोरी करने पर मोहित है, एक राजा जो अपने राजकाय कर्तव्यों में लीन है, और एक भिक्षु जो बंधनों को तोड़ने पर मोहित है। ये पाँच रात में कम सोते हैं, लेकिन अधिकतर जागते रहते हैं।

---

138 भोजन का उपभोक्ता (भट्टदक)

"भिक्षुओं (साधुओं), जिनमें पाँच गुण होते हैं, एक राजा का हाथी भोजन ग्रहण करता है, स्थान घेरता है, गोबर त्यागता है, और टिकट लेता है, 1136 फिर भी उसे राजा का हाथी ही माना जाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह रूपों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, गंधों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता। इन पाँच गुणों से युक्त, एक राजा का हाथी भोजन ग्रहण करता है... फिर भी उसे राजा का हाथी ही माना जाता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षु भोजन का सेवन करता है, स्थान का उपयोग करता है, कुर्सियों को कुचल देता है, 1137 टिकट लेता है, 1138 और फिर भी उसे भिक्षु ही माना जाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? [157] यहाँ, एक भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों को सहन नहीं कर सकता, धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन नहीं कर सकता, धैर्यपूर्वक गंधों को सहन नहीं कर सकता, धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन नहीं कर सकता और धैर्यपूर्वक स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन नहीं कर सकता। इन पाँच कारकों से युक्त, एक भिक्षु भोजन का सेवन करता है, स्थान का उपयोग करता है... फिर भी उसे भिक्षु ही माना जाता है।"

---

139 धैर्यपूर्वक खड़ा नहीं रह सकता (अक्खामा बिना अक्षमा)

"भिक्षुओं (संतों) में पाँच गुण होते हैं, इसलिए राजा का हाथी राजा के योग्य नहीं है, राजा का सहायक नहीं है और राजत्व का कारक नहीं माना जाता। वे पाँच गुण क्या हैं? यह रूपों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, गंधों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता, स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

(1) "और ऐसा कैसे हो सकता है कि राजा का हाथी सामंती रूप-रंग को धैर्यपूर्वक सहन न कर सके? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो हाथियों की सेना, घुड़सवार सेना, रथ चालकों या पैदल सेना को देखकर वह धंस जाता है, लड़खड़ा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। इसी प्रकार राजा का हाथी सामंती रूप-रंग को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

(2) "और ऐसा कैसे हो सकता है कि राजा का हाथी आवाज़ों को धैर्यपूर्वक सहन न कर सके? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो हाथियों, घोड़ों, रथों या पैदल सैनिकों की आवाज़ें, या ढोल, नगाड़े, शंख और तुरही की आवाज़ें सुनकर वह धंस जाता है, लड़खड़ा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। इसी प्रकार राजा का हाथी आवाज़ों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

(3) "और ऐसा कैसे हो सकता है कि राजा का हाथी गंध को धैर्यपूर्वक सहन न कर सके? [158] यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो उच्च नस्ल के और युद्ध के आदी शाही हाथियों के मूत्र और मल की गंध सूंघकर वह लड़खड़ा जाता है, डगमगा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। इसी कारण राजा का हाथी गंध को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता।"

(4) "और ऐसा कैसे हो सकता है कि राजा का हाथी धैर्यपूर्वक स्वाद सहन न कर सके? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, यदि उसे घास और पानी का एक भाग, या दो, तीन, चार या पाँच भाग न दिया जाए, तो वह कमजोर पड़ जाता है, लड़खड़ा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। इसी प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक स्वाद सहन नहीं कर सकता।"

(5) "और ऐसा कैसे हो सकता है कि राजा का हाथी स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन न कर सके? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, यदि उस पर तीरों की एक बौछार हो, या दो, तीन, चार या पाँच बौछारें हों, तो वह धंस जाता है, लड़खड़ा जाता है, खुद को संभाल नहीं पाता और युद्ध में प्रवेश नहीं कर पाता। इसी प्रकार राजा का हाथी स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

"इन पांच कारकों के कारण, राजा का हाथी राजा के योग्य नहीं है, राजा का सहायक नहीं है, और राजत्व के कारक के रूप में नहीं गिना जाता है।"

"इसी प्रकार, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु, 1139 दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। वे पाँच गुण क्या हैं? वे रूपों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते, ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते, गंधों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते, स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकते।"

(1) "और ऐसा कैसे होता है कि भिक्षु रूपों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता? यहाँ, जब भिक्षु किसी रूप को आँखों से देखता है, तो वह उस मोहक रूप से मोहित हो जाता है और अपना मन एकाग्र नहीं कर पाता। इसी कारण भिक्षु रूपों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता।"

(2) "और ऐसा कैसे होता है कि भिक्षु ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता? [159] यहाँ, जब भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है, तो वह उस मोहक ध्वनि से मोहित हो जाता है और अपना मन एकाग्र नहीं कर पाता। इसी कारण भिक्षु ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर पाता। ..."

(3) "और ऐसा क्यों है कि भिक्षु गंधों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता? यहाँ, जब भिक्षु नाक से किसी गंध को सूंघता है, तो वह उस मोहक गंध से मोहित हो जाता है और अपना ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता। इसी कारण भिक्षु गंधों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

(4) "और ऐसा क्यों है कि एक भिक्षु (साधु) स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता? यहाँ, जब एक भिक्षु जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है, तो वह उस ललचाने वाले स्वाद से मोहित हो जाता है और अपना मन एकाग्र नहीं कर पाता। इसी कारण एक भिक्षु स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

(5) "और ऐसा क्यों है कि भिक्षु स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता? यहाँ, जब भिक्षु शरीर से किसी स्पर्शनीय वस्तु का अनुभव करता है, तो वह उस मोहक स्पर्शनीय वस्तु के प्रति आसक्त हो जाता है और अपना मन एकाग्र नहीं कर पाता। इसी कारण भिक्षु स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

"इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

"भिक्षुओं (संतों) में पाँच गुण होते हैं, राजा का हाथी राजा के योग्य होता है, राजा का सहायक होता है और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? यह धैर्यपूर्वक रूपों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक गंधों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन करता है और धैर्यपूर्वक स्पर्शित वस्तुओं को सहन करता है।"

(1) "और यह कैसे संभव है कि राजा का हाथी धैर्यपूर्वक औपचारिकताओं को सहन करता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो हाथियों की सेना, घुड़सवार सेना, रथ चालकों या पैदल सेना को देखकर वह धंसता या लड़खड़ाता नहीं है, बल्कि स्वयं को मजबूत करता है और युद्ध में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक औपचारिकताओं को सहन करता है।"

(2) "और यह कैसे संभव है कि राजा का हाथी धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है? [160j यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो हाथियों, घोड़ों, रथों या पैदल सैनिकों की आवाज़ें, या ढोल, नगाड़े, शंख और टॉम-टॉम की आवाज़ें सुनकर वह घबराता नहीं है, बल्कि खुद को मजबूत करता है और युद्ध में प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है।

(3) "और राजा का हाथी इतनी दुर्गंध को धैर्यपूर्वक कैसे सहन करता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो वह कुलीन नस्ल के और युद्ध के अभ्यस्त शाही हाथियों के मूत्र और मल की दुर्गंध सूंघकर भी विचलित नहीं होता, बल्कि स्वयं को मजबूत करता है और युद्ध में प्रवेश करता है। इसी प्रकार राजा का हाथी दुर्गंध को धैर्यपूर्वक सहन करता है।"

(4) "और यह कैसे संभव है कि राजा का हाथी धैर्यपूर्वक स्वाद सहन करता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो भले ही उसे घास और पानी का एक भाग, या दो, तीन, चार या पाँच भाग न दिए जाएँ, वह न तो कमजोर पड़ता है और न ही लड़खड़ाता है, बल्कि स्वयं को मजबूत करता है और युद्ध में प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक स्वाद सहन करता है।"

(5) "और यह कैसे संभव है कि राजा का हाथी स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन कर लेता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में जाता है, तो चाहे उस पर तीरों की एक बौछार हो या दो, तीन, चार या पाँच बौछारें, वह धंसता नहीं बल्कि खुद को संभालता है और युद्ध में फिर से शामिल हो जाता है। इसी प्रकार राजा का हाथी स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन करता है।"

"इन पांचों गुणों से युक्त होने के कारण, राजा का हाथी राजा के योग्य होता है, राजा का सहायक होता है और राजत्व के एक कारक के रूप में गिना जाता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह रूपों को धैर्यपूर्वक सहन करता है, ध्वनियों को धैर्यपूर्वक सहन करता है, गंधों को धैर्यपूर्वक सहन करता है, स्वादों को धैर्यपूर्वक सहन करता है, और स्पर्शनीय वस्तुओं को धैर्यपूर्वक सहन करता है।" [161]

(1) "भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों को कैसे सहन करता है? यहाँ, जब भिक्षु किसी रूप को आँखों से देखता है, तो वह उस मोहक रूप से मोहित नहीं होता और अपने मन को एकाग्र कर सकता है। इसी प्रकार भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों को सहन करता है।"

(2) "भिक्षु धैर्यपूर्वक ध्वनियों को कैसे सहन करता है? यहाँ, जब भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है, तो वह उस मोहक ध्वनि से मोहित नहीं होता और अपने मन को एकाग्र कर सकता है। इसी प्रकार भिक्षु धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है।"

(3) "भिक्षु गंधों को धैर्यपूर्वक कैसे सहन करता है? यहाँ, जब भिक्षु नाक से किसी गंध को सूंघता है, तो वह उस मोहक गंध से मोहित नहीं होता और अपने मन को एकाग्र कर सकता है। इसी प्रकार भिक्षु धैर्यपूर्वक गंधों को सहन करता है।"

(4) "भिक्षु धैर्यपूर्वक स्वादों को कैसे सहन करता है? यहाँ, जब भिक्षु जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है, तो वह उस ललचाने वाले स्वाद से मोहित नहीं होता और अपने मन को एकाग्र कर सकता है। इसी प्रकार भिक्षु धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन करता है।"

(5) "भिक्षु धैर्यपूर्वक स्पर्शनीय वस्तुओं को कैसे सहन करता है? यहाँ, जब भिक्षु शरीर से किसी स्पर्शनीय वस्तु का अनुभव करता है, तो वह उस आकर्षक स्पर्शनीय वस्तु के प्रति आसक्त नहीं होता और अपने मन को एकाग्र कर सकता है। इसी प्रकार भिक्षु धैर्यपूर्वक स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन करता है।"

"इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

140 जो सुनता है (सोता संस. श्रोता)

"भिक्षुओं (संतों), पाँच गुणों से युक्त, राजा का हाथी राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? यहाँ, राजा का हाथी वह है जो सुनता है, जो विनाश करता है, जो रक्षा करता है, जो धैर्यपूर्वक सहन करता है और जो चलता है।"

(1) "और राजा का नर हाथी सुनने वाला कैसे होता है? यहाँ, हाथी प्रशिक्षक उसे जो भी कार्य सौंपता है, चाहे उसने वह कार्य पहले किया हो या नहीं, राजा का नर हाथी उस पर ध्यान देता है, उस पर गौर करता है, अपना पूरा ध्यान उस पर लगाता है और उत्सुकता से सुनता है। इसी प्रकार राजा का नर हाथी सुनने वाला होता है।"

(2) "और राजा का हाथी किस प्रकार विनाशक होता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में प्रवेश करता है, तो वह हाथियों और हाथी सवारों, घोड़ों और घुड़सवारों, रथों और रथ चालकों तथा पैदल सेना को नष्ट कर देता है। इस प्रकार राजा का हाथी विनाशक होता है।"

(3) "और राजा का हाथी किस प्रकार रक्षा करता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में प्रवेश करता है, तो वह अपने अगले भाग, अपने पिछले भाग, अपने अगले पैर, अपने पिछले पैर, अपने सिर, अपने कान, अपने दांत, अपनी सूंड, अपनी पूंछ और अपने सवार की रक्षा करता है। इस प्रकार राजा का हाथी रक्षा करता है।"

(4) "और राजा का हाथी धैर्यपूर्वक सहन करने वाला कैसे होता है? यहाँ, जब राजा का हाथी युद्ध में प्रवेश करता है, तो वह धैर्यपूर्वक भाले, तलवार, तीर और कुल्हाड़ियों से होने वाले प्रहारों को सहन करता है; वह ढोल, नगाड़े, शंख और ढोल की आवाज़ों को सहन करता है। इसी प्रकार राजा का हाथी धैर्यपूर्वक सहन करने वाला होता है। ..."

(5) "और राजा का नर हाथी कैसे चलता है? यहाँ, राजा का नर हाथी तुरंत उस क्षेत्र में चला जाता है जहाँ हाथी प्रशिक्षक उसे भेजता है, चाहे वह पहले कभी वहाँ गया हो या नहीं। इस प्रकार राजा का नर हाथी चलता है।"

"इन पांच गुणों से युक्त होने के कारण, राजा का हाथी राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, विश्व के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु वह है जो सुनता है, जो नष्ट करता है, [163] जो रक्षा करता है, जो धैर्यपूर्वक सहन करता है, और जो जाता है।"

(1) "भिक्षु सुनने वाला कैसे होता है? यहाँ, जब तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन का उपदेश दिया जा रहा होता है, तो भिक्षु उस पर ध्यान देता है, उस पर एकाग्रता से विचार करता है, अपना पूरा मन उसमें लगाता है और उत्सुकतापूर्वक धम्म को सुनता है। इसी प्रकार भिक्षु सुनने वाला होता है।"

(2) “और भिक्षु विनाशक कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता, बल्कि उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है। वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को सहन नहीं करता... समय-समय पर उत्पन्न होने वाली किसी भी अन्य बुरी (अकुशल) अवस्था को सहन नहीं करता, बल्कि उनका त्याग करता है, उन्हें दूर करता है, उन्हें समाप्त करता है और उन्हें मिटा देता है। इसी प्रकार भिक्षु विनाशक होता है।”

(3) “और भिक्षु किस प्रकार रक्षक होता है? यहाँ, किसी आकृति को आँख से देखकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को नहीं पकड़ता। क्योंकि यदि वह आँख की इंद्रिय को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम का अभ्यास करता है; वह आँख की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह आँख की इंद्रिय के संयम का पालन करता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर... वह मन की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह मन की इंद्रिय के संयम का पालन करता है। इसी प्रकार भिक्षु रक्षक होता है।”

(4) "भिक्षु वह कैसे होता है जो धैर्यपूर्वक सहन करता है? यहाँ, भिक्षु धैर्यपूर्वक सर्दी और गर्मी; भूख और प्यास; मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क; अभद्र और अपमानजनक वाणी को सहन करता है; वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करने में सक्षम होता है जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, कष्टदायी, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली होती हैं। इसी प्रकार भिक्षु वह होता है जो धैर्यपूर्वक सहन करता है..."

(5) "और भिक्षु वह कैसे है जो जाता है? [164] यहाँ, भिक्षु वह है जो उस क्षेत्र में शीघ्रता से जाता है जहाँ वह इतने लंबे समय में पहले कभी नहीं गया है, अर्थात् सभी गतिविधियों के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश, वैराग्य (विराग), निब्बान (निर्वाण) की ओर। इस प्रकार भिक्षु वह है जो जाता है।"

"इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

वी. टी.एल.के.एन.ए ...

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

141 देने के बाद, व्यक्ति अवजानति का तिरस्कार करता है।

भिक्षुओं, संसार में पाँच प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से पाँच प्रकार हैं? एक जो देता है और फिर तिरस्कार करता है; एक जो साथ रहने के कारण तिरस्कार करता है; एक जो गपशप में आसानी से बहक जाता है; एक चंचल स्वभाव का व्यक्ति; और एक जो सुस्त और मूर्ख है।

(1) "और वह व्यक्ति कैसे है जो देता है और फिर तिरस्कार करता है? यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे को वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन सामग्री देता है। उसके मन में आता है: 'मैं देता हूँ; वह लेता है।' उसे देने के बाद, वह उसका तिरस्कार करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति देने वाला और फिर तिरस्कार करने वाला होता है।"

(2) "और कोई व्यक्ति साथ रहने के परिणामस्वरूप कैसे घृणा करता है? [165] यहाँ, एक व्यक्ति दूसरे के साथ दो या तीन साल तक रहता है। फिर वह दूसरे से घृणा करता है क्योंकि वे साथ रहे हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति साथ रहने के परिणामस्वरूप घृणा करता है।

(3) "और कोई व्यक्ति गपशप के प्रति भोला कैसे होता है? यहाँ, जब किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में प्रशंसा या निंदा की जा रही होती है, तो वह आसानी से उस पर विश्वास कर लेता है। इसी तरह कोई व्यक्ति गपशप के प्रति भोला होता है।"

(4) "और कोई व्यक्ति किस प्रकार चंचल होता है? यहाँ, व्यक्ति का विश्वास, भक्ति, स्नेह और भरोसा अस्थिर होते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति चंचल होता है।"

(5) और मनुष्य कैसे मंदबुद्धि और मूर्ख होता है? यहाँ, मनुष्य यह नहीं जानता कि कौन से गुण लाभकारी (कुशल) हैं और कौन से हानिकारक (अकुशल), कौन से गुण निंदनीय हैं और कौन से निर्दोष, कौन से गुण निम्न हैं और कौन से श्रेष्ठ; वह अंधकारमय और प्रकाशमय गुणों तथा उनके विपरीत गुणों को नहीं जानता। इसी कारण मनुष्य मंदबुद्धि और मूर्ख होता है।

"भिक्षुओं, ये संसार में पाए जाने वाले पाँच प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

142 उल्लंघन करता है (अरभाति)

"भिक्षुओं, संसार में पाँच प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक व्यक्ति उल्लंघन करता है और फिर पश्चाताप करता है, और यह नहीं समझता कि वास्तव में यह मन की मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति है, जहाँ उसकी ये उत्पन्न बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। 1140

(2) "यहाँ, एक व्यक्ति उल्लंघन करता है और पश्चाताप नहीं करता, 1141 और यह नहीं समझता कि वास्तव में यह मन की मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति है, जहाँ उसकी ये उत्पन्न बुरी हानिकारक (अकुसला) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

(3) "यहाँ, एक व्यक्ति उल्लंघन नहीं करता [166] और फिर भी पश्चाताप करता है, 1142 और यह नहीं समझता कि वास्तव में यह मन की मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, जहाँ उसकी ये उत्पन्न बुरी हानिकारक (अकुसला) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

(4) "यहाँ, एक व्यक्ति उल्लंघन नहीं करता, पश्चाताप नहीं करता, और न ही वह वास्तव में मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को समझता है, जहाँ उसकी ये उत्पन्न बुरी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

(5) "यहाँ, एक व्यक्ति उल्लंघन नहीं करता और पश्चाताप नहीं करता, और वास्तव में मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को समझता है, जहाँ उसकी ये उत्पन्न बुरी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

(1) "भिक्षुओं, इनमें से जो व्यक्ति उल्लंघन करता है और फिर पश्चाताप करता है, और यह नहीं समझता कि वास्तव में यह मन की मुक्ति है, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति है, जहाँ उसकी उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाएँ पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं, उसे कहा जाना चाहिए: 'आपमें उल्लंघन से उत्पन्न दोष हैं, और पश्चाताप से उत्पन्न दोष बढ़ रहे हैं। कृपया उल्लंघन से उत्पन्न दोषों का त्याग करें और पश्चाताप से उत्पन्न दोषों को दूर करें; फिर अपने मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का विकास करें।' 1143 इस प्रकार आप ठीक पाँचवें प्रकार के व्यक्ति के समान हो जाएँगे।

(2) "इनमें से जो व्यक्ति उल्लंघन करता है और पश्चाताप नहीं करता, और मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, जहाँ उसकी उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं, उसे कहा जाना चाहिए, 'तुममें उल्लंघन से उत्पन्न दोष पाए जाते हैं, परन्तु पश्चाताप से उत्पन्न दोष नहीं बढ़ते। कृपया उल्लंघन से उत्पन्न दोषों का त्याग करो, और फिर अपने मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का विकास करो। इस प्रकार तुम ठीक पाँचवें प्रकार के व्यक्ति के समान हो जाओगे।'

(3) "इनमें से जो व्यक्ति उल्लंघन नहीं करता, फिर भी पश्चाताप करता है, और मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को सही ढंग से नहीं समझता, जहाँ उसकी उत्पन्न हुई ये बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं, उसे कहा जाना चाहिए: [167] 'आपमें उल्लंघन से उत्पन्न दोष नहीं हैं, फिर भी पश्चाताप से उत्पन्न दोष बढ़ रहे हैं। कृपया पश्चाताप से उत्पन्न दोषों को दूर करें, और फिर अपने मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का विकास करें। इस प्रकार आप ठीक पाँचवें प्रकार के व्यक्ति के समान होंगे।'

(4) "इनमें से जो व्यक्ति उल्लंघन नहीं करता, पश्चाताप नहीं करता, और मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को उसके वास्तविक अर्थ में नहीं समझता, जहाँ उसकी उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं, उसे कहा जाना चाहिए: 'तुममें उल्लंघन से उत्पन्न दोष नहीं हैं, और पश्चाताप से उत्पन्न दोष नहीं बढ़ते। कृपया अपने मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का विकास करो। इस प्रकार तुम ठीक पाँचवें प्रकार के व्यक्ति के समान हो जाओगे।'

(5) "इस प्रकार, भिक्षुओं, जब इन चार प्रकार के व्यक्तियों को पाँचवें प्रकार के व्यक्ति के उदाहरण द्वारा उपदेश और शिक्षा दी जाती है, तो वे धीरे-धीरे दोषों के नाश को प्राप्त कर लेते हैं।"

---

143 सरंददा

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। उस समय सरंददा मंदिर में पाँच सौ लिच्छवी एकत्रित थे और एक साथ बैठे थे, तभी यह वार्तालाप हुआ: "पाँच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। वे पाँच कौन से हैं? हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न और प्रबंधक रत्न। इन पाँच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है।" [168]

तब लिच्छवियों ने मार्ग पर एक व्यक्ति को नियुक्त किया और उससे कहा, "हे जन, जब तुम भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखो, तो हमें सूचित करना।" उस व्यक्ति ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखा, लिच्छवियों के पास गया और उनसे कहा, "महोदय, यह भगवान (बुद्ध), अरहत, पूर्णतः प्रबुद्ध, आ रहे हैं। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब लिच्छवी भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने उनसे कहा, "हे भंते, कृपा करके भगवान (बुद्ध) को सरंददा मंदिर जाने दीजिए।" भगवान (बुद्ध) ने चुपचाप सहमति दे दी। वे सरंददा मंदिर गए, वहाँ तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और लिच्छवियों से कहा:

"अभी आप लोग यहां साथ बैठे हुए किस चर्चा में लगे हुए थे? बातचीत किस बारे में चल रही थी?"

"यहाँ, भंते, जब हम सब इकट्ठा होकर साथ बैठे थे, तब यह बातचीत शुरू हुई... [यहाँ वह ऊपर की पूरी बातचीत दोहराता है।] ... 'इन पाँच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है।'"

"इंद्रिय सुखों में लीन, लिच्छवी इंद्रिय सुखों के विषय में चर्चा कर रहे थे! लिच्छवी, पांच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। वे पांच कौन से हैं? (1) तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। (2) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन का उपदेश देने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (3) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन का उपदेश दिए जाने पर, उसे समझने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (4) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश दिए जाने और उसे समझे जाने पर, धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (5) कृतज्ञ और आभारी व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। लिच्छवी, इन पांच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है।"

---

144 टिकंदकी

एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में तिकंदकी वन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) भिक्षुओं, समय-समय पर भिक्षु के लिए यह अच्छा है कि वह निर्जीव में निर्जीव का अवलोकन करे। (2) समय-समय पर भिक्षु के लिए यह अच्छा है कि वह निर्जीव में निर्जीव का अवलोकन करे। (3) समय-समय पर भिक्षु के लिए यह अच्छा है कि वह निर्जीव और निर्जीव दोनों में निर्जीव का अवलोकन करे। (4) समय-समय पर भिक्षु के लिए यह अच्छा है कि वह निर्जीव और निर्जीव दोनों में निर्जीव का अवलोकन करे। (5) समय-समय पर भिक्षु के लिए यह अच्छा है कि वह समभाव, सती भाव से ध्यान करे और पूर्णतः बोध रखते हुए, निर्जीव और निर्जीव दोनों से विमुख होकर ध्यान करे।

(1) "भिक्षु को किस लाभ के लिए निर्मल में निर्मल को भलीभावना करना चाहिए? 'मुझमें कामवासना उत्पन्न न हो, जो कामवासना उत्पन्न करती हो!': इसी लाभ के लिए भिक्षु को निर्मल में निर्मल को भलीभावना करते हुए निवास करना चाहिए।"

(2) "भिक्षु को घृणास्पद में अरुचिकर का अनुभव करते हुए निवास करने से क्या लाभ होगा? 'घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के प्रति मेरे मन में कोई घृणा उत्पन्न न हो!': इसी लाभ के लिए भिक्षु को घृणास्पद में अरुचिकर का अनुभव करते हुए निवास करना चाहिए।"

(3) "और किस लाभ के लिए भिक्षु को निर्जीव और निर्जीव दोनों में निर्जीव देखते हुए निवास करना चाहिए? 'मेरे भीतर कामवासना (राग) उत्पन्न न हो, और घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के प्रति घृणा न हो!': इसी लाभ के लिए भिक्षु को निर्जीव और निर्जीव दोनों में निर्जीव देखते हुए निवास करना चाहिए।"

(4) "और भिक्षु को किस लाभ के लिए घृणास्पद और अनाकर्षक दोनों में अनाकर्षक का अनुभव करते हुए निवास करना चाहिए? 'घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के प्रति मुझमें घृणा उत्पन्न न हो, और वासना उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के प्रति वासना (राग) न हो!': इसी लाभ के लिए भिक्षु को घृणास्पद और अनाकर्षक दोनों में अनाकर्षक का अनुभव करते हुए निवास करना चाहिए।"

(5) "इस लाभ के लिए भिक्षु को समभाव, सजग और पूर्ण ज्ञान के साथ, घृणित और अघृणित दोनों से विमुख होकर निवास करना चाहिए? 'मेरे भीतर किसी भी प्रकार से किसी भी काम (राग) का भाव उत्पन्न न हो, उन चीजों के प्रति जो काम (राग) को उत्तेजित करती हैं! मेरे भीतर किसी भी प्रकार से किसी भी काम (राग) का भाव उत्पन्न न हो, उन चीजों के प्रति जो घृणा उत्पन्न करती हैं! मेरे भीतर किसी भी प्रकार से किसी भी काम (मोह) का भाव उत्पन्न न हो, उन चीजों के प्रति जो मोह (मोह) उत्पन्न करती हैं!': 1145 इस लाभ के लिए भिक्षु को समभाव, सजग और पूर्ण ज्ञान के साथ निवास करना चाहिए, घृणित और अघृणित दोनों से विमुख होकर।"

---

145 नरक (निरया)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण कौन से हैं? जो जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त होता है, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। [171]

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण कौन से हैं? जो जीवन के विनाश से दूर रहता है, जो बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से दूर रहता है, यौन दुराचार से दूर रहता है, झूठी वाणी से दूर रहता है, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

146 मित्र (मित्ता सं. मित्रा)

भिक्षुओं, ऐसे भिक्षु को मित्र न बनाओ जिसमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण क्या हैं? वह कार्य परियोजनाओं को उकसाता है; वह अनुशासन संबंधी मुद्दों को उठाता है; वह प्रतिष्ठित भिक्षुओं के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया रखता है; वह लंबे और अस्थिर भ्रमण पर तुला रहता है; वह समय-समय पर धर्म प्रवचन द्वारा उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में असमर्थ होता है। ऐसे भिक्षु को मित्र न बनाओ जिसमें ये पाँच गुण हों।

भिक्षुओं, हमें ऐसे भिक्षु को मित्र बनाना चाहिए जिसमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण क्या हैं? वह कार्य परियोजनाओं को उकसाता नहीं है; वह अनुशासन संबंधी मुद्दों में नहीं पड़ता; वह प्रख्यात भिक्षुओं के प्रति शत्रुतापूर्ण नहीं है; वह दीर्घकालीन और अस्थिर भ्रमण में लिप्त नहीं रहता; वह समय-समय पर धर्म प्रवचन द्वारा उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में सक्षम है। हमें ऐसे भिक्षु को मित्र बनाना चाहिए जिसमें ये पाँच गुण हों।

---

147 बुरे व्यक्ति का दान (असप्पुरिसादना संस्कृत: असदपुरुषदाना)

भिक्षुओं, बुरे व्यक्ति के ये पाँच गुण हैं। वे पाँच कौन से हैं? वह लापरवाही से दान करता है; वह श्रद्धाहीनता से दान करता है; वह अपने हाथों से दान नहीं करता; वह ऐसी वस्तुएँ दान करता है जिन्हें त्याग दिया जाता है; वह दान के प्रतिफल की अपेक्षा किए बिना दान करता है। [172]

भिक्षुओं, अच्छे व्यक्ति के ये पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? वह आदरपूर्वक दान करता है; वह श्रद्धापूर्वक दान करता है; वह अपने हाथों से दान करता है; वह ऐसी वस्तु दान करता है जिसे त्यागा न जा सके; वह दान के प्रतिफल की दृष्टि से दान करता है। 1147 ये अच्छे व्यक्ति के पाँच गुण हैं।

---

148 अच्छे व्यक्ति का दान (सप्पुरिसादना संस्कृत: सद्पुरुषदाना)

"भिक्षुओं, अच्छे व्यक्ति के ये पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? वह श्रद्धा से दान देता है; वह आदरपूर्वक दान देता है; वह समय पर दान देता है; वह निःसंकोच दान देता है; वह स्वयं को या दूसरों को हानि पहुँचाए बिना दान देता है।"

"(1) क्योंकि उसने विश्वास से दान दिया है, जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वह धनवान और संपत्ति से संपन्न हो जाता है, और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंगत वाला होता है। (2) क्योंकि उसने आदरपूर्वक दान दिया है, जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वह धनवान और संपत्ति से संपन्न हो जाता है, और उसके पुत्र और पत्नियाँ, दास, सेवक और श्रमिक आज्ञाकारी होते हैं, ध्यान से सुनते हैं और समझने का प्रयास करते हैं। (3) क्योंकि उसने समय पर दान दिया है, जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वह धनवान और संपत्ति से संपन्न हो जाता है, और उसे समय पर भरपूर लाभ प्राप्त होते हैं। (4) क्योंकि उसने निःसंकोच दान दिया है, जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वह धनवान और संपत्ति से संपन्न हो जाता है, और उसका मन पाँच प्रकार के उत्तम इंद्रिय सुखों के भोग में लीन हो जाता है। [173] (5) क्योंकि उसने स्वयं को या दूसरों को हानि पहुँचाए बिना दान दिया है, जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वह धनवान और संपत्ति से संपन्न हो जाता है। और उसकी संपत्ति को किसी भी स्रोत से कोई नुकसान नहीं पहुंचता, चाहे वह आग हो, बाढ़ हो, राजा हो, चोर हो या अप्रिय उत्तराधिकारी हो। ये एक अच्छे व्यक्ति के पांच गुण हैं।

---

149 अस्थायी रूप से मुक्त (1) (समयविमुत्त1 सं. समय-विमुक्ति)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें क्षणिक रूप से मुक्त भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं। 1148 वे पाँच बातें क्या हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद; और वह इस बात की समीक्षा नहीं करता कि उसका मन किस हद तक मुक्त हो चुका है। ये पाँच बातें क्षणिक रूप से मुक्त भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच बातें अस्थायी रूप से मुक्त भिक्षु के पतन को रोकती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? काम में आनंद नहीं, बातचीत में आनंद नहीं, नींद में आनंद नहीं, संगति में आनंद नहीं; और वह अपने मन की मुक्ति की सीमा का आत्मविश्लेषण करता है। ये पाँच बातें अस्थायी रूप से मुक्त भिक्षु के पतन को रोकती हैं।

---

150 (10) अस्थायी रूप से मुक्त (2) (समयविमुत्त2 सं. समय-विमुक्ति)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें अल्पकालिक रूप से मुक्त भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? काम में आनंद, बातों में आनंद, नींद में आनंद, इंद्रियों पर नियंत्रण न रखना और भोजन में संयम का अभाव। ये पाँच बातें अल्पकालिक रूप से मुक्त भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच बातें अस्थायी रूप से मुक्त भिक्षु के पतन को रोकती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? काम में आनंद न लेना, बात में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करना और भोजन में संयम बरतना। [174] ये पाँच बातें अस्थायी रूप से मुक्त भिक्षु के पतन को रोकती हैं।

चौथा पचास

I. अच्छा धम्म (सद्धम्म)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

151 धार्मिकता का निश्चित मार्ग1 [1149] (सममत्तनीयमा1)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त होकर भी, अच्छे धर्म को सुनते हुए भी, लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। 1150 वे पाँच गुण क्या हैं? कोई प्रवचन की निंदा करता है; कोई वक्ता की निंदा करता है; कोई स्वयं की निंदा करता है; कोई विचलित और बिखरे हुए मन से धर्म सुनता है; कोई लापरवाही से उस पर ध्यान देता है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, अच्छे धर्म को सुनते हुए भी, लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं (साधुओं), जिनमें पाँच गुण होते हैं, अच्छे धम्म को सुनते समय [175] लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? कोई प्रवचन की निंदा नहीं करता; कोई वक्ता की निंदा नहीं करता; कोई स्वयं की निंदा नहीं करता; कोई अविचलित और एकाग्र मन से धम्म (मार्ग) सुनता है; कोई उस पर ध्यानपूर्वक विचार करता है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, अच्छे धम्म को सुनते समय कोई लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में सक्षम होता है।"

---

152 धर्म का निश्चित मार्ग (2) (सममत्तनीयमा2)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त होकर भी, अच्छे धम्म को सुनते हुए भी, वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? वे प्रवचन की निंदा करते हैं; वे वक्ता की निंदा करते हैं; वे स्वयं की निंदा करते हैं; वे नासमझ, मूर्ख और मंदबुद्धि होते हैं; वे यह कल्पना करते हैं कि उन्होंने वह समझ लिया है जो उन्होंने नहीं समझा है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, अच्छे धम्म को सुनते हुए भी, वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त होकर, उत्तम धम्म का श्रवण करते समय, वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चल सकते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? वे प्रवचन की निंदा नहीं करते; वे वक्ता की निंदा नहीं करते; वे स्वयं की निंदा नहीं करते; वे बुद्धिमान, समझदार और चतुर होते हैं; वे यह नहीं सोचते कि उन्होंने वह समझ लिया है जो उन्होंने नहीं समझा है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, उत्तम धम्म का श्रवण करते समय, वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चल सकते हैं।"

---

153 धर्म का निश्चित मार्ग (3) (सम्मत्तनीयम2)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त होकर भी, अच्छे धम्म को सुनते हुए भी, लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) कोई निंदा करने के इरादे से धम्म को सुनता है; (2) कोई आलोचना करने और दोष ढूँढ़ने के इरादे से धम्म को सुनता है; [176] (3) कोई गुरु के प्रति द्वेषपूर्ण भाव रखता है और उन पर आक्रमण करने का इरादा रखता है; (4) कोई नासमझ, मूर्ख और मंदबुद्धि होता है; (5) कोई यह कल्पना करता है कि उसने वह समझ लिया है जो उसने वास्तव में नहीं समझा है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, अच्छे धम्म को सुनते हुए भी, लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

पाँच गुणों से युक्त भिक्षु, उत्तम धम्म का श्रवण करते समय, लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे धम्म का श्रवण निंदा करने वाले व्यथ के रूप में नहीं करते; (2) वे धम्म का श्रवण आलोचना करने के इरादे से नहीं करते, न ही दोष ढूँढ़ने वाले व्यथ के रूप में; (3) वे गुरु के प्रति द्वेषपूर्ण भाव नहीं रखते और उन पर आक्रमण करने का इरादा नहीं रखते; (4) वे बुद्धिमान, समझदार और चतुर होते हैं; (5) वे उस बात को समझने का भ्रम नहीं पालते जिसे उन्होंने वास्तव में नहीं समझा है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, उत्तम धम्म का श्रवण करते समय, वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं।

---

154 अच्छे धम्म का पतन (1) (सद्धम्मसम्मोसा1 सं. सद्-धर्मस्य..)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो उत्तम धम्म (मार्ग) के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? (1) यहाँ भिक्षु धम्म को आदरपूर्वक नहीं सुनते; (2) वे धम्म को आदरपूर्वक नहीं सीखते; (3) वे धम्म को पूर्ण आदरपूर्वक मन में नहीं रखते; (4) वे मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ का आदरपूर्वक विश्लेषण नहीं करते; (5) वे धम्म के अर्थ को आदरपूर्वक नहीं समझते और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करते। ये पाँच बातें उत्तम धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

भिक्षुओं, ये पाँच अन्य बातें हैं जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवनति और अपव्यय न होने की ओर ले जाती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु आदरपूर्वक धम्म सुनते हैं; (2) वे आदरपूर्वक धम्म सीखते हैं; (3) वे आदरपूर्वक धम्म को मन में धारण करते हैं; (4) वे आदरपूर्वक उन शिक्षाओं के अर्थ का पूर्णतः परीक्षण करते हैं जिन्हें उन्होंने मन में धारण किया है; (5) वे आदरपूर्वक अर्थ और धम्म को समझते हैं और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं। [177] ये पाँच बातें उत्तम धम्म की निरंतरता, अवनति न होने और अपव्यय न होने की ओर ले जाती हैं।

---

155 अच्छे धम्म का पतन (2) (सद्धम्मसम्मोसा2 सं. सद्-धर्मस्य..)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं?

(1) "यहाँ भिक्षु धम्म का अध्ययन नहीं करते: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदान), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), आश्चर्यजनक वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। यही वह पहली बात है जो अच्छे धम्म (मार्ग) के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है।"

(2) "फिर, भिक्षु दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक उपदेश नहीं देते, जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है। यही दूसरी बात है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है।"

(3) "भिक्षु फिर भी, दूसरों से धम्म को विस्तार से दोहराने के लिए नहीं कहते, जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है। यह तीसरी बात है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है।"

(4) "फिर, भिक्षु धम्म का पाठ विस्तार से नहीं करते जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। यह चौथा कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

(5) "फिर, भिक्षु धम्म पर मनन और परीक्षण नहीं करते, और मनुष्य धम्म का मिलान और निरीक्षण नहीं करते जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है। यह पाँचवाँ कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

"ये पाँच बातें हैं जो उत्तम धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं।"

"भिक्षुओं, ये पाँच अन्य बातें हैं जो अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं?"

(1) "यहाँ भिक्षु धम्म सीखते हैं: प्रवचन... और प्रश्न-उत्तर। यही [178] पहली बात है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, गैर-पतन और गैर-लुप्त होने की ओर ले जाती है।

(2) "भिक्षु फिर से, धम्म को दूसरों को विस्तार से सिखाते हैं जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। यह दूसरी परिश्रम है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, गैर-पतन और गैर-लुप्त होने की ओर ले जाती है।"

(3) "भिक्षु फिर दूसरों से धम्म को विस्तार से दोहराने को कहते हैं, जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। यही तीसरी बात है जो अच्छे धम्म के निरंतरता, अवनति और अपापण न होने की ओर ले जाती है।"

(4) "भिक्षु फिर से धम्म का विस्तारपूर्वक पाठ करते हैं जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। यह चौथी बात है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपव्यय न होने की ओर ले जाती है।"

(5) "भिक्षु फिर से धम्म पर मनन करते हैं, उसकी जांच करते हैं और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करते हैं जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है। यह पाँचवाँ तत्व है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपव्यय की अनुपस्थिति की ओर ले जाता है।"

"ये पाँच बातें हैं जो उत्तम धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाती हैं।"

---

156 अच्छे धम्म का पतन (3) (सद्धम्मसम्मोसा3 सं. सद्-धर्मस्य..)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं? 1151

(1) "यहाँ भिक्षु ऐसे प्रवचन सीखते हैं जो गलत तरीके से सीखे गए हैं, जिनमें शब्द और वाक्यांश गलत ढंग से लिखे गए हैं। जब शब्द और वाक्यांश गलत ढंग से लिखे जाते हैं, तो अर्थ की गलत व्याख्या होती है। यही पहली बात है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है।"

(2) "भिक्षुओं को सुधारना कठिन है और उनमें ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें सुधारना कठिन बनाते हैं। वे अधीर होते हैं और आदरपूर्वक उपदेश स्वीकार नहीं करते। यही दूसरी बात है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती है, [179]

(3) "फिर, वे भिक्षु जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, वे आदरपूर्वक दूसरों को प्रवचन नहीं देते। उनके देहांत हो जाने पर, प्रवचन जड़ से ही कट जाते हैं, और उन्हें संरक्षित करने वाला कोई नहीं बचता। यही तीसरा कारण है जो उत्तम धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

(4) "फिर, वरिष्ठ भिक्षु विलासी और लापरवाह हैं, पतन के अग्रदूत हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाते हैं। अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण करती है। वे भी विलासी और लापरवाह हो जाते हैं, पतन के अग्रदूत हैं, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाते हैं। यह चौथा कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

(5) "फिर संघ में फूट पड़ जाती है, और संघ में फूट पड़ने पर आपसी अपमान, निंदा, तिरस्कार और अस्वीकृति होती है। तब अविश्वासी लोग आत्मविश्वास प्राप्त नहीं कर पाते, जबकि कुछ विश्वासी अपना मन बदल लेते हैं। 1152 यह पाँचवाँ कारण है जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

"ये पाँच बातें हैं जो उत्तम धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हैं।"

भिक्षुओं, ये पाँच अन्य बातें हैं जो उत्तम धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाती हैं। वे पाँच बातें कौन सी हैं?

(1) "यहाँ भिक्षु सुस्थापित, सुव्यवस्थित शब्दों और वाक्यांशों वाले प्रवचनों का अध्ययन करते हैं। जब शब्द और वाक्यांश सुव्यवस्थित होते हैं, तो अर्थ की व्याख्या भी सुव्यवस्थित होती है। यही वह पहली बात है जो उत्तम धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाती है। [180]

(2) "भिक्षुओं को सुधारना आसान होता है और उनमें ऐसे गुण होते हैं जो उन्हें सुधारना आसान बनाते हैं। वे धैर्यवान होते हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करते हैं। यही वह दूसरी बात है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने का कारण बनती है।"

(3) "फिर, वे भिक्षु जो विद्वान हैं, धम्म के ज्ञाता हैं, अनुशासन के ज्ञाता हैं, रूपरेखाओं के ज्ञाता हैं, आदरपूर्वक दूसरों को प्रवचन देते हैं। उनके देहांत होने पर भी प्रवचन जड़ से नष्ट नहीं होते, क्योंकि उन्हें संरक्षित करने वाले होते हैं। यही वह तीसरा कारण है जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवनति और विलोपन न होने का कारण बनता है।"

(4) "वरिष्ठ भिक्षु विलासी और आलसी नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य और अभी तक अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण करती है। वे भी विलासी और आलसी नहीं होते, बल्कि पतन का त्याग करके एकांतवास में नेतृत्व करते हैं; वे भी अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य और अभी तक अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाते हैं। यही वह चौथा तत्व है जो उत्तम धम्म की निरंतरता, अवनति और विलोपन न होने की ओर ले जाता है।"

(5) "फिर, संघ शांति से निवास करता है—सद्भाव में, सामंजस्यपूर्ण ढंग से, बिना किसी विवाद के, एक ही पाठ के साथ। जब संघ में सामंजस्य होता है, तब कोई परस्पर अपमान, कोई परस्पर निंदा, कोई परस्पर तिरस्कार और कोई परस्पर अस्वीकृति नहीं होती। तब अविश्वासियों का आत्मविश्वास बढ़ता है और आत्मविश्वासियों का आत्मविश्वास और भी बढ़ता है। यही पाँचवाँ कारण है जो अच्छे धम्म की निरंतरता, उसके पतन न होने और उसके लुप्त न होने की ओर ले जाता है।"

"हे भिक्षुओं, ये पाँच बातें हैं जो अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपापण की अनुपस्थिति की ओर ले जाती हैं।" [181]

---

157 गलत तरीके से संबोधित वार्ता (दुक्कथा संस्कृत: दुश-कथा)

भिक्षुओं, जब एक प्रकार के व्यक्ति की तुलना दूसरे प्रकार के व्यक्ति से करने के बाद, प्रवचन इन पाँच [अनुचित] प्रकार के व्यक्तियों को संबोधित किया जाता है, तो प्रवचन अनुचित होता है। वे पाँच कौन से हैं? आस्था पर प्रवचन उस व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है जिसमें आस्था का अभाव हो; सदाचार पर प्रवचन उस व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है जो अनैतिक हो; ज्ञान पर प्रवचन उस व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है जो अल्पज्ञानी हो; उदारता पर प्रवचन उस व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है जो कंजूस हो; और पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन उस व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है जो अज्ञानी हो।

(1) "हे भिक्षुओं, आस्था पर प्रवचन देना आस्थाहीन व्यक्ति के लिए अनुचित क्यों है? आस्था पर प्रवचन देते समय, आस्थाहीन व्यक्ति क्रोधित हो जाता है और चिड़चिड़ा, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह क्रोध, घृणा और कटुता प्रदर्शित करता है। इसका कारण क्या है?

क्योंकि वह अपने भीतर आस्था को नहीं पहचानता और उस पर आधारित आनंद (पीति) और प्रसन्नता प्राप्त नहीं करता। इसलिए आस्था पर प्रवचन देना आस्थाहीन व्यक्ति के लिए अनुचित है।"

(2) "और सदाचार पर प्रवचन किसी अनैतिक व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित क्यों है? सदाचार पर प्रवचन देते समय अनैतिक व्यक्ति अपना आपा खो बैठता है और चिड़चिड़ा, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर सदाचार को नहीं पहचान पाता और उससे प्राप्त होने वाले आनंद (पीति) को नहीं समझ पाता। अतः सदाचार पर प्रवचन किसी अनैतिक व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है।"

(3) "और ज्ञान पर प्रवचन अल्पज्ञानी व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित क्यों है? जब ज्ञान पर प्रवचन दिया जा रहा होता है, तो अल्पज्ञानी व्यक्ति अपना आपा खो बैठता है और चिड़चिड़ा, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह क्रोध, घृणा और कटुता प्रदर्शित करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर ज्ञान को नहीं पहचान पाता और उससे प्राप्त होने वाले आनंद (पीति) को नहीं समझ पाता। अतः ज्ञान पर प्रवचन अल्पज्ञानी व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है।"

(4) "और कंजूस को उदारता का प्रवचन देना गलत क्यों है? जब उदारता का प्रवचन दिया जा रहा होता है, तो कंजूस अपना आपा खो बैठता है और चिड़चिड़ा, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करता है: इसका क्या कारण है? क्योंकि वह अपने भीतर उदारता को नहीं पहचानता और [182] उस पर आधारित आनंद और प्रसन्नता प्राप्त नहीं करता। इसलिए उदारता का प्रवचन कंजूस को देना गलत है।

(5) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन किसी मूर्ख व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित क्यों है? जब पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन दिया जा रहा होता है, तो मूर्ख व्यक्ति अपना आपा खो बैठता है और चिड़चिड़ा, शत्रुतापूर्ण और हठी हो जाता है; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) को नहीं देख पाता और उससे प्राप्त होने वाले आनंद (पीति) और प्रसन्नता को नहीं समझ पाता। इसलिए पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन किसी मूर्ख व्यक्ति को संबोधित करना अनुचित है।"

"जब एक प्रकार के व्यक्ति की तुलना दूसरे प्रकार के व्यक्ति से करने के बाद, वह भाषण इन पांच [अनुचित] प्रकार के व्यक्तियों को संबोधित किया जाता है, तो वह भाषण गलत तरीके से संबोधित किया गया माना जाता है।"

"भिक्षुओं, किसी प्रवचन को उचित रूप से तभी संबोधित किया जाता है जब एक प्रकार के व्यक्ति की दूसरे प्रकार के व्यक्ति से तुलना करने के बाद उसे इन पाँच [उपयुक्त] प्रकार के व्यक्तियों को संबोधित किया जाए। कौन से पाँच? आस्था पर प्रवचन उचित रूप से आस्थावान व्यक्ति को संबोधित किया जाता है; सद्गुणी आचरण पर प्रवचन उचित रूप से सद्गुणी व्यक्ति को संबोधित किया जाता है; विद्या पर प्रवचन उचित रूप से विद्वान व्यक्ति को संबोधित किया जाता है; उदारता पर प्रवचन उचित रूप से उदार व्यक्ति को संबोधित किया जाता है; पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन उचित रूप से बुद्धिमान व्यक्ति को संबोधित किया जाता है।"

(1) "हे भिक्षुओं, आस्था पर प्रवचन आस्थावान व्यक्ति को ही क्यों उचित है? आस्था पर प्रवचन देते समय आस्थावान व्यक्ति क्रोधित नहीं होता, चिढ़ता, शत्रुता और हठ नहीं दिखाता; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर आस्था का अनुभव करता है और उसी के आधार पर आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करता है। अतः आस्था पर प्रवचन आस्थावान व्यक्ति को ही उचित है।"

(2) "और सदाचार पर प्रवचन सदाचारी व्यक्ति को ही क्यों संबोधित किया जाता है? सदाचार पर प्रवचन देते समय सदाचारी व्यक्ति क्रोधित नहीं होता, चिढ़ता, शत्रुता और हठ नहीं दिखाता; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर सदाचार का अनुभव करता है और उससे आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करता है। अतः सदाचार पर प्रवचन सदाचारी व्यक्ति को ही संबोधित किया जाता है।"

(3) "और ज्ञान पर प्रवचन किसी विद्वान व्यक्ति को ही क्यों संबोधित किया जाता है? जब कोई विद्वान व्यक्ति प्रवचन दे रहा होता है, तो वह अपना आपा नहीं खोता, चिढ़ता नहीं, शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं करता और हठधर्मी नहीं बनता; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट

प्रदर्शित नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर ज्ञान को अनुभव करता है और उससे आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करता है। अतः ज्ञान पर प्रवचन किसी विद्वान व्यक्ति को ही संबोधित किया जाता है।"

(4) "और उदारता पर प्रवचन उदार व्यक्ति को ही क्यों संबोधित किया जाना उचित है? उदारता पर प्रवचन देते समय उदार व्यक्ति अपना आपा नहीं खोता, चिढ़ता नहीं, शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं करता और हठधर्मी नहीं बनता; वह क्रोध, घृणा और कटुता प्रदर्शित नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर उदारता को अनुभव करता है और उसी के आधार पर आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करता है। अतः उदारता पर प्रवचन उदार व्यक्ति को ही संबोधित किया जाना उचित है।"

(5) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन किसी बुद्धिमान व्यक्ति को ही क्यों संबोधित किया जाता है? जब पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन दिया जा रहा होता है, तो बुद्धिमान व्यक्ति अपना आपा नहीं खोता और चिढ़कर, शत्रुतापूर्ण और हठी नहीं हो जाता; वह क्रोध, घृणा और कड़वाहट प्रदर्शित नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह अपने भीतर उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) को अनुभव करता है और उसी के आधार पर आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करता है। अतः पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर प्रवचन किसी बुद्धिमान व्यक्ति को ही संबोधित किया जाता है।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), किसी प्रवचन को उचित रूप से तभी संबोधित किया जाता है जब एक प्रकार के व्यक्ति की तुलना दूसरे प्रकार के व्यक्ति से करने के बाद, वह प्रवचन इन पांच [उपयुक्त] प्रकार के व्यक्तियों को संबोधित किया जाए।"

---

158 डरपोकपन [1153] (सरज्जा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु भय से ग्रस्त होता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु आस्थाहीन, अनैतिक, अज्ञानी, आलसी और मूर्ख होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु भय से ग्रस्त होता है।"

"भिक्षुओं में पाँच अन्य गुण होते हैं, जिससे वे आत्मविश्वासी बनते हैं। वे पाँच गुण कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु आस्थावान, गुणी, विद्वान, ऊर्जावान और बुद्धिमान होता है। [184] इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु आत्मविश्वासी होता है।"

---

159 उदयि

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य उदयि, बड़ी संख्या में गृहस्थों से घिरे हुए, धम्म का उपदेश दे रहे थे। 1154 पूज्य आनंद ने यह देखा और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा: "भंते, पूज्य उदयि, बड़ी संख्या में गृहस्थों से घिरे हुए, धम्म का उपदेश दे रहे हैं।"

हे आनंद, दूसरों को धम्म (मार्ग) सिखाना आसान नहीं है। जो दूसरों को धम्म सिखाता है, उसे पहले अपने भीतर पाँच गुण स्थापित करने चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? (1) [यह निश्चय करके:] 'मैं प्रगतिशील प्रवचन दूंगा,' उसे दूसरों को धम्म सिखाना चाहिए। (2) [यह निश्चय करके:] 'मैं तर्कसंगत प्रवचन दूंगा,' उसे दूसरों को धम्म सिखाना चाहिए। (3) [यह निश्चय करके:] 'मैं सहानुभूतिपूर्ण प्रवचन दूंगा,' उसे दूसरों को धम्म सिखाना चाहिए। (4) [यह निश्चय करके:] 'मैं भौतिक लाभ की लालसा में प्रवचन नहीं दूंगा,' उसे दूसरों को धम्म सिखाना चाहिए। (5) [यह निश्चय करके:] 'मैं स्वयं को या दूसरों को हानि पहुँचाए बिना प्रवचन दूंगा,' उसे दूसरों को धम्म सिखाना चाहिए। हे आनंद, दूसरों को धम्म सिखाना आसान नहीं है। जो दूसरों को धम्म सिखाता है, उसे पहले अपने भीतर ये पाँच गुण स्थापित करने चाहिए।

---

160 दूर करना कठिन (दुप्पतिविनोदय)

भिक्षुओं, ये पाँच बातें एक बार उत्पन्न हो जाने पर दूर करना कठिन है। कौन सी पाँच बातें? [185] कामवासना (राग), एक बार उत्पन्न हो जाने पर दूर करना कठिन है। घृणा... मोह (मोह)... विवेक... यात्रा की इच्छा, एक बार उत्पन्न हो जाने पर दूर करना कठिन है। ये पाँच बातें एक बार उत्पन्न हो जाने पर दूर करना कठिन है।

II. आक्रोश (अघट)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

161 आक्रोश दूर करना (1) (अघाट पतिविनय1)

भिक्षुओं, किसी के प्रति द्वेष उत्पन्न होने पर उसे पूर्णतः दूर करने के पाँच तरीके हैं। 1157 वे पाँच तरीके क्या हैं? (1) जिस व्यक्ति से द्वेष हो, उसके प्रति प्रेम और करुणा विकसित करनी चाहिए; इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाता है। (2) जिस व्यक्ति से द्वेष हो, उसके प्रति करुणा विकसित करनी चाहिए; इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाता है। (3) जिस व्यक्ति से द्वेष हो, उसके प्रति उदासीनता (उपेक्खा) विकसित करनी चाहिए; इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाता है। [186] (4) जिस व्यक्ति से द्वेष हो, उसकी उपेक्षा करनी चाहिए और उस पर ध्यान नहीं देना चाहिए; इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाता है। (5) जिस व्यक्ति से द्वेष हो, उस पर कर्म के स्वामित्व का विचार लागू करना चाहिए, इस प्रकार: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपने कर्मों का स्वामी है, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी है।' कर्म; कर्म ही उसका मूल है, कर्म ही उसका संबंध है, कर्म ही उसका सहारा है; वह अपने अच्छे या बुरे किसी भी कर्म का उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर करना चाहिए। ये पाँच तरीके हैं जिनसे भिक्षु किसी के प्रति उत्पन्न द्वेष को पूरी तरह से दूर कर सकता है।

---

162 आक्रोश दूर करना (2) (अघाट पतिविनय1)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

मित्रों, किसी के प्रति द्वेष उत्पन्न होने पर भिक्षु को उसे पूर्णतः दूर करने के पाँच तरीके हैं। वे पाँच तरीके क्या हैं? (1) यदि किसी व्यक्ति का शारीरिक व्यवहार अशुद्ध है, परन्तु उसका वाणी व्यवहार शुद्ध है, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर करना चाहिए। (2) यदि किसी व्यक्ति का वाणी व्यवहार अशुद्ध है, परन्तु उसका शारीरिक व्यवहार शुद्ध है, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति भी द्वेष दूर करना चाहिए। (3) यदि किसी व्यक्ति का शारीरिक और वाणी व्यवहार दोनों अशुद्ध हैं, परन्तु समय-समय पर उसे मन की शांति और स्पष्टता प्राप्त होती है, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति भी द्वेष दूर करना चाहिए। (4) यदि किसी व्यक्ति का शारीरिक और वाणी व्यवहार दोनों अशुद्ध हैं, और उसे समय-समय पर मन की शांति और स्पष्टता प्राप्त नहीं होती, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति भी द्वेष दूर करना चाहिए। (5) यदि किसी व्यक्ति का शारीरिक और वाणी व्यवहार दोनों शुद्ध हैं, और समय-समय पर उसे मन की शांति और स्पष्टता प्राप्त होती है, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति भी द्वेष दूर करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के प्रति द्वेष।

(1) "हे मित्रों, उस व्यक्ति के प्रति द्वेष कैसे दूर किया जाए जिसका शारीरिक आचरण अशुद्ध हो परन्तु वाणी शुद्ध हो? मान लीजिए कि एक वस्त्रधारी भिक्षु को सड़क के किनारे एक वस्त्र पड़ा हुआ दिखाई देता है। वह उसे अपने बाएँ पैर से दबाएगा, अपने दाएँ पैर से फैलाएगा, उसमें से एक साबुत टुकड़ा फाड़कर अपने साथ ले जाएगा; ठीक उसी प्रकार, जब किसी व्यक्ति का शारीरिक आचरण अशुद्ध

हो परन्तु वाणी शुद्ध हो, तो उस समय उसके शारीरिक आचरण की अशुद्धता पर ध्यान न देकर उसकी वाणी की शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर किया जा सकता है।"

(2) "हे मित्रों, उस व्यक्ति के प्रति द्वेष कैसे दूर किया जाए जिसका वाणी व्यवहार अशुद्ध हो परन्तु दैत्य शुद्ध हो? मान लीजिए एक तालाब शैवाल और जलीय पौधों से ढका हुआ है। एक व्यक्ति गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा होकर वहाँ पहुँचता है। वह तालाब में डुबकी लगाता है, अपने हाथों से शैवाल और जलीय पौधों को हटाता है, अपने हाथों से पानी पीता है और फिर चला जाता है; ठीक उसी प्रकार, [188] जब किसी व्यक्ति का वाणी व्यवहार अशुद्ध हो परन्तु उसका दैत्य शुद्ध हो, तो उस समय हमें उसके वाणी व्यवहार की अशुद्धता पर ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि उसके दैत्य की शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर किया जा सकता है।"

(3) "हे मित्रों, उस व्यक्ति के प्रति द्वेष कैसे दूर किया जाए जिसका शारीरिक और वाणी दोनों ही अपवित्र हैं, परन्तु जो समय-समय पर मन की शांति और खुलेपन का अनुभव करता है? मान लीजिए एक पोखर में थोड़ा सा पानी है। फिर एक व्यक्ति गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा होकर वहाँ पहुँचता है। वह सोचेगा: 'यह थोड़ा सा पानी पोखर में है। यदि मैं इसे अपने हाथों से या किसी बर्तन से पीने का प्रयास करूँ, तो मैं इसे हिला दूँगा, इसे असंतुलित कर दूँगा और इसे पीने योग्य नहीं रहने दूँगा। मुझे चारों हाथों-पैरों के बल बैठकर इसे गाय की तरह चूस लेना चाहिए और चले जाना चाहिए।'" फिर वह चारों हाथों-पैरों के बल नीचे झुकता है, गाय की तरह पानी पीता है और चला जाता है। इसी प्रकार, जब किसी व्यक्ति का शारीरिक और मौखिक व्यवहार अशुद्ध हो, परन्तु समय-समय पर उसका मन शांत हो जाए, तो उस समय हमें उसके शारीरिक और मौखिक व्यवहार की अशुद्धता पर ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि उसके मन की शांति और समय-समय पर प्राप्त होने वाली शांति पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाना चाहिए।

(4) "हे मित्रों, उस व्यक्ति के प्रति द्वेष कैसे दूर किया जाए जिसका शारीरिक और वाणी का व्यवहार अशुद्ध है और जो समय-समय पर मन की शांति और स्पष्टता प्राप्त नहीं करता? मान लीजिए कि एक बीमार, पीड़ित, गंभीर रूप से बीमार व्यक्ति राजमार्ग पर यात्रा कर रहा है, और उसके पीछे का अंतिम गाँव और उसके आगे का अगला गाँव दोनों बहुत दूर हैं। उसे उचित भोजन और दवा या योग्य परिचारक नहीं मिलेगा; वह ग्राम क्षेत्र के मुखिया से नहीं मिल पाएगा। राजमार्ग पर यात्रा कर रहा कोई दूसरा व्यक्ति उसे देख सकता है और उसके प्रति अपार करुणा, सहानुभूति और कोमल चिंता उत्पन्न कर सकता है, यह सोचते हुए: 'हे भगवान, इस व्यक्ति को उचित भोजन, उचित दवा और योग्य परिचारक मिल जाए! वह ग्राम क्षेत्र के मुखिया से मिल पाए! क्यों? ताकि इस व्यक्ति को यहीं विपत्ति और विपत्ति का सामना न करना पड़े।' इसी प्रकार, जब किसी व्यक्ति का शारीरिक और वाणी दोनों ही अपवित्र हों और उसे समय-समय पर मन की शांति और स्पष्टता प्राप्त न हो, तो उस समय उसके प्रति अपार करुणा, सहानुभूति और कोमल चिंता उत्पन्न करनी चाहिए, यह सोचते हुए कि, 'हे पूज्य, यह आदरणीय व्यक्ति शारीरिक दुराचार त्याग कर सुव्यवहार करे; वाणी दुराचार त्याग कर सुव्यवहार करे; मानसिक दुराचार त्याग कर सुव्यवहार करे! किसलिए? ताकि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म न ले।' इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर हो जाना चाहिए। [190]

(5) "हे मित्रों, उस व्यक्ति के प्रति द्वेष कैसे दूर किया जाए जिसका शारीरिक और वाणी शुद्ध हो और जो समय-समय पर मन की शांति और खुलेपन का अनुभव करता हो? मान लीजिए एक तालाब है जिसका पानी साफ, मीठा और ठंडा है, उसके किनारे चिकने हैं, और वह अनेक वृक्षों से छायादार एक रमणीय स्थान है। फिर एक व्यक्ति गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा होकर वहाँ पहुँचे। तालाब में डुबकी लगाकर वह स्नान करे और पानी पिए, और फिर बाहर आकर वहीं किसी वृक्ष की छाया में बैठ जाए या लेट जाए। ठीक इसी प्रकार, जब किसी व्यक्ति का शारीरिक और वाणी शुद्ध हो और वह समय-समय पर मन की शांति और खुलेपन का अनुभव करता हो, तो उस समय हमें उसके शुद्ध शारीरिक व्यवहार और शुद्ध वाणी पर ध्यान देना चाहिए; और समय-समय पर प्राप्त होने वाले मन की शांति और खुलेपन पर भी ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति द्वेष दूर किया जा सकता है। मित्रों, जो व्यक्ति हर तरह से विश्वास जगाता है, उसके माध्यम से मन में विश्वास उत्पन्न होता है।" 1159

"मित्रों, ये पाँच तरीके हैं जिनसे भिक्षु किसी के भी प्रति उत्पन्न हुई द्वेष भावना को पूरी तरह से दूर कर सकता है।"

---

163 चर्चाएँ (सकच्छा)

[यह सूत्र 5:65 के समान है, सिवाय इसके कि यह सारिपुत्त द्वारा भिक्षुओं से कहा गया है-जे [191]

---

164 जीवन शैली (सजीव)

[यह सूत्र 5:66 के समान है, सिवाय इसके कि यह सारिपुत्त द्वारा भिक्षुओं को सुनाया गया है।]

---

165 प्रश्न पूछना (पन्हा पुच्चा सं. प्रश्न-पुच्चा)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, जो कोई भी दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है, वह पाँच कारणों से या उनमें से किसी एक विशेष कारण से ऐसा करता है। वे पाँच कारण क्या हैं? (1) कोई व्यक्ति अपनी मंदबुद्धि और मूर्खता के कारण दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है; (2) बुरी इच्छाओं से प्रेरित कोई व्यक्ति, वासना से प्रेरित होकर, दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है; [192] (3) कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपमानित करने के तरीके के रूप में प्रश्न पूछता है; (4) कोई व्यक्ति सीखने की इच्छा से दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है; (5) या कोई व्यक्ति इस विचार से दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है: 'यदि मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्न का वह सही उत्तर देता है, तो यह अच्छा है; लेकिन यदि वह सही उत्तर नहीं देता है, तो मैं उसे सही व्याख्या दूंगा'। मित्रों, जो कोई भी दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता है, वह इन पाँच कारणों से या उनमें से किसी एक विशेष कारण से ऐसा करता है। मित्रों, मैं इस विचार से दूसरे व्यक्ति से प्रश्न पूछता हूँ: 'यदि मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्न का वह सही उत्तर देता है, तो यह अच्छा है; लेकिन यदि वह सही उत्तर नहीं देता है, तो मैं उसे सही व्याख्या दूंगा।"

---

166 निरोध (Cessation)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"यद्यपि, एक भिक्षु जो सद्‌गुणों, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में निपुण है, वह बोध (संज्ञा/वेदना) और संवेदना (वेदना) के अंत में प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। यह संभावना है। लेकिन यदि वह इसी जीवन में अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं करता है, और भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के समूह से परे, मन से निर्मित देवताओं (देवदूतों) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेता है, तो वह [पुनः] बोध (संज्ञा/वेदना) और संवेदना (वेदना) के अंत में प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। 1160 यह संभावना है।"

यह सुनकर पूज्य उदय ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "यह असंभव है, मित्र सारिपुत्त। ऐसा संभव ही नहीं है कि कोई भिक्षु, जो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं से परे, मन से निर्मित देवताओं के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेकर, बोध और वेदना की अवस्था में पुनः प्रवेश करे और उससे बाहर निकले। ऐसी कोई संभावना ही नहीं है।"

दूसरी बार... तीसरी बार, [193] पूज्य सारिपुत्त ने कहा: "यहाँ, मित्रों, यह संभव है कि एक भिक्षु जो सद्‌गुणों में निपुण हो... किसी विशेष समूह के मन से जन्मे देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेकर... फिर से चेतना और वेदना की अवस्था में प्रवेश कर सके और उससे बाहर आ सके। यह संभावना है।" तीसरी बार, पूज्य उदय ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "यह असंभव है, मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं हो सकता कि एक भिक्षु, मन से जन्मे देवताओं के किसी विशेष समूह के बीच पुनर्जन्म लेकर... फिर से चेतना और वेदना की अवस्था में प्रवेश कर सके और उससे बाहर आ सके। ऐसी कोई संभावना नहीं है।"

तब पूज्य सारिपुत्त के मन में यह विचार आया: "पूज्य उदय ने मुझे तीसरी बार तक अस्वीकार कर दिया है, और एक भी भिक्षु मुझसे सहमत नहीं है। मुझे भगवान (बुद्ध) से प्रार्थना करनी चाहिए।" तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, "हे मित्रों, एक भिक्षु जो सद्‌गुणों, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना

(दिव्य ज्ञान) में निपुण है, वह [पुनः] संज्ञान (संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के अंत से प्रवेश कर सकता है और बाहर आ सकता है। यह संभव है। यदि वह इसी जीवन में अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं करता है, तो देवताओं (देवदूतों) के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेकर, जो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं (देवदूतों) की संगति से परे हैं, वह [पुनः] संज्ञान (संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के अंत से प्रवेश कर सकता है और बाहर आ सकता है। यह संभव है।"

यह सुनकर पूज्य उदय ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "यह असंभव है, मित्र सारिपुत्त। ऐसा संभव ही नहीं है कि कोई भिक्षु, जो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं के समूह से परे, मन से निर्मित देवताओं के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेकर, बोध और वेदना की अवस्था में पुनः प्रवेश करे और उससे बाहर निकले। ऐसी कोई संभावना ही नहीं है।"

दूसरी बार... तीसरी बार, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे मित्रों, एक भिक्षु जो सद्‌गुणों में निपुण है... [194]... किसी विशेष समूह के मन से उत्पन्न देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेकर... फिर से चेतना और वेदना की अवस्था में प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। यह संभव है।" तीसरी बार, पूज्य उदय ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "यह असंभव है, मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं हो सकता कि एक भिक्षु... किसी विशेष समूह के मन से उत्पन्न देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेकर... फिर से चेतना और वेदना की अवस्था में प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। ऐसी कोई संभावना नहीं है।"

तब पूज्य सारिपुत्त के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में भी, पूज्य उदयि तीसरी बार तक मुझे अस्वीकार करते हैं, और एक भी भिक्षु मुझसे सहमत नहीं होता। मुझे चुप ही रहना चाहिए।" फिर पूज्य सारिपुत्त मौन हो गए।

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उदयि से कहा, "उदयि, तुम मन द्वारा निर्मित समूह से वास्तव में क्या समझते हो?"

"भंते, वे ही निराकार देव (देवदूत/भगवान) हैं, जो चेतना (सन्ना/संज्ञा) से बने हैं।" 61

"उदयी, तुम क्या कह रहे हो, तुम नासमझ और नासमझ हो? फिर भी तुम्हें बोलने की ज़रूरत है!"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, क्या तुम एक वरिष्ठ भिक्षु को प्रताड़ित होते हुए चुपचाप देखते रहते हो? क्या तुम्हें किसी वरिष्ठ भिक्षु के उत्पीड़न के प्रति कोई दया नहीं आती?"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, सद्‌गुणों, समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में निपुण भिक्षु, सन्ना/संज्ञा और वेदना के अंत में प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। यदि वह इसी जीवन में अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है, तो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं से परे, मन से निर्मित देवताओं के एक विशेष समूह में पुनर्जन्म लेकर, वह सन्ना/संज्ञा और वेदना के अंत में फिर से प्रवेश कर सकता है और उससे बाहर आ सकता है। यह संभावना है।" भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए। [195]

फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य आनंद पूज्य उपवन के पास आए और उनसे कहा: "हे मित्र उपवन, वे अन्य वरिष्ठ भिक्षुओं को परेशान कर रहे थे, लेकिन हमने उनसे कोई प्रश्न नहीं किया।" 262 यह आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि आज शाम, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आएँ, तो वे इस मामले के बारे में कोई घोषणा करें, और वे स्वयं पूज्य उपवन को [हिसाब देने के लिए] बुलाएँ। 1163 अभी मुझे डर लग रहा है।"

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में गए। वे निर्धारित स्थान पर बैठ गए और पूज्य उपवन से बोले:

"उपवन, एक वरिष्ठ भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए ताकि वह अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और संतुष्ट कर सके और उनका सम्मान और आदर प्राप्त कर सके?"

पाँच गुणों से युक्त, वरिष्ठ भिक्षु भंते अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय होते हैं तथा उनके द्वारा आदरणीय और प्रतिष्ठित माने जाते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे गुणी हैं; वे पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहते हैं... [जैसा कि 5:134 में है]... वे उनमें अभ्यास करते हैं। (2) उन्होंने बहुत कुछ सीखा है... [जैसा कि 5:134 में है]... उन्होंने दृष्टि से अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त किया है। (3) वे एक अच्छे वक्ता हैं

और उनकी वाणी सुस्पष्ट, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण है। (4) वे बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करते हैं जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति का अनुभव किया है। पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति प्राप्त करने और उसमें प्रवेश करने के बाद, वह उसमें निवास करता है। इन पाँच गुणों से युक्त, एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय होता है और उनके द्वारा आदरणीय और सम्मानित होता है।" [196]

"वाह, वाह, उपवन! इन पाँच गुणों से युक्त होने के कारण, एक वरिष्ठ भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रसन्न करता है और उनका आदर और सम्मान करता है। लेकिन यदि ये पाँच गुण किसी वरिष्ठ भिक्षु में न हों, तो उसके साथी भिक्षु उसका आदर, सम्मान और आदर क्यों करें? 1164 क्या उसके टूटे हुए दाँतों, सफ़ेद बालों और झुर्रीदार त्वचा के कारण? बल्कि इन पाँच गुणों के कारण ही एक वरिष्ठ भिक्षु का आदर, सम्मान, आदर और आदर किया जाता है।"

---

167 निंदा करना (कोडाना)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: ...

"मित्रों, जो भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को फटकारना चाहता है, उसे पहले अपने भीतर पाँच बातें स्थापित करनी चाहिए। वे पाँच बातें क्या हैं? (1) [उसे विचार करना चाहिए:] 'मैं उचित समय पर बोलूंगा, अनुचित समय पर नहीं; (2) मैं सत्य बोलूंगा, असत्य नहीं; (3) मैं सौम्यता से बोलूंगा, कठोरता से नहीं; (4) मैं लाभकारी ढंग से बोलूंगा, हानिकारक ढंग से नहीं; (5) मैं प्रेम और करुणा के भाव से बोलूंगा, घृणा से नहीं।' जो भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को फटकारना चाहता है, उसे पहले अपने भीतर ये पाँच बातें स्थापित करनी चाहिए।"

"यहाँ, मित्रों, मैं देखता हूँ कि किसी व्यक्ति को अनुचित समय पर फटकारा जा रहा है, उचित समय पर उसे विचलित नहीं किया जा रहा; उसे असत्य के बारे में फटकारा जा रहा है, सत्य के बारे में उसे विचलित नहीं किया जा रहा; उसे कठोरता से फटकारा जा रहा है, सौम्यता से उसे विचलित नहीं किया जा रहा; उसे हानिकारक तरीके से फटकारा जा रहा है, लाभकारी तरीके से उसे विचलित नहीं किया जा रहा; उसे घृणा से ग्रसित व्यक्ति द्वारा फटकारा जा रहा है, प्रेम और करुणा (मेट्टा) से ग्रसित व्यक्ति द्वारा उसे विचलित नहीं किया जा रहा है।"

"मित्रों, जब किसी भिक्षु को धम्म के विपरीत तरीके से फटकारा जाता है, तो उसमें पाँच तरीकों से पश्चातापहीनता उत्पन्न करनी चाहिए: (1) 'मित्र, तुम्हें अनुचित समय पर फटकारा गया, उचित समय पर नहीं; यही तुम्हारे पश्चातापहीन होने के लिए पर्याप्त है। (2) तुम्हें झूठा फटकारा गया, सत्य नहीं; यही तुम्हारे पश्चातापहीन होने के लिए पर्याप्त है। (3) तुम्हें कठोरता से फटकारा गया, कोमलता से नहीं; यही तुम्हारे पश्चातापहीन होने के लिए पर्याप्त है। (4) तुम्हें हानिकारक तरीके से फटकारा गया, लाभकारी तरीके से नहीं; यही तुम्हारे पश्चातापहीन होने के लिए पर्याप्त है। (5) तुम्हें घृणा रखने वाले व्यक्ति द्वारा फटकारा गया, प्रेम और करुणा (मेट्टा) वाले व्यक्ति द्वारा नहीं; यही तुम्हारे पश्चातापहीन होने के लिए पर्याप्त है।' जब किसी भिक्षु (सन्यासी) को धम्म के विपरीत तरीके से फटकारा जाता है, तो उसमें इन पांच तरीकों से पश्चातापहीनता उत्पन्न की जानी चाहिए।

"मित्रों, जब कोई भिक्षु धम्म के विपरीत तरीके से डांटता है, तो उसे पाँच तरीकों से पश्चाताप होना चाहिए: (1) 'मित्र, तुमने उसे अनुचित समय पर डांटा, उचित समय पर नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (2) तुमने उसे झूठा डांटा, सत्य नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (3) तुमने उसे कठोरता से डांटा, कोमलता से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (4) तुमने उसे हानि पहुँचाने वाले तरीके से डांटा, लाभ पहुँचाने वाले तरीके से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (5) तुमने उसे घृणा से डांटा, प्रेम और करुणा (मेत्ता) से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है।' जब कोई भिक्षु धम्म के विपरीत तरीके से डांटता है, तो उसे इन पाँच तरीकों से पश्चाताप होना चाहिए। इसका कारण क्या है? ताकि कोई दूसरा भिक्षु झूठा डांटने के बारे में न सोचे।"

"यहाँ, मित्रों, मैं देखता हूँ कि किसी व्यक्ति को उचित समय पर फटकारा जा रहा है, अनुचित समय पर परेशान नहीं किया जा रहा है; उसे सच्चाई से फटकारा जा रहा है, झूठ से परेशान नहीं किया जा रहा है; उसे कोमलता से फटकारा जा रहा है, कठोरता से परेशान नहीं किया जा रहा है; उसे लाभकारी तरीके से फटकारा जा रहा है, हानिकारक तरीके से परेशान नहीं किया जा रहा है; उसे प्रेम और करुणा (मेट्टा) वाले व्यक्ति द्वारा फटकारा जा रहा है, न कि घृणा रखने वाले व्यक्ति द्वारा परेशान किया जा रहा है।"

“मित्रों, जब किसी भिक्षु को धम्म के अनुसार फटकारा जाता है, तो उसमें पाँच प्रकार से पश्चाताप उत्पन्न किया जाना चाहिए: (1) ‘मित्र, तुम्हें उचित समय पर फटकारा गया, अनुचित समय पर नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (2) तुम्हें सत्यपूर्वक फटकारा गया, असत्यपूर्वक नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (3) तुम्हें कोमल भाव से फटकारा गया, कठोर भाव से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (4) तुम्हें लाभकारी तरीके से फटकारा गया, हानिकारक तरीके से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है। (5) तुम्हें प्रेम और करुणा से भरे व्यक्ति द्वारा फटकारा गया, घृणा से भरे व्यक्ति द्वारा नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप के लिए पर्याप्त है।’ [198] जब किसी भिक्षु को धम्म के अनुसार फटकारा जाता है, तो उसमें इन पाँच प्रकार से पश्चाताप उत्पन्न किया जाना चाहिए।

“मित्रों, जब कोई भिक्षु धम्म के अनुसार डांटता है, तो उसमें पाँच प्रकार से पश्चाताप रहित भावना उत्पन्न होनी चाहिए: (1) ‘मित्र, तुमने उसे उचित समय पर डांटा, अनुचित समय पर नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप रहित होने के लिए पर्याप्त है। (2) तुमने उसे सत्यपूर्वक डांटा, असत्यपूर्वक नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप रहित होने के लिए पर्याप्त है। (3) तुमने उसे कोमल भाव से डांटा, कठोरता से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप रहित होने के लिए पर्याप्त है। (4) तुमने उसे लाभकारी तरीके से डांटा, हानिकारक तरीके से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप रहित होने के लिए पर्याप्त है। (5) तुमने उसे प्रेम और करुणा के भाव से डांटा, घृणा के भाव से नहीं; यही तुम्हारे पश्चाताप रहित होने के लिए पर्याप्त है।’ जब कोई भिक्षु धम्म के अनुसार डांटता है, तो उसमें इन पाँच प्रकार से पश्चाताप रहित भावना उत्पन्न होनी चाहिए। इसका कारण क्या है? ताकि कोई दूसरा भिक्षु डांटने के बारे में न सोचे? सच क्या है, इसके बारे में।

“मित्रों, जिसे फटकार लगाई जाए उसे दो बातों में दृढ़ रहना चाहिए: सत्य और क्रोधहीनता। चाहे दूसरे मुझे फटकारें—चाहे उचित समय पर या अनुचित समय पर; चाहे सत्य के बारे में या असत्य के बारे में; चाहे नरमी से या कठोरता से; चाहे लाभप्रद तरीके से या हानिप्रद तरीके से; चाहे प्रेमपूर्ण भाव से या घृणा से—फिर भी मुझे दो बातों में दृढ़ रहना चाहिए: सत्य और क्रोधहीनता।”

"अगर मुझे पता है कि 'मुझमें ऐसा गुण है', तो मैं उससे कहता हूँ: 'यह गुण मुझमें मौजूद है। यह गुण मुझमें पाया जाता है।' अगर मुझे पता है कि 'मुझमें ऐसा गुण नहीं है', तो मैं उससे कहता हूँ: 'यह गुण मुझमें मौजूद नहीं है। यह गुण मुझमें नहीं पाया जाता।'"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "सारिपुत्त, जब तुम उनसे इस प्रकार बात करते हो, तब भी यहाँ कुछ अज्ञानी लोग तुम्हारी बातों का पूरी तरह से सम्मानपूर्वक स्वागत नहीं करते।"

"हे भंते, कुछ ऐसे लोग हैं जो आस्थाहीन हैं और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, आस्था के कारण नहीं, बल्कि जीविका कमाने के उद्देश्य से; वे धूर्त, पाखंडी, धोखेबाज, बेचैन, अहंकारी, अभिमानी, बातूनी, अपनी बातों में बेपरवाह, इंद्रियों के द्वारों पर लापरवाह, अत्यधिक खाने वाले, जागृति के प्रति उदासीन, तपस्वी जीवन के प्रति उदासीन, प्रशिक्षण का सम्मान न करने वाले, विलासी और लापरवाह, पतन में अग्रणी, एकांतवास के कर्तव्य का त्याग करने वाले, आलसी, ऊर्जाहीन, भ्रमित, पूर्ण समझ से रहित, असामहिताग्रस्त, भटकते मन वाले, नासमझ और मूर्ख हैं। जब मैं उनसे इस प्रकार बात करता हूँ, तो वे मेरी बात को आदरपूर्वक स्वीकार नहीं करते।"

"परन्तु, भंते, ऐसे कुलवासी भी हैं जिन्होंने आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है; वे धूर्त, पाखंडी, कपटी, बेचैन, अहंकारी, अभिमानी, बातूनी और निरर्थक नहीं हैं; वे इंद्रियों के द्वारों पर पहरा देते हैं; वे संयमी, सजग, तपस्वी जीवन के प्रति सजग और प्रशिक्षण का अत्यंत आदर करने वाले हैं; वे विलासी और आलसी नहीं हैं; वे पतन का त्याग करके एकांत में नेतृत्व करते हैं; वे ऊर्जावान, दृढ़, सजग, पूर्णतः बोधशील, समाधि में लीन, एकाग्रचित्त, बुद्धिमान और समझदार हैं। जब मैं उनसे इस प्रकार बात करता हूँ, तो वे आदरपूर्वक मेरी बात स्वीकार करते हैं।"

"सारिपुत्त, उन लोगों को छोड़ दो जो आस्थाहीन हैं और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, आस्था के कारण नहीं बल्कि जीविका कमाने के उद्देश्य से; जो धूर्त हैं... नासमझ हैं, मूर्ख हैं। परन्तु, सारिपुत्त, तुम्हें उन कुलवासियों से बात करनी चाहिए जो आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, जो धूर्त नहीं हैं... जो बुद्धिमान हैं, समझदार हैं। [200] अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश दो, सारिपुत्त! अपने साथी भिक्षुओं को शिक्षा दो, सारिपुत्त, [यह सोचकर:] 'मैं अपने साथी भिक्षुओं को अच्छे धम्म (मार्ग) के विपरीत मार्ग से निकालूँगा और उन्हें अच्छे धम्म में स्थापित करूँगा।' इस प्रकार, सारिपुत्त, तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

168 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

[यह सूत्र 5:24 के समान है, सिवाय इसके कि यह सारिपुत्त द्वारा भिक्षुओं से कहा गया है।] [201]

---

169 शीघ्र बोध (खिप्पानिसन्ती)

तब पूज्य आनंद, पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे मित्र सारिपुत्त, एक भिक्षु किस प्रकार लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला, जो सीखी हुई बातों को अच्छी तरह आत्मसात करता है, भरपूर ज्ञान प्राप्त करता है और सीखी हुई बातों को नहीं भूलता है?"

"आदरणीय आनंद विद्वान हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही इस मामले को स्पष्ट कर देना चाहिए।"

"तो सुनो, मित्र सारिपुत्त, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," पूज्य सारिपुत्त ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, यहाँ एक भिक्षु अर्थ में निपुण, धम्म में निपुण, भाषा में निपुण, वाक्यांशों में निपुण और क्रम में निपुण होता है। 1166 इस प्रकार, हे मित्र सारिपुत्त, एक भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला, जो कुछ सीखता है उसे अच्छी तरह ग्रहण करता है, भरपूर सीखता है और जो कुछ सीखता है उसे भूलता नहीं है।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्र, कि पूज्य आनंद ने इसे कितनी अच्छी तरह से व्यक्त किया है! हम पूज्य आनंद को इन पाँच गुणों से युक्त मानते हैं: 'पूज्य आनंद अर्थ में निपुण हैं, धम्म में निपुण हैं, भाषा में निपुण हैं, वाक्यांशों में निपुण हैं और क्रम में निपुण हैं।' [202]

---

170 भद्दाजी

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में रह रहे थे। तभी पूज्य भद्दाजी उनके पास आए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर भद्दाजी एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य आनंद ने उनसे कहा:

"मित्र भद्दाजी, दर्शन में सर्वोत्कृष्ट क्या है? श्रवण का सर्वोत्कृष्ट प्रकार क्या है? परम सुख क्या है? अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सर्वोत्कृष्ट क्या है? अस्तित्व की अवस्थाओं में सर्वोत्कृष्ट क्या है?"

(1) हे मित्र, ब्रह्मा हैं, जो विजय प्राप्त करने वाले, अजेय, सर्वव्यापी द्रष्टा, शक्ति के स्वामी हैं। ब्रह्मा के दर्शन करना ही सर्वोत्कृष्ट दर्शन है। (2) वहाँ प्रकाश की धारा से परिपूर्ण देव (देवदूत/देवता) हैं जो आनंद से सराबोर हैं। वे कभी-कभी प्रेरणा से कहते हैं: 'ओह, कितना आनंद! ओह, कितना आनंद!' उस ध्वनि को सुनना ही सर्वोत्कृष्ट श्रवण है। (3) वे तेजस्वी देव (देवदूत/देवता) हैं। प्रसन्न होकर वे अत्यंत शांतिपूर्ण आनंद का अनुभव करते हैं: यही सर्वोत्कृष्ट आनंद है। (4) वे शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के देव (देवदूत/देवता) हैं: यही सर्वोत्कृष्ट अनुभूति (सन्न/संज्ञा) है। (5) वे न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) के देव (देवदूत/देवता) हैं: यही सर्वोत्कृष्ट अस्तित्व की अवस्था है।

तो क्या पूज्य भद्दाजी इस विषय पर आम लोगों से सहमत हैं? 1168

"आदरणीय आनंद विद्वान हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही इस मामले को स्पष्ट कर देना चाहिए।"

"तो सुनिए, मित्र भद्दाजी, और ध्यान से सुनिए। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," पूज्य भद्दाजी ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा:

"(1) हे मित्र, जिस भी प्रकार से कोई देखता है जिससे तुरंत बाद दोषों का नाश हो जाता है: यही सर्वोत्कृष्ट दृष्टि है। (2) जिस भी प्रकार से कोई सुनता है जिससे तुरंत बाद दोषों का नाश हो जाता है: यही सर्वोत्कृष्ट श्रवण है। (3) जिस भी प्रकार से कोई प्रसन्न होता है जिससे तुरंत बाद दोषों का नाश हो जाता है: यही सर्वोत्कृष्ट प्रसन्नता है। (4) जिस भी प्रकार से कोई बोध करता है जिससे तुरंत बाद दोषों का नाश हो जाता है: यही सर्वोत्कृष्ट बोध (सन्न/संज्ञा) है। (5) जिस भी प्रकार से कोई विद्यमान होता है जिससे तुरंत बाद दोषों का नाश हो जाता है: यही सर्वोत्कृष्ट अस्तित्व अवस्था (भाव/पुनर्जन्म का कारण) है।" [203]

तृतीय. द ले फॉलोअर (उपासका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

171 कायरता (सरज्जा)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, फिर भी गृहस्थ अनुयायी कायर हो जाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ ग्रहण करता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों के कारण गृहस्थ अनुयायी कायर हो जाता है।"

"भिक्षुओं में पाँच गुण होते हैं; गृहस्थ अनुयायी आत्मविश्वासी होता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह जीवन-नष्ट करने से बचता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, यौन दुराचार से बचता है, झूठी वाणी से बचता है, और आलस्य के मूल कारण मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहता है। इन पाँच गुणों से युक्त गृहस्थ अनुयायी आत्मविश्वासी होता है।"

---

172 आत्म-विश्वास (विसारदा)

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, फिर भी एक गृहस्थ अनुयायी घर में आत्मविश्वासहीन रहता है। वे पाँच गुण क्या हैं? [204] वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे चीज़ें लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों के साथ, एक गृहस्थ अनुयायी घर में आत्मविश्वासहीन रहता है।"

"भिक्षु (साधु), पाँच गुणों से युक्त होकर, गृहस्थ अनुयायी आत्मविश्वास से घर में निवास करता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन के विनाश से दूर रहता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से दूर रहता है, यौन दुराचार से दूर रहता है, झूठी वाणी से दूर रहता है, और आलस्य के मूल कारण मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहता है। इन पाँच गुणों से युक्त होकर, गृहस्थ अनुयायी आत्मविश्वास से घर में निवास करता है।"

---

173 नरक (निरया)

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होने के कारण, एक गृहस्थ अनुयायी को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ ग्रहण करता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों के कारण, एक गृहस्थ अनुयायी को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच गुण होते हैं, जिनके द्वारा एक गृहस्थ अनुयायी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन-नष्ट करने से बचता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, यौन दुराचार से बचता है, झूठी वाणी से बचता है, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से बचता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों के कारण, एक गृहस्थ अनुयायी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

174 शत्रु (वेरा सं. वैर)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, पाँच खतरों और शत्रुताओं का त्याग किए बिना, व्यक्ति अनैतिक कहलाता है और नरक में पुनर्जन्म लेता है। वे पाँच क्या हैं? जीवन का विनाश, बिना माँगे लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन, जो आलस्य का आधार हैं। [205] इन पाँच खतरों और शत्रुताओं का त्याग किए बिना, व्यक्ति अनैतिक कहलाता है और नरक में पुनर्जन्म लेता है।"

"गृहस्थ, पाँच प्रकार के संकटों और शत्रुताओं का त्याग करने पर पुण्य कहलाता है और स्वर्ग में पुनर्जन्म पाता है। वे पाँच कौन से संकट हैं? जीवन का विनाश... और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच प्रकार के संकटों और शत्रुताओं का त्याग करने पर पुण्य कहलाता है और स्वर्ग में पुनर्जन्म पाता है।"

(1) "हे गृहस्थ, जो जीव-जंतुओं का संहार करता है, वह वर्तमान और भविष्य दोनों जीवन में संकट और शत्रुता उत्पन्न करता है, और मानसिक पीड़ा और निराशा का भी अनुभव करता है। जो जीव-जंतुओं का संहार नहीं करता, वह वर्तमान और भविष्य दोनों जीवन में संकट और शत्रुता उत्पन्न नहीं करता, और न ही उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव होता है। जीव-जंतुओं का संहार न करने वाले के लिए वह संकट और शत्रुता निःसंतान हो जाती है।"

(2) "गृहस्थ, वह व्यक्ति जो बिना दिए हुए सामान लेता है..."

(3) . . . यौन दुराचार में लिप्त होता है . . . (4) झूठ बोलता है . . .

(5) ... जो आलस्य के आधार, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, वह वर्तमान और भविष्य के जीवन में खतरे और शत्रुता को जन्म देता है, और मानसिक पीड़ा और निराशा का भी अनुभव करता है। जो आलस्य के आधार, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है, वह वर्तमान और भविष्य के जीवन में खतरे और शत्रुता को जन्म नहीं देता, न ही वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। जो आलस्य के आधार, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है, उसके लिए वह खतरा और शत्रुता इस प्रकार समाप्त हो जाती है।

दुनिया में एक ऐसा आदमी है जो जीवन को नष्ट करता है,

झूठ बोलता है, और बिना दिए हुए चीजें लेता है,

जो दूसरों की पत्नियों के पास जाता है,

और शराब और मदिरा में लिप्त रहता है।

पांच शत्रुओं को धारण करने वाला

व्यक्ति अनैतिक कहलाता है।

शरीर के क्षोभ के साथ ही

वह मूर्ख व्यक्ति नरक में पुनर्जन्म लेता है।

लेकिन दुनिया में एक ऐसा आदमी है

जो जीवन को नष्ट नहीं करता,

झूठ नहीं बोलता, जो नहीं दिया गया है उसे नहीं लेता,

दूसरों की पत्नियों के पास नहीं जाता, [206]

या शराब और मदिरा में लिप्त नहीं होता।

पांच शत्रुओं का त्याग करने वाला

व्यक्ति गुणी कहलाता है।

शरीर के नष्ट होने पर

वह ज्ञानी व्यक्ति स्वर्ग में पुनर्जन्म लेता है।

---

175 कैंडला

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, जबकि गृहस्थ अनुयायी गृहस्थ अनुयायियों का चांडाल, गृहस्थ अनुयायियों का कलंक और गृहस्थ अनुयायियों में सबसे अंतिम होता है। 1170 वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह आस्थाहीन होता है; (2) वह अनैतिक होता है; (3) वह अंधविश्वासी होता है और कर्मों की नहीं, शुभ संकेतों में विश्वास करता है; (4) वह यहाँ से बाहर ऐसे व्यक्ति की खोज करता है जो भेंट के योग्य हो; 1171 और (5) वह पहले वहाँ पुण्य कर्म करता है। इन पाँच गुणों से युक्त गृहस्थ अनुयायी गृहस्थ अनुयायियों का चांडाल, गृहस्थ अनुयायियों का कलंक और गृहस्थ अनुयायियों में सबसे अंतिम होता है।"

"भिक्षुओं (साधुओं), जिनमें पाँच गुण होते हैं, वे गृहस्थ अनुयायी के लिए रत्न, लाल कमल और श्वेत कमल के समान होते हैं। 1172 वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे आस्थावान होते हैं; (2) वे गुणी होते हैं; (3) वे अंधविश्वासी नहीं होते और कर्मों में विश्वास रखते हैं, शुभ संकेतों में नहीं; (4) वे भेंट के योग्य व्यक्ति की खोज में यहाँ से बाहर नहीं जाते; वे सर्वप्रथम यहाँ पुण्य कर्म करते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त गृहस्थ अनुयायी के लिए रत्न, लाल कमल और श्वेत कमल के समान होते हैं।"

---

176 आनंद (पिति सान. प्रीति)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका अपने पाँच सौ अनुयायियों के साथ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ अनाथपिंडिका [और उनके अनुयायियों] से कहा:

"गृहस्थों, आपने भिक्षु संघ को वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री भेंट की है। केवल इतना ही सोचकर संतुष्ट न हों: 'हमने भिक्षु संघ को वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री भेंट की है।' अतः, गृहस्थों, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: [207] 'हम समय-समय पर एकांत के आनंद (पीति) में कैसे प्रवेश कर सकते हैं और निवास कर सकते हैं?' 1173 इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे भंते, यह कितना अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है कि भगवान (बुद्ध) ने कितना सही कहा है। भंते, जब भी कोई श्रेष्ठ शिष्य एकांतवास के आनंद (पीति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, उस समय उसमें पाँच बातें नहीं होतीं: (1) उसे कामुकता से संबंधित पीड़ा और उदासी नहीं होती। (2) उसे कामुकता से संबंधित सुख और आनंद नहीं होता। (3) उसे अकुशल कर्मों से संबंधित पीड़ा और उदासी नहीं होती। (4) उसे अकुशल कर्मों से संबंधित सुख और आनंद नहीं होता। (5) उसे कुशल कर्मों से संबंधित पीड़ा और उदासी नहीं होती। भंते, जब भी कोई श्रेष्ठ शिष्य एकांतवास के आनंद (पीति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, उस समय उसमें ये पाँच बातें नहीं होतीं।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, जब भी [208] कोई श्रेष्ठ शिष्य एकांत के आनंद (पीति) में प्रवेश करता है और निवास करता है... [बुद्ध पूज्य सारिपुत्त के पूरे कथन को दोहराते हैं, यहाँ तक कि:] ... उस अवसर पर ये पाँच बातें उसमें नहीं घटित होतीं।"

---

177 व्यापार (वनिज्जा)

भिक्षुओं, एक गृहस्थ अनुयायी को इन पाँच व्यवसायों में संलग्न नहीं होना चाहिए। वे पाँच कौन से हैं? शस्त्रों का व्यापार, प्राणियों का व्यापार, मांस का व्यापार, मादक पदार्थों का व्यापार और विषों का व्यापार। एक गृहस्थ अनुयायी को इन पाँच व्यवसायों में संलग्न नहीं होना चाहिए।

---

178 राजा

(1) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि जब कोई व्यक्ति जीवन के विनाश का त्याग करता है और उससे दूर रहता है, तो राजा उसे इस प्रकार दूर रहने के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मार डालते हैं, कैद करते हैं, देश निकाला देते हैं, या उसके साथ जैसा भी अवसर की मांग हो वैसा करते हैं?"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"हे भिक्षुओं! मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। बल्कि [209] जब वे राजा को उसके बुरे कर्म की सूचना देते हुए कहते हैं, 'इस व्यक्ति ने किसी स्त्री या पुरुष का जीवन ले लिया है,' तब राजा उसे हत्या के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कैद करते हैं, देश निकाला देते हैं या उसके साथ जैसा भी व्यवहार करें, जैसा भी उस समय आवश्यक हो। क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"हमने यह देखा है, भंते, हमने इसके बारे में सुना है, और हम इसके बारे में [आने वाले समय में] सुनेंगे।"

(2) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि जब कोई व्यक्ति बिना दी गई वस्तु का त्याग कर उससे परहेज करता है, तो राजा उसे इस प्रकार परहेज करने के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कारावास में डालते हैं, देश निकाला देते हैं या उसके साथ आवश्यकतानुसार व्यवहार करते हैं?"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"अच्छे भिक्षुओं! मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। बल्कि जब वे राजा को उसके बुरे कर्म की सूचना देते हुए कहते हैं, 'इस व्यक्ति ने गाँव या जंगल से कुछ चुराया है,' तो राजा उसे चोरी के आरोप में गिरफ्तार करवा देते हैं और फिर उसे फाँसी दे देते हैं, कैद कर देते हैं, देश निकाला दे देते हैं या उसके साथ जैसा भी उचित हो, वैसा करते हैं। क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"हमने यह देखा है, भंते, हमने इसके बारे में सुना है, और हम इसके बारे में [आने वाले समय में] सुनेंगे।"

(3) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि जब कोई व्यक्ति यौन दुराचार का त्याग करता है और उससे दूर रहता है, तो राजा उसे इस प्रकार के दुराचार से दूर रहने के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कैद करते हैं, देश निकाला देते हैं या उसके साथ जैसा भी अवसर की मांग हो वैसा करते हैं?"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"हे भिक्षुओं! मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। [210] बल्कि जब वे राजाओं को उसके बुरे कर्मों की सूचना देते हुए कहते हैं, 'इस व्यक्ति ने किसी और की स्त्रियों और कन्याओं के साथ दुराचार किया है,' तब राजा उसे यौन दुराचार के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कारावास में डालते हैं, देश निकाला देते हैं, या उसके साथ जैसा भी उचित हो, वैसा करते हैं। क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"हमने यह देखा है, भंते, हमने इसके बारे में सुना है, और हम इसके बारे में [आने वाले समय में] सुनेंगे।"

(4) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि जब कोई व्यक्ति झूठे वचन का त्याग करता है और उससे दूर रहता है, तो राजा उसे झूठे वचन से दूर रहने के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मार डालते हैं, कैद कर लेते हैं, देश निकाला दे देते हैं या उसके साथ जैसा भी अवसर की मांग हो वैसा करते हैं?"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"हे भिक्षुओं! मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। बल्कि, जब वे राजा को उसके बुरे कर्मों की सूचना देते हुए कहते हैं, 'इस व्यक्ति ने झूठे वचनों से किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का विनाश किया है,' तब राजा उसे झूठे वचनों के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कारावास में डालते हैं, देश निकाला देते हैं या उसके साथ जैसा भी व्यवहार करना उचित समझते हैं, वैसा करते हैं। क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"हमने यह देखा है, भंते, हमने इसके बारे में सुना है, और हम इसके बारे में [आने वाले समय में] सुनेंगे।"

(5) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि जब कोई व्यक्ति आलस्य के आधार, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का त्याग कर उनसे परहेज करता है, तो राजा उसे इस प्रकार परहेज करने के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मृत्युदंड देते हैं, कैद करते हैं, देश निकाला देते हैं या उसके साथ आवश्यकतानुसार व्यवहार करते हैं?"

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"हे भिक्षुओं! मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। [211] बल्कि जब वे राजाओं को उसके बुरे कर्मों की सूचना देते हुए कहते हैं, 'इस व्यक्ति ने शराब, मदिरा और मादक पदार्थों के प्रभाव में आकर किसी स्त्री या पुरुष की जान ले ली है; या उसने किसी गाँव या जंगल से कुछ चुराया है; या उसने किसी दूसरे की स्त्री या कन्या के साथ दुराचार किया है; या उसने किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को झूठे वचनों से बर्बाद कर दिया है,' तब राजा उसे आलस्य का कारण बनने वाले शराब, मदिरा और मादक पदार्थों के सेवन के आरोप में गिरफ्तार करवाते हैं और फिर उसे मार डालते हैं, कैद कर देते हैं, देश निकाला दे देते हैं या उसके साथ जैसा भी उचित हो वैसा करते हैं। क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"हमने यह देखा है, भंते, हमने इसके बारे में सुना है, और हम इसके बारे में [आने वाले समय में] सुनेंगे।"

---

179 ए लेमैन (गिही सं. गृही)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका अपने पाँच सौ अनुयायियों के साथ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "हे सारिपुत्त, तुम्हें यह जानना चाहिए कि कोई भी श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ, जिसके कर्म पाँच प्रशिक्षण नियमों द्वारा नियंत्रित हों और जो बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, उच्चतर मन से संबंधित चार सुखद प्रत्यक्ष निवास प्राप्त कर ले, यदि चाहे तो अपने बारे में यह कह सकता है: 'मैंने नरक, पशु लोक और व्यथित आत्माओं के लोक से मुक्ति पा ली है; मैंने दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्ति पा ली है; मैं सात जन्मों का पथ-प्रदर्शक (सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञान की ओर अग्रसर हूँ।'"

(1) "वे पाँच प्रशिक्षण नियम क्या हैं जिनके द्वारा उसके कार्यों को नियंत्रित किया जाता है? [212] यहाँ, सारिपुत्त, एक श्रेष्ठ शिष्य, जीवन के विनाश से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज़ करता है। उसके कार्यों को इन पाँच प्रशिक्षण नियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

"वे चार सुखद प्रत्यक्ष निवास कौन से हैं जो उच्चतर मन से संबंधित हैं, जिन्हें वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त कर लेता है?..."

(2) "यहाँ, श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' यह उच्च मन से संबंधित पहला सुखद प्रत्यक्ष निवास है, जिसे उसने अशुद्ध मन की शुद्धि, अपवित्र मन के शुद्धिकरण के लिए प्राप्त किया है।"

(3) "फिर, श्रेष्ठ शिष्य धम्म में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।' यह दूसरा सुखद दृश्यमान निवास है जो उच्च मन से संबंधित है, जिसे उसने अशुद्ध मन की शुद्धि, अपवित्र मन के शुद्धिकरण के लिए प्राप्त किया है।"

(4) "फिर, श्रेष्ठ शिष्य संघ में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।' यह उच्च मन से संबंधित तीसरा सुखद दृश्य निवास है, जिसे उसने अशुद्ध मन की शुद्धि के लिए, अपवित्र मन की सफाई के लिए प्राप्त किया है। [213]

(5) "पुनः, श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठों द्वारा प्रिय, अटूट, दोषरहित, निर्मल, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला सद्‌गुणी आचरण होता है। यह उच्च मन से संबंधित चौथा सुखद दृश्य निवास है, जिसे उसने अशुद्ध मन की शुद्धि और अपवित्र मन के शुद्धिकरण के लिए प्राप्त किया है।"

"ये चार सुखद प्रत्यक्ष निवास हैं जो उच्च मन से संबंधित हैं, जिन्हें वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त करता है।"

"हे सारिपुत्त, तुम्हें यह जानना चाहिए कि कोई भी श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ, जिसके कर्म इन पाँच प्रशिक्षण नियमों द्वारा नियंत्रित हों और जो बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से उच्च मन से संबंधित इन चार सुखद प्रत्यक्ष निवासों को प्राप्त कर ले, यदि चाहे तो अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैंने नरक, पशु लोक और पीड़ित आत्माओं के लोक से मुक्ति पा ली है; मैंने दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्ति पा ली है; मैं सात जन्मों का मार्ग प्रशस्त करने वाला (सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ।'"

नरकों के खतरे को देखकर,

व्यक्ति को बुरे कर्मों से बचना चाहिए; और

जिसने श्रेष्ठ धम्म का मार्ग अपनाया है,

बुद्धिमान व्यक्ति को उनसे बचना चाहिए।

अपनी पूरी क्षमता से,

किसी को भी जीवित प्राणी को चोट नहीं पहुंचानी चाहिए;

जानबूझकर झूठ नहीं बोलना चाहिए;

जो चीज नहीं दी गई है उसे नहीं लेना चाहिए।

व्यक्ति को अपनी पत्नियों से संतुष्ट रहना चाहिए, [1174]

और दूसरों की पत्नियों से दूर रहना चाहिए। [1175]

व्यक्ति को शराब और मादक पेय नहीं पीना चाहिए,

जो मानसिक भ्रम पैदा करते हैं।

हमें बुद्ध का स्मरण करना चाहिए

और धम्म पर चिंतन करना चाहिए।

हमें एक परोपकारी मन विकसित करना चाहिए,

जो हमें देवलोक की ओर ले जाता है।

जब दान देने योग्य वस्तुएँ उपलब्ध हों, तो

ज़रूरतमंद और पुण्य चाहने वाले व्यक्ति के लिए 1176

भेंट बहुत बड़ी हो जाती है

यदि पहले पवित्र लोगों को दी जाए।

मैं पवित्र जनों का वर्णन करूँगा,

सारिपुत्त, ध्यान से सुनो। [1177]

किसी भी प्रकार के पशुओं में,

चाहे वे काले, सफेद, लाल, सुनहरे,

चित्तीदार, एकसमान या कबूतर के रंग के हों,

पालतू बैल जन्म लेता है,

जो भार वहन कर सकता है,

बलवान होता है और अच्छी गति से आगे बढ़ता है।

वे बोझ केवल उसी पर डालते हैं;

उन्हें उसके रंग की चिंता नहीं होती।

इसी प्रकार, मनुष्यों में भी,

किसी भी प्रकार के पुनर्जन्म में—

क्षति, ब्राह्मण, वेस,

शुद्ध, चांडल या सफाईकर्मियों में

—किसी भी प्रकार के लोगों में,

अच्छे व्यवहार वाला पालतू पुरुष जन्म लेता है:

जो धम्म में दृढ़, आचरण में गुणी,

वाणी में सत्यवादी, नैतिक लज्जा से युक्त;

जिसने पुनर्जन्म और मृत्यु का त्याग कर दिया है,

ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में परिपूर्ण है,

बोझ

से मुक्त, अनासक्त, जिसने अपना कार्य पूरा कर लिया है, दोषरहित है;

जो संसार की सभी चीजों से परे जाकर

अनासक्ति के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर चुका है: उस निर्मल खेत में बोया गया

अर्पण वास्तव में विशाल होता है ।

अज्ञानी, बुद्धिहीन

, मंदबुद्धि, अज्ञानी लोग

संतों की सेवा नहीं करते

, बल्कि अपना दान बाहर के लोगों को दे देते हैं।

परन्तु जो संत,

ऋषि माने जाने वाले बुद्धिमानों की सेवा करते हैं,

और जिनकी सुगत (भगवान बुद्ध) में आस्था

दृढ़ और दृढ़ है,

वे देवलोक जाते हैं

या अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं।

क्रमिक रूप से प्रगति करते हुए,

वे बुद्धिमान लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं।

---

180 गावेसी

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे। तभी राजमार्ग पर चलते हुए उन्हें एक स्थान पर साल के पेड़ों का एक विशाल वन दिखाई दिया। उन्होंने राजमार्ग छोड़कर वन में प्रवेश किया और एक निश्चित स्थान पर पहुँचकर मुस्कुराए।

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) क्यों मुस्कुराए? तथागत (बुद्ध) बिना किसी कारण के नहीं मुस्कुराते।" तब पूज्य आनंद [215] ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे भंते, भगवान (बुद्ध) क्यों मुस्कुराए? तथागत (बुद्ध) बिना किसी कारण के नहीं मुस्कुराते।"

"आनंद, अतीत में इस स्थान पर एक समृद्ध, खुशहाल और घनी आबादी वाला नगर था, जो लोगों से भरा रहता था। अब भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप, उस नगर पर निर्भर रहते थे। भगवान (बुद्ध) कश्यप का एक गृहस्थ शिष्य था जिसका नाम गवेशी था, जिसने सद्गुणों का पालन नहीं किया था। और गवेशी ने पाँच सौ गृहस्थ शिष्यों को शिक्षा और मार्गदर्शन दिया था, जिन्होंने भी सद्गुणों का पालन नहीं किया था।"

(1) "तब, हे आनंद, गवेशी के मन में यह विचार आया: 'मैं इन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों का उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हूँ, फिर भी न तो मैंने स्वयं और न ही इन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों ने सद्गुणों का पालन किया है। इस प्रकार हम सब एक ही स्तर पर हैं, और मैं उनसे ज़रा भी बेहतर नहीं हूँ। मुझे उनसे आगे निकलना चाहिए।'

फिर गवेसी पाँच सौ अनुयायियों के पास गए और उनसे कहा, 'आज से तुम मुझे सदाचारी आचरण का पालन करने वाला समझो।' तब उन पाँच सौ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: 'गुरु गवेसी हमारे उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हैं। अब गुरु गवेसी सदाचारी आचरण का पालन करेंगे। तो हम भी ऐसा क्यों न करें?'

तब उन पांच सौ अनुयायियों ने गवेसी के पास जाकर उनसे कहा: 'आज से गुरु गवेसी हमें सदाचारी आचरण का पालन करने वाला समझें।'

(2) "तब, आनंद, गृहस्थ अनुयायी गवेशी के मन में यह विचार आया: 'मैं इन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों का उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हूँ। अब मैं सद्गुणों का पालन कर रहा हूँ, और ये पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भी ऐसा ही कर रहे हैं। [-216] इस प्रकार हम सब एक ही स्तर पर हैं, और मैं उनसे ज़रा भी बेहतर नहीं हूँ। मुझे उनसे आगे निकल जाना चाहिए।'

तब गवेसी पाँच सौ अनुयायियों के पास गए और उनसे कहा: 'आज से तुम मुझे ब्रह्मचारी समझो, अलग रहो, यौन संबंध से परहेज करो, जो आम आदमी का नियम है।' तब उन पाँच सौ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: 'गुरु गवेसी हमारे उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हैं। अब गुरु गवेसी ब्रह्मचारी रहेंगे, अलग रहेंगे, यौन संबंध से परहेज करेंगे, जो आम आदमी का नियम है। तो हम भी ऐसा क्यों न करें?'

"तब वे पाँच सौ अनुयायी गवेसी के पास पहुँचे और उनसे कहा: 'आज से गुरु गवेसी हमें ब्रह्मचारी, अलग रहने वाले, यौन संबंध से परहेज करने वाले, आम आदमी के अभ्यास के अनुसार मानें।'

(3) "तब, आनंद, गृहस्थ अनुयायी गवेशी के मन में यह विचार आया: 'मैं इन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों का उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हूँ। मैं स्वयं सद्गुणों का पालन कर रहा हूँ, और ये पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भी ऐसा ही कर रहे हैं। मैं ब्रह्मचारी हूँ, एकांत में रहता हूँ, यौन संबंध से परहेज करता हूँ, जो आम आदमी का आचरण है, और ये पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भी ऐसा ही कर रहे हैं। इस प्रकार हम सब एक ही स्तर पर हैं, और मैं उनसे जरा भी बेहतर नहीं हूँ। मुझे उनसे श्रेष्ठ बनना चाहिए।'

फिर गवेसी पाँच सौ अनुयायियों के पास गए और उनसे कहा, 'आज से तुम मुझे दिन में एक बार भोजन करने वाला, रात का भोजन न करने वाला और उचित समय के बाहर भोजन न करने वाला समझो।' तब उन पाँच सौ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: 'गुरु गवेसी हमारे उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हैं। अब गुरु गवेसी दिन में एक बार भोजन करते हैं, रात का भोजन नहीं करते और उचित समय के बाहर भोजन नहीं करते। तो हम भी ऐसा क्यों न करें?'

"तब वे पाँच सौ अनुयायी गवेसी के पास पहुँचे और [217] उनसे कहा: 'आज से गुरु गवेसी हमें दिन में एक बार भोजन करने वाला, रात के भोजन से परहेज करने वाला और उचित समय के बाहर भोजन न करने वाला समझें।'

(4) "तब, आनंद, गृहस्थ अनुयायी गवेशी के मन में यह विचार आया: 'मैं इन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों का उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हूँ। मैं सदाचारी आचरण का पालन कर रहा हूँ, और ये पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भी ऐसा ही कर रहे हैं। मैं ब्रह्मचारी हूँ, एकांत में रहता हूँ, यौन संबंध से परहेज़ करता हूँ, जो आम आदमी का आचरण है, और ये पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भी ऐसा ही कर रहे हैं। मैं दिन में एक बार भोजन करता हूँ, रात्रि भोजन नहीं करता, उचित समय के बाहर भोजन नहीं करता, और ये पाँच सौ गृहस्थ भी ऐसा ही करते हैं। इस प्रकार हम सब एक ही स्तर पर हैं, और मैं उनसे ज़रा भी बेहतर नहीं हूँ। मुझे उनसे श्रेष्ठ बनना चाहिए।'

तब गवेशी भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के पास गए और उनसे कहा: 'भंते, क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अधीन संन्यास लेने और पूर्ण दीक्षा प्राप्त करने की अनुमति मिल सकती है?' गृहस्थ अनुयायी गवेशी ने भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के मार्गदर्शन में भिक्षु दीक्षा और पूर्ण दीक्षा प्राप्त की। पूर्ण दीक्षा के शीघ्र ही, एकांतवास में, एकांत में, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, भिक्षु गवेशी ने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को स्वयं अनुभव किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं, और इस जीवन में प्रवेश करके वे इसमें निवास करने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी जन्म-मृत्यु का कोई आरोहण नहीं है।' और भिक्षु गवेशी अरहंतों में से एक बन गए।

"तब, आनंद, उन पाँच सौ गृहस्थ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: 'गुरु गवेशी हमारे उपकारक, नेता और मार्गदर्शक हैं। अब गुरु गवेशी ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर लिया है। तो हम भी ऐसा क्यों न करें?'"

तब वे पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के पास पहुँचे और उनसे कहा: 'भंते, क्या हम भगवान (बुद्ध) के अधीन संन्यास ग्रहण और पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर सकते हैं?' तब वे पाँच सौ गृहस्थ अनुयायी भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के अधीन संन्यास ग्रहण और पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर चुके थे।

(5) "तब, हे आनंद, भिक्षु गवेशी के मन में यह विचार आया: 'मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, मुक्ति के अतुलनीय आनंद को प्राप्त कर लेता हूँ। काश, ये पाँच सौ भिक्षु भी इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, मुक्ति के अतुलनीय आनंद को प्राप्त कर पाते!' तब, हे आनंद, प्रत्येक भिक्षु एकांत में रहकर, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, थोड़े ही समय में उन पाँच सौ भिक्षुओं ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से, इसी जीवन में, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस अतुलनीय लक्ष्य को स्वयं अनुभव कर लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।'

"इस प्रकार, आनंद, गवेशी के नेतृत्व में उन पाँच सौ भिक्षुओं ने उत्तरोत्तर उच्चतर और अधिक उत्कृष्ट मार्गों का अनुसरण करते हुए मुक्ति के अतुलनीय आनंद को प्राप्त किया। 178 अतः, आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: उत्तरोत्तर उच्चतर और अधिक उत्कृष्ट मार्गों का अनुसरण करते हुए, हम मुक्ति के अतुलनीय आनंद को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार, आनंद, तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।" [219]

चतुर्थ. वनवासी (अरन्नवग्गो सं. अरण्य-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

181 वनवासी (अरन्निका)

भिक्षुओं, वनवास में रहने वाले पाँच प्रकार के होते हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) वह जो अपनी सुस्ती और मूर्खता के कारण वनवास में जाता है; (2) वह जो बुरी इच्छाओं के कारण, कामवासना से प्रेरित होकर वनवास में जाता है; (3) वह जो पागल और मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण वनवास में जाता है; (4) वह जो यह सोचकर वनवास में जाता है: 'बुद्धों और बुद्धों के शिष्यों ने इसकी प्रशंसा की है'; (5) और वह जो इच्छाओं की कमी, संतोष, विकारों के निवारण, एकांत और सादगी के लिए वनवास में जाता है। ये पाँच प्रकार के वनवास में रहने वाले हैं। जो इच्छाओं की कमी, संतोष, विकारों के निवारण, एकांत और सादगी के लिए वनवास में जाता है, वही सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा और सबसे उत्कृष्ट है। इन पांच प्रकार के वनवासियों में सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ।

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, दही, मक्खन, घी और मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो व्यक्ति साधारण इच्छाओं के लिए वनवास करता है, वह इन पाँचों प्रकार के वनवासियों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा, सबसे उत्कृष्ट और सबसे उत्तम है।"

182-190 चिथड़े-मटके वस्त्र आदि धारण करने वाले (सिवारा)

भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के वस्त्रधारी हैं 1180 . . . ये पाँच जो वृक्ष की तलहटी में निवास करते हैं . . . [220] — ये पाँच जो श्मशान भूमि में निवास करते हैं . . . ये पाँच जो खुले आकाश में निवास करते हैं . . , ये पाँच जो ध्यानमग्न रहने का अभ्यास करते हैं . . . ये पाँच जो किसी भी पलंग का उपयोग करने का अभ्यास करते हैं . . . ये पाँच जो एक सत्र का अभ्यास करते हैं . . . ये पाँच जो बाद में भोजन न करने का अभ्यास करते हैं . . . ये पाँच जो केवल भिक्षापात्र में भोजन करने का अभ्यास करते हैं। वे पाँच कौन से हैं? (1) वह जो अपनी सुस्ती और मूर्खता के कारण केवल भिक्षापात्र में भोजन करने का अभ्यास करता है; (2) वह जो बुरी इच्छाओं के कारण, कामवासना से

प्रेरित होकर केवल भिक्षापात्र में भोजन करने का अभ्यास करता है; (3) वह जो (4) जो पागल और मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करता है; (4) जो यह सोचकर केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करता है: 'बुद्धों और बुद्धों के शिष्यों ने इसकी प्रशंसा की है'; (5) और जो इच्छाओं की कमी, संतोष, विकारों के निवारण, एकांत और सादगी के लिए केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करता है। ये पाँचों भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करने का अभ्यास करते हैं। जो इच्छाओं की कमी और सादगी के लिए केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करता है, वह इन पाँचों में सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट, सर्वोच्च और उत्तम है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो व्यक्ति केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करने का अभ्यास करता है, इच्छाओं की कमी के लिए... सादगी के लिए, वह इन पाँचों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे उत्तम, सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम है जो केवल भिक्षापात्र में रखा भोजन ग्रहण करने का अभ्यास करते हैं।"

वी. ब्राह्मण

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

191 सोना

"भिक्षुओं, ये पाँच प्राचीन ब्राह्मण प्रथाएँ हैं जो अब कुत्तों में तो देखी जाती हैं लेकिन ब्राह्मणों में नहीं। वे पाँच कौन सी हैं?"

(1) "पूर्वकाल में, ब्राह्मण केवल ब्राह्मण स्त्रियों के साथ ही संभोग करते थे, गैर-ब्राह्मण स्त्रियों के साथ नहीं। परन्तु अब ब्राह्मण, ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण दोनों स्त्रियों के साथ संभोग करते हैं। यद्यपि कुत्ते अब भी केवल मादा कुत्तों के साथ ही संभोग करते हैं, अन्य मादा पशुओं के साथ नहीं। यह पहली प्राचीन ब्राह्मण प्रथा है जो अब कुत्तों में तो देखी जाती है, लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।"

(2) "पहले ब्राह्मण केवल माहवारी के समय ही ब्राह्मण स्त्रियों के साथ संभोग करते थे, अमावस्या के समय नहीं। परन्तु अब [222] ब्राह्मण माहवारी और अमावस्या दोनों में ही ब्राह्मण स्त्रियों के साथ संभोग करते हैं। कुत्ते अब भी मादा कुत्तों के साथ केवल माहवारी के समय ही संभोग करते हैं, अमावस्या के समय नहीं। यह दूसरी प्राचीन ब्राह्मण प्रथा है जो अब कुत्तों में तो देखी जाती है, लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।"

(3) "पहले ब्राह्मण, ब्राह्मण स्त्रियों का व्यापार नहीं करते थे, और वे केवल आपसी स्नेह के कारण ही सहवास करते थे, ऐसा वे परिवार की निरंतरता के लिए करते थे। 1181 परन्तु अब ब्राह्मण, ब्राह्मण स्त्रियों का व्यापार करते हैं, और वे आपसी स्नेह के साथ-साथ बिना स्नेह के भी सहवास करते हैं, ऐसा वे परिवार की निरंतरता के लिए करते हैं। 1182 कुत्ते, अब भी मादा कुत्तों का व्यापार नहीं करते, और वे केवल आपसी स्नेह के कारण ही सहवास करते हैं, ऐसा वे परिवार की निरंतरता के लिए करते हैं। यह तीसरी प्राचीन ब्राह्मण प्रथा है जो अब कुत्तों में तो देखी जाती है, लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।"

(4) "पहले ब्राह्मण धन, अनाज, चांदी और सोना जमा नहीं करते थे। लेकिन अब ब्राह्मण धन, अनाज, चांदी और सोना जमा करते हैं। कुत्ते अब भी धन, अनाज, चांदी और सोना जमा नहीं करते। यह चौथी प्राचीन ब्राह्मण प्रथा है जो अब कुत्तों में तो देखी जाती है लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।"

(5) "पहले ब्राह्मण शाम को अपने रात्रि भोज के लिए और सुबह अपने रात्रि भोज के लिए भिक्षा मांगने जाते थे। लेकिन अब ब्राह्मण पेट भरकर जितना चाहें उतना खाते हैं और फिर बचा हुआ भोजन अपने साथ ले जाते हैं। कुत्ते अब भी शाम को अपने रात्रि भोज के लिए

और सुबह अपने रात्रि भोज के लिए भोजन मांगने जाते हैं। यह पाँचवीं प्राचीन ब्राह्मण प्रथा है जो अब कुत्तों में तो देखी जाती है लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।"

"ये, भिक्षुओं, पाँच प्राचीन ब्राह्मण प्रथाएँ हैं जो अब कुत्तों में तो देखी जाती हैं लेकिन ब्राह्मणों में नहीं।" [223]

192 डोना ब्राह्मण

तब ब्राह्मण दोना भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले: "मैंने सुना है गुरु गौतम: 'तपस्वी गौतम वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था से पीड़ित, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं।' 1183 यह सत्य है, क्योंकि गुरु गौतम वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था से पीड़ित, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं। यह उचित नहीं है। गुरु गौतम।"

"डोना, क्या तुम भी खुद को ब्राह्मण होने का दावा करती हो?"

हे गुरु गौतम, यदि किसी के बारे में सही कहा जा सके: 'वह अपने माता-पिता दोनों ओर से श्रेष्ठ ब्राह्मण है, शुद्ध वंश का है, सातवीं पीढ़ी तक जन्म के लिहाज से निर्दोष और निष्कलंक है; वह भजनों का पाठ करने वाला और उनका संरक्षक है, तीनों वेदों का ज्ञाता है, उनके शब्दकोशों, अनुष्ठानों, ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति के साथ-साथ इतिहास का भी ज्ञाता है; भाषा विज्ञान और व्याकरण में निपुण है, प्राकृतिक दर्शन और महान पुरुष के लक्षणों में पूर्ण रूप से पारंगत है' - तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है। क्योंकि मैं, गुरु गौतम, अपने माता-पिता दोनों ओर से श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ, शुद्ध वंश का हूँ, सातवीं पीढ़ी तक जन्म के लिहाज से निर्दोष और निष्कलंक हूँ। मैं भजनों का पाठ करने वाला और उनका संरक्षक हूँ, तीनों वेदों का ज्ञाता है, उनके शब्दकोशों, अनुष्ठानों, ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति के साथ-साथ इतिहास का भी ज्ञाता हूँ; भाषा विज्ञान और व्याकरण में निपुण हूँ। भाषाविज्ञान और व्याकरण में मुझे पूर्ण ज्ञान है, प्राकृतिक दर्शन में भी मुझे महारत हासिल है और एक महान व्यक्ति के लक्षण भी मुझे ज्ञात हैं।"

"डोना, ब्राह्मणों में प्राचीन [224] ऋषि - अर्थात् अठक, वामक, वामदेव (देवदूत/भगवान), वेसमित्त, यमतग्गी, अंगिरस, भारद्वाज, वसेत्था, कस्सपा और भागु - भजनों के रचयिता और रचनाकार थे, और उन्हीं के प्राचीन भजन, जिनका पूर्व में गायन, प्रचार और संकलन किया गया था, आज भी ब्राह्मण गाते और दोहराते हैं, बोले गए शब्दों को दोहराते हैं, पढ़े गए शब्दों का पाठ करते हैं और सिखाए गए शब्दों का उपदेश देते हैं। उन प्राचीन ऋषियों ने ब्राह्मणों के पाँच प्रकारों का वर्णन किया है: ब्रह्मा के समान, देव (देवदूत/भगवान) के समान, सीमा के भीतर रहने वाला, सीमा पार करने वाला, और पाँचवाँ प्रकार ब्राह्मण का चांडल है। डोना, आप इनमें से कौन से हैं?"

"हम इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों को नहीं जानते। हे गुरु गौतम, हम केवल 'ब्राह्मण' शब्द को ही जानते हैं। कृपया गुरु गौतम मुझे धम्म इस प्रकार सिखाएं कि मैं इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों को जान सकूं।"

"तो सुनो, ब्राह्मण, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

“जी जी,” ब्राह्मण डोना ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "और हे डोना, ब्राह्मण ब्रह्मा के समान कैसे है? यहाँ, ब्राह्मण अपने माता-पिता दोनों ओर से उत्तम कुल का है, शुद्ध वंश का है, और सातवीं पीढ़ी तक जन्म के संबंध में निर्दोष और दोषरहित है। वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करता है, भजनों का अध्ययन करता है। फिर वह अपने गुरु के लिए केवल धम्म के अनुसार ही, न कि धम्म के विरुद्ध, गुरु का शुल्क मांगता है। और हे डोना, उस स्थिति में धम्म क्या है? [225] न तो कृषि से, न व्यापार से, न पशुपालन से, न धनुर्विद्या से, न राजा की सेवा से, न किसी विशेष शिल्प से, बल्कि केवल भिक्षापात्र का अनादर किए बिना भिक्षा मांगने से। अपने गुरु को गुरु का शुल्क अर्पित करने के बाद, वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाता है, गेरुए वस्त्र धारण करता है, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। 1185 जब वह चला जाता है संन्यासी जीवन में प्रवेश करने के बाद, वह प्रेममय करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहते हैं, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेममय करुणा (मेट्टा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, दुर्भावना रहित मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हैं। वह करुणा

से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहते हैं... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से... समभाव से परिपूर्ण मन से, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, दुर्भावना रहित मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हैं। इन चार दिव्य निवासों को विकसित करने के बाद, 1186 शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक शुभ स्थान, ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्मा के समान है।

(2) "और हे डोना, ब्राह्मण किस प्रकार देवता के समान है? यहाँ ब्राह्मण अपने माता-पिता दोनों ओर से उत्तम कुल का होता है, शुद्ध वंश का होता है, और सातवीं पीढ़ी तक पुनर्जन्म के संबंध में निर्दोष और दोषरहित होता है। वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है और भजनों का अध्ययन करता है। फिर वह अपने गुरु के लिए केवल धम्म के अनुसार ही गुरु-दावा मांगता है, न कि धम्म के विरुद्ध। और हे डोना, उस स्थिति में धम्म क्या है? न कृषि द्वारा, न व्यापार द्वारा, न पशुपालन द्वारा, न धनुर्विद्या द्वारा, न राजा की सेवा द्वारा, न किसी विशेष शिल्प द्वारा, बल्कि केवल भिक्षापात्र का अनादर किए बिना भिक्षा मांगने द्वारा। [226] अपने गुरु को गुरु-दावा देने के बाद, वह केवल धम्म के अनुसार ही पत्नी की तलाश करता है, न कि धम्म के विरुद्ध। और हे डोना, उस स्थिति में धम्म क्या है? खरीद-फरोख्त में, वह केवल जल छिड़कने से प्राप्त ब्राह्मण स्त्री से ही संबंध बनाता है। वह केवल ब्राह्मण स्त्री से ही संबंध बनाता है, क्षत्रिय, वेस, शुद्ध या चांडाल स्त्री से नहीं, न ही शिकारी, बांस का काम करने वाले, रथ बनाने वाले या फूल बीनने वाले परिवार की स्त्री से। वह गर्भवती स्त्री से, स्तनपान कराने वाली स्त्री से या असमय स्त्री से संबंध नहीं बनाता।

और क्यों? डोना, क्या ब्राह्मण गर्भवती स्त्री के साथ संभोग नहीं करता? क्योंकि, यदि वह गर्भवती स्त्री के साथ संभोग करे, तो बालक या कन्या अत्यधिक गंदगी में जन्म लेगा; इसलिए वह गर्भवती स्त्री के साथ संभोग नहीं करता। और वह स्तनपान कराने वाली स्त्री के साथ संभोग क्यों नहीं करता? क्योंकि, यदि वह स्तनपान कराने वाली स्त्री के साथ संभोग करे, तो बालक या कन्या उस अशुद्ध पदार्थ को पी लेगा; 1187 इसलिए वह स्तनपान कराने वाली स्त्री के साथ संभोग नहीं करता। वह असमय स्त्री के साथ संभोग क्यों नहीं करता? क्योंकि उसकी ब्राह्मण पत्नी कामुक सुख, मनोरंजन और कामुक आनंद के लिए नहीं, बल्कि केवल संतानोत्पत्ति के लिए होती है। 1188 जब वह यौन क्रिया में संलग्न हो जाता है, तो वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र पहन लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। जब वह संन्यासी जीवन में चला जाता है, कामुक सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर... वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... [जैसा कि 5:14 में है]... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था)। इन चारों ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को विकसित करने के बाद, [227] शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार एक ब्राह्मण एक देव (देवदूत/भगवान) के समान है।

(3) "और हे डोना, सीमा के भीतर रहने वाला ब्राह्मण कौन है? यहाँ, ब्राह्मण अपने माता-पिता दोनों ओर से उत्तम कुल का, शुद्ध वंश का, सातवीं पीढ़ी तक जन्म से निर्दोष और बेदाग होता है। वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है। ... [उपरोक्त से नीचे तक] ... क्योंकि उसकी ब्राह्मण पत्नी कामुक सुख, मनोरंजन या कामुक आनंद के लिए नहीं, बल्कि केवल संतानोत्पत्ति के लिए सेवा करती है। जब वह यौन क्रिया में संलग्न होता है, तो अपने पुत्रों के प्रति आसक्ति के कारण वह अपनी संपत्ति पर ही स्थिर रहता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में नहीं जाता। वह प्राचीन ब्राह्मणों की सीमा पर ही रहता है, परन्तु उसका उल्लंघन नहीं करता। क्योंकि वह प्राचीन ब्राह्मणों की सीमा पर ही रहता है, परन्तु उसका उल्लंघन नहीं करता, इसलिए उसे सीमा के भीतर रहने वाला ब्राह्मण कहा जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण वह है जो सीमा के भीतर रहता है। सीमा के भीतर।

(4) "और हे डोना, सीमा पार करने वाला ब्राह्मण कैसा होता है? [228] यहाँ, ब्राह्मण अपने माता-पिता दोनों की ओर से उत्तम कुल का होता है, शुद्ध वंश का होता है, और सातवीं पीढ़ी तक जन्म से निर्दोष और दोषरहित होता है। वह अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है और भजनों का अध्ययन करता है। फिर वह अपने गुरु के लिए केवल धम्म के अनुसार ही, न कि धम्म के विरुद्ध, गुरु का शुल्क मांगता है। और हे डोना, उस स्थिति में धम्म क्या है? न कृषि से, न व्यापार से, न पशुपालन से, न धनुर्विद्या से, न राजा की सेवा से, न किसी विशेष शिल्प से, बल्कि केवल भिक्षापात्र का अनादर किए बिना भिक्षा मांगने से। अपने गुरु को गुरु का शुल्क अर्पित करने के बाद, वह धम्म के अनुसार और धम्म के विरुद्ध दोनों ही तरह से पत्नी की तलाश करता है। [वह पत्नी प्राप्त करता है] खरीद-फरोख्त के साथ-साथ जल चढ़ाने से प्राप्त ब्राह्मण स्त्री से वह संबंध बनाता है। वह ब्राह्मण स्त्री, क्षत्रिय स्त्री, वेस स्त्री, शुद्ध स्त्री, चांडला स्त्री और शिकारी, बांस श्रमिक, रथ निर्माता या फूल संग्राहक परिवार की स्त्री से संबंध बनाता है। वह गर्भवती स्त्री, स्तनपान

कराने वाली स्त्री, माहवारी में आई स्त्री और माहवारी से बाहर आई स्त्री से भी संबंध बनाता है। उसकी ब्राह्मण पत्नियाँ कामुक सुख, मनोरंजन और कामुक आनंद के साथ-साथ संतानोत्पत्ति के लिए भी उसकी सेवा करती हैं। 1189 वह प्राचीन ब्राह्मणों की सीमा पर नहीं रुकता बल्कि उसका उल्लंघन करता है। चूंकि वह प्राचीन ब्राह्मणों की सीमा पर नहीं रुकता बल्कि उसका उल्लंघन करता है, इसलिए उसे सीमा पार करने वाला ब्राह्मण कहा जाता है। इस प्रकार सीमा पार करने वाला ब्राह्मण कहलाता है।

(5) "और हे डोना, क्या ब्राह्मण किसी ब्राह्मण का चांडाल होता है? यहाँ, ब्राह्मण अपने माता-पिता दोनों ओर से उत्तम कुल का होता है, शुद्ध वंश का होता है, और सातवीं पीढ़ी तक जन्म के लिहाज से निर्दोष और दोषरहित होता है। वह [229] अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है, और भजनों का अध्ययन करता है। फिर वह अपने गुरु के लिए धर्म (मार्ग) के अनुसार और धर्म के विपरीत दोनों तरीकों से गुरु का शुल्क वसूलता है—कृषि द्वारा, व्यापार द्वारा, पशुपालन द्वारा, धनुर्विद्या द्वारा, राजा की सेवा द्वारा, किसी विशेष शिल्प द्वारा, और केवल भिक्षापात्र का अनादर किए बिना भिक्षा मांगने से ही नहीं। अपने गुरु को गुरु का शुल्क अर्पित करने के बाद, वह धर्म के अनुसार और धर्म के विपरीत दोनों तरीकों से पत्नी की तलाश करता है। [वह पत्नी प्राप्त करता है] खरीद-फरोख्त द्वारा भी और जल डालकर प्राप्त ब्राह्मण स्त्री से भी। वह ब्राह्मण स्त्री, क्षत्रिय स्त्री, वेस स्त्री, शुद्ध स्त्री, चांडाल स्त्री और शिकारी, बांस का काम करने वाली, रथ बनाने वाली या फूल बीनने वाली स्त्री के साथ संबंध बनाता है। वह गर्भवती स्त्री, स्तनपान कराने वाली स्त्री, माहवारी वाली स्त्री और माहवारी के बाद वाली स्त्री के साथ भी संबंध बनाता है। उसकी ब्राह्मण पत्नी कामुक सुख, मनोरंजन और कामुक आनंद के साथ-साथ संतानोत्पत्ति के लिए भी उसकी सेवा करती है। वह हर तरह के काम करके अपना जीवन यापन करता है। ब्राह्मण उससे कहते हैं, 'हे महोदय, ब्राह्मण होने का दावा करते हुए आप हर तरह के काम करके अपना जीवन यापन क्यों करते हैं?' वह उन्हें उत्तर देता है, 'जैसे अग्नि शुद्ध और अशुद्ध दोनों वस्तुओं को जलाकर अपवित्र नहीं होती, वैसे ही, महोदय, यदि कोई ब्राह्मण हर तरह के काम करके अपना जीवन यापन करता है, तो वह अपवित्र नहीं होता।' क्योंकि वह हर तरह के काम करके जीविका कमाता है, इसलिए इस ब्राह्मण को एक ब्राह्मण का चांडाल कहा जाता है। इसी प्रकार एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का चांडाल होता है।

"डोना, ब्राह्मणों में प्राचीन ऋषि—अर्थात् अत्तक, वामक, वामदेव (देवदूत/देवता), वेसमित्त, यमतग्गी, अंगिरस, भारद्वाज, [230] वसेत्थ, कस्सपा और भगु— इन भजनों के रचयिता और रचनाकार थे, और उन्हीं के प्राचीन भजन, जिनका पूर्व में गायन, प्रचार और संकलन किया गया था, आज भी ब्राह्मण गाते और दोहराते हैं, बोले गए शब्दों को दोहराते हैं, पढ़े गए शब्दों का पाठ करते हैं और सिखाए गए शब्दों का उपदेश देते हैं। उन प्राचीन ऋषियों ने ब्राह्मणों के पाँच प्रकारों का वर्णन किया है: ब्रह्मा के समान, देव (देवदूत/देवता) के समान, सीमा के भीतर रहने वाला, सीमा पार करने वाला, और पाँचवाँ ब्राह्मण चांडाल। डोना, आप इनमें से कौन से हैं?"

"ऐसा होने पर, हे गुरु गौतम, हम तो ब्राह्मण के चांडाल के भी योग्य नहीं हैं। हे गुरु गौतम, उत्कृष्ट! हे गुरु गौतम, उत्कृष्ट! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

---

193 संगरवा [1191]

तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

"गुरु गौतम, ऐसा क्यों होता है कि कभी-कभी लंबे समय तक जपे गए भजन भी याद नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिन्हें कभी नहीं जपा गया? ऐसा क्यों होता है कि कभी-कभी लंबे समय तक नहीं जपे गए भजन भी याद आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिन्हें कभी जपा गया है?"

(भजन क्यों याद नहीं रहते?)

(1) "ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति कामवासना (राग) से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है, और वह उत्पन्न कामवासना (राग) से मुक्ति के वास्तविक मार्ग को नहीं समझता, 1192 उस समय वह अपने, दूसरों और दोनों के हित को वास्तविक रूप से नहीं जान पाता। 1193 तब

तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय तक पाठ किया गया है, मन में पुनरावृति नहीं करते, उन भजनों की तो बात ही क्या जो इतने लंबे समय तक नहीं पढ़े गए हैं। मान लीजिए कि एक कटोरे में लाख, हल्दी, नीला या लाल रंग मिला हुआ पानी है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति [231] उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक रूप में नहीं जान पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति कामवासना (राग) से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है... उन भजनों की तो बात ही क्या जो इतने लंबे समय तक नहीं पढ़े गए हैं।"

(2) "फिर, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है, और वह उत्पन्न द्वेष से मुक्ति के वास्तविक मार्ग को नहीं समझता, तो उस समय वह अपने स्वयं के हित, दूसरों के हित और दोनों के हित को सही ढंग से नहीं जान पाता। तब तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय तक पाठ किया गया हो, मन में पुनरावृति नहीं करते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया हो। मान लीजिए कि आग पर पानी का एक कटोरा उबल रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जान पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है... उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया हो।"

(3) "फिर, जब कोई व्यक्ति सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त मन से रहता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में उत्पन्न सुस्ती और आलस्य से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय वह अपने स्वयं के भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को नहीं जान पाता। [232] तब तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय तक पाठ किया गया है, मन में पुनरावर्तित नहीं होते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है। मान लीजिए कि शैवाल और जलीय पौधों से ढका हुआ पानी का एक कटोरा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जान पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त मन से रहता है... उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।"

(4) "फिर, जब कोई व्यक्ति बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है, और वह यह नहीं समझता कि वास्तव में उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति क्या है, तो उस समय वह अपने स्वयं के भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को नहीं जान पाता और न ही देख पाता है। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से गाए जा रहे हैं, मन में पुनरावर्तित नहीं होते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो नहीं गाए गए हैं। मान लीजिए कि हवा से हिलता हुआ पानी का एक कटोरा है, जिसमें लहरें उठ रही हैं, घूम रही हैं, छोटी-छोटी तरंगें बन रही हैं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे नहीं जान पाएगा जैसा वह वास्तव में है। ठीक वैसे ही, जब कोई व्यक्ति बेचैनी और चिंता से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है... [233] ...उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो नहीं गाए गए हैं।"

(5) "फिर, जब कोई व्यक्ति संदेह से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है, और उसे उत्पन्न संदेह से मुक्ति का सही अर्थ समझ में नहीं आता, तो उस समय वह अपने स्वयं के भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को सही ढंग से नहीं जान पाता। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से गाए जा रहे हैं, मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो इतने लंबे समय से नहीं गाए गए हैं। मान लीजिए कि अंधेरे में एक गंदा, मैला और कीचड़ से भरा पानी का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जान पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति संदेह से ग्रस्त और पीड़ित मन से रहता है, और उसे उत्पन्न संदेह से मुक्ति का सही अर्थ समझ में नहीं आता, तो उस समय वह अपने स्वयं के भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को सही ढंग से नहीं जान पाता। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से गाए जा रहे हैं, मन में नहीं आते।" वे बातें तो मन में बार-बार आती ही हैं, जबकि वे बातें तो पहले कभी सुनाई ही नहीं गई हैं।

[भजनों को क्यों याद रखा जाता है]

(1) "ब्राह्मण, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो कामुक रागों से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है, और जो उत्पन्न कामुक रागों से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, तब वह अपने स्वयं के हित, दूसरों के हित और दोनों के हित को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। तब तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय से पाठ नहीं किया गया है, मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही क्या जो पहले ही पढ़े जा चुके हैं। मान लीजिए कि एक कटोरा जल है जिसमें लाख, हल्दी, नीला रंग या लाल रंग नहीं मिला है। यदि कोई अच्छी

दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख लेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो कामुक रागों से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है... उन भजनों की तो बात ही क्या जो पहले ही पढ़े जा चुके हैं।"

(2) "फिर, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित न होकर मन से रहता है, और वह उत्पन्न द्वेष से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, तब वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। तब तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय से पाठ नहीं किया गया है, मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही क्या जो पहले ही पढ़े जा चुके हैं। मान लीजिए कि एक कटोरा पानी है जिसे आग पर गर्म नहीं किया गया है, जो उबल नहीं रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख लेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित न होकर मन से रहता है... उन भजनों की तो बात ही क्या जो पहले ही पढ़े जा चुके हैं।"

(3) "फिर, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त और दबा हुआ नहीं है, और वह उत्पन्न सुस्ती और आलस्य से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, तब वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। तब तो वे भजन भी, जिनका लंबे समय से पाठ नहीं किया गया है, मन में आ जाते हैं, [235] उन भजनों की तो बात ही क्या, जिनका पाठ किया जा चुका है। मान लीजिए कि पानी का एक कटोरा है जो शैवाल और जलीय पौधों से ढका नहीं है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख लेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त और दबा हुआ नहीं है... उन भजनों की तो बात ही क्या, जिनका पाठ किया जा चुका है।"

(4) "फिर, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है, और वह उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, तब वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख पाता है। तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका लंबे समय से पाठ नहीं किया गया है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका है। मान लीजिए कि पानी का एक कटोरा है जो हवा से नहीं हिलता, जिसमें लहरें नहीं उठतीं, भंवर नहीं बनते, छोटी-छोटी तरंगें नहीं बनतीं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख पाएगा। ठीक वैसे ही, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है... उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका है।"

(5) "फिर, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो संदेह से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है, और वह उत्पन्न संदेह से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, [236] तब वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। तब वे भजन भी जो लंबे समय से नहीं पढ़े गए हैं, मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो पढ़े जा चुके हैं। मान लीजिए कि प्रकाश में एक साफ, शांत और निर्मल जल का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जान और देख लेगा। उसी प्रकार, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो संदेह से ग्रस्त और पीड़ित नहीं है, और वह उत्पन्न संदेह से मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, तब वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है। तब वे भजन भी जो लंबे समय से नहीं पढ़े गए हैं, मन में आ जाते हैं। उन वाक्यों का बार-बार मन में आना तो और भी मुश्किल है, खासकर उन वाक्यों का जिनका पाठ किया जा चुका है।

"हे ब्राह्मण, यही कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही क्या जो इतने लंबे समय तक नहीं जपे गए हों। यही कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक नहीं जपे गए भजन भी मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही क्या जो इतने लंबे समय तक जपे गए हों।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

194 करणपाली

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण करणपाली लिच्छवियों के लिए कुछ काम करवा रहे थे। 1194 ब्राह्मण करणपाली ने दूर से ब्राह्मण पिंगियानी [237] को आते देखा और उनसे कहा:

"मास्टर पिंगियानी दिन के मध्य में कहाँ से आ रहे हैं?"

"मैं तपस्वी गौतम के दर्शन से आ रहा हूँ, महोदय।" 1195

"आप तपस्वी गौतम की पन्ना (दिव्य ज्ञान) में दक्षता के बारे में क्या सोचते हैं? क्या आप उन्हें बुद्धिमान मानते हैं?"

"हे महोदय, मैं कौन हूँ जो तपस्वी गौतम की ज्ञान प्राप्ति की क्षमता को जान सकूँ? निश्चय ही, केवल उन्हीं के समान व्यक्ति उनकी ज्ञान प्राप्ति की क्षमता को जान सकता है!"

"आप तपस्वी गौतम की बहुत ही उच्च कोटि की प्रशंसा करते हैं, वास्तव में।"

"हे भगवान, मैं कौन हूँ जो तपस्वी गौतम की प्रशंसा कर सकूँ? जिनकी प्रशंसा उनके द्वारा की जाती है। गुरु गौतम देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं!"

"हे गुरु पिंगियानी, आपको तपस्वी गौतम पर इतना पूर्ण विश्वास रखने का क्या आधार दिखाई देता है?"

(1) "जिस प्रकार उत्तम स्वाद में संतुष्टि प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति निम्न स्तर के स्वादों की इच्छा नहीं रखता; उसी प्रकार, महोदय, गुरु गौतम के धम्म के बारे में जो कुछ भी सुना जाए—चाहे वह प्रवचन हो, गद्य-पद का मिश्रण हो, व्याख्या हो या आश्चर्यजनक वृत्तांत—वह साधारण तपस्वियों और ब्राह्मणों के सिद्धांतों के लिए तरसता नहीं रहेगा। 1196

(2) "जिस प्रकार भूख और कमजोरी से पीड़ित व्यक्ति को शहद की रोटी मिलने पर जहाँ कहीं भी वह उसे खाएगा, उसे मीठा और स्वादिष्ट स्वाद मिलेगा; उसी प्रकार, हे महोदय, गुरु गौतम के धम्म के बारे में जो कुछ भी सुना जाए— प्रवचन, गद्य और पद्य का मिश्रण, व्याख्याएँ, या आश्चर्यजनक वृत्तांत—उसे मन की संतुष्टि और शांति प्राप्त होगी।

(3) "जैसे कोई व्यक्ति चंदन के टुकड़े पर आता है, चाहे वह पीला चंदन हो या लाल चंदन, उसे जहाँ भी वह सूंघता है, चाहे वह नीचे हो, बीच में हो या ऊपर, उसे शुद्ध, सुगंधित खुशबू मिलती है [238]; उसी प्रकार, महोदय, गुरु गौतम के धम्म के बारे में जो कुछ भी सुना जाए— प्रवचन, मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, या आश्चर्यजनक वृत्तांत—उसे उल्लास और आनंद प्राप्त होगा।

(4) "जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक किसी पीड़ित, बीमार और गंभीर रूप से अस्वस्थ व्यक्ति को तुरंत ठीक कर सकता है; उसी प्रकार, महोदय, गुरु गौतम के धम्म के बारे में जो कुछ भी सुना जाए— प्रवचन, मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, या आश्चर्यजनक वृत्तांत— उसका दुःख, मैं की भावना, पीड़ा, निराशा और व्यथा दूर हो जाएगी।"

(5) "जैसे किसी सुंदर किनारे वाला, निर्मल, स्वच्छ और निर्मल जल से भरा हुआ एक रमणीय तालाब हो, और कोई व्यक्ति गर्मी से व्याकुल, प्यासा, प्यासा और बेहाल होकर आए, तो वह तालाब में प्रवेश करे, स्नान करे और पानी पिए; इस प्रकार उसकी सारी पीड़ा, थकान और बुखार की जलन शांत हो जाए। ठीक उसी प्रकार, हे महोदय, गुरु गौतम के धम्म के बारे में जो कुछ भी सुना जाए— प्रवचन, गद्य और पद्य का मिश्रण, व्याख्याएँ या अद्‌भुत वृत्तांत—उसकी सारी पीड़ा, थकान और बुखार की जलन शांत हो जाए।"

यह सुनकर ब्राह्मण करणपाली अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और अपना दाहिना घुटना जमीन पर रखकर भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और तीन बार ये प्रेरणादायक शब्द कहे:

भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम! भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम! भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम!

"उत्कृष्ट, गुरु पिंगियानी! उत्कृष्ट, गुरु पिंगियानी! गुरु पिंगियानी ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, [239] या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी

दृष्टि वाले लोग रूपों को देख सकें। गुरु पिंगियानी, मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु पिंगियानी मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

195 पिंगियानी

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास कर रहे थे। उस समय पाँच सौ लिच्छवी भगवान (बुद्ध) से मिलने आए थे। कुछ लिच्छवी नीले रंग के थे, नीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ लिच्छवी पीले रंग के थे, पीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ लिच्छवी लाल रंग के थे, लाल रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ लिच्छवी सफेद रंग के थे, सफेद रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। फिर भी भगवान (बुद्ध) अपनी सुंदरता और महिमा से उन सभी को मात दे रहे थे।

तब ब्राह्मण पिंगियानी अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले, "मुझे प्रेरणा मिली है, हे भगवान! मुझे प्रेरणा मिली है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)!"

"तो फिर अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, पिंगियानी," भगवान (बुद्ध) ने कहा। 1197 तब, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, ब्राह्मण पिंगियानी ने एक उपयुक्त श्लोक के साथ उनकी प्रशंसा की: [1198]

"जैसे सुबह के समय सुगंधित लाल कोकनाड़ा कमल खिलता है, जिसकी सुगंध अभी भी बरकरार है,

वैसे ही अंगिरासा

आकाश में सूर्य की तरह चमकते हैं।"

तब उन लिच्छवियों ने ब्राह्मण पिंघियानल को पाँच सौ वस्त्र भेंट किए। ब्राह्मण पिंघियानल ने वे पाँच सौ वस्त्र भगवान (बुद्ध) को अर्पित किए। [240] तब भगवान (बुद्ध) ने उन लिच्छवियों से कहा:

लिच्छवी, इन पाँच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। 1199 वे पाँच कौन से हैं? (1) तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है। (2) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन का शिक्षण करने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (3) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का शिक्षण हो जाने के बाद, उसे समझने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (4) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का शिक्षण हो जाने के बाद, उसे समझने और धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (5) कृतज्ञ और आभारी व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। लिच्छवी, इन पाँच रत्नों का प्रकटीकरण संसार में दुर्लभ है।

---

196 महान स्वप्न (महा सुपिना सं. महा स्वप्न)

"भिक्षुओं, अपने ज्ञानोदय से पहले, जब वे मात्र बोधि सत्ता थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे, तब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को पाँच महान स्वप्न दिखाई दिए। वे पाँच कौन से थे?"

(1) "अपने ज्ञानोदय से पहले, जब वे मात्र बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे, तब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध ने स्वप्न देखा कि यह विशाल पृथ्वी उनका पलंग है; पर्वतों का राजा हिमालय उनका तकिया है; उनका बायां हाथ पूर्वी सागर पर, दायां हाथ पश्चिमी सागर

पर और दोनों पैर दक्षिणी सागर पर टिके हैं। यह पहला महान स्वप्न था जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को उनके ज्ञानोदय से पहले, जब वे मात्र बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे, दिखाई दिया।"

(2) "फिर, अपने ज्ञानोदय से पहले... तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति ने स्वप्न देखा कि तिरिया नामक एक प्रकार की घास उनकी नाभि से उठी और आकाश को छू रही थी। [241] यह दूसरा महान स्वप्न था जो तथागत (बुद्ध) को दिखाई दिया... जब वे केवल एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे।

(3) "फिर, अपने ज्ञानोदय से पहले... तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति ने स्वप्न देखा कि काले सिर वाले सफेद कीड़े उनके पैरों से उनके घुटनों तक रेंगते हुए आए और उन्हें ढक लिया। यह तीसरा महान स्वप्न था जो तथागत (बुद्ध) को दिखाई दिया... जब वे केवल एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे।"

(4) "फिर, अपने ज्ञानोदय से पहले... तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति ने स्वप्न देखा कि चार अलग-अलग रंगों के पक्षी चारों दिशाओं से आए, उनके चरणों में गिरे और पूरी तरह सफेद हो गए। यह चौथा महान स्वप्न था जो तथागत (बुद्ध) को दिखाई दिया... जब वे केवल एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे।"

(5) "फिर, अपने ज्ञानोदय से पहले... तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध (ने स्वप्न देखा) कि वे गोबर के एक विशाल पर्वत पर चढ़ गए और उससे अपवित्र नहीं हुए। यह पाँचवाँ महान स्वप्न था जो तथागत (बुद्ध) को दिखाई दिया... जब वे केवल एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे।"

(1) "अब, भिक्षुओं, जब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध—अपने ज्ञानोदय से पहले, जब वे मात्र एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे—[स्वप्न में देखा] कि यह विशाल पृथ्वी उनका पलंग है और हिमालय, पर्वतों का राजा, उनका तकिया है; कि उनका बायाँ हाथ पूर्वी सागर पर, दायाँ हाथ पश्चिमी सागर पर और दोनों पैर दक्षिणी सागर पर टिके हैं, [यह एक पूर्वसूचक था] कि वे अतुलनीय, पूर्ण ज्ञानोदय को प्राप्त करेंगे। 1200 यह पहला महान स्वप्न उन्हें [एक संकेत के रूप में] दिखाई दिया कि उनका जागरण [निकटतम] था। 1201 [242]

(2) "जब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति... ने स्वप्न में देखा कि उनकी नाभि से तिरिया घास उगी और आकाश को छू रही थी, तो यह एक पूर्वसूचना थी कि वे श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग को ग्रहण करेंगे और देवताओं और मनुष्यों के बीच उसका प्रचार करेंगे। यह दूसरा महान स्वप्न उन्हें इस बात का संकेत था कि उनका ज्ञानोदय निकट है।"

(3) "जब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति... ने स्वप्न में देखा कि काले सिर वाले सफेद कृमि उनके पैरों से उनके घुटनों तक रेंगते हुए आए और उन्हें ढक लिया, तो यह एक पूर्वसूचना थी कि बहुत से श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ जीवन भर के लिए तथागत (बुद्ध) की शरण में जाएंगे। यह तीसरा महान स्वप्न उन्हें इस बात का संकेत था कि उनका ज्ञानोदय निकट है।"

(4) "जब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति... ने स्वप्न में देखा कि चार अलग-अलग रंगों के पक्षी चारों दिशाओं से आए, उनके चरणों में गिरे और सफेद हो गए, [यह एक पूर्वसूचना थी] कि चार वर्गों के सदस्य—क्षति, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध—गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन व्यतीत करेंगे और अतुलनीय मुक्ति प्राप्त करेंगे। यह चौथा महान स्वप्न उन्हें [एक संकेत के रूप में] दिखाई दिया कि उनका ज्ञानोदय [निकट] था।"

(5) "जब तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति... ने स्वप्न में देखा कि वे गोबर के एक विशाल पहाड़ पर चढ़ गए और उससे अपवित्र नहीं हुए, [यह एक पूर्वसूचना थी] कि उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त होगा, और वे इन सबका उपयोग इनके प्रति आसक्त हुए बिना, इनके मोह में लीन हुए बिना, और इनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करेंगे, खतरे को देखते हुए और बचाव का मार्ग जानते हुए। यह पाँचवाँ महान स्वप्न उन्हें [एक संकेत के रूप में] दिखाई दिया कि उनका ज्ञानोदय [निकट] था।"

"ये, भिक्षुओं, वे पाँच महान स्वप्न थे जो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को उनके ज्ञानोदय से पहले, जब वे मात्र एक बोधिसत्व थे, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं थे, दिखाई दिए।" [243]

197 Rain (Vassa sans. Varsha)

"भिक्षुओं (संतों), वर्षा में ये पाँच बाधाएँ हैं जिनके बारे में मौसम पूर्वानुमानकर्ताओं को जानकारी नहीं है, जहाँ उनकी नज़र नहीं जाती। 1202 वे पाँच कौन सी हैं?"

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), आकाश के ऊपरी क्षेत्रों में ऊष्मा तत्व अशांत हो जाता है। इसके कारण, जो बादल बने होते हैं वे बिखर जाते हैं। यह वर्षा में पहली बाधा है जिसके बारे में मौसम विज्ञानियों को जानकारी नहीं होती, जहाँ उनकी नज़र नहीं पड़ती।"

(2) "फिर, आकाश के ऊपरी क्षेत्रों में वायु तत्व अशांत हो जाता है। इसके कारण, जो बादल उठे हैं वे बिखर जाते हैं। यह वर्षा में दूसरी बाधा है। . . ."

(3) "फिर, असुरों का राजा राहु अपने हाथ से जल ग्रहण करता है और उसे समुद्र में फेंक देता है। यह वर्षा में तीसरी बाधा है। ..."

(4) "फिर, वर्षा-बादल देव (देवदूत/देवता) आलसी हो जाते हैं। यह वर्षा में चौथी बाधा है।

(5) "फिर, मनुष्य अधर्मी हो जाते हैं। यह वर्षा में पाँचवीं बाधा है। ..."

"बारिश में बाधा डालने वाली ये पांच चीजें हैं जिनके बारे में मौसम पूर्वानुमानकर्ताओं को जानकारी नहीं होती, जहां उनकी नजर नहीं पड़ती।"

---

198 भाषण (वाका सं. वचना)

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच गुण होते हैं, जिनकी वाणी उत्तम होती है, उत्तम नहीं; वह निष्कलंक होती है और ज्ञानियों द्वारा निंदा से परे होती है। वे पाँच गुण क्या हैं? [244] यह उचित समय पर बोली जाती है; जो कहा जाता है वह सत्य होता है; यह सौम्यता से बोली जाती है; जो कहा जाता है वह लाभकारी होता है; यह प्रेम और करुणा (मेट्टा) के भाव से बोली जाती है। इन पाँच गुणों से युक्त वाणी उत्तम होती है, उत्तम नहीं; वह निष्कलंक होती है और ज्ञानियों द्वारा निंदा से परे होती है।"

---

199 परिवार/कुल (कुला)

"भिक्षुओं (मठवासियों), जब भी कोई गुणी भिक्षु 1203 किसी घर में आते हैं, तो वहां के लोग पांच आधारों पर बहुत पुण्य कमाते हैं, वे पांच कौन से हैं?

(1) जब लोग अपने घर में सद्गुणी संन्यासियों को आते हुए देखते हैं और उनके मन में उनके प्रति विश्वास जागृत होता है, तो उस अवसर पर वह परिवार स्वर्ग की ओर ले जाने वाले मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है।

(2) जब लोग अपने घर आने वाले सद्गुणी भिक्षुओं के सम्मान में उठ खड़े होते हैं, प्रणाम करते हैं और उन्हें आसन प्रदान करते हैं, तो उस अवसर पर वह परिवार उच्च कुलों में पुनर्जन्म के लिए अनुकूल मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है। (3) जब लोग अपने घर आने वाले सद्गुणी भिक्षुओं के प्रति कंजूसी का कलंक मिटाते हैं, तो उस अवसर पर वह परिवार महान प्रभाव के लिए अनुकूल मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है। (4) जब लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने घर आने वाले सद्गुणी भिक्षुओं के साथ अपना धन साझा करते हैं, तो उस अवसर पर वह परिवार महान धन के लिए अनुकूल मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है। (5) जब लोग अपने घर आने वाले सद्गुणी भिक्षुओं से प्रश्न करते हैं, उनकी शिक्षाओं के बारे में पूछताछ करते हैं और धम्म सुनते हैं, तो उस अवसर पर वह परिवार महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) के लिए अनुकूल मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है। [245] भिक्षुओं, जब भी सद्गुणी भिक्षु किसी घर में आते हैं, तो वहां के लोग इन पांच आधारों पर बहुत पुण्य अर्जित करते हैं।

---

200 पलायन (निसारनिया सं. निस्साराना)

"भिक्षुओं (मठवासियों), पलायन के ये पाँच तत्व हैं। 1204 वे पाँच कौन से हैं?

(1) "यहाँ, जब कोई भिक्षु इंद्रिय सुखों में लीन होता है, 1205 तो उसका मन उन पर नहीं उतरता, बल्कि शांत, स्थिर और उन पर केंद्रित हो जाता है। 1206 परन्तु जब वह त्याग में लीन होता है, तो उसका मन उस पर उतरता है और शांत, स्थिर और उस पर केंद्रित हो जाता है। उसका मन अच्छी तरह से विरक्त, 1207 अच्छी तरह से विकसित, अच्छी तरह से प्रकट, अच्छी तरह से मुक्त और इंद्रिय सुखों से अच्छी तरह से विरक्त होता है। और वह उन कष्टदायी और ज्वरकारी दोषों से मुक्त हो जाता है जो इंद्रिय सुखों के साथ उत्पन्न होते हैं। उसे उस प्रकार की संवेदना (वेदना) का अनुभव नहीं होता। 1206 इसे ही इंद्रिय सुखों से मुक्ति कहा गया है।"

(2) "फिर, जब कोई भिक्षु द्वेष का ध्यान करता है, तो उसका मन द्वेष की ओर नहीं बढ़ता, बल्कि शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। परन्तु जब वह सद्भावना का ध्यान करता है, तो उसका मन द्वेष की ओर बढ़ता है और शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। उसका मन द्वेष से भली-भांति विरक्त, भली-भांति विकसित, भली-भांति मुक्त और भली-भांति विरक्त होता है। और वह उन कष्टदायी और ज्वरकारी दोषों से मुक्त हो जाता है जो द्वेष के कारण उत्पन्न होते हैं। उसे उस प्रकार की वेदना का अनुभव नहीं होता। यही द्वेष से मुक्ति है।"

(3) "फिर, जब कोई भिक्षु हानि करने में लगा रहता है, तो उसका मन हानि की ओर नहीं बढ़ता और शांत, स्थिर और उस पर केंद्रित हो जाता है। परन्तु जब वह हानि न करने में लगा रहता है, तो उसका मन हानि की ओर बढ़ता है और शांत, स्थिर और उस पर केंद्रित हो जाता है। उसका मन हानि से भली-भांति विरक्त, भली-भांति विकसित, भली-भांति मुक्त और भली-भांति विरक्त होता है। और वह उन कष्टदायी और ज्वरकारी दोषों से मुक्त हो जाता है जो हानि करने की स्थिति से उत्पन्न होते हैं। उसे उस प्रकार की वेदना का अनुभव नहीं होता। इसे हानि से मुक्ति कहा गया है। [246]

(4) "फिर, जब कोई भिक्षु रूप पर ध्यान लगाता है, तो उसका मन उस पर नहीं लगता और वह शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। परन्तु जब वह निराकार पर ध्यान लगाता है, तो उसका मन उस पर लगता है और शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। उसका मन रूप से पूर्णतः विरक्त, पूर्णतः विकसित, पूर्णतः प्रकट, पूर्णतः मुक्त और पूर्णतः अनासक्त होता है। और वह उन कष्टदायी और ज्वरकारी दोषों से मुक्त हो जाता है जो रूप की स्थिति से उत्पन्न होते हैं। उसे उस प्रकार की वेदना का अनुभव नहीं होता। इसे ही रूप से मुक्ति कहा जाता है।"

(5) "फिर, जब कोई भिक्षु व्यक्तिगत अस्तित्व पर ध्यान देता है, तो उसका मन उस पर नहीं भटकता और शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। परन्तु जब वह व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निवारण पर ध्यान देता है, तो उसका मन उस पर भटकता है और शांत, स्थिर और एकाग्र हो जाता है। उसका मन पूर्णतः मुक्त, पूर्णतः विकसित, पूर्णतः विकसित, पूर्णतः विलीन और व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से पूर्णतः विरक्त होता है। और वह उन कष्टदायी और ज्वरकारी दोषों से मुक्त हो जाता है जो व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की स्थिति से उत्पन्न होते हैं। वह उस संवेदना (वेदना) का अनुभव नहीं करता। इसे व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से मुक्ति कहा जाता है।"

"उसमें इंद्रिय सुखों में आनंद नहीं होता; उसमें द्वेष में आनंद नहीं होता; उसमें हानि पहुँचाने में आनंद नहीं होता; उसमें रूप में आनंद नहीं होता; उसमें व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) में आनंद नहीं होता। क्योंकि वह इंद्रिय सुखों में आनंद, द्वेष में आनंद, हानि पहुँचाने में आनंद, रूप में आनंद और व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) में आनंद की अंतर्निहित प्रवृत्तियों से रहित है, इसलिए उसे अंतर्निहित प्रवृत्तियों से रहित भिक्षु कहा जाता है। उसने तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) को काट डाला है, बंधन को तोड़ दिया है और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुख का अंत कर दिया है। हे भिक्षुओं, ये पाँच तत्व हैं जिनसे मुक्ति मिलती है।" [247] . .

पांचवां पचास

आई. किमिला

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

201 किमिला

एक बार भगवान (बुद्ध) किंबिला के यहाँ एक निकुल उपवन में निवास कर रहे थे। 1209 तब पूज्य किंबिला भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"हे भंते, इसका कारण क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी उत्तम धम्म का अस्तित्व लंबे समय तक नहीं बना रहता?" 1210

(1) हे किम्बिला, यहाँ तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद, भिक्षु, भिक्षुणी (भिक्षुणियाँ), पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (2) वे धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (5) वे एक दूसरे के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। यही कारण है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद उत्तम धम्म अधिक समय तक कायम नहीं रहता।

"हे भंते, इसका कारण और तर्क क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी अच्छा धम्म लंबे समय तक बना रहता है?"

"(1) हे किम्बिला, यहाँ तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (2) वे धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (5) वे एक दूसरे के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। यही कारण है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी अच्छा धम्म लंबे समय तक बना रहता है।" [248]

---

202 धम्म सुनना (धम्म स्सवना सं. धर्म श्रवण)

भिक्षुओं, धम्म सुनने के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? व्यक्ति अनसुनी बातों को सुनता है; सुनी हुई बातों को स्पष्ट करता है; उलझन से बाहर निकलता है; दृष्टिकोण स्पष्ट होता है; मन शांत होता है। धम्म सुनने के ये पाँच लाभ हैं।

---

203 थोरब्रेड [1211] (अस्साजानिया सं. अश्व..)

भिक्षुओं (सन्यासियों) में पाँच गुण होते हैं, और राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? सत्यनिष्ठा, गति, सौम्यता, धैर्य और नम्रता। इन पाँच गुणों से युक्त राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा... राजत्व का प्रतीक माना जाता है।

इसी प्रकार, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का स्रोत होता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? सत्यनिष्ठा, शीघ्रता, कोमलता, धैर्य और सौम्यता। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का स्रोत होता है।

---

204 शक्तियां (बाल)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति, नैतिक लज्जा की शक्ति, नैतिक भय की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

---

205 मानसिक बांझपन 1212 (चेतोखिला)

"भिक्षुओं, मानसिक बंजरपन के ये पाँच प्रकार हैं। 1213 वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुरु के बारे में भ्रमित है, उन पर संदेह करता है, [249] उनके बारे में आश्वस्त नहीं है, और उन पर भरोसा नहीं करता है। जब एक भिक्षु गुरु के बारे में भ्रमित होता है, उन पर संदेह करता है, उनके बारे में आश्वस्त नहीं होता है, और उन पर भरोसा नहीं करता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है, इसलिए यह मानसिक बंजरपन का पहला प्रकार है।

(2) "फिर, एक भिक्षु धम्म के विषय में भ्रमित होता है, उस पर संदेह करता है, उस पर आश्वस्त नहीं होता और उस पर विश्वास नहीं रखता। जब एक भिक्षु धम्म के विषय में भ्रमित होता है, उस पर संदेह करता है, उस पर आश्वस्त नहीं होता और उस पर विश्वास नहीं रखता, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, यह दूसरे प्रकार का मानसिक बंजरपन है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु संघ के बारे में भ्रमित है, उस पर संदेह करता है, उसके बारे में आश्वस्त नहीं है और उस पर भरोसा नहीं करता है। जब एक भिक्षु संघ के बारे में भ्रमित होता है, उस पर संदेह करता है, उसके बारे में आश्वस्त नहीं होता है और उस पर भरोसा नहीं करता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है। चूंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है, इसलिए यह तीसरे प्रकार का मानसिक बंजरपन है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु प्रशिक्षण के बारे में उलझन में है, उस पर संदेह करता है, उस पर आश्वस्त नहीं है और उस पर भरोसा नहीं करता है। जब एक भिक्षु प्रशिक्षण के बारे में उलझन में होता है, उस पर संदेह करता है, उस पर आश्वस्त नहीं होता है और उस पर भरोसा नहीं करता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है। चूंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है, इसलिए यह चौथे प्रकार का मानसिक बंजरपन है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ जाता है, उनसे नाराज़ हो जाता है, उनसे द्वेष रखता है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है। जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ जाता है, उनसे नाराज़ हो जाता है, उनसे द्वेष रखता है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। चूंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, इसलिए यह पाँचवाँ प्रकार का मानसिक बंजरपन है।"

"भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता हैं।"

---

206 बंधन [1214] (विनीबंध)

भिक्षुओं, मन के ये पाँच बंधन हैं। 1215 वे पाँच कौन से हैं?

(1) "यहाँ, भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है। जब भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है, तो उसका मन

उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, यही मन का पहला बंधन है।"

(2) "फिर, भिक्षु शरीर के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं होता, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है। जब भिक्षु शरीर के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं होता, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, यही मन का दूसरा बंधन है।"

(3) "फिर, भिक्षु रूप के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही वह रूप के प्रति इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है। जब भिक्षु रूप के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही वह रूप के प्रति इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। चूंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, यही मन का तीसरा बंधन है।"

(4) "फिर, जब भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार पेट भरकर खा लेता है, तो वह विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लिप्त हो जाता है। जब भिक्षु विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लिप्त हो जाता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, यही मन का चौथा बंधन है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु किसी विशेष देवों (देवदूतों/देवताओं) के क्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करता है, [250] यह सोचते हुए: 'इस पुण्य आचरण, पालन, तपस्या या ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) से मैं देव या देवों (देवदूतों/देवताओं) के अनुचरों में से एक बनूँगा।' जब वह किसी विशेष देवों (देवदूतों/देवताओं) के क्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करता है... तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि उसका मन उत्साह... और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, यह मन का पाँचवाँ बंधन है।"

"भिक्षुओं, ये मन के पाँच बंधन हैं।"

---

207 चावल का दलिया (यागू बिना खीर)

भिक्षुओं, चावल की दलिया के ये पाँच लाभ हैं। कौन से पाँच? यह भूख मिटाती है, प्यास दूर करती है, गैस को शांत करती है, मूत्राशय को साफ करती है और अपचित भोजन के अवशेषों के पाचन में सहायता करती है। चावल की दलिया के ये पाँच लाभ हैं।

---

208 ब्रश करना (दंतकत्था)

भिक्षुओं, दाँत न साफ़ करने से ये पाँच खतरे हैं। 1216 वे पाँच खतरे क्या हैं? यह रूप-रंग के लिए हानिकारक है; मुँह से दुर्गंध आती है; स्वाद कलिकाएँ शुद्ध नहीं होतीं; पित्त और कफ भोजन को घेर लेते हैं; और भोजन पचता नहीं है। ये पाँच खतरे हैं दाँत न साफ़ करने से।

"भिक्षुओं, दाँत साफ़ करने के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? इससे रूप-रंग अच्छा होता है; मुँह से दुर्गंध नहीं आती; स्वाद कलिकाएँ शुद्ध होती हैं; पित्त और कफ भोजन को नहीं घेरते; और भोजन शरीर को भाता है। ये दाँत साफ़ करने के पाँच लाभ हैं।" [251]

---

209 स्वर-संयोजन (गीतासर)

भिक्षुओं, धम्म (मार्ग) का पाठ करते समय गीत जैसी लय में बोलने में ये पाँच खतरे हैं। 1217 वे पाँच खतरे क्या हैं? (1) व्यक्ति अपनी लय से मोहित हो जाता है। (2) दूसरे लोग भी उसकी लय से मोहित हो जाते हैं। (3) गृहस्थ शिकायत करते हैं: 'जैसे हम गाते हैं, वैसे ही

शाक्यों पुत्र का अनुसरण करने वाले ये तपस्वी भी गाते हैं।' (4) लय को परिष्कृत करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति की एकाग्रता भंग हो जाती है। (5) अगली पीढ़ी के लोग उसका अनुसरण करते हैं। ये पाँच खतरे हैं धम्म का पाठ करते समय गीत जैसी लय में बोलने में।

---

210 भ्रमित मन के साथ (मुत्थसती)

भिक्षुओं, जो व्यक्ति भ्रमित मन से, पूर्ण बोध (संपजन्न) के अभाव में सो जाता है, उसे ये पाँच खतरे होते हैं। 1218 वे पाँच खतरे क्या हैं? उसे नींद ठीक से नहीं आती; वह कष्ट से जागता है; उसे बुरे सपने आते हैं; देवता उसकी रक्षा नहीं करते; और अशुद्धता का उत्सर्जन होता है। ये पाँच खतरे हैं जो व्यक्ति भ्रमित मन से, पूर्ण बोध (संपजन्न) के अभाव में सो जाता है।

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति सजग होकर और पूर्ण ज्ञान के साथ सोता है, उसे ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। वे पाँच क्या हैं? वह अच्छी नींद सोता है; वह प्रसन्नता से जागता है; उसे बुरे सपने नहीं आते; देवता उसकी रक्षा करते हैं; और अशुद्धता का उत्सर्जन नहीं होता। ये पाँच लाभ उस व्यक्ति को प्राप्त होते हैं जो सजग होकर और पूर्ण ज्ञान के साथ सोता है।" [252]

II. अपमान करने वाला (अक्कोसाका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

211 अपमान करने वाला (अक्कोसाका)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है, श्रेष्ठ भिक्षुओं की निंदा करता है, तो उसके लिए पाँच खतरे हो सकते हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? (1) वह या तो पराजिका करता है और मार्ग अवरुद्ध कर देता है, 1219 या (2) कोई अपवित्र अपराध करता है, 1220 या (3) गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाता है। (4) वह भ्रमित अवस्था में मर जाता है। (5) शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है, श्रेष्ठ भिक्षुओं की निंदा करता है, तो उसके लिए ये पाँच खतरे हो सकते हैं।

---

212 तर्कों का खंडन (भंडानकारक)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु संघ में बुद्ध की शिक्षाओं का खंडन करने वाले तर्क, झगड़े, विवाद, कलह और अनुशासन संबंधी समस्याएं उत्पन्न करता है, तो उसके लिए पांच खतरे संभावित हैं। वे पांच खतरे क्या हैं? (1) वह वह प्राप्त नहीं कर पाता जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है; (2) वह अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धि से विमुख हो जाता है; (3) उसके बारे में बदनामी फैलती है; (4) वह भ्रमित अवस्था में मर जाता है; और (5) शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। जब कोई भिक्षु संघ में खंडन करने वाले तर्क, झगड़े, विवाद, कलह और अनुशासन संबंधी समस्याएं उत्पन्न करता है, तो उसके लिए ये पांच खतरे संभावित हैं।

---

213 सदाचारी आचरण (शीला सान. शील)

"भिक्षुओं, सदाचार की कमी के कारण अनैतिक व्यक्ति के लिए ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच खतरे कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, सदाचारी आचरण में कमी वाला अनैतिक व्यक्ति आलस्य के कारण बहुत धन खो देता है। सदाचारी आचरण में कमी के कारण अनैतिक व्यक्ति के लिए यह पहला खतरा है।"

(2) "फिर, एक अनैतिक व्यक्ति के बारे में बुरी रिपोर्ट फैलती है जो सदाचारी व्यवहार में कमी रखता है। यह दूसरा खतरा है। ... [253]

(3) "फिर, कोई अनैतिक व्यक्ति, जो सद्गुणों से रहित है, जिस भी सभा में जाता है—चाहे वह क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों की सभा हो—वह भयभीत और विचलित होकर जाता है। यही तीसरा खतरा है। . . ."

(4) "फिर, सदाचारी आचरण से रहित एक अनैतिक व्यक्ति भ्रमित अवस्था में मरता है। यह चौथा खतरा है। . . ."

(5) "फिर, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, सदाचारी आचरण से रहित अनैतिक व्यक्ति दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। यह पाँचवाँ खतरा है।"

"नैतिक आचरण की कमी के कारण एक अनैतिक व्यक्ति के लिए ये पाँच खतरे हैं।"

भिक्षुओं, सद्गुणी आचरण में संपदा प्राप्त करने के कारण एक सद्गुणी व्यक्ति को ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। वे पाँच लाभ कौन से हैं?

(1) "यहाँ, सद्गुणी आचरण में निपुण एक सद्गुणी व्यक्ति सतर्कता के कारण बहुत धन अर्जित करता है। सद्गुणी आचरण में निपुणता के कारण सद्गुणी व्यक्ति को यह पहला लाभ प्राप्त होता है।"

(2) "पुनः, सदाचारी आचरण में निपुण एक गुणी व्यक्ति अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यह दूसरा लाभ है। . . ."

(3) "फिर, सदाचार में निपुण कोई भी गुणी व्यक्ति जिस भी सभा में उपस्थित होता है—चाहे वह क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों की सभा हो—वह आत्मविश्वास और संयम के साथ उसमें प्रवेश करता है। यह तीसरा लाभ है..."

(4) "पुनः, सदाचार में निपुण एक गुणी व्यक्ति बिना भ्रमित हुए मरता है। यह चौथा लाभ है। ..."

(5) "फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, सद्गुणी आचरण में निपुण एक गुणी व्यक्ति एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गीय लोक में पुनर्जन्म लेता है। यह पाँचवाँ लाभ है। . . . [254]

"सद्गुणी व्यक्ति को उसके सद्गुणी आचरण में संपदा के कारण ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं।"

---

224 बोलना' बहुत (बहुभानी सं. बहु-वाणी)

भिक्षुओं, जो व्यक्ति अधिक बोलता है, उसके लिए ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? वह झूठ बोलता है; वह फूट डालने वाली बातें बोलता है; वह कठोर बातें बोलता है; वह व्यर्थ की बातें करता है; शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। ये पाँच खतरे अधिक बोलने वाले व्यक्ति के लिए हैं।

भिक्षुओं, विवेकपूर्ण वाणी वाले व्यक्ति को ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। ये पाँच क्या हैं? वह झूठ नहीं बोलता; वह फूट डालने वाली बातें नहीं करता; वह कठोर बातें नहीं करता; वह व्यर्थ की बातें नहीं करता; शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है। विवेकपूर्ण वाणी वाले व्यक्ति को ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं।

---

215 अधीरता (1) (अक्खन्ति सं. अशांति)

भिक्षुओं, अधीरता में ये पाँच खतरे हैं। ये पाँच क्या हैं? एक तो यह अनेक लोगों को अप्रिय और नापसंद होता है; एक में बहुत शत्रुता होती है; एक में बहुत दोष होते हैं; एक भ्रमित अवस्था में मरता है; शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, व्यक्ति दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। अधीरता में ये पाँच खतरे हैं।

भिक्षुओं, धीरज रखने के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? व्यक्ति अनेक लोगों को प्रसन्न और संतुष्ट करता है; उसका कोई शत्रु नहीं होता; उसके पाप नहीं होते; वह निर्विरोध मृत्यु को प्राप्त होता है; शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है। धीरज रखने के ये पाँच लाभ हैं। [255]

---

226 अधीरता (2) (अक्खन्ति2 सं. अशांति)

भिक्षुओं, अधीरता में ये पाँच खतरे हैं। ये पाँच क्या हैं? पहला, अनेक लोगों को अप्रिय और नापसंद होना; दूसरा, हिंसक होना; तीसरा, पश्चाताप करना; तीसरा, भ्रमित होकर मरना; शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेना। अधीरता में ये पाँच खतरे हैं।

भिक्षुओं, धीरज रखने के पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? व्यक्ति अनेक लोगों को प्रसन्न और संतुष्ट करता है; वह हिंसक नहीं होता; वह पश्चाताप रहित होता है; वह शांत मन से मरता है; शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह स्वर्गलोक में, एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है। धीरज रखने के ये पाँच लाभ हैं।

---

227 विश्वास जगाने में असमर्थ (1) (अपसादिका1)

भिक्षुओं, आचरण में ये पाँच खतरे हैं जो विश्वास उत्पन्न नहीं करते। वे पाँच क्या हैं? स्वयं को दोष देना; ज्ञानी लोगों द्वारा जाँच-पड़ताल के बाद निंदा करना; बदनामी कमाना; भ्रमित अवस्था में मरना; शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेना। ये पाँच खतरे आचरण में विश्वास उत्पन्न नहीं करते।

भिक्षुओं, विश्वास जगाने वाले आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? व्यक्ति स्वयं को दोष नहीं देता; ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी प्रशंसा करते हैं; व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है; व्यक्ति विचलित हुए बिना मरता है; शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, व्यक्ति स्वर्गलोक में एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है। ये विश्वास जगाने वाले आचरण के पाँच लाभ हैं।

---

218 विश्वास जगाने में असमर्थ (2) (अपसादिका2)

भिक्षुओं, आचरण में ये पाँच खतरे हैं जो विश्वास उत्पन्न नहीं करते। वे पाँच क्या हैं? [256] जो विश्वासहीन हैं, वे विश्वास प्राप्त नहीं कर पाते; विश्वास रखने वालों में से कुछ अपना मन बदल लेते हैं; गुरु की शिक्षा का पालन नहीं किया जाता; अगली पीढ़ी उनके उदाहरण का अनुसरण नहीं करती; और स्वयं का मन शांत नहीं होता। 1222 ये पाँच खतरे हैं जो आचरण में विश्वास उत्पन्न नहीं करते।

भिक्षुओं, विश्वास जगाने वाले आचरण के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? जो आत्मविश्वासहीन हैं, उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है; जो आत्मविश्वासी हैं, उनका आत्मविश्वास और भी बढ़ता है; गुरु की शिक्षा का पालन होता है; आने वाली पीढ़ियाँ अनुकरण करती हैं; और मन शांत हो जाता है। विश्वास जगाने वाले आचरण के ये पाँच लाभ हैं।

---

219 अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)

भिक्षुओं, अग्नि में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? यह आँखों के लिए अशुभ है; इससे रंगत बिगड़ती है; यह कमजोरी लाती है; यह संगति के प्रति आसक्ति को बढ़ावा देती है; और यह व्यर्थ की बातों को प्रेरित करती है। अग्नि में ये पाँच खतरे हैं।

---

220 मधुरा (मथुरा शहर)

"भिक्षुओं, मथुरा (मथुरा नगर) में ये पाँच खतरे हैं। 1223 वे पाँच क्या हैं? यह ऊबड़-खाबड़ है; यह धूल भरा है; इसके कुत्ते हिंसक हैं; इसमें जंगली आत्माएँ हैं; और वहाँ भिक्षा प्राप्त करना कठिन है। ये मथुरा के पाँच खतरे हैं।" [257]

III. लंबी यात्रा (दिघाचारिका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

221 लंबी भटकन (1) (दिघाकारिका1)

भिक्षुओं, जो व्यक्ति दीर्घकालीन और अस्थिर भ्रमण में संलग्न रहता है, उसे ये पाँच खतरे होते हैं। 1224 वे पाँच खतरे क्या हैं? जो सुना नहीं होता, उसे न सुनना; जो सुना होता है, उसे स्पष्ट न करना; जो सुना होता है, उस पर विश्वास न होना; गंभीर बीमारी का शिकार होना; और मित्र न होना। दीर्घकालीन और अस्थिर भ्रमण में संलग्न रहने वाले व्यक्ति के लिए ये पाँच खतरे हैं।

भिक्षुओं, आवधिक भ्रमण के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? व्यक्ति को ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं जो उसने पहले नहीं सुनी हों; उसे सुनी हुई बातों का स्पष्टीकरण मिलता है; उसे सुनी हुई कुछ बातों पर विश्वास होता है; वह किसी गंभीर बीमारी से बच जाता है; और उसे मित्र मिलते हैं। आवधिक भ्रमण के ये पाँच लाभ हैं।

---

222 लंबी भटकन (2) (दिघाकारिका2)

भिक्षुओं, दीर्घकालीन और अस्थिर भ्रमण में संलग्न रहने वाले व्यक्ति के लिए ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? व्यक्ति वह प्राप्त नहीं कर पाता जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है; वह अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धियों से विमुख हो जाता है; वह किसी गंभीर बीमारी का शिकार हो जाता है; और उसका कोई मित्र नहीं होता। दीर्घकालीन और अस्थिर भ्रमण में संलग्न रहने वाले व्यक्ति के लिए ये पाँच खतरे हैं।

"भिक्षुओं, आवधिक भ्रमण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? व्यक्ति वह प्राप्त कर लेता है जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है; व्यक्ति अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धि से विचलित नहीं होता; व्यक्ति अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धि के प्रति आश्वस्त रहता है; व्यक्ति किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित नहीं होता; और व्यक्ति के मित्र होते हैं। ये आवधिक भ्रमण के पाँच लाभ हैं।" [258]

---

223 (3) बहुत लंबे समय तक निवास करना (अतिनिवासा)

भिक्षुओं, एक ही स्थान पर लंबे समय तक रहने से ये पाँच खतरे होते हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? (1) व्यक्ति बहुत सी वस्तुओं का संग्रह करने लगता है; (2) व्यक्ति बहुत सी औषधियों का संग्रह करने लगता है; (3) व्यक्ति बहुत से कार्यों और कर्तव्यों को अपने ऊपर ले लेता है और उनमें निपुण हो जाता है; (4) व्यक्ति गृहस्थों और संन्यासियों के साथ ऐसे संबंध बनाता है जो गृहस्थों के लिए अनुचित होते हैं; और (5) जब व्यक्ति उस मठ से विदा होता है, तो वह चिंता से भरा हुआ विदा होता है। ये पाँच खतरे एक ही स्थान पर लंबे समय तक रहने से होते हैं।

भिक्षुओं, संतुलित अवधि तक एक ही स्थान पर रहने के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति बहुत सी वस्तुओं का संग्रह नहीं करता; (2) व्यक्ति बहुत सी औषधियों का संग्रह नहीं करता; (3) व्यक्ति बहुत से कार्यों और कर्तव्यों को नहीं ग्रहण करता और विभिन्न कार्यों में निपुण नहीं होता; (4) व्यक्ति गृहस्थों और संन्यासियों के साथ गृहस्थों के समान अनुचित संबंध नहीं बनाता; और (5) जब व्यक्ति उस मठ से विदा होता है, तो वह चिंतामुक्त होकर विदा होता है। संतुलित अवधि तक एक ही स्थान पर रहने के ये पाँच लाभ हैं।

---

224 कंजूस (मच्छरी)

भिक्षुओं, एक ही स्थान पर बहुत अधिक समय तक रहने से ये पाँच खतरे होते हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? व्यक्ति रहने की जगह में कंजूसी करने लगता है, परिवार में कंजूसी करने लगता है, लाभ में कंजूसी करने लगता है, प्रशंसा में कंजूसी करने लगता है और धर्म में कंजूसी करने लगता है। एक ही स्थान पर बहुत अधिक समय तक रहने से ये पाँच खतरे होते हैं।

भिक्षुओं, संतुलित अवधि तक एक ही स्थान पर रहने के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? व्यक्ति निवास स्थान, परिवार, लाभ, प्रशंसा और धर्म के प्रति कंजूसी नहीं करता। संतुलित अवधि तक एक ही स्थान पर रहने के ये पाँच लाभ हैं।

---

225 वह व्यक्ति जो परिवारों से मिलने जाता है (1) (कुलुपाका1)

भिक्षुओं, परिवारों के दर्शन करने वाले के लिए ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच क्या हैं? [259] (1) बिना किसी भिक्षु से अनुमति लिए परिवारों के दर्शन करने जाना अपराध है, (2) किसी स्त्री के साथ एकांत में बैठना अपराध है, (3) किसी स्त्री के साथ गुप्त आसन पर बैठना अपराध है, (4) किसी स्त्री को पाँच या छह वाक्यों से अधिक में धम्म का उपदेश देना अपराध है। (5) कामुक विचारों से ग्रस्त होना। परिवारों के दर्शन करने वाले के लिए ये पाँच खतरे हैं।

---

226 जो परिवारों से मिलने जाता है (2) (कुलुपाका2)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु परिवारों के बीच जाकर उनसे अत्यधिक घनिष्ठ संबंध बनाता है, तो ये पाँच खतरे उत्पन्न होते हैं। वे पाँच खतरे क्या हैं? (1) उसे अक्सर स्त्रियों से मिलने का अवसर मिलता है। (2) जब वह अक्सर उनसे मिलता है, तो वह उनसे घनिष्ठ संबंध बना लेता है। (3) जब वह उनसे घनिष्ठ संबंध बनाता है, तो वे अंतरंग हो जाते हैं। (4) जब वे अंतरंग हो जाते हैं, तो कामवासना (राग) को पनपने का खुला अवसर मिल जाता है। (5) जब उसका मन कामवासना (राग) के वश में होता है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) असंतुष्ट होकर व्यतीत करेगा, कोई पाप करेगा, या साधना छोड़कर निम्न जीवन में लौट जाएगा। 1226 ये पाँच खतरे हैं जब कोई भिक्षु परिवारों के बीच जाकर उनसे अत्यधिक घनिष्ठ संबंध बनाता है।

227 धन (भोग)

भिक्षुओं, धन में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? अग्नि, जल, राजा, चोर और अप्रिय उत्तराधिकारी, ये पाँच ही धन के खतरे हैं।

भिक्षुओं, धन के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं? धन के माध्यम से, (1) व्यक्ति स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में अपना भरण-पोषण ठीक से करता है; (2) व्यक्ति अपने माता-पिता को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण ठीक से

करता है; (3) व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों, दासों, श्रमिकों और सेवकों को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण ठीक से करता है; (4) व्यक्ति अपने मित्रों और साथियों को सुखी और प्रसन्न रखता है तथा सुख में उनका भरण-पोषण ठीक से करता है; (5) व्यक्ति तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए एक उत्थानकारी दान की व्यवस्था करता है जो स्वर्गिक है, सुख प्रदान करती है और स्वर्ग की ओर ले जाती है। ये धन के पाँच लाभ हैं। [260]

---

228 देर रात का भोजन (उस्सुरभट्ट)

भिक्षुओं, जो परिवार दिन में देर से भोजन तैयार करते हैं, उनके लिए ये पाँच खतरे हैं। 1227 वे पाँच खतरे क्या हैं? (1) आने वाले मेहमानों को समय पर भोजन नहीं परोसा जाता। (2) आहुति ग्रहण करने वाले देवताओं को समय पर भोजन नहीं परोसा जाता। (3) जो तपस्वी और ब्राह्मण दिन में एक बार भोजन करते हैं और रात में भोजन नहीं करते, यानी उचित समय के बाद भोजन नहीं करते, उन्हें समय पर भोजन नहीं परोसा जाता। (4) दास, मजदूर और नौकर काम करते समय मुँह बनाते हैं। (5) समय से देर से तैयार किया गया भोजन पौष्टिक नहीं होता। ये पाँच खतरे हैं जो परिवार को दिन में देर से भोजन तैयार करने से हो सकते हैं।

भिक्षुओं, जो परिवार समय पर भोजन करते हैं, उन्हें ये पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। 1228 वे पाँच लाभ क्या हैं? (1) आने वाले मेहमानों को समय पर भोजन परोसा जाता है। (2) आहुति ग्रहण करने वाले देवताओं को समय पर भोजन परोसा जाता है। (3) जो तपस्वी और ब्राह्मण दिन में एक बार भोजन करते हैं और रात में भोजन नहीं करते, यानी समय के बाहर भोजन नहीं करते, उन्हें समय पर भोजन परोसा जाता है। (4) दास, मजदूर और नौकर बिना मुँह बनाए अपना काम करते हैं। (5) समय पर किया गया भोजन पौष्टिक होता है। ये पाँच लाभ हैं जो परिवार को समय पर भोजन करने से प्राप्त होते हैं।

229 काला साँप (1) (कान्हासप्पा1 सं. कृष्ण-सर्प)

भिक्षुओं, काले साँप में ये पाँच खतरे होते हैं। वे पाँच क्या हैं? यह अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त, डरावना, खतरनाक होता है और मित्रों को धोखा देता है। ये काले साँप के पाँच खतरे हैं। इसी प्रकार, स्त्रियों में ये पाँच खतरे होते हैं। वे पाँच क्या हैं? वे अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त, डरावनी, खतरनाक होती हैं और मित्रों को धोखा देती हैं। ये स्त्रियों के पाँच खतरे हैं। 1225

230 काला साँप (2) (कान्हा सप्पा सं. कृष्णा सर्प)

भिक्षुओं, काले साँप में ये पाँच खतरे होते हैं। वे पाँच क्या हैं? वह क्रोधी, शत्रुतापूर्ण, घातक विष वाला, दोमुँहा होता है और मित्रों को धोखा देता है। [261] ये काले साँप में पाँच खतरे हैं। इसी प्रकार, स्त्रियों में भी ये पाँच खतरे होते हैं। वे क्रोधी, शत्रुतापूर्ण, घातक विष वाली, दोमुँही होती हैं और मित्रों को धोखा देती हैं।

भिक्षुओं, स्त्रियाँ इस प्रकार घातक विष की होती हैं: उनमें अधिकतर कामवासना (राग) प्रबल होती है। स्त्रियाँ इस प्रकार दोहरी वाणी बोलती हैं: अधिकतर विभाजनकारी बातें करती हैं। स्त्रियाँ मित्रों को धोखा देती हैं: अधिकतर व्यभिचारी होती हैं। स्त्रियों में ये पाँच प्रकार के खतरे हैं।

IV. निवासी (आवासिका)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

231 निवासी (आवासिका)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से रहित निवासी भिक्षु सम्माननीय नहीं है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह शिष्टाचार और कर्तव्यों में निपुण नहीं है; (2) वह विद्वान या विद्या में निपुण नहीं है; (3) वह एकांतप्रिय नहीं है और न ही एकांत में आनंद लेता है; (4) वह अच्छा वक्ता नहीं है और उसकी बोलने की शैली अच्छी नहीं है; (5) वह नासमझ, मूर्ख और मंदबुद्धि है। इन पाँच गुणों से युक्त निवासी भिक्षु सम्माननीय नहीं है।"

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होने पर, एक निवासी भिक्षु आदरणीय होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? [262] (1) वह शिष्टाचार और कर्तव्यों में निपुण होता है; (2) वह विद्वान और विद्या में निपुण होता है; (3) वह एकांतप्रिय होता है और एकांत में आनंद लेता है; (4) वह एक अच्छा वक्ता होता है और उसकी प्रस्तुति अच्छी होती है; (5) वह बुद्धिमान, समझदार और चतुर होता है। इन पाँच गुणों से युक्त निवासी भिक्षु आदरणीय होता है।"

---

232 मनभावन (पिया सं. प्रिया)

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय लगता है और उनका आदर और सम्मान पाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी भय देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है और उसे संचित करता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन किया है। (3) वह एक अच्छा वक्ता है और उसकी प्रस्तुति अच्छी है; उसे परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण वाणी का वरदान प्राप्त है। (4) वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के अपनी इच्छा से लाभ प्राप्त करता है। वे चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) जो उच्चतर मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। (5) दोषों के नाश के साथ, उसने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इन पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और प्रिय होता है और उनके द्वारा आदरणीय और सम्मानित होता है।

---

233 सौंदर्यीकरण (शोभना)

"पाँच गुणों से युक्त भिक्षु मठ की शोभा बढ़ाते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? [263] (1) वे गुणी होते हैं; वे पतिमोक्खों से संयमित रहते हैं... वे उनका अभ्यास करते हैं। (2) उन्होंने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह पारंगत हैं। (3) वे एक अच्छे वक्ता हैं और उनकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण होती है। (4) वे अपने पास आने वालों को धर्म प्रवचन से शिक्षा, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्नता प्रदान करने में सक्षम होते हैं। (5) वे बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करते हैं जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु मठ की शोभा बढ़ाते हैं।"

---

234 बहुत मददगार (बहुपकारा)

"पाँच गुणों से युक्त भिक्षु मठ के लिए अत्यंत सहायक होता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह गुणी होता है; वह पतिमोक्खों द्वारा संयमित रहता है... वह उनका अभ्यास करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा होता है... और दृष्टि से भलीभूत होता है। (3) वह टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत करता है। (4) जब विभिन्न राज्यों के भिक्षुओं सहित भिक्षुओं का एक बड़ा संघ आता है, तो वह गृहस्थों के पास जाकर उन्हें सूचित करता है: 'मित्रों, विभिन्न राज्यों के भिक्षुओं सहित भिक्षुओं का एक बड़ा संघ आया है। पुण्य कर्म करो। यह पुण्य कर्म करने का

अवसर है।' (5) वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु मठ के लिए अत्यंत सहायक होता है।"

---

235 दयालु (अनुकम्पा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु गृहस्थों के प्रति करुणा दिखाता है। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह उन्हें सदाचारी आचरण के लिए प्रोत्साहित करता है। (2) वह उन्हें धम्म के दर्शन में स्थिर करता है। 1231 (3) जब वे बीमार होते हैं, तो वह उनके पास जाता है और उनमें सती ध्यान (ध्यान/सती) जागृत करते हुए कहता है: [264] 'आदरणीय जनों को योग्य विषय पर सती ध्यान स्थापित करना चाहिए।' 1232 (4) जब विभिन्न राज्यों के भिक्षुओं सहित भिक्षुओं का एक बड़ा संघ आता है, तो वह गृहस्थों के पास जाकर उन्हें सूचित करता है: 'मित्रों, विभिन्न राज्यों के भिक्षुओं सहित भिक्षुओं का एक बड़ा संघ आया है। पुण्य करो। यह पुण्य करने का अवसर है।'" (5) वह स्वयं जो भी भोजन दिया जाता है, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, उसे ग्रहण करता है; वह श्रद्धापूर्वक दिए गए भोजन को व्यर्थ नहीं करता। इन पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु गृहस्थों के प्रति करुणा दिखाता है।

---

236 वह जो तिरस्कार का पात्र हो (1) (अवन्नारहा1)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है। (3) बिना जाँच-पड़ताल किए वह संदेह के योग्य बात पर विश्वास करता है। (4) बिना जाँच-पड़ताल किए वह विश्वास के योग्य बात पर संदेह करता है। (5) वह आस्था से प्राप्त धन को व्यर्थ कर देता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। (2) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (3) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह संदेह के योग्य मामले पर संदेह करता है। (4) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह विश्वास के योग्य मामले पर विश्वास करता है। (5) वह आस्था से प्राप्त धन को व्यर्थ नहीं करता। इन पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।" [265]

---

237 निंदा के योग्य व्यक्ति (2) (अवन्नारहा2)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो! वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है। (3) वह आवास के मामले में कंजूस और लालची होता है। (4) वह परिवार के मामले में कंजूस और लालची होता है। (5) वह आस्था से प्राप्त धन को व्यर्थ कर देता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह गहन जाँच-पड़ताल करके निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। (2) वह गहन जाँच-पड़ताल करके प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (3) वह आवास के मामले में कंजूस और लालची नहीं होता। (4) वह परिवार के मामले में कंजूस और लालची नहीं होता। (5) वह आस्था से प्राप्त धन को व्यर्थ नहीं करता। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

238 वह जो तिरस्कार का पात्र हो (3) (अवन्नाराहा3)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) बिना जाँच-पड़ताल किए वह निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है। (2) बिना जाँच-पड़ताल किए वह प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है। (3) वह आवास के मामले में कंजूस होता है। (4) वह परिवार के मामले में कंजूस होता है। (5) वह लाभ के मामले में कंजूस होता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह निंदा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। (2) जाँच-पड़ताल करने के बाद, वह प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है। [266] (3) वह आवास के मामले में कंजूस नहीं होता। (4) वह परिवार के मामले में कंजूस नहीं होता। (5) वह लाभ के मामले में कंजूस नहीं होता। इन पाँच गुणों से युक्त, एक निवासी भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

239 कृपणता (1) (मैकचरिया1)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह आवास के मामले में कंजूस होता है। (2) वह परिवार के मामले में कंजूस होता है। (3) वह लाभ के मामले में कंजूस होता है। (4) वह प्रशंसा के मामले में कंजूस होता है। (5) वह श्रद्धा से प्राप्त धन को लुटा देता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह आवास के मामले में कंजूस नहीं होता। (2) वह परिवार के मामले में कंजूस नहीं होता। (3) वह लाभ के मामले में कंजूस नहीं होता। (4) वह प्रशंसा के मामले में कंजूस नहीं होता। (5) वह श्रद्धा से प्राप्त धन को व्यर्थ नहीं करता। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

240 कृपणता (2) (मैकचरिया2)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वह आवास के मामले में कंजूस होता है। (2) वह परिवार के मामले में कंजूस होता है। (3) वह लाभ के मामले में कंजूस होता है। (4) वह प्रशंसा के मामले में कंजूस होता है। (5) वह धर्म के मामले में कंजूस होता है। इन पाँच गुणों से युक्त एक निवासी भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिनमें पाँच गुण होते हैं, उन्हें स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? (1) वे आवास के मामले में कंजूस नहीं होते। (2) वे परिवार के मामले में कंजूस नहीं होते। (3) वे लाभ के मामले में कंजूस नहीं होते। (4) वे प्रशंसा के मामले में कंजूस नहीं होते। (5) वे धर्म के मामले में कंजूस नहीं होते। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

वी. कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

241 कदाचार (दुक्वारिता सं. दुष्चरित्र)

भिक्षुओं, दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। ये पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति स्वयं को दोष देता है। (2) ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी निंदा करते हैं। (3) व्यक्ति की बदनामी होती है। (4) व्यक्ति भ्रमित अवस्था में मरता है। (5) शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, व्यक्ति दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। ये दुराचार के पाँच खतरे हैं।

भिक्षुओं, अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति स्वयं की निंदा नहीं करता। (2) ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी प्रशंसा करते हैं। (3) व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (4) व्यक्ति विचलित हुए बिना मरता है। (5) शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, व्यक्ति स्वर्गलोक में, एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है। अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं।

---

242 शारीरिक दुराचार (कायदुच्चरिता सं. काया दुष्चरित्र)

"भिक्षुओं (मठवासियों), शारीरिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? . . . [जैसा कि 5:241 में है] . . . ये शारीरिक दुराचार में पाँच खतरे हैं।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), शारीरिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? ... [जैसा कि 5:241 में है] ... ये शारीरिक रूप से अच्छे आचरण के पाँच लाभ हैं।"

---

243 मौखिक कदाचार

"भिक्षुओं (मठवासियों), मौखिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? . . . [जैसा कि 5:241 में है] . . . मौखिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), मौखिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? . . . [जैसा कि 5:241 में है] . . . मौखिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं।"

---

244 मानसिक दुराचार (मनोदुच्चरिता सं. मनो दुष्चरित्र)

भिक्षुओं, मानसिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? . . . [जैसा कि 5:241 में है] . . . ये मानसिक दुराचार में पाँच खतरे हैं।

"भिक्षुओं (मठवासियों), अच्छे मानसिक आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? [268] . . . [जैसा कि 5:241 में है] . . . ये अच्छे मानसिक आचरण के पाँच लाभ हैं।"

245 दुराचार पर एक और (दुश्चरित्रा2 सं. दुश्चरित्रा)

भिक्षुओं, दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति स्वयं को दोष देता है। (2) ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी निंदा करते हैं। (3) व्यक्ति की प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है। (4) व्यक्ति अच्छे धर्म से विमुख हो जाता है। (5) व्यक्ति बुरे धर्म में स्थापित हो जाता है। ये दुराचार के पाँच खतरे हैं।

भिक्षुओं, अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। ये पाँच क्या हैं? (1) व्यक्ति स्वयं को दोष नहीं देता। (2) ज्ञानी लोग जाँच-पड़ताल करके उसकी प्रशंसा करते हैं। (3) व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (4) व्यक्ति बुरे धर्म से विमुख हो जाता है। (5) व्यक्ति अच्छे धर्म में स्थापित हो जाता है। अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं।

---

246 शारीरिक दुराचार पर एक और (कायादुकारिता2 सं. काया दुष्चरित्र)

"भिक्षुओं (मठवासियों), शारीरिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? . . . [जैसा कि 5:245 में है] . . . ये शारीरिक दुराचार में पाँच खतरे हैं। ."

"भिक्षुओं (मठवासियों), शारीरिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? ... [जैसा कि 5:245 में है] ... ये शारीरिक रूप से अच्छे आचरण के पाँच लाभ हैं।"

---

247 मौखिक कदाचार पर एक और (वासीदुक्कारिता2 सं. वाका दुष्चरित्र)

"भिक्षुओं (सन्यासियों), मौखिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच कौन से हैं? . . . [जैसा कि 5:245 में है] . . . मौखिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), मौखिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? . . . [जैसा कि 5:245 में है] . . . मौखिक रूप से अच्छे आचरण के ये पाँच लाभ हैं।"

---

248 मानसिक दुराचार पर एक और (मनोदुकारिता2 सं. मनो दुष्चरित्र)

भिक्षुओं, मानसिक दुराचार में ये पाँच खतरे हैं। कौन से पाँच? . . . [जैसा कि 5:245 में है] . . . ये मानसिक दुराचार में पाँच खतरे हैं।

"भिक्षुओं (सन्यासियों), अच्छे मानसिक आचरण के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच कौन से हैं? . . . [जैसा कि 5:245 में है] . . . ये अच्छे मानसिक आचरण के पाँच लाभ हैं।"

---

249 ए चार्नेल ग्राउंड (शिवथिका)

भिक्षुओं, श्मशान भूमि में ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच क्या हैं? यह अपवित्र, दुर्गंधयुक्त, खतरनाक, अमानवीय (आत्माओं) का निवास स्थान है, [एक ऐसा स्थान जहाँ] बहुत से लोग रोते हैं। ये श्मशान भूमि के पाँच खतरे हैं। इसी प्रकार, श्मशान भूमि के समान व्यक्ति में भी ये पाँच खतरे हैं। वे पाँच क्या हैं? [269]

(1) "यहाँ, कोई व्यक्ति अशुद्ध शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों में संलग्न है। मैं कहता हूँ, इसी प्रकार वह अशुद्ध है। जिस प्रकार वह श्मशान भूमि अशुद्ध है, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति भी उसी प्रकार अशुद्ध है।"

(2) "चूंकि वह अशुद्ध शारीरिक, मौखिक और मानसिक कार्यों में संलग्न रहता है, इसलिए उसकी बदनामी होती है। मैं कहता हूँ, इसी प्रकार वह दुर्गंधयुक्त है। जिस प्रकार वह श्मशान भूमि दुर्गंधयुक्त होती है, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति भी उसी प्रकार दुर्गंधयुक्त है।"

(3) "चूंकि वह अशुद्ध शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों में लिप्त रहता है, इसलिए उसके सुसंस्कृत साथी भिक्षु उससे दूर से ही बचते हैं। मैं कहता हूँ कि इसी कारण वह खतरनाक माना जाता है। जिस प्रकार वह श्मशान भूमि खतरनाक मानी जाती है, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति भी उसी प्रकार खतरनाक है।"

(4) "अशुद्ध शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों में लिप्त होकर वह अपने जैसे लोगों के साथ रहता है। मैं कहता हूँ, इस प्रकार वह जंगली [व्यक्तियों] का निवास स्थान है। जिस प्रकार वह श्मशान भूमि अमानवीय (आत्माओं) का निवास स्थान है, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति भी उसी प्रकार का है।"

(5) "उसे अशुद्ध शारीरिक, मौखिक और मानसिक कार्यों में लिप्त देखकर, उसके सुसंस्कृत साथी भिक्षु उसके बारे में शिकायत करते हुए कहते हैं: 'अरे, ऐसे लोगों के साथ रहना हमारे लिए कितना कष्टदायी है!' मैं कहता हूँ, इसी कारण उसके लिए शोक मनाया जाता है। जिस प्रकार वह श्मशान भूमि [एक ऐसा स्थान है जहाँ] बहुत से लोग रोते हैं, मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति भी वैसा ही है।"

"हे भिक्षुओं, ये पाँच खतरे उस व्यक्ति में होते हैं जो श्मशान भूमि के समान होता है।" [270]

---

250 किसी व्यक्ति पर विश्वास (पुग्गलप्पसाद)

"भिक्षुओं, किसी व्यक्ति पर भरोसा करने में ये पाँच खतरे हैं। क्या, पाँच?"

(1) जिस व्यक्ति पर दूसरे को पूर्ण विश्वास हो, वह कोई अपराध कर सकता है जिसके कारण संघ उसे निलंबित कर देता है। उस व्यक्ति को [जिसने उस पर ऐसा विश्वास किया था] यह आशय होता है: 'जो व्यक्ति मुझे प्रिय और प्रसन्न करता था, उसे संघ ने निलंबित कर दिया है।' तब उसका भिक्षुओं पर विश्वास काफी कम हो जाता है। चूंकि उसका विश्वास कम हो गया है, इसलिए वह अन्य भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करता। चूंकि वह अन्य भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करता, इसलिए उसे उत्तम धर्म का ज्ञान नहीं मिलता। चूंकि उसे उत्तम धर्म का ज्ञान नहीं मिलता, इसलिए वह उत्तम धर्म से विमुख हो जाता है। किसी व्यक्ति पर विश्वास करने का यह पहला खतरा है।

(2) "फिर, जिस व्यक्ति पर दूसरे को पूर्ण विश्वास होता है, वह कोई अपराध कर सकता है जिसके कारण संघ उसे अंत में बैठा देता है। 1233 उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता है [जिसने उस पर ऐसा विश्वास किया था]: 'संघ ने उस व्यक्ति को, जो मुझे प्रिय और अच्छा लगता है, अंत में बैठा दिया है।' तब भिक्षुओं पर उसका विश्वास काफी कम हो जाता है। ... क्योंकि उसे अच्छा धर्म सुनने को नहीं मिलता, इसलिए वह अच्छे धर्म से विमुख हो जाता है। किसी व्यक्ति पर विश्वास करने का यह दूसरा खतरा है।"

(3) "फिर, जिस व्यक्ति पर दूसरे को पूरा भरोसा है, वह किसी दूसरे स्थान पर जा सकता है... (4) ... वस्त्र त्याग सकता है... (5) ... उसका निधन हो सकता है। उस व्यक्ति को [जिसने उस पर ऐसा भरोसा किया था] यह विचार आता है: 'जो व्यक्ति मुझे प्रिय और अच्छा लगता था [वह किसी दूसरे स्थान पर चला गया है... वस्त्र त्याग दिया है...] उसका निधन हो गया है।' 1234 वह अन्य भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करता। क्योंकि वह अन्य भिक्षुओं के साथ संगति नहीं करता, इसलिए उसे अच्छे धर्म का ज्ञान नहीं मिलता। क्योंकि उसे अच्छे धर्म का ज्ञान नहीं मिलता, इसलिए वह अच्छे धर्म से विमुख हो जाता है। किसी व्यक्ति पर भरोसा करने का यह पाँचवाँ खतरा है।"

"भिक्षुओं, किसी व्यक्ति पर भरोसा करने में ये पाँच खतरे हैं।" [271]

छठा पचास

I. पूर्ण समन्वय [1235] (उपसम्पदा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

252 पूर्ण दीक्षा कौन दे सकता है (उपसंपदेतब्बा)

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु पूर्ण दीक्षा दे सकते हैं। 1236 वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु में प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्गुणों का समूह होता है; उसमें प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का समूह होता है; उसमें प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह होता है; उसमें प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह होता है; उसमें प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का समूह होता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु पूर्ण दीक्षा दे सकते हैं।"

---

252 निर्भरता (निस्सया)

"भिक्षुओं में पाँच गुण होते हैं, जिससे वे आश्रित हो सकते हैं। 1237 वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु में सद्गुणों का समूह होता है... समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का समूह... पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह... मुक्ति का समूह... और प्रशिक्षण से परे मुक्ति के ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) का समूह। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु आश्रित हो सकते हैं।"

---

253 नौसिखिया (सामनेरा)

"भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुण होते हैं, और एक भिक्षु की सेवा एक नौसिखिए द्वारा की जा सकती है। वे पाँच गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु में सद्गुणों का समूह होता है... समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का समूह... पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह... मुक्ति का समूह... और प्रशिक्षण से परे मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का समूह। इन पाँच गुणों से युक्त एक भिक्षु की सेवा एक नौसिखिए द्वारा की जा सकती है।" [272]

---

254 कंजूसी (मच्छरिया)

भिक्षुओं, कंजूसी पाँच प्रकार की होती है। ये पाँच कौन सी हैं? आवास के प्रति कंजूसी, परिवार के प्रति कंजूसी, लाभ के प्रति कंजूसी, प्रशंसा के प्रति कंजूसी और धर्म के प्रति कंजूसी। ये पाँच प्रकार की कंजूसी हैं। इन पाँच प्रकार की कंजूसी में सबसे नीच कंजूसी धर्म के प्रति कंजूसी है।

---

255 कृपणता का परित्याग (मैकचरियाप्पहाना)

भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य (संन्यासी) जीवन पाँच प्रकार की कंजूसी के त्याग और उन्मूलन के लिए व्यतीत किया जाता है। वे पाँच कौन सी हैं? आवास के संबंध में कंजूसी, परिवार के संबंध में कंजूसी, लाभ के संबंध में कंजूसी, प्रशंसा के संबंध में कंजूसी और धर्म के संबंध में कंजूसी। आध्यात्मिक जीवन (संन्यास) इन्हीं पाँच प्रकार की कंजूसी के त्याग और उन्मूलन के लिए व्यतीत किया जाता है।

---

256 प्रथम झाना (ट्रान्स अवस्था) (पथमा झा सं. प्रथम ध्यान)

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के प्रति कंजूसी, परिवार के प्रति कंजूसी, लाभ के प्रति कंजूसी, प्रशंसा के प्रति कंजूसी और धर्म के प्रति कंजूसी। इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है।

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में सक्षम हो जाता है। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के संबंध में कंजूसी... धर्म के संबंध में कंजूसी। इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति सक्षम हो जाता है।

प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें निवास करने के बारे में।"

257-263 दूसरा झाना (ट्रान्स अवस्था), आदि [1239] (दुतियाझाना..)

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें निवास करने में असमर्थ है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... कोई धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल को प्राप्त करने में असमर्थ है... एक बार जन्म लेने (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) के फल को... अनागामी (पृथ्वी में पुनर्जन्म नहीं) के फल को... अरहंतत्व के फल को। वे पाँच क्या हैं? [273] आवास के संबंध में कंजूसी... धम्म के संबंध में कंजूसी। इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई अरहंतत्व के फल को प्राप्त करने में असमर्थ है।

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें निवास कर सकता है... तृतीय ध्यान में... चतुर्थ ध्यान में... वह धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल को प्राप्त कर सकता है... एक बार जन्म लेने (सकदागामी) के फल को... अनागामी (पृथ्वी में पुनर्जन्म नहीं) के फल को... अरहंतत्व के फल को। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के संबंध में कंजूसी... धम्म के संबंध में कंजूसी। इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति अरहंतत्व के फल को प्राप्त कर सकता है।

---

264 प्रथम झाना (ट्रान्स अवस्था) पर एक और (अपरापथमाझाना)

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के संबंध में कंजूसी, परिवार के संबंध में कंजूसी, लाभ के संबंध में कंजूसी, प्रशंसा के संबंध में कंजूसी और कृतघ्नता। इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है।

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें लीन हो सकता है। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के प्रति कंजूसी, परिवार के प्रति कंजूसी, लाभ के प्रति कंजूसी, प्रशंसा के प्रति कंजूसी और कृतघ्नता। इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें लीन हो सकता है।

265—271 दूसरे झाना पर (ट्रान्स अवस्था), आदि (अपरादुतियाझाना)

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग किए बिना कोई द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... सात जन्मों के ऋतुओं ...

भिक्षुओं, इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें निवास कर सकता है... तृतीय ध्यान में... चतुर्थ ध्यान में... वह धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल को प्राप्त कर सकता है... एक बार जन्म लेने (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) के फल को... अनागामी (पृथ्वी में पुनर्जन्म नहीं) के फल को... अरहंतत्व के फल को। वे पाँच चीजें क्या हैं? आवास के संबंध में कंजूसी... कृतघ्नता या कृतज्ञताहीनता। इन पाँच चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति अरहंतत्व के फल को प्राप्त कर सकता है। [274]

अध्याय के अतिरिक्त प्रवचन [1240]

I. सहमत पुनरावृत्ति श्रृंखला (सम्मुतिपेय्यालम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

272 भोजन का एक निर्दिष्टी (भट्टुद्देसका)

(1) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भोजन आवंटित करने का कार्य नहीं सौंपा जाना चाहिए। 1241 वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चलता है; वह घृणा के कारण गलत मार्ग पर चलता है; वह मोह (मोह) के कारण गलत मार्ग पर चलता है; वह भय के कारण गलत मार्ग पर चलता है; उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा भोजन आवंटित किया गया है और कौन सा नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भोजन आवंटित करने का कार्य नहीं सौंपा जाना चाहिए।

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भोजन का प्रबंधकर्ता नियुक्त किया जा सकता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता; वह घृणा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता; वह मोह (मोह) के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता; वह भय के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता; वह जानता है कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भोजन का प्रबंधकर्ता नियुक्त किया जा सकता है।

(2) "भिक्षुओं, यदि पाँच गुणों से युक्त किसी व्यक्ति को भोजन परोसने का कार्य सौंपा जाए, तो उसे नहीं भेजा जाना चाहिए। 1242 वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा भोजन निर्धारित किया गया है और कौन सा नहीं। यदि इन पाँच गुणों से युक्त किसी व्यक्ति को भोजन परोसने का कार्य सौंपा जाए, तो उसे नहीं भेजा जाना चाहिए।"

भिक्षुओं, यदि पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भोजन वितरणकर्ता नियुक्त किया जाए, तो उसे भेजा जाना चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को ही भोजन वितरणकर्ता नियुक्त किया जाए, तो उसे भेजा जाना चाहिए।

(3) "भिक्षुओं, भोजन निर्धारित करने वाले जिस व्यक्ति में पाँच गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। भोजन निर्धारित करने वाले जिस व्यक्ति में ये पाँच गुण हों, उसे मूर्ख समझा जाना चाहिए।"

भिक्षुओं, भोजन निर्धारित करने वाले जिस व्यक्ति में पाँच गुण हों, उसे बुद्धिमान समझा जाना चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता! उसे पता होता है कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। भोजन निर्धारित करने वाले जिस व्यक्ति में ये पाँच गुण हों, उसे बुद्धिमान समझा जाना चाहिए।

(4) "भिक्षुओं, भोजन परोसने वाला जो पाँच गुणों से युक्त होता है, वह स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। भोजन परोसने वाला जो इन पाँच गुणों से युक्त होता है, वह स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है।"

भिक्षुओं, भोजन परोसने वाला वह व्यक्ति जिसमें पाँच गुण होते हैं, स्वयं को अक्षुण्ण और सुरक्षित रखता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं। भोजन परोसने वाला वह व्यक्ति जिसमें ये पाँच गुण होते हैं, स्वयं को अक्षुण्ण और सुरक्षित रखता है।

(5) “भिक्षुओं, भोजन निर्धारित करने वाला जो पाँच गुणों से युक्त होता है, उसे नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा भोजन निर्धारित किया गया है और कौन सा नहीं। भोजन निर्धारित करने वाला जो इन पाँच गुणों से युक्त होता है, उसे नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो...”

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में, भोजन निर्धारित करने वाला पाँच गुणों से युक्त भिक्षु स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि कौन सा भोजन निर्धारित है और कौन सा नहीं... इन पाँच गुणों से युक्त भोजन निर्धारित करने वाला भिक्षु स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

273-285 आवास आदि नियुक्त करने वाला (सेनसनपन्नपका)

(273) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को आवास नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। 1243 वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा आवास नियुक्त किया गया है और कौन सा नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को आवास नियुक्त किया जा सकता है। वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... उसे पता होता है कि कौन सा आवास नियुक्त किया गया है और कौन सा नहीं।

(274) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को आवास आवंटनकर्ता नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए 1244 . . . उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा आवास आवंटित किया गया है और कौन सा नहीं। . . . भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को आवास आवंटनकर्ता नियुक्त किया जा सकता है . . . उसे पता होता है कि कौन सा आवास आवंटित किया गया है और कौन सा नहीं। ..."

(275) “भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भंडारगृह का संरक्षक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता कि किन वस्तुओं की रक्षा की जा रही है और किनकी नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को भंडारगृह का संरक्षक नियुक्त किया जा सकता है... क्योंकि उसे ज्ञात होता है कि किन वस्तुओं की रक्षा की जा रही है और किनकी नहीं।

(276) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वस्त्र सामग्री का प्राप्तकर्ता नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... उसे यह ज्ञात नहीं होता कि कौन सी वस्त्र सामग्री प्राप्त हुई है और कौन सी नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वस्त्र सामग्री का प्राप्तकर्ता नियुक्त किया जा सकता है [275]... उसे ज्ञात होता है कि कौन सी वस्त्र सामग्री प्राप्त हुई है और कौन सी नहीं।

(277) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वस्त्र सामग्री का वितरक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता कि कौन सी वस्त्र सामग्री वितरित की गई है और कौन सी नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वस्त्र सामग्री का वितरक नियुक्त किया जा सकता है... क्योंकि उसे ज्ञात होता है कि कौन सी वस्त्र सामग्री वितरित की गई है और कौन सी नहीं।

(278) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को चावल की दलिया वितरित करने का कार्य नहीं सौंपा जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह नहीं पता होता कि कौन सी दलिया वितरित की गई है और कौन सी नहीं... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को चावल की दलिया वितरित करने का कार्य सौंपा जा सकता है... क्योंकि उसे यह पता होता है कि कौन सी दलिया वितरित की गई है और कौन सी नहीं..."

(279) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को फल वितरक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह नहीं पता होता कि कौन सा फल वितरित किया गया है और कौन सा नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को फल वितरक नियुक्त किया जा सकता है... क्योंकि उसे यह पता होता है कि कौन सा फल वितरित किया गया है और कौन सा नहीं।"

(280) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को केक वितरित करने का कार्य नहीं सौंपा जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह नहीं पता होता कि कौन से केक वितरित किए गए हैं और कौन से नहीं। भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को केक वितरित करने का कार्य सौंपा जा सकता है... क्योंकि उसे यह पता होता है कि कौन से केक वितरित किए गए हैं और कौन से नहीं।"

(281) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को लघु सामग्री वितरित करने वाला नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए: ... उसे यह नहीं पता होता कि कौन सी [लघु सामग्री] वितरित की गई है और कौन सी नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को लघु सामग्री वितरित करने वाला नियुक्त किया जा सकता है ... उसे पता होता है कि कौन सी [लघु सामग्री] वितरित की गई है और कौन सी नहीं। ..."

(282) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वर्षा वस्त्रों का आवंटनकर्ता नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता कि कौन से वर्षा वस्त्र आवंटित किए गए हैं और कौन से नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को वर्षा वस्त्रों का आवंटनकर्ता नियुक्त किया जा सकता है... क्योंकि उसे ज्ञात होता है कि कौन से वर्षा वस्त्र आवंटित किए गए हैं और कौन से नहीं। ..."

(283) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को पान-पात्रों का आवंटनकर्ता नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता कि किन पान-पात्रों का आवंटन किया गया है और किनका नहीं... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को पान-पात्रों का आवंटनकर्ता नियुक्त किया जा सकता है... क्योंकि उसे यह ज्ञात होता है कि किन पान-पात्रों का आवंटन किया गया है और किनका नहीं।"

(284) "भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को मठ के सेवकों का पर्यवेक्षक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए... उसे यह नहीं पता होता कि किस [मठ के सेवक] का पर्यवेक्षण किया गया है और किसका नहीं। ... भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को मठ के सेवकों का पर्यवेक्षक नियुक्त किया जा सकता है... उसे यह पता होता है कि किस [मठ के सेवक] का पर्यवेक्षण किया गया है और किसका नहीं। ..."

(285) नौसिखियों का पर्यवेक्षक

(1) “भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह ज्ञान नहीं होता कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।”

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जा सकता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जा सकता है।

(2) “भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को यदि नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जाए, तो उसे नहीं भेजा जाना चाहिए। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह ज्ञान नहीं होता कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को यदि नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जाए, तो उसे नहीं भेजा जाना चाहिए।”

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को यदि नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जाए, तो उसे भेजा जाना चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को यदि नौसिखियों का मार्गदर्शक नियुक्त किया जाए, तो उसे भेजा जाना चाहिए।

(3) “भिक्षुओं, नौसिखियों के उस मार्गदर्शक को मूर्ख समझा जाना चाहिए जिसमें पाँच गुण हों। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चलता है... उसे यह नहीं पता होता कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। नौसिखियों के उस मार्गदर्शक को मूर्ख समझा जाना चाहिए जिसमें ये पाँच गुण हों।”

भिक्षुओं, नौसिखियों के मार्गदर्शक के रूप में पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान समझा जाना चाहिए। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं: नौसिखियों के मार्गदर्शक के रूप में इन पाँच गुणों से युक्त व्यक्ति को बुद्धिमान समझा जाना चाहिए।

(4) “भिक्षुओं (साधुओं) में पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों का मार्गदर्शक स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन हुआ है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों का मार्गदर्शक स्वयं को अपंग और घायल अवस्था में रखता है।”

भिक्षुओं, नौसिखियों का मार्गदर्शन करने वाला वह व्यक्ति जिसमें पाँच गुण होते हैं, स्वयं को अक्षुण्ण और सुरक्षित रखता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... वह जानता है कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों का मार्गदर्शन करने वाला व्यक्ति स्वयं को अक्षुण्ण और सुरक्षित रखता है।

(5) “भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों के मार्गदर्शक को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर चल पड़ता है... उसे यह नहीं पता होता कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों के मार्गदर्शक को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।”

भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों के मार्गदर्शक को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चलता... उसे पता होता है कि किन नौसिखियों का मार्गदर्शन किया गया है और किन्हें नहीं। इन पाँच गुणों से युक्त नौसिखियों के मार्गदर्शक को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

द्वितीय. प्रशिक्षण नियम दोहराव श्रृंखला (सिक्खपदपेय्यलम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

286 एक भिक्षु (मठवासी)

"भिक्षुओं (मठवासियों), पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया उसे लेता है, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। [276] इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जो जीवन के विनाश से, अनधिकृत वस्तुओं को ग्रहण करने से, यौन क्रियाओं से, झूठी वाणी से और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, दूर रहता है। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

287-292 भिक्षुणी (भिक्षुणी) आदि

"भिक्षुओं (भिक्षुओं) में पाँच गुण होते हैं, एक भिक्षुणी (भिक्षुणी)... एक प्रशिक्षु महिला... एक नवोदित पुरुष... एक नवोदित महिला को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करती है... और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करती है... इन पाँच गुणों वाली भिक्षुणी (भिक्षुणी)... एक प्रशिक्षु महिला... एक नवोदित पुरुष... एक नवोदित महिला को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षु, पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षुणी... एक प्रशिक्षु महिला... एक नवोदित पुरुष... एक नवोदित महिला स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करती है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन के विनाश से दूर रहती है... शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करती है... इन पाँच गुणों से युक्त, एक भिक्षुणी... एक प्रशिक्षु महिला... एक नवोदित पुरुष... एक नवोदित महिला स्वर्ग में ऐसे प्रवेश करती है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षु (मठवासी), पाँच गुणों से युक्त, एक पुरुष गृहस्थ अनुयायी ...

एक महिला गृहस्थ अनुयायी को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करती है, बिना माँगे वस्तुएँ लेती है, यौन दुराचार में लिप्त होती है, झूठ बोलती है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करती है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों से युक्त एक पुरुष गृहस्थ अनुयायी... एक महिला गृहस्थ अनुयायी को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

"पाँच गुणों से युक्त भिक्षुओं को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे पाँच गुण क्या हैं? वे जीव-जंतुओं को नष्ट करने से बचते हैं, बिना माँगे कुछ लेने से बचते हैं, यौन दुराचार से बचते हैं, झूठी वाणी से बचते हैं, और आलस्य के मूल कारण मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से दूर रहते हैं। इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षुओं को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

---

293 एक आजीवका

"भिक्षुओं (सन्यासियों), पाँच गुणों से युक्त अजीवक को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। 1248 वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ ग्रहण करता है, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों से युक्त अजीवक को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

294 — 302 ए निगांथा, इत्यादि।

"भिक्षु (मठवासी), पाँच गुणों से युक्त, एक निगंथ ... एक मुंडा हुआ शिष्य ... एक जटाधारी तपस्वी ... एक तपस्वी ... एक मगंदिक ... एक तेंदिक ... एक अरुद्धक ... एक गौतमक [277] ... एक देवधम्मिक को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। 1249 वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, झूठ बोलता है और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं। इन पाँच गुणों से युक्त एक देवधम्मिक को नरक में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

III वासना (राग) और आगे की पुनरावृत्ति श्रृंखला (रागपेय्यलम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

303

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें क्या हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, खतरे की अनुभूति, भोजन की अरुचि की अनुभूति और संसार में आनंदहीनता की अनुभूति। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है।

304

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें कौन सी हैं? अनित्यता की अनुभूति, अनात्म की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन के प्रति अरुचि की अनुभूति और समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है।

305

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें क्या हैं? अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति और वैराग्य की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है।

306

"भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें क्या हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति, सती ध्यान की शक्ति, समाधि की शक्ति और दिव्य ज्ञान की शक्ति। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है।" [278]

307

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें क्या हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (वीर्य), ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (स्व-लीनता) की शक्ति और ज्ञान (दिव्य ज्ञान)। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पाँचों चीजों का विकास करना आवश्यक है।

308 - 1151

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके निवारण के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए, पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे पाँच चीजें क्या हैं? अनाकर्षण की अनुभूति (सन्ना/संग्या)... [ऊपर बताए गए सभी पाँचों समूह, नीचे तक]... विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, ध्यान (ध्यान/सती) की शक्ति, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की शक्ति और पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति। कामवासना (राग) के त्याग के लिए, इन पाँच चीजों का विकास करना आवश्यक है।

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा के लिए... मोह के लिए... क्रोध के लिए... शत्रुता के लिए... निंदा के लिए... उद्दंडता के लिए... ईर्ष्या के लिए... कंजूसी के लिए... छल के लिए... धूर्तता के लिए... हठ के लिए... उग्रता के लिए... अहंकार के लिए... अभिमान के लिए... नशे के लिए... आलस्य के लिए, पाँच चीजों का विकास करना है। वे पाँच क्या हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्न/संज्ञा)... [ऊपर बताए गए पाँचों के पाँचों समूह, नीचे तक] ... विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, ध्यान की शक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति और ज्ञान की शक्ति। आलस्य से मुक्ति पाने के लिए इन पाँचों चीजों को विकसित करना आवश्यक है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

द बुक ऑफ द फाइव्स पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 6. छक्कों की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का छठा भाग है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN5) अगला (AN7) >>>>

अंतर्वस्तु

1छक्कनिपाता की पुस्तक

1.1पहले पचास

1.1.1I. उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

1.1.1.11 उपहारों के योग्य (1) (अहुनेय्या1)

1.1.1.22 उपहारों के योग्य (2) (अहुनेय्या2)

1.1.1.33 इंद्रियां (इंद्रिय)

1.1.1.44 शक्तियाँ (बाला)

1.1.1.55 शुद्ध नस्ल (1) (अजानिया1)

1.1.1.66 थोरब्रेड (2) (अजानिया2)

1.1.1.77 थोरब्रेड (3) (अजानिया3)

1.1.1.88 अतुलनीय वस्तुएँ (अनुत्तरिया)

1.1.1.99 स्मरण के विषय (अनुसत्तित्थना)

1.1.1.1010 महानामा

1.1.2II. सौहार्द (सरनिया)

1.1.2.111 सौहार्द (1) (सरानिया1)

1.1.2.222 सौहार्द (2) (सरानिया1)

1.1.2.313 पलायन (निस्सारनिया)

1.1.2.414. एक अच्छी मृत्यु (भद्दका)

1.1.2.515. पछतावा (अनुतप्पिया)

1.1.2.616 नकुला पितु

1.1.2.717 लाभकारी (कुसला) (सोप्पा)

1.1.2.818 मछली विक्रेता (मच्छबंधा)

1.1.2.919 मृत्यु पर ध्यान (1) (मरणस्सि1 संस्कृत: मरण स्मृति)

1.1.2.1020 मृत्यु पर ध्यान (2) (मरनास्सि2 संस्कृत मरण स्मृति)

1.1.3III. अतुलनीय (अनुत्तरिया संस्कृत: अनुत्तरा)

1.1.3.121 समाका

1.1.3.222 अपरिहानिया (गैर-पतन)

1.1.3.323 खतरा (भया)

1.1.3.424 हिमालय (हिमावंता)

1.1.3.525. स्मरण (अनुसत्तित्थना)

1.1.3.626 महाकच्चना

1.1.3.727 अवसर (1) (समय1)

1.1.3.828 अवसर (2) (समय2)

1.1.3.929 उदय

1.1.3.1030 (10) अतुलनीय वस्तुएँ (अनुत्तरिया)

1.1.4IV. देवता (देवदूत)

1.1.4.131 प्रशिक्षु (सेखा)

1.1.4.232 गैर-अस्वीकार (1) (परिहाना1)

1.1.4.333 गैर-अस्वीकार (2) (परिहाना2)

1.1.4.434 मोग्गलाना

1.1.4.535. सच्चे ज्ञान (विज्भगीय) से संबंधित

1.1.4.636 विवाद (विवादमूल)

1.1.4.737 दान देना

1.1.4.838 स्व-पहल (अत्ताकारी बिना आत्मा कारी)

1.1.4.939. निदान के कारण

1.1.4.1040 किम्बिला 1311 (किमिला)

1.1.4.1141 लकड़ी का एक टुकड़ा (दारुखंड)

1.1.4.1242 नागिता 1312

1.1.5वी. धम्मिका

1.1.5.143 नागा

1.1.5.244 मिगासाला

1.1.5.345 ऋण (इना, रीना के बिना)

1.1.5.446 महाकुंडा

1.1.5.547 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान (1) (संदिल्थिका1)

1.1.5.648 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान (2) (संदिल्थिका2)

1.1.5.749 खेमा

1.1.5.850 (8) इन्द्रियसंयम 1354 (इन्द्रियसंवर)

1.1.5.951 आनंद

1.1.5.1052 क्षत्रिय (संस्कृत क्षत्रिय)

1.1.5.1153 सतर्कता (अप्पमादा)

1.1.5.1254 धम्मिका

1.2दूसरा पचास

1.2.1VI. महान अध्याय (महावग्गो सं. महा वर्ग)

1.2.1.155 सोना

1.2.1.256 फाग्गुना

1.2.1.357 छह वर्ग (चलभिजाति)

1.2.1.458 दाग (असव सं. आश्रव)

1.2.1.559 दारुकम्मिका

1.2.1.660 हत्थी

1.2.1.761 मध्य (मज्जे सं. मध्य)

1.2.1.862 ज्ञान 1402 (पुरीसिन्द्रियाना सं. पुरुष इन्द्रिय ज्ञान)

1.2.1.963 भेदक (निब्बेधिका)

1.2.1.1064 शेर की दहाड़

1.2.2VII. देवदूत अनुभाग (देवता)

1.2.2.165 नॉन-रिटर्नर (अनागामीफला)

1.2.2.266. मुक्त व्यक्ति (अरहंत)

1.2.2.367 मित्र (Mitta sans. Mitra)

1.2.2.468 संगति में आनंद (संगनिकराम)

1.2.2.569 एक देवता (देवदूत)

1.2.2.670 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन)

1.2.2.771 साकार करने में सक्षम (सक्खीभब्बा)

1.2.2.872 शक्ति (बाला)

1.2.2.973 प्रथम झना (ट्रान्स अवस्था) (1) (पथमाताज्झा1)

1.2.2.1074 प्रथम झना (ट्रान्स अवस्था) (2) (पथमाताज्झाना2)

1.2.3आठवीं. अरिहंतशिप अनुभाग (अराहतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)

1.2.3.175 दुख में

1.2.3.276 अरहंत पद (अरहत्ता)

1.2.3.377 सुपीरियर (उत्तरीमनुस्साधम्म)

1.2.3.478 सुख (सुखसोमनस्स)

1.2.3.579 उपलब्धि (अधिगामा)

1.2.3.680 महानता (महानता)

1.2.3.781 नरक (1) (निरया1)

1.2.3.882 नरक (2) (निरया2)

1.2.3.983 सर्वोपरि अवस्था (अग्गधम्म संस्कृत: आगरा धम्म)

1.2.3.1084 रातें (रत्तीदिवस सं. रात्रि दिवस)

1.2.4IX. शीतलता (Siti sans. Sheet)

1.2.4.185 शीतलता (सीतिभाव बिना शीत भाव)

1.2.4.286 अवरोध (अवरोधन)

1.2.4.387 एक हत्यारा (वोरोपिटा)

1.2.4.488 सुनने की इच्छा रखने वाला (सुस्सुसती)

1.2.4.589. बिना त्यागे (अप्पाहया)

1.2.4.690 परित्यक्त (पाहाना सं. प्राहन)

1.2.4.791 अक्षम (अभब्बा)

1.2.4.892 मामले (1) (अभब्बत्तना1)

1.2.4.993 मामले (2) (अभब्बत्तना2)

1.2.4.1094 मामले (3) (अभब्बत्तना3)

1.2.4.1195 मामले (4) (अभब्बत्तना4)

1.2.5X. लाभ (अनिसामसा)

1.2.5.196 अभिव्यक्ति (पतुभाव)

1.2.5.297 लाभ (अनिसामसा)

1.2.5.398 अनित्य (अनिका सास. अनित्य)

1.2.5.499 दुख (दुक्खा)

1.2.5.5100 अनात्मा (अनत्ता सं. अनात्मा)

1.2.5.6101 निब्बाना (संस्कृत: निर्वाण)

1.2.5.7102 अनात्य (अनावत्थिता)

1.2.5.8103 उक्खित्तसिका (उखित्तसिका)

1.2.5.9104 बिना पहचान के (अतममया)

1.2.5.10105 अस्तित्व (कारण) (भाव)

1.2.5.11106 तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)

1.3पचास अध्यायों के सेट के अतिरिक्त अध्याय [1451]

1.3.1XI. त्रिक

1.3.1.1107 कामवासना (राग)

1.3.1.2108 कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र))

1.3.1.3109 विचार (विटक्कका सं. वितर्क)

1.3.1.4110 धारणाएँ (सन्ना सं. संज्ञा)

1.3.1.5111 तत्व (धातु)

1.3.1.6112 संतुष्टि (असदा सं. असवद)

1.3.1.7113 असंतोष (आरती)

1.3.1.8115 सुधारना कठिन (डोवाकासाटा)

1.3.1.9116 बेचैनी (उद्धच्च)

1.3.2बारहवीं. तपस्या (समन्ना सं. श्रमण)

1.3.2.1117 शरीर को (ध्यान में) देखना 1452 (कायनुपासि सं. काया अनुपश्ययी)

1.3.2.2118 धम्मानुपसी (ध्यान में) का अवलोकन करना

1.3.2.3119 तपस्सा

1.3.2.4120 — 139 भल्लिका, इत्यादि।

1.3.3XIII. वासना (राग) और आगे दोहराव श्रृंखला

छक्कनिपाता की पुस्तक

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

00:00

41:20

पहले पचास

I. उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 उपहारों के योग्य (1) (अहुनेय्या1)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं में छह गुण होते हैं, वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं। वे छह गुण क्या हैं? (1) किसी रूप को आँख से देखकर भिक्षु न तो प्रसन्न होते हैं और न ही दुखी, बल्कि समभाव, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध में रहते हैं। (2) किसी ध्वनि को कान से सुनकर भिक्षु न तो प्रसन्न होते हैं और न ही दुखी, बल्कि समभाव, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध में रहते हैं। (3) किसी गंध को नाक से सूंघकर भिक्षु न तो प्रसन्न होते हैं और न ही दुखी, बल्कि समभाव, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध में रहते हैं। (4) किसी स्वाद का अनुभव करके भिक्षु न तो प्रसन्न होते हैं और न ही दुखी, बल्कि... (5) शरीर से किसी वस्तु का स्पर्श अनुभव करने पर भिक्षु न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सजग और पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करता है। (6) मन से किसी मानसिक घटना का अनुभव करने पर भिक्षु न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सजग

और पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का पात्र होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए। [280]

2 उपहारों के योग्य (2) (अहुनेय्या2)

"भिक्षुओं में छह गुण होते हैं; वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य होते हैं; वे संसार के लिए अतुलनीय पुण्य कर्मक्षेत्र हैं। वे छह गुण क्या हैं? 1252"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है; वह प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है; वह बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत से होकर ऐसे गुजरता है मानो अंतरिक्ष में; वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो; वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वह पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा करता है; अपने हाथ से वह इतने शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है और सहलाता है; वह ब्रह्म जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता है।

(2) "ईश्वरीय श्रवण शक्ति से, जो शुद्ध है और मानवीय श्रवण शक्ति से श्रेष्ठ है, वह दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है, ईश्वरीय और मानवीय, दूर की और पास की भी।

(3) वह अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझता है, क्योंकि उसने उन्हें अपने मन से समाहित कर लिया है। वह कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में और कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में समझता है; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझता है; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में और मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझता है; संकुचित मन को संकुचित मन के रूप में और विचलित मन को विचलित मन के रूप में समझता है; उच्च्य मन को उच्च्य मन के रूप में और निम्न मन को निम्न मन के रूप में समझता है; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ मन के रूप में और अतुलनीय मन को अतुलनीय मन के रूप में समझता है; आत्ममग्न मन को आत्ममग्न मन के रूप में और असामंजस्यपूर्ण मन को आत्ममग्न मन के रूप में समझता है। असामहिता (असंलग्न); मुक्त मन मुक्त ही रहता है और अमुक्त मन अमुक्त ही रहता है।

(4) "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास [281] जन्म, सौ जन्म, एक हजार जन्म, एक लाख जन्म, विश्व-विनाश के अनेक युग, विश्व-विकास के अनेक युग, विश्व-विनाश और विश्व-विकास के अनेक युगों को इस प्रकार याद करता है: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके विभिन्न पहलुओं और विवरणों सहित याद करता है।

(5) "ईश्वरीय दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, निम्न और उच्च्य, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण किए, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।' इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध है और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली देखता है, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हश्र होता है।

(6) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

---

3 इंद्रियां (इंद्रिय)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र के पात्र होते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? [282] विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, सती (ध्यान) की शक्ति, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की शक्ति, और ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की शक्ति; और दोषों के नाश के साथ, उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, ज्ञान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र के पात्र होते हैं।"

---

4 शक्तियाँ (बाला)

भिक्षुओं में छह गुण होते हैं, वे दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होते हैं, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (वीर्य), सती ध्यान, समाधि और ज्ञान की शक्ति; और दोषों के नाश के साथ, उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, दैवीय ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होते हैं, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र होते हैं।

---

5 शुद्ध नस्ल (1) (अजानिया1)

भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में छह गुण होते हैं, और राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा धैर्यपूर्वक रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन करता है, और सौंदर्य से परिपूर्ण है। इन छह गुणों के कारण, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। 1253

इसी प्रकार, छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे छह गुण क्या हैं? [283] यहाँ, भिक्षु (भिक्षु) धैर्यपूर्वक रूपों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक गंधों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन करता है और धैर्यपूर्वक मानसिक घटनाओं (धम्म) को सहन करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य और आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।

---

6 थोरब्रेड (2) (अजानिया2)

भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा धैर्यपूर्वक रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन करता है और बलवान होता है। इन छह गुणों से युक्त, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है।

इसी प्रकार, छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धर्म) को सहन करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य और आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।

---

7 थोरब्रेड (3) (अजानिया3)

"भिक्षुओं (साधुओं), जिनमें छह गुण होते हैं, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा धैर्यपूर्वक रूपों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक गंधों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्पर्शनीय वस्तुओं को सहन करता है, और वह गति से संपन्न होता है। [284] इन छह गुणों से युक्त, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है।"

इसी प्रकार, छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु धैर्यपूर्वक रूपों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक ध्वनियों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक गंधों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्वादों को सहन करता है, धैर्यपूर्वक स्पर्शित वस्तुओं को सहन करता है और धैर्यपूर्वक मानसिक घटनाओं (धम्म) को सहन करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य और आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।

---

8 अतुलनीय वस्तुएँ (अनुत्तरिया)

"भिक्षुओं, ये छह अद्वितीय गुण हैं। वे छह कौन से हैं? अद्वितीय दृष्टि, अद्वितीय श्रवण शक्ति, अद्वितीय लाभ, अद्वितीय प्रशिक्षण, अद्वितीय सेवा और अद्वितीय स्मरण। ये छह अद्वितीय गुण हैं।" 1254

---

9 स्मरण के विषय (अनुसत्तित्थना)

भिक्षुओं, ध्यान के ये छह विषय हैं। वे छह विषय कौन से हैं? बुद्ध का स्मरण, धम्म का स्मरण, संघ का स्मरण, सद्गुणों का स्मरण, उदारता का स्मरण और देवताओं का स्मरण। ये छह विषय ध्यान के हैं।

---

10 महानामा

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब महानमा नामक शाक्यों भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "भंते, जो शिष्य ज्ञान के फल को प्राप्त कर चुका है और शिक्षा को समझ चुका है, वह अक्सर कैसे निवास करता है?" 1256

"महानमा, एक श्रेष्ठ शिष्य [285] जो फल प्राप्त कर चुका है और शिक्षा को समझ चुका है, अक्सर इस प्रकार चिंतन करता है: 1257 (1) "यहाँ, महानमा, एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' जब एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन केवल तथागत (बुद्ध) पर आधारित होकर स्थिर होता है। जिस श्रेष्ठ शिष्य का मन स्थिर होता है, वह अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है।" जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। वेदना से सुख प्राप्त करने पर मन समाधि में लीन हो जाता है। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, 1256 जो पीड़ित जनसंख्या के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के रूप में, 1259 वह बुद्ध की स्मृति का विकास करता है।

(2) “फिर, महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य, धम्म का स्मरण इस प्रकार करते हैं: ‘भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।’ जब कोई श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन केवल धम्म पर आधारित, एकाग्र होता है। एक श्रेष्ठ शिष्य जिसका मन एकाग्र होता है, उसे अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, और धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि) में लीन हो जाता है।” इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित आबादी के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित आबादी के बीच अप्रभावित रहता है। [286] धम्म की धारा में प्रवेश करने वाले के रूप में, वह धम्म की स्मृति विकसित करता है।

(3) "फिर, महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य, संघ का स्मरण इस प्रकार करते हैं: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन संघ पर आधारित होकर एकदम स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य धर्म के अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धर्म में प्रेरणा प्राप्त करता है और धर्म से जुड़ा आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख की अनुभूति करने वाले का मन समाधि (समाहित) में लीन हो जाता है। ऐसे शिष्य को कहा जाता है जो असंतुलित लोगों के बीच संतुलित रहता है, जो व्यथित लोगों के बीच निर्मल रहता है। धर्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह संघ का स्मरण विकसित करता है।

(4) “फिर, महानमा, एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को अटूट, दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला याद करता है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, उस समय उसका मन काम (राग), घृणा या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन सदाचार पर आधारित, बिल्कुल सीधा होता है। जिस श्रेष्ठ शिष्य का मन सीधा होता है, उसे अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन आत्म-लीन (सम्मोहन/सम्मोहन) हो जाता है।

[287] इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो अविचलित रहता है। पीड़ित आबादी के बीच। धम्म की धारा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के रूप में, वह सदाचारी आचरण की स्मृति विकसित करता है।

(5) "फिर, महानमा, एक महान शिष्य, अपनी उदारता को इस प्रकार याद करते हैं: 'यह वास्तव में मेरा सौभाग्य और लाभ है कि कंजूसी के कलंक से ग्रस्त आबादी में, मैं अपने घर में कंजूसी के कलंक से मुक्त, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और साझा करने में आनंदित होकर निवास करता हूँ।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपनी उदारता का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन निःसंकोच, निःसंकोच, निःसंकोच होता है। निःसंकोच मन वाले श्रेष्ठ शिष्य को धम्म के अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाहित) हो जाता है। ऐसे शिष्य को कहा जाता है जो असंतुलित लोगों के बीच संतुलित रहता है, जो व्यथित लोगों के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, उसमें निःसंकोच का स्मरण विकसित होता है।

(6) "फिर, महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य, देवताओं (देवदूतों) का स्मरण इस प्रकार करते हैं: 'चार महान राजाओं द्वारा शासित देवता हैं, तावतिंसा देवता, यम देवता, तुषिता देवता, सृष्टि में आनंदित होने वाले देवता, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवता, ब्रह्मा के साथ रहने वाले देवता, और इनसे भी उच्चतर देवता। 1260 मुझमें भी उन देवताओं (देवदूतों) के समान ही आस्था है, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ; मुझमें भी उनके समान ही सद्गुणपूर्ण आचरण... वैसी ही विद्या... वैसी ही उदारता... वैसी ही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) है। देवताओं (देवदूतों) में यह शक्ति समाहित थी, जिसके कारण जब वे यहाँ मर गए, तो उनका वहाँ पुनर्जन्म हुआ। जब [288] कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने भीतर और उन देवताओं (देवदूतों) में निहित आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन काम (राग), द्वेष या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन देवताओं (देवदूतों) पर आधारित होकर बिल्कुल स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख की अनुभूति (वेदना) वाले व्यक्ति का मन समाधि में लीन हो जाता है। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलित रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह स्मरण विकसित करता है। देवता (देवदूत)।

"महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य जो फल प्राप्त कर चुका है और शिक्षा को समझ चुका है, अक्सर इसी तरह निवास करता है।"

II. सौहार्द (सरनिया)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 सौहार्द (1) (सरानिया1)

"भिक्षुओं (मठवासियों), सौहार्द के ये छह सिद्धांत हैं। 1261 वे छह सिद्धांत कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर प्रेम-कृपा (मेट्टा) के शारीरिक कार्यों को बनाए रखता है। यह सौहार्द का सिद्धांत है।

(2) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर प्रेमपूर्ण दयालुता (मेट्टा) के मौखिक कार्य करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर प्रेमपूर्ण दयालुता के मानसिक कार्य करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है। [289]

(4) "फिर, एक भिक्षु बिना किसी संकोच के धार्मिक रूप से प्राप्त सभी धार्मिक लाभों को, यहाँ तक कि अपने भिक्षापात्र की सामग्री को भी, साझा करता है और ऐसी चीजों का उपयोग अपने गुणी साथी भिक्षुओं के साथ साझा करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु खुलेआम और एकांत में अपने साथी भिक्षुओं के साथ अटूट, दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाले सदाचारी आचरण का पालन करते हुए निवास करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है।"

(6) "फिर, एक भिक्षु खुलेआम और निजी तौर पर अपने साथी भिक्षुओं के साथ एक ऐसे दृष्टिकोण को साझा करते हुए रहता है जो महान और मुक्तिदायक है, जो उस पर अमल करने वाले को दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है।"

"भिक्षुओं, ये सौहार्द के छह सिद्धांत हैं।"

---

22 सौहार्द (2) (सरानिया1)

"भिक्षुओं, सौहार्द के ये छह सिद्धांत हैं जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करते हैं और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्भाव और एकता को बढ़ावा देते हैं। वे छह सिद्धांत कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर प्रेम-कृपा (मेट्टा) के शारीरिक कार्य करता है। यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्भाव और एकता को बढ़ावा देता है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर प्रेम और करुणा (मेट्टा) के मौखिक कार्य करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है। . . ."

(3) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के प्रति खुले तौर पर और निजी तौर पर भी प्रेम और दया का भाव रखता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु धार्मिक रूप से प्राप्त सभी धार्मिक लाभों को, यहाँ तक कि अपने भिक्षापात्र की सामग्री को भी, बिना किसी संकोच के साझा करता है और ऐसी वस्तुओं का उपयोग अपने गुणी साथी भिक्षुओं के साथ साझा करता है। [290] यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है।

(5) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के साथ खुलेआम और एकांत में रहते हुए भी अटूट, दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्त, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूते और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाले सदाचारी आचरण का पालन करता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है। ..."

(6) "फिर, एक भिक्षु खुलेआम और निजी तौर पर अपने साथी भिक्षुओं के साथ एक ऐसे दृष्टिकोण को साझा करते हुए रहता है जो महान और मुक्तिदायक है, जो उस पर अमल करने वाले को दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। यह भी सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है। ..."

"भिक्षुओं, ये सौहार्द के छह सिद्धांत हैं जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करते हैं और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्भाव और एकता की ओर अग्रसर करते हैं।"

---

13 पलायन (निस्सारनिया)

"भिक्षुओं, मुक्ति के ये छह तत्व हैं। 1263 वे छह तत्व कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु इस प्रकार कह सकता है: मैंने प्रेम-कृपा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है, इसे अपना आधार और साधन बनाया है, इसका पालन किया है, इसे सुदृढ़ किया है और इसे विधिवत ग्रहण किया है, फिर भी द्वेष मेरे मन पर हावी है। उसे कहा जाना चाहिए: 'ऐसा नहीं! ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि कोई प्रेम-कृपा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करे, इसे अपना आधार और साधन बनाए, इसका पालन करे, इसे सुदृढ़ करे और इसे विधिवत ग्रहण करे, फिर भी [291] द्वेष उसके मन पर हावी रहे। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, द्वेष से मुक्ति है, अर्थात् प्रेम-कृपा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति।'

(2) "तब, एक भिक्षु इस प्रकार कह सकता है: 'मैंने करुणा द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है, इसे अपना आधार और साधन बनाया है, इसका पालन किया है, इसे सुदृढ़ किया है और इसे विधिवत ग्रहण किया है, फिर भी हानि का विचार मेरे मन में व्याप्त है।' उसे कहा जाना चाहिए: 'ऐसा नहीं! ऐसा मत कहो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि कोई करुणा द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करे, इसे अपना आधार और साधन बनाए, इसका पालन करे, इसे सुदृढ़ करे और इसे विधिवत ग्रहण करे, फिर भी हानि का विचार उसके मन में व्याप्त रहे। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, हानि के विचार से मुक्ति है, अर्थात् करुणा द्वारा मन की मुक्ति।'

(3) "तब, एक भिक्षु इस प्रकार कह सकता है: 'मैंने परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है, इसे अपना आधार और साधन बनाया है, इसका पालन किया है, इसे सुदृढ़ किया है और इसे विधिवत ग्रहण किया है, फिर भी असंतोष मेरे मन को ग्रस्त रखता है।' 1264 उसे कहा जाना चाहिए: "ऐसा नहीं! ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि कोई परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करे, इसे अपना आधार और साधन बनाए, इसका पालन करे, इसे सुदृढ़ करे और इसे विधिवत ग्रहण करे, फिर भी असंतोष उसके मन को ग्रस्त रखे। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, असंतोष से मुक्ति का मार्ग है, अर्थात् परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति।"

(4) "तब, एक भिक्षु इस प्रकार कह सकता है: 'मैंने उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और पोषण किया है, इसे अपना वाहन और आधार बनाया है, इसे आगे बढ़ाया है, इसे सुदृढ़ किया है, और इसे ठीक से ग्रहण किया है, फिर भी कामवासना (राग) अभी भी मेरे मन को जकड़े हुए है।' उन्हें कहा जाना चाहिए: 'ऐसा नहीं! ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस तरह नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि कोई व्यक्ति उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति को विकसित और पोषित करे, उसे अपना आधार और साधन बनाए, उसका पालन करे, उसे सुदृढ़ करे और ठीक से उसका अनुसरण करे, [292] फिर भी कामवासना (राग) उसके मन पर हावी रहे। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, कामवासना (राग) से मुक्ति है, अर्थात् उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति।' 1265

(5) "तब, एक भिक्षु इस प्रकार कह सकता है: 'मैंने मन की चिह्नरहित मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है, 1266 इसे अपना वाहन और आधार बनाया है, इसका पालन किया है, इसे सुदृढ़ किया है और इसे विधिपूर्वक ग्रहण किया है, फिर भी मेरी चेतना चिह्नों के पीछे-पीछे चलती है।' 1267 उसे कहा जाना चाहिए: 'ऐसा नहीं! ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि कोई मन की चिह्नरहित मुक्ति का विकास और अभ्यास करे, इसे अपना वाहन और आधार बनाए, इसका पालन करे, इसे सुदृढ़ करे और इसे विधिपूर्वक ग्रहण करे, फिर भी उसकी चेतना चिह्नों के पीछे-पीछे चलती रहे। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, सभी चिह्नों से मुक्ति है, अर्थात् मन की चिह्नरहित मुक्ति।'

(6) "तब, एक भिक्षु कह सकता है: 'मैंने 'मैं हूँ' की धारणा का त्याग कर दिया है, और मैं किसी भी चीज़ को 'यह मैं हूँ' नहीं मानता, फिर भी संदेह और भ्रम का तीर मेरे मन को जकड़े रहता है।' उसे कहा जाना चाहिए: 'ऐसा नहीं! ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन मत करो; क्योंकि भगवान (बुद्ध) का गलत वर्णन करना अच्छा नहीं है। भगवान (बुद्ध) निश्चित रूप से इस तरह नहीं बोलेंगे। यह असंभव और अकल्पनीय है, मित्र, कि जब 'मैं हूँ' की धारणा का त्याग कर दिया गया हो, और कोई किसी भी चीज़ को 'यह मैं हूँ' नहीं मानता हो, तब भी संदेह और भ्रम का तीर उसके मन को जकड़े रह सकता है। ऐसी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि यही, मित्र, संदेह और भ्रम के तीर से मुक्ति है, अर्थात् 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ फेंकना।'

"भिक्षुओं, ये पलायन के छह तत्व हैं।"

---

14. एक अच्छी मृत्यु (भद्दका)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं [293] ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, एक भिक्षु अपना समय 3269 इस प्रकार व्यतीत करता है कि उसकी मृत्यु सुखद नहीं होती। 270 और एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार कैसे व्यतीत करता है कि उसकी मृत्यु सुखद नहीं होती?"

यहां, (1) एक भिक्षु काम में आनंद लेता है, काम में प्रसन्न होता है, काम में प्रसन्नता के लिए समर्पित है; (2) वह बातचीत में आनंद लेता है, बातचीत में प्रसन्नता के लिए समर्पित है; (3) वह नींद में आनंद लेता है, नींद में प्रसन्नता के लिए समर्पित है; (4) वह संगति में आनंद लेता है, संगति में प्रसन्नता के लिए समर्पित है; (5) वह बंधुआपन में आनंद लेता है, बंधुआपन में प्रसन्नता के लिए समर्पित है; (6) वह इंद्रिय-भगवानत्व में आनंद लेता है, इंद्रिय-भगवानत्व में प्रसन्न होता है, इंद्रिय-भगवानत्व में प्रसन्नता के लिए समर्पित है। जब कोई भिक्षु अपना समय इस प्रकार व्यतीत करता है तो उसकी मृत्यु शुभ नहीं होती। इसे व्यक्तिगत अस्तित्व में प्रसन्न होने वाला भिक्षु कहा जाता है (भाव/कारण)। पुनर्जन्म), 1273 जिसने दुख को पूरी तरह से समाप्त करने के लिए व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग नहीं किया है।

"मित्रों, एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार व्यतीत करता है कि उसकी मृत्यु सुखद हो। और एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार कैसे व्यतीत करता है कि उसकी मृत्यु सुखद हो?"

यहां, (1) एक भिक्षु काम में आनंद नहीं लेता, काम में आनंद नहीं लेता, काम में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता; (2) वह बात में आनंद नहीं लेता, बात में आनंद नहीं लेता, बात में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता; (3) वह नींद में आनंद नहीं लेता, नींद में आनंद नहीं लेता, नींद में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता; (4) वह संगति में आनंद नहीं लेता, संगति में आनंद नहीं लेता, संगति में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता; (5) वह बंधन में आनंद नहीं लेता, बंधन में आनंद नहीं लेता, बंधन में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता; (6) वह इंद्रिय-प्रवंच (प्रपंच संस्कृत) में आनंद नहीं लेता, इंद्रिय-प्रवंच (प्रपंच संस्कृत) में आनंद नहीं लेता, वृहद संतानोत्पत्ति में आनंद के लिए समर्पित नहीं होता। जब एक भिक्षु [294] अपना समय इस प्रकार व्यतीत करता है तो उसे सुखी मृत्यु प्राप्त होती है। इसे निर्वाण में आनंद लेने वाला, व्यक्तिगत कर्मों का त्याग करने वाला भिक्षु कहा जाता है। "अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) दुखों का पूर्णतः अंत करना।"

वह प्राणी [1274] जो इंद्रिय-प्रवंचन (पापंच संस्कृत प्रपंच) में लीन है,

जो इंद्रिय-प्रवंचन (पापंच संस्कृत प्रपंच) से प्रसन्न है,

वह निर्वाण (निब्बान) प्राप्त करने में विफल रहा है,

जो बंधन से पूर्णतम सुरक्षा है।

लेकिन जिसने इंद्रिय-प्रवंच (पापंच संस्कृत: प्रपंच) का त्याग कर दिया है,

जो निपंच (निषप्रपंच) में आनंद पाता है,

उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है,

जो बंधन से पूर्णतम सुरक्षा है।

---

15. पछतावा (अनुतप्पिया)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया।

"मित्रों, एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार व्यतीत करता है कि वह पश्चाताप के साथ मरता है। और एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार कैसे व्यतीत करता है कि वह पश्चाताप के साथ मरता है?"

"यहाँ, (1) एक भिक्षु कर्म में आनंद लेता है, कर्म में प्रसन्न होता है, कर्म में प्रसन्नता के लिए समर्पित है... [जैसा कि 6:14 में है] (6) वह पापंच (सांसारिक छल/प्रपंच रहित) में आनंद लेता है, इंद्रिय-धोखे (प्रपंच रहित पापंच) में आनंद लेता है, इंद्रिय-धोखे में आनंद के लिए समर्पित है। जब एक भिक्षु इस प्रकार अपना समय व्यतीत करता है तो वह पश्चाताप के साथ मरता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) में आनंद लेता है, जिसने दुख को पूर्णतः समाप्त करने के लिए व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग नहीं किया है।"

मित्रों, एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार व्यतीत करता है कि उसे कोई पछतावा न हो। और एक भिक्षु अपना समय इस प्रकार कैसे व्यतीत करता है कि उसे कोई पछतावा न हो?

"यहाँ, (1) एक भिक्षु कर्म में आनंद नहीं लेता, कर्म में प्रसन्नता नहीं लेता, कर्म में प्रसन्नता के लिए समर्पित नहीं होता... [295] ... (6) इंद्रिय-प्रवंच (पापंच संस्कृत: प्रपंच) में आनंद नहीं लेता, प्रजनन में आनंद नहीं लेता, इंद्रिय-प्रवंच में प्रसन्नता के लिए समर्पित नहीं होता। जब एक भिक्षु इस प्रकार अपना समय व्यतीत करता है तो वह बिना किसी पछतावे के मर जाता है। इसे निर्वाण में प्रसन्न भिक्षु कहा जाता है, जिसने व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग कर दुखों का पूर्णतः अंत कर दिया है।"

[ये आयतें 6:14 की आयतों के समान हैं।]

---

16 नकुला पितु

एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान में, सुमसुमारागिरा में भगों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ नकुलपिता बीमार थे, अत्यंत विक्षिप्त थे। तब गृहस्थ नकुलमाता ने उनसे कहा, “हे गृहस्थ, चिंता में लीन होकर मत मरिए। चिंता में लीन होकर मरना कष्टदायी है। भगवान (बुद्ध) ने चिंता में लीन होकर मरने की निंदा की है।”

(1) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि आप ऐसा सोचते हों: 'मेरे जाने के बाद नकुलमाता हमारे बच्चों का पालन-पोषण और घर-गृहस्थी नहीं संभाल पाएंगी।' लेकिन आपको इस बात को इस तरह नहीं देखना चाहिए। मैं सूती बुनाई और ऊनी बुनाई में कुशल हूँ। आपके जाने के

बाद मैं बच्चों का पालन-पोषण और घर-गृहस्थी संभाल लूँगी। इसलिए, हे गृहस्थ, चिंता में लीन होकर मत मरो। चिंता में लीन होकर मरना कष्टदायी है। चिंता में लीन होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।"

(2) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि आप ऐसा सोचते हों: 'मेरे जाने के बाद नकुलमाता दूसरा पति चुन लेंगी।' 1277 परन्तु आपको इस विषय को इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। हे गृहस्थ, आप जानते हैं और मैं भी जानता हूँ कि पिछले सोलह वर्षों से हम गृहस्थों का ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 1278 अतः हे गृहस्थ, चिंता से ग्रस्त होकर मत मरिए। चिंता से ग्रस्त होकर मरना कष्टदायी है। चिंता से ग्रस्त होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।"

(3) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि तुम ऐसा सोचो: 'मेरे जाने के बाद नकुलमाता भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन नहीं करना चाहेंगे।' परन्तु इस विषय को इस प्रकार मत देखो। हे गृहस्थ, तुम्हारे जाने के बाद मैं भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन के लिए और भी अधिक उत्सुक हो जाऊँगी। अतः हे गृहस्थ, चिंता में लीन होकर मत मरो। चिंता में लीन होकर मरना कष्टदायी है। चिंता में लीन होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।"

(4) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि आप ऐसा सोचते हों: 'नकुलमाता सद्गुणों का पालन नहीं करती।' 1279 परन्तु आपको इस विषय को इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। मैं भगवान (बुद्ध) की श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्याओं में से एक हूँ जो सद्गुणों का पालन करती हैं। यदि किसी को इस बारे में कोई संदेह या अनिश्चितता हो, तो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, भेषकला वन के हिरण उद्यान में, सुमसुमरगिरा में भगों के बीच निवास कर रहे हैं। वे जाकर उनसे पूछ सकते हैं। अतः, हे गृहस्थ, चिंता से ग्रस्त होकर मत मरो। [297] चिंता से ग्रस्त होकर मरना कष्टदायी है। चिंता से ग्रस्त होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।"

(5) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि आप ऐसा सोचते हों: 'नकुलमाता को मन की आंतरिक समता प्राप्त नहीं होती।' परन्तु आपको इस विषय को इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। मैं भगवान (बुद्ध) की श्वेत वस्त्रधारी स्त्री शिष्याओं में से एक हूँ, जिन्हें मन की आंतरिक समता प्राप्त होती है। यदि किसी को इस विषय में कोई संदेह या अनिश्चितता हो, तो भगवान (बुद्ध), जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, भेषकला वन के हिरण उद्यान में, सुमसुमारागिरा में भगों के बीच निवास कर रहे हैं। वे जाकर उनसे पूछ सकते हैं। अतः, हे गृहस्थ, चिंता से ग्रस्त होकर मत मरो। चिंता से ग्रस्त होकर मरना कष्टदायी है। चिंता से ग्रस्त होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।"

(6) "हे गृहस्थ, हो सकता है कि आप ऐसा सोचते हों: 'नकुलमाता ने इस धम्म और अनुशासन में दृढ़ता, दृढ़ संकल्प और विश्वास प्राप्त नहीं किया है; 1280 उसने संशय को पार नहीं किया है, भ्रम से छुटकारा नहीं पाया है, आत्मविश्वास प्राप्त नहीं किया है और गुरु की शिक्षा में दूसरों से स्वतंत्र नहीं हुई है।' लेकिन आपको इस मामले को इस तरह नहीं देखना चाहिए। मैं भगवान (बुद्ध) की श्वेत वस्त्रधारी महिला गृहस्थ शिष्याओं में से एक हूँ, जिन्होंने इस धम्म और अनुशासन में दृढ़ विश्वास और दृढ़ता प्राप्त कर ली है; मैं उन लोगों में से हूँ जिन्होंने संशय को पार कर लिया है, भ्रम से मुक्ति पा ली है, आत्मविश्वास प्राप्त कर लिया है और गुरु के उपदेश में दूसरों से स्वतंत्र हो गई हैं। यदि किसी को इस बारे में कोई संदेह या अनिश्चितता है, तो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सुमसुमरगिरा में भेषकला वन के हिरण उद्यान में भगों के बीच निवास कर रहे हैं। वे जाकर उनसे पूछ सकते हैं। इसलिए, गृहस्थ, चिंता से ग्रस्त होकर मत मरो। चिंता से ग्रस्त होकर मरना कष्टदायी है। चिंता से ग्रस्त होकर मरने की भगवान (बुद्ध) ने निंदा की है।

फिर, जब गृहस्थ नकुलपिता [298] को गृहिणी नकुलमाता द्वारा इस प्रकार समझाया जा रहा था, तो उनकी बीमारी वहीं ठीक हो गई। नकुलपिता उस बीमारी से ठीक हो गए, और इस तरह उनकी बीमारी दूर हो गई।

फिर, ठीक होने के कुछ ही समय बाद, गृहस्थ नकुलपिता, एक लाठी के सहारे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"हे गृहस्थ, यह वास्तव में आपका सौभाग्य और लाभ है कि गृहिणी नकुलमाता आप पर दया करती हैं, आपका भला चाहती हैं और आपको उपदेश और शिक्षा देती हैं। नकुलमाता मेरी श्वेत वस्त्रधारी शिष्याओं में से एक हैं जो सदाचारी आचरण का पालन करती हैं। वह मेरी श्वेत वस्त्रधारी शिष्याओं में से एक हैं जिन्होंने मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त की है। वह मेरी श्वेत वस्त्रधारी शिष्याओं में से एक हैं जिन्होंने इस धम्म और अनुशासन में दृढ़ता, दृढ़ संकल्प और विश्वास प्राप्त किया है, जिन्होंने संशय को पार किया है, भ्रम से

मुक्ति पाई है, आत्मविश्वास प्राप्त किया है और गुरु के उपदेश में दूसरों से स्वतंत्र हो गई हैं। हे गृहस्थ, यह वास्तव में आपका सौभाग्य और लाभ है कि गृहिणी नकुलमाता आप पर दया करती हैं, आपका भला चाहती हैं और आपको उपदेश और शिक्षा देती हैं।"

---

17 लाभकारी (कुसला) (सोप्पा)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में गए, जहाँ वे तैयार आसन पर बैठ गए। शाम को, पूज्य सारिपुत्त भी एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में गए, जहाँ [299] उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य महामोग्गलाना... पूज्य महाकस्सपा... पूज्य महाकच्चयन... पूज्य महाकोत्थिता... पूज्य महाचुंडा... पूज्य महाकप्पिना... पूज्य अनुरुद्ध... पूज्य रेवता... आदरणीय आनंद भी एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में गए, जहाँ उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

फिर, लगभग पूरी रात बैठे रहने के बाद, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश किया। भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, वे पूजनीय भिक्षु भी अपने आसनों से उठे और अपने-अपने निवास स्थानों पर चले गए। लेकिन वे भिक्षु जो नवदीक्षित थे, जिन्होंने अभी-अभी संन्यास लिया था और हाल ही में इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में आए थे, सूर्योदय तक खर्राटे लेते हुए सोते रहे। भगवान (बुद्ध) ने अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध है और मानवीय दृष्टि से परे है, उन भिक्षुओं को सूर्योदय तक खर्राटे लेते हुए सोते हुए देखा। फिर वे सभा भवन में गए, अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और उन भिक्षुओं को संबोधित किया:

"भिक्षुओं, सारिपुत्त कहाँ हैं? महामोग्गलाना कहाँ हैं? महाकस्सपा कहाँ हैं? महाकच्चयन कहाँ हैं? महाकोत्थिता कहाँ हैं? महाचुंडा कहाँ हैं? महाकप्पिना कहाँ हैं? अनुराधा कहाँ हैं? रेवता कहाँ हैं? आनंद कहाँ हैं? वे वरिष्ठ शिष्य कहाँ चले गए?"

"भंते, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, वे पूजनीय लोग भी अपने-अपने स्थानों से उठकर अपने-अपने निवासों की ओर चले गए।"

"भिक्षुओं, जब वरिष्ठ भिक्षु चले गए, तो तुम नवदीक्षित भिक्षु सूर्योदय तक खर्राटे लेते हुए क्यों सोते रहे?"

(1) "भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि कोई प्रधान क्षत्रिय राजा, अपने पूरे जीवन शासन करते हुए, देश को प्रसन्न और संतुष्ट करता है [300] यदि वह जितना चाहे उतना समय विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में व्यतीत करता है?" 1281

"नहीं, भंते।"

"अच्छा, भिक्षुओं। मैंने भी ऐसी कोई चीज न तो कभी देखी है और न ही सुनी है।"

(2) "भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि कोई राजाधिकारी... (3) ... कोई प्रिय पुत्र... (4) ... कोई सेनापति... (5) ... कोई ग्राम प्रधान... (6) ... कोई संघ प्रमुख, जीवन भर संघ का नेतृत्व करते हुए, संघ को प्रसन्न और संतुष्ट करता है यदि वह जितना चाहे उतना समय विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में व्यतीत करता है?"

"नहीं, भंते।"

"अच्छा है भिक्षुओं। मैंने भी ऐसी कोई चीज न तो कभी देखी है और न ही सुनी है।"

भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कोई तपस्वी या ब्राह्मण है जो जितना चाहे उतना समय विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में व्यतीत करता है; जो अपनी इंद्रियों को वश में नहीं रखता, जो अत्यधिक भोजन करता है और जागृत रहने का प्रयास नहीं करता; जिसमें लाभकारी गुणों (धम्म) का ज्ञान (विपश्यना) नहीं है; जो रात्रि के आरंभिक और पश्चात चरणों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को

विकसित करने के प्रयास में लीन नहीं रहता। क्या आपने कभी ऐसा व्यक्ति देखा या सुना है जिसने अपने सभी दोषों का नाश करके, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निर्मल मुक्ति, दैवीय ज्ञान द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर लिया हो और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो?

"नहीं, भंते।"

"अच्छा, भिक्षुओं। मैंने भी ऐसी कोई चीज़ न तो कभी देखी है और न ही [301] सुनी है।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करेंगे, भोजन में संयम बरतेंगे और जागृति पर ध्यान केंद्रित करेंगे; हम लाभकारी गुणों (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) प्राप्त करेंगे और रात्रि के पूर्वार्ध और पश्चात् चरणों में ज्ञानोदय के सहायक तत्वों को विकसित करने के प्रयास में एकाग्र रहेंगे।' 1582 इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

18 मछली विक्रेता (मच्छबंधा)

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे। तभी राजमार्ग पर चलते हुए एक स्थान पर उन्होंने एक मछली विक्रेता को मछली मारकर बेचते हुए देखा। वे राजमार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बने आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप उस मछली विक्रेता को मछली मारकर बेचते हुए देख रहे हैं?"

"हां, भंते:"

(1) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि कोई मछली विक्रेता, मछली मारकर [302] और बेचकर, इस काम और आजीविका के माध्यम से हाथी या घोड़े, रथ या वाहन से यात्रा कर सकता है, या धन का आनंद ले सकता है या धन का बड़ा संचय कर सकता है?"

नहीं, भंते।

"अच्छा, भिक्षुओं। मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह वध के लिए लाई जा रही बंदी मछलियों को क्रूरता से देखता है। इसलिए वह हाथी या घोड़े पर, रथ या वाहन पर यात्रा नहीं करता, न ही धन का आनंद लेता है और न ही धन का बड़ा संचय करता है।"

(2) "भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी देखा या सुना है कि कोई पशु कसाई, गायों को मारकर बेचता है... [303] (3) ... भेड़ों का कसाई... (4) ... सूअरों का कसाई... (5) ... मुर्गियों का कसाई... (6) ... हिरणों का कसाई, हिरणों को मारकर बेचता है, और उस काम और आजीविका के माध्यम से हाथी या घोड़े, रथ या वाहन से यात्रा करता है, या धन का आनंद लेता है या धन का बड़ा संचय करता है?"

"नहीं, भंते।"

"अच्छा, भिक्षुओं। मैंने भी ऐसी कोई बात न तो देखी है और न ही सुनी है। इसका क्या कारण है? क्योंकि वह वध के लिए लाए जा रहे बंदी हिरणों को क्रूरता से देखता है, इसलिए वह हाथी या घोड़े पर, रथ या वाहन पर यात्रा नहीं करता, न ही धन का आनंद लेता है और न ही धन का बड़ा संचय करता है।"

भिक्षुओं, जो व्यक्ति वध के लिए लाए जा रहे बंदी पशुओं को क्रूरतापूर्वक देखता है, वह न तो हाथी, न घोड़े, न रथ, न वाहन पर यात्रा करेगा, न ही धन-संपत्ति का आनंद लेगा और न ही धन का संचय करेगा। तो फिर उस व्यक्ति के बारे में क्या कहा जा सकता है जो वध

के लिए लाए जा रहे किसी दोषी मनुष्य को क्रूरतापूर्वक देखता है? इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। मृत्यु के बाद शरीर के क्षत-विक्षत होने पर वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेगा।

---

19 मृत्यु पर ध्यान (1) (मरणस्सि1 संस्कृत: मरण स्मृति)

एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: [304] "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित और पोषित होने पर अत्यंत फलदायी और लाभकारी होता है, जो अमरता को लक्ष्य बनाकर मृत्युहीनता की ओर ले जाता है। 1283. परन्तु क्या आप, भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करते हैं?"

(1) जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, मैं मृत्यु की सती/ध्यान विकसित करता/करती हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं इस प्रकार सोचता हूँ: 'काश मैं केवल एक रात और एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। 1284 तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' 1285 इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सजगता विकसित करता हूँ।"

(2) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं एक दिन के लिए ही जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(3) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"यहाँ, भंते, मैं सोचता हूँ: 'काश मैं केवल एक भिक्षा भोजन ग्रहण करने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

(4) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"यहाँ, भंते, मैं सोचता हूँ: 'काश मैं केवल चार-पाँच कौर भोजन चबाने और निगलने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। [305] तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

(5) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं केवल उतना ही समय जी सकूँ जितना एक निवाला भोजन चबाने और निगलने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ हासिल कर सकता हूँ!' इसी तरह मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(6) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं केवल साँस लेने के बाद साँस छोड़ने या साँस छोड़ने के बाद साँस लेने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

जब यह कहा गया, तो भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं से कहा:

भिक्षुओं, (1) वह भिक्षु जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल एक रात और एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँगा!'; और (2) वह जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँगा!'; और (3) वह जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना समय एक भिक्षा भोजन करने में लगता है ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँगा!'; और (4) वह जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना समय चार या पाँच निवाले भोजन चबाने और निगलने में लगता है ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ।' भगवान (बुद्ध) की शिक्षा। तब मैं बहुत कुछ हासिल कर सकता हूँ!': [306] इन्हें आलसी भिक्षु कहा जाता है। वे दोषों के नाश के लिए मृत्यु के प्रति आलस्यपूर्वक ध्यान (सती) विकसित करते हैं।

लेकिन (5) वह भिक्षु जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना एक निवाला भोजन चबाने और निगलने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!'; और (6) वह जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना साँस लेने के बाद साँस छोड़ने में या साँस छोड़ने के बाद साँस लेने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!': इन्हें सजग रहने वाले भिक्षु कहा जाता है। वे दोषों के नाश के लिए मृत्यु के प्रति सती ध्यान को गंभीरता से विकसित करते हैं।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे। हम दोषों के नाश के लिए मृत्यु के प्रति गहन ध्यान (सती) विकसित करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।'

---

20 मृत्यु पर ध्यान (2) (मरनास्सि2 संस्कृत मरण स्मृति)

एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका में ईंटों से बने एक भवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती साधना) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो यह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अंततः अमरता (अमरत/अमृत) की प्राप्ति की ओर ले जाती है। और यह कैसे संभव है?

"यहाँ, भिक्षुओं, जब दिन ढल जाता है और रात आ जाती है, 1267 एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अनेक कारणों से मर सकता हूँ, (1) मुझे साँप काट सकता है, या बिच्छू या कनखजूरा डंक मार सकता है, और मैं मर सकता हूँ; यह मेरे लिए एक बाधा होगी। (2) मैं

ठोकर खाकर गिर सकता हूँ, या (3) मेरा भोजन मुझे रास नहीं आ सकता है, या (4) मेरा पित्त [307] उत्तेजित हो सकता है, या (5) मेरा कफ उत्तेजित हो सकता है, या (6) मेरे भीतर तेज हवाएँ उत्तेजित हो सकती हैं, और मैं मर सकता हूँ; यह मेरे लिए एक बाधा होगी।'

"इस भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'क्या मुझमें कोई ऐसे अकुशल गुण हैं जिनका मैंने त्याग नहीं किया है, जो आज रात मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं?' यदि आत्मचिंतन करने पर भिक्षु को यह ज्ञान हो: 'मुझमें ऐसे अकुशल गुण हैं जिनका मैंने त्याग नहीं किया है, जो आज रात मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं।'" तब भिक्षु को उन बुरे और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करता है, उसी प्रकार भिक्षु को उन बुरे और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए।

लेकिन यदि समीक्षा करने पर भिक्षु को यह ज्ञान हो कि 'मुझमें कोई भी अकुशल गुण नहीं है जिसका मैंने त्याग नहीं किया है, जो आज रात मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकता है,' तो उसे उसी पीति और आनंद में रहना चाहिए और दिन-रात लाभकारी गुणों का अभ्यास करना चाहिए।

लेकिन जब रात ढल जाती है और दिन निकल आता है, तो भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अनेक कारणों से मर सकता हूँ। कोई साँप मुझे काट सकता है... या तेज़ हवाएँ मेरे शरीर में हलचल मचा सकती हैं, और मैं मर सकता हूँ; यह मेरे लिए एक बाधा होगी।'

"इस भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: [308] 'क्या मुझमें कोई बुरे हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) हैं जिनका मैंने त्याग नहीं किया है और जो आज मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं?' यदि आत्मनिरीक्षण करने पर भिक्षु को यह ज्ञान हो कि 'मुझमें कुछ अकुशल गुण हैं जिन्हें मैंने अभी तक नहीं त्यागा है, और यदि आज मेरी मृत्यु हो जाए तो वे मेरे लिए बाधा बन सकते हैं', तो उसे उन अकुशल गुणों (धम्म) को त्यागने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण विवेक का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण विवेक का प्रयोग करता है, उसी प्रकार भिक्षु को उन अकुशल गुणों (धम्म) को त्यागने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण विवेक का प्रयोग करना चाहिए।

लेकिन यदि समीक्षा करने पर भिक्षु को यह पता चलता है कि 'मुझमें कोई भी अकुशल गुण नहीं है जिसे मैंने अभी तक त्यागा नहीं है, जो आज मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकता है', तो उसे उसी आनंद और प्रसन्नता में रहना चाहिए और दिन-रात लाभकारी गुणों का अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, जब मृत्यु के प्रति सती ध्यान को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी यह महान फलदायी और लाभदायक होता है, जो अमरता (अमृत) की प्राप्ति की ओर ले जाता है, और अमरता ही इसकी अंतिम परिणति होती है।"

III. अतुलनीय (अनुत्तरिया संस्कृत: अनुत्तरा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 समाका

एक बार भगवान (बुद्ध) कमल सरोवर के पास समागमक में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवदूत, जिसने पूरे कमल सरोवर को प्रकाशित कर दिया, भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और भगवान (बुद्ध) से कहा...

"भंते, भिक्षु के पतन का कारण बनने वाले ये तीन गुण हैं। वे तीन क्या हैं? (1) काम में आनंद, (2) बातचीत में आनंद और (3) नींद में आनंद। ये तीन गुण भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।"

यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। गुरुजी सहमत हो गए। तब उस देवता (देवदूत) ने यह सोचकर कि "गुरुजी मुझसे सहमत हैं," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) मेरे पास आए, उन्होंने मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और मुझसे कहा: भंते, ये तीन गुण हैं जो भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे तीन क्या हैं? काम में आनंद, बात में आनंद और नींद में आनंद। ये तीन गुण भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।" उस देवता (देवदूत) ने यही कहा। यह कहकर, उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

"हे भिक्षुओं, यह उन लोगों के लिए दुर्भाग्य और हानि है जिनके बारे में देवता (देवदूत) भी जानते हैं कि वे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में क्षीण हो रहे हैं। 1288

"भिक्षुओं, मैं आपको पतन की ओर ले जाने वाले तीन अन्य गुणों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: [310] "और हे भिक्षुओं, वे तीन [अन्य] गुण क्या हैं जो पतन की ओर ले जाते हैं? (4) संगति में आनंद लेना, (5) सुधारना कठिन होना, और (6) बुरी मित्रता। ये तीन [अन्य] गुण हैं जो पतन की ओर ले जाते हैं।"

भिक्षुओं, अतीत में वे सभी जो लाभकारी (कुशल) गुणों में पतित हुए, वे इन्हीं छह गुणों के कारण पतित हुए। भविष्य में वे सभी जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में पतित होंगे, वे भी इन्हीं छह गुणों के कारण पतित होंगे। और वर्तमान में वे सभी जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में पतित हो रहे हैं, वे भी इन्हीं छह गुणों के कारण पतित हो रहे हैं।

---

22 अपरिहानिया (गैर-पतन)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे छह गुण सिखाऊंगा जो पतन से मुक्ति दिलाते हैं। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, वे कौन से छह गुण हैं जो पतन से मुक्ति दिलाते हैं? काम में आनंद न लेना, बातों में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, संगति में आनंद न लेना, आसानी से गलतियों को स्वीकार करना और अच्छी मित्रता। यही छह गुण पतन से मुक्ति दिलाते हैं।

भिक्षुओं, अतीत में वे सभी भिक्षु जो लाभकारी (कुशल) गुणों में पतित नहीं हुए, वे इन छह गुणों के कारण पतित नहीं हुए। भविष्य में वे सभी भिक्षु जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में पतित नहीं होंगे, वे इन छह गुणों के कारण पतित नहीं होंगे। और वर्तमान में वे सभी भिक्षु जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में पतित नहीं हो रहे हैं, वे इन छह गुणों के कारण पतित नहीं हो रहे हैं।

---

23 खतरा (भया)

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों) के लिए 'खतरा' कामुक सुखों का पदनाम है।

(2) 'पीड़ा' कामुक सुखों का एक पदनाम है। (3) 'रोग' कामुक सुखों का एक पदनाम है। (4) 'उभार' [311] कामुक सुखों का एक पदनाम है। (5) 'बांधना' कामुक सुखों का एक पदनाम है। (6) 'दलदल' कामुक सुखों का एक पदनाम है।

और हे भिक्षुओं, 'खतरा' इंद्रिय सुखों का नाम क्यों है? जो व्यक्ति इंद्रिय-संबंधी रागों से उत्तेजित होता है, वह न तो वर्तमान जीवन के खतरों से मुक्त होता है और न ही भविष्य के जन्मों के खतरों से; इसलिए 'खतरा' इंद्रिय सुखों का नाम है।

और 'पीड़ा', 'रोग', 'फोड़ा', 'बंधन', 'दलदल' जैसी शब्द इंद्रिय सुखों के लिए क्यों इस्तेमाल किए जाते हैं? जो व्यक्ति इंद्रिय-राग से उत्तेजित होता है, इच्छा और वासना से बंधा होता है, वह वर्तमान जीवन के दलदलों से या भविष्य के जीवन के दलदलों से मुक्त नहीं हो पाता; इसलिए 'दलदल' इंद्रिय सुखों का प्रतीक है।

खतरा, पीड़ा और बीमारी,

फोड़ा, बंधन और दलदल:

ये उन इंद्रिय सुखों का वर्णन करते हैं

जिनसे सांसारिक व्यक्ति जुड़ा रहता है।

आसक्ति के खतरे को देखकर,

जो जन्म और मृत्यु का कारण है, और

अनासक्ति से

जन्म और मृत्यु के अंत से मुक्त होकर,

वे सुखी लोग सुरक्षा प्राप्त कर लेते हैं;

वे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

उन्होंने सभी शत्रुताओं और खतरों पर विजय प्राप्त कर ली है और

सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति पा ली है।

---

24 हिमालय (हिमावंता)

"भिक्षुओं, छह गुणों से युक्त एक भिक्षु हिमालय, पर्वतों के राजा को भी विभाजक कर सकता है, 1290 तो घोर अज्ञान से कितना अधिक शक्तिशाली होगा! वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु (1) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने में कुशल है; (2) एकाग्रता की अवधि में कुशल है; (3) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से बाहर निकलने में कुशल है; (4) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के लिए उपयुक्तता में कुशल है; (5) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के क्षेत्र में कुशल है; और (6) समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के संबंध में संकल्प में कुशल है। 1291 [312] इन छह गुणों से युक्त एक भिक्षु हिमालय, पर्वतों के राजा को भी विभाजक कर सकता है, तो घोर अज्ञान से कितना अधिक शक्तिशाली होगा!"

---

25. स्मरण (अनुसत्तित्थना)

"भिक्षुओं, ध्यान के ये छह विषय हैं। 1292 वे छह विषय कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' जब एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से विमुख हो जाता है, उससे मुक्त हो जाता है, उससे बाहर निकल आता है। 'लोभ, भिक्षुओं, इंद्रिय सुख के पाँच विषयों का नाम है। इसे आधार बनाकर, 1293 कुछ प्राणी यहाँ इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।

(2) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।' जब एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका होता है... यहाँ कुछ प्राणी इसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(3) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।' जब [313] एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष), या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल सीधा होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका है... यहाँ कुछ प्राणी इसी प्रकार शुद्ध होते हैं।"

(4) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को अटूट, दोषरहित, निर्मल, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-मग्नता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला याद करता है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका होता है। ... यहाँ कुछ प्राणी इसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(5) "फिर एक महान शिष्य अपनी उदारता को इस प्रकार याद करते हुए कहता है: 'यह सचमुच मेरा सौभाग्य और लाभ है कि कंजूसी के कलंक से ग्रस्त जनसंख्या में, मैं कंजूसी के कलंक से मुक्त, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और बांटने में आनंदित मन के साथ निवास करता हूँ।' जब एक महान शिष्य अपनी उदारता को याद करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका होता है... यहाँ कुछ प्राणी इसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(6) "फिर एक श्रेष्ठ शिष्य देवताओं (देवदूतों) का स्मरण इस प्रकार करता है: 'चार महान राजाओं द्वारा शासित देवता हैं, तावतिंसा देवता, यम देवता, तुषिता देवता, सृष्टि में आनंदित होने वाले देवता, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवता, ब्रह्मा के

साथ रहने वाले देवता, और इनसे भी उच्चतर देवता हैं। मुझमें भी उन देवताओं के समान ही आस्था है, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ; मुझमें भी उन देवताओं के समान ही सद्गुणी आचरण... ज्ञान... उदारता... दिव्य ज्ञान है, क्योंकि जब वे यहाँ पर परलोक त्याग कर वहाँ पुनर्जन्म लेते हैं, तब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने और उन देवताओं (देवदूतों) में विद्यमान आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का स्मरण करता है, तब उसका मन कामवासना (राग), द्वेष या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन एकदम शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो जाता है, उससे छुटकारा पा लेता है, उससे बाहर निकल आता है। 'भिक्षुओं, लोभ पाँच इंद्रिय सुखों का नाम है। इसे आधार बनाकर भी, यहाँ कुछ प्राणी इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।'

"भिक्षुओं, ये स्मरण के छह विषय हैं।"

---

26 महाकच्चना

वहाँ पूज्य महाकच्चना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय महाकच्चना ने यह कहा:

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्रों, कि भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, उन्होंने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् स्मरण के छह विषयों के लिए कारावास के बीच में ही मार्ग खोज निकाला है। 1294 वे छह विषय क्या हैं?"

(1) "यहाँ, मित्रों, एक श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं... प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) [315] या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो गया है, उससे बाहर निकल आया है। 'मित्रों, लोभ पाँच इंद्रिय सुखों का नाम है।' यह श्रेष्ठ शिष्य पूर्णतः आकाश के समान मन से निवास करता है: विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता और दुर्भावना से रहित। इसे आधार बनाकर, यहाँ कुछ प्राणी इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं। 1293

(2) "एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है... जिसे बुद्धिमानों को स्वयं अनुभव करना चाहिए। जब कोई श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), घृणा या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो जाता है; कुछ प्राणी यहाँ इसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(3) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण इस प्रकार करता है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का सफ़ीघा उत्तम मार्ग का अभ्यास कर रहा है... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र।' जब एक श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल सीधा होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका है... [316] ... कुछ प्राणी यहाँ इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(4) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है जो अटूट, दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाता है। जब एक श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका होता है... कुछ प्राणी इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।"

(5) "फिर, एक नेक शिष्य अपनी उदारता को इस प्रकार याद करता है: 'यह सचमुच मेरा सौभाग्य है... कि कंजूसी के कलंक से ग्रस्त जनसंख्या में, मैं कंजूसी के कलंक से मुक्त मन से निवास करता हूँ... दान देने और बाँटने में आनंदित होता हूँ।' जब एक नेक शिष्य अपनी उदारता को याद करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन बिल्कुल शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो चुका होता है... इस प्रकार प्राणी यहाँ शुद्ध हो जाते हैं।"

(6) "फिर, एक महान शिष्य देवताओं (देवदूतों) को इस प्रकार याद करता है: 'चार महान राजाओं द्वारा शासित देव (देवदूत/देवता) हैं... [31 7] ... मुझमें भी ऐसा ही विश्वास... ऐसा ही सदाचारी व्यवहार... ऐसा ही ज्ञान... ऐसी ही उदारता... ऐसा ही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) है जैसा उन देवताओं (देवदूतों) के पास था, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने और उन देवताओं में विद्यमान आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का स्मरण करता है, तब उसका मन कामवासना (राग), द्वेष या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन एकदम शांत होता है। वह लोभ से मुक्त हो जाता है, उससे छुटकारा पा लेता है, उससे बाहर निकल आता है। हे मित्रों, लोभ पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का नाम है। यह श्रेष्ठ शिष्य ऐसे मन से निवास करता है जो पूर्णतः आकाश के समान है: विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता और द्वेष से रहित। इसे आधार बनाकर भी, कुछ प्राणी यहाँ इसी प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्रों, कि भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो सब कुछ जानते और देखते हैं, उन्होंने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय पाने, पीड़ा और निराशा को दूर करने, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् स्मरण के छह विषयों की प्राप्ति के लिए कारावास के बीच में ही मार्ग खोज निकाला है।"

---

27 अवसर (1) (समय1)

तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला: "भंते, किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने जाने के कितने उचित अवसर होते हैं?" 1296

"हे भिक्षु, किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने के लिए ये छह उचित अवसर हैं। वे छह अवसर कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षु, जब किसी भिक्षु का मन कामुक राग से ग्रस्त और पीड़ित हो, और वह यह न समझ पाए कि वास्तव में उत्पन्न कामुक राग से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मेरा मन कामुक राग से ग्रस्त और पीड़ित है, [318] और मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि वास्तव में उत्पन्न कामुक राग से मुक्ति का मार्ग क्या है। कृपया मुझे कामुक राग का त्याग करने का धर्म सिखाएँ।' आदरणीय भिक्षु तब उसे कामुक राग का त्याग करने का धर्म सिखाते हैं। यही किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने का पहला उचित अवसर है।"

(2) "फिर, जब किसी भिक्षु का मन द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित हो जाता है, और वह वास्तव में उत्पन्न द्वेष से मुक्ति का मार्ग नहीं समझ पाता, तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मेरा मन द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित है।' आदरणीय भिक्षु तब उन्हें द्वेष त्यागने का धर्म सिखाते हैं। आदरणीय भिक्षु से मिलने का यह दूसरा उचित अवसर है।"

(3) "फिर, जब किसी भिक्षु का मन सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त और पीड़ित हो जाता है, और वह वास्तव में उत्पन्न सुस्ती और आलस्य से मुक्ति का मार्ग नहीं समझ पाता, तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मेरा मन सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त और पीड़ित है...' तब आदरणीय भिक्षु उसे सुस्ती और आलस्य से मुक्ति पाने का धर्म सिखाते हैं। आदरणीय भिक्षु से मिलने का यह तीसरा उचित अवसर है।"

(4) "फिर, जब किसी भिक्षु का मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित हो जाता है, और वह वास्तव में उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति का मार्ग नहीं समझ पाता, तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मेरा

मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित है... [319] ... तब आदरणीय भिक्षु उसे बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति का धम्म (मार्ग) सिखाते हैं। आदरणीय भिक्षु से मिलने जाने का यह चौथा उचित अवसर है।"

(5) "फिर, जब किसी भिक्षु का मन संदेह से ग्रस्त और पीड़ित हो जाता है, और वह वास्तव में उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग नहीं समझ पाता, तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मेरा मन संदेह से ग्रस्त और पीड़ित है, और मैं वास्तव में उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग नहीं समझ पा रहा हूँ। कृपया मुझे संदेह त्यागने का धर्म सिखाएँ।' आदरणीय भिक्षु तब उसे संदेह त्यागने का धर्म सिखाते हैं। यह आदरणीय भिक्षु से मिलने का पाँचवाँ उचित अवसर है।"

(6) "फिर, जब कोई भिक्षु यह न जान पाए और न देख पाए कि दोषों के तत्काल नाश के लिए किस वस्तु पर भरोसा करना चाहिए और किस पर ध्यान देना चाहिए, 1297 तो उस समय उसे किसी आदरणीय भिक्षु के पास जाकर उनसे कहना चाहिए: 'मित्र, मैं यह न जान पा रहा हूँ और न देख पा रहा हूँ कि दोषों के तत्काल नाश के लिए किस वस्तु पर भरोसा करना चाहिए और किस पर ध्यान देना चाहिए। कृपया मुझे दोषों के नाश के लिए धर्म सिखाएँ।' आदरणीय भिक्षु तब उसे दोषों के नाश के लिए धर्म सिखाते हैं। यह किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने का छठा उचित अवसर है।"

"हे भिक्षु, ये छह उचित अवसर हैं जब किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने जाना चाहिए।"

---

28 अवसर (2) (समय2)

एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु इसिपताना के हिरण पार्क में बनारस में रह रहे थे; फिर, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वे वरिष्ठ भिक्षु मंडप कक्ष में एकत्रित हुए और एक साथ बैठे थे, तभी उनके बीच यह बातचीत शुरू हुई: "मित्रों, किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने जाने का उचित अवसर क्या है?"

यह सुनकर एक भिक्षु ने उन वरिष्ठों से कहा: "मित्रों, भोजन के बाद, जब कोई आदरणीय भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद लौटकर अपने पैर धो लेता है और सीधा शरीर धारण करके, पैरों को मोड़कर बैठा होता है, और अपने सामने एकाग्र मन स्थापित कर लेता है, तब उससे मिलने जाना उचित होता है।"

जब उन्होंने अपनी बात पूरी कर ली, तो एक अन्य भिक्षु ने उनसे कहा: "मित्र, किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने का यह उचित अवसर नहीं है। भोजन के बाद, जब कोई आदरणीय भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद लौटकर अपने पैर धोकर, सीधे बैठकर, ध्यान (सती) में मग्न हो जाता है, तब तक भिक्षा मांगने और भोजन के कारण उसकी थकान दूर नहीं हुई होती है। इसलिए, उस समय उनसे मिलने जाना उचित नहीं है। परन्तु संध्या में, जब कोई आदरणीय भिक्षु एकांतवास से बाहर आकर अपने निवास स्थान की छाया में सीधे बैठकर, पैर बांधकर, ध्यान (सती) में मग्न हो जाता है, तब उनसे मिलने जाना उचित है।"

जब उन्होंने अपनी बात पूरी कर ली, तो एक अन्य भिक्षु ने उनसे कहा: “मित्र, किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने जाने का यह उचित अवसर नहीं है। [321] संध्याकाल में, जब कोई आदरणीय भिक्षु एकांतवास से बाहर आकर अपने निवास स्थान की छाया में पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, सती ध्यान में लीन होते हैं, तब भी दिनभर जिस समाधि (स्व-लीनता/सत्त्व) में वे तल्लीन रहते हैं, वह उनके समक्ष विद्यमान रहती है। 1298 अतः यह उनसे मिलने जाने का उचित अवसर नहीं है। परन्तु जब कोई आदरणीय भिक्षु संध्या के ढलने पर उठकर, पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, सती ध्यान में लीन होते हैं, तब उनसे मिलने जाना उचित अवसर है।”

जब उन्होंने अपनी बात समाप्त की, तो एक अन्य भिक्षु ने उनसे कहा: “मित्र, आदरणीय भिक्षु से मिलने का यह उचित अवसर नहीं है। जब आदरणीय भिक्षु संध्या ढलने के समय उठते हैं और पाँव जोड़कर सीधे बैठे होते हैं, और सती ध्यान में तल्लीन होते हैं, उस समय उनका शरीर तरोताजा होता है; उनके लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना सहज होता है। अतः उनसे मिलने का यह उचित अवसर नहीं है।”

यह सुनकर पूज्य महाकच्चना ने उन वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना और सीखा है:

"'हे भिक्षु, आदरणीय भिक्षु से मिलने के ये छह उचित अवसर हैं। वे छह क्या हैं? (1) हे भिक्षु, जब किसी भिक्षु का मन कामुक वासना (राग) से ग्रस्त और पीड़ित हो... [जैसा कि 6:27 में है] [322]... (2) ... द्वेष से ग्रस्त और पीड़ित हो... (3) ... सुस्ती और उनींदापन से ग्रस्त और पीड़ित हो... (4) ... बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त और पीड़ित हो... (5) ... संदेह से ग्रस्त और पीड़ित हो... (6) जब किसी भिक्षु को यह ज्ञात और दिखाई न दे कि दोषों के तत्काल नाश के लिए किस वस्तु पर भरोसा करना और ध्यान देना चाहिए। ...फिर आदरणीय भिक्षु उन्हें दोषों के नाश के लिए धम्म का उपदेश देते हैं। आदरणीय भिक्षु से मिलने का यह छठा उचित अवसर है।'

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'भिक्षु, ये छह उचित अवसर हैं जब किसी आदरणीय भिक्षु से मिलने जाना चाहिए।'"

---

29 उदय

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उदयि से पूछा, "उदयि, स्मरण के कितने विषय हैं?"

यह सुनकर पूज्य उदयि मौन रहे। दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उदयि से पूछा, "उदयि, स्मरण के कितने विषय हैं?" और तीसरी बार भी पूज्य उदयि मौन रहे।

तब पूज्य आनंद ने पूज्य उदयि से कहा: "गुरुजी आपसे बात कर रहे हैं, मित्र उदयि।"

मैंने उसे सुना, मित्र आनंद। [323]

"यहाँ, भंते, एक भिक्षु अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) का स्मरण करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म... [जैसा कि 6:2 में है]। इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) के स्वरूपों और विवरणों का स्मरण करता है। भंते, यही स्मरण का विषय है।"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "हे आनंद, मैं जानता था कि यह खोखला मनुष्य उदयि उच्चतर मन में स्वयं को समर्पित नहीं करता। 1299 हे आनंद, स्मरण के कितने विषय हैं?"

"भंते, स्मरण के पाँच विषय हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) हे भंते, इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल होते हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते। परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव और सती भाव से पूर्णतः बोध करते हुए शरीर सहित सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सतीभाव) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव और सती भाव से निवास करने वाला है...' खुशी से। इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय, इसी जीवन में सुखमय निवास की ओर ले जाता है। 1300

(2) "फिर, भंते, एक भिक्षु प्रकाश की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान देता है; वह दिन की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर इस प्रकार ध्यान केंद्रित करता है: 'जैसा दिन, वैसा रात; जैसा रात, वैसा दिन।' इस प्रकार, खुले और निर्मल मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। 1301 इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति की ओर ले जाता है।"

(3) "हे भंते, एक भिक्षु इस शरीर का पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा में लिपटे हुए, अनेक प्रकार की अशुद्धियों से परिपूर्ण मानकर अवलोकन करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मेसेंटरी, पेट, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू,

चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव, मूत्र हैं।' इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय, इंद्रिय सुख (राग) के त्याग की ओर ले जाता है।"

(4) "फिर, भंते, मान लीजिए कि एक भिक्षु श्मशान भूमि में एक, दो, [324] या तीन दिन पहले मृत पड़े, फूले हुए, पीले पड़े और सड़ते हुए शव को देखता है। वह अपने शरीर की तुलना उससे इस प्रकार करता है: 'यह शरीर भी उसी प्रकृति का है; यह वैसा ही होगा; यह उससे आगे नहीं है।' 1302 या मान लीजिए कि वह श्मशान भूमि में एक शव को कौवे, बाज, गिद्ध, कुत्ते, सियार या विभिन्न प्रकार के जीवों द्वारा कुतरते हुए देखता है। वह अपने शरीर की तुलना उससे इस प्रकार करता है: 'यह शरीर भी उसी प्रकृति का है; यह वैसा ही होगा; यह उससे आगे नहीं है।' मान लीजिए कि वह किसी श्मशान में फेंका हुआ एक शव देखे, एक कंकाल जिसमें मांस और रक्त हो, जो नसों से जुड़ा हो... एक मांसहीन कंकाल जो रक्त से सना हो, नसों से जुड़ा हो... एक कंकाल जिसमें मांस और रक्त न हो, नसों से जुड़ा हो... अलग-अलग हड्डियाँ चारों ओर बिखरी हों: यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी और वहाँ खोपड़ी। वह अपने शरीर की तुलना इससे इस प्रकार करता है: 'यह शरीर भी उसी प्रकृति का है; यह वैसा ही होगा; इससे आगे कुछ नहीं है।' या मान लीजिए कि वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसकी हड्डियाँ सफ़ेद पड़ चुकी हों, सीपियों के रंग की... हड्डियाँ ढेर लगी हों, एक वर्ष से अधिक पुरानी... हड्डियाँ सड़कर धूल में मिल गई हों। वह अपने शरीर की तुलना उससे इस प्रकार करता है: [325] 'यह शरीर भी उसी प्रकृति का है; यह वैसा ही होगा; यह उससे परे नहीं है।' इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय 'मैं हूँ' की धारणा को जड़ से उखाड़ फेंकता है।

(5) "हे भंते, सुख और दुख का त्याग करने और पहले ही आनंद और उदासी के दूर हो जाने के बाद, भिक्षु चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, जिसमें समभाव द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय अनेक तत्वों के भेदन की ओर ले जाता है। 1303

"भंते, ये स्मरण के पाँच विषय हैं।"

"शाबाश, शाबाश, आनंद! इसलिए, आनंद, स्मरण के इस छठे विषय को भी याद रखो।"

(6) "यहाँ, एक भिक्षु सदा सचेत (ध्यान/सती) होकर आगे बढ़ता है, सदा सचेत होकर लौटता है, सदा सचेत (ध्यान/सती) होकर खड़ा होता है, सदा सचेत (ध्यान/सती) होकर बैठता है, सदा सचेत (ध्यान/सती) होकर सोने के लिए लेटता है, सदा सचेत (ध्यान/सती) होकर कार्य करता है। इस प्रकार विकसित और पोषित स्मरण का यह विषय सती (ध्यान) और पूर्ण बोध (संपजन्न) की ओर ले जाता है।"

---

30 (10) अतुलनीय वस्तुएँ (अनुत्तरिया)

भिक्षुओं, ये छह अद्वितीय गुण हैं। वे कौन से छह गुण हैं? (1) अद्वितीय दृष्टि, (2) अद्वितीय श्रवण शक्ति, (3) अद्वितीय लाभ, (4) अद्वितीय प्रशिक्षण, (5) अद्वितीय सेवा और (6) अद्वितीय स्मरण शक्ति।

(1) "हे भिक्षुओं, वह अतुलनीय दर्शन क्या है? यहाँ, कोई हाथी-रत्न, अश्व-रत्न, रत्न-रत्न या विभिन्न दर्शनों को देखने जाता है; या फिर वे गलत विचारों या गलत अभ्यास वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण के दर्शन करने जाते हैं। यह दर्शन है; मैं इससे इनकार नहीं करता। परन्तु यह दर्शन नीच, सामान्य, सांसारिक, तुच्छ और लाभहीन है; यह निर्वाण (निब्बिद), वैराग्य (विरग), शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और [326] निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। परन्तु जब दृढ़ विश्वास, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और पूर्ण विश्वास वाला व्यक्ति तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य के दर्शन करने जाता है: तो यह अतुलनीय दर्शन प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, दुःख और विलाप पर विजय पाने के लिए, पीड़ा और निराशा को दूर करने के लिए, विधि की प्राप्ति के लिए, निर्वाण की प्राप्ति। इसे ही अतुलनीय दृष्टि कहा जाता है। ऐसी है अतुलनीय दृष्टि।

(2) "अति उत्कृष्ट श्रवण कैसे होता है? यहाँ, कोई ढोल की आवाज़, वीणा की आवाज़, गायन की आवाज़, या विभिन्न प्रकार की आवाज़ें सुनने जाता है; या फिर वे गलत मतों, गलत अभ्यास वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण का धम्म सुनने जाते हैं। यह श्रवण होता है; मैं इससे इनकार नहीं करता। परन्तु यह श्रवण नीच, सामान्य, सांसारिक, तुच्छ और लाभहीन होता है; यह निर्वाण (निब्बिद), वैराग्य

(विराग), शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण (निब्बान) की ओर नहीं ले जाता। परन्तु जब दृढ़ विश्वास, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और पूर्ण विश्वास वाला व्यक्ति तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य को सुनने जाता है: तो यह अतुलनीय श्रवण प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, दु:ख और विलाप पर विजय पाने के लिए, पीड़ा और निराशा को दूर करने के लिए, विधि की प्राप्ति के लिए, और ज्ञान की प्राप्ति के लिए होता है।" निर्वाण। इसे ही अतुलनीय श्रवण शक्ति कहा जाता है। इसी प्रकार अतुलनीय दृष्टि और अतुलनीय श्रवण शक्ति है।

(3) "अतिरिक्त लाभ कैसे है? यहाँ, किसी को पुत्र, पत्नी या धन प्राप्त होता है; या उन्हें विभिन्न [327] वस्तुएँ प्राप्त होती हैं; या वे गलत विचारों, गलत प्रथाओं वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण में आस्था प्राप्त करते हैं। यह लाभ है; मैं इससे इनकार नहीं करता। परन्तु यह लाभ नीच, सामान्य, सांसारिक, तुच्छ और लाभहीन है; यह निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रबुद्धता और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। परन्तु जब दृढ़ आस्था, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और पूर्ण विश्वास वाला व्यक्ति तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य में आस्था प्राप्त करता है: तो यह अतुलनीय लाभ प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए है। यह है इसे अतुलनीय लाभ कहा जाता है। ऐसा है अतुलनीय दृष्टि, अतुलनीय श्रवण और अतुलनीय लाभ।

(4) "और, अतुलनीय प्रशिक्षण कैसे है? यहाँ, कोई हाथी-चाल, घुड़सवारी, रथ-चाल, तीरंदाजी, तलवारबाजी का प्रशिक्षण लेता है; या वे विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण लेते हैं; या वे गलत विचारों, गलत प्रथाओं वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण के अधीन प्रशिक्षण लेते हैं। यह प्रशिक्षण है; मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन यह प्रशिक्षण निम्न, सामान्य, सांसारिक, नीच और लाभहीन है; यह निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। परन्तु जब कोई दृढ़ विश्वास, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास से परिपूर्ण व्यक्ति तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में उच्च सद्गुणी आचरण, उच्च मन और उच्च पन्ना (दिव्य ज्ञान) का प्रशिक्षण लेता है: तो यह अतुलनीय प्रशिक्षण प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय पाने और मृत्यु के निवारण के लिए है। विधि की प्राप्ति के लिए, निर्वाण की प्राप्ति के लिए पीड़ा और निराशा। इसे ही अतुलनीय प्रशिक्षण कहा जाता है। यही अतुलनीय दृष्टि, अतुलनीय श्रवण, अतुलनीय लाभ और अतुलनीय प्रशिक्षण है।

(5) "अति श्रेष्ठ सेवा क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति किसी क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहस्थ की सेवा करता है; या वे अनेक अन्य लोगों की सेवा करते हैं; या वे किसी कुटिल, कुप्रथाग्रस्त तपस्वी या ब्राह्मण की सेवा करते हैं। इस प्रकार की सेवा भी है; मैं इससे इनकार नहीं करता। परन्तु इस प्रकार की सेवा नीच, सामान्य, सांसारिक, तुच्छ और लाभहीन है; यह निर्वाण (निब्बिद), वैराग्य (विराग), शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण (निब्बान) की ओर नहीं ले जाती। परन्तु जब दृढ़ विश्वास, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और पूर्ण विश्वास से युक्त व्यक्ति तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य की सेवा करता है: तो यह अतुलनीय सेवा प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, दु:ख और विलाप पर विजय पाने के लिए, पीड़ा और निराशा को दूर करने के लिए, विधि की प्राप्ति के लिए, और मोक्ष की प्राप्ति के लिए है।" निर्वाण (निब्बाना)। इसे ही अतुलनीय सेवा कहा जाता है। इसी प्रकार अतुलनीय दृष्टि, अतुलनीय श्रवण शक्ति, अतुलनीय लाभ, अतुलनीय प्रशिक्षण और अतुलनीय सेवा है।

(6) "और वह अतुलनीय स्मरण कैसे होता है? यहाँ, कोई पुत्र, पत्नी या धन की प्राप्ति का स्मरण करता है; या फिर वे विभिन्न प्रकार के लाभों का स्मरण करते हैं; या फिर वे गलत विचारों, गलत प्रथाओं वाले किसी तपस्वी या ब्राह्मण का स्मरण करते हैं। इस प्रकार का स्मरण होता है; मैं इससे इनकार नहीं करता... लेकिन इस प्रकार का स्मरण निम्न, सामान्य, सांसारिक, नीच और लाभहीन होता है; यह निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। परन्तु जब कोई दृढ़ विश्वास, दृढ़ भक्ति, दृढ़ निश्चय और पूर्ण विश्वास से भरा व्यक्ति तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य का स्मरण करता है: तो यह अतुलनीय स्मरण प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण और... के लिए होता है। निर्वाण की प्राप्ति के लिए विधि की उपलब्धि। इसे ही अतुलनीय स्मरण कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये छह अतुलनीय वस्तुएँ हैं।"

सर्वश्रेष्ठ दृष्टि

और अतुलनीय श्रवण शक्ति प्राप्त करके,

अतुलनीय लाभ अर्जित करके,

अतुलनीय प्रशिक्षण में आनंदित होकर,

सेवा में तल्लीन होकर, वे एकांत से जुड़ी

स्मृति विकसित करते हैं , सुरक्षित होकर, जो अमरता (अमरत/अमृत) की ओर ले जाती है।

सतर्कता में आनंदित,

विवेकपूर्ण, सद्गुणों से संयमित,

समय आने पर वे जान जाते हैं

कि दुख कहाँ समाप्त होता है।

IV. देवता (देवदूत)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 प्रशिक्षु (सेखा)

भिक्षुओं, ये छह गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? [330] काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद, इंद्रियों पर नियंत्रण न रखना और भोजन में संयम का अभाव। ये छह गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये छह गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? काम में आनंद न लेना, बातचीत में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, संगति में आनंद न लेना, इंद्रियों को वश में रखना और भोजन में संयम बरतना। ये छह गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं।

---

32 गैर-अस्वीकार (1) (परिहाना1)

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर एक देवदूत (परी), जिसने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, भिक्षु के पतन को रोकने वाले ये छह गुण हैं। वे छह गुण कौन से हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, जागरूकता के प्रति श्रद्धा और आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा। 1305 ये छह गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।"

यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। गुरुजी सहमत हो गए। तब उस देवता (देवदूत) ने यह सोचकर कि "गुरुजी मुझसे सहमत हैं," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और मुझसे कहा: 'भंते, ये छह गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे छह क्या हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, जागरूकता के प्रति श्रद्धा और आतिथ्य के प्रति श्रद्धा। [331] ये छह गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। फिर उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गया।"

गुरु के प्रति आदरपूर्ण,

धम्म के प्रति आदरपूर्ण,

संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाला,

सजगता के प्रति आदरपूर्ण,

आतिथ्य सजग: यह भिक्षु

भटक नहीं सकता, बल्कि निर्वाण के निकट है।

---

33 गैर-अस्वीकार (2) (परिहाना2)

"कल रात, भिक्षुओं, जब रात ढल रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता, जिसने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और मुझसे कहा: 'भंते, ये छह गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे छह क्या हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, नैतिक लज्जा के प्रति श्रद्धा और नैतिक भय के प्रति श्रद्धा। ये छह गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता ने कहा। फिर उस देवता ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गया।"

गुरु के प्रति आदरपूर्ण,

धम्म के प्रति आदरपूर्ण,

संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाला,

नैतिक लज्जा और नैतिक भय से परिपूर्ण:

जो व्यक्ति आदरपूर्ण और श्रद्धापूर्ण होता है , वह

भटक नहीं सकता, बल्कि निर्वाण के निकट होता है।

---

34 मोग्गलाना

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब पूज्य महामोग्गलाना एकांत में अकेले थे, उनके मन में निम्नलिखित विचार उत्पन्न हुए: "कौन से देव (देवदूत/ईश्वर) जानते हैं: 'मैं धारा में प्रवेश करने वाला (सात जन्मों का अनुयायी, सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञान की ओर अग्रसर हूँ'?" [332]

उस समय, तिस्सा नामक एक भिक्षु का हाल ही में निधन हुआ था और उनका पुनर्जन्म एक ब्रह्मलोक में हुआ था। वहाँ भी वे उन्हें "ब्रह्म तिस्सा, शक्तिशाली और बलवान" के नाम से जानते थे। फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींच लेता है, उसी प्रकार पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से लुप्त होकर उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। जब उन्होंने दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देखा, तो ब्रह्म तिस्सा ने उनसे कहा:

"आदरणीय मोग्गलाना, आइए! आपका स्वागत है, आदरणीय मोग्गलाना! बहुत समय बाद आपको यहाँ आने का अवसर मिला। बैठिए, आदरणीय मोग्गलाना। यह आसन आपके लिए तैयार किया गया है।" पूज्य महामोग्गलाना तैयार आसन पर बैठ गए। ब्रह्मा तिस्सा ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे तिस्सा, कौन से देव (देवदूत/भगवान) जानते हैं: 'मैं एक धारा-प्रवेशक (7 पुनर्जन्मों का वाहक, सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ'?"

(1) "चार महान राजाओं द्वारा शासित देवों (देवदूतों/देवताओं) के पास ऐसा ज्ञान है, आदरणीय मोग्गलाना।"

"क्या चारों महान राजाओं के शासन में रहने वाले सभी देवों (देवदूतों/देवताओं) के पास ऐसा ज्ञान है, तिस्सा?"

"हे आदरणीय मोग्गलाना, सभी नहीं। जो बुद्ध, धम्म और संघ में अटूट विश्वास नहीं रखते और जिनमें श्रेष्ठों द्वारा प्रिय सद्गुणी आचरण का अभाव है, उन्हें ऐसा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परन्तु जो बुद्ध, धम्म और संघ में अटूट विश्वास रखते हैं और जिनमें श्रेष्ठों द्वारा प्रिय सद्गुणी आचरण होता है, वे जानते हैं: 'मैं एक धारा-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं, नियति में स्थिर, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर।"

(2) क्या केवल चार महान राजाओं के अधीन रहने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) को ही ऐसा ज्ञान प्राप्त है, या तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) को भी... (3) ... यम देवों (देवदूतों/देवताओं) को... (4) ... तुषिता देवों (देवदूतों/देवताओं) को... (5) ... सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) को... (6) ... दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) को भी यह ज्ञान प्राप्त है?

"दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के पास भी ऐसा ज्ञान होता है, आदरणीय मोग्गलाना।"

"क्या उन सभी देवताओं (देवदूतों/भगवानों) के पास ऐसा ज्ञान है जो दूसरों द्वारा बनाई गई चीजों को नियंत्रित करते हैं, तिस्सा?"

"हे आदरणीय मोग्गलाना, सभी नहीं। जो बुद्ध, धम्म और संघ में अटूट विश्वास नहीं रखते और जिनमें श्रेष्ठ जनों द्वारा सराहे जाने वाले सद्गुणों का अभाव है, उन्हें ऐसा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परन्तु जो बुद्ध, धम्म और संघ में अटूट विश्वास रखते हैं और जिनमें श्रेष्ठ जनों द्वारा सराहे जाने वाले सद्गुण होते हैं, वे जानते हैं: 'मैं सात जन्मों का पथ-प्रवेश करने वाला (सोतपत्ति) हूँ, निम्न लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं, नियति में स्थिर, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ।'"

फिर, ब्रह्म तिस्सा के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, जैसे [334] एक बलवान व्यक्ति अपनी अंदर की ओर खींची हुई भुजा को फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को अंदर खींचता है, पूज्य महामोग्गलाना ब्रह्म जगत से विलीन हो गए और जेतवन में पुनः प्रकट हुए।

---

35. सच्चे ज्ञान (विज्भगीय) से संबंधित

भिक्षुओं, ये छह बातें सच्चे ज्ञान से संबंधित हैं। वे छह बातें क्या हैं? अनित्यता का बोध, अनित्य में दुख का बोध, दुख में अनात्म का बोध, त्याग का बोध, वैराग्य का बोध और समाप्ति का बोध। 1306 ये छह बातें सच्चे ज्ञान से संबंधित हैं।

---

36 विवाद (विवादमूल)

"भिक्षुओं, विवादों के ये छह मूल हैं। वे छह कौन से हैं?"

(1) "यहाँ एक भिक्षु क्रोधित और शत्रुतापूर्ण है। जब कोई भिक्षु क्रोधित और शत्रुतापूर्ण होता है, तो वह गुरु, धर्म और संघ के प्रति आदर और सम्मान का अभाव रखता है, और वह प्रशिक्षण का पालन नहीं करता। ऐसा भिक्षु संघ में विवाद उत्पन्न करता है जिससे अनेक लोगों को हानि होती है, अनेक लोग दुखी होते हैं, और देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों का विनाश, हानि और कष्ट होता है। हे भिक्षुओं, यदि आप अपने आप में या दूसरों में विवाद का ऐसा कोई मूल कारण देखते हैं, तो आपको विवाद के इस बुरे मूल कारण को त्यागने का प्रयास करना चाहिए। और यदि आप अपने आप में या दूसरों में विवाद का ऐसा कोई मूल कारण नहीं देखते हैं, तो आपको ऐसा अभ्यास करना चाहिए जिससे विवाद का यह बुरा मूल कारण भविष्य में उत्पन्न न हो। [335] इस प्रकार विवाद का यह बुरा मूल कारण त्याग दिया जाता है और भविष्य में उत्पन्न नहीं होता।"

(2) "एक भिक्षु निंदा करने वाला और अभिमानी होता है... (3) ... ईर्ष्यालु और कंजूस... (4) ... धूर्त और पाखंडी... (5) ... बुरी इच्छाओं और गलत दृष्टिकोण वाला... (6) ... अपने ही विचारों पर अड़ा रहता है, उन्हें दृढ़ता से थामे रहता है और उन्हें मुश्किल से छोड़ता है। जब कोई भिक्षु अपने ही विचारों पर अड़ा रहता है, उन्हें दृढ़ता से थामे रहता है और उन्हें मुश्किल से छोड़ता है, तो वह गुरु, धर्म और संघ के प्रति अनादर और सम्मान के बिना रहता है, और वह प्रशिक्षण पूरा नहीं करता। ऐसा भिक्षु संघ में विवाद उत्पन्न करता है जिससे अनेक लोगों को हानि होती है, अनेक लोग दुखी होते हैं, और देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों का विनाश, हानि और कष्ट होता है।" भिक्षुओं, यदि आप अपने भीतर या दूसरों में विवाद का कोई भी कारण देखते हैं, तो आपको उस बुरे कारण को त्यागने का प्रयास करना चाहिए। और यदि आप अपने भीतर या दूसरों में विवाद का कोई भी कारण नहीं देखते हैं, तो आपको ऐसा अभ्यास करना चाहिए जिससे भविष्य में विवाद का वह बुरा कारण उत्पन्न न हो। इस प्रकार विवाद का वह बुरा कारण त्याग दिया जाता है और भविष्य में उत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओं, ये विवाद के छह मूल कारण हैं।"

---

37 दान देना

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय, उनकी एक अनुयायी महिला वेलुकांतकी नंदमाता ने सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ के लिए छह तत्वों से युक्त एक भेंट तैयार की थी। भगवान (बुद्ध) ने अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, वेलुकांतकी नंदमाता को यह भेंट तैयार करते हुए देखा और फिर भिक्षुओं को संबोधित किया:

"भिक्षुओं, महिला गृहस्थ अनुयायी वेलुकांतकी नंदमाता, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ के लिए छह गुणों से युक्त एक भेंट तैयार कर रही हैं। और छह गुणों से युक्त भेंट कैसे होती है? यहाँ, दाता के तीन गुण हैं और प्राप्तकर्ता के तीन गुण हैं।"

दाता के तीन कारक क्या हैं? (1) दाता दान देने से पहले प्रसन्न होती है; (2) दान देते समय उसका मन शांत और आत्मविश्वास से भरा होता है; और (3) दान देने के बाद वह प्रफुल्लित होती है। ये दाता के तीन कारक हैं।

"प्राप्तकर्ताओं के तीन कारक क्या हैं? यहाँ, (4) प्राप्तकर्ता कामवासना (राग) से रहित हैं या कामवासना (राग) को दूर करने का अभ्यास कर रहे हैं; (5) वे घृणा (हृदय) से रहित हैं या घृणा (हृदय) को दूर करने का अभ्यास कर रहे हैं; (6) वे मोह (मोह) से रहित हैं या मोह (मोह) को दूर करने का अभ्यास कर रहे हैं। ये प्राप्तकर्ताओं के तीन कारक हैं।"

इस प्रकार दानकर्ता के तीन गुण होते हैं और प्राप्तकर्ता के भी तीन गुण होते हैं। इस तरह से दान में छह गुण होते हैं। ऐसे दान के गुण को इस प्रकार मापना आसान नहीं है: 'केवल इतना ही गुण है, इतना ही लाभकारी (कुशल) गुण है, इतना ही सुख का पोषण है - इतना ही स्वर्गीय है, इतना ही सुख में परिपक्व होता है, इतना ही स्वर्गिक है - इतना ही जो वांछित, वांछित और सुखद, अपने कल्याण और सुख की ओर ले जाता है'; बल्कि, इसे केवल गुणों के एक अगणनीय, विशाल भंडार के रूप में गिना जाता है। भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर में जल को इस प्रकार मापना आसान नहीं है: 'इतने गैलन जल है' या 'इतने सैकड़ों गैलन जल है' या 'इतने हजार गैलन जल है' या 'इतने लाखों गैलन जल है', बल्कि इसे केवल जल के एक अगणनीय, विशाल भंडार के रूप में गिना जाता है; उसी प्रकार, ऐसे दान के गुण को मापना आसान नहीं है। ... बल्कि, इसे मात्र गुणों के एक अथाह, असीम, विशाल भंडार के रूप में माना जाता है। 77

दान देने से पहले व्यक्ति प्रसन्न होता है;

दान देते समय मन में विश्वास की भावना जागृत होती है;

दान देने के बाद व्यक्ति प्रफुल्लित होता है:

यही दान देने के कार्य में सफलता है।

जब वे कामवासना (राग) और घृणा से रहित हों,

मोह (मोह) से मुक्त हों, दोषरहित हों,

आत्मसंयमी हों, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी रहे हों, तब

अर्पण का क्षेत्र पूर्ण हो जाता है।

स्वयं को शुद्ध करके [1307]

और अपने हाथों से दान देकर,

दान का कार्य

स्वयं के लिए और दूसरों के संबंध में बहुत फलदायी होता है।

कंजूसी से मुक्त मन से ऐसा परोपकारी कार्य करने वाला

ज्ञानी व्यक्ति, आस्था से भरपूर होकर,

एक सुखी और कष्टरहित संसार में पुनर्जन्म लेता है।

---

38 स्व-पहल (अत्ताकारी बिना आत्मा कारी)

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत के बाद, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"मास्टर गौतम, मैं इस प्रकार का सिद्धांत और दृष्टिकोण रखता हूँ: 'कोई स्व-पहल नहीं है; दूसरों द्वारा कोई पहल नहीं की गई है' [1306]

"ब्राह्मण, मैंने कभी किसी को इस तरह का सिद्धांत और दृष्टिकोण रखते हुए न देखा है और न सुना है। भला जो स्वयं आता है और स्वयं लौटता है, वह कैसे कह सकता है: 'कोई स्वयं की पहल नहीं है; दूसरों द्वारा कोई पहल नहीं की गई है'?"

(1) "ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या उकसाने का तत्व मौजूद है?" [1309]

"जी श्रीमान।"

"जब उकसाने का तत्व मौजूद होता है, तो क्या प्राणियों को गतिविधि को उकसाते हुए देखा जाता है?"

"जी श्रीमान।"

जब प्राणियों को किसी गतिविधि को प्रेरित करते हुए देखा जाता है क्योंकि उसमें प्रेरणा का तत्व मौजूद होता है, तो यह प्राणियों की स्व-पहल होती है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल होती है।

(2) "ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या दृढ़ता का तत्व मौजूद है?"

"जी श्रीमान।"

"जब दृढ़ता का तत्व मौजूद होता है, तो क्या प्राणियों को गतिविधि में निरंतर बने रहने के रूप में देखा जाता है?"

"जी श्रीमान।"

जब प्राणियों को गतिविधि में निरंतर बने रहने के कारण ऐसा करते हुए देखा जाता है, तो यह प्राणियों की स्व-पहल है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल है।

(3) "हे ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या इसमें परिश्रम का तत्व मौजूद है?"

"जी श्रीमान।"

"जब परिश्रम का तत्व मौजूद होता है, तो क्या प्राणियों को गतिविधि में स्वयं को परिश्रम करते हुए देखा जाता है?"

"जी श्रीमान।"

जब प्राणियों को गतिविधि में स्वयं को प्रयास करते हुए देखा जाता है क्योंकि प्रयास का तत्व मौजूद होता है, तो यह प्राणियों की स्वयं की पहल है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल है।

(4) "हे ब्राह्मण, तुम्हारा क्या विचार है? क्या बल का तत्व विद्यमान है?" 1310

"जी श्रीमान।"

"जब शक्ति का तत्व विद्यमान होता है, तो क्या प्राणियों को शक्ति से युक्त माना जाता है?"

"जी श्रीमान।"

जब प्राणियों में शक्ति का तत्व विद्यमान होने के कारण शक्ति का आभास होता है, तो यह प्राणियों की स्वयं की पहल होती है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल होती है।

(5) "ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या निरंतरता का तत्व मौजूद है?"

"जी श्रीमान।"

"जब निरंतरता का तत्व मौजूद होता है, तो क्या प्राणियों को [किसी क्रिया में] निरंतर होते हुए देखा जाता है?"

"जी श्रीमान।" ।..

जब प्राणियों को किसी क्रिया में निरंतरता बनाए रखते हुए देखा जाता है क्योंकि निरंतरता का तत्व मौजूद होता है, तो यह प्राणियों की स्व-पहल होती है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल होती है।

(6) "ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या बल का तत्व मौजूद है?"

"जी श्रीमान।" ।।

"जब बल का तत्व मौजूद होता है, तो क्या प्राणी बल के साथ कार्य करते हुए दिखाई देते हैं?"

"जी श्रीमान।"

जब प्राणियों को बल के तत्व की उपस्थिति के कारण बल के साथ कार्य करते हुए देखा जाता है, तो यह प्राणियों की स्व-पहल होती है; यह दूसरों द्वारा की गई पहल होती है।

"ब्राह्मण, मैंने आपके जैसी विचारधारा और दृष्टिकोण रखने वाले किसी को न तो देखा है और न ही सुना है। भला जो स्वयं आता है और स्वयं लौटता है, वह कैसे कह सकता है: 'इसमें स्वयं का कोई प्रयास नहीं है; दूसरों का भी कोई प्रयास नहीं है'?"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

---

39. निदान के कारण

भिक्षुओं, कर्म की उत्पत्ति के ये तीन कारण हैं। वे तीन क्या हैं? (1) लोभ कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है; (2) घृणा कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है; और (3) मोह कर्म की उत्पत्ति का एक कारण है।

"लालच से लोभ का अभाव उत्पन्न नहीं होता; बल्कि लोभ से लोभ ही उत्पन्न होता है। घृणा से घृणा का अभाव उत्पन्न नहीं होता; बल्कि घृणा से घृणा ही उत्पन्न होती है। मोह से मोह का अभाव उत्पन्न नहीं होता; बल्कि मोह से मोह ही उत्पन्न होता है।"

"देवताओं और मनुष्यों के लोक—या किसी अन्य शुभ स्थान—लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न कर्मों के कारण नहीं दिखाई देते; बल्कि नरक, पशुलोक और पीड़ित आत्माओं का लोक—साथ ही अन्य बुरे स्थान—लोभ, घृणा और मोह से उत्पन्न कर्मों के कारण दिखाई देते हैं। ये कर्मों की उत्पत्ति के तीन कारण हैं।"

भिक्षुओं, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन अन्य कारण हैं। वे तीन क्या हैं? (4) लोभ रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; (5) घृणा रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है; और (6) मोह रहित होना कर्मों की उत्पत्ति का एक कारण है।

"लालच की उत्पत्ति लोभ से नहीं होती; बल्कि लोभहीनता की उत्पत्ति लोभहीनता से ही होती है। घृणा की उत्पत्ति घृणाहीनता से नहीं होती; बल्कि घृणाहीनता की उत्पत्ति घृणाहीनता से ही होती है। मोह की उत्पत्ति मोहहीनता से नहीं होती; बल्कि मोहहीनता मोहहीनता से ही उत्पन्न होती है।"

"यह न तो नरक है, न पशुलोक, न ही पीड़ित आत्माओं का लोक—और न ही कोई अन्य बुरे स्थान जो लोभ, घृणा और मोह से रहित कर्मों के कारण दिखाई देते हैं; बल्कि, यह देवों और मनुष्यों के लोक—साथ ही अन्य अच्छे स्थान—हैं जो लोभ, घृणा और मोह से रहित कर्मों के कारण दिखाई देते हैं। ये कर्मों की उत्पत्ति के तीन अन्य कारण हैं।"

---

40 किम्बिला 1311 (किमिला)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) किंबिला में एक निकुला उपवन में निवास कर रहे थे। तब पूज्य किंबिला भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा: [340]

"हे भंते, इसका कारण क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी उत्तम धर्म का निरंतर अस्तित्व नहीं बना रहता?"

"हे किम्बिला, जब कोई तथागत (बुद्ध) अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, तो (1) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (2) वे धम्म (मार्ग) के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (5) वे सजगता के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (6) वे आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। यही कारण है कि किसी तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद उत्तम धम्म अधिक समय तक कायम नहीं रहता।"

"हे भंते, इसका कारण और तर्क क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी अच्छा धम्म लंबे समय तक बना रहता है?"

"हे किम्बिला, जब कोई तथागत (बुद्ध) अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, तो (1) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (2) वे धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (5) वे सजगता के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (6) वे आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। यही कारण है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी सुधर्म लंबे समय तक बना रहता है।"

---

41 लकड़ी का एक टुकड़ा (दारुखंड)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य सारिपुत्त गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और कई भिक्षुओं के साथ गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे उतरे। एक स्थान पर उन्होंने लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा देखा और भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, क्या तुम लकड़ी का वह बड़ा टुकड़ा देख रहे हो?"

"हाँ दोस्त।"

(1) "हे मित्रों, यदि वह चाहे तो मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु, जो मानसिक शक्ति से युक्त हो, उस लकड़ी के टुकड़े को पृथ्वी मानकर उस पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। इसका आधार क्या है? क्योंकि उस लकड़ी के टुकड़े में पृथ्वी तत्व विद्यमान है। इसी आधार पर मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु, जो मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) से युक्त हो, उस पर पृथ्वी मानकर ध्यान केंद्रित कर सकता है।"

(2)-(4) "हे मित्रों, यदि वह चाहे तो मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु उस लकड़ी के टुकड़े पर जल...अग्नि...वायु के रूप में ध्यान केंद्रित कर सकता है। इसका आधार क्या है? क्योंकि उस लकड़ी के टुकड़े में जल...अग्नि...वायु तत्व विद्यमान हैं। इसी आधार पर मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु उस पर वायु के रूप में ध्यान केंद्रित कर सकता है।"

(5)— (6) "हे मित्रों, यदि वह चाहे तो मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु, जो मानसिक शक्ति से युक्त हो, उस लकड़ी के टुकड़े को सुंदर और अनाकर्षक दोनों रूप में देख सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उस लकड़ी के टुकड़े में सुंदरता और अनाकर्षकता दोनों ही तत्व विद्यमान हैं। इसी आधार पर मन पर महारत प्राप्त कर चुका कोई भिक्षु, जो मानसिक शक्ति (इद्धि) से युक्त हो, उस लकड़ी के टुकड़े को अनाकर्षक रूप में देख सकता है।"

---

42 नागिता 1312

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे, जब वे इच्छानंगला नामक कोसल के ब्राह्मण गाँव पहुँचे। वहाँ भगवान (बुद्ध) इच्छानंगला के घने वन में निवास करने लगे। इच्छानंगला के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: "कहा जाता है कि शाक्य वंश से निकले शाक्य पुत्र तपस्वी गौतम इच्छानंगला पहुँच गए हैं और अब इच्छानंगला के घने वन में निवास कर रहे हैं। अब उस गुरु गौतम के बारे में यह शुभ सूचना फैली है कि 'वह भगवान (बुद्ध) एक आरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से संसार को उसके देवताओं, मार और ब्रह्मा सहित, इस जनसंख्या को उसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, उसके देवताओं और मनुष्यों सहित, जान लिया है और इसे दूसरों को ज्ञात कराते हैं। वे एक ऐसे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा है, मध्य में अच्छा है और अंत में अच्छा है। सही अर्थ और शब्दों के साथ, वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं। ऐसे अरहंतों को देखना सौभाग्य की बात है।

फिर, जब रात बीत गई, तो इच्छानंगला के ब्राह्मण गृहस्थों ने तरह-तरह का भोजन लेकर इच्छानंगला के घने जंगल में चले गए। वे प्रवेश द्वार के बाहर शोर मचाते हुए खड़े हो गए। उस समय पूज्य नागिता भगवान (बुद्ध) के सेवक थे। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य नागिता से कहा: [342] "नागीता, इतना शोर कौन मचा रहा है? ऐसा लगता है जैसे मछुआरे मछली पकड़ने आए हों।"

"भंते, ये इच्छानंगल के ब्राह्मण गृहस्थ हैं जो अनेक प्रकार का प्रचुर भोजन लेकर आए हैं। वे प्रवेश द्वार के बाहर खड़े हैं, [इसे] भगवान (बुद्ध) और भिक्षुओं के संघ को अर्पित करने की इच्छा से।"

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग का यह आनंद, एकांत का आनंद, शांति का आनंद, ज्ञान का यह आनंद प्राप्त नहीं करता, वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार कर ले।"

हे भंते, अब भगवान (बुद्ध) की सहमति हो, हे सौभाग्यशाली, अब भगवान (बुद्ध) की सहमति का समय आ गया है। अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। जैसे जब भारी बारिश की बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता है, वैसे ही अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि भगवान (बुद्ध) का आचरण सदाचारी है और उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त है।

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले, और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग के इस सुख को प्राप्त नहीं करता... वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार कर सकता है।"

(1) "हे नागिता, यहाँ मैं एक भिक्षु को गाँव के बाहरी इलाके में [343] समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की अवस्था में बैठा देखता हूँ। तब मुझे यह विचार आता है: 'अब कोई मठवासी या कोई नौसिखिया या कोई सहधर्मी उस पूजनीय भिक्षु को उस समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से विमुख कर देगा।' 1313 इसी कारण मैं इस भिक्षु के गाँव के बाहरी इलाके में निवास करने से प्रसन्न नहीं हूँ।

(2) "हे नागिता, मैं देखता हूँ कि वन में रहने वाला एक भिक्षु वन में बैठा ऊंघ रहा है। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपनी इस ऊंघ और थकान को दूर करेगा और केवल वन की अनुभूति (सन्ना/संग्या), एकात्मता की अवस्था में ध्यान केंद्रित करेगा।' 1314 इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(3) "हे नागिता, मैं देखता हूँ कि वन में रहने वाला एक भिक्षु वन में असंयमित अवस्था में बैठा है। तब मुझे यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपने असंयमित मन को एकाग्र करेगा या अपने आत्ममग्न मन को रोकेगा।' इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(4) "हे नागिता, मैं वन में रहने वाले एक भिक्षु को समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) की अवस्था में बैठा देखता हूँ। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपने अमुक्त मन को मुक्त करेगा या अपने मुक्त मन की रक्षा करेगा।' इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(5) "देखो, नागिता, एक भिक्षु जो गाँव के बाहरी इलाके में रहता है, वह वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। लाभ, मान-सम्मान और यश की इच्छा में वह एकांतवास की उपेक्षा करता है; वह जंगलों और वनों में एकांतवास की उपेक्षा करता है। [344] गाँवों, कस्बों और राजधानियों में प्रवेश करके वह अपना निवास स्थान बना लेता है। इसी कारण मैं इस भिक्षु के गाँव के बाहरी इलाके में निवास करने से प्रसन्न नहीं हूँ।

(6) "मैं नागिता को देखता हूँ, जो वन में रहने वाला एक भिक्षु है, जिसे वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त होता है। उस लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा को त्यागकर भी वह एकांतवास का उपकार नहीं करता; वह वनों और घने जंगलों में एकांतवास का उपकार नहीं करता। इसी कारण मैं इस भिक्षु के वनवास से प्रसन्न हूँ।"

"हे नागिता, जब मैं राजमार्ग पर यात्रा कर रहा होता हूँ और मेरे आगे या पीछे कोई नहीं होता, चाहे वह शौच या पेशाब करने के उद्देश्य से ही क्यों न हो, उस समय मैं निश्चिंत रहता हूँ।" 1315

वी. धम्मिका

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

43 नागा

एक बार भगवान (बुद्ध) अनाथपिंडिका उद्यान में स्थित जेतवन के सावत्थी में निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "आओ, आनंद, चलो पूर्वी उद्यान [345] में स्थित मिगारमाता के महल में दिन बिताने चलें।"

"जी हां, भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया।

फिर भगवान (बुद्ध), पूज्य आनंद के साथ, पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में गए।

फिर शाम को भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए बोले: "'आओ, आनंद, हम पूर्वी द्वार पर स्नान करने चलें।'"

"जी हां, भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया।

फिर भगवान (बुद्ध), पूज्य आनंद के साथ, पूर्वी द्वार पर स्नान करने गए। पूर्वी द्वार पर स्नान करने के बाद, वे एक ही वस्त्र में खड़े होकर खुद को सुखा रहे थे। उसी समय, कोसल के राजा पसेनादि का "सेता" नामक हाथी पूर्वी द्वार से वाद्य संगीत और ढोल की थाप के साथ बाहर आ रहा था। लोगों ने उसे देखकर कहा, "राजा का हाथी कितना सुंदर है! राजा का हाथी कितना आकर्षक है! राजा का हाथी कितना भव्य है! राजा का हाथी कितना विशाल है! वह सचमुच एक नाग है।"

यह सुनकर पूज्य उदय ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, क्या ऐसा तभी होता है जब लोग किसी हाथी को प्रेतवाधित देखते हैं?"

क्या लोग किसी विशालकाय शरीर को देखकर कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' या फिर अन्य विशालकाय शरीर वाली चीजों को देखकर भी ऐसा ही कहते हैं?

"(1) उदयि, जब लोग किसी विशाल शरीर वाले हाथी को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' (2) जब लोग किसी विशाल शरीर वाले घोड़े को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' (3) जब लोग किसी विशाल शरीर वाले बैल को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' (4) जब लोग किसी विशाल शरीर वाले सर्प को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' (5) जब लोग किसी विशाल शरीर वाले वृक्ष [346] को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' (6) जब लोग किसी विशाल शरीर वाले मनुष्य को देखते हैं, तो वे कहते हैं: 'सचमुच एक नाग!' लेकिन, उदयि, इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मारा और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, मैं उसे नाग कहता हूँ जो शरीर, वाणी और मन से कोई बुराई नहीं करता।

"हे भंते, यह कितना आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: 'परन्तु, हे उदयी, इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/भगवान), मार और ब्रह्मा हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, इसके देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य हैं, मैं उसे नाग कहता हूँ जो शरीर, वाणी और मन से कोई बुराई नहीं करता।' हे भंते, मैं भगवान (बुद्ध) के इस उत्तम कथन से प्रसन्न हूँ, इन श्लोकों के साथ: [1318]

"पूर्णतः प्रबुद्ध, आत्म-संयमित और आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) मनुष्य ,

ब्रह्म के मार्ग पर चलते हुए,

मन की शांति में आनंदित होता है।"

मैंने अरहंत से सुना है

कि देव (देवदूत/भगवान) भी उन्हें प्रणाम करते हैं,

उसी को जिसकी मनुष्य पूजा करते हैं,

जो हर चीज से परे है।

"वह सभी बंधनों को पार कर गया है

और जंगल से निकलकर खुले मैदान में आ गया है; [1319]

इंद्रिय सुखों के त्याग में आनंदित होकर,

वह अयस्क से मुक्त शुद्ध सोने के समान है।

"वह नाग है जो सभी को पीछे छोड़ देता है,

जैसे हिमालय अन्य पर्वतों के बीच।

नाग कहलाने वाली सभी चीजों में,

वह अद्वितीय है, जिसका सही अर्थ यही है: [1320]

मैं तुम्हारे लिए नाग की प्रशंसा करूंगा:

वास्तव में, वह कोई बुराई नहीं करता।

नम्रता और अहिंसा

नाग के दो चरण हैं।

"तपस्या और ब्रह्मचर्य

नाग के अन्य दो पैर हैं। [1321]

आस्था महान नाग की सूंड है,

और उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) उसके हाथीदांत हैं।"

"सती (ध्यान) उनकी गर्दन है, उनका सिर (दिव्य ज्ञान),

अन्वेषण और घटनाओं पर चिंतन (धम्म) है। [1322]

धम्म (मार्ग) उनके पेट की संतुलित गर्मी है,

और एकांत उनकी पूंछ है। [1323]

"यह ध्यान करने वाला, सांत्वना में आनंदित होकर, [1324]

भीतरी तौर पर अच्छी तरह से आत्म-मग्न (समाधि/समाहित) है।

चलते समय नाग आत्म-मग्न (समाधि/समाहित) होता है;

खड़े होने पर नाग आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) होता है।"

लेटते समय नाग आत्म-मग्न (समाहित/समाधि) रहता है;

बैठते समय भी नाग आत्म-मग्न (समाधि/समाधि) रहता है।

हर जगह नाग संयमित रहता है:

यही नाग की संपदा है।

वह निर्दोष भोजन खाता है,

लेकिन निंदनीय भोजन नहीं खाता।

जब उसे भोजन और वस्त्र प्राप्त होते हैं, तो

वह उन्हें जमा करने से बचता है।

"सभी बंधनों और बेड़ियों को काटकर,

चाहे वे स्थूल हों या सूक्ष्म,

वह जिस भी दिशा में जाता है,

चिंतामुक्त होकर जाता है।"

"कमल का फूल

पानी में जन्म लेता है और बढ़ता है,

फिर भी पानी से मैला नहीं होता

बल्कि सुगंधित और मनमोहक बना रहता है।"

"इसी प्रकार बुद्ध, जो संसार में अच्छे कुल में जन्मे हैं,

संसार में निवास करते हैं, [1325]

फिर भी

कमल की तरह पानी से अछूते रहते हैं।"

"तेज जलती हुई आग

ईंधन न मिलने पर शांत हो जाती है,

और जब सारे कोयले बुझ जाते हैं,

तो उसे बुझा हुआ कहा जाता है। [1326]

"यह उपमा, जो अर्थ को व्यक्त करती है,

बुद्धिमानों द्वारा सिखाई गई थी।

महान नाग उस नाग को जानेंगे

जिसे नाग ने सिखाया था। [1327]

"काम (राग) से रहित, घृणा (दोष/द्वेष) से रहित,

मोह (मोह) से रहित, दोषरहित,

नाग अपने शरीर का त्याग करके,

दोषरहित होकर पूर्णतः तृप्त हो जाता है

और अंतिम निर्वाण प्राप्त करता है;" [1328]

---

44 मिगासाला

फिर सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र लिया और अपनी महिला अनुयायी मिगासला के घर गए, जहाँ वे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब महिला अनुयायी मिगासला पूज्य आनंद के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और बोलीं:

"भंते आनंद, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा को कैसे समझा जाए, जहाँ ब्रह्मचारी और अविवाहित दोनों का भविष्य में एक ही गंतव्य है? [348] मेरे पिता पुराण ब्रह्मचारी थे, एकांत में रहते थे और सामान्य व्यक्ति की तरह यौन संबंध से परहेज करते थे। जब उनका निधन हुआ, तो भगवान (बुद्ध) ने घोषणा की: 'उन्होंने एक बार जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) की अवस्था प्राप्त की और तुषिता समूह [देवताओं के समूह] में पुनर्जन्म लिया है।' मेरे चाचा 1330 इसिदत्त ब्रह्मचारी नहीं थे, बल्कि उन्होंने सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत किया। जब उनका निधन हुआ, तो भगवान (बुद्ध) ने भी घोषणा की: 'उन्होंने एक बार जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) की अवस्था प्राप्त की और तुषिता समूह [देवताओं के समूह] में पुनर्जन्म लिया है।' भंते आनंद, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा को कैसे समझा जाए, जिसमें ब्रह्मचारी और अविवाहित दोनों का भविष्य में एक ही गंतव्य है?

"बहन, भगवान (बुद्ध) ने ठीक इसी प्रकार इसकी घोषणा की थी।" 1331

फिर, जब पूज्य आनंद ने मिगासला के घर पर भिक्षा ग्रहण कर लिया, तो वे अपने आसन से उठे और चले गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, सुबह मैंने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और गृहस्थ अनुयायी मिगासला के घर गया... [349] [ऊपर जैसा ही]... जब उसने मुझसे यह पूछा, तो मैंने उत्तर दिया: 'बहन, ठीक इसी तरह भगवान (बुद्ध) ने यह बात कही थी।'"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “अत्यंत, वह स्त्री-दीक्षित अनुयायी मिगासला कौन है, जो एक नासमझ, अयोग्य स्त्री है, जिसकी बुद्धि स्त्री जैसी है? 1332 और वे कौन हैं जो दूसरों को श्रेष्ठ और हीन मानते हैं? 1333

"आनंद, संसार में छह प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से छह प्रकार हैं?"

(1) "हे आनंद, यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो सौम्य है, एक सुखद साथी है, जिसके साथ उसके साथी भिक्षु प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। परन्तु उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है, [उनमें] विद्वत्ता प्राप्त नहीं की है, और [उनमें] दृष्टि से [उनका] अंतर्मन नहीं किया है, और वह क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं करता है। 1334 शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, न कि ख्याति की ओर; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, न कि ख्याति की ओर।"

(2) "तो, हे आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो सौम्य है, एक सुखद साथी है, जिसके साथ उसके साथी भिक्षु प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। उसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, और [उनमें] दृष्टि से [उनका] अंतर्मन किया है, और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर नहीं, बल्कि भेद की ओर अग्रसर होता है; वह भेद की ओर नहीं, बल्कि भेद की ओर अग्रसर होता है।"

"आनंद, जो लोग पक्षपाती हैं, वे उन पर ऐसा निर्णय सुनाएंगे: 'इसमें और दूसरे में समान गुण हैं। एक हीन और दूसरा श्रेष्ठ क्यों होना चाहिए?' उनका यह निर्णय 1335 वास्तव में उनके लिए लंबे समय तक हानि और पीड़ा का कारण बनेगा।"

"उनमें से, आनंद, जो सौम्य, सुखद साथी, जिनके साथ उनके साथी भिक्षु प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं, जिन्होंने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, और [उनमें] अंतर्दृष्टि प्राप्त की है, और जिन्होंने अस्थायी मुक्ति प्राप्त की है, [350] दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ और उपयुक्त हैं। इसका क्या कारण है? क्योंकि धम्म-धारा उन्हें अपने साथ ले जाती है। 1336 परन्तु तथागत (बुद्ध) के सिवा कौन इस अंतर को जान सकता है?"

इसलिए, आनंद, लोगों के बारे में निर्णय मत लो। लोगों पर फैसला मत सुनाओ। जो लोग लोगों पर फैसला सुनाते हैं, वे स्वयं को ही हानि पहुंचाते हैं। केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई और, लोगों पर फैसला सुना सकता है।

(3) "तो, आनंद, एक ही व्यक्ति में क्रोध और अहंकार पाए जाते हैं, और समय-समय पर उसमें लोभ की अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। उसने [शिक्षाओं को] सुना नहीं है, [उनमें] विद्वता प्राप्त नहीं की है, और [उनमें] दृष्टि से [उनका] अंतर्मन नहीं किया है, और वह क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं करता है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, न कि ख्याति की ओर; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, न कि ख्याति की ओर।"

(4) "तो, आनंद, एक ही व्यक्ति में क्रोध और अहंकार पाए जाते हैं, और समय-समय पर उसमें लोभ की अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। परन्तु उसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, और [उनमें] दृष्टि से [अंतर्दृष्टि से] उनका विश्लेषण किया है, और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। मृत्यु के बाद, शरीर के टूटने के साथ, वह भेद की ओर नहीं, बल्कि भेद की ओर अग्रसर होता है; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि भेद की ओर।"

"आनंद, जो निर्णय लेने वाले हैं वे उन पर ऐसा निर्णय सुनाएंगे। केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई, लोगों पर निर्णय सुना सकता है।" 1338

(5) "फिर, आनंद, एक ही व्यक्ति में क्रोध और अहंकार पाए जाते हैं, और वह समय-समय पर वाद-विवाद में संलग्न रहता है। 1339 और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है, [उनमें] विद्वत्ता नहीं प्राप्त की है, और [उनमें] दृष्टि से [उनका] अंतर्मन नहीं किया है, और वह क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं करता है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, न कि ख्याति की ओर; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, न कि ख्याति की ओर।"

(6) "फिर, आनंद, एक ही व्यक्ति में क्रोध और अहंकार पाए जाते हैं, और वह समय-समय पर शब्दों के आदान-प्रदान में संलग्न होता है। लेकिन उसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, और दृष्टि से [उनमें] अंतर्विदारक हुआ है, और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, [351] वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर।"

"आनंद, जो लोग पक्षपाती होते हैं, वे उन पर ऐसा निर्णय सुनाएंगे: 'इसमें और दूसरे में समान गुण हैं। एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ क्यों माना जाए?' उनका यह निर्णय वास्तव में उनके लिए लंबे समय तक हानि और पीड़ा का कारण बनेगा।"

"उन दोनों में, आनंद, वह व्यक्ति जिसमें क्रोध और अहंकार पाया जाता है, और जो समय-समय पर वाद-विवाद में संलग्न होता है, परन्तु जिसने शिक्षाओं को सुना है, उनमें पारंगत हुआ है, दृष्टि से उनका गहन अध्ययन किया है, और जिसने क्षणिक मुक्ति प्राप्त की है, वह दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ और उपयुक्त है। इसका कारण क्या है? क्योंकि धम्म-धारा उसे अपने साथ बहा ले जाती है। परन्तु तथागत (बुद्ध) के सिवा इस अंतर को कौन जान सकता है?"

इसलिए, आनंद, लोगों के बारे में निर्णय मत लो। लोगों पर फैसला मत सुनाओ। जो लोग लोगों पर फैसला सुनाते हैं, वे स्वयं को ही हानि पहुंचाते हैं। केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई और, लोगों पर फैसला सुना सकता है।

"अत्यंत, वह महिला गृहस्थ अनुयायी मिगासाला कौन है, जो एक स्त्री की बुद्धि वाली नासमझ, अयोग्य स्त्री है? और वे कौन हैं जो दूसरों को श्रेष्ठ और हीन मानते हैं?"

"ये दुनिया में पाए जाने वाले छह प्रकार के व्यक्ति हैं।"

"आनंद, यदि इसिदत्त में पुराण के समान सद्गुण होते, तो पुराण अपने गंतव्य को जान भी नहीं पाता। और यदि पुराण में इसिदत्त के समान ज्ञान होता, तो इसिदत्त अपने गंतव्य को जान भी नहीं पाता। 1340 इस प्रकार, आनंद, ये दोनों व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपूर्ण थे।"

---

45 ऋण (इना, रीना के बिना)

(1) "भिक्षुओं, क्या संसार में अभाव, इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिए कष्टदायक नहीं है?"

"हां, भंते।"

(2) "यदि कोई गरीब, [352] निर्धन, निर्धन व्यक्ति ऋण में डूब जाता है, तो क्या उसका ऋण भी संसार में उस व्यक्ति के लिए कष्ट भोगना नहीं है जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है?"

"हां, भंते।"

(3) "यदि कोई गरीब, निर्धन, निर्धन व्यक्ति जो ऋण में डूब गया है, ब्याज चुकाने का वादा करता है, तो क्या वह ब्याज भी संसार में उस व्यक्ति के लिए कष्ट नहीं है जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है?"

"हां, भंते।"

(4) "यदि कोई गरीब, निर्धन, निर्धन व्यक्ति जिसने ब्याज चुकाने का वादा किया है, नियत समय पर ब्याज नहीं चुका पाता, तो वे उसे फटकारते हैं। क्या वह भी उस व्यक्ति के लिए फटकार का पात्र नहीं है जो सांसारिक सुखों का आनंद लेता है?"

"हां, भंते।"

(5) "यदि कोई गरीब, निर्धन, निर्धन व्यक्ति जिसे फटकार लगाई जाती है, भुगतान नहीं करता, तो वे उस पर मुकदमा चलाते हैं। क्या सांसारिक सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिए मुकदमा भी संसार में कष्ट भोगना नहीं है?"

"हां, भंते।"

(6) "यदि कोई गरीब, निर्धन, निर्धन व्यक्ति जिस पर मुकदमा चलाया जाता है, भुगतान नहीं करता है, तो उसे कारावास में डाल दिया जाता है। क्या कारावास भी सांसारिक कष्टों का आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिए एक प्रकार का कष्ट नहीं है?"

"हां, भंते।"

इसलिए, भिक्षुओं, जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, उसके लिए संसार में दरिद्रता कष्ट है; ऋण लेना संसार में कष्ट है; ब्याज चुकाना संसार में कष्ट है; निंदा सहना संसार में कष्ट है; मुकदमा झेलना संसार में कष्ट है; और कारावास संसार में कष्ट है।

(1) "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब किसी को लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के अभ्यास में विश्वास नहीं होता, जब किसी को लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के अभ्यास में नैतिक लज्जा नहीं होती, जब किसी को लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के अभ्यास में नैतिक भय नहीं होता, जब किसी को लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के अभ्यास में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं होती, जब किसी को लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के अभ्यास में पन्ना (दिव्य ज्ञान) नहीं होता, तो वह भगवान के अनुशासन में गरीब, दरिद्र, निर्धन व्यक्ति कहलाता है।"

(2) "विश्वास न होने, नैतिक लज्जा का बोध न होने, नैतिक भय न होने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) न होने, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने में पन्ना (दिव्य ज्ञान) न होने के कारण, वह निर्धन, दरिद्र, निर्धन व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होता है। मैं कहता हूँ, यही उसका ऋण में डूबना है।"

(3) "अपने शारीरिक दुराचार को छिपाने के लिए, वह एक बुरी इच्छा पालता है। वह चाहता है: 'कोई मुझे न जाने'; वह इरादा रखता है [इस उद्देश्य से]: 'कोई मुझे न जाने'; [353] वह कथन करता है [इस उद्देश्य से]: 'कोई मुझे न जाने'; वह शारीरिक प्रयास करता है [इस उद्देश्य से]: 'कोई मुझे न जाने'।"

"अपने शाब्दिक दुराचार को छिपाने के लिए... अपने मानसिक दुराचार को छिपाने के लिए, वह एक बुरी इच्छा पालता है। वह चाहता है: 'कोई मुझे न जाने'; उसका इरादा होता है: 'कोई मुझे न जाने'; वह ऐसे कथन बोलता है: 'कोई मुझे न जाने'; वह शारीरिक प्रयास करता है: 'कोई मुझे न जाने'। मैं कहता हूँ, यही वह कीमत है जो उसे चुकानी होगी।"

(4) "अच्छे व्यवहार वाले साथी भिक्षु उनके बारे में इस प्रकार कहते हैं: 'यह आदरणीय व्यक्ति इस प्रकार कार्य करता है, इस प्रकार व्यवहार करता है।' मैं कहता हूँ, यही उसकी निंदा है।"

(5) "जब वह जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में, या किसी सुनसान घर में जाता है, तो पश्चाताप के साथ बुरे (अकुसला) विचार उसे सताते हैं। मैं कहता हूँ, यही उसका अभियोग है।"

(6) "फिर, मृत्यु के बाद शरीर के क्षुद्र होने पर, वह निर्धन, दरिद्र, निर्धन व्यक्ति जिसने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया हो, नरक के कारागार या पशुलोक के कारागार में बंध जाता है। हे भिक्षुओं, मुझे नरक के कारागार या पशुलोक के कारागार के समान कोई अन्य कारागार इतना भयानक और कठोर तथा बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में इतनी बड़ी बाधा नहीं दिखाई देती।"

दुनिया में गरीबी को दुख कहा जाता है;

कर्ज में डूबना भी दुख का कारण है।

कर्ज में डूबा गरीब व्यक्ति सुख-सुविधाओं

में डूबे रहने के बावजूद परेशान रहता है।

फिर वे उस पर मुकदमा चलाते हैं

और उसे कारावास भुगतना पड़ता है। लाभ और इंद्रिय सुखों की लालसा रखने वाले व्यक्ति के लिए

यह कारावास वास्तव में कष्टदायी होता है ।

ठीक वैसे ही, नोबल के अनुशासन में,

जिसमें विश्वास की कमी होती है, [354]

जो निर्लज्ज और उद्दंड होता है, वह

बुरे कर्मों का ढेर लगाता है।

शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होने के बाद ,

वह यह इच्छा करता है:

"काश मेरे बारे में किसी को पता न चले।"

वह अपने शरीर को घुमाता है,

(अपनी वाणी या मन से) घुमाता है; वह किसी न किसी रूप में बार-बार

अपने बुरे कर्मों का ढेर लगाता है ।

यह नासमझ दुष्ट,

अपने कुकर्मों को जानते हुए भी, एक गरीब व्यक्ति है

जो कर्ज में डूब जाता है, और

मौज-मस्ती करते हुए भी परेशान रहता है।

फिर उसके विचार ही उसे सताने लगते हैं;

पश्चाताप से उत्पन्न पीड़ादायक मानसिक अवस्थाएँ

(उसका पीछा करती रहती हैं,

चाहे वह गाँव में हो या जंगल में)।

यह मूर्ख दुष्ट,

अपने कुकर्मों को जानते हुए,

किसी [पशु] लोक में जाता है

या नरक में भी जा सकता है।

यह वास्तव में बंधन की पीड़ा है 1341

जिससे बुद्धिमान व्यक्ति मुक्त हो जाता है,

धार्मिक रूप से अर्जित धन से [दान] देकर,

अपने मन को विश्वास में स्थिर करके।

आस्थावान गृहस्थ ने

दोनों ही स्थितियों में सौभाग्यशाली दांव खेला है:

इस जीवन में अपने कल्याण

और भविष्य के जन्मों में सुख के लिए।

इस प्रकार गृहस्थों के लिए

यह पुण्य उदारता के माध्यम से बढ़ता है। 1342

ठीक इसी प्रकार, संत के अनुशासन में,

जिसका विश्वास दृढ़ हो,

जो लज्जा से युक्त हो, जो अन्याय से भयभीत हो,

बुद्धिमान हो और सदाचारी आचरण से संयमित हो, उसे संत के अनुशासन में

सुखी जीवन जीने वाला कहा जाता है ।

आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के बाद,

व्यक्ति उदासीनता (भीतर में लीन होना/उपेक्खा) का संकल्प लेता है।

पाँच बाधाओं का त्याग करके, जो

सदा ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को प्रेरित करती रहती हैं,

वह ध्यान (सतीत्व) की अवस्था में प्रवेश करता है,

एकाग्र, सचेत और सजग होता है।

चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने के बाद,

पूर्ण अनासक्ति के माध्यम से

मन

सभी बंधनों के नाश होने से सही मायने में मुक्त हो जाता है।

अस्तित्व के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) के टूटने के साथ,

स्थिर और सही मायने में मुक्त व्यक्ति को

यह ज्ञान प्राप्त होता है:

"मेरी मुक्ति अविचल है।"

यही सर्वोच्च ज्ञान है;

यही अतुलनीय सुख है।

दु:ख रहित, निर्मल और सुरक्षित,

यही ऋण से मुक्ति की सर्वोच्च अवस्था है। [355]

---

46 महाकुंडा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य महाकुंडा सहजाति में चैतियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महाकुंड ने यह कहा:

(1) "यहाँ, हे मित्रों, धम्म योगी भिक्षु 1343 उन भिक्षुओं की निंदा करते हैं जो ध्यान करते हैं, यह कहते हुए: 'वे ध्यान और चिंतन करते हैं, [यह दावा करते हुए]: "हम ध्यान करने वाले हैं, हम ध्यान करने वाले हैं!" 1344 वे ध्यान क्यों करते हैं? वे किस प्रकार ध्यान करते हैं? वे कैसे ध्यान करते हैं?' इस स्थिति में, धम्म योगी भिक्षु प्रसन्न नहीं होते, और ध्यान करने वाले भिक्षु भी प्रसन्न नहीं होते, और वे अनेक लोगों

के कल्याण के लिए, अनेक लोगों की खुशी के लिए, अनेक लोगों के भले, कल्याण और खुशी के लिए, देवताओं (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के लिए अभ्यास नहीं कर रहे हैं।

(2) परन्तु ध्यानमग्न भिक्षु धम्म योगी भिक्षुओं की निंदा करते हुए कहते हैं: 'वे बेचैन, अहंकारी, अभिमानी, बातूनी, अपनी बातों में बेतरतीब, भ्रमित, पूर्ण बोधहीन (संपजन्न), असामहित (असंध्या) वाले, भटकते मन वाले, शिथिल इंद्रियों वाले हैं, [दावा करते हैं]: "हम धम्म योगी हैं, हम धम्म योगी हैं!" वे धम्म योगी क्यों हैं? वे किस प्रकार धम्म योगी हैं? वे कैसे धम्म योगी हैं?' इस स्थिति में, ध्यानमग्न भिक्षु प्रसन्न नहीं होते, न ही धम्म योगी प्रसन्न होते हैं, और वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की प्रसन्नता, अनेक लोगों के भले, कल्याण और सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए अभ्यास नहीं कर रहे हैं।

(3) "मित्रों, जो भिक्षु धम्म योगी हैं, वे केवल धम्म योगी भिक्षुओं की ही प्रशंसा करते हैं, ध्यान करने वालों की नहीं। इस स्थिति में, जो भिक्षु धम्म विशेषज्ञ हैं [356], वे प्रसन्न नहीं होते, और जो ध्यान करने वाले हैं, वे भी प्रसन्न नहीं होते, और वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और खुशी के लिए अभ्यास नहीं कर रहे हैं।"

(4) "परन्तु जो भिक्षु ध्यान करते हैं, वे केवल उन्हीं भिक्षुओं की प्रशंसा करते हैं जो ध्यान करते हैं, न कि उन भिक्षुओं की जो धम्म (मार्ग) के विशेषज्ञ हैं। इस स्थिति में, जो भिक्षु ध्यान करते हैं, वे प्रसन्न नहीं होते, और जो धम्म योगी हैं, वे भी प्रसन्न नहीं होते, और वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए अभ्यास नहीं कर रहे हैं।"

(5) "अत:, मित्रों, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हममें से जो धम्म योगी हैं, वे उन भिक्षुओं की प्रशंसा करेंगे जो ध्यान करते हैं।' आपको स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। इसका कारण क्या है? क्योंकि, मित्रों, ये व्यक्ति संसार में अद्‌भुत और दुर्लभ हैं, जिन्होंने शरीर धारण करके अमर तत्व को स्पर्श किया है। 1345

(6) "अतः मित्रों, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हममें से जो ध्यान करते हैं, वे उन भिक्षुओं की प्रशंसा करेंगे जो धम्म योगी हैं।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। इसका कारण क्या है? क्योंकि मित्रों, वे व्यक्ति संसार में अद्‌भुत और दुर्लभ हैं जो किसी विषय को भेदकर (दिव्य ज्ञान से) गहन और सारगर्भित देख पाते हैं।" 1346

---

47 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान (1) (संदित्थिका1)

तब तपस्वी मोलियाशिवका भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। 1347 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, ऐसा कहा जाता है: 'प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म; प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म।' भंते, धम्म किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, लागू करने योग्य, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है?" 1348 [357]

"तो फिर, शिवक, मैं बारी-बारी से तुमसे इस विषय पर प्रश्न पूछूंगा। तुम अपनी इच्छानुसार उत्तर देना। शिवक, तुम्हारा क्या विचार है? (1) जब तुम्हारे भीतर लोभ होता है, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर लोभ है,' और जब तुम्हारे भीतर लोभ नहीं होता है, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर लोभ नहीं है'?"

"हां, भंते।"

"हे शिवक, जब तुम्हारे भीतर लोभ होता है, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर लोभ है' और जब तुम्हारे भीतर लोभ नहीं होता, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर लोभ नहीं है,' इस प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, लागू करने योग्य और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है।"

"शिवका, तुम क्या सोचते हो? (2) जब तुम्हारे भीतर घृणा हो... (3) ... तुम्हारे भीतर मोह हो... (4) ... तुम्हारे भीतर लोभ से जुड़ी अवस्था हो... (5) ... तुम्हारे भीतर घृणा से जुड़ी अवस्था हो... (6) ... तुम्हारे भीतर मोह से जुड़ी अवस्था हो, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर मोह से जुड़ी अवस्था है,' और जब तुम्हारे भीतर मोह से जुड़ी कोई अवस्था न हो, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर मोह से जुड़ी कोई अवस्था नहीं है'?"

"हां, भंते।"

"हे शिवक, जब तुम्हारे भीतर मोह से संबंधित कोई अवस्था होती है, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर मोह से संबंधित एक अवस्था है' और जब तुम्हारे भीतर मोह से संबंधित कोई अवस्था नहीं होती है, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर मोह से संबंधित कोई अवस्था नहीं है'। इस प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है।"

"उत्कृष्ट, भंते! ... [6:38 पर] ... भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

48 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान (2) (संदित्थिका2)

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला:

"गुरु गौतम, ऐसा कहा जाता है: 'प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म, प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान धम्म।' किस अर्थ में? गुरु गौतम, [358] क्या धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, लागू करने योग्य, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है?"

"तो फिर, हे ब्राह्मण, मैं बारी-बारी से तुमसे इस विषय पर प्रश्न पूछूंगा। तुम अपनी इच्छानुसार उत्तर दो। हे ब्राह्मण, तुम्हारा क्या विचार है? (1) जब तुम्हारे भीतर कामवासना (राग) होती है, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर कामवासना (राग) है,' और जब तुम्हारे भीतर कामवासना (राग) नहीं होती है, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर कामवासना (राग) नहीं है'?"

"जी श्रीमान।"

"हे ब्राह्मण, जब तुम्हारे भीतर कामवासना (राग) होती है, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर कामवासना (राग) है' और जब तुम्हारे भीतर कामवासना (राग) नहीं होती है, तो तुम जानते हो: 'मेरे भीतर कामवासना (राग) नहीं है', इस प्रकार धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, लागू करने योग्य और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है।"

"हे ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? (2) जब तुम्हारे भीतर घृणा हो... (3) ... तुम्हारे भीतर मोह हो... (4) ... तुम्हारे भीतर शारीरिक दोष हो... (5) ... तुम्हारे भीतर मौखिक दोष हो... (6) ... तुम्हारे भीतर मानसिक दोष हो, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर मानसिक दोष है,' और जब तुम्हारे भीतर कोई मानसिक दोष न हो, तो क्या तुम जानते हो: 'मेरे भीतर कोई मानसिक दोष नहीं है'?"

"जी श्रीमान।"

"हे ब्राह्मण, जब तुम्हारे भीतर कोई मानसिक दोष होता है, तो तुम जान जाते हो: 'मेरे भीतर एक मानसिक दोष है,' और जब तुम्हारे भीतर कोई मानसिक दोष नहीं होता, तो तुम जान जाते हो: 'मेरे भीतर कोई मानसिक दोष नहीं है,' इस प्रकार धम्म (मार्ग) प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, देखने के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानी लोगों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाने वाला है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! . . . [जैसा कि 6:38 में है] . . . गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन के लिए शरण ली है।"

---

49 खेमा

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य खेमा और पूज्य सुमना भी सावत्थी [359] में अंधों के वन में निवास कर रहे थे। तब वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य खेमा ने तब भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, जब कोई भिक्षु अरहंत होता है, जिसके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया हो, जो करना आवश्यक था वह कर चुका हो, बोझ उतार चुका हो, अपने लक्ष्य तक पहुँच चुका हो, जन्म के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को पूरी तरह नष्ट कर चुका हो, और अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो चुका हो, तब उसके मन में यह विचार नहीं आता: (1) 'मुझसे श्रेष्ठ कोई है,' या (2) 'मेरे बराबर कोई है,' या (3) 'मुझसे हीन कोई है।'"

यह बात पूज्य खेमा ने कही। गुरुजी सहमत हो गए। तब पूज्य खेमा ने यह सोचकर कि 'गुरुजी मुझसे सहमत हैं,' अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर से उनकी ओर मुड़कर बाईं ओर परिक्रमा की।

फिर, पूज्य खेमा के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य सुमना ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, जब कोई भिक्षु अरहंत होता है, जिसके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया हो, जो करना आवश्यक था वह कर चुका हो, बोझ उतार चुका हो, अपने लक्ष्य तक पहुँच चुका हो, जन्म के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को पूरी तरह से नष्ट कर चुका हो, और अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो चुका हो, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता: (4) 'मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है,' या (5) 'मेरे समतुल्य कोई नहीं है' या (6) 'मुझसे हीन कोई नहीं है।'"

यह बात पूज्य सुमना ने कही। गुरुजी सहमत हो गए। तब पूज्य सुमना ने यह सोचकर कि 'गुरुजी मुझसे सहमत हैं' अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए। 1351

फिर, दोनों भिक्षुओं के चले जाने के तुरंत बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, कुल के लोग अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करते हैं। वे अर्थ तो बताते हैं, लेकिन स्वयं को उसमें शामिल नहीं करते। 1352 परन्तु यहाँ कुछ अज्ञानी लोग हैं जो मानो मजाक में अंतिम ज्ञान की घोषणा कर रहे हैं। उन्हें बाद में कष्ट भोगना पड़ेगा।"

वे स्वयं को श्रेष्ठ या हीन नहीं मानते, न ही वे स्वयं को समान मानते हैं। 1353 पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है; वे बंधनों से मुक्त होकर आगे बढ़ते हैं। [360]

---

50 (8) इन्द्रियसंयम 1354 (इन्द्रियसंवर)

भिक्षुओं, (1) जब इंद्रियों पर संयम न हो, तो इंद्रियों पर संयम की कमी वाले व्यक्ति के लिए, (2) सद्गुणों का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब सद्गुणों का अभाव हो, तो सद्गुणों की कमी वाले व्यक्ति के लिए, (3) सही एकाग्रता का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) न हो, तो सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की कमी वाले व्यक्ति के लिए, (4) यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब यथार्थ-भूत-ज्ञान और दर्शन की कमी वाले व्यक्ति के लिए, (5) निब्बिदा और वैराग्य का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब निब्बिदा और वैराग्य का अभाव हो, तो विरग्य और वैराग्य (विराग) की कमी के कारण, (6) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि (विमुक्ति-नाना-दस्सना संस्कृत विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) अपने निकटवर्ती कारण से वंचित है।

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्तियाँ कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; न ही उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी पूरी तरह से विकसित होती हैं। ठीक इसी प्रकार, जब इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं होता, तो इंद्रियों पर नियंत्रण न होने पर सद्‌गुणों का प्रत्यक्ष कारण नहीं मिलता। जब सद्‌गुण नहीं होते... तो मुक्ति का ज्ञान और दर्शन भी अपने प्रत्यक्ष कारण से वंचित हो जाते हैं।

भिक्षुओं, (1) जब इंद्रियों पर संयम हो, तो इंद्रियों पर संयम रखने वाले व्यक्ति के लिए, (2) सद्‌गुणी आचरण उसका निकटतम कारण है। जब सद्‌गुणी आचरण हो, तो सद्‌गुणी आचरण वाले व्यक्ति के लिए, (3) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) उसका निकटतम कारण है। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) हो, तो सही समाधि प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, (4) यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) उसका निकटतम कारण है। जब यथार्थ-भूत-ज्ञान और दर्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, (5) निब्बिदा और वैराग्य उनका निकटतम कारण है। जब निब्बिदा और वैराग्य हो, तो (6) विरंजना और वैराग्य, (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि, इसके निकटवर्ती कारण को धारण करती है।

मान लीजिए एक वृक्ष है जिसमें शाखाएँ और पत्तियाँ हैं। फिर उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक इसी प्रकार, जब इंद्रियों पर संयम रखा जाता है, तो जो व्यक्ति इंद्रियों पर संयम रखता है, उसे सद्‌गुणों का प्रत्यक्ष कारण प्राप्त होता है। जब सद्‌गुण होते हैं... तो मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका प्रत्यक्ष कारण प्राप्त होता है। [361 j]

---

51 आनंद

तब पूज्य आनंद, पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले:

"मित्र सारिपुत्त, एक भिक्षु (साधु) उस शिक्षा को कैसे सुन सकता है जिसे उसने पहले नहीं सुना है, उन शिक्षाओं को कैसे नहीं भूल सकता जिन्हें वह पहले ही सुन चुका है, उन शिक्षाओं को कैसे याद कर सकता है जिनसे वह पहले से परिचित है, 355 और उस बात को कैसे समझ सकता है जिसे वह नहीं समझ पाया है?"

"आदरणीय आनंद विद्वान हैं। कृपया इस मामले को स्वयं स्पष्ट करें।"

"तो सुनो, मित्र सारिपुत्त, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," पूज्य सारिपुत्त ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, यहाँ एक भिक्षु धम्म का अध्ययन करता है: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), अद्‌भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। (2) वह दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक शिक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। (3) वह दूसरों से धम्म को विस्तारपूर्वक दोहराने के लिए कहता है जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। (4) वह धम्म का विस्तारपूर्वक पाठ करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। (5) वह धम्म पर मनन करता है, उसका परीक्षण करता है और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। (6) वह वर्षा ऋतु में ऐसे निवास में प्रवेश करता है जहाँ विद्वान, विरासत के उत्तराधिकारी, धम्म के विशेषज्ञ, अनुशासन के विशेषज्ञ और रूपरेखाओं के विशेषज्ञ वरिष्ठ भिक्षु रहते हैं। समय-समय पर वह उनके पास जाता है और पूछता है: 'यह कैसे है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूज्यवर उसे वह सब कुछ प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ था, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते हैं और उसके अनेक उलझन भरे बिंदुओं को दूर करते हैं। [362] मित्र सारिपुत्त, इसी प्रकार एक भिक्षु को वह शिक्षा सुनने को मिलती है जो उसने पहले नहीं सुनी होती, वह उन शिक्षाओं को नहीं भूलता जो वह पहले सुन चुका होता है, उन शिक्षाओं को याद करता है जिनसे वह पहले से परिचित होता है, और वह समझ जाता है जो वह नहीं समझ पाया होता।

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्र, कि पूज्य आनंद ने इसे कितनी अच्छी तरह से व्यक्त किया है। और हम पूज्य आनंद को इन छह गुणों से युक्त मानते हैं: (1) पूज्य आनंद ने धम्म का ज्ञान प्राप्त किया है: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदन), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), अद्भुत वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। (2) वे दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक उपदेश देते हैं, जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है। (3) वे दूसरों से धम्म को विस्तारपूर्वक दोहराने के लिए कहते हैं, जैसा कि उन्होंने उनसे सुना और सीखा है... (4) वे धम्म का विस्तारपूर्वक पाठ करते हैं, जैसा कि उन्होंने सुना और सीखा है।"

(5) वह धम्म का चिंतन, परीक्षण और मानसिक रूप से निरीक्षण करता है जैसा उसने सुना और सीखा है। (6) वह वर्षा ऋतु में ऐसे निवास में प्रवेश करता है जहाँ उच्च कोटि के विद्वान, विरासत के उत्तराधिकारी, धम्म के विशेषज्ञ, अनुशासन के विशेषज्ञ और रूपरेखाओं के विशेषज्ञ वरिष्ठ भिक्षु रहते हैं। समय-समय पर वह उनके पास जाकर पूछता है: 'यह क्या है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूजनीय भिक्षु उसे वह प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते हैं और अनेक उलझनों के बारे में उसकी शंकाओं को दूर करते हैं।

---

52 क्षत्रिय (संस्कृत क्षत्रिय)

तब ब्राह्मण जनुसोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा: [363]

(1) "हे गौतम गुरु, क्षत्रियों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका आधार क्या है? वे किस पर केंद्रित हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?" 1356

"हे ब्राह्मण, क्षत्रियों का उद्देश्य धन है; उनकी खोज पन्ना (दिव्य ज्ञान) की है; उनका सहारा शक्ति है; वे क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए उत्सुक रहते हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य संभगवानता है।"

(2) "परन्तु, हे गौतम गुरु, ब्राह्मणों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका सहारा क्या है? वे किस ओर उन्मुख हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"हे ब्राह्मण, धन ही ब्राह्मणों का लक्ष्य है; उनकी खोज पन्ना (दिव्य ज्ञान) की है; वैदिक मंत्र उनका सहारा हैं; वे यज्ञ में लीन रहते हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य ब्रह्मलोक है।"

(3) "परन्तु, हे गौतम स्वामी, गृहस्थों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका सहारा क्या है? वे किस पर केंद्रित हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"हे ब्राह्मण, गृहस्थों का लक्ष्य धन कमाना होता है; उनकी खोज पन्ना (दिव्य ज्ञान) की होती है; उनका शिल्प ही उनका सहारा होता है; वे काम में लीन रहते हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य अपने काम को पूरा करना होता है।"

(4) "परन्तु, हे गौतम गुरु, स्त्रियों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका सहारा क्या है? वे किस ओर उन्मुख हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"स्त्रियों का लक्ष्य ब्राह्मण पुरुष होता है; उनकी खोज आभूषणों की होती है; पुत्र उनके सहारा होते हैं; वे प्रतिद्वंद्वी रहित होने के लिए दृढ़ संकल्पित होती हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना होता है।"

(5) "परन्तु, हे गौतम गुरु, चोरों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका समर्थन क्या है? वे किस पर आमादा हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"हे ब्राह्मण, लूटपाट चोरों का उद्देश्य है; उनकी खोज घने जंगलों में होती है; धूर्तता उनका सहारा है; 1357 वे अंधेरी जगहों पर घात लगाए बैठे रहते हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य अदृश्य रहना है।"

(6) "परन्तु, हे गौतम गुरु, तपस्वियों का उद्देश्य क्या है? उनकी खोज क्या है? उनका सहारा क्या है? वे किस पर केंद्रित हैं? उनका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"हे ब्राह्मण, धैर्य और नम्रता तपस्वियों का लक्ष्य है; उनकी खोज पन्ना (दिव्य ज्ञान) की होती है; सदाचारी आचरण उनका सहारा है; वे शून्यता पर केंद्रित होते हैं; और उनका अंतिम लक्ष्य निर्वाण है।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम! गुरु गौतम क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों, महिलाओं, चोरों, [364] और तपस्वियों के उद्देश्य, खोज, समर्थन, इरादे और अंतिम लक्ष्य को जानते हैं।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! . . . [जैसा कि 6:38 में है] . . . गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन के लिए शरण ली है।"

---

53 सतर्कता (अप्पमादा)

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला:

"गुरु गौतम, क्या कोई ऐसी चीज है जिसे विकसित और पोषित करने से वर्तमान जीवन से संबंधित और भविष्य के जीवन से संबंधित दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त हो सकते हैं?"

"हाँ, ऐसा होता है, ब्राह्मण।"

और यह क्या है?

"यह सतर्कता है।"

(1) "हे ब्राह्मण, जिस प्रकार चलने वाले सभी पशुओं के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं, और आकार के संदर्भ में हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित किया जाता है, उसी प्रकार सतर्कता ही वह एक चीज है, जिसे विकसित और पोषित करने पर वर्तमान जीवन से संबंधित और भविष्य के जीवन से संबंधित दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त हो सकते हैं।"

(2) "जैसे किसी शिखर वाले घर के सभी शहतीर छत के शिखर की ओर झुकते हैं, छत के शिखर की ओर ढलान बनाते हैं, छत के शिखर पर अभिसरित होते हैं, और छत के शिखर को उनमें सबसे आगे घोषित किया जाता है, वैसे ही [365] सतर्कता ही एकमात्र ऐसी चीज है जो... दोनों प्रकार के अच्छे कार्य कर सकती है...।"

(3) "जिस प्रकार एक सरकंडा काटने वाला सरकंडों का गुच्छा काटने के बाद उन्हें ऊपर से पकड़ता है, नीचे से हिलाता है, दोनों किनारों से हिलाता है और पीटता है, उसी प्रकार सतर्कता ही वह एक चीज है जो... दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त करा सकती है। ..."

(4) "जैसे आमों के गुच्छे की डंडी काटने पर उससे जुड़े सारे आम भी उसके साथ गिर जाते हैं, वैसे ही सतर्कता ही एक ऐसी चीज है जो... दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त करा सकती है..."

(5) "जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र घुमाने वाले सम्राट के अधीन होते हैं, और चक्र घुमाने वाले सम्राट को उनमें सबसे आगे घोषित किया जाता है, उसी प्रकार सतर्कता ही एकमात्र ऐसी चीज है जो... दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त कर सकती है। ..."

(6) "जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती, और चंद्रमा की चमक को उनमें सर्वोपरि माना जाता है, उसी प्रकार सतर्कता ही एकमात्र ऐसी चीज है जो... दोनों प्रकार के अच्छे कार्यों को पूरा कर सकती है..."

"हे ब्राह्मण, यही वह एक चीज है, जिसे विकसित और पोषित करने पर दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त हो सकते हैं, वर्तमान जीवन से संबंधित लाभ और भविष्य के जीवन से संबंधित लाभ।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।" [366]

---

54 धम्मिका

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य धम्मिका अपने गृह जिले के सभी सात मठों में निवास कर रहे थे। 359 वहाँ पूज्य धम्मिका ने आने वाले भिक्षुओं का अपमान किया, उन्हें गालियाँ दीं, उन्हें हानि पहुँचाई, उन पर हमला किया और उन्हें डाँटा, जिसके बाद वे भिक्षु वहाँ से चले गए। वे वहाँ बसे नहीं बल्कि मठ छोड़कर चले गए।

तब अपने क्षेत्र के गृहस्थ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: "हम भिक्षुओं के संघ को वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ एवं भोजन उपलब्ध कराते हैं, लेकिन आने वाले भिक्षु चले जाते हैं। वे यहाँ ठहरते नहीं बल्कि मठ खाली कर देते हैं। ऐसा क्यों होता है?"

तब उनके मन में यह विचार आया: "यह पूज्य धम्मिका भिक्षुओं का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है, उन्हें हानि पहुँचाता है, उन पर हमला करता है और उन्हें डांटता है, जिसके बाद वे भिक्षु मठ छोड़कर चले जाते हैं। वे वहाँ ठहरते नहीं बल्कि मठ खाली कर देते हैं। चलो, इस पूज्य धम्मिका को निष्कासित कर देते हैं।"

तब अनुयायी पूज्य धम्मिका के पास गए और उनसे कहा: "भंते, इस मठ को छोड़ दीजिए। आप यहां काफी समय तक रह चुके हैं।"

इसके बाद पूज्य धम्मिका उस मठ से दूसरे मठ में गए, जहाँ उन्होंने फिर से आने वाले भिक्षुओं का अपमान किया, उन्हें गालियाँ दीं, उन्हें हानि पहुँचाई, उन पर हमला किया और उन्हें डाँटा। और फिर वे आने वाले भिक्षु चले गए। वे वहाँ बसे नहीं [367] बल्कि मठ खाली कर दिया।

तब अनुयायियों के मन में यह विचार आया... [जैसा कि ऊपर बताया गया है]... और उन्होंने उससे कहा: "भंते, इस मठ को छोड़ दो। तुम यहाँ बहुत समय बिता चुके हो।"

फिर पूज्य धम्मिका उस मठ से एक और मठ में चले गए, जहाँ उन्होंने फिर से आने वाले भिक्षुओं का अपमान किया। . . . वे वहाँ बसे नहीं बल्कि मठ छोड़कर चले गए।

तब गृहस्थ अनुयायियों के मन में यह विचार आया: "हम भिक्षुओं के संघ की सेवा वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ एवं भोजन सामग्री से करते हैं, लेकिन आने वाले भिक्षु चले जाते हैं। वे यहाँ ठहरते नहीं बल्कि मठ खाली कर देते हैं। ऐसा क्यों होता है?"

तब अनुयायियों के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य धम्मिका आगंतुक भिक्षुओं का अपमान करते हैं... वे यहाँ ठहरते नहीं हैं, बल्कि मठ खाली कर देते हैं। चलो, पूज्य धम्मिका को उनके गृह जिले के सभी सात मठों से निष्कासित कर देते हैं।"

तब उस जिले के अनुयायी पूज्य धम्मिका के पास गए और उनसे कहा: "भंते, अपने जिले के सभी सात मठों से विदा ले लीजिए।"

तब पूज्य धम्मिका ने सोचा: "मुझे यहाँ के सभी सात मठों से गृहस्थ अनुयायियों ने निकाल दिया है। मैं कहाँ जाऊँ?"

तब उनके मन में यह विचार आया: "मुझे भगवान (बुद्ध) के पास जाना चाहिए।"

तब पूज्य धम्मिका ने अपना कुंड और वस्त्र लिया और राजगृह के लिए प्रस्थान किया। धीरे-धीरे वे राजगृह पहुँचे और फिर गिद्ध शिखर पर्वत पर गए, जहाँ उन्होंने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे पूछा: "ब्राह्मण धम्मिका, आप कहाँ से आ रहे हैं?" 1360

"भंते, मेरे गृह जिले के गृहस्थ अनुयायियों ने मुझे वहां के सभी सात मठों से निष्कासित कर दिया है।"

"बस करो, ब्राह्मण धम्मिका! अब जब तुम मेरे पास आ ही गए हो, तो उन स्थानों से निकाले जाने की चिंता क्यों करते हो? हे ब्राह्मण धम्मिका, अतीत में कुछ समुद्री व्यापारी एक जहाज में समुद्र में निकले और अपने साथ एक भूमि-दर्शन पक्षी ले गए। जब जहाज को अभी तक कोई भूमि दिखाई नहीं दी, तो उन्होंने पक्षी को छोड़ दिया। वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और बीच की सभी दिशाओं में गया। यदि उसे कहीं भी भूमि दिखाई देती, तो वह सीधे उसकी ओर उड़ जाता। लेकिन यदि उसे भूमि दिखाई नहीं देती, तो वह जहाज पर लौट आता। उसी प्रकार, जब तुम्हें उन स्थानों से निकाल दिया गया है, तो तुम मेरे पास आए हो।" [369]

हे ब्राह्मण धम्मिका, अतीत में राजा कोरव्य के पास 'सुगंधित' नाम का एक शाही बरगद का वृक्ष था, जिसकी पाँच शाखाएँ थीं। वह शीतल छाया प्रदान करता था और आनंद देता था। उसकी छतरी बारह योजन तक फैली हुई थी; उसकी जड़ें पाँच योजन तक। उसके फल खाना पकाने के बर्तन जितने बड़े और शुद्ध शहद जितने मीठे थे। राजा और उसकी हरम वृक्ष के एक भाग का उपयोग करते थे, सेना दूसरे भाग का, नगरवासी और गाँववासी तीसरे भाग का, तपस्वी और ब्राह्मण चौथे भाग का, और पशु और पक्षी चौथे भाग का उपयोग करते थे। वृक्ष के फलों की कोई रखवाली नहीं करता था, फिर भी कोई दूसरे के फल नहीं चुराता था।

"फिर, ब्राह्मण धम्मिका, एक व्यक्ति ने वृक्ष के फल अपनी इच्छानुसार खाए, एक शाखा तोड़ी और चला गया। वृक्ष में निवास करने वाले देवता (देवदूत) को यह विचार आया: 'यह व्यक्ति कितना दुष्ट है, यह देखकर आश्चर्य और आश्चर्य होता है! इसने वृक्ष के फल अपनी इच्छानुसार खाए, एक शाखा तोड़ी और चला गया! मैं यह सुनिश्चित करूँ कि भविष्य में राज बरगद का वृक्ष फल न दे।' तब भविष्य में राज बरगद के वृक्ष ने फल नहीं दिए। इसके बाद [370] राजा कोरव्य ने देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के शासक सक्का (इंद्र) के पास जाकर उनसे कहा: 'सुनिए, आदरणीय महोदय, आपको यह जानना चाहिए कि राज बरगद का वृक्ष फल नहीं देता है।'"

"तब देवों (देवदूतों/देवताओं) के शासक सक्का (इंद्र) ने ऐसी मानसिक शक्ति का प्रदर्शन किया कि एक भयंकर तूफान आया और उसने शाही बरगद के पेड़ को मरोड़ दिया और जड़ से उखाड़ दिया।"

तब, वृक्ष में निवास करने वाले देवता ब्राह्मण धम्मिका एक तरफ उदास और दुखी होकर, आँसू भरी आँखों से रोते हुए खड़े थे। इंद्र उनके पास पहुँचे और बोले, 'हे देवता, आप एक तरफ उदास और दुखी होकर, आँसू भरी आँखों से क्यों रो रहे हैं?' - 'हे महोदय, क्योंकि भयंकर वर्षा हुई और उसने मेरे निवास को तहस-नहस कर दिया।' - 'परन्तु, हे देवता, जब भयंकर वर्षा हुई और उसने आपके निवास को तहस-नहस कर दिया, तब क्या आप वृक्ष के कर्तव्य का पालन कर रहे थे?' - 'परन्तु, हे महोदय, वृक्ष अपने कर्तव्य का पालन कैसे करता है?' — 'हे देवता, जिन्हें जड़ों की आवश्यकता होती है, वे इसकी जड़ें लेते हैं; जिन्हें छाल की आवश्यकता होती है, वे इसकी छाल लेते हैं; जिन्हें पत्तियों की आवश्यकता होती है, वे इसकी पत्तियां लेते हैं; जिन्हें फूलों की आवश्यकता होती है, वे इसके फूल लेते हैं; और जिन्हें फलों की आवश्यकता होती है, वे इसके फल लेते हैं। फिर भी, इससे देवता अप्रसन्न या असंतुष्ट नहीं होते। इसी प्रकार एक वृक्ष अपने कर्तव्य का पालन करता है।' — 'हे महोदय, जब भयंकर बारिश आई और मेरे घर को उखाड़ फेंका, तब मैं वृक्ष के कर्तव्य का पालन नहीं कर रहा था।' — 'हे देवता, यदि आप वृक्ष के कर्तव्य का पालन करेंगे, तो आपका घर अपनी पूर्वस्थिति में लौट आएगा।' — 'हे महोदय, मैं वृक्ष के कर्तव्य का पालन करूंगा। मेरे घर को पहले जैसा होने दीजिए।'

"फिर, ब्राह्मण धम्मिका, देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने ऐसी अलौकिक शक्ति (जादू/इद्धि) का प्रदर्शन किया कि भयंकर वर्षा हुई और राजसी बरगद का वृक्ष सीधा खड़ा हो गया और उसकी जड़ें छाल से ढक गईं। ठीक वैसे ही, ब्राह्मण धम्मिका, क्या आप उस समय एक तपस्वी के कर्तव्य का पालन कर रहे थे जब आपके गृह जिले के अनुयायियों ने आपको सभी सात मठों से निष्कासित कर दिया था?"

"पर हे भंते, एक तपस्वी अपने कर्तव्य का पालन कैसे करता है?"

"हे ब्राह्मण धम्मिका; एक तपस्वी अपमान करने वाले का अपमान नहीं करता, निंदा करने वाले को फटकारता नहीं है, और तर्क करने वाले से बहस नहीं करता। यही तपस्वी के कर्तव्य का पालन है।"

"भंते, जब मेरे अनुयायियों ने मुझे सातों मठों से निकाल दिया, तब मैं एक तपस्वी के कर्तव्य का पालन नहीं कर रहा था।"

(1) "पूर्वकाल में, ब्राह्मण धम्मिका में, सुनेत्ता नामक एक शिक्षक थे, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे। सुनेत्ता के सैकड़ों शिष्य थे। उन्होंने अपने शिष्यों को ब्रह्म जगत के साथ संगति के लिए एक धर्म का उपदेश दिया। 1362 जब वे ऐसा धर्म सिखा रहे थे, तो जिन लोगों ने उन पर विश्वास नहीं किया, वे शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते थे; परन्तु जिन्होंने उन पर विश्वास किया, वे अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते थे।

(2) "पहले मुगपक्खा नाम का एक शिक्षक था..."

(3) ... अरनेमी नाम के एक शिक्षक... (4) ... कुद्दलक नाम के एक शिक्षक... (5) ... हत्थिपाला नाम के एक शिक्षक... (6) ... [372] ज्योतिपाल नाम के एक शिक्षक, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे... जब वे ऐसे धम्म का उपदेश दे रहे थे, तो जिन लोगों ने उन पर विश्वास नहीं किया, वे शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते थे; परन्तु जिन्होंने उन पर विश्वास किया, वे अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते थे।

"आप क्या सोचते हैं? ब्राह्मण धम्मिका? ये छह गुरु आध्यात्मिक संप्रदायों के संस्थापक थे, ऐसे पुरुष थे जो सांसारिक सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे और जिनके सैकड़ों शिष्य थे। यदि कोई घृणा की भावना से उनका और उनके शिष्यों के समुदाय का अपमान और निंदा करता, तो क्या वह बहुत बड़ा पाप नहीं करता?"

"हां, भंते।"

"यदि कोई घृणा के भाव से इन छह गुरुओं और उनके शिष्यों के समुदायों का अपमान और निंदा करता, तो वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता। परन्तु यदि कोई घृणा के भाव से किसी एक सिद्ध पुरुष का अपमान और निंदा करता, तो वह और भी अधिक पुण्य उत्पन्न करता। इसका क्या कारण है? मैं कहता हूँ, हे ब्राह्मण धम्मिका, परदेसियों के विरुद्ध वैसी हानि नहीं होती जैसी अपने साथी भिक्षुओं के विरुद्ध होती है। अतः, हे ब्राह्मण धम्मिका, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने साथी भिक्षुओं के प्रति अपने मन में घृणा उत्पन्न नहीं होने देंगे।' इस प्रकार, हे ब्राह्मण धम्मिका, तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।" [373]

सुनेत्ता, मुगापक्खा,

ब्राह्मण अरनेमी,

कुड्डालका, और हत्थिपाला,

ब्राह्मण युवा, शिक्षक थे।

और जोतिपाला [जिन्हें] गोविंदा के नाम से जाना जाता था, जो

सात [राजाओं] के पुरोहित थे:

ये अतीत में निर्दोष थे,

छह ख्यातिप्राप्त शिक्षक थे।

निर्मल और करुणा से मुक्त होकर,

इन पुरुषों ने कामुकता के बंधन को पार कर लिया था।

राग से विरक्त होकर,

उन्होंने ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लिया।

उनके

सैकड़ों शिष्य भी

निर्मल थे, करुणा से मुक्त थे,

और कामुकता के बंधन से मुक्त थे। उन्होंने

कामवासना (राग) को मिटाकर

ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लिया।

जो व्यक्ति घृणा के विचारों से

उन बाहरी संतों की निंदा करता है जो कामवासना (राग) से रहित हैं

(जिनका मन आत्म-मग्न (समाधि/समाहिता) है), वह

प्रचुर मात्रा में पुण्य उत्पन्न करता है।

लेकिन जो व्यक्ति घृणा के भाव से

बुद्ध के शिष्य,

एक सिद्ध भिक्षु का अपमान करता है, वह

और भी अधिक पुण्य उत्पन्न करता है।

किसी पवित्र व्यक्ति पर , जिसने दृष्टिकोणों का त्याग कर दिया हो, आक्रमण नहीं करना चाहिए । ऐसे व्यक्ति को संघ का

सातवाँ श्रेष्ठ व्यक्ति कहा जाता है , जो इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, जिसकी पाँचों इंद्रियाँ दुर्बल होती हैं: विश्वास, सती ध्यान, वीरय क्रिया, समभाव और विपश्यना।

यदि कोई ऐसे भिक्षु पर हमला करता है,

तो वह पहले स्वयं को हानि पहुंचाता है;

फिर, स्वयं को हानि पहुंचाने

के बाद, वह दूसरे को हानि पहुंचाता है।

जब कोई व्यक्ति अपनी रक्षा करता है,

तो दूसरा व्यक्ति भी सुरक्षित रहता है।

इसलिए व्यक्ति को अपनी रक्षा करनी चाहिए;

बुद्धिमान व्यक्ति हमेशा सुरक्षित रहता है।

दूसरा पचास

VI. महान अध्याय (महावग्गो सं. महा वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

55 सोना

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सोना शीतल वन में स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। 1367

फिर, जब पूज्य सोना एकांतवास में थे, उनके मन में यह विचार आया: "मैं भगवान (बुद्ध) के सबसे ऊर्जावान शिष्यों में से एक हूँ, फिर भी अनासक्ति से मेरा मन दोषों से मुक्त नहीं हुआ है। अब मेरे परिवार में धन है, और मेरे लिए अपने धन का आनंद लेना और पुण्य कर्म करना संभव है। तो मुझे साधना छोड़ देनी चाहिए और निम्न लोक में लौट जाना चाहिए, ताकि मैं अपने धन का आनंद ले सकूँ और पुण्य कर्म कर सकूँ।"

फिर, पूज्य सोना के मन में चल रहे विचारों को स्वयं जानकर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींचता है, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर विलीन हो गए और पूज्य सोना की उपस्थिति में शीतल वन में प्रकट

हुए। भगवान (बुद्ध) उनके लिए तैयार आसन पर बैठ गए। पूज्य सोना ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: [375]

"सोना, जब तुम एकांतवास में थे, क्या तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आया था: 'मैं भगवान (बुद्ध) के सबसे ऊर्जावान शिष्यों में से एक हूँ, फिर भी अनासक्ति से मेरा मन दोषों से मुक्त नहीं हुआ है। अब मेरे परिवार में धन है, और मेरे लिए अपने धन का आनंद लेना और पुण्य कर्म करना संभव है। तो क्या मुझे साधना छोड़ देनी चाहिए और निम्न लोक में लौट जाना चाहिए, ताकि मैं अपने धन का आनंद ले सकूँ और पुण्य कर्म कर सकूँ?'"

"हां, भंते,"

"बताओ, सोना, पहले जब तुम घर पर रहती थी, तो क्या तुम वीणा बजाने में कुशल नहीं थी?"

"हां, भंते।"

"सोना, तुम्हारा क्या ख्याल है? जब तुम्हारे वीणा के तार बहुत कसे हुए थे, तब क्या वह ठीक से ट्यून किया हुआ था और बजाने में आसान था?"

"नहीं, भंते।"

"जब उसके तार बहुत ढीले थे, तो क्या आपका ल्यूट अच्छी तरह से ट्यून किया हुआ था और बजाने में आसान था?"

नहीं, भंते।

"लेकिन, सोना, जब इसके तार न तो बहुत कसे हुए थे और न ही बहुत ढीले थे, बल्कि एक संतुलित स्वर पर समायोजित थे, तो क्या तुम्हारा ल्यूट अच्छी तरह से ट्यून किया हुआ था और बजाने में आसान था?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, सोना, यदि ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) अत्यधिक बलपूर्वक जागृत हो जाए तो बेचैनी उत्पन्न होती है, और यदि ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) अत्यधिक शिथिल हो तो आलस्य उत्पन्न होता है। अतः, सोना, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) में संतुलन स्थापित करने का संकल्प लो, आध्यात्मिक शक्तियों में समता प्राप्त करो, और वहीं लक्ष्य को ग्रहण करो।" 1368

"जी हां, भंते," पूज्य सोना ने उत्तर दिया।

जब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सोना को यह उपदेश देना समाप्त कर दिया, तो जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी अंदर की ओर खींची हुई भुजा को फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को अंदर खींचता है, वैसे ही वह शीतल वन में विलीन हो गया और गिद्ध शिखर पर्वत पर पुनः प्रकट हुआ। [376]

कुछ समय बाद, पूज्य सोना ने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) का संतुलन स्थापित किया, आध्यात्मिक शक्तियों में समता प्राप्त की और उस लक्ष्य को ग्रहण किया। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, पूज्य सोना ने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को जान लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।" और पूज्य सोना अरहंतों में से एक बन गए।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, पूज्य सोना ने सोचा: "मैं भगवान (बुद्ध) के पास जाऊं और उनके समक्ष अंतिम ज्ञान की घोषणा करूं।" फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"भंते, जब कोई भिक्षु अरहंत होता है, जिसके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया हो, जो करना आवश्यक था वह कर चुका हो, बोझ उतार चुका हो, अपने लक्ष्य तक पहुँच चुका हो, जन्म के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म का कारण) को पूरी तरह नष्ट कर चुका हो और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो चुका हो, तब वह छह बातों पर एकाग्र रहता है: त्याग पर, एकांत पर, कष्ट रहित होने पर, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश पर, आसक्ति के नाश पर और भ्रम रहित होने पर।" 369

(1) "हे भंते, हो सकता है कि यहाँ कोई आदरणीय व्यक्ति यह सोचे: 'क्या यह संभव है कि यह आदरणीय व्यक्ति केवल आस्था के कारण ही वैराग्य का निश्चय कर रहा हो?' परन्तु इसे इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। दोषों से मुक्त, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर और अपना कर्तव्य पूरा कर चुका भिक्षु अपने भीतर आगे कुछ भी करने की या किए गए कार्य को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं देखता। 1370 वह वैराग्य का निश्चय इसलिए करता है क्योंकि वह काम (राग) के नाश से काम (राग) से मुक्त है; क्योंकि वह घृणा के नाश से घृणा (घृणा) से मुक्त है; क्योंकि वह मोह (मोह) के नाश से मोह (मोह) से मुक्त है। [377]

(2) हो सकता है कि यहाँ कोई आदरणीय व्यक्ति यह सोचे: 'क्या यह आदरणीय व्यक्ति लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की लालसा के कारण एकांतवास में तल्लीन है?' परन्तु इसे इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। जिस भिक्षु के सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया है और अपना कर्तव्य पूरा किया है, वह अपने भीतर कुछ और करने की या किए गए कार्य को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं देखता। वह एकांतवास में तल्लीन इसलिए है क्योंकि उसने कामवासना (राग) का नाश कर लिया है; क्योंकि उसने घृणा (घृणा) का नाश कर लिया है; क्योंकि उसने मोह (मोह) का नाश कर लिया है।

(3) "हो सकता है कि यहाँ कोई आदरणीय व्यक्ति यह सोचे: 'क्या यह आदरणीय व्यक्ति दुःखमुक्ति का निश्चय इसलिए कर रहा है क्योंकि उसने आचरण और अनुष्ठानों को सार मानकर गलत धारणा अपना ली है?' 1371 परन्तु इसे इस प्रकार नहीं देखना चाहिए। जिस भिक्षु के सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने आध्यात्मिक जीवन जीकर अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है, वह अपने आप में आगे कुछ करने की या किए गए कार्य को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं देखता। वह दुःखमुक्ति का निश्चय इसलिए करता है क्योंकि उसने कामवासना (राग) का नाश कर लिया है; क्योंकि उसने घृणा (घृणा) का नाश कर लिया है; क्योंकि उसने मोह (मोह) का नाश कर लिया है।"

(4) "...वह तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश पर केंद्रित है क्योंकि वह राग के नाश से राग से मुक्त है; क्योंकि वह घृणा के नाश से घृणा से मुक्त है; क्योंकि वह मोह के नाश से मोह से मुक्त है।" 1372

(5) "...वह आसक्ति के नाश पर केंद्रित है क्योंकि वह कामवासना (राग) के नाश के द्वारा कामवासना (राग) से मुक्त है; क्योंकि वह घृणा के नाश के द्वारा घृणा (घृणा) से मुक्त है; क्योंकि वह मोह (मोह) के नाश के द्वारा मोह (मोह) से मुक्त है।"

(6) . . वह भ्रमहीनता पर केंद्रित है क्योंकि वह कामवासना (राग) के नाश के कारण कामवासना (राग) से रहित है; क्योंकि वह घृणा के नाश के कारण घृणा (घृणा) से रहित है; क्योंकि वह मोह (मोह) के नाश के कारण मोह (मोह) से रहित है।

"भंते, जब कोई भिक्षु इस प्रकार पूर्णतः मन से मुक्त हो जाता है, तो भले ही आँखों से दिखाई देने वाले शक्तिशाली रूप उसकी दृष्टि में आ जाएँ, वे उसके मन को ग्रस्त नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। वह स्थिर रहता है, अविचलित रहता है, और वह उनके लुप्त होने का अवलोकन करता है। 1373 [378] भले ही कानों से सुनाई देने वाली शक्तिशाली ध्वनियाँ कानों की दृष्टि में आ जाएँ... भले ही नाक से सुनाई देने वाली शक्तिशाली गंधें नाक की दृष्टि में आ जाएँ... भले ही जीभ से सुनाई देने वाले शक्तिशाली स्वाद जीभ की दृष्टि में आ जाएँ... भले ही शरीर द्वारा अनुभव किए जाने वाले शक्तिशाली स्पर्शनीय पदार्थ शरीर की दृष्टि में आ जाएँ... भले ही मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले शक्तिशाली घटनाक्रम (धर्म) मन की दृष्टि में आ जाएँ, वे उसके मन को ग्रस्त नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। वह स्थिर रहता है, अविचलित रहता है, और वह उसके लुप्त होने का अवलोकन करता है।" लुप्त हो रहा है।

"मान लो, भंते, एक पत्थर का पहाड़ हो, जिसमें कोई दरार या छिद्र न हो, एक ठोस पिंड हो। यदि पूर्व से भयंकर वर्षा हो, तो भी वह उसे हिला न सके, डगमगा न सके और कांप न सके; चाहे पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, भयंकर वर्षा हो, तब भी वह उसे हिला न सके, डगमगा न सके और कांप न सके। ठीक इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु मन से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, तो चाहे दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से

दिखाई देने वाले शक्तिशाली दृश्य भी दृष्टि के दायरे में आ जाएं, वे उसके मन को विचलित नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। वह स्थिर रहता है, अविचलित अवस्था में पहुँच जाता है, और वह उसके लुप्त होने का अवलोकन करता है।"

यदि कोई त्याग

और मन की एकांतता के लिए तल्लीन हो;

यदि कोई दुःख से मुक्ति

और आसक्ति के नाश के लिए तल्लीन हो;

यदि कोई तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के नाश

और मन की अव्यवस्था से मुक्ति के लिए तल्लीन हो:

जब कोई इंद्रिय आधारों को उत्पन्न होते हुए देखता है, तो

उसका मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

शांत मन वाले भिक्षु के लिए,

जो पूर्णतः मुक्त हो चुका है,

आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है,

जो किया जा चुका है उसे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। [379]

जैसे एक पत्थर का पहाड़, एक ठोस पिंड,

हवा से नहीं हिलता,

उसी प्रकार कोई भी रूप, स्वाद, ध्वनि,

गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं

और वांछनीय या अवांछनीय घटनाएँ (धर्म)

स्थिर मन को विचलित नहीं करतीं।

उसका मन स्थिर और मुक्त है,

और वह इसके लुप्त होने का अवलोकन करता है।

---

56 फाग्गुना

एक बार पूज्य फाग्गुना बहुत बीमार थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "भंते, पूज्य फाग्गुना बहुत बीमार हैं, बहुत पीड़ित हैं, बहुत बीमार हैं। कृपया दया करके भगवान (बुद्ध) उनसे मिलने आएं।" भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य फाग्गुना के पास गए। पूज्य फाग्गुना ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और अपने पलंग पर करवट बदल ली। भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "बस करो, फाग्गुना, अपने पलंग पर मत करवट बदलो। ये आसन तैयार किए गए हैं। मैं वहीं बैठूंगा।"

भगवान (बुद्ध) बैठ गए और पूज्य फाग्गुना से बोले: "मुझे आशा है कि आप ठीक हैं, फाग्गुना। मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हो रहे हैं। मुझे आशा है कि आपकी पीड़ादायक अनुभूतियाँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कम होना ही स्पष्ट है, न कि बढ़ना।"

"भंते, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही स्पष्ट है, कम होना नहीं। 1374 जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार की नोक से मेरा सिर पीस दे, वैसे ही तेज हवाएँ [380] मेरे सिर को चीर रही हैं। मैं असहनीय पीड़ा सहन कर रहा हूँ। ...जैसे कोई बलवान व्यक्ति मेरे सिर पर चमड़े का सख्त पट्टा कसकर बाँध दे, वैसे ही मेरे सिर में तेज दर्द हो रहा है। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से बैल का पेट चीर दे, वैसे ही तेज हवाएँ मेरे पेट को चीर रही हैं। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे दो बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को दोनों भुजाओं से पकड़कर गर्म कोयलों के गड्ढे पर भून रहे हों, वैसे ही मेरे शरीर में तेज जलन हो रही है। मैं भंते, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें कम होने के बजाय बढ़ती जा रही हैं, और उनकी वृद्धि ही दिखाई दे रही है, न कि उनकी कमी।

तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय फाग्गुना को धर्म प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठकर चले गए। भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद आदरणीय फाग्गुना का निधन हो गया। उनकी मृत्यु के समय उनकी इंद्रियां शांत थीं।

तब पूज्य आनंद [381] भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद पूज्य फाग्गुना का निधन हो गया। उनकी मृत्यु के समय उनकी इंद्रियाँ शांत थीं।"

"आनंद, भिक्षु फाग्गुना की इंद्रियां शांत क्यों नहीं होनी चाहिए थीं? यद्यपि उनका मन अभी तक पांच निम्न बंधनों से मुक्त नहीं हुआ था, फिर भी जब उन्होंने धम्म पर वह प्रवचन सुना, तो उनका मन उनसे मुक्त हो गया।" 1375

"आनंद, उचित समय पर धम्म सुनने और उचित समय पर उसके अर्थ का विश्लेषण करने के ये छह लाभ हैं। 1376 वे छह लाभ क्या हैं?"

(1) "हे आनंद, यहाँ एक भिक्षु का मन अभी तक पाँच निम्न बंधनों से मुक्त नहीं हुआ है, परन्तु अपनी मृत्यु के समय वह तथागत (बुद्ध) के दर्शन पाता है। तथागत (बुद्ध) उसे उचित अर्थ और शब्दों में वह धम्म (मार्ग) सिखाते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है; वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) प्रकट करते हैं। जब भिक्षु धम्म पर वह प्रवचन सुनता है, तो उसका मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो जाता है। उचित समय पर धम्म सुनने का यह पहला लाभ है।"

(2) "फिर, भिक्षु का मन अभी तक पाँच निम्न बंधनों से मुक्त नहीं हुआ है। अपनी मृत्यु के समय वह तथागत (बुद्ध) के दर्शन नहीं कर पाता, परन्तु तथागत (बुद्ध) के शिष्य के दर्शन कर पाता है। तथागत (बुद्ध) का शिष्य उसे धम्म का उपदेश देता है... एक पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान कराता है। जब भिक्षु धम्म पर वह प्रवचन सुनता है, तो उसका मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो जाता है। उचित समय पर धम्म सुनने का यह दूसरा लाभ है।"

(3) "फिर भी, भिक्षु का मन अभी तक पाँच [382] निम्न बंधनों से मुक्त नहीं हुआ है। अपनी मृत्यु के समय वह तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के किसी शिष्य को नहीं देख पाता, परन्तु वह धम्म का चिंतन, परीक्षण और मानसिक रूप से निरीक्षण करता है जैसा

उसने सुना और सीखा है। ऐसा करने से उसका मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो जाता है। उचित समय पर अर्थ का परीक्षण करने का यह तीसरा लाभ है।"

(4) "हे आनंद, यहाँ भिक्षु का मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो गया है, परन्तु अभी तक उसने अपने कर्मों के पूर्णतम निर्वाह की अवस्था प्राप्त नहीं की है। 1377 अपनी मृत्यु के समय उसे तथागत (बुद्ध) के दर्शन होते हैं। तथागत (बुद्ध) उसे धम्म का उपदेश देते हैं... वे उसे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराते हैं। जब भिक्षु धम्म पर वह प्रवचन सुनता है, तो उसका मन अपने कर्मों के पूर्णतम निर्वाह की अवस्था में मुक्त हो जाता है। उचित समय पर धम्म सुनने का यह चौथा लाभ है।"

(5) "फिर, भिक्षु का मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो जाता है, परन्तु अभी तक उसकी उपलब्धियों के पूर्णतम निर्वाह से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय वह तथागत (बुद्ध) के दर्शन नहीं कर पाता, परन्तु तथागत (बुद्ध) के शिष्य के दर्शन कर पाता है। तथागत (बुद्ध) का शिष्य उसे धम्म का उपदेश देता है... एक पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान कराता है। जब भिक्षु धम्म (मार्ग) पर वह प्रवचन सुनता है, तो उसकी उपलब्धियों के पूर्णतम निर्वाह से उसका मन मुक्त हो जाता है। उचित समय पर धम्म सुनने का यह पाँचवाँ लाभ है।"

(6) "फिर भी, भिक्षु का मन पाँच निम्न बंधनों से मुक्त हो जाता है [383J, परन्तु अभी तक प्राप्तियों के पूर्णतम निर्वाह में मुक्त नहीं होता। अपनी मृत्यु के समय वह तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के किसी शिष्य को नहीं देख पाता, परन्तु वह अपने द्वारा सुने और सीखे गए धम्म पर मनन, परीक्षण और चिंतन करता है। ऐसा करने से उसका मन प्राप्तियों के पूर्णतम निर्वाह में मुक्त हो जाता है। उचित समय पर अर्थ का परीक्षण करने का यह छठा लाभ है।"

"आनंद, ये धम्म को उचित समय पर सुनने और उचित समय पर उसके अर्थ का विश्लेषण करने के छह लाभ हैं।"

---

57 छह वर्ग (चलभिजाति)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"भंते, पुराण कस्सपा ने छह वर्गों का वर्णन किया है: 1378 एक काला वर्ग, एक नीला वर्ग, एक लाल वर्ग, एक पीला वर्ग, एक सफेद वर्ग और एक सर्वोच्च सफेद वर्ग।"

उन्होंने अश्वेत वर्ग को भेड़, सूअर, मुर्गी और हिरण के कसाई; शिकारी और मछुआरे; चोर, जल्लाद और जेल वार्डन; या ऐसे ही किसी अन्य क्रूर व्यवसाय को करने वाले लोगों के रूप में वर्णित किया है।

उन्होंने नीले वर्ग को कांटों पर रहने वाले भिक्षुओं (1379) या कर्म (कर्म/कार्यो) के सिद्धांत का पालन करने वाले अन्य लोगों के रूप में वर्णित किया है, जो कर्मों की प्रभावकारिता का सिद्धांत है।

उन्होंने लाल वर्ग को निगांथा [384] के रूप में वर्णित किया है जो एक ही वस्त्र पहने हुए हैं।

उन्होंने पीले वर्ग को नग्न तपस्वियों के सफेद वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्यों के रूप में वर्णित किया है।

उन्होंने श्वेत वर्ग को पुरुष और महिला आजीवकों के रूप में वर्णित किया है।

"उन्होंने सर्वोच्च श्वेत वर्ग का वर्णन नंदा वाचा, किसा संकिक्का और मक्खलि गोसाला के रूप में किया है।

"पुराण कस्सपा, भंते ने इन छह वर्गों का वर्णन किया है।"

लेकिन, आनंद, क्या पूरी दुनिया ने पुराण कस्सप को इन छह वर्गों का वर्णन करने के लिए अधिकृत किया है?

"बिल्कुल नहीं, भंते।"

"मान लो, आनंद, कोई गरीब, निर्धन, निर्धन व्यक्ति हो। वे उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे मांस का एक टुकड़ा जबरदस्ती खिला सकते हैं और कह सकते हैं: 'हे जन, तुम्हें यह टुकड़ा खाना होगा और इसके लिए कीमत चुकानी होगी।' ठीक उसी प्रकार, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों की सहमति के बिना, पुराण कस्सप ने इन छह वर्गों का वर्णन अविवेकी, अयोग्य, अनुभवहीन और अकुशल तरीके से किया है। परन्तु मैं, आनंद, छह [विभिन्न] वर्गों का वर्णन करता हूँ। ध्यान से सुनो। मैं आगे बोलूँगा।"

"जी भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे आनंद, ये छह वर्ग क्या हैं? (1) यहाँ, काले वर्ग का कोई व्यक्ति काले राज्य की उत्पत्ति करता है। (2) काले वर्ग का कोई व्यक्ति सफेद राज्य की उत्पत्ति करता है। (3) काले वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण की उत्पत्ति करता है, जो न तो काला है और न ही सफेद। (4) फिर, सफेद वर्ग का कोई व्यक्ति काले राज्य की उत्पत्ति करता है। (5) सफेद वर्ग का कोई व्यक्ति सफेद राज्य की उत्पत्ति करता है। (6) और सफेद वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण की उत्पत्ति करता है, जो न तो काला है और न ही सफेद।"

(1) "आनंद, यह कैसे संभव है कि काले वर्ग का कोई व्यक्ति काले राज्य की उत्पत्ति करे? यहाँ, कोई व्यक्ति निम्न परिवार में पुनर्जन्म लेता है—चांडलाओं, शिकारियों, बाँस श्रमिकों, गाड़ी बनाने वालों या फूल बीनने वालों के परिवार में—एक गरीब परिवार, जिसके पास भोजन और पेय कम है, जिसका जीवन यापन कठिन है, जहाँ भोजन और वस्त्र बड़ी मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह बदसूरत, कुरूप, बौना, और बहुत सी बीमारियों से ग्रस्त है—अंधा, अपंग, लंगड़ा या लकवाग्रस्त है। 1381 उसे भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त नहीं होते; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इसी प्रकार काले वर्ग का कोई व्यक्ति काले राज्य की उत्पत्ति करता है।"

(2) "और हे आनंद, यह कैसे संभव है कि काले वर्ग का कोई व्यक्ति श्वेत राज्य की उत्पत्ति करे? यहाँ, कोई व्यक्ति निम्न परिवार में पुनर्जन्म लेता है। उसे भोजन और प्रकाश नहीं मिलता। वह शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगा रहता है। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, उसका पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में होता है। इसी प्रकार काले वर्ग का कोई व्यक्ति श्वेत राज्य की उत्पत्ति करता है।"

(3) "और हे आनंद, यह कैसे संभव है कि काले वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद? यहाँ, कोई व्यक्ति निम्न परिवार में पुनर्जन्म लेता है [386]... वह भोजन और प्रकाश प्राप्त नहीं करता... अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है। जब वह इस प्रकार संन्यासी जीवन में चला जाता है, तो वह मन की पाँच बाधाओं, विकारों, उन चीजों का त्याग करता है जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करती हैं; और फिर, ध्यान (सती) की चार अवस्थाओं में अपने मन को अच्छी तरह से स्थापित करके, वह ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करता है और निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद। इसी प्रकार काले वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद..."

(4) "और हे आनंद, यह कैसे संभव है कि श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति अश्वेत राज्य की उत्पत्ति करे? यहाँ, कोई व्यक्ति उच्च कुल में पुनर्जन्म लेता है—एक समृद्ध क्षत्रिय कुल में, एक समृद्ध ब्राह्मण कुल में, या एक समृद्ध गृहस्थ कुल में—एक ऐसा कुल जो धनवान है, अपार संपत्ति और जायदाद से युक्त है, प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी, प्रचुर खजाने और वस्तुएँ, प्रचुर धन और अनाज से संपन्न है; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित, अत्यंत सुंदर रंग का है। उसे भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त होते हैं; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त रहता है। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद शरीर के क्षोभ के साथ, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इसी प्रकार श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति अश्वेत राज्य की उत्पत्ति करता है।"

(5) "और हे आनंद, यह कैसे संभव है कि श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति श्वेत राज्य की उत्पत्ति करे? यहाँ, कोई व्यक्ति उच्च परिवार में पुनर्जन्म लेता है... उसे भोजन... और प्रकाश प्राप्त होता है। वह शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगा रहता है। फलस्वरूप,

मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, उसका पुनर्जन्म एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में होता है। इसी प्रकार श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति श्वेत राज्य की उत्पत्ति करता है।"

(6) "और हे आनंद, यह कैसे संभव है कि श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद? [387] यहाँ, किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म उच्च कुल में हुआ है। ... वह भोजन ... और प्रकाश प्राप्त करता है। अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, वह गेरुए वस्त्र धारण करता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है। इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करने पर, वह पाँच बाधाओं, मन के दोषों, उन चीजों का त्याग करता है जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करती हैं; और फिर, ध्यान (सती) की चार अवस्थाओं में अच्छी तरह से स्थापित होकर, वह ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करता है और निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद। इसी प्रकार श्वेत वर्ग का कोई व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, जो न काला है और न सफेद।"

"आनंद, ये छह श्रेणियां हैं।"

58 दाग (असव सं. आश्रव)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य होते हैं और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, संयम द्वारा भिक्षु उन दोषों का त्याग करता है जिनका त्याग संयम द्वारा किया जाना चाहिए; उपयोग द्वारा वह उन दोषों का त्याग करता है जिनका त्याग उपयोग द्वारा किया जाना चाहिए; धैर्यपूर्वक सहन करने द्वारा वह उन दोषों का त्याग करता है जिनका त्याग धैर्यपूर्वक सहन करने द्वारा किया जाना चाहिए; परहेज द्वारा वह उन दोषों का त्याग करता है जिनका त्याग परहेज द्वारा किया जाना चाहिए; निवारण द्वारा वह उन दोषों का त्याग करता है जिनका निवारण द्वारा किया जाना चाहिए; और विकास द्वारा वह उन दोषों का त्याग करता है जिनका त्याग विकास द्वारा किया जाना चाहिए।"

(1) "हे भिक्षुओं, संयम द्वारा त्यागे जाने वाले वे कौन से दोष हैं जो संयम द्वारा त्याग दिए गए हैं? यहाँ, ध्यानपूर्वक चिंतन करने के बाद, एक भिक्षु नेत्र इंद्रिय पर संयमित होकर ध्यान लगाता है: वे [388] दोष, कष्टदायी और ज्वरकारी, जो नेत्र इंद्रिय पर असंयमित रहने वाले में उत्पन्न हो सकते हैं, नेत्र इंद्रिय पर संयमित रहने वाले में उत्पन्न नहीं होते हैं। ध्यानपूर्वक चिंतन करने के बाद, एक भिक्षु कान इंद्रिय... नाक इंद्रिय... जीभ इंद्रिय... शरीर इंद्रिय... मन इंद्रिय पर संयमित रहता है। वे दोष, कष्टदायी और ज्वरकारी, जो मन इंद्रिय पर असंयमित रहने वाले में उत्पन्न हो सकते हैं, मन इंद्रिय पर संयमित रहने वाले में उत्पन्न नहीं होते हैं। वे दोष, कष्टदायी और ज्वरकारी, जो [इन चीजों पर] असंयमित रहने वाले में उत्पन्न हो सकते हैं, संयमित रहने वाले में उत्पन्न नहीं होते हैं। 1383 ये हैं संयम द्वारा त्यागे जाने वाले कलंक कहलाते हैं, जिन्हें संयम द्वारा त्याग दिया गया है।

(2) "और वे कौन से दोष हैं जिन्हें उपयोग करने से त्याग दिया गया है? यहाँ, ध्यानपूर्वक विचार करने पर, एक भिक्षु वस्त्र का उपयोग केवल सर्दी से बचने के लिए, गर्मी से बचने के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सर्पों के संपर्क से बचने के लिए और केवल गुप्तांगों को ढकने के लिए करता है। ध्यानपूर्वक विचार करने पर, वह भिक्षा भोजन का उपयोग न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए करता है, बल्कि केवल अपने शरीर के भरण-पोषण, हानि से बचने और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) में सहायता करने के लिए करता है, यह सोचते हुए कि, 'इस प्रकार मैं पुरानी वेदना को समाप्त करूँगा और नई वेदना को जागृत नहीं करूँगा, और मैं स्वस्थ और दोषरहित रहूँगा और आराम से रहूँगा।' ध्यानपूर्वक विचार करने पर, वह आवास का उपयोग केवल सर्दी से बचने के लिए, गर्मी से बचने के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सर्पों के संपर्क से बचने के लिए और केवल खराब मौसम से सुरक्षा और एकांत का आनंद लेने के लिए करता है। ध्यानपूर्वक विचार करने पर वह बीमारों के लिए बनी दवाइयों और खाद्य पदार्थों का उपयोग केवल उत्पन्न कष्टदायक संवेदनाओं (वेदना) को दूर करने और अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए करता है। [389] जो दोष, कष्टदायक और बुखार जैसे, इन चीजों का उपयोग न करने वाले व्यक्ति में उत्पन्न हो सकते हैं, वे इनका उपयोग करने वाले व्यक्ति में उत्पन्न नहीं होते। इन्हें उपयोग करने से त्यागे जाने वाले दोष कहा जाता है, जो उपयोग करने से त्याग दिए गए हैं।

(3) "और वे कौन से दोष हैं जिन्हें धैर्यपूर्वक सहन करने से त्याग दिया जाता है? यहाँ, ध्यानपूर्वक विचार करने पर, एक भिक्षु धैर्यपूर्वक सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास; मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क; अभद्र और अपमानजनक वाणी को सहन करता है; वह उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन करता है जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायी, अप्रिय

और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली होती हैं। वे दोष, कष्टदायक और ज्वरकारी, जो धैर्यपूर्वक सहन न करने वाले में उत्पन्न हो सकते हैं, धैर्यपूर्वक सहन करने वाले में उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही वे दोष कहा जाता है जिन्हें धैर्यपूर्वक सहन करने से त्याग दिया जाता है।"

(4) "और वे कौन से दोष हैं जिनका त्याग करने से पहले ही त्याग दिया गया है? यहाँ, ध्यानपूर्वक विचार करते हुए एक भिक्षु जंगली हाथी, जंगली घोड़े, जंगली बैल और जंगली कुत्ते से दूर रहता है; वह साँप, पेड़ का ठूंठ, काँटों का गुच्छा, गड्ढा, खाई, कूड़े का ढेर और गटर से दूर रहता है। ध्यानपूर्वक विचार करते हुए, वह अनुपयुक्त आसनों पर बैठने, अनुपयुक्त भिक्षागृहों में घूमने और बुरे मित्रों की संगति करने से बचता है, जिससे उसके बुद्धिमान साथी भिक्षुओं को उस पर बुरे कर्मों का संदेह न हो। जो दोष कष्टदायी और कष्टदायक होते हैं और जो इन चीजों से दूर न रहने वाले में उत्पन्न हो सकते हैं, वे इनसे दूर रहने वाले में उत्पन्न नहीं होते। [390] इन्हें वे दोष कहा जाता है जिनका त्याग करने से पहले ही त्याग दिया गया है।"

(5) "और वे कौन से दोष हैं जिन्हें निवारण द्वारा त्यागना चाहिए और जिन्हें निवारण द्वारा त्याग दिया गया है? यहाँ, ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए एक भिक्षु (साधु) उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता; वह उसे त्याग देता है, उसका निवारण करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है। ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए, वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को... बुरे हानिकारक (अकुशल) विचारों को जब भी वे उत्पन्न होते हैं; वह उन्हें त्याग देता है, उनका निवारण करता है, उन्हें समाप्त करता है और उन्हें मिटा देता है। वे दोष, कष्टदायी और ज्वरकारी, जो उन लोगों में उत्पन्न हो सकते हैं जो [इन चीजों को] दूर नहीं करते, वे उन लोगों में उत्पन्न नहीं होते जो उन्हें दूर करते हैं। इन्हें निवारण द्वारा त्यागे जाने वाले दोष कहा जाता है जिन्हें निवारण द्वारा त्याग दिया गया है।"

(6) "और वे कौन से दोष हैं जिन्हें विकास के द्वारा त्याग दिया जाना चाहिए, जो विकास के द्वारा त्याग दिए गए हैं? यहाँ, ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए एक भिक्षु सजगता के ज्ञान तत्व का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य (वीरग) और समाप्ति पर आधारित है, और मुक्ति में परिपक्व होता है। ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए, वह घटनाओं के विवेक (धम्म) के ज्ञान तत्व का विकास करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) के ज्ञान तत्व का... आनंद (पीति) के ज्ञान तत्व का... शांति (पासद्धि) के ज्ञान तत्व का... समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) के ज्ञान तत्व का... उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का, जो एकांत, वैराग्य (वीरग) और समाप्ति पर आधारित है, और मुक्ति में परिपक्व होता है। वे दोष, कष्टदायी और ज्वरकारी, जो उस व्यक्ति में उत्पन्न हो सकते हैं जो [इन चीजों] का विकास नहीं करता है, उनमें उत्पन्न नहीं होते हैं।" जो इन्हें विकसित करता है। इन्हें विकास द्वारा त्यागे जाने वाले कलंक कहा जाता है, जिन्हें विकास द्वारा त्याग दिया गया है।

"हे भिक्षुओं, इन छह गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।" [391]

---

59 दारुकम्मिका

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका में ईंटों से बने भवन में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ दारुकम्मिका 1384 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या तुम्हारा परिवार दान देता है, गृहस्थ?"

"हे भंते, मेरा परिवार दान देता है। और ये दान उन भिक्षुओं को दिए जाते हैं जो अरहंत हैं या अरहंत बनने की राह पर हैं, जो वनवासी हैं, भिक्षा मांगने वाले हैं और जो चिथड़े-चिथड़े पहनते हैं।" 1385

"हे गृहस्थ, आप एक गृहस्थ हैं जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं, बच्चों से भरे घर में रहते हैं, काशी की चंदन का उपयोग करते हैं, माला, सुगंध और लेप लगाते हैं, और सोना-चांदी प्राप्त करते हैं, इसलिए आपके लिए यह जानना कठिन है कि 'ये अरहंत हैं या अरहंतत्व के मार्ग पर हैं।'"

(1) हे गृहस्थ, यदि कोई भिक्षु जो वनवासी है, बेचैन, अहंकारी, घमंडी, बातूनी, अस्पष्ट, भ्रमित, पूर्ण बोधहीन (संपजन्न), असामंजस्यपूर्ण (असमहित), भटकते मन वाला और इंद्रियों पर नियंत्रण रखने में असमर्थ है, तो इस दृष्टि से वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु जो वनवासी है, बेचैन, अहंकारी और घमंडी नहीं है, बातूनी और अस्पष्ट नहीं है, बल्कि सती ध्यान में स्थापित है, पूर्ण बोध रखता है, समाधि में है, एकाग्रचित्त (एकगचित्त) है और इंद्रियों पर संयम रखता है, तो इस दृष्टि से वह प्रशंसनीय है।

(2) "यदि कोई भिक्षु जो गाँव के बाहरी इलाके में रहता है, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए बेचैन है, तो इस मामले में वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु जो गाँव के बाहरी इलाके में रहता है, अपनी इंद्रियों को नियंत्रित रखते हुए बेचैन नहीं है, तो इस मामले में वह प्रशंसनीय है।"

(3) "यदि कोई भिक्षु जो भिक्षा एकत्र करता है, अपनी इंद्रियों को शिथिल करके बेचैन हो जाता है, तो इस दृष्टि से वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु जो भिक्षा एकत्र करता है, अपनी इंद्रियों को संयमित करके बेचैन नहीं होता है, तो इस दृष्टि से वह प्रशंसनीय है।"

(4) "यदि कोई भिक्षु भोजन के निमंत्रण स्वीकार करते समय बेचैन रहता है और उसकी इंद्रियाँ शिथिल रहती हैं, तो इस मामले में वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु भोजन के निमंत्रण स्वीकार करते समय बेचैन नहीं रहता और उसकी इंद्रियाँ संयमित रहती हैं, तो इस मामले में वह प्रशंसनीय है।"

(5) "यदि कोई भिक्षु जो चिथड़े के वस्त्र पहनता है, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए बेचैन हो, तो इस दृष्टि से वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु जो चिथड़े के वस्त्र पहनता है, अपनी इंद्रियों को नियंत्रित रखते हुए बेचैन न हो, तो इस दृष्टि से वह प्रशंसनीय है।"

(6) "यदि कोई भिक्षु जो गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र धारण करता है, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हुए बेचैन हो, तो इस दृष्टि से वह निंदनीय है। परन्तु यदि कोई भिक्षु जो गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र धारण करता है, अपनी इंद्रियों को नियंत्रित रखते हुए बेचैन न हो, तो इस दृष्टि से वह प्रशंसनीय है।"

"हे गृहस्थ, अब संघ को दान दो। संघ को दान देने से तुम्हारा मन दृढ़ विश्वास से भर जाएगा। जब तुम्हारा मन दृढ़ विश्वास से भर जाएगा, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, तुम एक शुभ स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लोगे।"

"भंते, आज से मैं संघ को दान दूंगा:" 1386

---

60 हत्थी

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान में बरनासी में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, कई वरिष्ठ भिक्षु मंडप कक्ष में एकत्रित हुए और धम्म से संबंधित चर्चा में लगे हुए थे। 1367 जब वे चर्चा में लगे हुए थे, तब पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त ने बार-बार उनकी बातचीत में बाधा डाली। 1388 तब पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त से कहा:

"जब वरिष्ठ भिक्षु धम्म से संबंधित चर्चा में लगे हों, तो बार-बार [393] उनकी बात में दखल न दें, बल्कि उनकी चर्चा समाप्त होने तक प्रतीक्षा करें।"

जब यह कहा गया, तो पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त के भिक्षु मित्रों ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त का अपमान न करें। पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त बुद्धिमान हैं और धम्म से संबंधित चर्चा में वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ भाग लेने में सक्षम हैं।"

[आदरणीय महाकोत्थिता ने कहा:] "मित्रों, जो लोग दूसरे के मन के शव को नहीं जानते, उनके लिए यह जानना कठिन है।"

(1) "यहाँ, मित्रों, कोई व्यक्ति गुरु या गुरु के पद पर आसीन साथी भिक्षु के निकट रहने के दौरान अत्यंत सौम्य, विनम्र और शांत प्रतीत होता है। परन्तु जब वह गुरु और गुरु के पद पर आसीन साथी भिक्षुओं को छोड़कर अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष एवं स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक गुरुओं और संप्रदायिक गुरुओं के शिष्यों से संबंध स्थापित करता है। जैसे-जैसे वह

उनसे संबंध स्थापित करता है और उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाता है, जैसे-जैसे वह उनके साथ खुलकर बातचीत करता है, उसके मन में कामवासना (राग) घर कर जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

मान लीजिए कि फसलों को खाने वाले एक बैल को रस्सी से बांध दिया जाए या बाड़े में बंद कर दिया जाए। क्या कोई सही कह सकता है: 'अब यह फसल खाने वाला बैल फिर कभी फसलों के बीच प्रवेश नहीं करेगा'?

"बिल्कुल नहीं, दोस्त। क्योंकि यह संभव है कि फसल खाने वाला यह बैल रस्सी तोड़ दे या बाड़े से बाहर निकल जाए और फिर से फसलों के बीच घुस जाए।"

"इसी प्रकार, यहाँ कुछ [394] व्यक्ति अत्यंत सौम्य हैं। . . . लेकिन जब वह शिक्षक और साथी भिक्षुओं को शिक्षक के पद पर छोड़ देता है, तो वह [अन्य] भिक्षुओं के साथ संबंध स्थापित करता है ... वह प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।

(2) "फिर, हे मित्रों, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... कोई व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। [यह सोचकर,] 'मैं वह हूँ जिसने प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त की है', वह अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से संबंध स्थापित करता है। जैसे-जैसे वह उनसे संबंध स्थापित करता है और उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाता है, जैसे-जैसे वह उनके साथ खुलकर बातचीत करता है, कामवासना (राग) उसके मन पर हावी हो जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

मान लीजिए कि चौराहे पर बारिश की मोटी बूँदें धूल को गायब कर दें और कीचड़ पैदा कर दें। क्या कोई सही कह सकता है: 'अब इस चौराहे पर धूल कभी दोबारा नहीं आएगी'?

"बिल्कुल नहीं, दोस्त। क्योंकि यह संभव है कि लोग इस चौराहे से गुजरेंगे, या मवेशी और बकरियां 1369 गुजरेंगी, या हवा और सूरज की गर्मी नमी को सुखा देगी, और फिर धूल दोबारा दिखाई देगी।"

"इसी प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... कोई व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। [यह सोचकर,] 'मैं वह हूँ जिसने प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त की है,' वह [अन्य] भिक्षुओं से जुड़ जाता है... वह प्रशिक्षण त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। [395]

(3) "फिर, मित्रों, विचार और परीक्षण के शांत होने पर, कोई व्यक्ति द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है।"

यह सोचते हुए कि 'मैं द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त करने वाला हूँ,' वह अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से संबंध स्थापित करता है। जैसे-जैसे वह उनसे संबंध स्थापित करता है और उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाता है, जैसे-जैसे वह सहज होकर उनसे बातचीत करता है, उसके मन में कामवासना (राग) घर कर जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।

मान लीजिए कि किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक बड़ा तालाब है। घनी बूंदों के रूप में गिरने वाली बारिश से विभिन्न प्रकार के शंख, बजरी और कंकड़ गायब हो जाते हैं। क्या कोई सही कह सकता है: 'अब इस तालाब में विभिन्न प्रकार के शंख, बजरी और कंकड़ कभी दोबारा प्रकट नहीं होंगे'?

"बिल्कुल नहीं, मित्र। क्योंकि यह संभव है कि लोग इस तालाब से पानी पिएं, या मवेशी और बकरियां इससे पानी पिएं, या हवा और सूरज की गर्मी से नमी सूख जाए। तब विभिन्न प्रकार के शंख, बजरी और कंकड़ फिर से प्रकट हो जाएंगे।"

"इसी प्रकार, विचार और चिंतन के शांत होने पर, कोई व्यक्ति द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... [यह सोचते हुए,] 'मैं वह हूँ जिसने द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त की है,' वह [अन्य] भिक्षुओं के साथ बंध बनाता है ... वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

(4) "फिर, हे मित्रों, जब पीति (आनंद) भी लुप्त हो जाती है, तो कोई व्यक्ति... तीसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... [यह सोचते हुए,] 'मैं वह हूँ जिसने तीसरा ध्यान (सम्मोहन) प्राप्त किया है', वह अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से जुड़ जाता है। जैसे-जैसे वह उनसे जुड़ता है और उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाता है, जैसे-जैसे वह उनके साथ बातचीत में मग्न होता है, काम (राग) उसके मन पर हावी हो जाता है। काम (राग) से ग्रस्त होकर वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

"मान लीजिए कि पिछली शाम का बचा हुआ खाना [396] उस आदमी को पसंद नहीं आएगा जिसने स्वादिष्ट भोजन किया हो। क्या कोई सही कह सकता है: 'अब इस आदमी को खाना कभी पसंद नहीं आएगा'?"

"बिल्कुल नहीं, मित्र। क्योंकि जब तक उसके शरीर में पोषक तत्व मौजूद हैं, तब तक उसे अधिक भोजन आकर्षित नहीं करेगा, लेकिन जब पोषक तत्व समाप्त हो जाएंगे, तो संभव है कि उसे फिर से ऐसा भोजन आकर्षित करने लगे।"

इसी प्रकार, जब आनंद (पीति) लुप्त हो जाता है, तो कुछ व्यक्ति... तीसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें निवास करते हैं... [यह सोचकर,] 'मैं वह हूँ जिसने तीसरा ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त किया है,' वह [अन्य] भिक्षुओं के साथ बंध जाते हैं... वह प्रशिक्षण छोड़ देते हैं और निम्न जीवन में लौट जाते हैं।

(5) "फिर, हे मित्रों, सुख और दुख का त्याग करके... कोई व्यक्ति चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। [यह सोचते हुए,] 'मैं वह हूँ जिसने चौथा ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त किया है', वह अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से जुड़ता है। जैसे-जैसे वह उनसे जुड़ता है और उनके साथ घनिष्ठ संबंध बनाता है, जैसे-जैसे वह उनके साथ खुलकर बातचीत करता है, कामवासना (राग) उसके मन पर हावी हो जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

मान लीजिए कि एक पहाड़ी घाटी में एक झील है जो हवा से सुरक्षित है और उसमें लहरें नहीं हैं। क्या कोई सही कह सकता है: "अब इस झील पर लहरें कभी दोबारा नहीं आएंगी?"

"बिल्कुल नहीं, दोस्त। क्योंकि यह संभव है कि पूर्व, [397] पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से एक भयंकर बारिश का तूफान आ सकता है और झील पर लहरें उठा सकता है।"

इसी प्रकार, सुख और दुख का त्याग करने पर... कोई व्यक्ति यहाँ चौथी ध्यान अवस्था (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... [यह सोचते हुए,] 'मैं वह हूँ जिसने चौथी ध्यान अवस्था (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त की है', वह [अन्य] भिक्षुओं के साथ बंध बनाता है... वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।

(6) "फिर, हे मित्रों, सभी लक्षणों पर ध्यान न देने के कारण, कोई व्यक्ति लक्षणहीन मानसिक समाधि (आत्म-मग्नता/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। 1391 [यह सोचकर,] 'मैं वह हूँ जिसने लक्षणहीन मानसिक समाधि (आत्म-मग्नता/सम्मोहन) प्राप्त की है,' वह अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों के साथ संबंध स्थापित करता है। जैसे-जैसे वह उनके साथ संबंध स्थापित करता है और उनसे घनिष्ठ होता है, जैसे-जैसे वह उनके साथ खुलकर बातचीत करता है, कामवासना (राग) उसके मन पर हावी हो जाती है। कामवासना (राग) से ग्रस्त होकर वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।"

मान लीजिए कि कोई राजा या राजमंत्री चार भागों वाली सेना के साथ किसी राजमार्ग पर यात्रा कर रहा था और उसने रात बिताने के लिए किसी घने जंगल में डेरा डाला। हाथियों, घोड़ों, रथ चालकों और पैदल सेना की आवाज़ों और ढोल, नगाड़े, शंख और तुरही की आवाज़ और शोर के कारण झींगुरों की आवाज़ गायब हो गई। क्या कोई सही कह सकता है: 'अब इस घने जंगल में झींगुरों की आवाज़ कभी दोबारा नहीं सुनाई देगी'? [398]

"बिल्कुल नहीं, मित्र। क्योंकि ऐसा संभव है कि राजा या राजमंत्री उस घने जंगल को छोड़ दें, और तब झींगुरों की आवाज फिर से सुनाई देने लगेगी।"

"इसी प्रकार, सभी चिह्नों पर ध्यान न देने के कारण, यहाँ कोई व्यक्ति चिह्नरहित मानसिक समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है।"

यह सोचकर कि 'मैं वह हूं जिसने चिह्नरहित मानसिक समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त की है', वह अन्य भिक्षुओं से जुड़ जाता है... वह प्रशिक्षण छोड़ देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है।

कुछ समय बाद पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त ने साधना त्याग कर परलोक में लौट गए। उनके भिक्षु मित्रों ने पूज्य महाकोत्थिता से संपर्क किया और उनसे कहा: "क्या पूज्य महाकोत्थिता ने चित्त हत्थिसारिपुत्त के मन को अपने मन से ग्रहण कर लिया और यह समझ लिया कि 'चित्त हत्थिसारिपुत्त अमुक ध्यान अवस्था और सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी साधना त्याग कर परलोक में लौट जाते हैं'? या क्या देवताओं ने उन्हें यह बात बताई?"

"मित्रों, मैंने चित्त हत्थिसरिपुत्त के मन को अपने मन से समाहित किया और समझा: 'चित्त हत्थिसरिपुत्त अमुक ध्यान अवस्थाओं और उपलब्धियों को प्राप्त करते हैं, फिर भी वे प्रशिक्षण छोड़कर निम्न जीवन में लौट जाते हैं। और देवताओं (देवदूतों) ने भी मुझे इस विषय की सूचना दी।"

तब चित्त हत्थिसारिपुत्त के वे भिक्षु मित्र भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, [399] एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, चित्त हत्थिसारिपुत्त ने अमुक ध्यान निवास और उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, फिर भी उन्होंने प्रशिक्षण त्याग दिया और निम्न जीवन में लौट आए।"

"भिक्षुओं, शीघ्र ही चित्त त्याग करने का विचार करेगा।" 1392

इसके कुछ समय बाद ही चित्त हत्थिसारिपुत्त ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, गेरुए वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर लिया। फिर एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त ने इसी जीवन में ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को प्रत्यक्ष ज्ञान से जान लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। 1393 उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।" और पूज्य चित्त हत्थिसारिपुत्त अरहंतों में से एक बन गए।

---

61 मध्य (मज्जे सं. मध्य)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) बरनासी में इसिपताना के हिरण पार्क में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, कई वरिष्ठ भिक्षु मंडप कक्ष में एकत्रित होकर बैठे थे, तभी यह बातचीत हुई: "मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने परायण में, 'मत्तेय के प्रश्न' 394 में कहा है।"

दोनों छोरों को समझकर, बुद्धिमान व्यक्ति मध्य मार्ग में नहीं अटकता। 1395 मैं उसे महान पुरुष कहता हूँ: उसने यहाँ दर्जी से भी बढ़कर उपलब्धि हासिल की है।

"मित्रों, पहला सिरा क्या है? दूसरा सिरा क्या है? बीच में क्या है? और दर्जी क्या है?"

(1) जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं से कहा: "हे मित्रों, संपर्क एक लक्ष्य है; संपर्क का उत्पन्न होना दूसरा लक्ष्य है; संपर्क का समाप्त होना मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उसे बांधती है। क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था के उत्पन्न होने से जोड़ देती है। 1396 इसी प्रकार भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से उस ज्ञान को प्राप्त करता है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए; पूर्ण रूप से उस ज्ञान को समझता है जिसे पूर्ण रूप से समझना चाहिए; और ऐसा करके वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।" 1397

(2) जब यह कहा गया, तो एक अन्य भिक्षु ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा, “हे मित्रों, अतीत एक लक्ष्य है; भविष्य दूसरा लक्ष्य है; वर्तमान मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) वह सूत्र है। क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी जन्म-मृत्यु के कारण से जोड़ देती है। इसी प्रकार एक भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से वह जान पाता है जो प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए... इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।”

(3) जब यह कहा गया, तो एक अन्य भिक्षु ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "हे मित्रों, सुखदायक अनुभूति (वेदना) एक लक्ष्य है; कष्टदायक अनुभूति (वेदना) दूसरा लक्ष्य है; न कष्टदायक न सुखदायक अनुभूति (वेदना) मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) वह सूत्र है। क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था के सृजन से जोड़ देती है। इसी प्रकार भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से उस बात को जान पाता है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए... इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।"

(4) जब यह कहा गया, तो एक अन्य भिक्षु ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "हे मित्रों, मन (नाम) एक लक्ष्य है; रूप दूसरा लक्ष्य है; चेतना मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उसे जोड़ने वाली है। 398 क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था (भावो/पुनर्जन्म का कारण) से जोड़ देती है। इसी प्रकार भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से वह जान पाता है जो प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए... इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।"

(5) जब यह कहा गया, तो एक अन्य भिक्षु ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "हे मित्रों, छह आंतरिक आधार एक लक्ष्य हैं; छह बाह्य आधार दूसरा लक्ष्य हैं; चेतना मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उसे बुनने वाली है। 1399 क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था के निर्माण से जोड़ती है। इसी प्रकार एक भिक्षु [401] प्रत्यक्ष रूप से वह जान पाता है जो प्रत्यक्ष रूप से जाना जाना चाहिए... इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।"

(6) जब यह कहा गया, तो एक अन्य भिक्षु ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "हे मित्रों, व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) एक लक्ष्य है; व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का उद्‌गम दूसरा लक्ष्य है; व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का अंत मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) इसे बुनती है। 1400 क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के निर्माण से जोड़ देती है। इसी प्रकार एक भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से उस ज्ञान को प्राप्त करता है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए; उस ज्ञान को पूर्ण रूप से समझता है जिसे पूर्ण रूप से समझना चाहिए; और ऐसा करके, वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने अन्य वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा, “मित्रों, हम सबने अपनी-अपनी प्रेरणा के अनुसार व्याख्या कर दी है। आइए, हम भगवान (बुद्ध) के पास चलें और उन्हें इस विषय की जानकारी दें। जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) हमें इसका अर्थ समझाएंगे, उसी प्रकार हमें इसे अपने मन में रखना चाहिए।”

“जी, मित्र,” उन वरिष्ठ भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब वरिष्ठ भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें सारी बातचीत बताई, [पूछते हुए] “भंते, हम में से किसने अच्छा बोला?”

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "भिक्षुओं, एक तरह से आप सभी ने अच्छा कहा है, लेकिन ध्यान से सुनो और गौर करो क्योंकि मैं तुम्हें बताता हूँ कि परायण में, 'मत्तेय के प्रश्न' में मैंने जो कहा था उसका मेरा क्या तात्पर्य था:

"दोनों छोरों को समझ लेने के बाद, बुद्धिमान व्यक्ति मध्य मार्ग में नहीं अटकता। मैं उसे महान व्यक्ति कहता हूँ: उसने यहाँ दर्जी से भी बढ़कर उपलब्धि हासिल की है।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, संपर्क एक लक्ष्य है; संपर्क की उत्पत्ति दूसरा लक्ष्य है; संपर्क का अंत मध्य में है; और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) वह सूत्र है। क्योंकि तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) व्यक्ति को किसी न किसी अवस्था के सृजन से जोड़ देती है। इसी प्रकार भिक्षु प्रत्यक्ष रूप से उस ज्ञान को प्राप्त करता है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहिए; उस ज्ञान को पूर्णतः समझता है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए; और ऐसा करके वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।

---

62 ज्ञान 1402 (पुरीसिन्द्रियाना सं. पुरुष इन्द्रिय ज्ञान)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे, जब वे दंडकप्पक नामक एक नगर में पहुँचे। तब भगवान (बुद्ध) ने मुख्य मार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए, और वे भिक्षु विश्राम गृह की तलाश में दंडकप्पक में प्रवेश कर गए।

तब पूज्य आनंद अपने कुछ भिक्षुओं के साथ अचिरवती नदी में स्नान करने गए। स्नान करके वापस आने पर वे एक ही वस्त्र में अपने शरीर को सुखा रहे थे। तभी एक भिक्षु पूज्य आनंद के पास आया और उनसे बोला, “मित्र आनंद, क्या भगवान (बुद्ध) ने देवदत्त के विषय में यह बात पूरी तरह विचार करने के बाद कही थी कि ‘देवदत्त दुख के लोक में जाने वाला है, नरक में जाएगा और युगों तक वहीं रहेगा, उसका उद्धार संभव नहीं है’ या उन्होंने यह बात केवल लाक्षणिक अर्थ में कही थी?”

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ठीक इसी प्रकार इसकी घोषणा की थी।" 1403

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और [जो कुछ हुआ था उसका वर्णन करते हुए]: [403] "जब यह कहा गया, भंते, मैंने उस भिक्षु से कहा: 'मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ठीक इसी तरह यह बात कही थी।"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "आनंद, वह भिक्षु या तो नवदीक्षित है, संन्यासी जीवन में गए हुए उसे ज्यादा समय नहीं हुआ है, या फिर वह एक नासमझ और अयोग्य बुजुर्ग है। क्योंकि जब मैंने यह बात स्पष्ट रूप से कह दी है, तो उसे इसमें कोई संदेह कैसे हो सकता है? 1404 हे आनंद, मुझे देवदत्त के अलावा कोई और ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जिसके बारे में मैंने इतना गहन विचार-विमर्श करने के बाद कोई घोषणा की हो। जब तक मुझे देवदत्त में एक बाल के सिरे के बराबर भी उज्ज्वल गुण दिखाई दिया, तब तक मैंने उसके बारे में यह घोषणा नहीं की: 'देवदत्त दुख के लोक में जाने वाला है, नरक में जाने वाला है, और वह युगों तक वहीं रहेगा, उद्धार नहीं पा सकेगा।' हे आनंद, मैंने यह घोषणा तभी की जब मुझे देवदत्त में एक बाल के सिरे के बराबर भी उज्ज्वल गुण नहीं दिखाई दिया। 1405

"मान लीजिए कि एक गटर मनुष्य की ऊँचाई से भी गहरा है और ऊपर तक मल से भरा हुआ है, और एक आदमी उसमें इस तरह डूबा हुआ है कि उसका सिर डूबा हुआ है। तब एक आदमी उसकी भलाई, कल्याण और सुरक्षा की कामना करते हुए, उसे गटर से बाहर निकालने की इच्छा से प्रकट होगा। वह गटर के चारों ओर चक्कर लगाएगा, लेकिन उसे उस आदमी का एक बाल के सिरे जितना छोटा हिस्सा भी मल से सना हुआ नहीं दिखाई देगा [404] जहाँ वह उसे पकड़कर बाहर निकाल सके। ठीक इसी प्रकार, आनंद, जब मैंने देवदत्त में एक बाल के सिरे जितना छोटा सा भी उज्ज्वल गुण नहीं देखा, तभी मैंने उसके बारे में कहा: 'देवदत्त दुख के लोक में जाने वाला है, नरक में जाने वाला है, और वह वहाँ युगों तक अप्रतिरोध्य रहेगा।'"

"हे आनंद, यदि तुम तथागत (बुद्ध) के व्यक्ति की इंद्रियों के ज्ञान को सुनोगे, तो मैं उसका विश्लेषण करूँगा।" 1406

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)! यही समय है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)! भगवान (बुद्ध) को व्यक्ति की इंद्रियों के ज्ञान का विश्लेषण करना चाहिए। भगवान (बुद्ध) से यह सुनकर भिक्षु इसे अपने मन में धारण करेंगे।"

"तो फिर, आनंद, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "हे आनंद, मैंने अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करते हुए उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) पाए जाते हैं।' बाद में, मैंने अपने मन से उसके मन को समाहित करते हुए उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति के लाभकारी (कुशल) गुण लुप्त हो गए हैं, हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) प्रकट हो गए हैं, परन्तु उसका लाभकारी (कुशल) मूल अभी तक नष्ट नहीं हुआ है। उसके उस लाभकारी (कुशल) मूल से लाभकारी (कुशल) गुण प्रकट होंगे। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन नहीं होगा।' मान लीजिए कि अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य की गर्मी से अप्रभावित, उपजाऊ,

अच्छी तरह से संरक्षित बीज एक अच्छे खेत में अच्छी तरह से तैयार मिट्टी में बो दिए गए। क्या आप नहीं जानते: 'ये बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और परिपक्व होंगे'?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, अपने मन से उनके मन को समाहित करके... [405] ... मैं उन्हें इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति के लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) लुप्त हो गए हैं, हानिकारक (अकुशल) गुण प्रकट हो गए हैं, परन्तु उनका एक लाभकारी (कुशल) मूल है जो नष्ट नहीं हुआ है। उनके उस लाभकारी (कुशल) मूल से लाभकारी (कुशल) गुण प्रकट होंगे। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन नहीं होगा। इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसकी क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी दूसरे व्यक्ति के मन को समाहित करके गुणों की भविष्य में उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं।"

(2) "फिर, हे आनंद, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति का अध्ययन करते हुए समझा कि: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) पाए जाते हैं। बाद में, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति का अध्ययन करते हुए समझा कि: 'इस व्यक्ति के हानिकारक (अकुशल) गुण समाप्त हो गए हैं, लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) प्रकट हैं, लेकिन इसमें एक हानिकारक (अकुशल) जड़ है जिसका उन्मूलन नहीं हुआ है। इसकी उस हानिकारक (अकुशल) जड़ से हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होंगे। इस प्रकार यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन होगा। मान लीजिए, हे आनंद, साबुत, अक्षुण्ण, हवा और सूर्य की गर्मी से अप्रभावित, उपजाऊ, अच्छी तरह से संरक्षित बीज एक चौड़ी चट्टान पर रखे गए। क्या आप नहीं जानते: 'ये बीज उगेंगे नहीं, बढ़ेंगे नहीं और परिपक्व नहीं होंगे'?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, अपने मन से उनके मन को समाहित करके... मैं उन्हें इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति के हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) समाप्त हो गए हैं, लाभकारी (कुशल) गुण प्रकट हो गए हैं, परन्तु उनमें एक हानिकारक (अकुशल) मूल है जिसका उन्मूलन नहीं हुआ है। उनके उस हानिकारक (अकुशल) मूल से हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होंगे। अतः यह व्यक्ति [406] भविष्य में पतन के अधीन होगा।' इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसकी क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी दूसरे व्यक्ति के मन को समाहित करके गुणों की भविष्य में उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं।"

(3) "फिर, हे आनंद, मैंने अपने मन से किसी व्यक्ति का अध्ययन करते हुए उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) दोनों पाए जाते हैं। बाद में, मैंने अपने मन से उसका अध्ययन करते हुए उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में एक बाल के सिरे के बराबर भी उज्ज्वल गुण नहीं है। इस व्यक्ति में केवल काले, हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) ही हैं। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेगा।' मान लीजिए, हे आनंद, हवा और सूर्य की गर्मी से टूटे, खराब हुए, क्षतिग्रस्त बीजों को अच्छी तरह से तैयार की गई मिट्टी में अच्छे खेत में बो दिया जाए। क्या आप नहीं जानते: 'ये बीज उगेंगे नहीं, बढ़ेंगे नहीं और पकेंगे नहीं'?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, अपने मन से उनके मन को समाहित करके... मैं उन्हें इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति में एक बाल के अंश के बराबर भी उज्ज्वल गुण नहीं है। इस व्यक्ति में केवल काले, हानिकारक (अकुशल) गुण ही हैं। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, यह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेगा।' इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसे जान लेते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसकी क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) गुणों की भविष्य की उत्पत्ति को जान लेते हैं - दूसरे के मन को अपने मन से समाहित करके।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

[407] "भंते, क्या तीन अन्य व्यक्तियों का वर्णन करना संभव है?"

उन तीनों के समकक्ष के रूप में?

"यह संभव है, आनंद," भगवान (बुद्ध) ने कहा।

(4) "हे आनंद, यहाँ मैंने अपने मन से किसी व्यक्ति का अध्ययन किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) दोनों पाए जाते हैं।' बाद में, मैंने अपने मन से उसका अध्ययन किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति के लाभकारी (कुशल) गुण लुप्त हो गए हैं, हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) प्रकट हो गए हैं, परन्तु इसका लाभकारी (कुशल) मूल अभी तक नष्ट नहीं हुआ है। वह भी पूर्णतः नष्ट होने वाला है। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन का पात्र होगा।' मान लीजिए, हे आनंद, जलते, धधकते और चमकते अंगारे एक विशाल चट्टान पर रखे हों। क्या आप यह नहीं जानते होंगे: 'ये अंगारे बढ़ेंगे, फैलेंगे और फैलेंगे नहीं'?"

"हां, भंते।"

"या मान लो, आनंद, शाम हो रही है और सूरज डूब रहा है। क्या तुम नहीं जानते: 'प्रकाश गायब हो जाएगा और अंधेरा छा जाएगा'?"

"हां, भंते।"

या मान लीजिए, आनंद, आधी रात होने वाली है, भोजन का समय है। 1408 क्या आप नहीं जानते: 'प्रकाश गायब हो गया है और अंधेरा छा गया है'?

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, अपने मन से उनके मन को समाहित करके... मैं उन्हें इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति के लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) लुप्त हो गए हैं, हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) प्रकट हैं, परन्तु उनका एक लाभकारी (कुशल) मूल है जो अभी तक नष्ट नहीं हुआ है। वह भी पूर्णतः नष्ट होने वाला है। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन होगा।' इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, [408] तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसकी क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी दूसरे व्यक्ति के मन को समाहित करके गुणों की भविष्य में उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं।"

(5) "फिर, हे आनंद, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति को ग्रहण किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) पाए जाते हैं।' एक बार फिर, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति को ग्रहण किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति के हानिकारक (अकुशल) गुण समाप्त हो गए हैं, लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) प्रकट हैं, परन्तु इसमें एक हानिकारक (अकुशल) जड़ है जिसका उन्मूलन नहीं हुआ है। वह भी पूर्णतः नष्ट होने वाली है। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन नहीं होगा।' मान लीजिए, हे आनंद, जलते हुए, धधकते और चमकते हुए अंगारे सूखी घास या लकड़ी के ढेर पर रखे हों। क्या आप नहीं जानते: 'ये अंगारे बढ़ेंगे और फैलेंगे'?"

"हां, भंते।"

"या मान लो, आनंद, यह वह समय है जब रात ढल रही है और सूर्योदय हो रहा है। क्या तुम नहीं जानते: 'अंधकार छंटेगा और प्रकाश प्रकट होगा'?"

"हां, भंते।"

या मान लीजिए, आनंद, दोपहर होने वाली है, भोजन का समय है। क्या आपको पता नहीं चलेगा: 'अंधेरा छंट गया है और उजाला हो गया है'?

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, अपने मन से उनके मन को समाहित करके... मैं उन्हें इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति के हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) समाप्त हो गए हैं, लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) प्रकट हैं, परन्तु उनमें एक हानिकारक (अकुशल) मूल है जिसका उन्मूलन नहीं हुआ है। वह भी पूर्णतः नष्ट होने वाला है। अतः यह व्यक्ति भविष्य में पतन के अधीन नहीं होगा।' इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी व्यक्ति के मन को समाहित करके उसकी क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। [409] इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) अपने मन से किसी दूसरे व्यक्ति के मन को समाहित करके गुणों की भविष्य की उत्पत्ति को जानते हैं।"

(6) "फिर, हे आनंद, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति का अध्ययन किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में लाभकारी (कुशल) गुण और हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) पाए जाते हैं।' एक बार फिर, मैंने अपने मन से उस व्यक्ति का अध्ययन किया और उसे इस प्रकार समझा: 'इस व्यक्ति में एक बाल के अंश के बराबर भी हानिकारक (अकुशल) गुण नहीं है। यह व्यक्ति विशुद्ध रूप से उज्ज्वल और निष्कलंक गुणों से युक्त है। वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करेगा।' मान लीजिए, हे आनंद, ठंडी और बुझी हुई अंगारों को सूखी घास या लकड़ी के ढेर पर रख दिया जाए। क्या आप नहीं जानते: 'ये अंगारे बढ़ेंगे नहीं, फैलेंगे नहीं'?"

"हां, भंते।"

"इसी प्रकार, आनंद, किसी के मन को अपने मन से समाहित करके... मैं उसे इस प्रकार समझता हूँ: 'इस व्यक्ति में एक बाल के अंश के बराबर भी अकुशल गुण नहीं है। यह व्यक्ति विशुद्ध रूप से उज्ज्वल और निष्कलंक गुणों से परिपूर्ण है। वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करेगा।' इस प्रकार, आनंद, तथागत (बुद्ध) किसी व्यक्ति के मन को अपने मन से समाहित करके उसे जान लेते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) किसी व्यक्ति की क्षमताओं का ज्ञान उसके मन को अपने मन से समाहित करके प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, तथागत (बुद्ध) गुणों की भविष्य में उत्पत्ति को अपने मन से दूसरे के मन को समाहित करके जान लेते हैं।"

"आनंद, पहले तीन व्यक्तियों में से एक पतन के अधीन नहीं है, एक पतन के अधीन है, और एक दुख के लोक की ओर, नरक की ओर जाने वाला है। बाद के तीन व्यक्तियों में से एक पतन के अधीन नहीं है, एक पतन के अधीन है, और एक निर्वाण प्राप्त करने के लिए बाध्य है।" [410]

---

63 भेदक (निब्बेधिका)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें धम्म की गहन व्याख्या सिखाऊंगा। 1409 ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, धम्म की वह गहन व्याख्या क्या है?"

(1) "इंद्रिय सुखों को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की विविधता को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों के परिणाम को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की समाप्ति को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए।

(2) "संवेदनाओं को समझना चाहिए; संवेदनाओं के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; संवेदनाओं की विविधता को समझना चाहिए; संवेदनाओं के परिणाम को समझना चाहिए; संवेदनाओं के निवारण को समझना चाहिए; संवेदनाओं के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए।"

(3) "धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) को समझना चाहिए; धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) की विविधता को समझना चाहिए; धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के परिणाम को समझना चाहिए; धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के समापन को समझना चाहिए; धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के समापन की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए।

(4) "कलंकों को समझा जाना चाहिए; कलंकों के स्रोत और उत्पत्ति को समझा जाना चाहिए; कलंकों की विविधता को समझा जाना चाहिए; कलंकों के परिणाम को समझा जाना चाहिए; कलंकों की समाप्ति को समझा जाना चाहिए; कलंकों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए।

(5) कर्म को समझना चाहिए; कर्म के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; कर्म की विविधता को समझना चाहिए; कर्म के परिणाम को समझना चाहिए; कर्म के निवारण को समझना चाहिए; कर्म के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए। 1410

(6) "दुख को समझना चाहिए; दुख के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; दुख की विविधता को समझना चाहिए; दुख के परिणाम को समझना चाहिए; दुख की समाप्ति को समझना चाहिए; दुख की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए।

(1) "जब यह कहा गया: 'इंद्रिय सुखों को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की विविधता को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों के परिणाम [411] को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की समाप्ति को समझना चाहिए; इंद्रिय सुखों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए,' तो यह किस कारण से कहा गया था?"

भिक्षुओं, इंद्रिय सुख के ये पाँच विषय हैं: आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं; कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित होने वाले विषय जो वांछित, मनभावन, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं। परन्तु ये इंद्रिय सुख नहीं हैं; भगवान की साधना में इन्हें 'इंद्रिय सुख के विषय' कहा जाता है। किसी व्यक्ति का इंद्रिय सुख कामवासना (राग) से प्रेरित इरादा है।

"ये संसार की सुंदर वस्तुएँ इंद्रिय सुख नहीं हैं:

किसी व्यक्ति का इंद्रिय सुख कामुक इच्छा है; सुंदर वस्तुएँ संसार में जैसी हैं वैसी ही बनी रहती हैं, परन्तु बुद्धिमान लोग उनके प्रति लालसा को त्याग देते हैं।

और हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों का स्रोत और उद्गम क्या है? संपर्क ही उनका स्रोत और उद्गम है। 1412

"इंद्रिय सुखों की विविधता क्या है? रूपों के प्रति कामुक इच्छा एक बात है, ध्वनियों के प्रति कामुक इच्छा दूसरी, गंधों के प्रति कामुक इच्छा तीसरी, स्वादों के प्रति कामुक इच्छा चौथी और स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति कामुक इच्छा चौथी। इसे ही इंद्रिय सुखों की विविधता कहते हैं।"

"इंद्रिय सुखों का परिणाम क्या होता है? व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुरूप एक व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) उत्पन्न करता है, जो पुण्य या पाप दोनों का परिणाम हो सकता है। 1413 इसे ही इंद्रिय सुखों का परिणाम कहा जाता है।"

और इंद्रिय सुखों का अंत क्या है? संपर्क समाप्त होने पर ही इंद्रिय सुखों का अंत हो जाता है।

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग इंद्रिय सुखों की समाप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग है, अर्थात्, सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही [412] कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही समाधि (आत्म-अवशोषण/तल्लीनता)।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार इंद्रिय सुखों, उनके स्रोत और उत्पत्ति, उनकी विविधता, उनके परिणाम, उनकी समाप्ति और उनकी समाप्ति के मार्ग को समझ लेता है, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को ही इंद्रिय सुखों की समाप्ति समझता है।"

"जब यह कहा गया था: 'इंद्रिय सुखों को समझा जाना चाहिए... इंद्रिय सुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए', तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(2) "जब यह कहा गया: 'संवेदनाओं (वेदनाओं) को समझना चाहिए...संवेदनाओं (वेदनाओं) की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए' तो यह किस कारण से कहा गया था?

भिक्षुओं, तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) होती हैं: सुखद संवेदना (वेदना), दुखद संवेदना (वेदना), और न दुखद और न सुखद संवेदना (वेदना)।

और संवेदनाओं (वेदना) का स्रोत और उत्पत्ति क्या है? संपर्क ही उनका स्रोत और उत्पत्ति है।

और संवेदनाओं की विविधता (वेदना) क्या है? सांसारिक सुखदायक संवेदना (वेदना) है, आध्यात्मिक सुखदायक संवेदना (वेदना) है; सांसारिक पीड़ादायक संवेदना (वेदना) है; आध्यात्मिक पीड़ादायक संवेदना (वेदना) है; सांसारिक न पीड़ादायक और न सुखदायक संवेदना (वेदना) है, और आध्यात्मिक न पीड़ादायक और न सुखदायक संवेदना (वेदना) है। इसे ही संवेदनाओं की विविधता (वेदना) कहते हैं।

और वेदनाओं का परिणाम क्या है? व्यक्ति अपने अनुभव की गई किसी भी वेदना के अनुरूप एक व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) उत्पन्न करता है, जो पुण्य या पाप दोनों का परिणाम हो सकता है। इसे ही वेदनाओं का परिणाम कहा जाता है।

और वेदना का अंत क्या है? संपर्क समाप्त होने पर ही वेदना का अंत हो जाता है।

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग ही संवेदनाओं (वेदना) के निवारण की ओर ले जाता है, अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संवेदना (वेदना), संवेदनाओं के स्रोत और उत्पत्ति (वेदना), [413] संवेदनाओं की विविधता (वेदना), संवेदनाओं के परिणाम (वेदना), संवेदनाओं की समाप्ति (वेदना), और संवेदनाओं की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग (वेदना) को समझता है, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को संवेदनाओं की समाप्ति (वेदना) समझता है।"

जब यह कहा गया कि: "संवेदनाओं (वेदना) को समझना चाहिए, ...संवेदनाओं (वेदना) की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए" तो इसी कारण से यह कहा गया था।

(3) "जब यह कहा गया: "धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) को समझा जाना चाहिए... धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के समापन की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए," तो यह किस कारण से कहा गया था?

"भिक्खुओ, ये छह धारणाएं (सन्ना/सन्या) हैं: रूपों की धारणा (सन्ना/सन्या), ध्वनियों की धारणा (सन्न/सन्या), गंधों की धारणा (सन्न/सन्या), स्वाद की धारणा (सन्न/सन्या), स्पर्श वस्तुओं की धारणा (सन्न/सन्या), मानसिक घटनाओं की धारणा (धम्म)।

और धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) का स्रोत और उत्पत्ति क्या है? संपर्क ही उनका स्रोत और उत्पत्ति है।

और धारणाओं की विविधता क्या है? रूपों की धारणा एक है, ध्वनियों की धारणा दूसरी, गंधों की धारणा तीसरी, स्वादों की धारणा चौथी, स्पर्शनीय वस्तुओं की धारणा चौथी और मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा चौथी। इसे ही धारणाओं की विविधता कहते हैं।

और - अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) का परिणाम क्या है? मैं कहता हूँ कि अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) से अभिव्यक्ति होती है। 1416 जिस भी तरीके से कोई किसी चीज को अनुभव करता है, ठीक उसी तरह वह स्वयं को व्यक्त करता है, [यह कहते हुए:] 'मैंने अमुक बात को अनुभव किया।' इसे अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) का परिणाम कहा जाता है।

और अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) का अंत क्या है? संपर्क के अंत के साथ अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) का अंत हो जाता है।

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग धारणाओं (सन्ना/संग्या) की समाप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग है, अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता)।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार धारणाओं (सन्ना/संग्य), धारणाओं (सन्ना/संग्य) के स्रोत और उत्पत्ति, [4141 धारणाओं (सन्ना/संग्य) की विविधता, धारणाओं (सन्ना/संग्य) के परिणाम, धारणाओं (सन्ना/संग्य) की समाप्ति और धारणाओं (सन्ना/संग्य) की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को धारणाओं (सन्ना/संग्य) की समाप्ति समझता है।"

"जब यह कहा गया कि 'धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) को समझा जाना चाहिए... धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(4) "जब यह कहा गया: 'कलंक को इस प्रकार समझा जाना चाहिए

'कलंकों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए,' यह बात किस कारण से कही गई थी?

भिक्षुओं, तीन प्रकार के दोष हैं: कामुकता का दोष, अस्तित्व का दोष (भाव/पुनर्जन्म का कारण), और अज्ञान का दोष।

और इन कलंकों का स्रोत और उत्पत्ति क्या है? अज्ञानता ही इनका स्रोत और उत्पत्ति है।

और दोषों की विविधता क्या है? कुछ दोष नरक की ओर ले जाते हैं; कुछ दोष पशु जगत की ओर ले जाते हैं; कुछ दोष पीड़ित आत्माओं के लोक की ओर ले जाते हैं; कुछ दोष मानव जगत की ओर ले जाते हैं; कुछ दोष देवलोक की ओर ले जाते हैं। इसे ही दोषों की विविधता कहते हैं।

और इन दोषों का परिणाम क्या है? अज्ञान में डूबा हुआ व्यक्ति एक समान व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) उत्पन्न करता है, जो पुण्य या पाप का परिणाम हो सकता है। इसे ही दोषों का परिणाम कहा जाता है।

और दोषों का निवारण क्या है? अज्ञान के निवारण से दोषों का निवारण हो जाता है।

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग दोषों के निवारण की ओर ले जाता है, अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन)।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दोषों, दोषों के स्रोत और उत्पत्ति, दोषों की विविधता, दोषों के परिणाम, दोषों की निवारण और दोषों की निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को दोषों की निवारण समझता है। [415]

"जब यह कहा गया था: 'कलंकों को समझा जाना चाहिए... कलंकों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए' तो इसका कारण यही था।"

(5) "जब यह कहा गया कि 'तैरण को समझना चाहिए... कर्मों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया?"

"भिक्षुओं, मैं इसे ही सजग कर्म कहता हूँ। 1417 क्योंकि इच्छा करने पर ही व्यक्ति शरीर, वाणी या मन से कर्म करता है।"

और कर्म का स्रोत और उत्पत्ति क्या है? संपर्क ही इसका स्रोत और उत्पत्ति है।

और कर्मों की विविधता क्या है? नरक में कर्मों का भोग करना पड़ता है; पशु जगत में कर्मों का भोग करना पड़ता है; व्यथित आत्माओं के लोक में कर्मों का भोग करना पड़ता है; मनुष्य जगत में कर्मों का भोग करना पड़ता है; और देवलोक में कर्मों का भोग करना पड़ता है। 1418 इसे ही कर्मों की विविधता कहते हैं।

और कर्म का फल क्या है? कर्म का फल, मैं कहता हूँ, तीन प्रकार का होता है: इसी जीवन में, या अगले जन्म में, या किसी अन्य अवसर पर। इसे ही कर्म का फल कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, कर्मों का निवारण क्या है? संपर्क समाप्त होने पर कर्मों का निवारण हो जाता है। 1420

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग कर्मों के निवारण की ओर ले जाता है, अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य कर्म, कर्म के स्रोत और उत्पत्ति, कर्म की विविधता, कर्म के परिणाम, कर्म की समाप्ति और कर्म की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को इस प्रकार समझ लेता है, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य जीवन को कर्म की समाप्ति समझता है।"

"जब यह कहा गया: 'कर्म (कर्म/कर्मों) को समझा जाना चाहिए... [416] कर्म (कर्म/कर्मों) की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए' तो इसी कारण से यह कहा गया था।

(6) "जब यह कहा गया: 'दुख को समझना चाहिए; दुख के स्रोत और उत्पत्ति को समझना चाहिए; दुख की विविधता को समझना चाहिए; दुख के परिणाम को समझना चाहिए; दुख की समाप्ति को समझना चाहिए; दुख की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझना चाहिए' तो यह किस कारण से कहा गया था?"

पुनर्जन्म दुख है; बुढ़ापा दुख है; बीमारी दुख है; मृत्यु दुख है; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा दुख है; इच्छा पूरी न होना दुख है; संक्षेप में, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंध दुख हैं।

और दुख का स्रोत और उत्पत्ति क्या है? तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) ही इसका स्रोत और उत्पत्ति है।

और दुखों की विविधता क्या है? अत्यधिक दुख होता है; हल्का दुख होता है; धीरे-धीरे दूर होने वाला दुख होता है; शीघ्र ही दूर होने वाला दुख होता है। इसे ही दुखों की विविधता कहते हैं।

और दुःख का परिणाम क्या होता है? यहाँ, दुःख से ग्रस्त कोई व्यक्ति, दुःख से व्याकुल होकर, शोक करता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। या फिर, दुःख से व्याकुल होकर, दुःख से व्याकुल होकर, वह बाहर किसी की खोज में निकल पड़ता है, यह कहते हुए: 'कौन जानता है कि इस दुःख को समाप्त करने के लिए एक या दो शब्द कौन जानता है?' 1421 मैं कहता हूँ, दुःख का परिणाम या तो भ्रम होता है या खोज। इसे दुःख का परिणाम कहा जाता है।

और दुखों का निवारण क्या है? तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के निवारण से ही दुखों का निवारण होता है।

"यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है, अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन)।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दुख को समझता है, [417] दुख का स्रोत और उत्पत्ति, दुख की विविधता, दुख का परिणाम, दुख का निवारण, और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग, तो वह इस गहन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को दुख का निवारण समझता है।

"जब यह कहा गया था: 'दुख को समझा जाना चाहिए...दुख की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझा जाना चाहिए', तो इसी कारण से यह बात कही गई थी।"

"भिक्षुओं, यह धम्म की गहन व्याख्या है।"

---

64 शेर की दहाड़

"भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) की ये छह शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।1422 वे छह शक्तियाँ कौन सी हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं। 1423 क्योंकि तथागत (बुद्ध) यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं, यह तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।

(2) "तथागत (बुद्ध) कर्मों के अतीत, भविष्य और वर्तमान के वास्तविक परिणाम को संभावनाओं और कारणों के संदर्भ में समझते हैं। 3424 चूंकि तथागत (बुद्ध) कर्मों के वास्तविक परिणाम को समझते हैं... यह भी तथागत (बुद्ध) की शक्ति है, जिसके द्वारा वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(3) "तथागत (बुद्ध) [418] ध्यान, मुक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और ध्यान संबंधी उपलब्धियों के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्‌भव को यथार्थ रूप में समझते हैं। 1425 चूंकि तथागत (बुद्ध) ध्यान के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्‌भव को यथार्थ रूप में समझते हैं... यह भी तथागत (बुद्ध) की शक्ति है जो तथागत (बुद्ध) के पास है, जिसके द्वारा वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(4) "तथागत (बुद्ध) अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) का स्मरण करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म... [जैसा कि 6:2 §4 में है]... इस प्रकार वे अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) के स्वरूपों और विवरणों का स्मरण करते हैं। चूँकि तथागत (बुद्ध) अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) के स्वरूपों और विवरणों का स्मरण करते हैं, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जो तथागत (बुद्ध) के पास है, जिसके द्वारा वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(5) "पुनः, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, तथागत (बुद्ध) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं... [जैसा कि 6:2 §5 में है]... और वे समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हश्र होता है। चूंकि तथागत (बुद्ध)... समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हश्र होता है, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जो तथागत (बुद्ध) के पास है, जिसके द्वारा वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(6) "फिर, दोषों के नाश के साथ, तथागत (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। चूंकि तथागत (बुद्ध) ने स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है... यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जो तथागत (बुद्ध) के पास है, जिसके द्वारा वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं। [419]

"ये तथागत (बुद्ध) की छह शक्तियाँ हैं जो तथागत (बुद्ध) के पास हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(1) "यदि हे भिक्षुओं, अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे उनके ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, जैसा कि वह वास्तव में संभव को संभव और असंभव को असंभव के रूप में समझते हैं, तो तथागत (बुद्ध) इस प्रकार पूछे जाने पर उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा उन्होंने इस ज्ञान को समझा है।

(2) "यदि अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे कर्म (भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के कर्मों) के परिणाम के बारे में उनके ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, तो तथागत (बुद्ध) इस प्रकार पूछे जाने पर उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा उन्होंने इस ज्ञान को समझा है।"

(3) "यदि अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे उनके ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, जो वास्तव में मलिनता, शुद्धि और ध्यान (सम्मोहन अवस्था), मुक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और ध्यान संबंधी उपलब्धियों के संदर्भ में हो, तो तथागत (बुद्ध) इस प्रकार पूछे जाने पर उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा उन्होंने इस ज्ञान को समझा है।"

(4) "यदि अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे उनके ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, जैसा कि वास्तव में उनके पिछले जन्मों (पूर्व जन्मों) की स्मृति से संबंधित है, तो [420] तथागत (बुद्ध), इस प्रकार पूछे जाने पर, उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा कि उन्होंने इस ज्ञान को समझा है। 1426

(5) "यदि अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे प्राणियों के नश्वर्य और पुनर्जन्म के बारे में उनके ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, तो तथागत (बुद्ध), जिनसे इस प्रकार प्रश्न पूछा गया है, उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा उन्होंने इस ज्ञान को समझा है।"

(6) "यदि अन्य लोग तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति के उनके वास्तविक ज्ञान से संबंधित कोई प्रश्न पूछें, तो तथागत (बुद्ध) इस प्रकार पूछे जाने पर उन्हें ठीक उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसा उन्होंने इस ज्ञान को समझा है। ..."

(1) "मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि संभव को संभव और असंभव को असंभव के रूप में जानने का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में है, स्वयं में लीन (समाधि में/समाधि) व्यक्ति के लिए है, न कि समाधि (स्व-लीनता/समाधि) से रहित व्यक्ति के लिए।"

(2) मैं कहता हूँ कि कर्म (कर्म/कर्मों) के भूतकाल, भविष्य और वर्तमान के परिणामों का ज्ञान, संभावनाओं और कारणों के संदर्भ में, उस व्यक्ति के लिए है जो स्वयं में लीन (समाधि में लीन) है, न कि उस व्यक्ति के लिए जिसमें समाधि (स्व-लीनता/समाधि) का अभाव है।

(3) मैं कहता हूँ कि ध्यान (सम्मोहन अवस्था), मुक्ति, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) और ध्यान संबंधी उपलब्धियों के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्भव का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में है, उस व्यक्ति के लिए है जो स्वयं में लीन (सम्मोहन/सम्मोहन में) है, न कि उस व्यक्ति के लिए जिसमें समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का अभाव है।

(4) मैं कहता हूँ कि अतीत के निवासों (पूर्व पुनर्जन्मों) की स्मृति का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में है, स्वयं में लीन (समाधि/समाधि में) व्यक्ति के लिए है, न कि समाधि (स्व-लीन/समाधि) से रहित व्यक्ति के लिए।

(5) मैं कहता हूँ कि प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में है, स्वयं में लीन (समाधि में) व्यक्ति के लिए है, न कि समाधि (स्वयं में लीन/समाधि) से रहित व्यक्ति के लिए।

(6) मैं कहता हूँ कि मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का वास्तविक ज्ञान, एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए है, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से रहित व्यक्ति के लिए नहीं।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) ही मार्ग है; समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का अभाव गलत मार्ग है।" [421]

VII. देवदूत अनुभाग (देवता)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

65 नॉन-रिटर्नर (अनागामीफला)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना, अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) के फल को प्राप्त करना संभव नहीं है। वे छह चीजें क्या हैं? विश्वास का अभाव, नैतिक लज्जा का अभाव, नैतिक लापरवाही, आलस्य, दुविधा और ज्ञान का अभाव। इन छह चीजों का त्याग किए बिना, अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) के फल को प्राप्त करना संभव नहीं है।

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने पर, अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) का फल प्राप्त होता है। वे छह चीजें क्या हैं? आस्था का अभाव... पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभाव। इन छह चीजों का त्याग करने पर, अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) का फल प्राप्त होता है।

---

66. मुक्त व्यक्ति (अरहंत)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है। वे छह चीजें क्या हैं? सुस्ती, आलस्य, बेचैनी, पश्चाताप, अविश्वास और आलस्य। इन छह चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है। [422]

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है। वे छह चीजें क्या हैं? सुस्ती... आलस्य। इन छह चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है।

---

67 मित्र (Mitta sans. Mitra)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु के बुरे मित्र, बुरे साथी और बुरे सहपाठी हों, जब वह बुरे मित्रों का अनुसरण करे, उनकी शरण ले और उनकी सेवा करे और उनके उदाहरण का पालन करे, (1) तो उसके लिए उचित आचरण का कर्तव्य निभाना असंभव है। उचित आचरण का कर्तव्य निभाए बिना, (2) उसके लिए प्रशिक्षु का कर्तव्य निभाना असंभव है। प्रशिक्षु का कर्तव्य निभाए बिना, (3) उसके लिए सद्‌गुणों का पालन करना असंभव है। सद्‌गुणों का पालन किए बिना, (4) उसके लिए इंद्रिय-संबंधी कामवासना (राग), (5) सरूप के प्रति कामवासना (राग), या (6) निराकार के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना असंभव है। 1427

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी हों, जब वह अच्छे मित्रों का अनुसरण करे, उनकी शरण ले और उनकी सेवा करे तथा उनके उदाहरण का पालन करे, (1) तो संभव है कि वह उचित आचरण के कर्तव्य का पालन करे। उचित आचरण के कर्तव्य का पालन करने के बाद, (2) संभव है कि वह प्रशिक्षु के कर्तव्य का पालन करे। प्रशिक्षु के कर्तव्य का पालन करने के बाद, (3) संभव है कि वह सद्‌गुणों का पालन करे। सद्‌गुणों का पालन करने के बाद, (4) संभव है कि वह इंद्रिय-संबंधी कामवासना (राग), (5) सरूप के प्रति कामवासना (राग), और (6) निराकार के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करे।

---

68 संगति में आनंद (संगनिकराम)

भिक्षुओं, (1) यह असंभव है कि जो भिक्षु संगति में आनंदित होता है, संगति में आनंद लेने के लिए समर्पित है; समूह में आनंदित होता है, समूह में आनंद लेने के लिए समर्पित है, वह एकांत में आनंद प्राप्त करे। (2) यह असंभव है कि जो एकांत में आनंदित नहीं होता [423] वह मन के विषय को प्राप्त कर सके। (3) यह असंभव है कि जो मन के विषय को प्राप्त नहीं करता वह सही दृष्टि को पूरा कर सके। (4) यह असंभव है कि जो सही दृष्टि को पूरा नहीं करता वह सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को पूरा कर सके। (5) यह असंभव है कि जो सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को पूरा नहीं करता वह बंधनों का त्याग कर सके। (6) बंधनों का त्याग किए बिना, यह असंभव है कि कोई निर्वाण प्राप्त कर सके।

भिक्षुओं, (1) यह संभव है कि जो भिक्षु संगति में आनंद नहीं लेता, संगति से प्रसन्न नहीं होता, संगति में आनंद के प्रति समर्पित नहीं होता; समूह में आनंद नहीं लेता, समूह से प्रसन्न नहीं होता, समूह में आनंद के प्रति समर्पित नहीं होता, वह एकांत में आनंद प्राप्त करे। (2) यह संभव है कि जो एकांत में आनंद लेता है, वह मन के विषय को प्राप्त कर ले। (3) यह संभव है कि जो मन के विषय को प्राप्त कर ले, वह सही दृष्टि को पूर्ण करे। (4) यह संभव है कि जो सही दृष्टि को पूर्ण करे, वह सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को पूर्ण करे। (5) यह संभव है कि जो सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को पूर्ण करे, वह बंधनों का त्याग कर दे। (6) बंधनों का त्याग करने के बाद, यह संभव है कि वह निर्वाण को प्राप्त कर ले।

---

69 एक देवता (देवदूत)

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर एक देवदूत (परी), जिसने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और बोला:

"भंते, ये छह गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, सुधार के प्रति सहजता और अच्छी मित्रता। ये छह गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।"

यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। गुरुजी सहमत हो गए। तब उस देवता (देवदूत) ने यह सोचकर कि "गुरुजी मुझसे सहमत हैं," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए। [424 j]

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) मेरे पास आए, उन्होंने मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और कहा: 'भंते, ये छह गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे छह क्या हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा... और अच्छी मित्रता। ये छह बातें भिक्षु के पतन को रोकती हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। यह कहकर, उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरे दाहिनी ओर मुख करके मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, मैं इस कथन का विस्तृत अर्थ समझता हूँ जिसे भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में इस प्रकार कहा है। भंते, यहाँ (1) एक भिक्षु स्वयं गुरु का आदर करता है और गुरु के प्रति आदर की प्रशंसा करता है; वह अन्य भिक्षुओं को, जो गुरु का आदर नहीं करते, गुरु के प्रति आदर विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है और उचित समय पर, सच्चे और ईमानदारी से, उन भिक्षुओं की प्रशंसा करता है जो गुरु का आदर करते हैं। (2) वह स्वयं धम्म (मार्ग) का आदर करता है। (3) ... संघ का आदर करता है ... (4) ... प्रशिक्षण का आदर करता है ... (5) ... सुधारना आसान है ... (6) ... उसके अच्छे मित्र होते हैं और वह अच्छी मित्रता की प्रशंसा करता है; वह अन्य भिक्षुओं को, जिनके अच्छे मित्र नहीं हैं, अच्छी मित्रता स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करता है और उचित समय पर, सच्चे और ईमानदारी से, उन भिक्षुओं की प्रशंसा करता है जिनके अच्छे मित्र हैं। भिक्षु जिनके अच्छे मित्र हों। हे भंते, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह अच्छा है कि तुम मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझ गए हो।"

"यहाँ, सारिपुत्त, स्वयं एक भिक्षु गुरु [425] का आदर करते हैं... [जैसा कि ऊपर पूर्ण रूप से वर्णित है]... वे उन भिक्षुओं की प्रशंसा करते हैं जिनके अच्छे मित्र हैं। इस प्रकार, संक्षेप में कही गई मेरी इस बात का अर्थ विस्तार से समझा जाना चाहिए।"

---

70 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन)

भिक्षुओं, (1) यह असंभव है कि कोई भिक्षु, शांत, उदात्त समाधि के बिना, जो शांति प्राप्ति से प्राप्त होती है और एकत्व को प्राप्त कर लेता है, विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग कर सके: एक होकर वह अनेक हो सकता है... [यहाँ सभी अंश 6:2 के समान संक्षिप्त हैं]... वह ब्रह्म जगत तक शरीर पर अधिकार कर सकता है। (2) यह असंभव है कि वह दिव्य श्रवण शक्ति से, जो शुद्ध और मानवीय से परे है, दोनों प्रकार की ध्वनियों, दिव्य और मानवीय, दूर और पास की ध्वनियों को सुन सके। (3) यह असंभव है कि वह अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से समाहित करके, समझ सके; कि वह कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझ सके... एक अमुक्त मन को अमुक्त के रूप में समझ सके। (4) यह असंभव है कि वह अपने अनेक अतीत को याद कर सके। (पूर्व जन्मों के) निवास स्थान... [426] उनके पहलुओं और विवरणों सहित। (5) यह असंभव है कि दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से परे है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सके... और समझ सके कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं। (6) यह असंभव है कि दोषों के नाश से, वह इस जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सके, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास कर सके।

भिक्षुओं, (1) यदि संभव हो कि एक भिक्षु, शांत, उदात्त समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में, जो शांति से प्राप्त होती है और एकत्व को प्राप्त कर लेता है, तो वह विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है... (2) दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकता है... (3) अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से समाहित करके समझ सकता है... (4) अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके पहलुओं और विवरणों सहित याद कर सकता है... (5) शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकता है... और समझ सकता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं... (6) दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं को अनुभव कर सकता है। यही जीवन, मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, और इसमें प्रवेश करने के बाद, इसमें निवास कर सकता था।"

---

71 साकार करने में सक्षम (सक्खीभब्बा)

"भिक्षुओं, छह गुणों से युक्त होने पर भी, उपयुक्त आधार होने पर भी, एक भिक्षु किसी विशेष अवस्था को प्राप्त करने में असमर्थ होता है। 1429 वे छह गुण क्या हैं? [427] (1) यहाँ, एक भिक्षु वास्तव में यह नहीं समझ पाता है: 'ये वे गुण हैं जो पतन से संबंधित हैं' और: (2) 'ये वे गुण हैं जो स्थिरता से संबंधित हैं' और: (3) 'ये वे गुण हैं जो विशिष्टता से संबंधित हैं,' और: (4) 'ये वे गुण हैं जो भेद से संबंधित हैं' (5) वह सावधानीपूर्वक अभ्यास नहीं करता है, और (6) वह उचित कार्य नहीं करता है। इन छह गुणों से युक्त होने पर भी, एक भिक्षु किसी विशेष अवस्था को प्राप्त करने में असमर्थ होता है, [यद्यपि] उपयुक्त आधार होने पर भी।"

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, उपयुक्त आधार होने पर एक भिक्षु किसी विशेष अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है। वे छह गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु इन गुणों को यथार्थ रूप में समझता है: 'ये वे गुण हैं जो क्षय से संबंधित हैं,' और: (2) 'ये वे गुण हैं जो स्थिरता से संबंधित हैं' और: (3) 'ये वे गुण हैं जो विशिष्टता से संबंधित हैं' और: (4) 'ये वे गुण हैं जो अंतर्मन से संबंधित हैं' (5) वह सावधानीपूर्वक अभ्यास करता है, और (6) वह उचित कार्य करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु उपयुक्त आधार होने पर किसी विशेष अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

72 शक्ति (बाला)

भिक्षुओं में छह गुण होने पर वे समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रबलता प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) प्राप्त करने में कुशल नहीं होते; (2) वे समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की अवधि में कुशल नहीं होते; (3) वे समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से बाहर आने में कुशल नहीं होते; (4) वे सावधानीपूर्वक अभ्यास नहीं करते; (5) वे निरंतर अभ्यास नहीं करते; और (6) वे उचित कार्य नहीं करते। इन छह गुणों के कारण, भिक्षु समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में प्रबलता प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं।

"भिक्षुओं (मठवासियों) में छह गुण होने पर वे समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में प्रबलता प्राप्त कर सकते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? [428] (1) यहाँ, भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने में कुशल है; (2) वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की अवधि में कुशल है; (3) वह समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से बाहर आने में कुशल है; (4) वह सावधानीपूर्वक अभ्यास करता है; (5) वह निरंतर अभ्यास करता है; और (6) वह उचित कार्य करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में प्रबलता प्राप्त कर सकता है।"

---

73 प्रथम झना (ट्रान्स अवस्था) (1) (पथमाताज्झा1)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है। वे छह चीजें क्या हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, सुस्ती और उनींदापन, बेचैनी और पश्चाताप, संदेह; और सही ज्ञान से इंद्रिय सुखों में निहित खतरे को

स्पष्ट रूप से न देख पाना। इन छह चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है।

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें लीन हो सकता है। वे छह चीजें क्या हैं? इंद्रिय सुख... सही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से, व्यक्ति इंद्रिय सुखों के खतरे को स्पष्ट रूप से देख लेता है। इन छह चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश कर उसमें लीन हो सकता है।

---

74 प्रथम झना (ट्रान्स अवस्था) (2) (पथमाताज्झाना2)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है। वे छह चीजें क्या हैं? कामुक विचार, द्वेष का विचार, हानि पहुंचाने का विचार, कामुक बोध (सन्ना/संग्य), द्वेष का बोध (सन्ना/संग्य) और हानि पहुंचाने का बोध (सन्ना/संग्य)। इन छह चीजों का त्याग किए बिना कोई भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में असमर्थ है।

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) को छह चीजों का त्याग करने पर, वे प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में सक्षम होते हैं। वे छह चीजें क्या हैं? कामुक विचार... हानि पहुँचाने की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा)। [429] इन छह चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करने और उसमें रहने में सक्षम होता है।"

आठवीं. अरिहंतशिप अनुभाग (अराहतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

75 दुख में

भिक्षुओं, जिनमें छह चीजें होती हैं, वे इसी जीवन में कष्ट, पीड़ा और बुखार से ग्रस्त रहते हैं, और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय उनका बुरा अंजाम होता है। वे छह चीजें क्या हैं? कामुक विचार, द्वेष का विचार, हानि पहुंचाने का विचार, कामुक बोध (सन्ना/संग्य), द्वेष का बोध (सन्ना/संग्य), और हानि पहुंचाने का बोध (सन्ना/संग्य)। इन छह चीजों से ग्रस्त भिक्षु इसी जीवन में कष्ट, पीड़ा और बुखार से ग्रस्त रहते हैं, और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय उनका बुरा अंजाम होता है।

"भिक्षुओं, जिनके पास छह चीजें होती हैं, वे इसी जीवन में सुखपूर्वक निवास करते हैं—बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के—और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, उनके लिए एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है। वे छह चीजें क्या हैं? त्याग का विचार, सद्भावना का विचार, अहिंसा का विचार, त्याग की अनुभूति (सन्न/सन्न्य), सद्भावना की अनुभूति (सन्न/सन्न्य), और अहिंसा की अनुभूति (सन्न/सन्न्य)। इन छह चीजों के युक्त भिक्षु इसी जीवन में सुखपूर्वक निवास करते हैं—बिना किसी कष्ट, पीड़ा या बुखार के—और शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, उनके लिए एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है।" [430]

---

76 अरहंत पद (अरहत्ता)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है। वे छह चीजें क्या हैं? अहंकार, हीन भावना, घमंड, आत्म-महत्व, हठधर्मिता और आत्म-अपमान। इन छह चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है।

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है। वे छह चीजें क्या हैं? अहंकार... आत्महीनता। इन छह चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है।

---

77 सुपीरियर (उत्तरीमनुस्साधम्म)

भिक्षुओं, छह बातों का त्याग किए बिना कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति नहीं कर सकता। वे छह बातें क्या हैं? भ्रम, पूर्ण बोध का अभाव (संपजन्न), इंद्रियों पर नियंत्रण न रखना, खान-पान में संयम का अभाव, कपट और चापलूसी। इन छह बातों का त्याग किए बिना कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति नहीं कर सकता।

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) को छह चीजों का त्याग करने से ज्ञान और दृष्टि में एक अलौकिक विशिष्टता प्राप्त होती है जो श्रेष्ठों के योग्य है। वे छह चीजें क्या हैं? व्यथा . . . चापलूसी। इन छह चीजों का त्याग करने से ज्ञान और दृष्टि में एक अलौकिक विशिष्टता प्राप्त होती है जो श्रेष्ठों के योग्य है।" [431]

---

78 सुख (सुखसोमनस्स)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण होते हैं और वे दोषों के नाश की नींव रखते हैं। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु धम्म में आनंदित होते हैं, मानसिक विकास में आनंदित होते हैं, त्याग में आनंदित होते हैं, एकांत में आनंदित होते हैं, कष्टों से मुक्त रहने में आनंदित होते हैं और इंद्रियों के भ्रम से मुक्त रहने में आनंदित होते हैं। इन छह गुणों से परिपूर्ण भिक्षु इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण होते हैं और वे दोषों के नाश की नींव रखते हैं।"

---

79 उपलब्धि (अधिगामा)

छह गुणों से युक्त भिक्षु न तो उस लाभकारी (कुशल) गुण को प्राप्त कर सकता है जिसे उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है और न ही उस लाभकारी (कुशल) गुण को सुदृढ़ कर सकता है जिसे उसने पहले ही प्राप्त कर लिया है। वे छह गुण क्या हैं? (1) यहाँ भिक्षु लाभ में कुशल नहीं है, (2) हानि में कुशल नहीं है, (3) साधनों में कुशल नहीं है; (4) वह उन लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की प्राप्ति के लिए इच्छा उत्पन्न नहीं करता है जिन्हें उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है; (5) वह पहले से प्राप्त लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की रक्षा नहीं करता है; (6) वह निरंतर प्रयास से अपने कार्यों को पूरा नहीं करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु न तो उस लाभकारी (कुशल) गुण को प्राप्त कर सकता है जिसे उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है और न ही उस लाभकारी (कुशल) गुण को सुदृढ़ कर सकता है जिसे उसने पहले ही प्राप्त कर लिया है।

छह गुणों से युक्त भिक्षु, उस लाभकारी (कुशल) गुण को प्राप्त करने में सक्षम होता है जिसे उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है और उस लाभकारी (कुशल) गुण को सुदृढ़ करने में भी सक्षम होता है जिसे उसने पहले ही प्राप्त कर लिया है। वे छह गुण कौन से हैं? (1) यहाँ, भिक्षु लाभ में कुशल होता है, (2) हानि में कुशल होता है, (3) साधनों में कुशल होता है; (4) वह उन लाभकारी (कुशल) गुणों की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करता है जिन्हें उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है; (5) वह पहले से प्राप्त लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की रक्षा करता है; (6) वह निरंतर प्रयास से अपने कार्यों को पूरा करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु, उस लाभकारी (कुशल) गुण को प्राप्त करने में सक्षम होता है जिसे उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है और उस लाभकारी (कुशल) गुण को सुदृढ़ करने में भी सक्षम होता है जिसे उसने पहले ही प्राप्त कर लिया है।

---

80 महानता (महानता)

"भिक्षुओं, छह गुणों से युक्त भिक्षु अल्पकाल में ही लाभकारी गुणों में महानता और विशालता प्राप्त कर लेता है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु प्रकाश से परिपूर्ण होता है, प्रयास से परिपूर्ण होता है, प्रेरणा से परिपूर्ण होता है; वह आत्मसंतुष्ट नहीं होता; वह लाभकारी गुणों (धम्म) के संबंध में अपने कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करता; और वह स्वयं को और अधिक विस्तारित करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु अल्पकाल में ही लाभकारी गुणों में महानता और विशालता प्राप्त कर लेता है।"

---

81 नरक (1) (निरया1)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे छह गुण कौन से हैं? वे जीवन का नाश करते हैं, बिना माँगे वस्तुएँ लेते हैं, यौन दुराचार में लिप्त होते हैं, झूठ बोलते हैं, बुरी इच्छाएँ रखते हैं और गलत मत रखते हैं। इन छह गुणों के कारण, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) को, जो छह गुणों से युक्त होते हैं, स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे छह गुण क्या हैं? वे जीवन-नष्ट करने से बचते हैं, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचते हैं, यौन दुराचार से बचते हैं, झूठी वाणी से बचते हैं; उनकी इच्छाएँ कम होती हैं और वे सही दृष्टिकोण रखते हैं। इन छह गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।" [433]

---

82 नरक (2) (निरया2)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे छह गुण कौन से हैं? वे जीवन का नाश करते हैं, बिना माँगे वस्तुएँ लेते हैं, यौन दुराचार में लिप्त होते हैं और झूठ बोलते हैं; वे लालची और निर्भीक होते हैं। इन छह गुणों के कारण, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, उन्हें स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे छह गुण कौन से हैं? वे जीव-जंतुओं को नष्ट करने से बचते हैं, बिना माँगे कुछ लेने से बचते हैं, यौन दुराचार से बचते हैं, झूठी वाणी से बचते हैं; वे लोभ और धृष्टता से रहित होते हैं। इन छह गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

---

83 सर्वोपरि अवस्था (अग्गधम्म संस्कृत: आगरा धम्म)

भिक्षुओं, छह गुणों से युक्त भिक्षु अरहंतत्व, जो सर्वोच्च अवस्था है, को प्राप्त करने में असमर्थ होता है। वे छह गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु में आस्था का अभाव होता है, वह नैतिक रूप से निर्लज्ज, नैतिक रूप से लापरवाह, आलसी, अज्ञानी और अपने शरीर एवं जीवन के प्रति चिंतित होता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु अरहंतत्व, जो सर्वोच्च अवस्था है, को प्राप्त करने में असमर्थ होता है।

"भिक्षुओं (मठवासियों) में छह गुण होने पर वे अरहंतत्व, जो सर्वोच्च अवस्था है, को प्राप्त कर सकते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? [434] यहाँ, भिक्षु में आस्था, नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना होती है; वह ऊर्जावान और बुद्धिमान होता है; और वह अपने शरीर और जीवन के प्रति उदासीन होता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु अरहंतत्व, जो सर्वोच्च अवस्था है, को प्राप्त कर सकता है।"

---

84 रातें (रत्तीदिवस सं. रात्रि दिवस)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में छह गुण होते हैं, चाहे दिन हो या रात, उसके लिए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित होती है। वे छह गुण कौन से हैं? यहाँ, (1) भिक्षु में प्रबल इच्छाएँ होती हैं, वह व्याकुल रहता है, और किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधि और बीमारों के लिए भोजन से असंतुष्ट रहता है; वह (2) आस्थाहीन, (3) अनैतिक, (4) आलसी, (5) भ्रमित मन वाला और (6) मूर्ख होता है। जब किसी भिक्षु में ये छह गुण होते हैं, चाहे दिन हो या रात, उसके लिए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित होती है।

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में छह गुण होते हैं, चाहे दिन हो या रात, उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की ही अपेक्षा की जाती है, न कि गिरावट की। यहाँ, (1) भिक्षु में तीव्र इच्छाएँ नहीं होतीं, वह व्यथित नहीं होता, और किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधियों और भोजन से संतुष्ट रहता है; वह (2) आस्थावान, (3) गुणी, (4) ऊर्जावान, (5) सती (ध्यानशील) और (6) बुद्धिमान होता है। जब किसी भिक्षु में ये छह गुण होते हैं, चाहे दिन हो या रात, उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की ही अपेक्षा की जाती है, न कि गिरावट की। [435]

IX. शीतलता (Siti sans. Sheet)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

85 शीतलता (सीतिभाव बिना शीत भाव)

"भिक्षुओं, छह गुणों से युक्त भिक्षु भी अतुलनीय शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते। वे छह गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु उस समय मन को नहीं दबाते जब उसे दबाना चाहिए; (2) वह उस समय मन को नहीं लगाते जब उसे लगाना चाहिए; (3) वह उस समय मन को नहीं प्रोत्साहित करते जब उसे प्रोत्साहित करना चाहिए; और (4) वह उस समय मन को उदासीनता से नहीं देखते जब उसे उदासीनता से देखना चाहिए। (5) उनका स्वभाव निम्न होता है और (6) वे अपने जन्म के भाव में आनंद लेते हैं। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु अतुलनीय शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते।"

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे अतुलनीय शीतलता का अनुभव कर सकते हैं। वे छह गुण क्या हैं? (1) जब मन को वश में करना चाहिए, तब वह उसे वश में करता है; (2) जब मन को वश में करना चाहिए, तब वह मन को वश में करता है; (3) जब मन को वश में करना चाहिए, तब वह मन को वश में करता है; और (4) जब मन को वश में करना चाहिए, तब वह वश में रहकर (अंदर की ओर लीन होकर/उपेक्षा लेकर) उसका अवलोकन करता है। (5) उसका स्वभाव श्रेष्ठ होता है और (6) वह निर्वाण में आनंदित होता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु अतुलनीय शीतलता का अनुभव कर सकता है।"

---

86 अवरोध (अवरोधन)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे उत्तम धम्म सुनते हुए भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। 1433 वे छह गुण क्या हैं? [436] कर्मों से विवश होते हैं; अशुद्धता से विवश होते हैं; कर्मों के फल से विवश होते हैं; विश्वासहीन होते हैं; इच्छाहीन होते हैं; और अज्ञानी होते हैं। 1434 इन छह गुणों से युक्त होकर, वे उत्तम धम्म सुनते हुए भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं (सम्हारों), जिनमें छह गुण होते हैं, जब वे उत्तम धम्म का श्रवण करते हैं, तो वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्यता के निश्चित मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? कर्मों से विवश नहीं होते; अशुद्धियों से विवश नहीं होते; कर्मों के फल से विवश नहीं होते; आस्था से परिपूर्ण होते हैं; इच्छा से युक्त होते हैं; और ज्ञानवान होते हैं। इन छह गुणों से युक्त होकर, जब वे उत्तम धम्म का श्रवण करते हैं, तो वे लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्यता के निश्चित मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं।"

---

87 एक हत्यारा (वोरोपिटा)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे भले ही अच्छे धर्म का श्रवण कर रहे हों, तब भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? (1) जिसने अपनी माता का प्राण त्यागा हो; (2) जिसने अपने पिता का प्राण त्यागा हो; (3) जिसने किसी अरहंत का प्राण त्यागा हो; (4) जिसने घृणा भाव से तथागत (बुद्ध) का रक्त बहाया हो; (5) जिसने संघ में फूट डाली हो; (6) जो मूर्ख, नासमझ और मंदबुद्धि हो। इन छह गुणों से युक्त होने पर, वे भले ही अच्छे धर्म का श्रवण कर रहे हों, तब भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे उत्तम धम्म का श्रवण करते हुए धर्म के निश्चित मार्ग पर चल सकते हैं। वे छह गुण कौन से हैं? [437] (1) उन्होंने अपनी माता का प्राण नहीं छीना; (2) न ही अपने पिता का प्राण छीना; (3) न ही किसी अरहंत का प्राण छीना; (4) उन्होंने घृणा भाव से तथागत (बुद्ध) का रक्त नहीं बहाया; (5) उन्होंने संघ में फूट नहीं डाली; (6) वे बुद्धिमान, समझदार और चतुर हैं। इन छह गुणों से युक्त होकर, वे उत्तम धम्म का श्रवण करते हुए धर्म के निश्चित मार्ग पर चल सकते हैं।"

---

88 सुनने की इच्छा रखने वाला (सुस्सुसती)

"भिक्षुओं, जिनमें छह गुण होते हैं, वे उत्तम धम्म को सुनते हुए भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश देते समय, (1) सुनने की इच्छा नहीं होती; (2) ध्यान नहीं देते; (3) समझने पर ध्यान नहीं देते; (4) अर्थ को गलत समझते हैं; (5) अर्थ को नकार देते हैं; 1436 और (6) ऐसी धारणा अपना लेते हैं जो उपदेश के अनुरूप नहीं होती। 1437 इन छह गुणों से युक्त होने पर, उत्तम धम्म को सुनते हुए भी लाभकारी (कुशल) गुणों में निहित सत्य के निश्चित मार्ग पर चलने में असमर्थ होते हैं।"

"भिक्षुओं (सम्भावों) में छह गुण होते हैं, जो उत्तम धम्म का श्रवण करते समय उचित मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं। वे छह गुण क्या हैं? तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश देते समय, (1) श्रवण की इच्छा होती है; (2) ध्यानपूर्वक सुनते हैं; (3) मन को समझने में लगाते हैं; (4) अर्थ को ग्रहण करते हैं; (5) अर्थहीन बातों का त्याग करते हैं; और (6) उपदेश के अनुरूप दृढ़ विश्वास धारण करते हैं। इन छह गुणों से युक्त होकर, उत्तम धम्म का श्रवण करते समय उचित मार्ग पर चलने में सक्षम होते हैं।" [438]

---

89. बिना त्यागे (अप्पाहया)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना संपदा प्राप्त करना संभव नहीं है। 1438 वे छह चीजें क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह, व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ, दुख के तल की ओर ले जाने वाला राग (काम), दुख के तल की ओर ले जाने वाला घृणा, और दुख के तल की ओर ले जाने वाला मोह (मोह)। इन छह चीजों का त्याग किए बिना संपदा प्राप्त करना संभव नहीं है।

भिक्षुओं को छह चीजों का त्याग करने से संपदा प्राप्त होती है। वे छह चीजें क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का विचार... मोह (मोह) जो दुख के तल की ओर ले जाता है। इन छह चीजों का त्याग करने से संपदा प्राप्त होती है।

---

90 परित्यक्त (पाहाना सं. प्राहन)

भिक्षुओं, दृष्टि में सिद्ध पुरुष इन छह चीजों का त्याग कर देता है। वे छह चीजें क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह, व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ, दुख के तल की ओर ले जाने वाला राग (काम), दुख के तल की ओर ले जाने वाला घृणा, और दुख के तल की ओर ले जाने वाला मोह (मोह)। दृष्टि में सिद्ध पुरुष इन छह चीजों का त्याग कर देता है।

---

91 अक्षम (अभब्बा)

भिक्षुओं, दृष्टि में सिद्ध पुरुष इन छह चीजों को उत्पन्न करने में असमर्थ होता है। वे छह चीजें कौन सी हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह, व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ, दुख के तल की ओर ले जाने वाला राग (काम), दुख के तल की ओर ले जाने वाला राग (विरोध), और दुख के तल की ओर ले जाने वाला राग (मोह)। दृष्टि में सिद्ध पुरुष इन छह चीजों को उत्पन्न करने में असमर्थ होता है।

---

92 मामले (1) (अभब्बत्तना1)

भिक्षुओं, ये छह प्रकार की अक्षमताएँ हैं। वे छह कौन सी हैं? [439] दृष्टि में सिद्ध पुरुष (1) गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर के बिना निवास करने में असमर्थ है; (2) धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर के बिना निवास करने में असमर्थ है; (3) संघ के प्रति श्रद्धा और आदर के बिना निवास करने में असमर्थ है; (4) प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर के बिना निवास करने में असमर्थ है; (5) किसी भी ऐसी चीज का सहारा लेने में असमर्थ है जिस पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए; 1439 (6) आठवें जन्म (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से गुजरने में असमर्थ है। 1440 ये अक्षमता के छह प्रकार हैं।

---

93 मामले (2) (अभब्बत्तना2)

भिक्षुओं, अक्षमता के ये छह कारण हैं। वे छह क्या हैं? दृष्टि से सिद्ध व्यक्ति (1) किसी भी परिस्थितिजन्य घटना (संहार/भावना) को स्थायी मानने में असमर्थ होता है; (2) किसी भी परिस्थितिजन्य घटना (संहार/भावना) को सुखद मानने में असमर्थ होता है; (3) किसी भी घटना को आत्मा मानने में असमर्थ होता है; (4) तत्काल फल देने वाले किसी गंभीर कार्य को करने में असमर्थ होता है; (5) इस विश्वास का सहारा लेने में असमर्थ होता है कि पवित्रता अंधविश्वासपूर्ण और शुभ कार्यों से प्राप्त होती है; (6) इस दुनिया से बाहर किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करने में असमर्थ होता है जो भेंट के योग्य हो। ये अक्षमता के छह कारण हैं।

---

94 मामले (3) (अभब्बत्तना3)

भिक्षुओं, अक्षमता के ये छह कारण हैं। वे छह क्या हैं? दृष्टि में सिद्ध पुरुष (1) अपनी माता का प्राण छीनने में असमर्थ है; (2) अपने पिता का प्राण छीनने में असमर्थ है; (3) किसी अरहंत का प्राण छीनने में असमर्थ है; (3) घृणा भाव से तथागत (बुद्ध) का रक्त बहाने में असमर्थ है; (5) संघ में फूट डालने में असमर्थ है; (6) किसी अन्य गुरु को स्वीकार करने में असमर्थ है। 1443 ये अक्षमता के छह कारण हैं। [440]

---

95 मामले (4) (अभब्बत्तना4)

भिक्षुओं, अक्षमता के ये छह प्रकार हैं। ये छह कौन से हैं? दृष्टि में सिद्ध पुरुष (1) स्वयं द्वारा उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है; (2) दूसरों द्वारा उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है; (3) स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है; (4) स्वयं द्वारा उत्पन्न न होकर संयोगवश उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है; (5) दूसरों द्वारा उत्पन्न न होकर संयोगवश उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है; (6) स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न न होकर संयोगवश उत्पन्न सुख और दुख के विचार को स्वीकार करने में असमर्थ होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि में सिद्ध पुरुष ने कारण और कारण से उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धर्म) को स्पष्ट रूप से देखा है। ये अक्षमता के छह प्रकार हैं। [441]

X. लाभ (अनिसामसा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

96 अभिव्यक्ति (पतुभाव)

भिक्षुओं, संसार में छह चीजों का प्रकट होना दुर्लभ है। वे छह चीजें क्या हैं? (1) तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रकट होना संसार में दुर्लभ है। (2) तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश देने वाला व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। (3) श्रेष्ठ जनों के लोक में पुनर्जन्म होना संसार में दुर्लभ है। (4) अक्षुण्ण इंद्रियों का होना संसार में दुर्लभ है। (5) बुद्धिमान और चतुर होना संसार में दुर्लभ है। (6) लाभकारी (कुशल) धम्म की इच्छा होना संसार में दुर्लभ है। इन छह चीजों का प्रकट होना संसार में दुर्लभ है।

---

97 लाभ (अनिसामसा)

भिक्षुओं, सोतपत्ति (सात जन्मों का चक्र) के फल को प्राप्त करने से ये छह लाभ होते हैं। वे छह लाभ क्या हैं? (1) व्यक्ति अच्छे धम्म में स्थिर हो जाता है; (2) व्यक्ति पतन से अछूता रहता है; (3) उसका दुख सीमित हो जाता है; (4) उसे ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है जो दूसरों को प्राप्त नहीं होता; (5) उसे कारण-कार्य संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है; (6) उसे कारण-कार्य से उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धम्म) का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। ये सोतपत्ति (सात जन्मों का चक्र) के फल को प्राप्त करने के छह लाभ हैं।

---

98 अनित्य (अनिका सास. अनित्य)

भिक्षुओं, (1) यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो किसी भी बद्ध घटना (संहार/भावना) को स्थायी मानता है, वह शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखेगा। (2) यह असंभव है कि जो शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास नहीं रखता, वह सही मार्ग पर चलेगा। 1444

(3) यह असंभव है कि जो व्यक्ति सही मार्ग पर न चले, वह धारा-प्रवेश (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) का फल, (4) एक बार लौटने का फल, (5) न लौटने का फल (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी) का फल, (6) या अरहंतत्व प्राप्त कर सके। [442]

भिक्षुओं, (1) यह संभव है कि जो भिक्षु सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को अनित्य मानता है, उसमें शिक्षा के अनुरूपता का दृढ़ विश्वास हो। (2) यह संभव है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुरूपता का दृढ़ विश्वास रखता है, वह सही मार्ग पर चल पड़े। (3) यह

संभव है कि जो व्यक्ति सही मार्ग पर चलता है, उसे सात जन्मों का फल (सोतपत्ति), (4) एक जन्म का फल (सकदागामी), (5) अनागमन का फल (अनगामी), (6) या अरहंतत्व प्राप्त हो।

---

99 दुख (दुक्खा)

भिक्षुओं, सचमुच, (1) यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो किसी भी बद्ध घटना (संहार/भावना) को सुखद मानता है, शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखेगा। (2) यह असंभव है कि जो शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास नहीं रखता, वह सही मार्ग पर चल पड़ेगा। (3) यह असंभव है कि जो सही मार्ग पर नहीं चलता, वह सात जन्मों के फल (सोतपत्ति) को प्राप्त करेगा।

(4) एक बार लौटने का फल (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), (5) न लौटने का फल (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), (6) या अरहंत पद।

भिक्षुओं, (1) यह संभव है कि जो भिक्षु सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को दुखदायी मानता है, उसमें शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास हो। (2) यह संभव है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखता है, वह सही मार्ग पर चल पड़े। (3) यह संभव है कि जो व्यक्ति सही मार्ग पर चलता है, उसे सात जन्मों का फल (सोतपत्ति), (4) एक बार जन्म लेने का फल (सकदागामी), (5) और न जन्म लेने का फल (अनगामी) प्राप्त हो— (6)—या अरहंतत्व प्राप्त हो।

---

100 अनात्मा (अनत्ता सं. अनात्मा)

भिक्षुओं, (1) यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो किसी भी घटना को आत्मा मानता है, शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखेगा। (2) यह असंभव है कि जो शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास नहीं रखता, वह सही मार्ग पर चलेगा। (3) यह असंभव है कि जो सही मार्ग पर नहीं चलता, वह सात जन्मों के पुनर्जन्म (सोतपत्ति), (4) एक बार जन्म लेने के पुनर्जन्म (सकदागामी), (5) न लौटने के पुनर्जन्म (अनगामी), (6) या अरहंतत्व का फल प्राप्त करेगा।

भिक्षुओं, (1) यह संभव है कि जो भिक्षु सभी घटनाओं (धम्म) को अनात्म मानता है, उसमें शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास हो, (2) यह संभव है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखता है, वह सही मार्ग पर चल पड़े। (3) यह संभव है कि जो व्यक्ति सही मार्ग पर चलता है, उसे सात जन्मों का फल (सोतपत्ति), (4) एक बार जन्म लेने का फल (सकदागामी), (5) न लौटने का फल (अनगामी), (6) या अरहंतत्व प्राप्त हो।

---

101 निब्बाना (संस्कृत: निर्वाण)

भिक्षुओं, (1) यह असंभव है कि जो भिक्षु निर्वाण को कष्टदायी मानता है, वह शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखेगा। (2) यह असंभव है कि जो शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास नहीं रखता, वह धर्म के निश्चित मार्ग पर चलेगा। (3) यह असंभव है कि जो धर्म के निश्चित मार्ग पर नहीं चलता, वह सात जन्मों के पुनर्जन्म (सोतपत्ति), एक जन्म के पुनर्जन्म (सकदागामी), (5) एक जन्म के पुनर्जन्म (अनगामी) (6) या अरहंतत्व का फल प्राप्त करेगा।

भिक्षुओं, (1) यह संभव है कि जो भिक्षु निर्वाण को सुख मानता है, उसमें शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास हो। [443] (2) यह संभव है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुरूप दृढ़ विश्वास रखता है, वह सही मार्ग पर चल पड़े। (3) यह संभव है कि जो व्यक्ति सही मार्ग पर चलता है, उसे सात जन्मों का फल (सोतपत्ति), (4) एक बार जन्म लेने का फल (सकदागामी), (5) न लौटने का फल (अनगामी), (6) या अरहंतत्व प्राप्त हो।

---

102 अनात्य (अनावत्थिता)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना पर्याप्त होता है। 1445 वे छह लाभ क्या हैं? (1) सभी बद्ध घटनाएँ (धम्म) मुझे नश्वर प्रतीत होंगी। (2) मेरा मन संसार की किसी भी चीज़ में आनंद नहीं लेगा। (3) मेरा मन संसार से ऊपर उठ जाएगा। (4) मेरा मन निर्वाण की ओर प्रवृत्त होगा। (5) मेरे बंधन मुक्त हो जाएँगे। 1446 और (6) मैं परम वैराग्य प्राप्त कर लूँगा। 1447

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना पर्याप्त होता है।" 7

---

103 उक्खित्तसिका (उख्खित्तसिका)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में दुख की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना ही पर्याप्त है। वे छह लाभ क्या हैं? (1) 'सभी बद्ध घटनाओं के प्रति मुझमें वैराग्य (निब्बिद) की अनुभूति स्थापित हो जाएगी, जैसे किसी हत्यारे के प्रति उठी हुई कटार के प्रति। (2) मेरा मन समस्त संसार से ऊपर उठ जाएगा। (3) मैं निर्वाण को शांत देखूंगा। (4) मेरी अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाएंगी। (5) मैं वह व्यक्ति होऊंगा जिसने अपना कार्य पूरा कर लिया है। और (6) मैंने गुरु की प्रेमपूर्ण करुणा (मेत्ता) से सेवा की होगी। [444]

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में दुख की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना पर्याप्त होता है।"

---

104 बिना पहचान के (अतममया)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए समस्त घटनाओं (धम्म) में अनात्म की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना पर्याप्त होता है। वे छह लाभ क्या हैं? (1) मैं समस्त संसार में पहचान रहित हो जाऊँगा। (2) मेरे लिए 'मैं' की भावनाएँ समाप्त हो जाएँगी। (3) मेरे लिए 'मेरा' की भावनाएँ समाप्त हो जाएँगी। (4) मुझे ऐसा ज्ञान प्राप्त होगा जो सांसारिक लोगों के साथ साझा नहीं किया जाता। (5) मुझे कारण-कार्य संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। और (6) मुझे कारण-कार्य से उत्पन्न घटनाओं (धम्म) का स्पष्ट ज्ञान होगा।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन छह लाभों पर विचार करता है, तो उसके लिए सभी घटनाओं (धम्म) में अनात्म की असीम अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) स्थापित करना पर्याप्त होता है।

---

105 अस्तित्व (कारण) (भाव)

भिक्षुओं, तीन प्रकार के अस्तित्व हैं जिनका त्याग करना है; और इन तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में साधना करनी है। 1449 वे तीन प्रकार के अस्तित्व कौन से हैं जिनका त्याग करना है? (1) इंद्रिय-मंडल का अस्तित्व, (2) रूप-मंडल का अस्तित्व, और (3) निराकार-मंडल का अस्तित्व: ये तीन प्रकार के अस्तित्व हैं जिनका त्याग करना है। किन तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में साधना करनी है? (4) उच्चतर सद्‌गुणों में, (5) उच्चतर मन में, और (6) उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में। इन तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में साधना करनी है।

"जब कोई भिक्षु इन तीनों प्रकार के अस्तित्वों का त्याग कर इन तीनों प्रशिक्षणों को पूरा कर लेता है, तो उसे तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का त्याग करने वाला, बंधनों से मुक्त और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुखों का अंत करने वाला भिक्षु कहा जाता है।" [445]

---

106 तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)

भिक्षुओं, तीन प्रकार की तृष्णाएँ और तीन प्रकार के अहंकार हैं जिनका त्याग करना चाहिए। 1430 वे तीन प्रकार की तृष्णाएँ कौन सी हैं जिनका त्याग करना चाहिए? (1) इंद्रिय तृष्णा, (2) जन्म का कारण (भाव) और (3) मृत्यु की तृष्णा: ये तीन प्रकार की तृष्णाएँ हैं जिनका त्याग करना चाहिए। और वे तीन प्रकार के अहंकार कौन से हैं जिनका त्याग करना चाहिए? (4) अहंकार, (5) हीन भावना और (6) घमंड: ये तीन प्रकार के अहंकार हैं जिनका त्याग करना चाहिए।

जब कोई भिक्षु इन तीन प्रकार की तृष्णाओं और इन तीन प्रकार के अहंकार का त्याग कर देता है, तो उसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने तृष्णाओं को काट डाला है, बंधनों को तोड़ दिया है और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुखों का अंत कर दिया है।

पचास अध्यायों के सेट के अतिरिक्त अध्याय [1451]

XI. त्रिक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

107 कामवासना (राग)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) कामवासना (राग), (2) घृणा और (3) मोह। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातों का विकास करना होगा। वे तीन क्या हैं? [446] (4) कामवासना (राग) को त्यागने के लिए अप्रियता का विकास करना होगा। (5) घृणा को त्यागने के लिए प्रेम और करुणा का विकास करना होगा। (6) मोह को त्यागने के लिए ज्ञान (दिव्य ज्ञान) का विकास करना होगा। इन तीन बातों का विकास पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए करना होगा।

---

108 कदाचार (दुकारिता सं. दुष्चरित्र))

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन बातें क्या हैं? (1) शारीरिक दुराचार, (2) मौखिक दुराचार, और (3) मानसिक दुराचार।

ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातें विकसित करनी होंगी। वे तीन बातें क्या हैं? (4) शारीरिक दुराचार को त्यागने के लिए शारीरिक सुवाह्य व्यवहार विकसित करना होगा। (5) मौखिक दुराचार को त्यागने के लिए मौखिक सुवाह्य व्यवहार विकसित करना होगा। (6) मानसिक दुराचार को त्यागने के लिए मानसिक सुवाह्य व्यवहार विकसित करना होगा। इन तीन बातों को पहले वाली तीन बातों को त्यागने के लिए विकसित करना होगा।

---

109 विचार (विटक्कका सं. वितर्क)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) कामुक विचार, (2) द्वेष का विचार, और (3) हानि पहुँचाने का विचार। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातों का विकास करना आवश्यक है। वे तीन क्या हैं? (4) कामुक विचारों को त्यागने के लिए

त्याग का विचार विकसित करना आवश्यक है। (5) द्वेष का विचार त्यागने के लिए सद्भावना का विचार विकसित करना आवश्यक है। (6) हानि पहुँचाने का विचार त्यागने के लिए अहिंसा का विचार विकसित करना आवश्यक है। इन तीन बातों को पहले तीन बातों को त्यागने के लिए विकसित करना आवश्यक है।

---

110 धारणाएँ (सन्ना सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) इंद्रिय-बोध (सन्ना/संज्ञा), (2) द्वेष-बोध (सन्ना/संज्ञा), और (3) हानि-बोध (सन्ना/संज्ञा)। [447] ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातें विकसित करनी होंगी। वे तीन क्या हैं? (4) इंद्रिय-बोध (सन्ना/संज्ञा) को त्यागने के लिए त्याग का बोध विकसित करना होगा। (5) द्वेष-बोध (सन्ना/संज्ञा) को त्यागने के लिए सद्भावना का बोध विकसित करना होगा। (6) हानि-बोध (सन्ना/संज्ञा) को त्यागने के लिए अहिंसा का बोध विकसित करना होगा। इन तीन बातों को विकसित करना पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए आवश्यक है।

---

111 तत्व (धातु)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) इंद्रिय सुख, (2) द्वेष भाव और (3) हानि पहुँचाने का भाव। ये तीन बातें हैं। इन तीनों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातों का विकास करना आवश्यक है। वे तीन क्या हैं? (4) इंद्रिय सुख को त्यागने के लिए त्याग का भाव विकसित करना आवश्यक है। (5) द्वेष भाव को त्यागने के लिए सद्भावना का भाव विकसित करना आवश्यक है। (6) हानि पहुँचाने का भाव त्यागने के लिए अहिंसा का भाव विकसित करना आवश्यक है। इन तीनों बातों का विकास पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए करना आवश्यक है।

---

112 संतुष्टि (असदा सं. असवद)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) तृप्ति का दृष्टिकोण, (2) आत्म-दृष्टिकोण, और (3) गलत दृष्टिकोण। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातें विकसित करनी होंगी। वे तीन क्या हैं? (4) तृप्ति के दृष्टिकोण को त्यागने के लिए अनित्यता की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) विकसित करनी होगी। (5) आत्म-दृष्टिकोण को त्यागने के लिए अनात्म की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) विकसित करनी होगी। (6) गलत दृष्टिकोण को त्यागने के लिए सही दृष्टिकोण विकसित करना होगा। इन तीन बातों को विकसित करना पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए आवश्यक है। [448]

---

113 असंतोष (आरती)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन बातें क्या हैं? (1) असंतोष, (2) हानि पहुँचाना, और (3) धम्म के विरुद्ध आचरण। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातों का विकास करना आवश्यक है। वे तीन बातें क्या हैं? (4) असंतोष को त्यागने के लिए परोपकारी आनंद का विकास करना आवश्यक है। (5) हानि पहुँचाने को त्यागने के लिए अहिंसा का विकास करना आवश्यक है। (6) धम्म के विरुद्ध आचरण को त्यागने के लिए धम्म के अनुसार आचरण का विकास करना आवश्यक है। इन तीन बातों का विकास पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए करना आवश्यक है।

==== 114 संतोष (संतुत्थिता सं. संतुष्टि)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन बातें क्या हैं? (1) असंतोष, (2) पूर्ण बोध का अभाव (संपजन्न), और (3) प्रबल इच्छाएँ। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातों का विकास करना आवश्यक है। वे तीन बातें क्या हैं? (4) असंतोष को त्यागने के लिए संतोष का विकास करना आवश्यक है। (5) पूर्ण बोध के अभाव को त्यागने के लिए संपजन्न का विकास करना आवश्यक है। (6) प्रबल इच्छाओं को त्यागने के लिए इच्छाओं की अल्पता का विकास करना आवश्यक है। इन तीन बातों का विकास पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए करना आवश्यक है।

---

115 सुधारना कठिन (डोवाकासाटा)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन बातें क्या हैं? (1) सुधारना कठिन होना, (2) बुरी मित्रता, और (3) मानसिक भटकाव। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन अन्य बातें विकसित करनी होंगी। वे तीन बातें क्या हैं? [449] (4) सुधारना कठिन होने को त्यागने के लिए सुधारना आसान होना विकसित करना होगा। (5) बुरी मित्रता को त्यागने के लिए अच्छी मित्रता विकसित करनी होगी। (6) मानसिक भटकाव को त्यागने के लिए श्वास पर ध्यान (सामंजस्य/सती) विकसित करना होगा। इन तीन बातों को विकसित करना पूर्व तीन बातों को त्यागने के लिए है।

---

116 बेचैनी (उद्धच्च)

भिक्षुओं, ये तीन बातें हैं। वे तीन क्या हैं? (1) बेचैनी, (2) संयम न रखना, और (3) आलस्य। ये तीन बातें हैं। इन तीन बातों को त्यागने के लिए तीन और बातें विकसित करनी होंगी। वे तीन क्या हैं? (4) बेचैनी को त्यागने के लिए समभाव विकसित करना होगा। (5) संयम न रखने के लिए संयम विकसित करना होगा। (6) आलस्य को त्यागने के लिए सतर्कता विकसित करनी होगी। इन तीन बातों को पहले वाली तीन बातों को त्यागने के लिए विकसित करना होगा;

बारहवीं. तपस्या (समन्ना सं. श्रमण)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

117 शरीर को (ध्यान में) देखना 1452 (कायनुपासि सं. काया अनुपश्ययी)

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना, शरीर में शरीर का ध्यान (अनुपसी) करना संभव नहीं है। वे छह चीजें क्या हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद, इंद्रियों के द्वारों को न रोकना और भोजन में अति करना। इन छह चीजों का त्याग किए बिना, शरीर में शरीर का ध्यान (अनुपसी) करना संभव नहीं है। [450]

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने पर, शरीर में शरीर का अवलोकन (अनुपसी) संभव हो जाता है। वे छह चीजें क्या हैं? काम में आनंद लेना... अत्यधिक भोजन करना। इन छह चीजों का त्याग करने पर, शरीर में शरीर का अवलोकन (अनुपसी) संभव हो जाता है।

---

118 धम्मानुपसी (ध्यान में) का अवलोकन करना

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग किए बिना, कोई भी शरीर को शरीर में आंतरिक रूप से... बाह्य रूप से... आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से... संवेदनाओं (वेदना) को संवेदनाओं में आंतरिक रूप से... बाह्य रूप से... आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से... मन को मन में आंतरिक रूप से... बाह्य रूप से... आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से... घटनाओं को घटनाओं में धम्म में आंतरिक रूप से... बाह्य रूप से... आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से... ध्यान में नहीं देख सकता। वे छह चीजें क्या हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद, इंद्रियों के द्वारों की रक्षा न करना और... अतिभोग करना। इन छह चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की घटनाओं (धर्म) का अवलोकन (अनुपसी में) करने में असमर्थ है।

भिक्षुओं, छह चीजों का त्याग करने से व्यक्ति आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की घटनाओं (धर्मों के भीतर की घटनाओं) का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने में सक्षम हो जाता है। वे छह चीजें कौन सी हैं? काम में आनंद लेना... अत्यधिक भोजन करना। इन छह चीजों का त्याग करने से व्यक्ति आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की घटनाओं (धर्मों के भीतर की घटनाओं) का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने में सक्षम हो जाता है।

---

119 तपस्सा

"भिक्षुओं (सम्मोहनों), छह गुणों से युक्त गृहस्थ तपस्सा तथागत (बुद्ध) के प्रति निश्चितता प्राप्त कर लेता है और अमरत्व (अमत/अमृत) का द्रष्टा बन जाता है, जो अमरत्व (अमत/अमृत) का अनुभव करके जीवन व्यतीत करता है। वे छह गुण क्या हैं? [451] बुद्ध में अटूट विश्वास, धम्म में अटूट विश्वास, संघ में अटूट विश्वास, उत्तम सद्गुण, उत्तम ज्ञान और उत्तम मुक्ति। इन छह गुणों से युक्त गृहस्थ तपस्सा तथागत (बुद्ध) के प्रति निश्चितता प्राप्त कर लेता है और अमरत्व (अमत/अमृत) का द्रष्टा बन जाता है, जो अमरत्व (अमत/अमृत) का अनुभव करके जीवन व्यतीत करता है।" 1453

---

120 — 139 भल्लिका, इत्यादि।

"छह गुणों से युक्त भिक्षु, गृहस्थ भल्लिका... गृहस्थ सुदत्त अनाथपिंडिका... गृहस्थ चित्त मच्चिकासन्द... गृहस्थ हत्थक अलावल... गृहस्थ महानामा शाक्य... गृहस्थ उगा वैशाली... गृहस्थ उगात... गृहस्थ सुर अंबत्था... गृहस्थ जीवक कोमरभच्च... गृहस्थ नकुलपिता... गृहस्थ तवकन्निका... गृहस्थ पुराण... गृहस्थ इसिदत्त... गृहस्थ संधान... गृहस्थ विजय... गृहस्थ वज्जीयमहित... गृहस्थ मेंदका... गृहस्थ अनुयायी वसेत्था... गृहस्थ अनुयायी अरित्था... गृहस्थ अनुयायी सरग्गा तथागत (बुद्ध) के बारे में निश्चितता प्राप्त कर चुके हैं और अमरता के द्रष्टा बन गए हैं, जो अमरता (अम्रता/अमृत) को जानकर जीवित रहते हैं। ये छह कौन हैं?

बुद्ध में अटूट विश्वास, धम्म में अटूट विश्वास, संघ में अटूट विश्वास, नेक आचरण, श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ मुक्ति। इन छह गुणों से युक्त गृहस्थ सरग्ग ने तथागत (बुद्ध) के प्रति निश्चितता प्राप्त कर ली है और अमरता के द्रष्टा बन गए हैं, जो अमरता (अम्रता/अमृत) को जानकर जीवन व्यतीत करते हैं।

XIII. वासना (राग) और आगे दोहराव श्रृंखला

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

140

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए छह चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे छह चीजें क्या हैं? [452] अद्वितीय दृष्टि, अद्वितीय श्रवण शक्ति, अद्वितीय लाभ, अद्वितीय प्रशिक्षण, अद्वितीय सेवा और अद्वितीय स्मरण। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन छह चीजों का विकास करना आवश्यक है।

141

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए छह चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे छह चीजें क्या हैं? बुद्ध का स्मरण, धम्म का स्मरण, संघ का स्मरण, सद्गुणों का स्मरण, उदारता का स्मरण और देवताओं का स्मरण। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन छह चीजों का विकास करना आवश्यक है।

142

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए छह चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे छह चीजें क्या हैं? अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति, वैराग्य की अनुभूति और समाप्ति की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन छह चीजों का विकास करना आवश्यक है।

143 — 169

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके निवारण के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन छह चीजों का विकास करना चाहिए।

170 — 649

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा के लिए... मोह के लिए... क्रोध के लिए... शत्रुता के लिए... निंदा के लिए... उद्दंडता के लिए... ईर्ष्या के लिए... कंजूसी के लिए... छल के लिए... धूर्तता के लिए... हठ के लिए... उग्रता के लिए... अहंकार के लिए... घमंड के लिए... नशे के लिए... आलस्य के लिए... इन छह चीजों का विकास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

द बुक ऑफ द सिक्स का काम पूरा हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 7.बुक ऑफ सेवन्स

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का सातवाँ खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

———————————————————————

<<<< पिछला (AN6) अगला (AN8) >>>>

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1सातों की पुस्तक (सत्तकनिपात)

1.1पहले पचास

1.1.1I. धन (धन)

1.1.1.11 मनभावन (1) (पिया1 सं. प्रिया)

1.1.1.22 प्रसन्न (2) (पिया2 सं. प्रिया)

1.1.1.3संक्षेप में 3 शक्तियाँ (संखिटबाला सं. संक्षिप्त बाला)

1.1.1.4विस्तार में 4 शक्तियाँ (विट्ठताबाला सं. विस्तार बाला)

1.1.1.55 संक्षेप में धन (समखित्त धन सं. संक्षिप्त धन)

1.1.1.66 विस्तार से धन (विट्ठताधन सं. विस्तार धन)

1.1.1.77 उगा

1.1.1.88 बंधन (संयोजन)

1.1.1.99 परित्याग (पहाना सं. प्रहाना)

1.1.1.1010. कंजूसी (मच्छरिया)

1.1.2II. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)

1.1.2.111 अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (1) (अनुसया1)

1.1.2.212. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (2) (अनुसया2)

1.1.2.313 परिवार (कुला)

1.1.2.414 व्यक्ति (पुग्गला)

1.1.2.515 जल में रहने वालों के समान (उदकुपमा)

1.1.2.616 अनित्यता ध्यानी (अनिकानुपासि सं. अनित्य अनुपश्ययी)

1.1.2.717 पीड़ित ध्यानी (दुक्खनुपासि सं. दुक्ख अनुपश्ययी)

1.1.2.818 गैर-स्व ध्यानी (अनत्तनुपासि सं. अनित्य अनुपश्ययी)

1.1.2.919. निब्बाना (निर्वाण का सान्निध्य)

1.1.2.10निद्धसवत्थु (निष्कलंक होने के 20 आधार)

1.1.3तृतीय. वज्जि सात (वज्जिसत्तक सं. वज्जि सप्तक)

1.1.3.121 सारंददा

1.1.3.222 वासाकारा [1477]

1.1.3.323 गैर-अस्वीकार (1) (पथमासट्टक)

1.1.3.424 गैर-पतन (2) (दुतियासत्तक)

1.1.3.525 गैर-अस्वीकार (3) (तातियासट्टक)

1.1.3.626 नॉन-डिक्लाइन (4) (बोज्झांगा संस. बोधयांग)

1.1.3.727 गैर-गिरावट (5)

1.1.3.828 प्रशिक्षु का पतन (परिहानी1)

1.1.3.929 गिरावट (परिहानी2)

1.1.3.1030 पेरिल 1485 (विपत्ति)

1.1.3.1131. विनाश (परभाव)

1.1.4IV. देवता (देवदूत)

1.1.4.132 सतर्कता 1486 (अप्पमदागरव)

1.1.4.233 नैतिक शर्म 1487 (हिरिगरवा)

1.1.4.334 सुधारना आसान (1) (Sovacassata1)

1.1.4.435 सुधारना आसान (2) 1488 (Sovacassata2)

1.1.4.536 एक मित्र (1) 1489 (मित्त1 संस्कृत मित्र)

1.1.4.637 एक मित्र (2) (मित्त1 संस्कृत मित्र)

1.1.4.738 विश्लेषणात्मक ज्ञान (1) (पतिसंभिदा1)

1.1.4.839 विश्लेषणात्मक ज्ञान (2) 1497 (पतिसंभिदा2)

1.1.4.940 महारत (1) (वासा1)

1.1.4.1041 महारत (2) 1500 (वासा2)

1.1.4.1142 बड़े होने के आधार (1) (निद्दासा1)

1.1.4.1243 "दोषरहित" होने के आधार (2) (निद्दासा2)

1.1.5V. महायन्न बलिदान खंड (महायन्न वग्गो)

1.1.5.144 सात स्टेशन (सत्तविन्नानत्थिति सं. सप्त-विज्ञान-स्थिति)

1.1.5.245 समाधि सहायक उपकरण (समाधिपरिक्खरा)

1.1.5.346 अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)

1.1.5.447 अग्नि यज्ञ (अग्गी2 संस्कृत अग्नि)

1.1.5.548 संज्ञान/धारणाएं (1) (सन्ना1 सं. संज्ञा)

1.1.5.649 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

1.1.5.750 यौन संबंध (मेथुना)

1.1.5.851 संघ (साम्ययोग)

1.1.5.952 दान देने के लाभ (दानमहप्पला)

1.1.5.1053 नन्दमाता

1.2दूसरा पचास

1.2.1VI. अघोषित धारा (अव्यक्त वाग्गो)

1.2.1.154 अघोषित (अव्यक्त सं. अव्यक्त)

1.2.1.255 व्यक्तियों के गंतव्य (पुरिसगति)

1.2.1.356 टिस्सा

1.2.1.457 सिहा [1543] (संश्लेषित सिंघा)

1.2.1.558 छिपने की कोई जरूरत नहीं

1.2.1.659 किम्बिला [1547]

1.2.1.760 सात गुण (सत्तधम्म)

1.2.1.861 ऊंघना (पा-कलयामाना)

1.2.1.962 मेट्टा [1550]

1.2.1.1063 पत्नियां (भारिया)

1.2.1.1164 क्रोध [1560] (कोडना सं. क्रोध)

1.2.2VII. महावग्गो (महान अध्याय)

1.2.2.165 नैतिक शर्म [1571] (हिरियट्टप्पा)

1.2.2.266 सात सूर्य (सत्तसूर्य सं. सप्त-सूर्य)

1.2.2.367 किले की उपमा (नगरोपमा सं. नगर-उपमा)

1.2.2.468 धम्म को जानने वाला (धम्मन्नु)

1.2.2.569 परिच्छत्तक

1.2.2.670 सम्मान (सक्काका)

1.2.2.771 समझ का विकास [1595] (भावना)

1.2.2.872 अग्नि उपमा (अग्गिकखंडोपमा सं. अग्नि-खंड-उपमा)

1.2.2.973 सुनेट्टा

1.2.2.1074 अराका

1.2.3VIII. अनुशासन अनुभाग (विनयवग्गो)

1.2.3.175. अनुशासन में विशेषज्ञ (1) (विनयधारा1)

1.2.3.276 अनुशासन में विशेषज्ञ (2) (विनयधारा2)

1.2.3.377 अनुशासन में विशेषज्ञ (3) (विनयधारा3)

1.2.3.478 अनुशासन में विशेषज्ञ (4) (विनयधारा4)

1.2.3.579 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (1) (विनयधरसोभना1)

1.2.3.680 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (2) (विनयधरसोभना2)

1.2.3.781 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (3) (विनयधरसोभना3)

1.2.3.882 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (4) (विनयधरसोभना4)

1.2.3.983 शिक्षक का अनुशासन (सत्थुसाना)

1.2.3.1084 निपटान (अधिकरणसमथ)

1.2.4नौवीं. एक तपस्वी धारा 1606 (समानवाग्गो)

1.2.4.185 एक भिक्षु (भिक्खु)

1.2.4.286 एक तपस्वी (समना)

1.2.4.387 एक ब्राह्मण (ब्राह्मण)

1.2.4.488 एक विद्वान (सोत्तिया)

1.2.4.589 धुला हुआ (न्हाटाका)

1.2.4.690 वैदिक ज्ञान का स्वामी (वेदगु संस्कृत: वेदग्य)

1.2.4.791 एक महान व्यक्ति (आरिया)

1.2.4.892 एक अरहंत

1.2.4.993 बुरा चरित्र (1) (असद्धम्म)

1.2.4.1094 अच्छा चरित्र (2) (सद्धम्म)

1.2.5X. उपहारों के योग्य (अहुनेय्यावग्गो)

1.2.5.195 अनित्यता को दृष्टि में देखना (ध्यान में अनिच्छ/अनित्य) 1613

1.2.5.296 — 622 दुख आदि को देखना (उस पर ध्यान करना)।

1.2.6XI. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला [1614]

1.2.6.1623

1.2.6.2624

1.2.6.3625

1.2.6.4626-652

1.2.6.5653-1132

सातों की पुस्तक (सत्तकनिपात)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. धन (धन)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 मनभावन (1) (पिया1 सं. प्रिया)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं में सात गुण होने पर, वे अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होते हैं, और न तो उनका आदर करते हैं और न ही उन्हें सम्मान देते हैं। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, (1) भिक्षु लाभ, (2) मान-सम्मान और (3) प्रतिष्ठा की इच्छा रखता है; (4) वह नैतिक रूप से निर्लज्ज और (5) नैतिक रूप से लापरवाह होता है; (6) उसकी बुरी इच्छाएँ होती हैं और (7) वह गलत मत रखता है। इन सात गुणों के कारण, भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होते हैं, और न तो उनका आदर करते हैं और न ही उन्हें सम्मान देते हैं।"

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, जिससे वे अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर करते हैं। वे सात गुण क्या हैं? [2] यहाँ, (1) भिक्षु लाभ, (2) मान-सम्मान, (3) प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं रखते; (4) उनमें नैतिक लज्जा और (5) नैतिक भय की भावना होती है; (6) उनकी इच्छाएँ कम होती हैं और (7) वे सही दृष्टिकोण रखते हैं। इन सात गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर करते हैं।"

---

2 प्रसन्न (2) (पिया2 सं. प्रिया)

"भिक्षुओं में सात गुण होने के कारण, वे अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होते हैं और न तो उनका आदर करते हैं और न ही उन्हें सम्मान देते हैं। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, (1) भिक्षु लाभ, (2) मान-सम्मान और (3) प्रतिष्ठा की लालसा रखता है; (4) वह नैतिक रूप से निर्लज्ज और (5) लापरवाह होता है; (6) वह ईर्ष्यालु और (7) कंजूस होता है। इन सात गुणों के कारण, भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होते हैं और न तो उनका आदर करते हैं और न ही उन्हें सम्मान देते हैं।"

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, जिससे वे अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर और सम्मान पाते हैं। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, (1) भिक्षु लाभ, (2) मान-सम्मान, (3) प्रतिष्ठा और (4) नैतिक लज्जा और (5) नैतिक भय की इच्छा नहीं रखते; (6) वे ईर्ष्यालु नहीं होते और (7) कंजूस नहीं होते। इन सात गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर और सम्मान पाते हैं।" [3]

संक्षेप में 3 शक्तियाँ (संखिटबाला सं. संक्षिप्त बाला)

भिक्षुओं, ये सात शक्तियाँ हैं। कौन सी सात? श्रद्धा (विश्वास की शक्ति), बल (ऊर्जा/वीर्य), हिरी (नैतिक लज्जा), ओटप्पा (नैतिक भय), सती (ध्यान), समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) और प्रत्यक्ष ज्ञान (दिव्य ज्ञान)। ये सात शक्तियाँ हैं।

विश्वास की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति,

नैतिक लज्जा और नैतिक भय की शक्तियाँ;

सती (ध्यान/सती) और समाधि (स्व-लीन/तल्लीनता) की शक्तियाँ,

और सातवीं शक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान);

इन शक्तियों से युक्त एक शक्तिशाली भिक्षु

बुद्धिमान होता है और सुखी जीवन जीता है।

उसे धम्म (मार्ग) का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए

और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उसके अर्थ को गहराई से समझना चाहिए।

जैसे दीपक का बुझना

मन की मुक्ति है।

विस्तार में 4 शक्तियाँ (विठ्ठताबाला सं. विस्तार बाला)

भिक्षुओं, ये सात शक्तियाँ हैं। कौन सी सात? श्रद्धा की शक्ति (सद्धा), ऊर्जा की शक्ति (प्रयास/वीर्य), नैतिक लज्जा की शक्ति (हिरी), नैतिक भय की शक्ति (ओटप्पा), सती ध्यान की शक्ति, समाधि की शक्ति (स्व-लीनता/तल्लीनता), और प्रत्यक्ष ज्ञान की शक्ति (दिव्य ज्ञान)।"

(1) "और हे भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसारों के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इसे ही आस्था की शक्ति कहते हैं।"

(2) "और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति क्या है?: यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को प्रेरित किया है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। इसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति कहा जाता है।"

(3) "नैतिक लज्जा की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को नैतिक लज्जा का बोध होता है; वह शारीरिक, मौखिक और मानसिक दुराचार से लज्जित होता है; वह बुरे, हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने से लज्जित होता है। इसे नैतिक लज्जा की शक्ति कहा जाता है।"

(4) "नैतिक भय की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य कुकर्म से भयभीत होता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से भयभीत होता है; वह बुरे, हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने से भयभीत होता है। इसे नैतिक भय की शक्ति कहा जाता है।"

(5) "और सती ध्यान की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य सती ध्यान में है, सर्वोच्च सती ध्यान और सतर्कता से परिपूर्ण है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। इसे ही सती ध्यान की शक्ति कहते हैं।"

(6) "और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की शक्ति क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक श्रेष्ठ शिष्य प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... [जैसा कि 5:14 §4 में है]... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था)। इसे समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की शक्ति कहा जाता है।"

(7) "पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उस पन्न (दिव्य ज्ञान) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) की शक्ति कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये सात शक्तियाँ हैं।"

[ये आयतें 7:3 की आयतों के समान हैं]

---

5 संक्षेप में धन (समखित्त धन सं. संक्षिप्त धन)

"भिक्षुओं, धन के ये सात प्रकार हैं। कौन से सात? आस्था का धन, सद्‌गुणों का धन, नैतिक लज्जा का धन, नैतिक भय का धन, ज्ञान का धन, उदारता का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन। [5] ये सात प्रकार के धन हैं।"

आस्था का धन, सदाचार का धन,

नैतिक लज्जा और नैतिक भय का धन,

विद्या और उदारता का धन,

और पन्ना (दिव्य ज्ञान), सातवें प्रकार का धन:

जब किसी व्यक्ति के पास ये सात प्रकार के धन होते हैं,

चाहे वह स्त्री हो या पुरुष,

तो कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,

उसका जीवन व्यर्थ नहीं गया है।

इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति को

बुद्धों की शिक्षाओं को याद रखते हुए,

आस्था और सदाचारी व्यवहार,

विश्वास और धम्म के दर्शन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

---

6 विस्तार से धन (विट्ठताधन सं. विस्तार धन)

भिक्षुओं, धन के ये सात प्रकार हैं। वे कौन से सात प्रकार हैं? आस्था का धन, सद्‌गुणों का धन, नैतिक लज्जा का धन, नैतिक भय का धन, ज्ञान का धन, उदारता का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन।

(1) "हे भिक्षुओं, आस्था का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं... प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' इसे ही आस्था का धन कहा जाता है।"

(2) "और सद्‌गुणों का धन क्या है? यहाँ, एक नेक शिष्य जीवन के विनाश से दूर रहता है, जो कुछ दिया नहीं गया है उसे लेने से दूर रहता है, यौन दुराचार से दूर रहता है, झूठी बातों से दूर रहता है, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से दूर रहता है, जो आलस्य का आधार हैं। इसे ही सद्‌गुणों का धन कहा जाता है।"

(3) "नैतिक लज्जा का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को नैतिक लज्जा का बोध होता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से लज्जित होता है; वह बुरे, अपात् (कुशल) गुणों (धम्म) को ग्रहण करने से लज्जित होता है। इसे नैतिक लज्जा का धन कहा जाता है।"

(4) "नैतिक भय का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य कुकर्म से भयभीत होता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से भयभीत होता है; वह बुरे, हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने से भयभीत होता है। इसे नैतिक भय का धन कहा जाता है।"

(5) "और ज्ञान का खजाना क्या है? [6] यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य ने बहुत कुछ सीखा है, जो कुछ सीखा है उसे याद रखता है और उसे संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। इसे ही ज्ञान का खजाना कहा जाता है।"

(6) "और उदारता का धन क्या है? यहाँ, एक नेक शिष्य अपने घर में कंजूसी के दाग से रहित हृदय से रहता है, जो उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और बाँटने में प्रसन्न होता है। इसे उदारता का धन कहा जाता है।"

(7) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे ही पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के धन हैं।"

[ये आयतें 7:5 की आयतों के समान हैं]

---

7 उगा

तब राजा के प्रधान मंत्री उगा ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा:

"भंते, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि रोहाना का मिगारा इतना धनी है, उसके पास इतनी अपार संपत्ति है।"

"लेकिन रोहाना का मिगारा कितना [7] अमीर है? उसके पास कितनी दौलत और संपत्ति है?"

"उसके पास एक लाख यूनिट सोने की ढली हुई धातु है, 1456 यूनिट चांदी की तो बात ही छोड़िए।"

"उग्गा, उस तरह का धन होता है; मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन उस तरह का धन आग, पानी, राजाओं, चोरों और अप्रिय वारिसों द्वारा छीना जा सकता है। हालांकि, उग्गा, ये सात प्रकार के धन आग, पानी, राजाओं, चोरों और अप्रिय वारिसों द्वारा नहीं छीने जा सकते। वे सात कौन से हैं? विश्वास का धन, सदाचार का धन, नैतिक लज्जा का धन, नैतिक भय का धन, विद्या का धन, उदारता का धन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का धन। ये सात प्रकार के धन आग, पानी, राजाओं, चोरों और अप्रिय वारिसों द्वारा नहीं छीने जा सकते।"

[ये आयतें 7:5 की आयतों के समान हैं]

---

8 बंधन (संयोजन)

भिक्षुओं, ये सात बंधन हैं। 1457 कौन से सात? आज्ञापालन का बंधन, 1458 घृणा का बंधन, विचारों का बंधन, संदेह का बंधन, अहंकार का बंधन, अस्तित्व के लिए राग का बंधन और अज्ञान का बंधन। ये सात बंधन हैं।

---

9 परित्याग (पहाना सं. प्रहाना)

भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) सात बंधनों को त्यागने और मिटाने के लिए जिया जाता है। वे सात कौन से हैं? [8] आज्ञापालन का बंधन, घृणा का बंधन, विचारों का बंधन, संदेह का बंधन, अहंकार का बंधन, अस्तित्व के लिए कामवासना (राग) का बंधन (भाव/पुनर्जन्म का कारण) और अज्ञान का बंधन। ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) इन सात बंधनों को त्यागने और मिटाने के लिए जिया जाता है।

जब कोई भिक्षु आज्ञापालन के बंधन को जड़ से त्याग देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो; जब वह घृणा के बंधन को... विचारों के बंधन को... संदेह के बंधन को... अहंकार के बंधन को... अस्तित्व के लिए राग के बंधन को... अज्ञान के बंधन को जड़ से त्याग देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो, तब उसे तृष्णा का बंधन तोड़ने वाला, बंधन से मुक्त और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुखों का अंत करने वाला भिक्षु कहा जाता है।

---

10. कंजूसी (मच्छरिया)

"भिक्षुओं, ये सात बंधन हैं। कौन से सात? आज्ञापालन का बंधन, घृणा का बंधन, विचारों का बंधन, संदेह का बंधन, अहंकार का बंधन, ईर्ष्या का बंधन और कंजूसी का बंधन। 1459 ये सात बंधन हैं।" [9]

II. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (1) (अनुसया1)

भिक्षुओं, ये सात मूल प्रवृत्तियाँ हैं। कौन सी सात? कामवासना (राग) की मूल प्रवृत्ति, घृणा की मूल प्रवृत्ति, मत की मूल प्रवृत्ति, संदेह की मूल प्रवृत्ति, अहंकार की मूल प्रवृत्ति, अस्तित्व की चाह (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की मूल प्रवृत्ति और अज्ञान की मूल प्रवृत्ति। ये सात मूल प्रवृत्तियाँ हैं।

---

12. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (2) (अनुसया2)

भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य सात मूल प्रवृत्तियों का त्याग और उन्मूलन करना है। वे सात प्रवृत्तियाँ कौन सी हैं? राग (इंद्रिय सुख), घृणा, मत, संशय, अहंकार, जीवन के प्रति भाव और अज्ञान। ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य इन सात मूल प्रवृत्तियों का त्याग और उन्मूलन करना है।

जब कोई भिक्षु इंद्रिय-संबंधी प्रवृत्ति (राग) का त्याग कर उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो; जब वह घृणा की प्रवृत्ति... दृष्टिकोण की प्रवृत्ति... संदेह की प्रवृत्ति... अहंकार की प्रवृत्ति... अस्तित्व के लिए वासना (राग) (भाव/पुनर्जन्म का कारण)... अज्ञान की प्रवृत्ति का त्याग कर उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान मिटा देता है, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो, तब उसे अंतर्निहित प्रवृत्तियों से रहित भिक्षु कहा जाता है, 1460 वह जिसने तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) को काट डाला है, बंधन तोड़ दिया है, और अहंकार को पूरी तरह से तोड़कर दुख का अंत कर दिया है। [10]

---

13 परिवार (कुला)

"जिन भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, उनके लिए ऐसा परिवार जिसके पास अभी तक न जाया गया हो, उसके पास जाना उचित नहीं है, और जिनके पास जाया जा चुका हो, उनके साथ बैठना उचित नहीं है। 1461 वे सात गुण क्या हैं? (1) वे उचित ढंग से उठते नहीं हैं। 1462 (2) वे उचित ढंग से प्रणाम नहीं करते। (3) वे उचित ढंग से बैठने की व्यवस्था नहीं करते। (4) वे अपने पास जो कुछ है, उसे छिपाते हैं। (5) उनके पास बहुत कुछ होते हुए भी, वे कम देते हैं। (6) उनके पास उत्तम वस्तुएँ होते हुए भी, वे साधारण वस्तुएँ देते हैं। (7) वे आदरहीनता से देते हैं, आदरपूर्वक नहीं। इन सात गुणों वाले भिक्षुओं के लिए ऐसा परिवार जिसके पास अभी तक न जाया गया हो, उसके पास जाना उचित नहीं है, और जिनके पास जाया जा चुका हो, उनके साथ बैठना उचित नहीं है।"

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में सात गुण होते हैं: जिस परिवार से अभी तक संपर्क नहीं किया गया है, उससे संपर्क करना उचित है, और जिस परिवार से संपर्क किया जा चुका है, उसके साथ बैठना उचित है। वे सात गुण क्या हैं? (1) वे सौम्य ढंग से उठते हैं। (2) वे सौम्य ढंग से प्रणाम करते हैं। (3) वे सौम्य ढंग से आसन प्रदान करते हैं। (4) वे अपने पास जो कुछ है, उसे छिपाते नहीं हैं। (5) जब उनके पास प्रचुरता होती है, तो वे प्रचुरता से दान करते हैं। (6) जब उनके पास उत्तम वस्तुएँ होती हैं, तो वे उत्तम वस्तुएँ दान करते हैं। (7) वे आदरपूर्वक दान करते हैं, अनादर का भाव नहीं दिखाते। इन सात गुणों से युक्त, जिस परिवार से अभी तक संपर्क नहीं किया गया है, उससे संपर्क करना उचित है, और जिस परिवार से संपर्क किया जा चुका है, उसके साथ बैठना उचित है।"

---

14 व्यक्ति (पुग्गला)

"भिक्षुओं, ये सात व्यक्ति दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं। वे कौन से सात हैं? दोनों प्रकार से मुक्त, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त, देह-साक्षी, दृष्टि प्राप्त, आस्था द्वारा मुक्त, धम्म का अनुयायी, और आस्था का अनुयायी। [11] ये सात व्यक्ति दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं।" 1463

---

15 जल में रहने वालों के समान (उदकुपमा)

भिक्षुओं, संसार में जल में रहने वाले लोगों के समान सात प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे सात कौन से हैं? (1) कोई व्यक्ति एक बार जल में डूब चुका है और वहीं रहता है। (2) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर फिर जल में डूब जाता है। (3) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर वहीं रहता है। (4) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर स्पष्ट दृष्टि से चारों ओर देखता है। (5) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर पार चला जाता है। (6) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर दृढ़ता से स्थिर हो जाता है। (7) कोई व्यक्ति जल से ऊपर उठकर पार चला जाता है और उससे भी आगे बढ़ जाता है, वह एक ब्राह्मण है जो उच्च भूमि पर खड़ा है।

(3) हे भिक्षुओं, जो व्यक्ति एक बार अधोलोक में चला गया हो और अधोलोक में ही रहता हो, वह कैसे कहलाता है? यहाँ, कुछ व्यक्ति में केवल काले, हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) होते हैं। इस प्रकार, एक व्यक्ति वह है जो एक बार अधोलोक में चला गया हो और अधोलोक में ही रहता हो।

(2) और वह व्यक्ति कैसा होता है जो उठकर फिर गिर जाता है? यहाँ, कोई व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है, यह सोचते हुए: 'धर्म के लाभकारी गुणों में विश्वास अच्छा है; धर्म के लाभकारी गुणों में नैतिक लज्जा अच्छी है; धर्म के लाभकारी गुणों में नैतिक भय अच्छा है; धर्म के लाभकारी गुणों में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) अच्छी है; धर्म के लाभकारी गुणों में पन्ना (दिव्य ज्ञान) अच्छा है।' परन्तु उसका विश्वास स्थिर नहीं होता और न ही बढ़ता है, बल्कि क्षीण हो जाता है। उसकी नैतिक लज्जा... नैतिक भय... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य)... पन्ना (दिव्य ज्ञान) स्थिर नहीं होता और न ही बढ़ता है, बल्कि क्षीण हो जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति उठ खड़ा होता है और फिर गिर जाता है।

(3) "और वह व्यक्ति कैसा है जो उठ खड़ा होकर स्थिर रहता है? [12] यहाँ, कोई व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है, [यह सोचकर]: 'लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के [विकास] में विश्वास अच्छा है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के [विकास] में पन्ना (दिव्य ज्ञान) अच्छा है।' उसका विश्वास न घटता है और न बढ़ता है; वह स्थिर रहता है। उसकी नैतिक लज्जा... उसका नैतिक भय... उसकी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य)... उसका पन्ना (दिव्य ज्ञान) न घटता है और न बढ़ता है; वह स्थिर रहता है। इस प्रकार एक व्यक्ति वह है जो उठ खड़ा होकर स्थिर रहता है।"

(4) और वह व्यक्ति कैसे है जो ऊपर उठकर, स्पष्ट दृष्टि से देखता है और चारों ओर देखता है? यहाँ, कोई व्यक्ति ऊपर उठकर यह सोचता है: 'धर्म के लाभकारी गुणों को विकसित करने में विश्वास अच्छा है... धर्म के लाभकारी गुणों को विकसित करने में दिव्य ज्ञान अच्छा है।' तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से, यह व्यक्ति सात जन्मों का पथ-प्रदर्शक (सोतपत्ति) बन जाता है, निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहता, नियति में स्थिर होकर ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति ऊपर उठकर, स्पष्ट दृष्टि से देखता है और चारों ओर देखता है।

(5) और वह व्यक्ति कैसे है जो उठ खड़ा हुआ है और पार जा रहा है? यहाँ, कोई व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है, [यह सोचकर]: 'लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के [विकास] में विश्वास अच्छा है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के [विकास] में पन्ना (दिव्य ज्ञान) अच्छा है।' तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने के साथ, यह व्यक्ति एक बार जन्म लेने वाला (एक बार पुनर्जन्म लेने वाला, सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर आकर दुखों का अंत करेगा। इस प्रकार एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है और पार जा रहा है।

(6) "और वह व्यक्ति कैसे है जो उठ खड़ा हुआ है और दृढ़ स्थान प्राप्त कर चुका है? यहाँ, कोई व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है, [यह सोचकर]:

'धर्म के लाभकारी गुणों को विकसित करने में आस्था रखना अच्छा है... धर्म के लाभकारी गुणों को विकसित करने में ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है।' पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश होने पर, व्यक्ति स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से वापस लौटे बिना ही अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार व्यक्ति उत्थान प्राप्त करता है और दृढ़ स्थिति प्राप्त करता है।

(7) "और जो व्यक्ति ऊपर उठकर पार चला गया है, वह उच्च स्थान पर स्थित ब्राह्मण कैसे हो सकता है? [13] यहाँ, कोई व्यक्ति उठ खड़ा हुआ है, [यह सोचकर]: 'धर्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में विश्वास अच्छा है; धर्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में नैतिक लज्जा अच्छी है; धर्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में नैतिक भय अच्छा है; धर्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) अच्छी है; धर्म के लाभकारी (कुशल) गुणों में पन्ना (दिव्य ज्ञान) अच्छा है।' दोषों के नाश होने पर, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति उत्थान प्राप्त कर, पार कर और परे जा चुका है, एक ऐसा ब्राह्मण है जो उच्च स्थान पर स्थित है।

"हे भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में जल में रहने वालों के समान विद्यमान पाए जाते हैं।"

---

16 अनित्यता ध्यानी (अनिकानुपासि सं. अनित्य अनुपश्ययी)

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं। वे सात कौन से हैं?"

(1) हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति सभी प्रकार की परिस्थितियों में अनित्यता का अवलोकन (अनुपसी) करते हुए, अनित्यता को निरंतर अनुभव करते हुए, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर ध्यान केंद्रित करते हुए, दिव्य ज्ञान से उसका गहन अध्ययन करते हुए निवास करता है। दोषों के नाश होने से उसने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निर्मल मुक्ति, दिव्य ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है। यह व्यक्ति दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य प्रथम प्रकार का है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का पात्र है।

(2) "फिर, कोई व्यक्ति सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता को देखते हुए (अनुपसी में) ध्यान लगाता है, अनित्यता को अनुभव करता है, अनिच्छा का अनुभव करता है, निरंतर, सतत और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और उसे ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से समझता है। उसके लिए दोषों का नाश और जीवन का नाश एक साथ होता है। 1465 यह दूसरे प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है। . ."

(3) "फिर, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) को ध्यान में रखते हुए (अनुपसी में) रहता है, अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) को अनुभव करता है, निरंतर, सतत और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और उसे ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से समझता है। [14] पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, वह इस अंतराल में निर्वाण (निब्बान) प्राप्त कर लेता है। 1466 यह तीसरे प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है। . . ."

(4) "...पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, वह उतरते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1467 यह दान के योग्य चौथे प्रकार का व्यक्ति है। ..."

(5) "...पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, वह बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1468 यह पांचवा प्रकार का व्यक्ति है जो दान के योग्य है। ..."

(6) "... निम्न पाँच बंधनों के पूर्ण नाश से वह परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यह छठे प्रकार का दानयोग्य व्यक्ति है। ..."

(7) "फिर, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) को ध्यान में रखते हुए (अनुपसी में) रहता है, अनित्यता को अनुभव करते हुए, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उसे ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से समझता है: पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह धारा के विपरीत दिशा में बहने लगता है, अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर होता है। 1469 यह सातवें प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है।

"हे भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, और संसार के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र हैं।"

---

17 पीड़ित ध्यानी (दुक्खनुपासि सं. दुक्ख अनुपश्ययी)

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं। वे सात कौन से हैं?"

(1) हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति समस्त संभाव्यताओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में दुख को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है, दुख को अनुभव करते हुए, निरंतर, सतत और निर्बाध रूप से उस पर मन केंद्रित करते हुए, उसे ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से गहराई से समझता है। दोषों के नाश होने पर, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, ज्ञान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यह दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य प्रथम प्रकार का व्यक्ति है, जो संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।

[बाकी 7:16 के अनुसार है, लेकिन सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में पीड़ा को देखने (ध्यान/अनुपसी में) पर आधारित है।]

---

18 गैर-स्व ध्यानी (अनत्तनुपासि सं. अनित्य अनुपश्ययी)

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं: वे सात कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति समस्त घटनाओं में अनात्म को निहारते हुए (ध्यान/अनुपसी में) निवास करता है, अनात्म को अनुभव करते हुए, निरंतर, सतत और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उसे प्रभात (दिव्य ज्ञान) से गहराई से समझता है। दोषों के नाश के साथ, उसने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, प्रभात (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यह दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य प्रथम प्रकार का व्यक्ति है, जो संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।"

[बाकी 7:16 के अनुसार है, लेकिन सभी घटनाओं (धम्म) में अनात्म को देखने (ध्यान/अनुपसी में) पर आधारित है।]

---

19. निब्बाना (निर्वाण का सान्निध्य)

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं। वे सात कौन से हैं?"

"यहाँ, भिक्षुओं, एक व्यक्ति ध्यान में लीन होकर निर्वाण के सुख को निहारता है, उस सुख को अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर मन केंद्रित करता है, और उसे दिव्य ज्ञान से समझता है। दोषों के नाश होने पर, उसने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निर्मल मुक्ति, दिव्य ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यह प्रथम प्रकार का व्यक्ति है जो दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य है, और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

[बाकी 7:16 के अनुसार, लेकिन निर्वाण में सुख देखने पर आधारित।] [15]

निद्धसवत्थु (निष्कलंक होने के 20 आधार)

"भिक्षुओं (मठवासियों), निष्कलंक होने के ये सात आधार हैं 1472 वे सात कौन से हैं?"

यहां, (1) एक भिक्षु को प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा होती है और भविष्य में भी प्रशिक्षण लेने के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (2) उसे धम्म का अध्ययन करने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी धम्म का अध्ययन करने के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (3) उसे व्यर्थ इच्छाओं को दूर करने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी व्यर्थ इच्छाओं को दूर करने के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (4) उसे एकांतवास की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी एकांतवास के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (5) उसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (6) उसे सती ध्यान और सतर्कता की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी सती ध्यान और सतर्कता के प्रति उसका लगाव बना रहता है। (7) उसे दृष्टि द्वारा भेदने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में भी दृष्टि द्वारा भेदने के प्रति उसका लगाव बना रहता है। भविष्य। ये सात आधार हैं निष्कलंक होने के।

तृतीय. वज्जि सात (वज्जिसत्तक सं. वज्जि सप्तक)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 सारंददा

[16] मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में सरंददा मंदिर में निवास कर रहे थे। तब कई लिच्छवी भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे लिच्छवियों, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।" 1474

"जी भंते," उन लिच्छवियों ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और लिच्छवी, पतन से बचने के सात सिद्धांत क्या हैं?"

(1) "लिच्छवी, जब तक वज्जी अक्सर इकट्ठा होते हैं और बार-बार सभाएँ आयोजित करते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, गिरावट की नहीं।

(2) "जब तक वज्जी सद्भाव में एकत्रित होते हैं, सद्भाव में स्थगित होते हैं और वज्जियों के मामलों का संचालन सद्भाव में करते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(3) "जब तक वज्जी किसी ऐसी बात का फरमान नहीं सुनाते जो पहले से तय नहीं है या किसी ऐसी बात को खत्म नहीं करते जो पहले से तय है, बल्कि प्राचीन वज्जी सिद्धांतों को उसी रूप में अपनाते और उनका पालन करते हैं जैसा कि तय किया गया है, तब तक उनसे केवल विकास की उम्मीद की जा सकती है, गिरावट की नहीं।"

(4) "जब तक वज्जी लोग वज्जी बुजुर्गों का आदर, सम्मान, आदर और आदर करते हैं और सोचते हैं कि उनकी बात सुनी जानी चाहिए, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(5) "जब तक वज्जी लोग महिलाओं और लड़कियों को उनके परिवारों से अगवा करके अपने साथ रहने के लिए मजबूर नहीं करते, तब तक उनके लिए केवल विकास की ही उम्मीद की जा सकती है, गिरावट की नहीं।"

(6) "जब तक वज्जी अपने पारंपरिक तीर्थस्थलों का सम्मान, आदर, आदर और पूजा करते हैं, चाहे वे [शहर] 1475 के भीतर हों या बाहर, [17] और अतीत में उन्हें दिए गए और किए गए धार्मिक अर्पण की उपेक्षा नहीं करते, 1476 तब तक उनके लिए केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, गिरावट की नहीं।

(7) "जब तक वज्जी अरहंतों को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते हैं, [इस इरादे से]: 'जो अरहंत अभी तक यहाँ नहीं आए हैं वे हमारे राज्य में कैसे आ सकते हैं, और जो अरहंत पहले ही आ चुके हैं वे यहाँ कैसे आराम से रह सकते हैं?' तब तक उनके लिए केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

"लिच्छवी, जब तक वज्जियों के बीच अवनति के ये सात सिद्धांत बने रहते हैं, और वज्जी उनमें स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, न कि अवनति की।"

---

22 वासाकारा [1477]

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित कजगाह में निवास कर रहे थे। उस समय मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त ने वज्जियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने कहा, "ये वज्जी जितने शक्तिशाली और बलवान हैं, मैं उनका नाश करूँगा, उन्हें नष्ट करूँगा, उन पर विपत्ति और विपत्ति लाऊँगा।"

तब राजा अजातसत्तु ने मगध के प्रधान मंत्री, ब्राह्मण वस्सकारा को संबोधित करते हुए कहा, "हे ब्राह्मण, आओ, भगवान (बुद्ध) के पास जाओ और मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम करो। उनसे पूछो कि क्या वे स्वस्थ, चुस्त और बलवान हैं और शांत हैं। कहो: 'भंते, मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त भगवान (बुद्ध) को आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम करते हैं। वे पूछते हैं कि क्या आप

स्वस्थ, चुस्त और बलवान हैं और शांत हैं।' फिर इस प्रकार कहो: 'भंते, राजा अजातसत्तु वज्जियों के विरुद्ध युद्ध करना चाहते हैं। वे कहते हैं: 'ये वज्जी जितने शक्तिशाली और बलवान हैं, मैं उनका संहार करूँगा, उन्हें नष्ट करूँगा, उन पर विपत्ति और आपदा लाऊँगा।' [18] भगवान (बुद्ध) तुम्हें क्या उत्तर देते हैं, यह भली-भांति जान लो और मुझे बता, क्योंकि तथागत (बुद्ध) झूठ नहीं बोलते।"

“जी, महाराज,” ब्राह्मण वासकारा ने उत्तर दिया। फिर वह अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से अभिवादन किया, और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और बोले:

हे गुरु गौतम, मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त आपके चरणों में सिर रखकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करते हैं। वे आपसे पूछते हैं कि क्या आप स्वस्थ, चुस्त और बलवान हैं और सहज महसूस कर रहे हैं। हे गुरु गौतम, राजा अजातसत्तु वज्जियों के विरुद्ध युद्ध करना चाहते हैं। वे कहते हैं: 'ये वज्जी जितने शक्तिशाली और बलवान हैं, मैं उनका संहार करूँगा, उन्हें नष्ट करूँगा, उन पर विपत्ति और विपत्ति लाऊँगा।'

उस समय पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित किया:

(1) "आनंद, क्या तुमने सुना है कि वज्जी लोग अक्सर इकट्ठा होते हैं और बार-बार सभाएँ आयोजित करते हैं?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी लोग अक्सर एकत्रित होते रहेंगे और नियमित सभाएँ आयोजित करते रहेंगे, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(2) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी लोग सद्भाव से एकत्रित हो रहे हैं, सद्भाव से अपनी सभाएँ स्थगित कर रहे हैं और सद्भाव से वज्जियों के मामलों का संचालन कर रहे हैं?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी सद्भाव में एकत्रित होते हैं, [19] सद्भाव में स्थगित होते हैं, और वज्जियों के मामलों का सद्भाव में संचालन करते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की अपेक्षा की जा सकती है, गिरावट की नहीं।

(3) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी किसी ऐसी बात का फरमान नहीं बनाते जो पहले से तय न हो और किसी ऐसी बात को रद्द नहीं करते जो पहले से तय हो चुकी हो, बल्कि प्राचीन वज्जी सिद्धांतों को उसी रूप में अपनाते और उनका पालन करते हैं जैसा कि तय किया गया है?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी किसी ऐसी बात का फरमान जारी नहीं करते जो पहले से तय नहीं है या किसी ऐसी बात को रद्द नहीं करते जो पहले से तय है, बल्कि प्राचीन वज्जी सिद्धांतों को उसी रूप में अपनाते और उनका पालन करते हैं जैसा कि निर्धारित किया गया है, तब तक उनसे केवल विकास की ही उम्मीद की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(4) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी लोग वज्जी बुजुर्गों का आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं और सोचते हैं कि उनकी बात मानी जानी चाहिए?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी लोग वज्जी बुजुर्गों का आदर, सम्मान और आदर करते रहेंगे और यह मानते रहेंगे कि उनकी बात सुनी जानी चाहिए, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(5) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी लोग महिलाओं और लड़कियों को उनके परिवारों से अगवा नहीं करते और उन्हें अपने साथ रहने के लिए मजबूर नहीं करते?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा नहीं करते।"

"आनंद, जब तक वज्जी लोग महिलाओं और लड़कियों को उनके परिवारों से अगवा करके अपने साथ रहने के लिए मजबूर नहीं करते, तब तक उनसे केवल विकास की ही उम्मीद की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(6) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी लोग अपने पारंपरिक तीर्थस्थलों का आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, चाहे वे शहर के भीतर हों या बाहर, और क्या वे अतीत में उन्हें दी गई और की गई धार्मिक आहुतियों की उपेक्षा नहीं करते?"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी [20] अपने पारंपरिक मंदिरों का सम्मान/आदर, आदर और पूजा करते हैं, चाहे वे शहर के भीतर हों या बाहर, और अतीत में उन्हें दी गई और की गई धार्मिक आहुतियों की उपेक्षा नहीं करते, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।

(7) "क्या तुमने सुना है, आनंद, कि वज्जी अरहंतों को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते हैं, [इस इरादे से]: 'जो अरहंत अभी तक यहाँ नहीं आए हैं वे हमारे लोक में कैसे आ सकते हैं, और जो अरहंत पहले ही आ चुके हैं वे यहाँ कैसे चैन से रह सकते हैं?'"

"मैंने सुना है, भंते, कि वे ऐसा करते हैं।"

"आनंद, जब तक वज्जी अरहंतों को धार्मिक संरक्षण, आश्रय और सुरक्षा प्रदान करते रहेंगे, [इस इरादे से]: 'जो अरहंत अभी तक यहाँ नहीं आए हैं वे हमारे लोक में कैसे आ सकते हैं और जो अरहंत पहले ही आ चुके हैं वे यहाँ कैसे चैन से रह सकते हैं?' तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने मगध के प्रधान मंत्री ब्राह्मण वासकारा को संबोधित करते हुए कहा, "हे ब्राह्मण, एक बार मैं वैशाली में सरंददा मंदिर में निवास कर रहा था। वहाँ मैंने वज्जियों को अवनति के ये सात सिद्धांत सिखाए। जब तक वज्जियों में अवनति के ये सात सिद्धांत बने रहेंगे और वज्जी उनमें दृढ़ रहेंगे, तब तक उनसे केवल उन्नति ही अपेक्षित है, अवनति नहीं।"

यह सुनकर ब्राह्मण वासकारा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे गौतम गुरु, यदि वज्जी इन अवनति सिद्धांतों में से एक का भी पालन करें, तो उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं। यदि वे सभी सात सिद्धांतों का पालन करें तो क्या होगा? हे गौतम गुरु, मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त, वज्जियों को युद्ध द्वारा नहीं जीत सकते, सिवाय [21] छल या आंतरिक कलह के। और अब, हे गौतम गुरु, हमें जाना होगा। हम व्यस्त हैं और हमारे पास बहुत काम है।"

"हे ब्राह्मण, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब मगध के प्रधान ब्राह्मण वस्साकरा, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठे और चले गए।

---

23 गैर-अस्वीकार (1) (पथमासट्टक)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।" 1478

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और भिक्षुओं, अवनति से मुक्ति के सात सिद्धांत क्या हैं?"

(1) "जब तक भिक्षु अक्सर एकत्रित होते हैं और बार-बार सभाएँ आयोजित करते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, गिरावट की नहीं।"

(2) "जब तक भिक्षु सद्भाव से एकत्रित होते हैं, सद्भाव से विलीन होते हैं और संघ के कार्यों का संचालन सद्भाव से करते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(3) "जब तक भिक्षु किसी ऐसी बात का फरमान नहीं सुनाते जो फरमान नहीं सुनाया गया हो या किसी ऐसी बात को रद्द नहीं करते जो पहले से फरमान सुनाया गया हो, बल्कि प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हैं जैसा कि फरमान सुनाया गया है, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(4) "जब तक भिक्षु उन भिक्षुओं का आदर, सम्मान, आदर और आदर करते हैं जो वरिष्ठ हैं, लंबे समय से संन्यासी जीवन में जा चुके हैं, संघ के पिता और मार्गदर्शक हैं, और यह समझते हैं कि उनकी बात माननी चाहिए, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(5) "जब तक भिक्षु उत्पन्न हुई तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के वश में नहीं आते, जो पुनर्जन्म की ओर ले जाती है, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

(6) "जब तक भिक्षु वन में निवास करने के लिए तत्पर हैं, [22] उनके लिए केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, गिरावट की नहीं।

(7) "जब तक भिक्षु व्यक्तिगत रूप से सती (ध्यान) स्थापित करते हैं [इस इरादे से]: 'यहाँ अभी तक नहीं आए सुसंस्कृत साथी भिक्षु कैसे आ सकते हैं, और यहाँ पहले से मौजूद सुसंस्कृत साथी भिक्षु कैसे आराम से रह सकते हैं?' तब तक उनसे केवल विकास की अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।"

"भिक्षुओं, जब तक भिक्षुओं के बीच अवनति के ये सात सिद्धांत बने रहते हैं, और भिक्षु उनमें स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं।"

---

24 गैर-पतन (2) (दुतियासत्तक)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और भिक्षुओं, अवनति से मुक्ति के सात सिद्धांत क्या हैं?"

(1) जब तक भिक्षु काम में आनंद नहीं लेते, काम में प्रसन्नता नहीं पाते, काम में प्रसन्नता के प्रति समर्पित नहीं होते, तब तक उनसे केवल उन्नति की अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं। (2) जब तक भिक्षु बातों में प्रसन्नता नहीं पाते... (3) ... नींद में प्रसन्नता नहीं पाते... (4) ... संगति में प्रसन्नता नहीं पाते... (5) ... बुरी इच्छाएँ नहीं रखते और बुरी इच्छाओं के वश में नहीं आते... (6) ... बुरे मित्रों, बुरे साथियों, बुरे सहपाठियों के साथ संगति नहीं करते... (7) ... किसी छोटी-मोटी उपलब्धि या विशिष्टता के कारण अपने विकास में बीच में ही नहीं रुकते, तब तक उनसे केवल उन्नति की अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।

"भिक्षुओं, जब तक भिक्षुओं के बीच ये सात सिद्धांत बने रहते हैं और भिक्षु उनमें दृढ़ रूप से स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।" 7

---

25 गैर-अस्वीकार (3) (तातियासट्टक)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो; मैं बोलूंगा।"

"जी हाँ, भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: [23]

"और भिक्षुओं, अवनति से मुक्ति के सात सिद्धांत क्या हैं?"

(1) जब तक भिक्षुओं में आस्था बनी रहती है, तब तक उनसे केवल उन्नति की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं। (2) जब तक उनमें नैतिक लज्जा का भाव रहता है... (3) ...नैतिक भय रहता है... (4) ...विद्वान रहते हैं... (5) ...ऊर्जावान रहते हैं... (6) ...सती ध्यान में रहते हैं... (7) ...बुद्धिमान रहते हैं, तब तक उनसे केवल उन्नति की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।

"भिक्षुओं, जब तक भिक्षुओं के बीच अवनति के ये सात सिद्धांत बने रहते हैं, और भिक्षु उनमें स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं।"

---

26 नॉन-डिक्लाइन (4) (बोज्झांगा संस. बोधयांग)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, अवनति से मुक्ति के सात सिद्धांत क्या हैं? (1) जब तक भिक्षु सती (ध्यान) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं, तब तक उनसे केवल वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं। (2) जब तक वे धम्म (विवेचन) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं... (3) ...वीर्य (प्रयास) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं... (4) ...पीति (आनंद) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं... (5) ...शांति (पश्चात्धि) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं... (6) ...समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं... (7) ...उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं, तब तक उनसे केवल वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं।

"भिक्षुओं (मठवासियों), जब तक भिक्षुओं के बीच ये सात सिद्धांत बने रहते हैं और भिक्षु उनमें स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, पतन की नहीं।" 7 [24]

---

27 गैर-गिरावट (5)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अवनति के सात सिद्धांत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, अवनति के सात सिद्धांत क्या हैं? (1) जब तक भिक्षु अनित्यता की अनुभूति विकसित करते हैं, तब तक उनसे केवल वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं। (2) जब तक वे अनात्म की अनुभूति विकसित करते हैं... (3) ... अनाकर्षण की अनुभूति... (4) ... खतरे की अनुभूति... (5) ... त्याग की अनुभूति... (6) ... वैराग्य की अनुभूति... (7) ... निश्चिंतता की अनुभूति... 1480

"भिक्षुओं, जब तक भिक्षुओं के बीच अवनति के ये सात सिद्धांत बने रहते हैं, और भिक्षु उनमें स्थापित दिखाई देते हैं, तब तक उनसे केवल विकास की ही अपेक्षा की जा सकती है, अवनति की नहीं।"

---

28 प्रशिक्षु का पतन (परिहानी1)

भिक्षुओं, ये सात गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे कौन से सात गुण हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद, इंद्रियों पर नियंत्रण न रखना, भोजन में संयम का अभाव; और जब संघ से संबंधित ऐसे मामले होते हैं जिनका निपटारा संघ में किया जाना चाहिए, तो प्रशिक्षु भिक्षु इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 1481 'संघ में दीर्घकालीन वरिष्ठ भिक्षु हैं, जो दीर्घकालीन संन्यासी जीवन व्यतीत कर चुके हैं, और जिम्मेदार हैं, जो उस कार्य की जिम्मेदारी लेंगे।' वह स्वयं उन कार्यों को अपने ऊपर ले लेता है। 1482 ये सात गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये सात गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे सात गुण कौन से हैं? [25] काम में आनंद न लेना, बातचीत में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, संगति में आनंद न लेना, इंद्रियों को वश में रखना, भोजन में संयम बरतना; और जब संघ से संबंधित कोई मामला संघ में निपटाना हो, तो प्रशिक्षु भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'संघ में दीर्घकालीन वरिष्ठ भिक्षु हैं, जो दीर्घकालीन संन्यासी जीवन व्यतीत कर चुके हैं, वे जिम्मेदार हैं, वे उस कार्य की जिम्मेदारी लेंगे।' वह स्वयं उन कार्यों को नहीं करता। ये सात गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं।

---

29 गिरावट (परिहानी2)

भिक्षुओं, ये सात बातें गृहस्थ अनुयायी के पतन का कारण बनती हैं। वे सात बातें क्या हैं? (1) वह भिक्षुओं से मिलना बंद कर देता है; (2) वह अच्छे धम्म को सुनना छोड़ देता है; (3) वह उच्च सद्‌गुणों का अभ्यास नहीं करता; (4) वह भिक्षुओं के प्रति संशय रखता है, चाहे वे वरिष्ठ हों, नवदीक्षित हों या मध्यम स्तर के हों; (5) वह धम्म को आलोचनात्मक मन से सुनता है, उसमें दोष ढूंढने का प्रयास करता है; (6) वह परदेसियों में से किसी योग्य व्यक्ति को भेंट चढ़ाने की तलाश करता है; (7) वह पहले वहाँ पुण्य कर्म करता है। 1483 ये सात बातें गृहस्थ अनुयायी के पतन का कारण बनती हैं।

भिक्षुओं, ये सात बातें गृहस्थ अनुयायी के पतन को रोकती हैं। वे सात बातें क्या हैं? (1) वह भिक्षुओं से मिलना नहीं छोड़ता; (2) वह अच्छे धम्म को सुनना नहीं छोड़ता; (3) वह उच्च सद्‌गुणों का अभ्यास करता है; (4) वह भिक्षुओं पर पूर्ण विश्वास रखता है, चाहे वे वरिष्ठ हों, नवदीक्षित हों या मध्यम स्तर के हों; (5) वह धम्म को आलोचनात्मक मन से नहीं सुनता, उसमें दोष ढूंढने की कोशिश नहीं करता; (6) वह बाहरी लोगों में भेंट के योग्य व्यक्ति की तलाश नहीं करता; (7) वह पहले यहाँ [पुण्य] कर्म करता है। ये सात बातें गृहस्थ अनुयायी के पतन को रोकती हैं। 1484 [26]

जो गृहस्थ अनुयायी

आत्म-विकास प्राप्त भिक्षुओं का दर्शन करना छोड़ देता है,

जो श्रेष्ठ भिक्षुओं की शिक्षाओं को सुनना बंद कर देता है

और उच्च सद्‌गुणों का अभ्यास नहीं करता;

जिसका भिक्षुओं के प्रति संदेह

निरंतर बढ़ता रहता है; जो आलोचनात्मक मन से

धर्म का उपदेश सुनना चाहता है ; जो गृहस्थ अनुयायी परदेसियों में से किसी योग्य व्यक्ति को दान देने के लिए चुनता है और पहले उसके प्रति पुण्य कर्म करता है: ये सात सुस्थापित सिद्धांत पतन के कारणों का वर्णन करते हैं। जो गृहस्थ अनुयायी इन सिद्धांतों का अनुसरण करता है, वह धर्म से विमुख हो जाता है।

वह गृहस्थ अनुयायी जो आत्म-विकास प्राप्त भिक्षुओं के दर्शन निरंतर करता है ,

जो श्रेष्ठ भिक्षुओं की शिक्षाओं को सुनता है

और उच्चतर सद्गुणों का अभ्यास करता है;

जिसका भिक्षुओं पर विश्वास

निरंतर बढ़ता रहता है; जो आलोचनात्मक मन से

धर्म का पाठ नहीं सुनना चाहता ; वह गृहस्थ अनुयायी जो पराक्रम के योग्य किसी को नहीं चुनता, बल्कि सर्वप्रथम पुण्य कर्म करने का संकल्प लेता है: ये सात सुस्थापित सिद्धांत धर्म के पतन से मुक्ति का मार्ग बताते हैं। इन सिद्धांतों का पालन करने वाला गृहस्थ अनुयायी धर्म से विमुख नहीं होता।

---

30 पेरिल 1485 (विपत्ति)

भिक्षुओं, गृहस्थ अनुयायी के ये सात खतरे हैं। वे सात क्या हैं? ... [जैसा कि 7:29 में है] ... भिक्षुओं, गृहस्थ अनुयायी के ये सात धन हैं। वे सात क्या हैं? ... [जैसा कि 7:29 में है] ... ये गृहस्थ अनुयायी के सात धन हैं।

---

31. विनाश (परभाव)

"भिक्षुओं (मठवासियों), गृहस्थ अनुयायी के लिए ये सात विजय हैं। कौन सी सात? . . . [जैसा कि 7:29 में है] . . . भिक्षुओं, गृहस्थ अनुयायी के लिए ये सात विजय हैं। कौन सी सात? . . . [जैसा कि 7:29 में है] . . . गृहस्थ अनुयायी के लिए ये सात विजय हैं।" [27]

[ये आयतें 7:29 में दी गई आयतों के समान हैं]

IV. देवता (देवदूत)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

32 सतर्कता 1486 (अप्पमदागरव)

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जिसने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, [28] भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, भिक्षु के पतन को रोकने वाले ये सात गुण हैं। वे कौन से सात गुण हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा, जागरूकता के प्रति श्रद्धा और आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा। ये सात गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।"

यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। गुरुजी सहमत हो गए। तब उस देवता (देवदूत) ने मन ही मन सोचा, "गुरुजी मुझसे सहमत हैं," और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जिसने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और मुझसे कहा: 'भंते, ये सात गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे सात क्या हैं? गुरु के प्रति आदर... और आतिथ्य सत्कार के प्रति आदर। ये सात गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। फिर उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गया।"

गुरु के प्रति आदरपूर्ण,

धम्म के प्रति आदरपूर्ण,

संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाला,

समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के प्रति आदरपूर्ण,

प्रशिक्षण के प्रति उत्साही और गहरी श्रद्धा रखने वाला;

सतर्कता के प्रति आदरपूर्ण,

आतिथ्य सत्कार का सम्मान करने वाला:

यह भिक्षु भटक नहीं सकता,

बल्कि निर्वाण के निकट है।

---

33 नैतिक शर्म 1487 (हिरिगरवा)

"पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, [29] मेरे पास आया, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और मुझसे कहा: 'भंते, ये सात गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे सात क्या हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा,

नैतिक लज्जा के प्रति श्रद्धा और नैतिक भय के प्रति श्रद्धा। ये सात गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। फिर उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गया।"

गुरु के प्रति आदरपूर्ण,

धम्म के प्रति आदरपूर्ण,

संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाला,

समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति आदरपूर्ण,

प्रशिक्षण के प्रति उत्साही और गहरी श्रद्धा रखने वाला;

नैतिक लज्जा और नैतिक भय से परिपूर्ण,

विनम्र और श्रद्धापूर्ण:

ऐसा व्यक्ति कभी भटक नहीं सकता

, बल्कि निर्वाण के निकट होता है।

---

34 सुधारना आसान (1) (Sovacassata1)

"पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात ढल रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और मुझसे कहा: 'भंते, ये सात गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे सात गुण कौन से हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा, आसानी से सुधारे जाने की क्षमता और अच्छी मित्रता। ये सात गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। फिर उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।"

गुरु के प्रति आदरपूर्ण,

धम्म के प्रति आदरपूर्ण,

संघ के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाला,

समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति आदरपूर्ण,

प्रशिक्षण के प्रति उत्साही और गहरी श्रद्धा रखने वाला;

अच्छे मित्र बनाने वाला,

सुधार के लिए तैयार रहने वाला,

विनम्र और आदरपूर्ण।

ऐसा व्यक्ति कभी भटकता नहीं

बल्कि निर्वाण के निकट होता है।

---

35 सुधारना आसान (2) 1488 (Sovacassata2)

"पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात ढल रही थी, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और मुझसे कहा: 'भंते, ये सात गुण हैं जो भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे सात गुण कौन से हैं? गुरु के प्रति श्रद्धा, धम्म के प्रति श्रद्धा, संघ के प्रति श्रद्धा, प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा, आसानी से सुधारे जाने की क्षमता और अच्छी मित्रता। ये सात गुण भिक्षु के पतन को रोकते हैं।' यही उस देवता (देवदूत) ने कहा। फिर उस देवता (देवदूत) ने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ मैं विस्तार से समझ गया हूँ। यहाँ, एक भिक्षु स्वयं गुरु का आदर करता है और गुरु के प्रति आदर की प्रशंसा करता है; वह अन्य भिक्षुओं को, जो गुरु का आदर नहीं करते, गुरु के प्रति आदर विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है और उचित समय पर, सच्चे और ईमानदारी से, उन भिक्षुओं की प्रशंसा करता है जो गुरु का आदर करते हैं। वह स्वयं धम्म का आदर करता है... संघ का आदर करता है... प्रशिक्षण का आदर करता है... समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का आदर करता है... आसानी से सुधर जाता है... उसके अच्छे मित्र होते हैं और वह अच्छी मित्रता की प्रशंसा करता है; वह अन्य भिक्षुओं को, जिनके अच्छे मित्र नहीं हैं, अच्छे मित्र खोजने के लिए प्रोत्साहित करता है और उचित समय पर, सच्चे और ईमानदारी से, उन भिक्षुओं की प्रशंसा करता है जिनके अच्छे मित्र हैं। इसी प्रकार, भंते, मैं भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में जो कहा है, उसके अर्थ को विस्तार से समझें।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह अच्छा है कि तुमने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझ लिया है।"

[बुद्ध यहाँ सारिपुत्त के पूरे कथन को दोहराते हैं, अंत में:] [31]

"सारिपुत्त, मैंने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ विस्तार से इसी तरह समझा जाना चाहिए।"

---

36 एक मित्र (1) 1489 (मित्त1 संस्कृत मित्र)

भिक्षुओं, ऐसे मित्र की संगति करनी चाहिए जिसमें सात गुण हों। वे कौन से सात गुण हैं? (1) वह कठिन कार्य भी देता है। (2) वह कठिन कार्य भी करता है। (3) वह कठिन सहनशीलता से सहता है। (4) वह अपने रहस्य आपसे प्रकट करता है। (5) वह आपके रहस्यों को सुरक्षित रखता है। (6) संकट में होने पर वह आपका साथ नहीं छोड़ता। (7) वह आपका अपमान नहीं करता। 1490 ऐसे मित्र की संगति करनी चाहिए जिसमें ये सात गुण हों।

एक सच्चा मित्र वह देता है जो देना कठिन होता है,

और वह वह करता है जो करना कठिन होता है।

वह आपके कठोर शब्दों को क्षमा करता है

और वह सहन करता है जो सहन करना कठिन होता है।

वह अपने रहस्य आपसे साझा करता है,

फिर भी आपके रहस्यों को सुरक्षित रखता है।

वह मुश्किलों में आपका साथ नहीं छोड़ता,

न ही आपके प्रति कठोर रवैया अपनाता है।

जिस व्यक्ति में

ये गुण पाए जाते हैं, वही मित्र है।

मित्र की इच्छा रखने वाले व्यक्ति

को ऐसे ही व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए।

---

37 एक मित्र (2) (मित्त1 संस्कृत मित्र)

भिक्षुओं, सात गुणों वाले भिक्षु मित्र की संगति करनी चाहिए; चाहे वह आपको अस्वीकार भी कर दे, आपको उसकी शरण में जाना चाहिए और उसकी सेवा करनी चाहिए। वे सात गुण क्या हैं? (1) वह प्रसन्न और सौम्य है; (2) वह आदरणीय और (3) प्रतिष्ठित है; (4) वह एक अच्छा वक्ता है; (5) वह धैर्यपूर्वक बातें सुनता है; (6) वह गहन प्रवचन देता है; और (7) वह आपको गलत काम करने का आदेश नहीं देता।

वह प्रिय, आदरणीय और प्रतिष्ठित हैं,

एक वक्ता हैं और भाषण सुनने वाले भी हैं; वे गहन प्रवचन देते हैं और किसी को गलत काम करने की

सलाह नहीं देते ।

यहां जिस व्यक्ति में

ये गुण पाए जाते हैं, वह मित्रवत,

परोपकारी और करुणामय होता है।

भले ही वह व्यक्ति किसी को ठुकरा दे,

मित्र की चाह रखने वाले को

ऐसे व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए।

---

38 विश्लेषणात्मक ज्ञान (1) (पतिसंभिदा1)

"भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में सात गुण होते हैं, तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा चार विश्लेषणात्मक ज्ञानों को शीघ्र ही स्वयं जान सकता है और उन पर महारत हासिल कर सकता है। 1492 वे सात गुण कौन से हैं?"

"यहाँ, (1) एक भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह मुझमें मानसिक सुस्ती है।' 1493 (2) या जब मन आंतरिक रूप से संकुचित होता है, तो वह यथार्थ को समझता है: 'मेरा मन आंतरिक रूप से संकुचित है।' (3) या जब उसका मन बाह्य रूप से विचलित होता है, तो वह यथार्थ को समझता है: 'मेरा मन बाह्य रूप से विचलित है।' 1494 (4) वह वेदनाओं (संवेदनाओं) को उनके उत्पन्न होने, उनके बने रहने और उनके लुप्त होने के समय जानता है; (5) वह संज्ञा/संज्ञाओं (बोधों/संज्ञाओं) को उनके उत्पन्न होने, उनके बने रहने और उनके लुप्त होने के समय जानता है; (6) वह विचारों को उनके उत्पन्न होने, उनके बने रहने और उनके लुप्त होने के समय जानता है। 1495 (7) तब, उपयुक्त और अनुपयुक्त, निम्न और उच्च, अंधकारमय और प्रकाशमय गुणों और उनके प्रतिरूपों के बीच, उसने लक्ष्य को भली-भांति समझा है, उस पर भली-भांति ध्यान दिया है, उस पर भली-भांति चिंतन किया है और उसमें भली-भांति पारंगत हो गया है। 1496 जब वह इन सात गुणों से युक्त होता है, तो एक भिक्षु प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) द्वारा शीघ्र ही चार विश्लेषणात्मक ज्ञानों को स्वयं अनुभव कर सकता है और उन पर महारत हासिल कर सकता है।

---

39 विश्लेषणात्मक ज्ञान (2) 1497 (पतिसंभिदा2)

भिक्षुओं, जब सारिपुत्त में सात गुण थे, तब उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा चारों विश्लेषणात्मक ज्ञानों को स्वयं अनुभव किया और उन पर महारत हासिल की। वे सात कौन से थे?

"यहाँ, (1) सारिपुत्त ने यथार्थ को समझा: 'यह मुझमें मानसिक सुस्ती है।' 1498 (2) या जब मन आंतरिक रूप से संकुचित था, तो उसने यथार्थ को समझा: 'मेरा मन आंतरिक रूप से संकुचित है।' (3) या जब उसका मन बाह्य रूप से विचलित था, तो उसने यथार्थ को समझा: 'मेरा मन बाह्य रूप से विचलित है।' (4) उनके लिए, संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होते ही, विद्यमान रहते ही और लुप्त होते ही ज्ञात थीं; (5) धारणाएँ (संज्ञा/संज्ञा) उत्पन्न होते ही, विद्यमान रहते ही और लुप्त होते ही ज्ञात थीं; (6) विचार उत्पन्न होते ही, विद्यमान रहते ही और लुप्त होते ही ज्ञात थे। (7) फिर, उपयुक्त और अनुपयुक्त, निम्न और उच्च, अंधकारमय और प्रकाशमय गुणों और उनके प्रतिरूपों के बीच, उन्होंने लक्ष्य को भली-भांति ग्रहण किया, उस पर भली-भांति ध्यान दिया, उस पर भली-भांति चिंतन किया और उसमें भली-भांति पारंगत हो गए। जब सारिपुत्त ने इन सात गुणों को प्राप्त कर लिया, तो उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से चार विश्लेषणात्मक ज्ञान स्वयं अनुभव किए और उन पर महारत हासिल कर ली।" [34]

---

40 महारत (1) (वासा1)

"भिक्षु (सात गुण संपन्न भिक्षु) अपने मन पर नियंत्रण रखते हैं और अपने मन के दास नहीं होते। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, (1) भिक्षु समाधि में निपुण होते हैं, (2) समाधि प्राप्त करने में निपुण होते हैं, (3) समाधि की अवधि में निपुण होते हैं, (4) समाधि से बाहर आने में निपुण होते हैं, (5) समाधि के लिए उपयुक्तता में निपुण होते हैं, (6) समाधि के क्षेत्र में निपुण होते हैं, और (7) समाधि के संबंध में संकल्प लेने में निपुण होते हैं। इन सात गुणों से युक्त भिक्षु अपने मन पर नियंत्रण रखते हैं और अपने मन के दास नहीं होते।"

---

41 महारत (2) 1500 (वासा2)

"सात गुणों से युक्त भिक्षुओं में, सारिपुत्त अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं और अपने मन के दास नहीं हैं। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, (1) सारिपुत्त समाधि में निपुण हैं, (2) समाधि प्राप्त करने में निपुण हैं, (3) समाधि की अवधि में निपुण हैं, (4) समाधि से बाहर आने में

निपुण हैं, (5) समाधि के लिए उपयुक्तता में निपुण हैं, (6) समाधि के क्षेत्र में निपुण हैं, और (7) समाधि के संबंध में संकल्प लेने में निपुण हैं। इन सात गुणों से युक्त, सारिपुत्त अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं और अपने मन के दास नहीं हैं।"

---

42 बड़े होने के आधार (1) (निद्दासा1)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, सुबह के समय, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। तब उनके मन में यह विचार आया: [35] "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

फिर पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के भिक्षुओं के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। उस अवसर पर वे तपस्वी एकत्रित होकर एक साथ बैठे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: "मित्रों, जो कोई भी बारह वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करता है, वह निष्कलंक भिक्षु कहलाने के योग्य है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने उन तपस्वियों के कथन से न तो प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसे अस्वीकार किया, बल्कि वे अपने आसन से उठकर चले गए, [यह सोचते हुए]: "मैं पता लगाऊंगा कि भगवान (बुद्ध) इस कथन के बारे में क्या कहते हैं।"

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में भिक्षा मांगने गए, तो भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। [यहाँ वे घटनाओं का पूरा क्रम शब्दशः बताते हैं और पूछते हैं:] [36] "हे भंते, क्या इस धर्म और अनुशासन में केवल वर्षों की गणना से किसी भिक्षु को दोषरहित कहना संभव है?"

"इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में, सारिपुत्त, केवल वर्षों की गणना से किसी भिक्षु को दोषरहित कहना संभव नहीं है। सारिपुत्त, दोषरहित होने के ये सात आधार हैं जिन्हें मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव से जानने के बाद घोषित किया है। 1501 वे सात क्या हैं? यहाँ, (1) एक भिक्षु को प्रशिक्षण लेने की तीव्र इच्छा होती है और भविष्य में प्रशिक्षण लेने के प्रति उसका लगाव कम नहीं होता। (2) उसे धम्म पर ध्यान देने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में धम्म पर ध्यान देने के प्रति उसका लगाव कम नहीं होता। (3) उसे व्यर्थ इच्छाओं को दूर करने की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में व्यर्थ इच्छाओं को दूर करने के प्रति उसका लगाव कम नहीं होता। (4) उसे एकांतवास की प्रबल इच्छा होती है और भविष्य में एकांतवास के प्रति उसका लगाव कम नहीं होता। (5) उसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने की प्रबल इच्छा होती है और ऊर्जा जगाने के प्रति उसका लगाव कम नहीं होता।" भविष्य में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की कमी नहीं होगी। (6) उसे सती और सजग रहने की प्रबल इच्छा है और भविष्य में भी वह सती और सजग रहने की इस इच्छा को नहीं खोएगा। (7) उसे दृष्टि द्वारा भेदने की प्रबल इच्छा है और भविष्य में भी वह दृष्टि द्वारा भेदने की इस इच्छा को नहीं खोएगा। ये सात आधार हैं जो मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव (अभिन) से निर्मल होने के लिए घोषित किए हैं।

"सारिपुत्त, यदि किसी भिक्षु में 'निष्कलंक' होने के ये सात आधार हों, तो यदि वह बारह वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह चौबीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करे, तो वह [37] 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह छत्तीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह अड़तालीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है।"

---

43 "दोषरहित" होने के आधार (2) (निद्दासा2)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। तब, सुबह के समय, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र ग्रहण किया और भिक्षा मांगने के लिए कोसंबी में प्रवेश किया। तब उनके मन में यह विचार आया: "कोसंबी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब पूज्य आनंद अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए: . . . [जैसा कि 7:42 में है, सारिपुत्त के स्थान पर आनंद और सावत्थी के स्थान पर कोसंबी रखकर] [38] . . . "क्या यह संभव है, भंते, इस धम्म और अनुशासन में केवल वर्षों की गिनती से किसी भिक्षु को 'कलंक रहित' बताया जा सकता है?" .

"इस धम्म और अनुशासन में, आनंद, केवल वर्षों की गणना से किसी भिक्षु को 'दोषरहित' कहना संभव नहीं है। आनंद, 'दोषरहित' होने के ये सात आधार हैं, जिन्हें मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव से जानने के बाद घोषित किया है। वे सात क्या हैं? यहाँ, एक भिक्षु में (1) आस्था, (2) नैतिक लज्जा, (3) नैतिक भय; (4) वह विद्वान, (5) ऊर्जावान, (6) सती (ध्यानशील) और (7) बुद्धिमान होता है। ये 'दोषरहित' होने के सात आधार हैं जिन्हें मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव से जानने के बाद घोषित किया है। [39]

आनंद, यदि किसी भिक्षु में 'निष्कलंक' होने के ये सात आधार मौजूद हों, तो यदि वह बारह वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह चौबीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह छत्तीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है। यदि वह अड़तालीस वर्षों तक पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करे, तो वह 'निष्कलंक' कहलाने के योग्य है।

V. महायन्न बलिदान खंड (महायन्न वग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

44 सात स्टेशन (सत्तविन्नानत्थिति सं. सप्त-विज्ञान-स्थिति)

"भिक्षुओं (मठवासियों), चेतना की ये सात अवस्थाएँ हैं। 1502 कौन सी सात?

(1) "भिक्षुओं, ऐसे प्राणी हैं जो शरीर और चेतना (सन्ना/संग्या) में भिन्न हैं, जैसे मनुष्य, कुछ देव (देवदूत/भगवान), और कुछ निम्न लोक में। यह चेतना का पहला पड़ाव है। 1503 [40]

(2) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर में भिन्न होते हैं लेकिन चेतना (सन्ना/संज्ञा) में एक समान होते हैं, जैसे ब्रह्मा की मंडली के देव (देवदूत/भगवान) जो प्रथम [ध्यान] के माध्यम से पुनर्जन्म लेते हैं। यह चेतना का दूसरा पड़ाव है। 1504

(3) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर से एकसमान हैं लेकिन चेतना (सन्ना/संज्ञा) में भिन्न हैं, जैसे कि धाराप्रवाह प्रकाश वाले देव (देवदूत/भगवान)। यह चेतना का तीसरा स्तर है। 1505

(4) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर और चेतना (सन्ना/संज्ञा) में एकसमान हैं, जैसे तेजस्वी देव (देवदूत/भगवान)। यह चेतना का चौथा स्तर है।" 1506

(5) "ऐसे प्राणी हैं जो रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित होते हैं। यह चेतना का पाँचवाँ स्थान है।"

(6) "ऐसे प्राणी हैं जो अंतरिक्ष की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' को अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित हैं। यह चेतना का छठा स्टेशन है।"

(7) "ऐसे प्राणी हैं जो चेतना की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए शून्यता के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित होते हैं। यह चेतना की सातवीं अवस्था है।"

"भिक्षुओं, ये चेतना की सात अवस्थाएँ हैं।" 1507

---

45 समाधि सहायक उपकरण (समाधिपरिक्खरा)

"भिक्षुओं, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के ये सात सहायक तत्व हैं। ये सात कौन से हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास और सही ध्यान (सती/सजगता)। इन सात कारकों से युक्त एकाग्रचित्त (एकगचित्त, संस्कृत: एकगचित्त) को श्रेष्ठ सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) कहा जाता है, 'इसके आधारों सहित' और 'इसके सहायक तत्वों सहित'।" 1508 [41]

---

46 अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)

"भिक्षुओं, ये सात अग्नियां हैं। कौन सी सात? काम की अग्नि (राग), घृणा की अग्नि, मोह की अग्नि (मोह), दान के योग्य लोगों की अग्नि, गृहस्थ की अग्नि, भेंट के योग्य लोगों की अग्नि और लकड़ी की अग्नि। ये सात अग्नियां हैं।" 1509

---

47 अग्नि यज्ञ (अग्गी2 संस्कृत अग्नि)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर ब्राह्मण उग्गतशरीर ने एक महान यज्ञ की व्यवस्था की थी। यज्ञ के लिए पाँच सौ बैल लाए गए थे। पाँच सौ बछड़े... पाँच सौ बछियाएँ... पाँच सौ बकरियाँ... पाँच सौ मेढ़े भी लाए गए थे।

तब ब्राह्मण उग्तसरिर भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

"हे गौतम जी, मैंने सुना है कि यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और यज्ञ स्तंभ स्थापित करना अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है।"

"मैंने भी, ब्राह्मण, यह सुना है।"

दूसरी बार... तीसरी बार ब्राह्मण उग्गतसरिर ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे गुरु गौतम, मैंने सुना है कि यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और यज्ञ स्तंभ स्थापित करना अत्यंत फलदायी और लाभकारी है।"

"मैंने भी, ब्राह्मण, यह सुना है।"

"तब [42] मास्टर गौतम और मैं पूरी तरह से सहमत हैं।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने ब्राह्मण उग्गतशरीर से कहा, "ब्राह्मण, तथागतों (बुद्धों) से इस प्रकार नहीं पूछना चाहिए: 'हे गौतम जी, मैंने सुना है कि यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और यज्ञ स्तंभ स्थापित करना अत्यंत फलदायी और लाभकारी है।' तथागतों (बुद्धों) से इस प्रकार पूछना चाहिए: 'भंते, मैं यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और यज्ञ स्तंभ स्थापित करना चाहता/चाहती हूँ। हे भगवान (बुद्ध) मुझे उपदेश दें और मुझे ऐसा मार्ग दिखाएँ जिससे मेरा कल्याण और सुख दीर्घकालिक रूप से प्राप्त हो।"

तब ब्राह्मण उग्गतशरीर ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे गौतम गुरु, मैं यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करना और यज्ञ स्तंभ स्थापित करना चाहता/चाहती हूँ। हे गौतम गुरु, कृपया मुझे उपदेश दें और ऐसा मार्गदर्शन करें जिससे मेरा कल्याण और सुख दीर्घकालिक रूप से प्राप्त हो।"

"हे ब्राह्मण, यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने और यज्ञ स्तंभ स्थापित करने वाला, यज्ञ से पहले ही तीन ऐसे कुदाल उठाता है जो हानिकारक (अकुशल) हैं और जिनका परिणाम और प्रभाव दुखदायी होता है। वे तीन कौन से हैं? शारीरिक कुदाल, वाणी की कुदाल और मानसिक कुदाल।"

"हे ब्राह्मण, जो यज्ञ से पहले ही यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करता है और यज्ञ स्तंभ खड़ा करता है, उसके मन में यह विचार आता है: 'इतने सांडों का यज्ञ में वध किया जाए! इतने बछड़ों... इतनी बछियों... इतनी बकरियों... इतने मेढ़ों का यज्ञ में वध किया जाए!' यद्यपि वह सोचता है, 'पुण्य कर्म करूं', फिर भी वह अपकृत्य कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'कुशल कर्म करूं', फिर भी वह अपकृत्य कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'अच्छे मार्ग की खोज करूं', फिर भी वह अपकृत्य मार्ग की खोज करता है। यज्ञ से पहले ही यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने वाला और यज्ञ स्तंभ खड़ा करने वाला व्यक्ति इस प्रथम छुरी, यानी मानसिक छुरी को उठाता है, जो अपकृत्यपूर्ण है और जिसका परिणाम दुख है।"

हे ब्राह्मण, यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने और यज्ञ स्तंभ स्थापित करने वाला व्यक्ति यज्ञ से पहले ही इस प्रकार की वाणी बोलता है: 'इतने सांडों का यज्ञ में वध हो! इतने बछड़ों... इतनी बछियों... इतनी बकरियों... इतने मेढ़ों का यज्ञ में वध हो!' यद्यपि वह सोचता है, 'पुण्य कर्म करूं', परन्तु अपरा कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'कुशल कर्म करूं', परन्तु अपरा कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'अच्छे मार्ग की खोज करूं', परन्तु बुरे मार्ग की खोज करता है। यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने और यज्ञ स्तंभ स्थापित करने वाला व्यक्ति यज्ञ से पहले ही इस दूसरे छुरे, वाणी के छुरे को उठाता है, जो अपरादायी है और जिसका परिणाम दुख ही है।

हे ब्राह्मण, यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने और यज्ञ स्तंभ स्थापित करने वाला व्यक्ति यज्ञ से पहले ही सबसे पहले यज्ञ में बैलों का वध करने की तैयारी करता है। वह सबसे पहले यज्ञ में बछड़ों का वध करने की तैयारी करता है... यज्ञ में बछियों का वध करने की तैयारी करता है... यज्ञ में बकरियों का वध करने की तैयारी करता है... यज्ञ में मेढ़ों का वध करने की तैयारी करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'मुझे पुण्य कर्म करना चाहिए', फिर भी वह पाप कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'मुझे कुछ लाभकारी (कुशल) कर्म करना चाहिए', फिर भी वह अपभ्रष्ट (अकुशल) कर्म करता है। यद्यपि वह सोचता है, 'मुझे अच्छे मार्ग की खोज करनी चाहिए', फिर भी वह अपभ्रष्ट (बुरे मार्ग की खोज) करता है। यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने और यज्ञ स्तंभ स्थापित करने वाला व्यक्ति यज्ञ से पहले ही इस तीसरे, शारीरिक, अपभ्रष्ट (अपभ्रष्ट) छुरे को उठाता है, जिसका परिणाम दुखदायी होता है।

"हे ब्राह्मण, जो यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करता है और यज्ञ स्तंभ खड़ा करता है, यज्ञ से पहले ही वह इन तीन कुण्डों को उठाता है जो हानिकारक (अकुशल) हैं और जिनका परिणाम और प्रभाव दुखदायी होता है।"

(1)— (3) "हे ब्राह्मण, ये तीन अग्नियाँ हैं जिनका त्याग करना चाहिए, इनसे बचना चाहिए और इनका पोषण नहीं करना चाहिए। वे तीन कौन सी हैं? [44] काम की अग्नि (राग), घृणा की अग्नि और मोह की अग्नि (मोह)।

(1) "और काम (राग) की अग्नि का त्याग और उससे परहेज क्यों किया जाना चाहिए, उसका संवर्धन क्यों नहीं किया जाना चाहिए? काम (राग) से उत्तेजित, काम (राग) में डूबा हुआ, मन से उसमें लीन होकर, शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त होता है। फलस्वरूप, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इसलिए काम (राग) की इस अग्नि का त्याग और उससे परहेज करना चाहिए, उसका संवर्धन नहीं करना चाहिए।"

(2) — (3) "और घृणा की अग्नि... मोह की अग्नि को क्यों त्याग देना चाहिए, उससे बचना चाहिए और उसे क्यों नहीं बढ़ाना चाहिए? जो व्यक्ति मोह से ग्रस्त है, जिसका मन मोह में डूबा हुआ है, वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है। फलस्वरूप, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। इसलिए मोह की इस अग्नि को त्याग देना चाहिए, उससे बचना चाहिए और उसे नहीं बढ़ाना चाहिए।"

"ये तीन प्रकार की आग हैं जिन्हें त्याग देना चाहिए, इनसे बचना चाहिए और इन्हें बढ़ावा नहीं देना चाहिए।"

(4)— (6) "हे ब्राह्मण, ये तीन अग्नियाँ हैं जिनका आदर, सम्मान, आदर और पूजा करके उचित और सुखी ढंग से सँभाल करना चाहिए। वे तीन कौन सी हैं? [45] दान के योग्य लोगों की अग्नि, गृहस्थ की अग्नि और भेंट के योग्य लोगों की अग्नि।

(4) "और वरदानों के योग्य लोगों की अग्नि क्या है? माता-पिता को वरदानों के योग्य लोगों की अग्नि कहा जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उन्हीं से व्यक्ति का जन्म हुआ है और वह अस्तित्व में आया है। 3511 अतः, वरदानों के योग्य लोगों की इस अग्नि का उचित और सुखद रूप से पालन-पोषण करना चाहिए, इसका आदर, सम्मान और श्रद्धा करते हुए।"

(5) "गृहस्थ की अग्नि क्या है? उसके बच्चे, पत्नी, दास, सेवक और कामगार गृहस्थ की अग्नि कहलाते हैं। अतः इस गृहस्थ की अग्नि का आदर, सम्मान और आदर करते हुए उचित और सुखमय ढंग से पालन-पोषण करना चाहिए।"

(6) "और अर्पण योग्य लोगों की अग्नि क्या है? वे तपस्वी और ब्राह्मण जो नशा और आलस्य से दूर रहते हैं, जो धैर्य और सौम्यता में स्थिर रहते हैं, जो स्वयं को वश में रखते हैं, शांत करते हैं और निर्वाण के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करते हैं, उन्हें अर्पण योग्य लोगों की अग्नि कहा जाता है। अतः, अर्पण योग्य लोगों की इस अग्नि का उचित और सुखद ढंग से पालन-पोषण करना चाहिए, आदर, सम्मान और श्रद्धा करते हुए।"

"हे ब्राह्मण, ये तीन अग्नियां हैं जिनका उचित और सुखमय तरीके से पालन-पोषण करना चाहिए, इनका आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए।"

(7) "परन्तु, हे ब्राह्मण, इस लकड़ी की आग को कभी-कभी जलाना चाहिए, कभी-कभी इसे उदासीनता से देखना चाहिए (भीतर ध्यान लगाकर/उपेक्खा), कभी-कभी बुझा देना चाहिए और कभी-कभी अलग रख देना चाहिए।"

यह सुनकर ब्राह्मण उग्गतसार ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... [जैसा कि 6:38 में है] ... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से [46] जीवन भर के लिए शरण में गया है। गुरु गौतम, मैं पाँच सौ बैलों को मुक्त करता हूँ और उन्हें जीने देता हूँ। मैं पाँच सौ बछड़ों को मुक्त करता हूँ और उन्हें जीने देता हूँ। मैं पाँच सौ बछियों को मुक्त करता हूँ और उन्हें जीने देता हूँ। मैं पाँच सौ बकरियों को मुक्त करता हूँ और उन्हें जीने देता हूँ। मैं पाँच सौ मेढ़ों को मुक्त करता हूँ और उन्हें जीने देता हूँ। उन्हें हरी घास चरने दें, ठंडा पानी पीने दें और ठंडी हवा का आनंद लेने दें।"

---

48 संज्ञान/धारणाएं (1) (सन्ना1 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये सात अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। वे सात अनुभूतियाँ कौन सी हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन की अरुचि की अनुभूति, समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति और दुख में अनात्म की अनुभूति। ये सात अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। लक्ष्य।"

---

49 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये सात धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो महान फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। वे सात कौन सी हैं? अनाकर्षकता की धारणा, मृत्यु की धारणा, भोजन की अरुचि की धारणा, संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की धारणा, अनित्यता की धारणा, अनित्य में दुख की धारणा और दुख में अनात्म की धारणा। ये सात धारणाएँ, जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो महान फलदायी होती हैं और अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं।

(1) "कहा गया: 'भिक्षुओं, अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभदायक होती है, जो अमरता (अमता/अमृत) की प्राप्ति की ओर ले जाती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है।' ऐसा क्यों कहा गया?

जब कोई भिक्षु अक्सर अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से रहता है, तो उसका मन यौन संबंध से विरक्ति करता है, [47] उससे पीछे हट जाता है, उससे दूर लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, और या तो उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उसमें बस जाती है। जैसे मुर्गे का पंख या नस की पट्टी, आग में फेंके जाने पर, उससे विरक्ति करती है, उससे पीछे हट जाती है, उससे दूर लुढ़क जाती है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होती, वैसे ही यौन संबंध के संबंध में भी होता है जब कोई भिक्षु अक्सर अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से रहता है।

यदि कोई भिक्षु अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार निवास करता है और उसका मन यौन संबंध की ओर आकर्षित होता है, या यदि वह इससे विमुख नहीं होता है, 1512 तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं है; 1513 मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि वह अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार निवास करता है और उसका मन यौन संबंध से विमुख हो जाता है... और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इसलिए वह इसे पूरी तरह से समझता है।

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, अनाकर्षकता की धारणा (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फल और लाभ प्रदान करती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है', तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(2) "कहा गया: 'भिक्षुओं, मृत्यु की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान [48] फल और लाभ प्रदान करती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, और अमरता (अमता/अमृत) ही उसकी पराकाष्ठा होती है।' ऐसा क्यों कहा गया?

जब कोई भिक्षु अक्सर मृत्यु की अनुभूति (सन्ना/संग्य) से युक्त मन से रहता है, तो उसका मन जीवन के प्रति आसक्ति से विरक्ति करता है, उससे दूर हट जाता है, उससे लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है। जैसे मुर्गे का पंख या नस का टुकड़ा आग में फेंके जाने पर उससे विरक्ति करता है, उससे दूर हट जाता है, उससे लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, ठीक वैसे ही जीवन के प्रति आसक्ति के संबंध में होता है जब कोई भिक्षु अक्सर मृत्यु की अनुभूति (सन्ना/संग्य) से युक्त मन से रहता है।

यदि कोई भिक्षु मृत्यु के प्रति सजग मन से बार-बार ध्यान लगाता है और उसका मन जीवन के प्रति आसक्ति की ओर झुकता है, या यदि वह उससे विमुख नहीं होता है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैंने मृत्यु के प्रति सजग मन विकसित नहीं किया है; मेरी पूर्व और वर्तमान स्थिति में कोई भेद नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि वह मृत्यु के प्रति सजग मन से बार-बार ध्यान लगाता है और उसका मन जीवन के प्रति आसक्ति से विमुख हो जाता है... और उसमें उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैंने मृत्यु के प्रति सजग मन विकसित कर लिया है; मेरी पूर्व और वर्तमान स्थिति में भेद है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है।

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मृत्यु की धारणा (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान [49] फल और लाभ की होती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, अमरता (अमता/अमृत) को अपनी परिणति के रूप में धारण करती है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।

(3) "कहा गया: 'भिक्षुओं, भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अम्रता/अमृत) की प्राप्ति में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अम्रता/अमृत) है।' ऐसा किस कारण से कहा गया?

जब कोई भिक्षु भोजन की अरुचिकरता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है, तो उसका मन स्वाद की लालसा (तन्हा/तृष्णा) से विरकित हो जाता है, उससे दूर हट जाता है, उससे लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है। जैसे मुर्गे का पंख या नस का टुकड़ा आग में फेंके जाने पर उससे विरकित हो जाता है, उससे दूर हट जाता है, उससे लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, ठीक वैसे ही स्वाद की लालसा (तन्हा/तृष्णा) के संबंध में होता है जब कोई भिक्षु भोजन की अरुचिकरता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है।

"यदि कोई भिक्षु भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है, और उसका मन स्वादों की लालसा (तन्हा/तृष्णा) की ओर झुकता है, या यदि वह उनसे विमुख नहीं होता है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि वह भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) से अभ्यस्त मन से बार-बार लीन रहता है, तो उसका मन स्वाद की लालसा (तन्हा/तृष्णा) से विमुख हो जाता है... और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। [50]

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, भोजन की अरुचि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फल और लाभ प्रदान करती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(4) "कहा गया: 'हे भिक्षुओं, समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अम्रता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता ही है।' ऐसा क्यों कहा गया?

जब कोई भिक्षु समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संग्य) के अभ्यस्त मन से निरंतर चिंतन करता है, तो उसका मन संसार की सुंदर वस्तुओं से विरक्ति करता है, उनसे मुंह मोड़ लेता है, उनसे दूर लुढ़क जाता है और उनकी ओर आकर्षित नहीं होता, और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है। जैसे मुर्गे का पंख या नस का टुकड़ा आग में फेंके जाने पर उससे विरक्ति करता है, उससे मुंह मोड़ लेता है, उससे दूर लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, ठीक वैसे ही संसार की सुंदर वस्तुओं के संबंध में होता है जब कोई भिक्षु समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संग्य) के अभ्यस्त मन से निरंतर चिंतन करता है।

यदि कोई भिक्षु (सन्यासी) अक्सर संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संग्य) के अभ्यस्त मन से रहता है और उसका मन संसार की सुंदर वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है, या यदि वह उनसे विमुख नहीं होता है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैंने संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संग्य) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि, [51] जब वह समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) से अभ्यस्त मन से अक्सर रहता है, तो उसका मन संसार की सुंदर वस्तुओं से विमुख हो जाता है... और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है।

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, समस्त संसार में अनासक्ति की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फल और लाभ प्रदान करती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है,' तो इसी

कारण से यह कहा गया था।"

(5) "कहा गया: 'भिक्षुओं, अनित्यता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अम्रता/अमृत) में परिणत होती है, और अमरता ही उसका अंतिम लक्ष्य है।' ऐसा क्यों कहा गया?

जब कोई भिक्षु अनित्यता की धारणा (सन्ना/संज्ञा) में अभ्यस्त मन से निरंतर निवास करता है, तो उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से विमुख हो जाता है, उनसे मुंह मोड़ लेता है, उनसे दूर लुढ़क जाता है और उनकी ओर आकर्षित नहीं होता, और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा घर कर जाती है। जैसे मुर्गे का पंख या नस का टुकड़ा आग में फेंके जाने पर उससे विमुख हो जाता है, उससे मुंह मोड़ लेता है, उससे दूर लुढ़क जाता है और उसकी ओर आकर्षित नहीं होता, ठीक वैसे ही लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के संबंध में होता है जब कोई भिक्षु अनित्यता की धारणा (सन्ना/संज्ञा) में निरंतर निवास करता है।

यदि कोई भिक्षु अनित्यता की धारणा (सन्न/संग्य) के अभ्यस्त मन से अक्सर ध्यान लगाता है, और उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की ओर प्रवृत्त होता है, या यदि वह उनसे विमुख नहीं होता है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैंने अनित्यता की धारणा (सन्न/संग्य) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि वह अनित्यता की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) से अभ्यस्त मन से बार-बार लीन रहता है, तो उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से विमुख हो जाता है [52] . . . और उसमें या तो उदासीनता (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) या घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने अनित्यता की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) विकसित कर ली है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है।

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, अनित्यता की अनुभूति (सन्न/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती है, तो यह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अम्रता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अम्रता/अमृत) है।' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(6) "कहा गया है: 'भिक्षुओं, अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है।' ऐसा किस कारण से कहा गया है?"

जब कोई भिक्षु अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना/संग्य) के अभ्यस्त मन से अक्सर ध्यान लगाता है, तो उसमें आलस्य, सुस्ती, शिथिलता, परिश्रम की कमी और चिंतनहीनता के प्रति खतरे की तीव्र अनुभूति (सन्ना/संग्य) उत्पन्न हो जाती है, ठीक वैसे ही जैसे खींची हुई तलवार लिए किसी हत्यारे के प्रति होती है।

यदि कोई भिक्षु अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है, और उसके मन में आलस्य, सुस्ती, शिथिलता, परिश्रमहीनता और चिंतनहीनता के प्रति खतरे की तीव्र अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) उत्पन्न नहीं होती, ठीक उसी प्रकार जैसे तलवार लिए हत्यारे के प्रति होती है, तो उसे समझना चाहिए: मैंने अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व स्थिति और वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है। इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है। परन्तु यदि वह अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार चिंतन करता है, और उसके मन में आलस्य, शिथिलता, सुस्ती, परिश्रमहीनता और चिंतनहीनता के प्रति तीव्र भय उत्पन्न हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे तलवार लिए हत्यारे के प्रति, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) विकसित कर ली है; मेरी पूर्व और वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है।

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फल [53] और लाभ की होती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, अमरता (अमता/अमृत) को अपना लक्ष्य बनाकर, इसी कारण यह कहा गया था।

(7) "कहा गया है: 'भिक्षुओं, दुःख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अमरता (अम्रता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अम्रता/अमृत) है।' ऐसा किस कारण से कहा गया है?"

जब कोई भिक्षु दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से निरंतर ध्यान लगाता है, तो उसका मन इस चेतन शरीर और सभी बाह्य वस्तुओं के प्रति 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है; वह भेदभाव से परे हो जाता है और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाता है।' 514

यदि कोई भिक्षु दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है, और उसका मन इस चेतन शरीर और सभी बाह्य वस्तुओं के प्रति 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से रहित नहीं है, और यदि वह भेदभाव से परे होकर शांत और पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाता, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित नहीं की है; मेरी पूर्व और वर्तमान स्थिति में कोई भेद नहीं है; मैंने विकास का फल प्राप्त नहीं किया है।' इस प्रकार वह इसे पूर्णतः समझ लेता है! परन्तु यदि वह दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के अभ्यस्त मन से बार-बार ध्यान लगाता है, और उसका मन इस चेतन शरीर और सभी बाह्य वस्तुओं के प्रति 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से रहित नहीं है, और यदि वह भेदभाव से परे होकर शांत और पूर्णतः मुक्त हो गया है, तो उसे समझना चाहिए: 'मैंने दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) विकसित कर ली है; 'मेरी पिछली स्थिति और मेरी वर्तमान स्थिति में अंतर है; मैंने विकास का फल प्राप्त कर लिया है।' इस प्रकार वह इसे पूरी तरह समझ लेता है।

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, दुख में अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो वह महान फल और लाभ प्रदान करती है, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती है, जिसका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

"भिक्षुओं, ये सात धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा) जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो महान फल और लाभ देती हैं, जो अमरता (अमता/अमृत) में परिणत होती हैं, जिनका लक्ष्य अमरता (अमता/अमृत) होता है।" [54]

---

50 यौन संबंध (मेथुना)

तब ब्राह्मण जनुस्सो ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा:

"क्या गुरु गौतम भी ब्रह्मचर्य का पालन करने का दावा करते हैं?" 1515

"हे ब्राह्मण, यदि किसी के बारे में सही कहा जा सकता है कि 'वह पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन जीता है - अटूट, दोषरहित, निष्कलंक, बेदाग', तो यह बात ठीक मेरे बारे में ही कही जा सकती है। क्योंकि मैं पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन जीता हूँ - अटूट, दोषरहित, निष्कलंक, निष्कलंक।"

"पर हे गौतम गुरु, ब्रह्मचर्य जीवन में उल्लंघन, दोष, दाग और धब्बा क्या है?"

(1) "हे ब्राह्मण, यहाँ कोई तपस्वी या ब्राह्मण, जो पूर्णतः ब्रह्मचर्य का दावा करता है, वास्तव में स्त्रियों के साथ संभोग नहीं करता। परन्तु वह उनके द्वारा मालिश, स्नान और गूंथने के लिए सहमत होता है। वह इसमें आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसमें तृप्ति पाता है। यह ब्रह्मचर्य जीवन का उल्लंघन, दोष, कलंक और धब्बा है। उसे अपवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वाला, कामुकता के बंधन में जकड़ा हुआ कहा जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं होता; मैं कहता हूँ कि वह पीड़ा से मुक्त नहीं होता।"

(2) "फिर, कोई तपस्वी या ब्राह्मण, जो पूर्णतः ब्रह्मचारी होने का दावा करता है, वास्तव में स्त्रियों के साथ संभोग नहीं करता; न ही वह उनके द्वारा रगड़े जाने, मालिश किए जाने, स्नान कराए जाने और गूंथे जाने के लिए सहमति देता है। परन्तु वह स्त्रियों के साथ मजाक करता है, उनके साथ खेलता है और उनका मनोरंजन करता है। ..."

(3) "...वह स्त्रियों से मजाक नहीं करता, उनके साथ खेलता नहीं, न ही उनका मनोरंजन करता है... बल्कि वह उनकी आँखों में सीधे देखता और घूरता है...

(4) "...वह महिलाओं की आँखों में सीधे नहीं देखता... बल्कि वह दीवार के पीछे या प्राचीर के पार से उनकी आवाज़ें सुनता है जब वे हँसती हैं, बात करती हैं, गाती हैं या रोती हैं। ..."

(5) "...वह दीवार के पीछे या प्राचीर के पार से हंसती, बोलती, गाती या रोती महिलाओं की आवाज़ें नहीं सुनता... बल्कि वह अतीत में उनके साथ हंसने, बात करने और खेलने को याद करता है..."

(6) "...उसे अतीत में महिलाओं के साथ हंसने, बात करने और खेलने की याद नहीं है... लेकिन वह एक गृहस्थ या गृहस्थ के बेटे को पांचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लेते हुए देखता है।

(7) "...वह किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लेते हुए नहीं देखता, बल्कि वह किसी विशेष देवों (देवदूतों/देवताओं) में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करता है, और सोचता है: 'इस सद्गुणी आचरण, पालन, तपस्या या ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) से मैं देव (देवदूत/देवता) या देवों (देवदूतों/देवताओं) के अनुचरों में से एक बनूँगा।' वह इसमें आनंद लेता है, इसकी इच्छा रखता है और इसमें संतुष्टि पाता है। यह भी ब्रह्मचर्य जीवन का उल्लंघन, दोष, धब्बा और कलंक है। उसे [56] अशुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन जीने वाला, कामुकता के बंधन में जकड़ा हुआ कहा जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं है; मैं कहता हूँ कि वह पीड़ा से मुक्त नहीं है।

"हे ब्राह्मण, जब तक मैंने देखा कि मैंने इन सात कामुक बंधनों में से किसी एक का भी त्याग नहीं किया है, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मैंने इन सात कामुक बंधनों में से एक भी ऐसा बंधन नहीं देखा जिसका मैंने त्याग नहीं किया था, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।"

"मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरे मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब और कोई नवजन्म अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

यह सुनकर ब्राह्मण जनुसोनी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे आज से शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

जीवन भर के लिए।" [57]

---

51 संघ (साम्ययोग)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें मिलन और विरक्ति पर धम्म (मार्ग) की व्याख्या सिखाऊंगा। 1516 सुनो...।"

और मिलन और वियोग पर धम्म की वह व्याख्या क्या है?

भिक्षुओं, एक स्त्री अपने स्त्रीत्व गुणों, अपने व्यवहार, अपने रूप, अपने इच्छा, अपनी आवाज और अपने अलंकरण पर आंतरिक रूप से ध्यान देती है। 1517 वह इनसे उत्तेजित होती है और इनमें आनंद लेती है। इनसे उत्तेजित होकर और इनमें आनंद लेते हुए, वह पुरुष के पुरुषत्व गुणों, उसके व्यवहार, उसके रूप, उसके इच्छा, उसकी आवाज और उसके अलंकरण पर बाह्य रूप से ध्यान देती है। वह इनसे उत्तेजित होती है और इनमें आनंद लेती है। इनसे उत्तेजित होकर और आनंद का दिखावा करते हुए, वह बाह्य रूप से मिलन की इच्छा रखती है, और ऐसे मिलन से उत्पन्न होने वाले सुख और आनंद की भी इच्छा रखती है। जो प्राणी अपने स्त्रीत्व से प्रसन्न होते हैं, वे पुरुषों के साथ मिलन में प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार एक स्त्री अपने स्त्रीत्व से ऊपर नहीं उठती।

भिक्षुओं, पुरुष अपने पुरुषत्व, अपने व्यवहार, अपने रूप, अपने इच्छाशक्ति, अपनी आवाज और अपने आभूषणों पर आंतरिक रूप से ध्यान देता है। वह इनसे उत्तेजित होता है और इनमें आनंद लेता है। इनसे उत्तेजित होकर और इनमें आनंद लेते हुए, वह स्त्री के स्त्रीत्व, उसके व्यवहार, उसके रूप, उसके इच्छाशक्ति, उसकी आवाज और उसके आभूषणों पर बाह्य रूप से ध्यान देता है। वह इनसे उत्तेजित होता है और इनमें आनंद लेता है। इनसे उत्तेजित होकर और इनमें आनंद लेते हुए, वह बाह्य रूप से मिलन की इच्छा रखता है और ऐसे मिलन से उत्पन्न होने वाले सुख और आनंद की भी इच्छा रखता है। जो प्राणी अपने पुरुषत्व से प्रसन्न होते हैं, वे स्त्रियों के साथ मिलन करते हैं। [58] इसी प्रकार पुरुष अपने पुरुषत्व से ऊपर नहीं उठता।

"इस तरह से संघ बनता है। और अलगाव कैसे होता है?"

भिक्षुओं, एक स्त्री अपने स्त्रीत्व गुणों पर आंतरिक रूप से ध्यान नहीं देती... अपने स्त्रीत्व अलंकरणों पर ध्यान नहीं देती। वह इनसे उत्तेजित नहीं होती और न ही इनमें आनंद लेती है। न तो उत्तेजित होती है और न ही इनमें आनंद लेती है, इसलिए वह पुरुष के पुरुषत्व गुणों पर बाहरी रूप से ध्यान नहीं देती... उसके पुरुषत्व अलंकरणों पर ध्यान नहीं देती। वह इनसे उत्तेजित नहीं होती और न ही इनमें आनंद लेती है। न तो उत्तेजित होती है और न ही इनमें आनंद लेती है, इसलिए वह बाहरी रूप से मिलन की इच्छा नहीं रखती और न ही ऐसे मिलन से उत्पन्न होने वाले सुख और आनंद की इच्छा रखती है। जो प्राणी अपने स्त्रीत्व से प्रसन्न नहीं होते, वे पुरुषों से विरक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार एक स्त्री अपने स्त्रीत्व से ऊपर उठती है।

भिक्षुओं, पुरुष अपने पुरुषत्व गुणों पर आंतरिक रूप से ध्यान नहीं देता... अपने पुरुषत्व अलंकरणों पर। वह इनसे उत्तेजित नहीं होता और न ही इनमें आनंद लेता है। इनसे उत्तेजित न होकर, इनमें आनंद न लेकर, वह स्त्री के स्त्रीत्व गुणों पर बाहरी रूप से ध्यान नहीं देता... उसके स्त्रीत्व अलंकरणों पर। वह इनसे उत्तेजित नहीं होता और न ही इनमें आनंद लेता है। इनसे उत्तेजित न होकर, इनमें आनंद न लेकर, वह बाहरी रूप से मिलन की इच्छा नहीं रखता और न ही ऐसे मिलन से उत्पन्न होने वाले सुख और आनंद की इच्छा रखता है। जो प्राणी अपने पुरुषत्व से प्रसन्न नहीं होते, वे स्त्रियों से विरक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार [59] पुरुष अपने पुरुषत्व से ऊपर उठता है।

"इसी तरह अलगाव की स्थिति उत्पन्न होती है।"

"भिक्षुओं, यह मिलन और विरक्ति पर धम्म की व्याख्या है।"

---

52 दान देने के लाभ (दानमहप्पला)

एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गरा कमल तालाब के किनारे निवास कर रहे थे। तब चंपा से कई गृहस्थ अनुयायी पूज्य सारिपुत्त के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते सारिपुत्त, भगवान (बुद्ध) से धर्म प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। भंते, यदि हमें उनसे धर्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए तो अच्छा होगा।"

"तो मित्रों, आपको उपोसथा दिवस पर आना चाहिए। शायद तब आपको भगवान (बुद्ध) से धम्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए।"

"जी भंते," उन अनुयायियों ने उत्तर दिया। फिर, अपनी सीटों से उठकर, उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, उपोसथ दिवस पर, चंपा के वे गृहस्थ अनुयायी पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर पूज्य सारिपुत्त, उन गृहस्थ अनुयायियों के साथ, भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए, और पूज्य सारिपुत्त ने उनसे कहा: [60]

"क्या ऐसा हो सकता है, भंते, कि यहाँ किसी द्वारा दिया गया दान बहुत फलदायी और लाभदायक न हो? और क्या ऐसा हो सकता है कि यहाँ किसी द्वारा दिया गया दान बहुत फलदायी और लाभदायक हो?"

"सारिपुत्त, ऐसा हो सकता है कि यहाँ किसी के द्वारा दिया गया दान बहुत फलदायी और लाभदायक न हो। और ऐसा भी हो सकता है कि यहाँ किसी के द्वारा दिया गया दान बहुत फलदायी और लाभदायक हो।"

"भंते, ऐसा क्यों है कि एक दान से उतना फल और लाभ नहीं मिलता जबकि दूसरे से मिलता है?"

(1) "हे सारिपुत्त, यहाँ कोई व्यक्ति बद्ध मन से, प्रतिफल की आशा में दान देता है; वह यह सोचकर दान देता है: 'मृत्यु के बाद मैं इसका उपयोग करूँगा।' वह यह दान किसी तपस्वी या ब्राह्मण को देता है: भोजन और पेय; वस्त्र और वाहन; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। हे सारिपुत्त, तुम क्या सोचते हो? क्या कोई ऐसा दान दे सकता है?"

"हां, भंते।"

"उस स्थिति में, सारिपुत्त, वह अपेक्षाओं के साथ, बंधित मन से, प्रतिफल की आशा में दान देता है; वह यह सोचकर दान देता है: 'मृत्यु के बाद, मैं इसका उपयोग करूँगा।' ऐसा दान देने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह चार महान राजाओं द्वारा शासित देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। [61] उस कर्म, मानसिक शक्ति, यश और अधिकार को समाप्त करने के बाद, वह वापस आता है और इस अवस्था में लौट आता है।"

(2) "परन्तु, सारिपुत्त, कोई व्यक्ति किसी अपेक्षा से, किसी बंधित मन से, किसी प्रतिफल की आशा में दान नहीं देता; वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'मरने के बाद मैं इसका उपयोग करूँगा', बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि 'दान देना अच्छा है'।"

(3) "वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'दान देना अच्छा है', बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि 'दान देने का अभ्यास मेरे पिता और पूर्वजों द्वारा पहले किया जाता था; मुझे इस प्राचीन पारिवारिक प्रथा को नहीं छोड़ना चाहिए।'

(4) "वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'दान देने की प्रथा पहले से चली आ रही है... मुझे इस प्राचीन पारिवारिक परंपरा को नहीं छोड़ना चाहिए।' बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि 'मेरे पास भोजन है; इन लोगों के पास भोजन नहीं है। यह उचित नहीं है कि जिसके पास भोजन है वह उन्हें न दे जिनके पास भोजन नहीं है।'"

(5) "वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'मेरे पास भोजन है... उन लोगों को जिनके पास भोजन नहीं है', बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि 'जिस प्रकार प्राचीन ऋषियों - अर्थात् अत्थक, वामक, वामदेव (देवदूत/देवता), वेसमित्त, यमतग्गी, अंगिरस, भारद्वाज, वसेत्थ, कस्सपा और भगु - ने वे महान यज्ञ किए, उसी प्रकार मैं भी दान दूंगा।'... 1518

(6) "वह यह सोचकर दान नहीं देता कि: 'जैसे प्राचीन ऋषियों ने वे महान बलिदान किए, वैसे ही मैं भी दान दूंगा,' बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि: 'दान देते समय मेरा मन शांत हो जाता है और उत्साह और आनंद उत्पन्न होता है।'..."

(7) "वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'दान देने से मेरा मन शांत होता है और आनंद और प्रसन्नता उत्पन्न होती है', बल्कि वह यह सोचकर दान देता है कि 'यह मन का आभूषण है, मन का सहायक है।' 1519 वह किसी तपस्वी या ब्राह्मण को यह दान देता है: भोजन और पेय; वस्त्र और वाहन; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश। सारिपुत्त, आप क्या सोचते हैं? क्या कोई ऐसा दान दे सकता है?"

"हां, भंते।"

"ऐसे में, सारिपुत्त, वह अपेक्षा लेकर, बंधुआ मन से, प्रतिफल की आशा में दान नहीं देता; वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'मृत्यु के बाद मैं इसका सदुपयोग करूँगा।' वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'दान देना अच्छा है।' वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'मेरे पिता और पूर्वजों ने दान देने का अभ्यास किया था; मुझे इस प्राचीन पारिवारिक परंपरा को नहीं छोड़ना चाहिए।' वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'मैं खाना बनाता हूँ; ये लोग खाना नहीं बनाते। यह उचित नहीं है कि मैं, जो खाना बनाता हूँ, खाना न बनाने वालों को दान न दूँ।' वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'जिस प्रकार प्राचीन ऋषियों ने वे महान यज्ञ किए, उसी प्रकार मैं भी दान दूँगा।' वह यह सोचकर दान नहीं देता कि 'दान देते समय मेरा मन शांत हो जाता है और उत्साह और आनंद उत्पन्न होता है।'" बल्कि, वह यह सोचकर उपहार देता है: 'यह मन का आभूषण है, मन का सहायक है।' ऐसा उपहार देने के बाद, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह ब्रह्मा की संगति में देवों

(देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। [63] उस कर्म, मानसिक शक्ति, यश और अधिकार के समाप्त हो जाने के बाद, वह वापस इस अवस्था में नहीं लौटता।

"हे सारिपुत्त, यही कारण है कि यहाँ किसी के द्वारा दिया गया दान अधिक फलदायी और लाभदायक नहीं होता। और यही कारण है कि यहाँ किसी के द्वारा दिया गया दान अधिक फलदायी और लाभदायक होता है।"

---

53 नन्दमाता

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ दक्षिणागिरि में भ्रमण कर रहे थे। उस अवसर पर, रात ढलने के समय, महिला गृहस्थ अनुयायी वेलुकांतकी नंदमाता (1520) ने उठकर परायण का पाठ किया।

उस समय महान देव राजा वेसवना किसी कार्य से उत्तर से दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। उन्होंने नन्दमाता नामक एक गृहस्थ साध्वी को परायण का पाठ करते सुना और उनके पाठ के अंत तक प्रतीक्षा करते रहे। जब नन्दमाता ने पाठ समाप्त किया, तो वे चुप हो गईं। नन्दमाता के पाठ समाप्त होने पर महान देव राजा वेसवना ने प्रशंसा करते हुए कहा, "शाबाश बहन! शाबाश बहन!"

"वो कौन है, मेरी प्यारी?"

"मैं तुम्हारा भाई, महान [देव] राजा वेसवना हूँ, बहन।"

"बहुत खूब, प्रिय! तो फिर जो धम्म व्याख्या मैंने अभी सुनाई है, वही मेरे अतिथि की ओर से तुम्हें उपहार हो।" 1521

"शाबाश, बहन! और यह भी [64] आपके अतिथि की ओर से मुझे भेंट हो: कल, नाश्ता करने से पहले, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षुओं का संघ वेलुकांतक आएगा। आपको उनकी सेवा करनी चाहिए और भेंट मुझे अर्पित करनी चाहिए। यह आपके अतिथि की ओर से मुझे भेंट होगी।"

रात बीत जाने पर नन्दमाता नामक महिला अनुयायी ने अपने निवास पर विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन तैयार करवाए। फिर, नाश्ता करने से पहले ही, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षुओं का संघ वेलुकांतक पहुँच गया।

तब नन्दमाता नामक महिला अनुयायी ने एक पुरुष से कहा, "हे सज्जन, आ। मठ जाइए और भिक्षु संघ को समय बताइए, 'हे भंते, भोजन तैयार है, नन्दमाता के निवास पर।'" पुरुष ने उत्तर दिया, "जी महोदया," और वह मठ जाकर अपना संदेश दे गया। तब सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षु संघ ने वस्त्र धारण किए, अपने कुंड और वस्त्र लिए और नन्दमाता के निवास पर गए, जहाँ वे तैयार की गई सीटों पर बैठ गए।

फिर, नन्दमाता नामक महिला गृहस्थ अनुयायी ने अपने हाथों से सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर उन्हें तृप्त किया। जब पूज्य सारिपुत्त ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा रख दिया, तो वह एक तरफ बैठ गईं और पूज्य सारिपुत्त ने उनसे पूछा:

"पर, नन्दमाता, आपको किसने बताया था कि भिक्षुओं का संघ आ रहा होगा?"

(1) "हे भंते, रात ढलने पर उठकर मैंने परायण का पाठ किया। . . . [65] [यहाँ वह प्रथम पुरुष में ऊपर वर्णित पूरी घटना का वर्णन करती है, जिसका अंत वेसवना के शब्दों से होता है: "और यह आपके अतिथि का मुझे दिया हुआ उपहार होगा।"] . . . भंते, इस दान (दान) से मुझे जो भी पुण्य प्राप्त हुआ हो, वह महान [देव] राजा वेसवना के सुख के लिए समर्पित हो।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, 1522 नंदमाता, कि आप 1523 महान [देव] राजा वेसवना जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली युवा देव के साथ सीधे बातचीत कर सकते हैं।"

(2) "भंते, यह मेरी एकमात्र आश्चर्यजनक और अद्भुत विशेषता नहीं है। एक और भी है। मेरा एक ही पुत्र था, नंदा नाम का एक प्रिय और प्यारा बालक। शासकों ने किसी बहाने से उसे अगवा कर लिया और उसकी हत्या कर दी। भंते, जब उस बालक को गिरफ्तार किया गया या गिरफ्तार किया जा रहा था, जब वह जेल में था या जेल में डाला जा रहा था, 1524 जब उसकी मृत्यु हो गई या उसे मारा जा रहा था, मुझे अपने मन में कोई परिवर्तन याद नहीं है।" 1523

"नंदमाता, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि आप विचार के उद्भव को भी शुद्ध कर सकती हैं।" 1326

(3) "भंते, यह मेरी एकमात्र आश्चर्यजनक और अद्भुत विशेषता नहीं है। एक और भी है। जब मेरे पति की मृत्यु हुई, तो उनका यक्षलोक में पुनर्जन्म हुआ। 1527 वे मुझे अपने पूर्व शारीरिक रूप में दिखाई दिए, लेकिन मुझे अपने मन में कोई परिवर्तन याद नहीं है।"

"नंदमाता, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि आप विचार के उद्भव को भी शुद्ध कर सकती हैं।"

(4) "भंते, यह मेरी एकमात्र आश्चर्यजनक और अद्भुत विशेषता नहीं है। एक और भी है। मेरी शादी मेरे युवा पति से कम उम्र में ही हो गई थी; लेकिन मुझे याद नहीं कि मैंने कभी विचार में भी उसके विरुद्ध कोई अपराध किया हो, कर्म से तो दूर की बात है।"

"नंदमाता, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि आप विचार के उद्भव को भी शुद्ध कर सकती हैं।"

(5) "भंते, यह मेरी एकमात्र आश्चर्यजनक और अद्भुत विशेषता नहीं है। एक और भी है। जब से मैंने स्वयं को गृहस्थ अनुयायी घोषित किया है, मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी जानबूझकर किसी प्रशिक्षण नियम का उल्लंघन किया हो।"

"यह तो अद्भुत और आश्चर्यजनक है, नंदमाता!"

(6) "भंते, यह मेरा एकमात्र आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण नहीं है। एक और भी है। मैं जितना चाहूँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, बिना विचार और चिंतन के। आनंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, मैं समभाव से, सचेत (ध्यान/सती) होकर और पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर के साथ सुख का अनुभव करता हूँ; मैं तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव से युक्त है, सती (ध्यानमग्न), जो आनंद में रहता है। सुख और दुख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और उदासी के चले जाने के बाद, मैं चौथे ध्यान (सती अवस्था) में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा सती (ध्यानमग्नता) की शुद्धि होती है।

"यह तो अद्भुत और आश्चर्यजनक है, नंदमाता!"

(7) "भंते, यह मेरी एकमात्र अद्भुत और विस्मयकारी विशेषता नहीं है। एक और भी है। भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाई गई पाँच निम्न बंधनों में से, मुझे कोई भी ऐसा बंधन नहीं दिखता जिसे मैंने त्यागा न हो।" 1528

"यह तो अद्भुत और आश्चर्यजनक है, नंदमाता!"

तब पूज्य सारिपुत्त ने नंदमाता को धम्म (मार्ग) पर प्रवचन देकर उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

दूसरा पचास

VI. अघोषित धारा (अव्यक्त वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

54 अघोषित (अव्यक्त सं. अव्यक्त)

तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, [68] एक तरफ बैठ गया और बोला: "भंते, ऐसा क्यों है कि ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य के मन में अघोषित बातों के बारे में संदेह नहीं उठता?" 1529

"भिक्षु, जब विचारों का निश्चिंतन हो जाता है, तो शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य के मन में अघोषित विषयों के बारे में कोई संदेह उत्पन्न नहीं होता।"

(1) "'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं': यह विचारों से संबंधित है; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं': यह विचारों से संबंधित है; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं': यह विचारों से संबंधित है; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं': यह विचारों से संबंधित है।

"भिक्षु (सन्यासी), अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति विचारों, उनके उद्‌गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझता। उसके लिए, वह विचार और भी बढ़ जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं होता; वह दुख से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।"

लेकिन शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य विचारों को, उनके उद्‌गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को समझता है। उसके लिए वह विचार समाप्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

“इस प्रकार जानकर और देखकर, ज्ञानी शिष्य यह घोषणा नहीं करता कि ‘तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं’; या ‘तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं’; या ‘तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान भी नहीं हैं’; या ‘तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं’। इस प्रकार जानकर और देखकर, ज्ञानी शिष्य अघोषित विषयों के विषय में कोई घोषणा नहीं करता।”

“इस प्रकार जानकर, हे भिक्षु, इस प्रकार देखकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य न तो कांपता है, न डगमगाता है, न ही अघोषित बातों के विषय में भयभीत होता है।”

(2) "'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं': यह तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से जुड़ाव है। (3) ... यह [69] बोध (सन्ना/संज्ञा) से जुड़ाव है। ... (4) ... कुछ कल्पना की गई ... (5) ... एक प्रसार ... (6) ... आसक्ति से जुड़ाव ... (7) ... पश्चाताप का एक आधार; 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं': यह पश्चाताप का एक आधार है; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं': यह पश्चाताप का एक आधार है; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं': यह पश्चाताप का एक आधार है।

“हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति पश्चाताप को, उसके उद्‌गम को, उसके निवारण को और उसके निवारण के मार्ग को नहीं समझता। उसके लिए, पश्चाताप बढ़ता ही जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं होता; वह दुख से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।”

लेकिन ज्ञानवान और श्रेष्ठ शिष्य पश्चाताप को समझता है, उसके कारण को, उसके निवारण को और उसके निवारण के मार्ग को भी। उसके लिए पश्चाताप का निवारण हो जाता है। वह पुनर्जन्म से, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार जानकर और देखकर, ज्ञानी शिष्य यह घोषणा नहीं करता कि 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'; या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं'; या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं'; या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।' इस प्रकार जानकर और देखकर, ज्ञानी शिष्य अघोषित विषयों के विषय में कोई घोषणा नहीं करता।

"इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य अघोषित बिंदुओं के बारे में न तो कांपता है, न डगमगाता है, न ही विचलित होता है और न ही भयभीत होता है। [70]

"भिक्षु (सन्यासी), इसीलिए दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य के मन में अघोषित बातों के बारे में संदेह उत्पन्न नहीं होता।"

---

55 व्यक्तियों के गंतव्य (पुरिसगति)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें सात प्रकार के देह-स्थानों और अनासक्ति के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति का उपदेश दूंगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, मनुष्यों के सात गंतव्य क्या हैं? 1531"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास कर रहा है: 'यह न भी हो, और यह मेरा भी न हो। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा। 1532 मैं विद्यमान, जो अस्तित्व में आया है, उसका त्याग कर रहा हूँ।' वह उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) प्राप्त करता है। वह अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से आसक्त नहीं है; वह उत्पत्ति से आसक्त नहीं है। वह सही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से देखता है: 'एक उच्चतर अवस्था है जो शांतिपूर्ण है' 1533 फिर भी उसने उस अवस्था को पूरी तरह से नहीं जाना है। उसने अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है; उसने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है; उसने अज्ञान का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है। 1534 पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1535

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर प्रहार किया जाता है, तो एक टुकड़ा उड़कर बुझ सकता है। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास कर रहा है... [71]... उसने अज्ञान का पूर्णतः त्याग नहीं किया है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ ही वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1536

(2) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'यह न भी हो, और यह मेरा भी न हो। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा। मैं विद्यमान, जो अस्तित्व में है, उसका त्याग कर रहा हूँ।' वह समभाव प्राप्त करता है। वह अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से आसक्त नहीं होता; वह उत्पत्ति से आसक्त नहीं होता। वह सही ज्ञान से देखता है: 'एक उच्चतर अवस्था है जो शांत है,' फिर भी उसने उस अवस्था को पूर्णतः अनुभव नहीं किया है। उसने अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूर्णतः त्याग नहीं किया है; उसने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के प्रति राग की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूर्णतः त्याग नहीं किया है; उसने अज्ञान का पूर्णतः त्याग नहीं किया है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर चोट की जाती है, तो एक टुकड़ा उड़कर ऊपर उठ सकता है और बुझ सकता है। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास कर रहा होता है... पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(3) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: यह न भी हो, और यह मेरा न भी हो। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर प्रहार किया जाता है, तो एक टुकड़ा उड़कर ऊपर उठ सकता है और जमीन पर गिरने से ठीक पहले बुझ सकता है। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास कर रहा है। . . . [72]. . . पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(4) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास कर रहा है: यह मेरा न भी हो सकता है, और यह मेरा न भी हो सकता है। यह मेरा नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा।"

पांच निम्न बंधनों के पूर्णतः नष्ट होने पर, वह उतरते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1537

उदाहरण के लिए, जब किसी लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर प्रहार किया जाता है, तो एक टुकड़ा निकलकर हवा में उड़ सकता है, और जमीन पर गिरते ही बुझ जाता है। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास कर रहा होता है... पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह जमीन पर उतरते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(5) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: यह न भी हो, और यह मेरा न भी हो। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा। ... पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर प्रहार किया जाता है, तो एक टुकड़ा उड़कर ऊपर उठ सकता है और भूसे या लकड़ियों के छोटे ढेर पर गिर सकता है। वहाँ वह आग और धुआँ उत्पन्न करेगा, लेकिन जब वह भूसे या लकड़ियों के उस छोटे ढेर को जलाकर राख कर देगा, और यदि उसे और ईंधन न मिले, तो वह बुझ जाएगा। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास करता है। . . . पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 1538 [73]

(6) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: यह न भी हो सकता है; और यह मेरा न भी हो सकता है। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा।" पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर चोट मारी जाती है, तो एक टुकड़ा उड़कर ऊपर उठ सकता है और फिर भूसे या लकड़ियों के ढेर पर गिर सकता है। वहाँ वह आग और धुआँ उत्पन्न करेगा। लेकिन जब भूसे या लकड़ियों का वह ढेर जलकर खत्म हो जाता है और उसे और ईंधन नहीं मिलता, तो आग बुझ जाएगी। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास करता है... पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश से वह परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(7) "तब भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'यह न भी हो, और यह मेरा भी न हो। यह नहीं होगा; यह मेरा नहीं होगा। मैं विद्यमान, जो अस्तित्व में है, उसका त्याग कर रहा हूँ।' वह समभाव प्राप्त करता है। वह अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से आसक्त नहीं है; वह उत्पत्ति से आसक्त नहीं है। वह सही ज्ञान से देखता है: 'एक उच्चतर अवस्था है जो शांतिपूर्ण है' फिर भी उसने उस अवस्था को पूरी तरह से अनुभव नहीं किया है। उसने अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है; उसने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है; उसने अज्ञान का पूरी तरह से त्याग नहीं किया है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह एक होकर धारा के विपरीत दिशा में, अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। 1539

उदाहरण के लिए, जब लोहे के कटोरे को दिन भर गर्म किया जाता है और उस पर प्रहार किया जाता है, तो एक टुकड़ा उड़कर ऊपर उठ सकता है और फिर भूसे या लकड़ियों के बड़े ढेर पर गिर सकता है। वहाँ वह आग और धुआँ उत्पन्न करेगा, और जब वह भूसे या लकड़ियों के उस बड़े ढेर को जलाकर राख कर देगा, तो वह जंगल या उपवन को तब तक जलाता रहेगा जब तक कि वह किसी खेत के किनारे, सड़क के किनारे, पत्थर के पहाड़ के किनारे, पानी के किनारे या किसी रमणीय भूमि तक न पहुँच जाए, और फिर, यदि उसे और ईंधन न मिले, तो वह बुझ जाएगा। इसी प्रकार, एक भिक्षु अभ्यास कर रहा है। . . . पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ वह एक हो जाता है जो धारा के विपरीत दिशा में बहता हुआ अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर होता है।

"हे भिक्षुओं, ये सात गंतव्य हैं जहाँ मनुष्य पहुँच सकते हैं।"

और हे भिक्षुओं, अनासक्ति के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति क्या है? यहाँ एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास कर रहा है: 'यह हो भी सकता है और नहीं भी। यह होगा नहीं; यह मेरा नहीं होगा। मैं जो विद्यमान है, जो अस्तित्व में आया है, उसका त्याग कर रहा हूँ।' वह उदासीनता (भीतर अंतर्मुखता/उपेक्खा) प्राप्त करता है। वह अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से आसक्त नहीं होता; वह उत्पत्ति से भी आसक्त नहीं होता। वह सही ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से देखता है: 'एक उच्चतर अवस्था है जो शांतिपूर्ण है' और वह उस अवस्था को पूर्णतः अनुभव कर लेता है। वह अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है; वह अस्तित्व के प्रति राग (कामना) की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है; वह अज्ञान को पूर्णतः त्याग देता है। दोषों के नाश के साथ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, ज्ञान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को स्वयं अनुभव कर लेता है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है। इसे अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये व्यक्तियों के सात गंतव्य हैं और अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति है।"

---

56 टिस्सा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर दो देवता (देवदूत), जो पूरे गिद्ध शिखर को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब एक देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, ये भिक्षुणियां मुक्त हो चुकी हैं।"

दूसरे ने कहा: "भंते, ये भिक्षुणियां पूर्णतः मुक्त हो चुकी हैं, इनमें कोई अवशेष शेष नहीं है।" 1540

देवताओं ने यही कहा। गुरुजी सहमत हो गए। फिर, यह सोचकर कि "गुरुजी सहमत हो गए हैं," उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "पिछली रात, भिक्षुओं, जब रात आगे बढ़ रही थी, तो दो अत्यंत सुंदर देवता, जिन्होंने पूरे गिद्ध शिखर को प्रकाशित कर दिया, मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर एक देवता ने मुझसे कहा: 'भंते, ये भिक्षुणियां मुक्त हो चुकी हैं।' और दूसरे ने कहा: 'भंते, ये भिक्षुणियां पूर्णतः मुक्त हो चुकी हैं, इनमें कोई अवशेष नहीं बचा है।' देवताओं ने यही कहा, जिसके बाद उन्होंने मुझे प्रणाम किया, मेरे दाहिनी ओर मुख करके मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।"

उस समय पूज्य महामोग्गलाना भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर बैठे थे। तभी पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया: "कौन से देव (देवदूत/देवता) ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जिसका कुछ अंश शेष रहता है, उसे 'शेष शेष वाला' और जिसका कोई अंश शेष नहीं रहता, उसे 'अशेष शेष वाला' कहते हैं?"

उस समय तिस्सा नामक एक भिक्षु का हाल ही में निधन हुआ था और उनका पुनर्जन्म एक ब्रह्मलोक में हुआ था। वहाँ भी वे उन्हें "ब्रह्म तिस्सा, शक्तिशाली और बलवान" के नाम से जानते थे। फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींच लेता है, उसी प्रकार पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत से लुप्त होकर उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देख ब्रह्म तिस्सा [76] ने उनसे कहा:

"आदरणीय मोग्गलाना, आइए! आपका स्वागत है, आदरणीय मोग्गलाना! बहुत समय बाद आपको यहाँ आने का अवसर मिला। बैठिए, आदरणीय मोग्गलाना। यह आसन आपके लिए तैयार किया गया है।" पूज्य महामोग्गलाना तैयार आसन पर बैठ गए। तब ब्रह्मा तिस्सा ने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे तिस्सा, कौन से देव (देवदूत/भगवान) ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जिसका अवशेष शेष रहता है, उसे 'अवशेष शेष वाला' और जिसका अवशेष शेष नहीं रहता, उसे 'अवशेष रहित' कहते हैं?"

"आदरणीय मोग्गलाना, ब्रह्मा की संगति में रहने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) को ऐसा ज्ञान प्राप्त है।"

"क्या ब्रह्मा की संगति में रहने वाले सभी देवताओं (देवदूतों/देवताओं) को ऐसा ज्ञान है, तिस्सा?"

"हे आदरणीय मोग्गलाना, सभी नहीं। ब्रह्मा की संगति में रहने वाले वे देव (देवदूत/देवता) जो ब्रह्मा के जीवनकाल, ब्रह्मा के सौंदर्य, ब्रह्मा के सुख, ब्रह्मा की महिमा, ब्रह्मा के अधिकार से संतुष्ट हैं और जो यह नहीं समझते कि वास्तव में इससे भी उच्चतर मुक्ति है, उन्हें ऐसा ज्ञान नहीं होता।"

लेकिन ब्रह्मा के साथ रहने वाले वे देव (देवदूत/देवता) जो ब्रह्मा के जीवनकाल, ब्रह्मा के सौंदर्य, ब्रह्मा के सुख, ब्रह्मा की महिमा, ब्रह्मा के अधिकार से संतुष्ट नहीं हैं, और जो [77] वास्तव में इससे भी उच्चतर मुक्ति को समझते हैं, वे शेष बचे हुए व्यक्ति को 'शेष शेष वाला' और शेष न बचे हुए व्यक्ति को 'शेष रहित' कहते हैं। 1541

(1) "हे आदरणीय मोग्गलाना, जब कोई भिक्षु दोनों प्रकार से मुक्त हो जाता है, तो वे देव (देवदूत/भगवान) उसे इस प्रकार पहचानते हैं: 'यह पूजनीय दोनों प्रकार से मुक्त है। जब तक उसका शरीर रहता है, देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य उसे देखेंगे, परन्तु शरीर के नष्ट होते ही, देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य उसे नहीं देखेंगे।' इसी प्रकार वे देव (देवदूत/भगवान) शेष बचे हुए व्यक्ति को 'शेष युक्त' और शेष रहित व्यक्ति को 'शेष रहित' के रूप में पहचानते हैं।"

(2) "फिर, जब कोई भिक्षु पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त हो जाता है, तो वे देव (देवदूत/भगवान) उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह पूजनीय व्यक्ति ज्ञान द्वारा मुक्त हो गया है। जब तक उसका शरीर रहता है, देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य उसे देखेंगे, परन्तु शरीर के क्षोभ के साथ ही देव (देवदूत/भगवान) और मनुष्य उसे नहीं देखेंगे।' इसी प्रकार, वे देव (देवदूत/भगवान) उस व्यक्ति को भी जानते हैं जिसका कुछ अंश शेष रह जाता है। . . ."

(3) "तब, जब कोई भिक्षु देह-साक्षी होता है, तो वे देव (देवदूत/भगवान) उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह पूजनीय देह-साक्षी है। यदि यह पूजनीय अनुकूल आवास में रहे, अच्छे मित्रों पर भरोसा करे और आध्यात्मिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करे, तो शायद वह इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के उस अतुलनीय लक्ष्य को स्वयं जान लेगा, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं। इसी प्रकार, वे देव (देवदूत/भगवान) उस व्यक्ति को जानते हैं जिसमें कुछ शेष रह जाता है। ..."

(4) "तब, जब कोई भिक्षु दर्शन प्राप्त कर लेता है... (5) आस्था से मुक्त हो जाता है... (6) धर्म का अनुयायी बन जाता है, तो वे देव (देवदूत/देवता) उसे इस प्रकार जानते हैं: 'यह पूजनीय [78] धर्म का अनुयायी है। यदि यह पूजनीय अनुकूल आवास में रहे, अच्छे मित्रों पर भरोसा करे और आध्यात्मिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करे, तो शायद वह इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के उस अतुलनीय लक्ष्य को स्वयं ही जान लेगा, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।' इसी प्रकार, वे देव (देवदूत/देवता) शेष रहने वाले को 'शेष युक्त' और शेष न रहने वाले को 'शेष रहित' के रूप में जानते हैं।"

फिर, ब्रह्मा तिस्सा के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींचता है, पूज्य महामोग्गलाना ब्रह्मालोक से प्रकट हुए और गिद्ध शिखर पर पुनः प्रकट हुए। वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को ब्रह्मा तिस्सा के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत सुनाई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "परन्तु, मोग्गलाना, क्या ब्रह्मा तिस्सा ने तुम्हें सातवें स्वरूप, उस स्वरूप के बारे में नहीं सिखाया जो निराकार में निवास करता है?" 1542

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)! यही समय है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)! भगवान (बुद्ध) को सातवें स्वरूप, उस स्वरूप के बारे में उपदेश देना चाहिए जो निराकार में निवास करता है। भगवान (बुद्ध) से यह सुनकर भिक्षु इसे अपने मन में धारण करेंगे।"

"तो सुनो, मोग्गलाना, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"हाँ, भंते," आदरणीय महामोग्गल्लाना ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(7) "हे मोग्गलाना, यहाँ सभी लक्षणों पर ध्यान न देने के कारण एक भिक्षु लक्षणहीन मानसिक समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वे देव (देवदूत/देवता) उसे इस प्रकार जानते हैं: 'सभी लक्षणों पर ध्यान न देने के कारण, यह पूजनीय व्यक्ति लक्षणहीन मानसिक समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यदि यह पूजनीय व्यक्ति अनुकूल आवास में रहे, अच्छे मित्रों पर भरोसा करे और आध्यात्मिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित करे, तो शायद वह स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से, इसी जीवन में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के उस अतुलनीय लक्ष्य को जान लेगा, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, [79] और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करते हैं।' इसी प्रकार, वे देव (देवदूत/भगवान) शेष अवशेष वाले व्यक्ति को 'शेष अवशेष वाला व्यक्ति' और शेष अवशेष रहित व्यक्ति को 'शेष अवशेष रहित व्यक्ति' के रूप में पहचानते हैं।

---

57 सिहा [1543] (संश्लेषित सिंघा)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास कर रहे थे। तब सेनापति सिहा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"भंते, क्या दान देने का कोई प्रत्यक्ष फल बता सकते हैं?"

"तो फिर, सिहा, मैं तुमसे इस मामले में पूछताछ करूंगा। तुम अपनी इच्छानुसार उत्तर दे सकती हो।"

(1) "सिहा, तुम क्या सोचती हो? दो व्यक्ति हो सकते हैं, एक जो विश्वासहीन, कंजूस, नीच और दुर्व्यवहार करने वाला हो, और दूसरा जो विश्वासवान, उदार दाता और दान में आनंद लेने वाला हो। सिहा, तुम क्या सोचती हो? अरहंत सबसे पहले किस पर दया दिखाएंगे: उस विश्वासहीन, कंजूस, नीच और दुर्व्यवहार करने वाले पर, या उस विश्वासवान, उदार दाता और दान में आनंद लेने वाले पर?" 1544

"हे भंते, अरहंत पहले उस व्यक्ति पर दया क्यों दिखाएंगे जो आस्थाहीन, कंजूस, नीच और दुर्व्यवहार करने वाला है? वे पहले उस व्यक्ति पर दया दिखाएंगे जो आस्थावान है, उदार दाता है और दान में आनंद लेता है।"

(2) "सिहा, तुम क्या सोचते हो? अरहंत सबसे पहले किसके पास जाएँगे: उस विहीन व्यक्ति के पास जो कंजूस, नीच और गाली देने वाला है, या [80] उस व्यक्ति के पास जो आस्थावान है, उदार दाता है और दान में आनंद लेता है?"

"हे भंते, अरहंत सबसे पहले उस अविश्वासी, कंजूस, नीच और गाली देने वाले व्यक्ति के पास क्यों जाएंगे? वे सबसे पहले उस विश्वासी, उदार दाता के पास जाएंगे जो दान-पुण्य में आनंदित होता है।"

(3) "सिहा, तुम क्या सोचते हो? अरा हंत सबसे पहले किससे भीख प्राप्त करेंगे: उस अविश्वासी से जो कंजूस, नीच और दुर्व्यवहार करने वाला है, या उस विश्वासी से जो उदार दाता है और दान में आनंद लेता है?"

"हे भंते, अरहंत पहले उस अविश्वासी, कंजूस, नीच और गाली देने वाले व्यक्ति से भिक्षा क्यों ग्रहण करेंगे? वे पहले उस विश्वासवान, उदार दाता से भिक्षा ग्रहण करेंगे जो दान में आनंदित होता है।"

(4) "सिहा, तुम क्या सोचते हो? अरहंत सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा देंगे: उस अविश्वासी को जो कंजूस, नीच और गाली देने वाला है, या उस विश्वासी को जो उदार दाता है और दान में आनंद लेता है?"

"हे भंते, अरहंत पहले धर्म का उपदेश उस व्यक्ति को क्यों देंगे जो आस्थाहीन, कंजूस, नीच और गाली देने वाला हो? वे पहले धर्म का उपदेश उस व्यक्ति को देंगे जो आस्थावान हो, उदार दाता हो और दान में आनंद लेता हो।"

(5) "सिहा, तुम क्या सोचती हो? किस व्यक्ति को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होगी: वह व्यक्ति जो विश्वासहीन, कंजूस, नीच और गाली देने वाला हो, या वह व्यक्ति जो विश्वास से परिपूर्ण, उदार दाता हो और दान में आनंद लेता हो?"

"हे भंते, जो व्यक्ति आस्थाहीन, कंजूस, नीच और गाली-गलौज करने वाला हो, वह भला कैसे नाम कमा सकता है? भला तो आस्थावान, उदार दाता और दान-पुण्य में आनंद लेने वाला व्यक्ति ही नाम कमा सकता है।"

(6) "सिहा, तुम क्या सोचते हो? कौन सा व्यक्ति किसी भी सभा में - चाहे वह क्षत्रिय हों, ब्राह्मण हों, गृहस्थ हों या तपस्वी हों - [81] आत्मविश्वास और संयम के साथ उपस्थित होगा: वह व्यक्ति जो विश्वासहीन, कंजूस, नीच और गाली देने वाला हो, या वह व्यक्ति जो विश्वास से परिपूर्ण, उदार दाता हो और दान में आनंद लेता हो?"

"हे भंते, विश्वासहीन, कंजूस, नीच और गाली-गलौज करने वाला व्यक्ति किसी भी सभा में - चाहे वह क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों की हो - आत्मविश्वास और संयम के साथ कैसे उपस्थित हो सकता है? यह तो विश्वास से परिपूर्ण, उदार दाता और दान में आनंद लेने वाला व्यक्ति ही है जो किसी भी सभा में आत्मविश्वास और संयम के साथ उपस्थित हो सकता है।"

(7) "सिहा, तुम क्या सोचती हो? शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कौन सा व्यक्ति अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेगा: वह जो विश्वासहीन, कंजूस, नीच और दुर्व्यवहार करने वाला है, या वह जो विश्वास से परिपूर्ण, उदार दाता है और दान में आनंद लेता है?"

"हे भंते, वह व्यक्ति जो आस्थाहीन, कंजूस, नीच और गाली देने वाला है, मृत्यु के बाद शरीर के क्षत-विक्षत होने पर स्वर्गलोक में कैसे पुनर्जन्म ले सकता है? आस्थावान, उदार दाता और दान में आनंद लेने वाला व्यक्ति ही मृत्यु के बाद शरीर के क्षत-विक्षत होने पर स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेगा।"

"भंते, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा घोषित दान के उन छह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले फलों के विषय में उन पर विश्वास नहीं करता। मैं उन्हें जानता भी हूँ। क्योंकि मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और अरहंत सबसे पहले मुझ पर दया दिखाते हैं। मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और अरहंत सबसे पहले मेरे पास आते हैं। मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और अरहंत सबसे पहले मुझसे भिक्षा ग्रहण करते हैं। मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और अरहंत सबसे पहले मुझे धम्म सिखाते हैं। मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और मैंने अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की है: 'सेनापति सिंह एक दाता, एक प्रायोजक, संघ का एक समर्थक है/ [82] मैं एक दाता हूँ, एक उदार दाता हूँ, और मैं जिस भी सभा में जाता हूँ - चाहे वह क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों या तपस्वियों की हो - मैं आत्मविश्वास और संयम के साथ जाता हूँ। मैं उन पर विश्वास नहीं करता..." भगवान (बुद्ध) ने दान के इन छह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले फलों के बारे में बताया है। मैं भी इन्हें जानता हूँ। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) मुझसे कहते हैं: 'सिहा, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, एक दाता, एक उदार दाता, एक अच्छे गंतव्य में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है।' तो मैं यह नहीं जानता, और यहाँ मैं भगवान (बुद्ध) में आस्था के साथ आगे बढ़ता हूँ।

"ऐसा ही है, सिहा, ऐसा ही है! शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, एक दाता, एक उदार दाता, एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गीय लोक में पुनर्जन्म लेता है।"

---

58 छिपने की कोई जरूरत नहीं

भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) को चार बातें छिपाने की आवश्यकता नहीं है और तीन बातें ऐसी हैं जिनके बारे में वे निर्दोष हैं। 1545

"वे चार बातें कौन सी हैं जिन्हें तथागत (बुद्ध) को छिपाने की आवश्यकता नहीं है?"

(1) "भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) वह हैं जिनका शारीरिक आचरण शुद्ध है। तथागत (बुद्ध) की ओर से ऐसा कोई शारीरिक दुराचार नहीं है जिसे उन्हें छिपाने की आवश्यकता हो, [यह सोचकर]: 'यह बात दूसरों को मेरे बारे में पता न चले।

(2) तथागत (बुद्ध) वह हैं जिनका वाणी व्यवहार शुद्ध है। तथागत (बुद्ध) की ओर से ऐसा कोई वाणी दुराचार नहीं है जिसे उन्हें छिपाने की आवश्यकता हो, [यह सोचकर]: 'दूसरों को मेरे बारे में यह पता न चले।'

(3) तथागत (बुद्ध) वह हैं जिनका मानसिक आचरण शुद्ध है। तथागत (बुद्ध) के मन में ऐसा कोई दुराचार नहीं है जिसे उन्हें छिपाने की आवश्यकता हो, [यह सोचकर]: "यह बात दूसरों को मेरे बारे में पता न चले।"

(4) तथागत (बुद्ध) वह हैं जिनकी आजीविका शुद्ध है। तथागत (बुद्ध) की ओर से कोई कुकर्मपूर्ण आजीविका नहीं है जिसे उन्हें छिपाने की आवश्यकता हो, [यह सोचकर]: 'दूसरों को मेरे बारे में यह पता न चले।'

"ये वे चार बातें हैं जिन्हें तथागत (बुद्ध) को छिपाने की आवश्यकता नहीं है। और वे तीन बातें क्या हैं जिनके बारे में वे निर्दोष हैं? [83]

(5) "हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) वह हैं जिनका धम्म सुस्पष्ट है। इस संबंध में, मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति मुझे यह कहकर फटकार सके: 'ऐसे-ऐसे कारणों से आपका धम्म सुस्पष्ट नहीं है।' क्योंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निश्चिंत, निर्भय और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूँ।"

(6) मैंने अपने शिष्यों को निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का अच्छी तरह से प्रचार किया है, ताकि उसका पालन करते हुए और दोषों के नाश को प्राप्त करते हुए, वे स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करें और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करें। इस संबंध में, मुझे कोई ऐसा आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति मुझे यह कहकर फटकार सके: 'ऐसे-ऐसे कारणों से, आपने अपने शिष्यों को निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का अच्छी तरह से प्रचार नहीं किया है, ताकि उसका पालन करते हुए और दोषों के नाश को प्राप्त करते हुए, वे स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, दीप्तिमान (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करें और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करें।' 'इसमें प्रवेश करो, इसमें निवास करो।' चूंकि मुझे ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता, इसलिए मैं सुरक्षित, निर्भीक और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूं।

(7) "हे भिक्षुओं, मेरी सभा में सैकड़ों शिष्य हैं जिन्होंने दोषों का नाश करके, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करते हैं। इस संबंध में, मुझे कोई ऐसा आधार नहीं दिखता जिसके आधार पर संसार में कोई तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत/भगवान), मार, ब्रह्मा, आदि मुझे यह कहकर फटकार सकें: 'ऐसे-ऐसे कारणों से यह बात सही नहीं है कि आपकी सभा में सैकड़ों शिष्य हैं जिन्होंने दोषों का नाश करके, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करते हैं।' [84] चूंकि मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता, इसलिए मैं निडर, सुरक्षित और आत्मविश्वासी होकर निवास करता हूँ।"

"ये तीन बातें हैं जिनके बारे में तथागत (बुद्ध) निर्दोष हैं।"

"भिक्षुओं, ये वे चार बातें हैं जिन्हें तथागत (बुद्ध) को छिपाने की आवश्यकता नहीं है और वे तीन बातें हैं जिनके बारे में वे निर्दोष हैं।"

---

59 किम्बिला [1547]

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) किंबिला के यहाँ एक निकुल वन में निवास कर रहे थे। तब पूज्य किंबिला भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:

"हे भंते, इसका कारण क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी उत्तम धर्म का निरंतर अस्तित्व क्यों नहीं बना रहता?"

"हे किम्बिला, तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद, (1) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (2) वे धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (5) वे समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (6) वे सजगता के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। (7) वे आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा और आदर का अभाव रखते हैं। यही कारण है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद उत्तम धम्म (मार्ग) अधिक समय तक नहीं चलता।"

"हे भंते, इसका कारण और तर्क क्या है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी अच्छा धम्म लंबे समय तक बना रहता है?"

“यहाँ, किम्बिला, तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद, (1) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (2) वे धम्म के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (3) वे संघ के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (4) वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (5) वे समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (6) वे जागरूकता के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। (7) वे आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ निवास करते हैं। यही कारण है कि तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी अच्छा धम्म लंबे समय तक बना रहता है।” [85]

---

60 सात गुण (सत्तधम्म)

“सात गुणों से युक्त भिक्षु, दोषों के नाश होने पर शीघ्र ही, इस जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सकते हैं, और उसमें प्रवेश करने के बाद उसमें निवास कर सकते हैं। वे सात गुण कौन से हैं?”

यहां, भिक्षु आस्थावान, गुणी, विद्वान, एकांतप्रिय, ऊर्जावान, सती (ध्यानशील) और बुद्धिमान होता है। इन सात गुणों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही, दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सकता है, और उसमें प्रवेश करने के बाद उसमें निवास कर सकता है।

---

61 ऊंघना (पा-कलयामाना)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान में, सुमसुमारागिरा में, भगों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य महामोग्गलाना मगधों के बीच, कल्लावलमुत्तगम में बैठे-बैठे ऊंघ रहे थे। भगवान (बुद्ध) ने अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, पूज्य महामोग्गलाना को बैठे-बैठे ऊंघते हुए देखा। तब, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींच लेता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान से लुप्त हो गए और पूज्य महामोग्गलाना के सामने पुनः प्रकट हुए। भगवान (बुद्ध) अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए और बोले:

"क्या तुम ऊंघ रहे हो, मोग्गलाना? क्या तुम ऊंघ रहे हो, मोग्गलाना?"

"हां, भंते।"

(1) "इसलिए, मोग्गलाना, आपको उस वस्तु पर ध्यान नहीं देना चाहिए या उसकी खेती नहीं करनी चाहिए जिस पर आप उनींदा होने से पहले ध्यान दे रहे थे। [86] इस तरह से, संभव है कि आपका उनींदापन दूर हो जाएगा।

(2) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उन्मत्तता को त्याग न सको, तो तुम्हें धम्म पर मनन करना चाहिए, उसका परीक्षण करना चाहिए और मानसिक रूप से उसका निरीक्षण करना चाहिए जैसा तुमने सुना और सीखा है। इस प्रकार संभव है कि तुम्हारी उन्मत्तता दूर हो जाए।"

(3) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उन्मत्तता को त्याग न सको, तो तुम्हें धम्म का विस्तृत पाठ करना चाहिए जैसा तुमने सुना और सीखा है। इस प्रकार, संभव है कि तुम्हारी उन्मत्तता दूर हो जाए।"

(4) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उनींदापन दूर न कर सको, तो अपने दोनों कान खींचो और अपने हाथों से अपने अंगों को रगड़ो। ऐसा करने से संभवतः तुम्हारा उनींदापन दूर हो जाएगा।"

(5) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उनींदापन दूर नहीं कर सकते, तो तुम्हें अपनी सीट से उठकर, अपनी आँखों को पानी से मलकर, चारों ओर का अवलोकन करना चाहिए और नक्षत्रों और तारों को देखना चाहिए। इस प्रकार संभव है कि तुम्हारा उनींदापन दूर हो जाए।"

(6) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उन्मत्तता को त्याग न सको, तो प्रकाश के अनुभव (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान दो; दिन के अनुभव (सन्ना/संज्ञा) का इस प्रकार अभ्यास करो: 'जैसे दिन, वैसे रात; जैसे रात, वैसे दिन।' इस प्रकार, खुले और निर्मल मन से, प्रकाश से परिपूर्ण मन का विकास करो। इस प्रकार, संभव है कि तुम्हारी उन्मत्तता दूर हो जाए। [87]

(7) "परन्तु यदि तुम इस प्रकार अपनी उन्मत्तता को दूर नहीं कर सकते, तो तुम्हें आगे-पीछे चलने का अभ्यास करना चाहिए, अपने पीछे और आगे के दृश्य को निहारते हुए, अपनी सभी इंद्रियों को समेटकर और मन को एकाग्र रखते हुए। इस प्रकार, संभव है कि तुम्हारी उन्मत्तता दूर हो जाए।"

लेकिन यदि आप इस प्रकार अपनी उन्मत्तता को त्याग नहीं सकते, तो आपको सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेटना चाहिए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखते हुए, सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, मन में उठने का विचार धारण करना चाहिए। जब आप जागें, तो आपको जल्दी से उठना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं विश्राम के सुख, आलस्य के सुख, नींद के सुख पर ध्यान केंद्रित नहीं करूंगा।' मोग्गलाना, इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

इसलिए, मोग्गलाना, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "हम परिवारों के पास भिक्षा मांगने के लिए अहंकार से भरे सिर के साथ नहीं जाएंगे।" मोग्गलाना, आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। मोग्गलाना, ऐसा हो सकता है कि कोई भिक्षु अहंकार से भरे सिर के साथ परिवारों के पास जाए। अब परिवारों में करने के लिए बहुत से काम होते हैं, और इसी कारण जब कोई भिक्षु आता है, तो लोग उस पर ध्यान नहीं देते। ऐसे में भिक्षु सोच सकता है: 'किसने इस परिवार को मेरे विरुद्ध कर दिया है? लगता है ये लोग अब मेरे प्रति उदासीन हो गए हैं।' इस प्रकार, लाभ न मिलने के कारण व्यक्ति अपमानित महसूस करता है; जब वेदना अपमानित होती है, तो व्यक्ति बेचैन हो जाता है; जब व्यक्ति बेचैन होता है, तो वह अपना संयम खो देता है। संयमहीन व्यक्ति का मन समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) से बहुत दूर होता है।

इसलिए, मोग्गलाना, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम विवादपूर्ण चर्चा में शामिल नहीं होंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। विवादपूर्ण चर्चा होने पर शब्दों की अधिकता होने की संभावना रहती है। शब्दों की अधिकता होने पर व्यक्ति बेचैन हो जाता है; बेचैन होने पर वह अपना संयम खो देता है। संयमहीन व्यक्ति का मन समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) से बहुत दूर होता है।

मोग्गलाना, मैं हर किसी से संबंध बनाने की प्रशंसा नहीं करता, न ही [88] मैं किसी से भी संबंध न बनाने की प्रशंसा करता हूँ। मैं गृहस्थों और भिक्षुओं से संबंध बनाने की प्रशंसा नहीं करता, लेकिन मैं लोगों की भीड़-भाड़ से दूर, मानव बस्ती से अलग और एकांत के लिए उपयुक्त शांत और शोर-रहित आवासों से संबंध बनाने की प्रशंसा करता हूँ।

जब यह कहा गया, तो पूज्य महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) से कहा: 1549 "संक्षेप में, भंते, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) के निवारण में मुक्त भिक्षु, जो देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है, वह कौन है जो परम निष्कर्ष पर पहुँच गया है, बंधन से परम सुरक्षा प्राप्त कर चुका है, परम ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी चुका है, और परम लक्ष्य प्राप्त कर चुका है?"

"यहाँ, मोग्गलाना, एक भिक्षु ने सुना है: 'कुछ भी पकड़ने लायक नहीं है।'" जब कोई भिक्षु यह सुनता है: 'कुछ भी पकड़ने लायक नहीं है", तो वह प्रत्यक्ष रूप से सभी चीजों को जान लेता है। प्रत्यक्ष रूप से सभी चीजों को जानने के बाद, वह सभी चीजों को पूरी तरह से समझ लेता है। सभी चीजों को पूरी तरह से समझने के बाद, उसे जो भी संवेदना (वेदना) महसूस होती है—चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो, या न दुखदायी हो और न ही सुखद—वह उन संवेदनाओं (वेदनाओं) में अनित्यता (अनित्यता) का चिंतन करता है, उन संवेदनाओं (वेदनाओं) के लुप्त होने (विलय) को देखता है, उन संवेदनाओं (वेदनाओं) के अंत (निरस्त होने) को देखता है, और उन संवेदनाओं (वेदनाओं) के त्याग (त्याग) को देखता है। जब वह अनित्यता (अनित्यता)... लुप्त होने... अंत... त्याग (निरस्त होने) को देखता है, तो वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने के कारण, वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया

गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई आसार नहीं है।'

"संक्षेप में, मोग्गलाना, भिक्षु देवताओं और मनुष्यों में इस प्रकार श्रेष्ठ है: वह जिसने परम निष्कर्ष प्राप्त कर लिया है, बंधन से परम सुरक्षा प्राप्त कर ली है, परम ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया है और परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।"

---

62 मेट्टा [1550]

"भिक्षुओं, पुण्य से मत डरो। यह सुख का पदनाम है, [89] अर्थात् पुण्य।

मुझे याद है कि मैंने लंबे समय तक पुण्य कर्मों के वांछनीय, सुंदर और सुखद फल का अनुभव किया। सात वर्षों तक मैंने प्रेम और करुणा (मेट्टा) का भाव विकसित किया। फलस्वरूप, संसार के विघटन और विकास के सात युगों तक मैं इस संसार में वापस नहीं आया। जब संसार का विघटन हो रहा था, तब मैं प्रकाश के प्रवाह के लोक में चला गया। जब संसार का विकास हो रहा था, तब मेरा ब्रह्मा के एक खाली महल में पुनर्जन्म हुआ। 1551 वहाँ मैं ब्रह्मा था, 1552 महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वव्यापी द्रष्टा, भगवानत्व का स्वामी। मैं छत्तीस बार देवताओं का शासक सक्का (इंद्र) था। सैकड़ों बार मैं चक्र चलाने वाला सम्राट, धर्म द्वारा शासित धर्मात्मा राजा, चारों सीमाओं तक शासन करने वाला विजेता, अपने देश में स्थिरता प्राप्त करने वाला, सात रत्नों से युक्त था। मेरे पास ये सात रत्न थे, अर्थात्: मेरे पास चक्र-रत्न, हाथी-रत्न, अश्व-रत्न, रत्न-रत्न, स्त्री-रत्न, कोषाध्यक्ष-रत्न और सातवें के रूप में सलाहकार-रत्न थे। मेरे एक हजार से अधिक पुत्र थे जो वीर, बलवान और शत्रुओं की सेनाओं को कुचलने में सक्षम थे। मैंने इस पृथ्वी को समुद्र की सीमाओं तक जीतकर शासन किया, बल और हथियारों से नहीं बल्कि धम्म के द्वारा। 1553

"यदि कोई सुख की तलाश में है, तो उसे

पुण्य कर्मों के फल, लाभकारी (कुशल) कर्मों के फल को देखना चाहिए।

सात वर्षों तक मैंने करुणामय मन विकसित किया।"

हे भिक्षुओं, सात युगों

के प्रलय और विकास के दौरान,

मैं इस संसार में पुनः नहीं आया।

"जब दुनिया का विघटन हो रहा था, तब

मैं प्रकाश की धारा के क्षेत्र में चला गया।

जब दुनिया का विकास हो रहा था, तब

मैं एक खाली ब्रह्मा (महल) में चला गया।"

"सात बार मैं महान ब्रह्मा बना,

जो भगवानत्व का स्वामी है;

छत्तीस बार मैं देवों (देवदूतों/देवताओं) का शासक बना, और

देवों (देवदूतों/देवताओं) पर शासन करता रहा।"

"मैं एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट था,

जंबुद्वीप (भारत) का स्वामी, [1554]

एक प्रमुख अभिषिक्त खत्तिया,

मनुष्यों में संभगवान।"

"बिना बल प्रयोग के, बिना हथियारों के,

मैंने इस पृथ्वी पर विजय प्राप्त की।

मैंने इस पर धर्म द्वारा,

बिना हिंसा के, धम्म द्वारा शासन किया, [1555] इस पृथ्वी के क्षेत्र पर

धम्म द्वारा शासन का प्रयोग किया ।"

"मेरा जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ था,

जो अपार धन-संपत्ति

से संपन्न था ,

और सात रत्नों से परिपूर्ण था। यह बात जगत के उपकारक

बुद्धों द्वारा भली-भांति सिखाई गई है : यही महानता का कारण है जिसके कारण व्यक्ति को पृथ्वी का स्वामी कहा जाता है। [1556]"

"मैं [1557] वैभवशाली, धन-संपत्ति से परिपूर्ण राजा था ।

मैं जंबूद्वीप (भारत) का स्वामी,

शक्तिशाली और गौरवशाली था।

निम्न कुल का व्यक्ति भी

यह सुनकर विश्वास क्यों नहीं करेगा?"

अत: जो व्यक्ति कल्याण की कामना करता है और

महानता की आकांक्षा रखता है, उसे बुद्धों की शिक्षाओं का स्मरण करते हुए

उत्तम धम्म का गहन आदर करना चाहिए । [1558]

---

63 पत्नियां (भारिया)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र लिया और गृहस्थ अनाथपिंडिका के निवास पर गए, जहाँ वे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए।

उस समय अनाथपिंडिका के निवास में लोग शोर-शराबा कर रहे थे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्वामी, आपके घर में लोग इतना शोर-शराबा क्यों कर रहे हैं? ऐसा लग रहा है जैसे मछुआरे मछली पकड़ने आए हों।"

"हे भंते, यह मेरी बहू सुजाता है, जो धनी है और एक धनी परिवार से यहाँ लाई गई है। वह अपने ससुर, अपनी सास और अपने पति की आज्ञा नहीं मानती। वह भगवान (बुद्ध) का आदर, सम्मान और पूजा भी नहीं करती।"

तब भगवान (बुद्ध) ने सुजाता से कहा, "सुजाता, इधर आओ।"

"जी, भंते," उसने उत्तर दिया। वह भगवान (बुद्ध) के पास गई, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गई। तब भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा: [92]

"सुजाता, एक पुरुष की सात प्रकार की पत्नियाँ हो सकती हैं। कौन सी सात? एक हत्यारी जैसी, एक चोर जैसी, एक अत्याचारी जैसी, एक माँ जैसी, एक बहन जैसी, एक सहेली जैसी और एक दासी जैसी। एक पुरुष की ये सात प्रकार की पत्नियाँ हो सकती हैं। तुम इनमें से कौन सी हो?"

"भंते, भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे धम्म इस प्रकार सिखाएं कि मैं संक्षेप में कहे गए इस कथन का अर्थ विस्तार से समझ सकूं।"

"तो सुनो और ध्यान से सुनो, सुजाता। मैं बोलूंगी।"

"जी हां, भंते," उसने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"घृणा से भरी मानसिकता वाली, सहानुभूति से रहित,

दूसरों के प्रति वासना से ग्रस्त, अपने पति से घृणा करने वाली

वह महिला, धन से खरीदी गई महिला को ही मारना चाहती है:

ऐसी पत्नी को ही पत्नी और हत्यारा कहा जाता है।"

"जब किसी महिला का पति

शिल्प, व्यापार या खेती में मेहनत करके धन अर्जित करता है, तो

वह उसे चुराने की कोशिश करती है, भले ही वह थोड़ा ही कमाता हो:

ऐसी पत्नी को पत्नी और चोर कहा जाता है।"

"आलसी, पेटू, काम करने की अनिच्छुक,

कठोर, क्रूर, वाणी में कर्कश,

अपने समर्थकों पर हावी रहने वाली स्त्री:

ऐसी पत्नी को पत्नी और अत्याचारी कहा जाता है। [93j

"जो हमेशा दयालु और सहानुभूतिपूर्ण हो,

जो अपने पति की रक्षा वैसे ही करे जैसे एक माँ अपने बेटे की,

जो उसकी कमाई हुई संपत्ति की रक्षा करे:

ऐसी पत्नी को ही पत्नी और माँ कहा जाता है।"

"जो स्त्री अपने पति को छोटी बहन और बड़े भाई के समान सम्मान देती है ,

कर्तव्यनिष्ठ होती है और अपने पति की इच्छा का पालन करती है,

ऐसी स्त्री को ही पत्नी और बहन कहा जाता है।"

जो अपने पति को देखकर ऐसे प्रसन्न होती है

मानो लंबे समय बाद किसी मित्र से मिल रही हो;

सुसंस्कृत, गुणी, अपने पति के प्रति समर्पित:

ऐसी पत्नी को ही पत्नी और मित्र कहा जाता है।

"जो

छड़ी से हिंसा की धमकी दिए जाने पर भी धैर्यवान और शांत रहती है,

जो अपने पति को घृणा से मुक्त मन से सहन करती है,

धैर्यवान रहती है, अपने पति की इच्छा के प्रति विनम्र रहती है:

ऐसी पत्नी को पत्नी और दासी कहा जाता है।"

"यहाँ जिन पत्नियों को

हत्यारा, चोर, अत्याचारी,

अनैतिक, कठोर, अनादर करने वाली कहा जाता है,

वे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके नरक में जाती हैं।"

लेकिन यहाँ जिन पत्नियों को

माँ, बहन, सहेली और दासी कहा जाता है,

जो सद्गुणों में दृढ़ होती हैं, लंबे समय तक संयमित रहती हैं,

शरीर के विखंडन के साथ स्वर्ग जाती हैं।

“सुजाता, एक पुरुष की सात प्रकार की पत्नियाँ हो सकती हैं। अब तुम इनमें से कौन सी हो?”

“हे भंते, आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक दासी के समान पत्नी समझें।”

---

64 क्रोध [1560] (कोडना सं. क्रोध)

“भिक्षुओं, क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आ पड़ने वाली ये सात बातें शत्रु को प्रसन्न करती हैं और उनके लिए लाभकारी होती हैं। वे सात बातें कौन सी हैं?”

(1) “हे भिक्षुओं, देखिए, शत्रु अपने शत्रु की कामना करता है: ‘काश वह बदसूरत हो जाए!’ क्यों? शत्रु अपने शत्रु की सुंदरता से प्रसन्न नहीं होता। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से व्याकुल हो जाता है, चाहे वह अच्छी तरह स्नान किया हो, तेल लगाया हो, बाल और दाढ़ी संवारे हों, सफेद वस्त्र पहने हो, फिर भी वह बदसूरत ही लगता है। क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आने वाली पहली चीज जो शत्रु को प्रसन्न और लाभान्वित करती है, वह यही है।”

(2) “एक शत्रु दूसरे शत्रु की कामना करता है: ‘काश उसकी नींद खराब हो!’ क्यों? शत्रु को अपने शत्रु की अच्छी नींद से प्रसन्नता नहीं होती। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से व्याकुल हो जाता है, तो चाहे वह गद्दों, कंबलों और आवरणों से ढके पलंग पर सोए, हिरण की खाल के उत्कृष्ट आवरण पर, चंदवा और दोनों सिरों पर लाल तकियों के साथ, फिर भी उसकी नींद खराब होती है। यह दूसरी बात है जो शत्रु को किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आने पर प्रसन्न और लाभान्वित करती है।”

(3) “फिर, एक शत्रु दूसरे शत्रु की कामना करता है: 'काश वह सफल न हो!' क्यों? शत्रु अपने शत्रु की सफलता से प्रसन्न नहीं होता। [95] जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से व्याकुल हो जाता है, यदि उसे कुछ हानिकारक मिलता है, तो वह सोचता है: 'मुझे कुछ लाभकारी मिला है,' और यदि उसे कुछ लाभकारी मिलता है, तो वह सोचता है: 'मुझे कुछ हानिकारक मिला है।' जब क्रोध से व्याकुल होकर उसे ये एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत चीजें मिलती हैं, तो वे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा पहुँचाती हैं। यही तीसरी बात है जो किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आने वाले शत्रु को प्रसन्न और लाभ पहुँचाती है।

(4) “फिर, एक शत्रु दूसरे शत्रु की कामना करता है? 'काश वह धनवान न हो!' क्यों? शत्रु अपने शत्रु के धन से प्रसन्न नहीं होता। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से व्याकुल हो जाता है, तो राजा उसके द्वारा परिश्रमपूर्वक अर्जित, बलि से एकत्रित, पसीने से कमाए गए, न्यायसंगत रूप से अर्जित धन को राजकोष में जमा कर लेते हैं। यही चौथी बात है जो किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर विजय प्राप्त करने पर शत्रु को प्रसन्न और लाभान्वित करती है।”

(5) "फिर, एक शत्रु दूसरे शत्रु की कामना करता है: 'काश वह प्रसिद्ध न हो!' क्यों? शत्रु अपने शत्रु की प्रसिद्धि से प्रसन्न नहीं होता। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से अभिभूत और पीड़ित हो जाता है, तो वह सतर्कता के कारण अर्जित की गई अपनी सारी प्रसिद्धि खो देता है। यह पाँचवीं बात है जो शत्रु को प्रसन्न करती है और लाभ पहुँचाती है जब वह किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर घटित होती है।"

(6) "फिर, एक शत्रु, दूसरे शत्रु के लिए यही कामना करता है: 'काश उसके कोई मित्र न हों!' क्यों? शत्रु को अपने मित्र देखकर प्रसन्नता नहीं होती। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से व्याकुल हो जाता है, तो उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और परिवार के सदस्य उससे दूर से ही बचते हैं। यह छठी बात है जो किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आने पर शत्रु को प्रसन्न और लाभ पहुँचाती है। [96]

(7) "फिर, शत्रु दूसरे शत्रु के लिए यही कामना करता है: 'शरीर के क्षत्रप होने के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले!' क्यों? शत्रु अपने शत्रु के अच्छे गंतव्य पर जाने से प्रसन्न नहीं होता। जब कोई क्रोधित व्यक्ति क्रोध से ग्रस्त और पीड़ित होता है, तो वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लिप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप, क्रोध से ग्रस्त रहते हुए, शरीर के क्षत्रप होने के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। यह सातवीं बात है जो शत्रु को प्रसन्न करती है और लाभ पहुँचाती है जब वह किसी क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आती है।"

"ये सात ऐसी बातें हैं जो क्रोधित पुरुष या स्त्री पर आ गिरती हैं और शत्रु को प्रसन्न करती हैं और उनके लिए लाभदायक होती हैं।"

क्रोधित व्यक्ति बदसूरत होता है;

उसे नींद भी ठीक से नहीं आती;

कुछ लाभ प्राप्त करने के बाद भी

वह उसे हानिकारक समझता है। [1561]

क्रोधित व्यक्ति,

क्रोध से अभिभूत होकर,

शरीर और वाणी से वध करके, [1562]

धन की हानि उठाता है।

क्रोध से पागल होकर

वह बदनामी कमा लेता है।

उसके रिश्तेदार, दोस्त और प्रियजन

उस गुस्सैल व्यक्ति से दूर रहने लगते हैं।

क्रोध हानि का कारण है;

क्रोध मानसिक अशांति उत्पन्न करता है। लोग अपने भीतर से उत्पन्न

खतरे को पहचान नहीं पाते ।

क्रोधित व्यक्ति को अच्छाई का ज्ञान नहीं होता;

क्रोधित व्यक्ति को धर्म का दर्शन नहीं होता। क्रोध के आघूर्ण में

केवल अंधापन और घोर अंधकार छा जाता है ।

जब कोई क्रोधित व्यक्ति किसी को नुकसान पहुंचाता है,

चाहे आसानी से या कठिनाई से,

तो बाद में, जब क्रोध शांत हो जाता है, तो

वह आग से जलने की तरह पीड़ा झेलता है।

वह उसी तरह हठ दिखाता है

जैसे आग धुएं की लपटें फैलाती है।

जब उसका क्रोध बाहर फैलता है, तो

लोग भी उसके कारण क्रोधित हो जाते हैं।

उसे न तो शर्म है और न ही गलत काम का डर,

उसकी वाणी सम्मानजनक नहीं है;

क्रोध से ग्रस्त व्यक्ति के

पास सुरक्षा का कोई ठिकाना नहीं होता।

मैं तुम्हें उन कर्मों के बारे में बताऊंगा

जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं।

इन्हें ध्यानपूर्वक सुनो,

धर्मी लोगों से दूर रहकर।

एक क्रोधित व्यक्ति अपने पिता की हत्या करता है;

एक क्रोधित व्यक्ति अपनी ही माता की हत्या करता है;

एक क्रोधित व्यक्ति ब्राह्मण की हत्या करता है;

एक क्रोधित व्यक्ति सांसारिक व्यक्ति की हत्या करता है।

क्रोधित सांसारिक व्यक्ति अपनी माँ की हत्या कर देता है,

उस नेक महिला की जिसने उसे जीवन दिया,

जिसने उसका पालन-पोषण किया

और जिसने उसे इस दुनिया से परिचित कराया।

वे प्राणी, स्वयं की ही तरह,

अपने आप को सबसे प्रिय मानते हैं;

फिर भी जो लोग क्रोधित होते हैं,

वे विभिन्न मामलों से व्याकुल होने पर अलग-अलग तरीकों से आत्महत्या कर लेते हैं।

कुछ लोग तलवार से आत्महत्या कर लेते हैं;

कुछ व्याकुल होकर विष पी लेते हैं;

कुछ रस्सी से फांसी लगा लेते हैं;

कुछ पहाड़ की खाई में कूद जाते हैं।

ऐसे कर्म जिनमें विकास को नष्ट करना शामिल है [1567]

और ऐसे कर्म जो उनकी अपनी मृत्यु का कारण बनते हैं:

ऐसे कर्म करते समय वे नहीं जानते

कि हार क्रोध से पैदा होती है।

इस प्रकार हृदय में छिपा मृत्यु का फंदा

क्रोध का रूप धारण कर चुका है।

इसे आत्मसंयम,

ज्ञान (दिव्य ज्ञान), ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और सही दृष्टि से काट देना चाहिए।

बुद्धिमान व्यक्ति को

इस हानिकारक (अकुसला) गुण का नाश करना चाहिए।

धम्म का अभ्यास इसी प्रकार करना चाहिए:

हठधर्मिता के आगे न झुकना चाहिए।

क्रोध से मुक्त, उनके दुख दूर,

मोह से मुक्त, 1569 अब लालची नहीं,

शांत, क्रोध त्यागकर,

निष्कलंक लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं। [1570]

VII. महावग्गो (महान अध्याय)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

65 नैतिक शर्म [1571] (हिरियट्टप्पा)

भिक्षुओं, (1) जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना न हो, तो नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना से रहित व्यक्ति के लिए, (2) इंद्रियों के संयम का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब इंद्रियों के संयम का अभाव हो, तो इंद्रियों के संयम से रहित व्यक्ति के लिए, (3) सद्गुणी आचरण का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब सद्गुणी आचरण न हो, तो सद्गुणी आचरण से रहित व्यक्ति के लिए, (4) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) न हो, तो सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से रहित व्यक्ति के लिए, (5) चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन का निकटवर्ती कारण नहीं रह जाता। जब चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन न हो, तो चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन से रहित व्यक्ति के लिए, (6) निब्बिदा (मोहभंग) और वैराग (विरग) अपने निकटवर्ती कारण से वंचित है। जब वैराग्य और वैराग्य नहीं होता, तो वैराग्य और वैराग्य से रहित व्यक्ति के लिए, (7) मुक्ति का ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-नाना-दस्सना संस्कृत: विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) अपने निकटवर्ती कारण से वंचित है।

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्तियाँ कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; न ही उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी पूरी तरह से विकसित होती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय का अभाव होता है, तो नैतिक लज्जा और नैतिक भय से रहित व्यक्ति के लिए इंद्रियों पर नियंत्रण का तात्कालिक कारण नहीं रह जाता। जब इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं होता... तब मुक्ति का ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) का तात्कालिक कारण नहीं रह जाता।

भिक्षुओं, (1) जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना हो, तो नैतिक लज्जा और नैतिक भय से ग्रसित व्यक्ति के लिए, (2) इंद्रियों का संयम इसका निकटतम कारण है। जब इंद्रियों का संयम हो, तो इंद्रियों का संयम रखने वाले व्यक्ति के लिए, (3) सद्गुणी आचरण इसका निकटतम कारण है। जब सद्गुणी आचरण हो, तो सद्गुणी आचरण वाले व्यक्ति के लिए, (4) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) इसका निकटतम कारण है। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) हो, तो सही समाधि से ग्रसित व्यक्ति के लिए, (5) यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) इसका निकटतम कारण है। जब यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन हो, तो सही अर्थों में चीजों का ज्ञान और दर्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, (6) निबिद्दा और वैराग्य का निकटवर्ती कारण होता है। जब विरक्तता और वैराग्य होता है, तो विरक्तता और वैराग्य से युक्त व्यक्ति के लिए, (7) मुक्ति का ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) का निकटवर्ती कारण होता है।

"मान लीजिए एक वृक्ष है जिसमें शाखाएँ और पत्तियाँ हैं। फिर उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना होती है, तो ऐसे व्यक्ति के लिए इंद्रियों पर नियंत्रण ही इसका मूल कारण होता है। जब इंद्रियों पर नियंत्रण होता है... तो मुक्ति का ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) इसका मूल कारण होता है।" [100]

---

66 सात सूर्य (सत्तसूर्य सं. सप्त-सूर्य)

सन् 1572 में एक बार भगवान (बुद्ध) वेशाली में अंबपाल के उपवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, सताए गए भाव (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर हैं; सताए गए भाव (धर्म) अस्थिर हैं; सताए गए भाव (संहार/संस्कार/भावनाएँ) अविश्वसनीय हैं। सभी सताए गए भावों से विरक्त होना ही पर्याप्त है, उनके प्रति उदासीन होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति पाने के लिए।

भिक्षुओं, पर्वतों के राजा सिनेरु की लंबाई 84,000 योजन और चौड़ाई 84,000 योजन है; यह विशाल सागर में 84,000 योजन तक डूबा हुआ है और विशाल सागर से 84,000 योजन ऊपर उठता है। 1573

(1) "भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक वर्षा नहीं होती। जब वर्षा नहीं होती, तो बीज, वनस्पति, औषधीय पौधे, घास और जंगल के विशाल वृक्ष सूखकर नष्ट हो जाते हैं। बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) इतनी क्षणभंगुर, इतनी अस्थिर और इतनी अविश्वसनीय हैं। सभी बद्ध घटनाओं से विरक्त होना, उनके प्रति उदासीन होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति पाने के लिए पर्याप्त है।"

(2) "एक समय ऐसा आता है जब, लंबे समय के बाद, दूसरा सूर्य प्रकट होता है। दूसरे सूर्य के प्रकट होने के साथ ही छोटी नदियाँ और झीलें सूखकर वाष्पित हो जाती हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। [101] इसी प्रकार, परिस्थितिजन्य घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर हैं। ... उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

(3) एक समय ऐसा आता है जब लंबे समय के बाद तीसरा सूर्य प्रकट होता है। तीसरे सूर्य के प्रकट होते ही गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभू और माही जैसी महान नदियाँ सूखकर वाष्पित हो जाती हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार, बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर होती हैं। ... उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

(4) एक समय ऐसा आता है, जब लंबे समय के बाद चौथा सूर्य प्रकट होता है। चौथे सूर्य के प्रकट होने के साथ ही वे महान झीलें जिनसे वे महान नदियाँ निकलती हैं—अनोत्तत्त, सिहापपाता, रथकारा, कन्नामुंडा, कुणाला, छद्दन्त और मंदाकिनी—सूख जाती हैं, वाष्पित हो जाती हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार, बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर हैं। ... उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

(5) "वहाँ; एक समय आता है जब, बहुत समय बाद, पाँचवाँ सूर्य प्रकट होता है। पाँचवें सूर्य के प्रकट होने के साथ ही, विशाल सागर का जल सौ योजन, दो सौ योजन... तीन सौ योजन... सात सौ योजन तक नीचे चला जाता है। विशाल सागर में बचा हुआ जल सात ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक, छह ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक... पाँच ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक... चार ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक... तीन ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक... दो ताड़ के वृक्षों की ऊँचाई तक [102]... केवल एक ताड़ के वृक्ष की ऊँचाई तक होता है। विशाल सागर में बचा हुआ जल सात फ़ैदम... छह फ़ैदम... पाँच फ़ैदम... चार फ़ैदम... तीन फ़ैदम... दो फ़ैदम... एक फ़ैदम... आधा फ़ैदम... कमर तक... घुटनों तक... की ऊँचाई तक होता है।" टखनों तक। जैसे शरद ऋतु में जब भारी बारिश की बूँदें बरसती हैं, तो जगह-जगह पशुओं के खुरों के निशानों में पानी जमा हो जाता है, उसी प्रकार विशाल सागर में बचा हुआ पानी जगह-जगह पशुओं के खुरों के निशानों के आकार के तालाबों में जमा हो जाता है। पाँचवें सूर्य के प्रकट होने पर, विशाल सागर में बचा हुआ पानी उंगलियों के जोड़ों तक भी नहीं पहुँच पाता। इसी प्रकार, संभाव्यताएँ (संहार/संवेदनाएँ) क्षणभंगुर हैं। ... उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

(6) एक समय ऐसा आता है जब लंबे समय के बाद छठा सूर्य प्रकट होता है। छठे सूर्य के प्रकट होने पर यह महान पृथ्वी और पर्वतों के राजा सिनेरु धुंआ छोड़ते हैं, और सुलगते हैं। जैसे कुम्हार की आग जलाने पर पहले धुंआ छोड़ती है, और सुलगती है, वैसे ही छठे सूर्य के प्रकट होने पर यह महान पृथ्वी और पर्वतों के राजा सिनेरु धुंआ छोड़ते हैं, और सुलगते हैं। इसी प्रकार, बद्ध घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर हैं। ... उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

(7) "एक समय ऐसा आता है जब, बहुत समय बाद, सातवाँ सूर्य प्रकट होता है[103] सातवें सूर्य के प्रकट होने के साथ ही, यह महान पृथ्वी और पर्वतों के राजा सिनेरु ज्वालाओं में घिर जाते हैं, प्रज्वलित होकर एक ज्वाला-समूह बन जाते हैं। जैसे ही महान पृथ्वी और सिनेरु दहकते और जलते हैं, हवा द्वारा उठाई गई ज्वाला ब्रह्मलोक तक पहुँच जाती है। जैसे ही सिनेरु दहकते और जलते हैं, जैसे ही वह विनाश की ओर अग्रसर होते हैं और अत्यधिक ऊष्मा से अभिभूत हो जाते हैं, सौ योजन के पर्वत शिखर विघटित हो जाते हैं; दो सौ योजन... तीन सौ योजन... चार सौ योजन... पाँच सौ योजन के पर्वत शिखर विघटित हो जाते हैं।

जब यह विशाल पृथ्वी और पर्वतों के राजा शिनेरु धधकते हैं, तब न तो राख दिखाई देती है और न ही कालिख। जैसे घी या तेल धधकते हैं, तब न तो राख दिखाई देती है और न ही कालिख, ठीक वैसे ही जब यह विशाल पृथ्वी और पर्वतों के राजा शिनेरु धधकते हैं। इसी प्रकार, सभी परिस्थितियाँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ) क्षणभंगुर, अस्थिर और अविश्वसनीय हैं। सभी परिस्थितियों (संहार/संस्कार/भावनाओं) से विरक्त होना ही पर्याप्त है, उनके प्रति उदासीन होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति पाने के लिए।

"भिक्षुओं (मठवासियों), सत्य को देखने वालों के अलावा कौन सोचेगा या विश्वास करेगा: 1574 'यह महान पृथ्वी और पर्वतों के राजा सिनेरु जलकर नष्ट हो जाएंगे और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा'?"

भिक्षुओं, अतीत में सुनेत्ता नामक एक गुरु थे, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे। 1576 गुरु सुनेत्ता [104] के सैकड़ों शिष्य थे, जिन्हें उन्होंने ब्रह्म जगत के साथ संगति का मार्ग सिखाया। जब वे शिक्षा दे रहे थे, तो जो लोग उनकी शिक्षा को पूर्णतः समझ लेते थे, वे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य, ब्रह्म जगत में पुनर्जन्म लेते थे। परन्तु जो लोग उनकी शिक्षा को पूर्णतः नहीं समझ पाते थे, उनमें से कुछ अन्य सृष्टि को नियंत्रित करने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, 1577 सृष्टि में आनंद लेने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, कुछ तुषिता देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, कुछ यम देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, कुछ तावतिंसा देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, और कुछ अन्य देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेते थे। देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ, जिन पर चार महान राजाओं का शासन था। कुछ का पुनर्जन्म धनी क्षत्रियों के साथ हुआ; कुछ का धनी ब्राह्मणों के साथ; कुछ का धनी गृहस्थों के साथ।

"तब, भिक्षुओं, गुरु सुनेत्ता के मन में यह विचार आया: 'यह उचित नहीं है कि मेरा भविष्य ठीक वही हो जो मेरे शिष्यों का है। मुझे प्रेम और करुणा (मेट्टा) को और विकसित करना चाहिए।' तब गुरु सुनेत्ता ने सात वर्षों तक प्रेम और करुणा का भाव विकसित किया। फलस्वरूप, सात युगों तक, जब संसार का विघटन और विकास हुआ, वे इस संसार में वापस नहीं आए। जब संसार का विघटन हो रहा था [105], वे प्रकाश के प्रवाह के लोक में चले गए। जब संसार का विकास हो रहा था, तब उनका ब्रह्मा के एक खाली महल में पुनर्जन्म हुआ। 1578

वहाँ ब्रह्मा विराजमान थे, महान ब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिशाली। वे छत्तीस बार सक्का (इंद्र) थे, देवताओं के शासक। सैकड़ों बार वे चक्र चलाने वाले सम्राट, धर्म के मार्ग पर चलने वाले धर्मात्मा राजा, चारों सीमाओं तक शासन करने वाले विजेता, अपने देश में स्थिरता प्राप्त करने वाले और सात रत्नों से परिपूर्ण थे। उनके एक हजार से अधिक पुत्र थे जो वीर, बलवान और शत्रुओं की सेनाओं को कुचलने में सक्षम थे। उन्होंने इस पृथ्वी को समुद्र की सीमाओं तक जीतने के बाद शासन किया, बल और शस्त्रों से नहीं बल्कि धर्म के मार्ग से।

"भिक्षुओं, यद्यपि सुनेत्ता का जीवनकाल इतना लंबा था और वे इतने लंबे समय तक साधना करते रहे, फिर भी वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं हो सके। वे कष्टों से मुक्त नहीं हुए, मैं कहता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे चार बातों को समझ नहीं पाए और उनमें पारंगत नहीं हो सके। वे चार बातें क्या हैं? श्रेष्ठ सद्गुणी आचरण, श्रेष्ठ समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), श्रेष्ठ पन्ना (दिव्य ज्ञान) और श्रेष्ठ मुक्ति।"

"हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ सद्गुणी आचरण को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। श्रेष्ठ समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। श्रेष्ठ पन्ना (दिव्य ज्ञान) को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। श्रेष्ठ मुक्ति को समझ लिया गया है और उसमें पारंगत हो चुका है। अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की लालसा (तन्हा/तृष्णा) का नाश हो चुका है; अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का मार्ग नष्ट हो चुका है; अब कोई नया अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।" 1579 [106] यही भगवान (बुद्ध) ने कहा। यह कहकर, सुगत (भगवान बुद्ध), गुरु ने आगे यह कहा:

"पुण्य आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता), पन्ना (दिव्य ज्ञान), और अतुलनीय मुक्ति: इन चीजों को महान गौतम ने स्वयं समझा था।"

इन बातों को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं को धम्म का उपदेश दिया। गुरु, दुखों का अंत करने वाले, दूरदर्शी, ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

---

67 किले की उपमा (नगरोपमा सं. नगर-उपमा)

भिक्षुओं, जब किसी राजा का सीमावर्ती किला किले की सात सहायक सामग्रियों से सुसज्जित हो और बिना किसी परेशानी या कठिनाई के चार प्रकार के भोजन आसानी से प्राप्त कर ले, तो उसे राजा का ऐसा सीमावर्ती किला कहा जा सकता है जिस पर बाहरी शत्रुओं और दुश्मनों द्वारा हमला नहीं किया जा सकता है।

"एक किले में मौजूद सात प्रकार की सहायक सामग्रियां कौन-कौन सी हैं जिनसे वह अच्छी तरह सुसज्जित होता है?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ राजा के सीमावर्ती किले में स्तंभ का आधार गहरा है और वह मजबूती से स्थापित है, अचल और अविचल है। राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए इस प्रथम सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित है।"

(2) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में खाई गहरी और चौड़ी खोदी जाती है। राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को रोकने के लिए इस दूसरे सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित होता है। [107]

(3) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में गश्ती मार्ग ऊंचा और चौड़ा होता है। राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए इस तीसरे सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित होता है।

(4) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में कई हथियार रखे जाते हैं, जिनमें मिसाइलें और हाथ के हथियार दोनों शामिल हैं। 1580 राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को रोकने के लिए इस चौथे सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित है।

(5) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में अनेक प्रकार की सेनाएँ निवास करती हैं, अर्थात् हाथी सेना, घुड़सवार सेना, रथ चालक, तीरंदाज, ध्वजवाहक, शिविर सेनापति, भोजन परोसने वाले, उग्ग जाति के योद्धा, अग्रिम पंक्ति के कमांडो, बैल योद्धा, आक्रमणकारी सैनिक, ढालधारी सैनिक, घरेलू दास सैनिक। 1581 राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा और बाहरी लोगों को रोकने के लिए इस पाँचवें सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित है।

(6) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होता है, जो अजनबियों को बाहर रखता है और परिचितों को अंदर आने देता है। राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को रोकने के लिए इस छठे सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित होता है।"

(7) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में प्राचीर ऊँची और चौड़ी होती है, जिस पर प्लास्टर की परत चढ़ी होती है। राजा का सीमावर्ती किला अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को रोकने के लिए इस सातवें सहायक उपकरण से अच्छी तरह सुसज्जित होता है। [108]

"यह इन सात प्रकार के सहायक अंगों से अच्छी तरह सुसज्जित है। और वे चार प्रकार के भोजन कौन से हैं जिन्हें यह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के आसानी से प्राप्त कर लेता है?"

(1) "यहाँ, भिक्षुओं, राजा के सीमावर्ती किले में बहुत घास, जलाऊ लकड़ी और पानी जमा किया जाता है, ताकि वहाँ के निवासियों को आनंद, राहत और आराम मिले और बाहरी लोगों को दूर रखा जा सके।

(2) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए बहुत सारा चावल और जौ जमा किया जाता है।

(3) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में कई खाद्य पदार्थ - तिल, हरी मूंग और सेम 1583 - इसके निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए और बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए जमा किए जाते हैं।

(4) "फिर, राजा के सीमावर्ती किले में कई औषधियाँ - घी, मक्खन, तेल, शहद, गुड़ और नमक - उसके निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए और बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए जमा की जाती हैं।

"ये चार ऐसे खाद्य पदार्थ हैं जिन्हें यह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के आसानी से प्राप्त कर लेता है।"

"जब, भिक्षुओं, किसी राजा का सीमावर्ती किला किले के इन सात सहायक उपकरणों से अच्छी तरह सुसज्जित हो, और जब वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के आसानी से इन चार प्रकार के भोजन को प्राप्त कर ले, तो यह कहा जा सकता है कि राजा के सीमावर्ती किले पर बाहरी शत्रुओं और दुश्मनों द्वारा हमला नहीं किया जा सकता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य सात अच्छे गुणों से युक्त होता है, और [109] जब वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं, तब उसे एक श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जिस पर मारा का आक्रमण नहीं हो सकता, जिस पर दुष्ट का आक्रमण नहीं हो सकता।"

"उसमें कौन-कौन से सात अच्छे गुण हैं?"

(1) “हे भिक्षुओं, जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में स्तंभ का आधार गहरा और दृढ़ होता है, वह अचल और अविचल होता है, ताकि उसके निवासियों की रक्षा हो सके और बाहरी लोगों को रोका जा सके, उसी प्रकार श्रेष्ठ शिष्य आस्था से परिपूर्ण होता है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' आस्था को अपना आधार बनाकर, श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल) का त्याग करता है और लाभकारी (कुशल) का विकास करता है, निंदनीय का त्याग करता है और निष्कलंक का विकास करता है, और स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस प्रथम अच्छे गुण से युक्त होता है।”

(2) “जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में खाई उसके निवासियों की रक्षा और बाहरी लोगों को रोकने के उद्देश्य से गहरी और चौड़ी खोदी जाती है, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य में नैतिक लज्जा होती है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से लज्जित होता है; वह बुरे (अकुशल) गुणों को ग्रहण करने से लज्जित होता है। नैतिक लज्जा को खाई के समान मानते हुए, श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल) गुणों का त्याग करके लाभकारी (कुशल) गुणों को विकसित करता है, निंदनीय गुणों का त्याग करके निर्दोष गुणों को विकसित करता है और स्वयं को पवित्र बनाए रखता है। वह इस दूसरे अच्छे गुण से युक्त होता है।”

(3) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में गश्ती मार्ग ऊँचा और चौड़ा होता है, ताकि वहाँ के निवासियों की रक्षा हो सके और बाहरी लोगों को रोका जा सके, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य भी कुकर्म से भयभीत रहता है; वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से भयभीत रहता है; वह अकुशल गुणों (धम्म) को ग्रहण करने से भयभीत रहता है। नैतिक भय को गश्ती मार्ग बनाकर, श्रेष्ठ शिष्य अकुशल गुणों का त्याग करता है और कुशल गुणों का विकास करता है, निंदनीय गुणों का त्याग करता है और निर्दोष गुणों का विकास करता है, तथा स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस तीसरे अच्छे गुण से युक्त होता है।"

(4) “जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में निवासियों की रक्षा और बाहरी लोगों को रोकने के उद्देश्य से कई हथियार, चाहे वे मिसाइल हों या हाथ के हथियार, रखे जाते हैं, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य ने भी बहुत कुछ सीखा है, उसे याद रखता है और उसका ज्ञान संचित करता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों—ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से उनका गहन अध्ययन किया है। ज्ञान को अपने हथियार के रूप में उपयोग करके, श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल) का त्याग करता है और लाभकारी (कुशल) का विकास करता है, निंदनीय का त्याग करता है और निष्कलंक का विकास करता है, और स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस चौथे गुण से युक्त होता है।”

(5) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में अनेक प्रकार की सेनाएँ निवास करती हैं, अर्थात् हाथी सेनाएँ... घरेलू दास सैनिक, जो वहाँ के निवासियों की रक्षा और बाहरी लोगों को रोकने के लिए होते हैं, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल) गुणों का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करता है; वह बलवान, दृढ़ और लाभकारी

(कुशल) गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का पालन करता है; ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को अपनी सेना बनाकर, श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल) का त्याग करता है और लाभकारी (कुशल) का विकास करता है, निंदनीय का त्याग करता है और निष्कलंक का विकास करता है, और स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस पाँचवें अच्छे गुण से युक्त होता है।"

(6) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले का द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होता है, जो अजनबियों को बाहर रखता है और परिचितों को प्रवेश देता है, अपने निवासियों की रक्षा करने और बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए, [111] उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य सचेत होता है, सर्वोच्च सती ध्यान और सतर्कता से परिपूर्ण होता है, जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है। सती ध्यान को अपना रक्षक बनाकर, श्रेष्ठ शिष्य अकुशल कर्मों का त्याग करता है और कुशल कर्मों का विकास करता है, निंदनीय कर्मों का त्याग करता है और निर्दोष कर्मों का विकास करता है, और स्वयं को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस छठे अच्छे गुण से युक्त होता है।"

(7) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले की प्राचीर ऊँची और चौड़ी होती है, और उस पर प्लास्टर चढ़ा होता है, ताकि वह अपने निवासियों की रक्षा करे और बाहरी लोगों को रोके, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उस ज्ञान (पन्न) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति जानता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों का पूर्ण नाश करता है। उस ज्ञान (पन्न) को अपने कवच के रूप में धारण करके, श्रेष्ठ शिष्य अकुशल (हानिकारक) का त्याग करता है और कुशल (सुविधाजनक) का विकास करता है, निंदनीय (दोषपूर्ण) का त्याग करता है और निर्दोष (दोषरहित) का विकास करता है, और अपने आप को पवित्रता में बनाए रखता है। वह इस सातवें गुण से युक्त होता है।"

"उसमें ये सात अच्छे गुण हैं। 1564 "और वे चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) क्या हैं जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं, जिन्हें वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के अपनी इच्छा से प्राप्त करता है?"

(1) "जिस प्रकार, हे भिक्षुओं, राजा के सीमावर्ती किले में निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए बहुत सारा घास, जलाऊ लकड़ी और पानी जमा किया जाता है, उसी प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक श्रेष्ठ शिष्य प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, जिसमें विचार और परीक्षा शामिल होती है— अपने स्वयं के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण (निब्बान) में प्रवेश करने के लिए।"

(2) "जिस प्रकार [112] राजा के सीमावर्ती किले में उसके निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए बहुत सारा चावल और जौ जमा किया जाता है, उसी प्रकार विचार और परीक्षा के शांत होने पर एक श्रेष्ठ शिष्य द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है तथा समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) होता है, बिना विचार और परीक्षा के—अपने स्वयं के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण (निब्बान) में प्रवेश करने के लिए।"

(3) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए तिल, हरी मूंग और सेम जैसी अनेक खाद्य सामग्री संचित की जाती है, उसी प्रकार, जब आनंद (पीति) भी लुप्त हो जाता है, तो एक श्रेष्ठ शिष्य समभाव में रहता है और सचेत (सती) होकर, पूर्णतः बोध करते हुए, वह शरीर के साथ सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान (सती अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ कहते हैं: 'वह समभाव में, सचेत (सती) होकर, सुख से निवास करता है' - अपने स्वयं के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण (निब्बान) में प्रवेश करने के लिए।"

(4) "जिस प्रकार राजा के सीमावर्ती किले में निवासियों के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा बाहरी लोगों को दूर रखने के लिए अनेक औषधियाँ— घी, मक्खन, तेल, शहद, गुड़ और नमक— संचित की जाती हैं, उसी प्रकार सुख और दुख का त्याग करके तथा प्रसन्नता और निराशा के पूर्वार्ध होने पर एक श्रेष्ठ शिष्य चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान (ध्यान/सती) का शुद्धिकरण होता है— अपने स्वयं के आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण (निब्बान) में प्रवेश करने के लिए।"

"ये चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) हैं जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं, जिन्हें वह इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के प्राप्त करता है। (113)

"हे भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन सात अच्छे गुणों से युक्त होता है, और जब वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, इन चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेता है जो उच्च मन का निर्माण करती हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं, तब वह एक श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जिस पर मारा का आक्रमण नहीं हो सकता, जिस पर शैतान का आक्रमण नहीं हो सकता।"

---

68 धम्म को जानने वाला (धम्मन्नु)

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं; वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य होते हैं; वे संसार के लिए अतुलनीय पुण्य के क्षेत्र हैं। वे सात गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु वह है जो धम्म को जानता है, जो अर्थ को जानता है, जो स्वयं को जानता है, जो संयम जानता है, जो उचित समय को जानता है, जो सभा को जानता है, और जो श्रेष्ठ और निम्न प्रकार के व्यक्तियों को जानता है।"

(1) "भिक्षु वह कैसे होता है जो धम्म को जानता है? यहाँ, भिक्षु धम्म को जानता है: प्रवचन (सूत्र), मिश्रित गद्य और पद्य, व्याख्याएँ, श्लोक (गाथाएँ), प्रेरित कथन (उदान), उद्धरण (इतिवुत्तक), पुनर्जन्म कथाएँ (जातक), चमत्कारिक वृत्तांत और प्रश्न-उत्तर। यदि कोई भिक्षु धम्म को नहीं जानता— प्रवचनों को... प्रश्न-उत्तरों को— तो उसे 'धम्म को जानने वाला' नहीं कहा जाएगा। परन्तु क्योंकि वह धम्म को जानता है— प्रवचनों को... प्रश्न-उत्तरों को— इसलिए उसे 'धम्म को जानने वाला' कहा जाता है। अतः वह धम्म को जानने वाला है।"

(2) "और भिक्षु अर्थ जानने वाला कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु इस कथन का अर्थ इस प्रकार जानता है: 'इस कथन का अर्थ यह है; उस कथन का अर्थ यह है।' यदि कोई भिक्षु इस प्रकार इस कथन का अर्थ नहीं जानता... तो उसे 'अर्थ जानने वाला' नहीं कहा जाएगा। परन्तु क्योंकि वह इस कथन का अर्थ इस प्रकार जानता है: 'इस कथन का अर्थ यह है; [114] उस कथन का अर्थ यह है,' इसलिए उसे 'अर्थ जानने वाला' कहा जाता है। इस प्रकार वह धम्म को जानने वाला और अर्थ को जानने वाला होता है।"

(3) "और भिक्षु स्वयं को जानने वाला कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु स्वयं को इस प्रकार जानता है: 'मुझमें इतना विश्वास, सदाचार, ज्ञान, उदारता, पन्ना (दिव्य ज्ञान) और विवेक है।' यदि कोई भिक्षु स्वयं को इस प्रकार न जानता हो: 'मुझमें इतना विश्वास... और विवेक है,' तो उसे 'स्वयं को जानने वाला' नहीं कहा जाएगा। परन्तु क्योंकि वह स्वयं को इस प्रकार जानता है: 'मुझमें इतना विश्वास... और विवेक है,' इसलिए उसे 'स्वयं को जानने वाला' कहा जाता है। इस प्रकार वह धम्म को जानने वाला, अर्थ को जानने वाला और स्वयं को जानने वाला होता है।"

(4) "भिक्षु संयम जानने वाला कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधि एवं भोजन ग्रहण करने में संयम जानता है। यदि कोई भिक्षु वस्त्र और बीमारों के लिए भोजन ग्रहण करने में संयम न जानता हो, तो उसे 'संयम जानने वाला' नहीं कहा जाएगा। परन्तु क्योंकि वह वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधि एवं भोजन ग्रहण करने में संयम जानता है, इसलिए उसे 'संयम जानने वाला' कहा जाता है। इस प्रकार वह धम्म को जानने वाला, अर्थ को जानने वाला, स्वयं को जानने वाला और संयम जानने वाला होता है।"

(5) "और भिक्षु वह कैसे होता है जो उचित समय जानता है? यहाँ, भिक्षु उचित समय इस प्रकार जानता है: 'यह सीखने का समय है, यह प्रश्न करने का समय है, यह परिश्रम करने का समय है, यह एकांतवास का समय है।' यदि कोई भिक्षु उचित समय नहीं जानता हो— 'यह सीखने का समय है... यह एकांतवास का समय है'— तो उसे 'उचित समय जानने वाला' नहीं कहा जाएगा। परन्तु क्योंकि वह उचित समय जानता है— 'यह सीखने का समय है... यह एकांतवास का समय है'— इसलिए उसे 'उचित समय जानने वाला' कहा जाता है। इस प्रकार वह धम्म को जानने वाला, अर्थ को जानने वाला, स्वयं को जानने वाला, संयम को जानने वाला और उचित समय को जानने वाला होता है।"

(6) "और भिक्षु सभा को जानने वाला कैसे कहलाता है? यहाँ, भिक्षु सभा को इस प्रकार जानता है: 'यह क्षत्रियों की सभा है, यह ब्राह्मणों की सभा है, यह गृहस्थों की सभा है, यह तपस्वियों की सभा है। इनमें से, किसी को इस प्रकार [इस सभा] में प्रवेश करना चाहिए; [115] इस प्रकार रुकना चाहिए; इस प्रकार कार्य करना चाहिए; इस प्रकार बैठना चाहिए; इस प्रकार बोलना चाहिए; इस प्रकार मौन रहना चाहिए।' यदि कोई भिक्षु सभा को इस प्रकार नहीं जानता: 'यह क्षत्रियों की सभा है... तपस्वियों की सभा है। इनमें से, किसी को इस प्रकार [इस सभा] में प्रवेश करना चाहिए... इस प्रकार मौन रहना चाहिए' - तो उसे 'सभा को जानने वाला' नहीं कहा जाएगा।" लेकिन क्योंकि वह सभा को जानता है—'यह क्षुद्रों की सभा है... तपस्वियों की सभा है। इनमें से किसी को इस प्रकार उपस्थित होना चाहिए... इस प्रकार मौन रहना चाहिए'—इसलिए उसे 'सभा का ज्ञाता' कहा जाता है। इस प्रकार वह धम्म का ज्ञाता है, अर्थ का ज्ञाता है, स्वयं का ज्ञाता है, संयम का ज्ञाता है, उचित समय का ज्ञाता है और सभा का ज्ञाता है।

(7) "भिक्षु (साधु) वह कैसे होता है जो श्रेष्ठ और निम्न प्रकार के व्यक्तियों को जानता है? यहाँ, भिक्षु व्यक्तियों को जोड़ों के रूप में समझता है। 1585

(i) "दो व्यक्ति: एक व्यक्ति नेक लोगों को देखना चाहता है; दूसरा व्यक्ति नेक लोगों को नहीं देखना चाहता। जो व्यक्ति नेक लोगों को नहीं देखना चाहता वह इस मामले में निंदनीय है; जो व्यक्ति नेक लोगों को देखना चाहता है वह इस मामले में प्रशंसनीय है।"

(ii) "दो व्यक्ति जो श्रेष्ठ व्यक्तियों को देखना चाहते हैं: एक व्यक्ति अच्छे धर्म को सुनना चाहता है; दूसरा व्यक्ति अच्छे धर्म को नहीं सुनना चाहता। जो व्यक्ति अच्छे धर्म को नहीं सुनना चाहता वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति अच्छे धर्म को सुनना चाहता है वह इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।"

(iii) "दो व्यक्ति जो अच्छे धम्म को सुनना चाहते हैं: एक उत्सुकतापूर्वक धम्म (मार्ग) सुनता है; दूसरा उत्सुकतापूर्वक धम्म नहीं सुनता। जो व्यक्ति उत्सुकतापूर्वक धम्म नहीं सुनता वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति [116] उत्सुकतापूर्वक धम्म सुनता है वह इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।

(iv) "दो व्यक्ति जो उत्सुकतापूर्वक धम्म सुनते हैं: एक धम्म सुनकर उसे मन में रखता है; दूसरा धम्म सुनकर उसे मन में नहीं रखता। जो व्यक्ति धम्म सुनकर उसे मन में नहीं रखता, वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति धम्म सुनकर उसे मन में रखता है, वह इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।"

(v) "दो व्यक्ति जिन्होंने धम्म को सुना और उसे मन में धारण किया: एक व्यक्ति उन शिक्षाओं के अर्थ की जांच करता है जिन्हें उसने मन में धारण किया है; दूसरा व्यक्ति उन शिक्षाओं के अर्थ की जांच नहीं करता है जिन्हें उसने मन में धारण किया है। जो व्यक्ति उन शिक्षाओं के अर्थ की जांच नहीं करता है वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति उन शिक्षाओं के अर्थ की जांच करता है वह इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।"

(vi) दो व्यक्ति जो मन में संजोए गए उपदेशों के अर्थ का परीक्षण करते हैं: एक ने अर्थ और धम्म को समझ लिया है और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास करता है; दूसरे ने अर्थ और धम्म को नहीं समझा है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता है। जो व्यक्ति अर्थ और धम्म को नहीं समझ पाया है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता है, वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति अर्थ और धम्म को समझ गया है और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास करता है, वह इस दृष्टि से निंदनीय है।

(vii) "दो व्यक्ति जिन्होंने धम्म का अर्थ और उसे समझ लिया है और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं: एक व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं; दूसरा व्यक्ति अपने कल्याण और दूसरों के कल्याण दोनों के लिए अभ्यास कर रहा है। जो व्यक्ति अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं, वह इस दृष्टि से निंदनीय है; जो व्यक्ति अपने कल्याण और दूसरों के कल्याण दोनों के लिए अभ्यास कर रहा है, वह इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।"

"इसी तरह एक भिक्षु व्यक्तियों को जोड़ों के रूप में समझता है। इसी तरह एक भिक्षु श्रेष्ठ और निम्न प्रकार के व्यक्तियों को जानता है। [117]

"इन सात गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

---

69 परिच्छत्तक

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, 1586 तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं: 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के पत्ते अब पीले पड़ गए हैं। अब जल्द ही इसके पत्ते झड़ जाएंगे।'

(2) "जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के पत्ते झड़ जाते हैं, तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं: 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के पत्ते झड़ गए हैं, अब जल्द ही इसमें पुष्पन का आरंभ हो जाएगा।' 1587

(3) "जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में पुष्पन की शुरुआत हो जाती है, तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं: 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में पुष्पन की शुरुआत हो चुकी है। अब इसके पुष्पन का विकास होने में अधिक समय नहीं लगेगा।' 1588

(4) "जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में पुष्पीय विभेदन हो जाता है, तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं: 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में पुष्पीय विभेदन हो चुका है। अब जल्द ही इसमें कलियाँ खिल जाएँगी।' 1589 .

(5) "जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में कली निकल आती है, तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं: 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष में अब कली निकल आई है। अब जल्द ही [118] इसकी कली फूट जाएगी।' 1590

(6) "जब तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्ततज़ा मूंगा वृक्ष की कली फूट जाती है, तो तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) प्रसन्न होकर सोचते हैं; 'परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष की कली फूट गई है। अब जल्द ही यह पूरी तरह खिल जाएगा।' 1591

(7) "जब तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष पर पूर्णतः खिल उठते हैं, तो वे प्रसन्न हो उठते हैं और परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष की चरणों में चार दिव्य माह व्यतीत करते हुए पांचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लेते हैं। परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के पूर्णतः खिलने पर पचास योजन के क्षेत्र में चारों ओर एक तेजाभा फैल जाती है और सौ योजन तक वायु के साथ सुगंध प्रवाहित होती है। यही परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष की महिमा है।"

(1) "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने का निश्चय करता है, तो उस समय वह तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के समान पीले पत्तों वाला हो जाता है। 1592

(2) "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है, तो वह अवसर ऐसा होता है जैसे उसके पत्ते झड़ गए हों, जैसे तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) का परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष।"

(3) "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... उस अवसर पर उसका पुष्प दीक्षा संस्कार हुआ है, जैसे तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) का परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष।"

(4) "जब विचार और परीक्षा के शांत होने पर कोई श्रेष्ठ शिष्य द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... उस अवसर पर उसका पुष्पीय विभेदन तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के समान होता है।"

(5) "जब, [119] आनंद (पीति) के लुप्त होने के साथ, एक श्रेष्ठ शिष्य . . . तीसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है . . . उस अवसर पर उसका कली निर्माण हुआ है, जैसे तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) का परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष।

(6) "जब सुख और दुख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और निराशा के बीत जाने के बाद, एक श्रेष्ठ शिष्य चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... उस अवसर पर उसकी कलियाँ खिल उठती हैं, जैसे तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) का परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष।"

(7) "जब, दोषों के नाश के साथ, एक श्रेष्ठ शिष्य प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर लेता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है, उस अवसर पर वह तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के परिच्छत्तक मूंगा वृक्ष के समान पूर्णतः खिल उठता है।"

उस अवसर पर, भिक्षुओं, पृथ्वी पर निवास करने वाले देव (देवदूत/भगवान) यह उद्घोष करते हैं: 'आदरणीय फलां व्यक्ति, उस पूज्य पुरुष के शिष्य, फलां गांव या कस्बे से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले गए, और अब, दोषों के नाश के साथ, उन्होंने इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करते हैं।' पृथ्वी पर निवास करने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) की पुकार सुनकर, चार महान राजाओं के अधीन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) ने पुकार लगाई... चार महान राजाओं के अधीन देवताओं (देवदूतों/देवताओं) की पुकार सुनकर, तावतिंसा देवताओं (देवदूतों/देवताओं), यम देवताओं (देवदूतों/देवताओं), तुषिता देवताओं (देवदूतों/देवताओं), सृष्टि में आनंदित होने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं), दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं), ब्रह्मा के साथ रहने वाले देवताओं (देवदूतों/देवताओं) ने पुकार लगाई: इस पूजनीय अमुक ने... इसी जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान से मन की निष्कलंक मुक्ति, ब्रह्मा के द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है। पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करके, उसमें प्रवेश कर उसमें निवास करता है। इस प्रकार [120] उस क्षण, उस पल, उस सेकंड में, यह पुकार ब्रह्म जगत तक फैल जाती है। 593 यह उस भिक्षु की आध्यात्मिक महिमा है जिसके दोष नष्ट हो गए हैं।

---

70 सम्मान (सक्काका)

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त एकांतवास में थे, तो उनके मन में निम्नलिखित विचार उत्पन्न हुआ: "एक भिक्षु को किसका आदर, सम्मान और समर्थन करना चाहिए ताकि वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर लाभकारी (कुशल) का विकास कर सके?"

तब उन्हें यह विचार आया: "(1) एक भिक्षु को गुरु का आदर, सम्मान और उन पर निर्भर रहना चाहिए ताकि वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर लाभकारी (कुशल) का विकास कर सके। (2) उसे धम्म का आदर, सम्मान और उन पर निर्भर रहना चाहिए... (3) ... संघ का... (4) ... प्रशिक्षण का... (5) एकाग्रता का... (6) ... सतर्कता का... (7) ... आतिथ्य सत्कार का ताकि वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर लाभकारी (कुशल) का विकास कर सके।"

तब पूज्य सारिपुत्त के मन में यह विचार आया: "ये गुण मुझमें शुद्ध और पवित्र हो गए हैं। मुझे भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें इनके बारे में बताना चाहिए। इस प्रकार ये गुण मुझमें शुद्ध हो जाएंगे और शुद्ध गुणों के रूप में अधिक व्यापक रूप से जाने जाएंगे।"

मान लीजिए किसी व्यक्ति को शुद्ध और पवित्र किया हुआ सोने का टुकड़ा मिलता है। उसके मन में यह विचार आ सकता है: 'मेरा यह सोने का टुकड़ा शुद्ध और पवित्र है। चलो इसे सुनारों को दिखाऊं। सुनारों को दिखाने के बाद यह शुद्ध हो जाएगा और शुद्ध होने के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाएगा।' इसी प्रकार ये गुण मुझमें भी शुद्ध और पवित्र हो गए हैं। चलो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें इनके बारे में बताऊं। इस प्रकार ये गुण मुझमें भी शुद्ध हो जाएंगे और शुद्ध होने के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाएंगे।

फिर, [121] शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा:

"यहाँ, भंते, जब मैं एकांत में अकेला था, तो मेरे मन में निम्नलिखित विचार उत्पन्न हुए... [यहाँ वह ऊपर बताए गए संपूर्ण विचार क्रम का वर्णन करते हैं:] ... इस प्रकार ये गुण मुझमें शुद्ध हो जाएँगे [122] और शुद्ध के रूप में अधिक व्यापक रूप से जाने जाएँगे।"

"शाबाश, शाबाश, सारिपुत्त! एक भिक्षु को गुरु का आदर, सम्मान और उन पर निर्भर रहना चाहिए ताकि वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग करके लाभकारी (कुशल) का विकास कर सके। उसे धम्म, संघ, प्रशिक्षण, समाधि, जागरूकता और आतिथ्य सत्कार का आदर, सम्मान और उन पर निर्भर रहना चाहिए ताकि वह हानिकारक (अकुशल) का त्याग करके लाभकारी (कुशल) का विकास कर सके।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, भगवान (बुद्ध) ने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ मैं अब विस्तार से समझ गया हूँ।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जो भिक्षु गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं रखता, वह धम्म (मार्ग) के प्रति श्रद्धा रख सके। जो भिक्षु (1) गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं रखता (2) वह धम्म के प्रति भी श्रद्धा नहीं रखता।"

"हे भंते, यह असंभव है कि कोई भिक्षु, जिसमें गुरु और धम्म के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, संघ के प्रति श्रद्धा रख सके। जो भिक्षु गुरु और धम्म के प्रति श्रद्धा नहीं रखता (3), उसमें संघ के प्रति भी श्रद्धा नहीं होती।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जिस भिक्षु में गुरु, धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा हो। जिस भिक्षु में गुरु, धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा का अभाव हो (4), उसमें प्रशिक्षण के प्रति भी श्रद्धा का अभाव होता है।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जिस भिक्षु में गुरु, धर्म, संघ और प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा हो। जिस भिक्षु में गुरु, धर्म, संघ और प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा का अभाव हो (5), उसमें समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के प्रति भी श्रद्धा का अभाव हो।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जिस भिक्षु में गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें सजगता के प्रति श्रद्धा हो। जिस भिक्षु में गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) [123] (6) के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें सजगता के प्रति श्रद्धा का भी अभाव हो।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जिस भिक्षु में गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और जागरूकता के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा हो। जिस भिक्षु में गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और आवश्यकता (7) के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें आतिथ्य सत्कार के प्रति भी श्रद्धा का अभाव हो।"

"हे भंते, यह असंभव है कि गुरु के प्रति श्रद्धा रखने वाला भिक्षु धम्म के प्रति श्रद्धा न रखे। गुरु के प्रति श्रद्धा रखने वाला भिक्षु (2) धम्म के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"हे भंते, यह असंभव है कि गुरु और धम्म के प्रति श्रद्धा रखने वाला भिक्षु संघ के प्रति श्रद्धा न रखे। गुरु और धम्म के प्रति श्रद्धा रखने वाला भिक्षु (3) संघ के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"हे भंते, यह असंभव है कि जो भिक्षु गुरु, धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा रखता हो, वह प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा न रखे। जो भिक्षु गुरु, धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा रखता है (4), वह प्रशिक्षण के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"हे भंते, यह असंभव है कि कोई भिक्षु (भिक्षु) जो गुरु, धम्म, संघ और प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा रखता हो, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा न रखे। जो भिक्षु गुरु, धम्म, संघ और प्रशिक्षण (5) के प्रति श्रद्धा रखता है, वह समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"यह असंभव है, भंते, [124] कि एक भिक्षु जो गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) के प्रति श्रद्धा रखता है, वह सजगता के प्रति श्रद्धा का अभाव रख सकता है। वह भिक्षु जो गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) (6) के प्रति श्रद्धा रखता है, वह सजगता के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"हे भंते, यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और जागरूकता के प्रति श्रद्धा रखता हो, आतिथ्य सत्कार के प्रति श्रद्धा न रखे। जो भिक्षु गुरु, धम्म, संघ, प्रशिक्षण, समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) और जागरूकता (7) के प्रति श्रद्धा रखता है, वह आतिथ्य सत्कार के प्रति भी श्रद्धा रखता है।"

"हे भंते, इसी तरह से मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।"

"शाबाश, शाबाश, सारिपुत्त! यह अच्छा है कि आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझ लिया है। वास्तव में, सारिपुत्त, यह असंभव है कि जिस भिक्षु में गुरु के प्रति श्रद्धा का अभाव हो, उसमें धम्म के प्रति श्रद्धा हो। ... [बुद्ध यहाँ सारिपुत्त द्वारा दिए गए संपूर्ण स्पष्टीकरण को दोहराते हैं।] [125] ... जिस भिक्षु में गुरु, धम्म और संघ के प्रति श्रद्धा होती है, प्रशिक्षण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और जागरूकता के प्रति भी श्रद्धा होती है, उसमें आतिथ्य सत्कार के प्रति भी श्रद्धा होती है।"

"सारिपुत्त, मैंने संक्षेप में जो कथन कहा है, उसका अर्थ विस्तार से इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।"

---

71 समझ का विकास [1595] (भावना)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास के प्रति सजग नहीं होता, भले ही वह यह कामना करे: 'अप्रासंग से मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति से दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका क्या कारण है? क्योंकि उसमें विकास का अभाव है। किस चीज़ का विकास नहीं? (1) ध्यान के चार आधार (सती ध्यान), (2) चार सही प्रयास, (3) मानसिक शक्ति के चार आधार (इद्धि), (4) पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ, (5) पाँच शक्तियाँ, (6) ज्ञान के सात कारक, और (7) आर्य अष्टांगिक मार्ग।

"मान लीजिए कि एक मुर्गी के पास आठ, दस या बारह अंडे थे जिन्हें उसने ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं था। [126] भले ही वह यह कामना करे: 'काश मेरे चूजे अपने पंजों या चोंच की नोक से अंडों के छिलके को छेदकर सुरक्षित रूप से बाहर आ जाएं!' फिर भी चूजे ऐसा करने में असमर्थ हैं। इसका क्या कारण है? क्योंकि मुर्गी ने अपने अंडों को ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं था।

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु विकास के प्रति सजग नहीं होता, तो भले ही वह यह कामना करे: 'अप्रासंगिता से मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति से दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें विकास का अभाव है। किस चीज़ का विकास नहीं? ध्यान (सती) के चार सिद्धांतों का... आर्य अष्टांगिक मार्ग का।"

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास के लिए तल्लीन होता है, भले ही वह यह कामना न करे: 'मेरा मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका विकास होता है। किसका विकास? (1) सती ध्यान के चार आधारों का, (2) चार सही प्रयासों का, (3) मानसिक शक्ति के चार आधारों का, (4) पांच आध्यात्मिक शक्तियों का, (5) पांच शक्तियों का, (6) ज्ञान के सात कारकों का, और (7) आर्य अष्टांगिक मार्ग का।

मान लीजिए एक मुर्गी के पास आठ, दस या बारह अंडे हैं जिन्हें उसने ठीक से ढककर, सेते हुए और उनकी देखभाल की है। भले ही वह यह कामना न करे: 'काश मेरे चूजे अपने पंजों या चोंच से अंडों के छिलके तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर आ जाएं!' फिर भी चूजे ऐसा करने में सक्षम हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि मुर्गी ने अपने अंडों को ठीक से ढककर, सेते हुए और उनकी देखभाल की है।

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु विकास के लिए तल्लीन होता है, भले ही वह यह कामना न करे: [127] 'अप्रासंगिता से मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति से दोषों से मुक्त हो जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका विकास होता है। किसका विकास? ध्यान (सती) के चार सिद्धांतों का... आर्य अष्टांगिक मार्ग का।"

भिक्षुओं, जब कोई बढ़ई या बढ़ई का प्रशिक्षु अपनी कुल्हाड़ी के हैंडल पर अपनी उंगलियों और अंगूठे के निशान देखता है, तो उसे यह नहीं पता होता कि 'मैंने आज, कल और पहले कुल्हाड़ी का इतना हिस्सा घिस दिया है'; परन्तु जब वह घिस जाता है, तो उसे पता चल जाता है कि वह घिस गया है। ठीक इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु साधना में लीन होता है, तो भले ही उसे यह न पता हो कि 'मैंने आज, कल और पहले अपने दोषों को इतना घिस दिया है', परन्तु जब वे घिस जाते हैं, तो उसे पता चल जाता है कि वे घिस गए हैं।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक समुद्री पट्टी है जो रस्सियों से बंधी हुई है और छह महीने तक पानी में रहने के कारण घिस गई है। इसे शीत ऋतु में सूखी ज़मीन पर खींचा जाता है और हवा और धूप से इसकी रस्सियाँ और भी खराब हो जाती हैं। बारिश के बादल से भीगने पर, रस्सियाँ जल्दी ही कमजोर होकर सड़ जाती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु विकास के लिए तल्लीन होता है, तो उसकी बेड़ियाँ जल्दी ही टूटकर सड़ जाती हैं।" [128]

---

72 अग्नि उपमा (अग्गिकखंडोपमा सं. अग्नि-खंड-उपमा)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे। तभी राजमार्ग पर चलते हुए एक स्थान पर भगवान (बुद्ध) ने एक विशाल अग्नि-भड़कती हुई देखी। वे राजमार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बने आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप उस विशाल अग्नि-भड़कती हुई देखी है?"

"हां, भंते।"

(1) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? उस जलते, धधकते और दीप्तिमान विशाल अग्नि-कोश को आलिंगन देना और उसके पास बैठना या लेटना, या कोमल हाथों और पैरों वाली किसी कन्या को आलिंगन देना - चाहे वह क्षत्रिय, ब्राह्मण या गृहस्थ वंश की हो - और उसके पास बैठना या लेटना, इनमें से कौन बेहतर है?"

"हे भंते, कोमल हाथों और पैरों वाली किसी कन्या को गले लगाना कहीं बेहतर होगा— चाहे वह क्षत्रिय, ब्राह्मण या गृहस्थ वंश की हो— और उसके पास बैठना या लेटना। उस धधकती, दमकती और चमकती आग के विशाल पिंड को गले लगाना और उसके पास बैठना या लेटना कष्टदायक होगा।"

"मैं आप भिक्षुओं को सूचित करता हूँ, मैं आपसे घोषणा करता हूँ कि एक अनैतिक, बुरे चरित्र वाले व्यक्ति के लिए—जो अशुद्ध और संदिग्ध आचरण वाला हो, अपने कार्यों में गुप्त हो, तपस्वी होने का दावा करते हुए भी तपस्वी न हो, ब्रह्मचारी होने का दावा करते हुए भी ब्रह्मचारी न हो—उस जलती हुई, धधकती और दीप्तिमान अग्नि के विशाल पिंड को आलिंगन में लेना और उसके पास बैठना या लेटना कहीं बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस कारण [129] उसे मृत्यु या जानलेवा पीड़ा सहनी पड़ सकती है, परन्तु इस कारण वह शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। परन्तु जब वह अनैतिक व्यक्ति... कोमल हाथों और पैरों वाली किसी कन्या को—चाहे वह क्षत्रिय, ब्राह्मण या गृहस्थ वंश की हो—आलिंगन में लेता है और उसके पास बैठता या लेटता है, तो इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा होती है। शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह वह दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(2) "भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? बलवान पुरुष के लिए अपने दोनों पैरों के तलवों पर घोड़े के बालों से बनी एक मजबूत रस्सी लपेटकर उसे इतना कसना बेहतर है कि वह बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, स्नायु और हड्डी को चीरते हुए मज्जा तक पहुँच जाए, या धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों की पूजा स्वीकार करना बेहतर है?"

"हे भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों की श्रद्धा स्वीकार करना कहीं बेहतर होगा। यह कष्टदायी होगा यदि कोई बलवान व्यक्ति घोड़े के बालों से बनी मोटी रस्सी को दोनों पिंडलियों पर लपेटकर इतना कस दे कि वह बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसों और हड्डियों को चीरते हुए मज्जा तक पहुँच जाए।"

"मैं आपको सूचित करता हूँ, भिक्षुओं, मैं आपसे कहता हूँ कि एक अनैतिक व्यक्ति के लिए... यह कहीं बेहतर होगा कि एक बलवान व्यक्ति अपने दोनों पैरों के तलवों पर घोड़े के बालों की एक मजबूत रस्सी लपेटकर उसे इतना कस दे कि वह उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसों और हड्डियों को चीरते हुए मज्जा तक पहुँच जाए। इसका कारण क्या है? क्योंकि इससे उसे मृत्यु या असहनीय पीड़ा हो सकती है, परन्तु इसी कारण वह शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। [130] परन्तु जब वह अनैतिक व्यक्ति... धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों की पूजा करता है, तो इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट होता है। शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।"

(3) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? बलवान पुरुष द्वारा तेल से सने तेज भाले से सीने पर प्रहार करना बेहतर है या धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों से आदरपूर्वक अभिवादन स्वीकार करना बेहतर है?"

"हे भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों से आदरपूर्वक अभिवादन स्वीकार करना कहीं बेहतर होगा। बलवान व्यक्ति द्वारा तेल से सने तेज भाले से सीने पर प्रहार करना कष्टदायी होगा।"

भिक्षुओं, मैं आपको सूचित करता हूँ, मैं आपसे कहता हूँ कि एक अनैतिक पुरुष के लिए यह कहीं बेहतर होगा कि एक बलवान पुरुष तेल से सने तेज भाले से उसकी छाती पर प्रहार करे। इसका कारण क्या है? क्योंकि इससे उसकी मृत्यु हो सकती है या उसे असहनीय पीड़ा हो सकती है, परन्तु इस कारण वह शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। परन्तु जब वह अनैतिक पुरुष धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों से आदरपूर्वक अभिवादन ग्रहण करता है, तो इससे उसे हानि होती है और वह दीर्घकाल तक कष्ट भोगता है। शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(4) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? बलवान पुरुष के लिए जलती हुई, धधकती और चमकती हुई गर्म लोहे की चादर को अपने शरीर पर लपेटना बेहतर है, या धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा आस्थापूर्वक दिए गए वस्त्र का उपयोग करना बेहतर है?"

"हे भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए वस्त्र का प्रयोग करना कहीं बेहतर होगा। किसी बलवान व्यक्ति के लिए जलती, धधकती और दमकती हुई लोहे की चादर को शरीर पर लपेटना कष्टदायक होगा।"

भिक्षुओं, मैं आपको सूचित करता हूँ, मैं आपसे कहता हूँ कि एक अनैतिक व्यक्ति के लिए यह कहीं बेहतर होगा कि एक बलवान व्यक्ति उसके शरीर पर जलती हुई, धधकती हुई और चमकती हुई लोहे की चादर लपेट ले। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस कारण उसे मृत्यु या असहनीय पीड़ा हो सकती है, परन्तु इस कारण वह मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। परन्तु जब वह अनैतिक व्यक्ति धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा विश्वास के कारण दिए गए वस्त्र का उपयोग करता है, तो इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट होता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(5) "भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? इनमें से कौन सा बेहतर है, कि एक बलवान व्यक्ति किसी के मुंह को जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म लोहे के कील से जबरदस्ती खोल दे और उसमें जलती, धधकती और चमकती हुई गर्म तांबे की गेंद डाल दे, जो उसके उप्स, मुंह, जीभ, गला और पेट को जला दे, 1596 [132] और नीचे से उसकी आंतों को साथ लेकर बाहर निकल जाए, या फिर कोई धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा आस्थापूर्वक दिए गए भिक्षाभोजन का सेवन करे?"

"हे भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए भिक्षाभोजन का सेवन करना कहीं बेहतर होगा। यह कष्टदायी होगा यदि कोई बलवान व्यक्ति जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म लोहे के नुकीले टुकड़े से किसी का मुंह जबरदस्ती खोल दे और उसमें गर्म तांबे का गोला डाल दे... जो होंठ जला दे... और नीचे से आंतें साथ लेकर बाहर निकल जाए।"

भिक्षुओं, मैं आपको सूचित करता हूँ, मैं आपसे कहता हूँ कि एक अनैतिक पुरुष के लिए... यह कहीं बेहतर होगा कि एक बलवान व्यक्ति उसके मुँह को जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म लोहे के नुकीले टुकड़े से खोल दे और उसमें गर्म तांबे का गोला डाल दे... जो उसके होंठों को जला दे... और नीचे से उसकी आँतों को साथ लेकर बाहर निकल जाए। इसका कारण क्या है? क्योंकि इससे उसे मृत्यु या असहनीय पीड़ा हो सकती है, परन्तु इस कारण वह मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। परन्तु जब वह अनैतिक पुरुष... धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए भिक्षाभोजन का सेवन करता है, तो इससे उसे लंबे समय तक हानि और कष्ट होता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(6) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? बेहतर क्या है, किसी बलवान व्यक्ति द्वारा किसी को सिर या कंधों से पकड़कर [133] किसी जलते, धधकते और चमकते हुए लोहे के पलंग या कुर्सी पर जबरदस्ती बिठाना या लेटाना—या धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा आस्थापूर्वक दिए गए पलंग और कुर्सी का उपयोग करना?"

"भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए पलंग और कुर्सी का उपयोग करना कहीं बेहतर होगा। यह कष्टदायी होगा यदि कोई बलवान व्यक्ति किसी को सिर या कंधों से पकड़कर जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म लोहे के पलंग या कुर्सी पर बैठने या लेटने के लिए मजबूर करे।"

भिक्षुओं, मैं आपको सूचित करता हूँ, मैं आपसे कहता हूँ कि एक अनैतिक व्यक्ति के लिए यह कहीं बेहतर होगा कि कोई बलवान व्यक्ति उसे सिर या कंधों से पकड़कर जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म लोहे के पलंग या कुर्सी पर जबरदस्ती बिठा दे या लिटा दे। इसका कारण क्या है? क्योंकि इससे उसकी मृत्यु हो सकती है या उसे असहनीय पीड़ा हो सकती है, परन्तु इस कारण वह शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म नहीं लेगा। परन्तु जब वह अनैतिक व्यक्ति... धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा विश्वासपूर्वक दिए गए पलंग और कुर्सी का उपयोग करता है, तो इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा होती है। शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(7) "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? इनमें से कौन सा बेहतर है, कि एक बलवान व्यक्ति किसी को पकड़कर उल्टा कर दे और उसे जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म तांबे के कड़ाहे में फेंक दे, और जब वह झाग के भंवर में उबल रहा हो, तो कभी ऊपर उठे, कभी नीचे डूबे और कभी बह जाए, या फिर धनी क्षत्रियों, [134] ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा आस्थापूर्वक दिए गए आवास का उपयोग करना?"

"भंते, धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा आस्थापूर्वक दिए गए आवास में रहना कहीं बेहतर होगा। यह कष्टदायी होगा यदि कोई बलवान व्यक्ति किसी को पकड़कर उल्टा कर दे और जलते-बुझते गर्म तांबे के कड़ाहे में फेंक दे, जिससे वह झाग के भंवर में उबलता रहे, कभी ऊपर उठे, कभी नीचे डूबे और कभी बह जाए।"

"मैं आप भिक्षुओं को सूचित करता हूँ, मैं आपसे घोषणा करता हूँ कि एक अनैतिक, बुरे चरित्र वाले व्यक्ति के लिए—जो अशुद्ध और संदिग्ध आचरण वाला हो, अपने कार्यों में गुप्त हो, तपस्वी होने का दावा करते हुए भी तपस्वी न हो, ब्रह्मचारी होने का दावा करते हुए भी ब्रह्मचारी न हो, जो भीतर से सड़ा हुआ, भ्रष्ट और पतित हो—यह कहीं बेहतर होगा कि एक बलवान व्यक्ति उसे पकड़कर उल्टा कर दे और उसे जलते, धधकते और चमकते हुए गर्म तांबे के कड़ाहे में फेंक दे—ताकि वह वहाँ झाग के भंवर में उबलता रहे, कभी ऊपर उठे, कभी नीचे जाए और कभी बह जाए: इसका क्या कारण है? क्योंकि इस कारण उसे मृत्यु या जानलेवा पीड़ा सहनी पड़ सकती है, परन्तु इस कारण वह शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म न ले। परन्तु जब वह अनैतिक व्यक्ति... धनी क्षत्रियों, ब्राह्मणों या गृहस्थों द्वारा विश्वासपूर्वक दिए गए आवास का उपयोग करता है, इससे उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा सहनी पड़ती है। शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में होता है।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'जब हम वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन की व्यवस्था करते हैं, तो ये सेवाएँ जो [दूसरों द्वारा] हमारे लिए प्रदान की जाती हैं, उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होंगी, और हमारा यह [भिक्षुत्व में प्रवेश] व्यर्थ नहीं, बल्कि फलदायी और उपजाऊ होगा।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। हे भिक्षुओं, अपने स्वयं के हित को ध्यान में रखते हुए, सतर्कता के साथ लक्ष्य के लिए प्रयास करना पर्याप्त है; दूसरों के हित को ध्यान में रखते हुए, सतर्कता के साथ लक्ष्य के लिए प्रयास करना पर्याप्त है; दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए, सतर्कता के साथ लक्ष्य के लिए प्रयास करना पर्याप्त है।' 1597

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तभी साठ भिक्षुओं ने गर्म रक्त की उल्टी की। साठ भिक्षुओं ने साधना त्याग दी और यह कहते हुए परलोक में लौट गए: "यह करना कठिन है, भगवान (बुद्ध), यह करना बहुत कठिन है।"

और साठ भिक्षुओं के मन अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो गए। 1598

---

73 सुनेत्ता

(1) “भिक्षुओं, अतीत में सुनेत्ता नामक एक गुरु थे, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति राग रहित थे। 1597 गुरु सुनेत्ता के सैकड़ों शिष्य थे, जिन्हें वे ब्रह्म जगत के साथ संगति का धर्म सिखाते थे। जब वे ऐसा धर्म सिखा रहे थे, तो जिन लोगों ने उन पर विश्वास नहीं किया, वे शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते थे; परन्तु जिन्होंने उन पर विश्वास किया, वे अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते थे।

"अतीत में, भिक्षुओं, (2) मुगपक्खा नाम के एक गुरु थे... (3) अरनेमी नाम के एक गुरु थे... (4) कुद्दला नाम के एक गुरु थे... (5) हत्थिपाला नाम के एक गुरु थे... (6) ज्योतिपाला नाम के एक गुरु थे... (7) अरक नाम के एक गुरु थे, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति राग रहित थे। गुरु अरक के सैकड़ों शिष्य थे, जिन्हें उन्होंने ब्रह्म जगत के साथ संगति का धर्म सिखाया। जब वे [136] ऐसा धर्म सिखा रहे थे, तो जिन लोगों ने उन पर विश्वास नहीं किया, वे शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते थे; परन्तु जिन्होंने उन पर विश्वास किया, वे अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते थे।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? ये सात गुरु आध्यात्मिक संप्रदायों के संस्थापक थे, वे ऐसे पुरुष थे जो सांसारिक सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे और उनके सैकड़ों शिष्य थे। यदि कोई घृणा के भाव से उनका और उनके शिष्यों के समुदाय का अपमान और निंदा करता, तो क्या वह बहुत बड़ा पाप नहीं करता?"

"हां, भंते।"

"यदि कोई घृणा के भाव से इन छह गुरुओं और उनके शिष्यों के समुदायों का अपमान और निंदा करे, तो वह बहुत पुण्य कमाएगा। परन्तु यदि कोई घृणा के भाव से किसी एक सिद्ध पुरुष का अपमान और निंदा करे, तो वह और भी अधिक पुण्य कमाएगा। इसका कारण क्या है? मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, परदेसियों के विरुद्ध वैसा कोई अपराध नहीं जैसा अपने साथी भिक्षुओं के विरुद्ध। 1600 अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम अपने साथी भिक्षुओं के प्रति घृणा उत्पन्न नहीं होने देंगे।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

74 अराका

भिक्षुओं, अतीत में अरका नामक एक शिक्षक थे, जो एक आध्यात्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, जो इंद्रिय सुखों के प्रति वासना (राग) से रहित थे। शिक्षक अरका के सैकड़ों शिष्य थे, जिन्हें उन्होंने इस प्रकार का धर्म सिखाया: 'ब्राह्मणों, मनुष्य का जीवन अल्प, सीमित और क्षणभंगुर है; इसमें बहुत दुख और पीड़ा है। इसे बुद्धिमानी से समझना चाहिए। [137] लाभकारी (कुशल) कर्म करना चाहिए और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से नहीं बच सकता।

(1) “जैसे घास की पत्ती के सिरे पर ओस की एक बूंद सूर्योदय के समय तुरंत गायब हो जाती है और ज्यादा देर तक नहीं टिकती, वैसे ही, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन ओस की एक बूंद के समान है। यह सीमित और क्षणभंगुर है; इसमें बहुत दुख और पीड़ा है। इसे बुद्धिमानी से समझना चाहिए। लाभकारी (कुशल) कर्म करना चाहिए और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता।”

(2) “जैसे, जब बारिश की मोटी बूँदें बरसती हैं, तो पानी का बुलबुला जल्दी ही गायब हो जाता है और ज़्यादा देर तक नहीं टिकता, वैसे ही, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन पानी के बुलबुले के समान है। यह सीमित है... क्योंकि जो जन्म लेता है, वह मृत्यु से बच नहीं सकता।”

(3) “जैसे पानी पर छड़ी से खींची गई रेखा शीघ्र ही लुप्त हो जाती है और लंबे समय तक नहीं टिकती, वैसे ही, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन पानी पर छड़ी से खींची गई रेखा के समान है। यह सीमित है... क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से नहीं बच सकता।”

(4) “जिस प्रकार कोई नदी पहाड़ से नीचे बहती हुई, लंबी दूरी तक तीव्र धारा के साथ बहती है, अपने साथ बहुत सारा कचरा बहाकर ले जाती है, वह एक पल, एक क्षण, एक सेकंड के लिए भी स्थिर नहीं रहती, बल्कि तेजी से बहती है, घूमती है और आगे बढ़ती रहती है,

ठीक उसी प्रकार, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन एक पहाड़ी धारा के समान है। यह सीमित है... क्योंकि जो जन्म लेता है वह मृत्यु से बच नहीं सकता।”

(5) “जिस प्रकार एक बलवान व्यक्ति अपनी जीभ की नोक पर थूक का एक गोला बना सकता है और उसे बिना किसी कठिनाई के थूक सकता है, उसी प्रकार, हे ब्राह्मणों, मनुष्य का जीवन थूक के गोले के समान है। यह सीमित है... क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता।”

(6) "जैसे [138] दिन भर गर्म किए गए लोहे के तवे में डाला गया मांस का टुकड़ा जल्दी ही गायब हो जाता है और लंबे समय तक नहीं टिकता, वैसे ही, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन भी इस मांस के टुकड़े के समान है। यह सीमित है... क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से नहीं बच सकता।"

(7) “जैसे वध के लिए ले जाई जा रही गाय जब वधशाला ले जाई जाती है, तो वह जिस भी पैर को उठाती है, वह वध के करीब, मृत्यु के करीब पहुँच जाती है, ठीक वैसे ही, हे ब्राह्मणों, मनुष्य जीवन वध के लिए अभिशप्त गाय के समान है। यह सीमित और क्षणभंगुर है; इसमें बहुत दुख और पीड़ा है। इसे बुद्धिमानी से समझना चाहिए। लाभकारी (कुशल) कर्म करना चाहिए और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता।”

लेकिन उस समय, भिक्षुओं, मनुष्य का जीवनकाल 60,000 वर्ष था, और कन्याओं का विवाह 500 वर्ष की आयु में होता था। उस समय, लोगों को केवल छह कष्ट होते थे: सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल-मूत्र और मूत्र। यद्यपि लोगों का जीवनकाल इतना लंबा था और वे इतने लंबे समय तक जीवित रहते थे, और यद्यपि उनके कष्ट इतने कम थे, फिर भी गुरु अरक ने अपने शिष्यों को यह शिक्षा दी: हे ब्राह्मणों, मनुष्य का जीवन अल्प है... क्योंकि जो जन्म लेता है वह मृत्यु से बच नहीं सकता।

लेकिन आजकल, भिक्षुओं, यह कहना उचित ही है: 'मनुष्यों का जीवन अल्प, सीमित और क्षणभंगुर है; इसमें बहुत दुख और पीड़ा है। इसे बुद्धिमानी से समझना चाहिए। लाभकारी (कुशल) कर्म करना चाहिए और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाला कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता।' आज जो व्यक्ति दीर्घ जीवन जीता है, वह सौ वर्ष या उससे कुछ अधिक समय तक जीवित रहता है। और सौ वर्ष जीने पर वह केवल तीन सौ ऋतुओं के लिए जीवित रहता है: सौ शीत ऋतुएँ, सौ ग्रीष्म ऋतुएँ और सौ वर्षा ऋतुएँ। तीन सौ ऋतुओं के लिए जीवित रहने पर वह केवल बारह सौ महीनों के लिए जीवित रहता है: चार सौ शीत ऋतुएँ, चार सौ ग्रीष्म ऋतुएँ और चार सौ वर्षा ऋतुएँ। बारह सौ महीनों के लिए जीवित रहने पर वह केवल चौबीस सौ पखवाड़ों के लिए जीवित रहता है; आठ सौ शीत ऋतुएँ, आठ सौ ग्रीष्म ऋतुएँ और आठ सौ वर्षा ऋतुएँ।

"और चौबीस सौ पखवाड़ों तक जीवित रहने पर, व्यक्ति केवल 36,000 रातें जीता है: 12,000 शीत ऋतु की रातें, 12,000 ग्रीष्म ऋतु की रातें और 12,000 वर्षा ऋतु की रातें। 1601 और 36,000 रातों तक जीवित रहने पर, व्यक्ति केवल 72,000 भोजन करता है: 24,000 शीत ऋतु में, 24,000 ग्रीष्म ऋतु में और 24,000 वर्षा ऋतु में। इसमें माँ का दूध पीना और भोजन में बाधाएँ आना भी शामिल है। भोजन में बाधाएँ ये हैं: क्रोधित व्यक्ति भोजन नहीं करता, पीड़ा में व्यक्ति भोजन नहीं करता, बीमार व्यक्ति भोजन नहीं करता, उपोसथा का पालन करने वाला व्यक्ति भोजन नहीं करता, और भोजन न मिलने पर व्यक्ति भोजन नहीं करता।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, सौ वर्ष के जीवनकाल वाले मनुष्य के लिए, मैंने उसके जीवनकाल, उसके जीवनकाल की सीमा, ऋतुओं, वर्षों, महीनों और पखवाड़ों की संख्या; उसकी रातों, दिनों और भोजन की संख्या, तथा भोजन में आने वाली बाधाओं की गणना की है। भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए करुणा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं। भिक्षुओं, ध्यान करो, आलसी मत बनो। बाद में पछताने का कोई कारण न हो। यही हमारा तुम्हें उपदेश है।" [140]

VIII. अनुशासन अनुभाग (विनयवग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

75. अनुशासन में विशेषज्ञ (1) (विनयधारा1)

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, एक भिक्षु उस अनुशासन में निपुण होता है। वे सात गुण कौन से हैं?"

(1) वह जानता है कि अपराध क्या है। (2) वह जानता है कि अपराध क्या नहीं है। (3) वह जानता है कि हल्का अपराध क्या है। (4) वह जानता है कि गंभीर अपराध क्या है। (5) वह गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। (6) वह वह है जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करता है, जो सुखद निवास स्थान हैं। (7) दोषों के नाश के साथ, उसने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं ही मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।

"इन सात गुणों से युक्त भिक्षु अपने अनुशासन में निपुण होता है।"

---

76 अनुशासन में विशेषज्ञ (2) (विनयधारा2)

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, एक भिक्षु उस अनुशासन में निपुण होता है। वे सात गुण कौन से हैं?"

"(1) वह जानता है कि अपराध क्या है। (2) वह जानता है कि अपराध क्या नहीं है। (3) वह जानता है कि हल्का अपराध क्या है। (4) वह जानता है कि गंभीर अपराध क्या है। (5) दोनों पतिमोक्खों का उसे विस्तार से, अच्छी तरह से विश्लेषण किया गया है, अच्छी तरह से महारत हासिल की गई है, नियमों और उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है। 1604 (6) वह [141] वह है जो इच्छा से . . . चारों ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करता है।"

(7) दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं अनुभव किया है... मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति... वह उसमें निवास करता है।

"इन सात गुणों से युक्त भिक्षु ही इस विद्या में निपुण होता है।"

---

77 अनुशासन में विशेषज्ञ (3) (विनयधारा3)

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, एक भिक्षु उस अनुशासन में निपुण होता है। वे सात गुण कौन से हैं?"

(1) वह जानता है कि अपराध क्या है। (2) वह जानता है कि अपराध क्या नहीं है। (3) वह जानता है कि हल्का अपराध क्या है। (4) वह जानता है कि गंभीर अपराध क्या है। (5) वह अनुशासन में दृढ़, अविचल है। (6) वह इच्छा से प्राप्त करने वाला है... चारों ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ)... (7) दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से स्वयं को अनुभव किया है... मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति... वह उसमें निवास करता है।

"इन सात गुणों से युक्त, एक भिक्षु (साधु) उस विद्या में निपुण होता है।"

---

78 अनुशासन में विशेषज्ञ (4) (विनयधारा4)

"भिक्षुओं में सात गुण होते हैं, एक भिक्षु उस अनुशासन में निपुण होता है। वे सात गुण कौन से हैं?"

"(1) वह जानता है कि अपराध क्या है। (2) वह जानता है कि अपराध क्या नहीं है। (3) वह जानता है कि हल्का अपराध क्या है। (4) वह जानता है कि गंभीर अपराध क्या है। (5) वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म ... [जैसा कि 6:2 §4 में है] ... वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है। (6) दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध है और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है ... [जैसा कि 6:2 §5 में है] ... वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं। (7) दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से स्वयं को ... मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति ... का अनुभव कराया है। यह।

"इन सात गुणों से युक्त भिक्षु अनुशासन में निपुण होता है।" [142]

---

79 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (1) (विनयधरसोभना1)

"भिक्षुओं (सात गुणों से युक्त भिक्षु) अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं। वे कौन से सात गुण हैं? . . . [जैसा कि 7:75 में है।] . . . इन सात गुणों से युक्त होकर अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं।" 1605

---

80 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (2) (विनयधरसोभना2)

"भिक्षुओं (सात गुणों से युक्त भिक्षु) अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं। वे सात गुण कौन से हैं? . . . [जैसा कि 7:76 में है।] . . . इन सात गुणों से युक्त होकर अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं।"

---

81 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (3) (विनयधरसोभना3)

"भिक्षुओं (सात गुणों से युक्त भिक्षुओं) में, अनुशासन का विशेषज्ञ तेजस्वी होता है। वे सात गुण कौन से हैं? . . . [जैसा कि 7:77 में है।] . . . [143] इन सात गुणों से युक्त, अनुशासन का विशेषज्ञ तेजस्वी होता है।"

---

82 अनुशासन में निपुण व्यक्ति तेजस्वी होता है (4) (विनयधरसोभना4)

"भिक्षुओं (सात गुणों से युक्त भिक्षु) अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं। वे सात गुण कौन से हैं? . . . [जैसा कि 7:78 में है।] . . . इन सात गुणों से युक्त होकर अनुशासन में निपुण होकर तेजस्वी होते हैं।"

---

83 शिक्षक का अनुशासन (सत्थुसाना)

तब पूज्य उपली भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म (मार्ग) सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"उपली, जिन बातों को तुम इस प्रकार जान लो: 'ये बातें केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर नहीं ले जातीं,' तो तुम्हें निश्चित रूप से यह पहचान लेना चाहिए: 'यह धम्म नहीं है; यह अनुशासन नहीं है; यह गुरु का उपदेश नहीं है।' परन्तु जिन बातों को तुम इस प्रकार जान लो: 'ये बातें केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं,' तो तुम्हें निश्चित रूप से यह पहचान लेना चाहिए: 'यही धम्म है; यही अनुशासन है; यही गुरु का उपदेश है।" [144]

---

84 निपटान (अधिकरणसमथ)

"भिक्षुओं, अनुशासन संबंधी मुद्दों के निपटारे और किसी भी अनुशासन संबंधी समस्या के समाधान के लिए ये सात सिद्धांत हैं। वे कौन से सात सिद्धांत हैं?"

(1) उपस्थिति के आधार पर निष्कासन लागू किया जा सकता है; (2) स्मृति के आधार पर निष्कासन लागू किया जा सकता है; (3) अतीत के पागलपन के कारण निष्कासन लागू किया जा सकता है; (4) अपराध की स्वीकृति लागू की जा सकती है; (5) बहुमत की राय लागू की जा सकती है; (6) गंभीर दुराचार का आरोप लागू किया जा सकता है; और (7) घास से ढकना लागू किया जा सकता है।

"भिक्षुओं, अनुशासन संबंधी मुद्दों के निपटारे के लिए, और उत्पन्न होने वाले किसी भी अनुशासन संबंधी मुद्दे को सुलझाने और शांत करने के लिए ये सात सिद्धांत हैं।"

नौवीं. एक तपस्वी धारा 1606 (समानवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

85 एक भिक्षु (भिक्खु)

भिक्षुओं, सात चीजों को तोड़ने से ही भिक्षु बनते हैं। 1609 वे सात चीजें क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण टूटता है; संदेह टूटता है; व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ टूटती है; काम (राग) टूटता है; घृणा टूटती है; मोह (मोह) टूटता है; अहंकार टूटता है। इन्हीं सात चीजों को तोड़ने से भिक्षु बनते हैं।

---

86 एक तपस्वी (समना)

"भिक्षुओं (साधुओं), सात चीजों को शांत करने से ही व्यक्ति तपस्वी बनता है। ..."

---

87 एक ब्राह्मण (ब्राह्मण)

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं), सात चीजों का त्याग करने से ही ब्राह्मण की उपाधि प्राप्त होती है। ..."

---

88 एक विद्वान (सोत्तिया)

"भिक्षुओं, सात चीजों के प्रवाह के कारण ही व्यक्ति विद्वान होता है।"

---

89 धुला हुआ (न्हाटाका)

"भिक्षुओं (मठवासियों), सात चीजों के धुल जाने के कारण ही व्यक्ति शुद्ध होता है" [145]

---

90 वैदिक ज्ञान का स्वामी (वेदगु संस्कृत: वेदग्य)

"भिक्षुओं (सम्मोहनवासियों), सात चीजों का ज्ञान होने के कारण ही कोई वैदिक ज्ञान का स्वामी होता है..."

---

91 एक महान व्यक्ति (आरिया)

"भिक्षुओं (सात व्यक्तियों) के शत्रुओं का वध करने से ही व्यक्ति श्रेष्ठ बनता है।" 1611

---

92 एक अरहंत

भिक्षुओं, सात चीजों की दूरी के कारण ही अरहंत बनते हैं। 16.2 वे सात चीजें कौन सी हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण दूर है; संदेह दूर है; व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ दूर है; कामवासना (राग) दूर है; घृणा दूर है; मोह (मोह) दूर है; अहंकार दूर है। इन्हीं सात चीजों की दूरी के कारण ही अरहंत बनते हैं।

---

93 बुरा चरित्र (1) (असद्धम्म)

भिक्षुओं, ये सात ऐसे हैं जिनका चरित्र अच्छा नहीं है। कौन से सात? एक में आस्था नहीं है, एक में नैतिक लज्जा का अभाव है, एक में नैतिक भय नहीं है, एक अल्पज्ञानी है, एक आलसी है, एक भ्रमित मन वाला है और एक नासमझ है। ये सात ही अच्छे चरित्र वाले नहीं हैं।

---

94 अच्छा चरित्र (2) (सद्धम्म)

भिक्षुओं, ये सात लोग अच्छे चरित्र वाले हैं। वे कौन से सात हैं? एक आस्थावान, एक नैतिक लज्जा से युक्त, एक नैतिक भय से युक्त, एक विद्वान, एक ऊर्जावान, एक सजग और एक बुद्धिमान। ये सात लोग अच्छे चरित्र वाले हैं।

X. उपहारों के योग्य (अहुनेय्यावग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

95 अनित्यता को दृष्टि में देखना (ध्यान में अनिच्छ/अनित्य) 1613

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं। वे सात कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति अनित्यता को आँख से देखते हुए (अनुपसी में) ध्यान लगाता है, अनित्यता को अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और उसे दिव्य ज्ञान से समझता है। दोषों के नाश के साथ, उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में मन की निष्कलंक मुक्ति, दिव्य ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, [146] और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यह दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य प्रथम प्रकार का व्यक्ति है, जो संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।"

(2) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी में) दृष्टि धारण करता है, अनित्यता का अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और दिव्य ज्ञान से उसका गहन अध्ययन करता है। उसके लिए दोषों का नाश और जीवन का अंत एक साथ होता है। यह दूसरे प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है।"

(3) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को आँख से देखते हुए (अनुपसी में) ध्यान लगाता है, अनित्यता को अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर मन केंद्रित करता है, और उसे ज्ञान से समझता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यह तीसरे प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है। ..."

(4) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को आँख से देखते हुए (अनुपसी में) ध्यान लगाता है, अनित्यता को अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से उस पर मन केंद्रित करता है, और उसे ज्ञान से समझता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यह वरदानों के योग्य चौथे प्रकार का व्यक्ति है। ..."

(5) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी में) दृष्टि धारण करता है, अनित्यता का अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और दिव्य ज्ञान से उसका गहन अध्ययन करता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश से वह बिना किसी प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यह पाँचवाँ प्रकार का व्यक्ति है जो वरदानों के योग्य है।"

(6) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी में) दृष्टि धारण करता है, अनित्यता का अनुभव करता है, निरंतर, निरंतर और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और उसे दिव्य ज्ञान से समझता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश से वह परिश्रम द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है। यह छठे प्रकार का वरदानों के योग्य व्यक्ति है। ..."

(7) "फिर, कोई व्यक्ति अनित्यता को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी में) दृष्टि धारण करता है, अनित्यता का अनुभव करता है, निरंतर, सतत और निर्बाध रूप से मन से उस पर ध्यान केंद्रित करता है, और दिव्य ज्ञान से उसका गहन अध्ययन करता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह धारा के विपरीत दिशा में प्रवाहित होकर अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर होता है। यह सातवें प्रकार का वरदानों के योग्य व्यक्ति है। ..."

"हे भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, और संसार के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र हैं।"

---

96 — 622 दुख आदि को देखना (उस पर ध्यान करना)।

"भिक्षुओं, ये सात प्रकार के व्यक्ति हैं जो दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, जो संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र हैं। वे सात कौन से हैं?"

"यहाँ, भिक्षुओं, कोई व्यक्ति ध्यान में बैठकर पीड़ा को आँख में देखता है... ध्यान में बैठकर अनात्म को आँख में देखता है... ध्यान में बैठकर विनाश को आँख में देखता है... ध्यान में बैठकर लुप्त होते हुए आँख में देखता है..."

...आँखों के बीच से ओझल होते हुए ध्यान में लीन होकर देखता रहता है...

...आँखों में विश्राम को निहारते हुए (ध्यान/अनुपसी में) लीन रहता है ...आँखों में त्याग को निहारते हुए (ध्यान/अनुपसी में) लीन रहता है ...

यहाँ कोई व्यक्ति ध्यान (अनुपसी) में बैठकर कान, नाक, जीभ, शरीर, मन, रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) में मौजूद अनित्यता को देखता है।

"... नेत्र-चेतना में... कान-चेतना में... नाक-चेतना में... जीभ-चेतना में... शरीर-चेतना में... मन-चेतना में..."

"...आँखों से संपर्क... कानों से संपर्क...नाक से संपर्क

संपर्क... जीभ का संपर्क... शरीर का संपर्क... मन का संपर्क

"...आँखों के संपर्क से उत्पन्न वेदना (संवेदना) में... उत्पन्न वेदना (संवेदना) में"

कान के संपर्क से उत्पन्न वेदना... नाक के संपर्क से उत्पन्न वेदना... जीभ के संपर्क से उत्पन्न वेदना... शरीर के संपर्क से उत्पन्न वेदना... मन के संपर्क से उत्पन्न वेदना...

"... रूपों की धारणा (सन्ना/सन्या) में... ध्वनियों की धारणा (सन्ना/संग्या)... गंधों की धारणा (सन्ना/सन्या)... स्वादों की धारणा (सन्ना/सन्या)... स्पर्श वस्तुओं की धारणा (सन्ना/सन्या)... मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा (सन्ना/सन्या)। .

"...रूपों के प्रति जागरूकता...ध्वनियों के प्रति जागरूकता...गंधों के प्रति जागरूकता...स्वादों के प्रति जागरूकता...स्पर्शी वस्तुओं के प्रति जागरूकता...मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता..."

"रूपों के प्रति लालसा (तन्हा/तृष्णा) में... ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा (तन्हा/तृष्णा)... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा..."

"...रूपों के बारे में चिंतन...ध्वनियों के बारे में चिंतन...गंधों के बारे में चिंतन...स्वादों के बारे में चिंतन...स्पर्शी वस्तुओं के बारे में चिंतन...मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में चिंतन..."

"...रूपों की परीक्षा में...ध्वनियों की परीक्षा में...गंधों की परीक्षा में...स्वादों की परीक्षा में...स्पर्श वस्तुओं की परीक्षा में...मानसिक घटनाओं (धम्म) की परीक्षा में..."

"...यहाँ कोई व्यक्ति ध्यान में लीन होकर अनित्यता (अनित्यता) का अवलोकन करता है, जो कि वेदना, संज्ञा, और अपने स्वभाव/व्यवहार के समूह में व्याप्त है... चेतना के समूह में व्याप्त है... दुख का चिंतन करता है; अनात्म का अवलोकन करता है... विनाश का अवलोकन करता है... लुप्त होने का अवलोकन करता है... समाप्ति का चिंतन करता है... त्याग का अवलोकन करता है।"

XI. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला [1614]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

623

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सात चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे सात चीजें क्या हैं? सती ध्यान, घटनाओं के विवेक, वीरता, पीति, शांति, समाधि और उपेक्षा। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन सात चीजों का विकास करना आवश्यक है।

624

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सात चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे सात चीजें कौन सी हैं? अनित्यता (अनिच्छा/अनित्यता) की अनुभूति, अनात्म की अनुभूति, अनाकर्षकता की अनुभूति, खतरे की अनुभूति, त्याग की अनुभूति, वैराग्य की अनुभूति और समाप्ति की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन सात चीजों का विकास करना आवश्यक है।

625

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सात चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे सात चीजें क्या हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन की अरुचि की अनुभूति, समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में पीड़ा की अनुभूति और पीड़ा में अनात्म की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन सात चीजों का विकास करना आवश्यक है।

626-652

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके निवारण के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन सात चीजों का विकास करना है।

653-1132

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा (मोह) के लिए... क्रोध (क्रोध) के लिए... शत्रुता के लिए... निंदा के लिए... उद्दंडता के लिए... ईर्ष्या के लिए... कंजूसी के लिए... छल के लिए... धूर्तता के लिए... हठ के लिए... उग्रता के लिए... अहंकार के लिए... अभिमान के लिए... नशे के लिए... आलस्य के लिए... इन सात गुणों का विकास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

द बुक ऑफ द सेवन्स पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 8.आठ की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का आठवाँ खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN7)   अगला (AN9) >>>>

अंतर्वस्तु

1अठकनिपात की पुस्तक (अठकनिपात)

1.1पहले पचास

1.1.1I. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटावाग्गो संस. मैत्री-वर्गा)

1.1.1.1(1) प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)

1.1.1.22 दिव्य ज्ञान (पन्ना सं. प्रत्यक्ष-ज्ञान)

1.1.1.33 अप्रसन्नता (एल) 1624 (अप्पिया1 सं. अप्रिया)

1.1.1.44 अप्रसन्न (2) (अप्पिया2 सं. अप्रिया)

1.1.1.5(5) सांसारिक धम्म (लोकधम्म 1 बिना लोक-धर्म)

1.1.1.66 सांसारिक धम्म (2) (लोकधम्म बिना लोक-धर्म)

1.1.1.77 देवदत्त का दुख (देवदत्तविपत्ति)

1.1.1.88 असफल होने पर उत्तर (उत्तरविपत्ति)

1.1.1.99 नंदा

1.1.1.1010 कचरा (करंडा)

1.1.2II. महावग्गो (महान अध्याय)

1.1.2.111 वेरांजा

1.1.2.212 सिहा (संस्कृत: सिंह/शेर)

1.1.2.313. शुद्ध नस्ल (अस्सजानिया)

1.1.2.414 जंगली घोड़े (अस्साखालुंका)

1.1.2.515 दाग (माला)

1.1.2.616 मिशन (दुतेय्या)

1.1.2.717 बंधन (1) (बंधन1)

1.1.2.818 बंधन (2) (बंधन2)

1.1.2.919 पहारदा (संस्कृत: प्रहलाद)

1.1.2.1020 उपोसथा 167एस

1.1.3तृतीय. गृहस्थ (गहपतिवग्गो सं. गृहपति-वर्ग)

1.1.3.121 उगा (1)

1.1.3.222 उगा (2)

1.1.3.323 हत्थका (1)

1.1.3.424 हत्थका (2)

1.1.3.525 महानामा

1.1.3.626 जीवक

1.1.3.727 शक्तियाँ (1) (बाला1)

1.1.3.828 शक्तियाँ (2) (बाला2)

1.1.3.929 अनुचित क्षण (अक्खाना)

1.1.3.1030 अनुरुद्ध (अनुरुद्धमहावितक्का सं. अनुरुद्ध-महा-वितर्क)

1.1.4चतुर्थ. दान अनुभाग (दानवग्गो संस. दान-वर्ग)

1.1.4.131 दान (दान) (1) (दाना1)

1.1.4.232 दान (दान) (2) 1699 (दाना2)

1.1.4.333 आधार (दानवत्थु)

1.1.4.434 मैदान (खेत्ता सं. क्षेत्र)

1.1.4.535 दान देने के कारण पुनर्जन्म (दानुपपत्ति)

1.1.4.636 गतिविधि (पुन्नकिरियावत्थु सं. पुण्य-क्रिया-वस्तु)

1.1.4.737 अच्छे व्यक्ति के दान (सप्पूरिसादना संस्कृत: सत-पुरुष-दान)

1.1.4.838 अच्छा व्यक्ति 1707 (सप्पुरिशा संसं. सतपुरुष)

1.1.4.939 धाराएँ (अभिसंदा)

1.1.4.1040. बुरे चरित्र का परिणाम (दुच्चरितविपाक)

1.1.5वी. उपोसाथा

1.1.5.141 संक्षेप में उपवास

1.1.5.242 उपवास विस्तार से (वित्थतुपोसथ सं. विस्तार उपोसथ)

1.1.5.343 विशाखा (1)

1.1.5.444 वसेत्था

1.1.5.545 बोज्जा

1.1.5.646 अनुरुद्ध

1.1.5.747 विशाखा (2)

1.1.5.848 नकुला

1.1.5.949 वर्तमान विश्व (1) 1723

1.1.5.1050 वर्तमान विश्व (2)

1.2दूसरा पचास

1.2.1I. गौतमी अनुभाग (बुद्ध की पालक माता और मौसी)

1.2.1.151 गौतमी [1727]

1.2.1.252 (2) उपदेश

1.2.1.353 संक्षिप्त [799]

1.2.1.454 (4) दिघजानु

1.2.1.555 उज्जया

1.2.1.656 संकट [1754] (भया)

1.2.1.757 भेंट के योग्य (1) (अहुनेय्या1)

1.2.1.858 भेंट के योग्य (2) (अहुनेय्या2)

1.2.1.959 आठ व्यक्ति (1) (पुग्गला1 सं. पुरुष-युगल)

1.2.1.1060 आठ व्यक्ति (2) (पुग्गला1 सं. पुरुष-युगल)

1.2.2II. भूकंप (भूमिकला)

1.2.2.161 इच्छा (इच्छा)

1.2.2.262 सक्षम (आलम)

1.2.2.363 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

1.2.2.464 गया (गयासिसा)

1.2.2.565 अभिभयताना (विजय प्राप्त करना)

1.2.2.666 मुक्ति (विमोक्ख बिना विमोक्ष)

1.2.2.767 तुच्छ घोषणाएँ (अन्यावोहारा सं. अनार्य-विहार)

1.2.2.868 महान घोषणाएँ (अरियावोहारा सं. आर्य-विहार)

1.2.2.969 विधानसभाएं 1783 (पेरिसा बिना परिषद)

1.2.2.1070 भूकंप [1785] (भूमिकला)

1.2.3III. जोड़े (यामाकावाग्गो)

1.2.3.171 आस्था (1) (सद्ध 1 बिना श्रद्धा)

1.2.3.272 आस्था (2) (सद्ध 2 बिना श्रद्धा)

1.2.3.373 मृत्यु पर ध्यान (l) 1793 (मरणस्मृति संस्कृत: मरणस्मृति)

1.2.3.474 मृत्यु पर ध्यान (2) 1794 (मरणस्मृति)

1.2.3.575 उपलब्धियाँ(1) (सम्पदा1)

1.2.3.676 उपलब्धियाँ (2) (सम्पदा2)

1.2.3.777 इच्छा (इच्छा)

1.2.3.878 सक्षम (आलम)

1.2.3.979 पतन 1796 (परिहाना सं. परी-हानी)

1.2.3.10आलस्य और ऊर्जा जागृत करने के 80 कारण (कुसितारम्भवत्थु)

1.2.4IV. ध्यान (सतिवाग्गो संस्कृत स्मृतिवाग्गो)

1.2.4.181 सती ध्यान (ध्यान/सती) [1797]

1.2.4.282 पुन्निया

1.2.4.383 जड़युक्त (मुलका)

1.2.4.484 एक चोर (कोरा)

1.2.4.585 तपस्वी (समान सं. श्रमण)

1.2.4.686 प्रसिद्धि (यासा, यश के बिना)

1.2.4.787 अलम्सबोल पलटना (पट्टनिकुज्जना सं. पात्रा...)

1.2.4.888 आत्मविश्वास की कमी (अप्पसादपवेदनिया)

1.2.4.989 सुलह (पतिसारनिया)

1.2.4.1090 व्यवहार (सम्मवत्तना)

1.2.5वी. तपस्वी 1816 (समन्ना)

1.2.6VI. लस्ट (राग) एंड सो फोर्थ रिपीटिशन सीरीज [1820] (रागपेय्यलम)

1.2.6.1117

1.2.6.2118

1.2.6.3119

1.2.6.4120 - 146

1.2.6.5147 - 626

अठकनिपात की पुस्तक (अठकनिपात)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटावाग्गो संस. मैत्री-वर्गा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

(1) प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)

मैंने ऐसा सुना है कि एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जब प्रेम और करुणा द्वारा मन की मुक्ति का अनुसरण, विकास और पोषण किया जाता है, उसे आधार और साधन बनाया जाता है, उसका क्रियान्वयन, सुदृढ़ीकरण और विधिवत पालन किया जाता है, तो आठ लाभों की अपेक्षा की जा सकती है। वे आठ लाभ कौन से हैं?"

(1) अच्छी नींद आती है; (2) खुशी से जागते हैं; (3) बुरे सपने नहीं आते; (4) मनुष्यो को भाते हैं; (5) आत्माओं को भाते हैं; (6) देवता रक्षा करते हैं; (7) आग, जहर और हथियार उन्हें चोट नहीं पहुंचाते; और (8) यदि आगे प्रवेश नहीं करते, तो ब्रह्मलोक में चले जाते हैं।

"जब, भिक्षुओं, प्रेम और करुणा द्वारा मन की मुक्ति का अनुसरण, विकास और पोषण किया जाता है, उसे एक माध्यम और आधार बनाया जाता है, उसे क्रियान्वित किया जाता है, सुदृढ़ किया जाता है और विधिवत रूप से संपन्न किया जाता है, तो इन आठ लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

जो सदा सचेत (ध्यान/सती) रहता है और

असीम प्रेम-कृपा (मेट्टा) विकसित करता है, उसके लिए

बंधन शिथिल हो जाते हैं क्योंकि वह

अपने संचय का विनाश देखता है। [151]

यदि कोई व्यक्ति घृणा रहित मन से

केवल एक प्राणी के प्रति प्रेम उत्पन्न करे, तो

वह सद्‌गुणी बन जाता है।

सभी प्राणियों के प्रति करुणामय मन रखने वाला, 1616

श्रेष्ठ व्यक्ति प्रचुर पुण्य अर्जित करता है।

वे राजसी ऋषि जिन्होंने पृथ्वी पर

असंख्य प्राणियों सहित विजय प्राप्त की

, उन्होंने विभिन्न यज्ञों का आयोजन करते हुए यात्रा की:

अश्वमेध यज्ञ, मानव यज्ञ,

सम्मपासा, वजपेय्य, निरग्गला।

ये सब एक सुविकसित प्रेममय मन के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं ,

ठीक वैसे ही जैसे तारों का समूह 1619

चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकता।

जो न तो हत्या करता है और न ही हत्या का आदेश देता है,

जो न तो विजय प्राप्त करता है और न ही विजय का आदेश देता है,

जो सभी प्राणियों के प्रति प्रेम (मेट्टा) रखता है, वह

किसी के प्रति शत्रुता नहीं रखता।

---

2 दिव्य ज्ञान (पन्ना सं. प्रत्यक्ष-ज्ञान)

"भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति के लिए ये आठ कारण और परिस्थितियाँ हैं, जब यह प्राप्त नहीं हुआ हो, और इसके प्राप्त होने के बाद विकास द्वारा इसकी वृद्धि, परिपक्वता और पूर्णता के लिए। वे आठ क्या हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुरु या किसी ऐसे साथी भिक्षु पर निर्भर रहता है जो गुरु के पद पर है, जिसके प्रति उसने नैतिक लज्जा और नैतिक भय, स्नेह और श्रद्धा की तीव्र भावना स्थापित की है। यह पहला कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाता है जब यह प्राप्त नहीं हुआ होता है और इसके प्राप्त होने के बाद विकास द्वारा इसकी वृद्धि, परिपक्वता और पूर्णता की ओर ले जाता है। [152]

(2) "चूंकि वह गुरु या किसी ऐसे साथी भिक्षु पर निर्भर रहता है जो गुरु के पद पर है, जिसके प्रति उसके मन में नैतिक लज्जा, भय, स्नेह और आदर की तीव्र भावना है, इसलिए वह समय-समय पर उनके पास जाकर पूछता है: 'यह कैसे है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे आदरणीय भिक्षु उसे वह सब कुछ प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते हैं और अनेक उलझनों को दूर करते हैं। यह दूसरा कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने की ओर ले जाता है। ..."

(3) "उस धम्म को सुनकर वह दो प्रकार के वैराग्य का सहारा लेता है: शरीर का वैराग्य और मन का वैराग्य। यही तीसरा कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत ज्ञान की प्राप्ति की ओर ले जाता है।"

(4) वह गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। यह चौथा कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाता है। ...

(5) "उसने बहुत कुछ सीखा है, सीखी हुई बातों को याद रखता है और उन्हें संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों— उसने ऐसी शिक्षाओं को बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। यह पाँचवाँ कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने की ओर ले जाती है। [153]

(6) "उसने हानिकारक (अकुशल) गुणों का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता। यह छठा कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संन्यासी पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने की ओर ले जाती है: . . ."

(7) संघ के बीच में वह निरर्थक और व्यर्थ की बातों में संलग्न नहीं होता। या तो वह स्वयं धम्म पर बोलता है, या किसी और से ऐसा करने का अनुरोध करता है, या वह मौन धारण करता है। 1622 यह सातवाँ कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाता है। . . .

(8) "वह आसक्ति के अधीन पाँचों स्कंधों में उत्पन्न और विलीन होते हुए (अनुपसी में) ध्यानपूर्वक देखता है: 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी अनुभूति (संज्ञा) है... ऐसे व्यक्ति के लक्षण (संस्कार) हैं... ऐसी चेतना है, ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है।' यह आठवाँ कारण और शर्त है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाता है जब वह प्राप्त नहीं हुआ हो और प्राप्ति के बाद विकास द्वारा उसकी वृद्धि, परिपक्वता और पूर्णता की ओर ले जाता है।"

(1) उनके साथी भिक्षु उनका इस प्रकार आदर करते हैं: 'यह पूजनीय भिक्षु गुरु या किसी ऐसे साथी भिक्षु पर निर्भर रहते हैं जो गुरु के पद पर है, जिनके प्रति उन्होंने नैतिक लज्जा, नैतिक भय, स्नेह और आदर की तीव्र भावना स्थापित की है। यह पूजनीय भिक्षु निश्चित रूप से जानते और देखते हैं।' यह गुण स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है। 1623

(2) "चूंकि यह पूज्य व्यक्ति गुरु या किसी साथी भिक्षु पर, जो गुरु के पद पर है, निर्भर रहते हैं... [154] ... वे पूज्य व्यक्ति ... अनेक पेचीदा बिंदुओं के बारे में उनकी उलझन दूर करते हैं। यह पूज्य व्यक्ति निश्चित रूप से जानता और देखता है। यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है।"

(3) "हे पूज्यवर, उस धम्म को सुनकर, व्यक्ति दो प्रकार के वैराग्य का सहारा लेता है: शरीर से वैराग्य और मन से वैराग्य। हे पूज्यवर, यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सद्भाव और एकता की ओर ले जाता है।"

(4) "यह पूजनीय व्यक्ति गुणी है; वह पतिमोक्खा द्वारा संयमित रहता है... वह उनमें अभ्यास करता है। यह पूजनीय व्यक्ति निश्चित रूप से जानता और देखता है। यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सद्भाव और एकता की ओर ले जाता है।"

(5) "इस आदरणीय ने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से पारंगत हैं। यह आदरणीय निश्चित रूप से जानते और देखते हैं। यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है।"

(6) "इस पूज्यवर ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है। यह पूज्यवर निश्चित रूप से जानता और देखता है।" यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सद्भाव और एकता की ओर ले जाता है। [155]

(7) "संघ के बीच में, यह पूज्य व्यक्ति निरर्थक और व्यर्थ की बातों में संलग्न नहीं होता... या वह मौन धारण करता है। यह पूज्य व्यक्ति निश्चित रूप से जानता और देखता है।" यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है।

(8) "यह पूजनीय व्यक्ति आसक्ति के अधीन पाँचों स्कंधों में उत्पन्न और विलीन होते हुए (ध्यान/अनुपसी में) निवास करते हैं। ... यह पूजनीय व्यक्ति निश्चित रूप से जानते और देखते हैं।" यह गुण भी स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है।

"भिक्षुओं, ये वे आठ कारण और परिस्थितियाँ हैं जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के लिए मूलभूत पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं, जब यह प्राप्त नहीं हुआ हो, और इसके प्राप्त होने के बाद विकास द्वारा इसकी वृद्धि, परिपक्वता और पूर्णता की ओर ले जाती हैं।"

3 अप्रसन्नता (एल) 1624 (अप्पिया1 सं. अप्रिया)

"आठ गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है, और न तो वे उसका सम्मान करते हैं और न ही उसे महत्व देते हैं। वे आठ गुण क्या हैं? यहाँ, (1) भिक्षु अप्रिय लोगों की प्रशंसा करता है और (2) सुखद लोगों की आलोचना करता है; (3) वह लाभ और (4) मान-सम्मान का लालची होता है; (5) वह नैतिक रूप से निर्लज्ज और (6) नैतिक रूप से लापरवाह होता है; (7) उसकी बुरी इच्छाएँ होती हैं और (8) वह गलत मत रखता है। इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है, और न तो वे उसका सम्मान करते हैं और न ही उसे महत्व देते हैं।"

"भिक्षुओं में आठ गुण होते हैं, जिससे वे अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर करते हैं। वे आठ गुण क्या हैं? [156] यहाँ, (1) भिक्षु अप्रिय लोगों की प्रशंसा नहीं करते और (2) प्रसन्न लोगों की आलोचना नहीं करते; (3) वे लाभ या (4) मान-सम्मान की इच्छा नहीं रखते; (5) उनमें नैतिक लज्जा और (6) नैतिक भय की भावना होती है; (7) उनकी इच्छाएँ कम होती हैं और (8) वे सही दृष्टिकोण रखते हैं। इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर करते हैं।"

---

4 अप्रसन्न (2) (अप्पिया2 सं. अप्रिया)

"भिक्षुओं में आठ गुण होते हैं, और वे अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होते हैं, तथा न तो उनका आदर करते हैं और न ही उन्हें सम्मान देते हैं। वे आठ गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु (1) लाभ, (2) मान-सम्मान और (3) प्रतिष्ठा की इच्छा रखता है; (4) उसे उचित समय का ज्ञान नहीं होता और (5) वह संयम नहीं जानता; (6) वह अपवित्र होता है; (7) वह बहुत बोलता है; और (8) वह अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है। इन आठ गुणों के कारण, भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को अप्रिय और नापसंद होता है, तथा न तो उनका आदर करता है और न ही उन्हें सम्मान देता है।"

"भिक्षुओं में आठ गुण होते हैं, जिससे वे अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगते हैं और उनका आदर करते हैं। वे आठ गुण क्या हैं? यहाँ, भिक्षु (1) लाभ, (2) मान-सम्मान और (3) प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं रखता; (4) वह उचित समय का ज्ञाता होता है और (5) संयमी होता है; (6) वह पवित्र होता है; (7) वह कम बोलता है; और (8) वह अपने साथी भिक्षुओं का अपमान या अपशब्द नहीं कहता। इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सम्माननीय लगता है और उनका आदर करते हैं।"

---

(5) सांसारिक धम्म (लोकधम्म 1 बिना लोक-धर्म)

भिक्षुओं, ये आठ सांसारिक धर्म संसार के चारों ओर घूमते हैं, और संसार इन आठ सांसारिक स्थितियों के चारों ओर घूमता है। वे आठ कौन से हैं? [157] लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुख। ये आठ सांसारिक स्थितियाँ संसार के चारों ओर घूमती हैं, और संसार इन आठ सांसारिक स्थितियों के चारों ओर घूमता है।

लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि,

निंदा और प्रशंसा, सुख और दुख:

ये सभी परिस्थितियाँ जो लोगों के जीवन में आती हैं

, अस्थाई, क्षणिक और परिवर्तनशील होती हैं।

एक बुद्धिमान और सजग व्यक्ति इन बातों को जानता है

और समझता है कि ये परिवर्तनशील हैं।

वांछनीय परिस्थितियाँ उसके मन को आकर्षित नहीं करतीं

और अवांछनीय परिस्थितियाँ उसे विचलित नहीं करतीं।

उन्होंने आकर्षण और विकर्षण को दूर कर दिया है;

वे अब मौजूद नहीं हैं।

धूल रहित, दुःख रहित अवस्था को जानकर,

वे सही ढंग से समझते हैं और अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) से परे चले गए हैं।

---

6 सांसारिक धम्म (2) (लोकधम्म बिना लोक-धर्म)

भिक्षुओं, ये आठ सांसारिक परिस्थितियाँ संसार के चारों ओर घूमती हैं, और संसार इन आठ सांसारिक परिस्थितियों के चारों ओर घूमता है। कौन सी आठ परिस्थितियाँ? लाभ और हानि, यश और यश, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुःख। ये आठ सांसारिक परिस्थितियाँ संसार के चारों ओर घूमती हैं, और संसार इन आठ सांसारिक परिस्थितियों के चारों ओर घूमता है।

भिक्षुओं, एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुख का सामना करता है। एक शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य भी लाभ और हानि, बदनामी और प्रसिद्धि, निंदा और प्रशंसा, और सुख और दुख का सामना करता है। इस संबंध में एक शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य और एक अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति के बीच क्या अंतर, क्या असमानता, क्या फर्क है?

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

“तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।” “जी, भंते,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) भिक्षुओं, जब कोई अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति लाभ प्राप्त करता है, तो वह इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'यह लाभ जो मुझे प्राप्त हुआ है, क्षणभंगुर, कष्टदायक और परिवर्तनशील है।' वह इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता। (2) जब उसे हानि होती है... (3) ... यश... (4) ... बदनामी... (5) ... निंदा... (6) ... प्रशंसा... (7) ... सुख... (8) ... दुःख, तो वह इस प्रकार चिंतन नहीं करता: 'यह दुःख जो मुझे प्राप्त हुआ है, क्षणभंगुर, कष्टदायक और परिवर्तनशील है।' वह इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता।

लाभ और हानि, दोनों ही उसके मन में व्याप्त हैं। यश और बदनामी, दोनों ही उसके मन में व्याप्त हैं। निंदा और प्रशंसा, दोनों ही उसके मन में व्याप्त हैं। सुख और दुःख, दोनों ही उसके मन में व्याप्त हैं। वह लाभ की ओर आकर्षित होता है और हानि से विमुख होता है। वह यश की ओर आकर्षित होता है और बदनामी से विमुख होता है। वह प्रशंसा की ओर आकर्षित होता है और निंदा से विमुख होता है। वह सुख की ओर आकर्षित होता है और दुःख से विमुख होता है। इस प्रकार आकर्षण और विकर्षण में उलझा रहने के कारण वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त नहीं हो पाता; मैं कहता हूँ, वह कष्टों से मुक्त नहीं हो पाता।

लेकिन, भिक्षुओं, (1) जब एक शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य को लाभ प्राप्त होता है, तो वह इस प्रकार विचार करता है: 'यह लाभ जो मुझे प्राप्त हुआ है, वह क्षणभंगुर, कष्टदायी और परिवर्तनशील है।' इस प्रकार वह इसे यथार्थ रूप में समझता है। (2) जब उसे हानि प्राप्त होती है... (3) ... प्रसिद्धि... (4)

. . . [159] बदनामी . . . (5) . . . दोष . . . (6) . . . प्रशंसा . . . (7) 7 . . आनंद . . (8) . . . दर्द, वह इस प्रकार विचार करता है: "यह दर्द जिसका मैंने सामना किया है, क्षणभंगुर, पीड़ादायक और परिवर्तनशील है।" इस प्रकार वह इसे वास्तव में समझता है।

लाभ और हानि दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते। प्रसिद्धि और बदनामी दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते। निंदा और प्रशंसा दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते। सुख और दुख दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते। वह लाभ की ओर आकर्षित नहीं होता और हानि से विमुख नहीं होता। प्रसिद्धि और बदनामी दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते। प्रशंसा और निंदा दोनों ही उसके मन को परेशान नहीं करते।

वह सुख के प्रति आकर्षित नहीं होता और न ही दुःख से विमुख होता है। इस प्रकार आकर्षण और विकर्षण को त्यागकर वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

"भिक्षुओं, यही एक ज्ञानी, एक श्रेष्ठ शिष्य और एक अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के बीच का अंतर है।"

[ये आयतें 8:5 की आयतों के समान हैं।] [160]

---

7 देवदत्त का दुख (देवदत्तविपत्ति)

एक बार देवदत्त के चले जाने के कुछ समय बाद भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। 1626 में भगवान (बुद्ध) ने वहाँ भिक्षुओं को देवदत्त के संदर्भ में संबोधित किया:

भिक्षुओं, समय-समय पर भिक्षु के लिए अपनी कमियों का मूल्यांकन करना अच्छा होता है। दूसरों की कमियों का मूल्यांकन करना भी अच्छा होता है। अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन करना भी अच्छा होता है। दूसरों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करना भी अच्छा होता है। क्योंकि देवदत्त आठ बुरी स्थितियों से ग्रस्त और ग्रस्त था, इसलिए वह दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य है, और वह युगों तक वहीं रहेगा, उद्धार का कोई अवसर नहीं। वे आठ बुरी स्थितियाँ क्या हैं?

(1) क्योंकि वह लाभ के लालच में डूबा हुआ था, देवदत्त दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य है, और वह वहाँ युगों तक अप्रतिष्ठित रहेगा। (2) क्योंकि वह हानि के लालच में डूबा हुआ था... (3) ... यश के लालच में... (4) ... बदनामी के लालच में... (5) ... सम्मान के लालच में... (6) ... सम्मानहीनता के लालच में... (7) ... बुरी इच्छाओं के लालच में... (8) ... बुरी मित्रता के लालच में, देवदत्त दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य है, और वह वहाँ युगों तक अप्रतिष्ठित रहेगा। क्योंकि वह इन आठ बुरी स्थितियों के लालच में डूबा हुआ था, देवदत्त दुख के लोक में, नरक में जाने के लिए बाध्य है, और वह वहाँ युगों तक अप्रतिष्ठित रहेगा। युग, जिसे सुधारा नहीं जा सकता।

भिक्षु के लिए लाभ पर विजय प्राप्त करना अच्छा है, चाहे वह कभी भी उत्पन्न हो। उसके लिए हानि पर विजय प्राप्त करना अच्छा है, चाहे वह कभी भी उत्पन्न हो... प्रसिद्धि पर विजय प्राप्त करना... बदनामी पर विजय प्राप्त करना... सम्मान [161]... सम्मान की कमी पर विजय प्राप्त करना... बुरी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना... बुरी मित्रता पर विजय प्राप्त करना, चाहे वह कभी भी उत्पन्न हो।

...और भिक्षु को लाभ उत्पन्न होने पर उस पर विजय क्यों प्राप्त करनी चाहिए? उसे इप्स... यश... बदनामी... सम्मान... अपमान... बुरी इच्छाओं... बुरी मित्रता पर विजय क्यों प्राप्त करनी चाहिए? जो व्यक्ति लाभ पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता, उसमें उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और कष्टदायक दोष, लाभ पर विजय प्राप्त कर लेने वाले में नहीं होते। जो व्यक्ति हानि... यश... बदनामी... सम्मान... अपमान... बुरी इच्छाओं... बुरी मित्रता पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसमें उत्पन्न होने वाले वे कष्टदायी और कष्टदायी दोष नहीं होते। इसलिए भिक्षु को लाभ उत्पन्न होने पर उस पर विजय क्यों प्राप्त करनी चाहिए? उसे हानि... यश... बदनामी पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। ... सम्मान ... सम्मान का अभाव ... बुरी इच्छाएँ ... जब भी कोई बुरी दोस्ती उत्पन्न हो।

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'लाभ चाहे जब भी उत्पन्न हो, हम उस पर विजय प्राप्त करेंगे। हानि... यश... अपयश... मान... मानहानि... बुरी इच्छाएँ... बुरी मित्रता, चाहे जब भी उत्पन्न हो, हम उस पर विजय प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।' [162]

---

8 असफल होने पर उत्तर (उत्तरविपत्ति)

एक बार पूज्य उत्तरा सांखेय्या पर्वत पर स्थित धवजलिका में महिषा वस्तु में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य उत्तरा ने भिक्षुओं को संबोधित किया।

"मित्रों, भिक्षु के लिए समय-समय पर अपनी कमियों की समीक्षा करना अच्छा होता है। भिक्षु के लिए समय-समय पर दूसरों की कमियों की समीक्षा करना अच्छा होता है। भिक्षु के लिए समय-समय पर अपनी उपलब्धियों की समीक्षा करना अच्छा होता है। भिक्षु के लिए समय-समय पर दूसरों की उपलब्धियों की समीक्षा करना अच्छा होता है।"

उस समय महान देव राजा वेसवना किसी कार्य से उत्तर से दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। उन्होंने महिसावत्थु में, धवजलिका पर्वत पर स्थित सरिकेय्य पर्वत पर, पूज्य उत्तरा को भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हुए सुना: 'मित्रों, भिक्षु के लिए समय-समय पर अपनी कमियों, दूसरों की कमियों, अपनी उपलब्धियों और दूसरों की उपलब्धियों की समीक्षा करना अच्छा होता है।' फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, वैसे ही वेसवना संखेय्या पर्वत से लुप्त हो गए और तावतिंसा देवों के बीच पुनः प्रकट हुए।

वह देवों (देवदूतों/देवताओं) के शासक सक्का (इंद्र) के पास गए और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, आपको यह जानना चाहिए कि महिसावत्थु [163] में धवजलिका पर्वत पर स्थित पूज्य उत्तरा भिक्षुओं को इस प्रकार धम्म की शिक्षा देते रहे हैं: 'मित्रों, भिक्षु के लिए समय-समय पर अपनी कमियों... दूसरों की कमियों... अपनी उपलब्धियों... दूसरों की उपलब्धियों की समीक्षा करना अच्छा होता है।'"

फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींच लेता है, उसी प्रकार सक्का (इंद्र) तावतिंसा देवताओं के बीच से विलीन हो गए और महिसावत्थु में, सांखेय्या पर्वत पर स्थित धवजलिका में, पूज्य उत्तरा के समक्ष पुनः प्रकट हुए। वे पूज्य उत्तरा के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा:

"हे भंते, क्या यह सच है कि जैसा कहा जाता है, आप भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते रहे हैं: 'मित्रों, भिक्षु के लिए समय-समय पर अपनी कमियों... दूसरों की कमियों... अपनी उपलब्धियों... दूसरों की उपलब्धियों की समीक्षा करना अच्छा होता है'?"

"जी हां, देवों (देवदूतों/देवताओं) के स्वामी।"

"पर, भंते, क्या यह तुम्हारा स्वयं का विवेक था, या यह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन था?" . . .

"तो फिर, हे देवों (देवदूतों/देवताओं) के स्वामी, मैं आपको एक उपमा देता हूँ; उपमा के माध्यम से भी कुछ बुद्धिमान लोग कही गई बात का अर्थ समझ जाते हैं। मान लीजिए कि किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर अनाज का एक बड़ा ढेर है, और लोगों की एक बड़ी भीड़ डंडियों, टोकरियों, कमरबंदों [164] और अपने हाथों से अनाज ढोने के लिए जा रही है। यदि कोई उस बड़ी भीड़ के पास जाकर उनसे पूछे: 'आपको यह अनाज कहाँ से मिला?' तो वे क्या कहेंगे?"

"भंते, उन लोगों को कहना चाहिए: 'हमने इसे अनाज के उस विशाल ढेर से प्राप्त किया है।'"

"इसी प्रकार, हे देवों (देवदूतों/देवताओं) के स्वामी, जो कुछ भी अच्छा कहा जाता है, वह सब भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। मैं स्वयं और अन्य लोग भी अपने अच्छे वचन उन्हीं से प्राप्त करते हैं।" 1627

"यह आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है, भंते, आपने इसे कितनी खूबसूरती से व्यक्त किया है: 'जो कुछ भी अच्छा बोला जाता है, वह सब भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का वचन है। मैं स्वयं और अन्य लोग अपने अच्छे शब्द उनसे ही प्राप्त करते हैं।'

"एक बार, देवदत्त के चले जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) भंते उत्तरा, गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को देवदत्त के संदर्भ में संबोधित करते हुए कहा: 'भिक्षुओं, समय-समय पर भिक्षु के लिए अपनी कमियों की समीक्षा करना अच्छा है [यहाँ सक्का (इंद्र) बुद्ध के 8:7 के संपूर्ण प्रवचन का उद्धरण देते हैं, यहाँ तक:] [165-66] ... इसी प्रकार, भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।' 1628

"भंते उत्तरा, धम्म की यह व्याख्या चारों मानव समुदायों में कहीं भी प्रचारित नहीं हुई है: अर्थात् भिक्षुओं, भिक्षुणियों (साधुओं), पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों में। 1629 भंते, धम्म (मार्ग) की इस व्याख्या को सीखो, इस व्याख्या में पारंगत हो जाओ और इसे अपने मन में संजो कर रखो। धम्म की यह व्याख्या लाभकारी है; यह ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) के मूल सिद्धांतों से संबंधित है।"

---

9 नंदा

भिक्षुओं, (1) सही ढंग से बोलने वाला नंदा के बारे में कहेगा कि वह कुल का अनुयायी है, (2) वह बलवान है, (3) वह सुंदर है, और (4) वह राग के प्रति प्रबल प्रवृत्त है। 1630 अन्यथा नंदा पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन कैसे जी सकता था जब तक कि (5) वह इंद्रियों के द्वारों की रक्षा न करता, (6) भोजन में संयम न बरतता, (7) सचेतन न रहता, और (8) सती ध्यान और संपजन्नता न रखता?

भिक्षुओं, नंदा इस प्रकार इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं: [167] यदि उन्हें पूर्व दिशा की ओर देखना हो, तो वे ऐसा विषय पर पूर्ण विचार करने और उसे पूरी तरह समझने के बाद ही करते हैं, इस प्रकार: 'जब मैं पूर्व दिशा की ओर देखता हूँ, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ मुझ पर हावी नहीं होंगी।' यदि उन्हें पश्चिम की ओर... उत्तर की ओर... दक्षिण की ओर... ऊपर की ओर... नीचे की ओर... मध्यवर्ती दिशाओं का अवलोकन करने की आवश्यकता हो, तो वे ऐसा विषय पर पूर्ण विचार करने और उसे पूरी तरह समझने के बाद ही करते हैं, इस प्रकार: 'जब मैं मध्यवर्ती दिशाओं की ओर देखता हूँ, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ मुझ पर हावी नहीं होंगी।' इस प्रकार नंदा इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं।

"नंदा इस प्रकार भोजन में संयम बरतते हैं: यहाँ, ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए, नंदा न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करते हैं, बल्कि केवल अपने शरीर के भरण-पोषण, हानि से बचाव और ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) में सहायता के लिए भोजन करते हैं, यह सोचते हुए कि: 'इस प्रकार मैं पुरानी वेदना को समाप्त करूँगा और नई वेदना को जागृत नहीं होने दूँगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूँगा और शांति से निवास करूँगा।' इस प्रकार नंदा भोजन में संयम बरतते हैं।"

"नंदा इस प्रकार जागृति पर ध्यान केंद्रित करते हैं: [168] दिन के दौरान, इधर-उधर चलते और बैठते हुए, नंदा अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करते हैं। रात्रि के पहले पहर में, इधर-उधर चलते और बैठते हुए, वे अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करते हैं। रात्रि के मध्य पहर में, वे उठने का विचार मन में रखकर, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाते हैं, सती भाव से ध्यान लगाते हैं और पूर्णतः बोध करते हैं। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, इधर-उधर चलते और बैठते हुए, वे अपने मन को बाधक गुणों से शुद्ध करते हैं। इस प्रकार नंदा जागृति पर ध्यान केंद्रित करते हैं।"

"यह नंदा की सती (ध्यान) और संपजन्न की पूर्ण समझ है: नंदा वेदनाओं को उनके उत्पन्न होने, बने रहने और लुप्त होने के रूप में जानते हैं; वे संज्ञाओं को उनके उत्पन्न होने, बने रहने और लुप्त होने के रूप में जानते हैं; वे विचारों को उनके उत्पन्न होने, बने रहने और लुप्त होने के रूप में जानते हैं। 1631 यही नंदा की सती (ध्यान) और संपजन्न की पूर्ण समझ है।"

"भिक्षुओं, नंदा पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन कैसे जी सकते थे, जब तक कि वे अपनी इंद्रियों को वश में न रखते, खान-पान में संयम न बरतें, सती ध्यान में न रहें और सजगता तथा संपजन्न को प्राप्त न कर लें?"

---

10 कचरा (करंडा)

एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गर कमल तालाब के किनारे निवास कर रहे थे। उस समय भिक्षु एक भिक्षु को उसके अपराध के लिए फटकार रहे थे। फटकार सुनने पर उस भिक्षु ने टालमटोल भरा उत्तर दिया, चर्चा को एक अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ दिया और क्रोध, घृणा और आक्रोश प्रदर्शित किया। 1632 तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: [169] "भिक्षुओं, इस व्यक्ति को निकाल दो! भिक्षुओं, इस व्यक्ति को निकाल दो! 1633 इस व्यक्ति को निर्वासित कर देना चाहिए। दूसरे के पुत्र से तुम्हें क्यों परेशानी हो? 1634

"हे भिक्षुओं, जब तक भिक्षु उसका अपराध नहीं देखते, तब तक एक व्यक्ति का आचरण (1) आगे जाने और (2) लौटने का, (3) आगे देखने और (4) बगल में देखने का, (5) झुकने और (6) अपने अंगों को फैलाने का, और (7) अपने वस्त्र पहनने और (8) अपने बाहरी वस्त्र और कुंड को धारण करने का, अच्छे भिक्षुओं के समान होता है। 1635 परन्तु जब वे उसका अपराध देखते हैं, तो वे उसे तपस्वियों के बीच भ्रष्टाचार, तपस्वियों के बीच केवल भूसा और कूड़ा समझते हैं। तब वे उसे निष्कासित कर देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि वह अच्छे भिक्षुओं को भ्रष्ट न करे।"

मान लीजिए कि जब जौ का खेत उग रहा हो, तो कुछ रोगग्रस्त जौ दिखाई दे जो जौ के बीच में भूसी और कचरा मात्र हो। जब तक उसका सिरा नहीं निकलता, उसकी जड़ें अन्य फसलों, यानी अच्छे जौ की जड़ों जैसी ही होती हैं; उसका तना भी अन्य फसलों, यानी अच्छे जौ के तने जैसा ही होता है; उसके पत्ते भी अन्य फसलों, यानी अच्छे जौ के पत्तों जैसे ही होते हैं। लेकिन जब उसका सिरा निकल आता है, तो वे उसे रोगग्रस्त जौ, यानी जौ के बीच में भूसी और कचरा समझ लेते हैं। फिर वे उसे जड़ से उखाड़कर जौ के खेत से बाहर फेंक देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि वह अच्छे जौ को खराब न कर दे।

"इसी प्रकार, जब तक भिक्षुओं को उसका अपराध दिखाई नहीं देता, यहाँ एक व्यक्ति भी अच्छे भिक्षुओं की तरह ही आगे बढ़ता है और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र धारण करता है। परन्तु जब उन्हें उसका अपराध दिखाई देता है, तो वे उसे तपस्वियों के बीच एक भ्रष्ट तत्व, तपस्वियों के बीच केवल एक तुच्छ वस्तु और कूड़ा समझते हैं। तब वे उसे निष्कासित कर देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि वह अच्छे भिक्षुओं को भ्रष्ट न करे।"

मान लीजिए कि जब अनाज के एक बड़े ढेर को फटककर साफ किया जा रहा होता है, तो जो अनाज सख्त और गूदेदार होते हैं, वे एक तरफ जमा हो जाते हैं, और हवा खराब अनाज और भूसे को दूसरी तरफ उड़ा ले जाती है। तब मालिक झाड़ू लेकर उन्हें और दूर धकेल देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि अच्छे अनाज खराब न हों।

"इसी प्रकार, जब तक भिक्षुओं को उसका अपराध दिखाई नहीं देता, तब तक यहाँ एक व्यक्ति अन्य भले भिक्षुओं की तरह ही आगे बढ़ता है... और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र धारण करता है। परन्तु जब भिक्षुओं को उसका अपराध दिखाई देता है, तो वे उसे तपस्वियों के बीच भ्रष्टाचार, तपस्वियों के बीच तुच्छ और बेकार समझते हैं। तब वे उसे निष्कासित कर देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि वह भले भिक्षुओं को भ्रष्ट न करे।"

मान लीजिए किसी व्यक्ति को कुएँ के लिए नाली की आवश्यकता है। वह एक तेज कुल्हाड़ी लेकर जंगल में जाएगा। वह अपनी कुल्हाड़ी के ब्लेड से कई पेड़ों पर प्रहार करेगा। 1636 इस प्रकार प्रहार करने पर, मजबूत और गूदेदार पेड़ धीमी आवाज निकालेंगे, लेकिन जो पेड़ अंदर से सड़े हुए, भ्रष्ट और क्षीण हो चुके हैं, वे खोखली आवाज निकालेंगे। वह व्यक्ति इस पेड़ को जड़ से काट देगा, उसका ऊपरी भाग काट देगा, उसे अच्छी तरह से साफ करेगा और उसे कुएँ के लिए नाली के रूप में उपयोग करेगा।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब तक भिक्षु उसका अपराध नहीं देखते, तब तक यहाँ मौजूद एक व्यक्ति का आने-जाने का तरीका, आगे-पीछे देखने का तरीका, अपने अंगों को मोड़ने-सीधा करने का तरीका, अपने वस्त्र पहनने और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र धारण करने का तरीका, अच्छे भिक्षुओं के समान ही होता है। परन्तु जब भिक्षु उसका अपराध देख लेते हैं, तो वे उसे तपस्वियों के बीच भ्रष्टाचार, तपस्वियों के बीच केवल भूसा और कूड़ा समझते हैं। तब वे उसे निष्कासित कर देते हैं। इसका कारण क्या है? ताकि वह अच्छे भिक्षुओं को भ्रष्ट न करे।" [172]

उसके साथ रहने से यह जान लो कि वह

एक क्रोधी, बुरी इच्छाओं वाला व्यक्ति है;

निंदा करने वाला, हठी, उद्दंड, ईर्ष्यालु

, कंजूस और धोखेबाज है।

वह लोगों से एक तपस्वी की तरह

शांत स्वर में बात करता है,

लेकिन गुप्त रूप से वह बुरे कर्म करता है,

हानिकारक विचार रखता है और सम्मान का अभाव रखता है।

यद्यपि वह कपटी और झूठ बोलने वाला है, फिर भी

आपको उसे उसके वास्तविक स्वरूप में जानना चाहिए;

उसके बाद आप सभी को सद्भाव से मिलकर

उसे दृढ़तापूर्वक भगा देना चाहिए।

कचरे को हटाओ!

भ्रष्ट लोगों को बाहर निकालो?

उन निकम्मों को दूर भगाओ,

जो खुद को तपस्वी समझते हैं?

बुरी इच्छाओं,

बुरे आचरण और बुरे आचरण से विमुख होकर,

सदा सती भाव से

पवित्रों के साथ संगति में रहो;

तब, सामंजस्य में, सजग होकर,

तुम दुखों का अंत कर दोगे।

II. महावग्गो (महान अध्याय)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 वेरंजा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) वेरंजा में नलरू के नीम के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। 1637 तब वेरंजा का एक ब्राह्मण [173] भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

मैंने सुना है गुरु गौतम कहते हैं: 'तपस्वी गौतम वृद्ध, उम्रदराज, उम्र के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं।' यह सत्य है, क्योंकि गुरु गौतम वृद्ध, उम्रदराज, उम्र के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके ब्राह्मणों को प्रणाम नहीं करते; न ही उनके लिए खड़े होते हैं और न ही उन्हें आसन देते हैं। यह उचित नहीं है। गुरु गौतम।' 1638

"हे ब्राह्मण, इस संसार में, जहाँ देव (देवता), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस जनसंख्या में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवता) और मनुष्य हैं, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जिसे मैं प्रणाम करूँ, जिसके लिए खड़ा होऊँ या जिसे आसन दूँ। क्योंकि यदि तथागत (बुद्ध) किसी को प्रणाम करें, उसके लिए खड़े हों या उसे आसन दें, तो उस व्यक्ति का सिर भी फट जाएगा।"

(1) "गुरु गौतम में स्वाद की कमी है।" 1639

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम स्वादहीन हैं।' तथागत (बुद्ध) ने रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति अपनी रुचि का त्याग कर दिया है; उन्होंने इसे जड़ से काट दिया है, इसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इसे मिटा दिया है ताकि यह भविष्य में उत्पन्न न हो सके। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम स्वादहीन हैं।' लेकिन आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।" [174]

(2) "गुरु गौतम मिलनसार नहीं हैं।" 1640

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम मिलनसार नहीं हैं।' तथागत (बुद्ध) ने रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं के साथ मिलनसारिता का त्याग कर दिया है; उन्होंने इसे जड़ से काट दिया है, इसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इसे इस प्रकार मिटा दिया है कि यह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो। इसी तरह से मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम मिलनसार नहीं हैं।' लेकिन आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

(3) "गुरु गौतम अकर्म के समर्थक हैं।" 1641 "हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'संन्यासी गौतम अकर्म के समर्थक हैं।' क्योंकि मैं शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार के अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल कर्मों के अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'संन्यासी गौतम अकर्म के समर्थक हैं।' परन्तु आपने इस संदर्भ में कुछ नहीं कहा।"

(4) "गुरु गौतम एक विनाशवादी हैं।" 1642

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम विनाशवादी हैं। क्योंकि मैं कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के विनाश का दावा करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों (धम्म) के विनाश का दावा करता हूँ। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम विनाशवादी हैं। परन्तु आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

(5) "गुरु गौतम एक प्रतिकारक हैं।" 1643

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम विदारक हैं। क्योंकि मैं शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से विरक्त हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों के संचय से विरक्त हूँ। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम विदारक हैं।' परन्तु आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

(6) "मास्टर गौतम दास प्रथा विरोधी हैं।" 1644

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम एक संहारक हैं। क्योंकि मैं काम (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के निवारण के लिए धम्म का उपदेश देता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों (धम्म) के निवारण के लिए धम्म का उपदेश देता हूँ। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम एक संहारक हैं। परन्तु आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

(7) "गुरु गौतम एक उत्पीड़क हैं।" 1645

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: तपस्वी गौतम एक यातनादाता हैं। क्योंकि मैं यह कहता हूँ कि बुरे (अकुशल) गुण (धम्म)—शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार—जलकर नष्ट हो जाने चाहिए। मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति यातनादाता तब होता है जब वह उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग कर देता है जिन्हें जलाकर नष्ट किया जाना चाहिए; जब वह उन्हें जड़ से काट देता है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, उन्हें इस प्रकार मिटा देता है कि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। तथागत (बुद्ध) ने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग कर दिया है जिन्हें जलाकर नष्ट किया जाना चाहिए; उन्होंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उन्हें इस प्रकार मिटा दिया है कि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। इसी प्रकार मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक यातनादाता हैं।' लेकिन आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

(8) "गुरु गौतम सेवानिवृत्त हो रहे हैं।" 1646

"हे ब्राह्मण, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम संन्यास ले रहे हैं।' क्योंकि मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति तब संन्यास लेता है जब वह पुनर्जन्म के कारण (भावो/पुनर्जन्म का कारण), गर्भ के भावी बिस्तर का त्याग कर देता है; जब वह उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, उसे मिटा देता है [176] ताकि वह भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहे। तथागत (बुद्ध) ने पुनर्जन्म के कारण (भावो/पुनर्जन्म का कारण), गर्भ के भावी बिस्तर का त्याग कर दिया है; उन्होंने उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहे। इसी प्रकार से मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम संन्यास ले रहे हैं।' लेकिन आपने इस संदर्भ में बात नहीं की।"

"मान लो, ब्राह्मण, एक मुर्गी के आठ, दस या बारह अंडे हैं जिन्हें उसने ठीक से ढककर, सेते हुए और पाला-पोसा है। क्या उन चूजों में से जो सबसे पहले अपने पंजों या चोंच से अंडे का छिलका भेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकलेगा, उसे सबसे बड़ा कहा जाएगा या सबसे छोटा?"

"इसे सबसे बड़ा कहा जाना चाहिए। गुरु गौतम। इसलिए यह उनमें सबसे बड़ा है।"

"इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, अज्ञान में डूबी हुई जनसंख्या में, अंडे के समान पूर्णतः आवरण में लिपटे हुए, मैंने अज्ञान के अंडे के छिलके को भेद दिया है। मैं संसार में एकमात्र ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है। अतः मैं संसार में सबसे बड़ा और सर्वश्रेष्ठ हूँ।"

"हे ब्राह्मण, मेरी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) निरंतर जागृत रही; मेरा ध्यान (सती) बिना किसी भ्रम के स्थापित रहा; मेरा शरीर शांत और अशांत रहा; मेरा मन समाधि में लीन और एकाग्र था। इंद्रिय सुखों से विरक्त और हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैं प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान (समाधि अवस्था) में प्रवेश कर गया, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और जो समाधि से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते। [177] आनंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, मैं समभाव से, सचेत और पूर्ण रूप से एकाग्र होकर ध्यान में रहा।" समझकर, मैंने शरीर के साथ सुख का अनुभव किया; मैं तीसरे ध्यान (सतीत्विक अवस्था) में प्रवेश कर गया और उसमें निवास किया, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, सती (ध्यान करने वाला), सुखी है।' सुख और दुख का त्याग करके, और पहले ही प्रसन्नता और निराशा के दूर हो जाने के बाद, मैं चौथे ध्यान (सतीत्विक अवस्था) में प्रवेश कर गया और उसमें निवास किया, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा सती (ध्यान) की शुद्धि होती है।

जब मेरा मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) था, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित था, तब मैंने इसे अपने पूर्व जन्मों के स्मरण के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। 1648 मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण किया, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, कई युगों का विश्व-विनाश, कई युगों का विश्व-विकास, कई युगों का विश्व-विनाश और विश्व-विकास, इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, ऐसा रूप, ऐसा भोजन, ऐसा सुख-दुख का अनुभव, ऐसी आयु; वहाँ से निकलकर मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा नाम ऐसा ही रखा गया, मैं ऐसे कुल का था, मेरा रूप ऐसा ही था, ऐसा भोजन, ऐसा सुख-दुख का अनुभव, ऐसी आयु; वहाँ से निकलकर मेरा पुनर्जन्म यहाँ हुआ। इस प्रकार मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद किया।

"हे ब्राह्मण, रात्रि के पहले पहर में मुझे यही पहला सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ, प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि सचेत, उत्साही और दृढ़ रहने पर होता है। हे ब्राह्मण, यही मेरा पहला विस्फोट था, जैसे चूजा अंडे के छिलके से बाहर निकलता है। [178]

जब मेरा मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाहित/समाधि) अवस्था में था, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, लचीला, स्थिर और अविचलित था, तब मैंने उसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैंने प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते देखा, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैंने समझा कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फल पाते हैं: 'वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण किए, जिन्होंने...' उन श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा न करो, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, और शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, स्वर्गलोक में एक अच्छे गंतव्य में पुनर्जन्म लिया। इस प्रकार, मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते देखा, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैंने समझा कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं।

"हे ब्राह्मण, यह द्वितीय सच्चा ज्ञान था जो मुझे मध्यरात्रि के पहर में प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ, प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि सचेत, उत्साही और दृढ़ रहने पर होता है। हे ब्राह्मण, यह मेरा द्वितीय उद्भव था, जैसे चूजा अंडे के छिलके से बाहर निकलता है।"

जब मेरा मन इस प्रकार आत्म-मग्न (समाधि/समाहित) था, शुद्ध, निर्मल, दोषरहित, कोमल, सुगम, स्थिर और अविचलित था, तब मैंने इसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने इसे यथार्थ समझा: 'यह दुख है'; मैंने यथार्थ समझा: 'यह दुख का मूल है'; मैंने यथार्थ समझा: 'यह दुख का निवारण है'; मैंने यथार्थ समझा: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'; मैंने यथार्थ समझा: 'ये दोष हैं'; [179] मैंने यथार्थ समझा: 'यह दोषों का मूल है'; मैंने यथार्थ समझा: 'यह दोषों का निवारण है'; मैंने यथार्थ समझा: 'यह दोषों के निवारण का मार्ग है'

जब मैंने इस प्रकार जाना और देखा, तो मेरा मन कामुकता के दोष से, अस्तित्व के दोष से (पुनर्जन्म का कारण) और अज्ञान के दोष से मुक्त हो गया। 1649 जब यह मुक्त हुआ, तब यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'यह मुक्त हो गया है।' मुझे प्रत्यक्ष रूप से पता चला: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई अधिकार नहीं है।'

"हे ब्राह्मण, रात्रि के अंतिम पहर में मुझे यह तीसरा सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ, सच्चे ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ, प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि सचेत, उत्साही और दृढ़ रहने पर होता है। हे ब्राह्मण, यह मेरा तीसरा उद्भव था, जैसे चूजा अंडे के छिलके से बाहर निकलता है।"

यह सुनकर वेरंजा के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "गुरु गौतम सबसे बड़े हैं! गुरु गौतम सर्वश्रेष्ठ हैं! हे गुरु गौतम, बहुत बढ़िया! हे गुरु गौतम, बहुत बढ़िया! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

12 सिहा (संस्कृत: सिंह/शेर)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय, कई प्रसिद्ध लिच्छवी सभा कक्ष में एकत्रित हुए थे और बुद्ध, धम्म और संघ की स्तुति में अनेक प्रकार से प्रवचन दे रहे थे। [180] उस समय निगंथों के शिष्य सेनापति सिहा भी उस सभा में उपस्थित थे। तभी उनके मन में यह विचार आया: "निस्संदेह, वे एक भगवान (बुद्ध), एक अरहंत, एक पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति होंगे। क्योंकि इतने सारे प्रसिद्ध लिच्छवी सभा कक्ष में एकत्रित हुए हैं और बुद्ध, धम्म और संघ की स्तुति में अनेक प्रकार से प्रवचन दे रहे हैं। मुझे उस भगवान (बुद्ध), उस अरहंत, उस पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के दर्शन करने जाना चाहिए।"

तब सिहा निगंथ नटपुत्त के पास गया और उससे कहा: "भंते, मैं तपस्वी गौतम से मिलने जाना चाहता हूँ।"

"हे सिहा, तुम कर्मों के समर्थक हो, तो फिर अकर्म के समर्थक तपस्वी गौतम के दर्शन के लिए क्यों जाते हो? क्योंकि तपस्वी गौतम तो अकर्म के समर्थक हैं, जो अकर्म के लिए ही अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।" (1650)

तब भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने की सिहा की इच्छा कम हो गई।

दूसरे अवसर पर, कई प्रसिद्ध लिच्छवी सभा भवन में एकत्रित हुए थे और बुद्ध, धम्म और संघ की प्रशंसा में अनेक प्रकार से एक साथ बैठे हुए थे। . . . [ऊपर जैसा ही, सिवाय इसके कि अब इसे "दूसरे अवसर पर" घटित होने वाला कहा गया है।] [181] . . . दूसरे अवसर पर, भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने का सिहा का दृढ़ संकल्प कम हो गया।

एक तीसरे अवसर पर, अनेक प्रसिद्ध लिच्छवी सभा भवन में एकत्रित हुए थे और बुद्ध, धम्म और संघ की स्तुति में अनेक प्रकार से प्रवचन दे रहे थे। तब श्ल्हा के मन में यह विचार आया: "निस्संदेह, वह एक भगवान (बुद्ध), एक अरहंत, एक पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति होंगे। क्योंकि अनेक प्रसिद्ध लिच्छवी सभा भवन में एकत्रित हुए हैं और बुद्ध, धम्म और संघ की स्तुति में अनेक प्रकार से प्रवचन दे रहे हैं। निगंथों की अनुमति मिले या न मिले, वे मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? निगंथों की अनुमति लिए बिना ही, मैं उस भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के दर्शन के लिए जाऊं।" (1651)

फिर, सेनापति सिहा दिन के मध्य में वैशाली से पाँच सौ रथों के साथ भगवान (बुद्ध) के दर्शन के लिए निकले। वे रथ से वहाँ तक गए जहाँ तक रथ ले जाना उचित था, फिर रथ से उतरकर पैदल ही मठ परिसर में प्रवेश किया। वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

“मैंने यह सुना है, भंते: ‘संन्यासी गौतम अकर्म के समर्थक हैं [182] जो अकर्म के लिए ही अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।’ क्या जो लोग ऐसा कहते हैं वे भगवान (बुद्ध) के कहे हुए वचन को ही प्रकट करते हैं और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी बात से विकृत नहीं करते? क्या वे धम्म के अनुसार व्याख्या करते हैं ताकि उन पर कोई उचित आलोचना या निंदा का आधार न बने? 1652 क्योंकि हम भगवान (बुद्ध) को विकृत नहीं करना चाहते।”

(1) "हे सिहा, एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम अकर्म के समर्थक हैं जो अकर्म के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।' 1653

(2) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम कर्मों के समर्थक हैं जो कर्मों के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(3) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक विनाशवादी हैं जो अपने धम्म (मार्ग) का उपदेश विनाश के लिए देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(4) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक प्रतिकारक हैं जो प्रतिकर्षण के उद्देश्य से अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(5) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक उन्मूलनवादी हैं जो उन्मूलन के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों को सुगम बनाते हैं।'

(6) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक यातना देने वाला है जो यातना के लिए अपने धम्म का उपदेश देता है और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करता है।'

(7) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम संन्यासी हैं, जो संन्यासी बनने के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(8) "एक ऐसा तरीका है जिससे मेरे बारे में सही कहा जा सकता है: 'तपस्वी गौतम एक सांत्वनादाता हैं जो अपने धम्म का उपदेश सांत्वना के लिए देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(1) "हे सिहा, मेरे विषय में यह कैसे उचित कहा जा सकता है कि 'संन्यासी गौतम अकर्म के समर्थक हैं [183] जो अकर्म के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार के अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल कर्मों के अकर्म का प्रतिपादन करता हूँ। इसी प्रकार मेरे विषय में यह कहना उचित होगा कि 'संन्यासी गौतम अकर्म के समर्थक हैं जो अकर्म के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं/

(2) और किस प्रकार कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'संन्यासी गौतम कर्मों के समर्थक हैं जो कर्मों के लिए अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं अच्छे शारीरिक, वाणी और मानसिक आचरण का समर्थन करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के लाभकारी (कुशल) कर्मों के करने का समर्थन करता हूँ। इसी कारण कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'संन्यासी गौतम कर्मों के समर्थक हैं जो कर्मों के लिए अपने धम्म (मार्ग) का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(3) और किस प्रकार कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम एक विनाशवादी हैं जो विनाश के उद्देश्य से अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं काम (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के विनाश का दावा करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल (हानिकारक) गुणों के विनाश का दावा करता हूँ। इसी प्रकार कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम एक विनाशवादी हैं जो विनाश के उद्देश्य से अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(4) और किस प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है कि 'तपस्वी गौतम एक निवारक हैं जो अपने धम्म का उपदेश घृणा उत्पन्न करने के उद्देश्य से देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से घृणा करता हूँ; मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों के संचय से घृणा करता हूँ। इसी प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है कि 'तपस्वी गौतम एक निवारक हैं जो अपने धम्म का उपदेश घृणा उत्पन्न करने के उद्देश्य से देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(5) "और किस प्रकार कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'संन्यासी गौतम एक उन्मूलनवादी हैं जो उन्मूलन के उद्देश्य से अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं काम (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के उन्मूलन के लिए धम्म का उपदेश देता हूँ; [184] मैं अनेक प्रकार के अकुशल गुणों (धम्म) के उन्मूलन के लिए धम्म का उपदेश देता हूँ। इसी प्रकार कोई मेरे विषय में सही कह सकता है: 'संन्यासी गौतम एक उन्मूलनवादी हैं जो उन्मूलन के उद्देश्य से अपने धम्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(6) और किस प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है कि 'तपस्वी गौतम एक उत्पीड़क हैं जो अपने धम्म का उपदेश उत्पीड़क के रूप में देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं यह कहता हूँ कि बुरे (अकुशल) गुण (धम्म)—शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार—जलकर नष्ट हो जाने चाहिए। मैं कहता हूँ कि कोई उत्पीड़क तब होता है जब वह उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग कर देता है जिन्हें जलाकर नष्ट किया जाना है; जब वह उन्हें जड़ से काट देता है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, उन्हें मिटा देता है ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। तथागत (बुद्ध) ने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग कर दिया है जिन्हें जलाकर नष्ट किया जाना है; उन्होंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उन्हें मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। इसी प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है कि 'तपस्वी गौतम एक उत्पीड़क हैं जो अपने धम्म (मार्ग) का उपदेश देते हैं' वह अपने शिष्यों को सताने के उद्देश्य से उनका मार्गदर्शन करता है।

(7) और किस प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम संन्यासी बन रहे हैं, जो संन्यासी बनने के उद्देश्य से अपने धर्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं कहता हूँ कि कोई तब संन्यासी बनता है जब वह पुनर्जन्म के कारण (भावो/पुनर्जन्म का कारण), गर्भ के भावी शय्या का त्याग कर देता है; जब वह उसे जड़ से काट देता है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, उसे मिटा देता है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो। तथागत (बुद्ध) ने पुनर्जन्म के कारण (भावो/पुनर्जन्म का कारण), गर्भ के भावी शय्या का त्याग कर दिया है; उन्होंने उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो। इसी प्रकार कोई मेरे विषय में यह सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम संन्यासी बन रहे हैं, जो संन्यासी बनने के उद्देश्य से अपने धर्म का उपदेश देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'

(8) "और किस प्रकार कोई मेरे बारे में सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम एक सांत्वनादाता हैं, जो अपने धम्म का उपदेश सांत्वना के लिए देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं'? क्योंकि मैं [185] परम सांत्वना देने वाला सांत्वनादाता हूँ; मैं धम्म का उपदेश सांत्वना के लिए देता हूँ और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करता हूँ। इसी प्रकार कोई मेरे बारे में सही कह सकता है: 'तपस्वी गौतम एक सांत्वनादाता हैं, जो अपने धम्म का उपदेश सांत्वना के लिए देते हैं और इस प्रकार अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं।'" 1655

यह सुनकर सेनापति सिहा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "उत्कृष्ट, भंते! उत्कृष्ट, भंते! ...भगवान (बुद्ध) मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

"सिहा, छानबीन करो! तुम्हारे जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति के लिए छानबीन करना अच्छा है।" 1656

"भंते, मैं भगवान (बुद्ध) से और भी अधिक संतुष्ट और प्रसन्न हूँ कि उन्होंने मुझसे कहा: 'हे सिहा, छानबीन करो! तुम्हारे जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति के लिए छानबीन करना अच्छा है।' क्योंकि यदि अन्य संप्रदायों के सदस्य मुझे अपना शिष्य बना लेते, तो वे वैशाली में हर जगह यह घोषणा करते: 'सेनापति सिहा हमारा शिष्य बन गया है।' परन्तु भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'हे सिहा, छानबीन करो! तुम्हारे जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति के लिए छानबीन करना अच्छा है।' अतः हे भंते, मैं दूसरी बार भगवान (बुद्ध) की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं

के संघ की शरण में जाता हूँ। भगवान (बुद्ध) मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

"सिहा, तुम्हारा परिवार लंबे समय से निगंथों के लिए समर्थन का स्रोत रहा है; इसलिए जब वे तुमसे संपर्क करें तो तुम्हें उन्हें दान देना जारी रखने पर विचार करना चाहिए।"

"भंते, मैं भगवान (बुद्ध) से और भी अधिक संतुष्ट और प्रसन्न हूँ क्योंकि उन्होंने मुझसे कहा: 'सिहा, तुम्हारा परिवार निगंथों के लिए लंबे समय से सहारा रहा है; इसलिए जब वे तुम्हारे पास आएं तो तुम्हें उन्हें दान देना जारी रखना चाहिए।' क्योंकि मैंने सुना है: 'संन्यासी गौतम कहते हैं: [186] "दान केवल मुझे ही देना चाहिए, दूसरों को नहीं; दान केवल मेरे शिष्यों को ही देना चाहिए, दूसरों के शिष्यों को नहीं। केवल मुझे दिया गया दान ही बहुत फलदायी होता है, दूसरों को दिया गया दान नहीं; केवल वही फलदायी है जो मेरे शिष्यों को दिया जाता है, न कि वह जो दूसरों के शिष्यों को दिया जाता है। 1657 फिर भी भगवान (बुद्ध) मुझे निगंथों को भी दान देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसके लिए सही समय हमें पता चल जाएगा। अतः, हे भंते, मैं तीसरी बार भगवान (बुद्ध) की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। भगवान (बुद्ध) मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।

तब भगवान (बुद्ध) ने सेनापति सिहा को क्रमिक प्रवचन दिया, अर्थात् दान, सदाचार और स्वर्ग के विषय पर प्रवचन दिया; उन्होंने इंद्रिय सुखों के खतरे, पतन और अपवित्रता तथा त्याग के लाभ का वर्णन किया। जब भगवान (बुद्ध) को पता चला कि सिहा का मन कोमल, सौम्य, अवरोधों से मुक्त, उन्नत और आत्मविश्वासी हो गया है, तो उन्होंने बुद्धों के विशेष धम्म (मार्ग) उपदेशों का प्रकटीकरण किया: दुख, उसका उद्गम, उसका निवारण और मार्ग। तब, जैसे एक साफ, दाग रहित कपड़ा आसानी से रंग सोख लेता है, वैसे ही जब सेनापति सिहा उसी आसन पर बैठे, तो उनके भीतर निर्मल, निष्कलंक धम्म-दृष्टि जागृत हुई: 'जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब निवारण के अधीन है।' सेनापति सिहा ने धर्म को देखा, धर्म को प्राप्त किया, धर्म को समझा, धर्म की गहराई में उतरा, संदेह से पार पाया, भ्रम से छुटकारा पाया, आत्मविश्वास प्राप्त किया और गुरु के उपदेशों में दूसरों से स्वतंत्र हो गया। तब उसने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, कृपया भगवान (बुद्ध) [187] को भिक्षुओं के संघ के साथ मुझसे कल का भोजन स्वीकार करने दें।"

भगवान (बुद्ध) ने मौन रहकर सहमति दी। यह जानकर कि भगवान (बुद्ध) ने सहमति दे दी है, सिहा अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए। फिर सिहा ने एक व्यक्ति से कहा, "हे भले व्यक्ति, जाओ, बिक्री के लिए तैयार कुछ मांस ढूंढो।"

फिर, जब रात बीत गई, तो सेनापति सिहा ने अपने निवास पर कई प्रकार के उत्तम भोजन तैयार करवाए, जिसके बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) को समय की सूचना दी: "हे भंते, समय हो गया है, भोजन तैयार है।"

फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और वस्त्र धारण किया, भिक्षुओं के संघ के साथ सिहा के निवास पर गए और अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। उस अवसर पर कई निगंथ वैशाली में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर अपने हाथ पटकते हुए चिल्ला रहे थे: "आज सेनापति सिहा ने तपस्वी गौतम के लिए भोजन तैयार करने हेतु एक मोटा-ताज़ा पशु मारा है! तपस्वी गौतम जानबूझकर उनके लिए मारे गए पशु का मांस खाते हैं, यह कार्य उनके लिए ही किया गया है।"

फिर एक आदमी सेनापति सिहा के पास आया और उसके कान में फुसफुसाया: "महोदय, आपको पता होना चाहिए कि वैशाली में कई निगंथ गली-गली और चौराहे-चौक घूम रहे हैं, अपने हाथ पटकते हुए चिल्ला रहे हैं: 'आज सेनापति सिहा ने तपस्वी गौतम के लिए भोजन तैयार करने के लिए एक मोटा-ताज़ा जानवर मारा है! तपस्वी गौतम जानबूझकर उस मांस का उपयोग करते हैं जो विशेष रूप से उनके लिए मारा गया है, [188] यह कार्य उनके लिए किया गया है।"

"बस करो, भले आदमी। बहुत समय से वे पूजनीय लोग बुद्ध, धम्म और संघ को बदनाम करने की कोशिश कर रहे हैं। वे असत्य, निराधार, झूठे और तथ्यों के विपरीत बातों से भगवान (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालना कभी बंद नहीं करेंगे, और हम कभी भी जानबूझकर किसी जीव को जीवन से वंचित नहीं करेंगे, चाहे इसके लिए हमें अपना जीवन ही क्यों न देना पड़े।" (1659)

फिर सेनापति सिहा ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ को विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन परोसकर उन्हें तृप्त किया। जब भगवान (बुद्ध) ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा रख दिया, तो सिहा एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने धर्म प्रवचन देकर सिहा को उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

---

13. शुद्ध नस्ल (अस्सजानिया)

"भिक्षुओं (साधुओं), जिनके पास आठ गुण होते हैं, उनके लिए राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का एक कारक माना जाता है। वे आठ गुण कौन से हैं?"

"यहाँ, (1) राजा का उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा दोनों तरफ से, माता और पिता दोनों की ओर से, अच्छे कुल का है; वह उसी क्षेत्र में पैदा होता है जहाँ अन्य उत्कृष्ट नस्ल के घोड़े पैदा होते हैं। (2) वह सम्मानपूर्वक वह सारा भोजन खाता है जो उसे दिया जाता है, चाहे वह गीला हो या सूखा, उसे बिखेरता नहीं है। (3) वह मल या मूत्र के पास बैठने या लेटने से घृणा करता है। (4) वह सौम्य है और उसके साथ रहना सुखद है, और वह अन्य घोड़ों को परेशान नहीं करता है। (5) वह अपनी चालें, हथकंडे, दांव-पेच और छल-कपट अपने प्रशिक्षक को वैसे ही बताता है जैसे वे वास्तव में हैं ताकि उसका प्रशिक्षक उन्हें उससे दूर करने का प्रयास कर सके। (6) वह दृढ़ निश्चय के साथ भार ढोता है: 'चाहे दूसरे घोड़े भार ढोएँ या न ढोएँ, मैं स्वयं ढोऊँगा।'" (7) चलते समय वह केवल सीधे मार्ग पर ही चलता है। (8) वह बलवान है, और अपने जीवन के अंत तक अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है। इन आठ गुणों से युक्त, राजा का उत्तम नस्ल का घोड़ा राजा के योग्य, राजा का सहायक और राजत्व का प्रतीक माना जाता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य होता है... संसार के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। (2) वह बिना किसी आपत्ति के, चाहे जो भी भोजन उसे दिया जाए, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, आदरपूर्वक ग्रहण करता है। (3) वह शारीरिक, वाणी और मानसिक दुराचार से विमुख रहता है; वह अनेक प्रकार के अकुशल गुणों (धम्म) के संचय से विमुख रहता है। (4) वह सौम्य और मिलनसार होता है, और वह अन्य भिक्षुओं को परेशान नहीं करता। (5) वह अपनी चालों, युक्तियों, छल-कपटों और कपटों को गुरु या अपने बुद्धिमान साथी भिक्षुओं के सामने प्रकट करता है ताकि वे उन्हें उससे दूर करने का प्रयास कर सकें। (6) वह दृढ़ निश्चय के साथ प्रशिक्षण ग्रहण करता है: 'अन्य भिक्षु प्रशिक्षण लें या न लें, मैं प्रशिक्षण लूँगा।' (7) चलते समय, वह केवल सीधे मार्ग पर ही चलता है। इस संदर्भ में, यही सीधा मार्ग है: सही दृष्टि... सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन)। (8) उसने इस प्रकार ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है: 'इच्छा से, केवल मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रहें, और मेरे शरीर में मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक कि मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' 1661 इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य है... संसार के लिए पुण्य का एक अतुलनीय क्षेत्र।

---

14 जंगली घोड़े (अस्साखालुंका)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें आठ प्रकार के जंगली घोड़ों और घोड़े के आठ दोषों के बारे में सिखाऊंगा, और मैं तुम्हें जंगली घोड़ों के समान आठ प्रकार के व्यक्तियों और एक व्यक्ति के आठ दोषों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, जंगली घोड़ों के आठ प्रकार क्या हैं और घोड़े के आठ दोष क्या हैं?"

(1) "यहाँ, जब एक जंगली बछड़े को कहा जाता है: 'आगे बढ़ो!' और उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और प्रेरित किया जाता है, तो वह पीछे हट जाता है [191] और रथ को अपने पीछे घुमा देता है। 1662 यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली बछड़ा है। यह घोड़े का पहला दोष है।

(2) "फिर, जब किसी जंगली घोड़े को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसका प्रशिक्षक उसे उकसाता है, तो वह पीछे की ओर उछलता है और रेलिंग को नुकसान पहुँचाता है तथा तिहरी छड़ तोड़ देता है। 1663 यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा है। यह घोड़े का दूसरा दोष है।"

(3) "फिर, जब एक जंगली घोड़े को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और लट्टू मारा जाता है, तो वह रथ के डंडे से अपनी जांघ छुड़ा लेता है और डंडे को कुचल देता है। 1664 यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा है। यह घोड़े का तीसरा दोष है।"

(4) "फिर, जब किसी जंगली घोड़े को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसका प्रशिक्षक उसे उकसाता है, तो वह गलत रास्ते पर चला जाता है और रथ को पटरी से उतार देता है। यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा है। यह घोड़े का चौथा दोष है।"

(5) "फिर, जब किसी जंगली घोड़े के बच्चे को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और प्रेरित किया जाता है, तो वह अपने शरीर के अगले हिस्से से उछलता है और अपने अगले पैरों से हवा में मथता है; यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा का बच्चा है। यह घोड़े का पाँचवाँ दोष है।"

(6) "फिर, जब एक जंगली घोड़े के बच्चे को कहा जाता है: 'आगे बढ़ो!' और उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और लट्टू मारा जाता है, तो वह अपने प्रशिक्षक या लट्टू की बात नहीं मानता [192] बल्कि अपने दांतों से मुंह की लगाम तोड़ देता है और जहाँ चाहे वहाँ निकल जाता है। यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा का बच्चा है। यह घोड़े का छठा दोष है।"

(7) "फिर, जब किसी जंगली घोड़े के बच्चे को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसका प्रशिक्षक उसे उकसाता है, तो वह न तो आगे बढ़ता है और न ही पीछे मुड़ता है, बल्कि एक खंभे की तरह वहीं स्थिर खड़ा रहता है। यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा का बच्चा है। यह घोड़े का सातवाँ दोष है।"

(8) "फिर, जब एक जंगली घोड़े के बच्चे को 'आगे बढ़ो!' कहा जाता है और उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और प्रेरित किया जाता है, तो वह अपने आगे और पीछे के पैरों को अंदर की ओर मोड़ लेता है और वहीं चारों पैरों पर बैठ जाता है। यहाँ इसी प्रकार का एक जंगली घोड़ा का बच्चा है। यह घोड़े का आठवाँ दोष है।"

"ये जंगली घोड़ों के आठ प्रकार हैं और घोड़े के आठ दोष हैं।"

"और हे भिक्षुओं, जंगली घोड़ों के समान आठ प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं और एक व्यक्ति के आठ दोष क्या हैं?"

(1) "यहाँ, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकार रहे होते हैं, तो वह स्मृतिहीनता का बहाना बनाकर स्वयं को दोषमुक्त करता है, यह कहते हुए: 'मुझे [ऐसा अपराध करने की] याद नहीं है।' मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर, अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर, पीछे हट जाता है और रथ को अपने पीछे घुमा देता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का पहला दोष है।"

(2) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकार रहे होते हैं, [193] तो वह फटकार लगाने वाले को ही फटकारता है: 'तुम जैसे अयोग्य और मूर्ख को बोलने का क्या अधिकार है? क्या तुम्हें सचमुच लगता है कि तुम्हें कुछ कहना है?' मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर, अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर, पीछे की ओर उछलता है और [इस प्रकार] रेलिंग को नुकसान पहुँचाता है और तिहरे खंभे को तोड़ देता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े जैसा व्यक्ति है। यह व्यक्ति का दूसरा दोष है।"

(3) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकारते हैं, तो वह स्वयं फटकारने वाले पर ही अपराध का आरोप लगाते हुए कहता है: 'तुमने ऐसा-ऐसा अपराध किया है। पहले उसका प्रायश्चित करो।' मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर, अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर, रथ के डंडे से अपनी जांघ छुड़ाकर उसे कुचल देता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का तीसरा दोष है।"

(4) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकारते हैं, तो वह टालमटोल करता है, चर्चा को अप्रासंगिक विषय की ओर मोड़ देता है, और क्रोध, घृणा और कटुता प्रदर्शित करता है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर, अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर, गलत रास्ते पर चल पड़ता है और रथ को पटरी से उतार देता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का चौथा दोष है।"

(5) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकार रहे होते हैं, तो वह संघ के बीच में अपनी भुजाएँ लहराते हुए बोलता है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर और अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर अपने शरीर के अगले हिस्से से उछलता है और अपने अगले पैरों से हवा में हलचल मचाता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का पाँचवाँ दोष है।"

(6) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को उसके अपराध के लिए फटकारते हैं, तो वह संघ या अपने फटकारकर्ता की बात नहीं मानता, बल्कि अपने अपराध को लिए हुए ही अपनी इच्छा से निकल जाता है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है, जिसे 'आगे बढ़ो!' कहने पर, और प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर भी, वह अपने प्रशिक्षक या अंकुश की बात नहीं मानता, बल्कि अपने दाँतों से लगाम तोड़ देता है और अपनी इच्छा से निकल जाता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का छठा दोष है।"

(7) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को उसके अपराध के लिए फटकारते हैं, तो वह न तो कहता है, 'मैंने अपराध किया है,' और न ही कहता है, 'मैंने अपराध नहीं किया है,' बल्कि चुप रहकर संघ को परेशान करता है। मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो 'आगे बढ़ो!' कहे जाने पर, अपने प्रशिक्षक द्वारा उकसाए जाने पर भी, न आगे बढ़ता है और न पीछे मुड़ता है, बल्कि वहीं खंभे की तरह स्थिर खड़ा रहता है। यहाँ एक ऐसा ही जंगली घोड़े के समान व्यक्ति है। यह व्यक्ति का सातवाँ दोष है।"

(8) "फिर, जब भिक्षु किसी भिक्षु को किसी अपराध के लिए फटकार रहे होते हैं, तो वह कहता है: [195] 'तुम मेरे बारे में इतना हंगामा क्यों कर रहे हो? अब मैं प्रशिक्षण त्यागकर निम्न लोक में लौट जाऊंगा।' फिर वह प्रशिक्षण त्याग देता है, निम्न लोक में लौट जाता है और घोषणा करता है: 'अब तुम संतुष्ट हो सकते हो!' मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति उस जंगली घोड़े के समान है जो, जब उसे कहा जाता है: 'आगे बढ़ो!' और जब उसके प्रशिक्षक द्वारा उसे उकसाया और प्रेरित किया जाता है, तो वह अपने आगे और पीछे के पैरों को अंदर की ओर मोड़ लेता है और वहीं चारों पैरों पर बैठ जाता है। यहाँ एक ऐसा ही व्यक्ति है जो जंगली घोड़े के समान है। यह व्यक्ति का आठवाँ दोष है।"

"हे भिक्षुओं, ये आठ प्रकार के व्यक्ति हैं जो जंगली घोड़ों के समान हैं और एक व्यक्ति के आठ दोष हैं।"

---

15 दाग (माला)

भिक्षुओं, ये आठ दोष हैं। ये आठ क्या हैं? (1) भजनों का पाठ न करना दोष है। (2) घरों का दोष रखरखाव की कमी है। (3) सौंदर्य का दोष आलस्य है। (4) रक्षक का दोष सुस्ती है। (5) स्त्री का दोष दुराचार है। (6) कंजूसी दानदाता का दोष है। (7) अकुशल गुण इस लोक और परलोक में दोष हैं। (8) इससे भी गंभीर दोष अज्ञान है, जो सबसे बुरा दोष है। भिक्षुओं, ये आठ दोष हैं।

भजनों का पाठ न करना भजनों पर कलंक है; 1667

घरों पर कलंक रखरखाव की कमी है;

सुंदरता पर कलंक आलस्य है,

सुस्ती पहरेदार पर कलंक है।

स्त्री का कलंक दुराचार है,

कंजूसी दानदाता का कलंक है;

अकुशल (बुरे) गुण (धम्म)

इस लोक और परलोक में कलंक हैं।

इन सबसे भी गंभीर कलंक

अज्ञान है, जो सबसे बुरा कलंक है। [196]

---

16 मिशन (दुतेय्या)

"आठ गुणों से युक्त भिक्षु मिशन पर जाने के योग्य होते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?"

यहां, (1)— (2) भिक्षु वह है जो सुनता है और दूसरों को भी सुनाता है; (3)— (4) वह वह है जो अच्छी तरह सीखता है और दूसरों को भी सिखाता है; (5)— (6) वह वह है जो अच्छी तरह समझता है और अच्छी तरह संवाद करता है; (7) वह प्रासंगिक और अप्रासंगिक बातों को जानने में कुशल है; और (8) वह झगड़े नहीं भड़काता। इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु (भिक्षु) मिशन पर जाने के योग्य है।

"भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त सारिपुत्त मिशन पर जाने के योग्य हैं; वे आठ गुण कौन से हैं?"

"यहाँ, सारिपुत्त वह है जो सुनता है और दूसरों को भी सुनने के लिए प्रेरित करता है... वह झगड़े नहीं भड़काता। इन आठ गुणों से युक्त, सारिपुत्त मिशन पर जाने के योग्य है।"

जो भिक्षु उग्र वाद-विवाद करने वालों की सभा में पहुँचकर भयभीत नहीं होता ;

जो शब्दों को नहीं छोड़ता

और न ही अपने संदेश को छुपाता है;

जो बिना झिझक के बोलता है

और प्रश्न पूछे जाने पर विचलित नहीं होता;

ऐसा भिक्षु ही

मिशन पर जाने के योग्य है।

---

17 बंधन (1) (बंधन1)

भिक्षुओं, एक स्त्री आठ तरीकों से पुरुष को बांधती है। वे आठ तरीके कौन से हैं? एक स्त्री अपने रूप से... अपनी मुस्कान से... अपनी वाणी से... अपने गायन से... अपने आँसुओं से... अपने दर्शन से... एक भेंट से... अपने स्पर्श से... एक स्त्री इन आठ तरीकों से पुरुष को बांधती है। वे प्राणी पूर्णतः बंधे होते हैं जो स्पर्श से बंधे होते हैं।

---

18 बंधन (2) (बंधन2)

भिक्षुओं, एक पुरुष स्त्री को आठ तरीकों से बांधता है। वे आठ तरीके कौन से हैं? एक पुरुष स्त्री को अपने रूप से... अपनी मुस्कान से... अपनी वाणी से... अपने गायन से... अपने आँसुओं से... अपने दर्शन से... एक उपहार से... अपने स्पर्श से बांधता है। एक पुरुष स्त्री को इन आठ तरीकों से बांधता है। वे प्राणी पूर्णतः बंध जाते हैं जो स्पर्श से बंध जाते हैं।

---

19 पहारदा (संस्कृत: प्रहलाद)

एक बार भगवान (बुद्ध) वेरांजा में नलरू के नीम के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। तब असुरों के शासक पहारदा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: [198]

"पहारदा, क्या असुर विशाल सागर में आनंद लेते हैं?"

"भंते, असुर विशाल सागर में आनंदित होते हैं।"

लेकिन, पहाड़ादा, असुर उस विशाल सागर में कितने आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण देखते हैं, जिसके कारण वे उसमें आनंद लेते हैं?

"असुर विशाल सागर में आठ आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण देखते हैं, जिसके कारण वे उसमें आनंदित होते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "हे भंते, विशाल सागर धीरे-धीरे ढलानदार, झुकता और ऊपर उठता है, अचानक नीचे नहीं गिरता। 1671 यह पहला आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंद लेते हैं।

(2) "फिर, विशाल सागर स्थिर है और अपनी सीमाओं से बाहर नहीं बहता। यह दूसरा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं। ..."

(3) "फिर, विशाल सागर किसी शव से संबंध नहीं रखता, बल्कि उसे शीघ्र ही तट पर ले जाकर बहा देता है। यह तीसरा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं।

(4) "फिर, जब महान नदियाँ—गंगा, यमुना, अचिरावत, सरभू और माही—महासागर में पहुँचती हैं, तो वे अपने पूर्व नाम और पदनाम [199] त्याग देती हैं और उन्हें केवल महासागर कहा जाता है। यह चौथा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर महासागर में देखते हैं। . . ."

(5) "फिर, संसार में चाहे कितनी ही धाराएँ विशाल सागर में गिरें और आकाश से चाहे कितनी ही वर्षा हो, विशाल सागर में न तो कोई कमी होती है और न ही कोई वृद्धि। यह पाँचवाँ आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं। ..."

(6) "फिर, विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद है, नमक का स्वाद। यह छठा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं।

(7) "फिर, विशाल सागर में अनेक बहुमूल्य पदार्थ हैं, अनेक बहुमूल्य पदार्थ जैसे मोती, रत्न, लापिस लाजुली, शंख, क्वार्ट्ज, मूंगा, चांदी, सोना, माणिक और कैट्स आई। यह [200] सातवां आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं। . . ."

(8) “फिर, महान सागर तिमी, तिमीलाल, तिमीरापिंगला, असुर, नाग और गंधब जैसे महान प्राणियों का निवास स्थान है। महान सागर में सौ योजन, दो सौ, तीन सौ, चार सौ और पांच सौ योजन लंबे शरीर वाले प्राणी हैं। यह आठवां आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जिसे असुर महान सागर में देखते हैं, जिसके कारण वे उसमें आनंद लेते हैं।”

“हे भंते, ये वे आठ अद्भुत और विस्मयकारी गुण हैं जिन्हें असुर विशाल सागर में देखते हैं और इसी कारण वे उसमें आनंदित होते हैं। परन्तु क्या भिक्षु इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में आनंदित होते हैं?”

“पहारदा, भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में आनंदित होते हैं।”

लेकिन, भंते, भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में कितने आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं?

“भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में आठ आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?”

(1) “जिस प्रकार, हे पहाड़ा, विशाल सागर धीरे-धीरे ढलानदार और ऊपर की ओर बढ़ता है, अचानक नीचे नहीं गिरता, [201] उसी प्रकार, इस धम्म और अनुशासन में अंतिम ज्ञान की प्राप्ति क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक गतिविधि और क्रमिक अभ्यास से होती है, अचानक नहीं। 1673 यह पहला आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं।

(2) “जिस प्रकार विशाल सागर स्थिर रहता है और अपनी सीमाओं से बाहर नहीं बहता, उसी प्रकार जब मैंने अपने शिष्यों के लिए कोई प्रशिक्षण नियम निर्धारित किया है, तो वे जीवन के लिए भी उसका उल्लंघन नहीं करेंगे। यह दूसरा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में देखते हैं। . . .”

(3) “जिस प्रकार विशाल सागर किसी शव से संगति नहीं करता, बल्कि उसे शीघ्र ही तट पर ले जाकर बहा देता है, उसी प्रकार संघ भी अनैतिक, बुरे चरित्र वाले, अपवित्र, संदिग्ध आचरण वाले, गुप्त कार्यों वाले, तपस्वी होते हुए भी संन्यासी न होने वाले, ब्रह्मचारी होने का दावा करने वाले, भीतर से सड़े हुए, भ्रष्ट और पतित व्यक्ति से संगति नहीं करता; बल्कि संघ उसे शीघ्र ही एकत्रित करके निष्कासित कर देता है। यद्यपि वह भिक्षुओं के संघ के बीच में बैठा हो, फिर भी वह संघ से दूर है और संघ उससे दूर है। [202] यह तीसरा विस्मयकारी और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धानिमा और अनुशासन में देखते हैं। ....

(4) "जैसे, जब बड़ी नदियाँ... बड़े सागर में पहुँचती हैं, तो वे अपने पुराने नाम और पदनाम त्याग देती हैं और उन्हें केवल बड़ा सागर कहा जाता है, उसी प्रकार, जब चार सामाजिक वर्गों - क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध - के सदस्य गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, तो वे अपने पुराने नाम और कुल त्याग देते हैं और उन्हें केवल शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वी कहा जाता है। यह चौथा आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं। ..."

(5) "जिस प्रकार संसार में चाहे कितनी भी धाराएँ विशाल सागर में गिरें और आकाश से चाहे कितनी भी वर्षा हो, विशाल सागर में न तो कोई कमी होती है और न ही कोई वृद्धि होती है, उसी प्रकार, चाहे कितने ही भिक्षु निर्वाण तत्व के माध्यम से बिना किसी अवशेष के अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लें, निर्वाण तत्व में न तो कोई कमी होती है और न ही कोई वृद्धि होती है। 1674 [203] यह पाँचवाँ आश्चर्यजनक और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं। ..."

(6) “जिस प्रकार विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद होता है, नमक का स्वाद, उसी प्रकार इस धम्म और अनुशासन का भी केवल एक ही स्वाद होता है, मुक्ति का स्वाद। यह छठा विस्मयकारी और अद्भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं।

(7) “जिस प्रकार विशाल सागर में अनेक बहुमूल्य पदार्थ होते हैं, जैसे मोती... कैट्स आई, उसी प्रकार इस धम्म और अनुशासन में भी अनेक बहुमूल्य पदार्थ होते हैं: ध्यान (सती) के चार आधार, चार उचित प्रयास, मानसिक शक्ति (इद्धि) के चार आधार, पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ, पाँच सामर्थ्य, ज्ञान के सात कारक और अष्टांगिक मार्ग। यह सातवाँ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण है जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं।

(8) "जैसे विशाल सागर तिमी जैसे महान प्राणियों का निवास स्थान है... [204] ... गंधब्बा; और जैसे विशाल सागर में सौ योजन लंबे... पाँच सौ योजन लंबे शरीर वाले प्राणी हैं, वैसे ही यह धम्म और अनुशासन महान प्राणियों का निवास स्थान है: धारा-प्रवेश करने वाला (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति), धारा-प्रवेश के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास करने वाला (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति); एक बार लौटने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार लौटने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास करने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी); न लौटने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), न लौटने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास करने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी); अरहंत, अरहंत पद के लिए अभ्यास करने वाला। यह है यह आठवां आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है जिसे भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं।

"हे पहारदा, ये वे आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण हैं जो भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं।"

---

20 उपोसथा 167एस

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, उपोसथ के दिन, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ से घिरे बैठे थे। फिर, जैसे-जैसे रात बढ़ती गई, जब पहला पहर बीत गया, तो पूज्य आनंद अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "भंते, रात बढ़ गई है; पहला पहर बीत गया है; भिक्षुओं का संघ बहुत देर से बैठा है। भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को पतिमोक्खा सुनाएँ।" यह सुनकर भगवान (बुद्ध) मौन रहे। [205]

जैसे-जैसे रात बढ़ती गई और मध्य पहर बीत गया, पूज्य आनंद दूसरी बार अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा, "भंते, रात और बढ़ गई है; मध्य पहर बीत गया है; भिक्षुओं का संघ काफी देर से बैठा है। भंते, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को पतिमोक्खा सुनाएँ।" दूसरी बार भगवान (बुद्ध) मौन रहे।

जैसे-जैसे रात और आगे बढ़ती गई, जब अंतिम पहर बीत गया, जब भोर हुई और क्षितिज पर गुलाबी रंगत छा गई, तब पूज्य आनंद तीसरी बार अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "भंते, रात और आगे बढ़ गई है; अंतिम पहर बीत गया है; भोर हो गई है और क्षितिज पर गुलाबी रंगत छा गई है; भिक्षुओं का संघ बहुत देर से बैठा है। भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को पतिमोक्खा सुनाएँ।"

"आनंद, यह सभा अपवित्र है।"

तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया: “भगवान (बुद्ध) ने जब कहा, ‘आनंद, यह सभा अपवित्र है’, तो उनका तात्पर्य किस व्यक्ति से था?” तब पूज्य महामोग्गलाना ने अपना ध्यान भिक्षुओं के संपूर्ण संघ पर केंद्रित किया और उनके मन को अपने भीतर समाहित कर लिया। तब उन्होंने भिक्षुओं के संघ के बीच में बैठे उस व्यक्ति को देखा: जो अनैतिक, बुरे चरित्र का, अपवित्र, संदिग्ध आचरण वाला, गुप्त स्वभाव का, तपस्वी होने का दावा करते हुए भी न तपस्वी, ब्रह्मचारी होने का दावा करते हुए भी न तपस्वी, भीतर से सड़ा हुआ, भ्रष्ट और पतित था। उसे देखकर वे अपने आसन से उठे, उस व्यक्ति के पास गए और उससे कहा: “उठो, मित्र। भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें देख लिया है। तुम भिक्षुओं के साथ संगति में नहीं रह सकते।” यह सुनकर वह व्यक्ति मौन रहा।

दूसरी बार... तीसरी बार पूज्य महामोग्गलाना ने उस व्यक्ति से कहा: [206] "उठो, मित्र। भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें देख लिया है। तुम भिक्षुओं के साथ संगति में नहीं रह सकते।" तीसरी बार वह व्यक्ति चुप रहा।

तब पूज्य महामोग्गलाना ने उस व्यक्ति को बांह से पकड़कर बाहरी द्वार से बाहर निकाल दिया और दरवाजा बंद कर दिया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास लौटकर उनसे बोले, "मैंने उस व्यक्ति को निकाल दिया है, भंते। सभा पवित्र है। भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को पतिमोक्खा का पाठ करें।"

"यह आश्चर्यजनक और विस्मयकारी है, मोग्गलाना, कि वह खोखला व्यक्ति 1676 तक तब तक प्रतीक्षा करता रहा जब तक उसे बांह से पकड़ नहीं लिया गया।" तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "अब, भिक्षुओं, आप स्वयं उपोसथ का संचालन करें और पतिमोक्ख का पाठ करें। आज से मैं ऐसा नहीं करूंगा। यह असंभव और अकल्पनीय है कि तथागत (बुद्ध) अपवित्र सभा में उपोसथ का संचालन करें और पतिमोक्ख का पाठ करें।"

"असुर, भिक्षुओं, विशाल सागर में ये आठ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण देखते हैं, जिसके कारण वे उसमें आनंदित होते हैं। वे कौन से आठ गुण हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, विशाल सागर धीरे-धीरे ढलानदार और ऊपर-नीचे होता है, अचानक नीचे नहीं गिरता। यही वह पहला आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है जो असुर विशाल सागर में देखते हैं, जिसके कारण वे उसमें आनंदित होते हैं।"

[सभी बातें 8:19 के समान हैं, लेकिन भिक्षुओं को संबोधित हैं।]

(8) "फिर, महान सागर महान प्राणियों का निवास स्थान है... [207] ... पाँच सौ योजन लंबा। यह आठवाँ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है जो असुर महान सागर में देखते हैं जिसके कारण वे उसमें आनंद लेते हैं।

"हे भिक्षुओं, ये वे आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण हैं जिन्हें असुर विशाल सागर में देखते हैं और उसी के कारण उसमें आनंदित होते हैं। उसी प्रकार, भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण देखते हैं और उसी के कारण उसमें आनंदित होते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर धीरे-धीरे ढलानदार होता है, अचानक नीचे नहीं गिरता, उसी प्रकार इस धम्म और अनुशासन में भी अंतिम ज्ञान की प्राप्ति क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक गतिविधि और क्रमिक अभ्यास से होती है, अचानक नहीं। यही वह पहला आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है जो भिक्षुओं को इस धम्म और अनुशासन में दिखाई देता है, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं। ..."

[सभी बातें 8:19 के समान हैं, लेकिन भिक्षुओं को संबोधित हैं।]

(8) "जिस प्रकार विशाल सागर महान प्राणियों का निवास स्थान है... पाँच सौ योजन [208] लंबा, उसी प्रकार यह धम्म और अनुशासन भी महान प्राणियों का निवास स्थान है: सोतपत्ति (सात जन्मों का सप्तपदी), जो सोतपत्ति के फल की प्राप्ति के लिए साधना करता है... अरहंत, जो अरहंतत्व के लिए साधना करता है। यह आठवाँ विस्मयकारी और अद्‌भुत गुण है जो भिक्षु इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में देखते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं।"

"हे भिक्षुओं, ये वे आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण हैं जो भिक्षुओं को इस धम्म और अनुशासन में दिखाई देते हैं, जिसके कारण वे इसमें आनंदित होते हैं।"

तृतीय. गृहस्थ (गहपतिवग्गो सं. गृहपति-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 उगा (1)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, वैशाली के गृहस्थ उगा को याद रखना चाहिए, जो आठ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुणों से परिपूर्ण थे।" 1677 [209] भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए।

फिर सुबह एक भिक्षु ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और वैशाली के गृहस्थ उगा के निवास पर गया। वहाँ पहुँचकर वह अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गया। तब वैशाली के गृहस्थ उगा उस भिक्षु के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भिक्षु ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि आप आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुणों से परिपूर्ण हैं। वे क्या हैं?"

"भंते, मुझे नहीं पता कि भगवान (बुद्ध) ने मेरे बारे में कौन से आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण बताए हैं। लेकिन मुझमें आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण मौजूद हैं। ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी, गृहस्थ," भिक्षु ने उत्तर दिया। वैशाली के गृहस्थ उगा ने यह कहा:

(1) "हे भंते, जब मैंने पहली बार दूर से भगवान (बुद्ध) को देखा, तो उन्हें देखते ही मेरे मन में उनके प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया। यह मुझमें पाया जाने वाला पहला आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(2) "विश्वास से भरे मन से मैंने भगवान (बुद्ध) की सेवा की। तब भगवान (बुद्ध) ने मुझे एक क्रमिक प्रवचन दिया, अर्थात् दान, सदाचार और स्वर्ग पर प्रवचन; उन्होंने इंद्रिय सुखों के खतरे, पतन और अपवित्रता तथा त्याग के लाभ को प्रकट किया। जब भगवान (बुद्ध) को पता चला कि मेरा मन कोमल, सौम्य, अवरोधों से मुक्त, उन्नत और आत्मविश्वास से भरा है, तो उन्होंने [2101 बुद्धों के लिए विशेष धम्म शिक्षा प्रकट की: दुख, उसका उद्‌गम, उसका निवारण और मार्ग। तब, जैसे एक साफ, दाग रहित कपड़ा आसानी से रंग सोख लेता है, वैसे ही, जब मैं उसी आसन पर बैठा था, तो मेरे भीतर धूल रहित, निष्कलंक धम्म-दृष्टि जागृत हुई: 'जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब निवारण के अधीन है।' मैंने धम्म को देखा, धम्म को प्राप्त किया, धम्म को समझा, धम्म की गहराई में उतरा, संदेह से पार पाया, भ्रम से छुटकारा पाया, आत्मविश्वास प्राप्त किया और गुरु के उपदेश में दूसरों से स्वतंत्र हो गया। वहीं मैंने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली और ब्रह्मचर्य को पाँचवें नियम के रूप में अपनाकर प्रशिक्षण के नियमों का पालन किया। 1678 यह मुझमें पाया जाने वाला दूसरा अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण है।

(3) "मेरी चार जवान पत्नियाँ थीं। तब मैं उनके पास गया और कहा: 'बहनो, मैंने पाँचवें नियम के रूप में ब्रह्मचर्य के साथ प्रशिक्षण नियमों का पालन किया है। अगर तुम चाहो, तो यहीं धन का आनंद ले सकती हो और पुण्य कर्म कर सकती हो, या अपने परिवार में वापस जा सकती हो, या अगर तुम चाहती हो कि मैं तुम्हें किसी दूसरे पुरुष को सौंप दूँ, तो मुझे बता दो।' तब मेरी सबसे बड़ी पत्नी ने मुझसे कहा: 'युवक, मुझे फलाँ पुरुष को सौंप दो।' मैंने उस पुरुष को बुलवाया, और अपने बाएँ हाथ से अपनी पत्नी को लिया, अपने दाएँ हाथ से मैंने अनुष्ठानिक कलश लिया, और मैंने उसे उस पुरुष को सौंप दिया। लेकिन अपनी जवान पत्नी को सौंपते समय भी, मुझे याद नहीं आता कि मेरे मन में कोई परिवर्तन हुआ हो। यह मुझमें पाया जाने वाला तीसरा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है। [21 1]

(4) "मेरा परिवार धनी है, लेकिन धन को बिना किसी शर्त के अच्छे चरित्र वाले गुणी लोगों के साथ साझा किया जाता है। यह मुझमें पाया जाने वाला चौथा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(5) "जब भी मैं किसी भिक्षु की सेवा करता हूँ, मैं उसकी सेवा पूर्ण आदर के साथ करता हूँ, अनादर के बिना नहीं। यह मुझमें पाया जाने वाला पाँचवाँ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(6) "यदि वह पूज्य गुरु मुझे धम्म का उपदेश देते हैं, तो मैं आदरपूर्वक सुनता हूँ, अनादरपूर्वक नहीं। यदि वे मुझे धम्म का उपदेश नहीं देते, तो मैं उन्हें धम्म (मार्ग) का उपदेश देता हूँ। यह मुझमें पाया जाने वाला छठा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(7) "देवताओं (देवदूतों) का मेरे पास आकर यह कहना कोई असामान्य बात नहीं है: 'गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने धम्म की अच्छी व्याख्या की है।' तब मैं उन देवताओं (देवदूतों) से कहता हूँ: 'चाहे आप ऐसा कहें या न कहें, भगवान (बुद्ध) ने धम्म की अच्छी व्याख्या की है।' फिर भी, मुझे देवताओं (देवदूतों) के मेरे पास आने या उनसे बातचीत करने के कारण उत्पन्न होने वाला कोई मानसिक उल्लास याद नहीं है। यह मुझमें पाया जाने वाला सातवाँ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(8) "भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए पाँच निम्न बंधनों में से, मुझे कोई ऐसा बंधन नहीं दिखता जिसे मैंने त्यागा न हो। 1679 यह मुझमें पाया जाने वाला आठवाँ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है। [212]

"हे भंते, ये आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण मुझमें पाए जाते हैं। लेकिन मुझे नहीं पता कि भगवान (बुद्ध) ने मेरे बारे में कौन से आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण बताए हैं।"

तब उस भिक्षु ने वैशाली के गृहस्थ उगा के निवास पर भिक्षा ग्रहण की और अपने आसन से उठकर चले गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और वैशाली के गृहस्थ उगा के साथ हुई अपनी सारी बातचीत उन्हें सुनाई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, भिक्षु! मैंने कहा था कि वैशाली के गृहस्थ उगा में वही आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण हैं जिनका उसने तुम्हें सही वर्णन किया है। तुम्हें वैशाली के गृहस्थ उगा को इन आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखना चाहिए।"

---

22 उगा (2)

एक बार भगवान (बुद्ध) हत्थिगमा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया।

"भिक्षुओं, आप हत्तिगामा के गृहस्थ उगा को याद रखें, जो आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुणों से परिपूर्ण थे।" भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। इतना कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए।

फिर सुबह, एक भिक्षु ने वस्त्र धारण किया, अपना कुंड और वस्त्र लिया और हत्थिगमा के गृहस्थ उगा के निवास पर गया। वहाँ पहुँचकर वह अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गया। तब हत्थिगमा के गृहस्थ उगा उस भिक्षु के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भिक्षु ने उनसे कहा: [213]

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि आपमें आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण हैं। वे क्या हैं?"

"मुझे नहीं पता, भंते, भगवान (बुद्ध) ने मेरे बारे में कौन से आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण बताए हैं। फिर भी, मुझमें आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण मौजूद हैं। ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी, गृहस्थ," भिक्षु ने उत्तर दिया। हत्थिगमा के गृहस्थ उगा ने यह कहा:

(1) "भंते, मैं नाग वन में मौज-मस्ती कर रहा था जब मैंने पहली बार दूर से भगवान (बुद्ध) को देखा। जैसे ही मैंने उन्हें देखा, मेरे मन में उनके प्रति विश्वास जागृत हो गया और मेरा नशा उतर गया। यह मुझमें पाया जाने वाला पहला आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(2) "विश्वास से भरे मन से, मैंने भगवान (बुद्ध) की सेवा की। तब भगवान (बुद्ध) ने मुझे एक प्रगतिशील प्रवचन दिया। . . . [जैसा कि 8:21 में है] . . . वहीं [214] मैंने बुद्ध, धम्म और सहग की शरण ली और ब्रह्मचर्य को पाँचवें नियम के रूप में अपनाकर प्रशिक्षण नियमों का पालन किया। यह मुझमें पाया जाने वाला दूसरा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(3) "मेरी चार जवान पत्नियाँ थीं। फिर मैं उनके पास गया... [जैसा कि 8:21 में है]... लेकिन अपनी जवान पत्नी को विदा करते समय भी मुझे याद नहीं आता कि मेरे मन में कोई परिवर्तन हुआ हो। यह मुझमें पाया जाने वाला तीसरा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(4) "मेरा परिवार धनी है, लेकिन धन को बिना किसी संकोच के अच्छे चरित्र वाले गुणी लोगों के साथ साझा किया जाता है। यह मुझमें पाया जाने वाला चौथा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है। [215]

(5) "जब भी मैं किसी भिक्षु की सेवा करता हूँ, तो मैं पूरी श्रद्धा से उनकी सेवा करता हूँ, अनादर से नहीं। यदि वह आदरणीय भिक्षु मुझे धम्म का उपदेश देते हैं, तो मैं श्रद्धापूर्वक सुनता हूँ, अनादर से नहीं। यदि वे मुझे धम्म का उपदेश नहीं देते, तो मैं उन्हें धम्म का उपदेश देता हूँ। यह मुझमें पाया जाने वाला पाँचवाँ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण है।"

(6) "यह कोई असामान्य बात नहीं है कि जब मैं संघ को भोजन के लिए आमंत्रित करता हूँ, तो देवता (देवदूत) आकर मुझे बताते हैं: 'वह भिक्षु, गृहस्थ, दोनों ही दृष्टियों से मुक्त है। वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) से मुक्त है। वह शरीर साक्षी है। वह दृष्टि प्राप्त कर चुका है। वह आस्था से मुक्त है। वह धर्म का अनुयायी है। वह आस्था का अनुयायी है। वह गुणी, अच्छे चरित्र का है। वह अनैतिक, बुरे चरित्र का है।' फिर भी, जब मैं संघ की सेवा कर रहा होता हूँ, तो मुझे यह विचार याद नहीं आता: 'मैं इसे थोड़ा दूँ, मैं उसे बहुत दूँ।' बल्कि, मैं समान भाव से देता हूँ। यह मुझमें पाया जाने वाला छठा आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

(7) "देवताओं (देवदूतों) का आकर मुझे यह बताना कोई असामान्य बात नहीं है: 'गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने धम्म की अच्छी व्याख्या की है।' तब मैं उन देवताओं (देवदूतों) से कहता हूँ: 'चाहे आप देवता (देवदूत) ऐसा कहें या न कहें, भगवान (बुद्ध) ने धम्म की अच्छी व्याख्या की है।' फिर भी, मुझे देवताओं (देवदूतों) के मेरे पास आने या उनसे बातचीत करने के कारण कोई मानसिक उल्लास याद नहीं आता। यह मुझमें पाया जाने वाला सातवाँ आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है। [216]

(8) "यदि मैं भगवान (बुद्ध) के समक्ष इस दुनिया से चला जाऊं, तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि भगवान (बुद्ध) मेरे बारे में यह कहें: 'ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे हत्थिगमा के गृहस्थ उगा इस दुनिया में लौट सकें।' 1680 यह मुझमें पाया जाने वाला आठवां आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण है।"

"हे भंते, ये आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुण मुझमें पाए जाते हैं। परन्तु मुझे नहीं पता कि भगवान (बुद्ध) ने मेरे बारे में कौन से आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों की घोषणा की है।"

तब उस भिक्षु ने हत्थिगमा के गृहस्थ उगा के निवास पर भिक्षा ग्रहण की और अपने आसन से उठकर चले गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और हत्थिगमा के गृहस्थ उगा के साथ हुई अपनी सारी बातचीत उन्हें सुनाई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, भिक्षु! मैंने कहा था कि हत्थिगमा के गृहस्थ उगा में वही आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुण हैं जिनका उसने तुम्हें सही वर्णन किया है। तुम्हें हत्थिगमा के गृहस्थ उगा को इन आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखना चाहिए।"

---

23 हत्थका (1)

एक बार भगवान (बुद्ध) अलावी में अग्गलावा मंदिर में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया। . . . [217]

"भिक्षुओं, आप अलावी के हत्थक को सात अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखें। वे सात गुण क्या हैं? (1) अलावी के हत्थक में आस्था है। (2) वे गुणी हैं, (3) उनमें नैतिक लज्जा और (4) नैतिक भय की भावना है। (5) वे विद्वान हैं, (6) उदार हैं, और (7) बुद्धिमान हैं। आप अलावी के हत्थक को इन सात अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखें।" भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए।

फिर सुबह एक भिक्षु ने वस्त्र धारण किया, अपना कुंड और वस्त्र लिया और अलवी के हत्थक के निवास पर गया। वहाँ पहुँचकर वह अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गया। तब अलवी के हत्थक भिक्षु के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भिक्षु ने उनसे कहा:

"मित्र, 1683 में भगवान (बुद्ध) ने घोषणा की कि आप सात अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से परिपूर्ण हैं। वे सात गुण कौन से हैं? 'भिक्षुओं, अलवी के हत्थक में आस्था है। वह गुणी है और उसमें नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना है। वह विद्वान, उदार और बुद्धिमान है।' भगवान (बुद्ध) ने घोषणा की कि आप इन सात अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से परिपूर्ण हैं।"

"मुझे उम्मीद है, भंते, कि वहां कोई श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ उपस्थित नहीं था?"

"नहीं, दोस्त। कोई भी श्वेत वस्त्रधारी आम आदमी उपस्थित नहीं था।"

"यह अच्छा है, भंते।"

तब उस भिक्षु ने अलाव्ल के हत्थक के निवास पर भिक्षा ग्रहण करके अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वह भगवान (बुद्ध) के पास गया, [218] उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया, [और उन्हें सारी घटना का वर्णन किया]। 1682

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, भिक्षु! उस कुल के मनुष्य की इच्छाएँ कम होती हैं, क्योंकि वह अपने भीतर के लाभकारी (कुशल) गुणों को दूसरों को प्रकट नहीं करना चाहता। इसलिए, भिक्षु, आपको अलावल के हत्थक को याद रखना चाहिए, जो इस आठवें, आश्चर्यजनक और अद्‌भुत गुण, अर्थात् (8) इच्छाओं की कमी से युक्त है।"

---

24 हत्थका (2)

एक बार भगवान (बुद्ध) अलावी में अग्गलावा मंदिर में निवास कर रहे थे। तब अलावी के हत्थका, अपने पाँच सौ अनुयायियों के साथ, [219] भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"हत्थका, तुम्हारा दल बहुत बड़ा है। तुम इतने बड़े दल का भरण-पोषण कैसे करते हो?"

"हे भंते, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए अनुकूल संबंध बनाए रखने के चार साधनों से ऐसा करता हूँ। 1583 जब मुझे पता चलता है: 'इसका भरण-पोषण दान से करना है,' तो मैं उसका भरण-पोषण दान से करता हूँ। जब मुझे पता चलता है: 'इसका भरण-पोषण मधुर वाणी से करना है,' तो मैं उसका भरण-पोषण मधुर वाणी से करता हूँ। जब मुझे पता चलता है: 'इसका भरण-पोषण परोपकारी आचरण से करना है,' तो मैं उसका भरण-पोषण परोपकारी आचरण से करता हूँ। जब मुझे पता चलता है: 'इसका भरण-पोषण निष्पक्षता से करना है,' तो मैं उसका भरण-पोषण निष्पक्षता से करता हूँ। हे भंते, मेरे परिवार में धन है। वे यह नहीं सोचते कि उन्हें मेरी बात ऐसे सुननी चाहिए जैसे मैं गरीब हूँ।" 1684

"शाबाश, शाबाश, हत्थका! यही वह तरीका है जिससे तुम एक बड़े दल का भरण-पोषण कर सकते हो। अतीत में जिन्होंने भी बड़ा दल का भरण-पोषण किया, उन्होंने इन्हीं चार तरीकों से अनुकूल संबंध बनाए रखे। भविष्य में जो भी बड़ा दल का भरण-पोषण करेंगे, वे भी इन्हीं चार तरीकों से अनुकूल संबंध बनाए रखेंगे। और वर्तमान में जो भी बड़ा दल का भरण-पोषण करते हैं, वे भी इन्हीं चार तरीकों से अनुकूल संबंध बनाए रखते हैं।"

फिर, भगवान (बुद्ध) द्वारा अलाव्ल के हत्थक को धम्म प्रवचन से उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्न करने के बाद, हत्थक अपनी सीट से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिना हाथ रखते हुए उनकी परिक्रमा की, [220] और चले गए।

फिर, अलवी के हत्थक के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आपको अलवी के हत्थक को आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखना चाहिए। वे आठ गुण क्या हैं? (1) वे आस्थावान हैं। (2) वे गुणी हैं, और (3) उनमें नैतिक लज्जा और (4) नैतिक भय की भावना है। (5) वे विद्वान हैं, (6) उदार हैं, और (7) बुद्धिमान हैं। (8) उनकी इच्छाएँ कम हैं। आपको अलवी के हत्थक को इन आठ अद्‌भुत और विस्मयकारी गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में याद रखना चाहिए।"

---

25 महानामा

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, किस अर्थ में कोई गृहस्थ अनुयायी होता है?"

"जब, महानामा, कोई बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, तो उस तरह से वह एक गृहस्थ अनुयायी होता है।"

"भंते, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार गुणी होता है?"

"जब, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी जीवन के विनाश से, बिना दी गई वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज करता है, तो उस प्रकार वह गृहस्थ अनुयायी गुणी होता है।"

"भंते, किस तरह से एक गृहस्थ अनुयायी अपने स्वयं के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं?" [221]

(1) हे महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी स्वयं धर्म में सिद्ध हो, परन्तु दूसरों को धर्म में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित न करे; (2) जब वह स्वयं सद्‌गुणों में सिद्ध हो, परन्तु दूसरों को सद्‌गुणों में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित न करे; (3) जब वह स्वयं उदारता में सिद्ध हो, परन्तु दूसरों को उदारता में सिद्ध होने के लिए प्रोत्साहित न करे; (4) जब वह स्वयं भिक्षुओं से मिलना चाहे, परन्तु दूसरों को भिक्षुओं से मिलने के लिए प्रोत्साहित न करे; (5) जब वह स्वयं अच्छे धर्म को सुनना चाहे, परन्तु दूसरों को अच्छे धर्म को सुनने के लिए प्रोत्साहित न करे; (6) जब वह स्वयं सुनी हुई शिक्षाओं को मन में रखे, परन्तु दूसरों को शिक्षाओं को मन में रखने के लिए प्रोत्साहित न करे; (7) जब वह स्वयं मन में रखी हुई शिक्षाओं के अर्थ की जांच करे, परन्तु दूसरों को उनके अर्थ की जांच करने के लिए प्रोत्साहित न करे; (8) जब वह स्वयं धर्म के अर्थ और उसके अनुसार अभ्यास करे, परन्तु दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित न करे: हे महानामा, इसी प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी अपने स्वयं के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है, परन्तु दूसरों के कल्याण के लिए नहीं।

"हे भंते, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार अपने और दूसरों के कल्याण के लिए अभ्यास कर रहा है?"

(1) हे महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी स्वयं धर्म में सिद्ध हो और दूसरों को भी धर्म में सिद्ध होने के लिए प्रेरित करे; (2) जब वह स्वयं सद्‌गुणों में सिद्ध हो और दूसरों को भी सद्‌गुणों में सिद्ध होने के लिए प्रेरित करे; (3) जब वह स्वयं उदारता में सिद्ध हो और दूसरों को भी उदारता में सिद्ध होने के लिए प्रेरित करे; (4) जब वह स्वयं भिक्षुओं से मिलना चाहे और दूसरों को भी भिक्षुओं से मिलने के लिए प्रेरित करे; (5) जब वह स्वयं अच्छे धर्म को सुनना चाहे और दूसरों को भी अच्छे धर्म को सुनने के लिए प्रेरित करे; (6) जब वह स्वयं सुनी हुई शिक्षाओं को मन में रखे और दूसरों को भी उन्हें मन में रखने के लिए प्रेरित करे; (7) जब वह स्वयं मन में रखी हुई शिक्षाओं के अर्थ का विश्लेषण करे और दूसरों को भी उनके अर्थ का विश्लेषण करने के लिए प्रेरित करे; (8) जब वह स्वयं अर्थ और धर्म को समझ ले और धर्म के अनुसार अभ्यास करे, और दूसरों को भी धर्म के अनुसार अभ्यास करने के लिए प्रेरित करे: हे महानामा, इसी प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी अपने लिए अभ्यास कर रहा होता है। स्वयं के कल्याण के लिए और दूसरों के कल्याण के लिए भी।"

---

26 जीवक

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में जीवक के आम के बाग में निवास कर रहे थे। तब जीवक कोमरभच्च भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 1683

"भंते, किस अर्थ में कोई गृहस्थ अनुयायी होता है?"

[शेष 8:25.3 [223] के अनुसार]

---

27 शक्तियाँ (1) (बाला1)

भिक्षुओं, ये आठ शक्तियाँ हैं। कौन सी आठ शक्तियाँ? (1) बच्चों की शक्ति रोना है; (2) स्त्रियों की शक्ति क्रोध है; (3) चोरों की शक्ति हथियार चलाना है; (4) राजाओं की शक्ति भगवानत्व है; (5) मूर्खों की शक्ति शिकायत करना है; (6) बुद्धिमानों की शक्ति विचार-विमर्श करना है; (7) विद्वानों की शक्ति चिंतन है; (8) तपस्वियों और ब्राह्मणों की शक्ति धैर्य है। ये आठ शक्तियाँ हैं।

---

28 शक्तियाँ (2) (बाला2)

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। . . . तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: [224]

सारिपुत्त, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसके पास कितनी शक्तियाँ रह जाती हैं जिनके आधार पर वह दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं'?

"भंते, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसे आठ शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं, जिनके कारण वह कह सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।' वे आठ शक्तियां कौन सी हैं?"

(1) "हे भंते, यहाँ एक भिक्षु ने, जिसके सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को उनके वास्तविक स्वरूप में, सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ, अनित्य रूप में स्पष्ट रूप से देखा है। यही दोष नष्ट हो चुके भिक्षु की वह शक्ति है जिसके आधार पर वह दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।'"

(2) "फिर, दोषों से मुक्त भिक्षु ने सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ इंद्रिय सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में स्पष्ट रूप से देखा है, जो कोयले की भट्टी के समान हैं। यह दोषों से मुक्त भिक्षु की शक्ति है। ..."

(3) "फिर, दोषों से मुक्त भिक्षु का मन एकांत की ओर झुकता है; वह त्याग में आनंदित होकर एकांत में चला जाता है और दोषों के आधार बनने वाली सभी चीजों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यही दोषों से मुक्त भिक्षु की शक्ति है। ..."

(4) "पुनः, दोष मिट चुके भिक्षु ने ध्यान (सती/ध्यान) की चारों अवस्थाओं को विकसित और अच्छी तरह से सिद्ध कर लिया है। [225] ऐसा होने के कारण, यह दोष मिट चुके भिक्षु की शक्ति है।"

(5) — (8) "पुनः, दोष मिट चुके भिक्षु ने मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के चार आधारों को विकसित और अच्छी तरह से विकसित कर लिया है... पाँच आध्यात्मिक शक्तियों को... ज्ञान के सात कारकों को... आर्य अष्टांगिक मार्ग को। दोष मिट चुके भिक्षु की यही शक्ति है जिसके आधार पर वह दावा कर सकता है: 'मेरे दोष मिट गए हैं।'"

"भंते, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसे ये आठ शक्तियां प्राप्त होती हैं जिनके आधार पर वह दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।'"

---

29 अनुचित क्षण (अक्खाना)

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक कहता है: 'संसार को अवसर मिल गया है! संसार को अवसर मिल गया है!' 1688 परन्तु वह नहीं जानता कि अवसर क्या है और क्या नहीं है। भिक्षुओं, ये आठ अनुपयुक्त क्षण हैं जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं हैं। वे आठ कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, तथागत (बुद्ध) संसार में अवतरित हुए हैं, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, एक प्रबुद्ध, एक भगवान (बुद्ध), और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश एक सौभाग्यशाली द्वारा दिया गया है। परन्तु एक व्यक्ति का पुनर्जन्म नरक में हुआ है। यह पहला अनुपयुक्त क्षण है जो इस ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीने का उचित अवसर नहीं है। (बुद्ध का मार्ग) [226]

(2) "फिर, एक तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धर्म का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। परन्तु एक व्यक्ति पशुलोक में पुनर्जन्म ले चुका है। यह दूसरा अनुपयुक्त क्षण है जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है।"

(3) “फिर, तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। परन्तु एक व्यक्ति व्यथित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म ले चुका है। यह तीसरा अनुपयुक्त क्षण है जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है।”

(4) "फिर, संसार में एक तथागत (बुद्ध) प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। परन्तु एक व्यक्ति का पुनर्जन्म दीर्घायु देवों (देवदूतों/देवताओं) के एक विशेष क्रम में हुआ है। 1689 यह चौथा अनुपयुक्त क्षण है जो इस ब्रह्मचर्य (बुद्ध के मार्ग) को जीने का उचित अवसर नहीं है।"

(5) "फिर, संसार में एक तथागत (बुद्ध) प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म (मार्ग) का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। परन्तु एक व्यक्ति का पुनर्जन्म सुदूर प्रांतों में असभ्य विदेशियों के बीच हुआ है, [एक ऐसी जगह] जहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी नहीं जाते। यह पाँचवाँ अनुपयुक्त क्षण है जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है।"

(6) "फिर, एक तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। मध्य प्रांतों में एक व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है, लेकिन उसका दृष्टिकोण गलत है और वह विकृत है: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; कोई भी प्राणी स्वतः पुनर्जन्म नहीं लेता; संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव किया हो और उन्हें दूसरों को ज्ञात कराया हो।' यह छठा अनुपयुक्त क्षण है जो इस ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने का उचित अवसर नहीं है।

(7) “फिर से, एक तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट हुए हैं... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। मध्य प्रांतों में एक व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है, परन्तु वह अज्ञानी, मूर्ख, मंदबुद्धि है, और अच्छी और बुरी दोनों ही बातों का अर्थ समझने में असमर्थ है। यह सातवाँ अनुपयुक्त क्षण है जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है।”

(8) "फिर, संसार में तथागत (बुद्ध) का जन्म नहीं हुआ है... और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाला धम्म [227] सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा घोषित रूप में नहीं सिखाया जाता है। परन्तु मध्य प्रांतों में एक व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है, और वह बुद्धिमान,

समझदार, चतुर है, जो अच्छी और बुरी दोनों बातों का अर्थ समझ सकता है। यह आठवां अनुपयुक्त क्षण है जो ब्रह्मचर्य (बुद्ध का मार्ग) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है।"

"ये आठ अनुपयुक्त क्षण हैं जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं हैं।"

भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन जीने का एक अनूठा और उपयुक्त अवसर है। वह क्या है? यहाँ, तथागत (बुद्ध) संसार में अवतरित हुए हैं, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों और मनुष्यों के गुरु, एक प्रबुद्ध, एक भगवान (बुद्ध), और शांति, निर्वाण और ज्ञान की ओर ले जाने वाले धम्म (मार्ग) का उपदेश सुगत (भगवान बुद्ध) द्वारा दिया गया है। और मध्य प्रांतों में एक व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है, जो बुद्धिमान, समझदार और चतुर है, जो अच्छी और बुरी दोनों बातों का अर्थ समझने में सक्षम है। भिक्षुओं, यही वह अनूठा और उपयुक्त अवसर है जो ब्रह्मचर्य जीवन जीने का उपयुक्त अवसर है (बुद्ध का मार्ग)।

जब धर्म का भली-भांति प्रचार हो चुका हो और मनुष्य का दर्जा प्राप्त हो गया हो , तब

जो लोग इस अवसर को नहीं पकड़ते, वे

सही समय को हाथ से फिसलने देते हैं।

कई बार ऐसे प्रतिकूल समयों की बात की जाती है,

जो मार्ग में बाधक होते हैं; क्योंकि तथागत (बुद्ध) संसार में

कभी-कभार ही प्रकट होते हैं।

यदि किसी ने उनसे प्रत्यक्ष रूप से मुलाकात की हो, तो

संसार में (भाग्य) शायद ही कभी प्राप्त होता है;

यदि किसी ने मानव अवस्था प्राप्त कर ली हो,

और अच्छे धम्म का शिक्षण हो रहा हो, तो

अपने भले की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए

यह प्रयास करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन है। [228]

अच्छे धम्म को कैसे समझा जाए,

ताकि वह क्षण व्यर्थ न चला जाए?

क्योंकि जो लोग उस क्षण को चूक जाते हैं,

वे नरक में पुनर्जन्म लेकर शोक भोगते हैं।

जो यहाँ

अच्छे धम्म के निश्चित मार्ग को प्राप्त करने में असफल रहा है, 1690

उसे लंबे समय तक इसका पछतावा होगा,

जैसे कोई व्यापारी लाभ खो देता है।

अज्ञान से विवश होकर, जो व्यक्ति

अच्छे धम्म में विफल हो गया है, वह जन्म और मृत्यु के चक्र में

लंबे समय तक भटकता रहेगा ।

लेकिन जो लोग अच्छे धम्म के सुचारु प्रचार के समय मनुष्य अवस्था प्राप्त करते हैं ,

उन्होंने गुरु के वचन का पालन किया है,

या करेंगे, या अभी कर रहे हैं।

तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित मार्ग का अभ्यास करने वालों ने

संसार में सही समय पर

अतुलनीय ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्राप्त कर लिया है।

आपको बिना किसी रिसाव के, सतर्क रहते हुए, सूर्य के साक्षी , दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा सिखाए गए

संयमों में सदा सचेत (ध्यान/सती) रहना चाहिए।

मारा के क्षेत्र में भटकने वाले व्यक्ति के साथ आने वाली सभी अंतर्निहित प्रवृत्तियों को काट देने के बाद , 1691

जो लोग दोषों के विनाश को प्राप्त करते हैं,

हालांकि दुनिया में, वे उससे परे चले गए हैं।

---

30 अनुरुद्ध (अनुरुद्धमहावितक्का सं. अनुरुद्ध-महा-वितर्क)

एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान में स्थित सुमसुमारागिरा में भर्गों के बीच निवास कर रहे थे। उसी समय पूज्य अनुराधा पूर्वी बाँस उद्यान में स्थित चेतियों के बीच निवास कर रहे थे। जब पूज्य अनुराधा एकांत में अकेले थे, तब उनके मन में एक विचार आया: 1692

(1) यह धम्म (मार्ग) कम इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए है, न कि प्रबल इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए। (2) यह धम्म [229] संतुष्ट व्यक्ति के लिए है, न कि असंतुष्ट व्यक्ति के लिए। (3) यह धम्म एकांतवास का सहारा लेने वाले व्यक्ति के लिए है, न कि संगति में आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिए। (4) यह धम्म ऊर्जावान व्यक्ति के लिए है, न कि आलसी व्यक्ति के लिए। (5) यह धम्म सती ध्यान में स्थापित व्यक्ति के लिए है, न कि भ्रमित मन वाले व्यक्ति के लिए। (6) यह धम्म आत्म-मग्न व्यक्ति के लिए है, न कि असामहिता वाले व्यक्ति के लिए। (7) यह धम्म बुद्धिमान व्यक्ति के लिए है, न कि मूर्ख व्यक्ति के लिए।

भगवान (बुद्ध) ने अपने मन से पूज्य अनुराधा के मन में चल रहे विचारों को जान लिया। फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींच लेता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) सुमसुमारागिरा में भेषकला वन के हिरण उद्यान में भगों के बीच से लुप्त हो गए और पूर्वी बाँस उद्यान में चेतियों के बीच पूज्य अनुराधा के सामने पुनः प्रकट हुए। भगवान (बुद्ध) अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। पूज्य अनुराधा ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, और भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "अच्छा, अच्छा, अनुराधा! यह अच्छा है कि आपने एक महान व्यक्ति के इन विचारों पर चिंतन किया है, अर्थात्: 'यह धर्म कम इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए है, प्रबल इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए नहीं... यह धर्म बुद्धिमान व्यक्ति के लिए है, मूर्ख व्यक्ति के लिए नहीं।'" अत: अनुरुद्ध, महान व्यक्ति के इस आठवें विचार पर भी चिंतन कीजिए: (8) 'यह धम्म उन लोगों के लिए है जो इंद्रिय-भगवानत्व से मुक्त रहने में आनंद लेते हैं, न कि उन लोगों के लिए जो इंद्रिय-भगवानत्व में आनंद लेते हैं।' 1693

"जब, अनुरुद्ध, तुम किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर चिंतन करोगे, तब, जितना तुम चाहो, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, [230] तुम प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करोगे और निवास करोगे, जिसमें एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) शामिल हैं, जो विचार और परीक्षा के साथ होता है।

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर चिंतन करते हैं, तो आप अपनी इच्छा अनुसार, विचारों और मंथन के शांत होने के साथ, दूसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करेंगे और उसमें अच्छी तरह से लीन हो जाएंगे, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और यह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, बिना किसी विचार और मंथन के।

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर चिंतन करते हैं, तो अपनी इच्छा अनुसार, पीति के लुप्त होते ही, आप समभाव से, सजग (ध्यानमग्न/सती) होकर, पूर्णतः बोध करते हुए, शरीर के साथ सुख का अनुभव करेंगे; आप उस तृतीय ध्यान (सतीत्व अवस्था) में प्रवेश करेंगे और निवास करेंगे जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव से, सजग (ध्यानमग्न/सती) होकर, सुख में निवास करता है।'

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर चिंतन करते हैं, तो आप अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और उदासी के बीत जाने के साथ, चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करेंगे और उसमें निवास करेंगे, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती) की शुद्धि होती है।

"जब, अनुरुद्ध, तुम किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर चिंतन करोगे और बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छापूर्वक, इन चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लोगे जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं, तब, जब तुम संतुष्ट भाव से निवास करोगे, तुम्हारा फटा हुआ वस्त्र तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा जैसे किसी गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र को विभिन्न रंगों के वस्त्रों से भरा संदूक प्रतीत होता है; और यह तुम्हारे आनंद, राहत और सहजता का स्रोत बनेगा तथा तुम्हें निर्वाण प्राप्त करने में सहायक होगा। [231]

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर मनन करते हैं और अपनी इच्छा अनुसार इन चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करते हैं... तब, जब आप संतुष्ट भाव से रहते हैं, तो आपके भिक्षा के बचे हुए टुकड़े आपको वैसे ही प्रतीत होंगे जैसे किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को काले दानों से साफ किया हुआ और कई ग्रेवी और करी के साथ परोसा गया चावल का व्यंजन प्रतीत होता है; और वे आपके आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण प्राप्त करने के लिए सहायक होंगे।

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर मनन करते हैं और अपनी इच्छा अनुसार इन चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करते हैं... तब, जब आप संतुष्ट होकर निवास करते हैं, तो वृक्ष की तलहटी में स्थित आपका निवास स्थान आपको एक ऐसे घर के समान प्रतीत होगा जिसकी छत नुकीली हो, अंदर और बाहर से प्लास्टर की हुई हो, हवा का झोंका न आता हो, कुंडी लगी हो और खिड़कियाँ बंद हों, जैसा कि किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को प्रतीत होता है; और यह आपके आनंद, राहत और आराम का स्रोत बनेगा और आपको निर्वाण प्राप्त करने में सहायक होगा।

"जब आप किसी महान व्यक्ति के उन आठ विचारों पर चिंतन करते हैं और इच्छा अनुसार लाभ प्राप्त करते हैं... ये चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ)... तब, जब आप संतुष्ट होकर निवास करते हैं, तो आपका पुआल से बना पलंग और आसन आपको किसी गृहस्थ या गृहस्वामी के पुत्र को कालीनों, कंबलों और आवरणों से ढके हुए, हिरण की खाल के उत्कृष्ट आवरण से ढके हुए, ऊपर चंदवा और दोनों सिरों पर लाल तकियों वाले पलंग की तरह प्रतीत होगा; और यह आपके आनंद, राहत और आराम के लिए तथा निर्वाण में प्रवेश करने के लिए सहायक होगा। [232]

जब आप किसी महान व्यक्ति के इन आठ विचारों पर मनन करते हैं और अपनी इच्छा अनुसार इन चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करते हैं... तब, जब आप संतुष्ट भाव से रहते हैं, तो किण्वित गाय के मूत्र की औषधि आपको वैसी ही प्रतीत होगी जैसे घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़ की विभिन्न औषधियाँ किसी गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र को प्रतीत होती हैं; और यह आपके आनंद, राहत और सहजता के लिए तथा निर्वाण प्राप्त करने के लिए सहायक होगी।

"इसलिए, अनुराधा, तुम्हें भी अगली वर्षा ऋतु में पूर्वी बांस उद्यान में स्थित चेती जनजाति के बीच ही निवास करना चाहिए।"

"हाँ, भंते," आदरणीय अनुरुद्ध ने उत्तर दिया।

फिर, पूज्य अनुराधा को उपदेश देने के बाद, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को अंदर खींचता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) पूज्य अनुराधा के सामने पूर्वी बाँस उद्यान में चेति समुदाय के बीच अंतर्धान हो गए और सुमसुमरगिरा में भेषकला वन के हिरण उद्यान में भग समुदाय के बीच पुनः प्रकट हुए। फिर वे अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, "मैं तुम्हें, भिक्षुओं, एक महान व्यक्ति के आठ विचार सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूँगा।"

"जी हां, भंते," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, महान व्यक्ति के आठ विचार क्या हैं? (1) यह धर्म कम इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए है, न कि प्रबल इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए। (2) यह धर्म संतुष्ट व्यक्ति के लिए है, न कि असंतुष्ट व्यक्ति के लिए। (3) यह धर्म एकांतवास करने वाले व्यक्ति के लिए है, न कि संगति में आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिए। (4) यह धर्म ऊर्जावान व्यक्ति के लिए है, न कि आलसी व्यक्ति के लिए। (5) यह धर्म सती ध्यान स्थापित करने वाले व्यक्ति के लिए है, न कि भ्रमित मन वाले व्यक्ति के लिए। (6) यह धर्म समाधि में लीन व्यक्ति के लिए है, न कि असामहिता वाले व्यक्ति के लिए। (7) यह धर्म बुद्धिमान व्यक्ति के लिए है, न कि मूर्ख व्यक्ति के लिए। (8) यह धम्म (मार्ग) उसके लिए है जो इंद्रिय-प्रभ्रम से मुक्त रहने में आनंद लेता है, न कि उसके लिए जो इंद्रिय-प्रभ्रम में आनंद लेता है:

(1) जब यह कहा गया कि 'यह धम्म कम इच्छाओं वाले के लिए है, अधिक इच्छाओं वाले के लिए नहीं', तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, जब एक भिक्षु कम इच्छाओं वाला होता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे कम इच्छाओं वाला जानें।' जब वह संतुष्ट होता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे संतुष्ट जानें।' जब वह एकांतवास करता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे एकांतवास करने वाला जानें।' जब वह ऊर्जावान होता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे ऊर्जावान जानें।' जब वह सती (ध्यान) करता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे सती (ध्यान) करते हुए जानें।' जब वह समाधि (समाधि) में होता है, तो वह यह इच्छा नहीं करता: 'लोग मुझे समाधि (समाधि) में जानें।' जब वह बुद्धिमान होता है, तो वह यह नहीं चाहता: 'लोग मुझे बुद्धिमान जानें।' जब वह छल-रहित (निपापंच) में प्रसन्न होता है, तो वह यह नहीं चाहता: 'लोग मुझे छल-रहित (निपापंच) में प्रसन्न होने वाला व्यक्ति जानें।' जब यह कहा गया कि 'यह धर्म कम इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए है, न कि प्रबल इच्छाओं वाले व्यक्ति के लिए,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।

(2) जब यह कहा गया कि 'यह धम्म (मार्ग) संतुष्ट व्यक्ति के लिए है, असंतुष्ट व्यक्ति के लिए नहीं,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, एक भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधि और भोजन से संतुष्ट रहता है। जब यह कहा गया कि 'यह धम्म संतुष्ट व्यक्ति के लिए है, असंतुष्ट व्यक्ति के लिए नहीं,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।

(3) "जब यह कहा गया: 'यह धम्म एकांतवास करने वाले के लिए है, संगति में आनंद लेने वाले के लिए नहीं', तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, जब कोई भिक्षु एकांतवास करता है, तो भिक्षु, भिक्षुणियाँ (नन), पुरुष गृहस्थ अनुयायी, महिला गृहस्थ अनुयायी,

राजा, राजमंत्री, अन्य संप्रदायों के प्रमुख और अन्य संप्रदायों के शिष्य उसके पास आते हैं। प्रत्येक मामले में, एकांत की ओर झुकाव, ढलान और झुकाव वाले मन से, एकांत में रहकर, त्याग में आनंद लेते हुए, वह उन्हें एक ऐसा प्रवचन देता है जो हमेशा उन्हें विदा करने से संबंधित होता है। [234] जब यह कहा गया: 'यह धम्म एकांतवास करने वाले के लिए है, संगति में आनंद लेने वाले के लिए नहीं', तो यह इसी संदर्भ में कहा गया था।

(4) जब यह कहा गया कि 'यह धम्म ऊर्जावान व्यक्ति के लिए है, आलसी व्यक्ति के लिए नहीं', तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है; वह बलवान है; परिश्रम में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं कर रहा है। जब यह कहा गया कि 'यह धम्म ऊर्जावान व्यक्ति के लिए है, आलसी व्यक्ति के लिए नहीं', तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।

(5) जब यह कहा गया कि 'यह धम्म (मार्ग) एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए है, न कि व्याकुल मन वाले व्यक्ति के लिए।' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, एक भिक्षु सचेत है, सर्वोच्च सती ध्यान और सतर्कता से परिपूर्ण है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है। जब यह कहा गया कि 'यह धम्म एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए है, न कि व्याकुल मन वाले व्यक्ति के लिए।' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।

(6) जब यह कहा गया कि 'यह धर्म एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए है, असामहित्त व्यक्ति के लिए नहीं,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। जब यह कहा गया कि 'यह धर्म आत्म-मग्न (समाधि में लीन/समहित्त) व्यक्ति के लिए है, असामहित्त व्यक्ति के लिए नहीं,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।

(7) "जब यह कहा गया कि 'यह धम्म बुद्धिमान के लिए है, मूर्ख के लिए नहीं,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, एक भिक्षु बुद्धिमान है; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। जब यह कहा गया कि 'यह धम्म बुद्धिमान के लिए है, मूर्ख के लिए नहीं,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था। [235]

(8) जब यह कहा गया कि 'यह धम्म उस व्यक्ति के लिए है जो इंद्रिय-प्रवंच के धोखे से मुक्त रहने में आनंद लेता है, जो निपंच के धोखे से मुक्त रहने में आनंद लेता है, न कि उस व्यक्ति के लिए जो इंद्रिय-प्रवंच में आनंद लेता है, जो वृद्धि में आनंद लेता है,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? यहाँ, एक भिक्षु का मन इंद्रिय-प्रवंच के निवारण की ओर अग्रसर होता है, शांत हो जाता है, स्थिर हो जाता है और उसमें मुक्त हो जाता है। जब यह कहा गया कि 'यह धम्म उस व्यक्ति के लिए है जो इंद्रिय-प्रवंच के धोखे से मुक्त रहने में आनंद लेता है, जो इंद्रिय-प्रवंच के धोखे से मुक्त रहने में आनंद लेता है, न कि उस व्यक्ति के लिए जो इंद्रिय-प्रवंच में आनंद लेता है, जो इंद्रिय-प्रवंच में आनंद लेता है,' तो यह इसी संदर्भ में कहा गया था। कि ऐसा कहा गया था।

फिर पूज्य अनुराधा ने अगली वर्षा ऋतु पूर्वी बांस उद्यान में चैति जनजाति के बीच ही व्यतीत की। एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ, पूज्य अनुराधा ने अल्पकाल में ही इस जीवन में ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को प्रत्यक्ष ज्ञान से जान लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी जन्म-मृत्यु का कोई आरोहण नहीं है।" और पूज्य अनुराधा अरहंतों में से एक बन गए।

उस अवसर पर, जब उन्होंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया था, पूज्य अनुरुद्ध ने ये श्लोक कहे: 1695

"मेरे विचारों को समझकर,

विश्व के अद्वितीय शिक्षक ने मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के माध्यम से एक कृत्रिम शरीर धारण करके

मेरे पास आगमन किया ।"

"उन्होंने मुझे

मेरे विचारों से कहीं अधिक सिखाया:

बुद्ध, इंद्रिय जगत के धोखे से मुक्त होकर,

मुझे भी धोखे से मुक्त होने का उपदेश देते हैं।"

"उनके धम्म का ज्ञान प्राप्त करने के बाद,

मुझे उनकी शिक्षा में आनंद आया।

मैंने तीन सच्चे ज्ञान प्राप्त कर लिए हैं;

बुद्ध की शिक्षा पूरी हो गई है।" [236]

चतुर्थ. दान अनुभाग (दानवग्गो संस. दान-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 दान (दान) (1) (दाना1)

भिक्षुओं, ये आठ वरदान हैं। 1696 ये आठ क्या हैं? (1) [प्राप्तकर्ता का] अपमान करके कोई दान देता है। 3697 (2) भयवश दान देता है। (3) यह सोचकर दान देता है: 'उसने मुझे दिया' (4) यह सोचकर दान देता है: 'वह मुझे देगा' (5) यह सोचकर दान देता है: 'जीवन अच्छा है' (6) यह सोचकर दान देता है: 'मुझे भोजन मिलता है; इन लोगों को भोजन नहीं मिलता। यह उचित नहीं है कि मेरे पास भोजन है और मैं उन लोगों को न दूं जिन्हें भोजन नहीं मिलता' (7) यह सोचकर दान देता है: 'क्योंकि मैंने यह दान दिया है, मुझे प्रतिष्ठा मिलेगी' (8) मन को सुशोभित करने और उसे सुसज्जित करने के उद्देश्य से दान देता है।' 1598

---

32 दान (दान) (2) 1699 (दाना2)

आस्था, नैतिक लज्जा और लाभकारी (कुशल) दान (दान)

अच्छे व्यक्ति द्वारा अपनाए जाने वाले गुण हैं;

क्योंकि वे कहते हैं कि यही वह दिव्य मार्ग है

जिसके द्वारा व्यक्ति देवों (देवदूतों/देवताओं) के लोक में जाता है।

---

33 आधार (दानवत्थु)

भिक्षुओं, दान देने के ये आठ आधार हैं। (1) इच्छा से दान देना। (2) घृणा से दान देना। (3) मोह से दान देना। (4) भय से दान देना। (5) यह सोचकर दान देना कि 'मेरे पिता और पूर्वजों ने पहले दान दिया था; मुझे इस प्राचीन पारिवारिक परंपरा को नहीं छोड़ना चाहिए।' (6) यह सोचकर दान देना कि 'यह दान देने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, मैं एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूंगा।' (7) यह सोचकर दान देना कि 'यह दान देते समय मेरा मन शांत हो जाता है, और उल्लास और आनंद उत्पन्न होता है।' (8) मन को सुशोभित करने और उसे सुसज्जित करने के उद्देश्य से दान देना। ये दान देने के आठ आधार हैं।

---

34 मैदान (खेत्ता सं. क्षेत्र)

"भिक्षुओं, आठ कारकों से युक्त खेत में बोया गया बीज प्रचुर मात्रा में फल नहीं देता, न ही उसके फल स्वादिष्ट होते हैं और न ही उससे कोई लाभ होता है। वे आठ कारक क्या हैं?"

"यहाँ, (1) खेत में टीले और खाइयाँ हैं; (2) इसमें पत्थर और बजरी है; (3) यह खारा है; (4) इसमें गहरी क्यारियाँ नहीं हैं; (5) इसमें पानी के प्रवेश के लिए कोई प्रवेश द्वार नहीं है; (6) इसमें अतिरिक्त पानी के निकलने के लिए कोई निकास द्वार नहीं है; (7) इसमें सिंचाई नहरें नहीं हैं; और (8) इसकी कोई सीमा नहीं है। इन आठ कारकों वाले खेत में बोया गया बीज भरपूर फल नहीं देता, उसके फल स्वादिष्ट नहीं होते और उससे कोई लाभ नहीं होता।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त तपस्वियों और ब्राह्मणों को दिया गया वरदान महान फलदायी और लाभकारी नहीं होता, और न ही वह अत्यंत तेजस्वी या सर्वव्यापी होता है। वे आठ गुण क्या हैं? यहाँ, तपस्वियों और ब्राह्मणों का दृष्टिकोण, इरादा, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, ध्यान और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) गलत हैं। इन आठ गुणों से युक्त तपस्वियों और ब्राह्मणों को दिया गया वरदान महान फलदायी और लाभकारी नहीं होता, और न ही वह अत्यंत तेजस्वी या सर्वव्यापी होता है।"

"भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त खेत में बोया गया बीज प्रचुर मात्रा में फल देता है, उसके फल स्वादिष्ट होते हैं और उससे लाभ होता है। वे आठ गुण क्या हैं?"

"यहाँ, (1) खेत में टीले और खाइयाँ नहीं हैं; (2) इसमें पत्थर और बजरी नहीं है; (3) यह खारा नहीं है; (4) इसमें गहरी [238] क्यारियाँ हैं; (5) इसमें पानी के प्रवेश के लिए इनलेट हैं; (6) इसमें अतिरिक्त पानी के निकलने के लिए आउटलेट हैं; (7) इसमें सिंचाई नहरें हैं; और (8) इसकी सीमाएँ हैं। इन आठ कारकों से युक्त खेत में बोया गया बीज भरपूर फल देता है, इसके [फल] स्वादिष्ट होते हैं, और इससे लाभ होता है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, आठ गुणों से युक्त तपस्वियों और ब्राह्मणों को दिया गया वरदान अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है, और यह असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। वे आठ गुण क्या हैं? यहाँ, तपस्वी और ब्राह्मण सही दृष्टि, सही अभिकल्पना, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही चेतना और सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से युक्त होते हैं। इन आठ गुणों से युक्त तपस्वियों और ब्राह्मणों को दिया गया वरदान अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है, और यह असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है।"

जब खेत उपजाऊ हो,

बोया गया बीज उत्तम हो,

और बारिश भी पर्याप्त मात्रा में हो, तो

अनाज की पैदावार उत्तम होती है। 1702

इसका स्वास्थ्य उत्कृष्ट है;

इसकी वृद्धि भी उत्कृष्ट है;

इसका पकना उत्कृष्ट है;

इसका फल वास्तव में उत्कृष्ट है।

इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति

सदाचारी आचरण में निपुण लोगों को उत्कृष्ट भोजन प्रदान करता है,

तो इससे अनेक प्रकार की उत्कृष्टता प्राप्त होती है,

क्योंकि किया गया कार्य स्वयं उत्कृष्ट होता है।

इसलिए यदि कोई उत्कृष्टता की कामना करता है

, तो उसे इस क्षेत्र में निपुण होना चाहिए;

उसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) में निपुण लोगों का सहारा लेना चाहिए;

इस प्रकार स्वयं की संपदा (संपदा) फलती-फूलती है।

सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण,

मन की संपदा प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति,

निपुण कर्म करता है

और अच्छे कार्य को सिद्ध करता है।

संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में जानकर,

व्यक्ति को दृष्टि में संपदा प्राप्त करनी चाहिए।

मन से सिद्ध व्यक्ति

मार्ग में संपदा पर निर्भर रहकर प्रगति करता है। [239]

सभी दोषों को मिटाकर,

निर्वाण प्राप्त करके,

व्यक्ति सभी दुखों से मुक्त हो जाता है:

यही संपदा है।

---

35 दान देने के कारण पुनर्जन्म (दानुपपत्ति)

भिक्षुओं, दान देने के कारण आठ प्रकार के पुनर्जन्म होते हैं। वे आठ प्रकार कौन से हैं?

(1) "यहाँ कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण को दान देता है: भोजन और पेय; वस्त्र और वाहन; मालाएँ, सुगंध और लेप; पलंग, आवास और प्रकाश। वह जो कुछ भी देता है, बदले में कुछ अपेक्षा रखता है। वह धनी क्षत्रियों, धनी ब्राह्मणों या धनी गृहस्थों को पाँच इंद्रिय सुखों से सुसज्जित और संपन्न होकर आनंद लेते हुए देखता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, मैं धनी क्षत्रियों, धनी ब्राह्मणों या धनी गृहस्थों के साथ पुनर्जन्म लूँ!'" वह इस पर अपना मन लगाता है, इस पर दृढ़ संकल्पित होता है और इस मानसिक अवस्था को विकसित करता है। उसकी वह आकांक्षा, जो निम्नतर पर केंद्रित है, उच्चतर स्तर तक विकसित नहीं हुई है, उसे वहीं पुनर्जन्म की ओर ले जाती है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह धनी क्षत्रियों, धनी ब्राह्मणों या धनी गृहस्थों के साथ पुनर्जन्म लेता है - और यह गुणी व्यक्ति के लिए है, मैं कहता हूँ, अनैतिक व्यक्ति के लिए नहीं। गुणी व्यक्ति की हृदय की इच्छा उसकी पवित्रता के कारण पूरी होती है।

(2) कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण को दान देता है: भोजन, पेय और प्रकाश। वह जो कुछ भी देता है, बदले में कुछ अपेक्षा रखता है। उसने सुना है: "चार महान राजाओं [240] द्वारा शासित देव (देवदूत/देवता) दीर्घायु, सुंदर और सुखमय हैं।" उसके मन में विचार आता है: "हे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, मैं चार महान राजाओं द्वारा शासित देव (देवदूत/देवता) के साथ पुनर्जन्म लूँ!" वह इस पर अपना मन लगाता है, इस पर दृढ़ संकल्पित होता है और इस मनःस्थिति को विकसित करता है। उसकी यह आकांक्षा, जो निम्न स्तर पर केंद्रित है और उच्च स्तर पर विकसित नहीं हुई है, उसे वहीं पुनर्जन्म की ओर ले जाती है।" मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह चार महान राजाओं के शासन में देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है - और यह गुणी व्यक्ति के लिए है, न कि अनैतिक व्यक्ति के लिए। गुणी व्यक्ति की हृदय की इच्छा उसकी पवित्रता के कारण पूरी होती है।

(3)— (7) "कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण को उपहार देता है: भोजन और पेय... और प्रकाश। वह जो कुछ भी देता है, बदले में कुछ अपेक्षा रखता है: उसने सुना है: 'तवतिंसा देव... यम देव... तुषिता देव... सृष्टि में आनंदित होने वाले देव... दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देव दीर्घायु, सुंदर और आनंद से परिपूर्ण हैं।' उसके मन में यह विचार आता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, काश मैं दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवों के साथ पुनर्जन्म ले सकूँ!' वह इस पर अपना मन लगाता है, इस पर दृढ़ संकल्पित होता है और इस मानसिक अवस्था को विकसित करता है। उसकी वह आकांक्षा, जो निम्नतर चीज़ों पर केंद्रित है, उच्चतर स्तर पर विकसित नहीं होती, उसे वहीं पुनर्जन्म की ओर ले जाती है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह उन देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है जो दूसरों द्वारा सृजित चीज़ों को नियंत्रित करते हैं - और यह गुणी व्यक्ति के लिए है, न कि अनैतिक व्यक्ति के लिए। गुणी व्यक्ति की हृदय की इच्छा उसकी पवित्रता के कारण ही पूरी होती है।

(8) "कोई व्यक्ति किसी तपस्वी या ब्राह्मण को दान देता है: भोजन और पेय... और प्रकाश। वह जो कुछ भी देता है, बदले में कुछ अपेक्षा रखता है। उसने सुना है: 'ब्रह्मा की संगति के देव (देवदूत/देवता) [241] दीर्घायु, सुंदर और सुखमय हैं।' उसके मन में विचार आता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, मैं ब्रह्मा की संगति के देव (देवदूत/देवता) के साथ पुनर्जन्म लूँ!'" वह इस पर अपना मन लगाता है, इस पर दृढ़ संकल्पित होता है और इस मन की अवस्था को विकसित करता है। उसकी वह आकांक्षा, जो निम्न स्तर पर केंद्रित है, उच्च स्तर पर विकसित नहीं हुई है, उसे वहीं पुनर्जन्म की ओर ले जाती है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह ब्रह्मा की संगति में देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है - और यह गुणी व्यक्ति के लिए है, मैं कहता हूँ, अनैतिक व्यक्ति के लिए नहीं; कामवासना रहित व्यक्ति के लिए है, कामवासना युक्त व्यक्ति के लिए नहीं। 1705 गुणी व्यक्ति की हृदय की इच्छा उसकी पवित्रता के कारण सफल होती है।

"भिक्षुओं, दान देने के कारण ये आठ प्रकार के पुनर्जन्म होते हैं।"

---

36 गतिविधि (पुन्नकिरियावत्थु सं. पुण्य-क्रिया-वस्तु)

भिक्षुओं, पुण्य कर्म के ये तीन आधार हैं। वे तीन क्या हैं? पहला आधार दान देना है; तीसरा आधार सदाचारी आचरण है; और तीसरा आधार ध्यान का विकास है।

(1) हे भिक्षुओं, यहाँ किसी ने दान देने के पुण्य कर्मों का सीमित अभ्यास किया है; उसने सद्गुणों के आचरण का सीमित अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान साधना का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह मनुष्यों के बीच प्रतिकूल परिस्थितियों में पुनर्जन्म लेता है।

(2) किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का मध्यम स्तर तक अभ्यास किया है; उसने सदाचार के पुण्य कर्म के आधार का मध्यम स्तर तक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान के विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अनुकूल परिस्थितियों में मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेता है।

(3) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है [242]; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ चार महान राजा, जिन्होंने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है, दस मामलों में चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ हैं; दिव्य जीवनकाल, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य महिमा और दिव्य अधिकार में; और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

(4) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह तावतिंसा देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के स्वामी सक्का (इंद्र), जिन्होंने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया था, दस मामलों में तावतिंसा देवताओं (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ हैं: दिव्य जीवनकाल में... और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

(5) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, उसका यमदेवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म होता है। वहाँ युवा देव (देवदूत/देवता) सुयामा, जिसने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया था, दस मामलों में यमदेवों (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ है: दिव्य जीवनकाल में... और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

(6) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह तुषिता देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। [243] वहाँ युवा देव (देवदूत/देवता) संतूसीता, जिसने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया था, दस मामलों में तुषिता देवों (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ है: दिव्य जीवनकाल और स्पर्शनीय वस्तुओं में।

(7) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह सृष्टि में आनंदित होने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ युवा देव सुनीमिता, जिन्होंने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणपूर्ण आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया था, सृष्टि में आनंदित होने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) को दस मामलों में श्रेष्ठता प्रदान करते हैं: दिव्य जीवनकाल और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

(8) "किसी अन्य व्यक्ति ने दान देने के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; उसने सद्गुणी आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया है; परन्तु उसने ध्यान विकास के पुण्य कर्म के आधार का अभ्यास नहीं किया है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह उन देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के साथ पुनर्जन्म लेता है जो अन्य सृष्टियों के स्वामी हैं। वहाँ युवा देवता वासवत्ती, जिन्होंने दान देने के पुण्य कर्म के आधार और सद्गुणी आचरण के पुण्य कर्म के आधार का अत्यधिक अभ्यास किया था, अन्य सृष्टियों के स्वामी देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) से दस प्रकार से श्रेष्ठ हैं: दिव्य दीर्घायु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य महिमा और दिव्य अधिकार में; और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

"भिक्षुओं, ये पुण्य कर्म के तीन आधार हैं।"

---

37 अच्छे व्यक्ति के दान (सप्पूरिसादना संस्कृत: सत-पुरुष-दान)

भिक्षुओं, अच्छे व्यक्ति के ये आठ गुण हैं। [244] (1) वह शुद्ध वस्तु दान करता है; (2) वह उत्कृष्ट वस्तु दान करता है; (3) वह समय पर दान करता है; (4) वह उचित वस्तु दान करता है; (5) वह जांच-परख के बाद दान करता है; (6) वह बार-बार दान करता है; (7) दान करते समय वह विश्वास में स्थिर रहता है; और (8) दान करने के बाद वह प्रसन्न होता है। ये अच्छे व्यक्ति के आठ गुण हैं।

वह उचित समय पर शुद्ध और उत्तम, अनुमेय पेय और भोजन प्रदान करता है ; वह अक्सर पुण्य के उपजाऊ क्षेत्रों में, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीने वालों को

दान देता है ।

उन्होंने कई भौतिक वस्तुएँ दान कर दीं , फिर भी उन्हें कोई पछतावा नहीं है ।

गहन अंतर्दृष्टि (विपश्यना) वाले लोग

इस प्रकार दिए गए दान की सराहना करते हैं।

इस प्रकार उदार मन से दान-पुण्य करने वाला ,

बुद्धिमान और ज्ञानी, आस्था से परिपूर्ण व्यक्ति

एक सुखद, दोषरहित संसार में पुनर्जन्म लेता है।

38 अच्छा व्यक्ति 1707 (सप्पुरिशा संसं. सतपुरुष)

भिक्षुओं, जब किसी परिवार में कोई अच्छा व्यक्ति जन्म लेता है, तो यह अनेकों लोगों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। यह (1) उसके माता-पिता, (2) उसकी पत्नी और बच्चों, (3) उसके दासों, श्रमिकों और सेवकों, (4) उसके मित्रों और साथियों, (5) उसके दिवंगत पूर्वजों, (6) राजा, (7) देवताओं (देवदूतों), और (8) तपस्वियों और ब्राह्मणों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। जिस प्रकार एक विशाल वर्षा बादल, सभी फसलों का पोषण करते हुए, अनेकों लोगों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए प्रकट होता है, उसी प्रकार, जब किसी परिवार में कोई अच्छा व्यक्ति जन्म लेता है, तो यह अनेकों लोगों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है। यह उसके माता-पिता... [245]... तपस्वियों और ब्राह्मणों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए होता है।

घर में रहने वाला ज्ञानी व्यक्ति

वास्तव में अनेकों के कल्याण के लिए जीता है।

दिन-रात

अपने माता-पिता और पूर्वजों के प्रति सजग रहकर

, वह धम्म के अनुसार उनका आदर करता है और

अतीत में उनके द्वारा किए गए कार्यों को याद करता है।

दृढ़ आस्था वाला धर्मात्मा व्यक्ति,

उनके अच्छे गुणों को जानकर, 1710 ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीने वाले

तपस्वियों, संन्यासियों और भिक्षुओं का आदर करता है । 1711

राजा और देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के लिए लाभकारी,

अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के लिए लाभकारी,

वास्तव में, सभी के लिए लाभकारी,

अच्छे धर्म में सुस्थापित,

उन्होंने कंजूसी के कलंक को दूर कर दिया है

और एक शुभ संसार की ओर अग्रसर हैं।

---

39 धाराएँ (अभिसंदा)

भिक्षुओं, पुण्य की ये आठ धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाले, स्वर्ग की ओर ले जाने वाले - जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। 1712 वे आठ धाराएँ कौन सी हैं?

(1) "यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध की शरण में गया है। यह पुण्य की पहली धारा है, लाभकारी (कुशल) की धारा है, सुख का पोषण है - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व, स्वर्ग की ओर ले जाने वाला - जो वांछित, अभिलाषा और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है।"

(2) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य ने धम्म की शरण ली है। यह पुण्य का दूसरा मार्ग है... जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है।"

(3) "फिर, एक महान शिष्य संघ की शरण में गया है। यह पुण्य का तीसरा मार्ग है... जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। [246]

भिक्षुओं, ये पाँच वरदान हैं, महान वरदान, आदिम वरदान, लंबे समय से चले आ रहे, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी अदूषित नहीं हुए, जो न तो अदूषित हो रहे हैं और न ही भविष्य में अदूषित होंगे, और जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। वे पाँच वरदान कौन से हैं?

(4) "यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य, जीवन-विनाश का त्याग करके, जीवन-विनाश से दूर रहता है। जीवन-विनाश से दूर रहकर, वह असंख्य प्राणियों को भय, द्वेष और पीड़ा से मुक्ति दिलाता है। वह स्वयं भी भय, द्वेष और पीड़ा से असीम रूप से मुक्त होता है। यह प्रथम वरदान है, एक महान वरदान है, आदिम, प्राचीन, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी भी मिलावट रहित नहीं, जो न तो मिलावट योग्य है और न ही कभी मिलावट योग्य होगा, जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों ने अस्वीकार नहीं किया है। यह पुण्य का चौथा स्रोत है... जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, अपने कल्याण और सुख की ओर ले जाता है।"

(5) -(8) "फिर, एक श्रेष्ठ शिष्य, जो अनचाही चीज़ों को लेने का त्याग कर देता है, अनचाही चीज़ों को लेने से परहेज़ करता है... यौन दुराचार से परहेज़ करता है... झूठी वाणी से परहेज़ करता है... मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से परहेज़ करता है, जो आलस्य का आधार हैं। मदिरा, शराब और मादक पदार्थों से परहेज़ करके, जो आलस्य का आधार हैं, श्रेष्ठ शिष्य असंख्य प्राणियों को भय, शत्रुता

और कष्ट से मुक्ति दिलाता है। वह स्वयं भी भय, शत्रुता और कष्ट से असंख्य मुक्ति का आनंद लेता है। यह पाँचवाँ वरदान है, एक महान वरदान, आदिम, प्राचीन, पारंपरिक, प्राचीन, शुद्ध और कभी न मिलावट वाला, जो मिलावट रहित है और न कभी मिलावट रहित होगा, जिसे बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों ने अस्वीकार नहीं किया है। यह पुण्य की आठवीं धारा है [247]... जो ले जाती है जो वांछित, वांछनीय और सुखद हो, जो किसी के कल्याण और सुख के लिए हो।

"ये भिक्षुओं, पुण्य की आठ धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं - स्वर्गीय, सुख में परिपक्व होने वाली, स्वर्ग के अनुकूल जो वांछित, अभिलाषायुक्त और सुखद, व्यक्ति के कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं।"

---

40. बुरे चरित्र का परिणाम (दुच्चरितविपाक)

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), जीवन का विनाश, बार-बार किया गया, विकसित किया गया और विकसित किया गया, नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाता है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले के लिए जीवन का विनाश कम से कम अल्प जीवन काल की ओर ले जाता है।

(2) "जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे बार-बार प्राप्त करना, विकसित करना और खेती करना नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाता है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाला व्यक्ति जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे प्राप्त करने से कम से कम धन की हानि होती है।"

(3) बार-बार किया जाने वाला, विकसित किया जाने वाला और पोषित किया जाने वाला यौन दुराचार नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाता है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए यौन दुराचार कम से कम शत्रुता और प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा देता है।

(4) बार-बार दोहराया जाने वाला, विकसित किया जाने वाला और पोषित किया जाने वाला झूठा भाषण नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाता है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाला व्यक्ति कम से कम झूठे आरोपों को बढ़ावा देता है।

(5) "बार-बार की जाने वाली, विकसित की जाने वाली और पोषित की जाने वाली विभाजनकारी वाणी नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाती है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए विभाजनकारी वाणी कम से कम उसके मित्रों से अलग होने की ओर ले जाती है। [248]

(6) "बार-बार की जाने वाली कठोर वाणी, जिसे विकसित और पोषित किया जाता है, नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाती है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए कठोर वाणी कम से कम अप्रिय ध्वनियों को जन्म देती है।"

(7) "लगातार की जाने वाली व्यर्थ की बातें, जिन्हें बार-बार दोहराया, विकसित और पोषित किया जाता है, नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाती हैं; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति की व्यर्थ की बातें कम से कम दूसरों को उसके शब्दों पर अविश्वास करने के लिए प्रेरित करती हैं।"

(8) बार-बार शराब और मदिरा का सेवन करना, उसे बढ़ावा देना और उसकी आदत डालना, नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र की ओर ले जाता है; क्योंकि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेने वाला व्यक्ति कम से कम शराब और मदिरा का सेवन करके पागलपन की ओर अग्रसर होता है।

वी. उपोसाथा

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

41 संक्षेप में उपवास

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), आठों गुणों में पूर्ण रूप से पालन किए जाने पर उपोसथ अत्यंत फलदायी और लाभकारी होता है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। और उपोसथ आठों गुणों में पूर्ण रूप से कैसे पालन किया जाता है, जिससे वह अत्यंत फलदायी और लाभकारी, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है? 1 ™ [249]

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'अरहंत जीवन भर जीवन-हत्या का त्याग करते हैं; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, सजग और दयालु होकर वे समस्त प्राणियों के प्रति करुणामयी निवास करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी जीवन-हत्या का त्याग करूँगा; दंड और शस्त्र त्यागकर, सजग और दयालु होकर मैं भी समस्त प्राणियों के प्रति करुणामयी निवास करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।' यह इसका पहला गुण है।"

(2) “जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे अनचाही चीज़ों को लेने से परहेज़ करते हैं; वे केवल दी गई चीज़ों को ही ग्रहण करते हैं, केवल दी गई चीज़ों की ही अपेक्षा रखते हैं और चोरी के विचार किए बिना ईमानदारी से रहते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी अनचाही चीज़ों को लेने से परहेज़ करूँगा; मैं केवल दी गई चीज़ों को ही ग्रहण करूँगा, केवल दी गई चीज़ों की ही अपेक्षा रखूँगा और चोरी के विचार किए बिना ईमानदारी से रहूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा। यह इसका दूसरा गुण है।”

(3) "अरहंत जब तक जीवित रहते हैं, वे यौन क्रिया का त्याग करते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, एकांत में रहते हैं और यौन संबंध से परहेज करते हैं, जो आम आदमी का आचरण है। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी यौन क्रिया का त्याग करूँगा और ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, एकांत में रहूँगा और यौन संबंध से परहेज करूँगा, जो आम आदमी का आचरण है। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा। यह इसका तीसरा गुण है।"

(4) “जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे झूठे वचनों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं; वे सत्य बोलते हैं, सत्य का पालन करते हैं; वे विश्वसनीय और भरोसेमंद होते हैं, संसार को धोखा नहीं देते। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी झूठे वचनों का त्याग करूँगा और उनसे दूर रहूँगा; [250] मैं सत्य बोलूँगा, सत्य का पालन करूँगा; मैं विश्वसनीय और भरोसेमंद रहूँगा, संसार को धोखा नहीं दूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।” यह इसका चौथा गुण है।

(5) "अरहंत अपने जीवन भर आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं। आज रात और दिन भर मैं भी आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करूँगा और उनसे दूर रहूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका पाँचवाँ गुण है।

(6) "अरहंत जीवन भर दिन में एक बार भोजन करते हैं, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी दिन में एक बार भोजन करूँगा, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका छठा गुण है।

(7) "अरहंत जब तक जीवित रहते हैं, वे नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करते हैं, और माला धारण करके तथा इत्र और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करूँगा, और माला धारण करके तथा इत्र और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका सातवाँ गुण है।

(8) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग त्याग देते हैं और उनसे परहेज़ करते हैं; वे एक छोटे पलंग या पुआल की चटाई पर लेटते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग त्याग दूँगा और उनसे परहेज़ करूँगा; मैं एक छोटे पलंग या पुआल की चटाई पर लेटूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा [251] और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका आठवाँ गुण है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार उपोसथ का आठों तत्वों में पूर्ण रूप से पालन किया जाता है, जिससे यह महान फलदायी और लाभदायक, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है।"

---

42 उपवास विस्तार से (वित्थतुपोसथ सं. विस्तार उपोसथ)

"भिक्षुओं, आठों गुणों में पूर्ण रूप से पालन किए जाने पर उपोसथ अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। और उपोसथ का आठों गुणों में पूर्ण रूप से पालन कैसे किया जाता है, जिससे वह अत्यंत फलदायी और लाभदायक, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे जीवन-हत्या का त्याग करते हैं और उससे दूर रहते हैं; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, वे सजग और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी निवास करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी जीवन-हत्या का त्याग करूँगा और उससे दूर रहूँगा; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, सजग और दयालु होकर, मैं भी सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी निवास करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।' यह इसका पहला गुण है..."

[जैसे कि 8:41 से नीचे तक:] ...

(8) “अरहंत अपने जीवन भर ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग नहीं करते; वे एक साधारण पलंग या चटाई पर लेटते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग नहीं करूँगा; मैं एक साधारण पलंग या चटाई पर लेटूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।” यह इसका आठवाँ गुण है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, उपोसथ को आठों कारकों में पूर्ण रूप से देखा जाता है, जिससे यह महान फल और लाभ का होता है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। [252]

"यह किस हद तक महान फलदायी और लाभदायक है? यह किस हद तक असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी है? मान लीजिए कि कोई इन सोलह महान देशों पर संभगवानता और राजत्व का प्रयोग करे, जो सात अनमोल तत्वों से भरपूर हैं, अर्थात् अंगन, मगध, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेति, वंग, कुरु, पाचल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवंती, गांधार और कंबोजन: तो यह उन आठ तत्वों में पूर्ण उपोसथ अनुष्ठान के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि मानवीय राजत्व दिव्य सुख की तुलना में तुच्छ है।"

चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं के लिए एक रात और एक दिन पचास मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवताओं का जीवनकाल पाँच सौ दिव्य वर्ष होता है। हे भिक्षुओं, जो पुरुष या स्त्री इन आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथा का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेना संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।

तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के लिए एक रात और एक दिन सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल एक हजार दिव्य वर्ष होता है। [253] हे भिक्षुओं, जो पुरुष या स्त्री इन आठों कारकों में पूर्ण उपोसथा का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेना संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।

यम देवों के लिए एक रात और एक दिन दो सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवों का जीवनकाल दो हजार दिव्य वर्ष होता है। हे भिक्षुओं, जो पुरुष या स्त्री इन आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथा का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ यम देवों के साथ पुनर्जन्म संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि मनुष्य का राजत्व दिव्य सुख के तुल्य तुच्छ है।

तुषिता देवों के लिए एक रात और एक दिन चार सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवों का जीवनकाल चार हजार दिव्य वर्ष होता है। हे भिक्षुओं, जो पुरुष या स्त्री इन आठों गुणों में पूर्ण उपोसथा का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ तुषिता देवों के साथ पुनर्जन्म संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि मनुष्य का राजत्व दिव्य सुख के तुल्य तुच्छ है।

सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के लिए एक रात और एक दिन आठ सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवों (देवदूतों/देवताओं) का जीवनकाल आठ हजार दिव्य वर्ष होता है। हे भिक्षुओं, जो स्त्री या पुरुष [254] इन आठों कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद, सृष्टि में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेना संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि दिव्य सुख की तुलना में मानव राजत्व तुच्छ है।

“दूसरों द्वारा सृजित वस्तुओं को नियंत्रित करने वाले देवताओं के लिए एक रात और एक दिन सोलह सौ मानव वर्षों के बराबर होता है; ऐसे तीस दिन मिलकर एक महीना बनाते हैं, और ऐसे बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं। उन देवताओं का जीवनकाल सोलह हजार दिव्य वर्ष होता है। हे भिक्षुओं, जो पुरुष या स्त्री इन आठों तत्वों में पूर्ण उपोसथा का पालन करते हैं, उनके लिए मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, दूसरों द्वारा सृजित वस्तुओं को नियंत्रित करने वाले देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेना संभव है। इसी संदर्भ में मैंने कहा था कि मनुष्य का राजत्व दिव्य सुख के तुल्य तुच्छ है।”

किसी को जीवित प्राणियों को नहीं मारना चाहिए या जो नहीं दिया गया है उसे नहीं लेना चाहिए; [1714]

किसी को झूठ नहीं बोलना चाहिए या नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए;

किसी को यौन गतिविधि से, व्यभिचार से बचना चाहिए;

किसी को रात में या अनुचित समय पर भोजन नहीं करना चाहिए।

किसी को भी माला नहीं पहननी चाहिए और न ही इत्र लगाना चाहिए;

उसे जमीन पर बिछी हुई चटाई या नीची पलंग पर सोना चाहिए; कहते हैं कि यही बुद्ध द्वारा घोषित

अष्टम उपोसथा है , जिन्होंने दुखों का अंत प्राप्त किया था।

सूर्य और चंद्रमा जहाँ तक घूमते हैं,

प्रकाश बिखेरते हैं, देखने में इतने सुंदर,

अंधकार को दूर करने वाले, आकाश में विचरण करते हुए,

वे आकाश में चमकते हैं, दिशाओं को रोशन करते हैं। [255]

इस ब्रह्मांड में जो भी धन-संपत्ति विद्यमान है -

मोती, रत्न, उत्तम बेरिल,

सींग का सोना, पर्वतीय सोना

और हतक नामक प्राकृतिक सोना - वे आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथा के

सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं , ठीक वैसे ही जैसे तारों के सभी समूह चंद्रमा की चमक के बराबर नहीं होते। इसलिए एक गुणी स्त्री या पुरुष,

आठों कारकों में उपोसथा का पूर्ण अवलोकन करने

और पुण्य को सुख में परिणत करने के बाद,

निष्कलंक व्यक्ति स्वर्गिक अवस्था में प्रवेश करता है।

---

43 विशाखा (1)

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब विशाखा मिगारमाता भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "विशाखा, आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन करने से महान फल और लाभ मिलता है, वह असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी है। और आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन कैसे किया जाता है, जिससे वह महान फल और लाभ देता है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी है?"

[सभी 8:42 के अनुसार, आयतों सहित।] [256-258]

---

44 वसेत्था

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तभी उनके एक अनुयायी वसेत्था भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"आठों के पूर्ण स्वरूप में पालन किया जाने वाला उपोसथा, अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। और आठों तत्वों के पूर्ण स्वरूप में पालन किया जाने वाला उपोसथा किस प्रकार है, जिससे वह अत्यंत फलदायी और लाभदायक, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है?"

[सभी आयतें 8:42 के अनुसार हैं।]

जब यह कहा गया, तो पुरुष गृहस्थ अनुयायी वसेत्था ने भगवान (बुद्ध) से कहा: [259] "भंते, यदि मेरे प्रिय संबंधी और परिवार के सदस्य आठों कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे उन्हें दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि सभी क्षत्रिय आठों कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे उन्हें दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि सभी ब्राह्मण... वेस... शुद्ध आठों कारकों में पूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे उन्हें दीर्घकालिक कल्याण और सुख प्राप्त होगा।"

"ऐसा ही है, वसेत्था, ऐसा ही है! यदि सभी क्षत्रिय आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि सभी ब्राह्मण... वेस्स... शुद्ध आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे उन्हें लंबे समय तक

कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि यह संसार अपने देवताओं, मार और ब्रह्मा सहित, यह जनसंख्या अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, अपने देवताओं और मनुष्यों सहित, आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इससे संसार को लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। यदि ये विशाल साल के वृक्ष आठों गुणों से परिपूर्ण उपोसथ का पालन करें, तो इन विशाल साल के वृक्षों को लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा, [यदि वे चुन सकें]। 1715 तो फिर मनुष्य के लिए कितना अधिक होगा!"

---

45 बोज्जा

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब उनकी एक अनुयायी, बोज्झा, भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "बोज्झा, आठों गुणों में परिपूर्ण, उपोसथ महान फलदायी और लाभकारी है, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी है। ..." [260]

[सभी 8:42 के अनुसार, आयतों सहित।] [261-62]

---

46 अनुरुद्ध

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य अनुराधा दिन बिताने के लिए एकांत में गए हुए थे, तभी कई सुंदर शरीर वाले देवता उनके पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: 1716

"भन्ते अनुरुद्ध, हम [263] सुखद शरीर वाले देवता (देवदूत) तीन चीजों पर भगवानत्व और नियंत्रण रखते हैं। हम जो चाहें वह रंग तुरंत प्राप्त कर लेते हैं। हम जो चाहें वह सुख तुरंत प्राप्त कर लेते हैं। और हम जो चाहें वह आवाज तुरंत प्राप्त कर लेते हैं। हम सुखद शरीर वाले देवता (देवदूत) इन तीनों चीजों पर भगवानत्व और नियंत्रण रखते हैं।"

तब पूज्य अनुराधा ने सोचा, "ये सभी देवता नीले रंग के हो जाएं, नीले रंग के वस्त्र और नीले आभूषण धारण करें।" पूज्य अनुराधा के इस विचार को जानकर वे सभी देवता नीले रंग के हो गए, नीले रंग के वस्त्र और नीले आभूषण धारण कर लिए। तब पूज्य अनुराधा ने सोचा, "ये सभी देवता पीले... लाल... सफेद रंग के हो जाएं, सफेद रंग के वस्त्र और सफेद आभूषण धारण कर लें।" पूज्य अनुराधा के इस विचार को जानकर वे सभी देवता सफेद रंग के हो गए, सफेद रंग के वस्त्र और सफेद आभूषण धारण कर लिए।

फिर उन देवताओं में से एक ने गाया, एक ने नृत्य किया और एक ने उंगलियां चटकाईं। जैसे, जब कोई संगीत पंचक अच्छी तरह से प्रशिक्षित होता है और उसकी लय अच्छी तरह से समन्वित होती है, 1717 और उसमें कुशल संगीतकार होते हैं, तो उसका संगीत उत्कृष्ट, मोहक, प्यारा, आकर्षक और मदहोश करने वाला होता है, [264] ठीक उसी तरह उन देवताओं का प्रदर्शन उत्कृष्ट, मोहक, प्यारा, आकर्षक और मदहोश करने वाला था। तब पूज्य अनुराधा ने अपनी इंद्रियों को समेट लिया। तब वे देवता, [यह सोचकर:] "गुरु अनुराधा इसका आनंद नहीं ले रहे हैं," (देवता) वहीं से गायब हो गए। 1718

फिर, शाम को, पूज्य अनुराधा एकांतवास से बाहर आए और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "हे भंते, मैं दिन बिताने के लिए एकांतवास में गया था... [उन्होंने जो कुछ भी हुआ, उसका वर्णन इस प्रकार किया:] [265] ...तब वे देवता (देवदूत), [यह सोचकर:] 'गुरु अनुराधा इसका आनंद नहीं ले रहे हैं', वहीं गायब हो गए।"

"भंते, एक स्त्री में कितने गुण होने चाहिए ताकि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह मनभावन शरीर वाले देवताओं (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म ले सके?"

"यदि अनुरुद्ध में आठ गुण हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह स्त्री अनुरुद्ध, सौम्य शरीर वाले देवताओं (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेती है। वे आठ गुण कौन से हैं? 1719"

(1) "यहाँ, अनुरुद्ध, उसके माता-पिता उसे जिस भी पति को देते हैं - ऐसा वे उसकी भलाई की इच्छा से, उसके कल्याण की तलाश में, उस पर दया करके, उसके प्रति करुणा से कार्य करके करते हैं - वह स्त्री उसके सामने उठती है और उसके बाद लौटती है, जो कुछ भी करने की आवश्यकता होती है, वह करती है, उसका आचरण सुखद होता है और उसकी वाणी मनभावन होती है।

(2) वह अपने पति द्वारा आदर किए जाने वाले लोगों— अपने माता-पिता, तपस्वियों और ब्राह्मणों— का आदर, सम्मान और आदर करती है, और जब वे आते हैं तो उन्हें बैठने के लिए आसन और जल प्रदान करती है।

(3) "वह अपने पति के घरेलू कामों में कुशल और मेहनती है, चाहे वह बुनाई हो या सिलाई; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनके बारे में सही निर्णय रखती है।

(4) "वह पता लगाती है कि उसके पति के घरेलू सहायकों [266] - चाहे वे दास हों, संदेशवाहक हों या मजदूर हों - ने क्या किया है और क्या नहीं किया है; वह बीमारों की स्थिति का पता लगाती है; और वह प्रत्येक को भोजन का उचित हिस्सा वितरित करती है।

(5) "वह अपने पति द्वारा घर लाई गई किसी भी आय की रक्षा और संरक्षण करती है - चाहे वह पैसा हो, अनाज हो, चांदी हो या सोना 1720 - और वह फिजूलखर्ची करने वाली, चोर, अपव्ययी या उसकी कमाई को बर्बाद करने वाली नहीं है।

(6) "वह एक गृहस्थ महिला अनुयायी है जिसने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली है।

(7) "वह सदाचारी है, जीवन के विनाश से दूर रहती है, जो कुछ दिया नहीं गया है उसे लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं।

(8) "वह उदार है, जो कंजूसी के दाग से रहित हृदय से घर में रहती है, खुलकर उदार है, खुले हाथों से देने वाली है, त्याग में आनंदित है, दान के प्रति समर्पित है, देने और साझा करने में आनंदित है।

"इन आठ गुणों से युक्त, अनुराधा नामक स्त्री, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सौम्य शरीर वाले देवताओं (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेती है।"

वह अपने पति से घृणा नहीं करती,

वह व्यक्ति जो निरंतर उसका सहारा बनता है,

जो हमेशा उत्साह और लगन से

उसकी हर इच्छा पूरी करता है। 1721

न ही एक अच्छी स्त्री

ईर्ष्या से प्रेरित होकर अपने पति को डांटती है; 1722

बुद्धिमान स्त्री

उन सभी लोगों का आदर करती है जिनका उसका पति आदर करता है।

वह सुबह जल्दी उठती है, लगन से काम करती है,

घरेलू नौकरों का प्रबंधन करती है;

वह अपने पति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करती है

और उसकी कमाई की संपत्ति की रक्षा करती है।

जो स्त्री

अपने पति की इच्छा और कामनाओं का पालन करते हुए अपने कर्तव्यों को पूरा करती है, वह "मनभावन

देवों" (मनप देवों) के बीच पुनर्जन्म लेती है । [267]

---

47 विशाखा (2)

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब विशाखा मिगारमाता भगवान (बुद्ध) के पास आईं। . . . तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"विशाखा, आठ गुणों से युक्त एक स्त्री, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सौम्य शरीर वाले देवताओं (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेती है। वे आठ गुण कौन से हैं?"

[जैसा कि 8:46 में है, जिसमें ये आयतें भी शामिल हैं।] [268]

---

48 नकुला

एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन के हिरण उद्यान में स्थित सुमसुमारागिरा में भगों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहिणी नकुलमाता भगवान (बुद्ध) के पास आईं... तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"नकुलमाता, आठ गुणों से युक्त एक स्त्री, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सौम्य शरीर वाले देवताओं (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेती है। वे आठ गुण कौन से हैं?"

[जैसा कि 8:46 में है, जिसमें ये आयतें भी शामिल हैं।] [269]

---

49 वर्तमान विश्व (1) 1723

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित मिगारमाता के महल में सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब विशाखा मिगारमाता भगवान (बुद्ध) के पास आईं। . . . तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"विशाखा, चार गुणों से युक्त एक स्त्री, वर्तमान संसार में विजय की ओर अग्रसर है और इस संसार में उसका जीवन सफल होता है। 1724 वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, एक स्त्री अपने काम में सक्षम है; वह घरेलू नौकरों का प्रबंधन करती है; वह अपने पति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करती है; और वह उसकी कमाई की रक्षा करती है।"

(1) "और विशाखा, एक स्त्री अपने काम में किस प्रकार सक्षम होती है? यहाँ, एक स्त्री अपने पति के घरेलू कामों में, चाहे वह बुनाई हो या सिलाई, कुशल और मेहनती होती है; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनके बारे में सही निर्णय लेती है। इसी प्रकार एक स्त्री [270] अपने काम में सक्षम होती है।"

(2) "और एक स्त्री घरेलू नौकरों का प्रबंधन कैसे करती है? यहाँ, एक स्त्री यह पता लगाती है कि उसके पति के घरेलू सहायकों—चाहे वे दास हों, संदेशवाहक हों या श्रमिक—ने क्या किया है और क्या नहीं किया है; वह बीमारों की स्थिति का पता लगाती है; और वह प्रत्येक को भोजन का उचित हिस्सा वितरित करती है। इस प्रकार एक स्त्री घरेलू नौकरों का प्रबंधन करती है।"

(3) "और एक स्त्री अपने पति के प्रति कैसे प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करती है? यहाँ, एक स्त्री ऐसा कोई दुराचार नहीं करेगी जिसे उसका पति अप्रिय समझे, चाहे इसके लिए उसे अपने जीवन का भी बलिदान देना पड़े। इसी प्रकार एक स्त्री अपने पति के प्रति प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करती है।"

(4) "और एक स्त्री अपने पति की कमाई की रक्षा कैसे करती है? यहाँ, एक स्त्री अपने पति द्वारा घर लाई गई हर आय की रक्षा करती है—चाहे वह धन हो या अनाज, चाँदी हो या सोना—और वह उसकी कमाई को फिजूलखर्ची, चोरी, बर्बादी या लुटाने वाली नहीं होती। इस प्रकार एक स्त्री अपने पति की कमाई की रक्षा करती है।"

"इन चार गुणों से युक्त महिला वर्तमान संसार में विजय की ओर अग्रसर होती है और इस संसार में उसका जीवन सफल होता है।"

"विशाखा, चार अन्य गुणों से युक्त स्त्री परलोक में विजय की ओर अग्रसर होती है और परलोक में उसका जीवन सफल होता है। वे चार गुण कौन से हैं? यहाँ, स्त्री आस्था में निपुण, सदाचारी व्यवहार में निपुण, उदारता में निपुण और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में निपुण है।"

(5) "और हे विशाखा, एक स्त्री आस्था में कैसे सिद्ध होती है? यहाँ, एक स्त्री आस्था से परिपूर्ण होती है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखती है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में सिद्ध हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इसी प्रकार एक स्त्री आस्था में सिद्ध होती है।"

(6) "और एक स्त्री सद्‌गुणी आचरण में कैसे निपुण होती है? [271] यहाँ, एक स्त्री जीवन के विनाश से दूर रहती है... शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं। इसी प्रकार एक स्त्री सद्‌गुणी आचरण में निपुण होती है।

(7) "और एक स्त्री उदारता में कैसे निपुण होती है? यहाँ, एक स्त्री घर में कंजूसी के दाग से रहित हृदय से रहती है, खुलकर उदार, खुले हाथों वाली, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और साझा करने में प्रसन्न होती है। इसी प्रकार एक स्त्री उदारता में निपुण होती है।"

(8) "और स्त्री किस प्रकार पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्ध होती है? यहाँ, स्त्री बुद्धिमान होती है; वह उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त होती है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति जानती है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है तथा दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाती है। 1725 इसी प्रकार स्त्री पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्ध होती है।"

"इन चार गुणों से युक्त, विशाखा नामक स्त्री परलोक में विजय की ओर अग्रसर है और परलोक में उसका जीवन सफल होता है।"

वह अपने काम को कुशलतापूर्वक संभालने और

घरेलू नौकरों का प्रबंधन करने में सक्षम है,

अपने पति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करती है

और उसकी कमाई की संपत्ति की रक्षा करती है।

आस्था से परिपूर्ण, सद्‌गुणों से युक्त,

दानशील और कंजूसी से रहित,

वह निरंतर उस मार्ग को शुद्ध करती है

जो भविष्य के जीवन में सुरक्षा की ओर ले जाता है।

वे

इन आठ गुणों से युक्त किसी भी स्त्री को

गुणी, धम्म में दृढ़ और

सत्य की वक्ता कहते हैं।

सोलह पहलुओं में निपुण, [1726]

आठ कारकों में पूर्ण,

ऐसी गुणी स्त्री गृहस्थ अनुयायी

एक सुखद देव (देवदूत/ईश्वर) लोक में पुनर्जन्म लेती है।

---

50 वर्तमान विश्व (2)

"भिक्षुओं (साधुओं), चार गुणों से युक्त स्त्री वर्तमान संसार में विजय की ओर अग्रसर होती है और इस संसार में उसका जीवन सफल होता है। वे चार गुण क्या हैं? [272]

[इसके बाद जो लिखा है वह 8:49 के समान है, जिसमें श्लोक भी शामिल हैं, लेकिन भिक्षुओं को संबोधित है।] [273—274]

दूसरा पचास

I. गौतमी अनुभाग (बुद्ध की पालक माता और मौसी)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

51 गौतमी [1727]

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। 1728 में महाप्रजापति गौतमी भगवान (बुद्ध) के पास गईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुईं और उनसे कहा:

"भंते, यह अच्छा होगा यदि स्त्रियाँ तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सकें।" 1729

"बस करो, गौतमी! तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में स्त्रियों के गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाने का समर्थन मत करो।"

दूसरी बार...। तीसरी बार महाप्रजापति गौतमी ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, यह अच्छा होगा यदि स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन से निकलकर तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में चलकर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सकें।"

"बस करो, गौतमी! तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में स्त्रियों के गृहस्थ जीवन से विमुख होकर संन्यासी जीवन में जाने का समर्थन मत करो।" 1730

तब महाप्रजापति गौतमी ने यह सोचकर कि "भगवान (बुद्ध) स्त्री को गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते," दुखी और व्याकुल होकर रो पड़ीं। फिर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु में अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय बिताने के बाद, भगवान (बुद्ध) वैशाली की यात्रा पर निकल पड़े। यात्रा करते-करते वे अंततः वैशाली पहुँचे, जहाँ उन्होंने विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले महल में निवास किया।

तब महाप्रजापति गौतमी ने अपने बाल कटवाए, गेरुए वस्त्र धारण किए और कई शाक्य स्त्रियों के साथ वैशाली की ओर चल पड़ीं। 1731 [275] अंततः वेशाली पहुँचीं और विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में गईं। फिर, सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ, दुखी और उदास, आँसू भरी आँखों से रोते हुए, वे प्रवेश द्वार के बाहर खड़ी हो गईं। पूज्य आनंद ने उन्हें इस हालत में वहाँ खड़े देखा और उनसे कहा:

"गोतामी, तुम सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ, दुखी और उदास होकर, आँसू भरी आँखों से रोते हुए प्रवेश द्वार के बाहर क्यों खड़ी हो?"

"मैं ऐसा इसलिए करता हूँ, भंते आनंद, क्योंकि भगवान (बुद्ध) महिलाओं को गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते हैं।"

"तो फिर, गौतमी, तुम यहीं रुको [एक पल के लिए] 1732 जब तक मैं भगवान (बुद्ध) से महिलाओं को भिक्षुणी बनने की अनुमति देने की प्रार्थना करता हूँ।"

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "भंते, महाप्रजापति गौतमी सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ द्वार के बाहर खड़ी हैं, दुखी और व्याकुल हैं, आँसू भरी आँखों से रो रही हैं, क्योंकि भगवान (बुद्ध) महिलाओं को संन्यासिनी बनने की अनुमति नहीं देते। भंते, यह अच्छा होगा यदि महिलाएं गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म (मार्ग) और अनुशासन के मार्ग पर चलकर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सकें।"

"बस करो, आनंद! तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में स्त्रियों के गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाने का समर्थन मत करो।"

दूसरी बार... तीसरी बार पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, यह अच्छा होगा यदि स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन से निकलकर तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन व्यतीत कर सकें।"

"बस करो, आनंद! तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में गृहस्थ जीवन में स्त्रियों के जाने का पक्ष मत लो।" [276]

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया, "भगवान (बुद्ध) महिलाओं को गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते। मुझे भगवान (बुद्ध) से महिलाओं के संन्यासी जीवन में जाने का कोई और तरीका माँगना चाहिए।"

तब पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, यदि कोई स्त्री गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन व्यतीत करे, तो क्या उसके लिए सात जन्मों के ऋतुओं (सोतपत्ति), एक जन्म के ऋतु (सकदागामी), अनागामी और अरहंतत्व के ऋतुओं को प्राप्त करना संभव होगा?"

"हाँ, ऐसा ही होगा, आनंदा।"

"हे भंते, यदि किसी स्त्री के लिए सात जन्मों (सोतपत्ति) के फल, एक बार जन्म लेने के फल, अनागामी (पृथ्वी में पुनर्जन्म न लेने) के फल और अरहंतत्व के फल को प्राप्त करना संभव हो, और यह देखते हुए कि महाप्रजापति गौतमी ने भगवान (बुद्ध) की बहुत सहायता की थी - उनकी मौसी, धाय और पालक माता बनकर, जिन्होंने उनकी माता के निधन के बाद उन्हें अपने स्तन से पाला-पोसा - तो यह अच्छा होगा यदि स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन से निकलकर तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में संन्यासी जीवन की ओर अग्रसर हो सकें।"

"आनंद, यदि महाप्रजापति गौतमी आदर के आठ सिद्धांतों को स्वीकार करती हैं, तो यही उनकी पूर्ण दीक्षा होगी।"

(1) "सौ वर्षों से दीक्षा प्राप्त भिक्षुणी को उसी दिन दीक्षा प्राप्त भिक्षु को प्रणाम करना चाहिए, उनके लिए उठना चाहिए, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करना चाहिए और उनके प्रति विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। इस सिद्धांत का जीवन भर सम्मान, आदर, सम्मान और आदर किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।" 1735

(2) "भिक्षुणी को ऐसे स्थान पर वर्षा ऋतु में प्रवेश नहीं करना चाहिए जहाँ भिक्षु न हों। 1736 इस सिद्धांत का भी जीवन भर सम्मान, आदर, आदर और पूजा की जानी चाहिए और इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(3) "प्रत्येक आधे महीने में एक भिक्षुणी (भिक्षुणी) को भिक्षुओं के संघ से दो बातों के बारे में पूछना चाहिए: उपोसथ के [दिन] के बारे में, और उपदेश के लिए आने के बारे में। 1737 [277] इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान, आदर और पूजा की जानी चाहिए, और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(4) "जब कोई भिक्षुणी वर्षा ऋतु का पालन करती है, तो उसे दोनों संघों के समक्ष तीन बातों के संबंध में सुधार के लिए आमंत्रित करना चाहिए: देखी, सुनी या संदेह की गई किसी भी बात के संबंध में। 1738 इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान और आदर किया जाना चाहिए और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(5) "एक भिक्षुणी (भिक्षुणी) जिसने गंभीर अपराध किया है, उसे दोनों संघों के समक्ष आधे महीने की दंड अवधि का पालन करना चाहिए। 1739 इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान, आदर और पूजा की जानी चाहिए और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(6) "एक परिवीक्षाधीन जिसने छह सिद्धांतों में दो वर्ष का प्रशिक्षण पूरा कर लिया है, उसे दोनों संघों से पूर्ण दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। 1740 इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान, आदर और पूजा की जानी चाहिए और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

(7) "भिक्षुणी को किसी भी प्रकार से भिक्षु का अपमान या अपशब्द नहीं कहना चाहिए। इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान और आदर किया जाना चाहिए और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।"

(8) "आज से, आनंद, भिक्षुणियों को भिक्षुओं को उपदेश देने से मना किया गया है, परन्तु भिक्षुओं को भिक्षुणियों को उपदेश देने से मना नहीं किया गया है। इस सिद्धांत का भी जीवन भर आदर, सम्मान और आदर किया जाना चाहिए और इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।"

"आनंद, यदि महाप्रजापति गौतमी आदर के इन आठ सिद्धांतों को स्वीकार कर लें, तो यही उनकी पूर्ण दीक्षा होगी।" 1741

तब पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से आदर के इन आठ सिद्धांतों को सीखकर महाप्रजापति गौतमी के पास जाकर उनसे कहा: "हे गौतमी, यदि आप आदर के इन आठ सिद्धांतों को स्वीकार कर लें, तो यही आपकी पूर्ण दीक्षा होगी।"

(1) "सौ वर्षों से दीक्षा प्राप्त भिक्षुणी को उसी दिन दीक्षा प्राप्त भिक्षु को प्रणाम करना चाहिए, उसके लिए उठना चाहिए, आदरपूर्वक उसे प्रणाम करना चाहिए और उसके प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए। इस सिद्धांत का जीवन भर सम्मान, आदर, आदर और पूजा की जानी चाहिए और इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। ..."

(8) "आज से भिक्षुणियों को भिक्षुओं को उपदेश देने से मना किया गया है, [278] परन्तु भिक्षुओं को भिक्षुणियों को उपदेश देने से मना नहीं किया गया है। इस सिद्धांत का भी आदर, सम्मान, आदर और पूजा की जानी चाहिए, और जीवन भर इसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।"

"हे गौतमी, यदि तुम सम्मान के इन आठ सिद्धांतों को स्वीकार कर लेते हो, तो यही तुम्हारा पूर्ण दीक्षा संस्कार होगा।"

"भंते आनंद, यदि कोई स्त्री या पुरुष - युवा, यौवनवान और आभूषणों का शौकीन, स्नान किया हुआ - नीले कमल, चमेली या लिली के फूलों की माला प्राप्त करता है, तो वह उसे दोनों हाथों से ग्रहण करके अपने सिर पर धारण करेगा। उसी प्रकार, मैं भी जीवन भर इन आठ आदर के सिद्धांतों का उल्लंघन न करने के लिए स्वीकार करता/करती हूँ।"

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, महाप्रजापति गौतमी ने आदर के आठ सिद्धांतों को जीवन भर उल्लंघन न करने योग्य माना है।"

हे आनंद, यदि स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धर्म एवं अनुशासन के मार्ग पर संन्यासी जीवन न अपनातीं, तो ब्रह्मचर्य काल दीर्घकालीन होता; उत्तम धर्म (मार्ग) एक हजार वर्षों तक भी स्थिर रहता। परन्तु हे आनंद, क्योंकि स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन छोड़कर तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धर्म एवं अनुशासन के मार्ग पर संन्यासी जीवन अपना चुकी हैं, इसलिए अब ब्रह्मचर्य काल दीर्घकालीन नहीं रहेगा; उत्तम धर्म केवल पाँच सौ वर्षों तक ही चलेगा।

"जिस प्रकार, आनंद, 1744 में छुपकर चोरी करने वाले चोर आसानी से उन परिवारों पर हमला कर देते हैं जिनमें बहुत सी महिलाएं और कम पुरुष होते हैं, उसी प्रकार जिस भी धम्म (मार्ग) और अनुशासन में महिलाएं गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश प्राप्त करती हैं, वह ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) अधिक समय तक नहीं टिकता।"

"जैसे, आनंद, जब पहाड़ी चावल का खेत पक जाता है, [279] यदि उस पर विरंजन रोग का हमला होता है, 1745 तो वह पहाड़ी चावल का खेत लंबे समय तक नहीं टिकता, वैसे ही जिस भी धम्म और अनुशासन में महिलाएं गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करती हैं, वह ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) लंबे समय तक नहीं टिकता।

"हे आनंद, जिस प्रकार गन्ने का खेत पक जाने पर यदि उसमें जंग लगने की बीमारी लग जाए, तो वह गन्ने का खेत अधिक समय तक नहीं टिकता, उसी प्रकार स्त्रीयाँ जिस भी धम्म और अनुशासन में गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करती हैं, वह ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) अधिक समय तक नहीं टिकता।"

"हे आनंद, जिस प्रकार कोई व्यक्ति बड़े जलाशय के चारों ओर बांध बनाता है ताकि पानी बह न जाए, उसी प्रकार मैंने भिक्षुणियों के लिए आठ आदर के सिद्धांत निर्धारित किए हैं, जिनका जीवन भर उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।" (1747)

---

52 (2) उपदेश

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, भिक्षुणियों के उपदेशक के रूप में स्वीकृत होने के लिए एक भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए?" 1748

"आनंद, एक भिक्षु में भिक्षुणियों के उपदेशक के रूप में स्वीकृत आठ गुण होने चाहिए। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, आनंद, एक भिक्षु गुणी है। . . . [जैसा कि 8:2 §4 में है] प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनमें प्रशिक्षण लेता है।

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है... [जैसा कि 8:2 §5 में है]... और दृष्टि से अच्छी तरह से समझ लिया है।"

(3) "दोनों पतिमोक्खाओं को उन्हें विस्तार से अच्छी तरह से संप्रेषित किया गया है, अच्छी तरह से विश्लेषण किया गया है, अच्छी तरह से महारत हासिल की गई है, नियमों और उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है।

(4) "वह अच्छी प्रस्तुति वाला एक अच्छा वक्ता है; वह ऐसे भाषण से संपन्न है जो परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला है।

(5) "वह धम्म प्रवचन द्वारा भिक्षुणियों (नन) के संघ को निर्देश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में सक्षम है।

(6) "वह अधिकांश भिक्षुणियों (नवजातियों) को प्रसन्न और प्रिय है।"

(7) "उसने पहले कभी भी गेरुए वस्त्र धारण करने वाली किसी स्त्री के विरुद्ध गंभीर अपराध नहीं किया है जो भगवान (बुद्ध) के अधीन [सन्यासी जीवन में] चली गई हो।"

(8) "उसे बीस वर्ष या उससे अधिक की वरिष्ठता प्राप्त है।

"भिक्षुणियों के उपदेशक के रूप में स्वीकृत होने के लिए एक भिक्षु में ये आठ गुण होने चाहिए।"

---

53 संक्षिप्त [799]

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब महाप्रजापति गौतमी भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुईं और उनसे कहा: "भंते, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास कर सकूँ।"

"गौतमी, जिन बातों के बारे में तुम जानते हो, वे ये हैं: 'ये बातें (1) वासना की ओर ले जाती हैं, वैराग्य की ओर नहीं; (2) बंधन की ओर ले जाती हैं, वैराग्य की ओर नहीं; (3) निर्माण की ओर ले जाती हैं, विध्वंस की ओर नहीं; (4) प्रबल इच्छाओं की ओर ले जाती हैं, इच्छाओं की कमी की ओर नहीं; (5) असंतोष की ओर ले जाती हैं, संतोष की ओर नहीं; (6) संगति की ओर ले जाती हैं, एकांत की ओर नहीं; (7) आलस्य की ओर ले जाती हैं, ऊर्जा के सृजन की ओर नहीं; (8) पालन-पोषण में कठिनाई की ओर ले जाती हैं, पालन-पोषण में आसानी की ओर नहीं'। तुम्हें निश्चित रूप से यह पहचानना चाहिए: 'यह धम्म नहीं है; यह अनुशासन नहीं है; यह गुरु की शिक्षा नहीं है।'" लेकिन, गौतमी, जिन बातों को तुम जानती हो: 'ये बातें (1) वैराग्य की ओर ले जाती हैं, न कि वासना की ओर; (2) अनासक्ति की ओर ले जाती हैं, न कि बंधन की ओर; (3) विघटन की ओर ले जाती हैं, न कि निर्माण की ओर; (4) इच्छाओं की अल्पता की ओर ले जाती हैं, न कि प्रबल इच्छाओं की ओर; (5) संतोष की ओर ले जाती हैं, न कि असंतोष की ओर; (6) एकांत की ओर ले जाती हैं, न कि संगति की ओर; (7) ऊर्जा के संचार की ओर ले जाती हैं, न कि आलस्य की ओर; (8) पालन-पोषण में आसानी की ओर ले जाती हैं, न कि पालन-पोषण में कठिनाई की ओर', तुम्हें निश्चित रूप से यह पहचानना चाहिए: 'यही धम्म है; यही अनुशासन है; यही गुरु की शिक्षा है।'

---

54 (4) दिघजानु

एक बार भगवान (बुद्ध) कक्करपट्टा नामक कोलियन नगर के पास कोलियनों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ युवा कोलियन दिघजानु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

"भंते, हम गृहस्थ हैं, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं, बच्चों से भरे घर में रहते हैं। हम काशी का चंदन इस्तेमाल करते हैं; हम माला, सुगंध और लेप लगाते हैं; हमें सोना और चांदी मिलता है। हे भगवान (बुद्ध) हमें धम्म का ऐसा उपदेश दें जिससे इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में हमारा कल्याण और सुख प्राप्त हो।"

"हे ब्याग्घपज्जा, 1750, ये चार चीजें हैं जो इस वर्तमान जीवन में कुलवासी के कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं। वे चार चीजें क्या हैं? पहल में संपदा, रक्षा में संपदा, अच्छी मित्रता और संतुलित जीवन।"

(1) "और पहल में संपदा क्या है? यहाँ, चाहे कोई भी व्यक्ति अपने जीविका का साधन चाहे खेती, व्यापार, पशुपालन, तीरंदाजी, सरकारी सेवा या किसी अन्य शिल्प के माध्यम से कमाता हो, वह कुशल और मेहनती होता है; वह उसे ठीक से चलाने और व्यवस्थित करने के लिए उसके बारे में सही निर्णय लेता है। इसे पहल में संपदा कहा जाता है।"

(2) "और संरक्षण में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी अपने द्वारा पहल और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) से अर्जित धन की रक्षा और पहरा देता है, जो उसने अपनी भुजाओं के बल से, अपने माथे के पसीने से, धार्मिक रूप से अर्जित किया है, और सोचता है: 'मैं राजाओं और चोरों को इसे लेने से, आग को इसे जलाने से, बाढ़ को इसे बहा ले जाने से, और अप्रसन्न उत्तराधिकारियों को इसे लेने से कैसे रोक सकता हूँ?' इसे संरक्षण में संपदा कहा जाता है।"

(3) और सच्ची मित्रता क्या है? यहाँ, जिस भी गाँव या कस्बे में कोई कुलवासी रहता है, वह गृहस्थों या उनके पुत्रों के साथ संगति करता है—चाहे वे युवा हों लेकिन सद्गुणों से परिपूर्ण हों, या वृद्ध हों लेकिन सद्गुणों से परिपूर्ण हों—जो आस्था, सदाचार, उदारता और ज्ञान (पन्न) में निपुण हों; वह उनसे वार्तालाप करता है और उनके साथ चर्चा करता है। जहाँ तक वे आस्था में निपुण हैं, वह आस्था में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे सदाचार में निपुण हैं, वह सद्गुणों में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे उदारता में निपुण हैं, वह उदारता में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे ज्ञान में निपुण हैं, वह ज्ञान (पन्न) में उनकी निपुणता (संपदा) का अनुकरण करता है। इसे सच्ची मित्रता कहते हैं।

(4) "संतुलित जीवन क्या है? यहाँ, एक कबीले का सदस्य अपनी आय और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो बहुत खर्चीला और न ही बहुत मितव्ययी, [जागरूक] 'इस तरह मेरी आय मेरे व्यय से अधिक होगी, न कि इसके विपरीत।' जिस प्रकार एक मूल्यांकक या उसका प्रशिक्षु तराजू को उठाकर जानता है: 'यह इतना नीचे गया है, इतना ऊपर गया है, उसी प्रकार एक कबीले का सदस्य अपनी आय और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो बहुत खर्चीला और न ही बहुत मितव्ययी, [जागरूक]: 'इस तरह मेरी आय मेरे व्यय से अधिक होगी [283] न कि इसके विपरीत।'

"यदि इस कुलवासी की आमदनी कम है लेकिन वह विलासितापूर्ण जीवन जीता है, तो दूसरे उसके बारे में कहेंगे: 'यह कुलवासी अपनी संपत्ति को अंजीर खाने वाले की तरह उड़ाता है।' 175 ' लेकिन यदि उसकी आमदनी अधिक है लेकिन वह मितव्ययी जीवन जीता है, तो दूसरे उसके बारे में कहेंगे: 'यह कुलवासी तो स्वयं को भूखा भी रख सकता है।' 1752 लेकिन संतुलित जीवन तब कहलाता है जब कोई कुलवासी अपनी आमदनी और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो बहुत अधिक खर्चीला और न ही बहुत कम खर्चीला, [जागरूक]: 'इस तरह मेरी आमदनी मेरे व्यय से अधिक होगी, न कि इसके विपरीत।'"

इस प्रकार अर्जित धन के अपव्यय के चार स्रोत हैं: व्यभिचार, शराबखोरी, जुआ और बुरी दोस्ती, बुरे साथी, बुरे सहयोग। जैसे मान लीजिए एक बड़ा जलाशय है जिसमें चार प्रवेश द्वार और चार निकास द्वार हैं, और एक व्यक्ति प्रवेश द्वारों को बंद कर दे और निकास द्वारों को खोल दे, और पर्याप्त बारिश न हो, तो जलाशय में पानी बढ़ने के बजाय घटने की उम्मीद की जा सकती है; उसी प्रकार इस प्रकार अर्जित धन के अपव्यय के चार स्रोत हैं: व्यभिचार... बुरे साथी।

इस प्रकार अर्जित धन के संचय के चार स्रोत हैं: व्यक्ति स्त्री-व्यंग, शराबखोरी और [284] जुए से बचता है, और अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छी सहेलियाँ विकसित करता है। जैसे कि एक बड़ा जलाशय हो जिसमें चार प्रवेश द्वार और चार निकास द्वार हों, और एक व्यक्ति प्रवेश द्वारों को खोलता और निकास द्वारों को बंद करता हो, और पर्याप्त वर्षा होती हो; तो जलाशय में पानी घटने के बजाय बढ़ने की उम्मीद की जा सकती है, उसी प्रकार अर्जित धन के संचय के चार स्रोत हैं: व्यक्ति स्त्री-व्यंग से बचता है... और अच्छी मित्रता

विकसित करता है।

"ये चार चीजें हैं जो इसी जीवन में कुलवासी के कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं।"

"हे ब्याग्घपज्जा, ये चार अन्य बातें हैं जो कुल के सदस्य के भविष्य के जन्मों में कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं। वे चार क्या हैं? आस्था में सिद्धि (संपदा), सदाचार में सिद्धि (संपदा), उदारता में सिद्धि (संपदा), और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा)।"

(5) "और आस्था में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी आस्था से संपन्न है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं... देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' इसे आस्था में संपदा कहा जाता है।"

(6) "और सद्गुणों में संपदा क्या है? यहाँ, कुल का व्यक्ति जीव-जंतुओं की हत्या से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज़ करता है। इसे सद्गुणों में संपदा कहा जाता है।"

(7) "और उदारता में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी अपने घर में कंजूसी के दाग से रहित हृदय से रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और साझा करने में आनंदित। इसे उदारता में संपदा कहा जाता है।"

(8) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में संपदा क्या है? [285] यहाँ, कुल का व्यक्ति बुद्धिमान है; वह उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) में संपदा कहा जाता है।"

"ये चार अन्य चीजें हैं जो वंश के सदस्य के भविष्य के जन्मों में कल्याण और सुख की ओर ले जाती हैं।"

अपने कामों में उद्यमशील,

अपनी योजनाओं में सतर्क,

अपने जीवन जीने के तरीके में संतुलित,

वह अपनी कमाई हुई संपत्ति की रक्षा करता है।

आस्था से परिपूर्ण, सद्गुणों में निपुण,

दानशील और कंजूसी से रहित,

वह निरंतर उस मार्ग को शुद्ध करता है

जो भविष्य के जन्मों में सुरक्षा की ओर ले जाता है।

इस प्रकार गृहस्थ जीवन के सच्चे साधक के ये आठ गुण,

जिन्हें 1753 में सही नाम दिया गया है,

दोनों अवस्थाओं में सुख की ओर ले जाते हैं:

इस जीवन में भलाई और कल्याण

तथा भविष्य के जन्मों में सुख।

इस प्रकार गृहस्थ जीवन जीने वालों

की उदारता और पुण्य में वृद्धि होती है।

---

55 उज्जया

तब ब्राह्मण उज्जैन भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, मैं विदेश जाना चाहता/चाहती हूँ। गुरु गौतम मुझे उन बातों का धम्म सिखाएँ जो इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में मेरे कल्याण और सुख की ओर ले जाएँगी।" [इसके बाद का भाग 8:54 के समान है, जिसमें चारों श्लोक शामिल हैं, लेकिन यह ब्राह्मण को संबोधित है।] [286-89]

---

56 संकट [1754] (भया)

भिक्षुओं (मठवासियों), (1) 'खतरा' कामुक सुखों का पर्याय है। (2) 'पीड़ा' कामुक सुखों का पर्याय है। (3) 'रोग' कामुक सुखों का पर्याय है। (4) 'फोड़ा' कामुक सुखों का पर्याय है। (5) 'तीर' कामुक सुखों का पर्याय है। (6) 'बंधन' कामुक सुखों का पर्याय है। (7) 'दलदल' कामुक सुखों का पर्याय है। (8) 'गर्भ' कामुक सुखों का पर्याय है।

और हे भिक्षुओं, 'खतरा' कामुक सुखों का नाम क्यों है? जो व्यक्ति कामुक राग से उत्तेजित होकर, इच्छा और वासना से बंधा हुआ है, वह न तो इस वर्तमान जीवन के खतरे से मुक्त होता है [290] और न ही भविष्य के जन्मों के खतरे से; इसलिए 'खतरा' कामुक सुखों का नाम है।

और 'पीड़ा'... 'रोग'... 'फोड़ा'... 'तीर'... 'बंधन'... 'दलदल'... 'गर्भाशय' इंद्रिय सुखों के लिए एक पदनाम क्यों है? जो व्यक्ति इंद्रिय-राग से उत्तेजित होता है, इच्छा और वासना से बंधा होता है, वह न तो इस जीवन से संबंधित गर्भ से मुक्त होता है और न ही भविष्य के जन्मों से संबंधित गर्भ से; 1755 इसलिए 'गर्भाशय' इंद्रिय सुखों के लिए एक पदनाम है।

खतरा, पीड़ा और बीमारी,

फोड़ा, तीर का वार और बंधन,

दलदल और गर्भ:

ये सांसारिक सुखों का वर्णन करते हैं

जिनसे मनुष्य जुड़ा रहता है।

सुखदायक चीजों में लीन होकर

वह फिर से गर्भ में चला जाता है।

लेकिन जब कोई भिक्षु उत्साही होता है

और पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) की उपेक्षा नहीं करता,

तो वह

इस दयनीय दलदल से ऊपर उठ जाता है; वह पुनर्जन्म और वृद्धावस्था में गिर चुकी

इस कांपती हुई आबादी का अवलोकन करता है ।

---

57 भेंट के योग्य (1) (अहुनेय्या1)

"भिक्षुओं में आठ गुण होते हैं; वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होते हैं; वे संसार के लिए अतुलनीय पुण्य के क्षेत्र हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुणी है। . . प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करने के बाद, वह उनमें प्रशिक्षण लेता है।

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से समझ लिया है।"

(3) "उसके अच्छे दोस्त हैं, अच्छे साथी हैं, अच्छे सहपाठी हैं।

(4) "वह सही दृष्टिकोण वाला है, [291] सही परिप्रेक्ष्य रखता है।

(5) वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुख के निवास स्थान हैं।

(6) "वह अपने अनेक पिछले जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) के निवासों को याद करता है, अर्थात् एक पुनर्जन्म, दो पुनर्जन्म... [जैसा कि 8:11 में है]... इस प्रकार वह अपने अनेक पिछले जन्मों के निवासों को उनके पहलुओं और विवरणों के साथ याद करता है।"

(7) "ईश्वरीय दृष्टि से, जो शुद्ध है और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है... [जैसा कि 8:11 में है]... वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं।"

(8) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

---

58 भेंट के योग्य (2) (अहुनेय्या2)

"भिक्षुओं में आठ गुण होते हैं; वे दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट चढ़ाने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य होते हैं; वे संसार के लिए अतुलनीय पुण्य के क्षेत्र हैं। वे आठ गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुणी है। . . . प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनमें प्रशिक्षण लेता है।

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से समझ लिया है।"

(3) "उसने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; 1756 वह प्रयास में मजबूत/दृढ़ है, और लाभकारी (कुशल) गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है।

(4) "वह वनवासी है, जो एकांत आवासों का सहारा लेता है।

(5) "उसने असंतोष और प्रसन्नता पर विजय प्राप्त कर ली है; उसने असंतोष को जब भी उत्पन्न हुआ, उस पर विजय प्राप्त कर ली।"

(6) "उसने भय और आतंक को पराजित किया है; जब भी भय और आतंक उत्पन्न हुए, उसने उन पर विजय प्राप्त की। [292]

(7) वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुख के निवास स्थान हैं।

(8) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"इन आठ गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता है और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र होता है।"

59 आठ व्यक्ति (1) (पुग्गला1 सं. पुरुष-युगल)

भिक्षुओं, ये आठ व्यक्ति दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य हैं; ये संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं। कौन से आठ? सोतपत्ति (सात जन्मों का पुनर्जन्म) जो सोतपत्ति के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; सकदागामी (एक जन्म का पुनर्जन्म) जो एक जन्म के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; अनागामी (एक जन्म का पुनर्जन्म) जो अनागामी (एक जन्म का पुनर्जन्म) के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; अरहंत (अरहंत पद के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं। ये आठ व्यक्ति, भिक्षुओं, दान, आतिथ्य, भेंट और आदर के योग्य हैं; ये संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं।

मार्ग का अभ्यास करने वाले चार (1758)

और फल में स्थापित चार:

यही वह सही संघ है

जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) और सदाचार में रचित है। [1759]

जो लोग त्याग के लिए तत्पर हैं,

जो जीव पुण्य की तलाश में हैं,

जो पुण्य अर्जित करने में परिपक्व होता है ,

संघ को जो दिया जाता है वह बहुत फलदायी होता है।

---

60 आठ व्यक्ति (2) (पुग्गला1 सं. पुरुष-युगल)

"भिक्षुओं, ये आठ व्यक्ति दान के योग्य हैं... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र। कौन से आठ? [293] सोतपत्ति (सात जन्मों का पुनर्जन्म) का प्रवाह-प्रवेश करने वाला... सोतपत्ति (सात जन्मों का पुनर्जन्म) का फल प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला... अरहंत, अरहंतत्व का फल प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला। ये आठ व्यक्ति, भिक्षुओं, दान के योग्य हैं... संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र।"

मार्ग का अभ्यास करने वाले चार

और फल में स्थापित चार:

प्राणियों में आठ व्यक्ति -

यही श्रेष्ठ संघ है।

जो लोग त्याग करने के लिए तत्पर हैं,

जो जीव पुण्य की तलाश में हैं,

जो अर्जित कर्मों में फलदायी होते हैं, उनके लिए

यहाँ जो कुछ दिया गया है वह बहुत फलदायी है।

II. भूकंप (भूमिकला)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

61 इच्छा (इच्छा)

"भिक्षुओं, संसार में आठ प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से आठ प्रकार हैं?"

(1) "यहाँ, जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसके मन में लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है। 1761 फिर भी, वह लाभ प्राप्त करने में असफल रहता है। लाभ की कमी के कारण वह दुखी होता है, व्याकुल होता है और विलाप करता है; वह अपनी छाती पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है [294] जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और प्रयास करता है, लेकिन उसे प्राप्त न कर दुखी और विलाप करता है: वह अच्छे धम्म से विमुख हो गया है।"

(2) परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और परिश्रम करता है। वह लाभ प्राप्त कर लेता है। उस लाभ के कारण वह मदमस्त हो जाता

है, आलसी हो जाता है और आलस्य में लीन हो जाता है। इसे लाभ की इच्छा रखने वाला भिक्षु कहा जाता है जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और परिश्रम करता है, और उसे प्राप्त करके मदमस्त और आलसी हो जाता है: वह उत्तम धम्म से विमुख हो गया है।

(3) परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित, प्रयास और परिश्रम नहीं करता। उसे लाभ प्राप्त नहीं होता। लाभ न होने के कारण वह दुखी, व्याकुल और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और भ्रमित हो जाता है। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित, प्रयास और परिश्रम नहीं करता, और उसे प्राप्त न होने पर दुखी और विलाप करता है: वह उत्तम धम्म से विमुख हो गया है।

(4) परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता और न ही परिश्रम करता है। फिर भी, वह लाभ प्राप्त कर लेता है। उस लाभ के कारण वह मदमस्त हो जाता है, आलसी हो जाता है और आलस्य में लीन हो जाता है। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता और न ही परिश्रम करता है, और लाभ प्राप्त करने पर मदमस्त और आलसी हो जाता है: वह उत्तम धम्म से विमुख हो गया है।

(5) "परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और लाभ प्राप्त करने का परिश्रम करता है। फिर भी, [295] वह लाभ प्राप्त करने में असफल रहता है। वह उस लाभ की कमी के कारण शोक, पीड़ा और विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर रोता नहीं और भ्रमित नहीं होता। इसे लाभ की इच्छा रखने वाला भिक्षु कहा जाता है जो स्वयं को प्रेरित करता है/प्रयास करता है और लाभ प्राप्त करने का परिश्रम करता है, और उसे प्राप्त न करने पर शोक और विलाप नहीं करता: वह अच्छे धम्म से विमुख नहीं हुआ है।"

(6) परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और लाभ प्राप्त करने का परिश्रम करता है। वह लाभ प्राप्त करता है। वह न तो मदहोश होता है, न आलसी होता है और न ही उस लाभ के कारण आलस्य में लिप्त होता है। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है जो स्वयं को प्रेरित करता है, प्रयास करता है और लाभ प्राप्त करने का परिश्रम करता है, और उसे प्राप्त करने के बाद भी मदहोश या आलसी नहीं होता; वह उत्तम धम्म से विमुख नहीं हुआ है।

(7) परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है। वह लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता, और न ही कोई परिश्रम करता है। उसे लाभ प्राप्त नहीं होता। वह लाभ न होने के कारण शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, और विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर रोता नहीं और भ्रमित नहीं होता। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता, और न ही कोई परिश्रम करता है, और लाभ न मिलने पर शोक और विलाप नहीं करता: वह उत्तम धम्म से विमुख नहीं हुआ है।

(8) "परन्तु जब कोई भिक्षु एकांतवास में स्वतंत्र रूप से रहता है, तो उसमें लाभ की इच्छा उत्पन्न होती है: वह लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता और न ही परिश्रम करता है। फिर भी, वह लाभ प्राप्त कर लेता है। वह उस लाभ के कारण मदमस्त नहीं होता, आलसी नहीं होता और न ही आलस्य में डूबता है। इसे लाभ का इच्छुक भिक्षु कहा जाता है जो लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित नहीं करता, प्रयास नहीं करता और न ही परिश्रम करता है, और लाभ प्राप्त करने के बाद भी मदमस्त और आलसी नहीं होता: वह उत्तम धम्म से विमुख नहीं हुआ है।"

"ये दुनिया में विद्यमान पाए जाने वाले आठ प्रकार के व्यक्ति हैं।" [296]

---

62 सक्षम (आलम)

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), छह गुणों से युक्त, एक भिक्षु स्वयं और दूसरों दोनों को लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है। 15,62 वे छह गुण क्या हैं?

यहां, (i) भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला होता है; (ii) वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम होता है; (iii) वह मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज करता है; (iv) उसने धम्म का अर्थ और उसे समझ लिया है और वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है; (v) वह एक अच्छा वक्ता होता है, जिसकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण होती है; (vi) वह अपने साथी भिक्षुओं को शिक्षा देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है। इन छह गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं और दूसरों दोनों को लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है।

(2) "पाँच गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं और दूसरों दोनों को लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है। वे पाँच गुण कौन से हैं?"

यहां, भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला नहीं होता। हालांकि, (i) वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम होता है; (ii) वह मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज करता है; (iii) उसने धम्म का अर्थ और उसे समझ लिया होता है और वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है; (iv) वह एक अच्छा वक्ता होता है और अर्थ को अभिव्यक्त करने में कुशल होता है; (v) वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है। इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं और दूसरों दोनों को लाभ पहुंचा सकता है।

(3) "चार गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं को लाभ पहुँचा सकता है, परन्तु दूसरों को नहीं। वे चार गुण कौन से हैं?"

"यहाँ, (i) एक भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझ लेता है; (ii) वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम होता है; [297] (iii) वह मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज करता है; (iv) उसने धम्म का अर्थ और उसे समझ लिया है और धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। यद्यपि, वह एक अच्छा वक्ता नहीं होता जिसकी बोलने की शैली अच्छी हो/न ही वह परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण वाणी से संपन्न होता है; और वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने वाला नहीं होता। उपरोक्त चार गुणों से युक्त एक भिक्षु स्वयं को लाभ पहुँचा सकता है, लेकिन दूसरों को नहीं।"

(4) "चार गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुँचा सकता है, लेकिन स्वयं को नहीं। वे चार गुण कौन से हैं?"

यहां, (i) एक भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझ लेता है; (ii) वह सीखी हुई शिक्षाओं को याद रखने में सक्षम होता है। हालांकि, वह याद रखी हुई शिक्षाओं के अर्थ की जांच नहीं करता, और न ही उसने अर्थ और धम्म को समझा है तथा न ही वह धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। (iii) फिर भी, वह एक अच्छा वक्ता होता है जिसकी प्रस्तुति अच्छी होती है... अर्थ को अभिव्यक्त करता है; और (iv) वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है। उपरोक्त चार गुणों से युक्त एक भिक्षु दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है, लेकिन स्वयं को नहीं।

(5) "तीन गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं को लाभ पहुंचा सकता है, लेकिन दूसरों को नहीं। वे तीन गुण क्या हैं?"

"यहाँ, भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला नहीं होता। यद्यपि, (i) वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम होता है, (ii) वह मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज करता है, और (iii) उसने धम्म का अर्थ और उसे समझ लिया होता है तथा धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। परन्तु वह अच्छे वक्ता और प्रभावशाली वक्ता नहीं होता... [298] ... अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला; और वह ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश दे, प्रोत्साहित करे, प्रेरित करे और प्रसन्न करे। उपरोक्त तीन गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं को लाभ पहुँचा सकता है, परन्तु दूसरों को नहीं।"

(6) "तीन गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुँचा सकता है, लेकिन स्वयं को नहीं। वे तीन गुण क्या हैं?"

यहां, भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से समझने वाला नहीं होता, परन्तु (i) वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम होता है। यद्यपि वह मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज नहीं करता, और न ही वह अर्थ और धम्म को समझता है, और न ही धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। (ii) फिर भी, वह एक अच्छा वक्ता होता है और अर्थ को अच्छी तरह से अभिव्यक्त

करता है; और (iii) वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है। उपरोक्त तीन गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है, परन्तु स्वयं को नहीं।

(7) "दो गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं को लाभ पहुँचा सकता है, लेकिन दूसरों को नहीं। वे दो गुण क्या हैं?"

यहां, भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से नहीं समझ पाता और न ही वह सीखी हुई शिक्षाओं को याद रख पाता है। हालांकि, (i) वह अपने द्वारा याद रखी गई शिक्षाओं के अर्थ की खोज करता है, और (ii) वह अर्थ और धम्म को समझ लेता है और धम्म के अनुसार अभ्यास करता है। लेकिन वह अच्छे वक्ता के रूप में अर्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं होता; और न ही वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने वाला होता है। उपरोक्त दो गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं को लाभ पहुंचा सकता है, लेकिन दूसरों को नहीं।

(8) "दो गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुँचा सकता है, लेकिन स्वयं को नहीं। वे दो गुण क्या हैं?"

"यहाँ, भिक्षु लाभकारी (कुशल) शिक्षाओं को शीघ्रता से ग्रहण करने वाला नहीं होता; वह सीखी हुई शिक्षाओं को मन में धारण करने में सक्षम नहीं होता; वह मन में रखी हुई शिक्षाओं के अर्थ की खोज नहीं करता; [299] और वह धम्म के अर्थ और उसके अनुसार अभ्यास नहीं करता। परन्तु (i) वह अच्छे वक्ता और प्रभावशाली वक्ता होता है... अर्थ को अभिव्यक्त करता है; और (ii) वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है। उपरोक्त दो गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है, परन्तु स्वयं को नहीं।"

---

63 संक्षेप में (संखित्त सं. संक्षिप्त)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

"भंते, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग) सिखा दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"यहाँ कुछ खोखले लोग इसी प्रकार मुझसे विनती करते हैं, परन्तु जब धम्म की व्याख्या हो जाती है, तो वे केवल मेरे पीछे-पीछे चलने के बारे में सोचते हैं।" 1764

"भंते, हे भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग) सिखाएं। हे सुगत (भगवान बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म सिखाएं। शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूं; शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूं।"

"तो फिर, भिक्षु, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मेरा मन दृढ़ और आंतरिक रूप से स्थिर रहेगा। उत्पन्न होने वाली अकुशल अवस्थाएँ मेरे मन को वश में नहीं करेंगी।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(1) "हे भिक्षु, जब तुम्हारा मन दृढ़ और आंतरिक रूप से स्थिर हो, और उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाएँ तुम्हारे मन को वश में न करें, तब तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: [300] 'मैं प्रेम और करुणा द्वारा मन की मुक्ति का विकास और पोषण करूँगा, इसे अपना साधन और आधार बनाऊँगा, इसे पूरा करूँगा, इसे सुदृढ़ करूँगा और इसे ठीक से ग्रहण करूँगा।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का विकास और अभ्यास कर लें, तो आपको इस समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का विचार और परीक्षण सहित विकास करना चाहिए; आपको इसका बिना विचार के, केवल परीक्षण सहित विकास करना चाहिए; आपको इसका बिना विचार और परीक्षण के विकास करना चाहिए। आपको इसका आनंद (पीति) के साथ विकास करना चाहिए; आपको इसका आनंद (पीति) के बिना विकास करना चाहिए; आपको इसका आराम के साथ विकास करना चाहिए; और आपको इसका उदासीनता (भीतर में समा जाना/उपेक्खा) के साथ विकास करना चाहिए। 1765

(2) — (4) "हे भिक्षु, जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) विकसित कर लें और इसे अच्छी तरह से विकसित कर लें, तो आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं करुणा द्वारा मन की मुक्ति, परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति, उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति को विकसित और पोषित करूँगा, इसे अपना साधन और आधार बनाऊँगा, इसे आगे बढ़ाऊँगा, इसे सुदृढ़ करूँगा और इसे ठीक से ग्रहण करूँगा।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) विकसित और पोषित कर लें, तो आपको इस एकाग्रता को विचार और परीक्षण के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे बिना विचार के, केवल परीक्षण के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे बिना विचार और परीक्षण के विकसित करना चाहिए। आपको इसे आनंद (पीति) के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे आनंद (पीति) के बिना विकसित करना चाहिए; आपको इसे सुख के साथ विकसित करना चाहिए; और आपको इसे उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के साथ विकसित करना चाहिए।

(5) "हे भिक्षु, जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) को अच्छी तरह से विकसित कर लें, तो आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी में) तल्लीन रहूंगा, पूरी तरह से बोध करते हुए, सती होते हुए, संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) विकसित और पोषित कर लें, तो आपको इस समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) को विचार और परीक्षण के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे बिना विचार के, केवल परीक्षण के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे बिना विचार और परीक्षण के विकसित करना चाहिए। आपको इसे आनंद (पीति) के साथ विकसित करना चाहिए; आपको इसे आनंद (पीति) के बिना विकसित करना चाहिए; आपको इसे सुख के साथ विकसित करना चाहिए; और आपको इसे उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) के साथ विकसित करना चाहिए।

(6)— (8) "हे भिक्षु, जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) विकसित कर लें और इसे भली-भांति विकसित कर लें, तो आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं संवेदनाओं (वेदना) को संवेदनाओं (वेदना) में देखते हुए (अनुपसी में) ध्यान में रहूँगा... मन को मन में... घटनाओं (धर्म) को घटनाओं में, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए, सचेत (ध्यान/सती) रहते हुए, संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का विकास और अभ्यास कर लें, तो आपको इस समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का विचार और परीक्षण सहित विकास करना चाहिए; आपको इसका विचार रहित, केवल परीक्षण सहित विकास करना चाहिए; आपको इसका विचार और परीक्षण रहित विकास करना चाहिए। आपको इसका आनंद (पीति) सहित विकास करना चाहिए; आपको इसका आनंद (पीति) रहित विकास करना चाहिए; आपको इसका आराम सहित विकास करना चाहिए; और आपको इसका उदासीनता (भीतर में विलीनता/उपेक्खा) सहित विकास करना चाहिए।

"हे भिक्षु, जब आप इस प्रकार समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) को अच्छी तरह से विकसित कर लेते हैं, तब आप जहाँ भी चलेंगे, सहजता से चलेंगे; जहाँ भी खड़े होंगे, सहजता से खड़े रहेंगे; जहाँ भी बैठेंगे, सहजता से बैठेंगे; जहाँ भी लेटेंगे, सहजता से लेटेंगे।"

भगवान (बुद्ध) से ऐसा उपदेश पाकर, वह भिक्षु अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर मुख करके उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। 767 फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग और दृढ़ निश्चय के साथ, थोड़े ही समय में उस भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से इसी जीवन में ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) की उस अतुलनीय पूर्णता को स्वयं अनुभव कर लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करने लगे। [302] उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गए।

---

64 गया (गयासिसा)

एक बार भगवान (बुद्ध) गयासिस के दिन गया में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी भी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं था, तब मैंने केवल एक (दिव्य) प्रकाश (भीतर) देखा।"

लेकिन मैंने (दिव्य) रूपों को नहीं देखा' 768

(2) "मेरे मन में यह विचार आया, हे भिक्षुओं: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश को देख सकूँ और (दिव्य) रूपों को भी देख सकूँ, तो मेरी यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' 1769 अतः बाद में, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश को देखा और (दिव्य) रूपों को भी देखा।

फिर भी मैंने उन देवताओं (देवदूतों) के साथ मेलजोल नहीं रखा, उनसे बातचीत नहीं की और न ही उनके साथ किसी चर्चा में भाग लिया।

(3) "हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश का अनुभव करूँ और (दिव्य) रूपों को देखूँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे संवाद करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ, तो ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' अतः बाद में, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश का अनुभव किया और (दिव्य) रूपों को देखा, और मैंने उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे संवाद किया और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ।"

फिर भी मुझे उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में पता नहीं था: 'ये देवता (देवदूत) देवों (देवदूतों/ईश्वरों) के इस या उस क्रम से हैं।' [303]

(4) "हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश को अनुभव करूँ और (दिव्य) रूपों को देखूँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे संवाद करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जानूँ: 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं', तो ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' अतः एक बार, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश को अनुभव किया और (दिव्य) रूपों को देखा, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे संवाद किया और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ, और मैं उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जान गया: 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं।'"

फिर भी मुझे उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में पता नहीं था: 'यहाँ से मृत्यु के बाद, ये देवता (देवदूत) इस कर्म के फलस्वरूप वहाँ पुनर्जन्म लेकर आए।'

(5) "हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश को अनुभव करूँ और (दिव्य) रूपों को देखूँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे संवाद करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जानूँ कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं', तो ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' अतः बाद में, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश को अनुभव किया और (दिव्य) रूपों को देखा, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे संवाद किया और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ, और मैं उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जान गया कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं।'" मुझे उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में भी पता था: 'यहाँ मरने के बाद, इस कर्म के फलस्वरूप ये देवता (देवदूत) वहाँ पुनर्जन्म लेकर आए।'

फिर भी मुझे उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में पता नहीं था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, ये देवता (देवदूत) ऐसे भोजन पर जीवित रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं।'

(6) "हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश को अनुभव करूँ और (दिव्य) रूपों को देखूँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे संवाद करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जानूँ कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं', तो ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' अतः बाद में, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश को अनुभव किया और (दिव्य) रूपों को देखा, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे संवाद किया और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ, और मैं उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जान गया कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं।'" मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'यहाँ से मृत्यु के बाद, इस कर्म के फलस्वरूप ये देवता वहाँ पुनर्जन्म लेते हैं।' और मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, ये देवता ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं।' और मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, ये देवता ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं।'

फिर भी मुझे उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में पता नहीं था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, इन देवताओं (देवदूतों) का जीवनकाल इतना लंबा होता है।'

(7) "हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं (दिव्य) प्रकाश को अनुभव करूँ और (दिव्य) रूपों को देखूँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे संवाद करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ, और उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जानूँ कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं', तो ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।' अतः एक बार, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहा था, तब मैंने (दिव्य) प्रकाश को अनुभव किया और (दिव्य) रूपों को देखा, और उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे संवाद किया और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ, और मैं उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में यह भी जान गया कि 'ये देवता (देवदूत) इस या उस देवक्रम से हैं।'" मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'यहाँ से मृत्यु के बाद, इस कर्म के फलस्वरूप ये देवता वहाँ पुनर्जन्म लेते हैं।' मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, ये देवता ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं।' और मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, ये देवता ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं।' और मुझे उन देवताओं के बारे में भी पता था: 'इस कर्म के फलस्वरूप, इन देवताओं का जीवनकाल इतना लंबा होता है।'

लेकिन मुझे यह नहीं पता था कि मैं पहले उन देवताओं (देवदूतों) के साथ रह चुका था या नहीं।

(8) "मेरे मन में यह विचार आया, हे भिक्षुओं: 'यदि (i) मैं एक (दिव्य) प्रकाश को अनुभव करूँ और (ii) (दिव्य) रूपों को देखूँ; और (iii) मैं उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति करूँ, उनसे वार्तालाप करूँ और उनके साथ चर्चा में संलग्न होऊँ [304]; और (iv) उन देवताओं (देवदूतों) के बारे में जानूँ: 'ये देवता (देवदूत) इस या उस प्रकार के देवताओं (देवदूतों/देवताओं) से हैं'; और (v) 'यहाँ से मृत्यु के बाद, ये देवता (देवदूत) इस कर्म (कर्म/कार्यों) के फलस्वरूप वहाँ पुनर्जन्म लेते हैं'; और (vi) 'इस कर्म (कर्म/कार्यों) के फलस्वरूप, ये देवता (देवदूत) ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं'; और (vii) 'इस कर्म (कर्म/कार्यों) के फलस्वरूप, इन देवताओं (देवदूतों) का जीवनकाल इतनी लंबाई का होता है'; और (viii) यह भी जान लें कि क्या मैं पहले उन देवताओं (देवदूतों) के साथ रहा था या नहीं, ऐसी स्थिति में मेरा यह ज्ञान और दृष्टि और भी अधिक शुद्ध हो जाएगी।'

"तो बाद में एक अवसर पर, जब मैं सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास कर रहा था: (i) मैंने एक (दिव्य) प्रकाश देखा और (ii) (दिव्य) रूप देखे; और (iii) मैंने उन देवताओं (देवदूतों) के साथ संगति की, उनसे बातचीत की और उनके साथ चर्चा में संलग्न हुआ; और (iv) मुझे उन देवताओं के बारे में यह भी पता चला: 'ये देवता (देवदूत) इस या उस प्रकार के देवों (देवदूतों/ईश्वरों) से हैं'; और (v) 'यहाँ से मृत्यु के बाद, ये देवता (देवदूत) इस कर्म (कर्म/कार्य) के फलस्वरूप वहाँ पुनर्जन्म हुए'; और (vi) 'इस कर्म (कर्म/कार्य) के फलस्वरूप, ये देवता (देवदूत) ऐसे भोजन पर निर्भर रहते हैं और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हैं'; और (vii) 'इस कर्म (कर्म/कार्य) के फलस्वरूप, इन देवताओं (देवदूतों) का जीवनकाल इतनी लंबाई का है'; और (viii) मुझे यह भी पता चला कि क्या या नहीं, मैं पहले उन देवताओं (देवदूतों) के साथ रह चुका था। 1770

भिक्षुओं, जब तक देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के आठ पहलुओं के बारे में मेरा ज्ञान और दृष्टि पूर्णतः शुद्ध नहीं हुई थी, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देवता (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विद हैं, तथा इस संसार में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण विद हैं, और मनुष्य

विद हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के आठ पहलुओं के बारे में मेरा ज्ञान और दृष्टि पूर्णतः शुद्ध हो गई, तब मैंने [305] इस संसार में, जिसमें देवता (देवदूत/देवता) विद हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया। मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'

---

65 अभिभयताना (विजय प्राप्त करना)

"भिक्षुओं (संतों), संसार पर विजय पाने के ये आठ आधार हैं। 1771 वे आठ कौन से हैं?"

(1) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को जानता है, वह बाह्य रूप से (दिव्य) रूपों को सीमित, सुंदर या कुरूप देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार जानता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यही विजय प्राप्त करने का पहला आधार है।" 1772

(2) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को जानता है, वह बाह्य रूप से भी (दिव्य) रूपों को देखता है, जो असीम, सुंदर या कुरूप हो सकते हैं। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार जानता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यही विजय प्राप्त करने का दूसरा आधार है।" 1773

(3) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से ही रूपों को देखता है, चाहे वे सीमित हों, सुंदर हों या बदसूरत। इन रूपों पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यही विजय प्राप्त करने का तीसरा आधार है।" 1774

(4) "जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से, असीम, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यह विजय प्राप्त करने का चौथा आधार है।"

(5) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से (दिव्य) रूपों को देखता है, नीले रंग के, नीले रंग से आभास वाले, नीले रंग की आभा वाले। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यह विजय प्राप्त करने का पाँचवाँ आधार है।" L775

(6) "जो आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से (दिव्य) रूपों को देखता है, पीले रंग के, पीले रंग से युक्त, पीले रंग की आभा वाले। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यह विजय प्राप्त करने का छठा आधार है। [306]

(7) "जो आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से (दिव्य) रूपों को देखता है, लाल रंग के, लाल आभा वाले, लाल रंगत वाले। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यह विजय प्राप्त करने का सातवाँ आधार है।"

(8) "जो आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से (दिव्य) रूपों को देखता है, जो श्वेत हैं, श्वेत रंग के हैं, श्वेत आभा वाले हैं, श्वेत रंगत वाले हैं। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' यह विजय प्राप्त करने का आठवाँ आधार है।"

"भिक्षुओं, ये विजय प्राप्त करने के आठ आधार हैं।"

---

66 मुक्ति (विमोक्ख बिना विमोक्ष)

"भिक्षुओं, ये आठ मुक्ति हैं। 1776 कौन सी आठ?

(1) "रूप को धारण करने वाला व्यक्ति (आंतरिक रूप से) (दिव्य) रूपों को देखता है। यही पहली मुक्ति है। 1777

(2) "जो आंतरिक रूप से (दिव्य) रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से (दिव्य) रूपों को देखता है। यही दूसरी मुक्ति है।" 1778

(3) "व्यक्ति का ध्यान (आंतरिक रूप से) केवल 'पवित्र (सुभा)' पर केंद्रित होता है। यही तीसरी मुक्ति है। 1779

(4) "दिव्य रूपों (अर्थात् देवताओं (देवदूतों)) की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की (दिव्य) धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के प्रति उदासीन होकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, व्यक्ति अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। यही चौथी मुक्ति है। (अर्थात् देवताओं (देवदूतों) की धारणा (सन्ना/संज्ञा) से ऊपर उठना और दूर जाना)"

(5) "अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का बोध करते हुए, व्यक्ति चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही पाँचवीं मुक्ति है।"

(6) चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, व्यक्ति शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। यही छठी मुक्ति है।

(7) "शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। यही सातवीं मुक्ति है।"

(8) न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (वेदना) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। 1780 यही आठवीं मुक्ति है। (अंतिम विमोक्ष/निब्बान/निर्वाण)

"ये, भिक्षुओं, आठ मुक्ति हैं।" [307]

---

67 तुच्छ घोषणाएँ (अन्यावोहारा सं. अनार्य-विहार)

भिक्षुओं, ये आठ नीच घोषणाएँ हैं। 1781 वे आठ कौन सी हैं? (1) वह कहना जो देखा नहीं है, उसे देखना; (2) वह सुनना जो सुना नहीं है, उसे सुनना; (3) वह महसूस करना जो महसूस नहीं किया है, उसे महसूस करना; (4) वह जानना जो जाना नहीं है, उसे जानना; (5) वह न देखना जो वास्तव में देखा है; (6) वह न सुनना जो वास्तव में सुना है; (7) वह न महसूस करना जो वास्तव में महसूस किया है; (8) वह न जानना जो वास्तव में जाना है। ये आठ नीच घोषणाएँ हैं।

---

68 महान घोषणाएँ (अरियावोहारा सं. आर्य-विहार)

भिक्षुओं, ये आठ श्रेष्ठ घोषणाएँ हैं। 1782 वे आठ कौन सी हैं? (1) यह कहना कि आपने वह नहीं देखा जो आपने नहीं देखा; (2) यह कहना कि आपने वह नहीं सुना जो आपने नहीं सुना; (3) यह कहना कि आपने वह नहीं महसूस किया जो आपने नहीं महसूस किया; (4) यह कहना कि आपने वह नहीं जाना जो आपने नहीं जाना; (5) यह कहना कि आपने वह देखा जो आपने वास्तव में देखा है; (6) यह कहना कि आपने वह सुना जो आपने वास्तव में सुना है; (7) यह कहना कि आपने वह महसूस किया जो आपने वास्तव में महसूस किया है; (8) यह कहना कि आपने वह जान लिया जो आपने वास्तव में जान लिया है। ये आठ श्रेष्ठ घोषणाएँ हैं।

---

69 विधानसभाएं 1783 (पेरिसा बिना परिषद)

भिक्षुओं, ये आठ सभाएँ हैं। कौन सी आठ? क्षत्रियों की सभा, ब्राह्मणों की सभा, गृहस्थों की सभा, तपस्वियों की सभा, चार महान राजाओं द्वारा शासित देवताओं की सभा, तावतिंसा देवताओं की सभा, मार की सभा और ब्रह्मा की सभा।

(1) "अब मुझे याद आता है, भिक्षुओं, मैं सैकड़ों क्षत्रियों की एक सभा में गया। मैं पहले वहाँ बैठा, बातचीत की और चर्चाएँ कीं। मैं उन्हीं की तरह प्रकट हुआ और मेरी आवाज़ भी उन्हीं की तरह हो गई। मैंने उन्हें धम्म प्रवचन से उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, और जब मैं बोल रहा था तो वे मुझे पहचान नहीं पाए, बल्कि सोचने लगे: 'कौन बोल रहा है, कोई देव (देवदूत/भगवान) या कोई मनुष्य?' उन्हें धम्म प्रवचन से उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने के बाद, मैं अंतर्धान हो गया, और जब मैं अंतर्धान हो गया तो वे मुझे पहचान नहीं पाए, बल्कि सोचने लगे: 'कौन अंतर्धान हो गया, कोई देव या कोई मनुष्य?' 1784 . [308]

(2) -(8) "फिर मुझे याद आता है, भिक्षुओं, मैं सैकड़ों ब्राह्मणों की सभा में गया... सैकड़ों गृहस्थों की सभा में... सैकड़ों तपस्वियों की सभा में... चार महान राजाओं के अधीन सैकड़ों देवताओं की सभा में... सैकड़ों तावतिंसा देवताओं की सभा में... मार के अधीन सैकड़ों की सभा में... ब्रह्मा के अधीन सैकड़ों की सभा में। मैं पहले वहाँ बैठा, बातचीत की और चर्चाएँ कीं। मैं उन्हीं की तरह प्रकट हुआ और मेरी वाणी भी उन्हीं की वाणी जैसी हो गई। मैंने उन्हें धम्म प्रवचन से उपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, और जब मैं बोल रहा था तो वे मुझे पहचान नहीं पाए बल्कि सोचने लगे: 'कौन बोल रहा है, कोई देवता या मनुष्य?'" उन्हें धम्म प्रवचन देकर उपदेश देने, प्रोत्साहित करने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने के बाद, मैं अंतर्धान हो गया, और मेरे अंतर्धान होने पर वे मुझे पहचान नहीं पाए बल्कि सोचने लगे: 'अंततः कौन अंतर्धान हुआ है, कोई देव (देवदूत/भगवान) या कोई मनुष्य?'

"भिक्षुओं, ये आठ सभाएँ हैं।"

---

70 भूकंप [1785] (भूमिकला)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, बैठने के लिए एक कपड़ा ले लो। चलो आज के लिए चपाल मंदिर चलते हैं।"

"जी, भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया और बैठने का कपड़ा लेकर भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे चलने लगे। फिर भगवान (बुद्ध) चपाल मंदिर गए, उनके लिए तैयार आसन पर बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा: [309]

"हे आनंद, वैशाली मंदिर कितना आनंदमय है! उदेना मंदिर कितना आनंदमय है! गौतमका मंदिर कितना आनंदमय है! सत्तम्बा मंदिर कितना आनंदमय है! बहुपुत्त मंदिर कितना आनंदमय है! सारंददा मंदिर कितना आनंदमय है! चपाल मंदिर कितना आनंदमय है! हे आनंद, जिसने भी मानसिक शक्ति के चार आधारों (जादू/इद्धि) को विकसित और पोषित किया है, उन्हें आधार बनाया है, उनका पालन किया है, उन्हें सुदृढ़ किया है और उचित रूप से उनका अनुसरण किया है, वह चाहे तो एक युग या उसके शेष भाग तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत (बुद्ध) ने भी मानसिक शक्ति के चार आधारों को विकसित और पोषित किया है, उन्हें आधार बनाया है, उनका पालन किया है, उन्हें सुदृढ़ किया है और उचित रूप से उनका अनुसरण किया है। यदि वे चाहें तो तथागत (बुद्ध) एक युग या उसके शेष भाग तक जीवित रह सकते हैं।" 1786

लेकिन भगवान (बुद्ध) द्वारा इतना स्पष्ट संकेत दिए जाने के बावजूद, पूज्य आनंद उस संकेत को समझ नहीं पाए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से यह निवेदन नहीं किया: "भंते, भगवान (बुद्ध) युगों तक जीवित रहें! सुगत (भगवान बुद्ध) युगों तक जीवित रहें, अनेकों लोगों के कल्याण के लिए, अनेकों लोगों के सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए।" क्योंकि उनका मन मार के वश में था। 1787

दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "वैशाली रमणीय है... उदेना मंदिर रमणीय है... चपाला मंदिर रमणीय है। हे आनंद, जिसने भी मानसिक शक्ति के चार आधारों (जादू/इद्धि) का विकास और संवर्धन किया है... और उन्हें विधिपूर्वक अपनाया है, वह चाहे तो एक युग या उसके शेष भाग तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत (बुद्ध) ने मानसिक शक्ति के चार आधारों का विकास और संवर्धन किया है, उन्हें एक माध्यम और आधार बनाया है, उनका पालन किया है, उन्हें सुदृढ़ किया है और उन्हें विधिपूर्वक अपनाया है। यदि वे चाहें तो तथागत (बुद्ध) एक युग या उसके शेष भाग तक जीवित रह सकते हैं।"

लेकिन फिर भी, यद्यपि पूज्य आनंद [310] को भगवान (बुद्ध) द्वारा इतना स्पष्ट संकेत दिया गया था, यद्यपि उन्हें इतना स्पष्ट संकेत दिया गया था, वे संकेत को समझ नहीं पाए... क्योंकि उनका मन मार से ग्रस्त था।

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

"जी, भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, और वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की, और भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर एक वृक्ष के चरणों में बैठ गए।

फिर, पूज्य आनंद के जाने के कुछ ही समय बाद, दुष्ट मारा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त हो! अब सुगत (भगवान बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त हो! अब समय आ गया है, भंते, भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का! ये शब्द भगवान (बुद्ध) ने कहे थे, भंते।"

1788 'मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा। हे दुष्ट, जब तक ऐसा नहीं होता'

मेरे भिक्षु शिष्य जो योग्य, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधन से मुक्त, विद्वान, धम्म के समर्थक, धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाले, उचित मार्ग पर अभ्यास करने वाले, उचित आचरण करने वाले; जिन्होंने अपने गुरु की शिक्षा को सीखा है और उसकी व्याख्या कर सकते हैं, उसे सिखा सकते हैं, उसका प्रचार कर सकते हैं, उसे स्थापित कर सकते हैं, उसे प्रकट कर सकते हैं, उसका विश्लेषण कर सकते हैं और उसे स्पष्ट कर सकते हैं; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्कपूर्ण ढंग से खंडन कर सकते हैं और प्रतिकारक धम्म का उपदेश दे सकते हैं। 1789 (मारा:) 'अब इस समय भगवान (बुद्ध) के पास योग्य भिक्षु शिष्य हैं... और जो प्रतिकारक धम्म का उपदेश दे सकते हैं। भंते, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त हो! अब सुगत (भगवान बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त हो! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय है! '

और ये शब्द, हे भंते, भगवान (बुद्ध) द्वारा कहे गए थे।

मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा। हे दुष्ट, जब तक ऐसा नहीं होता

मेरी भिक्षुणी (भिक्षुणियाँ) शिष्याएँ जो योग्य हैं... जब तक कि मेरे पुरुष गृहस्थ शिष्य [311] जो योग्य हैं... जब तक कि मेरी स्त्री गृहस्थ शिष्याएँ जो योग्य हैं... और प्रतिकारक धम्म का शिक्षण करती हैं। (मारा:) 'अब वर्तमान में भगवान (बुद्ध) के पास भिक्षुणी (भिक्षुणियाँ) शिष्याएँ हैं... पुरुष गृहस्थ शिष्य... स्त्री गृहस्थ शिष्याएँ जो योग्य, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधन से मुक्त, विद्वान, धम्म के समर्थक, धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाले, उचित मार्ग से अभ्यास करने वाले, तदनुसार आचरण करने वाले; जिन्होंने अपने गुरु के सिद्धांत को सीखा है और उसकी व्याख्या कर सकते हैं, उसे सिखा सकते हैं, उसका प्रचार कर सकते हैं, उसे स्थापित कर सकते हैं, उसे प्रकट कर सकते हैं, उसका विश्लेषण कर सकते हैं और उसे स्पष्ट कर सकते हैं; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्कपूर्ण ढंग से खंडन कर सकते हैं और प्रतिकारक धम्म का शिक्षण कर सकते हैं। भंते, भगवान (बुद्ध) अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! सौभाग्यशाली अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!

"और हे भंते, भगवान (बुद्ध) ने ये शब्द कहे: 'हे दुष्ट, मैं तब तक अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा जब तक मेरा यह ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध न हो जाए।' (मारा:) 'भगवान (बुद्ध) का वह ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध हो गया है। भंते, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दो! अब सुगत (भगवान बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दो! हे भंते, अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!'

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "चिंता मत करो, हे दुष्ट। तथागत (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण में अब अधिक समय नहीं लगेगा। तीन महीने बाद तथागत (बुद्ध) अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने चपाला मंदिर में सती (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए अपनी प्राण शक्ति त्याग दी; 1790 और जब भगवान (बुद्ध) ने अपनी प्राण शक्ति त्याग दी, तो एक भयंकर भूकंप आया, जो भयावह और डरावना था, और गरज की आवाजों से आकाश कांप उठा।

तब, इसका अर्थ समझकर, भगवान (बुद्ध) ने उस अवसर पर यह प्रेरित वाणी कही: [312]

"अतुलनीय और निरंतर अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की तुलना करते हुए, ऋषि ने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की शक्ति को त्याग दिया। आंतरिक रूप से आनंदित होकर, आत्म-मग्न (समाहित/समाधि) में लीन होकर, उन्होंने अपने ही अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) को कवच की तरह तोड़ दिया।" 1791

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "यह भूकंप सचमुच बहुत शक्तिशाली था! यह भूकंप सचमुच बहुत शक्तिशाली, भयावह और डरावना था, और बिजली की गड़गड़ाहट से आकाश कांप उठा! इतने शक्तिशाली भूकंप का कारण और परिस्थिति क्या होती है?"

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "भंते, यह भूकंप सचमुच बहुत शक्तिशाली था! यह भूकंप सचमुच बहुत शक्तिशाली, भयावह और डरावना था, और बिजली की गड़गड़ाहट से आकाश कांप उठा! भंते, इतने शक्तिशाली भूकंप का कारण और परिस्थिति क्या है?"

"आनंदा, शक्तिशाली भूकंप के आठ कारण और परिस्थितियाँ होती हैं। वे आठ क्या हैं?"

(1) "आनंद, यह विशाल पृथ्वी जल (संभवतः द्रव लावा) पर टिकी है; जल वायु (संभवतः सौर वायु) पर टिका है; वायु अंतरिक्ष में बहती है। आनंद, एक समय ऐसा आता है जब तेज हवाएँ चलती हैं और जल को हिला देती हैं। जल के हिलने से पृथ्वी भी हिल जाती है। यही शक्तिशाली भूकंप का पहला कारण और शर्त है।"

(2) "फिर, एक तपस्वी या ब्राह्मण है जो मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) से युक्त है और जिसने मन पर महारत हासिल कर ली है, या एक देवता (देवदूत) है जो अत्यंत शक्तिशाली और बलवान है। उसने पृथ्वी की सीमित (सन्ना/संज्ञा) और जल की असीम (सन्ना/संज्ञा) धारणा विकसित कर ली है। वह इस पृथ्वी को हिलाता, थरथराता और कांपता है। 1792 यह एक शक्तिशाली भूकंप का दूसरा कारण और शर्त है।"

(3) "फिर, जब बोधिसत्व तुषिता संप्रदाय से विदा होकर, सजग (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं, तो यह [313] पृथ्वी कांपती, सिहरती और थरथराती है। यह एक शक्तिशाली भूकंप का तीसरा कारण और शर्त है।

(4) "फिर, जब बोधिसत्व, सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः ज्ञानी होकर, अपनी माता के गर्भ से प्रकट होता है, तो यह पृथ्वी कांप उठती है, हिल जाती है और थरथरा उठती है। यह शक्तिशाली भूकंप का चौथा कारण और शर्त है।"

(5) "फिर, जब तथागत (बुद्ध) अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो यह पृथ्वी कांपती है, हिलती है और थरथराती है। यह शक्तिशाली भूकंप का पाँचवाँ कारण और शर्त है।"

(6) "फिर, जब तथागत (बुद्ध) धम्म के अतुलनीय चक्र को गतिमान करते हैं, तो यह पृथ्वी कांपती है, हिलती है और थरथराती है। यह शक्तिशाली भूकंप का छठा कारण और शर्त है।"

(7) "फिर, जब तथागत (बुद्ध), सती (ध्यान में लीन) और पूर्णतः बोध करते हुए, अपनी प्राण शक्ति छोड़ देते हैं, तो यह पृथ्वी कांप उठती है, हिल जाती है और थरथरा उठती है। यह शक्तिशाली भूकंप का सातवां कारण और शर्त है।"

(8) "फिर, जब तथागत (बुद्ध) अंतिम निर्वाण प्राप्त करते हैं, तो निर्वाण तत्व के कारण, जिसमें कोई अवशेष शेष नहीं रहता, यह पृथ्वी कांपती है, हिलती है और थरथराती है। यह शक्तिशाली भूकंप का आठवां कारण और शर्त है।"

"ये शक्तिशाली भूकंप के आठ कारण और स्थितियाँ हैं।" [314]

III. जोड़े (यामाकावाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

71 आस्था (1) (सद्ध 1 बिना श्रद्धा)

(1) "भिक्षुओं, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो सकता है, परन्तु वह सद्‌गुणी न हो; अतः वह इस मामले में अपूर्ण है। उसे इस मामले को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्था से परिपूर्ण होकर सद्‌गुणी कैसे हो सकता हूँ?' परन्तु जब एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो और सद्‌गुणी भी हो, तब वह इस मामले में पूर्ण होता है।"

(2) "एक भिक्षु आस्थावान और सद्‌गुणी हो सकता है, लेकिन वह विद्वान नहीं है; इस प्रकार वह उस गुण के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस गुण को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्थावान, सद्‌गुणी और विद्वान कैसे हो सकता हूँ?' लेकिन जब एक भिक्षु आस्थावान, सद्‌गुणी और विद्वान होता है, तब वह उस गुण के संबंध में पूर्ण होता है।"

(3) एक भिक्षु आस्थावान, गुणी और विद्वान हो सकता है, परन्तु वह धम्म का वक्ता नहीं होता... (4) ... धम्म का वक्ता तो हो सकता है, परन्तु सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला नहीं... (5) ... सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला तो हो सकता है, परन्तु सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देने वाला नहीं... (6) ... सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देने वाला तो हो सकता है, परन्तु इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन का निर्माण करने वाले और सुखद निवास स्थान माने जाने वाले चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करने वाला नहीं... (7) ... इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन का निर्माण करने वाले और सुखद निवास स्थान माने जाने वाले चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करने वाला तो हो सकता है, परन्तु दोषों के नाश के साथ, इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं को अनुभव करने वाला नहीं। जीवन, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करना। इस प्रकार वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस कारक को पूर्ण करना चाहिए, [315] [यह सोचते हुए]: 'मैं कैसे विश्वास से संपन्न हो सकता हूँ... और साथ ही वह व्यक्ति भी हो सकता हूँ जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान से, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास किया है?'

(8) "परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से युक्त हो, (ii) गुणी हो, और (iii) विद्वान हो; (iv) धम्म का वक्ता हो; (v) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होता हो; (vi) सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देता हो; (vii) इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त करता हो जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं; और (viii) वह ऐसा भी हो जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं के लिए मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो, तो वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।"

"जो भिक्षु इन आठ गुणों से युक्त होता है, वह हर तरह से विश्वास जगाने वाला और हर पहलू में परिपूर्ण होता है।"

---

72 आस्था (2) (सद्ध 2 बिना श्रद्धा)

(1) “भिक्षुओं, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो सकता है, परन्तु यदि वह सद्‌गुणी न हो; अतः वह इस मामले में अपूर्ण है। उसे इस मामले को पूर्ण करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्था से परिपूर्ण होकर सद्‌गुणी कैसे हो सकता हूँ?' परन्तु जब एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो और सद्‌गुणी भी हो, तो वह इस मामले में पूर्ण हो जाता है।”

(2) "एक भिक्षु आस्थावान और सद्‌गुणी हो सकता है, लेकिन यदि वह विद्वान न हो; तो वह इस मामले में अपूर्ण है। उसे यह सोचकर इस गुण को पूर्ण करना चाहिए: "मैं आस्थावान, सद्‌गुणी और विद्वान कैसे हो सकता हूँ?" परन्तु जब कोई भिक्षु आस्थावान, सद्‌गुणी और विद्वान हो, तो वह इस मामले में पूर्ण हो जाता है।"

(3) "एक भिक्षु आस्थावान, गुणी और विद्वान हो सकता है, परन्तु वह धम्म का वक्ता नहीं होता... (4) ... धम्म का वक्ता तो हो सकता है, परन्तु सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला नहीं... (5) ... सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला तो हो सकता है, परन्तु सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देने वाला नहीं [316]... (6) ... सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देने वाला तो हो सकता है, परन्तु वह शरीर से संपर्क रखने वाला और उन शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करने वाला नहीं होता जो रूपों से परे, निराकार होती हैं... (7) ... शरीर से संपर्क रखने वाला और उन शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करने वाला, जो रूपों से परे, निराकार होती हैं, परन्तु वह नहीं होता जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति का अनुभव किया हो। वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त ज्ञान में प्रवेश करके उसमें निवास करता है। इस प्रकार वह उस पहलू में अपूर्ण है। उसे उस पहलू को पूर्ण करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: "मैं कैसे विश्वास से परिपूर्ण हो सकता हूँ... और साथ ही वह व्यक्ति भी हो सकता हूँ जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं को मन की दोषरहित मुक्ति का अनुभव कराया हो, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति प्राप्त की हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास किया हो?"

(8) "परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से युक्त हो, (ii) गुणी हो, और (iii) विद्वान हो; (iv) धम्म का वक्ता हो; (v) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होता हो; (vi) सभा को आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देता हो; (vii) शरीर से संपर्क रखता हो और उन शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करता हो, जो रूपों से परे हैं और निराकार हैं; और (viii) वह ऐसा भी हो जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान से, इसी जीवन में, स्वयं को मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कराया हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो, तो वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।"

"जो भिक्षु इन आठ गुणों से युक्त होता है, वह हर तरह से विश्वास जगाने वाला और हर पहलू में परिपूर्ण होता है।"

---

73 मृत्यु पर ध्यान (l) 1793 (मरणस्मृति संस्कृत: मरणस्मृति)

एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: [317] "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित और अभ्यासित करने पर महान फल और लाभ प्राप्त होता है, जो अमरता की प्राप्ति की ओर ले जाता है, जिसका लक्ष्य अमरता ही है। परन्तु क्या आप, भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करते हैं?

(1) जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, मैं मृत्यु की सती/ध्यान विकसित करता/करती हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं इस प्रकार सोचता हूँ: 'काश मैं केवल एक रात और एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं का ध्यान कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(2) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं एक दिन के लिए ही जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(3) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं आधा दिन ही जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(4) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"यहाँ, भंते, मैं सोचता हूँ: 'काश मैं केवल एक भिक्षा भोजन ग्रहण करने जितना ही समय जी सकूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

(5) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"यहाँ, [318] भंते, मैं सोचता हूँ: 'काश मैं केवल आधा भिक्षा भोजन करने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

(6) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"यहाँ, भंते, मैं सोचता हूँ: 'काश मैं केवल चार-पाँच कौर भोजन चबाने और निगलने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

(7) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं केवल उतना ही समय जी सकूँ जितना एक निवाला भोजन चबाने और निगलने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ हासिल कर सकता हूँ!' इसी तरह मैं मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

(8) एक अन्य भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "मैं भी, भंते, मृत्यु के प्रति सती (ध्यान) विकसित करता हूँ।"

"पर हे भिक्षु, मृत्यु के प्रति सती/ध्यान कैसे विकसित किया जाता है?"

"हे भंते, मैं यहाँ सोचता हूँ: 'काश मैं केवल साँस लेने के बाद साँस छोड़ने या साँस छोड़ने के बाद साँस लेने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!' इसी प्रकार मैं मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता हूँ।"

जब यह कहा गया, तो भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं से कहा: "भिक्षुओं, (1) वह भिक्षु जो मृत्यु के प्रति इस प्रकार सती ध्यान विकसित करता है: 'मैं केवल एक रात और एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!'; और (2) वह जो मृत्यु के प्रति इस प्रकार सती ध्यान विकसित करता है: [319] 'मैं केवल एक दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!'; और (3) वह जो मृत्यु के प्रति इस प्रकार सती ध्यान विकसित करता है: 'मैं केवल आधा दिन जीवित रहूँ ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ, तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!'; और (4) वह जो मृत्यु के प्रति इस प्रकार सती ध्यान विकसित करता है: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना एक भिक्षा भोजन करने में लगता है ताकि मैं (5) जो व्यक्ति मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, वह इस प्रकार है: 'मैं केवल आधा भिक्षा भोजन ग्रहण करने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँ!'; और (6) जो व्यक्ति मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, वह इस प्रकार है: 'मैं केवल चार-पाँच कौर भोजन चबाकर निगलने में लगने वाले समय तक ही जीवित रहूँ, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों का पालन कर सकूँ। मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँ!': इन्हें आलसी भिक्षु कहा जाता है। वे दोषों के नाश के लिए आलस्यपूर्वक मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करते हैं।

लेकिन (7) वह भिक्षु जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना एक निवाला भोजन चबाने और निगलने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!'; और (8) वह जो मृत्यु के प्रति सती ध्यान विकसित करता है, इस प्रकार: 'मैं केवल उतने ही समय तक जीवित रहूँ जितना साँस लेने के बाद साँस छोड़ने में या साँस छोड़ने के बाद साँस लेने में लगता है, ताकि मैं भगवान (बुद्ध) के उपदेशों पर ध्यान दे सकूँ। तब मैं बहुत कुछ प्राप्त कर सकता हूँ!': इन्हें सजग रहने वाले भिक्षु कहा जाता है। वे दोषों के नाश के लिए मृत्यु के प्रति सती ध्यान को गंभीरता से विकसित करते हैं।

अत:, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे। हम दोषों के नाश के लिए मृत्यु के प्रति गहन ध्यान (सती) विकसित करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।' [320]

---

74 मृत्यु पर ध्यान (2) 1794 (मरणस्मृति)

एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका में ईंटों से बने एक भवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, मृत्यु के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती साधना) जब विकसित और पोषित की जाती है, तो यह महान फलदायी और लाभकारी होती है, जो अंततः अमरता (अमरत/अमृत) की प्राप्ति की ओर ले जाती है। और यह कैसे संभव है?

"यहाँ, भिक्षुओं, जब दिन ढल जाता है और रात हो जाती है, तो एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अनेक कारणों से मर सकता हूँ। (1) कोई साँप मुझे काट सकता है, या बिच्छू या कनखजूरा मुझे डंक मार सकता है, और इससे मेरी मृत्यु हो सकती है; यह मेरे लिए एक बाधा होगी। (2) मैं ठोकर खाकर गिर सकता हूँ, या (3) मेरा भोजन मुझे रास नहीं आ सकता है, या (4) मेरा पित्त असंतुलित हो सकता है, या (5) मेरा कफ असंतुलित हो सकता है, या (6) मेरे भीतर तेज हवाएँ चल सकती हैं, या (7) लोग मुझ पर हमला कर सकते हैं, या (8) जंगली आत्माएँ मुझ पर हमला कर सकती हैं, और मेरी मृत्यु हो सकती है; यह मेरे लिए एक बाधा होगी।"

"इस भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'क्या मुझमें कोई ऐसे हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) हैं जिनका मैंने त्याग नहीं किया है, जो आज रात मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं?'" यदि आत्मनिरीक्षण करने पर भिक्षु को यह ज्ञान हो कि 'मुझमें कुछ अकुशल गुण हैं जिनका मैंने त्याग नहीं किया है, और यदि आज रात मेरी मृत्यु हो जाए तो वे मेरे लिए बाधा बन सकते हैं,' तो उसे उन अकुशल गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करना चाहिए। जैसे किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करता है, उसी प्रकार भिक्षु [321] को भी उन अकुशल गुणों का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करना चाहिए।

लेकिन यदि समीक्षा करने पर भिक्षु को यह पता चलता है कि 'मुझमें कोई भी अकुशल गुण नहीं है जिसका मैंने त्याग नहीं किया है, जो आज रात मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकता है', तो उसे उसी आनंद और प्रसन्नता में रहना चाहिए और दिन-रात लाभकारी गुणों का अभ्यास करना चाहिए।

लेकिन जब रात ढल जाती है और दिन निकल आता है, तो भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'मैं अनेक कारणों से मर सकता हूँ। कोई साँप मुझे काट सकता है... या जंगली आत्माएँ मुझ पर हमला कर सकती हैं, और मैं मर सकता हूँ; यह मेरे लिए एक बाधा होगी।'

"इस भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'क्या मुझमें कोई ऐसे अकुशल गुण हैं जिनका मैंने अभी तक त्याग नहीं किया है और जो आज मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं?' यदि आत्मचिंतन करने पर भिक्षु को यह ज्ञान हो कि 'मुझमें ऐसे अकुशल गुण हैं जिनका मैंने अभी तक त्याग नहीं किया है और जो आज मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकते हैं,' तो उसे उन अकुशल गुणों का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए।" जिस प्रकार किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रदर्शन करता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रदर्शन करना चाहिए।

लेकिन यदि समीक्षा करने पर भिक्षु को यह ज्ञात हो जाए कि 'मुझमें कोई भी अकुशल गुण (धम्म) [322] नहीं है जिसे मैंने अभी तक त्यागा न हो, जो आज मेरी मृत्यु होने पर मेरे लिए बाधा बन सकता है', तो उसे उसी पीति और आनंद में लीन रहना चाहिए और दिन-रात लाभकारी गुणों (धम्म) का अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, जब मृत्यु के प्रति सती ध्यान को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी यह महान फलदायी और लाभदायक होता है, जो अमरता (अमृत) की प्राप्ति की ओर ले जाता है, और अमरता (अमृत) को ही अपना लक्ष्य बनाता है।"

---

75 उपलब्धियाँ(1) (सम्पदा1)

भिक्षुओं, ये आठ सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं। ये आठ क्या हैं? पहल करने में सिद्धि (संपदा), रक्षा करने में सिद्धि (संपदा), अच्छी मित्रता, संतुलित जीवन, आस्था में सिद्धि (संपदा), सदाचार में सिद्धि (संपदा), उदारता में सिद्धि (संपदा), और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा)। ये आठ सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं।

[चार आयतें संलग्न हैं, जो 8:54 की आयतों के समान हैं।]

---

76 उपलब्धियाँ (2) (सम्पदा2)

भिक्षुओं, ये आठ सिद्धियाँ (संपदाएँ) हैं। कौन सी आठ सिद्धियाँ? पहल करने में सिद्धि (संपदा), रक्षा करने में सिद्धि (संपदा), अच्छी मित्रता, संतुलित जीवन, आस्था में सिद्धि (संपदा), सदाचार में सिद्धि (संपदा), उदारता में सिद्धि (संपदा), और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा) हैं।

(1) "और पहल में संपदा क्या है? यहाँ, चाहे कोई भी साधन हो जिससे कुलवासी अपनी जीविका कमाता हो—चाहे खेती, व्यापार, पशुपालन, तीरंदाजी, सरकारी सेवा या किसी अन्य शिल्प [323] द्वारा—वह कुशल और परिश्रमी है; वह इसे ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए इसके बारे में सही निर्णय लेता है। इसे पहल में संपदा कहा जाता है।"

(2) "और संरक्षण में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी अपने द्वारा पहल और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) से अर्जित धन की रक्षा और पहरा देता है, जो उसने अपनी भुजाओं के बल पर, अपने माथे के पसीने से अर्जित किया है, जो धार्मिक रूप से प्राप्त धन है, यह सोचते हुए: 'मैं राजाओं और चोरों को इसे लेने से, आग को इसे जलाने से, बाढ़ को इसे बहा ले जाने से और अप्रिय उत्तराधिकारियों को इसे लेने से कैसे रोक सकता हूँ?' इसे संरक्षण में संपदा कहा जाता है।"

(3) और सच्ची मित्रता क्या है? यहाँ, चाहे कोई व्यक्ति किसी गाँव या कस्बे में रहता हो, वह गृहस्थों या उनके पुत्रों से मेलजोल रखता है—चाहे वे युवा हों लेकिन सद्गुणों से परिपूर्ण हों, या वृद्ध हों लेकिन सद्गुणों से परिपूर्ण हों—जो आस्था, सदाचार, उदारता और ज्ञान (पन्न) में निपुण हों; वह उनसे बातचीत करता है और उनके साथ चर्चा करता है। जहाँ तक वे आस्था में निपुण हैं, वह आस्था में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे सदाचार में निपुण हैं, वह सदाचार में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे उदारता में निपुण हैं, वह उदारता में उनकी निपुणता का अनुकरण करता है; जहाँ तक वे ज्ञान में निपुण हैं, वह ज्ञान (पन्न) में उनकी निपुणता (संपदा) का अनुकरण करता है। इसे सच्ची मित्रता कहते हैं।

(4) "संतुलित जीवन क्या है? यहाँ, एक कबीले का सदस्य अपनी आय और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो बहुत खर्चीला और न ही बहुत मितव्ययी, [जागरूक]: 'इस तरह मेरी आय मेरे व्यय से अधिक होगी, न कि इसके विपरीत।' जैसे एक मूल्यांकक या उसका प्रशिक्षु तराजू को उठाकर जानता है: 'यह इतना नीचे गया है, [324] इतना ऊपर गया है, उसी प्रकार एक कबीले का सदस्य अपनी आय और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो बहुत खर्चीला और न ही बहुत मितव्ययी, [जागरूक]:

'इस तरह मेरी आय मेरे व्यय से अधिक होगी, न कि इसके विपरीत।'

यदि इस कुलवासी की आमदनी कम है लेकिन वह विलासितापूर्ण जीवन जीता है, तो दूसरे उसके बारे में कहेंगे: 'यह कुलवासी अपनी दौलत को अंजीर खाने वाले की तरह उड़ा रहा है।' लेकिन यदि उसकी आमदनी अधिक है लेकिन वह मितव्ययी जीवन जीता है, तो दूसरे उसके बारे में कहेंगे: 'यह कुलवासी तो शायद खुद को भूखा ही मार डालेगा।' लेकिन संतुलित जीवन तब कहलाता है जब कोई कुलवासी अपनी आमदनी और व्यय को जानता है और संतुलित जीवन जीता है, न तो अत्यधिक खर्चीला और न ही अत्यधिक मितव्ययी, [इस बात से अवगत]: 'इस प्रकार मेरी आमदनी मेरे व्यय से अधिक होगी, न कि इसके विपरीत।'

(5) "और आस्था में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी आस्था से संपन्न है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं... देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' इसे आस्था में संपदा कहा जाता है।"

(6) "और सद्गुणों में संपदा क्या है? यहाँ, कुल का व्यक्ति जीव-जंतुओं की हत्या से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज़ करता है। इसे सद्गुणों में संपदा कहा जाता है।"

(7) "और उदारता में संपदा क्या है? यहाँ, एक कुलवासी अपने घर में कंजूसी के दाग से रहित हृदय से रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और साझा करने में आनंदित। इसे उदारता में संपदा कहा जाता है।"

(8) "और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में संपदा क्या है? [325] यहाँ, कुल का व्यक्ति बुद्धिमान है; वह उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। इसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) में संपदा कहा जाता है।"

"भिक्षुओं, ये आठ सिद्धियाँ (संपदा) हैं।"

[ये चारों आयतें 8:54 में दी गई आयतों के समान हैं।]

---

77 इच्छा (इच्छा)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, दुनिया में आठ प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे आठ कौन से हैं?"

[इसके बाद जो लिखा है वह 8:61 के समान है, लेकिन सारिपुत्त द्वारा बोला गया है।] . . . [326—28]

"ये दुनिया में पाए जाने वाले आठ प्रकार के व्यक्ति हैं।"

---

78 सक्षम (आलम)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

(1) "मित्रों, छह गुणों से युक्त भिक्षु स्वयं और दूसरों दोनों को लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है। वे छह गुण कौन से हैं? . . ."

[इसके बाद जो लिखा है वह 8:62 के समान है, लेकिन सारिपुत्त द्वारा बोला गया है।] . . . [329— 31]

"इन दो गुणों से युक्त भिक्षु दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है, लेकिन स्वयं को नहीं।"

---

79 पतन 1796 (परिहाना सं. परी-हानी)

भिक्षुओं, ये आठ गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं? काम में आनंद, बातचीत में आनंद, नींद में आनंद, संगति में आनंद, इंद्रियों पर नियंत्रण न रखना, भोजन में संयम का अभाव, संगति में आनंद और इंद्रिय-भ्रम में आनंद (प्रपंच)। ये आठ गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन का कारण बनते हैं।

भिक्षुओं, ये आठ गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। वे आठ गुण कौन से हैं? काम में आनंद न लेना, बातचीत में आनंद न लेना, नींद में आनंद न लेना, संगति में आनंद न लेना, इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करना, भोजन में संयम बरतना, संगति में आनंद न लेना और इंद्रिय-भ्रम (प्रपंच) में आनंद न लेना। ये आठ गुण प्रशिक्षु भिक्षु के पतन को रोकते हैं। [332]

आलस्य और ऊर्जा जागृत करने के 80 कारण (कुसितारम्भवत्थु)

"भिक्षुओं, आलस्य के ये आठ कारण हैं। वे आठ कारण क्या हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु को कुछ काम करना है। उसके मन में यह विचार आता है: 'मुझे कुछ काम करना है। काम करते-करते मेरा शरीर थक जाएगा। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त, अभी तक न प्राप्त, अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्त की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यही आलस्य का पहला कारण है।"

(2) "एक भिक्षु ने कुछ काम किया। उसके मन में विचार आया: 'मैंने कुछ काम किया है। काम के कारण मेरा शरीर थक गया है। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यही आलस्य का

दूसरा कारण है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु को यात्रा करनी पड़ती है। उसके मन में आता है: 'मुझे यात्रा करनी है। यात्रा के दौरान मेरा शरीर थक जाएगा। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यही आलस्य का तीसरा कारण है।"

(4) "एक भिक्षु ने यात्रा की। उसके मन में विचार आया: 'मैंने यात्रा की है। यात्रा करते-करते मेरा शरीर थक गया है। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट गया। उसने अभी तक अप्राप्त ज्ञान के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाई। यही आलस्य का चौथा कारण है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए पैदल चला, लेकिन उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार भोजन नहीं मिला, चाहे वह मोटा हो या उत्तम। उसके मन में यह विचार आता है: [333] 'मैं गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए पैदल चला, लेकिन मुझे अपनी आवश्यकता के अनुसार भोजन नहीं मिला, चाहे वह मोटा हो या उत्तम। मेरा शरीर थक गया है और बोझिल हो गया है। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त को जानने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यह आलस्य का पाँचवाँ कारण है।"

(6) "फिर, एक भिक्षु किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए पैदल चला और उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार, चाहे वह मोटा हो या उत्तम, भोजन मिल गया। उसके मन में यह विचार आया: 'मैं गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए पैदल चला और मुझे अपनी आवश्यकता के अनुसार, चाहे वह मोटा हो या उत्तम, भोजन मिल गया। मेरा शरीर गीली फलियों के ढेर की तरह भारी और बोझिल हो गया है। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यही आलस्य का छठा कारण है।"

(7) "एक भिक्षु थोड़ा बीमार है। उसे यह ख्याल आता है: 'मैं थोड़ा बीमार हूँ। मुझे लेट जाना चाहिए। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त को जानने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता। यही आलस्य का सातवाँ कारण है।"

(8) "एक भिक्षु रोग से ठीक हो गया है। ठीक होने के तुरंत बाद, उसके मन में यह विचार आता है: 'मैं रोग से ठीक हो गया हूँ; मैं अभी-अभी रोग से ठीक हुआ हूँ। मेरा शरीर अभी भी कमजोर और सुस्त है। मुझे लेट जाना चाहिए।' वह लेट जाता है। वह अभी तक अप्राप्त, अभी तक न प्राप्त, अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्त की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं लगाता है। यह आलस्य का आठवाँ कारण है।"

"ये आलस्य के आठ आधार हैं। [334]

भिक्षुओं, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करने के ये आठ आधार हैं। वे आठ कौन से हैं?

(1) "यहाँ, एक भिक्षु को कुछ काम करना है। उसके मन में यह विचार आता है: 'मुझे कुछ काम करना है। काम करते समय मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होगा। मुझे पहले से ही अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति, अप्राप्त उपलब्धियों और अप्राप्त अनुभवों के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए।' वह अप्राप्त लक्ष्यों की प्राप्ति, अप्राप्त उपलब्धियों और अप्राप्त अनुभवों के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करता है। ऊर्जा उत्पन्न करने का यह पहला आधार है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु ने कुछ काम किया। उसके मन में यह विचार आया: 'मैंने कुछ काम किया है। काम करते समय मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना संभव नहीं था। मुझे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए...'। यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का दूसरा आधार है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु को यात्रा करनी पड़ती है। उसके मन में यह विचार आता है: 'मुझे यात्रा करनी है। यात्रा के दौरान मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना आसान नहीं होगा। मुझे पहले से ही ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए।' यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का तीसरा आधार है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु ने यात्रा की। उसे यह विचार आया: 'मैंने यात्रा की है। यात्रा के दौरान मेरे लिए बुद्धों की शिक्षाओं पर ध्यान देना संभव नहीं था। मुझे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए।...' यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का चौथा आधार है। [335]

(5) "फिर, एक भिक्षु किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने गया, लेकिन उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार भोजन नहीं मिला, चाहे वह मोटा हो या उत्तम। उसके मन में यह विचार आया: 'मैं किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने गया, लेकिन मुझे अपनी आवश्यकता के अनुसार भोजन नहीं मिला, चाहे वह मोटा हो या उत्तम। मेरा शरीर हल्का और फुर्तीला है। मुझे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए...' यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का पाँचवाँ आधार है।"

(6) "फिर, एक भिक्षु ने किसी गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए यात्रा की और उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार, चाहे वह मोटा हो या उत्तम, भोजन प्राप्त हुआ। उसके मन में यह विचार आया: 'मैंने गाँव या कस्बे में भिक्षा मांगने के लिए यात्रा की और मुझे अपनी आवश्यकता के अनुसार, चाहे वह मोटा हो या उत्तम, भोजन प्राप्त हुआ। मेरा शरीर बलवान और चुस्त है। मुझे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए...' यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का छठा आधार है।"

(7) "फिर, एक भिक्षु थोड़ा बीमार है। उसे यह ख्याल आता है: 'मैं थोड़ा बीमार हूँ। संभव है कि मेरी बीमारी और बढ़ जाए। मुझे पहले से ही ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए...' यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का सातवाँ आधार है।"

(8) "एक भिक्षु रोग से ठीक हो गया है। ठीक होने के तुरंत बाद, उसके मन में यह विचार आता है: 'मैं रोग से ठीक हो गया हूँ, अभी-अभी रोग से ठीक हुआ हूँ। संभव है कि मेरा रोग फिर से लौट आए। मुझे अभी से ही उस प्राप्ति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करनी चाहिए जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, ... हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, जो अभी तक प्राप्त हुई है,'। यह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करने का आठवाँ आधार है।"

"ये ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जगाने के आठ आधार हैं।" [336]

IV. ध्यान (सतिवाग्गो संस्कृत स्मृतिवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

81 सती ध्यान (ध्यान/सती) [1797]

भिक्षुओं, (1) जब सती ध्यान और पूर्ण बोध (आंतरिक एवं बाह्य) का अभ्यास न हो, तो सती ध्यान और पूर्ण बोध से रहित व्यक्ति के लिए, (2) नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब सती लज्जा और नैतिक भय की भावना न हो, तो इंद्रियों पर नियंत्रण का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब इंद्रियों पर नियंत्रण न हो, तो इंद्रियों पर नियंत्रण न होने के कारण, (4) सद्‌गुणों का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब सद्‌गुणों का अभ्यास न हो, तो सद्‌गुणों से रहित व्यक्ति के लिए, (5) सही समाधि का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब सही समाधि न हो, तो सही समाधि से रहित व्यक्ति के लिए, (6) जब किसी व्यक्ति को चीजों का वास्तविक ज्ञान और दर्शन नहीं होता, तो (7) निबिद्दा और वैराग्य का कोई कारण नहीं रह जाता। (8) जब किसी व्यक्ति को विमुक्ति और वैराग्य नहीं होता, तो उसे मुक्ति का ज्ञान और दर्शन नहीं मिल पाता।

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्तियाँ कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; न ही उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी पूरी तरह से विकसित होती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब सती ध्यान और पूर्ण बोध (आंतरिक और बाह्य) नहीं होता, तो सती ध्यान और पूर्ण बोध से रहित व्यक्ति के लिए नैतिक लज्जा और नैतिक भय का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय का अभाव होता है... तब मुक्ति का ज्ञान और दर्शन भी अपने प्रत्यक्ष कारण से रहित हो जाता है।

भिक्षुओं, (1) जब सती ध्यान और पूर्ण ज्ञान (आंतरिक एवं बाह्य) प्राप्त होता है, तो सती ध्यान और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, (2) नैतिक लज्जा और नैतिक भय का निकटवर्ती कारण निःसंकोच होता है। जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय का निःसंकोच होता है, तो इंद्रियों पर नियंत्रण का निकटवर्ती कारण निःसंकोच होता है। जब इंद्रियों पर नियंत्रण होता है, तो इंद्रियों पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति के लिए, (4) सद्गुणी आचरण का निकटवर्ती कारण निःसंकोच होता है। जब सद्गुणी आचरण होता है, तो सद्गुणी आचरण का निकटवर्ती कारण निःसंकोच होता है। जब सही समाधि प्राप्त होती है, तो सही समाधि प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, (6) वस्तुओं का उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन होता है। जब किसी को चीजों का वास्तविक स्वरूप (यथा-भूत-नाना-दस्सना संस्कृत: यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) का ज्ञान और दृष्टि प्राप्त होती है, तो (7) निब्दिदा और वैराग का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण को प्राप्त कर लेते हैं। [337] जब किसी को निब्दिदा और वैराग प्राप्त होता है, तो (8) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण को प्राप्त कर लेते हैं।

मान लीजिए एक पेड़ है जिसमें शाखाएँ और पत्ते हैं। फिर उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक उसी प्रकार, जब सती ध्यान और पूर्ण बोध (आंतरिक और बाह्य) होता है, तो सती ध्यान और पूर्ण बोध वाले व्यक्ति के लिए नैतिक लज्जा और नैतिक भय का मूल कारण प्रकट होता है। जब नैतिक लज्जा और नैतिक भय उत्पन्न होता है, तो मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका मूल कारण प्रकट होता है।

---

82 पुन्निया

तब पूज्य पुन्निया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, ऐसा क्यों है कि तथागत (बुद्ध) कभी धम्म का उपदेश देने के लिए इच्छुक होते हैं और कभी नहीं होते?" 5798

(1) हे पुण्य, जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर भी तथागत (बुद्ध) के पास न आता है, तो तथागत (बुद्ध) धर्म का उपदेश देने के लिए प्रवृत्त नहीं होते। (2) परन्तु जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर उनके पास आता है, तो तथागत (बुद्ध) उपदेश देने के लिए प्रवृत्त होते हैं। (3) जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर उनके पास आता है, परन्तु उनकी सेवा न करता है... (4) जब वह उनकी सेवा करता है, परन्तु प्रश्न न पूछता है... (5) जब वह प्रश्न पूछता है, परन्तु धर्म (मार्ग) को उत्सुकता से न सुनता है... (6) जब वह धर्म को उत्सुकता से सुनता है, परन्तु सुनकर उसे मन में न रखता है... (7) जब वह इसे सुनकर मन में तो रखता है, परन्तु मन में रखी शिक्षाओं के अर्थ की जाँच नहीं करता... (8) जब वह मन में रखी शिक्षाओं के अर्थ की जाँच तो करता है, परन्तु अर्थ और धम्म को समझकर धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, तब तथागत (बुद्ध) धम्म सिखाने के लिए इच्छुक नहीं होते।

लेकिन, पुण्य, (1) जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो, [338] (2) तथागत (बुद्ध) के पास जाए, (3) तथागत (बुद्ध) की सेवा करे, (4) प्रश्न पूछे, और (5) उत्सुकतापूर्वक धम्म (मार्ग) सुने; और (6) धम्म को सुनकर उसे मन में रखे, (7) मन में रखे उपदेशों के अर्थ की जांच करे, और (8) अर्थ और धम्म को समझकर धम्म के अनुसार अभ्यास करे, तो तथागत (बुद्ध) धम्म का उपदेश देने के लिए तत्पर हो जाते हैं। जब, पुण्य, व्यक्ति में ये आठ गुण होते हैं, तो तथागत (बुद्ध) पूर्णतया धम्म का उपदेश देने के लिए तत्पर हो जाते हैं। 1799

---

83 जड़युक्त (मुलका)

भिक्षु (सन्यासी), अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछ सकते हैं: (1) 'हे मित्रों, समस्त वस्तुएँ किसमें निहित हैं? (2) वे किसके द्वारा अस्तित्व में आती हैं? (3) उनकी उत्पत्ति किससे होती है? (4) वे किस पर केंद्रित होती हैं? (5) वे किस ओर अग्रसर होती हैं? (6) उन पर

किसका अधिकार है? (7) उनका स्वामी कौन है? (8) उनका मूल क्या है?' यदि आपसे इस प्रकार पूछा जाए, तो आप उन्हें क्या उत्तर देंगे?'

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'हे मित्रों, सभी चीजों की जड़ क्या है? . . . [339] . . . उनका सार क्या है?' तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।

"मित्रों, (1) सभी वस्तुएँ इच्छा में निहित हैं। (2) वे ध्यान के माध्यम से अस्तित्व में आती हैं। (3) वे संपर्क से उत्पन्न होती हैं। (4) वे संवेदना (वेदना) में अभिसरित होती हैं। (5) उनका नेतृत्व समाधि (आत्म-लीनता/सता) करती है। (6) सती ध्यान (ध्यान) उन पर अधिकार रखता है। (7) दिव्य ज्ञान (पन्न ज्ञान) उनका पर्यवेक्षक है। (8) मुक्ति उनका मूल है।" 1801

"यदि आपसे ये प्रश्न पूछे जाएं, तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए जैसे आप अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को उत्तर देते हैं।"

---

84 एक चोर (कोरा)

"भिक्षुओं (साधुओं) में आठ गुण होने के कारण, एक कुशल चोर जल्दी ही मुसीबत में पड़ जाता है और उसका जीवन काल बीत जाता है। वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह उस पर हमला करता है जो उस पर हमला नहीं करता। (2) वह बिना कुछ छोड़े चोरी करता है। (3) वह एक स्त्री की हत्या करता है। (4) वह एक युवती का बलात्कार करता है। (5) वह एक भिक्षु को लूटता है। (6) वह राजकोष को लूटता है। (7) वह अपना काम अपने पड़ोस में करता है। और (8) वह [अपनी लूटी हुई वस्तु को] छिपाने में कुशल नहीं है।" 802 इन आठ गुणों के कारण, एक कुशल चोर जल्दी ही मुसीबत में पड़ जाता है और उसका जीवन काल बीत जाता है।

"भिक्षुओं (साधुओं) में आठ गुण होते हैं, जिससे एक कुशल चोर जल्दी मुसीबत में नहीं पड़ता और लंबे समय तक टिकता है। वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह उस पर हमला नहीं करता जो उस पर हमला न करे। (2) वह बिना कुछ छोड़े चोरी नहीं करता। (3) वह किसी स्त्री की हत्या नहीं करता। (4) वह किसी युवती का बलात्कार नहीं करता। (5) वह किसी भिक्षु को नहीं लूटता। (6) वह राजकोष को नहीं लूटता। (7) वह अपना काम अपने मोहल्ले में नहीं करता। और (8) वह लूटे गए माल को छिपाने में कुशल होता है। इन आठ गुणों से युक्त एक कुशल चोर जल्दी मुसीबत में नहीं पड़ता और लंबे समय तक टिकता है।" [340]

---

85 तपस्वी (समान सं. श्रमण)

भिक्षु (मठवासी), (1) 'तपस्वी' तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए एक पदनाम है। (2) 'ब्राह्मण' तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए एक पदनाम है। (3) 'चिकित्सक' . . . (4) 'ज्ञान का स्वामी' 1803 . . . (5) 'निर्मल व्यक्ति' . . . (6) 'निर्मल व्यक्ति' . . . (7) 'ज्ञाता' . . . (8) 'मुक्त व्यक्ति' तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए एक पदनाम है।

वह सर्वोच्च अवस्था जो एक तपस्वी द्वारा प्राप्त की जा सकती है, 1804 वह ब्राह्मण जो ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) जी चुका है, वह अवस्था जो ज्ञान के स्वामी और चिकित्सक द्वारा प्राप्त की जा सकती है — वह सर्वोच्च अवस्था जो निष्कलंक, शुद्ध, ज्ञानी, मुक्त व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जा सकती है — [उस पर] मैं युद्ध में विजयी हूँ; मुक्त होकर, मैं दूसरों को बंधन से मुक्त करता हूँ। मैं एक नाग हूँ, परम वश में, 1805 प्रशिक्षण से परे, निर्वाण प्राप्त।

---

86 प्रसिद्धि (यासा, यश के बिना)

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसलों में भ्रमण कर रहे थे, जब वे इच्छानगला नामक कोसल के ब्राह्मण गाँव पहुँचे। वहाँ भगवान (बुद्ध) इच्छानगला के घने वन में रहने लगे। इच्छानगला के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: “कहा जाता है कि शाक्य वंश से निकले तपस्वी गौतम इच्छानगला पहुँचे हैं और अब इच्छानगला के घने वन में निवास कर रहे हैं। अब उस गुरु गौतम के बारे में यह शुभ सूचना फैली है कि ‘वह भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं; पूर्णतः प्रबुद्ध हैं... [जैसा कि 6:42 में है]... वे एक पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराते हैं।’ ऐसे अरहंतों को देखना सौभाग्य की बात है।”

फिर, जब रात बीत गई, तो इच्छानागला के ब्राह्मण गृहस्थों ने तरह-तरह का भोजन लेकर इच्छानागला के घने जंगल में चले गए। वे प्रवेश द्वार के बाहर शोर मचाते हुए खड़े हो गए। उस समय पूज्य नागिता भगवान (बुद्ध) के सेवक थे। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य नागिता से कहा, "नागीता, इतना शोर कौन मचा रहा है? ऐसा लगता है जैसे मछुआरे मछलियाँ पकड़ने आए हों।"

"भंते, ये इच्छानागला के ब्राह्मण गृहस्थ हैं जो अनेक प्रकार का प्रचुर भोजन लेकर आए हैं। वे प्रवेश द्वार के बाहर खड़े हैं, [इसे] भगवान (बुद्ध) और भिक्षुओं के संघ को अर्पित करने की इच्छा से।"

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग का यह आनंद, एकांत का आनंद, शांति का आनंद, ज्ञान का यह आनंद प्राप्त नहीं करता, वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार कर ले।"

"हे भंते, अब भगवान (बुद्ध) की सहमति हो, सुगत (भगवान बुद्ध) की सहमति हो। अब भगवान (बुद्ध) की सहमति का समय आ गया है। अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। जैसे [342] जब भारी बारिश की बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता है, वैसे ही अब भगवान (बुद्ध) जहाँ भी जाएँगे, नगर और गाँव के ब्राह्मण गृहस्थ उसी दिशा में झुकेंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि भगवान (बुद्ध) का सद्गुणी आचरण और पन्ना (दिव्य ज्ञान) है।"

"हे नागिता, मुझे कभी प्रसिद्धि न मिले, और प्रसिद्धि कभी मेरा पीछा न करे। जो व्यक्ति इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग के इस सुख को प्राप्त नहीं करता... वह उस नीच सुख, उस आलसी सुख, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के सुख को स्वीकार कर सकता है।"

नागिता, कुछ देवता भी बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, निःसंयम के आनंद, एकांत के आनंद, शांति के आनंद और ज्ञान के इस आनंद को प्राप्त नहीं कर पाते, जो मुझे बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से प्राप्त होता है।

(1) "जब, 1807 नागिता, तुम सब एक साथ आते हो और मिलते हो, ; संगति के इरादे से, तो मुझे यह विचार आता है: 'निश्चित रूप से, ये पूजनीय लोग इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, त्याग का यह आनंद, एकांत का आनंद, शांति का आनंद, ज्ञान का आनंद प्राप्त नहीं करते हैं जो मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के प्राप्त करता हूँ; क्योंकि जब वे [343] एक साथ आते हैं और मिलते हैं, तो वे संगति के इरादे से आते हैं।

(2) "हे नागिता, मैं भिक्षुओं को एक-दूसरे को उंगलियों से गुदगुदाते हुए हंसते और खेलते हुए देखता हूँ। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'निश्चित रूप से, ये पूजनीय भिक्षु बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से इस वैराग्य के आनंद को प्राप्त नहीं करते... जो मैं बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से प्राप्त करता हूँ; क्योंकि ये पूजनीय भिक्षु एक-दूसरे को उंगलियों से गुदगुदाते हुए हंसते और खेलते हैं।'

(3) "हे नागिता, मैं ऐसे भिक्षुओं को देखता हूँ जो तृप्ति तक भरपेट भोजन करने के बाद विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लिप्त हो जाते हैं। तब मुझे यह विचार आता है: 'निश्चित रूप से, ये पूजनीय भिक्षु इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, वैराग्य का यह आनंद प्राप्त नहीं करते... जो मैं इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के प्राप्त करता हूँ। क्योंकि तृप्ति तक भरपेट भोजन करने के बाद, वे विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लिप्त हो जाते हैं।'"

(4) "मैं देखता हूँ, नागिता, एक भिक्षु गाँव के बाहरी इलाके में समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की अवस्था में बैठा है। तब मुझे यह विचार आता है: 'अब कोई मठ का सेवक या कोई नौसिखिया इस पूजनीय भिक्षु के पास लौटकर उसे उस समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) से विमुख कर देगा।' 1803 [344] इसी कारण मैं इस भिक्षु के गाँव के बाहरी इलाके में निवास करने से प्रसन्न नहीं हूँ।

(5) "हे नागिता, मैं देखता हूँ कि वन में रहने वाला एक भिक्षु वन में ऊंघ रहा है। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपनी इस ऊंघ और थकान को दूर करेगा और केवल वन की अनुभूति (सन्ना/संग्या), एकात्मता की अवस्था में लीन रहेगा।' इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(6) "हे नागिता, मैं देखता हूँ कि वन में रहने वाला एक भिक्षु वन में असंयमित अवस्था में बैठा है। तब मुझे यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपने असंयमित मन को एकाग्र करेगा या अपने आत्ममग्न मन को रोकेगा।' इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(7) "हे नागिता, मैं देखता हूँ कि वन में रहने वाला एक भिक्षु समाधि की अवस्था में बैठा है। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'अब यह पूजनीय भिक्षु अपने अमुक्त मन को मुक्त करेगा या अपने मुक्त मन की रक्षा करेगा।' इसी कारण मैं इस भिक्षु के वन में निवास करने से प्रसन्न हूँ।"

(8) "हे नागिता, जब मैं किसी राजमार्ग पर यात्रा कर रहा होता हूँ और मुझे अपने आगे या पीछे कोई दिखाई नहीं देता, भले ही वह केवल शौच और पेशाब करने के उद्देश्य से ही क्यों न हो, उस समय मैं निश्चिंत रहता हूँ।"

---

87 अलम्सबोल पलटना (पट्टनिकुज्जना सं. पात्रा...)

भिक्षुओं, जब किसी गृहस्थ अनुयायी में आठ गुण हों, तो संघ चाहे तो उस पर भिक्षापात्र उलट सकता है। 1809 वे आठ गुण क्या हैं? [345] (1) वह भिक्षुओं को लाभ प्राप्त करने से रोकने का प्रयास करता है; (2) वह भिक्षुओं को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है; (3) वह भिक्षुओं को किसी विशेष स्थान पर निवास करने से रोकने का प्रयास करता है; (4) वह भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है; (5) वह भिक्षुओं को आपस में विभाजित करता है; (6) वह बुद्ध की निंदा करता है; (7) वह धम्म की निंदा करता है; (8) वह संघ की निंदा करता है। जब किसी गृहस्थ अनुयायी में ये आठ गुण हों, तो संघ चाहे तो उस पर भिक्षापात्र उलट सकता है।

भिक्षुओं, जब किसी गृहस्थ अनुयायी में आठ गुण होते हैं, तो संघ चाहे तो उस पर भिक्षापात्र सीधा कर सकता है। वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह भिक्षुओं को लाभ प्राप्त करने से नहीं रोकता; (2) वह भिक्षुओं को हानि पहुंचाने का प्रयास नहीं करता; (3) वह भिक्षुओं को आस-पास रहने से नहीं रोकता; (4) वह भिक्षुओं का अपमान और अपशब्द नहीं करता; (5) वह भिक्षुओं को आपस में नहीं बांटता; (6) वह बुद्ध की स्तुति करता है; (7) वह धम्म की स्तुति करता है; (8) वह संघ की स्तुति करता है। जब किसी गृहस्थ अनुयायी में ये आठ गुण होते हैं, तो संघ चाहे तो उस पर भिक्षापात्र सीधा कर सकता है।

---

88 आत्मविश्वास की कमी (अप्पसादपवेदनिया)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में आठ गुण होते हैं, तो उसके अनुयायी, यदि चाहें, तो उस पर अपना अविश्वास व्यक्त कर सकते हैं। [346]

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में आठ गुण होते हैं, तो उसके अनुयायी, यदि चाहें, तो उस पर अपना विश्वास प्रकट कर सकते हैं; वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह गृहस्थों को लाभ प्राप्त करने से नहीं रोकता; (2) वह गृहस्थों को हानि पहुंचाने का प्रयास नहीं करता; (3) वह गृहस्थों का अपमान और अपशब्द नहीं करता; (4) वह गृहस्थों को आपस में नहीं बांटता; (5) वह बुद्ध की स्तुति करता है; (6) वह धम्म की स्तुति करता है; (7) वह संघ की स्तुति करता है; (8) लोग उसे उचित स्थान पर देखते हैं। जब किसी भिक्षु में ये आठ गुण होते हैं, तो उसके अनुयायी, यदि चाहें, तो उस पर अपना विश्वास प्रकट कर सकते हैं।

---

89 सुलह (पतिसारनिया)

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में आठ गुण होते हैं, तो संघ, यदि चाहे, तो उस पर मेल-मिलाप का कार्य करने का आदेश दे सकता है। 1812 वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह गृहस्थों को लाभ प्राप्त करने से रोकने का प्रयास करता है; (2) वह गृहस्थों को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है; (3) वह गृहस्थों का अपमान और निंदा करता है; (4) वह गृहस्थों को आपस में विभाजित करता है; (5) वह बुद्ध की निंदा करता है; (6) वह धम्म की निंदा करता है; (7) वह संघ की निंदा करता है; (8) वह गृहस्थों से किए गए किसी वैध वादे को पूरा नहीं करता है। जब किसी भिक्षु में ये आठ गुण होते हैं, तो संघ, यदि चाहे, तो उस पर मेल-मिलाप का कार्य करने का आदेश दे सकता है।

भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में आठ गुण होते हैं, तो संघ चाहे तो उस पर पूर्व में लगाए गए किसी भी सुलह के कार्य को रद्द कर सकता है। वे आठ गुण क्या हैं? (1) वह गृहस्थों को लाभ प्राप्त करने से रोकने का प्रयास नहीं करता; (2) वह गृहस्थों को हानि पहुँचाने का प्रयास नहीं करता; (3) वह गृहस्थों का अपमान और अपशब्द नहीं करता; (4) वह गृहस्थों को आपस में विभाजित नहीं करता; (5) वह बुद्ध की स्तुति करता है; [347] (6) वह धम्म की स्तुति करता है; (7) वह संघ की स्तुति करता है; (8) वह गृहस्थों से किए गए किसी वैध वचन का पालन करता है। जब किसी भिक्षु में ये आठ गुण होते हैं, तो संघ चाहे तो उस पर पूर्व में लगाए गए किसी भी सुलह के कार्य को रद्द कर सकता है।

---

90 व्यवहार (सम्मवत्तना)

भिक्षुओं, गंभीर दुराचार के आरोप में फंसे भिक्षु को आठ सिद्धांतों के अनुसार उचित आचरण करना चाहिए। (1) उसे पूर्ण दीक्षा नहीं देनी चाहिए; (2) उसे आश्रित नहीं रखना चाहिए; (3) उसे किसी नौसिखिए की सेवा नहीं करनी चाहिए; (4) उसे भिक्षुणियों के उपदेशक के रूप में सेवा करने का समझौता स्वीकार नहीं करना चाहिए; (5) यदि वह सहमत भी हो जाए, तो भी उसे भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहिए; (6) उसे संघ में किसी भी प्रकार का अधिकारी बनने का समझौता स्वीकार नहीं करना चाहिए; (7) उसे किसी भी प्रमुख पद पर नहीं रखा जाना चाहिए; (8) उसे उस मूल के मामले में पुनर्वास नहीं देना चाहिए। गंभीर दुराचार के आरोप में फंसे भिक्षु को इन आठ सिद्धांतों के अनुसार उचित आचरण करना चाहिए।

वी. तपस्वी 1816 (समन्ना)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

91 —116 [1617]

तब मादा ले अनुयायी बोज्झा। . . सिरिमा. . . पदुमा . . . सुताना. . . मनुजा। . . उत्तर . . . मुत्ता . . . खेमा . . . सोमा [1818] . . . रुचि। . . राजकुमारी कुंडी. . . महिला अनुयायी बिम्बी। . . राजकुमारी सुमना. . . रानी मल्लिका. . . महिला अनुयायी टिसा। . . तिस्सा की माँ सोना। . . सोना की माँ. . . काना . . . काना की माँ. . .उत्तरा नंदमाता [1819] . . . विशाखा मिगरामाता. . . महिला अनुयायी खुज्जुत्तारा। . . महिला गृहिणी समावती... सुप्पवास, कोलियन पुत्री... महिला गृहिणी सुप्पिया... गृहिणी नकुलमाता...

VI. लस्ट (राग) एंड सो फोर्थ रिपीटिशन सीरीज [1820] (रागपेय्यलम)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

117

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे आठ चीजें क्या हैं? सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही समाधि। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है।

118

भिक्षुओं, काम (राग) के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे आठ चीजें क्या हैं? (1) जो आंतरिक रूप से रूपों को जानता है, वह बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या कुरूप रूपों को देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देखता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' (2) जो आंतरिक रूप से रूपों को जानता है, वह बाहरी रूप से असीम, सुंदर या कुरूप रूपों को देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देखता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' (3) जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं जानता है, वह बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या कुरूप रूपों को देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देखता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' (4) जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं जानता है, वह बाहरी रूप से असीम, सुंदर या कुरूप रूपों को देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देखता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' [349] (5) जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से नीले, नीले रंग के, नीले आभा वाले, नीले रंग के . . . (6) . . . पीले, पीले रंग के, पीले आभा वाले, पीले रंग के . . (7) . . . लाल, लाल रंग के, लाल आभा वाले, लाल रंग के . . . (8) . . . सफेद, सफेद रंग के, सफेद आभा वाले, सफेद रंग के . . . इन पर विजय प्राप्त करके, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' काम (राग) के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए, इन आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है।

119

भिक्षुओं, राग (काम) के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे आठ चीजें क्या हैं? (1) रूप धारण करने वाला रूप देखता है। (2) आंतरिक रूप से रूप का बोध न करने वाला बाहरी रूप देखता है। (3) केवल 'सुंदर' पर ध्यान केंद्रित करने वाला। (4) रूप की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए, व्यक्ति अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'चेतना अनंत है' का बोध करते हुए, व्यक्ति अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। (6) अनंत चेतना के आधार पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'कुछ नहीं है' का बोध करके व्यक्ति शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके व्यक्ति न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अआयतन) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। (8) न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अबोध) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके व्यक्ति सबोध (सन्न/संज्ञा) और वेदना (संवेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। काम (राग) के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के लिए इन आठ चीजों का विकास करना आवश्यक है।

---

120 - 146

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके निवारण के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन आठ चीजों का विकास करना चाहिए।

---

147 - 626

भिक्षुओं (सन्यासियों), प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए: ...पूर्ण समझ के लिए ...पूर्ण विनाश के लिए ...त्याग के लिए ...विलुप्त होने के लिए ...लुप्त होने के लिए ...निरस्त होने के लिए ...निरस्त होने के लिए ...त्याग के लिए ...मोह के लिए ...क्रोध के लिए ...शत्रुता के लिए ...अपमान के लिए ...अभिमान के लिए ...ईर्ष्या के लिए ...कंजूसी के लिए [350] ...छल-कपट के लिए ...धूर्तता के लिए ...हठ के लिए ...उत्साह के लिए ...अभिमान के लिए ...अहंकार के लिए ...नशे के लिए ...आलस्य के लिए ...इन आठ चीजों का विकास किया जाना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा, यह सुनकर वे भिक्षु प्रसन्न हुए।

अष्टम अध्याय की पुस्तक पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> 9.नौ की पुस्तक

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का नौवां खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN8) अगला (AN10) >>>>

अंतर्वस्तु

1नौ की पुस्तक (नवकनिपात)

1.1पहले पचास

1.1.1I. आत्मज्ञान खंड (संबोधिवाग्ग सं. संबोधि-वर्ग)

1.1.1.11 आत्मज्ञान [1821] (संबोधि)

1.1.1.22 समर्थन [1824] (निस्सया सं. निस्साराना)

1.1.1.33 मेघिया [1829]

1.1.1.44 नंदका [1833]

1.1.1.55 शक्तियाँ [1842] (बाला)

1.1.1.66. संघ (सेवना)

1.1.1.77 सुतवा

1.1.1.88 सज्जा

1.1.1.99 व्यक्ति (पुग्गल सं. पुरुष-युगल)

1.1.1.1010 उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

1.1.2द्वितीय. शेर की दहाड़ (सिहानाडा वाग्गो सं. सिंघा-नाडा)

1.1.2.111 शेर की दहाड़ (सिहानाडा सं. सिंघा-नाडा)

1.1.2.212 शेष बचे हुए अवशेष (सौपदिशेष) के साथ

1.1.2.313 कोत्थिता

1.1.2.414 समिद्धि

1.1.2.515 उबालना (गंडा)

1.1.2.616 संज्ञान/धारणाएं (सन्ना सं. संज्ञा)

1.1.2.717 परिवार/कुल (कुला)

1.1.2.818 नौ कारकों के साथ उपवास (नवंग-उपोसथा)

1.1.2.919 देवता (देवदूत)

1.1.2.1020 वेलामा

1.1.3तृतीय. शुद्ध प्राणियों का निवास (सत्तवसा वैगो)

1.1.3.121 सम्मान (तिथाना)

1.1.3.222 जंगली बछड़े

1.1.3.323 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)

1.1.3.424 प्राणियों के निवास स्थान (सत्तवास)

1.1.3.525 पन्ना (दिव्य ज्ञान)

1.1.3.626 (6) पत्थर का स्तंभ (सिलयुपा)

1.1.3.727 शत्रुता (1) (वेरा1)

1.1.3.828 शत्रुता (2) (वेरा2)

1.1.3.929 आक्रोश की व्याख्या (1) (अघतवत्थु1)

1.1.3.1030 आक्रोश निवारण (2) (अघतवत्थु2)

1.1.3.1131. क्रमिक समाप्ति (अनुपुब्बनिरोध)

1.1.4चतुर्थ. महान अध्याय (महावग्गो सं. महा-वर्ग)

1.1.4.132 नौ ट्रान्स (समाधि) अवस्थाएँ (संक्षेप में) (1) (अनूपुब्बाविहार 1 सं. अनु-पूर्व-विहार)

1.1.4.233 नौ ट्रान्स (समाधि) अवस्थाएँ विस्तार से (अनूपुब्बविहारसमापत्ति2 सं. अनु-पूर्व-विहार...)

1.1.4.334 निब्बान आनंद है (निब्बानसुखा सं. निर्वाण-सुखा)

1.1.4.435 गाय की उपमा (गविउपमा, संस्कृत: गौ-उपमा)

1.1.4.536 नौ झाना (ट्रान्स अवस्था) (सं. ध्यान)

1.1.4.637 आनंद

1.1.4.738 लोकायतिका

1.1.4.839 देव (देवदूत/भगवान) असुर युद्ध (देवअसुरसंगम सं. देव-असुर-संग्राम)

1.1.4.940 एक नर हाथी

1.1.4.1041 तपस्सा

1.1.5वी. समानता 1949 (समाननवग्गो)

1.1.5.142 कारावास (संबधा)

1.1.5.243 शारीरिक साक्षी (काया-साक्षी सं. काया-साक्षी)

1.1.5.344 दिव्य ज्ञान द्वारा मुक्ति (पन्नविमुत्त सं. प्रज्ञा-विमुक्त)

1.1.5.445 दोनों दृष्टियों से मुक्त (उभतोभागविमुत्त)

1.1.5.546 प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला धम्म(1) (संदित्तिकधम्म)

1.1.5.647 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान मुक्ति (2) (संदित्थिकनिब्बाना)

1.1.5.748 निब्बाना (निर्वाण के बिना)

1.1.5.849 अंतिम निर्वाण

1.1.5.950 उस विशेष संदर्भ में निर्वाण (तदंगनिब्बान)

1.1.5.1051 इसी जीवन में

1.2दूसरा पचास

1.2.1I. सुरक्षा अनुभाग (खेमावग्गो सं. क्षेमा-वर्ग)

1.2.1.152 सुरक्षा (1) (खेमा सं. क्षेमा)

1.2.1.253 सुरक्षा प्राप्तकर्ता (2) (खेमापट्ट सं. क्षेमा..)

1.2.1.354 अमर (1) (अमता सान. अमृता)

1.2.1.455 अमर अवस्था प्राप्तकर्ता (2) (अमतप्पत्ता सान. अमृत..)

1.2.1.556 निडर (1) (अभय)

1.2.1.657 निर्भय अवस्था प्राप्तकर्ता (2) (अभयपट्ट)

1.2.1.758 शांति (1) (पासद्धि)

1.2.1.859 प्रगतिशील शांति (2) (अनुपुब्बपसद्धि संस. अनुपुर्वा..)

1.2.1.960 निरोध (Cessation)

1.2.1.1061. क्रमिक समाप्ति (अनुपुब्बनिरोध)

1.2.1.1162 संभव और असंभव (अभब्बा)

1.2.2द्वितीय. ध्यान अनुभाग की स्थापना (सतिपत्थानवग्गो सं. स्मृति-प्रस्थान-वर्ग)

1.2.2.163 प्रशिक्षण में कमजोरी (सिक्खदुब्बल्य सं. सैक्ष्य-दौर्बल्य)

1.2.2.264 अवरोध (निवारण)

1.2.2.365 कामुक आनंद (कामागुना)

1.2.2.466 क्लिंगिंग एग्रीगेट्स (उपदानकखंड)

1.2.2.567 निम्न बेड़ियाँ (ओरंभागिया)

1.2.2.668 गंतव्य (गति)

1.2.2.769 कंजूसी (मच्छरिया)

1.2.2.870 उच्चतर बंधन (उद्धम्भागीय)

1.2.2.971 मानसिक बंजरपन (चेतोखिला)

1.2.2.1072 बंधन (सेतोविनीबंध)

1.2.3(III) सही प्रयास (समप्पधनवग्गो)

1.2.3.173 प्रशिक्षण (सिक्ख बिना शिष्य)

1.2.3.274 82 बाधाएँ, आदि।

1.2.4चतुर्थ. मानसिक शक्ति (जादू) के लिए आधार (इद्धिपदावग्गो सं. रिद्धि-पाद-वर्ग)

1.2.4.183 प्रशिक्षण (सिक्ख बिना शिष्य)

1.2.4.284-92 बाधाएँ, इत्यादि।

1.2.5वी. वासना (राग) और इसी प्रकार पुनरावृति श्रृंखला [1960]

1.2.5.193 [1961]

1.2.5.294

1.2.5.395— 112 [1962]

1.2.5.4113-432

नौ की पुस्तक (नवकनिपात)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. आत्मज्ञान खंड (संबोधिवाग्ग सं. संबोधि-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 आत्मज्ञान [1821] (संबोधि)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (सन्यासियों), अन्य संप्रदायों के तपस्वियों को आपसे यह पूछना पड़ सकता है: 'मित्रों, ज्ञान प्राप्ति में सहायक तत्वों के विकास का तात्कालिक कारण क्या है?' यदि आपसे ऐसा पूछा जाए, तो आप उन्हें क्या उत्तर देंगे?"

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (सन्यासियों), यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'मित्रों, ज्ञान प्राप्ति में सहायक तत्वों के विकास का तात्कालिक कारण क्या है?' तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए:

(1) "यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी, [352] अच्छे सहपाठी होते हैं। यही ज्ञान प्राप्ति में सहायक तत्वों के विकास का पहला निकटतम कारण है।

(2) "हे मित्रों, भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय का पालन करता है, छोटी-छोटी गलतियों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। यही दूसरा निकटतम कारण है।"

(3) "हे मित्रों, भिक्षु को बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, हृदय को खोलने में सहायक तपस्वी जीवन से संबंधित प्रवचन सुनने को प्राप्त होता है, अर्थात् इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंध न जाने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने, सद्गुणी आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, और मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर प्रवचन। यह तीसरा निकटतम कारण है। . . ."

(4) "हे मित्रों, एक भिक्षु ने अकुशल गुणों का त्याग करने और कुशल गुणों को ग्रहण करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न की है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, और कुशल गुणों को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता। यह चौथा निकटवर्ती कारण है।"

(5) "हे मित्रों, भिक्षु ही ज्ञानवान होता है; वह उस ज्ञान से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है तथा दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। यह ज्ञान प्राप्ति के सहायक साधनों के विकास का पाँचवाँ निकटतम कारण है।"

"जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह गुणी होगा, जो पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है... वह उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करेगा।"

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा अनुसार, हृदय को खोलने वाले तपस्वी जीवन से संबंधित बातें सुन सकेगा, अर्थात् इच्छाओं की कमी पर चर्चा... मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर चर्चा।

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी, अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) को त्यागने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) [353] उत्पन्न करेगा... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करेगा।

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह बुद्धिमान होगा, और उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त होगा जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।

इन पाँच बातों पर आधारित होकर भिक्षु को आगे चार और बातों का विकास करना चाहिए। (6) कामवासना (राग) का त्याग करने के लिए अनाकर्षकता (सन्न/संज्ञा) का विकास करना चाहिए। (7) द्वेष का त्याग करने के लिए प्रेम (दयालुता) का विकास करना चाहिए। (8) विचारों को रोकने के लिए श्वास (अनपान) की सती (ध्यान) का विकास करना चाहिए। (9) 'मैं हूँ' के अहंकार को दूर करने के लिए अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की धारणा (सन्न/संज्ञा) का विकास करना चाहिए। 1822 जब व्यक्ति अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) को समझता है, तो अनात्म की धारणा (सन्न/संज्ञा) स्थिर हो जाती है। 1823 जो अनात्म को समझता है, वह 'मैं हूँ' के अहंकार को दूर कर लेता है, जो इसी जीवन में निर्वाण है।

---

2 समर्थन [1824] (निस्सया सं. निस्साराना)

तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे भंते, कहा जाता है: 'सहारों से सुसज्जित, सहारे से सुसज्जित' भिक्षु किस प्रकार सहारे से सुसज्जित होता है?" 1825

(1) हे भिक्षु, यदि कोई भिक्षु विश्वास से प्रेरित होकर हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर लाभकारी (कुशल) का विकास करे, तो वास्तव में उसने हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर दिया है। (2) यदि नैतिक लज्जा की भावना से प्रेरित होकर... (3) नैतिक भय से प्रेरित होकर... (4) ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) से प्रेरित होकर... (5) पन्ना (दिव्य ज्ञान) से प्रेरित होकर, कोई भिक्षु हानिकारक (अकुशल) का

त्याग कर लाभकारी (कुशल) का विकास करे, तो वास्तव में उसने हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर दिया है। 1826 [354] एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) का त्याग कर दिया है और उसे अच्छी तरह से त्याग दिया है जब उसने उसे श्रेष्ठ पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर त्याग दिया है। 1822

"इन पाँच बातों पर आधारित होकर, उस भिक्षु को चार बातों पर भरोसा करना चाहिए। 1828 वे चार बातें क्या हैं? यहाँ, (6) चिंतन करने के बाद, भिक्षु कुछ चीजों का उपयोग करता है; (7) चिंतन करने के बाद, वह धैर्यपूर्वक कुछ चीजों को सहन करता है; (8) चिंतन करने के बाद, वह कुछ चीजों से बचता है; और (9) चिंतन करने के बाद, वह कुछ चीजों का निवारण करता है।

"भिक्षु, इसी प्रकार से भिक्षु को सहायता प्राप्त होती है।"

---

3 मेघिया [1829]

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) कालीका पर्वत पर कालीका में निवास कर रहे थे। 1830 उस समय पूज्य मेघिया भगवान (बुद्ध) के सेवक थे। तब पूज्य मेघिया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा: "भंते, मैं भिक्षा मांगने के लिए जंतुगम में प्रवेश करना चाहता/चाहती हूँ।"

"मेघिया, तुम अपनी सुविधानुसार ऐसा कर सकती हो।"

फिर सुबह, पूज्य मेघिया ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और भिक्षा मांगने के लिए जंतुगामा में प्रवेश किया। जंतुगामा में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, भिक्षा मांगने के बाद वे किमिकाला नदी के किनारे गए। किमिकाला नदी के किनारे टहलते और घूमते हुए, पूज्य मेघिया ने [355] एक सुंदर और मनमोहक आमों का बाग देखा। उनके मन में यह विचार आया: "यह आमों का बाग वास्तव में सुंदर और मनमोहक है, जो परिश्रम करने वाले कुल के व्यक्ति के लिए उपयुक्त है। यदि भगवान (बुद्ध) मुझे अनुमति दें, तो मैं इस आमों के बाग में परिश्रम करने के लिए वापस आऊंगा।"

तब पूज्य मेघिया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, आज सुबह मैंने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए जंतुगामा में प्रवेश किया। ... [ऊपर जैसा ही, लेकिन प्रथम पुरुष में।] ... मैंने सोचा: 'यह आमों का बाग सचमुच सुंदर और रमणीय है, जो साधना में लगे कुल के व्यक्ति के लिए उपयुक्त है। यदि भगवान (बुद्ध) मुझे अनुमति दें, तो मैं उस आमों के बाग में जाकर साधना करूंगा।' अतः यदि भगवान (बुद्ध) मुझे अनुमति दें, तो मैं उस आमों के बाग में जाकर साधना करूंगा।"

"चूंकि हम अकेले हैं, मेघिया, तब तक प्रतीक्षा करो जब तक कोई दूसरा भिक्षु न आ जाए।" 1831

दूसरी बार पूज्य मेघिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, भगवान (बुद्ध) के लिए अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है और जो किया जा चुका है उसे बढ़ाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। 1832 परन्तु भंते, मुझे अभी और कुछ करना है और जो किया जा चुका है उसे बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि भगवान (बुद्ध) मुझे अनुमति दें, तो मैं उस आम के बाग में जाकर प्रयास करूंगा।"

"चूंकि हम अकेले हैं, मेघिया, तब तक प्रतीक्षा करो जब तक कोई दूसरा भिक्षु न आ जाए।" [356 J]

तीसरी बार पूज्य मेघिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "भंते, भगवान (बुद्ध) के लिए अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है और जो किया जा चुका है उसे बढ़ाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु भंते, मुझे कुछ और करना है और जो किया जा चुका है उसे बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि भगवान (बुद्ध) मुझे अनुमति दें, तो मैं उस आम के बाग में जाकर परिश्रम करूंगा।"

"चूंकि तुम प्रयास की बात कर रही हो, मेघिया, मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम अपनी सुविधानुसार जा सकती हो।"

तब पूज्य मेघिया अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा की और आम के बाग में चले गए। वे अंदर गए और दिन बिताने के लिए एक पेड़ की तलहटी में बैठ गए। फिर, जब पूज्य मेघिया उस आम के बाग में थे,

तो उनके मन में तीन प्रकार के बुरे (अकुशल) विचार बार-बार आते रहे: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने के विचार। तब उन्हें यह बात समझ में आई: "यह सचमुच आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है! मैं आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में आ गया हूँ, फिर भी मुझे ये तीन प्रकार के बुरे (अकुशल) विचार सताते रहते हैं: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने के विचार।" 1833

तब पूज्य मेघिया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, जब मैं उस आम के बाग में रह रहा था, तब मेरे मन में तीन प्रकार के बुरे (अकुशल) विचार बार-बार आते थे: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने के विचार। तब मुझे यह बात सूझी: 'यह सचमुच आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है! मैं आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर हो गया हूँ, फिर भी [357] मैं अभी भी इन तीन प्रकार के बुरे (अकुशल) विचारों से घिरा हुआ हूँ: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने के विचार" ;

मेघिया, जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई होती है, तो पाँच चीजें इसकी परिपक्वता की ओर ले जाती हैं। 1834 वे पाँच चीजें क्या हैं?

(1) "हे मेघिया, यहाँ एक भिक्षु (साधु) के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी हैं। जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई होती है, तो यही वह पहली चीज है जो इसकी परिपक्वता की ओर ले जाती है।"

(2) "भिक्षु गुणी होता है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय का पालन करता है, छोटी-छोटी गलतियों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई होती है, तो यही वह दूसरी चीज है जो इसकी परिपक्वता की ओर ले जाती है।"

(3) "फिर, भिक्षु को बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, हृदय को खोलने वाले तपस्वी जीवन से संबंधित प्रवचन सुनने को मिलते हैं, अर्थात् इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंधे न रहने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने, सद्‌गुणी व्यवहार, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर प्रवचन। जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई होती है, तो यह तीसरी चीज है जो इसकी परिपक्वता की ओर ले जाती है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत की है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई है, तो यह चौथी चीज है जो इसकी परिपक्वता की ओर ले जाती है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु बुद्धिमान होता है; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। जब मन की मुक्ति परिपक्व नहीं हुई होती है, तो यह पाँचवाँ तत्व है जो इसकी परिपक्वता की ओर ले जाता है।"

"जब, मेघिया, किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी, अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह गुणी होगा, जो पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है... [358] उनमें प्रशिक्षण लेगा।

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा अनुसार, हृदय को खोलने वाले तपस्वी जीवन से संबंधित बातें सुन सकेगा, अर्थात् इच्छाओं की कमी पर चर्चा... मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर चर्चा।

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाएगा... न कि लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग करेगा।

जब किसी भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह बुद्धिमान होगा, और उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) होगा जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।

इन पाँच बातों पर आधारित होकर भिक्षु को आगे चार और बातों का विकास करना चाहिए। (6) कामवासना (राग) का त्याग करने के लिए अनाकर्षकता (सन्न/संज्ञा) का विकास करना चाहिए। (7) द्वेष का त्याग करने के लिए प्रेम (दयालुता) का विकास करना चाहिए। (8) विचारों को रोकने के लिए श्वास (अनपान) की सती (ध्यान) का विकास करना चाहिए। (9) 'मैं हूँ' के अहंकार को दूर करने के लिए अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की धारणा (सन्न/संज्ञा) का विकास करना चाहिए। जब व्यक्ति अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) को जान लेता है, तो अनात्म की धारणा स्थिर हो जाती है। अनात्म को जानने वाला व्यक्ति 'मैं हूँ' के अहंकार को दूर कर लेता है, जो इसी जीवन में निर्वाण है।

---

4 नंदका [1833]

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य नंदका सभा भवन में भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उनका उत्साहवर्धन कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें प्रसन्न कर रहे थे। फिर शाम को भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में गए। वे प्रवचन समाप्त होने की प्रतीक्षा में द्वार के बाहर खड़े रहे। जब उन्हें पता चला कि प्रवचन समाप्त हो गया है, तो उन्होंने अपना गला साफ किया [359] और कुंडी पर दस्तक दी। भिक्षुओं ने उनके लिए द्वार खोल दिया। तब भगवान (बुद्ध) सभा भवन में प्रवेश कर गए, अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए और पूज्य नंदका से कहा, "आपने भिक्षुओं को धर्म का लंबा प्रवचन दिया। प्रवचन समाप्त होने की प्रतीक्षा में द्वार के बाहर खड़े रहने से मेरी कमर में दर्द हो रहा था।"

यह सुनकर पूज्य नंदका, वेदना से लज्जित होकर, भगवान (बुद्ध) से बोले: "भंते, मुझे पता नहीं था कि भगवान (बुद्ध) द्वार के बाहर खड़े हैं। यदि मुझे पता होता, तो मैं इतनी देर तक नहीं बोलता।"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य नंदक की घबराहट को समझते हुए उनसे कहा, "अच्छा, अच्छा, नंदक! तुम्हारे जैसे कुल के जातकों के लिए, जिन्होंने गृहस्थ जीवन छोड़कर श्रद्धापूर्वक संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, धर्म के मार्ग पर प्रवचन के लिए एक साथ बैठना उचित है। नंदक, जब तुम एकत्रित हो जाओ, तो तुम्हें दो में से एक कार्य करना चाहिए: या तो धर्म पर प्रवचन देना चाहिए या मौन धारण करना चाहिए।"

(1) "नंदक, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो सकता है, पर वह सद्गुणी नहीं होता; अतः वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। 1836 उसे उस कारक को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्था से परिपूर्ण होकर सद्गुणी कैसे हो सकता हूँ?' परन्तु जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो और सद्गुणी भी हो, तब वह उस कारक के संबंध में पूर्ण होता है।"

(2) "एक भिक्षु आस्थावान और सद्गुणी हो सकता है, परन्तु वह मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त नहीं करता; 1837 अतः वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस कारक को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्थावान और सद्गुणी कैसे हो सकता हूँ, और मन की आंतरिक समता (समथा) भी कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?' परन्तु जब एक भिक्षु आस्थावान और सद्गुणी हो, और मन की आंतरिक समता (समथा) भी प्राप्त कर ले, तब वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।"

(3) "एक भिक्षु आस्थावान और सद्गुणी हो सकता है, और वह मन की आंतरिक समता (समाथा) प्राप्त कर सकता है, लेकिन यदि वह घटनाओं के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं करता है; 1838 इस प्रकार वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। जिस प्रकार एक लंगड़ा या दोषपूर्ण पैर वाला चार पैरों वाला जानवर उस अंग के संबंध में अपूर्ण होगा; उसी प्रकार, जब एक भिक्षु आस्थावान और सद्गुणी हो, और मन की आंतरिक समता (समाथा) प्राप्त कर ले, लेकिन वह घटनाओं के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं करता है, तो वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस कारक को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्थावान और सद्गुणी कैसे हो सकता हूँ, मन की आंतरिक समता (समाथा) कैसे प्राप्त कर सकता हूँ, और घटनाओं के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?'"

(4) परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से परिपूर्ण हो, (ii) गुणी हो, (iii) मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त कर ले, और (iv) घटनाओं के प्रति अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर ज्ञान (दिव्य ज्ञान) प्राप्त कर ले, तो वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए। भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य नंदक ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे मित्रों, अभी-अभी अपने आसन से उठकर अपने निवास स्थान में प्रवेश करने से पहले, भगवान (बुद्ध) ने पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को चार शब्दों में प्रकट किया: [361 'नंदक, एक भिक्षु आस्था से संपन्न हो सकता है, पर सद्गुणी नहीं। ... [नंदक यहाँ बुद्ध के प्रवचन को दोहराते हैं:] ... परन्तु जब एक भिक्षु आस्था से संपन्न और सद्गुणी होता है, और वह मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करता है और घटनाओं में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) भी प्राप्त करता है, तब वह उस कारक के संबंध में पूर्ण होता है।'

"मित्रों, समय पर धम्म सुनने और समय पर धम्म पर चर्चा करने के ये पाँच लाभ हैं। वे पाँच क्या हैं?"

(5) "यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु भिक्षुओं को उस धम्म का उपदेश देता है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वह पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है। जिस भी ढंग से भिक्षु भिक्षुओं को आरंभ में उत्तम धम्म का उपदेश देता है... [और] पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है, ठीक उसी तरह गुरु भिक्षु को प्रिय और आदरणीय हो जाता है, और भिक्षु उसका आदर और सम्मान करता है। 1839 धम्म को समय पर सुनने और धम्म पर समय पर चर्चा करने का यह पहला लाभ है।"

(6) "एक भिक्षु, भिक्षुओं को उस धम्म का उपदेश देता है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वह उस आध्यात्मिक जीवन को प्रकट करता है जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध है। जिस भी ढंग से भिक्षु भिक्षुओं को उस धम्म का उपदेश देता है जो आरंभ में उत्तम है... [और] उस पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है, ठीक उसी तरह, उस धम्म के संबंध में, वह अर्थ में प्रेरणा और धम्म में प्रेरणा का अनुभव करता है। 1840 धम्म को समय पर सुनने और धम्म पर समय पर चर्चा करने का यह दूसरा लाभ है।"

(7) "एक भिक्षु, भिक्षुओं को उस धम्म (मार्ग) का उपदेश देता है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वह पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है। जिस भी तरीके से भिक्षु भिक्षुओं को आरंभ में उत्तम धम्म का उपदेश देता है... [और] पूर्णतः पूर्ण और [362] शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है, ठीक उसी तरह वह उस धम्म में पन्ना (दिव्य ज्ञान) से भेदने के बाद एक गहन और सारगर्भित विषय देखता है। 1841 यह धम्म को समय पर सुनने और धम्म पर समय पर चर्चा करने का तीसरा लाभ है।"

(8) "एक भिक्षु, जब अन्य भिक्षुओं को उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म का उपदेश देता है, तो वह पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध आध्यात्मिक जीवन को प्रकट करता है। जिस भी प्रकार से भिक्षु अन्य भिक्षुओं को आरंभ में उत्तम धम्म का उपदेश देता है... और पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है, ठीक उसी प्रकार उसके साथी भिक्षु उसका अधिक आदर करते हैं, यह सोचकर: 'निश्चित रूप से, इस पूजनीय भिक्षु ने सिद्धि प्राप्त कर ली है या प्राप्त करेंगे।' धम्म को समय पर सुनने और धम्म पर समय पर चर्चा करने का यह चौथा लाभ है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु भिक्षुओं को उस धम्म का उपदेश देता है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वह उस आध्यात्मिक जीवन को प्रकट करता है जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध है। जिस भी प्रकार से भिक्षु भिक्षुओं को उस धम्म का उपदेश देता है जो आरंभ में उत्तम है... [और] उस ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करता है जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध है, उस धम्म को सुनकर वहाँ के वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने हृदय के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा रखते हुए निवास करते हैं, अभी तक अप्राप्य की प्राप्ति के लिए, अभी तक अप्राप्त की गई उपलब्धि के लिए, अभी तक अप्राप्त की गई अनुभूति के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत करते हैं। परन्तु उस धम्म को सुनकर, वे भिक्षु जो अरहंत हैं जिनके दोष नष्ट हो गए हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करने वाले, जो करना आवश्यक था वह करने वाले, बोझ उतारने वाले, अपने लक्ष्य तक पहुँचने वाले, अस्तित्व के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को पूर्णतः नष्ट करने वाले और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त होने वाले, [363] इस जीवन में सुखमय निवास के लिए समर्पित हैं। यह धम्म को समय पर सुनने और धम्म पर समय पर चर्चा करने का पाँचवाँ लाभ है।

समय पर धम्म सुनने और समय पर धम्म पर चर्चा करने के पाँच लाभ ये हैं।

---

5 शक्तियाँ [1842] (बाला)

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। कौन सी चार? पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, निष्कलंकता की शक्ति और अनुकूल संबंध बनाए रखने की शक्ति।

(1) हे भिक्षुओं, पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति क्या है? व्यक्ति ने पन्ना (दिव्य ज्ञान) से उन गुणों को स्पष्ट रूप से देखा और समझा है जो हानिकारक (अकुशल) हैं और हानिकारक माने जाते हैं; जो लाभकारी (कुशल) हैं और लाभकारी माने जाते हैं; जो निंदनीय हैं और निंदनीय माने जाते हैं; जो निष्कलंक हैं और निष्कलंक माने जाते हैं; जो अंधकारमय हैं और अंधकारमय माने जाते हैं; जो प्रकाशमय हैं और प्रकाशमय माने जाते हैं; जिनका पालन नहीं किया जाना चाहिए और जिनका पालन नहीं किया जाना चाहिए; जिनका पालन किया जाना चाहिए और जिनका पालन किया जाना चाहिए; जो श्रेष्ठों के अयोग्य हैं और श्रेष्ठ माने जाते हैं; जो श्रेष्ठों के योग्य हैं और श्रेष्ठ माने जाते हैं। इसे ही पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति कहते हैं।

(2) "और ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति क्या है? व्यक्ति उन गुणों को त्यागने की इच्छा उत्पन्न करता है जो हानिकारक (अकुशल) हैं और हानिकारक माने जाते हैं; जो निंदनीय हैं और निंदनीय माने जाते हैं; जो अंधकारमय हैं और अंधकारमय माने जाते हैं; जिनका पालन नहीं किया जाना चाहिए और जिनका पालन नहीं किया जाना चाहिए; जो श्रेष्ठ लोगों के अयोग्य हैं और जिनका अयोग्य माना जाता है। व्यक्ति प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करता है, मन लगाता है और इसके लिए प्रयासरत रहता है। व्यक्ति उन सभी गुणों को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करता है जो लाभकारी (कुशल) हैं और लाभकारी माने जाते हैं; जो निष्कलंक हैं और निष्कलंक माने जाते हैं; जो उज्ज्वल हैं और उज्ज्वल माने जाते हैं; जिनका पालन किया जाना चाहिए और जिनका पालन किया जाना चाहिए; [364] जो श्रेष्ठ लोगों के योग्य हैं और जिनका योग्य माना जाता है। व्यक्ति प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत करता है, मन को लगाता है और इसके लिए प्रयास करता है। इसे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति कहा जाता है।

(3) "और निर्दोषता की शक्ति क्या है? यहाँ, एक श्रेष्ठ शिष्य निर्दोष शारीरिक, वाणी और मानसिक क्रिया में संलग्न होता है। इसे निर्दोषता की शक्ति कहा जाता है।"

(4) "और अनुकूल संबंध बनाए रखने की शक्ति क्या है? अनुकूल संबंध बनाए रखने के ये चार साधन हैं: दान, मधुर वाणी, परोपकारी आचरण और निष्पक्षता। दान में सर्वश्रेष्ठ धम्म का दान है। मधुर वाणी में सर्वश्रेष्ठ है, जो धम्म में रुचि रखता हो और उत्सुकता से सुनता हो, उसे बार-बार धम्म का उपदेश देना। परोपकारी आचरण में सर्वश्रेष्ठ है, जब कोई व्यक्ति किसी अविश्वासी व्यक्ति को आस्था की संपदा में, किसी अनैतिक व्यक्ति को सद्गुणों की संपदा में, किसी कंजूस व्यक्ति को उदारता की संपदा में और किसी मूर्ख व्यक्ति को ज्ञान (दिव्य ज्ञान) की संपदा में प्रोत्साहित, स्थापित और स्थिर करता है। निष्पक्षता में सर्वश्रेष्ठ है कि एक जन्म-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) दूसरे जन्म-प्रवेशक (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के समान हो, एक जन्म-प्रवेशक (1 एक पुनर्जन्म (सकदागामी) एक बार जन्म लेने वाले (1 पुनर्जन्म, सकदागामी) के बराबर है, एक सांसारिक पुनर्जन्म न लेने वाले (अनगामी) एक सांसारिक पुनर्जन्म न लेने वाले (अनगामी) के बराबर है, और एक अरहंत एक अरहंत के बराबर है। 1843 इसे अनुकूल संबंध बनाए रखने की शक्ति कहा जाता है।

भिक्षुओं, ये चार शक्तियाँ हैं। जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये चार शक्तियाँ होती हैं, तो वह पाँच भयों से पार पा लेता है। वे पाँच कौन से भय हैं? (5) जीविका खोने का भय, (6) बदनामी का भय, (7) सभाओं में संकोच का भय, [365] (8) मृत्यु का भय, और (9) बुरे भाग्य का भय। श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: मैं अपनी जीविका के कारण भयभीत नहीं हूँ। मुझे अपनी जीविका के कारण क्यों भयभीत होना चाहिए? मेरे पास चार शक्तियाँ हैं: पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, निष्कलंकता की शक्ति, और अनुकूल संबंध बनाए रखने की शक्ति। एक मूर्ख व्यक्ति अपनी जीविका के कारण भयभीत हो सकता है; एक आलसी व्यक्ति अपनी जीविका के कारण भयभीत हो सकता है; एक व्यक्ति जो निंदनीय शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्मों में संलग्न रहता है, वह अपनी जीविका के कारण भयभीत हो सकता है; एक व्यक्ति जो अनुकूल संबंध नहीं बनाए रखता है, वह अपनी जीविका के कारण भयभीत हो सकता है।

मुझे बदनामी का डर नहीं है... मुझे सभाओं में संकोच का डर नहीं है... मुझे मृत्यु का डर नहीं है, मुझे बुरे अंजाम का डर नहीं है। मुझे बुरे अंजाम से क्यों डरना चाहिए? मेरे पास चार शक्तियां हैं: पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति, निष्कलंकता की शक्ति और अनुकूल संबंध बनाए रखने की शक्ति। एक नासमझ व्यक्ति बुरे अंजाम से डर सकता है; एक आलसी व्यक्ति बुरे अंजाम से डर सकता है; वह व्यक्ति जो निंदनीय शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्मों में लिप्त रहता है, बुरे अंजाम से डर सकता है; वह व्यक्ति जो अनुकूल संबंध नहीं बनाए रखता, बुरे अंजाम से डर सकता है।

"जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये चार शक्तियां आ जाती हैं, तो वह इन पांचों भयों से पार पा लेता है।"

---

6. संघ (सेवना)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों/व्यक्तियों को दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनके साथ संबंध रखना चाहिए और वे जिनके साथ संबंध नहीं रखना चाहिए। वस्त्रों को भी दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका उपयोग करना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए। भिक्षा भोजन... आवासों को भी दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका उपयोग करना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए। गांवों या कस्बों को भी दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका सहारा लेना चाहिए और [366] वे जिनका सहारा नहीं लेना चाहिए। देशों या क्षेत्रों को दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका सहारा लेना चाहिए और वे जिनका सहारा नहीं लेना चाहिए।"

(1) जब यह कहा गया: 'मित्रों, व्यक्तियों को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जिनके साथ संगति करनी चाहिए और वे जिनके साथ संगति नहीं करनी चाहिए,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि कोई किसी व्यक्ति के बारे में जानता है: 'जब मैं इस व्यक्ति के साथ संगति करता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) कम हो जाते हैं; और जीवन की वे आवश्यकताएँ जो संन्यासी जीवन में जाने वाले व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिएं - वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन - कठिनाई से प्राप्त होती हैं; और जिस तपस्वी जीवन के लिए मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, वह मेरे लिए विकास द्वारा पूर्ण नहीं होता', तो उस स्थिति में व्यक्ति को उस व्यक्ति से किसी भी समय, रात या दिन, विदा लिए बिना भी, विदा ले लेनी चाहिए। उसका अनुसरण जारी नहीं रखना चाहिए। 846

(2) यदि किसी को किसी व्यक्ति के बारे में पता चले: 'जब मैं इस व्यक्ति के साथ संगति करता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और कुशल गुण घट जाते हैं; परन्तु जीवन की वे आवश्यक वस्तुएँ जो संन्यासी को प्राप्त होनी चाहिएं— वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन—बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो जाती हैं; परन्तु फिर भी, जिस संन्यासी जीवन के लिए मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाया है, उसका लक्ष्य मुझे पूर्ण नहीं हो पाता,' तो ऐसी स्थिति में, विचार करने के बाद, उस व्यक्ति से विदा लेकर उससे विदा ले लेनी चाहिए। 1847 उसका अनुसरण जारी नहीं रखना चाहिए।

(3) यदि किसी को किसी व्यक्ति के बारे में पता चले: 'जब मैं इस व्यक्ति के साथ संगति करता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ जाते हैं; परन्तु जीवन की वे आवश्यक वस्तुएँ जो संन्यासी जीवन में जाने वाले व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिए, जैसे वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन, मुझे मुश्किल से प्राप्त होती हैं; फिर भी, जिस संन्यासी जीवन के लिए मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाया है, वह मेरे लिए विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है।' ऐसे में, चिंतन करने के बाद, उस व्यक्ति का अनुसरण करते रहना चाहिए, उससे विमुख नहीं होना चाहिए।

(4) यदि किसी को किसी व्यक्ति के बारे में पता हो: 'जब मैं इस व्यक्ति के साथ रहता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण कम हो जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं; और जीवन की वे सभी आवश्यक वस्तुएँ जो संन्यासी जीवन में जाने वाले व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिएं— वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन— नितांत प्राप्त हो जाती हैं; और जिस संन्यासी जीवन के लिए मैंने गृहस्थ

जीवन छोड़कर संन्यास लिया है, उसका लक्ष्य मेरे लिए विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है,' तो ऐसे में व्यक्ति को जीवन भर उस व्यक्ति का अनुसरण करते रहना चाहिए। उसे उससे विमुख नहीं होना चाहिए, भले ही उसे त्याग दिया जाए।

"जब यह कहा गया था: 'मित्रों, व्यक्तियों को दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनके साथ संबंध रखना चाहिए और वे जिनके साथ संबंध नहीं रखना चाहिए', तो इसका कारण यही था।"

(5) "जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, वस्त्रों को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी वस्त्र के बारे में पता हो: 'इस वस्त्र का उपयोग करने से मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) बढ़ते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण घटते हैं', तो उसे ऐसे वस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी को किसी वस्त्र के बारे में पता हो: 'इस वस्त्र का उपयोग करने से मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण घटते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ते हैं', तो उसे ऐसे वस्त्र का उपयोग करना चाहिए। [368] जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, वस्त्रों को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।

(6) जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, भिक्षा को दो प्रकार का समझना चाहिए: एक वह जिसका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरा वह जिसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी भिक्षा के बारे में पता हो कि 'इस भिक्षा का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण कम हो जाते हैं', तो उसे ऐसी भिक्षा का उपयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी को किसी भिक्षा के बारे में पता हो कि 'इस भिक्षा का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण कम हो जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं', तो उसे ऐसी भिक्षा का उपयोग करना चाहिए। जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, भिक्षा को दो प्रकार का समझना चाहिए: एक वह जिसका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरा वह जिसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।

(7) जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, आवास को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी आवास के बारे में पता हो: 'जब मैं इस आवास का उपयोग करता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) बढ़ जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) घट जाते हैं,' तो उसे ऐसे आवास का उपयोग नहीं करना चाहिए। लेकिन यदि किसी को किसी आवास के बारे में पता हो: 'जब मैं इस आवास का उपयोग करता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) घट जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ जाते हैं,' तो उसे ऐसे आवास का उपयोग करना चाहिए। जब यह कहा गया: 'हे मित्रों, आवास को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।

(8) जब यह कहा गया कि 'मित्रों, गाँवों या नगरों को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जहाँ जाना चाहिए और वे जहाँ नहीं जाना चाहिए,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी गाँव या नगर के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस गाँव या नगर में जाता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं,' तो उसे ऐसे गाँव या नगर में नहीं जाना चाहिए। परन्तु यदि किसी को किसी गाँव या नगर के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस गाँव या नगर में जाता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं,' तो उसे ऐसे गाँव या नगर में जाना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'मित्रों, गाँवों या नगरों को दो प्रकार का समझना चाहिए: वे जहाँ जाना चाहिए और वे जहाँ नहीं जाना चाहिए,' तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

(9) "जब यह कहा गया कि 'मित्रों, देशों या क्षेत्रों को दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका सहारा लिया जा सकता है और वे जिनका सहारा नहीं लिया जा सकता,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी देश या क्षेत्र के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस देश या क्षेत्र का सहारा लेता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) बढ़ जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण घट जाते हैं,' तो उसे ऐसे देश या क्षेत्र का सहारा नहीं लेना चाहिए। लेकिन यदि किसी को किसी देश या क्षेत्र के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस देश या क्षेत्र का सहारा लेता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) घट जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ जाते हैं, तो उसे ऐसे देश या क्षेत्र का सहारा लेना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'मित्रों, देशों या क्षेत्रों को दो प्रकार से समझा जाना चाहिए: वे जिनका सहारा लिया जा सकता है और वे जिनका सहारा नहीं लिया जा सकता,' तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।"

---

7 सुतवा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब एक तपस्वी सुतवा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भंते, एक बार भगवान (बुद्ध) यहीं राजगृह, पर्वतीय किले में निवास कर रहे थे। 1848 उस समय, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, मैंने यह सुना और सीखा: 'सुतव, एक भिक्षु जो अरहंत है - जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं, जिसने ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जिया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों (भाव/पुनर्जन्म के कारण) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, जो अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो गया है - वह पाँच मामलों में उल्लंघन करने में असमर्थ है। वह जानबूझकर किसी जीव को जीवन से वंचित करने में असमर्थ है; वह चोरी करके वह नहीं ले सकता जो उसे नहीं दिया गया है; वह यौन संबंध बनाने में असमर्थ है; वह जानबूझकर झूठ बोलने में असमर्थ है; वह इंद्रिय सुखों का आनंद लेने के लिए वस्तुओं का संचय करने में असमर्थ है जैसा कि उसने अतीत में एक गृहस्थ के रूप में किया था।' भंते, क्या मैंने भगवान (बुद्ध) से जो सुना वह सही था, क्या मैंने उसे सही ढंग से समझा, क्या मैंने उस पर सही ढंग से ध्यान दिया, क्या मैंने उसे सही ढंग से याद रखा?

"जी, सुतावा, आपने इसे सही सुना, सही समझा, सही ध्यान दिया और सही याद रखा। सुतावा, अतीत में भी और अब भी मैं यही कहता हूँ: 'एक भिक्षु जो अरहंत है—जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं...जो अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो गया है—वह नौ मामलों में पाप करने में असमर्थ है। (1) वह जानबूझकर किसी जीव को जीवन से वंचित नहीं कर सकता; (2) वह चोरी करके वह नहीं ले सकता जो उसे नहीं दिया गया है; (3) वह यौन संबंध बनाने में असमर्थ है; (4) वह जानबूझकर झूठ नहीं बोल सकता; (5) वह गृहस्थ रहते हुए इंद्रिय सुखों का आनंद लेने के लिए वस्तुओं का संचय नहीं कर सकता; (6) वह बुद्ध का त्याग नहीं कर सकता; (7) वह धम्म का त्याग नहीं कर सकता; (8) वह संघ का त्याग नहीं कर सकता; (9) वह प्रशिक्षण का त्याग नहीं कर सकता।" 1849 [371] हे सुतवा, अतीत में भी और अब भी मैं यही कहता हूँ: 'वह भिक्षु जो अरहंत है - जिसके दोष नष्ट हो गए हैं... जो अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गया है - वह इन नौ मामलों में उल्लंघन करने में असमर्थ है।'

---

8 सज्जा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी सज्जा भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, एक बार भगवान (बुद्ध) यहीं राजगृह में निवास कर रहे थे। . . . [जैसा कि 9:7 में है] . . . भंते, क्या मैंने भगवान (बुद्ध) से यह सही सुना, सही समझा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा?" [372]

"हाँ, सज्जा, तुमने इसे सही सुना, सही समझा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा। सज्जा, पहले भी और अब भी मैं यही कहता हूँ: 'एक भिक्षु जो अरहंत है—जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं...जो अंतिम ज्ञान से पूर्णतः मुक्त हो गया है—वह नौ मामलों में पाप करने में असमर्थ है। (1) वह जानबूझकर किसी जीव को जीवन से वंचित नहीं कर सकता; (2) वह चोरी करके वह चीज़ नहीं पा सकता जो उसे नहीं दी गई है; (3) वह यौन संबंध बनाने में असमर्थ है; (4) वह जानबूझकर झूठ नहीं बोल सकता; (5) वह पहले की तरह गृहस्थ रहते हुए इंद्रिय सुखों का आनंद लेने के लिए वस्तुओं का संचय नहीं कर सकता; (6) वह इच्छा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चल सकता; (7) वह घृणा के कारण गलत मार्ग पर नहीं चल सकता; (8) वह किसी और कारण से गलत मार्ग पर नहीं चल सकता। (9) वह भय के कारण गलत मार्ग पर चलने में असमर्थ है। हे सज्जा, अतीत में भी और अब भी मैं यही कहता हूँ: 'एक भिक्षु जो अरहंत है—जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं...जो अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो चुका है—वह इन नौ मामलों में उल्लंघन करने में असमर्थ है।'

---

9 व्यक्ति (पुग्गल सं. पुरुष-युगल)

भिक्षुओं, संसार में नौ प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे नौ कौन से हैं? अरहंत, जो अरहंतत्व के लिए साधना करते हैं; अनागामी, जो अनागामी के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; सकदागामी, जो एक बार जन्म लेते हैं; सोतपत्ति, जो सात जन्म लेते हैं; और सांसारिक। ये नौ प्रकार के व्यक्ति संसार में पाए जाते हैं। [373]

---

10 उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

भिक्षुओं, ये नौ व्यक्ति दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंट के योग्य हैं, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य हैं, और संसार के लिए अद्वितीय पुण्य क्षेत्र हैं। ये नौ कौन हैं? अरहंत, जो अरहंतत्व के लिए साधना करते हैं; अनागामी, जो अनागामी हैं, और जो अनागामी होने के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; सकदागामी, जो एक बार जन्म लेते हैं, और जो एक बार जन्म लेने के फल की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं; सोतपत्ति, जो सात जन्मों के लिए जन्म लेते हैं, और कुल के सदस्य। ये नौ व्यक्ति दान के योग्य हैं... संसार के लिए अद्वितीय पुण्य क्षेत्र हैं।

द्वितीय. शेर की दहाड़ (सिहानाडा वाग्गो सं. सिंघा-नाडा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 शेर की दहाड़ (सिहानाडा सं. सिंघा-नाडा)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, मैंने सावत्थी में वर्षाकालीन निवास का निर्माण पूरा कर लिया है। मैं ग्रामीण इलाकों की यात्रा पर निकलना चाहता हूँ।"

"आप जा सकते हैं, सारिपुत्त, जब आपको सुविधा हो।"

तब पूज्य सारिपुत्त अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए। [374] फिर, पूज्य सारिपुत्त के जाने के कुछ ही समय बाद, एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा...

"भंते, पूज्य सारिपुत्त ने मुझे प्रहार किया और फिर मुझे स्थापित किया।"

बिना माफी मांगे दौरे पर निकल पड़े।" 1851

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षु, मेरे नाम से सारिपुत्त को पुकारो, [उससे कहते हुए]: 'गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र सारिपुत्त।" 1882

“जी हां, भंते,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया। फिर वह पूज्य सारिपुत्त के पास गया और बोला: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र सारिपुत्त।”

"जी हां, मित्र," पूज्य सारिपुत्त ने उत्तर दिया।

उस अवसर पर पूज्य महामोग्गलाना और पूज्य आनंद ने एक चाबी ली और घर-घर जाकर पुकारते हुए कहा: "आदरणीय देवों, बाहर आओ! आदरणीय देवों, बाहर आओ! अब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में सिंह की गर्जना करेंगे!"

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "सारिपुत्त, तुम्हारे एक साथी भिक्षु ने तुम्हारे बारे में शिकायत की है, [कहते हुए]: 'भंते, पूज्य सारिपुत्त ने मुझे मारा और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर चले गए।'"

(1) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जिस प्रकार वे पृथ्वी पर शुद्ध और अशुद्ध वस्तुएँ - मल, मूत्र, थूक, मवाद और रक्त - फेंकते हैं, फिर भी पृथ्वी इससे विचलित, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार [375] हे भंते, मैं पृथ्वी के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, शत्रुता और दुर्भावना से रहित होकर निवास करता हूँ।"

(2) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती ध्यान स्थापित नहीं किया है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जैसे वे शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं को पानी में धोते हैं - मल, मूत्र, थूक, मवाद और रक्त - फिर भी पानी इससे विचलित, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होता; उसी प्रकार, हे भंते, मैं जल के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, शत्रुता और दुर्भावना से रहित होकर निवास करता हूँ।"

(3) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती ध्यान स्थापित नहीं किया है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जिस प्रकार अग्नि शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं—मल, मूत्र, थूक, मवाद और रक्त—को जला देती है, फिर भी अग्नि इनसे विचलित, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, हे भंते, मैं अग्नि के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, शत्रुता और दुर्भावना से रहित होकर निवास करता हूँ।"

(4) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जैसे वायु शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं— मल, मूत्र, थूक, मवाद और रक्त— पर बहती है, फिर भी वायु इससे विचलित, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, हे भंते, मैं वायु के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, शत्रुता और दुर्भावना से रहित होकर निवास करता हूँ।"

(5) "भंते, जिसने अपने शरीर के संबंध में शरीर-केंद्रित सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। [376] जिस प्रकार एक झाड़ू शुद्ध और अशुद्ध चीजों— मल, मूत्र, थूक, मवाद और रक्त— को पोंछता है, फिर भी झाड़ू इससे विचलित, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होता; उसी प्रकार, भंते, मैं झाड़ू के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, शत्रुता और दुर्भावना से रहित होकर निवास करता हूँ।"

(6) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है! जैसे कोई बहिष्कृत लड़का या लड़की, फटे-पुराने वस्त्र पहने और बर्तन लिए, विनम्र मन से किसी गाँव या कस्बे में प्रवेश करता है; वैसे ही, भंते, मैं भी एक बहिष्कृत लड़के के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, बिना किसी द्वेष और दुर्भावना के निवास करता हूँ।"

(7) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती ध्यान स्थापित नहीं किया है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जैसे सींग कटा हुआ बैल, जो शांत, अच्छी तरह से प्रशिक्षित और सधी हुई प्रकृति का होता है, गली-गली और चौक-चौक पर बिना किसी को अपने पैरों या सींगों से चोट पहुँचाए विचरण करता है; उसी प्रकार, भंते, मैं भी सींग कटे हुए बैल के समान विशाल, उदात्त और असीम मन से, बिना किसी द्वेष और दुर्भावना के निवास करता हूँ।"

(8) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे भ्रमण पर निकल सकता है। जैसे कोई स्त्री या पुरुष—युवा, युवा, आभूषणों का शौकीन, सिर धोए हुए—अगर किसी साँप, कुत्ते या मनुष्य का शव उसके गले में लटका दिया जाए तो [377] घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करेगा; उसी प्रकार, भंते, मैं भी इस घिनौने शरीर से घृणा, अपमान और तिरस्कार का अनुभव करता हूँ।"

(9) "भंते, जिसने अपने शरीर के प्रति सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह किसी साथी भिक्षु को मार सकता है और फिर बिना क्षमा मांगे यात्रा पर निकल सकता है। जैसे कोई व्यक्ति फटे और छिद्रित वसा से भरे कटोरे को अपने साथ रखता है जिससे तरल पदार्थ रिसता और टपकता रहता है; वैसे ही, भंते, मैं भी इस फटे और छिद्रित शरीर को अपने साथ लिए फिरता हूँ जिससे तरल पदार्थ रिसता और टपकता रहता है।"

"भंते, जिसने अपने शरीर के संबंध में शरीर की ओर निर्देशित सती (ध्यान) स्थापित नहीं की है, वह यहां किसी साथी भिक्षु पर प्रहार कर सकता है और फिर बिना माफी मांगे यात्रा पर निकल सकता है।"

तब वह [आरोप लगाने वाला] भिक्षु अपने आसन से उठा, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "भंते, मैंने एक अपराध किया है कि मैंने असत्य, निराधार और झूठे आधारों पर पूज्य सारिपुत्त की इतनी नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से निंदा की। भंते, भगवान (बुद्ध) मेरे इस अपराध को भविष्य में संयम के लिए एक अपराध मानकर स्वीकार करें।"

"हे भिक्षु, आपने निश्चित रूप से पाप किया है क्योंकि आपने असत्य, निराधार और झूठे आधारों पर पूज्य सारिपुत्त की इतनी नासमझी, मूर्खता और अकुशलता से निंदा की है। लेकिन चूंकि आप अपने पाप को पाप मानते हैं और धर्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम इसे स्वीकार करते हैं। क्योंकि गुरु के अनुशासन में वृद्धि इसी में है कि व्यक्ति अपने पाप को पाप माने, धर्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करे और भविष्य में संयम बरते।" [378]

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "सारिपुत्त, इस खोखले आदमी को क्षमा कर दो, इससे पहले कि इसका सिर यहीं सात टुकड़ों में फट जाए।"

"मैं इस पूज्य भंते को क्षमा कर दूंगा, यदि यह पूज्य मुझसे कहे: 'और कृपया मुझे क्षमा कर दें'" 1853

---

12 शेष बचे हुए अवशेष (सौपदिशेष) के साथ

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, सुबह के समय, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।" (1854)

फिर पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के संन्यासियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन संन्यासियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। उस अवसर पर वे संन्यासी एकत्रित होकर एक साथ बैठे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: “मित्रों, जो कोई भी अवशेष के साथ मर जाता है, वह नरक, पशुलोक या व्यथित आत्माओं के लोक से मुक्त नहीं होता; वह दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त नहीं होता।”

तब पूज्य सारिपुत्त ने उन तपस्वियों के कथन से न तो प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसे अस्वीकार किया, बल्कि वे अपने आसन से उठकर चले गए, [यह सोचते हुए]: "मैं पता लगाऊंगा कि भगवान (बुद्ध) इस कथन के बारे में क्या कहते हैं।"

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में भिक्षा मांगने गए, [379] भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। [यहाँ वे पूरी घटना का शब्दशः वर्णन करते हैं और कहते हैं:] "मैं अपनी सीट से उठा और चला गया, [यह सोचते हुए]: मैं पता लगाऊंगा कि भगवान (बुद्ध) इस कथन के बारे में क्या कहते हैं।"

"हे सारिपुत्त, 1855 में वर्णित अन्य संप्रदायों के वे मूर्ख और अयोग्य भटकने वाले कौन हैं, और वे कौन हैं जो शेष बचे हुए व्यक्ति को 'शेष बचे हुए व्यक्ति' और शेष न बचे हुए व्यक्ति को 'शेष न बचे हुए व्यक्ति' के रूप में जानते हैं? 1856"

"सारिपुत्त, ये नौ व्यक्ति, कुछ अवशेष छोड़कर चले जाने पर, नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र से मुक्त हो जाते हैं; दुख के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो जाते हैं। वे कौन से नौ हैं? [380]

(1) "हे सारिपुत्त, यहाँ कोई व्यक्ति सद्गुणों का पालन करता है और समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) में लीन रहता है, परन्तु पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास केवल सीमित मात्रा में ही करता है। 1857 पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, यह व्यक्ति इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त करता है। यह पहला व्यक्ति है, जो अवशेष छोड़कर इसलोक में विलीन हो जाता है, जो नरक, पशु लोक और व्यथित आत्माओं के लोक से मुक्त हो जाता है; दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।"

(2) — (5) "फिर, कोई व्यक्ति सद्गुणों और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का पालन तो करता है, लेकिन पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास केवल सीमित मात्रा में ही करता है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, यह व्यक्ति उतरते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... प्रयास से निर्वाण प्राप्त कर लेता है... जो नदी के विपरीत दिशा में उछलते हुए अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर होता है। यह पाँचवाँ व्यक्ति है, जो कुछ अवशेष छोड़कर इस लोक से विलीन हो जाता है, और नरक... निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।"

(6) "फिर, कुछ व्यक्ति सद्गुणों का पालन तो करते हैं, लेकिन समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करते हैं। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ, घृणा और मोह (मोह) के कम होने से, यह व्यक्ति एक बार जन्म लेने वाला (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) होता है, जो इस संसार में एक बार फिर आकर दुखों का अंत करता है। यह छठा व्यक्ति है, जो कुछ अवशेष छोड़कर इस संसार से विलीन हो जाता है और नरक... निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।"

(7) "फिर, कुछ व्यक्ति सद्गुणों का पालन करते हैं, लेकिन समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास केवल सीमित मात्रा में करते हैं। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, यह व्यक्ति एक बीज प्राप्त करने वाला है, जो मनुष्य के रूप में एक बार फिर पुनर्जन्म लेकर [381] दुखों का अंत करता है। यह सातवां व्यक्ति है, जो अवशेष छोड़कर इस दुनिया से विलीन हो जाता है, और नरक... निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।

(8) "फिर, कोई व्यक्ति सद्गुणों का पालन तो करता है, पर समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, यह व्यक्ति कुल-कुल में ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है, जो अच्छे परिवारों में दो-तीन बार विचरण करने के बाद दुखों का अंत करता है। यह आठवां व्यक्ति है, जो कुछ अवशेष छोड़कर इसलोक में विलीन हो जाता है और नरक... निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।"

(9) "फिर, कुछ व्यक्ति सद्गुणों का पालन तो करते हैं, लेकिन समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभ्यास सीमित मात्रा में ही करते हैं। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, यह व्यक्ति अधिकतम सात बार मोक्ष प्राप्त करने वाला होता है, जो देवताओं और मनुष्यों के बीच अधिकतम सात बार विचरण करने के बाद दुखों का अंत करता है। यह नौवां व्यक्ति है, जो कुछ अवशेष छोड़कर परलोक विलीन हो जाता है; जो नरक, पशुलोक और पीड़ित आत्माओं के लोक से मुक्त हो जाता है; दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो जाता है।"

"हे सारिपुत्त, वे अन्य संप्रदायों के मूर्ख और अयोग्य भटकने वाले कौन हैं, और वे कौन हैं जो शेष बचे हुए व्यक्ति को 'शेष बचे हुए व्यक्ति' और शेष न बचे हुए व्यक्ति को 'शेष न बचे हुए व्यक्ति' के रूप में जानते हैं?"

"ये नौ व्यक्ति, अपने अवशेष के साथ इस दुनिया से विदा होकर, नरक, पशुलोक और व्यथित आत्माओं के लोक से मुक्त हो जाते हैं; दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो जाते हैं। सारिपुत्त, मैं भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को यह धम्म व्याख्या देने के लिए इच्छुक नहीं था। इसका क्या कारण था? मुझे डर था कि इस धम्म व्याख्या को सुनकर वे आलस्य के मार्ग पर चल पड़ेंगे। [382] परन्तु मैंने यह धम्म व्याख्या आपके प्रश्न का उत्तर देने के उद्देश्य से दी है।" 1858

---

13 कोत्थिता

तब पूज्य महाकोत्थिता पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"अब, मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'इस जीवन में जिन कर्मों का फल भोगना है, वे ही भविष्य के जीवन में मुझे भोगने को मिलें'?" 1859

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'जिस कर्म का फल भविष्य में भोगना है, वही कर्म इस जीवन में भोग लूँ'?

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

"अब, मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का यही उद्देश्य है: 'क्या कर्म (जिसका परिणाम सुखद अनुभव करना है) मेरे लिए कष्टदायी बन जाए?'" 1860

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'जिन कर्मों का परिणाम कष्टदायी होता है, वे मेरे लिए सुखदायी कर्म बन जाएँ'?

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

"अब, मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'मेरे कर्म (जिनका फल मुझे परिपक्व होने पर अनुभव करना है) ऐसे कर्म (जिनका फल मुझे अपरिपक्व होने पर अनुभव करना है) बन जाएं?'" 1861

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'अपरिपक्व कर्मों का फल मुझे परिपक्व होने पर भुगतना है'?

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

"अब, मेरे मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'जिन कर्मों का फल प्रचुर मात्रा में अनुभव किया जाना है, वे अब केवल थोड़े से कर्मों में परिवर्तित हो जाएं'?"

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

"तब [383] भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का उद्देश्य यह है: 'कर्म (जिसका परिणाम थोड़ा-थोड़ा अनुभव किया जाना है) को कर्म (जिसका परिणाम मुझे प्रचुर मात्रा में अनुभव करना है) में बदल दिया जाए'?"

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

"अब, मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'जिन कर्मों का फल भोगना है, वे ऐसे कर्म बन जाएँ जिनका फल मुझे भोगना न पड़े'?" 1862

"बिल्कुल नहीं, दोस्त।"

तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का यही उद्देश्य है: 'जिन कर्मों का फल अनुभव नहीं किया जा सकता, वे ही कर्म बन जाएं जिनका फल मुझे अनुभव करना है'?

"बिल्कुल नहीं, मित्र।" 1868

"मित्र सारिपुत्त, जब आपसे पूछा जाए: 'हे मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का उद्देश्य यह है कि "इस जीवन में जिन कर्मों का फल भोगना है, वे ही भविष्य के जीवन में भोगने के लिए हों"?' तो आप कहेंगे: 'बिल्कुल नहीं, मित्र।' और जब आपसे पूछा जाए: 'तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का उद्देश्य यह है कि "भविष्य के जीवन में जिन कर्मों का फल भोगना है, वे ही इस जीवन में भोगने के लिए हों"?' तो आप कहेंगे: 'बिल्कुल नहीं, मित्र।' ... [384] ... जब आपसे पूछा जाए: 'हे मित्र सारिपुत्त, क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन इस उद्देश्य से किया जाता है कि "कर्म (जिसका परिणाम अनुभव किया जाना है) को कर्म (जिसका परिणाम मुझे अनुभव नहीं करना है) में बदल दिया जाए?" तो आप कहते हैं: 'बिल्कुल नहीं, मित्र।' और जब आपसे पूछा जाए: 'तो क्या भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन इस उद्देश्य से किया जाता है कि "कर्म (जिसका परिणाम मुझे अनुभव नहीं करना है) को कर्म (जिसका परिणाम मुझे अनुभव करना है) में बदल दिया जाए?" तो आप कहते हैं: 'बिल्कुल नहीं, मित्र।' तो फिर भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) का पालन किस उद्देश्य से किया जाता है?

"मित्र, मनुष्य भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) व्यतीत करता है, ताकि वह उस सब को जान सके, देख सके, प्राप्त कर सके, अनुभव कर सके और उसमें प्रवेश कर सके जिसे वह पहले नहीं जानता, नहीं देखता, नहीं प्राप्त करता, नहीं अनुभव करता और नहीं अनुभव करता।"

लेकिन, मित्र, ऐसा क्या है जिसे किसी ने जाना, देखा, प्राप्त किया, अनुभव किया और समझा नहीं है?

"'यह दुख है, हे मित्र, वह है जिसे मनुष्य ने न जाना है, न देखा है, न प्राप्त किया है, न अनुभव किया है और न ही उसमें प्रवेश किया है, और इसी को जानने, देखने, प्राप्त करने, अनुभव करने और उसमें प्रवेश करने के उद्देश्य से मनुष्य भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) व्यतीत करता है। [385] 'यह दुख का मूल है'... 'यह दुख का निवारण है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' वह है जिसे मनुष्य ने न जाना है, न देखा है, न प्राप्त किया है, न अनुभव किया है और न ही उसमें प्रवेश किया है, और इसी को जानने, देखने, प्राप्त करने, अनुभव करने और उसमें प्रवेश करने के उद्देश्य से मनुष्य भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) व्यतीत करता है। हे मित्र, यह वह है जिसे मनुष्य ने न जाना है, न देखा है, न प्राप्त किया है, न अनुभव किया है और न ही उसमें प्रवेश किया है, और इसी को जानने, देखने, प्राप्त करने, अनुभव करने और उसमें प्रवेश करने के उद्देश्य से मनुष्य भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य (संयमित जीवन) व्यतीत करता है। भगवान (बुद्ध)

---

14 समिद्धि

तब पूज्य समिद्धि पूज्य सारिपुत्त के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य सारिपुत्त ने उनसे कहा: 1864

(1) "संधि, किस आधार पर किसी व्यक्ति में इरादे और विचार उत्पन्न होते हैं?"

"मन (नाम) और रूप (शरीर) के आधार पर, भंते।" 1SSS

(2) "वे कहाँ विविध हो जाते हैं?"

"तत्वों के संबंध में।"

(3) "वे किससे उत्पन्न होते हैं?"

"इनकी उत्पत्ति संपर्क से होती है।"

(4) "वे किस पर अभिसरित होते हैं?"

वे संवेदना (वेदना) पर केंद्रित होते हैं। 1367

(5) "वे किस ओर जा रहे हैं?"

"वे समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से प्रेरित होते हैं।"

(6) "उन पर अधिकार कौन रखता है?"

"सती ध्यान उन पर अधिकार स्थापित करता है।"

(7) "उनका पर्यवेक्षक कौन है?"

"पन्ना (दिव्य ज्ञान) उनका पर्यवेक्षक है।"

(8) "उनका मूल क्या है?"

"मुक्ति ही उनका मूलमंत्र है।" 1868

(9) "वे किसमें परिणत होते हैं?"

"वे अमरता (अमाता/अमृत) में परिणत होते हैं।" 1869

जब आपसे पूछा गया: 'समिद्धि, किसी व्यक्ति में इरादे और विचार किस आधार पर उत्पन्न होते हैं?' तो आपने कहा: 'इस आधार पर'

मन (नाम) और रूप (शरीर) के विषय में, भंते... [386]... जब आपसे पूछा गया: 'वे किसमें परिणत होते हैं?' तो आपने कहा: 'वे अमरता (अमृत) में परिणत होते हैं।' शाबाश, शाबाश, समिद्धि! जब आपसे ऐसे प्रश्न पूछे गए, तो आपने अच्छा उत्तर दिया, लेकिन इस कारण अहंकारी मत बनो।"

---

15 उबालना (गंडा)

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक फोड़ा कई वर्षों पुराना है। उसमें नौ घाव के छिद्र होंगे, नौ प्राकृतिक छिद्र। 870 उनमें से जो कुछ भी बहेगा वह अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त और घृणित होगा। उनमें से जो कुछ भी रिसकर निकलेगा वह अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त और घृणित होगा।

भिक्षुओं, यह शरीर चार प्रमुख तत्वों से मिलकर बना है, जो माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, चावल और दलिया से निर्मित है, अनित्यता (अनिच्छा/अनित्यता) के अधीन है, गूंधने और रगड़ने के अधीन है, और टूटने और बिखरने के अधीन है। इसमें नौ घाव छिद्र हैं, नौ प्राकृतिक छिद्र। इनसे जो कुछ भी निकलता है वह अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त और घृणित है। [387] इनसे जो कुछ भी रिसता है वह अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त और घृणित है। इसलिए, भिक्षुओं, इस शरीर से विरक्त हो जाओ।

---

16 संज्ञान/धारणाएं (सन्ना सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये नौ ज्ञान/समझ/धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो महान फल और लाभ प्रदान करती हैं, जो अमरता (अम्रता/अमृत) को अपना लक्ष्य बनाकर अमरता की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। 871 वे नौ कौन से हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन की अरुचि की अनुभूति, समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति और वैराग्य की अनुभूति। ये नौ अनुभूतियाँ, जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो महान फल और लाभ प्रदान करती हैं, जो अमरता की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं, जिनका लक्ष्य अमरता ही होता है।

---

17 परिवार/कुल (कुला)

"भिक्षुओं (साधुओं), नौ गुणों से युक्त, जिस परिवार से अभी तक संपर्क नहीं किया गया है, उससे संपर्क करने योग्य नहीं है, या जिससे संपर्क किया जा चुका है, उसके साथ बैठने योग्य नहीं है।" 872 वे नौ गुण क्या हैं? (1)

वे उचित ढंग से उठते नहीं हैं। (2) वे उचित ढंग से प्रणाम नहीं करते। (3) वे उचित ढंग से बैठने की व्यवस्था नहीं करते। (4) वे अपने पास जो कुछ है उसे छिपाते हैं। (5) उनके पास बहुत कुछ होते हुए भी वे कम देते हैं। (6) उनके पास उत्तम वस्तुएँ होते हुए भी वे साधारण वस्तुएँ देते हैं। (7) वे आदर के बिना देते हैं, आदरपूर्वक नहीं। (8) वे धर्म को सुनने के लिए पास नहीं बैठते। (9) वे किसी के शब्दों का आनंद नहीं लेते। इन नौ कारकों से युक्त, जिस परिवार से अभी तक संपर्क नहीं किया गया है, उससे संपर्क करने योग्य नहीं है, और जिससे संपर्क किया जा चुका है, उसके साथ बैठने योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिनमें नौ गुण होते हैं, उनके पास अभी तक न पहुँचा गया परिवार भी पहुँचने योग्य है और जिनके पास पहुँचा जा चुका है, उनके साथ बैठना भी उचित है। वे नौ गुण क्या हैं? (1) वे सौम्य ढंग से उठते हैं। (2) वे सौम्य ढंग से प्रणाम करते हैं। (3) वे सौम्य ढंग से बैठने की व्यवस्था करते हैं। (4) वे अपने पास जो कुछ है उसे छिपाते नहीं हैं। (5) जब उनके पास बहुत कुछ होता है, [388] तो वे बहुत कुछ देते हैं। (6) जब उनके पास उत्तम वस्तुएँ होती हैं, तो वे उत्तम वस्तुएँ देते हैं। (7) वे आदरपूर्वक देते हैं, अनादर नहीं करते। (8) वे धर्म को सुनने के लिए पास बैठते हैं। (9) वे शब्दों का आनंद लेते हैं। इन नौ गुणों से युक्त, एक ऐसा परिवार जिसके पास अभी तक न पहुँचा गया हो, वह भी पहुँचने योग्य है और जिनके पास पहुँचा जा चुका है, उनके साथ बैठना भी उचित है।"

---

18 नौ कारकों के साथ उपवास (नवंग-उपोसथा)

"भिक्षुओं, जब उपोसथ का नौ तत्वों में पूर्ण रूप से पालन किया जाता है, तो यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है; अत्यंत तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है। 1875 और उपोसथ का नौ तत्वों में पूर्ण रूप से पालन कैसे किया जाता है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी हो जाता है?"

(1) "हे भिक्षुओं, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे जीवन-संहार का त्याग करते हैं और उससे दूर रहते हैं; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, वे सजग और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से निवास करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी जीवन-संहार का त्याग करूँगा और उससे दूर रहूँगा; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, सजग और दयालु होकर, मैं भी सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से निवास करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।' यह इसका पहला गुण है।"

(2) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे अनचाही चीज़ों को लेने से परहेज़ करते हैं; वे केवल दी गई चीज़ों को ही लेते हैं, केवल दी गई चीज़ों की ही अपेक्षा करते हैं, और चोरी के विचार किए बिना ईमानदारी से रहते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी अनचाही चीज़ों को लेने से परहेज़ करूँगा; मैं केवल दी गई चीज़ों को ही स्वीकार करूँगा, केवल दी गई चीज़ों की ही अपेक्षा करूँगा, और चोरी के विचार किए बिना ईमानदारी से रहूँगा, मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।" यह इसका दूसरा कारक है। [389]

(3) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे यौन क्रिया का त्याग करते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, अलग रहते हैं और यौन संबंध से परहेज करते हैं, जो आम आदमी का अभ्यास है। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी यौन क्रिया का त्याग करूँगा और ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, अलग रहूँगा और यौन संबंध से परहेज करूँगा, जो आम आदमी का अभ्यास है। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका तीसरा कारक है।

(4) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे झूठे वचनों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं; वे सत्य बोलते हैं, सत्य का पालन करते हैं; वे विश्वसनीय और भरोसेमंद होते हैं, संसार को धोखा नहीं देते। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी झूठे वचनों का त्याग करूँगा

और उनसे दूर रहूँगा; मैं सत्य का वक्ता, सत्य का अनुयायी, विश्वसनीय और भरोसेमंद बनूँगा, संसार को धोखा नहीं दूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथ का पालन करूँगा।" यह इसका चौथा गुण है।

(5) "अरहंत अपने जीवन भर आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करते हैं और उनसे दूर रहते हैं। आज रात और दिन भर मैं भी आलस्य के आधार माने जाने वाले मदिरा, शराब और मादक पदार्थों का त्याग करूँगा और उनसे दूर रहूँगा। मैं इस मामले में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका पाँचवाँ गुण है।

(6) "अरहंत जीवन भर दिन में एक बार भोजन करते हैं, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी दिन में एक बार भोजन करूँगा, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज़ करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका छठा गुण है।

(7) "अरहंत जब तक जीवित रहते हैं, वे नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करते हैं, और माला धारण करके तथा सुगंध और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करते हैं। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करूँगा, और माला धारण करके तथा सुगंध और मलहम लगाकर स्वयं को अलंकृत करने से भी परहेज करूँगा। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका सातवाँ गुण है।

(8) "जब तक अरहंत जीवित रहते हैं, वे ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग त्याग देते हैं और उनसे परहेज़ करते हैं; वे एक नीची विश्रामस्थल पर लेटते हैं, [390] चाहे वह छोटा पलंग हो या पुआल की चटाई। आज, इस रात और दिन के लिए, मैं भी ऊँचे और आलीशान पलंगों का उपयोग त्याग दूँगा और उनसे परहेज़ करूँगा; मैं एक नीची विश्रामस्थल पर लेटूँगा, चाहे वह छोटा पलंग हो या पुआल की चटाई। मैं इस संबंध में अरहंतों का अनुकरण करूँगा और उपोसथा का पालन करूँगा।" यह इसका आठवाँ कारक है:

(9.) "यहाँ, एक महान शिष्य प्रेम और करुणा (मेट्टा) से परिपूर्ण मन के साथ एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, वह अपने समान ही प्रेम और करुणा से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन के साथ संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। यह उसका नौवाँ गुण है।"

"भिक्षुओं, इसी प्रकार उपोसथ का नौ तत्वों में पूर्ण रूप से पालन किया जाता है, जिससे यह महान फलदायी और लाभदायक, असाधारण रूप से तेजस्वी और सर्वव्यापी होता है।"

---

19 देवता (देवदूत)

"भिक्षुओं, कल रात जब रात आगे बढ़ रही थी, तो अत्यंत सुंदर अनेक देवता (देवदूत), जिन्होंने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।"

(1) "तब उन देवताओं (देवदूतों) ने कहा: 'हे भंते, अतीत में जब हम मनुष्य थे, तब भिक्षु हमारे घरों में आए। हम उनके लिए उठे, लेकिन उन्हें प्रणाम नहीं किया। अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण, पश्चाताप और पश्चाताप से भरे हुए, हम देवताओं (देवदूतों) के निम्न वर्ग में पुनर्जन्म हुए।' [391]

(2) "कुछ अन्य देवता (देवदूत) मेरे पास आए और बोले: 'हे भंते, अतीत में जब हम मनुष्य थे, तब भिक्षु हमारे घरों में आते थे। हम उनके लिए उठते थे और उन्हें प्रणाम करते थे, परन्तु हमने उन्हें आसन नहीं दिया। अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण, पश्चाताप और पश्चाताप से भर कर, हम देवताओं (देवदूतों) की निम्न श्रेणी में पुनर्जन्म हुए।'"

(3) "कुछ अन्य देवता (देवदूत) मेरे पास आए और बोले: 'हे भंते, अतीत में, जब हम मनुष्य थे, भिक्षु हमारे घरों में आते थे। हम उनके लिए उठते थे, उन्हें प्रणाम करते थे और उन्हें आसन देते थे, लेकिन हमने अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार उनके साथ कुछ साझा नहीं किया... (4) ... हमने अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार उनके साथ कुछ साझा किया, लेकिन हम धम्म (मार्ग) सुनने के लिए पास नहीं बैठे... (5) ... हम धम्म सुनने के लिए पास बैठे, लेकिन हमने उत्सुकता से नहीं सुना... (6) ... हमने उत्सुकता से सुना, लेकिन

सुनकर हमने धम्म को मन में नहीं रखा... (7) ... सुनकर हमने धम्म को मन में रखा, लेकिन हमने मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच नहीं की... (8) . हमने उन शिक्षाओं के अर्थ का अध्ययन किया जो हमारे मन में समाहित थीं, लेकिन हम उनका अर्थ और धम्म नहीं समझ पाए और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं कर पाए। अपने कर्तव्य का पालन न करने के कारण, पश्चाताप और पश्चाताप से भरे हुए, हम देवताओं (देवदूतों) की निम्न श्रेणी में पुनर्जन्म हुए।

(9) कुछ अन्य देवता (देवदूत) मेरे पास आए और बोले: 'हे भंते, अतीत में जब हम मनुष्य थे, तब भिक्षु हमारे घरों में आते थे, (i) हम उनके लिए उठते थे, (ii) उन्हें प्रणाम करते थे, (iii) उन्हें आसन देते थे, और [392] (iv) अपनी सामर्थ्य और क्षमता के अनुसार उनके साथ वस्तुएँ साझा करते थे, (v) हम पास बैठकर धम्म सुनते थे और (vi) उत्सुकता से सुनते थे; (vii) सुनकर हमने धम्म को मन में धारण किया; (viii) हमने मन में धारण की गई शिक्षाओं के अर्थ की जाँच की; और (ix) हमने अर्थ और धम्म को समझा और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास किया। अपने कर्तव्य का निर्वाह करके, पश्चाताप और पश्चाताप से मुक्त होकर, हम देवताओं (देवदूतों) के एक श्रेष्ठ वर्ग में पुनर्जन्म लेते हैं।'

"ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, भिक्षुओं, ये खाली कुटियाएँ हैं। ध्यान करो, भिक्षुओं, आलसी मत बनो। बाद में पछताने का कारण न हो, जैसे उन पूर्व देवताओं (देवदूतों) को हुआ था।"

---

20 वेलामा

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनसे पूछा:

"क्या आपके परिवार में दान दिया जाता है, गृहस्थ?"

"मेरे परिवार में दान दिया जाता है, भंते, लेकिन उसमें टूटे हुए चावल और चावल की दलिया होती है।" (1876)

"हे गृहस्थ, यदि कोई दान देता है, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, और अनादरपूर्वक, बिना सोचे-समझे, अपने हाथों से दिए बिना, त्यागी जाने वाली वस्तुएँ देकर, भविष्य के परिणामों की चिंता किए बिना देता है, तो उस दान का फल चाहे जहाँ कहीं भी मिले, उसका मन उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, उत्तम वाहन और पाँचों इंद्रिय सुखों में से उत्तम वस्तुओं के आनंद की ओर नहीं झुकता। साथ ही, उसके बच्चे और पत्नियाँ, और उसके दास, सेवक और श्रमिक उसकी बात सुनना नहीं चाहते, ध्यान नहीं देते और समझने का प्रयास नहीं करते। इसका कारण क्या है? अनादरपूर्वक किए गए कार्यों का यही परिणाम होता है।"

हे गृहस्थ, यदि कोई दान देता है, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, और आदरपूर्वक, विचारशीलता से, अपने हाथों से, ऐसी वस्तुएँ जो त्यागी न जाएँ, और भविष्य के परिणामों को ध्यान में रखते हुए दान देता है, तो जहाँ कहीं भी उस दान का फल मिलता है, वहाँ उसका मन उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, उत्तम वाहन और पाँचों इंद्रिय सुखों में जो उत्तम है, उसके भोग की ओर प्रवृत्त होता है। साथ ही, उसके बच्चे, पत्नियाँ, दास, सेवक और श्रमिक उसकी बात सुनने, ध्यान से सुनने और समझने का प्रयास करते हैं। इसका कारण क्या है? आदरपूर्वक किए गए कर्मों का यही फल होता है।

"हे गृहस्थ, अतीत में वेलमा नामक एक ब्राह्मण था। उसने इतना बड़ा दान दिया: 1878 (1) चांदी से भरे चौरासी हजार सोने के कटोरे; (2) सोने से भरे चौरासी हजार चांदी के कटोरे; (3) सोने से भरे चौरासी हजार पीतल के कटोरे; (4) सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे चौरासी हजार हाथी; (5) शेर की खाल, बाघ की खाल, तेंदुए की खाल और केसरिया रंग के कंबलों से सजे चौरासी हजार रथ, सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे, सोने के धागे के जालों से ढके; (6) जूट की रस्सियों और पीतल के कफ़नों से बंधी चौरासी हजार गायें; 1879 (7) रत्नजड़ित बालियों से सजी चौरासी हजार कन्याएँ; (8) उत्कृष्ट आवरणों से ढके चौरासी हजार पलंग [394] मृग की खाल, दोनों सिरों पर चंदवा और लाल तकिये के साथ; (9) चौरासी हजार कोटि 1881 कपड़े जो बढ़िया लिनन, बढ़िया रेशम, बढ़िया ऊन और बढ़िया कपास से बने हैं।

खाने-पीने की कितनी और मात्रा, नाश्ते, भोजन, जलपान और पेय पदार्थ? 1882 में ऐसा लग रहा था मानो ये नदियों की तरह बह रहे हों।

"हे गृहस्थ, तुम सोच सकते होगे: 'वह कोई और था, ब्राह्मण वेलमा जिसने उस अवसर पर इतना बड़ा दान दिया था।' लेकिन तुम्हें इसे इस तरह नहीं देखना चाहिए। मैं स्वयं वह ब्राह्मण वेलमा था जिसने उस अवसर पर इतना बड़ा दान दिया था।"

"हे गृहस्थ, उस भिक्षादान में कोई भी भिक्षा के योग्य नहीं था, न ही कोई ऐसा था जो भिक्षा को शुद्ध कर सके। ब्राह्मण वेलमा द्वारा दिए गए महान भिक्षादान से भी अधिक फलदायी होगा एक सिद्ध पुरुष को भोजन कराना। ब्राह्मण वेलमा द्वारा दिए गए महान भिक्षादान से भी अधिक फलदायी होगा, और सौ सिद्ध पुरुषों को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होगा, एक जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) को भोजन कराना। ब्राह्मण वेलमा द्वारा दिए गए महान भिक्षादान से भी अधिक फलदायी होगा, और सौ जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होगा, एक जन्म न लेने वाले (अनगमी) को भोजन कराना। सौ जन्म न लेने वाले (अनगमी) को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होगा, एक अरहंत को भोजन कराना। सौ अरहंतों को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होगा, एक अरहंत को भोजन कराना। पच्चेकबुद्ध। [395] सौ पच्चेकबुद्धों को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होगा तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को भोजन कराना... बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ को भोजन कराना... चारों दिशाओं के संघ को समर्पित एक निवास स्थान का निर्माण करना... विश्वास से परिपूर्ण मन वाले व्यक्ति का बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना... विश्वास से परिपूर्ण मन वाले व्यक्ति का पाँच प्रशिक्षण नियमों का पालन करना: जीवन के विनाश से बचना, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से बचना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से बचना, जो आलस्य का आधार हैं। इससे भी अधिक फलदायी होगा... प्रेम और करुणा (मेट्टा) का मन विकसित करना। गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के लिए।

"हे गृहस्थ, ब्राह्मण वेलामा द्वारा दिए गए महान दान से भी अधिक फलदायी है, एक सिद्ध पुरुष को भोजन कराना, सौ सिद्ध पुरुषों को भोजन कराना; एक पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) को भोजन कराना, सौ पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) को भोजन कराना; एक पुनर्जन्म न लेने वाले (अनगामी) को भोजन कराना, सौ पुनर्जन्म न लेने वाले (अनगामी) को भोजन कराना; एक अरहंत को भोजन कराना, सौ अरहंतों को भोजन कराना; एक पच्चेकबुद्ध को भोजन कराना, सौ पच्चेकबुद्धों को भोजन कराना; तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को भोजन कराना; बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ को भोजन कराना; चारों दिशाओं के संघ को समर्पित एक निवास स्थान का निर्माण करना; और विश्वास से परिपूर्ण मन वाले व्यक्ति के लिए बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना; और विश्वास से परिपूर्ण मन वाले व्यक्ति के लिए यह कार्य करना..." पांच प्रशिक्षण नियम: जीवन के विनाश से बचना... शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से बचना, जो आलस्य का आधार हैं; और गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के लिए भी प्रेम और करुणा (मेट्टा) का भाव विकसित करना, [3961 क्या उंगली चटकाने के समय के लिए अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) की धारणा (सन्ना/संग्या) विकसित करना होगा?] 1883

तृतीय. शुद्ध प्राणियों का निवास (सत्तवसा वैगो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 सम्मान (तिथाना)

"भिक्षुओं (सन्यासियों), उत्तरकुरु के लोग तीन मामलों में तावतिंसा देवताओं और जंबूद्वीप (भारत) के लोगों से श्रेष्ठ हैं। वे तीन मामले क्या हैं? (1) वे स्वार्थ और अभिरंजकता से रहित हैं; (2) उनकी आयु निश्चित है; और (3) उनकी जीवन परिस्थितियाँ असाधारण हैं। 1885 इन तीन मामलों में उत्तरकुरु के लोग तावतिंसा देवताओं और जंबूद्वीप के लोगों से श्रेष्ठ हैं।"

तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) तीन मामलों में उत्तरकुरु और जंबूद्वीप के लोगों से श्रेष्ठ हैं। वे तीन मामले कौन से हैं? (4) दिव्य जीवनकाल में, (5) दिव्य सौंदर्य में, और (5) दिव्य सुख में। इन तीनों मामलों में तावतिंसा देव (देवदूत/देवता) उत्तरकुरु और जंबूद्वीप के लोगों से श्रेष्ठ हैं।

"जंबूद्वीप के लोग तीन मामलों में उत्तरकुरु के लोगों और तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ हैं। वे तीन मामले क्या हैं? (7) वे वीर हैं; (8) वे सती (ध्यानमग्न) हैं; और (9) यहाँ ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) का पालन किया जाता है। इन तीन मामलों में जंबूद्वीप (भारत) के लोग उत्तरकुरु के लोगों और तावतिंसा देवों (देवदूतों/देवताओं) से श्रेष्ठ हैं।" [397]

---

22 जंगली बछड़े

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें तीन प्रकार के जंगली घोड़ों और जंगली घोड़ों के समान तीन प्रकार के व्यक्तियों के बारे में सिखाऊंगा; तीन प्रकार के अच्छे घोड़ों और अच्छे घोड़ों के समान तीन प्रकार के व्यक्तियों के बारे में; तीन प्रकार के उत्कृष्ट नस्ल के घोड़ों और तीन प्रकार के उत्कृष्ट नस्ल के व्यक्तियों के बारे में। 1886 ध्यान से सुनो और सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, जंगली घोड़ों के तीन प्रकार क्या हैं? (1) यहाँ, एक प्रकार का जंगली घोड़ा गति तो रखता है, लेकिन उसमें सुंदरता और सुडौलपन नहीं होता। (2) दूसरे प्रकार का जंगली घोड़ा गति और सुंदरता दोनों रखता है, लेकिन उसमें सुडौलपन नहीं होता। (3) और एक अन्य प्रकार का जंगली घोड़ा गति, सुंदरता और सुडौलपन तीनों रखता है। ये जंगली घोड़ों के तीन प्रकार हैं।

और हे भिक्षुओं, जंगली घोड़े के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं? (1) यहाँ, एक प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति तो है, लेकिन सुंदरता या सुडौल शरीर नहीं। (2) दूसरे प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, लेकिन सुडौल शरीर नहीं। (3) और एक तीसरे प्रकार का व्यक्ति जो जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति, सुंदरता और सुडौल शरीर तीनों ही हैं।

(1) "हे भिक्षुओं, जंगली घोड़े के समान व्यक्ति में गति तो होती है, पर सौंदर्य और सुडौलपन नहीं होता? यहाँ भिक्षु सत्य को समझते हैं: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। [398] मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। परन्तु जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह हिचकिचाता है और उत्तर नहीं देता। मैं कहता हूँ, यही उसकी सौंदर्यहीनता है। और उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसके सुडौलपन का अभाव है। इस प्रकार जंगली घोड़े के समान व्यक्ति में गति तो होती है, पर सौंदर्य और सुडौलपन नहीं होता।"

(2) “और जो व्यक्ति जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं? यहाँ, भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझता है: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और संकोच नहीं करता। मैं कहता हूँ, यही उसकी सुंदरता है। परन्तु उसे वस्त्र और बीमारों के लिए भोजन नहीं मिलता। मैं कहता हूँ, यही उसके सही अनुपात का अभाव है। इस प्रकार, जो व्यक्ति जंगली घोड़े के समान है, उसमें गति और सुंदरता तो है, पर सही अनुपात नहीं।”

(3) “और जंगली घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात कैसे होते हैं? यहाँ, भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यह दुख है'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म या अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और अविचलित रहता है। मैं कहता हूँ, यही उसका सौंदर्य है। [399] और वह वस्त्र प्राप्त करता है... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त करता है। मैं कहता हूँ, यही उसका उचित अनुपात है। इस प्रकार जंगली घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात होते हैं। ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो जंगली घोड़े के समान होते हैं।”

और हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के अच्छे घोड़े कौन से हैं? (4)-(6) यहाँ, एक प्रकार का अच्छा घोड़ा... [जैसा कि ऊपर जंगली घोड़ों के लिए बताया गया है]... गति, सुंदरता और उचित अनुपात से युक्त होता है। ये तीन प्रकार के अच्छे घोड़े हैं। 1887

"और हे भिक्षुओं, अच्छे घोड़ों के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं? (4)— (6) यहाँ, एक व्यक्ति जो अच्छे घोड़े के समान है... [जैसा कि ऊपर जंगली घोड़ों के समान व्यक्तियों के लिए है]... उसमें गति, सुंदरता और सही अनुपात होते हैं।

(4)— (6) "और हे भिक्षुओं, एक अच्छे घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात कैसे होते हैं? यहाँ, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश के साथ, भिक्षु स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला होता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त होता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म और अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और विचलित नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसका सौंदर्य है। और वह वस्त्र प्राप्त करता है... और बीमारों के लिए भोजन प्राप्त करता है। मैं कहता हूँ, यही उसका उचित अनुपात है। इस प्रकार एक अच्छे घोड़े के समान व्यक्ति में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात होते हैं। ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो अच्छे घोड़ों के समान होते हैं।"

"और हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़े कौन से हैं? (7)— (9) यहाँ, एक प्रकार का उत्तम नस्ल का घोड़ा... [जैसा कि ऊपर जंगली घोड़ों के लिए]... गति, सुंदरता और सही अनुपात रखता है। [400] ये तीन प्रकार के उत्तम नस्ल के घोड़े हैं।

"और हे भिक्षुओं, तीन प्रकार के उत्तम शुद्ध नस्ल के व्यक्ति कौन से हैं? (7)— (9) यहाँ, एक प्रकार का उत्तम शुद्ध नस्ल का व्यक्ति... [जैसा कि ऊपर जंगली घोड़ों के समान व्यक्तियों के लिए है]... गति, सुंदरता और सही अनुपात रखता है।

(7)— (9) "हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात कैसे होते हैं? यहाँ, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। मैं कहता हूँ, यही उसकी गति है। और जब उससे धम्म और अनुशासन से संबंधित कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उत्तर देता है और विचलित नहीं होता। मैं कहता हूँ, यही उसका सौंदर्य है। और वह वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। मैं कहता हूँ, यही उसका उचित अनुपात है। इस प्रकार एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष में गति, सौंदर्य और उचित अनुपात होते हैं। हे भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष हैं।"

---

23 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)

"मैं तुम्हें, भिक्षुओं, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) से उत्पन्न नौ बातें सिखाऊंगा। 1888 ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और वे नौ बातें क्या हैं जो तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) में निहित हैं? (1) तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) पर निर्भर होकर खोज होती है। (2) खोज पर निर्भर होकर लाभ होता है। (3) लाभ पर निर्भर होकर विवेक होता है। (4) विवेक पर निर्भर होकर इच्छा और राग (काम) होते हैं। (5) इच्छा और राग (काम) पर निर्भर होकर आसक्ति होती है। (6) आसक्ति पर निर्भर होकर अधिकार की भावना होती है। (7) अधिकार की भावना से मुक्त होकर कंजूसी होती है। (8) कंजूसी पर निर्भर होकर रक्षा करना होता है। (9) रक्षा करने की भावना से ही लाठी और शस्त्र उठाना, झगड़े, विवाद, आरोप लगाना, फूट डालने वाली बातें और झूठी बातें, और अनेक अन्य हानिकारक चीजें उत्पन्न होती हैं। ये नौ बातें तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) में निहित हैं।" 1889

---

24 प्राणियों के निवास स्थान (सत्तवास)

भिक्षुओं, प्राणियों के ये नौ निवास स्थान हैं। वे नौ कौन से हैं? 1890

(1) "हे भिक्षुओं, ऐसे प्राणी हैं जो शरीर और चेतना (सन्न/संज्ञा) में भिन्न हैं, जैसे मनुष्य, कुछ देव (देवदूत/भगवान), और कुछ निम्न लोक में। यह प्राणियों का पहला निवास स्थान है।"

(2) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर में भिन्न हैं लेकिन धारणा (सन्ना/संज्ञा) में एक समान हैं, जैसे ब्रह्मा की संगति के देव (देवदूत/भगवान) जो प्रथम [ध्यान] के माध्यम से पुनर्जन्म लेते हैं। यह प्राणियों का दूसरा निवास स्थान है।"

(3) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर में एक समान हैं लेकिन धारणा (सन्ना/संग्या) में भिन्न हैं, जैसे कि प्रवाहमय प्रकाश वाले देव (देवदूत/देवता) (अभस्सर सन् अभस्वर)। यह प्राणियों का तीसरा निवास है।"

(4) "ऐसे प्राणी हैं जो शरीर और चेतना (सन्ना/संज्ञा) में एक समान हैं, जैसे तेजस्वी देव (देवदूत/देवता) (सुभकिन्ह संस्कृतः शुभ-किरण)। यह प्राणियों का चौथा निवास है।"

(5) "ऐसे प्राणी हैं जो अनुभवहीन हैं, जैसे कि देव (देवदूत/भगवान) जो अनुभवहीन हैं। यह प्राणियों का पाँचवाँ निवास है।"

(6) "ऐसे प्राणी हैं जो रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में विराजमान होते हैं। यही प्राणियों का छठा निवास स्थान है।"

(7) "ऐसे प्राणी हैं जो अंतरिक्ष की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' को अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित हैं। यह प्राणियों का सातवाँ निवास है।"

(8) "ऐसे प्राणी हैं जो चेतना की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए शून्यता के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित हैं। यह प्राणियों का आठवां निवास है।"

(9) "कुछ ऐसे प्राणी हैं जो शून्यता के आधार को पूर्णतः पार करके, न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में आते हैं। यही प्राणियों का नौवां निवास है।"

"ये प्राणियों के नौ निवास स्थान हैं।" [402]

---

25 पन्ना (दिव्य ज्ञान)

"भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु का मन पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा अच्छी तरह से स्थिर हो जाता है, तो वह यह कहने में सक्षम होता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई अधिकार नहीं है।'

और भिक्षु का मन पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा कैसे सुदृढ़ होता है? (1) उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन कामवासना (राग) से रहित है।' (2) उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन घृणा (विरोध) से रहित है।' (3) उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन मोह (मोह) से रहित है।' (4) उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन आसक्ति (मोह) के अधीन नहीं है।' (5) जब वह जानता है कि उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः स्थिर है: 'मेरा मन द्वेष के अधीन नहीं है।' (6) जब वह जानता है कि उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः स्थिर है: 'मेरा मन भ्रम के अधीन नहीं है।' (7) जब वह जानता है कि उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः स्थिर है: 'मेरा मन इंद्रिय-क्षेत्र में वापसी के अधीन नहीं है।' (8) जब वह जानता है कि उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः स्थिर है: 'मेरा मन रूप-क्षेत्र में वापसी के अधीन नहीं है।' (9) जब वह जानता है कि उसका मन पन्न (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः स्थिर है: 'मेरा मन निराकार-क्षेत्र में वापसी के अधीन नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु का मन पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा पूर्णतः स्थिर हो जाता है, तो वह यह कहने में सक्षम होता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आने का कोई आसार नहीं है।"

---

26 (6) पत्थर का स्तंभ (सिलयुपा)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य चंदीकापुत्त राजगृह में बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य चंदीकापुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य चंदिका पुत्त ने यह कहा: "मित्रों, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'मित्रों, जब किसी भिक्षु का मन मन से स्थिर हो जाता है, 1891 तो उसके लिए यह कहना उचित है: [403] "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य चंदिकपुत्त से कहा, "मित्र चंदिकपुत्त, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा इस प्रकार नहीं देते। बल्कि, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'मित्रों, जब किसी भिक्षु का मन पूर्णतः स्थिर हो जाए, तब उसके लिए यह कहना उचित है: "मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।"

दूसरी बार...तीसरी बार पूज्य चंदिकपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'मित्रों, जब किसी भिक्षु का मन एकाग्र हो जाता है, तो उसके लिए यह कहना उचित है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।'"

तीसरी बार पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य चंदिकपुत्त से कहा: "मित्र चंदिकपुत्त, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म (मार्ग) इस प्रकार नहीं सिखाते। बल्कि, देवदत्त भिक्षुओं को धम्म इस प्रकार सिखाते हैं: 'मित्रों, जब किसी भिक्षु का मन पूर्णतः स्थिर हो जाए, तब उसके लिए यह कहना उचित है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।'"

"और हे मित्र, भिक्षु का मन मन द्वारा कैसे सुदृढ़ होता है? [404] (1) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन कामवासना रहित है (राग)' (2) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन घृणा रहित है' (3) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन मोह रहित है' (4) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन कामवासना के अधीन नहीं है (राग) (5) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन घृणा के अधीन नहीं है' (6) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन मोह के अधीन नहीं है' (7) उसका मन मन द्वारा सुदृढ़ होता है [जब वह जानता है]: 'मेरा मन इंद्रिय-क्षेत्र में जन्म लेने के लिए बाध्य नहीं है (भाव/पुनर्जन्म का कारण)' (8) जब उसे यह ज्ञान होता है कि: 'मेरा मन रूप-मंडल में वापसी के अधीन नहीं है (भाव/पुनर्जन्म का कारण)' (9) तब उसका मन अच्छी तरह से स्थिर हो जाता है जब उसे यह ज्ञान होता है कि: 'मेरा मन निराकार-मंडल में वापसी के अधीन नहीं है (भाव/पुनर्जन्म का कारण)। 1893

हे मित्र, जब कोई भिक्षु इस प्रकार पूर्णतः मन से मुक्त हो जाता है, तो भले ही आँखों से दिखाई देने वाले शक्तिशाली रूप उसकी दृष्टि में आ जाएँ, वे उसके मन को विचलित नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। 1894 वह स्थिर रहता है, अविचलित अवस्था में पहुँच जाता है, और वह उसके लुप्त होने का अवलोकन करता है। भले ही कानों से सुनाई देने वाली शक्तिशाली ध्वनियाँ कानों में आ जाएँ... भले ही नाक से सुनाई देने वाली शक्तिशाली गंधें नाक में आ जाएँ... भले ही जीभ से सुनाई देने वाले शक्तिशाली स्वाद जीभ में आ जाएँ... भले ही शरीर द्वारा अनुभव किए जाने वाले शक्तिशाली स्पर्श अनुभव शरीर में आ जाएँ... भले ही मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले शक्तिशाली घटनाक्रम मन में आ जाएँ, वे उसके मन को विचलित नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। वह स्थिर रहता है, अविचलित अवस्था में पहुँच जाता है, और वह उसके लुप्त होने का अवलोकन करता है।

"मान लो, मित्र, एक आठ मीटर लंबा पत्थर का खंभा है। 1893 चार मीटर जमीन के नीचे और चार मीटर जमीन के ऊपर होगा। यदि पूर्व से भयंकर वर्षा हो, तो भी वह उसे हिला नहीं पाएगी, न ही उसमें कोई कंपन होगा; 1596 यदि पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से भयंकर

वर्षा हो, तो भी वह उसे हिला नहीं पाएगी, न ही उसमें कोई कंपन होगा, न ही उसमें कोई कंपन होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि पत्थर का खंभा जमीन में गहराई तक गड़ा हुआ है और मजबूती से स्थापित है। इसी प्रकार, मित्र, जब कोई भिक्षु मन से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, तो भले ही दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप दिखाई दें... भले ही मन से प्रत्यक्ष रूप दिखाई दें, वे उसके मन को विचलित नहीं करते; उसका मन बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होता। वह स्थिर रहता है, अविचलित रहता है, और वह उसके लुप्त होने का अवलोकन करता है।"

---

27 शत्रुता (1) (वेरा1)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, जब एक श्रेष्ठ शिष्य पाँचों विपत्तियों और शत्रुताओं को दूर कर लेता है और सात जन्मों के चार गुण (सोतपत्ति) प्राप्त कर लेता है, तो वह चाहे तो अपने बारे में यह कह सकता है: 'मैं नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र से मुक्त हो चुका हूँ; दुख के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो चुका हूँ; मैं सात जन्मों का अनुयायी (सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञान की ओर अग्रसर हूँ।' 1897 [4063]

"वे पाँच खतरे और शत्रुताएँ क्या हैं जिनका निवारण हो गया है? (1) गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, जीवन के विनाश को शर्त बनाकर वर्तमान जीवन और भविष्य के जीवन से संबंधित खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है, और उसे मानसिक पीड़ा और निराशा भी होती है। जो जीवन के विनाश से परहेज करता है, वह न तो वर्तमान जीवन से संबंधित ऐसे खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है और न ही भविष्य के जीवन से संबंधित ऐसे खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है, और न ही उसे मानसिक पीड़ा और निराशा होती है। क्योंकि जो जीवन के विनाश से परहेज करता है, उसके लिए वह खतरा और शत्रुता इस प्रकार समाप्त हो जाती है।"

(2) जो व्यक्ति बिना दी हुई वस्तुएँ लेता है... (3) जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... (4) जो झूठ बोलता है... (5) जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन एक शर्त है, वह वर्तमान जीवन और भविष्य के जीवन में भी खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है और उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का भी अनुभव होता है। जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज करता है, वह न तो वर्तमान जीवन में और न ही भविष्य के जीवन में ऐसे खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है और न ही उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव होता है। जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से, जो आलस्य का आधार हैं, परहेज करता है, उसके लिए वह खतरा और शत्रुता इस प्रकार समाप्त हो जाती है।

"ये वे पांच खतरे और शत्रुताएं हैं जिन्हें समाप्त कर दिया गया है।"

और वे कौन से चार कारक हैं जो उनके पास हैं (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति)? (6) यहाँ, गृहस्थ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' (7) वह धम्म में अटूट विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।' (8) संघ में उनका अटूट विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सीधे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, [407] सच्चे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।' (9) उनमें श्रेष्ठों द्वारा प्रिय, अटूट, दोषरहित, निष्कलंक, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अगोचर, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला सद्गुणी आचरण है। ये वे चार कारक हैं जो उनमें समाहित हैं (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति)।

"गृहस्थ, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पांच खतरों और शत्रुताओं को दूर कर लेता है और धारा-प्रवेश के इन चार कारकों को प्राप्त कर लेता है, तो वह चाहे तो अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र से मुक्त हो चुका हूँ; दुख

के तल, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो चुका हूँ; मैं धारा-प्रवेश करने वाला हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ।"

---

28 शत्रुता (2) (वेरा2)

[9:27 के समान, लेकिन बुद्ध द्वारा भिक्षुओं को संबोधित। 1]

---

29 आक्रोश की व्याख्या (1) (अघतवत्थु1)

भिक्षुओं, आक्रोश के ये नौ कारण हैं। वे नौ कारण क्या हैं? (1) [यह सोचकर] 'उसने मेरे नुकसान के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (2) [यह सोचकर] 'वह मेरे नुकसान के लिए काम कर रहा है' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (3) [यह सोचकर] 'वह मेरे नुकसान के लिए काम करेगा' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (4) [यह सोचकर] 'उसने मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (5) [यह सोचकर] 'वह मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए काम कर रहा है' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (6) [यह सोचकर] 'वह मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए काम करेगा' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (7) [यह सोचकर] 'उसने मुझे अप्रिय करने वाले और मेरे लिए अप्रिय व्यक्ति के लाभ के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है; (8) [यह सोचकर] 'वह मुझे अप्रिय करने वाले और मेरे लिए अप्रिय व्यक्ति के लाभ के लिए काम कर रहा है' - आक्रोश उत्पन्न होता है। मुझे द्वेष है। (9) [सोचते हुए:] 'वह मेरे लिए अप्रिय और नापसंद व्यक्ति के लाभ के लिए कार्य करेगा' मुझे द्वेष है। भिक्षुओं, ये द्वेष के नौ कारण हैं।

---

30 आक्रोश निवारण (2) (अघतवत्थु2)

भिक्षुओं, आक्रोश दूर करने के ये नौ तरीके हैं। वे नौ तरीके क्या हैं? (1) [सोचते हुए:] 'उसने मेरे नुकसान के लिए काम किया, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' 1899 इससे आक्रोश दूर होता है। (2) [सोचते हुए:] 'वह मेरे नुकसान के लिए काम कर रहा है, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (3) [सोचते हुए:] 'वह मेरे नुकसान के लिए काम करेगा, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (4) [सोचते हुए:] 'उसने मेरे प्रिय और प्रिय व्यक्ति के नुकसान के लिए काम किया, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (5) [सोचते हुए:] 'वह मेरे प्रिय और प्रिय व्यक्ति के नुकसान के लिए काम कर रहा है, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। [409] (6) [सोचते हुए:] 'वह मेरे प्रिय और प्रिय व्यक्ति के नुकसान के लिए काम करेगा, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' (7) [सोचते हुए:] 'उसने मेरे लिए अप्रिय और नापसंद व्यक्ति के हित में कार्य किया, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इस प्रकार आक्रोश दूर किया जाता है। (8) [सोचते हुए:] 'वह मेरे लिए अप्रिय और नापसंद व्यक्ति के हित में कार्य कर रहा है, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इस प्रकार आक्रोश दूर किया जाता है। (9) [सोचते हुए:] 'वह मेरे लिए अप्रिय और नापसंद व्यक्ति के हित में कार्य करेगा, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इस प्रकार आक्रोश दूर किया जाता है। हे भिक्षुओं, ये आक्रोश दूर करने के नौ तरीके हैं।

---

31. क्रमिक समाप्ति (अनुपुब्बनिरोध)

भिक्षुओं, ये नौ क्रमिक समाप्ति हैं। 1900 कौन सी नौ? (1) जिसने प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त कर ली है, उसकी इंद्रिय-बोध समाप्त हो जाती है। (2) जिसने द्वितीय ध्यान प्राप्त कर ली है, उसके विचार और परीक्षा समाप्त हो जाते हैं। (3) जिसने तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त कर ली है, उसके परमानंद (पीति) का अंत हो जाता है। (4) जिसने चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त कर

ली है, उसके श्वास लेना और श्वास छोड़ना समाप्त हो जाता है। (5) जिसने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को प्राप्त कर लिया है, उसके रूप की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है। 1901 (6) जिसने अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को प्राप्त कर लिया है, उसके अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है। (7) जिसने प्राप्त कर ली है... (8) जिसने न तो चेतना के क्षेत्र (आयतन) को प्राप्त कर लिया है, उसके लिए शून्यता के क्षेत्र (आयतन) से संबंधित बोध (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो गया है। (9) जिसने बोध (सन्ना/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के अंत को प्राप्त कर लिया है, उसके लिए बोध (सन्ना/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) दोनों समाप्त हो गए हैं। हे भिक्षुओं, ये नौ क्रमिक अंत हैं। [410]

चतुर्थ. महान अध्याय (महावग्गो सं. महा-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

32 नौ ट्रान्स (समाधि) अवस्थाएँ (संक्षेप में) (1) (अनूपुब्बाविहार 1 सं. अनु-पूर्व-विहार)

भिक्षुओं, ये नौ क्रमिक निवास स्थान हैं। 1902 कौन से नौ? (1) यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। (2) विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसमें आंतरिक शांति और मन का एकीकरण होता है और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन नहीं होते हैं। (3) परमानंद (पीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और सचेत (सती) और पूर्णतः बोध करते हुए, वह शरीर सहित सुख (सुख) का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह है समभाव, सती (ध्यान/सती), जो आनंद से निवास करता है (4) सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही आनंद और निराशा के बीत जाने के साथ, वह चौथे ध्यान (सतीव्र अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखद, जिसमें उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) द्वारा सती (ध्यान) की शुद्धि होती है।

(5) रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। (6) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, वह अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। (7) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। (8) शून्यता के आधार पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, वह अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति। (9) अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, ये नौ प्रगतिशील निवास हैं।

---

33 नौ ट्रान्स (समाधि) अवस्थाएँ विस्तार से (अनूपुब्बविहारसमापत्ति2 सं. अनु-पूर्व-विहार...)

"भिक्षुओं, मैं आपको इन नौ प्रगतिशील निवासों की प्राप्ति का उपदेश दूंगा।" 903 सुनो... और भिक्षुओं, नौ प्रगतिशील निवासों की प्राप्ति क्या है?

(1) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ इंद्रिय सुख समाप्त हो जाते हैं और उन लोगों के विषय में जो इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं; [411] वे 1904 को पार कर चुके हैं और उस विशेष संदर्भ में आगे बढ़ चुके हैं।' 1905 यदि कोई कहे: 'इंद्रिय सुख कहाँ समाप्त होते हैं? और वे कौन हैं जिन्होंने इंद्रिय सुखों का पूर्णतः त्याग कर निवास किया है? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ...वहीं इंद्रिय सुख समाप्त होते हैं, और वे ही हैं जिन्होंने इंद्रिय सुखों का पूर्णतः त्याग कर निवास किया है।' निश्चय ही, भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस अवस्था में प्रसन्न और आनंदित होना चाहिए, और कहना चाहिए: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(2) “मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ विचार और परीक्षा समाप्त हो जाती है और उन लोगों के विषय में जो विचार और परीक्षा को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: शुद्ध रूप से, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष अर्थ में पार हो चुके हैं और उससे आगे बढ़ चुके हैं।” यदि कोई कहे: ‘विचार और परीक्षा कहाँ समाप्त होती है? और वे कौन हैं जो विचार और परीक्षा को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता’ तो उसे कहा जाना चाहिए: ‘यहाँ, मित्र, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है। . . . यही वह स्थान है जहाँ विचार और परीक्षा समाप्त हो जाती है, और वे ही हैं जो विचार और परीक्षा को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं।’ निश्चय ही, भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस अवस्था में प्रसन्न और आनंदित होना चाहिए, यह कहते हुए: ‘अच्छा!’ ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(3) मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ आनंद (पीति) समाप्त हो जाता है और उन लोगों के विषय में जो पूर्णतः आनंद (पीति) समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष अर्थ में पार हो चुके हैं।' यदि कोई कहे: 'आनंद (पीति) कहाँ समाप्त होता है? और वे कौन हैं जो पूर्णतः आनंद (पीति) समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, आनंद (पीति) के लुप्त होने के साथ ही... वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ...वहीं आनंद (पीति) समाप्त होता है और वे ही [412] हैं जो पूर्णतः आनंद (पीति) समाप्त करके निवास करते हैं।' निश्चय ही, भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन में प्रसन्न और आनंदित होना चाहिए, और कहना चाहिए: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(4) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ उदासीनता (भीतर समाधि) से जुड़ा आनंद समाप्त हो जाता है और उन लोगों के विषय में जो उदासीनता (भीतर समाधि) से जुड़े आनंद को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं।" 906 "निश्चित रूप से, हे पूज्यवर, वे भूख रहित और तृप्त हो चुके हैं, उस विशेष संदर्भ में पार हो चुके हैं। यदि कोई कहे: 'उदासीनता (भीतर समाधि) से जुड़ा आनंद कहाँ समाप्त होता है? और वे कौन हैं जो उदासीनता (भीतर समाधि) से जुड़े आनंद को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, आनंद और दुख के त्याग के साथ... एक भिक्षु चौथी ध्यान (समाधि अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... यहीं पर उदासीनता (भीतर समाधि) से जुड़ा आनंद समाप्त हो जाता है।" और वे ही हैं जो उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) से जुड़े आनंद को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं। हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन पर प्रसन्नता और आनंद होगा, और वह कहेगा: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(5) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ रूपों के प्रति आकर्षण की अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती हैं और उन लोगों के विषय में जो रूपों की अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 1907 'निश्चित रूप से, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष संदर्भ में पार हो चुके हैं और आगे बढ़ चुके हैं।' यदि कोई कहे: 'रूपों की अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) कहाँ समाप्त होती हैं? और वे कौन हैं जो रूपों की अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, रूपों की अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने के साथ, विविधता की अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, [यह अनुभव करते हुए] कि "अंतरिक्ष अनंत है," एक भिक्षु प्रवेश करता है और निवास करता है। अंतरिक्ष की अनंतता का क्षेत्र (आयतन)। वहीं पर रूपों की

अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है और वे ही हैं जिन्होंने रूपों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन पर प्रसन्नता और आनंदित होना चाहिए और कहना चाहिए: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए। [413]

(6) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है और उन लोगों के विषय में जो अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष संदर्भ में पार कर चुके हैं और उससे आगे बढ़ चुके हैं।' यदि कोई कहे: 'अनंत अंतरिक्ष के आधार की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहाँ समाप्त होती है? और वे कौन हैं जो अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, "चेतना अनंत है" का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है।' चेतना की अनंतता। यहीं पर अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है और वे ही पूर्णतः अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त करके निवास करते हैं। हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन पर प्रसन्नता और आनंदित होकर कहना चाहिए: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(7) मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो जाती है और उन लोगों के विषय में जो चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हो चुके हैं, उस विशेष संदर्भ में पार कर चुके हैं और उससे आगे बढ़ चुके हैं।' यदि कोई कहे, 'चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहाँ समाप्त होती है? और वे कौन हैं जो चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं इसे नहीं देखता।' तो उसे कहा जाना चाहिए, 'यहाँ, मित्र, चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, "कुछ नहीं है" का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है। वहीं चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त होती है और वे ही हैं जो चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं।' हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस अवस्था में प्रसन्नता और आनंद मनाना चाहिए और कहना चाहिए, 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(8) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) समाप्त हो जाती है और उन लोगों के विषय में जो शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय लोग भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष संदर्भ में पार कर चुके हैं और उससे आगे बढ़ चुके हैं।' यदि कोई कहे: 'शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहाँ समाप्त होती है? और वे कौन हैं जो शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? [414] 'मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु न तो अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। वहीं शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त होती है और वे ही हैं जो शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं।' हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन पर प्रसन्नता और आनंद होगा, और वह कहेगा: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

(9) "मैं उस अवस्था के विषय में कहता हूँ जहाँ न तो बोध और न ही अबोध के आधार का बोध समाप्त हो जाता है, और उन लोगों के विषय में जो न तो बोध और न ही अबोध के आधार के बोध को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं: 'निःसंदेह, वे पूजनीय हैं, भूख रहित और तृप्त हैं, उस विशेष संदर्भ में पार हो चुके हैं और उससे आगे बढ़ चुके हैं।' यदि कोई कहे: 'न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) का बोध कहाँ समाप्त होता है? और वे कौन हैं जो न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) के बोध को पूर्णतः समाप्त करके निवास करते हैं? मैं यह नहीं जानता, मैं यह नहीं देखता,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'यहाँ, मित्र, पूर्णतः पार करके...' न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करके भिक्षु संज्ञान और वेदना के अंत में निवास करता है। वहीं पर न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) का संज्ञान समाप्त हो जाता है और वे ही लोग हैं जिन्होंने न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के आधार के संज्ञान

को पूरी तरह समाप्त कर दिया है। हे भिक्षुओं, जो धूर्त या पाखंडी नहीं है, उसे इस कथन पर प्रसन्नता और आनंदित होकर कहना चाहिए: 'अच्छा!' ऐसा करने के बाद, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसे उनकी सेवा करनी चाहिए।

"भिक्षुओं, यही नौ क्रमिक अवस्थाओं (समाधि/सम्मोहन अवस्थाओं) की प्राप्ति है।"

---

34 निब्बान आनंद है (निब्बानसुखा सं. निर्वाण-सुखा)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य सारिपुत्त राजगृह में बांस के वन में, गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"सम्मोहन, मित्रों, यही निर्वाण है। यही निर्वाण है।"

जब यह कहा गया, तो पूज्य उदयि 1908 ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: [415] "लेकिन, मित्र सारिपुत्त, यहाँ क्या सुख हो सकता है जब यहाँ कुछ भी महसूस नहीं होता?"

"बस यही, दोस्त, यहाँ की खुशी है कि यहाँ कुछ भी महसूस नहीं होता।"

मित्रों, इंद्रिय सुख के ये पाँच स्रोत हैं। ये पाँच कौन से हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं; कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वे वस्तुएँ जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़ी और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच स्रोत इंद्रिय सुख के हैं। इन पाँच स्रोतों पर निर्भर कोई भी सुख या आनंद इंद्रिय सुख कहलाता है।

(1) "हे मित्रों, इंद्रिय सुखों से विरक्त और अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद और सुख से युक्त होता है, साथ ही चिंतन और आत्मनिरीक्षण भी इसमें शामिल होता है। यदि इस प्रकार निवास करते समय भिक्षु में इंद्रिय सुख से युक्त अनुभूति और ध्यान उत्पन्न हो जाए, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार यदि उसमें इंद्रिय सुख से युक्त अनुभूति और ध्यान उत्पन्न हो जाए, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने कष्ट को पीड़ा कहा है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।" (1909)

(2) "फिर, विचार और चिंतन के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें लीन हो जाता है। यदि उस भिक्षु के इस अवस्था में रहते हुए, विचार सहित अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान [416] उत्पन्न हो, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार यदि अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और विचार सहित ध्यान उत्पन्न हो, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने कष्ट को पीड़ा कहा है। इस प्रकार भी यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।"

(3) "फिर, जब पीति (आनंद) भी लुप्त हो जाती है, तो वह तीसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... यदि उस भिक्षु के इस प्रकार निवास करते समय, पीति (आनंद) के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न होता है, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। ... इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण (निब्बान) ही सुख है।"

(4) "फिर, सुख और दुख का त्याग करने पर भिक्षु चौथे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... यदि उस भिक्षु के इस प्रकार निवास करते समय, उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) से जुड़े सुख के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न होता है, तो वह इसे पीड़ा के रूप में अनुभव करता है। इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।"

(5) "फिर, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने के साथ, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देने के साथ, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए, एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। यदि, इस प्रकार निवास करते समय, उसमें रूपों से संबंधित धारणा (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न होता है, तो वह इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव करता है। . . . [417] ... इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण (निब्बान) कैसे सुख है।"

(6) "फिर, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यदि उस भिक्षु के इस प्रकार निवास करते समय अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना/संग्य) और ध्यान उत्पन्न होता है, तो वह इसे एक कष्ट के रूप में अनुभव करता है। ... इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।"

(7) "फिर, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यदि उस भिक्षु के इस प्रकार निवास करते समय, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना/संग्या) और ध्यान उत्पन्न होता है, तो वह इसे कष्ट के रूप में अनुभव करता है। ... इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।"

(8) "फिर, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु न तो संज्ञा और न ही संज्ञा के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यदि उस भिक्षु के इस प्रकार निवास करते समय, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) से युक्त संज्ञा और ध्यान उसमें उत्पन्न हो, तो वह इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव करता है। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार यदि शून्यता के आधार से युक्त संज्ञा और ध्यान उसमें उत्पन्न हो, तो वह इसे पीड़ा के रूप में अनुभव करता है। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने पीड़ा को कष्ट कहा है। इस प्रकार भी यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है। [418]

(9) "फिर, न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (वेदना) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और पन्न (दिव्य ज्ञान) से देखकर उसके सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार भी, यह समझा जा सकता है कि निर्वाण ही सुख है।"

---

35 गाय की उपमा (गविउपमा, संस्कृत: गौ-उपमा)

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक पहाड़ी पर रहने वाली गाय नासमझ, अनुभवहीन और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर चलने में अकुशल है। 1911 उसके मन में यह विचार आ सकता है: 'मुझे ऐसे क्षेत्र में जाना चाहिए जहाँ मैं पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास खानी चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी पीना चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं पिया।' वह अपना अगला पैर नीचे रखेगी, और जब तक वह ठीक से जमेगा भी नहीं, अपना पिछला पैर उठा लेगी। वह ऐसे क्षेत्र में नहीं जाएगी जहाँ वह पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास नहीं खाएगी जो उसने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी नहीं पिएगी जो उसने पहले कभी नहीं पिया; और वह उस क्षेत्र में सुरक्षित वापस भी नहीं लौटेगी जहाँ वह तब ठहरी थी जब उसके मन में यह विचार आया था: 'मुझे ऐसे क्षेत्र में जाना चाहिए जहाँ मैं पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास खानी चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी पीना चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं पिया।' इसका कारण क्या है? क्योंकि वह पहाड़ी पर रहने वाली गाय नासमझ, अनुभवहीन और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर चलने में अकुशल है।

इसी प्रकार, यहाँ कोई भिक्षु अज्ञानी, अयोग्य, अनुभवहीन और अकुशल है, जब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त है, जिसमें विचार और परीक्षा शामिल होती है। वह उस उद्देश्य का अनुसरण नहीं करता, उसका विकास और संवर्धन नहीं करता, उस पर ठीक से ध्यान केंद्रित नहीं करता।

उसके मन में यह विचार आता है: 'विचार और परीक्षा के शांत होने पर, मुझे दूसरी ध्यान अवस्था में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए [419], ... लेकिन वह दूसरी ध्यान अवस्था में प्रवेश नहीं कर पाता है। ... फिर उसके मन में यह विचार आता है:

'इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मुझे पहली ध्यान अवस्था में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए। ... लेकिन वह पहली ध्यान अवस्था में प्रवेश नहीं कर पाता है। ... इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दोनों से विमुख हो गया है, 1913 दोनों से विमुख हो गया है। वह उस पर्वत पर रहने वाली गाय के समान है जो नासमझ, अयोग्य, अनुभवहीन और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर चलने में अकुशल थी।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक पर्वतीय गाय है जो बुद्धिमान, सक्षम, अनुभवी और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर चलने में कुशल है। उसके मन में यह विचार आ सकता है: 'मुझे किसी ऐसे क्षेत्र में जाना चाहिए जहाँ मैं पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास खानी चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी पीना चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं पिया।' अपना अगला पैर रखते समय वह उसे मजबूती से जमाएगी और फिर ही पिछला पैर उठाएगी। वह किसी ऐसे क्षेत्र में जाएगी जहाँ वह पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास खाएगी जो उसने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी पिएगी जो उसने पहले कभी नहीं पिया; और वह सुरक्षित रूप से उस क्षेत्र में लौट आएगी जहाँ वह ठहरी हुई थी, तभी उसके मन में यह विचार आता है: 'मुझे किसी ऐसे क्षेत्र में जाना चाहिए जहाँ मैं पहले कभी नहीं गई, ऐसी घास खानी चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं खाई, ऐसा पानी पीना चाहिए जो मैंने पहले कभी नहीं पिया।' इसका कारण क्या है? क्योंकि वह पर्वतीय गाय बुद्धिमान, सक्षम, अनुभवी और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर चलने में कुशल थी।

(1) “इसी प्रकार, यहाँ कोई भिक्षु बुद्धिमान, सक्षम, अनुभवी और कुशल है, जब वह इंद्रिय सुखों से एकांत में, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से एकांत में रहकर प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उस वस्तु का अनुसरण करता है, उसे विकसित और पोषित करता है, और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।

(2) “उसके मन में यह विचार आता है: 'विचार और विश्लेषण के शांत होने पर, मुझे द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें रहना चाहिए...' द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को हानि न पहुँचाते हुए, विचार और विश्लेषण के शांत होने पर वह द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें रहता है। वह उस उद्देश्य का अनुसरण करता है, उसे विकसित और पोषित करता है, और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।

(3) “तब उसे यह विचार आता है: ‘पीति (आनंद) के लुप्त हो जाने पर [420]... मुझे तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए,...’ तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को हानि न पहुँचाते हुए, पीति के लुप्त हो जाने पर वह तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसका विकास और संवर्धन करता है, और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।”

(4) “तब उसे यह विचार आता है: ‘सुख और दुख का त्याग करके... मुझे चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें रहना चाहिए...’ चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को हानि न पहुँचाते हुए, सुख और दुख का त्याग करके... वह चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें रहता है... वह उस लक्ष्य का अनुसरण करता है, उसे विकसित और पोषित करता है, और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।

(5) “तब उसे यह विचार आता है: ‘रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, ‘अंतरिक्ष अनंत है’ को समझते हुए, मुझे अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए।’ अनंत अंतरिक्ष के आधार को चोट न पहुँचाते हुए, रूपों की धारणाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करके... वह अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसका विकास और संवर्धन करता है, और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।”

(6) "तब उसे यह विचार आता है: 'अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, [यह अनुभव करते हुए] कि “चेतना अनंत है,” मुझे चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए।' चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को हानि न पहुँचाते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके... वह चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसका विकास और संवर्धन करता है, और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करता है।"

(7) "तब उसे यह विचार आता है: 'चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, [यह अनुभव करते हुए] कि "कुछ भी नहीं है," मुझे शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए।' शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को हानि न पहुँचाते हुए, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके... वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसका विकास और संवर्धन करता है, और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करता है।"

(8) "तब उसे यह विचार आता है: 'शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, मुझे न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करना चाहिए और उसमें निवास करना चाहिए।' न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के आधार को चोट न पहुँचाते हुए, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, वह न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसका विकास और संवर्धन करता है, [421] और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है।

(9) "तब उसे यह विचार आता है: 'न तो अनुभूति (सन्न/संग्य) और न ही अनुभूति (अदृश्यता) के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, मुझे अनुभूति (सन्न/संग्य) और संवेदना (वेदन) की समाप्ति में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए।' अनुभूति (सन्न/संग्य) और संवेदना (वेदन) की समाप्ति को चोट न पहुँचाते हुए, न तो अनुभूति (सन्न/संग्य) और न ही अनुभूति (अदृश्यता) के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, वह अनुभूति (सन्न/संग्य) और संवेदना (वेदन) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है।"

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन ध्यान अवस्थाओं में प्रवेश करता है और इनसे बाहर आता है, तो उसका मन लचीला और सहज हो जाता है। मन के लचीला और सहज होने से उसकी समाधि असीम और विकसित हो जाती है। असीम और विकसित समाधि के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली जिस भी अवस्था की ओर वह अपना मन लगाता है, उपयुक्त आधार होने पर वह उसे प्राप्त करने में सक्षम होता है।

"यदि वह यह इच्छा करे: 'मैं विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग कर सकूँ: एक होकर, मैं अनेक बन सकूँ... [यहाँ और नीचे पूर्ण रूप से 6:2 के अनुसार]... मैं ब्रह्म जगत तक शरीर पर भगवानत्व स्थापित कर सकूँ,' तो वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।"

"यदि वह चाहे: 'क्या मैं, दिव्य श्रवण शक्ति के साथ, जो शुद्ध है और मानवीय श्रवण शक्ति से परे है, दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकता हूँ, दिव्य और मानवीय, दूर और पास की ध्वनियों को भी', तो वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।"

"यदि वह चाहे: 'क्या मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझ सकता हूँ, उन्हें अपने मन से घेरकर। क्या मैं एक अमुक्त मन को अमुक्त के रूप में समझ सकता हूँ...' तो वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।"

यदि वह चाहे: "क्या मैं अपने अनेक भूतपूर्व निवासों (पूर्व पुनर्जन्मों) को उनके पहलुओं और विवरणों के साथ याद कर सकता हूँ?" वह इसे साकार करने में सक्षम है, बशर्ते कि एक उपयुक्त आधार हो। [422]

यदि वह चाहे तो: 'मैं, उस दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध है और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकूँ... और समझ सकूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं', वह इसे प्राप्त करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।

यदि वह यह इच्छा करे: 'क्या मैं, दोषों के नाश के साथ, इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति में प्रवेश कर सकता हूँ और निवास कर सकता हूँ, जिसे मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं अनुभव किया है', तो वह इसे प्राप्त करने में सक्षम है, बशर्ते कि इसके लिए एक उपयुक्त आधार हो।

36 नौ झाना (ट्रान्स अवस्था) (सं. ध्यान)

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर निर्भर करता है। (2) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर भी निर्भर करता है। (3) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर भी निर्भर करता है। (4) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर भी निर्भर करता है। (5) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश अनंत आकाश के आधार पर भी निर्भर करता है। (6) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) पर भी निर्भर करता है। (7) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर भी निर्भर करता है। (8) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश अनंत आकाश के आधार पर भी निर्भर करता है। न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा)-न ही अ-अनुभूति। (9) मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के रुकने पर निर्भर करता है।

(1) "जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर निर्भर करता है' तो यह किस कारण से कहा गया था? यहाँ, इंद्रिय सुखों से एकांत में... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है...; वह वहाँ विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो रूप, संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा/संज्ञा), अपने चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), और चेतना से संबंधित हैं, अनित्य, दुख, रोग, फोड़ा, तीर, दुःख, पीड़ा, पराया, विघटनशील, [423] शून्य और अनात्म मानता है। 1915 वह अपना मन उन घटनाओं (धम्म) से हटाकर उसे अमर तत्व की ओर इस प्रकार निर्देशित करता है: "यह शांतिपूर्ण है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी गतिविधियों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग करना, तृष्णा (तन्हा/तृष्णा), वैराग्य (विराग), निश्चिंतता (निर्वाण) का नाश। 1916 यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, तो वह दोषों का नाश प्राप्त करता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) के कारण, धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता, 917 तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"जैसे कोई धनुर्धर या धनुर्धर का प्रशिक्षु पुआल के पुतले या मिट्टी के ढेर पर प्रशिक्षण लेता है और फिर बाद में लंबी दूरी का निशानेबाज, तीक्ष्ण निशानेबाज, किसी विशालकाय शरीर को चीरने वाला बन जाता है, 1918 उसी प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है: वह वहां विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो रूप, संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा/संज्ञा), अपने गुणों/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), और चेतना से संबंधित हैं, क्षणभंगुर मानता है... वह स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस आए बिना ही वहां अंतिम निर्वाण (निर्वाण) प्राप्त कर लेता है। [424]

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूं कि दोषों का नाश भी प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर निर्भर करता है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(2)— (4) "जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश द्वितीय ध्यान... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था)... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर भी निर्भर करता है..."

[425] "जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) पर निर्भर करता है,' तो इसी कारण यह कहा गया था।

(5) जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर करता है,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यहाँ, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए, एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह वहाँ विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो संवेदना (वेदना), बोध (सन्ना/संज्ञा), अपने चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और चेतना से संबंधित हैं, अनित्य, दुख, रोग, फोड़ा, तीर, दुःख, पीड़ा, पराया, विघटनशील, खाली मानता है। और अनात्म। वह अपना मन इन घटनाओं (धम्म) से हटाकर अमर (अमत/अमृत) तत्व की ओर इस प्रकार लगाता है: "यह शांतिदायक है, यह उदात्त है, अर्थात् समस्त कर्मों का शांत होना, समस्त प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निब्बान, निर्वाण।" यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, तो वह दोषों का नाश प्राप्त करता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग की वासना, धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए, वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"जैसे कोई धनुर्धर या उसका प्रशिक्षु पुआल के पुतले या मिट्टी के ढेर पर प्रशिक्षण लेता है और बाद में दूरगामी निशानेबाज, कुशल निशानेबाज, विशालकाय पिंड को चीरने वाला बन जाता है, उसी प्रकार, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ... एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह वहां विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो संवेदना (वेदना), बोध (सन्ना/संज्ञा), अपने चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और चेतना से संबंधित हैं, क्षणभंगुर मानता है। लेकिन यदि वह दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता है... तो वह स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस नहीं लौटता, वहीं पर अंतिम निर्वाण (निर्वाण) प्राप्त कर लेता है।"

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर करता है,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

(6)— (7) "जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर करता है... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर', तो ऐसा क्यों कहा गया? [426] यहाँ, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह वहाँ विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो संवेदना (वेदना), अनुभूति (संज्ञा/संज्ञा), अपने चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार), और चेतना से संबंधित हैं, अनित्य मानता है। परन्तु यदि वह दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता... तो वह स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस लौटे बिना वहाँ अंतिम निर्वाण (निर्वाण) प्राप्त कर लेता है।

"जैसे कोई धनुर्धर या उसका प्रशिक्षु पुआल के पुतले या मिट्टी के ढेर पर प्रशिक्षण लेता है और बाद में दीर्घ दूरी का निशानेबाज, कुशल निशानेबाज, किसी विशालकाय पिंड को भेदने वाला बन जाता है, उसी प्रकार चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ ही एक भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वह वहां विद्यमान सभी घटनाओं (धम्म) को, जो संवेदना (वेदना), अनुभूति (संज्ञा/संज्ञा), सचेतन क्रियाओं और चेतना से संबंधित हैं, क्षणभंगुर मानता है। ... लेकिन यदि वह दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता है... तो वह स्वतः पुनर्जन्म लेने वाला बन जाता है, और उस लोक से कभी वापस नहीं आता है, वहीं पर अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दोषों का नाश भी शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर करता है", तो इसी कारण से यह कहा गया था।" (1920)

(8)— (9) "इस प्रकार, भिक्षुओं, अंतिम ज्ञान की प्राप्ति वहीं तक संभव है जहाँ तक सन्ना/संज्ञा सहित ध्यान की उपलब्धियाँ पहुँचती हैं। परन्तु ये दो आधार—न सन्ना/संज्ञा और न असंज्ञा का क्षेत्र (आयतन) और सन्ना/संज्ञा तथा वेदना का अंत—ये दोनों ही उन ध्यानमग्न भिक्षुओं द्वारा वर्णित किए जाने हैं जो उपलब्धियों में निपुण हों और उपलब्धियों को प्राप्त करने और उनसे निकलने के बाद उनसे बाहर निकलने में निपुण हों।" 1921

---

37 आनंद

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा:

"यह विस्मयकारी और आश्चर्यजनक है, मित्रों, कि भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, ने बंधन के बीच में एक मार्ग की खोज की है: 1922 प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, दु:ख और विलाप पर विजय पाने के लिए, पीड़ा और निराशा के दूर होने के लिए, विधि की प्राप्ति के लिए, निर्वाण की प्राप्ति के लिए। 1923 (1) आँख और वे रूप वास्तव में उपस्थित होंगे, [427] और फिर भी उस आधार का अनुभव नहीं होगा। 1924 (2) कान और वे ध्वनियाँ वास्तव में उपस्थित होंगी, और फिर भी उस आधार का अनुभव नहीं होगा। (3) नाक और वे गंध वास्तव में उपस्थित होंगी, और फिर भी उस आधार का अनुभव नहीं होगा। (4) जीभ और वे

स्वाद वास्तव में उपस्थित होंगे, और फिर भी उस आधार का अनुभव नहीं होगा। (5) शरीर और वे स्पर्शनीय वस्तुएँ वास्तव में उपस्थित होंगी..." मौजूद होते हुए भी, व्यक्ति उस आधार का अनुभव नहीं कर पाएगा।"

यह सुनकर पूज्य उदय ने पूज्य आनंद से कहा: "मित्र आनंद, क्या वास्तव में बोध होने पर या बोधहीन होने पर ही व्यक्ति उस आधार का अनुभव नहीं करता?"

"मित्र, असल में जब कोई व्यक्ति वास्तव में सचेत होता है तभी उसे उस आधार का अनुभव नहीं होता, न कि जब वह अचेत होता है।"

"लेकिन, मित्र, जब व्यक्ति उस आधार का अनुभव ही न करे तो वह किस बात को समझ सकता है?"

(6) "यहाँ, मित्र, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। जब कोई इस प्रकार बोधशील होता है तो वह उस आधार का अनुभव नहीं करता।"

(7) "हे मित्र, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। जब कोई इस प्रकार बोध रखता है, तो उसे उस आधार का अनुभव नहीं होता।"

(8) "हे मित्र, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। जब कोई इस प्रकार बोधशील होता है, तो वह उस आधार का अनुभव नहीं करता है।" 1925

"एक बार, मित्र, मैं साकेता में अंजना वन के हिरण उद्यान में निवास कर रहा था, तब भिक्षुणी (नन) जतिलगहिया 1926 [428] मेरे पास आईं, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुईं और बोलीं: 'भंते आनंद, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) जो आगे की ओर नहीं झुकती और पीछे की ओर नहीं मुड़ती, 1927 और जिसे बलपूर्वक (अपवित्रताओं को) दबाकर नियंत्रित नहीं किया जाता 1928 — मुक्त होकर वह स्थिर रहती है; स्थिर रहकर वह संतुष्ट रहती है; संतुष्ट रहकर व्यक्ति विचलित नहीं होता। 1929 भंते आनंद, भगवान (बुद्ध) ने इस समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का क्या फल बताया है?' 1930

(9) "जब उसने मुझसे यह पूछा, तो मैंने उत्तर दिया: 'बहन, वह समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) जो आगे की ओर नहीं झुकती और पीछे की ओर नहीं मुड़ती, और जिसे [अपवित्रताओं को] बलपूर्वक दबाकर नियंत्रित नहीं किया जाता—मुक्त होकर वह स्थिर होती है; स्थिर होकर वह संतुष्ट होती है; संतुष्ट होकर व्यक्ति विचलित नहीं होता। भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इस समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) का फल अंतिम ज्ञान है।' 1931 जब कोई इस प्रकार भी बोधगम्य होता है, मित्र, तो वह उस आधार का अनुभव नहीं करता।"

---

38 लोकायतिका

फिर दो ब्राह्मण ब्रह्मांडविज्ञानी (1932) भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

पुराण कस्सपा, जो गुरु गौतम हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने का दावा करते हैं, कहते हैं: 'चाहे मैं चल रहा हूँ, खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि निरंतर और लगातार मेरे साथ रहती है।' वे कहते हैं: 'असीम ज्ञान के साथ, मैं संसार को असीम जानते और देखते हुए निवास करता हूँ।' [429] परन्तु निगंथ नटपुत्त भी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने का दावा करते हैं, कहते हैं: 'चाहे मैं चल रहा हूँ, खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि निरंतर और लगातार मेरे साथ रहती है।' वे कहते हैं: 'असीम ज्ञान के साथ, मैं संसार को सीमित जानते और देखते हुए निवास करता हूँ।' [429] जब ज्ञान के ये दो दावेदार परस्पर विरोधी दावे करते हैं, तो कौन सत्य बोलता है और कौन असत्य?

"बस करो, ब्राह्मणों, अब बस यही है: 'जब ज्ञान के ये दो दावेदार परस्पर विरोधी दावे करते हैं, तो कौन सत्य बोलता है और कौन असत्य?' मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी जी," उन ब्राह्मणों ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"मान लीजिए, ब्राह्मणों, चारों दिशाओं में चार पुरुष खड़े हैं, जिनमें सर्वोच्च गति, तेज चाल और असाधारण कदम हैं। उनकी गति ताड़ के पेड़ की छाया में दृढ़ धनुष वाले प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धर द्वारा आसानी से चलाए गए हल्के तीर के समान है। उनके कदम इतने तेज हैं कि वे पूर्वी सागर से पश्चिमी सागर तक पहुँच सकते हैं। तब पूर्वी दिशा में खड़ा व्यक्ति इस प्रकार कहेगा: 'मैं यात्रा करके संसार के अंत तक पहुँचूँगा।' सौ वर्ष का जीवनकाल होने के कारण, वह सौ वर्ष तक बिना रुके यात्रा कर सकता है, सिवाय खाने, पीने, चबाने, स्वाद लेने, शौच और मूत्र त्यागने और नींद से थकान दूर करने के लिए; फिर भी वह संसार के अंत तक पहुँचे बिना रास्ते में ही मर जाएगा। [430] तब पश्चिमी दिशा में खड़ा व्यक्ति इस प्रकार कहेगा... उत्तरी दिशा में खड़ा व्यक्ति इस प्रकार कहेगा... दक्षिणी दिशा में खड़ा व्यक्ति इस प्रकार कहेगा... इस प्रकार: 'मैं यात्रा करके संसार के अंत तक पहुँचूँगा।' सौ वर्ष का जीवनकाल पाकर, यदि वह सौ वर्ष तक जीवित रहे, तो वह बिना रुके सौ वर्ष तक यात्रा कर सकता है, सिवाय खाने, पीने, चबाने, स्वाद लेने, शौच और मूत्र त्यागने तथा नींद से थकान दूर करने के लिए। फिर भी वह संसार के अंत तक पहुँचे बिना ही रास्ते में मर जाएगा। इसका क्या कारण है? मैं कहता हूँ, ब्राह्मणों, कि इस प्रकार की दौड़ से संसार के अंत को न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही पहुँचा जा सकता है। और फिर भी मैं कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं हो सकता।

"हे ब्राह्मणों, इंद्रिय सुख के इन पाँचों विषयों को भगवान बुद्ध की साधना में 'संसार' कहा जाता है। ये पाँच कौन से विषय हैं? वे रूप जो आँखों से दिखाई देते हैं, जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन होते हैं, जो सुखद होते हैं, जो इंद्रिय सुख से जुड़े होते हैं, जो उत्तेजक होते हैं; वे ध्वनियाँ जो कानों से सुनाई देती हैं... वे गंधें जो नाक से सुनाई देती हैं... वे स्वाद जो जीभ से महसूस किए जा सकते हैं... वे स्पर्शनीय वस्तुएँ जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन होती हैं, जो सुखद होती हैं, जो इंद्रिय सुख से जुड़ी होती हैं, जो उत्तेजक होती हैं। इंद्रिय सुख के इन पाँचों विषयों को भगवान बुद्ध की साधना में 'संसार' कहा जाता है।"

(1) "यहाँ, ब्राह्मणों, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो संसार के अंत तक पहुँचकर संसार के अंत में निवास करता है। अन्य लोग उसके बारे में इस प्रकार कहते हैं: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।' मैं भी यही कहता हूँ: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है' [431]

(2) -(4) "फिर, विचार और चिंतन के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में...। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो संसार के अंत तक पहुँचकर संसार के अंत में निवास करता है। अन्य लोग उसके बारे में इस प्रकार कहते हैं: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।' मैं भी यही कहता हूँ: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।'

(5) "फिर, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर हो जाने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो संसार के अंत तक पहुँचकर संसार के अंत में निवास करता है। अन्य लोग उसके बारे में इस प्रकार कहते हैं: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।' मैं भी यही कहता हूँ: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।'"

(6)— (8) "फिर, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, चेतना को अनंत मानते हुए, एक भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, एक भिक्षु न तो-बोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो संसार के अंत तक पहुँचकर संसार के अंत में निवास करता है। अन्य लोग उसके बारे में इस प्रकार कहते हैं: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।'" मैं यह भी कहता हूँ: 'वह भी संसार में समाहित है; वह भी अभी संसार से मुक्त नहीं हुआ है।'

(9) "फिर, न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (वेदना) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और पन्न (दिव्य ज्ञान) से देखकर, उसके सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो संसार के अंत तक पहुँचकर, संसार के अंत में निवास करता है, जिसने संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।"

---

39 देव (देवदूत/भगवान) असुर युद्ध (देवअसुरसंगम सं. देव-असुर-संग्राम)

भिक्षुओं, अतीत में देवताओं और असुरों के बीच एक युद्ध हुआ था: उस युद्ध में असुर विजयी हुए और देवता पराजित हुए। पराजित होकर देवता उत्तर की ओर भाग गए, जिनका असुरों ने पीछा किया। तब देवताओं के मन में यह विचार आया: 'असुर अभी भी हमारा पीछा कर रहे हैं। चलो उनसे एक बार फिर युद्ध करें।' दूसरी बार देवताओं ने असुरों से युद्ध किया, और दूसरी बार भी असुर विजयी हुए और देवता पराजित हुए। पराजित होकर देवता उत्तर की ओर भागे, असुर उनका पीछा कर रहे थे। तब देवताओं को यह विचार आया: 'असुर अभी भी हमारा पीछा कर रहे हैं। चलो उनसे तीसरी बार युद्ध करते हैं।' तीसरी बार देवताओं ने असुरों से युद्ध किया, और तीसरी बार भी असुर विजयी हुए और देवता पराजित हुए। पराजित और भयभीत होकर देवता अपने नगर में प्रवेश कर गए।

"देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के अपने नगर में प्रवेश करने के बाद, उन्हें यह विचार आया: 'अब हम [433] खतरे से सुरक्षित हैं और असुर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।' असुरों को भी यही विचार आया: 'अब देवतांत्रिक (देवदूत/देवता) खतरे से सुरक्षित हैं और हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

भिक्षुओं, अतीत में, देवताओं और असुरों के बीच एक युद्ध हुआ था। उस युद्ध में, देवता विजयी हुए और असुर पराजित हुए। पराजित होकर, असुर दक्षिण की ओर भाग गए, जिनका पीछा देवताओं ने किया। तब असुरों के मन में विचार आया: 'देव अभी भी हमारा पीछा कर रहे हैं। चलो उनसे दोबारा युद्ध करें।' दूसरी बार असुरों ने देवताओं से युद्ध किया, और दूसरी बार भी देवता विजयी हुए और असुर पराजित हुए। पराजित होकर, असुर दक्षिण की ओर भाग गए, जिनका पीछा देवताओं ने किया। तब असुरों के मन में विचार आया: 'देव अभी भी हमारा पीछा कर रहे हैं। चलो उनसे तीसरी बार युद्ध करें।' तीसरी बार असुरों ने देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ युद्ध किया, और तीसरी बार भी देवता (देवदूत/देवता) विजयी हुए और असुर पराजित हुए: पराजित और भयभीत होकर असुर अपने नगर में प्रवेश कर गए।

"जब असुर उनके नगर में प्रवेश कर गए, तो उन्हें यह विचार आया: 'अब हम खतरे से सुरक्षित हैं और देव (देवदूत/भगवान) हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।' देव (देवदूत/भगवान) को भी यही विचार आया: 'अब असुर खतरे से सुरक्षित हैं और हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'"

(1) "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब इंद्रिय सुखों से एकांत में रहकर कोई भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... उस समय भिक्षु के मन में यह विचार आता है: 'अब मैं खतरे से सुरक्षित हूँ और मारा मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।' और यही बात राक्षस मारा के मन में भी आती है: 'अब भिक्षु खतरे से सुरक्षित है और मैं उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।'"

(2) — (4) "जब विचार और चिंतन शांत हो जाते हैं और भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें लीन हो जाता है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... उस समय भिक्षु को यह आभास होता है: 'अब मैं खतरे से सुरक्षित हूँ और मारा मेरा कुछ नहीं कर सकता।' और यही बात राक्षस मारा को भी आभास होती है: 'अब भिक्षु खतरे से सुरक्षित है और मैं उसका कुछ नहीं कर सकता।' 1

(5) "जब रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर हो जाने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' को समझते हुए, एक भिक्षु अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है, उस अवसर पर उसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने मारा को अंधा कर दिया है, 1939 जिसने मारा की आँखों को बिना किसी निशान के निकाल दिया है, 1940 और जो दुष्ट की दृष्टि से परे चला गया है।"

(6) — (9) "हे भिक्षुओं, जब अनंत अंतरिक्ष के आधार को पूर्णतः पार करके, चेतना को अनंत मानते हुए, भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... जब अनंत चेतना के आधार को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... जब शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... जब न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु प्रवेश करता है और जो व्यक्ति बोध (सन्ना/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के अंत में निवास करता है, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखा जाता है, उसके दोष पूरी तरह से नष्ट हो जाते हैं, उस अवसर पर उसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसने मारा को अंधा कर दिया है, मारा की आँखें निकाल दी हैं, दुष्ट की दृष्टि से परे चला गया है, और संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।" [435]

---

40 एक नर हाथी

भिक्षुओं, जब कोई वनवासी हाथी अपने चारागाह की ओर जा रहा होता है और अन्य हाथी—नर, मादा, बच्चे और शिशु—उससे आगे निकलकर घास की ऊपरी शाखाओं को तोड़ देते हैं, तो हाथी को इससे घृणा, अपमान और घृणा होती है। जब कोई वनवासी हाथी अपने चारागाह की ओर जा रहा होता है और अन्य हाथी—नर, मादा, बच्चे और शिशु—मुड़ी हुई और मुड़ी हुई शाखाओं के गट्ठे को खा जाते हैं, तो हाथी को इससे घृणा, अपमान और घृणा होती है। जब कोई वनवासी हाथी तालाब में प्रवेश कर चुका होता है और अन्य हाथी—नर, मादा, बच्चे और शिशु—उससे आगे निकलकर अपनी सूंड से पानी को हिला देते हैं, तो हाथी को इससे घृणा, अपमान और घृणा होती है। जब कोई वनवासी हाथी तालाब से बाहर निकल आता है और मादा हाथी उसके शरीर को छूते हुए निकल जाती हैं, तो हाथी को इससे घृणा, अपमान और घृणा होती है। यह।

उस समय वन में रहने वाले नर हाथी के मन में यह विचार आया: 'मैं इस समय अन्य हाथियों से घिरा हुआ हूँ: नर, मादा, बच्चे और शिशु। मैं टूटी हुई पत्तियों वाली घास खाता हूँ, और वे मेरी झुकी और मुड़ी हुई शाखाओं की गठरी खा जाते हैं। मैं गंदा पानी पीता हूँ, और जब मैं तालाब से बाहर आता हूँ, तो मादा हाथी मेरे शरीर को छूते हुए गुजरती हैं। मुझे झुंड से अलग, अकेले रहने दो।'

कुछ समय बाद वह झुंड से अलग होकर अकेला रहने लगता है। वह बिना ऊपरी भाग तोड़े घास खाता है; हाथी उसकी झुकी और मुड़ी हुई शाखाओं की गठरी नहीं खाते; वह साफ पानी पीता है; और जब वह तालाब से बाहर आता है, तो मादा हाथी उसके शरीर से रगड़ते हुए नहीं गुजरतीं। उस समय जंगल में रहने वाले नर हाथी के मन में यह विचार आता है: 'पहले मैं दूसरे हाथियों से घिरा रहता था... और जब मैं तालाब से बाहर आता था, तो मादा हाथी मेरे शरीर से रगड़ते हुए गुजरती थीं। लेकिन अब मैं झुंड से अलग होकर अकेला रहता हूँ। मैं बिना ऊपरी भाग तोड़े घास खाता हूँ; हाथी मेरी झुकी और मुड़ी हुई शाखाओं की गठरी नहीं खाते; मैं साफ पानी पीता हूँ; और जब मैं तालाब से बाहर आता हूँ, तो मादा हाथी मेरे शरीर से रगड़ते हुए नहीं गुजरतीं। अपनी सूंड से शाखाओं की एक गठरी तोड़कर, उसे अपने शरीर पर रगड़कर वह अपनी खुजली से राहत पाता है।'

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से घिरा रहता है, तो उस समय उसके मन में यह विचार आता है: 'मैं इस समय भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदायिक शिक्षकों और उनके शिष्यों से घिरा हुआ हूँ। मुझे अकेले रहना चाहिए, संगति से दूर।"

वह एकांत स्थान पर शरण लेता है: जंगल, [437] किसी वृक्ष की तलहटी, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, घनी झाड़ियाँ, खुला स्थान, पुआल का ढेर। जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली झोपड़ी में जाकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने सती (ध्यान) स्थापित करता है। संसार के प्रति लालसा का त्याग करके, वह लालसा से मुक्त मन से रहता है; वह अपने मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष और घृणा का त्याग करके, वह द्वेष से मुक्त मन से, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के प्रति करुणा से भरा रहता है; वह अपने मन को द्वेष और घृणा से शुद्ध करता है। सुस्ती और आलस्य का त्याग करके, वह सुस्ती और आलस्य से मुक्त, प्रकाश के प्रति सजग, सचेत (ध्यान/सती) और पूर्णतः बोधगम्य रहता है; वह अपने मन को सुस्ती और आलस्य से शुद्ध करता है। बेचैनी और पश्चाताप का त्याग करके, वह बिना किसी हलचल के, एक मन को आंतरिक रूप से

शांत करते हुए, वह अपने मन को बेचैनी और पश्चाताप से मुक्त करता है। संदेह का त्याग करके, वह संदेह से परे जाकर, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के बारे में अविचलित होकर अपने मन को संदेह से मुक्त करता है।

(1) "इस प्रकार इन पाँच बाधाओं, मन के दोषों, पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करने वाली चीजों का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... प्रसन्न होकर, वह अपनी खुजली से राहत पाता है।"

(2) — (4) "विचार और परीक्षण के शांत होने के साथ, वह

वह दूसरी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें लीन हो जाता है... तीसरी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चौथी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में। प्रसन्न होकर वह अपनी खुजली मिटाता है।

(5) "रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। प्रसन्न होकर, वह अपनी खुजली से राहत पाता है।"

(6) — (9) "अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। ... शून्यता के आधार को पूर्णतः पार करके, भिक्षु न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, [438] भिक्षु निश्चिंतता में प्रवेश करता है और निवास करता है।" ज्ञान और वेदना से प्राप्त ज्ञान से उसके सारे दोष मिट जाते हैं। प्रसन्न होकर वह अपनी खुजली मिटा लेता है।

---

41 तपस्सा

ऐसा मैंने सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) उरुवेलकप्पा नामक मल्ल नगर के पास मल्लों के बीच निवास कर रहे थे। 1942 में, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए उरुवेलकप्पा में प्रवेश किया। उरुवेलकप्पा में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, आप यहीं ठहरिए, मैं दिन बिताने के लिए महान वन में जाता हूँ।"

"जी भंते," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) विशाल वन में प्रवेश कर एक वृक्ष की तलहटी में बैठ गए और दिन व्यतीत करने लगे।

तब गृहस्थ तपस्सा पूज्य आनंद के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते आनंद, हम गृहस्थ लोग इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं, उनमें मग्न रहते हैं, उनमें प्रसन्न होते हैं और उनमें आनंदित होते हैं। त्याग हमें एक खाई के समान लगता है। मैंने सुना है कि इस धर्म और अनुशासन में बहुत कम उम्र के भिक्षु हैं, जिनका मन त्याग की राह पर चल पड़ता है और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाता है, 1943 इसे शांतिपूर्ण मानते हुए 1944। हे भंते, त्याग इस धर्म और अनुशासन में भीड़ और भिक्षुओं के बीच विभाजक रेखा है।" 1945 [439]

"हे गृहस्थ, यह ऐसा विषय है जिसके बारे में हमें भगवान (बुद्ध) से परामर्श लेना चाहिए। आइए, हम भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें इस मामले की जानकारी दें। हमें भगवान (बुद्ध) की व्याख्या को याद रखना चाहिए।"

"जी हां, भंते," गृहस्थ तपस्सा ने उत्तर दिया।

तब पूज्य आनंद, गृहस्थ तपस्सा के साथ भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "भंते, यह गृहस्थ तपस्सा कहता है: 'भंते आनंद, हम गृहस्थ इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं... और त्याग हमें खाई के समान लगता है... लेकिन ऐसे बहुत से युवा भिक्षु हैं जिनका मन... इसमें मुक्त हो जाता है, क्योंकि वे इसे शांतिपूर्ण मानते हैं। भंते, इस धर्म और अनुशासन में त्याग ही आम लोगों और भिक्षुओं के बीच विभाजक रेखा है।"

“तो ऐसा ही है, आनंदा! तो ऐसा ही है, आनंदा!” 1946

(1) “मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं मात्र एक बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में भी यह विचार आया: 'त्याग अच्छा है, एकांत अच्छा है।' फिर भी मेरा मन त्याग की राह पर नहीं चला और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मुझे वह शांतिपूर्ण प्रतीत होता था। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन त्याग की राह पर नहीं चला और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मुझे वह शांतिपूर्ण प्रतीत होता था?' तब मेरे मन में यह विचार आया: 'मैंने इंद्रिय सुखों में छिपे खतरे को नहीं देखा है और उस (विपश्यना) का अभ्यास नहीं किया है; मैंने त्याग का लाभ प्राप्त नहीं किया है और उसका अनुसरण नहीं किया है। इसलिए मेरा मन त्याग की राह पर नहीं चला और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मुझे वह शांतिपूर्ण प्रतीत होता था।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं इंद्रिय सुखों के खतरे को देखकर उस [विपश्यना] का अभ्यास करूँ, और त्याग का लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन त्याग की ओर अग्रसर हो और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' कुछ समय बाद, इंद्रिय सुखों के खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और त्याग का लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन त्याग की ओर अग्रसर हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, आनंद, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... मैंने प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश किया और उसमें लीन हो गया। जब मैं इस अवस्था में था, तब मुझमें इंद्रिय-बोध और ध्यान के साथ-साथ कामुकता भी उत्पन्न हुई और मैंने इसे कष्ट के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक वैसे ही, जब मुझमें इंद्रिय-बोध और ध्यान के साथ-साथ कामुकता उत्पन्न हुई, तो मैंने इसे कष्ट के रूप में अनुभव किया।

(2) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'विचार और परीक्षा के शांत होने पर, मुझे दूसरे ध्यान में प्रवेश करना चाहिए और उसमें रहना चाहिए।' ... फिर भी मेरा मन विचारहीनता की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन विचारहीनता की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?' तब मेरे मन में यह विचार आया: 'मैंने विचारों में खतरे को नहीं देखा है और उस (विपश्यना) का अभ्यास नहीं किया है; मैंने विचारहीनता का लाभ प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन विचारहीनता की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा।"

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं विचारों में निहित खतरे को देखकर उस [विपश्यना] का अभ्यास करूँ, और यदि विचारहीनता में उसका लाभ प्राप्त कर लूँ, तो संभव है कि मेरा मन विचारहीनता की ओर अग्रसर हो और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, विचारों में निहित खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और विचारहीनता में उसका लाभ प्राप्त करके, मैंने उसका अभ्यास किया। तब मेरा मन विचारहीनता की ओर अग्रसर हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, 1947 में, आनंद, जब विचार और परीक्षा शांत हो गई... मैं दूसरी ध्यान अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया। ... जब मैं इस अवस्था में था, तो मुझे विचार के साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, वैसे ही जब मुझे विचार के साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। (3) "तब, आनंद, मुझे यह विचार आया: 'पीति के लुप्त होने के साथ... मुझे तीसरी ध्यान अवस्था में प्रवेश कर उसमें लीन हो जाना चाहिए। ... फिर भी मेरा मन पीति की अनुपस्थिति पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सका और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो सका, हालांकि मैंने उसे शांत देखा।" मुझे यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन आनंद (पीति) के अभाव में प्रवृत्त होकर उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो जाता, यद्यपि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ?' फिर मुझे यह विचार आया: 'मैंने

आनंद (पीति) में निहित खतरे को नहीं देखा है और न ही उस (विपश्यना) का अभ्यास किया है; मैंने आनंद (पीति) के अभाव में मिलने वाले लाभ को प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन आनंद (पीति) के अभाव में प्रवृत्त होकर उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो जाता, यद्यपि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं परमानंद (पीति) में निहित खतरे को देखकर उस (विपश्यना) का अभ्यास करूँ, और परमानंद (पीति) के अभाव में प्राप्त लाभ को प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन परमानंद (पीति) के अभाव की ओर अग्रसर हो और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, परमानंद (पीति) में निहित खतरे को देखकर, मैंने उस (विपश्यना) का अभ्यास किया, और परमानंद (पीति) के अभाव में प्राप्त लाभ को प्राप्त करके उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन परमानंद (पीति) के अभाव की ओर अग्रसर हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, आनंद, जब परमानंद (पीति) भी लुप्त हो गया... मैं तीसरी ध्यान अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया। ...जब मैं इस अवस्था में था, तब मुझे परमानंद (पीति) के साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान का अनुभव हुआ और मैंने इसे कष्ट के रूप में महसूस किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, वैसे ही जब मुझे परमानंद (पीति) के साथ अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान का अनुभव हुआ, तो मैंने इसे कष्ट के रूप में महसूस किया।

(4) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'सुख और दुख का त्याग करके... मैं चौथे ध्यान में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ...' फिर भी मेरा मन सुख और दुख के अभाव की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन सुख और दुख के अभाव की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?' तब मेरे मन में यह विचार आया: 'मैंने उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्खा) से जुड़े सुख में निहित खतरे को नहीं देखा है और उस (विपश्यना) का अभ्यास नहीं किया है; मैंने सुख और दुख के अभाव का लाभ प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन सुख और दुख के अभाव की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं उदासीनता (भीतर में समाहित होना/उपेक्खा) से जुड़े आनंद में निहित खतरे को देखकर, उस (विपश्यना) का अभ्यास करूँ, और यदि सुख-दुख के अभाव में उसका लाभ प्राप्त कर लूँ, तो संभव है कि मेरा मन सुख-दुख के अभाव की ओर अग्रसर हो और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ। फिर, कुछ समय बाद, उदासीनता (भीतर में समाहित होना/उपेक्खा) से जुड़े आनंद में निहित खतरे को देखकर, मैंने उस (विपश्यना) का अभ्यास किया, और सुख-दुख के अभाव में उसका लाभ प्राप्त कर लिया, और उसका अभ्यास किया। तब मेरा मन सुख-दुख के अभाव की ओर अग्रसर हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।

कुछ समय बाद, आनंद, सुख और दुख का त्याग करके... मैंने चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। ...जब मैं इस अवस्था में था, तब मुझे अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान के साथ-साथ उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) का अनुभव हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में महसूस किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक वैसे ही, जब मुझे अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान के साथ-साथ उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) का अनुभव हुआ, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में महसूस किया।

(5) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, [यह जानते हुए कि] "अंतरिक्ष अनंत है," मैं अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ।' फिर भी मेरा मन अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश नहीं कर सका और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो सका, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश नहीं कर सका और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो सका, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?' तब मुझे यह बात सूझी: 'मैंने रूपों में छिपे खतरे को नहीं देखा है और न ही उस [अंतर्दृष्टि (विपश्यना)] का विकास किया है; मैंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में विलीन नहीं होता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो पाता, [444] यद्यपि मैं उसे शांत देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं रूपों में निहित खतरे को देखकर उस [विपश्यना] का अभ्यास करूँ, और अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन अनंत अंतरिक्ष के आधार पर विलीन हो जाए और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, रूपों में निहित खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर विलीन हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, आनंद ने रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं इस अवस्था में निवास कर रहा था, तब मुझमें रूपों से संबंधित धारणा (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक वैसे ही, जब मुझमें रूपों से संबंधित वह धारणा (सन्ना/संज्ञा) उत्पन्न हुई, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया।

(6) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, [यह जानते हुए कि] 'चेतना अनंत है,' मैं चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश कर उसमें निवास करूं।' फिर भी मेरा मन चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करके उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन चेतना की अनंतता के आधार पर प्रवेश करके उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो जाता, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?'" तब मुझे यह बात समझ में आई: 'मैंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में निहित खतरे को नहीं देखा है और न ही उस अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का विकास किया है; मैंने अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्राप्त लाभ को हासिल नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में विचरण नहीं करता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो पाता, यद्यपि मैं उसे शांत देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर, उस [विपश्यना] का अभ्यास करूँ, और यदि मैं अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रक्षेपित हो जाए और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रक्षेपित हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, आनंद, अनंत अंतरिक्ष के आधार को पूर्णतः पार करते हुए, चेतना को अनंत मानते हुए, मैंने अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं इस अवस्था में था, तब अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ मेरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक उसी प्रकार, जब अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ मेरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया।

(7) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, मैं शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ।' फिर भी मेरा मन शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश नहीं कर पाता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो पाता, यद्यपि मैं उसे शांत देखता हूँ। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश नहीं कर पाता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो पाता, यद्यपि मैं उसे शांत देखता हूँ?'" तब मुझे यह बात समझ में आई: 'मैंने चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में निहित खतरे को नहीं देखा है और न ही उस अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का विकास किया है; मैंने शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश नहीं करता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो पाता, यद्यपि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर उस [विपश्यना] का अभ्यास करूँ, और यदि शून्यता के आधार में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा [446] मन शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रक्षेपित हो जाए और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, चेतना की अनंतता के आधार में खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रक्षेपित हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।"

कुछ समय बाद, आनंद, चेतना की अनंतता के आधार को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, मैंने शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं इस अवस्था में निवास कर रहा था, तब चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ मेरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक वैसे ही, जब चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) के साथ-साथ मेरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और ध्यान उत्पन्न हुआ, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया।

(8) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, मैं न तो सन्न/संज्ञा और न ही अज्ञान के आधार में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ।' फिर भी मेरा मन न तो सन्न/संज्ञा और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) में प्रवृत्त होकर उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो सका, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन न तो सन्न/संज्ञा और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) में प्रवृत्त होकर उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हो सका, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?' तब मुझे यह बात समझ में आई: 'मैंने शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में निहित खतरे को नहीं देखा है और न ही उस अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का विकास किया है; मैंने न तो सन्न-संज्ञा-अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त किया है और न ही उसका अनुसरण किया है। इसलिए मेरा मन न तो सन्न-संज्ञा-अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) में विचरण नहीं करता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं होता, यद्यपि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर उस [अंतर्दृष्टि (विपस्सना)] का अभ्यास करूँ, और यदि मैं न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में प्रक्षेपित हो जाए और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' [447] फिर, कुछ समय बाद, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया, और न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में लाभ प्राप्त करके, मैंने उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन न तो सबोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में विलीन हो गया और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैंने उसे शांतिपूर्ण पाया।

कुछ समय बाद, आनंद, शून्यता के आधार को पूर्णतः पार करके, मैं न तो चेतना (सन्न/संज्ञा) और न ही अचेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश कर गया और उसमें निवास करने लगा। जब मैं इस अवस्था में था, तब मेरे भीतर चेतना (सन्न/संज्ञा) और ध्यान के साथ-साथ शून्यता का आधार भी उत्पन्न हुआ और मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया। जैसे सुख में भी पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, ठीक उसी प्रकार, जब मेरे भीतर चेतना (सन्न/संज्ञा) और ध्यान के साथ-साथ शून्यता का आधार उत्पन्न हुआ, तो मैंने इसे एक पीड़ा के रूप में अनुभव किया।

(9) "तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (अदृश्यता) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, मैं अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (भावना) की समाप्ति में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ।' फिर भी मेरा मन अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा। मेरे मन में यह विचार आया: 'ऐसा क्यों है कि मेरा मन अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति की ओर अग्रसर नहीं हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं हुआ, यद्यपि मैंने उसे शांत देखा?'" तब मुझे यह बात समझ में आई: 'मैंने न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को नहीं देखा है और न ही उस (विपश्यना) का अभ्यास किया है; मैंने अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण का लाभ प्राप्त नहीं किया है और न ही उसका अनुसरण

किया है। इसलिए मेरा मन अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण की ओर अग्रसर नहीं होता और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त नहीं होता, यद्यपि मैं उसे शांत देखता हूँ।'

"तब, आनंद, मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि मैं न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (अदृश्यता) के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर उस (विपश्यना) का अभ्यास करूँ, और यदि अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण में लाभ प्राप्त करके उसका अनुसरण करूँ, तो संभव है कि मेरा मन अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण की ओर अग्रसर हो और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो जाए, क्योंकि मैं उसे शांतिपूर्ण देखता हूँ।' फिर, कुछ समय बाद, न तो अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और न ही अनुभूति (अज्ञान) के क्षेत्र (आयतन) में खतरे को देखकर, मैंने उस [विपश्यना] का अभ्यास किया; [448] और अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण में लाभ प्राप्त करके, मैंने उसका अनुसरण किया। तब मेरा मन अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निवारण की ओर अग्रसर हुआ और उसमें शांत, स्थिर और मुक्त हो गया, क्योंकि मैंने उसे शांतिपूर्ण पाया।

कुछ समय बाद, आनंद ने न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के आधार को पूर्णतः पार करके, अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश किया और निवास किया, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर, मेरे सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो गए।

"हे आनंद, जब तक मैंने प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में इन नौ क्रमिक निवासों की उपलब्धियों को प्राप्त नहीं किया और उनसे मुक्त नहीं हुआ, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता), मार और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस संसार में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मैंने प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में इन नौ क्रमिक निवासों की उपलब्धियों को प्राप्त किया और उनसे मुक्त हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया। मुझमें यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: "मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।" [449]

वी. समानता 1949 (समाननवग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

42 कारावास (संबधा)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में रह रहे थे। तब पूज्य उदय ने पूज्य आनंद के पास जाकर उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर उदय एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा:

"यह बात युवा देव (देवदूत/भगवान) पंचलाचंदा ने कही थी, हे मित्र:

"ऋषि, एकांतप्रिय प्रधान बैल, ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को प्राप्त बुद्ध, व्यापक पन्ना (दिव्य ज्ञान) के स्वामी ने कारावास के बीच मार्ग खोज लिया है।" (1950)

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कारावास किसे कहा है और कारावास के बीच में मुक्ति की प्राप्ति किसे कहा है?" 1951

हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने इन पाँच इंद्रिय सुखों को बंधन बताया है। वे पाँच कौन सी हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं; कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से

महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वे वस्तुएँ जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़ी और उत्तेजक होती हैं। भगवान (बुद्ध) ने इन पाँच इंद्रिय सुखों को बंधन बताया है।

(1) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में कारावास के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि का उल्लेख किया है। 1952 वहाँ भी कारावास है। और वहाँ कारावास क्या है? [450] जो भी विचार और परीक्षा वहाँ नहीं रुके हैं, वही इस मामले में कारावास है।

(2) "हे मित्र, विचार और चिंतन के शांत होने पर भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें लीन हो जाता है। इस संदर्भ में भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की प्राप्ति का उल्लेख किया है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? जो भी आनंद (पीति) वहाँ समाप्त नहीं हुआ है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(3) "हे मित्र, जब पीति (आनंद) लुप्त हो जाती है, तो भिक्षु तीसरे ध्यान (सम्मोहन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि का उल्लेख किया है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? जो भी आनंद (अंदर की ओर लौटना/उपेक्खा) वहाँ नहीं रुका है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(4) "हे मित्र, सुख और दुख के त्याग से ही भिक्षु चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की प्राप्ति की बात कही है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? रूप 1953 की जो भी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) वहाँ समाप्त नहीं हुई है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(5) "हे मित्र, रूपों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने से, इंद्रियों के प्रभाव की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) के समाप्त होने से, विविधता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देने से, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए, भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि का उल्लेख किया है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की जो भी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) वहाँ समाप्त नहीं हुई है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(6) "हे मित्र, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का अनुभव करते हुए, एक भिक्षु [451] अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने परिवीक्षात्मक अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि की बात कही है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) की जो भी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) वहाँ समाप्त नहीं हुई है, वही इस स्थिति में बंधन है। . ."

(7) "हे मित्र, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि का उल्लेख किया है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की जो भी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) वहाँ समाप्त नहीं हुई है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(8) "हे मित्र, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की उपलब्धि का उल्लेख किया है। वहाँ भी बंधन है। और वहाँ बंधन क्या है? न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के आधार की जो भी अनुभूति (सन्न/संज्ञा) वहाँ समाप्त नहीं हुई है, वही इस स्थिति में बंधन है।"

(9) "फिर, न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (वेदना) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, भिक्षु अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर उसके सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में बंधन के बीच एक द्वार खुलने की प्राप्ति का वर्णन किया है।" 1954

---

43 शारीरिक साक्षी (काया-साक्षी सं. काया-साक्षी)

"कहा जाता है, मित्र, 'एक देह साक्षी, एक देह साक्षी।' 3955 भगवान (बुद्ध) ने देह साक्षी के बारे में किस प्रकार कहा है?"

(1) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... वह शरीर के साथ उस आधार से संपर्क स्थापित करके निवास करता है, चाहे वह किसी भी रूप में प्राप्त हो। 1956 इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने शरीर साक्षी की बात अस्थायी अर्थ में की है। [452]

(2)— (4) "फिर, मित्र, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... वह शरीर के साथ उस आधार से संपर्क स्थापित करके निवास करता है, चाहे वह किसी भी रूप में प्राप्त हो। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में शरीर साक्षी की बात की है।"

(5)"(8) "हे मित्र, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर हो जाने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है,' भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) में... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में... न तो बोध (सन्ना/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में। वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है [चाहे वह किसी भी रूप में प्राप्त हो]। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में शरीर साक्षी की बात की है।

(9) "हे मित्र, फिर से, न तो संज्ञान (सन्न/संज्ञा) और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह संज्ञान (सन्न/संज्ञा) और वेदना (संवेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर, उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है। इस हद तक, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने शरीर साक्षी के बारे में अस्थायी अर्थ में नहीं कहा है।" 1957

---

44 दिव्य ज्ञान द्वारा मुक्ति (पन्नविमुत्त सं. प्रज्ञा-विमुक्त)

"कहा जाता है, मित्र, 'पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त, पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त।' भगवान (बुद्ध) ने पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त व्यक्ति के बारे में किस प्रकार कहा है?" 1958

(1) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... और वह इसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त व्यक्ति की बात की है।"

(2) — (4) "हे मित्र, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... और वह इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त व्यक्ति के बारे में अस्थायी अर्थ में बात की है।"

(5)— (8) "हे मित्र, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने पर, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देने पर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में... न-धारणा (सन्ना/संज्ञा) और न-अवधारणा के आधार में; और वह इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में पन्न (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्त व्यक्ति की बात की है। [453]

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं; और वह इसे दिव्य ज्ञान से समझता है। इस प्रकार, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने दिव्य ज्ञान से मुक्त व्यक्ति के बारे में अस्थायी अर्थ में नहीं कहा है।"

---

45 दोनों दृष्टियों से मुक्त (उभतोभागविमुत्त)

"कहा जाता है, मित्र, 'दोनों प्रकार से मुक्त, दोनों प्रकार से मुक्त।' भगवान (बुद्ध) ने दोनों प्रकार से मुक्त व्यक्ति के बारे में किस प्रकार कहा है?"

(1) "यहाँ, हे मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है, और वह उसे प्रभात (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में दोनों दृष्टियों से मुक्त व्यक्ति की बात की है।"

(2) — (4) "हे मित्र, विचार और परीक्षा के शांत होने पर भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है, और वह उसे पन्ना (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने दोनों दृष्टियों से मुक्त व्यक्ति के बारे में अस्थायी अर्थ में बात की है।"

(5)— (8) "हे मित्र, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर हो जाने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का अनुभव करते हुए, भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में... न तो धारणा (सन्ना/संज्ञा) और न ही अ-धारणा के क्षेत्र (आयतन) में। वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है, और वह इसे पन्न (दिव्य ज्ञान) से समझता है। इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने दोनों दृष्टियों से मुक्त व्यक्ति से अस्थायी रूप से बात की है। समझ।

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। वह शरीर के साथ उस आधार से किसी भी रूप में संपर्क स्थापित करके निवास करता है, और उसे दिव्य ज्ञान से समझता है। हे मित्र, इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने दोनों दृष्टियों से मुक्त व्यक्ति के बारे में अस्थायी अर्थ में नहीं कहा है।"

---

46 प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला धम्म(1) (संदित्तिकधम्म)

"कहा जाता है, मित्र, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला धम्म, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला धम्म।" भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले धम्म के बारे में किस प्रकार कहा है?

(1)— (8) 7 हे मित्र, यहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले धम्म के बारे में अस्थायी अर्थ में बात की है। ...

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। हे मित्र, इस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले धम्म के बारे में अस्थायी अर्थ में नहीं कहा है।"

---

47 प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान मुक्ति (2) (संदित्थिकनिब्बाना)

"हे मित्र, कहा जाता है, 'प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने वाला निर्वाण, प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने वाला निर्वाण।' भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने वाले निर्वाण के बारे में किस प्रकार कहा है?"

(1)— (8) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है, इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले निर्वाण (निब्बान) का अस्थायी अर्थ में उल्लेख किया है। . . ."

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले निर्वाण का उल्लेख अस्थायी अर्थ में नहीं किया है।" [454]

---

48 निब्बाना (निर्वाण के बिना)

"कहा जाता है, मित्र, 'निर्वाण, निर्वाण'..."

[विस्तार से बताया गया है जैसा कि 9:47 में है]

---

49 अंतिम निर्वाण

"कहा जाता है, मित्र, 'अंतिम निर्वाण, अंतिम निर्वाण...'"

[विस्तार से बताया गया है जैसा कि 9:47 में है]

---

50 उस विशेष संदर्भ में निर्वाण (तदंगनिब्बान)

"कहा जाता है, मित्र, 'निर्वाण एक विशेष अर्थ में, निर्वाण एक विशेष अर्थ में'।"

[विस्तार से बताया गया है जैसा कि 9:47 में है]

---

51 इसी जीवन में

"कहा जाता है, मित्र, 'इसी जीवन में निर्वाण, इसी जीवन में निर्वाण'। मित्र, भगवान (बुद्ध) ने इसी जीवन में निर्वाण की बात किस प्रकार कही है?"

(1)— (8) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और निवास करता है... 'इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में इसी जीवन में निर्वाण (निर्वाण) की बात कही है...'

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। हे मित्र, इस हद तक भगवान (बुद्ध) ने इसी जीवन में निर्वाण की बात अस्थायी अर्थ में नहीं कही है।" [455]

दूसरा पचास

I. सुरक्षा अनुभाग (खेमावग्गो सं. क्षेमा-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

52 सुरक्षा (1) (खेमा सं. क्षेमा)

"कहा जाता है, मित्र, 'सुरक्षा, सुरक्षा'। मित्र, भगवान (बुद्ध) ने किस प्रकार सुरक्षा की बात की है?"

(1)— (8) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में सुरक्षा की बात कही है

(9) "हे मित्र, न तो संज्ञान और न ही अज्ञान के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु संज्ञान और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने सुरक्षा की बात अस्थायी अर्थ में नहीं कही है।"

---

53 सुरक्षा प्राप्तकर्ता (2) (खेमापट्ट सं. क्षेमा..)

"कहा जाता है, मित्र, 'जिसने सुरक्षा प्राप्त कर ली है, जिसने सुरक्षा प्राप्त कर ली है...'..."

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है]

---

54 अमर (1) (अमता सान. अमृता)

"कहा जाता है, मित्र, 'अमरता, अमरता...'।"

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है]

---

55 अमर अवस्था प्राप्तकर्ता (2) (अमतप्पत्ता सान. अमृत..)

"कहा जाता है, मित्र, जिसने अमरता (अमता/अमृत) प्राप्त कर ली है, जिसने अमरता (अमता/अमृत) प्राप्त कर ली है..."

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है।]

---

56 निडर (1) (अभय)

"कहा जाता है, मित्र, 'निडर, निडर...'"

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है।]

---

57 निर्भय अवस्था प्राप्तकर्ता (2) (अभयपट्ट)

"कहा जाता है, मित्र, 'जिसने निर्भीकता प्राप्त कर ली है, जिसने निर्भीकता प्राप्त कर ली है...'"

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है।]

---

58 शांति (1) (पासद्धि)

"कहा जाता है, मित्र, 'शांति (पासद्धि), शांति...'"

[9:52 के अनुसार विस्तृत किया जाएगा।] [456]

---

59 प्रगतिशील शांति (2) (अनुपुब्बपसद्धि संस. अनुपुर्वा..)

"कहा जाता है, मित्र, 'प्रगतिशील शांति, प्रगतिशील शांति।'"

[विस्तार से बताया गया है जैसा कि 9:52 में है।]

---

60 निरोध (Cessation)

"कहा जाता है, मित्र, समाप्ति, समाप्ति..."

[इसका विस्तृत विवरण 9:52 में दिया गया है।]

---

61. क्रमिक समाप्ति (अनुपुब्बनिरोध)

"कहा जाता है, मित्र, 'प्रगतिशील समाप्ति, प्रगतिशील समाप्ति'। मित्र, भगवान (बुद्ध) ने किस प्रकार प्रगतिशील समाप्ति की बात की है?"

(1)— (8) "यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। ... इस हद तक भी, भगवान (बुद्ध) ने अस्थायी अर्थ में प्रगतिशील समाप्ति की बात कही है। ..."

(9) "हे मित्र, न तो सबोध और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके भिक्षु सबोध और वेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान से देखकर उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने क्रमिक समाप्ति की बात अस्थायी अर्थ में नहीं की है।

---

62 संभव और असंभव (अभब्बा)

भिक्षुओं, नौ चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे नौ चीजें कौन सी हैं? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), मोह (मोह), क्रोध, शत्रुता, निंदा, उद्दंडता, ईर्ष्या और कंजूसी। इन नौ चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता।

"भिक्षुओं, नौ चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है। वे नौ चीजें कौन सी हैं? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), मोह (मोह), क्रोध, शत्रुता, निंदा, उद्दंडता, ईर्ष्या और कंजूसी। इन नौ चीजों का त्याग करने पर, अरहंतत्व प्राप्त होता है।" [457]

द्वितीय. ध्यान अनुभाग की स्थापना (सतिपत्थानवग्गो सं. स्मृति-प्रस्थान-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

63 प्रशिक्षण में कमजोरी (सिक्खदुब्बल्य सं. सैक्ष्य-दौर्बल्य)

भिक्षुओं, प्रशिक्षण में ये पाँच बाधाएँ हैं। 1959 वे पाँच क्या हैं? (1) जीवन का विनाश, (2) बिना दी हुई वस्तुएँ लेना, (3) यौन दुराचार, (4) झूठी वाणी, और (5) शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन, जो आलस्य का आधार हैं। ये प्रशिक्षण में पाँच बाधाएँ हैं। प्रशिक्षण में इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए सती ध्यान की चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है। वे चार क्या हैं? यहाँ, (6) एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, उत्साही, पूर्ण बोध करते हुए, सती ध्यान में रहते हुए, संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए, ध्यान में लीन रहता है। (7) वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... (8) ... मन में मन... (9) ... घटनाओं में धम्म, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती भाव से ध्यानमग्न, संसार के प्रति लालसा और निराशा से मुक्त। ध्यान की इन चार अवस्थाओं को विकसित करना प्रशिक्षण में आने वाली इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए आवश्यक है।

---

64 अवरोध (निवारण)

भिक्षुओं, ये पाँच बाधाएँ हैं। कौन सी पाँच? कामुक इच्छा की बाधा, द्वेष की बाधा, सुस्ती और उनींदापन की बाधा, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा, और संदेह की बाधा। ये पाँच बाधाएँ हैं: ... इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए ध्यान (सती) की इन चार अवस्थाओं का विकास करना चाहिए।

---

65 कामुक आनंद (कामागुना)

भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख के विषय हैं। ये पाँच कौन से हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो वांछित, आकर्षक, सुखद, कामुक सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं; कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ, नाक से सुनाई देने वाली गंध, जीभ से महसूस होने वाले स्वाद और शरीर द्वारा स्पर्शित होने वाली वस्तुएँ जो वांछित, आकर्षक, सुखद, कामुक सुख से जुड़ी और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख के विषय हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख के विषयों को त्यागने के लिए सती ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

66 क्लिंगिंग एग्रीगेट्स (उपदानकखंड)

भिक्षुओं, ये पाँच समुच्चय हैं जो आसक्ति के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? समुच्चय जो आसक्ति के अधीन है, संवेदना (वेदना) जो आसक्ति के अधीन है, बोध (संज्ञा) जो आसक्ति के अधीन है, अपने गुण (संस्कार) जो आसक्ति के अधीन हैं, और चेतना जो आसक्ति

के अधीन है। [459] ये पाँच समुच्चय हैं जो आसक्ति के अधीन हैं। ... इन पाँच समुच्चयों का त्याग करने के लिए सती ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

67 निम्न बेड़ियाँ (ओरंभागिया)

भिक्षुओं, ये पाँच निम्न बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह, व्यवहार और अनुष्ठानों की गलत समझ, कामुक इच्छा और द्वेष। ये पाँच निम्न बंधन हैं। ... इन पाँच निम्न बंधनों को त्यागने के लिए सती ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

68 गंतव्य (गति)

भिक्षुओं, ये पाँच गंतव्य हैं। कौन से पाँच? नरक, पशुलोक, पीड़ित आत्माओं का लोक, मनुष्य और देव (देवदूत/भगवान)। ये पाँच गंतव्य हैं... इन पाँच गंतव्यों को त्यागने के लिए ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती साधना) का विकास करना आवश्यक है।

---

69 कंजूसी (मच्छरिया)

भिक्षुओं, कंजूसी पाँच प्रकार की होती है। ये पाँच कौन सी हैं? आवास के प्रति कंजूसी, परिवार के प्रति कंजूसी, लाभ के प्रति कंजूसी, प्रशंसा के प्रति कंजूसी और धर्म के प्रति कंजूसी। ये पाँच प्रकार की कंजूसी हैं। ... इन पाँच प्रकार की कंजूसी को त्यागने के लिए सती ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है। [460]

---

70 उच्चतर बंधन (उद्धम्भागीय)

भिक्षुओं, ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना (राग), अहंकार, बेचैनी और अज्ञान। ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं: ... इन पाँचों बंधनों को त्यागने के लिए सती ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

71 मानसिक बंजरपन (चेतोखिला)

"भिक्षुओं, मानसिक बंजरपन के ये पाँच प्रकार हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

(1) "यहाँ भिक्षु गुरु के बारे में असमंजस में है, उन पर संदेह करता है, उनके प्रति आश्वस्त नहीं है और उन पर भरोसा नहीं करता। जब भिक्षु गुरु के बारे में असमंजस में होता है, उन पर संदेह करता है, उनके प्रति आश्वस्त नहीं होता और उन पर भरोसा नहीं करता, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, इसलिए यह मानसिक बंजरपन का पहला प्रकार है।"

(2)— (5) "फिर, एक भिक्षु धम्म (मार्ग) के बारे में भ्रमित है... संघ के बारे में भ्रमित है... प्रशिक्षण के बारे में भ्रमित है... अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता है, उनसे नाराज़ है, उनके प्रति आक्रामक है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है। जब एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता है, उनसे नाराज़ होता है, उनके प्रति आक्रामक होता है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और

परिश्रम की ओर नहीं झुकता। चूंकि उसका मन उत्साह... और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, इसलिए यह पाँचवाँ प्रकार का मानसिक बंजरपन है।"

"ये पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता हैं। . . . इन पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता को दूर करने के लिए ध्यान (सती/ध्यान) की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।" [461]

---

72 बंधन (सेतोविनीबंध)

भिक्षुओं, मन के ये पाँच बंधन हैं। वे पाँच कौन से हैं?

(1) "यहाँ, भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है। जब भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, यही मन का पहला बंधन है।"

(2) — (5) "फिर, एक भिक्षु शरीर के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं होता, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है। ... उसमें रूप के प्रति कामवासना (राग) नहीं होती, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है। ... अपनी इच्छा अनुसार पेट भरकर भोजन करने के बाद, वह विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लीन रहता है। वह किसी विशेष देवक्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, यह सोचते हुए: 'इस पुण्य आचरण, पालन, तपस्या या ब्रह्मचर्य जीवन से मैं देव बनूंगा या उनके अनुयायियों में से एक बनूंगा।' जब कोई व्यक्ति किसी विशेष देवक्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, यही मन का पाँचवाँ बंधन है।

"हे भिक्षुओं, ये मन के पाँच बंधन हैं। . . . इन पाँचों मन के बंधनों को त्यागने के लिए ध्यान (सती/ध्यान) की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।" [462]

(III) सही प्रयास (समप्पधनवग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

73 प्रशिक्षण (सिक्ख बिना शिष्य)

भिक्षुओं, प्रशिक्षण में ये पाँच बाधाएँ हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) जीवन का विनाश, (2) बिना दी हुई वस्तुएँ लेना, (3) यौन दुराचार, (4) झूठी वाणी, और (5) शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन, जो आलस्य का आधार हैं। ये प्रशिक्षण में पाँच बाधाएँ हैं। प्रशिक्षण में इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए चार उचित प्रयास विकसित किए जाने हैं। वे चार क्या हैं? यहाँ, (6) एक भिक्षु अजन्मे बुरे हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। (7) वह उत्पन्न बुरे हानिकारक (अकुशल) गुणों के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। (8) वह अजन्मे बुरे हानिकारक (अकुशल) गुणों के उत्पन्न होने की

इच्छा उत्पन्न करता है। (9) वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के रखरखाव, उनकी अवक्षिप्तता, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/विरिया) उत्पन्न करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। प्रशिक्षण में इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए इन चार उचित प्रयासों को विकसित करना आवश्यक है।

---

74 82 बाधाएँ, आदि।

[9:64—9:72 के समानांतर, लेकिन चार सही प्रयासों के माध्यम से तैयार किया गया।] [463]

चतुर्थ. मानसिक शक्ति (जादू) के लिए आधार (इद्धिपदावग्गो सं. रिद्धि-पाद-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

83 प्रशिक्षण (सिक्ख बिना शिष्य)

भिक्षुओं, प्रशिक्षण में ये पाँच बाधाएँ हैं। वे पाँच क्या हैं? (1) जीवन का विनाश, (2) बिना दी हुई वस्तु लेना, (3) यौन दुराचार, (4) झूठी वाणी, और (5) शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन, जो आलस्य का आधार है। ये प्रशिक्षण में पाँच बाधाएँ हैं। प्रशिक्षण में इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए मानसिक शक्ति के चार आधार विकसित किए जाने हैं। वे चार क्या हैं? [464] (6) यहाँ, एक भिक्षु इच्छा और कर्मों के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) धारण करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। (7) वह ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और कर्मों के कारण समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) धारण करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है। (8) वह मानसिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो धारण करता है... (9) वह मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है जो खोज और प्रयास के कारण समाधि (जादू/इद्धि) प्राप्त करती है। प्रशिक्षण में इन पाँच बाधाओं को दूर करने के लिए मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के इन चार आधारों को विकसित किया जाना चाहिए।

84-92 बाधाएँ, इत्यादि।

[9:64-9:72 के समानांतर, लेकिन मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के चार आधारों के माध्यम से तैयार किया गया,] [465]

वी. वासना (राग) और इसी प्रकार पुनरावृति श्रृंखला [1960]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

93 [1961]

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए नौ चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे नौ चीजें क्या हैं? अनाकर्षण की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन के प्रति अरुचि की अनुभूति, समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति और वैराग्य की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन नौ चीजों का विकास करना आवश्यक है।

94

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए नौ चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे नौ चीजें क्या हैं? प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था), द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था), तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था), चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था), अनंत अंतरिक्ष का क्षेत्र (आयतन), अनंत चेतना का आधार, शून्यता का क्षेत्र (आयतन), न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (अदृश्यता) का क्षेत्र (आयतन), और अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) का अंत। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन नौ चीजों का विकास करना आवश्यक है।

95— 112 [1962]

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके निवारण के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन नौ चीजों का विकास करना चाहिए।

113-432

"भिक्षुओं (संतों), प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... लुप्त हो जाने के लिए... [466] निवारण के लिए... त्याग के लिए... घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... ईर्ष्या... कंजूसी... छल... चालाकी... हठ... उग्रता... अहंकार... घमंड... नशा... आलस्य... इन नौ चीजों का विकास करना चाहिए।" 1963

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

द बुक ऑफ द नाइन्स पूरी हो चुकी है।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का दसवाँ खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

महत्वपूर्ण सुत्त: 21. शेर की दहाड़ (बुद्ध की दस शक्तियाँ)

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN9) अगला (AN11) >>>>

अंतर्वस्तु

1दस की किताब (दशकनिपात)

1.1पहले

1.1.1I. लाभ

1.1.1.11. उद्देश्य क्या है?

1.1.1.22.चेतनकरणीय क्रिया

1.1.1.33. सद्गुणपूर्ण व्यवहार 1967 (उपनिषद 1)

1.1.1.44. जिज्ञासा कारण (उपनिषद 2)

1.1.1.55 आनंद (उपनिषद 3)

1.1.1.66. समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन)

1.1.1.77 सारिपुत्त

1.1.1.88 ध्यान [1971] (झांस। ध्यान)

1.1.1.99 सागर लिबरेशन [1972] (संत विमोक्ष सं. शांति-विमोक्ष)

1.1.1.1010 विद्या सात्विक ज्ञान (विज्जा संस्कृत)

1.1.2द्वितीय. भगवान खंड (नाथवाग्गो)

1.1.2.111 लॉजिंग [1973] (सेनासन बिना शयन-आसन)

1.1.2.212 पाँच कारक [1974] (पंचंगा)

1.1.2.313 बंधन (संयोजन)

1.1.2.414 मानसिक बंजारपन [1975] (चेतोखिला)

1.1.2.515. अप्पमाडा

1.1.2.616 उपहारों के योग्य [1978] (अहुनेया)

1.1.2.717 रक्षक (1) (नाथ1)

1.1.2.818 रक्षक (2) (नाथ2)

1.1.2.919 महान लोगों के निवास स्थान (1) (अरियावास1)

1.1.2.10कुलीन लोगों के 20 निवास (2) (अरियावास2)

1.1.3तृतीय. महान अध्याय (महावग्गो संस्कृत: महा-वर्ग)

1.1.3.121 शेर की दहाड़ (सिन्हाडा सं. सिंघा-नाडा)

1.1.3.222 पुरातन सिद्धांत (अधिवुत्तिपदा)

1.1.3.323 शरीर (काया)

1.1.3.424 महाकुंडा

1.1.3.525 कसीना

1.1.3.626 काली

1.1.3.727 महान प्रश्न (1) (महाप्रश्न1 सं. महा-प्रश्न)

1.1.3.828 महान प्रश्न (2) (महाप्रश्न2 सं. महा-प्रश्न)

1.1.3.929 कोसला (1)

1.1.3.1030 कोसला (2)

1.1.4IV. उपाली

1.1.4.131 उपाली

1.1.4.232 सस्पेक्ट [2031] (पतिमोकथापना)

1.1.4.333 न्यायनिर्णय (उब्बाहिका)

1.1.4.434 पूर्ण सहयोग (उपसम्पदा)

1.1.4.535 मार्च (निस्साय)

1.1.4.636 नौसिखिया [2038](सामने)

1.1.4.737विभाजन (1) (संघभेद1)

1.1.4.838विभाजन (2) (संघभेद1)

1.1.4.939 आनंद (1)

1.1.4.1040 आनंद (2)

1.1.5वी. अपमान (अकोसा संस. अक्रोश)

1.1.5.141 विवाद (विवाद)

1.1.5.242 मस्जिद की जड़ें (1) (विवादमुला1)

1.1.5.343 बिवादुला2

1.1.5.444 कु फिल्टर

1.1.5.545 राजा के महल में प्रवेश (अन्तेपुरप्पावेसना)

1.1.5.646 शाक्य

1.1.5.747 महली

1.1.5.848 चीजें

1.1.5.949 शरीर के माध्यम से जीवन निर्वाह

1.1.5.1050 लेख

1.2दूसरा पचास

1.2.1I. अपने मन का ध्यान रखना (सचित्तवग्गो सान. सद-चित्त-वर्ग)

1.2.1.151. अपने मन का ध्यान रखना (सचित्त)

1.2.1.252 सारिपुत्त

1.2.1.353 ठहराव (थिति)

1.2.1.454 समभाव (समथा)

1.2.1.555 परित्याग (परिहाना)

1.2.1.656 (6) धारणाएँ (1) (सन्ना1 सं. संज्ञा)

1.2.1.757 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

1.2.1.858 मूल (मुलका)

1.2.1.959 त्याग की ओर जाना (पबज्जा सं. प्रवर्ज्या)

1.2.1.1060 गिरिमानंद

1.2.2द्वितीय. जोड़े अनुभाग (यमकवग्गा)

1.2.2.161 अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)

1.2.2.262 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)

1.2.2.363 निश्चितता (नित्थंगता)

1.2.2.464 अविचलित (Aveccappasanna)

1.2.2.565 सुख (1) (सुख1)

1.2.2.666 सुख (2) (सुख2)

1.2.2.767 नलकपना (1)

1.2.2.868 नलकपना (2)

1.2.2.9चर्चा के 69 विषय (1) (कथावत्थु1 सं. कथावस्तु)

1.2.2.10चर्चा के 70 विषय (2) (कथावत्थु2 सं. कथावस्तु)

1.2.3तृतीय. इच्छा अनुभाग (अकांखवग्गो सं. आकांक्षावर्ग)

1.2.3.171 विश [2039] (आकांक्षा सं. आकांक्षा)

1.2.3.272 कांटे (कंटका)

1.2.3.373 वांछित (इत्थधम्म सं. इच्छा-धर्म)

1.2.3.474 विकास 2090 (वद्धि सं. वृद्धि)

1.2.3.575 मिगासाला 2091

1.2.3.676 ट्रिपल धम्म (तयोधम्म बिना त्रयो-धम्म)

1.2.3.777 कौआ (काका)

1.2.3.878 निगंथ (जैन)

1.2.3.9नाराजगी के लिए 79 आधार (एल) [2097] (अघटवत्थु)

1.2.3.1080 आक्रोश दूर करना (2) 2099 (अघटपतिविनय)

1.2.4IV. बुजुर्ग (थेरावग्गो संस्कृत: स्थिवरा-वर्ग)

1.2.4.181 बहुना

1.2.4.282 आनंदा

1.2.4.383 पुन्निया [2101]

1.2.4.484 घोषणा (व्याकरण सं. व्यक्त-करण)

1.2.4.585 शेखीबाज़ (कत्थी)

1.2.4.686 अंतिम ज्ञान (अधिमान)

1.2.4.787 अनुशासनात्मक मुद्दे (नप्पिया)

1.2.4.888 अपमान करने वाला 2107 (अक्कोसाका)

1.2.4.989 कोकालिका [2109]

1.2.4.10इच्छाहीनता की 90 शक्तियाँ 2118 (खिनासवबाला)

1.2.5वी. उपाली [2119]

1.2.5.191 जो कामुक सुखों का आनंद लेता है 2120 (कामभोगी)

1.2.5.292 खतरे [2122] (भया)

1.2.5.393 क्या दृष्टिकोण (किमदिट्थिका)

1.2.5.494 वज्जीयमहाता

1.2.5.596 कोकानुडा 2330

1.2.5.697 उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

1.2.5.798 एक बुजुर्ग (थेरा संस्कृत स्थिवरा)

1.2.5.899 उपाली

1.2.5.9100 अक्षम (अभब्बा)

1.3तीसरा पचास

1.3.1I. भिक्षु की धारणाएं (समनसन्नवग्गो सं. श्रमण-संज्ञ-वर्ग)

1.3.1.1101 भिक्षु की धारणाएं (समानसन्ना सं. श्रमण-संज्ञ)

1.3.1.2आत्मज्ञान के 102 कारक (बोज्झांगा सं. बोध्यांगा)

1.3.1.3103 गलत कोर्स (मिकचाटा संस. मिथ्याटा)

1.3.1.4104 एक बीज [2142] (बीजा)

1.3.1.5105 सच्चा ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)

1.3.1.6106 घिसना (निजरा सं. निर्जरा)

1.3.1.7107 धुलाई (धोवना)

1.3.1.8108 चिकित्सक (टिकिचका सं. सिकितसाका)

1.3.1.9109 वमनकारी (वामन)

1.3.1.10110 निष्कासित (निद्धमानिया)

1.3.1.11111 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (1) (असेखा1 सं. अशाइख्य)

1.3.1.12112 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (2) (असेखा2 सं. अशाइख्य)

1.3.2II. पैकोरोहनिवाग्गो

1.3.2.1113 गैर-धम्म (1) (अधम्म1 बिना अधर्म)

1.3.2.2114 गैर-धम्म (2) (अधम्म बिना अधर्म)

1.3.2.3115 गैर-धम्म (3) (अधम्म3 बिना अधर्म)

1.3.2.4116 अजिता [2150]

1.3.2.5117 संगरवा

1.3.2.6118 तट के निकट (ओरिमातिर)

1.3.2.7119 पैकोरोहानी (1)

1.3.2.8120 पैकोरोहानी (2)

1.3.2.9121 अग्रदूत (पुब्बनगामा सं. पूर्व-गमन)

1.3.2.10122 कलंकों का नाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)

1.3.3तृतीय. शुद्ध खंड (परिशुद्धवग्गो सं. परिशुद्ध-वर्ग)

1.3.3.1123 प्रथम

1.3.3.2124 सेकंड

1.3.3.3125 तीसरा

1.3.3.4126 चौथा

1.3.3.5127 पाँचवाँ

1.3.3.6128 छठा

1.3.3.7129 सातवां

1.3.3.8130 आठवां

1.3.3.9131 नौवां

1.3.3.10132 दसवां

1.3.3.11133 ग्यारहवां

1.3.4IV. अच्छा वर्ग (साधुवग्गो)

1.3.4.1134 अच्छा (साधु)

1.3.4.2135 - 144 नोबल धम्म, इत्यादि।

1.3.5वी. नोबल

1.3.5.1145 महान मार्ग

1.3.5.2146-154 अंधकारमय पथ, इत्यादि।

1.4चौथा पचास

1.4.1I. व्यक्ति अनुभाग (पुग्गलवग्गो सं. पुरुष-युगल-वर्ग)

1.4.1.1155 से संबद्ध (सेवितब्बा)

1.4.1.2156-166 रिज़ॉर्ट, आदि (भजीताब्बा)

1.4.2II. जानूसोनी खंड

1.4.2.1167 ब्राह्मणपकोरोहानी (एल) [2162]

1.4.2.2168 अरियापकोरोहानी (2)

1.4.2.3169 संगरवा [2163]

1.4.2.4170 निकटवर्ती तट (ओरिमा)

1.4.2.5171 गैर-धम्म (1) (अधम्म बिना अधर्म)

1.4.2.6172 गैर-धम्म (2) (अधम्म2 बिना अधर्म)

1.4.2.7173 गैर-धम्म (गलत मार्ग) (3) (अधम्म 3 बिना अधर्म)

1.4.2.8174 कम्मा (कर्म) के कारण (कम्मानिदान सं. कर्म-निदान)

1.4.2.9175 परिहार (परिकमना)

1.4.2.10176 कुंडा

1.4.2.11177 जानूसोनी

1.4.3तृतीय. अच्छा [2173] (साधुवग्गो सं. साधुवर्ग)

1.4.3.1178 अच्छा (साधु)

1.4.3.2179-188 महान धम्म आदि (अरियाधम्म, कुसल, अत्थ, धम्म, असव, वज्जा, तपनिया)

1.4.4चतुर्थ. महान पथ (अरियामग्गवग्गा सं. आर्यमार्ग-वर्ग)

1.4.4.1189 महान पथ (अरियामग्गा)

1.4.4.2190-198 अंधकारमय पथ, इत्यादि।

1.4.5V. व्यक्तियों पर एक और अध्याय [2174]

1.4.5.1199 के साथ जुड़ें

1.4.5.2200 - 210 रिज़ॉर्ट, आदि [2175]

1.5अतिरिक्त पचास

1.5.1I. कर्म से उत्पन्न शरीर (करजकया-वग्गो)

1.5.1.1211 नरक-स्वर्ग (1) (निरायसग्गा1 सं. नरक-स्वर्ग)

1.5.1.2212 नरक-स्वर्ग (2) (निरायसग्गा2 सं. नरक-स्वर्ग)

1.5.1.3213 महिलाएं (मातुगामा)

1.5.1.4214 महिला ले अनुयायी (उपासिका)

1.5.1.5215 आत्म-विश्वास (विसारदा)

1.5.1.6216 रेंगना (संसप्पनिया)

1.5.1.7227 सचेत क्रिया (1) (संचेतनिका1)

1.5.1.8218 सचेत क्रिया (2) 2184 (संसातनिका2)

1.5.1.9219 कर्म से उत्पन्न शरीर (करजाकाया)

1.5.1.10220 धम्म के विपरीत आचरण (अधम्मकारिया सं. अधर्म-क्रिया)

1.5.2द्वितीय. समानता (समन्ना-वाग्गो)

1.5.2.1221

1.5.2.2222

1.5.2.3223

1.5.2.4224

1.5.2.5225-228

1.5.2.6229 - 232

1.5.2.7233 - 236

1.5.3III. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला [2195]

1.5.3.1237 [2196]

1.5.3.2238

1.5.3.3239

1.5.3.4240 — 266

1.5.3.5267-746

दस की पुस्तक (दशकनिपात)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

पहले पचास

I. लाभ

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1. उद्देश्य क्या है?

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

(1) "भंते, लाभकारी (कुशल) सद्‌गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

(2) "आनंद, लाभकारी (कुशल) सद्‌गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ पश्चाताप न करना (अविप्पति-सरना) है।"

(3) "और हे भंते, पश्चाताप न करने का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"अतिशयता न करने का उद्देश्य और लाभ आनंद है।"

(4) "और हे भंते, आनंद का उद्देश्य और लाभ क्या है?" "आनंद का उद्देश्य और लाभ परमानंद (पीति) है।"

(5) "और हे भंते, आनंद (पीति) का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"पीति (आनंद) का उद्देश्य और लाभ शांति (पसाद्धि) है।"

(6) "और हे भंते, शांति का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"शांति (पासद्धि) का उद्देश्य और लाभ सुख (सुख) है।"

(7) "और हे भंते, सुख का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"सुख (आनंद) [2] का उद्देश्य और लाभ समाधि (स्व-लीनता/समाधि) है।"

(8) "और हे भंते, समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) का उद्देश्य और लाभ चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना है।

(9) "और हे भंते, यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"चीजों के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान और दृष्टि का उद्देश्य और लाभ निब्बिदा (विरक्ति) और वैराग्य (विराग) है।"

(10) "और हे भंते, वैराग्य और वैराग्य का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"विरक्ति और वैराग्य का उद्देश्य और लाभ मुक्ति का ज्ञान और दर्शन है (विमुक्ति-नाना-दस्सना संस्कृत: विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)।"

इस प्रकार, आनंद, (1)— (2) लाभकारी (कुशल) सद्गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ पश्चाताप रहित होना है; (3) पश्चाताप रहित होने का उद्देश्य और लाभ आनंद है; (4) आनंद का उद्देश्य और लाभ परमानंद है; (5) परमानंद का उद्देश्य और लाभ शांति है; (6) शांति का उद्देश्य और लाभ सुख है; (7) सुख का उद्देश्य और लाभ समाधि है; (8) समाधि का उद्देश्य और लाभ चीजों का उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन है; (9) चीजों के उनके वास्तविक स्वरूप के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ निब्बिदा और वैराग्य है; और (10) विघ्न और वैराग्य का उद्देश्य और लाभ मुक्ति का ज्ञान और दर्शन है। विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)। इस प्रकार, आनंद, लाभकारी (कुशल) सदाचार व्यवहार उत्तरोत्तर अग्रणी की ओर ले जाता है। "1961

---

2. सचेतन क्रिया (चेतनकारणीय)

(नोट: यह सूत्र समाधि/सम्मोहन अवस्थाओं के लिए है)

(1)— (2) "भिक्षुओं (साधुओं), एक गुणी व्यक्ति (विशेषकर यौन संयम रखने वाले) के लिए, जिसका आचरण गुणी हो, किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मुझमें पश्चाताप न हो (अविप्पति-सरना)।' यह स्वाभाविक है कि एक गुणी व्यक्ति में पश्चाताप न हो, जिसका आचरण गुणी हो।

(3) "जिसके पास पछतावा नहीं है, उसके लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है (जैसे): 'मुझमें आनंद उत्पन्न हो' यह स्वाभाविक है कि बिना पछतावे वाले व्यक्ति में आनंद उत्पन्न होता है।

(4) "आनंदित व्यक्ति के लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती (जैसे): 'मुझमें आनंद (पीति) उत्पन्न हो।' यह स्वाभाविक है कि आनंदित व्यक्ति में आनंद (पीति) उत्पन्न हो। [3]

(5) "आनंदित मन वाले व्यक्ति को किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती (जैसे): 'मेरा शरीर शांत रहे।' यह स्वाभाविक है कि आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत होता है।"

(6) "शरीर से शांत व्यक्ति के लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती (जैसे): 'मुझे सुख का अनुभव करने दो।' यह स्वाभाविक है कि शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है।"

(7) "सुख में डूबे व्यक्ति को किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती (जैसे): 'मेरा मन स्वयं में लीन हो जाए (समाधि में)।' सुख में डूबे व्यक्ति का मन स्वाभाविक रूप से स्वयं में लीन होता है।"

(8) "स्वयं में लीन (समाहित) व्यक्ति के लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती है, जैसे: 'मुझे चीजों को वैसे ही जानने और देखने दो जैसी वे वास्तव में हैं।' यह स्वाभाविक है कि स्वयं में लीन (समाहित) व्यक्ति चीजों को वैसे ही जानता और देखता है जैसी वे वास्तव में हैं।"

(9) "जो व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती (जैसे): 'मुझे विरक्त और उदासीन होना चाहिए'। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है, वह विरक्त और उदासीन (वीरग) होता है।"

(10) "जो व्यक्ति विरक्त और उदासीन है, उसे किसी इच्छाशक्ति की आवश्यकता नहीं होती: 'मुझे मुक्ति का ज्ञान और दर्शन प्राप्त हो।' यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति विरक्त और उदासीन है, वह मुक्ति का ज्ञान और दर्शन प्राप्त कर लेता है (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, (9)— (10) मुक्ति का ज्ञान और दर्शन, निब्बिदा और वैराग्य का उद्देश्य और लाभ है; (8) वैराग्य और वैराग्य, यथार्थ-भूत-ज्ञानदर्शन (वास्तविकता) के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ है; (7) यथार्थ-भूत-ज्ञानदर्शन (वास्तविकता) के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ है; (6) समाधि सुख का उद्देश्य और लाभ है; (5) सुख शांति का उद्देश्य और लाभ है; (4) शांति परमानंद का उद्देश्य और लाभ है; (3) परमानंद आनंद का उद्देश्य और लाभ है; (2) (1) अविप्पति-सरना (अप्रत्याश) का उद्देश्य और लाभ है; और (1) अप्रत्याश सद्गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, एक अवस्था [4] अगली अवस्था में प्रवाहित होती है, एक अवस्था अगली अवस्था को भर देती है, क्योंकि निकट तट से दूर तट की ओर जाना होता है।" 1966

---

3. सद्गुणपूर्ण व्यवहार 1967 (उपनिषद 1)

भिक्षुओं (सन्यासियों), (1) अनैतिक व्यक्ति के लिए, सद्गुणों से रहित व्यक्ति के लिए, (2) अविपत्ति-सरना (अविपत्ति-सरना) का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब अविपत्ति न हो, तो अविपत्ति से रहित व्यक्ति के लिए, (3) आनंद का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब आनंद न हो, तो आनंद से रहित व्यक्ति के लिए, (4) पीति (आनंद) का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब पीति न हो, तो पीति से रहित व्यक्ति के लिए, (5) शांति (पश्चात्य) का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब शांति न हो, तो शांति (पश्चात्य) से रहित व्यक्ति के लिए, (6) सुख (सुख) का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब सुख (सुख) न हो, तो सुख (सुख) से रहित व्यक्ति के लिए, (7) सही एकाग्रता का कोई निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब सही समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) न हो, तो सही समाधि (स्व-लीनता/समाधि) से रहित, (8) यथार्थ-भूत-नाना-दस्सना (संस्कृत: यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण से रहित होती है। जब यथार्थ-भूत-नाना-दस्सना का ज्ञान और दृष्टि नहीं होती, तो यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन से रहित व्यक्ति के लिए, (9) निब्बिदा और वैराग का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण से रहित होती है। जब निब्बिदा और वैराग का ज्ञान और दृष्टि नहीं होती, तो विभ्रम और वैराग से रहित व्यक्ति के लिए, (10) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण से रहित होती है।

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्तियाँ कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; न ही उसकी छाल, कोमल लकड़ी और कठोर लकड़ी पूरी तरह से विकसित होती हैं। ठीक उसी प्रकार, एक अनैतिक व्यक्ति के लिए, जो सद्गुणों से रहित है, पश्चाताप न करने की भावना (अविप्पति-सरना) का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब पश्चाताप न हो... तब मुक्ति के ज्ञान और दर्शन का भी कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता।

भिक्षुओं (सन्यासियों), (1) एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी हो, (2) अविपत्ति-सरना (अविपत्ति-सरना) इसका निकटतम कारण है। जब अविपत्ति होती है, तो अविपत्ति-सरना वाले व्यक्ति के लिए, (3) आनंद इसका निकटतम कारण है। जब आनंद होता है, तो आनंदित व्यक्ति के लिए, (4) परमानंद (पीति) इसका निकटतम कारण है। जब परमानंद (पीति) होता है, तो परमानंद (पीति) वाले व्यक्ति के लिए, (5) शांति (पसद्धि) इसका निकटतम कारण है। जब शांति होती है, तो शांति (पसद्धि) वाले व्यक्ति के लिए, (6) सुख (सुख) इसका निकटतम कारण है। जब सुख (सुख) होता है, तो सुख (सुख) वाले व्यक्ति के लिए, (7) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) इसका निकटतम कारण है। [5] जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) होती है, तो सही समाधि वाले व्यक्ति के

लिए, समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), (8) यथार्थ-भूत-नाना-दस्सना संस्कृत यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन का ज्ञान और दर्शन, इसका निकटतम कारण है। जब यथार्थ-भूत-नाना-दस्सना का ज्ञान और दर्शन होता है, तो (9) निब्बिदा और वैराग का ज्ञान और दर्शन, इसका निकटतम कारण है। जब निब्बिदा और वैराग का ज्ञान होता है, तो (10) विमुक्ति-नाना-दस्सना संस्कृत विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन का ज्ञान और दर्शन, इसका निकटतम कारण है।

मान लीजिए एक वृक्ष है जिसमें शाखाएँ और पत्तियाँ हैं। उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक इसी प्रकार, एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी है, पश्चाताप रहित भाव (अविप्पति-सरना) उसका मूल कारण है। पश्चाताप रहित भाव होने पर... मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका मूल कारण है।

---

4. निकटवर्ती कारण (उपनिषद 2)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया: [10:3 के समान, लेकिन सारिपुत्त द्वारा बोले गए।] [6]

---

5 आनंद (उपनिषद 3)

वहाँ पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को संबोधित किया: [10:3 के समान, लेकिन आनंद द्वारा बोले गए।] [7]

---

6. समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, क्या कोई भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी को पृथ्वी के संबंध में न देखे; (2) जल को जल के संबंध में न देखे; (3) अग्नि को अग्नि के संबंध में न देखे; (4) वायु को वायु के संबंध में न देखे; (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (6) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को अनंत चेतना के आधार के संबंध में न देखे; (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (8) न-बोध (सन्न/संज्ञा)-और-अबोध (अज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को न-बोध (सन्न/संज्ञा)-और-अज्ञेय (अज्ञात) के आधार के संबंध में न देखे; (9) इस संसार को इस संसार के संबंध में न देखे।" दुनिया; (10) दूसरी दुनिया के संबंध में दूसरी दुनिया का, लेकिन क्या वह फिर भी समझदार होगा?

"वह कर सकता है, आनंदा।"

"पर हे भंते, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?" [8]

"यहाँ, आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है: 'यह शांतिदायक है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी गतिविधियों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निब्बान, निर्वाण।' 1969 हे आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी को पृथ्वी के संबंध में, जल को जल के संबंध में, अग्नि को अग्नि के संबंध में, वायु को वायु के संबंध में, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में, अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में, शून्यता के आधार को शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में, न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के आधार को न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के आधार के संबंध में, इस संसार को इस संसार के संबंध में, परलोक को परलोक के संबंध में, नहीं तो भी वह बोधगम्य रहेगा।

---

7 सारिपुत्त

तब पूज्य आनंद, पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले:

"मित्र सारिपुत्त, क्या कोई भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी को पृथ्वी के संबंध में न देखे; (2) जल को जल के संबंध में न देखे; (3) अग्नि को अग्नि के संबंध में न देखे; (4) वायु को वायु के संबंध में न देखे; (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (6) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (8) न-बोध (सन्न/संज्ञा)-न-अवधारणा (सन्न/संज्ञा)-न-अवधारणा (सन्न/संज्ञा)-न-अवधारणा (अज्ञात) के संबंध में न देखे; (9) इस संसार को इस दुनिया के लिए; (10) दूसरी दुनिया के संबंध में दूसरी दुनिया का, लेकिन क्या वह फिर भी समझदार होगा?

"हाँ, मेरे दोस्त आनंद, वो कर सकता है।"

"पर हे मित्र सारिपुत्त, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

"एक बार, मेरे मित्र आनंद, मैं यहीं सावत्थी में अंधों के आश्रम में था। वहाँ मैंने समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त की कि मुझे पृथ्वी का पृथ्वी से, जल का जल से, अग्नि का अग्नि से, वायु का वायु से, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र का अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र से, अनंत चेतना के क्षेत्र का अनंत चेतना के क्षेत्र से, शून्यता के क्षेत्र का शून्यता के आधार से, न सबोध (सन्ना/संज्ञा) का न अबोध (सन्ना/संज्ञा) का न अबोध (सन्ना/संज्ञा) का क्षेत्र से, इस संसार का इस संसार से, परलोक का परलोक से कोई संबंध नहीं था, बल्कि मैं... अभी भी समझदार हैं।

"लेकिन उस अवसर पर पूज्य सारिपुत्त को किस बात का अहसास हुआ?"

"मुझमें एक अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) उत्पन्न हुई और दूसरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो गई: 'अस्तित्व का अंत (भावो/पुनर्जन्म का कारण) निर्वाण है; अस्तित्व का अंत (भावो/पुनर्जन्म का कारण) निर्वाण है।' 1970 जिस प्रकार, जब टहनियों की आग जल रही होती है, तो एक लौ उठती है और दूसरी बुझ जाती है, उसी प्रकार मुझमें एक अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) [10] उत्पन्न हुई और दूसरी अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) समाप्त हो गई: 'अस्तित्व का अंत निर्वाण है; अस्तित्व का अंत (भावो/पुनर्जन्म का कारण) निर्वाण है।' उस अवसर पर, मित्र, मुझे यह अनुभूति हुई: 'अस्तित्व का अंत (भावो/पुनर्जन्म का कारण) निर्वाण है।'"

---

8 ध्यान [1971] (झांसंस. ध्यान)

(1) “भिक्षुओं, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो सकता है, परन्तु वह सद्गुणी न हो; अतः वह इस मामले में अपूर्ण है। उसे इस मामले को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं आस्था से परिपूर्ण होकर सद्गुणी कैसे हो सकता हूँ?' परन्तु जब एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो और सद्गुणी भी हो, तब वह इस मामले में परिपूर्ण होता है।”

(2) "एक भिक्षु आस्थावान और सद्गुणी हो सकता है, परन्तु वह विद्वान नहीं है... (3) ... विद्वान, परन्तु धम्म पर वक्ता नहीं... (4) ... धम्म पर वक्ता, परन्तु सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला नहीं... (5) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने वाला, परन्तु सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला नहीं... (6) ... सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला, परन्तु अनुशासन का विशेषज्ञ नहीं... (7) ... अनुशासन का विशेषज्ञ, परन्तु वनवासी जो एकांतवास में रहता है... (8) ... वनवासी जो एकांतवास में रहता है, परन्तु वह नहीं जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करता है जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं।" . . (9) . . . वह व्यक्ति जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेता है, जो सुखद निवास स्थान हैं, परन्तु वह नहीं जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इस जीवन में ही, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को स्वयं अनुभव कर लिया है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है।

"इस प्रकार वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस कारक को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं कैसे विश्वास से संपन्न हो सकता हूँ... [11] ... और साथ ही वह व्यक्ति भी हो सकता हूँ जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो?'

(10) "परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से युक्त हो, (ii) गुणी हो, और (iii) विद्वान हो; (i) धम्म पर वक्ता हो; (v) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित होता हो; (vi) सभा को आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देता हो; (vii) अनुशासन का विशेषज्ञ हो; (viii) वनवासी हो जो एकांतवास में रहता हो; (ix) जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त करता हो जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं; और (x) जो दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं के लिए मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर चुका हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो, तो वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।"

"इन दस गुणों से युक्त भिक्षु हर तरह से विश्वास जगाने वाला और हर पहलू में परिपूर्ण होता है।"

---

9 शांतिपूर्ण मुक्ति [1972] (संतविमोक्ख सं. शांति-विमोक्ष)

(1) "भिक्षु (मठवासी), एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण हो सकता है, पर वह गुणी नहीं होता... (2) ... आस्था और गुणी तो हो सकता है, पर वह विद्वान नहीं होता... (3) ... विद्वान तो होता है, पर धम्म का वक्ता नहीं होता... (4) ... धम्म का वक्ता तो होता है, पर सभाओं में नियमित रूप से जाने वाला नहीं होता... (5) ... सभाओं में नियमित रूप से जाने वाला तो होता है, पर सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला नहीं होता... (6) ... सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला तो होता है, पर अनुशासन का विशेषज्ञ नहीं होता... (7) ... अनुशासन का विशेषज्ञ तो होता है, पर वनवासी नहीं होता जो एकांतवासों में रहता हो... (8) ... वनवासी जो एकांतवास में शरण लेता है, परन्तु वह नहीं जो शरीर से संपर्क करता है और उन शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करता है, जो रूपों से परे हैं, जो निराकार हैं... (9) ... वह जो शरीर से संपर्क करता है और उन शांतिपूर्ण मुक्ति में निवास करता है, जो रूपों से परे हैं, [12] जो निराकार हैं, परन्तु वह नहीं जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से, इसी जीवन में, स्वयं के लिए मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता है।

इस प्रकार वह उस पहलू के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस पहलू को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: "मैं कैसे विश्वास से परिपूर्ण हो सकता हूँ... और साथ ही साथ दोषों के नाश के साथ एक ऐसा व्यक्ति भी बन सकता हूँ।"

क्या उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की निर्मल मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करते हैं?

(10) "परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से युक्त हो, (ii) गुणी हो, और (iii) विद्वान हो; (iv) धम्म (मार्ग) पर वक्ता हो; (v) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित रहता हो; (vi) सभा को आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देता हो; (vii) अनुशासन का विशेषज्ञ हो; (viii) वनवासी हो जो एकांतवास में रहता हो; (ix) शरीर से संपर्क स्थापित करके उन शांतिपूर्ण मुक्ति का अनुभव करता हो, जो रूपों से परे हैं, निराकार हैं; और (x) दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में स्वयं को मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव करा चुका हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो, तो वह उस कारक के संबंध में पूर्ण हो जाता है।"

"जो भिक्षु इन दस गुणों से युक्त होता है, वह हर तरह से विश्वास जगाने वाला और हर पहलू में परिपूर्ण होता है।"

---

10 सच्चे ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)

(1) "भिक्षुओं (मठवासियों), एक भिक्षु आस्था से संपन्न हो सकता है, लेकिन वह गुणी नहीं होता... [13] ... (2) ... आस्था और गुणी तो होता है, लेकिन वह विद्वान नहीं होता... (3) ... विद्वान तो होता है, लेकिन धम्म पर वक्ता नहीं होता... (4) ... धम्म पर वक्ता तो होता है, लेकिन सभाओं में नियमित रूप से उपदेश देने वाला नहीं होता... (5) ... सभाओं में नियमित रूप से उपदेश देने वाला तो होता है, लेकिन सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला नहीं होता... (6) ... सभा में आत्मविश्वास से धम्म का उपदेश देने वाला तो होता है, लेकिन अनुशासन का विशेषज्ञ नहीं होता... (7) ... अनुशासन का विशेषज्ञ तो होता है, लेकिन अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद करने वाला नहीं होता, अर्थात् एक पुनर्जन्म, दो पुनर्जन्म... [जैसा कि 6:2 §4 में है]... इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद नहीं करता... (8)... वह जो अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को याद करता है... परन्तु वह नहीं जो दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है... [जैसा कि 6:2 §5 में है]... यह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं... (9)... वह जो दिव्य दृष्टि से... यह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं, परन्तु वह नहीं जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) से स्वयं को इसी क्षण में अनुभव किया है। जीवन, मन की निष्कलंक मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति, और उसमें प्रवेश करने के बाद, उसमें निवास करना।

"इस प्रकार वह उस कारक के संबंध में अपूर्ण है। उसे उस कारक को पूरा करना चाहिए, [यह सोचते हुए]: 'मैं कैसे विश्वास से संपन्न हो सकता हूँ... [14] ... और साथ ही वह व्यक्ति भी हो सकता हूँ जिसने दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो?'

(10) "परन्तु जब कोई भिक्षु (i) आस्था से युक्त हो, (ii) गुणी हो, और (iii) विद्वान हो; (iv) धम्म का वक्ता हो; (v) सभाओं में नियमित रूप से उपस्थित रहता हो; (vi) सभा में आत्मविश्वासपूर्वक धम्म का उपदेश देता हो; (vii) अनुशासन का विशेषज्ञ हो; (viii) अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित स्मरण करता हो; (ix) दिव्य दृष्टि से यह समझता हो कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं; और (x) दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में स्वयं को मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव हो, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करता हो, तब वह उस विषय में पूर्ण हो जाता है।"

"जो भिक्षु इन दस गुणों से युक्त होता है, वह हर तरह से विश्वास जगाने वाला और हर पहलू में परिपूर्ण होता है।" [15]

द्वितीय. लॉर्ड सेक्शन (नाथवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 लॉजिंग [1973] (सेनासन बिना शयन-आसन)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु जो पांच गुणों से युक्त है, पांच गुणों से युक्त आश्रम में जाता है और उसका उपयोग करता है, तो अल्पकाल में, दोषों के नाश के साथ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव कर सकता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास कर सकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु में पाँच गुण कैसे होते हैं?

(1) "यहाँ, एक भिक्षु आस्था से परिपूर्ण है। वह तथागत (बुद्ध) के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

(2) "वह शायद ही कभी बीमार या पीड़ित होता है, उसका पाचन तंत्र संतुलित होता है, न तो बहुत ठंडा और न ही बहुत गर्म, बल्कि मध्यम और प्रयास के लिए उपयुक्त होता है।

(3) "वह ईमानदार और खुला है, वह व्यक्ति जो शिक्षक और अपने बुद्धिमान साथी भिक्षुओं के सामने खुद को वैसे ही प्रकट करता है जैसा वह वास्तव में है।

(4) "उसने हानिकारक (अकुशल) गुणों का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है।"

(5) "वह बुद्धिमान है; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) है जो उत्पत्ति और क्षय को पहचानता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है और दुख के पूर्ण विनाश की ओर ले जाता है।

"इस प्रकार एक भिक्षु में पाँच गुण होते हैं।"

और किसी आवास में पाँच कारक कैसे होते हैं?

(6) "यहाँ, आवास न तो बहुत दूर है [भिक्षा के स्थान से] और न ही बहुत पास है, और इसमें आने-जाने का साधन है।

(7) "दिन के समय यह लोगों द्वारा परेशान नहीं होता है और रात में यह शांत और स्थिर रहता है।

(8) मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और साँपों से बहुत कम संपर्क होता है।

(9) "उस आवास में रहने वाला व्यक्ति आसानी से वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन प्राप्त कर सकता है।

(10) "उस आश्रम में विद्वान, विरासत के उत्तराधिकारी, धम्म के विशेषज्ञ, अनुशासन के विशेषज्ञ, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ, वरिष्ठ भिक्षु निवास करते हैं। वह समय-समय पर उनके पास जाकर पूछता है: 'यह कैसे है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूजनीय भिक्षु उसे वह प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते हैं और अनेक पेचीदा बिंदुओं के बारे में उसकी उलझन को दूर करते हैं।

"इस प्रकार एक आवास में पांच कारक होते हैं।"

जब कोई भिक्षु, जिसमें ये पाँच गुण मौजूद हों, ऐसे आवास में जाता है और उसका उपयोग करता है जिसमें ये पाँच गुण हों, तो अल्पकाल में, दोषों के नाश के साथ, वह स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव कर सकता है, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास कर सकता है।

---

12 पाँच कारक [1974] (पंचंगा)

"भिक्षुओं, वह भिक्षु जिसने पांच गुणों का त्याग कर पांच गुणों को धारण किया है, इस धम्म और अनुशासन में, पूर्णतम और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) का पूर्णतः पालन करने वाला भिक्षु कहलाता है।"

"एक भिक्षु ने पाँच गुणों का त्याग कैसे किया है? यहाँ, एक भिक्षु ने कामुक इच्छा, द्वेष, सुस्ती और आलस्य, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह का त्याग किया है। इस प्रकार एक भिक्षु ने पाँच गुणों का त्याग किया है।"

और एक भिक्षु में पाँच गुण कैसे होते हैं? यहाँ, एक भिक्षु में प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्‌गुणों का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के पन्ना (दिव्य ज्ञान) का समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के मुक्ति के ज्ञान और दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) का समूह होता है। इस प्रकार एक भिक्षु में पाँच गुण होते हैं।

"जब कोई भिक्षु इन पांच गुणों का त्याग कर इन पांच गुणों को धारण कर लेता है, तो इस धम्म और अनुशासन में उसे एक सर्वोच्च व्यक्ति कहा जाता है जो ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीने में पूर्ण और सिद्ध होता है।"

जब किसी भिक्षु में कामुक इच्छा और द्वेष,

सुस्ती और उन्मत्तता,

बेचैनी और संदेह पूरी तरह से अनुपस्थित हों ; [17] जब ऐसा व्यक्ति प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के गुण और समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) तथा [समान] मुक्ति और ज्ञान से युक्त हो; पाँचों गुणों से युक्त और पाँचों गुणों को दूर करने वाला, वह वास्तव में इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में पूर्णतः सिद्ध कहा जाता है ।

---

13 बंधन (संयोजन)

भिक्षुओं, ये दस बंधन हैं। कौन से दस? पाँच निम्न बंधन और पाँच उच्च बंधन। और ये पाँच निम्न बंधन क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह, व्यवहार और नियमों की गलत समझ, कामुक इच्छा और द्वेष। ये पाँच निम्न बंधन हैं। और ये पाँच उच्च बंधन क्या हैं? रूप के प्रति राग, निराकार के प्रति राग, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान। ये पाँच उच्च बंधन हैं। भिक्षुओं, ये दस बंधन हैं।

---

14 मानसिक बंजरपन [1975] (चेतोखिला)

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने पांच प्रकार की मानसिक बंजरता का त्याग नहीं किया है और मन के पांच बंधनों को नष्ट नहीं किया है, तो चाहे दिन हो या रात, उस व्यक्ति के लिए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित है।

"वे पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता कौन सी हैं जिन्हें उसने अभी तक नहीं त्यागा है?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुरु के बारे में भ्रमित है, उन पर संदेह करता है, उनके प्रति आश्वस्त नहीं है और उन पर भरोसा नहीं करता है। जब एक भिक्षु गुरु के बारे में भ्रमित होता है, उन पर संदेह करता है, उनके प्रति आश्वस्त नहीं होता है और उन पर भरोसा नहीं करता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है। क्योंकि उसका मन उत्साह . . . [18] . . . और परिश्रम की ओर नहीं झुकता है, यह उस प्रकार का पहला मानसिक बंजरपन है जिसे उसने नहीं छोड़ा है।

(2) — (5) "फिर, एक भिक्षु धम्म के बारे में उलझन में है... संघ के बारे में उलझन में है... प्रशिक्षण के बारे में उलझन में है... अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता है, उनसे नाराज़ है, उनके प्रति आक्रामक है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है। जब एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता है, उनसे नाराज़ होता है, उनके प्रति आक्रामक होता है, उनके प्रति दुर्भावना रखता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। चूंकि उसका मन उत्साह... और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, यह पाँचवाँ प्रकार का मानसिक बंजरपन है जिसे उसने नहीं त्यागा है।"

"ये पांच प्रकार की मानसिक बंजरता है जिन्हें उसने नहीं त्यागा है।"

"मन के वे पाँच बंधन कौन से हैं जिन्हें उसने अभी तक दूर नहीं किया है?"

(6) "यहाँ, भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं है, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित है। जब भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित नहीं होता, न ही उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित होता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त नहीं होता, इसलिए यह मन का पहला बंधन है जिसे उसने अभी तक दूर नहीं किया है।"

(7) — (10) "फिर भी, भिक्षु शरीर के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं होता, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है। ... वह रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं होता, न ही उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) होती है। ... अपनी इच्छा अनुसार पेट भरकर भोजन करने के बाद, वह विश्राम, आलस्य और नींद के सुख में लीन रहता है। ... वह किसी विशेष देवक्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, यह सोचते हुए: 'इस पुण्य आचरण, पालन, तपस्या या ब्रह्मचर्य जीवन से मैं देव बनूंगा या देवक्रम के अनुयायियों में से एक बनूंगा।' देवों (देवदूतों/देवताओं) के बारे में। जब वह किसी विशेष देवों (देवदूतों/देवताओं) के क्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) व्यतीत करता है... तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर नहीं झुकता। [19] क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर नहीं झुकता, इसलिए यह मन का पाँचवाँ बंधन है जिसे उसने अभी तक दूर नहीं किया है।

"ये मन के वे पाँच बंधन हैं जिन्हें उसने अभी तक दूर नहीं किया है।"

यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच प्रकार के मानसिक बंजरपन का त्याग नहीं करता और मन के इन पाँच बंधनों को नष्ट नहीं करता, तो चाहे दिन हो या रात, उस व्यक्ति के लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित है। जैसे कृष्ण पक्ष में, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई, चमक, व्यास और परिधि में गिरावट ही होती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच प्रकार के मानसिक बंजरपन का त्याग नहीं करता, तो उस व्यक्ति के लिए केवल गिरावट ही अपेक्षित है।

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी ने पांच प्रकार की मानसिक बंजरता का त्याग कर मन के पांच बंधनों को नष्ट कर दिया है, तो चाहे दिन हो या रात, उस व्यक्ति के लिए केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि ही अपेक्षित है, न कि गिरावट।"

और वे पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता कौन सी हैं जिनका उसने त्याग कर दिया है?

(1) "यहाँ, भिक्षु गुरु के बारे में विचलित नहीं होता, उन पर संदेह नहीं करता, उनके प्रति आश्वस्त रहता है और उन पर भरोसा रखता है। जब भिक्षु गुरु के बारे में विचलित नहीं होता, उन पर संदेह नहीं करता, उनके प्रति आश्वस्त रहता है और उन पर भरोसा रखता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त होता है। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त होता है, इसलिए यह उस प्रकार की मानसिक बंजरता है जिसका उसने त्याग किया है।"

(2) — (5) "फिर, एक भिक्षु धम्म के बारे में परेशान नहीं होता... संघ के बारे में परेशान नहीं होता... प्रशिक्षण के बारे में परेशान नहीं होता [20] ... अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता नहीं है, उनसे प्रसन्न रहता है, उनके प्रति आक्रामक नहीं होता, उनके प्रति अच्छा भाव रखता है। जब एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं से चिढ़ता नहीं है... उनके प्रति अच्छा भाव रखता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर झुकता है। चूंकि उसका मन उत्साह... और परिश्रम की ओर झुकता है, इसलिए यह पाँचवाँ प्रकार का मानसिक बंजरपन है जिसे उसने त्याग दिया है।

"ये पांच प्रकार की मानसिक बंजरता है जिनका उसने त्याग कर दिया है।"

"मन के वे पाँच बंधन कौन से हैं जिन्हें उन्होंने भलीभांति दूर कर दिया है?"

(6) "यहाँ भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित है, और उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से मुक्त है। जब भिक्षु इंद्रिय सुखों के प्रति राग से रहित होता है, और उनके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से मुक्त होता है, तो उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और परिश्रम की ओर प्रवृत्त होता है। क्योंकि उसका मन उत्साह और परिश्रम की ओर प्रवृत्त होता है, इसलिए उसने मन के इस पहले बंधन को भलीभांति दूर कर दिया है।"

(7) -(10) "भिक्षु शरीर के प्रति कामवासना (राग) से रहित होता है, उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) नहीं होती; ... वह रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित होता है, उसमें इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) नहीं होती। ... वह अपनी इच्छा अनुसार पेट भरकर भोजन नहीं करता, न ही वह विश्राम, आलस्य या नींद के सुख में लीन रहता है। ... वह किसी विशेष देव-वंश में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य जीवन नहीं जीता, यह सोचकर: 'इस पुण्य आचरण, पालन, तपस्या या ब्रह्मचर्य जीवन से मैं देव या उनके अनुयायी बन जाऊँगा।'" देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के। चूंकि वह किसी विशेष देवक्रम में पुनर्जन्म की आकांक्षा रखते हुए ब्रह्मचर्य (पवित्र जीवन) नहीं जीता है... इसलिए उसका मन उत्साह, प्रयास, दृढ़ता और संघर्ष की ओर झुकता है। चूंकि उसका मन उत्साह और संघर्ष की ओर झुका हुआ है, इसलिए उसने मन के इस पाँचवें बंधन को भलीभांति दूर कर लिया है।

"ये मन के पाँच बंधन हैं जिन्हें उन्होंने भलीभांति उखाड़ फेंका है।"

यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता का त्याग कर मन के इन पाँच बंधनों को भली-भांति समाप्त कर दे, [21] तो चाहे रात हो या दिन, उस व्यक्ति में केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि ही अपेक्षित है, अवनति नहीं। जैसे शुक्ल पक्ष में, चाहे रात हो या दिन, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई और चमक, व्यास और परिधि में वृद्धि ही होती है, उसी प्रकार यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच प्रकार की मानसिक बंजरता का त्याग कर मन के इन पाँच बंधनों को भली-भांति समाप्त कर दे, तो चाहे रात हो या दिन, उस व्यक्ति में केवल लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि ही अपेक्षित है, अवनति नहीं।

15. सतर्कता (अप्पमादा)

(1) "भिक्षुओं, चाहे कितने भी प्राणी हों, चाहे वे निराकार हों या दो पैर वाले, चार पैर वाले या अनेक पैर वाले, चाहे सजीव हों या निराकार, चाहे बोधगम्य हों या अबोधगम्य, या न तो बोधगम्य हों और न ही अबोधगम्य, तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, उनमें सर्वोपरि घोषित किए जाते हैं। 1977 इसी प्रकार, सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) जागरूकता में निहित हैं और जागरूकता में ही केंद्रित होते हैं, और जागरूकता उनमें सर्वोपरि घोषित की जाती है।

(2) "जिस प्रकार भूमि पर विचरण करने वाले सभी पशुओं के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं, और हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित किया जाता है, अर्थात् आकार के संबंध में, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) सतर्कता में निहित होते हैं और सतर्कता पर अभिसरित होते हैं, और सतर्कता उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित की जाती है।"

(3) "जिस प्रकार किसी शिखर वाले घर की सभी शहतीरें छत के शिखर की ओर झुकती हैं, छत के शिखर की ओर ढलान बनाती हैं, छत के शिखर पर अभिसरित होती हैं, और छत का शिखर उनमें सर्वोपरि घोषित किया जाता है, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) जागरूकता में निहित होते हैं और जागरूकता पर अभिसरित होते हैं, और जागरूकता उनमें सर्वोपरि घोषित की जाती है। [22]

(4) "जिस प्रकार सभी सुगंधित जड़ों में काली ओरिस को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार ...

(5) "जिस प्रकार सभी सुगंधित लकड़ियों में लाल चंदन को सर्वोपरि माना जाता है, उसी प्रकार..."

(6) "जिस प्रकार सभी सुगंधित फूलों में चमेली को सर्वोपरि माना जाता है, उसी प्रकार..."

(7) "जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र चलाने वाले सम्राट के अधीन होते हैं, और चक्र चलाने वाले सम्राट को उनमें सबसे श्रेष्ठ घोषित किया जाता है, उसी प्रकार..."

(8) "जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती, और चंद्रमा की चमक को उनमें सर्वोपरि घोषित किया जाता है, उसी प्रकार..."

(9) "जैसे शरद ऋतु में, जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, तो सूर्य आकाश में चढ़ते हुए अपनी चमक, किरणों और विकिरण से अंतरिक्ष से सभी अंधकार को दूर कर देता है, वैसे ही..."

(10) "जिस प्रकार सभी महान नदियाँ—अर्थात गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभु और माही—समुद्र की ओर बहती हैं, समुद्र की ओर झुकती हैं, ढलान बनाती हैं और समुद्र को उनमें सर्वोपरि घोषित किया गया है, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) जागरूकता में निहित हैं और जागरूकता की ओर अभिसरित होते हैं, और जागरूकता को उनमें सर्वोपरि घोषित किया गया है।" [23]

---

16 उपहारों के योग्य [1978] (अहुनेय्या)

भिक्षुओं, ये दस व्यक्ति दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य हैं; ये संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं। ये दस कौन हैं? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध; पच्चेकबुद्ध; दोनों रूपों में मुक्त; पन्ना (दिव्य ज्ञान) से मुक्त; देहधारी साक्षी; दृष्टि प्राप्त; आस्था से मुक्त; धम्म का अनुयायी; आस्था का अनुयायी; और कुल का सदस्य। ये दस व्यक्ति दान, आतिथ्य, भेंट और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य हैं; ये संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं।

---

17 रक्षक (1) (नाथा1)

"भिक्षु (साधु), संरक्षक के संरक्षण में रहते हैं, संरक्षक के बिना नहीं। संरक्षक के बिना रहने वाला दुख में लीन रहता है। ये दस गुण संरक्षक का कार्य करते हैं। 1975 वे दस गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। चूंकि एक भिक्षु गुणी है... उनका अभ्यास करता है, यह एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, वह सीखी हुई बातों को याद रखता है और उन्हें संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। चूंकि एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है, इसलिए यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु के अच्छे मित्र होते हैं, [24] अच्छे साथी होते हैं, अच्छे सहचर होते हैं। चूंकि एक भिक्षु के अच्छे मित्र होते हैं, अच्छे साथी होते हैं, अच्छे सहचर होते हैं, इसलिए यह एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।

(4) "फिर, भिक्षु को सुधारना आसान होता है और उसमें ऐसे गुण होते हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान होता है और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है। चूंकि भिक्षु को सुधारना आसान होता है... और वह आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है, इसलिए यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के लिए किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को करने में कुशल और मेहनती होता है; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनके बारे में सही निर्णय लेता है। चूंकि एक भिक्षु कुशल और मेहनती होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।"

(6) "फिर, एक भिक्षु धम्म से प्रेम करता है और धम्म और अनुशासन से संबंधित उच्च आनंद से परिपूर्ण होकर, इरिस कथनों में प्रसन्नता प्रदान करता है।" 980 चूंकि एक भिक्षु (भिक्षु) धम्म से प्रेम करता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।

(7) "फिर, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत किया है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। चूंकि एक भिक्षु ने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत किया है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है, यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है। [25]

(8) "फिर, एक भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियों और भोजन सामग्री से संतुष्ट रहता है। चूंकि एक भिक्षु बीमारों के लिए किसी भी प्रकार की भोजन सामग्री से संतुष्ट रहता है, इसलिए यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु सचेत (ध्यान/सती) होता है, जो परम सजगता और सतर्कता से परिपूर्ण होता है, जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। चूंकि एक भिक्षु सचेत (ध्यान/सती) होता है... और बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों का स्मरण करता है, इसलिए यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(10) "फिर, भिक्षु बुद्धिमान होता है; उसके पास वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। चूंकि भिक्षु बुद्धिमान होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

"भिक्षुओं को संरक्षक के संरक्षण में रहना चाहिए, संरक्षक के बिना नहीं। संरक्षक के बिना रहने वाला दुख में लीन रहता है। ये दस गुण संरक्षक का कार्य करते हैं।"

---

18 रक्षक (2) (नाथा2)

भिक्षु (सन्यासी), संरक्षक के संरक्षण में रहते हैं, संरक्षक के बिना नहीं। संरक्षक के बिना रहने वाला दुख में लीन रहता है। ये दस गुण संरक्षक का कार्य करते हैं। वे दस गुण कौन से हैं?

(1) "यहाँ, एक भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और अच्छे आचरण से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। [विचार करने पर:] 'यह भिक्षु वास्तव में गुणी है... प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है,' वरिष्ठ भिक्षु, [26] मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जा सकती है, न कि गिरावट की। यह एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।"

(2) "एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, उसे याद रखता है और अपने ज्ञान को संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी होती हैं... सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हैं—ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से अध्ययन किया है और दृष्टि से भलीभांति समझा है। [यह

देखकर:] 'इस भिक्षु ने वास्तव में बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से भलीभांति समझा है,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि पतन की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(3) "एक भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी होते हैं। [यह देखकर कि] 'इस भिक्षु के वास्तव में अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहपाठी हैं,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(4) "एक भिक्षु को सुधारना आसान होता है और उसमें ऐसे गुण होते हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान होता है और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है। [यह सोचकर कि:] 'यह भिक्षु वास्तव में सुधारना आसान है और उसमें ऐसे गुण हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान होता है और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है,' वरिष्ठ भिक्षु, [27] मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के लिए किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को कुशलतापूर्वक और लगन से करता है; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनमें उचित विवेक रखता है। [यह विचार करने पर:] 'यह भिक्षु वास्तव में कुशल और लगनशील है... ताकि वह उन्हें ठीक से कर सके और व्यवस्थित कर सके,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और निर्देश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।"

(6) "एक भिक्षु धम्म से प्रेम करता है और अपने कथनों में प्रसन्नता का भाव रखता है, वह धम्म और अनुशासन से संबंधित उच्च आनंद से परिपूर्ण होता है। [यह देखकर कि] 'यह भिक्षु वास्तव में धम्म से प्रेम करता है और अपने कथनों में प्रसन्नता का भाव रखता है, वह धम्म और अनुशासन से संबंधित उच्च आनंद से परिपूर्ण है,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि पतन की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(7) "फिर, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। [यह विचार करते हुए:] 'इस भिक्षु ने वास्तव में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है... [28]... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) की खेती के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक के रूप में कार्य करता है।"

(8) "फिर, एक भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधियों और भोजन से संतुष्ट रहता है। [यह देखकर कि यह भिक्षु वास्तव में किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधियों और भोजन से संतुष्ट है, वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम श्रेणी के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु सचेत (ध्यान/सती) है, जो परम सजगता और जागरूकता से परिपूर्ण है, जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है। [विचार करने पर:] "यह भिक्षु वास्तव में सचेत (ध्यान/सती) है, परम सजगता और जागरूकता से परिपूर्ण है, जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है, इसलिए वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि की अपेक्षा की जानी चाहिए, न कि गिरावट की। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

(10) "एक भिक्षु बुद्धिमान होता है; उसके पास उत्पत्ति और क्षय को समझने वाला वह ज्ञान होता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। [यह सोचकर कि] 'यह भिक्षु वास्तव में बुद्धिमान है; उसके पास उत्पत्ति और क्षय को समझने वाला वह ज्ञान है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है,' वरिष्ठ भिक्षु, मध्यम स्तर के भिक्षु और कनिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि उसे सुधारा जाना चाहिए [29] और उपदेश दिया जाना चाहिए। चूंकि उन सभी को उस पर दया आती है, इसलिए उससे केवल लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि और ऋत्व में कमी की ही अपेक्षा की जा सकती है। यह भी एक ऐसा गुण है जो रक्षक का काम करता है।"

"भिक्षुओं को संरक्षक के संरक्षण में रहना चाहिए, संरक्षक के बिना नहीं। संरक्षक के बिना रहने वाला दुख में लीन रहता है। ये दस गुण संरक्षक का कार्य करते हैं।"

---

19 महान लोगों के निवास स्थान (1) (अरियावासा1)

"भिक्षुओं (साधुओं), ये दस निवास स्थान हैं जिनमें अतीत, वर्तमान और भविष्य के श्रेष्ठ जन निवास करते हैं। 1981 कौन से दस?"

"यहाँ, एक भिक्षु (1) पाँच कारकों का त्याग कर चुका है; (2) छह कारकों का स्वामी है; (3) उसका एक रक्षक (4) और चार आधार हैं; (5) उसने व्यक्तिगत सत्यों का निराकरण कर दिया है, (6) उसने खोज का पूर्णतः त्याग कर दिया है, (7) उसने अपने इरादों को शुद्ध कर लिया है, (8) उसने शारीरिक क्रियाओं को शांत कर लिया है, और (9) वह मन से पूर्णतः मुक्त हो गया है और (10) वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः मुक्त हो गया है। ये दस श्रेष्ठ लोक हैं जिनमें भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्यकाल के श्रेष्ठ लोक निवास करते हैं।"

कुलीन लोगों के 20 निवास (2) (अरियावासा2)

एक बार भगवान (बुद्ध) कुरु नगर कम्मसदम्मा के पास कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे। [30] वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया। . . . भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ये दस निवास स्थान हैं जिनमें श्रेष्ठ जन भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्य काल में निवास करते हैं। वे दस कौन से हैं?"

"यहाँ, एक भिक्षु (1) ने पाँच कारकों का त्याग कर दिया है; (2) छह कारकों का स्वामी है; (3) उसका एक रक्षक (4) और चार आधार हैं; (5) उसने व्यक्तिगत सत्यों का निवारण कर दिया है, (6) उसने खोज का पूर्णतः त्याग कर दिया है, (7) उसने अपने इरादों को शुद्ध कर लिया है, (8) उसने शारीरिक गतिविधि को शांत कर दिया है, और (9) वह मन से पूर्णतः मुक्त हो गया है और (10) वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः मुक्त हो गया है।"

(1) "एक भिक्षु ने पाँच कारकों का त्याग कैसे किया है? यहाँ, एक भिक्षु ने कामुक इच्छा, द्वेष, सुस्ती और उन्मत्तता, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह का त्याग किया है। इस प्रकार एक भिक्षु ने पाँच कारकों का त्याग किया है।"

(2) "एक भिक्षु में छह गुण कैसे होते हैं? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सती भाव और पूर्ण ज्ञान में लीन रहता है। किसी ध्वनि को कान से सुनकर... किसी गंध को नाक से सूंघकर... किसी स्वाद का अनुभव जीभ से करके... किसी वस्तु को स्पर्श करके... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर, भिक्षु न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि समभाव, सती भाव और पूर्ण ज्ञान में लीन रहता है। 1982 इसी प्रकार एक भिक्षु में छह गुण होते हैं।"

(3) "और भिक्षु का एकमात्र रक्षक कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु का मन सती ध्यान द्वारा संरक्षित होता है। इसी प्रकार भिक्षु का एकमात्र रक्षक होता है।"

(4) "और भिक्षु के चार आधार कैसे होते हैं? यहाँ, चिंतन करने के बाद, भिक्षु कुछ चीजों का उपयोग करता है, अन्य चीजों को धैर्यपूर्वक सहन करता है, कुछ अन्य चीजों से बचता है और कुछ अन्य चीजों का निवारण करता है। इसी प्रकार भिक्षु के चार आधार होते हैं। [31]

(5) "एक भिक्षु व्यक्तिगत सत्यों का खंडन कैसे करता है? यहाँ, साधारण तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा माने जाने वाले सामान्य व्यक्तिगत सत्य चाहे जो भी हों—अर्थात्, 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है और शरीर दूसरी'; 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी हैं' या 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं'—एक भिक्षु इन सभी का त्याग कर खंडन करता है, इन्हें छोड़ देता है, अस्वीकार कर देता है, त्याग देता है और त्याग देता है। इसी प्रकार एक भिक्षु व्यक्तिगत सत्यों का खंडन करता है।"

(6) "एक भिक्षु (साधु) ने खोज का पूर्ण त्याग कैसे किया है? यहाँ, एक भिक्षु ने इंद्रिय सुखों की खोज और अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की खोज को त्याग दिया है और ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की खोज को शांत कर दिया है। इस प्रकार एक भिक्षु ने खोज का पूर्ण त्याग किया है।"

(7) "एक भिक्षु ने अपने इरादों को कैसे शुद्ध किया है? यहाँ, एक भिक्षु ने कामुक इरादे, द्वेषपूर्ण इरादे और हानि पहुँचाने के इरादे का त्याग किया है। इसी प्रकार एक भिक्षु ने अपने इरादों को शुद्ध किया है।"

(8) "एक भिक्षु ने शारीरिक क्रियाओं को कैसे शांत किया है? यहाँ, सुख और दुख का त्याग करके, और पहले से ही आनंद और उदासी के दूर हो जाने के साथ, एक भिक्षु चौथे ध्यान (सतीत्व) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, जिसमें उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्खा) द्वारा सती ध्यान का शुद्धिकरण होता है। इस प्रकार एक भिक्षु ने शारीरिक क्रियाओं को शांत किया है।"

(9) "एक भिक्षु मन से पूर्णतः मुक्त कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु का मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) से मुक्त होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु मन से पूर्णतः मुक्त होता है।"

(10) "और भिक्षु को पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः मुक्ति कैसे प्राप्त होती है? [32] यहाँ, भिक्षु समझता है: 'मैंने काम (राग) का त्याग कर दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो; मैंने घृणा का त्याग कर दिया है... मोह (मोह) का त्याग कर दिया है, उसे जड़ से काट दिया है, उसे ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उसे मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो।' इसी प्रकार भिक्षु को पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त होती है।"

भिक्षुओं, अतीत में जितने भी श्रेष्ठ जन श्रेष्ठ निवासों में रहे, वे सभी इन्हीं दस श्रेष्ठ निवासों में रहे। भविष्य में जितने भी श्रेष्ठ जन श्रेष्ठ निवासों में रहेंगे, वे सभी इन्हीं दस श्रेष्ठ निवासों में रहेंगे। वर्तमान में जितने भी श्रेष्ठ जन श्रेष्ठ निवासों में रहते हैं, वे सभी इन्हीं दस श्रेष्ठ निवासों में रहते हैं।

"ये दस ऐसे निवास स्थान हैं जिनमें महान जन अतीत, वर्तमान या भविष्य में निवास करते हैं।"

III. महान अध्याय (महावग्गो संस्कृत: महा-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

21 शेर की दहाड़ (सिहानादा सं. सिंघा-नाडा)

भिक्षुओं, संध्याकाल में पशुओं का राजा सिंह अपनी मांद से निकलता है, शरीर फैलाता है, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है, [33] और तीन बार सिंह की गर्जना करता है। फिर वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है। इसका क्या कारण है? [यह सोचकर:] 'मैं अपने रास्ते में आने वाले छोटे जीवों को हानि न पहुँचाऊँ।'

भिक्षुओं, सिंह तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति का प्रतीक है। जब तथागत (बुद्ध) किसी सभा को धम्म का उपदेश देते हैं, तो यह उनकी सिंह गर्जना होती है।

भिक्षुओं, तथागत बुद्ध की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं। 1983 वे दस शक्तियाँ क्या हैं?

(1) "यहाँ तथागत (बुद्ध) यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं। चूँकि तथागत (बुद्ध) यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं, यही तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।"

(2) "तथागत (बुद्ध) कर्मों के फल को भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल में संभावनाओं और कारणों के संदर्भ में यथार्थ रूप में समझते हैं। चूंकि तथागत (बुद्ध) कर्मों के फल को यथार्थ रूप में समझते हैं... यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण वे ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।"

(3) "तथागत (बुद्ध) वास्तव में सभी दिशाओं में ले जाने वाले मार्गों को समझते हैं। 1984 चूंकि तथागत (बुद्ध) वास्तव में सभी दिशाओं में ले जाने वाले मार्गों को समझते हैं, इसलिए यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण वे... ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(4) "फिर, तथागत (बुद्ध) [34] संसार को उसके अनेक और विविध तत्वों सहित जैसा वह वास्तव में है, समझते हैं। 1985 चूंकि तथागत (बुद्ध) संसार को उसके अनेक और विविध तत्वों सहित जैसा वह वास्तव में है, समझते हैं, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण... वे ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।

(5) "तथागत (बुद्ध) प्राणियों के स्वभाव में विविधता को यथावत समझते हैं। 1986 चूंकि तथागत (बुद्ध) प्राणियों के स्वभाव में विविधता को यथावत समझते हैं, इसलिए यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण... वे ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(6) "तथागत (बुद्ध) अन्य प्राणियों और व्यक्तियों की शक्तियों की श्रेष्ठ या निम्न स्थिति को यथावत समझते हैं। 1987 चूंकि तथागत (बुद्ध) अन्य प्राणियों और व्यक्तियों की शक्तियों की श्रेष्ठ या निम्न स्थिति को यथावत समझते हैं, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण... वे ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(7) "तथागत (बुद्ध) ध्यान (सम्मोहन अवस्था), मुक्ति, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) और ध्यान संबंधी उपलब्धियों के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्भव को यथार्थ रूप में समझते हैं। चूंकि तथागत (बुद्ध) ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्भव को यथार्थ रूप में समझते हैं... यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण... वे ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

(8) "तथागत (बुद्ध) अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व जन्मों) का स्मरण करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस [35] जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, विश्व-विनाश के अनेक युग, विश्व-विनाश और विश्व-विनाश के अनेक युग, इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरा ऐसा जीवनकाल था; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरा ऐसा जीवनकाल था; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरा ऐसा जीवनकाल था; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ वहाँ मेरा पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार वे अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों

सहित याद करते हैं। चूँकि तथागत (बुद्ध) अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करते हैं, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण वे ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।

(9) "फिर, शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से तथागत (बुद्ध) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखते हैं और वे समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'जो प्राणी शरीर, वाणी और मन से दुराचार में लगे रहे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, वे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु जो प्राणी शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगे रहे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, वे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।' इस प्रकार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, वे प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली सभी को देखते हैं, और वे समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है। [36] चूंकि तथागत (बुद्ध) . . . समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है, यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण ... वे ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।

(10) "फिर, दोषों के नाश के साथ, तथागत (बुद्ध) ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। चूंकि तथागत (बुद्ध) ने स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है... यह भी तथागत (बुद्ध) की वह शक्ति है जिसके कारण तथागत (बुद्ध) प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।"

"हे भिक्षुओं, ये तथागत (बुद्ध) की दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं।"

---

22 सैद्धांतिक सिद्धांत (अधिवुत्तिपदा)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"आनंद, मैं उन चीजों के बारे में आश्वस्त होने का दावा करता हूँ जो विभिन्न सैद्धांतिक सिद्धांतों के प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा अहसास की ओर ले जाती हैं, 1988 [और इस प्रकार मैं सक्षम हूँ] विभिन्न लोगों को विभिन्न तरीकों से धम्म सिखाने में ताकि जो तदनुसार अभ्यास करता है वह यह जान सके कि जो विद्यमान है वह विद्यमान है और जो विद्यमान नहीं है वह विद्यमान नहीं है; ताकि वह निम्न को निम्न और उच्च को उच्च के रूप में जान सके; ताकि वह यह जान सके कि जो श्रेष्ठ है वह श्रेष्ठ है और जो श्रेष्ठ नहीं है वह श्रेष्ठ नहीं है; ताकि [37] यह संभव है कि व्यक्ति इसे उसी प्रकार जाने, देखे और अहसास करे जैसे इसे जाना, देखा और अहसास किया जाना है।

लेकिन हे आनंद, ज्ञान में यह ज्ञान अद्वितीय है, अर्थात् इन चीजों और उन चीजों का उनके वास्तविक स्वरूप में ज्ञान। 1989 और मैं कहता हूँ, इससे उच्चतर या श्रेष्ठ कोई अन्य ज्ञान नहीं है।

"आनंद, तथागत (बुद्ध) की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे प्रधान बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को गतिमान करते हैं। वे दस शक्तियाँ कौन सी हैं? ..."

[जैसा कि 10:21 में है] [38]...

"ये, आनंद, तथागत (बुद्ध) की दस शक्तियाँ हैं जो तथागत (बुद्ध) के पास हैं, जिनके द्वारा वे प्रमुख बैल का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में अपने सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्म चक्र को गतिमान करते हैं।" [39]

---

23 शरीर (काया)

भिक्षुओं, कुछ चीजों का त्याग शरीर से करना चाहिए, वाणी से नहीं। कुछ चीजों का त्याग वाणी से करना चाहिए, शरीर से नहीं। कुछ चीजों का त्याग न तो शरीर से करना चाहिए और न ही वाणी से, बल्कि बार-बार दर्शन (दिव्य ज्ञान) से करना चाहिए। 1990

हे भिक्षुओं, वे कौन से कर्म हैं जिनका त्याग शरीर से करना चाहिए, वाणी से नहीं? यहाँ, एक भिक्षु ने शरीर से कोई विशेष अकुशल कर्म किया है। उसके ज्ञानी साथी भिक्षु उससे पूछताछ करते हैं और कहते हैं: 'तुमने शरीर से कोई विशेष अकुशल कर्म किया है। यह वास्तव में अच्छा होगा यदि तुम शारीरिक दुराचार का त्याग कर सको और शारीरिक सुवाह्य आचरण अपना सको।' जब उसके ज्ञानी साथी भिक्षु उससे पूछताछ करते हैं और उससे बात करते हैं, तो वह शारीरिक दुराचार का त्याग कर सकूँ और शारीरिक सुवाह्य आचरण अपना सकूँ। इन्हें ही शरीर से त्यागने योग्य कर्म कहा जाता है, वाणी से नहीं।

और वे कौन सी बातें हैं जिनका त्याग वाणी से करना चाहिए, शरीर से नहीं? यहाँ, एक भिक्षु ने वाणी से एक विशेष अकुशल कर्म किया है। उसके ज्ञानी साथी भिक्षु उससे पूछताछ करते हैं और कहते हैं: 'तुमने वाणी से एक विशेष अकुशल कर्म किया है। यह वास्तव में अच्छा होगा यदि तुम वाणी के दुराचार का त्याग कर सको और वाणी के सुचार का अभ्यास कर सको।' जब उसके ज्ञानी साथी भिक्षु उससे पूछताछ करते हैं और उससे बात करते हैं, तो वह वाणी के दुराचार का त्याग कर वाणी के सुचार का अभ्यास कर लेता है। इन्हें वाणी से त्यागने योग्य बातें कहा जाता है, शरीर से नहीं।

और वे कौन सी चीजें हैं जिनका त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर करना चाहिए? लोभ का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर करना चाहिए; घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता [40]... कंजूसी का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर करना चाहिए।

भिक्षुओं, 1991 में वर्णित है कि बुरी ईर्ष्या का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार दर्शन (दिव्य ज्ञान) से ही इसका त्याग करना चाहिए। और बुरी ईर्ष्या क्या है? उदाहरण के लिए, एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धन, अनाज, चांदी या सोने में समृद्ध हो रहा है। एक दास या आश्रित उसके बारे में सोच सकता है: 'हे भगवान, यह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धन, अनाज, चांदी या सोने में समृद्ध न हो!' या फिर एक तपस्वी या ब्राह्मण वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त करता है। दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण उसके बारे में सोच सकता है: 'हे भगवान, यह पूजनीय व्यक्ति वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन प्राप्त न कर सके!' इसे बुरी ईर्ष्या कहते हैं। बुरी ईर्ष्या का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार दर्शन (दिव्य ज्ञान) से ही इसका त्याग करना चाहिए।

भिक्षुओं, बुरी इच्छा का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से किया जा सकता है, बल्कि बार-बार दर्शन (दिव्य ज्ञान) से किया जा सकता है। और बुरी इच्छा क्या है? यहाँ, एक अधर्मी व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे धर्मी के रूप में जानें।' एक अनैतिक व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे गुणी के रूप में जानें।' कम ज्ञान वाला व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे विद्वान के रूप में जानें।' संगति में आनंद लेने वाला व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे एकांतवासी के रूप में जानें।' एक आलसी व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे ऊर्जावान के रूप में जानें।' एक भ्रमित मन वाला व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे सती (ध्यान करने वाला) के रूप में जानें। एक असामंजस्यपूर्ण व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे एकाग्र (ध्यान करने वाला) के रूप में जानें। एक अज्ञानी व्यक्ति चाहता है: 'वे मुझे बुद्धिमान के रूप में जानें।' जिसके दोष नष्ट नहीं हुए हैं, वह चाहता है: 'वे मुझे दोष नष्ट हुए व्यक्ति के रूप में जानें।' [41] इसे बुरी इच्छा कहते हैं। बुरी इच्छा का त्याग न तो शरीर से और न ही वाणी से करना चाहिए, बल्कि बार-बार पन्ना (दिव्य ज्ञान) से देखकर करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी हो जाए और बना रहे; यदि घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... कंजूसी... बुरी ईर्ष्या... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी हो जाए और बना रहे, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें लोभ न हो; इस प्रकार लोभ उस पर हावी हो जाता है और बना रहता है। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... कंजूसी... बुरी ईर्ष्या... बुरी इच्छा न हो। इच्छा; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी हो जाती है और बनी रहती है...

हे भिक्षुओं, यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी न हो और वह बना न रहे; यदि घृणा, मोह, क्रोध, शत्रुता, निंदा, अभिमान, कंजूसी, ईर्ष्या, बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी न हो और वह बना न रहे, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह पूजनीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें लोभ नहीं है; इस प्रकार लोभ उस पर हावी नहीं होता और वह बना नहीं रहता। यह पूजनीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें घृणा, मोह, क्रोध, शत्रुता, निंदा, अभिमान, कंजूसी, ईर्ष्या, बुरी इच्छा नहीं है; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी नहीं होती और वह आगे नहीं बढ़ पाता।

---

24 महाकुंडा

एक बार पूज्य महाचुंडा सहजाति में चैतियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महाचुंडा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन [42] भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महाकुंड ने यह कहा:

मित्रों, ज्ञान की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ।' यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी हो जाता है और बना रहता है; यदि घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... कंजूसी... बुरी ईर्ष्या... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी हो जाती है और बनी रहती है, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें लोभ न हो; इस प्रकार लोभ उस पर हावी हो जाता है और बना रहता है। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता न हो।' ... कंजूसी नहीं... बुरी ईर्ष्या नहीं... बुरी इच्छा नहीं; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी हो जाती है और बनी रहती है।

मित्रों, विकास की घोषणा करते हुए एक भिक्षु कहता है: 'मैं शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' परन्तु यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी हो जाए और बना रहे; यदि घृणा... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी हो जाए और बनी रहे, तो उसे इस प्रकार समझना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें लोभ न हो; अतः लोभ उस पर हावी हो जाता है और बना रहता है। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा न हो; अतः बुरी इच्छा उस पर हावी हो जाती है और बनी रहती है।'

"मित्रों, ज्ञान और विकास की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ। मैं शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' यदि, फिर भी, लोभ उस भिक्षु पर हावी हो जाता है और बना रहता है; यदि घृणा... बुरी इच्छा [43] उस भिक्षु पर हावी हो जाती है और बनी रहती है, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह पूज्यवर इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें लोभ न हो; इस प्रकार लोभ उस पर हावी हो जाता है और बना रहता है। यह पूज्यवर इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा न हो; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी हो जाती है और बनी रहती है।'"

मान लीजिए कि एक गरीब, निर्धन और जरूरतमंद व्यक्ति खुद को अमीर, धनी और समृद्ध होने का दावा करता है। यदि वह कुछ खरीदना चाहता है और उसके पास पैसे, अनाज, चांदी या सोने के पैसे नहीं हैं, तो लोग उसे एक गरीब, निर्धन और जरूरतमंद व्यक्ति के रूप में जानेंगे जो खुद को अमीर, धनी और समृद्ध होने का दावा कर रहा है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह कुछ खरीदना चाहता है और उसके पास पैसे, अनाज, चांदी या सोने के पैसे नहीं हैं।

"इसी प्रकार, मित्रों, ज्ञान और विकास की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ। मैं शरीर, सद्गुणी आचरण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' यदि, फिर भी, लोभ उस भिक्षु पर हावी हो जाता है और बना रहता है... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी हो जाती है और बनी रहती है, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह पूज्यवर इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें लोभ न हो; इस प्रकार लोभ उस पर हावी हो जाता है और बना रहता है। यह पूज्यवर इस प्रकार नहीं समझता कि उसमें घृणा न हो... [44]... कोई बुरी इच्छा न हो; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी हो जाती है और बनी रहती है।"

मित्रों, ज्ञान की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ।' यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता; यदि घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... कंजूसी... बुरी ईर्ष्या... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी

नहीं होती और बनी नहीं रहती, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें लोभ नहीं है; अतः लोभ उस पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा नहीं है; अतः बुरी इच्छा उस पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती।'

मित्रों, विकास की घोषणा करते हुए एक भिक्षु कहता है: 'मैं शरीर, सद्गुण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता; यदि घृणा... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें लोभ नहीं है; अतः लोभ उस पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा नहीं है; अतः बुरी इच्छा उस पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती।'

"मित्रों, ज्ञान और विकास की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ। मैं शरीर, सद्गुणी आचरण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता; यदि घृणा... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें लोभ नहीं है; [45] इस प्रकार लोभ उस पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा नहीं है; इस प्रकार बुरी इच्छा उस पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती।'

मान लीजिए कि एक धनी, संपन्न और धनवान व्यक्ति स्वयं को धनी, संपन्न और धनवान होने का दावा करता है। यदि वह कुछ खरीदना चाहता है और उसके पास पैसे, अनाज, चांदी या सोने के विकल्प उपलब्ध हैं, तो लोग उसे एक ऐसा धनी, संपन्न और धनवान व्यक्ति कहेंगे जो स्वयं को धनी, संपन्न और धनवान होने का दावा करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह कुछ खरीदना चाहता है और उसके पास पैसे, अनाज, चांदी या सोने के विकल्प उपलब्ध हैं।

"इसी प्रकार, मित्रों, ज्ञान और विकास की घोषणा करते हुए, एक भिक्षु कहता है: 'मैं इस धम्म को जानता हूँ, मैं इस धम्म को देखता हूँ। मैं शरीर, सद्गुणी आचरण, मन और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में विकसित हूँ।' यदि लोभ उस भिक्षु पर हावी न हो और बना न रहे; यदि घृणा... मोह... क्रोध... शत्रुता... निंदा... उद्दंडता... कंजूसी... बुरी ईर्ष्या... बुरी इच्छा उस भिक्षु पर हावी न हो और बनी न रहे, तो उसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें लोभ नहीं है; अतः लोभ उस पर हावी नहीं होता और बना नहीं रहता। यह आदरणीय भिक्षु इस प्रकार समझता है कि उसमें घृणा... बुरी इच्छा नहीं है; अतः बुरी इच्छा उस पर हावी नहीं होती और बनी नहीं रहती।" [46]

---

25 कसीना

भिक्षुओं, ये दस कसीना आधार हैं। 995 कौन से दस? एक व्यक्ति पृथ्वी कसीना को ऊपर, नीचे, आर-पार, अद्वैत, असीम रूप से अनुभव करता है। 1996 एक व्यक्ति जल कसीना... अग्नि कसीना... वायु कसीना... नीला कसीना... पीला कसीना... लाल कसीना... सफेद कसीना... आकाश कसीना... चेतना कसीना को ऊपर, नीचे, आर-पार, अद्वैत, असीम रूप से अनुभव करता है। ये दस कसीना आधार हैं।

---

26 काली

एक बार पूज्य महाकच्चना कुराघरा में पावट्टा पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। तब कुराघरा की महिला अनुयायी काली उनके पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: [1997]

"भंते, यह बात भगवान (बुद्ध) ने 'कन्याओं के प्रश्न' में कही थी: [1998]"

"सुखद और सुखद की सेना पर विजय प्राप्त करके, अकेले ध्यान करते हुए, मैंने परमानंद, लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति का अनुभव किया। इसलिए मैं लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध नहीं बनाता, न ही किसी के साथ घनिष्ठता को मेरे साथ मौका मिलता है" [47]

"हे भंते, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जा सकता है?"

"कुछ तपस्वियों और ब्राह्मणों ने, बहन, जिनके लिए पृथ्वी कसीना की प्राप्ति सर्वोच्च है, इसे अपना लक्ष्य बनाया। [1999] भगवान (बुद्ध) प्रत्यक्ष रूप से जानते थे कि पृथ्वी कसीना की प्राप्ति किस हद तक सर्वोच्च है। इसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर, उन्होंने आरंभ, [2000] संकट और उससे मुक्ति देखी, और उन्होंने मार्ग और अपमार्ग का ज्ञान और दृष्टि देखी। आरंभ, संकट और उससे मुक्ति देखकर, और मार्ग और अपमार्ग का ज्ञान और दृष्टि देखकर, उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति को जाना।"

"हे बहन, कुछ तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए, जिनके लिए जल कसीना, अग्नि कसीना, वायु कसीना, नीला कसीना, पीला कसीना, लाल कसीना, सफेद कसीना, आकाश कसीना... चेतना कसीना की प्राप्ति सर्वोच्च है, उन्होंने इसे अपना लक्ष्य बनाया। भगवान (बुद्ध) प्रत्यक्ष रूप से जानते थे कि चेतना कसीना की प्राप्ति किस हद तक सर्वोच्च है। इसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर, उन्होंने आरंभ, खतरे और बचाव को देखा, और उन्होंने मार्ग और अपमार्ग के ज्ञान और दर्शन को देखा। आरंभ, खतरे और बचाव को देखकर, और मार्ग और अपमार्ग के ज्ञान और दर्शन को देखकर, उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति को जाना।"

"इस प्रकार, बहन, भगवान (बुद्ध) ने 'कन्याओं के प्रश्न' में संक्षेप में जो कहा है, उसके अर्थ को विस्तार से समझने के लिए यही तरीका अपनाना चाहिए।"

"'सुखद और सुखद की सेना पर विजय प्राप्त करके, एकांत ध्यान करते हुए, मैंने परमानंद, लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति का अनुभव किया। [48] इसलिए मैं लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध नहीं बनाता, और न ही किसी के साथ घनिष्ठता मेरे लिए सफल होती है।'"

---

27 महान प्रश्न (1) (महापन्हा1 सं. महा-प्रश्न)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। तब उन भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। चलो दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलते हैं।"

फिर वे भिक्षु दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। तब उन तपस्वियों ने उनसे कहा:

"मित्रों, तपस्वी गौतम अपने शिष्यों को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'आओ, भिक्षुओं, सभी घटनाओं (धम्म) को प्रत्यक्ष रूप से जानो। 2001 सभी घटनाओं (धम्म) को प्रत्यक्ष रूप से जानकर निवास करो।' 2002 हम भी अपने शिष्यों को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'आओ, मित्रों, सभी घटनाओं (धम्म) को प्रत्यक्ष रूप से जानो। सभी घटनाओं (धम्म) को प्रत्यक्ष रूप से जानकर निवास करो।' अब तपस्वी गौतम की धम्म शिक्षा और हमारी शिक्षा में, उनके निर्देश और हमारे निर्देश में क्या अंतर, क्या भिन्नता, क्या फर्क है?"

तब उन भिक्षुओं ने न तो उन तपस्वियों के कथन की सराहना की और न ही उसका खंडन किया। सराहना किए बिना, खंडन किए बिना, वे अपने स्थानों से उठे और यह सोचते हुए चले गए: "हम पता लगाएंगे कि भगवान (बुद्ध) इस कथन के बारे में क्या कहते हैं।"

फिर, जब वे भिक्षु सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल चले, तो भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, सुबह हमने वस्त्र धारण किए, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया... [वे यहाँ तक पूरी घटनाक्रम का वर्णन करते हैं:] [50] हम अपनी सीटों से उठे और चले गए, [यह सोचते हुए]: 'हम पता लगाएंगे कि भगवान (बुद्ध) इस कथन के बारे में क्या कहते हैं।"

भिक्षुओं, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'एक प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। दो प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। तीन प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। चार प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। पाँच प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। छह प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। सात प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। आठ प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। नौ प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। दस प्रश्न, उनका संक्षिप्त कथन, उनकी व्याख्या। यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से इस प्रकार प्रश्न पूछे जाएँ, तो वे उत्तर देने में असमर्थ होंगे और आगे चलकर वे... दुःख का सामना करना पड़ेगा। किस कारण से? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जिसमें देव (देवता), मार और ब्रह्मा हैं, इस जनसंख्या में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव (देवता) और मनुष्य हैं, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्य या उनसे सुनने वाले के अलावा इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट कर सके।

(1) "जब यह कहा गया: 'एक के बारे में एक प्रश्न, एक के बारे में एक संक्षिप्त कथन, एक की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? 2004 जब एक भिक्षु किसी एक वस्तु से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उसके प्रति पूर्णतः वैरागी (विराग) हो जाता है, उससे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उसकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है, और उसके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है। वह एक वस्तु क्या है? सभी प्राणी पोषण (भोजन) के माध्यम से विद्यमान हैं। 2005 [51] जब एक भिक्षु इस एक वस्तु से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उसके प्रति पूर्णतः वैरागी (विराग) हो जाता है, उससे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उसकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है, और उसके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया: 'किसी एक के बारे में एक प्रश्न, किसी एक के बारे में एक संक्षिप्त कथन, किसी एक की व्याख्या' तो इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

(2) जब यह कहा गया: 'दो के बारे में एक प्रश्न, दो के बारे में एक संक्षिप्त कथन; दो की व्याख्या,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु दो चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः वैरागी हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो वह इसी जीवन में दुख का अंत कर देता है। वे दो चीजें क्या हैं? मन (नाम) और रूप (शरीर)। जब कोई भिक्षु इन दो चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुख का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया था: 'दो के बारे में एक प्रश्न, दो के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दो की व्याख्या' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(3) "जब यह कहा गया: 'तीन के बारे में एक प्रश्न, तीन के बारे में एक संक्षिप्त कथन, तीन की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु तीन चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विराग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है। वे तीन चीजें क्या हैं? तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदना, अर्थात् सुखद, दुखदायी, उदासीन)। 2006 जब कोई भिक्षु इन तीन चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।"

"जब यह कहा गया था: 'तीन के बारे में एक प्रश्न, तीन के बारे में एक संक्षिप्त कथन, तीन की व्याख्या' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(4) "जब यह कहा गया: 'चार के बारे में एक प्रश्न, चार के बारे में एक संक्षिप्त कथन, चार की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? [52] जब कोई भिक्षु चार चीजों से पूर्णतः विरक्त (निबिद्दा) हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विराग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है। वे चार चीजें क्या हैं? चार प्रकार के आहार। 2007 जब कोई भिक्षु इन चार चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है; ... इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया था: 'चार के बारे में एक प्रश्न, चार के बारे में एक संक्षिप्त कथन, चार की व्याख्या' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(5) जब यह कहा गया: 'पाँच के बारे में एक प्रश्न, पाँच के बारे में एक संक्षिप्त कथन, पाँच की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु पाँच चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विराग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है। वे पाँच चीजें कौन सी हैं? वे पाँच स्कंध जो आसक्ति के अधीन हैं (उपदान खंड)। जब कोई भिक्षु इन पाँच चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया: 'पांच के बारे में एक प्रश्न, पांच के बारे में एक संक्षिप्त कथन, पांच की व्याख्या,' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(6) "जब यह कहा गया: 'छह के बारे में एक प्रश्न, छह के बारे में एक संक्षिप्त कथन, छह की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु छह चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विराग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है। वे छह चीजें क्या हैं? छह आंतरिक इंद्रिय आधार (आयतन, अर्थात् आंखें, कान, नाक, स्वाद, स्पर्श और मन)। जब कोई भिक्षु इन छह चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।"

"जब यह कहा गया: 'छह के बारे में एक प्रश्न, छह के बारे में एक संक्षिप्त कथन, छह की व्याख्या,' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(7) "जब यह कहा गया: 'सात के बारे में एक प्रश्न, सात के बारे में एक संक्षिप्त कथन, सात की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु सात चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः वैरागी हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है। वे सात चीजें क्या हैं? चेतना की सात अवस्थाएँ (विन्नान)। 2003 जब कोई भिक्षु इन सात चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।"

"जब यह कहा गया था: 'सात के बारे में एक प्रश्न, सात के बारे में एक संक्षिप्त कथन, सात की व्याख्या' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(8) "जब यह कहा गया: 'आठ के बारे में एक प्रश्न, आठ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, आठ की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु आठ चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विराग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है। वे आठ चीजें क्या हैं? आठ सांसारिक अवस्थाएँ (लोकधम्म)। 2009 जब कोई भिक्षु इन आठ चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है... तो इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।"

"जब यह कहा गया: 'आठ के बारे में एक प्रश्न, आठ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, आठ की व्याख्या,' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(9) "जब यह कहा गया: 'नौ के बारे में एक प्रश्न, नौ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, नौ की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु नौ चीजों से पूरी तरह विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूरी तरह से उदासीन हो जाता है, उनसे पूरी तरह से मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूरी तरह से देख लेता है, और उनके अर्थ को पूरी तरह से तोड़ देता है, तो इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है। वे नौ चीजें क्या हैं? प्राणियों के नौ निवास (सत्तवास)। 2010 [54] जब कोई भिक्षु इन नौ चीजों से पूरी तरह विरक्त हो जाता है... इसी जीवन में वह दुख का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया: 'नौ के बारे में एक प्रश्न, नौ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, नौ की व्याख्या,' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

(10) जब यह कहा गया: "दस के बारे में एक प्रश्न, दस के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दस की व्याख्या" तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु दस चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः वैरागी (वीरग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो

जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है। वे दस चीजें कौन सी हैं? कर्मों के दस हानिकारक (अकुशल) मार्ग। 2011 जब कोई भिक्षु इन दस चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः वैरागी (वीरग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।

"जब यह कहा गया: 'दस के बारे में एक प्रश्न, दस के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दस की व्याख्या' तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

---

28 महान प्रश्न (2) (महापन्हा2 सं. महा-प्रश्न)

एक बार भगवान (बुद्ध) काजहगला में बांस के वन में निवास कर रहे थे। तब काजहगला के कई अनुयायी काजहगला की भिक्षुणी के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्य महिला, भगवान (बुद्ध) ने 'महान प्रश्न' में यह कहा है: 'एक प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। दो प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। तीन प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। [55] चार प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। पाँच प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। छह प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। सात प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। आठ प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। नौ प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या। दस प्रश्न, उसका संक्षिप्त कथन, उसकी व्याख्या।' हे पूज्य महिला, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का अर्थ विस्तार से कैसे समझा जा सकता है?"

"मित्रों, मैंने यह बात न तो भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में सुनी है और न ही आदरणीय भिक्षुओं की उपस्थिति में सुनी है। फिर भी, ध्यान से सुनें और समझें कि मैं इसका क्या अर्थ समझता हूँ।"

"जी, हे परम पूज्य देवी," काजहगला के उन अनुयायियों ने उत्तर दिया। काजहगला की भिक्षुणी ने यह कहा:

(1) जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'एक के बारे में एक प्रश्न, एक के बारे में एक संक्षिप्त कथन, एक की व्याख्या', तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु किसी एक वस्तु से पूर्णतः विरंजित हो जाता है, उसके प्रति पूर्णतः उदासीन (विरग) हो जाता है, उससे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उसकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उसके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है। वह एक वस्तु क्या है? सभी प्राणी पोषण (भोजन/स्वाद) से अस्तित्व में हैं। जब कोई भिक्षु इस एक वस्तु से पूर्णतः विरंजित हो जाता है, उसके प्रति पूर्णतः उदासीन हो जाता है, उससे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उसकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उसके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।

जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'किसी एक के बारे में एक प्रश्न, किसी एक के बारे में एक संक्षिप्त कथन, किसी एक की व्याख्या', तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था;

(2) "जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'दो के बारे में एक प्रश्न, दो के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दो की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु दो चीजों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः वैराग्य रखता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः भेद देता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है। वे दो चीजें क्या हैं? मन (नाम) और रूप (शरीर)। . . ."

(3) ... "वे तीन चीजें क्या हैं? तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदना)। जब कोई भिक्षु इन तीनों चीजों से पूरी तरह विरक्त हो जाता है... इसी जीवन में वह दुखों का अंत कर देता है।

जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'तीन के बारे में एक प्रश्न, तीन के बारे में एक संक्षिप्त कथन, तीन की व्याख्या', तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।

(4) “जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'चार के बारे में एक प्रश्न; चार के बारे में एक संक्षिप्त कथन, चार की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब किसी भिक्षु का मन इन चार चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है, वह उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है। 2013 वे चार चीजें क्या हैं? ध्यान (सती) की चार अवस्थाएँ। जब किसी भिक्षु का मन इन चार चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है।”

जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: "चार के बारे में एक प्रश्न, चार के बारे में एक संक्षिप्त कथन, चार की व्याख्या", तो इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।

(5) — (8) “जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'पाँच के बारे में एक प्रश्न, पाँच के बारे में एक संक्षिप्त कथन, पाँच की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब किसी भिक्षु का मन पाँच चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है, और उनके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है। वे पाँच चीजें क्या हैं? पाँच इंद्रियाँ (इंद्रियाँ)। 2014 . . . वे छह चीजें क्या हैं? [57] मुक्ति के छह तत्व। 2015 . . . वे सात चीजें क्या हैं? ज्ञान के सात कारक। . . .. वे आठ चीजें क्या हैं? आर्य अष्टांगिक मार्ग। जब किसी भिक्षु का मन इन आठ चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है ... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है। .

"जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'आठ के बारे में एक प्रश्न, आठ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, आठ की व्याख्या' तो इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

(9) जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'नौ के बारे में एक प्रश्न, नौ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, नौ की व्याख्या,' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब कोई भिक्षु नौ चीजों से पूर्णतः विरंजित हो जाता है, उनके प्रति पूर्णतः उदासीन (विरग) हो जाता है, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है। वे नौ चीजें कौन सी हैं? प्राणियों के नौ धाम। जब कोई भिक्षु इन नौ चीजों से पूर्णतः विरंजित हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर देता है।

जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'नौ के बारे में एक प्रश्न, नौ के बारे में एक संक्षिप्त कथन, नौ की व्याख्या', तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।

(10) "जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'दस के बारे में एक प्रश्न, दस के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दस की व्याख्या' तो यह किसके संदर्भ में कहा गया था? जब किसी भिक्षु का मन दस चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है, उनकी सीमाओं को पूर्णतः देख लेता है और उनके अर्थ को पूर्णतः समझ लेता है, तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है। वे दस चीजें क्या हैं? कर्मों के दस लाभकारी (कुशल) क्रम। [58] जब किसी भिक्षु का मन इन दस चीजों में पूर्णतः विकसित हो जाता है... तो वह इसी जीवन में दुखों का अंत कर लेता है।

"जब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'दस के बारे में एक प्रश्न, दस के बारे में एक संक्षिप्त कथन, दस की व्याख्या', तो यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

अतः मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) ने 'महान प्रश्न' में कहा: 'एक प्रश्न, उसका संक्षिप्त उत्तर, उसकी व्याख्या... दस प्रश्न, दस का संक्षिप्त उत्तर, दस की व्याख्या', तो इस प्रकार से मैं भगवान (बुद्ध) के इस संक्षिप्त कथन का अर्थ विस्तार से समझ पाता हूँ। परन्तु यदि आप चाहें, तो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर इस विषय पर उनसे प्रश्न करें। भगवान (बुद्ध) जैसा उत्तर दें, वैसा ही आप भी उसे याद रखें।

"जी, परम पूज्य देवी," कहते हुए, काजहगला के वे अनुयायी काजहगला की भिक्षुणी के कथन से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर वे अपने स्थानों से उठे, उन्हें प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और काजहगला की भिक्षुणी के साथ हुई अपनी सारी चर्चा भगवान (बुद्ध) को बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"अच्छे गृहस्थों, अच्छे! काजहगला की भिक्षुणी बुद्धिमान और महान ज्ञान से परिपूर्ण हैं। यदि आप मुझसे इस विषय पर पूछते, तो मैं [59] ठीक वही उत्तर देता जो काजहगला की भिक्षुणी ने दिया है। यही इसका अर्थ है, और इसी प्रकार आपको इसे ध्यान में रखना चाहिए।"

---

29 कोसला (1)

(1) “भिक्षुओं, काशी और कोसल की सीमा तक, कोसल के राजा पसेनदी के राज्य की सीमा तक, कोसल के राजा पसेनदी सर्वोपरि हैं। परन्तु राजा पसेनदी के राज्य में भी परिवर्तन होता है; बदलाव होता रहता है। यह देखकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोपरि के प्रति भी उदासीन (विरग) हो जाता है, निम्न के प्रति तो वह निःसंकोच ही होता है।”

(2) "भिक्षुओं, जिस प्रकार सूर्य और चंद्रमा परिक्रमा करते हुए अपनी चमक से दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार यह हजार प्रकार की विश्व व्यवस्था फैली हुई है। उस हजार प्रकार की विश्व व्यवस्था में हजार चंद्रमा, हजार सूर्य, हजार शिनेरु पर्वतों के राजा, हजार जंबूद्वीप (भारत), हजार अपरागोयन, हजार उत्तरकुर, हजार पुब्बाविदेह और हजार चार महामहासागर हैं; हजार चार महामहाराज, हजार महामहाराजों द्वारा शासित स्वर्ग, हजार तावतिंसा, हजार यम, हजार तुषिता, सृष्टि में आनंदित होने वाले हजार देवों के स्वर्ग, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले हजार देवों के स्वर्ग और हजार ब्रह्म लोक हैं। हे भिक्षुओं, जिस प्रकार यह हजार प्रकार की विश्व व्यवस्था फैली हुई है, उसी प्रकार महाब्रह्मा वह सर्वोपरि है। परन्तु महाब्रह्मा के लिए भी परिवर्तन होता है; बदलाव होता है। यह देखकर, ज्ञानी शिष्य उससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोपरि के प्रति भी उदासीन हो जाता है, निम्नतर के प्रति तो वह निःसंवेदी ही होता है।

(3) "भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब यह संसार विलीन हो जाता है। जब संसार विलीन होने लगता है, तब अधिकांश प्राणी प्रकाशमान देवों (देवदूतों/देवताओं) के पास चले जाते हैं। 2017 वहाँ वे मन से विलीन होते हैं, आनंद (पीति) का उपभोग करते हैं, स्वयंप्रकाशित होते हैं, आकाश में विचरण करते हैं, महिमा में निवास करते हैं, और वे बहुत लंबे समय तक इसी अवस्था में रहते हैं। जब संसार विलीन होने लगता है, तब प्रकाशमान देव (देवदूत/देवता) सर्वोच्च स्थान पर होते हैं। परन्तु इन देवों (देवदूतों/देवताओं) में भी परिवर्तन होता है; परिवर्तन होता है। इसे देखकर, ज्ञानी शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोच्च के प्रति भी उदासीन (विरग) हो जाता है, निम्नतर के प्रति तो वह निःसंकोच ही होता है।"

(4) "भिक्षुओं, ये दस कसिणा आधार हैं। [2018] कौन से दस? एक व्यक्ति पृथ्वी कसिणा को ऊपर, नीचे, आर-पार, अविभाजित, असीम रूप से अनुभव करता है। एक व्यक्ति जल कसिणा... अग्नि कसिणा... वायु कसिणा... नीला कसिणा... पीला कसिणा... लाल कसिणा... सफेद कसिणा... आकाश कसिणा... चेतना कसिणा को ऊपर, नीचे, आर-पार, अविभाजित, असीम रूप से अनुभव करता है। ये दस कसिणा आधार हैं। इन दस कसिणा आधारों में से, यह सबसे प्रमुख है, अर्थात्, जब कोई चेतना कसिणा को ऊपर, नीचे, आर-पार, अविभाजित, असीम रूप से अनुभव करता है। ऐसे प्राणी हैं जो इस प्रकार से बोधगम्य हैं। लेकिन ऐसे प्राणियों के लिए भी परिवर्तन; बदलाव है। इसे देखकर, [61] भिक्षुओं, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह श्रेष्ठतम के प्रति भी उदासीन (विराग) हो जाता है, निम्नतम की तो बात ही क्या।

(5) "भिक्षुओं (मठवासियों), विजय प्राप्त करने के ये आठ आधार हैं। 2019 कौन से आठ?

(i) "रूपों को आंतरिक रूप से समझने वाला व्यक्ति बाहरी रूप भी देखता है। सीमित, सुंदर या बदसूरत। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यही विजय प्राप्त करने का पहला आधार है।"

(ii) "रूपों को आंतरिक रूप से समझने वाला व्यक्ति बाहरी रूप से, असीम, सुंदर या कुरूप रूप देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'।" यह विजय प्राप्त करने का दूसरा आधार है।

(iii) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से ही रूपों को देखता है, चाहे वे सीमित हों, सुंदर हों या बदसूरत। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का तीसरा आधार है।"

(iv) "जो व्यक्ति आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से, असीम, सुंदर या कुरूप रूप देखता है। उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का चौथा आधार है।"

(v) "जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से नीले रंग के रूप देखता है, नीले रंग की, नीले रंगत वाली, नीले रंग से आभास वाली। जैसे अलसी का फूल नीला होता है, नीले रंग का होता है, नीले रंगत वाला होता है, नीले रंग से आभास वाला होता है, या जैसे दोनों तरफ से चिकना किया हुआ बरनासी कपड़ा नीला होता है, नीले रंग का होता है, नीले रंगत वाला होता है, नीले रंग से आभास वाला होता है, वैसे ही जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से नीले रंग के रूप देखता है। ... उन पर विजय प्राप्त करके, वह इस प्रकार देख पाता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का पाँचवाँ आधार है।"

(vi) "जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से पीले रंग के, पीले रंग से आभास देने वाले रूप देखता है। जैसे कनिकारा का फूल पीला होता है, पीले रंग का, पीले रंग से आभास देने वाला, पीले रंग से आभास देने वाला, या जैसे दोनों ओर से चिकना किया हुआ बरनासी का कपड़ा [62] पीला होता है, पीले रंग का, पीले रंग से आभास देने वाला, पीले रंग से आभास देने वाला, उसी प्रकार, जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से पीले रंग के रूप देखता है। ... उन पर विजय प्राप्त करके, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का छठा आधार है।"

(vii) "जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से लाल रंग के रूप देखता है, जिनमें लाल रंग की आभा होती है। जैसे बंधुजीवका का फूल लाल रंग का होता है, या जैसे दोनों ओर से चिकना किया हुआ बरनासी का कपड़ा लाल रंग का होता है, उसी प्रकार जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से लाल रंग के रूप देखता है। ... उन पर विजय प्राप्त करके, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का सातवाँ आधार है।"

(viii) "जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से श्वेत रूप देखता है, जो श्वेत रंग के होते हैं, श्वेत आभा वाले होते हैं, श्वेत रंग के होते हैं। जैसे भोर का तारा श्वेत होता है, श्वेत रंग का होता है, श्वेत आभा वाला होता है, श्वेत रंग का होता है, या जैसे दोनों ओर से चिकना किया हुआ बरनासी कपड़ा श्वेत होता है, श्वेत रंग का होता है, श्वेत आभा वाला होता है, उसी प्रकार, जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से श्वेत रूप देखता है। इन रूपों पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार देखता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'। यह विजय प्राप्त करने का आठवाँ आधार है।"

ये विजय प्राप्त करने के आठ आधार हैं। इन आठ आधारों में से सर्वोपरि यह है कि जो आंतरिक रूप से रूपों को नहीं देख पाता, वह बाह्य रूप से श्वेत रूप देखता है, जो रंग में श्वेत और आभास में श्वेत होते हैं, और उन पर विजय प्राप्त करके वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ।' ऐसे प्राणी हैं जो इस प्रकार बोध करते हैं। परन्तु जो प्राणी इस प्रकार बोध करते हैं, उनमें भी परिवर्तन होता है। इसे देखकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोपरि के प्रति उदासीन हो जाता है, निम्न के प्रति तो वह निःसंकोच ही होता है।

(6) "भिक्षुओं, अभ्यास के ये चार तरीके हैं। 2020 वे चार क्या हैं? सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से पीड़ादायक अभ्यास; त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से पीड़ादायक अभ्यास; सुस्त प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से सुखद अभ्यास; और त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से सुखद अभ्यास। ये अभ्यास के चार तरीके हैं। इन चारों तरीकों में से, यह सबसे प्रमुख है, अर्थात् त्वरित प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से सुखद अभ्यास। ऐसे प्राणी हैं जो इस प्रकार अभ्यास करते हैं। लेकिन इस प्रकार अभ्यास करने वाले प्राणियों में भी परिवर्तन होता है; बदलाव होता है। इसे देखकर, प्रबुद्ध शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर, वह सबसे प्रमुख के प्रति उदासीन हो जाता है, निम्नतर के प्रति तो निःसंकोच।

(7) "भिक्षुओं, ये चार प्रकार की अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) हैं। कौन से चार प्रकार? एक व्यक्ति सीमित को देखता है; दूसरा उच्चतर को देखता है; तीसरा असीम को देखता है; और तीसरा, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) का अनुभव करता है।

2021 ये चार प्रकार की अनुभूतियाँ (सन्ना/संज्ञा) हैं। इन चार प्रकार की अनुभूतियों में से, यह प्रमुख है, अर्थात्, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) का अनुभव होता है। ऐसे प्राणी हैं जो इस प्रकार अनुभव करते हैं। परन्तु इस प्रकार अनुभव करने वाले प्राणियों में भी परिवर्तन होता है; परिवर्तन होता है। इसे देखकर, ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर, वह प्रमुख के प्रति उदासीन हो जाता है, निम्नतर के प्रति तो निःसंकोच।

(8) "भिक्षुओं, बाहरी लोगों द्वारा रखे गए चिंतनशील विचारों में, यह सबसे प्रमुख है, अर्थात्: 'मैं न भी होऊं और यह मेरा न हो; मैं न तो होऊंगा और न ही मेरा होगा।' 2022 क्योंकि यह अपेक्षित है कि ऐसा विचार रखने वाला व्यक्ति न तो अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) [64] से विमुख होगा और न ही अस्तित्व के समाप्त होने (भावो/पुनर्जन्म का कारण) से विमुख होगा। 2023 ऐसे प्राणी हैं जो ऐसा विचार रखते हैं। परन्तु ऐसे विचार रखने वाले प्राणियों में भी परिवर्तन होता है; परिवर्तन होता है। इसे देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोपरि के प्रति उदासीन हो जाता है, और निम्नतर के विषय में वाक्पटु हो जाता है।

(9) "भिक्षुओं, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो परम शुद्धि का प्रचार करते हैं। 2024 परम शुद्धि का प्रचार करने वालों में सबसे प्रमुख यह है कि शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, व्यक्ति न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। वे इस ज्ञान (अभिन) और अनुभूति के प्रत्यक्ष अनुभव के लिए अपने धर्म का उपदेश देते हैं। ऐसे प्राणी हैं जो ऐसा दावा करते हैं। परन्तु जो ऐसा दावा करते हैं, उनमें भी परिवर्तन होता है; परिवर्तन होता है। इसे देखकर, प्रबुद्ध शिष्य इससे विरक्त हो जाता है; विरक्त होकर वह सर्वोत्कृष्ट के प्रति भी उदासीन (विरग) हो जाता है, निम्नतर के प्रति तो वह निःसंकोच ही होता है।

(10) "भिक्षुओं, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो इसी जीवन में परम निर्वाण की घोषणा करते हैं। 2025 जो इसी जीवन में परम निर्वाण की घोषणा करते हैं, उनमें सबसे प्रमुख यह है कि उत्पत्ति और मृत्यु, छह इंद्रियों के संपर्क में आने से होने वाली संतुष्टि, खतरे और उससे मुक्ति को वास्तविक रूप में देखने के बाद आसक्ति रहित होकर मुक्ति प्राप्त करना।"

"भिक्षुओं, यद्यपि मैं अपने उपदेशों का इस प्रकार अभिकथन और घोषणा करता हूँ, फिर भी कुछ तपस्वी और ब्राह्मण असत्य, निराधार, झूठे और गलत तरीके से मेरा गलत अर्थ निकालते हैं, [यह कहकर]: 'तपस्वी गौतम इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ, रूपों की पूर्ण समझ या वेदना की पूर्ण समझ का प्रचार नहीं करते।' [65] परन्तु, भिक्षुओं, मैं इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ, रूपों की पूर्ण समझ और वेदना की पूर्ण समझ का प्रचार करता हूँ। इसी जीवन में, भूख रहित, तृप्त और शीतल होकर, मैं अनासक्ति के द्वारा परम निर्वाण की घोषणा करता हूँ।" 2026

---

30 कोसला (2)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय कोसल के राजा पसेनादि युद्ध के मोर्चे से विजयी होकर लौटे थे, उनका उद्देश्य पूरा हो चुका था। 2027 तब कोसल के राजा पसेनादि उद्यान के लिए निकल पड़े। वे रथ से उतनी दूर तक गए जहाँ तक रथ ले जाने योग्य था, फिर वे रथ से उतरकर पैदल उद्यान में प्रवेश कर गए। उस समय कई भिक्षु खुले में टहल रहे थे। तब कोसल के राजा पसेनादि उन भिक्षुओं के पास गए और उनसे पूछा:

"भंते, भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, अब कहाँ निवास कर रहे हैं? क्योंकि मैं भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, के दर्शन करना चाहता हूँ।"

"हे महाराज, वह उनका निवास स्थान है जिसका दरवाजा बंद है। चुपचाप उसके पास जाइए। जल्दबाजी न करते हुए, बरामदे में प्रवेश कीजिए, गला साफ कीजिए और कुंडी पर थपथपाइए। भगवान (बुद्ध) आपके लिए दरवाजा खोल देंगे।"

तब कोसल के राजा पसेनादि चुपचाप बंद दरवाजे वाले घर की ओर गए। बिना जल्दबाजी किए, वे बरामदे में दाखिल हुए, गला साफ किया और कुंडी पर दस्तक दी। भगवान (बुद्ध) ने दरवाजा खोल दिया।

तब कोसल के राजा पसेनादि ने निवास में प्रवेश किया, भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया, और भगवान (बुद्ध) के चरणों को चूमकर और हाथों से सहलाते हुए उनका नाम पुकारा: "भंते, मैं कोसल का राजा पसेनादि हूँ! भंते, मैं कोसल का राजा पसेनादि हूँ!" [66] 2028

लेकिन, हे महाराज, इस शरीर को इतना सर्वोच्च सम्मान देने और प्रेम (मेट्टा) का ऐसा अर्पण प्रदर्शित करने के आपके क्या कारण हैं?

"भंते, यह मेरी कृतज्ञता और धन्यवाद की भावना से ही है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति ऐसा सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करता हूँ और उनके प्रति ऐसी प्रेममयी भावना (मेट्टा) प्रकट करता हूँ।"

(1) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) अनेक लोगों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहे हैं; उन्होंने अनेक लोगों को श्रेष्ठ मार्ग पर, अर्थात् उत्तम धर्म के मार्ग पर, लाभकारी (कुशल) धर्म के मार्ग पर स्थापित किया है। 2029 यही एक कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ और उनके प्रति प्रेम और दया का ऐसा अर्पण करता हूँ।"

(2) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) गुणी, परिपक्व व्यवहार वाले, श्रेष्ठ व्यवहार वाले, लाभकारी (कुशल) व्यवहार वाले और लाभकारी (कुशल) गुणों से युक्त हैं। यही एक और कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ। ..."

(3) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) लंबे समय से वनवासी हैं जो जंगलों और वन-शाखाओं में दूरस्थ आवासों में निवास करते हैं। चूंकि ऐसा है, इसलिए मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना सर्वोच्च सम्मान दिखाता हूँ। ..."

(4) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, औषधि और बीमारों के लिए भोजन से संतुष्ट रहते हैं। यही एक और कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर दिखाता हूँ। ..."

(5) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) दान के योग्य हैं, आतिथ्य सत्कार के योग्य हैं, भेंटों के योग्य हैं, आदरपूर्वक प्रणाम करने के योग्य हैं, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं। यही एक और कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना सर्वोच्च सम्मान प्रकट करता हूँ। ..."

(6) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) को बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छानुसार, उस तपस्वी जीवन के विषय में प्रवचन सुनने को मिलते हैं जो दोषों के निवारण की ओर ले जाता है, जो हृदय को खोलने में सहायक होता है, अर्थात् इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंधे न रहने, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने, सद्गुणी आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, और मुक्ति के ज्ञान और दर्शन पर प्रवचन। यही एक और कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ। ..."

(7) "हे भंते, भगवान (बुद्ध) बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, इस जीवन में ही उच्च मन की चार ध्यान अवस्थाओं (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेते हैं, जो सुखद निवास स्थान हैं। [68] यही एक और कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर दिखाता हूँ..."

(8) "फिर, हे भंते, भगवान (बुद्ध) अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व जन्मों) का स्मरण करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, कई युगों तक संसार-विनाश, कई युगों तक संसार-उत्पत्ति, कई युगों तक संसार-विनाश और संसार-उत्पत्ति, इस प्रकार: "वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों और उनके विभिन्न पहलुओं व विवरणों को याद करता है। यही कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ।

(9) "फिर, भंते, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, भगवान (बुद्ध) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखते हैं और वे समझते हैं कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, [69] गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु ये प्राणी

जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण किए, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। 'स्वर्गिक जगत'। इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली देखता है, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है। यही कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ।

(10) "हे भंते, दोषों के नाश के साथ, भगवान (बुद्ध) ने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, ज्ञान द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वे उसमें निवास करते हैं। यही कारण है कि मैं भगवान (बुद्ध) के प्रति इतना आदर प्रकट करता हूँ और उनके प्रति प्रेम और करुणा का ऐसा अर्पण करता हूँ।"

"और अब, भंते, हमें जाना होगा। हम व्यस्त हैं और हमें बहुत कुछ करना है।"

"हे महान राजा, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब कोसल के राजा पसेनादि अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए। [70]

IV. उपाली

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

31 उपाली

तब पूज्य उपली भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, तथागत (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए प्रशिक्षण नियम 2030 किन-किन आधारों पर निर्धारित किए हैं और पतिमोक्खा का पाठ किया है?"

"हे उपाली, तथागत (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए प्रशिक्षण नियम दस आधारों पर निर्धारित किए हैं और पतिमोक्खा का पाठ किया है। वे दस आधार क्या हैं? (1) संघ के कल्याण के लिए; (2) संघ की सहजता के लिए; (3) अनुशासनहीन व्यक्तियों को नियंत्रण में रखने के लिए; (4) ताकि सुसंस्कृत भिक्षु आराम से रह सकें; (5) इस जीवन से संबंधित दोषों के निवारण के लिए; (6) भविष्य के जन्मों से संबंधित दोषों के निवारण के लिए; (7) ताकि अविश्वासियों को आत्मविश्वास प्राप्त हो सके; और (8) विश्वासियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए; (9) अच्छे धर्म की निरंतरता के लिए; और (10) अनुशासन को बढ़ावा देने के लिए।"

"इन्हीं दस आधारों पर तथागत (बुद्ध) ने अपने शिष्यों के लिए प्रशिक्षण नियम निर्धारित किए हैं और पतिमोक्खा का पाठ किया है।"

---

32 निलंबित [2031] (पतिमोक्खथापना)

"भंते, पतिमोक्खा को निलंबित करने के कितने कारण हैं?"

उपली, पतिमोक्खा को स्थगित करने के दस कारण हैं। वे दस क्या हैं? (1) उस सभा में कोई ऐसा व्यक्ति बैठा है जिसने पराजिका अपराध किया है; (2) किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में चर्चा चल रही है जिसने पराजिका अपराध किया है; (3) उस सभा में कोई ऐसा व्यक्ति बैठा है जिसने पूर्ण दीक्षा नहीं ली है; (4) किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में चर्चा चल रही है जिसने पूर्ण दीक्षा नहीं ली है; (5) उस सभा में कोई ऐसा व्यक्ति बैठा है जिसने प्रशिक्षण छोड़ दिया है; (6) किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में चर्चा चल रही है जिसने प्रशिक्षण छोड़ दिया है; (7) उस सभा में कोई नपुंसक बैठा है; (8) किसी नपुंसक के बारे में चर्चा चल रही है; (9) उस सभा में किसी भिक्षुणी (भिक्षुणी) को बहकाने वाला बैठा है; (10) किसी भिक्षुणी (भिक्षुणी) को बहकाने वाले के बारे में चर्चा चल रही है। ये पतिमोक्खा को स्थगित करने के दस कारण हैं।

---

33 न्यायनिर्णय (उब्बाहिका)

"भंते, किसी अनुशासनात्मक मामले में निर्णय देने के लिए एक भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए?" 2035

"उपली, दस गुणों से युक्त भिक्षु को [अनुशासनात्मक मामले में] निर्णय देने के लिए चुना जा सकता है। वे दस गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और अच्छे आचरण का पालन करता है, छोटी-छोटी गलतियों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखता है और उसे संचित करता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हैं, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हैं - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से जांचा है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। (3) दोनों पतिमोक्खों को उसे विस्तार से अच्छी तरह से समझाया गया है, अच्छी तरह से विश्लेषण किया गया है, अच्छी तरह से महारत हासिल की गई है, नियमों और उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है। (4) वह अनुशासन में दृढ़ है।" अविचल। (5) वह मुद्दे के दोनों पक्षों को समझाने, उन्हें मामले का वर्णन करने, उन्हें राजी करने, उन्हें उदाहरण देकर समझाने और उन्हें शांत करने में सक्षम है। (6) वह अनुशासनात्मक मुद्दों की उत्पत्ति और [72] निपटारे में कुशल है। (7) वह जानता है कि अनुशासनात्मक मुद्दा क्या है। 2036 (8) वह अनुशासनात्मक मुद्दे की उत्पत्ति जानता है। (9) वह अनुशासनात्मक मुद्दे की समाप्ति जानता है। (10) वह अनुशासनात्मक मुद्दे की समाप्ति का मार्ग जानता है। 2037 इन दस गुणों से युक्त भिक्षु को [अनुशासनात्मक मुद्दे में] निर्णय देने के लिए चुना जा सकता है।

---

34 पूर्ण समन्वय (उपसम्पदा)

"भंते, पूर्ण दीक्षा देने के लिए एक भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए?"

उपली, दस गुणों से युक्त भिक्षु पूर्ण दीक्षा दे सकता है। वे दस गुण क्या हैं? (1) यहाँ, भिक्षु गुणी है... वह उनमें अभ्यास करता है। (2) उसने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह पारंगत है। (3) दोनों पतिमोक्खों का उसे विस्तार से ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनका अच्छी तरह विश्लेषण किया गया है, उनमें महारत हासिल है, नियमों और उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह निर्धारित किया गया है। (4) वह किसी रोगी की देखभाल करने में सक्षम है या किसी और से उसकी देखभाल करवा सकता है। (5) वह किसी की असंतुष्टि को दूर करने में सक्षम है या किसी और से उसे दूर करवा सकता है। (6) वह अपने शिष्यों में उत्पन्न होने वाले पश्चाताप को दूर करने के लिए धम्म (मार्ग) का उपयोग करने में सक्षम है। (7) वह धम्म के माध्यम से उन्हें उत्पन्न हुए गलत विचारों से विमुख करने में सक्षम है। (8) वह उन्हें उच्चतर सद्गुणी आचरण के लिए प्रोत्साहित करने में सक्षम है। (9) वह उन्हें उच्चतर मन के लिए प्रोत्साहित करने में सक्षम है। (10) वह उन्हें उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) में प्रोत्साहित करने में सक्षम है। इन दस गुणों से युक्त भिक्षु पूर्ण दीक्षा दे सकता है।" [73]

---

35 निर्भरता (निस्सया)

"भंते, आश्रितता प्रदान करने के लिए एक भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए?"

"उपली, दस गुणों से युक्त भिक्षु आश्रितता प्रदान कर सकता है। वे दस गुण कौन से हैं?"

[पिछली सूत्र में वर्णित दस गुणों के समान ही।]

"इन दस गुणों से युक्त भिक्षु आश्रितता प्रदान कर सकता है।"

---

36 नौसिखिया [2038](सामनेरा)

"भंते, एक भिक्षु में कितने गुण होने चाहिए ताकि एक नौसिखिए उसकी सेवा करे?"

"उपली, दस गुणों से युक्त भिक्षु की सेवा एक नौसिखिए द्वारा की जा सकती है। वे दस गुण कौन से हैं?"

[वही दस गुण जो 10:34 में हैं।]

"इन दस गुणों से युक्त भिक्षु की सेवा कोई नौसिखिया कर सकता है।"

---

37 विभाजन (1) (संघभेद1)

"भंते, ऐसा कहा जाता है: 'संघ में फूट, संघ में फूट' भंते, संघ में फूट कैसे हो सकती है?"

"यहाँ, उपाली, (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में, (2) और धर्म (मार्ग) को अधर्म (गलत मार्ग) के रूप में समझाते हैं। (3) वे अनुशासनहीनता को अनुशासन के रूप में, [74] और (4) अनुशासन को अनुशासनहीनता के रूप में समझाते हैं। (5) वे तथागत (बुद्ध) द्वारा न कही गई बातों को उनके द्वारा कही गई और (6) तथागत (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को उनके द्वारा न कही गई और (7) तथागत (बुद्ध) द्वारा न किए गए कार्यों को उनके द्वारा किए गए कार्यों के रूप में समझाते हैं, और (8) तथागत (बुद्ध) द्वारा किए गए कार्यों को उनके द्वारा न किए गए कार्यों के रूप में समझाते हैं। (9) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित न की गई बातों को उनके द्वारा निर्धारित की गई बातों के रूप में समझाते हैं, और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित की गई बातों को उनके द्वारा निर्धारित की गई बातों के रूप में समझाते हैं। तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित न होने के कारण वे संघ से विमुख हो जाते हैं। इन्हीं दस आधारों पर वे संघ से अलग हो जाते हैं। वे विधि-विधान अलग-अलग करते हैं और पतिमोक्खा का पाठ भी अलग-अलग करते हैं। उपाली, इसी प्रकार संघ में विभाजन होता है।

---

38 विभाजन (2) (संघभेद1)

"भंते, ऐसा कहा जाता है: 'संघ में सामंजस्य, संघ में सामंजस्य।' संघ में सामंजस्य कैसे हो सकता है?"

उपली, यहाँ (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को अधर्म के रूप में और (2) धर्म को धर्म के रूप में समझाते हैं। (3) वे अनुशासनहीनता को अनुशासनहीनता के रूप में और (4) अनुशासन को अनुशासन के रूप में समझाते हैं। (5) वे तथागत (बुद्ध) द्वारा न कही गई बातों को उनके द्वारा न कही गई और (6) तथागत (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को उनके द्वारा कही गई और (7) कही गई बातों को उनके द्वारा न किए गए और (8) तथागत (बुद्ध) द्वारा किए गए कार्यों को उनके द्वारा किए गए और (9) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित न की गई बातों को उनके द्वारा निर्धारित न किए गए और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित बातों को निर्धारित के रूप में समझाते हैं। उनके द्वारा। इन दस आधारों पर वे अलग नहीं होते और न ही पृथक होते हैं। वे न तो अलग से विधिक कार्य करते हैं और न ही अलग से पतिमोक्खा का पाठ करते हैं। उपली, इसी प्रकार संघ में एकता बनी रहती है।" [75]

---

39 आनंद (1)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, ऐसा कहा जाता है: 'संघ में फूट, संघ में फूट' संघ में फूट कैसे हो सकती है?"

"यहाँ, आनंद, (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में समझाते हैं... [जैसा कि 10:37 में है]... और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित को उनके द्वारा निर्धारित नहीं मानते। इन्हीं दस आधारों पर वे संघ से विमुख हो जाते हैं। वे विधि कर्म अलग-अलग करते हैं और पतिमोक्ख का पाठ अलग-अलग करते हैं। आनंद, इसी प्रकार संघ में विभाजन होता है।" 2039

"लेकिन, भंते, जब कोई सामंजस्यपूर्ण संघ में फूट डालता है, तो वह क्या उत्पन्न करता है?"

"आनंद, एक व्यक्ति युगों तक रहने वाली बुराई उत्पन्न करता है।" 2040 "पर, भंते, वह युगों तक रहने वाली बुराई क्या है?"

"आनंद, एक युग तक नरक में यातना भोगता है।" [76] संघ में फूट डालने वाला दुख भोगता है, नरक में जाता है, और वहाँ एक युग तक रहता है।

गुटों में आनंद लेने से, जो अधार्मिक (गलत मार्ग) पर स्थापित हैं, वह बंधन से मुक्ति और सुरक्षा से विमुख हो जाता है।

एक सामंजस्यपूर्ण संघ में फूट डालने के कारण, उसे युगों तक नरक में यातना भोगनी पड़ती है।

---

40 आनंद (2)

"भंते, कहा जाता है: 'संघ में एकता, संघ में एकता'। संघ में एकता कैसे हो सकती है?"

"यहाँ, आनंद, (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को अधर्म के रूप में समझाते हैं... [जैसा कि 10:38 में है]... और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित नियमों को उन्हीं के द्वारा निर्धारित नियमों के रूप में समझाते हैं। इन दस आधारों पर वे संघ से विमुख होकर नहीं जाते। वे विधि कर्मों का अलग से निष्पादन नहीं करते और न ही पतिमोक्ख का अलग से पाठ करते हैं। आनंद, इसी प्रकार संघ में एकता बनी रहती है।" 2041

"परन्तु, भंते, जब कोई विभाजित संघ का मेल कराता है, तो वह क्या उत्पन्न करता है?" "परन्तु उत्पन्न करता है, आनंद।" "परन्तु, भंते, परन्तु क्या है?" "परन्तु एक युग तक स्वर्ग में आनंदित होता है, आनंद।" [77] संघ में सामंजस्य सुखद है, और सामंजस्य में रहने वालों की परस्पर सहायता भी सुखद है। धम्म में स्थापित सामंजस्य में आनंदित होकर, व्यक्ति बंधन से मुक्त होकर सुरक्षित रहता है। संघ में सामंजस्य स्थापित करके, व्यक्ति एक युग तक स्वर्ग में आनंदित होता है।

वी. अपमान (अकोसा संस. अक्रोश)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

41 विवाद (विवाद)

तब पूज्य उपली भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, संघ में तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद और मतभेद क्यों उत्पन्न होते हैं और भिक्षु चैन से क्यों नहीं रह पाते?"

"यहाँ, उपाली, (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में समझाते हैं... [जैसा कि 10:37 में है]... [78]... और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित को उनके द्वारा निर्धारित नहीं मानते। उपाली, यही कारण है कि संघ में तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद और मतभेद उत्पन्न होते हैं और भिक्षु चैन से नहीं रह पाते।"

---

42 विवादों की जड़ें (1) (विवादमुला1)

"भंते, विवादों की कितनी जड़ें हैं?"

"हे उपली, विवाद के दस मूल हैं। वे दस कौन से हैं? यहाँ, (1) भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में समझाते हैं... [जैसा कि 10:37 में है] — और (10) तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित को उनके द्वारा निर्धारित नहीं बताते। हे उपली, ये विवाद के दस मूल हैं।"

---

43 विवादों की जड़ें (2) (विवादमुला2)

"भंते, विवादों की कितनी जड़ें हैं?"

"हे उपाली, विवादों के दस मूल हैं। वे दस कौन से हैं? यहाँ, (1) भिक्षु जो अपराध नहीं है उसे अपराध बताते हैं, और (2) जो अपराध है उसे अपराध नहीं बताते। (3) वे हल्के अपराध को गंभीर अपराध बताते हैं, और (4) गंभीर अपराध को हल्का अपराध बताते हैं। (5) वे घोर अपराध को घोर अपराध नहीं बताते, और (6) जो घोर नहीं है उसे घोर अपराध बताते हैं। (7) वे निवारण योग्य अपराध को असाध्य अपराध बताते हैं, और (8) असाध्य अपराध को निवारण योग्य अपराध बताते हैं। [79] (9) वे निवारण योग्य अपराध को निवारण रहित अपराध बताते हैं, और (10) निवारण रहित अपराध को निवारण योग्य अपराध बताते हैं। 2043 हे उपाली, ये विवादों के दस मूल हैं।"

---

44 कुसिनारा

एक बार भगवान (बुद्ध) कुसिनारा में, आहुति के घने वन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), जो भिक्षु किसी दूसरे व्यक्ति को फटकारना चाहता है, उसे फटकार लगाने से पहले स्वयं को पाँच बातों के संदर्भ में परखना चाहिए और अपने भीतर पाँच बातें स्थापित करनी चाहिए। 2044 उसे किन पाँच बातों के संदर्भ में स्वयं को परखना चाहिए?"

(1) "भिक्षुओं, जो भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को फटकारना चाहता है, उसे स्वयं की इस प्रकार जांच करनी चाहिए: 'क्या मेरा शारीरिक आचरण शुद्ध है? क्या मेरा शारीरिक आचरण शुद्ध, दोषरहित और निंदनीय है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं?' यदि भिक्षु का शारीरिक आचरण शुद्ध नहीं है, और उसका शारीरिक आचरण शुद्ध, दोषरहित और निंदनीय नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: 'कृपया पहले अपने शरीर को प्रशिक्षित करें।'

(2) "फिर, जो भिक्षु किसी दूसरे को फटकारना चाहता है, उसे स्वयं की इस प्रकार जाँच करनी चाहिए: 'क्या मेरा वाणी व्यवहार शुद्ध है? क्या मेरा वाणी व्यवहार शुद्ध, दोषरहित और निंदनीय है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं?' यदि भिक्षु का वाणी व्यवहार शुद्ध नहीं

है, और उसका वाणी व्यवहार शुद्ध, दोषरहित और निंदनीय नहीं है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: 'कृपया पहले स्वयं को वाणी के अनुसार प्रशिक्षित करो।' कुछ लोग उससे ऐसा कहेंगे। [80]

(3) "फिर, जो भिक्षु दूसरे भिक्षु को फटकारना चाहता है, उसे स्वयं की इस प्रकार जांच करनी चाहिए: "क्या मैंने अपने साथी भिक्षुओं के प्रति द्वेष रहित प्रेम और करुणा का भाव स्थापित किया है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं?" यदि भिक्षु ने अपने साथी भिक्षुओं के प्रति द्वेष रहित प्रेम और करुणा (मेट्टा) का भाव स्थापित नहीं किया है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "कृपया पहले अपने साथी भिक्षुओं के प्रति प्रेम और करुणा (मेट्टा) का भाव स्थापित करें।"

(4) "'फिर, जो भिक्षु दूसरे को फटकारना चाहता है, उसे स्वयं की इस प्रकार परीक्षा करनी चाहिए: "क्या मैं विद्वान हूँ, और क्या मैं अपने ज्ञान को बनाए रखता हूँ और संरक्षित करता हूँ? क्या मैंने उन शिक्षाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया है जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हैं, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हैं? क्या मैंने उन्हें मन में रखा है, उनका मौखिक पाठ किया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है, और दृष्टि से उन्हें भली-भांति समझा है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं?" यदि भिक्षु विद्वान नहीं है... और उसने दृष्टि से उन्हें भली-भांति नहीं समझा है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: "कृपया पहले विरासत को सीखो।"

(5) "फिर, जो भिक्षु दूसरे भिक्षु को फटकारना चाहता है, उसे स्वयं की इस प्रकार जांच करनी चाहिए: "क्या मुझे दोनों पतिमोक्खों का विस्तृत ज्ञान, विश्लेषण, निपुणता और नियमों एवं उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त हुआ है? क्या मुझमें यह गुण है या नहीं?" यदि दोनों पतिमोक्खों [81] का उसे नियमों एवं उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में विस्तृत ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, और यदि पूछे जाने पर: "भगवान (बुद्ध) ने यह कहाँ कहा है?" वह उत्तर देने में असमर्थ है, तो कुछ लोग उससे कहेंगे: 'कृपया पहले अनुशासन सीखें'। कुछ लोग उससे यह कहेंगे।

"उसे इन्हीं पांच बातों के संदर्भ में स्वयं का मूल्यांकन करना चाहिए।"

और वे पाँच बातें कौन सी हैं जिन्हें उसे अपने भीतर स्थापित करना चाहिए? [उसे विचार करना चाहिए:] (6) मैं उचित समय पर बोलूंगा, अनुचित समय पर नहीं; (7) मैं सत्य बोलूंगा, असत्य नहीं; (8) मैं विनम्रता से बोलूंगा, कठोरता से नहीं; (9) मैं लाभकारी तरीके से बोलूंगा, हानिकारक तरीके से नहीं; (10) मैं प्रेम और करुणा के भाव से बोलूंगा, घृणा से नहीं। ये पाँच बातें हैं जिन्हें उसे अपने भीतर स्थापित करना चाहिए।

"भिक्षुओं, जो भिक्षु किसी दूसरे व्यक्ति को फटकारना चाहते हैं, उन्हें फटकार लगाने से पहले स्वयं इन पांच बातों की जांच करनी चाहिए और स्वयं में इन पांच बातों को स्थापित करना चाहिए।"

---

45 राजा के भीतरी महल में प्रवेश (राजंतेपुरप्पावेसना)

"भिक्षुओं, राजा के महल में प्रवेश करने में ये दस खतरे हैं। वे दस खतरे कौन से हैं?"

(1) "यहाँ राजा अपनी रानी के साथ बैठे हैं। भिक्षु प्रवेश करता है, और या तो रानी भिक्षु को देखकर मुस्कुराती है या भिक्षु रानी को देखकर मुस्कुराता है। राजा सोचता है: 'निश्चित रूप से उनके बीच कुछ हुआ है, या कुछ होने वाला है'। राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह पहला खतरा है।"

(2) "फिर, जब राजा बहुत काम में व्यस्त था, तो उसने किसी स्त्री के साथ यौन संबंध बनाया, लेकिन उसे याद नहीं रहा, और उनके संबंध के कारण वह गर्भवती हो गई। राजा सोचता है: 'भिक्षु के अलावा कोई और [82] यहाँ नहीं आया है। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह दूसरा खतरा है।

(3) "फिर, राजा के भीतरी महल में एक रत्न खो गया है। राजा सोचता है: 'भिक्षु के अलावा यहाँ कोई और नहीं आया है। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह तीसरा खतरा है।"

(4) "फिर, राजा के भीतरी महल की गुप्त चर्चाएँ दूसरों तक फैल गईं। 2045 राजा सोचता है: 'भिक्षु के अलावा कोई और यहाँ नहीं आया है। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह चौथा खतरा है।"

(5) "फिर, राजा के भीतरी महल में एक पिता अपने बेटे के लिए तरसता है, या एक बेटा अपने पिता के लिए तरसता है। 2046 वे सोचते हैं: 'यद्यपि यहाँ भिक्षु के अलावा कोई और नहीं आया है। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह पाँचवाँ खतरा है।"

(6) "फिर, राजा किसी को पदोन्नत करता है। जो लोग इससे परेशान होते हैं, वे सोचते हैं: 'राजा के भिक्षु के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह छठा खतरा है।"

(7) "फिर, राजा किसी को पदावनत कर देता है। इससे परेशान लोग सोचते हैं: 'राजा के भिक्षु के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह सातवाँ खतरा है।"

(8) "फिर, राजा अनुचित समय पर अपनी सेना भेजता है। इससे परेशान लोग सोचते हैं: 'राजा के भिक्षु के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह आठवां खतरा है।"

(9) "फिर, उचित समय पर अपनी सेना भेजने के बाद, राजा उसे रास्ते में ही वापस लौटने का आदेश देता है। जो लोग इससे परेशान हैं वे सोचते हैं: [83] 'राजा के भिक्षु के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। क्या यह भिक्षु का काम हो सकता है?' राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह नौवां खतरा है।

(10) "फिर, राजा के भीतरी महल में हाथियों, घोड़ों और रथों के चलने की आवाज़ें आती हैं, साथ ही मोहक रूप, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुएँ भी होती हैं जो भिक्षु के लिए उपयुक्त नहीं हैं। राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने का यह दसवाँ खतरा है।"

"भिक्षुओं, राजा के भीतरी महल में प्रवेश करने के ये दस खतरे हैं।"

---

46 शाक्य

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उपोसथ पर्व के दिन, कई शाक्यों अनुयायी भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"शाक्यों, क्या आप उपोसथ को आठ कारकों में पूर्ण रूप से देखते हैं?" 2048

"भंते, कभी-कभी हम ऐसा करते हैं, और कभी-कभी नहीं करते।"

"यह तुम्हारा दुर्भाग्य और हानि है, शाक्यों! जब जीवन दुःख और मृत्यु से संकट में होता है, तो तुम आठों कारकों में पूर्ण उपोसथा का पालन कभी-कभी ही करते हो, और कभी-कभी नहीं। शाक्यों, तुम क्या सोचते हो? मान लो यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना किसी हानि (अकुशल) कार्य के प्रतिदिन आधा कहपना कमाता है। [84] क्या यह उसे चतुर और उद्यमशील व्यक्ति कहने के लिए पर्याप्त होगा?"

"हां, भंते।"

"शाक्यों, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना कोई हानि पहुँचाए (अकुसला) प्रतिदिन अपने काम से एक कहपना कमाता है... क्या यह उसे चतुर और उद्यमशील व्यक्ति कहने के लिए पर्याप्त होगा?"

"हां, भंते।"

"शाक्यों, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो बिना किसी हानि (अकुशल) कार्य के प्रतिदिन दो कहपन, तीन कहपन, चार कहपन, पाँच कहपन, छह कहपन, सात कहपन, आठ कहपन, नौ कहपन, बीस कहपन, तीस कहपन, चालीस कहपन कमाता है। क्या यह उसे चतुर और उद्यमशील व्यक्ति कहने के लिए पर्याप्त होगा?"

"हां, भंते।"

"शाक्यों, आपका क्या विचार है? यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन सौ या हजार कहपना कमाता है, अपनी सारी कमाई जमा करता है, और सौ वर्ष का जीवनकाल जीता है, तो क्या वह बहुत अधिक धन अर्जित कर पाएगा?"

"हां, भंते।"

"शाक्यों, तुम क्या सोचते हो? क्या वह व्यक्ति अपने धन के कारण, अपने धन की वजह से, अपने धन की वजह से एक रात या एक दिन के लिए, या आधी रात या आधे दिन के लिए भी पूरी तरह से सुखी हो सकता है?"

"नहीं, भंते। क्यों नहीं? क्योंकि इंद्रिय सुख क्षणभंगुर, खोखले, झूठे और भ्रामक होते हैं।"

"यद्यपि, शाक्यों, मेरा शिष्य जो दस वर्षों तक सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर, मेरे निर्देशानुसार अभ्यास करता है, वह सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, 2050 [85] एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। 2051 और वह एक बार जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से एक बार जन्म लेने वाला (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) हो सकता है।"

"शाक्यों, दस वर्ष तो छोड़ ही दीजिए। मेरा शिष्य जो नौ वर्ष... आठ वर्ष... सात वर्ष... छह वर्ष... पाँच वर्ष... चार वर्ष... तीन वर्ष... दो वर्ष... एक वर्ष तक सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्प के साथ मेरे निर्देशों का पालन करते हुए रहता है, वह सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। और वह एक बार जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से सात बार जन्म लेने वाला (सोतपत्ति) हो सकता है।"

"एक वर्ष की तो बात ही छोड़ो, शाक्यों। मेरा शिष्य जो दस महीने तक सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्प के साथ मेरे निर्देशों का पालन करते हुए निवास करता है, वह सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। और वह एक बार जन्म लेने वाला (एक पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से सात बार जन्म लेने वाला (सोतपत्ति) हो सकता है।"

"शाक्यों, दस महीने तो छोड़ ही दीजिए। मेरा शिष्य जो नौ महीने...आठ महीने...सात महीने...छह महीने...पांच महीने...चार महीने...तीन महीने...दो महीने...एक महीना...आधा महीना तक सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर, मेरे निर्देशानुसार अभ्यास करता है, वह सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। और वह एक बार जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से सात बार जन्म लेने वाला (सोतपत्ति) हो सकता है।"

"आधे महीने की तो बात ही छोड़ो, शाक्यों। मेरा शिष्य जो दस रातों और दस दिनों तक सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्प से मेरे निर्देशों का पालन करते हुए निवास करता है, वह सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। और वह एक बार जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), एक बार जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से सात बार जन्म लेने वाला (सोतपत्ति) हो सकता है।"

"शाक्यों, दस रातों और दिनों की तो बात ही छोड़ो। मेरा शिष्य जो नौ रातों और दिनों तक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर... आठ रातों और दिनों तक... सात रातों और दिनों तक... [86] छह रातों और दिनों तक... पाँच रातों और दिनों तक... चार रातों और दिनों तक... तीन रातों और दिनों तक... दो रातों और दिनों तक... एक रात और दिन भी, मेरे निर्देशानुसार अभ्यास करते हुए, सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक लाख वर्ष और दस करोड़ वर्ष तक अनन्य सुख का अनुभव कर सकता है। और वह एक बार जन्म लेने वाला (1

पुनर्जन्म, सकदागामी), जन्म न लेने वाला (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी), या निश्चित रूप से सात जन्मों का अंत करने वाला (सोतपत्ति) हो सकता है।"

"यह तुम्हारा दुर्भाग्य और हानि है, शाक्यों! जब जीवन दुःख और मृत्यु से संकट में होता है, तो तुम आठों कारकों में पूर्ण उपोसथा का पालन कभी-कभी ही करते हो, और कभी-कभी नहीं करते।"

"आज से, भंते, हम उपोसथा का पूर्ण रूप से आठ कारकों के साथ पालन करेंगे।"

---

47 महली

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी महाली भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, बुरे कर्म करने का कारण और शर्त क्या है, बुरे कर्मों के घटित होने का कारण क्या है?" 2052

"महाली, (1) लोभ बुरे कर्मों के होने का कारण और शर्त है। (2) घृणा एक कारण और शर्त है... (3) मोह एक कारण और शर्त है... (4) लापरवाही एक कारण और शर्त है... (5) गलत दिशा में निर्देशित मन बुरे कर्मों के होने का कारण और शर्त है। यही बुरे कर्मों के होने का कारण और शर्त है।"

"भंते, अच्छे कर्म करने का कारण और शर्त क्या है, अच्छे कर्म होने की शर्त क्या है?"

महाली, (6) लोभ रहित होना अच्छे कर्म करने और उनके फलने-फूलने का कारण और शर्त है। (7) घृणा रहित होना कारण और शर्त है... (8) मोह रहित होना कारण और शर्त है... (9) ध्यानपूर्वक रहना कारण और शर्त है... (10) सही दिशा में निर्देशित मन अच्छे कर्म करने और उनके फलने-फूलने का कारण और शर्त है।

"हे महाली, यदि ये दस गुण संसार में विद्यमान न होते, तो अधार्मिक आचरण, धर्म के विरुद्ध आचरण और धर्म के अनुरूप आचरण, दोनों ही दृष्टिहीन होते। परन्तु संसार में इन दस गुणों के विद्यमान होने के कारण अधार्मिक आचरण, धर्म के विरुद्ध आचरण और धर्म के अनुरूप आचरण, दोनों ही दृष्टिहीन होते हैं।"

---

48 चीजें

"भिक्षुओं, संन्यास लेने वाले को इन दस बातों पर अक्सर चिंतन करना चाहिए। वे दस बातें कौन सी हैं?"

(1) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर चिंतन करना चाहिए: 'मैंने वर्गहीन अवस्था में प्रवेश कर लिया है।' 2053

(2) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर चिंतन करना चाहिए: 'मेरी जीविका दूसरों पर निर्भर है।' 2054 [88]

(3) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर यह सोचना चाहिए: 'मेरा आचरण अलग होना चाहिए।' 2055

(4) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर यह सोचना चाहिए: 'क्या मैं सदाचारी आचरण के संबंध में स्वयं को दोषी ठहराता हूँ?' 2056

(5) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर यह सोचना चाहिए: 'क्या मेरे बुद्धिमान साथी भिक्षुओं ने जाँच-पड़ताल करने के बाद मेरे सद्गुणी आचरण के संबंध में मेरी निंदा की है?'"

(6) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर यह सोचना चाहिए: 'मुझे अपने प्रिय और सुखद सभी लोगों और चीजों से अलग होना पड़ेगा।' 2857

(7) "जो व्यक्ति संन्यासी जीवन में चला गया है, उसे अक्सर यह चिंतन करना चाहिए: 'मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ, अपने कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ; मेरे कर्म ही मेरी उत्पत्ति हैं, मेरे ही रिश्तेदार हैं, मेरे ही आश्रय हैं; मैं जो भी कर्म करूँ, चाहे अच्छा हो या बुरा, मैं उसका उत्तराधिकारी हूँगा।'

(8) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर चिंतन करना चाहिए: 'मैं अपनी रातें और दिन कैसे बिता रहा हूँ?'"

(9) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर सोचना चाहिए: 'क्या मुझे खाली झोपड़ियों में आनंद आता है?'"

(10) "जो व्यक्ति [सन्यासी जीवन में] चला गया है, उसे अक्सर यह चिंतन करना चाहिए: 'क्या मैंने ज्ञान और दृष्टि में कोई ऐसी अलौकिक विशिष्टता प्राप्त की है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, ताकि अपने अंतिम दिनों में, जब मेरे साथी भिक्षुओं द्वारा मुझसे प्रश्न किया जाए, तो मैं लज्जित न होऊं?'

"हे भिक्षुओं, ये वे दस बातें हैं जिन पर संन्यासी को अक्सर चिंतन करना चाहिए।"

---

49 शरीर के माध्यम से जीवन निर्वाह करना

भिक्षुओं, ये दस चीजें शरीर के माध्यम से विद्यमान होती हैं। वे दस चीजें कौन सी हैं? सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल-मूत्र त्याग, शारीरिक संयम, वाणी संयम, आजीविका में संयम और पुनर्जन्म का कारण बनने वाली उत्पत्ति की क्रिया। ये दस चीजें शरीर के माध्यम से विद्यमान होती हैं।

---

50 तर्क

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे: उस समय, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, कई भिक्षु सभा भवन में एकत्रित हुए और एक साथ बैठे थे कि वे बहस और झगड़े में पड़ गए और एक दूसरे पर तीखे शब्दों से प्रहार करने लगे।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में जाकर तैयार आसन पर बैठ गए। फिर भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"भिक्षुओं, आप लोग अभी यहाँ एक साथ बैठे हुए किस चर्चा में लगे हुए थे? आपके बीच क्या बातचीत चल रही थी?"

"यहाँ, भंते, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, हम सभा भवन में एकत्रित हुए और एक साथ बैठे थे कि हम बहस और झगड़े में पड़ गए और एक दूसरे पर तीखे शब्दों से प्रहार करने लगे।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों), हे कुल के लोगों, जिन्होंने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, उनके लिए यह उचित नहीं है कि वे वाद-विवाद और झगड़े में पड़ें और एक-दूसरे को तीखे शब्दों से घायल करें।"

"भिक्षुओं, सौहार्द के ये दस सिद्धांत हैं जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करते हैं और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्भाव और एकता की ओर अग्रसर करते हैं... 2059 वे दस क्या हैं?"

(1) "यहाँ, भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और आश्रय से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। चूंकि भिक्षु गुणी है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्‌भाव और एकता को बढ़ावा देता है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, वह जो कुछ सीखा है उसे याद रखता है और उसे संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों - ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, [90] मानसिक रूप से जांचा है और दृष्टि से अच्छी तरह समझा है। चूंकि एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी, अच्छे सहपाठी होते हैं। चूंकि एक भिक्षु के अच्छे मित्र होते हैं... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान पैदा करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(4) "फिर, भिक्षु को सुधारना आसान होता है और उसमें ऐसे गुण होते हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान होता है और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है। चूंकि भिक्षु को सुधारना आसान होता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(5) "एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के लिए किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को कुशलतापूर्वक और लगन से करता है; वह उनमें उचित ज्ञान रखता है, और वह सब कुछ ठीक से करने और व्यवस्थित करने में सक्षम होता है। चूंकि एक भिक्षु कुशल और लगनशील होता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(6) "फिर, एक भिक्षु धम्म (मार्ग) से प्रेम करता है और अपने कथनों में प्रसन्नतापूर्ण होता है, धम्म और अनुशासन से संबंधित उच्च आनंद से परिपूर्ण होता है। चूंकि एक भिक्षु धम्म से प्रेम करता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(7) "फिर, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। चूंकि एक भिक्षु ने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है... [91]... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(8) "फिर, एक भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और बीमारों के लिए औषधियों और प्रावधानों से संतुष्ट रहता है। चूंकि एक भिक्षु किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता को बढ़ावा देता है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु सचेत (ध्यान/सती) होता है, जो परम सजगता और सतर्कता से परिपूर्ण होता है, जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। चूंकि एक भिक्षु सचेत (ध्यान/सती) होता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर होता है।"

(10) "फिर, भिक्षु बुद्धिमान होता है; वह उस ज्ञान (दिव्य ज्ञान) से युक्त होता है जो उत्पत्ति और क्षय को भलीभांति समझता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है और दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है। चूंकि भिक्षु बुद्धिमान होता है... यह सौहार्द का एक सिद्धांत है जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करता है और एकता की ओर अग्रसर करता है।"

"ये, भिक्षुओं, सौहार्द के दस सिद्धांत हैं जो स्नेह और सम्मान उत्पन्न करते हैं और सामंजस्य, विवादहीनता, सद्‌भाव और एकता की ओर अग्रसर होते हैं।" [92]

दूसरा पचास

I. अपने मन का ध्यान रखना (सचित्तवग्गो सान. सद-चित्त-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

51. अपने मन का ध्यान रखना (सचित्त)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरों के मन के तरीकों में कुशल नहीं है, उसे प्रशिक्षण लेना चाहिए: मैं अपने मन के तरीकों में कुशल बनूंगा। इसी तरह तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

"और एक भिक्षु अपने मन के मार्गों में कैसे निपुण होता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई स्त्री या पुरुष—युवा, जवान और आभूषणों का शौकीन—एक साफ, चमकदार दर्पण में या साफ पानी के कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे। यदि उन्हें उसमें कोई धूल या दाग दिखाई दे, तो वे उसे हटाने का प्रयास करेंगे। लेकिन यदि उन्हें वहां कोई धूल या दाग दिखाई न दे, तो वे इससे प्रसन्न होंगे; और अपनी इच्छा पूरी होने पर वे सोचेंगे, 'कितना सौभाग्यशाली हूँ कि मैं निर्मल हूँ!' 2060 इसी प्रकार, आत्म-परीक्षण भिक्षु के लिए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि करने में बहुत सहायक होता है।"

"[स्वयं से पूछना चाहिए:] (1) 'क्या मैं अक्सर लालसा में डूबा रहता हूँ या लालसा से रहित हूँ? (2) क्या मैं अक्सर द्वेष में डूबा रहता हूँ या द्वेष रहित हूँ? (3) क्या मैं अक्सर सुस्ती और उनींदापन से ग्रस्त रहता हूँ या सुस्ती और उनींदापन से मुक्त हूँ? (4) क्या मैं अक्सर बेचैन रहता हूँ या शांत रहता हूँ? (5) क्या मैं अक्सर संदेह से ग्रस्त रहता हूँ या संदेह से मुक्त हूँ? (6) क्या मैं अक्सर क्रोधित रहता हूँ या क्रोध रहित हूँ? (7) क्या मेरा मन अक्सर दूषित रहता है या निर्दूषित? (8) क्या मेरा शरीर अक्सर उत्तेजित रहता है या अनुत्तेजित? (9) क्या मैं अक्सर आलसी रहता हूँ या ऊर्जावान? (10) क्या मैं अक्सर असामंजस्य में रहता हूँ या आत्म-मग्न रहता हूँ?' 2061

यदि आत्मनिरीक्षण के द्वारा कोई भिक्षु यह जान ले कि ‘मैं अक्सर लालसा में लीन रहता हूँ, द्वेष में लिप्त रहता हूँ, सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त रहता हूँ, बेचैन रहता हूँ, संदेह से ग्रस्त रहता हूँ, क्रोधित रहता हूँ, मन से दूषित रहता हूँ, शरीर से उत्तेजित रहता हूँ, आलसी और असामंजस्यपूर्ण रहता हूँ’, तो उसे इन बुरे और हानिकारक गुणों (धम्म) को त्यागने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सजगता और पूर्ण बोध (संपजन्न) का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, सजगता और पूर्ण बोध का प्रयोग करता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी इन बुरे और हानिकारक गुणों (धम्म) को त्यागने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, लगन, लगन, सजगता और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए।’ गुण (धम्म)।

लेकिन यदि ऐसे आत्मपरीक्षण से कोई भिक्षु यह जान ले कि 'मैं अक्सर लालसा रहित, द्वेष रहित, सुस्ती और उन्मत्तता से मुक्त, शांत, संशय रहित, क्रोध रहित, मन से निर्मल, शरीर से अविचलित, ऊर्जावान और समाधि में लीन रहता हूँ', तो उसे इन्हीं लाभकारी गुणों (धम्म) पर आधारित होकर दोषों के नाश की ओर अग्रसर होना चाहिए।

---

52 सारिपुत्त

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

[10:51 के समान, लेकिन सारिपुत्त द्वारा बोला गया।] [95— 96]

---

53 ठहराव (थिति)

भिक्षुओं, मैं लाभकारी (कुशल) गुणों में ठहराव की भी प्रशंसा नहीं करता, गिरावट तो दूर की बात है। मैं केवल लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि की प्रशंसा करता हूँ, ठहराव या गिरावट की नहीं। 2062

और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में गिरावट कैसे होती है - स्थिरता या वृद्धि क्यों नहीं? केवल एक भिक्षु में एक निश्चित मात्रा में आस्था, सदाचार, ज्ञान, वैराग्य, पन्ना (दिव्य ज्ञान) और विवेक होता है। उसके ये गुण स्थिर नहीं रहते या बढ़ते नहीं हैं। मैं कहता हूँ कि यह लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में गिरावट है, स्थिरता या वृद्धि नहीं। अतः लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में गिरावट होती है - स्थिरता या वृद्धि नहीं।

और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में ठहराव कैसे है — गिरावट या वृद्धि नहीं? केवल एक भिक्षु में एक निश्चित मात्रा में आस्था, सदाचार, ज्ञान, वैराग्य, पन्ना (दिव्य ज्ञान) और विवेक होता है। उसके ये गुण न तो घटते हैं और न ही बढ़ते हैं। मैं कहता हूँ कि लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में गिरावट या वृद्धि नहीं, बल्कि ठहराव है। इस प्रकार लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में ठहराव है — गिरावट या वृद्धि नहीं।

और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि कैसे होती है—स्थिरता या गिरावट नहीं? यहाँ, एक भिक्षु में एक निश्चित मात्रा में आस्था, सदाचारी आचरण, ज्ञान, वैराग्य, पन्ना (दिव्य ज्ञान) और विवेक होता है। उसके ये गुण अपरिवर्तित नहीं रहते या उनमें गिरावट नहीं आती। मैं कहता हूँ कि यही लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि है, न कि स्थिरता या गिरावट। इस प्रकार लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि होती है—स्थिरता या गिरावट नहीं।

"भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरों के मन के तरीकों में कुशल नहीं हैं, उन्हें यह अभ्यास करना चाहिए: 'मैं अपने मन के तरीकों में कुशल बनूंगा।' . . . [97-98] . . . [जैसा कि 10:51 से आगे है:] . . . लेकिन यदि ऐसे आत्म-परीक्षण से कोई भिक्षु यह जान ले: 'मैं अक्सर लालसा रहित रहता हूँ, . . और आत्म-मग्न (समाहित/समाहित) रहता हूँ,' तो उसे उन्हीं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर दोषों के नाश की ओर अग्रसर होना चाहिए।"

---

54 समभाव (समथा)

भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरों के मन के तरीकों में कुशल नहीं है, उसे यह अभ्यास करना चाहिए: 'मैं अपने मन के तरीकों में कुशल बनूंगा।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

और एक भिक्षु अपने मन के मार्गों में कैसे निपुण होता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई स्त्री या पुरुष—युवा, जवान और आभूषणों का शौकीन—एक साफ चमकदार दर्पण में या साफ पानी के कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे। यदि उन्हें वहाँ कोई धूल या दाग दिखाई दे, तो वे उसे हटाने का प्रयास करेंगे। लेकिन यदि उन्हें वहाँ कोई धूल या दाग दिखाई न दे, तो वे इससे प्रसन्न होंगे, [99] और अपनी इच्छा पूरी होने पर वे सोचेंगे, 'मेरे लिए कितना सौभाग्य की बात है कि मैं स्वच्छ हूँ!'

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, आत्म-परीक्षण भिक्षु के लिए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि के लिए बहुत सहायक होता है: 2063 'क्या मुझे मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त होती है या नहीं? क्या मुझे घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त होता है या नहीं?'

(1) यदि कोई भिक्षु आत्म-परीक्षण द्वारा यह जान ले कि 'मुझे मन की आंतरिक समता (समथा) तो प्राप्त होती है, परन्तु घटनाओं के प्रति अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त नहीं होता,' तो उसे मन की आंतरिक शांति को आधार बनाकर घटनाओं (धम्म) के प्रति अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। तब कुछ समय बाद उसे मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) के प्रति अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त हो जाते हैं।

(2) "परन्तु यदि ऐसे आत्म-परीक्षण से उसे यह ज्ञान हो जाए कि 'मुझे घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) तो प्राप्त होता है, परन्तु मन की आंतरिक समता (समथा) नहीं,' तो उसे घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) पर आधारित होकर मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। तब कुछ समय बाद उसे घटनाओं (धम्म) के बारे में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) और मन की आंतरिक समता (समथा) दोनों प्राप्त हो जाते हैं।"

(3) "परन्तु यदि ऐसे आत्म-परीक्षण से वह यह जान ले कि 'मुझे न तो मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त होती है और न ही घटनाओं के प्रति अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त होता है, तो उसे इन दोनों लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए। जैसे किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करता है, उसी प्रकार भिक्षु को इन दोनों लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए।" फिर, कुछ समय बाद, वह मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं (धम्म) में अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त कर लेता है।

(4) "परन्तु यदि ऐसे आत्म-परीक्षण से वह जान ले: 'मैं मन की आंतरिक समता (समथा) और घटनाओं में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) दोनों प्राप्त करता हूँ,' तो उसे उन्हीं लाभकारी (कुशल) गुणों पर आधारित होकर दोषों के नाश तक पहुँचने का और प्रयास करना चाहिए।

मैं कहता हूँ, वस्त्र दो प्रकार के होते हैं: एक जिनका उपयोग किया जाना है और दूसरे जिनका उपयोग नहीं किया जाना है। भिक्षा भोजन भी दो प्रकार का होता है: एक जिसका उपयोग किया जाना है और दूसरा जिसका उपयोग नहीं किया जाना है। आवास भी दो प्रकार के होते हैं: एक जिनका उपयोग किया जाना है और दूसरा जिनका उपयोग नहीं किया जाना है। गाँव या कस्बे भी दो प्रकार के होते हैं: एक जिनका सहारा लिया जाना है और एक जिनका सहारा नहीं लिया जाना है। देश या क्षेत्र भी दो प्रकार के होते हैं: एक जिनका सहारा लिया जाना है और एक जिनका सहारा नहीं लिया जाना है। व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं: एक जिनके साथ संबंध रखना है और जिनके साथ संबंध नहीं रखना है।

(5) जब यह कहा गया कि 'वस्त्र दो प्रकार के होते हैं: एक वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी वस्त्र के बारे में पता हो कि 'इस वस्त्र का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण बढ़ते हैं और धम्म गुण घटते हैं' तो उसे ऐसे वस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी को किसी वस्त्र के बारे में पता हो कि 'इस वस्त्र का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण घटते हैं और धम्म गुण बढ़ते हैं' तो उसे ऐसे वस्त्र का उपयोग करना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'वस्त्र दो प्रकार के होते हैं: एक वे जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरा वे जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए' तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

(6) जब यह कहा गया कि 'भिक्षा भी दो प्रकार की होती है: एक जिसका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरी जिसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी भिक्षा के बारे में पता हो कि 'इस भिक्षा का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं', तो उसे ऐसी भिक्षा का उपयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी को

किसी भिक्षा के बारे में पता हो कि 'इस भिक्षा का उपयोग करने से मुझमें अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं', तो उसे ऐसी भिक्षा का उपयोग करना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'भिक्षा भी दो प्रकार की होती है: एक जिसका उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरी जिसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

(7) जब यह कहा गया कि 'आवास भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी आवास के बारे में पता हो कि 'इस आवास का उपयोग करने से मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) बढ़ते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) घटते हैं', तो उसे ऐसे आवास का उपयोग नहीं करना चाहिए। लेकिन यदि किसी को किसी आवास के बारे में पता हो कि 'इस आवास का उपयोग करने से मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) घटते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ते हैं', तो उसे ऐसे आवास का उपयोग करना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'आवास भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए', तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।

(8) जब यह कहा गया कि 'गाँव या कस्बे भी दो प्रकार के होते हैं: एक वे जहाँ जाना चाहिए और दूसरे वे जहाँ नहीं जाना चाहिए,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी गाँव या कस्बे के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस गाँव या कस्बे में जाता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं', तो उसे ऐसे गाँव या कस्बे में नहीं जाना चाहिए। लेकिन यदि किसी को किसी गाँव या कस्बे के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस गाँव या कस्बे में जाता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं', तो उसे ऐसे गाँव या कस्बे में जाना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'गाँव या कस्बे भी दो प्रकार के होते हैं: एक वे जहाँ जाना चाहिए और दूसरे वे जहाँ नहीं जाना चाहिए,' तो ऐसा इसी कारण से कहा गया।

(9) जब यह कहा गया कि 'देश या क्षेत्र भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका सहारा लिया जा सकता है और जिनका सहारा नहीं लिया जा सकता,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी देश या क्षेत्र के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस देश या क्षेत्र का सहारा लेता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण बढ़ जाते हैं [102] और लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं', तो उसे ऐसे देश या क्षेत्र का सहारा नहीं लेना चाहिए। लेकिन यदि किसी को किसी देश या क्षेत्र के बारे में पता हो कि 'जब मैं इस देश या क्षेत्र का सहारा लेता हूँ, तो मुझमें हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं और लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ जाते हैं', तो उसे ऐसे देश या क्षेत्र का सहारा लेना चाहिए। जब यह कहा गया कि 'देश या क्षेत्र भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका सहारा लिया जा सकता है और जिनका सहारा नहीं लिया जा सकता,' तो इसी कारण से ऐसा कहा गया।

(10) जब यह कहा गया कि, 'मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं: जिनसे संगति करनी चाहिए और जिनसे संगति नहीं करनी चाहिए,' तो ऐसा क्यों कहा गया? यदि किसी को किसी व्यक्ति के बारे में पता हो कि 'इस व्यक्ति के साथ संगति करने से मुझमें अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं,' तो ऐसे व्यक्ति के साथ संगति नहीं करनी चाहिए। परन्तु यदि किसी को किसी व्यक्ति के बारे में पता हो कि 'इस व्यक्ति के साथ संगति करने से मुझमें अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं,' तो ऐसे व्यक्ति के साथ संगति करनी चाहिए। जब यह कहा गया कि, 'मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं: जिनसे संगति करनी चाहिए और जिनसे संगति नहीं करनी चाहिए,' तो इसी कारण ऐसा कहा गया।

---

55 परित्याग (परिहाना)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, कहा जाता है: 'एक व्यक्ति पतन के अधीन है, एक व्यक्ति पतन के अधीन है।' भगवान (बुद्ध) ने किस प्रकार कहा है कि एक व्यक्ति पतन के अधीन है, और किस प्रकार कहा है कि एक व्यक्ति पतन के अधीन नहीं है?"

"हे मित्र, हम दूर-दूर से पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। अच्छा होगा यदि वे इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें। [103] उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो फिर, मित्रों, ध्यान से सुनिए और गौर कीजिए। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने किस प्रकार कहा है कि मनुष्य पतन के अधीन है? यहाँ, एक भिक्षु को वह शिक्षा सुनने को नहीं मिलती जो उसने पहले न सुनी हो, वह उन शिक्षाओं को भूल जाता है जो वह पहले सुन चुका है, वह उन शिक्षाओं को याद नहीं करता जिनसे वह पहले से परिचित है, और वह उस बात को नहीं समझता जो उसने पहले नहीं समझी है। इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि मनुष्य पतन के अधीन है।" 2065

हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने किस प्रकार कहा है कि मनुष्य पतन के अधीन नहीं है? यहाँ, एक भिक्षु को एक ऐसा उपदेश सुनने को मिलता है जो उसने पहले नहीं सुना होता, वह उन उपदेशों को नहीं भूलता जो वह पहले सुन चुका होता है, वह उन उपदेशों को याद करता है जिनसे वह पहले परिचित होता है, और जो वह नहीं समझ पाया होता उसे समझ लेता है। इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि मनुष्य पतन के अधीन नहीं है।

"मित्रों, जो भिक्षु दूसरों के मन के तरीकों में कुशल नहीं है, उसे यह अभ्यास करना चाहिए: 'मैं अपने मन के तरीकों में कुशल बनूंगा।' इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"और हे मित्रों, भिक्षु अपने मन के मार्ग में कैसे निपुण होता है? यह ठीक वैसा ही है जैसे कोई स्त्री या पुरुष—युवा, जवान और आभूषणों का शौकीन—स्वच्छ और चमकदार दर्पण में या स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे: यदि उसे कोई धूल या दाग दिखाई दे, तो वह उसे हटाने का प्रयास करेगा। परन्तु यदि उसे कोई धूल या दाग दिखाई न दे, तो वह प्रसन्न होगा; [104] और अपनी इच्छा पूरी होने पर वह सोचेगा, 'कितना सौभाग्यशाली मैं हूँ कि मैं निर्मल हूँ!' इसी प्रकार आत्म-परीक्षण भिक्षु के लिए लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि करने में बहुत सहायक होता है।"

"[स्वयं से पूछना चाहिए:] (1) क्या मैं अक्सर लालसा से मुक्त रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (2) क्या मैं अक्सर द्वेष से मुक्त रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (3) क्या मैं अक्सर सुस्ती और आलस्य से मुक्त रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (4) क्या मैं अक्सर शांत रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (5) क्या मैं अक्सर संदेह से मुक्त रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (6) क्या मैं अक्सर क्रोध से मुक्त रहता हूँ? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (7) क्या मेरा मन अक्सर निर्मल रहता है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (8) क्या मुझे धम्म का आंतरिक आनंद प्राप्त होता है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (9) क्या मुझे मन की आंतरिक समता (समथा) प्राप्त होती है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं? (10) क्या मुझे घटनाओं में अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का उच्चतर पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त होता है? क्या यह गुण मुझमें विद्यमान है या नहीं?"

यदि आत्मनिरीक्षण के द्वारा किसी भिक्षु को अपने भीतर कोई भी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उपस्थित न दिखाई दे, तो उसे उन लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अटूट लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अटूट लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी उन लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, अटूट लगन, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयास करना चाहिए।

लेकिन यदि कोई भिक्षु आत्म-परीक्षण द्वारा अपने भीतर कुछ लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विद्यमान पाता है, परन्तु अन्य नहीं, [105] तो उसे अपने भीतर देखे गए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर उन लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा, प्रयास, उत्साह, उमंग, अथक परिश्रम, सती ध्यान और पूर्ण बोध का प्रयोग करना चाहिए जो वह अपने भीतर नहीं देखता। जैसे किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए तो वह अपने वस्त्र या सिर की आग बुझाने के लिए असाधारण इच्छा का प्रयोग

करता है, उसी प्रकार भिक्षु को अपने भीतर देखे गए लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर उन लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए असाधारण इच्छा का प्रयोग करना चाहिए जो वह अपने भीतर नहीं देखता।

लेकिन यदि कोई भिक्षु आत्म-परीक्षण के माध्यम से अपने भीतर इन सभी लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विद्यमान देखता है, तो उसे उन्हीं लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) पर आधारित होकर दोषों के नाश की ओर अग्रसर होने का प्रयास करना चाहिए।

---

56 (6) धारणाएँ (1) (सन्ना1 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये दस धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। 2066 वे दस कौन सी हैं? (1) अनाकर्षकता की अनुभूति, (2) मृत्यु की अनुभूति, (3) भोजन की अरुचि की अनुभूति, (4) संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, (5) अनित्यता की अनुभूति, (6) अनित्य में पीड़ा की अनुभूति, (7) पीड़ा में अनात्म की अनुभूति, (8) त्याग की अनुभूति, (9) वैराग्य की अनुभूति, और (10) समाप्ति की अनुभूति। ये दस धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अमत/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। [106]

---

57 धारणाएँ (2) (सन्न2 सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, ये दस धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अम्रता/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। वे दस कौन सी हैं? (1) अनित्यता (अनिच्छा/अनित्यता) की धारणा, (2) अनात्म की धारणा, (3) मृत्यु की धारणा, (4) भोजन की अरुचि की धारणा, (5) संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की धारणा, (6) कंकाल की धारणा, (7) कृमिग्रस्त शव की धारणा, (8) पीले पड़े शव की धारणा, (9) फटे हुए शव की धारणा, और (10) फूले हुए शव की धारणा। 2067 ये दस धारणाएँ (सन्ना/संज्ञा), जब विकसित और पोषित की जाती हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभकारी होती हैं, जो अमरता (अम्रता/अमृत) को लक्ष्य बनाकर अमरत्व की प्राप्ति की ओर ले जाती हैं।

---

58 मूल (मुलका)

भिक्षु (सन्यासी), अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछ सकते हैं: (1) 'हे मित्रों, समस्त वस्तुएँ किसमें निहित हैं? (2) वे किसके द्वारा अस्तित्व में आती हैं? (3) उनकी उत्पत्ति किससे होती है? (4) वे किस पर केंद्रित होती हैं? (5) वे किस ओर अग्रसर होती हैं? (6) उन पर किसका अधिकार है? (7) उनका पर्यवेक्षक कौन है? (8) उनका मूल क्या है? (9) वे किसमें समाहित होती हैं? (10) उनका लक्ष्य क्या है?' यदि आपसे इस प्रकार पूछा जाए, तो आप उन्हें क्या उत्तर देंगे?' 2068

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं (मठवासियों), यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'मित्रों, सभी चीजों की जड़ क्या है? ... [107] ... उनका लक्ष्य क्या है?' तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।

"मित्रों, (1) सभी वस्तुएँ इच्छा में निहित हैं। (2) वे ध्यान के माध्यम से अस्तित्व में आती हैं। (3) वे संपर्क से उत्पन्न होती हैं। (4) वे संवेदना (वेदना) में अभिसरित होती हैं। (5) वे समाधि (स्व-लीनता) द्वारा निर्देशित होती हैं। (6) सती (ध्यान) उन पर अधिकार रखती है। (7) दिव्य ज्ञान (पन्न) उनका मार्गदर्शक है। (8) मुक्ति उनका मूल है। (9) वे अमरता (अमृत) की अवस्था में परिणत होती हैं। (10) उनका लक्ष्य निर्वाण है।" 2069

"यदि आपसे इस प्रकार पूछा जाए, हे भिक्षुओं, तो आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इसी प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

59 त्याग की ओर जाना (पबज्जा सं. प्रवर्ज्या)

अत:, भिक्षुओं, आप स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करें: 'हमारे मन को हमारे संन्यास में प्रवेश करने की भावना के अनुरूप सुदृढ़ किया जाएगा और उत्पन्न होने वाले अकुशल गुण हमारे मन पर हावी नहीं होंगे। 2070 (1) हमारे मन को अनित्यता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सुदृढ़ किया जाएगा। (2) हमारे मन को अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सुदृढ़ किया जाएगा। (3) हमारे मन को अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सुदृढ़ किया जाएगा। (4) हमारे मन को खतरे की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सुदृढ़ किया जाएगा। (5) हम संसार के सम और विषम मार्गों को जानेंगे, 2071 और हमारे मन को इस अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में सुदृढ़ किया जाएगा। (6) हम संसार के उद्भव और विनाश को जानेंगे, 2072 और हमारा इस धारणा (सन्ना/संज्ञा) में मन मजबूत होंगे। (7) हम संसार की उत्पत्ति और उसके अंत को जानेंगे, और इस धारणा (सन्ना/संज्ञा) में हमारा मन मजबूत होगा। (8) त्याग की धारणा (सन्ना/संज्ञा) में हमारा मन मजबूत होगा। (9) वैराग्य की धारणा (सन्ना/संज्ञा) में हमारा मन मजबूत होगा। (10) निश्चिंतता की धारणा (सन्ना/संज्ञा) में हमारा मन मजबूत होगा। 2073 [108] इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

जब किसी भिक्षु का मन उसके संन्यास लेने की भावना के अनुरूप मजबूत हो जाता है, और उत्पन्न हुए बुरे (अकुशल) गुण उसके मन पर हावी नहीं होते — जब उसका मन अनित्यता की धारणा (सन्न/संज्ञा) में मजबूत हो जाता है... जब उसका मन निर्गमन की धारणा (सन्न/संज्ञा) में मजबूत हो जाता है, तो उसे दो में से एक फल प्राप्त होने की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि कोई अवशेष शेष रहता है, तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था (अनगामी)।

---

60 गिरिमानंद

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य गिरिमनंद बीमार और अत्यंत दुर्बल थे। 2074 तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

“भंते, पूज्य गिरिमनंद बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश उनसे मिलने आएं तो अच्छा होगा।”

“हे आनंद, यदि तुम भिक्षु गिरिमनंद के पास जाकर उनसे दस धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के बारे में बात करो, तो क्या यह संभव है कि उनके बारे में सुनकर उनका कष्ट तुरंत दूर हो जाए? वे दस कौन सी हैं? [109]

“[दस सही धारणाएं (सन्ना/संज्ञा) यानी] (1) अनित्यता की धारणा (सन्ना/सन्या), (2) गैर-स्वयं (अनात्ता) की धारणा (सन्ना/सन्या), (3) अनाकर्षकपन (अशुभ) की धारणा (सन्ना/सन्या), (4) खतरे की धारणा (आदिनव), (5) द परित्याग की धारणा(सन्ना/सन्या), (6) वैराग्य की धारणा(सन्ना/सन्या), (7) निरोध की धारणा(निरोध), (8) संपूर्ण संसार में गैर-खुशी की धारणा(सन्ना/सन्या), (9) सभी में अनित्यता की धारणा(सन्ना/सन्या), (अनिच्छा/अनित्य) वातानुकूलित घटनाएँ (संहार/संस्कार/भावनाएँ), और (10) श्वास (अनापान) की जागरूकता (ध्यान/सती)।

(1) "हे आनंद, अनित्यता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) क्या है? यहाँ, वन में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) अनित्य है, अपने गुण (संस्कार/संस्कार)

अनित्य हैं, चेतना अनित्य है।' इस प्रकार वह आसक्ति के अधीन इन पाँचों स्कंधों में अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) को निहारते हुए ध्यान लगाता है। इसे अनित्यता की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहते हैं।"

(2) "हे आनंद, अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) क्या है? यहाँ, वन में, वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं; कान अनात्म हैं, ध्वनियाँ अनात्म हैं; नाक अनात्म है, गंध अनात्म हैं; जीभ अनात्म है, स्वाद अनात्म हैं; शरीर अनात्म है, स्पर्शनीय वस्तुएँ अनात्म हैं; मन अनात्म है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं।' इस प्रकार वह इन छह आंतरिक और बाह्य इंद्रिय आधारों में अनात्म को निहारते हुए ध्यान करता है। इसे अनात्म की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहते हैं।"

(3) "और हे आनंद, अनाकर्षकता (असुभ) की अनुभूति (सन्ना/संग्य) क्या है? यहाँ, एक भिक्षु (साधु) इस शरीर का, पैरों के तलवों से ऊपर और बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे हुए, अनेक प्रकार की अशुद्धियों से परिपूर्ण रूप में अवलोकन करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मध्यमाला, पेट, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आँसू, चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।' इस प्रकार वह इस शरीर में अनाकर्षकता को ध्यानपूर्वक देखता है। इसे अनाकर्षकता की अनुभूति (सन्ना/संग्य) कहते हैं।"

(4) "और हे आनंद, खतरे (आदिनाव) की अनुभूति (सन्ना/संग्य) क्या है? यहाँ, जंगल में, किसी वृक्ष की तलहटी में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'यह शरीर बहुत पीड़ा [110] और खतरे का स्रोत है; क्योंकि इस शरीर में सभी प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, अर्थात् आँख का रोग, भीतरी कान का रोग, नाक का रोग, जीभ का रोग, शरीर का रोग, सिर का रोग, बाहरी कान का रोग, मुँह का रोग, दाँत का रोग, 2075 खाँसी, अस्थमा, मोतियाबिंद, ज्वर, बुखार, पेट दर्द, बेहोशी, पेचिश, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, फोड़े, एक्जिमा, तपेदिक, मिर्गी, दाद, खुजली, पपड़ी, चेचक, खुजली, रक्तस्राव, मधुमेह, बवासीर, कैंसर, फिस्टुला; पित्त, कफ, वात से उत्पन्न होने वाले रोग, या इनका संयोजन; जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न रोग; लापरवाही से उत्पन्न रोग; हमले से उत्पन्न रोग; या कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न रोग; तथा सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, शौच और पेशाब। इस प्रकार वह इस शरीर में खतरे को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है। इसे खतरे की अनुभूति (संज्ञा) कहा जाता है।

(5) "और हे आनंद, त्याग की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) क्या है? यहाँ, भिक्षु उत्पन्न कामुक विचार को सहन नहीं करता; वह उसका त्याग करता है, उसे दूर करता है, उसे समाप्त करता है और उसे मिटा देता है। वह द्वेष के विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के विचार को... बुरे हानिकारक (अकुशल) विचारों को जब भी वे उत्पन्न होते हैं; वह उनका त्याग करता है, उन्हें दूर करता है, उन्हें समाप्त करता है और उन्हें मिटा देता है। इसे ही त्याग की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) कहते हैं।"

(6) "और हे आनंद, वैराग्य की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) क्या है? यहाँ, वन में, वृक्ष की जड़ में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'यह शांतिदायक है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी कर्मों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निर्वाण।' इसे ही वैराग्य की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) कहते हैं। 2076

(7) "और हे आनंद, निरोध की अनुभूति (सन्न/संग्य) क्या है? यहाँ, वन में, किसी वृक्ष की जड़ में, या किसी खाली कुटिया में जाकर, एक भिक्षु इस प्रकार चिंतन करता है: 'यह शांतिदायक है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी कर्मों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, निश्चिंतता, निर्वाण।' इसे निश्चिंतता की अनुभूति (सन्न/संग्य) कहते हैं।"

(8) "और हे आनंद, समस्त संसार में अनासक्ति (सन्ना/संग्य) क्या है? यहाँ, एक भिक्षु संसार के संबंध में किसी भी प्रकार की आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठा और अंतर्निहित प्रवृत्तियों से दूर रहता है, उनसे आसक्त हुए बिना उनका त्याग करता है। इसे समस्त संसार में अनासक्ति (सन्ना/संग्य) कहा जाता है।"

(9) "और हे आनंद, समस्त बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) में अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) क्या है? यहाँ, भिक्षु समस्त बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) से विमुख, अपमानित और घृणा करता है। इसे समस्त बद्ध घटनाओं (धम्म) में अनित्यता (अनिच्छ/अनित्य) की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) कहते हैं।" 2078

(10) "और हे आनंद, श्वास (अनपान) की सती (ध्यान) क्या है? यहाँ, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने सती (ध्यान) स्थापित करके, वह सती (ध्यान) श्वास लेता है, सती (ध्यान) श्वास छोड़ता है।"

लंबी सांस लेते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी सांस लेता हूँ'; या लंबी सांस छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी सांस छोड़ता हूँ।' छोटी सांस लेते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी सांस लेता हूँ'; या छोटी सांस छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी सांस छोड़ता हूँ।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं सांस लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं सांस छोड़ूंगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक गतिविधि को शांत करते हुए, मैं सांस लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक गतिविधि को शांत करते हुए, मैं सांस छोड़ूंगा।'

वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पीति का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पीति का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक गतिविधि का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक गतिविधि का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक गतिविधि को शांत करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक गतिविधि को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। 2079

वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' [112] वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 2080

वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'समाप्ति को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'समाप्ति को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग को ध्यान में रखते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'।

इसे श्वास की सती (अनपान) कहा जाता है।

"हे आनंद, यदि तुम भिक्षु गिरिमनंद के पास जाकर उनसे इन दस धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के बारे में बात करो, तो संभव है कि उनके बारे में सुनकर वे तुरंत अपने कष्ट से उबर जाएं।"

फिर, जब पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से इन दस अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) का ज्ञान प्राप्त किया, तो वे पूज्य गिरिमानंद के पास गए और उनसे इनके बारे में बात की। जब पूज्य गिरिमानंद ने इन दस अनुभूतियों (सन्ना/संज्ञा) के बारे में सुना, तो उनका कष्ट तुरंत दूर हो गया। पूज्य गिरिमानंद उस कष्ट से मुक्त हो गए, और इस प्रकार वे अपने कष्ट से ठीक हो गए। [113]

द्वितीय. जोड़े अनुभाग (यमकवग्गा)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

61 अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)

"भिक्षुओं, यह कहा गया है: 'भिक्षुओं, अज्ञान का पहला बिंदु ऐसा नहीं देखा जाता कि इससे पहले कोई अज्ञान नहीं था और बाद में यह अस्तित्व में आया।' 2081 फिर भी, अज्ञान की एक विशिष्ट स्थिति देखी जाती है।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अज्ञान का भी पोषण होता है; 2082 यह पोषण रहित नहीं है। और अज्ञान का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पाँच अवरोध। मैं कहता हूँ, पाँच अवरोधों का भी पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं हैं। और पाँच अवरोधों का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: तीन प्रकार के दुराचार। मैं कहता हूँ, तीन प्रकार के दुराचारों का भी पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं हैं। और तीन प्रकार के दुराचारों का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: इंद्रियों का संयम न रखना। मैं कहता हूँ, इंद्रियों का संयम न रखना भी पोषण का स्रोत है; यह पोषण रहित नहीं है। और इंद्रियों के संयम न रखने का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: सचेतनता और पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभाव। सचेतनता (सती) और पूर्ण बोध का अभाव। मैं कहता हूँ, बोध का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं होता। और सती ध्यान और पूर्ण बोध की कमी का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: लापरवाही से ध्यान देना। मैं कहता हूँ, लापरवाही से ध्यान देना भी पोषक तत्वों से भरपूर होता है; यह पोषक तत्वों से रहित नहीं होता। और लापरवाही से ध्यान देने का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विश्वास की कमी। मैं कहता हूँ, विश्वास की कमी भी पोषक तत्वों से भरपूर होती है; यह पोषक तत्वों से रहित नहीं होता। और विश्वास की कमी का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अच्छे धर्म का न सुनना। मैं कहता हूँ, अच्छे धर्म का न सुनना भी पोषक तत्वों से भरपूर होता है; यह पोषक तत्वों से रहित नहीं होता। और अच्छे धर्म का न सुनने का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति न करना। 2083

इस प्रकार, अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति न करने से, जो परिपूर्ण हो जाता है, अच्छे धम्म को न सुनने की कमी पूरी हो जाती है। अच्छे धम्म को न सुनने से, जो परिपूर्ण हो जाता है, विश्वास की कमी पूरी हो जाती है। विश्वास की कमी से, जो परिपूर्ण हो जाती है, ध्यानहीनता पूरी हो जाती है। ध्यानहीनता पूरी हो जाने से, सती ध्यान और पूर्ण बोध की कमी पूरी हो जाती है। सती ध्यान और पूर्ण बोध (संपजन्न) की कमी पूरी हो जाने से, [114] इंद्रियों के असंयम की कमी पूरी हो जाती है। इंद्रियों के असंयम से, जो परिपूर्ण हो जाता है, तीन प्रकार के दुराचारों की पूर्ति हो जाती है। तीन प्रकार के दुराचारों से, जो परिपूर्ण हो जाते हैं, पाँच अवरोधों की पूर्ति हो जाती है। पाँच अवरोधों से, जो परिपूर्ण हो जाते हैं, अज्ञान की पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार अज्ञान के लिए पोषण होता है, और इस प्रकार वह परिपूर्ण हो जाता है।

जैसे, जब वर्षा होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी-मोटी बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी धाराओं को भर देता है; ये भरकर तालाबों को भर देते हैं; ये भरकर झीलों को भर देते हैं; ये भरकर नदियों को भर देते हैं; ये भरकर विशाल सागर को भर देते हैं; इस प्रकार विशाल सागर को पोषण मिलता है और इस तरह वह भर जाता है। ठीक उसी प्रकार, अच्छे व्यक्तियों की संगति न करना, अच्छे धर्म को न सुनने की कमी को पूरा करता है। . . . पाँच बाधाएँ, अज्ञान को पूरा करती हैं। इस प्रकार अज्ञान को पोषण मिलता है और इस तरह वह भर जाता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि (1) सच्चे ज्ञान और मुक्ति का पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं होते। और सच्चे ज्ञान और मुक्ति का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (2) ज्ञान के सात कारक। मैं कहता हूँ कि ज्ञान के सात कारकों का भी पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं होते। और ज्ञान के सात कारकों का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (3) ध्यान की चार अवस्थाएँ (सती)। मैं कहता हूँ कि ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का भी पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं होते। और ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (4) तीन प्रकार के अच्छे आचरण। मैं कहता हूँ कि तीन प्रकार के अच्छे आचरण का भी पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं होते। और तीन प्रकार के अच्छे आचरण का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (5) संयम। इंद्रिय-सम्पत्तियों पर नियंत्रण। मैं कहता हूँ, इंद्रिय-सम्पत्तियों पर नियंत्रण का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और इंद्रिय-सम्पत्तियों पर नियंत्रण का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (6) सती ध्यान और पूर्ण बोध। मैं कहता हूँ, सती ध्यान और पूर्ण बोध का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और सती ध्यान और पूर्ण बोध का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (7) सजग ध्यान। मैं कहता हूँ, सजग ध्यान का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और सजग ध्यान का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (8) विश्वास। मैं कहता हूँ,

विश्वास का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और विश्वास का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (9) श्रवण। अच्छा धम्म। मैं कहता हूँ कि अच्छे धम्म को सुनने से भी पोषण मिलता है; यह पोषण रहित नहीं है। और अच्छे धम्म को सुनने का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (10.) अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति करना।

इस प्रकार, अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति करने से, परिपूर्णता प्राप्त होती है, जिससे अच्छे धम्म का श्रवण परिपूर्ण होता है। अच्छे धम्म का श्रवण करने से, परिपूर्णता प्राप्त होती है, जिससे विश्वास परिपूर्ण होता है। विश्वास परिपूर्ण होने से, ध्यानमग्नता (सती) और पूर्ण बोध (संपजन्न) परिपूर्ण होता है। ध्यानमग्नता (सती) और पूर्ण बोध (संपजन्न) परिपूर्ण होने से, इंद्रियों के संयम को परिपूर्ण करते हैं। इंद्रियों के संयम से परिपूर्ण होने से, तीन प्रकार के अच्छे आचरण परिपूर्ण होते हैं। तीन प्रकार के अच्छे आचरण परिपूर्ण होने से, ध्यानमग्नता (सती) के चार आधार परिपूर्ण होते हैं। ध्यानमग्नता (सती) के चार आधार परिपूर्ण होने से, ज्ञान के सात कारक परिपूर्ण होते हैं। ज्ञान के सात कारक परिपूर्ण होने से, सच्चे ज्ञान और मुक्ति को परिपूर्ण करते हैं। इस प्रकार सच्चे ज्ञान और मुक्ति के लिए पोषण प्राप्त होता है, और इस प्रकार वे परिपूर्ण होते हैं।

जैसे, जब वर्षा होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी बूंदों के रूप में पानी बरसता है, तो वह ढलान से नीचे बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; ये भरकर तालाबों को भर देते हैं; ये भरकर झीलों को भर देते हैं; ये भरकर धाराओं को भर देते हैं; ये भरकर नदियों को भर देते हैं; और ये भरकर [116] विशाल सागर को भर देते हैं; इस प्रकार विशाल सागर को पोषण मिलता है और इस तरह वह भर जाता है। उसी प्रकार, अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति करने से, अच्छे धम्म को सुनने से पोषण मिलता है। . . .ज्ञान के सात कारक, पूर्ण होकर, सच्चे ज्ञान और मुक्ति को भर देते हैं। इस प्रकार सच्चे ज्ञान और मुक्ति को पोषण मिलता है और इस तरह वे पूर्ण हो जाते हैं।

---

62 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है: 'हे भिक्षुओं, अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का पहला बिंदु ऐसा नहीं देखा जाता है कि इससे पहले अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए कोई तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) नहीं थी और बाद में यह अस्तित्व में आई।' फिर भी, अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) एक विशिष्ट स्थिति से जुड़ी हुई देखी जाती है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और अस्तित्व (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अज्ञान। मैं कहता हूँ कि अज्ञान का भी पोषण होता है; यह पोषण रहित नहीं है। और अज्ञान का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पाँच बाधाएँ [जैसा कि 10:61 में है] [117]। और अच्छे धम्म को न सुनने का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति न करना...

इस प्रकार, अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति न करने से, परिपूर्णता प्राप्त होती है, जो अच्छे धर्म को न सुनने की कमी को पूरा करती है। . . . पाँच अवरोधों से परिपूर्णता प्राप्त करने से अज्ञान भर जाता है। अज्ञान से परिपूर्णता प्राप्त करने से अस्तित्व की लालसा (तन्हा/तृष्णा) (भावो/पुनर्जन्म का कारण) भर जाती है। इस प्रकार अस्तित्व की लालसा (तन्हा/तृष्णा) (भावो/पुनर्जन्म का कारण) के लिए पोषण प्राप्त होता है, और इस प्रकार यह परिपूर्ण हो जाती है।

जैसे, जब वर्षा होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी बूँदों के रूप में पानी बरसता है, तो वह ढलान से नीचे बहता है... [118]... और नदियाँ भरकर विशाल सागर को भर देती हैं; इस प्रकार विशाल सागर को पोषण मिलता है और वह भर जाता है। उसी प्रकार, अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति न करना, अच्छे धर्म को न सुनने की कमी को पूरा करता है... और अज्ञान, अस्तित्व की लालसा (तन्हा/तृष्णा) को पूरा करता है। इस प्रकार अस्तित्व की लालसा (तन्हा/तृष्णा) को पोषण मिलता है और वह भर जाती है।

मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि (1) सच्चे ज्ञान और मुक्ति का पोषण होता है; वे पोषण रहित नहीं होते। और सच्चे ज्ञान और मुक्ति का पोषण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (2) ज्ञानोदय के सात कारक। . . . मैं कहता हूँ, अच्छे धर्म का श्रवण भी पोषण रखता है; वह पोषण रहित नहीं होता। और अच्छे धर्म का श्रवण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: (10) अच्छे व्यक्तियों की संगति।

"इस प्रकार अच्छे व्यक्तियों के साथ संगति करने से, परिपूर्णता प्राप्त होती है, और अच्छे धम्म को सुनने से परिपूर्णता प्राप्त होती है — [119] ज्ञान के सात कारक, परिपूर्णता प्राप्त करने से, सच्चे ज्ञान और मुक्ति को परिपूर्ण करते हैं। इस प्रकार सच्चे ज्ञान और मुक्ति के लिए पोषण प्राप्त होता है, और इस प्रकार वे परिपूर्ण हो जाते हैं।"

जैसे, जब वर्षा होती है और पहाड़ की चोटी पर मोटी-मोटी बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता है... और नदियाँ भरकर विशाल सागर को भर देती हैं; इस प्रकार विशाल सागर को पोषण मिलता है और वह भर जाता है। ठीक उसी प्रकार, अच्छे व्यक्तियों की संगति करने से, अच्छे धर्म का श्रवण परिपूर्ण हो जाता है... ज्ञान के सात कारक परिपूर्ण होकर सच्चे ज्ञान और मुक्ति को परिपूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार सच्चे ज्ञान और मुक्ति को पोषण मिलता है और वे परिपूर्ण हो जाते हैं।

---

63 निश्चितता (नित्थंगता)

भिक्षुओं, वे सभी जिन्होंने मेरे बारे में निश्चितता प्राप्त कर ली है, दृष्टि में सिद्ध हो चुके हैं। दृष्टि में सिद्ध हो चुके लोगों में से पाँच इस संसार में ही लक्ष्य प्राप्त करते हैं; 2084 पाँच इस संसार को छोड़कर लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

"इस संसार में ही लक्ष्य प्राप्त करने वाले पाँच कौन हैं? [120] अधिकतम सात बार प्राप्त करने वाला, कुल-कुल प्राप्त करने वाला, एक बीज प्राप्त करने वाला, एक बार जन्म लेने वाला (1 पुनर्जन्म, सकदागामी), और जो इसी जीवन में अरहंत हो। ये पाँच इस संसार में ही लक्ष्य प्राप्त करते हैं।"

"वे पाँच कौन हैं जो इस संसार को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं? अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला, उतरते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला, प्रयास से निर्वाण प्राप्त करने वाला, और अंत में नदी के विपरीत दिशा में छलांग लगाकर अकनित्थ लोक की ओर जाने वाला। 2086 ये पाँचों इस संसार को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जिन्होंने मेरे बारे में निश्चितता प्राप्त कर ली है, वे सिद्ध दृष्टि वाले हैं। सिद्ध दृष्टि वालों में से पहले पाँच को इसी संसार में लक्ष्य प्राप्त होता है; शेष पाँच को इस संसार को छोड़कर लक्ष्य प्राप्त होता है।"

---

64 अविचलित (Aveccappasanna)

भिक्षुओं, जो मुझमें अटूट विश्वास रखते हैं, वे सभी सात जन्मों में जन्म लेने वाले (सोतपत्ति) हैं। उन सात जन्मों में जन्म लेने वालों में से पाँच इसी संसार में अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं; पाँच इस संसार को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

"इस संसार में ही लक्ष्य को प्राप्त करने वाले पाँच कौन हैं? अधिकतम सात बार प्राप्ति करने वाला, कुल-कुल प्राप्ति करने वाला, एक बीज प्राप्ति करने वाला, एक बार जन्म लेने वाला (एक पुनर्जन्म, सकदागामी), और जो इसी जीवन में अरहंत हो। ये पाँचों ही इस संसार में लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।"

"वे पाँच कौन हैं जो इस संसार को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं? अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला, उतरते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला, प्रयास से निर्वाण प्राप्त करने वाला, और एक जो नदी के विपरीत दिशा में छलांग लगाकर अकनित्थ लोक की ओर जाता है। ये पाँचों इस संसार को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जो मुझ पर अटूट विश्वास रखते हैं, वे सात जन्मों में जन्म लेने वाले (सोतपत्ति) हैं। इन सात जन्मों में से पहले पाँच को इसी संसार में अपना लक्ष्य प्राप्त होता है; और अंतिम पाँच को इस संसार को छोड़कर अपना लक्ष्य प्राप्त होता है।"

---

65 सुख (1) (सुख1)

एक बार पूज्य सारिपुत्त नलकगमक में मगधियों के बीच निवास कर रहे थे। तब तपस्वी समंदकनी [121] पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"मित्र सारिपुत्त, सुख क्या है? दुख क्या है?"

"मित्र, पुनर्जन्म दुखदायी है। पुनर्जन्म सुखदायी नहीं होता। जब पुनर्जन्म होता है, तो ये दुख अपेक्षित होते हैं: ठंड, गर्मी, भूख, प्यास, शौच और पेशाब की तकलीफ; आग, लाठी या चाकू से पीड़ा; और रिश्तेदार और दोस्त मिलकर डांटते हैं। जब पुनर्जन्म होता है, तो ये दुख अपेक्षित होते हैं।"

जब पुनर्जन्म नहीं होता, तब इस सुख की अपेक्षा की जा सकती है: न सर्दी, न गर्मी, न भूख, न प्यास, न शौच, न पेशाब; न आग, लाठी या चाकू से पीड़ा; और रिश्तेदार और दोस्त मिलकर डांटते नहीं। जब पुनर्जन्म नहीं होता, तब इस सुख की अपेक्षा की जा सकती है।

---

66 सुख (2) (सुख2)

एक बार पूज्य सारिपुत्त नलकगमक में मगधियों के बीच निवास कर रहे थे। तब तपस्वी समंदकनी पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए [122] और पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"मित्र सारिपुत्त, इस धम्म और अनुशासन में सुख क्या है और दुख क्या है?"

"मित्र, इस धम्म और अनुशासन में असंतोष ही दुख है। आनंद ही सुख है। असंतोष होने पर यह दुख स्वाभाविक है। (1) चलते समय सुख या आराम नहीं मिलता। (2) स्थिर खड़े रहने पर... (3) बैठे रहने पर... (4) लेटे रहने पर... (5) गाँव में... (6) जंगल में... (7) वृक्ष की तलहटी में... (8) खाली कुटिया में... (9) खुले आकाश में... (10) भिक्षुओं के बीच रहने पर सुख या आराम नहीं मिलता। असंतोष होने पर यह दुख स्वाभाविक है।"

जब आनंद होता है, तो यह खुशी अपेक्षित होती है। (1) चलते समय, सुख और आराम मिलता है। (2) स्थिर खड़े रहने पर... (3) बैठे रहने पर... (4) लेटे रहने पर... (5) गाँव में... (6) जंगल में... (7) पेड़ की तलहटी में... (8) खाली कुटिया में... (9) खुली हवा में... (10) भिक्षुओं के बीच रहने पर, सुख या आराम मिलता है। जब आनंद होता है, तो यह खुशी अपेक्षित होती है।

---

67 नलकपना (1)

एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे, जब वे नलकपना नामक कोसल नगर पहुँचे। नलकपना में भगवान (बुद्ध) एक पलाश के वन में निवास करने लगे। उस दिन, उपोसथ के दिन, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ से घिरे बैठे थे। उन्होंने रात भर भिक्षुओं के संघ को धर्मोपदेश देकर, प्रोत्साहित करके, प्रेरित करके और प्रसन्न करके, और पूर्णतया मौन भिक्षुओं के संघ का अवलोकन करने के बाद, भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित किया: "सारिपुत्त, भिक्षुओं का संघ सुस्ती और आलस्य से मुक्त है। भिक्षुओं को धर्मोपदेश दीजिए। मेरी कमर में दर्द हो रहा है, इसलिए मैं थोड़ा खिंचाव करूँगा।"

"हाँ, भंते," आदरणीय सारिपुत्त ने उत्तर दिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़ा और सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखते हुए, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध में लीन होकर, उठने के विचार को मन में धारण किया। तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

मित्रों, जो व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास नहीं रखता, जिसमें नैतिक लज्जा का भाव नहीं है... जिसमें नैतिक भय नहीं है... जिसमें ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं है... जिसमें लाभकारी (कुशल) गुणों के विकास का पन्ना (दिव्य ज्ञान) नहीं है, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित है। जैसे कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे रात हो या दिन, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई और चमक, व्यास और परिधि में केवल गिरावट ही होती है, उसी प्रकार, जो व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास... पन्ना (दिव्य ज्ञान) नहीं रखता, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों में वृद्धि नहीं बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित है।

(1) "विश्वासहीन व्यक्ति", मित्रों: यह पतन का मामला है। (2) "नैतिक रूप से निर्लज्ज व्यक्ति"... (3) "नैतिक रूप से लापरवाह व्यक्ति"... (4) "आलसी व्यक्ति"... (5) "नासमझ व्यक्ति"... (6) "क्रोधित व्यक्ति"... (7) "शत्रुतापूर्ण व्यक्ति"... (8) "बुरी इच्छाओं वाला व्यक्ति"... (9) "बुरे मित्रों वाला व्यक्ति"... (10) "गलत विचार रखने वाला व्यक्ति": यह पतन का मामला है।

"मित्रों, जो लाभकारी (कुशल) गुणों के विकास में विश्वास रखता है, जो नैतिक लज्जा रखता है... जो नैतिक भय रखता है... जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) रखता है... [124] जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में पन्ना (दिव्य ज्ञान) रखता है, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, गिरावट नहीं। जैसे शुक्ल पक्ष में, चाहे रात हो या दिन, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई और चमक, व्यास और परिधि में वृद्धि ही होती है, उसी प्रकार, जो लाभकारी (कुशल) गुणों के विकास में विश्वास (दिव्य ज्ञान) रखता है, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, गिरावट नहीं।"

(1) "'आस्थावान व्यक्ति,' मित्रों: यह पतन न होने का उदाहरण है। (2) 'नैतिक लज्जा का भाव रखने वाला व्यक्ति'... (3) 'नैतिक भय से ग्रस्त व्यक्ति'... (4) 'ऊर्जावान व्यक्ति'... (5) 'बुद्धिमान व्यक्ति'... (6) 'क्रोधहीन व्यक्ति'... (7) 'शत्रुताहीन व्यक्ति'... (8) 'बुरी इच्छाओं से रहित व्यक्ति'... (9) 'अच्छे मित्रों वाला व्यक्ति'... (10) 'सही दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति': यह पतन न होने का उदाहरण है।"

तब भगवान (बुद्ध) उठे और पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए बोले, "अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के प्रति आस्था नहीं रखता... [बुद्ध यहाँ सारिपुत्त के पूरे प्रवचन को दोहराते हैं:] [125] ... (10) 'सही दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति': यह पतन न होने का मामला है।"

---

68 नलकपना (2)

[10:67 से शुरू होकर नीचे तक:] [126]

तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

मित्रों, जो (1) लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास नहीं रखता, (2) नैतिक लज्जा का बोध नहीं रखता... (3) नैतिक भय नहीं रखता... (4) ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) नहीं रखता... (5) दिव्य ज्ञान नहीं रखता... (6) ध्यान से नहीं सुनता... (7) धम्म को मन में नहीं रखता... (8) अर्थ की जांच नहीं करता... (9) धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता... (10) लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में सचेत नहीं रहता, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं बल्कि केवल गिरावट ही अपेक्षित है। ठीक वैसे ही, कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे रात हो या दिन बीतता है, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई और चमक, व्यास और परिधि में केवल कमी आती है, ठीक वैसे ही, जो व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास नहीं रखता... जो व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में सचेत नहीं रहता, उसके लिए चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में वृद्धि नहीं बल्कि केवल कमी ही अपेक्षित है।

"मित्रों, जो (1) लाभकारी (कुशल) गुणों के विकास में विश्वास रखता है, (2) नैतिक लज्जा रखता है... (3) नैतिक भय रखता है... (4) ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) रखता है... (5) दिव्य ज्ञान रखता है... (6) ध्यान से सुनता है... (7) धम्म को मन में रखता है... (8) अर्थ की जांच करता है... (9) धम्म के अनुसार अभ्यास करता है... (10) लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में सचेत रहता है, चाहे रात हो या

दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, गिरावट नहीं। जैसे, [127] शुक्ल पक्ष के दौरान, चाहे रात हो या दिन, चंद्रमा की सुंदरता, गोलाई और चमक में केवल वृद्धि ही होती है, व्यास और परिधि, ठीक वैसे ही, जो व्यक्ति लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास रखता है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में सतर्कता बरतने से, चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, गिरावट नहीं।

तब भगवान (बुद्ध) उठे और पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए बोले, "शाबाश, शाबाश, सारिपुत्त! सारिपुत्त, जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) के विकास में विश्वास नहीं रखता... [बुद्ध यहाँ सारिपुत्त के पूरे प्रवचन को दोहराते हैं:] [128] ... चाहे रात हो या दिन, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, गिरावट नहीं।"

चर्चा के 69 विषय (1) (कथावत्थु1 सं. कथावस्तु)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, कई भिक्षु सभा भवन में एकत्रित हुए और एक साथ बैठकर तरह-तरह की निरर्थक बातें कर रहे थे, जैसे: राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें; सेनाओं, खतरों और युद्धों के बारे में बातें; भोजन, पेय, वस्त्र और बिस्तरों के बारे में बातें; मालाओं और सुगंधों के बारे में बातें; रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, कस्बों, शहरों और देशों के बारे में बातें; स्त्रियों और वीरों के बारे में बातें; गली-मोहल्ले की बातें और कुएँ के पास की बातें; दिवंगत आत्माओं के बारे में बातें; विविध विषय; संसार और समुद्र के बारे में अटकलें; यह या वह बनने के बारे में बातें।

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में जाकर तैयार आसन पर बैठ गए। फिर भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"भिक्षुओं, आप लोग अभी यहाँ एक साथ बैठे हुए किस चर्चा में लगे हुए थे? आपके बीच क्या बातचीत चल रही थी?"

"भंते, यहाँ भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, हम सभा भवन में एकत्रित हुए और एक साथ बैठकर तरह-तरह की निरर्थक बातें कर रहे थे, अर्थात्: राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें... यह या वह बनने के बारे में बातें।"

"भिक्षुओं (मठवासियों), हे कुल के लोगों, जो आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले गए हैं, तुम्हारे लिए विभिन्न प्रकार की व्यर्थ बातों में संलग्न होना उचित नहीं है, अर्थात् राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें करना... यह या वह बनने के बारे में बातें करना।"

भिक्षुओं, चर्चा के ये दस विषय हैं। कौन से दस? इच्छाओं की कमी, संतोष, एकांत, दूसरों से बंधे न रहना, ऊर्जा का संचार (प्रयास/वीर्य), सद्गुणी आचरण, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), पन्ना (दिव्य ज्ञान), मुक्ति, और मुक्ति के ज्ञान एवं दर्शन (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) पर चर्चा। ये चर्चा के दस विषय हैं।

"हे भिक्षुओं, यदि आप इन दस विषयों में से किसी पर भी चर्चा करें, तो आपकी महिमा सूर्य और चंद्रमा की महिमा से भी अधिक हो सकती है, चाहे वे कितने भी शक्तिशाली और बलिष्ठ क्यों न हों, अन्य संप्रदायों के तपस्वियों की महिमा से तो कहीं अधिक होगी!"

चर्चा के 70 विषय (2) (कथावत्थु2 सं. कथावस्तु)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर, भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, कई भिक्षु सभा भवन में एकत्रित हुए और एक साथ बैठकर तरह-तरह की निरर्थक बातें कर रहे थे, अर्थात्: राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें... यह या वह बनने के बारे में बातें। 2088

"भिक्षुओं (मठवासियों), प्रशंसा के ये दस आधार हैं। वे दस कौन से हैं? [130]

(1) "यहाँ, एक भिक्षु स्वयं कम इच्छाओं वाला है और भिक्षुओं को कम इच्छाओं के विषय पर उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं कम इच्छाओं वाला है और भिक्षुओं को कम इच्छाओं के विषय पर उपदेश देता है।'"

(2) "वह स्वयं संतुष्ट है और भिक्षुओं को भी संतोष के विषय में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का एक आधार है: 'भिक्षु स्वयं संतुष्ट है।'"

(3) "वह स्वयं एकांतवास में लीन रहता है और भिक्षुओं को एकांतवास के विषय में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं एकांतवास में लीन रहता है...'।"

(4) "वह स्वयं दूसरों से बंधा हुआ नहीं है और भिक्षुओं को भी दूसरों से बंधा हुआ न होने के बारे में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं दूसरों से बंधा हुआ नहीं है...'"

(5) "वह स्वयं ऊर्जावान है और भिक्षुओं को ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने के लिए प्रेरित करता है। यह प्रशंसा का आधार है: 'भिक्षु स्वयं ऊर्जावान है। . . .'"

(6) "वह स्वयं सदाचार में निपुण है और भिक्षुओं को सदाचार में निपुणता (संपदा) के विषय में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं सदाचार में निपुण है।...'"

(7) "वह स्वयं समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में सिद्ध हैं और समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में सिद्धि (संपदा) पर भिक्षुओं से बात करते हैं। यह प्रशंसा का आधार है: 'भिक्षु स्वयं समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) में सिद्ध हैं।...'"

(8) "वह स्वयं पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्ध है और भिक्षुओं को पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्धि (संपदा) के विषय में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं पन्ना (दिव्य ज्ञान) में सिद्ध है।'"

(9) "वह स्वयं मोक्ष में सिद्ध हो चुका है और भिक्षुओं को मोक्ष में संपदा (सिद्धि) के विषय में उपदेश देता है। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं मोक्ष में सिद्ध हो चुका है। . . .'"

(10) "वह स्वयं मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में सिद्ध है और भिक्षुओं को मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में सिद्धि (संपदा) के विषय में उपदेश देता है (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)। यह प्रशंसा का विषय है: 'भिक्षु स्वयं मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में सिद्ध है और भिक्षुओं को मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में सिद्धि के विषय में उपदेश देता है (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)।'"

"भिक्षुओं, ये प्रशंसा के दस आधार हैं।"

तृतीय. इच्छा अनुभाग (अकांखवग्गो सं. आकांक्षावर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

71 विश [2039] (आकांक्षा सं. आकांक्षा)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, सदाचारी आचरण का पालन करो और पतिमोक्ख का ध्यान रखो। पतिमोक्ख से संयमित रहो, अच्छे आचरण और आश्रय का पालन करो, छोटी-छोटी गलतियों में भी खतरा देखो। उन्हें स्वीकार करने के बाद, प्रशिक्षण नियमों का पालन करो।

(1) "यदि कोई भिक्षु यह चाहे: 'मैं अपने साथी भिक्षुओं को प्रसन्न और सहमत कर सकूँ, उनका आदरणीय और सम्मानित बनूँ, तो उसे सद्गुणी आचरण का पालन करना चाहिए, मन की आंतरिक समता (समाथा) के प्रति समर्पित रहना चाहिए, ध्यान (तल्लीनता) की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अंतर्दृष्टि (विपश्यना) से युक्त होना चाहिए और एकांत कुटियाओं का सहारा लेना चाहिए।

(2) "यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मुझे वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास, औषधियाँ और बीमारों के लिए भोजन सामग्री प्राप्त हो, तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और खाली झोपड़ियों में शरण लेनी चाहिए।

(3) "यदि कोई भिक्षु यह चाहे: 'जिनके वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन मैं उपयोग करता हूँ, उनकी सेवाएँ उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी हों,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और खाली कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।

(4) "यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: [132] 'जब मेरे दिवंगत रिश्तेदार और परिवार के सदस्य, मृत्यु के बाद, मुझे अपने मन में विश्वास के साथ याद करें, तो यह उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी हो,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और खाली कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।

(5) "यदि कोई भिक्षु चाहे: 'मुझे किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास, और बीमारों के लिए दवाइयाँ और भोजन सामग्री से संतुष्ट रहना चाहिए,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और खाली झोपड़ियों में शरण लेनी चाहिए।"

(6) यदि कोई भिक्षु यह कामना करे: 'मैं धीरजपूर्वक सर्दी और गर्मी; भूख और प्यास; मक्खियों, मच्छरों, हवा, जलते सूरज और सर्पों के संपर्क; और अभद्र और अपमानजनक वाणी को सहन कर सकूँ। मैं उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) को सहन कर सकूँ जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायी, अप्रिय और जीवन शक्ति को क्षीण करने वाली हों,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए ... और एकांत कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।

(7) "यदि कोई भिक्षु यह कामना करे: 'मैं असंतोष और प्रसन्नता पर विजय प्राप्त करने वाला बनूँ, और असंतोष और प्रसन्नता मुझे पराजित न कर सकें। जब भी असंतोष और प्रसन्नता उत्पन्न हों, मैं उन पर विजय प्राप्त कर सकूँ,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और एकांत कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।"

(8) "यदि कोई भिक्षु यह कामना करे: 'मैं भय और आतंक को पराजित करने वाला बनूँ, और भय और आतंक मुझे पराजित न कर सकें। जब भी भय और आतंक उत्पन्न हों, मैं उन पर विजय प्राप्त कर सकूँ,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और एकांत कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।"

(9) "यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं इस जीवन में ही उच्च मन के चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाओं) को बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से प्राप्त कर सकूँ,' तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए... और खाली कुटियाओं में शरण लेनी चाहिए।"

(10) "यदि कोई भिक्षु यह कामना करे: 'मैं दोषों के नाश के साथ, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति [133] का अनुभव करूँ, और उसमें प्रवेश करके उसमें निवास करूँ', तो उसे सद्गुणपूर्ण आचरण का पालन करना चाहिए, मन की आंतरिक समता (समथा) के प्रति समर्पित रहना चाहिए, ध्यान (तंद्रा) की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अंतर्दृष्टि (विपश्यना) से युक्त होना चाहिए, और खाली कुटियाओं का सहारा लेना चाहिए।

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, सदाचारी आचरण का पालन करो और पतिमोक्ख का पालन करो; पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहो, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त रहो, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखो; उन्हें स्वीकार करने के बाद, प्रशिक्षण नियमों का पालन करो,' तो इसी कारण से यह कहा गया था।"

---

72 कांटे (कंटका)

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में कई प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्यों के साथ निवास कर रहे थे: पूज्य चाला, पूज्य उपकला, पूज्य कक्कटा, पूज्य कटिम्भा, पूज्य काटा, पूज्य कटिस्संग और अन्य बहुत प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्य।

उस अवसर पर कई प्रसिद्ध लिच्छवी भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने के लिए महान वन में प्रवेश कर चुके थे, और वे अपने उत्तम रथों में एक-दूसरे के पीछे चलते हुए शोर मचा रहे थे। तब उन पूजनीयों को यह विचार आया: "कई प्रसिद्ध लिच्छवी भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने के लिए महान वन में प्रवेश कर चुके हैं, और वे अपने उत्तम रथों में एक-दूसरे के पीछे चलते हुए शोर मचा रहे हैं। भगवान (बुद्ध) ने शोर को ध्यान (सम्मोहन अवस्था) का कांटा कहा है। चलो हम गोसिंगा साल के वन में चलें। [134] वहाँ हम बिना शोर और भीड़भाड़ के शांति से रह सकते हैं।" तब वे पूजनीय गोसिंगा साल के वन में चले गए, जहाँ वे बिना शोर और भीड़भाड़ के शांति से रहे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, चाला कहाँ है? उपाकला कहाँ है? कक्कटा कहाँ है? कटिम्भ कहाँ है? काटा कहाँ है? कटिस्संग कहाँ है? वे वरिष्ठ शिष्य कहाँ चले गए हैं?"

"भंते, उन पूजनीय लोगों के मन में यह विचार आया: 'कई प्रसिद्ध लिच्छवी... शोर-शराबा कर रहे हैं... चलो हम गोसिंगा साल के जंगलों में चलते हैं, जहाँ हम बिना शोर और भीड़भाड़ के शांति से रह सकते हैं।' इसलिए वे गोसिंगा साल के जंगलों में चले गए, जहाँ वे बिना शोर और भीड़भाड़ के शांति से रहते हैं।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! उन महान शिष्यों ने बिल्कुल सही कहा था जब मैंने शोर को ध्यान (सम्मोहन अवस्था) का कांटा कहा था। भिक्षुओं, ये दस कांटे हैं। कौन से दस? (1) संगति में आनंद लेना एकांत में आनंद लेने वाले के लिए कांटा है। (2) आकर्षक वस्तु की खोज करना अनाकर्षक के चिह्न पर ध्यान करने वाले के लिए कांटा है। (3) अनुपयुक्त प्रदर्शन इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करने वाले के लिए कांटा है। (4) स्त्रियों की संगति ब्रह्मचर्य जीवन का कांटा है। (5) शोर प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) का कांटा है। (6) विचार और परीक्षण द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) का कांटा हैं। (7) परमानंद (पीति) तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) का कांटा है। (8) श्वास लेना और छोड़ना चतुर्थ ध्यान का कांटा है। (9) अनुभूति (सन्ना/संग्य) और वेदना (संवेदना) अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) और वेदना (संवेदना) के निवारण की प्राप्ति में कांटा है। (10) राग (काम) कांटा है, घृणा (विरोध) कांटा है, और मोह (मोह) कांटा है। भिक्षुओं, कांटों से मुक्त रहो! कांटों से मुक्त रहो! अरहंत कांटों से मुक्त हैं। अरहंत कांटों से रहित हैं। अरहंत कांटों से मुक्त और कांटों से रहित हैं।

---

73 वांछित (इत्थधम्म सं. इच्छा-धर्म)

भिक्षुओं, ये दस ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन हैं, और जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं। वे दस वस्तुएँ कौन सी हैं? (1) धन की कामना की जाती है, जो मनभावन है, और जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है। (2) सौंदर्य... (3) स्वास्थ्य... (4) सदाचार... (5) ब्रह्मचर्य... (6) मित्र... (7) विद्या... (8) पन्ना (दिव्य ज्ञान)... (9) अच्छे गुण... (10) स्वर्ग की कामना की जाती है, जो मनभावन है, और जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती है। [136] ये दस वस्तुएँ हैं जिनकी कामना की जाती है, जो मनभावन हैं, और जो संसार में दुर्लभ रूप से प्राप्त होती हैं।

भिक्षुओं, दस अन्य बातें हैं जो संसार में अत्यंत वांछनीय, मनभावन और दुर्लभ रूप से प्राप्त होने वाली इन दस चीजों के मार्ग में बाधक हैं। (1) आलस्य और पहल की कमी धन प्राप्ति में बाधक हैं। (2) स्वयं को अलंकृत और संवारना न करना सौंदर्य में बाधक है। (3) अपंग कर्म करना स्वास्थ्य में बाधक है। (4) बुरी मित्रता सद्‌गुणों में बाधक है। (5) इंद्रियों पर संयम न रखना ब्रह्मचर्य में बाधक है। (6) कपटपूर्ण व्यवहार मित्रता में बाधक है। (7) पाठ न करना विद्या में बाधक है। (8) सुनने की अनिच्छा और प्रश्न न पूछना ज्ञान (दिव्य ज्ञान) में बाधक हैं। (9) स्वयं को न लगाना और चिंतन का अभाव अच्छे गुणों में बाधक हैं। (10) कुकर्म स्वर्ग प्राप्ति में बाधक है। ये दस अन्य बातें हैं जो संसार में वांछनीय, मनभावन इन दस चीजों के मार्ग में बाधक हैं। सुखद, और दुनिया में दुर्लभ रूप से प्राप्त होने वाला।

भिक्षुओं, दस अन्य बातें हैं जो संसार में वांछनीय, वांछित, सुखद और दुर्लभ रूप से प्राप्त होने वाली इन दस चीजों के लिए पोषण प्रदान करती हैं। (1) परिश्रम और पहल धन प्राप्ति के लिए पोषण प्रदान करते हैं। (2) स्वयं को संवारना और सुंदर बनाना सौंदर्य के लिए पोषण प्रदान करता है। (3) लाभकारी कार्य करना स्वास्थ्य के लिए पोषण प्रदान करता है। (4) अच्छी मित्रता सद्गुणी आचरण के लिए पोषण प्रदान करती है। (5) इंद्रियों पर संयम रखना ब्रह्मचर्य के लिए पोषण प्रदान करता है। (6) ईमानदारी मित्रता के लिए पोषण प्रदान करती है। (7) पाठ करना विद्या के लिए पोषण प्रदान करता है। (8) सुनने की तत्परता और प्रश्न पूछना पन्ना (दिव्य ज्ञान) के लिए पोषण प्रदान करते हैं। (9) स्वयं को समर्पित करना और चिंतन करना अच्छे गुणों के लिए पोषण प्रदान करते हैं। (10) सही अभ्यास स्वर्ग प्राप्ति के लिए पोषण प्रदान करता है। ये दस अन्य बातें हैं जो उन दस चीजों के लिए पोषण प्रदान करती हैं जिनकी कामना की जाती है, जिन्हें वांछित किया जाता है। सुखद, और दुनिया में शायद ही कभी प्राप्त होता है।" [137]

---

74 विकास 2090 (वद्धि सं. वृद्धि)

भिक्षुओं, दस प्रकार से वृद्धि करते हुए, एक श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठ विकास से बढ़ता है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करता है। वे दस प्रकार क्या हैं? (1) वह खेतों और भूमि में बढ़ता है; (2) धन और अनाज में; (3) पत्नियों और बच्चों में; (4) दासों, श्रमिकों और सेवकों में; (5) पशुधन में; (6)— (10) विश्वास, सदाचार, विद्या, उदारता और पन्ना (दिव्य ज्ञान) में। इन दस प्रकार से वृद्धि करते हुए, एक श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठ विकास से बढ़ता है और इस जीवन के सार और सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात करता है।

जो व्यक्ति यहाँ धन-दौलत, अनाज,

संतान, पत्नियों और पशुधन में समृद्ध होता है,

वह धनी और प्रसिद्ध होता है, और

रिश्तेदारों, मित्रों और राजपरिवार द्वारा सम्मानित होता है।

ऐसा विवेकशील और नेक इंसान,

जो यहाँ आस्था और सदाचार में,

पन्ना (दिव्य ज्ञान), उदारता और विद्या में बढ़ता है

, इस जीवन में दोनों ही तरह से बढ़ता है।

---

75 मिगासाला 2091

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, सुबह के समय, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और अपनी महिला अनुयायी मिगासला के घर गए, जहाँ वे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब महिला अनुयायी मिगासला पूज्य आनंद के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और बोलीं:

"भंते आनंद, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा को कैसे समझा जाए, जहाँ ब्रह्मचारी और अविवाहित दोनों का भविष्य में एक ही गंतव्य है? मेरे पिता पुराण ब्रह्मचारी थे, एकांत में रहते थे और सामान्य व्यक्ति की तरह यौन संबंध से परहेज करते थे। जब उनका निधन हुआ, तो भगवान (बुद्ध) ने घोषणा की: 'उन्होंने एक बार जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) की अवस्था प्राप्त की और तुषिता समूह

[देवताओं के] में पुनर्जन्म लिया।' मेरे चाचा इसिदत्त 2092 ब्रह्मचारी नहीं थे, बल्कि उन्होंने सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत किया। जब उनका निधन हुआ, तो भगवान (बुद्ध) ने भी घोषणा की: 'उन्होंने एक बार जन्म लेने वाले (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) की अवस्था प्राप्त की और तुषिता समूह [देवताओं के] में पुनर्जन्म लिया।' भंते आनंद, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा को किस प्रकार समझा जाना चाहिए, जिसमें ब्रह्मचारी और अविवाहित दोनों का भविष्य में एक ही गंतव्य होता है?

"बहन, भगवान (बुद्ध) ने ठीक इसी तरह इसकी घोषणा की थी।"

फिर, जब पूज्य आनंद ने मिगासला के घर पर भिक्षा ग्रहण कर लिया, तो वे अपने आसन से उठे और चले गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे भंते, सुबह मैंने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और मिगासला नामक महिला अनुयायी के घर गया। ... [139] [ऊपर जैसा ही] ... जब उसने मुझसे यह पूछा, तो मैंने उत्तर दिया: 'बहन, भगवान (बुद्ध) ने ठीक इसी तरह इसका उल्लेख किया था।'"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अत्यंत, वह स्त्री-दीक्षित अनुयायी मिगासला कौन है, जो एक नासमझ, अयोग्य स्त्री है, जिसकी बुद्धि स्त्री जैसी है? और वे कौन हैं जो दूसरों को श्रेष्ठ और हीन के रूप में जानते हैं?" 2093

"आनंद, संसार में दस प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से दस प्रकार हैं?"

(1) "हे आनंद, यहाँ एक व्यक्ति ऐसा है जो अनैतिक है और मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को, उसके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता, जहाँ उसकी अनैतिकता का कोई अंश शेष नहीं रहता। 2094 और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना, [उनमें] विद्वत्ता प्राप्त नहीं की, [उनमें] अंतर्दृष्टि से [उनका] अध्ययन नहीं किया, और वह क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं करता। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, विशिष्टता की ओर नहीं; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, विशिष्टता की ओर नहीं।"

(2) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो अनैतिक होते हुए भी मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, [140] जहाँ उसकी अनैतिकता का कोई अंश शेष नहीं रहता। और उसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, [उनमें] अंतर्दृष्टि से प्रवेश किया है, और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर।"

"आनंद, जो लोग पक्षपाती होते हैं, वे उन पर ऐसा निर्णय सुनाएंगे: 'इसमें और दूसरे में समान गुण हैं। एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ क्यों माना जाए?' उनका यह निर्णय वास्तव में उनके लिए लंबे समय तक हानि और पीड़ा का कारण बनेगा।"

"उनमें से, आनंद, जो अनैतिक है, और जो मन की उस मुक्ति को, उस पावन (दिव्य ज्ञान) की मुक्ति को, जहाँ उसकी अनैतिकता पूरी तरह समाप्त हो जाती है, समझता है; जिसने शिक्षाओं को सुना है, उनमें पारंगत हुआ है, दृष्टि से उनमें मर्मभेद किया है, और जो क्षणिक मुक्ति प्राप्त करता है, वह दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ है। इसका कारण क्या है? क्योंकि धम्म-धारा उसे अपने साथ बहा ले जाती है। लेकिन तथागत (बुद्ध) के सिवा इस अंतर को कौन जान सकता है?"

इसलिए, आनंद, लोगों के बारे में निर्णय मत लो। लोगों पर फैसला मत सुनाओ। जो लोग लोगों पर फैसला सुनाते हैं, वे खुद को नुकसान पहुंचाते हैं। केवल मैं, या मेरे जैसा कोई, ही लोगों पर फैसला सुना सकता है। [141]

(3) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो गुणी होते हुए भी मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता, जहाँ उसका वह गुणी आचरण बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाता है। और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है... उसे क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं होती। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, विशिष्टता की ओर नहीं; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, विशिष्टता की ओर नहीं।"

(4) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो गुणी है और मन की उस मुक्ति को, जो कि वास्तव में पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, समझता है, जहाँ उसका वह गुणी आचरण बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाता है। और उसने [शिक्षाओं को] सुना है... और वह

अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर।"

"आनंद, जो लोग निर्णय लेने वाले होते हैं, वे उन पर वैसा ही निर्णय सुनाएंगे... केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई और, लोगों पर निर्णय सुना सकता है।"

(5) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो कामवासना (राग) के प्रति अत्यधिक प्रवृत्त है और मन की उस मुक्ति को, जो कि वास्तव में मन की मुक्ति है, यानी पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, नहीं समझता, जहाँ उसकी कामवासना (राग) पूरी तरह समाप्त हो जाती है। और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है... उसे क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं होती। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर नहीं, बल्कि क्षय की ओर जाता है; वह क्षय की ओर जाने वाला है, क्षीणता की ओर नहीं।"

(6) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो कामवासना (राग) के प्रति प्रबल प्रवृत्त है, फिर भी वह मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जहाँ उसकी वह कामवासना (राग) पूरी तरह समाप्त हो जाती है। और उसने [शिक्षाओं को] सुना है... और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। [142] शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर;

"आनंद, जो लोग निर्णय लेने वाले होते हैं, वे उन पर वैसा ही निर्णय सुनाएंगे जैसा मैं, या मेरे जैसा कोई व्यक्ति, लोगों पर निर्णय सुना सकता है।"

(7) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रोधी स्वभाव का है और मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, जिसके द्वारा उसका क्रोध पूरी तरह समाप्त हो जाता है, नहीं समझता। और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है... उसे क्षणिक मुक्ति प्राप्त नहीं होती। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, विशिष्टता की ओर नहीं; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, विशिष्टता की ओर नहीं।"

(8) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रोधशील है, फिर भी वह मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जहाँ उसका क्रोध पूर्णतः समाप्त हो जाता है। और उसने [शिक्षाओं को] सुना है... उसे अस्थायी मुक्ति प्राप्त होती है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर।"

"आनंद, जो लोग दूसरों पर निर्णय लेने में सक्षम हैं, वे उन पर वैसा ही निर्णय सुनाएंगे। ... केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई और, लोगों पर निर्णय सुना सकता है।"

(9) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो बेचैन है और मन की उस मुक्ति को नहीं समझता जो वास्तव में पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा प्राप्त होती है, जहाँ उसकी बेचैनी पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। और उसने [शिक्षाओं को] नहीं सुना है... उसे अस्थायी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह क्षीणता की ओर बढ़ता है, न कि विशिष्टता की ओर; वह क्षीणता की ओर जाने वाला है, विशिष्टता की ओर नहीं।"

(10) "तो, आनंद, एक ऐसा व्यक्ति है जो बेचैन है फिर भी मन की उस मुक्ति को, उस पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जहाँ उसकी बेचैनी बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है। और उसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] विद्वता प्राप्त की है, [143] उन्हें दृष्टि से आत्मसात किया है, और वह अस्थायी मुक्ति प्राप्त करता है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर; वह भेद की ओर अग्रसर होता है, न कि पतन की ओर।"

"आनंद, जो लोग पक्षपाती हैं, वे उन पर ऐसा निर्णय सुनाएंगे: 'इसमें और दूसरे में समान गुण हैं। एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ क्यों माना जाए?' 7 उनका यह [निर्णय] निश्चय ही उन्हें लंबे समय तक हानि और कष्ट पहुँचाएगा।"

"उनमें से, आनंद, जो बेचैन है और जो मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है, जहाँ उसकी बेचैनी बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है; जिसने [शिक्षाओं को] सुना है, [उनमें] पारंगत हुआ है, [उनमें] अंतर्दृष्टि प्राप्त

की है, और जिसने क्षणिक मुक्ति प्राप्त की है, वह दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ है। इसका कारण क्या है? क्योंकि धम्म-धारा उसे अपने साथ ले जाती है। लेकिन तथागत (बुद्ध) के सिवा कौन इस अंतर को जान सकता है?"

इसलिए, आनंद, लोगों के बारे में निर्णय मत लो। लोगों पर फैसला मत सुनाओ। जो लोग लोगों पर फैसला सुनाते हैं, वे स्वयं को ही हानि पहुंचाते हैं। केवल मैं ही, या मेरे जैसा कोई और, लोगों पर फैसला सुना सकता है।

"अत्यंत, वह महिला गृहस्थ अनुयायी मिगासाला कौन है, जो एक स्त्री की बुद्धि वाली नासमझ, अयोग्य स्त्री है? और वे कौन हैं जो दूसरों को श्रेष्ठ और हीन मानते हैं?"

"ये दस प्रकार के व्यक्ति हैं जो दुनिया में पाए जाते हैं।"

"आनंद, यदि इसिदत्त में पुराण के समान सद्गुण होते, तो पुराण अपने गंतव्य को भी नहीं जान पाते। [144] और यदि पुराण में इसिदत्त के समान ज्ञान होता, तो इसिदत्त अपने गंतव्य को भी नहीं जान पाते। इस प्रकार, आनंद, ये दोनों व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपूर्ण थे।"

---

76 ट्रिपल धम्म (तयोधम्म बिना त्रयो-धम्म)

(1) "भिक्षुओं, यदि ये तीन बातें संसार में न होतीं, तो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में प्रकट न होते, और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म (मार्ग) और अनुशासन संसार में प्रकाशमान न होते। वे तीन बातें क्या हैं? पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु। यदि ये तीन बातें संसार में न होतीं, तो तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में प्रकट न होते, और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म (मार्ग) और अनुशासन संसार में प्रकाशमान न होते। परन्तु क्योंकि ये तीन बातें संसार में हैं, इसलिए तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में प्रकट होते हैं, और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म (मार्ग) और अनुशासन संसार में प्रकाशमान होते हैं।"

(2) "इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग नहीं कर सकता। वे तीन चीजें क्या हैं? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग नहीं कर सकता।"

(3) "इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने में असमर्थ है। वे तीन क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने में असमर्थ है। [145]

(4) इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति अपने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ का त्याग करने में असमर्थ है। वे तीन चीजें क्या हैं? लापरवाही, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति अपने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ का त्याग करने में असमर्थ है।

(5) "इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती का त्याग करने में असमर्थ है। वे तीन चीजें क्या हैं? उलझन, पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना) और मानसिक भटकाव। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती का त्याग करने में असमर्थ है।"

(6) इन तीन बातों का त्याग किए बिना, व्यक्ति असमंजस, अपूर्ण बोध और मानसिक भटकाव का त्याग नहीं कर सकता। वे तीन बातें क्या हैं? श्रेष्ठ पुरुषों को देखने की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन। इन तीन बातों का त्याग किए बिना, व्यक्ति असमंजस, अपूर्ण बोध (संपजन्न) और मानसिक भटकाव का त्याग नहीं कर सकता।

(7) "इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन का त्याग करने में असमर्थ है। वे तीन चीजें क्या हैं? बेचैनी, असंयम और अनैतिकता। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन का त्याग करने में असमर्थ है। [146]

(8) "इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति बेचैनी, असंयम और अनैतिकता का त्याग करने में असमर्थ है। वे तीन चीजें क्या हैं? अविश्वास, अनुदारता और आलस्य। इन तीन चीजों का त्याग किए बिना, व्यक्ति बेचैनी, असंयम और अनैतिकता का त्याग करने में असमर्थ है।"

(9) "इन तीन बातों को छोड़े बिना, व्यक्ति अविश्वास, अनुदारता और आलस्य को नहीं छोड़ सकता। वे तीन बातें क्या हैं? अनादर, आसानी से न सुधरने वाला स्वभाव और बुरी मित्रता। इन तीन बातों को छोड़े बिना, व्यक्ति अविश्वास, अनुदारता और आलस्य को नहीं छोड़ सकता।"

(10) "इन तीन बातों को छोड़े बिना, कोई व्यक्ति अनादर, आसानी से न सुधरने वाला स्वभाव और बुरी मित्रता को नहीं छोड़ सकता। वे तीन बातें क्या हैं? नैतिक निर्लज्जता, नैतिक लापरवाही और आलस्य। इन तीन बातों को छोड़े बिना, कोई व्यक्ति अनादर, आसानी से न सुधरने वाला स्वभाव और बुरी मित्रता को नहीं छोड़ सकता।"

भिक्षुओं, जो नैतिक रूप से निर्लज्ज और लापरवाह है, वह आलसी है। आलसी व्यक्ति अनादर, आसानी से न सुधरने की प्रवृत्ति और बुरी मित्रता को त्यागने में असमर्थ है। बुरे मित्र रखने वाला व्यक्ति अविश्वास, अनुदारता और आलस्य को त्यागने में असमर्थ है। आलसी व्यक्ति बेचैनी, असंयम और अनैतिकता को त्यागने में असमर्थ है। अनैतिक व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन को त्यागने में असमर्थ है। आलोचना में लीन मन वाला व्यक्ति उलझन, पूर्ण बोध की कमी और मानसिक व्याकुलता को त्यागने में असमर्थ है। मानसिक रूप से विचलित व्यक्ति लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती को त्यागने में असमर्थ है। मानसिक रूप से सुस्त व्यक्ति व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/कारण) को त्यागने में असमर्थ है। पुनर्जन्म के प्रति संदेह, गलत धारणा और व्यवहार एवं रीति-रिवाजों की गलत समझ। संदेह करने वाला व्यक्ति कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने में असमर्थ होता है। कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग किए बिना व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकता।

(1) "भिक्षुओं, इन तीन चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग करने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? काम (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह)। इन तीन चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।"

(2) इन तीनों चीजों का त्याग करने पर व्यक्ति कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) का त्याग करने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ। इन तीनों चीजों का त्याग करने पर व्यक्ति कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।

(3) इन तीन चीजों का त्याग करने पर व्यक्ति अपने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ का त्याग करने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? लापरवाही, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती। इन तीन चीजों का त्याग करने पर व्यक्ति अपने अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) के दृष्टिकोण, संदेह और व्यवहार एवं अनुष्ठानों की गलत समझ का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।

(4) "इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती को त्यागने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? उलझन, पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना) और मानसिक व्याकुलता। इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती को त्यागने में सक्षम हो जाता है। [148]

(5) इन तीन बातों का त्याग करने से व्यक्ति असमंजस, अपूर्ण बोध (संपजन्न) और मानसिक भटकाव का त्याग करने में सक्षम हो जाता है। वे तीन बातें क्या हैं? श्रेष्ठ पुरुषों को देखने की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धम्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन। इन तीन बातों का त्याग करने से व्यक्ति असमंजस, अपूर्ण बोध और मानसिक भटकाव का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।

(6) "इन तीन चीजों का त्याग करने से व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म का श्रवण करने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन का त्याग करने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? बेचैनी, असंयम और अनैतिकता। इन तीन चीजों का त्याग करने से व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म का श्रवण करने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।"

(7) "इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति बेचैनी, असंयम और अनैतिकता को त्यागने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? अविश्वास, अनुदारता और आलस्य। इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति बेचैनी, असंयम और अनैतिकता को त्यागने में सक्षम हो जाता है।"

(8) "इन तीन बातों को त्यागने से व्यक्ति अविश्वास, अनुदारता और आलस्य को त्यागने में सक्षम हो जाता है। वे तीन बातें क्या हैं? अनादर, आसानी से न सुधरने वाला स्वभाव और बुरी मित्रता। इन तीन बातों को त्यागने से व्यक्ति अविश्वास, अनुदारता और आलस्य को त्यागने में सक्षम हो जाता है।"

(9) "इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति अनादर, आसानी से न सुधरने की प्रवृत्ति और बुरी मित्रता को त्यागने में सक्षम हो जाता है। वे तीन चीजें क्या हैं? नैतिक निर्लज्जता, नैतिक लापरवाही और आलस्य। इन तीन चीजों को त्यागने से व्यक्ति अनादर, आसानी से न सुधरने की प्रवृत्ति और बुरी मित्रता को त्यागने में सक्षम हो जाता है।"

(10) भिक्षुओं, जो नैतिक लज्जा और नैतिक भय से ग्रस्त है, वह सजग रहता है। जो सजग है, वह अनादर, अप्रिय व्यवहार और बुरी मित्रता का त्याग करने में सक्षम है। जिसके अच्छे मित्र हैं [149], वह अविश्वास, अनुदारता और आलस्य का त्याग करने में सक्षम है। जो ऊर्जावान है, वह बेचैनी, असंयम और अनैतिकता का त्याग करने में सक्षम है। जो गुणी है, वह श्रेष्ठ लोगों के दर्शन की इच्छा का अभाव, श्रेष्ठ धर्म को सुनने की इच्छा का अभाव और आलोचना में लीन मन का त्याग करने में सक्षम है। जिसका मन आलोचना में लीन नहीं है, वह उलझन, पूर्ण बोध की कमी (संपजन्न) और मानसिक भटकाव का त्याग करने में सक्षम है। जिसका मन विचलित नहीं है, वह लापरवाह ध्यान, गलत मार्ग का अनुसरण और मानसिक सुस्ती का त्याग करने में सक्षम है। जिसका मन सुस्त नहीं है, वह व्यक्तिगत अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) का त्याग करने में सक्षम है। गलत धारणा, संदेह और व्यवहार एवं रीति-रिवाजों की गलत समझ से मुक्त होकर, व्यक्ति कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने में सक्षम होता है। कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का त्याग करने के बाद, व्यक्ति पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है।

---

77 कौआ (काका)

भिक्षुओं, एक कौवे में दस बुरे गुण होते हैं। वे दस क्या हैं? वह विनाशकारी और उद्दंड, लालची और लोभी, क्रूर और निर्दयी, दुर्बल और कर्कश, भ्रमित और लोभी होता है। कौवे में ये दस बुरे गुण होते हैं। उसी प्रकार, एक दुष्ट भिक्षु में भी दस बुरे गुण होते हैं। वे दस क्या हैं? वह विनाशकारी और उद्दंड, लालची और लोभी, क्रूर और निर्दयी, दुर्बल और कर्कश, भ्रमित और लोभी होता है। एक दुष्ट भिक्षु में ये दस बुरे गुण होते हैं। [150]

---

78 निगंथ (जैन)

भिक्षुओं (सन्यासियों) और निगंथों (जैनों) में दस दोष होते हैं। वे दस दोष क्या हैं? (1) निगंथ आस्थाहीन होते हैं, (2) अनैतिक होते हैं, (3) नैतिक रूप से निर्लज्ज होते हैं, (4) नैतिक रूप से लापरवाह होते हैं, (5) और बुरे व्यक्तियों के प्रति समर्पित होते हैं। (6) वे स्वयं की

प्रशंसा करते हैं और दूसरों को नीचा दिखाते हैं। (7) वे अपने विचारों को दृढ़ता से पकड़ते हैं और उन्हें बड़ी कठिनाई से छोड़ते हैं। (8) वे छलकारी होते हैं, (9) उनकी बुरी इच्छाएँ होती हैं, और (10) वे गलत विचार रखते हैं। 2096 निगंथों में ये दस दोष होते हैं।

नाराजगी के लिए 79 आधार (एल) [2097] (अघटवत्थु)

भिक्षुओं, आक्रोश के ये दस कारण हैं। वे दस क्या हैं? (1) [यह सोचकर:] 'उन्होंने मेरे नुकसान के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (2) [यह सोचकर:] 'वे मेरे नुकसान के लिए काम कर रहे हैं' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (3) [यह सोचकर:] 'वे मेरे नुकसान के लिए काम करेंगे' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (4) [यह सोचकर:] 'उन्होंने मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति के नुकसान के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (5) [यह सोचकर:] 'वे मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति के नुकसान के लिए काम कर रहे हैं' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (6) [यह सोचकर:] 'वे मुझे प्रसन्न करने वाले और मेरे लिए सुखद व्यक्ति के नुकसान के लिए काम करेंगे' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (7) [यह सोचकर:] 'उन्होंने मुझे अप्रिय करने वाले और मेरे लिए अप्रिय व्यक्ति के लाभ के लिए काम किया' - आक्रोश उत्पन्न होता है। (8) [यह सोचकर:] 'वे मेरे लाभ के लिए काम कर रहे हैं' - जो मुझे अप्रिय और नापसंद है, उससे द्वेष उत्पन्न होता है। (9) [यह सोचकर:] 'वे मेरे लिए अप्रिय और नापसंद व्यक्ति के लाभ के लिए कार्य करेंगे,' तो द्वेष उत्पन्न होता है। (10) और व्यक्ति बिना किसी कारण के क्रोधित हो जाता है। 2098 हे भिक्षुओं, ये दस कारण हैं जिनसे द्वेष उत्पन्न होता है।

---

80 आक्रोश दूर करना (2) 2099 (अघटपतिविनय)

भिक्षुओं, आक्रोश दूर करने के ये दस तरीके हैं। वे दस तरीके क्या हैं? (1) [सोचते हुए:] 'उन्होंने मेरा नुकसान करने के लिए काम किया, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। [151] (2) [सोचते हुए:] 'वे मेरा नुकसान करने के लिए काम कर रहे हैं, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (3) [सोचते हुए:] 'वे मेरा नुकसान करने के लिए काम करेंगे, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (4) [सोचते हुए:] 'उन्होंने काम किया...' (5) ... 'वे काम कर रहे हैं...' (6) ... 'वे मेरे प्रिय और प्रिय व्यक्ति का नुकसान करने के लिए काम करेंगे, लेकिन इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' इससे आक्रोश दूर होता है। (7) [सोचते हुए:] 'उन्होंने काम किया...' (8) ... 'वे काम कर रहे हैं...' (9) ... 'वे मेरे लिए अप्रिय और अप्रिय व्यक्ति के हित में कार्य करेंगे, परन्तु इसके बारे में क्या किया जा सकता है?' (10) और बिना कारण क्रोधित नहीं होना चाहिए। भिक्षुओं, ये दस तरीके हैं जिनसे आक्रोश दूर किया जा सकता है।

IV. बुजुर्ग (थेरावग्गो संस्कृत: स्थिवरा-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

81 बहुना

एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गरा कमल तालाब के किनारे निवास कर रहे थे। तब पूज्य बहुना भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, तथागत (बुद्ध) कितनी चीजों से मुक्त, विरक्त और निर्धन हैं कि वे सीमाओं से मुक्त मन से निवास करते हैं?" [152]

"बहुना, तथागत (बुद्ध) दस चीजों से मुक्त, विरक्त और निर्मल हैं, इसीलिए वे सीमाओं से परे मन से निवास करते हैं। वे दस कौन सी हैं? (1) तथागत (बुद्ध) रूप से मुक्त, विरक्त और निर्मल हैं, इसीलिए वे सीमाओं से परे मन से निवास करते हैं। (2)-(5) तथागत (बुद्ध) वेदना, संज्ञान, अपने गुणों, संस्कार और चेतना से मुक्त, विरक्त और निर्मल हैं, इसीलिए वे सीमाओं से परे मन से निवास करते हैं। (6)-(10) तथागत (बुद्ध) पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुख और दोषों से मुक्त, विरक्त और निर्मल हैं, इसीलिए वे निवास करते हैं।" सीमाओं से मुक्त मन के साथ।

"जिस प्रकार नीला, लाल या सफेद कमल का फूल, यद्यपि जल में जन्म लेता है और जल में ही बढ़ता है, फिर भी जल से ऊपर उठकर अछूता रहता है, ठीक उसी प्रकार, हे बहुना, तथागत (बुद्ध) इन दस चीजों से मुक्त, विरक्त और निर्धन होने के कारण ही सीमाओं से परे मन से निवास करते हैं।"

---

82 आनंदा

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

(1) "हे आनंद, यह असंभव है कि आस्थाहीन भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त कर सके। (2) यह असंभव है कि अनैतिक भिक्षु... (3) ... अल्पज्ञानी भिक्षु... (4) ...सुधारना कठिन भिक्षु... [153] (5) ... बुरे मित्रों वाला भिक्षु... (6) ... आलसी भिक्षु... (7) ... भ्रमित मन वाला भिक्षु... (8) ... असंतुष्ट भिक्षु... (9) ... बुरी इच्छाओं वाला भिक्षु... (10) ... गलत मत रखने वाला भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त कर सके। यह असंभव है कि इन दस गुणों से युक्त भिक्षु वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त कर सके।" और इस धम्म और अनुशासन में परिपक्वता।

(1) हे आनंद, यह संभव है कि आस्थावान भिक्षु इस धर्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करे। (2) यह संभव है कि एक गुणी भिक्षु... (3) ... एक विद्वान भिक्षु... (4) ... एक ऐसा भिक्षु जिसे सुधारना आसान हो... (5) ... एक ऐसा भिक्षु जिसके अच्छे मित्र हों... (6) ... एक ऊर्जावान भिक्षु... (7) एक सचेत (ध्यानमग्न/सती) भिक्षु... (8) ... एक संतुष्ट भिक्षु... (9) ... एक कम इच्छाओं वाला भिक्षु... (10) ... एक सही दृष्टिकोण रखने वाला भिक्षु इस धर्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करे। यह संभव है। जो भिक्षु इन दस गुणों से युक्त होता है, वह इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करेगा।

---

83 पुन्निया [2101]

तब पूज्य पुन्निया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, ऐसा क्यों है कि तथागत (बुद्ध) कभी-कभी धम्म का उपदेश देने के लिए इच्छुक होते हैं और कभी-कभी नहीं होते?"

(1) हे पुण्य, जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर भी तथागत (बुद्ध) के पास नहीं आता, तो तथागत (बुद्ध) धर्म का उपदेश देने के लिए प्रवृत्त नहीं होते। (2) परन्तु जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर उनके पास आता है, तो तथागत (बुद्ध) उपदेश देने के लिए प्रवृत्त होते हैं। (3) हे पुण्य, जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर उनके पास आता है, परन्तु उनकी सेवा नहीं करता... (4) जब वह उनकी सेवा तो करता है, परन्तु प्रश्न नहीं पूछता... (5) जब वह प्रश्न पूछता है, परन्तु धर्म को ध्यानपूर्वक नहीं सुनता... (6) जब वह धर्म को ध्यानपूर्वक सुनता है, परन्तु सुनकर उसे मन में नहीं रखता... (7) जब सुनकर उसे मन में रख लेता है, परन्तु मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच नहीं करता... (8) जब वह मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जाँच करता है, परन्तु [155] अर्थ और धम्म को नहीं समझता और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता... (9) जब वह अर्थ और धम्म को समझता है और फिर धम्म के अनुसार अभ्यास करता है, परन्तु वह एक अच्छा वक्ता नहीं है, जिसकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थ को अभिव्यक्त करने में निपुण हो... (10) जब वह एक अच्छा वक्ता है, जिसकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थ को अभिव्यक्त करने में निपुण है, परन्तु वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्नता नहीं देता, तो तथागत (बुद्ध) धम्म सिखाने के लिए प्रवृत्त नहीं होते।

लेकिन, पुण्य, (1) जब कोई भिक्षु आस्था से परिपूर्ण होकर (2) तथागत (बुद्ध) के पास जाता है, (3) तथागत (बुद्ध) की सेवा करता है, (4) प्रश्न पूछता है, और (5) उत्सुकतापूर्वक धम्म सुनता है; और (6) धम्म सुनकर उसे मन में रखता है, (7) मन में रखे उपदेशों के अर्थ की जांच करता है, और (8) अर्थ और धम्म को समझकर धम्म के अनुसार अभ्यास करता है; और (9) वह एक अच्छा वक्ता होता है, जिसकी वाणी परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट और अर्थपूर्ण होती है; और (10) वह अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देता है, प्रोत्साहित करता है, प्रेरित करता है और प्रसन्न करता है, तब तथागत (बुद्ध) धम्म सिखाने के लिए प्रेरित होते हैं। जब, पुण्य, किसी में ये दस गुण होते हैं, तब तथागत (बुद्ध) वह धम्म का शिक्षण करने के लिए पूरी तरह से तत्पर है।

---

84 घोषणा (व्याकरण सं. व्यक्त-करण)

वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने यह कहा:

"यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।' तथागत (बुद्ध) [156] या उनका शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में निपुण है—प्राप्ति में कुशल, दूसरों के मन को समझने में निपुण, दूसरों के मन के तरीकों को समझने में निपुण—उनसे प्रश्न पूछता है, उनसे पूछताछ करता है और उनकी जिद लेता है। जब तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य उनसे प्रश्न पूछता है, उनसे पूछताछ करता है और उनकी जिद लेता है, तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं और घबरा जाते हैं। उन पर विपत्ति आती है, विपत्ति आती है, विपत्ति और विपत्ति दोनों आती हैं।"

तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर चुके हैं... अपने मन को अपने ही मन से समाहित कर लेते हैं और विचार करते हैं: 'यह पूज्यवर इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा क्यों करते हैं: "मैं समझता हूँ: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।'" तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, अपने मन को अपने ही मन से समाहित करके, समझते हैं:

(1) “यह आदरणीय व्यक्ति क्रोध के प्रति प्रवृत्त है और उसका मन अक्सर क्रोध से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में क्रोध से ग्रस्त होना पतन का कारण है।”

(2) "यह आदरणीय व्यक्ति शत्रुतापूर्ण है और उसका मन अक्सर शत्रुता से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में शत्रुता से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(3) "यह आदरणीय व्यक्ति निंदा करने के लिए प्रवृत्त है और उसका मन अक्सर निंदा से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में निंदा का ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(4) "यह आदरणीय व्यक्ति अभिमानी है और उसका मन अक्सर अभिमान से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में अभिमान से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(5) "यह आदरणीय व्यक्ति ईर्ष्यालु है और उसका मन अक्सर ईर्ष्या से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में ईर्ष्या से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(6) "यह आदरणीय व्यक्ति कंजूस है और उसका मन अक्सर कंजूसी से ग्रस्त रहता है। [157] परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, कंजूसी की ग्रस्तता पतन का एक कारण है।"

(7) "यह पूज्य व्यक्ति धूर्त है और उसका मन अक्सर धूर्तता में लीन रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, धूर्तता में लीन रहना पतन का कारण है।"

(8) "यह पूज्य व्यक्ति कपटी है और उसका मन अक्सर कपट से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में, कपट से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(9) "इस पूज्यवर के मन में बुरी इच्छाएँ हैं और उनका मन अक्सर इच्छाओं से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, इच्छाओं से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(10) "जब आगे कुछ करना बाकी होता है, तो यह पूज्य व्यक्ति किसी निम्न स्तर की उपलब्धि के कारण मार्ग में ही रुक जाता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, मार्ग में रुक जाना पतन का कारण है।"

"सचमुच, मित्रों, इन दस चीजों का त्याग न करने वाले भिक्षु के लिए इस धम्म (मार्ग) और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना असंभव है। परन्तु इन दस चीजों का त्याग करने वाले भिक्षु के लिए इस धम्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना संभव है।"

---

85 शेखीबाज़ (कत्थी)

एक बार पूज्य महाचुंडा सहजाति में चैतियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महाचुंडा ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महाकुंड ने यह कहा:

"यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु एक अभिमानी होता है, वह जो अपनी उपलब्धियों का बखान करता है: 'मैं प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ। मैं द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को... {158] ... अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को... चेतना की अनंतता के आधार को... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को... न-बोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को। मैं संवेदना (वेदना) और बोध (सन्न/संज्ञा) के अंत को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ।' तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में निपुण हो—सृष्टि में कुशल हो, दूसरों के मन को समझने में निपुण हो, और दूसरों के मन के तरीकों को जानने में निपुण हो—उससे प्रश्न पूछता है, उससे पूछताछ करता है और उससे जिरह करता है। जब तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य उससे प्रश्न पूछता है, उससे पूछताछ करता है और उससे जिरह करता है, तो वह असमंजस में पड़ जाता है और घबरा जाता है। उस पर विपत्ति आती है, विपत्ति आती है, विपत्ति और विपत्ति दोनों आती हैं।

"तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में निपुण हैं... अपने मन को अपने ही मन से समाहित कर लेते हैं और विचार करते हैं: 'यह पूजनीय व्यक्ति घमंडी क्यों है, अपनी उपलब्धियों का बखान क्यों करता है: "मैं प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ... मैं संवेदना (वेदना) और अनुभूति (संज्ञा/संज्ञा) के अंत को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ"? 'तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, अपने मन को अपने ही मन से समाहित करके, समझते हैं:

(1) "इस पूज्यवर का आचरण लंबे समय से टूटा-फूटा, दोषपूर्ण, कलंकित और दागदार रहा है, और वे निरंतर सदाचारी आचरण का पालन नहीं करते। यह पूज्यवर अनैतिक हैं। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में अनैतिकता पतन का एक कारण है।"

(2) "यह आदरणीय व्यक्ति आस्थाहीन है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में आस्थाहीनता पतन का कारण है।"

(3) "यह आदरणीय व्यक्ति अल्प ज्ञान और अनुचित आचरण वाला है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में अल्प ज्ञान पतन का कारण है।" [159]

(4) "इस आदरणीय व्यक्ति को सुधारना कठिन है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, सुधारना कठिन होना पतन का संकेत है।"

(5) "इस पूज्यवर के कुछ मित्र बुरे हैं। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, बुरी मित्रता पतन का कारण होती है।"

(6) "यह आदरणीय व्यक्ति आलसी है। लेकिन तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, आलस्य पतन का एक कारण है।"

(7) "यह आदरणीय व्यक्ति भ्रमित मन वाला है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में भ्रमित मन होना पतन का कारण है।"

(8) "यह पूज्यवर छलकारी है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में छल करना पतन का कारण है।"

(9) "इस आदरणीय व्यक्ति का भरण-पोषण करना कठिन है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, भरण-पोषण में कठिनाई होना पतन का संकेत है।"

(10) "यह आदरणीय व्यक्ति मूर्ख है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभाव पतन का कारण है।"

मान लीजिए, मित्रों, कि एक व्यक्ति अपने साथी से कहे: 'जब भी तुम्हें किसी भी चीज़ के लिए पैसे की ज़रूरत हो, मेरे मित्र, बस मुझसे मांग लेना और मैं तुम्हें दे दूंगा।' जब साथी को पैसे की ज़रूरत होती है, तो वह अपने मित्र से कहता है: 'मुझे पैसे चाहिए, मित्र। मुझे कुछ दे दो।' दूसरा कहता है: 'तो फिर, मित्र, यहाँ खोदो।' वह वहाँ खोदता है लेकिन उसे कुछ नहीं मिलता। फिर वह कहता है: 'तुमने मुझसे झूठ बोला, मित्र, तुमने झूठ बोला जब तुमने मुझे यहाँ खोदने के लिए कहा।' दूसरा कहता है: 'मैंने तुमसे झूठ नहीं बोला, मित्र, मैंने झूठ नहीं बोला। बल्कि, वहाँ खोदो।' वह वहाँ भी खोदता है लेकिन उसे कुछ नहीं मिलता। फिर से, वह कहता है: 'तुमने मुझसे झूठ बोला, मित्र, तुमने झूठ बोला जब तुमने मुझे वहाँ खोदने के लिए कहा।' दूसरा कहता है: 'मैंने तुमसे झूठ नहीं बोला, मित्र, मैंने झूठ नहीं बोला। [160] बल्कि, वहाँ खोदो।' वह वहाँ भी खोदता है, लेकिन उसे कुछ नहीं मिलता। फिर वह कहता है: 'तुमने मुझसे झूठ बोला, दोस्त, तुमने मुझे वहाँ खोदने के लिए कहकर झूठ बोला था।' 2103 दूसरा कहता है: 'मैंने तुमसे झूठ नहीं बोला, दोस्त, मैंने झूठ नहीं बोला। मैं पागल हो गया था, मेरा दिमाग खराब हो गया था।'

"इसी प्रकार, मित्रों, एक भिक्षु भी अभिमानी होता है, वह अपनी उपलब्धियों का बखान करता है: 'मैं प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) को प्राप्त करता हूँ और उससे बाहर निकलता हूँ'... [ऊपर दिए गए सभी कथनों के अनुसार:] [161] ... (10) 'यह आदरणीय व्यक्ति मूर्ख है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन में, पन्ना (दिव्य ज्ञान) का अभाव पतन का कारण है।'

"सचमुच, मित्रों, इन दस चीजों का त्याग न करने वाले भिक्षु के लिए इस धर्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना असंभव है। परन्तु इन दस चीजों का त्याग करने वाले भिक्षु के लिए इस धर्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना संभव है।"

---

86 अंतिम ज्ञान (अधिमान)

एक बार पूज्य महाकस्सपा राजगाह में बांस के जंगल में, गिलहरी अभयारण्य में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य [162] महाकस्सपा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

“मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महाकस्सपा ने यह कहा:

"यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है।' तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में निपुण है—प्राप्ति में कुशल, दूसरों के मन को समझने में निपुण, दूसरों के मन के तरीकों को समझने में निपुण—उनसे प्रश्न पूछता है, उनसे पूछताछ करता है और उनका प्रतिवाद करता है। जब तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य उनसे प्रश्न पूछता है, उनसे पूछताछ करता है और उनका प्रतिवाद करता है, तो वे गतिरोध में पड़ जाते हैं और घबरा जाते हैं, उन पर विपत्ति आती है, उन पर विपत्ति और विपत्ति दोनों आती हैं।"

तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में हैं, अपने मन को अपने ही मन से समाहित कर लेते हैं और विचार करते हैं: 'यह पूज्यवर इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा क्यों करते हैं: "मैं समझता हूँ: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है'?' तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, अपने मन को अपने ही मन से समाहित करके समझते हैं: 'यह पूज्यवर स्वयं को अतिरंजित करते हैं, यह कल्पना करते हैं कि उनका स्वयं का आकलन सही है, सोचते हैं कि उन्होंने वह प्राप्त कर लिया है जो उन्होंने प्राप्त नहीं किया है, वह पूरा कर लिया है जो उन्होंने पूरा नहीं किया है, और वह हासिल कर लिया है जो उन्होंने हासिल नहीं किया है, और स्वयं को अतिरंजित करके वे इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हैं: "मैं समझता हूँ: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है'।"

तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर चुका है... अपने मन को अपने ही मन से घेर लेता है और विचार करता है: 'यह पूजनीय व्यक्ति स्वयं को इतना अधिक क्यों आंकता है और यह क्यों समझता है कि उसका यह आकलन सही है; वह क्यों सोचता है कि उसने वह प्राप्त कर लिया है जो उसने प्राप्त नहीं किया है, वह पूरा कर लिया है जो उसने पूरा नहीं किया है, और वह हासिल कर लिया है जो उसने हासिल नहीं किया है; और स्वयं को इतना अधिक आंककर वह अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार क्यों करता है: "मैं समझता हूँ: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... अब किसी भी अवस्था में वापस आना संभव नहीं है'?'

तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य, जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था में हैं... अपने मन को अपने ही मन में समाहित करके समझते हैं: 'इस पूज्यवर ने बहुत कुछ सीखा है, जो सीखा है उसे याद रखा है और उसे संजोया है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हैं - ऐसी शिक्षाओं को उन्होंने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से अध्ययन किया है और दृष्टि से भलीभांति समझा है। इसलिए यह पूज्यवर स्वयं को अतिरंजित समझते हैं और सोचते हैं कि उनका स्वयं का आकलन सही है; वे सोचते हैं कि उन्होंने वह प्राप्त कर लिया है जो उन्होंने प्राप्त नहीं किया है, वह पूरा कर लिया है जो उन्होंने पूरा नहीं किया है और वह हासिल कर लिया है जो उन्होंने हासिल नहीं किया है; और स्वयं को अतिरंजित समझकर वे अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करते हैं: "मैं समझता हूँ: "पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... अब कोई वापसी नहीं है किसी भी अवस्था में होना

"तथागत (बुद्ध) या उनका शिष्य जो ध्यान (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर चुका है... अपने मन को अपने ही मन से समाहित करके समझता है:

(1) "यह आदरणीय व्यक्ति लालसा से भरा हुआ है और उसका मन अक्सर लालसा से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, लालसा से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(2) "यह पूज्य व्यक्ति द्वेष से भरा हुआ है और उसका मन अक्सर द्वेष से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में, द्वेष से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(3) "यह पूज्यवर सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त है और उसका मन अक्सर सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, सुस्ती और आलस्य से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(4) "यह पूज्यवर बेचैन हैं और उनका मन अक्सर बेचैनी से ग्रस्त रहता है। लेकिन तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, बेचैनी से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(5) "यह आदरणीय व्यक्ति संशय में लीन रहता है और उसका मन अक्सर संशय से ग्रस्त रहता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में संशय से ग्रस्त होना पतन का कारण है।"

(6) "यह पूजनीय व्यक्ति काम में आनंद लेता है, काम में प्रसन्न होता है, काम में आनंद लेने के लिए समर्पित है। [164] लेकिन तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन में, काम में आनंद लेना पतन का कारण है।"

(7) "यह पूज्यवर वार्ता में आनंद लेते हैं, वार्ता में प्रसन्न होते हैं, वार्ता में आनंद लेने के लिए समर्पित हैं। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में वार्ता में आनंद लेना पतन का कारण है।"

(8) "यह पूज्यवर नींद में आनंदित होते हैं, नींद में मग्न रहते हैं, नींद में आनंद लेने के लिए समर्पित हैं। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में, नींद में आनंद लेना पतन का कारण है।"

(9) "यह पूजनीय व्यक्ति संगति में आनंद लेता है, संगति में प्रसन्न होता है, संगति में आनंद लेने के लिए समर्पित है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन में संगति में आनंद लेना पतन का कारण है।"

(10) "जब आगे कुछ करना बाकी होता है, तो यह पूज्य व्यक्ति किसी निम्न स्तर की उपलब्धि के कारण मार्ग में ही रुक जाता है। परन्तु तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म (मार्ग) और अनुशासन में, मार्ग में रुक जाना पतन का कारण है।"

"सचमुच, मित्रों, इन दस चीजों का त्याग न करने वाले भिक्षु के लिए इस धर्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना असंभव है। परन्तु इन दस चीजों का त्याग करने वाले भिक्षु के लिए इस धर्म और अनुशासन में उन्नति, प्रगति और परिपक्वता प्राप्त करना संभव है।"

---

87 अनुशासनात्मक मुद्दे (नप्पिया)

वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु कालंदक के संदर्भ में भिक्षुओं को संबोधित किया: 2105 "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "यहाँ, एक भिक्षु अनुशासन संबंधी मुद्दों का निर्माता है और वह अनुशासन संबंधी मुद्दों के निपटारे की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु अनुशासन संबंधी मुद्दों का निर्माता होता है और अनुशासन संबंधी मुद्दों के निपटारे की प्रशंसा नहीं करता, तो यह एक ऐसा गुण है जो स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य या एकता की ओर नहीं ले जाता। 2106 [165]

(2) "फिर, एक भिक्षु प्रशिक्षण की इच्छा नहीं रखता और वह प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा में बात नहीं करता। जब एक भिक्षु प्रशिक्षण की इच्छा नहीं रखता... तो यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(3) "फिर, एक भिक्षु में बुरी इच्छाएँ होती हैं और वह इच्छाओं के निवारण की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु में बुरी इच्छाएँ होती हैं... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(4) "फिर, एक भिक्षु क्रोध के प्रति प्रवृत्त होता है और वह क्रोध के निवारण की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु क्रोध के प्रति प्रवृत्त होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(5) "फिर, एक भिक्षु वह है जो दूसरों की निंदा करता है और निंदा को दूर करने की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु निंदा करता है... तो यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(6) "फिर, एक भिक्षु धूर्त होता है और वह धूर्तता के निवारण की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु धूर्त होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(7) "फिर, एक भिक्षु कपटी होता है और वह कपट के निवारण की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु कपटी होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता। [166]

(8) "फिर, एक भिक्षु शिक्षाओं पर ध्यान देने के लिए इच्छुक नहीं होता और वह शिक्षाओं पर ध्यान देने की प्रशंसा में नहीं बोलता। जब एक भिक्षु शिक्षाओं पर ध्यान देने के लिए इच्छुक नहीं होता... तो यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(9) "फिर, एक भिक्षु एकांतवास की ओर प्रवृत्त नहीं होता और वह एकांतवास की प्रशंसा में नहीं बोलता। जब एक भिक्षु एकांतवास की ओर प्रवृत्त नहीं होता... तो यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर नहीं ले जाता।"

(10) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का आतिथ्य सत्कार नहीं करता और आतिथ्य सत्कार करने वाले की प्रशंसा नहीं करता। जब एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का आतिथ्य सत्कार नहीं करता और आतिथ्य सत्कार करने वाले की प्रशंसा नहीं करता, तो यह भी एक ऐसा गुण है जो स्नेह, आदर, सम्मान, सद्भाव या एकता की ओर नहीं ले जाता।"

यद्यपि ऐसा भिक्षु यह कामना करे: 'काश, मेरे साथी भिक्षु मेरा आदर, सम्मान और आदर करें!' फिर भी उसके साथी भिक्षु उसका आदर, सम्मान, आदर और आदर नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसके बुद्धिमान साथी भिक्षु देखते हैं कि उसने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग नहीं किया है।

"मान लीजिए एक जंगली घोड़े का बच्चा यह इच्छा करे: 'काश, लोग मुझे एक शुद्ध नस्ल के घोड़े का स्थान दें, मुझे शुद्ध नस्ल के घोड़े का भोजन दें और मेरी देखभाल करें!' फिर भी लोग उसे शुद्ध नस्ल के घोड़े का स्थान नहीं देते, उसे शुद्ध नस्ल के घोड़े का भोजन नहीं देते और उसकी देखभाल नहीं करते। [167] इसका क्या कारण है? क्योंकि बुद्धिमान लोग देखते हैं कि उसने अपनी चालबाज़ी, छल-कपट और कपट नहीं छोड़े हैं। इसी प्रकार, यद्यपि ऐसा भिक्षु यह इच्छा करे: 'काश, मेरे साथी भिक्षु मेरा आदर, सम्मान और आदर करें!' फिर भी उसके साथी भिक्षु उसका आदर, सम्मान, आदर और आदर नहीं करते। इसका क्या कारण है? क्योंकि उसके बुद्धिमान साथी भिक्षु देखते हैं कि उसने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) को नहीं छोड़ा है।"

(1) "परन्तु भिक्षु अनुशासन संबंधी समस्याओं का निर्माता नहीं होता और वह अनुशासन संबंधी समस्याओं के समाधान की प्रशंसा करता है। जब भिक्षु अनुशासन संबंधी समस्याओं का निर्माता नहीं होता और अनुशासन संबंधी समस्याओं के समाधान की प्रशंसा करता है, तो यह एक ऐसा गुण है जो स्नेह, आदर, सम्मान, सामंजस्य और एकता की ओर ले जाता है।"

(2) "फिर, एक भिक्षु प्रशिक्षण की इच्छा रखता है और वह प्रशिक्षण लेने की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु प्रशिक्षण की इच्छा रखता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु की इच्छाएँ कम होती हैं और वह इच्छाओं के निवारण की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु की इच्छाएँ कम होती हैं... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु क्रोध के प्रति प्रवृत्त नहीं होता और वह क्रोध के निवारण की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु क्रोध के प्रति प्रवृत्त नहीं होता... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(5) "फिर, भिक्षु वह नहीं है जो [दूसरों का] अपमान करता है और वह अपमान के निवारण की प्रशंसा करता है। जब भिक्षु [दूसरों का] अपमान नहीं करता... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है। [168]

(6) "फिर, एक भिक्षु (भिक्षु) धूर्त नहीं होता और वह धूर्तता के निवारण की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु धूर्त नहीं होता... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(7) "फिर, एक भिक्षु कपटी नहीं होता और वह कपट के निवारण की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु कपटी नहीं होता... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(8) "फिर, एक भिक्षु शिक्षाओं पर ध्यान देने के लिए तत्पर रहता है और वह शिक्षाओं पर ध्यान देने की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु शिक्षाओं पर ध्यान देने के लिए तत्पर रहता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु एकांतवास की ओर प्रवृत्त होता है और वह एकांतवास की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु एकांतवास की ओर प्रवृत्त होता है... यह भी एक ऐसा गुण है जो... एकता की ओर ले जाता है।"

(10) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का आतिथ्य सत्कार करता है और आतिथ्य सत्कार करने वाले की प्रशंसा करता है। जब एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का आतिथ्य सत्कार करता है और आतिथ्य सत्कार करने वाले की प्रशंसा करता है, तो यह भी एक ऐसा गुण है जो स्नेह, आदर, सम्मान, सद्भाव और एकता की ओर ले जाता है।"

यद्यपि ऐसा भिक्षु यह इच्छा न करे कि 'काश मेरे साथी भिक्षु मेरा आदर, सम्मान और आदर करें!' फिर भी उसके साथी भिक्षु उसका आदर, सम्मान और आदर करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसके बुद्धिमान साथी भिक्षु देखते हैं कि उसने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग कर दिया है।

"मान लीजिए कि एक उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा यह न चाहे: 'काश लोग मुझे एक उत्कृष्ट नस्ल के घोड़े का स्थान दें, मुझे एक उत्कृष्ट नस्ल का भोजन दें और मेरी देखभाल करें!' फिर भी लोग उसे एक उत्कृष्ट नस्ल का स्थान देते हैं, उसे एक उत्कृष्ट नस्ल का भोजन देते हैं, [169] और उसकी देखभाल करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि बुद्धिमान लोग देखते हैं कि उसने अपनी चालबाज़ी, छल-कपट और कपट छोड़ दिए हैं। इसी प्रकार, यद्यपि ऐसा भिक्षु यह न चाहे: 'काश मेरे साथी भिक्षु मेरा आदर, सम्मान और आदर करें!' फिर भी उसके साथी भिक्षु उसका आदर, सम्मान और आदर करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसके बुद्धिमान साथी भिक्षु देखते हैं कि उसने उन बुरे (अकुशल) गुणों (धम्म) को त्याग दिया है।"

---

88 अपमान करने वाला 2107 (अक्कोसाका)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है, श्रेष्ठ भिक्षुओं की निंदा करता है, तो यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह इन दस विपत्तियों में से कम से कम एक का शिकार न हो। वे दस विपत्तियाँ क्या हैं? (1) वह वह प्राप्त नहीं कर पाता जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है। (2) वह अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धि से विमुख हो जाता है। (3) उसके अच्छे गुण निखरे नहीं रहते। (4) वह अपने अच्छे गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बताता है, या (5) ब्रह्मचर्य जीवन से असंतुष्ट रहता है, या (6) कोई अपवित्र अपराध करता है, या (7) किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाता है, या (8) पागल हो जाता है और मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है। (9) वह भ्रमित अवस्था में मर जाता है। (10) शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है, तो वह महान लोगों में से, यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह इन दस आपदाओं में से कम से कम एक का शिकार न हो।" [170]

---

89 कोकालिका [2109]

तब भिक्षु कोकालिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और कहा: "भंते, सारिपुत्त और मोग्गलाना पापी इच्छाओं से ग्रसित हैं और पापी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।"

[भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया:] "ऐसा मत कहो, कोकालिका! ऐसा मत कहो, कोकालिका! 2110 सारिपुत्त और मोग्गलाना, कोकालिका पर विश्वास रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छा व्यवहार करते हैं।"

दूसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, यद्यपि मैं भगवान (बुद्ध) को आस्था और विश्वास के योग्य मानता हूँ, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं और वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।"

"ऐसा मत कहो, कोकालिका! ... सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"

तीसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, यद्यपि मैं भगवान (बुद्ध) को आस्था और विश्वास के योग्य मानता हूँ, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं और वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।"

"ऐसा मत कहो, कोकालिका! ऐसा मत कहो, कोकालिका! सारिपुत्त और मोग्गल्लाना पर विश्वास रखो, कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छा व्यवहार करते हैं।"

तब भिक्षु कोकालिका अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, भगवान (बुद्ध) की ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए। भिक्षु कोकालिका के जाने के कुछ ही समय बाद, उनका पूरा शरीर सरसों के दाने के आकार के फोड़ों से भर गया। ये फोड़े बढ़कर मूंग के आकार के हो गए; फिर चने के आकार के; फिर बेर की गुठलियों के आकार के; फिर बेर के फलों के आकार के; फिर कुरुबल के आकार के; फिर कच्चे बेली के आकार के; 2111 फिर पके बेली के आकार के हो गए। जब ये पके बेली के आकार के हो गए, तो ये फट गए, [171] और इनमें से मवाद और खून निकलने लगा। तब वे केले के पत्तों पर ऐसे पड़े रहे जैसे कोई मछली जहर निगल गई हो।

तब स्वतंत्र ब्रह्मा तुदु ने भिक्षु कोकालिका के पास जाकर, जो हवा में खड़े थे, उनसे कहा: "कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"

"तुम कौन हो, दोस्त?"

"मैं स्वतंत्र ब्रह्मा तुडु हूँ।"

"क्या भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें पुनर्जन्म न लेने वाला (अनगामी) घोषित नहीं किया था, मित्र? तो फिर तुम यहाँ वापस क्यों आए हो? देखो तुमने कितना बड़ा पाप किया है।" 2113

तब स्वतंत्र ब्रह्मा तुडु ने भिक्षु कोकालिका को पद्य में संबोधित किया:

"जब कोई व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है तो उसके मुंह में एक कुल्हाड़ी जन्म लेती है जिससे मूर्ख व्यक्ति गलत बातें बोलकर खुद को काट लेता है।"

जो निंदा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है

या प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है,

वह अपने मुख से एक अशुभ फेंकता है

जिससे उसे कोई सुख नहीं मिलता।

"पासे में दुर्भाग्यपूर्ण चाल चलकर

अपनी सारी संपत्ति खो देना,

स्वयं सहित सब कुछ खो देना मामूली बात है; लेकिन पवित्र लोगों के प्रति घृणा पालना

कहीं अधिक दुर्भाग्यपूर्ण चाल है ।"

"एक लाख

छत्तीस निरब्बुदों और पाँच अब्बुदों के लिए, 2115

नेक लोगों की निंदा करने वाला नरक में जाता है,

क्योंकि उसने उन्हें बुरी वाणी और मन से बदनाम किया है।" [172]

फिर भिक्षु कोकालिका उस बीमारी के कारण मर गए, और सारिपुत्त और मोग्गल्लना के प्रति अपने द्वेष के कारण, मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म लाल कमल नरक में हुआ। 2116

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा सहमपति, जिन्होंने पूरे जेतवन को प्रकाशित कर दिया, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा: "भंते, भिक्षु कोकालिका का निधन हो गया है, और सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति उनके द्वेष के कारण, मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म लाल कमल के नरक में हुआ है।" ब्रह्मा सहमपति ने यही कहा। फिर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात आगे बढ़ गई, तो ब्रह्मा सहमपति मेरे पास आए और मुझसे कहा... [जैसा कि ऊपर बताया गया है]... फिर उन्होंने मुझे प्रणाम किया, मेरी ओर दाहिनी ओर रखते हुए मेरी परिक्रमा की और वहीं अंतर्धान हो गए।"

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा, "हे भंते, लाल कमल के नरक में जीवन काल कितना लंबा होता है?" 2117

"लाल कमल के नरक में जीवन काल लंबा होता है, भिक्षु। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने [173] वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।"

"तो क्या भंते, उपमा देना संभव है?"

"हे भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा: "मान लीजिए कि तिल के बीजों से भरी एक कोसला की गाड़ी में बीस माप तिल हैं। हर सौ साल के अंत में एक व्यक्ति उसमें से एक बीज निकालता है। इस प्रकार तिल के बीजों से भरी कोसला की गाड़ी इतनी जल्दी समाप्त हो सकती है जितनी जल्दी (1) एक निरब्बुद नरक में एक जीवन व्यतीत होगा। (2) निरब्बुद नरक में एक जीवन निरब्बुद नरक में बीस जीवन के बराबर है; (3) अबबा नरक में एक जीवन निरब्बुद नरक में बीस जीवन के बराबर है; (4) अहहा नरक में एक जीवन अबबा नरक में बीस जीवन के बराबर है; (5) अतता नरक में एक जीवन अहहा नरक में बीस जीवन के बराबर है; (6) कमल नरक में एक जीवन अबबा नरक में बीस जीवन के बराबर है; (7) सुगंधित नरक में एक जीवन बीस जीवन के बराबर है।" (8) कमल के नरक में एक जन्म मीठे-सुगंधित नरक में बीस जन्मों के बराबर है; (9) श्वेत कमल के नरक में एक जन्म नीले कमल के नरक में बीस जन्मों के बराबर है; और (10) लाल कमल के नरक में एक जन्म श्वेत कमल के नरक में बीस जन्मों के बराबर है। अब, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखने के कारण, भिक्षु कोकालिका का पुनर्जन्म लाल कमल के नरक में हुआ है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहने के बाद, सुगत (भगवान बुद्ध), गुरु ने आगे यह कहा: [174]

[यहाँ बुद्ध ब्रह्मा तुरु द्वारा ऊपर कहे गए शब्दों को दोहराते हैं:]

"जब कोई व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है तो

उसके मुंह में एक कुल्हाड़ी जन्म लेती है

जिससे मूर्ख व्यक्ति

गलत बातें बोलकर खुद को काट लेता है।"

जो व्यक्ति निंदा के पात्र व्यक्ति की प्रशंसा करता है

या प्रशंसा के पात्र व्यक्ति की निंदा करता है, वह

अपने मुख से एक अशुभ फेंकता है

जिससे उसे कोई सुख नहीं मिलता।

"पासे में दुर्भाग्यपूर्ण चाल चलकर

अपनी सारी संपत्ति खो देना,

स्वयं सहित सब कुछ खो देना मामूली बात है; लेकिन पवित्र लोगों के प्रति घृणा पालना

कहीं अधिक दुर्भाग्यपूर्ण चाल है ।"

"एक लाख

छत्तीस निरब्बुदों और पाँच अब्बुदों के लिए,

नेक लोगों की निंदा करने वाला नरक में जाता है,

क्योंकि उसने उन्हें बुरी वाणी और मन से बदनाम किया है।"

इच्छाहीनता की 90 शक्तियाँ 2118 (खिनासवबाला)

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

सारिपुत्त, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसके पास कितनी शक्तियाँ होती हैं जिनके कारण वह दोषों के नाश होने का दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं'?

"भंते, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसे दस शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनके कारण वह दोषों के नाश होने का दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं। वे दस शक्तियाँ कौन सी हैं?'"

(1) "हे भंते, यहाँ, दोषों से मुक्त भिक्षु ने सभी बद्ध घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को उनके वास्तविक स्वरूप में सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ स्पष्ट रूप से देखा है, जो अनित्य हैं। [175] यह दोषों से मुक्त भिक्षु की वह शक्ति है जिसके आधार पर वह दोषों के नाश होने का दावा करता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।'"

(2) "फिर, दोषों से मुक्त भिक्षु ने सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) के साथ इंद्रिय सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में स्पष्ट रूप से देखा है, जो कोयले की भट्टी के समान हैं। यह दोषों से मुक्त भिक्षु की शक्ति है..."

(3) "फिर, दोषों से मुक्त भिक्षु का मन एकांत की ओर झुकता है; वह एकांत में रहता है, त्याग में आनंदित होता है, और दोषों के आधार बनने वाली सभी चीजों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यही दोषों से मुक्त भिक्षु की शक्ति है..."

(4) "पुनः, दोषों से मुक्त भिक्षु ने ध्यान (सती/ध्यान) की चारों अवस्थाओं को विकसित और अच्छी तरह से सिद्ध कर लिया है; यह दोषों से मुक्त भिक्षु की शक्ति है..."

(5) — (10) "पुनः, दोषों से मुक्त भिक्षु ने चार सही प्रयासों को विकसित और अच्छी तरह से विकसित किया है... मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) के चार आधार... पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ... पाँच शक्तियाँ [176]... ज्ञान के सात कारक... श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग। यह दोषों से मुक्त भिक्षु की वह शक्ति है जिसके आधार पर वह दोषों के नाश का दावा करता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।'"

"भंते, जब किसी भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, तो उसे ये दस शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनके कारण वह दोषों के नाश होने का दावा कर सकता है: 'मेरे दोष नष्ट हो गए हैं।'"

वी. उपाली [2119]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

91 जो कामुक सुखों का आनंद लेता है 2120 (कामभोगी)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: [177]

गृहस्थ, संसार में दस प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं। वे दस कौन से हैं? 2121

[I. व्याख्या]

[ए. जो लोग अधार्मिक तरीके से धन की प्राप्ति करते हैं]

(1) "हे गृहस्थ, यहाँ जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही वह धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है।"

(2) "कोई दूसरा व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह हिंसा द्वारा अधर्मी ढंग से धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता।"

(3) "और फिर एक और व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह हिंसा द्वारा अधर्मी ढंग से धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है।"

[ख. वे लोग जो धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से धन की प्राप्ति करते हैं]

(4) "इसके बाद, हे गृहस्थ, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा से और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता; न ही वह धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है।"

(5) "कोई दूसरा व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा से और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता।"

(6) "और फिर भी कोई दूसरा व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा से और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है।"

[सी. वे लोग जो धार्मिक रूप से धन की प्राप्ति करते हैं]

(7) "इसके बाद, हे गृहस्थ, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह बिना हिंसा के धार्मिक रूप से धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही वह धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है।"

(8) "कोई दूसरा व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह हिंसा रहित, उचित तरीके से धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, [178] वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता।

(9) "फिर भी एक और व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह उचित तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। लेकिन वह अपने धन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके प्रति आसक्त और उसमें अंधाधुंध लीन रहते हुए करता है, उसमें निहित खतरे को नहीं देखता और उससे बचने के मार्ग को नहीं समझता।"

(10) "और फिर भी एक और व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह उचित तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करके वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। और वह अपने धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का रास्ता समझते हुए..."

[II. मूल्यांकन]

[ए. जो लोग अधार्मिक तरीके से धन की प्राप्ति करते हैं]

(1) जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, अपने आप को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता, धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अपने आप को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता। तीसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(2) जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। इस इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है।

(3) जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। जिस आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है वह यह है कि वह अन्यायपूर्वक, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है। जिस आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। जिस आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।

[ख. वे लोग जो धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकार से धन की प्राप्ति करते हैं]

(4) "फिर, गृहस्थ, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है और धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और संतुष्ट नहीं रखता, और धन का बंटवारा नहीं करता तथा पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। केवल एक आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह धार्मिक और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। पहला आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अधार्मिक और हिंसा के द्वारा धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और संतुष्ट नहीं रखता। तीसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(5) "इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला व्यक्ति, जो धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा से और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। पहला आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अधार्मिक रूप से, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। [180] इस इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(6) "इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला व्यक्ति, जो धार्मिक और अधार्मिक दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह धार्मिक और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह अधार्मिक और हिंसा के द्वारा धन की प्राप्ति करता है। तीसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। तीसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। इस इंद्रिय सुख का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीनों आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।"

[सी. वे लोग जो धार्मिक रूप से धन की प्राप्ति करते हैं]

(7) "फिर, गृहस्थ, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, अपने आप को सुख-सुविधाओं से वंचित रखता है, धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह यह है कि वह धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। पहला आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह अपने आप को सुख-सुविधाओं से वंचित रखता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है, वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(8) "इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला वह व्यक्ति जो धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। एक आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है वह यह है कि वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता। इस इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।"

(9) "इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला वह व्यक्ति जो धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, परन्तु यदि वह धन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके मोह में डूबे हुए और उसमें अंधाधुंध लीन होकर करता है, उसमें निहित खतरे को नहीं देखता और उससे बचने का मार्ग नहीं समझता— उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। तीसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। एकमात्र आधार जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है वह यह है कि वह धन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके मोह में डूबे हुए और उसमें अंधाधुंध लीन होकर करता है, उसमें निहित खतरे को नहीं देखता और उससे बचने का मार्ग नहीं समझता। इस इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।"

(10) "इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाला वह व्यक्ति जो धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और धन का बंटवारा करता है, और पुण्य कर्म करता है, और धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति में न होकर, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर और उससे बचने का मार्ग समझकर — उसकी चार आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। पहला आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है। दूसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है। तीसरा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है। चौथा आधार जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है वह यह है कि वह धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति में न होकर, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर और उससे बचने का मार्ग समझकर। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन चारों आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।"

[निष्कर्ष}

"हे गृहस्थ, ये दस प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं। इन दस में से, [182] सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा, सबसे प्रमुख, सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम वह है जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए, बिना हिंसा के, धार्मिक रूप से धन की प्राप्ति करता है और उसे प्राप्त करके स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है; और धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है; और

उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना, और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, क्योंकि वह उसमें निहित खतरे को जानता है और उससे बचने का मार्ग समझता है। जैसे गाय से दूध निकलता है, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार, इन दस प्रकार के इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्तियों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे अच्छा, सबसे प्रमुख, सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम वह है जो धार्मिक रूप से, बिना हिंसा के, धन की प्राप्ति करता है और उसे प्राप्त करके स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है; और धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है; और वह उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्त हुए बिना और उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करता है, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का रास्ता समझते हुए करता है।"

---

92 खतरे [2122] (भया)

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, जब एक श्रेष्ठ शिष्य पाँचों विपत्तियों और शत्रुताओं का निवारण कर लेता है, सात जन्मों के चार गुण प्राप्त कर लेता है, और श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख और उसमें पूर्णतः पारंगत कर लेता है, तो वह चाहे तो अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के क्षेत्र से मुक्त हो चुका हूँ; दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो चुका हूँ; मैं सात जन्मों के बाद जीवन में प्रवेश करने वाला (सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म के अधीन नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञानोदय की ओर अग्रसर हूँ।'"

"वे पाँच विपत्तियाँ और शत्रुताएँ क्या हैं जिनका निवारण हो गया है? [183] (1) गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, जीवन के विनाश को शर्त बनाकर वर्तमान जीवन और भविष्य के जीवन से संबंधित विपत्तियाँ और शत्रुताएँ उत्पन्न करता है, और वह मानसिक पीड़ा और निराशा का भी अनुभव करता है। जो जीवन के विनाश से परहेज करता है, वह न तो वर्तमान जीवन से संबंधित ऐसी विपत्तियाँ और शत्रुताएँ उत्पन्न करता है और न ही भविष्य के जीवन से संबंधित ऐसी विपत्तियाँ और शत्रुताएँ उत्पन्न करता है, और न ही वह मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव करता है। इस प्रकार, जो जीवन के विनाश से परहेज करता है, उसके लिए वह विपत्ति और शत्रुता समाप्त हो जाती है।"

(2) जो बिना दी हुई वस्तु लेता है... (3) जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... (4) जो झूठ बोलता है... (5) जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है, जो आलस्य का आधार हैं, और शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन एक शर्त के रूप में करता है, वह वर्तमान जीवन और भविष्य के जीवन में भी खतरे और शत्रुता उत्पन्न करता है, और उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का भी अनुभव होता है। जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है, जो आलस्य का आधार हैं, वह वर्तमान जीवन या भविष्य के जीवन में ऐसे खतरे और शत्रुता उत्पन्न नहीं करता है, और न ही उसे मानसिक पीड़ा और निराशा का अनुभव होता है। जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है, जो आलस्य का आधार हैं, उसके लिए वह खतरा और शत्रुता इस प्रकार समाप्त हो जाती है। "ये पाँच खतरे और शत्रुताएँ हैं जो समाप्त हो गई हैं।"

और वे कौन से चार कारक हैं जो उन्हें धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) प्रदान करते हैं? (6) यहाँ, गृहस्थ, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: "भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" (7) वह धम्म में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: "धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करती है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव की जानी है।" (8) वह संघ में इस प्रकार अटूट विश्वास रखता है: "भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है, उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति—भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। (9) वह श्रेष्ठ लोगों द्वारा प्रिय सद्गुणी आचरण से युक्त है, [184] अटूट,

दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अगोचर, समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला। ये वे चार कारक हैं जो धारा-प्रवेश (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के रूप में उसमें विद्यमान हैं।

और वह श्रेष्ठ विधि क्या है जिसे उसने स्पष्ट रूप से देखा है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूर्णतः भेद लिया है? 2123 (10) हे गृहस्थ, श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'जब यह विद्यमान होता है, तब वह विद्यमान होता है; इसके उत्पन्न होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तब वह विद्यमान नहीं होता; इसके समाप्त होने पर वह समाप्त हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान को शर्त मानकर व्यक्ति का चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) उत्पन्न होता है; अपने गुणों (संस्कार/संस्कार) को शर्त मानकर चेतना उत्पन्न होती है; चेतना को शर्त मानकर मन (नाम) और रूप (शरीर) उत्पन्न होते हैं; मन (नाम) और रूप (शरीर) को शर्त मानकर छह इंद्रिय क्षेत्र उत्पन्न होते हैं; छह इंद्रिय क्षेत्रों को शर्त मानकर स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श को शर्त मानकर संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) को शर्त मानकर तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) उत्पन्न होती है; तृष्णा (तन्हा/तृष्णा) को शर्त मानकर आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति को शर्त मानकर, अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण); अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की स्थिति में पुनर्जन्म; पुनर्जन्म की स्थिति में वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

लेकिन शेष बचे हुए अंशों के क्षीण होने और अज्ञान के समाप्त होने के साथ ही व्यक्ति के संस्कारों का भी अंत हो जाता है; संस्कारों के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से नाम और शरीर का अंत हो जाता है; नाम और शरीर के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से संपर्क का अंत हो जाता है; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का अंत हो जाता है; वेदना के समाप्त होने से तृष्णा का अंत हो जाता है; तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति का अंत हो जाता है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व का अंत हो जाता है (पुनर्जन्म का कारण); अस्तित्व के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा का अंत हो जाता है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का अंत हो जाता है।

"यह वह श्रेष्ठ विधि है जिसे उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा है और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से पूरी तरह से भेद दिया है।"

"हे गृहस्थ, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँचों विपत्तियों और शत्रुताओं को दूर कर लेता है, और उसमें सात जन्मों के चार गुण (सोतपत्ति) होते हैं, और वह इस श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख लेता है और इसमें पूर्णतः पारंगत हो जाता है (पन्न ज्ञान), तो वह चाहे तो अपने बारे में यह कह सकता है: 'मैं नरक, पशु जगत और पीड़ित आत्माओं के लोक से मुक्त हो चुका हूँ; दुख के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक से मुक्त हो चुका हूँ; मैं सात जन्मों का स्वामी (सोतपत्ति) हूँ, अब निम्न लोक में पुनर्जन्म का पात्र नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, ज्ञान की ओर अग्रसर हूँ।"

---

93 क्या दृष्टिकोण (किमदित्थिका)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के दर्शन के लिए दोपहर में ही सावत्थी से निकल पड़े। तब उनके मन में यह विचार आया: "यह भगवान (बुद्ध) के दर्शन का उचित समय नहीं है, जो एकांत में हैं, न ही आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन का, जो स्वयं भी एकांत में हैं। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलना चाहिए।"

फिर गृहस्थ अनाथपिंडिका अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उस समय अन्य संप्रदायों के तपस्वी एकत्रित थे और शोर मचा रहे थे, वे जोर-जोर से निरर्थक विषयों पर चर्चा कर रहे थे। तपस्वियों ने दूर से गृहस्थ अनाथपिंडिका को आते देखा और एक-दूसरे को चुप कराया: "महोदय, शांत हो जाइए। महोदय, शोर न कीजिए। गृहस्थ अनाथपिंडिका आ रहे हैं, जो तपस्वी गौतम के शिष्य हैं, और उनके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्यों में से एक हैं, जो सावत्थी में निवास करते हैं। ये पूजनीय साधु शांतिप्रिय हैं, शांति में अनुशासित हैं और शांति की प्रशंसा करते हैं। शायद यदि वे हमारी सभा को शांत पाएंगे, तो वे हमारे पास आने का विचार करेंगे।" तब अन्य संप्रदायों के तपस्वी शांत हो गए।

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका उन तपस्वियों के पास गए और उनसे अभिवादन किया। जब उन्होंने अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त कर ली, तो वे एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उनसे कहा:

"हे गृहस्थ, हमें बताइए कि तपस्वी गौतम का क्या मत है?"

"भंते, मुझे भगवान (बुद्ध) का संपूर्ण दृष्टिकोण नहीं पता।"

"तो, गृहस्थ, आप कहते हैं कि आप तपस्वी गौतम के दृष्टिकोण को पूरी तरह से नहीं जानते। तो हमें बताइए, भिक्षुओं का दृष्टिकोण क्या है?"

"भंते, मुझे भी भिक्षुओं का पूरा दृष्टिकोण नहीं पता है।"

"तो, गृहस्थ, आप कहते हैं कि आप तपस्वी गौतम के दृष्टिकोण को पूरी तरह से नहीं जानते और न ही भिक्षुओं के दृष्टिकोण को पूरी तरह से जानते हैं। तो हमें बताइए, आपका दृष्टिकोण क्या है?"

"भंते, मेरे लिए अपना दृष्टिकोण समझाना मुश्किल नहीं है। लेकिन पहले आप अपना दृष्टिकोण समझाइए। उसके बाद मेरे लिए अपना दृष्टिकोण समझाना आसान हो जाएगा।"

जब यह कहा गया, तो एक तपस्वी ने गृहस्थ अनाथपिंडिका से कहा: (1) "'संसार शाश्वत है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य है': यही मेरा मत है, गृहस्थ।" (2) दूसरे तपस्वी ने कहा: "'संसार शाश्वत नहीं है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य है': यही मेरा मत है, गृहस्थ।" (3)— (4) एक और ने कहा: "'संसार सीमित है'... 'संसार अनंत है'... (5)— (6) 'आत्मा और शरीर एक ही हैं'... 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'... (7)— (10) 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है: यही मेरा मत है, गृहस्थ।" 2124

यह सुनकर गृहस्थ अनाथपिंडिका ने उन तपस्वियों से कहा, "भंते, इस पूज्यवर ने ऐसा कहा है: संसार शाश्वत है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त कुछ भी असत्य है": यही मेरा मत है, [187] गृहस्थ।" उनका यह मत उनकी स्वयं की लापरवाही से उत्पन्न हुआ है या उन्होंने इसे किसी और के कथन से सीखा है। अब यह मत अस्तित्व में आया है और सीखा है, आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रितता से उत्पन्न हुआ है। परन्तु जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और सीखा है, आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रितता से उत्पन्न हुआ है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। वह केवल दुख से ही आसक्त है और उसे ही थामे हुए है।

"भंते, उस [दूसरे] पूज्यवर ने ऐसा कहा: 'संसार नश्वर है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त कुछ भी असत्य है: यही मेरा मत है, हे गृहस्थ।' उनका यह मत भी उनकी अपनी लापरवाही से उत्पन्न हुआ है या उन्होंने किसी और के कथन से सीखा है (संक्षिप्त)। अब यह मत अस्तित्व में आ गया है और यह सीखा हुआ व्यवहार (संक्षिप्त) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है, और आश्रितता से उत्पन्न हुआ है। परन्तु जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और सीखा हुआ (संक्षिप्त) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रितता से उत्पन्न हुआ है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। वह केवल दुख से ही आसक्त है और उसी से जुड़ा हुआ है।"

"भंते, इस पूज्यवर ने ऐसा कहा: 'संसार सीमित है'... 'संसार अनंत है'... 'आत्मा और शरीर एक ही हैं'... 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है: यही मेरा मत है, गृहस्थ।" उसका यह विचार भी उसकी अपनी लापरवाही या किसी और के कथन से सीखा हुआ है। अब यह विचार अस्तित्व में आ गया है और यह एक सीखा हुआ व्यवहार (संक्षिप्तम) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है और आश्रित रूप से उत्पन्न हुआ है। लेकिन जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और सीखा हुआ व्यवहार (संक्षिप्तम) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है और आश्रित रूप से उत्पन्न हुआ है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। वह केवल दुख से ही आसक्त है और उसे ही थामे हुए है। [188]

यह सुनकर उन तपस्वियों ने गृहस्थ अनाथपिंडिका से कहा, "हे गृहस्थ, हम सबने अपने-अपने विचार स्पष्ट कर दिए हैं। अब आप भी अपना विचार बताइए।"

"भंते, जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और सीखा हुआ व्यवहार (संखत्तम) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रित रूप से उत्पन्न है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। जो कुछ भी दुख है, वह मेरा नहीं है; मैं यह नहीं हूँ; यह मेरा स्व नहीं है। यही मेरा दृष्टिकोण है।"

"हे गृहस्थ, जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और जो कुछ सीखा हुआ व्यवहार (संखट्टम) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रितता से उत्पन्न हुआ है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। तुम केवल उसी दुख से आसक्त हो और उसे थामे हुए हो।"

"भंते, जो कुछ भी अस्तित्व में आया है और जो सीखा हुआ व्यवहार (संखत्तम) है, जो आत्म-जागरूकता का परिणाम है, आश्रित रूप से उत्पन्न है, वह क्षणभंगुर है। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुख है। सही पन्ना (दिव्य ज्ञान) से दुख को उसके वास्तविक स्वरूप में स्पष्ट रूप से देखकर, मैं समझता हूँ: 'यह मेरा नहीं है; मैं यह नहीं हूँ; यह मेरा स्वरूप नहीं है।' मैं इसे उसके वास्तविक स्वरूप में ही समझता हूँ और इससे बचने का श्रेष्ठ उपाय समझता हूँ।"

यह सुनकर वे तपस्वी चुपचाप, व्याकुल, झुके हुए, उदास और मौन बैठे रहे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका ने यह समझकर कि वे तपस्वी मौन और मौन बैठे हैं, अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन तपस्वियों के साथ हुई अपनी सारी बातचीत भगवान (बुद्ध) को बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, गृहस्थ! इसी प्रकार उन खोखले लोगों को समय-समय पर तर्कपूर्ण तर्कों से पूर्णतः खंडित किया जाना चाहिए।" 2125 तब भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ अनाथपिंडिका को धर्मोपदेश दिया, प्रोत्साहित किया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। फिर, जब गृहस्थ अनाथपिंडिका को भगवान (बुद्ध) द्वारा धर्मोपदेश दिया गया, प्रोत्साहित किया गया, प्रेरित किया गया और प्रसन्न किया गया, [189] तो वह अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

फिर, गृहस्थ अनाथपिंडिका के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, यहाँ तक कि वह भी जिसने इस धम्म और अनुशासन में सौ वर्षों तक दीक्षा ली हो, अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का तर्कपूर्ण ढंग से खंडन करना चाहे, तो वह उनका खंडन उसी प्रकार करेगा जैसे गृहस्थ अनाथपिंडिका ने किया है।"

---

94 वज्जीयमहाता

एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गर कमल तालाब के किनारे निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ वज्जीयामहित दोपहर में भगवान (बुद्ध) के दर्शन के लिए चंपा से निकले। तब उनके मन में यह विचार आया: "यह भगवान (बुद्ध) के दर्शन का उचित समय नहीं है, जो एकांतवास में हैं, न ही आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन का, जो स्वयं भी एकांतवास में हैं। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब गृहस्थ वज्जीयामहित अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गया . . . [सभी 10:93 के अनुसार] [190] .

तब गृहस्थ वज्जीयामहित उन संन्यासियों के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए। तब संन्यासियों ने उनसे कहा:

"हे गृहस्थ, क्या यह सच है कि जैसा कहा जाता है, तपस्वी गौतम सभी तपस्याओं की आलोचना करते हैं और कठोर एवं तपस्वी जीवन जीने वाले सभी लोगों की निर्विरोध निंदा और आलोचना करते हैं?"

नहीं, भंते, भगवान (बुद्ध) सभी तपस्याओं की आलोचना नहीं करते और न ही वे कठोर एवं तपस्वी जीवन जीने वाले सभी लोगों की बिना शर्त निंदा और निंदा करते हैं। भगवान (बुद्ध) आलोचना के योग्य बातों की आलोचना करते हैं और प्रशंसा के योग्य बातों की

प्रशंसा करते हैं। आलोचना के योग्य बातों की आलोचना और प्रशंसा के योग्य बातों की प्रशंसा करके, भगवान (बुद्ध) भेदों के आधार पर बोलते हैं; वे ऐसे मामलों पर एकतरफा बात नहीं करते। 2126

जब यह कहा गया, तो एक तपस्वी ने गृहस्थ वज्जीयामहित से कहा: "एक क्षण रुकिए, गृहस्थ! जिस तपस्वी गौतम की आप प्रशंसा कर रहे हैं, वह एक उन्मूलनवादी हैं जो निश्चित घोषणाएँ करने से परहेज करते हैं।"

"मैं उस मुद्दे पर भी विचार करूँगा, भंते। भगवान (बुद्ध) ने सही कहा है: 'यह लाभकारी (कुशल) है' और 'यह हानिकारक (अकुशल) है।' अतः, जब वे लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल) का वर्णन करते हैं, तो वे निश्चित कथन करते हैं। वे कोई ऐसे सिद्धांतवादी नहीं हैं जो निश्चित कथन करने से बचते हैं।"

यह सुनकर वे तपस्वी [191] मौन, व्याकुल, झुके हुए, उदास, स्तब्ध और चुप बैठे रहे। तब गृहस्थ वज्जीयामहित ने यह समझकर कि वे तपस्वी मौन और चुप बैठे हैं, अपने आसन से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों के साथ हुई अपनी सारी बातचीत भगवान (बुद्ध) को बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "अच्छा, अच्छा, गृहस्थ! इसी तरह समय-समय पर उन खोखले लोगों का तर्कपूर्ण ढंग से खंडन किया जाना चाहिए।"

(1)—(2) हे गृहस्थ, मैं यह नहीं कहता कि हर प्रकार की तपस्या का अभ्यास किया जाए; न ही मैं यह कहता हूँ कि हर प्रकार की तपस्या का अभ्यास न किया जाए। (3)—(4) मैं यह नहीं कहता कि हर अनुष्ठान का पालन किया जाए; न ही मैं यह कहता हूँ कि हर अनुष्ठान का पालन न किया जाए। (5)—(6) मैं यह नहीं कहता कि हर तरह से प्रयास किया जाए; न ही मैं यह कहता हूँ कि किसी भी तरह से प्रयास न किया जाए। (7)—(8) मैं यह नहीं कहता कि हर प्रकार का त्याग किया जाए; न ही मैं यह कहता हूँ कि किसी भी प्रकार का त्याग न किया जाए। (9)—(10) मैं यह नहीं कहता कि हर प्रकार की मुक्ति प्राप्त की जाए; न ही मैं यह कहता हूँ कि किसी भी प्रकार की मुक्ति प्राप्त न की जाए।

(1)— (2) "हे गृहस्थ, यदि किसी विशेष तपस्या का अभ्यास करने पर अकुशल गुण (धम्म) बढ़ जाते हैं और कुशल गुण घट जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसी तपस्या का अभ्यास नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी विशेष तपस्या का अभ्यास करने पर अकुशल गुण घट जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसी तपस्या का अभ्यास करना चाहिए।"

(3)— (4) "हे गृहस्थ, यदि किसी विशेष अनुष्ठान का पालन करने पर अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और कुशल गुण घट जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे अनुष्ठान का पालन नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी विशेष अनुष्ठान का पालन करने पर अकुशल गुण घट जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे अनुष्ठान का पालन करना चाहिए।"

(5)— (6) "हे गृहस्थ, यदि किसी विशेष मार्ग से प्रयास करने पर अकुशल गुण (धम्म) बढ़ते हैं और कुशल गुण (कुशल) घटते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे प्रयास नहीं करने चाहिए। परन्तु यदि किसी विशेष मार्ग से प्रयास करने पर अकुशल गुण (हानिकारक) घटते हैं और कुशल गुण (धम्म) बढ़ते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे प्रयास करने चाहिए।"

(7)—(8) "हे गृहस्थ, यदि किसी वस्तु का त्याग करने पर अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसा त्याग नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि किसी वस्तु का त्याग करने पर अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसा त्याग करना चाहिए।"

(9)— (10) "हे गृहस्थ, यदि किसी विशेष मोक्ष की प्राप्ति पर अकुशल गुण बढ़ जाते हैं और लाभकारी गुण घट जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं करनी चाहिए। परन्तु यदि किसी विशेष मोक्ष की प्राप्ति पर अकुशल गुण घट जाते हैं और लाभकारी गुण बढ़ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए।"

फिर, जब गृहस्थ वज्जीयामहित को भगवान (बुद्ध) द्वारा धर्म प्रवचन से उपदेश, प्रोत्साहन, प्रेरणा और प्रसन्नता प्राप्त हुई, तो वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, गृहस्थ वज्जीयामहित के चले जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु, यहाँ तक कि वह भी जिसकी आँखों में इस धम्म और अनुशासन के प्रति लंबे समय से थोड़ी सी भी धूल न हो, अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का तर्कपूर्ण खंडन करे, तो वह उनका खंडन ठीक उसी प्रकार करेगा जैसे गृहस्थ वज्जीयामहित ने किया है।" [193]

———————————————————————————

==== 95 उत्तिया

तब तपस्वी उत्तिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

(1) "यह कैसे है? गुरु गौतम, क्या संसार शाश्वत है? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब कुछ गलत है?"

"उत्तिया, मैंने यह घोषणा नहीं की है: 'संसार शाश्वत है; यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है।'"

(2) "तो, हे गौतम गुरु, क्या संसार शाश्वत नहीं है? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब कुछ गलत है?"

"उत्तिया, मैंने यह भी घोषित नहीं किया है: 'संसार शाश्वत नहीं है; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है।"

(3) — (4) "तो फिर क्या है, हे गौतम जी, क्या संसार सीमित है? ... क्या संसार अनंत है? ... (5)— (6) क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं? ... क्या आत्मा एक है और शरीर दूसरी? ... (7)— (10) क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं? ... क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते? ... क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी? ... क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब असत्य है?"

"उत्तिया, मैंने यह भी घोषित नहीं किया है: 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान; यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी असत्य है।'" 2127

जब मैंने आपसे पूछा: 'हे गौतम जी, क्या संसार शाश्वत है? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब असत्य है?' तो आपने कहा: 'उत्तिया, मैंने यह नहीं कहा है कि "संसार शाश्वत है; केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।" लेकिन जब मैंने आपसे पूछा: 'तो हे गौतम जी, क्या संसार शाश्वत नहीं है? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब असत्य है?' तो आपने कहा: 'उत्तिया, मैंने यह भी नहीं कहा है कि "संसार शाश्वत नहीं है; केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।" जब मैंने आपसे पूछा: 'हे गौतम जी, क्या संसार सीमित है? ... क्या तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नस्त होते हैं? क्या केवल यही सत्य है और बाकी सब असत्य है?' [194] तो आपने कहा: 'उत्तिया, मैंने यह भी नहीं कहा है कि "तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नस्त होते हैं; केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।" तो फिर, गौतम जी ने क्या कहा है?'

"प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के माध्यम से, हे उत्तिया, मैं अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश देता हूँ ताकि प्राणियों का शुद्धिकरण हो, दुःख और विलाप पर विजय प्राप्त हो, पीड़ा और निराशा दूर हो, विधि का ज्ञान हो और निर्वाण की प्राप्ति हो।"

लेकिन जब गुरु गौतम प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) के माध्यम से अपने शिष्यों को प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और निराशा के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हैं, तो क्या इससे संपूर्ण विश्व मुक्त हो जाएगा, या आधा विश्व, या एक तिहाई विश्व?

जब यह प्रश्न पूछा गया, तो भगवान (बुद्ध) मौन रहे। तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "तपस्वी उत्तिया को यह गलत धारणा नहीं अपनानी चाहिए कि 'जब मैं तपस्वी गौतम से सबसे ऊँचा प्रश्न पूछता हूँ, तो वे हिचकिचाते हैं और उत्तर नहीं देते।' 128 अवश्य ही वे ऐसा करने में असमर्थ हैं।" इससे तपस्वी उत्तिया को लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा।

तब पूज्य आनंद ने तपस्वी उत्तिया से कहा, "तो फिर, मित्र उत्तिया, मैं तुम्हें एक उपमा देता हूँ। यहाँ कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कही गई बात का अर्थ समझ जाते हैं। मान लो कि एक राजा का एक सीमावर्ती शहर है जिसमें मजबूत प्राचीरें, दीवारें और मेहराब हैं

और केवल एक ही द्वार है। वहाँ तैनात द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होगा; वह अजनबियों को बाहर रखेगा [195] और परिचितों को अंदर आने देगा। जब वह शहर के चारों ओर बने मार्ग पर चल रहा होगा, तो उसे दीवारों में एक भी दरार या छेद दिखाई नहीं देगा, जो इतना छोटा भी न हो कि एक बिल्ली उसमें से निकल सके। उसे यह तो नहीं पता होगा कि कितने जीव शहर में प्रवेश करते हैं या बाहर जाते हैं, लेकिन वह निश्चित रूप से कह सकता है कि जितने भी बड़े जीव शहर में प्रवेश करते हैं या बाहर जाते हैं, वे सभी उसी द्वार से आते-जाते हैं। ठीक उसी प्रकार, मित्र उत्तिया, तथागत (बुद्ध) को इस बात की चिंता नहीं है कि पूरा विश्व मुक्त होगा, या आधा विश्व, या एक तिहाई। लेकिन वह निश्चित रूप से कह सकता है कि वे सभी जो जो लोग संसार से मुक्त हो चुके हैं, या मुक्त हो रहे हैं, या मुक्त होंगे, वे सर्वप्रथम पांच अवरोधों, मन की उन विकृतियों का त्याग करें जो पन्ना (दिव्य ज्ञान) को दुर्बल करती हैं, और फिर, ध्यान (सती) की चार अवस्थाओं में सुस्थापित होकर, ज्ञानोदय के सात कारकों का सही ढंग से विकास करें। इसी प्रकार वे संसार से मुक्त हो चुके हैं, या मुक्त हो रहे हैं, या मुक्त होंगे।

"मित्र उत्तिया, तुमने भगवान (बुद्ध) से वही प्रश्न एक अलग दृष्टिकोण से पूछा जो तुमने पहले ही उनसे पूछा था... 2129 इसलिए भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें उत्तर नहीं दिया।" [496]

---

96 कोकानुडा 2330

एक बार पूज्य आनंद राजगृह में गर्म झरनों के उद्यान में निवास कर रहे थे। रात ढलने लगी तो पूज्य आनंद उठे और स्नान करने के लिए गर्म झरनों की ओर चल दिए। स्नान करने के बाद वापस आकर वे एक वस्त्र धारण किए अपने अंगों को सुखा रहे थे। तपस्वी कोकनादा भी रात ढलने लगी तो उठे और स्नान करने के लिए गर्म झरनों की ओर चल दिए। उन्होंने दूर से पूज्य आनंद को देखा और उनसे कहा:

"यहाँ कौन है, दोस्त?"

"मैं एक भिक्षु हूँ, मित्र।"

"मित्र, तुम भिक्षुओं के किस समूह से हो?"

"शाक्य पुत्र का अनुसरण करने वाले तपस्वियों से।"

"यदि आप मेरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए समय निकाल सकें, तो मैं आपसे एक विशेष बिंदु के बारे में पूछना चाहूंगा।"

"आप पूछ सकते हैं, मित्र। जब मैं आपका प्रश्न सुनूंगा, तो मुझे पता चल जाएगा कि मैं इसका उत्तर दे सकता हूं या नहीं।"

"महोदय, आप यह कैसे मानते हैं: (1) 'संसार शाश्वत है; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है'?"

"मैं ऐसा विचार नहीं रखता, मित्र।"

"तो क्या आप यह विचार रखते हैं: (2) 'संसार शाश्वत नहीं है; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है'?"

"मैं ऐसा विचार नहीं रखता, मित्र।"

क्या आप यह विचार रखते हैं: (3)— (4) 'संसार सीमित है' . . . 'संसार अनंत है' . . . (5) -(6) 'आत्मा और शरीर एक ही हैं'

... 'आत्मा एक चीज है, शरीर दूसरी' ... (7)-(10) 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं' ... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते' ... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और [197] विद्यमान नहीं भी रहते' ... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं; केवल यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी गलत है'?

"मैं ऐसा विचार नहीं रखता, मित्र।"

तो क्या ऐसा हो सकता है कि आप न जानते हों और न देखते हों?

"ऐसा नहीं है, मित्र, कि मैं नहीं जानता और नहीं देखता। मैं जानता और देखता हूँ।"

जब मैंने आपसे पूछा: 'महोदय, आप यह कैसे मानते हैं कि “संसार शाश्वत है; यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी असत्य है”?' तो आपने कहा: 'मैं ऐसा नहीं मानता, मित्र।' लेकिन जब मैंने आपसे पूछा: 'तो क्या आप यह मानते हैं कि “संसार शाश्वत नहीं है; यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी असत्य है”?' तो आपने कहा: 'मैं ऐसा नहीं मानता, मित्र।' जब मैंने आपसे पूछा: 'क्या आप यह मानते हैं कि “संसार सीमित है”... “तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर; यही सत्य है, इसके अलावा कुछ भी असत्य है”?' तो आपने कहा: 'मैं ऐसा नहीं मानता, मित्र।' फिर जब मैंने आपसे पूछा: 'तो क्या ऐसा हो सकता है कि आप न जानते हों और न देखते हों?' तो आपने कहा: 'ऐसा नहीं है, मित्र, कि मैं न जानता हो और न देखता हो। मैं जानता हूँ और देखता हूँ।' मित्र, इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?'

"मित्र, 'संसार शाश्वत है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य है': यह एक काल्पनिक दृष्टिकोण है। 'संसार शाश्वत नहीं है; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य है': यह एक काल्पनिक दृष्टिकोण है। 'संसार सीमित है'... 'संसार अनंत है'... 'आत्मा और शरीर एक ही हैं'... 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते हैं'... 'तथागत (बुद्ध) मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही अस्य रहते हैं; यही सत्य है, इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य है': यह एक काल्पनिक दृष्टिकोण है।"

"मित्र, जहाँ तक काल्पनिक दृष्टिकोण, विचारों का आधार, विचारों की नींव, विचारों के प्रति आसक्ति, विचारों की उत्पत्ति और विचारों के उन्मूलन की बात है, मैं इसे जानता और देखता हूँ। जब मैं इसे जानता और देखता हूँ, तो मुझे यह क्यों कहना चाहिए: 'मैं नहीं जानता और नहीं देखता।' मैं जानता हूँ, मित्र, मैं देखता हूँ।"

"आपका नाम क्या है? और आपके साथी भिक्षु आपको किस नाम से जानते हैं?"

"मेरा नाम आनंद है, और मेरे साथी भिक्षु मुझे आनंद के नाम से जानते हैं।"

"सचमुच, मुझे यह एहसास ही नहीं था कि मैं महान गुरु, पूज्य आनंद से परामर्श कर रहा हूँ! यदि मुझे पता होता कि ये पूज्य आनंद हैं, तो मैं इतना अधिक नहीं बोलता। पूज्य आनंद कृपया मुझे क्षमा करें।"

---

97 उपहार के योग्य (अहुनेय्या)

"दस गुणों से युक्त भिक्षु, दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होते हैं; वे संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र हैं।"

कितने दस?

(1) "यहाँ, भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित रहता है, अच्छे आचरण और आश्रय से युक्त रहता है, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, वह उनमें अभ्यास करता है।"

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है, सीखी हुई बातों को याद रखता है और उन्हें संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में अच्छी हों, मध्य में अच्छी हों और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ [199] और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों — ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से जांचा है और दृष्टि से भली-भांति समझा है।

(3) "उसके अच्छे दोस्त हैं, अच्छे साथी हैं, अच्छे सहपाठी हैं।

(4) "वह सही दृष्टिकोण रखता है और सही परिप्रेक्ष्य रखता है।

(5) "वह अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियों (जादू/इद्धि) का प्रयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है; वह प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है; वह बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत से होकर ऐसे गुजरता है मानो अंतरिक्ष में; वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो; वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वह पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा करता है; अपने हाथ से वह इतने शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है और सहलाता है; वह ब्रह्म जगत तक शरीर पर महारत रखता है।"

(6) "शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ दिव्य श्रवण तत्व के साथ, वह दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है, दिव्य और मानवीय, दूर की ध्वनियों को भी सुनता है।

(7) वह अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझता है, क्योंकि उसने उन्हें अपने मन से समाहित कर लिया है। वह राग से ग्रस्त मन को राग से ग्रस्त मन के रूप में और राग रहित मन को राग रहित मन के रूप में समझता है; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझता है; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में और मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझता है; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में समझता है; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न मन के रूप में समझता है; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ न होने योग्य मन को श्रेष्ठ होने योग्य समझता है; समाधि में लीन मन को समाधि में लीन मन के रूप में और एकाग्रताहीन मन को समाधि में लीन मन के रूप में समझता है। असामहिता; मुक्त मन मुक्त ही रहता है और अमुक्त मन अमुक्त ही रहता है। 2137

(8) "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, [200] पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, विश्व-विनाश के अनेक युग, विश्व-विकास के अनेक युग, विश्व-विनाश और विश्व-विकास के अनेक युग, इस प्रकार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से निकलकर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों को उनके विभिन्न पहलुओं और विवरणों सहित याद करता है।

(9) "ईश्वरीय दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है: "वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण किए, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।" इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध है और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली देखता है, और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हश्र होता है।

(10) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"इन दस गुणों से युक्त भिक्षु दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है।"

---

98 एक बुजुर्ग (थेरा संस्कृत स्थिवरा)

दस गुणों से युक्त भिक्षु, एक वरिष्ठ भिक्षु जहाँ कहीं भी निवास करे, सहजता से रहता है। वे दस गुण क्या हैं? (1) वरिष्ठ भिक्षु लंबे समय से संन्यासी हैं। (2) वे गुणी हैं। . . . प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वे उनका अभ्यास करते हैं। (3) उन्होंने बहुत कुछ सीखा है . . . और दृष्टि से अच्छी तरह से पारंगत हैं। (4) दोनों पतिमोक्खों का उन्हें विस्तार से ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनका अच्छी तरह से विश्लेषण किया गया है, उन पर अच्छी तरह से महारत हासिल है, नियमों और उनकी विस्तृत व्याख्या के संदर्भ में अच्छी तरह से निर्धारित हैं। (5) वे अनुशासन संबंधी मुद्दों के उद्भव और समाधान में कुशल हैं। (6) वे धम्म (मार्ग) से प्रेम करते हैं और अपने कथनों में मनभावन हैं, धम्म और अनुशासन से संबंधित उच्च आनंद से परिपूर्ण हैं। (7) वे किसी भी प्रकार के वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए दवाओं और भोजन से संतुष्ट हैं। (8) वे आगे बढ़ते और लौटते समय शालीन हैं, और संयमित भी हैं। घरों के बीच बैठे हुए। (9) वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से, इस जीवन में ही उच्च मन की चार ध्यान अवस्थाओं (सम्मोहन अवस्थाओं) को प्राप्त कर लेता है, जो सुखद निवास स्थान हैं। (10) दोषों के नाश के साथ, उसने इस जीवन में ही प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। इन दस गुणों से युक्त, एक वरिष्ठ भिक्षु जिस भी स्थान पर रहता है, वहाँ सहजता से रहता है।

---

99 उपाली

तब पूज्य उपली भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए, [202] और कहा: "भंते, मैं जंगलों और वन उपवनों में एकांतवास में जाना चाहता हूँ।"

उपाली, जंगलों और वनों में एकांतवास में रहना कठिन है। एकांत को स्वीकार करना और उसमें आनंद लेना मुश्किल है। जब कोई भिक्षु अकेला होता है, तो जंगल उसके मन को मोह लेते हैं, क्योंकि वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त नहीं करता। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो कहता है, 'मैं समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त नहीं करता, फिर भी जंगलों और वनों में एकांतवास में रहूँगा,' वह या तो डूब जाएगा या बह जाएगा। 2133

"मान लो, उपाली, एक बड़ी झील है, और सात-आठ हाथियों का एक नर हाथी आता है। वह सोच सकता है: 'चलो इस झील में उतरता हूँ और मजे से अपने कान और पीठ धोता हूँ। मैं नहाऊँगा और पानी पीऊँगा, बाहर आऊँगा और जहाँ चाहूँ वहाँ चला जाऊँगा।' फिर वह झील में उतरता है और मजे से अपने कान और पीठ धोता है। वह नहाता है और पानी पीता है, बाहर आता है और जहाँ चाहूँ वहाँ चला जाता है। ऐसा कैसे? क्योंकि उसका विशाल शरीर गहराई में पैर जमा लेता है।"

फिर एक खरगोश या बिल्ली आती है। वह सोच सकती है: 'एक नर हाथी मुझसे कैसे अलग है? मैं इस झील में उतरूंगा और खूब खेलूंगा, अपने कान और पीठ धोऊंगा। [203] मैं स्नान करूंगा और पानी पीऊंगा, बाहर आऊंगा और जहां चाहूं वहां चला जाऊंगा।' फिर, बिना सोचे-समझे, वह जल्दबाजी में गहरी झील में उतर जाता है। यह उम्मीद की जा सकती है कि वह या तो डूब जाएगा या बह जाएगा। ऐसा क्यों? क्योंकि उसका छोटा शरीर गहराई में पैर नहीं जमा पाता। इसी तरह, यह उम्मीद की जा सकती है कि जो व्यक्ति कहेगा: 'मैं समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त नहीं करता, फिर भी मैं जंगलों और वनों में एकांतवास करूंगा,' वह या तो डूब जाएगा या बह जाएगा।

"मान लीजिए, उपाली नाम का एक छोटा बच्चा पीठ के बल लेटा हुआ अपने ही मूत्र और मल से खेल रहा है। आपको क्या लगता है, क्या यह मनोरंजन का बिल्कुल ही मूर्खतापूर्ण तरीका नहीं है?"

"हां, भंते।"

कुछ समय बाद, जब वह लड़का बड़ा हो जाएगा और उसकी बुद्धि विकसित हो जाएगी, तो वह लड़कों के लिए आम खेल खेलेगा - खिलौने वाले हल, छड़ी वाले खेल, कलाबाजियां, फिरकी वाले खेल, पत्तों से बने नापने वाले खेल, खिलौने वाले रथ, खिलौने वाले धनुष। आपको क्या लगता है, क्या यह मनोरंजन पहले वाले मनोरंजन से कहीं अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ नहीं है?

"हां, भंते।"

कुछ समय बाद, जैसे-जैसे वह लड़का बड़ा होता जाता है और उसकी इंद्रियाँ और अधिक परिपक्व होती जाती हैं, वह पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंदित होता है: आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़े और उत्तेजक होते हैं; कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से सुनाई देने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित होने वाली वस्तुएँ [204] जो वांछित, मनभावन, सुखद, कामुक सुख से जुड़ी और उत्तेजक होती हैं। आपका क्या विचार है, क्या यह मनोरंजन पहले वाले प्रकार से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?

"हां, भंते।"

"हे उपली, यहाँ तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट होते हैं, 2134 एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)। अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) से इस संसार को इसके देवों (देवदूतों/देवताओं), मार और ब्रह्मा सहित, इस जनसंख्या को इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों सहित, अनुभव करके, वे इसे दूसरों को ज्ञात कराते हैं। वे उस धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा, मध्य में अच्छा और अंत में अच्छा है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) को प्रकट करते हैं।"

"एक गृहस्थ, गृहस्थ का पुत्र, या किसी अन्य कुल में जन्मा व्यक्ति इस धम्म को सुनता है। तब वह तथागत (बुद्ध) में आस्था रखता है और इस प्रकार विचार करता है: 'गृहस्थ जीवन भीड़भाड़ वाला और धूल भरा है; संन्यासी जीवन में प्रवेश करना खुला और विशाल है। घर में रहते हुए ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) जीना आसान नहीं है, जो पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध शंख के समान है। मान लीजिए कि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता हूँ।' बाद में, छोटी या बड़ी संपत्ति, छोटे या बड़े रिश्तेदारों के समूह को त्यागकर, वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है।"

इस प्रकार संन्यासी जीवन में प्रवेश करके और भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीवन शैली को अपनाकर, जीवन-विनाश का त्याग करके, वह जीवन-विनाश से दूर रहता है; दंड (हिंसा) और शस्त्र त्यागकर, वह विवेकशील और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी रहता है। अनचाही वस्तुएँ लेने का त्याग करके, वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही चाहता है जो दिया गया है, और चोरी के विचारों के बिना ईमानदारी से रहता है। यौन क्रिया का त्याग करके, वह ब्रह्मचर्य का पालन करता है, एकांत में रहता है, और सामान्य व्यक्ति के अभ्यास के अनुसार यौन संबंध से दूर रहता है।

"झूठे वचनों का त्याग करके, वह झूठे वचनों से दूर रहता है; वह सत्य बोलता है, सत्य का पालन करता है; वह विश्वसनीय और भरोसेमंद है, संसार को धोखा नहीं देता। फूट डालने वाले वचनों का त्याग करके, वह फूट डालने वाले वचनों से दूर रहता है; वह यहाँ सुनी हुई बातों को कहीं और दोहराता नहीं है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर सके, न ही वह कहीं और सुनी हुई बातों को इन लोगों को दोहराता है ताकि [इन लोगों को] उनसे अलग कर सके; इस प्रकार वह विभाजित लोगों को एकजुट करने वाला, एकता का समर्थक, सद्भाव का आनंद लेने वाला, सद्भाव में प्रसन्न होने वाला, सद्भाव को बढ़ावा देने वाले वचन बोलने वाला है। कठोर वचनों का त्याग करके, वह कठोर वचनों से दूर रहता है; वह कोमल, कानों को भाने वाले, मनभावन, हृदय को छूने वाले, शिष्ट वचन बोलता है जो बहुतों को वांछित और प्रिय होते हैं। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह उचित समय पर बोलता है; वह तथ्य की बात करता है, लाभप्रद बातों पर बोलता है, धम्म और अनुशासन पर बोलता है।" वह उचित समय पर ऐसे शब्द बोलता है जो रिकॉर्ड करने योग्य, तर्कसंगत, संक्षिप्त और लाभकारी होते हैं।

वह बीजों और पौधों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है। वह दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और उचित समय के बाहर भोजन करने से परहेज करता है। वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करता है। वह माला पहनने और सुगंध और मलहम लगाने से खुद को सजाने-संवारने से परहेज करता है। वह ऊंचे और बड़े पलंगों से परहेज करता है। वह सोना और चांदी, कच्चा अनाज, कच्चा मांस, स्त्रियां और लड़कियां, पुरुष और महिला दास, बकरियां और भेड़ें, मुर्गे और सूअर, हाथी, मवेशी, घोड़े और घोड़ियां, खेत और जमीन लेने से परहेज करता है। वह संदेशवाहक बनने और सामान पहुंचाने से परहेज करता है; खरीद-फरोख्त से;

बाट, धातु और माप में धोखाधड़ी से; [206] रिश्वत लेने, छल करने, कपट करने और कपट से परहेज करता है। वह चोट पहुंचाने, हत्या करने, बांधने, डकैती, लूटपाट और हिंसा से परहेज करता है।

वह अपने शरीर की रक्षा के लिए वस्त्रों और पेट भरने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है, और जहाँ कहीं भी जाता है, केवल इन्हीं को अपने साथ ले जाता है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना बोझ बनाकर उड़ता है, वैसे ही एक भिक्षु अपने शरीर की रक्षा के लिए वस्त्रों और पेट भरने के लिए भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहता है, और जहाँ कहीं भी जाता है, केवल इन्हीं को अपने साथ ले जाता है। इन सभी उत्तम सद्गुणों से युक्त होकर, वह अपने भीतर निष्कलंक आनंद का अनुभव करता है।

किसी आकृति को आँखों से देखकर भी वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को पकड़ नहीं पाता। क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह अपनी दृष्टि की रक्षा करता है, वह दृष्टि को नियंत्रित करता है। कानों से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर भी वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को पकड़ नहीं पाता। क्योंकि यदि वह अपने मन को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी जैसी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह अपनी मन की रक्षा करता है, वह मन को नियंत्रित करता है। इंद्रियों पर इस श्रेष्ठ संयम के कारण वह अपने भीतर निर्मल आनंद का अनुभव करता है।

वह आगे बढ़ने और लौटने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह आगे देखने और पीछे देखने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह अपने अंगों को मोड़ने और फैलाने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह अपने वस्त्र पहनने और अपने बाहरी वस्त्र और कटोरे को ले जाने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह खाने, पीने, भोजन ग्रहण करने और स्वाद लेने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह शौच और मूत्र त्यागने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है; वह चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बात करने और चुप रहने में पूर्ण विवेक (संपजन्ना) से कार्य करता है।

"उत्कृष्ट सद्गुणी आचरण के इस समूह, और इंद्रियों के इस [207] उत्कृष्ट संयम, और इस उत्कृष्ट सती ध्यान और संपजन्न पूर्ण बोध से युक्त होकर, वह एकांत स्थान पर शरण लेता है; जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, जंगल की झाड़ियाँ, खुला स्थान, पुआल का ढेर।"

जंगल में जाकर, किसी वृक्ष की छाया में या किसी खाली झोपड़ी में, वह बैठकर, अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान (सती) स्थापित करता है। संसार के प्रति लालसा का त्याग करके, वह लालसा से मुक्त मन से रहता है; वह अपने मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष और घृणा का त्याग करके, वह द्वेष से मुक्त, सभी प्राणियों के कल्याण के प्रति करुणामय मन से रहता है; वह अपने मन को द्वेष और घृणा से शुद्ध करता है। सुस्ती और आलस्य का त्याग करके, वह सुस्ती और आलस्य से मुक्त, प्रकाश के प्रति सजग, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोधगम्य रहता है; वह अपने मन को सुस्ती और आलस्य से शुद्ध करता है। बेचैनी और पश्चाताप का त्याग करके, वह शांत, अंतर्मन से शांत मन से रहता है; वह अपने मन को बेचैनी और पश्चाताप से शुद्ध करता है। संदेह का त्याग करके, वह संदेह से परे, लाभकारी गुणों के बारे में अविचलित रहता है; वह अपने मन को संदेह से शुद्ध करता है।

(1) "इस प्रकार इन पाँच बाधाओं, मन के दोषों, पन्ना (दिव्य ज्ञान) को कमजोर करने वाले गुणों का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, और हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है, और चिंतन एवं आत्मनिरीक्षण के साथ होता है। आपका क्या विचार है, क्या यह अवस्था इससे पूर्व की अवस्थाओं से अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर इस गुण को देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।" 2135

(2) "फिर, उपाली, विचार और चिंतन के शांत होने पर भिक्षु दूसरी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें लीन हो जाता है। ... तुम्हारा क्या विचार है, क्या यह अवस्था पिछली अवस्थाओं से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(3) "फिर, उपाली, जब आनंद (पीति) भी लुप्त हो जाती है... वह तीसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... तुम्हारा क्या विचार है, क्या यह निवास इससे पहले के निवासों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते।"

(4) "फिर, उपाली, सुख और दुख का त्याग करके... वह चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... क्या आप सोचते हैं, क्या यह निवास इससे पहले के निवासों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(5) "हे उपाली, रूपों की धारणा (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। क्या आप सोचते हैं, क्या यह निवास इससे पहले के निवासों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(6) "फिर, उपाली, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' को अनुभव करते हुए, चेतना के अनंत क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। आपका क्या विचार है, क्या यह निवास इससे पहले के निवासों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(7) "फिर, उपाली, चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। उपाली, क्या तुम सोचते हो कि यह निवास स्थान इससे पहले के निवास स्थानों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(8) "फिर, उपाली; शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'यह शांत है, यह उदात्त है' का अनुभव करते हुए, वह न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। आपका क्या विचार है, क्या यह निवास इससे पहले के निवासों से अधिक उत्कृष्ट और उदात्त नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी यह गुण देखते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में एकांत स्थानों पर शरण लेते हैं। लेकिन फिर भी वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं।"

(9) "फिर, उपाली, न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अनुभूति (वेदना) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। (10) और पन्न (दिव्य ज्ञान) से देखकर, उसके सारे दोष पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। क्या तुम यह सोचते हो, क्या यह निवास स्थान इससे पहले के निवास स्थानों से अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ नहीं है?"

"हां, भंते।"

"जब मेरे शिष्य अपने भीतर भी इस गुण को देख लेते हैं, तभी वे जंगलों और वनों में स्थित एकांत स्थानों में शरण लेते हैं। और वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करके वहीं निवास करते हैं।"

"आओ, उपाली, संघ में निवास करो। संघ में निवास करने से तुम्हें शांति मिलेगी।"

---

100 अक्षम (अभब्बा)

भिक्षुओं, इन दस चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है। वे दस चीजें कौन सी हैं? कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह), क्रोध, शत्रुता, निंदा, उद्दंडता, ईर्ष्या, कंजूसी और अहंकार। इन दस चीजों का त्याग किए बिना अरहंतत्व प्राप्त करना संभव नहीं है।

"भिक्षुओं, इन दस चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति अरहंतत्व प्राप्त कर सकता है। वे दस चीजें क्या हैं? कामवासना (राग)... अहंकार। इन दस चीजों का त्याग करने पर, व्यक्ति अरहंतत्व प्राप्त कर सकता है।" [210]

तीसरा पचास

I. भिक्षु की धारणाएं (समनसन्नवग्गो सं. श्रमण-संज्ञ-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

101 भिक्षु की धारणाएं (समानसन्ना सं. श्रमण-संज्ञ)

"भिक्षुओं (मठवासियों), जब ये तीन तपस्वी धारणाएँ (सन्ना/संग्य) 2138 विकसित और पोषित हो जाती हैं, तो वे सात चीजों को पूरा करते हैं। वे तीन चीजें क्या हैं?"

(1) "मैंने वर्गहीन अवस्था में प्रवेश कर लिया है; (2) मेरी आजीविका दूसरों पर निर्भर है; (3) मेरा आचरण भिन्न होना चाहिए।" जब किसी तपस्वी की ये तीन धारणाएँ (सन्न/संज्ञा) विकसित और पोषित हो जाती हैं, तो वे सात चीजों को पूरा करती हैं। वे सात चीजें क्या हैं?

(1) व्यक्ति निरंतर सद्गुणपूर्ण आचरण के अनुरूप कार्य करता है और व्यवहार करता है। (2) वह लालसा रहित होता है, (3) द्वेष रहित होता है, (4) और अहंकार रहित होता है। (5) वह प्रशिक्षण की इच्छा रखता है। [211] (6) वह अपने जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक वस्तुओं का उपयोग उनके उद्देश्य के प्रति सजग रहते हुए करता है। (7) वह ऊर्जावान होता है। हे भिक्षुओं, जब एक तपस्वी की ये तीन धारणाएँ (सन्ना/संग्य) विकसित और पोषित हो जाती हैं, तो वे इन सात बातों को पूरा करते हैं।

आत्मज्ञान के 102 कारक (बोज्झांगा सं. बोध्यांगा)

"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब ज्ञानोदय के इन सात कारकों का विकास और अभ्यास हो जाता है, तो वे तीन सच्चे ज्ञानों को प्राप्त कर लेते हैं। वे कौन से सात कारक हैं?"

(1) सती (ध्यान) का ज्ञानोदय कारक, (2) धम्म विख्या (विवेचना) का ज्ञानोदय कारक, (3) बल (प्रयास) का ज्ञानोदय कारक, (4) पीति (आनंद) का ज्ञानोदय कारक, (5) शांति (पसाद्धि) का ज्ञानोदय कारक, (6) समाधि (स्व-लीनता) का ज्ञानोदय कारक, और (7) समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। जब ज्ञानोदय के इन सात कारकों का विकास और संवर्धन होता है, तो वे तीन सच्चे ज्ञानों को पूर्ण करते हैं। वे तीन कौन से हैं?

(8) "यहाँ, एक भिक्षु अपने अनेक पूर्व जन्मों (पूर्व पुनर्जन्मों) का स्मरण करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म... इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित स्मरण करता है। 2139

(9) "पवित्र और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से... वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे व्यवहार करते हैं।"

(10) "दोषों के नाश होने से उसने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"जब, भिक्षुओं, ज्ञानोदय के इन सात कारकों का विकास और संवर्धन किया जाता है, तो वे इन तीन सच्चे ज्ञानों को पूर्ण करते हैं।"

---

103 गलत कोर्स (मिकचाटा संस. मिथ्याटा)

भिक्षुओं, गलत मार्ग पर चलने से असफलता (विपत्ति) मिलती है, सफलता नहीं। और यह कैसे संभव है कि गलत मार्ग पर चलने से असफलता (विपत्ति) मिलती है, सफलता नहीं?

(1) गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, (2) गलत इरादा उत्पन्न होता है। गलत इरादे वाले व्यक्ति के लिए, (3) गलत वाणी उत्पन्न होती है। गलत वाणी वाले व्यक्ति के लिए, [212] (4) गलत कर्म उत्पन्न होता है। गलत कर्म करने वाले व्यक्ति के लिए, (5) गलत आजीविका उत्पन्न होती है। गलत आजीविका करने वाले व्यक्ति के लिए, (6) गलत प्रयास उत्पन्न होता है। गलत प्रयास करने वाले व्यक्ति के लिए, (7) गलत ध्यान (सती/ध्यान) उत्पन्न होता है। गलत ध्यान (सती/ध्यान) वाले व्यक्ति के लिए, (8) गलत समाधि (स्व-लीनता/सता) उत्पन्न होती है। गलत एकाग्रता वाले व्यक्ति के लिए, (9) गलत ज्ञान उत्पन्न होता है। गलत ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए, (10) गलत मुक्ति उत्पन्न होती है। 2140 इस प्रकार, गलत मार्ग पर निर्भरता से विफलता (विपत्ति) होती है, सफलता नहीं।

"सही मार्ग पर चलने से सफलता मिलती है, असफलता नहीं (विपत्ति)। और ऐसा कैसे होता है कि सही मार्ग पर चलने से सफलता मिलती है, असफलता नहीं (विपत्ति)?"

(1) सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, (2) सही इरादा उत्पन्न होता है। सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए, (3) सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए, (4) सही कर्म उत्पन्न होते हैं। सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए, (5) सही आजीविका उत्पन्न होती है। सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए, (6) सही प्रयास उत्पन्न होते हैं। सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए, (7) सही जागरूकता उत्पन्न होती है। सही ध्यान (सती/जागरूकता) वाले व्यक्ति के लिए, (8) सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) उत्पन्न होती है। सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) वाले व्यक्ति के लिए, (9) सही ज्ञान उत्पन्न होता है। सही ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए, (10) सही मुक्ति उत्पन्न होती है। 2141 इस प्रकार, सही मार्ग पर चलने से सफलता मिलती है, असफलता नहीं (विपत्ति)।"

---

104 एक बीज [2142] (बीजा)

भिक्षुओं, गलत दृष्टिकोण, गलत इरादे, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, गलत समाधि, गलत ज्ञान और गलत मुक्ति वाले व्यक्ति के लिए, वह उस दृष्टिकोण के अनुसार जो भी शारीरिक कर्म, वाणी और मानसिक कर्म करता है, और उसकी जो भी आत्म-जागरूकता, लालसा, झुकाव और व्यवहार होता है, वह सब अवांछित, अनचाही और अप्रिय बातों की ओर ले जाता है, जिससे हानि और पीड़ा होती है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण गलत है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि नीम, खीरा या करेला का बीज नम मिट्टी में बोया गया। [213] मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करेगा, उन सभी के कारण उसका स्वाद कड़वा, तीखा और अप्रिय हो जाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज खराब है। इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण और गलत मुक्ति वाले व्यक्ति के लिए, उसके द्वारा उस दृष्टिकोण के अनुसार किए गए सभी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म, और उसकी आत्म-जागरूकता, लालसा, झुकाव और उसका चरित्र/व्यवहार, सब कुछ अवांछित, अप्रिय और हानि और पीड़ा की ओर ले जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण खराब है।

भिक्षुओं, सही दृष्टि, सही इरादे, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही सती ध्यान, सही समाधि, सही ज्ञान और सही मुक्ति वाले व्यक्ति के लिए, वह उस दृष्टि के अनुसार जो भी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म करता है, और उसकी जो भी आत्म-जागरूकता, लालसा, झुकाव और चरित्र/व्यवहार होता है, वह सब वांछित, सुखद और सुखदायी परिणाम की ओर ले जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसकी दृष्टि अच्छी है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि गन्ने, पहाड़ी चावल या अंगूर का एक बीज नम मिट्टी में बोया गया। मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करेगा, उन सभी से उसका स्वाद मधुर, मीठा और स्वादिष्ट बनेगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज अच्छा है। ठीक उसी प्रकार, सही दृष्टि और सही मुक्ति प्राप्त व्यक्ति के लिए, वह उस दृष्टि के अनुसार जो भी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म करता है, और उसकी जो भी आत्म-जागरूकता, लालसा, झुकाव और चरित्र (संस्कार) होते हैं, वे सभी वांछित, वांछनीय और सुखद, कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि अच्छी है।

---

105 सच्चा ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)

भिक्षुओं, अज्ञान—नैतिक निर्लज्जता और नैतिक लापरवाही के साथ—हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) में प्रवेश करने का अग्रदूत है। 2143 (1) अज्ञान में डूबे हुए मूर्ख व्यक्ति के लिए, गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। (2) गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, गलत इरादे उत्पन्न होते हैं। (3) गलत इरादे वाले व्यक्ति के लिए, गलत वाणी उत्पन्न होती है। (4) गलत वाणी वाले व्यक्ति के लिए, गलत कर्म उत्पन्न होते हैं। (5) गलत कर्म वाले व्यक्ति के लिए, गलत आजीविका उत्पन्न होती है। (6) गलत आजीविका वाले व्यक्ति के लिए, गलत प्रयास उत्पन्न होते हैं। (7) गलत प्रयास वाले व्यक्ति के लिए, गलत ध्यान (सती) उत्पन्न होता है। (8) गलत ध्यान (सती) वाले व्यक्ति के लिए, गलत समाधि (स्व-लीनता/सता) उत्पन्न होती है। (9) गलत समाधि (स्व-लीनता/सता) वाले व्यक्ति के लिए, गलत ज्ञान उत्पन्न होता है। (10) गलत ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए, गलत मुक्ति उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, नैतिक लज्जा और नैतिक भय की भावना से युक्त सच्चा ज्ञान, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) में प्रवेश करने का अग्रदूत है। (1) सच्चे ज्ञान प्राप्त कर चुके बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सही दृष्टि उत्पन्न होती है। (2) सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए सही संकल्प उत्पन्न होता है। (3) सही संकल्प वाले व्यक्ति के लिए सही वाणी उत्पन्न होती है। (4) सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए सही कर्म उत्पन्न होते हैं। (5) सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए सही आजीविका उत्पन्न होती है। (6) सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए सही प्रयास उत्पन्न होते हैं। (7) सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए सही ध्यान (सती/सजगता) उत्पन्न होता है। (8) सही ध्यान (सती/सजगता) वाले व्यक्ति के लिए सही समाधि (स्व-लीन/सन्दर्य) उत्पन्न होती है। (9) सही समाधि (स्व-लीन/सन्दर्य) वाले व्यक्ति के लिए सही ज्ञान उत्पन्न होता है। (10) सही ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए सही मुक्ति उत्पन्न होती है। 2144

---

106 घिसना (निजरा सं. निर्जरा)

"भिक्षुओं, ये दस प्रकार के क्षय हैं। 2145 वे दस कौन से हैं?"

(1) "सही दृष्टि वाले व्यक्ति की गलत दृष्टि दूर हो जाती है, और गलत दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी दूर हो जाते हैं, तथा सही दृष्टि से अनेक लाभकारी गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(2) "सही इरादे वाले व्यक्ति का गलत इरादा मिट जाता है, और गलत इरादे से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी मिट जाते हैं, तथा सही इरादे से उत्पन्न होने वाले अनेक लाभकारी गुण (कुशल) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।"

(3) सही वाणी वाले व्यक्ति की अधार्मिक वाणी धरी रह जाती है, और अधार्मिक वाणी से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (अकुशल गुण) भी धरी रह जाते हैं, तथा सही वाणी से अनेक लाभकारी गुण (कुशल गुण) विकसित होकर पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।

(4) "सही कर्म करने वाले व्यक्ति का गलत कर्म मिट जाता है, और गलत कर्म से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी मिट जाते हैं, तथा सही कर्म करने वाले व्यक्ति के अनेक लाभकारी गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(5) "सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए, गलत आजीविका क्षीण हो जाती है, और गलत आजीविका की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी क्षीण हो जाते हैं, तथा सही आजीविका की स्थिति में अनेक लाभकारी (कुशल) गुण विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(6) "सही प्रयास करने वाले व्यक्ति के लिए, गलत प्रयास क्षीण हो जाते हैं, और गलत प्रयास से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी क्षीण हो जाते हैं, तथा सही प्रयास से अनेक लाभकारी गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(7) "सही ध्यान (सती/सजगता) से पीड़ित व्यक्ति का गलत ध्यान (सती/सती) दूर हो जाता है, और गलत ध्यान (सती/सती) से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी दूर हो जाते हैं, तथा सही ध्यान (सती/सजगता) से पीड़ित व्यक्ति के अनेक लाभकारी (कुशल) गुण विकास द्वारा परिपूर्ण हो जाते हैं।"

(8) "सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) में रहने वाले व्यक्ति की गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) दूर हो जाती है, और गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी दूर हो जाते हैं, और सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की स्थिति में अनेक [216] लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।

(9) "सही ज्ञान वाले व्यक्ति का गलत ज्ञान मिट जाता है, और गलत ज्ञान से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी मिट जाते हैं, तथा सही ज्ञान से अनेक लाभकारी गुण (कुशल) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।"

(10) "सही मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, गलत मुक्ति क्षीण हो जाती है, और गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी क्षीण हो जाते हैं, तथा सही मुक्ति की स्थिति से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

"ये घिसाव के दस मामले हैं।"

---

107 धुलाई (धोवना)

भिक्षुओं, दक्षिण में धोवन 2146 ['स्नान'] नामक एक देश है, जहाँ भोजन, पेय, खाद्य पदार्थ, खाने-पीने की वस्तुएँ, जलपान, औषधियाँ, नृत्य, गायन और संगीत उपलब्ध हैं। भिक्षुओं, यह 'स्नान' है; मैं इससे इनकार नहीं करता। फिर भी यह 'स्नान' निम्न, सामान्य, सांसारिक लोगों के लिए, नीच और लाभहीन है; यह निब्बिदा (विरक्ति), वैराग्य (वैराग), शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता।

लेकिन मैं भिक्षुओं को एक ऐसा उत्तम स्नान सिखाऊंगा जो केवल वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाता है। इस स्नान के द्वारा, पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी मुक्त हो जाते हैं। ध्यान से सुनो और सुनो। मैं बोलूंगा।

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ स्नान क्या है? [217]

(1) "सही दृष्टि वाले व्यक्ति की गलत दृष्टि धुल जाती है, और गलत दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी धुल जाते हैं, तथा सही दृष्टि से अनेक लाभकारी गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(2) — (9) "सही इरादे वाले व्यक्ति का गलत इरादा धुल जाता है... सही वाणी वाले व्यक्ति का गलत वाणी धुल जाती है... सही कर्म करने वाले व्यक्ति का गलत कर्म धुल जाता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति का गलत आजीविका धुल जाती है... सही प्रयास करने वाले व्यक्ति का गलत प्रयास धुल जाता है... सही ध्यान (सती/सजगता) वाले व्यक्ति का गलत सजगता (सती/सजगता) धुल जाती है... सही समाधि (स्व-लीन/सन्यास) वाले व्यक्ति का गलत समाधि (स्व-लीन/सन्यास) धुल जाती है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति का गलत ज्ञान धुल जाता है..."

(10) "सही मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति की गलत मुक्ति धुल जाती है, और गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक गुण (धम्म) भी धुल जाते हैं, तथा सही मुक्ति की स्थिति से अनेक लाभकारी गुण (कुशल) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

"यह, भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ स्नान है जो केवल निब्बिदा (वैराग्य), वैराग्य (विराग), शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। इस स्नान के द्वारा पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त होते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त होते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त होते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी मुक्त होते हैं।" [218]

---

108 चिकित्सक (टिकिचका सं. सिकितसाका)

भिक्षुओं और चिकित्सकों द्वारा पित्त, कफ और वायु से उत्पन्न रोगों को दूर करने के लिए विरेचक औषधि दी जाती है। भिक्षुओं, यह विरेचक औषधि मौजूद है; मैं इससे इनकार नहीं करता। फिर भी यह विरेचक औषधि कभी सफल होती है और कभी असफल।

"परन्तु मैं भिक्षुओं को एक ऐसा उत्तम औषधि सिखाऊंगा जो सदा सफल होती है और कभी असफल नहीं होती। इस औषधि के प्रभाव से पुनर्जन्म के बंधन में बंधे प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के बंधन में बंधे प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के

बंधन में बंधे प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; दु:ख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के बंधन में बंधे प्राणी दु:ख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाते हैं। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, वह कौन सा श्रेष्ठ शुद्धि उपाय है जो हमेशा सफल होता है और कभी असफल नहीं होता?"

(1) "सही दृष्टि वाले व्यक्ति की गलत दृष्टि दूर हो जाती है, और गलत दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी दूर हो जाते हैं, और सही दृष्टि से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(2) — (9) "सही इरादे वाले व्यक्ति का गलत इरादा दूर हो जाता है... सही वाणी वाले व्यक्ति का गलत वाणी दूर हो जाती है... सही कर्म करने वाले व्यक्ति का गलत कर्म दूर हो जाता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति का गलत आजीविका दूर हो जाती है... सही प्रयास करने वाले व्यक्ति का गलत प्रयास दूर हो जाता है... सही ध्यान (सती/सजगता) वाले व्यक्ति का गलत सजगता (ध्यान/सती) दूर हो जाती है... [219] सही समाधि (स्व-लीन/सन्यास) वाले व्यक्ति का गलत समाधि (स्व-लीन/सन्यास) दूर हो जाती है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति का गलत ज्ञान दूर हो जाता है...

(10) "सही मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, गलत मुक्ति का निवारण होता है, और गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी निवारण होते हैं, तथा सही मुक्ति की स्थिति से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करते हैं।"

"यह, भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शुद्धि है जो हमेशा सफल होती है और कभी असफल नहीं होती, और जिसके प्रभाव से पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त होते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त होते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त होते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी मुक्त होते हैं।"

---

109 वमनकारी (वामन)

भिक्षुओं, चिकित्सक पित्त, कफ और वायु से उत्पन्न रोगों को दूर करने के लिए उल्टी लाने वाली दवा लिखते हैं। भिक्षुओं, यह उल्टी लाने वाली दवा मौजूद है; मैं इससे इनकार नहीं करता। फिर भी यह दवा कभी सफल होती है और कभी असफल।

"परन्तु मैं भिक्षुओं को एक ऐसा उत्तम औषधि सिखाऊँगा जो सदा कारगर है और कभी विफल नहीं होती। इस औषधि के प्रभाव से पुनर्जन्म के बंधन में बंधे प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के बंधन में बंधे प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के बंधन में बंधे प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; दु:ख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के बंधन में बंधे प्राणी दु:ख, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा से मुक्त हो जाते हैं। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूँगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, वह कौन सी श्रेष्ठ उल्टी लाने वाली औषधि है जो हमेशा सफल होती है और कभी असफल नहीं होती? [220]

(1j "सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, गलत दृष्टिकोण का उच्छ्रदय हो जाता है, और गलत दृष्टिकोण की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी उच्छ्रदय हो जाते हैं, तथा सही दृष्टिकोण की स्थिति में अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

(2)— (9) "सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए, गलत इरादे का उच्छ्रदय हो जाता है... सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए, गलत वाणी का उच्छ्रदय हो जाता है... सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए, गलत कर्म का उच्छ्रदय हो जाता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए, गलत आजीविका का उच्छ्रदय हो जाता है... सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए, गलत प्रयास का उच्छ्रदय हो जाता है... सही जागरूकता वाले

व्यक्ति के लिए, गलत जागरूकता (ध्यान/सती) का उच्छ्रदय हो जाता है... सही समाधि (स्व-लीन/सन्यास) वाले व्यक्ति के लिए, गलत समाधि (स्व-लीन/सन्यास) का उच्छ्रदय हो जाता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए, गलत ज्ञान का उच्छ्रदय हो जाता है..."

(10) "सही मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, गलत मुक्ति का उबारा निकल जाता है, और गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी उबारे में आ जाते हैं, और सही मुक्ति की स्थिति से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

"यह, भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ औषधि है जो सदा सफल होती है और कभी असफल नहीं होती, और जिसके प्रभाव से पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त होते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त होते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त होते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, निराशा और व्यथा के अधीन प्राणी मुक्त होते हैं।"

---

110 निष्कासित (निद्धमानिया)

"भिक्षुओं, ये दस चीजें हैं जिन्हें त्यागना है। वे दस चीजें कौन सी हैं?"

(1) "सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, गलत दृष्टिकोण का निष्कासन होता है, और गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी निष्कासित होते हैं, और सही दृष्टिकोण से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करते हैं। [221]

(2) — (9) "सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए गलत इरादे का निष्कासन होता है... सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए गलत वाणी का निष्कासन होता है... सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए गलत कर्म का निष्कासन होता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए गलत आजीविका का निष्कासन होता है... सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए गलत प्रयास का निष्कासन होता है... सही ध्यान (सती/सजगता) वाले व्यक्ति के लिए गलत सजगता (ध्यान/सती) का निष्कासन होता है... सही समाधि (स्व-लीन/सता) वाले व्यक्ति के लिए गलत समाधि (स्व-लीन/सता) का निष्कासन होता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए गलत ज्ञान का निष्कासन होता है।"

(10) "सही मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए, गलत मुक्ति का निष्कासन हो जाता है, और गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) भी निष्कासित हो जाते हैं, तथा सही मुक्ति की स्थिति से अनेक लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं।"

"ये दस चीजें हैं जिन्हें बाहर निकाला जाना है।"

---

111 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (1) (असेखा1 सं. अशाइख्य)

तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला;

"कहा जाता है, भंते, 'प्रशिक्षण से परे, प्रशिक्षण से परे' भंते, भिक्षु किस अर्थ में प्रशिक्षण से परे होता है?" 2147

"यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु के पास (1) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति का सही दृष्टिकोण होता है। उसके पास (2) सही इरादा . . . (3) सही वाणी . . . (4) सही कर्म . . . (5) सही आजीविका . . . (6) सही प्रयास . . . (7) सही ध्यान (सती/सजगता) . . . (8) सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) . . . (9) सही ज्ञान . . . (10) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की सही मुक्ति होती है। इस प्रकार एक भिक्षु प्रशिक्षण से परे व्यक्ति होता है।" [222]

---

112 वन बियॉन्ड ट्रेनिंग (2) (असेखा2 सं. अशाइख्य)

भिक्षुओं, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के ये दस गुण हैं। वे दस गुण कौन से हैं? प्रशिक्षण से परे व्यक्ति का सही दृष्टिकोण; सही इरादा... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका; सही प्रयास... सही ध्यान... सही समाधि... सही ज्ञान... प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की सही मुक्ति। ये प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के दस गुण हैं।

II. पैकोरोहनिवाग्गो

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

113 गैर-धम्म (1) (अधम्म1 बिना अधर्म)

भिक्षुओं, जो धम्म रहित और हानिकारक है, उसे समझना चाहिए, और जो धम्म युक्त और लाभकारी है, उसे भी समझना चाहिए। 2148 जो धम्म रहित और हानिकारक है, उसे समझ लेने के बाद, तथा जो धम्म युक्त और लाभकारी है, उसे समझ लेने के बाद, धम्म के अनुसार और लाभकारी मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

"और हे भिक्षुओं, अधार्म (गलत मार्ग) और हानिकारक क्या है? गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (ध्यान/सती), गलत समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), गलत ज्ञान और गलत मुक्ति। [223] यही अधार्म (गलत मार्ग) और हानिकारक कहलाता है।"

भिक्षुओं, धम्म और लाभकारी तत्व क्या हैं? सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता), सही ज्ञान और सही मुक्ति। यही धम्म और लाभकारी तत्व कहलाता है।

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, जो अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक है, उसे समझना चाहिए, और जो धम्मिक और लाभकारी है, उसे भी समझना चाहिए। अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक, तथा धम्मिक और लाभकारी को समझने के बाद, धम्मिक और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए,' तो यह बात उन्हीं के संदर्भ में कही गई थी।"

---

114 गैर-धम्म (2) (अधम्म बिना अधर्म)

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि कौन सा मार्ग गलत है और कौन सा मार्ग उचित है, और कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है। गलत मार्ग और उचित मार्ग को समझने के बाद, और यह भी समझ लें कि कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है, तो धर्म और लाभकारी मार्ग के अनुसार अभ्यास करें।

भिक्षुओं, क्या है अधर्म (गलत मार्ग) और क्या है धर्म? क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है?

(1) "गलत दृष्टिकोण अधर्म (गलत मार्ग) है; सही दृष्टिकोण धर्म है। गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही दृष्टिकोण से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(2) "गलत इरादा अधर्म (गलत मार्ग) है; सही इरादा धर्म है। गलत इरादे से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही इरादे से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(3) "गलत वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; सही वाणी धर्म है। गलत वाणी से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही वाणी से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(4) "गलत कर्म अधर्म (गलत मार्ग) है; सही कर्म धर्म है। गलत कर्म से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म): [224] ये हानिकारक हैं। सही कर्म से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म): ये लाभकारी हैं।"

(5) "गलत आजीविका अधर्म (गलत मार्ग) है; सही आजीविका धर्म है। गलत आजीविका की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही आजीविका की स्थिति से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(6) "गलत प्रयास अधर्म (गलत मार्ग) है; सही प्रयास धर्म है। गलत प्रयास से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही प्रयास से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(7) "गलत ध्यान (सती) अधर्म (गलत मार्ग) है; सही ध्यान (सती) धर्म है। गलत ध्यान (सती) से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही ध्यान (सती) से विकसित होने वाले अनेक लाभकारी गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(8) "गलत समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) अधर्म (गलत मार्ग) है; सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) धर्म है। गलत समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही समाधि (स्व-लीन/सम्मोहन) की स्थिति से विकास द्वारा सिद्ध होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(9) "गलत ज्ञान अधर्म (गलत मार्ग) है; सही ज्ञान धर्म है। गलत ज्ञान से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही ज्ञान से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(10) "गलत मुक्ति अधर्म (गलत मार्ग) है; सही मुक्ति धर्म है। गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही मुक्ति की स्थिति से विकास द्वारा सिद्ध होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

“जब यह कहा गया: ‘भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या गलत है और क्या सही है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। गलत और क्या गलत है, यह समझने के बाद, और यह भी समझने के बाद कि क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है, धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए,’ तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।”

---

115 गैर-धम्म (3) (अधम्म3 बिना अधर्म)

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि कौन सा मार्ग गलत है और कौन सा मार्ग उचित है, और कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है। गलत मार्ग और सही मार्ग को समझने के बाद, और यह भी समझ लेने के बाद कि कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है, धर्म और लाभकारी मार्ग के अनुसार अभ्यास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए। 2149 फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं ने विचार किया: "हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने यह संक्षिप्त सारांश दिया: 'भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि कौन सा मार्ग गलत है और कौन सा सही मार्ग है... हमें धर्म के अनुसार और जो लाभकारी है, उसका अभ्यास करना चाहिए।' फिर वे अपने आसन से उठे और बिना इसका विस्तृत अर्थ बताए अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए। अब इसका विस्तृत अर्थ कौन समझाएगा?' तब उन्हें यह विचार आया: "आदरणीय आनंद की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और उनके बुद्धिमान साथी भिक्षुओं द्वारा उनका आदर किया जाता है; वे इस संक्षिप्त सारांश का विस्तृत अर्थ समझाने में सक्षम हैं। आइए हम आदरणीय आनंद के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें। जब वे हमें समझाएंगे तो हम इसे याद रखेंगे।"

तब वे भिक्षु पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और बोले: "मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने यह संक्षिप्त सारांश दिया है... फिर वे अपने आसन से उठे और अर्थ का विस्तार से वर्णन किए बिना अपने निवास स्थान में चले

गए। उनके जाने के तुरंत बाद, हमने सोचा: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने यह संक्षिप्त सारांश दिया है [ऊपर दिए गए सभी अंशों से लेकर:]... आइए हम पूज्य आनंद के पास जाकर इसका अर्थ पूछें। जब वे इसका अर्थ समझाएंगे, तो हम इसे याद रखेंगे। पूज्य आनंद हमें इसका अर्थ समझाएं।'"

[आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया:] "मित्रों, यह ऐसा है मानो कोई व्यक्ति जिसे सार तत्व की आवश्यकता हो, सार तत्व की खोज में भटक रहा हो, और वह सार तत्व से युक्त एक विशाल वृक्ष की जड़ और तने को अनदेखा कर दे, यह सोचकर कि सार तत्व शाखाओं और पत्तियों में खोजना चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है। जब आप गुरु के सामने थे, तब आप भगवान (बुद्ध) के पास से यह सोचकर गुजरे कि आप मुझसे इसका अर्थ पूछेंगे। क्योंकि, मित्रों, जानने से भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखने से वे देखते हैं; वे दृष्टि बन गए हैं, वे ज्ञान बन गए हैं, वे धम्म बन गए हैं, वे ब्रह्म बन गए हैं; वे व्याख्याकार, उद्घोषक, अर्थ के स्पष्टीकरणकर्ता, अमर (अमृत) दाता, धम्म के स्वामी, तथागत (बुद्ध) हैं। यही वह समय था जब आपको भगवान (बुद्ध) [227] के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछना चाहिए था। आपको इसे अपने मन में रखना चाहिए था क्योंकि वे आपको इसका अर्थ समझाते।"

"निश्चित रूप से, हे मित्र आनंद, जानने पर भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखने पर वे देखते हैं; वे स्वयं दृष्टि बन गए हैं... तथागत (बुद्ध)। वह समय था जब हमें भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे अर्थ पूछना चाहिए था और उनके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को हमें अपने मन में रखना चाहिए था। फिर भी, पूज्य आनंद की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और उनके बुद्धिमान साथी भिक्षुओं द्वारा उनका सम्मान किया जाता है। वे इस सारांश के विस्तृत अर्थ की व्याख्या करने में सक्षम हैं। पूज्य आनंद बिना किसी कठिनाई के इसकी व्याख्या करें।"

"तो सुनो, मित्रों, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने यह कहा:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने विस्तृत अर्थ बताए बिना संक्षेप में यह उपदेश दिया: 'भिक्षुओं, अधर्म और धर्म को समझना चाहिए, और यह भी समझना चाहिए कि क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। अधर्म और धर्म को, और हानिकारक और लाभकारी को समझने के बाद, धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए। अब मित्रों, अधर्म और धर्म क्या है? और हानिकारक और लाभकारी क्या है?"

(1) "हे मित्रों, गलत दृष्टिकोण अधर्म (गलत मार्ग) है; सही दृष्टिकोण ही धर्म है। गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही दृष्टिकोण से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(2) — (9) "गलत इरादा गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही इरादा धम्म (सही मार्ग) है, ... गलत वाणी गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही वाणी [228] धम्म है — गलत कर्म गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही कर्म धम्म है ... गलत आजीविका गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही आजीविका धम्म है ... गलत प्रयास गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही प्रयास धम्म है ... गलत सती ध्यान गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही सती ध्यान धम्म है ... गलत समाधि गैर-धम्म (गलत मार्ग) है; सही समाधि धम्म है ... गलत ज्ञान यह अधर्म (गलत मार्ग) है; सही ज्ञान ही धर्म है...

(10) "गलत मुक्ति अधर्म (गलत मार्ग) है; सही मुक्ति धर्म है। गलत मुक्ति की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही मुक्ति की स्थिति से विकास द्वारा सिद्ध होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

"मित्रों, इस प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) के संक्षिप्त वर्णन का विस्तृत अर्थ समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो आप स्वयं भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछ सकते हैं। भगवान (बुद्ध) द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को आपको याद रखना चाहिए।"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और पूज्य आनंद के कथन से प्रसन्न होकर वे अपने स्थानों से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा...

"भंते, भगवान (बुद्ध) ने इस सारांश की शिक्षा दी...[वे यहाँ]

जो कुछ घटित हुआ था, उसका वर्णन करते हुए आगे कहा:] [229] , . .फिर, भंते, हम पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अर्थ पूछा। पूज्य आनंद ने हमें इन तरीकों से, इन शब्दों और वाक्यांशों में अर्थ समझाया।

"अच्छे, अच्छे भिक्षुओं! आनंद बुद्धिमान हैं। आनंद को अपार ज्ञान प्राप्त है। यदि आप मेरे पास आकर इसका अर्थ पूछते, तो मैं भी आपको आनंद की ही तरह समझा देता। इसका यही अर्थ है, और इसलिए इसे अपने मन में संजो कर रखें।"

---

116 अजिता [2150]

तब तपस्वी अजिता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए [230] और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, मेरे साथ पंडित नाम का एक तपस्वी है। 2151 उसने पाँच सौ तर्क तैयार किए हैं 2152 जिनके द्वारा अन्य संप्रदायों के लोग, जब उनका खंडन किया जाता है, तो जान जाते हैं: 'हमारा खंडन हो गया है'।"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "क्या तुम्हें पंडितों के मामले याद हैं, भिक्षुओं?"

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)! यही समय है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)! भगवान (बुद्ध) से यह सुनकर भिक्षु भगवान (बुद्ध) की कही हुई हर बात को ध्यान में रखेंगे।"

"तो भिक्षुओं, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"यहाँ, कोई व्यक्ति धम्म के विपरीत एक सिद्धांत का खंडन और उसे गलत साबित करने के लिए धम्म के विपरीत एक सिद्धांत का उपयोग करता है। इस प्रकार, वह धम्म के विपरीत सभा को प्रसन्न करता है। इसी कारण, धम्म के विपरीत सभा शोर मचाने लगती है और चिल्लाने लगती है: 'हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं! हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं!' 2153

कोई व्यक्ति धम्म के अनुरूप किसी सिद्धांत का खंडन और उसे गलत साबित करने के लिए धम्म के विपरीत सिद्धांत का प्रयोग करता है। इस प्रकार वह धम्म के विपरीत सभा को प्रसन्न करता है। इसी कारण धम्म के विपरीत सभा शोर मचाने लगती है और चिल्लाने लगती है: 'हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं! हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं!'

कोई व्यक्ति धम्म के विपरीत सिद्धांत का उपयोग करके धम्म के अनुरूप और धम्म के विपरीत दोनों सिद्धांतों का खंडन और खंडन करता है। इस प्रकार वह धम्म के विपरीत सभा को प्रसन्न करता है: इसी कारण धम्म के विपरीत सभा शोर मचाने लगती है और चिल्लाने लगती है: 'हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं! हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं!' 2154

कोई व्यक्ति धम्म के अनुरुप सिद्धांत का खंडन और उसे गलत साबित करने के लिए धम्म के अनुरूप सिद्धांत का उपयोग करता है। इस प्रकार, वह धम्म के विरुद्ध सभा को प्रसन्न करता है। इसी कारण धम्म के विरुद्ध सभा शोर मचाने लगती है और चिल्लाने लगती है: 'हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं! हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं!'

कोई व्यक्ति धम्म के अनुरूप एक सिद्धांत का खंडन और उसे गलत साबित करने के लिए धम्म के अनुरूप ही एक सिद्धांत का प्रयोग करता है। इस प्रकार वह धम्म के अनुरूप सभा को प्रसन्न करता है। इसी कारण धम्म के अनुरूप सभा उत्साहपूर्वक चिल्लाने लगती है: 'हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं! हे भगवान, वह सचमुच बुद्धिमान हैं!'

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या गलत है और क्या गलत मार्ग है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। यह समझ लेने के बाद कि क्या गलत है और क्या गलत है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है, आपको धर्म और लाभकारी मार्ग के अनुसार अभ्यास करना चाहिए।

(सूत्र ठीक उसी प्रकार जारी रहता है जैसे 10:114 में है, और अंत में:)

"जब यह कहा गया था: 'भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या गलत है और क्या सही है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। गलत और क्या गलत है, यह समझ लेने के बाद, धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए।' इसी संदर्भ में यह कहा गया था।"

---

117 संगरवा

तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

"गुरु गौतम, निकटवर्ती तट कौन सा है? दूरवर्ती तट कौन सा है?"

ब्राह्मण, (1) गलत दृष्टि निकटवर्ती तट है, सही दृष्टि दूरवर्ती तट है। (2) गलत इरादा निकटवर्ती तट है, सही इरादा दूरवर्ती तट है। (3) गलत वाणी निकटवर्ती तट है, सही वाणी दूरवर्ती तट है। (4) गलत कर्म निकटवर्ती तट है, सही कर्म दूरवर्ती तट है। (5) गलत आजीविका निकटवर्ती तट है, सही आजीविका दूरवर्ती तट है। (6) गलत प्रयास निकटवर्ती तट है, सही प्रयास दूरवर्ती तट है। (7) गलत ध्यान (सती) निकटवर्ती तट है, सही ध्यान (सती) दूरवर्ती तट है। (8) गलत समाधि (स्व-लीन) निकटवर्ती तट है, सही समाधि (स्व-लीन) दूरवर्ती तट है। (9) गलत ज्ञान निकटवर्ती तट है, सही ज्ञान दूरवर्ती तट है। (10) गलत मुक्ति निकटवर्ती तट है, सही मुक्ति दूरवर्ती तट है। एक, ब्राह्मण, निकटवर्ती तट है, दूसरा दूरवर्ती तट है।

बहुत कम लोग ही

इससे आगे बढ़ते हैं।

बाकी लोग तो बस

किनारे-किनारे ही चलते रहते हैं।

जब धम्म की सही व्याख्या की जाती है,

तो जो लोग उसके अनुसार अभ्यास करते हैं,

वे ही

मृत्यु के उस क्षेत्र से परे जा सकते हैं जिसे पार करना इतना कठिन है।

अंधकारमय गुणों को त्यागकर,

एक बुद्धिमान व्यक्ति को उज्ज्वल गुणों को विकसित करना चाहिए।

घर छोड़कर एकांत जीवन में आने पर,

जहाँ आनंद लेना कठिन होता है, उसे अपने जीवन में सकारात्मक गुणों को विकसित करना चाहिए।

वहाँ एकांत में रहकर

इंद्रिय सुखों का त्याग करके आनंद की खोज करनी चाहिए।

कुछ भी न धारण करके, ज्ञानी व्यक्ति को

मानसिक विकारों से स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।

जिनके मन

ज्ञान के तत्वों से सही ढंग से विकसित हो चुके हैं,

जो अनासक्ति के माध्यम से

आसक्ति के त्याग में आनंद पाते हैं: वे

प्रकाशमान, दोषों से रहित,

संसार में तृप्त होने वाले हैं। 2157

---

118 तट के निकट (ओरिमातिर)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें निकटवर्ती तट और दूरवर्ती तट का ज्ञान दूंगा: ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, निकटवर्ती किनारा क्या है और दूरवर्ती किनारा क्या है? (1) भिक्षुओं, गलत दृष्टिकोण निकटवर्ती किनारा है, सही दृष्टिकोण दूरवर्ती किनारा है... (10) गलत मुक्ति निकटवर्ती किनारा है, सही मुक्ति दूरवर्ती किनारा है। भिक्षुओं, एक निकटवर्ती किनारा है, दूसरा दूरवर्ती किनारा है।

[संलग्न श्लोक पूर्ववर्ती सूत्र के श्लोकों के समान हैं।]

---

119 पैकोरोहानी (1)

उस अवसर पर, उपोसथ दिवस पर, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर एक तरफ खड़े थे, उनका सिर धुला हुआ था, उन्होंने नए सूती वस्त्र पहने हुए थे और उनके हाथ में गीली कुश घास की एक मुट्ठी थी। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें वहाँ खड़े देखा और उनसे कहा:

"हे ब्राह्मण, उपोसथ दिवस पर तुम सिर धोकर, नए सूती वस्त्र पहनकर, मुट्ठी भर गीली कुश घास लेकर एक तरफ क्यों खड़े रहते हो? आज ब्राह्मण वंश में क्या हो रहा है?"

"हे गौतम जी, आज ब्राह्मण वंश का पच्चोरोहणी पर्व है।" 2158

लेकिन ब्राह्मण पच्चोरोहणी उत्सव कैसे मनाते हैं?

"हे गौतम जी, उपोसथ पर्व के दिन ब्राह्मण सिर धोकर नए सूती वस्त्र पहनते हैं। फिर वे गीले गोबर से जमीन को लेपते हैं, उसे हरी कुश घास से ढकते हैं और अग्निगृह और उसकी सीमा के बीच लेट जाते हैं। रात भर में वे तीन बार उठते हैं और आदरपूर्वक अग्नि को प्रणाम करते हुए कहते हैं, 'हम पूज्य देवता के सम्मान में अवतरित होते हैं। हम पूज्य देवता के सम्मान में अवतरित होते हैं।' 2159 वे अग्नि को भरपूर घी, तेल और मक्खन अर्पित करते हैं। रात बीत जाने पर वे ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन का अर्पण करते हैं। हे गौतम जी, इसी प्रकार ब्राह्मण पच्चोरोहणी पर्व मनाते हैं।"

"ब्राह्मणों के संप्रदाय में मनाया जाने वाला पच्चोरोहणी उत्सव, ब्राह्मणों के पच्चोरोहणी उत्सव से बिल्कुल भिन्न होता है।"

"पर कैसे? गुरु गौतम, क्या पुरोहित के अनुशासन में पच्चोरोहणी पर्व मनाया जाता है? यदि गुरु गौतम मुझे यह समझाकर धम्म का पाठ पढ़ाएँ कि पुरोहित के अनुशासन में पच्चोरोहणी पर्व कैसे मनाया जाता है तो अच्छा होगा।"

"तो फिर, ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हाँ," ब्राह्मण जानूसोनी ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: [235]

(1) "हे ब्राह्मण, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'गलत दृष्टिकोण का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करके वह गलत दृष्टिकोण को त्याग देता है; वह गलत दृष्टिकोण से नीचे उतर जाता है।"

(2) "... 'गलत इरादे का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने के बाद, वह गलत इरादे को त्याग देता है; वह गलत इरादे से नीचे उतर जाता है।"

(3) "... 'गलत वाणी का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह गलत वाणी का त्याग कर देता है; वह गलत वाणी से विलीन हो जाता है।

(4) "... 'गलत कर्म का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह गलत कर्म छोड़ देता है; वह गलत कर्म से उतर जाता है।

(5) . . 'गलत आजीविका का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह गलत आजीविका छोड़ देता है; वह गलत आजीविका से विलीन हो जाता है।

(6) "... 'गलत प्रयास का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने के बाद, वह गलत प्रयास को त्याग देता है; वह गलत प्रयास से नीचे उतर जाता है।"

(7) "... 'गलत ध्यान (सती/ध्यान) का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह गलत ध्यान (सती/ध्यान) का त्याग कर देता है; वह गलत ध्यान से उतर जाता है।"

(एस) ... 'गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का त्याग कर देता है; वह गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) से उतर जाता है।

(9) . . 'गलत ज्ञान का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने पर वह गलत ज्ञान का त्याग कर देता है; वह गलत ज्ञान से विलीन हो जाता है।

(10) . . 'गलत मुक्ति का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने पर वह गलत मुक्ति का त्याग कर देता है; वह गलत मुक्ति से उतर जाता है।

"हे ब्राह्मण, इसी प्रकार से भगवान की विद्या में पच्चोरोहणी पर्व मनाया जाता है।"

"गुरु गौतम की शिष्या में होने वाला पचोरोहणी उत्सव ब्राह्मणों के पचोरोहणी उत्सव से बिल्कुल भिन्न है। और ब्राह्मणों का पचोरोहणी उत्सव गुरु गौतम की शिष्या में होने वाले पचोरोहणी उत्सव के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। [236]

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! उत्कृष्ट, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग) को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि अच्छी दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। मैं अब गुरु गौतम, धम्म और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाला गृहस्थ अनुयायी समझें।"

---

120 पैकोरोहानी (2)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें उत्तम पच्चोरोहणी पर्व सिखाऊंगा। सुनो..."

"और हे भिक्षुओं, यह श्रेष्ठ पच्चोरोहणी पर्व क्या है? (1) यहाँ; श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'गलत दृष्टिकोण का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' इस प्रकार चिंतन करने पर वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करता है; वह गलत दृष्टिकोण से विमुख हो जाता है। (2) 'गलत इरादे का परिणाम'... (3) ...गलत वाणी... (4) ...गलत कर्म... (5) ...गलत आजीविका... (6) ...गलत प्रयास... (7) ...गलत ध्यान (ध्यान/सती)... (8) ...गलत समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन)... (9) ...गलत ज्ञान... (10) ...गलत मुक्ति इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरी है। इस प्रकार चिंतन करने पर वह गलत मुक्ति का त्याग करता है; वह गलत मुक्ति से विमुख हो जाता है। इसे ही श्रेष्ठ पच्चोरोहणी उत्सव कहा जाता है।

---

121 अग्रदूत (पुब्बनगामा सं. पूर्व-गमन)

भिक्षुओं, जिस प्रकार भोर सूर्योदय का अग्रदूत होता है, उसी प्रकार सही दृष्टि लाभकारी गुणों (धम्म) का अग्रदूत होती है। सही दृष्टि वाले व्यक्ति में सही संकल्प उत्पन्न होता है। सही संकल्प वाले व्यक्ति में सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति में सही कर्म उत्पन्न होते हैं। सही कर्म वाले व्यक्ति में सही आजीविका उत्पन्न होती है। सही आजीविका वाले व्यक्ति में सही प्रयास उत्पन्न होते हैं। सही प्रयास वाले व्यक्ति में सही ध्यान (सती/सजगता) उत्पन्न होता है। सही ध्यान (सती/सजगता) वाले व्यक्ति में सही समाधि (स्व-लीन/सन्दूक) [237] उत्पन्न होती है। सही समाधि (स्व-लीन/सन्दूक) वाले व्यक्ति में सही ज्ञान उत्पन्न होता है। सही ज्ञान वाले व्यक्ति में सही मुक्ति उत्पन्न होती है।

---

122 कलंकों का नाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)

भिक्षुओं, इन दस चीजों को विकसित और अभ्यास करने से दोषों का नाश होता है। वे दस चीजें कौन सी हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति। इन दस चीजों को विकसित और अभ्यास करने से दोषों का नाश होता है।

तृतीय. शुद्ध खंड (परिशुद्धवग्गो सं. परिशुद्ध-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

123 प्रथम

भिक्षुओं, ये दस बातें सुगत (भगवान बुद्ध) की साधना के अलावा कहीं और शुद्ध और पवित्र नहीं होतीं। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। ये दस बातें सुगत (भगवान बुद्ध) की साधना के अलावा कहीं और शुद्ध और पवित्र नहीं होतीं।

---

124 सेकंड

भिक्षुओं, ये दस बातें जब अजन्मी होती हैं तो सुगत (भगवान बुद्ध) की साधना के अलावा कहीं और प्रकट नहीं होतीं। वे दस बातें कौन सी हैं? [238] सही दृष्टिकोण और सही मुक्ति। ये दस बातें...

---

125 तीसरा

भिक्षुओं, ये दस बातें केवल सुगत (भगवान बुद्ध) की साधना में ही अत्यंत फलदायी और लाभकारी हैं। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। ये दस बातें...

---

126 चौथा

भिक्षुओं, ये दस बातें कामवासना (राग), घृणा और मोह (मोह) के निवारण का एकमात्र स्रोत हैं, और कहीं नहीं, केवल सुगत (भगवान बुद्ध) की साधना में। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टि... और सही मुक्ति। ये दस बातें।

---

127 पाँचवाँ

भिक्षुओं, ये दस बातें केवल निर्विरता, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं, और कहीं नहीं, केवल सुगत बुद्ध की साधना में ही। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टिकोण और सही मुक्ति। ये दस बातें...

---

128 छठा

"भिक्षुओं, ये दस बातें, विकसित और पोषित होने पर, जब अजन्मी होती हैं तो सुगत (भगवान बुद्ध) के अनुशासन के अलावा कहीं और प्रकट नहीं होतीं। वे दस बातें क्या हैं? [239] सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। ये दस बातें।"

---

129 सातवां

भिक्षुओं, इन दस बातों का विकास और अभ्यास करने से केवल भगवान की साधना में ही महान फल और लाभ मिलता है। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। ये दस बातें...

---

130 आठवां

भिक्षुओं, इन दस बातों को विकसित और अभ्यास करने से कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह का निवारण होता है, और यह निवारण केवल सुगत (भगवान बुद्ध) के अनुशासन में ही संभव है। वे दस बातें कौन सी हैं? सही दृष्टि... और सही मुक्ति। ये दस बातें।

---

131 नौवां

भिक्षुओं, इन दस बातों का विकास और अभ्यास करने से केवल निर्विरोध, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण ही प्राप्त होते हैं, और कहीं नहीं, केवल सुगत बुद्ध की साधना में ही। वे दस बातें क्या हैं? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। ये दस बातें...

---

132 दसवां

भिक्षुओं, ये दस गलत मार्ग हैं। कौन से दस? गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (सती/ध्यान), गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), गलत ज्ञान और गलत मुक्ति। ये दस गलत मार्ग हैं।

---

133 ग्यारहवां

भिक्षुओं, ये दस सही मार्ग हैं। कौन से दस? सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति। ये दस सही मार्ग हैं।

IV. अच्छा वर्ग (साधुवग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

134 अच्छा (साधु)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

और हे भिक्षुओं, बुरा क्या है? गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (सती/ध्यान), गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), गलत ज्ञान और गलत मुक्ति। यही बुरा कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, अच्छा क्या है? [241] सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (आत्म-लीनता/तल्लीनता), सही ज्ञान और सही मुक्ति। यही अच्छा कहलाता है।"

---

135 - 144 नोबल धम्म, इत्यादि।

(135) "भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ धम्म और नीच धम्म सिखाऊँगा... (136) ... लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल)... (137) ... लाभकारी और हानिकारक... [242] ... (138) ... धम्म और अधार्मिक (गलत मार्ग)... (139) ... दूषित धम्म और निष्कलंक धम्म... (140) ... निंदनीय धम्म और निष्कलंक धम्म... [243] (141) ... कष्टदायी धम्म और कष्टरहित धम्म... (142) वह धम्म जो निर्माण की ओर ले जाता है और वह जो विनाश की ओर ले जाता है।" ... (143) ... दुख का परिणाम देने वाला धम्म और सुख का परिणाम देने वाला धम्म ... (214) (144) ... दुख का परिणाम देने वाला धम्म और सुख का परिणाम देने वाला धम्म...

भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है जो दुख का कारण बनता है? गलत दृष्टिकोण... और गलत मुक्ति। इसे ही दुख का कारण बनने वाला धम्म कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, सुख का स्रोत क्या है? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। यही सुख का स्रोत कहलाता है।

वी. नोबल

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

145 महान मार्ग

भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ मार्ग और नीच मार्ग सिखाऊंगा। 2160 ध्यान से सुनो और गौर करो। . . . और हे भिक्षुओं, नीच मार्ग क्या है? गलत दृष्टिकोण . . . और गलत मुक्ति। इसे नीच मार्ग कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ मार्ग क्या है? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। यही श्रेष्ठ मार्ग कहलाता है।

146-154 अंधकारमय पथ, इत्यादि।

(146) "भिक्षुओं, मैं तुम्हें अंधकारमय मार्ग और प्रकाशमय मार्ग सिखाऊंगा 2161 . . . [245] . . .. (147) ... . अच्छा धम्म (मार्ग) और बुरा धम्म . . . (148) . . . अच्छे व्यक्ति का धम्म और बुरे व्यक्ति का धम्म . . . (149) . . . जागृत होने वाला धम्म और जागृत न होने वाला धम्म . . . (150) . . . अनुसरण करने वाला धम्म और अनुसरण न करने वाला धम्म . . . (151) . . . विकसित होने वाला धम्म और विकसित न होने वाला धम्म . . . (152) . . . विकसित होने वाला धम्म और विकसित न होने वाला धम्म . . . (153) . . . स्मरण करने योग्य धम्म और स्मरण न करने योग्य धम्म... (154)... अनुभव करने योग्य धम्म और अनुभव न करने योग्य धम्म

भिक्षुओं, वह धम्म क्या है जिसे अनुभव नहीं किया जा सकता? यह गलत दृष्टिकोण है... और गलत मुक्ति है। इसे ही वह धम्म कहते हैं जिसे अनुभव नहीं किया जा सकता।

भिक्षुओं, वह धम्म क्या है जिसे प्राप्त करना है? सही दृष्टिकोण... और सही मुक्ति। यही प्राप्त करने योग्य धम्म कहलाता है।

चौथा पचास

I. व्यक्ति अनुभाग (पुग्गलवग्गो सं. पुरुष-युगल-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

155 से संबद्ध (सेवितब्बा)

भिक्षुओं, दस गुणों वाले व्यक्ति से संगति नहीं रखनी चाहिए। वे दस गुण कौन से हैं? गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (सती/ध्यान), गलत समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), गलत ज्ञान और गलत मुक्ति। इन दस गुणों वाले व्यक्ति से संगति नहीं रखनी चाहिए।

भिक्षुओं, दस गुणों से युक्त व्यक्ति का साथ रखना चाहिए। वे दस गुण कौन से हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही समाधि, सही ज्ञान और सही मुक्ति। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति का साथ रखना चाहिए।

156-166 रिज़ॉर्ट, आदि (भजीताब्बा)

(156) "भिक्षुओं, दस गुणों वाले व्यक्ति की शरण नहीं लेनी चाहिए... शरण लेनी चाहिए... (157) ... सेवा नहीं करनी चाहिए... सेवा करनी चाहिए... (158) ...

आदर नहीं करना चाहिए... आदर करना चाहिए (159)... नहीं करना चाहिए

प्रशंसा... प्रशंसा करनी चाहिए... (160) ... आदर नहीं करना चाहिए... आदर करना चाहिए... (161) ... सम्मान नहीं दिखाना चाहिए... दस गुणों वाले व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए... (162) ... दस गुणों वाला व्यक्ति सफल नहीं होता... सफल होता है... (163) ... शुद्ध नहीं होता... शुद्ध होता है... (164) ... अहंकार पर विजय नहीं पाता... अहंकार पर विजय पाता है... (165) ... पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि नहीं होती... पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि होती है... (166) ... बहुत दोष उत्पन्न करता है... बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दस क्या हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति बहुत पुण्य अर्जित करता है।

II. जानूसोनी खंड

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

167 ब्राह्मणपकोरोहानी (एल) [2162]

उस अवसर पर, उपोसथ दिवस पर, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर एक तरफ खड़े थे, उनका सिर धुला हुआ था, उन्होंने नए सूती वस्त्र पहने हुए थे और उनके हाथ में गीली कुश घास की एक मुट्ठी थी। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें वहाँ खड़े देखा और उनसे कहा:

"हे ब्राह्मण, उपोसथ दिवस पर तुम सिर धोकर, नए सूती वस्त्र पहनकर, मुट्ठी भर गीली कुश घास लेकर एक तरफ क्यों खड़े रहते हो? आज ब्राह्मण वंश में क्या हो रहा है?"

"आज, हे गुरु गौतम, ब्राह्मण वंश का पच्चोरोहणी उत्सव है।" [250]

"पर हे ब्राह्मण, ब्राह्मण पच्चोरोहणी पर्व कैसे मनाते हैं?"

"हे गौतम जी, उपोसथ पर्व के दिन ब्राह्मण सिर धोकर नए सूती वस्त्र पहनते हैं। फिर वे गीले गोबर से जमीन को लेपते हैं, उसे हरी कुश घास से ढकते हैं और प्रांगण और अग्निगृह के बीच लेट जाते हैं। रात भर में वे तीन बार उठते हैं और आदरपूर्वक अग्नि को प्रणाम करते हुए कहते हैं, 'हम पूज्य के सम्मान में अवतरित होते हैं। हम पूज्य के सम्मान में अवतरित होते हैं।' वे अग्नि को भरपूर घी, तेल और मक्खन अर्पित करते हैं। रात बीत जाने पर वे ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन का भोज देते हैं। हे गौतम जी, ब्राह्मण इसी प्रकार पच्चोरोहणी पर्व मनाते हैं।"

"ब्राह्मणों के संप्रदाय में मनाया जाने वाला पच्चोरोहणी उत्सव, ब्राह्मणों के पच्चोरोहणी उत्सव से बिल्कुल भिन्न होता है।"

"पर कैसे? गुरु गौतम, क्या पुरोहित के अनुशासन में पच्चोरोहणी पर्व मनाया जाता है? यदि गुरु गौतम मुझे यह समझाकर धम्म का पाठ पढ़ाएँ कि पुरोहित के अनुशासन में पच्चोरोहणी पर्व कैसे मनाया जाता है तो अच्छा होगा।"

"तो फिर, ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

“जी हां,” ब्राह्मण जानूसोनी ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

(1) "हे ब्राह्मण, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'जीवन के विनाश का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा है।' ऐसा चिंतन करके वह जीवन के विनाश का त्याग कर देता है; वह जीवन के विनाश से नीचे उतर जाता है।"

(2) "... 'जो कुछ नहीं दिया गया है उसे लेने का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने के बाद, वह जो कुछ नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग कर देता है; वह जो कुछ नहीं दिया गया है उसे लेने से नीचे उतर जाता है।"

(3) "... 'यौन दुराचार का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह यौन दुराचार का त्याग कर देता है; वह यौन दुराचार से मुक्त हो जाता है।

(4) . 'झूठे वचन का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' [251] ऐसा चिंतन करने पर वह झूठे वचन का त्याग करता है; वह झूठे वचन से उतर जाता है।

(5) . . 'विभाजनकारी वाणी का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह विभाजनकारी वाणी का त्याग कर देता है; वह विभाजनकारी वाणी से विमुख हो जाता है।

(6) ... 'कठोर वाणी का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह कठोर वाणी का त्याग कर देता है; वह कठोर वाणी से विमुख हो जाता है।

(7) 'व्यर्थ की बातों का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने के बाद, वह व्यर्थ की बातों को त्याग देता है; वह व्यर्थ की बातों से विमुख हो जाता है।

(8) "... "लालसा का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।" ऐसा चिंतन करने के बाद, वह लालसा का त्याग कर देता है; वह लालसा से नीचे उतर जाता है।

(9) "... 'द्वेष का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है।' ऐसा विचार करने पर वह द्वेष का त्याग कर देता है; वह द्वेष से मुक्त हो जाता है।"

(10) "...गलत दृष्टिकोण का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जीवन में भी बुरा होता है। ऐसा चिंतन करने पर वह गलत दृष्टिकोण को त्याग देता है; वह गलत दृष्टिकोण से नीचे उतर जाता है।"

"हे ब्राह्मण, इसी प्रकार से भगवान की विद्या में पच्चोरोहनल पर्व मनाया जाता है।"

"गुरु गौतम की शिष्या में मनाया जाने वाला पच्चोरोहण उत्सव ब्राह्मणों के पच्चोरोहण उत्सव से बिल्कुल भिन्न है। और ब्राह्मणों का पच्चोरोहण उत्सव गुरु गौतम की शिष्या में मनाए जाने वाले पच्चोरोहण उत्सव के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! . . . [जैसा कि 10:119 में है] . . . गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी समझें जिसने आज से जीवन के लिए शरण ली है।"

---

168 अरियापकोरोहानी (2)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें पवित्र पचोरोहनल उत्सव के बारे में सिखाऊंगा। सुनो..."

"और हे भिक्षुओं, यह श्रेष्ठ पच्चोरोहण पर्व क्या है? [252] (1) यहाँ, श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार चिंतन करता है: 'जीवन के विनाश का परिणाम इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा है।' ऐसा चिंतन करने के बाद, वह जीवन के विनाश का त्याग कर देता है; वह जीवन के विनाश से अवतरित होता है। (2) 'जो नहीं दिया गया है उसे लेने का परिणाम... (3) ... यौन दुराचार... (4) ... झूठा वाणी... (5) ... विभाजनकारी वाणी... (6) ... कठोर वाणी... (7) ... व्यर्थ की बातें... (8) ... लालसा... (9) ... दुर्भावना... (10) ... गलत दृष्टिकोण इस जीवन में और भविष्य के जन्मों में भी बुरा है।' इस प्रकार चिंतन करने के बाद, वह गलत दृष्टिकोण को त्याग देता है; वह गलत दृष्टिकोण से नीचे उतरता है। इसे ही श्रेष्ठ पच्चोरोहणी उत्सव कहा जाता है।

---

169 संगरवा [2163]

तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

"मास्टर गोटांटा, निकटवर्ती तट कौन सा है? दूरवर्ती तट कौन सा है?"

"ब्राह्मण, (1) जीवन का विनाश निकट तट है, जीवन के विनाश से परहेज दूर तट है। (2) जो नहीं दिया गया है उसे लेना निकट तट है, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज दूर तट है। (3) यौन दुराचार निकट तट है, यौन दुराचार से परहेज दूर तट है। (4) झूठ बोलना निकट तट है, झूठ बोलने से परहेज दूर तट है। (5) विभाजनकारी बोलना निकट तट है, विभाजनकारी बोलने से परहेज दूर तट है। (6) कठोर बोलना निकट तट है, कठोर बोलने से परहेज दूर तट है। (7) व्यर्थ की बातें करना निकट तट है, व्यर्थ की बातों से परहेज दूर तट है। (8) लालसा निकट तट है, लालसा का अभाव दूर तट है। (9) द्वेष निकट तट है, सद्भावना दूर तट है। (10) गलत दृष्टिकोण निकट तट है, सही दृष्टिकोण दूर तट है। हे ब्राह्मण, एक निकट तट है, दूसरा दूर तट है।" [253]

बहुत कम लोग ही

इससे आगे बढ़ते हैं।

बाकी लोग तो बस

किनारे-किनारे ही चलते रहते हैं।

जब धम्म की सही व्याख्या की जाती है,

तो जो लोग उसके अनुसार अभ्यास करते हैं,

वे ही

मृत्यु के उस क्षेत्र से परे जा सकते हैं जिसे पार करना इतना कठिन है।

अंधकारमय गुणों को त्यागकर,

एक बुद्धिमान व्यक्ति को उज्ज्वल गुणों को विकसित करना चाहिए।

घर छोड़कर एकांत जीवन में आने पर,

जहाँ आनंद लेना कठिन होता है—

वहाँ एकांत में रहकर

इंद्रिय सुखों का त्याग करके आनंद की खोज करनी चाहिए।

कुछ भी न धारण करके, ज्ञानी व्यक्ति को

मानसिक विकारों से स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।

जिनके मन

ज्ञान के कारकों में सही ढंग से विकसित हो चुके हैं,

जो अनासक्ति के माध्यम से

आसक्ति के त्याग में आनंद पाते हैं:

वे प्रकाशमान होते हैं, उनके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं,

वे संसार में तृप्त हो जाते हैं।

---

170 निकटवर्ती तट (ओरिमा)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें निकटवर्ती और दूरवर्ती दोनों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, निकटवर्ती किनारा क्या है और दूरवर्ती किनारा क्या है? (1) हे भिक्षुओं, जीवन का विनाश निकटवर्ती किनारा है, जीवन के विनाश से बचना दूरवर्ती किनारा है। (2) जो नहीं दिया गया है उसे लेना निकटवर्ती किनारा है, जो नहीं दिया गया है उसे लेने से बचना दूरवर्ती किनारा है। (3) यौन दुराचार निकटवर्ती किनारा है, यौन दुराचार से बचना दूरवर्ती किनारा है। (4) झूठ बोलना निकटवर्ती किनारा है, झूठ बोलने से बचना दूरवर्ती किनारा है। (5) फूट डालने वाला बोलना निकटवर्ती किनारा है, फूट डालने वाले बोलने से बचना दूरवर्ती किनारा है। (6) कठोर बोलना निकटवर्ती किनारा है, कठोर बोलने से बचना दूरवर्ती किनारा है। (7) व्यर्थ की बातें करना निकटवर्ती किनारा है, व्यर्थ की बातों से बचना दूरवर्ती किनारा है। (8) लालसा निकटवर्ती किनारा है, लालसा का अभाव दूरवर्ती किनारा है। (9) द्वेष निकटवर्ती किनारा है, सद्भावना दूरवर्ती किनारा है। (10) गलत दृष्टिकोण निकटवर्ती किनारा है, सही दृष्टिकोण दूरवर्ती किनारा है। एक ही है, भिक्षुओं, एक निकटवर्ती किनारा है, दूसरा दूरवर्ती किनारा है।

[संलग्न श्लोक पूर्ववर्ती सूत्र के श्लोकों के समान हैं।]

बहुत कम लोग ही

इससे आगे बढ़ते हैं।

बाकी लोग तो बस

किनारे-किनारे ही चलते रहते हैं।

जब धम्म (मार्ग) की सही व्याख्या की जाती है,

तो जो लोग उसके अनुसार अभ्यास करते हैं,

वे ही

मृत्यु के उस क्षेत्र से परे जा सकेंगे जिसे पार करना इतना कठिन है।

अंधकारमय गुणों को त्यागकर,

एक बुद्धिमान व्यक्ति को उज्ज्वल गुणों को विकसित करना चाहिए।

घर छोड़कर एकांत जीवन में आने पर,

जहाँ आनंद लेना कठिन होता है—

वहाँ एकांत में रहकर

इंद्रिय सुखों का त्याग करके आनंद की खोज करनी चाहिए।

कुछ भी न धारण करके, ज्ञानी व्यक्ति को

मानसिक विकारों से स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।

जिनके मन

ज्ञान के तत्वों में सही ढंग से विकसित हो चुके हैं, जो अनासक्ति के माध्यम से आसक्ति के त्याग में

आनंद पाते हैं : वे प्रकाशमान होते हैं, उनके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं, वे संसार में तृप्त हो जाते हैं।

---

171 गैर-धम्म (1) (अधम्म बिना अधर्म)

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि कौन सा मार्ग धर्म के विरुद्ध है और कौन सा मार्ग हानिकारक है, तथा कौन सा मार्ग धर्म के अनुसार लाभकारी है। धर्म के विरुद्ध और लाभकारी मार्ग को समझ लेने के बाद, धर्म के अनुसार और लाभकारी मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

भिक्षुओं, अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक क्या है? जीवन का विनाश, बिना माँगे वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी, व्यर्थ की बातें, लालसा, द्वेष और गलत दृष्टिकोण। यही अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक कहलाता है।

भिक्षुओं, धम्म क्या है और इससे क्या लाभ होता है? जीव-जंतुओं को नष्ट करने से बचना, बिना माँगे कुछ लेने से बचना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, फूट डालने वाली वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लालसा न करना, सद्भावना रखना और सही दृष्टिकोण रखना। यही धम्म है और इससे लाभ होता है।

"जब यह कहा गया: 'भिक्षुओं, जो अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक है, उसे समझना चाहिए, और जो धम्म और लाभकारी है, उसे भी समझना चाहिए। अधार्मिक (गलत मार्ग) और हानिकारक, तथा धम्म और लाभकारी को समझने के बाद, धम्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।" [255]

---

172 गैर-धम्म (2) (अधम्म2 बिना अधर्म)

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि कौन सा धम्म (गलत मार्ग) है और कौन सा धम्म (सही मार्ग) है, और कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है। जब आप यह समझ लें कि कौन सा धम्म (गलत मार्ग) है और कौन सा धम्म है, और कौन सा हानिकारक है और कौन सा लाभकारी है, तो आपको धम्म (मार्ग) और लाभकारी मार्ग के अनुसार अभ्यास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सुगत (भगवान बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए। भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद भिक्षुओं ने विचार किया, "हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने इस संक्षिप्त सारांश का उपदेश दिया: 'भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या धर्म नहीं है (गलत मार्ग) और क्या धर्म है... हमें धर्म के अनुसार और जो लाभकारी है, उसका अभ्यास करना चाहिए।' फिर वे अपने आसन से उठे और बिना इसका विस्तृत अर्थ बताए अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए। अब इसका विस्तृत अर्थ कौन समझाएगा?" तब उन्हें यह विचार आया, "पूजनीय महाकच्चना की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और उनके ज्ञानी साथी भिक्षुओं द्वारा उनका आदर किया जाता है; वे इस संक्षिप्त सारांश का विस्तृत अर्थ समझाने में सक्षम हैं। आइए हम पूज्य महाकच्चना के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें। जब वे हमें समझाएंगे तो हम इसे याद रखेंगे।"

तब वे भिक्षु पूज्य महाकच्चना के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और बोले: "मित्र महाकच्चना, भगवान (बुद्ध) ने यह संक्षिप्त सारांश [256] दिया..." फिर वे अपने आसन से उठे।

और उन्होंने अर्थ का विस्तार से वर्णन किए बिना ही अपने निवास में प्रवेश कर लिया। उनके जाने के तुरंत बाद, हमने सोचा: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने यह संक्षिप्त सारांश दिया है... (ऊपर दिए गए सभी कथनों के अनुसार, आगे:) ...आइए हम पूज्य महाकच्चना के पास जाकर इसका अर्थ पूछें। जब वे हमें इसका अर्थ समझाएंगे, तो हम इसे याद रखेंगे। पूज्य महाकच्चना हमें इसका अर्थ समझाएं।'

[आदरणीय महाकच्चना ने उत्तर दिया:] "मित्रों, यह ऐसा है मानो कोई व्यक्ति जिसे सार तत्व की आवश्यकता हो, उसे खोजता हुआ, सार तत्व की तलाश में भटकता हुआ, सार तत्व से युक्त एक विशाल वृक्ष की जड़ और तने को अनदेखा कर दे, यह सोचकर कि सार तत्व शाखाओं और पत्तियों में खोजना चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है। जब आप गुरु के सामने थे, तब आप भगवान (बुद्ध) के पास से यह सोचकर गुजरे कि आप मुझसे इसका अर्थ पूछेंगे। क्योंकि, मित्रों, जानने से भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखने से वे देखते हैं; वे दृष्टि बन गए हैं, वे ज्ञान बन गए हैं, वे धम्म बन गए हैं, वे ब्रह्म बन गए हैं; वे व्याख्याकार, उद्घोषक, अर्थ के स्पष्टीकरणकर्ता, अमरता के दाता, धम्म के स्वामी, तथागत (बुद्ध) हैं। यही वह समय था जब आपको भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछना चाहिए था। आपको इसे अपने मन में रखना चाहिए था क्योंकि वे आपको इसका अर्थ समझाते।"

"निश्चित रूप से, हे मित्र कच्चना, जानते हुए भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखते हुए वे देखते हैं; वे स्वयं दृष्टि बन गए हैं... तथागत (बुद्ध)। वह समय था जब हमें भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे अर्थ पूछना चाहिए था और उनके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को हमें अपने मन में रखना चाहिए था। फिर भी, पूज्य महाकच्चना की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और उनके बुद्धिमान साथी भिक्षुओं द्वारा उनका सम्मान किया जाता है। वे इस सारांश के विस्तृत अर्थ की व्याख्या करने में सक्षम हैं। पूज्य महाकच्चना को बिना किसी कठिनाई के इसकी व्याख्या करनी चाहिए।"

"तो सुनो, मित्रों, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महाकच्चना ने यह कहा:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने विस्तृत अर्थ बताए बिना संक्षेप में यह उपदेश दिया: 'भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या अधर्म (गलत मार्ग) है और क्या धर्म है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। अधर्म (गलत मार्ग) और धर्म को समझने के बाद, और यह भी समझने के बाद कि क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है, धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए।' तो मित्रों, अधर्म (गलत मार्ग) क्या है और धर्म क्या है? और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है?"

(1) "हे मित्रों, जीवन का विनाश करना अधर्म (गलत मार्ग) है; जीवन के विनाश से बचना ही धर्म है। जीवन के विनाश से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। जीवन के विनाश से बचने की स्थिति में विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण लाभकारी हैं।"

(2) "जो कुछ दिया नहीं गया है उसे लेना अधर्म (गलत मार्ग) है; जो कुछ दिया नहीं गया है उसे न लेना धर्म है। [258] जो कुछ दिया नहीं गया है उसे लेने की शर्त से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। जो कुछ दिया नहीं गया है उसे न लेने की शर्त से विकास द्वारा सिद्ध होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

(3) यौन दुराचार अधर्म (गलत मार्ग) है; यौन दुराचार से परहेज़ करना धर्म है। यौन दुराचार से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। यौन दुराचार से परहेज़ करने पर जो अनेक कुशल गुण विकसित होते हैं, वे लाभकारी हैं।

(4) "झूठा भाषण अधर्म (गलत मार्ग) है; झूठे भाषण से परहेज़ करना धर्म है। झूठे भाषण से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। झूठे भाषण से परहेज़ करने पर प्राप्त होने वाले अनेक कुशल गुण लाभकारी हैं।

(5) "विभाजनकारी वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; विभाजनकारी वाणी से परहेज़ करना धर्म है। विभाजनकारी वाणी से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। विभाजनकारी वाणी से परहेज़ करने पर जो अनेक लाभकारी गुण (धर्म) सिद्ध होते हैं, वे लाभकारी हैं।"

(6) कठोर वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; कठोर वाणी से परहेज़ करना धर्म है। कठोर वाणी से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। कठोर वाणी से परहेज़ करने पर जो अनेक कुशल गुण विकसित होते हैं, वे लाभकारी हैं।

(7) "व्यर्थ की बातें करना अधर्म है; व्यर्थ की बातों से बचना ही धर्म है। व्यर्थ की बातों से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। व्यर्थ की बातों से बचने पर जो अनेक लाभकारी गुण सिद्ध होते हैं, वे लाभकारी हैं।"

(8) "लालसा अधर्म (गलत मार्ग) है; अनाच्छादन धर्म है। लालसा की स्थिति से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। लालसा की स्थिति से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण लाभकारी हैं।"

(9) "द्वेष भावना धम्म नहीं है; सद्भाव भावना ही धम्म है। वे अनेक अकुशल गुण जो द्वेष की स्थिति से उत्पन्न होते हैं, हानिकारक हैं। वे अनेक कुशल गुण जो सद्भाव भावना की स्थिति से विकसित होकर पूर्ण होते हैं, लाभकारी हैं।"

(10) "गलत दृष्टिकोण अधर्म (गलत मार्ग) है; सही दृष्टिकोण धर्म है। गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही दृष्टिकोण से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

"मित्रों, [259] इस प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) के संक्षिप्त सारांश का विस्तृत अर्थ समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो आप स्वयं भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछ सकते हैं। भगवान (बुद्ध) द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को आपको याद रखना चाहिए।"

“जी हां, मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और पूज्य महाकच्चना के कथन से प्रसन्न होकर वे अपने स्थान से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा...

भगवान (बुद्ध): "भंते, भगवान (बुद्ध) ने यह सारांश बताया [यहाँ वे सभी घटित घटनाओं का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं:] ... फिर, भंते, हम पूज्य महाकच्चना के पास गए और उनसे इसका अर्थ पूछा। पूज्य महाकच्चना ने हमें इसका अर्थ इन शब्दों और वाक्यांशों में समझाया।"

"अच्छे, अच्छे भिक्षुओं! महाकच्चन ज्ञानी हैं। महाकच्चन को अपार ज्ञान प्राप्त है। यदि आप मेरे पास आकर इसका अर्थ पूछते, तो मैं भी आपको महाकच्चन की ही तरह समझाता। इसका यही अर्थ है, और इसलिए इसे याद रखें।"

---

173 गैर-धम्म (गलत मार्ग) (3) (अधम्म 3 बिना अधर्म)

भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या गलत है और क्या गलत मार्ग है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। गलत मार्ग और धर्म को समझने के बाद, और यह भी समझ लें कि क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है, तो धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करें।

भिक्षुओं, क्या है अधर्म (गलत मार्ग) और क्या है धर्म? क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है?

(1) जीवन का विनाश अधर्म (गलत मार्ग) है; जीवन के विनाश से बचना ही धर्म है। जीवन के विनाश से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण हानिकारक हैं। जीवन के विनाश से बचने की स्थिति में विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण लाभकारी हैं।

(2) जो नहीं दिया गया है उसे लेना अधर्म (गलत मार्ग) है; जो नहीं दिया गया है उसे लेने से बचना धर्म (सही मार्ग) है। . . . (3) यौन दुराचार [261] अधर्म (गलत मार्ग) है; यौन दुराचार से बचना धर्म है। . . . (4) झूठा वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; झूठा वाणी से बचना धर्म है। . . (5) विभाजनकारी वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; विभाजनकारी वाणी से बचना धर्म है। . . . (6) कठोर वाणी अधर्म (गलत मार्ग) है; कठोर वाणी से बचना धर्म है। . . . (7) व्यर्थ की बातें अधर्म (गलत मार्ग) हैं; व्यर्थ की बातों से बचना धर्म है। . . . (8) लालसा अधर्म (गलत मार्ग) है; लालसा न करना ही धम्म है (9) द्वेष धम्म नहीं है; सद्भावना ही धम्म है।

(10) "गलत दृष्टिकोण अधर्म (गलत मार्ग) है; सही दृष्टिकोण धर्म है। गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होने वाले अनेक अकुशल गुण (धर्म) हानिकारक हैं। सही दृष्टिकोण से विकसित होने वाले अनेक कुशल गुण (धर्म) लाभकारी हैं।"

"जब यह कहा गया कि 'भिक्षुओं, यह समझना चाहिए कि क्या अधर्म (गलत मार्ग) है और क्या धर्म है, और क्या हानिकारक है और क्या लाभकारी है। अधर्म (गलत मार्ग) और धर्म, तथा हानिकारक और लाभकारी को समझने के बाद, धर्म और लाभकारी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए,' तो इसी संदर्भ में यह कहा गया था।"

---

174 कम्मा (कर्म) के कारण (कम्मानिदान सं. कर्म-निदान)

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, जीवन का विनाश तीन प्रकार से होता है: लोभ से, घृणा से और मोह से। जो नहीं दिया गया है उसे लेना भी तीन प्रकार से होता है: लोभ से, घृणा से और मोह से। यौन दुराचार भी तीन प्रकार से होता है: लोभ से, घृणा से और मोह से! झूठ बोलना भी तीन प्रकार से होता है: लोभ से, घृणा से और मोह से। फूट डालने वाली बातें भी तीन प्रकार से होती हैं: लोभ से, घृणा से और मोह से। कठोर बातें भी तीन प्रकार से होती हैं: लोभ से, घृणा से और मोह से। व्यर्थ की बातें भी तीन प्रकार से होती हैं: लोभ से, घृणा से और मोह से। लालसा भी तीन प्रकार से होती है: लोभ से, मैं कहता हूँ, द्वेष भी तीन प्रकार का होता है: लोभ से उत्पन्न, घृणा से उत्पन्न और मोह से उत्पन्न। मैं कहता हूँ, गलत मत भी तीन प्रकार का होता है: लोभ से उत्पन्न, घृणा से उत्पन्न और मोह से उत्पन्न।

इस प्रकार, भिक्षुओं, लोभ कर्म का स्रोत है; घृणा कर्म का स्रोत है; मोह कर्म का स्रोत है। लोभ के नाश से कर्म का एक स्रोत नष्ट हो जाता है। घृणा के नाश से कर्म का एक स्रोत नष्ट हो जाता है। मोह के नाश से कर्म का एक स्रोत नष्ट हो जाता है।

---

175 परिहार (परिकमना)

भिक्षुओं, यह धम्म बचाव का एक साधन प्रदान करता है। इसमें बचाव के साधन का अभाव नहीं है। और यह धम्म बचाव का साधन प्रदान करता है, फिर भी इसमें बचाव के साधन का अभाव क्यों नहीं है?

(1) जीवन का संहार करने वाले को जीवन के संहार से बचना चाहिए। (2) जो बिना दिए वस्तुएँ लेता है, उसे बिना दिए वस्तुएँ लेने से बचना चाहिए। (3) यौन दुराचार में लिप्त होने वाले को यौन दुराचार से बचना चाहिए। (4) झूठ बोलने वाले को झूठ बोलने से बचना चाहिए। (5) फूट डालने वाली बातें करने वाले को फूट डालने वाली बातों से बचना चाहिए। (6) कठोर बातें करने वाले को कठोर बातों से बचना चाहिए। (7) व्यर्थ की बातों में लिप्त होने वाले को व्यर्थ की बातों से बचना चाहिए। (8) लालसा से भरे व्यक्ति को लालसा से दूर रहना चाहिए। (9) द्वेष से भरे व्यक्ति को सद्भावना रखनी चाहिए। (10) गलत मत रखने वाले व्यक्ति को सही मत रखना चाहिए।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, यह धम्म बचाव का एक साधन प्रदान करता है और बचाव के साधन से वंचित नहीं है।" [263]

---

176 कुंडा

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) पावा में चुंडा नामक लोहार के पुत्र के आम के बाग में निवास कर रहे थे। 2165 तब चुंडा, जो लोहार का पुत्र था, भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। तब भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"कुंडा, तुम किसके पवित्रिकरण अनुष्ठान 2166 को पसंद करते हो?"

"भंते, मुझे पश्चिम के ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित पवित्रता के अनुष्ठान अधिक पसंद हैं, जो जलपात्र लेकर घूमते हैं, जलीय पौधों की माला पहनते हैं, पवित्र अग्नि की देखभाल करते हैं और स्वयं को जल में विसर्जित करते हैं।"

"और हे चुंडा, पश्चिम के ब्राह्मण अपने शुद्धिकरण अनुष्ठानों का निर्धारण कैसे करते हैं?"

"हे भंते, पश्चिम के ब्राह्मण अपने शिष्य को इस प्रकार आज्ञा देते हैं: 'हे भले मनुष्य, सुबह जल्दी उठकर पलते ही जमीन को थपथपाओ। यदि जमीन को न थपथपाओ, तो गीले गोबर को थपथपाओ। यदि गीले गोबर को न थपथपाओ, तो हरी घास को थपथपाओ। यदि हरी घास को न थपथपाओ, तो पवित्र अग्नि की देखभाल करो। यदि पवित्र अग्नि की देखभाल न करो, तो सूर्य को आदरपूर्वक प्रणाम करो। यदि सूर्य को आदरपूर्वक प्रणाम न करो, तो संध्या सहित तीन बार जल में स्नान करो।' पश्चिम के ब्राह्मण इसी प्रकार अपने शुद्धिकरण के अनुष्ठानों का विधान करते हैं। मुझे उनके ही शुद्धिकरण के अनुष्ठान प्रिय हैं।"

"चुंडा, जो कि भगवान के अनुशासन में शुद्धि है, पश्चिम के ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित शुद्धता के अनुष्ठानों से बिल्कुल अलग है, जो जलपात्र लेकर घूमते हैं, जलीय पौधों की माला पहनते हैं, पवित्र अग्नि की देखभाल करते हैं और खुद को पानी में डुबोते हैं।" [264]

"पर हे भंते, भगवान बुद्ध की साधना में शुद्धि कैसे होती है? अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे धम्म (मार्ग) इस प्रकार समझाएँ कि भगवान बुद्ध की साधना में शुद्धि कैसे होती है।"

"तो फिर, कुंडा, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," लोहार के पुत्र चुंडा ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"शरीर से अशुद्धि, चुंड, तीन प्रकार की होती है। वाणी से अशुद्धि चार प्रकार की होती है। मन से अशुद्धि तीन प्रकार की होती है।"

"और हे चुंडा, शरीर से होने वाली अशुद्धता तीन गुना कैसे होती है?"

(1) "यहाँ, कोई जीवन नष्ट करता है। वह हत्यारा है, उसके हाथ खून से सने हैं, वह मारपीट और हिंसा का आदी है, जीवित प्राणियों के प्रति निर्दयी है।

(2) "वह वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है। वह गाँव या जंगल में दूसरों की संपत्ति और माल चुराता है।

(3) वह यौन दुराचार में लिप्त होता है। वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध रखता है जो अपनी माता, पिता, माता-पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं; जो अपने धर्म द्वारा संरक्षित हैं; जिनका पति है; जिनका उल्लंघन दंडनीय है; या यहाँ तक कि पहले से ही किसी के साथ यौन संबंध में है। 2167

"इस प्रकार शरीर द्वारा होने वाली अशुद्धता तीन प्रकार की होती है।"

"और हे कुंडा, वाणी द्वारा अशुद्धता चार गुना कैसे होती है?"

(4) "यहाँ, कोई व्यक्ति झूठ बोलता है। यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति, अपने संघ या न्यायालय में बुलाया जाता है और एक गवाह के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाता है: 'तो, भले आदमी, बताओ कि तुम क्या जानते हो,' तो, न जानते हुए, वह कहता है, 'मैं जानता हूँ,' या जानते हुए, वह कहता है, 'मैं नहीं जानता'; न देखते हुए, वह कहता है, 'मैं देखता हूँ,' या देखते हुए, वह कहता है, 'मैं नहीं देखता।' इस प्रकार [265] वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है।

(5) वह फूट डालने वाली बातें करता है। यहाँ कुछ सुनकर, वह उसे कहीं और दोहराता है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर सके; या कहीं और कुछ सुनकर, वह उसे इन लोगों से दोहराता है ताकि [उन्हें] उनसे अलग कर सके। इस प्रकार वह एकता को तोड़ने वाला, फूट पैदा करने वाला, गुटों में आनंद लेने वाला, गुटों से प्रसन्न होने वाला, गुटों में मग्न रहने वाला और गुटों को पैदा करने वाले शब्द बोलने वाला है।

(6) "वह कठोर स्वर में बोलता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कठोर, दूसरों को दुख पहुँचाने वाले, दूसरों के लिए अपमानजनक, क्रोध से भरे और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के लिए अनुपयुक्त होते हैं।"

(7) वह व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है। वह अनुचित समय पर बोलता है, झूठ बोलता है, अनुत्पादक बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन के विपरीत बोलता है; अनुचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो व्यर्थ, तर्कहीन, बेतुके और अनुत्पादक होते हैं।

"इस प्रकार वाणी द्वारा अशुद्धता चार प्रकार की होती है।"

"और हे कुंडा, मन से होने वाली अशुद्धता तीन गुना कैसे होती है?"

(8) "यहाँ कोई व्यक्ति अत्यधिक लालसा से भरा हुआ है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार तरसता है; 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा हो जाए!'

(9) "उसके मन में दुर्भावना और घृणा के भाव हैं, इस प्रकार: 'क्या इन प्राणियों को मार डाला जाए, वध किया जाए, काट डाला जाए, नष्ट कर दिया जाए या मिटा दिया जाए?'

(10) "उसका मत और दृष्टिकोण गलत है, इस प्रकार: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; कोई भी प्राणी स्वतः पुनर्जन्म नहीं लेता; संसार में ऐसे कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हों और स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव कर लें और दूसरों को भी इसके बारे में बताएं।'

"इस प्रकार मन की अशुद्धता तीन प्रकार की होती है।"

"ये, कुण्ड, दस हानिकारक (अकुशल) कर्म हैं। अगर कोई इन दस हानिकारक (अकुशल) कर्म करता है, तो अगर वह सुबह जल्दी उठकर बिस्तर से ज़मीन पर हाथ फेरता है, तो वह अशुद्ध है, और अगर वह ज़मीन पर हाथ नहीं फेरता है, तो वह अशुद्ध है। अगर कोई गीली गाय का गोबर फेरता है, तो वह अशुद्ध है, और अगर कोई गीली गाय का गोबर नहीं फेरता है, तो वह अशुद्ध है। अगर कोई हरी घास पर हाथ फेरता है, तो वह अशुद्ध है, और अगर कोई हरी घास पर हाथ नहीं फेरता है, तो वह अशुद्ध है। अगर कोई पवित्र अग्नि की सेवा करता है, तो वह अशुद्ध है, और अगर कोई पवित्र अग्नि की सेवा नहीं करता है, तो वह अशुद्ध है; अगर कोई सूर्य को श्रद्धा से नमस्कार करता है, तो वह अशुद्ध है, और अगर कोई सूर्य को श्रद्धा से नमस्कार नहीं करता है, तो वह अशुद्ध है। अगर कोई तीन बार पानी में डुबकी लगाता है, जिसमें शामिल हैं शाम को, इंसान अशुद्ध होता है, और अगर कोई शाम को मिलाकर तीन बार पानी में डुबकी नहीं लगाता, तो वह अशुद्ध होता है। किस वजह से? क्योंकि ये दस तरह के नुकसानदायक (अकुशल) कर्म खुद ही अशुद्ध और गंदा करने वाले हैं। क्योंकि लोग इन दस तरह के नुकसानदायक (अकुशल) कर्म करते हैं, इसलिए नरक, जानवरों की योनि, पीड़ित आत्माओं का इलाका और दूसरी बुरी जगहें देखी जाती हैं।

"शरीर से पवित्रता, कुंद, तीन गुना होती है। वाणी से पवित्रता चार गुना होती है। मन से पवित्रता तीन गुना होती है।

"और, कुंद, शरीर से पवित्रता तीन गुना कैसे होती है?

(1) "यहाँ, कोई, जीवन के विनाश को छोड़कर, जीवन के विनाश से दूर रहता है। छड़ी (हिंसा) और हथियार को एक तरफ रखकर, ईमानदार और दयालु होकर, वह सभी जीवों के प्रति दयालु रहता है।

" (2) "जो नहीं दिया गया है उसे लेना छोड़कर, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से बचता है। वह गाँव या जंगल में दूसरों का धन और संपत्ति नहीं चुराता है।

(3) "यौन दुराचार छोड़कर, वह यौन दुराचार से बचता है। वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध नहीं बनाता जो अपनी माँ, पिता, माँ और पिता, भाई, बहन, या रिश्तेदारों द्वारा सुरक्षित हैं; जो अपने धम्म द्वारा सुरक्षित हैं; जिनके पति हैं; जिनके उल्लंघन के लिए सज़ा मिलती है; या यहाँ तक कि पहले से सगाईशुदा व्यक्ति के साथ भी।

"इस तरह शरीर से पवित्रता तीन गुना होती है।

"और, कुंडा, वाणी से पवित्रता चार गुना कैसे हो सकती है? (4) "यहाँ, कोई झूठ बोलना छोड़ देता है, झूठ बोलने से बचता है। अगर उसे किसी काउंसिल में, किसी असेंबली में, उसके रिश्तेदारों के सामने, उसके गिल्ड में, या कोर्ट में बुलाया जाता है, और गवाह के तौर पर उससे इस तरह पूछा जाता है: 'तो, अच्छे आदमी, जो तुम जानते हो, बताओ' तो, न जानते हुए भी वह कहता है, 'मुझे नहीं पता' या जानते हुए भी वह कहता है, 'मुझे पता है'; न देखते हुए वह कहता है, 'मुझे नहीं दिखता' या देखते हुए वह कहता है, "मैं देखता हूँ" इस तरह वह जानबूझकर अपने मकसद के लिए, या किसी और के मकसद के लिए, या किसी छोटी-मोटी दुनियावी मकसद के लिए झूठ नहीं बोलता।

(5) "विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। यहाँ कुछ सुनकर वह उसे कहीं और दोहराता नहीं है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर दे; या कहीं और कुछ सुनकर वह उसे इन लोगों के सामने दोहराता नहीं है ताकि [उन्हें] उन लोगों से अलग कर दे। इस प्रकार वह विभाजित लोगों को एकजुट करने वाला, एकता का समर्थक, सामंजस्य का आनंद लेने वाला, सामंजस्य में प्रसन्न होने वाला, सामंजस्य से प्रसन्न होने वाला और सामंजस्य को बढ़ावा देने वाले शब्दों का वक्ता है।"

(6) कठोर भाषा का त्याग करके, वह कठोर भाषा से परहेज करता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कोमल, कानों को भाने वाले और प्यारे हों, जो हृदय को छू जाएं, शिष्ट हों, बहुतों द्वारा वांछित हों और बहुतों को भाने वाले हों।

(7) "व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह उचित समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, लाभकारी बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन पर बोलता है; उचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो दर्ज करने योग्य हों, तर्कसंगत हों, संक्षिप्त हों और लाभकारी हों।"

"इस प्रकार वाणी द्वारा पवित्रता चार प्रकार की होती है।"

"और, कुंडा, मन की पवित्रता तीन गुना कैसे होती है?"

(8) "यहाँ, कोई व्यक्ति लालसा रहित है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार लालसा नहीं करता: 'ओह, जो दूसरे का है वह मेरा हो!'"

(9) "वह सद्भावपूर्ण है और उसके इरादे घृणा से मुक्त हैं, इस प्रकार: 'ये प्राणी खुशी से रहें, शत्रुता, पीड़ा और चिंता से मुक्त रहें!'"

(10) "वह सही दृष्टिकोण रखता है [268] और उसका परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'जो दिया जाता है, बलिदान किया जाता है और अर्पित किया जाता है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम होता है; यह संसार और परलोक है; माता और पिता हैं; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं।'

"इस प्रकार मन की पवित्रता तीन प्रकार की होती है।"

"हे चुंडा, ये दस प्रकार के लाभकारी (कुशल) कर्म हैं। यदि कोई इन दस प्रकार के लाभकारी (कुशल) कर्मों का पालन करता है, तो यदि वह सुबह जल्दी उठकर पलंग से जमीन को थपथपाता है, तो वह शुद्ध है, और यदि वह जमीन को नहीं थपथपाता है, तो भी वह शुद्ध है। यदि कोई गीले गोबर को थपथपाता है, तो वह शुद्ध है, और यदि वह गीले गोबर को नहीं थपथपाता है, तो भी वह शुद्ध है। यदि कोई हरी घास को थपथपाता है, तो वह शुद्ध है, और यदि वह हरी घास को नहीं थपथपाता है, तो भी वह शुद्ध है। यदि कोई पवित्र अग्नि की देखभाल करता है, तो वह शुद्ध है, और यदि वह पवित्र अग्नि की देखभाल नहीं करता है, तो भी वह शुद्ध है। यदि कोई सूर्य को आदरपूर्वक प्रणाम करता है, तो वह शुद्ध है, और यदि वह सूर्य को आदरपूर्वक प्रणाम नहीं करता है, तो भी वह शुद्ध है। यदि कोई संध्या

सहित तीन बार जल में स्नान करता है, तो वह शुद्ध है, और यदि..." जो व्यक्ति संध्या सहित तीन बार जल में स्नान नहीं करता, वह शुद्ध हो जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि ये दस प्रकार के लाभकारी कर्म स्वयं शुद्ध और पवित्र करने वाले हैं। इन्हीं दस प्रकार के लाभकारी कर्मों के कारण ही देवदूत, मनुष्य और अन्य शुभ स्थान दर्शन के लिए प्रकट होते हैं।

जब यह कहा गया, तो लोहार के पुत्र चुंडा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "उत्कृष्ट, भंते! ... भगवान (बुद्ध) मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया हूँ।" [269]

---

177 जानूसोनी

तब ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

"हे गुरु गौतम, हम ब्राह्मण मृतकों के लिए दान देते हैं और उनकी स्मृति में अनुष्ठान करते हैं, इस विचार के साथ कि 'हमारा दान हमारे दिवंगत रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों के लिए लाभकारी हो। हमारे दिवंगत रिश्तेदार और परिवार के सदस्य हमारे दान का लाभ उठा सकें।' क्या हे गुरु गौतम, हमारा दान वास्तव में हमारे दिवंगत रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों के लिए लाभकारी हो सकता है? क्या हमारे दिवंगत रिश्तेदार और परिवार के सदस्य वास्तव में हमारे दान का लाभ उठा सकते हैं?"

"हे ब्राह्मण, उचित अवसर पर यह लाभकारी हो सकता है, अनुचित अवसर पर नहीं।"

लेकिन, गुरु गौतम, उचित अवसर क्या है और अनुचित अवसर क्या है?

हे ब्राह्मण, यहाँ कोई जीवन का नाश करता है, जो दिया नहीं गया उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर भाषा बोलता है, व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है; वह लालसा से भरा है, द्वेषपूर्ण मन रखता है और गलत विचार रखता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह नरक में पुनर्जन्म लेता है। 2170 वह वहाँ नरकवासियों के भोजन से अपना जीवन यापन करता है। यह एक अनुचित अवसर है, जब दान वहाँ रहने वाले के लिए लाभकारी नहीं है।

"कोई और जीवन का नाश करता है... और गलत दृष्टिकोण रखता है। शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह पशु जगत में पुनर्जन्म लेता है। वह वहाँ पशुओं के भोजन पर अपना जीवन यापन करता है। यह भी एक गलत अवसर है, जब दान वहाँ रहने वाले के लिए लाभकारी नहीं होता।"

एक अन्य व्यक्ति जीवन के विनाश से, अनधिकृत वस्तु लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, फूट डालने वाली [270] वाणी से, कठोर वाणी से, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्भावपूर्ण और सही दृष्टिकोण वाला होता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह मनुष्यों के साथ पुनर्जन्म लेता है। वह वहाँ मनुष्यों के भोजन से अपना भरण-पोषण करता है। यह भी एक अनुचित अवसर है, जब दान वहाँ रहने वाले के लिए लाभकारी न हो।

एक अन्य व्यक्ति जीवन के विनाश से परहेज करता है... और सही दृष्टिकोण रखता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के साथ पुनर्जन्म लेता है। वह वहां देवताओं (देवदूतों/देवताओं) के भोजन से अपना जीवन यापन करता है। यह भी एक अनुचित अवसर है, क्योंकि दान वहां रहने वाले के लिए लाभकारी नहीं होता।

एक अन्य व्यक्ति जीवन का नाश करता है... और गलत दृष्टिकोण रखता है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुखी आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म लेता है। वह वहाँ दुखी आत्माओं के भोजन से अपना जीवन यापन करता है, या फिर इस लोक में अपने मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों या परिवार के सदस्यों द्वारा दिए गए दान से अपना जीवन यापन करता है। यह एक उचित अवसर है, जब दिया गया दान वहाँ रहने वाले व्यक्ति के लिए लाभकारी हो।

"लेकिन, गुरु गौतम, यदि वह मृत संबंधी या परिवार का सदस्य उस स्थान पर पुनर्जन्म नहीं लेता है, तो उस उपहार का भागीदार कौन होगा?"

"अन्य दिवंगत रिश्तेदार या परिवार के सदस्य जो उस स्थान पर 2171 में पुनर्जन्म ले चुके हैं, वे भी इस उपहार में भागीदार होते हैं।"

"परन्तु, हे गौतम गुरु, यदि न तो वह मृत संबंधी या परिवार का सदस्य और न ही कोई अन्य व्यक्ति उस स्थान पर पुनर्जन्म लेता है, तो उस दान का कौन भागीदार होगा?"

"इस लंबे समय के दौरान [संसार में], हे ब्राह्मण, यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह स्थान अपने दिवंगत रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों से रहित हो। इसके अलावा, दानकर्ता के लिए भी यह व्यर्थ नहीं है।"

"क्या गुरु गौतम अनुचित परिस्थितियों में भी [दान देने के महत्व] पर विचार करते हैं?" 2172

"ब्राह्मण, मैं अनुचित परिस्थितियों में भी [दान देने के महत्व] पर विचार करता हूँ।"

हे ब्राह्मण, यहाँ कोई जीवन का नाश करता है, जो नहीं दिया गया उसे लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर भाषा बोलता है, व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है; वह लालसा से भरा है, द्वेषपूर्ण मन रखता है और गलत विचार रखता है। वह किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन और पेय, वस्त्र और वाहन, मालाएँ, सुगंध और लेप, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करता है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह हाथियों के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ उसे भोजन और पेय, मालाएँ और विभिन्न आभूषण प्राप्त होते हैं।

"चूंकि उसने यहां जीवन का नाश किया... और गलत मत रखा, इसलिए शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह हाथियों के साथ पुनर्जन्म लेता है। लेकिन चूंकि उसने किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन और पेय दिया... इसलिए उसे वहां भोजन और पेय, मालाएं और विभिन्न आभूषण प्राप्त होते हैं।"

"कोई और जीवन का नाश करता है... और गलत दृष्टिकोण रखता है। वह किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन, पेय और प्रकाश प्रदान करता है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह घोड़ों... मवेशियों... कुत्तों के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ उसे भोजन, पेय, मालाएँ और विभिन्न आभूषण प्राप्त होते हैं।"

"चूंकि उसने यहां जीवन नष्ट कर दिया . . . [272] . . . और गलत मत रखा, इसलिए शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह घोड़ों . . . मवेशियों . . . कुत्तों के साथ पुनर्जन्म लेता है। लेकिन चूंकि उसने किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन और पेय दिया . . . इसलिए उसे वहां भोजन और पेय, मालाएं और विभिन्न आभूषण प्राप्त होते हैं।"

एक अन्य व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने, बिना माँगे वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्भावपूर्ण और सही दृष्टि वाला होता है। वह तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन, मालाएँ, सुगंध और लेप, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करता है। मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह मनुष्यों के साथ पुनर्जन्म लेता है। वहाँ वह पाँचों प्रकार के इंद्रिय सुखों का अनुभव करता है।

"चूंकि उसने यहां जीवन के विनाश से परहेज किया... और सही दृष्टिकोण रखा, इसलिए शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह मनुष्यों के साथ पुनर्जन्म लेता है। और चूंकि उसने किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन और पेय दिया... इसलिए उसे वहां मनुष्य की पांच इंद्रिय सुखों की प्राप्ति होती है।"

एक अन्य व्यक्ति जीवन के विनाश से परहेज करता है... और सही दृष्टिकोण रखता है। वह किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन, पेय और प्रकाश प्रदान करता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह देवों के साथ पुनर्जन्म लेता है... वहाँ उसे पाँच प्रकार के दिव्य इंद्रिय सुख प्राप्त होते हैं।

"चूंकि उसने यहाँ जीवन के विनाश से परहेज किया... और सही दृष्टिकोण रखा, इसलिए शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के साथ पुनर्जन्म लेता है। और चूंकि उसने किसी तपस्वी या ब्राह्मण को भोजन और पेय दिया... इसलिए उसे वहाँ पाँच प्रकार के दिव्य इंद्रिय सुख प्राप्त होते हैं। [इसीलिए मैंने कहा:] 'इसके अलावा, दानकर्ता के लिए भी यह व्यर्थ नहीं है।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। गुरु गौतम, यह जानकर आश्चर्य होता है कि दान देना और मृतकों के लिए स्मृति अनुष्ठान करना उचित है, क्योंकि दानकर्ता के लिए भी यह व्यर्थ नहीं जाता।"

"ऐसा ही है, ब्राह्मण! ऐसा ही है, ब्राह्मण! दान करने वाले के लिए भी यह व्यर्थ नहीं है।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

तृतीय. अच्छा [2173] (साधुवग्गो सं. साधुवर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

178 अच्छा (साधु)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो और मेरी बात पर गौर करो।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: •

"और हे भिक्षुओं, बुरा क्या है? जीवन का विनाश, बिना माँगे वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी बातें, फूट डालने वाली बातें, कठोर बातें, व्यर्थ की बातें, लालसा, द्वेष और गलत विचार। यही बुरा कहलाता है।"

और हे भिक्षुओं, अच्छा क्या है? जीवन का विनाश न करना, बिना दी हुई वस्तुएँ न लेना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, फूट डालने वाली वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लालसा न करना, सद्भावना और सही दृष्टिकोण रखना। यही अच्छा है।

179-188 महान धम्म आदि (अरियाधम्म, कुसल, अत्थ, धम्म, असव, वज्जा, तपनिया)

(179) "भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ धम्म और नीच धम्म सिखाऊँगा। और हे भिक्षुओं, नीच क्या है? जीव-जंतुओं का संहार, बिना माँगे वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी, व्यर्थ की बातें, लालसा, द्वेष और गलत मत। यही नीच कहलाता है। और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ क्या है? जीव-जंतुओं के संहार से बचना, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से बचना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, फूट डालने वाली वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लालसा न करना, सद्भावना और सही मत। यही श्रेष्ठ कहलाता है।"

[इसी प्रकार] (180) . . . लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल) ... . . . (181) . . . लाभकारी क्या है और हानिकारक क्या है . . . (182) . . . धम्म और अधर्म (गलत मार्ग) . . . (183) . . . दूषित धम्म और निष्कलंक धम्म . . [276] . . . (184) . . . निंदनीय धम्म और निष्कलंक धम्म . . . (185) . . . कष्टदायी धम्म और कष्टरहित धम्म . . . (186) . . . सृजन की ओर ले जाने वाला धम्म और

विघटन की ओर ले जाने वाला धम्म . . . (187) वह धम्म जिसका परिणाम दुख होता है और वह धम्म जिसका परिणाम सुख होता है... (188) ... वह धम्म जिसका परिणाम दुख होता है और वह धम्म जिसका परिणाम सुख होता है

भिक्षुओं, वह कौन सा धर्म है जो दुख का कारण बनता है? जीवन का विनाश... और गलत दृष्टिकोण। यही दुख का कारण बनने वाला धर्म कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, सुख का स्रोत क्या है? जीवन के विनाश से बचना... और सही दृष्टिकोण रखना। यही सुख का स्रोत कहलाता है।"

चतुर्थ. महान पथ (अरियामग्गवग्गा सं. आर्यमार्ग-वर्ग)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

189 महान पथ (अरियामग्गा)

भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ मार्ग और नीच मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और ग्रहण करो। हे भिक्षुओं, नीच मार्ग क्या है? और हे भिक्षुओं, नीच क्या है? जीव-जंतुओं का संहार, बिना माँगे वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी, व्यर्थ की बातें, लालसा, द्वेष और गलत दृष्टि। यही नीच कहलाता है। हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ मार्ग क्या है? जीव-जंतुओं के संहार से बचना, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से बचना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, फूट डालने वाली वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लालसा न करना, सद्भावना और सही दृष्टि। यही श्रेष्ठ कहलाता है। यही श्रेष्ठ मार्ग कहलाता है।

190-198 अंधकारमय पथ, इत्यादि।

(190) “भिक्षुओं, मैं तुम्हें अंधकारमय मार्ग और प्रकाशमय मार्ग सिखाऊंगा। और हे भिक्षुओं, अंधकारमय मार्ग क्या है? जीवन का विनाश, बिना माँगी वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी, व्यर्थ की बातें, लालसा, द्वेष और गलत दृष्टिकोण। यही अंधकारमय मार्ग कहलाता है। और हे भिक्षुओं, प्रकाशमय मार्ग क्या है? जीवन के विनाश से बचना, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचना, यौन दुराचार से बचना, झूठी वाणी से बचना, फूट डालने वाली वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, व्यर्थ की बातों से बचना, लालसा न करना, सद्भावना और सही दृष्टिकोण। यही अच्छा मार्ग कहलाता है। यही प्रकाशमय मार्ग कहलाता है।”

[इसी प्रकार] (191) ... अच्छा धम्म (सही मार्ग) और बुरा धम्म ... [279] (192) ... अच्छे व्यक्ति का धम्म और बुरे व्यक्ति का धम्म ... (193) ... जागृत होने वाला धम्म और जागृत न होने वाला धम्म ... (194) ... अनुसरण किया जाने वाला धम्म और अनुसरण न किया जाने वाला धम्म ... [280] (195) ... विकसित होने वाला धम्म और विकसित न होने वाला धम्म ... (196) ... विकसित होने वाला धम्म और विकसित न होने वाला धम्म ... (197) ... स्मरण किया जाने वाला धम्म और स्मरण न किया जाने वाला धम्म ... [281] (198) ... धम्म का अनुभव किया जाना चाहिए और उस धम्म का अनुभव नहीं किया जाना चाहिए।

भिक्षुओं, वह धम्म क्या है जिसे साकार नहीं किया जा सकता? जीवन का विनाश... और गलत दृष्टिकोण। इसे ही वह धम्म कहते हैं जिसे साकार नहीं किया जा सकता।

"और हे भिक्षुओं, वह धर्म क्या है जिसे साकार करना है? जीवन के विनाश से बचना... और सही दृष्टिकोण रखना। यही वह धर्म है जिसे साकार करना है।"

V. व्यक्तियों पर एक और अध्याय [2174]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

199 के साथ जुड़ें

भिक्षुओं, दस गुणों वाले व्यक्ति से संगति न रखनी चाहिए। वे कौन से दस गुण हैं? वह जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ ले लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है, व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है; वह लालसा से भरा होता है, द्वेषपूर्ण मन रखता है और गलत मत रखता है। इन दस गुणों वाले व्यक्ति से संगति न रखनी चाहिए।

भिक्षुओं, दस गुणों से युक्त व्यक्ति की संगति करनी चाहिए। वे दस गुण कौन से हैं? वह जीव-जंतुओं को नष्ट करने, दूसरों से कुछ न लेने, यौन दुराचार, झूठी वाणी, फूट डालने वाली वाणी, कठोर वाणी और व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्‌भावपूर्ण और सही दृष्टिकोण वाला होता है। ऐसे दस गुणों से युक्त व्यक्ति की संगति करनी चाहिए।

200 - 210 रिज़ॉर्ट, आदि [2175]

(200) "भिक्षुओं, दस गुणों वाले व्यक्ति की शरण नहीं लेनी चाहिए। वे दस गुण क्या हैं? वह जीव-जंतुओं का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन दुराचार में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर वाणी बोलता है, व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है; वह लालसा से भरा होता है, द्वेषपूर्ण मन रखता है और गलत मत रखता है। ऐसे दस गुणों वाले व्यक्ति से संगति नहीं करनी चाहिए। "भिक्षुओं, दस गुणों वाले व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए। वे दस गुण क्या हैं? वह जीव-जंतुओं के नाश से, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठे वाणी से, फूट डालने वाले वाणी से, कठोर वाणी से और व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्‌भावपूर्ण और सही मत रखता है। ऐसे दस गुणों वाले व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए।

[इसी प्रकार] (201) ... किसी की सेवा नहीं करनी चाहिए ... किसी की सेवा करनी चाहिए ... (202) ... किसी का आदर नहीं करना चाहिए ... किसी का आदर करना चाहिए ... (203) ... किसी की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए ... किसी की प्रशंसा करनी चाहिए ... (204) ... किसी का आदर नहीं करना चाहिए ... किसी का आदर करना चाहिए ... (205) ... किसी को सम्मान नहीं दिखाना चाहिए ... दस गुणों वाले व्यक्ति को सम्मान दिखाना चाहिए ... (206) दस गुणों वाला व्यक्ति सफल नहीं होता ... सफल होता है ... (207) ... शुद्ध नहीं होता ... शुद्ध होता है ... (208) ... अहंकार पर विजय प्राप्त नहीं करता ... अहंकार पर विजय प्राप्त करता है ... (209) ...पन्न (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि नहीं करता ...पन्न (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करता है ... (210) ...बहुत पाप उत्पन्न करता है ...बहुत पुण्य उत्पन्न करता है। वे दस गुण क्या हैं? वह जीव-जंतुओं को नष्ट करने से, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, फूट डालने वाली वाणी से, कठोर वाणी से, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है; वह लालसा रहित, सद्‌भावपूर्ण और सही दृष्टिकोण वाला होता है। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।

अतिरिक्त पचास

I. कर्म से उत्पन्न शरीर (करजकया-वग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

211 नरक-स्वर्ग (1) (निरायसग्गा1 सं. नरक-स्वर्ग)

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं को नरक में इस प्रकार रखा जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई जीवन नष्ट करता है; वह हत्यारा है, खूनी हाथों वाला है, मार-पीट और हिंसा करने वाला है, जीवित प्राणियों के प्रति निर्दयी है।

(2) "वह वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है; वह गाँव या जंगल में दूसरों की संपत्ति और माल चुराता है।

(3) वह यौन दुराचार में लिप्त होता है; वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध रखता है जो अपनी माँ, पिता, माता-पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं; जो अपने धम्म द्वारा संरक्षित हैं; जिनका पति है; जिनका उल्लंघन दंडनीय है; या यहाँ तक कि पहले से ही किसी के साथ यौन संबंध रखता है।

(4) वह झूठ बोलता है। यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति, अपने संघ या न्यायालय में बुलाया जाए और उससे गवाह के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाए: 'हे सज्जन, जो कुछ तुम जानते हो, वह बताओ', तो न जानते हुए वह कहता है, 'मैं जानता हूँ' या जानते हुए कहता है, 'मैं नहीं जानता'; न देखते हुए वह कहता है, 'मैं देखता हूँ' या देखते हुए कहता है, 'मैं नहीं देखता।' इस प्रकार वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है।

(5) वह फूट डालने वाली बातें करता है। यहाँ कुछ सुनकर, वह उसे कहीं और दोहराता है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर सके; या कहीं और कुछ सुनकर, वह उसे इन लोगों से दोहराता है ताकि [उन्हें] उनसे अलग कर सके। इस प्रकार वह एकता को तोड़ने वाला, फूट पैदा करने वाला, गुटों में आनंद लेने वाला, गुटों से प्रसन्न होने वाला, गुटों में मग्न रहने वाला और गुटों को पैदा करने वाले शब्द बोलने वाला है।

(6) "वह कठोर स्वर में बोलता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कठोर, दूसरों को दुख पहुँचाने वाले, दूसरों के लिए अपमानजनक, क्रोध से भरे और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के लिए अनुपयुक्त होते हैं।"

(7) "वह व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है। वह अनुचित समय पर बोलता है, झूठ बोलता है, अनुत्पादक बातें बोलता है, धम्म (मार्ग) और अनुशासन के विपरीत बोलता है; अनुचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो व्यर्थ, तर्कहीन, बेतुके और अनुत्पादक होते हैं। [284]

(8) "वह लालसा से भरा हुआ है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार तरसता है: 'ओह, जो दूसरे का है वह मेरा हो!'"

(9) "उसके मन में दुर्भावना और घृणा के भाव हैं, इस प्रकार: 'इन प्राणियों का वध हो, इन्हें काट डाला जाए, नष्ट कर दिया जाए या पूरी तरह से मिटा दिया जाए!'"

(10) "उसका मत और दृष्टिकोण गलत है, इस प्रकार: 'कुछ भी दिया (दान) नहीं जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; कोई भी प्राणी स्वतः पुनर्जन्म नहीं लेता; संसार में ऐसे कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हों और स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव कर लें और दूसरों को भी इसके बारे में बताएं।'

"इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में इस प्रकार डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं, दस गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं?"

(1) "यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन के विनाश का त्याग करके, जीवन के विनाश से दूर रहता है। लाठी (हिंसा) और हथियार को त्यागकर, वह विवेकशील और दयालु होकर सभी जीवित प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से रहता है।"

(2) "जो कुछ नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह जो कुछ नहीं दिया गया है, उसे लेने से परहेज करता है। वह गाँव या जंगल में दूसरों के धन और संपत्ति की चोरी नहीं करता है।

(3) यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से परहेज करता है। वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध नहीं रखता जो अपनी माता, पिता, माता-पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं; जो अपने धम्म द्वारा संरक्षित हैं; जिनका पति है; जिनका उल्लंघन दंडनीय है; या यहाँ तक कि पहले से ही किसी के साथ यौन संबंध में हैं।

(4) "झूठे वचन का त्याग करके, वह झूठे वचन से दूर रहता है। यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति में, अपने संघ या न्यायालय में बुलाया जाए और उससे गवाह के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाए: 'तो, भले मनुष्य, जो तुम जानते हो, बताओ,' तो न जानते हुए वह कहता है, 'मैं नहीं जानता,' या जानते हुए वह कहता है, 'मैं जानता हूँ'; न देखते हुए वह कहता है, 'मैं नहीं देखता,' या देखते हुए वह कहता है, 'मैं देखता हूँ।' इस प्रकार वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ नहीं बोलता। [285]

(5) "विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। यहाँ कुछ सुनकर वह उसे कहीं और दोहराता नहीं है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर दे; या कहीं और कुछ सुनकर वह उसे इन लोगों के सामने दोहराता नहीं है ताकि [उन्हें] उन लोगों से अलग कर दे। इस प्रकार वह विभाजित लोगों को एकजुट करने वाला, एकता का समर्थक, सामंजस्य का आनंद लेने वाला, सामंजस्य में प्रसन्न होने वाला, सामंजस्य से प्रसन्न होने वाला और सामंजस्य को बढ़ावा देने वाले शब्दों का वक्ता है।"

(6) कठोर भाषा का त्याग करके, वह कठोर भाषा से परहेज करता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कोमल, कानों को भाने वाले और प्यारे हों, जो हृदय को छू जाएं, शिष्ट हों, बहुतों द्वारा वांछित हों और बहुतों को भाने वाले हों।

(7) "व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह उचित समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, लाभकारी बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन पर बोलता है; उचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो दर्ज करने योग्य हों, तर्कसंगत हों, संक्षिप्त हों और लाभकारी हों।"

(8) "वह लालसा रहित है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार लालसा नहीं करता: 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा हो जाए!'"

(9) "वह सद्भावपूर्ण है और उसके इरादे घृणा से मुक्त हैं, इस प्रकार: 'ये प्राणी खुशी से रहें, शत्रुता, पीड़ा और चिंता से मुक्त रहें!'"

(10) "उसका सही दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'जो दिया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, जो अर्पित किया जाता है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम; यह संसार और परलोक; माता और पिता; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं।

"इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

212 नरक-स्वर्ग (2) (निरायसग्गा2 सं. नरक-स्वर्ग)

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं को नरक में इस प्रकार रखा जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं? 2176"

(t) "यहाँ, कोई जीवन का नाश करता है; वह हत्यारा है, उसके हाथ खून से सने हैं, वह मारपीट और हिंसा का आदी है, जीवित प्राणियों के प्रति निर्दयी है। (2) वह वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है... (3) वह यौन दुराचार में लिप्त है... (4) वह झूठ बोलता है... (5) वह फूट डालने वाली बातें करता है... (6) वह कठोर बातें करता है [286]... (7) वह व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है... (8) वह लालसा से भरा है... (9) उसके मन में दुर्भावना और घृणा के भाव हैं... (10) वह गलत विचार रखता है और उसका दृष्टिकोण गलत है, जैसे: 'कुछ भी दिया नहीं गया है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया हो और उन्हें दूसरों को ज्ञात कराया हो।'" इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाल दिया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

"भिक्षुओं, दस गुणों से युक्त भिक्षु को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं?"

(1) यहाँ, वह व्यक्ति जीवन के विनाश का त्याग करके, जीवन के विनाश से दूर रहता है; हिंसा और हथियार त्यागकर, वह विवेकशील और दयालु होकर सभी जीवित प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से निवास करता है। (2) जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है... (3) यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से दूर रहता है... (4) झूठी वाणी का त्याग करके, वह झूठी वाणी से दूर रहता है... (5) विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है... (6) कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहता है... (7) व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। (8) वह लालसा रहित है... (9) वह सद्भावपूर्ण है... (10) वह सही दृष्टिकोण रखता है और उसका परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'यहाँ जो दिया गया है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और दूसरों को भी इसका ज्ञान कराते हैं। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

---

213 महिलाएं (मातुगामा)

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं (भिक्षुओं) के कारण स्त्रियों को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं? [287] (1) वे जीवन का नाश करती हैं . . . [जैसा कि ऊपर बताया गया है] . . . और (10) गलत मत रखती हैं। इन दस गुणों से युक्त स्त्रियों को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

"भिक्षुओं (सन्यासियों) में दस गुण होते हैं, और स्त्रियाँ स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचती हैं जैसे उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं? (1) वे जीवन-नष्ट करने से परहेज़ करते हैं... [जैसा कि ऊपर बताया गया है]... और (10) सही दृष्टिकोण रखते हैं। इन दस गुणों से युक्त होने के कारण, स्त्रियाँ स्वर्ग में ऐसे पहुँचती हैं जैसे उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

---

214 महिला ले अनुयायी (उपासिका)

"भिक्षुओं (सम्मोहनकर्ताओं) में दस गुणों से युक्त एक स्त्री-शैतान को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण क्या हैं? (1) वह जीवन का नाश करती है... और (10) गलत मत रखती है। इन दस गुणों से युक्त एक स्त्री-शैतान को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं के साथ, एक गृहस्थ महिला अनुयायी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं? (1) वह जीवन-नष्ट करने से परहेज करती है... और (10) सही दृष्टिकोण रखती है। इन दस गुणों से युक्त एक गृहस्थ महिला अनुयायी को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।"

---

215 आत्म-विश्वास (विसारदा)

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं के लिए, एक गृहस्थ महिला घर में आत्मविश्वासहीन रहती है। वे दस गुण क्या हैं? (1) वह जीवन का नाश करती है... और (10) गलत मत रखती है। इन दस गुणों से युक्त एक गृहस्थ महिला घर में आत्मविश्वासहीन रहती है।"

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं के साथ, एक गृहस्थ महिला आत्मविश्वास से घर में रहती है। वे दस गुण कौन से हैं? (1) वह जीवन के विनाश से दूर रहती है... और (10) सही दृष्टिकोण रखती है। इन दस गुणों से युक्त एक गृहस्थ महिला आत्मविश्वास से घर में रहती है।"

---

216 रेंगना (संसप्पनिया)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें रेंगने के विषय पर धम्म की व्याख्या सिखाऊंगा। [2177] ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं, रेंगने के विषय में धम्म की वह व्याख्या क्या है? भिक्षुओं, प्राणी अपने कर्मों के स्वामी हैं, अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं; कर्म ही उनका मूल है, कर्म ही उनका संबंध है, कर्म ही उनका सहारा है; वे चाहे जो भी कर्म करें, अच्छे हों या बुरे, वे उसके उत्तराधिकारी हैं।

(1) "यहाँ, कोई जीवन का नाश करता है; वह हत्यारा है, उसके हाथ खून से सने हैं, वह मार-पीट और हिंसा में लिप्त है, जीवित प्राणियों के प्रति निर्दयी है। वह शरीर, वाणी और मन से रेंगता है। 2178 उसका शारीरिक कर्म कुटिल है; उसका वाणी कर्म कुटिल है; उसका मानसिक कर्म कुटिल है। उसका गंतव्य कुटिल है; उसका पुनर्जन्म कुटिल है। परन्तु कुटिल गंतव्य और पुनर्जन्म वाले के लिए, मैं कहता हूँ, दो गंतव्य हैं: या तो अत्यंत कष्टदायी नरक या रेंगने वाले पशुओं की कोई प्रजाति। और रेंगने वाले पशुओं की प्रजातियाँ क्या हैं? साँप, बिच्छू, कनखजूरा, नेवला, बिल्ली, चूहा और उल्लू, 2179 या कोई अन्य जानवर जो मनुष्यों को देखकर रेंग कर भाग जाते हैं। इस प्रकार एक प्राणी दूसरे प्राणी से पुनर्जन्म लेता है; व्यक्ति अपने कर्मों के फलस्वरूप पुनर्जन्म लेता है। पुनर्जन्म लेने के बाद, संपर्क प्रभावित करते हैं एक। मैं कहता हूँ कि इसी तरह प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं।

(2) "कोई वह लेता है जो दिया नहीं गया है... (3) ... यौन दुराचार में लिप्त होता है... (4) ... झूठ बोलता है... (5) ... विभाजनकारी बातें करता है... (6) ... कठोर बातें करता है... (7) ... व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है... (8) ... लालसा से भरा रहता है... (9) ... द्वेषपूर्ण मन और घृणा की भावना रखता है। (10) ... गलत मत रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है, जैसे: 'कुछ भी दिया नहीं गया है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया हो और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हों। वह शरीर, वाणी और मन से रेंगता है। उसका शारीरिक कर्म टेढ़ा है... उसका गंतव्य टेढ़ा है; [290] उसका पुनर्जन्म टेढ़ा है... इस प्रकार एक प्राणी दूसरे प्राणी से पुनर्जन्म लेता है; व्यक्ति अपने कर्मों के फलस्वरूप पुनर्जन्म लेता है। पुनर्जन्म लेने के बाद, संपर्क उसे प्रभावित करते हैं। मैं कहता हूँ कि इसी प्रकार प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं।

भिक्षुओं, प्राणी अपने कर्मों के स्वामी हैं, अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं; कर्म ही उनका मूल है, कर्म ही उनका संबंध है, कर्म ही उनका सहारा है; वे चाहे जो भी कर्म करें, अच्छे हों या बुरे, वे उसके उत्तराधिकारी हैं।

(1) "यहाँ, जीवन के विनाश का त्याग करके, कोई व्यक्ति जीवन के विनाश से दूर रहता है; हिंसा और शस्त्र त्यागकर, विवेकशील और दयालु होकर, वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है। वह शरीर, वाणी और मन से रेंगता नहीं है। उसका शारीरिक कर्म सीधा है; उसका वाणी कर्म सीधा है; उसका मानसिक कर्म सीधा है। उसका गंतव्य सीधा है; उसका पुनर्जन्म सीधा है। परन्तु जिसका गंतव्य और पुनर्जन्म सीधा हो, उसके लिए मैं कहता हूँ, दो गंतव्य हैं: या तो अनन्य सुखदायक स्वर्ग या प्रतिष्ठित परिवार, जैसे धनी क्षत्रिय, धनी ब्राह्मण या धनी गृहस्थ, [वे परिवार जो] धनवान हैं, अपार संपत्ति और धन-संपत्ति से संपन्न हैं, प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी, प्रचुर खजाने और सामान से युक्त हैं, प्रचुर धन और अनाज से युक्त हैं। इस प्रकार एक प्राणी दूसरे प्राणी से पुनर्जन्म लेता है; एक प्राणी दूसरे प्राणी के माध्यम से पुनर्जन्म लेता है। अपने कर्मों के फलस्वरूप। पुनर्जन्म के बाद, संपर्कों का प्रभाव पड़ता है। मैं कहता हूँ कि इसी प्रकार प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं।

(2) "अनावश्यक वस्तुओं को लेने का त्याग करके, कोई व्यक्ति अनावश्यक वस्तुओं को लेने से परहेज़ करता है... (3) ... यौन दुराचार से परहेज़ करता है... [291] (4) ... झूठे भाषण से परहेज़ करता है... (5) ... विभाजनकारी भाषण से परहेज़ करता है... (6) ... कठोर भाषण से परहेज़ करता है... (7) ... व्यर्थ की बातों से परहेज़ करता है... (8) ... लालसा रहित है... (9) ... सद्भावनावान है... (10) ... सही दृष्टिकोण रखता है और सही परिप्रेक्ष्य रखता है, इस प्रकार: 'जो दिया गया है वह है... संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को भी ज्ञात कराते हैं। अन्य। वह शरीर, वाणी और मन से रेंगता नहीं है। उसका शारीरिक कर्म सीधा है... उसका गंतव्य सीधा है; उसका पुनर्जन्म सीधा है... इस प्रकार एक प्राणी दूसरे प्राणी से पुनर्जन्म लेता है; व्यक्ति अपने कर्मों के फलस्वरूप पुनर्जन्म लेता है। जब कोई पुनर्जन्म लेता है, तो संपर्क उसे प्रभावित करते हैं। मैं कहता हूँ कि इसी प्रकार प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं।

भिक्षुओं, प्राणी अपने कर्मों के स्वामी हैं, अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं; कर्म ही उनका मूल है, कर्म ही उनका संबंध है, कर्म ही उनका सहारा है; वे चाहे जो भी कर्म करें, अच्छे हों या बुरे, वे उसके उत्तराधिकारी हैं।

"यह, भिक्षुओं, रेंगने पर धम्म की व्याख्या है।" [292]

---

227 सचेत क्रिया (1) (संचेतनिका1)

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सचेत कर्मों का अंत हो जाता है, जब तक कि उनके परिणाम अनुभव न हो जाएं, चाहे वह इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी अन्य अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि दुख का अंत हो जाता है, जब तक कि सचेत कर्मों के परिणाम अनुभव न हो जाएं।

"इस विषय में, भिक्षुओं, शारीरिक कर्मों का तीन प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) है, जो हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न होता है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है; मौखिक कर्मों का चार प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) है, जो हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न होता है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है; और मानसिक कर्मों का तीन प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) है, जो हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न होता है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है।"

"और हे भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों की त्रिविध विकृति और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है?"

(1) "यहाँ, कोई जीवन नष्ट करता है। वह हत्यारा है, उसके हाथ खून से सने हैं, वह मारपीट और हिंसा का आदी है, जीवित प्राणियों के प्रति निर्दयी है।

(2) "वह वह लेता है जो उसे नहीं दिया गया है। वह गाँव या जंगल में दूसरों की संपत्ति और माल चुराता है।

(3) वह यौन दुराचार में लिप्त होता है। वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध रखता है जो अपनी माँ, पिता, माता-पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं; जो अपने धर्म द्वारा संरक्षित हैं; जिनका पति है; जिनका उल्लंघन दंडनीय है; या यहाँ तक कि पहले से ही किसी के साथ यौन संबंध रखता है।

"इसी प्रकार हानिकारक (अकुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों का त्रिगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम और प्रभाव कष्टदायी होता है।"

और हे भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्म (कर्म/कर्मों) का चौगुना भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है, जिसका परिणाम और परिणाम कष्टदायी होता है? [293]

(4) "यहाँ कोई व्यक्ति झूठ बोलता है। यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति में, अपने संघ में, या न्यायालय में बुलाया जाता है और उससे गवाह के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाता है: 'तो, भले व्यक्ति, बताइए कि आप क्या जानते हैं', तो न जानते हुए वह कहता है, 'मैं जानता हूँ' या जानते हुए कहता है, 'मैं नहीं जानता'; न देखते हुए वह कहता है, 'मैं देखता हूँ' या देखते हुए कहता है, 'मैं नहीं देखता'। इस प्रकार वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है।"

(5) वह फूट डालने वाली बातें करता है। यहाँ कुछ सुनकर, वह उसे कहीं और दोहराता है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर सके; कहीं और कुछ सुनकर, वह उसे इन लोगों के सामने दोहराता है ताकि [उन्हें] उनसे अलग कर सके। इस प्रकार वह एकता को भंग करने वाला, फूट पैदा करने वाला, गुटों में आनंद लेने वाला, गुटों से प्रसन्न होने वाला, गुटों में मग्न रहने वाला, गुटों को जन्म देने वाले शब्दों का वक्ता है।

(6) "वह कठोर स्वर में बोलता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कठोर, दूसरों को दुख पहुँचाने वाले, दूसरों के लिए अपमानजनक, क्रोध से भरे और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) के लिए अनुपयुक्त होते हैं।"

(7) वह व्यर्थ की बातों में लिप्त रहता है। वह अनुचित समय पर बोलता है, झूठ बोलता है, अनुत्पादक बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन के विपरीत बातें बोलता है; अनुचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो व्यर्थ, तर्कहीन, बेतुके और अनुत्पादक होते हैं।

"इस प्रकार हानिकारक (अकुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्म (कर्म/कार्यों) का चौगुना भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम और परिणाम कष्टदायी होता है।"

"और हे भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म (कर्म/कार्यों) का त्रिगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है, जिसका परिणाम और परिणाम कष्टदायी होता है?"

(8) "यहाँ कोई लालसा से भरा हुआ है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार तरसता है: 'ओह, जो दूसरे का है वह मेरा हो!'

(9) "उसके मन में दुर्भावना और घृणा के भाव हैं, इस प्रकार: 'इन प्राणियों का वध हो, इन्हें काट डाला जाए, नष्ट कर दिया जाए या पूरी तरह से मिटा दिया जाए!'"

(10) "उसका मत और दृष्टिकोण गलत है, इस प्रकार: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; कोई भी प्राणी स्वतः पुनर्जन्म नहीं लेता; [294] इस संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और दूसरे संसार को जान लिया हो और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हों।'

"इसी प्रकार हानिकारक (अकुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म (कर्म/कार्यों) का त्रिगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम और परिणाम कष्टदायी होता है।"

भिक्षुओं, हानिकारक अकुशल (स्व) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों के त्रिगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; या हानिकारक अकुशल (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्मों के चारगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; या हानिकारक अकुशल (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों के त्रिगुणात्मक भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। निम्न लोक, नरक में। जैसे पासा ऊपर उछालने पर जहाँ गिरता है वहीं स्थिर हो जाता है, ठीक उसी प्रकार, शारीरिक कर्मों के तीन प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण... या मौखिक कर्मों के चार प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण... या हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों के तीन प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने के साथ, प्राणी दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही उनका अंत हो जाता है, चाहे यह फल इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी अन्य अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही दुख समाप्त हो जाता है।

"इस विषय में, भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्म की तीन गुना सफलता है, जिसका सुखद रूपरेखा और परिणाम होता है; लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्म (कर्म/कार्य) की चार गुना सफलता है, जिसका सुखद परिणाम होता है; और लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म (कर्म/कार्य) की तीन गुना सफलता है, जिसका सुखद परिणाम होता है।"

और हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्म की त्रिविध सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है, जिसका परिणाम सुखद हो?

(1) "यहाँ, कोई व्यक्ति जीवन के विनाश का त्याग करके, जीवन के विनाश से दूर रहता है। लाठी (हिंसा) और हथियार को त्यागकर, वह विवेकशील और दयालु होकर सभी जीवित प्राणियों के प्रति करुणामयी भाव से रहता है।"

(2) "जो कुछ नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह जो कुछ नहीं दिया गया है, उसे लेने से परहेज करता है। वह गाँव या जंगल में दूसरों के धन और संपत्ति की चोरी नहीं करता है।

(3) यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से परहेज करता है। वह उन महिलाओं के साथ यौन संबंध नहीं रखता जो अपनी माता, पिता, माता-पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं; जो अपने धम्म द्वारा संरक्षित हैं; जिनका पति है; जिनका उल्लंघन दंडनीय है; या यहाँ तक कि पहले से ही किसी के साथ यौन संबंध में हैं।

"इस प्रकार लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्म की त्रिविध सफलता प्राप्त होती है, जिसका परिणाम सुखद होता है।"

"और हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्म की चौगुनी सफलता कैसे प्राप्त होती है, जिसका परिणाम सुखद होता है?"

(4) "यहाँ, झूठ बोलने का त्याग करके, कोई व्यक्ति झूठ बोलने से परहेज़ करता है। यदि उसे किसी परिषद, सभा, अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति में, अपने संघ में, या न्यायालय में बुलाया जाता है, और उससे एक गवाह के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाता है: 'तो, भले व्यक्ति, जो तुम जानते हो, बताओ,' तो, न जानते हुए, वह कहता है, 'मैं नहीं जानता' या जानते हुए, वह कहता है, 'मैं जानता हूँ'; न देखते हुए, वह कहता है, 'मैं नहीं देखता' या देखते हुए, वह कहता है, 'मैं देखता हूं।' इस प्रकार वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक स्वार्थ के लिए झूठ नहीं बोलता।"

(5) "विभाजनकारी भाषण का त्याग करके, वह विभाजनकारी भाषण से परहेज करता है। यहाँ कुछ सुनकर, वह उसे कहीं और दोहराता नहीं है ताकि [उन लोगों को] इन लोगों से अलग कर सके; या कहीं और कुछ सुनकर, वह उसे इन लोगों के सामने दोहराता नहीं है ताकि [उन्हें] उनसे अलग कर सके। इस प्रकार वह विभाजित लोगों को एकजुट करने वाला है, [296] एकता का समर्थक है, जो सामंजस्य का आनंद लेता है, सामंजस्य में प्रसन्न होता है, सामंजस्य में प्रसन्न होता है, सामंजस्य को बढ़ावा देने वाले शब्दों का वक्ता है।

(6) कठोर भाषा का त्याग करके, वह कठोर भाषा से परहेज करता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कोमल, कानों को भाने वाले और प्यारे हों, जो हृदय को छू जाएं, शिष्ट हों, बहुतों द्वारा वांछित हों और बहुतों को भाने वाले हों।

(7) "व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह उचित समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, लाभकारी बातें बोलता है, धम्म और अनुशासन पर बोलता है; उचित समय पर वह ऐसे शब्द बोलता है जो दर्ज करने योग्य हों, तर्कसंगत हों, संक्षिप्त हों और लाभकारी हों।"

"इस प्रकार लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्म की चौगुनी सफलता प्राप्त होती है, जिसका परिणाम सुखद होता है।"

और हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म की त्रिविध सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती है, जिसका परिणाम सुखद हो?

(8) "यहाँ, कोई व्यक्ति लालसा रहित है। वह दूसरों के धन और संपत्ति के लिए इस प्रकार लालसा नहीं करता: 'ओह, जो दूसरे का है वह मेरा हो!'"

(9) "वह सद्भावपूर्ण है और उसके इरादे घृणा से मुक्त हैं, इस प्रकार: 'ये प्राणी खुशी से रहें, शत्रुता, पीड़ा और चिंता से मुक्त रहें!'"

(10) 'उसका सही दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य इस प्रकार है: 'जो दिया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, जो अर्पित किया जाता है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम; यह संसार और परलोक; माता और पिता; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; संसार में सही आचरण और सही अभ्यास वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा स्वयं इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और उन्हें दूसरों को ज्ञात कराते हैं।'

"इसी तरह लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म की तीन गुना सफलता प्राप्त होती है, जिसका सुखद परिणाम और परिणाम होता है।"

भिक्षुओं, ऐसा इसलिए है क्योंकि लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों की त्रिगुणी सफलता के कारण, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद प्राणी एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं; या लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्मों की चौगुणी सफलता के कारण, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद प्राणी एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं; या लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों की त्रिगुणी सफलता के कारण, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद प्राणी एक अच्छे स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। जैसे पासा ऊपर उछालने पर जहाँ गिरता है वहीं स्थिर हो जाता है, वैसे ही यह शारीरिक कर्मों की त्रिगुणी सफलता के कारण है... [297] ... या तो यह कर्म (कार्य/कर्म) की चौगुनी सफलता के कारण है ... या यह लाभकारी (कुशल) (स्वयं) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्म (कर्म/कर्म) की तिगुनी सफलता के कारण है कि शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, प्राणी एक अच्छे गंतव्य में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का अंत तब तक हो जाता है जब तक कि उनके परिणाम न भुगत लिए जाएं, चाहे वह इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी और अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि दुख का अंत तब तक हो जाता है जब तक कि सजग कर्मों के परिणाम न भुगत लिए जाएं।

---

218 सचेत क्रिया (2) 2184 (संसातनिका2)

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही उनका अंत हो जाता है; चाहे यह फल इसी जन्म में हो, अगले जन्म में हो या किसी अन्य अवसर पर। परन्तु मैं यह भी नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही दु:ख समाप्त हो जाता है।

"इस विषय में, भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों का तीन प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है; हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्मों का चार प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है; और हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों का तीन प्रकार का भ्रष्टाचार और विफलता (विपत्ति) होती है, जिसका परिणाम कष्टदायी होता है।"

(1)— (10) "और हे भिक्षुओं, शारीरिक कर्मों की तीन प्रकार की विकृति और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है... मौखिक कर्मों की चार प्रकार की विकृति और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है... [298] ... मानसिक कर्मों की तीन प्रकार की विकृति और विफलता (विपत्ति) कैसे होती है?... [सभी 10:217 के अनुसार] ... जिसका परिणाम और प्रभाव कष्टदायी होता है।"

भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों के तीन प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता के कारण... या हानिकारक (अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्मों के चार प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता के कारण... या हानिकारक

(अकुशल) (स्व) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों के तीन प्रकार के भ्रष्टाचार और विफलता के कारण, मृत्यु के बाद, शरीर के टूटने के साथ, प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही उनका अंत हो जाता है, चाहे यह फल इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी अन्य अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही दुख समाप्त हो जाता है।

भिक्षुओं, इस विषय में, लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न शारीरिक कर्मों का तीन गुना फल होता है, जिसका परिणाम सुखद होता है। लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मौखिक कर्मों का चार गुना फल होता है, जिसका परिणाम सुखद होता है। लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों का तीन गुना फल होता है, जिसका परिणाम सुखद होता है।

(1)— (10) "और हे भिक्षुओं, शारीरिक कर्मों का तीन गुना फल कैसे मिलता है... मौखिक कर्मों का चार गुना फल कैसे मिलता है... मानसिक कर्मों का तीन गुना फल कैसे मिलता है?... [सभी 10:217 के अनुसार]... जिसका परिणाम और नतीजा कष्टदायी होता है।"

भिक्षुओं, यह शारीरिक कर्मों की तीन गुना सफलता के कारण है... या यह मौखिक कर्मों की चार गुना सफलता के कारण है... या यह लाभकारी (कुशल) (आत्म) जागरूकता से उत्पन्न मानसिक कर्मों की तीन गुना सफलता के कारण है कि मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, प्राणी एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही उनका अंत हो जाता है, चाहे यह फल इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी अन्य अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि सजग कर्मों का फल भोगने से पहले ही दुख समाप्त हो जाते हैं।

---

219 कर्म से उत्पन्न शरीर (करजाकाया)

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि सजग कर्मों का अंत तब तक हो जाता है जब तक कि उनके परिणाम न भुगत लिए जाएं, चाहे वह इसी जीवन में हो, अगले जन्म में हो या किसी और अवसर पर। लेकिन मैं यह भी नहीं कहता कि दुख का अंत तब तक हो जाता है जब तक कि सजग कर्मों के परिणाम न भुगत लिए जाएं।

"यह श्रेष्ठ शिष्य, भिक्षुओं, जो लालसा से रहित, द्वेष से रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः समझने वाला, सदा सजग (ध्यान/सती) है, प्रेम-कृपा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेम-कृपा से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। वह इस प्रकार समझता है: 'पहले मेरा मन सीमित और अविकसित था, परन्तु अब यह असीम और सुविकसित है। कोई भी गणनीय कर्म शेष नहीं रहता या बना नहीं रहता।' 2186 [300]

भिक्षुओं, आपका क्या विचार है, यदि कोई युवक बचपन से ही प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करे, तो क्या वह कोई बुरा कर्म करेगा? 2187

नहीं, भंते।

"क्या उसे कोई बुरा काम न करने पर भी कष्ट हो सकता है?"

"नहीं, भंते। भला जो व्यक्ति कोई बुरा कर्म नहीं करता, उसे किस कारण से कष्ट भोगना पड़ सकता है?" 2188

"एक स्त्री या पुरुष को प्रेम और करुणा के द्वारा मन की इस मुक्ति को विकसित करना चाहिए। एक स्त्री या पुरुष अपने साथ इस शरीर को लेकर नहीं जा सकते। मनुष्यों का मूल आधार मन है। 2189"

"[महान शिष्य] समझता है: 'मैंने अतीत में इस कर्म-जनित शरीर 2190 में जो भी बुरे कर्म किए हैं, वे सब यहीं भोगने के लिए हैं। वे आगे नहीं जाएंगे।' 2191 जब प्रेम-कृपा (मेट्टा) द्वारा मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित हो जाती है, तो यह उस बुद्धिमान भिक्षु के लिए अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं) की ओर ले जाती है जो आगे की मुक्ति प्राप्त नहीं करता है। 2192

"यह श्रेष्ठ शिष्य, भिक्षुओं, जो लालसा से रहित, द्वेष से रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः समझदार, सदा सजग (ध्यान/सती) है, करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से भरे मन से... उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्षा) से भरे मन से, इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए स्वयं के समान, वह उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्षा) से भरे, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है। वह इस प्रकार समझता है: 'पहले मेरा मन सीमित और अविकसित था, लेकिन अब यह असीम और पूर्ण विकसित है। कोई भी मापने योग्य कर्म (कर्म/कार्य) वहां शेष नहीं रहता या बना नहीं रहता।'" भिक्षुओं, आपका क्या विचार है, यदि कोई युवक बचपन से ही उदासीनता (भीतर में ध्यान केंद्रित करना/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति विकसित करे, तो क्या वह कोई बुरा कर्म करेगा?

नहीं, भंते।

"क्या उसे कोई बुरा काम न करने पर भी कष्ट हो सकता है?"

"नहीं, भंते। भला जो व्यक्ति कोई बुरा कर्म नहीं करता, उसे किस कारण से कष्ट भोगना पड़ सकता है?"

"स्त्री या पुरुष को उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) के द्वारा मन की इस मुक्ति को विकसित करना चाहिए। स्त्री या पुरुष अपने साथ इस शरीर को लेकर नहीं जा सकते। मनुष्यों का मूल आधार मन है।"

"[उत्कृष्ट शिष्य] समझता है: 'मैंने अतीत में इस कर्म-जनित शरीर में जो भी बुरे कर्म किए हैं, वे सब यहीं भोगने के लिए हैं। वे आगे नहीं जाएंगे।' जब इस प्रकार उदासीनता (भीतर में विलीन होना/उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति विकसित हो जाती है, तो यह उस बुद्धिमान भिक्षु (सन्यासी) के लिए अनागामी (इस धरती पर पुनर्जन्म न होना) की ओर ले जाती है जो आगे की मुक्ति प्राप्त नहीं करता है।"

---

220 धम्म के विपरीत आचरण (अधम्मकारिया सं. अधर्म-क्रिया)

फिर एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत के बाद, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"गुरु गौतम, ऐसा क्यों होता है कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं?"

"हे ब्राह्मण, अधर्मी आचरण, धर्म के विपरीत आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"गुरु गौतम, ऐसा क्यों है कि यहाँ कुछ प्राणी, [302] शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य में, एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं?"

"हे ब्राह्मण, धर्म के अनुरूप आचरण करने के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने के बाद मृत्यु के समय एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"गुरु गौतम ने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। कृपया गुरु गौतम मुझे धम्म इस प्रकार समझाएँ कि मैं उसका अर्थ विस्तार से समझ सकूँ।"

"तो फिर, ब्राह्मण, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

“जी जी,” उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"ब्राह्मण, अधार्मिक आचरण, धम्म के विपरीत आचरण, शरीर के द्वारा तीन प्रकार का, वाणी के द्वारा चार प्रकार का और मन के द्वारा तीन प्रकार का होता है।"

"और हे ब्राह्मण, अधर्मी आचरण, धम्म के विपरीत आचरण, शरीर के मार्ग से तीन प्रकार से कैसे होता है? ... [यहाँ और नीचे, व्याख्याएँ 10:217 के अनुसार हैं] ... इस प्रकार अधर्मी आचरण, धम्म के विपरीत आचरण, मन के मार्ग से तीन प्रकार से होता है।"

"हे ब्राह्मण, ऐसे अधार्मिक आचरण, धम्म के विपरीत आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"ब्राह्मण, धर्म के अनुसार आचरण, शरीर के तीन प्रकार से, वाणी के चार प्रकार से और मन के तीन प्रकार से होता है।"

"और हे ब्राह्मण, धर्म के अनुसार आचरण, शरीर के मार्ग से तीन प्रकार का कैसे होता है? ... [303] ... इस प्रकार धर्म के अनुसार आचरण, मन के मार्ग से तीन प्रकार का होता है।

"हे ब्राह्मण, ऐसे धार्मिक आचरण, धर्म के अनुरूप आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु के समय एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

"उत्कृष्ट, गुरु गौतम! ... गुरु गौतम मुझे गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

द्वितीय. समानता (समन्ना-वाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

221

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण क्या हैं? (1) जीवन का नाश करने वाला, (2) बिना दी हुई वस्तुएँ लेने वाला, (3) यौन दुराचार में लिप्त, (4) झूठ बोलने वाला, (5) फूट डालने वाली बातें करने वाला, (6) कठोर बातें करने वाला, (7) व्यर्थ की बातों में लिप्त, (8) लालसा से भरा हुआ, (9) द्वेषपूर्ण मन रखने वाला और (10) गलत मत रखने वाला। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। [304]

दस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे दस गुण कौन से हैं? (1) वह जीव-जंतुओं का संहार नहीं करता, (2) वह बिना दी हुई वस्तुएँ नहीं लेता, (3) वह यौन दुराचार नहीं करता, (4) वह झूठी वाणी नहीं बोलता, (5) वह फूट डालने वाली वाणी नहीं बोलता, (6) वह कठोर वाणी नहीं बोलता, (7) वह व्यर्थ की बातों में नहीं पड़ता, (8) वह लालसा रहित होता है, (9) वह सद्भावनावान होता है, और (10) उसका दृष्टिकोण सही होता है। इन दस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

222

"भिक्षुओं, जिनमें बीस गुण होते हैं, उन्हें नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे बीस गुण कौन से हैं? (1) एक स्वयं जीवन का नाश करता है और (2) दूसरों को जीवन का नाश करने के लिए प्रेरित करता है... (19) एक स्वयं गलत मत रखता है और (20) दूसरों को गलत मत रखने के लिए प्रेरित करता है। इन बीस गुणों वाले व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

बीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे बीस गुण कौन से हैं? (1) व्यक्ति स्वयं जीवन-विनाश से विरक्त रहता है और (2) दूसरों को भी जीवन-विरक्तश से विरक्त रहने के लिए प्रेरित करता है... [305]... (19) व्यक्ति स्वयं सही दृष्टि रखता है और (20) दूसरों को भी सही दृष्टि रखने के लिए प्रेरित करता है। इन बीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

223

"तीस गुणों से युक्त भिक्षुओं को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो। वे तीस गुण क्या हैं? (1) स्वयं जीवन का नाश करने वाला, (2) दूसरों को जीवन का नाश करने के लिए प्रेरित करने वाला, और (3) जीवन के नाश का समर्थन करने वाला... (28) स्वयं गलत मत रखने वाला, (29) दूसरों को गलत मत रखने के लिए प्रेरित करने वाला, और (30) गलत मत का समर्थन करने वाला। इन तीस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे डाला जाता है मानो उन्हें वहाँ लाया गया हो।"

तीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे तीस गुण क्या हैं? [306] (1) व्यक्ति स्वयं जीवन-विनाश से परहेज करता है, (2) दूसरों को जीवन-विनाश से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (3) जीवन-विनाश से परहेज करने का समर्थन करता है... (2.8) व्यक्ति स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है, (29) दूसरों को सही दृष्टिकोण रखने के लिए प्रोत्साहित करता है, और (30) सही दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इन तीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे ही पहुँचाया जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

224

"भिक्षुओं (सन्यासियों), चालीस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है जैसे उसे वहाँ लाया गया हो। वे चालीस गुण क्या हैं? (1) व्यक्ति स्वयं जीवन का नाश करता है, (2) दूसरों को जीवन का नाश करने के लिए प्रोत्साहित करता है, (3) जीवन के नाश का समर्थन करता है, और (4) जीवन के नाश की प्रशंसा करता है... [307] ... {37) व्यक्ति स्वयं गलत मत रखता है, (38) दूसरों को गलत मत रखने के लिए प्रोत्साहित करता है, (39) गलत मत का समर्थन करता है, और (40) गलत मत की प्रशंसा करता है। इन चालीस गुणों से युक्त व्यक्ति को नरक में ऐसे ही डाल दिया जाता है जैसे उसे वहाँ लाया गया हो।"

चालीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो। वे चालीस गुण कौन से हैं? (1) व्यक्ति स्वयं जीवन-विनाश से परहेज करता है, (2) दूसरों को जीवन-विनाश से परहेज करने के लिए प्रोत्साहित करता है, (3) जीवन-विनाश से परहेज का समर्थन करता है, और (4) जीवन-विनाश से परहेज की प्रशंसा करता है... [308] ... (37) व्यक्ति स्वयं सही दृष्टिकोण रखता है, (38) दूसरों को सही दृष्टिकोण के लिए प्रोत्साहित करता है, (39) सही दृष्टिकोण का समर्थन करता है, और (40) सही दृष्टिकोण की प्रशंसा करता है। इन चालीस गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वर्ग में ऐसे रखा जाता है मानो उसे वहाँ लाया गया हो।

225-228

"दस गुणों से युक्त भिक्षु, घायल और अपंग अवस्था में भी स्वयं को बनाए रखते हैं... स्वयं को अक्षुण्ण और अक्षुण्ण रखते हैं... बीस गुणों से युक्त भिक्षु... तीस गुणों से युक्त... चालीस गुणों से युक्त भिक्षु, घायल और अपंग अवस्था में भी स्वयं को बनाए रखते हैं... स्वयं को अक्षुण्ण और अक्षुण्ण रखते हैं..."

---

229 - 232

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं का शरीर के टूटने के साथ ही मृत्यु के बाद, कोई यहाँ दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, [309] नरक में पुनर्जन्म लेता है... कोई यहाँ अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेता है।" "बीस गुणों से युक्त भिक्षुओं... तीस गुणों से युक्त... चालीस गुणों से युक्त भिक्षुओं का यहाँ दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है... कोई यहाँ अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेता है।"

---

233 - 236

"दस गुणों से युक्त भिक्षुओं में से एक को मूर्ख समझा जा सकता है... दूसरे को बुद्धिमान समझा जा सकता है।" "बीस गुणों से युक्त भिक्षुओं में से... तीस गुणों से युक्त... चालीस गुणों से युक्त भिक्षुओं में से एक को मूर्ख समझा जा सकता है... दूसरे को बुद्धिमान समझा जा सकता है।"

III. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला [2195]

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

237 [2196]

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए दस चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे दस चीजें क्या हैं? अनाकर्षकता की अनुभूति, मृत्यु की अनुभूति, भोजन की अरुचि की अनुभूति, समस्त संसार में आनंदहीनता की अनुभूति, अनित्यता की अनुभूति, अनित्य में दुख की अनुभूति, दुख में अनात्म की अनुभूति, त्याग की अनुभूति, वैराग्य की अनुभूति और समाप्ति की अनुभूति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन दस चीजों का विकास करना आवश्यक है। [310]

238

भिक्षुओं, राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए दस चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे दस चीजें क्या हैं? अनित्यता का बोध, अनात्म का बोध, भोजन के प्रति अरुचि का बोध, समस्त संसार में आनंदहीनता का बोध, कंकाल का बोध, कृमिग्रस्त शव का बोध, क्षीण शव का बोध, सड़ते हुए शव का बोध, फटे हुए शव का बोध और फूले हुए शव का बोध। राग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन दस चीजों का विकास करना आवश्यक है।

239

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए दस चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे दस चीजें क्या हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती/सजगता), सही समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन), सही ज्ञान और सही मुक्ति। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन दस चीजों का विकास करना आवश्यक है। 2197

---

240 — 266

भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके अंत के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन दस चीजों का विकास करना चाहिए।

267-746

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... समाप्ति के लिए... त्याग के लिए... घृणा, भ्रम, क्रोध, शत्रुता, निंदा, उद्दंडता, ईर्ष्या, कंजूसी, छल, धूर्तता, हठ, उग्रता, अहंकार, घमंड, नशा, आलस्य आदि का त्याग करना चाहिए। इन दस गुणों का विकास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

द बुक ऑफ द टेंस पूरी हो गई है।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण ग्रंथों में अंतर्निहित हैं।

यह अंगुत्तरा निकाय का ग्यारहवाँ खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण है।

महत्वपूर्ण सुत्त:

9.सद्ध (सं. श्रद्धा)

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN10) अगला (परिवर्तन) >>>>

अंतर्वस्तु

1ग्यारहों की पुस्तक (एकदासकनिपाता)

1.1मैं आश्रित अनुभाग (निस्सायवग्गो)

1.1.11 क्या उद्देश्य? [2199] (किमाथिया सं. किम-अर्थ्या)

1.1.22 चेतन क्रियाएँ [2200] (चेतनकारण्य सं. चैतन्य-करणीय)

1.1.33 निकटवर्ती कारण (l) [2201] (उपनिषद1)

1.1.44 निकटवर्ती कारण (2) (उपनिषद 2)

1.1.55 निकटवर्ती कारण (3) (उपनिषद 3)

1.1.66 आपदा [2202] (ब्यासन)

1.1.77 धारणा 2204 (सन्ना सं. संज्ञा)

1.1.88. ध्यान (मानसिकारा)

1.1.99 सद्धा (संस्कार: श्रद्धा)

1.1.1010 मोर अभयारण्य [2213] (मोरा निवापा)

1.2II. स्मरण (अनुसतिवाग्गो)

1.2.111 महानामा (एल) [2214]

1.2.212 महानामा (2)

1.2.313 नंदिया

1.2.414 सुभूति

1.2.515 प्रेमपूर्ण दया [2222] (मेट्टा)

1.2.616 अत्थाकानगर [2224]

1.2.717 चरवाहा [2230] (गोपाला)

1.2.818 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन) (1)

1.2.919 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (2)

1.2.1020 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (3)

1.2.1121 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (4)

1.3तृतीय. समानता अनुभाग (समननवग्गो)

1.3.122-29 अनित्यता का चिंतन (अनित्य संस्कृत: अनित्य)

1.3.230 — 69

1.3.370 - 117

1.3.4118 - 165

1.3.5166 - 213

1.3.6214 — 261

1.3.7262 - 309

1.3.8310 — 357

1.3.9358 - 405

1.3.10406 — 453

1.3.11454 — 501

1.4IV. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला 2234

1.4.1502

1.4.2503 — 511

1.4.3512 - 671

ग्यारहों की पुस्तक (एकदासकनिपाता)

नमो तस्स्य भगवतो, अरहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्स्य

उस भगवान को नमन, शत्रुओं का नाश करने वाले, सही मायने में पूर्णतः प्रबुद्ध (जागृत) भगवान।

———————————————————————

मैं आश्रित अनुभाग (निस्सायवग्गो)

———————————————————————

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

———————————————————————

1 क्या उद्देश्य? [2199] (किमाथिया सं. किम-अर्थ्या)

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

(1) "भन्ते, लाभकारी (कुशल) सद्गुणों का उद्देश्य और लाभ क्या है? (कुशल शील संस्कृत) "

(2) "आनंद, लाभकारी (कुशल) सद्गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ पश्चाताप न करना है (अविप्पतिसर संस्कृत: अविप्पति-सरना, अर्थात् विपत्ति न आना)।"

(3) "और हे भंते, पश्चाताप न करने का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"पछतावा न करने का उद्देश्य और लाभ आनंद (पामोज्जा) है।"

(4) "और हे भंते, आनंद का उद्देश्य और लाभ क्या है?" "आनंद का उद्देश्य और लाभ परमानंद है (पिति संस. प्रीति इ)।"

(5) "और हे भंते, आनंद (पीति) का उद्देश्य और लाभ क्या है?" "आनंद (पीति) का उद्देश्य और लाभ शांति (पसाद्धि) है।"

(6) "और हे भंते, शांति का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"शांति (पासद्धि) का उद्देश्य और लाभ सुख (सुख) है।"

(7) "और हे भंते, सुख का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"सुख (आनंद) का उद्देश्य और लाभ समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) है।"

(8) "और हे भंते, समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) का उद्देश्य और लाभ चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना है (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन)।

(9) "और हे भंते, यथार्थ-भूत-ज्ञान-दर्शन (यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने और देखने का उद्देश्य और लाभ मोहभंग (निब्बिडा) है।"

(10) और हे भंते, मोहभंग का उद्देश्य और लाभ क्या है?

"वैराग्य का उद्देश्य और लाभ वैराग्य (विराग) है।" [312]

(11) "और हे भंते, वैराग्य का उद्देश्य और लाभ क्या है?"

"वैराग्य का उद्देश्य और लाभ मुक्ति का ज्ञान और दर्शन है (विमुत्ति-नाना-दासन सं. विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)।"

इस प्रकार, आनंद, (1)— (2) लाभकारी (कुशल) सद्गुणों का उद्देश्य और लाभ अविप्पति-सरना है; (3) अविप्पति का उद्देश्य और लाभ आनंद है; (4) आनंद का उद्देश्य और लाभ पीति है; (5) पीति का उद्देश्य और लाभ शांति है; (6) शांति का उद्देश्य और लाभ सुख है; (7) सुख का उद्देश्य और लाभ समाधि है; (8) समाधि का उद्देश्य और लाभ चीजों का उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन है; (9) चीजों के उनके वास्तविक स्वरूप के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य निब्बिदा है; (10) विघ्न का उद्देश्य और लाभ वैराग्य है; और (10) वैराग्य का उद्देश्य और लाभ मुक्ति का ज्ञान और दर्शन है। इस प्रकार, आनंद, लाभकारी (कुसला) सद्गुणपूर्ण आचरण उत्तरोत्तर सर्वोच्च सफलता की ओर ले जाता है।

---

2 चेतन क्रियाएँ [2200] (चेतनकारण्य सं. चैतन्य-करणीय)

(यह सूत्र अरहंतों पर लागू होता है)

(1)— (2) "भिक्षुओं (मठवासियों), एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी हो, किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मुझमें पश्चाताप न हो (अविप्पति-सरना)'। यह स्वाभाविक है कि जो गुणी हो, जिसका आचरण गुणी हो, उसमें पश्चाताप न हो।"

(3) "जिसके पास पछतावा नहीं है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मुझमें आनंद उत्पन्न हो।' यह स्वाभाविक है कि बिना पछतावे वाले व्यक्ति में आनंद उत्पन्न होता है।"

(4) "जो आनंदित है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मुझमें आनंद (पीति) उत्पन्न हो।' यह स्वाभाविक है कि जो आनंदित है, उसमें आनंद (पीति) उत्पन्न हो।"

(5) "आनंदित मन वाले व्यक्ति को किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती: 'मेरा शरीर शांत हो जाए।' यह स्वाभाविक है कि आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत होता है।"

(6) "शरीर से शांत व्यक्ति के लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती: 'मुझे सुख का अनुभव करने दो'। यह स्वाभाविक है कि शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है।"

(7) "सुख में डूबे व्यक्ति को किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती: 'मेरा मन आत्म-मग्न (समाहित) हो जाए।' सुख में डूबे व्यक्ति का मन स्वाभाविक रूप से आत्म-मग्न (समाहित) होता है।"

(8) "स्वयं में लीन (समाहित/समाहित) व्यक्ति के लिए किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती: 'मुझे चीजों को वैसे ही जानने और देखने दो जैसे वे वास्तव में हैं।' यह स्वाभाविक है [313] कि स्वयं में लीन (समाहित/समाहित) व्यक्ति चीजों को वैसे ही जानता और देखता है जैसे वे वास्तव में हैं।

(9) "जो व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं होती: 'मुझे मोहभंग हो जाए'। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है, वह मोहभंग हो जाता है।"

(10) "जो व्यक्ति मोहभंग हो गया है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मैं वैराग्य (विराग) हो जाऊं'। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति मोहभंग हो गया है वह वैराग्य (विराग) हो जाता है।"

(11) "जो व्यक्ति वैरागी है, उसे किसी सचेत क्रिया की आवश्यकता नहीं है: 'मुझे मुक्ति के ज्ञान और दर्शन को प्राप्त करना है (विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन)'। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति वैरागी है, वह मुक्ति के ज्ञान और दर्शन को प्राप्त कर लेता है।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, (11)— (10) मुक्ति का ज्ञान और दर्शन वैराग्य का उद्देश्य और लाभ है; (9) वैराग्य निब्दिता का उद्देश्य और लाभ है; (8) निब्दिता चीजों के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान और दर्शन का उद्देश्य और लाभ है; (7) चीजों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दर्शन समाधि का उद्देश्य और लाभ है; (6) समाधि सुख का उद्देश्य और लाभ है; (5) सुख शांति का उद्देश्य और लाभ है; (4) शांति परमानंद का उद्देश्य और लाभ है; (3) परमानंद आनंद का उद्देश्य और लाभ है; (2) आनंद पश्चातापहीनता का उद्देश्य और लाभ है; और (1) पश्चातापहीनता सद्गुणी आचरण का उद्देश्य और लाभ है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, एक अवस्था दूसरी अवस्था में प्रवाहित होती है, एक अवस्था दूसरी अवस्था को भर देती है, क्योंकि निकटवर्ती तट से दूरवर्ती तट तक जाने में समय लगता है।"

---

3 निकटवर्ती कारण (l) [2201] (उपनिषद1)

भिक्षुओं (सन्यासियों), (1) अनैतिक व्यक्ति के लिए, सद्गुणों से रहित व्यक्ति के लिए, (2) अविपत्ति-सरना (अविपत्ति-सरना) का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब अविपत्ति न हो, तो अविपत्ति से रहित व्यक्ति के लिए, (3) आनंद का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब आनंद न हो, तो आनंद से रहित व्यक्ति के लिए, (4) पीति (आनंद) का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब पीति (आनंद) न हो, तो पीति से रहित व्यक्ति के लिए, (5) शांति (पसाद्धि) का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब शांति न हो, तो शांति (पसाद्धि) से रहित व्यक्ति के लिए, [314] (6) आनंद का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब आनंद न हो, तो आनंद से रहित व्यक्ति के लिए, (7) सही समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) का निकटवर्ती कारण नहीं होता। जब सही समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) न हो, तो (8) जब व्यक्ति में सही समाधि (स्व-लीनता/तल्लीनता) की कमी होती है, तो (यथा-भूत-नाना-दस्सना संस्कृत: यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन) का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण से रहित हो जाती है। जब व्यक्ति में व्यक्तियों में व्यक्तियों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और दृष्टि नहीं होती, तो (9) निब्बिदा (विरक्ति) उसके निकटवर्ती कारण से रहित हो जाती है। जब व्यक्ति में विरक्ति नहीं होती, तो (10) वैराग (विरग) उसके निकटवर्ती कारण से रहित हो जाती है। जब व्यक्ति में वैराग नहीं होती, तो (11) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण से रहित हो जाती है!

मान लीजिए एक पेड़ में शाखाएँ और पत्तियाँ कम हैं। तो उसकी शाखाएँ पूरी तरह से विकसित नहीं होतीं; न ही उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी पूरी तरह से विकसित होती हैं। ठीक उसी प्रकार, एक अनैतिक व्यक्ति के लिए, जो सद्गुणों से रहित है, पश्चाताप न करने की भावना (अविप्पति-सरना) का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। जब पश्चाताप न हो... तब मुक्ति के ज्ञान और दर्शन का भी कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता।

भिक्षुओं, (1) एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी हो, (2) अविपत्ति-सरना (अविपत्ति-सरना) इसका निकटतम कारण है। जब अविपत्ति होती है, तो अविपत्ति रहित व्यक्ति के लिए, (3) आनंद इसका निकटतम कारण है। जब आनंद होता है, तो आनंद रहित व्यक्ति के लिए, (4) परमानंद (पीति) इसका निकटतम कारण है। जब परमानंद (पीति) होता है, तो परमानंद (पीति) वाले व्यक्ति के लिए, (5) शांति (पश्चात्य) इसका निकटतम कारण है। जब शांति होती है, तो शांति (पश्चात्य) वाले व्यक्ति के लिए, (6) सुख (सुख) इसका निकटतम कारण है। जब सुख (सुख) होता है, तो सुख (सुख) वाले व्यक्ति के लिए, (7) सही एकाग्रता इसका निकटतम कारण है। जब सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) होती है, तो सही समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) वाले व्यक्ति के लिए। (8) यथार्थ-भूत-नाना-दस्सना संस्कृत: यथा-भूत-ज्ञान-दर्शन का ज्ञान और दृष्टि उसके निकटवर्ती कारण को धारण करती है। जब किसी व्यक्ति को यथार्थ-भूत-दस्सना का ज्ञान और दृष्टि प्राप्त होती है, तो (9) निब्दिदा (वैराग्य) उसका निकटवर्ती कारण बन जाता है। जब विराग्य होता है, तो विराग्य से ग्रसित व्यक्ति के लिए (40) वैराग्य (विराग) उसका निकटवर्ती कारण बन जाता है। जब वैराग्य होता है, तो वैराग्य से ग्रसित व्यक्ति के लिए (11) मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि (विमुक्ति-नाना-दस्सना संस्कृत: विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन) उसका निकटवर्ती कारण बन जाता है।

मान लीजिए एक वृक्ष है जिसमें शाखाएँ और पत्तियाँ हैं। फिर उसकी शाखाएँ पूर्ण रूप से बढ़ती हैं; उसकी छाल, कोमल लकड़ी और भीतरी लकड़ी भी पूर्ण रूप से बढ़ती हैं। ठीक उसी प्रकार, एक गुणी व्यक्ति के लिए, जिसका आचरण गुणी है, पश्चाताप रहित भाव (अविप्पति-सरना) उसका मूल कारण है। जब पश्चाताप रहित भाव होता है... तब मुक्ति का ज्ञान और दर्शन उसका मूल कारण होता है।

---

4 निकटवर्ती कारण (2) (उपनिषद 2)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया: [11:3 के समान, लेकिन सारिपुत्त द्वारा बोला गया।]

---

5 निकटवर्ती कारण (3) (उपनिषद 3)

वहाँ पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को संबोधित किया: [11:3 के समान, लेकिन आनंद द्वारा बोले गए]

---

6 आपदा [2202] (ब्यासन)

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और निंदा करता है, श्रेष्ठ भिक्षुओं की निंदा करता है, तो यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह इन ग्यारह आपदाओं में से कम से कम एक का शिकार न हो। वे ग्यारह आपदाएँ क्या हैं? (1) वह वह प्राप्त नहीं करता जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है। (2) वह अपनी प्राप्त की हुई उपलब्धि से विमुख हो जाता है। (3) उसके अच्छे गुण निखरे नहीं हैं। (4) वह अपने अच्छे गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बताता है, या (5) असंतुष्ट होकर ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, [318] या (6) कोई अपवित्र अपराध करता है, या (7) प्रशिक्षण त्यागकर निम्न लोक में लौट जाता है, (8) या किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित हो जाता है, या (9) पागल होकर मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है। (10) वह भ्रमित अवस्था में मर जाता है। (11) शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। जब कोई जो भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का अपमान और तिरस्कार करता है, जो श्रेष्ठ भिक्षुओं की निंदा करता है, उसके लिए यह असंभव और अकल्पनीय है कि वह इन ग्यारह विपत्तियों में से कम से कम एक का शिकार न हो।

---

7 धारणा 2204 (सन्ना सं. संज्ञा)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, क्या कोई भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी को पृथ्वी के संबंध में न देखे; (2) जल को जल के संबंध में न देखे; (3) अग्नि को अग्नि के संबंध में न देखे; (4) वायु को वायु के संबंध में न देखे; (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (6) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को शून्यता के आधार के संबंध में न देखे; (8) न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अज्ञात/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अज्ञात/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में न देखे; (9) इस संसार को इस संसार के संबंध में न देखे।" (1.0) दूसरे संसार के संबंध में दूसरे संसार का; (11) किसी भी देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और मन द्वारा परखी गई किसी भी चीज़ का, लेकिन क्या वह फिर भी बोधगम्य होगा?

"वह कर सकता था, आनंदा।" [319]

"पर हे भंते, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

हे आनंद, यहाँ एक भिक्षु इस प्रकार बोध करता है: 'यह शांति है, यह उदात्त है, अर्थात् समस्त कर्मों का स्थिर होना, समस्त प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, शांति, निर्वाण।' हे आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी को पृथ्वी से, जल को जल से, अग्नि को अग्नि से, वायु को वायु से, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र से, अनंत चेतना के क्षेत्र को अनंत चेतना के क्षेत्र से, शून्यता के आधार को शून्यता के क्षेत्र से, और... न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) का संबंध न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध के क्षेत्र (आयतन) से है; इस संसार का संबंध इस संसार से है; दूसरे संसार का संबंध दूसरे संसार से है; मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, खोजी और परखी गई किसी भी चीज के प्रति वह फिर भी बोधगम्य रहेगा।

तब पूज्य आनंद, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, [320] उनकी ओर दाहिनी ओर रखते हुए उनकी परिक्रमा की, और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। 2205 उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से अभिवादन किया, और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"मित्र सारिपुत्त, क्या कोई भिक्षु ऐसी एकाग्रता की अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न रहे... मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज के प्रति सजग रहे?"

"हाँ, मेरे दोस्त आनंद, वो कर सकता है।"

"पर हे मित्र सारिपुत्त, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

"हे मित्र आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार बोध करता है: 'यह शांति है, यह उदात्त है, अर्थात् समस्त कर्मों का स्थिर होना, समस्त प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, शांति, निर्वाण।' हे मित्र आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी को न देख पाए... वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी या परखी गई किसी भी चीज को न देख पाए, परन्तु फिर भी वह बोधशील रहे।"

"यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्र, कि गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्द एक दूसरे से मेल खाते हैं और सर्वोच्च अवस्था के संबंध में उनमें कोई भिन्नता नहीं है। 2206 अभी-अभी, मित्र, मैंने भगवान (बुद्ध) [321] से संपर्क किया और उनसे इस विषय में पूछा। भगवान (बुद्ध) ने मुझे ठीक उन्हीं शब्दों और वाक्यांशों में उत्तर दिया जिनका उपयोग पूज्य सारिपुत्त ने किया था। यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है, मित्र, कि गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्द एक दूसरे से मेल खाते हैं और सर्वोच्च अवस्था के संबंध में उनमें कोई भिन्नता नहीं है।"

---

8. ध्यान (मानसिकारा)

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, क्या कोई भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह आँख और रूपों, कान और ध्वनियों, नाक और गंधों, जीभ और स्वादों, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर ध्यान न दे; कि (1) वह पृथ्वी, (2) जल, (3) अग्नि, (4) या वायु पर ध्यान न दे; (5) वह अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन), (6) चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन), (7) शून्यता के आधार, (8) या न-बोध (सन्न/संज्ञा)-और न-बोध (अबोध) के क्षेत्र (आयतन) पर ध्यान न दे; (9) वह इस संसार पर ध्यान न दे; (10) वह परलोक पर ध्यान न दे; (11) वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज पर ध्यान न दे, फिर भी वह सजग रहे?"

"वह कर सकता है, आनंदा।" [322J]

"पर हे भंते, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

"यहाँ, आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार ध्यान देता था: 'यह शांतिपूर्ण है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी गतिविधियों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निब्बान, निर्वाण।' हे आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह आँख और रूपों, कान और ध्वनियों, नाक और गंधों, जीभ और स्वादों, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर ध्यान न दे; वह पृथ्वी, जल, अग्नि या वायु पर ध्यान न दे; वह अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन), अनंत चेतना के आधार, शून्यता के क्षेत्र (आयतन), या न-बोध (सन्न/संज्ञा)-और-अबोध के आधार पर ध्यान न दे; वह इस संसार पर ध्यान न दे; वह परलोक पर ध्यान न दे; वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, खोजी और परखी गई किसी भी चीज पर ध्यान न दे, फिर भी वह एकाग्र रहेगा।

---

9 सद्धा (संस्कार: श्रद्धा)

एक बार भगवान (बुद्ध) नादिका [323] में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। तब पूज्य सद्धा 2208 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"हे सद्धा, एक शुद्ध नस्ल के घोड़े की तरह ध्यान करो, जंगली घोड़े की तरह नहीं।" और एक जंगली घोड़ा कैसे ध्यान करता है? जब एक जंगली घोड़े को चारागाह के पास बांध दिया जाता है, तो वह ध्यान करता है: 'चारा, चारा!' क्यों? क्योंकि जब एक जंगली घोड़े को चारागाह के पास बांध दिया जाता है, तो वह खुद से यह नहीं पूछता: 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या काम देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' चारागाह के पास बंधा हुआ, वह बस ध्यान करता है: 'चारा, चारा!' इसी प्रकार, सद्ध, जो जंगली घोड़े के समान है, जब जंगल में, किसी वृक्ष की गोद में, या किसी खाली झोपड़ी में जाता है, तो उसका मन राग से ग्रस्त और पीड़ित रहता है, और वह यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में यह उत्पन्न राग से मुक्ति का मार्ग है। भीतर राग धारण किए हुए, वह ध्यान, चिंतन, मनन और चिंतन करता है। 2209 उसका मन द्वेष, सुस्ती और आलस्य, बेचैनी और पश्चाताप, संदेह से ग्रस्त और पीड़ित रहता है, और वह यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में यह उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग है। भीतर संदेह धारण किए हुए, वह ध्यान, चिंतन, [324] मनन और चिंतन करता है।

वह (1) पृथ्वी पर निर्भर रहते हुए, (2) जल पर निर्भर रहते हुए, (3) अग्नि पर निर्भर रहते हुए, (4) वायु पर निर्भर रहते हुए, (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर रहते हुए, (6) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर रहते हुए, (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर रहते हुए, (8) न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति के आधार पर निर्भर रहते हुए, (9) इस संसार पर निर्भर रहते हुए, (10) दूसरे संसार पर निर्भर रहते हुए, (11) मन द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए, बोध किए, प्राप्त किए, खोजे और परखे गए प्रत्येक विषय पर निर्भर रहते हुए ध्यान करता है। ऐसा ध्यान उस व्यक्ति का होता है जो जंगली घोड़े के समान होता है।

"और हे सद्ध, एक उत्तम नस्ल का घोड़ा कैसे ध्यान करता है? जब एक उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा चारागाह के पास बंधा होता है, तो वह 'चारा, चारा!' का ध्यान नहीं करता। क्यों? क्योंकि जब एक उत्कृष्ट नस्ल का घोड़ा चारागाह के पास बंधा होता है, तो वह स्वयं से पूछता है: 'आज मेरा प्रशिक्षक मुझे क्या कार्य देगा? मैं उसे संतुष्ट करने के लिए क्या कर सकता हूँ?' चारागाह के पास बंधा होने पर वह 'चारा, चारा!' का ध्यान नहीं करता।" जिस प्रकार एक श्रेष्ठ नस्ल का घोड़ा अंकुश के प्रयोग को ऋण, बंधन, हानि और विफलता (विपत्ति) मानता है, उसी प्रकार एक श्रेष्ठ नस्ल का व्यक्ति जब जंगल में, वृक्ष की गोद में या किसी निर्जन कुटिया में जाता है, तो वह कामवासना (राग) से ग्रस्त और पीड़ित मन से नहीं रहता, और वह वास्तव में उत्पन्न कामवासना (राग) से मुक्ति को समझता है। वह द्वेष, सुस्ती और आलस्य, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह से ग्रस्त मन से नहीं रहता, और वह वास्तव में उत्पन्न संदेह से मुक्ति को समझता है।

वह ध्यान नहीं करता (1) पृथ्वी पर निर्भरता में, (2) जल पर निर्भरता में, (3) अग्नि पर निर्भरता में, (4) वायु पर निर्भरता में, (5) अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भरता में, (6) चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भरता में, (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भरता में, (8) न-बोध (सन्न/संज्ञा)-और-अबोध के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भरता में, [325] (9) इस दुनिया पर निर्भरता में, (10) दूसरी दुनिया पर निर्भरता में, (11) जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया, जाना, पहुँचा, खोजा या मन द्वारा परखा जाता है, उस पर निर्भरता में, और फिर भी वह ध्यान करता है।

जब वह इस प्रकार ध्यान करता है, तो देव (देवदूत/भगवान) इंद्र, ब्रह्मा और प्रजापति के साथ दूर से उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष की पूजा करते हुए कहते हैं:

"हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम!

हे सर्वोच्च पुरुष, आपको प्रणाम!

हम स्वयं भी नहीं समझ पाते

कि आप किस पर निर्भर रहकर ध्यान करते हैं।" 2210

यह सुनकर पूज्य सद्ध ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परन्तु, भंते, एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष कैसे ध्यान करता है? यदि वह पृथ्वी पर निर्भर होकर ध्यान नहीं करता... जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और मन द्वारा परखा जाता है, उस पर निर्भर होकर ध्यान नहीं करता, और फिर भी ध्यान करता है, तो वह ऐसा कैसे ध्यान करता है कि देव (देवदूत/भगवान)... दूर से ही उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष की पूजा करते हुए कहते हैं:

"हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम!

हे सर्वोच्च पुरुष, आपको प्रणाम!

हम स्वयं नहीं समझ पाते

कि आप किस पर निर्भर रहकर ध्यान करते हैं?"

"यहाँ, सद्धा, एक उत्कृष्ट शुद्ध व्यक्ति के लिए, पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) लुप्त हो जाती है, 2211 जल के संबंध में जल की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) लुप्त हो जाती है, अग्नि के संबंध में अग्नि की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) लुप्त हो जाती है, वायु के संबंध में वायु की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) लुप्त हो जाती है, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में लुप्त हो जाती है, अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) चेतना के अनंत आधार के संबंध में लुप्त हो जाती है, [326] शून्यता के आधार की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में लुप्त हो जाती है, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) लुप्त हो जाती है।" न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) और न ही अअनुभूति, अअनुभूति के क्षेत्र (आयतन) के संबंध में विलीन हो गई है; इस संसार की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) इस संसार के संबंध में विलीन हो गई है; दूसरे संसार की अनुभूति (सन्न/संज्ञा) दूसरे संसार के संबंध में विलीन हो गई है; जो कुछ भी मन द्वारा देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, खोजा और परखा जाता है, उसके संबंध में अनुभूति (सन्न/संज्ञा) विलीन हो गई है।

"इस प्रकार ध्यान करते हुए, सद्ध, एक श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु पर निर्भर नहीं रहता; अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर नहीं रहता, अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर नहीं रहता, शून्यता के क्षेत्र (आयतन) पर निर्भर नहीं रहता, न तो अनुभूति (सन्न/संज्ञा) के आधार पर निर्भर नहीं रहता, न इस संसार पर निर्भर रहता, न परलोक पर निर्भर रहता; न ही मन द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए, बोध किए, प्राप्त किए, खोजे या परखे गए किसी भी चीज़ पर निर्भर रहता है, फिर भी वह ध्यान करता है। 2212 और जब वह इस प्रकार ध्यान करता है, तो देव (देवदूत/भगवान) इंद्र, ब्रह्मा और प्रजापति के साथ दूर से उस श्रेष्ठ शुद्ध पुरुष की पूजा करते हुए कहते हैं:

"हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम!

हे सर्वोच्च पुरुष, आपको प्रणाम!

हम स्वयं नहीं समझ पाते

कि आप किस पर निर्भर रहकर ध्यान करते हैं।"

---

10 मोर अभयारण्य [2213] (मोरा निवापा)

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में तपस्वियों के उद्यान, मोर अभयारण्य में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

भिक्षुओं में तीन गुण होते हैं, और वे देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जो परम लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं, बंधनों से परम सुरक्षा प्राप्त कर चुके हैं, परम ब्रह्मचर्य जीवन जी चुके हैं और परम उद्देश्य को प्राप्त कर चुके हैं। वे तीन गुण क्या हैं? (1) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सद्‌गुणों का समूह, (2) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (स्व-लीनता/तल्ली) का समूह, और (3) प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के ज्ञान (दिव्य ज्ञान) का समूह। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जो परम उद्देश्य को प्राप्त कर चुके हैं।

भिक्षुओं में तीन अन्य गुण होते हैं, और वे देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जिन्होंने परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। वे तीन गुण क्या हैं? (4) मानसिक शक्ति का चमत्कार, (5) मन-पढ़ने का चमत्कार, और (6) उपदेश का चमत्कार। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जिन्होंने परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

भिक्षुओं में तीन अन्य गुण होते हैं, और वे देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जिन्होंने परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। वे तीन गुण कौन से हैं? (7) सही दृष्टिकोण, (8) सही ज्ञान, और (9) सही मुक्ति। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं: वे जिन्होंने परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

"भिक्षुओं में दो गुण होते हैं, और वे देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं: वे जिन्होंने परम पूर्णता प्राप्त कर ली है। वे दो गुण क्या हैं? (10) सच्चा ज्ञान और (11) आचरण। इन दो गुणों से युक्त भिक्षु देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं: वे जिन्होंने परम निष्कर्ष प्राप्त कर लिया है, बंधन से परम सुरक्षा प्राप्त कर ली है, परम ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया है और परम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।"

"ब्रह्मा सनमकुमार (सं. सनतकुमार) ने भी यह श्लोक कहा था:

" जिन लोगों के लिए कुल श्रेष्ठता क्षत्रिय को माना जाता है, उनके लिए क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है ,

परन्तु सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति

देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।"

"हे भिक्षुओं, इस श्लोक का ब्रह्म सनम कुमार ने सुंदर पाठ किया है, बुरा पाठ नहीं; इसका उच्चारण सुंदर है, बुरा उच्चारण नहीं; यह लाभकारी है, हानिकारक नहीं, और मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ। मैं भी यही कहता हूँ।"

" जिन लोगों के लिए कुल श्रेष्ठ है, उनके लिए क्षत्रिय श्रेष्ठ है ,

परन्तु सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति

देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।"

II. स्मरण (अनुसतिवाग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

11 महानामा (एल) [2214]

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि तीन महीने (वर्षा ऋतु के निवास के) समाप्त होने पर वस्त्र तैयार हो जाने के बाद भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकल पड़ेंगे। शाक्य महानामा ने यह सुना, भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, मैंने सुना है: 'बहुत से भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि वस्त्र पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के तीन महीने समाप्त होने पर, भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे। भंते, हम सब के अनेक कार्यों के बीच कैसे रहें?" 2215

"बहुत खूब, महानमा! तुम कुलवासियों के लिए यह उचित है कि तुम तथागत (बुद्ध) के पास जाओ और पूछो: 'भंते, हमारी तमाम व्यस्तताओं के साथ, हमें कैसे रहना चाहिए?'"

(1) "महानमा, आस्थावान व्यक्ति ही सफल होता है, आस्थाहीन व्यक्ति नहीं। (2) ऊर्जावान व्यक्ति ही सफल होता है, आलसी व्यक्ति नहीं। (3) सती ध्यान में स्थिर व्यक्ति ही सफल होता है, भ्रमित मन वाला नहीं। (4) समाधि में लीन व्यक्ति ही सफल होता है, असामहिता वाला नहीं। (5) बुद्धिमान व्यक्ति ही सफल होता है, मूर्ख व्यक्ति नहीं। इन पाँच गुणों में स्वयं को स्थापित करने के बाद, आपको छह अन्य गुणों का विकास करना चाहिए।"

(6) "हे महानामा, यहाँ तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण कीजिए: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" जब कोई श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन तथागत (बुद्ध) पर आधारित होकर बिल्कुल स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में रहने वाले व्यक्ति का... मन आत्म-मग्न हो जाता है (समाहित अवस्था में)। इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह बुद्ध की स्मृति का विकास करता है।

(7) "हे महानामा, तुम्हें धम्म को इस प्रकार याद रखना चाहिए: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य धम्म का स्मरण करता है, उस समय उसका मन काम (राग), घृणा या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन केवल धम्म पर आधारित, एकाग्र होता है। एकाग्र मन वाला श्रेष्ठ शिष्य धम्म के अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है और धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है।

आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि) में लीन हो जाता है। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलित रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह धम्म का स्मरण विकसित करता है।

(8) "हे महानामा, आपको संघ का स्मरण इस प्रकार करना चाहिए: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास करता है, सीधे मार्ग का अभ्यास करता है, सच्चे मार्ग का अभ्यास करता है, उचित मार्ग का अभ्यास करता है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।" जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संघ का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या भ्रम से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन संघ पर आधारित होकर केवल सीधा होता है। जिस श्रेष्ठ शिष्य का मन सीधा होता है, उसे अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन आत्म-मग्न हो जाता है (समाहित अवस्था में)। इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है, जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच निर्मल रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह संघ का स्मरण विकसित करता है।

(9) "हे महानामा, आपको अपने सदाचारी आचरण को याद करना चाहिए जो अटूट, दोषरहित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अछूता और समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला है। जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने सदाचारी आचरण को याद करता है, उस समय उसका मन काम (राग), घृणा या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन सदाचार पर आधारित होकर बिल्कुल सीधा होता है। जिस श्रेष्ठ शिष्य का मन सीधा होता है, उसे अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति को सुख का अनुभव होता है। सुखी व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच अप्रभावित रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश कर चुके व्यक्ति के रूप में, वह सदाचारी व्यवहार की याददाश्त विकसित करता है।

(10) "हे महानामा, आपको अपनी उदारता को इस प्रकार याद करना चाहिए: 'यह सचमुच मेरा सौभाग्य और लाभ है कि कंजूसी के कलंक से ग्रस्त जनसंख्या में, मैं कंजूसी के कलंक से मुक्त, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, देने और बांटने में आनंदित मन से अपने घर में निवास करता हूँ।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपनी उदारता को याद करता है, उस समय उसका मन काम (राग), द्वेष या मोह से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन केवल उदारता पर आधारित, सीधा होता है। जिस श्रेष्ठ शिष्य का मन सीधा होता है, उसे अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद मिलता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुख में रहने वाले व्यक्ति का मन शांत हो जाता है। आत्ममग्न (समाहित/समाहित)। इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच अविचलित रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह उदारता का स्मरण विकसित करता है।

(11) "हे महानामा, तुम्हें देवताओं का स्मरण इस प्रकार करना चाहिए: "चार महान राजाओं द्वारा शासित देवता हैं, तावतिंसा देवता, यम देवता, तुषिता देवता, सृष्टि में आनंद लेने वाले देवता, दूसरों द्वारा सृजित चीजों को नियंत्रित करने वाले देवता, ब्रह्मा के साथ रहने वाले देवता, और इनसे भी उच्चतर देवता। मुझमें भी उन देवताओं के समान ही आस्था है, जिसके कारण जब वे यहाँ से चले गए, [332] तो वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ; मुझमें भी ऐसा ही सद्गुणी आचरण है... ऐसा ही ज्ञान... ऐसी ही उदारता... उन देवताओं (देवदूतों) के पास जो ज्ञान (पन्न) था, उसी के कारण जब वे यहाँ से चले गए, तो वहाँ पुनर्जन्म लिया। जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने और उन देवताओं (देवदूतों) में निहित आस्था, सदाचार, ज्ञान, उदारता और ज्ञान (पन्न) का स्मरण करता है, तो उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन देवताओं (देवदूतों) पर आधारित होकर एकदम स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का

अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) में लीन हो जाता है। इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो असंतुलित जनसंख्या के बीच संतुलन में रहता है, जो पीड़ित जनसंख्या के बीच अविचलित रहता है। धम्म की धारा में प्रवेश करने के कारण, वह देवताओं (देवदूतों) का स्मरण विकसित करता है।

---

12 महानामा (2)

[11:11 से शुरू होकर नीचे तक:] [333]

"महानामा, इन पांच गुणों में स्वयं को स्थापित करने के बाद, आपको छह और चीजों को विकसित करना चाहिए।"

(6) "हे महानामा, यहाँ आपको तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करना चाहिए: 'भगवान (बुद्ध) ... प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' जब कोई श्रेष्ठ शिष्य तथागत (बुद्ध) का स्मरण करता है, उस समय उसका मन कामवासना (राग), द्वेष (दोष/बुद्ध) या मोह (मोह) से ग्रस्त नहीं होता; उस समय उसका मन तथागत (बुद्ध) पर आधारित होकर बिल्कुल स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य अर्थ में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म में प्रेरणा प्राप्त करता है, धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुख) का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि (समाधि) में लीन हो जाता है। हे महानामा, आपको चलते, खड़े होते, बैठते और लेटते समय बुद्ध के इस स्मरण को विकसित करना चाहिए। आपको इसे तब भी विकसित करना चाहिए जब आप काम में व्यस्त रहते हुए और बच्चों से भरे घर में रहते हुए।

(7) "फिर से, महानामा, आपको धम्म का स्मरण करना चाहिए

(8) . . . संघ ... (9) आपका स्वयं का सदाचारी आचरण . . . (10)

...आपकी अपनी उदारता... (11) इस प्रकार देवता (देवदूत)... जब एक

जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अपने भीतर और उन देवताओं में विद्यमान आस्था, सदाचार, उदारता और दिव्य ज्ञान का स्मरण करता है, तब उसका मन कामवासना, द्वेष या मोह से ग्रस्त नहीं होता; तब उसका मन देवताओं पर केंद्रित होकर एकदम स्थिर होता है। स्थिर मन वाला श्रेष्ठ शिष्य धर्म के अर्थ में प्रेरणा पाता है, धर्म में प्रेरणा पाता है और धर्म से जुड़ा आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तब परमानंद उत्पन्न होता है। आनंदित मन वाले व्यक्ति का शरीर शांत हो जाता है। शांत शरीर वाला सुख का अनुभव करता है। सुख में लीन व्यक्ति का मन समाधि में लीन हो जाता है। महानाम, चलते, खड़े होते, बैठते और लेटते समय आपको देवताओं का स्मरण करना चाहिए। कार्य करते समय और बच्चों से भरे घर में रहते हुए भी आपको इसका स्मरण करना चाहिए।

---

13 नंदिया

एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित वर्षावास में प्रवेश करना चाहते थे। शाक्य नंदीय ने यह सुना और तब [335] उनके मन में यह विचार आया: "मैं भी श्रावस्ती स्थित वर्षावास में प्रवेश करूँगा। 2216 वहाँ मैं व्यापार करूँगा और समय-समय पर भगवान (बुद्ध) के दर्शन करूँगा।"

फिर भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में वर्षावास में प्रवेश कर गए। शाक्यन नंदीय भी श्रावस्ती में वर्षावास में प्रवेश कर गए, जहाँ वे व्यापार में लगे रहे और समय-समय पर भगवान (बुद्ध) के दर्शन करते रहे। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि वस्त्र पूरा होने पर, वर्षावास के तीन महीने पूरे होने पर, भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकल पड़ेंगे। शाक्यन नंदीय ने यह सुना, भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"भंते, मैंने सुना है: 'बहुत से भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि वस्त्र पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के तीन महीने समाप्त होने पर, भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे। भंते, हम सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं, ऐसे में हम कैसे रह सकते हैं?"

"शाबाश, शाबाश, नंदिया! तुम कुलवासियों के लिए यह उचित है कि तुम तथागत (बुद्ध) के पास जाओ और पूछो: - 'भंते, हमारी तमाम व्यस्तताओं के साथ, हमें कैसे रहना चाहिए?'"

(1) नंदीय, आस्थावान व्यक्ति ही सफल होता है, आस्थाहीन व्यक्ति नहीं। (2) गुणी व्यक्ति ही सफल होता है, अनैतिक व्यक्ति नहीं। (3) ऊर्जावान व्यक्ति ही सफल होता है, आलसी व्यक्ति नहीं। (4) सती ध्यान में स्थिर व्यक्ति ही सफल होता है, भ्रमित मन वाला नहीं। (5) समाधि में लीन व्यक्ति ही सफल होता है, असामंजस्य वाला नहीं। (6) बुद्धिमान व्यक्ति ही सफल होता है, मूर्ख नहीं। इन छह गुणों में स्वयं को स्थापित करने के बाद, पाँच बातों के विषय में आंतरिक सती ध्यान स्थापित करें।

(7) "हे नंदीय, यहाँ तथागत (बुद्ध) का इस प्रकार स्मरण करो: [336] 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। अतः तुम्हें तथागत (बुद्ध) पर आधारित आंतरिक सती (ध्यान) स्थापित करनी चाहिए।"

(8) "हे नंदीय, तुम्हें धम्म का इस प्रकार स्मरण करना चाहिए: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।' अतः तुम्हें धम्म पर आधारित आंतरिक रूप से सती (ध्यान) स्थापित करनी चाहिए।"

(9) "फिर, नंदिया, तुम्हें अच्छे मित्रों को इस प्रकार याद करना चाहिए: 'यह सचमुच मेरा सौभाग्य और लाभ है कि मेरे पास अच्छे मित्र हैं जो मुझ पर दया करते हैं, जो मेरा भला चाहते हैं, जो मुझे प्रोत्साहित और शिक्षित करते हैं।' इस प्रकार तुम्हें अच्छे मित्रों पर आधारित आंतरिक सती (ध्यान) स्थापित करनी चाहिए।"

(10) "हे नंदिया, तुम्हें अपनी उदारता को इस प्रकार याद करना चाहिए: 'यह सचमुच मेरा सौभाग्य और लाभ है कि कंजूसी के कलंक से ग्रस्त जनसंख्या में, मैं अपने घर में कंजूसी के कलंक से मुक्त, उदार, दानशील, त्याग में प्रसन्न, परोपकारी, दान देने और साझा करने में प्रसन्न मन से निवास करता हूँ।' इस प्रकार तुम्हें उदारता पर आधारित आंतरिक जागरूकता स्थापित करनी चाहिए।"

(11) "हे नंदीय, तुम्हें देवताओं (देवदूतों) का इस प्रकार स्मरण करना चाहिए: 'वे देवता (देवदूत) जो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं से परे, मन से बने शरीर में पुनर्जन्म लेकर आए हैं, वे अपने आप में कुछ भी शेष कार्य या किए गए कार्य को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं देखते। जिस प्रकार एक स्थायी रूप से मुक्त भिक्षु अपने आप में कुछ भी शेष कार्य या किए गए कार्य को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं देखता, 2217 उसी प्रकार वे देवता (देवदूत) भी हैं जो भोजन पर निर्भर रहने वाले देवताओं से परे, मन से बने शरीर में पुनर्जन्म लेकर आए हैं।' 2218 [337] इस प्रकार तुम्हें देवताओं (देवदूतों) पर आधारित आंतरिक सती (ध्यान) स्थापित करनी चाहिए।

"नंदिया, जो इन ग्यारह गुणों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य है, वह अकुशल (बुरे) गुणों (धम्म) का त्याग करता है और उन्हें ग्रहण नहीं करता। जिस प्रकार उल्टा किया हुआ घड़ा गिरा हुआ पानी वापस नहीं लेता, और जिस प्रकार अनियंत्रित आग सूखे जंगल को जलाते हुए आगे बढ़ती है और वापस उस जगह नहीं लौटती जहाँ वह जल चुकी है, उसी प्रकार, इन ग्यारह गुणों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य अकुशल (बुरे) गुणों का त्याग करता है और उन्हें ग्रहण नहीं करता।"

---

14 सुभूति

तब पूज्य सुभूति भिक्षु सद्धा के साथ भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सुभूति से कहा:

"इस भिक्षु का नाम क्या है, सुभूति?"

"उनका नाम सद्धा भंते है। वे आस्थावान एक पुरुष गृहस्थ अनुयायी के पुत्र हैं, 2220 और उन्होंने आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है।"

"मुझे आशा है कि आस्थावान भिक्षु साधक के इस पुत्र, भिक्षु सद्धा, जिसने गृहस्थ जीवन छोड़कर आस्था के कारण संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, आस्था की अभिव्यक्तियों को प्रदर्शित करेगा।" 2221

"यही समय है, हे भगवान (बुद्ध)! यही समय है, हे सुगत (भगवान बुद्ध)! भगवान (बुद्ध) को आस्था की अभिव्यक्तियों की व्याख्या करनी चाहिए। अब मैं पता लगाऊंगा कि यह भिक्षु आस्था की अभिव्यक्तियों को प्रदर्शित करता है या नहीं।"

"तो सुनो, सुभूति, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी, भंते," पूज्य सुभूति ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: [338]

(1) "हे सुभूति, यहाँ एक भिक्षु गुणी है; वह पतिमोक्ख द्वारा संयमित, सुचारु आचरण और अच्छे आचरण से युक्त, सूक्ष्म दोषों में भी खतरा देखता है। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए, वह उनका अभ्यास करता है। यह आस्था से संपन्न व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(2) "एक भिक्षु ने बहुत कुछ सीखा है, वह सीखी हुई बातों को याद रखता है और उन्हें संजोता है। वे शिक्षाएँ जो आरंभ में, मध्य में और अंत में अच्छी हों, सही अर्थ और शब्दों के साथ, जो पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन) की घोषणा करती हों—ऐसी शिक्षाओं को उसने बहुत सीखा है, मन में संजोया है, मौखिक रूप से सुनाया है, मानसिक रूप से उनका अध्ययन किया है और दृष्टि से भलीभांति समझा है। यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(3) "फिर, एक भिक्षु के अच्छे मित्र, अच्छे साथी, अच्छे सहपाठी होते हैं। यह भी आस्था से संपन्न व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(4) "फिर, एक भिक्षु को सुधारना आसान होता है और उसमें ऐसे गुण होते हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान होता है और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण करता है। यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(5) "फिर, एक भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं के लिए किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को करने में कुशल और मेहनती होता है; वह उन्हें ठीक से करने और व्यवस्थित करने के लिए उनके बारे में सही निर्णय लेता है। यह भी आस्था से संपन्न व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है। [339]

(6) "फिर, एक भिक्षु धम्म से प्रेम करता है और अपने कथनों में प्रसन्नता का भाव रखता है, धम्म और अनुशासन के प्रति उच्च आनंद से परिपूर्ण होता है। यह भी आस्था से संपन्न व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(7) "फिर, एक भिक्षु ने हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का त्याग करने और लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाई है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं करता है। यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(8) "फिर, एक भिक्षु बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, अपनी इच्छा से ही चार ध्यान (सम्मोहन अवस्थाएँ) प्राप्त कर लेता है, जो उच्च मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास स्थान हैं। यह भी आस्था से संपन्न व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(9) "फिर, एक भिक्षु अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों का स्मरण करता है... [जैसा कि 6:2 §4 में है]... इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों के निवासों का उनके स्वरूपों और विवरणों सहित स्मरण करता है। [340] यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(10) "फिर, पवित्र और मनुष्य की दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, भिक्षु प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली देखता है... [जैसा कि 6:2 §5 में है]... और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है। यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

(11) "फिर, दोषों के नाश के साथ, एक भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषरहित मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का स्वयं अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है। यह भी आस्थावान व्यक्ति में आस्था की अभिव्यक्ति है।"

जब यह कहा गया, तो पूज्य सुभूति ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "भंते, विश्वास से परिपूर्ण व्यक्ति में विश्वास की ये अभिव्यक्तियाँ, जिनका उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है, इस भिक्षु में देखी जाती हैं, और वह उन्हें प्रदर्शित करता है।"

(1) "यह भिक्षु, भंते, गुणी है... [341] वह उनमें प्रशिक्षण देता है।

(2) "उसने बहुत कुछ सीखा है... और दृष्टि से अच्छी तरह से समझ लिया है।"

(3) "उसके अच्छे दोस्त हैं, अच्छे साथी हैं, अच्छे सहपाठी हैं।

(4) "उसे सुधारना आसान है और उसमें ऐसे गुण हैं जो उसे सुधारना आसान बनाते हैं; वह धैर्यवान है और सम्मानपूर्वक निर्देश ग्रहण करता है:

(5) "वह कुशल और मेहनती है... ताकि उन्हें ठीक से निष्पादित और व्यवस्थित कर सके।"

(6) "वह धम्म (मार्ग) से प्रेम करता है... धम्म और अनुशासन के संबंध में।"

(7) "उसने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जगाया है... लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को विकसित करने के कर्तव्य का त्याग नहीं किया है।"

(8) "वह बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, इसी जीवन में अपनी इच्छा से चारों ध्यान प्राप्त कर लेता है।"

(9) "वह अपने अनेक भूतपूर्व निवासों (पूर्व पुनर्जन्मों) को याद करता है... उनके पहलुओं और विवरणों के साथ।"

(10) "वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते देखता है... और वह समझता है कि प्राणियों का उनके कर्मों के अनुसार क्या हाल होता है।"

(11) "दोषों के नाश के साथ, इस भिक्षु ने प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) द्वारा, इसी जीवन में, स्वयं ही निर्मल मन की मुक्ति, पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा मुक्ति का अनुभव किया है, और उसमें प्रवेश करके वह उसमें निवास करता है।"

"भंते, आस्था से परिपूर्ण व्यक्ति में आस्था की ये अभिव्यक्तियाँ, जिनका उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है, इस भिक्षु में देखी जाती हैं, और वह उन्हें प्रदर्शित भी करता है।"

"बहुत बढ़िया, सुभूति! तो फिर, सुभूति, तुम इस भिक्षु सद्धा के साथ रह सकते हो, और जब तुम तथागत (बुद्ध) के दर्शन करना चाहो, तो उन्हें अपने साथ ले आना।"

---

15 प्रेमपूर्ण दया [2222] (मेट्टा)

भिक्षुओं, जब प्रेम-कृपा (मेट्टा) द्वारा मन की मुक्ति का अनुसरण, विकास और संवर्धन किया जाता है, उसे एक माध्यम और आधार बनाया जाता है, उसे क्रियान्वित किया जाता है, सुदृढ़ किया जाता है और विधिवत रूप से संपन्न किया जाता है, तो ग्यारह लाभों की अपेक्षा की जा सकती है। वे ग्यारह कौन से हैं?

(1) व्यक्ति को अच्छी नींद आती है; (2) वह प्रसन्नतापूर्वक जागता है; (3) उसे बुरे सपने नहीं आते; (4) वह मनुष्यों को प्रसन्न करता है; (5) वह आत्माओं को प्रसन्न करता है; (6) देवता उसकी रक्षा करते हैं; (7) आग, विष और हथियार उसे चोट नहीं पहुँचाते; (8) उसका मन शीघ्र ही समाधि में लीन हो जाता है; (9) उसके चेहरे का रंग शांत होता है; (10) वह बिना भ्रमित हुए मरता है; और (11) यदि वह इससे आगे नहीं बढ़ता है, तो वह ब्रह्मलोक की ओर अग्रसर होता है।

"जब, हे भिक्षुओं, प्रेम और करुणा द्वारा मन की मुक्ति का बार-बार अनुसरण, विकास और पोषण किया जाता है, उसे एक माध्यम और आधार बनाया जाता है, उसे क्रियान्वित किया जाता है, सुदृढ़ किया जाता है और विधिवत रूप से संपन्न किया जाता है, तो इन ग्यारह लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

---

16 अत्थाकानगर [2224]

एक बार पूज्य आनंद वैशाली के निकट बेलुवा गमक में निवास कर रहे थे। उस समय अठकनगर (2225) के गृहस्थ दशमा व्यापारिक कार्य से पाटलिपुत्त आए थे। उन्होंने मुर्गे के उद्यान में एक भिक्षु से संपर्क किया और पूछा, "भंते, पूज्य आनंद अब कहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"वह वैशाली के पास बेलुवागमका में गृहस्थ के रूप में रह रहा है।"

जब गृहस्थ दशमा ने पाटलिपुत्त में अपना काम पूरा कर लिया, तो वह वैशाली के पास बेलुवागमक में पूज्य आनंद के पास गए। उन्होंने पूज्य आनंद को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए, [343] और उनसे कहा:

"भंते आनंद, क्या भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो सब कुछ जानते और देखते हैं, द्वारा उचित रूप से प्रतिपादित कोई ऐसी वस्तु है, जिसे यदि कोई भिक्षु लगन, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ ग्रहण करे, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाए, उसके अविभाजित दोष नष्ट हो जाएं, और वह बंधन से अब तक अप्राप्य, अतुलनीय मुक्ति प्राप्त कर ले?"

"हाँ, गृहस्वामी।"

"और यह क्या है?"

(1) "हे गृहस्थ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त, भिक्षु प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से युक्त है, जिसमें विचार और चिंतन शामिल हैं। वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'यह प्रथम ध्यान व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है। परन्तु जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है, वह क्षणभंगुर है, और उसका अंत निश्चित है।'" यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, तो वह दोषों का नाश प्राप्त करता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति उस राग (कामना) के कारण, धम्म में उस आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस लौटे बिना ही वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह एक ऐसी बात है जिसका उचित प्रतिपादन भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, ने किया है, जिससे यदि कोई भिक्षु इसमें लगन, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ निवास करता है, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अविभाजित दोष नष्ट हो जाते हैं, और वह अब तक अप्राप्य, बंधन से पूर्णतम मुक्ति प्राप्त कर लेता है। [344]

(2) "हे गृहस्थ, विचार और चिंतन के शांत होने पर भिक्षु द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... (3) ...तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... (4) ...चौथी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में... वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'यह चौथी ध्यान (सम्मोहन अवस्था) व्यक्ति के चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होती है। परन्तु जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र/व्यवहार (संस्कार/संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है, वह क्षणभंगुर है, और उसका अंत निश्चित है।' यदि वह इस बात पर दृढ़ रहे, तो वह दोषों का नाश प्राप्त कर लेता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) और धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त न कर पाए, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह भी एक ऐसी बात है जिसका उचित रूप से भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, द्वारा व्याख्या की गई है, इस प्रकार कि यदि कोई भिक्षु इसमें निवास करता है... तो वह बंधन से अब तक अप्राप्य, अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करता है।"

(5) "हे गृहस्थ, भिक्षु प्रेममयी मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, वह प्रेममयी (मेट्टा) मन से व्याप्त होकर, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'प्रेममयी (मेट्टा) द्वारा मन की यह मुक्ति व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होती है। परन्तु जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है, वह क्षणभंगुर और क्षीण होता है।" यदि वह इस बात पर दृढ़ रहे, तो वह दोषों का नाश प्राप्त कर लेता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) और धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त न कर पाए, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह भी एक ऐसी बात है जिसका उचित रूप से भगवान (बुद्ध) [345] अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति, जो जानते और देखते हैं, द्वारा व्याख्या की गई है, इस प्रकार कि यदि कोई भिक्षु इसमें निवास करता है ... तो वह बंधन से अब तक अप्राप्य अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करता है।"

(6) "हे गृहस्थ, भिक्षु करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... (7) ...परोपकारी आनंद से भरे मन से... (8) ...उदासीनता (भीतर समाहित/उपेक्खा) से भरे मन से, इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए स्वयं के समान, वह उदासीनता (भीतर समाहित/उपेक्खा) से भरे, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'समभाव द्वारा मन की यह मुक्ति व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होती है। लेकिन जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और आत्म-जागरूकता क्षणभंगुर है, जिसका अंत निश्चित है। यदि वह इस बात में दृढ़ रहे, तो वह दोषों का नाश प्राप्त कर लेता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) और धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त न कर पाए, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह भी एक ऐसी बात है जिसका उचित रूप से भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, द्वारा व्याख्या की गई है, इस प्रकार कि यदि कोई भिक्षु इसमें निवास करता है... तो वह बंधन से अब तक अप्राप्य, अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करता है।"

(9) "हे गृहस्थ, रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, इंद्रियों के प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देकर, 'अंतरिक्ष अनंत है' का बोध करते हुए भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) की यह प्राप्ति व्यक्ति के चरित्र (संस्कार/संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होती है। परन्तु जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र (संस्कार/संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है, वह अनित्य है, और उसका अंत निश्चित है।' यदि वह इसमें दृढ़ रहता है, तो वह दोषों का नाश प्राप्त करता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) के कारण, धम्म में आनंद के कारण दोषों का नाश प्राप्त नहीं करता, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है, और उस लोक से कभी वापस लौटे बिना ही वहाँ अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह भी एक ऐसी बात है जिसका उचित रूप से भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध, जो जानते और देखते हैं, द्वारा व्याख्या की गई है, इस प्रकार कि यदि कोई भिक्षु इसमें निवास करता है ... तो वह बंधन से अब तक अप्राप्य, अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करता है।"

(10) "हे गृहस्थ, अनंत अंतरिक्ष के आधार को पूर्णतः पार करके, 'चेतना अनंत है' का बोध करते हुए, वह अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... (11) ...अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का बोध करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है। वह इस पर विचार करता है और इसे इस प्रकार समझता है: 'शून्यता के क्षेत्र (आयतन) की यह प्राप्ति व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होती है। परन्तु जो कुछ भी व्यक्ति के चरित्र (संस्कार) और (आत्म)जागरूकता द्वारा निर्मित और उत्पन्न होता है, वह अनित्य है, और उसका अंत निश्चित है।'" यदि वह इस बात पर दृढ़ रहे, तो वह दोषों का नाश कर लेता है। परन्तु यदि वह धम्म के प्रति राग (कामना) और धम्म

में आनंद के कारण दोषों का नाश न कर पाए, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह स्वतः पुनर्जन्म लेता है और उस लोक से कभी वापस न लौटते हुए वहीं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"यह भी एक ऐसी बात है जिसका उचित प्रतिपादन भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, जो सब कुछ जानते और देखते हैं, ने किया है, जिससे यदि कोई भिक्षु इसमें लगन, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ निवास करे, तो उसका अमुक्त मन मुक्त हो जाता है, उसके अनसुलझे दोष नष्ट हो जाते हैं, और वह अब तक अप्राप्य, बंधन से पूर्णतम मुक्ति प्राप्त कर लेता है।" 2227

यह सुनकर अत्थकनगर के गृहस्थ दशमा ने पूज्य आनंद से कहा, "भंते आनंद, जैसे किसी छिपे हुए खजाने का एक द्वार खोजते हुए किसी व्यक्ति को अचानक उस खजाने के ग्यारह द्वार मिल जाते हैं, वैसे ही मैं भी अमरता (अमृत) का एक द्वार खोजते हुए अचानक अमरता (अमृत) के ग्यारह द्वारों के बारे में जान गया। 2228 जैसे किसी व्यक्ति के घर में ग्यारह द्वार हों और जब उस घर में आग लग जाए, तो वह उन ग्यारह द्वारों में से किसी भी द्वार से सुरक्षित बाहर निकल सकता है, वैसे ही मैं भी अमरता (अमृत) के इन ग्यारह द्वारों में से किसी भी द्वार से सुरक्षित बाहर निकल सकता हूँ। भंते, अन्य संप्रदायों के ये सदस्य अपने गुरुओं से शुल्क लेते हैं, तो मैं पूज्य आनंद को दान क्यों न दूँ?"

तब अत्थकनगर के गृहस्थ दशमा ने पाटलिपुत्त और वैशाली से भिक्षुओं का संघ एकत्र किया और अपने हाथों से उन्हें विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन कराकर तृप्त किया। उन्होंने प्रत्येक भिक्षु को वस्त्रों का एक जोड़ा और पूज्य आनंद को तीन वस्त्रों का एक सेट भेंट किया। और उन्होंने पूज्य आनंद के लिए पाँच सौ 2229 मूल्य का एक आवास बनवाया।

---

17 चरवाहा [2230] (गोपाला)

"गायिका (भिक्षु) होने के कारण, एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में असमर्थ होता है। वे ग्यारह कारक कौन से हैं? यहाँ, (1) ग्वाले को रूप का ज्ञान नहीं होता; (2) वह विशेषताओं को पहचानने में अकुशल होता है; (3) वह मक्खियों के अंडे नहीं निकाल पाता; (4) वह घावों पर पट्टी नहीं बांध पाता; (5) वह शेड में धुआं नहीं कर पाता; (6) उसे पानी के स्थान का ज्ञान नहीं होता; (7) उसे पीने का अनुभव नहीं होता; (8) उसे रास्ते का ज्ञान नहीं होता; (9) वह चरागाहों के बारे में अकुशल होता है; (10) वह दूध दुहता रहता है; और (11) वह उन बैलों का विशेष आदर नहीं करता जो झुंड के मुखिया और सरदार होते हैं। इन ग्यारह कारकों के कारण, एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में असमर्थ होता है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और पूर्णता प्राप्त करने में असमर्थ है। वे ग्यारह गुण क्या हैं? [348] यहाँ, (1) भिक्षु को रूप का ज्ञान नहीं है; (2) वह विशेषताओं में अकुशल है; (3) वह मक्खियों के अंडे नहीं निकाल पाता; (4) वह घावों पर पट्टी नहीं बांध पाता; (5) वह झोपड़ियों में धुआं नहीं कर पाता; (6) वह पानी के स्थान को नहीं जानता; (7) वह यह नहीं जानता कि पानी पीना क्या होता है; (8) वह मार्ग को नहीं जानता; (9) वह चरागाहों में अकुशल है; (10) वह दूध दुह लेता है; और (11) वह उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति कोई विशेष आदर नहीं दिखाता जो लंबे समय से संन्यासी जीवन में चले गए हैं, संघ के पिता और नेता हैं।"

(1) "और भिक्षु को रूप का ज्ञान कैसे नहीं होता? यहाँ, भिक्षु यह नहीं समझता कि वास्तव में क्या है: 'सभी प्रकार के रूप चार महातत्वों और चार महातत्वों से व्युत्पन्न रूप हैं।' इसी प्रकार भिक्षु को रूप का ज्ञान नहीं होता।"

(2) "और भिक्षु (साधु) गुणों में अकुशल कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु इसे इस प्रकार नहीं समझता है जैसा वास्तव में है: 'बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मों से पहचाना जाता है; बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मों से पहचाना जाता है।' इसी प्रकार भिक्षु गुणों में अकुशल होता है।"

(3) "एक भिक्षु मक्खियों के अंडे चुनने में कैसे असफल हो जाता है? यहाँ, एक भिक्षु कामुक इच्छा के उत्पन्न विचार को सहन करता है; वह उसे त्यागता नहीं, दूर नहीं करता, समाप्त नहीं करता और मिटाता नहीं है। वह दुर्भावना के उत्पन्न विचार को सहन करता है... हानि पहुँचाने के उत्पन्न विचार को... बुरे हानिकारक (अकुशल) विचारों को जब भी वे उत्पन्न होते हैं; वह उन्हें त्यागता नहीं, दूर नहीं करता, समाप्त नहीं करता और मिटाता नहीं है। इसी प्रकार एक भिक्षु मक्खियों के अंडे चुनने में असफल हो जाता है।"

(4) "एक भिक्षु घावों पर मरहम लगाने में कैसे असफल हो जाता है? यहाँ, किसी आकृति को आँख से देखकर, भिक्षु उसके चिह्नों और विशेषताओं को पकड़ लेता है। यद्यपि, जब वह अपनी दृष्टि को असुरक्षित छोड़ देता है, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, फिर भी वह उस पर संयम नहीं बरतता; वह दृष्टि की रक्षा नहीं करता; वह दृष्टि को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करता। कान से ध्वनि सुनकर... [349]... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह उसके चिह्नों और विशेषताओं को पकड़ लेता है। यद्यपि, जब वह अपने मन को असुरक्षित छोड़ देता है, तो लालसा और निराशा की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, फिर भी वह उस पर संयम नहीं बरतता; वह मन की रक्षा नहीं करता; वह दृष्टि को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करता।" मन की शक्ति। इसी तरह एक भिक्षु घावों पर मरहम लगाने में विफल रहता है।

(5) "एक भिक्षु कुँवों में धुआँ करने में कैसे असफल होता है? यहाँ, एक भिक्षु दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक उपदेश नहीं देता जैसा उसने सुना और सीखा है। इसी प्रकार एक भिक्षु कुँवों में धुआँ करने में असफल होता है।"

(6) "और एक भिक्षु को जलस्रोत का ज्ञान कैसे नहीं होता? यहाँ, एक भिक्षु समय-समय पर उन भिक्षुओं के पास नहीं जाता जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, और उनसे यह नहीं पूछता: 'यह क्या है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूजनीय भिक्षु उसे वह प्रकट नहीं करते जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट नहीं करते, और उसके अनेक उलझनों को दूर नहीं करते। इसी प्रकार एक भिक्षु को जलस्रोत का ज्ञान नहीं होता।"

(7) "और एक भिक्षु को यह कैसे नहीं पता होता कि पीने का क्या अर्थ है? यहाँ, जब तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन का उपदेश दिया जा रहा होता है, तब भिक्षु को अर्थ में प्रेरणा नहीं मिलती, धम्म में प्रेरणा नहीं मिलती, धम्म से संबंधित आनंद नहीं मिलता। इसी प्रकार एक भिक्षु को यह नहीं पता होता कि पीने का क्या अर्थ है।"

(8) "एक भिक्षु मार्ग को कैसे नहीं जानता? यहाँ, एक भिक्षु अष्टांगिक मार्ग को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता। इसी प्रकार एक भिक्षु मार्ग को नहीं जानता।"

(9) "और एक भिक्षु चरागाहों में कैसे अकुशल होता है? यहाँ, एक भिक्षु ध्यान (सती) की चार अवस्थाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता। इसी प्रकार एक भिक्षु चरागाहों में अकुशल होता है। 2231

(10) "और एक भिक्षु कैसे दूध निचोड़ता है? यहाँ, जब निष्ठावान गृहस्थ एक भिक्षु को वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन लेने के लिए आमंत्रित करते हैं, तो एक भिक्षु बिना किसी संकोच के स्वीकार करता है। इस प्रकार एक भिक्षु दूध निचोड़ता है।"

(11) "और एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति अतिरिक्त आदर कैसे नहीं दिखाता जो दीर्घकालीन संन्यासी बन चुके हैं, संघ के पिता और नेता? यहाँ, एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से प्रेम और दया का भाव प्रकट नहीं करता जो दीर्घकालीन संन्यासी बन चुके हैं, संघ के पिता और नेता। इसी प्रकार एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति अतिरिक्त आदर नहीं दिखाता जो दीर्घकालीन संन्यासी बन चुके हैं, संघ के पिता और नेता।"

"इन ग्यारह गुणों से रहित भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और पूर्णता प्राप्त करने में असमर्थ है।"

भिक्षुओं में ग्यारह गुण होते हैं; एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में सक्षम होता है। वे ग्यारह गुण कौन से हैं? यहाँ, (1) ग्वाले को रूप का ज्ञान होता है; (2) वह चरित्र-विज्ञान में निपुण होता है; (3) वह मक्खियों के अंडे चुनकर निकालता है; (4) वह घावों पर पट्टी बांधता है; (5) वह बाड़ों में धुआं करता है; (6) वह पानी के स्थान को जानता है; (7) वह जानता है कि पानी पीने का क्या अर्थ होता है; (8) वह रास्ते को जानता है; (9) वह चरागाहों में निपुण होता है; (10) वह दूध को पूरी तरह से नहीं निकालता; और (11) वह उन बैलों का विशेष आदर करता है जो झुंड के मुखिया और नेता होते हैं। इन ग्यारह गुणों से युक्त होने के कारण, एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में सक्षम होता है।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और पूर्णता प्राप्त करने में सक्षम होता है। वे ग्यारह गुण कौन से हैं? [351] यहाँ, (1) भिक्षु को रूप का ज्ञान होता है; (2) वह विशेषताओं में निपुण होता है; (3) वह मक्खियों के अंडे चुनता है; (4) वह घावों पर पट्टी बांधता है; (5) वह झोपड़ियों में धुआँ करता है; (6) वह जलस्थान को जानता है; (7) वह जानता है कि पानी पीना क्या होता है; (8) वह मार्ग को जानता है; (9) वह चरागाहों में निपुण होता है; (10) वह दूध नहीं सुखाता; और (11) वह उन वृद्ध भिक्षुओं के प्रति विशेष आदर दिखाता है जो लंबे समय से संन्यासी जीवन में जा चुके हैं, संघ के पिता और नेता हैं।

(1) "भिक्षु को रूप का ज्ञान कैसे होता है? यहाँ, भिक्षु इसे इस प्रकार समझता है: 'सभी प्रकार के रूप चार महातत्वों और चार महातत्वों से व्युत्पन्न रूप हैं।' इस प्रकार भिक्षु को रूप का ज्ञान होता है।"

(2) "भिक्षुओं में निपुणता कैसे प्राप्त होती है? यहाँ, भिक्षु इसे इस प्रकार समझते हैं: 'बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मों से पहचाना जाता है; बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मों से पहचाना जाता है'। इसी प्रकार भिक्षु गुणों में निपुण होते हैं।"

(3) "भिक्षु मक्खियों के अंडे कैसे चुनता है? यहाँ, भिक्षु कामुक इच्छा के किसी भी विचार को सहन नहीं करता; वह उसे त्याग देता है, दूर करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। वह दुर्भावना के किसी भी विचार को सहन नहीं करता... हानि पहुँचाने के किसी भी विचार को... बुरे हानिकारक (अकुशल) विचारों को जब भी वे उत्पन्न होते हैं; वह उन्हें त्याग देता है, दूर करता है, समाप्त करता है और मिटा देता है। इसी प्रकार भिक्षु मक्खियों के अंडे चुनता है।"

(4) "एक भिक्षु घावों पर मरहम कैसे लगाता है? यहाँ, किसी आकृति को आँख से देखकर, भिक्षु उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं पकड़ता। क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह दृष्टि की रक्षा करता है; वह दृष्टि के संयम का पालन करता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्शित वस्तु का अनुभव करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह उसके लक्षणों और विशेषताओं को नहीं पकड़ता। क्योंकि यदि वह मन की दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लालसा और उदासी की बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, [352] इसलिए वह उस पर संयम बरतता है; वह मन की रक्षा करता है; वह मन के संयम का पालन करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु भिक्षु घावों पर पट्टी बांधता है।

(5) "और भिक्षु (भिक्षु) झोपड़ियों में धुंआ कैसे करते हैं? यहाँ, भिक्षु दूसरों को धम्म का विस्तारपूर्वक उपदेश देते हैं जैसा उन्होंने सुना और सीखा है। इसी प्रकार भिक्षु झोपड़ियों में धुंआ करते हैं।"

(6) "और भिक्षु को जलस्रोत का ज्ञान कैसे होता है? यहाँ, समय-समय पर भिक्षु उन भिक्षुओं के पास जाता है जो विद्वान हैं, विरासत के उत्तराधिकारी हैं, धम्म के विशेषज्ञ हैं, अनुशासन के विशेषज्ञ हैं, रूपरेखाओं के विशेषज्ञ हैं, और उनसे पूछता है: 'यह क्या है, भंते? इसका क्या अर्थ है?' तब वे पूजनीय भिक्षु उसे वह प्रकट करते हैं जो प्रकट नहीं हुआ है, अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करते हैं, और अनेक उलझनों को दूर करते हैं। इस प्रकार भिक्षु को जलस्रोत का ज्ञान होता है।"

(7) "और एक भिक्षु को कैसे पता चलता है कि पीने का क्या अर्थ है? यहाँ, जब तथागत (बुद्ध) द्वारा घोषित धम्म और अनुशासन का उपदेश दिया जा रहा होता है, तो भिक्षु को अर्थ में प्रेरणा मिलती है, धम्म में प्रेरणा मिलती है, धम्म से जुड़ा आनंद प्राप्त होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु को पता चलता है कि पीने का क्या अर्थ है।"

(8) "और भिक्षु मार्ग को कैसे जानता है? यहाँ, भिक्षु अष्टांगिक मार्ग को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है। इसी प्रकार भिक्षु मार्ग को जानता है।"

(9) "और एक भिक्षु चरागाहों में कैसे कुशल होता है? यहाँ, एक भिक्षु ध्यान (ध्यान/सती) की चार स्थापनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। इसी प्रकार एक भिक्षु चरागाहों में कुशल होता है।"

(10) "और एक भिक्षु कैसे दूध नहीं सुखाता? यहाँ, जब निष्ठावान गृहस्थ एक भिक्षु को वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के लिए औषधियाँ और भोजन लेने के लिए आमंत्रित करते हैं, तो एक भिक्षु संयम से स्वीकार करता है। [353] इस प्रकार एक भिक्षु दूध नहीं सुखाता।

(11) "एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति अतिरिक्त आदर कैसे प्रदर्शित करता है जो दीर्घकालीन संन्यासी जीवन में चले गए हैं, जो संघ के पिता और नेता हैं? यहाँ, एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति शारीरिक, वाणी और मानसिक रूप से प्रेम और करुणा (मेट्टा) का प्रदर्शन करता है जो दीर्घकालीन संन्यासी जीवन में चले गए हैं, जो संघ के पिता और नेता हैं। इस प्रकार एक भिक्षु उन वरिष्ठ भिक्षुओं के प्रति अतिरिक्त आदर प्रदर्शित करता है जो दीर्घकालीन संन्यासी जीवन में चले गए हैं, जो संघ के पिता और नेता हैं।"

"इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस धम्म और अनुशासन में वृद्धि, प्रगति और पूर्णता प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

18 समाधि (स्वयं में लीन होना/सम्मोहन) (1)

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 2232

भाहते, क्या कोई भिक्षु समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी को पृथ्वी के संदर्भ में न देखे; (2) जल को जल के संदर्भ में न देखे; (3) अग्नि को अग्नि के संदर्भ में न देखे; (4) वायु को वायु के संदर्भ में न देखे; (5) अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) को अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) के संदर्भ में न देखे; (6) अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) को अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) के संदर्भ में न देखे; (7) शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को शून्यता के आधार के संदर्भ में न देखे; (8) न सबोध (सन्न/संज्ञा) और न अबोध (अज्ञात) के क्षेत्र (आयतन) को न सबोध (सन्न/संज्ञा) और न अबोध (अज्ञात) के क्षेत्र (आयतन) के संदर्भ में न देखे; (9) इस संसार को इस संसार के संदर्भ में न देखे? दुनिया; (10) दूसरी दुनिया के संबंध में दूसरी दुनिया का; (11) किसी भी चीज़ का जिसे मन द्वारा देखा, सुना, महसूस किया, जाना, पहुँचा, खोजा और परखा गया हो, लेकिन वह फिर भी बोधगम्य होगा?

"वह कर सकता था, भिक्षुओं।" [354]

"पर हे भंते, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इस प्रकार बोध करता है: 'यह शांति है, यह उदात्त है, अर्थात् समस्त कर्मों का स्थिर होना, समस्त प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निर्वाण।' हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु समाधि की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी को पृथ्वी से, जल को जल से, अग्नि को अग्नि से, वायु को वायु से, अनंत अंतरिक्ष के गोले को अनंत अंतरिक्ष के आधार से, अनंत चेतना के गोले को अनंत चेतना के गोले से नहीं देख पाता। शून्यता के क्षेत्र (आयतन) का शून्यता के क्षेत्र (आयतन) से संबंध; न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) का न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) से संबंध; इस संसार का इस संसार से संबंध; दूसरे संसार का दूसरे संसार से संबंध; मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, खोजी और परखी गई किसी भी चीज के प्रति वह बोधगम्य रहेगा।

---

19 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (2)

वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

“आदरणीय महोदय!” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, क्या कोई भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न हो [355] . . . (11) मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज़ के प्रति वह सजग रहे?"

"भंते, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भंते," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न रहे... वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज के प्रति सजग न रहे, लेकिन फिर भी वह सजग रहेगा।"

"पर हे भंते, वह समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता था?"

"यहाँ, भिक्षु इस प्रकार बोध करते हैं: 'यह शांति है, यह उदात्त है, अर्थात् सभी गतिविधियों का शांत होना, सभी प्राप्तियों का त्याग, तृष्णा का नाश, वैराग्य, निब्बान।' इसी प्रकार, भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकते हैं कि वे पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न रहें [356] ...वे मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज़ के प्रति सजग न रहें, परन्तु वे फिर भी सजग रहें।"

---

20 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (3)

फिर कई भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"मित्र सारिपुत्त, क्या कोई भिक्षु ऐसी एकाग्रता की अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न हो ... (11) वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज़ के प्रति सजग न हो, लेकिन फिर भी वह सजग रहे?"

[इसके बाद जो लिखा है वह 11:18 के समान है।] [357]

---

21 समाधि (स्व-लीनता/समाधि) (4)

वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

"मित्रों, क्या कोई भिक्षु समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकता है कि (1) वह पृथ्वी के संबंध में पृथ्वी के प्रति सजग न हो ... (1 1) वह मन द्वारा देखी, सुनी, महसूस की, जानी, प्राप्त की, खोजी और परखी गई किसी भी चीज के प्रति सजग न हो, लेकिन फिर भी वह सजग रहे?"

"हे मित्र, हम दूर-दूर से पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। पूज्य सारिपुत्त से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो फिर, मित्रों, ध्यान से सुनो और गौर करो। [358] मैं बोलूंगा।"

"जी हां, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

[इसके बाद का भाग 11:19 के समान है।]

तृतीय. समानता अनुभाग (समननवग्गो)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

22-29 अनित्यता का चिंतन (अनित्य संस्कृत: अनित्य)

"गायिका (भिक्षु) होने के कारण, एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में असमर्थ होता है। वे ग्यारह कौन से हैं? यहाँ, (1) ग्वाले को रूप का ज्ञान नहीं होता; (2) वह विशेषताओं को पहचानने में अकुशल होता है; (3) वह मक्खियों के अंडे नहीं निकाल पाता; (4) वह घावों पर पट्टी नहीं बांध पाता; (5) वह शेड में धुआं नहीं कर पाता; (6) उसे पानी के स्थान का ज्ञान नहीं होता; (7) उसे पीने का अनुभव नहीं होता; (8) उसे रास्ते का ज्ञान नहीं होता; (9) वह चरागाहों के बारे में अकुशल होता है; (10) वह दूध दुहता रहता है; और (11) वह उन बैलों का विशेष आदर नहीं करता जो झुंड के मुखिया और सरदार होते हैं। इन ग्यारह कारकों के कारण, एक ग्वाला पशुओं के झुंड की देखभाल और पालन-पोषण करने में असमर्थ होता है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु, आँख में अनित्यता (अनिच्छा/अनित्य) को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में दुख को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में अनात्म को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में विनाश को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में लुप्त होते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में समाप्ति को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता... आँख में त्याग को देखते हुए ध्यान में नहीं रह सकता..."

30 — 69

"...कान में...नाक में...जीभ में...शरीर में...मन में..."

---

70 - 117

"...रूपों में...ध्वनियों में...गंधों में...स्वादों में...स्पर्श वस्तुओं में...घटनाओं (धर्म) में..."

---

118 - 165

"...दृष्टि चेतना में... कान चेतना में... नाक चेतना में... जीभ चेतना में... शरीर चेतना में... मन चेतना में..."

---

166 - 213

"...आँखों के संपर्क में... कानों के संपर्क में... नाक के संपर्क में... जीभ के संपर्क में... शरीर के संपर्क में... मन के संपर्क में..."

---

214 — 261

"...आँखों के संपर्क से उत्पन्न वेदना में... कानों के संपर्क से उत्पन्न वेदना में... नाक के संपर्क से उत्पन्न वेदना में... जीभ के संपर्क से उत्पन्न वेदना में... शरीर के संपर्क से उत्पन्न वेदना में... मन के संपर्क से उत्पन्न वेदना में..."

---

262 - 309

"...रूपों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में... ध्वनियों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में... गंधों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में... स्वादों की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में [360]... घटनाओं (धम्म) की अनुभूति (सन्ना/संज्ञा) में..."

---

310 — 357

"...रूपों के प्रति जागरूकता में... ध्वनियों के प्रति जागरूकता में... गंधों के प्रति जागरूकता में... स्वादों के प्रति जागरूकता में... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति जागरूकता में... घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता में..."

---

358 - 405

"... रूपों के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ... ध्वनियों के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ... गंध के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ... स्वाद के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ... स्पर्श वस्तुओं के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ... घटना (धम्म) के लिए लालसा (तन्हा / तृष्णा) में ..."

---

406 — 453

रूपों के बारे में चिंतन में... ध्वनियों के बारे में चिंतन में... गंधों के बारे में चिंतन में... स्वादों के बारे में चिंतन में... स्पर्शनीय वस्तुओं के बारे में चिंतन में... घटनाओं (धम्म) के बारे में चिंतन में...

---

454 — 501

"...रूपों की परीक्षा में... ध्वनियों की परीक्षा में... गंधों की परीक्षा में... स्वादों की परीक्षा में... स्पर्शनीय वस्तुओं की परीक्षा में... घटनाओं (धम्म) की परीक्षा में..."

IV. कामवासना (राग) और इसी प्रकार की पुनरावृत्ति श्रृंखला 2234

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

502

भिक्षुओं, कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए ग्यारह चीजों का विकास करना आवश्यक है। वे ग्यारह चीजें क्या हैं? प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था), द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था), तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था), चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था),

प्रेम (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति, करुणा (करुणा) द्वारा मन की मुक्ति, परोपकारी आनंद (परोपकार) द्वारा मन की मुक्ति, अनंत अंतरिक्ष का क्षेत्र (आयतन), अनंत चेतना का क्षेत्र (आयतन), और शून्यता का क्षेत्र (आयतन)। कामवासना (राग) का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन ग्यारह चीजों का विकास करना आवश्यक है।

---

503 — 511

"भिक्षुओं, कामवासना (राग) की पूर्ण समझ के लिए... उसके पूर्ण विनाश के लिए... उसके त्याग के लिए... उसके विनाश के लिए... उसके लुप्त होने के लिए... उसके मिट जाने के लिए... उसके अंत के लिए... उसके त्याग के लिए... कामवासना (राग) के त्याग के लिए... इन ग्यारह चीजों का विकास करना है।" [361]

---

512 - 671

भिक्षुओं, प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) के लिए... पूर्ण समझ के लिए... पूर्ण विनाश के लिए... त्याग के लिए... विनाश के लिए... लुप्त होने के लिए... मिट जाने के लिए... निवारण के लिए... त्याग के लिए... घृणा के लिए... मोह के लिए... क्रोध के लिए... शत्रुता के लिए... निंदा के लिए... उद्दंडता के लिए... ईर्ष्या के लिए... कंजूसी के लिए... छल के लिए... धूर्तता के लिए... हठ के लिए... उग्रता के लिए... अहंकार के लिए... घमंड के लिए... नशा के लिए... आलस्य के लिए... इन ग्यारह चीजों का विकास करना चाहिए।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह सुनकर भिक्षु प्रसन्न हुए और भगवान (बुद्ध) के इस कथन से उन्हें बहुत आनंद हुआ।

ग्यारह अध्यायों की पुस्तक पूरी हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> अंगुत्तर निकाय ने

भिक्कु बी.बोधि के संस्करण और उनकी व्याख्याओं में परिवर्तन किया।

अंकगणितीय प्रवचन (अंगुत्तरा निकया)

(उंगलियों पर गिनने वाला भाग)

नोट: पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

<<<< पिछला (AN11)

भिक्कू बी. बोधि के संस्करण में हुए परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ

आभार : भिक्कु बी. बोधि को बहुत-बहुत धन्यवाद कि अंगुत्तरा निकाय का संपूर्ण अनुवाद अब मानव जाति के लिए उपलब्ध है, जो आधुनिक अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं था, जिसके आधार पर यह प्रयास किया गया है।

परिवर्तन की आवश्यकता : बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य शरीर के विकारों को दूर करना, आध्यात्मिक जागृति लाना और इस प्रकार पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ना, अर्थात् मुक्ति (निर्वाण/मोक्ष) प्राप्त करना है। पश्चिम में विकसित भाषाओं में ऐसे शब्द बहुत कम हैं जो इस लक्ष्य को पूरा कर सकें, जो शाब्दिक रूप से संसार से परे, अर्थात् पारलौकिक प्रकृति का है, जबकि भारत और पूर्वी देशों के स्थानीय शब्द ऐसे शब्दों से समृद्ध हैं। इसलिए, जब पाली पाठ का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद किया जाता है, तो परिणाम उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। अतः, नीचे दिए गए कुछ शब्दों का प्रयोग/प्रतिस्थापन किया जाता है और कभी-कभी मूल पाली शब्दों को भी शामिल किया जाता है ताकि इसे समझना आसान हो और यह भिक्षुओं, ध्यानियों और बुद्ध के मार्ग के अभ्यासकर्ताओं सहित सभी के लिए उपयोगी हो सके।

समरूपता बनाए रखने के लिए, इस वेबसाइट (tipitaka.org से) पर उपलब्ध पाली संस्करण पीडीएफ के अनुसार सूत्रों के क्रम संख्या में परिवर्तन किया गया है।

हे भगवान, सौभाग्यशाली >>> भगवान (बुद्ध)

तथागत >>> तथागत (बुद्ध)

सजग, सजगता >>> सतर्क, सतर्कता (पाली अप्पमद, संस्कृत अप्रमद के लिए)

असावधानी, असावधान >>> आलस्य, आलस्य

धम्म >>> बुद्ध का मार्ग

अस्वास्थ्यकर, अकुशल >>> हानिकारक (अकुशल)

लाभकारी, कुशल >>> लाभकारी (कुशल)

एकाग्रता >>> समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन)

चिंतन >>> विचारों के भीतर और बाहर अवलोकन का ध्यान

सचेतनता >>> ध्यान/ध्यान (पाली सती, संस्कृत स्मृति)

ज्ञान >>> दिव्य ज्ञान (पाली पन्ना, संस्कृत प्रज्ञा, प्रत्यक्ष-ज्ञान से), या ध्यान की समाधि अवस्थाओं के दौरान प्राप्त दिव्य ज्ञान।

घटना >>> धम्म, धम्म शब्द का अर्थ प्रयोग के आधार पर घटना, मार्ग, गुण आदि हो सकता है।

आध्यात्मिक जीवन >>> ब्रह्मचर्य (संयमित पवित्र जीवन)

बेघरपन >>> संन्यासी/तपस्वी जीवन

मानसिक शक्ति >>> जादू (पाली इद्धि, संस्कृत रिद्धि)

कुलीन >>> कुलीन (आर्य)

घुमक्कड़ >>> तपस्वी

दंड >>> हिंसा (दंड के लिए)

दान >>> दान देना

शांति >>> समभाव (समथा)

अंतर्दृष्टि ध्यान >>> विपश्यना ध्यान

नाम (नाम और रूप में प्रयुक्त) >>> मन (पाली नाम)

संघ >>> भिक्षुओं का संघ

सक्का >>> पाली सक्का संस्कृत शक्र (स्वर्ग में देवताओं के राजा इंद्र)

भावना >>> संवेदनाएँ (वेदना)

सुख >>> प्रसन्नता (सुख)

परमानंद >>> परमानंद (पीति)

बोध >>> बोध या अनुभूति (पाली सन्ना, संस्कृत संज्ञा)

पूर्व निवास >>> पूर्व जन्मों के निवास

आनंद >>> आनंद (पाली पमोज्जा)

अमरता >>> ध्यान में प्राप्त मुक्ति की अवस्था (पाली अमाता, संस्कृत अमृत)

प्रेम >>> करुणा (पाली मेट्टा, संस्कृत)

अस्तित्व >>> अस्तित्व (कारण, पाली भावो, पुनर्जन्म का कारण)

जन्म-प्रवेश >>> जन्म-प्रवेश (अधिकतम 7 पुनर्जन्म, पाली सोतपत्ति)

एक बार लौटने वाला >>> एक बार लौटने वाला (अधिकतम 1 पुनर्जन्म, पाली सकदागामी)

अनागामी >>> अनागामी (कोई सांसारिक पुनर्जन्म नहीं, अनागामी)

इच्छा>>>पाली संखरा, संस. संस्कार

प्रसार >>> 5-इंद्रिय-धोखा (पापंका सं. प्रपंच)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> अंगुत्तर निकाय >> एएन1-विस्तृत

नोट: पाली भाषा में 'C' का उच्चारण 'Ch' की तरह होता है, जैसे 'China' में।

पाली भाषा से अंगुत्तरा निकाय (ईश्वर की पुस्तक) का श्लोक-दर-श्लोक अनुवाद।

अंतर्वस्तु

1(1) एककनिपाता की पुस्तक

1.1(एएन 1.I) (रूप आदि के प्रति आसक्ति) अनुभाग (रूपादिवग्गो)

1.2(एएन 1.II) बाधा खंड का परित्याग (निवारण-पहाना-वाग्गो)

1.3(1.III) बोझिल (अकममानिया-वाग्गो)

1.4(1.IV) अदम्य धारा (अदंता-वाग्गो)

1.5(1.वी) स्पाइक सेक्शन (पनिहिताच्चा-वाग्गो)

1.6(1.VI) चित्त (चेतना) प्रकाशमान है।

1.7(1.VII) ऊर्जा की उत्तेजना आदि खंड (विरियारंभदी-वाग्गो)

1.8(1.VIII) अच्छी दोस्ती आदि खंड (कल्याणमित्तदि-वाग्गो)

1.9(1.IX) आलस्य आदि धारा (पामदादी-वाग्गो)

1.10(1.एक्स) दूसरा सुस्ती आदि खंड (दुतिया-पमादादी-वाग्गो)

1.11(1.XI) बुरा-धम्म खंड (अधम्म-वाग्गो)

1.12(1.बारहवीं) गैर अपराध धारा (अनापत्ति-वाग्गो)

1.13(1.XIII) एक व्यक्ति अनुभाग (एकपुग्गला-वाग्गो)

1.14(1.XIV) अग्रणी (शिष्य) अनुभाग (एटाडग्गा-वाग्गो)

1.14.1i. पहला उप-अध्याय (भिक्षु) 188-197

1.14.2ii. द्वितीय उप-अध्याय 198-208

1.14.3iii. तीसरा उप-अध्याय 209-218

1.14.4iv. चौथा उप-अध्याय 219-234

1.14.5वी. पांचवां उपअध्याय (नन/भिक्कुनिस) 235-247

1.14.6vi. छठा उप-अध्याय (पुरुष गृहस्थ अनुयायी) 248-257

1.14.7vii. सातवाँ उप-अध्याय (महिला गृहस्थ अनुयायी) 258 — 267

1.15(1.XV) असंभव 149 (अत्थाना)

1.16(1.XVI) एक बात 159[एकधम्म]

1.16.1i. पहला उपअध्याय

1.16.2ii. दूसरा उप-अध्याय

1.16.3iii. तीसरा उप-अध्याय 172

1.16.4iv. जंबुद्वीप (भारत) पुनरावृत्ति श्रृंखला [चौथा उप-अध्याय] 322 365

1.17(1.XVII) आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाले गुण अनुभाग

1.18(1.XVIII) फिंगर स्नैप सेक्शन (अपराच्चरासंघातवग्गो)

1.19(1.XIX) माइंडफुलनेस (ध्यान) शरीर की ओर निर्देशित (कायगाता-सती-वाग्गो)

1.20(1.XX) मृत्युहीन धारा 214 (अमाता-वाग्गो सं. अमृत वर्ग)

(1) एककनिपाता की पुस्तक

(एएन 1.I) (रूप आदि के प्रति आसक्ति) अनुभाग (रूपादिवग्गो)

(अर्थ : रूप-रूप, सद्दो-आवाज, गंधो-गंध, रसो-स्वाद, फोत्थब्बो-स्पर्श)

नमो (श्रद्धांजलि) तस्सा (उसको) भगवतो (भगवान/ईश्वर), अरा (शत्रु अर्थात मृत्यु) हतो (पराजित करने वाला),

सम्मा (सही ढंग से), सम्बुद्धस्स (पूर्णतः जागृत, बुद्ध)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

---

1. मैंने ऐसा सुना है—एक समय भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा— "भिक्षुओं।" "जी भगवान," उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) को उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) ने कहा—

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई रूप ज्ञात नहीं है जो स्त्री के रूप की तरह किसी पुरुष के मन को मोहित कर ले। हे भिक्षुओं, स्त्री का रूप किसी अन्य रूप की तुलना में पुरुष के मन को अधिक मोहित करता है।

1. Evaṃ me sutaṃ‖ ‖

एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरमे।‖ ‖

तत्र खो भगव भिक्खु अमांतेसि:‖ ‖

"भिक्खवो" ति.‖ ‖

"भदंते" ति ते भिक्खु भगवतो पचसोसुऽ‖ ‖

Bhagavā etad avoca:‖ ‖

"नाहं, भिक्खवे, अण्णां एक-रूपं पि समनुपासामि‖

यं एवं पुरिसस्सा चित्तं परियादय तिथति‖

यथयिदाṃ, भिक्खवे, इत्थि-रूपाṃ‖ ‖

इत्थि-रूपाṃ, भिक्खवे, पुरिसस्सा चित्तं परियादया तिथति" ति.‖‖

1. मैंने सुना है - एक समय भगवान (बौद्ध) अनाथपिंडिका के मठ में जेतवन में सात्विकता में रुके थे। तब भगवान (बौद्ध) ने भिक्षुओं को प्रकट किया - "भिक्षुओं।" "हां, भगवान," भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) को उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) ने कहा -

भिक्षुओं, मुझे इसके बारे में किसी भी तरह से पता नहीं है कि एक महिला के रूप में एक पुरुष के मन को पकड़ लिया जाता है। एक स्त्री का रूप, साधु, किसी अन्य रूप की तरह पुरुष के मन को पकड़ लेता है।

1. एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खु अम्नतेसी - "भिक्खवो"ति। "भदन्ते"ति ते भिक्खु भगवतो पच्चश्चसोसुं। भगवा एतदवोच -

"नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकरूपमपि समनुपस्सामि यं एवं पुरिस्स्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथैदं, भिक्खवे, इत्थिरूपं। इत्थिरूपं, भिक्खवे, पुरिस्स्स चित्तं परियादाय तिट्ठति'ति। पथमं.

टिप्पणियाँ: इत्थि = स्त्री(संस्कृत-इस्त्री); रूप=रूप/आकार; भिक्खु/भिक्खवे=भिक्षु; पुरिसा=मनुष्य; चित्त=मन; तत्र=वहां

---

2. “भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई आवाज़ नहीं पता जो किसी पुरुष के मन पर स्त्री की आवाज़ की तरह प्रभाव डालती हो। हे भिक्षुओं, स्त्री की आवाज़ किसी अन्य आवाज़ की तरह पुरुष के मन पर प्रभाव डालती है।”

2. "नाहौ, भिक्खवे, अण्णां एक-सद्दाम पि समनुपासामि‖

यं एवं पुरिसस्सा चित्तं परियादय तिथति‖

यथायिदाṃ, भिक्खवे, इत्थि-सद्दो‖ ‖

इत्थि-सद्दो, भिक्खवे, पुरिसस्सा चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.‖‖

2. भिक्षुओं, मुझे ऐसी किसी भी आवाज के बारे में नहीं पता है जो किसी महिला की आवाज की तरह पुरुष के मन को पकड़ ले। एक महिला की आवाज, साधुओं, किसी अन्य आवाज की तरह एक आदमी के मन को पकड़ना है।

2. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकसद्दमपि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिसद्दो। इत्थिसद्दो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति'ति। दुतीयं।

टिप्पणियाँ: सद्दो=आवाज(संस. शब्द)

---

3. “भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई गंध नहीं पता जो स्त्री की गंध की तरह किसी पुरुष के मन पर इतना गहरा प्रभाव डालती हो। हे भिक्षुओं, स्त्री की गंध किसी अन्य गंध की तरह किसी पुरुष के मन पर गहरा प्रभाव डालती है।”

3. "नाहं, भिक्खवे, अण्णां एक-गंधं पि समनुपासामि॥

यं एवं पुरिसस्सा चित्तं परियादय तिथति॥

यथैयिदौ, भिक्खवे, इत्थि-गंधो॥ ॥

इत्थि-गंधो, भिक्खवे, पुरिसस्सा चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.।॥

3. भिक्षुओं, मुझे किसी भी गंध का पता नहीं है जो किसी महिला की गंध की तरह एक आदमी के मन को पकड़ती है। एक महिला की गंध, साधु, किसी अन्य गंध की तरह एक आदमी के मन को पकड़ना है।

3. "नहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकगन्धमपि समनुपस्सामि यं एवं पुरिस्स्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिगन्धो। इत्थिगन्धो, भिक्खवे, पुरिस्स्स चित्तं परियादाय तिट्ठति'ति। ततीयं।

टिप्पणी: गंधम/गंधो = सुगंध

---

4. “भिक्षुओं, मुझे किसी ऐसे स्वाद का ज्ञान नहीं है जो स्त्री के स्वाद की तरह किसी पुरुष के मन पर हावी हो सके। भिक्षुओं, स्त्री का स्वाद किसी अन्य स्वाद की तरह किसी पुरुष के मन पर हावी हो जाता है।”

4. "नाहं भिक्खवे, अण्णां एक-रसम पि समनुपासामि॥

यं एवं पुरिसस्सा चित्तं परियादय तिथति॥

यथैयिदौ, भिक्खवे, इत्थि-रसो॥ ॥

इत्थि-रसो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.।॥

4. भिक्षुओं, मुझे किसी भी स्वाद के बारे में नहीं पता है जो एक महिला जैसा स्वाद पुरुषों के मन को पकड़ लेता है। एक महिला का स्वाद, साधु, किसी अन्य स्वाद की तरह एक आदमी के मन को पकड़ लेता है।

4. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकरसम्पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इथिरसो। इथिरसो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादय तिट्ठति"ति। चतुर्थं।

टिप्पणी: रसम/रसो = स्वाद

---

5. "भिक्षुओं, मुझे किसी ऐसे स्पर्श का ज्ञान नहीं है जो स्त्री के स्पर्श की तरह मनुष्य के मन पर गहरा प्रभाव डालता हो। हे भिक्षुओं, स्त्री का स्पर्श किसी अन्य स्पर्श की तरह मनुष्य के मन पर गहरा प्रभाव डालता है।"

5. "नाहं भिक्खवे, अण्णां एक-फोटहब्बम पि समनुपासामि॥

यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादया तिट्ठति यथयिदां,॥

भिक्खवे, इत्थी-फोथब्बाm̩॥ ॥

इत्थि-फोथब्बाm̩, भिक्खवे, पुरिससस्सा चित्तं परियादया तिथति" ति.॥

5. भिक्षुओं, मुझे कोई भी स्पर्श का पता नहीं है जो किसी पुरुष के दिमाग को पकड़ लेता है जैसे कि किसी महिला का स्पर्श। एक महिला का स्पर्श, साधु, किसी अन्य स्पर्श की तरह पुरुष के मन को पकड़ लेता है।

5. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकफोत्थब्बमपि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिफोत्थब्बो। इत्थिफ़ोट्ठब्बो, भिक्खवे, पुरिस्स्स चित्तं परियादाय तिट्ठति'ति। पञ्चमन्।

नोट: photthabbam=स्पर्श

---

6. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई रूप ज्ञात नहीं है जो स्त्री के मन को पुरुष के रूप की तरह मोहित कर सके। भिक्षुओं, पुरुष का रूप स्त्री के मन को किसी अन्य रूप की तरह मोहित कर लेता है।"

6. "नाहं, भिक्खवे, अण्णां एक-रूपं पि समनुपासामि॥

यं एवं इत्थिया चित्तं परियादय तिथति॥

यथयिदाm̩, भिक्खवे, पुरिसा-रूपाm̩॥ ॥

पुरिसा-रूपाऽ, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादया तिथति" ति.॥ ॥

6. भिक्षुओं, मुझे इसके बारे में कभी नहीं पता कि एक महिला का दिमाग एक पुरुष की तरह पकड़ लेता है। एक आदमी का रूप, साधु, किसी अन्य रूप की तरह एक महिला के मन को पकड़ लेता है।

6. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकरूपमपि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियाद्य तित्थति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसरूपं। पुरिसरूपं, भिक्खवे, इथिया चित्तं परियादाय तिट्ठति'ति। छट्ठं.

---

7. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई ध्वनि ज्ञात नहीं है जो किसी स्त्री के मन पर पुरुष की ध्वनि की तरह प्रभाव डालती हो। भिक्षुओं, पुरुष की ध्वनि किसी अन्य ध्वनि की तुलना में स्त्री के मन पर अधिक प्रभाव डालती है।"

7. "नाहौ, भिक्खवे, अण्णां एक-सद्दाम पि समनुपासामि॥

यं एवं इत्थिया चित्तं परियादय तिथति॥

यथायिदाभि भिक्खवे, पुरिसा-सद्दो॥ ॥

पुरिसा-सद्दो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.॥

7. भिक्षुओं, मुझे ऐसी किसी भी ध्वनि का पता नहीं है जो किसी महिला के दिमाग को पुरुषों की आवाज की तरह पकड़ती हो। एक आदमी की आवाज, भिक्षुओं, किसी अन्य ध्वनि की तरह एक महिला के मन को पकड़ना है।

7. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकसद्दमपि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिससद्दो। पुरिससद्दो, भिक्खवे, इथिया चित्तं परियादाय तिट्ठति"ति। सत्तमं।

---

8. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई गंध नहीं पता जो किसी स्त्री के मन पर पुरुष की गंध की तरह प्रभाव डालती हो। भिक्षुओं, पुरुष की गंध किसी अन्य गंध की तुलना में स्त्री के मन पर कहीं अधिक प्रभाव डालती है।"

8. "नाहं, भिक्खवे, अण्णां एक-गंधं पि समनुपासामि॥

यं एवं इत्थिया चित्तं परियादय तिथति॥

यथयिदाभि भिक्खवे, पुरिसा-गंधो॥ ॥

पुरिसा-गंधो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.॥

8. साधुओं, मुझे ऐसी किसी गंध का पता नहीं है जो किसी महिला के मन को किसी पुरुष की गंध की तरह पकड़ ले। एक आदमी की गंध, भिक्षुओं, किसी अन्य गंध की तरह एक महिला के मन को पकड़ लिया जाता है।

8. "नहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकगन्धमपि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसगन्धो। पुरिसगंधो, भिक्खवे, इथिया चित्तं परियादय तिट्ठति"ति। अट्ठमन्।

---

9. "भिक्षुओं, मुझे किसी ऐसे स्वाद का ज्ञान नहीं है जो किसी स्त्री के मन को पुरुष के स्वाद की तरह मोहित कर सके। भिक्षुओं, पुरुष का स्वाद किसी स्त्री के मन को किसी अन्य स्वाद की तरह मोहित कर लेता है।"

9. "नाहं, भिक्खवे, अण्णां एक-रसम पि समनुपासामि॥

यं एवं इत्थिया चित्तं परियादय तिथति॥

यथैयिदौ, भिक्खवे, पुरिसा-रसो॥ ॥

पुरिसा-रसो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादया तिट्ठति" ति.॥

9. भिक्षुओं, मुझे किसी भी स्वाद का पता नहीं है जो किसी महिला का दिमाग किसी पुरुष के स्वाद की तरह पकड़ लेता है। एक आदमी का स्वाद, साधु, किसी अन्य स्वाद की तरह एक महिला का मन पकड़ लेता है।

9. "नहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरसम्पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तित्थति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसरसो। पुरिसरसो, भिक्खवे, इथिया चित्तं परियादाय तिट्ठति"ति। नवमं.

---

10. “भिक्षुओं, मुझे किसी ऐसे स्पर्श का ज्ञान नहीं है जो किसी स्त्री के मन पर पुरुष के स्पर्श की तरह प्रभाव डालता हो। भिक्षुओं, पुरुष का स्पर्श किसी स्त्री के मन पर ऐसा प्रभाव डालता है जैसा कोई और स्पर्श नहीं डाल सकता।” प्रथम खंड का अंत - प्रपत्र

10. "नाहौ, भिक्खवे, अण्णां एका-फोटहब्बम पि समनुपासामि॥

यं एवं इत्थिया चित्तं परियादय तिथति॥

यथायिदाभिक्खवे, पुरिसा-फोठहब्बाṃ॥ ॥

पुरिसा-फोथब्बाṃ, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादया तिथति" ति.॥

[Rūpadi-vaggo paṭhamo]

10. भिक्षुओं, मुझे किसी भी स्पर्श का पता नहीं है जो किसी महिला का दिमाग पुरुषों के स्पर्श की तरह पकड़ लेता है। एक आदमी का स्पर्श, साधु, किसी अन्य स्पर्श की तरह एक महिला के मन को पकड़ लेता है।

दस. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकफोत्थब्बमपि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसफोत्थब्बो। पुरिसफोट्ठब्बो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति"ति। दसमं.

रूपादिवग्गो पतमो।

(एएन 1.II) बाधा खंड का परित्याग (निवारण-पहाना-वाग्गो)

(निवारण-आवरण/परतें, पहाना-हटाना, वाग्गो-खण्ड)

11। "भिक्षुओं, मुझे आकर्षण के लक्षण के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न हो और उत्पन्न होकर इतनी अधिक बढ़े और फैले। क्योंकि जो व्यक्ति आकर्षण के लक्षण पर लापरवाही से ध्यान देता है, उसकी अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न होती है और बढ़ती ही जाती है।"

11. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नो वा कामच्छंदो उप्पज्जति उप्पन्नो वा कामच्छंडो भयोभवाय वेपुलया संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, सुभनिमित्तम्. सुभनिमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो सेवा कामच्छन्दो उप्पज्जति उप्पन्नो च कामच्चन्दो भयोभावाय वेपुलया संवत्तति। पथमं.

11. भीखू (भिक्षु), मुझे एक और चीज भी दिखाई नहीं दे रही है जिसके कारण अन्न उचक (यौन) की चाहत पैदा होती है और उचक (यौन) की चाहत पैदा होती है और आकर्षण के निशान के रूप में बहुत अधिक वृद्धि होती है। जो आकर्षक, आनंद उचक (यौन) इच्छा के निशान के प्रति प्रतिस्पर्धा से प्रकट होता है और उचक (यौन) इच्छा बढ़ती है और विफल हो जाती है। "

11. " नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प संज्ञाओ वा कामच्छन्दो उप्पजदजति उप्प संज्ञाओ वा कामच्छन्दो भयोभावाय वेपुलादलाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, सुभनिमित्तं। सुभनिमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्प न्याज्यो चेव कामच्छन्दो उप्पजदजति उप्प न्याज्यो च कामच्छन्दो भयोभावाय वेपुललाय संवत्ति"ति। पथमं.

---

12. "भिक्षुओं, मुझे घृणास्पद वस्तु के चिह्न के अलावा कोई और ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जिससे अनचाही दुर्भावना उत्पन्न होती हो और बढ़ती हो। 24 क्योंकि जो व्यक्ति घृणास्पद वस्तु के चिह्न पर लापरवाही से ध्यान देता है, उसमें अनचाही दुर्भावना उत्पन्न होती है और बढ़ती है।"

12. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नो वा ब्यापदो उप्पज्जति उप्पन्नो वा ब्यापादो भयोभावाय वेपुलया सवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पतिघनिमित्तम्. पतिघनिमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो सेवा ब्यापादो उप्पज्जति उप्पन्नो च ब्यापादो भयोभावया वेपुल्लया संवतति'ति। दुतियां.

12. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प न्योग्यो वा ब्यापदो उप्पजदजति उप्प ननो वा ब्यापदो भयोभावाय वेपुलदालाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पतिघनिमित्तं। पतिघ्निमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्प संज्ञाओ चेव ब्यापदो उप्पजदजति उप्प संज्ञाओ च ब्यापदो भयोभावाय वेपुललाय संवत्ति"ति। दुतीयं।

---

13. "भिक्षुओं, मुझे असंतोष, सुस्ती, आलसी अंगड़ाई, भोजन के बाद की सुस्ती और मन की आलस्य के अलावा कोई और ऐसी चीज नहीं दिखती जिससे अनचाही सुस्ती और आलस्य उत्पन्न होती हो और बढ़ती और फैलती हो। 23. सुस्त मन वाले व्यक्ति के लिए अनचाही सुस्ती और आलस्य उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है।"

13. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नं वा पतलामिद्धं [थिनामिद्धं (सि. स्या. कं. पि.)] उप्पज्जति उप्पन्नं वा पतलामिद्धं भयोभवाय वेपुलाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अरति तंदी [तंदी (का.)] विजंभिता [विजंभिका (सी. स्या. कं. पि.)] भट्टसम्मदो चेतासो च लिणट्टं. लिनाचित्तस, भिक्खवे, अनुप्पन्नससेवा थिनमिद्धं उप्पज्जति उप्पन्नंच थिनमिद्धं भिय्योभवाय वेपुलया संवत्तति"। ततियाँ।

13. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प प्रयोगं वा थिनमिद्धं [थिनमिद्धं (सी० स्या० कं० पी०)] उप्पजदति उप्प संज्ञां वा थिनमिद्धं भय्योभावाय वेपुलमदं संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, आरती तंदी [तंदि (क०)] विज्महिता [विजंभिका (सी०) स्या० कं० पि०)] भट्टसम्मदो चेतसो च लीन्ततं। लीनचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प सान्याञ्चेव थिनमिद्धं उप्पजदजति उप्प सान्याञ्च थिनमिद्धं भय्योभावाय वेपुलल्लाय संवत्ति"ति। ततीयं।

---

14. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा कारण नहीं दिखता जिससे अनवजह बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न हो और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप इतना बढ़ जाए जितना कि अशांत मन से। 26 अशांत मन वाले व्यक्ति में अनवजह बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप इतना बढ़ जाते हैं।"

14."नाहं, भिक्खवे, अण्णां एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नं वा उद्धच्चाकुक्कुक्कं उप्पज्जति उपप्पन्नं वा उद्धच्चाकुक्कुक्कं भय्योभवाय वेपुलया संवत्तति यथैयिदं, भिक्खवे, चेतासो अवुपासमो। अवुपसंतचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्नससेवा उद्धच्चाकुक्कुक्कं उप्पज्जति उप्पन्नञ्च उद्धच्चाकुक्कुक्कं भिय्योभवाय वेपुलया संवत्तति। Catuttham.

14. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प साइनं वा उध्दचकु त्रकुचदचं उप्पजदजति उप्प नयनं वा उध्दचचकु क्त्रकुचचं भयोभवाय वेपुललाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चेतसो अवुपसमो। अवूपासन्तचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइनञ्चेव उद्धचदचकु त्रकुचचं उप्पजदजति उपप ग्यानजदच उद्धचदचकु त्रचचं भय्योकुभावाय वेपुलदल्लय संवत्तति"ति। चतुर्थं।

---

15. "भिक्षुओं, मुझे लापरवाही से ध्यान देने के अलावा और कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाहा संदेह उत्पन्न होता हो और बढ़ता-फैलता हो। 27 क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसमें अनचाहा संदेह उत्पन्न होता है और बढ़ता-फैलता है।"

15. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा विकिसिच्चा उप्पज्जति उप्पन्ना वा विकिसिच्चा भयोभवाय वेपुलया संवत्तति यथायिदं," भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा विकिसिच्चा उप्पज्जति उप्पन्ना च विकिसिच्चा भिय्योभवाय वेपुलया संवतति"ति। पंचमं.

15. "नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा विचिकिच्छा उप्पजदजति उप्पा नागा वा विचिकिच्छा भयोभावाय वेपुल्दलाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नासा चेव विचिकिच्छा उप्पजदजति उप्प संज्ञा च विचिकिच्छा भयोभावाय वेपुललाय संवत्ति"ति। पञ्चमन्।

---

16. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई दूसरी चीज नजर नहीं आती जिससे अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न न हो और उत्पन्न हुई कामुक इच्छा का त्याग हो, सिवाय उस अप्रियता के चिह्न के। जो व्यक्ति अप्रियता के चिह्न पर ध्यान देता है, उसकी अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न हुई कामुक इच्छा का त्याग हो जाता है।"

16. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नो वा कामच्छन्दो नुप्पज्जति उपन्नो वा कामच्चन्दो पहियति यथयिदं, भिक्खवे, असुभनिमित्तम्। असुभनिमित्तं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो सेवा कामच्चन्दो नुप्पज्जति उप्पन्नो च कामच्चन्दो पहियति'ति। छठां.

16. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प न्यानो वा कामच्छन्दो नुप्पजदजति उप्प नागानो वा कामच्छन्दो पहियति यथयिदं, भिक्खवे, अशुभनिमित्तं। असुभनिमित्तं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोतो अनुप्प न्याज्यो चेव कामच्छन्दो नुप्पजदजति उप्प नागानो च कामच्छन्दो पहियति"ति। छट्ठं.

---

17. "भिक्षुओं, मुझे प्रेम-कृपा (मेत्ता) द्वारा मन की मुक्ति के अलावा और कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जिससे अनचाही दुर्भावना उत्पन्न न हो और उत्पन्न दुर्भावना का त्याग हो जाए। जो व्यक्ति प्रेम-कृपा द्वारा मन की मुक्ति पर ध्यान देता है, उसकी अनचाही दुर्भावना उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न दुर्भावना का त्याग हो जाता है।"

17. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नो वा ब्यापादो नुप्पज्जति उप्पन्नो वा ब्यापादो पहियति यथयिदं, भिक्खवे, मेत्ता चेतोविमुत्ती। मेट्टं, भिक्खवे, सेतोविमुत्तिन योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो सेवा ब्यापादो नुप्पज्जति उप्पन्नो च ब्यापादो पहियति'ति। सत्तमं.

17. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प न्यानो वा ब्यापदो नुप्पजदजति उप्प संज्ञाओ वा ब्यापदो पहियति यथयिदं, भिक्खवे, मेत्ता चेतोविमुत्ती। मेत्तं, भिक्खवे, चेतोविमुत्तिन योनिसो मनसि करोतो अनुप्प न्यानो चेव ब्यापदो नुप्पजदजति उप्प साइनो च ब्यापदो पहियति"ति। सत्तमं।

---

18. "भिक्षुओं, मुझे उत्तेजना, दृढ़ता और परिश्रम के तत्व के अलावा और कोई ऐसी चीज नहीं दिखती जिसके कारण अनवजह सुस्ती और उनींदापन उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न सुस्ती और उनींदापन का त्याग होता है। 33 क्योंकि जिसने ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) को जागृत कर लिया है, उसमें अनवजह सुस्ती और उनींदापन उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न सुस्ती और उनींदापन का त्याग हो जाता है।"

18. "नहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नं वा पतलीमिद्धं नुप्पज्जति उप्पन्नं वा पतलीमिद्धं पहियति यथयिदं, भिक्खवे, आरंभधातु निक्कमधातु परक्कमधातु। अरद्धविरियस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्नसेव थिनमिद्धं नुप्पज्जति उप्पन्नञ्च थिनमिद्धं पहियति'ति। अठहमं.

18. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प प्रयोगं वा थिनमिद्धं नुप्पजदजति उप्प नागां वा थिनमिद्धं पहियेति यथयिदं, भिक्खवे, अराधातु निकर्मधातु पराकमधातु। अर्धविरियस, भिक्खवे, अनुप्प वैज्ञानिकञ्चेव थिनमिद्धं नुप्पजदजति उपप्प संज्ञाच थिनमिद्धं पहियति"ति। अट्ठमन्।

---

19. "भिक्षुओं, मुझे मन की शांति के सिवा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाही बेचैनी और पश्चाताप न उत्पन्न हो और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप का त्याग हो जाए। 35 शांत मन वाले व्यक्ति में अनचाही बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप का त्याग हो जाता है।"

19. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्नं वा उद्धच्चाकुक्कुक्कं नुप्पज्जति उपप्पन्नं वा उद्धच्चाकुकुक्कं पहियति यथयिदं, भिक्खवे, चेतासो vupasamo. वुपसंतचित्तस, भिक्खवे, अनुप्पन्नससेवा उद्च्चक्कुक्कुक्कं नुप्पज्जति उप्पन्नञ्च उद्धच्चाकुक्कुक्कं पहियति'ति। नवमं.

19. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सीनं वा उध्दचकु त्रकुचदचं नुप्पजजति उप्प नयनं वा उधचचकु त्रकुचदचं पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, चेतसो वूपसमो। पाससन्तचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प सान्याञ्चेव उद्धचदचकु त्रकुचदचं नुप्पजदजति उप्प सज्ञनदच उध्दचदचकु त्रकुचदचं पहियति"ति। नवमं.

---

20. "भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के अलावा और कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जिससे अनचाहा संदेह उत्पन्न न हो और उत्पन्न संदेह दूर हो जाए। 37 क्योंकि जो ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसका अनचाहा संदेह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न संदेह दूर हो जाता है।"

20. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा विकिसिच्चा नुप्पज्जति उप्पन्ना वा विकिसिच्चा पहियति यथायिदं, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा विकिसिच्चा नुप्पज्जति उप्पन्ना च विकिसिच्चा पहियति'ति। दशमं.

निवारणप्पाहनवग्गो दुतियो।

20. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागाना वा विचिकिच्छा नुप्पजदजति उप्प नागा वा विचिकिच्छा पहियति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नासा चेव विचिकिच्छा नुप्पजदजति उप्प नागा च विचिकिच्छा पहियति"ति। दसमं.

निरणप्पहनवग्गो दुतियो।

(1.III) बोझिल (अकममानिया-वाग्गो)

(अकम्मानिया-कठोर/जिद्दी)

21. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित होने पर इतनी अनियंत्रित हो। अविकसित मन अनियंत्रित होता है।"

21. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं एवम् अभविताम् अकम्मनीयं होति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं [यथयिदं चित्तं (सि. पि.) एवमुपरिपी]। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अकम्मनीयं होति'ति। पथमं.

21. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अकम्मनीयं होति यथैदं, भिक्खवे, चित्तं [यथयिदं चित्तं (सी० पी०) एवमुपरिपि]। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अकम्मनीयं होता"ति। पथमं.

---

22. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो विकसित होने पर इतनी सुगम हो। विकसित मन ही सुगम होता है।"

22. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपसामि यम एवं भवितां कम्मनियां होति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं कम्मनियां होति'ति। दुतियां.

22. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भवितं कम्मनीयं होति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं कम्मनीयं।"ति। दुतीयं।

---

23. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसका अविकसित होना इतना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो। अविकसित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

23. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अभवितां महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं महतो अनत्थय संवत्तति। ततियाँ।

23। "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं वंचितं सोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं महतो अनथय संवत्तति।" ततीयं।

---

24. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसका विकास इतने महान कल्याण की ओर ले जाता हो। एक विकसित मन महान कल्याण की ओर ले जाता है।"

24. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं भवितां महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं महतो अत्थय संवत्तति। Catuttham.

24. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भवितं महोथ अथाय संवत्तति यथैदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं मोटो अत्थय संवत्तति"। चतुर्थं।

---

25. "भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जो अविकसित और अप्रकट होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो: मन, जब अविकसित और अप्रकट होता है, तो बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

25. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अभावितं आपतुभूतं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अपतुभूतं महतो अनत्थय संवतति'। पंचमं.

25. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अपातुभूतं मतो अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं आपतुभूतं महतो अनथय संवत्ति"ति। पञ्चमन्।

---

26. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो विकसित और प्रकट होने पर इतना महान लाभ प्रदान करती हो। मन, जब विकसित और प्रकट होता है, तो महान लाभ की ओर ले जाता है।"

26. "नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं भवितां पतिभूतं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं पतुभूतं महतो अत्थय संवत्तति। छठां.

26. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भवितं पातुभूतं, मतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं पातुभूतं मोटो अत्थय संवत्ति"ति। छट्ठं.

---

27. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित और अविकसित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। मन, जब अविकसित और अविकसित होता है, तो बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

27. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अभावितं आबहुलिकतं महतो अनत्थय सांवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबाहुलिकतं महतो अनत्थय संवतति'। सत्तमं.

27. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अबहुलीकातं श्रीमति अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबहुलीकातं महतो अनथय संवत्ति"ति। सत्तमं।

---

28. "भिक्षुओं, मुझे मन के सिवा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जिसका विकास और साधना करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। मन का विकास और साधना करने से महान लाभ प्राप्त होता है।"

28. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं भवितं बहुलिकतं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं बाहुलिकतं महतो अत्थय संवत्तति। अठहमं.

28. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भावितं बहुलीकातं मतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवैतं बहुलीकातं मोटो अत्थय संवत्ति"ति। अट्ठमन्।

---

29. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अविकसित और अविकसित होने पर इतना कष्ट देती हो। मन, अविकसित और अविकसित होने पर, कष्ट देता है।"

29. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अभविता अबहुलिकतम् दुक्खाधिवाहं होति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं।" चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबाहुलिकतं दुक्खाधिवाहं होति'ति। नवमं.

29. "नाहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अवकितं अबहुलीकातं दुक्खादिव्हं होति यथैदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबहुलीकातं दुक्खदिहं होता"ति। नवमं.

---

30. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती, जिसे विकसित और पोषित करने से इतना सुख प्राप्त होता हो। मन, जब विकसित और पोषित होता है, तो सुख प्रदान करता है।"

30. "नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं भवितं बहुलिकतम् सुखाधिवहं होति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं बहुलिकतं सुखाधिवहं होति'ति। दशमं.

Akammaniyavaggo tatiyo.

30. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भवैतं बहुलीकातं सुखधिवाहं होति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवैतं अनेकातं सुखधिवाहं।"ति। दसमं.

अकम्मनियावग्गो तातियो।

(1.IV) अदम्य धारा (अदंता-वाग्गो)

(अदांता अनटेम्ड/वाइल्ड)

31. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

31. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अदंतं महतो अनत्थय सांवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अदन्तं महतो अनत्थय संवत्तति। पथमं.

31. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अदन्तं सोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अदन्तं महतो अनथय संवत्तति"। पथमं.

---

32. "भिक्षुओं, मुझे मन के सिवा कोई और वस्तु दिखाई नहीं देती जिसे वश में करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। वश में किया हुआ मन महान लाभ की ओर ले जाता है।"

32. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपसामि यम एवं दंतं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दंतं महतो अत्थय संवत्तति। दुतियां.

32. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं दंतं महोथ अथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दंतं महतो अथय संवत्तति"। दुतीयं।

---

33. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती, जिस पर सावधानी न बरतने से इतना बड़ा नुकसान हो सकता है। एक असुरक्षित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

33. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवम् अगुत्तं महतो अनत्थय सांवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तम्। चित्तं, भिक्खवे, अगुत्तं महतो अनत्थय संवत्तति। ततियाँ।

33. "नाहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अगुत्तं सीता अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अगुत्तं महतो अनत्थय संवत्तति"। ततीयं।

---

34. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसकी रक्षा करने से इतना बड़ा लाभ होता हो। एक संरक्षित मन बड़े लाभ की ओर ले जाता है।"

34. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं गुट्टं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, गुत्तं महतो अत्थय संवत्तति। Catuttham.

34. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं गुत्तं महोथ अथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, गुत्तं मोटो अत्थय संवत्तति"ति। चतुर्थं।

---

35. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो असुरक्षित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। असुरक्षित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

35. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अरक्खितं महतो अनत्थय सांवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अरक्खितं महतो अनत्थय संवतति'। पंचमं.

35. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अरखितं महोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अरखितं सीता अनथय संवत्ति"ति। पञ्चमन्।

---

36. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जिसकी रक्षा करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। संरक्षित मन महान लाभ की ओर ले जाता है।"

36. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं रक्खितं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं महतो अत्थय संवत्तति। छठां.

36. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं रक्खितं महोथ अथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं महतो अत्थय संवत्ति"ति। छट्ठं.

---

37. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित मन बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

37. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपसामि यम एवं असवुतम् महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तम्। चित्तं, भिक्खवे, असंवुतां महतो अनत्थय संवत्तति। सत्तमं.

37. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अस्नवुतं सीता अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अस्नवुतं महतो अनथय संवत्तति"। सत्तमं।

---

38. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जिसे संयमित करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। संयमित मन महान लाभ की ओर ले जाता है।"

38. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवम् संवुतं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, संवुतं महतो अत्थय संवत्तति। अठहमं.

38. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं संवुतं महोथ अथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, संवुतं महतो अथय संवत्तति।" अट्ठमन्।

---

39. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अनियंत्रित, बेकाबू, असुरक्षित और बेकाबू होने पर इतना बड़ा नुकसान पहुंचाती हो। अनियंत्रित, बेकाबू, असुरक्षित और बेकाबू होने पर मन ही बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

39. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं अदंतं अगुत्तं अरक्खितं असवुतं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं. चित्तं, भिक्खवे, अदंतं अगुत्तं अरक्खितं असन्वुतं महतो अनत्थय सांवत्तति'। नवमं.

39. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं अदन्तं अगुत्तं अरखितं अस्नवुतं सीता अनंताय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अदन्तं अगुत्तं अरखितं अस्नवुतं मोटो अनथय संवत्तति"। नवमं.

---

40. "भिक्षुओं, मुझे मन के सिवा कोई और वस्तु दिखाई नहीं देती, जिसे वश में करने, संरक्षित करने और नियंत्रित करने से इतना महान लाभ प्राप्त होता हो। मन, जब वश में करने, संरक्षित करने, संरक्षित करने और नियंत्रित करने से प्राप्त होता है, तो महान लाभ की ओर ले जाता है।"

40. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं दंतं गुट्टं रक्खितं सवुत्तं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दन्तं गुट्टं रक्खितं संवुतं महतो अत्थय संवत्तति'। दशमं.

Adantavaggo catuttho.

40. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं दन्तं गुत्तं रक्षितं संवुतं मोटो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दन्तं गुत्तं रक्खितं संवुतं महोथ अत्थय संवत्तति"। दसमं.

अदन्तवग्गो चतुत्थो।

(1.वी) स्पाइक सेक्शन (पनिहिताच्चा-वाग्गो)

41. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि पहाड़ी धान या जौ की एक बाली गलत दिशा में गिरी हो और उसे हाथ या पैर से दबा दिया जाए। यह असंभव है कि वह हाथ या पैर को छेदकर खून निकाले। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली गलत दिशा में गिरी है। ठीक उसी प्रकार, यह असंभव है कि भटके हुए मन वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर, सच्चे ज्ञान को जागृत करके निर्वाण प्राप्त कर ले। इसका कारण क्या है? क्योंकि मन भटका हुआ है।"

41. "सेयथापि, भिक्खवे, सलिसुकं वा यवसुकं वा मिच्चापनिहितं हत्थेन वा पदेन वा अक्कांतं हत्थम् वा पदं वा भेच्छति [भिज्जिसति (स्या. कं. का.), भज्जति (सि.) मोग्गलानाब्यकरणं पासितब्बां] लोहितं वा उप्पदेसति नेतं थनं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? मिच्छपाणिहितत्ता, भिक्खवे, शुकस्सा। एवमेवं खो, भिक्खवे, सो वात भिक्खु मिच्छपाणिहितेन सित्तेन अविज्जं भेच्छति, विज्जं उप्पदेसति, निब्बाणं सच्चिकारिस्सति नेतं ठानं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? मिच्छपाणिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस'ति। पथमं.

41. "सेयथापि, भिक्खवे, सलिसुकं वा यवसुकं वा मिच्छपनहितं हत्थेन वा पदेन वा अत्रकांतं हत्थं वा पदं वा भेच्छति [भिज्डिज्स्ति (स्या० कं० क०), सेज्दजति (सी०) मोग्गललानब्यकरणं पास्सित्बं] लोहितं वा उप्पादेस्सति नेतं ठानं विज्जति। तं किस्से? मिच्छपनिहितत्ता, भिक्खवे, सुकस। एवेमेवं खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु मिच्छपनिहितेन चित्तेन अविजजं भेच्छति, विजजं उप्पादेस्स्ति, निब्बानं सच्चिक्रिस्सति नेतं ठानं विज्दजति। तं किस्से? मिच्चापनिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस्स"ति। पथमं.

---

42. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि पहाड़ी धान या जौ की एक सुव्यवस्थित बाली को हाथ या पैर से दबाया जाए। संभव है कि वह हाथ या पैर को छेद दे और खून निकल आए। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सुव्यवस्थित है। इसी प्रकार, एक सुव्यवस्थित मन वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन सुव्यवस्थित है।"

42. "सेयथापि, भिक्खवे, सलिसुकं वा यवसुकं वा सम्मापनिहितं हत्थेन वा पदेन वा अक्कांतं हत्थम् वा पदं वा भेच्छति लोहितं वा उपपादेसतिति ठाणमेतं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? सम्मापनिहितत्ता, भिक्खवे, शुकस्सा। एवमेवं खो, भिक्खवे, सो वात भिक्खु सम्मापनिहितेन चित्तेन अविज्जं भेच्छति, विज्जं उपपादेसति, निब्बाणं सच्चिकारिस्सतिति थनामेतं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? सम्मापनिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस'ति। दुतियां.

42. "सेयथापि, भिक्खवे, सलिसुकं वा यवसुकं वा सम्मापनिहितं हत्थेन वा पदेन वा अत्रकान्तं हत्थं वा पादं वा भेच्छति लोहितं वा उप्पादेस्सतिति तन्मेतं विज्जजति। तं किस्से? सम्मापनिहितत्ता, भिक्खवे, सुकस्स। एवेमेवं खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु सम्मापनिहितेन चित्तेन अविजजं भेच्छति, विजजं उप्पादेस्स्ति, निब्बानं सच्चिक्रिस्सतिति ठाणमेतं विज्दजति। तं किस्से? सम्मापनिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस्स"ति। दुतीयं।

---

43. "हे भिक्षुओं, मैंने अपने मन से एक मानसिक रूप से भ्रष्ट व्यक्ति के मन को घेर लिया है और मैं समझता हूँ कि यदि यह व्यक्ति इस समय मर जाए, तो वह नरक में ऐसे पहुँच जाएगा जैसे उसे वहाँ लाया गया हो। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन भ्रष्ट है। मानसिक भ्रष्टता के कारण ही शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

43. "इधाहं [इदाहं (सि.)], भिक्खवे, एकक्कं पुग्गलं पदुथचित्तं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि - 'इमामहि सी अयं समाये पुग्गलो कलां करेया, यथाभट्टं निक्खितो एवं निराये'। इसलिए किस्सा हेतु? चित्तं हिस्सा , भिक्खवे , पदुत्थं । "चेतोपादोसहेतु पना, भिक्खवे, एवामिधेकस्से सत्ता कायस्सा भेदा परं मरण अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति"। ततियाँ।

43. "इधाहं [इदाहं (सी०)], भिक्खवे, एकचदचं पुग्गलं पदुत्थचित्तं एवं चेतसा चेतो परिच्छत् पजानामि - 'इम्महि चे अयं समये पुग्गलो कालं करेय, यथाभट्टं निखित्टो एवं निरये'। तं किस्से? चित्तं हिस्स, भिक्खवे, पदुत्थं। "चेतोपदोसहेतु पण, भिक्खवे, एवमिधेचच्छे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निर्यं उपपज्जन्ति"। ततीयं।

---

44. "हे भिक्षुओं, मैंने एक शांत मन वाले व्यक्ति के मन को अपने मन से घेर लिया है और मैं समझता हूँ कि यदि [9] यह व्यक्ति इस समय मर जाए तो उसे स्वर्ग में ऐसे पहुँचाया जाएगा जैसे उसे वहाँ लाया गया हो। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन शांत है। 42 मन की शांति के कारण ही शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

44. "इधाहं, भिक्खवे, एकक्कं पुग्गलं पसनचित्तं एवं चेतासा चेतो परिच्च पजानामि - 'इमामहि सी अयं समाये पुग्गलो कालं करेया, यथाभट्टं निकखित्टो एवम् सग्गे'. इसलिए किस्सा हेतु? चित्तं हिस्सा, भिक्खवे, पसन्नं। "सीतोपसदहेतु पना, भिक्खवे, एवामिधेकाचे सत्ता कायस्सा भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति"। Catuttham.

44. "इधाहं, भिक्खवे, एकचं चं पुग्गलं पस न्याचित्तं एवं चेतसा चेतो परिचत्तं पजानामि - 'इम्महि चे अयं समये पुग्गलो कलं करेय, यथाभातं निखित्तो एवं सग्गे।' तं किस्से? चित्तं हिस्स, भिक्खवे, पस संज्ञां। "चेतोपसाधेतु पण, भिक्खवे, एवमिधेकच्छे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति"। चतुर्थं।

---

45. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक तालाब है जिसका पानी मैला, गंदा और कीचड़युक्त है। तब किनारे पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें तैरते और आराम करते हुए सीप, कंकड़, मछलियों के झुंड को नहीं देख सकता। इसका कारण क्या है? क्योंकि पानी मैला है। ठीक उसी प्रकार, एक मैले मन वाले भिक्षु के लिए न तो अपना भला जान सकता है, न दूसरों का भला जान सकता है, न ही दोनों का भला जान सकता है, और न ही श्रेष्ठ भिक्षुओं के योग्य ज्ञान और दृष्टि में कोई असाधारण विशिष्टता प्राप्त कर सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन मैला है।"

45. "सेयथापि, भिक्खवे, उदकरहदो अविलो लुदितो कलालिभूतो तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे थितो न पस्सेया सिप्पिसंबुकम्पि [सिप्पिकासंबुकम्पि (का.)] सक्खराकाथलमपि मच्छगुम्बमपि कैरंतमपि तिट्ठन्तमपि. इसलिए किस्सा हेतु? अविलत्ता, भिक्खवे, उदकस्सा। एवमेवं खो, भिक्खवे, सो वात भिक्खु अविलेन सित्तेन अट्टत्थं वा ञास्सति परत्थं वा ञास्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्साधम्मा अलमारिआनादासनविसेसं सच्चिकारिस्सति नेतां ठाणं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? अविलत्ता, भिक्खवे, चित्तसा'ति। पंचमं.

45. "सेयथापि, भिक्खवे, उदकरहदो अविलो लुळितो कल्लिभूतो तथा चखुमा पुरिसो तीरे थितो न पपेय्य सिप्पिसम्बुकम्पि [सिप्पिकसम्बुकम्पि (क०)] सक्खरकथलम्पि मच्छगुम्बम्पि चरणन्तम्पि तिथन्तन्तम्पि। तं किस्से? एविलत्ता, भिक्खवे, उडकस। एवेमेवं खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु एविलेन चित्तेन अट्टत्थं वा न्स्स्स्त पार्थं वा न्स्स्स्त उभयत्थं वा न्स्स्स्त उत्तरिं वा मनुस्सम्मा अलमरियानदस्सन्विसेसं सच्चिक्रिस्सति नेतं ठानं विज्दजति। तं किस्से? एविलत्ता, भिक्खवे, चित्तस"ति। पञ्चमन्।

---

46. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक साफ, शांत और निर्मल जल का तालाब है। उस पर अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति किनारे पर खड़ा होकर सीपियाँ, कंकड़-पत्थर और मछलियों के झुंड को तैरते और विश्राम करते देख सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि जल निर्मल है। ठीक उसी प्रकार, निर्मल मन वाले भिक्षु के लिए अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को जानना और श्रेष्ठ लोगों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में असाधारण विशिष्टता प्राप्त करना संभव है। 44 इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन निर्मल है।"

46. "सेयथापि, भिक्खवे, उदकरहदो एको विप्पसन्नो अनाविलो तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे थितो पस्सेया सिप्पिसंबुकम्पि सक्खराकथलामपि मच्छगुंबमपि कारंतमपि तिथंतमपि। इसलिए किस्सा हेतु? अनाविलत्ता, भिक्खवे, उदकस्सा। एवमेवं खो, भिक्खवे, सो वात भिक्खु अनाविलेन सित्तेन अट्टत्थं वा ञास्सति परत्थं वा ञास्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्साधम्मा अलमारिआनादासनविसेसं सच्चिकारिस्सति ठाणमेतं विज्जति। इसलिए किस्सा हेतु? अनाविलत्ता, भिक्खवे, चित्तस'ति। छठां.

46. "सेयथापि, भिक्खवे, उदकरहदो अच्छो विप्पस सान्यागो अनाविलो तथा चखुमा पुरिसो तीरे थितो पपेय्य सिप्पिसम्बुकम्पि सक्खरकथलमपि मच्छगुंबमपि चरन्तमपि तिट्ठन्तमपि। तं किस्से? अनाविलत्ता, भिक्खवे, उडकस। एवेमेवं खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु एनाविलेन चित्तेन अट्टत्थं वा न्स्स्सति पार्थं वा न्स्स्स्त उभयत्थं वा न्स्स्स्त उत्तरिं वा मनुस्सम्मा अलमरियानदस्सोनविसेसं सच्चिक्रिस्सतिति थनमेतं विज्दजति। तं किस्से? अनाविलत्ता, भिक्खवे, चित्तस्स"ति। छट्ठं.

---

47. "भिक्षुओं, जिस प्रकार चंदन को लचीलेपन और सुगमता के मामले में सर्वश्रेष्ठ वृक्ष माना जाता है, उसी प्रकार मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जो विकसित और सँवारी जाने पर इतनी लचीली और सुगम हो। एक विकसित और सँवारी हुई मन लचीला और सुगम होता है।"

47. "सेयथापि, भिक्खवे, यानि कनिचि रुक्खजातं फंदनो तेसं अग्गमक्खयति यदिदं मुदुताया सेवा कम्मणतया च। एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, नान्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यं एवं भवितं बहुलिकतं मुदु च होति कम्मनञ्च यथायिदं चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवितं बहुलिकतं मुदु च होति कम्मनञ्च होति'ति। सत्तमं.

47. "सेयथापि, भिक्खवे, अर्थात कनिचि रुक्खजातानं फंदनो तेसं अग्गमक्खयति इददं मुदुताय चेव कम्मञ्चताय च। एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, नानदं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं भावितं बहुलीकातं मुदु च होति कम्मंनदं च यथैदं चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भवैतं अनेकातं मुदु च होति कम्मञञ्च होताति। सत्तमं।

---

48. "भिक्षुओं, मुझे मन के अलावा कोई और ऐसी वस्तु नहीं दिखती जो इतनी जल्दी बदलती हो। 45 मन कितनी जल्दी बदलता है, इसका उपमा देना आसान नहीं है।"

48. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यं एवं लहुपरिवतं यथायिदं चित्तं।" यावांचिदं, भिक्खवे, उपमापि न सुकार याव लहुपरिवतं चित्त'न्ति। अठहमं.

48. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं लहुपरिवत्तं यथायिदं चित्तं। यावञ्चिदं, भिक्खवे, उपमापि न सुकरा याव लहुपरिवत्तं चित्त'न्ति। अट्ठमन्।

---

49. "हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है, परन्तु यह आकस्मिक दोषों से दूषित है।"

49. "पभस्सारामिदं, भिक्खवे, चित्तं।" तन्चा खो आगन्तुकेहि उपक्किलसेहि उपक्किलिट्ठ'न्ति। नवमं.

49. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तंदच खो आगन्तुकेहि उपोक्त्रिकिलेसेहिं आक्रांति उपकिलिट्ठ"न्ति। नवमं.

---

50. "हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है और यह आकस्मिक दोषों से मुक्त है।"

50. "पभस्सारामिदं, भिक्खवे, चित्तं। तन्चा खो आगन्तुकेहि उपक्किलसेहि विप्पमुत्त'न्ति। दशमं.

पणिहिताच्चवग्गो पञ्चमो ।

पचास. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तञ्च खो आगन्तुकेहि उपात्रकिलेसेहि विप्पमुत्त"न्ति। दसमं.

पनिहितअच्छवग्गो पंचमो।

(1.VI) चित्त (चेतना) प्रकाशमान है।

51. "हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है, परन्तु यह आकस्मिक दोषों से दूषित है। अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता; अतः मैं कहता हूँ कि अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति के मन का कोई विकास नहीं होता।"

51. "पभस्सारामिदं, भिक्खवे, चित्तं। तन्चा खो आगन्तुकेहि उपक्किलसेहि उपक्किलीथं। तं अस्सुत्वा पुथुज्जनो यथाभूतं नप्पजानाति। तस्मा 'असुत्वतो पुथुज्जनस्सा चित्तभवन नत्थि'ति वदामि'ति। पथमं.

51. " पभस्सरमिदं , भिक्खवे , चित्तं। तंदच खो आगन्तुकेहि उपक्राकिलेसेहि हड़ताली उपकिलिट्ठं। तं अस्सुत्वा पुथुज्जनो यथाभूतं नप्पजानाति। तस्मा 'अस्सुतवतो पुथुज्जंसस्स चित्तभावन नत्थी'ति वदामि"ति। पथमं.

---

52. "हे भिक्षुओं, यह मन प्रकाशमान है और आकस्मिक दोषों से मुक्त है। ज्ञानी शिष्य इसे यथार्थ रूप में समझता है; अतः मैं कहता हूँ कि ज्ञानी शिष्य के लिए मन का विकास संभव है।"

52. "पभस्सारामिदं, भिक्खवे, चित्तं। तन्च खो आगन्तुकेहि उपक्किलसेहि विप्पमुत्तम्। तं सुतव अरियासवको यथाभूतं पजानाति। तस्मा 'सुतावतो अरियासावकस्सा चित्तभवना अट्ठी'ति वदामि'ति। दुतियां.

552. " पभस्सरमिदं , भिक्खवे , चित्तं। तञ्च खो आगन्तुकेहि उपक्राकिलेसेहि विप्पमुत्तं। तं सुतवा अरियसवको यथाभूतं पजानाति। तस्मा 'सुतवतो अरियसावकस चित्तभावन अट्ठी'ति वदामि"ति। दुतीयं।

---

53. "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु क्षण भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) का भाव धारण करे, तो वह ध्यान (सम्मोहन) से रहित भिक्षु कहलाता है, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं करता। 49 तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने अधिक प्रशंसनीय होंगे!"

53. "अच्चरासंघातमत्तमपि सी, भिक्खवे, भिक्खु मेट्टाचित्तम् [मेत्तं चित्तं (सि.), मेत्तचित्तं (स्या. कं. पि. का.)] असेवती; अयं वुच्चति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्जहनो विहारति सत्थुसासनकारो ओवदपतिकरो, अमोघं रथपिंडं भुञ्जति'। को पाना वदो ये नं बहुलिकारोंती! ततियाँ।

553. "अच्छरासङघटमत्तमपि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं [मेत्तं चित्तं (सी०), मेत्तचित्तं (स्या० कं० पी० क०)] आसेवती; अयं वुचदचति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्ञानो विहारति सत्थुसासंकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रथपिण्डं भुञ्जति।' को पण वादो ये नं बहुविक्रोन्ति"ति! ततीयं।

---

54. "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) का भाव विकसित कर ले, तो वह ध्यान (सम्मोहन) से रहित भिक्षु कहलाता है, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने महान होंगे!"

54."अच्चरसंघघटमत्तमपि सी, भिक्खवे, भिक्खु मेत्तचित्तं भवेति; अयं वुच्चति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्जहनो विहारति सत्थुसासनकारो ओवदपतिकरो, अमोघं रथपिंडं भुञ्जति'। को पाना वदो ये नं बहुलिकारोंती! Catuttham.

554. "अच्छरासङघातमत्तमपि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं भवेति; अयं वुचदचति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्ञानो विहारति सत्थुसासंकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रथपिण्डं भुञ्जति।' को पण वादो ये नं बहुविक्रोन्ति"ति! चतुर्थं।

---

55. "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु क्षण भर के लिए भी प्रेम और करुणा (मेत्ता) की भावना में लीन हो जाए, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जो ध्यान (सम्मोहन) से रहित नहीं है, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करता है, जो उनकी सलाह मानता है, और जो देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो इसे विकसित करते हैं, वे कितने अधिक महान होंगे!"

55. "आच्चरासंगहतमट्टमपि सी, भिक्खवे, भिक्खु मेत्तचित्तं मनसि करोति; अयं वुकाति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्जहनो विहारति सत्थुसासनकरो ओवदपतिकरो अमोघं रथपिंडं भुञ्जति'। को पाना वदो ये नं बहुलिकारोंती! पंचमं.

55. "अच्छरासङ्घातमत्तमपि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं मनसि करोति; अयं वुच्चचति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्झानो विहारति सत्थुसासंकरो ओवादपतिकरो अमोघं रत्थपिण्डं भुञ्जति।' को पण वादो ये नं बहुविक्रोन्ति"ति! पञ्चमन्।

---

56. भिक्षुओं, जो भी अकुशल गुण हानिकारक हैं, जो अकुशल गुणों में भाग लेते हैं और उनसे संबंधित हैं, उन सभी का अग्रदूत मन है। 50. मन पहले उत्पन्न होता है, उसके बाद अकुशल गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं।

56. "ये केचि, भिक्खवे, धम्म अकुशला अकुशलभागिया अकुसलपक्खिका, सब्बे ते मनोपुब्बंगमा। मनो तेसं धम्मनं पथमं उप्पज्जति, अनवदेव अकुसला धम्म'ति। छठां.

56. "ये केचि, भिखवे, धम्मा अकुसला अकुसला भागिया अकुसलपखिका, सब्बे ते मनोपुब्बङगमा। मनो तेसं धम्मनं पथमं उप्पजदजति, अन्वदेव अकुसला धम्म"ति। छट्ठं.

---

57. "भिक्षुओं, चाहे वे किसी भी प्रकार के हानिकारक (अकुशल) गुणों का सेवन करें, लाभकारी (कुशल) गुणों का उपयोग करें और लाभकारी (कुशल) गुणों से संबंधित हों, इन सभी का अग्रदूत मन है। मन पहले उत्पन्न होता है, उसके बाद लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं।"

57. "ये केचि, भिक्खवे, धम्म कुसल कुसलभागिया कुसलपक्खिका, सब्बे ते मनोपुब्बंगमा। मनो तेसं धम्मनां पथमं उप्पज्जति, अनवदेव कुसल धम्म'ति। सत्तमं.

57. "ये केचि, भिखवे, धम्मा कुसला कुसलभागिया कुसलपखिका, सब्बे ते मनोपुब्बङगामा। मनो तेसं धम्मनं पथमं उप्पजदजति, अन्वदेव कुसला धम्म"ति। सत्तमं।

---

58. "भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जो अजन्मे अकुशल गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी गुणों को कम करे। 51 आलस्य में अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी गुण कम हो जाते हैं।"

58. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उपपन्ना वा कुशाला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमत्तस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"। अठहमं.

58. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सना वा अकुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नजा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमत्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्प नन्या च कुसला धम्म परिहन्ति'ति। अट्ठमन्।

---

59. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज दिखाई नहीं देती जो जागृति की तरह अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुणों को कम करे। जो जागृत होता है, उसके लिए अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

59. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो।" अप्पमत्तस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। नवमं.

55. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सीन वा कुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नागान वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमत्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजजन्ति उप्प नयना च अकुसला धम्म परिहन्ति"ति। नवमं.

---

60. "भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जो अकारण हानिकारक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे। आलसी व्यक्ति में अकारण हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

60. "नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उपपन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जाम्। कुसितास्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"। दशमं.

अच्चरासंगघातवग्गो चट्टहो।

60. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सना वा अकुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नपा न वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कोसजजं। कुसीतस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च कुसला धम्म परिहन्ति"ति। दसमं.

अच्चरासङ्घातवग्गो छट्ठो।

(1.VII) ऊर्जा की उत्तेजना आदि खंड (विरियारंभदी-वाग्गो)

61. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत होने पर अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों। जिस व्यक्ति में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जागृत हो जाती है, उसमें अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

61. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, वीर्यारम्भो [वीरियारम्भो (सि. स्या. कं. पि.)]। अरद्धविरियस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। पथमं.

61. "नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सत्या वा सला धम्म उप्पजजंति उप्प संज्ञा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, वीरियारंभो [विरियारंभो (सी० स्या० कं० पी०)]। अर्धविरियस, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च अकुसला धम्म परिहन्ति"ति। पथमं.

---

62. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज दिखाई नहीं देती जो अजन्मे अकुशल गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी गुणों को कम करे, जैसा कि प्रबल इच्छा करती है। 52 प्रबल इच्छा वाले व्यक्ति में अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी गुण कम हो जाते हैं।"

62. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, महिच्छता।" महिच्छस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति। दुतियां.

62. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सना वा अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नजा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, महीच्छता। महीचस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च कुसला धम्मा परिहयन्ति"ति। दुतीयं।

---

63. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि इच्छाओं की कमी से होता है। 53 जिन लोगों की इच्छाएं कम होती हैं, उनके लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

63. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, अप्पिच्चता। अप्पिच्चस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। ततियाँ।

63. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सत्या वा कुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नागा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पिच्छता। अप्पिच्छस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च अकुसला धम्म परिहन्ति"ति। ततीयं।

---

64. "भिक्षुओं, मुझे असंतोष के कारण अजन्मे अकुशल गुणों का उत्पन्न होना और लाभकारी गुणों का क्षय होना भी दिखाई नहीं देता। 54 जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं है, उसमें अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और लाभकारी गुण क्षय होते हैं।"

64. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, असन्तुष्टिता। असंतुथस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति। Catuttham.

64. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नासा वा अकुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नागा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, असन्तुत्थिता। असंतुट्ठस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प नागा च कुसला धम्मा परिहन्ति"ति। चतुर्थं।

---

65. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि संतोष से होता है। 55 जो संतुष्ट है, उसके लिए अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

65. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उपपन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सन्तुष्ठिता. सन्तुथस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। पंचमं.

65. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा कुसला धम्म उप्पजंति उप्पा नागा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सन्तुत्थिता। सन्तुट्ठस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च अकुसला धम्म परिहन्ति"ति। पञ्चमन्।

---

66. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो अस्वाभाविक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे, सिवाय लापरवाही से ध्यान देने के। क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसके अस्वाभाविक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

66. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुशाला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो. अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा अकुशल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"। छठां.

66. "नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नयना वा अकुसला धम्म उप्पजदजंन्ति उप्प नसना वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प संज्ञा च कुसला धम्म परिहयन्ति"ति। छट्ठं.

---

67. "भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के समान कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करती हो और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुणों को कम करती हो। जो ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

67. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उपपन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो. योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। सत्तमं.

67. " नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा कुसला धम्म उप्पजदजंति उप नागा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसोमनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नासा चेव कुसला धम्म उप्पजजन्ति उप्प नागा च अकुसला धम्मा परिहन्ति"ति। सत्तमं।

---

68. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हों, जैसा कि पूर्ण ज्ञान की कमी से होता है। जो पूर्ण रूप से ज्ञानी नहीं है, उसके लिए अजन्मे हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

68. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, असंपजन्नं। असंपजनास्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"। अठहमं.

68. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सना वा अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नजा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, असमपजञ्च। असम्पजंसस, भिक्खवे, अनुप्प संज्ञा चेव अकुसला धम्म उप्पजजन्ति उप्प संज्ञा च कुसला धम्म परिहन्ति"ति। अट्ठमन्।

---

69. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) से होता है। 56 पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

69. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, सम्पाजान्नं। संपजनास्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। नवमं.

69. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सत्या वा अप्पजं कुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नागां वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, संपजंन्ति उप्पा नं। संपजंसस, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजंति उप्प नयना च अकुसला धम्म परिहन्ति"ति। नवमं.

---

70. "भिक्षुओं, मुझे बुरी मित्रता के समान कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अव्यक्त हानिकारक (अकुशल) गुणों को उत्पन्न करे और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुणों को कम करे। बुरे मित्रों के साथ रहने वाले व्यक्ति में अव्यक्त हानिकारक (अकुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

70. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, पापमित्तता. पापमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"। दशमं.

वीर्यरम्भादिवग्गो सत्तमो।

70. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सत्या वा अकुसला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पा नागा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प संज्ञा चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प संज्ञा च कुसला धम्म परिहन्ति"ति। दसमं.

वीरीयारंभादिवग्गो सत्तमो।

(1.VIII) अच्छी दोस्ती आदि खंड (कल्याणमित्तदि-वाग्गो)

(कल्याण-शुभकामनाएं; मित्र-दोस्त)

71. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी गुण दिखाई नहीं देता जो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को उत्पन्न करे और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुणों को कम करे, जैसा कि अच्छी मित्रता करती है। अच्छे मित्रों के साथ रहने वाले व्यक्ति के अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हो जाते हैं।"

71."नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता. कल्याणमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"। पथमं.

71. " नहं , भिक्खवे, अञ्चंदं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सत्या वा कुसला धम्म उप्पजजंन्ति उप्प संज्ञा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्मा उप्पजंति उप्प नयना च अकुसला धम्मा परिहन्ति"ति। पथमं.

---

72. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न हों और लाभकारी गुण नष्ट हों, जैसा कि अकुशल गुणों का अनुसरण और उनका अनासक्ति करना होता है। अकुशल गुणों का अनुसरण और लाभकारी गुणों का अनासक्ति करना अजन्मे अकुशल गुणों को उत्पन्न करता है और लाभकारी द्वैत को नष्ट करता है।"

72. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म उप्पजंति उपपन्ना वा कुशाला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुशलनं धम्मनां, अननुयोगो कुसलानां धम्मनां। अनुयोग, भिक्खवे, अकुशलानं धम्मनां, अनुयोग कुसलानां धम्मनां अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति। दुतियां.

72. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सीन वा अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नागा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो कुसलानं धम्मनं। अनुयोगा, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मनं, अन्नूयोगा कुसलानं धम्मनं अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजंति उप्प संज्ञा च कुसला धम्म परिहयन्ति"ति। दुतीयं।

---

73. "भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण कम हों, जैसा कि लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करने से होता है। लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करने से अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) गुण (धम्म) कम हो जाते हैं।"

73."नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुशला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानां धम्मनां, अननुयोगो अकुशलाणं धम्मनां। अनुयोगा, भिक्खवे, कुसलानां धम्मनां, अनुयोगा अकुशलानां धम्मनां अनुप्पन्ना सेवा कुसाला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति। ततियाँ।

73. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नासा वा कुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नागा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो अकुसलानं धम्मनं। अनुयोगा, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगा अकुसलानं धम्मनं अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजंति उप्प संज्ञा च अकुसलानं धम्म परिहन्ति"ति। ततीयं।

---

74. "भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो अनादि ज्ञान के तत्वों को न तो उत्पन्न होने देती है और न ही उत्पन्न ज्ञान के तत्वों को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचने देती है, सिवाय लापरवाही से ध्यान देने के। क्योंकि जो लापरवाही से ध्यान देता है, उसके अनादि ज्ञान के तत्व न तो उत्पन्न होते हैं और न ही उत्पन्न ज्ञान के तत्व विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचते हैं।"

74."नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा बोज्झांगा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा बोज्झांगा न भवनापपुरीं गच्छन्ति यथयिदम्, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा बोज्झांगा नुप्पजंति उप्पन्ना च बोज्झांगा न भवनापपुरीं गच्छन्ती"ति। Catuttham.

74. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सन्या वा बोज्झङगा नुप्पजजंन्ति उप्प सञ्चा वा बोज्झन्गा न भावनापारिपूरिं गच्छन यतिथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नागा चेव बोज्झङ्गा नुप्पजदजंन्ति उप्प नञ्या च बोज्झन्गा न भावनापरिपूरिं गच्छन्ति"ति। चतुर्थं।

---

75. "भिक्षुओं, मुझे ध्यानपूर्वक ध्यान देने के अलावा कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो ज्ञान के अजन्मे तत्वों को उत्पन्न करती हो और ज्ञान के उत्पन्न तत्वों को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचाती हो। [15] जो ध्यानपूर्वक ध्यान देता है, उसके ज्ञान के अजन्मे तत्व उत्पन्न होते हैं और ज्ञान के उत्पन्न तत्व विकास द्वारा पूर्णता तक पहुंचते हैं।"

75."नाहं, भिक्खवे, आननं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा बोज्झांगा उप्पजंति उप्पन्ना वा बोज्झांगा भवनापपुरीं गच्छन्ति यथायिदम्, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा बोज्झांगा उप्पजंति उप्पन्ना च बोज्झांगा भवनापपुरीं गच्छन्ती"ति। पंचमं.

75. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सन्या वा बोज्झङ्गा उप्पजजंन्ति उप्प सञ्चा वा बोज्झङ्गा भावनापरिपूरिं गच्छन्ति यथायिदं, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो। योनिसो , भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प न्याणा चेव बोज्झङ्गा उप्पजजंति उप्प् न्याना च बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति"ति। पञ्चमन्।

---

76. "हे भिक्षुओं, सगे संबंधियों का देहांत नगण्य है। सबसे बुरी हानि तो पन्ना (दिव्य ज्ञान) की होती है।"

76. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहनि यदिदं नातिपरिहनि।" एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पणनापरिहणि'ति। छठां.

76. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं ज्ञातिपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पञ्चपरिहनि"ति। छट्ठं.

---

77. "हे भिक्षुओं, रिश्तेदारों की संख्या में वृद्धि नगण्य है। सबसे अच्छी वृद्धि तो पन्ना (दिव्य ज्ञान) में ही होनी चाहिए। इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करेंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

77. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं नातिवुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनां यदिदं पन्नवुद्धि। तस्मातिहा, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पन्नवुद्धिया वद्धिस्समाति।' इवन्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बा'न्ति। सत्तमं.

77. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं नातिवुद्धि।" एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनं यदिदं पञ्चवुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पञ्चवुधिया वद्धिस्समा'ति। इव्हि वो, भिक्खवे, सिखितब्ब"न्ति। सत्तमं।

---

78. "हे भिक्षुओं, धन की हानि नगण्य है। सबसे बुरी चीज जो खोनी चाहिए वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)।"

78. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहनि यदिदं भोगपरिहनि।" एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पणनापरिहणि'ति। अठहमं.

78. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं भोगपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पञ्चपरिहनि"ति। अट्ठमन्।

---

79. "हे भिक्षुओं, धन की वृद्धि महत्वहीन है। सबसे उत्तम चीज जिसमें वृद्धि करनी चाहिए वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)। इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम पन्ना (दिव्य ज्ञान) में वृद्धि करेंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

79. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं भोगवुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनां यदिदं पन्नवुद्धि। तस्मातिहा, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पन्नवुद्धिया वद्धिस्समाति।' इवन्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बा'न्ति। नवमं.

79. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं भोगवुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनं यदिदं पञ्चवुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पञ्चवुधिया वद्धिस्समा'ति। एवञ्हि वो, भिक्खवे, सिखितब्ब"न्ति। नवमं.

---

80. "भिक्षुओं, यश का खोना तुच्छ है। सबसे बुरी चीज जो खोनी पड़ती है वह है पन्ना (दिव्य ज्ञान)।"

80. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहनि यदिदं यसोपरिहनि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पणनापरिहणि'ति। दशमं.

80. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं यसोपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानिनं यदिदं पञ्चपरिहनि"ति। दसमं.

---

81. "हे भिक्षुओं, यश बढ़ाना तुच्छ है। ज्ञान (पन्न) बढ़ाना सर्वोत्तम है। इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम ज्ञान (पन्न) बढ़ाएंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

81. "अप्पामत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं यशोवुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनां यदिदं पन्नवुद्धि। तस्मातिहा, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पन्नवुद्धिया वद्धिस्समाति।' इवन्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बा'न्ति। पथमं.

कल्याणमित्तदिवाग्गो अट्ठमो।

81. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि इदिदं यसोरुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धिनं यदिदं पञ्चवुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं - 'पञ्चवुधिया वद्धिस्समा'ति। एवञ्हि वो, भिक्खवे, सिखितब्ब"न्ति। पथमं.

कल्याणमित्तादिवग्गो अट्ठमो।

(1.IX) आलस्य आदि धारा (पामदादी-वाग्गो)

(पमादा की असावधानी/आलस्य)

82. "भिक्षुओं, मुझे आलस्य से अधिक हानि पहुँचाने वाली कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती। आलस्य अत्यंत हानि पहुँचाता है।"

82."नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तति'। दुतियां.

28. "नाहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महोथ अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, महतो अनथय संवत्तति"ति। दुतीयं।

---

83. "भिक्षुओं, मुझे जागरूकता के अलावा ऐसी कोई चीज नजर नहीं आती जो इतनी बड़ी भलाई की ओर ले जाए। जागरूकता बड़ी भलाई की ओर ले जाती है।"

83. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अप्पमादो।" अप्पमादो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति'। ततियाँ।

83. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमादो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। ततीयं।

84-85. "भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती जो इतनी बड़ी हानि का कारण बनती हो... (85) ... जो ऊर्जा के जागरण (प्रयास/वीर्य) के समान कोई बड़ी भलाई का कारण बनती हो।"

84. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, कोसज्जाम्। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्तति। Catuttham.

85. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासमि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, वीर्यारंभो। वीर्यारंभो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति। पंचमं.

84. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महोथ अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जजं। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनंताय संवत्तति"ति। चतुर्थं।

85. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, वीरियारंभो। वीरीयारंभो, भिक्खवे, महतो अत्थय संवत्तति"ति। पञ्चमन्।

---

86. ". तीव्र इच्छा . . . (87) . . . इच्छाओं की कमी . . ."

86. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, महिच्छता। महिच्छता, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्तति'। छठां.

87. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अट्ठाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अप्पिच्चता।" अप्पिच्चता, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति'। सत्तमं.

86. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं मोटो अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, महीच्छता। महीच्छता, भिक्खवे, महतो अनथय संवत्तति"ति। छट्ठं.

87. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पिच्छता। अप्पिच्छता, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। सत्तमं।

---

88. ".1. असंतोष (89) . . . संतोष ..."

88. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, असंतुष्टहिता।" असन्तुट्ठिता, भिक्खवे, महतो अनत्थय सांवत्तति'। अठहमं.

89. "नाहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, संतुथित:। सन्तुष्टिता, भिक्खवे, महतो अत्थय संवत्तति। नवमं.

88. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं मोटो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, असन्तुत्थिता। असंतुट्ठिता, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तति"ति। अट्ठमन्।

89. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, सन्तुत्थिता। सन्तुट्ठिता, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। नवमं.

---

90. "...लापरवाही से ध्यान देना... (91) ...सावधानी से ध्यान देना..."

90. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसोमनसिकारो, भिक्खवे, महतो अनत्थय सांवतति'ति। दशमं.

91. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसोमनासिकारो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवतति'ति। एकादशमं.

90. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसोमनसिकारो ,भिक्खवे ,मोटो अनथय संवत्तति"ति। दसमं.

91. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अट्ठाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसोमनासिकारो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। एकादसमं।

---

92. ". . . पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना) . . . (93) . . . पूर्ण समझ।"

92. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, असंपजान्नम्। असंपजान्नं, भिक्खवे, महतो अनत्थय सांवत्तति'। द्वादशमं.

93. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, संपजान्नम्। सम्पजान्नं, भिक्खवे, महतो अत्थय सांवत्तति। तेरसामं.

92. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं मोटो अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, असम्पजञ्च। असमपञ्जञ्चं, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तति"ति। द्वादसमं।

93. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, संपजञ्च। संपञ्जनं, भिक्खवे, मतोथा अत्थय संवत्तति"। तेरसं।

---

94. "... बुरी दोस्ती . . . (95) . . . अच्छी दोस्ती ..."

94. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्ति'ति। कुद्दसामं.

95. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अट्ठाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अत्थय संवत्तति। पन्नरसामं.

94. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं मोटो अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्तति"ति। चुद्दसमन्।

95. "नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। प सयनरसमं।

---

96. "...हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण और लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करना... (97) ... लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण और हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करना। लाभकारी (कुशलनम्) गुणों का अनुसरण और हानिकारक (अकुशलनम्) गुणों का अनुसरण न करने से महान लाभ प्राप्त होता है।"

96. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुशलनं धम्मनां, अनुयोगो कुशलानां।" धम्मणं. अनुयोगो, भिक्खवे, अकुशलनं धम्मनां, अनुयोगो कुशलाणं धम्मनां महतो अनत्थय संवत्तति'। सोऽसासमाम्।

97. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं महतो अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानां धम्मनं, अनुयोगो अकुशलनं धम्मणं. अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानां धम्मनां, अनुयोगो अकुशलानां धम्मनां महतो अत्थया संवतति"। सत्तारसमं.

Pamādādivaggo navamo.

96. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महोथ अनत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो कुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मनं, अनुयोगो कुसलनं धम्मनं सीता अनथय संवत्तति"ति। सोळसमं।

97. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं महोथ अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो अकुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं, अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं सीता अथय संवत्तति"ति। सत्तरसमं।

पमादादिवग्गो नवमो।

(1.एक्स) दूसरा सुस्ती आदि खंड (दुतिया-पमादादी-वाग्गो)

98. "आंतरिक कारकों में, हे भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसा कारक नहीं दिखता जो इतना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो। आलस्य बड़ा नुकसान पहुंचाता है।"

98. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नाण्णां एकांगमपि समनुपासामि यम एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पमादो।" पमादो, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तति'। पथमं.

98. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति कारित्वा नानदं एकङ्गम्पि समनुपस्सामि यं एवं महोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, महतो अनथय संवत्तति"ति। पथमं.

---

99. "भिक्षुओं, आंतरिक कारकों में मुझे एक भी ऐसा कारक नहीं दिखता जो सतर्कता के समान महान कल्याण की ओर ले जाता हो। सतर्कता ही महान कल्याण की ओर ले जाती है।"

99. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नाण्णां एकांगमपि समनुपसामि यं एवम् महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अप्पमादो।" अप्पमादो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवतति"। दुतियां.

99. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपस्सामि यं एवं महोथ अत्थय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमादो , भिक्खवे , महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। दुतीयं।

---

100. "आंतरिक कारकों में, भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसा कारक नहीं दिखता जो इतना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो... (101) ... जो ऊर्जा के जागरण (प्रयास/वीर्य) के समान कोई बड़ा लाभ पहुंचाता हो..."

100. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नाण्णां एकांगमपि समनुपसामि यम एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, कोसज्जाम्। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्तति। ततियाँ।

100. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपस्सामि यं एवं महोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसजदजं। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनंताय संवत्तति"ति। ततीयं।

---

101. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नान्यां एकांगमपि समनुपासामि यम एवं महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, वीर्यारम्भो। वीर्यारंभो, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति। Catuttham.

101. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपस्सामि यं एवं महोथ अथाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, वीरियारंभो। वीरीयारंभो, भिक्खवे, महतो अत्थय संवत्तति"ति। चतुर्थं।

---

102. "...प्रबल इच्छा... 103 ...इच्छाओं की अल्पता..."

104. . . असंतोष .'. . 105 . . . संतोष . .

106. . . लापरवाही से ध्यान देना . . . (107) . . . सावधानीपूर्वक ध्यान देना ..."

108. . . पूर्ण बोध का अभाव (संपजन्ना) . . . 109 . . . पूर्ण बोध (संपजन्ना)..."

102-109. "अज्झट्टिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नान्यां एकांगमपि समनुपसामि यं एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, महिच्छता...पे...अप्पिच्चता... असन्तुऽहिता... सन्तुऽहिता... अयोनिसोमनसिकारो... योनिसोमानसिकारो... असम्पजान्नं... संपजान्नं... द्वादशमम्।

102-109. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपसामि यं एवं महोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, महीच्छता...पे०... अप्पिच्छता... असन्तुट्ठिता... सन्तुत्थिता... अयोनिसोमनसिकारो... योनिमानसिकारो... असम्पञ्चत... संपञ्जन... द्वादसमं।

---

110. "भिक्षुओं, बाह्य कारकों में मुझे ऐसा एक भी कारक नहीं दिखता जो बुरी मित्रता जितना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो...."

110. "बहिरं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नान्यां एकांगमपि समनुपासामि यम एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्ति'ति। तेरसामं.

110. "बाहिरं, भिक्खवे, अङ्गन्ति कारित्वा नाज्जं एकङगमपि समनुपस्सामि यं एवं महोथ अनथय संवत्तति यखवे, भिक्खवे, पापमित्ततः। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थय संवत्तति"ति। तेरसं।

---

111. "भिक्षुओं, बाह्य कारकों में मुझे ऐसा एक भी कारक नहीं दिखता जो अच्छी मित्रता के समान महान लाभ की ओर ले जाता हो।"

111. "बहिरं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नान्यां एकांगमपि समनुपासामि यं एवम् महतो अत्थय सांवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अत्थय संवत्तति। कुद्दसामं.

1. "बहिरं, भिक्खवे, अङ्गन्ति कारित्वा नानदं एकङ्गम्पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अट्ठाय संवत्तति"ति। चुद्दसमन्।

---

112. "भिक्षुओं, आंतरिक कारकों में मुझे एक भी ऐसा कारक नहीं दिखता जो हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और लाभकारी (कुशल) गुणों का अनुसरण न करने जितना बड़ा नुकसान पहुंचाता हो..."

112. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नान्नं एकांगमपि समनुपासामि यम एवं महतो अनत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुशलनम् धम्मनां, अनुयोगो कुसलानां धम्मनां। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुशलनं धम्मनां, अनुयोगो कुशलाणं धम्मनां महतो अनत्थय संवत्तति'। पन्नरसामं.

112. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपासामि यं एवं महोथ अनथय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो कुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मनं, अनुयोगो कुसलनं धम्मनं सीता अनथय संवत्तति"ति। प सयनरसमं।

---

113. . . . जो लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करने और हानिकारक (अकुशल) गुणों का अनुसरण न करने के समान ही महान कल्याण की ओर ले जाता है। लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करना और हानिकारक (अकुशल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करना महान कल्याण की ओर ले जाता है।

113. "अज्जत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति करित्वा नाण्णां एकांगमपि समनुपासामि यम एवम् महतो अत्थय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलनं धम्मणं, अनुनुयोगो अकुशलनं धम्मणं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानां धम्मनां, अनुयोगो अकुशलानां धम्मनां महतो अत्थया संवतति"। सोऽसासमाम्।

113. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अंगन्ति कारित्वा नानदं एकङगम्पि समनुपासामि यं एवं महोथ अट्ठाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगोसल कुआनं धम्मनं, अन्नुयोगो अकुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं, अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं सीता अथय संवत्तति"ति। सोळसमं।

---

114. "भिक्षुओं, मुझे आलस्य के समान कोई ऐसी चीज नहीं दिखती जो अच्छे धम्म (मार्ग) के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हो। आलस्य अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनता है।"

114. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाया अंतरधानाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, सद्धम्मस्सा सम्मोसाया अंतरधानाय संवतति'ति। सत्तारसमं.

114. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अंतधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, सद्धम्मस्स सम्मोसाय अंतधानाय संवत्तति"ति। सत्तरसमं।

---

115. "भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे ऐसा कोई भी साधन दिखाई नहीं देता जो सजगता के समान अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपव्यय की ओर ले जाता हो। [18] सजगता अच्छे धम्म की निरंतरता, अवनति और अपव्यय की ओर ले जाती है।"

115. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासमि यो एवं सद्धम्मस्स थितिया असम्मोसया अनंतराधानाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अप्पमादो।" अप्पमादो, भिक्खवे, सद्धम्मस्सा थितिया असम्मोसाय अनंतराधनाय संवतति"। अथारसमम्।

115. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनंतार्धनाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमादो , भिक्खवे , सद्धम्मस्स थितिया असममोसाय अनंतार्धनाय संवत्तति"ति। अट्ठारसमं।

---

116. "भिक्षुओं (मठवासियों), मुझे आलस्य के अलावा कोई ऐसी चीज नजर नहीं आती जो अच्छे धम्म के पतन और लुप्त होने का कारण बनती हो..."

116. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाया अंतरधानाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, कोसज्जं।' कोसज्जां, भिक्खवे, सद्धम्मस्सा सम्मोसाया अंतरधानाय संवत्तति। एकुनाविसतिमम्।

116. "नहं , भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अंतधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसजदजं। कोसज्जं, भिक्खवे, सद्धम्मस्स सम्मोसाय अंतधानाय संवत्तति"ति। एकूनवीसतिमं।

---

117. . . . जिससे ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) के जागृत होने के कारण अच्छे धम्म का निरंतर बने रहना, उसका क्षय न होना और उसका लुप्त न होना सुनिश्चित होता है...

117. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं सद्धम्मस्स थितिया असम्मोसाया अनंतराधनाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, वीर्यारम्भो। वीर्यारम्भो, भिक्खवे, सद्धम्मस्सा तीथिया असम्मोसाय अनंतराधनाय संवतति'ति। विसातिमम्.

---

117. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनंतार्धनाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, वीरियारंभो। वीरीयारंभो, भिक्खवे, सद्धम्मस्स ठितिया असममोसाय अनंतार्धनाय संवत्तति"ति। वैसतिम्।

118. "...प्रबल इच्छा ...119... इच्छाओं की कमी . ."

120 ... असंतोष... 121... संतोष...

122. . . लापरवाही से ध्यान देना . . . 123. . . सावधानीपूर्वक ध्यान देना . . ."

124. "... पूर्ण समझ का अभाव (संपजन्ना)... 125 ... पूर्ण समझ..."

126. "...बुरी दोस्ती... 127 ...अच्छी दोस्ती ..."

128. "...हानिकारक (अकुसल) गुणों (धम्म) का अनुसरण करना और लाभकारी (कुसल) का अनुसरण न करना, योग्यता प्रदान करता है...

118-128. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं सद्धम्मस्सा सम्मोसाया अंतरधानाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, महिच्छता...पे...अप्पिच्चता...असंतुथिता... सन्तुष्टिता... अयोनिसोमनसिकारो... योनिसोमानसिकारो... असमपजान्नं... संपजान्नं... पापमित्तता... कल्याणअमित्तता... अनुयोगो अकुशलनं धम्मनां, अननुयोगो कुसलानां धम्मणं. अनुयोगो, भिक्खवे, अकुशलनं धम्मनां, अनुयोगो कुशलाणं धम्मनां सद्धम्मस्सा सम्मोसाया अंतरधानाय संवत्तति"। एकत्तिनसतिम्।

118-128. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अण्टार्धनाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, महीच्छता...पे०... अप्पिच्छता... असन्तुत्थिता... सन्तुट्ठिता... अयोनिसोमनसिकारो... योनिसोमनासिकारो... असमपञ्चदन्न... संपज्जनदं... पापमित्तता... कल्याणमित्तता... अनुयोगो अकुसलानं धम्मनं, अनुयोगो कुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो कुसलानं धम्मनं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अंतधानाय संवत्तति"ति। एक्तिस्तन्सतिम्।

---

129 . . . लाभकारी(कुसल) गुणों की खोज और हानिकारक(अकुसल) गुणों(धम्म) की खोज। लाभकारी (कुसल) गुणों (धम्म) का अनुसरण और हानिकारक (अकुसल) गुणों (धम्म) का अनुसरण न करने से अच्छे धम्म की निरंतरता, गैर-गिरावट और गैर-लुप्ति होती है।"

129. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यो एवं सद्धम्मस्स थितिया असम्मोसया अनन्तराधनाय संवत्तति यथायिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानाम्" धम्मणं, अनुनुयोगो अकुशलनं धम्मणं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मणं, अनुयोगो अकुशलानं धम्मणं सद्धम्मस्सा थितिया असम्मोसाया अनंतराधनाय संवतति"। चतुक्कोऽटिकं निहितं। बत्तीसतिमम्.

129. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तार्धनाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो अकुसलानं धम्मनं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं, अन्नुयोगो अकुसलानं धम्मनं सद्धम्मस्स थितिया असम्मोसाय अनन्तार्धनाय संवत्ति"ति। चतुर्कोटिकं नित्थितं। बात्तिसंस्तिमं।

---

130. "भिक्षुओं, जो भिक्षु अधर्म (गलत मार्ग) को धर्म के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के लिए कर्म करते हैं। 61 ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म को लुप्त कर देते हैं।"

130. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अधम्मं धम्मोति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्नानम् . बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुन्नं पासवंती, ते सीमं [तेपिमां (सि.)] सद्धम्मं अंतरधापेंती"। तेत्तिसतिमम्.

33. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अधम्मं धम्मोति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनअहिताय पतिप सन्या बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अनथय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं [तेपिमं (सी०)] सद्धम्मं अंतधापेन्ति"ति। तेत्तिंसतिमं।

---

131 — 139

(131) "भिक्षुओं, वे भिक्षु जो धम्म (मार्ग) को गैर-धम्म के रूप में व्याख्या करते हैं... (132) ... अनुशासनहीनता को अनुशासन के रूप में... (133) ... अनुशासनहीनता के रूप में... (134) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और उच्चारित नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा कहा और उच्चारित किया गया है... (135) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और उच्चारित किया गया है, उसे उनके द्वारा कहा और उच्चारित नहीं किया गया है... (136) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा अभ्यास किया गया है... (137) ...जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास किया गया है, उसे अभ्यास नहीं किया गया है।" उसके द्वारा... (138) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है, (139) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित नहीं किया गया है, वह अनेक लोगों के लिए हानि, अनेक लोगों के लिए दुःख, अनेक लोगों के लिए विनाश, हानि और पीड़ा, देवताओं और मनुष्यों के लिए कष्ट का कारण बनता है। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धम्म (मार्ग) को लुप्त कर देते हैं।

131. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं अधम्मोति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्न बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुनं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं अंतरधापेंती।' कैटुट्टिनसतिमम्।

132-139. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अविनायम विनयोति दिपेंती...पे...विनयम् अविनायोति दिपेंती...पे...अभासीतं अलपितां तथागतेन भासीतं लपितां तथागतं दीपेंति...पे...भासीतां लपितां तथागतेन अभासीतं अलपितां तथागतेनाति दीपेंती...पे... अनाचिनं तथागतेन अचिनं तथागतेनाति दीपेंती...पे... अचिनं तथागतेन अनाचिनं तथागतेनाति दिपेंती...पे... अपानत्तं तथागतेन पण्णात्तं तथागत दिपेंती...पे... पन्नत्तं तथागतेन अपान्नत्तं तथागत दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानाम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुनं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं अंतरधापेंती।' द्वाचत्तलिसातिमम्।

Dutiyapamādādivaggo dasamo.

131. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं अधम्मोति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनअहिताय पतीप सीनाया बहुजनसुखाय, बहुनो जनसस अनथय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अंतधापेंति"ति। चतुत्तिंसतिमं।

1 सप्ताह-15. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अविनयं विज्ञोति दीपेन्ति...पे०...विनं अविन्योति दीपेन्ति...पे०... आभासितं अल्पितं तथागतेन भासितं लापितं तथागतेनति दीपेन्ति...पे०... भासितं लापितं तथागतेन आभासितं अल्पितं तथागतेनति दीपेन्ति...पे०... अनाचिनं तथागतेन अचिन्नं तथागतेनाति दीपेन्ति...पे०... अचिन्नं तथागतेन अनाच्चिन्नं तथागतेनाति दीपेन्ति...पे०... अपञ्जत्तं तथागतेन पञ्जत्तन तथागतेनाति दीपेन्ती...पे०... पञ्चत्तं तथागतेन अपञ्जनत्तं तथागतेनाति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु हितायताय पाटिप न्याबासुखाय, बहुनो जनस्स अनथय अहिताय दुःखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अंतधापेंति"ति। द्वाचतालिसतिमं।

दुतियपमादादिवग्गो दासमो।

(1.XI) बुरा-धम्म खंड (अधम्म-वाग्गो)

140. "भिक्षुओं, वे भिक्षु जो बुरे धर्म (गलत मार्ग) को बुरे धर्म के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य कर रहे हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य कमाते हैं और इस अच्छे धर्म को कायम रखते हैं।"

140. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अधम्मं अधम्मोति दीपेंति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्न बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय सुखाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमां सद्धम्मं थापेंती"ति [थापेंती (का.)]। पथमं.

140. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अधम्मं अधम्मोति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतीप सीनाय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति [थपेन्तिति (क०)]। पथमं.

---

141 — 149

(141) "भिक्षुओं, वे भिक्षु जो धम्म (मार्ग) को धम्म के रूप में समझाते हैं... (142) ... बुरे अनुशासन को बुरे अनुशासन के रूप में... (143) ... अनुशासन को अनुशासन के रूप में... (144) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा नहीं कहा और नहीं बोला गया है, उसे उनके द्वारा नहीं कहा और नहीं बोला गया है... (145) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा कहा और बोला गया है, उसे उनके द्वारा कहा और नहीं बोला गया है... [20] (146) ... जो तथागत (बुद्ध) द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है, उसे उनके द्वारा अभ्यास नहीं किया गया है... (147) ... जो अभ्यास किया गया है... तथागत (बुद्ध) द्वारा बताए गए आचरणों का पालन किया जाता है... (148) ... तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित न किए गए आचरणों का पालन किया जाता है... (149) ... तथागत (बुद्ध) द्वारा निर्धारित आचरणों का पालन किया जाता है, वे हैं अनेक

लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए कार्य करना। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म का पालन करते हैं।

141. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं धम्मोति दीपेंति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्न बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अत्थाय सुखाय देवमनुस्सानम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं थपेन्ती'ति। दुतियां.

142-149. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अविनायम अविनायोति दिपेंती...पे...विनयं विनयोति दिपेंती...पे... अभासीतं अलपितां तथागतेन अभासीतं अलपितां तथागतेनाति दिपेंती...पे... भसीताम् लपितां तथागतेन भासीतं लपितां तथागतेनाति दीपेंती...पे... अनाचिनं तथागतेन अनाचिनं तथागतेनाति दीपेंती...पे... अचिनं तथागतेन अचिनं तथागतेनाति दिपेंती...पे... अपान्नट्टं तथागतं तथागत दिपेंती...पे... पन्नट्टं तथागतेन पन्नत्तं तथागत दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनसा अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानाम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं थपेन्ती'ति। दशमं.

Adhammavaggo ekādasamo.

141. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं धम्मोति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतीप स्याना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति। दुतीयं।

142-252. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अविनयं अविन्योति दीपेन्ति...पे०...विज्ञनं विनयोति दीपेन्ति...पे०... आभासितं अल्पितं तथागतेन आभासीतं अल्पितं तथागतेनति दीपेन्ति...पे०... भासितं लापितं तथागतेन भासितं लापितं तथागतेनति दीपेन्ति...पे०...अनाचिनं तथागतेन अनाचिनं तथागतेनाति दीपेन्ति...पे०... अचिन्नं तथागतेन अचिन्नं तथागतेनाति दीपेन्ति...पे०... अपञ्जत्तं तथागतेन अपञ्जत्तन तथागतेनाति दीपेन्ति...पे०... पं.... पं. अथाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति। दसमं.

अधम्मवग्गो एकादसामो।

(1.बारहवीं) गैर अपराध धारा (अनापत्ति-वाग्गो)

150.

"भिक्षुओं, जो भिक्षु अहिंसा को अहिंसा बताते हैं, वे अनेक लोगों के हित में कार्य करते हैं, अनेक लोगों को दुखी करते हैं, अनेक लोगों, देवताओं और मनुष्यों के विनाश, हानि और पीड़ा का कारण बनते हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म को लुप्त होने का कारण बनते हैं।"

150. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अनापत्तिम अपत्तिति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुनं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं अंतरधापेंती।' पथमं.

150. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अनापत्तिं आप्तिति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनअहिताय पतीप सन्या बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अनात्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अंतधापेंति"ति। पथमं.

---

151 — 159

(151) "भिक्षु (मठवासी), वे भिक्षु जो अपराध को अपराध नहीं बताते... (152) ... एक हल्के अपराध को गंभीर अपराध बताते हैं... (153) ... एक गंभीर अपराध को हल्के अपराध बताते हैं... (154) ... एक घोर अपराध को घोर अपराध नहीं बताते... (155) ... एक ऐसे अपराध को जो घोर नहीं है, घोर अपराध बताते हैं... (156) ... एक उपचार योग्य अपराध को अउपचार योग्य अपराध बताते हैं... [21] (157) ... एक अउपचार योग्य अपराध को उपचार योग्य अपराध बताते हैं (158) ... एक ऐसे अपराध को जिसका निवारण संभव है, बिना निवारण वाले अपराध बताते हैं... (159) ... एक ऐसे अपराध को जिसका निवारण संभव नहीं है, निवारण योग्य अपराध बताते हैं, वे अनेक लोगों के नुकसान, अनेक लोगों के दुख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और पीड़ा के लिए कार्य कर रहे हैं। देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य। 66 ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धम्म (मार्ग) को लुप्त कर देते हैं।

151. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अपत्तिं अनापत्ति दीपेंति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुनं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं अंतरधापेंती।' दुतियां.

152-159. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु लहुकम अपत्तिं गरूका अपत्तिति दिपेंती...पे... गरुकम अपत्तिम लहुका अपत्तिति दिपेंती...पे... दुतथुल्लाम अपत्तिम अदुथुल्ला अपत्तिति दिपेंती...पे... अदुत्थुल्लं अपत्तिं दुत्थुल्ला अपत्तिति दिपेंती...पे... सवसेसं अपत्तिं अनावसेसा अपत्तिति दिपेंती...पे... अनावसेसं अपत्तिं सवसेसा अपत्तिति दिपेंती...पे... सप्पटिकम्मम अपत्तिम अपत्तिति दिपेंती...पे... अप्पटिकम्मम अपत्तिम सप्पाटिकम्मा अपत्तिति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानाम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुनं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं अंतरधापेंती।' दशमं.

151. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु दर्शनं अनापत्तिति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनअहिताय पतीप सन्या बहुजनसुखाय, बहुनो जनसस अनथय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अंतधापेंति"ति। दुतीयं।

152-169. "ये ते, भिक्खुवे, भिक्खु लहुकं मंत्रं गुरुका आप्तिति दीपेन्ति...पे०... गुरुकं व्यंजनं लहुका आप्तिति दीपेन्ति...पे०... दुट्ठुलं लं लक्ष्यं अदुत्थुलंदला आप्तिति दीपेन्ति...पे०... अदुत्थुलं दंतं दुत्तथुलांदला आप्तिति दीपेन्ति...पे०... सावसेसं स्वप्नं अनवसेसा आपति दीपेन्ति...पे०... अनवसेसं खिलौने सवसेसा आप्तिति दीपेन्ति...पे०... सप्पटिकम्मं खिलौनें अप्पटिकम्मा आपत्तीति दीपेन्ति...पे०... अप्पटिकम्मं इच्छां सप्पटिकम्मा आपत्ती दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनअहिताय पटिप सान्निहा बहुजनसुखाय, बहुनो जनसस अनथय अहिताय दुक्खाय देवमनुससानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु अपुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अंतधापेंति"ति। दसमं.

160

भिक्षुओं, जो भिक्षु अपराध न करने की व्याख्या करते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए कार्य कर रहे हैं। ये भिक्षु बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं और इस उत्तम धर्म का पालन करते हैं।

160. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अनापत्तिं अनापत्ति दीपेंति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनसा अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं थपेन्ती'ति। एकादशमं.

160. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अनापत्तिं अनापत्तिति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतीप सीनाय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति। एकादसमं।

---

161 -169

(161) "भिक्षु (मठवासी), वे भिक्षु जो किसी अपराध को अपराध के रूप में समझाते हैं... (162) ... हल्के अपराध को हल्के अपराध के रूप में समझाते हैं... (163) ... गंभीर अपराध को गंभीर अपराध के रूप में समझाते हैं... (164) ... घोर अपराध को घोर अपराध के रूप में समझाते हैं... (165) ... जो अपराध घोर नहीं है उसे घोर अपराध नहीं समझाते... (166) ... उपचार योग्य अपराध को उपचार योग्य

अपराध के रूप में समझाते हैं... (167) ... अउपचार योग्य अपराध को अउपचार योग्य अपराध के रूप में समझाते हैं... (168) ... निवारण योग्य अपराध को निवारण योग्य अपराध के रूप में समझाते हैं... (169) ... बिना निवारण वाले अपराध को बिना निवारण वाले अपराध के रूप में समझाते हैं, वे अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, अनेक लोगों के भले, कल्याण और खुशी के लिए कार्य कर रहे हैं।" देव (देवदूत/देवता) और मनुष्य। ये भिक्षु बहुत पुण्य कमाते हैं और इस उत्तम धर्म का पालन करते हैं।

161. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु अपत्तिं अपत्तिति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनसा अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सनम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं थपेन्ती'ति। द्वादशमं.

162-169. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु लहुकं अपत्तिं लहुका अपत्तिं दिपेंती... गारुकां अपत्तिं गरुका अपत्तिति दिपेंती... दुतहुल्लां अपत्तिं दुत्थुल्ला अपत्तिति दिपेंती... अदुतहुल्लां अपत्तिं अपत्तिं अपत्तिं दिपेंती... सवसेसं अपत्तिं सवसेसा अपत्तिति दिपेंती... अनावसेसं अपत्तिं अनावसेसा अपत्तिति दिपेंती... सप्पटिकम्मं अपत्तिं सप्पाटिकम्मा अपत्तिति दिपेंती... अप्पतिकम्म अपत्तिं अप्पातिकम्मा अपत्तिति दिपेंती ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानाम्। बहुंच ते, भिक्खवे, भिक्खु पुन्नं पासवंती, ते सीमं सद्धम्मं थपेन्ती'ति। विसतिमं.

Anāpattivaggo dvādasamo.

161. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खू दर्शनं आप्तिति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पाटिप सयना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति। द्वादसमं।

162-169. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खु लहुकं द्युमं लहुका आप्तिति दीपेन्ति... गरुकं द्वालं गरुका आप्तिति दीपेन्ति... दुत्थुल दल्लं स्वप्नं दुट्ठुलदला आप्तिति दीपेन्ति... अदुत्थुल दल्लं सिद्धिं अदुत्थुल्ला आप्तिति दीपेन्ति... सवसेसं वादं सावसेसा आप्तिति दीपेन्ति... अनवसेसं दीलं सवसेसा आपत्तीति दीपेन्ति... सप्पटिकम्मं खिलौनें सप्पटिकम्मा आप्तिति दीपेन्ति... अप्पटिकम्मं खिलौनें अप्पटिकम्मा आपत्तीति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खु बहुजनहिताय पतीप स्याना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुञ्च ते, भिक्खवे, भिक्खु पुञ्जन पस्वन्ति, ते चिमं सद्धम्मं योगेन्ति"ति। वैसतिम्।

अनापत्तिवग्गो द्वादसमो।

(1.XIII) एक व्यक्ति अनुभाग (एकपुग्गला-वाग्गो)

170

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों की खुशी, संसार के प्रति करुणा, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए संसार में अवतरित होता है। 67 वह एक व्यक्ति कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह एक व्यक्ति है जो संसार में अवतरित होता है... देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए।

170. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सनम्। काटामो एकापुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासंबुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकापुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सन'न्ति।

170. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कत्मो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सान"न्ति।

171-174

"भिक्षुओं (मठवासियों), संसार में एक व्यक्ति का प्रकटीकरण दुर्लभ है... (172)... संसार में एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो असाधारण है... (173)... एक व्यक्ति की मृत्यु पर अनेक लोग शोक मनाते हैं... (174) 68... संसार में एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो अद्वितीय, अतुलनीय, बेजोड़, बेमिसाल, बेमिसाल, अद्वितीय, बेजोड़ है, 69 दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में श्रेष्ठ है। 70 वह एक व्यक्ति कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह एक व्यक्ति है जो संसार में प्रकट होता है, जो... दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में श्रेष्ठ है।" 171. "एकपुग्गलस्सा, भिक्खवे, पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं. कटामास्सा एकपुग्गलास्सा? तथागतस्स अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। इमास्सा खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस्सा पतुभावो दुलाभो लोकस्मि'न्ति।

172. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अचरियामानुसो। काटामो एकापुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासंबुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उपज्जति अचरियामानुसो'ति।

173. "एकपुग्गलस्सा, भिक्खवे, कालकिरिया बहुनो जनस्सा अनुतप्पा [अनुतप्पा (सि.)] होती। कटामास्सा एकपुग्गलास्सा? तथागतस्स अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। इमास्सा खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस्सा कालकिरिया बहुनो जनस्सा अनुतप्पा होति'ति।

174. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अदुतियो असाहायो अप्पतिमो अप्पतिसामो अप्पतिभागो अप्पतिपुग्गलो असामो असामासामो द्विपदानं अग्गो। काटामो एकापुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासंबुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अदुतियो असाहायो अप्पतिमो अप्पतिसामो अप्पतिभागो अप्पतिपुग्गलो असामो असामासामो द्विपदानं अग्गो"ति।

171. "एकपुग्गलस, भिक्खवे, पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कैटमास एकपुग्गलस? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस पातुभावो दुल्लभो लोकस्मि"न्ति।

217. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति अचरियाननुसो। कत्मो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति अचरियाननुसो"ति।

173. "एकपुग्गलस, भिक्खवे, कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा [अनुतप्पा (सी०)] होती है। कैटमास एकपुग्गलस? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा होता"ति।

174. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति अदुतियो अप्पतिमो अप्पतिमो अप्पतिभागो अप्पतिपुग्गलो असमो असमामो दिपदानं अग्गो। कत्मो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति अदुतियो अप्पतिमो अप्पतिमो अप्पतिभागो अप्पतिपुग्गलो असमो असमासमो द्विपदानं अग्गो"ति।

175-186

"भिक्षुओं (मठवासियों), एक व्यक्ति का प्रकटीकरण महान दृष्टि का प्रकटीकरण है... (175) महान प्रकाश का प्रकटीकरण... (176) महान प्रकाश का प्रकटीकरण... (177) महान दीप्ति का प्रकटीकरण... (178) छह अतुलनीय चीजों का प्रकटीकरण... (179) चार विश्लेषणात्मक ज्ञान की प्राप्ति... (180) अनेक तत्वों का भेदन... (181) तत्वों की विविधता का भेदन... (182) सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति [23]... (183) धारा-प्रवेश (7 पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति... (184) एक बार लौटने के फल की प्राप्ति (1 पुनर्जन्म (सकदागामी)... (185)... अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म न होना) के फल की प्राप्ति... (186)... अरहंतत्व के फल की प्राप्ति। वह कौन है? तथागत (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध। यही वह व्यक्ति है जिसका प्रकटीकरण महान दृष्टि का प्रकटीकरण है... अरहंतत्व के फल की प्राप्ति।

175-186. "एकपुग्गलास्स, भिक्खवे, पतुभाव महतो चक्खुस्सा पतुभावो होति, महतो अलोकस्स पतुभावो होति, महतो ओभास्सस पतुभावो होति, चन्नं अनुत्तरियानं पतुभावो होति, चतुन्नं पतिसंभिदानं सच्चिकिरिया होति, अनेकधातुपटिवेधो होति, नानाधातुपटिवेधो होति, विज्जाविमुत्तिफलासच्चिकिरिया होति, सोतापत्तिफलासच्चिकिरिया होति, सकादागामिफलासच्चिकिरिया होति, अनागामिफलासच्चिकिरिया होति, अरहतफलासच्चिकिरिया होति। कटामास्सा एकपुग्गलास्सा? तथागतस्स अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। इमास्सा खो, भिक्खवे, एकपुग्गलास्स पातुभावो होति, महतो अलोकस्सा पातुभावो होति, महतो ओभासस्सा पातुभावो होति, चन्नं अनुतारियानं पतुभावो होति, चतुन्नं पतिसंभिदानं सच्चिकिरिया होति, अनेकधातुपटिवेधो होति, नानाधातुपटिवेधो होति, विज्जाविमुत्तिफलासच्चिकिरिया होति, सोतापत्तिफलासच्चिकिरिया होति, सकादागामिफलासच्चिकिरिया होति, अनागामिफलासच्चिकिरिया होति, अरहतफलासच्चिकिरिया होति'ति।

175-186. "एकपुग्गलस्स, भिक्खवे, पातुभावा मठ चाखुस्स पातुभावो होती है, महंत आलोकस्स पातुभावो होती है, सीता ओभास्स पातुभावो होती है, छ साइनं अनुत्तरायनं पातुभावो होती है, चतु दर्शनं पतिसमभिदानं सच्चिकिरिया होती है, अनेकधातुपतिवेधो होती है, नानाधातुपतिवेधो होती है, विजजाविमुत्तफिलसचिकिरिया होती है। होती है, सोतापट्टफलसचिकिरिया होती है, सकदागमिफलसचिकिरिया होती है, अनागमफलसचिकिरिया होती है, अरहत्तफलसचिकिरिया होती है। कैटमास एकपुग्गलस? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस पातुभावा महतो चखुस्स पातुभावो होती है, महतो आलोकस्स पातुभावो होती है, छ साइनं अनुत्तरायनं पातुभावो होती है, चतु साइनं पतिसमभिदानं सच्चिकिरिया होती है, अनेकधातुपतिवेधो होती है, नानाधातुपतिवेधो होती है, विजजाविमुत्तसिफचिकिरिया होती है। होती है, सोतापट्टफलसचिकिरिया होती है, सकदागमिफलसचिकिरिया होती है, अनागमफलसचिकिरिया होती है, अरहत्तफलसचिकिरिया होती है।

187

भिक्षुओं, मुझे एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को सारिपुत्त की तरह उचित रूप से गतिमान रखता हो। सारिपुत्त तथागत (बुद्ध) द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को उचित रूप से गतिमान रखता है।

187. "नहं भिक्खवे, आननं एकपुग्गलमपि समनुपासामि यो एवं तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति यथायिदं, भिक्खवे, सारिपुत्तो। सारिपुत्तो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति"।

एकपुग्गलवग्गो तेरसामो।

आठ7. "नहं भिक्खवे, आनंदं एकपुग्गलमपि समनुपस्सामि यो एवं तथागतेन अनुत्तरं धम्मच त्रैकं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति यखवे, सारिपुत्तो। सारिपुत्ततो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचत्रकं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति"ति।

एकपुग्गलवग्गो तेरसमो।

(1.XIV) अग्रणी (शिष्य) अनुभाग (एटाडग्गा-वाग्गो)

i. पहला उप-अध्याय (भिक्षु) 188-197

(188) "भिक्षुओं, मेरे भिक्षु शिष्यों में वरिष्ठता क्रम में सबसे श्रेष्ठ अन्नकोंडन्ना हैं।" 74

188. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सवाकानं भिक्खुनं रत्तान्नुणं यदिदं अणनासिकोण्णनो" [अन्नताकोण्णणोति (का.), अण्णाकोण्णण्णो (सि. स्या. कां. पि.)]।

188. "एतदग्गं , भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं रत्तञ्जूनं इदिदं अञ्जनासिकोण्डञ्चो" [अञ्जनात्कोण्डञ्चोति (क०), अञ्जञ्चकोण्डञ्चो (सी० स्या० कं० पी०)]।

---

(189) "...महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वालों में सारिपुत्त हैं।" 75

189. ... महापन्ननं यदिदं सारिपुत्तो।

189. ... महापञ्जानं यदिदं सारिपुत्तो।

---

(190) "...मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) रखने वालों में महामोग्गलाना भी शामिल हैं।" 76

190. ...इद्धिमन्तानां यदिदं महमोग्गलानो।

190. ... इधिमन्तानं यदिदं महामोग्गलानो।

---

(191) "...तपस्या प्रथाओं का प्रतिपादन करने वालों में महाकस्सपा भी शामिल हैं।" 77

191।

191. ...धुतवदानं [धुतङ्घधारणं (कत्थचि)] यदिदं महाकस्पो।

---

(192) "...दिव्य दृष्टि रखने वालों में अनुराधा भी शामिल है।" 78

192. ...दिब्बाचक्कुकानं यदिदं अनुरुद्धो।

192. ... दिब्बचक्खुकानं यदिदं अनुरुद्धो।

---

(193) "...प्रतिष्ठित परिवारों में से भद्दिया कलिगोधायपुत्त हैं।" 79

193. ...उच्चाकुलिकाणं यदिदं भद्दियो कादिगोधायपुत्तो।

193. ...उच्चाकुलिकानं यदिदं भद्दियो काळिगोधायपुत्ततो।

---

(194) "...मधुर आवाज वालों में लकुंतका भद्दिया भी शामिल हैं।" 80

194।

194. ... मंजुस्सरं इदिदं लकुंडक [लकुंटक (स्या० कं०)] भद्दियो।

---

(195) "...सिंह की दहाड़ रखने वालों में पिंडोला भारद्वाज भी शामिल हैं।" 81

195. ...सिहानादिकानं यदिदं पिण्डोलाभारद्वाजो।

195. ...सीहनादिकानं यदिदं पिण्डोलभारद्वाजो।

---

(196) "...धम्म (मार्ग) पर बोलने वालों में पुरिना मंतानिपुत्त भी शामिल हैं।" 82

196।

196. ... धम्मकथिकाणं यदिदं पुन्नो मन्तानिपुत्तो।

---

(197) "...संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझाने वालों में महाकच्चना भी शामिल हैं।"

197।

197. ... संखितेन भासितस्स वित्थरेन अथं विभजन्तानं इदिदं महाकच्छनोति।

---

ii. द्वितीय उप-अध्याय 198-208

(198) "भिक्षुओं (मठवासियों), मेरे उन भिक्षु शिष्यों में जो मन से शरीर का सृजन करते हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ चुल्लपंथक हैं।" 83

198. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सवकाणं भिक्खुनं मनोमयं कायं अभिनिम्मिनंतनं यदिदं कुपंथाको" [कुलपंथाको (सि. स्या. कं.)। पी.आई.)].

198. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खुनं मनोमयं कायं अभिनिम्मिनतानं इदिदं चूळपन्थको" [चुल्ललपंथको (सी० स्या० कं० पी०)]।

---

(199) ". . . मानसिक रूपांतरण में कुशल लोगों में कुल्लापंथक शामिल हैं।"

199।

199. ...चेतोवित्तकुसलानं यदिदं चुळपन्थको।

---

(200) "...धारणा (सन्ना/संज्ञा) के रूपांतरण में निपुण लोगों में महापंथक भी शामिल हैं," 84

200।

200. ... संज्ञवित्तकुशलानं यदिदं महापंथको।

---

(201) "...उनमें से एक सुभूति हैं जो बिना किसी संघर्ष के निवास करते हैं।" 85

201. ...अरणविहारिनं यदिदं सुभूति।

201. ...अरणविहारेणं यदिदं सुभूति।

---

(202) ...दान के योग्य लोगों में सुभूति भी शामिल हैं।"

202. ...दक्खिनेयानां यदिदं सुभूति।

202. ... दक्षिणेयायनं यदिदं सुभूति।

---

(203) "...वनवासियों में रेवता खदिरावनिया हैं।" 86

203।

203. ... अर्ज्जानकनं इदिदं रेवतो खदिरवानियो।

---

(204) "...ध्यान करने वालों में कंखारेवत भी शामिल हैं।" 87

204. ...झायिनं यदिदं कंखरेवतो।

204. ... झायिनं यदिदं कङ्खारेवतो।

---

(205) "...ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाने वालों में सोना कोलिविसा भी शामिल है।" 88

205।

205. ... अर्धविरियनं इदिदं सोनो कोळिविसो।

---

(206) "...इनमें उत्कृष्ट वक्ताओं में सोना कुटिकन्ना भी शामिल हैं।" 89

206. ...कल्याणवक्कराणं यदिदं सोनो कुटिकणो।

206. ...कल्याणवा त्राटकानां यदिदं सोनो कुटिकन्नो।

---

(207) "...लाभ प्राप्त करने वालों में सिवाह भी शामिल है।" 90

207. ...लाभिनं यदिदं सीवली।

207. ... लाभीनं यदिदं सीवली।

---

(208) "...विश्वास के माध्यम से संकल्पित लोगों में वक्काली भी शामिल हैं।" 91

208. ...सद्धाधिमुत्तनं यदिदं वक्कलिति।

208. ...सद्धधिमुत्तनं यदिदं वकलाति।

---

iii. तीसरा उप-अध्याय 209-218

(209) "भिक्षुओं (भिक्षुओं), मेरे भिक्षु शिष्यों में से जो प्रशिक्षण की इच्छा रखते हैं, उनमें सबसे आगे राहुल हैं।"

209. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सवाकाणं भिक्खुनं सिक्खकामनां यदिदं राहुलो"।

2020. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खुनं सिक्खकामानं यदिदं राहुलो।"

---

(210) "...उन लोगों में से जो आस्था के कारण [सन्यासी जीवन में] चले गए हैं, उनमें रत्थपाल भी शामिल हैं।" 93

210. ...सद्धपब्बजीतानां यदिदं रथपालो।

210. ... साधपब्बजितानं इदिदं रत्थपालो।

---

(211) "...भोजन टिकट लेने वालों में सबसे पहले कुंडाधना का नाम आता है..." 94

211।

211. ...पथमं सलकं गंहन्तानं यदिदं कुंडधानो।

---

(212) "...प्रेरित काव्य रचने वालों में वांगिसा भी शामिल हैं।" 95

212. ... पतिभवनवंतानं यदिदं वांगीसो।

212. ... पतिभवनवंतानं यदिदं वङ्गिसो।

---

(213) ". . . सभी मामलों में विश्वास जगाने वालों में उपसेना वाहगंतपुत्त हैं;" 96 .

213।

33. ... समन्तपासादिकानं यदिदं उपसेनो वङ्गन्तपुत्ततो।

---

(214) "...आवास आवंटित करने वालों में डब्बा मल्लपुत्त भी शामिल हैं।" 97

214. ...सेनासनपन्नपकानां यदिदं दब्बो मल्लपुत्तो।

214. ... सेनासनपञ्चपकानं यदिदं दब्बो मल्लपुत्तो।

---

(215) "...देवताओं (देवदूतों) को प्रसन्न करने वाले और उन्हें प्रिय लगने वालों में पिलिन्दवच्छ भी शामिल है।" 98

215. ...देवतानां पियामानापानं यदिदं पिलिन्दवच्चो।

215. ...देवतानं पियमनापानं यदिदं पिलिन्दवच्छो।

---

(216) "...प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) शीघ्र प्राप्त करने वालों में बहिया दारुचिरिया है।" 99

216. ...हिप्पपाभिन्नां यदिदं बहियो दारुचिरियो।

216. ... खिप्पाभिञ्जानं यदिदं बहियो दारुचिरियो।

---

(217) "...बहुभाषी लोगों में कुमार कस्सपा भी शामिल हैं।" 100

217. ...चित्तकथिकानां यदिदं कुमारकस्सपो।

217. ... चित्तकथिकानं यदिदं कुमारकस्पो।

---

(218) "...विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों में महाकोत्थिता भी शामिल है।" 101

218।

218. ...पतिस्मभिदपट्टानां यदिदं महाकोट्ठितोति

---

iv. चौथा उप-अध्याय 219-234

(219) "मेरे भिक्षु शिष्यों में, जो विद्वान हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ आनंद हैं।" 102

219. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सवाकाणं भिक्खुनं बहुसुतानं यदिदं आनंदो"।

219. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खुनं बहुसुतानं इदिदं आनन्दो।"

---

(220) "...अच्छी याददा वालों में आनंद भी शामिल है।"

220. ...सतिमंतानां यदिदं आनंदो।

220. ...सतिमन्तानं यदिदं आनन्दो।

---

(221) ...तेजी से समझने वालों में आनंद भी शामिल है।" 103

221. ...गतिमन्तानां यदिदं आनन्दो।

221. ...गतिमन्तानां यदिदं आनंदो।

---

(222) "...दृढ़ संकल्पियों में आनंद भी शामिल है।" 104

222. ...धितिमन्तानां यदिदं आनन्दो।

222. ...धितिमन्तानं यदिदं आनन्दो।

---

(223) "... निजी परिचारकों में आनंद है।"

223. ...उपत्थाकानं यदिदं आनंदो।

230. ...उपट्ठकानं यदिदं आनन्दो।

---

(224) ... बड़े दल-भंगिमाओं वाले लोगों में उरुवेला कस्सपा भी शामिल है।" 105

224. ...महापरिसनं यदिदं उरुवेलकास्सापो।

224. ... महापरिसनं यदिदं उरुवेलकसपो।

---

(225) "...परिवारों में विश्वास जगाने वालों में कलुदयी भी शामिल हैं।" 106

225।

225. ... कुलप्पासादकानं यदिदं कळुदद।

---

(226) "...अच्छे स्वास्थ्य वालों में बक्कुला भी शामिल है।" 107

226. ...अप्पबधानं यदिदं बकुलो [बक्कुलो (सि. स्या. कं. पि.)]।

226. ... अप्पाबाधानं यदिदं बाकुलो [बकुलो (सी० स्या० कं० पी०)]।

---

(227) "...पूर्व जन्मों को याद करने वालों में शोभिता भी शामिल है।" 108

227. ...पुब्बेनिवासं अनुसरंतानां यदिदं शोभितो।

227. ... पुब्बेनिवासं अनुशासनं इदिदं सोभितो।

---

(228) "...अनुशासन के समर्थकों में उपाली भी शामिल हैं।" 109

228. ...विनयधारणं यदिदं उपालि।

228. ...विनयधारणं यदिदं उपलि।

---

(229) "...भिक्षुओं को उपदेश देने वालों में नंदका भी शामिल हैं।" 110

229. ...भिक्खुनोवादकनं यदिदं नन्दको।

229. ... भिक्खुनोवादकानं इदिदं नन्दको।

---

(230) "...इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करने वालों में नंदा भी शामिल हैं।" 111

230. ... इन्द्रियेसु गुत्तद्वारं यदिदं नन्दो।

230. ...इंद्रयेसु गुत्तद्यानं यदिदं नन्दो।

---

(231) "...भिक्षुओं को उपदेश देने वालों में महाकप्पिन भी शामिल हैं।" 112

231. ...भिक्खुवदकानं यदिदं महाकप्पिनो।

301. ... भिक्खुओवदकानं यदिदं महाकप्पिनो।

---

(232) "...अग्नि तत्व में निपुणता रखने वालों में सागाता भी शामिल है।" 113

232. ... तेजोधातुकुसलानां यदिदं सगतो।

332. ...तेजोधातुकुशलानं यदिदं सगातो।

---

(233) "...वाक्पटु प्रवचन प्राप्त करने वालों में राधा भी शामिल हैं।" 114

233. ...पतिभानेयकाणं यदिदं राधो।

233. ... पतिभनेय्याकानं यदिदं राधो।

---

(234) "...मोटे वस्त्र पहनने वालों में मोगराजा भी शामिल है।" 115

234. ...लुखचिवरधारणं यदिदं मोघराजति।

134. ...लखचिवर्धरानं यदिदं मोगरा जाति।

वी. पांचवां उपअध्याय (नन/भिक्कुनिस) 235-247

(235) "भिक्खु (भिक्षु), वरिष्ठता में मेरे भिक्खुनी (नन) शिष्यों में सबसे अग्रणी महापजापति गौतमी हैं।" 116

235. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सविकानं भिक्खुनिं रत्तन्नुणं यदिदं महापजापतिगोतमि"।

305. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सविकानं भिक्खुनीनं रत्तनद्नूनं इदिदं महापजापतिगोतमी।"

---

(236) "...महान पन्ना (दिव्य ज्ञान) प्राप्त करने वालों में खेमा है।" 117

236. ... महापन्ननं यदिदं खेमा।

306. ... महापञ्जानं यदिदं खेमा।

---

(237) "... मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) वाले लोगों में उप्पला वन्ना है।" 118

237. ...इद्धिमंतीनं यदिदं उप्पलवन्ना।

237. ... इधिमन्तिनं यदिदं उप्पलवन्ना।

---

(238) "...अनुशासन का पालन करने वालों में पटाकारा भी शामिल हैं।" 119

238. ...विनयधारणं यदिदं पटाचारा।

238. ...विनयधारणं यदिदं पटाचारा।

---

(239) "...धम्म पर बोलने वालों में धम्मदिन्ना भी शामिल हैं।" 120

239. ...धम्मकथिकानां यदिदं धम्मदिन्ना।

309. ... धम्मकथिकानं यदिदं धम्मदीनदाना।

---

(240) "...ध्यानियों में नंदा भी शामिल हैं।" 121

240. ...झायिनं यदिदं नंदा।

240. ... झायिनं यदिदं नन्दा।

---

(241) "...जो ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) उत्पन्न करते हैं उनमें सोना भी शामिल है।" 122

241. ... अरद्धविरियांणं यदिदं सोना।

241. ...अर्द्धवीरियानं यदिदं सोना।

---

(242) "...दिव्य दृष्टि रखने वालों में सकुला भी शामिल है।" 123

242।

242. ... दिब्बचक्खुकानं इदिदं बकुला [सुकुला (सी० स्या० कं० पी०)]।

---

(243) "...प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन) शीघ्र प्राप्त करने वालों में भद्दा कुंडलकेश है।" 124

243. ...हिप्पपाभिन्नां यदिदं भद्द कुंडलकेसा।

243. ... खिप्पाभिञ्ञानं यदिदं भद्दा कुण्डलकेसा।

---

(244) "...पूर्व जन्मों को याद करने वालों में भद्दा कपिला भी शामिल हैं।" 125

244. ...पुब्बेनिवासं अनुसरंतीनां यदिदं भद्दा कपिलानि।

244. ... पुब्बेनिवासं अनुशासनं इदिदं भद्दा कपिलानि।

---

(245) "... उन लोगों में से जो महान प्रत्यक्ष ज्ञान (अभिन्न) प्राप्त करते हैं, भद्दा कक्काना हैं," 126

245. ...महाभिन्नप्पत्तनं यदिदं भद्दक्कचना।

245. ...महाभिञ्चप्पत्तनं यदिदं भद्दकच्छना।

---

(246) "...मोटे वस्त्र पहनने वालों में किसागोतामी भी शामिल है।" 127

246. ... लुकाचिवरधारणं यदिदं किसागोतमि।

246. ...लुखचिवर्धारणं यदिदं किसागोतमि।

---

(247) "...विश्वास के माध्यम से संकल्पित लोगों में सिगालामाता भी शामिल है।" 128

247.

247. ...सद्धधिमुत्तनं यदिदं सिङ्गलकमाताति [सिघलमाताति (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)]।

---

vi. छठा उप-अध्याय (पुरुष गृहस्थ अनुयायी) 248-257

(248) "मेरे पुरुष गृहस्थ अनुयायियों में से, शरण लेने वाले पहले भिक्षु (भिक्षु) तपस्सा और भल्लिका हैं।" [26] 129

248. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सवाकानं उपासकनं पाठं शरणं गच्छंतानां यदिदं तपुस्साभल्लिका [तपसुभल्लिका (सी. पी.)] वनिजा"।

248. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं उपासकानं पथमं सरणं गच्छन्तानं इदिदं तपुस्साभल्ललिका [तपसुभल्ललिका (सी॰ पी॰)] वाणीजा"।

---

(249) ...दानदाताओं में गृहस्थ सुदत्ता अनाथपिंडिका भी शामिल हैं।" 130

249. ... दयाकाणं यदिदं सुदत्तो गहपति अनाथपिण्डिको।

249. ... दायकानं यदिदं सुदत्तो गहपति अनाथपिंडिको।

---

(250) "...धम्म पर बोलने वालों में मच्चिकासंद का गृहस्थ चित्त भी शामिल है।" 131

250. ... धम्मकथिकाणं यदिदं चित्तो गहपति मच्छिकासांदिको।

250. ... धम्मकथिकानं यदिदं चित्तो गहपति मच्छिकासंदिको।

---

(251) "...दूसरों को आकर्षित करने और उनका भरण-पोषण करने के चार साधनों का उपयोग करने वालों में अलावी का हत्थका भी शामिल है।" 132

251।

251. ...चतुहि सङ्गहवत्तुहि परिसं सङ्घनहंतानं इदिदं हत्थको आळवको।

---

(252) ...उत्कृष्ट दान देने वालों में महानमा शाक्य है।" 133

252. ...पणितदायकानं यदिदं महानमो सक्को।

252. ...पणित्दायकानं यदिदं महानमो सफ्रको।

---

(253) "...जो लोग प्रसन्नतापूर्वक दान करते हैं उनमें वैशाली का गृहस्थ उगा भी शामिल है।" 134

253. ... मनपदायकानं यदिदं उग्गो गहपति वेसालिको।

253. ...मनपपकानां यदिदं उग्गो गहपति वेसालिको।

---

(254) "... संघ के सेवकों में गृहस्थ उग्गता है।" 135

254।

254. ...सङ्घुपत्थाकनं यदिदं हत्थिगंको उग्गतो गहपति।

---

(255) "...अटूट विश्वास रखने वालों में सूरा अंबत्था भी शामिल हैं।" 136

255।

255. ... अवेचप्पस नयनानं यदिदं सुरम्बट्ठो [सूरो अम्बत्थो (सी० स्या० कं० पी०) सुरेबन्धो (क०)]।

---

(256) "...लोगों पर विश्वास रखने वालों में जीवक कोमरभच्च भी शामिल हैं।" 137

256. ...पुग्गलप्पसन्नानं यदिदं जीवको कोमारभक्को।

256. ... पुग्गलप्पस नयनानां यदिदं जीवको कोमरभच्चो।

---

(257) "...जिन पर भरोसा किया जाता है उनमें गृहस्थ नकुलपिता भी शामिल हैं।" 138

257. ...विशासकानां यदिदं नकुलपिता गहपतिति।

257. ...विस्सासकानं यदिदं नकुलपिता गहपतिति।

---

vii. सातवाँ उप-अध्याय (महिला गृहस्थ अनुयायी) 258 — 267

(258) "भिक्षुओं (सन्यासियों), मेरी महिला गृहस्थ अनुयायियों में सबसे पहले शरण लेने वाली सुजाता है, जो सेनानी की पुत्री है।" 139

258. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सविकानं उपासिकाणं पथं शरणं गच्छन्तिनां यदिदं सुजाता सेनियाधिता" [सेनानि धिता" (सि. स्या. कं. पि.)].

258. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सविकानं उपासिकाणं पथमं शरणं गच्छनतीनं इदिदं सुजाता सेनियधीता" [सेनानी धीता (सी० स्या० कं० पी०)]।

---

(259) "... दानदाताओं में विशाखा मिगारमाता भी शामिल हैं।" 140

259. ... दैयिकाणं यदिदं विशाखा मिगरामाता।

259. ... दयाकानं यदिदं विशाखा मिगरमाता।

---

(260) "... विद्वानों में खुज्जुत्तारा भी शामिल हैं।" 141

260. ...बहुसुतानं यदिदं खुज्जुत्तरा।

260. ... बहुसुतानं यिददं खुज्जुत्तरा।

---

(261) "...उन लोगों में जो प्रेम और करुणा (मेट्टा) में निवास करते हैं, उनमें समवती भी शामिल हैं।" 142

261. ...मेत्ताविहारिनं यदिदं समावति।

261. ...मेत्ताविहारिनं यदिदं समावती।

---

(262) "...ध्यानियों में उत्तरा नंदमाता हैं।" 543

262. ...झायिनं यदिदं उत्तरानंदमाता।

262. ... झायिनं यदिदं उत्तरानंदमाता।

---

(263) "...उत्कृष्ट दान देने वालों में कोलियन पुत्री सुप्पावासा भी शामिल है।" 144

263. ...पणितदायिकाणं यदिदं सुप्पवासा कोलियधिता।

263. ... पणितदायिकानं यदिदं सुप्पवासा कोलियधीता।

---

(264) "...बीमारों की सेवा करने वालों में महिला अनुयायी सुप्पिया भी शामिल है।" 145

264. ... गिलानुपत्थाकिनां यदिदं सुप्पिया उपासिका।

264. ... गिलानुपत्थाकीनं यदिदं सुप्पिया उपासिका।

---

(265) ... अटूट विश्वास रखने वालों में कटियानी भी शामिल हैं।

265. ...एवेक्कप्पसन्नानं यदिदं कटियानि।

265. ...अवेच्चप्पस न्याणां इदिदं कटियानि।

---

(266) "...जिनके साथ घनिष्ठ संबंध हैं उनमें गृहिणी नकुलमाता भी शामिल हैं।" 147

266. ... विशासिकाणां यदिदं नकुलमाता गहपतनि।

266. ...विस्सासिकानं यदिदं नकुलमाता गहपतानी।

---

(267) ...जिनका विश्वास सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है, उनमें कुलाघरिका की महिला अनुयायी काली भी शामिल है।" 148

267।

267. ... अनुस्सवप्पस नारायणं यदिदं काळी उपासिका कुलघरिका [कुलघरिका (क०)] ति।

(1.XV) असंभव 149 (अत्थाना)

268

"यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि दृष्टि में सिद्ध कोई (प्रबुद्ध) व्यक्ति किसी भी सशर्त घटना (संहार/संस्कार/भावना) को स्थायी मान सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है [27] कि कोई सांसारिक व्यक्ति किसी सशर्त घटना (संहार/संस्कार/भावना) को स्थायी मान सकता है; ऐसी संभावना है।" 150

268. "अठाणमेतम्, भिक्खवे, अनवकासो यं दितिहिसाम्पन्नो पुग्गलो कान्सि [किन्चि (का.)] संखारं निक्कतो उपगच्छेया। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जणो कैञ्चि संखरं निक्कतो उपगच्छेया। हानामेतं विज्जति'ति।

268. "अट्ठानमेतं , भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प स्यानो पुग्गलो कन्दिचि [किञ्चचि (क०)] सङ्खारं निच्चदचतो उपगच्छेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जनो कांचचि सङ्खारं निच्चदचतो उपगच्छेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

269

भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि दृष्टि में सिद्ध पुरुष किसी भी सत्वभूत घटना (संहार/संस्कार/भावनाओं) को सुखद समझे; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि सांसारिक पुरुष कुछ सत्वभूत घटनाओं (संहार/संस्कार/भावनाओं) को सुखद समझे; ऐसी संभावना है।

269. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो कांची संखारं सुखतो उपगच्छेया।" नेतं ठाणं विज्जति. ढानांच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो कांची संखारं सुखतो उपगच्छेया। हानामेतं विज्जति'ति।

269. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प स्यानो पुग्गलो कांचि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जनो कांचि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

270

"भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि ज्ञान में निपुण व्यक्ति किसी भी चीज़ को आत्मा मान सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि सांसारिक व्यक्ति किसी चीज़ को आत्मा मान ले; ऐसी संभावना है।" 152

270. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो कांची धम्मं अत्ततो उपगच्छेया। नेतं ठाणं विज्जति. ढानांच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जणो कांची धम्मं अत्ततो उपगच्छेया। हानामेतं विज्जति'ति।

270. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प सानज्यो पुग्गलो कंचि धम्मं अत्तत्तो उपगच्छेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जजनो कंचि धम्मं अत्तत्तो उपगच्छेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

---

271 — 276

(271) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी माता का वध कर सकता है... (272) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपने पिता का वध कर सकता है... (273) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति किसी अरहंत का वध कर सकता है... (274) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति घृणा के भाव से तथागत का रक्त बहा सकता है... (275) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति संघ में फूट डाल सकता है... (276) कि सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मान सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि कोई सांसारिक व्यक्ति बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मान सकता है; ऐसी संभावना है।" 153

271. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो मातरं जीवित वोरोपेय। नेतं ठाणं विज्जति. तनानच खो, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो मातरं जीवित वोरोपेय। हानामेतं विज्जति'ति।

272. "अत्थानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो पितरं जीवित वोरोपेय। नेतं ठाणं विज्जति. ठाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो पितरं जीवित वोरोपेय। हानामेतं विज्जति'ति।

273. "अत्थानमेतम्, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो अरहंतां जीवित वोरोपेय। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो अरहंतां जीवित वोरोपेय। हानामेतं विज्जति'ति।

274. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो तथागतस्स पदुत्थचित्तो लोहितं उप्पादेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. हानांच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो तथागतस्स पदुत्थचित्तो लोहितं उप्पादेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

275. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दिट्ठिसमपन्नो पुग्गलो संघं भिंडेय। नेतं ठाणं विज्जति. ठाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो संघं भिंडेय। हानामेतं विज्जति'ति।

276. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं दितिथिसंपन्नो पुग्गलो अन्नं सत्थारं उद्दिसेय।' नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो अण्णां सत्थारं उद्दिसेय। हानामेतं विज्जति'ति।

271. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प सानज्यो पुग्गलो मातरं सजीव वोरोपेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जनो मातरं सजीव वोरोपेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

272. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प सानज्यो पुग्गलो पितरं सजीव वोरोपेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुजज्जनो पितरं सजीव वोरोपेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

273. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प सानज्यो पुग्गलो अरहंतं सजीव वोरोपेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्मजति यं पुथुज्जनो अरहंतं सजीव वोरोपेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

274. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प सानज्यो पुग्गलो तथागतस्स पदुत्थचित्तो लोहितं उप्पादेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुजज्जनो तथागतस्स पदुत्थचित्तो लोहितं उप्पादेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

275. "अट्ठानमेतं , भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प संज्ञाओ पुग्गलो सङ्घं भिन्देय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जनो सङ्घं भिन्देय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

276. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्प वैज्ञानिको पुग्गलो अञ्जन सथारं उद्दिसेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुथुज्जनो अञ्जन सथारं उद्दिसेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

277

"यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि दो पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत 154 [28] एक ही विश्व व्यवस्था में समकालीन रूप से प्रकट हो सकें; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि एक पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत एक ही विश्व व्यवस्था में प्रकट हो सकें; ऐसी संभावना है।" 155

277. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहंतो सम्मासंबुद्धा अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युं। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एकोवा अरहं सम्मासंबुद्धो उप्पज्जेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

277. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहंतो सम्मासंबुद्धा अपुब्बं अचरिमं उप्पजदजेय्युं। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं एकिस्सा लोकधातुया एकोव अरहं सम्मासम्बुद्धो उप्पजदजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

278

"भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि एक ही विश्व व्यवस्था में दो चक्र-चालक सम्राट एक साथ उत्पन्न हो सकें; ऐसी कोई संभावना नहीं है। 156 परन्तु यह संभव है कि एक ही विश्व व्यवस्था में एक चक्र-चालक सम्राट उत्पन्न हो सके; ऐसी संभावना है।"

278. "अट्ठानमेतम्, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे राजणो चक्कवत्ती अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युम्।" नेतं ठाणं विज्जति । न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एको राजा चक्कवत्ती उप्पज्जेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

278. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे राजानो च त्रकवत्ती अपुब्बं अचरिमं उप्पजदजेयुं। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं एकिस्सा लोकधातुया एको राजा चकवक्ति उप्पजदजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

---

279 -283

(279) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि कोई स्त्री पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध अरहंत हो सकती है... (280) ...कि कोई स्त्री चक्र चलाने वाली सम्राट हो सकती है... (281) ...कि कोई स्त्री सक्का (इंद्र) का पद धारण कर सकती है... (282) ...कि कोई स्त्री मार का पद धारण कर सकती है... (283) ...कि कोई स्त्री ब्रह्मा का पद धारण कर सकती है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि कोई पुरुष ब्रह्मा का पद धारण कर सकता है; ऐसी संभावना है।" 157

279. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनावकासो यं इत्थि अरहं अस्स सम्मासंबुद्धो। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो, एतां, भिक्खवे, विज्जति यं पुरिसो अरहं अस्स सम्मासंबुद्धो। हानामेतं विज्जति'ति।

280. "अट्ठानमेतम, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थि राजा अस्स चक्कवत्ती। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतां, भिक्खवे, विज्जति यं पुरिसो राजा अस्सा चक्कवत्ती। हानामेतं विज्जति'ति।

281-283. "अठानामेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थी सक्कट्टं कारेया...पे... मरत्तं कारेया...पे... ब्रह्मत्तं कारेया। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यम पुरिसो सक्कत्तं कारेया...पे... मरत्तं कारेया...पे... ब्रह्मत्तं कारेया। हानामेतं विज्जति'ति।

279. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थि अरहं अस्स सम्मासम्बुद्धो। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो, एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुरिसो अरहं अस्स सम्मासम्बुद्धो। ठाणमेतं विज्जति''ति।

280. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थि राजा अस्स च त्रकवत्ती। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यां पुरिसो राजा अस्स चकरावत्ती। ठाणमेतं विज्जति''ति।

21-283. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थि स त्रक्तं करेय...पे०... मार्त्तं करेय...पे०... ब्रह्मत्तं करेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं पुरिसो सर्कक्तं करेय...पे०... मार्त्तं करेय...पे०... ब्रह्मत्तं करेय। ठाणमेतं विज्जति''ति।

---

284 -286

(284) "हे भिक्षुओं, यह असंभव और अकल्पनीय है कि शारीरिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके... (285) ... कि मौखिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके... (286) ... कि मानसिक दुराचार से वांछित, मनभावन, सुखद परिणाम प्राप्त हो सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि मानसिक दुराचार से अवांछित, अप्रिय, अप्रिय परिणाम प्राप्त हो सके [शारीरिक दुराचार से... मौखिक दुराचार से...]; ऐसी संभावना है।"

284. "अत्थानमेतम, भिक्खवे, अनावकासो यं कायदुच्चरित्स्स इत्थो कंतो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतां, भिक्खवे, विज्जति यं कयादुच्चरित्स्सा अनिथो एकान्तो अमानपो विपाको निब्बत्तेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

285-286. "अथानामेतम्, भिक्खवे, अनावकासो यम वासिदुच्चरित्स्स...पे... यं मनोदुच्चरित्स्स इत्थो कान्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हानांच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोदुच्चरितास्स अनिथो अकान्तो अमानपो विपाको निब्बत्तेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

284. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कयदुच्चचरितस्स इत्थो कन्तो मनापो विपाको निब्बटेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं कयदुच्चचरितस्स अनित्थो अकांतो अम्नापो विपाको निब्बटेय। ठाणमेतं विज्जति''ति।

285-286. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचिदुच्चचरितस्स...पे०...यं मनोदुचचरितस्स इत्थो कन्तो मनापो विपाको निब्बटेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं मनोदुच्छचरितस्स अनित्थो अकांतो अम्नापो विपाको निब्बटेय। ठाणमेतं विज्जति''ति।

287— 289

(287) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है [29] . . . (288) . . . कि मौखिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है ... (289) . . . कि मानसिक अच्छे आचरण से कोई अवांछित, अप्रिय परिणाम उत्पन्न हो सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन यह संभव है कि मानसिक

अच्छे आचरण से वांछित, सुखद परिणाम उत्पन्न हो सकता है [शारीरिक अच्छे आचरण से . . . मौखिक अच्छे आचरण से . . .]; ऐसी संभावना है।" 153

287. "अत्थानमेतम्, भिक्खवे, अनावकासो यं कायासुचरितस्स अनिथो अकान्तो अमानपो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं कायासुचरितस्स इत्थो कंतो मनापो विपाको निब्बत्तेय। हानामेतं विज्जति'ति।

288-289. "अत्थानमेतम्, भिक्खवे, अनवकासो यम् वसीसुकारित्सा...पे... मनोसुचरितस्स अनिथो अकांतो अमानपो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोसुचरितस्स इत्थो कंतो मनापो विपाको निब्बत्तेय। हानामेतं विज्जति'ति।

287. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायसुचरित्सस अनित्थो अकांतो अम्नापो विपाको निब्बटेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं कायसुचरितस्स इत्थो कन्तो मनापो विपाको निब्बटेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

288-289. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचिसुचरित्स्स...पे.... मनोसुचरित्स्स अनित्थो अकांतो अम्नापो विपाको निब्बटेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं मनोसुचरितस्स इत्थो कन्तो मनापो विपाको निब्बटेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

---

290 - 292

(290) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके... (291) ... कि मौखिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके... (292) ... कि मानसिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, किसी अच्छे स्थान, किसी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके; ऐसी कोई संभावना नहीं है। परन्तु यह संभव है कि शारीरिक दुराचार ... मौखिक दुराचार ... में लिप्त व्यक्ति, मानसिक दुराचार में लिप्त व्यक्ति, शरीर के विखंडन के कारण, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में पुनर्जन्म ले सके... बुरी नियति, निम्न लोक में, नरक में; ऐसी संभावना है।"

290. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायदुच्चरितसामंगी तन्निडाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतां, भिक्खवे, विज्जति यं कायदुक्करितसामंगी तन्निडाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपतां निरयं उपपज्जेय्या. हानामेतं विज्जति'ति।

291-292. "अठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यम् वसीदुच्चरितसामंगी...पे... यं मनोदुच्चरितसामंगी तन्निदाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा सुगतिं" सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोदुच्चरित्समंगी तन्निदाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपतां निरयं उपपज्जेय्या. हानामेतं विज्जति'ति ।

290. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायदुच्चचरितसमङ्गी त संज्ञा तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपजदजेय। नेतं ठानं विज्जति। तन्नदच खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं कायदुच्चचरितसमङ्गी त संज्ञाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपयं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

291-292. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचिदुच्चचरितसमङ्गी...पे....यं मनोदुच्चचरितसमङ्गी त संज्ञाना तप्पचदचया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जजेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं मनोदुच्चचरितसमङ्गी त संज्ञादाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपज्जजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

---

293 -295

(293) "यह असंभव और अकल्पनीय है, भिक्षुओं, कि शारीरिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले (294) ... कि मौखिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले ... (295) ... कि मानसिक अच्छे आचरण में संलग्न कोई व्यक्ति, उस कारण से, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले; ऐसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन यह संभव है [30] कि कोई व्यक्ति [शारीरिक अच्छे आचरण में ... मौखिक अच्छे आचरण में ...] मानसिक अच्छे आचरण में संलग्न हो, उस कारण से, इसलिए, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म होना संभव है।

293. "अट्ठनामेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायासुचरितसमंगी तन्निडाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपताम्" निरयं उपपज्जेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं कायासुचरितसामांगी तन्निडाना तप्पक्कया कायास्सा भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेया। हानामेतं विज्जति'ति।

294-295. "अठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वसीसुचरितसामंगी...पे... यं मनोसुचरितसामंगी तन्निडाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। नेतं ठाणं विज्जति. न्हाणंच खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यम मनोसुचरितसामंगी तन्निडाना तप्पक्कया कायस्सा भेदा परं मरण सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। हानामेतं विज्जति'ति।

293. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायसुचरितसमङ्गी त संज्ञादाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निर्यं उपपज्जजेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं कायसुचरितसमङ्गी त संज्ञादाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

294-295. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचिसुचरितसमङ्गी...पे....यं मनोसुचरितसमङ्गी त संज्ञा तप्पच्चया कायस भेदा परं मरणा उपायं दुग्गतिं विनिपातं निर्यं उपजजेय। नेतं ठानं विज्जति। ठनञ्च खो एतं, भिक्खवे, विज्दजति यं मनोसुचरितसमङ्गी त संज्ञा तप्पच्चया कयस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जजेय। ठाणमेतं विज्जति"ति।

(1.XVI) एक बात 159[एकधम्म]

i. पहला उपअध्याय

296

भिक्षुओं, एक ऐसी चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। 160 वह एक चीज क्या है? बुद्ध का स्मरण। 161 यही वह एक चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्बिदा... निर्वाण प्राप्त होता है।

296. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो एकान्तनिब्बिदया विरागया निरोधाय उपसामय अभिनयाय सम्बोधाय निब्बानया संवत्तति। काटामो एकधम्मो? बुद्धनुस्सति. अयं खो, भिक्खवे, एकाधम्मो भावितो बाहुलिकतो एकांतनिब्बिदया विरागया निरोधाय उपसामय अभिनयाय संबोधाय निब्बानया संवतति"।

296. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलिकतो एकांतनिब्बिदय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्ञानाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? बुद्धानुस्स्ति। अयं खो, भिक्खवे, एकदम्मो भावितो बहुलिकतो एकांतनिब्बिदय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्ञानाय सम्बोधाय निब्बानय संवत्ति"ति।

297

(297) "भिक्षुओं, एक ऐसी चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्दिदा, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। वह एक चीज क्या है? धम्म का स्मरण... संघ का स्मरण... सद्‌गुणों का स्मरण... उदारता का स्मरण... देवताओं का स्मरण... श्वास का ध्यान... मृत्यु का ध्यान... शरीर का ध्यान... शांति का स्मरण... यही वह एक चीज है जिसका विकास और अभ्यास करने से केवल निब्दिदा और निर्वाण प्राप्त होता है।"

297. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो एकान्तनिब्बिदया विरागया निरोधाय उपसामय अभिनयाय संबोधाय निब्बानया संवत्तति। काटामो एकधम्मो? धम्मानुस्सति...पे... संघनुस्सति... सिलानुस्सति... चगनुस्सति... देवतानुस्सति... अनापानस्सति... मरणस्सति... कायगतासति... उपासमनुस्सति। अयं खो, भिक्खवे, एकदम्मो भावितो बाहुलिकतो एकांतनिब्बिदया विरागया निरोधाय उपसामय अभिनयाय संबोधाय निब्बानया संवत्तति।]

297. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलिकतो एकांतनिब्बिदय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्ञानाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? धम्मनुस्स्ति...पे०... सङ्घानुस्स्ति... सीलानुस्स्ति... चगानुस्स्ति... देवतानुस्स्ति...अनापानस्सति... मरणस्सति... कायगतस्सति... उपसमानुस्सति। अयं खो, भिक्खवे, एकदम्मो भावितो बहुलिकतो एकांतनिब्बिदय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्ञानाय सम्बोधाय निब्बानय संवत्ति"ति।

---

ii. दूसरा उप-अध्याय

298

भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न हों और उत्पन्न होकर इतनी वृद्धि और विस्तार हो जितना कि गलत दृष्टिकोण से होता है। गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर बढ़ते और विस्तार होते हैं।

298. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपसामि येन अनुप्पन्ना वा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उपपन्ना वा अकुशला धम्म भयोभवाय वेपुलया संवत्तन्ति यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छदिथि। मिच्छादिथिकास्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म भयोभवाय वेपुलया संवत्तन्ति।

298. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नागा वा अकुसला धम्म भयोभावाय वेपुलादालय संवत्तन्तिथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म उप्पजजंति उप्प नायना च अकुसला धम्मा भयोभावाय वेपुलल्लाय संवत्तन्ति"ति।

299

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न हों और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण इतने अधिक बढ़ें और फैलें जितना सही दृष्टि से होता है। [31] सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) बढ़ते और फैलते हैं।"

299. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसल धम्म भयोभवाय वेपुलया संवत्तन्ति यथयिदं , भिक्खवे , सम्मादिथि । सम्मादिथिकस, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म भयोभवाय वेपुलया संवत्तन्ति।

299. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा कुसला धम्म उप्पजजंति उप्पा नागा वा कुसला धम्मा भयोभवाय वेपुलाल्लाय संवतन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्म उप्पजजंति उप्प नयना च कुसला धम्मा भयोभावाय वेपुलल्लाय संवत्तन्ति"ति।

300

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न न हों और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण इतने अधिक कम हो जाएँ जितना कि गलत दृष्टिकोण। 165 गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) कम हो जाते हैं।

300. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा कुसल धम्म नुप्पज्जन्ति उपपन्ना वा कुसल धम्म परिहयन्ति यथायिदं, भिक्खवे, मिच्छादिथि. मिच्छादिथिकस, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा कुसल धम्म नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसल धम्म परिहयन्ति"।

300. " नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नागा वा कुसला धम्म नुप्पजदजन्ति उप्प नागा वा कुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव कुसला धम्मा नुप्पजजंति उप्प नयना च कुसला धम्मा परिहयन्ति"ति।

301

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिससे अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न न हों और उत्पन्न अकुशल गुण कम हो जाएँ, सिवाय सही दृष्टि के। 166 सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण कम हो जाते हैं।

301. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसाला धम्म नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसाला धम्म परिहयन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सम्मादिति. सम्मादिथिक्कस्सा, भिक्खवे, अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुशला धम्म परिहयन्ति"।

301. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प सना वा अकुसला धम्म नुप्पज्जन्ति उप्पा नपा वा अकुसला धम्म परिहन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्प साइना चेव अकुसला धम्म नुप्पजजंति उप्प नागा च अकुसला धम्मा परिहयन्ति"ति।

302

"भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज नजर नहीं आती जिससे अनपेक्षित गलत विचार उत्पन्न हो और उत्पन्न गलत विचार इतना बढ़ जाए जितना कि लापरवाही से ध्यान देने से। लापरवाही से ध्यान देने वाले व्यक्ति के लिए अनपेक्षित गलत विचार उत्पन्न होता है और उत्पन्न गलत विचार बढ़ता ही जाता है।" 167

302. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा मिच्छदिथि उप्पज्जति उपपन्ना वा मिच्छदिथि पवद्धति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा मिच्छादिथि उप्पज्जति उपपन्ना च मिच्छादिथि पवधति"ति।

302. "नहं, भिक्खवे, अञ्जनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नयना वा मिच्छादिट्ठि उप्पजदजति उप्पा नगा वा मिच्छादिट्ठि पवन्नति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसोमनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नासा चेव मिच्छादिट्ठि उप्पजदजति उप्प नागा च मिच्छादिट्ठि पवन्नति"ति।

303

"भिक्षुओं, मुझे ऐसी कोई भी चीज दिखाई नहीं देती जिससे अजन्मा सही दृष्टिकोण उत्पन्न हो और उत्पन्न सही दृष्टिकोण में इतनी वृद्धि हो जितनी कि सजग ध्यान से होती है। सजग ध्यान से देखने पर अजन्मा सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है और उत्पन्न सही दृष्टिकोण में वृद्धि होती है।" 168

303. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन अनुप्पन्ना वा सम्मादिथि उप्पज्जति उपपन्ना वा सम्मादिथि पवधति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसोमनासिकारो. योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना सेवा सम्मादिथि उप्पज्जति उप्पन्ना च सम्मादिथि पवधति"ति।

303. "नहं, भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन अनुप्प नासा वा सम्मादिट्ठि उप्पजदजति उप्पा नागा वा सम्मादिट्ठि पवन्नति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसोमनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्प नासा चेव सम्मादिट्ठि उप्पजदजति उप्प नागा च सम्मादिट्ठि पवन्नति"ति।

304

भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता जिसके कारण शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, प्राणी दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं, सिवाय गलत दृष्टि के। गलत दृष्टि रखने वाले प्राणी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

304. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन [येनेवं (सि. स्या. कां. पि.)] सत्ता कायस्सा भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति यथायिदं, भिक्खवे, मिच्छदिथि। मिच्छादिठिया, भिक्खवे, समानागत सत्ता कायस्सा भेदा परं मरण अपायं दुग्गतिं विनिपतं निरयं उपपज्जन्ति"।

304. "नहं , भिक्खवे, अञ्चनं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन [येनेवं (सी० स्या० कं० पी०)] सत्य कायस भेद परं मरणा अपायं यग्नतिं विनिपातं निर्यं उपपज्जन्तिथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिया, भिक्खवे, सम नासागता सत्य कायस भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निर्यं उपपज्जन्ति"ति।

305

"भिक्षुओं, मुझे ऐसा एक भी कारण नहीं दिखता [32] जिसके कारण शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, प्राणी अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं, सिवाय सही दृष्टि के। सही दृष्टि रखने वाले प्राणी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

305. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि येन सत्ता कायस्सा भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति यथायिदं, भिक्खवे, सम्मादिति. सम्मदिठिया, भिक्खवे, समानागत सत्ता कायस्सा भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति"।

305. "नाहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि येन सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति यथैदं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। सम्मादिट्ठिया, भिक्खवे, सम अज्ञानता सत्य कायस भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति"ति।

306

भिक्षुओं, गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, उसके द्वारा उस दृष्टिकोण के अनुसार किए गए सभी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म, और उसकी सभी आत्म-जागरूकता, लालसा, प्रवृत्ति और संस्कार, सभी अवांछित, अप्रिय और हानि एवं पीड़ा की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण गलत है। मान लीजिए, भिक्षुओं, नीम, खीरा या करेला का एक बीज नम मिट्टी में बोया गया। मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करता है, वे सभी उसके कड़वे, तीखे और अप्रिय स्वाद का कारण बनते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज खराब है। इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए, सभी अवांछित, अप्रिय और हानि एवं पीड़ा की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका दृष्टिकोण गलत है।

306. "मिच्छदिथिकस, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्सा यान्सेव कायकम्मं यथादिथि समत्तं समादिन्नं याञ्च वाचिकम्म...पे... याञ्च मनोकम्मम् यथादिथि समत्तं समादिन्नं या च चेतना या च पत्तन यो च पणिधि ये च संखारा सब्बे ते धम्म अनित्थाय एकान्ताय अमानपाय अहिताय दुक्खाय सांवत्तन्ति. इसलिए किस्सा हेतु? दितिहि हिसा [दितिहि हि (सि. स्या. कां. पि.)], भिक्खवे, पपीका। सेयथापि, भिक्खवे, निम्बाबीजं वा कोसाताकिबीजं वा तित्तकलाबुबिजं वा अल्लाया पथविया [पठाविया (सि. स्या. कं. पि.)] निकखिटं यानसेवा पथविरसं उपादेयति यञ्च अपोरसं उपादेयति सब्बं तं तित्तकट्टया कटुकट्टय असतत्तय सवत्तति। इसलिए किस्सा हेतु? बिजं हिस्सा [विजं (सि. स्या. कं. पि.)], भिक्खवे, पापकम्। एवमेवं खो, भिक्खवे, मिच्छादिथिकस पुरिसपुग्गलास्सा यान्सेव कायकम्मं यथादिथि समत्तं समादिन्नं याञ्च वसीकम्मम्...पे... यञ्च मनोकम्मम् यथादिथि समत्तं समादिन्नं या च चेतना या च पत्तन यो च पणिधि ये च संखारा सब्बे ते धम्म अनित्थाय एकान्ताय अमानपाय अहिताय दुक्खाय सांवत्तन्ति. इसलिए किस्सा हेतु? दितिहि हिस्सा, भिक्खवे, पापिका'ति।

306. "मिच्छदिट्ठिकस्स, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्स यंदचेव कायकम्मं अतादिट्ठी समत्तं समादि साइनं यञ्च वचिकम्मं...पे.... यञ्च मनोकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादि साइनं या च अना या च पथना यो च पणिधि ये च सक्खरा सब्बे ते धम्म अनित्थाय आकांताय अमापाय अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति। तं किस्से? दिट्ठी हिस्स [दिट्ठी हि (सी० स्या० कं० पी०)], भिक्खवे, पापिका। सेयथापि, भिक्खवे, निंबबीजं वा कोसाताकिबीजं वा तित्तकलाबुबीजं वा अल्ललय पथ्विया [पठ्विया (सी० स्या० कं० पी०)] निखित्तं यञ्चेव पथ्विरसं उपादेयति यञ्च अपोरसं उपादेयति सब्बं तं तित्तकट्टय कटुकट्टय असत्तय संवत्तति। तं किस्से? बीजें हिस्स [विजं (सी० स्या० कं० पी०)], भिक्खवे, पापकं। एवेमेवं खो, भिक्खवे, मिचादिट्ठिकस्स पुरिसपुग्गलस यञ्चेव कायकम्मं यथादिट्ठी समत्तं समादि साइनं यञ्च वचिकम्मं...पे.... यञ्च मनोकम्मं यथादिट्ठी समत्तं समादि साइनं या च अना या च पथना यो च पनिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्म अनित्थय अकांताय अमानपाय अहिताय दुःखाय संवत्तन्ति। तं किस्से? दिट्ठी हिस्स, भिक्खवे, पापिका"ति।

307

भिक्षुओं, सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए, वह जो भी शारीरिक कर्म, वाणी कर्म और मानसिक कर्म करता है, और जो भी उसकी (आत्म)जागरूकता, लालसा, झुकाव और चरित्र (संस्कार) होते हैं, वे सब वांछित, वांछनीय और सुखद, कल्याण और सुख की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि अच्छी है। मान लीजिए, भिक्षुओं, गन्ने, पहाड़ी चावल या अंगूर का एक बीज नम मिट्टी में बोया गया। मिट्टी और पानी से वह जो भी पोषक तत्व ग्रहण करता है, वे सब उसके मीठे, सुखद और लजीज स्वाद की ओर ले जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि बीज अच्छा है। इसी प्रकार, सही दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए... सब कुछ वांछित, वांछनीय और सुखद, कल्याण और सुख की ओर ले जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि दृष्टि अच्छी है।

307. "सम्मादिथिकस, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्सा यान्सेव कायकम्मं यथादिथि समत्तं समादिन्नं याञ्च वाचिकम्मं...पे... याञ्च मनोकम्मम् यथादिथि समत्तं समादिन्नं य च चेतना या च पत्तन यो च पणिधि ये च संखारा सब्बे ते धम्म इत्थाय कंतया मनपय हिताय सुखाय सांवत्तन्ति. इसलिए किस्सा हेतु? दितिहि हिस्सा, भिक्खवे, भद्दिका। सेयथापि, भिक्खवे, उच्छुबिजं वा सलिबिजं वा मुद्दिकाबिजं वा अल्लाया पथविय निकखिटं यानसेवा पथविरसं उपादीयति यञ्च अपोरासं उपादीयति सब्बं तं मधुरट्टय सताट्टय असेकनकट्टय संवत्तति। इसलिए किस्सा हेतु? बिजं हिस्सा, भिक्खवे, भद्दकं। एवमेवं खो, भिक्खवे, सम्मादिथिकस पुरिसपुग्गलस्सा यान्सेव कायकम्मं यथादिथि समत्तं समादिन्नं

याञ्च वाचिकम्म...पे... याञ्च मनोकम्मम् यथादिथि समत्तं समादिन्नं य च चेतना या च पत्तन यो च पणिधि ये च संखारा सब्बे ते धम्म इत्थाय कंतया मनपय हिताय सुखाय सांवत्तन्ति. इसलिए किस्सा हेतु? दितिहि हिस्सा, भिक्खवे, भद्दिका'ति।

307. "सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्स यञ्चेव कायकम्मं अतादिट्ठी समत्तं समादि द्दश्यं यञ्च वचिकम्मं...पे.... यञ्च मनोकम्मं यथादित्थि समत्तं समादि साइनं या च अना या च पत्थना यो च पणिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्म इत्थाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। तं किस्से? दिट्ठी हिस्स, भिक्खवे, भद्दिका। सेयथापि, भिक्खवे, उच्छुबीजं वा सालिबिजं वा मुद्दिकाबीजं वा अलदालय पथ्वि निखित्तं यञ्चेव पथ्विरसं उपादेयति यञ्च अपोरसं उपादेयति सब्बं तं मधुरताय सातत्ताय असेचनकत्तय संवत्तति। तं किस्से? बीजें हिस्स, भिक्खवे, भद्दकं। एवमेवं खो, भिक्खवे, सम्मादिट्ठिकस्स पुरिसपुग्गलस्स यञ्चेव कायकम्मं यथादिट्ठी समत्तं समादि साइनं यञ्च वचिकम्मं...पे.... यञ्च मनोकम्मं अतिदिट्ठी समत्तं समादि दर्शनं या च स्वयं या च पथना यो च पनिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्म इत्थय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। तं किस्से? दिट्ठी हिस्स, भिक्खवे, भद्दिका"ति।

---

iii. तीसरा उप-अध्याय 172

308

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो संसार में अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और कष्ट के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्पन्न होता है। वह कौन है? वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है और जिसकी सोच भ्रामक है। वह अनेक लोगों को अच्छे धर्म से दूर ले जाता है और उन्हें बुरे धर्म में स्थापित करता है। यही वह व्यक्ति है जो संसार में अनेक लोगों के हितैष, अनेक लोगों के दुःख, अनेक लोगों के विनाश, हानि और कष्ट के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्पन्न होता है।

308. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सनम्। काटामो एकापुग्गलो? मिच्चादिथिको होति विपरीतदस्सणो। तो बहुजानं सद्धम्मे वुट्ठपेत्वा असद्दम्मे पतिट्ठपेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सन"न्ति।

308. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति बहुजनअहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अनंताय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। कत्मो एकपुग्गलो? मिचादिथिको होति विपरीतदस्सनो। सो बहुजनं सद्धम्मा वुत्थापेत्वा असद्धम्मे पतित्थापेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति बहुजनअहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अनंताय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सान"न्ति।

309

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट होता है। वह एक व्यक्ति कौन है? वह सही दृष्टिकोण और उचित परिप्रेक्ष्य वाला व्यक्ति है। वह अनेक लोगों को बुरे धर्म से दूर करके अच्छे धर्म में स्थापित करता है। यही वह एक व्यक्ति है जो अनेक लोगों के कल्याण, अनेक लोगों के सुख, अनेक लोगों के भले, देवों (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट होता है।

309. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अत्थाय सुखाय देवमनुस्सानाम्। काटामो एकापुग्गलो? सम्मादिथिको होति अविपरितादस्सणो। तो बहुजानं असद्दम्म वुट्ठपेत्वा सद्धम्मे पतिट्ठपेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उपपज्जमानो उपज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्सा अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सन"न्ति।

309. "एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पजदजमानो उप्पजदजति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनसस आठाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कत्मो एकपुग्गलो? सम्मादिट्ठिको होति अविपरितादस्सनो। सो बहुजनं असद्धम्मा वुट्ठपेत्वा सद्धम्मे पतित्थापेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उपपजदजमानो उप्पजदजति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सान"न्ति।

310

"भिक्षुओं, मुझे गलत मत से बढ़कर कोई और निंदनीय बात नहीं दिखती। गलत मत ही सबसे निंदनीय बात है।"

310. "नहं, भिक्खवे, अन्नं एकधम्ममपि समनुपासामि यम एवं महासवज्जं यथायिदं, भिक्खवे, मिच्छदिति। मिच्छादिथिपरमणि, भिक्खवे, महासावज्जनि"ति [वज्जनिति (सि. स्या. कं.)]।

310. "नहं, भिक्खवे, अञ्चं एकधम्मपि समनुपस्सामि यं एवं महासावज्जं यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठीपरमाणि, भिक्खवे, महासावजदजानि"ति [वजदजानीति (सी० स्या० कं०)]।

311

"भिक्षुओं, मुझे मक्खली जैसा कोई और व्यक्ति नहीं दिखता जो इतने सारे लोगों की हानि, इतने सारे लोगों के दुख, इतने सारे लोगों के विनाश, हानि और इतने सारे लोगों, देवताओं (देवदूतों/देवताओं) और मनुष्यों के कष्ट के लिए इतना अधिक कार्य कर रहा हो। 175 जिस प्रकार नदी के मुहाने पर लगाया गया जाल अनेक मछलियों के लिए हानि, कष्ट, विपत्ति और आपदा लाता है, उसी प्रकार मक्खली भी मानो "लोगों के लिए एक जाल" है 176 जो अनेक प्राणियों की हानि, कष्ट, विपत्ति और आपदा के लिए संसार में उत्पन्न हुआ है।" [34]

311. "नहं, भिक्खवे, अनन्यं एकपुग्गलमपि समनुपासामि यो एवं बहुजनहिताय पतिपन्नो बहुजनसुखाय, बहुणो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानाम्" यथयिदं, भिक्खवे, मक्खलि मोघापुरिसो। सेय्यथापि, भिक्खवे, नदीमुखे खिप्पं [खीपं (सि. स्या. कां. पि.)] उड्डेय्या [ओढेय्या (सि.), उज्जेय्या (का.)] बहुनां मच्छणं अहिताय दुक्खाय। अनयाया ब्यासानया; एवमेवं खो, भिक्खवे, मक्खलि मोघापुरिसो मनुस्साखिप्पं मन्ने लोके उप्पन्नो बहुणं सत्तनं अहिताया दुक्खाय अन्याय ब्यासनाय'ति।

311. "नहं, भिक्खवे, अञ्जन एकपुग्गलमपि समनुपासामि यो एवं बहुजनअहिताय पाटिप स्यानो बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अनंताय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं यथायिदं, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो। सेयथापि, भिक्खवे, नदीमुखे खिप्पं [खिपं (सी० स्या० कं० पी०)] उड्डेय्य [ओड्डेय्य (सी०), उज्जेय (क०)] बहुअनं मच्छनं अहिताय दु:खाय अनयाय ब्यासनाय; एवमेवं खो, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो मानुस्सकिप्पं मञ्जे लोके उप्प संज्ञाओ बहूनं सत्यानं अहिताय दुक्खाय अन्याय बिसनाया"ति।

312

भिक्षुओं, जो व्यक्ति गलत ढंग से व्याख्या किए गए धम्म और अनुशासन में दूसरों को प्रोत्साहित करता है, जिसे वह प्रोत्साहित करता है, और जो इस प्रकार प्रोत्साहित होकर उसके अनुसार अभ्यास करता है, वे सभी बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म गलत ढंग से व्याख्या किया गया है।

312. "दुरक्खते, भिक्खवे, धम्मविनाये यो च समदपेति [समदापेटि (?)] यंचा समदपेटि यो च समदपितो तथात्तय पतिपज्जति सब्बे ते बहुं अपुनं पासवंती। इसलिए किस्सा हेतु? दुरक्खत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

312. "दुर्खते, भिक्खवे, धम्मविनये यो च समादपेति [समदापेति (?)] यञ्च समादपेति यो च समादपिटो तत्थय पतीपज्जति सब्बे ते बहुं अपुञ्जन पस्वन्ति। तं किस्से? दुरखत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा"ति।

313

भिक्षुओं, जो व्यक्ति सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दूसरों को प्रोत्साहित करता है, जिसे वह प्रोत्साहित करता है, और जो इस प्रकार प्रोत्साहित होकर उसके अनुसार अभ्यास करता है, वे सभी बहुत पुण्य अर्जित करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।

313. "स्वक्खते, भिक्खवे, धम्मविनाये यो च समदपेति यञ्च समदपेति यो च समदपितो तथात्तय पतिपज्जति सब्बे ते बहुं पुन्नं पासवंती।' इसलिए किस्सा हेतु? स्वक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

333. "स्वाक्खते, भिक्खवे, धम्मविन्ये यो च समादपेति यञ्च समादपेति यो च समादपितो तत्तय पतीपजदजति सब्बे ते बहुं पुंजं पस्वन्ति।' तं किस्से? स्वाक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्स"ति।

314

"भिक्षुओं, जिनके धर्म और अनुशासन की व्याख्या ठीक से नहीं की गई है, उनमें संयम का ज्ञान दान देने वाले को होना चाहिए, न कि दान प्राप्त करने वाले को। 177 इसका कारण क्या है? क्योंकि उस धर्म की व्याख्या ठीक से नहीं की गई है।"

314. "दुरक्खते, भिक्खवे, धम्मविनये दयाकेन मत्ता जनितब्बा, नो पतिग्गहकेन। इसलिए किस्सा हेतु? दुरक्खत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

314. "दुर्खते, भिक्खवे, धम्मविणये दायकेन मत्ता जनित्ब्बू, नो पतिगाहकेन। तं किस्से? दुरखत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा"ति।

315

"भिक्षुओं (सम्भावों) को सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन के साथ संयम का ज्ञान होना चाहिए, दान देने वाले को नहीं। 178 इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म (मार्ग) सुस्पष्ट है।"

315. "स्वक्खते, भिक्खवे, धम्मविनये पतिग्गहकेन मत्ता जनितब्बा, नो दयाकेन। इसलिए किस्सा हेतु? स्वक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

315. "स्वाक्खते, भिक्खवे, धम्मविनये पतिगाहकेन मत्ता जानीतब्बू, नो दइकेन। तं किस्से? स्वाक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्स"ति।

316

"भिक्षुओं, जो कोई भी गलत ढंग से व्याख्या किए गए धम्म और अनुशासन में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाता है, वह दुख में रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म गलत ढंग से व्याख्या किया गया है।"

316. "दुरक्खते, भिक्खवे, धम्मविनाय यो अरद्धवीरियो सो दुक्खं विहारति।" इसलिए किस्सा हेतु? दुरक्खत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

316. "दुर्खते, भिक्खवे, धम्मविणये यो अर्धविरियो सो दुक्खं विहारति। तं किस्से? दुरखत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा"ति।

317

"भिक्षुओं, जो कोई भी सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में आलसी होता है, वह दुख में लीन रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।"

317. "स्वक्खते, भिक्खवे, धम्मविनये यो कुसीतो सो दुक्खं विहारति। इसलिए किस्सा हेतु? स्वक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

317. "स्वाक्खते, भिक्खवे, धम्मविन्ये यो कुसीतो सो दुःखं विहारति।" तं किस्से? स्वाक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्स"ति।

318

"भिक्षुओं, जो भी धर्म और अनुशासन की गलत व्याख्या में आलसी होता है, वह सुख में रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उस धर्म की गलत व्याख्या की गई है।"

318. "दुरक्खते, भिक्खवे, धम्मविनये यो कुसीतो सो सुखं विहारति।" इसलिए किस्सा हेतु? दुरक्खत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

318. "दुर्खते, भिक्खवे, धम्मविन्ये यो कुसिटो सो सुखं विहारति।" तं किस्से? दुरखत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा"ति।

319

"भिक्षुओं, जो कोई भी सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) लगाता है, वह सुखी रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह धम्म सुस्पष्ट है।"

319. "स्वक्खते, भिक्खवे, धम्मविनय यो अरद्धवीरियो सो सुखं विहारति। इसलिए किस्सा हेतु? स्वक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा'ति।

319. "स्वाक्खते, भिक्खवे, धम्मविन्ये यो अर्धविरियो सो सुखं विहारति।" तं किस्से? स्वाक्खात्ता, भिक्खवे, धम्मस्स"ति।

320

"भिक्षुओं, जिस प्रकार मल की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है, उसी प्रकार मैं अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की थोड़ी सी मात्रा की भी प्रशंसा नहीं करता, यहाँ तक कि एक पल के लिए भी नहीं।" 179

320. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमट्टकोपि गुथो दुग्गन्धो होति; एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकम्पि भवाँ न वनेमि, अंतमसो अचरसंगहतमत्तमपि।"

320. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकोपित गूथो दुग्गन्धो होति; एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकमपि भवं न वन्नेमि, अंतमसो अचरसङ्घातमत्तमपि।"

321

"भिक्षुओं (मठवासियों), जिस प्रकार मूत्र की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... लार की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... मवाद की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है... [35]... रक्त की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है, उसी प्रकार मैं अस्तित्व (भाव/पुनर्जन्म का कारण) की थोड़ी सी मात्रा की भी प्रशंसा नहीं करता, यहाँ तक कि एक उंगली चटकाने के लिए भी नहीं।"

321. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकम्पि मुत्तं दुग्गंधं होति... अप्पमत्तकोपि खेदो दुग्गंधं होति... अप्पमत्तकोपि पुब्बो दुग्गंदहो होति... अप्पमत्तकम्पि लोहितं दुग्गंधं होति; एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकम्पि भवाँ न वनेमि, अंतमसो अचरसंगहतमत्तमपि।"

321. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकम्पि मुत्तं दुग्गन्धं होति... अप्पमत्तकोपि खेलो दुग्गन्धं होति... अप्पमत्तकोपि पुब्बो दुग्गन्धो होति... अप्पमत्तकम्पि लोहितं दुग्गन्धं होति; एवमेवं खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकमपि भवं न वन्नेमि, अंतमसो अचरसङ्घातमत्तमपि।"

---

iv. जंबुद्वीप (भारत) पुनरावृत्ति श्रृंखला [चौथा उप-अध्याय] 322 365

322 "जिस प्रकार, इस जंबूद्वीप (भारत) में भिक्षुओं (भिक्षुओं) के लिए रमणीय उद्यान, उपवन, भूदृश्य और कमल के तालाब अल्प हैं, जबकि पहाड़ियाँ और ढलानें, पार करने में कठिन नदियाँ, ठूंठ और काँटों वाले स्थान और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ अधिक संख्या में हैं, उसी प्रकार शुष्क भूमि पर जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; जल में जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं।"

322. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मि जम्बूदीपे अरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खराणिरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव बहुतारं यदिदं उक्कुलाविकुलं नदिविदुग्गं खणुककंडकथनं [खणुकंडकधानं (सि. पि.)] पब्बतविसामं; एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये थलाजा, अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये ओडका"।

32. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मिं जम्बूदीपे आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोखरणिरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव बोरं यदिदं उकूलविकूलं नदीविदुग्गं खानुकंटकट्ठानं [खानुककंदकधानं (सी० पी०)] पब्बतविसमं; एव मेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये थलजा, अथ खो एतेव सत्य वोरा ये ओडका"।

---

323 "...इसी प्रकार, मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणियों की संख्या अधिक है। ...इसी प्रकार, मध्य प्रांतों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं; बाहरी प्रांतों में असभ्य विदेशियों के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणियों की संख्या अधिक है।" 184

323. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये अन्नत्र मनुस्सेहि पच्चाजयन्ति।

...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये मज्झिमेसु जनपदसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये पक्कन्तिमेसु जनपदसु पच्चजयंती अविनातारसु मिलक्खेसु [मिलक्खुसु (का.)]।

33. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्य बीरा ये अञ्चत्र मनुस्सेहि पच्चाजयन्ति।

... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये मज्झिमेसु जिलेसु पच्चजायन्ति; अथ खो एतेव सत्य बिरा ये पच्चान्तिमेसु जिलासु पच्चाजयन्ति अविञ्चनतारेसु मिलक्खेसु [मिल्क्खुसु (क०)]।

---

324 "...इसी प्रकार, बुद्धिमान, समझदार, चतुर और अच्छी तथा बुरी बातों का अर्थ समझने में सक्षम प्राणी अल्प हैं; जबकि मूर्ख, बेवकूफ और मंदबुद्धि प्राणी अधिक हैं, जो अच्छी और बुरी बातों का अर्थ समझने में असमर्थ हैं।"

324। अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये दुप्पन्न जाजा एदामुगा न पतिबला सुभाषितदुब्भासीतस्सा अत्थमन्नतुः।

324. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्या ये पंचवन्तो अजळा अनेळमुगा पाटिबला सुभासीदुब्भासीतस्स अथममञ्चतुं; अथ खो एतेव सत्ता बिरा ये दुप्पञ्जा जळा एळमुगा न पाटिबला सुभासिदुब्भासीत्स्स अथममन्दनातुं।

---

325 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जिन्हें पन्ना (दिव्य ज्ञान) की श्रेष्ठ दृष्टि प्राप्त है; उन प्राणियों की संख्या कहीं अधिक है जो भ्रमित और अज्ञान में डूबे हुए हैं।" 185

325। अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये अविज्जगत सम्मुधा।

325. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्य ये अरियेन पञ्चाचखुना सम सिद्धांत; अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये अविज्जगता सम्मुल्हा।

---

326 . . इसी प्रकार तथागत (बुद्ध) के दर्शन पाने वाले प्राणी अल्प हैं; उन्हें न देख पाने वाले प्राणियों की संख्या कहीं अधिक है।

326. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतं दस्सानाय; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये न लभन्ति तथागतं दस्सान्या।

326. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतं दस्सनाय; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये न लभन्ति तथागतं दास्सनाय।

---

327 . . इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जिन्हें तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित धम्म और अनुशासन सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है; [36] इससे कहीं अधिक वे हैं जिन्हें इसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है।"

327. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवानाय; अथ खो एतेव सत्ता बहुतारा ये न लभन्ति तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवानाय।

327. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतप्पवेदितं धम्म्विनयं सवनाय; अथ खो एतेव सत्य बीरा ये न लभन्ति तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय।

---

328 "...इसी प्रकार, धम्म को सुनकर उसे मन में धारण करने वाले प्राणी अल्प हैं; धम्म को सुनकर उसे मन में धारण न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं।"

328. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये सुत्वा धम्मं धारेंति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये सुत्वा धम्मं न धारेंति।

328. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्या ये सुत्वा धम्मं धारेन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये सुत्वा धम्मं न धारेन्ति।

---

329 ". : . इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो मन में रखे गए उपदेशों के अर्थ की जांच नहीं करते हैं।"

329। अथ खो एतेव सत्ता बहुतारा ये धातनं धम्मनां अत्थं न उपपरिक्खन्ति।

329. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये धातानं [धतानं (सी० स्या० कं० पी०)] धम्मणं अथं उपपरिक्खन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये धातानं धम्मनं अथं न उपपरिक्खन्ति।

---

330 "...इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो धम्म का अर्थ और उसे समझते हैं तथा उसके अनुसार अभ्यास करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो धम्म का अर्थ और उसे नहीं समझते तथा उसके अनुसार अभ्यास नहीं करते।" 186

330। अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये अत्थमन्नया धम्ममन्याय धम्मनुधम्म न पतिपज्जन्ति।

330. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये अथममञ्चाय धम्ममञ्जाय धम्मनुधम्मं पतिपजदजन्ति; अथ खो एतेव सत्या बिरा ये अत्तमञ्चया धम्ममञ्चया धम्मनुधम्मं न पतिपज्मजन्ति।

---

331 "...इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो तात्कालिकता उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति तात्कालिकता की भावना विकसित करते हैं; उन प्राणियों की संख्या अधिक है जो तात्कालिकता उत्पन्न करने वाली चीजों के प्रति तात्कालिकता की भावना विकसित नहीं करते हैं।" 187

331। अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये संवेजानियेसु ठाणेसु न संविज्जन्ति।

331. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये संवेजेनियेसु थानेसु संविज्जन्ति; अथ खो एतेव सत्य बीरा ये संवेजेनियेसु थानेसु न संविज्जन्ति।

---

332 "...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो तात्कालिकता की भावना से प्रेरित होने पर सावधानीपूर्वक प्रयास करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो तात्कालिकता की भावना से प्रेरित होने पर सावधानीपूर्वक प्रयास नहीं करते हैं।"

332. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये संविग्गा योनिसो पदहन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये संविग्गा योनिसो न पदहन्ति।

332. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये संविग्गा योनिसो पधान्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये संविग्गा योनिसो न पधन्ति।

---

333 "इसी प्रकार, वे प्राणी अल्प हैं जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), मन की एकाग्रता (एकगचित्त, संस्कृत: एकग्रचित्त), जो मुक्ति पर आधारित है, प्राप्त करते हैं; वे अधिक संख्या में हैं जो समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन), मन की एकाग्रता, जो मुक्ति पर आधारित है, प्राप्त नहीं करते हैं।" 188

333। अथ खो एतेव सत्ता बहुतारा ये ववस्सग्गरमणं करित्वा न लभन्ति समाधि न लभन्ति चित्तस्सेकगगतम्।

333. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्या ये ववस्सग्गार्मणं कारित्वा लभन्ति समाधिं [चित्तस्स समाधिम (सी०)] लभन्ति चित्तस्सेकगगतं [चित्तस्सेकग्गं (सी०)]; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये ववस्सग्गार्मणं कारित्वा न लभन्ति समाधिं न लभन्ति चित्तस्सेकगतं।

---

334 . . इसी प्रकार, स्वादिष्ट भोजन का उत्तम स्वाद प्राप्त करने वाले प्राणी अल्प हैं; ऐसे प्राणी कहीं अधिक हैं जिन्हें ऐसा भोजन प्राप्त नहीं होता, बल्कि वे कटोरे में परोसे गए जूठे टुकड़ों पर ही जीवन यापन करते हैं।

334. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये अन्नग्गरसग्गनं लभिनो; अथ खो एतेव सत्ता बहुतारा ये अन्नग्गरसग्गनं न लाभिनो, उंचेन कपालभतेन यापेंती।

334. ...एवेमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये अग्गिगारसग्गानं लाभिनो; अथ खो एतेव सत्य बीरा ये अग्ग्रसग्गानं न लाभिनो, उच्छेन कपालभतेन यापेन्ति।

---

335 "...इसी प्रकार, अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त करने वाले प्राणी अल्प हैं; अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त न करने वाले अधिक हैं। 189 अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अर्थ का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद प्राप्त करेंगे।' [37]

335। अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये अत्थरसास्सा धम्मरसास्सा विमुत्तिरसास्सा न लभिनो। तस्मातिहा, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बाम् - अत्थरसास्सा धम्मरसास्सा विमुत्तिरसास्सा लभिनो भविस्सामति। एवनहि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बन्ति।

335. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्या ये अथरसस्स धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स लाभिनो; अथ खो एतेव सत्य बिरा ये अथरसस्स धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स न लाभिनो। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं – अथरसस्स धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स लाभिनो भविस्सामाति। एवञ्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बन्ति।

336-338 "हे भिक्षुओं, जिस प्रकार इस जंबूद्वीप (भारत) में रमणीय उद्यान, उपवन, प्राकृतिक दृश्य और कमल के तालाब अल्प हैं, जबकि पहाड़ियाँ और ढलानें, दुर्गम नदियाँ, कंद और काँटों वाले स्थान और ऊबड़-खाबड़ पर्वत अधिक हैं, उसी प्रकार मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य के बीच पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में, पशु जगत में, व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक हैं।" 191

336-338. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मि जम्बूदीपे अरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खराणिरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव बहुतारं यदिदं उक्कुलाविकुलं नदीविदुग्गं खणुककंटकठनं पब्बतविसमाम्। एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये मनुस्सा काटा मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति, अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये मनुस्सा काटा निराये पच्चाजयन्ति...पे... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति...पे... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति"।

336-338. "सेयथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मिं जम्बूदीपे आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोखरणिरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव ब्यारं इदिदं उकूलविकोलं नदीविदुग्गं खानुकंटकट्ठानं पब्बतविसमं। एव मेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये मनुषा चुता मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति, अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये मनुषा चुता नीरये पच्चाजयन्ति...पे०... त्रिच्चानोनिया पच्चाजयन्ति...पे०... पेट्टितविसये पच्चाजयन्ति।"

339-341 : ...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे प्राणी कहीं अधिक हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।'

339-341. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये मनुस्सा काटा देवेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये मानुषा कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

339-341. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये मनुष्सा चुता देवेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये मनुषा चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिर्चानयोनिया पच्चादजयन्ती... पेट्टितविसये पचदजायन्ति।

342-344 "...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो देवों (देवदूतों/देवताओं) के रूप में मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों/देवताओं) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे प्राणी कहीं अधिक हैं जो देवों (देवदूतों/देवताओं) के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

342-344. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये देवा काटा देवेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये देवा काटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

342-344. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्या ये देवा चुता देवेसु पच्चादजयंती; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये देवा चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिरछानोनिया पच्चादजयन्ती... पेत्तिवसये पच्चादजयन्ती।

345-347 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो देवों (देवदूतों/ईश्वरों) के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो देवों (देवदूतों/ईश्वरों) के रूप में मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

345-347. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये देवा काटा मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये देवा काटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

345-347. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये देवा चुता मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये देवा चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिरछानोनिया पच्चादजयन्ती... पेत्तिवसये पच्चादजयन्ती।

348— 350 "...इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो नरक से निकलने के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो नरक से निकलने के बाद नरक में ही पुनर्जन्म लेते हैं... पशु जगत में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में।"

348-350. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये निराया काटा मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये निरया कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

348-350. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्ता ये निराया चुता मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये निराया चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिरछानोनिया पच्चादजयन्ती... पेत्तिवसये पच्चादजयन्ती।

351— 353 . .इसी प्रकार, वे प्राणी भी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ही पुनर्जन्म लेते हैं... पशु जगत में... . . . . . व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में।"

351-353. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये निराया काटा देवेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये निरया कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

351-353. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये निराया चुता देवेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये निराया चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिरछानोनिया पच्चादजयन्ती... पेत्तिवसये पच्चादजयन्ती।

354— 356 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। वे अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशुलोक में... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

354-356. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये तिरच्चनयोनिय काटा मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये तिरच्चनयोनिय कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

354-356. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्य ये तिर्यंचनयोनिय चुता मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये तिर्यंचनोनिया छुता निराये पच्चाजयन्ति... तिर्यंचनोनिया पच्चाजयन्ति... पेट्टिविसये पच्चाजयन्ति।

357-359 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों/देवताओं) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। अधिक संख्या में वे हैं [38] जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... व्यथित आत्माओं के क्षेत्र में पुनर्जन्म लेते हैं।"

357-359. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये तिरच्चनयोनिय काटा देवेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये तिरच्चनयोनिय कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाये पच्चाजयन्ति।

357-359. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्या ये तिर्यंचनयोनिय चुता देवेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बीरा ये तिर्यंचनोनिया छुता निराये पच्चाजयन्ति... तिर्यंचनोनिया पच्चाजयन्ति... पेट्टिविसये पच्चाजयन्ति।

360-362 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। ऐसे प्राणी कहीं अधिक हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... पीड़ित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

360-362. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये पेटीविसया काटा मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये पेट्टिविसाय कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाय पच्चाजयन्ति।

360-362. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्या ये पेत्त्विसया चुता मनुस्सेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये पेत्त्विसया चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिर्चानयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविसये पच्चाजयन्ति।

363-365 "...इसी प्रकार वे प्राणी भी अल्प हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद देवताओं (देवदूतों/ईश्वरों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। उनसे कहीं अधिक वे प्राणी हैं जो पीड़ित आत्माओं के लोक से मृत्यु के बाद नरक में... पशु जगत में... पीड़ित आत्माओं के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

363-365. ...एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पाका ते सत्ता ये पेटीविसया काटा देवेसु पच्चाजयन्ति; अथा खो एतेव सत्ता बहुतारा ये पेट्टिविसाय कटा निराये पच्चाजयन्ति... तिरच्चनयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविशाय पच्चाजयन्ति।

363-365. ... एवमेवं खो, भिक्खवे, अप्पा ते सत्या ये पेत्त्विसया चुता देवेसु पच्चाजयन्ति; अथ खो एतेव सत्या बीरा ये पेत्त्विसया चुता निराये पच्चाजयन्ति... तिर्चानयोनिय पच्चाजयन्ति... पेट्टिविसये पच्चाजयन्ति।

एकदमपाळी सोळसामो।

(1.XVII) आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाले गुण अनुभाग

366-381 "भिक्षुओं (साधुओं), यह निश्चित रूप से एक प्रकार का लाभ है, अर्थात्, (378) वनवासी होना, (379) भिक्षा से प्राप्त भोजन पर जीवन यापन करना, (380) चिथड़े के वस्त्र धारण करना, (381) केवल तीन वस्त्र धारण करना, 193 (382) धम्म पर वक्ता होना,

(383) अनुशासन का पालन करने वाला होना, (384) महान विद्वत्ता, (385) दीर्घकालीन होना, (386) उचित आचरण होना, (387) अनुचरों का होना, (388) एक बड़ा अनुचर होना, (389) अच्छे परिवार से आना, (390) सुंदर होना, (391) एक उत्कृष्ट वक्ता होना, (392) कम इच्छाएँ रखना, (393) अच्छा स्वास्थ्य होना।"

366-381. "अद्दमिदं, भिक्खवे, लाभानं यदिदं अरण्यिकट्टं [अरणिनकट्टं (सब्बत्था)] ...पे... पिंडपतिकट्टं... पंसुकुलिकट्टं... तेसिवरिकट्टं... धम्मकथिकट्टम्... विनयधरट्टम् [विनयधरकट्टम् (स्या. कं. पि. का.)] ... बहुसच्चम्... थावरेयम्... अकाप्पसम्पदा... परिवारसम्पदा... महापरिवार... कोलापुट्टी... वनपोक्खरता... कल्याणवक्करनाता... अप्पिच्चता... अप्पाबधा'ति।

सोसासा पसादकारधम्म नियतिता ।

पसादकारधम्मवग्गो सत्तरसमो।

366-381. "अधमिदं , भिक्खवे, लाभानं यदिदं आरञ्चिकत्तं [अर्नदञ्चटं (सब्बत्थ)] ...पे०... पिण्डपातिकत्तं... पंसुकुलिकट्टं... तेचीवरिकत्तं... धम्मकथिकत्तं... विणधरत्तं [विनयधरकट्टं (स्या० कं० पी० क०)] ... बहुसदचं... थवेरेयं... अकप्पसम्पदा... परिवारसम्पदा... महापरिवार... कोलपुट्ति... वनपोखरता... कल्याणवा त्राटकता... अप्पिचचता... अप्पाबधता"ति।

सोळस पसादकरधम्मा नित्थिता।

पसादकरधम्मवग्गो सत्तरसमो।

(1.XVIII) फिंगर स्नैप सेक्शन (अपराच्चरासंघातवग्गो)

382

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी पहली ध्यान अवस्था (सम्मोहन) प्राप्त कर लेता है, तो वह ध्यान से रहित भिक्षु नहीं कहलाता, जो गुरु की शिक्षाओं पर अमल करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं खाता। तो फिर, जो लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे और भी अधिक ध्यानशील होंगे!

382. "अच्चरासंगहतमत्तमपि सी, भिक्खवे, भिक्खु पठमं झाणं भवेति, अयं वुक्कति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरित्तज्झाणो विहारति, सत्थुसासनकारो ओवदपतिकारो, अमोघं' रथपिण्डं भुञ्जति'। को पाना वदो ये नं बहुलिकारोंती!

328. "अच्छरासङ्घातमत्तमपि चे, भिक्खवे, भिक्खु पतमं झणं भवेति, अयं वुचदचति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरित्तजझानो विहारति, सथुसासनकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रथपिंडं भुंजदजति।' को पण वादो ये नं बहुविक्रोन्ति"ति!

---

383 — 389

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु पल भर के लिए भी द्वितीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... तृतीय ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) ... प्रेम और करुणा से मन की मुक्ति ... करुणा से मन की मुक्ति ... परोपकारी आनंद से मन की मुक्ति ... उदासीनता (भीतर ध्यान/उपेक्षा) से मन की मुक्ति प्राप्त कर लेता है, तो वह ध्यान से रहित भिक्षु नहीं कहलाता, जो गुरु की शिक्षाओं पर अमल करता है, उनकी सलाह मानता है और देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ नहीं करता। तो फिर, जो लोग इसका अभ्यास करते हैं, वे कितने अधिक गुणवान होंगे!

383-389. "अच्चरासंगहतमत्तमपि सी, भिक्खवे, भिक्खु दुतियां झाणं भवेति...पे... ततियां झाणं भवेति...पे... चतुत्थं झाणं भवेति...पे... मेत्तं सेतोविमुत्तिन भवेति...पे... करुणां सेतोविमुत्तिन भवेति...पे... मुदितम सेतोविमुत्तिन भवेति...पे... उपेक्खं सेतोविमुत्तिन भवेति...पे...।

383-389. "अच्छरासङ्घातमत्तमपि छे, भिक्खवे, भिक्खु दुतियां झाणं भवेति...पे०... तत्यां झणं भवेति...पे०... चतुत्थं झणं भवेति...पे०... मेत्तं चेतोविमुत्तिं भवेति...पे०... करुणं चेतोविमुत्तिं भवेति...पे०... मुदितं चेतोविमुत्तिं भवेति...पे०...उपेक्खं चेतोविमुत्तीं भवेति...पे०...।

390-393

"...शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है, [197] उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती (ध्यान करते हुए), संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए... संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है... मन में मन को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है... घटनाओं में धम्म को देखते हुए (अनुपसी में) निवास करता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, सती (ध्यान करते हुए), संसार के प्रति लालसा और निराशा को दूर करते हुए...

390-393. काये कायनुपासि विहारति अतापि संपजानो सतिमा विनेय लोके अभिज्जदोमानस्सम्; वेदानासु वेदानानुपासि विहारति...पे...चित्ते चित्तनुपासि विहारति...पे...धम्मेसु धम्मनुपासि विहारति अतापि सम्पाजानो सतीमा विनेय लोके अभिज्जदोमानस्सम्।

390-393. काये कायनुपासि विहरति अतपि संपजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनसं; वेदनासु वेदनानुपासि विहारति...पे०... चित्ते चित्तनुपासि विहारति...पे०... धम्मेसु धम्मनुपासि विहारति अबपि संपजानो सतिमा विनेय लोके अभिज्झादोमंससं।

394-397

"... उत्पन्न न हुए अकुशल गुणों (धम्म) के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... उत्पन्न हुए अकुशल गुणों (धम्म) के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... (408) उत्पन्न न हुए लाभकारी गुणों (कुशल) के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है... उत्पन्न हुए लाभकारी गुणों (धम्म) के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; प्रयास करता है, ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) जगाता है, मन लगाता है और प्रयास करता है..."

394-397. अनुप्पन्नं पापकाणं अकुशलनं धम्मणं अनुप्पदाय छंदं जनेति वयमति वीर्यं [विरियां (सि. स्या. कं. पि.)] अरभति चित्तं पग्गनहति पदहति; उप्पन्नानं पापकाणं अकुशलनं धम्मणं पहानय चंदं जनेति वयमति वीर्यं आरभति चित्तं पग्गनहति पदहति। अनुप्पन्नानं कुसलानां धम्मनां उप्पादाय छंदं जनेति वयमति वीर्य्यं आरभति चित्तं पग्गनहाति पदहति; उप्पन्नानं कुसलानां धम्मनां थितिया असम्मोसया भयोभावाय वेपुलाय भवनाय पारिपुरिया चंदं जनेति वयमति वीर्यं आरभति चित्तं पग्गनहति पदहति.

394-397. अनुप्प साइनानं पापकानं अकुसलानं धम्मनं अनुप्पादय छंदं जनेति वयामति वीरियं [विरियं (सी० स्या० कं० पी०)] आरभति चित्तं पग्गनहति पधाति; उप्प संज्ञानं पापकानं अकुसलानं धम्मनं फाणय छंदं जनेति वयमति वीरियं अरभति चित्तं पग्गनहति पधाति। अनुप्प साइनानं कुसलानं धम्मनं उप्पादाय छंदं जनेति वयमति वीरियं अरभति चित्तं पग्गनहति पदहति; उप्प साइनानं कुसलानं धम्मानं थितिया असम्मोसाय भयोभावाय वेपुलल्लय भावनाय पारिपुरिया छंदं जनेति वयामति वीरियं आरभति चित्तं पग्गनहति पधाति।

---

398 — 401

"...इच्छा और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का

आधार विकसित करता है... मन और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है... अन्वेषण और प्रयास के कारण समाधि (स्व-लीनता/सम्मोहन) प्राप्त करने वाली मानसिक शक्ति (जादू/इद्धि) का आधार विकसित करता है..."

398-401. छंदसमाधिपधानसंखरसमन्नागतं इद्दीपादं भवेति... वीर्यसमाधिपधानसंखरसमन्नागतं इद्दीपादं भवेति... चित्तसमाधिपधानसंखरसमन्नागतं इधिपादं भवेति... विमानसामधिपधानसंखरसमन्नागतं इधिपदं भवेति...

398-401. छन्दसमाधिपधानसंङ्खारसं इधिपादं भवेति... वीरियसमाधिपधानसंङ्खारसं इधिपादं भवेति... चित्तसमाधिपधानसंङ्खारसं इधिपादं भवेति... वीमासमाधिपधानसङ्खारसं इधिपादं भवेति... ।

---

402 — 406

... आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... ध्यान (सतीत्व/ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीनता/सम्मोहन) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है...

402-406. सद्धिन्द्रियं भवेति... वीर्यिन्द्रियं भवेति... सतीन्द्रियं भवेति... समाधिन्द्रियं भवेति... पणिनिन्द्रियं भवेति... ।

402-406. सद्धिन्द्रियं भवेति... वीरिन्द्रियं भवेति... सतिन्द्रियं भवेति... समाधिन्द्रियं भवेति... पञ्चिन्द्रियं भवेति... ।

---

407 - 411 आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... ध्यान (सती/ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है...

407-411. सद्दाबलं भवेति... वीर्यबलं भवेति... सतिबलं भवेति... समाधिबलं भवेति... पणनाबलं भवेति...

407-411. सद्धाबलं भवेति...वीर्यबलं भवेति... सतिबलं भवेति... समाधिबलं भवेति... पञ्चबलं भवेति... ।

---

412 - 418

"...सती ध्यान (ध्यान/सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...धर्म (घटनाओं के विवेक) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...वीर्य (ऊर्जा/वीर्य) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है [40]...पीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...शांति के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...समाधि (आत्म-लीनता/सन्यास) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है...उदासीनता (भीतर लौटना/उपेक्ष/उपेक्ष) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है..."

412-418. सतिसंबोझंगं भवेति... धम्मविकयसंबोज्झांगं भवेति... वीर्यसम्बोज्झांगं भवेति... पितिसम्बोज्झांगं भवेति... पसद्धिसम्बोज्झांगं भवेति... समाधिसंबोझंगं भवेति... उपेक्खासम्बोज्झांगं भवेति...

412-418. सतिस्म्बोज्झङ्गं भवेति... धम्मविचसम्बोज्ङ्गं भवेति... वीरियसम्बोज्झङ्गं भवेति... पीतिस्म्बोज्झङ्गं भवेति... पस्सद्धिसम्बोज्ङ्गं भवेति... समाधिसम्बोज्ङ्गं भवेति... उपेक्खासम्बोज्ङ्गं भवेति... उपेक्खासम्बोज्ङ्गं भवेति... भवेति... ।

---

419 -426

"...सही दृष्टिकोण विकसित करता है...सही इरादा विकसित करता है...सही वाणी विकसित करता है...सही कर्म विकसित करता है...सही आजीविका विकसित करता है...सही प्रयास विकसित करता है...सही ध्यान (सती/सजगता) विकसित करता है...सही समाधि (आत्म-लीनता/समाधि) विकसित करता है..."

419-426. सम्मादिथिं भवेति... सम्मासंकप्पं भवेति... सम्मावाचं भवेति... सम्माकमन्तं भवेति... सम्माजीवम् भवेति... सम्मावायम् भवेति... सम्मासतिं भवेति... सम्माससमाधिं भवेति...।

419-426. सम्मादिट्ठिं भवेति... सम्मासङ्कप्पं भवेति... सम्मावाचं भवेति... सम्माकम्मन्तं भवेति... सम्माजीवं भवेति... सम्मावायमं भवेति... सम्मासतिं भवेति... सम्मासमाधिं भवेति...।

427— 434

"... आंतरिक रूप से रूपों को समझने वाला, बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'जान, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को समझने वाला, बाहरी रूप से असीम, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से सीमित, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से असीम, सुंदर या बदसूरत रूपों को देखता है, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से नीले रंग के, नीले रंग के, नीले आभा वाले, नीले रंग के, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न समझने वाला, बाहरी रूप से पीले रंग के रूपों को देखता है, पीले रंग का, पीले रंगत वाला, पीले रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न देख पाने वाला, बाह्य रूप से रूपों को देखता है, लाल रंग के, लाल रंग के, लाल रंगत वाले, लाल रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ'... आंतरिक रूप से रूपों को न देख पाने वाला, बाह्य रूप से रूपों को देखता है, सफेद रंग के, सफेद रंगत वाले, सफेद रंग से आभास युक्त, और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, वह इस प्रकार बोध करता है: 'मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ...'

427-434.[दि. नि. 2.173; मा. नि. 2.249; एक। नि. 8.65] अज्झट्टं रूपसानि बहिधा रूपाणि पस्सति परित्तानि सुवन्नदुब्बानानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसनि होति... अज्झट्टं रूपसनि बहिद्ध रूपाणि पस्सति अप्पमानानि सुवन्नादुब्बानानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसानि होति... अज्झट्टं अरूपासानि बहिधा रूपाणि पस्सति परित्तानि सुवन्नदुब्बानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसानि होति... अज्झट्टं अरूपासानि बहिद्ध रूपाणि पस्सति अप्पमानानि सुवन्नादुब्बानानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसानि होति... अज्झट्टं अरूपानि बहुत्धा रूपाणि पस्सति नीलानि नीलावन्नानि निलानिदासनानि निलानिभासानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसनि होति... अज्झट्टं अरूपानि बहुत्धा रूपाणि पस्सति पीतानि पीतवन्नानि पितनिदासनानि पीतानिभासानि. 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसानि होति... अज्झट्टं अरूपसानि बहिधा रूपाणि पस्सति लोहितकानि लोहितकावन्नानि लोहितकानिदासनानि लोहितकानिभासानि। 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति इवांसनि होति... अज्झट्टं अरूपसानि बहिधा रूपाणि पस्सति ओदातानि ओदातवनानि ओदातानिदासनानि ओदातनिभासानि. 'तानि अभिभूय जानामि पसामि'ति - इवांसानि होति...।

427-434. [दी० नि० 2.173; म० नि० 2.249; अ० नि० 8.65] अज्झत्तं रूपसंज्ञि बधिधा रूपाणि पस्सति परितानि सुवन्नदुब्बन्नानि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पसमाति'- एवंसञ्जनी होति... अज्झत्तं रूपसञ्जि बधिधा रूपाणि पस्सति अप्पमनानि सुवन्नदुब्बन्ननि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पसमाति' - एवंसञ्जनी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्जी बधिधा रूपाणि पस्सति परितानि सुवन्नदुब्बन्ननि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पसमाति'- एवंसञ्जनी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्जी बधिधा रूपाणि पस्सति अप्पमानानि सुवन्नदुब्बन्ननि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पस्सामी'ति - एवंसञ्जनी होति...अज्झत्तं अरूपसञ्जी बधिधा रूपाणि पस्सति नीलानि नीलवन्नानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पसमाति'- एवससंज्ञी होति... अज्झत्तं अरूपसंज्ञी बधिधा रूपाणि पस्सति पीतानि पीतवन्नानि पीतनिदस्सनानि

पीतनिभासानि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पसमाति'- एवंसंझी होति...अज्झत्तं अरूपसंझी बधिधा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवन्नानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्जनी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्जी बधिधा रूपाणि पस्सति ओदातानि ओदातवन्नानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभ्युय जानामि पस्सामी'ति - एवंसंझी होति...।

---

435 -442

...रूप धारण करने वाला रूपों को देखता है... [41] आंतरिक रूप से रूपों को न देखने वाला बाहरी रूप से रूपों को देखता है... केवल 'सुंदर' पर केंद्रित है... रूपों की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) के दूर होने के साथ, विविधता की धारणाओं (सन्ना/संज्ञा) पर ध्यान न देने के साथ, 'अंतरिक्ष अनंत है' को समझते हुए, अनंत अंतरिक्ष के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है... अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र (आयतन) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के साथ, 'चेतना अनंत है' को समझते हुए, अनंत चेतना के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... चेतना की अनंतता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, 'कुछ नहीं है' का बोध करते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र (आयतन) में प्रवेश करता है और निवास करता है... शून्यता के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (अबोध) के आधार में प्रवेश करता है और निवास करता है... न तो बोध (सन्न/संज्ञा) और न ही अबोध (सन्न/संज्ञा) के क्षेत्र (आयतन) को पूर्णतः पार करके, वह बोध (सन्न/संज्ञा) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है...

435-442. रूपि रूपाणि पस्सति... अज्झट्टं अरूपाणि बहिधा रूपाणि पस्सति सुभन्तेव अधिमुत्तो होति... सब्बसो रूपासानणां समतिक्कमा पतिघासन्यानां अथंगमा ननत्तसंन्याणं अमानसिकारा अनंतो अकासोति आकाशानचायतनं उपसम्पज्जा विहारति... सब्बासो आकाशानचायतनं समतिक्कम्मा अनंतं विनिनान्ति विनानाञ्चायतनम् उपसंपज्ज विहारति... सब्बसो विन्ननचायतनं समतिक्कम्मा नत्थि किञ्चिति अकिंचनन्यातनं उपसम्पज्ज विहारति... सब्बासो अकिंचनचायतनं समतिक्कम्मा नेवासंन्यानासंन्यातनं उपसंपज्ज विहारति... सब्बसो नेवासंन्यानासंन्यातनं समतिक्कम्मा संनावेदयितनिरोधं उपसंपज्ज विहारति...।

4-42. रूपि रूपाणि पस्सति... अज्झत्तं अरूपसञ्जनि बधिधा रूपाणि पस्सति सुभन्तेव अधिमुत्तो होति... सब्बसो रूपसञ्जानं समतित्रकमा पतिघसञ्जानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्जानं अमानसिकरा अननो अकासोति आकासानंदचायतनं उपसम्पज्जज विहारति... सब्बसो आकासानञ्चायतनं समति त्रैकम्म अनन्तं विञ्चञ्चत्रान्ति विञ्चञ्चायतनं उपसम्पजज विहरति... सब्बसो विञ्चञ्चञ्चायतनं समति रेखकम नत्थि किञ्चति अकिञ्चञ्चत्रायतनं उपसम्पज्मज विहारति... सब्बसो अकिञ्चञ्चञ्चायतनं समति रिकम्म नेवसंज्ञानसञ्जन्यातनं उपसम्पजदज विहरति... सब्बसो नेवसंजनसंज्ञायतनं समति स्ट्रोकम संज्ञवेदयितनिरोधं उपसम्पजज विहरति...।

---

443 — 452

... पृथ्वी कसीना का विकास करता है... 200 जल कसीना का विकास करता है... अग्नि कसीना का विकास करता है... वायु कसीना का विकास करता है... नीला कसीना का विकास करता है... पीला कसीना का विकास करता है... लाल कसीना का विकास करता है... सफेद कसीना का विकास करता है... आकाश कसीना का विकास करता है... चेतना कसीना का विकास करता है...

443-452. पथविकसिणां भवेति... अपोकाशिणां भवेति... तेजोकाशिणां भवेति... वयोकाशिणां भवेति... नीलकाशिनां भवेति... पीताकाशिणां भवेति... लोहितकासिनं भवेति... ओदतकसिनं भवेति... आकाशकसिनां भवेति... विनाशकसिनं भवेति...

443-452. पथ्वीक्सिणं भवेति... आपोकसिणं भवेति... तेजोसिनं भवेति... वायोक्सिणं भवेति... नीलकैसिनं भवेति... पीतकसिनं भवेति... लोहितकसिनं भवेति... ओदाक्षिणं भवेति... आकाशासिनं भवेति... विज्ञानं कसिनं भवेति...।

---

453 — 462

"...अनाकर्षकता की अनुभूति विकसित करता है...मृत्यु की अनुभूति विकसित करता है...भोजन की अरुचि की अनुभूति विकसित करता है...संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की अनुभूति विकसित करता है...अनित्यता की अनुभूति विकसित करता है...अनित्य में पीड़ा की अनुभूति विकसित करता है...पीड़ा में अनात्म की अनुभूति विकसित करता है...त्याग की अनुभूति विकसित करता है...वैराग की अनुभूति विकसित करता है...निरस्तता की अनुभूति विकसित करता है...

453-462. असुभासन्नं भवेति... मरणासन्नं भवेति... अहारे पतिकुलसन्नं भवेति... सब्बलोके अनाभिरतिसन्नं [अनाभिरतसन्नं (सि. स्या. कं.)। पि.)] भवेति... अनिच्चासन्नं भवेति... अनिच्चे दुक्खासनं भवेति... दुक्खे अनत्तसंन्यां भवेति... पहनासनं भवेति... विरागसंन्यां भवेति... निरोधसनं भावेति....

453-462. असुभसञ्जनं भवेति... मृणासञ्जनं भवेति... आहारे पतिकुलसञ्जनं भवेति... सब्बलोके अनाभिरतिसञ्जं [अनाभिरतसञ्जन् (सी० स्या० कं० पी०)] भवेति... अनिच्च्चसञ्चं भवेति... अनिच्छेच्छे दु:संञ्चं भवेति... दुक्खे अनत्तसञ्चं भवेति... पहंसंज्ञं भवेति... विरागसंजं भवेति... निरोधसंजं भवेति...।

---

463 — 472

... अनित्यता (अनित्यता/अनित्यता) की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... अनात्म की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... [42] मृत्यु की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... भोजन की अरुचि की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... संपूर्ण संसार में आनंदहीनता की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... कंकाल की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... कृमिग्रस्त शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... पीले पड़े शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... फटे हुए शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... फूले हुए शव की धारणा (सन्न/सन्न्य) विकसित करता है... :"

463-472. अनिच्चासनं भवेति... अनत्तसंन्यां भवेति... मरणासंन्यां भवेति... आहारे पतिकुलसंन्यां भवेति... सब्बलोके अनाभिरतिसंन्यां भवेति... अष्टिकासंन्यां भवेति... पु।वकासंन्यां (का.)] भवेति... विणिलकासंन्यां भवेति... विच्चिद्दकसंन्यां भवेति... उद्धुमतकसंन्याम् भावेति....

463-472. अनीचदसञ्जनं भवेति... अनत्तसञ्जनं भवेति... मरणसञ्जनं भवेति... आहारे पतिकूलसञ्जनं भवेति... सब्बलोके अनाभिरतिसञ्चं भवेति... अट्ठिक्सञ्जनं भवेति... पुळवकसञ्जनं [पुळुवकसञ्जन (क०)] भवेति... विनीलकसञ्जञ्च भवेति... विच्छिद्दकसञ्चं भवेति... उद्दुमातकसंज्ञं भवेति...।

---

473 -482

बुद्ध का स्मरण विकसित होता है... धम्म का स्मरण विकसित होता है... संघ का स्मरण विकसित होता है... सद्गुणों का स्मरण विकसित होता है... दान देने का स्मरण विकसित होता है... देवताओं का स्मरण विकसित होता है... श्वास का ध्यान (सामंजस्य/सती) विकसित होता है... मृत्यु का ध्यान (सामंजस्य/सती) विकसित होता है... शरीर के प्रति सजगता (सामंजस्य/सती) विकसित होती है... शांति का स्मरण विकसित होता है...

473-482. बुद्धानुस्सतिम् भवेति... धम्मानुस्सतिम् भवेति... संघानुस्सतिम् भवेति... सिलानुस्सतिम् भवेति... चगननुस्सतिम् भवेति... देवतानुस्सतिम् भवेति... अनापानस्सतिम् भवेति... मरणस्सतिम् भवेति... कायगतसतिम् भवेति... उपसामनुस्सतिम् भवेति...।

473-482. बुद्धनुस्सिंत भवेति... धम्मनुस्सिंत भवेति... सङ्घानुस्सिंत भवेति... सीलानुस्सिंत भवेति... चागनुस्सतिं भवेति... देवतानुस्सिंत भवेति... अनापानस्सतिं भवेति... मरणस्सतिं भवेति... कायगतसस्तिं भवेति... उपसमनुसस्तिं भवेति...।

---

483 - 492

"...प्रथम ध्यान के साथ आस्था की क्षमता विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की क्षमता विकसित करता है... ध्यान (सती) की क्षमता विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सन्यास) की क्षमता विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की क्षमता विकसित करता है... आस्था की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... ध्यान (सती) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सन्यास) की शक्ति विकसित करता है... पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है..."

483-492. पथमज्झानसहगतं सद्धिन्द्रियं भवेति... वीर्यइन्द्रियं भवेति... सतीन्द्रियं भवेति... समाधिन्द्रियं भवेति... पणिन्द्रियं भवेति... सद्धिन्द्रियं भवेति... वीर्यबलम् भवेति... सतिबलं भवेति... समाधिबलं भवेति... पन्नबलं भवेति...।

483-492. पतमज्झांसाहगतं सद्धिन्द्रियं भवेति... वीरिन्द्रियं भवेति... सतिन्द्रियं भवेति... समाधिन्द्रियं भवेति... पञ्चिन्द्रियं भवेति... सद्धबलं भवेति... वीरियबलं भवेति... सतीबलं भवेति... समाधिबलं भवेति... पञ्चनद्रियं भवेति...।

493-562

"... दूसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... ... तीसरे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... चौथे ध्यान (सम्मोहन अवस्था) के साथ... प्रेमपूर्ण दया (मेत्ता) के साथ... करुणा के साथ... परोपकारी आनंद के साथ... उदासीनता (अंदर ही अंदर समाहित/उपेक्खा) के साथ... विश्वास की क्षमता विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की क्षमता विकसित करता है... सती (ध्यान) की क्षमता विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सम्मोहन) की क्षमता विकसित करता है... दीप्ति (दिव्य ज्ञान) की क्षमता विकसित करता है... विश्वास की शक्ति विकसित करता है... ऊर्जा (प्रयास/वीर्य) की शक्ति विकसित करता है... सती (ध्यान) की शक्ति विकसित करता है... समाधि (आत्म-लीन/सम्मोहन) की शक्ति विकसित करता है... दीप्ति (दिव्य ज्ञान) की शक्ति विकसित करता है।" मैं भिक्षुओं से कहता हूँ, "वह भिक्षु कहलाता है जो ध्यान (सम्मोहन अवस्था) से रहित न हो, जो गुरु की शिक्षाओं का पालन करे, जो उनकी सलाह माने और जो देश का भिक्षाभोजन व्यर्थ न करे। तो फिर, जो लोग इसका अभ्यास करते हैं, वे और भी अधिक बुद्धिमान होंगे!"

493-562. "दुतियासहगतं...पे... ततियाज्झानसहागतं...पे... चतुत्थज्जहनसहगतं...पे... मेत्तासहगतं...पे... करुणासहगतं...पे... मुदितासहगतं...पे... उपेक्खसहगतं सद्धिन्द्रियम् भवेति...वीर्यिन्द्रियं भवेति...सतिन्द्रियं भवेति...समाधिन्द्रियं भवेति...पाणिन्द्रियं भवेति...सद्धबलं भवेति...वीर्यबलं भवेति...सतिबलं भवेति... समाधिबलं भवेति... पणनाबलं भवेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्ज्जहनो विहारति सत्थुसासनकारो ओवदपतिकरो, अमोघं रथपिंडं भुञ्जति'। को पाना वदो ये नं बहुलिकारोंती!

अपराच्चरासंगघातवग्गो अट्ठरसामो।

493-562. "दुतियज्झानसहगतं...पे०... ततियाज्झांसहगतं...पे०... चतुत्थज्झांसहागतं...पे०... मेसहगतं...पे०... करुणासहगतं...पे०... मुदितासहगतं...पे०... उपेखासहगतं सद्धिन्द्रियं भवेति...वीर्यिन्द्रियं भवेति...सतिन्द्रियं भवेति...मधीन्द्रियं भवेति... पञ्चिन्द्रियं भवेति...सद्धबलं भवेति...वीर्यबलं भवेति...सतिबलं भवेति...समाधिबलं भवेति...पञ्जानबलं भवेति। अयं वुचदचति, भिक्खवे - 'भिक्खु अरितत्झानो विहारति सत्थुसासंकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रथपिण्डं भुञ्जति।' को पण वादो ये नं बहुविक्रोन्ति"ति!

अपराच्चरासङ्घातवग्गो अत्थारसमो।

(1.XIX) माइंडफुलनेस (ध्यान) शरीर की ओर निर्देशित (कायगाता-सती-वाग्गो)

563

"भिक्षुओं, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने मन से विशाल सागर को समाहित कर लेता है, उसमें सागर में गिरने वाली सभी धाराएँ समाहित हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार जो कोई भी शरीर को लक्षित करते हुए सती (यानी विपश्यना) का अभ्यास और विकास करता है, वह सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुणों (धम्म) को समाहित कर लेता है।" 203

563. "यस्सा कसासि, भिक्खवे, महासमुद्दो चेतसा फूटो अंतोगधा तस्स कुन्नदियो या काचि समुद्दंगमा; एवमेवं, भिक्खवे, यस्सा कस्सासि कायगता सति भविता बहुलिकता अंतोगधा तस्स कुसल धम्म ये केचि विजयभागिया'ति।

563. "यस्स कास्स, भिक्खवे, महासमुद्दो चेतसाचि फूटको अंतोग्धा तस्स कु सिनगदियो या काचि समुद्दङ्गमा; एवमेवं, भिक्खवे, यस कस्स्चि कायगता सति भविता बहुलिक्ता अंतोग्धा तस्स कुसला धम्म ये केचि विज्दभागिया"ति।

564-570

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और पोषित की जाती है, (576) तो वह तीव्र तत्परता की भावना उत्पन्न करती है 200 ... (577) महान कल्याण की ओर ले जाती है (578) बंधन से महान सुरक्षा की ओर ले जाती है ... (579) सती ध्यान और पूर्ण बोध की ओर ले जाती है ... (580) ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति की ओर ले जाती है ... (581) इसी जीवन में सुखद निवास की ओर ले जाती है ... (582) ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। वह एक बात क्या है? शरीर के प्रति निर्देशित सजगता। यही वह एक बात है, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है।

564-570. "एकाधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो महतो संवेगया संवत्तति...महतो अट्ठाय संवत्तति...महतो योगक्खेमाय संवत्तति...सतिसंपजान्या संवत्तति... नानादासनप्पाटिलाभाय संवत्तति...दिट्ठधम्मसुखविहारय संवत्तति... विज्जाविमुत्तिफलासच्चिकिरियाय संवत्तति। काटामो एकधम्मो? कायगता सति. अयं खो, भिक्खवे, एकाधम्मो भावितो बाहुलिकतो महतो संवेगया संवत्तति...महतो अत्थाय संवत्तति...महतो योगक्खेमाय संवत्तति...सतिसंपजान्या संवत्तति... णनादस्सणप्पतिलाभाय संवत्तति...दिट्ठधम्मसुखविहारय संवत्तति... विज्जाविमुत्तिफलासच्चिकिरियाय संवत्तति।"

564-570. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलिकतो सीता संवेगाय संवत्तति...महत्त अत्थाय संवत्तति...महात्मा योगखेमाय संवत्तति...सतिसमपञ्जन्याय संवत्तति... आनंददासस्प्पतिलाभाय संवत्तति... दिट्ठधम्मसुखविहारय संवत्तति... विजजाविमुत्तिफलसचिकिरियाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलिकतो महोथ संवेगाय संवत्तति... महोता अथय संवत्तति... महता योगखेमाय संवत्तति... सतिसमपञ्जन्याय संवत्तति... नन्दस्सन्प्पतिलाभाय संवत्तति... दिट्ठधम्मसुखविहारय संवत्तति... विजदजाविमुत्तिफलसचिकिरियाय संवत्तति।

571

भिक्षुओं, जब एक चीज विकसित और पोषित होती है, तो शरीर शांत हो जाता है, मन शांत हो जाता है, विचार और परीक्षा शांत हो जाते हैं, और सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती (ध्यान)। [44] जब यह एक चीज विकसित और पोषित होती है, तो शरीर शांत हो जाता है... और धम्म के सच्चे ज्ञान से संबंधित सभी लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

571। कटमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सत्या। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बाहुलिकते कायोपि पसंभाति, चित्तमपि पसंभाति, वितक्कविचारपि वुपसंमन्ति, केवलापि विजयभागिय धम्म भवनपरिपुरिम् गच्छन्ती"ति।

571. "एकधम्मे, भिक्खवे, भावैते बहुलिकते कायोपि पसंमबति, चित्तमपि पसंमबति, वित्क्रमविचारपि वूपसम्मन्ति, केवलापि विजजाभागिया धम्म भावनापारिपुरिं गच्छन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सटिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते कायोपि पसंमबति, चित्तमपि पसंमबति, वितर्कविचारपि वूपसम्मन्ति, केवलापि विजादभागिया धम्म भावनापारिपूरिं गच्छन्ति"ति।

572

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण त्याग दिए जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे अकुशल गुण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल गुण त्याग दिए जाते हैं।

572. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बाहुलिकते अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म नुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च अकुशला धम्म पाहियन्ति। कटमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सत्या। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अनुप्पन्ना सेवा अकुशला धम्म नुप्पज्जन्ति, उपप्पन्ना च अकुशला धम्म पहियंती।

572. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बहुलिकते अनुप्प नागा चेव अकुसला धम्म नुप्पज्जन्ति, उप्प नागा च अकुसला धम्म पहियन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सटिया। इस्स्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अनुप्प सना चेव अकुसला धम्म नुप्पजजंति, उप्प सयना च अकुसला धम्म पहिअन्ति"ति।

573

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ते और फैलते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अजन्मे लाभकारी (कुशल) गुण (धम्म) उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न लाभकारी (कुशल) गुण बढ़ते और फैलते हैं।

573. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बाहुलिकते अनुप्पन्ना सेवा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च कुसल धम्म भयोभावाय वेपुल्लया संवत्तन्ति। कटमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सत्या। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बाहुलिकते अनुप्पन्ना सेवा कुसल धम्म उप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च कुसल धम्म भयोभवाय वेपुल्या संवत्तन्ति।

573. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बहुलीकते अनुप्प संज्ञा चेव कुसला धम्म उप्पजजंन्ति, उप्प नयना च कुसला धम्म भयोभावाय वेपुलल्लय संवत्तन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सटिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अनुप्प नयना चेव कुसला धम्म उप्पजजंन्ति, उप्प नयना च कुसला धम्म भयोभावाय वेपुलल्लय संवत्तन्ति"ति।

574

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, (586) तो अज्ञान का त्याग हो जाता है... (587) सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है... (588) 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है... (589) अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं... (590) बंधन टूट जाते हैं। वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है... सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है... 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है... अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं... बंधन टूट जाते हैं।

574. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बाहुलिकते अविज्जा पहियति, विज्जा उप्पज्जति, अस्मिमानो पहियति, अनुसाया समुघताम् गच्छन्ति, संयोगना पहियंती। कटमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सत्या। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अविज्जा पहियति, विज्जा उप्पज्जति, अस्मिमानो पहियति, अनुसाया समुघतां गच्छन्ति, संयोगना पहियंती।

574. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बहुलिकते अविजज्जा पहियति, विज्जजा उप्पजदजति, अस्मिमानो पहियति, अनुसया समुग्घातं गच्छन्ति, कोम्बा पहियंती। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सटिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अविज्जा पहियति, विज्जजा उप्पजदजति, अस्मिमानो पहियति, अनुसाया समुग्घातं गच्छन्ति, संयोजना पहियंती।

575 -576

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, (591) तो वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा भेद की ओर ले जाती है... (592) अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की ओर ले जाती है। 211 वह एक बात क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। यही वह एक बात है, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो वह पन्ना (दिव्य ज्ञान) द्वारा भेद की ओर ले जाती है... अनासक्ति के माध्यम से निर्वाण की ओर ले जाती है।

575-576. "एकाधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो पणनापभेदाय संवत्तति... अनुपादपरिनिब्बानया संवत्तति। काटामो एकधम्मो? कायगता सति. अयं खो, भिक्खवे, एकाधम्मो भावितो बहुलिकतो पणनापभेदाय संवत्तति... अनुपादपरिनिब्बानया संवत्तति।

575-576. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितोभेदिकतो पञ्जानपाय संवत्तति... अनुपादापरिनिब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलिकतो पञ्जापभेदाय संवत्तति... अनुपादापरिनिब्बानाय संवत्तति"ति।

577 -579

भिक्षुओं, जब किसी एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, (593) तो अनेक तत्वों का ज्ञान प्राप्त होता है... (594) तत्वों की विविधता का ज्ञान प्राप्त होता है... (595) अनेक तत्वों का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। 212 वह एक चीज क्या है? वह शरीर पर केंद्रित सती ध्यान है। जब इस एक चीज का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो विभिन्न तत्वों का ज्ञान प्राप्त होता है... तत्वों की विविधता का ज्ञान प्राप्त होता है... विभिन्न तत्वों का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

577-579. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बहुलिकते अनेकधातुपतिवेदो होति... नानाधातुपतिवेदहो होती... अनेकधातुपतिसंभिदा होती। कटमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सत्या। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलिकते अनेकधातुपतिवेदो होति... नानाधातुपतिवेदहो होती... अनेकधातुपतिसंभिदा होती'ति।

577-579. "एकधम्मे, भिक्खवे, भविते बहुलीकते अनेकधातुपतिवेधो होती है... नानाधातुपतिवेधो होती है... अनेकधातुपतिसमाधिदा होती है। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सटिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भविते बहुलीकते अनेकधातुपतिवेधो होती है... नानाधातुपतिवेदो होती है... अनेकधातुपतिसमाभिदा होती है।

580 — 583

भिक्षुओं, एक ही बात है, जब उसका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो वह (596) धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... (597) एक बार लौटने (एक पुनर्जन्म, सकदागामी) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... (598) अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है [45]... (599) अरहंतत्व के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। वह एक बात क्या है? वह शरीर पर केंद्रित सती ध्यान है। यही वह एक बात है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर धारा-प्रवेश (सात पुनर्जन्म, सोतपत्ति) के फल की प्राप्ति होती है... एक बार लौटने के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है... अनागामी (पृथ्वी पर पुनर्जन्म नहीं) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाती है। अरहंत पद के फल की प्राप्ति के लिए।"

580-583. "एकाधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो सोतापत्तिफलसाच्चिकिरियाया संवत्तति... सकादागामिफलसाच्चिकिरियाया संवत्तति... अनागामिफलसाच्चिकिरियाया संवत्तति... अरहतफलासच्चिकिरियाया संवत्तति. काटामो एकधम्मो? कायगता सति. अयं खो, भिक्खवे, एकाधम्मो भावितो बाहुलिकतो सोतापत्तिफलसाच्चिकिरिया संवत्तति... सकादागामिफलसाच्चिकिरिया संवत्तति... अनागामिफलसाच्चिकिरिया संवत्तति... अरहत्तफलसाच्चिकिरियाय सांवत्तति'ति।

580-583. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुगुणितो सोतापट्टफलसचिकिरियाय संवत्तति... सकादागमलसिफचिकिरियाय संवत्तति...अनागमसिफचिकिरियाय संवत्तति... अरहत्तफलसच्छिकिरियय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलिष्टो सोताप्तफलसच्छिकिरियाय संवत्तति... सकदागामिलसच्छिकिरियाय संवत्तति... अनागमिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति... अरहत्तफलसच्छिकिरियाय संवत्तति"ति।

584 -599

भिक्षुओं, एक बात, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो (600) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्राप्ति की ओर ले जाती है... (601) बुद्धि के विकास की ओर... (602) पन्ना (दिव्य ज्ञान) के विस्तार की ओर... (603) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की महानता की ओर... (604) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की विविधता की ओर... (605) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की विशालता की ओर... (606) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की गहराई की ओर... (607) अतुलनीय पन्ना (दिव्य ज्ञान) की अवस्था की ओर... (608) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की व्यापकता की ओर... (609) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की प्रचुरता की ओर... (610) शीघ्रता की ओर ले जाती है। पन्ना (दिव्य ज्ञान)... (611) पन्ना (दिव्य ज्ञान) के उत्तोलन की ओर... (612) पन्ना (दिव्य ज्ञान) के आनंद की ओर... (613) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की शीघ्रता की ओर... (614) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की तीक्ष्णता की ओर... (615) पन्ना (दिव्य ज्ञान) की भेदन क्षमता की ओर। 213 वह एक चीज क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान। यही वह एक चीज है, जिसे विकसित और पोषित करने पर पन्ना (दिव्य ज्ञान) की भेदन क्षमता प्राप्त होती है।

584-599. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बाहुलिकतो पणिनापतिलाभाय संवत्तति... पणनावुड्डिया सवत्तति... पणनावेपुलया सवत्तति... महापनातया सवत्तति... पुथुपन्नतया संवत्तति... विपुलपन्नतया संवत्तति... गंभीरपन्नतया संवत्तति... असंमंतपन्नतया [असमत्थापन्नटया (स्या. का.), असमत्तपन्नतया (का.), असमन्तपन्नतया (टीका) पति। मा. आस्था. 2.3.1 पासितब्बां] संवत्तति... भूरिपनत्याय संवत्तति... पणनाबहुल्लाय संवत्तति... सिघपन्नतया संवत्तति... लहुपनातया संवत्तति... हसापन्नटया [हसुपन्नटया (सि. पि.)] सांवत्तति... जवनापन्नटया संवत्तति... तिक्खपन्नटया संवत्तति... निब्बेधिकापन्नटया संवत्तति। काटामो एकधम्मो? कायगता सति. अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बाहुलिकतो पणिनापतिलाभाय संवत्तति... पणनावुड्डिया संवत्तति... पणनावेपुलया सवत्तति... महापन्नतया संवत्तति... पुथुपनतया संवत्तति... विपुलपन्नतया संवत्तति... गंभीरपन्नतया संवत्तति... असंमंतपन्नतया संवत्तति... भूरिपनतया संवत्तति... पन्नबहुल्लया संवत्तति... सिघपन्नतया संवत्तति... लहुपनतया संवत्तति... हसापनतया संवत्तति... जवनापन्नतया संवत्तति... तिक्खपन्नतया संवत्तति... निब्बेधिकापन्नतया सांवत्तति'ति।

कायागतासतिवग्गो एकुनाविसतिमो।

5-5-5. "एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलिकतो पञ्चापतिलाभाय संवत्तति... पञ्चावुधिया संवत्तति... पञ्चावेपुलदाय संवत्तति... महापञ्चताय संवत्तति... पुथुपञ्चताय संवत्तति... विपुलपञ्जताय संवत्तति... महपञ्चताय संवत्तति... असमन्तपञ्चताय [असमत्थपञ्चताय (स्या० कं०), असमत्पञ्चताय (क०), असमन्तपञ्चताय (टीका) पति० म० अट्ठ० 2..31 पास्सित्बं] संवत्तति... भूरिपञ्चताय संवत्तति... पञ्चबाहुल्लाय संवत्तति...घ सीपञ्जन्ताय संवत्तति... लहुपञ्जन्ताय संवत्तति... हस्पञ्जनताय [हसुपञ्जन्ताय (सी० पी०)] संवत्तति... जवनपञ्चताय संवत्तति... तिक्खपञ्चताय संवत्तति... निब्बेधिकपञ्चताय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकदम्मो भावितो पञ्चापतिलाभाय संवत्तति... पञ्चावुधिया संवत्तति... पञ्चावेपुललाय संवत्तति... महापञ्चनताय संवत्तति... पुथुपञ्चताय संवत्तति... विपुलपञ्चताय संवत्तति... विपुलपञ्चताय संवत्तति... असामन्तपञ्चताय संवत्तति... भूरिपञ्जनताय संवत्तति... पञ्चाबौल्लाय संवत्तति... सीघपञ्जनताय संवत्तति... लहुपञ्चताय संवत्तति... हस्पनपञ्चताय संवत्तति... जवनपञ्चताय संवत्तति... तिक्खपञ्चताय संवत्तति... निब्बेधिकपञ्चताय संवत्तति"ति।

कायगतासतिवग्गो एकूनविसतिमो।

(1.XX) मृत्युहीन धारा 214 (अमाता-वाग्गो सं. अमृत वर्ग)

600

"भिक्षु (सन्यासी), वे अमरता (अमृत) का सेवन नहीं करते जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का अभ्यास नहीं करते। वे अमरता (अमृत) का सेवन करते हैं जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का अभ्यास करते हैं।"

600. "अमतं ते, भिक्खवे, न परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं न परिभुञ्जन्ति। अमातं ते, भिक्खवे, परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं परिभुञ्जन्ति'।

600. "अमतं ते, भिक्खवे, न परिभुञ्जन्ति ये कायगतसतिं न परिभुञ्जन्ति। अमातं ते, भिक्खवे, परिभुञ्जन्ति ये कायगतसतिं परिभुञ्जन्ति"ति।

601

भिक्षुओं, जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) नहीं किया है, उन्हें अमरता (अमृत) प्राप्त नहीं हुई है। जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) किया है, उन्हें अमरता (अमृत) प्राप्त हुई है।

601. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिभुत्तं येसं कायगतसति अपरिभुत्ता। अमातं तेसं, भिक्खवे, परिभुत्तं येसं कायगतसति परिभुत्त'ति।

601. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिभुत्तं येसं कायगतसति अपरिभुत्ता। अमातं तेसं, भिक्खवे, परिभुत्तं येसं कायगतसति परिभुत्ता"ति।

602

"भिक्षु (मठवासी), वे अमरत्व (अमृत) से विमुख हो जाते हैं जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान से विमुख हो जाते हैं। वे अमरत्व (अमृत) से विमुख नहीं होते जो शरीर पर केंद्रित सती ध्यान से विमुख नहीं होते।"

602. "अमतं तेसं, भिक्खवे, परिहीनं येसं कायगतसति परिहिना। अमातं तेसं, भिक्खवे, अपरिहीनं येसं कायगतसति अपरिहिण'ति।

260. "अमतं तेसं, भिक्खवे, परिहीनं येसं कायगतसति परिहीना। अमातं तेसं, भिक्खवे, अपरिहीनं येसं कायगतसति अपरिहीन"ति।

603

"भिक्षुओं ने अमरता (अमृत) की उपेक्षा की है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का त्याग किया है। [46] जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का त्याग किया है, उन्होंने अमरता (अमृत) का पालन किया है।"

603. "अमतं तेसं, भिक्खवे, विरद्धं येसं कायगतसति विरद्ध। अमातं तेसं, भिक्खवे, अराधं [अविरद्धं (का.)] हां◌ं कायगतसति आराधना'ति।

603. "अमतं तेसं, भिक्खवे, वृद्धं येसं कायगतसति वृद्धा। अमातं तेसं, भिक्खवे, अर्धं [अविर्द्धं (क०)] येसं कायगतसति अर्ध"ति।

604

"भिक्षु (संतों), वे अमरत्व (अमृत) के प्रति आलसी होते हैं जो शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) के प्रति आलसी होते हैं। वे अमरत्व (अमृत) के प्रति आलसी नहीं होते जो शरीर पर केंद्रित ध्यान के प्रति आलसी नहीं होते।"

604. "अमतं ते, भिक्खवे, पमादिंसु ये कायगतसतिं पमादिंसु। अमातं ते, भिक्खवे, न पमादिंसु ये कायगतासतिं न पमादिंसु"।

604. "अमतं ते, भिक्खवे, पमादिंसु ये कायगतसतिं पमादिंसु। अमातं ते, भिक्खवे, न पमादिंसु ये कायगतसतिं न पमादिंसु"।

605

"भिक्षुओं (संतों) ने अमरता (अम्रता/अमृत) को भुला दिया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान को भुला दिया है। उन्होंने अमरता (अम्रता/अमृत) को नहीं भुलाया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान को नहीं भुलाया है।"

605. "अमतं तेसं, भिक्खवे, पमुथं येसं कायगतसति पमुत्था। अमातं तेसं, भिक्खवे, अप्पमुत्थं येसं कायगतसति अप्पामुत्था'ति।

605. "अमतं तेसं, भिक्खवे, पमुत्थं येसं कायगतसति पमुत्था। अमातं तेसं, भिक्खवे, अप्पमुट्ठं येसं कायगतसति अप्पमुत्था"ति।

606

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) की प्राप्ति नहीं की है, जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) का अभ्यास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर को समर्पित ध्यान (सती) का अभ्यास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) की प्राप्ति की है।"

606. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनासेवितं येसं कायगतसति अनासेविता। अमातं तेसं, भिक्खवे, असेवितं येसं कायगतसति असेविता'ति।

606. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनासेवितं येसं कायगतसति अनासेविता। अमातं तेसं, भिक्खवे, असेवितं येसं कायगतसति असेविता"ति।

607

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) का विकास नहीं किया है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती) का विकास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान (ध्यान/सती) का विकास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) का विकास किया है।"

607. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अभवितां येसं कायगतसति अभाविता। अमातं तेसं, भिक्खवे, भवितां येसं कायगतसति भविता'ति।

607. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अभावितं येसं कायगतसति अभाविता।" अमातं तेसं, भिक्खवे, भवितां येसं कायगतसति भविता"ति।

608

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) की साधना नहीं की है, जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का अभ्यास नहीं किया है। जिन्होंने शरीर के प्रति सती ध्यान का अभ्यास किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) की साधना की है।"

608. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अबाहुलिकतं येसं कायगतसति अबाहुलिकता। अमातं तेसं, भिक्खवे, बहुलिकतं येसं कायगतसति बहुलिकता'ति।

608. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अबहुलीकातं येसं कायगतसति अबहुलिकता। अमातं तेसं, भिक्खवे, बहुलीकातं येसं कायगतसति बहुलिकाता"ति।

609

"भिक्षुओं (सन्तुओं) ने अमरत्व (अमृत) को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जाना है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव किया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) को प्रत्यक्ष रूप से जाना है।"

609. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनाभिन्नता येसं कायगतसति अनाभिनाता। अमातं तेसं, भिक्खवे, अभिनीतं येसं कायगतसति अभिनीत'ति।

609. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनभिञ्जनातं येसं कायगतसति अनभिञ्जनता। अमातं तेसं, भिक्खवे, अभिज्ञातं येसं कायगतसति अभिज्ञाता"ति।

610

"भिक्षुओं ने अमरत्व (अमृत) को पूरी तरह से नहीं समझा है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को पूरी तरह से नहीं समझा है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को पूरी तरह से समझ लिया है, उन्होंने अमरत्व (अमृत) को पूरी तरह से समझ लिया है।"

610. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिणातं येसं कायगतसति अपरिणाता। अमातं तेसं, भिक्खवे, परिण्णातं येसं कायगतसति परिण्णाता'ति।

610. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिञ्जनातं येसं कायगतसति अपरिञ्जनाता। अमातं तेसं, भिक्खवे, परिञ्ज्ञातं येसं कायगतसति परिञ्चता"ति।

611

"भिक्षुओं (संतों) ने अमरत्व (अम्रत/अमृत) को नहीं जाना है, जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को नहीं जाना है। जिन्होंने शरीर पर केंद्रित सती ध्यान को जाना है, उन्होंने अमरत्व (अम्रत/अमृत) को जान लिया है।"

द बुक ऑफ द वन्स पूरी हो चुकी है।

611. "अमतं तेसं, भिक्खवे, असच्चिकतां येसं कायगतसति असच्चिकता। अमातं तेसं, भिक्खवे, सच्चिकतां येसं कायगतसति सच्चिकता'ति। (...) [(एकाकनिपातस्स सुत्तसहस्सं समत्तं।) (सि. स्या. कं. पि.)]

(इदमावोच भगव। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिनन्दुन्ति।) [( ) एत्थनतारे पाथो सी। स्या. कां. पी.आई. पोत्थकेसु नत्थि]

Amatavaggo vīsatimo.

एकाकनिपतपसि नियतिता।

611. "अमतं तेसं, भिक्खवे, असच्छिकतं येसं कायगतसति असच्छिकता। अमातं तेसं, भिक्खवे, सच्चिकतं येसं कायगतसति सच्चिकता"ति। (...) [(एकनिपातस्स सुत्तसहस्सं समत्तं।) (सी० स्या० कं० पी०)]

(इदमवोच भगवान। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिन्नदुन्ति।) [( ) एत्थन्त्रे पाठो सी० स्या० कं० पी० पोत्थकेसु नत्थि]

अमातवग्गो विसतिमो।

एकनिपातपाळि निश्चितिता।

धम्मपद

(धम्मपद 219 और 220) <<<< पिछला|| धम्मपद221 ||अगला >>>> (धम्मपद222)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

कोधं जहे विप्पजहेय मनम
समन्वयम्(1) सब्बामटिक्कमेय्या
तं नामरूपस्मिं असज्ज्मानं
अकिंचनम्(2) नानुपतन्ति दुक्खा।

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दुःख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

---

1. सम्योजनम्: एक बंधन। मनुष्य की वासना के दस बंधन हैं जो मनुष्य को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं; ये बंधन मार्ग अंतर्दृष्टि के विभिन्न चरणों में टूट जाते हैं।
2. अकिंचनम्: किंचन (अपवित्रता) से मुक्त: तीन किंचन हैं कामवासना, द्वेष और अज्ञान।

बुद्ध द्वारा कुष्ठ रोगी के उपचार की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (221) कहा। एक बार थेरा अनुराद्ध कपिलवस्तु गए। वहाँ के मठ में ठहरते समय, उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। थेरा अनुराद्ध ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भवन बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। थेरा अनुराद्ध ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी भवन निर्माण में सहायता करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को भवन निर्माण के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा। जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, और उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बरनास के राजा की प्रधान रानी थीं। संयोग से, राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और प्रधान रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से गौ-हेज की फलियों से बना खुजलीदार पाउडर नर्तकी के पलंग, कंबल आदि में डलवा दिया। फिर, उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में, उस पर थोड़ा सा खुजलीदार पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली हो रही थी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से तड़प रही थी। असहनीय खुजली के कारण वह दौड़कर अपने कमरे और बिस्तर पर चली गई, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।

उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में आकर मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दु:ख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित कई लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमारी रोहिणी की कहानी
निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य अनुराधा कपिलवस्तु आए। जब वे वहाँ के मठ में ठहरे हुए थे, तो उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। पूज्य अनुराधा ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भोजन कक्ष बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। पूज्य अनुराधा ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी हॉल के निर्माण में मदद करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को निर्माण कार्य के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बारानासी के राजा की मुख्य रानी थीं। राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और मुख्य रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से नर्तकी के पलंग और कंबल में खुजली का पाउडर डलवा दिया। फिर उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में उस पर खुजली का पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली होने लगी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से पीड़ित हो गई। असहनीय खुजली से परेशान होकर वह अपने कमरे और बिस्तर की ओर भागी, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी। प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित अनेक लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 221)
कोढं जहे मनं विप्पजहेय सब्बं संनोजानं अतिक्कमेय्या
नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं तं दुक्खा न अनुपातन्ति
कोढ़ां [कोढ़ा]: क्रोध; जहे : त्यागना; मनं [मन]: अभिमान; विप्पजहेय्या : पूरी तरह से त्याग दो; सब्बाṃ [सब्बा]: सभी; संनोजनं [संनोजाना]: बेड़ियाँ; अतिक्कमेय्या : छुटकारा पाना; नामरूपस्मिः [नामरूपस्मि]: नाम और रूप में; असज्जमानाम् [असज्जमाना]: अनासक्त; अकिंचानाṃ [अकिंचना]: उपांगों से मुक्त; तं : उस व्यक्ति पर; दुक्खा न अनुपातन्ति : कष्ट और दुःख नहीं आते
क्रोध का त्याग करो। अहंकार को पूरी तरह छोड़ दो। सभी आसक्तियों से मुक्त हो जाओ। जो व्यक्ति नाम और रूप से आकर्षित नहीं होता और आसक्तियों से मुक्त होता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 221)
क्रोध : क्रोध। व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सभी भावनाओं में क्रोध सबसे बुरा है। क्रोध का सामना क्रोध से करने पर वह दस गुना बढ़ जाता है, लेकिन यदि शांत भाव से उसका सामना किया जाए तो वह अक्सर शीघ्र ही शर्मिंदगी की भावना में तब्दील हो जाता है, जो उससे कहीं अधिक प्रबल होती है। यह सभी भावनाओं में सबसे अतार्किक है। तीव्र क्रोध के क्षण में मनुष्य वास्तव में मनुष्य

नहीं रह जाता; वह एक विनाशकारी पशु बन जाता है। दूसरों के साथ हुए अन्याय पर क्रोध करना भी सही समाधान की ओर ले जाने वाली मानसिक स्थिति नहीं है। लेकिन स्वयं से निपटने में, क्रोध की यह मनोदशा शांत विश्लेषण के आगे टिक नहीं सकती। स्पष्ट है कि ये दोनों मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और प्रारंभ में, यदि क्रोध पहले से ही एक आदत बन चुका है, तो वह अन्य सभी चीजों को दरकिनार कर सकता है। लेकिन अभ्यास से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, और हम खुद को देखकर कह सकते हैं, "कौन नाराज़ है? इस गुस्से का कारण क्या है?" गुस्सा जल्द ही शांत हो जाता है और अक्सर कारण जानने की कोशिश में भुला दिया जाता है। बाद में, यह जानकर कि हमने गुस्से के हावी होने पर होने वाली संभावित मूर्खतापूर्ण कार्रवाई से खुद को बचा लिया, हमें खुशी होती है कि हमने ऐसा आत्म-संयम बरता।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> धम्मपद

अंतर्वस्तु

1परिचय
2धम्मपद ग्रंथ (विस्तृत कथाओं सहित)
2.1अध्याय 1. यमकावग्ग: जोड़े (श्लोक 1-20)
2.2अध्याय 2. अप्पमदवग्गा: लापरवाही(21-32)
2.3अध्याय 3. चित्तवग्ग: मन (33-43)
2.4अध्याय 4. पुप्फवग्ग: फूल (44-59)
2.5अध्याय 5. बालवग्गा: मूर्ख(60-75)
2.6अध्याय 6. पंडितवग्ग: ज्ञानी (76-89)
2.7अध्याय 7. अरहंतवग्गा: अरहंत (90-99)
2.8अध्याय 8. सहस्सवग्ग: हज़ार (100-115)
2.9अध्याय 9. पापावग्गा: बुराई (116-128)
2.10अध्याय 10. दंडवग्ग: हिंसा (129-145)
2.11अध्याय 11. जरावग्ग: वृद्धावस्था (146-156)
2.12अध्याय 12. अत्तवग्ग: आत्मा (157-166)
2.13अध्याय 13. लोकवग्गा: विश्व (167-178)
2.14अध्याय 14. बुद्धवग्ग: बुद्ध (179-196)
2.15अध्याय 15. सुखवग्गा: ख़ुशी (197-208)
2.16अध्याय 16. पियावग्ग: स्नेह (209-220)
2.17अध्याय 17. कोधवग्ग: क्रोध (221-234)
2.18अध्याय 18. मालवग्ग: अशुद्धि (235-255)
2.19अध्याय 19. धम्मत्थावग्ग: न्यायप्रिय (256-272)
2.20अध्याय 20. मग्गावग्गा: मार्ग (273-289)
2.21अध्याय 21. पकिन्नकवग्गा: विविध (290-305)
2.22अध्याय 22. निरयवग्गा: नरक (306-319)
2.23अध्याय 23. नागवग्गा: हाथी (320-333)
2.24अध्याय 24. तन्हावग्ग: लालसा (334-359)
2.25अध्याय 25. भिक्खुवग्ग: भिक्षु (360-382)
2.26अध्याय 26. ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण (383-423)
3धम्मपद ग्रंथ (संक्षिप्त संस्करण)
4अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
5अनुवाद के लिए वेबसाइटें
6यह भी देखें
7मूल पाली संस्करण
7.1पाली-अंग्रेज़ी संस्करण
7.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)
8संक्षिप्त हिंदी संस्करण

परिचय

धम्मपद (पाली में, जिसका अर्थ है धर्म का मार्ग । प्राकृत में धम्मपद और संस्कृत में धर्मपद) बौद्ध धर्म का एक धार्मिक ग्रंथ है, जिसमें 26 श्रेणियों में 423 श्लोक हैं। परंपरा के अनुसार, ये विभिन्न अवसरों पर बुद्ध से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर हैं, जिनमें से अधिकांश नैतिकता से संबंधित हैं। पांचवीं शताब्दी में बुद्धघोष द्वारा लिखी गई टीका में 305 कहानियां शामिल हैं जो इन श्लोकों को संदर्भ प्रदान करती हैं। धम्मपद पाली त्रिपिटक का एक लोकप्रिय भाग है और इसे थेरवाद साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक माना जाता है। हालांकि पाली संस्करण सबसे अधिक प्रसिद्ध है, खरोष्ठी में लिखा गया एक गांधारी संस्करण और संस्कृत में लिखा गया एक संबंधित ग्रंथ जिसे उदानावर्ग के नाम से जाना जाता है, भी खोजा गया है।

धम्मपद का विस्तृत संस्करण संक्षिप्त संस्करण के नीचे दिया गया है। यहाँ प्रस्तुत सच्ची कहानियाँ/घटनाएँ धम्मपद को समझने में आसान, अर्थपूर्ण और आनंददायक बनाती हैं। इससे भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धम्म को समझने में बहुत सहायता मिलेगी।

धम्मपद ग्रंथ (विस्तृत कथाओं सहित)

अध्याय 1. यमकावग्ग: जोड़े (श्लोक 1-20)
धम्मपद श्लोक 1 - कक्खुपालत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) कक्खुपाल की कहानी
धम्मपद श्लोक 2 - मत्थाकुंडली वत्थु - मत्थाकुंडली की कहानी
धम्मपद छंद 3 और 4 - तिस्साथेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 5 - कलायक्खिनी वत्थु - कलायक्खिनी की कहानी
धम्मपद छंद 6 - कोसंबका वत्थु - कोसंबी भिक्खु (भिक्षुओं) की कहानी
धम्मपद छंद 7 और 8 - महालत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) महाकाल की कहानी
धम्मपद श्लोक 9 और 10 - देवदत्त वत्थु - देवदत्त की कहानी
धम्मपद छंद 11 और 12 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त (बुजुर्ग भिक्षु सारिपुत्र) की कहानी
धम्मपद छंद 13 और 14 - नंदत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) नंदा की कहानी
धम्मपद श्लोक 15 - कुंडसुकारिका वत्थु - कुंडसुकरिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 16 - धम्मिका-उपासक वत्थु - धम्मिका उपासक की कहानी
धम्मपद श्लोक 17 - देवदत्त वत्थु - देवदत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 18 - सुमनदेवी वत्थु - सुमनदेवी की कहानी
धम्मपद छंद 19 और 20 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु - दो दोस्तों की कहानी

अध्याय 2. अप्पमदवग्गा: लापरवाही(21-32)
धम्मपद छंद 21, 22 और 23 - सामवती वत्थु - सामवती की कहानी
धम्मपद श्लोक 24 - कुम्भघोषकासेट्ठी वत्थु - कुम्भघोषक, बैंकर की कहानी
धम्मपद श्लोक 25 - कुलपंथक वत्थु - कुलपंथक की कहानी
धम्मपद छंद 26 और 27 - बालनक्खट्टसंगुत्था वत्थु - बालनक्खट्टा महोत्सव की कहानी
धम्मपद श्लोक 28 - महाकस्सपत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) महाकस्सप की कहानी
धम्मपद श्लोक 29 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु - दो साथी भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 30 - माघ वत्थु - माघ की कहानी
धम्मपद श्लोक 31 - अन्नतारभिक्खु वत्थु - एक निश्चित भिक्खु (भिक्षु) की कहानी
धम्मपद श्लोक 32 - निगमावसिटिससत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) निगमवसिटिस्सा की कहानी

अध्याय 3. चित्तवग्ग: मन (33-43)
धम्मपद श्लोक 33 और 34 - मेघियाथेरा वत्थु - थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) मेघिया की कथा
धम्मपद श्लोक 35 - अन्नतारभिक्खु वत्थु - एक निश्चित भिक्खु (भिक्षु) की कहानी
धम्मपद श्लोक 36 - उक्कनथिताभिक्खु वत्थु - एक असंतुष्ट भिक्खु (भिक्षु) की कहानी
धम्मपद श्लोक 37 - समघरक्खितत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) संघरक्खिता की कहानी
धम्मपद श्लोक 38 और 39 - चित्तहत्थथेरा वत्थु - थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) चित्तहत्था की कथा
धम्मपद श्लोक 40 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

धम्मपद श्लोक 41 - पुतिगत्ततिसत्तेरा वत्थु - दुर्गंधयुक्त शरीर वाले थेरा (वृद्ध) तिस्सा की कथा
धम्मपद श्लोक 42 - नंदगोपालक वत्थु - चरवाहे नंदा की कहानी
धम्मपद श्लोक 43 - सोरेय्या वत्थु - धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या की कहानी

अध्याय 4. पुप्फवग्ग: फूल (44-59)
धम्मपद छंद 44 और 45 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 46 - मरिकममत्थानिका भिक्खु वत्थु - उस भिक्खु (भिक्षु) की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है
धम्मपद श्लोक 47 - वितातुभ वत्थु - कोसल के राजा के पुत्र वितातुभा की कहानी
धम्मपद श्लोक 48 - पतिपूजिकाकुमारी वत्थु - पतिपूजिका कुमारी की कहानी
धम्मपद श्लोक 49 - मैकचरियाकोसियासेट्ठी वत्थु - कंजूस अमीर आदमी कोसिया की कहानी
धम्मपद श्लोक 50 - पवेय्या अजीवक वत्थु - तपस्वी पवेय्या की कथा
धम्मपद छंद 51 और 52 - चट्टापानी उपासक वत्थु - एक सामान्य शिष्य चट्टापानी की कहानी
धम्मपद श्लोक 53 - विशाखा वत्थु - विशाखा की कहानी
धम्मपद श्लोक 54 और 55 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कथा
धम्मपद श्लोक 56 - महाकस्सपत्थेरा वत्थु - थेरा (ज्येष्ठ) महाकस्सप की कहानी
धम्मपद श्लोक 57 - गोधिकत्थेरापरिनिब्बाना वत्थु - थेरा (बुजुर्ग) गोधिका की कहानी
धम्मपद छंद 58 और 59 - गार्हादिन्ना वत्थु - गार्हादिन्ना की कहानी

अध्याय 5. बालवग्गा: मूर्ख(60-75)
धम्मपद श्लोक 60 - अन्नतारपुरिसा वत्थु - एक व्यक्ति की कहानी
धम्मपद श्लोक 61 - महाकस्सप सद्धिविहारिका वत्थु - थेरा (बड़े भिक्षु) महाकस्सप के एक निवासी शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 62 - आनंदसेट्ठि वत्थु - अमीर आदमी आनंद की कहानी
धम्मपद श्लोक 63 - गंथिभेदाकोरा वत्थु - दो जेबकतरों की कहानी
धम्मपद श्लोक 64 - उदयित्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) उदयी की कहानी
धम्मपद श्लोक 65 - तिम्सापवेय्याभिक्खु वत्थु - पवेय्याका के तीस भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 66 - सुप्पबुद्धकुट्टी वत्थु - सुप्पबुद्ध, कोढ़ी की कहानी
धम्मपद श्लोक 67 - कसाका वत्थु - एक किसान की कहानी
धम्मपद श्लोक 68 - सुमनमालाकारा वत्थु - पुष्प विक्रेता सुमना की कहानी
धम्मपद श्लोक 69 - उप्पलवन्नाथेरी वत्थु - थेरी (बड़ी भिक्षुणी) उप्पलवन्ना की कहानी
धम्मपद श्लोक 70 - जम्बुकत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) जंबुका की कहानी
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वस्तु - अहिपेटा की कहानी (मनुष्य के सिर वाला सर्प जैसा भूत)
धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुतापेटा वत्थु - सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)
धम्मपद श्लोक 73 और 74 - चित्तगहपति वस्तु - गृहस्थ चित्त की कथा
धम्मपद श्लोक 75 - वनवसिटिससामनेरा वत्थु - वन मठ के समानेरा (बुजुर्ग भिक्षु) तिस्सा की कहानी

अध्याय 6. पंडितवग्ग: ज्ञानी (76-89)
धम्मपद श्लोक 76 - राधाथेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) राधा की कहानी
धम्मपद श्लोक 77 - अस्साजीपुनब्बासुका वत्थु - कहानी या भिक्खु (भिक्षु) असाजी और पुनब्बासुका
धम्मपद श्लोक 78 - चन्नत्थेरा वत्थु - थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) चन्ना की कथा
धम्मपद श्लोक 79 - महाकप्पिनत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) महाकप्पिन की कहानी
धम्मपद श्लोक 80 - पंडितसामनेरा वत्थु - समानेरा (बुजुर्ग भिक्षु) पंडिता की कहानी
धम्मपद श्लोक 81 - लकुंडकभद्दियाथेरा वत्थु - थेरा लकुंडका भद्दिया की कहानी
धम्मपद श्लोक 82 - कनामाता वत्थु - कनामता की कहानी
धम्मपद श्लोक 83 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

धम्मपद श्लोक 84 - धम्मिकत्थेरा वत्थु - थेरा धम्मिका की कहानी
धम्मपद छंद 85 और 86 - धम्मस्सवन वत्थु - धम्म श्रोताओं की कहानी
धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

अध्याय 7. अरहंतवग्गा: अरहंत (90-99)
धम्मपद श्लोक 90 - जीवकपन्हा वत्थु - जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 91 - महाकस्सपत्थेरा वत्थु - थेरा महाकस्सप की कहानी
धम्मपद श्लोक 92 - बेलात्थसिसत्तेरा वत्थु - थेरा बेलात्थसिस की कथा
धम्मपद श्लोक 93 - अनुरुद्धथेरा वत्थु - थेरा अनुरुद्ध की कथा
धम्मपद श्लोक 94 - महाकाकायनत्थेरा वत्थु - थेरा महाकाकायन की कहानी
धम्मपद श्लोक 95 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 96 - कोसाम्बिवसिटिसथेरसमानेरा वत्थु - कोसंबी के एक समानेरा की कहानी
धम्मपद श्लोक 97 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद छंद 98 - खदिरवानियारेवत्तथेरा वत्थु - थेरा रेवता की कहानी
धम्मपद श्लोक 99 - अन्नतारा इत्थि वत्थु - एक महिला की कहानी

अध्याय 8. सहस्सवग्ग: हज़ार (100-115)
धम्मपद श्लोक 100 - तम्बादथिका कोरघटका वत्थु - तम्बादथिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 101 - बहियादारुसीरिया वत्थु - बहियादारुसीरिया की कहानी
धम्मपद छंद 102 और 103 - कुंडलकेशिथेरी वत्थु - थेरी कुंडलकेशी की कहानी
धम्मपद छंद 104 और 105 - अनाथपुच्चकब्राह्मण वत्थु - ब्राह्मण अनाथपुच्चक की कहानी
धम्मपद श्लोक 106 - सारिपुत्तथेरस्सा मातुल ब्राह्मण वत्थु - थेरा सारिपुत्त के चाचा की कहानी
धम्मपद श्लोक 107 - सारिपुत्तथेरस्सा भगिनेय वत्थु - थेरा सारिपुत्त के भतीजे की कहानी
धम्मपद श्लोक 108 - सारिपुत्तथेरसा सहायक ब्राह्मण वत्थु - थेरा सारिपुत्त के मित्र की कहानी
धम्मपद श्लोक 109 - आयुवधनकुमार वत्थु - आयुवधनकुमार की कहानी
धम्मपद श्लोक 110 - समकिक्कासामनेरा वत्थु - समानेरा समकिक्का की कहानी
धम्मपद श्लोक 111 - खानु कोंडन्नाथेरा वत्थु - खानु-कोंडन्ना की कहानी
धम्मपद श्लोक 112 - सप्पादासत्थेरा वत्थु - थेरा सप्पादास की कहानी
धम्मपद श्लोक 113 - पटाकराथेरी वत्थु - थेरी पटाकारा की कहानी
धम्मपद श्लोक 114 - किसागोतामी वत्थु - थेरी किसागोटामी की कहानी
धम्मपद श्लोक 115 - बहुपुत्तिकत्थेरी वत्थु - थेरी बहुपुटिका की कहानी

अध्याय 9. पापावग्गा: बुराई (116-128)
धम्मपद श्लोक 116 - कुलेकाशतक वत्थु - कुलेकशतक की कहानी
धम्मपद श्लोक 117 - सेय्यासकत्थेरा वत्थु - थेरा सेय्यासाका की कहानी
धम्मपद श्लोक 118 - लजदेवाधिता वत्थु - लजदेवाधिता की कहानी
धम्मपद छंद 119 और 120 - अनाथपिंडिकासेट्ठि वत्थु - अनाथपिंडिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 121 - असन्नतापरिक्खरा वत्थु - एक लापरवाह भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 122 - बिलालापादकसेट्ठि वत्थु - बिलालापादका की कहानी
धम्मपद श्लोक 123 - महाधनवनिजा वत्थु - महाधन की कहानी
धम्मपद श्लोक 124 - कुक्कुटमित्तनेसादा वत्थु - कुक्कुटमित्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 125 - कोकासुनाखालुद्दका वत्थु - कोका द हंट्समैन की कहानी
धम्मपद श्लोक 126 - मणिकारकुलुपाका तिसत्थेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 127 - तयोजन वस्तु - तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 128 - सुप्पबुद्धसाक्य वत्थु - राजा सुप्पबुद्ध की कहानी

अध्याय 10. दंडवग्ग: हिंसा (129-145)
धम्मपद श्लोक 129 - छब्बग्गिया भिक्खु वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी
धम्मपद श्लोक 130 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी
धम्मपद श्लोक 131 और 132 - संबहुला कुमारक वत्थु - अनेक युवकों की कहानी
धम्मपद छंद 133 और 134 - कोंडाधनत्थेरा वत्थु - थेरा कोंडाधन की कहानी
धम्मपद श्लोक 135 - उपोसाथिका इत्थिनं वत्थु - नैतिक उपदेशों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 136 - अजगरपेटा वत्थु - अजगर पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते हुए शरीर वाला अजगर जैसा भूत)
धम्मपद छंद 137, 138, 139 और 140 - महा मोग्गलनत्थेरा वत्थु - थेरा महा मोग्गलन की कहानी
धम्मपद श्लोक 141 - बहुभांडिका भिक्खु वत्थु - भिक्खु बहुभांडिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 142 - संतति महामत्त वत्थु - संतति मंत्री की कहानी
धम्मपद छंद 143 और 144 - पायलटिकातिसत्थेरा वत्थु - थेरा पिलोतिकतिस्सा की कथा
धम्मपद श्लोक 145 - सुखसामनेरा वत्थु - समानेरा की कहानी(2) सुखा

अध्याय 11. जरावग्ग: वृद्धावस्था (146-156)
धम्मपद श्लोक 146 - विशाखया सहायिकानं वत्थु - विशाखा के साथियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 147 - सिरिमा वत्थु - सिरिमा की कहानी
धम्मपद श्लोक 148 - उत्तरथेरि वत्थु - थेरी उत्तरा की कहानी
धम्मपद श्लोक 149 - सम्बहुला अधिमानिकाभिक्खु वत्थु - आधिमानिक भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 150 - जनपदकल्याणी रूपानन्दथेरी वत्थु - थेरी रूपानंद की कहानी (जनपदकल्याणी)
धम्मपद श्लोक 151 - मल्लिकादेवी वत्थु - रानी मल्लिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 152 - लालूदायी थेरा वत्थु - थेरा लालूदायी (या थेरा कलुदायी) की कहानी
धम्मपद श्लोक 153 और 154(1) - उदान वत्थु - "बुद्ध के उल्लासपूर्ण वचनों" से संबंधित कथा
धम्मपद छंद 155 और 156 - महाधनसेट्ठिपुत्त वत्थु - महाधन के पुत्र की कहानी

अध्याय 12. अत्तवग्ग : आत्मा (157-166)
धम्मपद श्लोक 157 - बोधिराजकुमार वत्थु - बोधिराजकुमार की कहानी
धम्मपद श्लोक 158 - उपनन्दसाक्यपुत्तत्थेरा वत्थु - थेरा उपनन्द शाक्यपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 159 - पदनिकतिसत्थेरा वत्थु - थेरा पधानिकतिसा की कहानी
धम्मपद श्लोक 160 - कुमारकस्सपमातुत्थेरी वत्थु - कुमारकस्सप की माता की कहानी
धम्मपद श्लोक 161 - महाकाल उपासक वत्थु - महाकाल उपासक की कहानी
धम्मपद श्लोक 162 - देवदत्त वत्थु - देवदत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 163 - समघभेदापरिसक्कन वत्थु - क्रम में विवाद की कहानी
धम्मपद श्लोक 164 - कलत्थेरा वत्थु - थेरा कला की कहानी
धम्मपद श्लोक 165 - कुलकला उपासक वत्थु - कुलकला उपासक की कहानी
धम्मपद छंद 166 - अट्टादत्तथेरा वत्थु - थेरा अट्टादत्ता की कहानी

अध्याय 13. लोकवग्गा: विश्व (167-178)
धम्मपद श्लोक 167 - दहरभिक्खु वत्थु - एक युवा भिक्षु की कहानी
धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु - राजा शुद्धोदन की कहानी
धम्मपद श्लोक 170 - पंचसताविपासकभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 171 - अभयराजकुमार वत्थु - राजकुमार अभय की कहानी
धम्मपद श्लोक 172 - सम्मज्जनत्थेरा वत्थु - थेरा सम्मज्जन की कहानी
धम्मपद श्लोक 173 - अंगुलिमालत्थेरा वत्थु - थेरा अंगुलिमाल की कहानी

धम्मपद श्लोक 174 - पेसाकारधिता वत्थु - बुनकर-लड़की की कहानी
धम्मपद श्लोक 175 - तिमसभिक्खु वत्थु - तीस भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 176 - सिंकमानविका वत्थु - सिंकमानविका की कहानी
धम्मपद श्लोक 177 - असादिसादना वस्तु - अद्वितीय भिक्षादान की कथा
धम्मपद श्लोक 178 - अनाथपिंडिकापुत्तकला वत्थु - अनाथपिंडिका के पुत्र काला की कहानी

अध्याय 14. बुद्धवग्ग: बुद्ध (179-196)
धम्मपद छंद 179 और 180 - मराधितारा वत्थु - मारा की तीन बेटियों की कहानी (यानी शैतान/शैतान की)
धम्मपद श्लोक 181 - देवोरोहण वत्थु - बुद्ध के तावतिंसा देवलोक से वापसी की कथा
धम्मपद श्लोक 182 - एरकपट्टनागराज वत्थु - नागा राजा एरकपट्ट की कहानी
धम्मपद श्लोक 183, 184 और 185 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद छंद 186 और 187 - अनाभिरताभिक्खु वत्थु - एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी
धम्मपद श्लोक 188 से 192 - अग्गिदत्तब्राह्मण वत्थु - अग्गिदत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 193 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 194 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 195 और 196 - कस्सापादसबालासा सुवन्नासेटिया वत्थु - कस्पा बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी

अध्याय 15. सुखवग्गा: ख़ुशी (197-208)
धम्मपद श्लोक 197, 198 और 199 - नाटिकलाहवुपासमना वत्थु - बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कथा
धम्मपद श्लोक 200 - मारा वस्तु - मारा की कथा (मृत्यु/रोग/बुराई/भौतिक सुख/धन का स्वामी, अर्थात् शैतान)
धम्मपद श्लोक 201 - कोसलरान्नो परजाया वत्थु - कोसल के राजा की हार की कहानी
धम्मपद श्लोक 202 - अन्नतारकुलदारिका वत्थु - एक युवा दुल्हन की कहानी
धम्मपद श्लोक 203 - एक उपासक वत्थु - एक साधारण शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 204 - पसेनादिकोसल वत्थु - कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) की कहानी
धम्मपद श्लोक 205 - तिस्साथेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 206, 207 और 208 - सक्का वत्थु - सक्का (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) की कथा

अध्याय 16. पियावग्ग: स्नेह (209-220)
धम्मपद छंद 209, 210 और 211 - तयोजनापबजिता वत्थु - तीन तपस्वियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 212 - अन्नतारकुटुम्बिका वत्थु - एक अमीर गृहस्थ की कहानी
धम्मपद श्लोक 213 - विशाखा वत्थु - विशाखा की कहानी
धम्मपद श्लोक 214 - लिच्छवी वत्थु - लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
धम्मपद श्लोक 215 - अनिथिगंधाकुमार वत्थु - अनिथिगंधा कुमारा की कहानी
धम्मपद श्लोक 216 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु - एक ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 217 - पंचसतादारक वत्थु - पांच सौ लड़कों की कहानी
धम्मपद श्लोक 218 - एका अनागामीथेरा वत्थु - एक अनागामी थेरा की कहानी
धम्मपद छंद 219 और 220 - नंदिया वत्थु - नंदिया की कहानी

अध्याय 17. कोधवग्ग: क्रोध (221-234)
धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु - बुद्ध द्वारा ठीक किये गये एक कोढ़ी की कहानी
धम्मपद श्लोक 222 - अन्नतारभिक्खु वत्थु - एक भिक्खु (भिक्षु) की कहानी
धम्मपद श्लोक 223 - उत्तरा उपासिका वत्थु - उत्तरा द ले-शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 224 - महामोग्गलनपन्हा वत्थु - थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 225 - बुद्धपितुब्रह्मण वस्तु - उस ब्राह्मण की कथा जो 'बुद्ध के पिता' थे
धम्मपद श्लोक 226 - पुन्नदासी वत्थु - दासी लड़की पुन्ना की कहानी

धम्मपद श्लोक 227, 228, 229 और 230 - अतुल उपासक वत्थु - अतुल द ले-शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 231, 232, 233 और 234 - छब्बग्गिया वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी

अध्याय 18. मालवग्ग: अशुद्धि (235-255)
धम्मपद श्लोक 235, 236, 237 और 238 - गोघटकपुत्त वस्तु - कसाई के पुत्र की कहानी
धम्मपद श्लोक 239 - अन्नतर ब्राह्मण वत्थु - एक ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 240 - तिसत्थेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 241 - लालूदायी वत्थु - लालूदायी की कहानी
धम्मपद श्लोक 242 और 243 - अन्नतारकुलपुत्त वत्थु - एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया
धम्मपद छंद 244 और 245 - कुलासरिभिक्खु वत्थु - कुलसारि की कहानी
धम्मपद छंद 246, 247 और 248 - पंच उपासक वत्थु - पांच सामान्य शिष्यों की कहानी
धम्मपद छंद 249 और 250 - तिस्सादहारा वत्थु - तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 251 - पंच उपासक वत्थु - पांच सामान्य शिष्यों की कहानी
धम्मपद श्लोक 252 - मेंडकासेट्ठी वत्थु - मेंडका द रिच मैन की कहानी
धम्मपद श्लोक 253 - उज्जहनसन्नित्थेरा वत्थु - थेरा उज्जहनसन्नि की कहानी
धम्मपद छंद 254 और 255 - सुभद्दापरिबजका वत्थु - भटकते तपस्वी सुभद्दा की कहानी

अध्याय 19. धम्मत्थावग्ग: न्यायप्रिय (256-272)
धम्मपद श्लोक 256 और 257 - विनिच्यमहामत्त वस्तु - न्यायाधीश की कहानी
धम्मपद श्लोक 258 - छब्बग्गिया वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी
धम्मपद श्लोक 259 - एकुदानखिनासव वत्थु - एकुदान अराहत की कहानी
धम्मपद छंद 260 और 261 - लकुंदकभद्दियत्थेरा वत्थु - थेरा भद्दिया की कहानी
धम्मपद छंद 262 और 263 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु - कुछ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 264 और 265 - हत्थक वत्थु - भिक्खु हत्थक की कहानी
धम्मपद श्लोक 266 और 267 - अन्नतरब्रह्मण वस्तु - एक ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 268 और 269 - तित्तिया वत्थु - गैर-बौद्ध सिद्धांतों के अनुयायियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 270 - बालिसिका वत्थु - अरिया नाम के एक मछुआरे की कहानी
धम्मपद छंद 271 और 272 - सम्बहुलासिलादिसम्पन्नाभिक्खु वत्थु - कुछ भिक्षुओं की कहानी

अध्याय 20. मग्गावग्गा: मार्ग (273-289)
धम्मपद छंद 273, 274, 275 और 276 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 277, 278 और 279 - अनिक्कलक्खन वत्थु, दुक्खलक्खन वत्थु, अनात्तलक्खन वत्थु - अनिच्चा (क्षणभंगुरता), दुक्खा (पीड़ा) और अनत्ता (नॉन-स्व) से संबंधित कहानी
धम्मपद छंद 280 - पधानकम्मिकतिसत्थेरा वत्थु - थेरा तिस्सा द आइडल वन की कहानी
धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वत्थु - एक सूअर-पेटा (मनुष्य शरीर वाला सूअर के सिर का भूत) की कहानी
धम्मपद श्लोक 282 - पोथिलत्थेरा वत्थु - थेरा पोथिला की कहानी
धम्मपद छंद 283 और 284 - पंचमहल्लकभिक्खु वत्थु - पांच वृद्ध भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 285 - सुवन्नाकरत्थेरा वत्थु - एक थेरा की कहानी जो सुनार था
धम्मपद श्लोक 286 - महाधनवनिजा वत्थु - एक व्यापारी महाधन की कहानी
धम्मपद श्लोक 287 - किसागोतामी वत्थु - किसागोतामी की कहानी(1)
धम्मपद छंद 288 और 289 - पटाकारा वत्थु - पटाकारा की कहानी(1)

अध्याय 21. पकिन्नकवग्गा: विविध (290-305)
धम्मपद श्लोक 290 - अत्तानोपुब्बाकम्मा वत्थु - बुद्ध के पूर्व कर्मों की कहानी
धम्मपद श्लोक 291 - कुक्कुटंडखदिका वत्थु - मुर्गी के अंडे खाने वाली स्त्री की कहानी

धम्मपद छंद 292 और 293 - भद्दियानं भिक्खुणं वत्थु - बद्दिया भिक्खु की कहानी
धम्मपद छंद 294 और 295 - लकुंदका भद्दिया वत्थु - थेरा भद्दिया की कहानी, लघु कथा
धम्मपद छंद 296 से 301 - दारुसकाटिकपुत्त वत्थु - एक लकड़हारे के बेटे की कहानी
धम्मपद श्लोक 302 - वज्जीपुत्तकभिक्खु वत्थु - वज्जियों के देश के भिक्षु की कथा
धम्मपद श्लोक 303 - चित्तगहपति वस्तु - गृहस्थ चित्त की कथा
धम्मपद श्लोक 304 - कुलसुभद्दा वत्थु - कुलसुभद्दा की कहानी
धम्मपद श्लोक 305 - एकविहारित्थेरा वत्थु - एकांतवास करने वाले थेरा की कथा

अध्याय 22. निरयवग्गा: नरक (306-319)
धम्मपद श्लोक 306 - सुंदरीपरिबबजिका वत्थु - भटकती महिला तपस्वी सुंदरी की कहानी
धम्मपद श्लोक 307 - दुच्चरितफलपिलिता वत्थु - उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा
धम्मपद श्लोक 308 - वग्गुमुदतिरिया भिक्खु वत्थु - वग्गुमुद नदी के किनारे रहने वाले भिक्षुओं की कथा
धम्मपद श्लोक 309 और 310 - खेमकसेत्थिपुत्त वत्थु - धनी व्यक्ति के पुत्र खेमक की कथा
धम्मपद छंद 311, 312 और 313 - दुब्बाकाभिक्खु वत्थु - जिद्दी भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 314 - इस्सापकाता इत्थी वत्थु - ईर्ष्यालु स्वभाव की एक महिला की कहानी
धम्मपद श्लोक 315 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 316 और 317 - निगंथ वस्तु - निगंथ तपस्वियों की कथा
धम्मपद श्लोक 318 और 319 - तित्तियसवक वत्थु - गैर-बौद्ध तपस्वियों के शिष्यों की कहानी

अध्याय 23. नागवग्गा: हाथी (320-333)
धम्मपद श्लोक 320, 321 और 322 - अत्तदंत वस्तु - स्वयं को वश में करने की कथा
धम्मपद श्लोक 323 - हत्थाकारियापुब्बाका भिक्खु वत्थु - उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था
धम्मपद श्लोक 324 - परिजिन्ना ब्राह्मणपुत्त वत्थु - एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 325 - पसेनादिकोसल वत्थु - कोशल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) की कहानी
धम्मपद श्लोक 326 - सानुसामनेरा वत्थु - समानेरा सानु की कहानी
धम्मपद श्लोक 327 - पवेय्याकाहत्थी वत्थु - पवेय्याका नामक हाथी की कहानी
धम्मपद छंद 328, 329 और 330 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 331, 332 और 333 - मारा वथु - मारा की कहानी (अर्थात शैतान/शैतान बुद्ध को राजा के रूप में शासन करने के लिए प्रलोभित करता है)

अध्याय 24. तन्हावग्ग: लालसा (334-359)
धम्मपद छंद 334, 335, 336 और 337 - कपिलमच्चा वत्थु - कपिला मछली की कहानी
धम्मपद श्लोक 338 से 343 - सुकरपोटिका वत्थु - एक युवा सूअर की कहानी
धम्मपद श्लोक 344 - विभनताभिक्खु वत्थु - एक पूर्व भिक्खु की कहानी
धम्मपद छंद 345 और 346 - बंधननगर वत्थु - कारावास पर कहानी
धम्मपद श्लोक 347 - खेमथेरी वत्थु - थेरी खेमा की कहानी
धम्मपद श्लोक 348 - उगसेना वस्तु - उगसेना की कथा
धम्मपद श्लोक 349 और 350 - चुलधनुग्गहा पंडित वत्थु - कुशल धनुर्धर चुलधनुग्गहा की कथा
धम्मपद छंद 351 और 352 - मारा वत्थु - मारा की कहानी (यानी शैतान/शैतान)
धम्मपद श्लोक 353 - उपकजीवक वत्थु - उपक की कहानी
धम्मपद श्लोक 354 - सक्कपन्हा वत्थु - सक्का (देवों/स्वर्गदूतों के राजा शक्र या इंद्र) द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
धम्मपद श्लोक 355 - अपुट्टकसेट्ठी वत्थु - एक निःसंतान अमीर आदमी की कहानी
धम्मपद छंद 356, 357, 358 और 359 - अंकुरा वत्थु - देव (देवदूत) अंकुरा की कहानी

अध्याय 25. भिक्खुवग्ग: भिक्षु (360-382)
धम्मपद छंद 360 और 361 - पंचभिक्खु वत्थु - पांच भिक्षुओं की कहानी

धम्मपद श्लोक 362 - हम्सघटकभिक्खु वत्थु - एक भिक्षु की कहानी जिसने एक हंस (हम्सा) को मार डाला
धम्मपद श्लोक 363 - कोकालिका वत्थु - भिक्खु कोकालिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 364 - धम्मरामत्थेरा वत्थु - थेरा धम्मराम की कहानी
धम्मपद श्लोक 365 और 366 - विपक्खसेवक भिक्खु वस्तु - देवदत्त के अनुयायी के साथ संगति करने वाले एक भिक्षु की कथा
धम्मपद श्लोक 367 - पंचगगदायक ब्राह्मण वत्थु - अपने श्रम का पहला फल देने वाले की कहानी
धम्मपद छंद 368 से 376 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - एक महान भिक्षु की कहानी
धम्मपद श्लोक 377 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 378 - संतकयत्थेरा वत्थु - थेरा संतकाया की कहानी
धम्मपद छंद 379 और 380 - नंगलकुलत्थेरा वत्थु - थेरा नंगलकुल की कहानी
धम्मपद श्लोक 381 - वक्कलिथेरा वत्थु - थेरा वक्कली की कहानी
धम्मपद श्लोक 382 - सुमनसमनेरा वत्थु - समानेरा सुमना की कहानी

अध्याय 26. ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण (383-423)
धम्मपद श्लोक 383 - पसदबहुलब्रह्मण वस्तु - एक महान आस्थावान ब्राह्मण की कथा
धम्मपद श्लोक 384 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - तीस भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 385 - मारा वत्थू - मारा की कहानी (यानी शैतान/शैतान बुद्ध से 'परम' का अर्थ पूछ रहा है)
धम्मपद श्लोक 386 - अन्नतरब्रह्मण वस्तु - एक ब्राह्मण की कथा
धम्मपद श्लोक 387 - आनंदथेरा वत्थु - थेरा आनंद की कथा
धम्मपद श्लोक 388 - अन्नतरब्राह्मण पब्बजिता वत्थु - एक ब्राह्मण वैरागी की कहानी
धम्मपद छंद 389 और 390 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 391 - महापजापतिगोतामी वत्थु - थेरी महापजापति गौतमी (बुद्ध की चाची और सौतेली माँ) की कहानी
धम्मपद श्लोक 392 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 393 - जटिलब्राह्मण वत्थु - ब्राह्मण जटिला की कहानी
धम्मपद श्लोक 394 - कुहकब्रह्मण वस्तु - एक कपटी ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 395 - किसागोतामी वत्थु - किसागोतामी की कहानी
धम्मपद श्लोक 396 - एक ब्राह्मण वत्थु - एक ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 397 - उग्गेसेनसेत्थिपुत्त वत्थु - धनी व्यक्ति के पुत्र उग्गेसेन की कहानी (1)
धम्मपद श्लोक 398 - द्वे ब्राह्मण वत्थु - दो ब्राह्मणों की कहानी
धम्मपद श्लोक 399 - अक्कोसकभरद्वाज वस्तु - दुर्व्यवहार करने वाले ब्राह्मण भाइयों की कहानी
धम्मपद श्लोक 400 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 401 - उप्पलवन्ना थेरी वत्थु - थेरी उप्पलवन्ना की कहानी(1)
धम्मपद श्लोक 402 - अन्नतरब्रह्मण वस्तु - एक ब्राह्मण की कथा
धम्मपद श्लोक 403 - खेमभिक्खुनि वत्थु - थेरी खेमा की कहानी(2)
धम्मपद श्लोक 404 - पब्बरावसिटिससत्थेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 405 - अन्नतारभिक्खु वत्थु - एक निश्चित भिक्षु की कहानी
धम्मपद श्लोक 406 - समनेरानम वत्थु - चार सामनेरों की कहानी
धम्मपद श्लोक 407 - महापंथकत्थेरा वत्थु - थेरा महापंथक की कहानी
धम्मपद श्लोक 408 - पिलिंडावच्चथेरा वत्थु - थेरा पिलिंडावच्चा की कहानी
धम्मपद श्लोक 409 - अन्नतारत्थेरा वत्थु - एक निश्चित थेरा की कहानी
धम्मपद श्लोक 410 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 411 - महामोग्गलनत्थेरा वत्थु - थेरा महा मोग्गल्लाना की कहानी
धम्मपद श्लोक 412 - रेवत्तथेरा वत्थु - समानेरा रेवता की कहानी
धम्मपद श्लोक 413 - चंदभट्टेरा वत्थु - थेरा चंदभ की कहानी
धम्मपद छंद 414 - शिवलिथेरा वत्थु - थेरा शिवली की कहानी
धम्मपद श्लोक 415 - सुंदरसमुद्दथेरा वत्थु - थेरा सुंदरसमुद्दा की कहानी
धम्मपद श्लोक 416-1 - जतिलत्थेरा वत्थु - थेरा जतिला की कहानी

धम्मपद छंद 416-2 - ज्योतिकत्थेरा वत्थु - थेरा जोतिका की कहानी
धम्मपद छंद 417 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु - थेरा नटपुत्तक की कहानी
धम्मपद छंद 418 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु - थेरा नटपुत्तक की कहानी
धम्मपद छंद 419 और 420 - वांगीसत्थेरा वत्थु - थेरा वांगिसा की कहानी
धम्मपद श्लोक 421 - धम्मदिन्ना थेरी वत्थु - थेरी धम्मदिन्ना की कहानी
धम्मपद श्लोक 422 - अंगुलिमाथेरा वत्थु - अंगुलिमाल की कहानी
धम्मपद श्लोक 423 - देवहितब्राह्मण वत्थु - देवहिता ब्राह्मण की कहानी

धम्मपद ग्रंथ (संक्षिप्त संस्करण)

यमकावग्ग : द पेयर्स खंड (श्लोक 1-20)
अप्पमदावग्गा : सतर्कता अनुभाग (21-32)
चित्तवग्ग : मन (33-43)
पुप्पहागग्गा : फूल (44-59)
बलावग्ग : मूर्ख (60-75)
पंडितवग्ग : बुद्धिमान (76-89)
अरहंतवग्गा : अरहंत (90-99)
सहस्सवग्ग : हज़ारों (100-115)
पापवाग्गा : बुराई (116-128)
दंडवग्गा : हिंसा (129-145)
जारवग्गा : वृद्धावस्था (146-156)
अट्टावग्ग : स्वयं (157-166)
लोकवग्गा : द वर्ल्ड (167-178)
बुद्धवग्गा : बुद्ध (179-196)
सुखवग्गा : ख़ुशी (197-208)
पियावग्गा : स्नेह (209-220)
कोधावग्ग : क्रोध (221-234)
मालवग्गा : अशुद्धता (235-255)
धम्मत्थावग्ग : न्यायप्रिय (256-272)
मग्गावग्ग : पथ (273-289)
पकिन्नाकवग्गा : विविध (290-305)
निरयवग्ग : नरक (306-319)
नागवग्गा : हाथी (320-333)
तन्हावग्गा : लालसा (334-359)
भिक्खुवग्गा : भिक्षु (360-382)
ब्राह्मणवग्गा : ब्राह्मण (383-423)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 1

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

धम्मपद1 ।अगला >>>> धम्मपद श्लोक 2 - मत्थकुंडली वत्थु

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 1 - चक्खुपालत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन, एमए संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 1 - चक्खुपालत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण

मनोपुबंगमा धम्म(1)
मनोसेत्था मनोमाया
मनसा चे पदुत्थेन
भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति
चक्खं वा वहतो पदं॥

श्लोक 1 : सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है; उनका प्रधान मन है; वे मन से निर्मित हैं। यदि कोई बुरे मन से बोलता या कार्य करता है, तो 'दु:ख'(3) उसका पीछा करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पहिया बैल के खुर के निशान का अनुसरण करता है जो गाड़ी खींचता है।

---

1. मनोपुबंगम धम्म: सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है, इस अर्थ में कि मन सबसे अधिक प्रभावी है, और यह अन्य तीन मानसिक घटनाओं, अर्थात् वेदना (भावना), अनुभूति (बोध) और मानसिक रचनाएँ या मानसिक सहवर्ती (संस्कार) का कारण है। इन तीनों का अग्रदूत मन या चेतना (विन्नाना) है, क्योंकि यद्यपि ये मन के साथ ही उत्पन्न होती हैं, फिर भी मन के बिना ये उत्पन्न नहीं हो सकतीं। (टीका)
2. मनसा चे पदुत्थेन (श्लोक 1) और मनसी चे पसान्नेन (श्लोक 2): यहाँ मनसा का अर्थ है इरादा या संकल्प (चेतना); संकल्प ही व्यक्ति को अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों को करने के लिए प्रेरित करता है। यह संकल्प और इसके फलस्वरूप होने वाले कर्म ही कर्म हैं; और कर्म हमेशा परिणाम उत्पन्न करते हैं। चक्खुपाला का अंधापन (श्लोक 1) पिछले जन्म में उसके बुरे इरादे से किए गए कर्मों का परिणाम था और मत्थकुंडली का तावतिंसा लोक में सुखी अस्तित्व (श्लोक 2) बुद्ध के प्रति उसकी मनोपसाद (मनोपसाद) का परिणाम था।
3. दु:ख: इस संदर्भ में दु:ख का अर्थ है पीड़ा, शारीरिक या मानसिक पीड़ा, दुर्भाग्य, असंतोष, बुरे परिणाम आदि, और यदि मानव जगत में जन्म हुआ हो तो अस्तित्व के निचले स्तरों में या मानव समाज के निचले तबकों में पुनर्जन्म।

थेरा चक्खुपाला की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (1) का उच्चारण चक्खुपाला नामक एक अंधे थेरा के संदर्भ में किया।

एक बार थेरा चक्खुपाला जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। एक रात, ध्यान करते हुए इधर-उधर टहलते समय, थेरा का पैर गलती से कुछ कीड़ों पर पड़ गया। सुबह, थेरा से मिलने आए कुछ भिक्षुओं ने मरे हुए कीड़े देखे। उन्होंने थेरा के प्रति बुरा भाव रखा और बुद्ध को इसकी सूचना दी। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने थेरा को कीड़े मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने कहा,

"जिस प्रकार आपने उसे हत्या करते नहीं देखा, उसी प्रकार उसने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। इसके अलावा, चूंकि थेरा पहले ही अरहतत्व प्राप्त कर चुका था, इसलिए उसका हत्या करने का कोई इरादा नहीं हो सकता था और अतः वह पूर्णतः निर्दोष था।"

जब बुद्ध से पूछा गया कि अर्हत होते हुए भी चक्खुपाला अंधा क्यों था, तो उन्होंने निम्नलिखित कहानी सुनाई:

चक्खुपाला अपने पिछले जन्मों में से एक में चिकित्सक था। एक बार उसने जानबूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने उससे वादा किया था कि अगर उसकी आँखें पूरी तरह ठीक हो जाएँगी तो वह अपने बच्चों सहित उसकी दासी बन जाएगी। उसे और उसके बच्चों को दास बनने का डर था, इसलिए उसने चिकित्सक से झूठ बोला। उसने कहा कि उसकी आँखें खराब हो रही हैं, जबकि वास्तव में वे पूरी तरह ठीक हो चुकी थीं। चिकित्सक समझ गया कि वह उसे धोखा दे रही है, इसलिए उसने बदला लेने के लिए उसे एक और मरहम दिया, जिससे वह पूरी तरह अंधी हो गई। इस बुरे कर्म के फलस्वरूप चिकित्सक को अपने बाद के जन्मों में कई बार अपनी दृष्टि खोनी पड़ी।

तब बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा-

श्लोक 1 -
सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है;
उनका प्रधान मन है; वे मन से ही उत्पन्न होती हैं।
यदि कोई बुरे मन से बोलता या कार्य करता है, तो 'दुःख' उसका पीछा करता है,
ठीक वैसे ही जैसे गाड़ी खींचने वाले बैल के खुर के निशान का पहिया पीछा करता है।
प्रवचन के अंत में, तीस हजार भिक्षुओं ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि (पतिसंभिदा) के साथ-साथ अरहतत्व प्राप्त किया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मनोपुब्बंगमा धम्म मनोसेटा मनोमय l
मनसा सी पदुत्थेन भासति वा करोति वा l
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कण्व वहतो पदं ‖ 1 ‖

1. मन सभी ज्ञानों से पहले आता है, मन ही उनका मूल है, मन से ही वे सब उत्पन्न होते हैं। यदि कोई दूषित मन से बोले या कार्य करे तो दुःख उत्पन्न होता है, जैसे बैल के खुर से पहिया चलता है।

भिक्षु चक्खुपाला की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अंधे भिक्षु चक्खुपाल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार भिक्षु चक्खुपाला जेतवन मठ में बुद्ध को प्रणाम करने आए। एक रात, ध्यान करते हुए टहलते समय, भिक्षु का पैर गलती से कुछ कीड़ों पर पड़ गया। सुबह, उनसे मिलने आए कुछ भिक्षुओं ने मरे हुए कीड़े देखे। उन्होंने भिक्षु के प्रति दुर्भावना व्यक्त की और बुद्ध को इसकी सूचना दी। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने भिक्षु को कीड़े मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने कहा, "जिस प्रकार तुमने उन्हें मारते हुए नहीं देखा, उसी प्रकार उन्होंने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। इसके अलावा, चूंकि भिक्षु अर्हत पद प्राप्त कर चुके थे, इसलिए उनका मारने का कोई इरादा नहीं हो सकता था, अतः वे निर्दोष थे।" जब बुद्ध ने पूछा कि अर्हत होने के बावजूद चक्खुपाला अंधे क्यों थे, तो उन्होंने निम्नलिखित कहानी सुनाई:

चक्खुपाल अपने पिछले जन्मों में से एक में चिकित्सक थे। एक बार उन्होंने जानबूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने वादा किया था कि अगर उसकी आँखें पूरी तरह ठीक हो जाएँगी तो वह अपने बच्चों सहित उनकी दासी बन जाएगी। खुद और अपने बच्चों के दास बनने के डर से उसने चिकित्सक से झूठ बोला। उसने कहा कि उसकी आँखें खराब हो रही हैं, जबकि वास्तव में वे पूरी तरह ठीक हो चुकी थीं। चिकित्सक को पता चल गया कि वह उसे धोखा दे रही है, इसलिए उसने बदला लेने के लिए उसे एक और मरहम दिया, जिससे वह पूरी तरह अंधी हो गई। इस बुरे कर्म के फलस्वरूप चिकित्सक को अपने बाद के जन्मों में कई बार अपनी दृष्टि खोनी पड़ी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 1)
धम्म मनोपुब्बंगमा मनोसेठ मनोमाया
सीई पदुत्थेन मनसा भासति वा करोति वा ततो द
उक्खं अन्वेति वहतो पदं चक्कं इव।

धम्मा : अनुभव; मनोपुब्बंगमा : विचार पहले आता है; मनोसेट्ठा : विचार प्रमुख है; चे : इसलिए, यदि, पदुट्ठेन : (साथ) दूषित; मनसा : विचार; भासति : (कोई) बोलता है; करोति वा : या कार्य करता है; ततो : इसके कारण, दुःखं [दुक्खा]: पीड़ा; नं : वह व्यक्ति; अन्वेति : अनुसरण करता है; वहतो पदं [पद]: भार ढोने वाले पशु का खुर; चक्कं इव : जैसे गाड़ी का पहिया।

हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं, वह सब विचारों से शुरू होता है। हमारे शब्द और कर्म विचारों से ही उत्पन्न होते हैं। यदि हम बुरे विचारों से प्रेरित होकर बोलते या कार्य करते हैं, तो अप्रिय परिस्थितियाँ और अनुभव अवश्य ही उत्पन्न होते हैं। हम जहाँ भी जाते हैं, बुरे विचार अपने साथ लेकर चलते हैं, जिससे बुरी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। जब तक हम अपने बुरे विचारों से बंधे रहते हैं, तब तक हम इस पीड़ा से मुक्ति नहीं पा सकते। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे बैलगाड़ी का पहिया बैल के खुरों का पीछा करता है। बैलगाड़ी का पहिया, बैल के भारी भार के साथ, बैल का पीछा करता रहता है। बैल इस भारी भार से बंधा हुआ है और इसे छोड़ नहीं सकता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 1)

धम्मपद के पहले दो श्लोक बौद्ध धर्म की एक महत्वपूर्ण अवधारणा को प्रकट करते हैं। जहाँ अधिकांश धर्मों में यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि संसार की रचना 'ईश्वर' नामक एक अलौकिक सत्ता द्वारा की गई है, वहीं बौद्ध धर्म सिखाता है कि हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं (संसार और आत्मा दोनों), वह विचार या इंद्रिय बोध और अवधारणा की संज्ञानात्मक प्रक्रिया द्वारा निर्मित होता है। यह इस बात को भी सिद्ध करता है कि बौद्ध धर्म पर लिखने वाले लेखकों का यह कथन गलत है कि बुद्ध ने संसार की उत्पत्ति के विषय में

मौन रखा था। अंगुत्तरा निकाय के रोहितास्सा सूत्र में बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं कि संसार, संसार की उत्पत्ति, संसार का अंत और संसार के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग, सब कुछ इसी एक दैत्य लंबे शरीर में, इसकी बोध और अवधारणाओं सहित समाहित है।
मनो शब्द का सामान्य अनुवाद 'मन' के रूप में किया जाता है। लेकिन बुद्ध ने मन-पदार्थ विवाद में एक घटनात्मक दृष्टिकोण अपनाया, जिसने इतिहास भर के दार्शनिकों को उलझन में डाल दिया था। बुद्ध ने 'मन' और 'शरीर' की द्वैतता को अस्वीकार कर दिया। बुद्ध संयुत्त निकाय के सब्बा सूत्र में बताते हैं कि हम जिस भी चीज़ के बारे में बात कर सकते हैं, वह 'इंद्रिय अनुभव' है, जिसमें छठी इंद्रिय के रूप में विचार या अवधारणा भी शामिल है। नाम और रूप , जिनका सामान्य अनुवाद 'मन' और 'शरीर' के रूप में किया जाता है, दो ऐसी 'सत्ताएँ' नहीं हैं जो एक-दूसरे के संबंध में सह-अस्तित्व में हों। वे केवल 'अनुभव' नामक एकल 'क्रिया' को देखने के दो तरीके हैं। नाम (नामकरण) 'अनुभव' है जिसे व्यक्तिपरक रूप से 'किसी वस्तु की पहचान करने की मानसिक प्रक्रिया' (रूप काये अधिवाचन सम्पस्सा) के रूप में देखा जाता है।
रूप (प्रकटता) एक 'अनुभव' है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप से एक 'सत्ता' के रूप में देखा जाता है, जिसे पहचान की मानसिक प्रक्रिया (नाम काये पथिघ सम्पस्सा) के माध्यम से अनुभव और समझा जाता है। मनो का तात्पर्य 'विचार' या अवधारणा निर्माण की मानसिक प्रक्रिया से है, जो विभिन्न इंद्रियों द्वारा प्राप्त विभिन्न बोधों को एकीकृत करती है और उनसे अर्थ निकालती है। यह अर्थपूर्ण समग्र 'अनुभव' ही धम्म है , जिसे व्यक्तिपरक रूप से 'सत्ता की पहचान' (नाम) और वस्तुनिष्ठ रूप से 'पहचानी गई सत्ता' (रूप) के रूप में देखा जाता है। धम्म, जो कि "अनुभव की यह अर्थपूर्ण समग्रता" है, सामान्यतः सुखद या अप्रिय परिस्थिति (लोक धम्म) के रूप में देखी जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 2

(धम्मपद 1) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 3,4)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 2 - मत्थकुंडली वत्थु
1.1डॉ म्या टिन, एमएवर्जन
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 2 - मत्थकुंडली वत्थु

डॉ म्या टिन, एमएवर्जन

मनोपुबंगमा धम्म
मनोसेत्था मनोमाया
मनसा चे पसन्नेन
भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति
छायाव अनपायनी॥

श्लोक 2 : सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है; उनका प्रधान मन है; वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख (सुख) परछाई की तरह उसका पीछा करता है, जो कभी उसका साथ नहीं छोड़ता।

---

1. सुखम्/सुख: इस संदर्भ में, सुख, संतुष्टि, सौभाग्य आदि, और सुखी अस्तित्व के तीन उच्चतर स्तरों में पुनर्जन्म।

मथकुंडली की कहानी

श्रावस्ती के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (2) का उच्चारण युवा ब्राह्मण मत्थकुंडली के संदर्भ में किया। मत्थकुंडली एक युवा ब्राह्मण था, जिसके पिता आदिन्नपुब्बक अत्यंत कंजूस थे और कभी दान नहीं करते थे। यहाँ तक कि अपने इकलौते पुत्र के लिए सोने के आभूषण भी उन्होंने कारीगरी का खर्च बचाने के लिए स्वयं बनाए थे। जब उनका पुत्र बीमार पड़ा, तो किसी चिकित्सक से परामर्श नहीं लिया गया, जब तक कि बहुत देर नहीं हो गई। जब उन्हें पता चला कि उनका पुत्र मर रहा है, तो उन्होंने युवक को घर के बाहर बरामदे में ले जाने का आदेश दिया, ताकि उनके घर आने वाले लोग उनकी संपत्ति न देख सकें।

उस सुबह, बुद्ध करुणा की गहरी ध्यान साधना से जल्दी उठकर अपने ज्ञान के जाल में मत्थकुंडली को बरामदे में लेटे हुए देखा। इसलिए जब वे अपने शिष्यों के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो वे ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के द्वार के पास खड़े हो गए। बुद्ध ने घर के अंदर की ओर मुख किए हुए युवक का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकाश की एक किरण भेजी। युवक ने बुद्ध को देखा; और क्योंकि वह बहुत दुर्बल था, वह केवल मन ही मन अपनी आस्था व्यक्त कर सका। लेकिन इतना ही पर्याप्त था। जब उसने बुद्ध के प्रति भक्ति भाव से भरे हृदय के साथ प्राण त्यागे, तो उसका पुनर्जन्म तावतिंसा स्वर्गलोक में हुआ।
अपने स्वर्गलोक से युवा मत्थकुंडली ने अपने पिता को श्मशान में शोक मनाते हुए देखकर, उनके पूर्वज स्वरूप में दर्शन दिए। उन्होंने अपने पिता को तावतिंसा लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया और उनसे बुद्ध को भोज पर आमंत्रित करने का आग्रह किया। आदिन्नपुब्बक के घर में यह प्रश्न उठा कि क्या कोई व्यक्ति केवल मन ही मन बुद्ध में गहरी आस्था रखने से, दान किए बिना या नैतिक नियमों का पालन किए बिना, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सकता है या नहीं। तब बुद्ध ने इच्छा की कि मत्थकुंडली स्वयं प्रकट हों; मत्थकुंडली शीघ्र ही दिव्य आभूषणों से सुसज्जित होकर प्रकट हुए और उन्होंने तावतिंसा लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया। तभी श्रोता आश्वस्त हुए कि ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के पुत्र ने केवल बुद्ध के प्रति अपना मन समर्पित करके ही अपार यश प्राप्त किया था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
श्लोक 2: सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन होता है;
उनका सर्वोपरि अंग बुद्धि है; वे बुद्धि से निर्मित हैं।
यदि कोई शुद्ध मन से बोले या कार्य करे तो सुख उसका अनुसरण करता है।
एक ऐसी परछाई की तरह जो उसका कभी पीछा नहीं छोड़ती।

प्रवचन के अंत में मथकुंडली और उनके पिता आदिन्नपुब्बक ने सोतापत्ति मार्ग और सोतापत्ति फल की प्राप्ति की। आदिन्नपुब्बक ने अपनी लगभग सारी संपत्ति बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार में दान कर दी।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मट्टकुंडली की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा ब्राह्मण, मट्टकुंडली के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
मट्टकुंडली एक युवा ब्राह्मण थे, जिनके पिता आदिन्नपुब्बक अत्यंत कंजूस थे और कभी दान नहीं देते थे। यहाँ तक कि अपने इकलौते बेटे के लिए सोने के आभूषण भी उन्होंने कारीगरी का खर्च बचाने के लिए स्वयं बनाए थे। जब उनका बेटा बीमार पड़ा, तो किसी चिकित्सक से परामर्श नहीं लिया गया, जब तक कि बहुत देर हो चुकी थी। जब उन्हें पता चला कि उनका बेटा मर रहा है, तो उन्होंने युवक को घर के बाहर बरामदे में ले जाने का आदेश दिया, ताकि उनके घर आने वाले लोग उनकी संपत्ति न देख सकें।
उस सुबह, बुद्ध करुणा की गहन ध्यान अवस्था से जल्दी उठकर अपने ज्ञान के जाल में मट्टकुंडली को बरामदे में लेटे हुए देखा। इसलिए जब वे अपने शिष्यों के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो वे ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के द्वार के पास खड़े हो गए। बुद्ध ने घर के अंदर की ओर मुख किए हुए युवक का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकाश की एक किरण भेजी। युवक ने बुद्ध को देखा; और क्योंकि वह बहुत दुर्बल था, वह केवल मन ही मन अपनी आस्था व्यक्त कर सका। लेकिन इतना ही पर्याप्त था। जब उसने बुद्ध के प्रति भक्ति भाव से प्राण त्यागे, तो उसका पुनर्जन्म तावतिंसा लोक में हुआ।
अपने स्वर्गलोक से युवा मट्टकुंडली ने अपने पिता को श्मशान में शोक मनाते हुए देखकर, अपने पुराने रूप में उनके सामने प्रकट हुए। उन्होंने अपने पिता को तावतिंस लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया और उनसे बुद्ध को भोजन पर आमंत्रित करने का आग्रह किया। आदिन्नपुब्बक के घर में यह प्रश्न उठा कि क्या कोई व्यक्ति केवल बुद्ध में गहरी आस्था का भाव रखने मात्र से, दान किए बिना या नैतिक नियमों का पालन किए बिना, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सकता है या नहीं। तब बुद्ध ने मट्टकुंडली को स्वयं प्रकट होने का निमंत्रण दिया; मट्टकुंडली अपने दिव्य आभूषणों में प्रकट हुए और उन्हें तावतिंस लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया। तभी श्रोताओं को यह विश्वास हो गया कि ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के पुत्र ने केवल बुद्ध के प्रति अपना मन समर्पित करके ही बहुत यश प्राप्त कर लिया था।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 2)
धम्म मनोपुब्बंगमा मनो सेठ मनोमया
सीई पसन्नेन मनसा भासति वा करोति वा ततो
सुखं नं अन्वेति अनापायिनि छाया इव
धम्मा : अनुभव; मनोपुब्बंगमा : विचार पहले आता है; मनोसेठा : विचार सर्वोपरि है; मनोमय : वे मन से बने हैं; चे : इसलिए, यदि; पसन्नेना : (शुद्ध) विचार के साथ; मनसा : विचार; भासति : (कोई) बोलता है; करोति वा : या कार्य करता है; ततो : इसके कारण; सुखं [सुख]: सुख; नं : वह व्यक्ति; अन्वेति : अनुसरण करता है; अनपायिनी : त्याग नहीं करता; छाया इव : छाया के समान।

मनुष्य को जो भी अनुभव होता है, वह उसके विचारों से उत्पन्न होता है। यदि उसके विचार अच्छे हैं, तो उसके शब्द और कर्म भी अच्छे होंगे। अच्छे विचारों, शब्दों और कर्मों का फल सुख होता है। यह सुख अच्छे विचारों वाले व्यक्ति का कभी साथ नहीं छोड़ता। सुख सदा उसके साथ रहता है, जैसे उसकी परछाई कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 2)
हम अपने जीवन की परिस्थितियों को किस प्रकार अनुभव करते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उन्हें कैसे समझते हैं। यदि हम उन्हें गलत तरीके से समझते हैं, तो हमें दुख का अनुभव होता है। यदि हम उन्हें सही तरीके से समझते हैं, तो हमें सुख का अनुभव होता है। दूसरे शब्दों में, हमारा सुख या दुख हमारे सोचने के तरीके पर निर्भर करता है।
विचार भविष्य के संदर्भ में भी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। यदि हम द्वेष रखते हैं और द्वेषपूर्ण बातें करते हैं या कार्य करते हैं, तो लोग हमसे घृणा करने लगेंगे। हमें समाज और कानून द्वारा दंडित किया जाएगा। मृत्यु के बाद, हमारा पुनर्जन्म भी दुख के लोक में होगा। यहाँ, 'विचार' का तात्पर्य कर्म (क्रिया) से है और 'अनुभव' का तात्पर्य परिणाम (परिणाम) से है ।
अंततः इन दो श्लोकों का संदेश यह है: "गलत सोचो तो दुख भोगो। सही सोचो तो सुख पाओ।" बुद्ध ने इन दो श्लोकों का उच्चारण अच्छे और बुरे कर्मों के अपरिहार्य परिणाम (विपाक) को दर्शाने के लिए किया था। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है, चाहे वह अतीत में बोया हो या वर्तमान में। जो बोता है, वही वर्तमान और भविष्य में काटता है। मनुष्य स्वयं अपने सुख और दुख के लिए उत्तरदायी है। वह स्वयं अपना नरक और स्वर्ग बनाता है। वह अपने भाग्य का निर्माता है। जो बनाता है, वही बिगाड़ भी सकता है। बौद्ध धर्म कर्म और फल के नियम को समझकर और उसका उपयोग करके दुख से मुक्ति का मार्ग सिखाता है। बौद्ध धर्म अत्यंत यथार्थवादी और आशावादी है। अज्ञात अलौकिक शक्तियों पर अंधाधुंध निर्भर रहने और सुख की आशा करने के बजाय, बौद्ध धर्म वास्तविकता के माध्यम से सुख का सच्चा मार्ग खोजता है।

धम्मपद छंद 3 और 4 - तिसत्थेरा वत्थु
संपादन करने के लिए लॉग इन करें
विकिपीडिया

सहायता
मदद

शब्दकोष

शब्दकोष

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया

अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 3 और 4

(धम्मपद 2) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 5)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 3 और 4 - तिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन, एमए संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1रेखांकन
धम्मपद छंद 3 और 4 - तिसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण
3. अक्कोच्ची माम अवधी माम
अजिनी मां अहसि मे,
ये च तं उपनयहन्ति।
वीरं तेसं न सम्मति॥
4. अक्कोच्ची माम अवधी माम
अजिनी मां, अहसि मे,
ये च तं न उपनयहंन्ति।
वेरं तेसुपससम्मति॥
श्लोक 3 : "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मेरा सामान चुरा लिया;"... ऐसे विचार रखने वालों की शत्रुता को शांत नहीं किया जा सकता।

श्लोक 4 : "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मेरा सामान चुरा लिया;"... ऐसे विचार न रखने वालों की शत्रुता को शांत किया जा सकता है।

थेरा टिस्सा की कहानी
सावत्थी में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (3) और (4) का उच्चारण किया। एक समय बुद्ध की मौसी के पुत्र तिस्सा बुद्ध के साथ रह रहे थे। उन्होंने वृद्धावस्था में ही भिक्षु का पद ग्रहण किया था, परन्तु वे स्वयं को वरिष्ठ भिक्षु समझते थे और जब कोई भिक्षु उनसे सेवा करने की अनुमति मांगता तो वे अत्यंत प्रसन्न होते थे। दूसरी ओर, वे कनिष्ठ भिक्षुओं के कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ थे; इसके अतिरिक्त, वे अक्सर कनिष्ठ भिक्षुओं से झगड़ा करते थे। यदि कोई उनके व्यवहार के कारण उन्हें डांटता तो वे रोते-बिलखते, अत्यंत असंतुष्ट और व्याकुल होकर बुद्ध के पास शिकायत लेकर जाते। अन्य भिक्षु भी उनके पीछे-पीछे बुद्ध के समक्ष जाते। बुद्ध ने उनसे कहा कि वे शत्रुता के विचार न रखें, क्योंकि शत्रुता का अंत केवल शत्रुता न रखने से ही संभव है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 3: "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया, उसने मुझ पर विजय प्राप्त की,"
उसने मेरा सामान चुरा लिया;
ऐसे विचार रखने वालों की शत्रुता को शांत नहीं किया जा सकता।
श्लोक 4: "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया, उसने मुझ पर विजय प्राप्त की,"
उसने मेरा सामान चुरा लिया;
ऐसे विचार न रखने वालों की शत्रुता को शांत किया जा सकता है।

प्रवचन के अंत में, एक लाख भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु तिस्सा की कहानी
सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। तिस्सा, बुद्ध की मौसी का पुत्र था, जो एक समय बुद्ध के साथ रह रहा था। उसने वृद्धावस्था में ही भिक्षु का जीवन व्यतीत किया था, परन्तु वह वरिष्ठ भिक्षु होने का दिखावा करता था और जब कोई भिक्षु उससे सेवा करने की अनुमति मांगता था तो वह अत्यंत प्रसन्न होता था। दूसरी ओर, वह कनिष्ठ भिक्षुओं के कर्तव्यों का निर्वाह करने में विफल रहा; इसके अलावा, वह अक्सर कनिष्ठ भिक्षुओं से झगड़ा करता था। यदि कोई उसके व्यवहार के कारण उसे फटकारता, तो वह अत्यंत असंतुष्ट और व्यथित होकर रोते हुए बुद्ध के पास शिकायत लेकर जाता था।
एक बार गुरु ने उनसे पूछा, “तिस्सा, तुम इतने उदास और दुखी होकर, आँखों में आँसू लिए, रोते हुए मेरे पास क्यों आए हो?” दूसरे भिक्षुओं ने आपस में चर्चा की थी, “अगर वह अकेला जाएगा, तो परेशानी खड़ी कर सकता है।” इसलिए वे भी उसके साथ गए, गुरु को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। तिस्सा ने गुरु के प्रश्न का उत्तर दिया, “आदरणीय, ये भिक्षु मुझे गाली दे रहे हैं।” गुरु ने पूछा, “परन्तु तुम कहाँ बैठे थे?” “मठ के केंद्र में, राजकीय सभागार में, आदरणीय।” “क्या तुमने इन भिक्षुओं को आते हुए देखा?” “जी हाँ, आदरणीय, मैंने उन्हें देखा।” “क्या तुम उठकर उनसे मिलने गए?” “नहीं, आदरणीय, मैं नहीं गया।” “क्या तुमने उनके मठ के बर्तन लेने की पेशकश की?” “नहीं, आदरणीय, मैंने उन्हें लेने की पेशकश नहीं की।” “तिस्सा, ऐसा मत करो। केवल तुम ही दोषी हो; उनसे क्षमा मांगो।” “मैं उनसे क्षमा नहीं मांगूंगा, आदरणीय।”
भिक्षुओं ने गुरु से कहा, “हे पूज्यवर, यह तो बहुत हठी भिक्षु है।” गुरु ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इसने हठ दिखाया है; यह पिछले जन्म में भी हठी था।” “हे पूज्यवर, हम तो इसके वर्तमान हठ के बारे में सब जानते हैं; लेकिन पिछले जन्म में इसने क्या किया था?” “तो फिर, भिक्षुओं, सुनो,” गुरु ने कहा। ऐसा कहकर उन्होंने आगे की कहानी सुनाई।
एक समय की बात है, बनारस में एक राजा का शासन था। देवाला नामक एक तपस्वी, जो हिमालय में आठ महीने बिताकर वर्षा ऋतु के चार महीनों में नमक और सिरका लेने के लिए शहर के पास रहना चाहता था, हिमालय से लौटा। शहर के द्वार पर दो लड़कों को देखकर उसने उनसे पूछा, “इस शहर में आने वाले साधु रात कहाँ बिताते हैं?” लड़कों ने कहा, “हे पूज्यवर, कुम्हार के महल में।” तो देवाला कुम्हार के महल में गया, द्वार पर रुका और बोला, “हे भगव, यदि आपको यह स्वीकार्य हो, तो मैं आपके महल में एक रात बिताना चाहूँगा।” कुम्हार ने महल उसे सौंपते हुए कहा, “रात में महल में कोई काम नहीं होता है, और महल बड़ा है; हे पूज्यवर, आप यहाँ आराम से रात बिता सकते हैं।” देवाला के महल में प्रवेश करते ही बैठ गया कि हिमालय से लौट रहे नारद नामक एक अन्य तपस्वी ने कुम्हार से एक रात ठहरने की जगह माँगी। कुम्हार ने मन ही मन सोचा, "जो तपस्वी पहले आया है, वह शायद उसके साथ रात बिताना चाहे या न चाहे; इसलिए मैं स्वयं को इस जिम्मेदारी से मुक्त कर लेता हूँ।"
तब उन्होंने अभी-अभी आए तपस्वी से कहा, “आदरणीय गुरुदेव, यदि पहले आए तपस्वी को यह स्वीकार्य हो, तो आप यहाँ रात बिता सकते हैं।” तब नारद देवल के पास गए और बोले, “गुरुदेव, यदि आपको यह स्वीकार्य हो, तो मैं यहाँ एक रात बिताना चाहूँगा।” देवल ने उत्तर दिया, “यह हॉल बड़ा है; इसलिए अंदर आइए और एक तरफ रात बिताइए।” तब नारद अंदर गए और उनसे पहले आए तपस्वी के बगल में बैठ गए। दोनों ने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया।
जब सोने का समय हुआ, तो नारद ने ध्यान से देखा कि देवला कहाँ लेटे हैं और द्वार कहाँ है, और फिर वे भी लेट गए। लेकिन जब देवला लेटे, तो वे अपनी उचित जगह पर लेटने के बजाय सीधे द्वार के सामने लेट गए। इसका परिणाम यह हुआ कि जब नारद रात को बाहर गए, तो उन्होंने देवला की जटाओं पर पैर रख दिया। तब देवला चिल्लाए, “मेरी जटाओं पर कौन पैर रख रहा है?” नारद ने उत्तर दिया, “गुरुजी, मैं ही हूँ।” देवला ने कहा, “झूठे तपस्वी, आप जंगल से आकर मेरी जटाओं पर पैर रख रहे हैं।” नारद ने कहा, “गुरुजी, मुझे नहीं पता था कि आप यहाँ लेटे हैं; कृपया मुझे क्षमा करें।” तब नारद बाहर चले गए, देवला को रोते हुए छोड़कर, मानो उनका हृदय टूट जाएगा। देवला ने मन ही मन सोचा, “जब वह अंदर आएगा, तब भी मैं उसे अपने ऊपर पैर नहीं रखने दूँगा।” इसलिए वे मुड़े और

लेट गए, अपना सिर वहाँ रखा जहाँ उनके पैर पहले थे। जब नारद अंदर आए, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “पहली बार मैंने गुरु को चोट पहुँचाई थी; इस बार मैं उनके चरणों में से होकर गुजरूँगा।” इसका परिणाम यह हुआ कि जब नारद अंदर आए, तो उन्होंने देवल की गर्दन पर पैर रख दिया। तब देवल चिल्लाए, “यह कौन है?” नारद ने उत्तर दिया, “मैं हूँ, गुरुजी।” “झूठे तपस्वी,” देवल ने कहा, “पहली बार तुमने मेरी जटाओं पर पैर रखा था। इस बार मेरी गर्दन पर पैर रखो। मैं तुम्हें श्राप दूँगा।” “गुरुजी, मेरी कोई गलती नहीं है। मुझे नहीं पता था कि आप इस स्थिति में लेटे हुए हैं। जब मैं अंदर आया तो मैंने मन ही मन सोचा, ‘पहली बार मैंने गुरु को चोट पहुँचाई थी; इस बार मैं उनके चरणों में से होकर गुजरूँगा।’ कृपया मुझे क्षमा करें।” “झूठे तपस्वी, मैं तुम्हें श्राप दूँगा।” “ऐसा मत करो, गुरुजी।” लेकिन देवल ने नारद की बातों पर ध्यान न देते हुए उन्हें श्राप दिया और कहा, “सूर्योदय के समय तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जाए।”
अब नारद ने देखा कि श्राप उनके तपस्वी भाई पर ही पड़ेगा, तो उन्हें उन पर दया आई और उन्होंने अपनी ध्यान शक्ति का प्रयोग करके सूर्योदय को रोक दिया। जब सूर्योदय नहीं हुआ, तो राजा को हस्तक्षेप करना पड़ा और देवला से क्षमा मांगने को कहा। देवला ने इनकार कर दिया। तब नारद ने देवला से कहा, “गुरुजी, मैं अपनी ध्यान शक्ति का प्रयोग करके सूर्योदय कराऊंगा। सूर्योदय के समय कृपया अपने सिर पर मिट्टी का एक ढेला रखें और पानी में डूबकर अलग-अलग स्थानों से निकलते हुए आगे बढ़ें।” जैसे ही सूर्य की किरणें उनके सिर पर रखे मिट्टी के ढेले पर पड़ीं, वह सात टुकड़ों में टूट गया। इसके बाद देवला पानी में डुबकी लगाकर एक अलग स्थान से निकले और भाग गए। बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा, “भिक्षुओं, उस समय राजा आनंद थे, देवला तिस्सा थे और नारद मैं स्वयं था, जब वह हठी थे।”
बुद्ध ने उन्हें शत्रुता के विचार न रखने की सलाह दी, क्योंकि इसे केवल मित्रता के विचारों से ही शांत किया जा सकता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 3)
मां अक्कोच्चि मां अवधी मां अजिनी में अहासी
ये तं उपनयहंति तेसं वेरं न सम्मति
मा : मुझे; अक्कोच्चि : (उसने) अपमान किया; मा : मुझे; अवधी : (उसने) हमला किया; मा : मुझे; अजिनी (उसने) पराजित किया; अहास : (उसने) लूटा; मे : मेरा (सामान); ये : वे लोग; ता : ऐसे विचार; उपनयहन्ति : बार-बार आते रहते हैं; तेसा [तेस]: उनके; वेरा [वेर]: शत्रुता; न संमति : कभी समाप्त नहीं होती।
जब कोई व्यक्ति यह मानता है कि उसका अपमान हुआ है, उस पर हमला हुआ है, उसे हराया गया है या उससे लूटपाट हुई है, तो उसका क्रोध लगातार बढ़ता जाता है। ऐसे व्यक्ति का क्रोध शांत होने का कोई रास्ता नहीं होता। वह जितनी बार अपनी काल्पनिक परेशानी के बारे में सोचता है, बदला लेने की उसकी इच्छा उतनी ही प्रबल होती जाती है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 4) मां अक्कोच्चि मां अवधी मां अजिनी में अहासि
ये तं न उपनयहंति तेसं वेरं सम्मति ।
मा : मुझे; अक्कोच्चि : (उसने) अपमान किया; मा : मुझे; अवधी : (उसने) हमला किया; मा : मुझे; अजिनी : (उसने) पराजित किया; अहास : (उसने) लूटा; मे : मेरा (सामान); ये : वे लोग; ता : ऐसे विचार; न उपनयहन्ति : निरंतर नहीं लौटते; तेसा [तेस] : उनके; वेरा [वेर] : शत्रुता; संमति : समाप्त हो जाती है।
मानव समाज में रहते हुए, लोग अक्सर आपस में झगड़ते रहते हैं। ऐसे झगड़ों के दौरान, लोग अक्सर दूसरों द्वारा किए गए अन्याय के बारे में सोचते रहते हैं। इससे उनका गुस्सा बढ़ता जाता है। लेकिन जो लोग दूसरों को माफ कर देते हैं और उनके साथ हुए अन्याय को भूल जाते हैं, उनका गुस्सा जल्दी ही शांत हो जाता है। तब उन्हें शांति मिलती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 3-4)
श्लोकों का यह युग्म उस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को प्रकट करता है जो भावनात्मक नियंत्रण का मूल आधार है। भावना शरीर की उत्तेजना है जो एक विचार से शुरू होती है। एक विचार एक मानसिक चित्र बनाता है, जिसे अगर मन में रखा जाए तो उससे संबंधित भावना उत्पन्न होती है। भावना तभी शांत होती है जब इस मानसिक चित्र को त्याग दिया जाता है और उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। बुद्ध ने अपने अनुयायियों को निरंतर यही सलाह दी कि वे प्रतिशोध न लें बल्कि हर समय और हर जगह, यहाँ तक कि उकसावे की स्थिति में भी, धैर्य का अभ्यास करें। बुद्ध उन लोगों की प्रशंसा करते हैं जो प्रतिशोध लेने की शक्ति होने के बावजूद दूसरों के अन्याय को सहन करते हैं। स्वयं धम्मपद में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो दर्शाते हैं कि बुद्ध ने किस प्रकार धैर्य का अभ्यास किया, यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की गई, उन्हें गालियाँ दी गईं और उन पर हमले किए गए। धैर्य कमजोरी या हार मानने का संकेत नहीं है, बल्कि महान पुरुषों और महिलाओं की अटूट शक्ति है। धैर्य का रहस्य मानसिक चित्र को बदलना या किसी स्थिति की व्याख्या करने के तरीके को बदलना है। इसका एक उदाहरण शांतिवादी जातक में दिया गया है, जहाँ संत शांतिवादी अपने पूर्व जन्म में बुद्ध गौतम थे। संत लगातार यही विचार दोहराते रहे, "राजा की दीर्घायु हो, वह हर हानि से मुक्त रहे," जबकि उस क्रूर राजा ने उनकी सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए उनके अंगों को काटकर उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया।

(धम्मपद 3,4) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 6)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 5 - कलायक्खिनी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन, एमए संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 5 - कलायक्खिनी वत्थु

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण

न हि वेरेन वेराणि
सम्मन्तिध कुदाचनं।
एवरेण च सम्मन्ति,
एसो धम्मो सनन्तनो॥

श्लोक 5 : इस संसार में घृणा को घृणा से शांत नहीं किया जा सकता। यह केवल करुणा से शांत होती है। यही शाश्वत सत्य (धम्म) है।

---

1. एसो धम्मो सनन्तनो : यह " पोरानको धम्मो " के समान है, जो बुद्ध और उनके शिष्यों द्वारा अपनाया गया सिद्धांत है। उपदेश यह है कि घृणा का उत्तर घृणा से न दें, बल्कि प्रेम और दया (घृणा का अभाव) द्वारा घृणा पर विजय प्राप्त करें।

कलायक्खिनी की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (5) का उच्चारण किया, जो एक निश्चित महिला के संदर्भ में था जो बांझ थी, और उसकी प्रतिद्वंद्वी।

एक समय की बात है, एक गृहस्थ रहता था जिसकी पत्नी बांझ थी; बाद में उसने दूसरी पत्नी से विवाह किया। दोनों के बीच तब झगड़ा शुरू हुआ जब पहली पत्नी ने दूसरी पत्नी का गर्भपात करा दिया, जिसकी प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई। बाद के जन्मों में दोनों ने एक मुर्गी और एक बिल्ली, एक हिरणी और एक तेंदुआ, और अंत में श्रावस्ती के एक कुलीन व्यक्ति की पुत्री और काली नामक एक राक्षसी के रूप में पुनर्जन्म लिया। राक्षसी (कलयक्खिनी) बच्चे वाली स्त्री का पीछा कर रही थी, तभी स्त्री को पता चला कि बुद्ध पास ही जेतवन मठ में धार्मिक प्रवचन दे रहे हैं। वह उनके पास भागी और अपने बेटे को उनके चरणों में सुरक्षा के लिए रख दिया। मठ के संरक्षक देवता ने राक्षसी को द्वार पर ही रोक दिया और उसे प्रवेश नहीं दिया। बाद में उसे बुलाया गया और बुद्ध ने स्त्री और राक्षसी दोनों को फटकारा। बुद्ध ने उन्हें एक ही पति की प्रतिद्वंद्वी पत्नियों के रूप में, एक बिल्ली और एक मुर्गी के रूप में, और एक हिरणी और एक तेंदुआ के रूप में उनके पिछले झगड़ों के बारे में बताया। उन्हें यह समझाया गया कि नफरत केवल और अधिक नफरत को जन्म दे सकती है, और इसे केवल मित्रता, समझ और सद्भावना के माध्यम से ही समाप्त किया जा सकता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 5: इस संसार में घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती।
यह केवल प्रेम और दया से ही शांत होता है। यही शाश्वत सत्य (धम्म) है।

प्रवचन के अंत में, राक्षसी को सोतापत्ती फल प्राप्ति में स्थापित किया गया और लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी का अंत हो गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कालियाकखिनी की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक बांझ स्त्री और दूसरी संतान उत्पन्न करने में सक्षम स्त्री के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, एक गृहस्थ रहता था जिसकी पत्नी बांझ थी। संतान न होने और पति एवं सास के दुर्व्यवहार के भय से उसने अपने पति का विवाह दूसरी स्त्री से करवा दिया। परन्तु दो बार, जैसे ही बांझ पत्नी को पता चला कि दूसरी पत्नी गर्भवती है, उसने उसे औषधि मिलाकर भोजन दे दिया जिससे उसका गर्भपात हो गया। तीसरी बार गर्भवती होने पर, उसने बांझ पत्नी को बिना बताए यह बात गुप्त रखी। परन्तु जब दूसरी पत्नी को पता चला, तो उसने फिर से गर्भपात करवा दिया। अंततः दूसरी पत्नी की प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई। मरने से पहले, उस दुर्भाग्यशाली स्त्री के मन में घृणा भर गई और उसने बांझ पत्नी और उसकी संतान से बदला लेने की कसम खाई। इस प्रकार दोनों के बीच दुश्मनी शुरू हो गई।

अपने बाद के जन्मों में, दोनों ने एक मुर्गी और एक बिल्ली, एक हिरणी और एक तेंदुआ, और अंत में सावत्थी के एक रईस की बेटी और एक दुष्ट आत्मा के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन वह (काली यक्षिणी) रईस की बेटी और उसके बच्चे का पीछा कर रही थी। जब इस स्त्री ने सुना कि बुद्ध जेतवन मठ में धार्मिक प्रवचन दे रहे हैं, तो वह उनके पास दौड़कर गई और अपने बेटे को उनकी रक्षा के लिए उनके चरणों में रख दिया। दुष्ट आत्मा को मठ में प्रवेश करने से रोक दिया गया। बाद में उसे बुलाया गया और बुद्ध ने स्त्री और दुष्ट आत्मा दोनों को उपदेश दिया। बुद्ध ने उन्हें प्रतिद्वंद्वी पत्नियों के रूप में उनके पिछले झगड़ों और एक-दूसरे के प्रति घृणा के बारे में बताया। उन्हें समझाया गया कि घृणा केवल घृणा को जन्म देती है, और यह केवल मित्रता, समझ और सद्भावना के माध्यम से ही समाप्त हो सकती है। दोनों को अपनी गलती का एहसास हुआ, और बुद्ध के उपदेश पर उन्होंने एक-दूसरे से सुलह कर ली।

तब बुद्ध ने उस स्त्री से अपने पुत्र को दुष्ट आत्मा के हवाले करने का अनुरोध किया। अपने पुत्र की सुरक्षा को लेकर चिंतित होकर वह हिचकिचाई, लेकिन बुद्ध के प्रति अपनी भक्ति और विश्वास के कारण उसने अपने पुत्र को सौंप दिया।

दुष्ट आत्मा ने बच्चे का गर्मजोशी से स्वागत किया। अपने बेटे की तरह बच्चे को प्यार से चूमने और सहलाने के बाद, उसने बच्चे को उसकी माँ को वापस सौंप दिया। परिणामस्वरूप, घृणा का कोई अस्तित्व नहीं रहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 5)

इधा वेरेण वेराणि कुदाकनं न हि सम्मन्ति

अवेरेना च सम्मन्ति एसा सनन्तनो धम्मो

इधा : इस संसार में; वेरानी : घृणा (शत्रुता); वेरेना : घृणा के माध्यम से; कुदाकनम् [कुदाकाण]: किसी भी समय नहीं; न हि सम्मन्ति : शांत नहीं हुआ; एवेरेना सीए : केवल गैर-घृणा से; सम्मन्ति : शांत हो जाते हैं; ईएसए : यह (है); सनंतनो [सनंतना]: चिरयुवा; धम्मो [धम्म]: बुद्धि।

जो लोग घृणा को घृणा से जीतने का प्रयास करते हैं, वे उन योद्धाओं के समान हैं जो हथियारबंद दुश्मनों को हराने के लिए हथियार उठाते हैं। इससे घृणा का अंत नहीं होता, बल्कि उसे बढ़ने का अवसर मिलता है। परन्तु, प्राचीन ज्ञान घृणा पर विजय पाने की एक भिन्न, शाश्वत रणनीति का समर्थन करता है। यह शाश्वत ज्ञान है घृणा का सामना अघृणा से करना। घृणा को घृणा से जीतने का प्रयास कभी सफल नहीं होता। परन्तु, अघृणा से घृणा पर विजय पाने की विधि शाश्वत रूप से प्रभावी है। इसीलिए इस विधि को शाश्वत ज्ञान कहा जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 5)

इस श्लोक में निहित सिद्धांत स्पष्ट है। झगड़े करने से कलह समाप्त नहीं हो सकती। युद्ध को और युद्धों से समाप्त नहीं किया जा सकता। शत्रुता का बदला शत्रुता से नहीं लिया जा सकता। क्रोध, शत्रुता, झगड़े और युद्धों का त्याग करने से ही इन बुराइयों को रोका जा सकता है। मित्रता, क्षमा और विस्मरण के माध्यम से ही शत्रुता का अंत होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 6

———————————————————————

(धम्मपद 5) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 7,8)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 6 - कोसंबका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 6 - कोसंबका वत्थु

———————————————————————

परे च न विजानन्ति
मयामेत् यममसे।
ये च तत् विजानन्ति,
ततो सम्मन्ति मेधागा॥

———————————————————————

श्लोक 6 : बुद्धिमानों के सिवा अन्य लोग यह नहीं समझते कि "हम सबको इस संसार में मरना है" (और इस बात को न समझते हुए वे आपस में झगड़ते रहते हैं)। बुद्धिमान इसे समझते हैं और इस प्रकार उनके झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————

1. परे च ना विजयनन्ति: 'परे' का अर्थ है 'अन्य'; इस संदर्भ में, बुद्धिमानों के अतिरिक्त अन्य लोग। ये लोग यह नहीं समझते कि उन्हें मरना है, और ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वे कभी मरने वाले ही न हों और लगातार झगड़ते रहते हैं। इसलिए, उन्हें कभी-कभी अज्ञानी या मूर्ख, या प्रेम और सम्मान के अयोग्य कहा जाता है।
2. मायामेत्था यमामासे: शाब्दिक अर्थ, "हमें यहाँ मरना होगा," जिसका अर्थ है कि हम, इस दुनिया के निवासी, मरेंगे; या सभी मनुष्य नश्वर हैं।
3. ये च तत्थ विजानन्ति: जो समझते हैं, यानी बुद्धिमान, उनके मामले में। बुद्धिमान समझते हैं (या महसूस करते हैं) कि सभी मनुष्य नश्वर हैं।

———————————————————————

कोसंबी भिक्षुओं की कहानी

सावत्थी में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (6) कहा।
कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए थे। एक समूह विनय के गुरु का अनुसरण करता था और दूसरा धम्म के शिक्षक का, और वे अक्सर आपस में झगड़ते रहते थे। बुद्ध भी उन्हें झगड़ने से नहीं रोक सके; इसलिए उन्होंने उन्हें छोड़ दिया और वर्षा ऋतु के दौरान पलिलेय्यक वन के पास रक्खिता वन में अकेले ही वर्षा ऋतु व्यतीत की। वहाँ हाथी पलिलेय्य बुद्ध की सेवा करता था।
कोसंबी के शिष्यों को जब बुद्ध के प्रस्थान का कारण पता चला, तो उन्होंने शेष भिक्षुओं को भेंट देने से इनकार कर दिया। इससे उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनके बीच सुलह हो गई। फिर भी, जब तक भिक्षु बुद्ध के समक्ष अपनी गलती स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक शिष्य उनके साथ पहले जैसा सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे। लेकिन बुद्ध के प्रस्थान पर जाने और वर्षाकाल के मध्य में होने के कारण, कोसंबी के भिक्षुओं ने वर्षाकाल दुख और कठिनाइयों में बिताया।
वर्षावास के अंत में, पूज्य आनंद और पाँच सौ भिक्षु बुद्ध के पास पहुँचे और अन्नथापिंडिका और अन्य गृहस्थ शिष्यों का संदेश दिया, जिसमें उनसे वापस लौटने का आग्रह किया गया था। कुछ समय बाद बुद्ध श्रावस्ती स्थित जेतवन मठ लौट आए। भिक्षु उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे, उनके चरणों में गिर पड़े और अपनी गलती स्वीकार की। बुद्ध ने उन्हें अवज्ञा करने के लिए फटकारा। उन्होंने उनसे कहा कि वे याद रखें कि एक दिन उन सभी को मरना है, इसलिए उन्हें अपने झगड़े बंद करने चाहिए और ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे कि वे कभी नहीं मरेंगे।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 6 : बुद्धिमानों के सिवा अन्य लोग यह नहीं समझते कि "हम सबको इस संसार में मरना है" (और इस बात को न समझते हुए वे आपस में झगड़ते रहते हैं)। बुद्धिमान इसे समझते हैं और इस प्रकार उनके झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, उपस्थित सभी भिक्षु सोतापत्ति फल की अवस्था में स्थापित हो गए।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसंबी भिक्षुओं की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए थे। एक समूह विनय के गुरु का अनुसरण करता था और दूसरा धम्म के शिक्षक का। एक बार वे विनय के एक छोटे से नियम को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। बुद्ध भी उन्हें झगड़ने से नहीं रोक सके; इसलिए वे उन्हें छोड़कर मानसून के मौसम में वर्षावास (धार्मिक विश्राम) के दौरान परिलय्यक वन के पास रक्खिता वन में एकांतवास में रहे। वहाँ हाथी परिलय्य बुद्ध की सेवा करता था।
कोसंबी के शिष्यों को जब बुद्ध के प्रस्थान का कारण पता चला, तो उन्होंने शेष भिक्षुओं को भेंट देने से इनकार कर दिया। इससे उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनके बीच सुलह हो गई। फिर भी, जब तक वे बुद्ध के समक्ष अपनी गलती स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक शिष्य उनके साथ पहले जैसा सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे। लेकिन बुद्ध के प्रस्थान में वर्षाकाल चल रहा था; इसलिए कोसंबी के भिक्षुओं ने वर्षाकाल दुख और कठिनाइयों में बिताया।
वर्षावास के अंत में, पूज्य आनंद और कई भिक्षु बुद्ध के पास पहुँचे और अनाथपिंडिका और अन्य शिष्यों का संदेश दिया, जिसमें उनसे वापस लौटने का आग्रह किया गया था। कुछ समय बाद बुद्ध सावत्थी स्थित जेतवन मठ लौट आए। भिक्षु उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे, उनके चरणों में गिर पड़े और अपनी गलती स्वीकार की। बुद्ध ने उन्हें अवज्ञा करने के लिए फटकारा। उन्होंने उनसे कहा कि वे याद रखें कि एक दिन उन सभी को मरना है, इसलिए उन्हें अपने झगड़े बंद कर देने चाहिए और ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे कि वे कभी नहीं मरेंगे।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 6)
एत्थ परे मायं यममसे न च विजानन्ति तथा
ये च विजान्ति ततो मेधागा सम्मन्ति ।
एत्था : इस स्थान पर; पारे : वे अन्य; मायां [माया]: हम; यममसे : मर जाओ; न विजानन्ति : नहीं जानता; तथाः यहाँ; तु सीए : कुछ; विजयन्ति : जानो (इसे); ततो : उसके कारण (जागरूकता); मेधागा : संघर्ष और विवाद; सम्मन्ति : शांत हो जाओ।
हममें से अधिकांश लोग नश्वरता और मृत्यु की वास्तविकता का सामना करने को तैयार नहीं हैं। हम इस तथ्य को भूल जाते हैं कि हमारा जीवन क्षणभंगुर है, और इसी कारण हम आपस में झगड़ते हैं, मानो हम हमेशा जीवित रहने वाले हों। लेकिन, यदि हम मृत्यु की वास्तविकता का सामना कर लें, तो हमारे झगड़े समाप्त हो जाएंगे। तब हमें यह एहसास होगा कि जब हम स्वयं मरने के लिए बाध्य हैं, तो लड़ना मूर्खता है। भावनाओं से उत्तेजित होकर हमारे विचार धुंधले हो जाते हैं, जिससे हम जीवन के सत्य को नहीं देख पाते। लेकिन जब हम सत्य को देख लेते हैं, तो हमारे विचार भावनाओं से मुक्त हो जाते हैं।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 6)
बौद्ध धर्म का सार मृत्यु और अनित्यता की वास्तविकता का सामना करना है। हम इसलिए व्यथित होते हैं क्योंकि हम भावनाओं के वश में होकर वास्तविकता से दूर भागते हैं। भावनाएँ वास्तविकता के विपरीत होती हैं; इसलिए वास्तविकता के द्वारा उनका पतन होना तय है। मृत्यु की वास्तविकता का सामना करने पर न केवल क्रोध बल्कि सभी स्वार्थी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यह एक ऐसा व्यावहारिक विचार है जो सभी दु:खों का अंत कर देता है। जो लोग बौद्ध धर्म के इस मार्ग से वास्तविकता का सामना नहीं करते, वे व्यथित और क्रोधित बने रहते हैं और फलस्वरूप व्यथित होते हैं।
आम तौर पर लोग इस बात से अनजान होते हैं कि एक दिन मृत्यु उन्हें भी आड़े आ जाएगी। वे इस सार्वभौमिक सत्य के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं। भिक्षु और गृहस्थ, दोनों ही मृत्यु के प्रति अनभिज्ञ होकर और स्वयं को अमर समझते हुए, अक्सर सद्गुणों के विकास में लापरवाही बरतते हैं। वे कलह और वाद-विवाद में उलझे रहते हैं और अक्सर निराश हो जाते हैं, उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। कभी-कभी वे भविष्य में किसी कार्य को भव्य रूप से करने की आशा में उसे टाल देते हैं, और अंत में कुछ भी करने में असमर्थ रह जाते हैं। इसलिए, प्रतिदिन मृत्यु पर चिंतन करना उचित है।
मृत्यु के प्रति सजग रहना बौद्ध धर्म में जीवन के वास्तविक स्वरूप को समझने का केंद्रबिंदु है। इस संसार में विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे लोग हैं जो मृत्यु शब्द से ही घृणा करते हैं, चिंतन करना तो दूर की बात है। दीर्घायु, स्वास्थ्य, यौवन और समृद्धि के मोह में चूर होकर वे इस तथ्य को पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे मृत्यु के अधीन हैं। पांचों इंद्रियों के क्षणभंगुर सुखों में डूबे हुए वे इस संसार में केवल भौतिक सुख की ही खोज करते हैं, भविष्य के जीवन की पूर्ण उपेक्षा करते हैं और मन, शरीर और वाणी के द्वारा दुराचार में लिप्त रहते हैं। वे इस क्षणिक और अस्थिर जीवन को स्थायी और शाश्वत मानते हैं। ऐसे अंध और अज्ञानी लोगों में असंतोष की भावना जगाने, माता-पिता और बच्चों के वियोग तथा धन-संपत्ति से वियोग के कारण होने वाले दु:ख को कम करने, सभी प्राणियों में अनित्यता का सिद्धांत स्थापित करने और इस प्रकार उन्हें जीवन की असंतुष्टि का बोध कराने तथा उन्हें शाश्वत शांति की प्राप्ति की ओर निर्देशित करने के लिए ही बुद्ध ने ये उपदेश दिए थे।
जो व्यक्ति बुद्ध के उपदेशों को नहीं समझ पाया है, वह दीर्घायु के प्रति आसक्त होकर स्वयं को अमर समझता है, भले ही वह अपने आसपास अनेकों मृत्यु देखता हो; वह उत्तम स्वास्थ्य के प्रति आसक्त होकर स्वयं को रोगमुक्त समझता है, भले ही वह अपने आसपास

असंख्य रोगग्रस्त व्यक्तियों को देखता हो; वह यौवन के प्रति आसक्त होकर स्वयं को वृद्धावस्था से अछूता समझता है; वह धन और समृद्धि के प्रति आसक्त होकर असंख्य व्यक्तियों को धन की हानि से निर्धन होते देखता है; और वह एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचता कि वह स्वयं भी ऐसी ही स्थिति में आ सकता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 7 और 8

(धम्मपद 6) <<<< पिछला।अगला >>>> (धम्मपद 9,10)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 7 और 8 - महालत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 7 और 8 - महालत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सुभानुपास्सिम विहरन्तम
इंद्रयेसु अस्नवुतं,
भोजने च अमत्तञ्चुं।
कुसीतं हीनवीर्य,
तं वे पसहति मारो,
वातो रुखखव दुब्बलं॥

असुभानुपस्सिम विहरन्तम
इंद्रयेसु सुसंवुतं,
भोजने च मत्तञ्चुन।
साधं अर्धवीर्यं,
तं वे नप्पसहति मारो,
वातो सेलम्व पब्बतं॥

श्लोक 7 : जो व्यक्ति अपने मन को सुखदायक वस्तुओं पर रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित है, अपने भोजन में अति करता है, और आलसी और ऊर्जाहीन है, वह निश्चित रूप से मारा (3) से अभिभूत हो जाएगा, जैसे तूफानी हवाएँ एक कमजोर पेड़ को उखाड़ देती हैं।

श्लोक 8 : जो व्यक्ति अपने मन को (शरीर की) अशुद्धियों पर केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अच्छी तरह से नियंत्रित है और विश्वास और ऊर्जा से परिपूर्ण है, वह निश्चित रूप से मारा से अभिभूत नहीं होगा, जैसे तूफानी हवाएं चट्टान के पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

---

1. मारो/मारा: मृत्यु, यौन सुख, भौतिक धन और रोग का देवदूत; अर्थात् शैतान। साथ ही वे दोष/लक्षण जो निर्वाण की प्राप्ति में बाधक हैं।
2. सद्धम/सद्धः भाष्य के अनुसार,

(क) बुद्ध, धम्म (सिद्धांत) और संघ (बौद्ध धार्मिक व्यवस्था) में अटूट (अडिग) आस्था और
(ख) कर्म (कार्य) और उसके परिणामों में आस्था या विश्वास।
3. 1 का संदर्भ लें।

थेरा महाकाल की कहानी
सेताब्य नगर के आसपास निवास करते हुए, बुद्ध ने महाकाल और उनके भाई चुलकाला के संदर्भ में इस ग्रंथ के श्लोक (7) और (8) कहे। महाकाल और चुलकाला सेताब्य नगर के दो व्यापारी भाई थे। एक बार अपने माल के साथ यात्रा करते समय, उन्हें बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन को सुनने का अवसर मिला। प्रवचन सुनने के बाद महाकाल ने बुद्ध से भिक्षु संघ में प्रवेश का अनुरोध किया। चुलकाला भी संघ में शामिल हो गए, लेकिन उनका इरादा संघ से बाहर निकलकर अपने भाई को भी अपने साथ बाहर ले जाना था। महाकाल श्मशान (शोसानिका धुतिंग) में गंभीर तपस्या करते थे और क्षय एवं अनित्यता पर गहन ध्यान लगाते थे। अंततः उन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और वे अरहतत्व की प्राप्ति हुई।
बाद में, बुद्ध और उनके शिष्य, जिनमें उनके भाई भी शामिल थे, संयोगवश सेताब्या के पास सिम्सपा के जंगल में ठहरे हुए थे। वहाँ ठहरते समय, चुलकाला की पूर्व पत्नियों ने बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने घर आमंत्रित किया। चुलकाला स्वयं बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए बैठने की व्यवस्था करने के लिए आगे गया। वहाँ पहुँचने पर, चुलकाला की पूर्व पत्नियों ने उन्हें गृहस्थ वस्त्र पहना दिए। अगले दिन, महाकाल की पत्नियों ने बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने घर आमंत्रित किया, इस उम्मीद में कि वे महाकाल के साथ वही करेंगी जो चुलकाला की पत्नियों ने चुलकाला के साथ किया था। भोजन के बाद उन्होंने बुद्ध से अनुरोध किया कि महाकाल को कुछ देर रुकने दें ताकि वे "आभार व्यक्त" (अनुमोदन) कर सकें। इस प्रकार बुद्ध और अन्य शिष्य चले गए।
गाँव के द्वार पर पहुँचकर भिक्षुओं ने अपनी असंतुष्टि और आशंका व्यक्त की। वे असंतुष्ट थे क्योंकि महाकाल को पीछे रहने की अनुमति दी गई थी और उन्हें डर था कि चुलकाला की तरह, उनके भाई महाकाल को भी उनकी पूर्व पत्नियों द्वारा संघ छोड़ने के लिए विवश कर दिया जाएगा। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया कि दोनों भाई एक समान नहीं थे। चुलकाला इंद्रिय सुखों में लिप्त था और आलसी एवं दुर्बल था; वह एक कमजोर वृक्ष के समान था। दूसरी ओर, महाकाल परिश्रमी, दृढ़ और बुद्ध, धम्म और संघ में अपनी आस्था में मजबूत था; वह चट्टान के पर्वत के समान था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 7 : जो व्यक्ति सुखदायक वस्तुओं पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, भोजन में अति करता है, और आलसी और ऊर्जाहीन है, वह निश्चित रूप से मारा के प्रकोप से अभिभूत हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार जैसे तूफानी हवाएं एक कमजोर पेड़ को उखाड़ देती हैं।

श्लोक 8 : जो व्यक्ति अपने मन को (शरीर की) अशुद्धियों पर केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अच्छी तरह से नियंत्रित है और विश्वास और ऊर्जा से परिपूर्ण है, वह निश्चित रूप से मारा से अभिभूत नहीं होगा, जैसे तूफानी हवाएं चट्टान के पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

इसी बीच, महाकाल की पूर्व पत्नियों ने उन्हें घेर लिया और उनके पीले वस्त्र उतारने का प्रयास किया। थेरा ने उनकी मंशा भांपते हुए खड़े होकर अपनी अलौकिक शक्तियों से आकाश में उड़ान भरी और घर की छत को भेदते हुए ऊपर पहुँच गए। वे बुद्ध के चरणों में ठीक उसी क्षण उतरे जब गुरु अपने उपरोक्त दो श्लोकों का उच्चारण समाप्त कर रहे थे। उसी समय, वहाँ एकत्रित सभी भिक्षु सोतापत्ति फल की प्राप्ति कर चुके थे।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु महाकाल की कहानी
सेतव्य नगर के आसपास निवास करते हुए, बुद्ध ने महाकाल और उनके भाई चूलकाला के संदर्भ में ये श्लोक कहे। चूलकाला, मज्झिमा काल और महाकाल सेतव्य में रहने वाले तीन गृहस्थ थे, जो भाई थे। चूलकाला और महाकाल, जो क्रमशः बड़े और छोटे थे, पाँच सौ रथों के अपने काफिले के साथ विदेश यात्रा करते थे और बेचने के लिए सामान लाते थे, और मज्झिमा काल उनके द्वारा लाए गए सामान को बेचते थे। एक बार दोनों भाई अपने पाँच सौ रथों में विभिन्न प्रकार का सामान लेकर सावत्थी के लिए रवाना हुए, और सावत्थी और

जेतवन के बीच विश्राम करके अपने रथों को खोल दिया। शाम को महाकाल ने सावत्थी के निवासी श्रेष्ठ शिष्यों को हाथों में मालाएँ और इत्र लिए धर्म का प्रवचन सुनने जाते हुए देखा। "वे कहाँ जा रहे हैं?" उसने पूछा। जब उसे उत्तर मिला कि वे धर्म का प्रवचन सुनने जा रहे हैं, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैं भी जाऊँगा।" इसलिए उसने अपने सबसे छोटे भाई से कहा, "प्रिय भाई, रथों की रखवाली करना; मैं धर्म का प्रवचन सुनने जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह गया और बुद्ध को प्रणाम किया तथा सभा के बाहरी घेरे में बैठ गया।
उस दिन गुरु ने महाकाल की मनस्थिति को ध्यान में रखते हुए क्रमबद्ध तरीके से धर्म का उपदेश दिया और दुखों के समूह पर सूत्र तथा अन्य सूत्रों का हवाला देते हुए इंद्रिय सुखों के पाप, मूर्खता और अशुद्धता पर प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद महाकाल गुरु के अधीन भिक्षु बन गए। चूलक ने भी भिक्षु का पद ग्रहण किया। परन्तु चूलक के मन में यह विचार था, "कुछ समय बाद मैं संसार में लौटकर अपने भाई को भी साथ ले जाऊँगा।"
कुछ समय बाद महाकाल ने दीक्षा ली और गुरु के पास जाकर उनसे पूछा, "इस धर्म में कितने कर्तव्य हैं?" गुरु ने उन्हें बताया कि दो ही कर्तव्य हैं। महाकाल ने कहा, "आदरणीय, क्योंकि मैंने वृद्धावस्था में भिक्षु का संस्कार ग्रहण किया है, इसलिए मैं अध्ययन का कर्तव्य तो नहीं निभा पाऊंगा, परन्तु ध्यान का कर्तव्य निभा सकता हूं।" अतः उन्होंने गुरु से श्मशान में ध्यान का अभ्यास करने का आग्रह किया, जो अर्हतत्व की ओर ले जाता है। पहले पहर के अंत में, जब सभी सो रहे थे, वे श्मशान गए; और भोर होते ही, किसी के उठने से पहले, वे मठ लौट आए। अब एक प्रतिष्ठित युवती एक बीमारी से ग्रसित हो गई, और जिस क्षण बीमारी ने उसे जकड़ा, उसी क्षण शाम को, वृद्धावस्था या कमजोरी के किसी लक्षण के बिना, उसकी मृत्यु हो गई। शाम को उसके रिश्तेदार और मित्र उसके शरीर को श्मशान में लकड़ी, तेल और अन्य आवश्यक सामग्री के साथ लाए और श्मशान के रखवाले से कहा, "इस शरीर को जला दें।" और श्मशान घाट के रखवाले को सामान्य शुल्क देकर, उन्होंने शव उसे सौंप दिया और चले गए। जब श्मशान घाट के रखवाले ने स्त्री का वस्त्र हटाया और उसके सुंदर सुनहरे रंग के शरीर को देखा, तो उसने तुरंत मन में सोचा, "यह शव परम पूज्य को अर्पित करने के लिए ध्यान का एक उपयुक्त विषय है।" अतः वह पूज्य के पास गई, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "मेरे पास ध्यान का एक बहुत अच्छा विषय है; कृपया इसे देखें, पूज्य।" पूज्य ने कहा, "ठीक है।" अतः वे गए और शव को ढके हुए वस्त्र को हटवाया और पैरों के तलवों से लेकर बालों के सिरों तक शरीर का निरीक्षण किया। फिर उन्होंने कहा, "इस सुंदर सुनहरे रंग के शरीर को अग्नि में डाल दो, और जैसे ही अग्नि की लपटें इसे पकड़ लें, कृपया मुझे बता देना।" ऐसा कहकर वे अपने स्थान पर गए और बैठ गए। श्मशान घाट के रखवाले ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था और जाकर पूज्य को सूचित किया। पूज्य आए और शरीर का निरीक्षण किया। जहां ज्वालाओं ने शरीर को छुआ था, वहां उसका शरीर चित्तीदार गाय के रंग जैसा हो गया था; पैर बाहर निकले हुए और लटके हुए थे; हाथ पीछे की ओर मुड़े हुए थे; माथे पर चमड़ी नहीं थी। पूज्य महाराज ने मन ही मन सोचा, "यह शरीर, जो अभी देखने वालों को पवित्र वचन भुला देता था, अब क्षय की अवस्था में पहुँच गया है, अब मृत्यु की अवस्था में पहुँच गया है।" और अपने रात्रि कक्ष में जाकर वे बैठ गए, क्षय और मृत्यु को स्पष्ट रूप से समझते हुए। महाकाल ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया।
जब महाकाल ने अरहत्त्व प्राप्त किया, तब बुद्ध भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए, स्थान-स्थान यात्रा करते हुए सेतव्य पहुंचे और सिम्सपा वन में प्रवेश किया। चूलकाला की पत्नियों ने बुद्ध के आगमन की सूचना सुनकर मन ही मन सोचा, "अब हम अपने पति को वापस पा लेंगी।" अतः वे गईं और बुद्ध को आमंत्रित किया। अब जब बुद्ध के आगमन की अपेक्षा होती है, तो यह प्रथा है कि एक भिक्षु पहले जाकर सूचना देता है। जब चूलकाला भिक्षा देने की तैयारी के लिए घर लौटे, तो उनकी पत्नियों ने उनके वस्त्र फाड़ दिए। महाकाल की आठों पत्नियों ने भी सोचा कि वे अपने पति को वस्त्र त्यागने के लिए मना लेंगी। एक दिन, उन्होंने बुद्ध और शिष्यों के लिए भिक्षादान का आयोजन किया और बुद्ध से अनुरोध किया कि वे महाकाल को भिक्षादान के बाद धन्यवाद मंत्र का उच्चारण करने के लिए वहीं छोड़ दें। बुद्ध उन्हें उनके पूर्व निवास पर छोड़कर अन्य शिष्यों के साथ चले गए।
जब बुद्ध गाँव के द्वार पर पहुँचे, तो भिक्षुओं का समूह नाराज़ हो गया और कहने लगा, "बुद्ध ने ऐसा कैसे कर दिया! क्या उन्होंने जानबूझकर किया या अनजाने में? कल चूलकाला आए थे और उनका संन्यास समाप्त हो गया था। लेकिन आज एक दूसरे भिक्षु आए और ऐसा कुछ नहीं हुआ।" बुद्ध ने महाकाल को वापस भेज दिया और अपने मार्ग पर आगे बढ़ गए। भिक्षुओं ने कहा, "भिक्षु महाकाल गुणी और धर्मनिष्ठ हैं। क्या वे उनके संन्यास का अंत कर देंगे?" महाकाल की पत्नियों ने उन्हें गृहस्थ बनाने का प्रयास किया, लेकिन वे अपनी मानसिक शक्ति से अरहत के रूप में वायु में विलीन हो गए और बुद्ध के सामने प्रकट हुए जब वे इन दो श्लोकों का पाठ कर रहे थे। भिक्षु महाकाल ने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने अन्य भिक्षुओं से कहा कि अरहत महाकाल की तुलना भिक्षु चूलकाला से करना उनकी गलती थी।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 7)
सुभानुपासिं विहरन्तं इंद्रियेसु असवुतुं
भोजनमहि च अमत्तन्नुं कुसीतां हिनावीर्यं
तं वे पसहति मारो वातो दुब्बलं रुक्खं इव

सुभानुपस्सिं [सुभानुपस्सिं]: इंद्रिय सुखों के आकर्षण में लीन रहने वाला; विहारन्तं [विहारन्त]: जो रहता है; इंद्रियेसु : इंद्रियों में; असंवुतं [असंवुत]: लापरवाह; भोजनंहि च : भोजन में भी; अमतञ्ञु [अमतञ्ञु]: अतिभोगी; कुसीतं [कुसीत]: आलसी; हीनवीरियं [हीनवीरिय]: प्रयास करने में कमजोर; तं : वह व्यक्ति; मारो : 'मारा' (शैतान के समतुल्य) के रूप में मानवीकृत भावना; वे : वास्तव में; पसहति : हावी हो जाता है; वातो : हवा; दुब्बलं [दुब्बल]: कमजोर; रुक्खं [रुक्खा]: वृक्ष; इव : के समान।

जो लोग इंद्रिय सुखों के आकर्षण में लिप्त रहते हैं, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हैं और अत्यधिक खान-पान रखते हैं, वे आलसी और दृढ़ संकल्प तथा इच्छाशक्ति में कमजोर होते हैं। भावनाएँ ऐसे व्यक्तियों पर उसी आसानी से हावी हो जाती हैं जैसे हवा एक कमजोर पेड़ को गिरा देती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 8)

असुभानुपासिं विहारं इंद्रियेसु सुसंवुतां
भोजनमहि च मत्तन्नुं सद्धं अरद्ध वीर्यं
मारो तं वे नप्पासहति वातो सेलं पब्बतं इव ।

असुभानुपासिं [असुभानुपासि]: कामुक आनंद की अनाकर्षकता पर ध्यान देना; विहारान्तम् [विहारान्त]: वह जो रहता है; इंद्रियेसु : इंद्रियों में; सुसंवुताम् [सुसावुता]: अच्छी तरह से संरक्षित; भोजनमहि च : भोजन में भी; मत्तान्नुm [मत्तान्नु]: मध्यम; सद्धं [सद्ध]: समर्पित; अरद्ध वीर्यं [वीर्य]: प्रयास में मजबूत; तं : वह व्यक्ति; मारो : भावनाओं को 'मारा' ('शैतान' के समतुल्य) के रूप में व्यक्त किया गया; नप्पासहति : प्रबल नहीं होता; वातो : वायु; सेलं पब्बताम् [पब्बाता]: चट्टानी पर्वत; इवा : पसंद है।

जो लोग इंद्रिय सुखों की अनाकर्षकता पर ध्यान देते हैं, अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हैं और खान-पान में संयम बरतते हैं, वे शिक्षा और निरंतर विधिवत अभ्यास के प्रति समर्पित रहते हैं। ऐसे व्यक्ति भावनाओं से उसी प्रकार प्रभावित नहीं होते जैसे कोई चट्टानी पर्वत हवा से नहीं हिलता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 7-8)

जो लोग आशावाद की झूठी धारणा रखते हैं और सोचते हैं कि जीवन कांटों से रहित फूलों की सेज है, वे जीवन के सुखद पक्ष पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं और अप्रिय पक्ष को अनदेखा कर देते हैं। परिणामस्वरूप, वे चीजों से आसक्त हो जाते हैं और उन्हें "यह मेरा है" या "यह मैं ही हूँ" कहने लगते हैं। जब वे चीजें जिनसे वे जुड़े हुए हैं, बदल जाती हैं और उनसे अलग हो जाती हैं, तो वे विलाप करते हैं कि जो "उनका" है और जो "वे स्वयं" हैं, वह टूट रहा है और मर रहा है। जो लोग जीवन के अप्रिय पक्ष, गुलाबों में छिपे कांटों को देखते हैं, उनकी आसक्तियाँ कमजोर हो जाती हैं। ऐसा होने पर, आसक्त वस्तुओं से परिवर्तन और वियोग से उन्हें अधिक दुख या शोक नहीं होता।

असुभानुपस्सना का अर्थ पीड़ा के उस कष्ट पर चिंतन करना नहीं है जिससे घृणा या अरुचि उत्पन्न होती है। उसे घृणा की अनुभूति (पठिघ सन्ज्ञा) कहा जाता है, जिससे बचना चाहिए। इसका सही अर्थ इंद्रिय सुख के बुरे पक्ष पर चिंतन करना है, जिसे लोग अक्सर अनदेखा करना पसंद करते हैं और ऐसा करने से वे दुख में पड़ जाते हैं, ठीक उसी दुख से जिससे वे बचने की कोशिश कर रहे हैं। सच्चा आशावाद जीवन का एकतरफा दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि जीवन की समस्याओं का समाधान देखने की क्षमता है। यही बौद्ध धर्म का आशावाद है।

ये दो श्लोक सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति त्यागकर जीवन में सुख प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। पहला कदम है यथार्थवादी चिंतन करना। इंद्रियों पर नियंत्रण रखना, सुखद और अप्रिय परिस्थितियों में इच्छा और घृणा से प्रतिक्रिया करना छोड़ना सीखना है। खान-पान की आदतों पर नियंत्रण रखना और आलस्य पर विजय प्राप्त करना, सही चीजों पर ध्यान केंद्रित करने और इस प्रकार भावनात्मक आसक्तियों से मन को मुक्त करने के लिए आवश्यक है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 9 और 10

————————————————————————

(धम्मपद 7, 8) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 11, 12)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 9 और 10 - देवदत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 9 और 10 - देवदत्त वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अनिक्कसावो कसावं
यो वत्थं परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन,
न सो कसावमर्हति॥

यो च वन्तकसावस्स
सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन,
स वे कसावमर्हति॥

श्लोक 9 : जो नैतिक दोषों (किलेसस) से मुक्त नहीं है और फिर भी पीला वस्त्र पहनता है, जो अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रखता और सत्य नहीं बोलता, वह पीले वस्त्र के योग्य नहीं है।

श्लोक 10 : जिसने सभी नैतिक दोषों (किलेसस) को त्याग दिया है, जो नैतिक उपदेशों में दृढ़ है, संयम से युक्त है और सत्य बोलता है, वह वास्तव में पीले वस्त्र के योग्य है।

---

1. कसवम् या कसवम् वत्थम्: बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा धारण किया जाने वाला पीला या लालिमा लिए पीला वस्त्र। उपरोक्त श्लोकों में शब्दों का एक क्रीड़ा है; 'अनिक्कसवो' का अर्थ है, नैतिक दोषों से मुक्त नहीं और इसलिए कलंकित; और कसवम्, किसी कसैले रस में रंगे पीले वस्त्र पर कलंक लगा हुआ है।
2. वंतकसव'अस्सा: शाब्दिक अर्थ है, सभी नैतिक विकारों को उगल दिया है; इसका अर्थ है, चार पथ ज्ञान (मग्ग नाना) के माध्यम से सभी नैतिक विकारों को त्याग दिया है।

देवदत्त की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (9) और (10) का उच्चारण किया।
एक बार दो प्रमुख शिष्य, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना, सावत्थी से राजगृह गए। वहाँ राजगृह के लोगों ने उन्हें और उनके एक हजार अनुयायियों को सुबह के भोज में आमंत्रित किया। उस अवसर पर किसी ने एक लाख मूल्य का एक वस्त्र दान समारोह के आयोजकों को सौंप दिया। उन्होंने उन्हें निर्देश दिया कि यदि धन की कमी हो तो वे इसे बेच दें और उससे प्राप्त राशि का उपयोग समारोह के लिए करें, या यदि कोई कमी न हो तो इसे किसी भी भिक्षु को दान कर दें जिसे वे उचित समझें। संयोगवश, किसी चीज की कमी नहीं थी और वस्त्र किसी थेर को दान किया जाना था। चूंकि दोनों प्रमुख शिष्य राजगृह में कभी-कभार ही आते थे, इसलिए वस्त्र देवदत्त को दान किया गया, जो राजगृह के स्थायी निवासी थे।
देवदत्त ने तुरंत उस कपड़े से वस्त्र बनवाए और उन्हें पहनकर शान से घूमने लगे। तभी राजगृह से एक भिक्षु सावत्थी में बुद्ध को प्रणाम करने आया और उसने देवदत्त और एक लाख रुपये के कपड़े से बने वस्त्र के बारे में बताया। बुद्ध ने कहा कि यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ऐसे वस्त्र पहन रहे हैं जिनके वे योग्य नहीं हैं। फिर बुद्ध ने आगे यह कथा सुनाई।
देवदत्त अपने पिछले जन्मों में से एक में हाथी शिकारी था। उस समय, एक विशेष जंगल में बड़ी संख्या में हाथी रहते थे। एक दिन, शिकारी ने देखा कि ये हाथी पच्चेकबुद्धों को देखकर घुटने टेक देते हैं। यह देखकर, शिकारी ने एक पीले वस्त्र का ऊपरी भाग चुरा लिया और उससे अपना शरीर और हाथ ढक लिए। फिर, हाथ में भाला लिए, वह हाथियों के नियमित मार्ग पर उनका इंतजार करने लगा। हाथी आए और उसे पच्चेकबुद्ध समझकर घुटने टेककर प्रणाम करने लगे। वे आसानी से शिकारी के शिकार बन गए। इस प्रकार, उसने कई दिनों तक प्रतिदिन एक-एक करके पंक्ति के अंतिम हाथी को मार डाला।
उस समय बोधिसत्व (भविष्य के बुद्ध) झुंड के नेता थे। अपने अनुयायियों की घटती संख्या को देखकर उन्होंने जाँच-पड़ताल करने का निर्णय लिया और अपने झुंड के अंत में चले गए। वे सतर्क थे, इसलिए भाले से बच गए। उन्होंने शिकारी को अपनी सूंड से पकड़ लिया और उसे ज़मीन पर पटकने ही वाले थे कि उन्होंने पीले वस्त्र देखे। पीले वस्त्र को देखकर वे रुक गए और शिकारी की जान बख्श दी।

पीले वस्त्र की आड़ में हत्या करने का प्रयास करने और इस प्रकार का घिनौना कृत्य करने के लिए शिकारी को फटकार लगाई गई। शिकारी स्पष्ट रूप से पीले वस्त्र पहनने के योग्य नहीं था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 9 : जो नैतिक दोषों (किलेसस) से मुक्त नहीं है और फिर भी पीला वस्त्र पहनता है, जो अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रखता और सत्य नहीं बोलता, वह पीले वस्त्र के योग्य नहीं है।

श्लोक 10 : जिसने सभी नैतिक दोषों (किलेसस) को त्याग दिया है, जो नैतिक उपदेशों में दृढ़ है, संयम से युक्त है और सत्य बोलता है, वह वास्तव में पीले वस्त्र के योग्य है।

प्रवचन के अंत में, कई भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की स्थापना की।
पच्चेकबुद्ध : वे व्यक्ति जो बुद्ध की तरह चार आर्य सत्यों में आत्मप्रबुद्ध हैं और सभी नैतिक विकारों (किलेषों) को जड़ से उखाड़ चुके हैं। हालांकि, वे दूसरों को शिक्षा नहीं दे सकते। पच्चेकबुद्ध बुद्ध शासन (शिक्षा) के अभाव में प्रकट होते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
देवदत्त की कहानी
सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। एक अवसर पर, दो प्रमुख शिष्य, प्रत्येक अपने साथ पाँच सौ भिक्षुओं का दल लेकर, बुद्ध से विदा लेकर जेतवन से राजगृह गए। राजगृह के निवासियों ने दो-तीन के समूहों में और बड़े समूहों में आगंतुकों को दान देने की प्रथा के अनुसार दान दिया। एक दिन पूज्य सारिपुत्त ने धन्यवाद भाषण देते हुए कहा, "हे गृहस्थों, एक व्यक्ति स्वयं दान देता है, परन्तु दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित नहीं करता; उसे भविष्य में धन का आशीर्वाद तो मिलता है, परन्तु दासों का आशीर्वाद नहीं। दूसरा व्यक्ति अपने पड़ोसी को दान देने के लिए प्रेरित करता है, परन्तु स्वयं दान नहीं देता; उसे भविष्य में दासों का आशीर्वाद तो मिलता है, परन्तु धन का आशीर्वाद नहीं। तीसरा व्यक्ति न तो स्वयं दान देता है और न ही दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है; उसे भविष्य में खट्टी-मीठी रोटी भी नहीं मिलती, परन्तु वह निर्धन और दरिद्र रहता है। चौथा व्यक्ति स्वयं भी दान देता है और अपने पड़ोसी को भी दान देने के लिए प्रेरित करता है; उसे भविष्य में सौ जन्मों में, हजार जन्मों में, एक लाख जन्मों में धन और दासों दोनों का आशीर्वाद मिलता है।" इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त ने धर्म का उपदेश दिया।
एक व्यक्ति ने पूज्यवर को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित करते हुए कहा, "पूज्यवर, कल मेरे आतिथ्य सत्कार को स्वीकार कीजिए।" भिक्षादान के लिए किसी ने एक लाख रुपये मूल्य का एक वस्त्र भिक्षादान समारोह के आयोजकों को सौंप दिया। उन्होंने उन्हें निर्देश दिया कि यदि धन की कमी हो तो वे इसे बेच दें और उससे प्राप्त राशि का उपयोग समारोह के लिए करें, या यदि कोई कमी न हो तो इसे किसी भी भिक्षु को दे दें जिसे वे उचित समझें। संयोगवश किसी चीज की कमी नहीं थी और वस्त्र किसी भिक्षु को ही दिया जाना था। चूंकि दो मुख्य शिष्य राजगृह में कभी-कभार ही आते थे, इसलिए वस्त्र देवदत्त को दिया गया, जो राजगृह के स्थायी निवासी थे।
बात कुछ इस तरह हुई। कुछ लोगों ने कहा, "इसे पूज्य सारिपुत्त को दे देते हैं।" दूसरों ने कहा, "पूज्य सारिपुत्त आते-जाते रहते हैं। लेकिन देवदत्त हमारे निरंतर साथी हैं, त्योहारों और आम दिनों में भी, और पानी के घड़े की तरह हमेशा तत्पर रहते हैं। इसलिए इसे उन्हें दे देते हैं।" लंबी चर्चा के बाद चार लोगों के बहुमत से देवदत्त को वस्त्र देने का निर्णय लिया गया। तो उन्होंने देवदत्त को वस्त्र दे दिया। देवदत्त ने उसे दो भागों में काटा, उसे सिला, रंगा, एक भाग को अंतर्वस्त्र और दूसरे को अंतर्वस्त्र के रूप में पहना और उसे पहनकर घूमने लगे। जब लोगों ने उन्हें नया वस्त्र पहने देखा, तो उन्होंने कहा, "यह वस्त्र देवदत्त को शोभा नहीं देता, बल्कि पूज्य सारिपुत्त को शोभा देता है। देवदत्त ऐसे अंतर्वस्त्र और अंतर्वस्त्र पहनकर घूम रहे हैं जो उन्हें शोभा नहीं देते।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब देवदत्त ने ऐसे वस्त्र पहने हैं जो उन्हें शोभा नहीं देते; पिछले जन्म में भी उन्होंने ऐसे वस्त्र पहने थे जो उन्हें शोभा नहीं देते थे।" ऐसा कहकर उन्होंने आगे बताया।
बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर राज करते थे, तब वहाँ एक हाथी शिकारी रहता था जो हाथियों को मारकर अपना जीवन यापन करता था। एक जंगल में कई हजार हाथी चरते थे। एक दिन जब वे जंगल गए, तो उन्हें कुछ एकांत बुद्ध दिखाई दिए। उस दिन से वे आते-जाते समय एकांत बुद्ध के सामने घुटने टेककर प्रणाम करते थे और फिर आगे बढ़ते थे।
एक दिन हाथी शिकारी ने उनकी हरकतें देखीं। उसने सोचा, "मुझे भी तुरंत पीले वस्त्र धारण कर लेने चाहिए।" इसलिए वह एक ऐसे तालाब के पास गया जहाँ एक साधु बुद्ध स्नान कर रहे थे, और जब वे किनारे पर अपने वस्त्र रखे हुए थे, तो उसने उनके वस्त्र चुरा लिए। फिर वह हाथियों के आने-जाने वाले रास्ते पर भाला हाथ में लिए और सिर पर वस्त्र ओढ़े बैठ गया। हाथियों ने उसे देखा और उसे साधु

बुद्ध समझकर प्रणाम किया और फिर अपने रास्ते चले गए। सबसे अंत में आने वाले हाथी को उसने भाले से मार डाला। उसके दांत और अन्य मूल्यवान अंग लेकर और मृत जानवर के शेष भाग को जमीन में गाड़कर वह चला गया।

बाद में, भविष्य के बुद्ध, जिनका हाथी के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, हाथियों के सरदार और झुंड के स्वामी बन गए। उस समय भी हाथी शिकारी पहले की तरह ही रणनीति अपना रहा था। बुद्ध ने अपने दल की संख्या में कमी देखी और पूछा, "ये हाथी कहाँ जाते हैं कि झुंड इतना छोटा हो गया है?" "हमें नहीं पता, स्वामी।" बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "वे जहाँ भी जाते हों, मेरी अनुमति के बिना नहीं जाते होंगे।" तभी उनके मन में संदेह आया, "पीले वस्त्र ओढ़े एक विशेष स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति ही परेशानी का कारण होगा; उस पर नज़र रखनी होगी।"

इसलिए हाथियों के झुंड के सरदार ने बाकी हाथियों को आगे भेज दिया और खुद बहुत धीरे-धीरे पीछे-पीछे चलने लगा। जब बाकी हाथियों ने प्रणाम करके आगे बढ़ गए, तो हाथी शिकारी ने बुद्ध को आते देखा। उसने तुरंत अपना वस्त्र समेटा और भाला फेंक दिया। बुद्ध ने पास आते ही ध्यान से देखा और भाले से बचने के लिए पीछे हट गए। बुद्ध ने सोचा, "यही वह व्यक्ति है जिसने मेरे हाथियों को मारा है," और तुरंत उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़े। लेकिन हाथी शिकारी एक पेड़ के पीछे छिप गया और नीचे झुक गया। बुद्ध ने सोचा, "मैं अपनी सूंड से शिकारी और पेड़ दोनों को घेर लूँगा, शिकारी को पकड़ लूँगा और उसे ज़मीन पर पटक दूँगा।" ठीक उसी क्षण शिकारी ने अपना पीला वस्त्र उतार दिया और हाथी को दिखा दिया। जब बुद्ध ने उसे देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मैंने इस व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध किया, तो हज़ारों बुद्धों, निजी बुद्धों और अरहतों का मेरे प्रति आदर अवश्य ही नष्ट हो जाएगा।" इसलिए उन्होंने धैर्य बनाए रखा। फिर उसने शिकारी से पूछा, "क्या तुमने ही मेरे इन सभी रिश्तेदारों को मारा है?" "जी, स्वामी," शिकारी ने उत्तर दिया। "तुमने इतना बुरा काम क्यों किया? तुमने ऐसे वस्त्र पहने हैं जो वासनाओं से मुक्त लोगों को शोभा देते हैं, परन्तु तुम्हें शोभा नहीं देते। ऐसा करके तुमने घोर पाप किया है।" इतना कहकर उसने उसे अंतिम बार फिर फटकारा। "तुमने जो किया है वह उचित नहीं है," उसने कहा।

जब बुद्ध ने यह उपदेश समाप्त किया, तो उन्होंने जातक के पात्रों की पहचान इस प्रकार की, "उस समय हाथी का शिकारी देवदत्त था, और उसे फटकारने वाला महान हाथी मैं स्वयं था। भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने ऐसा वस्त्र धारण किया है जो उसके लिए अशोभनीय था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 9)

अनिक्कसावो दमास्स्केन एपेटो यो कसावम्
वत्थं परिदहेस्सति सो कसावं न अरहति

अनिक्कसावो [अनिक्कसाव]: अशुद्धियों के दाग से अछूता; दमसच्चेन : भावनात्मक नियंत्रण और वास्तविकता की जागरूकता; अपेतो [अपेता]: रहित; यो : कोई व्यक्ति; कासावं वत्थं [वत्थ]: दागदार वस्त्र; परिदहेस्सति : पहनता है; इसलिए : वह व्यक्ति; कासावं [कासाव]: दागदार वस्त्र; न अरहति : योग्य नहीं है।

एक भिक्षु दोषों से ग्रसित हो सकता है, आत्म-संयम और वास्तविकता की जागरूकता से वंचित हो सकता है। ऐसा भिक्षु, भले ही वह 'रंजित वस्त्र' (जंगली पौधों से प्राप्त रंगों से विशेष रूप से रंगा हुआ भिक्षु का वस्त्र) धारण करे, वह ऐसे संत वस्त्र के योग्य नहीं है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 10)

यो च वन्तकसवस्सा सिलेसु सुसामहितो
दमास्स्केन सो उपेतो स वे कसावं अरहति

यो च : यदि कोई व्यक्ति; वन्तकसावस्स : दोषों के दाग से मुक्त; सीलेसु : सुव्यवस्थित; सुसमाहितो [सुसमाहित] : जो भीतर से शांत हो; दमसच्चेन : भावनात्मक नियंत्रण और वास्तविकता की जागरूकता से युक्त; उपेतो [उपेत] : संपन्न; सो : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; कासावं [कासाव] : दागदार वस्त्र; अरहति : योग्य है।

जो कोई भी 'रंजित वस्त्र' धारण करता है, जो दोषों से मुक्त है, जिसका आचरण अच्छा है और जो मन से शांत है, जिसकी भावनाएं वश में हैं और जो वास्तविकता से अवगत है, ऐसा व्यक्ति पवित्र 'रंजित वस्त्र' के योग्य है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 9-10)

बौद्ध धर्म में 'रंजित वस्त्र' पवित्रता का प्रतीक है। वे इस विशेष रूप से तैयार किए गए भिक्षु वस्त्र को पवित्र और पूजनीय मानते हैं। बौद्ध इस वस्त्र को धारण करने वाले व्यक्ति के प्रति श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। यह वस्त्र संघ का प्रतीक है , जो बौद्ध धर्म की पवित्र त्रिमूर्ति - बुद्ध , धम्म और संघ - का एक भाग है ।

जब कोई व्यक्ति बौद्ध भिक्षु के रूप में दीक्षा लेता है, तो उसे यह अहसास होता है कि वह सांसारिक जगत से ऊपर उठकर एक पवित्र व्यक्ति बन गया है। यह अहसास तब और भी प्रबल हो जाता है जब आम लोग उसके सामने नतमस्तक होते हैं। यह नई 'आत्म-छवि' नवदीक्षित व्यक्ति को पवित्रता का नया जीवन शुरू करने में मदद करती है। आम लोग भी भिक्षु के दर्शन और आराधना से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसलिए, भिक्षु के प्रति यह श्रद्धा बौद्ध धर्म की साधना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

इसीलिए अपवित्रता से दूषित व्यक्ति पीले वस्त्र के योग्य नहीं है। अपवित्र होने पर इसे पहनना अपवित्रता है। यह पवित्र वस्त्र का अपमान है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 11 और 12

———————————————————————

(धम्मपद 9, 10) <<<< पिछला ॥ श्लोक 11 और 12 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 13, 14)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 11 और 12 - सारिपुत्तथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.3टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 11-12)
1.3.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 11 और 12 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सारे च असारदास्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति,
मिच्छासंकप्पगोचरा॥

सारञ्च सारतो ञत्वा,
असारञ्च सारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति,
सम्मासंकप्पगोचरा॥

———————————————————————

श्लोक 11 : वे असत्य को सत्य मान लेते हैं; वे सत्य को असत्य मान लेते हैं; ऐसे लोग कभी सत्य तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उनके विचार गलत हैं।

———————————————————————

श्लोक 12 : वे सत्य को सत्य मानते हैं; वे असत्य को असत्य मानते हैं; ऐसे लोग सत्य तक पहुँचते हैं, क्योंकि वे सही दृष्टिकोण रखते हैं।

———————————————————————

1. असारे: शाब्दिक अर्थ, सारहीन; टीका के अनुसार, गलत दृष्टिकोण, अर्थात् असत्य।
2. सारे: शाब्दिक अर्थ, सार; टीका के अनुसार, सही दृष्टिकोण, अर्थात् सत्य।
3. सिरम: सत्य — टीका के अनुसार, धम्म का सार। धम्म के सार में शील (नैतिकता के नैतिक उपदेश), समाधि (एकाग्रता), पन्ना (ज्ञान), विमुक्ति (मुक्ति), विमुक्ति-नानदासन (मुक्ति का ज्ञान और अंतर्दृष्टि), हरमत्था (परम सत्य) और निर्वाण शामिल हैं।

———————————————————————

थेरा सारिपुत्त की कहानी

राजगाह में वेलुवाना नामक बांस के जंगल में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (11) और (12) का उच्चारण किया, जो मुख्य शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना (पूर्व में उपतिस्सा और कोलिता) के पूर्व शिक्षक संजय के संदर्भ में थे।

उपतिस्सा और कोलिता, राजगृह के पास स्थित दो गांवों के दो युवक थे। एक नाटक देखते हुए उन्हें वस्तुओं की निरर्थकता का अहसास हुआ और उन्होंने मुक्ति का मार्ग खोजने का निश्चय किया। सर्वप्रथम वे राजगृह में विचरण करने वाले तपस्वी संजय के पास गए, परन्तु

उनकी शिक्षाओं से संतुष्ट नहीं हुए। अतः वे जंबूद्वीप के चारों ओर घूमे और सच्चे धर्म की खोज में असफल होकर अपने जन्मस्थान लौट आए। इस बिंदु पर उन्हें यह समझ आया कि जिसने सच्चे धर्म को पा लिया है, उसे दूसरों को भी इसके बारे में बताना चाहिए।

एक दिन उपतिस्सा की मुलाकात थेरा असाजी से हुई और उन्होंने उनसे धम्म का सार सीखा। थेरा ने "ये धम्म हेतुप्पभव" से शुरू होने वाला श्लोक कहा, जिसका अर्थ है, "वे घटनाएँ जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं"। श्लोक सुनकर उपतिस्सा सोतापत्ति मार्ग और फल में स्थापित हो गए। फिर, जैसा उन्होंने वादा किया था, वे अपने मित्र कोलिता के पास गए, उन्हें बताया कि उन्होंने, उपतिस्सा ने, अमरता की अवस्था प्राप्त कर ली है और अपने मित्र को वही श्लोक दोहराया। कोलिता भी श्लोक के अंत में सोतापत्ति फल में स्थापित हो गए। दोनों को अपने पूर्व गुरु की याद आई और वे संजय के पास गए और उनसे कहा, "हमें वह व्यक्ति मिल गया है जो अमरता का मार्ग दिखा सकता है; बुद्ध संसार में प्रकट हुए हैं; धम्म प्रकट हुआ है; संघ प्रकट हुआ है... आइए, हम गुरु के पास चलें।" उन्हें आशा थी कि उनके पूर्व गुरु उनके साथ बुद्ध के पास जाएंगे और प्रवचन सुनकर वे भी मार्ग और फल को जान लेंगे। लेकिन संजय ने इनकार कर दिया।

इस प्रकार उपतिस्सा और कोलिता अपने ढाई सौ अनुयायियों के साथ वेलुवन स्थित बुद्ध के पास गए। वहाँ उनका दीक्षा संस्कार हुआ और वे भिक्षु संघ में शामिल हो गए। रूपासारी के पुत्र उपतिस्सा को थेरा सारिपुत्त के नाम से जाना जाने लगा; मोग्गली के पुत्र कोलिता को थेरा महा मोग्गलाना के नाम से जाना जाने लगा। दीक्षा के सातवें दिन महा मोग्गलाना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। थेरा सारिपुत्त ने दीक्षा के पखवाड़े भर बाद यही पद प्राप्त किया। उसी दिन बुद्ध ने उन्हें अपना दो प्रमुख शिष्य (अग्ग-सवक) बनाया।

फिर दोनों प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध को बताया कि वे गिरग्गा उत्सव में कैसे गए, थेरा असाजी से उनकी मुलाकात कैसे हुई और उन्हें सोतापत्ति का फल कैसे प्राप्त हुआ। उन्होंने बुद्ध को अपने पूर्व गुरु संजय के बारे में भी बताया, जिन्होंने उनके साथ जाने से इनकार कर दिया था। संजय ने कहा था, "इतने सारे शिष्यों का गुरु होने के नाते, मेरा उनका शिष्य बनना ऐसा होगा जैसे घड़ा पीने का प्याला बन जाए। इसके अलावा, बुद्धिमान तो कुछ ही होते हैं और अधिकांश मूर्ख होते हैं; बुद्धिमान बुद्धिमान गौतम के पास जाएं, मूर्ख तो फिर भी मेरे पास ही आएंगे। आप अपने-अपने मार्ग पर चलें, मेरे शिष्यों।"

इस प्रकार, जैसा कि बुद्ध ने बताया, संजय का झूठा अभिमान उसे सत्य को सत्य के रूप में देखने से रोक रहा था; वह असत्य को सत्य के रूप में देख रहा था और कभी भी वास्तविक सत्य तक नहीं पहुंच पाएगा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————

श्लोक 11 : वे असत्य को सत्य मान लेते हैं; वे सत्य को असत्य मान लेते हैं; ऐसे लोग कभी सत्य तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उनके विचार गलत हैं।

———————————————————

श्लोक 12 : वे सत्य को सत्य और असत्य को असत्य मानते हैं; ऐसे लोग सत्य तक पहुँचते हैं, क्योंकि वे सही दृष्टिकोण रखते हैं। प्रवचन के अंत में, बहुत से लोग सोतापत्ति फल प्राप्ति में स्थापित हुए।

———————————————————

प्रवचन के अंत में, कई लोग सोतापत्ति फल प्राप्ति में स्थापित हो गए।

———————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु सारिपुत्त की कहानी

राजगृह में स्थित वेलुवाना नामक बांस के उपवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इन श्लोकों का उल्लेख संजय के संदर्भ में किया था, जो उनके प्रमुख शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना (पूर्व में उपतिस्सा और कोलिता) के पूर्व शिक्षक थे।

बुद्ध के जन्म से पहले, राजगृह से कुछ ही दूरी पर उपतिस्सा और कोलिता नामक दो ब्राह्मण गाँव थे। एक दिन उपतिस्सा गाँव में रहने वाली रूपासरी नामक ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती हुई; और उसी दिन कोलिता गाँव में रहने वाली मोग्गली नामक ब्राह्मण की पत्नी भी गर्भवती हुई। कहा जाता है कि सात पीढ़ियों से ये दोनों परिवार मित्रता के बंधन में बंधे हुए थे; उन्होंने एक ही दिन दोनों गर्भवती माताओं के लिए गर्भ संरक्षण अनुष्ठान किया। दस चंद्र माह बीतने पर, दोनों स्त्रियों ने पुत्रों को जन्म दिया।

बच्चों के नामकरण के लिए निर्धारित दिन पर, उन्होंने सारी नामक ब्राह्मण स्त्री के पुत्र का नाम उपतिस्सा रखा, क्योंकि वह उपतिस्सा गाँव के प्रमुख परिवार का पुत्र था; दूसरे पुत्र का नाम कोलिता रखा गया, क्योंकि वह कोलिता गाँव के प्रमुख परिवार का पुत्र था। बड़े होने पर, दोनों पुत्रों ने सभी कलाओं और विज्ञानों में सर्वोच्च दक्षता प्राप्त की। जब भी युवक उपतिस्सा नदी या उद्यान में आनंद लेने जाता था, तो उसके साथ पाँच सौ सोने की पालकी होती थीं; युवक कोलिता के साथ पाँच सौ रथ होते थे जिन्हें शुद्ध नस्ल के घोड़े खींचते थे। दोनों युवकों के साथ पाँच-पाँच सौ लड़कों का दल होता था।

राजगृह में हर साल एक उत्सव मनाया जाता है जिसे पर्वत शिखर उत्सव के नाम से जाना जाता है। दो युवकों के लिए एक जगह पर पलंग लगाया गया और वे साथ बैठकर दृश्य देखते रहे। जब हंसने का अवसर होता, तो वे हंसते; जब रोने का अवसर होता, तो वे रोते; जब दान देने का समय होता, तो वे दान देते। इस प्रकार उन्होंने कई दिनों तक उत्सव देखा। लेकिन एक दिन, जब वे समझदार हो गए, तो वे उस समय नहीं हंसे जब वे हंस सकते थे, जैसे पहले दिनों में वे नहीं रोए थे जब वे रो सकते थे, और जब उनसे दान मांगा गया तो उन्होंने दान नहीं दिया।

हमें बताया जाता है कि दोनों युवकों के मन में यह विचार आया, "हम इसे क्यों देखें? सौ वर्ष बीतने से पहले ही ये सब लोग यहाँ से चले जाएँगे और फिर कभी दिखाई नहीं देंगे। हमें तो मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए।" इस विचार को मन में बिठाकर वे बैठ गए। तब कोलिता ने उपतिस्सा से कहा, "मित्र उपतिस्सा, तुम पहले की तरह प्रसन्न और आनंदित नहीं लग रहे हो। बल्कि तुम उदासी से ग्रस्त हो। तुम्हारे मन में क्या है?" "मित्र कोलिता, मैं सोच रहा हूँ, 'इन लोगों को देखने से कोई स्थायी संतोष नहीं मिलता; यह सब व्यर्थ है; मुझे तो स्वयं मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए।' लेकिन तुम उदास क्यों हो?" कोलिता ने भी यही कहा। जब उपतिस्सा को पता चला कि कोलिता के विचार उसके अपने विचारों से मिलते हैं, तो उसने कहा, "हम दोनों के मन में एक ही विचार आया है। हम दोनों को ही मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए और साथ ही संसार से संन्यास लेना चाहिए। हम किस गुरु के मार्गदर्शन में संसार से संन्यास लेंगे?"

उसी समय संजय नामक एक विचरणशील तपस्वी अपने साथ कई अन्य विचरणशील तपस्वियों को लेकर राजगृह नगर में प्रवेश किया। उपतिस्सा और कोलिता ने कहा, "हम संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बनेंगे।" अतः उन्होंने पाँच सौ सेवकों को यह कहकर विदा कर दिया, "पालक और रथ लेकर जाओ," और शेष पाँच सौ सेवकों के साथ संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बन गए। जिस दिन से इन दोनों युवकों ने संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बने, उसी दिन से संजय यश और समृद्धि के शिखर पर पहुँच गए। कुछ ही दिनों में वे संजय के उपदेशों की सीमा पार कर गए। इसलिए उन्होंने संजय से पूछा, "गुरुजी, क्या यही वह सारा धार्मिक सत्य है जो आप जानते हैं, या इसके अतिरिक्त भी कुछ है?" संजय ने उत्तर दिया, "यही सब कुछ है; तुम सब कुछ जानते हो।"

उपतिस्सा और कोलिता ने जो प्रश्न पूछे, उनका उत्तर अन्य लोग भी नहीं दे सके; परन्तु अन्य लोगों ने जितने भी प्रश्न पूछे, उपतिस्सा और कोलिता ने उन सबका उत्तर दिया। इस प्रकार वे गुलाब-अरबी की भूमि पर यात्रा करते रहे; फिर वे वापस लौट आए और अपने-अपने घर आ गए। विदा होने से पहले उपतिस्सा ने कोलिता से कहा, "मित्र कोलिता, हम दोनों में से जो भी पहले मृत्यु को प्राप्त करे, वह दूसरे को सूचित करे।" यह समझौता करके वे विदा हो गए।

एक दिन, घुमंतू तपस्वी उपतिस्सा ने भिक्षु असाजी को देखा। उपतिस्सा ने उनसे कहा, "भाई, आपकी इंद्रियाँ शांत और निर्मल हैं; आपकी त्वचा का रंग निर्मल और साफ है। भाई, आपने संसार का त्याग किसके लिए किया? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?" "भाई, मैं अभी नौसिखिया ही हूँ; मुझे भिक्षु बने अभी कुछ ही समय हुआ है; लेकिन हाल ही में मैंने बुद्ध के सिद्धांत और अनुशासन को अपनाया है।" तपस्वी ने कहा, "मैं उपतिस्सा हूँ; आप अपनी क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा बोलिए; मैं आपके अर्थ को सौ या हजार तरीकों से समझ लूँगा।" भिक्षु असाजी की बात सुनकर उपतिस्सा को उच्चतर ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद उपतिस्सा अपने मित्र कोलिता से मिले और उन्हें बताया कि उन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है। उन्होंने वही श्लोक पढ़ा जो असाजी ने पढ़ा था। कोलिता को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ। उन्होंने बुद्ध से मिलने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि उन्हें अपने पूर्व गुरु संजय को भी साथ चलने के लिए कहना चाहिए। "आप जा सकते हैं; "मैं नहीं आ सकता," संजय ने कहा। "पहले मैं लोगों के गुरु के रूप में घूम-घूम कर उन्हें सिखाता रहा हूँ। मेरे लिए फिर से शिष्य बनना कतई बेतुका होगा।"

"गुरुजी, ऐसा मत कीजिए," उपतिस्सा ने कहा। "गुरुजी, बुद्ध के संसार में प्रकट होने के क्षण से ही लोग उनकी आराधना करते आए हैं। आइए हम भी वहीं चलें। अब आप क्या करने का इरादा रखते हैं?" संजय ने उत्तर दिया, "मित्रों, इस संसार में मूर्ख अधिक हैं या बुद्धिमान?" "गुरुजी, मूर्ख तो बहुत हैं, बुद्धिमान अल्प हैं।" संजय ने कहा, "तो फिर मित्रों, बुद्धिमान लोग बुद्धिमान भिक्षु गौतम के पास जाएँ और मूर्ख लोग मेरे पास आएँ।" उपतिस्सा और कोलिता चले गए। संजय के समूह के लगभग ढाई सौ विचरण करने वाले तपस्वी भी उन दोनों मित्रों के साथ शामिल हो गए।

फिर कोलिता और उपतिस्सा ने बुद्ध को देखा और उनके प्रमुख शिष्य बन गए। उपतिस्सा सारिपुत्त कहलाए और कोलिता मोग्गलाना कहलाए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि संजय बुद्ध से मिलने नहीं आ रहे हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 11)

असारे सारामातिनो सारे च असारदास्सिनो

मिच्चसंकप्पगोचरा ते सारं न अधिगच्छन्ति

asāre : जो मूल्य नहीं हैं; सारमतिनो (sāramatino)

[पाठभेद: सारमतिना (sāramatina)]: यदि उन्हें मूल्य माना जाए; sāre ca : और जो मूल्य हैं; असारदस्सिनो (asāradassino) [पाठभेद: असारदस्सिना (asāradassina))] यदि उन्हें मूल्य न माना जाए; micchāsaṅkappagocarā : गलत आकांक्षाओं में लिप्त; te : वे (अज्ञानी लोग); sāraṃ [sāra]: मूल्यों के लिए; na adhigacchanti : प्राप्त नहीं करते।

आध्यात्मिक उन्नति में रुचि रखने वाले व्यक्ति को आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। यह सत्य है कि भौतिक वस्तुएँ भी आवश्यक हैं। परन्तु आध्यात्मिक उन्नति के लिए भौतिक वस्तुओं को ही प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए। यदि लोग भौतिक मूल्यों को ही प्राथमिकता देंगे तो वे किसी भी आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त नहीं कर सकते।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 12)

सारं शरतो च असारं असारतो च नात्वा सम्मा
संकप्पा गोचरा ते सारं अधिगच्छन्ति ।

सारं [सारा]: सच्चे मूल्य; सारतो च : सच्चे मूल्यों के रूप में; असारं [असार]: जो मूल्य नहीं हैं; असारतो च : मान नहीं; णत्वा : समझकर; सम्मा संकप्पा गोकारा : सही आकांक्षाओं से धन्य; ते : वे (बुद्धिमान व्यक्ति); सारं [सारा]: सच्चे मूल्य; अधिगच्छन्ति : प्राप्त करें.

जो बुद्धिमान व्यक्ति आध्यात्मिक उपलब्धियों की ओर ले जाने वाले सच्चे मूल्यों को पहचान सकता है, वह आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त करने में सक्षम होता है। ऐसा व्यक्ति सही दृष्टिकोण वाला होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 11-12)

ये दो श्लोक आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक 'मूल्यबोध' के महत्व पर बल देते हैं। हमारा मूल्यबोध ही हमारे जीवन को दिशा देता है। हमारे जीवन की पवित्रता और समृद्धि हमारे मूल्यबोध पर निर्भर करती है। वास्तव में, श्रेष्ठता और हीनता का हमारा निर्णय, हमारी खुशी और उपलब्धि का बोध भी इसी मूल्यबोध पर आधारित है।

जिन लोगों को मूल्यों की गलत समझ होती है, उनकी आकांक्षाएं भी गलत होती हैं, और वे जीवन की सच्ची समृद्धि कभी प्राप्त नहीं कर पाते।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 13 और 14

———————————————————————————

(धम्मपद 11, 12) <<<< पिछला || श्लोक 13 और 14 || अगला >>>> (धम्मपद 15)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 13 और 14 - नंदथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 13 और 14 - नंदत्थेरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा अगरम दुच्चन्नम
vutthi samativijjhati
evam abhavitam cittam
rago samativijjhati.

यथा अगरम सुचन्नम
vutthi na samativijjhati
evam subhavitam cittam
rago na samativijjhati.

श्लोक 13 : जैसे बारिश खराब छत वाले घर में घुस जाती है, वैसे ही, राग (काम) उस मन में प्रवेश कर जाता है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में विकसित नहीं हुआ है।

श्लोक 14 : जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छत वाले घर में प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार, शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में अच्छी तरह से विकसित मन में राग प्रवेश नहीं कर सकता।

थेरा नंदा की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अपने चचेरे भाई थेरा नंदा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (13) और (14) का उच्चारण किया।

एक बार बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में निवास कर रहे थे, तभी उनके पिता राजा सुद्धोदन ने बार-बार दूत भेजकर बुद्ध से कपिलवस्तु नगर आने का अनुरोध किया। तदनुसार, बुद्ध बीस हजार अरहतों के साथ कपिलवस्तु की यात्रा पर निकले। कपिलवस्तु पहुँचकर उन्होंने अपने सगे-संबंधियों की सभा में वेस्सन्तरा जातक कथा सुनाई। दूसरे दिन, वे नगर में प्रवेश कर गए, जहाँ उन्होंने "उत्तित्ते नप्पमज्जेय्या ..." (अर्थात, उठो और ध्यान रखो ...") श्लोक का पाठ करके अपने पिता को सोतापत्ति पुण्य की प्राप्ति कराई। महल पहुँचकर बुद्ध ने "धम्मं चरे सुचरितं ..." (अर्थात, धम्म का अभ्यास करो ...") श्लोक का पाठ करके राजा को शकदागामी पुण्य की प्राप्ति कराई। भोजन के बाद उन्होंने राहुल की माता के गुणों का वर्णन करते हुए चंदकिन्नरी जातक कथा सुनाई।

तीसरे दिन, बुद्ध के चचेरे भाई राजकुमार नंदा का विवाह समारोह था। बुद्ध भिक्षा मांगने गए और उन्होंने भिक्षापात्र राजकुमार नंदा को सौंप दिया। फिर वे भिक्षापात्र वापस लिए बिना ही चले गए। इसलिए राजकुमार को भिक्षापात्र लिए हुए बुद्ध के पीछे जाना पड़ा। दुल्हन, राजकुमारी जनपदकल्याणी ने राजकुमार को बुद्ध के पीछे जाते देख दौड़कर राजकुमार से जल्दी लौटने की गुहार लगाई। मठ में राजकुमार को भिक्षु के रूप में संघ में शामिल कर लिया गया।

बाद में, बुद्ध सावत्थी के जेत उद्यान में अनाथपिंडिका द्वारा निर्मित मठ में रहने लगे। वहाँ रहते हुए नंदा असंतुष्ट और उदासीन थे तथा उन्हें भिक्षु जीवन में कोई आनंद नहीं मिला। वे गृहस्थ जीवन में लौटना चाहते थे क्योंकि उन्हें राजकुमारी जनपदकल्याणी के वे शब्द बार-बार याद आते थे जिनमें उन्होंने उनसे शीघ्र लौटने का आग्रह किया था।

यह जानकर, बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से नंदा को तावतिंस लोक की सुंदर देवियाँ दिखाईं, जो राजकुमारी जनपदकल्याणी से कहीं अधिक सुंदर थीं। उन्होंने नंदा से वादा किया कि यदि वह धर्म के अभ्यास में दृढ़ परिश्रम करें, तो वे उन्हें नंदा के लिए प्राप्त करवा देंगे। अन्य भिक्षुओं ने नंदा का उपहास करते हुए कहा कि वह सुंदर स्त्रियों के लिए धर्म का अभ्यास करने वाले भाड़े के भिक्षु के समान हैं। नंदा को बहुत पीड़ा और शर्मिंदगी हुई। इसलिए, एकांत में उन्होंने धर्म के अभ्यास में बहुत परिश्रम किया और अंततः अर्हतत्व प्राप्त किया। अर्हत बनने पर उनका मन सभी आसक्तियों से पूर्णतः मुक्त हो गया, और बुद्ध भी नंदा से किए गए अपने वादे से मुक्त हो गए। यह सब बुद्ध ने प्रारंभ से ही देख लिया था।

अन्य भिक्षुओं को जब पता चला कि नंदा भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं हैं, तो उन्होंने उनसे फिर पूछा कि उनका हालचाल क्या है। जब उन्होंने उत्तर दिया कि गृहस्थ जीवन से उनका कोई लगाव नहीं रह गया है, तो उन्हें लगा कि नंदा सच नहीं बोल रहे हैं। इसलिए उन्होंने बुद्ध को इस बारे में बताया और साथ ही अपनी शंका भी व्यक्त की। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि पहले नंदा का स्वभाव एक टूटी छत वाले घर जैसा था, परन्तु अब वह एक अच्छी छत वाले घर जैसा हो गया है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 13 : जैसे बारिश खराब छत वाले घर में घुस जाती है, वैसे ही, राग (काम) उस मन में प्रवेश कर जाता है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में विकसित नहीं हुआ है।

श्लोक 14 : जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छत वाले घर में प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार, शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में अच्छी तरह से विकसित मन में राग प्रवेश नहीं कर सकता।

सकादगामी फल : सकादगामी फल, 'फल' या 'फल प्राप्ति'। यह सकादगामी मार्ग के तुरंत बाद आता है, जो दूसरा मार्ग या ज्ञानोदय का दूसरा चरण है, जिसे अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु नंदा की कहानी

सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अपने चचेरे भाई भिक्षु नंदा के संदर्भ में ये श्लोक कहे। पूज्य कालुदायी यह जानते हुए कि बुद्ध के अपने पिता से मिलने जाने का उचित समय है, उन्होंने यात्रा की सुंदरता का वर्णन किया और बुद्ध को उनके अनेक अरहतों के दल सहित कपिलपुरा ले गए। वहाँ, अपने सगे-संबंधियों के साथ, बुद्ध ने वर्षा की बूँद को पाठ के रूप में ग्रहण करते हुए वेस्सन्तरा जातक की कथा सुनाई। अगले दिन वे भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश किया। "मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए और असावधानी का जीवन नहीं जीना चाहिए" श्लोक का पाठ करके उन्होंने अपने पिता को धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित किया; और "मनुष्य को धार्मिक जीवन जीना चाहिए" श्लोक का पाठ करके उन्होंने महा प्रजापति को धर्म परिवर्तन के फल में और अपने पिता को द्वितीय मार्ग के फल में स्थापित किया।

अगले दिन, जब राजकुमार नंदा के अभिषेक, गृह प्रवेश और विवाह की रस्में चल रही थीं, तब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए घर में आए, अपना भिक्षापात्र राजकुमार नंदा के हाथों में रखा और उन्हें शुभकामनाएँ दीं। फिर, वे अपने आसन से उठकर राजकुमार के हाथों से भिक्षापात्र लिए बिना ही चले गए। बुद्ध के प्रति श्रद्धावश राजकुमार नंदा ने यह कहने का साहस नहीं किया, "आदरणीय, अपना भिक्षापात्र ग्रहण कीजिए," बल्कि मन ही मन सोचा, "वे सीढ़ियों के शीर्ष पर अपना भिक्षापात्र ग्रहण करेंगे।" लेकिन जब बुद्ध सीढ़ियों के शीर्ष पर पहुँचे, तब भी उन्होंने अपना भिक्षापात्र ग्रहण नहीं किया। नंदा ने सोचा, "वे सीढ़ियों के नीचे अपना भिक्षापात्र ग्रहण करेंगे।" लेकिन बुद्ध ने वहाँ भी अपना भिक्षापात्र ग्रहण नहीं किया। नंदा अपनी दुल्हन के पास लौटने के लिए बहुत उत्सुक थे, और अपनी इच्छा के विरुद्ध भी बुद्ध के पीछे-पीछे चले गए। लेकिन बुद्ध के प्रति उनकी श्रद्धा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने "अपना प्याला ग्रहण करो" कहने का साहस नहीं किया, बल्कि बुद्ध का अनुसरण करते हुए मन ही मन सोचते रहे, "वह अपना प्याला यहाँ लेंगे! वह अपना प्याला वहाँ लेंगे! वह अपना प्याला वहाँ लेंगे!"

उसी क्षण उन्होंने नन्द की दुल्हन जनपदा कल्याणी, जो देश की सबसे सुंदर स्त्री थीं, को यह संदेश दिया, "महामहिम, बुद्ध राजकुमार नन्द को अपने साथ ले गए हैं; उनका इरादा आपको उनसे वंचित करना है।" तब जनपदा कल्याणी, आँखों में आँसू लिए और आधे-अधूरे कंघी किए बालों के साथ, जितनी तेज़ी से हो सकती थी, राजकुमार नन्द के पीछे दौड़ीं और उनसे कहा, "हे महाराज, कृपया शीघ्र लौट आइए।" उनके शब्दों से नन्द का हृदय काँप उठा; परन्तु बुद्ध ने अपना पान-पात्र उठाए बिना ही उन्हें मठ ले गए और उनसे कहा, "नन्द, क्या तुम भिक्षु बनना चाहोगे?" बुद्ध के प्रति राजकुमार नन्द का आदर इतना अधिक था कि उन्होंने "मैं भिक्षु नहीं बनना चाहता" कहने के बजाय कहा, "हाँ, मैं भिक्षु बनना चाहता हूँ।" बुद्ध ने कहा, "तो फिर, नन्द को भिक्षु बना दीजिए।" इस प्रकार, बुद्ध के कपिलपुरा पहुंचने के तीसरे दिन उन्होंने नंदा को भिक्षु बना दिया।

जब बुद्ध जेतवन में निवास कर रहे थे, तब पूज्य नंदा असंतुष्ट होकर भिक्षुओं को अपनी पीड़ा बताते हुए बोले, "भाइयों, मैं असंतुष्ट हूँ। मैं अभी धार्मिक जीवन जी रहा हूँ, परन्तु अब और अधिक धार्मिक जीवन जीना मेरे लिए संभव नहीं है। मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता हूँ।"

इस घटना के बारे में सुनकर भगवान ने पूज्य नंदा को बुलवाया और उनसे कहा, "नंदा, क्या यह बात सच है कि आपने भिक्षुओं के एक बड़े समूह से इस प्रकार कहा, 'भाइयों, मैं असंतुष्ट हूँ; मैं अभी धार्मिक जीवन जी रहा हूँ, लेकिन मैं अब और धार्मिक जीवन नहीं जी सकता; मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता हूँ'?" "जी, यह बिल्कुल सच है।" "परन्तु, नंदा, आप अपने वर्तमान धार्मिक जीवन से क्यों असंतुष्ट हैं? आप अब और धार्मिक जीवन क्यों नहीं जी सकते? आप उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में क्यों लौटना चाहते हैं?" "जी, जब मैं अपने घर से निकला, तो मेरी प्रिय पत्नी जनपदा-कल्याणी, जिनके बाल आधे कंघी किए हुए थे, ने मुझसे विदा लेते हुए कहा, 'महोदय, कृपया शीघ्र लौट आइए।'" हे पूज्यवर, मैं उसका बार-बार स्मरण करने के कारण ही अपने वर्तमान धार्मिक जीवन से असंतुष्ट हूँ; मैं अब और धार्मिक जीवन नहीं जी सकता; मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में लौटने का इरादा रखता हूँ।" तब भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा का हाथ पकड़कर उन्हें तैंतीस लोकों में ले गए। रास्ते में बुद्ध ने पूज्य नंदा को एक जले हुए खेत में, एक जले हुए ठूंठ पर बैठी एक लालची बंदरिया दिखाई, जिसके कान, नाक और पूंछ आग में जलकर नष्ट हो गए थे।

जब वे तैंतीस लोकों में पहुँचे, तो उन्होंने पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं की ओर इशारा किया जो देवताओं के राजा सक्का की सेवा में आई थीं। बुद्ध ने पूज्य नंदा को ये दोनों दृश्य दिखाकर उनसे यह प्रश्न पूछा, "नंदा, आप किसे अधिक सुंदर, आकर्षक और दर्शनीय मानते हैं, आपकी श्रेष्ठ पत्नी जनपदा-कल्याणी को या इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को?"

" हे पूज्यवर ," नंदा ने उत्तर दिया , " जिस प्रकार यह लालची बंदरिया, जिसके कान, नाक और पूंछ कट चुके हैं , जनपदा-कल्याणी से इतनी ही हीन है , हे पूज्यवर , उसी प्रकार मेरी श्रेष्ठ पत्नी जनपदा-कल्याणी इन पांच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं से हीन है ।"

"नंदा, हिम्मत रखो!" भगवान ने उत्तर दिया। "मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ कि तुम इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीत लोगे।" आदरणीय नंदा ने कहा, "हे भगवान, यदि बुद्ध मुझे इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीतने का आश्वासन देते हैं, तो आदरणीय महोदय, मुझे एक धार्मिक व्यक्ति का उच्च जीवन जीने में अत्यंत आनंद आएगा।"

आदरणीय नंदा, यद्यपि उनके साथी भिक्षु उन्हें अप्सराओं की खोज में लगे रहने के कारण तिरस्कृत करते थे, फिर भी एकांत में रहकर, संसार से विमुख होकर, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, थोड़े ही समय में, इस जीवन में ही, धार्मिक जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। उन्होंने यह जान लिया था: "जन्म का अंत हो गया, पवित्र जीवन जी लिया गया, कर्तव्य पूरा हो गया: मैं अब इस संसार का नहीं हूँ।" और अरहतों में एक और आदरणीय वृद्ध भी थे।

रात के समय पूज्य नंदा बुद्ध के पास आए और बोले, "पूज्यवर, मैं बुद्ध को उस वचन से मुक्त करता हूँ जो उन्होंने मुझे पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीतने का आश्वासन देते हुए दिया था।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "नंदा, मैंने स्वयं अपने मन से तुम्हारे मन को वश में कर लिया है।" भिक्षु कहने लगे, "पहले वे कहते थे, 'मैं असंतुष्ट हूँ,' लेकिन अब कहते हैं, 'मैं किसी भी प्रकार से गृहस्थ जीवन के प्रति इच्छुक नहीं हूँ।'" और वे तुरंत जाकर बुद्ध को यह बात बता दी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 13)

दुच्चन्नं अग्रं वुथि यथा समति विज्जति
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्जति

डुच्चन्नं [डुच्चन्ना]: बुरी तरह से छप्परदार; अग्रं [अग्र]: घर; वुठ्ठी : बारिश; यथा : इस प्रकार; समति विज्जति : प्रवेश करता है; एवम् : उस ढंग से; अभावितम् [अभाविता]: असंस्कृत; चित्तं [चित्त]: स्वभाव; रागो : जुनून; समतिविज्जति : प्रवेश करता है।

घर की छत अच्छी तरह से बनी होनी चाहिए, यह अत्यंत आवश्यक है। यदि छत कमजोर हो, तो बारिश का पानी घर में रिस जाता है। जिस प्रकार खराब छत से बारिश का पानी अंदर आ जाता है, उसी प्रकार असभ्य स्वभाव भी वासनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। असभ्य स्वभाव आसानी से कामवासनाओं से प्रभावित हो जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 14)

सुच्चन्नं अग्रं वुथि यथा न समति विज्जति
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समति विज्जति

सुचन्नं [सुचन्ना]: अच्छी तरह से छप्परदार; अग्रं [अगर]: निवास, घर; वुठ्ठी : वर्षा; यथा : इस प्रकार; न समति विज्जति : प्रवेश नहीं करता; एवम् : उसी प्रकार; सुभावितम् [सुभाविता]: सुसंस्कृत; चित्तं [चित्त]: स्वभाव; रागो : जुनून; न समति विज्जति : प्रवेश नहीं करता।

जब घर की छत अच्छी तरह से छप्पर से ढकी होती है, तो बारिश से उसे कोई नुकसान नहीं होता, क्योंकि बारिश का पानी उसमें से रिस नहीं पाता। ठीक उसी प्रकार, सुसंस्कृत स्वभाव भी वासना को हावी नहीं होने देता। इसलिए, सुसंस्कृत स्वभाव वासनाओं से प्रभावित नहीं हो सकता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 13-14)

बौद्ध धर्म पर लिखने वाले लेखक ' चित्त ' और ' मनो ' शब्दों का अनुवाद अक्सर इस तरह करते हैं मानो वे समानार्थी और एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हों। दोनों शब्दों का सामान्य अर्थ 'मन' ही होता है। बौद्ध धर्म 'मन' नामक किसी सत्ता या 'मन-शरीर' द्वैत को मान्यता नहीं देता। हालांकि, बौद्ध धर्म मनो-शारीरिक गतिविधि की संज्ञानात्मक (मनो) और भावात्मक (चित्त) प्रक्रियाओं को मान्यता देता है, जिन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से शारीरिक और व्यक्तिपरक रूप से मानसिक माना जा सकता है। इन श्लोकों में ' चित्त ' शब्द भावात्मक प्रक्रिया को भी संदर्भित कर सकता है, जिसे अधिक उपयुक्त रूप से 'स्वभाव' कहा जा सकता है।

' भावना ' शब्द का सामान्यतः अनुवाद 'ध्यान' के रूप में भी किया जाता है। लेकिन ' भावना ' शब्द का अधिक सार्थक अनुवाद 'संस्कृति' है। भावना वह संस्कृति और विकास है जो अच्छे व्यवहार और सुख की ओर ले जाने वाली संज्ञानात्मक और भावात्मक प्रक्रियाओं को विकसित करती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 15

———————————————————

(धम्मपद 13, 14) <<<< पिछला ‖ श्लोक 15 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 16)

———————————————————

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 15 - कुंडसुकरिका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 15 - कुंडसुकरिका वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Idha socati pecca socati
papakari ubhayattha socati
so socati so vihannati
disva kammakilitthamattano.

———————————————————————

श्लोक 15 : वह यहाँ शोक करता है, परलोक में भी शोक करता है; पापी दोनों जन्मों में शोक करता है। वह अपने कर्मों की बुराई देखकर शोक करता है और पीड़ा भोगता है।

———————————————————————

कुंडासुकारिका की कहानी

राजगाह में वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सूअर का मांस बेचने वाले चुंडा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (15) कहा।

एक समय की बात है, वेलुवाना मठ से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में चुंडा नाम का एक अत्यंत क्रूर और निर्दयी सुअर काटने वाला रहता था। चुंडा पचपन वर्षों से अधिक समय से सुअर काटने का काम कर रहा था; इस पूरे समय में उसने एक भी पुण्य कर्म नहीं किया था। मरने से पहले वह इतनी पीड़ा में था कि वह लगातार कराहता और चीखता रहा और सात दिनों तक सूअर की तरह अपने हाथों और घुटनों के बल रेंगता रहा। वास्तव में, मरने से पहले भी वह निरय* की स्थिति में था। सातवें दिन उस सुअर काटने वाले की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। इस प्रकार, दुष्ट को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है; वह इस लोक में भी और परलोक में भी भोगता है।

इस संदर्भ में बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 15 : वह यहाँ शोक करता है, परलोक में भी शोक करता है; पापी दोनों जन्मों में शोक करता है। वह अपने कर्मों की बुराई देखकर शोक करता है और पीड़ा भोगता है।

———————————————————————

निरय या नरक : निरंतर पीड़ा का स्थान, जिसकी तुलना कभी-कभी नरक से की जाती है; लेकिन यह नरक से भिन्न है क्योंकि निरय में पीड़ा नरक की तरह शाश्वत नहीं होती। अविचि निरय सभी निरयों में सबसे भयानक है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुंडासुकारिका की कहानी

राजगृह के वेलुवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने सूअर का मांस बेचने वाले चुंडा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

यद्यपि बुद्ध पास के एक मठ में निवास कर रहे थे, फिर भी चुंडा ने एक दिन भी उन्हें मुट्ठी भर फूल या एक चम्मच चावल भेंट करके उनका सम्मान नहीं किया, और न ही उसने इसके अलावा कोई पुण्य कार्य किया।

एक दिन वह पागलपन के दौरे से घिर गया, और जब तक वह जीवित रहा, उसके सामने दुख के क्षेत्र की अग्नि भड़क उठी।

जब सूअर का मांस बेचने वाले कुंडा के समक्ष दुख के लोक की पीड़ा प्रकट हुई, तो उसका व्यवहार उसके पिछले कर्मों के अनुरूप बदल गया। घर में रहते हुए भी वह सूअर की तरह गुर्राने लगा और हाथों-पैरों के बल रेंगने लगा, पहले घर के आगे और फिर पीछे की ओर।

उसके घरवालों ने उसे काबू में कर लिया और उसका मुंह बंद कर दिया। लेकिन उनके तमाम प्रयासों के बावजूद (क्योंकि किसी के पिछले कर्मों का फल मिलना असंभव है), वह लगातार सूअर की तरह गुर्राते हुए इधर-उधर रेंगता रहा।

आस-पास के सात घरों में कोई भी सो नहीं सका। उसके घरवाले मृत्यु के भय से भयभीत होकर, उसे बाहर जाने से रोकने में असमर्थ होने के कारण, घर के दरवाजों पर ताला लगा दिया ताकि वह बाहर न निकल सके। इस प्रकार सात दिनों तक कष्ट सहने के बाद, उसकी मृत्यु हो गई और उसने दुख के लोक में पुनर्जन्म लिया।

कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, सूअर काटने वाले चुंडा के घर का दरवाजा सात दिनों से बंद है और सात दिनों से सूअरों को काटा जा रहा है; निस्संदेह वह कुछ मेहमानों का स्वागत करना चाहता है। ऐसा क्रूर और बर्बर प्राणी पहले कभी नहीं देखा गया।"

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, इसने सात दिनों से सूअर नहीं मारे हैं। इसके कर्मों का फल इसे भुगतना पड़ा है। जीवित रहते हुए भी, इसे दुखलोक की पीड़ा सता रही थी। इस पीड़ा के कारण यह सात दिनों तक अपने घर में इधर-उधर रेंगता रहा, सूअर की तरह गुर्राता और चीखता रहा। आज इसकी मृत्यु हो गई और यह नरक में पुनर्जन्म लिया।" बुद्ध के ऐसा कहने पर भिक्षुओं ने कहा, "हे प्रभु, इस संसार में इतना कष्ट सहने के बाद, यह फिर से दुखलोक गया और वहाँ इसका पुनर्जन्म हुआ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 15)

पापकारी इधा सोकाति पेक्का सोकाति उभयत्था सोकाति
सो अत्तनो किलिट्ठं कम्मं दिस्व सोकति सो विहानति

पापकारी : दुष्ट कर्ता; इधा : इस संसार में; सोकाती : दुःख; पेक्का : अगली दुनिया में; सोकाती : दुःख; उभयत्था : दोनों लोकों में; सोकाती : दुःख; इसलिए वह; अट्टानो [अट्टाना]: उसका अपना; किलिट्ठं कम्मं [कम्म]: दोषपूर्ण कार्य; दिस्वा : देखा हुआ; सोकाती : दुःख; इसलिए वह; विहानति : परेशान है .

चुंडा की कहानी धम्मपद के पहले श्लोक (1:1) के कथन की पुष्टि करती है कि बुराई का परिणाम केवल बुराई ही होता है। साथ ही, बुरे कर्मों के कुछ परिणाम इसी जीवन में भुगतने पड़ते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 15)

बुरे कर्म करने वाले लोग कर्म करते समय उनके परिणामों से अनभिज्ञ होते हैं। इसलिए, परिणाम देखकर वे पश्चाताप करते हैं। इससे उन्हें दुख होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य को हमेशा अपने कर्मों के परिणाम भुगतने ही पड़ें, बिना किसी आशा के। यदि ऐसा है, तो धार्मिक जीवन जीने का कोई लाभ नहीं है, और न ही मुक्ति के लिए प्रयास करने का कोई अवसर है।

इन दो श्लोकों में परलोक के दुख और सुख का भी संकेत मिलता है। बौद्ध धर्म में यह मान्यता नहीं है कि पृथ्वी पर जीवन ही एकमात्र जीवन है और मनुष्य ही एकमात्र प्राणी हैं। अस्तित्व के विभिन्न स्तर हैं और प्राणी असंख्य हैं। मृत्यु के बाद व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य के रूप में, निम्नतर अवस्था में या दिव्य लोक में जन्म ले सकता है। परलोक में तथाकथित प्राणी न तो अपने पूर्ववर्ती के समान होता है (क्योंकि वह परिवर्तित हो चुका होता है) और न ही पूर्णतः भिन्न (क्योंकि वह जीवन की एक ही धारा है)। बौद्ध धर्म प्राणी की एकरूपता का खंडन करता है, परन्तु प्रक्रिया की एकरूपता को स्वीकार करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 16

(धम्मपद 15) <<<< पिछला ॥ श्लोक 16 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 17)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 16 - धम्मिका-उपासक वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 16 - धम्मिका-उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Idha modati pecca modati

katapunno ubhayattha modati
so modati so pamodati
disva kammavisuddhimattano.

श्लोक 16 : वह यहाँ भी प्रसन्न होता है, परलोक में भी प्रसन्न होता है; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की पवित्रता देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है।

धम्मिका उपासक की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य धम्मिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (16) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में धम्मिका नाम का एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो गुणी और दान-पुण्य का बहुत शौकीन था। वह नियमित रूप से और विशेष अवसरों पर भिक्षुओं को उदारतापूर्वक भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करता था। वास्तव में, वह सावत्थी में रहने वाले बुद्ध के पाँच सौ गुणी गृहस्थ शिष्यों का नेता था। धम्मिका के सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं, और वे सभी अपने पिता की तरह गुणी और दान-पुण्य के प्रति समर्पित थे। जब धम्मिका अत्यंत बीमार होकर मृत्युशय्या पर थे, तो उन्होंने संघ से उनके पास आकर उनके पास पवित्र ग्रंथों का पाठ करने का अनुरोध किया। जब भिक्षु महा सतिपथाना सूत्र का पाठ कर रहे थे, तभी छह अलग-अलग लोकों से छह सजे-धजे रथ उन्हें अपने-अपने लोकों में आमंत्रित करने के लिए आए। धम्मिका ने उनसे सूत्र के पाठ में बाधा न पड़ने के कारण कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा। भिक्षुओं ने यह सोचकर कि उन्हें रुकने के लिए कहा जा रहा है, पाठ रोक दिया और वहाँ से चले गए।

कुछ समय बाद, धम्मिका ने अपने बच्चों को अपने लिए इंतज़ार कर रहे छह सजे-धजे रथों के बारे में बताया। उसी क्षण उन्होंने तुषिता लोक से रथ चुनने का निर्णय लिया और अपने एक बच्चे से उस पर एक माला डालने को कहा। फिर उनका प्राण त्याग गया और वे तुषिता लोक में पुनर्जन्म लिए। इस प्रकार, पुण्य पुरुष इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 16 : वह यहाँ भी प्रसन्न होता है, परलोक में भी प्रसन्न होता है; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की पवित्रता देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धम्मिका उपासक की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य धम्मिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, सावत्थी में धम्मिका नाम का एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो गुणी और दान-पुण्य का बहुत शौकीन था। वह नियमित रूप से और विशेष अवसरों पर भी भिक्षुओं को उदारतापूर्वक भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करता था। वास्तव में, वह सावत्थी में रहने वाले बुद्ध के पाँच सौ गुणी गृहस्थ शिष्यों का नेता था। धम्मिका के सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं, और वे सभी अपने पिता की तरह गुणी और दान-पुण्य के प्रति समर्पित थे। जब धम्मिका अत्यंत बीमार होकर मृत्युशय्या पर थे, तो उन्होंने संघ से अपने पास आकर पवित्र ग्रंथों का पाठ करने का अनुरोध किया। जब भिक्षु महासतिपट्ठन सूत्र का पाठ कर रहे थे, तभी छह अलग-अलग लोकों से छह सजे-धजे रथ उन्हें अपने-अपने लोकों में आमंत्रित करने के लिए आ गए। धम्मिका ने उनसे सूत्र के पाठ में बाधा न पड़ने के कारण कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा। भिक्षुओं ने यह सोचकर कि उन्हें रुकने के लिए कहा जा रहा है, पाठ रोक दिया और वहाँ से चले गए।

कुछ देर बाद, धम्मिका ने अपने बच्चों को अपने लिए इंतज़ार कर रहे छह सजे-धजे रथों के बारे में बताया। उसी समय उन्होंने तुषिता लोक के रथ को चुनने का निश्चय किया और अपने एक बच्चे से उस पर फूलों की माला डालने को कहा। तदनुसार, गृहस्थ के बच्चों ने फूलों की माला डाली, और वह रथ के खंभे से चिपक गई और हवा में लटक गई। लोगों ने हवा में लटकी फूलों की माला देखी, लेकिन रथ को नहीं देखा। धम्मिका ने कहा, “क्या तुम यह फूलों की माला देख रहे हो?” “हाँ, हम इसे देख रहे हैं।” “यह माला उस रथ से लटकी है जो तुषिता देवताओं के लोक से आया है। मैं तुषिता देवताओं के लोक जा रहा हूँ; विचलित मत होना। यदि तुम मेरे साथ पुनर्जन्म लेना चाहते हो, तो मेरे जैसे ही पुण्य कर्म करो।” फिर उनका देहांत हो गया और वे तुषिता लोक में पुनर्जन्म लिए। इस प्रकार, पुण्य पुरुष इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होता है। जब वे भिक्षु मठ पहुँचे, तो बुद्ध ने उनसे पूछा, “भिक्षुओं, क्या गृहस्थ शिष्य ने धम्म सुना?” “जी हां, पूज्यवर। लेकिन पाठ के बीच में ही वे 'रुको! रुको!' कहकर हमें रोक दिया। फिर उनके पुत्र-पुत्रियां रोने लगे,

जिसके बाद हम वहां से चले गए।" "भिक्षुओं, वे आपसे बात नहीं कर रहे थे। देवताओं के छह लोकों से छह देवता छह भव्य रूप से सजे रथों में आए और उन्होंने उस गृहस्थ शिष्य को अपने साथ चलने के लिए बुलाया; लेकिन गृहस्थ शिष्य, धम्म में व्यवधान न चाहते हुए, उनसे बात करने लगा।" क्या यह सच है, पूज्यवर?" "यह सच है, भिक्षुओं।" "पूज्यवर, उनका अभी-अभी पुनर्जन्म कहां हुआ?" "तुषिता देवताओं के लोक में, भिक्षुओं।"

"आदरणीय, हाल ही में वे यहाँ अपने सगे-संबंधियों के बीच आनंदमय जीवन व्यतीत कर रहे थे, और अभी-अभी वे फिर से आनंदमय स्थान पर गए और वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ।" "जी हाँ, भिक्षुओं। जो सचेत रहते हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या भिक्षु, दोनों स्थानों में समान रूप से आनंदित होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 16)

कटपुन्नो इधा मोदति पेक्का मोदति उभयत्था मोदति

सो अत्तानो कम्म विशुद्धि दिस्व मोदति सो पमोदति

कटपुन्नो [कटपुन्न]: वह जिसने अच्छे कर्म किए हैं; इधा : इस संसार में ही; मोदाति : आनन्दित; पेक्का : बाद के जीवन में; मोदाति : आनन्दित; उभयत्था : दोनों लोकों में; मोदाति : (वह) आनन्दित होता है; इसलिए वह; अट्टानो [अट्टाना]: उसका अपना; कम्म विशुद्धि [विशुद्धि]: कार्यों की शुद्धता; दिस्वा: देखकर; मोदाति : आनन्दित; इसलिए वह; पमोदति : पूरी तरह से आनंदमय है।

एक बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे कर्म करता है। उन अच्छे कर्मों को करने से वह इस संसार में आनंदित होता है। वह परलोक में भी आनंदित होता है। अपने सद्गुणों की पवित्रता देखकर वह प्रसन्न होता है। अपने कर्मों की अच्छाई देखकर वह अत्यंत आनंदित होता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 16)

कतपुण्यो : धम्मिका अपने जीवनकाल में बहुत अच्छे कर्म करने के कारण मृत्यु शैय्या पर अत्यंत प्रसन्न थे। जो व्यक्ति अपने जीवन भर के सदाचारी आचरण को देखते हुए, फलस्वरूप मृत्यु के बाद सुखद जन्म की आशा रखता है, उसे कतपुण्यो कहा जा सकता है ।

मोदति : आनंदित होना। यह उस व्यक्ति की मनःस्थिति है जिसने जीवन भर अच्छे आचरण का सदुपयोग किया हो। इस श्लोक में वर्णित गृहस्थ शिष्य धम्मिका के रूप में वह अपने जीवन के अंत में आनंद का अनुभव कर सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 17

————————————————————

(धम्मपद 16) <<<< पिछला ॥ श्लोक 17 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 18)

————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 17 - देवदत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 17 - देवदत्त वत्थु

————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

इधा तप्पाती पेक्का तप्पाती
papakari ubhayattha tappati
papam me katanti tappati
भय्यो तप्पति दुग्गतिम्(1) गतो।

————————————————————

श्लोक 17 : यहाँ उसे पीड़ा दी जाती है, परलोक में भी उसे पीड़ा दी जाती है; पापी दोनों जन्मों में पीड़ा भोगता है। वह पीड़ा भोगता है और विलाप करता है: "मैंने बुराई की है।" जब वह निम्न लोकों (अपय) में पुनर्जन्म लेता है तो उसे और भी अधिक पीड़ा होती है।

————————————————————

1. दुग्गतिम्/दुग्गति: अप्रिय गंतव्य, चार निम्न लोक (अपय)। देवदत्त के मामले में, अविचि निरय, सबसे निचला निरय (यातना का स्थान)।

देवदत्त की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (17) कहा।
एक समय देवदत्त कोसंबी में बुद्ध के साथ रह रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि बुद्ध को बहुत आदर और सम्मान प्राप्त हो रहा है, साथ ही उन्हें भेंट भी दी जा रही है। उन्हें बुद्ध से ईर्ष्या हुई और वे भिक्षु संघ के प्रमुख बनने की इच्छा रखने लगे। एक दिन, जब बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में उपदेश दे रहे थे, तब देवदत्त बुद्ध के पास गए और यह कहकर कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, उन्होंने संघ का कार्यभार उन्हें सौंपने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और उन्हें फटकारते हुए कहा कि वे दूसरों की थूक चाटने वाले हैं। इसके बाद बुद्ध ने संघ को देवदत्त के संबंध में एक घोषणा (पकसानिया कम्मा(2)) करने का आदेश दिया।
देवदत्त को बहुत दुख हुआ और उसने बुद्ध से बदला लेने की कसम खाई। उसने तीन बार बुद्ध को मारने का प्रयास किया: पहली बार कुछ धनुर्धारियों को भेजकर; दूसरी बार गिज्जकुटा पर्वत पर चढ़कर बुद्ध पर एक बड़ा पत्थर लुढ़काकर; और तीसरी बार नलगिरि हाथी को बुद्ध पर हमला करने के लिए उकसाकर। भाड़े के हत्यारे सोतापत्ति फल प्राप्ति के बाद बुद्ध को बिना कोई नुकसान पहुंचाए लौट गए। देवदत्त द्वारा लुढ़काए गए पत्थर से बुद्ध के पैर के अंगूठे पर मामूली चोट आई, और जब नलगिरि हाथी ने बुद्ध पर हमला किया, तो बुद्ध ने उसे शांत कर दिया। इस प्रकार देवदत्त बुद्ध को मारने में असफल रहा, और उसने एक और चाल चली। उसने कुछ नए भिक्षुओं को अपने साथ गयासिसा ले जाकर भिक्षु संघ को भंग करने का प्रयास किया; हालांकि, उनमें से अधिकांश को थेरा सारिपुत्त और थेरा महा मोग्गलाना वापस ले आए।
बाद में देवदत्त बीमार पड़ गए। नौ महीने तक बीमार रहने के बाद उन्होंने अपने शिष्यों से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और फिर जेतवन मठ की यात्रा की। देवदत्त के आने की खबर सुनकर बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा कि देवदत्त को उनसे मिलने का अवसर कभी नहीं मिलेगा।
जब देवदत्त और उनके साथी जेतवन मठ परिसर में स्थित तालाब पर पहुँचे, तो पालकी को तालाब के किनारे रखकर वे स्नान करने चले गए। देवदत्त भी अपनी पालकी से उठे और अपने दोनों पैर ज़मीन पर रखे। तुरंत ही उनके पैर धरती में धंस गए और वे धीरे-धीरे समा गए। देवदत्त को बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला क्योंकि उन्होंने बुद्ध के प्रति बुरे कर्म किए थे। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविचि निरय में हुआ, जो एक ऐसा स्थान है जहाँ उन्हें लगातार और तीव्र यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 17 : यहाँ उसे पीड़ा दी जाती है, परलोक में भी उसे पीड़ा दी जाती है; पापी दोनों जन्मों में पीड़ा भोगता है। वह पीड़ा भोगता है और विलाप करता है: "मैंने बुराई की है।" जब वह निम्न लोकों (अपय) में पुनर्जन्म लेता है तो उसे और भी अधिक पीड़ा होती है।

---

(2) पकासानिया कम्मा : संघ के किसी सदस्य के संबंध में की गई घोषणा का कार्य, जिसमें यह घोषित किया जाता है कि उसका आचरण पहले एक प्रकार का था और अब दूसरे प्रकार का है, इसलिए आगे से उसके सभी शारीरिक और मौखिक कार्य केवल उसके हैं और उनका बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं के आदेश) से कोई लेना-देना नहीं है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
देवदत्त की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय देवदत्त कोसंबी में बुद्ध के साथ रह रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि बुद्ध को बहुत आदर और सम्मान प्राप्त हो रहा है, साथ ही उन्हें भेंट भी दी जा रही है। उन्हें बुद्ध से ईर्ष्या हुई और वे भिक्षु संघ के प्रमुख बनने की इच्छा रखने लगे। एक दिन, जब बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में उपदेश दे रहे थे, तब देवदत्त बुद्ध के पास आए और बुद्ध की वृद्धावस्था का हवाला देते हुए संघ का नेतृत्व उन्हें सौंपने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और उन्हें फटकारते हुए कहा कि वे इस जिम्मेदारी के योग्य नहीं हैं। इसके बाद बुद्ध ने संघ को देवदत्त के संबंध में एक घोषणा (पकसानिय कर्म) करने का आदेश दिया।
देवदत्त को बहुत दुख हुआ और उसने बुद्ध से बदला लेने की कसम खाई। उसने तीन बार बुद्ध को मारने का प्रयास किया: पहली बार कुछ धनुर्धारियों का इस्तेमाल करके; दूसरी बार गिज्जकूट पर्वत पर चढ़कर बुद्ध पर एक बड़ा पत्थर लुढ़काकर; और तीसरी बार नलगिरि हाथी को बुद्ध पर हमला करने के लिए उकसाकर। लेकिन भाड़े के हत्यारों ने बुद्ध पर हमला करने के बजाय उनके शिष्य बन गए। देवदत्त द्वारा लुढ़काए गए पत्थर से बुद्ध के पैर के अंगूठे पर मामूली चोट आई, और जब नलगिरि हाथी बुद्ध पर झपटा, तो बुद्ध ने उसे शांत कर दिया। इस प्रकार देवदत्त बुद्ध को मारने में असफल रहा, और उसने एक और चाल चली। उसने कुछ नए भिक्षुओं को

अपने साथ गयासीसा ले जाकर भिक्षु संघ को भंग करने का प्रयास किया; हालांकि, उनमें से अधिकांश को मुख्य शिष्यों सारिपुत्त और महा मोग्गलाना वापस ले आए।

देवदत्त बीमार पड़ गए। देवदत्त की बीमारी नौ महीने तक चली; अंत में, बुद्ध के दर्शन की इच्छा से उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "मैं बुद्ध के दर्शन करना चाहता हूँ; कृपया मेरे लिए उनसे मिलने का प्रबंध करें।" शिष्यों ने उत्तर दिया, "जब आप स्वस्थ थे, तब आप बुद्ध के शत्रु थे; हम आपको उनके पास नहीं ले जाएँगे।" देवदत्त ने कहा, "मुझे नष्ट मत करो; मैंने वास्तव में बुद्ध के प्रति घृणा रखी है, परन्तु बुद्ध ने मेरे प्रति एक बाल के बराबर भी घृणा नहीं रखी।" और वास्तव में हत्यारे देवदत्त, लुटेरे अंगुलिमाला, धनपाल और राहुल, सभी के प्रति उनका स्वभाव एक समान था। अंत में, देवदत्त बुद्ध के दर्शन करना चाहते थे। परन्तु जब देवदत्त अपनी पालकी से उतरे तो उनके पैर धरती में धंस गए। इस प्रकार वे धरती में समा गए और अविची नरक में चले गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 17)

पापकारी इधा तप्पति पेक्का तप्पति उभयत्थ तप्पति मे

पापं कटं इति तप्पति दुग्गतिं गतो भयो तप्पति

पापकारी : दुष्ट कर्ता; इधा : इस संसार में; तप्पति : पश्चाताप करता है; पेक्का : अगली दुनिया में; तप्पति : पश्चाताप करता है; उभयत्था : दोनों स्थानों पर; तप्पति : पश्चाताप करता है; मैं : मेरे द्वारा; पापं [पापा]: गलतियाँ; कतं इति : किया गया है; तप्पति : पश्चाताप करता है; दुग्गतीं गतो : जीवन में दु:खदायी स्थिति में चले जाने के बाद; भिय्यो [भिय्या]: अत्यधिक; तप्पति : पश्चाताप करता है.

जो लोग बुराई करते हैं, जो कुकर्मों में लिप्त रहते हैं, उन्हें इस जन्म और परलोक दोनों में मानसिक पीड़ा भोगनी पड़ती है। मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में जन्म लेने वाला बुराई करने वाला व्यक्ति "मैंने बुरे कर्म किए हैं" के विचार से स्वयं को और अधिक पीड़ा देता रहता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 17)

दुग्गती : जो लोग बुरे मार्ग पर चलते हैं, वे मृत्यु के बाद दुखमय अवस्थाओं में जन्म लेते हैं। चूंकि ये अवस्थाएं पीड़ितों को कष्ट देती हैं, इसलिए इन्हें दुग्गती कहा जाता है। इन दुखमय अवस्थाओं के विपरीत सुगती आनंदमय अवस्थाएं हैं। जो लोग सद्गुणों का पालन करते हैं, वे अंततः ऐसी ही अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेते हैं।

इधा तप्पति : यहाँ उन लोगों के पश्चाताप का जिक्र है जो अपने किए गए बुरे कर्मों को मानसिक पीड़ा के साथ याद करते हैं। तप्पति का अनुवाद 'जलन' के रूप में किया जा सकता है। बुरे कर्म की याद आत्म-पीड़ा को जन्म देती है, जो एक प्रकार की जलन है। देवदत्त इसी स्थिति में थे।

पेक्का : परलोक में: एक बार व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर, वह परलोक नामक एक अन्य अवस्था में जन्म लेता है। वह पृथ्वी पर रहते हुए अर्जित किए गए अच्छे या बुरे कर्मों का फल भोगता है। अत:, पेक्का का तात्पर्य परलोक में उसके साथ होने वाली घटनाओं से है।

विशेष टिप्पणी : देवदत्त के भविष्य के जीवन को लेकर अनेक प्रश्न उठते हैं। पारंपरिक टीकाओं में कहा गया है: एक परंपरा के अनुसार, जब बुद्ध ने देखा कि मामला इतना बिगड़ गया है, तो उन्होंने देवदत्त को भिक्षु बना दिया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्हें यह ज्ञान हुआ, "यदि वह गृहस्थ ही रहे और भिक्षु संघ में शामिल न हो, तो अपने घोर अपराधों के कारण उसके लिए भविष्य के जीवन के प्रति विश्वास रखना असंभव होगा; परन्तु यदि वह भिक्षु बन जाए, तो चाहे उसने कितने ही जघन्य अपराध किए हों, उसके लिए भविष्य के जीवन के प्रति विश्वास रखना संभव होगा।" इस परंपरा के अनुसार, सुदूर भविष्य में वह अत्तिस्सारा नामक एक एकांत बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) बनेंगे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 18

———————————————————————————

(धम्मपद 17) <<<< पिछला ‖ श्लोक 18 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 19,20)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 18 - सुमनादेवी वथु

1.1डॉ माया टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 18 - सुमनादेवी वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
इधा नंदती पेक्का नंदती
katapunno ubhayattha nandati
पुन्नम मे कटंति नंदति
भय्यो नन्दति सुग्गतिम्(1) गतो।

———————————————————————

श्लोक 18 : वह यहाँ सुखी है, परलोक में भी सुखी रहेगा; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में सुखी रहता है। वह प्रसन्नतापूर्वक कहता है, “मैंने पुण्य कर्म किए हैं।” उच्च लोक (सुग्गति) में पुनर्जन्म लेने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

———————————————————————

1. सुगत्तिम/सुग्गति: सुखी अस्तित्व।

———————————————————————

सुमनादेवी की कहानी
(कहानी का विस्तृत संस्करण यहां पढ़ें)
श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की सबसे छोटी बेटी सुमनादेवी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (18) कहा।
सावत्थी में, अनाथपिंडिका और विशाखा के घरों में प्रतिदिन दो हजार भिक्षुओं को भोजन कराया जाता था। विशाखा के घर में भिक्षा-भोजन का कार्य उनकी पोती द्वारा संचालित किया जाता था। अनाथपिंडिका के घर में यह कार्य पहले सबसे बड़ी पुत्री, फिर दूसरी पुत्री और अंत में सबसे छोटी पुत्री सुमनदेवी द्वारा संचालित किया जाता था। दोनों बड़ी बहनों ने भिक्षुओं को भोजन कराते समय धर्म का प्रवचन सुनकर सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। सुमनदेवी ने तो और भी श्रेष्ठ कार्य किया और उन्होंने सकदागामी पुण्य प्राप्त किया।
बाद में, सुमनादेवी बीमार पड़ गईं और अपनी मृत्यु शैया पर उन्होंने अपने पिता को बुलाया। उनके पिता आए और उन्होंने उन्हें "छोटे भाई" (कनित्थ भाटिका) कहकर संबोधित किया और कुछ ही समय बाद उनका निधन हो गया। उनके संबोधन के इस तरीके ने उनके पिता को आश्चर्यचकित कर दिया और उन्हें बेचैनी और अवसाद से भर दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि उनकी बेटी मृत्यु के समय बेहोश थी और होश में नहीं थी। इसलिए, उन्होंने बुद्ध से संपर्क किया और उन्हें अपनी बेटी सुमनादेवी के बारे में बताया। तब बुद्ध ने उस धनी व्यक्ति को बताया कि उनकी बेटी मृत्यु के समय होश में थी और पूरी तरह से आत्म-नियंत्रित थी। बुद्ध ने यह भी समझाया कि सुमनादेवी ने अपने पिता को "छोटे भाई" कहकर इसलिए संबोधित किया क्योंकि मार्ग और फल की उनकी प्राप्ति उनके पिता की तुलना में कहीं अधिक थी। वह सकदगम थीं जबकि उनके पिता केवल सोतापन्न थे। अनाथपिंडिका को यह भी बताया गया कि सुमनादेवी का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 18 : वह यहाँ सुखी है, परलोक में भी सुखी रहेगा; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में सुखी रहता है। वह प्रसन्नतापूर्वक कहता है, "मैंने पुण्य कर्म किए हैं।" उच्च लोक (सुग्गति) में पुनर्जन्म लेने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सुमनादेवी की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की सबसे छोटी पुत्री सुमनादेवी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
प्रतिदिन, दो हज़ार भिक्षु सावत्थी स्थित अनाथपिंडिका के घर में भोजन करते थे, और इतनी ही संख्या में भिक्षु प्रख्यात महिला शिष्या विशाखा के घर में भोजन करते थे। अनाथपिंडिका ने अपनी सबसे बड़ी पुत्री महा सुभद्दा को नियुक्त किया; सुभद्दा ने भिक्षुओं का उचित आदर किया, धर्म का पालन किया और फलस्वरूप धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया; बाद में उनका विवाह हुआ और वे अपने पति के परिवार के साथ रहने चली गईं। फिर उन्होंने चुल्ला सुभद्दा को नियुक्त किया, जिन्होंने अपनी बड़ी बहन का अनुसरण करते हुए धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और बाद में उनका विवाह हुआ और वे अपने पति के परिवार के साथ रहने चली गईं। अंत में उन्होंने अपनी सबसे छोटी पुत्री सुमना को नियुक्त किया। सुमना ने द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त किया, लेकिन अविवाहित रहीं। अनाथपिंडिका भोजन कक्ष में थे जब उन्हें अपनी पुत्री का संदेश मिला, लेकिन वे तुरंत उनके पास गए और बोले, “क्या बात है, प्रिय पुत्री सुमना?” सुमना ने उनसे कहा, “क्या कहते हो, प्यारे छोटे भाई?” “तुम अस्पष्ट बातें कर रही हो, प्यारी बेटी।” “मैं अस्पष्ट बातें नहीं कर रही हूँ,

छोटे भाई।" "क्या तुम डरी हुई हो, प्यारी बेटी?" "मैं नहीं डरी हुई हूँ, छोटे भाई।" उन्होंने आगे कुछ नहीं कहा और तुरंत ही उनकी मृत्यु हो गई।

यद्यपि कोषाध्यक्ष को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हो चुका था, फिर भी वह अपने भीतर उत्पन्न दुःख को सहन नहीं कर सका। अतः, अपनी पुत्री के शव का अंतिम संस्कार करने के बाद वह रोते हुए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थ, तुम इतने दुखी और शोकाकुल होकर, आँखों में आँसू लिए, मेरे पास क्यों आए हो?" "आदरणीय, मेरी पुत्री सुमना का निधन हो गया है।" "तो फिर क्यों रो रहे हो? क्या मृत्यु सभी के लिए निश्चित नहीं है?" "मैं जानता हूँ, आदरणीय। परन्तु मेरी पुत्री इतनी नम्र और इतनी कर्तव्यनिष्ठ थी। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि जब उसका निधन हुआ, तब वह होश में नहीं थी।"

"परन्तु आपकी सबसे छोटी पुत्री ने क्या कहा, हे महामहिम?" "आदरणीय, मैंने उसे 'प्रिय सुमना' कहकर संबोधित किया, और उसने उत्तर दिया, 'आप क्या कहते हैं, हे महामहिम छोटे भाई?' तब मैंने उससे कहा, 'तुम अस्पष्ट बातें कर रही हो, प्रिय पुत्री।' 'मैं अस्पष्ट बातें नहीं कर रही हूँ, महामहिम छोटे भाई।' 'क्या तुम डरी हुई हो, प्रिय पुत्री?' 'मैं नहीं डरी हूँ, महामहिम छोटे भाई।' उसने आगे कुछ नहीं कहा और तुरंत ही उसकी मृत्यु हो गई।" भगवान ने अनाथपिंडिका से कहा, "हे महामहिम, आपकी पुत्री ने अस्पष्ट बातें नहीं कीं।" "परन्तु उसने ऐसा क्यों कहा?" "केवल इसलिए कि आप उसके सबसे छोटे भाई थे, हे गृहस्थ, आपकी पुत्री मार्ग और फल में परिपक्व थी, क्योंकि आपने तो केवल रूपांतरण का फल प्राप्त किया है, जबकि आपकी पुत्री ने मार्ग और फल प्राप्त कर लिए थे, इसीलिए उसने ऐसा कहा।" "क्या यही कारण था, हे महामहिम?" "यही कारण था, हे गृहस्थ।"

"हे पूज्यवर, अब उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ है?" "हे गृहस्थ, तुषिता देवताओं के लोक में।" "हे पूज्यवर, जब मेरी पुत्री अपने सगे-संबंधियों के बीच यहाँ रही, तो वह आनंदित होकर घूमती रही, और जब वह यहाँ से गई, तो उसका पुनर्जन्म देवलोक में हुआ।" तब बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, ऐसा ही होता है। जो सचेत रहते हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या धार्मिक, वे इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 18)

कटपुन्नो इधा नंदति पेक्का नंदति उभयत्था नंदति
मे पुन्नं कतं इति नंदति सुग्गतिं गतो भयो नंदति

katapuñño [katapuñña]: जिसने पुण्य कर्म किए हैं; idha : इस लोक में; nandati प्रसन्न होता है; pecca : परलोक में; nandati : प्रसन्न होता है; ubhayattha : दोनों लोकों में; nandati : प्रसन्न होता है; me : मेरे द्वारा; puññaṃ kataṃ [kata]: अच्छे कर्म किए गए हैं; iti : इस तरह; nandati : (वह) प्रसन्न होता है; suggatiṃ gato : सुखी अवस्था में पहुँचकर; bhiyyo [bhiyya]: अत्यंत; nandati : प्रसन्न होता है।

अच्छे और पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति इस संसार में आनंदित होता है। मृत्यु के बाद सुखद अवस्था में पहुँचकर वह अत्यंत प्रसन्न होता है। इस प्रकार वह इस संसार में और परलोक में भी आनंदित होता है। दोनों लोकों में वह अपने पुण्य कर्मों को जानकर प्रसन्न होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 18)

भिय्यो : अत्यंत। पुण्यात्मा लोग इस जीवन में तो आनंदित होते ही हैं, पर स्वर्ग में मिलने वाले परलोक में और भी अधिक आनंदित होते हैं। वे अपने द्वारा किए गए अच्छे कर्मों को याद करके भी प्रसन्न होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 19 व 20

(धम्मपद 18) <<<< पिछला ‖ श्लोक 19 और 20 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 21, 22, 23)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 19 और 20 - द्वेसहयाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 19 और 20 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Bahumpi ce samhita bhasamano
na takkaro hoti naro pamatto
gopova gavo ganayam paresam
na bhagava samannassa hoti.

Appampi ce samhita bhasamano
धम्मस्सा होती अनुधम्मकारी
raganca dosanca pahaya moham
सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो(1)
anupadiyano idha va haram va
sa bhagava samannassa hoti(2)

श्लोक 19 : यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का बहुत पाठ करता है, परन्तु यदि वह लापरवाह है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, तो वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों के मवेशियों की गिनती करता है, उसे भिक्षु के जीवन के लाभों में कोई हिस्सा नहीं मिलता (अर्थात्, मग्ग-फल)।

श्लोक 20 : यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का थोड़ा सा ही पाठ करता है, परन्तु धर्म के अनुसार अभ्यास करता है, वासना, द्वेष और अज्ञान को मिटाता है, धर्म को स्पष्ट रूप से समझता है, उसका मन नैतिक विकारों से मुक्त होता है और वह इस संसार या परलोक से आसक्त नहीं रहता, वह भिक्षु के जीवन के लाभों का भागीदार होता है (अर्थात, मग्गा-फल)।

---

1. सुविमुत्तचित्तो: नैतिक विकारों से मुक्त मन; यह धम्म के पूर्ण अभ्यास और स्पष्ट समझ के माध्यम से प्राप्त किया गया है।
2. स भगव समन्नस्स होति: शाब्दिक अर्थ है, एक समना (भिक्षु) के जीवन के लाभों को साझा करता है। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में इसका अर्थ है, "मग्ग-फल के लाभों को साझा करता है।"

दो दोस्तों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (19) और (20) का उच्चारण दो भिक्षुओं के संदर्भ में किया जो मित्र थे। एक समय की बात है, दो कुलीन परिवार के मित्र थे, जो सावत्थी के दो भिक्षु थे। उनमें से एक ने त्रिपिटक का अध्ययन किया और पवित्र ग्रंथों के पाठ और उपदेश में अत्यंत निपुण थे। उन्होंने पाँच सौ भिक्षुओं को शिक्षा दी और अठारह भिक्षु समूहों के गुरु बन गए। दूसरे भिक्षु ने गहन परिश्रम और लगन से अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हुए अरहतत्व तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि प्राप्त की।
एक बार जब दूसरे भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने जेतवन मठ आए, तो दोनों भिक्षुओं की मुलाकात हुई। त्रिपिटक के गुरु को यह ज्ञान नहीं था कि दूसरा भिक्षु अर्हत बन चुका है। उन्होंने दूसरे भिक्षु को नीचा समझा, यह सोचकर कि यह वृद्ध भिक्षु पवित्र ग्रंथों का बहुत कम ज्ञान रखता है, यहाँ तक कि पाँच निकायों में से एक या तीन पिटकों में से एक का भी नहीं। इसलिए उन्होंने दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछकर उसे शर्मिंदा करने का सोचा। बुद्ध उनके इस अनुचित इरादे को जानते थे और यह भी जानते थे कि अपने इतने श्रेष्ठ शिष्य को कष्ट देने के परिणामस्वरूप, उस विद्वान भिक्षु को निम्न लोक में पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।
इसलिए, करुणावश बुद्ध ने दो भिक्षुओं से मिलने जाकर विद्वान को दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछने से रोका। स्वयं बुद्ध ने ही प्रश्न पूछे। उन्होंने त्रिपिटक के गुरु से ध्यान और मार्ग से संबंधित प्रश्न पूछे; परन्तु वे उनका उत्तर नहीं दे सके क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने उपदेशों का अभ्यास नहीं किया था। दूसरे भिक्षु ने, धम्म का अभ्यास करके और अर्हतत्व प्राप्त करके, सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। बुद्ध ने धम्म का अभ्यास करने वाले (अर्थात् विपस्सक) की प्रशंसा की, परन्तु विद्वान (अर्थात् गंथिक) की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहा।
वहाँ रहने वाले शिष्यों को समझ नहीं आ रहा था कि बुद्ध ने वृद्ध भिक्षु की प्रशंसा क्यों की, जबकि उनके विद्वान गुरु की नहीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें समझाया। जो विद्वान बहुत कुछ जानता है, परन्तु धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, वह ग्वाले के समान है जो मजदूरी के लिए गायों की देखभाल करता है, जबकि जो धम्म के अनुसार अभ्यास करता है, वह उस स्वामी के समान है जो गायों के पाँचों प्रकार के

फल-सब्जियों का आनंद लेता है (3)। इस प्रकार, विद्वान केवल अपने शिष्यों द्वारा दी गई सेवाओं का ही आनंद लेता है, मग्ग-फल के लाभों का नहीं। दूसरा भिक्षु, यद्यपि वह कम जानता है और पवित्र ग्रंथों का थोड़ा ही पाठ करता है, धम्म के सार को स्पष्ट रूप से समझकर और लगन एवं परिश्रम से अभ्यास करके, अनुधम्मचारी (4) है, जिसने कामवासना, द्वेष और अज्ञान को नष्ट कर दिया है। उसका मन नैतिक विकारों और इस दुनिया के साथ-साथ अगली दुनिया से भी सभी आसक्तियों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, जिससे वह वास्तव में मग्गा-फल के लाभों का भागीदार बनता है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 19: यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का बहुत पाठ करता है, परन्तु यदि वह लापरवाह है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, तो वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों के मवेशियों की गिनती करता है, उसे भिक्षु के जीवन के लाभों में कोई हिस्सा नहीं मिलता (अर्थात्, मग्ग-फल)।

श्लोक 20: यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का थोड़ा सा ही पाठ करता है, परन्तु धर्म के अनुसार अभ्यास करता है, वासना, द्वेष और अज्ञान को मिटाता है, धर्म को स्पष्ट रूप से समझता है, उसका मन नैतिक विकारों से मुक्त होता है और वह इस संसार या परलोक से आसक्त नहीं रहता, वह भिक्षु के जीवन के लाभों को साझा करता है (अर्थात, मग्गा-फल)।

---

(3) दूध, मलाई, मक्खन, छाछ और घी।
(4) अनुधम्मचारी : वह व्यक्ति जो धम्म के अनुरूप अभ्यास करता है।
अध्याय एक का अंत: जोड़े (यमकावग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दो दोस्तों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने दो मित्र भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
सावत्थी में दो कुलीन परिवार के युवक रहते थे जो घनिष्ठ मित्र थे। एक बार वे मठ गए, गुरु का प्रवचन सुना, संसार के सुखों का त्याग किया, बुद्ध के धर्म में अपना मन समर्पित किया और भिक्षु बन गए। पाँच वर्ष तक गुरुओं और शिक्षकों के साथ रहने के बाद, वे गुरु के पास गए और उनसे उनके धर्म के कर्तव्यों के बारे में पूछा। ध्यान और अध्ययन के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन सुनने के बाद, उनमें से एक ने कहा, "हे पूज्यवर, क्योंकि मैंने वृद्धावस्था में भिक्षु का पद ग्रहण किया है, इसलिए मैं अध्ययन का कर्तव्य पूरा नहीं कर पाऊँगा, परन्तु ध्यान का कर्तव्य पूरा कर सकता हूँ।" अतः उन्होंने गुरु से अरहतत्व तक ध्यान का उपदेश लिया और अथक परिश्रम से अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति की। लेकिन दूसरे ने कहा, "मैं अध्ययन के कर्तव्य का पालन करूँगा," और धीरे-धीरे त्रिपिटक , बुद्ध के वचन, को प्राप्त किया, और जहाँ भी वे गए, उन्होंने धर्म का प्रचार किया और उसका पाठ किया। वे पाँच सौ भिक्षुओं को धर्म का पाठ सुनाते हुए स्थान-स्थान पर गए, और अठारह बड़े भिक्षु समुदायों के गुरु थे।
अब भिक्षुओं का एक समूह, गुरु से ध्यान विधि का सूत्र प्राप्त करके, वरिष्ठ भिक्षु के निवास स्थान पर गया और उनके उपदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करके अरहतत्व प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने पूज्य भिक्षु को प्रणाम किया और कहा, "हम गुरु के दर्शन करना चाहते हैं।" पूज्य भिक्षु ने कहा, "जाओ, भाइयों, मेरे नाम से बुद्ध को प्रणाम करो, और अस्सी प्रमुख पूज्य भिक्षुओं को भी प्रणाम करो, और मेरे साथी वरिष्ठ भिक्षु को भी यह कहते हुए प्रणाम करो, 'हमारे गुरु आपको प्रणाम करते हैं।'" अतः वे भिक्षु मठ गए और बुद्ध और पूज्य भिक्षुओं को यह कहते हुए प्रणाम किया, "पूज्य भिक्षु, हमारे गुरु आपको प्रणाम करते हैं।" जब उन्होंने अपने गुरु के साथी वरिष्ठ भिक्षु को प्रणाम किया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "यह कौन है?" भिक्षुओं ने कहा, "यह आपके साथी भिक्षु हैं, पूज्य भिक्षु।"
छोटे भिक्षु ने कहा, "पर तुमने उससे क्या सीखा है? दीघ निकाय और अन्य निकायों में से, क्या तुमने एक भी निकाय सीखा है? तीनों पिटकों में से, क्या तुमने एक भी पिटक सीखा है?" और उसने मन ही मन सोचा, "यह भिक्षु चार श्लोकों वाला एक भी श्लोक नहीं जानता। भिक्षु बनते ही, वह कूड़े के ढेर से कपड़े लेकर जंगल में चला गया और अपने आस-पास बहुत से शिष्यों को इकट्ठा कर लिया। जब वह लौटेगा, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं उससे कुछ प्रश्न पूछूँ।" कुछ समय बाद, बड़ा भिक्षु बुद्ध से मिलने आया और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र अपने साथी भिक्षु के पास छोड़कर, बुद्ध और अस्सी प्रमुख पूज्य भिक्षुओं को प्रणाम करने गया, और फिर अपने साथी भिक्षु के निवास स्थान पर लौट आया। छोटे भिक्षु ने उसका विधिपूर्वक आदर किया, उसे अपने समान आकार का आसन दिया, और फिर बैठते हुए मन ही मन सोचने लगा, "मैं उससे एक प्रश्न पूछूँगा।"

उस क्षण बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "यदि यह भिक्षु मेरे पुत्र को नाराज़ करेगा, तो वह नरक में पुनर्जन्म लेगा।" अतः उस पर दया करते हुए, मठ में चक्कर लगाने का बहाना करके, वे उस स्थान पर गए जहाँ वे दोनों भिक्षु बैठे थे और पहले से तैयार बुद्ध आसन पर बैठ गए। (क्योंकि भिक्षु जहाँ भी बैठते हैं, वे पहले बुद्ध आसन तैयार करते हैं, और ऐसा करने के बाद ही स्वयं बैठते हैं।)

अतः बुद्ध अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। बैठते ही उन्होंने अध्ययन का दायित्व ग्रहण करने वाले भिक्षु से प्रथम समाधि के विषय में एक प्रश्न पूछा। जब उस युवा भिक्षु ने सही उत्तर दिया, तो गुरु ने द्वितीय समाधि से आरंभ करते हुए उनसे अष्टम सिद्धियों और सजीव एवं निराकार जगत के विषय में प्रश्न पूछे, जिनका उन्होंने सही उत्तर दिया। फिर गुरु ने उनसे रूपांतरण मार्ग के विषय में प्रश्न पूछा; वे उसका उत्तर नहीं दे सके। तब बुद्ध ने अरहत भिक्षु से प्रश्न पूछा, और उन्होंने तुरंत सही उत्तर दे दिया।

"शाबाश, शाबाश, भिक्षु!" गुरु ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा। फिर गुरु ने शेष मार्गों के बारे में क्रम से प्रश्न पूछे। अध्ययन का दायित्व ग्रहण करने वाला भिक्षु एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका, जबकि अरहतत्व प्राप्त भिक्षु ने उनके द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया। चारों बार बुद्ध ने उसकी प्रशंसा की। यह सुनकर पृथ्वी के देवताओं से लेकर ब्रह्मालोक के देवताओं तक, नागों और गरुड़ों सहित सभी देवताओं ने जयजयकार की।

यह तालियाँ सुनकर, युवा भिक्षु के शिष्य और साथी भिक्षु बुद्ध से नाराज़ हो गए और कहने लगे, "बुद्ध ने ऐसा क्यों किया? उन्होंने चारों अवसरों पर उस बूढ़े भिक्षु की प्रशंसा की, जिसे कुछ भी नहीं पता। लेकिन हमारे गुरु, जिन्हें समस्त शास्त्र याद है और जो पाँच सौ भिक्षुओं के प्रमुख हैं, उनकी उन्होंने ज़रा भी प्रशंसा नहीं की।" गुरु ने उनसे पूछा, "भिक्षुओं, तुम क्या कह रहे हो?" जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, मेरे धर्म में तुम्हारे गुरु उस व्यक्ति के समान हैं जो मज़दूरी पर गाय चराता है। परन्तु मेरा पुत्र उस स्वामी के समान है जो गाय के पाँचों उत्पादों का अपनी इच्छा से आनंद लेता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 19)

पमत्तो नरो सहितं बहुं भासामानो अपि सीई
तक्कारो न होति परेसं गावो गणयं गोपो इव समानास्सा भगवान न होति ।

पमट्टो [पमट्टा]: आलसी; नारो : व्यक्ति; साहित्यं [साहित्य]: बुद्ध का वचन; बहुं [बाहु]: व्यापक रूप से; भासामानो [भासामान]: पाठ करता है; एपीआई : यद्यपि; सीई : अभी तक; तक्कारो [तक्कारा]: तदनुसार व्यवहार करना; न होती : नहीं बनता; परेसां [परेसा]: दूसरों का; गावो : मवेशी; गणयं [ganaya]: रक्षा करना; गोपो इवा : चरवाहे जैसा; समन्नस्सा : त्याग किया हुआ जीवन; भगवान न होति : का हिस्सा नहीं है.

कुछ लोग बुद्ध के वचनों को भली-भांति जानते हैं और उन्हें दोहरा भी सकते हैं। परन्तु घोर उपेक्षा के कारण वे उन पर अमल नहीं करते। फलस्वरूप वे किसी भी धार्मिक उपलब्धि को प्राप्त नहीं कर पाते। उन्हें संन्यासी जीवन का फल नहीं मिलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी दूसरे के पशुओं की देखभाल करने वाले चरवाहे का जीवन। चरवाहा सुबह पशुओं को चरागाह ले जाता है और शाम को उन्हें मालिक के घर वापस ले आता है। उसे केवल मजदूरी मिलती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 20)

सहितं अप्पं अपि भासामानो सी धम्मस्सा
अनुधम्मचारी होति रागं च दोसं च मोहं
च पहाया सो सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो इधा
वा हुरं वा अनुपादियानो समानास्सा भगव होति ।

सहितं (sahitaṃ) [मूल रूप: सहित (sahita)] बुद्ध का वचन; appaṃ api : थोड़ा सा भी; bhāsamāno [bhāsamāna]: दोहराना; ce : यदि; dhammassa : शिक्षा का; anudhammacārī hoti : शिक्षा के अनुसार जीवन यापन करना; rāgaṃ ca : वासना; dosaṃ ca : दुर्भावना ; mohaṃ ca : भ्रम; pahāya : त्याग करना; so : वह; sammappajāno [sammappajāna]: गहन समझ रखने वाला; suvimuttacitto [suvimuttacitta]: भावनाओं से मुक्त; idha vā : या तो यहाँ; huraṃ vā : या परलोक में; anupādiyāno [anupādiyāna]: आसक्ति न रखने वाला; sāmaññassa : त्यागी जीवन का; bhāgavā hoti : भाग लेता है।

सत्य का सच्चा साधक भले ही बुद्ध के वचनों का कम ही उच्चारण करे। वह धार्मिक ग्रंथों का विस्तृत पाठ न कर पाए, परन्तु यदि वह बुद्ध की शिक्षाओं का निष्ठापूर्वक पालन करे, उनके अनुसार जीवन व्यतीत करे, वासना, द्वेष और भ्रम से मुक्त हो, गहन अनुभव प्राप्त कर ले और सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति से मुक्त हो, तो वह संन्यासी का जीवन व्यतीत करने वाला है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 19-20)

सहितं : शाब्दिक अर्थ है कोई भी साहित्य। लेकिन इस संदर्भ में, विशेष रूप से बौद्ध साहित्य का उल्लेख है। बुद्ध के वचन तीन पिटकों में समाहित हैं। यह श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि यदि सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति पाठ किए गए वचनों का अभ्यास करने के लिए तैयार नहीं है, तो केवल बुद्ध के वचनों का पाठ करने से उसके धार्मिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आएगा। धार्मिक जीवन

की पूर्णता तभी सुनिश्चित होती है जब व्यक्ति बुद्ध के वचनों के अनुसार अपना जीवन व्यवस्थित करे। केवल बुद्ध के वचनों का पाठ करने वाले व्यक्ति का प्रयास उतना ही व्यर्थ है जितना कि उस ग्वाले का जो दूसरों के पशुओं को गिनने में समय व्यतीत करता है जबकि दूध और अन्य उत्पाद उसका मालिक ही भोग रहा होता है। यह श्लोक ऐसे व्यक्ति की बात कर रहा है जो बौद्ध साहित्य का बहुत ज्ञानी था, परन्तु उसमें कही गई बातों का अभ्यास नहीं करता था।

सुविमुत्त चित्तो : भावों से मुक्त। जो व्यक्ति आसक्ति और मोह से मुक्त हो जाता है, वह पूर्ण भावात्मक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है।

अनुपदियानो : वह व्यक्ति जिसने इस दुनिया और अगली दुनिया से आसक्ति और लगाव रखने की आदत को त्याग दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 21,22 एवं 23

———————————————————————

(धम्मपद 19, 20) <<<< पिछला ॥ श्लोक 21, 22 और 23 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 24)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 21, 22 और 23 - संवति वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 21, 22 और 23 - सामवती वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमादो अमत्पदं,
पमादो मच्छुनो पदं।
अप्पमत्ता न मयंती,
ये पमत्ता यथा मता॥

एवं विसेस्तो नत्वा,
अप्पमादमहि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति,
अरियनं गोचरे रता॥

ते झायिनो सततिका,
निच्चं दळहपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बानं,
योगखेमं अनुत्तरं॥

———————————————————————

श्लोक 21 : सजगता ही अमरता (निर्वाण) का मार्ग है; असावधानी मृत्यु का मार्ग है। जो सजग रहते हैं वे मरते नहीं; जो सजग नहीं रहते वे मानो पहले से ही मरे हुए हैं।

———————————————————————

श्लोक 22 : इसे पूर्णतः समझकर, सजग बुद्धिमान लोग सजग होने में आनंदित होते हैं और आर्यों के क्षेत्र में प्रसन्नता पाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 23 : ज्ञानी, जो निरंतर शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हैं, सदा सचेत रहते हैं और दृढ़ता से प्रयास करते हैं, वे निर्वाण प्राप्त करते हैं: निर्वाण, जो योग के बंधनों से मुक्त है; निर्वाण, अतुलनीय!

———————————————————————

1. अप्पमदा: टीका के अनुसार, इसमें त्रिपिटक में बुद्ध के वचनों के सभी अर्थ समाहित हैं, इसलिए अप्पमदा का अर्थ पुण्य कर्म करते समय सदा सचेत रहना है; महासतिपट्ठाना सूत्र में बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप, विशेष रूप से "अप्पमदो आमतपदम्" का अर्थ "अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास की साधना ही निर्वाण का मार्ग है" के रूप में लगाया जाना चाहिए।
2. आमत: शाब्दिक अर्थ, मृत्यु रहित, अमर; इसका अर्थ शाश्वत जीवन या अमरता नहीं है। टीका कहती है: "आमत का अर्थ है निर्वाण। यह सत्य है कि निर्वाण को 'आमत' कहा जाता है क्योंकि इसमें वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, क्योंकि इसमें जन्म नहीं होता।"
3. पमादो मच्चुनो पदं शाब्दिक अर्थ: असावधानी मृत्यु का मार्ग है। टीका के अनुसार, असावधान व्यक्ति पुनर्जन्म से मुक्त नहीं हो सकता; पुनर्जन्म होने पर उसे वृद्ध होना और मरना ही पड़ता है; अतः असावधानी मृत्यु का कारण है।
4. अप्पमत्ता न मियंति: जो सचेत रहते हैं, वे मरते नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे बूढ़े नहीं होते या मरते नहीं। टीका के अनुसार, सचेत रहने वाले सचेत लक्षणों का विकास करते हैं (अर्थात, अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हैं); वे शीघ्र ही मार्ग-फल (अर्थात निर्वाण) को प्राप्त कर लेते हैं और पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहते। इसलिए, चाहे वे वास्तव में जीवित हों या मृत, उन्हें अमर माना जाता है।
5. ये पमत्त यथा मत: मानो मृत। टीका के अनुसार, जो सचेत नहीं होते वे मृत के समान होते हैं; क्योंकि वे कभी दान देने या नैतिक नियमों का पालन करने आदि के बारे में नहीं सोचते, और भिक्षुओं के मामले में, क्योंकि वे अपने गुरुओं और उपदेशकों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते, न ही वे शांति और अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करते हैं।
6. अरियानम गोचरे रता: शाब्दिक अर्थ, "आर्यों के क्षेत्र में आनंद पाता है।" टीका के अनुसार, आर्यों का क्षेत्र ज्ञान के सैंतीस कारकों (बोधिपक्खिया) और नौ पारलौकिक तत्वों, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण से मिलकर बना है।
7. झियिनो: शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले।
8. फुसन्ति धीरा निब्बानं: ज्ञानी लोग निर्वाण को प्राप्त करते हैं। शाब्दिक अर्थ है, फुसति का अर्थ है, स्पर्श करना, पहुंचना। टीका के अनुसार, यह प्राप्ति संपर्क या अनुभव के माध्यम से होती है, जो या तो अंतर्दृष्टि (मग्ग-नाना) या फल प्राप्ति (फल) के माध्यम से हो सकती है। इस संदर्भ में, फल प्राप्ति के माध्यम से संपर्क का उल्लेख है।
9. योगक्खेमम: निर्वाण का एक गुण। शाब्दिक अर्थ है, पुनर्जन्म के चक्र में बंधे चार बंधनों से मुक्त या सुरक्षित होना। ये चार बंधन या योग हैं: इंद्रिय सुख (काम), अस्तित्व (भव), गलत धारणा (दित्थी) और चार आर्य सत्यों का अज्ञान (अविज्जा)।

समवती की कहानी

कोसंबी के पास घोसिता मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (21), (22) और (23) का उच्चारण किया, जो कोसंबी के राजा उदेना की प्रमुख रानियों में से एक, समवती के संदर्भ में थे।

समावती के महल में पाँच सौ दासियाँ रहती थीं; उनके साथ खुज्जुत्तारा नाम की एक दासी भी थी। खुज्जुत्तारा को प्रतिदिन सुमना नामक पुष्प विक्रेता से समावती के लिए फूल खरीदने पड़ते थे। एक बार खुज्जुत्तारा को सुमना के घर पर बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन सुनने का अवसर मिला और उन्होंने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्होंने बुद्ध के प्रवचन समावती और पाँच सौ दासियों को सुनाए और उन्होंने भी सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस दिन से खुज्जुत्तारा को कोई भी घरेलू काम नहीं करना पड़ा, बल्कि उन्होंने समावती की माता और गुरु की भूमिका निभाई। वह बुद्ध के प्रवचन सुनती और समावती और उनकी दासियों को सुनाती थीं। समय के साथ, खुज्जुत्तारा ने त्रिपिटक में महारत हासिल कर ली।

समावती और उसकी दासियाँ बुद्ध के दर्शन और उन्हें प्रणाम करने की बहुत इच्छा रखती थीं; लेकिन उन्हें डर था कि राजा उनसे नाराज़ हो सकते हैं। इसलिए, उन्होंने अपने महल की दीवारों में छेद करके, प्रतिदिन बुद्ध को तीन धनी पुरुषों, घोषक, कुक्कुट और पवारिया के घरों में जाते समय दर्शन करती थीं।

उस समय, राजा उदेना की एक और प्रमुख रानी थी जिसका नाम मगंदिया था। वह एक ब्राह्मण मगंदिया की पुत्री थी। एक दिन बुद्ध को देखकर उस ब्राह्मण ने सोचा कि बुद्ध ही उसकी अत्यंत सुंदर पुत्री के योग्य हैं। इसलिए, वह जल्दी से अपनी पत्नी और पुत्री को लेने गया और अपनी पुत्री का विवाह बुद्ध से करने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उसका प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा, "मारा की पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा को देखने के बाद भी, मेरे मन में कामुक सुखों की कोई इच्छा नहीं हुई; आख़िर यह क्या है जो मूत्र और गंदगी से भरी है और जिसे मैं अपने पैर से भी छूना पसंद नहीं करता।"

बुद्ध के ये शब्द सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अनागामी मार्ग और फल प्राप्त कर लिए। उन्होंने अपनी पुत्री को उसके मामा की देखरेख में सौंप दिया और स्वयं संघ में शामिल हो गए। अंततः, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध को प्रारंभ से ही ज्ञात था कि ब्राह्मण और उनकी पत्नी को उसी दिन अनागामी फल प्राप्त होना नियत था, इसीलिए उन्होंने ब्राह्मण को उपरोक्त प्रकार से उत्तर दिया। यद्यपि पुत्री मगंदिया बहुत क्रोधित और व्यथित हो गईं और उन्होंने अवसर मिलते ही बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

बाद में, उसके चाचा ने मगंदिया को राजा उदेना के समक्ष प्रस्तुत किया और वह उनकी प्रमुख रानियों में से एक बन गई। मगंदिया को कोसंबी में बुद्ध के आगमन और समवती और उसकी दासियों द्वारा अपने निवास कक्ष की दीवारों में बने छेदों से बुद्ध को प्रणाम करने की सूचना मिली। इसलिए, उसने बुद्ध से बदला लेने और समवती और उसकी दासियों को, जो बुद्ध की परम भक्त थीं, हानि पहुँचाने की योजना बनाई। मगंदिया ने राजा को बताया कि समवती और उसकी दासियों ने अपने निवास कक्ष की दीवारों में छेद किए हैं और उनके बाहरी लोगों से संपर्क हैं और वे राजा के प्रति वफादार नहीं हैं। राजा उदेना ने दीवारों में छेद देखे, लेकिन सच्चाई जानने पर उन्हें क्रोध नहीं आया।

लेकिन मगंदिया राजा को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करती रही कि समवती उसके प्रति वफादार नहीं है और उसे जान से मारने की कोशिश कर रही है। एक बार, यह जानते हुए कि राजा कुछ दिनों में समवती से मिलने आ रहे हैं और अपने साथ अपना वीणा भी लाएंगे, मगंदिया ने वीणा में एक सांप डाल दिया और छेद को फूलों के गुच्छे से बंद कर दिया। मगंदिया ने राजा उदेना को यह कहकर रोकने की कोशिश की कि उसे कुछ आशंका है और वह उसकी सुरक्षा को लेकर चिंतित है, और फिर वह उसके पीछे-पीछे समवती के कक्ष तक चली गई। समवती के घर पहुँचकर मगंदिया ने वीणा के छेद से फूलों का गुच्छा निकाल दिया। सांप फुफकारता हुआ बाहर आया और पलंग पर कुंडली मारकर बैठ गया। जब राजा ने सांप को देखा तो उसने मगंदिया की बात पर विश्वास कर लिया कि समवती उसे जान से मारने की कोशिश कर रही है। राजा क्रोधित हो गया। उसने समवती को खड़े होने और उसकी सभी दासियों को उसके पीछे कतार में खड़े होने का आदेश दिया। फिर उसने अपने धनुष पर विष में डूबा हुआ बाण लगाया और बाण चला दिया। लेकिन समवती और उनकी दासियों के मन में राजा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी और सद्भावना (मेट्टा) के बल पर तीर वापस लौट आया, जबकि राजा द्वारा चलाया गया तीर आमतौर पर चट्टान को भी भेद देता था। तब राजा को समवती की निर्दोषता का एहसास हुआ और उन्होंने उन्हें बुद्ध और उनके शिष्यों को महल में भिक्षा भोजन और प्रवचन देने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी।

मगंदिया को जब अपनी कोई भी योजना सफल नहीं हुई, तो उसने एक अंतिम और अचूक योजना बनाई। उसने अपने मामा को संदेश भेजा और उन्हें निर्देश दिए कि वे समवती के घर जाकर उस भवन को सभी महिलाओं समेत जला दें। जब घर जल रहा था, समवती और उनकी पाँच सौ दासियाँ ध्यान करती रहीं। इस प्रकार, उनमें से कुछ को शकदागामी पुण्य प्राप्त हुआ और शेष को अनागामी पुण्य प्राप्त हुआ।

आग लगने की खबर फैलते ही राजा तुरंत घटनास्थल पर पहुंचे, लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। उन्हें शक था कि यह सब मगंदिया के उकसावे पर हुआ है, लेकिन उन्होंने अपना शक ज़ाहिर नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने कहा, "जब समवती जीवित थीं, तब मैं डर और सतर्कता से रहता था, क्योंकि मुझे लगता था कि वह मुझे नुकसान पहुंचा सकती हैं; अब मेरा मन शांत है। यह किसने किया होगा? यह ज़रूर किसी ऐसे व्यक्ति ने किया होगा जो मुझसे बहुत प्यार करता है।" यह सुनकर मगंदिया ने तुरंत मान लिया कि उसने ही अपने मामा को ऐसा करने का निर्देश दिया था। इस पर राजा ने उससे बहुत प्रसन्नता जताते हुए कहा कि वह उस पर एक बड़ा उपकार करेंगे और उसके सभी रिश्तेदारों का सम्मान करेंगे। इसलिए, रिश्तेदारों को बुलवाया गया और वे खुशी-खुशी आ गए। महल पहुंचते ही राजा के आदेश पर मगंदिया समेत उन सभी को पकड़कर महल के प्रांगण में जला दिया गया।

जब बुद्ध को इन दो घटनाओं के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि जो लोग सचेत रहते हैं वे मरते नहीं हैं; लेकिन जो लोग लापरवाह होते हैं वे जीते जी भी मरे हुए के समान होते हैं।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 21 : सजगता ही अमरता (निर्वाण) का मार्ग है; असावधानी मृत्यु का मार्ग है। जो सजग रहते हैं वे मरते नहीं; जो सजग नहीं रहते वे मानो पहले से ही मरे हुए हैं।

श्लोक 22 : इसे पूर्णतः समझकर, सजग बुद्धिमान लोग सजग होने में आनंदित होते हैं और आर्यों के क्षेत्र में प्रसन्नता पाते हैं।

श्लोक 23 : बुद्धिमान, निरंतर शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हुए, सदा सचेत और दृढ़ प्रयास करते हुए, निर्वाण को प्राप्त करते हैं: निर्वाण, जो योगखेम(10) है; निर्वाण, अतुलनीय!

---

(10) योगखेम के बंधन चार हैं, अर्थात् इंद्रिय सुख (काम), अस्तित्व (भव), गलत विश्वास (दित्थी) और चार आर्य सत्यों का अज्ञान (अर्थात अविज्जा)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सामावती की कहानी

कोसंबी के पास स्थित घोषिता मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के राजा उदेना की प्रमुख रानियों में से एक, सामावती के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

भद्दावती नगर में भद्दावतीया नामक एक कोषाध्यक्ष रहता था, जो कोषाध्यक्ष घोषक का मित्र था, यद्यपि घोषक ने उसे कभी नहीं देखा था। घोषक ने भद्दावती नगर से आए व्यापारियों से भद्दावतीया की धन-दौलत और उम्र के बारे में सुना था, और उससे मित्रता करने की इच्छा से उसे एक उपहार भेजा था। इस प्रकार, यद्यपि दोनों ने एक-दूसरे को नहीं देखा था, फिर भी वे मित्रवत जीवन व्यतीत करते थे।

कुछ समय बाद कोषाध्यक्ष भद्दावतिया के घर में आंतों का रोग फैल गया। इस रोग के फैलने पर सबसे पहले मक्खियाँ मरती हैं; उसके बाद क्रम से कीड़े-मकोड़े, चूहे, घरेलू मुर्गे, सूअर, मवेशी, दास (पुरुष और महिला दोनों), और अंत में घर के सभी सदस्य मरते हैं। केवल वही लोग बच पाते हैं जो दीवार तोड़कर भाग जाते हैं। उस समय कोषाध्यक्ष भद्दावतिया, उनकी पत्नी और पुत्री इसी प्रकार भाग निकले और कोषाध्यक्ष घोषक से मिलने के लिए कोसंबी की ओर चल पड़े। रास्ते में ही उनका भोजन-सामान खत्म हो गया और हवा, धूप और भूख-प्यास से उनका शरीर कमजोर हो गया। बड़ी मुश्किल से कोसंबी पहुँचकर उन्होंने एक रमणीय स्थान पर एक तालाब में स्नान किया और फिर नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में ठहर गए।

तब कोषाध्यक्ष ने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, इस रास्ते से आने वाले लोग तो बच्चे को जन्म देने वाली माँ के प्रति भी शिष्टता नहीं दिखाते। मेरा एक मित्र है, जिसके बारे में लोग कहते हैं कि वह प्रतिदिन एक हजार सिक्के अंधों, गरीबों और अन्य दुर्भाग्यशाली लोगों को दान देता है। हम अपनी बेटी को वहाँ भेजेंगे, उससे हमारे लिए भोजन मंगवाएँगे, हम एक-दो दिन यहीं रुकेंगे और तरोताज़ा हो जाएँगे, फिर हम अपने मित्र से मिलने जाएँगे।" "ठीक है, पतिदेव," उसने उत्तर दिया, और वे वहीं विश्राम गृह में रहने लगे।

अगले दिन, जब भोजन का समय हुआ और अंधे, गरीब और अन्य दुर्भाग्यशाली लोग भोजन लेने गए, तो माता-पिता ने अपनी बेटी को यह कहते हुए भेजा, "बेटी, हमारे लिए भोजन ले आओ।" धनी परिवार की बेटी, दुर्भाग्य से आहत होकर, अपनी शर्म छुपाते हुए, एक कटोरा लेकर गरीबों के पास भोजन लेने गई। उससे पूछा गया, "तुम्हें कितने भाग चाहिए?" उसने उत्तर दिया, "तीन।" तो उन्होंने उसे तीन भाग दिए। वह भोजन लेकर अपने माता-पिता के पास लौट आई, और तीनों एक साथ भोजन करने बैठ गए। माता-पिता ने कोषाध्यक्ष से कहा, "स्वामी, विपत्ति प्रतिष्ठित परिवारों पर भी आती है। हमारी चिंता किए बिना भोजन कीजिए।" बहुत समझाने-बुझाने के बाद, वे उसे भोजन करने के लिए राजी कर पाईं। लेकिन भोजन करने के बाद, वह भोजन पचा नहीं सका, और सूर्योदय होते ही उसकी मृत्यु हो गई। माता-पिता रोए, विलाप किया और शोक मनाया।

अगले दिन वह छोटी बच्ची दूसरी बार भोजन लेने गई। "तुम्हें कितने भाग चाहिए?" "दो।" वह भोजन लेकर अपनी माँ के पास लौटी और बहुत मिन्नतें करने के बाद उसे खाने के लिए राजी कर लिया। माँ उसकी विनती मानकर खाने के लिए तैयार हो गई, लेकिन उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई। अकेली रह गई वह बच्ची अपने ऊपर आई विपत्ति पर रोती-बिलखती और विलाप करती रही। अगले दिन, भूख से बेहाल होकर वह भोजन पाने के लिए भिखारियों के बीच रोते हुए गई। "बेटी, तुम्हें कितने भाग चाहिए?" "एक," उसका उत्तर था।

मिट्टा नाम के एक गृहस्थ ने याद किया कि उसे तीन दिन का भोजन मिल चुका है, तो उसने उससे कहा, "नश्वर स्त्री, मर जा। आज आखिरकार तुझे अपने पेट की क्षमता का पता चल गया।" एक प्रतिष्ठित परिवार की यह विनम्र और डरपोक पुत्री को ऐसा लगा जैसे उसके सीने में तलवार चुभ गई हो, या जैसे किसी घाव पर नमकीन पानी छिड़क दिया गया हो। उसने तुरंत उत्तर दिया, "महोदय, आपका क्या तात्पर्य है?" "परसों तुमने तीन भाग खाए, कल दो, आज तुम केवल एक खा रही हो। तो आज तुम्हें अपने पेट की क्षमता का पता चल गया।" "महोदय, यह मत सोचिए कि मैंने ये अपने लिए खाए।" "तो फिर तुमने क्यों खाए?" "महोदय, परसों हम तीन थे, कल हम दो थे, आज मैं अकेली रह गई हूँ।" "ऐसा कैसे?" उसने पूछा।

फिर उसने उसे शुरू से पूरी कहानी सुनाई। उसकी कहानी सुनते-सुनते वह अपने आँसू नहीं रोक पाया, बल्कि भीतर उमड़ते गहरे दुख के आगे व्याकुल हो गया। अंत में उसने उससे कहा, "मेरी प्यारी बेटी, अगर ऐसा है तो चिंता मत करो। अब तक तुम कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की बेटी रही हो, लेकिन आज से तुम मेरी अपनी बेटी हो।" और उसने उसके सिर पर चुंबन किया, उसे अपने घर ले गया और उसे अपनी सबसे बड़ी बेटी के रूप में गोद ले लिया।

एक दिन उसने भोजन कक्ष में तेज़ और चीख-पुकार सुनी, तो उसने अपने पालक पिता से कहा, "पिताजी, आप दान देते समय इन लोगों को शांत क्यों नहीं रखते?" "यह असंभव है, प्यारी बेटी।" "पिताजी, यह बिल्कुल संभव है।" "तुम यह कैसे करोगी, प्यारी बेटी?" "पिताजी, भोजन कक्ष के चारों ओर बाड़ लगा दीजिए और दो द्वार लगा दीजिए, जिनसे लोग अंदर-बाहर आ-जा सकें, लेकिन एक बार में केवल एक ही व्यक्ति के आने-जाने की जगह हो। फिर लोगों को एक द्वार से अंदर और दूसरे से बाहर जाने का निर्देश दीजिए। ऐसा करने से वे शांतिपूर्वक और चुपचाप दान ग्रहण कर लेंगे।" जब गृहस्थ ने उसकी योजना सुनी तो उसने कहा, "वाह, बढ़िया उपाय है, प्यारी बेटी," और उसने वैसा ही किया जैसा उसने सुझाव दिया था। उस समय तक उसका नाम सामा था, लेकिन बाड़ बनवाने के कारण

उसे सामावती नाम मिला। उस समय से भोजन कक्ष में कोई शोर-शराबा नहीं रहा।

कोषाध्यक्ष घोषका को भोजन कक्ष में यह शोर सुनने की आदत हो गई थी और उन्हें यह शोर अच्छा भी लगता था; क्योंकि इससे उन्हें हमेशा यह ख्याल आता था, “यह शोर तो मेरे भोजन कक्ष का है।” लेकिन दो-तीन दिन तक कोई शोर न सुनकर उन्होंने गृहस्थ मित्ता से पूछा, जो एक दिन उनसे मिलने आए थे, “क्या अंधों, गरीबों और अन्य दुर्भाग्यशाली लोगों को दान दिया जा रहा है?” “जी जी।” “तो फिर ऐसा कैसे हुआ कि पिछले दो-तीन दिनों से मुझे कोई आवाज नहीं सुनाई दी?” “मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि अब लोग बिना शोर किए दान ग्रहण कर रहे हैं।” “आपने पहले ऐसा क्यों नहीं किया?” “मुझे पता नहीं था कि कैसे करना है।” “आपको अभी कैसे पता चला?” “मेरी बेटी ने मुझे बताया कि कैसे करना है।” “क्या आपकी कोई बेटी है जिसे मैंने कभी नहीं देखा?” तब गृहस्थ ने उन्हें कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की पूरी कहानी सुनाई, जिसमें महामारी फैलने से लेकर उस युवती को अपनी सबसे बड़ी बेटी के रूप में गोद लेने तक की कहानी थी।

तब कोषाध्यक्ष ने उससे कहा, “यदि ऐसा है, तो तुमने मुझे क्यों नहीं बताया? मेरे मित्र की पुत्री तो मेरी अपनी पुत्री है।” इसलिए उसने उसे बुलवाया और पूछा, “प्यारी बेटी, क्या तुम कोषाध्यक्ष की पुत्री हो?” “जी हाँ, मैं हूँ।” “तो फिर चिंता मत करो; तुम मेरी अपनी पुत्री हो।” फिर उसने उसके सिर पर चुंबन किया, उसे पाँच सौ स्त्रियाँ अपने दल में दीं और उसे अपनी सबसे बड़ी पुत्री के रूप में गोद ले लिया।

एक दिन इस नगर में एक उत्सव की घोषणा हुई। इस उत्सव में प्रतिष्ठित परिवारों की वे बेटियाँ, जो सामान्यतः बाहर नहीं जातीं, अपने दल-पत्नियों के साथ पैदल चलकर नदी में स्नान करने जाती हैं। तदनुसार, उस दिन सामावती भी अपनी पाँच सौ स्त्रियों के साथ महल के प्रांगण से होकर नदी में स्नान करने गईं। राजा उदेना अपनी खिड़की पर खड़े होकर उन्हें देख रहे थे। उन्होंने पूछा, “ये चंचल लड़कियाँ किसकी हैं?” सामावती ने उत्तर दिया, “महाराज, ये किसी की चंचल लड़कियाँ नहीं हैं।” “तो फिर ये किसकी बेटियाँ हैं?” सामावती ने उत्तर दिया, “महाराज, ये कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की पुत्री हैं और इनका नाम सामावती है।” तब राजा ने सामावती और उनके दल-पत्नियों को राजमहल में ले जाकर उन्हें महारानी का पद प्रदान किया।

एक और कन्या को राजा की प्रधान पत्नी का पद प्राप्त हुआ। वह मागंदिया थीं, जिन्हें उनके पिता द्वारा पति के रूप में बुद्ध से विवाह का प्रस्ताव रखे जाने पर बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया था। प्रधान पत्नी बनने के बाद उन्होंने पाया कि दूसरी प्रधान पत्नी सामावती बुद्ध की कट्टर अनुयायी थीं। उन्होंने बुद्ध से बदला लेने और सामावती और उनकी दासियों को हानि पहुँचाने की योजना बनाई। मागंदिया ने राजा को बताया कि सामावती और उनकी दासियों ने अपने निवास स्थान की दीवारों में छेद कर दिए हैं और वे उनके प्रति बेवफ़ाई कर रही हैं। राजा उदेना ने दीवारों में छेद देखे, लेकिन जब उन्हें पूरी बात समझाई गई तो वे क्रोधित नहीं हुए।

मागंदिया राजा को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता रहा कि सामावती उसे जान से मारना चाहती है। एक बार, मागंदिया ने एक वीणा में एक साँप डाल दिया और छेद को फूलों के गुच्छे से ढक दिया। साँप फुफकारते हुए बाहर निकला। राजा क्रोधित हो गया। उसने सामावती को खड़े होने और उसकी सभी दासियों को उसके पीछे पंक्तिबद्ध होने का आदेश दिया। फिर उसने अपने धनुष पर विष में डूबा हुआ बाण लगाया और बाण चलाया। लेकिन सामावती और उसकी दासियों के मन में राजा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी और सद्भावना के बल पर बाण लक्ष्य पर नहीं लगा। राजा को सामावती की निर्दोषता का एहसास हुआ और उसने उसे बुद्ध और उनके शिष्यों को महल में भिक्षा देने और धार्मिक प्रवचन देने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी।

मागंदिया ने जब देखा कि उसकी कोई भी योजना सफल नहीं हुई है, तो उसने एक अंतिम, अचूक योजना बनाई। उसने अपने मामा को संदेश भेजा और उन्हें निर्देश दिए कि वे सामावती के महल में जाकर सभी महिलाओं सहित महल को जला दें। आध्यात्मिक साधना में उन्नत होने के कारण सामावती और उनकी दासियाँ खतरे के बावजूद ध्यान करती रहीं। आग में जलकर सभी की मृत्यु हो गई।

राजा को शक था कि यह सब मागंदिया के उकसावे पर हुआ है, लेकिन उसने अपना शक ज़ाहिर नहीं किया। इसके बजाय, राजा ने उससे बहुत प्रसन्नता जताते हुए कहा कि वह उस पर बड़ी कृपा करेगा और उसके सभी रिश्तेदारों का सम्मान करेगा। इसलिए, रिश्तेदारों को बुलवाया गया और वे खुशी-खुशी आ गए। महल पहुँचते ही, मागंदिया समेत उन सभी को पकड़ लिया गया और महल के प्रांगण में ही मौत के घाट उतार दिया गया।

जब बुद्ध को इन दो घटनाओं के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि जो सचेत रहते हैं वे मरते नहीं हैं; परन्तु जो लापरवाह रहते हैं वे जीते जी भी मरे हुए के समान होते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 21)

अप्पमादो अमतपदं पमादो मैक्कुणो पदं

अप्पमत्ता न मियांति ये पमत्ता यथा माता

appamādo [appamāda]: विवेक; amatapadaṃ [amatapada]: अमरता का मार्ग है; pamādo [pamāda]: पागलपन; maccuno padaṃ [pada]: मृत्यु का मार्ग है; appamattā : जो समझदार हैं; na mīyanti : मरते नहीं; ye : जो; pamattā : पागल हैं; matā yathā : (वे) मृतकों के समान हैं।

अमरत्व का मार्ग निरंतर अनुभव की जागरूकता है। अमरत्व का अर्थ ऐसी शारीरिक अवस्था नहीं है जहाँ शरीर का नाश न हो। जब कोई व्यक्ति अनुभव की प्रक्रियाओं के प्रति पूर्णतः जागरूक हो जाता है, तो वह अस्तित्व की निरंतरता से मुक्त हो जाता है। जिन लोगों में यह जागरूकता नहीं होती, वे शारीरिक रूप से जीवित होते हुए भी मृत के समान होते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 22)

झायिनो साताटिका निकं दल्हपरक्कमा ते दिहरा

योगक्खेमं अनुत्तरं निब्बाणं फुसन्ति

झायिनो [झायिना]: ध्यानमग्न; सततिका : निरंतर प्रयास में; निक्कां [निक्का]: लगातार; दल्हापरक्कमा : दृढ़; ते दिहरा : वे बुद्धिमान व्यक्ति; योगक्खेमं [योगक्खेम]: बंधनों से मुक्त; अनुत्तरं [अनुत्तर]: नायाब; निब्बाणम् [निब्बाण]: शांति; फुसन्ति : स्पर्श करें.

वे ज्ञानी व्यक्ति जो निरंतर ध्यान का अभ्यास करते हैं, उस स्तर की समझ प्राप्त कर लेते हैं जिससे वे निर्वाण का अनुभव कर पाते हैं। वे ज्ञानी व्यक्ति जो निरंतर, दृढ़ता और स्थिरता से ध्यान में लगे रहते हैं, निर्वाण का अनुभव करते हैं, जो सभी बंधनों से मुक्ति का सर्वोच्च रूप है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 23)

एतं विसेसातो नात्वा अप्पमादं हि पंडिता

अप्पमादे पमोदंती अरियानां गोकरे रता

etaṃ : यह; visesato [visesata]: विशेष रूप से; ñatvā : पहचानते हुए; appamādaṃ hi : सचेतनता में स्थापित; paṇḍitā : ज्ञानी; appamāde : सचेतनता में; pamodanti : आनंद लेना; ariyānaṃ [ariyāna]: श्रेष्ठ लोगों का; gocare : उचित आचरण; ratā : आनंद लेना।

जो लोग वास्तव में बुद्धिमान होते हैं, वे विवेक की आवश्यकता के प्रति विशेष रूप से सजग होते हैं। वे विवेक में आनंद पाते हैं। वे विवेक की खोज में प्रसन्न होते हैं क्योंकि यह अलौकिक क्षेत्र है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 21-23)

अप्पमादा : यह शब्द बुद्ध की शिक्षाओं में अनेक संदर्भों में पाया जाता है। यहाँ तक कि उनके अंतिम शब्दों में भी इसका उल्लेख मिलता है। अप्पमादा का सटीक अर्थ है "समझदारी", यानी पागलपन का अभाव, जो बौद्ध धर्म के अनुसार सामान्य (पुथुज्जन) अवस्था नहीं बल्कि अलौकिक (आर्य) अवस्था है। बुद्ध का इस शब्द से तात्पर्य निरंतर सतर्कता और अनुभव की प्रक्रिया के प्रति गहरी जागरूकता से था। प्रशिक्षुओं को सलाह दी गई थी कि वे अस्तित्व (भाव) में लीन होने से बचने के लिए भीतर के अनुभव के प्रति निरंतर जागरूक रहें । इसलिए यह सतर्कता उन्नत प्रशिक्षु और प्रबुद्ध व्यक्ति की मन की एक निरंतर अवस्था है।

अमाता : निर्वाण, बौद्धों का अंतिम लक्ष्य। जैसा कि इस सकारात्मक शब्द से स्पष्ट है, निर्वाण का अर्थ विनाश या शून्यता की अवस्था नहीं है, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। यह वह स्थायी, अमर, अलौकिक अवस्था है जिसे सांसारिक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

न मीयन्ति : मृत्यु न हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे अमर हैं। कोई भी प्राणी अमर नहीं है, यहाँ तक कि बुद्ध या अरहंत भी नहीं। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि सजग, जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, पुनर्जन्म नहीं लेते, इसलिए उनकी मृत्यु नहीं होती। असजग लोगों को मृत माना जाता है क्योंकि वे अच्छे कर्म करने के लिए तत्पर नहीं होते और जन्म-मृत्यु के चक्र में बंधे रहते हैं।

निर्वाण : नि + वान , शाब्दिक अर्थ: भोग से मुक्ति। यह एक अलौकिक अवस्था है जिसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इसे मनोभावों का नाश होना भी कहा जाता है, लेकिन यह शून्यता की अवस्था नहीं है। यह मनोभावों के पूर्ण उन्मूलन से उत्पन्न होने वाली शाश्वत आनंदमयी अवस्था है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 24

(धम्मपद 21, 22, 23) <<<< पिछला ॥ श्लोक 24 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 25)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 24 - कुम्भघोषकासेट्ठि वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 24 - कुम्भघोषकासेट्ठि वत्थु

———————————————————————

00:04
41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
उत्थानावतो सतिमातो
sucikammassa nisammakarino
सन्नातस्सा धम्मजीवनो
अप्पमत्तस्सा यसो भिवद्दति।

———————————————————————

श्लोक 24 : यदि कोई व्यक्ति ऊर्जावान, सचेत, अपने विचार, वचन और कर्म में शुद्ध हो, और यदि वह सब कुछ सावधानी और विचारपूर्वक करे, अपनी इंद्रियों को संयमित रखे, धर्म के अनुसार जीविका कमाए और असावधान न हो, तो उस सचेत व्यक्ति की प्रसिद्धि और धन में निरंतर वृद्धि होती है।

———————————————————————

कुंभघोषक नामक बैंकर की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बैंकर कुंभघोषक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (24) कहा।
एक समय राजगृह नगर में प्लेग की महामारी फैल गई। नगर के धनाढ्य व्यक्ति के घर में नौकर-चाकर इस बीमारी से मर गए; धनाढ्य व्यक्ति और उनकी पत्नी भी इस बीमारी की चपेट में आ गए। जब दोनों बीमार पड़ गए, तो उन्होंने अपने छोटे बेटे कुंभघोषक को घर छोड़कर भाग जाने और लंबे समय बाद लौटने के लिए कहा। उन्होंने उसे यह भी बताया कि फलाँ स्थान पर उन्होंने चालीस करोड़ रुपये का खजाना गाड़ रखा है। बेटा नगर छोड़कर बारह वर्ष तक जंगल में रहा और फिर नगर लौट आया।
उस समय तक वह काफी बड़ा हो चुका था और शहर में कोई भी उसे पहचान नहीं पाया। वह उस जगह गया जहाँ खजाना छिपा था और पाया कि वह पूरी तरह सुरक्षित था। लेकिन उसने सोचा और महसूस किया कि कोई भी उसे पहचान नहीं पाएगा और अगर वह दफन खजाने को खोदकर निकाल ले और उसका इस्तेमाल करे तो लोग सोचेंगे कि एक गरीब नौजवान को गलती से दफन खजाना मिल गया है और वे इसकी सूचना राजा को दे देंगे। ऐसे में उसकी संपत्ति जब्त हो जाएगी और उसे पीटा जा सकता है या कैद किया जा सकता है। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि अभी खजाना खोदने का समय नहीं आया है और इस बीच उसे अपनी जीविका के लिए काम ढूंढना होगा। पुराने कपड़े पहने कुंभघोषक काम की तलाश में निकल पड़ा। उसे सुबह जल्दी लोगों को जगाने और भोजन तैयार करने, बैलगाड़ी लाने और बैलों को जोतने आदि की घोषणा करने का काम दिया गया।
एक सुबह राजा बिम्बिसार ने उसकी आवाज़ सुनी। राजा, जो आवाज़ों को पहचानने में माहिर थे, ने कहा, "यह किसी धनी व्यक्ति की आवाज़ है।" राजा की यह टिप्पणी सुनकर एक दासी ने किसी को जाँच के लिए भेजा। उसने बताया कि वह युवक केवल मज़दूरों का एक मज़दूर था। इस सूचना के बावजूद राजा ने अगले दो दिनों तक यही बात दोहराई। फिर से पूछताछ की गई, लेकिन परिणाम वही रहा। दासी को यह बहुत अजीब लगा, इसलिए उसने राजा से स्वयं जाकर जाँच करने की अनुमति माँगी।
देहाती वेश धारण करके दासी और उसकी बेटी मजदूरों के ठिकाने की ओर चल पड़ीं। उन्होंने यात्री होने का दावा करते हुए आश्रय मांगा और कुंभघोषक के घर में उन्हें केवल एक रात के लिए ठहराया गया। हालांकि, वे वहां अपना प्रवास बढ़ाने में कामयाब रहीं। इसी दौरान राजा ने दो बार घोषणा की कि मजदूरों के इलाके में एक विशेष समारोह आयोजित किया जाना चाहिए और प्रत्येक परिवार को योगदान देना होगा। कुंभघोषक के पास ऐसे अवसर के लिए नकद राशि नहीं थी। इसलिए उन्हें अपने खजाने से कुछ सिक्के (कहपन) निकालने पड़े। जब ये सिक्के दासी को सौंपे गए, तो उसने उन्हें अपने पैसों से बदल दिया और राजा को भेज दिए। कुछ समय बाद, उसने राजा को संदेश भेजा कि वह कुछ लोगों को भेजकर कुंभघोषक को दरबार में बुलाए। कुंभघोषक बड़ी अनिच्छा से उन लोगों के साथ चला गया। दासी और उसकी बेटी भी उनसे पहले महल चली गईं।
महल में राजा ने कुंभघोषक को सच बोलने को कहा और आश्वासन दिया कि उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा। तब कुंभघोषक ने स्वीकार किया कि वे सिक्के उसके थे और वह राजगृह नगर के उस धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र था जिसकी बारह वर्ष पूर्व प्लेग महामारी में मृत्यु हो गई थी। उसने खजाने के छिपे होने का स्थान भी बताया। इसके बाद, सारा छिपा हुआ खजाना महल में लाया गया; राजा ने उसे धनाढ्य बना दिया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया।
इसके बाद, राजा कुंभघोषक को अपने साथ लेकर वेलुवन मठ में बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि कैसे वह युवक धनी होते हुए भी मजदूरों के यहाँ मजदूरी करके अपना जीवन यापन कर रहा था, और कैसे उन्होंने उस युवक को एक बैंकर नियुक्त किया था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 24 : यदि कोई व्यक्ति ऊर्जावान, सचेत, अपने विचार, वचन और कर्म में शुद्ध हो, और यदि वह प्रत्येक कार्य सावधानी और विचारपूर्वक करे, अपनी इंद्रियों को संयमित रखे, धर्म के अनुसार जीविका अर्जित करे और असावधान न हो, तो उस सचेत व्यक्ति की प्रसिद्धि और धन में निरंतर वृद्धि होती है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, कुंभघोषक ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
वेलुवन मठ में निवास करने वाले कुंभघोषक की कथा:
बुद्ध ने कुंभघोषक नामक साहूकार के संदर्भ में यह श्लोक कहा। एक समय राजगृह नगर में प्लेग की महामारी फैल गई। नगर के साहूकार के घर में नौकर इस बीमारी से मर गए; साहूकार और उनकी पत्नी भी इस बीमारी की चपेट में आ गए। जब वे दोनों इस बीमारी से संक्रमित हो गए, तो उन्होंने अपने छोटे बेटे कुंभघोषक को घर छोड़कर भाग जाने और लंबे समय बाद ही लौटने को कहा। उन्होंने उसे यह भी बताया कि फलाँ स्थान पर उन्होंने एक बहुमूल्य खजाना छिपा रखा है। बेटा नगर छोड़कर बारह वर्ष तक जंगल में रहा और फिर नगर लौट आया। तब तक वह काफी बड़ा हो चुका था और नगर में कोई भी उसे पहचान नहीं पाया। वह उस स्थान पर गया जहाँ खजाना छिपा था और उसे सुरक्षित पाया। लेकिन उसने सोच-समझकर यह महसूस किया कि उसे पहचानने वाला कोई नहीं है और अगर वह दफन खजाने को खोदकर निकाल ले और उसका इस्तेमाल करे तो लोग सोचेंगे कि एक गरीब नौजवान को गलती से दफन खजाना मिल गया है और वे इसकी सूचना राजा को दे देंगे। ऐसे में उसकी संपत्ति जब्त हो जाएगी और उसे पीटा जा सकता है या कैद में डाला जा सकता है। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि अभी खजाना खोदने का समय नहीं आया है और इस बीच उसे जीविका कमाने के लिए काम ढूंढना होगा। पुराने कपड़े पहने कुंभघोषक काम की तलाश में निकल पड़ा। उसे सुबह जल्दी लोगों को जगाने और भोजन तैयार करने, गाड़ियां लाने और बैलों को जोतने का समय बताने का काम दिया गया।
एक सुबह, राजा बिम्बिसार ने उसकी आवाज़ सुनी। राजा, जो आवाज़ों को पहचानने में माहिर थे, ने कहा, "यह किसी धनी व्यक्ति की आवाज़ है।" राजा की यह टिप्पणी सुनकर एक दासी ने किसी को जाँच के लिए भेजा। उसने बताया कि वह युवक केवल मजदूरों का एक मज़दूर था। इस सूचना के बावजूद, राजा ने अगले दो दिनों तक यही बात दोहराई। फिर से पूछताछ की गई, लेकिन परिणाम वही रहा। दासी को यह बहुत अजीब लगा, इसलिए उसने राजा से स्वयं जाकर जाँच करने की अनुमति माँगी। साधारण लोगों का वेश धारण करके, दासी और उसकी बेटी मजदूरों के स्थान पर गईं। उन्होंने यात्री होने का दावा करते हुए आश्रय माँगा और कुंभघोषक के घर में उन्हें केवल एक रात के लिए ठहराया गया। हालाँकि, वे वहाँ अपना प्रवास बढ़ाने में कामयाब रहीं। इस दौरान, राजा ने दो बार घोषणा की कि मजदूरों के इलाके में एक विशेष समारोह आयोजित किया जाना चाहिए और प्रत्येक परिवार को योगदान देना होगा। कुंभघोषक के पास ऐसे अवसर के लिए नकद राशि नहीं थी। इसलिए उन्हें अपने खजाने से कुछ सोने के सिक्के निकालने पड़े। जब ये सिक्के दासी को सौंपे गए, तो उसने उन्हें अपने पैसों से बदल दिया और राजा को भेज दिए। कुछ समय बाद, उसने राजा को संदेश भेजा कि वह कुछ लोगों को भेजकर कुंभघोषक को दरबार में बुलाए। कुंभघोषक अनिच्छा से उन लोगों के साथ चला गया। दासी और उसकी बेटी भी उनसे पहले महल में चली गईं।
महल में राजा ने कुंभघोषक से सच बोलने को कहा और उसे आश्वासन दिया कि इस कारण उसे कोई हानि नहीं होगी। कुंभघोषक ने स्वीकार किया कि वे कहापन (सोने के सिक्के) उसके थे और वह राजगृह नगर के धनाढ्य का पुत्र था, जिसकी बारह वर्ष पूर्व प्लेग महामारी में मृत्यु हो गई थी। उसने खजाने के छिपे होने का स्थान भी बताया। इसके बाद, सारा छिपा हुआ खजाना महल में लाया गया; राजा ने उसे धनाढ्य नियुक्त किया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। बाद में, कुंभघोषक को अपने साथ लेकर राजा वेलुवन मठ में बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि कैसे वह युवक धनी होते हुए भी मजदूरों के यहाँ मजदूरी करके अपना जीवन यापन कर रहा था और कैसे उन्होंने उसे धनाढ्य नियुक्त किया था।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 24)
उत्थानवतो सातिमतो सुसीकमम्मास निसम्मकारिनो
सन्नतस्सा च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्सा यसो अभिवधति
उत्थानावतो [उठहनावता]: दृढ़; सतिमातो [सतिमाता]: चौकस; सुसीकम्मास्सा : कार्य और व्यवहार में शुद्ध; निसम्माकारिनो [nisammakārina]: सभी गतिविधियों में सावधान; सन्नतास्सा : अच्छी तरह से संयमित; सीए : और; धम्मजिविनो [धम्मजिविना]: धार्मिक जीवन जीना; अप्पमट्टस्सा : जागरूक व्यक्ति; यशो : महिमा; अभिवधति : बहुत बढ़ जाती है।
यदि कोई व्यक्ति दृढ़ है, उसका ध्यान अंतर्मुखी है, उसके शारीरिक और आध्यात्मिक कर्म निष्कलंक हैं, वह संयमी है, और वह शिक्षा के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहा है तथा समझदार है, तो उसकी महिमा बढ़ेगी।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 24)
उत्थानवतो : वह व्यक्ति जो सजग और ऊर्जावान हो, और सुस्त न हो। वह सत्य की खोज के मार्ग पर बिना थके और दृढ़ धैर्य के साथ निरंतर चलता रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 25

(धम्मपद 24) <<<< पिछला ॥ श्लोक 25 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 26, 27)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 25 - कुलपंथका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 25 - कुलपंथका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
उत्थानेना' पपामदेन
सम्यमेना दमेना च
dipam kayiratha medhav(1)
yam ogho(2) nabhikirati.

श्लोक 25 : परिश्रम, सजगता, अनुशासन (नैतिक उपदेशों के संबंध में) और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण के द्वारा, बुद्धिमान व्यक्ति अपने आप को एक ऐसा द्वीप बना ले जिसे कोई बाढ़ बहा न सके।

---

1. dipam kayiratha medhavi = द्वीप + बनाना + बुद्धिमान, जिसका अर्थ है कि बुद्धिमान व्यक्ति एक द्वीप बनाए। इस संदर्भ में 'द्वीप' अरहतत्व का प्रतीक है। अरहतत्व को यहाँ द्वीप से जोड़ा गया है क्योंकि यह व्यक्ति को संसार (पुनर्जन्मों के चक्र) के तूफानी जल से मुक्ति दिलाता है।
2. ओघो: बाढ़ या जलप्रपात। इसका प्रयोग मानवता को अभिभूत करने वाली बुराइयों या वासनाओं के लिए लाक्षणिक रूप से किया जाता है।

चुलपंथका की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजगृह के एक बैंकर के पोते चुलपंथक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (25) कहा।
बैंकर के दो पोते थे, जिनका नाम महापंथक और चुलपंथक था। महापंथक, जो बड़ा था, अपने दादा के साथ धार्मिक प्रवचन सुनने जाया करता था। बाद में, महापंथक बौद्ध धर्म में शामिल हो गया और समय के साथ अर्हत बन गया। चुलपंथक ने अपने भाई का अनुसरण किया और भिक्षु बन गया। लेकिन, चूंकि पिछले जन्म में कश्यप बुद्ध के समय में चुलपंथक ने एक बहुत ही मंदबुद्धि भिक्षु का उपहास किया था, इसलिए वह इस जन्म में भी मंदबुद्धि ही पैदा हुआ। वह चार महीनों में एक श्लोक भी याद नहीं कर सका। महापंथक अपने छोटे भाई से बहुत निराश था और उसने उससे यह भी कहा कि वह संघ के योग्य नहीं है।
लगभग उसी समय, जीवक बुद्ध और वहाँ के भिक्षुओं को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने आया। महापंथक, जो उस समय भिक्षुओं को भोजन के निमंत्रण देने का प्रभारी था, ने चुलपंथक का नाम सूची से हटा दिया। जब चुलपंथक को इस बात का पता चला तो

वह बहुत निराश हुआ और उसने गृहस्थ जीवन में लौटने का निश्चय किया। उसका इरादा जानकर, बुद्ध उसे अपने साथ ले गए और उसे गंधकुटी हॉल के सामने बैठाया। फिर उन्होंने चुलपंथक को एक साफ कपड़ा दिया और उसे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठने और उसे रगड़ने के लिए कहा। साथ ही उसे "राजोहरणम" शब्द का जाप करने के लिए कहा, जिसका अर्थ है "अशुद्धता ग्रहण करना"। इसके बाद बुद्ध भिक्षुओं के साथ जीवक के निवास पर गए।

इसी बीच, चुलपंथक कपड़े के टुकड़े को रगड़ते रहे और लगातार "राजोहरणम्" का जाप करते रहे। देखते ही देखते कपड़ा गंदा हो गया। कपड़े की इस स्थिति को देखकर चुलपंथक को सभी वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हो गया। जीवक के घर से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से चुलपंथक की प्रगति के बारे में जाना। उन्होंने अपना प्रकाश इस प्रकार भेजा कि (चुलपंथक को) बुद्ध उनके सामने बैठे हुए दिखाई दिए और बोले:

"केवल कपड़ा ही धूल से गंदा नहीं होता; भीतर भी राग, द्वेष और मोह की धूल विद्यमान रहती है, अर्थात् चार आर्य सत्यों का अज्ञान। इन्हें दूर करके ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।" चुलपंथक को यह संदेश समझ में आ गया और उन्होंने निरंतर ध्यान किया तथा थोड़े ही समय में विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार चुलपंथक का मंदबुद्धिपन दूर हो गया।

जीवक के घर पर, वे दान के प्रतीक के रूप में आहुति जल डालने ही वाले थे कि बुद्ध ने कटोरे को अपने हाथ से ढक लिया और पूछा कि क्या मठ में कोई भिक्षु बचा है। जब उत्तर मिला कि कोई नहीं है, तो बुद्ध ने कहा कि एक भिक्षु है और उन्हें मठ से चुलपंथक को लाने का निर्देश दिया। जब जीवक के घर से दूत मठ पहुँचा, तो उसने वहाँ एक भिक्षु को नहीं, बल्कि एक हजार एक जैसे भिक्षुओं को पाया। उन सभी को चुलपंथक ने बनाया था, जिसके पास अब अलौकिक शक्तियाँ थीं। दूत चकित रह गया और वह वापस लौटकर जीवक को सारी बात बता दी। दूत को दूसरी बार मठ भेजा गया और उसे निर्देश दिया गया कि वह कहे कि बुद्ध ने चुलपंथक नाम के भिक्षु को बुलाया है। लेकिन जब उसने संदेश दिया, तो हजार आवाजों ने उत्तर दिया, "मैं चुलपंथक हूँ।" फिर से चकित होकर, वह दूसरी बार वापस लौट गया। फिर उसे तीसरी बार मठ भेजा गया। इस बार उन्हें उस भिक्षु को पकड़ने का निर्देश दिया गया जिसने सबसे पहले खुद को चुलपंथक बताया था। जैसे ही उन्होंने उस भिक्षु को पकड़ा, बाकी सभी गायब हो गए, और चुलपंथक दूत के साथ जीवक के घर गए। भोजन के बाद, बुद्ध के निर्देशानुसार, चुलपंथक ने युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए आत्मविश्वास और साहस के साथ धार्मिक प्रवचन दिया।

बाद में, जब भिक्षुओं के बीच चुलपंथक का विषय उठा, तो बुद्ध ने कहा कि जो व्यक्ति अपने प्रयास में परिश्रमी और दृढ़ रहता है, वह निश्चित रूप से अर्हतत्व प्राप्त करेगा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 25 : परिश्रम, सजगता, अनुशासन (नैतिक उपदेशों के संबंध में) और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण के द्वारा, बुद्धिमान व्यक्ति अपने आप को एक ऐसा द्वीप बना ले जिसे कोई बाढ़ बहा न सके।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चूलपंथक की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजगृह के एक धनाढ्य के पोते चूलपंथक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। धनाढ्य के दो पोते थे, महापंथक और चूलपंथक। महापंथक, जो बड़े थे, अपने दादा के साथ धार्मिक प्रवचन सुनने जाया करते थे। बाद में, महापंथक ने बौद्ध धर्म अपना लिया और जल्द ही अर्हत बन गए। चूलपंथक ने भी अपने भाई का अनुसरण करते हुए भिक्षु बन गए, लेकिन चार महीने में एक श्लोक भी याद नहीं कर सके। लगभग उसी समय, जीवक मठ में बुद्ध और वहां रहने वाले भिक्षुओं को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने आए। महापंथक, जो उस समय भिक्षुओं को भोजन के निमंत्रण देने का प्रभारी था, ने चूलपंथक का नाम सूची से हटा दिया। जब चूलपंथक को इस बात का पता चला तो वे बहुत निराश हुए और उन्होंने गृहस्थ जीवन में लौटने का निश्चय किया। बुद्ध ने चूलपंथक का इरादा जान लिया और उसे अपने साथ ले जाकर गंधकुटी हॉल के सामने बैठा दिया। फिर उन्होंने चूलपंथक को एक साफ सफेद कपड़ा दिया और उसे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठने और उस कपड़े को हाथ से रगड़ने को कहा। साथ ही, उसे "राजोहरणम्" शब्द का जाप करना था, जिसका अर्थ है "अशुद्धता दूर करना"। इसके बाद बुद्ध भिक्षुओं के साथ जीवक के निवास स्थान पर चले गए।

इसी बीच, चूलपंथक कपड़े के टुकड़े को रगड़ते रहे और लगातार "राजोहरणम्" का जाप करते रहे। देखते ही देखते कपड़ा गंदा हो गया। कपड़े की इस हालत को देखकर चूलपंथक को समस्त वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति का ज्ञान हो गया। जीवक के घर से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से चूलपंथक की प्रगति के बारे में जाना। उन्होंने अपना प्रकाश भेजा जिससे चूलपंथक को ऐसा लगा जैसे वे उनके सामने बैठे हों और बोले: "केवल कपड़ा ही धूल से गंदा नहीं होता; भीतर भी धूल होती है। केवल उस धूल को दूर करके ही मनुष्य अपने

लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।" चूलपंथक को यह संदेश समझ आ गया और उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जीवक के घर में, रिवाज के अनुसार भोजन परोसने से पहले जल चढ़ाने ही वाले थे कि बुद्ध ने कटोरे को अपने हाथ से ढक लिया और पूछा कि क्या मठ में कोई भिक्षु बचा है। जब यह उत्तर दिया गया कि कोई नहीं है, तो बुद्ध ने कहा कि एक है, और उन्हें मठ से चूलपंथक को लाने का निर्देश दिया। जब जीवक के घर से दूत मठ पहुँचा, तो उसने वहाँ एक नहीं, बल्कि एक हजार एक जैसे भिक्षुओं को पाया। उन सभी को चूलपंथक ने बनाया था, जिसके पास अब अलौकिक शक्तियाँ थीं। दूत चकित रह गया और वह वापस लौटकर जीवक को सारी बात बता दी। दूत को दूसरी बार मठ भेजा गया और उसे निर्देश दिया गया कि वह कहे कि बुद्ध ने चूलपंथक नाम के भिक्षु को बुलाया है। लेकिन जब उसने यह संदेश दिया, तो हजार आवाजों ने उत्तर दिया, "मैं चूलपंथक हूँ।" फिर से चकित होकर, वह दूसरी बार वापस लौट गया। फिर उसे तीसरी बार मठ भेजा गया। इस बार, उसे उस भिक्षु को लाने का निर्देश दिया गया जिसने सबसे पहले कहा था कि वह चूलपंथक है। जैसे ही उसने उस भिक्षु को पकड़ा, बाकी सब गायब हो गए, और चूलपंथक दूत के साथ जीवक के घर गया। भोजन के बाद, बुद्ध के निर्देशानुसार, चूलपंथक ने एक युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए, आत्मविश्वास और साहस के साथ धार्मिक प्रवचन दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 25)

उत्थानेन अप्पमादेन सन्यामेन दमेना च
मेधावी दीपं कयिरथ यं ओघो न अभिकिरति

उत्ठानेन : (स्थिरता से युक्त); अप्पमादेन : सचेतनता से युक्त; सन्ञमेना : संयम से युक्त; दमेना : इंद्रियों पर नियंत्रण से युक्त; च : और; मेधावी : बुद्धिमान व्यक्ति; दीपं [दीप]: एक द्वीप; कयिरथ : बनाता है; यं : जिसे; ओघो : बाढ़; न अभिकीरति : डुबो नहीं पाएगी।

नोट : यह खेदजनक है कि अधिकांश अंग्रेजी अनुवाद दीघ निकाय के महापरिनिब्बान सूत्र जैसे संदर्भों में दीप शब्द का अनुवाद 'दीपक' के रूप में करते हैं। दीप शब्द के दो अर्थ हैं: 1) दीपक; 2) द्वीप। उपरोक्त श्लोक में, "द्वीप" अधिक उपयुक्त अर्थ है।

संपूर्ण संसार विकारों से भरा पड़ा है। जीवन की इंद्रिय सुख-सुविधाएँ एक विशाल और प्रचंड बाढ़ के समान हैं। परन्तु ज्ञानी व्यक्ति अपने लिए एक ऐसा द्वीप बना लेता है जिसे वह विशाल बाढ़ भी बहा नहीं सकती। यह द्वीप दृढ़ता, सजगता, संयम और अनुशासन से निर्मित होता है। एक बार उस द्वीप पर दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाने पर ज्ञानी व्यक्ति को वह बाढ़ भी बहा नहीं सकती।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 25)

मेधावी : बुद्धिमान वे लोग होते हैं जिनमें सही अंतर्दृष्टि विद्यमान होती है।

दीपं : ऊँचे तल पर स्थित द्वीप बाढ़ से अछूता रहता है, भले ही उसके आसपास की निचली भूमि जलमग्न हो जाए। ऐसा द्वीप सभी के लिए शरणस्थल बन जाता है। उसी प्रकार, अंतर्दृष्टि प्राप्त करने वाले ज्ञानी व्यक्ति को अरहंतत्व प्राप्त करके स्वयं को एक द्वीप बना लेना चाहिए, ताकि वह इंद्रिय-इच्छाओं (काम), झूठे विश्वासों (दिट्ठी), अस्तित्व की लालसा (भव) और अज्ञान (अविज्जा) की चार बाढ़ों में न डूब जाए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 26 और 27

(धम्मपद 25) <<<< पिछला || श्लोक 26, 27 || अगला >>>> (धम्मपद 28)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 26 और 27 - बालनखट्टसंगुत्था वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 26 और 27 - बालनक्खट्टसंगुत्था वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamadamanuyuñjanti

bala dummedhino jana(1)
appamadañca medhavi
धनम सेत्थमवा रक्खति.

Ma pamadamanuyuñjetha
मा कामरतिसन्तवम
appamatto hi jhayanto
pappoti vipulam sukham.

श्लोक 26 : मूर्ख और अज्ञानी लोग लापरवाही में लिप्त रहते हैं; जबकि बुद्धिमान लोग सजगता को अनमोल रत्न के समान संजोते हैं।

श्लोक 27 : इसलिए, किसी को भी लापरवाह नहीं होना चाहिए और न ही इंद्रिय सुखों का आदी होना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से सचेतनता में स्थापित हो जाता है, वह परम सुख का अनुभव करता है (अर्थात निर्वाण प्राप्त करता है)।

---

1. बल दुम्मेधिनो जन: मूर्ख और अज्ञानी। कहानी में वर्णित मूर्ख वे उपद्रवी थे जो बलनाक्खत्ता उत्सव के दौरान बेतहाशा मौज-मस्ती और अव्यवस्था में लिप्त थे। वे न तो दूसरों के प्रति सचेत थे और न ही इस लोक और परलोक में अपने लिए आने वाले परिणामों के प्रति।

बालनखट्टा महोत्सव की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बलनाक्खत्ता उत्सव के संबंध में इस पुस्तक के श्लोक (26) और (27) का उच्चारण किया।
एक समय सावत्थी में बलनाक्खत्ता उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव के दौरान, कई मूर्ख युवक अपने शरीर पर राख और गोबर मलकर शहर में इधर-उधर घूमते, चिल्लाते और लोगों को परेशान करते थे। वे दूसरों के दरवाजों पर भी रुक जाते और पैसे मिलने पर ही जाते थे।
उस समय श्रावस्ती में बुद्ध के बहुत से गृहस्थ शिष्य रहते थे। इन मूर्ख युवकों के कारण उन्होंने बुद्ध को संदेश भेजा और उनसे सात दिनों तक मठ में ही रहने और शहर में प्रवेश न करने का अनुरोध किया। उन्होंने मठ में भिक्षा के लिए भोजन भेजा और स्वयं अपने-अपने घरों में ही रहे। आठवें दिन, जब उत्सव समाप्त हुआ, तो बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा और अन्य भेंटों के लिए शहर में आमंत्रित किया गया। उत्सव के दौरान इन मूर्ख युवकों के अभद्र और शर्मनाक व्यवहार के बारे में सुनकर बुद्ध ने टिप्पणी की कि निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करना मूर्खों और अज्ञानियों का स्वभाव है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 26 : मूर्ख और अज्ञानी लोग लापरवाही में लिप्त रहते हैं; जबकि बुद्धिमान लोग सजगता को अनमोल रत्न के समान संजोते हैं।

श्लोक 27 : इसलिए, किसी को भी लापरवाह नहीं होना चाहिए और न ही इंद्रिय सुखों का आदी होना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से सचेतनता में स्थापित हो जाता है, वह परम सुख का अनुभव करता है (अर्थात निर्वाण प्राप्त करता है)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बाला नक्खट्टा महोत्सव की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बाल नक्खत्त उत्सव - मूर्खों के उत्सव - के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक निश्चित तिथि को सावत्थी में मूर्खों का एक त्योहार मनाया जाता था, और इस मूर्खतापूर्ण त्योहार के अवसर पर, लोग अपने शरीर पर राख और गोबर मलते थे और सात दिनों की अवधि तक तरह-तरह की अश्लील बातें करते फिरते थे।
उस समय लोग अपने रिश्तेदारों, मित्रों या भिक्षुओं से मिलने पर उनका सम्मान नहीं करते थे, बल्कि दरवाज़े पर खड़े होकर उन्हें अभद्र भाषा से अपमानित करते थे। जो लोग अभद्र भाषा सहन नहीं कर पाते थे, वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार आगंतुकों को आधा पैसा, पच्चीस पैसे या एक पैसा देते थे, और आगंतुक वह पैसा लेकर उनके घरों से चले जाते थे।

उस समय सावत्थी में पंद्रह लाख श्रेष्ठ शिष्य थे, और उन्होंने गुरु को संदेश भेजा, “हे पूज्यवर, बुद्ध से निवेदन है कि वे सात दिनों तक भिक्षुओं के समूह के साथ नगर में प्रवेश न करें; वे मठ में ही निवास करें।” और सात दिनों तक श्रेष्ठ शिष्यों ने मठ में भिक्षुओं के समूह के लिए भोजन तैयार करवाया और उन्हें भेजा, परन्तु वे स्वयं अपने घरों से बाहर नहीं निकले।

लेकिन आठवें दिन, जब उत्सव समाप्त हो गया, तो उन्होंने भिक्षुओं के समूह को अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित किया, उन्हें शहर में ले गए और भरपूर भेंटें दीं। एक तरफ आदरपूर्वक बैठकर उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, हमने पिछले सात दिन कष्टपूर्वक बिताए हैं। मूर्ख लोगों की अभद्र बातें सुनकर हमारे कान फटने वाले थे। किसी ने किसी का आदर नहीं किया, और इसी कारण हमने आपको शहर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी। हम स्वयं भी घर से बाहर नहीं निकले।”

बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर उत्तर दिया, “बुद्धिहीन मनुष्य इस प्रकार आचरण करते हैं। परन्तु बुद्धिवान मनुष्य सजगता को अपना सबसे बड़ा खजाना मानते हैं और ऐसा करके अंततः निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 26)

बाला दुमेधिनो जना पमादं अनुयुञ्जन्ति

मेधावी च अप्पमादं सेठं धनं इव रक्खति

बाला : वास्तविक मूल्यों से अनभिज्ञ; दुम्मेधिनो जना : मूर्ख लोग; पमादं अनुयुंजन्ति : असावधानी में लिप्त; मेधावी च : बुद्धिमानों के लिए; अप्पमादं [अप्पमाद]: सजगता; सेठं धनं इव : एक महान खजाने के समान; रक्खति : संजोना।

जो मूर्ख और विवेकहीन होते हैं, वे असावधानी में लिप्त रहते हैं। परन्तु बुद्धिमान लोग सजगता को एक अनमोल खजाना मानते हैं। मूर्ख लोग इंद्रिय सुख में लिप्त रहते हैं। वे ऐसे कार्यों में लगे रहते हैं जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए बिलकुल भी अनुकूल नहीं होते। सांसारिक लाभ प्राप्त करने के लिए लोगों को धन की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार, उच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमें कुछ धन की आवश्यकता होती है, और वह धन सजगता है सजगता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 26)

बाला : यह एक वर्गीकरण है जो बुद्ध की शिक्षाओं के अधिकांश क्षेत्रों में पाया जाता है। इस शब्द से जिस व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है, उसे आम तौर पर अज्ञानी या मूर्ख समझा जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा व्यक्ति कला और शिल्प में निपुण नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ऐसा व्यक्ति वास्तविकता के प्रति पर्याप्त रूप से सजग नहीं है — वह चीजों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सक्षम नहीं है। आध्यात्मिक विकास के संदर्भ में, ऐसे व्यक्ति का व्यवहार कभी-कभी बचकाना या अपरिपक्व माना जाता है। वह अत्यधिक आत्म-भोग और इंद्रिय सुखों की खोज में लिप्त रहता है। वह धर्मी, सद्गुणी बनने या अच्छे आचरण का जीवन जीने का प्रयास नहीं करता। उसे यह नहीं पता कि इस संसार और परलोक के लिए उसके लिए क्या लाभकारी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली में, इसका अर्थ है "भावनात्मक रूप से अपरिपक्व व्यक्ति"।

pamādaṃ anuyuñjanti : “ पमाद ” शब्द का शाब्दिक अर्थ है वह “बुनियादी पागलपन” जिससे सभी अज्ञानी लोग पीड़ित होते हैं। यह भावनाओं में बह जाना और वास्तविकता से बेखबर हो जाना है। यह भावनात्मक नियंत्रण का अभाव है। यह भावनात्मक अपरिपक्वता के समान ही है। इसे “न्यूरोसिस” भी कहा जा सकता है। हम यहाँ इसका अनुवाद सचेतनता के विपरीत, अचेतनता या अनमनोदशा के रूप में करते हैं।

सेट्ठं धनं इव : यह अभिव्यक्ति सचेतन लोगों के लिए है। वे अपनी सचेतनता की रक्षा उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई अनमोल खजाने की रक्षा करता है। जो लोग इंद्रिय-प्रधान होते हैं, वे धन को सांसारिक सुखों का साधन मानते हैं। इसलिए, उनके लिए सांसारिक धन ही एकमात्र महत्वपूर्ण खजाना होता है। प्राचीन टीकाओं में सांसारिक खजानों को सात बताया गया है। वे हैं सोना, चांदी, मोती, रत्न, नीलमणि, शंख और शिला रत्न। परन्तु सत्य की खोज करने वालों के लिए खजाने हैं सचेतनता और दृढ़ता। ये आध्यात्मिक अनुभूति के सर्वोच्च फल प्राप्त करने का साधन सुनिश्चित करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 27)

पमादं मा अनुयुन्जेथा कामरतिसंथवं

मा (अनुयुन्जेथा) अप्पमत्तो हि झायन्तो विपुलं सुखं पप्पोति

पमादां [पमादा]: लापरवाही; मा : मत करो; अनुयुन्जेथा : लिप्त; कामरातिसंथावम् [कामरातिसंथाव]: कामुक सुख; मा : बचना; अप्पमत्तो हाय : जागरूक व्यक्ति; झायंतो [झायंता]: ध्यानमग्न; विपुलं सुखं [सुखा]: उच्च-आनंद; पप्पोति : पहुँचता है।

लापरवाही में लिप्त न हों। किसी भी प्रकार के इंद्रिय सुखों की लालसा से बचें। सजग व्यक्ति का मन शांत होता है। वह परम आनंद की प्राप्ति करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 26)

कामरति संथवं : इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य इंद्रिय सुखों में लिप्त होना है। श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि इस प्रकार का लिप्त होना चेतना में शिथिलता और सत्य की खोज के प्रति उत्साह में कमी लाता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार के आसक्ति के आगे न

झुकें। अतः मुख्य बल तन्हा से बचने की आवश्यकता पर है , जिसका शाब्दिक अर्थ "प्यास" है। यही "प्यास", इच्छा, लोभ, लालसा, जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, सभी प्रकार के दुखों और अस्तित्व (भाव) की निरंतरता को जन्म देती है। परन्तु इसे प्रथम कारण नहीं मानना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म के अनुसार कोई प्रथम कारण संभव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। अतः "प्यास" दु:ख की उत्पत्ति का प्रथम या एकमात्र कारण नहीं है। परन्तु यह दु:ख की उत्पत्ति का एक आवश्यक कारण अवश्य है। “प्यास” शब्द में केवल इंद्रिय सुख, धन और शक्ति की इच्छा और आसक्ति ही नहीं, बल्कि विचारों, आदर्शों, मतों, सिद्धांतों, धारणाओं और विश्वासों की इच्छा और आसक्ति भी शामिल है। बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार, संसार में होने वाली सभी परेशानियाँ और कलह, परिवारों में होने वाले छोटे-मोटे व्यक्तिगत झगड़ों से लेकर देशों और राष्ट्रों के बीच होने वाले बड़े युद्धों तक, इसी “प्यास” से उत्पन्न होती हैं। इस दृष्टिकोण से, सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं की जड़ इसी स्वार्थी ‘प्यास’ में निहित है। महान राजनेता जो अंतरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने का प्रयास करते हैं और युद्ध और शांति की चर्चा केवल आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में करते हैं, वे सतही बातों को ही छूते हैं और समस्या की वास्तविक जड़ तक कभी नहीं पहुँचते। जैसा कि बुद्ध ने रट्ठपाल से कहा था: “संसार अभाव और लालसा से ग्रस्त है और ‘प्यास’ का गुलाम है।”

कामरति को कामुक आवेग के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। आधुनिक भाषा में, इसे "आवेगी आवेग" कहा जा सकता है। बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षु, दुख का मूल क्या है? यह वह लालसा है जो बार-बार पुनर्जन्म का कारण बनती है और सुख और कामवासना से बंधी हुई, कभी यहाँ, कभी वहाँ, सदा नए आनंद की खोज करती है।" कामुक आवेग के साथ-साथ अस्तित्व की इच्छा या अस्तित्वहीनता की इच्छा भी जुड़ी होती है। इस जीवन-प्रवंचना के विषय में कहा गया है: “हे भिक्षुओं, जीवन-प्रवंचना की ऐसी कोई उत्पत्ति नहीं देखी जा सकती जिसके पहले यह न हो और जिसके बाद यह उत्पन्न हो। परन्तु यह अवश्य देखा जा सकता है कि जीवन-प्रवंचना की अपनी विशिष्ट परिस्थिति होती है। हे भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जीवन-प्रवंचना की भी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो इसे पोषित करती हैं और इसके बिना नहीं रह सकतीं। और वह क्या है? उत्तर है, ‘अज्ञान’—जीवन-प्रवंचना और अज्ञान को ही ‘सुखद और दु:खपूर्ण नियतियों (जीवन के पथों) के प्रमुख कारण’ कहा जाता है।”

कामच्छंद का अर्थ है इंद्रिय सुखदायक विषयों जैसे रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श के प्रति आसक्ति। इसे भी संसार के बंधनों में से एक माना जाता है। एक सामान्य व्यक्ति इन आकर्षक इंद्रिय विषयों से प्रलोभित हो ही जाता है। आत्म-संयम के अभाव से वासनाओं का उत्पन्न होना अपरिहार्य है। एकाग्रता, जो ध्यान के पाँच गुणों में से एक है, इस अवरोध को दूर करती है। सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह क्षीण हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूर्णतः समाप्त हो जाती है। रूप राग और अरूप राग (सृष्टि और निराकार जगत के प्रति आसक्ति) जैसी सूक्ष्म आसक्ति केवल अरहत्त्व प्राप्त करने पर ही समाप्त होती है।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ इंद्रिय-इच्छाओं के उन्मूलन की ओर अग्रसर होती हैं।

उस वस्तु की घृणास्पदता को महसूस करते हुए,

घृणा पर निरंतर ध्यान लगाना,

इंद्रिय-संयम,

भोजन में संयम,

अच्छी दोस्ती, और

लाभदायक बातचीत।

एक अन्य टिप्पणी इस प्रकार है: भावना पर निर्भर तृष्णा उत्पन्न होती है, जो अज्ञान की तरह ही “आश्रित उत्पत्ति” का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इस पाली शब्द के कुछ अर्थ आसक्ति, प्यास और मोह हैं। यह द्वितीय आर्य सत्य का एक पहलू है — तृष्णा तीन प्रकार की होती है — अर्थात्, इंद्रिय सुखों की तृष्णा, शाश्वतवाद के दृष्टिकोण से जुड़ी तृष्णा, अर्थात् यह सोचकर सुखों का आनंद लेना कि वे अविनाशी हैं, और शून्यवाद के दृष्टिकोण से जुड़ी तृष्णा, अर्थात् यह सोचकर सुखों का आनंद लेना कि मृत्यु के बाद सब कुछ नष्ट हो जाता है। अंतिम भौतिकवादी दृष्टिकोण है। इन्हें क्रमशः सजीव और निराकार लोकों के प्रति आसक्ति के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है। आमतौर पर इन दोनों शब्दों को अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की तृष्णा के रूप में व्यक्त किया जाता है। छह इंद्रिय विषयों जैसे रूप, ध्वनि आदि के अनुरूप छह प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं। जब इन्हें आंतरिक और बाह्य माना जाता है तो ये बारह हो जाती हैं। जब इन्हें भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के रूप में देखा जाता है तो इनकी संख्या छत्तीस होती है। उपरोक्त तीन प्रकार की लालसाओं से गुणा करने पर इनकी संख्या एक सौ आठ हो जाती है। सांसारिक व्यक्ति के लिए इंद्रिय सुखों की लालसा विकसित होना स्वाभाविक है। इंद्रिय-इच्छाओं पर विजय पाना अत्यंत कठिन है। जीवन चक्र के दो प्रमुख कारक अज्ञान और लालसा हैं, जो प्रतीत्यसमुत्पाद के दो मुख्य कारण हैं। अज्ञान को भूतकाल का कारण बताया गया है जो वर्तमान को प्रभावित करता है; और लालसा को वर्तमान का कारण बताया गया है जो भविष्य को प्रभावित करता है। लालसा पर ही आसक्ति का भाव निहित है, जो तीव्र लालसा है। लालसा अंधेरे में किसी वस्तु को चुराने के लिए टटोलने के समान है। आसक्ति वस्तु की वास्तविक चोरी के समान है। आसक्ति

आसक्ति और भ्रम दोनों के कारण उत्पन्न होती है। यह "मैं" और "मेरा" जैसी झूठी धारणाओं को जन्म देती है। आसक्ति चार प्रकार की होती है - इंद्रिय सुख, झूठे विचार, रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का पालन और आत्मा का सिद्धांत।
मा पमादं अनुयुंजेत : यह सत्य की खोज करने वालों के लिए एक उपदेश है। यदि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें कभी भी अपनी एकाग्रता भंग नहीं करनी चाहिए। उन्हें ऐसे कार्यों में संलग्न नहीं होना चाहिए जो सांसारिकता को बढ़ावा देते हों और सांसारिक सुखों को प्रोत्साहित करते हों। एकाग्रता का अभाव उचित ध्यान में बाधक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 28

(धम्मपद 26, 27) <<<< पिछला || श्लोक 28 || अगला >>>> (धम्मपद 29)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 28 - महाकस्सापथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 28 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamadam appamadena
yada nudati pandito
pannapasadamaruyha
asoko sokinim pajam
pabbatatthova bhumatthe
dhiro(1) bale(2) avekkhati.

श्लोक 28 : ज्ञानी व्यक्ति ध्यान के द्वारा लापरवाही को दूर करता है; वह ज्ञान के शिखर पर चढ़ता है और दुःख से मुक्त होकर दुःखित प्राणियों को देखता है। जैसे पर्वत की चोटी पर बैठा व्यक्ति नीचे मैदान में रहने वालों को देखता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति (अरहत) मूर्ख और अज्ञानी (सांसारिक) लोगों को देखता है।

---

1. धीरो: बुद्धिमान; इस संदर्भ में, अरहत। 2. बिले: मूर्ख; इस संदर्भ में, सांसारिक।

थेरा महाकस्सपा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (28) कहा।
एक बार, जब थेरा महाकस्सपा पिप्पली गुफा में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने अपना समय प्रकाश की मानसिक छवि (आलोक कसीना) विकसित करने और दिव्य दृष्टि के माध्यम से सचेत और लापरवाह प्राणियों, साथ ही मरने वाले और जन्म लेने वाले प्राणियों का पता लगाने का प्रयास करने में व्यतीत किया।
अपने मठ से, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि थेरा महाकस्सपा क्या कर रहे हैं और उन्हें आगाह करना चाहते थे कि वे अपना समय व्यर्थ कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपना प्रकाश भेजा और थेरा के सामने बैठकर उन्हें इस प्रकार समझाया: "मेरे पुत्र कस्सपा, प्राणियों के जन्म और मृत्यु की संख्या अनगिनत है और गिनी नहीं जा सकती। इन्हें गिनना तुम्हारा काम नहीं है; यह केवल बुद्धों का काम है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 28 - ज्ञानी व्यक्ति ध्यान के द्वारा लापरवाही को दूर करता है; वह ज्ञान के शिखर पर पहुँचता है और दुःख से मुक्त होकर दुःखित प्राणियों को देखता है। जैसे पर्वत की चोटी पर बैठा व्यक्ति नीचे मैदान में रहने वालों को देखता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति (अरहत) मूर्ख और अज्ञानी (सांसारिक) लोगों को देखता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु महाकस्सपा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन, जब बुद्ध पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए परिक्रमा की और भिक्षा मांगने के बाद लौटकर नाश्ता करने के बाद वे बैठ गए और अपनी मानसिक शक्तियों का उपयोग करते हुए अलौकिक दृष्टि से जल में, पृथ्वी पर, पहाड़ों में और अन्यत्र सभी जीवित प्राणियों का अवलोकन किया, चाहे वे लापरवाह हों या सावधान, और वे सभी अस्तित्व में आ रहे हों और अस्तित्व से विलीन हो रहे हों।
जेतवन में विराजमान बुद्ध ने असाधारण दृष्टि का प्रयोग करते हुए मन ही मन चिंतन किया, "आज मेरा पुत्र कस्सपा किस कार्य में लगा हुआ है?" उन्हें तुरंत यह ज्ञान प्राप्त हुआ, "वह जीवों के उत्थान और पतन का चिंतन कर रहा है।" उन्होंने कहा, "जीवों के उत्थान और पतन का ज्ञान तुम पूर्णतः नहीं समझ सकते। जीव माता-पिता की जानकारी के बिना एक जन्म से दूसरे जन्म में विचरण करते हैं और माता के गर्भ में नया जन्म प्राप्त करते हैं, और इस ज्ञान को पूर्णतः नहीं समझा जा सकता। कस्सपा, इन्हें जानना तुम्हारी क्षमता से परे है, क्योंकि तुम्हारी क्षमता बहुत सीमित है। केवल बुद्धों के ही सामर्थ्य में जीवों के उत्थान और पतन को उनकी संपूर्णता में जानना और देखना है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की, मानो वे कस्सपा के सामने आमने-सामने बैठे हों।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 28)
पण्डितो यदा अप्पमादेन पमादं नुदति धीरो
पन्नपसादं अरुयहा असोको सोकिनिं पजं
पब्बतथो भुम्मते इव बाले अवेक्खति
paṇḍito [paṇḍita]: ज्ञानी व्यक्ति; yadā : जब; appa mādena : ध्यान के माध्यम से; pamādaṃ [pamāda]: आलस्य; nudati : दूर करता है; dhīro [dhīra]: ज्ञानी व्यक्ति; paññāpāsādaṃ [paññāpāsāda]: ज्ञान का मीनार; āruyha : आरोही; asoko [asoka]: शोकरहित; sokiniṃ [sokini]: शोकग्रस्त; pajaṃ [paja]: जनसमूह; avekkhati : सर्वेक्षण करता है; pabbataṭṭho iva : पर्वत की चोटी पर बैठे व्यक्ति के समान; bhummaṭṭhe : जमीन पर रहने वाले; बाले : अज्ञानी : अवेक्खति : सर्वेक्षण।
बुद्धिमान व्यक्ति सदा सचेत रहता है। इसी सजगता के कारण वह आलसी लोगों के मार्ग को त्याग देता है। बुद्धिमान व्यक्ति ज्ञान के शिखर पर चढ़ता है। उस शिखर पर पहुँचने के बाद वह शोकग्रस्त जनसमूह को निर्मल दृष्टि से देख पाता है। वह उदासीन और तटस्थ भाव से इन जनसमूहों को ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत शिखर पर खड़ा व्यक्ति नीचे की भूमि का अवलोकन कर रहा हो।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 28)
शोकिन् पजं : यह सामान्य जनसमूहों—सांसारिक पुरुषों और महिलाओं—की विशेषता को स्थापित करता है। उन सभी को 'दुखी' बताया गया है। दुःख, पीड़ा, सामान्य जीवन की एक अपरिहार्य अवस्था है। केवल सबसे उन्नत ज्ञानवान पुरुष ही जीवन की इस अवस्था से ऊपर उठ सकते हैं। दुःख, पीड़ा को बुद्ध ने एक सार्वभौमिक सत्य बताया है। जन्म दुःख है, क्षय दुःख है, रोग दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय से जुड़ाव दुःख है, सुखद से अलगाव दुःख है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुःख है। संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुःख हैं। बुद्ध दुःख की बात कहकर जीवन में सुख का खंडन नहीं करते। इसके विपरीत, वे गृहस्थों और भिक्षुओं दोनों के लिए भौतिक और आध्यात्मिक, सुख के विभिन्न रूपों को स्वीकार करते हैं। बुद्ध की शिक्षाओं में सुखों की एक सूची है, जैसे पारिवारिक जीवन का सुख, संन्यासी जीवन का सुख, इंद्रिय सुखों का सुख और त्याग का सुख, आसक्ति का सुख और अनासक्ति का सुख, शारीरिक सुख और मानसिक सुख आदि। लेकिन ये सभी दुख में शामिल हैं। यहां तक कि उच्च ध्यान के अभ्यास से प्राप्त होने वाली अत्यंत शुद्ध आध्यात्मिक समाधि अवस्थाएं भी दुख में शामिल हैं।
दुख की अवधारणा को तीन पहलुओं से देखा जा सकता है: (i) सामान्य दुख, (ii) परिवर्तन से उत्पन्न दुख और (iii) परिस्थितिजन्य दुख। जीवन में सभी प्रकार के दुख जैसे जन्म, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, अप्रिय व्यक्तियों और परिस्थितियों का साथ, प्रियजनों और सुखद परिस्थितियों से वियोग, इच्छा की प्राप्ति न होना, शोक, विलाप, पीड़ा — ये सभी शारीरिक और मानसिक दुख, जिन्हें सार्वभौमिक रूप से दुख या पीड़ा माना जाता है, सामान्य दुख में शामिल हैं। जीवन में सुख की अनुभूति, सुख की स्थिति स्थायी नहीं होती, शाश्वत नहीं होती। यह समय-समय पर बदलती रहती है। जब यह बदलती है, तो यह पीड़ा, दुख और दुःख उत्पन्न करती है। यह उतार-चढ़ाव

परिवर्तन से उत्पन्न दुख में शामिल है। ऊपर वर्णित दुख के दोनों रूपों को समझना आसान है। कोई भी इन पर विवाद नहीं करेगा। प्रथम आर्य सत्य का यह पहलू अधिक लोकप्रिय है क्योंकि यह समझने में आसान है। यह हमारे दैनिक जीवन का सामान्य अनुभव है। लेकिन दुख का तीसरा रूप, जो बद्ध अवस्थाओं के रूप में प्रकट होता है, प्रथम आर्य सत्य का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक पहलू है, और इसके लिए 'प्राणी', 'व्यक्ति' या 'मैं' के रूप में हम जिसे समझते हैं, उसकी विश्लेषणात्मक व्याख्या की आवश्यकता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार, जिसे हम 'प्राणी', 'व्यक्ति' या 'मैं' कहते हैं, वह केवल निरंतर परिवर्तनशील भौतिक और मानसिक शक्तियों या ऊर्जाओं का संयोजन है, जिसे पाँच समूहों या समुच्चयों में विभाजित किया जा सकता है।
धीरो बाले अवेक्खति : शोक रहित अरहंत अपनी दिव्य दृष्टि से अज्ञानी लोगों पर दया भाव से देखते हैं, जो बार-बार जन्म लेने के कारण दुःख से मुक्त नहीं होते।
जब एक समझदार व्यक्ति सावधानी से लापरवाही का त्याग करता है, तो वह दुःख से मुक्त होकर ज्ञान के महल में चढ़ जाता है और दुःखित लोगों को उसी प्रकार देखता है जैसे एक बुद्धिमान पर्वतारोही अज्ञानी जमीनी लोगों को देखता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 29

———————————————————————

(धम्मपद 28) <<<< पिछला ॥ श्लोक 29 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 30)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 29 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 29 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Appamatto pamattesu
सुत्तेसु बहुजागारो
abalassa mva sighasso
hitva yati sumedhaso(1)

———————————————————————

श्लोक 29 : लापरवाहों के बीच सचेत, ऊंघते लोगों के बीच अत्यधिक सतर्क, बुद्धिमान व्यक्ति तेज दौड़ने वाले घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और आलसी लोगों को पीछे छोड़ देता है।

———————————————————————

1. सुमेधसो: ज्ञानी व्यक्ति: ज्ञानी व्यक्ति निरंतर प्रगति करता है जब तक कि वह मार्ग, फल और निर्वाण को प्राप्त नहीं कर लेता, और लापरवाह लोगों को पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) में पीछे छोड़ देता है।

———————————————————————

दो साथी भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (29) को दो भिक्षुओं के संदर्भ में पढ़ाया, जो मित्र थे।
दो भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद जंगल में स्थित एक मठ में शरण ली। उनमें से एक भिक्षु लापरवाही बरतते हुए रात के पहले पहर में अग्नि के पास बैठकर और युवा भिक्षुओं से बातें करते हुए समय व्यतीत करता रहा। दूसरा भिक्षु पूरी निष्ठा से भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करता रहा। वह पहले पहर में ध्यान में चलता रहा, दूसरे पहर में विश्राम करता रहा और फिर रात के अंतिम पहर में ध्यान करता रहा। इस प्रकार, लगन और जागरूकता के कारण दूसरे भिक्षु ने थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

वर्षा ऋतु (वस्सा) के अंत में, दोनों भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने गए। बुद्ध ने उनसे पूछा कि उन्होंने वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान अपना समय कैसे व्यतीत किया। इस पर आलसी और लापरवाह भिक्षु ने उत्तर दिया कि दूसरा भिक्षु अपना समय यूं ही लेटे-लेटे और सोते हुए बिता रहा था। बुद्ध ने पूछा, "पर तुम्हारा क्या?" उसने उत्तर दिया कि वह आमतौर पर रात के पहले पहर में आग के पास बैठकर खुद को सेंकता था और फिर बिना सोए ही उठ बैठा रहता था। लेकिन बुद्ध भली-भांति जानते थे कि दोनों भिक्षुओं ने अपना समय कैसे व्यतीत किया था, इसलिए उन्होंने आलसी भिक्षु से कहा, "यद्यपि तुम आलसी और लापरवाह हो, फिर भी तुम स्वयं को परिश्रमी और सजग बताते हो; परन्तु तुमने दूसरे भिक्षु को आलसी और लापरवाह प्रतीत कराया है, जबकि वह परिश्रमी और सजग है। तुम मेरे पुत्र की तुलना में एक कमजोर और सुस्त घोड़े के समान हो, जो एक बलवान और फुर्तीले घोड़े के समान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 29 : लापरवाहों के बीच सचेत, ऊंघते लोगों के बीच अत्यधिक सतर्क, बुद्धिमान व्यक्ति तेज दौड़ने वाले घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और आलसी लोगों को पीछे छोड़ देता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दो साथी भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने दो भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो मित्र थे।
ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और वन में एक आश्रम में चले गए। सुबह सवेरे उनमें से एक ने लकड़ियाँ लाकर कोयले का पात्र तैयार किया और पहले पहर में प्रशिक्षुओं और नौसिखियों के साथ बैठकर बातचीत की। दूसरा, एक सजग भिक्षु, ध्यान में लीन था और उसने अपने मित्र को समझाया, “भाई, ऐसा मत करो। क्योंकि जो भिक्षु लापरवाह होता है, वह चारों प्रकार के दुखों के लिए ऐसे तत्पर रहता है मानो वे उसका अपना घर हों। दोहरे व्यवहार से बुद्धों की कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती।” जब आलसी भिक्षु ने उसकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया, तो उत्साही भिक्षु ने कहा, “यह भिक्षु बात सुनना सहन नहीं कर सकता।” अपने साथी को अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरित करने में असफल रहने पर, उत्साही भिक्षु ने सजग रहते हुए अपना ध्यान फिर से शुरू कर दिया।
आलसी भिक्षु ने पहले पहर में प्राणपान करने के बाद मठ में प्रवेश किया, ठीक उसी समय जब उसका मित्र अपनी सैर पूरी करके अपनी कुटिया में प्रवेश कर रहा था। आलसी भिक्षु ने उत्साही भिक्षु से कहा, “हे आलसी, तुम तो जंगल में लेटने और सोने के उद्देश्य से गए थे। बुद्धों से ध्यान का विषय प्राप्त करके, क्या तुम्हें उठकर ध्यान में नहीं लगना चाहिए?” ऐसा कहकर वह अपने निवास स्थान में गया, लेट गया और सो गया। परन्तु उसका मित्र पहले पहर में इधर-उधर टहलने और दूसरे पहर में विश्राम करने के बाद अंतिम पहर में उठा और ध्यान में लग गया। इस प्रकार सचेतन जीवन व्यतीत करते हुए, उसने अल्पकाल में ही अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर लिया। परन्तु दूसरा भिक्षु पूर्णतः असावधानी में ही व्यतीत करता रहा।
जब दोनों भिक्षुओं का निवास समाप्त हो गया, तो वे बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और पूछा, “मुझे विश्वास है कि आपने सजग जीवन व्यतीत किया है और ध्यान के अभ्यास में पूरी निष्ठा से लगे हुए हैं। मुझे विश्वास है कि आप धार्मिक जीवन के लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं।” लापरवाह भिक्षु ने उत्तर दिया, “आदरणीय, यह भिक्षु कैसे सजग कहा जा सकता है? जब से यह आपके पास से गया है, तब से इसने लेटने और सोने के अलावा कुछ नहीं किया है।” “लेकिन आप, भिक्षु?” “आदरणीय, मैं सुबह जल्दी लकड़ियाँ लाया और चूल्हा तैयार किया, और पहले पहर में बैठकर स्वयं को सेंकता रहा, लेकिन मैंने अपना समय सोने में व्यतीत नहीं किया।” तब बुद्ध ने आलसी भिक्षु से कहा, “तुम जिसने अपना समय असजगता में व्यतीत किया है, कहते हो, 'मैं सजग हूँ।'” तुम लापरवाही को सावधानी समझ बैठे हो। मेरे बेटे की तुलना में तुम एक कमजोर और सुस्त घोड़े के समान हो; परन्तु वह तुम्हारी तुलना में एक फुर्तीले घोड़े के समान है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 29)
पमत्तेसु अप्पमत्तो सुत्तेसु बहुजागारो
सुमेधासो सिघसो अबलास्सां इव हित्वा याति ।
पमात्तेसु : बेपरवाह लोगों के बीच; अप्पमत्तो [अप्पमत्त]: ध्यान रखने वाला; सुत्तेसु : उन लोगों के बीच जो सो रहे हैं; बहुजागारो [बहुजागारा]: व्यापक जागृति; सुमेधासो [सुमेधासा]: गहरे ज्ञान वाला निष्कलंक व्यक्ति; सिघासो [सिघास्सा]: एक तेज़ घोड़ा; अबलास्सं इव : एक कमजोर घोड़े के रूप में; हित्वा : पीछे छोड़कर; यति : बहुत आगे बढ़ता है।
अत्यंत बुद्धिमान और गहन ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति सदा सजग और सचेत रहता है। अतः वह गहरी नींद में सो रहे लोगों के बीच जागृत व्यक्ति के समान होता है। सर्वोच्च अंतर्दृष्टि प्राप्त वह बुद्धिमान व्यक्ति आध्यात्मिकता में उन सभी साधारण लोगों से आगे निकल जाता है, जैसे एक तेज घोड़ा आसानी से कमजोर घोड़े को पीछे छोड़ देता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 29)
हित्वा यति : पीछे छोड़ देता है; पराजित करता है; आगे निकल जाता है। ये इस श्लोक के मुख्य विचार हैं। इस श्लोक में निहित अवधारणा यह है कि जो सचेत और जागरूक होते हैं, वे सुस्त और लापरवाह लोगों से आगे निकल जाते हैं। इस विचार को बल देने के लिए कई दृष्टांत दिए गए हैं। नींद से वंचित व्यक्ति पूरी तरह जागृत रहता है जबकि अन्य लोग सोते रहते हैं। लंगड़ा घोड़ा फुर्तीले घोड़े से आगे निकल जाता है। इस प्रकार सचेत व्यक्ति उन लोगों से आगे निकल जाता है जो लापरवाह और सुस्त होते हैं। इस तरह बुद्धिमान लोग अपने से कम बुद्धिमान, मूर्ख और कमतर लोगों से आसानी से आगे निकल जाते हैं। सत्य की खोज करने वालों में जो अपनी खोज में दृढ़ रहते हैं, वे आध्यात्मिक उपलब्धियों में दूसरों से आगे निकल जाते हैं। वे सांसारिक कार्यों को भी त्याग देते हैं।
लापरवाहों के बीच सावधान, सोए हुओं के बीच पूरी तरह जागृत, बुद्धिमान व्यक्ति एक तेज घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और एक कमजोर व्यक्ति को पीछे छोड़ देता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 30

———————————————————————

(धम्मपद 29) <<<< पिछला ॥ श्लोक 30 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 31)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 30 - माघ वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 30 - माघ वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
अप्पामदेन(1) मगहावा
देवनम सेत्थतम गतो
appamadam pasamanti
pamado garahito sada.

———————————————————————

श्लोक 30 : सजगता (पुण्य कर्म करने में) के कारण माघा देवताओं का राजा बना। सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, परन्तु लापरवाही की सदा निंदा की जाती है।

———————————————————————

1. अप्पमदेन: सजगता के द्वारा; अर्थात् पुण्य कर्म करते समय सजगता। उपरोक्त कथा में, मचला गाँव के युवक माघा ने भूमि की सफाई और सड़कें बनाने के द्वारा इंद्र या सक्का, देवताओं के राजा के रूप में पुनर्जन्म लिया। (देव दिव्य प्राणी/देवदूत हैं।)

———————————————————————

माघ की कहानी
वेसाली के पास कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (30) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का के संदर्भ में था।
एक बार महाली नामक एक लिच्छवी राजकुमार बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन को सुनने आया। प्रवचन सक्कपन्हा सूत्रंत था। बुद्ध ने सक्का के बारे में बड़े ही सजीव और प्रशंसात्मक शब्दों में बात की; इसलिए महाली ने सोचा कि बुद्ध सक्का से व्यक्तिगत रूप से मिले होंगे। यह सुनिश्चित करने के लिए, उसने बुद्ध से पूछा, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाली, मैं सक्का को जानता हूँ; मैं यह भी जानता हूँ कि किस कारण से वह सक्का बना।" फिर उन्होंने महाली को बताया कि देवताओं के राजा सक्का, पिछले जन्म में माघा नामक एक

युवक थे, जो मचला गाँव में रहते थे। युवक माघा और उनके बत्तीस साथी सड़कें और विश्रामगृह बनवाते थे। माघा ने सात दायित्वों का पालन करने का भी वचन लिया था। ये सात दायित्व हैं कि वे अपने पूरे जीवन में, (1) अपने माता-पिता का भरण-पोषण करेंगे; (2) बड़ों का आदर करेंगे; (3) वाक्पटु रहेंगे; (4) चुगली नहीं करेंगे; (5) लालची नहीं होंगे, बल्कि उदार होंगे; (6) वह सच बोलेगा; और (7) वह अपना आपा खोने से खुद को रोकेगा।

उस जन्म में उनके अच्छे कर्मों और सही आचरण के कारण ही माघा का पुनर्जन्म सक्का के रूप में हुआ, जो देवों (देवदूतों) का राजा था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 30 : सजगता (पुण्य कर्म करने में) के कारण माघा देवताओं का राजा बना। सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, परन्तु लापरवाही की सदा निंदा की जाती है।

प्रवचन के अंत में महाली ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

माघ की कहानी

वैशाली के पास कूटागार मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवताओं के राजा सक्का के संदर्भ में यह श्लोक कहा। वैशाली में रहने वाले महाली नामक एक लिच्छवी राजकुमार ने बुद्ध को सक्का का प्रश्न नामक सूत्र का पाठ करते हुए सुना और मन ही मन सोचा, "परमप्रबुद्ध बुद्ध ने सक्का की महान महिमा का वर्णन किया है। क्या बुद्ध ने सक्का को देखा है? या उन्होंने सक्का को नहीं देखा है? क्या बुद्ध सक्का से परिचित हैं? या वे सक्का से परिचित नहीं हैं? मैं उनसे पूछूंगा।" अतः लिच्छवी राजकुमार महाली बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद, लिच्छवी राजकुमार महाली ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय, क्या आपने देवताओं के राजा सक्का को देखा है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हां, महाली, मैंने देवताओं के राजा सक्का को देखा है।" "हे पूज्यवर, यह निश्चित रूप से सक्का की नकली प्रतिमा रही होगी; क्योंकि, हे पूज्यवर, देवताओं के राजा सक्का को देखना एक कठिन बात है।" "फिर भी, महाली, मैं सक्का को जानता हूँ; मैं जानता हूँ कि किन गुणों ने उन्हें सक्का बनाया; मैं जानता हूँ कि किन गुणों के अभ्यास से सक्का ने सक्का पद प्राप्त किया।"

महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिनका नाम माघ था; इसलिए उन्हें माघवा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने दान दिया था; इसलिए उन्हें पुरिन्ददा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने नियमित रूप से दान दिया था; इसलिए उन्हें सक्का कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने निवास स्थान दिया था; इसलिए उन्हें वासवा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जो एक पल में हज़ारों बातें सोच सकते थे; इसलिए उन्हें सहस्सक्खा कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का की पत्नी सुजाता नाम की एक असुर कन्या थी; इसलिए उन्हें सुजम्पति कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का का प्रभुत्व है। तैंतीस देवताओं के स्वामी और स्वामी होने के कारण ही उन्हें देवताओं का राजा कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का ने अपने पिछले जन्म में मनुष्य रूप में सात व्रत धारण किए और उनका पालन किया। इन सात व्रतों का पालन करने के कारण ही सक्का ने सक्का पद प्राप्त किया।

"वे सात व्रत क्या थे? 'जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने माता-पिता का सहारा बनूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने बड़ों का आदर करूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं मधुर वाणी बोलूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं कभी चुगली न करूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं गृहस्थ जीवन व्यतीत करूँ, मेरा हृदय लोभ से मुक्त हो, मैं अपनी संपत्ति का त्याग करने में उदार हो, मैं खुले हाथों से दान दूँ, मेरी प्रार्थनाओं को ध्यान से सुनूँ और दान बाँटने में प्रसन्न रहूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं सत्य बोलूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं क्रोध से मुक्त रहूँ। यदि मेरे भीतर क्रोध उत्पन्न हो, तो मैं उसे शीघ्र ही शांत कर दूँ।' महाली, देवताओं के राजा सक्क ने अपने पूर्वज में इन सात व्रतों को ग्रहण किया और उनका पालन किया। इन सात व्रतों को ग्रहण करने और उनका पालन करने के कारण ही सक्क ने सक्कत्व प्राप्त किया।" बुद्ध ने कहा, "पिछले जन्म में सक्का ने माघा के रूप में जन्म लिया था। उस जन्म में उन्होंने तीस साथियों के साथ मिलकर जनमानस के लाभ के लिए सड़कें और विश्राम स्थल बनवाए। उनके अथक प्रयासों ने उन्हें देवताओं के राजा के उच्च पद तक पहुँचाया और उन्होंने यह श्लोक सुनाया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 30)

मघावा अप्पमादेन देवानां सेठतं गतो

अप्पमादं पसंसन्ति पमादो सदा गरहितो ।

मघावा : माघ (माणवक); अप्पमाडेना : सचेतनता के माध्यम से; देवानां [देवाना]: देवताओं का; सेठहताम् [सेठहता]: नेतृत्व; गातो : पहुंच गया; अप्पमादं [अप्पमादा]: सचेतनता; पसंशन्ति : बुद्धिमान प्रशंसा करते हैं; पमाडो [पमाडा]: आलस्य; सदा : सदैव; गराहितो [गराहिता]: निंदा की जाती है।

ब्राह्मण युवक माघा ने अपनी सजगता के कारण देवताओं के मुखिया के रूप में जन्म लिया। इसलिए सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, और आलस्य और असावधानी की सदा निंदा की जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 30)

pamādo garahito sadā : जो पीछे रह जाते हैं, वे निंदनीय होते हैं क्योंकि आलसी लोग अपने सांसारिक या आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते। बेशक, अज्ञानता की हमेशा निंदा की जाती है, श्रेष्ठ लोगों द्वारा इसकी आलोचना की जाती है। क्यों? क्योंकि यह सभी विपत्तियों का मूल कारण है। हर विपत्ति, चाहे वह मानवीय विपत्ति हो या दुख की स्थिति में जन्म, वास्तव में अज्ञानता पर आधारित होती है।

मघवा : मघवा, देवताओं के राजा सक्का का पर्यायवाची है। मघमानावक जातक में वर्णित है कि सुदूर अतीत में एक जनहितैषी व्यक्ति, जिसने अपने मित्रों के सहयोग से अपना पूरा जीवन कल्याणकारी कार्यों में व्यतीत किया, अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप सक्का के रूप में जन्म लिया।

देव : शाब्दिक अर्थ, क्रीड़ा करने वाले या प्रकाशमान, सूक्ष्म भौतिक शरीर वाले प्राणियों का एक वर्ग है जो नग्न आंखों से अदृश्य होते हैं। वे स्वर्गीय लोकों में निवास करते हैं। पृथ्वी पर भी कुछ देवता होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 31

(धम्मपद 30) <<<< पिछला ॥ श्लोक 31 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 32)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 31 - अन्नतारभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 31 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदारतो भिक्खु(1)
pamade bhayadassi(2) va
samyojanam anum thulam
daham aggiva gacchati.

श्लोक 31 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह आग की तरह आगे बढ़ता है, सभी बंधनों को जलाकर भस्म कर देता है, चाहे वे बड़े हों या छोटे।

---

1. अप्पमदारतो भिक्खु: वह भिक्षु जो ध्यान में आनंद लेता है, अर्थात् शांति और अंतर्दृष्टि के विकास के अभ्यास में। 2. पमदे भयदस्सी: लापरवाही में खतरा देखना, अर्थात् ऐसी लापरवाही जो पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) में निरंतर अस्तित्व की ओर ले जाए।

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (31) कहा।

एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, ध्यान करने के लिए वन में प्रस्थान किया। उन्होंने बहुत प्रयास किया, फिर भी उनकी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं हुई। परिणामस्वरूप, वे अत्यंत निराश और हताश हो गए। इसलिए, बुद्ध से और अधिक विशिष्ट निर्देश प्राप्त करने की इच्छा से वे जेतवन मठ की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक भयंकर आग दिखाई दी। वे दौड़कर एक पर्वत की चोटी पर चढ़ गए और वहाँ से आग को देखने लगे। जैसे-जैसे आग फैलती गई, उन्हें अचानक यह विचार आया कि जिस प्रकार आग सब कुछ जला देती है, उसी प्रकार मार्ग अंतर्दृष्टि भी जीवन के सभी बंधनों, चाहे वे बड़े हों या छोटे, को जला देगी।

इसी बीच, जेतवन मठ के गंधकुटी हॉल से बुद्ध भिक्षु के विचारों से अवगत हो गए। उन्होंने अपना प्रकाश प्रसारित किया और भिक्षु के सामने प्रकट होकर उनसे बात की। उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र, तुम सही मार्ग पर हो; इसे जारी रखो। सभी प्राणियों को मार्ग अंतर्दृष्टि से जीवन के सभी बंधनों को जला देना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 31 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह आग की तरह आगे बढ़ता है, सभी बंधनों को जलाकर भस्म कर देता है, चाहे वे बड़े हों या छोटे।

प्रवचन के अंत में उस भिक्षु ने उसी क्षण अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, एक भिक्षु ने गुरु से अर्हतत्व प्राप्त करने वाला ध्यान विषय प्राप्त किया और वन में एकांतवास किया। उसने भरसक प्रयास किया, फिर भी वह अर्हतत्व प्राप्त नहीं कर सका। तब उसने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध से प्रार्थना करूँगा कि वे मुझे मेरी आवश्यकताओं के अनुरूप एक बेहतर ध्यान विषय प्रदान करें।" अतः वह अपने निवास स्थान से निकलकर बुद्ध के पास लौटने के लिए चल पड़ा। रास्ते में उसने एक भयंकर जंगल में आग देखी। इसलिए वह एक बंजर पर्वत की चोटी पर चढ़कर बैठ गया। जैसे ही उसने आग को जंगल को भस्म करते देखा, उसने अपने मन को इस विचार पर केंद्रित किया, "जिस प्रकार यह आग आगे बढ़कर सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म कर रही है, उसी प्रकार मुझे भी श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की अग्नि से सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।"

बुद्ध अपने सुगंधित कक्ष में बैठे हुए ही अपने विचारों के प्रवाह से अवगत हुए और बोले, "भिक्षु, यह बिल्कुल सत्य है। जिस प्रकार अग्नि सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान की अग्नि से सभी प्राणियों में उत्पन्न होने वाली छोटी-बड़ी आसक्तियों को भस्म करना और पूर्णतः नष्ट करना आवश्यक है।" और अपने एक प्रकाशमान स्वरूप को प्रकट करते हुए, मानो उस भिक्षु के सामने आमने-सामने बैठे हुए, उन्होंने एक श्लोक सुनाया।

श्लोक के अंत में, वह भिक्षु वहीं बैठे-बैठे ही समस्त आसक्तियों का भस्म कर अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर लिया। फिर तुरंत वायु में विचरण करते हुए वह बुद्ध के पास पहुंचा और बुद्ध के स्वर्णमय शरीर की स्तुति और महिमा का गुणगान किया। और उन्हें प्रणाम करने के बाद वह वहां से विदा हो गया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 31)

अप्पमादारतो पमादे भयदस्सी वा भिक्खु अनुन
थूलं संनोजानं अग्गि इव दहं गच्छति ।

appamādarato [appamādarata]: ध्यान में आनंद लेना; pamāde : अचेतना में; bhayadassi vā : भय देखना; bhikkhu : भिक्षु; aṇuṃ thūlaṃ [thūla]: सूक्ष्म और विशाल; saññojanaṃ [saññojana]: बंधन; aggī iva : आग की तरह; dahaṃ [daha]: जला देता है; gacchati : अपना मार्ग बनाता है (निब्बान)।

सत्य के साधक के रूप में, भिक्षु अचेतना से भयभीत रहता है क्योंकि वह जानता है कि यदि व्यक्ति अचेतन हो जाए, तो वह संसार के अंतहीन दुखों में लीन हो जाएगा। इसलिए, वह लगन और सचेतनता से आगे बढ़ता है और सांसारिक बंधनों को तोड़ता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 31)

सन्नोजनं : बंधन। दस बंधन हैं जो प्राणियों को जीवन चक्र से बांधते हैं, अर्थात्: (i) व्यक्तित्व संबंधी दृष्टिकोण, (ii) अनिश्चितता या विभाजित मन, (iii) विमुख अनुशासन, (iv) इंद्रिय-संबंधी जुनून, (v) घृणा, (vi) रूप के प्रति आसक्ति, (vii) निराकार के प्रति आसक्ति, (viii) निर्णय, (ix) चिंता, (x) अचेतनता। इनमें से पहले पांच को 'निम्न बंधन' कहा जाता है, क्योंकि ये इंद्रिय-संबंधी जगत से बांधते हैं। बाद के पांच को 'उच्च बंधन' कहा जाता है, क्योंकि ये उच्चतर जगतों से बांधते हैं, अर्थात् साकार और निराकार जगत से। जो (i) से (iii) तक के बंधनों से मुक्त है , वह सोतापन्न है , अर्थात् निर्वाण की धारा में प्रवेश कर चुका है। जो इन तीन बंधनों के अतिरिक्त (iv) और (v) के स्थूल रूप पर विजय प्राप्त कर चुका है, उसे सकादागामी कहा जाता है , अर्थात् (इस इंद्रियलोक में) एक बार लौटने वाला। जो (i) से (v) तक के बंधनों से पूर्णतः मुक्त है, वह अनागामी है , अर्थात् (इंद्रियलोक में) न लौटने वाला। जो सभी दस बंधनों से मुक्त है, उसे अरहत कहा जाता है, अर्थात् पूर्णतः पवित्र।

pamāde bhayadassi vā : वह अचेतनता को भय का कारण मानता है। जो भय उसे दिखाई देता है, उसका संबंध जीवन के चक्र से है। वह जानता है कि यदि वह आध्यात्मिक उन्नति के प्रयास में शिथिलता बरतेगा, तो उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में उलझना पड़ेगा। अतः वह असावधानी को इन सभी कष्टों का मूल कारण मानता है। यही कारण है कि वह सजगता के अभाव में भय देखता है।

अप्पमादा रातो : सजगता में आनंद लेना। सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक अपने लक्ष्य की खोज में सफल हो सकता है। यदि उसका अमरता में आनंद समाप्त हो जाए, तो वह निर्वाण की ओर अपने मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाएगा। इसलिए भिक्षु—सत्य की खोज करने वाले—को ऐसे व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है जो मन की सजगता में आनंद लेता है।

भिक्षु : बुद्ध के पूर्णतः दीक्षित शिष्य को भिक्षु कहा जाता है। भिक्षु के लिए सबसे उपयुक्त शब्द " भिक्षु " हो सकता है । वह पुजारी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ नहीं होता। वह जीवन भर के लिए कोई प्रतिज्ञा नहीं लेता, परन्तु अपने द्वारा स्वेच्छा से चुने गए नियमों का पालन करता है। वह स्वेच्छा से निर्धनता और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है। यदि वह पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो, तो वह किसी भी समय भिक्षु वस्त्र त्याग सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 32

(धम्मपद 31) <<<< पिछला || श्लोक 32 || अगला >>>> (धम्मपद 33, 34)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 32 - निगमवसित्सत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 32 - निगमवसित्सत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदारतो भिक्खु
pamade bhayadassi va
abhabbo parihanaya(1)
nibbanasseva santike.

श्लोक 32 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह कभी भटकता नहीं; वह वास्तव में निर्वाण के बहुत करीब है।

---

1. abhabbo parihanaya: इससे विमुख न हो पाना; यहाँ इसका अर्थ है, शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास और उससे प्राप्त लाभों, अर्थात् मार्ग और फल से विमुख न हो पाना। (टीका)

थेरा निगमवासितिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा निगमवसितिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (32) कहा।

निगमवसितिस्सा का जन्म और पालन-पोषण सावत्थी के पास एक छोटे से बाज़ार कस्बे में हुआ था। भिक्षु बनने के बाद उन्होंने बहुत ही सादा जीवन व्यतीत किया, उनकी ज़रूरतें बहुत कम थीं। भिक्षा के लिए वे अपने रिश्तेदारों के गाँव जाते और जो कुछ भी उन्हें दिया जाता, उसे ग्रहण करते थे। वे बड़े समारोहों से दूर रहते थे। यहाँ तक कि जब अनाथपिंडिका और कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़े पैमाने पर दान-पुण्य किया, तब भी निगमवसितिस्सा वहाँ नहीं गए।

कुछ भिक्षुओं ने थेरा के बारे में बातें करना शुरू कर दिया कि वे अपने रिश्तेदारों के करीब रहते थे और अनाथपिंडिका और राजा पसेनादि (प्रसेनजित) जैसे लोगों द्वारा भव्य दान-पुण्य किए जाने पर भी वे कहीं नहीं जाते थे। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने थेरा को बुलवाया और उनसे पूछा। थेरा ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि यह सच है कि वे अक्सर अपने गाँव जाते थे, लेकिन केवल भिक्षा लेने के लिए। जब उन्हें पर्याप्त भोजन मिल जाता था, तो वे आगे नहीं जाते थे और उन्हें इस बात की परवाह नहीं होती थी कि भोजन स्वादिष्ट है या नहीं। इस पर, बुद्ध ने उन्हें दोष देने के बजाय, अन्य भिक्षुओं के सामने उनके आचरण की प्रशंसा की। उन्होंने यह भी कहा कि कम इच्छाओं के साथ संतुष्ट जीवन जीना बुद्ध और आर्यों के आचरण के अनुरूप है, और सभी भिक्षुओं को वास्तव में छोटे से कस्बे के थेरा तिस्सा के समान होना चाहिए। इस संदर्भ में, उन्होंने तोतों के राजा की कहानी भी सुनाई।

एक समय की बात है, गंगा नदी के किनारे अंजीर के पेड़ों के एक बाग में तोतों का राजा अपने कई अनुयायियों के साथ रहता था। जब फल खत्म हो गए, तो सभी तोते बाग छोड़कर चले गए, सिवाय तोतों के राजा के, जो अपने निवास स्थान वाले पेड़ पर जो कुछ भी बचा था, चाहे वह टहनी हो, पत्ती हो या छाल, उसी से संतुष्ट था। यह जानकर और तोतों के राजा के सद्‌गुणों की परीक्षा लेने के लिए, सक्का ने अपनी अलौकिक शक्ति से उस पेड़ को सुखा दिया। फिर, हंसों का रूप धारण करके, सक्का और उसकी रानी सुजाता तोतों के राजा के पास आए और उससे पूछा कि उसने अन्य तोतों की तरह उस सूखे पेड़ को क्यों नहीं छोड़ा और उन पेड़ों पर क्यों नहीं गया जिन पर अभी भी फल लगे हुए थे। तोतों के राजा ने उत्तर दिया, "कृपा के प्रति कृतज्ञता के कारण मैंने उसे नहीं छोड़ा और जब तक मुझे अपने जीवनयापन के लिए पर्याप्त भोजन मिलता रहेगा, मैं उसे नहीं छोडूंगा। इस पेड़ को छोड़ना मेरे लिए कृतघ्नता होगी, भले ही वह निर्जीव हो।"

इस उत्तर से अत्यंत प्रभावित होकर सक्का ने अपना असली रूप प्रकट किया। उन्होंने गंगा से जल लेकर सूखे अंजीर के वृक्ष पर डाला और वह तुरंत ही पुनर्जीवित हो उठा; उसकी शाखाएँ हरी-भरी हो गईं और वह फलों से लदा हुआ था। इस प्रकार, बुद्धिमान प्राणी भी पशुओं की तरह लालची नहीं होते; वे जो कुछ भी उपलब्ध होता है, उसी से संतुष्ट रहते हैं।

कहानी में तोते का राजा स्वयं बुद्ध थे; सक्का अनुराधा थे।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 32 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह नहीं भटकेगा (2), वह वास्तव में निर्वाण के बहुत करीब है।

प्रवचन के अंत में, थेरा तिस्सा ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) विमुख नहीं होगा: इसका अर्थ है, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास से विमुख नहीं होगा और मग्गा और फल्ला प्राप्त करने का आश्वासन है।

अध्याय दो का अंत: सजगता (अप्पमदावग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु निगमा वासी तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु निगमा वासी तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक बाजार नगर में जन्मे और पले-बढ़े एक उच्च कोटि के युवक ने संसार त्याग कर बुद्ध धर्म में भिक्षु का जीवन व्यतीत किया। पूर्ण दीक्षा लेने पर वे बाजार नगर के तिस्सा या निगम तिस्सा के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे संयमी, संतुष्ट, पवित्र और दृढ़ निश्चयी माने जाते थे। वे अपने रिश्तेदारों के गांव में भिक्षा मांगने के लिए नियमित रूप से चक्कर लगाते थे। हालांकि पास के शहर सावत्थी में अनाथपिंडिका और अन्य शिष्य प्रचुर मात्रा में दान दे रहे थे और पसेनदी कोसल अतुलनीय दान दे रहे थे, फिर भी वे कभी सावत्थी नहीं गए।

एक दिन भिक्षुओं ने उनके बारे में बातें करना शुरू किया और गुरु से कहा, “यह भिक्षु निगम तिस्सा, जो व्यस्त और सक्रिय हैं, अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में रहते हैं। यद्यपि अनाथपिंडिका और अन्य शिष्य प्रचुर मात्रा में दान देते हैं और पसेनदी कोसल अतुलनीय उपहार देते हैं, फिर भी वे कभी सावत्थी नहीं आते।” बुद्ध ने निगम तिस्सा को बुलवाया और उनसे पूछा, “भिक्षु, क्या यह बात सच है कि आप ऐसा कर रहे हैं?” तिस्सा ने उत्तर दिया, “आदरणीय, यह सच नहीं है कि मैं अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में रहता हूँ। मैं इन लोगों से उतना ही भोजन प्राप्त करता हूँ जितना मैं खा सकता हूँ। लेकिन अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक भोजन, चाहे वह मोटा हो या महीन, प्राप्त करने के बाद, मैं यह सोचकर मठ नहीं लौटता कि 'भोजन की तलाश क्यों करूँ?' मैं अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में नहीं रहता, आदरणीय।” भिक्षु के स्वभाव को जानकर बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, “शाबाश, शाबाश, भिक्षु!” फिर उन्होंने उनसे कहा, “हे भिक्षु, मुझ जैसे गुरु को पाकर आपका मितव्ययी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि मितव्ययिता मेरा स्वभाव और मेरी आदत है।” और भिक्षुओं के अनुरोध पर उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं।

बहुत समय पहले की बात है, हिमालय में गंगा नदी के किनारे अंजीर के पेड़ों के एक विशेष बाग में कई हजार तोते रहते थे। उनमें से एक तोते का राजा, जब उसके पेड़ के फल सूख गए, तो उसने जो कुछ भी बचा हुआ पाया, चाहे वह टहनी हो, पत्ती हो या छाल, सब खा लिया, गंगा का पानी पिया और अत्यंत प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर वहीं रहने लगा। वास्तव में वह इतना प्रसन्न एवं संतुष्ट था कि सक्का का निवास स्थान कांपने लगा।

सक्का ने तोते की प्रसन्नता और संतुष्टि को देखकर उससे मुलाकात की और पूरे जंगल को हरा-भरा और समृद्ध बना दिया। बुद्ध ने बताया कि पिछले जन्म में भी वह संतुष्ट और सुखी था और ऐसा भिक्षु कभी भी निर्वाण के निकट से विमुख नहीं होगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 32)

अप्पमादारतो पमादे भयदस्सी वा भिक्खु
अभब्बो परिहानाय निब्बानस संतिके एव

appamādarato [appamādarata]: ध्यान में आनंद लेना; pamāde : आलस्य में; bhayadassi vā : भय देखना; bhikkhu : भिक्षु; abhabbo parihānāya : पीछे हटने में असमर्थ; nibbānassa : निर्वाण का; santike eva : वास्तव में आसपास है।

सत्य के साधक के रूप में भिक्षु को सचेतनता की कमी में भय दिखाई देता है। वह निश्चित रूप से उन आध्यात्मिक ऊँचाइयों से पीछे नहीं हटेगा जिन्हें वह पहले ही प्राप्त कर चुका है। वह हमेशा निर्वाण के निकट रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 32)

निर्वाण : निर्वाण का उल्लेख करते हुए बुद्ध कहते हैं, “हे भिक्षुओं, अजन्मा, अविकसित और अनिर्धारित अवस्था विद्यमान है। यदि अजन्मा, अविकसित और अनिर्धारित अवस्था न होती, तो जन्म लेने वाले, विकसित होने वाले और निर्धारित अवस्थाओं के लिए कोई मुक्ति नहीं होती, इसलिए जन्म लेने वाले, विकसित होने वाले और निर्धारित अवस्थाओं के लिए मुक्ति है।” “यहाँ ठोस, तरल, ऊष्मा और गति के चार तत्वों का कोई स्थान नहीं है; लंबाई और चौड़ाई, सूक्ष्म और स्थूल, अच्छा और बुरा, नाम और रूप की धारणाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं; न यह लोक, न दूसरा लोक, न आना, न जाना, न रुकना, न जन्म, न मृत्यु, न इंद्रिय-विषय पाए जाते हैं।” क्योंकि निर्वाण को इस प्रकार नकारात्मक शब्दों में व्यक्त किया गया है, इसलिए बहुत से लोगों को यह गलत धारणा है कि यह नकारात्मक है और आत्म-विनाश को व्यक्त करता है। निर्वाण निश्चित रूप से आत्म-विनाश नहीं है, क्योंकि यहाँ आत्म-विनाश करने के लिए कोई आत्म ही नहीं है। यदि कुछ है भी, तो यह अस्तित्व की प्रक्रिया का ही विनाश है, संसार में सशर्त निरंतरता का विनाश है , स्थायित्व और पहचान के भ्रम या भ्रांति के साथ, मैं और मेरा के एक चौंकाने वाले अहंकार के साथ।

abhabbo parihānāya : पतन के योग्य नहीं। ऐसा (सचेत) भिक्षु न तो समाथा और विपश्यना की ध्यान प्रक्रियाओं से और न ही मार्ग और फलों से विचलित होता है—अर्थात, जो प्राप्त कर चुका है उससे विचलित नहीं होता, और जो अभी प्राप्त नहीं हुआ है उसे प्राप्त करेगा।

अध्याय 3. चित्तवग्ग: मन (33-43)

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 33 और 34

———————————————————————

(धम्मपद 32) <<<< पिछला || श्लोक 33, 34 || अगला >>>> (धम्मपद 35)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 33 और 34 - मेघियाथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 33 और 34 - मेघियाथेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Phandanam capalam cittam
दुराक्खम(1) दुन्निवरायम(2)
ujum karoti(3) medhavi
usukarova tejanam.

Varijova thale khitto
okamokata ubbhato
pariphandatidam cittam
maradheyyam pahatave.

———————————————————————

श्लोक 33 : मन उत्तेजित और अस्थिर होता है; इसे नियंत्रित करना और संयमित करना कठिन है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को उसी प्रकार स्थिर रखता है जैसे तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है।

———————————————————————

श्लोक 34 : जैसे मछली को उसके जलीय घर से निकालकर सूखी जमीन पर फेंके जाने पर वह कांपती है, वैसे ही मन भी इंद्रिय जगत से बाहर निकाले जाने पर कांपता है ताकि वह मारा के क्षेत्र (अर्थात क्लेशा वट, नैतिक विकारों के चक्र) से बच सके।

———————————————————————

1. दुराक्खम: ध्यान करते समय मन को एक ही वस्तु पर स्थिर रखना कठिन होता है।
2. दुन्निवरयम: मन को कामुक सुखों की ओर भटकने से रोकना कठिन है।
3. उजुम करोति: सीधा करता है: (क) तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है, (ख) ज्ञानी व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास (समाथा और विपश्यना) के माध्यम से अपने कामुक, अनियंत्रित मन को प्रशिक्षित करता है।

———————————————————————

थेरा मेघिया की कहानी

कालिका पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा मेघिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (33) और (34) का उच्चारण किया।

उस समय थेरा मेघिया बुद्ध की सेवा में थे। एक बार भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, थेरा ने एक सुंदर और रमणीय आमों का बाग देखा, जो उन्हें ध्यान के लिए आदर्श स्थान लगा। उन्होंने बुद्ध से वहां जाने की अनुमति मांगी, लेकिन चूंकि बुद्ध उस समय अकेले थे, इसलिए उन्हें कुछ अन्य भिक्षुओं के आने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। थेरा को जाने की जल्दी थी, इसलिए उन्होंने बार-बार विनती की, अंततः बुद्ध ने उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार जाने की अनुमति दे दी।

इस प्रकार, थेरा मेघिया आम के बाग में गए, एक पेड़ की तलहटी में बैठ गए और ध्यान का अभ्यास किया। वे दिन भर वहीं रहे, परन्तु उनका मन भटकता रहा और उन्हें कोई प्रगति नहीं मिली। वे शाम को लौटे और बुद्ध को बताया कि कैसे वे हर समय इंद्रियों से जुड़े विचारों, द्वेष और क्रूरता (काम वितक्का, ब्यापाद वितक्का और विहिंसा वितक्का) से घिरे रहे।

इसलिए बुद्ध ने उनसे कहा कि चूंकि मन आसानी से उत्तेजित और चंचल होता है, इसलिए व्यक्ति को अपने मन को नियंत्रित करना चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 33 : मन उत्तेजित और अस्थिर होता है; इसे नियंत्रित करना और संयमित करना कठिन है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को उसी प्रकार स्थिर रखता है जैसे तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है।

———————————————————————————

श्लोक 34 : जैसे मछली को उसके जलीय घर से निकालकर सूखी जमीन पर फेंके जाने पर वह कांपती है, वैसे ही मन भी इंद्रिय जगत से बाहर निकाले जाने पर कांपता है ताकि वह मारा के क्षेत्र (अर्थात क्लेशा वट, नैतिक विकारों के चक्र) से बच सके।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में, थेरा मेघिया ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय मेघिया की कहानी

चालिका पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य मेघिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार, काम, घृणा और मोह जैसे तीन बुरे विचारों से आसक्ति के कारण, पूज्य मेघिया इस आम के बाग में साधना नहीं कर पाए और बुद्ध के पास लौट आए। बुद्ध ने उनसे कहा, “मेघिया, तुमने घोर पाप किया है। मैंने तुम्हें रुकने के लिए कहा था, ‘मैं अब अकेला हूँ, मेघिया। किसी दूसरे भिक्षु के आने तक प्रतीक्षा करो।’ लेकिन मेरे अनुरोध के बावजूद तुम चले गए। किसी भिक्षु को मुझे अकेला छोड़कर नहीं जाना चाहिए जब मैं उसे रुकने के लिए कहूँ। किसी भिक्षु को अपने विचारों के वश में नहीं रहना चाहिए। विचार चंचल होते हैं, और मनुष्य को उन्हें हमेशा अपने वश में रखना चाहिए।”

श्लोकों के समापन पर मेघिया धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित हो गए और कई अन्य भिक्षु दूसरे और तीसरे मार्ग के फलों में स्थापित हो गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 33)

फंदनं चपलं दुरक्खं दुन्निवरायम्

चित्तं मेधावी उजुं करोति उसुकारो तेजानं इव

फंदनां [फंदाना]: स्पंदित, स्पंदित; कैपालाम् [कैपाला]: चंचल, अस्थिर; दुरक्खाँ [दुरक्खा]: रक्षा करना कठिन; दुन्निवरायम् [दुन्निवराय]: रोकना कठिन; चित्तं [चित्त]: मन; मेधावी : बुद्धिमान; उजुं करोति : सीधा करता है; उसुकारो इव : फ्लेचर की तरह; तेजानां [तेजाना]: एक तीर-शाफ़्ट

धम्मपद में तीरंदाज़ की कारीगरी के कई संदर्भ मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध ने उस प्रक्रिया का अवलोकन किया था जिसके द्वारा एक तीरंदाज़ साधारण लकड़ी को एक कुशल बाण में बदल देता है। मन को अनुशासित करना भी इसी प्रक्रिया के समानांतर माना जाता है। इस श्लोक में बुद्ध कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति चंचल मन को, जिस पर नियंत्रण रखना कठिन होता है, उसी प्रकार स्थिर और दृढ़ करता है, जैसे एक तीरंदाज़ बाण को सीधा करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 34)

ओकामोकाटा उभ्भतो थले खित्तो वारिजो इव इदम

चित्तं परिफंदति मरधेयं पहतवे

ओकामोकता : अपने जलमय निवास से; उभतो [उभता]: बाहर निकाला गया; थाले : सूखी भूमि पर; खित्टो [खित्ता]: फेंका गया; वारिजो इव : मछली की तरह; इदं चित्तं [चित्त]: यह मन; परिफंदति : कांपता है; मारधेय्यं [मारधेय्य]: मृत्यु का लोक; पाहतवे : त्यागना; परिफंदति : फड़फड़ाता और कांपता है

जब कोई व्यक्ति मारा (बुराई) के क्षेत्र को त्यागने का प्रयास करता है, तो उसका मन उस मछली की तरह कांपने लगता है जिसे पानी से निकालकर जमीन पर फेंक दिया गया हो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 33-34)

चित्तम् : इस शब्द का सामान्य अनुवाद मन या चेतना के रूप में किया जाता है और इसे तथाकथित अस्तित्व का सार माना जाता है, जो मनुष्य की जटिल कार्यप्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका अधिक उपयुक्त अनुवाद 'मानसिक अवस्था' या उससे भी बेहतर 'भावनात्मक अवस्था' है। यही चित्त है जो या तो दूषित होता है या शुद्ध होता है, और जो स्वयं का सबसे बड़ा शत्रु और सबसे बड़ा मित्र होता है। पश्चिमी दर्शन में चित्त को 'आत्मा' के समतुल्य माना जाता है। हालाँकि, बौद्ध धर्म में 'आत्मा' को एक स्थायी इकाई के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है। चित्त , जो इसका स्थान लेता है, व्यक्ति की भावनात्मक अवस्था को संदर्भित करता है, जो एक इकाई नहीं

बल्कि एक लौ की तरह परिवर्तनशील गतिविधि है। कभी भावनाएँ उत्तेजित होती हैं और कभी चित्त शांत होता है (भावनाएँ अनुपस्थित होती हैं)। हम इसका अनुवाद 'स्वभाव' या 'प्रवृत्ति' के रूप में भी कर सकते हैं। बौद्ध धर्म के लेखक इसे गलती से 'मन' या 'चेतना' कहते हैं। लेकिन यहाँ जिस बात का तात्पर्य है, वह मानसिक प्रक्रिया के संज्ञानात्मक पहलुओं के बजाय 'भावनात्मक' पहलू हैं। जब कोई व्यक्ति गहरी नींद में होता है और स्वप्नहीन अवस्था में होता है, तो वह एक ऐसी मानसिक अवस्था का अनुभव करता है जो सक्रिय की तुलना में निष्क्रिय अधिक होती है। यह गर्भाधान और मृत्यु के समय अनुभव की जाने वाली मानसिक अवस्था के समान है। बौद्ध दर्शन में इस प्रकार की मानसिक अवस्था को भावांग चित्त कहा जाता है , जिसका अर्थ है अस्तित्व की स्थिति के लिए स्वाभाविक मानसिक अवस्था। प्रत्येक क्षण उत्पन्न और नष्ट होने वाली यह अवस्था एक धारा की तरह बहती रहती है, जो लगातार दो क्षणों तक एक जैसी नहीं रहती। हम इस प्रकार की मानसिक अवस्था का अनुभव न केवल स्वप्नहीन अवस्था में बल्कि जागृत अवस्था में भी करते हैं। अपने जीवनकाल में हम भावांग मानसिक अवस्थाओं का अनुभव अन्य किसी भी प्रकार की मानसिक अवस्था की तुलना में अधिक करते हैं। इसलिए भावांग मन की स्वाभाविक अवस्था बन जाती है।

कुछ विद्वान भावंगा को अवचेतन मन से जोड़ते हैं। दर्शनशास्त्र के शब्दकोश के अनुसार, अवचेतन मन 'मन का वह भाग है जो कुछ मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों के अनुसार चेतना की सीमा से नीचे विद्यमान होता है।' कुछ पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के मत के अनुसार, अवचेतन मन और चेतना सह-अस्तित्व में होते हैं।

लेकिन भवांगा एक उप-तल नहीं है। यह एफ.डब्ल्यू. मायर की अवचेतन चेतना से भी मेल नहीं खाता।

भावंगा शब्द का यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि यह मन की वह विश्राम अवस्था है जो किसी व्यक्ति के जीवन-क्रम का स्वाभाविक हिस्सा है। इसीलिए भावंगा के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'जीवन-क्रम' सुझाया गया है । लेकिन इसका बेहतर अनुवाद 'विश्राम मानसिक अवस्था' हो सकता है।

भावंग अवस्था, जिसका अनुभव व्यक्ति तब तक करता है जब तक वह बाह्य उद्दीपनों से बाधित नहीं होता, एक क्षण के लिए विचार-दर्शन करती है और इंद्रियों को उत्तेजित करने वाले उद्दीपन से समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि आँख उत्तेजित होती है। तब भावंग चेतना की धारा रुक जाती है और इंद्रिय-प्रधान चेतना (जिसका कार्य ध्यान को वस्तु की ओर मोड़ना है) उत्पन्न होती है और समाप्त हो जाती है। इसके तुरंत बाद, एक दृश्य बोध उत्पन्न होता है जो वस्तु को देखता है, लेकिन उसके बारे में और अधिक नहीं जानता। इस इंद्रिय क्रिया के बाद देखी गई वस्तु को ग्रहण करने का क्षण आता है। इसके बाद खोजी विचार-दर्शन उत्पन्न होता है जो क्षण भर के लिए देखी गई वस्तु की जाँच करता है। इसके बाद निर्णायक विचार-दर्शन आता है। इसी पर मनोवैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण अगली अवस्था जवाना निर्भर करती है। इसी अवस्था में किसी कर्म का न्याय किया जाता है, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक, जब विवेक का प्रयोग किया जाता है और वह अपनी भूमिका निभाता है। कर्म इसी अवस्था में किया जाता है।

सही निर्णय लेने पर यह नैतिक हो जाता है; गलत निर्णय लेने पर अनैतिक। मन में प्रस्तुत वस्तु चाहे वांछनीय हो या अवांछनीय, जवन प्रक्रिया को नैतिक या अनैतिक बनाना संभव है। उदाहरण के लिए, यदि कोई शत्रु से मिलता है, तो क्रोध स्वतः उत्पन्न होगा। इसके विपरीत, एक बुद्धिमान व्यक्ति आत्म-संयम से उसके प्रति प्रेम का भाव प्रकट कर सकता है।

इसीलिए बुद्ध ने कहा था:
स्वयं से बुराई की जाती है।
स्वयं से ही मनुष्य अपवित्र होता है।
स्वयं से कोई बुराई नहीं होती।
स्वयं से ही व्यक्ति शुद्ध होता है।
अपवित्रता और पवित्रता दोनों ही व्यक्ति पर निर्भर करती हैं।
किसी एक व्यक्ति के द्वारा दूसरा व्यक्ति शुद्ध नहीं होता।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि परिवेश, परिस्थितियाँ, आदतें और इसी प्रकार के कारक हमारे विचारों को प्रभावित करते हैं। ऐसे अवसरों पर इच्छाशक्ति गौण हो जाती है। फिर भी, हमारे पास इन बाह्य शक्तियों पर विजय प्राप्त करने और अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति का प्रयोग करके नैतिक और अनैतिक विचार उत्पन्न करने की संभावना मौजूद है। कोई बाहरी तत्व एक कारण हो सकता है, लेकिन अंततः होने वाले कार्यों के लिए हम स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं।

जवाना के लिए उपयुक्त प्रतिपादन सुझाना अत्यंत कठिन है ।

कुछ लोग धारणा का सुझाव देते हैं। आवेग को एक वैकल्पिक व्याख्या के रूप में सुझाया गया है, जो धारणा की तुलना में कम संतोषजनक प्रतीत होती है। यहाँ पाली शब्द को ही बरकरार रखा गया है।

जवाना का शाब्दिक अर्थ है दौड़ना। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि चिंतन प्रक्रिया के दौरान यह लगातार सात चिंतन-क्षणों तक, या मृत्यु के समय, एक ही विषय पर पाँच चिंतन-क्षणों तक दौड़ता है। इन सभी चिंतन-क्षणों में उत्पन्न होने वाली मानसिक अवस्थाएँ समान होती हैं, परन्तु संभाव्य बल भिन्न होता है।

समय के अत्यंत सूक्ष्म भाग में घटित होने वाली यह संपूर्ण विचार प्रक्रिया दो विचार-क्षणों तक चलने वाली चेतना के साथ समाप्त हो जाती है। इस प्रकार सत्रह विचार-क्षणों की समाप्ति पर एक विचार प्रक्रिया पूर्ण होती है। यह किसी वस्तु के अनुभव में निहित विचार प्रक्रिया का विश्लेषण है।

बौद्ध धर्म प्रणाली में उच्च आध्यात्मिक उपलब्धि की खोज में एक आवश्यक तत्व मन की वास्तविक प्रकृति - चित्तानुपस्सना - पर चिंतन करना है ।

' चित्तनुपस्सना ' का अर्थ है मन का चिंतन। मन इतना जटिल और सूक्ष्म है कि आधुनिक विज्ञान भी इसके वास्तविक स्वरूप को पूरी तरह समझ नहीं पाया है। लेकिन बुद्ध ने अपने मन का विकास करके मन के वास्तविक स्वरूप को समझ लिया था। मन का विकास एकाग्रता की ओर ले जाता है। इस प्रकार विकसित मन को सहजता से पारलौकिक ज्ञान की ओर मोड़ा जा सकता है। हालांकि, ऐसी अवस्था को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। मन एक विषय पर स्थिर नहीं रहता, वह हमेशा भटकता रहता है। जब मन को वश में करने का प्रयास किया जाता है, तो वह पानी से निकाली गई मछली की तरह छटपटाता है। इसलिए मन को वश में करने के लिए अत्यंत प्रयास करना चाहिए।

अभिधम्म के अनुसार मन के 121 प्रकार होते हैं। इस ध्यान (चित्तानुपस्सना) में मन के 16 पहलुओं का वर्णन किया गया है। वे इस प्रकार हैं:

सारगा ,
वितरगा ,
सडोसा ,
विटाडोसा ,
समोहा ,
वीतमोह ,
सांखित्त
विक्खिट्टा ,
महाग्गता ,
अमाहग्गटा ,
सौत्तरा ,
अनुत्तरा ,
समाहिता ,
असमाहिता ,
विमुत्ता
अविमुत्ता .

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 35

(धम्मपद 33.34) <<<< पिछला || श्लोक 35 || अगला >>>> (धम्मपद 36)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 35 - अन्नतारभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 35 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Dunnig-gahassa lahuno
यत्थकमणिपतिनो(1)

चित्तस्सा दामथो साधु
चित्तम दंतम सुखवहम(2).

श्लोक 35 : मन को वश में करना कठिन है; यह तेज़ी से और सहजता से जहाँ चाहे वहाँ चला जाता है। मन को वश में रखना अच्छा है, क्योंकि वश में किया हुआ मन सुख लाता है।

---

1. यत्थकमणिपतिनो: यह जहाँ चाहे विचरण करता है, बिना किसी नियंत्रण के किसी भी इंद्रिय विषय पर ठहर जाता है। 2. सुखवहम: यह सुख, सौभाग्य, संतुष्टि आदि लाता है, और साथ ही मार्ग, फल और निर्वाण भी प्रदान करता है। (टीका)

एक भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (35) कहा।
एक बार साठ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद पर्वत की तलहटी में स्थित मतिका गाँव में शरण ली। वहाँ गाँव के मुखिया की माता मतिकामाता ने उन्हें भिक्षा दी और उनके लिए एक मठ भी बनवाया ताकि वे बरसात के मौसम में गाँव में रह सकें। एक दिन उन्होंने भिक्षुओं के समूह से ध्यान की विधि सिखाने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उन्हें शरीर के बत्तीस तत्वों पर ध्यान करना सिखाया, जिससे शरीर के क्षय और विघटन की चेतना प्राप्त होती है। मतिकामाता ने लगन से अभ्यास किया और भिक्षुओं से पहले ही तीनों मार्ग और फल, विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और सांसारिक अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं।
मग्ग और फल के आनंद से जागृत होकर उन्होंने दिव्य दृष्टि (दिब्बाचक्खु) से देखा कि भिक्षुओं ने अभी तक किसी भी मग्ग को प्राप्त नहीं किया था। उन्होंने यह भी जाना कि उन भिक्षुओं में अर्हतत्व प्राप्त करने की पर्याप्त क्षमता थी, लेकिन उन्हें उचित भोजन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने उनके लिए उत्तम और उत्तम भोजन तैयार किया। उचित भोजन और सही प्रयास से भिक्षुओं ने सही एकाग्रता विकसित की और अंततः अर्हतत्व प्राप्त किया।
बरसात के मौसम के अंत में, भिक्षु जेतवन मठ लौट आए, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे सभी स्वस्थ हैं और सुख-सुविधाओं में हैं तथा उन्हें भोजन की चिंता नहीं है। उन्होंने मतिकामाता का भी उल्लेख किया, जो उनके विचारों को जानती थीं और उन्होंने उनकी इच्छा के अनुसार भोजन तैयार किया और उन्हें परोसा।
एक भिक्षु ने मतिकामाता के बारे में लोगों को बात करते हुए सुना और उसने भी उस गाँव जाने का निश्चय किया। इसलिए, बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वह गाँव के मठ में पहुँचा। वहाँ उसने पाया कि उसकी हर मनोकामना मतिकामाता ने पूरी कर दी थी। जब उसने मतिकामाता को बुलाया, तो वह स्वयं मठ में आई और अपने साथ उत्तम भोजन लाई। भोजन ग्रहण करने के बाद उसने मतिकामाता से पूछा कि क्या वह दूसरों के मन की बात जान सकती है, लेकिन मतिकामाता ने प्रश्न को टालते हुए उत्तर दिया, "जो लोग दूसरों के मन की बात जान सकते हैं, वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं।" तब भिक्षु ने सोचा, "यदि मैं भी किसी साधारण सांसारिक व्यक्ति की तरह कोई अशुद्ध विचार मन में लाऊँ, तो मतिकामाता को अवश्य पता चल जाएगा।" इसलिए वह मतिकामाता से भयभीत हो गया और जेतवन मठ लौटने का निश्चय किया। उसने बुद्ध से कहा कि वह मतिका गाँव में नहीं रह सकता क्योंकि उसे डर है कि मतिकामाता उसके मन में अशुद्ध विचार देख लेगी। तब बुद्ध ने उससे केवल एक बात का ध्यान रखने को कहा; वह यह कि वह अपने मन को वश में रखे। बुद्ध ने भिक्षु को मतिका ग्राम के मठ में लौटने और केवल अपने ध्यान के विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। भिक्षु वापस चला गया। गृहस्थ भक्त ने उसे भी पहले की तरह ही अच्छा भोजन कराया, ताकि वह चिंतामुक्त होकर ध्यान कर सके। थोड़े ही समय में उसने भी अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
इस भिक्षु के संदर्भ में बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 35 : मन को वश में करना कठिन है; यह तेज़ी से और सहजता से जहाँ चाहे वहाँ चला जाता है। मन को वश में रखना अच्छा है, क्योंकि वश में किया हुआ मन सुख लाता है।

प्रवचन के अंत में, उपस्थित लोगों में से कई ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार साठ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद पर्वत की तलहटी में स्थित मातिका गाँव में शरण ली। वहाँ गाँव के मुखिया की माता मातिकामाता ने उन्हें भिक्षा दी और उनके लिए एक मठ भी बनवाया ताकि वे बरसात के मौसम में गाँव में रह सकें। एक दिन उन्होंने भिक्षुओं से ध्यान विधि सिखाने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उन्हें शरीर के बत्तीस तत्वों पर ध्यान करना सिखाया, जिससे शरीर के क्षय और विघटन की चेतना प्राप्त होती है। मातिकामाता ने लगन से अभ्यास किया और भिक्षुओं से पहले ही तीनों मार्ग (मार्ग) और फल (फल) प्राप्त कर लिए, साथ ही विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और सांसारिक अलौकिक शक्तियाँ भी प्राप्त कर लीं।
मार्ग और फल के आनंद से जागृत होकर उन्होंने दिव्य दृष्टि (दिब्बाचक्खु) से देखा कि भिक्षुओं ने अभी तक कोई भी मार्ग प्राप्त नहीं किया था। उन्होंने यह भी जाना कि उन भिक्षुओं में अर्हतत्व प्राप्त करने की पर्याप्त क्षमता थी, परन्तु उन्हें उचित भोजन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने उनके लिए उत्तम और उत्तम भोजन तैयार किया। उचित भोजन और उचित प्रयास से भिक्षुओं में सही एकाग्रता विकसित हुई और अंततः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
बरसात के मौसम के अंत में, भिक्षु जेतवन मठ लौट आए, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे सभी स्वस्थ हैं और सुख-सुविधाओं में हैं तथा उन्हें भोजन की चिंता नहीं है। उन्होंने मतिकामाता का भी उल्लेख किया, जो उनके विचारों से अवगत थीं और उन्होंने उनकी इच्छा के अनुसार भोजन तैयार किया और उन्हें प्रदान किया।
एक भिक्षु ने मातिकामाता के बारे में उनकी बातें सुनकर निर्णय लिया कि वह भी उस गाँव में जाएगा। इसलिए, बुद्ध से एक ध्यान विषय लेकर वह गाँव के मठ में पहुँचा। वहाँ उसने पाया कि उसकी हर मनोकामना मातिकामाता, जो एक गृहस्थ भक्त थी, द्वारा पूरी की जा रही थी। जब उसने मातिकामाता को बुलाया, तो वह स्वयं मठ में आई और अपने साथ उत्तम भोजन लाई। भोजन ग्रहण करने के बाद, उसने मातिकामाता से पूछा कि क्या वह दूसरों के मन की बातें जान सकती है, लेकिन मातिकामाता ने उसके प्रश्न को टाल दिया और उत्तर दिया, "जो लोग दूसरों के मन की बातें जान सकते हैं, वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं।" तब भिक्षु ने सोचा, "यदि मैं भी एक साधारण सांसारिक व्यक्ति की तरह कोई अशुद्ध विचार रखूँ, तो मातिकामाता को अवश्य पता चल जाएगा।" इसलिए वह मातिकामाता से भयभीत हो गया और जेतवन मठ लौटने का निर्णय लिया। उसने बुद्ध से कहा कि वह मातिका गाँव में नहीं रह सकता क्योंकि उसे डर था कि मातिकामाता उसके मन में अशुद्ध विचार देख लेगी। तब बुद्ध ने उससे केवल एक बात का ध्यान रखने को कहा; यानी, अपने मन पर नियंत्रण रखना। बुद्ध ने भिक्षु को मतिका गाँव के मठ में लौटने और केवल अपने ध्यान के विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। भिक्षु वापस चला गया। गृहस्थ भक्त ने उसे अच्छा भोजन कराया, जैसा कि उसने पहले भी दूसरों को कराया था, ताकि वह चिंतामुक्त होकर ध्यान कर सके। थोड़े ही समय में, उसने भी अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 35)
दुनिग्गाहास्सा लहुनो यत्था कमनिपाटिनो सीतास्स
दमथो साधु ; दन्तं चित्तं सुखवहम्
दुञ्निगगहस्स : नियंत्रित करना कठिन; लहुनो [लहुना]: तीव्र; यत्था कामणिपातिनो [कामणिपातिना]: अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी लक्ष्य पर केंद्रित; चित्तस्स : मन का; दमथो [दमथा]: वश में करना; साधु : (अच्छा) है; दन्तं [दन्त]: वश में किया हुआ; चित्तं [चित्त]: मन; सुखावं [सुखावह]: आनंद लाता है।
मन अत्यंत सूक्ष्म होता है और इसे देखना मुश्किल होता है। यह जिस लक्ष्य को चाहे, उस पर मोहित हो जाता है। बुद्धिमान लोग मन की रक्षा करते हैं। संरक्षित मन आनंद प्रदान करता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 35)
दुञ्निगगहस्स , यत्थकामणिपातिनो : नियंत्रित करना कठिन; जहाँ चाहे और जिस चाहे ध्यान केंद्रित करने वाला। ये दो मन के गुण बताए गए हैं। मन इतना चंचल और फुर्तीला है कि उसे वश में करना बहुत मुश्किल है। इसकी चंचलता के कारण इसे तब तक नियंत्रित नहीं किया जा सकता जब तक कि व्यक्ति असाधारण रूप से अनुशासित न हो। इस श्लोक में मन के जिस दूसरे गुण का उल्लेख किया गया है, वह है किसी भी चीज़ पर ध्यान केंद्रित करने की इसकी क्षमता। यह भी मन का एक ऐसा गुण है जो इसे नियंत्रण में रखना अत्यंत कठिन बनाता है। हमारी भावनाएँ अवैयक्तिक प्रक्रियाएँ हैं। वे हमारे कर्मों का परिणाम नहीं हैं। इसीलिए उन्हें नियंत्रित करना कठिन है। केवल उनसे स्वयं को अलग करके ही उन्हें रोका जा सकता है। उनसे स्वयं को अलग करके हम उन्हें बल देते हैं। उनके आने-जाने का शांत अवलोकन करने से वे थम जाती हैं। उनसे लड़कर उन्हें रोका नहीं जा सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 36

(धम्मपद 35) <<<< पिछला ॥ श्लोक 36 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 37)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 36 - उक्कन्थितभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 36 - उक्कन्थितभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सुदुद्दसम सुनीपुनम
यत्थकमणिपतिनाम
चित्तम रक्केथा मेधावी
चित्तं गुटं सुखवहम्।

श्लोक 36 : मन को देखना बहुत कठिन है, यह अत्यंत कोमल और सूक्ष्म है; यह जहाँ चाहे वहाँ विचरण करता है और ठहर जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति को अपने मन की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सचेत मन सुख लाता है।

एक असंतुष्ट भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (36) का उच्चारण किया, जो एक युवा असंतुष्ट भिक्षु के संदर्भ में था जो एक बैंकर का पुत्र था।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक बैंकर का पुत्र रहता था। इस युवक ने अपने घर भिक्षा मांगने आने वाले भिक्षु से पूछा कि जीवन के दुखों से मुक्ति पाने के लिए उसे क्या करना चाहिए। भिक्षु ने उसे अपनी संपत्ति को तीन भागों में बांटने का निर्देश दिया; एक भाग व्यापार के लिए, एक भाग परिवार के भरण-पोषण के लिए और एक भाग दान के लिए। उसने निर्देशानुसार कार्य किया और फिर पूछा कि आगे क्या करना चाहिए। तब उसे आगे निर्देश दिए गए; पहला, तीन रत्नों (1) की शरण लेना और पांच नियमों का पालन करना; दूसरा, दस नियमों का पालन करना; और तीसरा, संसार का त्याग करके बौद्ध धर्म में प्रवेश करना। युवक ने इन सभी निर्देशों का पालन किया और भिक्षु बन गया।

भिक्षु के रूप में, उन्हें एक गुरु से अभिधम्म(2) और दूसरे गुरु से विनय की शिक्षा मिली। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करते हुए, उन्हें लगा कि सीखने के लिए बहुत कुछ है, अनुशासन के नियम बहुत कठोर और अधिक हैं, यहाँ तक कि हाथ फैलाने की भी स्वतंत्रता नहीं है। उन्होंने सोचा कि गृहस्थ जीवन में लौट जाना बेहतर होगा। संदेह और असंतोष के कारण वे दुखी हो गए और अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगे; वे दुबले-पतले और कमजोर भी हो गए। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने उस युवा भिक्षु से कहा, "यदि तुम केवल अपने मन को वश में कर लो, तो तुम्हें और कुछ वश में करने की आवश्यकता नहीं होगी; इसलिए अपने मन की रक्षा करो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 36 : मन को देखना बहुत कठिन है, यह अत्यंत कोमल और सूक्ष्म है; यह जहाँ चाहे वहाँ विचरण करता है और ठहर जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति को अपने मन की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सचेत मन सुख लाता है।

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु और कई अन्य लोगों ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

(1) तीन रत्न: तीन रत्न बुद्ध, धम्म और संघ हैं (अर्थात बुद्ध, बुद्ध की शिक्षा और बौद्ध धार्मिक व्यवस्था)।

(2) अभिधम्म: पिटक का तीसरा महान विभाजन जिसमें परम वास्तविकताओं के बारे में बुद्ध की दार्शनिक व्याख्या शामिल है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक असंतुष्ट भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक असंतुष्ट युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो एक बैंकर का पुत्र था।
जब बुद्ध सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब एक धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र भिक्षा मांगने आए एक बुजुर्ग के पास पहुंचा और उनसे कहा, "आदरणीय, मैं दुखों से मुक्ति पाना चाहता हूं। कृपया मुझे कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे मुझे दुखों से मुक्ति मिल सके।" बुजुर्ग ने उत्तर दिया, "भाई, आपको शांति मिले। यदि आप दुखों से मुक्ति चाहते हैं, तो भिक्षा दें, पखवाड़े भर भोजन दें, वर्षा ऋतु में आवास दें, बर्तन और वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं दान करें। अपनी संपत्ति को तीन भागों में बांटें: एक भाग से अपना व्यवसाय चलाएं; दूसरे भाग से पुत्र और पत्नी का भरण-पोषण करें; और तीसरे भाग को बुद्ध धर्म के अनुसार भिक्षा में दान करें।"
"बहुत अच्छा, पूज्यवर," बैंकर के पुत्र ने कहा और निर्धारित क्रम में सब कुछ किया। यह करने के बाद, वह अपने गुरु के पास लौटा और उनसे पूछा, "पूज्यवर, क्या मुझे कुछ और करना चाहिए?" "भाई, तीन शरण और पाँच नियम अपना लो।" बैंकर के पुत्र ने ऐसा ही किया और फिर पूछा कि क्या उसे कुछ और करना चाहिए? "जी हाँ," गुरु ने उत्तर दिया, "दस नियम अपना लो।" "बहुत अच्छा, पूज्यवर," बैंकर के पुत्र ने कहा और दस नियम अपना लिए। इस प्रकार एक के बाद एक पुण्य कर्म करने के कारण, उन्हें अनुपब्बा कहा जाने लगा। उन्होंने फिर गुरु से पूछा, "पूज्यवर, क्या मुझे कुछ और करना चाहिए?" गुरु ने उत्तर दिया, "जी हाँ, संन्यासी बन जाओ।" बैंकर के पुत्र ने तुरंत संसार त्याग दिया और संन्यासी बन गए।
अब उनके पास अभिधम्म में पारंगत एक शिक्षक और विनय में पारंगत एक गुरु थे। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद, जब भी वे अपने गुरु के पास जाते, गुरु अभिधम्म में पाए जाने वाले प्रश्न दोहराते, "बुद्ध धर्म में यह करना वैध है, वह करना अवैध है।" और जब भी वे अपने गुरु के पास जाते, गुरु विनय में पाए जाने वाले प्रश्न दोहराते, "बुद्ध धर्म में यह करना वैध है, वह करना अवैध है; यह उचित है, यह अनुचित है।" कुछ समय बाद उन्होंने मन ही मन सोचा, "अरे, यह कितना थकाऊ कार्य है! मैं दुख से मुक्ति पाने के लिए भिक्षु बना था, लेकिन यहाँ तो हाथ फैलाने की भी जगह नहीं है। यद्यपि गृहस्थ जीवन जीने से भी दुख से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। मुझे एक बार फिर गृहस्थ बन जाना चाहिए।"
बुद्ध ने कहा, "भिक्षु, क्या तुम असंतुष्ट हो?" "जी, पूज्यवर, मैं दुखों से मुक्ति पाने के लिए भिक्षु बना। परन्तु यहाँ तो मेरे हाथ फैलाने की भी जगह नहीं है। गृहस्थ बनकर तो मुझे दुखों से मुक्ति मिल सकती है।" बुद्ध ने आगे कहा, "भिक्षु, यदि तुम एक बात की रक्षा कर सको, तो बाकी बातों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होगी।" "वह क्या है, पूज्यवर?" "क्या तुम अपने विचारों की रक्षा कर सकते हो?" "हाँ, पूज्यवर।" "तो फिर केवल अपने विचारों की ही रक्षा करो।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 36)
सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपतिनं
चित्तं मेधावी रक्खेथा चित्तं गुत्तं सुखवाहं
सुदुद्दसम् [sududdasa]: जिसे देखना अत्यंत कठिन है; सुनिपुनम् [sunipuna]: अत्यंत सूक्ष्म; यत्थ कामणिपातिनम् [kāmanipātina]: जिस भी लक्ष्य पर चाहे ध्यान केंद्रित करने वाला; चित्तम् [citta]: मन; मेधावी : बुद्धिमान; रक्खेथ : रक्षा करने वाला; गुट्त्तम् चित्तम् [citta]: संरक्षित मन; सुखावः [sukhāvaha]: आनंद लाने वाला
मन इतनी तेजी से घूमता है कि उसे पूरी तरह वश में करना मुश्किल है। यह बहुत चंचल है। यह अपनी मर्जी से किसी भी चीज पर ध्यान केंद्रित कर लेता है। मन को वश में करना अच्छा है और इससे बहुत लाभ होता है। वश में किया हुआ मन आनंद की प्राप्ति कराता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 36)
सुदुद्दसं सुनीपुनं : मन के दो गुण। मन का एक प्रमुख गुण यह है कि इसे देखना अत्यंत कठिन है। यद्यपि यह अनेक प्रकार की गतिविधियों में सक्षम है, फिर भी इसे देखा नहीं जा सकता। यह अदृश्य रूप से विचरण करता है। यह बिना देखे ही प्रेरित करता है, राजी करता है और प्रोत्साहित करता है। इस श्लोक में मन के दूसरे गुण का उल्लेख किया गया है कि यह अत्यंत सूक्ष्म है। इसी कारण मन को न तो देखा जा सकता है और न ही किसी भी प्रकार से वश में किया जा सकता है। श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि सुख उसी को प्राप्त होता है जो इस अगोचर और सूक्ष्म सत्ता—मन—की रक्षा करने में सक्षम होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 37

———————————————————————

(धम्मपद 36) <<<< पिछला || श्लोक 37 || अगला >>>> (धम्मपद 38, 39)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 37 - समग्रक्खितत्थेरा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 37 - समग्रक्खितत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Durangamam ekacaram(1)
asariram guhasayam(2)
ये चित्तम सम्यमिसन्ति
mokkhanti marabandhana.

———————————————————————

श्लोक 37 : मन दूर-दूर तक भटकता है और अकेला ही विचरण करता है; यह भौतिक नहीं है; यह हृदय की गुफा (कक्ष) में स्थित है। जो अपने मन को वश में रखते हैं, वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

———————————————————————

1. एकाचारम्: अकेले चलना, अकेले घूमना, इसका अर्थ है एक समय में एक ही विचार मन में आना, यानी एक विचार तभी उत्पन्न होता है जब दूसरा समाप्त हो जाता है। 2. गुहासयम: शाब्दिक अर्थ है गुफा में लेटना या सोना; मन हृदय (हृदयवत्थु) की गुफा (कक्ष) में निरंतर रहता और उठता है, जो चेतना का केंद्र है।

———————————————————————

थेरा संघरक्खिता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा संघरक्षित के भतीजे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (37) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में संघरक्षित नाम के एक वरिष्ठ भिक्षु रहते थे। जब उनकी बहन ने एक पुत्र को जन्म दिया, तो उन्होंने उसका नाम थेरा के नाम पर रखा और वह संघरक्षित भगिनेय के नाम से प्रसिद्ध हो गया। समय आने पर, उनके भतीजे संघरक्षित को भी संघ में प्रवेश मिल गया। जब युवा भिक्षु एक गाँव के मठ में रह रहे थे, तब उन्हें वस्त्रों के दो जोड़े भेंट किए गए, और उन्होंने उनमें से एक अपने मामा, थेरा को भेंट करने का इरादा किया।

वर्षा ऋतु (तीन महीने) के अंत में, वह अपने चाचा को प्रणाम करने गए और उन्हें अपना वस्त्र भेंट किया। लेकिन चाचा ने यह कहते हुए वस्त्र लेने से इनकार कर दिया कि उनके पास पर्याप्त है। बार-बार अनुरोध करने पर भी, भिक्षु ने नहीं माना। युवा भिक्षु निराश हो गए और सोचने लगे कि चूंकि उनके चाचा उनके साथ आवश्यक वस्तुएँ साझा करने को तैयार नहीं हैं, इसलिए उनके लिए संघ छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करना ही बेहतर होगा।

उस पल से उसका मन भटकने लगा और विचारों की एक श्रृंखला उमड़ पड़ी। उसने सोचा कि मठ छोड़ने के बाद वह अपना चोगा बेचकर एक बकरी खरीदेगा; वह बकरी जल्दी ही बच्चे पैदा कर देगी और जल्द ही उसके पास शादी करने लायक पैसे हो जाएंगे; उसकी पत्नी एक बेटे को जन्म देगी। वह अपनी पत्नी और बच्चे को एक छोटी गाड़ी में बिठाकर मठ में अपने चाचा से मिलने जाएगा। रास्ते में वह कहेगा कि वह बच्चे को गोद में उठा लेगा; पत्नी उससे कहेगी कि वह गाड़ी चलाए और बच्चे की चिंता न करे। वह ज़िद करेगा और उससे बच्चा छीन लेगा; दोनों के बीच बच्चा गाड़ी के रास्ते पर गिर जाएगा और पहिया उसके ऊपर से निकल जाएगा। वह अपनी पत्नी पर इतना क्रोधित होगा कि उसे लाठी से मारेगा।

उस समय वह ताड़ के पंखे से थेरा को हवा कर रहा था और अनजाने में ही पंखे से थेरा के सिर पर प्रहार कर दिया। थेरा, युवा भिक्षु के मन की बात जानते हुए, बोले, "तुम अपनी पत्नी को नहीं पीट सके, तो एक बूढ़े भिक्षु को क्यों पीटा?" युवा संघरक्षित बूढ़े भिक्षु के शब्दों से बहुत आश्चर्यचकित और शर्मिंदा हुआ; वह अत्यंत भयभीत भी हो गया। इसलिए वह भाग गया। मठ के युवा भिक्षुओं और नौसिखियों ने उसका पीछा किया और अंततः उसे बुद्ध के समक्ष ले आए।

जब बुद्ध को पूरी घटना के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि मन में दूर स्थित वस्तु के बारे में भी सोचने की क्षमता होती है, और व्यक्ति को वासना, द्वेष और अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 37 : मन दूर-दूर तक भटकता है और अकेला ही विचरण करता है; यह भौतिक नहीं है; यह हृदय की गुफा (कक्ष) में स्थित है। जो अपने मन को वश में रखते हैं, वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

प्रवचन के अंत में युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु संघरक्षित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु संघरक्षित के भतीजे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय सावत्थी में संघरक्षित नाम के एक वरिष्ठ भिक्षु रहते थे। जब उनकी बहन ने पुत्र को जन्म दिया, तो उन्होंने उसका नाम भिक्षु के नाम पर रखा और वह संघरक्षित भागिनेय के नाम से प्रसिद्ध हुए। समय आने पर उनके भतीजे संघरक्षित संघ में शामिल हो गए। जब युवा भिक्षु एक गाँव के मठ में रह रहे थे, तब उन्हें दो वस्त्र भेंट किए गए, और उन्होंने उनमें से एक अपने मामा, भिक्षु संघरक्षित को भेंट करने का इरादा किया। वर्षा ऋतु के अंत में वे अपने मामा को प्रणाम करने गए और उन्हें वस्त्र भेंट किए। लेकिन मामा ने यह कहकर वस्त्र लेने से इनकार कर दिया कि उनके पास पर्याप्त वस्त्र हैं। बार-बार अनुरोध करने पर भी भिक्षु ने वस्त्र स्वीकार नहीं किए। युवा भिक्षु निराश हो गए और सोचने लगे कि चूंकि उनके मामा उनसे अपनी ज़रूरत की चीज़ें साझा करने को इतने अनिच्छुक हैं, इसलिए उनके लिए संघ छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करना ही बेहतर होगा।

उस पल से उसका मन भटकने लगा और विचारों की एक श्रृंखला उमड़ने लगी। उसने सोचा कि संघ छोड़ने के बाद वह अपना वस्त्र बेचकर एक बकरी खरीदेगा; बकरी जल्दी ही बच्चे पैदा करेगी और जल्द ही उसके पास इतनी दौलत हो जाएगी कि वह शादी कर सके; उसकी पत्नी एक बेटे को जन्म देगी। वह अपनी पत्नी और बच्चे को एक छोटी गाड़ी में बिठाकर मठ में अपने मामा से मिलने जाएगा। रास्ते में वह कहेगा कि वह बच्चे को गोद में उठा लेगा; पत्नी उससे कहेगी कि वह गाड़ी चलाए और बच्चे की चिंता न करे। वह ज़िद करेगा और उससे बच्चा छीन लेगा; दोनों के बीच बच्चा गाड़ी के रास्ते पर गिर जाएगा और पहिया उसके ऊपर से निकल जाएगा। वह अपनी पत्नी पर इतना क्रोधित होगा कि उसे लाठी से मारेगा।

उस समय वह भिक्षु को ताड़ के पंखे से हवा कर रहा था और अनजाने में ही उसने पंखे से भिक्षु के सिर पर प्रहार कर दिया। भिक्षु ने युवा भिक्षु के मन की बात समझकर कहा, “तुम अपनी पत्नी को नहीं पीट सके, तो एक बूढ़े भिक्षु को क्यों पीटा?” युवा संघरक्षित बूढ़े भिक्षु के शब्दों से बहुत आश्चर्यचकित और शर्मिंदा हुआ; वह अत्यंत भयभीत भी हो गया। इसलिए वह भाग गया। मठ के युवा भिक्षुओं और नौसिखियों ने उसका पीछा किया, उसे पकड़ लिया और अंततः उसे बुद्ध के समक्ष ले आए।

जब बुद्ध ने अपने अनुभव के बारे में बताया, तो उन्होंने कहा कि मन दूर स्थित वस्तु के बारे में भी सोच सकता है, और व्यक्ति को वासना, द्वेष और अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाने के लिए दृढ़ प्रयास करना चाहिए। प्रवचन के अंत में बुद्ध द्वारा इस श्लोक का पाठ करने के बाद, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 37)

दूरंगमं एकाचरण अशरीरं गुहाशयं चित्तं

ये सन्नामेस्सान्ति (ते) मरबंधना मोक्खन्ति

दूरंगमम् [दूरंगम]: विशाल दूरी तय करना; एकचरम् [एकचर]: अकेले चलना; असरीरम् [असरीर]: देहहीन; गुहासयम् [गुहासय]: गुप्त निवास; चित्तम् [चित्त]: मन; ये : यदि कोई; सन्ञमस्सन्ति : (रोके); (ते) मारबंधना : उन्हें मृत्यु के बंधनों से; मोक्खंति : मुक्त किया जाता है

मन विशाल दूरी तय करने में सक्षम है—ऊपर या नीचे, उत्तर या दक्षिण, पूर्व या पश्चिम—किसी भी दिशा में। यह अतीत या भविष्य में जा सकता है। यह बिल्कुल अकेला विचरण करता है। इसका कोई प्रत्यक्ष रूप नहीं है। यदि कोई व्यक्ति मन को पूर्णतः नियंत्रित कर ले, तो वह मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाएगा।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 37)

दूरंगमं एकचरं असरीरं गुहासयं : दूर यात्रा करना, एकांत में रहना, देहहीन होना, गुप्त रहना। ये इस श्लोक में वर्णित मन के चार और गुण हैं। दूर यात्रा करने का अर्थ है कि यह विचार के आरंभिक विषय से बहुत दूर भटक सकता है। एकांत में रहने का अर्थ है कि यह एक समय में केवल एक ही विषय पर विचार कर सकता है। देहहीन होने का अर्थ है कि यह कोई ऐसी इकाई नहीं है जो स्थान घेरती हो, क्योंकि यह केवल एक क्रिया है जिसे भौतिक या मानसिक रूप से देखा जा सकता है। गुप्त रहने का अर्थ है कि यह अमूर्त है।

(धम्मपद 37) <<<< पिछला ॥ श्लोक 38, 39 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 40)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 38 और 39 - चित्तहत्थत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 38 और 39 - चित्तहत्थत्थेरा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

अनवत्थिताचित्तस्सा
saddhammam avijanato
pariplavapasadassa
panna na paripurati.

Anavassutacittassa
ananvahatacetaso
punnapapapahinassa(1)
natthi jagarato(2) bhayam.

श्लोक 38 : यदि मनुष्य का मन अस्थिर है, यदि वह सच्चे धम्म से अनभिज्ञ है, और यदि उसका विश्वास डगमगा रहा है, तो उसका ज्ञान कभी भी परिपूर्ण नहीं होगा।

श्लोक 39 : यदि मनुष्य का मन वासना से मुक्त हो, यदि वह द्वेष से मुक्त हो, यदि उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया हो, और यदि वह सतर्क हो, तो ऐसे मनुष्य के लिए कोई खतरा नहीं है।

थेरा चित्तहत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चित्तहत्था के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (38) और (39) का उच्चारण किया।
सावत्थी का एक व्यक्ति जंगल में अपने खोए हुए बैल को ढूंढते-ढूंढते बहुत भूखा हो गया और एक गाँव के मठ में गया, जहाँ उसे सुबह के भोजन का बचा हुआ हिस्सा दिया गया। भोजन करते समय उसके मन में यह विचार आया कि वह प्रतिदिन इतनी मेहनत करने के बावजूद इतना अच्छा भोजन नहीं पा सकता और भिक्षु बनना शायद एक अच्छा विचार होगा। इसलिए उसने भिक्षुओं से संघ में प्रवेश करने का अनुरोध किया। मठ में उसने भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया और भोजन की प्रचुरता के कारण उसका वजन शीघ्र ही बढ़ गया। कुछ समय बाद, वह भिक्षा मांगने से ऊब गया और गृहस्थ जीवन में लौट आया। कुछ दिनों बाद, उसे घर का जीवन बहुत कठिन लगा और वह दूसरी बार भिक्षु बनने के लिए मठ में वापस चला गया। दूसरी बार भी उसने संघ छोड़ दिया और गृहस्थ जीवन में लौट आया। फिर वह तीसरी बार मठ में गया और उसे भी छोड़ दिया। यह स्थानांतरण प्रक्रिया छह बार दोहराई गई, और चूंकि वह केवल अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता था, इसलिए उसे थेरा चित्तहत्था के नाम से जाना जाता था।

घर और मठ के बीच आने-जाने के दौरान उनकी पत्नी गर्भवती हो गईं। एक दिन, घर पर अपने आखिरी प्रवास के दौरान, वे संयोगवश उस समय शयनकक्ष में गए जब उनकी पत्नी सो रही थीं। वे लगभग नग्न थीं क्योंकि उनके कपड़े आंशिक रूप से उतर गए थे। वे नाक और मुंह से ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे ले रही थीं और उनके मुंह से लार टपक रही थी। इस प्रकार, खुले मुंह और फूले हुए पेट के साथ, वे एक शव की तरह दिख रही थीं। उन्हें इस प्रकार देखकर, उन्हें तुरंत शरीर की क्षणभंगुर और अप्रिय प्रकृति का अहसास हुआ, और उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं कई बार भिक्षु बन चुका हूँ और केवल इसी स्त्री के कारण मैं भिक्षु नहीं रह पाया।" अतः, पीले वस्त्र को अपने साथ लेकर वे सातवीं बार मठ के लिए घर से निकल पड़े। रास्ते में वे "अस्थिरता" और "अप्रियता" (अनिच्चा और दुःख) शब्दों को दोहराते रहे और इस प्रकार मठ के मार्ग में ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया।

मठ पहुँचने पर उन्होंने भिक्षुओं से संघ में प्रवेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने इनकार कर दिया और कहा, "हम आपको भिक्षु के रूप में प्रवेश नहीं दे सकते। आप इतनी बार अपना सिर मुंडवा चुके हैं कि आपका सिर पत्थर की तरह घिस गया है।" फिर भी, उन्होंने उनसे एक बार फिर संघ में प्रवेश देने की विनती की और वे मान गए। कुछ ही दिनों में, भिक्षु चित्तहत्था ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। अन्य भिक्षुओं ने उन्हें मठ में लंबे समय तक रहते देखकर आश्चर्यचकित होकर उनसे इसका कारण पूछा। इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "मैं तब घर गया था जब मुझमें आसक्ति थी, लेकिन अब वह आसक्ति दूर हो गई है।" भिक्षुओं ने उनकी बात पर विश्वास न करते हुए बुद्ध के पास जाकर उन्हें यह बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "थेरा चित्तहत्था सत्य कह रहे थे; वे पहले घर और मठ के बीच आते-जाते रहते थे क्योंकि उस समय उनका मन स्थिर नहीं था और वे धम्म को नहीं समझते थे। लेकिन इस समय, थेरा चित्तहत्था पहले से ही एक अरहत हैं; उन्होंने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 38 : यदि मनुष्य का मन अस्थिर है, यदि वह सच्चे धम्म से अनभिज्ञ है, और यदि उसका विश्वास डगमगा रहा है, तो उसका ज्ञान कभी भी परिपूर्ण नहीं होगा।

श्लोक 39 : यदि मनुष्य का मन वासना से मुक्त हो, यदि वह द्वेष से मुक्त हो, यदि उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया हो, और यदि वह सतर्क हो, तो ऐसे मनुष्य के लिए कोई खतरा नहीं है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु चित्तहत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चित्तहत्था नामक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे: एक प्रतिष्ठित परिवार का एक युवक, जो सावत्थी में रहता था और चरवाहा था, अपने खोए हुए बैल को खोजने के लिए जंगल में गया। दोपहर के समय, उसने बैल को देखा और अपने चरवाहों को खुला छोड़ दिया। भूख और प्यास से व्याकुल होकर उसने मन ही मन सोचा, "मैं इन श्रेष्ठ भिक्षुओं से कुछ न कुछ भोजन अवश्य प्राप्त कर लूँगा।" अतः वह मठ में प्रवेश किया, भिक्षुओं के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हो गया। उस समय, भोजन कर चुके भिक्षुओं का बचा हुआ भोजन कूड़ा फेंकने वाले पात्र में रखा था। जब भिक्षुओं ने उस युवक को भूख से व्याकुल देखा, तो उन्होंने उससे कहा, "यह भोजन है; इसे लो और खा लो।" (जब कोई बुद्ध संसार में निवास करते हैं, तो चावल की दलिया और विभिन्न प्रकार की चटनी हमेशा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहती है)। इसलिए उस युवक ने अपनी आवश्यकतानुसार भोजन ग्रहण किया, पानी पिया, हाथ धोए और फिर भिक्षुओं को प्रणाम करके पूछा, "आदरणीय, क्या आप आज किसी के निमंत्रण पर गए थे?" "नहीं, मेरे शिष्य; भिक्षु हमेशा इसी प्रकार भोजन ग्रहण करते हैं।"

युवक ने मन ही मन सोचा, "हम चाहे कितने ही व्यस्त और सक्रिय क्यों न हों, दिन-रात लगातार काम करते रहें, फिर भी हमें इतना स्वादिष्ट दलिया कभी नहीं मिलता। परन्तु ये भिक्षु, अपने ही कथन के अनुसार, इसे निरंतर खाते हैं। मैं अब और गृहस्थ क्यों रहूँ? मैं भिक्षु बनूँगा।" तदनुसार, वह भिक्षुओं के पास गया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। भिक्षुओं ने उससे कहा, "बहुत अच्छा, गृहस्थ शिष्य," और उसे संघ में शामिल कर लिया। पूर्ण प्रतिज्ञा लेने के बाद, उसने सभी प्रमुख और लघु कर्तव्यों का पालन किया; और कुछ ही दिनों में, बुद्ध के उपदेशों से प्राप्त होने वाले प्रचुर दानों में भाग लेकर, वह धनवान और सुखी हो गया।

तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "भिक्षा मांगने से प्राप्त भोजन पर क्यों गुजारा करूं? मैं फिर से गृहस्थ जीवन व्यतीत करूंगा।" अतः वे वापस अपने घर लौट आए। कुछ ही दिनों तक घर में काम करने के बाद उनका शरीर दुबला-पतला और दुर्बल हो गया। तब उन्होंने मन ही मन कहा, "यह कष्ट और क्यों सहन करूं? मैं भिक्षु बन जाऊंगा।" अतः वे वापस लौट आए और पुनः दीक्षा ली। परन्तु कुछ दिन भिक्षु जीवन व्यतीत करने के बाद, फिर से असंतुष्ट होकर वे गृहस्थ जीवन में लौट आए।

"मैं अब और गृहस्थ जीवन क्यों जीऊँ? मैं भिक्षु बनूँगा।" ऐसा कहकर वे भिक्षुओं के पास गए, प्रणाम किया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। क्योंकि वे उनके साथ रहे थे, भिक्षुओं ने उन्हें एक बार फिर संघ में शामिल कर लिया। इस प्रकार वे लगातार छह बार

संघ में प्रवेश करते और फिर उसे छोड़ देते रहे। भिक्षुओं ने आपस में कहा, “यह व्यक्ति अपने विचारों के वश में रहता है।” इसलिए उन्होंने उन्हें विचार-नियंत्रित, वरिष्ठ चित्तहत्था नाम दिया।

जब वह इस तरह बार-बार आ-जा रहा था, उसकी पत्नी गर्भवती हो गई। सातवीं बार जब वह जंगल से अपने कृषि उपकरण लेकर लौटा, तो घर जाकर उसने अपने उपकरण एक तरफ रख दिए और अपने कमरे में प्रवेश करते हुए मन ही मन कहा, “मैं फिर से अपना पीला वस्त्र पहन लूँगा।” संयोगवश, उस समय उसकी पत्नी बिस्तर पर सो रही थी। उसके अंतर्वस्त्र उतर चुके थे, उसके मुँह से लार बह रही थी, वह खर्राटे ले रही थी, उसका मुँह खुला हुआ था; वह उसे एक सूजी हुई लाश जैसी लग रही थी। यह सोचकर कि “इस संसार में सब कुछ क्षणभंगुर है, दुख से भरा है,” उसने मन ही मन कहा, “यह सोचकर दुख होता है कि उसकी वजह से, इतने समय से भिक्षु रहते हुए भी, मैं अपने संन्यासी जीवन में स्थिर नहीं रह पाया!” तुरंत ही, उसने अपना पीला वस्त्र उठाया और घर से बाहर भागा, भागते हुए उसने वस्त्र को अपने पेट के चारों ओर लपेट लिया।

अब उसकी सास उसी घर में उसके साथ रहती थी। जब उसने उसे इस तरह जाते देखा, तो मन ही मन बोली, “यह भगोड़ा, जो अभी-अभी जंगल से लौटा है, घर से भाग रहा है, भागते हुए अपने पीले वस्त्र को लपेटे हुए, और मठ की ओर जा रहा है। इसका क्या मतलब है?” घर में प्रवेश करके अपनी बेटी को सोते हुए देखकर वह तुरंत समझ गई, “क्योंकि उसने उसे सोते हुए देखा, इसलिए उसे घृणा हुई और वह चला गया।” तो उसने अपनी बेटी को जगाकर कहा, “उठो, तुम्हारे पति ने तुम्हें सोते हुए देखा, घृणा हुई और चला गया। अब से वह तुम्हारा पति नहीं रहेगा।” “जाओ माँ। क्या फर्क पड़ता है कि वह गया है या नहीं? वह कुछ ही दिनों में वापस आ जाएगा।”

चित्तहत्था ने "इस संसार में जो कुछ भी है, वह क्षणभंगुर है, दुखों से घिरा है" इन शब्दों को दोहराते हुए अपनी यात्रा जारी रखी और इस प्रकार उन्होंने पश्चात्ताप का फल (सोतापत्ति फल) प्राप्त किया। अपनी यात्रा जारी रखते हुए वे भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। भिक्षुओं ने कहा, "नहीं, हम आपको संघ में शामिल नहीं कर सकते। आपको भिक्षु क्यों बनना चाहिए? आपका सिर चक्की के समान है।" "हे पूज्यवर, मुझे केवल एक बार संघ में शामिल कर लीजिए।" क्योंकि उन्होंने उनकी सहायता की थी, इसलिए उन्होंने उन्हें संघ में शामिल कर लिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने अलौकिक शक्तियों के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

तब उन्होंने उनसे कहा, “भाई चित्तहत्था, निःसंदेह आप ही तय करेंगे कि आपके जाने का समय कब आएगा; आप इस बार यहाँ बहुत समय तक रहे हैं।” “आदरणीय, जब मैं संसार से आसक्त था, तब मैं चला गया था; परन्तु अब मैंने संसार से आसक्ति त्याग दी है; अब मेरी जाने की कोई इच्छा नहीं है।” भिक्षु बुद्ध के पास गए और बोले, “आदरणीय, हमने इस भिक्षु से ऐसा कहा, और उसने उत्तर में हमें ऐसा कहा। वह असत्य बोलता है, असत्य बातें कहता है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “जी हाँ, भिक्षुओं, जब मेरे पुत्र का मन अस्थिर था, जब वह अच्छे धर्म को नहीं जानता था, तब वह आया-गया। परन्तु अब उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 38)

अनावतहिताचित्तस्सद्धम्मं अविजानतो

परिप्लव पसादस्स पन्नना न परिपूरति

अनवथिताचित्तस्स : अस्थिर मन का; सद्धम्मम् [सद्धम्म]: सच्चा सिद्धांत; अविजानतो [अविजानता]: से अनभिज्ञ; परिप्लावा पसादस्सा : उत्साह बढ़ाने का; पन्ना : बुद्धि; न परिपूरति : नहीं बढ़ता

यदि किसी व्यक्ति का मन लगातार विचलित होता रहता है, और यदि वह व्यक्ति सिद्धांत को नहीं जानता है, यदि किसी व्यक्ति का उत्साह लगातार घटता-बढ़ता रहता है या कम होता रहता है, तो ऐसे व्यक्ति की बुद्धि में वृद्धि नहीं होती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 39)

अनवसुता चित्तस्स अनन्वाहहतसेटसो

पुन्नपापापहिनास्सा जागरतो भयं नत्थि

अनवसुता चित्तस्स : (उसके लिए) जिसका मन जुनून से शांत है; अननवहतसेटसो [अननवहतसेटस]: घृणा से अप्रभावित मन; पुन्नपापापहिनास्सा : अच्छे और बुरे दोनों से परे चला गया; जागरतो [जागरता]: पूरी तरह जागना; भयं नत्थि : भय का अस्तित्व नहीं है

जिस व्यक्ति का मन वासनाओं से मंद नहीं होता, जो द्वेष से अप्रभावित रहता है और जो अच्छाई और बुराई दोनों से ऊपर उठ चुका होता है, उसे कोई भय नहीं होता क्योंकि वह पूर्णतः जागरूक होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 38-39)

अनवट्ठितचित्तस्स : अस्थिर या असंतुलित मन वाले व्यक्ति के लिए। आम लोगों का मन अस्थिर होता है। उनका मन स्थिर नहीं होता और परिणामस्वरूप उनमें एकाग्रता की कमी होती है। ऐसे मन वाले व्यक्ति को मुक्ति के मार्ग पर प्रगति करना कठिन लगता है।

saddhammaṃ avijānato : वह व्यक्ति जो बुद्ध की सुस्पष्ट शिक्षाओं से अवगत नहीं है।

परिप्लव पसादस्स : अस्थिर भक्ति के साथ। जिस व्यक्ति की भक्ति और विश्वास अस्थिर होते हैं, वह स्थिर प्रगति नहीं कर पाएगा।

अनवस्सुत चित्तस्स : यह एक सकारात्मक गुण है। यहाँ उस व्यक्ति की बात हो रही है जिसका मन कामवासना से दूषित नहीं होता। इसका तात्पर्य इंद्रियों की प्रतिक्रियाओं (अर्थात दृष्टि, ध्वनि, गंध आदि के प्रति प्रतिक्रिया) के माध्यम से दूषित पदार्थों के प्रवाह से है।

ananvāhatacetaso : वह व्यक्ति जिसका मन (लोभ, घृणा आदि) से अप्रभावित रहता है। मन पूर्णतः अक्षुण्ण होने के कारण वह इसका उपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए कर सकता है।

नत्थी जागरतो भयम् : जो पूरी तरह से जागृत है, उसे कोई भय नहीं होता। वह हमेशा सतर्क रहता है और मन को प्रभावित करने वाली अशुद्धियों पर ध्यान देता है। इसी सतर्कता के कारण जागृत व्यक्ति बिल्कुल भी भयभीत नहीं होता। यह गलत नहीं समझना चाहिए कि अरहंत सोते नहीं हैं। चाहे वे सो रहे हों या जाग रहे हों, उन्हें निश्चिंत या सतर्क माना जाता है, क्योंकि पाँच प्रेरक गुण — सद्धा , ऊर्जा , सती , एकाग्रता और ज्ञान — उनमें सदा विद्यमान रहते हैं ।

पुण्यपापपहीनस : वह व्यक्ति जो अच्छे और बुरे कर्मों की धारणाओं से परे होता है और उन्हें कर्मों के प्रति कोई विशेष आसक्ति नहीं होती। यह नैतिक समता की उच्च अवस्था को दर्शाता है, क्योंकि यह अहंकार रहित अनासक्ति का संकेत है। देने के कार्य से, प्राप्त करने वाले से या उपहार से कोई आसक्ति नहीं होती। हालांकि, अरहतों ने जीवन को पुष्ट करने वाले और पुनर्जन्म उत्पन्न करने वाले सभी कर्मों को पार कर लिया है, इसलिए उन्हें 'गुण और दोष से परे' कहा जाता है।

एक अरहंत यानी पूर्ण संत के कर्म न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे , क्योंकि वे अच्छे और बुरे दोनों से परे होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे निष्क्रिय होते हैं। वे सक्रिय होते हैं, परन्तु उनकी सक्रियता निस्वार्थ होती है और उनका उद्देश्य दूसरों को उस मार्ग पर चलने में सहायता करना होता है जिस पर वे स्वयं चले हैं। उनके कर्म, जिन्हें सामान्यतः अच्छा माना जाता है, कर्मिक फल उत्पन्न करने में स्वयं के लिए सृजनात्मक शक्ति से रहित होते हैं। यद्यपि वे अपने पूर्व कर्मों के फल से मुक्त नहीं होते। वे कोई नए कर्मिक कर्म संचित नहीं करते। अरहंत के रूप में उनके द्वारा किए गए सभी कर्म क्रियाशील (क्रिया) कहलाते हैं और कर्म नहीं माने जाते। वे नैतिक रूप से अप्रभावी होते हैं। चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हुए, उन्होंने अंततः कारण और प्रभाव की ब्रह्मांडीय श्रृंखला को तोड़ दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 40

(धम्मपद 38, 39) <<<< पिछला ‖ श्लोक 40 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 41)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 40 - पंचासताभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 40 - पंचासताभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

कुम्भुपमं कायमिममं विदित्वा
nagarupam cittamidam thapetva
योधेथा मरम पन्ना वुधेना
जितांका रक्खे अनिवेसानो सिया(1).

श्लोक 40 : यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान (नाजुक) है, मन को किलेबंद नगर के समान सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान के हथियार से मार का युद्ध करना चाहिए। (मार को परास्त करने के बाद) मन की रक्षा करते रहना चाहिए और जो कुछ प्राप्त हुआ है (अर्थात ध्यान से प्राप्त हुई तल्लीनता और शांति) उससे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

---

1. अनिवेसानो सिया: आसक्त न होना; इस संदर्भ में ध्यान के माध्यम से प्राप्त होने वाली ज्ञान परमानंद और शांति से आसक्त न होना, बल्कि अरहतत्व की प्राप्ति तक अंतर्दृष्टि ध्यान अभ्यासों के साथ आगे बढ़ना।

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (40) कहा।

श्रावस्ती से पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, श्रावस्ती से सौ योजन (2) की दूरी तय की और एक विशाल वन में पहुँचे, जो ध्यान साधना के लिए उपयुक्त स्थान था। उस वन में रहने वाले वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने सोचा कि यदि वे भिक्षु वन में ठहरेंगे, तो उनके लिए अपने परिवार के साथ वृक्षों पर रहना उचित नहीं होगा। इसलिए वे वृक्षों से नीचे उतरे, यह सोचकर कि भिक्षु वहाँ केवल एक रात के लिए रुकेंगे। लेकिन भिक्षु पखवाड़े भर तक वहीं रहे; तब उन्हें यह विचार आया कि भिक्षु वर्षा ऋतु (3 महीने का बरसाती मौसम) के अंत तक वहीं रह सकते हैं। ऐसी स्थिति में, उन्हें और उनके परिवार को लंबे समय तक जमीन पर रहना पड़ेगा। इसलिए, उन्होंने भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य बनाकर भिक्षुओं को डराने का निश्चय किया। वे बिना सिर के शरीरों के साथ, और बिना शरीर के सिरों के साथ प्रकट हुए। भिक्षु बहुत व्याकुल हुए और उस स्थान को छोड़कर बुद्ध के पास लौट आए, जहाँ उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। उनका वृत्तांत सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वे पहले बिना किसी हथियार के गए थे और उन्हें उचित हथियार लेकर वापस जाना चाहिए। ऐसा कहकर, बुद्ध ने उन्हें संपूर्ण मेट्टा सूत्र (एसएन 46.54 मेट्टा सूत्र : प्रेम-करुणा पर प्रवचन) का उपदेश दिया, जिसकी शुरुआत निम्नलिखित श्लोक से होती है:

Karaniyamattha kusalena
यंता संतम पदम अभिसमेच्च
Sakko uju ca suhuju ca
Suvaco c'assa mudu anatimani.

उपरोक्त श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है: "जो व्यक्ति अच्छे और लाभकारी गुणों (सांसारिक एवं अलौकिक दोनों) को प्राप्त करने में कुशल है, और पूर्ण शांति (निर्वाण) प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए: उसे कुशल, ईमानदार, पूर्णतः ईमानदार, आज्ञाकारी, सौम्य और अहंकार से मुक्त होना चाहिए।"

भिक्षुओं को निर्देश दिया गया था कि वे वन के बाहरी इलाके में पहुँचते ही सूत्र का पाठ करें और मठ में प्रवेश करते समय भी उसी सूतरन का पाठ करते रहें। भिक्षु वन में लौट आए और उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया। वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने भिक्षुओं से प्रेम और दया प्राप्त कर उनका सहर्ष स्वागत किया और उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाई। अब कोई भूतिया आवाजें या भयावह दृश्य दिखाई नहीं दे रहे थे। इस प्रकार शांति में आकर भिक्षुओं ने शरीर का ध्यान किया और उसकी नश्वर और क्षणभंगुर प्रकृति को जान लिया।

जेतवन मठ से, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से भिक्षुओं की प्रगति के बारे में जाना और अपनी आभा भेजकर उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जैसा कि आपने अनुभव किया है, शरीर वास्तव में क्षणभंगुर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 40 : यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान (नाजुक) है, मन को किलेबंद नगर के समान सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान के हथियार से मार का युद्ध करना चाहिए। (मार को परास्त करने के बाद) मन की रक्षा करते रहना चाहिए और जो कुछ प्राप्त हुआ है (अर्थात ध्यान से प्राप्त हुई तल्लीनता और शांति) उससे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) योज़ाना: लगभग बारह मील की लंबाई का माप।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी से पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद, सावत्थी से सौ मील की दूरी तय की और एक विशाल वन में पहुँचे, जो ध्यान साधना के लिए उपयुक्त स्थान था। उस वन में रहने वाले वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने सोचा कि यदि वे भिक्षु वन में ठहरेंगे, तो उनके लिए अपने परिवार के साथ रहना उचित नहीं होगा। इसलिए, उन्होंने यह सोचकर वृक्षों से नीचे उतर आए कि भिक्षु

केवल एक रात के लिए ही वहाँ रुकेंगे। लेकिन भिक्षु पखवाड़े भर तक वहीं रहे; तब उन्हें यह विचार आया कि भिक्षु वर्षाकाल तक वहीं ठहर सकते हैं। ऐसी स्थिति में, उन्हें और उनके परिवार को लंबे समय तक धरती पर रहना पड़ेगा। इसलिए, उन्होंने भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य दिखाकर भिक्षुओं को डराने का निश्चय किया। वे बिना सिर के शरीर और बिना शरीर के सिर के साथ प्रकट हुए। भिक्षु बहुत भयभीत हुए और उस स्थान को छोड़कर बुद्ध के पास लौट आए, जहाँ उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वे पहले बिना किसी सुरक्षा के गए थे और उन्हें उचित सुरक्षा के साथ वापस जाना चाहिए।
ऐसा कहकर, बुद्ध ने उन्हें प्रेम-दया (मेट्टा सुत्त) का विस्तृत उपदेश दिया, जिसकी शुरुआत निम्नलिखित श्लोक से होती है:
करणीयमत्थ कुसलेना - यं तं संतं पदं अभिसमेच्च
सक्को उजु च सूजू च—सुवाको चसा मुदु अनातिमानी ।
"जो व्यक्ति अच्छे और लाभकारी गुणों (सांसारिक और अलौकिक दोनों) को प्राप्त करने में कुशल है, और पूर्ण शांति (निर्वाण) प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए: उसे कुशल, ईमानदार, पूर्णतः ईमानदार, आज्ञाकारी, सौम्य और अहंकार से मुक्त होना चाहिए।"
भिक्षुओं को निर्देश दिया गया था कि वे वन के बाहरी इलाके में पहुँचते ही सूत्र का पाठ करें और मठ में प्रवेश करते समय भी उसका पाठ करते रहें। भिक्षु वन में लौट आए और उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया। वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने भिक्षुओं से प्रेम और दया प्राप्त कर उनका स्वागत किया और उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाई। अब कोई भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य नहीं थे। इस प्रकार शांति में आकर भिक्षुओं ने शरीर का ध्यान किया और उसकी क्षणभंगुर और अनित्य प्रकृति को जान लिया। जेतवन मठ से, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से भिक्षुओं की प्रगति के बारे में जाना और अपना प्रकाश भेजकर उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जैसा कि आपने अनुभव किया है, शरीर वास्तव में क्षणभंगुर और मिट्टी के घड़े के समान नाजुक है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 40)
इमं कायं कुम्भुपमं विदित्वा , इदं चित्तं
नागारूपं थपेत्वा पन्न्यायुधेन मरं
योधेथा जितां च रक्खे अनिवेशनो सिया
imaṃ kāyaṃ [kāya]: यह शरीर; kumbhūpamaṃ viditvā : मिट्टी के बर्तन के समान देखना; idaṃ cittaṃ [citta]: यह मन; nagarūpamaṃ [nagarūpama]: एक संरक्षित नगर के समान; ṭhapetvā : विचार करना; paññāyudhena : ज्ञान के हथियार से; Māraṃ [Māra]: बुराई की शक्तियाँ; yodhetha : आक्रमण; jitaṃ [jita]: जिसे जीत लिया गया है; rakkhe : रक्षा भी करना; anivesano [anivesana]: निवास स्थान का कोई साधक नहीं; siyā : होना
शरीर को असुरक्षित, नाज़ुक, दुर्बल और आसानी से नष्ट होने वाला मानना यथार्थवादी है। वास्तव में, इसे मिट्टी का पात्र समझना चाहिए। मन को एक नगर के समान समझना चाहिए। नगर की रक्षा के लिए निरंतर सचेत रहना आवश्यक है। बुराई की शक्तियों से बुद्धि के हथियार से लड़ना चाहिए। युद्ध के बाद, जब आपको विजय प्राप्त हो जाए, तो नश्वर अस्तित्व से आसक्त होकर जीवन व्यतीत करें।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 40)
कुंभभूपम : मिट्टी के बर्तन के समान। भिक्षुओं को मानव शरीर को मिट्टी के बर्तन के समान समझने के लिए कहा जाता है—जो नाजुक और अत्यंत संवेदनशील होता है।
चित्तं नगररूपं : मन को एक सुरक्षित किले के समान समझो। किले की विशेषता यह है कि इसके भीतर सभी बहुमूल्य खजाने सुरक्षित और संरक्षित रहते हैं। यदि यह असुरक्षित हो तो कोई भी बाहरी व्यक्ति प्रवेश कर लूटपाट कर सकता है। इस पर भी दोष आ सकते हैं।
yodhetha Māraṃ paññāyudhena : बुद्धि के हथियार से बुराई का विरोध करो। जब बुराई की शक्तियाँ मन पर आक्रमण करती हैं—जिसकी रक्षा करनी है—तो प्रतिवाद का एकमात्र हथियार बुद्धि है, जो वास्तविक अर्थों में चीजों की प्रकृति की पूर्ण जागरूकता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 41

———————————————————————————

(धम्मपद 40) <<<< पिछला ॥ श्लोक 41 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 42)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 41 - पुतिगत्तिस्सत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 41 - पुतिगत्तिस्सत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Aciram vata' yam kayo
pathavim adhisessati
chuddho apetavinnano
निरत्तमवा कलिंगरम.

श्लोक 41 : हाय, जल्द ही यह शरीर, चेतना से वंचित होकर, पृथ्वी पर एक बेकार लकड़ी के लट्ठे की तरह पड़ा रहेगा।

दुर्गंधयुक्त शरीर वाले थेरा (बुजुर्ग) तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (41) कहा।
बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद, थेरा तिस्सा लगन से ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, तभी वे एक बीमारी से ग्रसित हो गए। उनके पूरे शरीर पर छोटे-छोटे फोड़े निकल आए और वे बड़े घावों में तब्दील हो गए। जब ये घाव फूटे, तो उनके ऊपरी और निचले वस्त्र चिपचिपे और मवाद व रक्त से सने हुए हो गए, और उनका पूरा शरीर दुर्गंधित हो गया। इसी कारण वे पुतिगत्ततिस्सा, यानी दुर्गंधित शरीर वाले थेरा तिस्सा के नाम से प्रसिद्ध हुए।
जब बुद्ध ने अपनी बुद्धि के प्रकाश से ब्रह्मांड का अवलोकन किया, तो उन्हें थेरा के दर्शन हुए। उन्होंने थेरा की दयनीय अवस्था देखी, जिन्हें उनके शिष्यों ने उनके दुर्गंधयुक्त शरीर के कारण त्याग दिया था। उसी समय, उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि तिस्सा शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त करेंगे। अतः बुद्ध थेरा के निवास स्थान के निकट स्थित अग्निगृह में गए। वहाँ उन्होंने कुछ जल उबाला और फिर थेरा के पास जाकर पलंग का किनारा पकड़ लिया। तभी शिष्य थेरा के चारों ओर एकत्रित हुए और बुद्ध के निर्देशानुसार उन्हें अग्निगृह में ले गए, जहाँ उनका स्नान कराया गया। स्नान के दौरान उनके ऊपरी और निचले वस्त्र धोकर सुखाए गए। स्नान के बाद थेरा का शरीर और मन तरोताजा हो गया और शीघ्र ही उनमें एकाग्रता की एकाग्रता विकसित हो गई। पलंग के सिरहाने खड़े होकर बुद्ध ने उनसे कहा कि यह शरीर जब निर्जीव हो जाएगा तो लकड़ी के लट्ठे के समान बेकार हो जाएगा और पृथ्वी पर ही पड़ा रहेगा।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 41 : हाय, जल्द ही यह शरीर, चेतना से वंचित होकर, पृथ्वी पर एक बेकार लकड़ी के लट्ठे की तरह पड़ा रहेगा।

प्रवचन के अंत में थेरा टिस्सा ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अरहतत्व प्राप्त किया और शीघ्र ही उनका निधन हो गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दुर्गंधयुक्त शरीर वाले भिक्षु तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद, भिक्षु तिस्सा लगन से ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, तभी वे एक बीमारी से ग्रसित हो गए। उनके शरीर पर छोटे-छोटे फोड़े निकल आए और वे बड़े घावों में तब्दील हो गए। जब ये घाव फूटे, तो उनके ऊपरी और निचले वस्त्र चिपचिपे और शरीर के तरल पदार्थों से सने हुए हो गए, और उनके शरीर से दुर्गंध आने लगी। इसी कारण वे पुतिगत्ततिस्सा, यानी दुर्गंधयुक्त शरीर वाले भिक्षु तिस्सा के नाम से जाने गए।
बुद्ध दिन में दो बार संसार का अवलोकन करना कभी नहीं भूलते थे। भोर में वे संसार के किनारे से सुगंधित कक्ष की ओर देखते हुए संसार का अवलोकन करते थे। इसी समय पूज्य पूतिगत्त तिस्सा बुद्ध की दृष्टि में प्रकट हुए।

बुद्ध यह जानते हुए कि भिक्षु तिस्सा अर्हत पदवी प्राप्त करने के योग्य हैं, मन ही मन सोचने लगे, “इस भिक्षु को इसके साथियों ने त्याग दिया है; इस समय मेरे सिवा इसका कोई सहारा नहीं है।” तदनुसार, बुद्ध सुगंधित कक्ष से निकलकर, मठ का चक्कर लगाने का बहाना करते हुए, उस कक्ष में गए जहाँ अग्नि रखी थी। उन्होंने चूल्हे को धोया, उसे अंगीठी पर रखा, अग्नि-कक्ष में पानी के उबलने की प्रतीक्षा की, और जब उन्हें पता चला कि पानी गर्म हो गया है, तो वे उस पलंग के किनारे को पकड़ने गए जहाँ वह भिक्षु लेटा हुआ था।

उस समय भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, कृपया यहाँ से चले जाइए; हम इन्हें आपके लिए बाहर ले जाएँगे।” ऐसा कहकर उन्होंने पलंग उठाया और तिस्सा को अग्नि-कक्ष में ले गए। बुद्ध ने भिक्षुओं को तिस्सा का ऊपरी वस्त्र लेने, उसे गर्म पानी से अच्छी तरह धोने और धूप में सुखाने के लिए रखने का आदेश दिया। फिर वे गए और तिस्सा के पास खड़े होकर उनके शरीर को गर्म पानी से गीला किया और उन्हें स्नान कराया।

स्नान के बाद उनका ऊपरी वस्त्र सूख गया था। बुद्ध ने उन्हें उनका ऊपरी वस्त्र पहनाया और उनके अंतर्वस्त्र को गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर धूप में सुखाने के लिए रख दिया। जैसे ही उनके शरीर से पानी सूख गया, उनका अंतर्वस्त्र भी सूख गया। तब तिस्सा ने अपना अंतर्वस्त्र पहना और तरोताज़ा शरीर और शांत मन से पलते पर लेट गए। बुद्ध तिस्सा के तकिये के पास खड़े हुए और उनसे कहा, “हे भिक्षु, चेतना तुमसे विमुख हो जाएगी, तुम्हारा शरीर निष्फल हो जाएगा और एक लकड़ी के लट्ठे की तरह ज़मीन पर पड़ा रहेगा।” प्रवचन के अंत में भिक्षु तिस्सा ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया और शीघ्र ही उनका देहांत हो गया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 41)

अयं कायो वात अचिरं अपेतविन्नाणो चुधो
निरत्थं कलिंगरं इव पथविं अधिस्सति

अयं कायो : यह शरीर; वात : निश्चित रूप से; असिरं [असिरा]: जल्द ही; एपेटाविनानो [एपेटाविनाना]: चेतना से रहित हो जाएगा; चुड्डो [चुड्डा]: त्याग दिया गया; इवा : जैसे; निरत्थम् [nirattha]: बेकार; कलिंगराँ [कलिंगारा]: एक सड़ा हुआ लट्ठा; पथविः [पथवि]: ज़मीन पर; अधिससति : झूठ

जल्द ही, यह शरीर, चेतनाहीन होकर, एक सड़े हुए बेकार लट्ठे की तरह धरती पर पड़ा रहेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 41)

अचिरं वत : बहुत जल्द, निःसंदेह। यह श्लोक मानव शरीर की स्थिति का वर्णन करता है। यह निश्चित रूप से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

चूद्धो : फेंक दिया जाएगा। चाहे मित्र और रिश्तेदार किसी व्यक्ति से कितना भी प्यार करें, जब वह जीवित होता है, तो उसके मरने पर शरीर को फेंक दिया जाता है।

निरत्थं कलिंगरं : त्यागा हुआ शरीर सड़ी हुई लकड़ी के लट्ठे के समान पड़ा रहेगा। यह किसी के काम का नहीं रहेगा। चेतना के चले जाने पर, जीवन के बिना, हमारा शरीर निष्फल हो जाता है। यह लकड़ी के लट्ठे से भी बदतर है, क्योंकि शरीर का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता, जबकि लकड़ी के लट्ठे का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 42

———————————————————————

(धम्मपद 41) <<<< पिछला ॥ श्लोक 42 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 43)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 42 - नंदगोपालक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 42 - नंदगोपालक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Diso(1) disam yam tam kariya
veri va pana verinam
मिच्छपनिहितम चित्तम
papiyo nam tato kare.

श्लोक 42 : एक चोर दूसरे चोर को हानि पहुँचा सकता है; एक शत्रु दूसरे शत्रु को हानि पहुँचा सकता है; परन्तु गलत दिशा में निर्देशित मन स्वयं को कहीं अधिक हानि पहुँचा सकता है।(2)

---

1. दिसो: शाब्दिक अर्थ; शत्रु; इस संदर्भ में चोर। (टीका) 2. टीका के अनुसार, दस गुना बुराई के मार्ग पर गलत ढंग से लगा हुआ मन न केवल इस जीवन में, बल्कि अपाया में एक लाख भविष्य के जन्मों में भी विनाश और तबाही का कारण बनेगा।

चरवाहे नंदा की कहानी
कोसल राज्य के एक गाँव की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने चरवाहे नंदा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (42) कहा।
नंदा एक चरवाहा था जो अनाथपिंडिका की गायों की देखभाल करता था। हालांकि वह सिर्फ एक चरवाहा था, फिर भी उसकी अपनी कुछ आमदनी थी। कभी-कभी वह अनाथपिंडिका के घर जाता था और वहां उसकी मुलाकात बुद्ध से होती थी और वह उनके प्रवचन सुनता था। नंदा ने बुद्ध से अपने घर आने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध ने यह कहकर नंदा के घर तुरंत जाने से इनकार कर दिया कि अभी समय नहीं आया है।
कुछ समय बाद, अपने अनुयायियों के साथ यात्रा करते हुए, बुद्ध नंदा से मिलने के लिए अपने मार्ग से हट गए, क्योंकि वे जानते थे कि नंदा के लिए उनकी शिक्षाओं को उचित रूप से ग्रहण करने का समय आ गया है। नंदा ने बुद्ध और उनके अनुयायियों का आदरपूर्वक स्वागत किया; उन्होंने सात दिनों तक उन्हें दूध और दूध से बने उत्पाद तथा अन्य उत्तम भोजन परोसा। अंतिम दिन, बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को सुनने के बाद, नंदा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। उस दिन जब बुद्ध विदा हो रहे थे, नंदा ने बुद्ध का कुंड लेकर कुछ दूर तक उनका अनुसरण किया, प्रणाम किया और घर लौटने के लिए वापस मुड़ गए।
उसी क्षण, नंदा के एक पुराने शत्रु शिकारी ने उन्हें मार गिराया। बुद्ध के पीछे चल रहे भिक्षुओं ने नंदा को मृत पड़ा देखा। उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, आपके यहाँ आने के कारण, नंदा, जिन्होंने आपको बड़ी भेंट चढ़ाई थी और आपके साथ घर लौट रहे थे, घर लौटते समय मारे गए।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, चाहे मैं यहाँ आता या न आता, मृत्यु से उनका बचना असंभव था, क्योंकि भटका हुआ मन शत्रु या चोर से भी अधिक हानि पहुँचा सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 42 : एक चोर दूसरे चोर को नुकसान पहुंचा सकता है; एक शत्रु दूसरे शत्रु को नुकसान पहुंचा सकता है; लेकिन गलत दिशा में निर्देशित मन स्वयं को कहीं अधिक नुकसान पहुंचा सकता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
चरवाहे नंदा की कहानी
कोसल राज्य के एक गाँव की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने चरवाहे नंदा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
नंदा एक चरवाहा था जो अनाथपिंडिका की गायों की देखभाल करता था। हालांकि वह सिर्फ एक चरवाहा था, फिर भी उसकी अपनी कुछ आमदनी थी। कभी-कभी वह अनाथपिंडिका के घर जाता था और वहां उसकी मुलाकात बुद्ध से होती थी और वह उनके प्रवचन सुनता था। नंदा ने बुद्ध से अपने घर आने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध ने यह कहकर नंदा के घर तुरंत जाने से इनकार कर दिया कि अभी समय नहीं आया है।
कुछ समय बाद, अपने अनुयायियों के साथ यात्रा करते हुए, बुद्ध नंदा से मिलने के लिए अपने मार्ग से हट गए, क्योंकि वे जानते थे कि नंदा के लिए उनकी शिक्षाओं को उचित रूप से ग्रहण करने का समय आ गया है। नंदा ने बुद्ध और उनके अनुयायियों का आदरपूर्वक स्वागत किया; उन्होंने सात दिनों तक उन्हें दूध, दूध से बने उत्पाद और अन्य उत्तम भोजन परोसा। अंतिम दिन, बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को सुनने के बाद, नंदा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। उस दिन जब बुद्ध विदा हो रहे थे, नंदा ने बुद्ध का कुंड उठाया और कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए, प्रणाम किया और घर लौटने के लिए वापस मुड़ गए।

उसी क्षण, एक शिकारी द्वारा चलाए गए एक भटकते तीर ने उन्हें मार डाला। बाद में, बुद्ध के पीछे चल रहे भिक्षुओं ने नंदा को मृत पड़ा देखा। उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, “हे पूज्यवर, आपके यहाँ आने के कारण, नंदा, जिन्होंने आपको बड़ी भेंट चढ़ाई थी और आपके साथ घर लौट रहे थे, घर लौटते समय मारे गए।” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “भिक्षुओं, चाहे मैं यहाँ आया होता या नहीं, उनके पूर्व कर्मों के कारण मृत्यु से उनका बचना असंभव था।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 42)

दिसो दिसां यम तं काइरा वेरी वा पना वेरिनम

मिच्च पनिहितं चित्तं नं ततो पापियो करे

दिसो : एक लुटेरा; दिसा : उसी तरह के डाकू को; तं : उसे जो भी हानि पहुँचाता है; कायिरा : पहुँचाता है; वेरी वा पना : एक द्वेषी; वेरिनं : किसी द्वेषी व्यक्ति को (कुछ हानि पहुँचाता है); मिच्छा पणिहितं : गुमराह; चित्तं : मन; नं : उसे; ततो पापीयो : उससे भी बुरा अपराध; करे : करता है

जब एक डाकू दूसरे डाकू को देखता है, तो वह उस पर हमला कर देता है। ठीक उसी तरह, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को देखता है जिससे वह घृणा करता है, तो वह भी उसे नुकसान पहुँचाता है। लेकिन गलत तरीके से इस्तेमाल किया गया दिमाग, दिमाग के मालिक के साथ जो करता है, वह एक डाकू द्वारा दूसरे डाकू के साथ या एक घृणा करने वाले द्वारा दूसरे घृणा करने वाले के साथ किए गए व्यवहार से कहीं अधिक बुरा होता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 42)

दिसो दिसं : एक डाकू दूसरे डाकू के साथ जो करता है, वही होता है। इसी प्रकार, एक शत्रु दूसरे शत्रु को हानि पहुँचा सकता है। इस श्लोक का समग्र अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति को उसके कुप्रबंधित मन से होने वाली हानि, एक डाकू द्वारा दूसरे प्रतिद्वंद्वी डाकू को पहुँचाई गई हानि या दो शत्रुओं द्वारा आपस में की गई हानि से कहीं अधिक गंभीर होती है। अविकसित मन ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु होता है।

मिच्छा पणिहितं : गलत दिशा में निर्देशित। मन को सही दिशा में निर्देशित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में परिणाम सुखद होता है। जब ऐसा होता है, तो सही दिशा में निर्देशित मन सबसे अच्छा मित्र सिद्ध होता है। लेकिन, जब मन को गलत दिशा दी जाती है, तो यह किसी शत्रु से भी अधिक हानि पहुँचा सकता है।

micchā paṇihitaṃ cittaṃ : इसका तात्पर्य यह है कि मन स्वयं ही इतना अधिक नुकसान पहुंचा सकता है जितना एक शत्रु दूसरे शत्रु को नहीं पहुंचा सकता। इस प्रकार, बिगड़ा हुआ मन स्वयं का शत्रु होता है—बाहरी शत्रु से कहीं अधिक बुरा।

गलत दिशा में निर्देशित मन : अर्थात्, दस प्रकार की बुराइयों की ओर निर्देशित मन—अर्थात्, 1. हत्या, 2. चोरी, 3. यौन दुराचार, 4. झूठ बोलना, 5. निंदा करना, 6. कठोर वाणी, 7. व्यर्थ की बातें, 8. लोभ, 9. द्वेष और 10. झूठी मान्यता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 43

(धम्मपद 42) <<<< पिछला ॥ श्लोक 43 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 44, 45)

धम्मपद श्लोक 43 - सोरेय्या वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tam mata pita kayira

anne vapi ca nataka

सम्मपनिहितम् चित्तम्

seyyaso(1)naim tato kare.

श्लोक 43 : न तो माता, न पिता, न ही कोई अन्य रिश्तेदार किसी के कल्याण के लिए उससे अधिक कर सकता है जितना कि एक सही दिशा में निर्देशित मन कर सकता है।

---

1. सेय्यासो: अभी भी बेहतर; यहाँ इसका अर्थ है कहीं बेहतर सेवा; क्योंकि यह (सही दिशा में निर्देशित मन) किसी व्यक्ति और देव (देवदूत) के कल्याण और यहाँ तक कि निर्वाण की प्राप्ति की ओर भी ले जा सकता है।

एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सोरेय्या नगर के एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (43) कहा। एक बार सोरय्या अपने एक मित्र और कुछ सेवकों के साथ एक आलीशान रथ में स्नान करने जा रहे थे। उसी समय थेरा महाकच्चयन नगर के बाहर अपने वस्त्र ठीक कर रहे थे, क्योंकि वे सोरय्या के नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे। युवक सोरय्या ने थेरा का सुनहरा रंग देखकर सोचा, "काश ये थेरा मेरे पति होते, या मेरी पत्नी का रंग भी इनके जैसा होता।" जैसे ही यह इच्छा उनके मन में उठी, उनका लिंग परिवर्तन हो गया और वे स्त्री बन गए। अत्यंत लज्जित होकर वे रथ से उतर गए और तक्षशिला की ओर भाग गए। उनके साथी उन्हें ढूंढते रहे, लेकिन वे उन्हें नहीं पा सके।

सोरेय्या, जो अब एक महिला बन चुकी थी, ने तक्षशिला जा रहे कुछ लोगों को अपनी अंगूठी भेंट कर दी ताकि वे उसे अपने साथ रथ में ले जा सकें। तक्षशिला पहुँचने पर, उसके साथियों ने तक्षशिला के एक धनी युवक को उस महिला के बारे में बताया जो उनके साथ आई थी। उस धनी युवक ने उसे बेहद सुंदर और अपने लिए उपयुक्त उम्र की पाकर उससे विवाह कर लिया। इस विवाह से दो पुत्रों का जन्म हुआ; सोरेय्या के पहले विवाह से भी दो पुत्र थे।

एक दिन, सोरय्या नगर से एक धनी व्यक्ति का पुत्र पाँच सौ रथों के साथ तक्षशिला आया। सोरय्या देवी ने उसे अपना पुराना मित्र समझकर उसे बुलवाया। सोरय्या नगर का वह व्यक्ति आमंत्रित किए जाने पर आश्चर्यचकित हुआ, क्योंकि वह आमंत्रित महिला को नहीं जानता था। उसने सोरय्या देवी से कहा कि वह उन्हें नहीं जानता और पूछा कि क्या वह उसे जानती हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह उन्हें जानती हैं और सोरय्या नगर में अपने परिवार और अन्य लोगों के स्वास्थ्य के बारे में भी पूछा। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने उन्हें उस धनी व्यक्ति के पुत्र के बारे में बताया जो स्नान करने जाते समय रहस्यमय तरीके से गायब हो गया था। तब सोरय्या देवी ने अपनी पहचान प्रकट की और सारी घटना बताई - थेरा महाकच्चायन के बारे में गलत धारणाओं के बारे में, लिंग परिवर्तन के बारे में और तक्षशिला के उस धनी युवक से अपने विवाह के बारे में। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने सोरय्या देवी को थेरा से क्षमा मांगने की सलाह दी। तदनुसार, थेरा महाकच्चायना को सोरय्या के घर आमंत्रित किया गया और उन्हें भिक्षा दी गई। भोजन के बाद, सोरय्या नामक महिला को थेरा के समक्ष लाया गया, और सोरय्या के उस व्यक्ति ने थेरा को बताया कि वह महिला एक समय सोरय्या नगर के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। उसने थेरा को समझाया कि कैसे सोरय्या ने आदरणीय थेरा के प्रति अपने गलत विचारों के कारण स्त्री का रूप धारण कर लिया था। सोरय्या ने तब थेरा महाकच्चायना से विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगी। तब थेरा ने कहा, "उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" ये शब्द कहते ही वह स्त्री वापस पुरुष में परिवर्तित हो गई। सोरय्या ने तब विचार किया कि कैसे एक ही जन्म में और एक ही शरीर में उनका लिंग परिवर्तन हुआ और कैसे उनके पुत्रों का जन्म हुआ, आदि। इन सब बातों से अत्यंत व्याकुल और घृणास्पद होकर, उन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागने का निर्णय लिया और थेरा के अधीन संघ में शामिल हो गए।

उसके बाद उनसे अक्सर पूछा जाता था, "आप किसे अधिक प्रेम करते हैं, अपने दो पुत्रों को जो आपने पुरुष के रूप में प्राप्त किए या अपने दो पुत्रों को जो आपने पत्नी के रूप में प्राप्त किए?" वे उत्तर देते थे कि गर्भ से जन्मे पुत्रों के प्रति उनका प्रेम अधिक है। यह प्रश्न उनसे इतनी बार पूछा गया कि वे बहुत व्याकुल और लज्जित हुए। इसलिए वे एकांतवास में रहे और लगन से शरीर के क्षय और विघटन का चिंतन किया। शीघ्र ही उन्होंने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब उनसे वही पुराना प्रश्न दोबारा पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें किसी विशेष से स्नेह नहीं है। अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर सोचा कि वे झूठ बोल रहे होंगे। जब सोरय्या द्वारा दिए गए भिन्न उत्तर के बारे में बताया गया, तो बुद्ध ने कहा, "मेरा पुत्र झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य बोल रहा है। उसका उत्तर अब भिन्न है क्योंकि उसने अब अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है और इसलिए अब उसे किसी विशेष से स्नेह नहीं है। अपने सुचारु मन से मेरे पुत्र ने अपने भीतर ऐसा कल्याण उत्पन्न किया है जो न तो पिता और न ही माता उसे प्रदान कर सकते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 43 : न तो माता, न पिता, न ही कोई अन्य रिश्तेदार किसी के कल्याण के लिए उससे अधिक कर सकता है जितना कि एक सही दिशा में निर्देशित मन कर सकता है।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।
अध्याय तीन का अंत: मन (चित्तवग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सोरेय्या की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सोरय्या नगर के एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरय्या के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार सोरय्या अपने एक मित्र और कुछ सेवकों के साथ रथ में स्नान करने जा रहे थे। उसी समय, भिक्षु महाकच्चायन नगर के बाहर अपने वस्त्र ठीक कर रहे थे, क्योंकि वे सोरय्या नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे। युवक सोरय्या ने भिक्षु का युवा रूप देखकर सोचा, “काश, ये भिक्षु मेरी पत्नी होते, ताकि मेरी पत्नी का रूप भी इनके जैसा होता।” जैसे ही यह इच्छा उनके मन में उठी, उनका लिंग परिवर्तन हो गया और वे स्त्री बन गए। अत्यंत लज्जित होकर वे रथ से उतर गए और तक्षशिला की ओर भाग गए। उनके साथियों ने उन्हें ढूंढा, लेकिन वे उन्हें नहीं पा सके। सोरय्या, जो अब स्त्री बन चुके थे, ने तक्षशिला जा रहे कुछ लोगों को अपनी अंगूठी भेंट कर दी, ताकि वे उन्हें अपने रथ में साथ ले जा सकें। तक्षशिला पहुँचने पर, उसके साथियों ने तक्षशिला के एक धनी युवक को अपने साथ आई महिला के बारे में बताया। उस धनी युवक ने उसे बेहद सुंदर और अपने लिए उपयुक्त उम्र की पाकर उससे विवाह कर लिया। इस विवाह से दो पुत्रों का जन्म हुआ; सोरेय्या के पिछले विवाह से भी दो पुत्र थे।
एक दिन, सोरय्या नगर से एक धनी व्यक्ति का पुत्र पाँच सौ रथों के काफिले के साथ तक्षशिला आया। सोरय्या देवी ने उसे अपना पुराना मित्र समझकर उसे बुलवाया। सोरय्या नगर का वह व्यक्ति आमंत्रित किए जाने पर आश्चर्यचकित हुआ, क्योंकि वह आमंत्रित महिला को नहीं जानता था। उसने सोरय्या देवी से कहा कि वह उन्हें नहीं जानता और पूछा कि क्या वह उसे जानती हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह उसे जानती हैं और सोरय्या नगर में अपने परिवार और अन्य लोगों के स्वास्थ्य के बारे में भी पूछा। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने उन्हें उस धनी व्यक्ति के पुत्र के बारे में बताया जो स्नान करने जाते समय रहस्यमय तरीके से गायब हो गया था। तब सोरय्या देवी ने अपनी पहचान प्रकट की और सारी घटना बताई - भिक्षु महाकच्चायन के बारे में गलत विचार, लिंग परिवर्तन और तक्षशिला के उस धनी युवक से विवाह। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने सोरय्या देवी को भिक्षु से क्षमा मांगने की सलाह दी। तदनुसार, भिक्षु महाकच्चायन को सोरय्या के घर आमंत्रित किया गया और उन्हें भिक्षा दी गई। भोजन के बाद, सोरय्या को भिक्षु के समक्ष लाया गया, और सोरय्या के उस व्यक्ति ने भिक्षु को बताया कि वह महिला एक समय सोरय्या के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। उसने भिक्षु को समझाया कि कैसे सोरय्या ने आदरणीय भिक्षु के प्रति अपने गलत विचारों के कारण स्त्री का रूप धारण कर लिया था। सोरय्या ने आदरपूर्वक भिक्षु महाकच्चायन से क्षमा मांगी। भिक्षु ने कहा, "उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" ये शब्द कहते ही वह स्त्री वापस पुरुष में परिवर्तित हो गई। सोरय्या ने तब चिंतन किया कि कैसे एक ही जन्म में और एक ही शरीर में उनका लिंग परिवर्तन हुआ और कैसे उनके पुत्रों का जन्म हुआ। इन सब बातों से अत्यंत व्याकुल और घृणास्पद होकर, उन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागने का निर्णय लिया और भिक्षु के अधीन संघ में शामिल हो गए।
उसके बाद उनसे अक्सर पूछा जाता था, “आप किसे ज़्यादा प्यार करते हैं, अपने उन दो बेटों को जो आपने पुरुष के रूप में पैदा किए या उन दो को जो आपने स्त्री के रूप में पैदा किए?” वे जवाब देते थे कि स्त्री के रूप में पैदा हुए बेटों के लिए उनका प्यार ज़्यादा है। यह सवाल उनसे इतनी बार पूछा गया कि वे बहुत परेशान और शर्मिंदा हो गए। इसलिए वे एकांत में रहने लगे और लगन से शरीर के क्षय और विघटन का चिंतन करने लगे। जल्द ही उन्होंने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब उनसे वही पुराना सवाल दोबारा पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया कि उन्हें किसी एक से विशेष लगाव नहीं है। उन्हें सुनकर दूसरे भिक्षुओं को लगा कि वे झूठ बोल रहे हैं। जब सोरय्या के अलग जवाब देने की खबर फैली तो बुद्ध ने कहा, “मेरा बेटा झूठ नहीं बोल रहा, वह सच बोल रहा है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 43)
तं माता न काइरा , पिता अपि च अण्णे नाताका वा
सम्मा पनिहितं चित्तं नं ततो सेयसो करे
तं : वह कृपा; माता : किसी की माता; न कयिरा : नहीं करेगा; पिता: भी नहीं करेगा; अपि च : इसके अतिरिक्त; अञ्ञे : अन्य; ञातका वा : या रिश्तेदार; सम्मा पणिहितं [पणिहित]: सुशासित; चित्तं [चित्त]: मन; नं : उस व्यक्ति के लिए; ततो सेय्यासो [सेय्यासा]: उससे कहीं बेहतर कुछ; करे : किसी के लिए करेगा।
सही दिशा में किए गए विचार किसी व्यक्ति की मदद उसके पिता या माता से भी बेहतर तरीके से कर सकते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 43)

सम्मा पणिहितं चित्तं : स्थिर मन। माता-पिता अत्यंत प्रेम करते हैं। वे सांसारिक सुख-सुविधाएँ उदारतापूर्वक दे सकते हैं। परन्तु जब उच्चतर जीवन के फल — मोक्ष और अमरत्व की प्राप्ति — की बात आती है, तो केवल स्थिर मन ही सहायता कर सकता है। क्योंकि अमरत्व का अनुभव स्वयं ही करना होता है। विकसित मन ही हमारा सबसे अच्छा मित्र है।
सुनियोजित मन : अर्थात्, दस प्रकार के पुण्य कर्मों (कुशल कर्मों) की ओर निर्देशित मन — अर्थात्,
उदारता,
नैतिकता,
ध्यान,
श्रद्धा,
सेवा,
योग्यता का हस्तांतरण,
दूसरों के गुणों पर प्रसन्नता व्यक्त करना,
इस सिद्धांत को सुनकर,
सिद्धांत की व्याख्या करते हुए, और
अपने सही विचारों को सुदृढ़ करना।

अध्याय 4. पुप्फहग्ग: फूल (44-59)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 44 और 45

(धम्मपद 43) <<<< पिछला ॥ श्लोक 44 और 45 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 46)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 44 और 45 - पंचसत्ताभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 44 और 45 - पंचसताभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Ko imam pathavim vicessati
yamalokanca imam sadevakam
को धम्मपदम सुदेसिटम(1)
kusalo pupphamiva pacessati.

Sekho(2) pathavim vicessati
yamalokanca imam sadevakam
sekho dhammapadam sudesitam
kusalo pupphamiva pacessati.

श्लोक 44 : इस पृथ्वी (अर्थात् इस शरीर), यमलोक (अर्थात् चार अपायों) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की जांच कौन करेगा? कौन सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) की जांच उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है?

———————————————————————

श्लोक 45 : आर्य शेख2 इस पृथ्वी (अर्थात शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपाय) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक का भी अध्ययन करेगा। आर्य शेख सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) का अध्ययन उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है।

———————————————————————

1. धम्मपदं सुदेसीतमः सद्‌गुण का सुशिक्षित मार्ग; यहाँ इसका अर्थ है ज्ञानोदय के सैंतीस कारक (बोधिपक्खीय धम्म)।

2. सेखो/सेखपुग्गला: विद्यार्थी या वह व्यक्ति जो अभी धम्म का अध्ययन/अभ्यास कर रहा है और मार्ग में प्रवेश कर चुका है, परन्तु अभी तक अरहत नहीं बना है। यह शब्द पहले सात अरहतों के लिए प्रयोग किया जाता है, जबकि आठवां या अरहत असेखो होता है।

———————————————————————

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (44) और (45) का उच्चारण किया।

पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करके जेतवन मठ लौट आए। शाम को जब भिक्षु यात्रा के बारे में, विशेषकर भूमि की स्थिति के बारे में, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, या मिट्टी चिकनी थी या रेतीली, लाल थी या काली, आदि पर चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध उनके पास आए। उनकी बातचीत का विषय जानकर उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जिस पृथ्वी की आप चर्चा कर रहे हैं वह शरीर से अलग है; वास्तव में, अपने शरीर की जांच करना और (ध्यान अभ्यास के लिए) तैयारी करना बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 44 : इस पृथ्वी (अर्थात इस शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपायों) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की जांच कौन करेगा? धर्म के सुशिक्षित मार्ग (धम्मपद) की जांच कौन करेगा, जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है?

———————————————————————

श्लोक 45 : आर्य शेख (2) इस पृथ्वी (अर्थात शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपाय) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की भी जांच करेगा। आर्य शेख सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) की जांच उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करने के बाद जेतवन मठ लौट आए। शाम को जब भिक्षु यात्रा के बारे में, विशेषकर भूमि की स्थिति के बारे में, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, या मिट्टी की थी या रेत की, लाल थी या काली, तब उनके पास बुद्ध आए। उनकी बातचीत का विषय जानकर उन्होंने उनसे कहा, “भिक्षुओं, जिस पृथ्वी की आप बात कर रहे हैं वह शरीर से अलग है; वास्तव में, अपने शरीर की जांच करना और ध्यान साधना के लिए तैयारी करना बेहतर है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 44)

को इमं पथविं विजेस्सति इमं सदेवकं यमलोकं

सीए को सुदेसिटं धम्मपदं कुसालो पुप्पहं इव पसेस्सति

को : जो; इमं पथविं [पठवि]: इस पृथ्वी को; विजस्सति : देखता है, समझता है; इमं यमलोकं च : और यमलोक को; सदेवकं [सदेवक]: स्वर्गलोकों के साथ; को : जो; सुदेशितं [सुदेशित]: अच्छी तरह से घोषित; धम्मपदं [धम्मपद]: धम्म से संतुष्ट; कुसलो पुप्पं इव : कुशल मालाकार की तरह फूलों को; को : जो; पेस्सति : इकट्ठा करता है, संभालता है

माला बनाने में माहिर व्यक्ति फूलों का चयन, तोड़कर और उन्हें मालाओं में सजाकर उनका विश्लेषण करेगा। उसी प्रकार, जीवन के स्वरूप का गहन अध्ययन कौन करेगा? संसार में जीवन के वास्तविक स्वरूप को, साथ ही पाताल लोक और स्वर्ग के लोकों को कौन समझ पाएगा? फूलों को कुशलतापूर्वक तोड़कर और सजाकर, माला बनाने वाले उस कुशल कारीगर की तरह, सुस्पष्ट सिद्धांत को कौन समझ पाएगा और उसका गहन विश्लेषण कर पाएगा?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 45)

सेखो पथविं विजेस्सति इमं सदेवकम्

यमलोकं च सेखो सुदेसीतं धम्मपदं

कुसालो पुप्फां इव पसेस्सति
सेखो [सेखा]: सीखने वाला; पथविं विजस्सति : पृथ्वी को देखता है; यमलोकं च : यमलोक को भी; सदेवकं इमं : देवताओं के लोक के साथ; सेखो [सेखा]: सीखने वाला; सुदेशितं [सुदेशित]: सुस्पष्ट; धम्मपदं [धम्मपद]: सिद्धांत के क्षेत्रों को (समझता है); कुसलो [कुसल]: माला बनाने वाले कुशल कारीगर की तरह; पुप्पं इव : फूल चुनता है; पेस्सति : देखता है
पिछले श्लोक में यह प्रश्न उठाया गया था कि सुस्पष्ट उपदेश को कौन समझेगा? वर्तमान श्लोक इसका उत्तर देता है: विद्यार्थी, शिक्षार्थी, जिज्ञासु, शिष्य, अनुशासित व्यक्ति। वह उपदेश को उसी प्रकार समझेगा, जैसे कुशल मालाकार फूलों को पहचानकर उन्हें सजाता है। शिक्षार्थी, जिज्ञासु और विद्यार्थी ही यमलोक, स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक को समझेंगे। वे उपदेश के विभिन्न पहलुओं को उसी प्रकार समझेंगे और निर्धारित करेंगे, जैसे कुशल मालाकार फूलों को चुनकर मालाओं में पिरोता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 44-45)
सीखो : एक 'उत्कृष्ट विद्यार्थी', उच्च प्रशिक्षण प्राप्त शिष्य, अर्थात् तीन प्रकार के प्रशिक्षणों का अनुसरण करने वाला, उन सात प्रकार के श्रेष्ठ शिष्यों में से एक है जो चार अलौकिक मार्गों या तीन निम्नतम फलों में से किसी एक को प्राप्त कर चुके हैं, जबकि चौथे फल, या अरहत्त-फल से युक्त व्यक्ति को 'प्रशिक्षण से परे' कहा जाता है। सांसारिक व्यक्ति को 'न तो श्रेष्ठ विद्यार्थी और न ही विद्या में सिद्ध' कहा जाता है।
लोक : 'विश्व', संपूर्ण ब्रह्मांड को समाहित करने वाले अस्तित्व के तीन क्षेत्रों को दर्शाता है, अर्थात्: (i) इंद्रिय जगत, या पाँच इंद्रियों का जगत; (ii) रूप जगत, जो चार रूपात्मक अवशोषणों के अनुरूप है; (iii) निराकार जगत, जो चार निराकार अवशोषणों के अनुरूप है।
विजयसति = अत्तनो ञानेन विजयनिस्ति = कौन अपनी बुद्धि से जानेगा? (टीका)।
स्वयं : अर्थात्, वह व्यक्ति जो स्वयं को वैसे ही समझेगा जैसा वह वास्तव में है।
सुगति : अर्थात्, मानव लोक और छह दिव्य लोक। इन सातों को आनंदमय अवस्थाएँ माना जाता है।
देव : शाब्दिक अर्थ है, क्रीड़ा करने वाले या चमकने वाले। ये ऐसे प्राणी हैं जो अपने पिछले अच्छे कर्मों के फल का अनुभव करते हुए आनंद लेते हैं। वे भी मृत्यु के अधीन हैं।
इंद्रिय जगत में नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, दानवलोक, मानवलोक और छह निम्न स्वर्गीय लोक शामिल हैं। सजीव जगत में देखने और सुनने की शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जो अन्य इंद्रियों के साथ चार समाधि अवस्थाओं में अस्थायी रूप से निलंबित हो जाती हैं। निराकार जगत में किसी भी प्रकार का देहधारण नहीं होता; वहाँ केवल चार स्कंध (खंड) विद्यमान होते हैं।
यद्यपि सूत्रों में लोक शब्द का प्रयोग उन तीन लोकों के लिए नहीं किया गया है, बल्कि केवल भाव शब्द , 'अस्तित्व' के लिए किया गया है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि तीन लोकों के बारे में शिक्षा बौद्ध धर्मग्रंथों के सबसे प्रारंभिक, अर्थात् सूत्र काल से संबंधित है, जैसा कि कई प्रासंगिक अंशों से पता चलता है।
यमलोक : यम का लोक। यम मृत्यु का प्रतीक है — यम लगभग मारा का पर्यायवाची है।
मारा : बौद्ध धर्म में 'प्रलोभक' का प्रतीक। उन्हें अक्सर 'बुरा मारा' या नमुचि ('मुक्तिदाता नहीं', मुक्ति का विरोधी) कहा जाता है। वे ग्रंथों में एक वास्तविक व्यक्ति (देवता के रूप में) और बुराई, वासनाओं, सांसारिक जीवन और मृत्यु के मानवीकरण दोनों रूपों में प्रकट होते हैं।
बाद के पाली साहित्य में अक्सर 'पांच गुना मारा' की बात की जाती है:
मारा एक देवता के रूप में;
अशुद्धियों का मारा;
समुच्चयों का मारा;
कर्म-निर्माणों का मार; और
मारा मृत्यु के रूप में।
अधिकांशतः 'मारा' को मृत्यु के समतुल्य माना जाता है। सामान्य अर्थ में, 'मृत्यु' का तात्पर्य 'एक जीवनकाल तक सीमित प्राणिक शक्ति का लुप्त होना, और इसके साथ ही 'मनुष्य, पशु, व्यक्तित्व, अहं' आदि कहलाने वाली मनो-शारीरिक जीवन प्रक्रिया का लुप्त होना' है। हालांकि, कड़ाई से कहें तो, मृत्यु प्रत्येक भौतिक-मानसिक संयोजन का क्षणिक उद्भव, विघटन और लुप्त होना है। अस्तित्व की इस क्षणिक प्रकृति के बारे में कहा जाता है:
पूर्ण अर्थ में, प्राणियों का जीवन बहुत ही क्षणिक होता है, चेतना के एक क्षण तक ही सीमित। जैसे गाड़ी का पहिया, चाहे चल रहा हो या रुका हुआ हो, हर समय अपनी परिधि के एक ही बिंदु पर टिका रहता है: ठीक वैसे ही किसी जीव का जीवन चेतना के एक क्षण तक ही सीमित रहता है। जैसे ही वह क्षण समाप्त होता है, प्राणी का भी अंत हो जाता है। क्योंकि कहा जाता है: 'भूतकाल की चेतना में प्राणी

जीवित रहा, परन्तु अब जीवित नहीं है, न भविष्य में जीवित रहेगा। भविष्य के क्षण में प्राणी अभी तक जीवित नहीं रहा, न अभी जीवित है, परन्तु भविष्य में जीवित रहेगा। वर्तमान क्षण में प्राणी जीवित नहीं रहा, वह अभी जीवित है, परन्तु भविष्य में जीवित नहीं रहेगा।'

दूसरे अर्थ में, अरहत या पूर्णतः पवित्र व्यक्ति के मनो-शारीरिक जीवन चक्र का उनके निधन के क्षण में समाप्त होना, अंतिम और परम मृत्यु कहा जा सकता है, क्योंकि उस क्षण तक मनो-शारीरिक जीवन चक्र अभी भी जारी था।

सामान्य अर्थों में मृत्यु, वृद्धावस्था के साथ मिलकर, आश्रित उत्पत्ति के सूत्र में बारहवीं कड़ी का निर्माण करती है।

बौद्ध धर्म के अनुसार, मृत्यु किसी भी व्यक्ति के मनो-शारीरिक जीवन का अंत है। यह जीवन शक्ति, अर्थात् मानसिक और शारीरिक जीवन, ऊष्मा और चेतना का क्षीण होना है। मृत्यु किसी प्राणी का पूर्ण विनाश नहीं है, क्योंकि यद्यपि एक विशेष जीवनकाल समाप्त हो जाता है, वह शक्ति जो अब तक उसे संचालित करती रही है, नष्ट नहीं होती।

जैसे बिजली का बल्ब अदृश्य विद्युत ऊर्जा का प्रत्यक्ष दृश्य रूप है, वैसे ही हम अदृश्य कर्म ऊर्जा के प्रत्यक्ष रूप हैं। बल्ब टूट सकता है और रोशनी बुझ सकती है, लेकिन करंट बना रहता है और दूसरे बल्ब में रोशनी फिर से उत्पन्न हो सकती है। ठीक इसी तरह, कर्म शक्ति शरीर के नष्ट होने से अप्रभावित रहती है और वर्तमान चेतना के नष्ट होने से अगले जन्म में एक नई चेतना का जन्म होता है। लेकिन कोई भी अपरिवर्तनीय या स्थायी चीज़ वर्तमान से भविष्य में 'स्थानांतरित' नहीं होती।

उपरोक्त स्थिति में, मृत्यु से पूर्व अनुभव किया गया विचार नैतिक होने के कारण, पुनर्जन्म-चेतना मानव माता-पिता के उपयुक्त शुक्राणु और अंडाणु कोशिका को अपने पदार्थ के रूप में ग्रहण करती है। पुनर्जन्म-चेतना तब भावांग अवस्था में प्रवेश करती है। मृत्यु के समय, समय के संदर्भ में प्रवाह की निरंतरता अटूट रहती है और चेतना के प्रवाह में कोई व्यवधान नहीं होता है।

सदेवकम् : दिव्य प्राणियों का लोक। इन्हें प्रकाशमान कहा जाता है। ये स्वर्गीय प्राणी, देवता हैं; ऐसे प्राणी जो सुखमय लोकों में निवास करते हैं और जो सामान्यतः मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। यद्यपि, सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, वे भी पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं होते, और इस प्रकार दुख से भी मुक्त नहीं होते। स्वर्गीय प्राणियों के अनेक वर्ग हैं।

कुसालो : इस संदर्भ में यह अभिव्यक्ति विशेषज्ञता को संदर्भित करती है। लेकिन बौद्ध साहित्य में, कुसाला शब्द के अनेक अर्थ हैं। कुसाला का अर्थ है 'कर्मिक रूप से लाभकारी' या 'लाभदायक', सुखदायक और नैतिक रूप से अच्छा (कुशल)। टीकाओं के अनुसार, इस शब्द के भावार्थ हैं: अच्छे स्वास्थ्य वाला, निष्कलंक, अनुकूल कर्म फल देने वाला, कुशल। यह ध्यान देने योग्य है कि टीकाएँ चेतना की अवस्थाओं के संदर्भ में 'कुशल' अर्थ को शामिल नहीं करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से: 'कर्मिक रूप से लाभकारी' वे सभी कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक कारक हैं, जो दो या तीन लाभकारी मूलों, अर्थात् लोभहीनता और घृणाहीनता, और कुछ मामलों में भ्रमहीनता से युक्त होते हैं। चेतना की ऐसी अवस्थाओं को 'कर्मिक रूप से लाभकारी' माना जाता है क्योंकि वे अनुकूल कर्म फल का कारण होती हैं और सुखी भाग्य या पुनर्जन्म के बीज धारण करती हैं। इस व्याख्या से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं: (i) इच्छाशक्ति ही चेतना की किसी अवस्था या कर्म को 'अच्छा' या 'बुरा' बनाती है; (ii) बौद्ध धर्म में नैतिक मापदंड तीन शुभ या नैतिक मूलों की उपस्थिति या अनुपस्थिति है। उपरोक्त व्याख्याएँ सांसारिक शुभ चेतना से संबंधित हैं। अलौकिक शुभ अवस्थाएँ, अर्थात् पवित्रता के चार मार्ग, केवल उनसे संबंधित चार फल ही देते हैं; वे कर्म नहीं बनाते, न ही वे पुनर्जन्म की ओर ले जाते हैं, और यह बात अरहत के अच्छे कर्मों और उनकी ध्यान अवस्थाओं पर भी लागू होती है, जो सभी कर्मिक रूप से निष्क्रिय हैं।

धम्मपद की टीका में कहा गया है कि यह शब्द ज्ञानोदय के सैंतीस कारकों पर लागू होता है। वे इस प्रकार हैं:

(i) ध्यान के चार आधार — अर्थात्, 1. शरीर का चिंतन, 2. भावनाओं का चिंतन, 3. मन की अवस्थाओं का चिंतन, और 4. धर्मों का चिंतन;

(ii) चार सर्वोच्च प्रयास — अर्थात्, 1. अउत्पन्न बुराई को रोकने का प्रयास, 2. पहले से उत्पन्न बुराई को त्यागने का प्रयास, 3. अउत्पन्न अच्छाई को विकसित करने का प्रयास, और 4. पहले से उत्पन्न अच्छाई को बढ़ावा देने का प्रयास;

iii) सिद्धि के चार साधन — अर्थात्, इच्छाशक्ति, ऊर्जा, विचार और बुद्धि; (iv) पाँच शक्तियाँ — अर्थात्, आत्मविश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और बुद्धि;

(v) पाँच बल, जिनके नाम इंद्रियों के समान हैं;

(vi) ज्ञानोदय के सात घटक—अर्थात्, सजगता, वास्तविकता की खोज, ऊर्जा, आनंद, शांति, एकाग्रता और समभाव;

(vi) अष्टांग मार्ग — अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

यमलोक : यम के लोक । यमलोक से तात्पर्य चार दुखद अवस्थाओं से है — नरक, पशुलोक, पतरसलोक और असुरलोक । बौद्ध धर्म के अनुसार नरक स्थायी नहीं है। यह अन्य लोकों की तरह ही दुख की एक अवस्था है जहाँ प्राणी अपने पिछले बुरे कर्मों के फल भोगते हैं।

vijessati (attano ñāṇena vijānissati): जो अपनी बुद्धि से जानेगा।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 46

(धम्मपद 44, 45) <<<< पिछला ‖ श्लोक 46 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 47)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 46 - मरीचिकम्मत्तनिका भिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 46 - मरीचिकम्मत्तनिका भिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

फेप्नुपमम्(1) कायमिमम विदित्वा
मरीचिधम्मम(2) अभिसंबुधानो
चेतवना मरासा पापुप्फकानि(3)
अदस्सानम मैक्कुराजस्सा गच्चे(4)

श्लोक 46 : जो यह जानता है कि यह शरीर झाग के समान क्षणभंगुर है, और यह समझता है कि यह मृगतृष्णा के समान सारहीन है, वह मारा के फूल (अर्थात, तीन प्रकार के वट या चक्र) काटेगा, और मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल हो जाएगा।

---

1. फेपनुपमम: झाग की तरह; इसका अर्थ है कि यह शरीर झाग की तरह नाशवान और क्षणभंगुर है।
2. मरीचिधम्मम: शाब्दिक अर्थ, मृगतृष्णा + प्रकृति; मृगतृष्णा की प्रकृति, अर्थात् मृगतृष्णा की तरह सारहीन।
3. मारस पपुप्पकनी: मार के फूल या पुष्पयुक्त बाण। मार के ये फूल या बाण तिवत्तम या तीन प्रकार के वत्तम (चक्रों) का प्रतिनिधित्व करते हैं, अर्थात् किलेसवत्तम (नैतिक विकारों का चक्र), कम्मवत्तम (इच्छाजन्य क्रिया का चक्र) और विपकवत्तम (परिणामों का चक्र)। टीका के अनुसार, आर्य मग्गा नाना की तलवार से काटे जाने पर यह श्रृंखला या चक्र टूट जाता है।
4. adassanam maccurajassa gacche: इस संदर्भ में, मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल होने का अर्थ है निर्वाण की प्राप्ति।

उस भिक्षु की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (46) का उच्चारण एक भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में शरण ली। उसने बहुत प्रयास किया, फिर भी उसे ध्यान में कोई खास प्रगति नहीं हुई; इसलिए उसने आगे के मार्गदर्शन के लिए बुद्ध के पास लौटने का निश्चय किया। लौटते समय उसे एक मृग-तृष्णा दिखाई दी, जो वास्तव में जल की एक चादर का भ्रम मात्र थी। उसी क्षण उसे यह अहसास हुआ कि शरीर भी मृग-तृष्णा की तरह क्षणभंगुर है। इस प्रकार शरीर की क्षणभंगुरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए वह अचिरवती नदी के किनारे आ गया। नदी के निकट एक वृक्ष के नीचे बैठकर, नदी में उठते बड़े-बड़े झागों को देखकर, उसे शरीर की अनित्यता का अहसास हुआ।

जल्द ही, बुद्ध उनके दर्शन में प्रकट हुए और उनसे कहा, "मेरे पुत्र, जैसा कि तुमने अनुभव किया है, यह शरीर झाग की तरह क्षणभंगुर और मृगतृष्णा की तरह सारहीन है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 46 : जो यह जानता है कि यह शरीर झाग के समान क्षणभंगुर है, और यह समझता है कि यह मृगतृष्णा के समान सारहीन है, वह मारा के फूल (अर्थात, तीन प्रकार के वात या चक्र) काटेगा, और मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल हो जाएगा।

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस भिक्षु की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त किया और ध्यान साधना के उद्देश्य से वन में प्रवेश किया। परन्तु जब तमाम प्रयासों और संघर्षों के बाद भी वह अर्हतत्व प्राप्त नहीं कर सका, तो उसने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध से प्रार्थना करूंगा कि वे मुझे ध्यान का ऐसा विषय दें जो मेरी आवश्यकताओं के अनुरूप हो।" यही विचार मन में रखकर वह बुद्ध के पास लौटने के लिए चल पड़ा।
रास्ते में उन्हें एक मृगजल दिखाई दिया। उन्होंने मन ही मन कहा, "जिस प्रकार यह मृगजल, ग्रीष्म ऋतु में दूर से देखने पर सजीव प्रतीत होता है, पर निकट आने पर लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार यह अस्तित्व भी जन्म और मृत्यु के कारण सजीव है।" मृगजल पर ध्यान केंद्रित करके उन्होंने उसका चिंतन किया। यात्रा की थकान से लौटकर उन्होंने अचिरावती नदी में स्नान किया और नदी किनारे एक झरने के पास एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। चट्टानों से टकराकर पानी के तेज बहाव से फूटते सफेद जल को देखते हुए उन्होंने मन ही मन कहा, "जिस प्रकार इस अस्तित्व का जन्म हुआ, उसी प्रकार यह नष्ट हो जाता है।" और इसी को उन्होंने अपने चिंतन का विषय बना लिया।
अपने सुगंधित कक्ष में बैठे बुद्ध ने वृद्ध भिक्षु को देखकर कहा, "भिक्षु, ऐसा ही है। यह अस्तित्व झाग के बुलबुले या मृगतृष्णा के समान है। ठीक इसी प्रकार यह उत्पन्न होता है और ठीक इसी प्रकार इसका अंत हो जाता है।" और ऐसा कहकर बुद्ध ने श्लोक का उच्चारण किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 46)
इमां कयां फेनुपमं विदित्वा मरीचि धम्मं अभिसंबुधानो
मरास्सा पापुफ्फकानि चेतवना मक्कुराजस्सा अदासनं गच्चे
imaṃ : यह; kāyaṃ [kāya]: शरीर; pheṇūpamaṃ [pheṇūpama]: झाग के समान है; viditvā : जानना; marīci dhammaṃ [dhamma]: मृगतृष्णा के समान भी है; abhisambudhāno [abhisambudhāna]: पूर्णतः समझना; Mārassa : मृत्यु से संबंधित; papupphakāni : पुष्प बाण; chetvāna : नष्ट करने वाला; maccurājassa : राजा-मृत्यु का; adassanaṃ [adassana]: दृष्टि से परे; gacche : अपना मार्ग बनाओ।
हमारा यह शरीर झाग, बुलबुले या फेन के समान है। यह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जीवन का स्वरूप मृगतृष्णा, भ्रम के समान है। इसलिए, इन असत्यताओं का त्याग करना आवश्यक है। इसके लिए, मारा के उन पुष्प-बाणों को नष्ट करना होगा जिनसे वह पुरुषों और महिलाओं को प्रलोभित करता है। सत्य की खोज करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह मारा के क्षेत्र से परे, उन क्षेत्रों में जाए जिन्हें वह देख नहीं सकता। मारा केवल मृत्यु के क्षेत्र को जानता है। सत्य की खोज करने वाला उस क्षेत्र से परे 'अमर' (निर्वाण) की ओर जाता है - एक ऐसा क्षेत्र जिसे मारा ने कभी नहीं देखा।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 46)
फेणुपम : झाग के समान। शरीर की तुलना झाग और बुलबुले से की जाती है, क्योंकि शरीर भी झाग और बुलबुले की तरह शीघ्र ही विघटित हो जाता है। अनेक उदाहरणों में, मानव शरीर की क्षणभंगुरता की तुलना बुलबुले के विघटन से की जाती है।
marīci dhammaṃ abhisambudhāno : जीवन की मायावी प्रकृति और क्षणभंगुरता के प्रति गहरी जागरूकता। बुलबुला और मृगतृष्णा, दोनों मिलकर जीवन की क्षणभंगुरता और मायावी प्रकृति पर बल देते हैं।
काया का शाब्दिक अर्थ है 'समूह', 'शरीर'। यह भौतिक शरीर या मानसिक शरीर दोनों को संदर्भित कर सकता है। बाद वाले मामले में, यह चार मानसिक समूहों (भावना, बोध, मानसिक संरचनाएँ, चेतना) का सामूहिक नाम हो सकता है या केवल भावना, बोध और कुछ मानसिक संरचनाओं का। तीसरे समाधि के रूढ़िवादी वर्णन में भी काया का यही अर्थ है, "और वह अपने मन या मानसिक संरचना में आनंद का अनुभव करता है, और आठ मोक्षों की प्राप्ति का; "अपने मन या अपने शरीर में आठ मोक्षों की प्राप्ति कर चुका है"। काया पाँचवीं इंद्रिय, शरीर-अंग भी है।
मरीचि धम्मं : मृगतृष्णा का स्वरूप। धम्म के अनेक अर्थ हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है 'वाहक', संरचना (या किसी वस्तु का स्वरूप), नियम, नियम, सिद्धांत; न्याय, धर्म; गुण; वस्तु, मन का विषय; 'घटना'। इन सभी अर्थों में 'धम्म' शब्द ग्रंथों में मिलता है। धम्मपद की टीका में इस शब्द के चार अनुप्रयोग दिए गए हैं: गुण, सद्गुण, उपदेश, पाठ, आत्माहीनता, जैसे "सभी धम्म, घटनाएँ, निराकार हैं, आदि"। पारंपरिक टीका में देसना के स्थान पर हेतु (स्थिति) शब्द का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार, नियम के विश्लेषणात्मक ज्ञान को स्थिति के ज्ञान के रूप में समझाया गया है। बुद्ध द्वारा खोजे और घोषित किए गए मुक्तिदायक नियम के रूप में धम्म को चार आर्य सत्यों में समाहित किया गया है। यह तीन रत्नों में से एक और दस स्मरणों में से एक है।

धम्म, मन के विषय के रूप में, भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्यकाल में कुछ भी हो सकता है, शारीरिक या मानसिक, सशर्त या गैर-सशक्त, वास्तविक या काल्पनिक।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 47

(धम्मपद 46) <<<< पिछला ॥ श्लोक 47 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 48)

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 47 - वितातुभा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 47 - वितातुभा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Pupphani heva pacinantam
ब्यासत्तमनसम नरम
suttam gamam mahoghova
maccu adaya gacchati.

श्लोक 47 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में मग्न रहता है, उसे मृत्यु अपने साथ ले जाती है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

कोसल के राजा के पुत्र वितातुभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के पुत्र वितातुभा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (47) कहा।

कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) शाक्यों वंश में विवाह करने की इच्छा रखते हुए, कपिलवस्तु में कुछ दूतों को एक शाक्यों राजकुमारी का विवाह निवेदन करने के लिए भेजा। राजा पसेनादि को नाराज न करने के उद्देश्य से, शाक्यों राजकुमारों ने उनकी विनती स्वीकार कर ली, लेकिन शाक्यों राजकुमारी के बजाय उन्होंने राजा महानामा और एक दासी की संतान, एक अत्यंत सुंदर कन्या को भेजा। राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने उस कन्या को अपनी प्रमुख रानियों में से एक बनाया और बाद में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम विटतुभा रखा गया। जब राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ, तो उसे राजा महानामा और शाक्यों राजकुमारों से मिलने भेजा गया। वहाँ उसका आतिथ्य सत्कार किया गया, लेकिन विटतुभा से छोटे सभी शाक्यों राजकुमारों को एक गाँव में भेज दिया गया था, ताकि उन्हें विटतुभा का सम्मान न करना पड़े। कपिलवस्तु में कुछ दिन ठहरने के बाद, विटतुभा और उसके साथी अपने घर के लिए रवाना हो गए। उनके जाने के तुरंत बाद, एक दासी उस स्थान को दूध से धो रही थी जहाँ वितातुभा बैठे थे; वह उन्हें कोसते हुए चिल्ला रही थी, "यही वह स्थान है जहाँ उस दासी का पुत्र बैठा था।" उसी क्षण, वितातुभा के दल का एक सदस्य वहाँ छोड़ी हुई कोई वस्तु लेने लौटा और उसने दासी की बातें सुन लीं। दासी ने उसे यह भी बताया कि वितातुभा की माता, वासभखत्तिया, महानामा की एक दासी की पुत्री थी।

जब वितातुभा को उपरोक्त घटना के बारे में बताया गया, तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और उसने घोषणा की कि एक दिन वह शाक्यों वंश का पूर्ण विनाश कर देगा। अपने वचन के अनुरूप, वितातुभा के राजा बनने पर उसने शाक्यों वंश पर आक्रमण किया और महानामा के कुछ साथियों और अन्य लोगों को छोड़कर सभी का नरसंहार कर दिया। घर लौटते समय, वितातुभा और उसकी सेना ने अचिरवती नदी के रेतीले किनारे पर डेरा डाला। उसी रात देश के ऊपरी हिस्सों में भारी बारिश होने के कारण नदी उफान पर आ गई और उग्र रूप से बहने लगी, जिससे वितातुभा और उसकी सेना समुद्र में बह गई।

इन दो दुखद घटनाओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि उनके रिश्तेदार, शाक्य राजकुमारों ने अपने पिछले जन्मों में से एक में नदी में विष डाल दिया था जिससे मछलियाँ मर गईं। इसी कर्म के फलस्वरूप शाक्य राजकुमारों को सामूहिक रूप से मरना पड़ा। फिर, विततुभ और उसकी सेना की घटना का उल्लेख करते हुए बुद्ध ने कहा, "जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव के सभी ग्रामीणों को बहा ले जाती है, वैसे ही मृत्यु उन सभी प्राणियों को अपने साथ ले जाती है जो इंद्रिय सुखों की लालसा रखते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 47 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में मग्न रहता है, उसे मृत्यु अपने साथ ले जाती है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विदूदभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी के पुत्र विदूदभा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कोसल के राजा पसेनादि, शाक्यन वंश में विवाह करने की इच्छा रखते हुए, कपिलवस्तु में कुछ दूतों को भेजकर शाक्यन राजकुमारियों में से एक का विवाह निवेदन किया। राजा पसेनादि को नाराज न करने के उद्देश्य से, शाक्यन राजकुमारों ने उनकी विनती स्वीकार कर ली, लेकिन शाक्यन राजकुमारी के स्थान पर उन्होंने राजा महानामा की एक दासी से जन्मी एक अत्यंत सुंदर कन्या को भेजा। राजा पसेनादि ने उस कन्या को अपनी प्रमुख रानियों में से एक बनाया और बाद में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम विदूदभ रखा गया। जब राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ, तो उसे राजा महानामा और शाक्यन राजकुमारों से मिलने भेजा गया। वहाँ उनका कुछ सत्कार हुआ, लेकिन विदूधभ से छोटे सभी शाक्य राजकुमारों को एक गाँव भेज दिया गया था, ताकि उन्हें विदूधभ का सम्मान न करना पड़े। कपिलवस्तु में कुछ दिन ठहरने के बाद, विदूधभ और उनके लोग घर के लिए रवाना हो गए। उनके जाने के तुरंत बाद, एक दासी उस स्थान पर दूध से स्नान कर रही थी जहाँ विदूधभ बैठे थे; वह उन्हें कोसते हुए चिल्ला रही थी, ''यह वह स्थान है जहाँ उस दासी का पुत्र बैठा था...''। उसी क्षण, विदूधभ के दल का एक सदस्य वहाँ छोड़ी हुई कोई वस्तु लेने लौटा और उसने दासी की बातें सुन लीं। दासी ने उसे यह भी बताया कि विदूधभ की माता, वासभखत्तिया, महानामा की एक दासी की पुत्री थी।

जब विदूदभा को उपरोक्त घटना के बारे में बताया गया, तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और उसने घोषणा की कि एक दिन वह शाक्यन वंश का पूर्ण विनाश कर देगा। अपने वचन के अनुरूप, विदूदभा के राजा बनने पर उसने शाक्यन वंश पर आक्रमण किया और महानामा के कुछ साथियों और अन्य लोगों को छोड़कर सभी का नरसंहार कर दिया। लौटते समय, विदूदभा और उसकी सेना ने अचिरवती नदी के रेतीले तट पर डेरा डाला। उसी रात देश के ऊपरी हिस्सों में भारी बारिश होने के कारण नदी उफान पर आ गई और उग्र रूप से बहने लगी, जिससे विदूदभा और उसकी पूरी सेना बह गई।

इन दो दुखद घटनाओं के बारे में सुनकर, बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि उनके रिश्तेदार, शाक्यन राजकुमारों ने अपने पिछले जन्मों में से एक में नदी में विष डाल दिया था जिससे मछलियाँ मर गईं। इसी कर्म के फलस्वरूप शाक्यन राजकुमारों की मृत्यु हुई थी। फिर, विदूधभ और उसकी सेना से संबंधित घटना का उल्लेख करते हुए, बुद्ध ने श्लोक का पाठ किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 47)

इह पुप्फानि पचिनंतं इव ब्यासत्त मनसं नरं

सुत्तं गमं महोघो इव मक्कु अदाय गच्छति

इहा : यहाँ; पुप्फानि : बगीचे में फूल; पचिनन्तं इव : जैसे कोई तोड़ता है; ब्यासत्त मनसाम् [मनसा]: मन इंद्रियों के सुखों से चिपका हुआ है; नारां [नारा]: आदमी; सुत्तं गमं [गामा]: गहरी नींद में सोए हुए गांव की तरह; महोघो इवा : एक महान बाढ़ से; मक्कू : मौत; आदाय गच्छति : दूर कर देता है

सांसारिक वस्तुओं से मोहित वे पुरुष और स्त्रियाँ, सुखों का चयन उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई माला बनाने वाला बगीचे में अपनी पसंद के फूल चुनता है। परन्तु धीरे-धीरे और चुपचाप, मृत्यु उन्हें उसी प्रकार घेर लेती है जैसे रात में बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 47)
पुप्पानिङ्वे पचिनन्तं : फूल इकट्ठा करना। यहाँ माला बनाने वाले का चित्र जारी है। उत्साही माला बनाने वाला एक बगीचे में अपनी ज़रूरत के फूलों के चयन में लीन है। उसका मुख्य और सर्वोपरि कार्य फूलों को इकट्ठा करना है। वह अन्य सभी विचारों को त्यागकर यही करता है। ठीक इसी प्रकार, इंद्रिय सुखों की खोज करने वाले भी अन्य सभी चीजों को त्यागकर केवल उन्हीं सुखों पर ध्यान केंद्रित करते हैं।
सुत्तं गामं : एक सोया हुआ गाँव। जो लोग केवल इंद्रिय सुखों में लीन रहते हैं, वे एक सोए हुए गाँव के निवासियों के समान होते हैं। वे अपने ऊपर मंडरा रहे बाहरी खतरों से अनभिज्ञ होते हैं।
महोगो इव मच्चु आदाय गच्छति : मृत्यु आती है और उन्हें बाढ़ की तरह बहा ले जाती है। सोता हुआ गाँव आने वाली बाढ़ से अनभिज्ञ होता है और अंत में सभी ग्रामीण बाढ़ के पानी में बहकर मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। जो लोग अपनी इंद्रियों को भोग रहे होते हैं, वे भी अपने ऊपर मंडरा रहे बाहरी खतरों से अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग इंद्रिय सुखों में लिप्त होते हैं, वे मृत्यु के हाथों बह जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 48

———————————————————————

(धम्मपद 47) <<<< पिछला ॥ श्लोक 48 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 49)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 48 - पतिपूजिकाकुमारी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 48 - पतिपूजिकाकुमारी वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Pupphani heva pacinantam
bysssasattamanasam naram
अतित्तन्नेवा कामेसु
antako kurute vasam.

———————————————————————

श्लोक 48 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है और उनमें तृप्त नहीं होता, वह मृत्यु के वश में हो जाता है।

———————————————————————

पतिपुजिका कुमारी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पतिपुजिका कुमारी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (48) कहा।
पतिपुजिका कुमारी सावत्थी की रहने वाली थीं। उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था और उनके चार पुत्र थे। वे एक गुणी और उदार महिला थीं, जो भिक्षुओं को भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करने में प्रसन्न रहती थीं। वे अक्सर मठ जाकर परिसर की सफाई करतीं, बर्तनों में पानी भरतीं और अन्य सेवा कार्य करतीं। पतिपुजिका को जतिसार ज्ञान प्राप्त था, जिसके द्वारा उन्हें याद था कि अपने पिछले जन्म में वे तावतिंसा देवलोक में मालभारी की अनेक पत्नियों में से एक थीं। उन्हें यह भी याद था कि जब वे सभी देवदूत उद्यान में आनंद ले रहे थे और फूल तोड़ रहे थे, तब उनका देहांत हो गया था। इसलिए, जब भी वे भिक्षुओं को दान करतीं या कोई अन्य पुण्य कर्म करतीं, तो वे प्रार्थना करतीं कि उन्हें तावतिंसा लोक में अपने पिछले पति मालभारी की पत्नी के रूप में पुनर्जन्म मिले।
एक दिन, पतिपुजिका बीमार पड़ गईं और उसी शाम उनका देहांत हो गया। उनकी हार्दिक इच्छा के अनुसार, उनका पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में मालभारी की पत्नी के रूप में हुआ। मनुष्यलोक में सौ वर्ष तावतिंसा लोक में एक दिन के बराबर होते हैं, इसलिए मालभारी और उनकी अन्य पत्नियाँ अभी भी बगीचे में आनंद ले रही थीं और उन्हें पतिपुजिका की कमी का एहसास भी नहीं हुआ। जब वह उनके पास लौटीं, तो मालभारी ने उनसे पूछा कि वह पूरी सुबह कहाँ थीं। तब उन्होंने उन्हें तावतिंसा से अपने देहांत, मनुष्यलोक में अपने

पुनर्जन्म, एक पुरुष से अपने विवाह और चार पुत्रों को जन्म देने, वहाँ से अपने देहांत और अंत में तावतिंसा में अपनी वापसी के बारे में बताया।
जब भिक्षुओं को पतिपुजिका की मृत्यु का पता चला, तो वे गहरे शोक में डूब गए। वे बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि पतिपुजिका, जो सुबह-सुबह उन्हें भिक्षा दे रहे थे, शाम को देहांत हो गए। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि प्राणियों का जीवन बहुत छोटा होता है; और इंद्रिय सुखों में तृप्ति होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने वश में कर लेती है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 48 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है और उनमें तृप्त नहीं होता, वह मृत्यु के वश में हो जाता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पतिपूजिका कुमारी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पतिपूजिका कुमारी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
पतिपूजिका कुमारी, सावत्थी की एक महिला थीं। उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था और उनके चार पुत्र थे। वे एक गुणी और उदार महिला थीं, जो भिक्षुओं को भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करने में प्रसन्न रहती थीं। वे अक्सर मठ जाकर परिसर की सफाई करती थीं, बर्तनों में पानी भरती थीं और अन्य सेवाएँ करती थीं। पतिपूजिका को जातीय ज्ञान (पूर्व जन्मों का स्मरण) प्राप्त था, जिसके द्वारा उन्हें याद था कि अपने पिछले जन्म में वे तावतिंस देवलोक में मालाभारी की अनेक पत्नियों में से एक थीं। उन्हें यह भी याद था कि जब वे सभी बगीचे में फूल तोड़ते हुए आनंद ले रही थीं, तब उनका देहांत हुआ था। इसलिए, जब भी वह भिक्षुओं को भेंट चढ़ाती या कोई अन्य पुण्य कर्म करती, तो वह प्रार्थना करती कि उसका पुनर्जन्म तावतिंस लोक में उसके पूर्व पति, मालाभारी की पत्नी के रूप में हो।
एक दिन, पतिपूजिका बीमार पड़ गईं और उसी शाम उनका देहांत हो गया। उनकी हार्दिक इच्छा के अनुसार, उनका पुनर्जन्म तावतिंस देवलोक में मालाभारी की पत्नी के रूप में हुआ। मनुष्यलोक में सौ वर्ष तावतिंस लोक में एक दिन के बराबर होते हैं, इसलिए मालाभारी और उनकी अन्य पत्नियाँ अभी भी उद्यान में आनंद ले रही थीं और उन्हें पतिपूजिका की मृत्यु का पता भी नहीं चला। जब वह उनके पास लौटीं, तो मालाभारी ने उनसे पूछा कि वह पूरी सुबह कहाँ थीं। तब उन्होंने उन्हें तावतिंस से अपने देहांत, मनुष्यलोक में अपने पुनर्जन्म, एक पुरुष से अपने विवाह और चार पुत्रों को जन्म देने, वहाँ से अपने देहांत और अंत में तावतिंस में अपनी वापसी के बारे में बताया।
जब भिक्षुओं को पतिपूजिका की मृत्यु का पता चला, तो वे गहरे शोक में डूब गए। वे बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि पतिपूजिका, जो सुबह-सुबह उन्हें भिक्षा दे रही थीं, शाम को चल बसीं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि प्राणियों का जीवन बहुत छोटा होता है; और इंद्रिय सुखों की तृप्ति से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने वश में कर लेती है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 48)
इह पुप्फानि पचिनंतं इव ब्यासत्त मनसां
नारं कामेसु अतित्तं एव अंतको वसं कुरुते
इहा : यहाँ; पुप्पानि : फूल (बगीचे में); पचिनंतं इव : तोड़ने वाले की तरह; ब्यासत्त मनसं [मनसा]: इंद्रियों के सुखों में लीन मन; नरं [नर]: मनुष्य; कामेसु : इंद्रिय सुखों में; अतित्तं एव : जब तक तृप्त न हो; अंतको [अंतक]: मृत्यु (अंतर); वसं कुरुते : अपने वश में कर लेता है
सांसारिक सुखों के पीछे भागने वाले लोग उस मालाकार के समान हैं जो बगीचे में अपनी पसंद के अनुसार फूल चुन-चुनकर निकालते हैं। इंद्रियों के सुखों में लिप्त रहने वाले लोग संतुष्ट नहीं होते। वे और अधिक की खोज करते हैं। इसी अंतहीन सुख-सुविधाओं के कारण वे अंतःक, यानी मृत्यु के वश में आ जाते हैं।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 48)
अंतको : शाब्दिक अर्थ है अंत-निर्माता। यह मारा (मृत्यु) का एक अन्य विशेषण है। इस श्लोक में, अंत-निर्माता को उन लोगों को अपने वश में करने वाला बताया गया है जो इंद्रिय सुखों में लीन होकर अन्य सभी चीजों को त्याग देते हैं। काम : इसका अर्थ हो सकता है: 1) व्यक्तिपरक इंद्रिय-इच्छा; 2) वस्तुनिष्ठ इंद्रिय; पाँच इंद्रिय-विषय।
व्यक्तिपरक इंद्रिय-इच्छा पाँचों इंद्रिय-विषयों की ओर निर्देशित होती है और यह पाँच बाधाओं में से एक 'इंद्रिय-इच्छा', दस बंधनों में से एक 'इंद्रिय-वासना', तीन लालसाओं में से एक 'इंद्रिय-लालसा' और तीन कुकर्मों में से एक 'इंद्रिय-विचार' के समानार्थक है। इंद्रिय-इच्छा भी एक दोष और आसक्ति है।

“इंद्रियों के पाँच सूत्र हैं; दृश्य वस्तुएँ, जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जो वांछनीय, प्रिय, सुखद, प्यारी, कामुक और मोहक होती हैं; ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... शरीर की अनुभूतियाँ जो शरीर से देखी जा सकती हैं, जो वांछनीय होती हैं...”
काम के इन दो प्रकारों को इस प्रकार भी कहा जाता है: मानसिक दोष के रूप में काम , और इंद्रिय सुख के आधार के रूप में काम। अंततः अनावर्ती अवस्था में इंद्रिय-इच्छा का नाश हो जाता है। इंद्रिय-इच्छा के खतरे और कष्टों का वर्णन ग्रंथों में अक्सर मिलता है, जिनमें इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य को इंद्रियों के संसार से बांधने वाले अंग या विषय नहीं, बल्कि इच्छा है।

(धम्मपद 48) <<<< पिछला ॥ श्लोक 49 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 50)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 49 - मैकचरियाकोसियासेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 49 - मैकचरियाकोसियासेट्ठि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathipi bhamaro puppham
वन्नगंधमेहेतयम
paleti rasamadaya
evam game muni care.

———————————————————————

श्लोक 49 : जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से रस इकट्ठा करती है और फूल को, उसके रंग को या उसकी सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उड़ जाती है, उसी प्रकार भिक्षु को भी गांव में निवास करना चाहिए और कार्य करना चाहिए (ग्रामीणों की आस्था, उदारता या धन को प्रभावित किए बिना)।

———————————————————————

कोसिया की कहानी, एक कंजूस अमीर आदमी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (49) का उच्चारण मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना और कंजूस धनी व्यक्ति कोसिया के संदर्भ में किया।

राजगाह के पास स्थित सक्कारा गाँव में कोसिया नाम का एक कंजूस अमीर आदमी रहता था, जो अपनी किसी भी चीज़ का छोटा सा हिस्सा भी देने से कतराता था। एक दिन, दूसरों के साथ कुछ भी बाँटने से बचने के लिए, वह अमीर आदमी और उसकी पत्नी अपने घर की सबसे ऊपरी मंजिल पर पैनकेक बना रहे थे, जहाँ उन्हें कोई देख न सके।

उस दिन सुबह-सुबह, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से धनी पुरुष और उसकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों शीघ्र ही सोतापत्ति पुण्य प्राप्त कर लेंगे। इसलिए उन्होंने अपने मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना को धनी पुरुष के घर भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे दंपति को दोपहर के भोजन के समय तक जेतवन मठ ले आएं। मुख्य शिष्य अपनी अलौकिक शक्ति से पल भर में कोसिया के घर पहुँच गए और खिड़की पर खड़े हो गए। धनी पुरुष ने उन्हें देखा और जाने के लिए कहा; पूज्य महा मोग्गलाना बिना कुछ कहे वहीं खड़े रहे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से कहा, "एक छोटी सी रोटी बनाओ और भिक्षु को दे दो।" उसने थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला, और रोटी पूरे तवे में भर गई। कोसिया को लगा कि उसकी पत्नी ने शायद ज्यादा आटा डाल दिया है, इसलिए उसने भी थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला; उसकी रोटी भी फूलकर बड़ी हो गई। हुआ यूं कि चाहे वे कितना भी कम आटा डालें, उनसे छोटे पैनकेक नहीं बन पा रहे थे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से टोकरी में से एक पैनकेक भिक्षु को देने को कहा। जब उसने टोकरी से पैनकेक निकालने की कोशिश की, तो वह नहीं निकला क्योंकि सारे पैनकेक आपस में चिपक गए थे और अलग नहीं हो पा रहे थे। तब तक कोसिया की पैनकेक खाने की इच्छा पूरी तरह खत्म हो चुकी थी और उसने पैनकेक की पूरी टोकरी महा मोग्गलाना को दे दी। तब मुख्य शिष्य ने धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दान के विषय में प्रवचन दिया। उन्होंने दंपति को यह भी बताया कि बुद्ध राजगृह से पैंतालीस योजन दूर, सावत्थी के जेतवन मठ में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। महा मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्ति

से कोसिया और उसकी पत्नी को पैनकेक की टोकरी सहित बुद्ध के समक्ष ले गए। वहाँ उन्होंने बुद्ध और पाँच सौ भिक्षुओं को पैनकेक अर्पित किए। भोजन के अंत में, बुद्ध ने दान पर प्रवचन दिया, और कोसिया और उनकी पत्नी दोनों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।
अगली शाम, जब भिक्षु महा मोग्गलाना की स्तुति में बातें कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षुओं, तुम्हें भी महा मोग्गलाना की तरह गाँव में निवास करना चाहिए और गाँव वालों की भेंटों को स्वीकार करना चाहिए, उनकी आस्था और उदारता या उनके धन को प्रभावित किए बिना।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 49 : जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से रस इकट्ठा करती है और फूल को, उसके रंग को या उसकी सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उड़ जाती है, उसी प्रकार भिक्षु को भी गांव में निवास करना चाहिए और कार्य करना चाहिए (ग्रामीणों की आस्था, उदारता या धन को प्रभावित किए बिना)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसिया की कहानी, एक कंजूस अमीर आदमी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य महा मोग्गलाना और कंजूस धनी कोसिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
राजगृह के पास स्थित सक्कारा गाँव में कोसिया नाम का एक कंजूस अमीर आदमी रहता था, जो अपनी किसी भी चीज़ का छोटा सा हिस्सा भी देने से कतराता था। एक दिन, दूसरों के साथ कुछ भी बाँटने से बचने के लिए, वह अमीर आदमी और उसकी पत्नी अपने घर की सबसे ऊपरी मंजिल पर पैनकेक बना रहे थे, जहाँ उन्हें कोई देख न सके।
उस दिन सुबह-सुबह, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों शीघ्र ही सोतापत्ति का फल प्राप्त करेंगे। अतः उन्होंने महा मोग्गलाना को धनी व्यक्ति के घर भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे दंपति को दोपहर के भोजन के समय तक जेतवन मठ ले आएं। अपनी अलौकिक शक्ति से वे पल भर में कोसिया के घर पहुँच गए और खिड़की पर खड़े हो गए।
धनी व्यक्ति ने उसे देखा और जाने के लिए कहा। वह चुपचाप वहीं खड़ा रहा, कुछ बोला नहीं। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से कहा, "एक छोटा सा पैनकेक बनाओ और भिक्षु को दे दो।" उसने थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला, और पैनकेक पूरे तवे में भर गया। कोसिया को लगा कि उसकी पत्नी ने शायद ज्यादा आटा डाल दिया है, इसलिए उसने भी चुटकी भर आटा लिया और तवे में डाला; उसका पैनकेक भी फूलकर बड़ा हो गया। हुआ यूं कि वे चाहे जितना भी आटा डालें, छोटे पैनकेक नहीं बन पा रहे थे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से टोकरी में से एक पैनकेक भिक्षु को देने के लिए कहा।
जब उसने टोकरी से एक पैनकेक निकालने की कोशिश की, तो वह नहीं निकला क्योंकि सारे पैनकेक आपस में चिपक गए थे और अलग नहीं हो पा रहे थे। तब तक कोसिया की पैनकेक खाने की इच्छा पूरी तरह खत्म हो चुकी थी और उसने पैनकेक की पूरी टोकरी महा मोग्गलाना को अर्पित कर दी। तब प्रमुख शिष्य ने धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दान पर प्रवचन दिया। उन्होंने दंपति को यह भी बताया कि बुद्ध राजगृह से पैंतालीस योजन दूर, सावत्थी के जेतवन मठ में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। महा मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्ति से कोसिया और उसकी पत्नी को पैनकेक की टोकरी सहित बुद्ध के समक्ष ले गए। वहाँ उन्होंने बुद्ध और पाँच सौ भिक्षुओं को पैनकेक अर्पित किए। भोजन के अंत में, बुद्ध ने दान पर प्रवचन दिया, और कोसिया और उसकी पत्नी दोनों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।
अगली शाम, जब भिक्षु महा मोग्गलाना की प्रशंसा में बातें कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षुओं, तुम्हें भी महा मोग्गलाना की तरह गाँव में रहना और व्यवहार करना चाहिए, गाँव वालों की भेंटों को स्वीकार करना चाहिए और उनकी आस्था, उदारता या धन को प्रभावित नहीं करना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 49)
यथा अपि भमरो पुष्पं वनगंधं अहेथयं
रसं अदाय पलेति एवं मुनि गेम केयर
यथा अपि : जैसे; भमारो [भमार]: मधुमक्खी; पुप्पं [पुप्पहा]: फूल; वण्णगंधं [वण्णगंध]: रंग और सुगंध; अहेठयं [अहेठय]: बिना हानि पहुँचाए; रसं [रस]: अमृत; आदाय : लेना; पलेति : फल उत्पन्न करना; एवं मुनि : इस मार्ग से मौन ऋषि; गामे केयर : गाँव में घूमना चाहिए
मधुमक्खी फूलों के रंग या सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उनसे शहद निकालती है और ऐसा करके पेड़ को खूब फलने-फूलने में मदद करती है। इसी प्रकार, मौन ऋषि गांव में घूम-घूम कर किसी को जरा भी हानि नहीं पहुंचाते और ऐसा करके लोगों को पुण्य और सुख प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 49)
गामे मुनि चरे : मौन ऋषि गाँव में भिक्षा मांगने के लिए घर-घर जाते हैं, प्रत्येक घर से केवल मुट्ठी भर दान लेते हैं, और वह भी केवल स्वेच्छापूर्वक और आदरपूर्वक दिए गए दान से। भ्रमणशील तपस्वी और अन्य सभी धार्मिक भिक्षु अपनी आवश्यकताओं के लिए गाँव पर निर्भर हैं। परन्तु, गुणी मौन ऋषि यह सुनिश्चित करते हैं कि गाँव का किसी भी प्रकार से शोषण न हो। मधुमक्खी फूलों से शहद निकालते समय उन्हें बिना किसी क्षति पहुँचाए परागित करती है। भिक्षा मांगते समय मौन ऋषि लोगों का आध्यात्मिक रूप से भी उपकार करते हैं। वे अपने साधना से जो पुण्य अर्जित करते हैं, उसे उन लोगों के साथ बाँटते हैं जो उनके जीवनयापन में सहायक होते हैं। दानदाताओं को बहुत पुण्य प्राप्त होता है जो उन्हें इस जीवन में और परलोक में सुख प्रदान करता है। एक बौद्ध भिक्षु, भले ही वह समाज से विरक्त हो, केवल अपने लाभ के लिए नहीं कार्य करता, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। वह सभी के कल्याण के लिए कार्य करता है। यह श्लोक हमें इस तथ्य की याद दिलाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 50

(धम्मपद 49) <<<< पिछला ‖ श्लोक 50 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 51)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 50 - पवेय्या आजीवक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 50 - पवेय्या आजीवक वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Na paresam vilomani
na paresam katakatam
अत्नावा अवेक्खेय्या
katani akatani ca.

श्लोक 50 : मनुष्य को दूसरों के दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए, न ही उनके अच्छे या बुरे कर्मों पर। उसे केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि उसने स्वयं अच्छे या बुरे कर्म किए हैं या नहीं।

तपस्वी पावेय्या की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तपस्वी पावेय्या और एक धनी महिला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (50) कहा।
श्रावस्ती की एक धनी महिला ने पावेय्या नामक एक तपस्वी को पुत्र के रूप में गोद लिया था और उसकी देखभाल करती थी। जब उसने अपने पड़ोसियों को बुद्ध की प्रशंसा करते सुना, तो उसकी बहुत इच्छा हुई कि वह उन्हें अपने घर आमंत्रित करे और भिक्षा भोजन कराए। इसलिए, बुद्ध को आमंत्रित किया गया और उत्तम भोजन परोसा गया। जब बुद्ध प्रशंसा कर रहे थे (अनुमोदन), तो पावेय्या, जो बगल के कमरे में थे, क्रोधित हो उठे। उन्होंने बुद्ध की पूजा करने के लिए महिला को दोषी ठहराया और शाप दिया। महिला ने उन्हें शाप देते और चिल्लाते हुए सुना और इतना शर्मिंदा हुई कि वह बुद्ध की बातों पर ध्यान नहीं दे सकी। बुद्ध ने उनसे कहा कि वे उन शापों और धमकियों की परवाह न करें, बल्कि केवल अपने अच्छे और बुरे कर्मों पर ध्यान दें।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 50 : मनुष्य को दूसरों के दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए, न ही उनके अच्छे या बुरे कर्मों पर। उसे केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि उसने स्वयं अच्छे या बुरे कर्म किए हैं या नहीं।

प्रवचन के अंत में धनी महिला ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तपस्वी पावेय्या की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तपस्वी पावेय्या और एक धनी महिला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उनकी एक सबसे करीबी पड़ोसी, जो बुद्ध का धम्म प्रवचन सुनने गई थीं, लौटकर बुद्ध के गुणों की अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुए बोलीं, “अरे, धम्म प्रवचन कितना अद्‌भुत है!” जब उस स्त्री ने अपने पड़ोसियों को बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा करते सुना, तो उसकी भी मठ जाकर धम्म प्रवचन सुनने की इच्छा हुई। इसलिए उसने नग्न तपस्वी से कहा, “हे महाराज, मैं बुद्ध का प्रवचन सुनने जाना चाहती हूँ।” लेकिन जितनी बार उसने यह निवेदन किया, नग्न तपस्वी ने उसे जाने से मना करते हुए कहा, “मत जाओ।” स्त्री ने मन ही मन सोचा, “चूँकि यह नग्न तपस्वी मुझे मठ जाकर धम्म प्रवचन सुनने की अनुमति नहीं दे रहा है, तो मैं बुद्ध को अपने घर आमंत्रित करूँगी और यहीं प्रवचन सुनूँगी।”

इसलिए, जब शाम हुई, तो उसने अपने बेटे को बुलाया और उसे बुद्ध के पास भेजकर कहा, “जाओ, बुद्ध को कल मेरे यहाँ आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने का निमंत्रण दो।” लड़का चल पड़ा, लेकिन पहले नग्न तपस्वी के निवास स्थान पर गया, उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया।

लड़के ने नग्न तपस्वी के निर्देशों को सुना और फिर बुद्ध के पास जाकर उन्हें निमंत्रण दिया। जब उसने नग्न तपस्वी के निर्देशों के अनुसार सब कुछ कर लिया, तो वह उनके पास लौट आया। नग्न तपस्वी ने पूछा, "तुमने क्या किया?" लड़के ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आपने जो कुछ भी करने को कहा, मैंने सब किया।" "तुमने बहुत अच्छा किया। अब हम दोनों उनके लिए तैयार किया गया स्वादिष्ट भोजन करेंगे।" अगले दिन, सुबह-सुबह, नग्न तपस्वी लड़के को साथ लेकर उस घर में गए और दोनों पीछे के कमरे में बैठ गए।

पड़ोसियों ने उस घर पर गोबर का लेप लगाया, उसे लाजा फूल सहित पांच प्रकार के फूलों से सजाया और एक बहुमूल्य आसन तैयार किया, ताकि बुद्ध उसमें बैठ सकें।

बुद्ध ने सुबह-सुबह ही प्याला और वस्त्र लेकर सीधे महान गृहस्थ शिष्या के घर गए। जब बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया, तो शिष्या ने धम्म सुना और बुद्ध की प्रशंसा करते हुए कहा, "बहुत खूब! बहुत खूब!"

नग्न तपस्वी ने गृहस्थ शिष्य से कहा, “इस व्यक्ति की इस प्रकार प्रशंसा करके तुम पाप कर रहे हो।” और उसने गृहस्थ शिष्य और बुद्ध दोनों को हर तरह से अपशब्द कहे और फिर भाग गया। बुद्ध ने उससे पूछा, “हे गृहस्थ शिष्य, क्या तुम मेरे प्रवचन पर ध्यान नहीं लगा पा रही हो?” उसने उत्तर दिया, “हे आदरणीय गुरु, इस नग्न तपस्वी के अपमानजनक शब्दों से मेरा मन पूरी तरह व्याकुल है।” बुद्ध ने कहा, “ऐसे विधर्मी की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए; केवल अपने कर्मों और अकर्मों पर ध्यान देना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 50)

परेसं विलोमनि न , परेसं कटकटं न ,

अत्तनो एव कतानि अकतानि च अवेक्खेया

परेसां [परेसा]: दूसरों का; विलोमनि : दोष-निष्कर्ष; ना : मत (सम्मान); परेसां [परेसा]: दूसरों का; कटकटाम् [कटकटा]: किए गए और न किए गए कार्य; ना : परवाह मत करो; अत्तानो ईवा : केवल अपना; कतानि अकतानि च : चूक और कमीशन; अवेक्खेय्या : ध्यान से जांचें (जांचें)

दूसरों में दोष मत ढूंढो। दूसरों के कार्यों की चिंता मत करो। बल्कि, अपने भीतर झांककर देखो कि तुमने स्वयं क्या किया है और क्या नहीं किया है। बुराई करना छोड़ो; अच्छाई करो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 50)

परेसं कतकं : दूसरों के कर्म और अपकृत्य। यह श्लोक अधिकांश मनुष्यों की एक कमजोरी की पड़ताल करता है। वे दूसरों के दोषों को तो ध्यान से देखते हैं, लेकिन अपने दोषों को नहीं। यह केवल आम लोगों तक ही सीमित नहीं है। भिक्षु भी दूसरों के दोषों को देखने की इस आदत का पालन करते हैं। दूसरों को देखने का यह रवैया आध्यात्मिक विकास में बाधक है, क्योंकि यह आत्मनिरीक्षण को रोकता है, जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 51 और 52

(धम्मपद 50) <<<< पिछला ॥ श्लोक 51 और 52 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 53)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 51 और 52 - चट्टपानी उपासक वत्थु
2डॉ म्या टिन संस्करण
3वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
3.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 51 और 52 - चट्टपानी उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathapi ruciram puppham
वन्नवंतम अगंधकम
evam subhasita vaca
aphala hoti akubbato.

Yathapi ruciram puppham
vannavantam sagandhakam
evam subhasita vaca
saphala hoti kubbato.

श्लोक 51 : जिस प्रकार सुगंधहीन सुंदर फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ नहीं दे सकता, उसी प्रकार बुद्ध के सुशोभित वचन भी उस व्यक्ति को लाभ नहीं पहुंचा सकते जो धम्म का अभ्यास नहीं करता।

श्लोक 52 : जिस प्रकार एक सुंदर और सुगंधित फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ देता है, उसी प्रकार बुद्ध के सुविचारित वचन भी धम्म का अभ्यास करने वाले को लाभ पहुंचाते हैं।

चट्टापानी की कहानी, एक गृहस्थ शिष्य

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (51) और (52) का उच्चारण गृहस्थ शिष्य चट्टापानी और कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) की दो रानियों के संदर्भ में किया।

सावत्थी में चट्टपाणि नामक एक गृहस्थ शिष्य रहते थे, जो अनागामी (1) थे। एक बार चट्टपाणि जेतवन मठ में बुद्ध के साथ श्रद्धापूर्वक और ध्यानपूर्वक धार्मिक प्रवचन सुन रहे थे, तभी राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भी बुद्ध के पास आ गए। चट्टपाणि खड़े नहीं हुए क्योंकि उनका मानना था कि खड़े होने का अर्थ यह हो सकता है कि वे राजा का सम्मान तो कर रहे हैं, लेकिन बुद्ध का उचित सम्मान नहीं कर रहे हैं। राजा ने इसे अपमान समझा और बहुत आहत हुए। बुद्ध राजा की भावनाओं को भलीभांति जानते थे; इसलिए उन्होंने चट्टपाणि की प्रशंसा की, जो धम्म में पारंगत थे और अनागामी फल भी प्राप्त कर चुके थे। यह सुनकर राजा प्रभावित हुए और चट्टपाणि के प्रति उनका स्नेह जागा।

जब राजा अगली बार चट्टपाणि से मिले, तो उन्होंने कहा, "आप इतने विद्वान हैं; क्या आप कृपया महल में आकर मेरी दोनों रानियों को धम्म की शिक्षा दे सकते हैं?" चट्टपाणि ने मना कर दिया, लेकिन उन्होंने सुझाव दिया कि राजा को इस कार्य के लिए बुद्ध से एक भिक्षु नियुक्त करने का अनुरोध करना चाहिए। इसलिए, राजा ने इस संबंध में बुद्ध से संपर्क किया, और बुद्ध ने पूज्य आनंद को नियमित रूप से महल में जाकर रानी मल्लिका और रानी वासभक्तिया को धम्म की शिक्षा देने का निर्देश दिया। कुछ समय बाद, बुद्ध ने पूज्य आनंद से दोनों रानियों की प्रगति के बारे में पूछा। पूज्य आनंद ने उत्तर दिया कि यद्यपि मल्लिका गंभीरता से धम्म का अध्ययन कर रही थीं, वासभक्तिया उचित ध्यान नहीं दे रही थीं। यह सुनकर बुद्ध ने कहा कि धम्म केवल उन्हीं के लिए लाभकारी हो सकता है जो इसे उचित सम्मान और ध्यान के साथ गंभीरता से सीखते हैं और फिर जो सिखाया गया है उसका लगन से अभ्यास करते हैं।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 51 : जिस प्रकार सुगंधहीन सुंदर फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ नहीं दे सकता, उसी प्रकार बुद्ध के सुशोभित वचन भी उस व्यक्ति को लाभ नहीं पहुंचा सकते जो धम्म का अभ्यास नहीं करता।

श्लोक 52 : जिस प्रकार एक सुंदर और सुगंधित फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ देता है, उसी प्रकार बुद्ध के सुविचारित वचन भी धम्म का अभ्यास करने वाले को लाभ पहुंचाते हैं।

---

(1) अनागामी: वह जिसने तीसरा मार्ग (पथ/प्राप्ति) प्राप्त कर लिया है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
चट्टपानी की कहानी, एक गृहस्थ शिष्य
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी की दो रानियों और उनके गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि के संदर्भ में ये श्लोक कहे। सावत्थी में चट्टपाणि नामक एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो त्रिपिटक का ज्ञाता था और द्वितीय मार्ग का फल भोग रहा था। एक सुबह, उपवास रखते हुए, वह बुद्ध को प्रणाम करने गया। द्वितीय मार्ग का फल भोगने वाले और श्रेष्ठ शिष्य अपने पूर्व व्रत के कारण उपवास के दायित्वों को नहीं मानते। ऐसे व्यक्ति केवल मार्ग के फल के कारण ही पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं और दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा, "महान राजा, कुम्हार घटिकार दिन में केवल एक बार भोजन करता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, गुणी और धर्मनिष्ठ है।" अतः, स्वाभाविक रूप से, द्वितीय मार्ग का फल भोगने वाले दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।
छत्तपाणि ने भी व्रत रखते हुए बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर धम्म का प्रवचन सुना। उसी समय राजा पसेनादि कोसल भी बुद्ध को प्रणाम करने आए। जब छत्तपाणि ने उन्हें आते देखा, तो वे सोचने लगे, "क्या मुझे उठकर उनका अभिवादन करना चाहिए या नहीं?" उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला, "चूंकि मैं बुद्ध के समक्ष बैठा हूँ, इसलिए उनके प्रांत के राजा को देखकर मुझे उठने की आवश्यकता नहीं है। भले ही वे क्रोधित हो जाएँ, मैं नहीं उठूँगा। क्योंकि यदि मैं राजा को देखकर उठूँगा, तो राजा का सम्मान होगा, बुद्ध का नहीं। इसलिए मैं नहीं उठूँगा।" अतः छत्तपाणि नहीं उठे। (बुद्धिमान लोग उच्च पदस्थ व्यक्तियों के समक्ष किसी व्यक्ति को बैठे देखकर कभी क्रोधित नहीं होते।)
लेकिन जब राजा पसेनादि ने देखा कि चट्टपाणि नहीं उठे, तो उनका हृदय क्रोध से भर गया। फिर भी, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें क्रोधित देखकर कहा, "महाराज, यह गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं, जो धम्म को जानते हैं, त्रिपिटक के ज्ञाता हैं और सुख-दुख दोनों में संतुष्ट रहते हैं।" इस प्रकार बुद्ध ने गृहस्थ शिष्य के अच्छे गुणों की प्रशंसा की। बुद्ध द्वारा गृहस्थ शिष्य की प्रशंसा सुनकर राजा का हृदय कोमल हो गया।
एक दिन नाश्ते के बाद, राजा अपने महल की ऊपरी मंजिल पर खड़े थे, तभी उन्होंने देखा कि उनके गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि हाथ में छाता और पैरों में चप्पल लिए महल के प्रांगण से गुजर रहे हैं। राजा ने तुरंत उन्हें अपने समक्ष बुलावा भेजा। चट्टपाणि ने अपना छाता और चप्पल एक तरफ रख दिए, राजा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए। राजा ने चट्टपाणि से कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, तुमने अपना छाता और चप्पल क्यों एक तरफ रख दिए?" "जब मैंने सुना कि 'राजा आपको बुला रहे हैं,' तो मैंने उनके समक्ष आने से पहले अपना छाता और चप्पल एक तरफ रख दिए।" "तो स्पष्ट है कि आज तुम्हें पता चल गया कि मैं राजा हूँ।" "मुझे हमेशा से पता था कि आप राजा हैं।" "यदि ऐसा है, तो उस दिन जब आप बुद्ध के समक्ष बैठे थे और मुझे देखा था, तो आप क्यों नहीं उठे?"
"महाराज, जब मैं बुद्ध के समक्ष बैठा था, तो उनके ही प्रांत के राजा को देखकर उठना बुद्ध का अनादर करना होता। इसलिए मैं नहीं उठा।" "ठीक है, जो हुआ सो हुआ। मुझे बताया गया है कि आप वर्तमान और परलोक से संबंधित विषयों में पारंगत हैं; आप त्रिपिटक

के ज्ञाता हैं। हमारे स्त्री-कक्ष में धम्म का पाठ कीजिए।" "महाराज, मैं नहीं कर सकता।" "क्यों नहीं?" "राजा का घर घोर निंदा के अधीन होता है। महाराज, इस मामले में उचित और अनुचित दोनों ही गंभीर मामले हैं।" "ऐसा मत कहिए। उस दिन जब आपने मुझे देखा, तब आपने न उठना ही उचित समझा। जले पर नमक न छिड़किए।" "महाराज, गृहस्थों के लिए भिक्षुओं के कार्य करना निंदनीय कार्य है। किसी भिक्षु को बुलाइए और उनसे धम्म का पाठ करने को कहिए।"

राजा ने उन्हें यह कहकर विदा किया, "ठीक है महाराज, आप जा सकते हैं।" ऐसा करने के बाद, उन्होंने बुद्ध के पास एक दूत भेजा और उनसे निवेदन किया, "हे पूज्यवर, मेरी पत्नियाँ मल्लिका और वासभखत्तिया कहती हैं, 'हम धम्म में पारंगत होना चाहती हैं।' इसलिए कृपया पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नियमित रूप से मेरे घर आएँ और धम्म का उपदेश दें।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, मेरे लिए नियमित रूप से किसी एक स्थान पर जाना संभव नहीं है।" ऐसे में, हे पूज्यवर, किसी भिक्षु को भेजिए।" बुद्ध ने यह कार्य पूज्य आनंद को सौंपा। और पूज्य आनंद नियमित रूप से आकर उन रानियों को धम्म का पाठ करते थे। दोनों रानियों में से, मल्लिका ने अच्छी तरह से सीखा, नियमित रूप से अभ्यास किया और अपने गुरु के निर्देशों का पालन किया। परन्तु वासभखत्तिया ने न तो अच्छी तरह से सीखा, न ही नियमित रूप से अभ्यास किया और न ही उन्हें प्राप्त शिक्षा में पारंगत हो सकी।

एक दिन बुद्ध ने पूज्य आनंद से पूछा, "आनंद, क्या आपकी महिला शिष्याएँ धर्म में पारंगत हैं?" "जी हाँ, पूज्य।" "उनमें से कौन सर्वथा सीखती है?" "मल्लिका सर्वथा सीखती है, निष्ठापूर्वक अभ्यास करती है और प्राप्त शिक्षा को सर्वथा समझ सकती है। परन्तु आपकी सगोत्री न तो सर्वथा सीखती है, न निष्ठापूर्वक अभ्यास करती है और न ही प्राप्त शिक्षा को सर्वथा समझ सकती है।" जब बुद्ध ने भिक्षु का उत्तर सुना, तो उन्होंने कहा, "आनंद, मैंने जिस धर्म का उपदेश दिया है, वह सुनने, सीखने, अभ्यास करने और प्रचार करने में निष्ठावान न रहने वाले के लिए निरर्थक है, जैसे रंग वाला फूल जिसमें सुगंध न हो। परन्तु जो धर्म को सुनने, सीखने, अभ्यास करने और प्रचार करने में निष्ठावान रहता है, उसे प्रचुर फल और अनेक प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 51)

रुचिरं वनवन्तं सगन्धकं पुष्पं यथा अपि

एवं सुभाषित वाचा अकुब्बतो सफला होति

रुचिरां [रुचिरा]: आकर्षक, आकर्षक; वनवन्तम् [वनवन्त]: चमकीले रंग का; सगन्धकम् [सगन्धक]: सुगंध से रहित; पुप्फाम् [पुप्फा]: फूल; यथा अपि एवम् : और इसी प्रकार; सुभाषिता वाचा : अच्छी तरह से व्यक्त शब्द; अकुब्बतो [अकुब्बाता]: गैर-व्यवसायी का ; अफला होती है : किसी काम के नहीं

एक फूल कितना भी सुंदर और आकर्षक क्यों न हो। उसका रंग कितना भी चमकीला क्यों न हो। लेकिन अगर उसमें सुगंध न हो, तो वह किसी काम का नहीं। ठीक वैसे ही, जो व्यक्ति अपने शब्दों पर अमल नहीं करता, उसके अच्छे शब्द भी व्यर्थ साबित होते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 52)

रुचिरं वनवन्तं सगन्धकं पुष्पं यथा अपि ,

एवं सुभाषित वाचा सकुब्बतो सफला होति

रुचिरां [रुचिरा]: आकर्षक, आकर्षक; वनवन्तम् [वनवन्त]: चमकीले रंग का; सगन्धकम् [सगन्धक]: सुगंध से भरपूर (सुगंधित); पुप्फाम् [पुप्फा]: फूल; यथा अपि एवम् : ऐसे ही; सुभाषित वाचा : अच्छी तरह बोला गया शब्द; सकुब्बतो [सकुब्बता]: अभ्यासकर्ता को; सफला होती : लाभ होता है

एक फूल बेहद आकर्षक, मोहक और चमकीले रंग का हो सकता है। इसके अलावा, वह सुगंध से भरपूर भी हो सकता है। ठीक वैसे ही, वह व्यक्ति जो अच्छी तरह बोलता है और अपने कहे अनुसार व्यवहार करता है, वह भी प्रभावशाली होता है। उसके शब्द असरदार होते हैं और उनका सम्मान किया जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 51-52)

गंधकम् : सुगंध रहित। फूल का सार उसकी मधुर सुगंध में निहित है। फूल देखने में आकर्षक हो सकता है, रंग-बिरंगा और चमकीला हो सकता है, लेकिन अगर उसमें सुगंध न हो तो वह फूल कहलाने में विफल हो जाता है। यहाँ उदाहरण बुद्ध के वचनों से दिया गया है — ऐसे व्यक्ति द्वारा बोले गए वचन जो स्वयं उनका अभ्यास नहीं करता। वचन चमकीला और रंगों से परिपूर्ण है, लेकिन उसकी मधुर सुगंध अभ्यास से ही आती है।

सगंधकम् : सुगंधित। यदि कोई फूल रंग-बिरंगा हो, देखने में सुंदर हो और उसकी सुगंध मनमोहक हो, तो उसने फूल के रूप में अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। बुद्ध के वचन के साथ भी ऐसा ही है। अभ्यास करने पर ही उसमें मधुर सुगंध आती है।

अकुब्बतो , सकुब्बतो : ये दो शब्द बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप पर ज़ोर देते हैं। बुद्ध का मार्ग केवल आस्था का धर्म नहीं है। यदि ऐसा होता, तो मुक्ति के लिए केवल बाहरी देवी-देवताओं या उद्धारकों पर निर्भर रहना पड़ता। परन्तु बुद्ध के वचन के संदर्भ में, सबसे आवश्यक है अभ्यास। बुद्ध के वचन की 'सुंदरता' या 'मधुरता' अभ्यास से ही आती है। यदि कोई व्यक्ति केवल बुद्ध के वचन का

उच्चारण करे, परन्तु उसका अभ्यास न करे — यदि वह अकुब्बतो है — तो वह एक चमकीले रंग के फूल के समान है जिसमें सुगंध नहीं है। परन्तु यदि वह सकुब्बतो है — बुद्ध के वचन का अभ्यास करने वाला व्यक्ति — तो वह एक आदर्श फूल बन जाता है — रंग और रूप में सुंदर, और अपनी मधुर सुगंध में भी।

(धम्मपद 51, 52) <<<< पिछला ॥ श्लोक 53 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 54, 55)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 53 - विशाखा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 53 - विशाखा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यथापी पुप्फरसिम्हा
kayira malagune bahu
evam jatena maccena
kattabbam kusalam bahum(1).

श्लोक 53 : जैसे एक कुशल फूल विक्रेता फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बना सकता है, वैसे ही जन्म और मृत्यु के अधीन व्यक्ति (धन से, विश्वास और उदारता से) बहुत अच्छा काम कर सकता है।

---

1. kattabbam kusalam bahum: बहुत से अच्छे कार्य किए जा सकते हैं। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है कि धन से, विश्वास और उदारता से अनेक पुण्य कर्म किए जाने चाहिए।

विशाखा की कहानी

सावत्थी में पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दाता विशाखा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (53) कहा।

विशाखा, भद्दिया के एक धनी व्यक्ति दानंचया और उनकी पत्नी सुमनदेवी की पुत्री और राजा बिम्बिसार के राज्य के पाँच अत्यंत धनी व्यक्तियों में से एक मेंडक की पोती थीं। जब विशाखा सात वर्ष की थीं, तब बुद्ध भद्दिया की यात्रा पर आए। उस अवसर पर, धनी व्यक्ति मेंडक विशाखा और उनके पाँच सौ साथियों को बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने साथ ले गए। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, विशाखा, उनके दादा और उनके सभी पाँच सौ साथियों ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।

जब विशाखा बालिग हुई, तो उसका विवाह श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति मिगारा के पुत्र पुन्नवादाहन से हुआ। एक दिन, जब मिगारा भोजन कर रहे थे, एक भिक्षु उनके घर भिक्षा मांगने आया; लेकिन मिगारा ने भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया। यह देखकर विशाखा ने भिक्षु से कहा, "महोदय, मुझे क्षमा करें, मेरे ससुर केवल बचा हुआ भोजन खाते हैं।" यह सुनकर मिगारा क्रोधित हो गए और उन्हें अपने घर से चले जाने को कहा। लेकिन विशाखा ने कहा कि वह नहीं जाएंगी, और वह अपने पिता द्वारा भेजे गए आठ धनी बुजुर्ग

पुरुषों को बुलवाएंगी जो उनके साथ आए थे और उन्हें सलाह देने आए थे। यह निर्णय उन्हें करना था कि वह दोषी हैं या नहीं। जब बुजुर्ग आए, तो मिगारा ने उनसे कहा, "जब मैं सोने के कटोरे में दूध के साथ चावल खा रहा था, तब विशाखा ने कहा कि मैं केवल गंदगी और मैल खा रहा हूँ। इस अपराध के लिए, मैं उसे घर से निकाल रहा हूँ।" तब विशाखा ने आगे कहा: "जब मैंने अपने ससुर को भिक्षा मांगने खड़े भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा करते देखा, तो मैंने मन ही मन सोचा कि मेरे ससुर इस जन्म में कोई पुण्य कर्म नहीं कर रहे हैं। वे केवल अपने पिछले अच्छे कर्मों का फल भोग रहे हैं। इसलिए मैंने कहा, 'मेरे ससुर तो केवल बचा हुआ भोजन खाते हैं।' महोदय, अब आप क्या सोचते हैं, क्या मैं दोषी हूँ?" बड़ों ने निर्णय लिया कि विशाखा दोषी नहीं हैं। तब विशाखा ने कहा कि उन्हें बुद्ध की शिक्षाओं में पूर्ण और अटूट आस्था है, इसलिए वे वहाँ नहीं रह सकतीं जहाँ भिक्षुओं का स्वागत न हो; और यह भी कि यदि उन्हें भिक्षुओं को भिक्षा देने और अन्य भेंट चढ़ाने के लिए घर में आमंत्रित करने की अनुमति नहीं दी गई, तो वे घर छोड़ देंगी। अतः उन्हें बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर में आमंत्रित करने की अनुमति दी गई।

अगले दिन, बुद्ध और उनके शिष्यों को विशाखा के घर आमंत्रित किया गया। जब भिक्षा देने का समय हुआ, तो विशाखा ने अपने ससुर को संदेश भेजा कि वे भी भिक्षा देने में शामिल हों; लेकिन वे नहीं आए। भोजन समाप्त होने के बाद, उन्होंने फिर से संदेश भेजा, इस बार अपने ससुर से अनुरोध किया कि वे बुद्ध के प्रवचन को सुनने में उनके साथ शामिल हों। उनके ससुर ने सोचा कि उन्हें दूसरी बार मना नहीं करना चाहिए। लेकिन उनके तपस्वी गुरु, निगंथों ने उन्हें जाने नहीं दिया; हालांकि, उन्होंने उन्हें पर्दे के पीछे से सुनने की अनुमति दे दी। बुद्ध का प्रवचन सुनने के बाद मिगारा ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। वे बुद्ध और अपनी बहू के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे। इतनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, उन्होंने घोषणा की कि अब से विशाखा उनके लिए माता के समान होंगी, और विशाखा मिगारामता के नाम से जानी जाने लगीं।

विशाखा के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, और उनके सभी पुत्र-पुत्रियों और नाती-पोतों के भी दस-दस पुत्र और दस-दस पुत्रियाँ थीं। विशाखा के पास एक अत्यंत मूल्यवान रत्नजड़ित वस्त्र था, जो उनके पिता ने उन्हें विवाह उपहार में दिया था। एक दिन, विशाखा अपने दल के साथ जेतवन मठ गईं। मठ पहुँचने पर उन्होंने पाया कि उनका रत्नजड़ित वस्त्र बहुत भारी था। इसलिए उन्होंने उसे उतारकर अपनी शॉल में लपेट लिया और दासी को उसे संभाल कर रखने के लिए दे दिया। दासी उसे अनमने ढंग से मठ में ही छोड़ गई। पूज्य आनंद की यह प्रथा थी कि वे अपने किसी भी शिष्य द्वारा छोड़ी गई वस्तु का ध्यान रखते थे। विशाखा ने दासी को मठ वापस भेजते हुए कहा, "जाओ और रत्नजड़ित वस्त्र को ढूँढ़ो, लेकिन यदि पूज्य आनंद ने उसे पहले ही ढूँढ़ लिया हो और कहीं रख दिया हो तो उसे वापस मत लाना; मैं यह रत्नजड़ित वस्त्र पूज्य आनंद को दान करती हूँ।" लेकिन पूज्य आनंद ने उनका दान स्वीकार नहीं किया। इसलिए विशाखा ने रत्नजड़ित लबादा बेचकर उससे प्राप्त धन दान करने का निर्णय लिया। लेकिन कोई भी उस रत्नजड़ित लबादे को खरीदने में सक्षम नहीं था। इसलिए विशाखा ने उसे नौ करोड़ एक लाख में वापस खरीद लिया। इस धन से उन्होंने शहर के पूर्वी भाग में एक मठ बनवाया; यह मठ बाद में पुब्बाराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अभिषेक संस्कार के बाद उसने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बुलाया और उस रात उन्हें बताया कि उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हो गई हैं और अब उसकी कोई इच्छा नहीं बची है। फिर उसने हर्षोल्लास के पाँच श्लोक गाते हुए मठ के चारों ओर चक्कर लगाया। कुछ भिक्षुओं ने उसे गाते हुए सुना और बुद्ध को बताया कि विशाखा पहले जैसी नहीं रही और वह मठ के चारों ओर गाते हुए चक्कर लगा रही है। उन्होंने बुद्ध से पूछा, "क्या वह पागल हो गई है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "आज विशाखा की पिछले और वर्तमान जन्मों की सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गई थीं और इस उपलब्धि के कारण वह अत्यंत प्रसन्न और संतुष्ट थीं; विशाखा केवल हर्षोल्लास के कुछ श्लोकों का पाठ कर रही थीं; वह निश्चित रूप से भ्रमित नहीं थीं। विशाखा अपने सभी पिछले जन्मों में हमेशा उदार दानदाता और बुद्धों के सिद्धांतों की प्रबल समर्थक रही थीं। वह अच्छे कर्म करने के लिए अत्यंत इच्छुक थीं और उन्होंने अपने पिछले जन्मों में बहुत अच्छे कार्य किए थे, ठीक उसी प्रकार जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बनाता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 53 : जैसे एक कुशल फूल विक्रेता फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बना सकता है, वैसे ही जन्म और मृत्यु के अधीन व्यक्ति (धन से, विश्वास और उदारता से) बहुत अच्छा काम कर सकता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा की कहानी

सावत्थी के पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ की प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। विशाखा, भद्दिया के एक धनी व्यक्ति धनंजय और उनकी पत्नी सुमनादेवी की पुत्री और राजा बिम्बिसार के राज्य के पाँच अत्यंत धनी व्यक्तियों में से एक मेन्दक की पोती थीं। जब विशाखा सात वर्ष की थीं, तब बुद्ध भद्दिया आए थे। उस अवसर पर, धनी व्यक्ति मेन्दक विशाखा और उनके पाँच सौ साथियों को अपने साथ बुद्ध को प्रणाम करने के लिए ले गए थे। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, विशाखा,

उनके दादा और उनके सभी पाँच सौ साथियों ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया। जब विशाखा बालिग हुईं, तो उनका विवाह सावत्थी के एक धनी व्यक्ति मिगारा के पुत्र पुन्णवद्धन से हुआ। एक दिन, जब मिगारा भोजन कर रहे थे, एक भिक्षु उनके घर भिक्षा मांगने आया; लेकिन मिगारा ने भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया। यह देखकर विशाखा ने भिक्षु से कहा, "महोदय, मुझे खेद है, मेरे ससुर जी केवल बचा हुआ भोजन ही खाते हैं।" यह सुनकर मिगारा क्रोधित हो गया और विशाखा को अपना घर छोड़ने को कहा। परन्तु विशाखा ने कहा कि वह नहीं जाएगी और अपने पिता द्वारा भेजे गए आठ धनी वृद्ध पुरुषों को बुलवाएगी, जो उसके साथ आए थे और उसे सलाह देने आए थे। उन्हें ही तय करना था कि वह दोषी है या नहीं। जब वृद्ध आए, तो मिगारा ने उन्हें सारी कहानी सुनाई। वृद्धों ने फैसला किया कि विशाखा दोषी नहीं है। तब विशाखा ने कहा कि वह बुद्ध की शिक्षाओं में पूर्ण और अटूट आस्था रखती है, इसलिए वह ऐसी जगह नहीं रह सकती जहाँ भिक्षुओं का स्वागत न हो; और यह भी कि यदि उसे भिक्षुओं को घर में भिक्षा देने और अन्य भेंट चढ़ाने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति नहीं दी गई, तो वह घर छोड़ देगी। अतः उसे बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर में आमंत्रित करने की अनुमति दे दी गई।

अगले दिन, बुद्ध और उनके शिष्यों को विशाखा के घर आमंत्रित किया गया। जब भिक्षा देने का समय हुआ, तो उन्होंने अपने ससुर को संदेश भेजा कि वे भी उनके साथ भोजन करें; लेकिन वे नहीं आए। भोजन समाप्त होने के बाद, उन्होंने फिर से संदेश भेजा, इस बार अपने ससुर से अनुरोध किया कि वे बुद्ध के प्रवचन को सुनने के लिए उनके साथ आएं। उनके ससुर ने सोचा कि उन्हें दूसरी बार मना नहीं करना चाहिए। लेकिन उनके तपस्वी गुरु, निगंठों ने उन्हें जाने नहीं दिया, हालांकि उन्होंने उन्हें पर्दे के पीछे से सुनने की अनुमति दी। बुद्ध का प्रवचन सुनने के बाद मिगार ने सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त किया। वे बुद्ध और अपनी बहू के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे। कृतज्ञ होकर उन्होंने घोषणा की कि अब से विशाखा उनके लिए माता के समान होंगी, और विशाखा मिगारमाता के नाम से जानी जाने लगीं। विशाखा के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, और उनके प्रत्येक संतान और नाती-पोती के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं। विशाखा के पास एक अत्यंत मूल्यवान रत्नजड़ित आभूषण था जो उनके पिता ने उन्हें विवाह उपहार के रूप में दिया था। एक दिन, विशाखा अपने दल के साथ जेतवन मठ गईं। मठ पहुँचने पर, उन्होंने पाया कि उनका रत्नजड़ित आभूषण बहुत भारी है। इसलिए, उन्होंने उसे उतारकर अपनी शॉल में लपेट लिया और दासी को पकड़ने के लिए दे दिया। दासी ने अनमने ढंग से उसे मठ में ही छोड़ दिया। पूज्य आनंद की यह प्रथा थी कि वे अपने किसी भी शिष्य द्वारा छोड़ी गई वस्तुओं की देखभाल करते थे। विशाखा ने दासी को मठ में वापस भेजते हुए कहा, “जाओ और रत्नजड़ित आभूषण ढूंढो, लेकिन यदि पूज्य आनंद ने उसे पहले ही ढूंढ लिया हो और कहीं सुरक्षित रख दिया हो तो उसे वापस मत लाना; मैं यह रत्नजड़ित आभूषण पूज्य आनंद को दान करती हूँ।” लेकिन पूज्य आनंद ने उनका दान स्वीकार नहीं किया। इसलिए विशाखा ने उसे बेचकर उससे प्राप्त राशि दान करने का निर्णय लिया।

लेकिन उस आभूषण को खरीदने की सामर्थ्य रखने वाला कोई नहीं था। इसलिए विशाखा ने उसे नौ अरब एक लाख में वापस खरीद लिया। इस धन से उन्होंने शहर के पूर्वी भाग में एक मठ बनवाया; यह मठ बाद में पुब्बाराम के नाम से जाना जाने लगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 53)

यथा अपि पुप्फरसिम्हा बहु मालगुने कयिरा ,

एवं जतेन मैक्केना बहुं कुसलं कट्टाबं

यथा अपि : जैसे; पुप्परसिम्हा : अनेक फूलों से; बहु : अनेक; मालागुणे : मालाएँ; कयिरा : उत्पन्न करता है; एवं : इसी प्रकार; जातेन मच्चेन : इस संसार में जन्म लेने वाले मनुष्य द्वारा; बहुं [बहु]: अनेक; कुसलं [कुसल]: पुण्य कर्म; कट्टब्बं [कट्टब्ब]: किए जाने चाहिए

एक कुशल मालाकार अनेक प्रकार के फूल लेकर उनसे अलग-अलग लताओं और रंगों से सजी मालाएँ बनाता है। ठीक इसी प्रकार, इस संसार में जन्म लेने वाले सभी लोगों को अपने जीवन में अनेक प्रकार के अच्छे, सार्थक और पुण्य कर्म करने चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 53)

इस श्लोक में माला बनाने वाले की कारीगरी की तुलना सदाचारी जीवन जीने वालों से की गई है। जीवन के कार्यों की तुलना फूलों के समूह से की गई है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन फूलों को सँवारकर अच्छे कर्मों की माला बनाए। यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि जीवन सोने के लिए गुलाबों का बिस्तर नहीं है, बल्कि फूलों का बिस्तर है जिसमें सुंदर फूल खिलते हैं। जीवन का उद्देश्य इन फूलों से सुंदर मालाएँ बनाना है जो संसार को सुशोभित करें। हमारे क्षणिक, नश्वर जीवन का सर्वोत्तम उपयोग अच्छे कर्म करना है जो सभी को सुख प्रदान करें। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि बौद्ध निराशावादी नहीं हैं जो गुलाबों में काँटों का लगातार विलाप करते रहते हैं। वे संसार में जो अच्छा है उसका सर्वोत्तम उपयोग करते हैं, ताकि संसार को और भी बेहतर बनाया जा सके।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 54 और 55

(धम्मपद 53) <<<< पिछला ॥ श्लोक 54 और 55 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 56)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 54 और 55 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 54 और 55 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na pupphagandho pativatameti
na candanam tagara mallika va
satanca gandho pativatameti
सब्बा दिसा सप्पुरिसो1पावयति।

Cadanam tagaram vapi
uppalam atha vassiki
etesam gandhajatanam
silagandho anuttaro.

———————————————————————

श्लोक 54 : फूलों की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जा सकती; न चंदन की, न रोडोडेंड्रोन (तगरा) की, न चमेली (मल्लिका) की; केवल अच्छे लोगों की प्रतिष्ठा ही हवा के विपरीत जा सकती है। सप्पुरिस (नेक लोगों) की प्रतिष्ठा सभी दिशाओं में फैलती है।

———————————————————————

श्लोक 55 : चंदन, रोडोडेंड्रोन, कमल और चमेली (वस्सिका)3 की सुगंध है; परन्तु सद्गुण की सुगंध सभी सुगंधों से श्रेष्ठ है।

———————————————————————

1. सप्पुरिसो/सप्पुरिसा: अच्छे और धर्मपरायण लोग; गुणी व्यक्ति। गुणी लोग श्रेष्ठ (आर्य) और गुणी सांसारिक (कल्याण पुथुज्जन) होते हैं।
2. मल्लिका: अरबी चमेली।
3. vassika: स्पेनिश जैस्मिन।

———————————————————————

आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए एक प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (54) और (55) का उच्चारण किया।

एक शाम जब पूज्य आनंद एकांत में बैठे थे, तब उनके मन में सुगंधों और इत्रों से संबंधित एक प्रश्न आया और वे सोचने लगे: “लकड़ी की सुगंध, फूलों की सुगंध और जड़ों की सुगंध, ये सभी हवा के साथ फैलती हैं, विपरीत दिशा में नहीं। क्या ऐसी कोई सुगंध नहीं है जो हवा के साथ और विपरीत दिशा में भी फैल सके? क्या ऐसी कोई सुगंध नहीं है जो संसार के हर कोने में व्याप्त हो सके?” इस प्रश्न का उत्तर स्वयं दिए बिना, पूज्य आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे उत्तर मांगा। बुद्ध ने कहा, “आनंद, मान लीजिए कि कोई ऐसा व्यक्ति है जो तीन रत्नों (बुद्ध, धम्म, संघ) की शरण लेता है, जो पांच नैतिक नियमों का पालन करता है, जो उदार है और लोभहीन है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी और प्रशंसा के योग्य है। उस गुणी व्यक्ति की ख्याति दूर-दूर तक फैलेगी, और भिक्षु, ब्राह्मण और गृहस्थ सभी उसकी प्रशंसा करेंगे, चाहे वह कहीं भी रहे।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 54 : फूलों की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जा सकती; न चंदन की, न रोडोडेंड्रोन (तगरा) की, न चमेली (मल्लिका) की; केवल अच्छे लोगों की प्रतिष्ठा ही हवा के विपरीत जा सकती है। सप्पुरिस (नेक लोगों) की प्रतिष्ठा सभी दिशाओं में फैलती है।

———————————————————————

श्लोक 55 : चंदन, रोडोडेंड्रोन, कमल और चमेली (वस्सिका) की सुगंध तो होती ही है; परन्तु सद्‌गुण की सुगंध सब सुगंधों से श्रेष्ठ होती है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए एक प्रश्न के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक शाम, ध्यान में लीन होकर, पूज्य आनंद ने निम्नलिखित विचार पर मनन किया: "बुद्ध में तीन उत्कृष्ट सुगंध हैं; अर्थात् चंदन की सुगंध, जड़ों की सुगंध और फूलों की सुगंध। परन्तु ये तीनों सुगंधें केवल हवा के साथ ही चलती हैं। क्या कोई ऐसा पदार्थ संभव है जिसकी सुगंध हवा के विपरीत चलती हो, या क्या कोई ऐसा पदार्थ संभव है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में चलती हो?" तब उनके मन में यह विचार आया: 'इस प्रश्न का उत्तर स्वयं खोजने का क्या लाभ? मैं बुद्ध से ही पूछूंगा, और केवल बुद्ध से ही।' तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा। कहानी इस प्रकार है:

एक शाम पूज्य आनंद गहन ध्यान से उठे और बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, तीन ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी सुगंध केवल हवा के साथ चलती है, विपरीत दिशा में नहीं। वे कौन सी वस्तुएँ हैं? जड़ों की सुगंध, चंदन की सुगंध और फूलों की सुगंध। ये तीन ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी सुगंध केवल हवा के साथ चलती है, विपरीत दिशा में नहीं। लेकिन, पूज्यवर, क्या कोई ऐसी वस्तु भी है जिसकी सुगंध हवा के साथ और विपरीत दिशा में दोनों दिशाओं में चलती हो?"

इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "आनंद, एक ऐसा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ बहती है, एक ऐसा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है।" "परन्तु, पूज्यवर, वह कौन सा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ बहती है, वह कौन सा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है?" "आनंद, यदि इस संसार के किसी गाँव या कस्बे में कोई व्यक्ति बुद्ध की शरण लेता है, धम्म की शरण लेता है, संघ की शरण लेता है; यदि वह जीवन लेने से, बिना दी हुई वस्तु लेने से, देह के पापों में लिप्त होने से और झूठ बोलने से परहेज करता है, और शराब या मादक पदार्थों के सेवन से होने वाली लापरवाही से बचता है; यदि वह गुणी है; यदि वह लोभ के दाग से मुक्त हृदय से धार्मिकतापूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है; यदि वह उदार और दानशील है, यदि वह खुले हाथों से दान करता है, यदि वह दान देने में आनंद लेता है, यदि वह निवेदनों पर ध्यान देता है, यदि वह भिक्षा बाँटने में आनंद लेता है, तो संसार के सभी भागों में भिक्षु उसकी प्रशंसा करते हैं। यदि अमुक गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री बुद्ध की शरण लेता है... यदि वह भिक्षा बाँटने में आनंद लेता है, तो देवता और आत्माएँ उसकी प्रशंसा करते हैं। यदि अमुक गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री शरण लेता है... बुद्ध की शरण में शरण लेना... यदि वह भिक्षा वितरण में आनंद लेता है, तो हे आनंद, ऐसे कर्म ही वह सार हैं जिनकी सुगंध हवा के साथ और विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 54)

पुप्पगन्धो पतिवतं न एति चंदनं तगार मल्लिका वा न

पतिवतं एति शतं गंधो च पतिवतं एति सप्पुरिसो सब्बादिसा पवति

पुप्पगन्धो [पुप्पगन्ध]: फूलों की सुगंध; पटिवातं [पटिवाता]: हवा के विपरीत; न एति : नहीं बहती; चंदनं [चंदन]: चंदन; तगरं [तगर]: लैवेंडर; मल्लिका वा : या चमेली; न : (हवा के विपरीत नहीं बहती); सतं [सत]: (लेकिन बुद्ध जैसे महान व्यक्तियों की); गंधो [गन्ध]: (सद्‌गुणों की) मीठी सुगंध; च पटिवातं एति : हवा के विपरीत बहती है; सप्पुरिसो [सप्पुरिसा]: गुणी व्यक्ति; सब्बादिसा पवाति : सभी दिशाओं में बहती है

दुनिया में कई सुगंधित फूल और खुशबूदार वस्तुएं मौजूद हैं। लेकिन, इन सबकी सुगंध हवा की दिशा में ही फैलती है। चाहे इनकी सुगंध कितनी भी तीव्र क्यों न हो, हवा के विपरीत दिशा में नहीं फैलती। इसके विपरीत, आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति के सद्‌गुणों की सुगंध हर दिशा में फैलती है और सार्वभौमिक रूप से अनुभव की जाती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 55)

चंदनं तगारं वा अपि उप्पलं अथ वासिकी

एतेसं गंधजातं सिलगंधो अनुत्तरो

कैंडानां [कैंडाना]: चंदन की लकड़ी; तगारं [तगारा]: लैवेंडर; वा अपि : भी; उप्पलां [उप्पला]: जल लिली; अथः और पुनः; वासिकी : चमेली; एतेसं गंधजातनं [गंधजातन]: इन सभी सुगंधों में से; सिलगंधो [सिलगंध]: पुण्य की मीठी गंध; अनुत्तरो [anuttar]: सर्वोच्च है

चंदन, लैवेंडर, कमल और चमेली से सुगंध निकलती है। इन सभी सुगंधों में सद्गुण की मधुर सुगंध सबसे श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि सद्गुण की सुगंध सर्वत्र प्रिय है। इसके अलावा, सद्गुण की सुगंध हवा के विपरीत दिशा में भी फैलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 54-55)

[आनंद पर एक टिप्पणी :]

श्लोक 54 और 55 बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कहे थे। बौद्ध धर्म के इतिहास में पूज्य आनंद का एक महत्वपूर्ण स्थान है। बुद्ध द्वारा दिए गए अधिकांश उपदेश पूज्य आनंद द्वारा ही लिखे गए थे। प्रथम सभा में बुद्ध के वचनों की पुष्टि के लिए एकत्रित भिक्षुओं की सभा को उन्होंने ही ये उपदेश सुनाए थे। बौद्ध धर्मग्रंथों में अधिकांश उपदेशों की शुरुआत में बार-बार आने वाला वाक्यांश ' एवं मे सुतं ' (मैंने ऐसा सुना है) इस बात का संकेत है कि ये उपदेश पूज्य आनंद द्वारा उसी रूप में सुनाए गए थे, जैसे उन्होंने बुद्ध के प्रथम प्रवचन के समय सुना था।

आदरणीय आनंद बुद्ध के निजी सेवक थे। वर्तमान में बौद्ध धर्म के नाम से जाना जाने वाला उपदेश मुख्यतः आदरणीय आनंद द्वारा बुद्ध के निरंतर साथी के रूप में एकत्रित उपदेशों का ही परिणाम है। आदरणीय आनंद को कभी-कभी 'बुद्ध वाणी का संजोया' भी कहा जाता है। आदरणीय आनंद को यह उच्च पदवी कैसे प्राप्त हुई, इसका विस्तृत वर्णन बौद्ध साहित्य में मिलता है। बुद्ध के पूर्व बीस वर्षों के उपदेशों के दौरान उनका कोई नियमित सेवक नहीं था। कई भिक्षु बुद्ध की सेवा करते थे और उनके साथ भिक्षा मांगने के लिए अतिरिक्त वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर यात्रा करते थे। इस प्रकार सेवा करने वाले भिक्षु नागसमाला, नागिता, उपवान, सुनक्खत्त, चुंडा, सागत, राधा और मेघिया थे।

एक दिन, जब बुद्ध पूज्य नागसमाला के साथ एक लंबी यात्रा पर निकले और एक चौराहे पर पहुँचे, तो भिक्षु ने एक मार्ग अपनाने का सुझाव दिया, जबकि बुद्ध ने दूसरा मार्ग सुझाया। भिक्षु ने बुद्ध की बात नहीं मानी और अपने चुने हुए मार्ग पर जाने से पहले बुद्ध के कुंड और वस्त्रों को जमीन पर रखने ही वाला था। बुद्ध ने कुंड और वस्त्रों को जमीन पर रखने से पहले ही उसे वापस माँग लिया और दूसरे मार्ग पर चल दिए। अपने चुने हुए मार्ग पर जाने वाले भिक्षु का कुंड और वस्त्र लूट लिए गए और लुटेरों ने उसके सिर पर वार किया। वह खून से लथपथ सिर के साथ बुद्ध के पास लौटा, जहाँ बुद्ध ने उसे उसकी अवज्ञा का स्मरण कराया और सांत्वना दी।

एक अन्य दिन, जब बुद्ध पूज्य मेघिया के साथ जंतु गाँव जा रहे थे, तब मेघिया ने एक आम के बाग में जाकर ध्यान करने का निर्णय लिया और बुद्ध को अपना कुंड और वस्त्र सौंप दिए। बुद्ध ने उन्हें तीन बार ऐसा न करने की सलाह दी, फिर भी वे अपने मार्ग पर चलते रहे। वे बुद्ध के पास लौट आए और अपने ध्यान में हुई असफलता को स्वीकार किया। जब बुद्ध सावत्थी आए और जेतवन मठ में ठहरे, तो उन्होंने भिक्षुओं की सभा के समक्ष इन भिक्षुओं के आचरण से अपनी असंतुष्टि व्यक्त की और बढ़ती उम्र के कारण एक नियमित परिचारक रखने का सुझाव दिया। उस समय बुद्ध की आयु पचपन वर्ष से अधिक थी।

पूज्य सारिपुत्त तुरंत खड़े हो गए, बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध के नियमित निजी सेवक बनने की पेशकश की। बुद्ध ने उनकी पेशकश को अस्वीकार कर दिया क्योंकि बुद्ध के प्रमुख शिष्य के रूप में उनकी सेवाओं की आवश्यकता कहीं और थी। अन्य प्रमुख शिष्यों ने भी अपनी सेवाएं देने की पेशकश की, लेकिन बुद्ध ने उन्हें भी स्वीकार नहीं किया। तब भिक्षुओं ने पूज्य आनंद को, जो अब तक मौन थे, बुद्ध के निजी सेवक बनने की पेशकश करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि, वे स्वयं बुद्ध द्वारा नामित किए जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बुद्ध ने कहा, "आनंद को दूसरों द्वारा प्रेरित होने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वेच्छा से मेरी सेवा करेगा।"

आदरणीय आनंद ने आठ शर्तों के अधीन बुद्ध की नियमित सेवा करने का वचन दिया। वे शर्तें इस प्रकार थीं: (1) उन्हें बुद्ध द्वारा प्राप्त उत्तम वस्त्र नहीं दिए जाने चाहिए; (2) उन्हें बुद्ध द्वारा प्राप्त स्वादिष्ट भोजन नहीं दिया जाना चाहिए; (3) उन्हें बुद्ध के सुगंधित कक्ष में नहीं ठहराया जाना चाहिए; (4) उन्हें निमंत्रण पर भिक्षा स्वीकार करने के लिए बुद्ध के साथ जाने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए; (5) बुद्ध उनके द्वारा स्वीकार किए गए निमंत्रणों को स्वीकार करेंगे; (6) दूर-दूर से बुद्ध के दर्शन करने आने वाले आगंतुकों को उनके साथ अंदर जाने की अनुमति दी जानी चाहिए; (7) उन्हें किसी भी संदेह के स्पष्टीकरण के लिए बुद्ध से परामर्श करने की अनुमति दी जानी चाहिए; और (8) उन्हें बुद्ध द्वारा उनकी अनुपस्थिति में दिए गए उपदेशों के बारे में बताया जाना चाहिए।

बुद्ध द्वारा इन आठ शर्तों को स्वीकार करने के बाद, पूज्य आनंद बुद्ध के नियमित सेवक बन गए। तब से वे बुद्ध की सेवा करने लगे और उन्हें गर्म और ठंडा पानी तथा तीन प्रकार के दंत चिकित्सा उपकरण उपलब्ध कराते रहे। वे बुद्ध के शरीर की मालिश करते थे और रात भर लकड़ी की मशाल लेकर जागते रहते थे, ताकि बुद्ध उन्हें किसी भी समय बुला सकें। वे प्रतिदिन सुगंधित कक्ष के नौ चक्कर लगाते थे। वे स्वयं ही सुगंधित कक्ष की सफाई और झाड़ू लगाते थे। बुद्ध के पराकाष्ठा बनकर वे उनकी सेवा करते रहे और उनके परछाई की तरह उनके साथ चलते रहे, जब तक कि उनका देहांत नहीं हो गया।

हालाँकि, पूज्य आनंद बुद्ध के जीवनकाल में अर्हत्व प्राप्त नहीं कर सके। वे बुद्ध के देहांत के कुछ सप्ताह बाद अर्हंत बने और पूज्य महा कस्सपा के निमंत्रण पर राजगृह में आयोजित पाँच सौ अर्हंतों की प्रथम सभा में एक प्रमुख व्यक्ति थे, जहाँ उन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं का पाठ किया। इसलिए, कई सूत्र ' एवं मे सुतं ' से शुरू होते हैं।

(धम्मपद 54, 55) <<<< पिछला || श्लोक 56 || अगला >>>> (धम्मपद 57)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 56 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 56 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Appamatto ayam gandho
yayam tagaracandani
yo ca silavatam gandho
vati devesu uttamo.

श्लोक 56 : रोडोडेंड्रोन और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है; परन्तु गुणी व्यक्ति की सुगंध (प्रतिष्ठा) सबसे प्रबल होती है; यह देवों के निवासों तक भी फैलती है।

थेरा (वरिष्ठ) महाकस्सपा की कहानी

राजगृह में वेलुवना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक 56 कहा था।

निरोधसमापत्ती(1) से मुक्त होकर, थेरा महाकस्सपा भिक्षा मांगने के लिए राजगृह नगर के एक गरीब इलाके में गए। उनका उद्देश्य एक गरीब व्यक्ति को निरोधसमापत्ती से अभी-अभी निकले व्यक्ति को भिक्षा देने के फलस्वरूप पुण्य कमाने का अवसर प्रदान करना था। देवताओं के राजा सक्का, थेरा महाकस्सपा को भिक्षा देने का अवसर पाकर, एक गरीब बूढ़े बुनकर का रूप धारण करके अपनी पत्नी सुजाता के साथ राजगृह आए। सुजाता एक बूढ़ी स्त्री के रूप में उनके द्वार पर खड़ी थीं; उस गरीब बूढ़े बुनकर ने थेरा से कटोरा लिया और उसे चावल और करी से भर लिया, और करी की स्वादिष्ट सुगंध पूरे नगर में फैल गई। तब थेरा को यह आभास हुआ कि यह व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य नहीं है, और उन्हें बोध हुआ कि यह स्वयं सक्का ही हैं। सक्का ने यह बात स्वीकार करते हुए कहा कि वह भी गरीब है क्योंकि बुद्धों के समय में उसे किसी को कुछ भी दान करने का अवसर नहीं मिला था। ऐसा कहकर सक्का और उसकी पत्नी सुजाता ने उन्हें उचित सम्मान देकर थेरा छोड़ दिया।

बुद्ध ने अपने मठ से सक्का और सुजाता को जाते हुए देखा और भिक्षुओं को बताया कि सक्का ने थेरा महाकस्सपा को भिक्षा दी है। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि सक्का को कैसे पता चला कि थेरा महाकस्सपा अभी-अभी निरोधसमापत्ति से बाहर आए हैं और उनके लिए भिक्षा देने का यह सही और शुभ समय है। यह प्रश्न बुद्ध के समक्ष रखा गया, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र थेरा महाकस्सपा जैसे गुणी व्यक्ति की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है; यह देवलोक तक भी पहुँचती है। उनकी इस ख्याति के कारण ही सक्का स्वयं उन्हें भिक्षा देने आए हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 56 : रोडोडेंड्रोन और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है; परन्तु गुणी व्यक्ति की सुगंध (प्रतिष्ठा) सबसे प्रबल होती है; यह देवों के निवासों तक भी फैलती है।

---

(1) निरोधसमापत्ति: निरोध की प्राप्ति के बाद निरंतर गहरी मानसिक तल्लीनता (समाधि/सम्मोहन), अर्थात् चार मानसिक खंडों का अस्थायी रूप से रुक जाना।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु महाकस्सपा की कहानी

राजगृह के वेलुवना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन पूज्य कस्सपा सात दिनों की ध्यान साधना से उठे और राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए निरंतर परिक्रमा करने के इरादे से चल पड़े। उसी समय देवताओं के राजा सक्का की पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराएँ भी जागृत हुईं और पूज्य कस्सपा को देने के इरादे से पाँच सौ भाग भिक्षा तैयार करने लगीं। भिक्षा लेकर वे रास्ते में रुक गईं और पूज्य कस्सपा से कहा, "पूज्यवर, यह भिक्षा स्वीकार कीजिए; हम पर एक कृपा कीजिए।" पूज्य कस्सपा ने उत्तर दिया, "तुम सब चली जाओ। मेरा इरादा गरीबों की सहायता करने का है।"

सक्का स्वयं पूज्य भिक्षु को दान देना चाहता था। इसलिए उसने वृद्धावस्था से क्षीण हो चुके एक बूढ़े बुनकर का वेश धारण किया, एक ऐसा बूढ़ा जिसके दांत टूटे हुए थे, बाल सफेद थे और शरीर झुका हुआ और टूटा हुआ था। उसने अप्सरा वेलबोर्न को भी उसी तरह की एक बूढ़ी स्त्री में रूपांतरित कर दिया और अलौकिक शक्ति से बुनकरों की एक गली बनाकर सूत कातने बैठ गया। पूज्य भिक्षु नगर की ओर चल पड़े, मन ही मन सोच रहे थे, "मैं गरीबों पर कृपा करूंगा।" नगर के बाहर इस गली को देखकर उन्होंने चारों ओर देखा और उन दो व्यक्तियों को देखा। उस समय सक्का सूत कात रहा था और वेलबोर्न शटल चला रही थी। जब भिक्षु महाकस्सपा द्वार पर आए, तो सक्का ने पूज्य भिक्षु का कटोरा लेकर कहा, "पूज्य भिक्षु, भोजन मोटा हो या महीन, इस पर ध्यान न दें, बल्कि हम पर कृपा करें।"

तुरंत ही, तरह-तरह की चटनी और करी से भरपूर भिक्षापात्र की सुगंध से राजगृह नगर पूरी तरह महक उठा। पूज्यवर ने मन ही मन सोचा, 'यह व्यक्ति तो कमज़ोर है, पर इसकी भिक्षा सक्का के भोजन के समान शक्तिशाली है। यह कौन हो सकता है?' जब उन्होंने देखा कि यह सक्का ही हैं, तो उन्होंने कहा, 'आपने गरीबों को पुण्य कमाने का अवसर छीनकर घोर अन्याय किया है। आज मुझे भिक्षा देकर कोई भी गरीब व्यक्ति सेनापति या कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त कर सकता है। क्या मुझसे भी गरीब कोई है, पूज्यवर?' 'आप देवताओं के लोक में इतनी शान-शौकत का आनंद लेते हुए गरीब कैसे हो गए?'

"आदरणीय, यह स्पष्टीकरण है। बुद्ध के संसार में प्रकट होने से पहले मैंने पुण्य कर्म किए थे। बुद्ध के संसार में प्रकट होने पर समान पद के तीन देवताओं का पुनर्जन्म हुआ, जिन्होंने पुण्य कर्मों के कारण मुझसे भी अधिक यश प्राप्त किया। जब ये देवता मेरे समक्ष कहते हैं, 'चलो उत्सव मनाते हैं,' और दासियों को लेकर सड़क पर जाते हैं, तो मैं तुरंत अपने घर में प्रवेश कर जाता हूँ। उनके व्यक्तित्व का यश मेरे व्यक्तित्व पर आभास करा देता है, परन्तु मेरे व्यक्तित्व का यश उनके व्यक्तित्व पर आभास नहीं करा पाता। आदरणीय, मुझसे अधिक निर्धन कौन है?" "यदि यह सत्य है, तो अब से मुझे भिक्षा देकर धोखा देने का प्रयास न करें।" "क्या मैंने आपको छल से भिक्षा देकर पुण्य अर्जित किया है या नहीं?" "हाँ, आपने पुण्य अर्जित किया है।" "यदि यह सत्य है, आदरणीय, तो पुण्य कर्म करना मेरा परम कर्तव्य है।" ऐसा कहकर सक्का ने आदरणीय को प्रणाम किया और सुजाता के साथ आदरणीय की परिक्रमा की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 56)

यो अयं तगारा चंदनि अयं गंधो अप्पमट्टो ,

शीलवतं यो च गंधो उत्तमो देवेसु वती

यो अयं : यह जो भी है; तगर चंदनी : लैवेंडर और चंदन से जुड़ी सुगंध; अयं : वह (सुगंध); अप्पमत्तो [अप्पमत्त]: केवल थोड़ी सी है; सीलवतं [सीलवत]: गुणी लोगों की; यो च गंधो [गंध]: यदि कोई मीठी सुगंध है; उत्तमो [उत्तम]: वह सर्वोच्च है; देवेसु : देवताओं या स्वर्ग लोकों के बीच; वात्ति : (यह) फैलती है

तगारा और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है। क्यों? क्योंकि यह इसी संसार तक सीमित है। ऐसी सुगंध केवल पृथ्वी पर ही फैल सकती है। इस प्रकार यह बहुत हल्की सुगंध है। लेकिन, इसके विपरीत, सद्गुण की मीठी सुगंध सर्वोच्च है, क्योंकि यह न केवल पृथ्वी पर फैलती है, बल्कि उच्चतम स्वर्ग तक भी पहुँचती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 56)

गंधो [गंध]: इत्र; सुगंध। कई श्लोकों में बुद्ध ने चंदन, लैवेंडर और चमेली जैसी पारंपरिक सुगंधों के विपरीत सद्गुण की सुगंध की तुलना की है। सद्गुण की मधुर सुगंध के सामने इन पारंपरिक सुगंधों की सुगंध बहुत कम है। यह उपमा बौद्धों की भक्तिमय रस्मों में भी प्रचलित है, जहाँ बुद्ध के सद्गुणों के सम्मान में उनकी वेदी पर धूप चढ़ाई जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 57

(धम्मपद56) <<<< पिछला|| धम्मपद57 ||अगला >>>> (धम्मपद 58 और 59)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 57 - गोधिकत्थेरापरिनिब्बान वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 57 - गोधिकत्थेरापरिनिब्बान वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Tesam sampannasilanam
अप्पामदविहारिनम
सम्मदन्ना विमुत्तनम
Maro maggam na vindati.

श्लोक 57 : मारा उन लोगों द्वारा अपनाए गए मार्ग को नहीं खोज सकता जो सद्गुणों से संपन्न हैं, जो सचेत रूप से जीवन जीते हैं और सही ज्ञान द्वारा नैतिक विकारों से मुक्त हो चुके हैं।(1)

---

1. नैतिक विकारों को दूर करने वाले अरहत पुनर्जन्म के अधीन नहीं होते; इसलिए मारा, अपनी सारी शक्ति के बावजूद, यह पता नहीं लगा सकता कि ऐसे अरहत मृत्यु के बाद कहाँ जाते हैं।

थेरा (वृद्ध) गोधिका की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा गोधिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (57) कहा।
एक बार थेरा गोधिका मगध के इसिगिली पर्वत की तलहटी में एक शिलाखंड पर शांति और अंतर्दृष्टि विकास का गहन अभ्यास कर रहे थे। जब उन्होंने एकाग्र एकाग्रता (ध्यान) प्राप्त कर ली, तो वे अत्यंत बीमार पड़ गए; इससे उनके अभ्यास की प्रभावशीलता कम हो गई। बीमारी के बावजूद, उन्होंने निरंतर प्रयास जारी रखा; लेकिन हर बार जब वे कुछ प्रगति कर रहे होते, तो वे बीमारी से घिर जाते। इस प्रकार उन्हें छह बार यह कष्ट सहना पड़ा। अंततः, उन्होंने ठान लिया कि वे सभी बाधाओं को पार करके अर्हतत्व प्राप्त करेंगे, चाहे उन्हें मरना ही क्यों न पड़े। इसलिए, बिना विश्राम किए उन्होंने निरंतर लगन से अभ्यास जारी रखा; अंत में उन्होंने अपना गला काटकर प्राण त्यागने का निश्चय किया; मृत्यु के क्षण में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया।
जब मारा को पता चला कि थेरा गोधिका का निधन हो गया है, तो उसने यह जानने की कोशिश की कि थेरा का पुनर्जन्म कहाँ हुआ होगा, लेकिन वह उन्हें ढूंढ नहीं पाया। इसलिए, एक युवक का रूप धारण करके, मारा बुद्ध के पास गया और उनसे थेरा गोधिका के बारे में पूछा। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "थेरा गोधिका के गंतव्य के बारे में जानना तुम्हारे लिए व्यर्थ होगा; क्योंकि नैतिक दोषों से मुक्त होकर वे अरहत बन गए थे। हे मारा, तुम जैसे व्यक्ति, अपनी सारी शक्ति के बावजूद, यह पता नहीं लगा पाओगे कि ऐसे अरहत मृत्यु के बाद कहाँ जाते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 57 : जो लोग सद्गुणों से संपन्न हैं, जो सचेत रूप से जीवन जीते हैं और सही ज्ञान द्वारा नैतिक विकारों से मुक्त हो चुके हैं, उनके द्वारा अपनाए गए मार्ग को मारा नहीं खोज सकता।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय गोधिका की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य गोधिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब पूज्य गोधिका माउंट इसिगिली के ब्लैक रॉक में निवास कर रहे थे, तब वे सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी थे, ध्यान के अभ्यास से उन्होंने 'मन की शांति' प्राप्त कर ली थी। लेकिन कर्तव्यपरायणता के कारण उन्हें एक विशेष रोग हो गया और वे 'अज्ञान' की मानसिक शांति से विमुख हो गए। दूसरी बार, तीसरी बार और कुल मिलाकर छह बार वे मानसिक शांति की अवस्था में प्रवेश करते और उससे विमुख हो जाते। सातवीं बार जब वे मानसिक शांति की अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं छह बार मानसिक शांति की अवस्था से विमुख हो चुका हूँ। जो मानसिक शांति की अवस्था से विमुख हो जाता है, उसका भविष्य अनिश्चित है। अब समय आ गया है कि मैं उस्तरे का प्रयोग करूँ।"

तदनुसार, उन्होंने अपने बाल मुंडवाने वाला उस्तरा उठाया और अपने पलंग पर लेट गए, मानो वे अपना प्राण त्यागना चाहते हों। मारा ने उनका इरादा भांप लिया और मन ही मन सोचा, "यह भिक्षु उस्तरे का प्रयोग करना चाहता है। जो इस प्रकार उस्तरे का प्रयोग करते हैं, वे जीवन के प्रति उदासीन होते हैं। ऐसे पुरुष, पारलौकिकता प्राप्त करके, अर्हतत्व पाते हैं। परन्तु यदि मैं उसे ऐसा करने से रोकने का प्रयास करूँ, तो वह मेरी बातों पर ध्यान नहीं देगा। इसलिए मैं बुद्ध से उसे रोकने का आग्रह करूँगा।" उसी क्षण पूज्य भिक्षु ने अपनी छुरी निकाली। बुद्ध ने मारा को देखकर कहा, "स्थिर रहने वाले ऐसे ही होते हैं, और वे जीवन की लालसा नहीं करते। गोधिका ने तृष्णा को जड़ से उखाड़ फेंका है और निर्वाण प्राप्त किया है।" अब बुद्ध, अनेक भिक्षुओं के साथ, उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य भिक्षु लेटे थे और अपनी छुरी का प्रयोग किया। उस समय, दुष्ट मारा, धुएँ के स्तंभ या अंधकार के समूह की तरह, पूज्य गुरु की चेतना को चारों दिशाओं में खोज रहा था। वह सोच रहा था, "उनकी पुनर्जन्म-चेतना कहाँ स्थिर हो गई है?" बुद्ध ने भिक्षुओं को धुएँ के स्तंभ और अंधकार के समूह की ओर इशारा करते हुए कहा, "भिक्षुओं, यह दुष्ट मारा है, जो उत्तम युवक गोधिका की चेतना को खोज रहा है। वह सोच रहा है, 'उत्तम युवक गोधिका की चेतना कहाँ स्थिर हो गई है?' परन्तु, भिक्षुओं, उत्तम युवक गोधिका की चेतना स्थिर नहीं हुई है। क्योंकि, भिक्षुओं, उत्तम युवक गोधिका निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।" पूज्य गुरु की चेतना के स्थिर होने का स्थान न पाकर मारा बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "गोधिका कहाँ चले गए हैं?"

बुद्ध ने मारा से कहा, "गोधिका ने व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंका है और निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" फिर बुद्ध ने कहा, "हे दुष्ट, उस स्थान से तुम्हारा क्या लेना-देना है जहाँ उत्तम युवक गोधिका की चेतना स्थिर हो गई है? तुम्हारे जैसे सौ-हजार भी उसे कभी नहीं पा सकते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 57)

सम्पन्नशीलानं अप्पमदाविहारिनं सम्मदन्न

विमुत्तनं तेसं मग्गं मारो न विंदति

सम्पन्नसिलानां [sampannsīlāna]: व्यवहार में उत्तम; अप्पमदविहारिनं [अप्पमदविहारिन]: सचेत रहना; सम्मदन्या : पूरी तरह से जानने वाला; विमुत्तनं [विमुत्तन]: दोषों से मुक्त; टेसां [टेसा]: (का) उन महान लोगों का; मग्गां [मग्गा]: निशान, वह रास्ता जो उन्होंने अपनाया; मारो : दुष्ट (शैतान); न विन्दति : (नहीं खोजता) या ढूंढ़ता है

उन श्रेष्ठ पुरुषों का, जो आचरण में परिपूर्ण हैं, निरंतर सजग रहते हैं, और अपने भीतर के अनुभव से पूर्णतः अवगत हैं, दुष्ट मारा उनके भाग्य को नहीं जानता। मारा केवल आलसी मृतकों का ही पता लगा सकता है। वह अमरत्व प्राप्त कर चुके लोगों का पता नहीं लगा सकता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 57)

सम्मदञ्ञाविमुत्तनं : 'अज्ञान' के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करना। इसका तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो अपने भीतर के अनुभव के प्रति पूर्णतः सजग होकर 'मुक्ति' (विमुक्ति) प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति पंच प्रकार की मुक्ति प्राप्त करता है। ये हैं: उन्मूलन द्वारा मुक्ति; विपरीत तत्वों के अभ्यास द्वारा मुक्ति; वियोग द्वारा मुक्ति; स्थाईकरण द्वारा मुक्ति; और वियोग द्वारा मुक्ति।

अञ्ञा का वास्तविक अर्थ है 'अज्ञान'। यद्यपि इसका सामान्य अनुवाद ज्ञान के रूप में किया जाता है, यह अवधारणाओं को ग्रहण करना नहीं है। यह अवधारणाओं से मुक्ति है। यह विषय दृष्टि और ज्ञान के विषयों से जुड़ाव का अंत है। यह ज्ञात वस्तु के प्रति जागरूकता के बजाय जानने की प्रक्रिया के प्रति जागरूकता है, जो तृप्ति का कारण बनती है। यह मानसिक शांति है। इसे 'ज्ञान का अंत' (विञ्ञस्स निरोध) कहा जाता है। इसे 'अव्यक्त ज्ञान' (अनिदासन विज्ञान) भी कहा जाता है। सभी विषय ज्ञान मार के वश में आते हैं। इस विषय ज्ञान से मुक्ति को मार नहीं जानता।

मारो : बौद्ध धर्म में ' मारा ' की पाँच अवधारणाएँ हैं :

स्वयं मृत्यु (maccu māra);

पांच समुच्चय (खंड मारा);

अशुद्धियाँ (kilesa māra);

मानसिक निर्माण (संखारा मारा);

एक देवता जिसे मारा कहा जाता है, जो हमेशा संसार में आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डालने का प्रयास करता है (देवपुत्त मारा)। इस विशेष श्लोक और कहानी में, 'मारा' शब्द का प्रयोग 'मारा' नामक इस दुष्ट शक्ति के लिए किया गया है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 58 और 59

(धम्मपद57) <<<< पिछला|| धम्मपद 58 और 59 ||अगला >>>> (धम्मपद60)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 58 और 59 - गारहदिन्ना वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 58 और 59 - गारहदिन्ना वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा शंकरधनस्मिम्
ujjhitasmim mahapathe
padumam tattha jayetha
सुचिगंधम मनोरमम।

एवम शंकरभूतेषु(1)
andhabhute puthujjane(2)
atirocati pannaya
sammasambuddhasavako.

श्लोक 58-59 : जैसे सड़क पर फेंके गए कूड़े के ढेर पर एक सुगंधित और सुंदर कमल का फूल उग सकता है, वैसे ही प्राणियों के कूड़े के ढेर से बुद्ध का एक शिष्य प्रकट हो सकता है, जो अपनी बुद्धि से अंधे (अज्ञानी) सांसारिक लोगों से बहुत ऊपर प्रकाशमान होता है।

---

1. शंकरभूतेषु: प्राणियों का कूड़ा-कचरा ढेर।
2. andhabhute puthujjane: अंधे सांसारिक। सांसारिक लोग अंधों के समान हैं क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी है।

गराहादिन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (58) और (59) का उच्चारण किया, जिसमें गरहदिन्ना नामक एक धनी व्यक्ति और कमल के फूलों के चमत्कार का उल्लेख किया गया है।

श्रावस्ती में सिरिगुत्त और गरहदिन्ना नाम के दो मित्र रहते थे। सिरिगुत्त बुद्ध के अनुयायी थे और गरहदिन्ना निगंथों के अनुयायी थे, जो बौद्धों के शत्रु थे। निगंथों के कहने पर गरहदिन्ना अक्सर सिरिगुत्त से कहते थे, "बुद्ध का अनुसरण करने से तुम्हें क्या लाभ होता है? आओ, मेरे गुरुओं के अनुयायी बनो।" बार-बार ऐसा कहे जाने पर सिरिगुत्त ने गरहदिन्ना से पूछा, "बताओ, तुम्हारे गुरु क्या जानते हैं?"

इस पर गरहदिन्ना ने उत्तर दिया कि उनके गुरु सब कुछ जानते हैं; अपनी महान शक्ति से वे भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के साथ-साथ दूसरों के मन के विचार भी जानते हैं। इसलिए, सिरिगुत्त ने निगंथों को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया।
सिरिगुट्टा निगंथों के बारे में सच्चाई जानना चाहता था, कि क्या सचमुच उनमें दूसरों के मन की बात जानने की शक्ति थी। इसलिए उसने एक लंबी, गहरी खाई खोदी और उसे मल-मूत्र से भर दिया। फिर खाई के ऊपर अस्थिर ढंग से कुर्सियाँ रखी गईं; और बड़े-बड़े खाली बर्तन लाकर कपड़े और केले के पत्तों से ढक दिए गए ताकि वे चावल और करी से भरे हुए प्रतीत हों। जब निगंथ आए, तो उनसे एक-एक करके अंदर आने, अपनी-अपनी सीटों के पास खड़े होने और एक साथ बैठने का अनुरोध किया गया। जैसे ही वे सब बैठे, पतली रस्सियाँ टूट गईं और निगंथ गंदी खाई में गिर गए। तब सिरिगुट्टा ने उनका मज़ाक उड़ाते हुए कहा, "तुम भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल क्यों नहीं जानते? तुम दूसरों के मन की बात क्यों नहीं जानते?" तब सभी निगंथ डर के मारे भाग गए।
गराहादिन्ना स्वाभाविक रूप से सिरिगुट्टा पर क्रोधित हो गया और दो सप्ताह तक उससे बात करने से इनकार कर दिया। फिर उसने सिरिगुट्टा से बदला लेने का निश्चय किया। उसने ऐसा दिखाया कि अब उसका क्रोध शांत हो गया है, और एक दिन सिरिगुट्टा से कहा कि वह उसकी ओर से बुद्ध और उनके पाँच सौ शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित करे। इस प्रकार सिरिगुट्टा बुद्ध के पास गया और उन्हें गराहादिन्ना के घर आमंत्रित किया। उसी समय उसने बुद्ध को बताया कि उसने गराहादिन्ना के गुरु निगंथों के साथ क्या किया था। उसने यह आशंका भी व्यक्त की कि यह निमंत्रण प्रतिशोध हो सकता है, इसलिए इसे उचित विचार-विमर्श के बाद ही स्वीकार किया जाना चाहिए।
बुद्ध ने अपनी असाधारण शक्ति से यह जान लिया था कि यही वह अवसर है जब दोनों मित्र सोतापत्ति फल प्राप्त करेंगे, इसलिए उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। गरहदिन्ना ने एक खाई खोदी, उसमें धधकते कोयले भर दिए और उसे चटाइयों से ढक दिया। उन्होंने कुछ खाली बर्तन भी कपड़े और केले के पत्तों से ढक कर रख दिए ताकि वे चावल और करी से भरे हुए प्रतीत हों। अगले दिन, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ एक कतार में आए। जब बुद्ध ने खाई के ऊपर बिछी चटाई पर कदम रखा, तो चटाई और धधकते कोयले चमत्कारिक रूप से गायब हो गए, और पाँच सौ कमल के फूल, जिनमें से प्रत्येक बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था, बुद्ध और उनके शिष्यों के बैठने के लिए उग आए।
इस चमत्कार को देखकर गरहदिन्ना बहुत घबरा गया और उसने श्रीगुत्त से अस्पष्ट स्वर में कहा, "हे मित्र, मेरी सहायता कीजिए। प्रतिशोध की भावना में मैंने सचमुच बहुत बड़ा पाप किया है। मेरे बुरे इरादों का आपके गुरु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मेरी रसोई के सारे बर्तन खाली हैं। कृपया मेरी मदद कीजिए।" तब श्रीगुत्त ने गरहदिन्ना को जाकर बर्तन देखने को कहा। जब गरहदिन्ना ने सारे बर्तन भोजन से भरे हुए पाए तो वह चकित रह गया और साथ ही बहुत राहत और प्रसन्नता भी महसूस की। इस प्रकार वह भोजन बुद्ध और उनके शिष्यों को अर्पित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने इस पुण्य कर्म के लिए आभार व्यक्त किया और फिर कहा, "अज्ञानी सांसारिक लोग, जो ज्ञानहीन हैं, बुद्ध, धम्म और संघ के अद्वितीय गुणों को नहीं जानते, इसलिए वे अंधों के समान हैं; परन्तु ज्ञानी, जो ज्ञानी हैं, दृष्टिहीन लोगों के समान हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 58-59 : जैसे सड़क पर फेंके गए कूड़े के ढेर पर एक सुगंधित और सुंदर कमल का फूल उग सकता है, वैसे ही प्राणियों के कूड़े के ढेर से बुद्ध का एक शिष्य प्रकट हो सकता है, जो अपनी बुद्धि से अंधे (अज्ञानी) सांसारिक लोगों से बहुत ऊपर प्रकाशमान होता है।

प्रवचन के अंत में, गरहदिन्ना और सिरिगुट्टा दोनों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।
अध्याय चार का अंत: फूल (पुप्फवग्गा)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गराहादिन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने गरहदिन्ना नामक एक धनी व्यक्ति और कमल के फूलों के चमत्कार के संदर्भ में ये श्लोक कहे। एक समय सावत्थी में दो मित्र रहते थे, सिरिगुत्त और गरहदिन्ना। सिरिगुत्त बुद्ध के गृहस्थ शिष्य थे, जबकि गरहदिन्ना निगंठ संन्यासियों के अनुयायी थे। निगंठ संन्यासी गरहदिन्ना से बार-बार कहते थे, “अपने मित्र सिरिगुत्त के पास जाओ और कहो, ‘तुम गौतम भिक्षु के पास क्यों जाते हो? उनसे तुम्हें क्या लाभ की उम्मीद है?’ क्यों न तुम उन्हें समझाओ कि वे हमारे पास आएं और हमें दान दें?”
गरहदिन्ना ने उनकी बात सुनी, बार-बार सिरिगुत्त के पास गए, और जहाँ भी वे उन्हें खड़े या बैठे पाते, उनसे इस प्रकार कहते, “मित्र, गौतम भिक्षु से तुम्हें क्या लाभ है? उनसे मिलने से तुम्हें क्या लाभ की उम्मीद है? क्या तुम्हें मेरे अपने श्रेष्ठ गुरुओं के पास जाकर उन्हें दान नहीं देना चाहिए?”

सिरिगुट्टा ने अपने मित्र की बातें सुनीं और कई दिनों तक चुप रहे। लेकिन एक दिन उनका धैर्य टूट गया और उन्होंने गरहदिन्ना से कहा, “मित्र, तुम लगातार मेरे पास आते हो और जहाँ भी मुझे खड़े या बैठे पाते हो, मुझसे यही कहते हो, ‘भिक्षु गौतम के पास जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? मेरे परम गुरुओं के पास जाओ और उन्हें दान दो।’ अब मुझे बस इस प्रश्न का उत्तर दो, ‘तुम्हारे परम गुरु क्या जानते हैं?’” “हे महोदय, ऐसा मत कहिए! मेरे परम गुरुओं को सब कुछ ज्ञात है। वे भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब कुछ जानते हैं। वे सबके विचार, वचन और कर्म जानते हैं। वे हर उस बात को जानते हैं जो हो सकती है और जो नहीं हो सकती।” “ऐसा कहना गलत होगा।” “हाँ, मैं कह रहा हूँ।” “यदि यह सच है, तो तुमने मुझे इतने समय तक इससे अनभिज्ञ रखकर घोर पाप किया है। आज तक मुझे तुम्हारे परम गुरुओं के पास मौजूद ज्ञान की अलौकिक शक्ति के बारे में पता नहीं चला। जाइए, महोदय, और मेरे नाम से अपने परम गुरुओं को आमंत्रित कीजिए।”

गराहादिन्ना नग्न तपस्वियों के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, “मेरे मित्र सिरिगुट्टा आपको कल आमंत्रित करते हैं।” “क्या सिरिगुट्टा ने अपने बारे में आपसे कुछ कहा?” “जी हां, महाराज।” वे प्रसन्न और प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, “हमारा काम हो गया। सिरिगुट्टा के हम पर पूर्ण विश्वास करने के क्षण से हमें क्या लाभ नहीं होगा?”

सिरिगुट्टा का निवास स्थान बड़ा था, और दो घरों के बीच एक लंबी खाली जगह थी। इसलिए उसने यहाँ एक लंबी खाई खुदवाई और उसे गोबर और कीचड़ से भरवा दिया। खाई के दोनों सिरों पर उसने खंभे गाड़वाए और उनसे रस्सियाँ बाँध दीं। उसने कुंदें इस प्रकार लगवाईं कि उनके आगे के पैर ज़मीन पर और पीछे के पैर रस्सियों पर टिके हों, ताकि विधर्मी बैठते ही पीछे की ओर लुढ़क कर सिर के बल खाई में गिर जाएँ। ताकि खाई का कोई निशान दिखाई न दे, उसने कुंदों पर चादरें बिछवा दीं। उसने कई बड़े मिट्टी के बर्तनों को साफ धुलवाकर उनके मुँह केले के पत्तों और कपड़े के टुकड़ों से ढकवा दिया। ये बर्तन, भले ही खाली थे, उसने घर के पीछे रखवा दिए और उन पर चावल की दलिया, उबले चावल के टुकड़े, घी, ताड़ की चीनी और केक के टुकड़े लगा दिए।

सुबह सवेरे गराहादिन्ना जल्दी से सिरिगुट्टा के घर गए और उनसे पूछा, “क्या मेरे आदरणीय गुरुओं के लिए भोजन तैयार है?” “जी हां, मित्र, भोजन तैयार है।” “पर वह कहां है?” गराहादिन्ना ने जवाब दिया, “इन सभी मिट्टी के बर्तनों में चावल की दलिया है, इन सभी में उबले हुए चावल हैं, इन सभी में घी, ताड़ी, केक और अन्य प्रकार के व्यंजन हैं। बैठने की व्यवस्था भी की गई है।” गराहादिन्ना ने कहा, “बहुत अच्छा,” और वे चले गए।

गराहादिन्ना के जाते ही पाँच सौ नग्न तपस्वी आ गए। सिरिगुट्टा घर से बाहर आए, नग्न तपस्वियों को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर, आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए मन ही मन सोचने लगे, “तो आप भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब कुछ जानते हैं! कम से कम आपका समर्थक तो यही कहता है। यदि आप सचमुच यह सब जानते हैं, तो मेरे घर में प्रवेश न करें। क्योंकि यदि आप मेरे घर में प्रवेश भी करते हैं, तो आपके लिए न तो चावल की दलिया तैयार है, न उबले हुए चावल, न ही किसी अन्य प्रकार का भोजन। यदि आप यह सब नहीं जानते और फिर भी मेरे घर में प्रवेश करते हैं, तो मैं आपको गोबर से भरे गड्ढे में फेंकवा दूँगा और फिर आपको लाठियों से पिटवाऊँगा।” ऐसा विचार करने के बाद, उन्होंने अपने साथियों को यह आदेश दिया, “जब आप देखें कि वे बैठने वाले हैं, तो पीछे की ओर अपनी जगह ले लें और सीटों पर बिछी चादरों को खींच लें, कहीं ऐसा न हो कि वे गंदगी से सन जाएँ।” सिरिगुट्टा के विचारानुसार, नग्न तपस्वियों को इस बात का पता नहीं था कि क्या योजना बनाई गई थी। वे खाई में गिर गए और अपमानित हुए।

बदला लेने की योजना बनाकर गरहदिन्ना ने बुद्ध को आमंत्रित किया। बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ गरहदिन्ना के घर गए और द्वार के सामने खड़े हो गए। गरहदिन्ना घर से बाहर आया, पाँच विश्राम करने वाले भिक्षुओं को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए मन ही मन सोचने लगा, “हे पूज्यवर, आप भूत, वर्तमान और भविष्य सब जानते हैं! आप सोलह अलग-अलग तरीकों से सभी प्राणियों के विचारों को समझते हैं! कम से कम आपके समर्थक तो यही कहते हैं। यदि आप सचमुच यह सब जानते हैं, तो मेरे घर में प्रवेश न करें। क्योंकि यदि आप मेरे घर में प्रवेश भी करेंगे, तो आपको न तो चावल की दलिया मिलेगी, न उबले हुए चावल, न ही किसी अन्य प्रकार का भोजन। इसके बजाय मैं आपको कोयले की भट्टी में फेंकवा दूँगा और आपका अपमान करूँगा।”

लेकिन, उनके विचार के विपरीत, एक चमत्कार हुआ। बैलगाड़ी के पहियों जितने बड़े कमल के फूल उग आए और कोयले की भट्टी को चीर डाला। “मैं क्या करूँ?” गरहदिन्ना ने सिरिगुट्टा से पूछा। “क्या तुमने अभी-अभी मुझे कुछ मिट्टी के बर्तन दिखाकर यह नहीं कहा था, ‘ये सभी बर्तन चावल की दलिया से भरे हैं; ये सभी उबले हुए चावल से भरे हैं,’ इत्यादि?” “मैंने जो कहा वह गलत था, गुरुजी। बर्तन खाली हैं।” “कोई बात नहीं। जाओ, उन बर्तनों में चावल की दलिया और अन्य प्रकार के भोजन देखो।” उसी क्षण, जिन बर्तनों पर उन्होंने “चावल की दलिया” शब्द बोला था, वे चावल की दलिया से भर गए, जिन बर्तनों पर उन्होंने “उबले हुए चावल” शब्द बोला था, वे उबले हुए चावल से भर गए, और ऐसा ही अन्य बर्तनों के साथ भी हुआ।

जब गरहदिन्ना ने यह चमत्कार देखा, तो वे आनंद और प्रसन्नता से भर उठे और उनका हृदय आस्था से ओतप्रोत हो गया। उन्होंने अत्यंत श्रद्धा के साथ बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं की सभा में सेवा की। भोजन समाप्त होने पर, गरहदिन्ना ने यह संकेत देते हुए कि वे चाहते हैं कि बुद्ध धन्यवाद के शब्द कहें, अपना कटोरा ले लिया। इस प्रकार गरहदिन्ना बुद्ध के सच्चे शिष्य बन गए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 58)
यथा संकराधनास्मि महापथे उज्जितस्मि
तत्थ सुचिगन्धं मनोरमं पदुमं जायतः
यथा : जैसे; संकारधानास्मिं [संकारधानास्मि]: कूड़े के ढेर में; महापथे उज्जितस्मिं [उज्जितस्मि]: राजमार्ग के किनारे फेंका हुआ; तत्थ : वहाँ; सुचिगंधं [सुचिगंध]: सुगंधित; मनोरमं [मनोरम]: आकर्षक; पद्मं [पदुम]: कमल; जायत : उग सकता है
कोई व्यक्ति सड़क के किनारे कूड़ा फेंक सकता है। उस कूड़े के ढेर में एक सुगंधित कमल उग सकता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 59)
एवं संकरभूतेषु सम्मा संबुद्धसावको
अंधभूते पुथुज्जने पन्याय अतिरोचति
एवं : इसी प्रकार; संकारभूतेसु : जो लोग कदाचार बन गए हैं उनमें; सम्मा सम्बुद्धसावको [सम्बुद्धसावका]: बुद्ध का शिष्य; अंधभूते पुथुज्जने : अंधे सांसारिक लोगों में; पञ्जाय : ज्ञान के माध्यम से; अतिरोचति : अत्यधिक चमकता है
उसी प्रकार, विभिन्न प्रकार के मूर्ख लोगों से बने कूड़े के ढेर में, बुद्ध का शिष्य अन्य सभी से ऊपर चमकता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 58-59)
पदुमं तत्थ जायेत : कमल का उदय होना सर्वथा संभव है। नीच और पतित लोगों में से असाधारण व्यक्ति का उदय, बुद्ध के उपदेशों का एक आवर्ती विषय है। सांसारिक बंधनों से विजय प्राप्त करने वाले ज्ञानी व्यक्ति, जो साधारण लोगों में से उत्पन्न हुए हों, कमल के समान माने जाते हैं। कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी कमल कीचड़ से अछूता रहता है। इन श्लोकों में, ज्ञानी सत्य-साधक की तुलना सड़क किनारे कूड़े के ढेर से निकले कमल से की गई है। कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी कमल सुंदर और सुगंधित होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे भ्रष्ट लोगों में से उत्पन्न संत व्यक्ति।
अतिरोकाति पन्नाय : ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति अत्यधिक प्रकाशमान होता है। बौद्ध धर्म में किसी को भी दोषी नहीं ठहराया जाता, क्योंकि महानता सबसे साधारण दिखने वाले व्यक्ति में भी छिपी होती है, ठीक वैसे ही जैसे कीचड़ भरे तालाबों से कमल खिलते हैं।

अध्याय 5. बालवग्गा: मूर्ख(60-75)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 60

———————————————————————

(धम्मपद 58 और 59) <<<< पिछला|| धम्मपद60 ||अगला >>>> (धम्मपद61)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 60 - अन्नतारपुरिसा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 60 - अन्नतारपुरिसा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
दिघा जगरतो रत्ती(1)
digham santassa yojanam(2)

दिघो बलना संसारो
saddhammam avijanatam.

श्लोक 60 : जागते रहने वाले के लिए रात लंबी होती है; थके हुए यात्री के लिए एक योजन की यात्रा लंबी होती है; सच्चे धम्म (बुद्ध की शिक्षा) से अनभिज्ञ मूर्ख के लिए संसार (पुनर्जन्मों का चक्र) लंबा होता है।

---

1. बलवग्ग: मूर्ख पर अध्याय। बल, पंडित का विलोम है; इसका अर्थ है वे लोग जो अज्ञानी, मूर्ख और मानसिक रूप से मंदबुद्धि हैं। वे सही ढंग से सोच या कार्य नहीं कर सकते।
2. योजना: लंबाई मापने की एक इकाई, लगभग बारह मील।

एक व्यक्ति की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (60) का उच्चारण एक निश्चित युवक और कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में किया।
एक दिन राजा पसेनादि नगर में टहलते हुए निकले तो उनकी नज़र एक सुंदर युवती पर पड़ी जो अपने घर की खिड़की पर खड़ी थी। उन्हें देखते ही वह उस पर मोहित हो गए। उन्होंने युवती को पाने के उपाय खोजने शुरू किए। जब उन्हें पता चला कि वह विवाहित है, तो उन्होंने उसके पति को बुलवाया और उसे महल में सेवा करने के लिए नियुक्त कर लिया। बाद में, राजा ने पति को एक असंभव कार्य सौंपा। युवक को सावत्थी से बारह मील दूर एक स्थान पर जाना था, नागों के देश से कुमुद कमल के फूल और अरुणावती नामक लाल मिट्टी लानी थी और उसी शाम राजा के स्नान के समय सावत्थी वापस लौटना था। राजा की मंशा यह थी कि यदि पति समय पर वापस नहीं लौटा तो उसे मार डाला जाए और युवती को अपने साथ ले जाया जाए।
अपनी पत्नी से जल्दी से भोजन का पैकेट लेकर वह युवक अपने काम पर निकल पड़ा। रास्ते में उसने अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा। उसने कुछ चावल पानी में फेंके और ज़ोर से कहा, "हे इस नदी में निवास करने वाले रक्षक आत्माओं और ड्रैगनों! राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने मुझे उनके लिए कुछ कुमुदा कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाने का आदेश दिया है। मैंने आज अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा; मैंने नदी की मछलियों को भी भोजन कराया; अब मैं आज किए गए अपने अच्छे कर्मों का फल आपके साथ बाँट रहा हूँ। कृपया मेरे लिए कुमुदा कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाएँ।" उसकी यह बात सुनकर ड्रैगनों के राजा ने एक बूढ़े व्यक्ति का रूप धारण किया और कमल और लाल मिट्टी लाकर दे दी।
उस शाम, राजा पसेनादी को डर था कि कहीं उसका युवक समय रहते वापस न आ जाए, इसलिए उन्होंने नगर के द्वार जल्दी बंद करवा दिए। द्वार बंद देखकर युवक ने लाल मिट्टी नगर की दीवार पर रख दी और उस पर फूल चिपका दिए। फिर उसने ऊँचे स्वर में कहा, “हे नागरिकों! साक्षी बनो! मैंने आज राजा के आदेशानुसार अपना कार्य समय पर पूरा कर दिया है। राजा पसेनादी बिना किसी कारण के मुझे मारना चाहते हैं।” इसके बाद, युवक जेतवन मठ की ओर चल पड़ा ताकि वहाँ के शांत वातावरण में शरण लेकर शांति पा सके।
इस बीच, कामुक इच्छाओं से ग्रस्त राजा पसेनादि को नींद नहीं आ रही थी और वे सोचते रहे कि सुबह पति से कैसे छुटकारा पाकर पत्नी को प्राप्त करें। आधी रात के करीब, उन्होंने कुछ अजीबोगरीब आवाजें सुनीं; दरअसल, ये लोहकुंभी निरय में व्यस्त चार व्यक्तियों की दुखभरी आवाजें थीं। उन विचित्र आवाजों को सुनकर राजा भयभीत हो गए। रानी मल्लिका की सलाह पर वे सुबह-सुबह बुद्ध के पास गए। जब बुद्ध को राजा द्वारा रात में सुनी गई चार आवाजों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने राजा को समझाया कि ये चार प्राणियों की आवाजें थीं, जो कश्यप बुद्ध के समय में धनी पुरुषों के पुत्र थे, और अब वे लोहकुंभी निरय में व्यस्त हैं क्योंकि उन्होंने अन्य लोगों की पत्नियों के साथ यौन दुराचार किया था। तब राजा को अपने कर्म की नीचता और दंड की गंभीरता का एहसास हुआ। इसलिए, उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि वे अब किसी अन्य पुरुष की पत्नी की लालसा नहीं करेंगे। “आखिरकार, दूसरे पुरुष की पत्नी के प्रति मेरी तीव्र इच्छा के कारण ही मैं व्याकुल रहा और पूरी रात सो नहीं सका,” उसने विचार किया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजित) ने बुद्ध से कहा, “आदरणीय महोदय, अब मुझे पता चला कि जो सो नहीं पाता उसके लिए रात कितनी लंबी होती है।” पास ही खड़े उस युवक ने भी कहा, “आदरणीय महोदय, क्योंकि मैंने कल एक योजन की पूरी दूरी तय की थी, इसलिए मैं भी जानता हूँ कि थके हुए व्यक्ति के लिए एक योजन की यात्रा कितनी लंबी होती है।”
उनके दोनों कथनों को मिलाकर, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 60 : जागते रहने वाले के लिए रात लंबी होती है; थके हुए यात्री के लिए एक योजन की यात्रा लंबी होती है; सच्चे धम्म (बुद्ध के मार्ग) से अनभिज्ञ मूर्ख के लिए संसार (पुनर्जन्मों का चक्र) लंबा होता है।

प्रवचन के अंत में, युवक ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक खास व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशेष युवक और कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन राजा पसेनादि नगर में टहलते हुए निकले तो उनकी नज़र एक सुंदर युवती पर पड़ी जो अपने घर की खिड़की पर खड़ी थी। उन्हें देखते ही वह उस पर मोहित हो गए। उन्होंने उसे पाने के उपाय खोजने शुरू किए। जब उन्हें पता चला कि वह विवाहित है, तो उन्होंने उसके पति को बुलवाया और उसे महल में सेवा करने के लिए नियुक्त कर लिया। बाद में, राजा ने पति को एक असंभव कार्य सौंपा। उस युवक को सावत्थी से एक योजन (बारह मील) दूर एक स्थान पर जाना था, नागों की भूमि से कुछ कुमुडु (कमल) के फूल और कुछ लाल मिट्टी लानी थी और उसी शाम सावत्थी पहुँचकर राजा के स्नान के समय पर वहाँ पहुँचना था। राजा की मंशा थी कि यदि पति समय पर वापस नहीं लौटा तो उसे मार डाला जाए और उसकी पत्नी को अपने साथ ले जाया जाए। अपनी पत्नी से भोजन का एक पैकेट लेकर युवक जल्दी से अपने कार्य पर निकल पड़ा। रास्ते में उसने अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा और कुछ चावल पानी में फेंकते हुए ज़ोर से कहा, “हे इस नदी में निवास करने वाले रक्षक आत्माओं और नागों! राजा पसेनादि ने मुझे उनके लिए कुछ कुमुदु फूल और अरुणावती (लाल मिट्टी) लाने का आदेश दिया है। मैंने आज अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा है; मैंने नदी की मछलियों को भी भोजन कराया है; अब मैं आज किए गए अपने अच्छे कर्मों का फल आपके साथ बाँट रहा हूँ। कृपया मेरे लिए कुमुदु कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाएँ।” यह सुनकर नागों के राजा ने एक बूढ़े व्यक्ति का रूप धारण किया और कमल और लाल मिट्टी लाकर दिए।

उस शाम, राजा पसेनादी को डर था कि कहीं उसका युवक समय पर न पहुँच जाए, इसलिए उन्होंने नगर के द्वार जल्दी बंद करवा दिए। युवक ने द्वार बंद देखकर लाल मिट्टी को नगर की दीवार पर रख दिया और उस पर फूल चिपका दिए। फिर उसने ऊँचे स्वर में कहा, “हे नागरिकों! मैंने आज राजा के आदेशानुसार अपना कार्य समय पर पूरा कर लिया है। राजा पसेनादी बिना किसी कारण के मुझे मारना चाहते हैं।” इसके बाद, युवक जेतवन मठ की ओर चल पड़ा ताकि वहाँ के शांत वातावरण में शरण लेकर शांति पा सके।

इसी बीच, कामुक इच्छाओं से ग्रस्त राजा पसेनादि को नींद नहीं आ रही थी और वे सोचते रहे कि सुबह पति से कैसे छुटकारा पाकर पत्नी को प्राप्त करें। आधी रात के करीब, उन्होंने कुछ अजीबोगरीब आवाजें सुनीं; दरअसल, ये लोहकुंभी निरय में व्यस्त चार व्यक्तियों की शोकपूर्ण आवाजें थीं। उन आवाजों को सुनकर राजा भयभीत हो गए। सुबह तड़के, रानी मल्लिका की सलाह पर वे बुद्ध से परामर्श करने के लिए जेतवन मठ गए। जब बुद्ध को राजा द्वारा रात में सुनी गई चार आवाजों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने राजा को समझाया कि ये चार व्यक्तियों की आवाजें थीं, जो कश्यप बुद्ध के समय में धनी पुरुषों के पुत्र थे, और अब वे लोहकुंभी निरय में व्यस्त हैं क्योंकि उन्होंने अन्य लोगों की पत्नियों के साथ यौन दुराचार किया था। तब राजा को अपने कर्म की बुराई और उसके दंड की गंभीरता का एहसास हुआ। इसलिए, उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि वे अब किसी अन्य पुरुष की पत्नी की लालसा नहीं करेंगे। “आखिरकार, दूसरे पुरुष की पत्नी के प्रति मेरी तीव्र इच्छा के कारण ही मैं व्याकुल था और सो नहीं पा रहा था,” उसने विचार किया। तब राजा पसेनादि ने बुद्ध से कहा, “आदरणीय, अब मुझे पता चला कि जो सो नहीं पाता उसके लिए रात कितनी लंबी होती है।” पास ही खड़ा वह युवक आगे आया और बोला, “आदरणीय, क्योंकि मैंने कल एक योजन की पूरी दूरी तय की थी, इसलिए मैं भी जानता हूँ कि थके हुए व्यक्ति के लिए एक योजन की यात्रा कितनी लंबी होती है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 60)

जागरतो रति दीघा संतस्स योजना दीघं

सद्धम्मं अविजानातम बलानां संसारो दिघो

जागरतो [जागरता]: नींद हराम करने के लिए; रत्ती दीघा : रात लंबी है; संतासा : थके हुए को; योजनं दीघं [दीघा]: मील लंबा है; सद्धम्मम् [सद्धम्म]: सिद्धांत; अविजानताम् [अविजानता]: अज्ञानी; बालानां [बालाना]: अपरिपक्व व्यक्तियों के लिए; संसारो [संसार]: अस्तित्व का चक्र; दीघो [दीघा]: लंबा है

जिसे नींद नहीं आती, उसे रात बहुत लंबी लगती है। थके हुए व्यक्ति को सफर भी लंबा लगता है। अज्ञानी, धर्म के ज्ञान से रहित व्यक्ति को जीवन चक्र बहुत लंबा लगता है, क्योंकि उसे इसे छोटा करने का तरीका नहीं पता होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 60)

संसार : प्राणियों का जन्म-मृत्यु का निरंतर चक्र, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का दुष्चक्र, जिसे बौद्ध धर्म के अनुयायी समाप्त करना चाहते हैं। बौद्ध पुनर्जन्म को जीवन की निरंतरता नहीं, बल्कि मृत्यु का निरंतर चक्र मानते हैं। हम केवल मरने के लिए ही पुनर्जन्म लेते हैं। 'शाश्वत जीवन' एक भ्रम है। जीवन जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के अलावा कुछ नहीं है। बौद्ध धर्म में इसकी निरंतरता स्वीकार्य नहीं है।

बौद्ध धर्म का लक्ष्य 'अमरता' या 'मृत्युहीनता' है, जो एकमात्र संभव वास्तविकता है और 'शाश्वत जीवन' से बिल्कुल भिन्न है। अमरता, जो निर्वाण है, पुनर्जन्म से नहीं, बल्कि उसके रुकने से प्राप्त होती है। यह अस्तित्व का अंत नहीं है; क्योंकि अस्तित्व केवल एक भ्रम है। यह अस्तित्व के भ्रम को दूर करना और उससे आसक्ति का त्याग करना है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 61

(धम्मपद 60) <<<< पिछला || धम्मपद 61 || अगला >>>> (धम्मपद 62)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 61 - महाकस्सप सद्धिविहारिका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 61 - महाकस्सप सद्धिविहारिका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Carance nadhigaccheyya
सेय्याम सदिसमत्तानो
ekacariaram dalham kayira
natthi bale sahayata.

श्लोक 61 : यदि कोई व्यक्ति साथी की तलाश में हो और उसे अपने से बेहतर या अपने बराबर का साथी न मिले, तो उसे दृढ़ निश्चय के साथ अकेले ही आगे बढ़ना चाहिए; मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं हो सकती।

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) महाकस्सपा के एक निवासी शिष्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के एक निवासी शिष्य के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (61) कहा।

जब थेरा महाकस्सपा राजगृह के पास निवास कर रहे थे, तब उनके साथ दो युवा भिक्षु रहते थे। उनमें से एक थेरा का आदरपूर्वक सम्मान करता था, आज्ञाकारी था और उनके प्रति कर्तव्यनिष्ठ था, परन्तु दूसरा ऐसा नहीं था। जब वृद्ध थेरा ने दूसरे को उसके कर्तव्य में लापरवाही के लिए फटकारा, तो वह बहुत क्रोधित हुआ। एक बार वह थेरा के एक गृहस्थ शिष्य के घर गया और उनसे झूठ बोला कि थेरा बीमार हैं। इस प्रकार, उसने थेरा के लिए उनसे कुछ उत्तम भोजन प्राप्त किया; परन्तु उसने वह भोजन रास्ते में ही खा लिया। जब थेरा ने उसे इसके लिए फटकारा, तो वह अत्यंत क्रोधित हुआ। अगले दिन, जब थेरा भिक्षा मांगने निकले थे, तो वह मूर्ख युवा भिक्षु पीछे रह गया, उसने बर्तन तोड़ दिए और मठ में आग लगा दी।

जब राजगृह के एक भिक्षु ने बुद्ध को इस बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा कि थेरा महाकस्सपा के लिए एक मूर्ख साथी के साथ रहने की बजाय अकेले रहना कहीं बेहतर होता।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 61 : यदि कोई व्यक्ति साथी की तलाश में हो और उसे अपने से बेहतर या अपने बराबर का साथी न मिले, तो उसे दृढ़ निश्चय के साथ अकेले ही आगे बढ़ना चाहिए; मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं हो सकती।

प्रवचन के अंत में, राजगृह के भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महाकस्सपा के एक शिष्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के एक शिष्य के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब पूज्य कश्यप पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, तब उनके दो शिष्य उनसे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इनमें से एक शिष्य अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करता था, परन्तु दूसरा अक्सर अपने कर्तव्यों से जी चुराता था और दूसरे के किए गए काम का श्रेय खुद लेने की कोशिश करता था। उदाहरण के लिए, निष्ठावान शिष्य चेहरा धोने के लिए पानी और दाँत साफ करने वाली लकड़ी निकाल कर रखता था। यह जानकर, अविज्ञ शिष्य पूज्य कश्यप के पास जाकर कहता, "पूज्यवर, चेहरा धोने के लिए पानी और दाँत साफ करने वाली लकड़ी निकाल कर रखी है। जाइए, चेहरा धो लीजिए।" जब पैर धोने और स्नान के लिए पानी तैयार करने का समय आता, तब भी वह यही तरीका अपनाता था।

उस निष्ठावान शिष्य ने मन ही मन सोचा, "यह तो हमेशा अपना काम टालता रहता है और मेरे काम का श्रेय लेने की कोशिश करता है। अच्छा! मैं भी कुछ करूंगा।" एक दिन, जब वह अनिष्ठ शिष्य भोजन के बाद सो रहा था, उसने स्नान के लिए पानी गर्म किया, उसे एक घड़े में डाला और उसे पीछे वाले कमरे में रख दिया, केवल एक छोटे बर्तन में पानी उबलता हुआ छोड़ दिया। शाम को अनिष्ठ शिष्य जागा और उसने भाप निकलते देखी। उसने सोचा, "उसने पानी गर्म करके स्नानघर में रख दिया होगा।" तो वह जल्दी से पूज्य गुरु के पास गया, प्रणाम किया और कहा, "पूज्य गुरु, स्नानघर में पानी रखा हुआ है; जाइए और स्नान कीजिए।" ऐसा कहकर वह पूज्य गुरु के साथ स्नानघर गया। लेकिन जब पूज्य गुरु ने पानी नहीं देखा, तो उन्होंने कहा, "भाई, पानी कहाँ है?" युवक उस कमरे में गया जहाँ चूल्हा रखा था, और घड़े से घड़े में पानी डाला, तो पाया कि वह खाली था। "देखो, इस बदमाश ने क्या कर दिया!" वह चौंककर बोला, "उसने अंगीठी पर खाली बॉयलर रख दिया और फिर चला गया—पता नहीं कहाँ? मुझे लगा कि बाथरूम में पानी है और मैंने जाकर पूज्यवर को यही बताया।" निराश होकर वह पानी का घड़ा लेकर नदी किनारे स्नान करने चला गया।

आदरणीय कस्सपा ने सोचा, 'इतने समय से यह युवक अपने कर्तव्यों से जी चुरा रहा है और अपने साथी शिष्य द्वारा किए गए काम का श्रेय खुद लेने की कोशिश कर रहा है।' अगले दिन उसने आदरणीय कस्सपा के साथ उनके दौरों पर जाने से इनकार कर दिया। इसलिए आदरणीय कस्सपा अपने दूसरे शिष्य को अपने साथ एक स्थान पर ले गए।

जब वह अनुपस्थित था, तब वह विश्वासघाती शिष्य एक गृहस्थ के घर गया जो पूज्य भिक्षु का समर्थक था। गृहस्थ ने उससे पूछा, "भिक्षु कहाँ हैं?" भिक्षु की तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए वे मठ में ही रुके हुए हैं। "तो फिर उन्हें क्या चाहिए, पूज्य?" युवक ने यह जताते हुए कहा कि भिक्षु ने उसे ऐसा भोजन माँगने को कहा है, "उन्हें ऐसा भोजन दीजिए।" तदनुसार, उन्होंने वैसा ही भोजन तैयार किया जैसा उसने माँगा था और उसे दे दिया। उसने भोजन लिया, वापस आते समय खाया और मठ लौट आया।

अब पूज्य गुरु को उनके समर्थक से पाँच वस्त्र प्राप्त हुए, और उन्होंने इन्हें अपने साथ आए युवक को दे दिया। नौसिखिए ने उन्हें रंगकर अपने लिए अंतर्वस्त्र और अंतर्वस्त्र बना लिए। पूज्य गुरु ने शिष्य को उसके व्यवहार के लिए फटकारा। शिष्य ने इस सलाह को अनसुना कर दिया। अगले दिन, उसने मठ में आग लगा दी और भाग गया। जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसका पुनर्जन्म अविची के महान नरक में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 61)

कैरं अत्तनो सेयं सदिसं सी ना अधिगच्छेया

एककारियं दहहं कयिरा बाले सहायता नत्थि

कैराँ [कैरा]: साथी के रूप में; अट्टानो [अट्टाना]: स्वयं के लिए, सेय्यं [सेय्या]: एक बड़ा; सदिसं [सदिसा]: बराबर पर; सीई ना अधिगच्छेया : नहीं पाया जाता है ; एककारियं [एककारिया]: अकेले रहना; दहहं कयिरा : किया जाना चाहिए; बाले सहायता : मूर्खों के साथ संगति; नत्थी : नहीं है

लोगों को साथी की आवश्यकता होती है। लेकिन यदि कोई ऐसा व्यक्ति न मिले जो स्वयं से बेहतर हो, या कम से कम अपने बराबर का हो, तो मूर्ख लोगों की संगति में रहने से बेहतर है कि अकेले ही रहें। मूर्खों की संगति से कोई लाभ नहीं होता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 61)

सहायता : संगति; साथ रहना। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि अपरिपक्व लोगों की संगति नहीं रखनी चाहिए। अपरिपक्व लोगों की संगति सांसारिक प्रगति के लिए भी अनुकूल नहीं है, आध्यात्मिक प्रगति की तो बात ही छोड़ दीजिए।

व्याख्या के अनुसार, यह शब्द उच्च नैतिकता, अंतर्दृष्टि, मार्ग और संतत्व के फलों को दर्शाता है। मूर्खों में ऐसे गुण नहीं पाए जाते। करुणावश, उनकी भलाई के लिए काम करने हेतु, कोई मूर्खों के साथ संगति कर सकता है, लेकिन उनसे दूषित नहीं होना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 62

(धम्मपद 61) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 62 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 63)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 62 - आनंदसेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 62 - आनंदसेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

पुत्ता(1) मत्थि धनं मा' त्थि
iti balo vihannati
atta hi attano natthi
kuto putta kuto dhanam.

श्लोक 62 : "मेरे पुत्र हैं, मेरे पास धन है"; इस (मोह) भावना से मूर्ख व्याकुल रहता है। वास्तव में, वह स्वयं अपना नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कैसे हो सकते हैं?

1. पुट्टा: पुत्रों का अर्थ पुत्र और पुत्री दोनों होता है।

आनंद, धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आनंद नामक एक कंजूस धनी व्यक्ति के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (62) कहा।

सावत्थी में आनंद नाम का एक बहुत धनी व्यक्ति रहता था। उसके पास अस्सी करोड़ रुपये की संपत्ति थी, फिर भी वह दान देने में बहुत कंजूस था। वह अपने पुत्र मूलासिरी से अक्सर कहता था, "यह मत सोचो कि तुम्हारे पास जो धन है वह बहुत अधिक है। अपने पास जो कुछ भी है उसमें से कुछ भी दान मत करो, क्योंकि तुम्हें उसे बढ़ाना होगा। अन्यथा तुम्हारा धन क्षीण हो जाएगा।" इस धनी व्यक्ति ने अपने घर में सोने के पाँच घड़े गाड़ रखे थे और अपने पुत्र को उनका स्थान बताए बिना ही उसकी मृत्यु हो गई।

आनंद, जो एक धनी व्यक्ति था, का पुनर्जन्म सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित भिखारियों के एक गाँव में हुआ। उसकी माँ के गर्भवती होने के समय से ही भिखारियों की आमदनी कम हो गई थी; गाँव वालों को लगा कि उनमें से कोई दुष्ट और अभागा ज़रूर होगा। उन्होंने समूह बनाकर और एक-एक करके लोगों को छाँटकर यह निष्कर्ष निकाला कि गर्भवती भिखारी महिला ही अभागी होगी। इस प्रकार, उसे गाँव से निकाल दिया गया। जब उसका बेटा पैदा हुआ, तो वह बेहद बदसूरत और घिनौना निकला। अगर वह अकेले भीख मांगने जाती, तो उसे पहले की तरह ही पैसे मिलते, लेकिन अगर वह अपने बेटे के साथ जाती, तो उसे कुछ नहीं मिलता। इसलिए, जब लड़का अकेले भीख मांगने लायक हो गया, तो उसकी माँ ने उसके हाथ में एक थाली थमाकर उसे वहीं छोड़ दिया। सावत्थी में भटकते हुए, उसे अपना पुराना घर और अपना पिछला जीवन याद आया। इसलिए वह घर में चला गया। जब उसके बेटे मुलासिरी के बेटों ने उसे देखा, तो वे उसके बदसूरत रूप को देखकर डर गए और रोने लगे। तब नौकरों ने उसे पीटा और घर से बाहर निकाल दिया।

भिक्षा मांगने निकले बुद्ध ने यह घटना देखी और पूज्य आनंद से मूलासिरि को बुलाने को कहा। जब मूलासिरि आए, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यह युवक उनके पिछले जन्म में उनके अपने पिता थे। लेकिन मूलासिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए, बुद्ध ने उस भिखारी को अपने पांच सोने के घड़े दफनाने की जगह दिखाने को कहा। तब जाकर मूलासिरि ने सच्चाई को स्वीकार किया और उस समय से वे बुद्ध के समर्पित गृहस्थ शिष्य बन गए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 62: "मेरे पुत्र हैं, मेरे पास धन है"; इस (मोह) भावना से मूर्ख व्याकुल रहता है। वास्तव में, वह स्वयं अपना नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कैसे हो सकते हैं?

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आनंद, धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आनंद नामक एक कंजूस धनी व्यक्ति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी में आनंद नाम का एक बहुत धनी व्यक्ति रहता था। उसके पास अस्सी अरब की संपत्ति थी, फिर भी वह दान देने में बहुत कंजूस था। वह अपने पुत्र मूलसिरि से अक्सर कहता था, "यह मत सोचो कि तुम्हारे पास जो धन है वह बहुत अधिक है। अपने धन में से कुछ भी दान मत करो, क्योंकि तुम्हें उसे बढ़ाना होगा। अन्यथा, तुम्हारा धन कम हो जाएगा।" इस धनी व्यक्ति ने अपने घर में सोने के पाँच घड़े गाड़ रखे थे और अपने पुत्र को उनका स्थान बताए बिना ही उसकी मृत्यु हो गई।

धनवान आनंद का पुनर्जन्म श्रावस्ती से कुछ ही दूरी पर स्थित एक भिखारियों के गाँव में हुआ। उनकी माता के गर्भ में आने के समय से ही भिखारियों की आमदनी कम होने लगी थी; गाँव वालों को लगा कि उनमें से कोई दुष्ट और अभागा है। उन्होंने समूह बनाकर और एक-एक करके लोगों को छाँटकर यह निष्कर्ष निकाला कि गर्भवती भिखारी महिला ही अभागी है। इस प्रकार, उसे गाँव से निकाल दिया गया। जब उसका पुत्र जन्मा, तो वह अत्यंत कुरूप और घृणित निकला। उसके हाथ, पैर, आँखें, कान, नाक और मुँह अपनी जगह पर नहीं थे। इतना भयानक दिखने वाला वह व्यक्ति मिट्टी के भूत जैसा लगता था। इसके बावजूद, उसकी माता ने उसे नहीं छोड़ा, क्योंकि एक माँ का अपने गर्भ में पल रहे बच्चे के लिए प्रेम महान होता है। यदि वह अकेले भीख मांगने जाती, तो उसे पहले की तरह ही भीख मिलती, लेकिन यदि वह अपने पुत्र के साथ जाती, तो उसे कुछ नहीं मिलता। जब लड़का स्वयं बाहर जाने लायक हो गया, तो उसकी माँ ने उसके हाथ में एक थाली थमा दी और उसे यह कहते हुए छोड़ दिया, "प्यारे बेटे, तुम्हारी वजह से हम बहुत कष्ट में आ गए हैं। अब हम तुम्हारा भरण-पोषण नहीं कर सकते। इस शहर में गरीबों और यात्रियों के लिए भोजन की व्यवस्था है। तुम भीख मांगकर अपना गुजारा कर लो।" जब वह सावत्थी में भटक रहा था, तो उसे अपना पुराना घर और अपना पिछला जीवन याद आ गया। इसलिए वह घर में चला गया। जब उसके पुत्र मूलसिरि के पुत्रों ने उसे देखा, तो वे उसके बदसूरत रूप से डर गए और रोने लगे। तब नौकरों ने उसे पीटा और घर से बाहर निकाल दिया।

भिक्षा मांगने निकले बुद्ध ने यह घटना देखी और पूज्य आनंद से मूलसिरि को बुलाने को कहा। जब मूलसिरि आए, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यह युवक उनके पिछले जन्म में उनके अपने पिता थे। लेकिन मूलसिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए, बुद्ध ने उस भिखारी को अपने पांच सोने के घड़े दफनाने की जगह दिखाने को कहा। तब जाकर मूलसिरि ने सच्चाई को स्वीकार किया और तब से वे बुद्ध के समर्पित गृहस्थ शिष्य बन गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 62)

मे पुत्त अत्थि मे धनं अत्थि इति बालो विहानति

अत्ता हि अत्तनो नत्थि पुत्ता कुटो धनं कुतो

मुझे : मैं; पुत्र : मेरे पुत्र हैं; मुझे : मैं; धन : मेरे पास धन है; इति : इस तरह; बालो : मूर्ख; विहञति : चिंताएँ; अत्ता हि : स्वयं; अत्तनो नत्थि : किसी के पास नहीं है; पुत्र : पुत्र; कुतो : यह कैसे हो सकता है; धन : धन ; कुतो : यह कैसे हो सकता है।

मूर्ख को चिंता होती है, "मेरे बेटे हैं," "मेरे पास धन है।" जब उसका स्व स्वयं का नहीं है, तो वह कैसे दावा कर सकता है, "मेरे बेटे हैं" या "मेरे पास धन है"?

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 62)

अत्ता हि अत्तनो नत्थि : मूर्ख लोग यह सोचकर खुद पर कर लगाते हैं कि उनके पुत्र हैं, उनके पास धन है। परन्तु वास्तव में, उनका 'स्व' उनका अपना नहीं है। यदि उनका 'स्व' उनका अपना होता, तो वे उसे अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रित कर सकते थे। परन्तु वे बूढ़े हो जाते हैं; वे क्षीण हो जाते हैं; वे बीमार पड़ जाते हैं; उनके साथ अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, तो वे कैसे सोच सकते हैं कि वे स्वयं के स्वामी हैं?

अनाज, धन, चांदी, सोना और जो भी संपत्ति है; गुलाम, कारीगर, नौकर और उन पर आश्रित सभी लोग—

जाते समय इन सभी चीजों को त्यागना पड़ता है। लेकिन कर्म, वचन या विचार से जो कुछ भी किया जाए—

वह केवल उसी का है; वह केवल उसी को अपने साथ ले जाता है और वह केवल अविभाज्य परछाई की तरह उसका पीछा करता है।

सभी प्राणी मरते हैं। जीवन का अंत मृत्यु में होता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है, चाहे वे पुण्य कर्म करें या पाप। पाप कर्म करने वाले दुखमय लोक में जाते हैं और पुण्य कर्म करने वाले आनंदमय लोक में पहुँचते हैं। इसलिए, सदा अच्छे कर्म करते रहें, जो परलोक में जीवन के लिए भंडार का काम करते हैं। पुण्य कर्म परलोक में प्राणियों के लिए बड़ा सहारा होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 63

———————————————————————————

(धम्मपद 62) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 63 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 64)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 63 - गंथिभेदाकोरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 63 - गंथिभेदाकोरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Ya balo mannati balyam
panditovapi tena so
balo ca panditamani
sa ve baloti vuccati.

———————————————————————————

श्लोक 63 : जो मूर्ख जानता है कि वह मूर्ख है, वह इसी कारण बुद्धिमान हो सकता है; परन्तु जो मूर्ख यह सोचता है कि वह बुद्धिमान है, वह वास्तव में मूर्ख ही कहलाता है।

———————————————————————————

दो जेबकतरों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने दो जेबकतरों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (63) का उच्चारण किया।

एक बार दो जेबकतरे उन गृहस्थ शिष्यों के समूह में शामिल हो गए जो जेतवन मठ जा रहे थे, जहाँ बुद्ध प्रवचन दे रहे थे। उनमें से एक ने प्रवचन ध्यान से सुना और शीघ्र ही सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। परन्तु दूसरा चोर प्रवचन पर ध्यान नहीं दे रहा था क्योंकि उसका इरादा केवल चोरी करने का था; और वह एक गृहस्थ शिष्य से थोड़ी सी धनराशि छीनने में सफल रहा। प्रवचन के बाद वे वापस लौटे और दूसरे चोर के घर भोजन किया, वही चोर जिसने कुछ धनराशि चुराई थी। दूसरे चोर की पत्नी ने पहले चोर को ताना मारा, "तुम तो बड़े बुद्धिमान हो, तुम्हारे घर में तो पकाने के लिए कुछ है ही नहीं।" यह सुनकर पहले चोर ने मन ही मन सोचा, "यह औरत कितनी मूर्ख है जो खुद को बहुत चालाक समझती है।" फिर, कुछ रिश्तेदारों के साथ, वह बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई।

बुद्ध ने उस व्यक्ति से छंदों में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 63 : जो मूर्ख जानता है कि वह मूर्ख है, वह इसी कारण बुद्धिमान हो सकता है; परन्तु जो मूर्ख यह सोचता है कि वह बुद्धिमान है, वह वास्तव में मूर्ख ही कहलाता है।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में, उस व्यक्ति के सभी रिश्तेदारों ने सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

दो जेबकतरों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने दो जेबकतरों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, ये दो भाग्यशाली साथी बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए एक विशाल जनसमूह के साथ जेतवन गए। उनमें से एक ने प्रवचन सुना, जबकि दूसरा कुछ चुराने का अवसर तलाश रहा था। प्रवचन सुनते-सुनते पहले ने 'धारा में प्रवेश' कर लिया; दूसरे को एक व्यक्ति की कमरबंद में पाँच सिक्के बंधे मिले और उसने उन्हें चुरा लिया। चोर ने अपने घर में हमेशा की तरह खाना पकाया, लेकिन उसके साथी के घर में खाना नहीं पकाया गया। उसके साथी चोर और उसकी पत्नी ने उसका उपहास करते हुए कहा, "तुम इतने अधिक बुद्धिमान हो कि अपने घर में नियमित भोजन करने के लिए भी पर्याप्त धन नहीं जुटा सकते।" धारा में प्रवेश करने वाले ने मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति मूर्ख है, इसलिए यह नहीं सोचता कि वह मूर्ख है।" और अपने परिजनों के साथ जेतवन जाकर उसने बुद्ध को घटना का वर्णन किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 63)

बालो यो बाल्यं मन्नति तेन सो पण्डितो वा अपि ,
बालो च पंडितमणि सो वे बालो इति वुकाति

बालो [बाला]: मूर्ख; यो बाल्यं [बालिया]: किसी की मूर्खता; मान्यता : जानता है; तेन : उस ज्ञान के बल पर; इसलिए : वह; पंडितो वा अपि : बुद्धिमान भी है; बालो च : यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति; पंडितमणि : स्वयं को बुद्धिमान समझता है; तो : वह; वे : वास्तव में; बालो इति वच्चति : मूर्ख कहलाता है

यदि कोई मूर्ख व्यक्ति अपनी मूर्खता का बोध कर ले, तो उस बोध के कारण उसे बुद्धिमान कहा जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, यदि कोई मूर्ख व्यक्ति यह सोचने लगे कि वह बुद्धिमान है, तो उसे मूर्ख कहा जा सकता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 63)

यो बालो मान्ञति बाल्यं : यदि कोई मूर्ख व्यक्ति जानता है कि वह मूर्ख है। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि सच्ची बुद्धि वास्तविकता के ज्ञान में निहित है। यदि कोई व्यक्ति अपनी मूर्खता से अवगत है, तो वह जागरूकता ही उसे बुद्धिमान बनाती है। सच्ची बुद्धि का आधार चीजों का सही ज्ञान है, जैसा कि वे वास्तव में हैं। जो लोग मूर्ख हैं, लेकिन यह मानते हैं कि वे बुद्धिमान हैं, वे वास्तव में मूर्ख हैं क्योंकि यह मूलतः झूठी जागरूकता उनके संपूर्ण चिंतन को प्रभावित करती है।

बालो : मूर्ख व्यक्ति। मूर्खता भ्रम (मोह) और अज्ञान (अविज्जा) का परिणाम है। अज्ञान ही संसार में समस्त बुराई और दुख का मूल कारण है, जो मनुष्य के मानसिक नेत्रों को ढक लेता है और उसे अपने वास्तविक स्वरूप को देखने से रोकता है। यह उस भ्रम को अपने साथ लिए रहता है जो प्राणियों को जीवन को स्थायी, सुखी, व्यक्तिगत और वांछनीय प्रतीत कराकर उन्हें भ्रमित करता है। यह उन्हें यह देखने से रोकता है कि वास्तविकता में सब कुछ क्षणभंगुर है, दुख के योग्य है, 'मैं' और 'मेरा' से रहित है और मूलतः अवांछनीय है। अज्ञान (अविज्जा) को "चार सत्यों का ज्ञान न होना" के रूप में परिभाषित किया गया है; अर्थात्, दुख, उसका उद्गम, उसका निवारण और उसके निवारण का मार्ग।

अविज्जा समस्त बुराई और दुख का आधार है, इसलिए यह प्रतीत्यसमुत्पाद के सूत्र में सर्वप्रथम स्थान पर है। अविज्जा को 'सभी चीजों का अकारण कारण' नहीं माना जाना चाहिए। इसका भी एक कारण है। इसका कारण इस प्रकार बताया गया है: ' आसव की उत्पत्ति के साथ ही अविज्जा की उत्पत्ति होती है ।' बुद्ध ने कहा, " अविज्जा की ऐसी कोई प्रथम उत्पत्ति नहीं देखी जा सकती, जिसके पहले अविज्जा का अस्तित्व न हो और जिसके बाद वह अस्तित्व में आई हो। परन्तु यह अवश्य देखा जा सकता है कि अविज्जा की अपनी विशिष्ट अवस्था होती है।"

चूंकि अरहतत्व या पूर्णता की प्राप्ति तक अज्ञान (अविज्जा) अत्यंत सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसे उन दस बंधनों में अंतिम माना जाता है जो प्राणियों को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं। जिस प्रकार लोभ और घृणा, बुराई के पहले दो मूल कारण, अज्ञान में निहित हैं और फलस्वरूप मन की सभी अस्वस्थ अवस्थाएँ इससे अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं, उसी प्रकार मोह (मोह) बुराई के तीन मूल कारणों में सबसे हठी है।

अविज्जा उन आसवों (प्रभावों) में से एक है जो व्यवहार को प्रेरित करते हैं। इसे अक्सर अवरोधक कहा जाता है, लेकिन यह पांच अवरोधकों की सामान्य सूची में शामिल नहीं होता है ।

दुःख के सत्य, उसके कारण, उसके अंत और उसके अंत के मार्ग के प्रति अनभिज्ञता (अविज्जा) ही जीवन चक्र (संसार) को गतिमान करने का मुख्य कारण है। दूसरे शब्दों में, यह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में न जानना, या स्वयं को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानना है। यह सही समझ को धूमिल कर देता है।

बुद्ध कहते हैं, " अविज्जा वह अंधकार है जो हमें पुनर्जन्म के इस चक्र में फंसाए रखता है।" जब अज्ञानता नष्ट होकर जागरूकता में परिवर्तित हो जाती है, तो "कारण-कार्य का क्रम" टूट जाता है, जैसा कि बुद्धों और अरहतों के मामले में हुआ। इतिवुत्तक में बुद्ध कहते हैं, "जिन्होंने अविज्जा का नाश कर दिया है और अविज्जा के घने अंधकार को भेद दिया है , वे संसार के चक्र में फिर कभी नहीं भटकेंगे ।"

(धम्मपद 63) <<<< पिछला || धम्मपद 64 || अगला >>>> (धम्मपद 65)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 64 - उदयित्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 64 - उदयित्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yavajivampi ce balo
पंडितम पायिरुपासति
na so dhammam vijanati
dabbi suparasam yatha.

श्लोक 64 : एक मूर्ख, चाहे वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ रहे, धम्म को नहीं समझता, ठीक वैसे ही जैसे एक करछुल सूप का स्वाद नहीं जानता।

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) उदयी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (64) का उच्चारण किया, जो एक ढोंगी भिक्षु थेरा उदयी के संदर्भ में था। थेरा उदयी अक्सर उस चबूतरे पर जाकर बैठते थे जहाँ से विद्वान थेरा प्रवचन देते थे। एक बार, कुछ आगंतुक भिक्षुओं ने, उन्हें एक बहुत विद्वान थेरा समझकर, उनसे पाँच स्कंधों (खंधों) के विषय में कुछ प्रश्न पूछे। थेरा उदयी उत्तर नहीं दे सके, क्योंकि उन्हें धम्म का कोई ज्ञान नहीं था। आगंतुक भिक्षु यह देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए कि बुद्ध के साथ एक ही मठ में रहने वाला व्यक्ति खंधों और आयतनों (इंद्रिय-आधार और इंद्रिय-विषय) के बारे में इतना कम जानता है।

बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 64 : मूर्ख व्यक्ति, चाहे वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ रहे, धम्म को नहीं समझ पाता, ठीक वैसे ही जैसे चम्मच को सूप का स्वाद नहीं पता होता।

प्रवचन के अंत में, सभी उपस्थित भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदायिक उदयि की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आदरणीय उदयि नामक एक अभिमानी भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। कथा यह है कि जब भिक्षु सत्य-महल से बाहर निकलते थे, तो आदरणीय उदयि अंदर जाकर धम्म आसन पर बैठ जाते थे। एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उन्हें वहाँ देखा और मन ही मन सोचा, "यह अवश्य ही बुद्ध होंगे," और उनसे तत्वों और अन्य विषयों के बारे में कुछ प्रश्न पूछे। यह जानकर कि उन्हें इनमें से किसी भी विषय का ज्ञान नहीं है, उन्होंने उपहासपूर्वक कहा, "यह कौन भिक्षु है जो बुद्ध के साथ एक ही मठ में रहता है? यह तो तत्वों, तत्वों और इंद्रियों के षडयंत्रों के बारे में भी नहीं जानता।" अतः उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 64)

बालो सी यावजीवं अपि पण्डितं पयिरूपसति ,
सो धम्मं न विजानाति यथा दब्बि सुपारसं ।

बालो : अज्ञानी व्यक्ति; चे : यदि; यावजीवं अपि : जीवन भर भी; पंडितं [पंडित]: ज्ञानी व्यक्ति; पयिरुपासति : घनिष्ठ रूप से संगति करता है; इसलिए : वह; धम्म [धम्म]: जीवन का मार्ग; न विजानति : नहीं सीखेगा; यथा : जैसे; डब्बी : चम्मच; सूप का स्वाद (नहीं जानेगा)

एक मूर्ख व्यक्ति, भले ही वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ घनिष्ठ रूप से रहे, अनुभव की प्रकृति से अवगत नहीं हो पाएगा, ठीक उसी तरह जैसे एक चम्मच को सूप का स्वाद नहीं पता होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 64)

डब्बी : चम्मच। बुद्ध ने इस श्लोक में अपने विचार को बहुत ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है। डब्बी — चम्मच, व्यंजनों को हिलाता है। अपने काम के दौरान चम्मच सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों के संपर्क में आता है। चम्मच बाएँ-दाएँ, ऊपर-नीचे घूमता है, भोजन को इधर-उधर पलटता है। चम्मच मीठे, खट्टे, कसैले आदि सभी प्रकार के व्यंजनों के लिए ऐसा करता रहता है। चम्मच युगों तक चलता रहता है जब तक कि वह नष्ट न हो जाए। लेकिन बुद्ध का कहना है कि उसके बाद चम्मच को भोजन का स्वाद नहीं पता रहता। यह एक मूर्ख व्यक्ति के साथ होने वाले उस व्यवहार को दर्शाने के लिए एक सटीक उदाहरण है जो जीवन भर बुद्धिमानों के साथ रहता है। उसे उस संगति से जरा सा भी लाभ नहीं मिलता।

धम्म : धम्म शब्द (जिसका अर्थ है "अनुभव") के अनेक अर्थ हैं। बौद्ध धर्म में इसका प्रमुख अर्थ 'बुद्ध का वचन' है। बुद्ध ने संसार को अपने 'अनुभव' के बारे में बताया। जिस प्रक्रिया से संसार को इस 'अनुभव' के बारे में पता चला, वह बुद्ध का वचन था, जिसे बुद्धधम्म कहा जाता है और जिसका बौद्ध धर्मग्रंथों में विस्तृत वर्णन है। ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद, वे एकांत ध्यान में लीन हो गए। उस समय उनके मन में निम्नलिखित विचार आया,

"यह 'अनुभव', जिसे मैंने प्राप्त किया है, वास्तव में गहन, बोधगम्य, शांत, उदात्त, तर्क के दायरे से परे, सूक्ष्म और बुद्धिमानों के लिए ही समझने योग्य है। ये प्राणी भौतिक सुखों से आसक्त हैं। यह कारण-संबंधी 'आश्रित उत्पत्ति' एक ऐसा विषय है जिसे समझना कठिन है। और यह निर्वाण—बद्धताओं का निवारण, सभी वासनाओं का त्याग, व्यथा का नाश, अनासक्ति और अंत—भी एक ऐसा विषय है जिसे आसानी से समझा नहीं जा सकता। यदि मैं इस 'अनुभव' (धम्म) का उपदेश दूं, तो अन्य लोग मुझे नहीं समझ पाएंगे। यह मेरे लिए केवल कष्टदायक होगा, यह मेरे लिए थकावट होगी।"

तब बुद्ध को ये अद्‌भुत श्लोक सूझे, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे: "मैंने बड़ी कठिनाई से धम्म को समझा है। अब इसका प्रचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह धम्म कामवासना और घृणा से ग्रस्त लोगों को आसानी से समझ में नहीं आता। अंधकार में डूबे, कामवासना से ग्रस्त जनसमूह इस धम्म को नहीं देख पाते, जो धारा के विपरीत है, जो समझना आसान नहीं है, गहरा है, बोध करना कठिन है और सूक्ष्म है।"

जब बुद्ध ने इस प्रकार विचार किया, तो वे धम्म की व्याख्या करने के लिए इच्छुक नहीं थे।

तब ब्रह्मा सहमपति (जिन्हें ब्राह्मण जगत का सृष्टिकर्ता मानते हैं) ने बुद्ध के विचारों को पढ़ा और यह भय मानते हुए कि धम्म का उपदेश न सुनने से जगत का नाश हो जाएगा, उनके पास जाकर उनसे धम्म का उपदेश देने का आग्रह किया: "हे प्रभु, बुद्ध धम्म का उपदेश दें! बुद्ध धम्म का उपदेश दें! कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी नहीं है, जो धम्म का उपदेश न सुनकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धम्म को समझेंगे।"

इसके अलावा, उन्होंने कहा, "प्राचीन काल में मगध में एक अपवित्र धम्म उत्पन्न हुआ, जो भ्रष्ट लोगों द्वारा विचारित था। अमरता के इस द्वार को खोलें। वे निष्कलंक धम्म को सुनें! जैसे कोई चट्टानी पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर अपने आसपास के लोगों को देखता है, वैसे ही सर्वदर्शी, ज्ञानी, जो धम्म के इस महल में आरोहित हैं, दुःख रहित, उन लोगों को देखें जो दुःख में डूबे हुए हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में जकड़े हुए हैं!"

"हे वीर, युद्ध के विजेता, कारवां के नेता, ऋणमुक्त, उठो और संसार में प्रस्थान करो! बुद्ध धर्म का उपदेश दें! धर्म को समझने वाले अवश्य ही होंगे।"

जब ब्राह्मण ने ऐसा कहा, तो भगवान ने उनसे इस प्रकार कहा, "हे ब्रह्मा, मेरे मन में यह विचार आया — 'यह धर्म जिसे मैंने समझा है, कामवासना और घृणा से ग्रस्त लोगों को आसानी से समझ में नहीं आता। अंधकार में डूबे, कामवासना से ग्रस्त जनसमूह इस धर्म को नहीं देख पाते, जो धारा के विपरीत है, जो गूढ़, गहन, समझने में कठिन और सूक्ष्म है।' ऐसा चिंतन करते हुए, मेरा मन निष्क्रियता की ओर और धर्म का उपदेश न देने की ओर मुड़ गया।"

ब्रह्मा सहमपति ने दूसरी बार बुद्ध से प्रार्थना की और उन्होंने वही उत्तर दिया। जब उन्होंने तीसरी बार बुद्ध से प्रार्थना की, तो बुद्ध ने प्राणियों पर दया करते हुए अपनी बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। अवलोकन करते हुए उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम और अधिक धूल थी, जिनकी बुद्धि तीव्र और मंद थी, जिनमें अच्छे और बुरे गुण थे, जो आसानी से और आसानी से सिखाए जा सकते थे और जिन्हें सिखाना कठिन था, और कुछ ऐसे भी थे जो बुराई से भयभीत थे और परलोक में विश्वास रखते थे। जैसे नीले, लाल या सफेद कमल के तालाब में, कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी में ही फलते-

फूलते हैं; कुछ पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी की सतह पर रहते हैं; कुछ अन्य पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी से बाहर निकलकर पानी से अछूते खड़े रहते हैं। फिर भी, जब बुद्ध ने अपनी बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम और अधिक धूल थी, जिनकी बुद्धि तीव्र और मंद थी, जिनमें अच्छे और बुरे गुण थे, ऐसे प्राणी जिन्हें सिखाना आसान और कठिन था, और कुछ ऐसे भी थे जो बुराई से भयभीत थे और परलोक में विश्वास रखते थे। यह देखकर, उन्होंने सभी दुखी प्राणियों के प्रति करुणावश अपने उपदेश का प्रचार करना शुरू किया। बुद्ध के सिद्धांत की शुरुआत इसी प्रकार हुई। धम्म का मूल अर्थ है अनुभव का वह सत्य जिसे उन्होंने सभी प्राणियों के कल्याण के लिए प्रकट किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 65

(धम्मपद 64) <<<< पिछला || धम्मपद 65 || अगला >>>> (धम्मपद 66)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 65 - तिम्सापवेय्याभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 65 - तिम्सापवेय्याभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Muhuttamapi ce vinnu
पंडितम पायिरुपासति
khippam dhammam vijanati
jivha suparasam yatha.

श्लोक 65 : एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ केवल एक क्षण के लिए ही रहे, धम्म को शीघ्र ही समझ लेता है, ठीक वैसे ही जैसे जीभ सूप का स्वाद पहचान लेती है।

पावेय्याका से तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पावेय्याक के तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (65) कहा।

एक बार पावेय्याका के तीस युवक जंगल में एक वेश्या के साथ मौज-मस्ती कर रहे थे, तभी वेश्या ने उनके कुछ कीमती आभूषण चुरा लिए और भाग गई। जंगल में उसकी तलाश करते हुए उन्हें रास्ते में बुद्ध मिले। बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया, जिससे युवकों को सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त हुआ और वे सभी बुद्ध के संघ में शामिल हो गए और उनके साथ जेतवन मठ चले गए। मठ में रहते हुए उन्होंने कठोर तपस्या (धुतंग) का पालन किया। बाद में, जब बुद्ध ने अनामतग्ग सूत्र (अनगिनत जन्मों पर प्रवचन) दिया, तो उन सभी भिक्षुओं को अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

जब अन्य भिक्षुओं ने टिप्पणी की कि पावेय्यक भिक्षु बहुत जल्दी अरहतत्व प्राप्त कर लेते हैं, तो बुद्ध ने उन्हें श्लोकों में इस प्रकार उत्तर दिया:

श्लोक 65 : एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ केवल एक क्षण के लिए ही रहे, धम्म को शीघ्र ही समझ लेता है, ठीक वैसे ही जैसे जीभ सूप का स्वाद पहचान लेती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पाठेय्यका के तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पाठेय्यक के तीस भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कप्पासिक वन में बुद्ध ने तीस भिक्षुओं को धम्म का उपदेश दिया। एक बार पाठेय्यक के तीस युवक एक जंगल में एक वेश्या के साथ मौज-मस्ती कर रहे थे। तभी उस वेश्या ने उनके कुछ कीमती आभूषण चुरा लिए और भाग गई। जंगल में उसकी तलाश करते हुए वे बुद्ध से मिले। उस समय उन सभी ने बुद्ध के आदेश, "आओ, भिक्षुओं!" का पालन किया और उन्हें अलौकिक शक्ति द्वारा निर्मित कुंड और वस्त्र प्राप्त हुए। तेरह शुद्ध साधनाओं को अपनाकर वे बहुत समय बाद बुद्ध के पास लौटे, उनके अनादि के प्रवचन सुने और अपने स्थान से उठने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

सत्य के हॉल में भिक्षुओं के बीच चर्चा शुरू हुई: "इन भिक्षुओं ने कितनी कम देर में धम्म को जान लिया!" यह सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इन तीस साथियों ने पाप किया है। उन्होंने पिछले जन्म में भी यही किया था। लेकिन पूज्य तुंडिला जातक में तुंडिला के धार्मिक उपदेश सुनकर, उन्होंने बहुत जल्दी धम्म को जान लिया और पाँचों नियमों का पालन किया। केवल इसी कर्म से अर्जित पुण्य के कारण वे अपने आसन पर बैठे-बैठे ही अर्हतत्व प्राप्त कर गए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 65)

विण्णु सी मुहुत्तं अपि पण्डितं पयिरुपसति

खिप्पं धम्मं विजानाति यथा जीव सुपारसं

viññū : बुद्धिमान; ce muhuttaṃ api : क्षण भर के लिए भी; paṇḍitaṃ [paṇḍita]: परिपक्व बुद्धि वाला व्यक्ति; payirupāsati : सहभागी; khippaṃ [khippa]: तुरंत; dhammaṃ [dhamma]: सिद्धांत; vijānāti : सीखता है; yathā : जैसे ही; jivhā : जीभ; sūparasaṃ [sūparasa]: विभिन्न व्यंजनों का स्वाद लेता है

यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ क्षण भर के लिए भी संगति करे, तो वह शीघ्र ही शिक्षा को समझ जाएगा। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे जीभ सूप के सूक्ष्म स्वादों को पहचान लेती है। इस श्लोक को पिछले श्लोक से तुलना करके और भी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। पिछले श्लोक में चम्मच का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि चम्मच लगातार स्वादिष्ट भोजन परोसता रहता है, फिर भी वह भोजन के स्वाद को नहीं समझ पाता, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति बुद्धिमान व्यक्ति की संगति में भी शिक्षा को नहीं समझ पाता। एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ क्षण भर के लिए ही संगति करे, शीघ्र ही धम्म को समझ जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जीभ सूप के स्वाद को पहचान लेती है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 65)

jivhā sūparasaṃ yathā : जैसे जीभ भोजन का स्वाद पहचानती है। भोजन के स्वाद का उपमा यहाँ भी जारी है। भोजन का स्वाद एक सार्वभौमिक मानवीय अनुभव है। इसलिए भोजन के स्वाद से जुड़ी छवि को सार्वभौमिक रूप से सराहा जा सकता है। इस श्लोक में बुद्ध ज्ञानी व्यक्ति की तुलना जीभ से करते हैं। जीभ बहुत से भोजन के संपर्क में रहती है, लेकिन वह बड़ी तत्परता से विभिन्न स्वादों पर चर्चा कर सकती है, इसके बिल्कुल विपरीत चम्मच भोजन का स्वाद नहीं जानता, भले ही वह अपना पूरा जीवन भोजन में बिताता है। जीभ की तरह ही, ज्ञानी व्यक्ति गुणी व्यक्ति के संपर्क में आते ही उसके 'स्वाद' को पहचान लेता है।

विष्णु : वह जो विज्ञान (ज्ञान) धारण करता है। यहाँ विज्ञान का अर्थ बुद्धि है। ज्ञान पाँच स्कंधों में से एक है; चार पोषक तत्वों में से एक है; आश्रित उत्पत्ति की तीसरी कड़ी है; तत्वों के छह भागों में से पाँचवाँ भाग है। पाँच स्कंधों में से एक के रूप में देखा जाए तो यह अन्य तीन मानसिक स्कंधों (भावना, बोध और रचना) से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है और वस्तु का बुनियादी ज्ञान प्रदान करता है, जबकि अन्य तीन अधिक विशिष्ट कार्य करते हैं। इसका नैतिक और कर्मिक स्वरूप, और इसकी तीव्रता और स्पष्टता की कम या अधिक मात्रा, मुख्य रूप से इससे जुड़ी मानसिक रचनाओं द्वारा निर्धारित होती है। अस्तित्व के अन्य स्कंधों की तरह, चेतना एक परिवर्तनशील अवस्था है और एक स्थायी मन-पदार्थ नहीं है; न ही यह एक पारलौकिक सत्ता या आत्मा है। ग्रंथों में इसके लिए अक्सर अनित्यता, दुख और अनात्म जैसे तीन गुणों का प्रयोग किया जाता है। बुद्ध ने अक्सर इस बात पर जोर दिया कि "परिस्थितियों के बिना चेतना का कोई उद्भव नहीं होता": और इसके स्वरूप के बारे में ये सभी कथन चेतना के संपूर्ण दायरे के लिए सही हैं, चाहे वह भूतकाल की हो, भविष्य की हो या वर्तमान में उत्पन्न हुई हो, स्थूल हो या सूक्ष्म, स्वयं में हो या बाह्य, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट।

छह इंद्रियों के अनुसार, इसे छह प्रकारों में विभाजित किया गया है, जैसे कि नेत्र-चेतना (या दृश्य चेतना), आदि। इन छह प्रकार की चेतनाओं की आश्रित उत्पत्ति के बारे में कहा गया है, "दृश्य वस्तु, प्रकाश और ध्यान के द्वारा नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। श्रव्य वस्तु, कान-मार्ग और ध्यान के द्वारा कान-चेतना उत्पन्न होती है। गंध वस्तु, वायु और ध्यान के द्वारा नाक-चेतना उत्पन्न होती है। स्वाद वस्तु, नमी और ध्यान के द्वारा जीभ-चेतना उत्पन्न होती है। शरीर, शारीरिक प्रभाव, पृथ्वी तत्व और ध्यान के द्वारा शरीर-चेतना उत्पन्न होती है। अवचेतन मन, मन-विषय और ध्यान के द्वारा मन-चेतना उत्पन्न होती है।" अभिधम्म साहित्य चेतना के अस्सी-नौ वर्गों को अलग करता है, जो कर्मिक रूप से या तो शुभ, अशुभ या तटस्थ होते हैं, और या तो इंद्रिय-क्षेत्र, सूक्ष्म-भौतिक या अभौतिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं, या अलौकिक चेतना से संबंधित होते हैं।

(धम्मपद 65) <<<< पिछला || धम्मपद 66 || अगला >>>> (धम्मपद 67)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 66 - सुप्पबुद्धकुट्ठि वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 66 - सुप्पबुद्धकुट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Caranti bala dummedha
अमित्तेनेवा अट्टाना
करोन्ता पापकम कम्मम
yam hoti katukapphalam.

श्लोक 66 : स्वयं को ही शत्रु मानकर, बुद्धिहीन मूर्ख बुरे कर्म करते फिरते हैं, जिनका फल कड़वा होता है।

कोढ़ी सुप्पबुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (66) का उच्चारण किया, जो कि सुप्पबुद्ध, एक कुष्ठ रोगी के संदर्भ में था।

सुप्पबुद्ध, जो कुष्ठ रोगी थे, भीड़ के पीछे बैठकर बुद्ध के प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे और इसी दौरान उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। जब भीड़ तितर-बितर हो गई, तो वे बुद्ध के पीछे-पीछे मठ गए क्योंकि वे बुद्ध को अपने सोतापत्ति फल प्राप्ति के बारे में बताना चाहते थे। देवों के राजा सक्का (इंद्र), कुष्ठ रोगी की बुद्ध, धम्म और संघ में आस्था की परीक्षा लेने के लिए उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "तुम तो बस एक गरीब आदमी हो, भीख मांगकर जीवन यापन करते हो, तुम्हारा कोई सहारा नहीं है। अगर तुम बुद्ध, धम्म और संघ को नकार दो और कहो कि तुम्हें इनकी कोई आवश्यकता नहीं है, तो मैं तुम्हें अपार धन दे सकता हूँ।" इस पर सुप्पबुद्ध ने उत्तर दिया। मैं निःसंदेह गरीब नहीं हूँ, ऐसा कोई नहीं जिस पर भरोसा न कर सकूँ। मैं धनी हूँ; मुझमें आर्यों के सात गुण हैं; मुझमें आस्था (सद्धा), नैतिकता (शील), बुराई करने से लज्जा (हिरी), बुराई करने से भय (ओत्तप्पा), विद्या (शूल), उदारता (काग) और ज्ञान (पन्न) है। फिर, सक्का, सुप्पबुद्ध से पहले बुद्ध के पास गया और उसने अपने और सुप्पबुद्ध के बीच हुई बातचीत बताई। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि सौ या हज़ार सक्काओं के लिए भी सुप्पबुद्ध को बुद्ध, धम्म और संघ से दूर करना आसान नहीं होगा। इसके तुरंत बाद, सुप्पबुद्ध मठ पहुँचे और बुद्ध को अपनी सोतापत्ति प्राप्ति की सूचना दी। जेतवन मठ से लौटते समय, सुप्पबुद्ध को एक क्रोधित गाय ने सींग मारकर मार डाला, जो वास्तव में एक राक्षसी थी जिसने गाय का रूप धारण किया था। यह राक्षसी कोई और नहीं बल्कि वही वेश्या थी जिसे सुप्पबुद्ध ने अपने पिछले जन्मों में से एक में मार डाला था और जिसने उससे बदला लेने की कसम खाई थी।

जब सुप्पबुद्ध की मृत्यु का समाचार जेतवन मठ में पहुँचा, तो भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि सुप्पबुद्ध का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि सुप्पबुद्ध का पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में हुआ है। बुद्ध ने उन्हें यह भी समझाया कि सुप्पबुद्ध कुष्ठ रोगी के रूप में पैदा हुए थे क्योंकि अपने पिछले जन्मों में से एक में उन्होंने एक पच्चेकबुद्ध पर थूका था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 66 : स्वयं को ही शत्रु मानकर, बुद्धिहीन मूर्ख बुरे कर्म करते फिरते हैं, जिनका फल कड़वा होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोढ़ी सुप्पबुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध के संदर्भ में दिया था। कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध की कहानी उदाना ग्रंथ में मिलती है।

उस समय कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध, सभा के बाहरी घेरे में बैठे हुए, बुद्ध का धर्मोपदेश सुन रहे थे और उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया। वे बुद्ध को अपने प्राप्त आशीर्वाद के बारे में बताना चाहते थे, लेकिन सभा के बीच में जाने का साहस न होने के कारण, उन्होंने तब तक प्रतीक्षा की जब तक कि सभी लोग बुद्ध को प्रणाम करके उनके साथ थोड़ी दूर चलकर वापस नहीं लौट गए। फिर वे मठ चले गए।

उस क्षण देवताओं के राजा सक्का ने मन ही मन सोचा, "वह कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध बुद्ध धर्म में प्राप्त आशीर्वाद का प्रचार करना चाहता है। मैं उसकी परीक्षा लूँगा।" अतः वह वायु में स्थिर होकर उसके पास गया और उससे इस प्रकार बोला, "सुप्पबुद्ध, तुम एक गरीब व्यक्ति हो, दुखों से ग्रस्त हो। मैं तुम्हें असीम धन दूँगा यदि तुम कहो, 'बुद्ध बुद्ध नहीं हैं, शिक्षा धर्म नहीं है, संघ संघ नहीं है। मुझे बुद्ध से तृप्ति हो गई है, मुझे धर्म से तृप्ति हो गई है, मुझे संघ से तृप्ति हो गई है।'" कुष्ठ रोगी ने उससे पूछा, "आप कौन हैं?" "मैं सक्का हूँ।" "मूर्ख, निर्लज्ज, तू मुझसे बात करने के योग्य नहीं है। तू कहता है कि मैं गरीब और पीड़ित हूँ। इसके विपरीत, मैंने सुख और अपार धन प्राप्त किया है: सात प्रकार के सम्माननीय धन। इन धन भंडारों के स्वामी को बुद्ध या संन्यासी गरीब नहीं कहते।" जब सक्का ने उसे ऐसा कहते सुना, तो वह उसे वहीं छोड़कर बुद्ध के पास गया और उन्हें अपने सारे प्रश्न और उत्तर बताए। बुद्ध ने उससे कहा, "सक्का, सौ सोने के सिक्कों से भी, हज़ार से भी, कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध को यह मनवाना संभव नहीं है कि 'बुद्ध, बुद्ध नहीं हैं, धम्म, धम्म नहीं है, संघ, संघ नहीं है।'"

अतः कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध बुद्ध के पास गए और बुद्ध ने उनका स्वागत किया। उन्होंने बुद्ध को अपने आशीर्वाद के बारे में बताया और अपने आसन से उठकर चल दिए। कुछ दूर जाने से पहले ही एक बछिया ने उन्हें मार डाला। कहा जाता है कि यह बछिया एक दुष्ट आत्मा थी, जिसने सौ जन्मों में गाय का रूप धारण किया था और गाय के रूप में उसने चार युवकों को मार डाला था: पुक्कूसाति, एक उच्च पदस्थ युवक; बाहिया दारुचिरिया; तांबदाठिका, एक डाकू; और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 66)

बाला दुमेधा यं कटुकप्फलं होति (तं) पापकं

कम्मं करोन्ता अमितेन इव अत्ताना कैरन्ति

बाला : अपरिपक्व लोग; दुमेधा : मूर्ख लोग; यं कटुकप्फलं होति : जो अशुभ फल लाता है; पापकं कम्मं [कम्म]: (वह) बुरा कार्य; करौंटा : कर रहा हूँ; अमितेना इव : शत्रु के समान; अत्तना : स्वयं के प्रति; कारंती : जियो.

वे नासमझ और मूर्ख लोग ऐसा व्यवहार करते हैं जो उनके लिए ही हानिकारक होता है। उनके पापपूर्ण कर्मों का फल कड़वा होता है। वे स्वयं अपने शत्रु हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 66)

बाला दुम्मेधा : बुद्धिहीन मूर्ख लोग। ये दोनों शब्द लगभग समानार्थी हैं। लेकिन विवेक की कमी अज्ञान के अर्थ को और भी गहरा कर देती है। कुछ ग्रंथों में विवेक की तुलना पर्वत शिखर पर बिजली गिरने से की गई है। बिजली की वह चमक पर्वत की चोटी पर सब कुछ नष्ट कर देती है। उसी प्रकार, बुद्धिमान लोग सभी दोषों को नष्ट करने में सक्षम होते हैं। लेकिन अज्ञानी और विवेकहीन व्यक्ति दोषों को जड़ से उखाड़ने की क्षमता नहीं रखते। बुद्धिहीन मूर्ख लोग ऐसे बुरे कर्म करते हैं जिनका उन्हें हानिकारक परिणाम भुगतना पड़ता है। वे स्वयं अपने शत्रु बन रहे हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 67

(धम्मपद 66) <<<< पिछला || धम्मपद 67 || अगला >>>> (धम्मपद 68)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 67 - कस्सक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 67 - कस्सक वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tam kammam katam sadhu
यम कत्वा अनुतप्पति
yassa assumukho rodam
vipakam patisevati.

श्लोक 67 : वह कर्म अच्छा नहीं है, यदि उसे करने के लिए पश्चाताप करना पड़े, और यदि उस कर्म के फलस्वरूप आँसू भरी आँखों से रोना पड़े।

एक किसान की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (67) का उच्चारण किया, जो विष संभालने वाले किसान के संदर्भ में था।
एक दिन, कुछ चोर एक अमीर आदमी के घर से कुछ कीमती सामान और नकदी चुराकर एक खेत में आए। वहाँ उन्होंने चोरी का माल आपस में बाँट लिया और चले गए; लेकिन एक चोर से एक हजार रुपये की नकदी वाला एक पैकेट गिर गया, जो किसी का ध्यान आकर्षित किए बिना वहीं छूट गया।

उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन करते हुए देखा कि उस खेत के पास खेती कर रहा एक किसान उसी दिन सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। अतः बुद्ध पूज्य आनंद के साथ वहाँ गए। किसान ने बुद्ध को देखकर उन्हें प्रणाम किया और खेत जोतना जारी रखा। बुद्ध ने धन की थैली देखकर पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, उस विषैले साँप को देखो!" आनंद ने उत्तर दिया, "पूज्यवर, जी हाँ, यह वास्तव में एक विषैला साँप है!" तब बुद्ध और पूज्य आनंद दोनों अपने-अपने मार्ग पर चल पड़े।

उनकी आवाज़ सुनकर किसान यह पता लगाने गया कि क्या सचमुच कोई साँप है और उसे पैसों का पैकेट मिल गया। उसने कुदाल उठाई और उसे एक जगह छिपा दिया। चोरों का पीछा करते हुए खेत के मालिक आए और किसान के पदचिह्नों का पीछा करते हुए पैसों का पैकेट पा लिया। उन्होंने किसान को पीटा और राजा के पास ले गए, जिसने अपने आदमियों को किसान को मारने का आदेश दिया। जब उसे श्मशान ले जाया जा रहा था, जहाँ उसे मारा जाना था, किसान बार-बार दोहराता रहा, "आनंद, उस ज़हरीले साँप को देखो। आदरणीय महाराज, मैं साँप को देख रहा हूँ; यह सचमुच एक बहुत ज़हरीला साँप है!" जब राजा के आदमियों ने बुद्ध और आदरणीय आनंद के बीच उपरोक्त संवाद को बार-बार दोहराते हुए सुना, तो वे चकित हो गए और उसे राजा के पास ले गए। राजा ने अनुमान लगाया कि किसान बुद्ध को साक्षी मानकर प्रार्थना कर रहा है; इसलिए उसे बुद्ध के समक्ष ले जाया गया। सुबह की सारी बातें बुद्ध से सुनने के बाद राजा ने कहा, "अगर बुद्ध उसकी निर्दोषता के साक्षी न होते, तो वह मारा जाता।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिसका उसे बाद में पछतावा हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 67 : वह कर्म अच्छा नहीं है, यदि उसे करने के लिए पश्चाताप करना पड़े, और यदि उस कर्म के फलस्वरूप आँसू भरी आँखों से रोना पड़े।

प्रवचन के अंत में, किसान को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक किसान की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने विष का काम करने वाले एक किसान के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक किसान सावत्थी से कुछ ही दूरी पर एक खेत जोत रहा था। एक दिन कुछ चोरों ने एक धनी व्यक्ति के घर में चोरी की। चोरों में से एक ने अपने साथियों को चकमा दिया और चुपके से एक हजार सिक्कों से भरा पर्स अपने वस्त्र की तह में छिपा लिया। जैसे ही चोर अपना हिस्सा लेकर जाने लगा, पर्स उसके वस्त्र की तह से गिर गया, लेकिन उसे इसका पता भी नहीं चला।
उस दिन, सुबह-सुबह, बुद्ध ने दुनिया का अवलोकन किया, और यह देखकर कि एक किसान उनकी दृष्टि में आ गया है, उन्होंने मन ही मन विचार किया कि आगे क्या होगा।
सुबह तड़के किसान खेत जोतने गया। बुद्ध भी पूज्य आनंद के साथ वहाँ मौजूद थे। बुद्ध को देखकर किसान ने उन्हें प्रणाम किया और फिर खेत जोतने लगा। बुद्ध ने उससे कुछ नहीं कहा। जब वह उस स्थान पर गया जहाँ पर्स गिरा था, तो उसे देखकर उसने पूज्य आनंद से कहा, "देखो, आनंद, एक विषैला साँप!" "जी, पूज्य, एक घातक विषैला साँप!" किसान ने उनकी बातचीत सुनी और मन ही मन कहा, "मैं इस साँप को मार डालूँगा।" ऐसा कहते हुए उसने एक कुदाल उठाई, उस स्थान पर गया और पर्स पाया। उसने सोचा, "बुद्ध ने अवश्य ही इसी पर्स का जिक्र किया होगा।" उसे ठीक से समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे, इसलिए उसने पर्स को एक तरफ रख दिया, उस पर धूल डाली और खेत जोतने लगा।
बाद में लोगों को चोरी का पता चला और वे चोरों का पीछा करते हुए खेत तक पहुँच गए। जहाँ उन्होंने लूटा हुआ माल बाँटा था, वहाँ पहुँचकर उन्होंने किसान के पैरों के निशान देखे। उसके पदचिह्नों का पीछा करते हुए वे उस जगह तक पहुँचे जहाँ बटुआ दबा हुआ था। वहाँ उन्होंने मिट्टी हटाकर बटुआ उठा लिया। फिर उन्होंने किसान को खूब खरी-खोटी सुनाई और कहा, "तुमने घर लूटा और अब खेत जोत रहे हो!" उसे खूब पीटने के बाद वे उसे पकड़कर राजा के सामने पेश कर उसकी निंदा करने लगे।
जब राजा को घटना का पता चला, तो उसने किसान को मृत्युदंड देने का आदेश दिया। किसान चलते-चलते राजा के आदमियों द्वारा कोड़ों से पीटा जा रहा था, लेकिन वह बार-बार यही दोहराता रहा, "देखो, आनंद, एक विषैला साँप!" "मैं देख रहा हूँ, पूज्यवर, एक घातक विषैला साँप!" उसने एक शब्द भी नहीं बोला। राजा के आदमियों ने उससे पूछा, "तुम बुद्ध और पूज्य आनंद के वचन दोहरा रहे हो। इसका क्या अर्थ है?" किसान ने उत्तर दिया, "मैं राजा से मिलने की अनुमति मिलने पर बताऊंगा।"
उसने राजा से कहा, "महाराज, मैं चोर नहीं हूँ।" किसान ने उसे पूरी कहानी बताई। राजा किसान को बुद्ध के पास ले गए और उनसे इस बारे में पूछा। बुद्ध ने कहा, "जी महाराज, मैंने वहाँ जाकर यही कहा था। एक बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए जिसका उसे बाद में पश्चाताप करना पड़े।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 67)
यं कत्वा अनुतपति यस्सा विपकं अस्सुमुखो
रोदं पतिसेवती , तं कम्मं कटं न साधु
यं : कुछ क्रियाएं; कट्वा : किया हुआ; अनुतप्पति : किसी को पछतावा होता है; यस्सा : कुछ कार्यों का; विपाकम् [विपाक]: परिणाम; असुमुखो [असुमुखा]: आंसुओं से लथपथ चेहरे के साथ; रोदां [रोड़ा]: और रोना; पतिसेवती : कष्ट सहना पड़ता है; तं कम्मं [कम्म]: उस प्रकार की क्रिया; कतं न साधु : किया जाना अच्छा नहीं है
ऐसे कार्यों से बचना ही अच्छा है जिनसे बाद में पछतावा हो। पछतावा होने पर रोना आता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 67)
अससुमुखो रोदं : आँसुओं से भीगे चेहरे के साथ रोना। इसे किसी कर्म के फल के रूप में दर्शाया गया है, जिसके लिए पश्चाताप होता है। यहाँ चेतावनी यह है कि ऐसे कर्मों से बचें जिनसे बाद में पछतावा हो।
अनुतप्पति : पश्चाताप करना। पश्चाताप को ऐसे कर्म का परिणाम माना जाता है जो बाद के परिणामों के बारे में बिल्कुल भी जानकारी के बिना किया गया हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 68

————————————————————————

(धम्मपद 67) <<<< पिछला || धम्मपद 68 || अगला >>>> (धम्मपद 69)

————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 68 - सुमनमालाकारा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 68 - सुमनमालाकारा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Tanca kammam katam sadhu
यम कटवा नानूतप्पति
yassa patito sumano
vipikam patisevati.

श्लोक 68 : वह कर्म अच्छा है यदि उसे करने के लिए पश्चाताप न करना पड़े, और यदि उस कर्म के परिणाम से प्रसन्न और संतुष्ट हो।

फूल बेचने वाली सुमाना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (68) का उच्चारण सुमना पुष्प विक्रेता के संदर्भ में किया।
सुमना नाम के एक फूल विक्रेता को राजगृह के राजा बिम्बिसार को प्रतिदिन सुबह चमेली के फूल पहुँचाने होते थे। एक दिन, जब वह राजा के महल जा रहा था, तो उसने बुद्ध को देखा, जिनके चारों ओर प्रकाश की किरणें फैल रही थीं, और वे कई भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए नगर में आ रहे थे। बुद्ध को उनकी तेजस्वी महिमा में देखकर, फूल विक्रेता सुमना के मन में उन्हें फूल अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। उसी क्षण उसने निश्चय किया कि चाहे राजा उसे देश से निकाल दें या मार डालें, वह उस दिन राजा को फूल नहीं अर्पित करेगा। इसलिए, उसने बुद्ध के अगल-बगल, पीछे और सिर के ऊपर फूल फेंक दिए। फूल हवा में लटके रहे; सिर के ऊपर वाले फूलों ने फूलों का एक छत्र बना लिया और पीछे और अगल-बगल वाले फूलों ने फूलों की दीवारें बना लीं। ये फूल बुद्ध के साथ-साथ चलते रहे और बुद्ध के रुकने पर रुक गए। जब बुद्ध फूलों की दीवारों और फूलों के छत्र से घिरे हुए, अपने शरीर से निकलती छह रंगों की किरणों के साथ, एक विशाल दल के साथ आगे बढ़े, तो राजगृह के अंदर और बाहर के हजारों लोग बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने घरों से बाहर आ गए। सुमन का पूरा शरीर आनंदमय संतोष (पीति) से परिपूर्ण था।
फूल विक्रेता सुमना की पत्नी राजा के पास गई और कहा कि उस दिन राजा को फूल न देने में उसका कोई हाथ नहीं है। राजा स्वयं सोतापन्न थे, इसलिए उन्हें फूल पाकर बहुत प्रसन्न हुए। वे इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए बाहर आए और बुद्ध को प्रणाम किया। राजा ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा भी दी। भोजन के बाद, बुद्ध जेतवन मठ में लौट गए और राजा कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए। महल में वापस आकर राजा बिम्बिसार ने सुमना को बुलवाया और उन्हें आठ हाथी, आठ घोड़े, आठ पुरुष दास, आठ स्त्री दास, आठ कन्याएँ और आठ हजार नकद पुरस्कार की पेशकश की।
जेतवन मठ में, पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा कि सुमन को उस दिन किए गए अपने पुण्य कर्म से क्या लाभ होगा। बुद्ध ने उत्तर दिया कि सुमन ने अपने जीवन की परवाह किए बिना बुद्ध को दान दिया है, इसलिए वह अगले एक लाख लोकों तक चार निम्न लोकों (अपय) में जन्म नहीं लेगा और अंततः वह पच्चेकबुद्ध बन जाएगा। इसके बाद, जब बुद्ध गंधकुटी (सुगंधकटी) में प्रवेश कर रहे थे, तो फूल स्वतः ही गिरने लगे।
उस रात, नियमित प्रवचन के अंत में, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 68 : वह कर्म अच्छा है यदि उसे करने के लिए पश्चाताप न करना पड़े, और यदि उस कर्म के परिणाम से प्रसन्न और संतुष्ट हो।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
फूल बेचने वाली सुमाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने फूल बेचने वाली सुमना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सुमना नाम के एक फूल विक्रेता को राजगृह के राजा बिम्बिसार को प्रतिदिन सुबह चमेली के फूल पहुँचाने होते थे। एक दिन, जब वह राजा के महल जा रहा था, तो उसने बुद्ध को प्रकाश की किरणों से जगमगाते प्रभामंडल के साथ कई भिक्षुओं के साथ नगर में भिक्षा ग्रहण करने आते देखा। बुद्ध को उनकी तेजस्वी महिमा में देखकर, फूल विक्रेता सुमना के मन में उन्हें फूल अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। उसी क्षण उसने निश्चय किया कि चाहे राजा उसे देश से निकाल दे या मार डाले, वह उस दिन राजा को फूल नहीं अर्पित करेगा। इसलिए, उसने बुद्ध के अगल-बगल, पीछे और सिर के ऊपर फूल फेंक दिए। फूल हवा में लटके रहे; सिर के ऊपर वाले फूलों ने फूलों का एक छत्र बना लिया और पीछे और अगल-बगल वाले फूलों ने फूलों की दीवारें बना लीं। ये फूल बुद्ध के साथ-साथ चलते रहे और बुद्ध के रुकने पर रुक गए। जब बुद्ध फूलों की दीवारों और फूलों के छत्र से घिरे हुए, अपने शरीर से निकलती छह रंगों की किरणों के साथ, एक विशाल दल के साथ आगे बढ़े, तो राजगृह के अंदर और बाहर हजारों लोग बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने घरों से बाहर आ गए। सुमन का पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि (पत्ति) से परिपूर्ण था।

फूल विक्रेता सुमना की पत्नी राजा के पास गई और कहा कि उस दिन राजा को फूल न देने में उसका कोई हाथ नहीं है। राजा स्वयं एक सोतापन्न थे, इसलिए उन्हें फूल पाकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए बाहर आए और बुद्ध को प्रणाम किया। राजा ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी। राजा ने भिक्षुओं के समूह को उत्तम भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने धन्यवाद दिया और पहले की तरह चारों ओर से फूलों से घिरे हुए और जयजयकार करते हुए लोगों की विशाल भीड़ के साथ मठ की ओर चल पड़े।

राजा बुद्ध के साथ थोड़ी दूर तक गए और फिर लौट आए। उन्होंने पुष्पदाता को बुलवाया और उससे पूछा, "बुद्ध का आदर करते समय तुमने क्या कहा था?" पुष्पदाता ने उत्तर दिया, "महाराज, मैंने उनके चरणों में प्राण त्याग दिए और उनका आदर करते हुए कहा, 'राजा चाहे तो मुझे मार डालें या अपने राज्य से निकाल दें।'" राजा ने कहा, "तुम महान पुरुष हो।" ऐसा कहकर उन्होंने बुद्ध को आठ हाथी, आठ घोड़े, आठ पुरुष दास, आठ स्त्री दास, आठ शानदार आभूषणों के समूह, आठ हजार सिक्के, राजमहल से ली गई आठ सुशोभित स्त्रियाँ और आठ उत्तम गाँव भेंट किए। राजा ने बुद्ध को ये आठ गुना उपहार दिए।

आदरणीय आनंद मन ही मन सोचने लगे, "सुबह से ही दिनभर जयजयकार और प्रशंसा की आवाजें गूंजती रही हैं। इस पुष्पदाता को क्या फल मिलेगा?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, इसने अपना प्राण मुझे समर्पित कर दिए और मेरा आदर किया। इसलिए, क्योंकि इसे मुझ पर असीम विश्वास है, यह कष्ट भोगने के लिए विवश नहीं होगा, बल्कि अपने अच्छे कर्मों का फल देवताओं और मनुष्यों के लोक में प्राप्त करेगा। एक दिन यह एकांतवासी बुद्ध सुमन बनेगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 68)

यं कत्वा न अनुतप्पति यस्सा विपाकं पतितो
सुमनो पतिसेवती तं च कम्मं कटं साधु

यं [या]: कोई कार्य; कत्वा : करने के बाद; ना अनुतप्पति : पश्चाताप न करना; यस्सा : उस कार्य का; विपाकं [विपाक]: परिणाम; पतितो [पतित]: प्रसन्नता से; सुमन [सुमन]: प्रसन्न मन से; पतिसेवति : आनंद लेना; तं : उस प्रकार का कार्य; च कम्मं कतं साधु : निश्चय ही करना अच्छा है

ऐसे कर्म करना अच्छा है जिनसे बाद में पश्चाताप न हो। हमें ऐसे कर्म करने चाहिए जिनसे सुखद परिणाम प्राप्त हों।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 68)

patīto sumano : प्रसन्नतापूर्वक और सुखद मन से। इस उदाहरण में, अच्छे कर्मों का परिणाम बताया गया है, जिससे पश्चाताप नहीं होता। कर्म करने वाले ने अपने कर्मों के परिणाम के बारे में पहले से ही सोच-विचार कर लिया था। इसी सोच-विचार के साथ उसने केवल वही कर्म किए हैं जिनसे पश्चाताप न हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 69

(धम्मपद 68) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 69 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 70)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 69 - उप्पलवन्नाथेरी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 69 - उप्पलवन्नाथेरी वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Madhumva mannati balo
yava papam na paccati
yada ca paccati papam
atha dukkham nigacchati.

श्लोक 69 : जब तक बुराई का फल नहीं मिलता, मूर्ख उसे शहद के समान मीठा समझता है; परन्तु जब उसकी बुराई का फल मिलता है, तो मूर्ख को उसका दंड भुगतना पड़ता है।

थेरी (बड़ी नन) उप्पलवन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उप्पलावन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (69) कहा।
सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की एक युवती रहती थी। वह इतनी सुंदर थी, उसका रूप नीले कमल के फूल के समान कोमल और मधुर था, इसलिए उसे "उप्पलावन्ना" यानी नीला कमल कहा जाता था। उसकी सुंदरता दूर-दूर तक फैल गई और कई लोग उससे प्रेम करने के इच्छुक थे: राजकुमार, धनी पुरुष और अन्य। लेकिन उसने भिक्षुणी बनना बेहतर समझा। एक दिन, दीपक जलाने के बाद, उसने अपना ध्यान लौ पर केंद्रित किया और अग्नि कसीना (एकाग्रता का केंद्र) पर ध्यान लगाते हुए शीघ्र ही उसे मार्ग अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और अंततः उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
कुछ समय बाद, वह अंधावन नामक अंधकारमय वन में चली गईं और एकांतवास में रहने लगीं। जब थेरी उप्पलावन्ना भिक्षा मांगने गई हुई थीं, तभी उनके मामा का पुत्र नंदा उनके मठ में आया और उनके पलंग के नीचे छिप गया। नंदा को उप्पलावन्ना से उनके भिक्षुणी बनने से पहले ही प्रेम हो गया था; उसका इरादा स्पष्ट रूप से उन्हें जबरदस्ती अपने साथ ले जाना था। जब उप्पलावन्ना लौटीं तो उन्होंने नंदा को देखा और कहा, "अरे मूर्ख! कोई हानि मत करो, मुझे परेशान मत करो।" लेकिन वह नहीं रुका। अपनी इच्छा पूरी करने के बाद, वह उन्हें छोड़कर चला गया। जैसे ही उसने ज़मीन पर कदम रखा, धरती फट गई और वह उसमें समा गया।
यह सुनकर बुद्ध ने श्लोक में इस प्रकार कहा:

श्लोक 69 : जब तक बुराई का फल नहीं मिलता, मूर्ख उसे शहद के समान मीठा समझता है; परन्तु जब उसकी बुराई का फल मिलता है, तो मूर्ख को उसका दंड भुगतना पड़ता है।

प्रवचन के अंत में, कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।
इसके बाद बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) को बुलवाया और उन्हें जंगलों में रहने वाली भिक्षुणियों को कामुक वासना में लिप्त गैर-जिम्मेदार व्यक्तियों से होने वाले खतरों के बारे में बताया। राजा ने तब यह वादा किया कि वे भिक्षुणियों के लिए मठ केवल शहरों में या शहरों के निकट ही बनवाएंगे।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन उप्पलवन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नुन उप्पलावण्णा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की एक युवती रहती थी। वह इतनी सुंदर थी, उसका रूप नीले कमल के समान कोमल और मधुर था, इसलिए उसे “उप्पलावण्णा” कहा जाता था। उसकी सुंदरता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई और कई लोग उससे प्रेम करने के लिए उत्सुक थे: राजकुमार, धनी पुरुष और अन्य। तब उसके पिता, जो एक व्यापारी थे, ने मन ही मन सोचा, “मैं

सबकी इच्छा पूरी नहीं कर पाऊंगा, लेकिन मुझे इस समस्या का कोई हल निकालना होगा।" अब वह निर्वाण प्राप्त करने से पहले अपने अंतिम जन्म में थी, इसलिए उसके पिता के शब्द उसके लिए सौ गुना शुद्ध तेल के समान थे। इसलिए उसने कहा, "प्रिय पिता, मैं भिक्षुणी बन जाऊंगी।" तो उन्होंने उसके सम्मान में बहुमूल्य उपहार तैयार किए और उसे भिक्षुणियों के समुदाय में ले गए, जहाँ उसका प्रवेश हो गया।

एक दिन करुणा कक्ष के ताले खोलने और बंद करने की बारी उसकी आई। दीपक जलाने और कक्ष की सफाई करने के बाद, उसका ध्यान दीपक की लौ पर केंद्रित हो गया। उसने लौ पर एकाग्रचित्त किया। अग्नि तत्व पर एकाग्रचित्त होकर वह समाधि की अवस्था में प्रवेश कर गई। उसने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

कुछ समय बाद, वह अंधकार वन (अंधावन) में चली गईं और एकांतवास में रहने लगीं। जब भिक्षुणी उप्पलावण्णा भिक्षा मांगने निकली थीं, तभी उनके मामा का पुत्र नंदा उनके मठ में आया और उनके सोफे के नीचे छिप गया। नंदा को उप्पलावण्णा से उनके भिक्षुणी बनने से पहले ही प्रेम हो गया था; उसका इरादा स्पष्ट रूप से उन्हें जबरदस्ती अपने साथ ले जाना था।

लौटकर भिक्षुणी उप्पलावण्णा कुटिया में दाखिल हुईं, दरवाजा बंद किया और पलंग पर बैठ गईं। अंधेरे में उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था क्योंकि वे अभी-अभी धूप से आई थीं। उनके बैठते ही युवक सोफे के नीचे से रेंगकर निकला और ऊपर चढ़ गया। भिक्षुणी चिल्लाईं, "मूर्ख, मुझे बर्बाद मत करो!" लेकिन युवक ने उनके प्रतिरोध को वश में कर लिया, उन पर अपनी इच्छा पूरी की और चला गया। मानो उसकी दुष्टता सहन न कर पाने के कारण धरती फट पड़ी और वह उसमें समा गया और अविची के नरक में पुनर्जन्म लिया।

भिक्षुणी ने अन्य भिक्षुणियों को घटना बताई, भिक्षुणियों ने भिक्षुओं को बताया, और भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया। यह सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया, "भिक्षुओं, जो भी मूर्ख पाप करता है, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी, या पुरुष हो या स्त्री, वह उतने ही आनंद और प्रसन्नता से पाप करता है, मानो वह शहद, चीनी या किसी अन्य मीठे पदार्थ का सेवन कर रहा हो।" फिर उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को विकारों से मुक्त कर लिया है, वे न तो प्रेम के सुखों को पसंद करते हैं और न ही अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। क्योंकि, जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूंद उस पर टिकती नहीं है, बल्कि रेंगकर गिर जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रेम विकारों से मुक्त व्यक्ति के हृदय से नहीं चिपकता।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 69)

पापं याव न पच्चति बालो मधु इव मन्नति
यदा च पापं पच्चति अथ बालो दुक्खं निगच्छति

पापं [पाप]: बुराई; यव न पच्चति : जब तक परिणाम न मिलने लगें; बालो : अज्ञानी; मधु इव : शहद के समान; मन्ञति : विचार करता है; यदा च : जब; पापं [पाप]: बुराई; पच्चति : परिपक्व होती है; अथ : उस समय; बालो : अज्ञानी; दुःखं [दुक्खा]: कष्ट सहने के लिए; निगच्छति : आती है

जब कोई पापपूर्ण कार्य किया जाता है, तो अज्ञानी व्यक्ति को उसमें शहद के समान आनंद आता है। परन्तु कष्ट तब आता है जब उसके बुरे परिणाम सामने आने लगते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 69)

पापं : अशुभ कर्म। कभी-कभी इस प्रकार के कर्म को अकुशल कहा जाता है । अकुशल का अर्थ है अशुभता। ये वे कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक भाव हैं, जो लोभ, घृणा या मात्र भ्रम से ग्रस्त होते हैं; और ये सभी घटनाएँ अशुभ कर्म परिणामों का कारण बनती हैं और इनमें दुखद भाग्य या पुनर्जन्म के बीज निहित होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 70

(धम्मपद 69) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 70 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 71)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 70 - जम्बुकत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 70 - जम्बुकत्थेरा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
मसे मसे कुसग्गेना
बालो भुंजेय्या भोजनम
ना सो संखतधम्मनम
kalam agghati solasim.

श्लोक 70 : यद्यपि मूर्ख (तपस्या में रहने वाला) महीने दर महीने घास के तिनके की नोक से भी कम मात्रा में भोजन करता है, तो भी वह सत्य को समझने वालों (अर्थात आर्यों) के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) जंबुका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा जंबुका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (70) कहा।
जांबुका सावत्थी के एक धनी व्यक्ति का पुत्र था। अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण वह अत्यंत विचित्र आदतों के साथ पैदा हुआ था। बचपन में वह बिना बिस्तर के ज़मीन पर सोना चाहता था और चावल के बजाय अपना मल खाता था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने उसे नग्न तपस्वियों, अजीवकों के पास भेज दिया। जब उन तपस्वियों को उसकी इन विचित्र खान-पान की आदतों के बारे में पता चला, तो उन्होंने उसे भगा दिया। रात में वह मानव मल खाता था और दिन में एक पैर पर खड़ा होकर मुँह खुला रखता था। वह कहता था कि वह अपना मुँह खुला इसलिए रखता है क्योंकि वह केवल हवा पर जीवित रहता है और एक पैर पर इसलिए खड़ा रहता है क्योंकि अन्यथा पृथ्वी उसे सहन नहीं कर पाएगी। "मैं कभी बैठता नहीं, मैं कभी सोता नहीं," वह शेखी बघारता था और इसी कारण उसे जांबुका, यानी 'सियार' के नाम से जाना जाता था।
बहुत से लोग उस पर विश्वास करते थे और कुछ लोग उसके पास उत्तम भोजन का अर्पण लेकर आते थे। तब जंबुका मना कर देता और कहता, "मैं हवा के सिवा कुछ नहीं खाता।" जब लोग उस पर दबाव डालते, तो वह घास के तिनके की नोक से थोड़ा सा भोजन लेकर कहता, "अब जाओ, इस थोड़े से भोजन से ही तुम्हें पर्याप्त पुण्य मिलेगा।" इस प्रकार, जंबुका पचपन वर्ष तक नग्न अवस्था में, केवल मल-मूत्र खाकर जीवित रहा।
एक दिन बुद्ध को दिव्य दर्शन हुआ कि जंबुका कुछ ही समय में अर्हत पद प्राप्त करने वाले हैं। अतः, शाम को बुद्ध जंबुका के निवास स्थान पर गए और उनसे रात बिताने के लिए स्थान पूछा। जंबुका ने उन्हें उस शिलाशि से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पर्वत-गुफा की ओर इशारा किया, जिस पर वे स्वयं निवास कर रहे थे। रात के पहले, दूसरे और तीसरे पहर में चतुमहाराजिका देव, सक्का और महाब्रह्मा (प्रथम देवदूत) बारी-बारी से बुद्ध को प्रणाम करने आए। तीनों ही अवसरों पर वन प्रकाशमान हुआ और जंबुका ने तीन बार प्रकाश देखा। सुबह वे बुद्ध के पास गए और प्रकाश के बारे में पूछा।
जब जंबुका को बताया गया कि देव (देवदूत), सक्का और महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) बुद्ध को प्रणाम करने आए हैं, तो वह बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध से बोला, "आप वास्तव में एक असाधारण महान व्यक्ति होंगे, तभी तो देव, सक्का और महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) आपको प्रणाम करने आए हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैंने पचपन वर्षों तक कठोर तपस्या की है, केवल हवा खाकर और एक पैर पर खड़े होकर जीवन व्यतीत किया है, फिर भी न तो देव, न सक्का और न ही महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) कभी मेरे पास आए हैं।" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे जंबुका! तुम दूसरों को धोखा देते रहे हो, पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं जानता हूँ कि पचपन वर्षों से तुम मल खा रहे हो और जमीन पर सो रहे हो।"
इसके अलावा, बुद्ध ने जंबुका को समझाया कि कैसे अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, जंबुका ने एक थेरा को अपने साथ एक गृहस्थ शिष्य के घर जाने से रोका था, जहाँ भिक्षा दी जा रही थी, और कैसे उसने उस थेरा के लिए भेजा गया भोजन भी फेंक दिया था। इन्हीं बुरे कर्मों के कारण जंबुका को मल-मूत्र खाना पड़ा और ज़मीन पर सोना पड़ा। यह वृत्तांत सुनकर जंबुका भयभीत और आतंकित हो गया, और उसने अपने बुरे कर्मों और दूसरों को धोखा देने के लिए पश्चाताप किया। वह घुटनों के बल बैठ गया और बुद्ध ने उसे ओढ़ने के लिए एक कपड़ा दिया। फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया; प्रवचन के अंत में जंबुका ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उसी क्षण बौद्ध संघ में शामिल हो गया।

इसके तुरंत बाद, अंग और मगध से जंबुका के शिष्य वहाँ पहुँचे और बुद्ध के साथ अपने गुरु को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। तब थेरा जंबुका ने अपने शिष्यों को समझाया कि उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश कर लिया है और अब वे केवल बुद्ध के शिष्य हैं। बुद्ध ने उनसे कहा कि यद्यपि उनके गुरु ने बहुत कम भोजन करके संयमी जीवन व्यतीत किया है, फिर भी यह उनके वर्तमान अभ्यास और उपलब्धियों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 70 : यद्यपि मूर्ख (तपस्या में रहने वाला) महीने दर महीने घास के तिनके की नोक से भी कम मात्रा में भोजन करता है, तो भी वह सत्य को समझने वालों (अर्थात आर्यो) के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु जंबुका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य जंबुका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
जांबुका, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति का पुत्र था। अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण वह अत्यंत विचित्र आदतों के साथ पैदा हुआ था। बचपन में वह बिना किसी उचित पलंग के ज़मीन पर सोना चाहता था और चावल के बजाय अपना मल खाता था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने उसे नग्न तपस्वियों , यानी आजीवकों के पास भेज दिया। जब उन तपस्वियों को उसकी इन विचित्र खान-पान की आदतों के बारे में पता चला, तो उन्होंने उसे भगा दिया। वह रातों में मानव मल खाता था और दिन में एक पैर पर खड़ा होकर अपना मुँह खुला रखता था। वह कहता था कि वह अपना मुँह खुला इसलिए रखता है क्योंकि वह केवल हवा पर जीवित रहता है और एक पैर पर इसलिए खड़ा रहता है क्योंकि अन्यथा पृथ्वी उसे सहन नहीं कर पाएगी। वह शेखी बघारता था, "मैं कभी बैठता नहीं, मैं कभी सोता नहीं," और इसी कारण वह जांबुका, यानी सियार के नाम से जाना जाने लगा।
बहुत से लोग उस पर विश्वास करते थे और कुछ लोग उसके पास उत्तम भोजन का अर्पण लेकर आते थे। तब जंबुका मना कर देता और कहता, “मैं हवा के सिवा कुछ नहीं खाता।” जब कोई उस पर दबाव डालता, तो वह घास के तिनके की नोक से थोड़ा सा भोजन लेकर कहता, “अब जाओ, इस थोड़े से भोजन से ही तुम्हें पर्याप्त पुण्य मिलेगा।” इस प्रकार, जंबुका पचपन वर्ष तक नग्न अवस्था में, केवल मल-मूत्र खाकर जीवित रहा।
एक दिन बुद्ध को दिव्य दर्शन हुआ कि जंबुका कुछ ही समय में अर्हत पद प्राप्त करने वाले हैं। अतः, शाम को बुद्ध जंबुका के निवास स्थान पर गए और उनसे रात बिताने के लिए स्थान पूछा। जंबुका ने उन्हें उस शिलाशि से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पर्वत-गुफा की ओर इशारा किया, जिस पर वे स्वयं ठहरे हुए थे। रात के पहले, दूसरे और तीसरे पहर में चातुम्महाराजिका देव, सक्का और महाब्रह्म बारी-बारी से बुद्ध को प्रणाम करने आए। तीनों ही अवसरों पर वन प्रकाशमान था और जंबुका ने तीन बार प्रकाश देखा। सुबह वे बुद्ध के पास गए और प्रकाश के बारे में पूछा।
जब जंबुका को देवताओं, सक्का और महाब्रह्मों के बुद्ध को प्रणाम करने आने के बारे में बताया गया, तो वह बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध से बोला, “आप वाकई बहुत अद्‌भुत व्यक्ति होंगे, तभी तो देवता, सक्का और महाब्रह्म आपके दर्शन करने आए हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैंने पचपन वर्षों तक कठोर तपस्या की है, केवल हवा खाकर और एक पैर पर खड़े होकर जीवन व्यतीत किया है, फिर भी न तो कोई देवता, न सक्का और न ही महाब्रह्म कभी मेरे पास आए।” इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, “हे जंबुका! तुम दूसरों को धोखा देते रहे हो, पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं जानता हूँ कि पचपन वर्षों से तुम मल खा रहे हो और जमीन पर सो रहे हो।”
यह सुनकर जंबुका भयभीत और आतंकित हो गया, और उसने अपने बुरे कर्मों और दूसरों को धोखा देने के लिए पश्चाताप किया। वह घुटनों के बल बैठ गया और बुद्ध ने उसे पहनने के लिए एक कपड़ा दिया। फिर बुद्ध ने प्रवचन देना शुरू किया; जिसके अंत में जंबुका ने अर्हतत्व प्राप्त किया और बौद्ध संघ में शामिल हो गया।
इसके तुरंत बाद, अंग और मगध से जंबुका के शिष्य वहाँ पहुँचे और अपने गुरु को बुद्ध के साथ देखकर आश्चर्यचकित रह गए। पूज्य जंबुका ने अपने शिष्यों को समझाया कि उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश कर लिया है और अब वे केवल बुद्ध के शिष्य हैं। बुद्ध ने उनसे कहा कि यद्यपि उनके गुरु ने बहुत कम भोजन करके संयमी जीवन व्यतीत किया है, फिर भी यह उनके वर्तमान अभ्यास और उपलब्धियों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 70)
बालो मासे मासे कुसग्गेन भोजनं भुञ्जेथा
सो सङ्खतधम्मनां सोऽसिं कलं न अग्घति

बालो : अज्ञानी व्यक्ति; मासे मासे : महीने में एक बार; कुसग्गेना : घास के ब्लेड की नोक से; भोजनं [bhojana]: भोजन; भुन्जेठा : खाता है; तो : (लेकिन) वह; संखतधम्मनाम् [संखतधम्मन]: बिना शर्त की प्राप्ति का; सोससीं कलां [कला]: कम से कम एक-सोलहवां; न अग्घति : योग्य नहीं है

एक मूर्ख व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। एक कठोर तपस्वी की तरह, वह महीने में केवल एक बार घास के तिनके के सिरे से भोजन का एक छोटा सा टुकड़ा खाता है। फिर भी, ऐसा गुमराह तपस्वी मुक्ति के उतने ही करीब होगा जितना वह शुरुआत में था। इन सब के बावजूद, वह उस अरहंत के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है जिसने निर्गुण मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 70)

कुसग्गेन भोजनं : चाहे घास के तिनके के सिरे से भी भोजन का एक छोटा सा टुकड़ा ग्रहण किया जाए। यह श्लोक उन लोगों के लिए है जो अत्यधिक तपस्या और आत्म-यातना का अभ्यास करते हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों के आरंभिक भाग में ही सत्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में तपस्या को नकार दिया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 71

———————————————————

(धम्मपद 70) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 71 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 72)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेता वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेता वत्थु

———————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na hi papam katam kammam
sajju khiramva muccati
dahantam balarnanveti
bhasmacchannova pavako.

———————————————————

श्लोक 71 : बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे ताजा निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है और उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है।

———————————————————

अहिपेटा (मानव सिर वाला सर्प जैसा भूत) की कहानी (1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

एक बार प्रधान शिष्य महा मोग्गलाना, थेरा लक्खाना के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने गए थे। वहाँ उन्होंने कुछ देखा और मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। जब वे मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना को बताया कि वे इसलिए मुस्कुराए क्योंकि उन्होंने एक पेटा-भूत देखा था जिसका सिर मनुष्य का और शरीर साँप का था। बुद्ध ने तब कहा कि उन्होंने स्वयं उसी पेटा-भूत को बुद्धत्व प्राप्ति के दिन देखा था। बुद्ध ने यह भी बताया कि बहुत समय पहले एक पच्चेकबुद्ध थे, जिनका बहुत सम्मान होता था। उनके मठ जाने वाले

लोगों को एक खेत से होकर गुजरना पड़ता था। खेत के मालिक को डर था कि मठ आने-जाने वाले लोगों की अधिकता से उसका खेत क्षतिग्रस्त हो जाएगा, इसलिए उसने खेत में आग लगा दी। परिणामस्वरूप, पच्चेकबुद्ध को कहीं और जाना पड़ा। पच्चेकबुद्ध के शिष्य, ज़मींदार से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने पच्चेकबुद्ध को पीट-पीटकर मार डाला। अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। वर्तमान जीवन में वे कर्मों के शेष फल (पेत-भूत) भोग रहे थे।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, लेकिन वह हमेशा बुरे कर्म करने वाले का पीछा करता है। बुरे कर्म के परिणामों से कोई बच नहीं सकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 71 : बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे ताजा निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है और उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है।

---

1. अहिपेटा = अहि + पेटा; अहि = सर्प + पेटा = पेटा-भूत, एक सदा भूखा रहने वाला प्रेत। इस उदाहरण में, एक ऐसा भूत जिसका सिर मनुष्य का और शरीर सर्प का है (संस्कृत/हिंदी में पेटा = प्रेत)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नाग-भूत की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, जटाधारी हज़ार तपस्वियों के बीच, पूज्य लक्खना और पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के इरादे से गिद्ध शिखर से उतरे। पूज्य मोग्गलाना ने एक नाग-भूत को देखकर मुस्कुराया। तब पूज्य लक्खना ने उनसे उनकी मुस्कान का कारण पूछते हुए कहा, “भाई, अभी यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होने पर ही मुझसे पूछिएगा।” राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद जब वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर बैठ गए, तब पूज्य लक्खाना ने पूज्य मोग्गलाना से पूछा, “भाई मोग्गलाना, जब आप गिद्ध शिखर से उतर रहे थे, तब आप मुस्कुराए थे; और जब मैंने आपसे आपकी मुस्कान का कारण पूछा, तो आपने कहा, 'बुद्ध के समक्ष आने तक प्रतीक्षा करें, फिर मुझसे पूछें।' अब मुझे इसका कारण बताइए।”

भिक्षु ने कहा, “भाई, मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा। वह कुछ इस तरह दिखता था: उसका सिर मनुष्य के सिर जैसा था और बाकी शरीर नाग जैसा। वह नाग-भूत कहलाता था। उसकी लंबाई पच्चीस मील थी। उसके सिर से ज्वालाएँ निकलकर उसकी पूंछ तक जाती थीं; उसकी पूंछ से भी ज्वालाएँ निकलकर उसके सिर तक जाती थीं। उसके सिर से निकलती आग की लपटें उसके शरीर के दोनों ओर फैलती थीं; उसके किनारों से निकलती आग की लपटें उसके शरीर पर उतरती थीं। कहते हैं कि दो भूत होते हैं जिनकी लंबाई पच्चीस मील होती है, बाकी की लंबाई तीन-चौथाई मील होती है। लेकिन इस नाग-भूत और इस कौवे-भूत की लंबाई पच्चीस मील थी।”

मोग्गलाना ने एक कौवे के भूत को देखा और उससे उसके पूर्व कर्मों के बारे में पूछा। भूत ने कहा, “अपने पिछले जन्म में मैंने पूजनीय लोगों के लिए रखे भोजन के तीन निवाले खा लिए थे। उस कुकर्म के फलस्वरूप, जब मेरी मृत्यु हुई, तो मुझे अविची नरक में कष्ट भोगना पड़ा और उसके बाद, क्योंकि मेरे बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए मेरा पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर कौवे के भूत के रूप में हुआ। अब, अपने कर्मों के कारण, मैं यह कष्ट भोग रहा हूँ।”

नाग-भूत की कहानी भी सुनाई जाती थी। बनारस का एक निवासी सड़क के किनारे खेत जोत रहा था। जो लोग एकाकी बुद्ध के दर्शन करने उसके खेत से गुजरते थे, वे उसके खेत को रौंद देते थे। किसान ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं पाया। अंत में, जब एकाकी बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश कर गए, तो किसान ने अपने खाने-पीने के सारे बर्तन तोड़ दिए और घास-फूस से बने अपने आश्रय में आग लगा दी। तब लोगों ने चिल्लाकर कहा, “इसे पकड़ो!” उन्होंने उसे मार डाला। उसका जन्म अविची नरक में हुआ और बाद में, गिद्ध शिखर पर नाग-भूत के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ।

इस पर भिक्षु ने कहा, “मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा।” तुरंत बुद्ध उठे और मोग्गलाना के कथन की सत्यता की गवाही देते हुए कहा, “भिक्षुओं, मोग्गलाना जो कहते हैं वह सत्य है। मैंने स्वयं इस भूत को उस दिन देखा था जिस दिन मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था। परन्तु दूसरों पर दया करते हुए मैंने यह नहीं कहा, ‘जो मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे, उनका यही हश्र होगा।’”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 71)

खिरं इव कटं पापं कम्मं सज्जु न हि मुक्कति

भस्माच्चन्नो पावको इव दहं तं बलं अन्वेति

khīraṃ iva : दूध की तरह; kataṃ pāpaṃ kammaṃ [kamma]: किए गए बुरे कर्म; sajju : निकालते ही तुरंत; na hi muccati : निश्चित रूप से नहीं फटता; bhasmacchanno pāvako iva : राख से ढकी आग की चिंगारियों की तरह; ḍahaṃ [ḍaha]: जलता हुआ; taṃ bālaṃ [bāla]: वह बुरा करने वाला; anveti : पीछा करता है

जब कोई अज्ञानी व्यक्ति पाप करता है, तो उसका बुरा परिणाम तुरंत नहीं निकलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाय के थन से निकाला गया ताजा दूध तुरंत नहीं फटता। किया गया पाप राख से ढकी चिंगारियों की तरह छिपा रहता है और पापी का पीछा करता रहता है और उसे जलाता रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 71)

दूध निकालते ही तुरंत नहीं फटता । फटने से पहले उसे कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पाप कर्म के साथ भी ऐसा ही होता है। इसके बुरे परिणाम बाद में ही दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि यह प्रक्रिया लंबी होती है, इसलिए पापी को अपने कर्म का बुरा प्रभाव तुरंत दिखाई नहीं देता। इसी कारण वह भविष्य में होने वाले हानिकारक परिणामों को देखे बिना ही पाप करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 72

(धम्मपद71) <<<< पिछला|| धम्मपद72 ||अगला >>>> (धम्मपद 73 और 74)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 72 - सत्थिकुतपेता वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 72 - सत्थिकुतपेता वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

यवदेव अनत्थया
nattam balassa jayati
hanti balassa sukkamsam(1)
मुद्धमस्सा(2) विपतायम.

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके गुण और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

---

1. सुक्कमसा: सुक्क + अंश: सुक्क का अर्थ है सफेद, उज्ज्वल, शुद्ध या अच्छा; अंश का अर्थ है अंश। टीका के अनुसार, सुक्कमसा का अर्थ है गुण।
2. मुद्ध: सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सत्तिकुतापेटा नामक एक पेटा-भूत के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (72) का उच्चारण किया।

मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना के साथ भिक्षा मांगने के दौरान इस विशाल पेटा-भूत को देखा। इस संदर्भ में बुद्ध ने समझाया कि सत्तिकुतापेट अपने पिछले जन्मों में से एक में वस्तुओं पर पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था। एक दिन उसने अपने गुरु से अपनी इस कुशलता को आजमाने की अनुमति मांगी। उसके गुरु ने उसे गाय या मनुष्य पर पत्थर न फेंकने के लिए कहा, क्योंकि ऐसा करने पर उसे मालिक या रिश्तेदार को हर्जाना देना पड़ेगा, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति को निशाना बनाने के लिए कहा जिसका कोई मालिक या संरक्षक न हो।

पच्चेकबुद्ध को देखकर, बुद्धिहीन मूर्खों ने सोचा कि पच्चेकबुद्ध का कोई रिश्तेदार या संरक्षक न होने के कारण वे एक आदर्श निशाना होंगे। इसलिए उन्होंने भिक्षा मांगने निकले पच्चेकबुद्ध पर पत्थर फेंका। पत्थर एक कान से अंदर गया और दूसरे से निकल गया। पच्चेकबुद्ध मठ पहुँचते ही दम तोड़ गए। पत्थर फेंकने वाले को पच्चेकबुद्ध के शिष्यों ने मार डाला और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। बाद में, उसका पुनर्जन्म एक पाद-भूत के रूप में हुआ और तब से वह अपने बुरे कर्मों के बुरे परिणामों (कर्म) की शेष अवधि भोग रहा है। पाद-भूत के रूप में उसके विशाल सिर पर लगातार गर्म हथौड़ों की चोट हो रही है।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "मूर्ख के लिए उसका कौशल या ज्ञान किसी काम का नहीं होता; यह केवल उसे नुकसान ही पहुंचा सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके गुण और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सठिकूत-पेटा की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सठिकूत नामक एक सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, बनारस में एक अपाहिज रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। वह शहर के द्वार पर एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर पत्थर फेंकता और पेड़ के पत्ते तोड़ता था। शहर के लड़के उससे कहते, “हमारे लिए हाथी बना दो, हमारे लिए घोड़ा बना दो;” और वह उनके कहने पर हर जानवर बना देता। बदले में उन्हें उसे कठोर और नरम दोनों तरह का भोजन मिलता था। एक दिन, जब राजा मनोरंजन उद्यान जा रहे थे, तो वे इस स्थान पर आए। लड़के अपाहिज को बरगद की शाखाओं के बीच छोड़कर भाग गए। दोपहर हो चुकी थी जब राजा रुके और पेड़ की जड़ों के बीच चले गए, और उनका शरीर बरगद की छाया में लिपट गया।

“इसका क्या मतलब है?” उसने ऊपर देखते हुए कहा। हाथियों और घोड़ों की आकृतियों में तराशे हुए पत्तों को देखकर उसने पूछा, “यह किसका काम है?” जब उसे पता चला कि यह लंगड़े का काम है, तो उसने उसे बुलवाया। लंगड़े की सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे आठ गुना उपहार और शहर के उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में स्थित चार बड़े और सुंदर गाँव भेंट किए।

अब एक व्यक्ति ने उस अपंग व्यक्ति की सांसारिक समृद्धि को देखकर मन ही मन सोचा, “जन्मजात अपंग इस व्यक्ति ने इस कला के माध्यम से अपार समृद्धि प्राप्त कर ली है। मुझे भी यह कला सीखनी चाहिए।” और उसने सीख ली।

उस समय सुनेत्ता नामक एक एकांत बुद्ध नगर के निकट पत्तों और घास से बने एक आश्रम में निवास करते थे। जब उस व्यक्ति ने उन्हें भिक्षा मांगने के उद्देश्य से नगर के द्वार से प्रवेश करते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “इस व्यक्ति का न तो माता है और न ही पिता। यदि मैं इसे मारूँ, तो मुझे कोई दंड नहीं भुगतना पड़ेगा; मैं अपनी कुशलता का परीक्षण करने के लिए इसे ही मारूँगा।” अतः उसने एकांत बुद्ध के दाहिने कान पर पत्थर का निशाना साधा और उसे फेंक दिया। पत्थर एकांत बुद्ध के दाहिने कान में प्रवेश कर बाएँ कान से निकल गया। एकांत बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई, वे भिक्षा मांगने में असमर्थ रहे और वायु में उड़ते हुए अपने पत्तों के आश्रम में लौटकर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

लोगों ने कहा, “यह दुष्ट व्यक्ति कहता है कि उसने निजी बुद्ध को मारा है। इसे पकड़ो!” और तुरंत ही उन्होंने उसे पीट-पीटकर वहीं मार डाला। उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। जब तक यह विशाल पृथ्वी एक मील ऊपर नहीं उठी, तब तक वह यातना भोगता रहा। इसके बाद, क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, उसका पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर एक हथौड़े के भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 72)

बलास्सा नात्तं अनत्थया यव एव जयति ,
बलास्सा मुद्धं विपातयं अस्सा सुक्कंसं हन्ति

बलास्सा : अज्ञानी द्वारा; नत्तं [नत्त]: क्या सीखा जाता है; अनत्थय याव एव : केवल उसकी हानि के लिए; जयति : (है) अनुकूल; बलास्सा : अज्ञानी व्यक्ति का; मुद्धं [मुद्धा]: सिर; विपतयं [विपतय]: कट जाता है; अस्सा सुक्कनसं [सुक्कांसा]: उसमें जो भी अच्छा है; हन्ति : नष्ट कर देता है

अज्ञानी व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, वह हानिदायक होता है। यह उसके स्वयं के पतन का कारण बनता है। गलत ज्ञान से सीखने वाले की क्षमता नष्ट हो जाती है और वह वास्तविक ज्ञान के मामले में निष्कलंक हो जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 72)

ñattaṃ : ज्ञान। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि मूर्ख व्यक्ति का ज्ञान भी उसके विनाश का कारण बनता है। ज्ञान के लिए अन्य गुणों की आवश्यकता होती है, जैसे कि उसका उपयोग करने की क्षमता ताकि स्वयं को और दूसरों को कोई हानि न हो। मूर्ख लोग भले ही कुछ कौशल प्राप्त कर लें, लेकिन उनमें उसका सही उपयोग करने की बुद्धि नहीं होती।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 73 और 74

____

(धम्मपद 72) <<<< पिछला || धम्मपद 73 और 74 || अगला >>>> (धम्मपद 75)

____

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 73 और 74 - चित्तागहापति वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 73 और 74 - चित्तागहापति वत्थु

____

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Asantam bhavanamiccheyya
purekkharanca bhikkhusu
avasesu ca issariyam
pujam parakulesu(1) ca.

Mameva kata mannantu
gihi(2) pabbajita ubho
mamevativasa assu
kiccakiccesu kismici
iti balassa sankappo
iccha mano ca vaddhati.

____

श्लोक 73: मूर्ख भिक्षु उन गुणों के लिए प्रशंसा चाहता है जो उसमें नहीं हैं, भिक्षुओं के बीच वरीयता, मठों में अधिकार और उन लोगों से आदर चाहता है जो उससे संबंधित नहीं हैं।

____

श्लोक 74: "गृहस्थ और भिक्षु दोनों को यह सोचना चाहिए कि सब कुछ मेरी वजह से होता है; उन्हें सभी मामलों में, चाहे छोटे हों या बड़े, मेरी आज्ञा माननी चाहिए।" मूर्ख के ऐसे विचार होने से उसका लोभ और अहंकार बढ़ता है।

____

1. परकुलेसु: परिवार के बाहर के लोग; (पर = बाहर या अन्य)।
2. गीहि: गहपति, गृहस्थ का संक्षिप्त रूप।

गृहस्थ चित्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सुधम्म और गृहस्थ चित्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (73) और (74) का उच्चारण किया।

गृहस्थ चित्त की मुलाकात एक बार पंचवग्गी (प्रथम पांच भिक्षुओं) के समूह में से एक थेरा महानामा से हुई, जो भिक्षा मांगने निकले थे। चित्त ने थेरा को अपने घर आमंत्रित किया। वहां उन्होंने थेरा को भिक्षा भोजन दिया और उनके प्रवचन को सुनने के बाद चित्त ने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में चित्त ने अपने आम के बाग में एक मठ बनवाया। वहां वे मठ में आने वाले सभी भिक्षुओं की जरूरतों का ध्यान रखते थे और भिक्षु सुधम्म को वहां का निवासी भिक्षु नियुक्त किया।

एक दिन बुद्ध के दो प्रमुख शिष्य, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना, मठ में आए और पूज्य सारिपुत्त के प्रवचन को सुनकर चित्त ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया। फिर उन्होंने अगले दिन दोनों प्रमुख शिष्यों को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने थेरा सुधम्म को भी आमंत्रित किया, लेकिन थेरा सुधम्म ने क्रोधित होकर मना कर दिया और कहा, "आप मुझे पहले ही आमंत्रित कर रहे हैं, बाकी दोनों को नहीं।" चित्त ने फिर से आमंत्रित किया, लेकिन फिर भी मना कर दिया गया। फिर भी, थेरा सुधम्म अगले दिन सुबह चित्त के घर गए। लेकिन जब उन्हें घर में प्रवेश करने के लिए कहा गया, तो थेरा सुधम्म ने मना कर दिया और कहा कि वे बैठेंगे नहीं क्योंकि वे भिक्षा मांगने जा रहे हैं। लेकिन जब उन्होंने दोनों प्रमुख शिष्यों को अर्पित की जाने वाली वस्तुएँ देखीं, तो उन्हें इतनी ईर्ष्या हुई कि वे अपना क्रोध रोक नहीं पाए। उसने चित्त को अपशब्द कहे और बोला, "मैं अब तुम्हारे मठ में और नहीं रहना चाहता," और गुस्से में घर से निकल गया।

वहाँ से वह बुद्ध के पास गया और सारी घटना बताई। बुद्ध ने उससे कहा, “तुमने एक ऐसे गृहस्थ शिष्य का अपमान किया है जो आस्थावान और उदार है। बेहतर होगा कि तुम उसके पास वापस जाओ और अपनी गलती स्वीकार करो।” सुधम्म ने बुद्ध के कहे अनुसार ही किया, लेकिन चित्त शांत नहीं हुआ; इसलिए वह दूसरी बार बुद्ध के पास लौटा। बुद्ध यह जानते हुए कि इस समय तक सुधम्म का अहंकार कम हो चुका था, बोले, “मेरे पुत्र, एक अच्छे भिक्षु को आसक्ति नहीं रखनी चाहिए; एक अच्छे भिक्षु को घमंडी नहीं होना चाहिए और यह नहीं कहना चाहिए कि 'यह मेरा मठ है, यह मेरा स्थान है, ये मेरे गृहस्थ शिष्य हैं,' इत्यादि, क्योंकि ऐसे विचारों वाले व्यक्ति में लोभ और अहंकार बढ़ता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 73 : मूर्ख भिक्षु उन गुणों के लिए प्रशंसा चाहता है जो उसमें नहीं हैं, भिक्षुओं के बीच वरीयता, मठों में अधिकार और उन लोगों से आदर चाहता है जो उससे संबंधित नहीं हैं।

श्लोक 74 : "गृहस्थ और भिक्षु दोनों को यह सोचना चाहिए कि सब कुछ मेरी वजह से होता है; उन्हें सभी मामलों में, चाहे छोटे हों या बड़े, मेरी आज्ञा माननी चाहिए।" मूर्ख के ऐसे विचार होने से उसका लोभ और अहंकार बढ़ता है।

प्रवचन के अंत में, सुधम्म चित्त के घर गए, और इस बार उनका मेल-मिलाप हो गया; और कुछ ही दिनों में, सुधम्म ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गृहस्थ चित्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सुधम्म और गृहस्थ चित्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

मच्चिकासण्ड नगर में रहने वाले चित्त नामक एक गृहस्थ ने पाँच भिक्षुओं के समूह में से एक पूज्य महानामा को भिक्षा माँगते हुए देखा। उनके आचरण से प्रसन्न होकर चित्त ने उनका भिक्षापात्र ग्रहण किया, उन्हें अपने घर में आमंत्रित किया, भोजन कराया और भोजन के बाद धर्मोपदेश सुनकर धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया। अब चित्त, जो अडिग आस्था से परिपूर्ण थे, अपने भोग उद्यान अंबठक उपवन को संघ का निवास स्थान बनाना चाहते थे। उन्होंने पूज्य महानामा के दाहिने हाथ में जल डाला और उपवन को संघ की ओर गतिमान कर दिया। जैसे ही उन्होंने “बुद्ध धर्म दृढ़ता से स्थापित हो गया है” कहा, पृथ्वी सागर की सीमा तक काँप उठी। महान कोषाध्यक्ष ने उपवन में एक भव्य मठ का निर्माण करवाया और उसके बाद से चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुओं के लिए उसके द्वार खुले रहे। मच्छिकासंद में आदरणीय सुधम्मा भी रहते थे।

कुछ समय बाद, चित्त के अच्छे गुणों की अफवाह सुनकर दोनों प्रमुख शिष्यों ने उन्हें प्रणाम करने का निश्चय किया और मच्छिकासंढ गए। गृहस्थ चित्त ने उनके आने की सूचना पाकर आधा मील की दूरी तय करके उनका स्वागत किया, उन्हें मठ तक ले गए, उनका अभिनंदन किया, आगंतुकों के लिए सामान्य रस्में निभाईं और फिर बुद्ध से यह निवेदन किया, "हे पूज्यवर, हम धम्म पर एक संक्षिप्त प्रवचन सुनना चाहते हैं।" पूज्यवर ने उत्तर दिया, "हे गृहस्थ शिष्य, हम यात्रा से थक गए हैं; फिर भी थोड़ी देर सुनिए।" चित्त ने केवल बुद्ध के धम्म प्रवचन को सुनकर ही द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त कर लिया। फिर उन्होंने दोनों प्रमुख शिष्यों को प्रणाम किया और उन्हें अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित करते हुए कहा, "हे पूज्यवर, कृपया कल अपने हजार भिक्षुओं के साथ मेरे घर में भोजन करें।" फिर उन्होंने अपने निवास स्थान पर रहने वाले भिक्षु, पूज्य सुधम्म की ओर रुख किया और उन्हें आमंत्रित करते हुए कहा, "पूज्यवर, आप भी कल पूज्यवरों के साथ आइए।" यह सोचकर कि "उन्होंने मुझे सबसे आखिर में आमंत्रित किया है," सुधम्म क्रोधित हो गए और उन्होंने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया; और यद्यपि चित्त ने बार-बार निमंत्रण दोहराया, फिर भी उन्होंने इनकार कर दिया। गृहस्थ शिष्य ने कहा, "कृपया उपस्थित रहिए, पूज्यवर," और बाहर चले गए। अगले दिन उन्होंने अपने निवास स्थान पर भव्य प्रसाद तैयार किया। सुबह-सुबह पूज्य सुधम्म ने मन ही मन सोचा, "गृहस्थ ने मुख्य शिष्यों के लिए किस प्रकार का भोजन तैयार किया है? मैं जाकर देखूँ।" अतः सुबह-सुबह वे पान और वस्त्र लेकर अपने घर चले गए।

"कृपया बैठ जाइए, आदरणीय," गृहस्थ ने कहा। "मैं नहीं बैठूंगा," सुधम्म ने उत्तर दिया; "मैं भिक्षा मांगने जा रहा हूँ।" आदरणीय ने प्रमुख शिष्यों के लिए तैयार प्रसाद को देखा और गृहस्थ को भोजन की विविधता पर चिढ़ाने के लिए कहा, "गृहस्थ, आपका भोजन बहुत उत्तम है, लेकिन आपने एक चीज छोड़ दी है।" "वह क्या है, आदरणीय?" "तिल की रोटी, गृहस्थ।" इस पर गृहस्थ ने उन्हें कौवे से तुलना करते हुए फटकारा। इससे क्रोधित होकर आदरणीय ने कहा, "यह आपका निवास स्थान है, गृहस्थ; मैं चला जाऊंगा।" गृहस्थ ने तीन बार आदरणीय को रोकने का प्रयास किया, लेकिन हर बार उन्होंने इनकार कर दिया। अंततः वे घर छोड़कर बुद्ध के पास गए और चित्त और अपने बीच हुई बातचीत बताई। बुद्ध ने कहा, "तुम जैसे तुच्छ व्यक्ति ने एक निष्ठावान, विश्वासी शिष्य का अपमान किया है।" इस प्रकार सारा दोष भिक्षु पर डालकर बुद्ध ने उसे शिष्य से क्षमा मांगने के लिए वापस भेज दिया। पूज्य भिक्षु चित्त के पास गए और बोले, "गृहस्थ, यह सब मेरी गलती थी; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।" लेकिन गृहस्थ ने उन्हें क्षमा करने से इनकार कर दिया और कहा, "मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूंगा।"

क्षमा न मिलने पर क्रोधित होकर वह बुद्ध के पास लौट आया। बुद्ध जानते थे कि गृहस्थ सुधम्म को क्षमा कर देंगे, फिर भी उन्होंने सोचा, "यह पूज्यवर अपने अहंकार में हठी है; अब इसे तीस कोठ जाकर वापस आने दो।" और इसलिए, क्षमा प्राप्त करने का तरीका बताए बिना ही उन्होंने उसे विदा कर दिया। पूज्यवर अपने अहंकार को चूर-चूर करके लौट आया। तब बुद्ध ने पूज्यवर को एक साथी दिया और उससे कहा, "इस साथी के साथ जाओ और गृहस्थवर से क्षमा मांगो।" बुद्ध ने कहा, "एक धार्मिक व्यक्ति को अहंकार या द्वेष में नहीं पड़ना चाहिए, यह सोचकर कि 'यह निवास मेरा है, यह पुरुष गृहस्थ शिष्य मेरा है, यह स्त्री गृहस्थ शिष्य मेरी है।' क्योंकि यदि वह ऐसा करता है, तो द्वेष, अहंकार और अन्य बुराइयाँ बढ़ जाती हैं।"

यह उपदेश सुनकर पूज्य सुधम्म ने बुद्ध को प्रणाम किया, अपने आसन से उठे, बुद्ध की परिक्रमा की और फिर अपने साथी भिक्षु के साथ उस गृहस्थ शिष्य के पास गए, अपने दोष का प्रायश्चित किया और उससे क्षमा मांगी। गृहस्थ शिष्य ने उन्हें क्षमा कर दिया और बदले में उनसे क्षमा मांगते हुए कहा, "हे पूज्य, मैं आपको क्षमा करता हूँ; यदि मुझसे कोई गलती हुई हो, तो कृपया मुझे भी क्षमा कर दीजिए।" पूज्य सुधम्म ने बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश का दृढ़तापूर्वक पालन किया और कुछ ही दिनों में अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

उस गृहस्थ शिष्य ने मन ही मन सोचा, "बुद्ध के दर्शन किए बिना ही मुझे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हो गया है; उनके दर्शन किए बिना ही मुझे द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त हो गया है। मुझे बुद्ध के दर्शन अवश्य करने चाहिए।" अतः उसने पाँच सौ गाड़ियाँ तिल, चावल, घी, चीनी, वस्त्र, चादर और अन्य भेंटों से भरकर तैयार करवाईं। उसने बुद्ध से दर्शन किए और एक माह बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। एक माह बाद, पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा, "पूज्यवर, क्या आपके दर्शन करने मात्र से ही उन्हें ये सभी सम्मान प्राप्त हुए?" बुद्ध ने कहा, "आनंद, ऐसा व्यक्ति चाहे जिस स्थान पर भी जाए, उसे लाभ और सम्मान ही प्राप्त होता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 73)

असतं भवनं इच्छेय्य , भिक्खुसु शुद्धखरञ्च

अवसेसु च इस्सारियं परकुलेसु पूजा च

asataṃ bhāvanaṃ iccheyya : उन गुणों के लिए मान्यता प्राप्त करने का शौकीन जो उसमें नहीं हैं; bhikkhūsu : भिक्षुओं के बीच; purekkhārañca : नेतृत्व; āvāsesu ca : निवास; issariyaṃ [issariya] : श्रेष्ठता; parakulesu : अन्य परिवारों द्वारा; pūjā ca : स्वीकृति, मान्यता और प्रसन्नता (इच्छाएँ)

वह उस चीज़ के लिए पहचाने जाने का शौकीन है जो वह वास्तव में नहीं है। वह अपने साथियों के बीच श्रेष्ठता की लालसा रखता है। वह आवास संबंधी मामलों में प्राथमिकता पाने के लिए तरसता है। वह अन्य परिवारों से उपहार और वस्तुएँ प्राप्त करने के विचार से भी मोहित है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 74)

गहि पब्बजिता उभो मम एव कतं अन्नन्तु ,
किस्मिसि किक्काकिचेसु मम एव अतिवसा अस्सु
“ इति बलास्सा संकप्पो इच्छा मनो च वन्धति

गिहि : आम आदमी; पब्बाजिता : भिक्षुओं; उभो : ये दोनों समूह; मामा ईवा : अकेले मेरे द्वारा; कतं अन्नन्तु : किया हुआ जानना चाहिए; किसमिसी : जो भी हो; किक्काकिसेसु : गतिविधियाँ छोटी या बड़ी; मामा ईवा : मैं अकेला; अतिवास अस्सु : का पालन किया जाना चाहिए; आईटीआई : इस तरह; बालासा : अज्ञानी का; संकप्पो [संकप्पा]: सोच है; इच्छा : लालसा; मनो च : और अभिमान (श्रेष्ठता की भावना); वधति : वृद्धि

अज्ञानी व्यक्ति की मानसिकता यह होती है: “आम लोग और धर्मगुरु दोनों जान लें कि यह सब मैंने अकेले किया है। चाहे काम छोटा हो या बड़ा, उसमें केवल मेरा ही नेतृत्व होना चाहिए। सबको मेरा अनुसरण करना चाहिए।” अज्ञानी व्यक्ति का यह घमंड लालसा, अनियंत्रित इच्छा और निराधार अभिमान को जन्म देता है, जिससे श्रेष्ठता का झूठा एहसास पैदा होता है। ये सब धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 73-74)

असतं भावनां इच्चेय्या पुरेक्खारांच : यश और श्रेष्ठता। ये दो श्लोक पूरी तरह से मठवासी जीवन में अनुभव किए जाने वाले अहंकार के विभिन्न रूपों पर आधारित हैं। ये रूप मुख्य रूप से उन भिक्षुओं और तपस्वियों को प्रभावित करते हैं जो आध्यात्मिक प्रगति में अधिक उन्नत नहीं हैं। चूंकि उन्होंने मठवासी जीवन के वास्तविक मूल्यों को संजोना शुरू नहीं किया है, इसलिए वे दिखावटी उपहारों, भेंटों, प्रतिष्ठापूर्ण नेतृत्व आदि के प्रति आसक्त रहते हैं। ये अहंकारी गतिविधियाँ उन लोगों की तुच्छ गतिविधियाँ हैं जो अभी भी आध्यात्मिक उन्नति की शुरुआत में हैं। ये अज्ञानी लोग अपने द्वारा छोड़े गए गृहस्थ जीवन की इन संपत्तियों को प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं। अनुचरों से घिरे रहना, विशेष उपहार प्राप्त करने के लिए चुने जाना, ये सब उनके लिए महत्वपूर्ण हैं। यदि उन्हें उपेक्षित महसूस होता है तो वे आहत होते हैं। वे अपने परिवार के अलावा अन्य परिवारों से भी आवश्यकताओं की लालसा करने लगते हैं, ताकि वे अपने प्रशंसकों का दायरा बढ़ा सकें। ये मनोवृत्तियाँ उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों को धूमिल करती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 75

(धम्मपद 73 और 74) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 75 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 76)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 75 - वनवसिटिससामनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 75 - वनवसिटिससामनेरा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Anna hi labhupanisa
अन्ना निब्बानगामिनी
एवमेतम अभिनया

भिक्खु बुद्धस्सा सवाको
sakkaram nabhinandeyya
vivekamanubruhaye(1).

श्लोक 75 : वास्तव में, सांसारिक लाभ की ओर ले जाने वाला मार्ग एक है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा है। इसे पूर्णतः समझते हुए, भिक्षु, बुद्ध के शिष्य को सांसारिक लाभ और मान-सम्मान में प्रसन्न नहीं होना चाहिए, बल्कि एकांत, वैराग्य और निर्वाण की प्राप्ति में स्वयं को समर्पित करना चाहिए।

---

1. विवेकमानुब्रुहये (विवेकम + अनुब्रुहये): विवेक - एकांतवास। टीका के अनुसार, विवेक तीन प्रकार के होते हैं: कायविवेक (शरीर का एकांतवास या एकांतवास); चित्तविवेक (मन का मानवीय भावनाओं से विरक्ति) और उपाधिविवेक (निर्वाण)।

वन मठ के समनेरा (वरिष्ठ भिक्षु) तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (75) का उच्चारण किया, जो कि समनेरा तिस्सा के संदर्भ में था, जो एक वन मठ में रहता था।

तिस्सा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उनके पिता अपने घर में प्रधान शिष्य सारिपुत्त को भिक्षा देते थे, इसलिए तिस्सा बचपन से ही कई बार प्रधान शिष्य से मिलते रहे थे। सात वर्ष की आयु में वे प्रधान शिष्य सारिपुत्त के शिष्य (समनेर) बन गए। जब वे जेतवन मठ में रह रहे थे, तो उनके कई मित्र और रिश्तेदार उनसे मिलने आते थे और उपहार व भेंट लाते थे। समनेर को ये मुलाकातें बहुत थकाऊ लगती थीं; इसलिए बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर वे वन मठ के लिए निकल पड़े। जब भी कोई ग्रामीण उन्हें कुछ भेंट करता, तिस्सा बस इतना कहते, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," ("सुखित होथा, दुःख मुच्चथा"), और अपने रास्ते चले जाते। वन मठ में रहते हुए उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और तीन महीने के अंत में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

वर्षा ऋतु (तीन महीने) के बाद, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना और अन्य वरिष्ठ शिष्यों के साथ बुद्ध की अनुमति से समनेरा तिस्सा गए। सभी ग्रामीण पूज्य सारिपुत्त और उनके चार हजार भिक्षुओं के समूह का स्वागत करने के लिए बाहर आए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से प्रवचन देने का अनुरोध किया, लेकिन मुख्य शिष्य ने मना कर दिया; इसके बजाय, उन्होंने अपने शिष्य तिस्सा को ग्रामीणों को प्रवचन देने का निर्देश दिया। हालांकि, ग्रामीणों ने कहा कि उनके गुरु तिस्सा केवल "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों" कह सकते हैं, और मुख्य शिष्य से उनके स्थान पर किसी अन्य भिक्षु को नियुक्त करने का अनुरोध किया। लेकिन पूज्य सारिपुत्त ने जोर दिया कि तिस्सा को ही धम्म पर प्रवचन देना चाहिए, और तिस्सा से कहा, "तिस्सा, इन लोगों से धम्म के बारे में बात करो और उन्हें दिखाओ कि सुख कैसे प्राप्त किया जाए और जीवन के दुखों से कैसे मुक्ति पाई जाए।"

इस प्रकार, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, समनेरा तिस्सा प्रवचन देने के लिए मंच पर गए। उन्होंने श्रोताओं को स्कंधों (खंडों), इंद्रिय आधारों (आयतनों), बोधिपक्खीय धम्म (शिक्षा के निरंतरता के तत्व), अर्हतत्व और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग आदि का अर्थ समझाया। अंत में उन्होंने कहा, "इस प्रकार, जो अर्हतत्व प्राप्त कर लेते हैं वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाते हैं और उन्हें पूर्ण शांति प्राप्त होती है; शेष सभी पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहते हैं।"

पूज्य सारिपुत्त ने तिस्सा द्वारा धम्म की इतनी अच्छी व्याख्या करने के लिए उनकी प्रशंसा की। जब उन्होंने अपनी व्याख्या समाप्त की, तब भोर होने वाली थी और सभी ग्रामीण बहुत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ इस बात से आश्चर्यचकित थे कि समनेरा तिस्सा को धम्म का इतना ज्ञान है, लेकिन वे उनसे असंतुष्ट भी थे क्योंकि पहले उन्होंने उनसे धम्म के बारे में बहुत कम बात की थी; अन्य समनेरा को इतना विद्वान पाकर प्रसन्न और संतुष्ट थे और उन्हें लगा कि वे उनके बीच रहकर बहुत भाग्यशाली हैं।

बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से जेतवन मठ से ग्रामीणों के इन दो समूहों को देखा और उनके सामने प्रकट हुए। गाँव में आने का उनका उद्देश्य पहले समूह के ग्रामीणों के बीच फैली गलतफहमी को दूर करना था। बुद्ध उस समय पहुँचे जब ग्रामीण भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन तैयार कर रहे थे। इस प्रकार, उन्हें बुद्ध को भी भिक्षा भोजन अर्पित करने का अवसर मिला। भोजन के बाद, बुद्ध ने ग्रामीणों को संबोधित करते हुए कहा, "हे गृहस्थ शिष्यों, आप सभी बहुत भाग्यशाली हैं कि समनेरा तिस्सा आपके बीच हैं। उनकी उपस्थिति के कारण ही मैं स्वयं, मेरे प्रमुख शिष्य, वरिष्ठ शिष्य और कई अन्य भिक्षु आज आप लोगों से मिलने आए हैं।" इन शब्दों से उन्हें यह एहसास हुआ कि समनेरा तिस्सा का होना उनके लिए कितना सौभाग्य की बात है और वे संतुष्ट हो गए। इसके बाद बुद्ध ने ग्रामीणों और भिक्षुओं को प्रवचन दिया, जिसके परिणामस्वरूप, उनमें से कई ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

प्रवचन के बाद बुद्ध जेतवन मठ लौट आए। शाम को भिक्षुओं ने बुद्ध से तिस्सा की प्रशंसा करते हुए कहा, "हे पूज्यवर, समनेरा तिस्सा ने एक बहुत कठिन कार्य किया; श्रावस्ती में उनके पास सभी प्रकार के उपहार और भेंट प्रचुर मात्रा में थे, फिर भी उन्होंने इन सभी को त्यागकर वन मठ में तपस्या करने का निर्णय लिया।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, भिक्षु चाहे नगर में हो या ग्राम में, उसे उपहारों और भेंटों के लिए नहीं जीना चाहिए। यदि भिक्षु सभी सुख-सुविधाओं और सांसारिक लाभों का त्याग करके एकांत में लगन से धर्म का अभ्यास करे, तो वह निश्चित रूप से अर्हतत्व प्राप्त करेगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 75 : वास्तव में, सांसारिक लाभ की ओर ले जाने वाला मार्ग एक है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा है। इसे पूर्णतः समझते हुए, भिक्षु, बुद्ध के शिष्य को सांसारिक लाभ और मान-सम्मान में प्रसन्न नहीं होना चाहिए, बल्कि एकांत, वैराग्य और निर्वाण की प्राप्ति में स्वयं को समर्पित करना चाहिए।

अध्याय पाँच का अंत: मूर्ख (बलवग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
वन मठ के नवोदित भिक्षु तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वन मठ में रहने वाले एक नवोदित भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
तिस्सा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उनके पिता अपने घर में मुख्य शिष्य सारिपुत्त को भिक्षा देते थे, इसलिए तिस्सा बचपन से ही कई बार मुख्य शिष्य सारिपुत्त से मिलते रहे थे। सात वर्ष की आयु में वे मुख्य शिष्य सारिपुत्त के शिष्य बन गए। जब वे जेतवन मठ में रह रहे थे, तो उनके कई मित्र और रिश्तेदार उनसे मिलने आते थे और उपहार व भेंट लाते थे। इन मुलाकातों से उन्हें बहुत थकान होती थी; इसलिए बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर वे वन मठ चले गए। जब भी कोई ग्रामीण उन्हें कुछ भेंट करता, तिस्सा बस इतना कहते, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," ("सुखिता होथा, दुःखा मुच्चथा"), और अपने रास्ते चले जाते। वन मठ में रहते हुए उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और तीन महीने के अंत में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ।
वर्षा ऋतु के बाद, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना और अन्य वरिष्ठ शिष्यों के साथ, बुद्ध की अनुमति से नवोदित भिक्षु तिस्सा से मिलने गए। सभी ग्रामीण पूज्य सारिपुत्त और उनके साथ आए कई भिक्षुओं का स्वागत करने के लिए बाहर आ गए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से प्रवचन देने का अनुरोध किया, लेकिन मुख्य शिष्य ने मना कर दिया; इसके बजाय, उन्होंने अपने शिष्य तिस्सा को ग्रामीणों को प्रवचन देने का निर्देश दिया। हालांकि, ग्रामीणों ने कहा कि उनके गुरु तिस्सा केवल इतना ही कह सकते हैं, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," और मुख्य शिष्य से उनके स्थान पर किसी अन्य भिक्षु को नियुक्त करने का अनुरोध किया। लेकिन पूज्य सारिपुत्त ने जोर दिया कि तिस्सा को धम्म पर प्रवचन देना चाहिए, और तिस्सा से कहा, "तिस्सा, इन लोगों से धम्म के बारे में बात करो और उन्हें दिखाओ कि सुख कैसे प्राप्त किया जाए और जीवन के दुखों से कैसे मुक्ति पाई जाए।"
इस प्रकार, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, नवोदित भिक्षु तिस्सा प्रवचन देने के लिए मंच पर चढ़े। उन्होंने श्रोताओं को खन्धस , आयतन और आयतन के आधार , बोधिपक्खिया , अर्हतत्व और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग आदि का अर्थ समझाया । अंत में उन्होंने कहा, "इस प्रकार, जो अर्हतत्व प्राप्त कर लेते हैं वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाते हैं और उन्हें पूर्ण शांति प्राप्त होती है; शेष सभी पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहते हैं।"
पूज्य सारिपुत्त ने तिस्सा द्वारा धम्म की इतनी अच्छी व्याख्या करने के लिए उनकी प्रशंसा की। जब उन्होंने अपनी व्याख्या समाप्त की, तब भोर होने वाली थी और सभी ग्रामीण बहुत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ आश्चर्यचकित थे कि नवोदित भिक्षु तिस्सा को धम्म का इतना ज्ञान कैसे था, जबकि पहले वे उनसे धम्म के बारे में बहुत कम बात करते थे; अन्य लोग नवोदित भिक्षु को इतना विद्वान पाकर प्रसन्न और संतुष्ट थे और उन्हें लगा कि वे भाग्यशाली हैं कि वे उनके बीच हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 75)
लाभुपनिसा अन्न हि निब्बानागामिनी
बुद्धस्स सावको भिक्खु एतं अभिनयाय
साकारं न अभिनन्देय विवेकं अनुबृहये
लाभभूपनिसा : सांसारिक लाभ कमाने की रणनीति; अञ्ञा ही : एक है; निब्बानगामिनी : मुक्ति का मार्ग; अञ्ञा ही : (निश्चित रूप से) एक और है; एवं बुद्धस्स सावको [सावका]: इस प्रकार बुद्ध के शिष्य; भिक्षु : भिक्षु; एतं : यह विषय; अभिञ्ञाय : अच्छी तरह से सराहना करते हुए; सक्कारं [सक्कार]: अनुचित आराधना और उपहारों का अर्पण; न अभिनन्देय्य : नहीं करना चाहिए; विवेकं [विवेक]: शांति; अनुब्रुहये : का अनुसरण करना चाहिए

सांसारिक और भौतिक उन्नति और लाभ का एक ही मार्ग है। परन्तु निर्वाण का मार्ग इससे बिलकुल भिन्न है। बुद्ध के शिष्य भिक्षु को इस अंतर का भलीभांति ज्ञान होना चाहिए। उसे उन सांसारिक वरदानों में आनंद नहीं लेना चाहिए जिनसे वह आकर्षित हो रहा है। इसके विपरीत, उसे एकांत की खोज करनी चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 75)

विवेक : वैराग्य, एकांतवास। निद्देसा के अनुसार, यह तीन प्रकार का होता है:

शारीरिक वैराग्य, अर्थात् आकर्षक इंद्रिय-संबंधी वस्तुओं से मुक्त होकर एकांत में रहना;

मानसिक वैराग्य, अर्थात् इंद्रियजन्य चीजों से आंतरिक वैराग्य;

अस्तित्व के आधारभूत ढांचे से अलगाव।

प्रथम समाधि के वर्णन में, 'इंद्रिय सुखों से विरक्त' शब्द 'शारीरिक विरक्ति' को संदर्भित करते हैं, 'कर्मिक रूप से अस्वास्थ्यकर चीजों से विरक्त' शब्द 'मानसिक विरक्ति' को संदर्भित करते हैं; 'विरक्ति से उत्पन्न' शब्द पांच बाधाओं की अनुपस्थिति को संदर्भित करते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 76

———————————————————————

(धम्मपद 75) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 76 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 77)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 76 - राधाथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 76 - राधाथेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

निधिनम्वा पवत्तरम

yam passe vajjadassinam
nig-gayhavadim medhavim
tadisam panditam bhaje
tadisam bhajamanassa
seyyo hoti na papiyo.

———————————————————————

श्लोक 76 : हमें उस बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए जो हमारी गलतियों के लिए हमें फटकारता है, ठीक वैसे ही जैसे हम किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने के लिए किसी मार्गदर्शक का अनुसरण करते हैं। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करने वाले को लाभ ही होगा, हानि नहीं।

———————————————————————

थेरा (वरिष्ठ भिक्षुणी) राधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (76) का उच्चारण थेरा राधा के संदर्भ में किया, जो एक समय में एक गरीब बूढ़ी ब्राह्मण थीं।

राधा एक गरीब ब्राह्मण थे जो मठ में रहकर भिक्षुओं की छोटी-मोटी सेवाएँ करते थे। उनकी सेवाओं के बदले उन्हें भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती थीं, लेकिन भिक्षु बनने की प्रबल इच्छा होने के बावजूद उन्हें संघ में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया।

एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में एक वृद्ध ब्राह्मण दिखाई दिया और वे समझ गए कि वह अर्हत पद के पात्र हैं। इसलिए बुद्ध उस वृद्ध व्यक्ति के पास गए और उनसे जाना कि मठ के भिक्षु उन्हें संघ में शामिल नहीं करना चाहते। अतः बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, "क्या यहाँ कोई ऐसा भिक्षु है जिसे इस वृद्ध व्यक्ति द्वारा किए गए किसी उपकार की याद हो?" इस प्रश्न के उत्तर में पूज्य सारिपुत्त ने कहा, "पूज्यवर, मुझे वह घटना याद है जब इस वृद्ध व्यक्ति ने मुझे एक चम्मच चावल खिलाया था।" बुद्ध ने कहा, "यदि ऐसा है, तो क्या आपको अपने उपकारी को जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं करनी चाहिए?" तब पूज्य सारिपुत्त उस वृद्ध व्यक्ति को भिक्षु बनाने के लिए सहमत हो गए और उन्हें विधिवत संघ में प्रवेश दे दिया गया। पूज्य सारिपुत्त ने वृद्ध भिक्षु का मार्गदर्शन किया और वृद्ध भिक्षु ने उनके मार्गदर्शन का पूर्णतया पालन किया। कुछ ही दिनों में वृद्ध भिक्षु ने अर्हत पद प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध अगली बार भिक्षुओं से मिलने आए, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वृद्ध भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के मार्गदर्शन का कितनी सख्ती से पालन करते हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि भिक्षु को राधा की तरह मार्गदर्शन के प्रति ग्रहणशील होना चाहिए और किसी भी गलती या कमी के लिए फटकार मिलने पर उसे नाराज नहीं होना चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 76 : हमें उस बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए जो हमारी गलतियों के लिए हमें फटकारता है, ठीक वैसे ही जैसे हम किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने के लिए किसी मार्गदर्शक का अनुसरण करते हैं। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करने वाले को लाभ ही होगा, हानि नहीं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय राधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु राधा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो एक समय में एक गरीब वृद्ध ब्राह्मण थे।

राधा एक गरीब ब्राह्मण थे जो मठ में रहकर भिक्षुओं की छोटी-मोटी सेवाएँ करते थे। उनकी सेवाओं के बदले उन्हें भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती थीं, लेकिन उन्हें संघ में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया, हालाँकि उनकी भिक्षु बनने की प्रबल इच्छा थी।

एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में एक गरीब ब्राह्मण दिखाई दिया और वे समझ गए कि वह अर्हत पद के योग्य है। इसलिए बुद्ध उस वृद्ध व्यक्ति के पास गए और उनसे जाना कि मठ के भिक्षु उन्हें संघ में शामिल नहीं करना चाहते। अतः बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, “क्या यहाँ कोई ऐसा भिक्षु है जिसे इस वृद्ध व्यक्ति द्वारा किए गए किसी उपकार की याद हो?” इस प्रश्न के उत्तर में पूज्य सारिपुत्त ने कहा, “पूज्यवर, मुझे वह घटना याद है जब इस वृद्ध व्यक्ति ने मुझे एक चम्मच चावल खिलाया था।” बुद्ध ने कहा, “यदि ऐसा है, तो क्या तुम्हें अपने उपकारी को जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं करनी चाहिए?” तब पूज्य सारिपुत्त उस वृद्ध व्यक्ति को भिक्षु बनाने के लिए सहमत हो गए और उन्हें विधिवत संघ में शामिल कर लिया गया। पूज्य सारिपुत्त ने उस वृद्ध भिक्षु का मार्गदर्शन किया और उन्होंने उनके मार्गदर्शन का कड़ाई से पालन किया। कुछ ही दिनों के भीतर, वृद्ध भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध अगली बार भिक्षुओं से मिलने आए, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वृद्ध भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के मार्गदर्शन का कितनी सख्ती से पालन करते हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि एक भिक्षु को राधा के समान मार्गदर्शन के प्रति ग्रहणशील होना चाहिए और किसी भी गलती या कमी के लिए फटकार मिलने पर उसे नाराज नहीं होना चाहिए।

बुद्ध ने कहा, “आर्यनीय सारिपुत्त अपने पिछले जन्म में वह एकाकी हाथी थे जिन्होंने अपने पैर के उपचार में उनकी सेवा के सम्मान में अपने पुत्र, शुद्ध सफेद हाथी को बढ़ई को भेंट किया था।” आदरणीय सारिपुत्त के बारे में ऐसा कहने के बाद, उन्होंने आदरणीय राधा के संदर्भ में कहा, “भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु को कोई दोष बताया जाए, तो उसे राधा की तरह अनुशासन का पालन करना चाहिए और जब उसे चेतावनी दी जाए, तो उसे नाराज नहीं होना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 76)

वज्जादस्सीनं निग-गहवादिं मेधाविं यं
निधिनं पवत्तरं इव पस्से तदिसं पंडितं
भजे तदिसं भजमानस्स सय्यो होति पापियो न

वज्जदास्सिना : जो त्रुटियों को इंगित करता है; निग्गयहवादि : जो रचनात्मक रूप से नसीहत करता है; मेधाविं : बुद्धिमान ; यं : जो; निधिनं पवत्तरं इव : खजाने को प्रकट करने वाले के समान; पासे : खोजता है; तादिसं : ऐसा ; पंडितं : एक बुद्धिमान व्यक्ति; भजे : संगति करनी चाहिए; तादिसं : ऐसा व्यक्ति; भजमानस : संगति करने वाले व्यक्ति को; सेय्यो : अच्छा; होति : होगा; पापीयो [पापिया]: बुराई; ना : घटित नहीं होगा

यदि किसी को कोई ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति मिल जाए जो उसकी गलतियों को उजागर करे और उसे सख्ती से सुधारे, तो उसे ज्ञान के खजाने का दयालु स्रोत समझना चाहिए। उसकी संगति अवश्य तलाशनी चाहिए। ऐसी संगति से मनुष्य बेहतर इंसान बनता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 76)

vajjadassinaṃ nig-gayhavādiṃ : दोष निकालने वाला; निंदा करने वाला। ये दो गुण रचनात्मक आलोचना करने वाले व्यक्ति के लक्षण बताए गए हैं। कुछ लोग दोष निकालते हैं और निंदा करते हैं, जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति का अपमान करना होता है। लेकिन इस श्लोक में रचनात्मक आलोचकों की बात हो रही है। वे बेशक दोष निकालते हैं और निंदा करते हैं, लेकिन उनका उद्देश्य अलग होता है। वे इन कार्यों को 'खजाने प्रकट करने वालों' की तरह करते हैं। भला कौन 'खजाने प्रकट करने वाले' को अपमान करने वाला कह सकता है? ऐसा मार्गदर्शक सीखने वाले को अपने भीतर छिपे व्यक्तित्व के खजानों को स्वयं जानने में सक्षम बनाएगा और उसे उचित आचरण में निपुण बनाएगा, जिससे वह मोक्ष के मार्ग पर संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ सके।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 77

(धम्मपद 76) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 77 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 78)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 77 - अस्सीपुनब्बासुका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 77 - अस्सजिपुनब्बासुका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ovadeyya'nusaseyya(1)
asabbha ca nivaraye
satam hi so piyo hoti
asatam hoti appiyo.

श्लोक 77 : बुद्धिमान व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना चाहिए; उसे सलाह देनी चाहिए और दूसरों को गलत काम करने से रोकना चाहिए; ऐसा व्यक्ति अच्छे लोगों को प्रिय होता है; उसे केवल बुरे लोग नापसंद करते हैं।

---

1. अनुसय्य: पहले से सलाह देना; बार-बार सलाह देना।

भिक्षु असाजी और पुनब्बासुका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने भिक्षु असाजी और पुनब्बासुका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (77) कहा।
भिक्षु असाजी और पुनाबासुका और उनके पाँच सौ शिष्य कितागिरी गाँव में रह रहे थे। वहाँ रहते हुए वे फूल और फलदार पेड़ लगाकर जीविका कमाते थे, इस प्रकार वे भिक्षुओं के लिए निर्धारित मूलभूत नियमों का उल्लंघन कर रहे थे।
इन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने अपने दो प्रमुख शिष्यों सारिपुत्त और महा मोग्गलाना को उन्हें आगे दुराचार करने से रोकने के लिए भेजा। बुद्ध ने अपने दोनों प्रमुख शिष्यों से कहा, "उन भिक्षुओं से कहो कि वे दुराचार करके गृहस्थ शिष्यों की आस्था और उदारता को नष्ट न करें और यदि कोई अवज्ञा करे तो उसे मठ से निकाल दें। जैसा मैंने कहा है वैसा करने में संकोच न करो, क्योंकि केवल मूर्ख ही अच्छी सलाह और बुराई करने से मना किए जाने को नापसंद करते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 77 : बुद्धिमान व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना चाहिए; उसे सलाह देनी चाहिए और दूसरों को गलत काम करने से रोकना चाहिए; ऐसा व्यक्ति अच्छे लोगों को प्रिय होता है; उसे केवल बुरे लोग नापसंद करते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पूज्य असाजी और पुनाबासुका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य असाजी और पुनाबसका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
हमें बताया गया है कि ये भिक्षु मुख्य शिष्यों के दो शिष्य थे, लेकिन इसके बावजूद वे निर्लज्ज और दुष्ट थे। जब वे अपने कई भिक्षुओं के दल के साथ कितागिरि में रह रहे थे, तब उन्होंने फूलदार वृक्ष लगाए और लगवाए, और इसके अलावा वे हर प्रकार के दुराचार में लिप्त थे। उन्होंने घरों में धावा बोला और वहीं से अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त की। उन्होंने मठ को उन भले भिक्षुओं के लिए निर्जन बना दिया।
उनके कार्यों के बारे में सुनकर बुद्ध ने उन्हें संघ से निष्कासित करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने अपने दो प्रमुख शिष्यों और उनके अनुयायियों को बुलाया और उनसे कहा, "जो तुम्हारे आदेशों का पालन नहीं करते, उन्हें संघ से निष्कासित कर दो, और जो आज्ञाकारी हैं, उन्हें उपदेश और शिक्षा दो। उपदेश और शिक्षा देने वाला बुद्धिहीन लोगों द्वारा घृणा किया जाता है, परन्तु बुद्धिमानों द्वारा प्रेम और सम्मान किया जाता है।" और फिर उन्होंने उन्हें संघ में शामिल करके धम्म का उपदेश दिया।
सारिपुत्त और मोग्गलाना वहाँ गए और उन भिक्षुओं को उपदेश और शिक्षा दी। उनमें से कुछ ने पूज्य भिक्षुओं के उपदेशों को स्वीकार कर अपने व्यवहार में सुधार किया, कुछ गृहस्थ जीवन में लौट आए जबकि कुछ को संघ से निष्कासित कर दिया गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 77)
ovadeyya anusāseyya asabbhā ca nivāraye
तो हि सातं पियो होति असतं अप्पियो होति
ओवादेय्य : (यदि कोई अच्छा मित्र) निंदा करता है; अनुसासेय्या : चेतावनी देता है; असभा च : असामाजिक कार्यों से बचाता है; निवाराये : रक्षा करता है; सो हि : वह अच्छा मित्र; सतं [सत]: गुणी लोगों के लिए; पियो होति : आकर्षक है; असतं [असत]: दुष्ट लोगों के लिए; अप्पियो होति : घृणित है
वह बुद्धिमान और नेक व्यक्ति जो फटकार लगाता है, चेतावनी देता है और किसी व्यक्ति को असामाजिक व्यवहार में पड़ने से रोकता है, वह गुणी व्यक्तियों द्वारा पसंद किया जाता है और दुष्ट व्यक्तियों द्वारा नापसंद किया जाता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 77)
ओवादेय्या , अनुसासेय्या : निंदा और चेतावनी। कुछ टीकाओं में, ओवाद और अनुसाना के बीच अंतर स्पष्ट रूप से बताया गया है। 'निंदा' (ओवाद) को किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्यों के आधार पर अच्छे और बुरे के बारे में बताने के रूप में वर्णित किया गया है। किसी व्यक्ति को यह बताना कि भविष्य में ऐसा या वैसा करने पर क्या परिणाम हो सकते हैं, उसे ' अनुसाना ' (चेतावनी) कहा जाता है। 'निंदा' (ओवाद) तब की जाती है जब व्यक्ति निंदा करने वाले के सामने शारीरिक रूप से उपस्थित होता है। लेकिन, यदि दोनों व्यक्ति शारीरिक रूप से उपस्थित नहीं हैं, और एक व्यक्ति का संदेश दूसरे तक पहुँचाया जाता है, तो उसे 'चेतावनी' (अनुसाना) कहा जाता है। फिर से, केवल एक बार कहना ' ओवाद ' (निंदा) है। बार-बार कहना ' अनुसाना' (चेतावनी) है।
असभ्भा च निवारये : असामाजिक कार्यों से रोकता है; असामाजिक कार्यों से विरक्त करता है। यह कुकर्मों से विरक्त रहना है: हत्या, चोरी और यौन दुराचार। यह सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव पैदा करता है; केवल प्रदत्त वस्तुओं को ग्रहण करना; और शुद्ध एवं पवित्र जीवन जीना सिखाता है। ऐसे नैतिक आचरण से व्यक्ति दूसरों को निर्भीकता, सुरक्षा और शांति प्रदान करता है। समस्त नैतिकता, या उत्तम जीवन, प्रेम और करुणा पर आधारित है। इन दो प्रमुख गुणों के बिना व्यक्ति को नैतिक पुरुष नहीं कहा जा सकता। प्रेम और

करुणा से रहित मौखिक और शारीरिक कर्मों को अच्छा और हितकारी नहीं माना जा सकता। निःसंदेह, प्रेम और निर्मल अंतरात्मा के साथ कोई हत्या, चोरी आदि नहीं कर सकता, बल्कि यह तभी संभव है जब व्यक्ति क्रूरता, लोभ और अज्ञानता के विचारों से प्रेरित हो। मानसिक अनुशासन का एक निश्चित स्तर बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि अनियंत्रित मन हमेशा शब्दों या कर्मों से बुराई करने के बहाने ढूंढता है। 'जब विचार अनियंत्रित होते हैं, तो शारीरिक क्रिया भी अनियंत्रित हो जाती है; यही बात वाणी और मानसिक क्रिया पर भी लागू होती है।'

आचरण से चरित्र का निर्माण होता है। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को अच्छे चरित्र का उपहार नहीं दे सकता। प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन, मनन, सावधानी, प्रयास, जागरूकता और आत्मनिरीक्षण के द्वारा इसे विकसित करना पड़ता है। जिस प्रकार किसी कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, उसी प्रकार अच्छे आचरण की कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए, जिस पर एक अच्छा और मजबूत चरित्र निर्भर करता है, परिश्रम और सतर्कता आवश्यक है।

चरित्र निर्माण में सबसे पहली आवश्यक चीज है आत्म-संयम का अभ्यास। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त हो जाता है, तो उसका अच्छा सामाजिक आचरण और चरित्र नष्ट हो जाता है — इस बात पर धर्म और मनोविज्ञान के सभी शिक्षक सहमत हैं। जो लोग सुखों में डूबे रहते हैं और आनंद लेने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होते हैं, उन्हें तब तक उचित शिक्षा नहीं मिल सकती जब तक वे अपनी गलतियों को स्वीकार करना न सीख लें।

उच्च नैतिक आचरण के विषय में बुद्ध ने इस प्रकार सलाह दी:

“बुराई को त्यागा जा सकता है। यदि बुराई को त्यागना संभव न होता, तो मैं ऐसा न कहता। चूंकि ऐसा किया जा सकता है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ: 'बुराई को त्याग दो।'”

बुद्ध आगे कहते हैं,

“अच्छाई को विकसित किया जा सकता है। यदि अच्छाई को विकसित करना संभव न होता, तो मैं ऐसा न कहता। चूंकि यह संभव है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ: 'अच्छाई को विकसित करो।'”

एक अच्छे सलाहकार को इसी प्रकार का मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए ताकि व्यक्ति अस्वीकार्य, अनैतिक और असामाजिक (असभा) व्यवहार से दूर रहे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 78

(धम्मपद 77) <<<< पिछला || धम्मपद 78 || अगला >>>> (धम्मपद 79)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 78 - चन्नत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 78 - चन्नत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na bhaje papake mitte
na bhaje purisadhame
भजेथा मिट्टे कल्याणे
bhajetha purisuttame.

———————————————————————————

श्लोक 78 : बुरे मित्रों और नीच लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। अच्छे मित्रों और नेक लोगों की संगति करनी चाहिए।

———————————————————————————

1. नमयंति: किसी व्यक्ति के हृदय या इच्छा को झुकाना। तीर बनाने वालों के मामले में, तीरों को सीधा करना; बढ़ई के मामले में, लकड़ी को काटकर, चीरकर और चिकना करके लोगों की ज़रूरतों के अनुसार वस्तुएँ बनाना।

———————————————————————————

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) चन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (78) कहा।

चन्ना वह सेवक था जो राजकुमार सिद्धार्थ के साथ तब गया था जब उन्होंने संसार त्याग कर घोड़े पर सवार होकर महल छोड़ा था। जब राजकुमार ने बुद्धत्व प्राप्त किया, तो चन्ना भी भिक्षु बन गया। भिक्षु बनने के बाद, बुद्ध से घनिष्ठ संबंध होने के कारण वह बहुत अहंकारी और अभिमानी हो गया था। चन्ना अक्सर कहता था, "मैं अपने गुरु के साथ तब गया था जब वे महल छोड़कर वन गए थे। उस समय मैं ही अपने गुरु का एकमात्र साथी था और कोई और नहीं था। लेकिन अब, सारिपुत्त और मोग्गलाना कह रहे हैं, 'हम प्रमुख शिष्य हैं,' और इतरा रहे हैं।"

जब बुद्ध ने उसे बुलवाया और उसके व्यवहार के लिए फटकारा, तो वह चुप रहा और दोनों मुख्य शिष्यों को अपशब्द कहना और उनका उपहास करना जारी रखा। इसलिए बुद्ध ने उसे तीन बार बुलवाया और फटकारा; फिर भी वह नहीं बदला। तब बुद्ध ने फिर से चन्ना को बुलवाया और कहा, "चन्ना, ये दोनों श्रेष्ठ भिक्षु तुम्हारे अच्छे मित्र हैं; तुम्हें इनके साथ संगति करनी चाहिए और इनके साथ अच्छे संबंध रखने चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 78 : बुरे मित्रों और नीच लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। अच्छे मित्रों और नेक लोगों की संगति करनी चाहिए।

———————————————————————————

बुद्ध द्वारा बार-बार चेतावनी और सलाह दिए जाने के बावजूद, चन्ना ने अपनी मनमानी की और भिक्षुओं को डांटना-पीटना और गाली देना जारी रखा। यह जानकर बुद्ध ने कहा कि चन्ना उनके जीवनकाल में नहीं बदलेगा, लेकिन उनके परनिर्वाण के बाद वह अवश्य बदल जाएगा। अपने परनिर्वाण की पूर्व संध्या पर, बुद्ध ने थेरा आनंद को अपने पास बुलाया और उन्हें चन्ना को ब्रह्मदंड देने का निर्देश दिया; अर्थात् भिक्षुओं को उसे पूरी तरह से अनदेखा करना था और उससे कोई वास्ता नहीं रखना था।

बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद, चन्ना ने थेरा आनंद से दंड के बारे में जानकर अपने किए पर गहरा पश्चाताप किया और तीन बार बेहोश हो गए। फिर उन्होंने भिक्षुओं के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और क्षमा मांगी। उसी क्षण से उनके व्यवहार और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। उन्होंने ध्यान साधना में भी भिक्षुओं के निर्देशों का पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय चन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य चन्ना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

चन्ना वह सेवक था जो राजकुमार सिद्धार्थ के साथ तब गया था जब उन्होंने संसार त्याग कर घोड़े पर सवार होकर महल छोड़ा था। जब राजकुमार ने बुद्धत्व प्राप्त किया, तो चन्ना भी भिक्षु बन गया। भिक्षु बनने के बाद, बुद्ध के साथ अपने घनिष्ठ संबंध के कारण वह बहुत अहंकारी और अभिमानी हो गया था। चन्ना अक्सर कहता था, “मैं अपने गुरु के साथ तब गया था जब वे महल छोड़कर वन गए थे। उस समय मैं ही अपने गुरु का एकमात्र साथी था और कोई और नहीं था। लेकिन अब, सारिपुत्त और मोग्गलाना कह रहे हैं, 'हम प्रमुख शिष्य हैं,' और इतरा रहे हैं।”

जब बुद्ध ने उसे बुलवाया और उसके व्यवहार के लिए फटकारा, तो वह चुप रहा और अपने दोनों प्रमुख शिष्यों को गाली-गलौज और ताना मारना जारी रखा। इसलिए बुद्ध ने उसे तीन बार बुलवाया और फटकारा; फिर भी वह नहीं बदला। तब बुद्ध ने फिर से चन्ना को बुलवाया और कहा, “चन्ना, ये दोनों श्रेष्ठ भिक्षु तुम्हारे अच्छे मित्र हैं; तुम्हें इनके साथ संगति करनी चाहिए और इनके साथ अच्छे संबंध रखने चाहिए।”

बुद्ध द्वारा बार-बार चेतावनी और सलाह दिए जाने के बावजूद, चन्ना ने अपनी मनमानी की और भिक्षुओं को डांटना और गाली देना जारी रखा। यह जानकर बुद्ध ने कहा कि चन्ना उनके जीवनकाल में नहीं बदलेगा, लेकिन उनके निधन (परिनिर्वाण) के बाद वह अवश्य बदल जाएगा। उनके परिनिर्वाण की पूर्व संध्या पर , बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और उन्हें ब्रह्म-दंड देने का निर्देश दिया।

चन्ना को (ब्रह्मदण्ड) दिया गया; अर्थात् भिक्षुओं ने उसे पूरी तरह से अनदेखा कर दिया और उससे कोई संबंध नहीं रखा। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद , चन्ना को भिक्षुओं से दंड के बारे में पता चला, तो उसे अपने किए पर गहरा पश्चाताप हुआ और वह तीन बार बेहोश हो गया। फिर उसने भिक्षुओं के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और क्षमा मांगी। उस क्षण से, उसने अपने तौर-तरीके और दृष्टिकोण बदल दिए। उसने ध्यान साधना में भी भिक्षुओं के निर्देशों का पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 78)

पापाके मिटे ना भजे . पुरिसाधमे न भजे
कलायने मित्ते भजेथा . पुरीसुत्तमे भजेथा

पापके मित्ते : बुरे मित्र; न भजे : संगति न करें; पुरिसाधमे : दुष्ट दुष्ट लोग; न भजे : संगति न रखें; कलायने मित्ते : अच्छे मित्र; भजेत : संगति रखें; पुरिसुत्तमे : श्रेष्ठ कुलीन लोग; भजेत : संगति रखें

बुरे आचरण वाले लोगों से संगति न रखें। दुष्ट, नीच और बुरे लोगों की संगति से दूर रहें। योग्य मित्रों के साथ रहें। श्रेष्ठ गुणों और सद्गुणों वाले, नेक व्यक्तियों की संगति में रहें जो आपको उत्थान प्रदान कर सकें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 78)

मित्र : दोस्त। बौद्ध साहित्य में मित्र की अवधारणा का व्यापक विश्लेषण किया गया है। टीका में सात प्रकार के मित्रों का उल्लेख कि या गया है। वे इस प्रकार हैं:

पाण सखा : वे लोग जो केवल शराबखानों में ही दोस्ताना व्यवहार करते हैं;

sammiya sammiyo [sammiya]: वे लोग जो आपसे मिलने पर ही मित्रवत व्यवहार करते हैं;

atthesu jātesu : वे लोग जो केवल तभी मित्रवत होते हैं जब कोई काम हाथ में हो;

उपकारक : वे मित्र जो वास्तव में जरूरत के समय मित्र होते हैं;

समान सुख दुःख : जो हर समय आपके साथ रहते हैं, चाहे आप बीमार हों या स्वस्थ;

अत्थक्कयी : वे अच्छे मित्र जो आपको प्रगति के मार्ग पर ले जाते हैं, बुराई से रोकते हैं;

अनुकम्पाका : वे अच्छे मित्र होते हैं जो आपकी पीड़ा में दुखी होते हैं, लेकिन आपकी सफलता पर अत्यंत प्रसन्न होते हैं। वे दूसरों को आपकी कमियां निकालने से रोकते हैं और आपकी प्रशंसा करने वालों की प्रशंसा करते हैं।

एक अच्छा मित्र कल्याण मित्र होता है। पाप मित्र वह होता है जो आपको बुराई की ओर ले जाता है।

सिगालोवादा सूत्र (गृहस्थ सिगाल को सलाह) में आठ (8) प्रकार के मित्रों का वर्णन है। इनमें से चार (4) अच्छे मित्र हैं। वे हैं

उपकारक मित्र — एक ऐसा मित्र जो जरूरत के समय आपकी मदद करता है;

समान सुख दुख मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपके लिए अपना प्राण भी देने को तैयार हो;

अत्थाक्खायी मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपको बुराई से बचाता है;

अनुकम्पाका मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपकी प्रगति देखकर प्रसन्न होता है और आपकी प्रशंसा करने वालों की सराहना करता है।

चार (4) बुरे दोस्त भी हैं। वे हैं

अन्नादत्तुहारा — एक ऐसा मित्र जो आपसे लाभ कमाने के लिए उत्सुक हो;

वाचीपरमा — एक ऐसा मित्र जो केवल शब्दों में ही सहायता करता है

अनुप्पियाभाणी — एक ऐसी मित्र जो आपके अच्छे और बुरे दोनों कार्यों को स्वीकार करती है।

अपाय सहाय — एक ऐसा मित्र जो आपको मादक पेय पदार्थों के सेवन जैसे बुरे कृत्यों की ओर ले जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 79

———————————————————————————

(धम्मपद 78) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 79 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 80)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 79 - महाकप्पिनेथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 79 - महाकप्पिनत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
धम्मपिति सुखम सेती
vippasannena cetasa
ariyappavedite dhamme
sada ramati pandito.

श्लोक 79 : जो धम्म (सत्य/धर्म) का पान करता है, वह शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है; ज्ञानी व्यक्ति हमेशा आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम्म (बोधिपक्खीय धम्म) में आनंदित रहता है।

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) महाकप्पिना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकप्पिना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (79) कहा।
महाकप्पिना कुक्कुतावती के राजा थे। उनकी रानी का नाम अनोजा था; उनके साथ एक हजार मंत्री भी थे जो देश का शासन चलाते थे। एक दिन राजा अपने एक हजार मंत्रियों के साथ उद्यान में निकले। वहाँ उनकी मुलाकात सावत्थी के कुछ व्यापारियों से हुई। इन व्यापारियों से बुद्ध, धम्म और संघ के बारे में जानकर राजा और उनके मंत्री तुरंत सावत्थी के लिए रवाना हो गए।
उस दिन जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन हुआ कि महाकप्पिन और उनके मंत्री सावत्थी की ओर आ रहे हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि वे अर्हत पद के पात्र हैं। बुद्ध उनसे मिलने के लिए सावत्थी से एक सौ बीस योजन दूर एक स्थान पर गए। वहाँ वे चंदभागा नदी के किनारे एक बरगद के वृक्ष के नीचे उनकी प्रतीक्षा करने लगे। राजा महाकप्पिन और उनके मंत्री उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बुद्ध उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने बुद्ध को अपने शरीर से निकलती हुई छह रंगों की किरणों के साथ देखा, तो वे बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद राजा और उनके सभी मंत्रियों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया और बुद्ध से संघ में शामिल होने की अनुमति माँगी। बुद्ध ने उनके अतीत पर विचार किया और पाया कि उन्होंने पिछले जन्म में पीले वस्त्रों का अर्पण किया था, तो उन्होंने उनसे कहा, "एहि भिक्खु", और वे सभी भिक्षु बन गए।
इसी बीच, रानी अनोजा को राजा के श्रावस्ती प्रस्थान का पता चला, तो उन्होंने एक हजार मंत्रियों की पत्नियों को बुलवाया और उनके साथ राजा के पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे भी उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ बुद्ध विराजमान थे और बुद्ध को छह रंगों के प्रभामंडल से युक्त देखकर उन्हें प्रणाम किया। इस दौरान, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से राजा और उनके मंत्रियों को अदृश्य कर दिया था ताकि उनकी पत्नियाँ उन्हें न देख सकें। इसलिए रानी ने राजा और उनके मंत्रियों के बारे में पूछा। बुद्ध ने रानी और उनके साथियों से कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा और बताया कि राजा शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ आ जाएँगे। फिर बुद्ध ने एक और प्रवचन दिया; इस प्रवचन के अंत में राजा और उनके मंत्रियों को अर्हतत्व प्राप्त हुआ; रानी और मंत्रियों की पत्नियों को सोतापत्ति फल प्राप्त हुआ। उसी क्षण, रानी और उनके साथियों ने नवदीक्षित भिक्षुओं को देखा और उन्हें अपने पूर्व पतियों के रूप में पहचान लिया।
उन स्त्रियों ने बुद्ध से भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने की अनुमति भी मांगी; इसलिए उन्हें श्रावस्ती जाने का निर्देश दिया गया। वहां उन्होंने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद बुद्ध एक हजार भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए।
जेतवन मठ में, थेरा महाकप्पिना रात या दिन में विश्राम करते समय अक्सर कहते थे, "ओह, कितना आनंद है!" (अहो सुखम)। भिक्षुओं ने उन्हें दिन में कई बार ऐसा कहते हुए सुनकर बुद्ध को इसके बारे में बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र कप्पिना ने धम्म का स्वाद चखकर शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत किया है; वह निर्वाण के संदर्भ में बार-बार ये हर्ष के शब्द कह रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 79 : जो धम्म (सत्य/धर्म) का पान करता है, वह शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है; ज्ञानी व्यक्ति हमेशा आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम्म (बोधिपक्खीय धम्म) में आनंदित रहता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महाकप्पिना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकप्पिना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

महाकप्पिन कुक्कुटवती के राजा थे। उनकी रानी का नाम अनोजा था; उनके पास एक हजार मंत्री थे जो देश पर शासन करने में उनकी सहायता करते थे। एक दिन, राजा अपने मंत्रियों के साथ उद्यान में थे। वहाँ उनकी मुलाकात सावत्थी के कुछ व्यापारियों से हुई। इन व्यापारियों से त्रिरत्न के बारे में जानकर राजा और उनके मंत्री तुरंत सावत्थी के लिए रवाना हो गए।

उस दिन, जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन हुआ कि महाकप्पिन और उनके मंत्री सावत्थी की ओर आ रहे हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि वे अर्हतत्व के पात्र हैं। बुद्ध उनसे मिलने के लिए सावत्थी से एक सौ बीस योजन दूर एक स्थान पर गए। वहाँ वे चंदभागा नदी के किनारे एक बरगद के वृक्ष के नीचे उनकी प्रतीक्षा करने लगे। राजा महाकप्पिन और उनके मंत्री उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बुद्ध उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने बुद्ध को अपने शरीर से निकलती हुई छह रंगों की किरणों के साथ देखा, तो वे बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद राजा और उनके सभी मंत्रियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया और उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने की अनुमति माँगी। बुद्ध ने उनके अतीत पर विचार करते हुए पाया कि उन्होंने पिछले जन्म में पीले वस्त्रों का अर्पण किया था और उनसे कहा, "हे भिक्षु" (जिसका अर्थ है "यहाँ आओ भिक्षु"), और वे सभी भिक्षु बन गए।

इसी बीच, रानी अनोजा को राजा के सावत्थी जाने का पता चला, तो उन्होंने एक हजार मंत्रियों की पत्नियों को बुलवाया और उनके साथ राजा के पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे भी उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ बुद्ध विराजमान थे और बुद्ध को छह रंगों के प्रभामंडल के साथ देखकर उन्हें प्रणाम किया। इस दौरान, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से राजा और उनके मंत्रियों को अदृश्य कर दिया था ताकि उनकी पत्नियाँ उन्हें न देख सकें। इसलिए रानी ने राजा और उनके मंत्रियों के बारे में पूछा। बुद्ध ने रानी और उनके साथियों से कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा और बताया कि राजा शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ आ जाएँगे। फिर बुद्ध ने एक और प्रवचन दिया, जिसके अंत में राजा और उनके मंत्रियों को अर्हतत्व प्राप्त हुआ और रानी और मंत्रियों की पत्नियों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ। उसी क्षण, रानी और उनके साथियों ने नए भिक्षुओं को देखा और उन्हें अपने पूर्व पतियों के रूप में पहचान लिया। उन महिलाओं ने बुद्ध से संघ में प्रवेश करने की अनुमति भी माँगी, इसलिए उन्हें सावत्थी जाने का निर्देश दिया गया। वहाँ उन्होंने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हो गया। इसके बाद बुद्ध एक हजार भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए।

जेतवन मठ में, भिक्षु महाकप्पिना रात या दिन में विश्राम करते समय अक्सर कहते थे, “ओह, कितना आनंद!” (“ अहो सुखम !”)। भिक्षुओं ने उन्हें दिन में कई बार ऐसा कहते हुए सुनकर बुद्ध को इसके बारे में बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “मेरे पुत्र कप्पिना ने धम्म का स्वाद चख लिया है और वे शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; वे निर्वाण के संदर्भ में बार-बार ये उल्लासपूर्ण शब्द कह रहे हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 79)

धम्मपिति विप्पसन्नेन चेतसा सुखं सेति

पण्डितो अरिअप्पावेदिते धम्मे सदा रमति

धम्मपीति : वे जो वास्तव में “शिक्षा” में आनंदित होते हैं; विप्पसन्नेन चेतसा : मन की स्पष्टता के साथ; सुखं सेति : सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; पंडितो [पंडित]: ज्ञानी व्यक्ति; अरियाप्पवेदिते : “परमात्माओं” द्वारा अनुभव किया गया; धम्मे : वास्तविकता में; सदा रमति : सदा आनंदित रहते हैं

जो व्यक्ति “शिक्षा” में आनंदित रहता है, वह शुद्ध मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है। ज्ञानी लोग सदा “दिव्यजनों” (अरिया) के अनुभव का आनंद लेते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री

धम्मपीति सुखं सेति : जो धम्म के सार को आत्मसात करता है, वह सुखी जीवन जीता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करते हैं और उन्हें व्यवहारिक रूप से अपनाते हैं, वे सुखी जीवन जीते हैं। ' पीति' शब्द का अर्थ है ग्रहण करना। लेकिन यहाँ ग्रहण करने का तात्पर्य है शिक्षा को अपने जीवन में समाहित करना।

आर्य , जिसका अर्थ है 'जो वासनाओं से दूर हो', मूल रूप से एक नस्लीय शब्द था। बौद्ध धर्म में यह चरित्र की श्रेष्ठता को दर्शाता है और इसे हमेशा बुद्धों और अरहंतों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 80

(धम्मपद 79) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 80 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 81)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 80 - पण्डितसामनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 80 - पण्डितसामनेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Udakam hi nayanti nettika
usukara namayanti tejanam
darum namayanti tacchaka
attanam damayanti pandita.

श्लोक 80 : किसान (शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता) पानी को चैनल करते हैं; तीर बनाने वाले तीर को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान स्वयं को वश में करते हैं।

समनेरा (वरिष्ठ भिक्षु) पंडित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा पंडित के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (80) कहा।

पंडित श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति के छोटे पुत्र थे। वे सात वर्ष की आयु में समनेर बन गए। समनेर बनने के आठवें दिन, जब वे थेरा सारिपुत्त के साथ भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्होंने कुछ किसानों को अपने खेतों में पानी डालते देखा और थेरा से पूछा, "क्या निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है?" थेरा ने उत्तर दिया, "हाँ, इसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है।" आगे बढ़ते हुए, समनेर ने कुछ तीर बनाने वालों को आग से अपने तीर गर्म करते और उन्हें सीधा करते देखा। आगे चलकर, उन्होंने कुछ बढ़ईयों को लकड़ी काटते, चीरते और चिकना करते देखा, जिससे वे गाड़ी के पहिए जैसी चीजें बना रहे थे। तब उन्होंने सोचा, "यदि निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है, यदि निर्जीव टेढ़े बांस को सीधा किया जा सकता है, और यदि निर्जीव लकड़ी से उपयोगी वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, तो मैं, जो सजीव हूँ, अपने मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास क्यों नहीं कर सकता?"

उसी क्षण उन्होंने थेरा से अनुमति मांगी और मठ में अपने कमरे में लौट आए। वहां उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से शरीर का चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास किया। सक्का और देवों (देवदूतों) ने भी मठ और उसके परिसर को शांत और स्थिर रखकर उनके ध्यान में सहायता की। भोजन से पहले समनेरा पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया।

उस समय थेरा सारिपुत्त समनेरा के लिए भोजन लेकर आए थे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि समनेरा पंडित ने अनागामी साधना प्राप्त कर ली है और यह भी कि यदि वे ध्यान का अभ्यास जारी रखें तो शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे। अतः बुद्ध ने सारिपुत्त को उस कमरे में प्रवेश करने से रोकने का निर्णय लिया जहाँ समनेरा थे। बुद्ध द्वार पर गए और सारिपुत्त से कुछ प्रश्न पूछकर उन्हें व्यस्त रखा। बातचीत के दौरान ही समनेरा ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, समनेरा ने दीक्षा लेने के आठवें दिन अर्हतत्व प्राप्त किया।

इस संदर्भ में बुद्ध ने मठ के भिक्षुओं से कहा, "जब कोई लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देव (देवदूत) भी उसकी रक्षा करते हैं और पहरा देते हैं; मैंने स्वयं थेरा सारिपुत्त को द्वार पर इसलिए लगाया है ताकि समनेरा पंडित को कोई बाधा न हो। समनेरा पंडित किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, तीर बनाने वालों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को वश में कर धम्म का अभ्यास करते हैं; वे अब अरहत बन गए हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 80 : किसान (शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता) पानी को चैनल करते हैं; तीर बनाने वाले तीर को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान स्वयं को वश में करते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवोदित भिक्षु पंडित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नवोदित भिक्षु पंडित के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पंडित, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के छोटे पुत्र थे। सात वर्ष की आयु में उन्होंने संन्यासी दीक्षा ली। संन्यासी बनने के आठवें दिन, जब वे पूज्य सारिपुत्त के साथ भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्होंने कुछ किसानों को अपने खेतों में पानी डालते देखा और पूज्य सारिपुत्त से पूछा, "क्या निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है?" पूज्य सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "हाँ, इसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है।" आगे बढ़ते हुए, पंडित ने कुछ बाणकारों को आग से बाण गर्म करते और उन्हें सीधा करते देखा। कुछ और आगे जाकर, उन्होंने कुछ बढ़ईयों को लकड़ी काटकर, चीरकर और चिकना करके गाड़ी के पहिए जैसी चीजें बनाते देखा। तब उन्होंने मनन किया, "यदि निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है, यदि निर्जीव टेढ़े बांस को सीधा किया जा सकता है, और यदि निर्जीव लकड़ी से उपयोगी वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, तो मैं, जो सजीव हूँ, अपने मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास क्यों नहीं कर सकता?"

उसी क्षण उन्होंने पूज्य गुरु से अनुमति मांगी और मठ में अपने कमरे में लौट आए। वहां उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से शरीर का चिंतन किया। सक्का और देवताओं ने भी मठ और उसके परिसर को शांत और स्थिर रखकर उनकी ध्यान साधना में सहायता की। दोपहर के भोजन से पहले ही नवोदित भिक्षु पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया।

उस समय पूज्य सारिपुत्त नवोदित भिक्षु के लिए भोजन लेकर आए थे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि नवोदित भिक्षु पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया है और यह भी कि यदि वे निरंतर ध्यान करते रहें तो शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे। अतः बुद्ध ने सारिपुत्त को उस कमरे में प्रवेश करने से रोकने का निश्चय किया जहाँ नवोदित भिक्षु थे। बुद्ध द्वार पर गए और सारिपुत्त से कुछ प्रश्न पूछकर उन्हें व्यस्त रखा। बातचीत के दौरान ही नवोदित भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, नवोदित भिक्षु ने नवोदित होने के आठवें दिन अर्हतत्व प्राप्त किया।

इस संदर्भ में बुद्ध ने मठ के भिक्षुओं से कहा, "जब कोई लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देवता भी उसकी रक्षा करते हैं और पहरा देते हैं; मैंने स्वयं पूज्य सारिपुत्त को द्वार पर इसलिए तैनात रखा है ताकि नवोदित भिक्षु पंडित को कोई बाधा न पहुंचे। नवोदित भिक्षु किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, तीरंदाजों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को वश में कर धम्म का अभ्यास करता है; वह अब अरहत बन गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 80)

नेत्तिका हि उदकं नयन्ति उसुकारा तेजानां नमयन्ति

तच्चका दारुं नामयंती पंडिता अत्तानं दमयंती

nettikā : सिंचाई करने वाले; hi : निश्चित रूप से; udakaṃ [udaka]: पानी; nayanti : ले जाना (जहाँ भी वे चाहें); usukārā : तीर बनाने वाले; tejanaṃ [tejana]: तीर के बाण; namayanti : आकार देना और मोड़ना; tacchakā : बढ़ई; dāruṃ [dāru]: लकड़ी ; namayanti : आकार देना और रूप देना; paṇḍitā : ज्ञानी; attānaṃ [attāna]: अपने मन (स्वयं) को नियंत्रित करना; damayanti : वश में करना और रोकना

जल प्रबंधन करने वाला किसान जल को इच्छित स्थान पर निर्देशित करने में कुशल होता है। तीरंदाज बड़ी कुशलता से लकड़ी के टुकड़े पर काम करके एक सीधा तीर का डंडा बनाता है। बढ़ई लकड़ी का एक टुकड़ा चुनता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे जो चाहे बनाता है। ठीक इसी प्रकार, बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन पर कार्य करते हैं और उसे अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रित करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 80)

नेत्तिका , उसुकारा , तच्छका : सिंचाई करने वाले, तीर बनाने वाले, बढ़ई। इस श्लोक में विशेषज्ञों की एक पूरी श्रृंखला का उल्लेख किया गया है। ये सभी विभिन्न कार्यों में निपुण हैं। शिल्पकारों की ये तीनों श्रेणियां निर्जीव वस्तुओं को नियंत्रित और वश में करती हैं: एक अपनी इच्छा अनुसार पानी को निर्देशित करता है; तीर बनाने वाला लकड़ी को तेज गति से उड़ने वाले तीर का आकार देता है और बढ़ई अपनी पसंद की लकड़ी से मनचाही वस्तुएं बनाता है। लेकिन सत्य की खोज करने वाला अपने मन को आकार देता है, जो उपरोक्त तीनों से कहीं अधिक कठिन है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 81

(धम्मपद 80) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 81 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 82)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 81 - लकुंडकभद्दियत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 81 - लकुंडकभद्दियत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Selo yatha ekaghano
vatena na samirati
evam nindapasamsasu
na saminjanti pandita

श्लोक 81 : जैसे चट्टान का पहाड़ हवा से अविचलित रहता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

थेरा लकुंदका भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा भद्दिया के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (81) कहा।

भद्दिया जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं में से एक थे। अपने छोटे कद के कारण अन्य भिक्षु उन्हें लकुंदक (बौना) कहकर पुकारते थे। लकुंदक भद्दिया बहुत ही सौम्य स्वभाव के थे; यहाँ तक कि युवा भिक्षु भी अक्सर उनकी नाक या कान खींचकर या उनके सिर पर थपथपाकर उन्हें चिढ़ाते थे। वे अक्सर मज़ाक में कहते थे, "चाचा जी, आप कैसे हैं? क्या आप खुश हैं या यहाँ भिक्षु जीवन से ऊब गए हैं?", इत्यादि। लकुंदक भद्दिया कभी क्रोधित नहीं होते थे, न ही उन्हें अपशब्द कहते थे; वास्तव में, वे अपने मन में भी उनसे क्रोधित नहीं होते थे।

जब बुद्ध को लकुंदक भद्दिया के धैर्य के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "अरहत कभी क्रोधित नहीं होते, उन्हें कठोर शब्दों में बोलने या दूसरों के बारे में बुरा सोचने की इच्छा नहीं होती। वे ठोस चट्टान के पर्वत के समान हैं; जैसे ठोस चट्टान अविचलित रहती है, वैसे ही अरहत निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 81 : जैसे चट्टान का पहाड़ हवा से अविचलित रहता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय लकुंटक भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

भद्दिया जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं में से एक थे। अपने छोटे कद के कारण अन्य भिक्षु उन्हें लकुंटक (बौना) कहकर पुकारते थे। लकुंटक भद्दिया बहुत ही सौम्य स्वभाव के थे; यहाँ तक कि युवा भिक्षु भी अक्सर उनकी नाक या कान खींचकर या उनके सिर पर थपथपाकर उन्हें चिढ़ाते थे। वे अक्सर मजाक में कहते थे, "चाचा जी, आप कैसे हैं? क्या आप खुश हैं या यहाँ भिक्षु जीवन से ऊब गए हैं?" लकुंटक भद्दिया कभी क्रोधित नहीं होते थे, न ही उन्हें अपशब्द कहते थे; वास्तव में, वे मन ही मन उनसे क्रोधित नहीं होते थे।

जब बुद्ध को लकुंटक भद्दिया के धैर्य के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "एक अर्हत कभी क्रोधित नहीं होता, उसे कठोर शब्दों में बोलने या दूसरों के बारे में बुरा सोचने की इच्छा नहीं होती। वह ठोस चट्टान के पर्वत के समान है; जैसे ठोस चट्टान अविचलित रहती है, वैसे ही अर्हत निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होता।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 81)

यथा एकघनो सेलो वतेन न समिरति
एवं पंडिता निंदा पसांससु
यथा : ठीक उसी प्रकार; एकघनो [एकघना]: ठोस; सेलो : चट्टान; वातेन : हवा से; न समीरति : अविचलित; एवं : उसी प्रकार; पंडिता : ज्ञानी; निंदा पसंसासु : प्रशंसा और निंदा दोनों में; न समिंजन्ति : अविचलित रहते हैं

बुद्धिमान व्यक्ति प्रशंसा और अपमान दोनों से अविचलित और स्थिर रहते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति जीवन के सभी उतार-चढ़ावों में अडिग रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे ठोस चट्टान हवा के झोंकों को भी सहन कर लेती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 81)

निंदा पसंसासु : प्रशंसा और निंदा दोनों में। आम लोग जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित हो जाते हैं। जब कुछ गलत होता है, तो वे उदास हो जाते हैं। जब सब कुछ ठीक होता है, तो वे उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन, बुद्धिमान लोग किसी भी परिस्थिति में अविचलित रहते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि आम तौर पर लोगों को आठ प्रकार के उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ता है। पाली भाषा में इनका वर्णन इस प्रकार है:

लाभो अलाभो , अयासो , यशोका ,
(लाभ, हानि, उपेक्षा और ध्यान)
निंदा , पसांस , सुखं , च दुक्खम
अपमान, प्रशंसा, सुख और दुख
Ete aniccā manujesu dhammā
ये अस्थिर मानवीय अनुभव
Asassatī viparinama dhammā
ये जीवन के क्षणिक, परिवर्तनशील उतार-चढ़ाव हैं।

भाग्य के आठ प्रकार होते हैं, अच्छे और बुरे, जो लोगों को प्रभावित करते हैं:

लाभ : लाभ;
अलाभा : हानि;
अयासो [अयासा]: उपेक्षा;
यासो ध्यान;
निंदा : अपमान;
पसंसा : प्रशंसा;
सुख : आनंद; और
दु:ख : दर्द।

इन आठों को जीवन के आठ उतार-चढ़ाव (अठ लोक धम्म) के रूप में वर्णित किया गया है। आम लोग इन उतार-चढ़ावों से विचलित हो जाते हैं, लेकिन ज्ञानी लोग इनसे अविचलित रहते हैं। ज्ञानी लोग संसार के परिवर्तनशील स्वरूप से अवगत होते हैं; इसके फलस्वरूप वे इससे अविचलित रहते हैं। इस श्लोक में, इस मानसिक स्थिरता की तुलना उस चट्टान की स्थिरता से की गई है जो हवा से भी अविचलित रहती है।

ऐसे उतार-चढ़ावों के बावजूद ज्ञानी व्यक्तियों की जागरूकता और उनका अविचल मन इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

Eteva ñatvā satimā sumedho
(यह जानकर, ऋषि का मन)
अवेक्खति विपरिनाम धम्म
बदलते अनुभव का बारीकी से अवलोकन करता है
इत्थस्सा धम्म न मर्थेति चित्तं ।
उसका मन सुखद अनुभवों से आकर्षित नहीं होता।
अनित्थतो न पतिघातमेति
जो बात उसे पसंद नहीं आती, उससे उसे घृणा नहीं होती।

(बुद्धिमान व्यक्ति इन उतार-चढ़ावों पर ध्यानपूर्वक विचार करता है और यह समझता है कि ये परिवर्तनशील हैं। उसका मन सौभाग्य से विचलित नहीं होता, न ही दुर्भाग्य से निराश होता है।) यही क्षणभंगुरता का ज्ञान उसे शांत रहने में सहायक होता है।

अरहत लकुंटक भद्दिया पर विशेष टिप्पणी: कद में छोटे होते हुए भी उनकी वाणी अत्यंत मधुर थी। आठ महा अरहतों में उनकी वाणी सर्वोपरि थी। सभी वरदानों में वाणी का वरदान सबसे अनमोल है। उनकी उत्कृष्ट वाणी बुद्ध की वाणी के बाद आती है, जिसकी तुलना हिमालय के कुराविका (भारतीय बुलबुल) नामक पक्षी के मधुर गायन से की जाती है, जो मधुर आवाज वाला पक्षियों का राजा है। उनका छोटा कद, जिसके कारण उन्हें लकुंटक नाम मिला, उनके पिछले कर्मों का परिणाम था।
अरहत लकुंटक भद्दिया की वाणी अत्यंत मूल्यवान थी। भद्दिया सूत्र में बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि कुबड़ा और बदसूरत होने के बावजूद वे अत्यंत प्रतिभाशाली और उच्च कोटि के चरित्र वाले थे। बुद्ध ने अपनी वाणी के कारण लकुंटक भद्दिया को संघ में सर्वोपरि घोषित किया।
उनकी आवाज संगीत से गूंज रही थी।
पुरुषों को धम्म के मार्ग पर लाना,
चिकित्सा द्वारा मन को ठीक करना,
हालांकि वह देखने में बहुत छोटा और कमजोर था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 82

———————————————————————

(धम्मपद 81) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 82 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 83)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 82 - कनामाता वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 82 - कनामाता वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Yathapi rahado gambhiro
vippasanno anavilo
evam dhammani sutvana
vippasidanti pandita.

———————————————————————

श्लोक 82 : जैसे कोई झील गहरी, निर्मल और शांत होती है, वैसे ही धम्म की शिक्षा सुनने के बाद ज्ञानी लोग शांत हो जाते हैं।

———————————————————————

कनामाता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने काना की माता कानामाता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (82) कहा।
कनामाता बुद्ध की एक समर्पित गृहस्थ शिष्या थीं। उनकी पुत्री काना का विवाह दूसरे गाँव के एक व्यक्ति से हुआ था। काना कुछ समय से अपनी माँ के घर गई हुई थीं, इसलिए उनके पति ने उन्हें घर वापस आने का संदेश भेजा। उनकी माँ ने उनसे एक दिन और रुकने को कहा क्योंकि वे अपने पति के लिए मिठाई भेजना चाहती थीं। अगले दिन, कनामाता ने मिठाई बनाई, लेकिन जब चार भिक्षु भिक्षा मांगने उनके दरवाजे पर खड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें भी कुछ मिठाई दे दी। उन चारों भिक्षुओं ने अन्य भिक्षुओं को कनामाता के घर की मिठाई के बारे में बताया और वे भी कनामाता के दरवाजे पर खड़े हो गए। बुद्ध और उनके शिष्यों की भक्त होने के नाते, कनामाता ने एक-एक करके आने वाले भिक्षुओं को मिठाई दी। नतीजा यह हुआ कि अंत में काना के लिए कुछ भी नहीं बचा और वह उस दिन घर नहीं गईं। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ; काना की माँ ने मिठाई बनाई, भिक्षु उसके दरवाजे पर खड़े थे, काना ने अपनी मिठाई भिक्षुओं को दे दी, बेटी के लिए घर ले जाने के लिए कुछ भी नहीं बचा, और बेटी घर नहीं गई। तीसरे दिन, तीसरी बार, उसके पति ने उसे संदेश भेजा, जो एक तरह से अल्टीमेटम भी था, जिसमें लिखा था कि अगर वह अगले दिन घर नहीं लौटी, तो वह दूसरी पत्नी ले आएगा। लेकिन

अगले दिन भी काना घर नहीं जा सकी क्योंकि उसकी माँ ने अपनी सारी मिठाई भिक्षुओं को दे दी थी। तब काना के पति ने दूसरी पत्नी ले ली और काना भिक्षुओं के प्रति बहुत कटु हो गई। वह सभी भिक्षुओं को इतना बुरा-भला कहती थी कि भिक्षु कानामाता के घर से दूर रहने लगे।

बुद्ध ने काना के बारे में सुना और कानामाता के घर गए; वहाँ कानामाता ने उन्हें चावल का दलिया दिया। भोजन के बाद, बुद्ध ने काना को बुलवाया और उनसे पूछा, "क्या मेरे भिक्षुओं ने वह लिया जो उन्हें दिया गया था या वह जो उन्हें नहीं दिया गया था?" काना ने उत्तर दिया कि भिक्षुओं ने केवल वही लिया जो उन्हें दिया गया था, और फिर कहा, "वे गलत नहीं थे; केवल मैं ही गलत थी।" इस प्रकार, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध को प्रणाम भी किया। फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया। प्रवचन के अंत में, काना ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।

मठ लौटते समय, बुद्ध की मुलाकात कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) से हुई। जब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने काना और भिक्षुओं के प्रति उसके कठोर रवैये के बारे में सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या वे उसे धम्म का उपदेश दे पाए हैं और उसे सत्य (धम्म) का दर्शन करा पाए हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हाँ, मैंने उसे धम्म का उपदेश दिया है और उसे अगले जन्म में समृद्ध भी बनाया है।" तब राजा ने बुद्ध से वादा किया कि वे काना को इसी जन्म में समृद्ध बना देंगे। राजा ने अपने आदमियों को पालकी के साथ काना को लाने के लिए भेजा। जब वह पहुँची, तो राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, "जो कोई भी मेरी पुत्री काना को आराम से रख सके, वह उसे ले जा सकता है।" मंत्रियों में से एक ने स्वेच्छा से काना को अपनी पुत्री के रूप में गोद लेने की पेशकश की, उसे अपनी सारी संपत्ति दे दी और उससे कहा, "तुम जितना चाहो दान कर सकती हो।" प्रतिदिन, काना नगर के चारों द्वारों पर भिक्षुओं को दान देती थी। जब बुद्ध को काना द्वारा उदारतापूर्वक दान देने के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, काना का जो मन धुंधला और भ्रमित था, मेरे शब्दों से वह स्पष्ट और शांत हो गया।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 82 : जैसे कोई झील गहरी, निर्मल और शांत होती है, वैसे ही धम्म की शिक्षा सुनने के बाद ज्ञानी लोग शांत हो जाते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने काना की माता (कानामाता) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कानामता बुद्ध की एक समर्पित गृहस्थ शिष्या थीं। उनकी पुत्री काना का विवाह दूसरे गाँव के एक पुरुष से हुआ था। काना कुछ समय से अपनी माँ के घर गई हुई थीं, इसलिए उनके पति ने उन्हें घर वापस आने का संदेश भेजा। उनकी माँ ने उनसे एक दिन और रुकने को कहा क्योंकि वह अपने पति के लिए मिठाई ले जाना चाहती थीं। अगले दिन, कानामता ने मिठाई बनाई, लेकिन जब चार भिक्षु भिक्षा मांगने उनके दरवाजे पर खड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें भी कुछ मिठाई दे दी। उन चारों भिक्षुओं ने अन्य भिक्षुओं को कानामता के घर की मिठाई के बारे में बताया और वे भी उनके दरवाजे पर आकर खड़े हो गए। बुद्ध और उनके शिष्यों की भक्त होने के नाते, कानामता ने आने वाले भिक्षुओं को एक-एक करके अपनी मिठाई दे दी। नतीजा यह हुआ कि अंत में काना के लिए कुछ भी नहीं बचा और वह उस दिन घर नहीं गईं। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ; काना की माता ने कुछ मिठाई बनाई, भिक्षु उसके दरवाजे पर खड़े थे, उसने अपनी मिठाई भिक्षुओं को दे दी, बेटी के लिए घर ले जाने के लिए कुछ भी नहीं बचा, और बेटी घर नहीं गई। तीसरे दिन, तीसरी बार, उसके पति ने उसे संदेश भेजा, जो एक तरह से अल्टीमेटम भी था, जिसमें लिखा था कि अगर वह अगले दिन घर नहीं लौटी, तो वह दूसरी पत्नी ले आएगा। लेकिन अगले दिन भी, काना घर नहीं जा सकी क्योंकि उसकी माता ने अपनी सारी मिठाई भिक्षुओं को दे दी थी। तब काना के पति ने दूसरी पत्नी ले ली और काना भिक्षुओं के प्रति बहुत कटु हो गई। वह सभी भिक्षुओं को इतना बुरा-भला कहती थी कि भिक्षु कानामाता के घर से दूर रहने लगे।

बुद्ध ने काना के बारे में सुना और कानामता के घर गए; वहाँ कानामता ने उन्हें चावल का दलिया परोसा। भोजन के बाद, बुद्ध ने काना को बुलवाया और उनसे पूछा, “क्या मेरे भिक्षुओं ने वह लिया जो उन्हें दिया गया था या वह जो उन्हें नहीं दिया गया था?” काना ने उत्तर दिया कि भिक्षुओं ने केवल वही लिया जो उन्हें दिया गया था, और फिर कहा, “वे दोषी नहीं थे; केवल मैं ही दोषी थी।” इस प्रकार, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध को प्रणाम भी किया। इसके बाद बुद्ध ने प्रवचन दिया। प्रवचन के अंत में, काना ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया।

मठ लौटते समय बुद्ध की मुलाकात कोसल के राजा पसीनादि से हुई। जब उन्हें काना और भिक्षुओं के प्रति उसके कठोर रवैये के बारे में बताया गया, तो राजा पसीनादि ने बुद्ध से पूछा कि क्या वे उसे धर्म का उपदेश दे पाए हैं और उसे सत्य (धर्म) का दर्शन करा पाए हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया, “हाँ, मैंने उसे धर्म का उपदेश दिया है और उसे अगले जन्म में समृद्ध भी बनाया है।” तब राजा ने बुद्ध से वादा किया कि वह काना को इसी जन्म में समृद्ध बना देगा। राजा ने अपने आदमियों को पालकी के साथ काना को लाने के लिए भेजा। जब वह पहुँची, तो राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, “जो कोई भी मेरी पुत्री काना को आराम से रख सके, वह उसे ले जा सकता है।” मंत्रियों में से एक ने

स्वेच्छा से काना को अपनी पुत्री के रूप में गोद लिया, उसे अपनी सारी संपत्ति दे दी और उससे कहा, “तुम जितना चाहो दान कर सकती हो।” प्रतिदिन, काना नगर के चारों द्वारों पर भिक्षुओं को दान देती थी। जब बुद्ध को काना द्वारा उदारतापूर्वक दान देने के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, काना का जो मन भ्रमित था, वह मेरे शब्दों से स्पष्ट और शांत हो गया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 82)

यथा अपि गंभीरो रहदो विप्पसन्नो अनाविलो
एवं पंडिता धम्मानि सुत्वान् विप्पसीदंति

यथा अपि : जैसे; गंभीरो [गंभीर]: गहरा; रहदो [रहदा]: सागर; विप्पसन्नो [विप्पसन्न]: एकदम साफ; अनावीलो [अनाविला]: और अशांत नहीं; एवं : उसी प्रकार; पंडिता : ज्ञानी; धम्मनि : शिक्षा; सुत्वन : सुनकर; विप्पसीदन्ति : मानसिक रूप से शुद्ध हो जाते हैं

अत्यंत गहरे महासागर शांत, स्थिर और अशांत होते हैं। ठीक उसी प्रकार, बुद्ध के वचनों को सुनने वाले ज्ञानी व्यक्ति गहन जागरूकता प्राप्त करते हैं और अत्यंत शांत और स्थिर हो जाते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 82)

रहदो गम्भीरो : गहरा सागर। इस श्लोक में बुद्ध के वचन सुनने वालों द्वारा अनुभव की गई मन की पवित्रता की तुलना गहरे सागर के जल की स्पष्टता से की गई है। बुद्ध के वचन सुनने का सौभाग्य न प्राप्त करने वाले आम लोग मन से अशुद्ध, व्याकुल और परेशान रहते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 83

(धम्मपद 82) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 83 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 84)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 83 - पंचासताभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 83 - पंचासताभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सब्बत्था ये सप्पुरिसा कजन्ति
na kamakama lapayanti santo
सुखेन फुत्थ अथ वा दुखेन
न उच्चवचं पंडिता दशयन्ति।

श्लोक 83 : निःसंदेह, गुणी लोग सब कुछ त्याग देते हैं (अर्थात पाँच खंधों आदि से आसक्ति); गुणी (शाब्दिक रूप से, शांत) लोग कामुक इच्छाओं से बात नहीं करते; सुख या दुःख का सामना करते समय, बुद्धिमान लोग उल्लास या अवसाद नहीं दिखाते।

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (83) कहा।

वेरंजा के एक ब्राह्मण के अनुरोध पर, बुद्ध एक बार पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वेरंजा में ठहरे थे। वेरंजा में रहते हुए, ब्राह्मण उनकी देखभाल करने में चूक गया। उस समय वेरंजा के लोग अकाल का सामना कर रहे थे, इसलिए जब भिक्षु भिक्षा मांगने निकले, तो वे उन्हें

बहुत कम दान दे सके। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद, भिक्षु निराश नहीं हुए; वे घोड़े बेचने वालों द्वारा प्रतिदिन दिए जाने वाले थोड़े से सूखे अनाज से ही संतुष्ट थे। वास समाप्त होने पर, वेरंजा के ब्राह्मण को सूचित करने के बाद, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए। श्रावस्ती के लोगों ने उनका स्वागत विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन से किया।

भिक्षुओं के साथ रहने वाले कुछ लोग, भिक्षुओं द्वारा छोड़े गए भोजन को खाकर, लालच से भरपेट खाते रहे और भोजन के बाद सो गए। जागने पर वे चिल्लाने, गाने और नाचने लगे, जिससे काफी उपद्रव मच गया। जब बुद्ध शाम को भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें उन उपद्रवी लोगों के व्यवहार के बारे में बताया और कहा, "जब हम सभी वेरंजा में कठिनाई और अकाल का सामना कर रहे थे, तब ये लोग, जो बचे हुए भोजन पर गुजारा कर रहे थे, काफी सभ्य और अच्छे व्यवहार वाले थे। अब जब उनके पास पर्याप्त भोजन है, तो वे चिल्ला रहे हैं, गा रहे हैं और नाच रहे हैं, जिससे काफी उपद्रव मच गया है। हालांकि, भिक्षु यहां भी वैसे ही व्यवहार कर रहे हैं जैसे वे वेरंजा में करते थे।"

बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मूर्खों का स्वभाव होता है कि जब चीजें बिगड़ती हैं तो वे दुखी और निराश हो जाते हैं, और जब चीजें अच्छी होती हैं तो वे प्रसन्न और उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन बुद्धिमान लोग जीवन के उतार-चढ़ाव को सहन कर सकते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 83 : निःसंदेह, गुणी लोग सब कुछ त्याग देते हैं (अर्थात पाँच खंधों आदि से आसक्ति); गुणी (शाब्दिक रूप से, शांत) लोग कामुक इच्छाओं से बात नहीं करते; सुख या दुःख का सामना करते समय, बुद्धिमान लोग उल्लास या अवसाद नहीं दिखाते।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कानामता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

वेरांजा के एक ब्राह्मण के अनुरोध पर, बुद्ध एक बार भिक्षुओं के एक समूह के साथ वेरांजा में ठहरे थे। वेरांजा में रहने के दौरान, ब्राह्मण उनकी देखभाल करने में चूक गए। वेरांजा के लोग, जो उस समय अकाल का सामना कर रहे थे, भिक्षुओं को भिक्षा मांगने के लिए भेजे जाने पर बहुत कम दान दे सके। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद, भिक्षु निराश नहीं हुए; वे घोड़ों के व्यापारियों द्वारा प्रतिदिन दिए जाने वाले थोड़े से सूखे अनाज से ही संतुष्ट थे। वर्षा ऋतु के अंत में, वेरांजा के ब्राह्मण को सूचित करने के बाद, बुद्ध भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए। श्रावस्ती के लोगों ने उनका स्वागत विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन से किया।

भिक्षुओं के साथ रहने वाले कुछ लोग, भिक्षुओं द्वारा छोड़े गए भोजन को खाकर, लालच से भरपेट खाते रहे और भोजन के बाद सो गए। जागने पर वे चिल्लाने, गाने और नाचने लगे, जिससे काफी उपद्रव हुआ। जब बुद्ध शाम को भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें उन उपद्रवी लोगों के व्यवहार के बारे में बताया और कहा, "ये लोग जो बचे हुए भोजन पर गुजारा कर रहे हैं, वे तब काफी सभ्य और अच्छे व्यवहार वाले थे जब हम सभी वेरांजा में कठिनाई और अकाल का सामना कर रहे थे। अब जब उनके पास पर्याप्त भोजन है, तो वे चिल्ला रहे हैं, गा रहे हैं और नाच रहे हैं, जिससे काफी उपद्रव हो रहा है। हालांकि, भिक्षु यहां भी वैसे ही व्यवहार करते हैं जैसे वे वेरांजा में करते थे।"

बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मूर्खों का स्वभाव होता है कि जब चीजें बिगड़ती हैं तो वे दुखी और निराश हो जाते हैं, और जब चीजें अच्छी होती हैं तो वे प्रसन्न और उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन बुद्धिमान लोग जीवन के उतार-चढ़ाव को सहन कर सकते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 83)

सप्पुरिसा वे सब्बत्था कजंति संतो कामकामा न लपयन्ति

सुखेन पुट्ठा अथवा दुखेन पंडिता उच्छवचं न दासयंती

सप्पुरिसा : श्रेष्ठ जन; वे सब्त : निश्चय ही सभी बातों में; चजंति : अनासक्त; संतो : श्रेष्ठ जन; कामकामा : इंद्रिय सुख की इच्छा रखने वाले; न लपयन्ति : बात नहीं करते; सुखेन : सुख से; फुत्था : प्रभावित; अथवा: अन्यथा; दुःखेन : दुःख से (प्रभावित); पंडिता : बुद्धिमान जन; उच्चावच : उतार -चढ़ाव; न दसयंति : प्रदर्शित नहीं करते

नेक और बुद्धिमान व्यक्ति संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होते। अनुशासित व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं, भौतिक लाभों या इंद्रिय सुखों की इच्छा से बात नहीं करते। चाहे उन पर भाग्य का कोई भी प्रभाव पड़े, वे शांत रहते हैं, न तो निराश होते हैं और न ही प्रसन्न।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 83)

सुखेन दुःखेन : ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख दोनों में अविचलित रहते हैं। सुख और दुःख एक दूसरे के विपरीत हैं। ये मनुष्य को प्रभावित करने वाले सबसे शक्तिशाली कारक हैं। जिसे आसानी से सहन किया जा सकता है वह सुख है , और जिसे सहन करना कठिन है वह दुःख है । साधारण सुख किसी इच्छा की पूर्ति है। जैसे ही वांछित वस्तु प्राप्त होती है, हम किसी अन्य प्रकार के सुख की कामना करने

लगते हैं। हमारी स्वार्थी इच्छाएँ इतनी अतृप्त होती हैं। इंद्रिय सुखों का आनंद लेना ही एक सामान्य व्यक्ति के लिए सर्वोच्च और एकमात्र सुख है। निस्संदेह, ऐसे इंद्रिय सुखों की प्रत्याशा, पूर्ति और स्मरण में क्षणिक सुख होता है, जिसे इंद्रियवादी अत्यधिक महत्व देता है, लेकिन ये क्षणभंगुर और अस्थायी होते हैं।
सच्ची खुशी भीतर ही पाई जाती है, और इसे धन, शक्ति, सम्मान या विजय के संदर्भ में परिभाषित नहीं किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 84

(धम्मपद83) <<<< पिछला|| धम्मपद84 ||अगला >>>> (धम्मपद 85 और 86)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 84 - धम्मिकत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 84 - धम्मिकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na attahetu na parassa hetu
न पुत्तमिच्छे न धनं न रत्थम्
न इच्छेया अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
सा सिलवा पन्नवा धम्मिको सिया।

श्लोक 84 : वह अपने लिए या दूसरों के लिए कोई बुराई नहीं करता; न ही वह बुराई करके पुत्र-पुत्रियों, धन-दौलत या राज्य की कामना करता है; न ही वह अनुचित साधनों से सफलता की कामना करता है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी, बुद्धिमान और न्यायप्रिय है।

थेरा धम्मिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा धम्मिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (84) कहा।
धम्मिका अपनी पत्नी के साथ सावत्थी में रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी से कहा कि वे भिक्षु बनना चाहते हैं; उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करने की विनती की। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उन्होंने फिर से अपनी पत्नी से जाने की अनुमति मांगी; फिर से, उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के चलने-फिरने लायक होने तक प्रतीक्षा करने की विनती की। तब धम्मिका ने मन ही मन सोचा, "मेरे लिए संघ में शामिल होने के लिए पत्नी की स्वीकृति मांगना व्यर्थ होगा; मैं अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयास करूंगा।" दृढ़ निश्चय करके, वे भिक्षु बनने के लिए अपना घर छोड़कर चले गए। उन्होंने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही अर्हत (1) बन गए।
कुछ वर्षों बाद, वे अपने पुत्र और पत्नी को धम्म का उपदेश देने के लिए अपने घर गए। उनके पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ। तब पत्नी ने सोचा, "अब जब मेरे पति और पुत्र दोनों घर छोड़कर चले गए हैं, तो मुझे भी घर छोड़ देना चाहिए।" इसी विचार के साथ उन्होंने घर छोड़ दिया और भिक्षुणी बन गईं; अंततः उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ।
भिक्षुओं की सभा में बुद्ध को बताया गया कि धम्मिका कैसे भिक्षु बने और अर्हतत्व प्राप्त किया, और कैसे उनके माध्यम से उनके पुत्र और उनकी पत्नी ने भी अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, एक बुद्धिमान व्यक्ति बुराई करके धन और समृद्धि की कामना नहीं करता, चाहे वह अपने लिए हो या दूसरों के लिए। वह केवल धम्म को समझकर और धम्म के अनुसार जीवन जीकर पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) से अपनी मुक्ति के लिए कर्म करता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 84 : वह अपने लिए या दूसरों के लिए कोई बुराई नहीं करता; न ही वह बुराई करके पुत्र-पुत्रियों, धन-दौलत या राज्य की कामना करता है; न ही वह अनुचित साधनों से सफलता की कामना करता है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी, बुद्धिमान और न्यायप्रिय है।

———————————————————————————

1. अरहत: पूर्णतः प्रबुद्ध, वह व्यक्ति जो कभी पुनर्जन्म नहीं लेगा और शाश्वत आनंद (अमरता, सर्वव्यापकता और अनंत आनंद) में रहते हुए निर्वाण की अवस्था के दूसरे तट पर जाएगा।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय धम्मिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य धम्मिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

धम्मिका अपनी पत्नी के साथ सावत्थी में रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी से कहा कि वे भिक्षु बनना चाहते हैं; उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के जन्म के बाद तक प्रतीक्षा करने की विनती की। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उन्होंने फिर से अपनी पत्नी से जाने की अनुमति मांगी; फिर से उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के चलने-फिरने लायक होने तक प्रतीक्षा करने की विनती की। तब धम्मिका ने मन ही मन सोचा, "संघ में शामिल होने के लिए पत्नी की स्वीकृति मांगना व्यर्थ होगा; मैं स्वयं अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करूंगा।" दृढ़ निश्चय करके वे भिक्षु बनने के लिए घर छोड़कर चले गए। उन्होंने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही अर्हत बन गए।

कुछ वर्षों बाद, वे अपने पुत्र और पत्नी को धम्म का उपदेश देने के लिए अपने घर गए। उनके पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ। तब पत्नी ने सोचा, "चूंकि मेरे पति और पुत्र दोनों घर छोड़कर चले गए हैं, तो मुझे भी घर छोड़ देना चाहिए।" इसी विचार के साथ उन्होंने घर छोड़ दिया और भिक्षुणी बन गईं; अंततः उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

भिक्षुओं की सभा में बुद्ध को बताया गया कि धम्मिका कैसे भिक्षु बने और अर्हतत्व प्राप्त किया, और कैसे उनके माध्यम से उनके पुत्र और उनकी पत्नी ने भी अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, एक बुद्धिमान व्यक्ति बुराई करके धन और समृद्धि की कामना नहीं करता, चाहे वह अपने लिए हो या दूसरों के लिए। वह केवल धर्म की शिक्षाओं को समझकर और धर्म के अनुसार जीवन जीकर अपने स्वयं के पुनर्जन्म के चक्र (संसार) से मुक्ति के लिए कर्म करता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 84)

अत्तहेतु न परस्सा हेतु न पुत्तं न धनं

न रथं न इच्छे अधम्मेना अत्तनो समिद्धिं

ना इच्चेया सो सिलावा पन्नवा धम्मिको सिया

अतहेतु : अपने हित के लिए, ना : वह नहीं करता; परस हेतु : दूसरों के हित के लिए; ना : वह नहीं करता; ना पुत्र : कोई पुत्र नहीं; ना धन : कोई धन नहीं; ना रट्ठ : कोई राज्य नहीं; इच्छा : वह चाहता है; अत्तनो समिद्धि : अपनी समृद्धि; अधम्मेना : अवास्तविक रूप से; ना इच्छाय्य : वह (लाभ पाने की) इच्छा नहीं करता; सो : ऐसा व्यक्ति; सेलावा : सुव्यवहारित; पञ्ञवा : मर्मस्पर्शी; धम्मिको : यथार्थवादी ; सिया : हो जाता है

वह न तो अपने लाभ के लिए, न ही दूसरों के लाभ के लिए संतान, धन या राज्य की इच्छा रखता है। न ही वह आत्मप्रशंसा की लालसा रखता है। इस प्रकार वह यथार्थवादी, मर्मस्पर्शी और सुव्यवस्थित है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 84)

यह श्लोक इस आम सवाल का उचित जवाब देता है, "राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी, संतान, माता-पिता और राज्य का त्याग क्यों किया, यदि अपने स्वार्थ के लिए नहीं तो?" यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि वह अपने या किसी और के स्वार्थ के लिए अवास्तविक कार्य नहीं करेंगे।

संसार के स्वरूप, उसकी अस्थिरता, दुःख और निर्जीवता की सही समझ के कारण ही उन्होंने घर छोड़ा था। साथ ही, उन्होंने सांसारिक ज्ञान को तुच्छ नहीं समझा। उन्होंने अपने सेवकों से भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने की इच्छा नहीं दिखाई। उनका ज्ञान हमेशा दूसरों के लिए उपलब्ध था, और उन्होंने उसे निःसंकोच साझा किया। उन्होंने दूसरों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने भ्रमों के पीछे भागना छोड़ दिया। उन्होंने यथार्थवादी जीवन जीना शुरू किया; न केवल अपने लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी एक उदाहरण बनने के लिए।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 85 और 86

———————————————————————————

(धम्मपद 84) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 85 और 86 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 87, 88 और 89)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 85 और 86 - धम्मस्सावना वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 85 और 86 - धम्मस्सावना वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पाका ते मनुस्सेसु
ये जना परागमिनो
अथयम इतरा पजा
तिरामेवनुधावती(1)

Ye ca kho sammadakkhate
dhamme dhammanuvattano
te jana paramessanti(2)
maccudheyyam(3) suduttaram.

श्लोक 85 : मनुष्य में से कुछ ही दूसरे किनारे (निब्बान) तक पहुँचते हैं; बाकी सब तो बस इसी किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

श्लोक 86 : परन्तु जो लोग सुस्पष्ट धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के क्षेत्र (अर्थात संसार) को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँचेंगे, यद्यपि इसे पार करना बहुत कठिन है।

---

1. तिरामएवनुधावती: तिराम + एव + अनुधावती: किनारा + केवल यही + ऊपर-नीचे दौड़ना: टीका के अनुसार इस संदर्भ में 'केवल यही किनारा' का अर्थ है सक्कयादित्थी (अहंकार विश्वास)।
2. paramessanti: param + essanti: दूसरा किनारा + पहुँचेगा। निर्वाण के लिए लाक्षणिक रूप से दूसरे या विपरीत किनारे का प्रयोग किया गया है।
3. मच्चुधेय्यम: मृत्यु का क्षेत्र (या संसार, पुनर्जन्मों का चक्र)।

धम्म श्रोताओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (85) और (86) का उच्चारण किया, जो श्रावस्ती में एक धार्मिक प्रवचन सुनने आए लोगों की सभा के संदर्भ में था।

एक बार, सावत्थी के कुछ लोगों ने सामूहिक रूप से भिक्षुओं को विशेष भेंट दी और उन्होंने अपने इलाके में कुछ भिक्षुओं से रात भर प्रवचन दिलवाए। श्रोताओं में से कई लोग रात भर जाग नहीं सके और जल्दी अपने घर लौट गए; कुछ लोग रात भर बैठे रहे, लेकिन अधिकतर समय वे ऊंघते और अधनी नींद में थे। प्रवचनों को ध्यान से सुनने वाले केवल कुछ ही लोग थे।

भोर होते ही जब भिक्षुओं ने बुद्ध को पिछली रात की घटना के बारे में बताया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "अधिकांश लोग इस संसार से आसक्त हैं; केवल कुछ ही लोग दूसरे तट (निर्वाण) तक पहुँच पाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 85 : मनुष्य में से कुछ ही दूसरे किनारे (निब्बान) तक पहुँचते हैं; बाकी सब तो बस इसी किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

———————————————————————————

श्लोक 86 : परन्तु जो लोग सुस्पष्ट धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के क्षेत्र (अर्थात संसार) को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँचेंगे, यद्यपि इसे पार करना बहुत कठिन है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धम्म श्रोताओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक सावत्थी में धार्मिक प्रवचन सुनने आए लोगों के एक समूह के संदर्भ में कहे थे। एक बार सावत्थी के लोगों के एक समूह ने भिक्षुओं को सामूहिक रूप से विशेष भेंट दी और उन्होंने कुछ भिक्षुओं को अपने क्षेत्र में रात भर प्रवचन देने की व्यवस्था की। श्रोताओं में से कई लोग रात भर जाग नहीं सके और जल्दी अपने घर लौट गए; कुछ लोग रात भर बैठे रहे, लेकिन अधिकतर समय वे ऊंघते और अधमरे थे। प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुनने वाले केवल कुछ ही लोग थे।

भोर होते ही, जब भिक्षुओं ने बुद्ध को पिछली रात की घटनाओं के बारे में बताया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "अधिकांश लोग इस संसार से आसक्त हैं; केवल कुछ ही लोग दूसरे तट (निर्वाण) तक पहुँच पाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 85)

मनुस्सेसु ये जना पैरागामिनो ते अप्पाका

अथा इतर अयं पजा तिरं एव अनुधावति

मनुष्यसु : आम लोगों में से; ये जना : वे जो; पारगामिनो [पारगामिन]: दूसरे किनारे पर पार करते हैं; ति : वे; अप्पका : (हैं) केवल कुछ; अथा : लेकिन; इतरा : दूसरे; अयं पजा : ये जनसमूह; तीरं एव : इसी किनारे पर; अनुधावती : चलते रहते हैं

जो लोग दूसरी ओर जाना चाहते हैं, उनमें से केवल कुछ ही सफल हो पाते हैं। बाकी जो पीछे रह जाते हैं, वे इसी किनारे पर दौड़ते रहते हैं। जो जनसमूह मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता, वह संसार के चक्र में फंसा रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 86)

ये च खो सम्मदक्खते धम्मे धम्मनुवत्तिनो

ते जना सुदत्तारं मक्कुधेयं परं एस्संति

तु कै खो : जो भी; सम्मदक्खते : अच्छी तरह से व्यक्त में; धम्मे : पढ़ाना; धम्मनुवत्तिनो [धम्मनुवत्तिना]: जो शिक्षण के अनुसार रहते हैं; ते जना : वे लोग; सुदत्ताराम् [सुदत्तारा]: पार करना कठिन; मक्कुधेयं [मक्कुधेय]: मृत्यु का क्षेत्र; परं एस्संति : पार करो

जिन लोकों पर मारा का अधिकार है, उन्हें पार करना कठिन है। केवल वे ही लोग जो बुद्ध की सुस्पष्ट शिक्षाओं में बताए गए मार्ग का पूरी निष्ठा से अनुसरण करते हैं, इन कठिन लोकों को पार कर सकेंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 85-86)

धम्मे धम्मानुवत्तिनो : बुद्ध की शिक्षा और उस शिक्षा का अभ्यास करने वाले। बुद्ध ने सबसे पहले पांच तपस्वियों को अपनी शिक्षा का उपदेश दिया और अपना पहला प्रवचन दिया - "सत्य के चक्र का घूमना"। इस प्रकार प्रबुद्ध बुद्ध ने धम्म का प्रचार किया और अद्वितीय "सत्य के चक्र" को गतिमान किया। धम्म के प्रचार के साथ ही, और पांच तपस्वियों के धर्म परिवर्तन के साथ, इसिपताना का हिरण पार्क बुद्ध के धर्मोपदेश और संघ, भिक्षुओं के समुदाय, दीक्षित शिष्यों का जन्मस्थान बन गया। बुद्ध ने अपने शिष्यों, सिद्ध पुरुषों (अरहतों) को संबोधित किया।), और कहा: "हे भिक्षुओं, मैं सभी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गया हूँ। तुम भी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गए हो। अब जाओ और अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए भ्रमण करो। तुममें से दो एक ही दिशा में न जाएँ। उस धम्म का प्रचार करो जो आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम है, जिसका अर्थ और अक्षर दोनों पूर्णतः परिपूर्ण हैं। पवित्र जीवन का, पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन का प्रचार करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में थोड़ी सी भी धूल नहीं है, जो धम्म न सुनकर नष्ट हो जाएँगे। कुछ ऐसे प्राणी हैं जो धम्म को समझेंगे। मैं भी उरुवेला, सेनानिगम जाऊँगा, धम्म का उपदेश देने के लिए।" इस प्रकार बुद्ध ने अपने उदात्त मिशन का आरंभ किया जो उनके जीवन के अंत तक चला। अपने शिष्यों के साथ वे जंबूद्वीप के राजमार्गों और गलियों में विचरण करते रहे, जो गुलाब सेब की भूमि (भारत का दूसरा नाम) है, और सभी को अपने भीतर समाहित कर लिया। उनकी असीम करुणा और ज्ञान की आभा हर जगह व्याप्त है। बुद्ध ने धम्म का उपदेश देते समय जाति, गोत्र या वर्ग का कोई भेद नहीं किया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से आए पुरुष और महिलाएं—अमीर और गरीब; निम्नतम और उच्चतम; साक्षर और निरक्षर; ब्राह्मण और अछूत, राजकुमार और कंगाल, संत और अपराधी—बुद्ध को सुनते थे, उनकी शरण लेते थे और शांति और ज्ञान के मार्ग को दिखाने वाले उनके मार्ग का अनुसरण करते थे। यह मार्ग सभी के लिए खुला है। उनका धम्म सभी के लिए था। जाति, जो भारत के ब्राह्मणों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी, बुद्ध के लिए पूरी तरह से महत्वहीन थी, जिन्होंने इस नीच व्यवस्था की कड़ी निंदा की। बुद्ध ने सभी जातियों और वर्गों के लोगों को संघ में स्वतंत्र रूप से प्रवेश

दिया, जब उन्हें पता चला कि वे पवित्र जीवन जीने के योग्य हैं, और उनमें से कुछ ने बाद में संघ में अपनी विशिष्टता साबित की। बुद्ध एकमात्र समकालीन शिक्षक थे जिन्होंने जाति और वर्ग के भेदों से अब तक अलग हुए लोगों को पारस्परिक सहिष्णुता और सद्भाव में जोड़ने का प्रयास किया। बुद्ध ने भारत में महिलाओं की स्थिति को भी ऊंचा उठाया। सामान्यतः, बुद्ध के समय में ब्राह्मणवादी प्रभाव के कारण महिलाओं को अधिक मान्यता नहीं दी जाती थी। कभी-कभी उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था, हालांकि दर्शनशास्त्र आदि विषयों में उनकी विद्वत्ता के कुछ ही उदाहरण मिलते थे। अपनी उदारता में, बुद्ध ने महिलाओं के साथ सम्मानपूर्वक और विनम्रता से व्यवहार किया और उन्हें भी शांति, पवित्रता और धार्मिकता का मार्ग दिखाया। बुद्ध ने इतिहास में पहली बार भिक्षुणियों (भिक्खुनी शासन) की स्थापना की; क्योंकि इससे पहले ऐसा कोई संघ नहीं था जहां महिलाएं ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर सकें। जीवन के सभी क्षेत्रों से महिलाएं इस संघ में शामिल हुईं। इन कई महान भिक्षुणियों के जीवन, मोक्ष की प्राप्ति के लिए उनके अथक प्रयासों और मन की मुक्ति पर उनके आनंदमय गीतों का सजीव वर्णन 'बहनों के भजन' (थेरीगाथा) में मिलता है।

गांव-गांव और कस्बे-कस्बे की यात्रा करते हुए, अनेकों लोगों को उपदेश देते, ज्ञान प्रदान करते और प्रसन्न करते हुए, बुद्ध ने देखा कि कैसे अंधविश्वासी लोग, अज्ञानता में डूबे हुए, अपने देवताओं की पूजा में पशुओं का वध करते हैं।

उन्होंने उनसे बात की:

जीवन, जिसे सब ले सकते हैं लेकिन कोई दे नहीं सकता,
वह जीवन जिसे सभी प्राणी प्यार करते हैं और बनाए रखने का प्रयास करते हैं।
अद्भुत, प्रिय और सभी के लिए सुखद,
यहां तक कि सबसे कंजूस लोगों के लिए भी...

बुद्ध ने कभी भी कलह और द्वेष को बढ़ावा नहीं दिया। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने एक बार कहा था: “भिक्षुओं, मैं संसार से झगड़ा नहीं करता, संसार मुझसे झगड़ा करता है। धम्म का प्रचारक संसार में किसी से झगड़ा नहीं करता।”

बुद्ध के लिए धम्म का अभ्यास अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए, बौद्धों को धम्मानुवत्ती (धर्म का अभ्यास करने वाले) होना चाहिए। बुद्ध के धम्म (धर्म) द्वारा इंगित आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यावहारिक पहलू सबसे आवश्यक हैं।

सच्ची शांति और सुख पाने का कोई शॉर्टकट नहीं है। जैसा कि बुद्ध ने अनेक उपदेशों में बताया है, यही एकमात्र मार्ग है जो सुखमय जीवन के शिखर तक ले जाता है, जो मानसिक जगत के निम्नतम स्तरों से उच्चतर स्तरों तक जाता है। यह एक क्रमिक प्रशिक्षण है, वाणी, कर्म और विचार का प्रशिक्षण जो सच्ची बुद्धि की प्राप्ति कराता है और अंततः पूर्ण ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति में परिणत होता है। यह मार्ग सभी के लिए है, जाति, वर्ग या धर्म से परे, एक ऐसा मार्ग जिसे जागृत जीवन के प्रत्येक क्षण में संजोना चाहिए।

इस शिक्षा को इंगित करने में बुद्ध का एकमात्र उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया गया है: “बुद्ध प्रबुद्ध हैं, वे ज्ञान प्राप्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध शांत हैं, वे शांत करने के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध पार कर चुके हैं, वे पार करने के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, वे निर्वाण प्राप्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हैं ।”

बुद्ध जिस उद्देश्य से धम्म का उपदेश देते हैं, वह यही है, इसलिए यह स्पष्ट है कि उस मार्ग के श्रोता या अनुयायी का उद्देश्य भी यही होना चाहिए, और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए, एक दयालु और समझदार चिकित्सक का उद्देश्य उसके पास इलाज के लिए आने वाले रोगियों को ठीक करना होना चाहिए, और जैसा कि हम जानते हैं, रोगी का एकमात्र उद्देश्य यथाशीघ्र स्वस्थ होना होता है। यही एक बीमार व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य होता है।

हमें यह भी समझना चाहिए कि यद्यपि मार्गदर्शन, चेतावनी और निर्देश उपलब्ध हैं, फिर भी धम्म का वास्तविक अभ्यास, यानी मार्ग पर चलना, हमारे ऊपर निर्भर है। हमें सभी बाधाओं को पार करते हुए, पूर्ण उत्साह के साथ सही मार्ग पर चलना चाहिए—वही मार्ग जिस पर सभी युगों के बुद्धों ने चलकर दर्शन दिए हैं।

पारगमन के विचार को समझाने के लिए, बुद्ध ने एक बेड़ा की उपमा का प्रयोग किया: "भिक्षुओं, मैं एक बेड़ा की उपमा का प्रयोग करते हुए धम्म का उपदेश देता हूँ जो पारगमन के लिए बनाया गया है, न कि धारण करने के लिए।"

करुणामय गुरु बुद्ध अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन वे एक विरासत छोड़ गए हैं - परम धम्म। धम्म कोई आविष्कार नहीं, बल्कि एक खोज है। यह एक शाश्वत नियम है; यह हर जगह, हर पुरुष और स्त्री में, चाहे वह बौद्ध हो या गैर-बौद्ध, पूर्वी हो या पश्चिमी, विद्यमान है। धम्म का कोई बंधन नहीं, यह समय, स्थान या जाति की सीमाओं से परे है। यह समस्त काल के लिए है। जो भी धम्म का अनुसरण करता है, वह इसके प्रकाश को देखता है, स्वयं इसका अनुभव करता है। इसे दूसरों तक पहुँचाया नहीं जा सकता, क्योंकि इसका आत्म-साक्षात्कार आवश्यक है।

कर्म , सही मायने में, अच्छे और बुरे कर्मों और उनसे जुड़े मानसिक कारकों को दर्शाता है, जो पुनर्जन्म का कारण बनते हैं और प्राणियों के भाग्य को निर्धारित करते हैं। ये कर्मिक इच्छाएँ शरीर, वाणी और मन द्वारा अच्छे या बुरे कर्मों के रूप में प्रकट होती हैं। इस प्रकार, बौद्ध शब्द कर्म किसी भी प्रकार से कर्मों के परिणाम को नहीं दर्शाता है, और निश्चित रूप से मनुष्य के भाग्य को भी नहीं, या शायद पूरे

राष्ट्रों के भाग्य को भी नहीं (जिसे सामूहिक कर्म कहा जाता है), जो कि दुनिया के कुछ हिस्सों में व्यापक रूप से फैली हुई गलत धारणाएँ हैं। बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षुओं, मैं कर्म को इच्छाशक्ति कहता हूँ, क्योंकि इच्छाशक्ति के द्वारा ही मनुष्य शरीर, वाणी या मन से कर्म करता है। हे भिक्षुओं, कर्म का फल नरक में मिलता है। कर्म का फल पशु जगत में मिलता है। कर्म का फल मनुष्य जगत में मिलता है। कर्म का फल स्वर्ग जगत में मिलता है। कर्म का फल तीन प्रकार का होता है : जन्म के दौरान मिलता है, अगले जन्म में मिलता है और उसके बाद के जन्मों में मिलता है।"

अस्वास्थ्यकर कर्मों के तीन मूल कारण हैं: लोभ, घृणा और भ्रम; जबकि स्वास्थ्यकर कर्मों के मूल कारण हैं: निस्वार्थता, घृणाहीनता (सद्भावना) और भ्रमहीनता।

"लोभ कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है , घृणा कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है , भ्रम कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है। "

"अवांछनीय कर्म तीन प्रकार के होते हैं, जो लोभ, घृणा या भ्रम से प्रेरित होते हैं।"

"हत्या, चोरी, अवैध यौन संबंध, झूठ बोलना, निंदा करना, अभद्र भाषा बोलना, मूर्खतापूर्ण बातें करना, यदि इनका अभ्यास किया जाए, इन्हें जारी रखा जाए और बार-बार किया जाए, तो ये नरक में, या पशुओं के बीच, या प्रेतों के बीच पुनर्जन्म का कारण बनते हैं।" "जो हत्या करता है और क्रूरता करता है, वह या तो नरक में जाता है, या यदि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेता है, तो अल्प आयु का होगा। जो दूसरों को सताता है, वह रोगग्रस्त होगा। क्रोधित व्यक्ति बदसूरत दिखेगा, ईर्ष्यालु व्यक्ति प्रभावहीन होगा, कंजूस व्यक्ति गरीब होगा, हठी व्यक्ति नीच कुल का होगा, आलसी व्यक्ति ज्ञानहीन होगा। इसके विपरीत, मनुष्य स्वर्ग में या मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेगा, वह दीर्घायु होगा, सुंदर, प्रभावशाली, कुलीन कुल का और ज्ञानी होगा।"

"अपने कर्मों के स्वामी और उन्हीं कर्मों के उत्तराधिकारी प्राणी होते हैं । कर्म ही वह गर्भ है जिससे उनका जन्म होता है, कर्म ही उनका मित्र और आश्रय है। वे चाहे जो भी कर्म करें, चाहे अच्छा हो या बुरा, वे उसी के उत्तराधिकारी होंगे।"

किलेसा : दोष — मन को दूषित करने वाले, अस्वास्थ्यकर गुण। "दस प्रकार के दोष हैं, जिन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि वे स्वयं दूषित हैं, और क्योंकि वे अपने साथ जुड़े मानसिक कारकों को भी दूषित करते हैं।"

वे हैं:

लालच;

घृणा;

भ्रम;

अहंकार;

अनुमानित विचार;

संशयपूर्ण शंका;

मानसिक सुस्ती;

बेचैनी;

निर्लज्जता;

नैतिक भय या अचेतना का अभाव।

विपाक : कर्म-परिणाम — कोई भी कर्मिक (नैतिक) रूप से तटस्थ मानसिक घटना (जैसे, शारीरिक सुखदायक या कष्टदायक अनुभूति, इंद्रिय-चेतना आदि), जो इस जन्म या पिछले जन्म में शरीर, वाणी या मन द्वारा किए गए शुभ या अशुभ स्वैच्छिक कर्म का परिणाम है। यह मानना पूर्णतः गलत है कि बौद्ध धर्म के अनुसार, सब कुछ पिछले कर्म का परिणाम है। उदाहरण के लिए, पूर्व कर्म का परिणाम कोई भी कर्मिक रूप से शुभ या अशुभ स्वैच्छिक कर्म (कर्म) वास्तव में स्वयं कर्म नहीं है ।

कर्म से उत्पन्न भौतिक वस्तुओं को कभी भी कर्म-विपाक नहीं कहा जाता है , क्योंकि यह शब्द केवल मानसिक घटनाओं पर ही लागू किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 87,88,89

———————————————————————

(धम्मपद 85 और 86) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 87, 88 और 89 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 90)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Kanham dhammam vippahaya
sukkam bhavetha pandito
oka anokamagamma(1)
viveke(2) yattha duramam.

तात्रभिरातिमिच्चेय्या
hitva kame akincano(3)
परियोदपेय्य अत्तनम
cittaklesehi(4) pandito.

Yesam sambodhiyangesu(5)
सम्मा चित्तम सुभावितम
adanapatinissagge
anupadaya ye rata
खिनासावा(6) जुटिमंतो(7)
te loke parinibbuta(8)

श्लोक 87 और 88 : ज्ञानवान व्यक्ति, भोग-विलास के घर को छोड़कर, निर्वाण को अपना लक्ष्य बनाकर, अंधकारमय और बुरे मार्गों को त्यागकर शुद्ध और अच्छे मार्गों का अनुसरण करे। उसे एकांत, वैराग्य और निर्वाण में अत्यंत आनंद की खोज करनी चाहिए, जिसका आनंद साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत कठिन होता है। उसे इंद्रिय सुखों का भी त्याग करना चाहिए और किसी भी चीज से आसक्त न रहकर, अपने मन की सभी अशुद्धियों को दूर करना चाहिए।

श्लोक 89 : वे लोग जिनका मन ज्ञान के सात कारकों (बोझ्झंग) में सुविकसित है, सभी व्यथाओं से मुक्त होकर, आसक्ति के त्याग में आनंदित होते हैं। ऐसे पुरुष, सभी नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त होकर और (अरहत्त मग्नाना के प्रकाश से) बलवान होकर, इस संसार में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं (अर्थात, खंड स्कंधों के शेष रहते हुए)।

---

1. ओका अनाकमगम्मा; शाब्दिक अर्थ: घर छोड़कर बेघर हो जाना। इस संदर्भ में इसका अर्थ है लालसा के स्थान को त्यागकर निर्वाण को लक्ष्य बनाना।
2. विवेक: एकांत, वैराग्य, निर्वाण।
3. अकिंचानो: शाब्दिक अर्थ, कुछ भी न होना; किसी चीज से आसक्त न होना। (किंचानो शब्द में वासना, द्वेष, अज्ञान आदि जैसे किसी भी प्रकार के दोष या अशुद्धता शामिल हो सकती है; इसका अर्थ संसार से आसक्ति या लगाव भी है।)
4. cittaklesehi: citta kilesa: मन की अशुद्धियाँ.
5. संबोधियांगेसु: संबोज्जंग: ज्ञानोदय के कारक या मग्गा अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तें।
6. खिनासव: वह व्यक्ति जिसमें मानवीय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं; एक अरहत।
7. जुटिमंता: अरहट्टा मग्गानाना की शक्ति से संपन्न।
8. ते लोके परिनिब्बुता: पंच स्कंधों के क्षेत्र में, यानी इस संसार में निर्वाण की प्राप्ति। परन्तु टीका के अनुसार, इस संदर्भ में सउपादिशेष और अनुपदादिशेष दोनों प्रकार के निर्वाण का अर्थ है। सउपादिशेष या क्लेष निर्वाण वह निर्वाण है जिसमें स्कंध समूह शेष रहते हैं; यह

अरहत द्वारा अरहतत्व प्राप्त करने पर प्राप्त होता है। अनुपदादिशेष या स्कंध निर्वाण वह निर्वाण है जिसमें स्कंध समूह शेष नहीं रहते। यह अरहत की मृत्यु पर प्राप्त होता है।

———————————————————————————

पांच सौ तीर्थयात्री भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ आगंतुक भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (87), (88) और (89) कहे।

वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु के तीन महीने) कोसल में बिताने वाले पांच सौ भिक्षु वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु) के अंत में जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए।

बुद्ध ने उनके विभिन्न स्वभावों के अनुरूप निम्नलिखित तीन श्लोक कहे:

———————————————————————————

श्लोक 87 और 88 : ज्ञानवान व्यक्ति, भोग-विलास के घर को छोड़कर, निर्वाण को अपना लक्ष्य बनाकर, अंधकारमय और बुरे मार्गों को त्यागकर शुद्ध और अच्छे मार्गों का अनुसरण करे। उसे एकांत, वैराग्य और निर्वाण में अत्यंत आनंद की खोज करनी चाहिए, जिसका आनंद साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत कठिन होता है। उसे इंद्रिय सुखों का भी त्याग करना चाहिए और किसी भी चीज से आसक्त न रहकर, अपने मन की सभी अशुद्धियों को दूर करना चाहिए।

———————————————————————————

श्लोक 89 : वे लोग जिनका मन ज्ञान के सात कारकों (बोझ्झंग) में सुविकसित है, सभी व्यथाओं से मुक्त होकर, आसक्ति के त्याग में आनंदित होते हैं। ऐसे पुरुष, सभी नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त होकर और (अरहत्त मग्नाना के प्रकाश से) बलवान होकर, इस संसार में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं (अर्थात, खंड स्कंधों के शेष रहते हुए)।

———————————————————————————

अध्याय छह का अंत: ज्ञानी (पंडितवग्ग)

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ आगंतुक भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ आगंतुक भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कोसल राज्य में वर्षा ऋतु बिता चुके पचास भिक्षु वर्षा ऋतु की समाप्ति पर बुद्ध के दर्शन के उद्देश्य से जेतवन आए; और बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, आदरपूर्वक एक ओर बैठ गए। बुद्ध ने उनके अनुभवों की कथा सुनने के बाद श्लोकों का पाठ करके उन्हें धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 87)

पण्डितो यत्थ विवेके दुरम् ओका अनोखा आगम्मा

कान्हां धम्मं विप्पहया सुक्कं भवेथा

पंडितो [पंडित]: ज्ञानी; यत्थ विवेके : उस मुक्ति में; दूरमं [दूरम]: रुचि लेना कठिन; ओका : घर से; अनोकं आगम्म : बेघर होना (समना का जीवन); काण्हं धम्मं [धम्म]: दूषित विचार; विप्पहाय : पूरी तरह से त्याग देना; सुक्कं भावेथा : पवित्रता का विकास करना (मुक्ति के लिए सहायक)

ज्ञानी व्यक्ति उन दूषित विचारों और संदिग्ध आचरणों का पूर्णतः त्याग कर, सांसारिक जीवन के परिचित सुखों से विमुख होकर संन्यासी के अपरिचित जीवन मार्ग पर अग्रसर होता है। वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक सद्गुणों का अभ्यास करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 88)

अकिंचनो पंडितो कामे हित्वा तत्र अभिरतिम्

इच्चेया चित्तक्लेसेहि अत्तनं परियोदपेय

akiñcano [akiñcana]: संपत्ति रहित (अनासक्त); paṇḍito [paṇḍita]: ज्ञानी व्यक्ति; kāme hitvā : इंद्रिय सुखों का त्याग करने वाला; tatrā : उस (मुक्ति) में; abhiratiṃ [abhirati]: रुचि रखने वाला; iccheyya : (और) इच्छा रखने वाला; cittaklesehi : मानसिक विकारों से मुक्त; attānaṃ pariyodapeyya : स्वयं को शुद्ध करने वाला

वह मुक्ति में रुचि रखता है। वह सभी इंद्रिय सुखों का त्याग कर देता है। इस प्रकार, वह किसी भी संपत्ति से रहित हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति अपने मन को उन दोषों से शुद्ध करने की प्रक्रिया में लग जाता है जो मन को दूषित करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 89)

येसं चित्तं सम्बोधिअंगेसु सम्मा सुभावितं

ये अनुपादाय अदाना पतिनिस्सागे रता
जूतीमंतो ते खिनासावा लोके परिणिबुता

yesaṃ [yesa]: उन (दोषरहित लोगों) में से; cittaṃ [citta]: मन; sambodhiangesu : ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुकूल कारकों में; sammā subhāvitaṃ [subhāvita]: सुशिक्षित और विकसित; ye : वे; anupādāya : किसी भी चीज से आसक्ति न रखने वाले; ādāna paṭinissagge : आसक्ति का त्याग करने वाले; ratā : रुचि रखने वाले; jutīmanto [jutīmanta]: प्रकाशमान; te khiṇāsavā : जो प्रभाव से रहित हैं; loke : इस संसार में; parinibbutā : निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।

कुछ ऐसे ज्ञानी व्यक्ति होते हैं जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक तत्वों का पूर्णतया अभ्यास किया होता है। वे किसी भी चीज से भावनात्मक या मानसिक रूप से आसक्त नहीं होते। वे लोभ और व्याकुलता की प्रवृत्ति के विरोधी होते हैं। वे अनासक्ति में आनंदित होते हैं। वे तेजस्वी, जो पूर्णतः दोषरहित होते हैं, इसी संसार में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 87-89)

pariyodapeyya attānaṃ cittaklesehi paṇḍito : ज्ञानी व्यक्ति मन को दूषित करने वाले दोषों से शुद्ध करता है। यह मन को परिष्कृत करने की संपूर्ण प्रक्रिया का सार है, जिससे यह अमरत्व की खोज का एक उपयुक्त साधन बन सके। मन को दूषित करने वाले दोषों में प्रमुख पाँच प्रकार की बाधाएँ हैं।

निवारण : बाधा डालना। इस संदर्भ में, इसका अर्थ है आध्यात्मिक ऊंचाइयों की प्राप्ति में बाधक व्यवहार को रोकना। वे कारक जो मुक्ति और उच्चतर अवस्थाओं के मार्ग पर प्रगति में बाधा डालते हैं, निवारण कहलाते हैं ।

इन बाधाओं के पाँच प्रकार हैं:

कामुक इच्छाएँ,
बैर,
आलस्य और सुस्ती,
बेचैनी और चिंता, और
संदेह।

(1) कामुक इच्छाएँ

इंद्रियजन्य इच्छाएँ या सुखदायक इंद्रिय-विषयों जैसे रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श के प्रति आसक्ति। इसे भी उन बंधनों में से एक माना जाता है जो व्यक्ति को संसार से बांधते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति इंद्रियों को लुभाने वाली चीजों से आकर्षित हो ही जाता है । आत्म-संयम की कमी से वासनाओं का उत्पन्न होना अपरिहार्य है । एकाग्रता से इस अवरोध को रोका जा सकता है , जो ध्यान के पांच गुणों में से एक है । सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह कम हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाती है । रूप राग और अरूप राग (सृष्टि और निराकार जगत से आसक्ति) जैसी सूक्ष्म आसक्ति केवल अरहतत्व प्राप्त करने पर ही दूर होती है ।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ इंद्रिय-इच्छाओं के उन्मूलन की ओर अग्रसर होती हैं।

उस वस्तु की घृणास्पदता को महसूस करते हुए,
घृणा पर निरंतर ध्यान लगाना,
इंद्रिय-संयम,
भोजन में संयम,
अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।

(2) दुर्भावना या घृणा।

वांछनीय वस्तु आसक्ति उत्पन्न करती है, जबकि अवांछनीय वस्तु घृणा उत्पन्न करती है। ये दो महान अग्नियां हैं जो पूरे संसार को जलाती हैं। अज्ञान की सहायता से ये दोनों अग्नियां संसार के समस्त दुखों का कारण बनती हैं। दुर्भावना को पीति या आनंद द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो ध्यान के कारकों में से एक है। सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह दुर्भावना क्षीण हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाती है ।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ दुर्भावना के उन्मूलन में सहायक होती हैं।

वस्तु को सद्भावनापूर्ण विचारों से देखते हुए,
प्रेम और करुणा (मेट्टा) पर निरंतर ध्यान करना,
यह सोचना कि कर्म स्वयं का है,
उस दृष्टिकोण का पालन करना,

अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।
(3) आलस्य
आलस्य को मन की एक अस्वस्थ अवस्था और मिद्धा को मानसिक अवस्थाओं की अस्वस्थता रहित अवस्था बताया गया है। एक सुस्त मन 'पेड़ से लटके चमगादड़ की तरह, या डंडी से चिपके गुड़ की तरह, या फैलाने के लिए बहुत सख्त मक्खन के टुकड़े की तरह' होता है। आलस्य और सुस्ती को शारीरिक आलस्य के रूप में नहीं समझना चाहिए, क्योंकि जिन अरहतों ने इन दोनों अवस्थाओं को नष्ट कर दिया है, वे भी शारीरिक थकान का अनुभव करते हैं। ये दोनों मानसिक जड़ता को बढ़ावा देते हैं और परिश्रम के विरुद्ध हैं। ये ध्यान तत्व द्वारा नियंत्रित होते हैं और अरहतत्व प्राप्त करने पर समाप्त हो जाते हैं।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ आलस्य और सुस्ती के उन्मूलन में सहायक होती हैं:
भोजन में संयम के उद्देश्य पर चिंतन,
शारीरिक मुद्राओं में परिवर्तन,
प्रकाश के विषय पर चिंतन;
खुले में रहना,
अच्छी दोस्ती और
लाभदायक बातचीत।
(4) बेचैनी और चिंता
मन की बेचैनी या उत्तेजना। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो सभी प्रकार की अनैतिक चेतना से जुड़ी होती है। आमतौर पर बुराई किसी उत्तेजना या बेचैनी के साथ की जाती है। चिंता या तो किए गए बुरे कार्य पर पश्चाताप है या अधूरे अच्छे कार्य पर। अपने बुरे कार्य पर पश्चाताप करने से उसके अपरिहार्य परिणामों से मुक्ति नहीं मिलती। सर्वोत्तम पश्चाताप उस बुरे कार्य को न दोहराने का संकल्प है। ये दोनों ही बाधाएं ध्यान , सुख या प्रसन्नता के कारक से दूर हो जाती हैं। अरहतत्व प्राप्त करने पर बेचैनी दूर हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर चिंता दूर हो जाती है ।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ इन दोनों अवस्थाओं के उन्मूलन में सहायक होती हैं:
विद्वत्ता या ज्ञान,
प्रश्न पूछना या चर्चा करना,
विनय पद्धति की प्रकृति को समझना ,
वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ संगति,
अच्छी दोस्ती और
लाभदायक बातचीत।
5) संदेह या अनिर्णय।
वह अवस्था जिसमें ज्ञान का उपचार नहीं है। इसे उलझन भरे विचारों के कारण होने वाली बेचैनी के रूप में भी समझाया गया है। यहाँ इसका प्रयोग बुद्ध आदि के प्रति संदेह के अर्थ में नहीं किया गया है, क्योंकि गैर-बौद्ध भी विचिचिः को नियंत्रित करते हैं और ध्यान प्राप्त करते हैं। विचिचिः एक बंधन के रूप में बुद्ध आदि के प्रति संदेह है, परन्तु एक बाधा के रूप में यह किसी विशेष कार्य में अस्थिरता को दर्शाता है। विचिचिः की व्याख्या किसी भी बात को निश्चित रूप से तय न कर पाने की असमर्थता के रूप में की गई है। दूसरे शब्दों में, यह अनिर्णय है।
यह अवस्था चिंतन कारक — विचार , निरंतर अभ्यास — द्वारा बाधित होती है। सोतापत्ति प्राप्त होने पर यह समाप्त हो जाती है ।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ इसके उन्मूलन में सहायक होती हैं:
धम्म और विनय का ज्ञान,
चर्चा या प्रश्नोत्तर,
विनय अनुशासन की प्रकृति की समझ ,
अत्यधिक आत्मविश्वास,
अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।
[निर्वाण पर एक और टिप्पणी: मन के लिए बाधाएँ, जो हमारी मानसिक दृष्टि को अंधा कर देती हैं ।]
इनके साक्षात स्वरूप हम एकाग्रचित्त और पूर्ण एकाग्रता प्राप्त नहीं कर पाते और सत्य को स्पष्ट रूप से नहीं पहचान पाते। ये हैं: इंद्रिय-संबंधी इच्छा, द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और संशय, और संदेह।

इन उपमाओं में, कामुक इच्छा की तुलना अनेक रंगों से मिश्रित जल से, द्वेष की तुलना उबलते जल से, आलस्य और सुस्ती की तुलना काई से ढके जल से, बेचैनी और संशय की तुलना वायु से प्रचंड जल से, और संशयपूर्ण संदेह की तुलना मैले और कीचड़युक्त जल से की गई है। जैसे ऐसे जल में व्यक्ति अपना प्रतिबिंब नहीं देख पाता, वैसे ही इन पाँच मानसिक बाधाओं की उपस्थिति में व्यक्ति न तो अपना लाभ स्पष्ट रूप से देख पाता है, न ही दूसरों का, और न ही दोनों का। प्रथम समाधि में प्रवेश करने पर पाँच बाधाओं के अस्थायी निलंबन के संबंध में, सूत्र पाठ इस प्रकार है:

“उसने कामुक इच्छाओं का त्याग कर दिया है; वह कामुक इच्छाओं से मुक्त हृदय से निवास करता है; वह अपने हृदय को इच्छाओं से शुद्ध करता है।”

“उसने द्वेष को त्याग दिया है; वह द्वेष रहित हृदय से निवास करता है, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है, वह अपने हृदय को द्वेष से शुद्ध करता है।”

“उसने आलस्य और सुस्ती को त्याग दिया है; वह आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है; प्रकाश से प्रेम करते हुए, सजग मन से, निर्मल चेतना से, वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है।”

“उसने बेचैनी और शंकाओं को त्याग दिया है; शांत मन से, शांति से भरे हृदय से रहते हुए, वह अपने मन को बेचैनी और शंकाओं से शुद्ध करता है।”

“उसने संशयपूर्ण संदेह को त्याग दिया है; संदेह से मुक्त होकर, अच्छाई में पूर्ण विश्वास रखते हुए, वह अपने हृदय को संदेह से शुद्ध करता है।”

“उसने इन पाँच बाधाओं को दूर कर दिया है और मन के इन अपंग करने वाले दोषों को जान लिया है। और इंद्रिय-संबंधी भावनाओं से दूर, अस्वास्थ्यकर चीजों से दूर, वह प्रथम समाधि में प्रवेश करता है।”

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इन पाँच बाधाओं पर ध्यान केंद्रित करके काबू पाना केवल एक अस्थायी निवारण है, जिसे 'दमन द्वारा विजय' कहा जाता है। चार अलौकिक मार्गों में प्रवेश करने पर ये बाधाएँ हमेशा के लिए लुप्त हो जाती हैं, अर्थात् सोतापन्न अवस्था में पहुँचने पर संशयपूर्ण संदेह; अनागामी अवस्था में पहुँचने पर कामुक इच्छा, द्वेष और मानसिक चिंता ; और अरहत अवस्था में पहुँचने पर आलस्य, सुस्ती और बेचैनी ।

संबोधि अंगेसु : ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक कारक। ये सात कारक हैं जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक होते हैं। इन्हें भोज्जण कहा जाता है । सत्य की खोज करने वाले का ज्ञान प्राप्ति के इन सात कारकों के प्रति दृष्टिकोण नीचे दिया गया है:

सत्य की खोज करने वाला भली-भांति जानता है कि 'मुझमें सजगता का ज्ञान तत्व है', और जब यह तत्व मौजूद नहीं होता, तब भी वह जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अनुत्पन्न सजगता का ज्ञान तत्व कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न सजगता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्ति कैसे होती है। जब धम्मविचय (वास्तविकता की खोज) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तब वह भली-भांति जानता है कि 'मुझमें वास्तविकता की खोज का ज्ञान तत्व है'; जब यह मौजूद नहीं होता, तब भी वह जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि वास्तविकता की खोज का ज्ञान तत्व कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न सजगता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्ति कैसे होती है।

जब ऊर्जा (वीर्य) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भलीभांति जानता है कि 'मेरे पास ऊर्जा का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तो वह भलीभांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भलीभांति जानता है कि अनुत्पन्न ऊर्जा के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है। जब आनंद (पीति) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भलीभांति जानता है कि 'मेरे पास आनंद का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तो वह भलीभांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भलीभांति जानता है कि अनुत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट आनंद के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

जब शांति का ज्ञान तत्व (पासद्धि) मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मेरे पास शांति का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता है, तो वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अजन्मे शांति के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट शांति के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्णता कैसे प्राप्त होती है।

जब समाधि (एकाग्रता का ज्ञान तत्व) मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मेरे पास एकाग्रता का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता है, तो वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अजन्मे एकाग्रता के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट एकाग्रता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

जब समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मुझमें समभाव का ज्ञान तत्व मौजूद है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तब भी वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अनप्रकट समभाव के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट समभाव के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

इस प्रकार सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति धम्मों का चिंतन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, और इस संसार में किसी भी चीज से आसक्ति नहीं रखता।

इस प्रकार एक शिष्य ज्ञान प्राप्ति के सात कारकों के संदर्भ में धर्मों का चिंतन करते हुए जीवन व्यतीत करता है।

बोज्झंग : 'ज्ञान प्राप्ति के सात कारक' हैं: सजगता, नियमों का अध्ययन, ऊर्जा, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव। "क्योंकि ये ज्ञान प्राप्ति की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञान प्राप्ति के कारक कहा जाता है।"

इन सात कारकों को त्रिविध ज्ञान प्राप्त करने का साधन माना जाता है।

इन्हें ध्यान की चार आधारशिलाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। बुद्ध ने कहा:

(1) “हे भिक्षुओं, जब भी कोई भिक्षु सांसारिक लोभ और दुःख को वश में करके, परिश्रमपूर्वक, स्पष्ट रूप से सचेत होकर, सचेतन होकर शरीर (काय), वेदना , चित्त और मन के विषयों (धम्म) का चिंतन करता है, उस समय उसकी चेतना स्थिर और अविचलित रहती है; और जब भी उसकी चेतना स्थिर और अविचलित रहती है, उस समय वह ज्ञान के कारक 'चेतना' (सति-संबोज्झंग) को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है, और इस प्रकार ज्ञान का यह कारक पूर्णता तक पहुँच जाता है।

(2) “जब भी वह सचेतनता से रहते हुए बुद्धिमानी से विधि का अन्वेषण, परीक्षण और चिंतन करता है, तो उस समय वह ‘विध्वंस-विचार’ (धम्म-विचार) नामक ज्ञान के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।”

(3) “जब भी, बुद्धिमानी से जांच करते हुए उसकी ऊर्जा दृढ़ और अविचलित होती है, उस समय उसने ज्ञानोदय की ऊर्जा (विरिया) का कारक प्राप्त कर लिया होता है और विकसित कर रहा होता है।

(4) “जब भी उसमें, ऊर्जा में दृढ़ रहते हुए, ऐसी अवस्था में अलौकिक परमानंद उत्पन्न होता है, तो वह ज्ञानोदय परमानंद (पीति) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।”

(5) “जब भी, मन में समाधि की अवस्था में, उसका शरीर और मन इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं कि वह ज्ञानोदय की शांति (पासद्धि) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।”

(6) “जब भी, अपने शरीर में शांत और प्रसन्न रहते हुए, उसका मन एकाग्र हो जाता है, तो वह ज्ञानोदय एकाग्रता (समाधि) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।”

(7) “जब भी वह ऐसे समय में अपने एकाग्र मन को पूर्ण उदासीनता से देखता है, तो वह ज्ञान के कारक 'समभाव' (उपेक्खा) को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।”

कन्हं धम्मं : दूषित विचार और प्रथाएँ — वे गतिविधियाँ और मान्यताएँ जो मुक्ति की प्राप्ति के लिए अनुकूल नहीं हैं।

okā amokaṃ : सांसारिक जीवन के ज्ञात सुख-सुविधाओं से बेघर जीवन की ओर।

tatrābhiratimiccheyya : उसमें आनंद लेता है (जो मुक्ति है)।

akiñcano : सब कुछ त्याग देना और संपत्तिहीन हो जाना।

चित्तकलेसेही : वे दोष जो मन को दूषित करते हैं।

ādānapatinissagge : लालच करने की प्रवृत्ति से बचना।

loke parinibbute : उन्होंने इसी जीवन (इस संसार) में मुक्ति प्राप्त कर ली है।

परिनिर्वाण : निर्वाण में प्रवेश। बौद्ध साहित्य में यह अभिव्यक्ति विशेष रूप से बुद्ध के निधन से जुड़ी है, हालांकि इसका प्रयोग किसी भी अरहत के संदर्भ में किया जा सकता है। यह पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति को भी संदर्भित करता है। बौद्ध धर्मग्रंथों में बुद्ध के परिनिर्वाण का विस्तृत वर्णन है। बुद्ध के अंतिम क्षणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है: बुद्ध ने प्रथम समाधि (झान) प्राप्त की। इससे बाहर निकलकर उन्होंने क्रमशः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ समाधि प्राप्त की। चतुर्थ समाधि से बाहर निकलकर उन्होंने आकाशणंचायतन (आकाश की अनंतता का क्षेत्र) प्राप्त किया। इससे बाहर निकलकर उन्होंने चेतना की अनंतता (विञ्ञणंचायतन) का क्षेत्र प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने शून्यता के क्षेत्र (आकिंचन्यातना) को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र' (नेव सञ्ञा नासाञ्ञायतना) को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'बोध और संवेदनाओं की समाप्ति' (सञ्ञावेदयित-निरोध) को प्राप्त किया ।

फिर बुद्ध ने 'बोध और संवेदनाओं के अंत' से निकलकर 'न बोध और न बोध के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'शून्यता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'चेतना की अनंतता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने चौथी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने तीसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने दूसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने तीसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने चौथी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर और तुरंत बाद, बुद्ध का अंत हो गया।

अध्याय 7. अरहंतवग्गा: अरहंत (90-99)
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 90

(धम्मपद 87, 88 और 89) <<<< पिछला || धम्मपद 90 || अगला >>>> (धम्मपद 91)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 90 - जीवकपन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 90 - जीवकपन्हा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
गतद्धिनो(1) विसोकास्सा
vippamuttassa sabbadhi
सब्बागंथप्पहिनासा(2)
parilaho na vijjati.

श्लोक 90 : जिस अरहत की यात्रा समाप्त हो गई है, जो दुःख और सभी (जैसे कि खन्ध समुच्चय) से मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को नष्ट कर दिया है, उसके लिए अब कोई दुःख नहीं है।

---

1. गतद्धिनो: यात्रा समाप्त हो गई है। यहाँ 'यात्रा' का अर्थ पुनर्जन्मों का चक्र (संसार) है।
2. सब्बगंथप्पहिनास्सा: वह व्यक्ति जिसने सभी बंधनों को तोड़ दिया हो। यहाँ 'बंधन' का अर्थ है लोभ, दुर्भावना और गलत दृष्टिकोण।

जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी
जीवक के आम के बाग वाले मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने जीवक द्वारा बुद्ध से पूछे गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (90) कहा।
एक बार देवदत्त ने गिज्जकूट पर्वत (गिद्ध शिखर) की चोटी से एक बड़ा पत्थर धकेलकर बुद्ध को जान से मारने का प्रयास किया। पत्थर पर्वत के किनारे एक चट्टान से टकराया और उसका एक टुकड़ा बुद्ध के पैर के अंगूठे में जा लगा। बुद्ध को जीवक के आम के बाग में स्थित मठ में ले जाया गया। वहाँ, प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक ने बुद्ध की देखभाल की; उन्होंने बुद्ध के अंगूठे पर दवा लगाई और पट्टी बाँध दी। जीवक फिर शहर में एक अन्य रोगी को देखने चले गए, लेकिन शाम को लौटकर पट्टी हटाने का वादा किया। जब जीवक उस रात लौटे, तो शहर के द्वार पहले ही बंद हो चुके थे और वे उस रात बुद्ध से मिलने नहीं आ सके। वे बहुत दुखी थे क्योंकि यदि समय पर पट्टी नहीं हटाई जाती, तो पूरा शरीर बहुत गर्म हो जाता और बुद्ध बहुत बीमार पड़ जाते।
लगभग इसी समय, बुद्ध ने थेरा आनंद से अपने पैर के अंगूठे से पट्टी हटाने को कहा और पाया कि घाव पूरी तरह से ठीक हो गया था। अगले दिन सुबह जीवक मठ में आया और बुद्ध से पूछा कि क्या उन्हें पिछली रात बहुत दर्द और पीड़ा हुई थी। बुद्ध ने उत्तर दिया, "जीवक! जब से मैंने बुद्धत्व प्राप्त किया है, तब से मुझे कोई दर्द या पीड़ा नहीं हुई है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 90 : जिस अरहत की यात्रा समाप्त हो गई है, जो दुःख और सभी (जैसे कि खन्ध समुच्चय) से मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को नष्ट कर दिया है, उसके लिए अब कोई दुःख नहीं है।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी
जीवक के आम के बागों वाले मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जीवक द्वारा बुद्ध से पूछे गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार देवदत्त ने अजातसत्तु के साथ मिलकर गिद्ध शिखर पर चढ़ाई की और दुष्टतावश मन ही मन "मैं बुद्ध को मार डालूँगा" कहते हुए एक चट्टान फेंकी। दो पर्वतीय चट्टानों ने चट्टान को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया; परन्तु एक टुकड़ा बुद्ध के चरणों में जा लगा जिससे रक्त बहने लगा। बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई और भिक्षु उन्हें मद्दकुच्ची ले गए। जीवक के आम के बाग में जाने की इच्छा से बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "मुझे वहाँ ले चलो।" तब भिक्षु बुद्ध को ले गए और उन्हें जीवक के आम के बाग में पहुँचा दिया। जब जीवक ने यह खबर सुनी, तो वे तुरंत बुद्ध के पास गए और घाव पर मरहम लगाया। फिर उन्होंने घाव पर पट्टी बाँधी और बुद्ध से कहा, "आदरणीय, शहर में मेरा एक रोगी है। जैसे ही मैं उससे मिल कर वापस आऊँगा। मेरे लौटने तक यह पट्टी ऐसे ही रहने दें।" ऐसा कहकर जीवक अपने रोगी का उपचार करने चला गया। परन्तु जब वह लौटा तो द्वार बंद था, इसलिए वह अंदर नहीं जा सका। तब उसके मन में यह विचार आया, "मैंने एक गंभीर गलती कर दी है। मैंने बुद्ध के पैर पर कसैला पदार्थ लगाया और उनके घाव पर पट्टी बाँध दी, ठीक वैसे ही जैसे मैं किसी अन्य मनुष्य के घाव पर बाँधता। अब पट्टी हटाने का समय आ गया है। क्योंकि यदि पट्टी रात भर खुली रही तो बुद्ध को बहुत पीड़ा होगी।"
उसी क्षण बुद्ध ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, जीवक शाम को देर से लौटा और द्वार से प्रवेश नहीं कर सका। उसके मन में यह विचार आया, 'अब पट्टी हटाने का समय आ गया है।' इसलिए पट्टी हटा दीजिए।" इसके बाद वह निशान पेड़ की छाल की तरह गायब हो गया। भोर होते ही जीवक बुद्ध के पास पहुंचा और पूछा, "पूज्यवर, क्या आपको तीव्र पीड़ा हुई?" बुद्ध ने कहा, "जीवक, बुद्ध के लिए समस्त पीड़ा का अंत हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे जब वे ज्ञान के सिंहासन पर बैठे थे।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 90)
गताद्धिनो विशोकस्सा सब्बाधि विप्पमुत्तस्सा
सब्बगंथप्पाहिनास्सा परिधाहो न विज्जति
गतद्धिनो [गतद्धिना]: जो लोग यात्रा के अंत पर हैं; विस्कोकासा : दुःखरहित; सब्बाधि : सभी चीजों में; विप्पामुत्तस्सा : पूर्णतः मुक्त; सब्बगंथप्पाहिनास्सा : खुद को सभी बंधनों से पूरी तरह मुक्त कर लिया है; परिषाहो [परिषाहा]: चिंता; न विज्जति : (उनमें) नहीं होता
वे अपनी यात्रा के अंत पर हैं — मुक्ति की उनकी खोज सफल हो चुकी है। वे शोकमुक्त हैं और उनका मन पूर्णतः मुक्त है। उन्होंने सभी बंधनों से मुक्ति पा ली है और अब कोई बंधन उन्हें बांध नहीं सकता। उनमें कोई चिंता नहीं है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 90)
गतद्धिनो : वह व्यक्ति जिसने पूर्णतः मार्ग तय कर लिया हो, जिसने संपूर्ण यात्रा कर ली हो—वही अरहत कहलाता है। मनुष्य दो प्रकार के मार्ग अपना सकता है। एक है वन्य जीवन का मार्ग। दूसरा है जीवन चक्रों का मार्ग—जो संसार कहलाता है । वन्य जीवन पाँच प्रकार का होता है। पहला है डाकुओं का वन्य जीवन, जहाँ लूटपाट और हत्या करने वाले डाकुओं का वर्चस्व होता है। दूसरा है जंगली पशुओं का वन्य जीवन, जहाँ क्रूर पशु अपना प्रभुत्व जमाते हैं। तीसरा है जलहीन वन्य जीवन, जहाँ पीने या धोने के लिए पानी नहीं होता। चौथा है अमानवीय और उपमानवीय जीवों का वन्य जीवन, जहाँ राक्षसों और दानवों का वर्चस्व होता है। पाँचवाँ है खाद्यहीन वन्य जीवन, जहाँ खाने योग्य कोई वस्तु नहीं मिलती। परन्तु जब अरहतों को गतद्धिनो —वे जिन्होंने मार्ग तय कर लिया हो—के रूप में वर्णित किया जाता है, तो इसका तात्पर्य जीवन चक्रों के मार्ग से है। अरहतों ने संसार के माध्यम से अपनी यात्रा पूरी कर ली है ।
जिसने सभी बंधनों का त्याग कर दिया है, उसे sabba ganthappahīnassa । बंधन चार प्रकार के होते हैं। वे इस प्रकार हैं:
अभिज्जा : लोभ: दूसरों की संपत्ति की लालसा करना;
व्यापाद : दुर्भावना; दूसरों के प्रति घृणा, आक्रोश और क्रोध;
सिलब्बता-परमासा : पराभिषेकित अनुशासन;
idam saccābhiniveso [saccābhinivesa]: वह पूर्वाग्रह कि जो मैं मानता हूँ वह पूरी तरह सत्य है और बाकी सब असत्य हैं।
ये चार बंधन व्यक्ति को बार-बार होने वाले अस्तित्व (संसार) से जकड़ कर रखते हैं।
जीवक : बुद्ध के निजी चिकित्सक। बुद्ध ने जीवक के लिए यह श्लोक कहा था। जन्म के तुरंत बाद जीवक को उसकी माता, जो एक वेश्या थी, ने ताबूत में रखकर सड़क किनारे कूड़े के ढेर पर फेंक दिया था। राजा बिम्बिसार के पुत्र राजकुमार अभय, जो संयोगवश उस रास्ते से गुजर रहे थे, ने असहाय शिशु को कौवों से घिरा हुआ देखा और यह जानकर कि वह जीवित है (जीवती), उसे दाइयों की देखभाल में सौंप दिया। जीवित पाए जाने के कारण उसका नाम जीवक रखा गया। एक राजकुमार द्वारा गोद लिए जाने पर, उसे कोमारभच्च कहा जाने लगा। बड़े होकर वह एक कुशल चिकित्सक और सर्जन बने। ग्रंथों में लिखा है कि उन्होंने एक करोड़पति के दो

सफल ऑपरेशन किए थे, जो गंभीर सिरदर्द से पीड़ित थे। वह दिन में तीन बार बुद्ध की सेवा करते थे। इस घटना में जब देवदत्त द्वारा फेंके गए पत्थर के टुकड़े से बुद्ध के पैर में चोट लग गई, तो जीवक ने ही उनकी सेवा की और उन्हें ठीक किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 91

(धम्मपद 90) <<<< पिछला || धम्मपद 91 || अगला >>>> (धम्मपद 92)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 91 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 91 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Uyyunjanti satimanto
na nikete ramanti te
हम्सवा पल्ललम हित्वा
okamokam jahanti te.

श्लोक 91 : सचेतन लोग (शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में) लगन से प्रयास करते हैं; वे घर में (अर्थात् इंद्रिय सुखों के जीवन में) आनंद नहीं लेते; जैसे हंस (हंस) कीचड़ भरे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही वे सभी गृहस्थी जीवन (अर्थात् सभी लालसाओं) का त्याग कर देते हैं।

थेरा महाकस्सपा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (91) कहा।

एक बार बुद्ध ने वर्षा ऋतु (तीन महीने) राजगृह में कई भिक्षुओं के साथ बिताई। वर्षा ऋतु समाप्त होने से लगभग दो सप्ताह पहले, बुद्ध ने भिक्षुओं को सूचित किया कि वे जल्द ही राजगृह छोड़कर जा रहे हैं और उन्हें प्रस्थान की तैयारी करने को कहा। कुछ भिक्षुओं ने नए वस्त्र सिले और रंगे, कुछ ने पुराने वस्त्र धोए। जब कुछ भिक्षुओं ने महाकस्सपा को अपने वस्त्र धोते देखा, तो उन्होंने सोचा, "राजगृह के अंदर और बाहर इतने सारे लोग हैं जो थेरा महाकस्सपा से प्रेम और सम्मान करते हैं और उनकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं; क्या यह संभव है कि थेरा अपने गृहस्थ भक्तों को यहाँ छोड़कर बुद्ध के साथ कहीं और चले जाएँ?"

पंद्रह दिनों के अंत में, अपने प्रस्थान की पूर्व संध्या पर, बुद्ध ने सोचा कि भिक्षादान समारोह, भिक्षुओं का दीक्षा संस्कार, अंत्येष्टि आदि जैसे कुछ अवसर आ सकते हैं, इसलिए सभी भिक्षुओं का प्रस्थान करना उचित नहीं होगा। अतः उन्होंने निर्णय लिया कि कुछ भिक्षुओं को वेलुवन मठ में ही रहना चाहिए और इसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति थेरा महाकस्सपा होंगे। फलस्वरूप, थेरा महाकस्सपा कुछ कनिष्ठ भिक्षुओं के साथ राजगृह में ही रहे।

तब दूसरे भिक्षुओं ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "महाकस्सपा बुद्ध के साथ नहीं गए, जैसा कि हमने भविष्यवाणी की थी!" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और उनसे कहा, "भिक्षुओं! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मेरा पुत्र कस्सपा राजगृह के अपने गृहस्थ शिष्यों और उनके द्वारा दी

गई वस्तुओं से आसक्त है? तुम घोर भ्रम में हो। मेरा पुत्र कस्सपा मेरे मार्गदर्शन में यहाँ रहता है; वह यहाँ किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 91 : सचेतन लोग (शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में) लगन से प्रयास करते हैं; वे घर में (अर्थात् इंद्रिय सुखों के जीवन में) आनंद नहीं लेते; जैसे हंस (हंस) कीचड़ भरे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही वे सभी गृहस्थी जीवन (अर्थात् सभी लालसाओं) का त्याग कर देते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महाकस्सपा की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार, वर्षा ऋतु के दौरान राजगृह में निवास करने के बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं से यह घोषणा की, “पखवाड़े भर बाद मैं भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर जाऊंगा।” लेकिन जब भिक्षु अपने प्याले गर्म कर रहे थे और अपने वस्त्रों को रंग रहे थे, तब पूज्य महाकस्सपा ने अपने वस्त्र धोए। भिक्षु इससे नाराज हो गए और बोले, “पूज्य महाकस्सपा अपने वस्त्र क्यों धो रहे हैं? इस नगर में और इसके बाहर एक सौ अस्सी करोड़ लोग रहते हैं। इनमें से जितने लोग पूज्य महाकस्सपा के रिश्तेदार नहीं हैं, उतने ही उनके समर्थक हैं; और जितने लोग उनके समर्थक नहीं हैं, उतने ही उनके रिश्तेदार हैं। ये सभी लोग पूज्य महाकस्सपा को चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करके उनका आदर और सम्मान करते हैं। यदि वे इन सभी सेवाओं को ठुकरा दें, तो वे कहाँ जाएँगे? यदि वे जा भी जाएँ, तो वे मापमादा गुफा से आगे नहीं जा पाएँगे।” (मापमादा गुफा का नाम इस प्रकार पड़ा: जब भी बुद्ध इस गुफा में पहुँचते थे, तो वे वापस जाने वाले भिक्षुओं से कहते थे, “अब आप वापस जा सकते हैं; लापरवाह मत बनो — मा पमज्जित्था ।” इस प्रकार इस गुफा का नाम मापमादा गुफा पड़ गया।)
इसी प्रकार, बुद्ध ने अपनी तीर्थयात्रा पर निकलते समय सोचा, “इस नगर के भीतर और बाहर एक सौ अस्सी मिलियन लोग निवास करते हैं, और सार्वजनिक उत्सवों या आपदाओं के समय भिक्षुओं को वहाँ जाना पड़ता है। इसलिए मठ को खाली छोड़ना संभव नहीं है। लेकिन क्या मैं उन सभी को वापस लौटने का निर्देश दूँ?” तब उनके मन में यह विचार आया, “ये लोग या तो महाकस्सपा के रिश्तेदार हैं या उनके सेवक; इसलिए मुझे महाकस्सपा को ही वापस लौटने का निर्देश देना चाहिए।” तदनुसार उन्होंने पूज्य महाकस्सपा से कहा, “महाकस्सपा, मठ को खाली छोड़ना संभव नहीं है, क्योंकि सार्वजनिक उत्सवों या आपदाओं के समय भिक्षुओं की आवश्यकता होती है; इसलिए अपने दल को साथ लेकर वापस लौट जाइए।” “बहुत अच्छा, पूज्य,” पूज्य महाकस्सपा ने उत्तर दिया और अपने दल को साथ लेकर वापस लौट गए।
भिक्षुओं को यह सुनकर ठेस पहुंची और उन्होंने कहा, “भाइयों, क्या आपने ध्यान दिया? क्या हमने अभी-अभी यह नहीं कहा था, 'महाकस्सपा अपने वस्त्र क्यों धो रहे हैं? वे बुद्ध के साथ नहीं जाएंगे।' सब कुछ वैसा ही हुआ जैसा हमने कहा था।” जब बुद्ध ने भिक्षुओं की बातें सुनीं, तो वे मुड़े, स्थिर खड़े हो गए और बोले, “भिक्षुओं, यह आप क्या कह रहे हैं?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “हम पूज्य महाकस्सपा के बारे में बात कर रहे हैं, पूज्य।” फिर उन्होंने अपनी बातचीत शब्दशः दोहराई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर उत्तर दिया, “भिक्षुओं, आप कहते हैं, 'महाकस्सपा अपने घर-परिवार और अपनी आवश्यकताओं से आसक्त हैं।' वास्तव में, वे इसलिए वापस लौटे क्योंकि वे मेरी आज्ञा का पालन करना चाहते थे। क्योंकि पिछले जन्म में उन्होंने एक गंभीर इच्छा की थी और चंद्रमा के समान आसक्ति से मुक्त हो गए थे। उन्होंने यह गंभीर इच्छा की थी, 'मुझे अपने समर्थकों के घरों तक पहुंचने की अनुमति मिले।'”
महाकस्सपा को घर-परिवार या किसी वस्तु से कोई लगाव नहीं है। महाकस्सपा से आरंभ करके, मैंने सभी को चंद्रमा के समान मार्ग का उपदेश दिया, जो चुने हुए लोगों का मार्ग है। मेरे पुत्र को कहीं भी कोई लगाव नहीं है, बल्कि वह एक राजसी हंस के समान है जो किसी झील में उतरता है, तैरता है और वहीं ठहर जाता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 91)
सतीमंतो उय्युञ्जन्ति ते निकेते न रमन्ति
ते पल्ललं हित्वा हंसा इव ओकामोकं जंहांति
satīmanto [jahanti satīmanta]: वे सचेतन; uyyuñjanti : निरंतर अभ्यास करते हैं; te : वे; nikete : आसक्ति में; na ramanti : रुचि नहीं लेते; te pallalaṃ hitvā iva : जैसे झील छोड़ देना; haṃsā : हंस; okamokaṃ [okamoka]: सभी स्थायी निवास; jahanti : छोड़ देना (त्याग देना)
सचेत रहने वाले लोग अपनी एकाग्रता को हमेशा बनाए रखने का प्रयास करते हैं। वे निवास या बस्तियों से बिल्कुल भी आसक्त नहीं होते। सभी स्थायी जीवन स्थलों को त्यागकर वे हंसों की तरह मन की स्वतंत्रता में उड़ जाते हैं।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 91)

सतीमन्तो : वे जो सजग हैं। सति का अर्थ है ध्यान, निरंतर सतर्कता। आत्मनिरीक्षण संबंधी सजगता, पाँच आध्यात्मिक शक्तियों और गुणों में से एक है, ज्ञानोदय के सात कारकों में से एक है, और अष्टांगिक मार्ग की सातवीं कड़ी है, और अपने व्यापक अर्थ में, उन मानसिक कारकों में से एक है जो कर्मिक रूप से सभी लाभकारी और कर्म-जनित उच्चतर मानसिक अवस्थाओं से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं।
अरहंत : अरहंत 'मैं' और 'मेरा' की अवधारणा से मुक्त होकर किसी विशेष स्थान से लगाव रखे बिना जहाँ चाहें वहाँ विचरण करते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 92

———————————————————————

(धम्मपद 91) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 92 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 93)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 92 - बेलत्थसिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 92 - बेलत्थसिसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yesam sannicayo(1 natthi
ये परिन्नतभोजन(2)
सुन्नतो(3) अनिमित्टो(4) सीए
vimokkho(5) yesam gocaro
akaseva sakuntnam
gati tesam durannaya(6).

———————————————————————

श्लोक 92 : अरहत किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते; भोजन ग्रहण करते समय वे उस पर अच्छी तरह विचार करते हैं (अर्थात तीनों परिणतियों के अनुसार)। उनका उद्देश्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण प्राप्त करना है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में पक्षियों के मार्ग की तरह, उनके गंतव्य का पता नहीं लगाया जा सकता।

———————————————————————

1. सन्निकयो: संचय करना। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है कर्म और उसके प्रभावों का संचय करना या चारों आवश्यकताओं में से किसी एक का संचय करना।
2. परिन्नतभोजन: तीन परिन्नों के अनुसार भोजन ग्रहण करना। टीका के अनुसार, भिक्षु को भोजन के संबंध में तीन परिन्नों का पालन करना चाहिए, अर्थात् (क) नटपरिन्न, ग्रहण किए जा रहे भोजन की सही प्रकृति का ज्ञान होना, (ख) तिरनापरिन्न, भौतिक भोजन की नीचता के प्रति आश्वस्त होना, और (ग) ग्रहणपरिन्न, भोजन से प्राप्त सभी सुखों का त्याग करना।
3. सुन्नत: शून्य। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है भोग-विलास से मुक्त होना। यह निर्वाण का एक विशेषण है।
4. अनिमित्तम्: चिह्नहीन। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है लालसा, द्वेष और अज्ञान का कोई चिह्न न होना। यह निर्वाण का एक विशेषण भी है।
5. विमोक्खो: अस्तित्व से मुक्ति; निर्वाण।
6. गति तेसम दुरन्नया: उनके गंतव्य का पता नहीं लगाया जा सकता क्योंकि अरहतों ने व्यथा को मिटा दिया है और वे पुनर्जन्म के अधीन नहीं हैं।

———————————————————————

थेरा बेलात्थासिसा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा बेलात्थासिसा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (92) कहा।
थेरा बेलात्थासिसा गाँव में भिक्षा मांगने के बाद रास्ते में रुके और वहीं भोजन किया। भोजन करने के बाद वे और भोजन इकट्ठा करने के लिए भिक्षा मांगने निकल पड़े। जब उनके पास पर्याप्त भोजन इकट्ठा हो गया, तो वे मठ लौट आए, चावल सुखाकर जमा कर लिया। इस प्रकार, उन्हें प्रतिदिन भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं रही; वे दो-तीन दिन ध्यान में लीन रहे। ध्यान से उठने के बाद उन्होंने जमा किए हुए सूखे चावल को पानी में भिगोकर खाया। अन्य भिक्षुणियों को इस कारण थेरा के प्रति दुर्भावना हुई और उन्होंने बुद्ध को उनके चावल जमा करने की सूचना दी। तब से भिक्षुओं द्वारा भोजन जमा करना निषिद्ध है।
थेरा बेलात्थासिस के मामले में, चूंकि उन्होंने जमाखोरी पर नियम बनने से पहले चावल का भंडारण किया था और उन्होंने ऐसा भोजन के लालच से नहीं, बल्कि केवल ध्यान अभ्यास के लिए समय बचाने के लिए किया था, इसलिए बुद्ध ने घोषणा की कि थेरा पूरी तरह से निर्दोष थे और उन्हें दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 92 : अरहत किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते; भोजन ग्रहण करते समय वे उस पर अच्छी तरह विचार करते हैं (अर्थात तीनों परिणतों के अनुसार)। (7) उनका उद्देश्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। उनका गंतव्य, आकाश में पक्षियों के मार्ग की तरह, अज्ञात है।

———————————————————————

(7) परिन्नतभोजन: तीन परिन्नों के अनुसार भोजन ग्रहण करना। टीका के अनुसार, भिक्षु को भोजन के संबंध में तीन परिन्न रखने चाहिए, अर्थात् (क) नटपरिन्न, ग्रहण किए जा रहे भोजन की सही प्रकृति का ज्ञान होना, (ख) तिरनापरिन्न, भौतिक भोजन की नीचता के प्रति आश्वस्त होना, और (ग) ग्रहणपरिन्न, भोजन से प्राप्त सभी सुखों का त्याग करना।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय बेलात्थिसा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य बेल्लात्थिसा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
आदरणीय बेल्लाथिसीसा ने गाँव में भिक्षा मांगने के बाद रास्ते में रुककर भोजन किया। भोजन करने के बाद वे और भोजन इकट्ठा करने के लिए भिक्षा मांगने निकल पड़े। जब उनके पास पर्याप्त भोजन एकत्रित हो गया, तो वे मठ लौट आए, चावल सुखाकर जमा कर लिया। इस प्रकार, उन्हें प्रतिदिन भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं रही; वे दो-तीन दिन तक ध्यान में लीन रहे। ध्यान से उठने के बाद उन्होंने जमा किए हुए सूखे चावल को पानी में भिगोकर खाया। अन्य भिक्षुओं को इस कारण थेरा के प्रति दुर्भावना हुई और उन्होंने बुद्ध को उनके चावल जमा करने की सूचना दी। तब से भिक्षुओं द्वारा भोजन जमा करना निषिद्ध है।
पूज्य बेल्लाथिसीसा के संबंध में, चूंकि उन्होंने जमाखोरी पर नियम बनने से पहले चावल का भंडारण किया था और चूंकि उन्होंने ऐसा भोजन के लालच से नहीं, बल्कि केवल ध्यान अभ्यास के लिए समय बचाने के लिए किया था, इसलिए बुद्ध ने घोषणा की कि थेरा पूरी तरह से निर्दोष थे और उन्हें दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 92)
येसं सन्निकयो नत्थि ये परिण्णतभोजन
यस्सा सुननतो अनिमितो विमोक्खो सीए गोकारो
तेसं गति आकाशे सकुन्तनं इव दुन्नेया
हाँm [हाँ]: उन (मुक्त व्यक्तियों) के लिए; सन्निकायो नत्थि : कोई संग्रह नहीं है; तु : वे; परिण्त्याभोजन : भोजन की प्रकृति की समझ से भरपूर ; यस्सा : किससे; सुननतो [सुननता]: ख़ालीपन; अनिमित्तो [अनिमित्ता]: वस्तुहीनता; विमोक्खो [विमोक्खा]: मन की स्वतंत्रता; सीए गोकारो [गोकारा]: क्षेत्र हैं; तेसं गति : उनका ठिकाना; आकाशे सकुन्तनं इव : आकाश में पक्षियों की तरह; दुरन्नया : समझना या जानना कठिन है
इस पूर्ण समझ के साथ कि प्रकृति खाली और वस्तुहीन है, मन लालसा से मुक्त हो जाता है और उड़ते हुए पक्षियों के पथ की तरह अपने ठिकाने का कोई निशान नहीं छोड़ता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 92)
सन्निकयो नत्थि : संचय नहीं। विकसित पुरुष—संत पुरुष—किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते। यह कथन दो प्रकार से सत्य है। यह स्पष्ट है कि वे सांसारिक आवश्यकताओं और भौतिक वस्तुओं का संचय नहीं करते। वे न तो नए पुण्य अर्जित करते हैं और न ही पाप।

वे नए कर्म भी अर्जित नहीं करते। इसी कारण उनका पुनर्जन्म नहीं होता। एक अर्हत पुण्य कर्म कर सकता है, लेकिन उस कर्म के लिए उसे कोई नया पुण्य अर्जित नहीं होता।

अरहत : यह श्लोक अरहत के विशेष गुणों पर प्रकाश डालता है। तो फिर, अरहत कौन हैं? वे हैं जो मार्ग का अनुसरण करते हैं और अनुभूति की सर्वोच्च अवस्था (अरहत्ता) तक पहुँचते हैं, जो दुखों से अंतिम मुक्ति है।

मुझ जैसे विजेता वास्तव में वे ही हैं, जिन्होंने विकारों का अंत किया है।

अरहतों ने सूक्ष्मतम आसक्तियों सहित सभी आसक्तियों का त्याग कर दिया है। इसलिए, एक अरहत का मन केवल शून्यता, वस्तुहीनता और विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता में विचरण करता है।

बुद्ध ने अपने शिष्यों को स्वयं और अपने शिष्यों अरहतों के बीच का अंतर स्पष्ट कर दिया था। बुद्ध ने घोषणा की थी कि दोषों से मुक्ति और परम मोक्ष के मामले में वे उनके समर्थ हैं।

हे शिष्यों, बुद्ध अरहत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं।

जो व्यक्ति किसी अनकहे मार्ग का प्रचार करता है, वही मार्ग का ज्ञाता, मार्ग का बोध करने वाला और मार्ग में निपुण होता है। अब उनके शिष्य उनके पदचिन्हों पर चलने वाले यात्री हैं। यही वह विशिष्टता है, वह विशेष गुण है जो अर्हत बुद्ध को, जो पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, अंतर्दृष्टि से मुक्त शिष्य से अलग करता है। संस्कृत में अर्हत का अर्थ है 'पूर्णतम', 'योग्य': ये उपाधियाँ केवल बुद्ध और उनके सिद्ध शिष्यों के लिए ही प्रयुक्त होती हैं। जैसा कि ग्रंथों में वर्णित है, इस शब्द का पहला प्रयोग बुद्ध ने स्वयं किया था। यह तब की बात है जब बुद्ध पाँच तपस्वियों को अपना प्रथम उपदेश देने के लिए गया से वाराणसी जा रहे थे। रास्ते में, गया से कुछ ही दूरी पर, बुद्ध की मुलाकात उपक नामक एक तपस्वी से हुई, जो गुरु के शांत स्वरूप से प्रभावित होकर उनसे पूछने लगा: 'आपके गुरु कौन हैं? आप किसकी शिक्षा का पालन करते हैं?'

बुद्ध ने श्लोकों में उत्तर देते हुए कहा:

'मैं निःसंदेह संसार का अरहत हूँ, मैं अतुलनीय शिक्षक हूँ...'

उन्होंने पांच तपस्वियों को संबोधित करते हुए दूसरी बार इस शब्द का प्रयोग किया: 'मैं एक अरहत हूं, एक तथागत हूं, पूर्णतः प्रबुद्ध हूं।'

यह शब्द केवल उन्हीं के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्होंने सभी दोषों को पूर्णतः नष्ट कर दिया हो। इस अर्थ में, बुद्ध संसार के प्रथम अरहत थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं उपका को बताया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 93

(धम्मपद 92) <<<< पिछला || धम्मपद 93 || अगला >>>> (धम्मपद 94)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 93 - अनुरुद्धथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 93 - अनुरुद्धथेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassasa va parikkhina
ahare ca anissito
सुन्नतो अनिमितो सीए
vimokkho yassa gocaro
akaseva sakuntanam
padam tassa durannayam.

श्लोक 93 : अरहत नैतिक आसक्तियों से मुक्त है; वह भोजन से आसक्त नहीं है। उसका लक्ष्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में उड़ते पक्षियों की तरह उसका मार्ग भी अज्ञात है।

थेरा अनुराधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (93) कहा।

एक दिन थेरा अनुरुद्ध अपने पुराने वस्त्र के गंदे और फटे होने के कारण कूड़े के ढेर में से कुछ कपड़े के टुकड़े ढूंढ रहे थे ताकि उनसे एक नया वस्त्र बना सकें। उनकी पिछली जन्म की पत्नी जलिनी, जो अब देवलोक में थीं, ने उन्हें देखा। यह जानकर कि वे कपड़ा ढूंढ रहे हैं, उन्होंने अच्छे देवलोक के तीन टुकड़े लिए और उन्हें कूड़े के ढेर में इस तरह रख दिया कि वे मुश्किल से दिखाई दें। थेरा को वे कपड़े के टुकड़े मिल गए और वे उन्हें मठ ले गए। जब वे वस्त्र बना रहे थे, तभी बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों और वरिष्ठ शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे और उन्होंने भी वस्त्र सिलने में मदद की।

इसी बीच, जलिनी एक युवती का रूप धारण करके गाँव में आई और उसे बुद्ध और उनके शिष्यों के आगमन के बारे में पता चला, साथ ही यह भी कि वे थेरा अनुराधा की किस प्रकार सहायता कर रहे थे। उसने ग्रामीणों से मठ में स्वादिष्ट भोजन भेजने का आग्रह किया, जिसके परिणामस्वरूप सभी के लिए पर्याप्त से अधिक भोजन उपलब्ध हो गया। अन्य भिक्षुओं ने इतनी अधिक मात्रा में भोजन देखकर थेरा को दोषी ठहराया और कहा, "थेरा अनुराधा को अपने रिश्तेदारों और शिष्यों से केवल पर्याप्त भोजन भेजने के लिए कहना चाहिए था; शायद वह केवल अपने भक्तों की संख्या का प्रदर्शन करना चाहते थे।" उन भिक्षुओं से बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह मत सोचो कि मेरे पुत्र अनुराधा ने अपने रिश्तेदारों और शिष्यों से चावल का दलिया और अन्य भोजन भेजने के लिए कहा है। मेरे पुत्र थेरा ने कुछ भी नहीं माँगा; अरहत भोजन और वस्त्र जैसी बातों पर चर्चा नहीं करते। आज सुबह मठ में जो अतिरिक्त भोजन लाया गया है, वह किसी मनुष्य के कारण नहीं बल्कि एक दिव्य प्राणी की प्रेरणा से है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 93 : अरहत नैतिक आसक्तियों से मुक्त है; वह भोजन से आसक्त नहीं है। उसका लक्ष्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में उड़ते पक्षियों की तरह उसका मार्ग भी अज्ञात है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अनुरुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, पूज्यवर, जिनके वस्त्र फटे-पुराने हो गए थे, कूड़े के ढेरों और इसी तरह के अन्य स्थानों पर वस्त्रों की तलाश कर रहे थे। पूज्यवर के तीसरे पूर्व जन्म में उनकी एक पत्नी थीं, जिनका पुनर्जन्म तैंतीस लोकों में देवी जालिनी के रूप में हुआ था। जब देवी ने पूज्यवर को वस्त्रों की तलाश करते देखा, तो उन्होंने उनकी सहायता करने का निश्चय किया। इसलिए उन्होंने तेरह हाथ लंबे और चार हाथ चौड़े तीन दिव्य वस्त्र लिए और मन ही मन सोचा, “यदि मैं इन वस्त्रों को इस प्रकार प्रदर्शित करूँगी, तो पूज्यवर इन्हें नहीं लेंगे,” और वे उस ढेर के सामने एक कूड़े के ढेर पर गईं जहाँ पूज्यवर वस्त्रों की तलाश कर रहे थे और उन्हें इस प्रकार बिछा दिया कि केवल उनके किनारे ही दिखाई दे रहे थे।

वस्त्र लेकर वे अपने मार्ग पर चल दिए। जिस दिन उन्हें अपने वस्त्र सिलने थे, उस दिन बुद्ध अपने अनेक भिक्षुओं के दल के साथ मठ गए और बैठ गए; अस्सी प्रमुख भिक्षु भी वहीं बैठ गए। वस्त्र सिलने के लिए, पूज्य कस्सपा महान भिक्षु चरणों में, पूज्य सारिपुत्त मध्य में और पूज्य आनंद शीर्ष पर बैठे। भिक्षुओं के समूह ने धागा काता, बुद्ध ने सुई में धागा डाला और पूज्य मोग्गलाना इधर-उधर घूमकर अन्य आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराते रहे।

देवी ने गाँव में प्रवेश किया और निवासियों को दान देने के लिए प्रेरित करते हुए कहा, “वे मेरे परम पूज्य अनुराधा के लिए वस्त्र बना रहे हैं। बुद्ध अपने अस्सी प्रमुख शिष्यों से घिरे हुए और अपने अनेक भिक्षुओं के दल के साथ मठ में गए हैं और वहाँ विराजमान हैं। चावल की दलिया और अन्य भोजन लेकर मठ जाओ।” भोजन के दौरान पूज्य मोग्गलाना गुलाब-सेब के बड़े-बड़े टुकड़े लाए, लेकिन भिक्षु उन्हें खा नहीं सके। सक्का ने उस स्थान के चारों ओर एक घेरा बनाया जहाँ वस्त्र बनाए जा रहे थे; धरती मानो लाख से रंगी हुई थी; भोजन करने वाले भिक्षुओं के लिए नरम और कठोर भोजन का एक बड़ा ढेर बचा हुआ था।

भिक्षु नाराज हो गए और बोले, “इतने कम भिक्षुओं के लिए इतनी अधिक मात्रा में भोजन क्यों दिया गया है?” जब उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई, तो उन्होंने कहा, “लेकिन, भिक्षुओं, क्या आप यह सोचते हैं कि यह अनुराधा के किसी आदेश से लाया गया है?” “जी, पूज्यवर; हम यही सोचते हैं।” “भिक्षुओं, मेरे पुत्र अनुराधा इस प्रकार बातें नहीं करते। जो भिक्षु विकारों से मुक्त हो चुके हैं, वे

आवश्यकताओं के बारे में बात करने में अपना समय व्यतीत नहीं करते; बल्कि, यह भोजन एक देवी की अलौकिक शक्ति से उत्पन्न हुआ है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 93)

यस्सा आसव परिक्खिण अहारे च अनिसिटो यस्सा
सुननतो अनिमितो सीए विमोक्खो गोकारो तासा
पदं आकाशे सकुन्तनं इव दुन्नयम्

यस्सा : किसका; आसव : कलंक; परिक्खिना : थका हुआ (चला गया); आहारे च : भोजन में भी; अनिसिटो [अनिसिटा]: संलग्न नहीं; यस्सा : किससे; सुननतो [सुननता]: ख़ालीपन; एनिमिट्टो सीए : और ऑब्जेक्टलेसनेस; विमोक्खो गोकारो [गोकारा]: मुक्ति उनका क्षेत्र है; तस्स पदं [पद]: उनका मार्ग; आकाशे : आकाश में; सकुन्तनं इव : पक्षियों के समान; दूरन्नयं [durannaya]: देखा नहीं जा सकता

यदि कोई व्यक्ति आंतरिक या बाह्य, उन सभी प्रभावों से पूरी तरह मुक्त हो जाए जो मानवीय व्यवहार को प्रेरित करते हैं, और भोजन से भी आसक्त न हो, तो ऐसा व्यक्ति अपना ध्यान शून्यता, उद्देश्यहीनता और विचारों की स्वतंत्रता पर केंद्रित करता है। ऐसे संतों का मार्ग आकाश में उड़ते पक्षियों के मार्ग की तरह ही जटिल होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 93)

आसवा : आमतौर पर इसे दोष, प्रवाह, दूषित पदार्थ, भ्रष्टता, मादक पदार्थ, पूर्वाग्रह के रूप में अनुवादित किया जाता है। हम इस शब्द (द + स अव = प्रवाह) का अनुवाद व्यवहार को प्रेरित करने वाले प्रभाव के रूप में करते हैं। सूत्रों में चार प्रभावों का उल्लेख है: 1) कामुक इच्छाओं की ओर झुकाव (कामासव); 2) अस्तित्व की ओर झुकाव (भवासव); 3) विश्वासों की ओर झुकाव (दित्थासव); और 4) अज्ञानता की ओर झुकाव (अविज्जासव)। सूत्रों में तीन प्रभावों की एक सूची भी मिलती है, जिसमें विचारों की ओर झुकाव को छोड़ दिया गया है। यह चार-भाग का विभाजन 'बाढ़' और 'जुए' के नाम से भी मिलता है।

जल-प्रवेश के मार्ग से विचारों का प्रभाव नष्ट होता है; अनासक्ति के मार्ग से इंद्रिय-इच्छाओं का प्रभाव नष्ट होता है; अरहतत्व के मार्ग से अस्तित्व और अज्ञान का प्रभाव नष्ट होता है। बुद्ध अंतर्दृष्टि, इंद्रिय-नियंत्रण, संयम और जीवन की आवश्यकताओं के बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग के माध्यम से इन प्रभावों पर विजय प्राप्त करने के तरीके बताते हैं।

खीनासाव , जिसका अर्थ है जिसके प्रभाव नष्ट हो गए हों, या जो प्रभाव-मुक्त हो, अरहत या पवित्र व्यक्ति का एक नाम है। अरहतत्व की अवस्था को अक्सर आसवक्खय कहा जाता है , जिसका अर्थ है 'प्रभावों का नाश'। श्रोताओं द्वारा अरहतत्व की प्राप्ति के साथ समाप्त होने वाले सूत्र अक्सर इन शब्दों के साथ समाप्त होते हैं, "इस उच्चारण के दौरान, भिक्षुओं के हृदय आसक्ति न रहने के कारण प्रभावों से मुक्त हो गए।"

आसव शब्द का अर्थ आवेग, प्रेरणा, विवशता, प्रेरणा या प्रभाव हो सकता है। यह तन्हा शब्द के समान है, जिसका सामान्य अनुवाद लालसा के रूप में किया जाता है। तन्हा भी तीन प्रकार की होती है: काम तन्हा ; अस्तित्व की प्यास ; और अस्तित्वहीनता की प्यास ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 94

(धम्मपद 93) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 94 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 95)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 94 - महाकच्चयनत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 94 - महाकच्चयनत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yasindriyani samathangatani

assa yatha sarathina sudanta
pahinamanassa anasavassa
देवपि तस्स पिहायन्ति तडिनो(1)।

श्लोक 94 : वह अरहत जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़ों की तरह शांत हैं, जो अहंकार और नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त है - ऐसा अरहत देवताओं को भी प्रिय होता है।

---

1. तदिनो: वह व्यक्ति जो शांत और स्थिर हो या जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित न हो (लोकधम्म)।

थेरा महाकाकायन की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकच्चयन के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (94) का उच्चारण किया।
पूर्णिमा के दिन, जो वर्षा ऋतु का अंत भी था, सक्का अपने साथ कई देवदूतों को लेकर बुद्ध को प्रणाम करने आए। बुद्ध उस समय विशाखा द्वारा निर्मित पुब्बाराम मठ में निवास कर रहे थे। उस समय बुद्ध की सेवा में मुख्य शिष्य और सभी वरिष्ठ भिक्षु उपस्थित थे। थेरा महाकच्चयन, जिन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने अवंती में बिताए थे, अभी तक नहीं आए थे, इसलिए उनके लिए एक आसन खाली रखा गया था। सक्का ने बुद्ध को फूल, धूप और इत्र चढ़ाकर प्रणाम किया। खाली आसन देखकर उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि काश थेरा महाकच्चयन भी आ जाएं ताकि वे उन्हें भी प्रणाम कर सकें। उसी क्षण महाकच्चयन आ गए; सक्का अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने भी उन्हें फूल, धूप और इत्र चढ़ाकर प्रणाम किया।
भिक्षु सक्का द्वारा महाकच्चयन को प्रणाम करने से विस्मित थे, परन्तु कुछ भिक्षुओं को लगा कि सक्का महाकच्चयन के प्रति पक्षपात कर रहा है। उन्हें बुद्ध ने कहा, "जो अपनी इंद्रियों पर संयम रखता है, वह मनुष्यों और देवताओं दोनों का प्रिय होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 94 : वह अरहत जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़ों की तरह शांत हैं, जो अहंकार और नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त है - ऐसा अरहत देवताओं को भी प्रिय होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महाकच्चायन की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकच्चायन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, अंतिम पर्व के अवसर पर, बुद्ध मिगार की माता के भवन के भूतल पर, प्रख्यात गृहस्थ शिष्यों के समूह से घिरे हुए बैठे थे। उस समय पूज्य कच्चायन अवंती देश में निवास करते थे। यद्यपि पूज्य कच्चायन को बहुत दूर से आना पड़ता था, फिर भी वे नियमित रूप से धम्म प्रवचनों में भाग लेते थे। इसलिए, जब पूज्य शिष्य बैठते थे, तो वे हमेशा पूज्य कच्चायन के लिए एक स्थान खाली छोड़ देते थे।
देवताओं के राजा सक्का अपने दिव्य दल के साथ दोनों लोकों से बुद्ध के पास आए और दिव्य सुगंधों और मालाओं से उनका सम्मान किया। पूज्य कच्चायन को न देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, “मेरे परम पूज्य बुद्ध कहीं क्यों नहीं दिखाई दे रहे? यदि वे आ जाएँ तो अच्छा होगा।” उसी क्षण पूज्य बुद्ध आ गए और अपने उचित स्थान पर बैठे हुए दिखाई दिए। सक्का ने जब पूज्य बुद्ध को देखा, तो उन्होंने उनके टखनों को कसकर पकड़ लिया और कहा, “यह सचमुच अच्छा है कि मेरे परम पूज्य बुद्ध आ गए हैं; मेरे परम पूज्य बुद्ध का आना ही तो मेरी कामना थी।” ऐसा कहकर उन्होंने दोनों हाथों से पूज्य बुद्ध के चरणों का मालिश किया, उन्हें सुगंधों और मालाओं से सम्मानित किया और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए।
भिक्षु नाराज हो गए और बोले, “सक्का आदर करने में व्यक्तियों का सम्मान करता है। उसने अन्य प्रमुख शिष्यों को ऐसा सम्मान नहीं दिया। पूज्य कच्चायन को देखते ही उसने उनके टखने पकड़ लिए और कहा, 'यह सचमुच अच्छा है कि मेरे पूज्य गुरु आए हैं; मेरे पूज्य गुरु का आना ही मेरी कामना थी।' ऐसा कहकर उसने दोनों हाथों से पूज्य गुरु के चरणों को मला, उन्हें इत्र और मालाओं से सम्मानित किया और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए।” बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, “भिक्षुओं, जो भिक्षु मेरे पुत्र कच्चायन की तरह अपनी इंद्रियों को वश में रखते हैं, वे देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रिय होते हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 94)
यस्सा इंद्रियाणि सारथिना सुदंता अस्स यथा समथं गतानि

पाहिणमानस्स अनासवस्स ताडिनो तस्स देवा अपि पिहयन्ति
यस्स : जिनके; इंद्रियानि : इंद्रियां; सारथिना : सारथी द्वारा नियंत्रित; सुदंता : अच्छी तरह से वश में; अस्स यथा : घोड़ों के समान; समथं [समथ]: शांति; गतानि : प्राप्त कर चुके; पहीनमानस्स : निर्णय त्याग दिया; अनासवस्स : निष्कलंक; तादिनो [तादिन]: मानसिक रूप से स्थिर; तस्स : उनकी (दृष्टि); देवा अपि: देवता भी; पिहयंति : (प्रसन्न होते हैं)।
जिनकी इंद्रियां एक प्रशिक्षित घुड़सवार द्वारा प्रशिक्षित घोड़े की तरह शांत हो जाती हैं, जिन्होंने पूर्णतः निर्णय लेने की क्षमता का त्याग कर दिया है, जो प्रभावों से मुक्त हैं, ऐसे मानसिक रूप से स्थिर व्यक्तियों को देखकर देवता भी प्रसन्न होते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 94)
इंद्रियनि । "इंद्रिय" सूत्रों में वर्णित छह इंद्रियों का नाम है। वे हैं:
आँख: चक्खु ;
कान: सोटा ;
नाक: घना ;
जीभ : जिव्हा
शरीर: काया ;
विचार: मानो ।
तादिनो : स्थिर; भीतर और बाहर के प्रभावों से अप्रभावित। बुद्ध चारों प्रकार से स्थिर हैं क्योंकि उन्होंने संसार में अपनी भ्रमण यात्रा समाप्त कर दी है।
इस मामले में वह चार तरीकों से स्थिर रहता है:
भगवा कामोघम तिन्नो [तिन्ना]: बुद्ध ने इच्छाओं की बाढ़ को पार कर लिया है।
भगवा भावोघम तिन्नो [तिन्ना]: बुद्ध ने अस्तित्व की बाढ़ को पार कर लिया है;
भगवा अविज्जोघम तिन्नो [तिन्ना]: बुद्ध ने अज्ञानता की बाढ़ को पार कर लिया है।
इन और अन्य अनेक कारणों से बुद्ध स्थिर, दृढ़ (तादि) हैं।
किसी व्यक्ति की स्थिरता वह भावनात्मक स्थिरता है जो देखी, सुनी, सूंघी, चखी या छुई गई चीजों पर प्रतिक्रिया न करने से आती है। प्रतिक्रिया चीजों को अच्छा या बुरा, सुखद या अप्रिय मानने से शुरू होती है। इंद्रियों को वश में रखना (इन्द्रिय संवर) प्रतिक्रिया को रोकता है। प्रतिक्रिया न करने पर इंद्रियां शांत हो जाती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 95

———————————————————————

(धम्मपद 94) <<<< पिछला || धम्मपद 95 || अगला >>>> (धम्मपद 96)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 95 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 95 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Pathavisamo no virujjhati
indakhilupamo tadi subbato
rahadova apetakaddamo(1)
संसार ना भवन्ति तदिनो.

———————————————————————

श्लोक 95 : पृथ्वी के समान, अरहत धैर्यवान होते हैं और क्रोधित नहीं होते; द्वार के चौखट के समान दृढ़ होते हैं; जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होते; कीचड़ रहित झील के समान शांत और शुद्ध होते हैं। ऐसे अरहत को पुनर्जन्म नहीं मिलेगा।

---

1. अपेतकद्दमो: कीचड़ से मुक्त। झील का पानी कीचड़ से मुक्त होने के कारण निर्दूषित होता है; अरहत भी दोषों से मुक्त होने के कारण शांत और शुद्ध होता है।

थेरा सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (95) का उच्चारण मुख्य शिष्य सारिपुत्त और एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया।

वर्षा ऋतु का अंत हो रहा था; थेरा सारिपुत्त अपने कुछ अनुयायियों के साथ यात्रा पर निकलने वाले थे। एक युवा भिक्षु, जो थेरा से कुछ द्वेष रखता था, बुद्ध के पास आया और झूठा आरोप लगाया कि थेरा सारिपुत्त ने उसका अपमान किया और उसे पीटा। इसलिए बुद्ध ने थेरा को बुलवाया और उनसे पूछताछ की, जिस पर थेरा सारिपुत्त ने इस प्रकार उत्तर दिया: "आदरणीय महोदय! एक भिक्षु, जो दृढ़ता से अपने मन को शरीर पर रखता है, एक साथी भिक्षु के साथ अन्याय करने के बाद बिना क्षमा मांगे यात्रा पर कैसे निकल सकता है? मैं पृथ्वी के समान हूँ, जिसे फूल डालने से कोई प्रसन्नता नहीं होती, न ही कूड़ा-करकट और मल-मूत्र डालने से कोई दुःख होता है। मैं पायदान, भिखारी, टूटे सींग वाले बैल के समान भी हूँ; मुझे भी शरीर की अशुद्धता से घृणा होती है और मैं अब उससे आसक्त नहीं हूँ।"

जब थेरा सारिपुत्त ने ऐसा कहा, तो युवा भिक्षु बहुत दुखी हुआ और फूट-फूटकर रोने लगा। उसने स्वीकार किया कि उसने मुख्य शिष्य सारिपुत्त के बारे में झूठ बोला था। तब बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त को सलाह दी कि वे युवा भिक्षु की क्षमा स्वीकार कर लें, अन्यथा उन पर भारी दंड पड़ेगा और उनका सिर कुचल दिया जाएगा। युवा भिक्षु ने अपनी गलती स्वीकार की और विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगी। थेरा सारिपुत्त ने युवा भिक्षु को क्षमा कर दिया और उनसे भी क्षमा मांगी कि यदि उन्होंने भी कोई गलती की हो।

वहाँ उपस्थित सभी लोग थेरा सारिपुत्त की प्रशंसा में बोले, और बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त के समान भिक्षु में क्रोध या द्वेष नहीं होता। पृथ्वी और द्वार के चौखट के समान, वे धैर्यवान, सहनशील और दृढ़ होते हैं; कीचड़ रहित झील के समान, वे शांत और पवित्र होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 95 : पृथ्वी के समान, अरहत धैर्यवान होते हैं और क्रोधित नहीं होते; द्वार के चौखट के समान दृढ़ होते हैं; जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होते; कीचड़ रहित झील के समान शांत और शुद्ध होते हैं। ऐसे अरहत को पुनर्जन्म नहीं मिलेगा।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मुख्य शिष्य सारिपुत्त और एक युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, वर्षा ऋतु के समापन पर, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा से बुद्ध से विदा ली, उन्हें प्रणाम किया और अपने दल के साथ प्रस्थान किया। कई अन्य भिक्षुओं ने भी पूज्य सारिपुत्त से विदा ली। भिक्षुओं को विदा करते समय पूज्य सारिपुत्त ने उन सभी भिक्षुओं के व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम का उल्लेख किया, जिन्हें उनके व्यक्तिगत और पारिवारिक नामों से जाना जाता था। एक भिक्षु, जिसका कोई व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम नहीं था, ने कहा, "काश, पूज्य सारिपुत्त मुझे भी मेरे व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम से संबोधित करते।" लेकिन भिक्षुओं की विशाल भीड़ में, पूज्य सारिपुत्त ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब भिक्षु ने मन ही मन कहा, "वे मुझे अन्य भिक्षुओं की तरह संबोधित नहीं करते," और तुरंत पूज्य सारिपुत्त के प्रति द्वेष भाव धारण कर लिया।

इसके अलावा, पूज्य सारिपुत्त के वस्त्र का किनारा भिक्षु के शरीर से छू गया, जिससे पूज्य सारिपुत्त के प्रति भिक्षु की घृणा और भी बढ़ गई। इसलिए, जैसे ही उसे पता चला कि पूज्य सारिपुत्त मठ के प्रवेश द्वार से आगे निकल गए हैं, वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, "पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त ने, निःसंदेह यह सोचते हुए कि 'मैं आपका प्रमुख शिष्य हूँ,' मुझे एक ऐसा प्रहार किया जिससे मेरा कान लगभग घायल हो गया। ऐसा करने के बाद, मुझसे क्षमा मांगे बिना ही, वह भिक्षायात्रा पर निकल पड़े।" बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को बुलवाया।

आदरणीय सारिपुत्त अन्य भिक्षुओं के साथ आए, बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। जब बुद्ध ने उनसे घटना के बारे में पूछा, तो उस आदरणीय ने "मैंने उस भिक्षु को नहीं मारा" कहने के बजाय अपने सद्गुणों का वर्णन किया।

जब पूज्य सारिपुत्त ने अपने गुणों का बखान किया, तो उस भिक्षु के पूरे शरीर में पश्चाताप की अनुभूति हुई जिसने उन पर अन्यायपूर्वक निंदा की थी। वह तुरंत बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा, अपनी निंदा स्वीकार की और अपने अपराध का प्रायश्चित किया। बुद्ध ने पूज्य

सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, “सारिपुत्त, इस भ्रमित व्यक्ति को क्षमा कर दीजिए, अन्यथा उसका सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा।” तब पूज्य सारिपुत्त भिक्षु के सामने झुक गए और आदर की मुद्रा में हाथ जोड़कर उनसे कहा, “पूज्यवर, मैं इस पूज्य भिक्षु को क्षमा करता हूँ। यदि मैंने किसी भी प्रकार से उनका अपमान किया हो, तो वे भी मुझे क्षमा कर दें।” तब भिक्षुओं ने कहा, “देखिए, भाइयों, पूज्य सारिपुत्त की असाधारण अच्छाई! वे इस झूठे, निंदा करने वाले भिक्षु के प्रति न तो क्रोध रखते हैं और न ही घृणा। इसके बजाय, वे उनके सामने झुकते हैं, आदर की मुद्रा में हाथ जोड़ते हैं और उनसे क्षमा मांगते हैं।” जब बुद्ध ने भिक्षुओं की बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, आप लोग क्या कह रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, सारिपुत्त और उनके जैसे लोगों के लिए क्रोध या घृणा रखना असंभव है। सारिपुत्त का मन विशाल पृथ्वी के समान, एक दहलीज के समान, शांत जल के तालाब के समान है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 95)

सुब्बतो पथविसामो नो विरुज्जति इंदखिलुपमो तदि
रहदो इव अपेटाकद्दमो ताडिनो संसार न भवन्ति

सबबेटो [सबबेटा]: अच्छी तरह से संचालित; पृथ्वी के समान पथविसामो ; नो विरुज्जति : किसी का विरोध नहीं करता; इंदखिलुपमो [इंदखिलुपमा]: एक किले की मीनार की तरह; ताड़ी : स्थिर; रहदो इव : समुद्र के समान; एपेटाकद्दमो [एपेटाकद्दमा]: कीचड़ से रहित; टैडिनो [टैडीना]: स्थिर; संसार : (उसके लिए) अस्तित्व में भटक रहा है; न भवन्ति : नहीं होता

श्रेष्ठ अरहत चाहे उनके साथ कुछ भी किया जाए, कभी क्रोधित नहीं होते। वे नगर द्वारों की रक्षा करने वाले स्तंभों के समान दृढ़ और अविचल होते हैं। वे निर्मल सागर और झीलों के समान निर्मल और शांत होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति जीवन के चक्र में भटकना छोड़ देते हैं ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 95)

इंदखीला : या तो सक्का के स्तंभ के समान दृढ़ और ऊँचा स्तंभ, या किसी किले या शहर के प्रवेश द्वार पर स्थित मुख्य मीनार। टीकाकारों का कहना है कि ये इंदखीलाएँ शहर के अंदर या बाहर सजावट के रूप में खड़ी की जाने वाली मजबूत मीनारें होती हैं। आमतौर पर ये ईंटों या टिकाऊ लकड़ी से बनी होती हैं और अष्टकोणीय आकार की होती हैं। स्तंभ का आधा भाग जमीन में धंसा होता है, इसीलिए इसका प्रयोग ' इंदखीला के समान दृढ़ और स्थिर ' के रूप में किया जाता है।

तादिनो : तादि वह है जिसे न तो वांछनीय वस्तुओं से आसक्ति होती है और न ही अवांछनीय वस्तुओं से घृणा। न ही वह किसी चीज से चिपका रहता है। आठ सांसारिक स्थितियों—लाभ और हानि, यश और अपयश, निंदा और प्रशंसा, सुख और दुःख—के बीच भी अरहंत अविचलित रहता है, न तो आसक्ति प्रकट करता है और न ही घृणा, न ही उल्लास और न ही अवसाद।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 96

———————————————————

(धम्मपद 95) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 96 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 97)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 96 - कोसाम्बिवसिटिससत्थेरसामनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 96 - कोसाम्बिवसिटिससत्थेरसामनेरा वत्थु

———————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Santam tassa manam hoti
सांता वाका सीए कम्मा सीए
सम्मदन्ना विमुत्तस्सा
upasantassa tadino.

———————————————————

श्लोक 96 : एक अर्हत अपने मन में शांत, अपनी वाणी में शांत और अपने कर्मों में भी शांत होता है; धम्म को सही मायने में जानने वाला ऐसा अर्हत नैतिक दोषों से मुक्त होता है और जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होता।

कोसंबी की एक समनेरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (96) का उच्चारण किया, जो कोसंबी से थेरा तिस्सा के शिष्य समनेरा के संदर्भ में था।

एक बार, सात वर्षीय एक लड़के को उसके पिता के अनुरोध पर समनेर बनाया गया। सिर मुंडवाने से पहले लड़के को ध्यान का एक विषय दिया गया। जब उसका सिर मुंडवाया जा रहा था, तब भी लड़के का मन पूरी तरह से ध्यान के विषय पर केंद्रित था; परिणामस्वरूप, सिर मुंडवाने के तुरंत बाद ही उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

कुछ समय बाद, थेरा तिस्सा, समनेरा के साथ, बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी के लिए रवाना हुए। रास्ते में, उन्होंने एक रात एक गाँव के मठ में बिताई। थेरा सो गए, लेकिन युवा समनेरा पूरी रात वृद्ध थेरा के पलंग के पास बैठे रहे। सुबह तड़के, वृद्ध थेरा ने युवा समनेरा को जगाने का सोचा। इसलिए उन्होंने ताड़ के पत्ते के पंखे से समनेरा को जगाया, और गलती से पंखे के हैंडल से समनेरा की आँख पर चोट लग गई। समनेरा ने एक हाथ से अपनी आँख ढँक ली और थेरा के लिए चेहरा धोने और मुँह साफ करने के लिए पानी लाने, मठ का फर्श साफ करने आदि जैसे अपने कर्तव्यों को पूरा करने लगे। जब युवा समनेरा ने एक हाथ से थेरा को पानी दिया, तो थेरा ने उन्हें डाँटा और कहा कि उन्हें दोनों हाथों से वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। तभी थेरा को पता चला कि समनेरा की आँख कैसे चली गई। उसी क्षण उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने एक सच्चे नेक व्यक्ति के साथ अन्याय किया है। अत्यंत दुखी और अपमानित महसूस करते हुए, उन्होंने समनेरा से क्षमा मांगी। लेकिन समनेरा ने कहा कि यह न तो थेरा की गलती थी, न ही उनकी अपनी गलती, बल्कि यह केवल कर्मों का फल था, इसलिए थेरा को इस पर दुखी नहीं होना चाहिए। लेकिन थेरा इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से उबर नहीं पाए।

फिर उन्होंने श्रावस्ती की ओर अपनी यात्रा जारी रखी और जेतवन मठ पहुंचे, जहां बुद्ध निवास कर रहे थे। तब थेरा ने बुद्ध को बताया कि उनके साथ आया युवा समनेरा अब तक मिले सभी लोगों में सबसे श्रेष्ठ था, और उन्होंने रास्ते में घटी सारी बातें बताईं। बुद्ध ने उनकी बात सुनी और उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, एक अरहत किसी पर क्रोधित नहीं होता; वह अपनी इंद्रियों पर संयम रखता है और पूर्णतः शांत और स्थिर रहता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 96 : एक अर्हत अपने मन में शांत, अपनी वाणी में शांत और अपने कर्मों में भी शांत होता है; धम्म को सही मायने में जानने वाला ऐसा अर्हत नैतिक दोषों से मुक्त होता है और जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होता।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोसंबी के एक नवोदित भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के पूज्य तिस्सा के एक शिष्य, एक नवोदित भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कोसंबी में रहने वाले एक प्रतिष्ठित परिवार के युवक ने संसार त्याग कर बुद्ध धर्म में भिक्षु बनने का निश्चय किया। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद वे पूज्य कोसंबीवासी तिस्सा के नाम से जाने गए। वर्षा ऋतु के दौरान कोसंबी में निवास करने के बाद, उनके एक अनुयायी ने तीन वस्त्रों का एक समूह और घी एवं ताड़ की चीनी की भेंट लाकर उनके चरणों में अर्पित की। उन्होंने कहा, “पूज्यवर, यदि यह सच है कि आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई शिष्य नहीं है, तो मेरा पुत्र आपका शिष्य बनेगा।” पूज्यवर ने सहर्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस गृहस्थ शिष्य ने अपने सात वर्षीय पुत्र को पूज्यवर के पास लाकर उन्हें सौंप दिया और कहा, “कृपा करके इसे संघ में ग्रहण करें।” पूज्यवर ने बालक के बालों को भिण्ड किया, उसे शरीर के पाँच स्थिर अंगों पर ध्यान करना सिखाया और उसे संघ में ग्रहण कर लिया। जैसे ही उस्तरा उनके बालों को छूआ, उन्हें अर्हतत्व और अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो गईं। पूज्य गुरु ने उस युवक को संघ में शामिल करने के बाद कोसंबी में दो सप्ताह तक निवास किया। फिर बुद्ध से मिलने का निश्चय करके उन्होंने उस शिष्य को आवश्यक सामग्री लेने का निर्देश दिया और अपनी यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में वे एक मठ में पहुँचे। उस शिष्य ने पूज्य गुरु के लिए आवास की व्यवस्था की और उसकी देखभाल की। जब वे इस कार्य में लगे थे, अंधेरा हो गया और वे स्वयं के लिए आवास की व्यवस्था नहीं कर सके। अतः गुरु के पलंग के पास पालथी मारकर वे रात भर बैठे रहे।

आदरणीय गुरुजी भोर में उठे और मन ही मन बोले, “मुझे नौसिखिए को बाहर भेजना चाहिए।” अतः उन्होंने पलंग के पास रखा पंखा उठाया, ताड़ के पत्ते के सिरे से नौसिखिए की चटाई पर प्रहार किया और फिर पंखा हवा में उछालते हुए कहा, “नौसिखिए, बाहर जाइए।” पंखे का डंडा नौसिखिए की आँख में लगा और उसकी आँख तुरंत अंधी हो गई। नौसिखिए ने पूछा, “आदरणीय गुरुजी, आपने क्या

कहा?" उत्तर मिला, "उठिए और बाहर जाइए।" नौसिखिए ने यह कहने के बजाय कि "आदरणीय गुरुजी, मेरी आँख अंधी हो गई है," एक हाथ से अपनी आँख ढंक ली और बाहर चला गया। इतना ही नहीं, जब नौसिखिए के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने का समय आया, तो उसने न तो यह कहा कि "मेरी आँख अंधी हो गई है," और न ही वह बैठा रहा, बल्कि एक हाथ से अपनी आँख ढंक कर और दूसरे हाथ में झाड़ू लेकर उसने शौचालय और स्नानघर की सफाई की, और फिर चेहरा धोने के लिए पानी रखकर आदरणीय गुरुजी की कोठरी की सफाई की।

जब वह भिक्षु पूज्य भिक्षु को दाँत निकालने वाली छड़ी भेंट करने के लिए आगे बढ़ा, तो उसने भिक्षु को शुरू से पूरी कहानी सुनाई। जब पूज्य भिक्षु ने उसकी कहानी सुनी, तो वे अत्यंत व्यथित हुए। भिक्षु ने पूज्य भिक्षु को सांत्वना देने का प्रयास किया, लेकिन पूज्य भिक्षु वश में नहीं आए। पश्चाताप से व्याकुल होकर वे भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने उससे पूछा, "भिक्षु, क्या सब कुछ सचमुच ठीक है?" पूज्य भिक्षु ने उत्तर दिया, "मैं तो ठीक हूँ। लेकिन यहाँ एक भिक्षु है जिसके गुण मैंने आज तक देखे किसी भी गुण से कहीं बढ़कर हैं।" पूज्य भिक्षु ने उसे पूरी कहानी सुनाई। "पूज्य भिक्षु, जब मैंने उनसे क्षमा मांगी, तो उन्होंने कहा, 'इस मामले में न तो आपकी कोई गलती है और न ही मेरी।'" बुद्ध ने पूज्य भिक्षु से कहा, "भिक्षु, जो भिक्षु अपने पापों से मुक्त हो जाते हैं, वे किसी के प्रति न तो क्रोध रखते हैं और न ही घृणा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 96)

सम्मा अनन्याय विमुत्तस्स उपसंतस्स तादिनो
तस्स मनं संतं होति वाचा च संता कम्मं च

सम्मा : सामंजस्यपूर्ण; अनन्या : "अनजान" द्वारा; विमुत्तस्सा : मुक्त; उपसंतास्सा : भीतर से शांत; ताडिनो [तादीना]: स्थिर व्यक्ति; तस्स मनः [मन]: मन; संतं होति : शांत है; वाचा च : उसकी वाणी भी; कम्मं च : उसके कार्य भी; संता : (शांत हो गए हैं)

एक श्रेष्ठ अरहत, जो 'अज्ञान' से मुक्त हो चुका है, परिस्थितियों के बदलते प्रभाव से शांत और अविचलित रहता है। उसका मन शांत होता है। उसके शब्द शांत होते हैं। उसके कर्म शांत होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 96)

संत : शांत। संत अरहत वास्तव में शांत होते हैं। वे शांत इसलिए होते हैं क्योंकि उन्होंने पूर्ण 'अज्ञान' या ज्ञान से मुक्ति प्राप्त कर ली होती है, क्योंकि उन्होंने उस शांति का स्तर प्राप्त कर लिया होता है जो विचलित नहीं होती। चूंकि मन सभी गतिविधियों का स्रोत है, इसलिए उनके शब्द शांत होते हैं। चूंकि उनका मन और शब्द शांत होते हैं, इसलिए उनके कर्म भी शांत होते हैं। अतः वे व्यक्तित्व में पूर्ण रूप से शांत होते हैं। यह उन्हें पूर्ण शांति - उपसंत (भीतरी शांति) की स्थिति तक ले जाता है। 'अज्ञान' का अर्थ है कि व्यक्ति अतीत या वर्तमान के आधार पर परिस्थितियों के बारे में राय नहीं बनाता है। जब व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, तो वह अविचलित रहता है और शांत रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 97

(धम्मपद 96) <<<< पिछला || धम्मपद 97 || अगला >>>> (धम्मपद 98)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 97 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 97 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Assadho akatannu ca
sandhicchedo ca yo naro;
hatavakaso vantaso(1)
sa ve uttamaporiso.

श्लोक 97. जो भोला नहीं है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने पुनर्जन्म के चक्र से खुद को मुक्त कर लिया है, जिसने अच्छे और बुरे कर्मों के सभी परिणामों को नष्ट कर दिया है, जिसने सभी लालसाओं का त्याग कर दिया है, वही वास्तव में सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है (अर्थात् एक अरहत)।

---

1. वंतासो: वह व्यक्ति जिसने सभी प्रकार की लालसाओं का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, वह व्यक्ति जिसने सभी प्रकार की लालसाओं को बाहर निकाल दिया है)।

थेरा सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (97) कहा।
एक गाँव से तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने के लिए जेतवन मठ में आए थे। बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए उन्होंने सारिपुत्त को बुलवाया और उन भिक्षुओं की उपस्थिति में पूछा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, क्या तुम यह स्वीकार करते हो कि इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय, इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त करने के विषय में, मैं इसे इसलिए स्वीकार नहीं करता क्योंकि मुझे आप पर विश्वास है; यह तो केवल वे लोग हैं जिन्होंने स्वयं निर्वाण प्राप्त नहीं किया है, जो दूसरों से यह तथ्य स्वीकार करते हैं।" सारिपुत्त का उत्तर भिक्षुओं को ठीक से समझ नहीं आया; उन्होंने सोचा, "सारिपुत्त ने अभी तक अपने गलत विचारों को नहीं छोड़ा है; अभी भी उसे बुद्ध पर विश्वास नहीं है।"
तब बुद्ध ने उन्हें सारिपुत्त के उत्तर का सही अर्थ समझाया। “भिक्षुओं, सारिपुत्त का उत्तर बस इतना है कि वह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त होता है, लेकिन उसकी यह स्वीकृति उसकी स्वयं की अनुभूति के कारण है, न कि केवल इसलिए कि मैंने या किसी और ने ऐसा कहा है। सारिपुत्त को मुझ पर विश्वास है; उसे अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों पर भी विश्वास है।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 97 : जो भोला नहीं है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने पुनर्जन्म के चक्र से नाता तोड़ लिया है, जिसने अच्छे और बुरे कर्मों के सभी परिणामों को नष्ट कर दिया है, जिसने सभी लालसाओं का त्याग कर दिया है, वही वास्तव में सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है (अर्थात् एक अरहत)।

प्रवचन के अंत में, उन सभी भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन तीस वनवासी बुद्ध के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और बैठ गए। बुद्ध ने देखा कि उनमें अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं, इसलिए उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा, “सारिपुत्त, क्या आप मानते हैं कि आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ा होता है और अमरता में ही समाप्त होता है?” इस प्रकार बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त से पाँच नैतिक गुणों के संदर्भ में प्रश्न किया।
पूज्यवर ने कहा, “पूज्यवर, मैं इस विषय में बुद्ध की इस आस्था पर नहीं चलता कि आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ जाता है और अमरता में ही समाप्त हो जाता है। परन्तु पूज्यवर, जो लोग अमरता को नहीं जानते, न ही उसे देख पाए हैं, न ही उसका अनुभव कर पाए हैं, न ही उसे तर्क शक्ति से ग्रहण कर पाए हैं, ऐसे लोगों को इस विषय में दूसरों की आस्था पर चलना ही होगा; अर्थात्, आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ जाता है और अमरता में ही समाप्त हो जाता है।” इस प्रकार पूज्यवर ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया।
जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो वे आपस में चर्चा करने लगे: “पूज्य सारिपुत्त ने कभी भी झूठे विचारों का त्याग नहीं किया। आज भी वे परम प्रबुद्ध व्यक्ति पर भी विश्वास करने से इनकार करते हैं।” जब बुद्ध ने यह सुना, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, तुम ऐसा क्यों कहते हो? क्योंकि मैंने सारिपुत्त से यह प्रश्न पूछा था, ‘सारिपुत्त, क्या तुम मानते हो कि पाँच नैतिक गुणों को विकसित किए बिना, शांति और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त किए बिना, मनुष्य के लिए मार्ग और फल प्राप्त करना संभव है?’ और उन्होंने मुझे इस प्रकार उत्तर दिया,

‘ऐसा कोई नहीं है जो इस प्रकार मार्ग और फल प्राप्त कर सके।’ तब मैंने उनसे पूछा, ‘क्या तुम यह नहीं मानते कि दान और अच्छे कर्मों का फल पकता है? क्या तुम बुद्धों और अन्य के गुणों में विश्वास नहीं करते?’” लेकिन वास्तव में, सारिपुत्त दूसरों के विश्वासों पर नहीं चलते, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही उन मानसिक अवस्थाओं को प्राप्त कर लिया है, जिनकी ओर मार्ग और फल ले जाते हैं, और यह सब उन्होंने समाधिमय ध्यान से उत्पन्न आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि की शक्ति से प्राप्त किया है। इसलिए वे निंदा के पात्र नहीं हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 97)
यो नरो असद्दो अकातान्नु कै संधिचेदो
हतावकासो वन्तसो च , सो वे उत्तमपोरिसो
यो नारो : एक व्यक्ति; असद्धो [असद्धा]: झूठे विचारों पर विश्वास न करने वाला; अकताञ्ञु : निर्वाण से अवगत; च संधिच्छेदो [संधिच्छेदा]: सभी संबंधों को त्यागने वाला; हतावकसो [हतावकसा]: सभी अवसरों को नष्ट करने वाला; वन्तसो [वंतासा]: सभी इच्छाओं का त्याग करने वाला; सो : वह; वे : बिना किसी संदेह के; उत्तमपोरिसो [उत्तमपोरिसा]: एक महान व्यक्ति है
उन्हें स्वयं के सिवा किसी और पर विश्वास नहीं है। वे अमरता—अप्रतिबंधित अवस्था—के साक्षी हैं। वे सांसारिक बंधनों को तोड़ चुके हैं, इसलिए वे सभी सांसारिक संबंधों से मुक्त हैं। उन्होंने पुनर्जन्म के सभी अवसरों को नष्ट कर दिया है। उन्होंने सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया है। इन सभी कारणों से वे—अरहत—वास्तव में एक महान व्यक्ति हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 97)
असद्धो : अविश्वासी; वह अपने और बुद्ध के विचारों पर इतना दृढ़ विश्वास रखता है कि उसे किसी और पर विश्वास करने की आवश्यकता ही नहीं होती।
akataññū : शाब्दिक रूप से, 'कृतघ्न'; परन्तु, इस संदर्भ में, 'बिना शर्त के प्रति जागरूक – अर्थात् निर्वाण '।
संधिच्छेदो : यह शब्द आमतौर पर सेंधमार को दिया जाता है, क्योंकि वह घरों में घुसपैठ करता है। लेकिन, यहाँ इसका अर्थ है सभी सांसारिक संबंधों को तोड़ देना।
hatāvakāso : वह व्यक्ति जिसने सभी अवसरों का त्याग कर दिया हो। लेकिन यहाँ इसका अर्थ पुनर्जन्म के अवसरों का त्याग करना है।
विशेष टिप्पणी : इस श्लोक में प्रयुक्त सभी अभिव्यक्तियों का अर्थ ऐसे व्यक्तियों पर लगाया जा सकता है जो श्रेष्ठ नहीं हैं, बल्कि पतित हैं। परन्तु, इन अभिव्यक्तियों का सकारात्मक, आध्यात्मिक रूप से लाभकारी अर्थों में व्याख्या करना, न कि नकारात्मक, अत्यंत रोचक है। दूसरे शब्दों में, बुद्ध ने इस श्लोक में सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त उन अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया है जिनका अर्थ नीच आचरण वाले लोगों से है। परन्तु, बुद्ध द्वारा इन शब्दों को दिए गए अर्थों के कारण, ये पतित शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 98

(धम्मपद 97) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 98 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 99)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 98 - खदिरवानियारेवत्तथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 98 - खदिरवानियारेवत्तथेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Game va yadi varanne
ninne va yadi va thale
yattha arahanto viharanti
tam bhumiramaneyyakam.

श्लोक 98 : गाँव में हो या जंगल में, घाटी में हो या पहाड़ी पर, जहाँ कहीं भी अरहत निवास करते हैं, वह स्थान रमणीय होता है।

थेरा रेवता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (98) का उच्चारण किया, जिसमें बबूल (खदिरा) वन के थेरा रेवता का उल्लेख है।

रेवता, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई थे। सारिपुत्त के भाई-बहनों में वे इकलौते थे जिन्होंने घर छोड़कर बेघर जीवन नहीं अपनाया था। उनके माता-पिता उनकी शादी को लेकर बहुत चिंतित थे। रेवता जब केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता ने उनकी शादी एक युवती से तय कर दी। विवाह समारोह में उनकी मुलाकात एक सौ बीस वर्ष की एक वृद्ध महिला से हुई और उन्हें यह अहसास हुआ कि सभी प्राणी वृद्धावस्था और क्षय के अधीन हैं। इसलिए वे घर से भागकर सीधे एक मठ में चले गए, जहाँ तीस भिक्षु थे। थेरा सारिपुत्त ने पहले ही उन भिक्षुओं से अनुरोध किया था कि यदि उनका भाई उनके पास आए तो उसे समनेर बना दिया जाए। तदनुसार, उन्हें समनेर बना दिया गया और थेरा सारिपुत्त को इसकी सूचना दे दी गई।

समनेरा रेवता ने उन भिक्षुओं से ध्यान का एक विषय लिया और मठ से तीस योजन दूर एक बबूल के जंगल में चले गए। वर्षा ऋतु के अंत में, समनेरा ने अर्हत पद प्राप्त किया। तब थेरा सारिपुत्त ने बुद्ध से अपने भाई से मिलने की अनुमति मांगी, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे स्वयं वहां जाएंगे। इसलिए बुद्ध, थेरा सारिपुत्त, थेरा सिवली और पांच सौ अन्य भिक्षुओं के साथ समनेरा रेवता से मिलने के लिए निकल पड़े।

यात्रा लंबी थी, मार्ग ऊबड़-खाबड़ था और इलाका निर्जन था; लेकिन देवदूतों ने बुद्ध और भिक्षुओं की हर ज़रूरत का ध्यान रखा। हर योजन के अंतराल पर एक मठ और भोजन उपलब्ध कराया जाता था, और वे प्रतिदिन एक योजन की गति से यात्रा करते थे। रेवता को जब बुद्ध के आगमन का पता चला, तो उन्होंने भी उनके स्वागत की व्यवस्था की। उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध के लिए एक विशेष मठ और अन्य भिक्षुओं के लिए पाँच सौ मठ बनवाए, और उनके पूरे प्रवास के दौरान उन्हें सुख-सुविधाओं से युक्त रखा।

वापसी यात्रा में, उन्होंने पहले की ही गति से यात्रा की और महीने के अंत में श्रावस्ती माह के पूर्वी छोर पर स्थित पुब्बाराम मठ में पहुँचे। वहाँ से वे विशाखा के घर गए, जिन्होंने उन्हें भिक्षा दी। भोजन के बाद, विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि क्या बबूल के जंगल में स्थित रेवता का स्थान सुखद है।

और बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार उत्तर दिया:

श्लोक 98 : गाँव में हो या जंगल में, घाटी में हो या पहाड़ी पर, जहाँ कहीं भी अरहत निवास करते हैं, वह स्थान रमणीय होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय रेवता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बबूल (खदिरा) वन के पूज्य रेवता के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

रेवता, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई थे। सारिपुत्त के भाई-बहनों में वे इकलौते थे जिन्होंने घर छोड़कर बेघर जीवन नहीं अपनाया था। उनके माता-पिता उनकी शादी के लिए बहुत उत्सुक थे। रेवता जब केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता ने उनकी शादी एक युवती से तय कर दी। विवाह समारोह में उनकी मुलाकात एक सौ बीस वर्ष की एक बुजुर्ग महिला से हुई और उन्हें यह अहसास हुआ कि सभी प्राणी वृद्धावस्था और क्षय के अधीन हैं। इसलिए वे घर से भागकर सीधे एक मठ में चले गए, जहाँ तीस भिक्षु थे। पूज्य सारिपुत्त ने पहले ही उन भिक्षुओं से अनुरोध किया था कि यदि उनका भाई उनके पास आए तो उसे भिक्षु बना दिया जाए। तदनुसार, उन्हें भिक्षु बना दिया गया और पूज्य सारिपुत्त को इसकी सूचना दे दी गई।

भिक्षु रेवता ने उन भिक्षुओं से ध्यान का एक विषय लिया और मठ से तीस योजन दूर स्थित बबूल के जंगल की ओर चल दिए। वर्षा ऋतु के अंत में, नवोदित भिक्षु ने अर्हत पद प्राप्त किया। तब पूज्य सारिपुत्त ने बुद्ध से अपने भाई से मिलने की अनुमति मांगी, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे स्वयं वहां जाएंगे। इसलिए बुद्ध, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य सिवली और कई अन्य भिक्षुओं के साथ, सामनेर (नवोदित) रेवता से मिलने के लिए निकल पड़े।

यात्रा लंबी थी, मार्ग ऊबड़-खाबड़ था और इलाका निर्जन था; फिर भी देवताओं ने बुद्ध और भिक्षुओं की हर ज़रूरत का ध्यान रखा। हर योजन (लीग) के अंतराल पर एक मठ और भोजन उपलब्ध कराया जाता था, और वे प्रतिदिन एक योजन की गति से यात्रा करते थे। रेवता को जब बुद्ध के आगमन का पता चला, तो उन्होंने भी उनके स्वागत की व्यवस्था की। उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति से बुद्ध के

लिए एक विशेष मठ और अन्य भिक्षुओं के लिए पाँच सौ मठ बनवाए, और उनके पूरे प्रवास के दौरान उन्हें सुख-सुविधाओं से युक्त रखा।

वापसी यात्रा में, उन्होंने पहले की ही गति से यात्रा की और महीने के अंत में श्रावस्ती माह के पूर्वी छोर पर स्थित पुब्बाराम मठ पहुँचे। वहाँ से वे विशाखा के घर गए, जिन्होंने उन्हें भिक्षा भोजन दिया। भोजन के बाद, विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि क्या बबूल के जंगल में स्थित रेवता का स्थान सुखद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 98)

गेम वा यदि अरण्ये वा निन्ने वा यदि थले वा ,

यत्थ अरहतो विहारन्ति , तं भूमिं रमणेयकं

गामे वा : चाहे गाँव में हो; यदि : कहीं और; अरञ्ञे वा : चाहे जंगल में हो; निन्ने वा : घाटी में भी हो; यदि : कहीं और; थाले वा : चाहे मैदान में हो; यत्था : किसी भी स्थान पर; अरहतो [अरहत]: श्रेष्ठ जन; विहरन्ति : निवास करते हैं; तं भूमि [भूमि]: वह विशेष स्थान; रामणेय्यक [रामणेय्यक]: आकर्षक है

चाहे गांव हो, जंगल हो, घाटी हो या मैदान, जहां कहीं भी अरहत—महान संत—निवास करते हैं, वह स्थान अत्यंत आकर्षक होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 98)

अरहत : श्रेष्ठ जन; विकसित जन। इन्हें आर्य-पुग्गला (श्रेष्ठ जन) भी कहा जाता है। आर्य-पुग्गला वे हैं जिन्होंने पवित्रता के आठ चरणों में से एक को प्राप्त कर लिया है, अर्थात् चार अलौकिक मार्ग (मग्ग) और इन मार्गों के चार अलौकिक फल (फल)।

चार जोड़े हैं:—

वह व्यक्ति जो धारा-जीत के मार्ग को पहचानता है;

वह व्यक्ति जो धारा-जीत की सफलता का एहसास करता है;

जो एक बार वापसी के मार्ग को समझ लेता है;

वह व्यक्ति जो एक बार वापसी के फल को साकार करता है;

जो व्यक्ति वापसी के मार्ग को समझ लेता है;

जो व्यक्ति वापसी न होने के सिद्धांत की पूर्णता को साकार कर लेता है;

जो पवित्रता के मार्ग को जान लेता है;

जो पवित्रता की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

संक्षेप में, चार श्रेष्ठ व्यक्ति हैं: धारा-विजेता, एक बार लौटने वाला, न लौटने वाला और पवित्र। कुछ ग्रंथों में गोत्रभू को नौवां श्रेष्ठ व्यक्ति बताया गया है। अभिधम्म के अनुसार, अलौकिक मार्ग, या केवल मार्ग (मग्ग), उस क्षण का नाम है जब व्यक्ति चार पवित्र अवस्थाओं में से किसी एक में प्रवेश करता है — निर्वाण इसका लक्ष्य है — जो अस्तित्व की अनित्यता, दुख और निराकारता की अंतर्दृष्टि से उत्पन्न होता है, और जीवन एवं स्वभाव को रूपांतरित करता है। फल से तात्पर्य चेतना के उन क्षणों से है, जो मार्ग के फलस्वरूप तुरंत बाद आते हैं, और जो कुछ परिस्थितियों में जीवनकाल में अनगिनत बार दोहराए जा सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 99

(धम्मपद 98) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 99 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 100)

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 99 - अन्नतारा इत्थि वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 99 - अन्नतारा इत्थि वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
रामानियानी अरन्नानी
yaittha na ramati jano
vitaraga ramissanti
na te kamagavesino.

———————————————————————————

श्लोक 99 : वन रमणीय हैं, परन्तु सांसारिक लोगों को उनमें आनंद नहीं मिलता; केवल वे ही जो कामवासना से मुक्त हैं, उनमें आनंद पाते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करते।

———————————————————————————

एक महिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (99) का उच्चारण संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री के संदर्भ में किया।
एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद एक पुराने बगीचे में ध्यान का अभ्यास किया। एक संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री बगीचे में आई और भिक्षु को देखकर उसका ध्यान आकर्षित करने और उसे बहकाने का प्रयास किया। भिक्षु भयभीत हो गया; उसी समय, उसका पूरा शरीर एक प्रकार की सुखद संतुष्टि से भर गया। बुद्ध ने उसे अपने मठ से देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से उस पर प्रकाश की किरणें भेजीं, जिससे भिक्षु को यह संदेश प्राप्त हुआ, "हे मेरे पुत्र, जहाँ सांसारिक लोग इंद्रिय सुखों की खोज करते हैं, वह भिक्षुओं के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है; भिक्षुओं को उन जंगलों में आनंद लेना चाहिए जहाँ सांसारिक लोगों को कोई सुख नहीं मिलता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 99 : वन रमणीय हैं, परन्तु सांसारिक लोगों को उनमें आनंद नहीं मिलता; केवल वे ही जो कामवासना से मुक्त हैं, उनमें आनंद पाते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करते।

———————————————————————————

अध्याय सात का अंत: अरहत (अरहंतवग्ग)

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक महिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। बताया जाता है कि एक भिक्षु, जो भिक्षापात्र से अपना जीवन यापन करता था, ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और ध्यान करने के उद्देश्य से एक जीर्ण-शीर्ण उद्यान में चला गया। तभी एक वेश्या ने एक पुरुष से मिलने का समय तय किया और कहा, "मैं फलाँ स्थान पर जाऊँगी और आप मुझसे वहाँ मिलें।" स्त्री तो समय पर पहुँची, पर पुरुष नहीं आया। कुछ समय तक वह उस रास्ते को व्यर्थ ही देखती रही जहाँ से उसे आने की उम्मीद थी। अंत में, अपने समय पर न आने से निराश होकर, वह इधर-उधर भटकती रही और अंततः उद्यान में चली गई। वहाँ उसने भिक्षु को पालथी मारकर बैठे देखा। इधर-उधर देखते हुए और किसी को न देखकर, उसने मन ही मन कहा, "यहाँ एक पुरुष है; मैं उसके विचारों को भ्रमित कर दूँगी।" अतः भिक्षु के सामने खड़ी होकर, उसने कई बार अपने अंतर्वस्त्र को उतारा और फिर से पहना, अपने बालों को खोला और फिर से बाँधा, और ताली बजाकर हँसी। पूज्यवर उत्तेजित हो गए; वास्तव में उनका पूरा शरीर उत्तेजना से भर गया। "इसका क्या मतलब है?" उन्होंने सोचा।
बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "एक भिक्षु ने मुझसे ध्यान का विषय प्राप्त किया और ध्यान करने चला गया। उसका ध्यान कैसा चल रहा है?" उस स्त्री को देखकर, उसके बुरे आचरण को देखकर और यह जानकर कि उसका बुरा आचरण पूज्य भिक्षु को व्याकुल कर रहा है, वे अपने सुगंधित कक्ष में बैठे-बैठे ही बोले, "भिक्षुओं, जहाँ वासनाओं के पीछे भागने वाले रहते हैं, वहाँ आनंद नहीं होता। परन्तु जहाँ

वासनाओं से मुक्त रहने वाले रहते हैं, वह स्थान आनंद से परिपूर्ण होता है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपना एक प्रकाशमान स्वरूप प्रकट किया और पूज्य भिक्षु को धम्म का उपदेश देते हुए यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 99)

यथा जानो न रमति रामायणी अरण्यनि
वीतरागा रमिस्सान्ति ते कामगावेसिनो न

यत्था : वे स्थान; जनो : सांसारिक जन; न रमती : उनमें आनंद न लें; रमणीयनि अरञ्ञानि : (ऐसे) आकर्षक वन; वीतरगा : वासनाहीन; रमिस्सन्ति : उनमें आनंद लें; ते : वे स्थान; कामगवेसिनो [कामागवेसिन]: इंद्रिय सुखों के अनुयायी; न : उनमें आनंद न लें वे आकर्षक वन जो सांसारिक जनमानस के मन को मोहित नहीं करते और जिनमें उन्हें आनंद नहीं मिलता, वे भावहीन लोगों को आकर्षित करते हैं। अरहत वनों में आनंद लेते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों के पीछे नहीं भागते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 99)

वितरागो : भावहीन: अरहत। अरहत मूलतः भावहीन होता है। अरहत, शाब्दिक रूप से, एक योग्य व्यक्ति, पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह नए कर्मों का संचय नहीं करता। उसके प्रजनन के सभी बीज नष्ट हो चुके होते हैं। अरहत को यह अहसास होता है कि जो पूरा होना था वह हो चुका है, दुख का भारी बोझ अंततः उतर गया है, और सभी प्रकार की लालसा और अज्ञान के सभी रूप पूर्णतः नष्ट हो गए हैं। सुखी तीर्थयात्री अब स्वर्ग से भी ऊपर की ऊंचाइयों पर खड़ा है, अनियंत्रित भावनाओं और संसार के दोषों से बहुत दूर, निर्वाण के अवर्णनीय आनंद का अनुभव कर रहा है। पुनर्जन्म अब उस पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता क्योंकि नए कर्मों से अब कोई प्रजनन बीज उत्पन्न नहीं होते। अरहत को असेख कहा जाता है , वह व्यक्ति जो प्रशिक्षण से नहीं गुजरता, क्योंकि उसने पवित्र जीवन जी लिया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। सोतापत्ति अवस्था से अरहत पथ अवस्था तक के अन्य संतों को सेख कहा जाता है क्योंकि वे अभी भी प्रशिक्षण से गुजरते हैं। अरहत इस जीवन में भी अपनी इच्छा अनुसार लंबे समय तक निर्वाणिक आनंद का अनुभव कर सकते थे। पाली भाषा में इसे निरोध-समापत्ति कहते हैं ।

अध्याय 8. सहस्सवग्ग: हज़ार (100-115)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 100

(धम्मपद99) <<<< पिछला || धम्मपद100 || अगला >>>> (धम्मपद101)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 100 - तम्बादथिका कोरघटका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 100 - तम्बादथिका कोरघटका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sahassamapi ce vaca
अनत्थपादसंहिता
एकम अत्थपदम सेयो
yam sutva upasammati.

श्लोक 100 : निरर्थक और निर्वाण की प्राप्ति से असंबद्ध हजार शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

तांबडथिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (100) का उच्चारण किया, जो चोरों के जल्लाद ताम्बदथिका के संदर्भ में था।

तांबदथिका ने राजा की सेवा में पचपन वर्षों तक चोरों के जल्लाद के रूप में कार्य किया; वे हाल ही में इस पद से सेवानिवृत्त हुए थे। एक दिन, अपने घर पर चावल का दलिया तैयार करने के बाद, वे नदी में स्नान करने गए; उनका इरादा था कि लौटते समय वे विशेष रूप से तैयार किया गया चावल का दलिया पी लेंगे। जैसे ही वे चावल का दलिया पीने वाले थे, थेरा सारिपुत्त, जो एकाग्रता (ध्यान समापत्ति) में तल्लीन होकर उठे थे, भिक्षा मांगने के लिए उनके दरवाजे पर खड़े थे। थेरा को देखकर तांबदथिका ने मन ही मन सोचा, "मैंने अपने पूरे जीवन चोरों को मृत्युदंड दिया है; अब मुझे यह भोजन थेरा को अर्पित करना चाहिए।" अतः उन्होंने थेरा सारिपुत्त को अंदर आने का निमंत्रण दिया और आदरपूर्वक चावल का दलिया उन्हें अर्पित किया।

भोजन के बाद, थेरा ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, लेकिन ताम्बदथिका ध्यान नहीं दे पा रहे थे, क्योंकि वे अपने जल्लाद के रूप में बीते जीवन की यादों में इतने व्याकुल थे। जब थेरा को यह पता चला, तो उन्होंने चतुराई से ताम्बदथिका से पूछा कि क्या उन्होंने चोरों को अपनी इच्छा से मारा था या उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया गया था। ताम्बदथिका ने उत्तर दिया कि उन्हें राजा द्वारा मारने का आदेश दिया गया था और उनकी हत्या करने की कोई इच्छा नहीं थी। तब थेरा ने पूछा, "यदि ऐसा है, तो क्या आप दोषी हैं या नहीं?" ताम्बदथिका ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि वे बुरे कर्मों के लिए जिम्मेदार नहीं थे, इसलिए वे दोषी नहीं थे। अतः वे शांत हो गए और थेरा से अपना प्रवचन जारी रखने का अनुरोध किया। जब उन्होंने ध्यानपूर्वक धम्म सुना, तो वे सोतापत्ति मार्ग प्राप्त करने के बहुत करीब पहुँच गए और अनुलोम नाना तक पहुँच गए। (1) प्रवचन के बाद, ताम्बदथिका कुछ दूर तक थेरा सारिपुत्त के साथ गए और फिर घर लौट आए। घर लौटते समय एक गाय (वास्तव में गाय के वेश में एक राक्षस) ने उसे सींग मारकर मौत के घाट उतार दिया।

जब बुद्ध संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें ताम्बदथिका की मृत्यु के बारे में बताया। जब उनसे पूछा गया कि ताम्बदथिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यद्यपि ताम्बदथिका ने अपने पूरे जीवन में बुरे कर्म किए थे, फिर भी थेरा सारिपुत्त से धम्म सुनकर उसे ज्ञान प्राप्त हो गया और मरने से पहले ही उसने अनुलोम नाना प्राप्त कर लिया था, इसलिए उसका पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि एक इतना बुरा कर्म करने वाला व्यक्ति केवल एक बार धम्म सुनकर इतना बड़ा लाभ कैसे प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ने उन्हें बताया कि प्रवचन की लंबाई मायने नहीं रखती, क्योंकि अर्थ का एक शब्द भी बहुत लाभ दे सकता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 100 : निरर्थक और निर्वाण की प्राप्ति से असंबद्ध हजार शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

---

(1)अनुलोम नाना: विपश्यना अंतर्दृष्टि जो योगी की नामरूप प्रक्रिया को मग्गा अंतर्दृष्टि के लिए पूरी तरह से अनुकूलित करती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ताम्बदाथिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चोरों के जल्लाद ताम्बदाठिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

तांबदाथिका ने पचपन वर्षों तक राजा की सेवा चोरों के जल्लाद के रूप में की। वृद्धावस्था में वह एक ही वार में किसी का सिर नहीं काट सकता था। जिस दिन वह पद से सेवानिवृत्त हुआ, उसने अपने लिए मीठी दूध की दलिया बनाने का आदेश दिया। पुराने वस्त्र, चमेली के फूल और इत्र लेकर वह नदी पर स्नान करने गया। स्नान करने के बाद उसने पुराने वस्त्र पहने, मालाओं से खुद को सजाया, अंगों पर तेल लगाया और घर आकर बैठ गया। उसके सामने ताजा घी से बनी मीठी दूध की दलिया और हाथ धोने के लिए पानी रखा गया। उसी समय पूज्य सारिपुत्त पूर्व जल्लाद के घर के द्वार पर प्रकट हुए। सारिपुत्त ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। उन्हें अपने घर में ले जाकर, उन्हें बैठने के लिए जगह दी, उनके कटोरे में मीठी दूध की दलिया डाली, उस पर ताजा घी छिड़का और उनके पास खड़े होकर उन्हें पंखा झुलाने लगे।

भोजन के बाद, भिक्षु ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, लेकिन ताम्बदाथिका ध्यान नहीं दे पा रहे थे, क्योंकि वे अपने जल्लाद के रूप में बीते जीवन की यादों में इतने व्याकुल थे। जब भिक्षु को यह पता चला, तो उन्होंने चतुराई से ताम्बदाथिका से पूछा कि क्या उन्होंने चोरों को अपनी इच्छा से मारा था या उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया गया था। ताम्बदाथिका ने उत्तर दिया कि राजा ने उन्हें मारने का आदेश दिया था और उनकी मारने की कोई इच्छा नहीं थी। तब भिक्षु ने पूछा, "यदि ऐसा है, तो क्या आप दोषी हैं या नहीं?" ताम्बदाथिका ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि वे बुरे कर्मों के लिए जिम्मेदार नहीं थे, इसलिए वे दोषी नहीं थे। इसलिए वे शांत हो गए और भिक्षु से अपना उपदेश जारी रखने का अनुरोध किया। जब उन्होंने ध्यानपूर्वक धम्म का उपदेश सुना, तो वे सोतापत्ति मार्ग को प्राप्त करने के बहुत करीब पहुँच गए और अनुलोम ज्ञान (सत्य ज्ञान के प्रति अनुकूलन) तक पहुँच गए। प्रवचन के बाद, ताम्बदाथिका कुछ दूर तक पूज्य सारिपुत्त के साथ गए और फिर घर लौट आए। घर लौटते समय एक गाय (वास्तव में गाय के वेश में एक राक्षस) ने उन्हें सींग मारकर मार डाला।

जब बुद्ध संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें ताम्बदाथिका की मृत्यु के बारे में बताया। जब उनसे पूछा गया कि ताम्बदाथिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यद्यपि ताम्बदाथिका ने अपने पूरे जीवन में बुरे कर्म किए थे, फिर भी पूज्य सारिपुत्त से धम्म का ज्ञान प्राप्त करने और मरने से पहले ही अनुलोम ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण उनका पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि एक दुष्ट व्यक्ति को केवल एक बार धम्म सुनने से इतना बड़ा लाभ कैसे मिल सकता है। बुद्ध ने उन्हें बताया कि प्रवचन की लंबाई मायने नहीं रखती, क्योंकि अर्थ का एक शब्द भी बहुत लाभ दे सकता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 100)

अनत्थपादसंहिता वाचा सी सहस्सं अपि
यं सुत्वा उपसम्मति एकं अत्थपदं सेय्यो

अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन और व्यर्थ अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; वाचा : शब्द; चे : यहां तक कि; सहस्सं अपि : हजारों (मूल्यहीन); यं : यदि; सुत्वा : इसे सुनकर; उपसम्मति : व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं अत्थपादं [अत्थपाद]: ऐसा एक सार्थक शब्द; सेय्यो [सेय्य]: श्रेष्ठ है

हजारों शब्दों से भरे भावों का कोई मूल्य नहीं होता। एक सार्थक शब्द कहीं अधिक मूल्यवान होता है, यदि उसे सुनकर मन को शांति मिलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 100)

वाचा अनत्थपादसंहिता : निरर्थक शब्दों से भरा प्रवचन। यहाँ उन शब्दों का तात्पर्य है जो उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक नहीं हैं। पारंपरिक टीकाओं में आकाश, पर्वत, वन, गाँव, नगर, बस्तियाँ, महासागर, चंद्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, जलक्रीड़ा, भोज, सभाओं आदि का वर्णन साधकों के लिए चर्चा हेतु अनुपयुक्त माना जाता है। इन्हें व्यर्थ और आध्यात्मिक साधना में सहायक नहीं समझा जाता। बत्तीस विषय निरर्थक प्रवचनों की श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार, राजकथा (राजाओं से संबंधित विषय), चोरकथा (चोरों से संबंधित विषय), महामच्चकथा (प्रशासकों से संबंधित विषय), सेना (बल), भय (भय), युद्ध (युद्ध) जैसे विषय उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों की खोज करने वालों के लिए चर्चा हेतु अनुपयुक्त माने जाते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 101

(धम्मपद 100) <<<< पिछला || धम्मपद 101 || अगला >>>> (धम्मपद 102 और 103)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 101 - बहियादारुचिरिय वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 101 - बहियादारुचिरिय वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sahassamapi ce gatha
अनत्थपादसंहिता
एकम गथापदम सेयो
yam sutva upasammati.

श्लोक 101 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध हजार श्लोकों से बेहतर एक श्लोक है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

बहियादारुचिरिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बहियादरुचिरिया के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (101) कहा।

व्यापारियों का एक समूह नाव में समुद्र में गया; उनकी नाव समुद्र में टूट गई और एक को छोड़कर सभी मारे गए। एकमात्र जीवित व्यक्ति ने एक तख्ता पकड़ लिया और अंततः सुप्पारका बंदरगाह पर पहुँच गया। चूंकि वह नग्न था, उसने तख्ते को अपने शरीर से बांध लिया, एक कटोरा लिया और ऐसी जगह बैठ गया जहाँ लोग उसे देख सकें। राहगीरों ने उसे चावल और दलिया दिया; कुछ ने उसे अरहत समझकर उसकी प्रशंसा की। कुछ लोग उसके लिए कपड़े लाए, लेकिन उसने यह सोचकर इनकार कर दिया कि कपड़े पहनने से लोग उसे कम देंगे। इसके अलावा, चूंकि कुछ लोगों ने उसे अरहत कहा था, इसलिए उसने गलती से यह मान लिया कि वह वास्तव में अरहत है। इस प्रकार, गलत विचारों वाले उस व्यक्ति के रूप में, जिसने लकड़ी का टुकड़ा वस्त्र के रूप में पहना था, उसे बहियादरुचिरिया के नाम से जाना जाने लगा।

लगभग इसी समय, महाब्रह्मा, जो उनके पिछले जन्मों में से एक में उनके मित्र थे, ने उन्हें भटकते हुए देखा और महसूस किया कि बाहिया को सही मार्ग पर लाना उनका कर्तव्य है। इसलिए, महाब्रह्मा (महान देवदूत) रात में उनके पास आए और उनसे कहा, "बाहिया, तुम अभी तक अरहत नहीं हो, और इससे भी बड़ी बात यह है कि तुममें वे गुण नहीं हैं जो किसी को अरहत बनाते हैं।" बाहिया ने महाब्रह्मा (महान देवदूत) की ओर देखा और कहा, "हाँ, मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं अरहत नहीं हूँ, जैसा कि आपने कहा है। अब मुझे एहसास हो गया है कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है। लेकिन क्या इस संसार में कोई और है जो अरहत है?" तब महाब्रह्मा (महान देवदूत) ने उन्हें बताया कि श्रावस्ती गौतम बुद्ध निवास करते हैं, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी अरहत हैं।

बाहिया को अपने अपराध की गंभीरता का एहसास हुआ और वे अत्यंत व्याकुल होकर श्रावस्ती तक दौड़ पड़े। महाब्रह्मा (महान देवदूत) ने अपनी अलौकिक शक्ति से उनकी सहायता की, जिससे एक सौ बीस योजन की पूरी दूरी उन्होंने एक ही रात में तय कर ली। बाहिया ने बुद्ध को अन्य भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने जाते हुए पाया और आदरपूर्वक उनके पीछे चल दिए। उन्होंने बुद्ध से धर्म का उपदेश देने की विनती की, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे भिक्षा मांगने गए हैं, इसलिए अभी धार्मिक प्रवचन का समय नहीं है। बाहिया ने फिर विनती की, "आदरणीय गुरुदेव, आपके और मेरे जीवन को कितना खतरा है, यह कोई नहीं जान सकता, इसलिए कृपया मुझे धर्म के विषय में बताएं।" बुद्ध जानते थे कि बाहिया ने एक सौ बीस योजन की यात्रा एक ही रात में पूरी कर ली है और बुद्ध को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हैं। इसीलिए बुद्ध तुरंत धर्म के विषय में बात नहीं करना चाहते थे, बल्कि चाहते थे कि बाहिया शांत हो जाएं ताकि वे धर्म को ठीक से समझ सकें। फिर भी, बाहिया लगातार विनती करते रहे। अतः, सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने बाहिया से कहा, "बाहिया, जब तुम कोई वस्तु देखो, तो केवल उस दृश्य वस्तु के प्रति सचेत रहो; जब तुम कोई ध्वनि सुनो, तो केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत रहो; जब तुम किसी चीज को सूंघो, चखो या स्पर्श करो, तो केवल उसकी गंध, स्वाद या स्पर्श के प्रति सचेत रहो; और जब तुम किसी भी चीज के बारे में सोचो, तो केवल उस विचार के प्रति सचेत रहो।"

उपरोक्त प्रवचन सुनने के बाद, बाहिया ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उन्होंने संघ में शामिल होने के लिए बुद्ध से अनुमति मांगी। बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के वस्त्र, कुंड और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लाने को कहा। उन्हें लाने जाते समय, एक गाय ने उन्हें सींगों से मार डाला, जो वास्तव में गाय के रूप में एक राक्षसी थी। जब बुद्ध और अन्य भिक्षु भोजन करके बाहर आए, तो उन्होंने बाहिया को कूड़े के ढेर पर मृत पाया। बुद्ध के निर्देशानुसार, भिक्षुओं ने बाहिया के शरीर का दाह संस्कार किया और उनकी अस्थियों को एक स्तूप में स्थापित किया।

जेतवन मठ में लौटकर बुद्ध ने भिक्षुओं को बताया कि बाहिया ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। उन्होंने यह भी बताया कि मार्ग अंतर्दृष्टि (अभिन्न) प्राप्त करने में गति के संदर्भ में बाहिया सबसे तेज और सर्वश्रेष्ठ (एतदग्गम) हैं। बुद्ध के इस कथन से भिक्षु चकित रह गए और उन्होंने उनसे पूछा कि बाहिया कब और कैसे अर्हत बने। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बाहिया ने अर्हतत्व तब प्राप्त किया जब वे भिक्षाटन के दौरान मार्ग में मेरे द्वारा दिए गए उपदेशों को सुन रहे थे।" भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि कोई केवल कुछ वाक्यों को सुनकर अर्हतत्व कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बताया कि यदि कोई बात किसी के लिए लाभकारी हो तो शब्दों की संख्या या भाषण की लंबाई मायने नहीं रखती।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 101 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध हजार श्लोकों से बेहतर एक श्लोक है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बहियादारुचिरिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बाहियादारुचिरिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

व्यापारियों का एक समूह नाव में समुद्र में गया; उनकी नाव समुद्र में टूट गई और एक को छोड़कर सभी मारे गए। एकमात्र जीवित व्यक्ति ने एक तख्ता पकड़ लिया और अंततः सुप्पारका बंदरगाह पर पहुँच गया। चूंकि वह नग्न था, उसने अपने शरीर पर छाल का एक

टुकड़ा बाँध लिया, एक कटोरा लिया और ऐसी जगह बैठ गया जहाँ लोग उसे देख सकें। राहगीरों ने उसे चावल और दलिया दिया; कुछ ने उसे संत समझा और उसका सम्मान किया। कुछ लोग उसके लिए कपड़े लाए, लेकिन उसने यह सोचकर इनकार कर दिया कि कपड़े पहनने से लोग उसका कम सम्मान करेंगे। इसके अलावा, चूंकि कुछ लोगों ने उसे अरहत कहा, इसलिए उसने गलती से यह मान लिया कि वह वास्तव में अरहत है। इस प्रकार, छाल के टुकड़े को वस्त्र के रूप में धारण करने वाले उस व्यक्ति को, जिसके विचार गलत थे, बाहियादारुचिरिया के नाम से जाना जाने लगा। महाब्रह्म रात में उनके पास आए और उनसे कहा, "बाहिया, तुम अभी तक अरहत नहीं हो, और इससे भी बड़ी बात यह है कि तुममें वे गुण नहीं हैं जो किसी को अरहत बनाते हैं।" बाहिया ने महाब्रह्म की ओर देखा और कहा, "जी हाँ, मैं मानता हूँ कि मैं अरहत नहीं हूँ, जैसा कि आपने कहा है। अब मुझे एहसास हो गया है कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है। लेकिन क्या इस संसार में कोई और है जो अरहत (सिद्ध पुरुष) है?" तब महाब्रह्म ने उन्हें बताया कि श्रावस्ती में गौतम बुद्ध नामक एक गुरु रहते हैं, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी अरहत हैं।

बाहिया ने बुद्ध को अन्य भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने जाते हुए देखा और आदरपूर्वक उनके पीछे-पीछे चले। उन्होंने बुद्ध से धर्म का उपदेश देने की विनती की, पर बुद्ध ने कहा कि वे भिक्षा मांगने गए हैं, इसलिए अभी धार्मिक प्रवचन का समय नहीं है। बाहिया ने फिर विनती की, "हे पूज्यवर, आपके या मेरे जीवन को कितना खतरा है, यह कोई नहीं जान सकता, इसलिए कृपया मुझे धर्म के विषय में उपदेश दीजिए।" बुद्ध जानते थे कि बाहिया ने एक रात में एक सौ बीस योजन की यात्रा की है और बुद्ध को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हैं। इसीलिए बुद्ध तुरंत धर्म के विषय में उपदेश नहीं देना चाहते थे, बल्कि चाहते थे कि बाहिया शांत हो जाएं ताकि वे धर्म को ठीक से समझ सकें। फिर भी बाहिया लगातार विनती करते रहे। अतः, सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने बाहिया से कहा, "बाहिया, जब तुम कोई वस्तु देखो, तो केवल उस दृश्य वस्तु के प्रति सचेत रहो; जब तुम कोई ध्वनि सुनो, तो केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत रहो; जब तुम किसी चीज को सूंघो, चखो या स्पर्श करो, तो केवल उसकी गंध, स्वाद या स्पर्श के प्रति सचेत रहो; और जब तुम किसी भी चीज के बारे में सोचो, तो केवल उस विचार के प्रति सचेत रहो।"

उपरोक्त प्रवचन सुनने के बाद, बाहिया ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उन्होंने संघ में शामिल होने के लिए बुद्ध से अनुमति मांगी। बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के वस्त्र, कुंड और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लाने को कहा। उन्हें लाने जाते समय, एक गाय ने उन्हें सींग मारकर मार डाला, जो वास्तव में गाय के रूप में एक दुष्ट स्त्री थी। जब बुद्ध और अन्य भिक्षु भोजन करने के बाद बाहर आए, तो उन्होंने बाहिया को कूड़े के ढेर पर मृत पाया। बुद्ध के निर्देशानुसार, भिक्षुओं ने बाहिया के शरीर का दाह संस्कार किया और उनकी अस्थियों को एक स्तूप में स्थापित किया। जेतवन मठ में वापस आकर, बुद्ध ने भिक्षुओं को बताया कि बाहिया ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। उन्होंने यह भी बताया कि मार्ग अंतर्दृष्टि (अभिज्ञा) प्राप्त करने में गति के मामले में बाहिया सबसे तेज और सर्वश्रेष्ठ (एतदग्गं) थे। बुद्ध के इस कथन से भिक्षु व्याकुल हो गए और उन्होंने उनसे पूछा कि बाहिया कब और कैसे अरहत बने? इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बाहिया ने भिक्षाटन के दौरान मार्ग में मेरे उपदेश सुनते हुए अरहतत्व प्राप्त किया।" भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि कोई धर्म के कुछ ही वाक्य सुनकर कैसे अरहतत्व प्राप्त कर सकता है। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि यदि कोई बात किसी के लिए लाभकारी हो तो शब्दों की संख्या या भाषण की लंबाई मायने नहीं रखती।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 101)

अनत्थपादसंहिता गाथा सी सहस्सं अपि
यं सुत्वा उपसम्मति एकं गथापादं सेय्यो

अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; गाथा : छंद; सीई : सम; सहस्सां अपि : हजारों (लायक नहीं हैं); यं : जो यदि, सुत्व : सुनकर; उपसम्मति : व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं गाथापादं [गाथापद]: केवल एक ही ऐसा सार्थक छंद; सेय्यो [सेय्या]: नेक है

हजारों छंदों से भरी कविता का कोई मूल्य नहीं है यदि उसका कोई उपयोगी अर्थ न हो। ज्ञान से भरपूर एक ही छंद अधिक मूल्यवान है, यदि उसे सुनकर मन को शांति मिलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 101)

गाथा : छंद; पद्य। पाली भाषा में रचित एक कविता, जिसमें आमतौर पर चार पंक्तियाँ होती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 102,103

(धम्मपद 101) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 102 और 103 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 104 और 105)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 102 और 103 - कुंडलकेशेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 102 और 103 - कुंडलकेशिथेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca gatha satam bhase
अनत्थपादसंहिता
एकम धम्मपदम सेयो
yam sutva upasammati.

Yo sahassam sahassena
संगामे मानुसे जिने
ekanca jeyyamattanam
sa ve sangamajuttamo.

श्लोक 102 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध सौ श्लोकों के पाठ से श्रेष्ठ है शिक्षा (धम्म) का एक श्लोक पढ़ना, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाता है।

श्लोक 103 : एक व्यक्ति युद्ध में दस लाख लोगों को जीत सकता है, परन्तु जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सबसे बड़ा विजेता है।

थेरी कुंडलकेसी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी कुंडलकेसी के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (102) और (103) का उच्चारण किया।

कुंडलकेसी राजगृह के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह एकांत जीवन व्यतीत करती थी; लेकिन एक दिन, उसने एक चोर को मौत के घाट उतारने के लिए ले जाते हुए देखा और उसे उससे तुरंत प्रेम हो गया। उसके माता-पिता को चोर की रिहाई के लिए पैसे देने पड़े, और उन्होंने कुंडलकेसी का विवाह उससे कर दिया। यद्यपि वह अपने पति से बहुत प्रेम करती थी, लेकिन उसका पति एक चोर था, जो केवल उसकी संपत्ति और गहनों की ओर आकर्षित था। एक दिन, उसने कुंडलकेसी को अपने सभी गहने पहनने के लिए फुसलाया और उसे एक पहाड़ पर ले गया, यह कहते हुए कि वह पहाड़ के संरक्षक देवता को कुछ भेंट चढ़ाना चाहता है क्योंकि उस संरक्षक देवता ने उसकी जान बचाई थी जब वह मरने वाला था। कुंडलकेसी अपने पति के साथ चली गई, लेकिन जब वे अपने गंतव्य पर पहुँचे, तो चोर ने खुलासा किया कि वह उसे मारना चाहता है और उसके गहने छीनना चाहता है। उसने उससे विनती की कि वह उसके गहने तो ले ले, लेकिन उसकी जान बख्श दे, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। तब उसे एहसास हुआ कि अगर उसने अपने पति से छुटकारा नहीं पाया, तो उसके बचने का कोई रास्ता नहीं होगा। उसने महसूस किया कि उसे सतर्क और चतुर होना होगा। इसलिए उसने अपने पति से कहा कि चूंकि अब उनके साथ केवल कुछ ही पल बचे हैं, इसलिए वह अंतिम बार उन्हें सम्मान देना चाहती है। ऐसा कहकर और उस व्यक्ति के चारों ओर आदरपूर्वक घूमते हुए, उसने उसे चट्टान से धक्का दे दिया, जिससे वह अचानक गिर पड़ा।

इसके बाद, घर लौटने की उनकी कोई इच्छा नहीं रही। उन्होंने अपने सारे गहने एक पेड़ पर टांग दिए और बिना किसी दिशा का पता लगाए अपने रास्ते पर चल पड़ीं। संयोगवश वे कुछ परिब्बजिकाओं (महिला तपस्वियों) के स्थान पर पहुँच गईं और स्वयं परिब्बजिका बन गईं। परिब्बजिकाओं ने उन्हें अपने सभी एक हजार प्रश्न सिखाए; बुद्धिमान होने के कारण उन्होंने थोड़े ही समय में उन सभी को समझ लिया। फिर उनके गुरुओं ने उनसे कहा कि वे संसार में जाएँ और यदि उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो उनके सभी प्रश्नों का उत्तर दे सके, तो वे उसकी शिष्या बन जाएँ। कुंडलकेसी जंबुद्वीप के कोने-कोने में घूमीं और खुलेआम सभी को चुनौती दी कि वे उनसे प्रतिस्पर्धा करें। इसी कारण वे "जंबुकपरिब्बजिका" के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

एक बार वह सावत्थी आई। भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले उन्होंने रेत का एक टीला बनाया और उस पर युजेनिया की एक शाखा गाड़ दी, जो उनका सभी को चुनौती स्वीकार करने का आमंत्रण देने का सामान्य संकेत था। थेरा सारिपुत्त ने उनकी चुनौती स्वीकार की। कुंडलकेसी ने उनसे एक हजार प्रश्न पूछे और थेरा सारिपुत्त ने उन सभी के उत्तर दिए। जब उनकी बारी आई, तो उन्होंने उनसे केवल यही पूछा, "वह एक क्या है? (एकम नाम किम)?" कुंडलकेसी उत्तर नहीं दे सकीं, इसलिए उन्होंने थेरा सारिपुत्त से प्रश्न का उत्तर सिखाने का अनुरोध किया। थेरा सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि उन्हें पहले भिक्षुणी बनना चाहिए; इसलिए वह थेरी कुंडलकेसी नाम से भिक्षुणी बन गईं। कुछ ही दिनों में वह अरहत बन गईं।

इसके तुरंत बाद, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "क्या यह संभव है कि भिक्षुणी कुंडलकेसी केवल थोड़ा सा धम्म सुनकर ही अरहत बन गईं?" उन्होंने यह भी बताया कि परिबजिका बनने से पहले इस महिला ने अपने चोर पति से लड़ाई की थी और उस पर विजय प्राप्त की थी। तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 102 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध सौ श्लोकों के पाठ से श्रेष्ठ है शिक्षा (धम्म) का एक श्लोक पढ़ना, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाता है।

———————————————————————

श्लोक 103 : एक व्यक्ति युद्ध में दस लाख लोगों को जीत सकता है, परन्तु जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सबसे बड़ा विजेता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून कुण्डलकेसी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नुन कुंडलकेसी के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

राजगृह के एक धनी व्यापारी की इकलौती बेटी थी, जिसकी उम्र लगभग सोलह वर्ष थी और वह अत्यंत सुंदर और आकर्षक थी। उसके माता-पिता ने उसे सात मंजिला महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर शाही ठाठ-बाठ वाले एक कमरे में रखा था और उसकी सेवा के लिए केवल एक दासी रखी थी। एक दिन एक प्रतिष्ठित युवक को चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। उसके हाथ पीछे बांध दिए गए और उसे फांसी के स्थान पर ले जाया गया, रास्ते में हर चौराहे पर उसे कोड़े मारे गए। व्यापारी की बेटी ने भीड़ का शोर सुना, मन ही मन सोचा, "यह क्या है?" महल की छत से नीचे देखा और उसे देखा। देखते ही वह उससे प्रेम करने लगी। वास्तव में, उसके लिए उसकी तड़प इतनी तीव्र थी कि वह बिस्तर पर पड़ गई और खाना-पीना छोड़ दिया। उसकी माँ ने उससे पूछा, "मेरी प्यारी बेटी, इसका क्या मतलब है? अगर मुझे वह युवक मिल जाए, जिसे चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया और जिसे सड़कों पर घसीटा गया, तो जीवन जीने लायक होगा; अगर नहीं, तो जीवन जीने लायक नहीं है।" मैं यहीं और अभी मर जाऊंगी।" बेटी को शांत करने में असमर्थ माँ ने पिता को बताया; लेकिन पिता भी अपनी बेटी को शांत नहीं कर पाए। "अब क्या किया जाए?" उन्होंने सोचा। उन्होंने उस राजा के अधिकारी को, जिसने डाकू को पकड़ा था और जो उसे फांसी के स्थान पर ले जा रहा था, एक हजार सिक्के भेजे और कहा, "यह पैसा ले लो और डाकू को मेरे पास भेज दो।" "ठीक है!" राजा के अधिकारी ने कहा। उसने पैसा लिया, डाकू को रिहा कर दिया, एक अन्य व्यक्ति को मृत्युदंड दिया और राजा को संदेश भेजा, "महाराज, डाकू को फांसी दे दी गई है।"

व्यापारी ने अपनी बेटी का विवाह डाकू से कर दिया। उसने अपने पति का दिल जीतने का निश्चय किया और तब से वह अपने सारे आभूषणों से सजी-धजी अपने हाथों से अपने पति के लिए भोजन बनाने लगी। कुछ दिनों बाद डाकू ने मन ही मन सोचा, "मैं इस स्त्री को कब मार डालूँ, उसके गहने छीनकर बेच दूँ और फिर किसी सराय में भोजन कर सकूँ? यही तो एकमात्र तरीका है!" वह बिस्तर पर लेट गया और खाना खाने से मना कर दिया। वह उसके पास आई और पूछा, "क्या तुम्हें दर्द हो रहा है?" "बिल्कुल नहीं, पत्नी।" "तो शायद मेरे माता-पिता तुमसे नाराज़ हैं?" "वे मुझसे नाराज़ नहीं हैं, पत्नी।" "तो फिर क्या बात है?" "पत्नी, जिस दिन मुझे बाँधकर गलियों में घुमाया गया था, उस दिन मैंने डाकुओं की चट्टान पर रहने वाले देवता से मन्नत माँगकर और भेंट चढ़ाकर अपनी जान बचाई थी; उसी की अलौकिक शक्ति से मैंने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त किया। मैं सोच रहा था कि मैं देवता को भेंट चढ़ाने की अपनी मन्नत कैसे पूरी करूँ।" "पतिदेव, चिंता मत करो; मैं भेंट का प्रबंध कर लूंगी; बताओ क्या चाहिए।" "शहद से सुगंधित चावल का दलिया; और लाजा फूल समेत पाँच प्रकार के फूल।" "ठीक है, पतिदेव, मैं भेंट तैयार कर देती हूँ।" पूरी भेंट तैयार करने के बाद उसने अपने पति से कहा, "चलो, पतिदेव, चलें।" "ठीक है, पत्नी; अपने रिश्तेदारों को यहीं रहने दो; अपने कीमती वस्त्र पहन लो और अपने बहुमूल्य आभूषणों से खुद को सजा लो, और हम खुशी-खुशी हंसते-हंसते और आनंद लेते हुए चलेंगे।" उसने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। लेकिन जब वे अपने गंतव्य पर पहुँचे, तो उसने उससे कहा, "मुझे भेंट की कोई आवश्यकता नहीं है; भेंट के साथ तुम्हें यहाँ लाकर मैंने तुम्हें धोखा दिया।" "तो फिर मुझे यहाँ क्यों लाए, पतिदेव?" "तुम्हें मारने, तुम्हारे आभूषण छीनने और भाग जाने के लिए।" मृत्यु के भय से भयभीत होकर उसने उससे कहा, "पतिदेव, मेरे आभूषण और मेरा शरीर दोनों आपके हैं; आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?" वह बार-बार

उससे विनती करती रही, "ऐसा मत करो;" लेकिन उसका एकमात्र जवाब था, "मैं तुम्हें मार डालूंगा।" "आखिर मुझे मारकर तुम्हें क्या मिलेगा? ये गहने ले लो और मेरी जान बख्श दो।"

उसने मन ही मन सोचा, "अरे, ये तो कितना बुरा काम है! लेकिन, ज्ञान को पकाकर खाने के लिए नहीं बनाया गया है, बल्कि इसलिए बनाया गया है ताकि लोग कोई भी कदम उठाने से पहले सोच-समझ लें। मैं इससे निपटने का कोई तरीका ज़रूर ढूँढूँगी।" और उसने उससे कहा, "पतिदेव, जब उन्होंने आपको चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा और गलियों में घुमाया, तो मैंने अपने माता-पिता को बताया, और उन्होंने आपको छुड़ाने के लिए हज़ारों सिक्के खर्च किए, और आपको अपने घर में जगह दी, और तब से मैं आपकी उपकारक रही हूँ; आज मुझे आपको प्रणाम करने की कृपा कीजिए।" "ठीक है, पत्नी," उसने कहा, उसे प्रणाम करने की कृपा दी, और फिर चट्टान के किनारे पर खड़ा हो गया। उसने उसे अपने दाहिनी ओर रखते हुए उसके चारों ओर तीन बार परिक्रमा की, और चारों ओर से उसे प्रणाम किया। फिर उसने उससे कहा, "पतिदेव, यह आखिरी बार है जब मैं आपको देख रही हूँ। अब से आप मुझे फिर कभी नहीं देखेंगे, और न ही मैं आपको कभी देख पाऊँगी।" और उसने उसे आगे और पीछे से गले लगाया। फिर, उसके पीछे रहते हुए, जब वह चट्टान के किनारे के पास बेखबर खड़ा था, उसने एक हाथ उसके कंधे पर और दूसरा उसकी कमर पर रखा और उसे चट्टान से नीचे फेंक दिया। इस प्रकार डाकू पहाड़ की खाई में जा गिरा और तल पर पहुँचते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। डाकू को चट्टान से नीचे फेंकने के बाद, वह ननों के एक आश्रम में पहुँची। उसने आदरपूर्वक प्रणाम किया और कहा, "बहन, मुझे अपने मठ में नन के रूप में स्वीकार कर लीजिए।" तो उन्होंने उसे नन के रूप में स्वीकार कर लिया।

जब उन्होंने धर्म के हज़ार सिद्धांतों में महारत हासिल कर ली, तो उनसे कहा गया, "तुमने निपुणता प्राप्त कर ली है; अब जंबुद्वीप के कोने-कोने में जाओ और किसी ऐसे व्यक्ति को खोजो जो तुम्हारे साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा कर सके।" तब, उनके हाथों में गुलाब-एप्पल की एक शाखा देकर, उन्होंने उन्हें इन शब्दों के साथ विदा किया, "जाओ, बहन; यदि कोई गृहस्थ तुम्हारे साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा कर सके, तो उसकी दासी बन जाओ; यदि कोई भिक्षु प्रतिस्पर्धा कर सके, तो उसके संघ में भिक्षुणी के रूप में प्रवेश करो।" कोई भी उनके साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सका; वास्तव में, उन्होंने ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली कि जब भी लोग यह घोषणा सुनते, "देखो, गुलाब-एप्पल वाली भिक्षुणी आ रही है," तो वे भाग जाते।

भिक्षा मांगने के लिए किसी कस्बे या गाँव में प्रवेश करने से पहले, वह गाँव के द्वार के सामने रेत का ढेर लगाती और वहाँ अपनी गुलाब-बहु की शाखा रोपती। फिर वह चुनौती देती, "जो मुझसे प्रश्न-उत्तर में बहस कर सके, वह इस गुलाब-बहु की शाखा को अपने पैरों तले रौंद दे।" ऐसा कहकर वह गाँव में प्रवेश करती। कोई भी उस स्थान से आगे जाने का साहस नहीं करता था। जब एक शाखा सूख जाती, तो वह दूसरी ले आती। इसी तरह घूमते हुए वह सावत्थी पहुँची, नगर के द्वार के सामने शाखा रोपी, हमेशा की तरह चुनौती दी और भिक्षा मांगने के लिए अंदर चली गई। कई लड़के शाखा के चारों ओर जमा हो गए और यह देखने के लिए प्रतीक्षा करने लगे कि क्या होता है। तब पूज्य सारिपुत्त ने कहा, "आगे बढ़ो, लड़कों, इस शाखा को अपने पैरों तले रौंद दो।"

जब नन लौटी, तो उसने पूछा, "आदरणीय, क्या आपने उनसे मेरी शाखा को पैरों तले रौंदने के लिए कहा था?" "जी बहन।" "तो फिर, मेरे साथ प्रश्न और उत्तर मिलाइए।" "ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगा।"

भिक्षुणी ने पूज्य गुरु से कहा, "पूज्य गुरु, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ।" "पूछो, बहन।" इस प्रकार उसने उनसे धर्म के हज़ार सिद्धांतों के बारे में पूछा। भिक्षुणी द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न का पूज्य गुरु ने सही उत्तर दिया। फिर उन्होंने उससे कहा, "मैं तुमसे केवल एक प्रश्न पूछूँगा; क्या तुम मुझे उत्तर दोगी?" "पूछो, पूज्य गुरु।" तब पूज्य गुरु ने उससे पूछा, "वह एक क्या है?" उसने मन ही मन कहा, "यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर मुझे आना चाहिए," लेकिन उत्तर न जानते हुए उसने पूज्य गुरु से पूछा, "वह क्या है, पूज्य गुरु?" "यह बुद्ध का प्रश्न है, बहन।" "मुझे भी उत्तर बताइए, पूज्य गुरु।" "यदि तुम हमारे संघ में प्रवेश करोगी, तो मैं तुम्हें उत्तर बता दूँगा।" "ठीक है, मुझे संघ में प्रवेश दे दीजिए।" पूज्य गुरु ने भिक्षुणियों को संदेश भेजा और उसे संघ में प्रवेश दिलवा दिया। संघ में प्रवेश करने के बाद, उन्होंने इसे अपना पूर्ण संकल्प बना लिया, कुण्डलकेसी नाम धारण किया और कुछ ही दिनों में अलौकिक शक्तियों से संपन्न अरहत बन गईं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 102)

यो च अनत्थपादसंहिता गाथा शतं भसे
यं सुत्वा उपसम्मति एकं धम्मपदं सेय्यो

यो सीए : यदि कोई; अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; गाथा सताम् [सता]: सौ श्लोक; भासे : सुनाना था; यं सुत्व : यदि कोई सुन रहा हो; उपसम्मति . एक व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं : एक भी; धम्मपदं [धम्मपद]: धम्म शब्द; सेय्यो [सेय्या]: नेक है।

कोई व्यक्ति निरर्थक अभिव्यक्तियों से भरे सैकड़ों श्लोकों का पाठ कर सकता है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति ज्ञान से भरपूर, शांतिदायक श्लोक की एक पंक्ति का पाठ करे, तो वह कहीं अधिक मूल्यवान और श्रेष्ठ होगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 103)
यो सङ्गमे सहस्सेन सहस्सं मानुसे जिने ,
च एकं अत्तनं जेय्य स वे संगमजुत्तमो ।
यो : यदि कोई; संगामे : युद्ध में; सहस्सेना सहस्सं [सहस्स]: हजारों-हजारों (लाखों); मानुसे : पुरुष; जिने : विजय प्राप्त करें; च एकं अत्तनं [अत्तन]: यदि स्वयं (जो केवल एक है); जेय्या : विजय प्राप्त करें; सो : वह; वे : वास्तव में; संगामजुत्तमो [संगामजुत्तमा]: युद्धों का सबसे बड़ा विजेता है।
कोई व्यक्ति हजार लड़ाइयों में हजार लोगों को जीत सकता है। लेकिन जो व्यक्ति केवल एक व्यक्ति को जीत लेता है, यानी स्वयं को, वही सबसे बड़ा विजेता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 102-103)
अत्तानं : स्वयं का स्व। इस श्लोक में स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाले व्यक्ति की सर्वोच्च विजय स्थापित की गई है। स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति केवल एक ही व्यक्ति—स्वयं—पर विजय प्राप्त करता है। परन्तु यह विजय युद्ध में हजारों को जीतने से कहीं अधिक महान है। इसका तात्पर्य यह है कि युद्ध में हजारों को हराना, अपने अज्ञान पर विजय प्राप्त करने की तुलना में अपेक्षाकृत आसान है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 104,105

———————————————————————————

(धम्मपद 102 और 103) <<<< पिछला || धम्मपद 104 और 105 || अगला >>>> (धम्मपद 106)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 104 और 105 - अनन्तपुच्चकब्राह्मण वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 104 और 105 - अनत्थपुच्चकब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Atta have jitam seyyo
ya cayam itara paja
अत्तदन्तस्सा पोसासा
niccam sannatacarino.

Neva devo na gandhabbo
na Maro saha Brahmuna
जितम अपजितम कायिरा
tatharupassa jantuno.

———————————————————————————
श्लोक 104 एवं 105 : दूसरों पर विजय प्राप्त करने से बेहतर है स्वयं पर विजय प्राप्त करना। न तो कोई देवता, न गंधर्व, न ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित कोई भी उस व्यक्ति की विजय को पराजित कर सकता है जो स्वयं पर संयम रखता है।

———————————————————————————
ब्राह्मण अनत्थपुच्छक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण अनत्थपुच्छक के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (104) और (105) का उच्चारण किया।

एक बार अनत्थपुच्छक नाम का एक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय गुरुदेव, मुझे लगता है कि आप केवल लाभकारी प्रथाओं को ही जानते हैं, लाभकारी प्रथाओं को नहीं।” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि वे लाभकारी और हानिकारक प्रथाओं को भी जानते हैं। तब बुद्ध ने धन की हानि करने वाली छह प्रथाओं का वर्णन किया; वे हैं: (1) सूर्योदय तक सोना, (2) आदतन आलस्य, (3) क्रूरता, (4) मादक पदार्थों का सेवन जिससे नशा और लापरवाही होती है, (5) देर रात सड़कों पर अकेले घूमना, और (6) यौन दुराचार।

इसके बाद, बुद्ध ने ब्राह्मण से पूछा कि वह अपना जीवन यापन कैसे करता है, और ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वह जुआ खेलकर अपना जीवन यापन करता है। फिर बुद्ध ने उससे पूछा कि क्या वह जीतता है या हारता है। जब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वह कभी हारता है और कभी जीतता है, तो बुद्ध ने उससे कहा, "जुआ के खेल में जीतना नैतिक विकारों पर विजय प्राप्त करने के आगे कुछ भी नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 104 एवं 105 : दूसरों पर विजय प्राप्त करने से बेहतर है स्वयं पर विजय प्राप्त करना। न तो कोई देवता, न गंधर्व, न ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित कोई भी उस व्यक्ति की विजय को पराजित कर सकता है जो स्वयं पर संयम रखता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण अनत्थपुच्छक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ब्राह्मण अनत्थपुच्छक के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार अनत्थपुच्छक नाम का एक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय बुद्ध, मुझे लगता है कि आप केवल लाभकारी प्रथाओं को ही जानते हैं, लाभकारी प्रथाओं को नहीं।” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि वे लाभकारी और हानिकारक प्रथाओं को भी जानते हैं।

फिर बुद्ध ने धन की हानि करने वाले छह कार्यों का वर्णन किया; वे इस प्रकार हैं:

सूर्योदय होने तक सोते रहना।

आदतन आलस्य,

क्रूरता,

मादक पदार्थों का सेवन जिससे नशा और लापरवाही होती है,

अजीब समय पर सड़कों पर अकेले टहलना, और

यौन दुराचार।

जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसने बुद्ध की प्रशंसा करते हुए कहा, "बहुत खूब, बहुत खूब, हे जनसमूह के गुरु, जनसमूह के नेता! आप वास्तव में लाभ और हानि दोनों को जानते हैं।" "जी, ब्राह्मण, हानि को मुझसे बेहतर कोई नहीं जानता।" तब बुद्ध ने मन ही मन विचार किया कि ब्राह्मण को ऐसा करने के लिए क्या प्रेरित कर रहा है, और उससे पूछा, "ब्राह्मण, तुम अपना जीवन यापन कैसे करते हो?" "जुए से, पूज्यवर।" "पर कौन जीतता है, तुम या दूसरा आदमी?" "कभी मैं जीतता हूँ और कभी दूसरा आदमी।" तब बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, दूसरे को हराने वाले की जीत तुच्छ बात है; ऐसी जीत में कोई श्रेष्ठ लाभ नहीं है। परन्तु जो अपने पापों पर विजय प्राप्त कर स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ विजय प्राप्त करता है, क्योंकि ऐसी विजय को कोई हार में नहीं बदल सकता।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 104)

अत्ता जितां हवे सेय्यो , या च अयं इतर पजा

अत्तदन्तस्सा निक्कं सन्नताकारिनो पोससा ।

अत्ता : स्वयं का स्वयं; जिताम् [जिता]: जीत लिया गया; है सेयो [सेय्या]: वास्तव में महान है; या च अयं इतर पजा : यदि अन्य लोगों पर विजय प्राप्त की जाती है (वह महान नहीं है); सीए अत्तदंतस्सा : आत्म-विजेता; निक्कां [निक्का]: लगातार; सन्नाटाकारिनो [सन्नाटाकारिना]: व्यवहार में संयमित है; पोससा : उस प्रकार के व्यक्ति का।

स्वयं पर विजय प्राप्त करना दूसरों पर विजय प्राप्त करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाले की जीत कभी हार में नहीं बदल सकती। वह एक संयमी और अनुशासित व्यक्ति बना रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 105)

तथारूपस्सा जंतुनो जितां देवो ,

न एव अपजितं कयिरा गंधब्बो

na Brahmunā saha Māro na
tathārūpassa jantuno [jantuna]: उस प्रकार के व्यक्ति का; jitaṃ [jita]: विजय; devo : देवदूत या देवता; na eva apajitaṃ kayirā : हार में परिवर्तित नहीं किया जा सकता; gandhabbo [gandhabba]: आत्मा; Brahmunā : सृष्टिकर्ता; saha : और; Māra : शैतान; na : हार में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।
इस प्रकार की विजय को न तो कोई देवता, न कोई आत्मा, न कोई मारा (राक्षस) और न ही कोई ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) पराजित कर सकता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 104-105)
गंधब्बो : दिव्य प्राणियों का एक समूह जो गायन, नृत्य और आनंद में लीन रहता है। इस श्लोक में कहा गया है कि एक गंधब्बो भी आत्मविजयी की विजय को पराजय में नहीं बदल सकता। पारंपरिक टीकाओं के अनुसार, गंधब्बो ' चातुर्महाराजिका ' नामक स्वर्ग में निवास करते हैं - जो स्वर्ग के चार महान राज्य हैं। वे संगीत और नृत्य में आनंद लेते हैं।
एक पारंपरिक श्लोक में उनके समूहों को इस प्रकार सूचीबद्ध किया गया है:

Hā , hū hūs citgraratho ,

Hanso , vishavāvasus tathā

Gomāyustumburu nandi ,

Reva mādrusca te smrutā .

"उन्हें हा-हा , हू , चित्ररथ , हंस , विश्ववसु , गोमय , तुम्बुरु और नंदी जैसे नामों से जाना जाता है ।"
प्राचीन ग्रंथ ' वह्नी पुराण ' (अग्नि की आराधना) में इन्हें ग्यारह समूहों में विभाजित किया गया है।
इन सभी गंधर्बों को दो मुख्य समूहों में विभाजित किया गया है:
मातर्व गान्धर्व (जो इस युग में अपने पूर्व कर्मों के कारण उस अवस्था में जन्म लेते हैं);
देव गंधर्व (वे लोग जो पूर्व युगों में पुण्य कर्मों के कारण उस अवस्था में जन्म लेते हैं)।
अत्तदन्तस्स पोस्स्स : उस व्यक्ति को जिसने अपने आप पर विजय प्राप्त कर ली हो। बौद्ध चिंतन में, व्यक्ति की पहचान के लिए कभी-कभी अत्ता (आत्मा या स्वयं) का उल्लेख किया जाता है। लेकिन, आत्माहीनता या निस्वार्थता (अनत्ता) की अवधारणा बौद्ध चिंतन का एक केंद्रीय सिद्धांत है। इस अवधारणा पर विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है: मन और पदार्थ के अलावा, जो इस तथाकथित अस्तित्व का निर्माण करते हैं, बौद्ध धर्म अमर आत्मा या शाश्वत अहंकार के अस्तित्व का दावा नहीं करता है, जिसे मनुष्य ने किसी रहस्यमय स्रोत से रहस्यमय तरीके से प्राप्त किया हो। एक शाश्वत आत्मा अनिवार्य रूप से बिना किसी परिवर्तन के हमेशा एक जैसी ही रहती है। यदि आत्मा, जिसे मनुष्य का सार माना जाता है, शाश्वत है, तो न तो उत्थान हो सकता है और न ही पतन। न ही कोई यह समझा सकता है कि 'विभिन्न आत्माएँ प्रारंभ में इतनी भिन्न-भिन्न क्यों होती हैं।' शाश्वत स्वर्ग में अनंत आनंद और शाश्वत नरक में अंतहीन पीड़ा के अस्तित्व को उचित ठहराने के लिए, अमर आत्मा की परिकल्पना करना नितांत आवश्यक है।
एक दार्शनिक लिखते हैं, “यह कहा जाना चाहिए कि आत्मा और शरीर के बीच का पुराना भेद समाप्त हो चुका है, क्योंकि न केवल 'पदार्थ' ने अपनी ठोसता खो दी है, बल्कि मन ने अपनी आध्यात्मिकता भी खो दी है। मनोविज्ञान अभी वैज्ञानिक रूप धारण करना शुरू कर रहा है। मनोविज्ञान की वर्तमान स्थिति में, अमरता में विश्वास को विज्ञान से कोई समर्थन नहीं मिल सकता।”
ब्रह्मांड की पहेली के विद्वान लेखक के अनुसार:
यह धार्मिक प्रमाण कि एक व्यक्तिगत सृष्टिकर्ता ने मनुष्य में अमर आत्मा (जिसे सामान्यतः दैवीय आत्मा का अंश माना जाता है) का संचार किया है, एक सरासर मिथक है। यह ब्रह्मांडीय प्रमाण कि 'संसार की नैतिक व्यवस्था' मानव आत्मा की शाश्वतता की मांग करती है, एक निराधार हठधर्मिता है। यह प्रयोजनवादी प्रमाण कि मनुष्य का 'उच्चतर भाग्य' मृत्यु के बाद उसकी अपूर्ण, सांसारिक आत्मा के पूर्णीकरण से जुड़ा है, एक झूठे मानववाद पर आधारित है। यह नैतिक प्रमाण कि सांसारिक अस्तित्व की कमियों और अतृप्त इच्छाओं को अनंत काल के पार 'प्रतिपूरणीय न्याय' द्वारा पूरा किया जाना चाहिए, एक पवित्र इच्छा से अधिक कुछ नहीं है। यह नृवंशविज्ञान संबंधी प्रमाण कि अमरता में विश्वास, ईश्वर में विश्वास की तरह, एक सहज सत्य है, जो समस्त मानवता के लिए समान है, वास्तव में एक त्रुटि है। यह सत्तामीमांसा संबंधी प्रमाण कि आत्मा, एक सरल, अमूर्त और अविभाज्य इकाई होने के कारण, मृत्यु के क्षय में शामिल नहीं हो सकती, मानसिक घटनाओं के एक पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण पर आधारित है; यह एक आध्यात्मिक भ्रांति है। ये सभी और इसी तरह के अन्य प्रमाण 'अथाहवाद के प्रमाण' संकटग्रस्त स्थिति में हैं; पिछले कुछ दशकों की वैज्ञानिक आलोचना ने उन्हें पूरी तरह से निष्फल कर दिया है। यदि इस जीवन से अगले जीवन में आत्मा या प्राण के रूप में कुछ भी नहीं जाता, तो फिर पुनर्जन्म किसका होता है? इस प्रश्न में यह मान लिया गया है कि पुनर्जन्म लेने के लिए कुछ न कुछ है। कुछ शताब्दियों पहले यह तर्क दिया गया था - "कोजिटो, एर्गो सम" (मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ)। सत्य है, लेकिन पहले यह सिद्ध करना होगा कि सोचने के लिए एक "मैं" है। हम कहते हैं कि

सूर्य पूर्व से उगता है और पश्चिम में अस्त होता है, हालाँकि हम जानते हैं कि वास्तव में ऐसा नहीं है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि कोई व्यक्ति एक ही स्थान पर दो बार प्रहार नहीं कर सकता, भले ही देखने में ऐसा लगे। सब कुछ इतनी जल्दी बदल जाता है। क्योंकि हम दो क्षणों में एक समान नहीं होते।
बौद्ध धर्म के अनुयायी एक दार्शनिक की इस बात से सहमत हैं कि, "स्पष्ट रूप से कोई न कोई कारण है जिसके चलते मैं वही व्यक्ति हूं जो मैं कल था, और इससे भी अधिक स्पष्ट उदाहरण लें तो, यदि मैं एक ही समय में किसी व्यक्ति को देखता हूं और उसे बोलते हुए सुनता हूं, तो कोई न कोई अर्थ है जिसके चलते मैं देखता और सुनता हूं।"
ब्रह्मा : इन श्लोकों में कहा गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त आत्मविजय को न तो गंधर्व और न ही ब्रह्मा नष्ट कर सकते हैं । ब्रह्मा , ब्रह्मकायिक-देव हैं ।
ब्रह्म-कायिक-देव : ब्रह्मलोक के स्वर्गीय प्राणी सूक्ष्म भौतिक जगत के तीन प्रथम लोकों (रूपलोक) में निवास करते हैं, जो प्रथम समाधि (झान) के अनुरूप हैं। उनके सर्वोच्च शासक को महाब्रह्मा कहा जाता है । व्यंग्यात्मक विनोद के साथ वे कहते हैं: 'मैं ब्रह्मा हूं, महाब्रह्मा, सर्वोच्च, अजेय, सर्वज्ञ, शासक, भगवान, सृष्टिकर्ता, निर्माता, परिपूर्ण, संरक्षक, नियंत्रक, समस्त का पिता हूं।'
ब्रह्मलोक : व्यापक अर्थ में 'ब्रह्मलोक' सूक्ष्म भौतिक (रूपलोक) और अभौतिक जगत (अरूपलोक) का नाम है; हालांकि, संकीर्ण अर्थ में, यह केवल सूक्ष्म भौतिक जगत के पहले तीन स्वर्गों के लिए ही प्रयुक्त होता है।
ब्रह्मा देवताओं के हैं।
देव (शाब्दिक अर्थ: प्रकाशमान; लैटिन शब्द deus से संबंधित), स्वर्गीय प्राणी, देवता, दिव्य प्राणी; वे प्राणी हैं जो सुखमय लोकों में निवास करते हैं और जो आमतौर पर मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। हालांकि, वे सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में बंधे होते हैं, और इस प्रकार जीवन के चक्र से मुक्त नहीं होते, और दुख से भी मुक्त नहीं होते।
दिव्य प्राणियों के कई वर्ग हैं।
I. कामुक क्षेत्र (कामवाकर या काम-लोक) के स्वर्गीय प्राणियों की 5 श्रेणियां हैं: चातुर्महाराजिकादेव , तावतिंसा , यम , तुसिता , निम्माना-रति , परनिम्मिता-वासवत्ती ।
II. सूक्ष्म भौतिक जगत (रूपावचरा या रूपलोक) के दिव्य प्राणी निम्नलिखित हैं:
(1) ब्रह्म-पारिसाज्ज , ब्रह्म-पुरोहित , महा-ब्रह्म । इन तीन वर्गों में से वे लोग पुनर्जन्म लेंगे जिन्हें प्रथम समाधि (झान) का दुर्बल, मध्यम या पूर्ण अनुभव होगा।
(2) परित्ताबा , अप्पमानाभ , आहस्सर । यहाँ द्वितीय समाधि का अनुभव रखने वाले पुनर्जन्म लेंगे।
(3) परित्त-सुभा , अप्पमान-सुभा , सुभा किण्ण (या किण्ण)। यहाँ तृतीय समाधि का अनुभव रखने वाले पुनर्जन्म लेंगे।
(4) वेहप्पला , असञ्ञ-सत्त , शुद्धावास । प्रथम दो वर्गों में से वे पुनर्जन्म लेंगे जिन्हें चतुर्थ समाधि का अनुभव है, परन्तु तृतीय वर्ग में केवल अनागामी ही पुनर्जन्म लेंगे ।
तृतीय. अभौतिक क्षेत्र (अरुपावचर या अरूप-लोक) के स्वर्गीय प्राणियों के 4 ग्रेड हैं: असीमित अंतरिक्ष के क्षेत्र के स्वर्गीय प्राणी (आकासनचायतन्युपगा-देव), असीमित चेतना के (विनानाचायतन्युपगा-देवा , शून्यता का (अकिंचान्यातनुपगा-देवा), न तो-धारणा-न ही गैर-धारणा (नेवासना-नासान्यातानुपगा-देवा)। यहां 4 अभौतिक क्षेत्रों (अरूपायतन) का अनुभव रखने वाले लोग पुनर्जन्म लेंगे ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 106

(धम्मपद 104 और 105) <<<< पिछला || धम्मपद 106 || अगला >>>> (धम्मपद 107)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 106 - सारिपुत्तथेरस्सा मातुल ब्राह्मण वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 106 - सारिपुत्तथेरस्सा मातुल ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Mase mase sahassena(1)
यो वजेथा सतम समम
ekanca bhivatattanam
मुहत्तमपी पूजाये
sa yeva pujana seyyo
yance vassasatam hutam.

श्लोक 106 : सौ वर्षों तक माह दर माह, कोई व्यक्ति हजार कहपना (सिक्कों) के मूल्य का दान (साधारण लोगों को) दे सकता है; फिर भी यदि कोई क्षण भर के लिए भी अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करने वाले भिक्षु को प्रणाम करे, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक (साधारण लोगों को) दान देने से बेहतर है।

---

1. सहस्स: एक हजार; इस संदर्भ में, एक हजार कहपना (सिक्के)। एक कहपना सिक्का तांबे, चांदी या सोने का हो सकता है।

थेरा सारिपुत्त के चाचा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (106) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जो थेरा सारिपुत्त के मामा थे।
एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने मामा ब्राह्मण से पूछा कि क्या वे कोई पुण्य कर्म कर रहे हैं। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वे निगंथ तपस्वियों को प्रति माह एक हजार कहपन (सिक्के) के बराबर दान देते हैं, इस आशा में कि अगले जन्म में उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त होगा। तब थेरा सारिपुत्त ने उन्हें समझाया कि उनके गुरुओं ने उन्हें झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक का मार्ग नहीं जानते। ऐसा कहकर वे अपने मामा ब्राह्मण को बुद्ध के पास ले गए और उनसे धर्म की व्याख्या करने का अनुरोध किया, जिससे निश्चित रूप से ब्रह्मलोक प्राप्त होगा।
बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "हे ब्राह्मण, अपने गुरुओं को एक हजार कहपना (सिक्के) दान करने की बजाय किसी भिक्षु को एक चम्मच भिक्षा देना कहीं बेहतर होगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 106 : सौ वर्षों तक माह दर माह, कोई व्यक्ति हजार कहपना (सिक्कों) के मूल्य का दान (साधारण लोगों को) दे सकता है; फिर भी यदि कोई क्षण भर के लिए भी अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करने वाले भिक्षु को प्रणाम करे, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक (साधारण लोगों को) दान देने से बेहतर है।

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के मामा ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय सारिपुत्त के चाचा की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ब्राह्मण के संदर्भ में कहा था, जो पूज्य सारिपुत्त के मामा थे।
एक बार पूज्य सारिपुत्त अपने मामा के पास गए और बोले, “ब्राह्मण, क्या आप कभी कोई अच्छा कर्म करते हैं?” “जी, मैं करता हूँ।”
“आप क्या करते हैं?” “मैं हर महीने एक हजार सिक्कों के बराबर दान देता हूँ।”
“आप यह पैसा किसे देते हैं?” “नग्न तपस्वियों को, पूज्यवर।”
“और इससे आपको क्या लाभ होने की आशा है?” “मुझे ब्रह्मलोक प्राप्त होने की आशा है।”
“लेकिन क्या यही ब्रह्मालोक तक पहुँचने का मार्ग है?” “जी हाँ, पूज्यवर।”
“आपको यह किसने बताया?” “मेरे शिक्षकों ने मुझे यह बताया, पूज्यवर।”

“ब्राह्मण, न तो तुम और न ही तुम्हारे गुरु ब्रह्मलोक का मार्ग जानते हैं। केवल बुद्ध ही उस मार्ग को जानते हैं। मेरे साथ आओ, मैं उनसे तुम्हें ब्रह्मलोक का मार्ग बताऊँगा।”
अतः पूज्य सारिपुत्त अपने चाचा को साथ लेकर बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताते हुए कहा, “पूज्यवर, इस ब्राह्मण ने ऐसा-ऐसा कहा है। कृपा करके उसे ब्रह्मलोक का मार्ग बता दीजिए।”
बुद्ध ने पूछा, “ब्राह्मण, क्या आपकी रिपोर्ट सही है?” “जी हां, पूज्यवर।”
“हे ब्राह्मण, यदि तुम इस प्रकार सौ वर्षों तक दान करते रहो, तो भी किसी आस्तिक के लिए एक क्षण के लिए ही मेरे शिष्य पर दृष्टि डालना या उसे एक चम्मच उबले हुए चावल देना कहीं अधिक फलदायी होगा।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 106)
यो मासे मासे सहस्सेन सततं समं यजेथा
भवितत्तनं एकं च मुहुतं अपि पूज्ये सीई
वससातं यं हुतां स पूजना येव सेय्यो
यो : यदि कोई: मसे मसे : महीने दर महीने; सहस्सेना : हजार के खर्च पर; सतं समं [सम]: सौ वर्षों तक; यजेत : भिक्षा देता है: भावितत्तानं [भावितत्तान]: (परन्तु यदि कोई व्यक्ति) संयमित और अनुशासित मन से; एकं : एक महान अरहत; च मुहत्तं अपि : क्षण भर के लिए भी; पूजये : आराधना करता है; चे वस्ससतं [वस्ससत]: पूरे सौ वर्षों तक; यं हुतं [हुत]: अग्नि पूजा करता है; सा पूजा येव : केवल वही आराधना; सेय्यो [सेय्य]: श्रेष्ठ है।
कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक हर महीने बलिदान दे सकता है; लेकिन एक क्षण के लिए ही सही, आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति को दिया गया सम्मान सौ वर्षों तक किए गए बलिदानों से कहीं अधिक होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 106)
हुतं : अनुनय; अर्पण। यह शब्द सामान्यतः गैर-बौद्धों द्वारा किए जाने वाले बलिदानों को दर्शाता है। बुद्ध के समय में अग्नि पूजा को हुत कहा जाता था। प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य में अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिए अग्नि में घी डालने को हुत कहा गया है ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 107

(धम्मपद 106) <<<< पिछला || धम्मपद 107 || अगला >>>> (धम्मपद 108)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 107 - सारिपुत्तथेरसा भगिनेय वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 107 - सारिपुत्तत्थेरस्सा भगिनेय वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jantu
aggim paricare vane
ekanca bhavitattanam
मुहत्तमपी पूजाये
sa yeva pujana seyyo
yance vassasatam hutam.

श्लोक 107 : मनुष्य सौ वर्षों तक वन में पवित्र अग्नि की देखभाल कर सकता है, फिर भी यदि एक क्षण के लिए भी कोई उस भिक्षु को प्रणाम करे जिसने अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास किया है, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक अग्नि-पूजा में बलिदान करने से बेहतर है।

थेरा सारिपुत्त के भतीजे की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के भतीजे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (107) कहा।
एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने ब्राह्मण भतीजे से पूछा कि क्या वह कोई पुण्य कर्म कर रहा है। उसके भतीजे ने उत्तर दिया कि वह हर महीने अग्नि-पूजा में एक बकरे की बलि देता है, इस आशा में कि अगले जन्म में वह ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) में प्रवेश करेगा। तब थेरा सारिपुत्त ने उसे समझाया कि उसके गुरुओं ने उसे झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग नहीं जानते।
फिर वह अपने भतीजे, उस युवा ब्राह्मण को बुद्ध के पास ले गया। वहाँ बुद्ध ने उसे वह धम्म सिखाया जो ब्राह्मण जगत की ओर ले जाता है और ब्राह्मण से कहा, "हे युवा ब्राह्मण, एक क्षण के लिए भिक्षुओं को प्रणाम करना सौ वर्षों तक अग्नि पूजा में यज्ञ करने से कहीं बेहतर है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 107 : मनुष्य सौ वर्षों तक वन में पवित्र अग्नि की देखभाल कर सकता है, फिर भी यदि एक क्षण के लिए भी कोई उस भिक्षु को प्रणाम करे जिसने अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास किया है, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक अग्नि-पूजा में बलिदान करने से बेहतर है।

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के भतीजे ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय सारिपुत्त के भतीजे की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के भतीजे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
पूज्यवर अपने भतीजे के पास गए और बोले, “ब्राह्मण, क्या तुम कभी कोई अच्छा कर्म करते हो?” “जी हाँ, पूज्यवर।”
“तुम क्या करते हो?” “मैं हर महीने एक जानवर की बलि देता हूँ और बलि की अग्नि की देखभाल करता हूँ।”
“तुम ऐसा किसलिए करते हो?” “वे कहते हैं कि यही ब्रह्मलोक जाने का मार्ग है।”
“आपको यह किसने बताया?” “मेरे शिक्षकों ने, आदरणीय।”
“न तो तुम और न ही तुम्हारे गुरु ब्रह्मलोक का मार्ग जानते हैं। चलो, बुद्ध के पास चलते हैं।”
अतः पूज्य सारिपुत्त अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए, उन्हें घटना की जानकारी दी और उनसे कहा, “पूज्यवर, इस व्यक्ति को ब्रह्मलोक का मार्ग बताइए।”
बुद्ध ने कहा, “ब्राह्मण, क्या तुम्हारी रिपोर्ट सही है?” “जी हां, पूज्यवर।”
“हे ब्राह्मण, यदि तुम इस प्रकार सौ वर्षों तक यज्ञ की अग्नि की देखभाल करो, तो भी तुम्हारे इस कार्य का पुण्य मेरे शिष्य को एक क्षण के लिए भी दिए गए सम्मान के बराबर नहीं होगा।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 107)
यो जंतु वने सी वससातं अग्गिं परिचरे भवितत्तनं एकं
मुहुत्तं अपि पूजये वससातं यं हुतां स पूजन एव सेय्यो
यो जंतु : कुछ व्यक्तिगत; फलक : जंगल में; सीई : यदि; वाससाताम् [वाससाता]: सौ वर्षों तक; एग्गी परिकारे : अग्नि की पूजा करता है; भावितत्तनं [भावितत्तन]: स्वयं में अनुशासित और संयमित; एकं : एक महान अरहत; मुहुत्तं अपि : केवल एक क्षण के लिए; पूजये : आराधना करता है; वाससाताम् [वाससाता]: सौ वर्षों तक; यं हुतां [हुता]: यदि अग्नि पूजा आयोजित की गई हो; सा पूजन एव : वह एकमात्र आराधना; सेय्यो [सेय्या]: श्रेष्ठ है
कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक वन में अग्नि पूजा कर सकता है। फिर भी, जो व्यक्ति एक क्षण के लिए भी संयमी, अनुशासित अरहंत की आराधना करता है, उसके लिए उस क्षण की आराधना सौ वर्षों की अग्नि पूजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ होती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 107)
aggiṃ paricare vane : यदि कोई वन में रहकर अग्नि को यज्ञ करे। पूज्य सारिपुत्त के मामा, उनके भतीजे और उनके मित्र से संबंधित दो कथाओं में, जिनसे श्लोक उत्पन्न हुए, बुद्ध के समय की वैदिक हिंदू प्रथाओं द्वारा स्वीकृत यज्ञों का उल्लेख किया गया है। इस

श्लोक में, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के भतीजे को बताया गया है कि यदि वह इस अनुष्ठान के माध्यम से उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है, तो वन में रहकर अग्नि-देव को यज्ञ करना व्यर्थ है। बुद्ध की शिक्षा, जो आंतरिक पवित्रता और निष्कलंक आचरण पर बलि देती है, ने समकालीन उन प्रणालियों के विरुद्ध एक मजबूत प्रभाव डाला जो अग्नि-पूजा जैसी बाहरी प्रथाओं के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करना चाहती थीं। इस श्लोक के उदाहरण में, अग्नि-पूजा वन में होती है। अग्नि-उपासक ने अपने गृहस्थ जीवन का त्याग कर वन में जाकर अग्नि-पूजा को अपना संपूर्ण जीवन बना लिया है। उसने अग्नि पूजा की इस रस्म को इतना महत्व इसलिए दिया है क्योंकि वह आश्वस्त है कि केवल यही रस्म उसे ब्रह्मा के लोक में जीवन सुनिश्चित करेगी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 108

(धम्मपद 107) <<<< पिछला || धम्मपद 108 || अगला >>>> (धम्मपद 109)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 108 - सारिपुत्तथेरस्सा सहायक ब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 108 - सारिपुत्तथेरस्सा सहायक ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यमकिन्सि यित्थं वा हुतम वा लोके
समवच्चरं यजेथा पुन्नापेक्खो
sabbampi tam na catubhagameti
abhivadana ujjugatesu seyyo.

श्लोक 108 : इस संसार में, पुण्य कमाने के उद्देश्य से व्यक्ति वर्ष भर छोटे-बड़े बलिदान कर सकता है; ये सभी बलिदान सही मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की उपासना से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं हैं।

थेरा सारिपुत्त के मित्र की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के एक मित्र के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (108) कहा।

एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने एक मित्र ब्राह्मण से पूछा कि क्या वह कोई पुण्य कर्म कर रहा है, तो उसने उत्तर दिया कि वह अगले जन्म में ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) में जाने की आशा में बड़े पैमाने पर यज्ञ कर रहा है। थेरा सारिपुत्त ने उसे बताया कि उसके गुरुओं ने उसे झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग नहीं जानते। तब वह अपने मित्र को बुद्ध के पास ले गए, जिन्होंने उसे ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग दिखाया। थेरा सारिपुत्त के मित्र से बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, वर्ष भर छोटे-बड़े यज्ञ करने से श्रेष्ठ है कि वह क्षण भर के लिए ही आर्यों की उपासना करे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 108 : इस संसार में, पुण्य कमाने के उद्देश्य से व्यक्ति वर्ष भर छोटे-बड़े बलिदान कर सकता है; ये सभी बलिदान सही मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की उपासना से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं हैं।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त के मित्र की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के एक मित्र के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पूज्यवर उनके पास गए और उनसे पूछा, “ब्राह्मण, क्या तुम कभी कोई पुण्य कर्म करते हो?” “जी हाँ, पूज्यवर।”
“आप क्या करते हैं?” “मैं बलि चढ़ाता हूँ।” (हमें बताया जाता है कि उस समय, भारी धनराशि खर्च करके बलि चढ़ाने का रिवाज था।)
उस आदरणीय गुरु ने अपने साथी से इस प्रकार पूछताछ करने के बाद, उसे बुद्ध के पास ले जाकर घटना के बारे में बताया और उनसे कहा, "आदरणीय गुरु, इस व्यक्ति को ब्रह्मलोक का मार्ग बताइए।"
बुद्ध ने उससे पूछा, “ब्राह्मण, क्या तुम्हारी जानकारी सही है?” “हाँ,” ब्राह्मण ने उत्तर दिया।
“हे ब्राह्मण, यदि तुम एक वर्ष तक बलि चढ़ाओ, तो भी क्या तुम्हारा यह कार्य उस व्यक्ति के कार्य के चतुर्थ भाग के बराबर नहीं होगा जो विश्वासपूर्वक हृदय से लोगों को दान देता है, या जो सद्भावपूर्वक मेरे शिष्यों को आदर अर्पित करता है?”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 108)
लोके पुनापेखो यां किंचि यिट्ठं वा हुतां वा संवच्चरं यजेथा
तं सब्बं अपि न चतुभागं न एति उज्जुगतसु अभिवदना सेय्यो
लोके : इस संसार में; पुन्ञपेखो [पुन्ञपेखा]: भलाई चाहने वाला; यं किंची यिट्ठं वा : यहां तक कि छोटा दान भी; हुतं वा : बड़ा दान; संवच्छरं [संवच्छर]: पूरे वर्ष के लिए; यजेत : भेंट; तं सब्बं अपि : वह सब जो; चतुभागं न एति : एक चौथाई भी नहीं होता; उज्जुगतेसु : सीधे चलने वाला व्यक्ति (अरहत); अभिवादना : प्रणाम करने वाला; सेय्यो [सेय्य]: जो बड़ा है
इस संसार में पुण्य कमाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति धार्मिक त्योहारों के दौरान दान-पुण्य कर सकता है। या फिर वह पूरे वर्ष भर विस्तृत यज्ञ कर सकता है। परन्तु इन सभी कर्मों से प्राप्त पुण्य, सीधे मार्ग पर चलने वाले अरहत की आराधना करने से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 108)
ब्रह्मा : इस अध्याय के कई श्लोकों में ब्रह्मा का उल्लेख है। इन श्लोकों के उच्चारण के पीछे की कथाएँ भी उन लोगों से संबंधित हैं जिन्होंने ब्रह्मालोक की प्राप्ति के उद्देश्य से विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन किया। ब्रह्मा और ब्रह्मालोक की अवधारणा के प्रति बौद्धों का क्या दृष्टिकोण है? धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र (बुद्ध का प्रथम उपदेश - धर्मचक्र का घूमना) में ब्रह्मालोक का उल्लेख है।
यह सुनकर, देव चतुम्माहारजिका, तावतिंस, यम, तुषिता, निम्मानरती, परनिम्मितवासवत्ती और ब्रह्मा परिषज्ज, ब्रह्मा पुरोहित, महा ब्रह्मा, परित्ताभ, अप्पमानसुभ, आभासर, परित्तासुभ, अप्पमानसुभ, सुभकिन्न वेहप्पला, अवीहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी और अकनिट्ठ ने भी उसी हर्षोल्लास से जयजयकार की। इस प्रकार, ठीक उसी क्षण, यह जयजयकार ब्रह्मलोक तक फैल गई। ये दस हजार विश्व-प्रणालियाँ कांप उठीं, हिल उठीं और ज़ोर से थरथराने लगीं।
बौद्ध साहित्य में ब्रह्मा का उल्लेख बार-बार मिलता है; परन्तु बौद्ध धर्म में मोक्ष देवताओं को बलि चढ़ाने से नहीं प्राप्त होता। ब्रह्मालोक को सृष्टिकर्ता देवता (महा ब्रह्मा) का निवास स्थान माना जाता है। भूरिदत्त जातक (जन्म कथा) में ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता देवता मानने के विचार का व्यंग्यपूर्वक खंडन किया गया है।
जातक कथा (जन्म कथा) इस प्रकार प्रश्न उठाती है :
“जिसकी आंखें हैं वह इस घिनौने दृश्य को देख सकता है, ब्रह्मा अपने प्राणियों को सही राह पर क्यों नहीं लाते?”
हालांकि महा ब्रह्मा नामक एक दिव्य सत्ता है, जो स्वयं को सृष्टिकर्ता मानती है, और जिसे ब्राह्मण सृष्टिकर्ता मानते हैं, और बौद्ध धर्म में भी मान्यता प्राप्त है, लेकिन बौद्ध यह नहीं मानते कि वह संसार का सृष्टिकर्ता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 109

(धम्मपद 108) <<<< पिछला || धम्मपद 109 || अगला >>>> (धम्मपद 110)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 109 - आयुवधनकुमार वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 109 - अयुवद्धनकुमार वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
अभिवादनसिलिसा
niccam vuddhapacayino
cattaro dhamma vaddhanti
ayu vanno sukham balam.

श्लोक 109 : जो व्यक्ति अपने से बड़े और गुणी लोगों का सदा आदर और सम्मान करता है, उसे चार लाभ, अर्थात् दीर्घायु, सौंदर्य, सुख और बल प्राप्त होंगे।

आयुवधनकुमार की कहानी
दिघलंगिका के पास एक ग्राम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आयुवद्धनकुमार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (109) कहा।
एक समय की बात है, दो संन्यासी अड़तालीस वर्षों तक एक साथ तपस्या करते रहे। बाद में, उनमें से एक ने संन्यास छोड़कर विवाह कर लिया। पुत्र के जन्म के बाद, परिवार ने वृद्ध संन्यासी से मुलाकात की और उन्हें प्रणाम किया। संन्यासी ने माता-पिता से कहा, "आप दीर्घायु हों," लेकिन उन्होंने बच्चे से कुछ नहीं कहा। माता-पिता आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने संन्यासी से उनकी चुप्पी का कारण पूछा। संन्यासी ने उन्हें बताया कि बच्चा केवल सात दिन और जीवित रहेगा और उन्हें उसकी मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं पता, लेकिन गौतम बुद्ध को शायद इसका उपाय पता हो।
इसलिए माता-पिता बच्चे को बुद्ध के पास ले गए; जब उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, तो बुद्ध ने केवल माता-पिता से ही कहा, "आपकी दीर्घायु हो", बच्चे से नहीं। बुद्ध ने बच्चे की आसन्न मृत्यु की भविष्यवाणी भी की। उसकी मृत्यु को रोकने के लिए, माता-पिता को घर के प्रवेश द्वार पर एक मंडप बनाने और बच्चे को मंडप में एक पलंग पर लिटाने के लिए कहा गया। फिर कुछ भिक्षुओं को वहाँ सात दिनों तक परित्त (1) का पाठ करने के लिए भेजा गया। सातवें दिन स्वयं बुद्ध उस मंडप में आए; ब्रह्मांड के सभी हिस्सों से देव (देवदूत) भी आए। उस समय राक्षस अवरुद्धक प्रवेश द्वार पर बच्चे को ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन जैसे ही अधिक शक्तिशाली देव (देवदूत) आए, राक्षस को पीछे हटना पड़ा और उनके लिए जगह बनानी पड़ी, इसलिए उसे बच्चे से दो योजन दूर रहना पड़ा। पूरी रात परित्त का पाठ जारी रहा, इस प्रकार बच्चे की रक्षा हुई। अगले दिन, बच्चे को पलंग से उठाया गया और बुद्ध को प्रणाम कराया गया। इस बार बुद्ध ने बालक से कहा, "तुम दीर्घायु हो।" जब बालक से पूछा गया कि वह कितने वर्ष जीवित रहेगा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया कि वह एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहेगा। अतः बालक का नाम आयुवद्धन रखा गया।
जब बालक बड़ा हुआ, तो वह पाँच सौ साथी भक्तों के साथ देश-विदेश घूमने लगा। एक दिन वे जेतवन मठ पहुँचे, और भिक्षुओं ने उसे पहचानकर बुद्ध से पूछा, "क्या प्राणियों के लिए दीर्घायु प्राप्त करने का कोई उपाय है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "बड़ों और बुद्धिमान एवं गुणी लोगों का आदर और सम्मान करने से न केवल दीर्घायु प्राप्त होती है, बल्कि सौंदर्य, सुख और शक्ति भी प्राप्त होती है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 109 : जो व्यक्ति अपने से बड़े और गुणी लोगों का सदा आदर और सम्मान करता है, उसे चार लाभ, अर्थात् दीर्घायु, सौंदर्य, सुख और बल प्राप्त होंगे।

प्रवचन के अंत में, आयुवद्धन और उनके पांच सौ साथियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
(1) परित्त: धार्मिक श्लोक जो आमतौर पर हानिकारक प्रभावों से सुरक्षा के लिए पढ़े जाते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आयुवद्धनकुमार की कहानी
दीघलंघिका के पास एक ग्राम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आयुवद्धनकुमार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, दो संन्यासी अड़तालीस वर्षों तक साथ-साथ रहकर धार्मिक तपस्या करते रहे। बाद में, उनमें से एक ने संन्यास छोड़कर विवाह कर लिया। पुत्र के जन्म के बाद, परिवार ने वृद्ध संन्यासी से मिलने जाकर उन्हें प्रणाम किया। संन्यासी ने माता-पिता से

कहा, "आप दीर्घायु हों।" परन्तु उन्होंने बच्चे से कुछ नहीं कहा। माता-पिता व्याकुल हो गए और उन्होंने संन्यासी से उनकी चुप्पी का कारण पूछा। संन्यासी ने उन्हें बताया कि बच्चा केवल सात दिन और जीवित रहेगा और उन्हें उसकी मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं पता, परन्तु शायद बुद्ध को इसका उपाय पता हो।

इसलिए माता-पिता बच्चे को बुद्ध के पास ले गए; जब उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, तो बुद्ध ने केवल माता-पिता से ही कहा, “आपकी दीर्घायु हो”, बच्चे से नहीं। बुद्ध ने बच्चे की आसन्न मृत्यु की भविष्यवाणी भी की। उसकी मृत्यु को रोकने के लिए, माता-पिता को घर के प्रवेश द्वार पर एक मंडप बनाने और बच्चे को मंडप में एक पलंग पर लिटाने के लिए कहा गया। फिर कुछ भिक्षुओं को वहाँ सात दिनों तक परित्त (सुरक्षात्मक मंत्र) का पाठ करने के लिए भेजा गया। सातवें दिन स्वयं बुद्ध उस मंडप में आए; ब्रह्मांड के सभी हिस्सों से देवता भी आए। उस समय दुष्ट आत्मा अवरुद्धक प्रवेश द्वार पर बच्चे को ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन जैसे ही अधिक शक्तिशाली देवता आए, दुष्ट आत्मा को पीछे हटना पड़ा और उनके लिए जगह बनानी पड़ी, इसलिए उसे बच्चे से दो मील दूर रहना पड़ा। पूरी रात परित्त का पाठ जारी रहा, इस प्रकार बच्चे की रक्षा हुई। अगले दिन, बच्चे को पलंग से उठाया गया और बुद्ध को प्रणाम कराया गया। इस बार बुद्ध ने बालक से कहा, “तुम दीर्घायु हो।” जब बालक से पूछा गया कि वह कितने वर्ष जीवित रहेगा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया कि वह एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहेगा। अतः बालक का नाम आयुवद्धन रखा गया।

जब बालक बड़ा हुआ, तो वह पाँच सौ साथी भक्तों के साथ देश-विदेश घूमने लगा। एक दिन वे जेतवन मठ पहुँचे और भिक्षुओं ने उसे पहचानकर बुद्ध से पूछा, “क्या मनुष्यों के लिए दीर्घायु प्राप्त करने का कोई उपाय है?” इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, “बड़ों और बुद्धिमान एवं गुणी लोगों का आदर और सम्मान करने से न केवल दीर्घायु प्राप्त होती है, बल्कि सौंदर्य, सुख और शक्ति भी प्राप्त होती है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 109)

अभिवदना सिलिसा निक्कं वधापचानो आयु
वनो सुखं बलं चत्तारो धम्म वन्धन्ति

अभिवदना सिलिसा : उन लोगों में से जिन्हें आदर और आदर देने की आदत है; निक्कां [निक्का]: लगातार; vaḍḍhāpacāino [vaḍḍhāpacāina]: जो लोग दिमाग से विकसित और परिपक्व हैं; आयु : जीवन की लंबाई; वन्नो [वन्ना]: रंग; सुखं [सुखा]: आराम; बलं [बाला]: ताकत; कत्तारो धम्म : चार चीजें; वन्धन्ति : वृद्धि

यदि कोई व्यक्ति निरंतर परिपक्व और परिपक्व व्यक्तियों का आदर और सम्मान करने का अभ्यास करे, तो उसके जीवन में चार प्रकार से सुधार होता है। उसकी आयु शीघ्र बढ़ती है। उसका रंग निखरता है। उसका स्वास्थ्य और सुख-सुविधाएं बेहतर होती हैं। उसकी ऊर्जा और सहनशक्ति में भी वृद्धि होती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 109)

वड्धपाचैनो : विकसित और परिपक्व। यह श्लोक आध्यात्मिक रूप से विकसित लोगों के सम्मान के गुण का गुणगान करता है। पारंपरिक व्याख्याओं के अनुसार, चार श्रेणियां हैं जिन्हें 'परिपक्व' माना जाना चाहिए और सम्मान के योग्य समझा जाना चाहिए।

ये चार श्रेणियां इस प्रकार हैं:

(1) जातिवुद्ध : नस्ल के संदर्भ में परिपक्व या उच्चतर। कुछ जनसमूहों में यह परंपरा है कि नस्ल की कुछ श्रेणियों को श्रेष्ठ माना जाना चाहिए। हालाँकि बौद्ध धर्म में श्रेष्ठता का यह रूप स्वीकार नहीं किया जाता है, फिर भी टीकाएँ इसके अस्तित्व को स्वीकार करती हैं;

(2) गोत्ता वुद्धा : जाति या कुल श्रेष्ठता के कारण सम्मान के योग्य। कुछ प्रणालियों में इस प्रकार की श्रेष्ठता स्वीकार की जाती है, लेकिन बौद्ध प्रणाली में नहीं;

(3) वयो वुद्धा : उम्र के आधार पर श्रेष्ठता। अधिकांश संस्कृतियों में सम्मान का यह रूप मान्य है। उम्र में छोटे लोग हमेशा उम्र में उनसे बड़े लोगों का सम्मान करते हैं;

(4) गुण गुण : चरित्र में श्रेष्ठ। बौद्ध संघ पदानुक्रम में यही व्यवस्था प्रचलित है। बौद्ध प्रणाली में सभी गृहस्थ सभी बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान करते हैं क्योंकि वे जीवन के कुछ श्रेष्ठ सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, भले ही बौद्ध भिक्षु ने कुछ ही समय पहले दीक्षा ली हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 110

———————————————————————

(धम्मपद 109) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 110 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 111)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 110 - समकिक्कासामनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 110 - समकिक्कासामनेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vo ca vassasatam jive
dussilo asamahito
ekaham jivitam seyyo
silavantassa jhayino.

श्लोक 110 : अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण न रखने वाले अनैतिक व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले गुणी व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

समनेरा समकिक्का की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा समकिच्चा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (110) कहा।

एक बार तीस भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर एक बड़े गाँव की ओर प्रस्थान किया। उस समय एक घने जंगल में पाँच सौ लुटेरे छिपे हुए थे और वे जंगल के रक्षक देवताओं को मानव मांस और रक्त का अर्पण करना चाहते थे। इसलिए वे गाँव के मठ में आए और मांग की कि उनमें से एक भिक्षु को रक्षक देवताओं को बलि के लिए सौंप दिया जाए। सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे तक, सभी भिक्षुओं ने स्वेच्छा से जाने की पेशकश की। भिक्षुओं के साथ समकिच्चा नाम का एक युवा समनेर भी था, जिसे थेरा सारिपुत्त ने उनके साथ भेजा था। यह समनेर केवल सात वर्ष का था, लेकिन उसने पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था। समकिच्चा ने कहा कि उसके गुरु थेरा सारिपुत्त ने इस खतरे को पहले से जानते हुए जानबूझकर उसे भिक्षुओं के साथ भेजा था और उसे ही लुटेरों के साथ जाना चाहिए। ऐसा कहकर वह लुटेरों के साथ चल पड़ा। भिक्षुओं को युवा समनेर को जाने देने का बहुत पछतावा हुआ। लुटेरों ने यज्ञ की तैयारी की; जब सब कुछ तैयार हो गया, तो उनका सरदार समनेर के पास आया, जो उस समय ध्यानमग्न होकर बैठा हुआ था। लुटेरों के सरदार ने अपनी तलवार उठाई और युवा समनेर पर ज़ोरदार प्रहार किया, लेकिन तलवार का ब्लेड मांस को काटे बिना ही मुड़ गया। उसने ब्लेड को सीधा किया और फिर प्रहार किया; इस बार, वह समनेर को बिना कोई क्षति पहुँचाए, मूठ तक ऊपर की ओर मुड़ गया। इस विचित्र घटना को देखकर लुटेरों के सरदार ने अपनी तलवार गिरा दी, समनेर के चरणों में घुटने टेक दिए और क्षमा मांगी। सभी पाँच सौ लुटेरे चकित और भयभीत हो गए; उन्होंने पश्चाताप किया और समकिच्च से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी। उन्होंने उनकी विनती मान ली।

युवा समनेरा पाँच सौ नए भिक्षुओं के साथ गाँव के मठ में लौट आए और उन्हें देखकर तीस भिक्षुओं को बहुत राहत और प्रसन्नता हुई। फिर समकिच्चा और पाँच सौ भिक्षु अपने गुरु थेरा सारिपुत्त को जेतवन मठ में प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े। थेरा सारिपुत्त के दर्शन करने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने गए। जब उन्हें सारी घटना बताई गई, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यदि तुम चोरी-चकारी और हर प्रकार के बुरे कर्म करोगे, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा, चाहे तुम सौ वर्ष ही क्यों न जियो। एक दिन भी सदाचारी जीवन जीना सौ वर्ष के दुराचारी जीवन से कहीं बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 110 : अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण न रखने वाले अनैतिक व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले गुणी व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवदीक्षित भिक्षु संकिच्चा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नवोदित भिक्षु संकिच्चा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार तीस भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक-एक विषय लिया और सावत्थी से एक सौ बीस योजन (लीग) दूर स्थित एक बड़े गाँव के लिए प्रस्थान किया। उस समय, एक घने जंगल में पाँच सौ लुटेरे छिपे हुए थे और वे जंगल के रक्षक देवताओं को मानव मांस और रक्त का अर्पण करना चाहते थे। इसलिए वे गाँव के मठ में आए और मांग की कि उनके भिक्षुओं में से एक को रक्षक देवताओं को बलि के लिए सौंप दिया जाए। सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे तक, सभी भिक्षुओं ने स्वेच्छा से जाने की पेशकश की। भिक्षुओं के साथ संकिच्चा नाम का एक युवा नवोदित भिक्षु भी था, जिसे पूज्य सारिपुत्त ने उनके साथ भेजा था। यह नवोदित भिक्षु केवल सात वर्ष का था, लेकिन उसने पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था। संकिच्चा ने कहा कि उनके गुरु पूज्य सारिपुत्त ने इस खतरे को पहले से जानते हुए जानबूझकर उन्हें भिक्षुओं के साथ भेजा था और उन्हें ही लुटेरों के साथ जाना चाहिए। ऐसा कहकर वह डाकुओं के साथ चल पड़ा। भिक्षुओं को उस नवोदित भिक्षु को जाने देने का बहुत पछतावा हुआ। डाकुओं ने यज्ञ की तैयारी की; जब सब कुछ तैयार हो गया, तो उनका सरदार उस नवोदित भिक्षु के पास आया, जो उस समय ध्यान में लीन बैठा था। डाकुओं के सरदार ने अपनी तलवार उठाई और उस नवोदित भिक्षु पर ज़ोरदार प्रहार किया, लेकिन तलवार की धार बिना मांस काटे ही मुड़ गई। उसने तलवार सीधी की और फिर प्रहार किया; इस बार, तलवार बिना नवोदित भिक्षु को चोट पहुँचाए, मूठ तक ऊपर की ओर मुड़ गई। यह विचित्र घटना देखकर डाकुओं के सरदार ने अपनी तलवार गिरा दी, नवोदित भिक्षु के चरणों में घुटने टेक दिए और क्षमा मांगी। सभी पाँच सौ डाकू चकित और भयभीत हो गए; उन्होंने पश्चाताप किया और संकिच्च से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी। उन्होंने उनकी विनती मान ली।

ऐसा करने के बाद, उन्होंने उन्हें दस उपदेशों में स्थापित किया और उन्हें अपने साथ लेकर चल पड़े। वे पाँच सौ भिक्षुओं के दल के साथ उनके निवास स्थान पर गए। जब उन्होंने उन्हें देखा, तो उन्हें मन की शांति मिली।

फिर संकिच्चा और पाँच सौ भिक्षु अपने गुरु पूज्य सारिपुत्त को जेतवन मठ में प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े। पूज्य सारिपुत्त से मिलने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने गए। जब उन्हें सारी घटना बताई गई, तो बुद्ध ने कहा, “हे भिक्षुओं, यदि तुम चोरी-चकारी करोगे और हर प्रकार के बुरे कर्म करोगे, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा, चाहे तुम सौ वर्ष ही क्यों न जियो। एक दिन भी सदाचारी जीवन जीना सौ वर्ष के दुराचारी जीवन से कहीं बेहतर है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 110)

दुस्सिलो असामहितो यो च वससातं जिवे

सिलवन्तस्सा झाणो एकहं जीवितं सेय्यो

दुस्सीलो [दुस्सीला]: वह व्यक्ति जो सद्‌गुणों से रहित हो; असामहितो [असामहित]: असंतुलित मन वाला; यो : वह; च : चाहे सौ वर्ष भी जीवित रहे ; सीलावंतस : सद्‌गुणी ; झैनो [झैन]: जो ध्यानमग्न हो; एकाह [एकाह] : केवल एक दिन का; जीवित [जीवित]: जीवन; सेय्यो [सेय्य] : महान हो

एक दिन जो एक सद्‌गुणी और ध्यानमग्न व्यक्ति के रूप में बिताया जाता है, वह सौ वर्षों के उस जीवन से कहीं अधिक मूल्यवान होता है जो एक सद्‌गुणहीन और असंतुलित मन वाले व्यक्ति के रूप में बिताया जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 110)

झाइनो : वह व्यक्ति जो झान (ध्यान) का अभ्यास करता है। झान (मानसिक शांति) से तात्पर्य "रूप क्षेत्र" की चार ध्यान अवस्थाओं से है। ये अवस्थाएँ मानसिक शुद्धि की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त होती हैं, जिसके दौरान पाँच प्रकार की इंद्रिय-क्रियाओं और पाँच प्रकार के विक्षोभों (मन को व्याकुल करने वाली भावनात्मक गड़बड़ियों) का धीरे-धीरे, यद्यपि अस्थायी रूप से, शांत होना होता है। मन की अवस्था पूर्ण सतर्कता और स्पष्टता की होती है। शांति की यह उच्च अवस्था सामान्यतः शांति ध्यान के चालीस विषयों में से एक या अधिक के अभ्यास से विकसित होती है। शांति के चार निराकार स्तर भी हैं जिन्हें 'निराकार क्षेत्र' (अरूप आयतन) कहा जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 111

(धम्मपद 110) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 111 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 112)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 111 - खनु कोंडन्नथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 111 - खनु कोंडन्नत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
duppanno asamahito
ekaham jivitam seyyo
pannavantassa jhayino.

श्लोक 111 : एक अज्ञानी व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, एक बुद्धिमान व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करता है।

खानू-कोंडन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने खानु कोंडन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (111) कहा।

थेरा कोंडन्ना ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद, ध्यान साधना के लिए जंगल में चले गए और वहाँ उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ। बुद्ध को प्रणाम करने लौटते समय, वे बहुत थक गए थे, इसलिए रास्ते में रुक गए। वे एक बड़े पत्थर के शिलाखंड पर बैठ गए और ध्यान में लीन हो गए। उसी समय, एक बड़े गाँव को लूटकर पाँच सौ लुटेरे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ थेरा थे। उन्हें पेड़ का ठूंठ समझकर, उन्होंने लूटे हुए सामान के गट्ठे थेरा के शरीर पर और उसके चारों ओर रख दिए। जब सुबह हुई, तो उन्हें एहसास हुआ कि जिसे वे पेड़ का ठूंठ समझ रहे थे, वह वास्तव में एक जीवित प्राणी था। तब उन्हें लगा कि वह कोई राक्षस है और वे डरकर भाग गए।

थेरा ने उन्हें बताया कि वे केवल एक भिक्षु हैं, राक्षस नहीं, और उन्हें भयभीत न होने के लिए कहा। लुटेरे उनकी बातों से भयभीत हो गए और उन्होंने थेरा के साथ किए गए अन्याय के लिए क्षमा मांगी। इसके तुरंत बाद, सभी लुटेरों ने थेरा से उन्हें संघ में शामिल करने का अनुरोध किया। उसी समय से, थेरा कोंडन्ना को "खानु कोंडन्ना" (वृक्ष-ठूंठ कोंडन्ना) के नाम से जाना जाने लगा।

नए भिक्षुओं के साथ थेरा बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "सौ वर्ष तक अज्ञान में रहकर मूर्खतापूर्ण कार्य करना व्यर्थ है; अब जब तुमने सत्य को देख लिया है और ज्ञानी हो गए हो, तो एक दिन के लिए ज्ञानी के रूप में जीना कहीं अधिक सार्थक है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 111 : एक अज्ञानी व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, एक बुद्धिमान व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

खानु-कोण्डञ्ञा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने खानु कोण्डञ्ञ के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस पूज्यवर ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और वन में निवास करते हुए अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध को अपनी इस उपलब्धि की सूचना देने की इच्छा से वे वन से लौटने के लिए निकल पड़े। रास्ते में थककर वे मार्ग छोड़कर एक समतल पत्थर पर बैठ गए और समाधि में लीन हो गए। उसी समय पाँच सौ चोरों का एक गिरोह एक गाँव को लूट रहा था। उन्होंने अपने-अपने शरीर की ताकत के अनुसार आकार-प्रकार के बोरों में लूटा हुआ माल भरा, बोरों को अपने सिर पर रखा और उन्हें लेकर दूर तक चले। थककर वे आपस में कहने लगे, “हम बहुत दूर आ गए हैं; चलो इस समतल पत्थर पर विश्राम करते हैं।” ऐसा कहकर वे मार्ग छोड़कर पत्थर के पास गए और पूज्यवर को पेड़ का ठूंठ समझ बैठे। एक चोर ने अपना बोरा पूज्यवर के सिर पर रख दिया और दूसरे ने अपना बोरा उनके शरीर के पास रख दिया। एक-एक करके पाँच सौ चोरों ने अपने बोरे उनके चारों ओर घेरा बनाकर रख दिए और लेटकर सो गए।

भोर होते ही वे उठे और अपने बोरे उठा लिए। पूज्यवर को देखकर, उन्हें दुष्ट आत्मा समझकर वे भागने लगे। पूज्यवर ने उनसे कहा, “हे गृहस्थ शिष्यों, डरो मत; मैं एक भिक्षु हूँ।” तब वे उनके चरणों में गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए बोले, “हमें क्षमा करें, पूज्यवर; हमने

आपको पेड़ का ठूंठ समझ लिया था।" चोरों के सरगना ने कहा, "मैं पूज्यवर के अधीन भिक्षु बनना चाहता हूँ।" बाकी सबने कहा, "हम भी भिक्षु बनेंगे।" और सभी चोरों ने एकमत होकर पूज्यवर से उन्हें भिक्षु बनाने का अनुरोध किया। पूज्यवर ने उन सभी को भिक्षु बना दिया, ठीक वैसे ही जैसे नौसिखिए संकिच्चा को बनाया था। उस समय से वह ठूंठ कोण्डाञ्ञ, खानु-कोण्डाञ्ञ के नाम से जाने जाने लगे।

उन भिक्षुओं के साथ वह बुद्ध के पास गया। जब बुद्ध ने उससे पूछा, "कोण्डा, क्या तुम्हें शिष्य मिले हैं?" तो उसने उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने पूछा, "भिक्षुओं, क्या यह सच है?" "जी जी, पूज्यवर; हमने पहले कभी ऐसी जादुई शक्ति का प्रदर्शन नहीं देखा था, इसलिए हम भिक्षु बन गए हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, तुम्हारे लिए सौ वर्ष तक ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्य करते रहने की बजाय, अभी-अभी प्राप्त ज्ञान का अभ्यास करने में एक दिन भी जीना बेहतर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 111)

दुप्पन्नो असामहितो यो च वाससातम् जिवे

पन्नवंतस्स झैनो एकहं जीवितं सेय्यो

दुप्पञ्ञो [दुप्पञ्ञा]: नासमझ; असामहितो: मन से अस्थिर और चंचल; यो : कोई व्यक्ति; च : भले ही, वस्सासतं जीवे : सौ वर्ष तक जीवित रहे; पञ्ञवन्तस्स : बुद्धि से संपन्न व्यक्ति का; झैनो [झैना]: मानसिक रूप से अनुशासित; एकाहं [एकाह]: केवल एक दिन का; जीवतं [जीवत]: जीवन; सेय्यो [सेय्य]: अधिक है

एक बुद्धिमान व्यक्ति का एक दिन का जीवन, जो वास्तविकता से अवगत है, उस व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से भी अधिक मूल्यवान है जो ज्ञान और अंतर्दृष्टि से रहित है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

झाइनो : वह व्यक्ति जो ज्ञान का अभ्यास करता है । बुद्ध ने ज्ञान का वर्णन इस प्रकार किया है:

(1) इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, अस्वस्थ मन की अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है , जो अनुमान (वितक्का) और पूछताछ (विचार) के साथ होता है, और वैराग्य से उत्पन्न आनंद (पीति) और सुख (सुख) से भरा होता है।

(2) अनुमान और पूछताछ के शांत होने के बाद, और आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त करने के बाद, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है , जो मन की स्थिरता से उत्पन्न होता है, और आनंद (पीति) और सुख (सुख) से भरा होता है।

(3) आनंद के लुप्त हो जाने के बाद वह समभाव, सजगता और स्पष्ट चेतना में निवास करता है; और वह अपने भीतर उस भावना का अनुभव करता है जिसके बारे में वरन्ग कहते हैं, 'समभाव और सजग मन वाला मनुष्य सुखी है'; इस प्रकार वह तृतीय समाधि में प्रवेश करता है।

(4) सुख और दुख का त्याग करने के बाद, और पूर्व के सुख और दुःख के लुप्त होने के कारण, वह सुख और दुख से परे की अवस्था में, चौथी समाधि में प्रवेश करता है, जो समभाव (उपेक्खा) और ध्यान से शुद्ध होती है।

(5) हालाँकि, पदार्थ की धारणाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, और इंद्रिय-प्रतिक्रियाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देने के द्वारा, 'अंतरिक्ष असीम है' के विचार से, वह असीम अंतरिक्ष (आकाशणंचायतन) के क्षेत्र में पहुँच जाता है और उसमें निवास करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 112

(धम्मपद 111) <<<< पिछला || धम्मपद 112 || अगला >>>> (धम्मपद 113)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 112 - सप्पादसथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 112 - सप्पादसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
kusito(1) hinaviriyo
ekaham jivitam seyyo
viriyamarabhato dalham.

श्लोक 112 : आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में उत्साहपूर्वक और परिश्रमपूर्वक प्रयास करता है।

---

1. कुसितो: एक आलसी व्यक्ति; टीका के अनुसार, एक आलसी व्यक्ति वह है जो अपना समय केवल बुरे विचारों में व्यतीत करता है।

थेरा सप्पदासा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सप्पदासा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (112) कहा।

एक बार एक भिक्षु अपने भिक्षु जीवन से प्रसन्न नहीं थे; साथ ही उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि गृहस्थ जीवन में लौटना उनके लिए अनुचित और अपमानजनक होगा। अतः उन्होंने मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझा। इसी विचार में एक बार उन्होंने अपना हाथ एक घड़े में डाला जिसमें एक साँप था, परन्तु साँप ने उन्हें नहीं काटा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पिछले जन्म में साँप उनका दास था और भिक्षु उसके स्वामी थे। इसी घटना के कारण भिक्षु थेरा सप्पदासा के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक अन्य अवसर पर थेरा सप्पदासा ने अपना गला काटने के लिए एक तेज धार उठाई; परन्तु जैसे ही उन्होंने तेज धार को अपने गले पर रखा, उन्होंने अपने पूरे भिक्षु जीवन में किए गए नैतिक आचरण की पवित्रता पर चिंतन किया और उनका पूरा शरीर परमानंद और सुख से भर गया। फिर उन्होंने अपनी दया को त्यागकर अपना ध्यान अंतर्दृष्टि ज्ञान के विकास की ओर लगाया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया तथा वे मठ लौट आए।

मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे कहाँ थे और अपने साथ चाकू क्यों लाए थे। जब उन्होंने उन्हें अपने आत्महत्या के इरादे के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा मूल इरादा इस चाकू से अपना गला काटने का था, लेकिन अब मैंने अंतर्दृष्टि ज्ञान के चाकू से सभी नैतिक दोषों को काट डाला है।" भिक्षुओं को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और पूछा, "आदरणीय, यह भिक्षु दावा करता है कि जब वह अपने गले पर चाकू रखकर आत्महत्या करने जा रहा था, तभी उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। क्या इतने कम समय में अर्हत मार्ग प्राप्त करना संभव है?" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! हाँ, यह संभव है; जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में उत्साही और परिश्रमी होता है, वह पल भर में अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है। भिक्षु ध्यान में चलते हुए, अपना पैर जमीन पर रखने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 112 : आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में उत्साहपूर्वक और परिश्रमपूर्वक प्रयास करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सप्पदासा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सप्पदासा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार एक भिक्षु अपने संन्यासी जीवन से प्रसन्न नहीं थे; साथ ही उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि गृहस्थ जीवन में लौटना उनके लिए अनुचित और अपमानजनक होगा। अतः उन्होंने मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझा। ऐसा सोचते हुए एक बार उन्होंने अपना हाथ एक घड़े में डाला जिसमें एक साँप था, परन्तु साँप ने उन्हें नहीं काटा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पिछले जन्म में साँप दास था और भिक्षु उसके स्वामी थे। इसी घटना के कारण भिक्षु पूज्य सप्पदासा के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक अन्य अवसर पर पूज्य सप्पदासा ने अपना गला काटने के लिए एक तरकश उठाया; परन्तु जैसे ही उन्होंने तरकश को अपने गले पर रखा, उन्होंने अपने पूरे संन्यासी जीवन के नैतिक आचरण की पवित्रता पर चिंतन किया और उनका पूरा शरीर परमानंद और सुख से भर गया। फिर उन्होंने पीति से विरक्त होकर अपना मन अंतर्दृष्टि ज्ञान के विकास में लगाया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया तथा वे मठ लौट आए।

मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे कहाँ थे और अपने साथ चाकू क्यों लाए थे। जब उन्होंने उन्हें अपने आत्महत्या के इरादे के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा इरादा पहले इस चाकू से अपना गला काटने का था, लेकिन अब मैंने अंतर्दृष्टि ज्ञान के चाकू से सभी नैतिक दोषों को काट डाला है।" भिक्षुओं को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और पूछा, "आदरणीय, यह भिक्षु दावा करता है कि जब वह चाकू अपने गले पर रखकर आत्महत्या करने जा रहा था, तभी उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। क्या इतने कम समय में अर्हत मार्ग प्राप्त करना संभव है ?" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! हाँ, यह संभव है; जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में उत्साही और परिश्रमी होता है, वह पल भर में अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है। ध्यान में चलते हुए भिक्षु अपना पैर जमीन पर रखने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 112)

कुसीतो हिनावीरियो यो च वससातं जिवे
दहहं वीर्य अरभतो एकहं जीवितं सय्यो

कुसिटो [कुसिटा]: आलसी; हिनावीर्यो [हिनावीर्य]: पहल के बिना, सुस्त; यो : एक व्यक्ति; सीए : यदि; वाससाताम् [वाससाता]: सौ वर्ष; जिवे : जीना था; दहः वीर्यं [वीर्य]: प्रयास से भरपूर; अराभातो [अराभता]: जो विकसित होता है; एकहं जीवितम् [जीवित]: एक दिन का जीवन भी; सेय्यो [सेय्या]: नेक है

परिश्रम करने में सक्षम एक बुद्धिमान व्यक्ति का एक दिन का जीवन, आलसी, प्रयास करने में असमर्थ और पहल करने में असमर्थ व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से भी अधिक श्रेष्ठ है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 112)

वीरयं : प्रयास; विशेष रूप से आध्यात्मिक प्रयास। प्रज्ञा (ज्ञान) से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है वीरय (दृढ़ता)। यहाँ वीरय का अर्थ शारीरिक शक्ति नहीं है, यद्यपि यह एक गुण है, बल्कि मानसिक शक्ति या चरित्र की दृढ़ता है, जो कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इसे मन को शुद्ध करने के निरंतर प्रयास के रूप में परिभाषित किया गया है। इस सद्गुण में दृढ़ता से स्थापित होकर, बोधिसत्व वीरय का विकास करते हैं और इसे अपने प्रमुख गुणों में से एक बनाते हैं।

महाजनक जातक में बोधिसत्व के वीर जीवन का स्पष्ट वर्णन मिलता है । खुले समुद्र में सात दिनों तक जहाज़ टूटने के बाद भी वे निरंतर संघर्ष करते रहे और अंत में बचाए जाने तक आशा नहीं छोड़ी। असफलताओं को वे सफलता की सीढ़ी मानते हैं, विरोध से उनका परिश्रम दुगना हो जाता है और खतरे उनके साहस को बढ़ाते हैं। कठिनाइयों को चीरते हुए, जो दुर्बलों का उत्साह भंग कर देती हैं, और बाधाओं को पार करते हुए, जो साधारणों का मनोबल तोड़ देती हैं, वे सीधे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हैं। और लक्ष्य प्राप्त होने तक वे कभी नहीं रुकते। मारा ने बोधिसत्व को अपनी खोज छोड़ने की सलाह दी थी, तब उन्होंने कहा, "वासनाओं से युद्ध करते हुए मृत्यु मुझे पराजित जीवन से अधिक सम्मानजनक लगती है।" जिस प्रकार उनका ज्ञान सदा दूसरों की सेवा में लगा रहता है, उसी प्रकार उनकी ऊर्जा भी। व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति के संकीर्ण मार्ग पर चलने के बजाय, वे इसे सार्वभौमिक सुख की ओर ले जाने वाले कार्यों के खुले मार्ग में लगाते हैं। वे निरंतर और अथक परिश्रम से दूसरों के लिए कार्य करते हैं, प्रतिफल या पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करते। वह अपनी पूरी क्षमता से दूसरों की सेवा करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

कुछ दृष्टियों से, लक्ष्य की प्राप्ति में प्राणा से भी अधिक वीरय की भूमिका होती है । जो व्यक्ति अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करता है, उसका सही प्रयास (सम्मा वायामा या वीरय) बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न होने से रोकता है, उत्पन्न हुई अवस्थाओं को दूर करता है, अच्छी अवस्थाओं को विकसित करता है और पहले से उत्पन्न अच्छी अवस्थाओं को बनाए रखता है और उनका विकास करता है। यह ज्ञानोदय के सात कारकों (वीरय सम्बोज्झंग) में से एक है। यह सिद्धि के चार साधनों (वीरियिद्धिपाद) में से एक है। वीरय ही सही प्रयास के चार गुणों (सम्मप्पधान) का कार्य करता है। यह पाँच शक्तियों (वीरय बल) में से एक है और पाँच नियंत्रक शक्तियों (वीरियिन्द्रिय) में से एक है।

अत: वीरया को नौ कार्यों को संपन्न करने वाले अधिकारी के रूप में देखा जा सकता है। मन के विकास के लिए किया गया यह निरंतर प्रयास ही सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य करता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 113

(धम्मपद 112) <<<< पिछला || धम्मपद 113 || अगला >>>> (धम्मपद 114)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 113 - पाटकरथेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 113 - पटाकरथेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
apassam udayabbayam(1)
ekaham jivitam seyyo
passato(2) udayabbayam.

श्लोक 113 : पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को न समझने वाले व्यक्ति के जीवन में सौ वर्षों से बेहतर, पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को समझने वाले व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

---

1. उदयब्बायम्: पंच स्कंधों (खंडों) का उद्‌भव और विघटन। उदयब्बायम् अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से प्राप्त ज्ञान है, जो पंच स्कंधों की अनित्यता को दर्शाता है। (यह व्यक्ति के भीतर इंद्रिय सुख/इच्छाओं और उनसे संबंधित संवेदनाओं और विचारों के उद्‌भव और विघटन से संबंधित है।)
2. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

थेरी पटाकारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पताकारा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (113) कहा।

पटाकारा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह अत्यंत सुंदर थी और उसके माता-पिता उसकी बहुत रक्षा करते थे। लेकिन एक दिन, वह परिवार के एक युवक सेवक के साथ भाग गई और एक गाँव में एक गरीब आदमी की पत्नी बनकर रहने लगी। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई और प्रसव का समय निकट आने पर उसने अपने पति से सावत्थी में अपने माता-पिता के पास लौटने की अनुमति मांगी, लेकिन उसके पति ने उसे मना कर दिया। इसलिए, एक दिन, जब उसका पति घर से बाहर था, वह अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे गया और रास्ते में उससे मिलकर उसे वापस चलने के लिए मनाने लगा; लेकिन उसने इनकार कर दिया। संयोगवश, प्रसव का समय निकट आने पर, उसे झाड़ियों में ही एक पुत्र को जन्म देना पड़ा। पुत्र के जन्म के बाद वह अपने पति के साथ घर लौट आई।

फिर वह दोबारा गर्भवती हुई और प्रसव का समय नजदीक आने पर अपने बेटे को साथ लेकर वह सावत्थी में अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे-पीछे आया और रास्ते में उससे मिल गया; लेकिन प्रसव का समय तेजी से नजदीक आ रहा था और तेज बारिश भी हो रही थी। पति ने प्रसव के लिए उपयुक्त जगह की तलाश की और जब वह जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा साफ कर रहा था, तभी उसे एक जहरीले सांप ने काट लिया और उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। पताकारा अपने पति का इंतजार करती रही और उसके लौटने की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने दूसरे बेटे को जन्म दिया। सुबह उसने अपने पति को ढूंढा, लेकिन उसे केवल उसका शव मिला। मन ही मन यह कहते हुए कि उसके पति की मृत्यु उसी के कारण हुई है, वह अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी।

रात भर लगातार बारिश होने के कारण अचिरवती नदी उफान पर थी; इसलिए दोनों बेटों को लेकर नदी पार करना उसके लिए असंभव था। बड़े बेटे को नदी के इस किनारे पर छोड़कर, वह अपने एक दिन के बेटे को लेकर नदी पार कर गई और उसे दूसरे किनारे पर छोड़ दिया। फिर वह बड़े बेटे को लेने वापस आई। जब वह अभी नदी के बीच में ही थी, तभी एक बड़ा बाज छोटे बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर उसके ऊपर मंडराने लगा। उसने चिल्लाकर पक्षी को भगाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ था; बच्चा बाज के साथ उड़

गया। इसी बीच, बड़े बेटे ने नदी के बीच से अपनी माँ की आवाज़ सुनी और सोचा कि वह उसे बुला रही है। इसलिए वह अपनी माँ के पास जाने के लिए नदी में उतर गया और तेज़ धारा में बह गया। इस प्रकार, पताकारा ने अपने दोनों बेटों के साथ-साथ अपने पति को भी खो दिया।

तो वह फूट-फूटकर रोने लगी और विलाप करने लगी, "एक बेटा बाज़ लेकर चला गया, दूसरा बेटा तेज़ धारा में बह गया, मेरे पति भी ज़हरीले साँप के काटने से मर गए!" तभी उसकी नज़र सावत्थी के एक आदमी पर पड़ी और उसने रोते हुए अपने माता-पिता के बारे में पूछा। उस आदमी ने बताया कि पिछली रात सावत्थी में आए भयंकर तूफान के कारण उसके माता-पिता का घर गिर गया था और उसके माता-पिता समेत उसके तीनों भाई मर गए थे और उन सभी का एक ही चिता पर अंतिम संस्कार कर दिया गया था। यह दुखद खबर सुनकर पटाकारा पागलों की तरह व्यवहार करने लगी। उसे इस बात का भी एहसास नहीं हुआ कि उसके कपड़े उतर गए हैं और वह अधनंगी हो गई है। वह गलियों में घूम-घूमकर अपना दुख बयां करने लगी।

जब बुद्ध जेतवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब उन्होंने दूर से पताकारा को देखा; इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वह सभा में आएँ। भीड़ ने उन्हें आते देख रोकने की कोशिश की और कहा, "पागल औरत को अंदर मत आने दो।" लेकिन बुद्ध ने उन्हें अंदर आने से मना किया। जब पताकारा उनके पास पहुँचकर उनकी बात सुनने लगीं, तो उन्होंने उन्हें सावधान रहने और शांत रहने को कहा। फिर उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने अपना वस्त्र नहीं पहना है और वे लज्जित होकर बैठ गईं। किसी ने उन्हें एक कपड़ा दिया और उन्होंने उसे ओढ़ लिया। फिर उन्होंने बुद्ध को बताया कि कैसे उन्होंने अपने पुत्रों, पति, भाइयों और माता-पिता को खो दिया था।

बुद्ध ने उनसे कहा, "पटाचारा, भयभीत मत हो; तुम अब उस व्यक्ति के पास आई हो जो तुम्हारी रक्षा और मार्गदर्शन कर सकता है। इस संसार चक्र में तुमने अपने पुत्रों, पतियों, माता-पिता और भाइयों की मृत्यु के कारण जितने आँसू बहाए हैं, वे असंख्य हैं; वे चारों सागरों के जल से भी अधिक हैं।" इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें अनगिनत जन्मों से संबंधित अनामतग्ग सूत्र का उपदेश दिया, जिससे उन्हें राहत मिली। फिर बुद्ध ने आगे कहा कि जो लोग चले गए हैं, उनके बारे में अधिक नहीं सोचना चाहिए, बल्कि स्वयं को शुद्ध करना चाहिए और निर्वाण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। बुद्ध के इस उपदेश को सुनकर पटाचारा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

फिर, पताकारा भिक्षुणी बन गईं। एक दिन, वह जलपात्र से अपने पैर धो रही थीं। पहली बार जब उन्होंने जल डाला, तो वह थोड़ी दूर बहकर गायब हो गया; फिर उन्होंने दूसरी बार जल डाला और वह थोड़ा और आगे गया, लेकिन तीसरी बार जब उन्होंने जल डाला तो वह सबसे दूर तक गया। जब उन्होंने जल के बहाव और गायब होने की इस प्रक्रिया को लगातार तीन बार देखा, तो उन्हें प्राणियों के जीवन की तीनों अवस्थाओं का स्पष्ट ज्ञान हो गया। जेतवन मठ से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें देखा और अपनी ज्योति प्रकट करते हुए स्वयं उनके सामने आ गए। उन्होंने उनसे कहा, "पताकारा, अब तुम सही मार्ग पर हो, और अब तुम्हें स्कंधों (खंडों) का सही ज्ञान हो गया है। जो व्यक्ति स्कंधों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को नहीं समझता, वह सौ वर्ष तक भी जीवित रहे तो भी व्यर्थ है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 113 : पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को न समझने वाले व्यक्ति के जीवन में सौ वर्षों से बेहतर, पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को समझने वाले व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

प्रवचन के अंत में, पताकारा ने अरहतत्व (अंतिम ज्ञानोदय/निर्वाण अवस्था) प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून पटाकारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पताचारा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पताचारा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह अत्यंत सुंदर थी और उसके माता-पिता उसकी बहुत रक्षा करते थे। लेकिन एक दिन, वह परिवार के एक युवक सेवक के साथ भाग गई और एक गाँव में एक गरीब आदमी की पत्नी बनकर रहने लगी। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई और प्रसव का समय निकट आने पर उसने अपने पति से सावत्थी में अपने माता-पिता के पास लौटने की अनुमति मांगी, लेकिन उसके पति ने उसे मना कर दिया। इसलिए, एक दिन, जब उसका पति घर से बाहर था, वह अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे गया और रास्ते में उससे मिलकर उसे वापस चलने के लिए मनाने लगा; लेकिन उसने इनकार कर दिया। संयोगवश, प्रसव का समय निकट आने पर, उसे झाड़ियों में ही एक पुत्र को जन्म देना पड़ा। पुत्र के जन्म के बाद वह अपने पति के साथ घर लौट आई।

फिर वह दोबारा गर्भवती हुई और प्रसव का समय नजदीक आते ही अपने बेटे को साथ लेकर वह सावत्थी में अपने माता-पिता के घर के लिए चल पड़ी। उसका पति उसके पीछे-पीछे आया और रास्ते में उससे मिल गया; लेकिन प्रसव का समय तेजी से नजदीक आ रहा था और तेज बारिश भी हो रही थी। पति ने प्रसव के लिए उपयुक्त जगह की तलाश की और जब वह जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा साफ

कर रहा था, तभी उसे एक जहरीले सांप ने काट लिया और उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। पताचारा अपने पति की प्रतीक्षा करती रही और उसके लौटने की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने दूसरे बेटे को जन्म दिया। सुबह उसने अपने पति को ढूंढा, लेकिन उसे केवल उसका मृत शरीर मिला। मन ही मन यह कहते हुए कि उसके पति की मृत्यु उसी के कारण हुई है, वह अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी। क्योंकि पूरी रात लगातार बारिश होती रही थी, अचिरवती नदी उफान पर थी; इसलिए दोनों बेटों को लेकर नदी पार करना उसके लिए संभव नहीं था। बड़े बेटे को नदी के इस किनारे छोड़कर, वह अपने एक दिन के बेटे को लेकर नदी पार कर गई और उसे दूसरे किनारे पर छोड़ दिया। फिर वह बड़े बेटे को लेने वापस आई। जब वह अभी नदी के बीच में ही थी, तभी एक बड़ा बाज़ छोटे बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर उसके ऊपर मंडराने लगा। उसने चिल्लाकर पक्षी को भगाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ था; बच्चा बाज़ के साथ उड़ गया। इसी बीच, बड़े बेटे ने नदी के बीच से अपनी माँ की आवाज़ सुनी और सोचा कि वह उसे बुला रही है। इसलिए वह अपनी माँ के पास जाने के लिए नदी में उतर गया और तेज़ धारा में बह गया। इस प्रकार पताचारा ने अपने दोनों बेटों के साथ-साथ अपने पति को भी खो दिया। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने और विलाप करने लगी, "एक बेटा बाज़ के साथ उड़ गया, दूसरा बेटा धारा में बह गया, मेरे पति भी ज़हरीले साँप के काटने से मर गए!" तभी उसने सावत्थी के एक आदमी को देखा और आँसू बहाते हुए अपने माता-पिता के बारे में पूछा। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि पिछली रात सावत्थी में आए भयंकर तूफान के कारण उसके माता-पिता का घर गिर गया था और उसके माता-पिता सहित तीनों भाई मर गए थे, और उन सभी का एक ही चिता पर अंतिम संस्कार कर दिया गया था। यह दुखद समाचार सुनकर पताचारा बुरी तरह पागल हो गई। उसे इस बात का भी एहसास नहीं हुआ कि उसके कपड़े उतर गए हैं और वह अधनंगी है। वह सड़कों पर इधर-उधर भटकती हुई चिल्लाने लगी, "हाय! मेरा क्या हुआ!"

जब बुद्ध जेतवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब उन्होंने दूर से पताचारा को देखा; इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वह सभा में आएं। भीड़ ने उन्हें आते देख रोकने की कोशिश की और कहा, "पागल स्त्री को अंदर मत आने दो।" लेकिन बुद्ध ने उन्हें अंदर आने से मना किया। जब पताचारा उनके पास आईं और उनकी बात सुनने लगीं, तो उन्होंने उन्हें सावधान रहने और शांत रहने को कहा। फिर उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने अपना वस्त्र नहीं पहना है और वे लज्जित होकर बैठ गईं। किसी ने उन्हें एक कपड़ा दिया और उन्होंने उसे ओढ़ लिया। फिर उन्होंने बुद्ध को बताया कि कैसे उन्होंने अपने पुत्रों, पति, भाइयों और माता-पिता को खो दिया था। बाद में वे भिक्षुणी बन गईं और मोक्ष प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 113)

उदयबयं अप्सं यो च वससातं जिवे (ततो)

उदयबयं पस्सतो कुसीतो हिनावीरियो एकहं जीवितं सेय्यो

udayabayaṃ [udayabaya]: उत्थान और पतन; अपस्सं [अप्स्सा]: नहीं देखता; यो सीए : एक व्यक्ति; वाससातम् [वाससाता]: सौ वर्ष; जिवे : जीना था; उदयबबयं [उदयबबया]: उद्‌भव और गायब होना; पासाटो [पासाटा]: वह जो देखता है; एकाहम् [एकहा]: एक दिन का भी; जीवितम् [जीवित]: जीवन; सेय्यो [सेय्या]: नेक है

अनुभव की गई वस्तुओं के उद्‌भव और विनाश को समझने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन, वस्तुओं के उद्‌भव और विनाश की प्रक्रिया को न समझने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवनकाल से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

उदयब्बयं : अनुभव की पंचांग समग्रता (पंच खंड) का अस्तित्व में आना: (1) रूप; (2) संवेदना; (3) बोध; (4) अवधारणा और (5) संज्ञान।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 114

———————————————————————

(धम्मपद 113) <<<< पिछला || धम्मपद 114 || अगला >>>> (धम्मपद 115)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 114 - किसागोतामि वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 114 - किसागोतामि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
अपस्सम् अमातम पदम्
ekaham jivitam seyyo
passato(1) amatam padam.

श्लोक 114 : जो व्यक्ति अमरता (निर्वाण) को नहीं जानता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर उस व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो अमरता (निर्वाण) को जानता है।

---

1. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

थेरी किसागोतमी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने किसगोतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (114) कहा।

किसगोतमी श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थीं; अपने दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें किसगोतमी के नाम से जाना जाता था। किसगोतमी का विवाह एक धनी युवक से हुआ और उनका एक पुत्र हुआ। बालक की बचपन में ही मृत्यु हो गई और किसगोतमी गहरे शोक में डूब गईं। अपने पुत्र के शव को लेकर वह हर उस व्यक्ति से औषधि माँगने लगीं जिससे वह अपने पुत्र को पुनर्जीवित कर सकें। लोग उन्हें पागल समझने लगे। लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति ने उनकी इस अवस्था को देखकर सोचा कि उन्हें उनकी सहायता करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "तुम्हें बुद्ध के पास जाना चाहिए, उनके पास वह औषधि है जो तुम चाहती हो; उनके पास जाओ।" इस प्रकार, वह बुद्ध के पास गईं और उनसे अपने मृत पुत्र को पुनर्जीवित करने वाली औषधि माँगी।

बुद्ध ने उसे ऐसे घर से सरसों के बीज लाने को कहा जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। अपने मृत शिशु को गोद में लिए किसागोतमी घर-घर जाकर सरसों के बीज माँगने लगी। हर कोई उसकी मदद करने को तैयार था, लेकिन उसे एक भी ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब उसे एहसास हुआ कि उसका परिवार ही अकेला ऐसा परिवार नहीं है जिसने मृत्यु का सामना किया है, बल्कि जीवितों से कहीं अधिक लोग मृत हैं। यह एहसास होते ही उसके मृत पुत्र के प्रति उसका भाव बदल गया; अब वह अपने पुत्र के मृत शरीर से आसक्त नहीं थी।

वह शव को जंगल में छोड़कर बुद्ध के पास लौट आई और बताया कि उसे ऐसा कोई घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब बुद्ध ने कहा, "गौतमी, तुमने सोचा था कि पुत्र खोने वाली तुम अकेली हो। जैसा कि अब तुम्हें ज्ञान हो गया है, मृत्यु सभी प्राणियों के लिए आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने साथ ले जाती है।" यह सुनकर किसागोतमी ने सभी तत्वों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को पूर्णतः समझ लिया और सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

इसके कुछ समय बाद, किसागोतमी भिक्षुणी बन गईं। एक दिन, जब वे दीपक जला रही थीं, तो उन्होंने देखा कि लौ भड़क उठी और बुझ गई, और अचानक उन्हें प्राणियों के उद्भव और विनाश का स्पष्ट आभास हुआ। बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने मठ से देखा और अपनी ज्योति भेजकर स्वयं उनके दर्शन किए। किसागोतमी को सभी प्राणियों के अनित्य स्वरूप पर ध्यान करते रहने और निर्वाण प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने को कहा गया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 114 : जो व्यक्ति अमरता (निर्वाण) को नहीं जानता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर उस व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो अमरता (निर्वाण) को जानता है।

प्रवचन के अंत में थेरी किसागोतामी ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन किसागोतामी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने किसागोतमी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
किसगोतमी, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थीं; अपने दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें किसगोतमी के नाम से जाना जाता था। किसगोतमी का विवाह एक धनी युवक से हुआ और उनका एक पुत्र हुआ। बालक की बचपन में ही मृत्यु हो गई और किसगोतमी गहरे शोक में डूब गईं। अपने पुत्र के शव को लेकर वह हर उस व्यक्ति से औषधि माँगने लगीं जिससे वह अपने पुत्र को पुनर्जीवित कर सकें। लोग उन्हें पागल समझने लगे। लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति ने उनकी इस अवस्था को देखकर सोचा कि उन्हें उनकी सहायता करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "तुम्हें बुद्ध के पास जाना चाहिए, उनके पास वह औषधि है जो तुम चाहती हो; उनके पास जाओ।" इस प्रकार, वह बुद्ध के पास गईं और उनसे अपने मृत पुत्र को पुनर्जीवित करने वाली औषधि माँगी।
बुद्ध ने उसे ऐसे घर से सरसों के बीज लाने को कहा जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। अपने मृत शिशु को गोद में लिए किसागोतमी घर-घर जाकर सरसों के बीज माँगने लगी। हर कोई उसकी मदद करने को तैयार था, लेकिन उसे एक भी ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब उसे एहसास हुआ कि उसका परिवार ही अकेला ऐसा परिवार नहीं है जिसने मृत्यु का सामना किया है, बल्कि जीवितों से कहीं अधिक लोग मृत हैं। यह एहसास होते ही उसके मृत पुत्र के प्रति उसका भाव बदल गया; अब वह अपने पुत्र के मृत शरीर से आसक्त नहीं थी।
वह शव को जंगल में छोड़कर बुद्ध के पास लौट आई और बताया कि उसे ऐसा कोई घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब बुद्ध ने कहा, "क्या तुम्हें एक चुटकी सरसों का दाना भी नहीं मिला?" "नहीं, मुझे नहीं मिला, पूज्यवर। हर गाँव में मृतकों की संख्या जीवितों से अधिक है।" बुद्ध ने कहा, "तुमने व्यर्थ ही सोचा था कि केवल तुमने ही अपना बच्चा खोया है। परन्तु सभी जीव एक अटल नियम के अधीन हैं, और वह यह है: मृत्यु का देवता, प्रचंड जलप्रपात की तरह, सभी जीवों को उनकी अधूरी इच्छाओं के साथ विनाश के सागर में बहा ले जाता है। गौतमी, तुमने सोचा था कि केवल तुमने ही अपना पुत्र खोया है। जैसा कि अब तुम जान चुकी हो, मृत्यु सभी प्राणियों के पास आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें ले जाती है।" यह सुनकर किसागौतमी ने सभी तत्वों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को पूर्णतः समझ लिया और सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
इसके कुछ समय बाद, किसागोतमी ने संन्यासिनी बन गईं। एक दिन, जब वे दीपक जला रही थीं, तो उन्होंने देखा कि लौ भड़क उठी और बुझ गई, और अचानक उन्हें प्राणियों के उद्‌भव और विनाश का स्पष्ट आभास हुआ। बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने मठ से देखा और अपनी ज्योति भेजकर स्वयं उनके दर्शन किए। किसागोतमी को सभी प्राणियों के अनित्य स्वरूप पर ध्यान करते रहने और निर्वाण प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने को कहा गया। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के उच्चतर चरणों को प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 114)
अमातं पदं अप्पसं यो च वससतं जिवे
अमातं पदं पस्सतो एकहं जीवितं सय्यो
amataṃ padaṃ [pada]: मृत्युहीन अवस्था (निब्बान); apassaṃ [apassa]: बिना देखे; yo ca : यदि कोई व्यक्ति; vassasatṃ jīve : सौ वर्ष तक जीवित रहे; amataṃ padaṃ [pada]: मृत्युहीन अवस्था (निब्बान); passato [passata]: देखने वाले का; ekāhaṃ [ekāha]: एक दिन का; jīvitaṃ [jīvita]: जीवन; seyyo [seyya]: श्रेष्ठ है
जो व्यक्ति अमरता की अवस्था को देख लेता है, उसका एक दिन का जीवन उस व्यक्ति के सौ साल के जीवनकाल से कहीं अधिक महान और श्रेष्ठ होता है जो अमरता की अवस्था को नहीं देख पाता।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 114)
अमरं पदं : अमरता की अवस्था — निर्वाण। निर्वाण को 'अमरता' कहा जाता है क्योंकि यह अस्तित्व के भ्रम का अंत है। निर्वाण को अनुभव की पंचांगीय समग्रता (पंचूपादन खंड) को व्यक्तिगत रूप से त्यागकर प्राप्त किया जा सकता है।
हमारे मन में जो अस्तित्व की आत्म-छवि होती है, वह निराकार घटनाओं के वैयक्तिकरण से निर्मित होती है। हमारा अस्तित्व या होना इसी आत्म-छवि का विस्तार है, जिसे व्यक्तित्व कहते हैं। जब हम इस आत्म-छवि को निराकार रूप देकर हटा देते हैं, तो हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है। जब हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो हमारी मृत्यु भी समाप्त हो जाती है। यही अमरता की अवस्था है। अनुभव को, उसके आने-जाने के क्रम में, बिना उसे वैयक्तिक बनाए देखना ही अमरता के निर्वाण का अनुभव करना है।
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 115

(धम्मपद 114) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 115 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 116)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 115 - बहुपुत्तिकथेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 115 - बहुपुत्तिकत्थेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
apassam dhammamuttamam(1)
ekaham jivitam seyyo
passato(2) dhammamuttamam.

श्लोक 115 : जो व्यक्ति आर्य धम्म (धम्ममुत्तमम्) को नहीं समझता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो आर्य धम्म को समझता है।

---

1. धम्ममुत्तमम्: बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सर्वोच्च धम्म (मार्ग) जो निर्वाण/ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
2. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

थेरी बहुपुटिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (115) का उच्चारण किया, जो कई बच्चों की माँ बहुपुट्टिका के संदर्भ में था।

सावत्थी में एक दंपत्ति अपने सात पुत्रों और सात पुत्रियों के साथ रहते थे। सभी पुत्रों का विवाह हो गया था और परिवार सुख-सुविधाओं से भरा था। फिर पिता का देहांत हो गया और माता ने सारी संपत्ति अपने पास रख ली, बच्चों को कुछ भी नहीं दिया। पुत्र-पुत्रियों को विरासत चाहिए थी, इसलिए उन्होंने माता से कहा, "हमें इस संपत्ति से क्या लाभ होगा? क्या हम इसे बढ़ा नहीं सकते? क्या हम अपनी माता की देखभाल नहीं कर सकते?" उन्होंने बार-बार यही बातें कहीं, जिससे माता को लगा कि उनके बच्चे उनकी देखभाल करेंगे, और अंततः उन्होंने अपने लिए कुछ भी छोड़े बिना सारी संपत्ति बाँट दी।

संपत्ति के बंटवारे के बाद, वह पहले अपने बड़े बेटे के पास रहने गई, लेकिन उसकी बहू ने शिकायत करते हुए कहा, "वह हमारे साथ ऐसे रहने आई है जैसे उसने हमें दो हिस्से दे दिए हों!", और इसी तरह की और भी बातें कहीं। इसलिए, बहुपुतिका अपने दूसरे बेटे के पास रहने चली गई, और वहाँ भी वही बातें कही गईं। इस प्रकार, वह एक बेटे से दूसरे बेटे के पास, एक बेटी से दूसरी बेटी के पास जाती रही; लेकिन उनमें से कोई भी उसे लंबे समय तक अपने पास रखने को तैयार नहीं था और न ही किसी ने उसका उचित सम्मान किया।

वृद्धा बहुत दुखी और अपने बच्चों से नाराज़ थी; उसने अपना परिवार त्याग दिया और भिक्षुणी बन गई। अनेक संतानों की माता होने के कारण वह बहुपुतिका के नाम से प्रसिद्ध हुई। बहुपुतिका को यह अहसास हुआ कि उसने वृद्धावस्था में ही भिक्षुणी का जीवन व्यतीत किया है और उसे लापरवाही नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपने शेष जीवन का भरपूर सदुपयोग करना चाहिए। अतः उसने पूरी रात बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म का ध्यान किया। जेतवन मठ से बुद्ध ने उसे देखा और अलौकिक शक्ति से प्रकाश भेजा तथा उसके सामने विराजमान हो गए। तब बुद्ध ने उससे कहा, "जो व्यक्ति मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म का अभ्यास नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है, चाहे वह सौ वर्ष तक ही क्यों न जिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 115 : जो व्यक्ति आर्य धम्म (धम्ममुत्तमम्) को नहीं समझता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो आर्य धम्म को समझता है।

———————————————————————

अध्याय आठ का अंत: हजार (सहस्सवग्ग)

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन बहुपुट्टिका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई बच्चों की माता बहुपुट्टिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार सावत्थी में एक दंपत्ति अपने सात पुत्रों और सात पुत्रियों के साथ रहते थे। सभी पुत्रों का विवाह हो गया था और परिवार सुख-सुविधाओं में था। फिर पिता का देहांत हो गया और माता ने सारी संपत्ति अपने पास रख ली, बच्चों को कुछ नहीं दिया। पुत्र-पुत्रियों को विरासत चाहिए थी, इसलिए उन्होंने माता से कहा, "हमें इस संपत्ति से क्या लाभ होगा? क्या हम इसे बढ़ा नहीं सकते? क्या हम अपनी माता की देखभाल नहीं कर सकते?" उन्होंने बार-बार यही बातें कहीं, जिससे माता को लगा कि उनके बच्चे उनकी देखभाल करेंगे, और अंत में उन्होंने सारी संपत्ति बाँट दी और अपने लिए कुछ नहीं छोड़ा।
कुछ दिन बीतने के बाद, उसके सबसे बड़े बेटे की पत्नी ने उससे कहा, "लगता है हमारी उत्तम माताजी का यही एकमात्र घर है जहाँ वे जाती हैं; वे ऐसा व्यवहार करती हैं मानो उन्होंने अपनी सारी संपत्ति अपने सबसे बड़े बेटे को दे दी हो।" उसके अन्य बेटों की पत्नियाँ भी उससे इसी तरह बात करती थीं। उसकी बेटियाँ भी, सबसे बड़ी से लेकर सबसे छोटी तक, जब भी वह उनके घर जाती, उससे इसी तरह बात करती थीं। उसके साथ इतना अपमानजनक व्यवहार किया जाता था कि अंततः उसने मन ही मन कहा, "मैं अब इनके साथ क्यों रहूँ? मैं संघ में प्रवेश करूँगी और एक नन का जीवन व्यतीत करूँगी।" अतः वह ननों के मठ में गई और संघ में प्रवेश के लिए निवेदन किया। संघ ने उसे प्रवेश दे दिया, और जब उसने संघ में पूर्ण रूप से प्रवेश कर लिया, तो वह बहुपुट्टिका नन के नाम से जानी जाने लगी क्योंकि वह कई बच्चों की माता थी।
"चूंकि मैंने वृद्धावस्था में संघ में प्रवेश किया है," भिक्षुणियों को सौंपे गए प्रमुख और गौण कर्तव्यों का पालन करते हुए उन्होंने सोचा। "यह मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधान रहूँ; इसलिए मैं पूरी रात ध्यान में बिताऊँगी।" निचली छत पर, एक खंभे पर हाथ रखकर, उन्होंने अपने कदमों को दिशा देते हुए ध्यान किया। चलते समय भी, इस डर से कि कहीं अँधेरे स्थानों में उनका सिर किसी पेड़ या किसी अन्य वस्तु से न टकरा जाए, उन्होंने एक पेड़ पर हाथ रखकर अपने कदमों को दिशा दी और ध्यान किया। केवल बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म का पालन करने का संकल्प लेकर, उन्होंने धम्म पर विचार किया, उस पर मनन किया और ध्यान किया।
सुगंधित कक्ष में विराजमान बुद्ध ने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की और मानो उनके आमने-सामने बैठकर उनसे बात करते हुए कहा, "बहुपुतिका, मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को एक क्षण के लिए देखना सौ वर्ष तक बिना देखे जीने से बेहतर है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 115)
उत्तमं धम्मं अपासं यो च वससतं जिवे
उत्तमं धम्मं पस्सतो एकहं जीवितं सेय्यो
उत्तमं धम्मं [धम्म]: बुद्ध की सर्वोच्च शिक्षा (सिद्धांतों में सर्वोत्तम); अपस्सं [अप्स्सा]: जो अनुभव नहीं करता; यो सीए : यदि कोई व्यक्ति; वस्सासतम् जिवे : सौ वर्ष जीने वाले थे; उत्तमं धम्मं [धम्म]: बुद्ध की सर्वोच्च शिक्षा (सिद्धांतों में सर्वोत्तम); पासाटो [पासाटा]: द्रष्टा का; एकाहम् [एकहा]: एक दिन का; जीवितम् [जीवित]: जीवन; सेय्यो [सेय्या]: श्रेष्ठ है।
बुद्ध की महान शिक्षाओं के दर्शन करने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन, उस व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से कहीं अधिक महान होता है जो इस महान शिक्षा को नहीं देखता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 115)
धम्म उत्तमम् : श्रेष्ठतम — बुद्ध की शिक्षा। धम्म, बुद्ध की शिक्षा, संसार से परे जाने का मार्ग है। धम्म को नौ रूपों में वर्णित किया गया है: चार मार्ग, चार फल और निर्वाण (अमरता)।

अध्याय 9. पापावग्गा: बुराई (116-128
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 116

———————————————————————

(धम्मपद 115) <<<< पिछला || धम्मपद 116 || अगला >>>> (धम्मपद 117)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 116 - कुलेकासतक वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 116 - कुलेकासतक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अभित्थरेथा कल्याणे
pipa cittam nivaraye
दंडम ही करोतो पुन्नम
papasmim ramati mano.

श्लोक 116 : अच्छे कर्म करने में शीघ्रता बरतनी चाहिए; अपने मन को बुराई से रोकना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करने में सुस्त होता है, उसका मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।

कुलेकासताका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (116) का उच्चारण किया, जिसमें चुलेकसटका नाम के एक ब्राह्मण दंपति का जिक्र था।
सावत्थी में एक ब्राह्मण दंपति रहते थे, जिनके पास केवल एक ही वस्त्र था। इसी कारण वे एकासतक कहलाते थे। एक ही वस्त्र होने के कारण वे दोनों एक साथ बाहर नहीं जा सकते थे। इसलिए पत्नी दिन में बुद्ध के प्रवचन सुनने जाती और पति रात में। एक रात, जब ब्राह्मण बुद्ध के प्रवचन सुन रहे थे, तो उनका पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि से भर गया और उनके मन में अपने वस्त्र बुद्ध को अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। परन्तु उन्होंने यह भी महसूस किया कि यदि वे अपना एकमात्र वस्त्र भी दे देंगे, तो उनके और उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए वे दुविधा में पड़ गए। इस प्रकार रात का पहला और दूसरा पहर बीत गया। तीसरा पहर आया और उन्होंने मन ही मन कहा, "यदि मैं इतना कंजूस और संकोची बना रहूँ, तो मैं चार लोकों (अपय) में गिरने से नहीं बच पाऊँगा; अब मैं अपना वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दूँगा।" ऐसा कहकर उसने कपड़े का टुकड़ा बुद्ध के चरणों में रख दिया और तीन बार "मैं जीत गया" चिल्लाया।
कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित), जो सभा में उपस्थित थे, ने ये शब्द सुने और अपने एक दरबारी को जाँच करने का आदेश दिया। ब्राह्मण द्वारा बुद्ध को भेंट किए जाने के बारे में जानकर राजा ने टिप्पणी की कि ब्राह्मण ने ऐसा कार्य किया है जो आसान नहीं है, इसलिए उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि ब्राह्मण को उसकी आस्था और उदारता के पुरस्कार के रूप में एक वस्त्र दें। ब्राह्मण ने वह वस्त्र भी बुद्ध को अर्पित कर दिया और राजा ने उसे दो वस्त्र दिए। फिर ब्राह्मण ने वे दो वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दिए और उसे चार वस्त्र मिले। इस प्रकार, उसने बुद्ध को वह सब कुछ अर्पित किया जो राजा ने उसे दिया था, और हर बार राजा ने उसका पुरस्कार दोगुना कर दिया। अंत में, जब पुरस्कार बत्तीस वस्त्रों तक पहुँच गया, तो ब्राह्मण ने एक वस्त्र अपने लिए और एक अपनी पत्नी के लिए रख लिया, और शेष तीस वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दिए।
फिर विचार करने पर राजा ने कहा कि ब्राह्मण ने वास्तव में एक बहुत कठिन कार्य किया है, इसलिए उसे उचित पुरस्कार मिलना चाहिए। राजा ने महल में एक दूत भेजा और दो मखमली वस्त्र मंगवाए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक लाख थी, और उन्हें ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने उन दो कीमती वस्त्रों से दो छतरियाँ बनवाईं और एक को उस सुगंधित कक्ष में रखा जहाँ बुद्ध विश्राम करते थे और दूसरी को अपने घर में उस स्थान के ऊपर रखा जहाँ एक भिक्षु को नियमित रूप से भिक्षा दी जाती थी। जब राजा अगली बार बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जटावन मठ गए, तो उन्होंने मखमली छतरी देखी और उसे ब्राह्मण द्वारा भेंट की गई वस्तु के रूप में पहचान लिया और बहुत प्रसन्न हुए। इस बार उन्होंने सात प्रकार की वस्तुओं का पुरस्कार दिया, जिनमें चार हाथी, चार घोड़े, चार दासियाँ, चार पुरुष दास, चार सेवक, चार गाँव और चार हज़ार नकद शामिल थे।
जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा, “इस ब्राह्मण के मामले में, ऐसा कैसे है कि अभी किया गया अच्छा कर्म तुरंत फल देता है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “यदि ब्राह्मण ने रात के पहले पहर में अपना वस्त्र दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के सोलह वस्त्र प्राप्त होते; यदि उसने मध्य पहर में दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के आठ वस्त्र प्राप्त होते; क्योंकि उसने रात के अंतिम पहर में दान किया, इसलिए उसे प्रत्येक प्रकार के केवल चार वस्त्र ही प्राप्त हुए।” अतः, जब कोई दान करना चाहे, तो उसे तुरंत करना चाहिए; यदि

कोई विलंब करता है, तो फल धीरे-धीरे और बहुत कम मात्रा में मिलता है। साथ ही, यदि कोई अच्छे कर्म करने में बहुत धीमा है, तो वह शायद उन्हें बिल्कुल भी न कर पाए, क्योंकि मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 116 : अच्छे कर्म करने में शीघ्रता बरतनी चाहिए; अपने मन को बुराई से रोकना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करने में सुस्त होता है, उसका मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुल्ला एकासटका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चुल्ला एकसाटक नामक एक ब्राह्मण दंपति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी में एक ब्राह्मण दंपति रहते थे, जिनके पास केवल एक ही वस्त्र था। इसी कारण वे एकसातक कहलाते थे। एक ही वस्त्र होने के कारण वे दोनों एक साथ बाहर नहीं जा सकते थे। इसलिए पत्नी दिन में बुद्ध के प्रवचन सुनने जाती और पति रात में। एक रात, जब ब्राह्मण बुद्ध के प्रवचन सुन रहे थे, तो उनका पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि से भर गया और उनके मन में अपने वस्त्र बुद्ध को अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। लेकिन उन्हें यह एहसास हुआ कि यदि वे अपना एकमात्र वस्त्र भी दे देंगे, तो उनके और उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए वे दुविधा में पड़ गए। इस प्रकार रात का पहला और दूसरा पहर बीत गया। तीसरा पहर आया और उन्होंने मन ही मन कहा, “यदि मैं इतना कंजूस और संकोची रहा, तो सांसारिक कष्टों को दूर करने का अवसर खो दूंगा। अब मैं अपना वस्त्र बुद्ध को अर्पित करता हूँ।” ऐसा कहकर उसने वस्त्र का टुकड़ा बुद्ध के चरणों में रख दिया और तीन बार "मैंने विजय प्राप्त कर ली" कहा। कोसल के राजा पसेनादि, जो वहाँ उपस्थित थे, ने ये शब्द सुने और एक दरबारी को जाँच करने का आदेश दिया। ब्राह्मण द्वारा बुद्ध को भेंट किए जाने के बारे में जानकर राजा ने टिप्पणी की कि ब्राह्मण ने ऐसा कार्य किया है जो आसान नहीं है, इसलिए उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि ब्राह्मण को उसकी आस्था और उदारता के पुरस्कार के रूप में वस्त्र का एक टुकड़ा दें। ब्राह्मण ने वह वस्त्र का टुकड़ा भी बुद्ध को अर्पित कर दिया और राजा ने उसे दो वस्त्र के टुकड़े दिए। फिर ब्राह्मण ने वे दो वस्त्र के टुकड़े बुद्ध को अर्पित कर दिए और उसे चार वस्त्र के टुकड़े मिले। इस प्रकार, उसने बुद्ध को वह सब कुछ अर्पित किया जो राजा ने उसे दिया था, और हर बार राजा ने उसका पुरस्कार दोगुना कर दिया। जब अंततः पुरस्कार के रूप में बत्तीस कपड़े के टुकड़े प्राप्त हुए, तो ब्राह्मण ने एक टुकड़ा अपने लिए और दूसरा अपनी पत्नी के लिए रख लिया, और शेष तीस टुकड़े बुद्ध को अर्पित कर दिए।
तब राजा ने फिर कहा कि ब्राह्मण ने सचमुच बहुत कठिन कार्य किया है, इसलिए उसे उचित पुरस्कार मिलना चाहिए। राजा ने महल में एक दूत भेजा और दो मखमली वस्त्र मंगवाए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक लाख थी, और उन्हें ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने इन दो कीमती वस्त्रों से दो छतरियाँ बनवाईं और एक को उस सुगंधित कक्ष में रखा जहाँ बुद्ध विश्राम करते थे और दूसरी को अपने घर में उस स्थान के ऊपर रखा जहाँ एक भिक्षु को नियमित रूप से भिक्षा दी जाती थी। जब राजा अगली बार बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जेतवन मठ गए, तो उन्होंने मखमली छतरी देखी और उसे ब्राह्मण द्वारा भेंट की गई वस्तु के रूप में पहचान लिया और बहुत प्रसन्न हुए। इस बार उन्होंने सात प्रकार की वस्तुओं का पुरस्कार दिया, जिनमें चार हाथी, चार घोड़े, चार दासियाँ, चार पुरुष दास, चार सेवक, चार गाँव और चार हज़ार नकद शामिल थे। जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा, “इस ब्राह्मण के मामले में, ऐसा कैसे है कि अभी किया गया अच्छा कर्म तुरंत फल देता है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “यदि ब्राह्मण ने रात के पहले पहर में अपना वस्त्र दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के सोलह वस्त्र प्राप्त होते; यदि उसने मध्य पहर में दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के आठ वस्त्र प्राप्त होते; क्योंकि उसने रात के अंतिम पहर में दान किया, इसलिए उसे प्रत्येक प्रकार के केवल चार वस्त्र ही प्राप्त हुए। अतः, जब कोई दान करना चाहे, तो उसे शीघ्रता से करना चाहिए; यदि कोई विलंब करता है, तो फल धीरे-धीरे और बहुत कम मात्रा में मिलता है। साथ ही, यदि कोई अच्छे कर्म करने में बहुत धीमा है, तो वह शायद उसे बिल्कुल भी न कर पाए, क्योंकि मन बुराई में आनंद लेने लगता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 116)
kalyāne abhittharetha pāpā cittaṃ nivāraye
पुन्नं दण्डं हि करोतो मनो पापस्मिं रमाति
कल्याणे : सद्गुण में; अभित्थरेथा : सतर्क रहो; पापा : बुराई से; चित्तं [चित्त]: मन; निवारये : रक्षा करो; पुण्यं [पुण्य]: अच्छा कर्म; दंडं [दंड]: संकोच से; हि करोतो [करोत]: यदि कोई करे; मनो : उसका मन; पापस्मिं [पापस्मि]: बुराई में; रमती : आनंद लेता है
पुण्य कर्म करते समय सतर्क और तत्पर रहें। मन को बुराई से बचाएं। यदि कोई पुण्य कर्म करने में संकोच करे, तो उसका मन बुरी बातों में आनंद लेने लगेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 116)

अभित्थरेथा कल्याणे : समय की हानि किए बिना पुण्य कर्मों में संलग्न रहें। आध्यात्मिक मार्ग के अभ्यास को बुद्ध ने धारा के विपरीत चलना (पटिषोतगामि) कहा है। मन की सामान्य प्रवृत्ति भावनाओं में बहकर गलत कार्य करने की होती है। यदि कोई इस धारा के विपरीत जाने का प्रयास नहीं करता है, तो वह गलत कार्य करेगा और गलत मार्ग पर चलेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 117

———————————————————————

(धम्मपद 116) <<<< पिछला || धम्मपद 117 || अगला >>>> (धम्मपद 118)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 117 - सेय्यसकत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 117 - सेय्यसकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Pipance puriso kayira
na nam kayira punappunam
na tamhi chandam kayiratha
dukkho papassa uccayo.

———————————————————————

श्लोक 117 : यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार बुराई नहीं करनी चाहिए; उसे उसमें आनंद नहीं लेना चाहिए; बुराई का संचय दुख (पीड़ा/पुनर्जन्म) की ओर ले जाता है।

———————————————————————

थेरा सेय्यासाका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सेय्यासका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (117) कहा।

एक समय सेय्यासक नाम का एक थेरा था, जिसे हस्तमैथुन करने की आदत थी। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने थेरा को फटकारा क्योंकि उनका यह कार्य मार्ग और फल प्राप्ति से और दूर ले जाता था। उसी समय, बुद्ध ने यौन सुखों में लिप्त होने पर रोक लगाने का नियम निर्धारित किया, अर्थात् संघसिसेसा अपाति, जो प्रायश्चित और संघ से निष्कासन का कारण बनता है। फिर बुद्ध ने कहा, "इस प्रकार का अपराध इस लोक और परलोक दोनों में केवल बुरे परिणाम ही देगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 117 : यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार बुराई नहीं करनी चाहिए; उसे उसमें आनंद नहीं लेना चाहिए; बुराई का संचय दुख (पीड़ा/पुनर्जन्म) की ओर ले जाता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सेय्यासका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सेय्यासक के संदर्भ में यह श्लोक कहा। पूज्य सेय्यासक, पूज्य कालुदायी के सह-भिक्षु थे। धार्मिक जीवन के लिए आवश्यक संयम से असंतुष्ट होकर, उन्होंने यौन उत्तेजना का सहारा लेना शुरू कर दिया। इसके बाद, जब भी वे इस आत्म-दुराचार में लिप्त होते, वे नियम का उल्लंघन करते। बुद्ध को उनके कार्यों के बारे में पता चला, उन्होंने उन्हें बुलवाया और पूछा, “क्या यह बात सच है कि तुमने ऐसा किया?” “जी, पूज्य।” बुद्ध ने कहा, “हे मूर्ख, तुमने अपने पद के लिए इतना अनुचित कार्य क्यों किया?” इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें फटकारा। ऐसा करने के बाद, उन्होंने उन्हें नियमों का पालन करने का आदेश दिया। फिर उन्होंने उनसे कहा, “ऐसा कर्म करना इस लोक और परलोक दोनों में दुख का कारण बनता है।” ऐसा कहकर, बुद्ध ने इस श्लोक का उच्चारण किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 117)
पुरिसो सी पापं कयिरा तां पुनप्पुनं न कयिरा
तमहि चंदं न कयिरथ पपास्सा उच्चयो दुक्खो
पुरिसो [पुरिसा]: कोई व्यक्ति; चे पापं कायिरा : कोई बुरा कर्म करे; तं : वह; पुनप्पुनं [पुनप्पुना]: बार-बार; न कायिरा : नहीं करना चाहिए; तम्ही : उसमें; चंदं [चंदा]: आनंद; न कायिराथ : न लें; पापस्स : बुराई में; उच्चयो [उच्चय]: (बुराई का) संचय; दुक्खो [दुक्खा]: कष्टदायक
एक व्यक्ति कुछ बुरे काम कर सकता है। लेकिन उसे बार-बार, लगातार ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए। बुराई का संचय कष्टदायी होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 117)
विशेष टिप्पणी : अरहत कालुदायी : इस कथा में वर्णित भिक्षु का नाम सेय्यासका है। अरहत कालुदायी पूज्य सेय्यासका के साथी और गुरु थे। अरहत कालुदायी को सेय्यासका पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ी थी। पूज्य सेय्यासका को सुधारने का दायित्व संभालने वाले अरहत कालुदायी बौद्ध धर्म के इतिहास में एक प्रमुख अरहत हैं। इस महा अरहत को बुद्ध के परिजनों को बौद्ध धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने का अद्वितीय गौरव प्राप्त है। राजकुमार सिद्धार्थ की अनुपस्थिति के छह वर्षों के दौरान वे राजा सुद्धोदन के साथ रहे। उन्होंने राजकुमार की अनुपस्थिति को सहजता से स्वीकार किया। अनेक पुण्य कर्म करने के बाद, उनका जन्म कपिलवस्तु में राजा सुद्धोदन के एक मंत्री के पुत्र के रूप में उसी वेसाक पूर्णिमा के दिन हुआ, जिस दिन राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। वह राजकुमार सिद्धार्थ के करीबी सहयोगी थे।
राजकुमार को जन्म से ही सात अनमोल धरोहरें प्राप्त थीं, अर्थात्:
वह बोधि वृक्ष जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ;
उनकी रानी यशोधरा;
चार महान खजाने;
आरोहणीय- शाही हाथी;
कंथका, राजसी घोड़ा;
चन्ना—सारथी और
साथी कालुदयी।
ज्ञान प्राप्ति के बाद, बुद्ध राजगृह के वेलुवनाराम में थे। राजा सुद्धोदन छह वर्षों से अधिक समय से अनुपस्थित थे और अपने पुत्र से मिलने के लिए व्याकुल थे। इसलिए उन्होंने एक के बाद एक कई मंत्रियों को एक-एक हजार अनुयायियों के साथ बुद्ध से वापस आने का अनुरोध करते हुए भेजा। कुल मिलाकर उन्होंने नौ मंत्री भेजे। लेकिन उनमें से कोई भी वापस नहीं लौटा। सभी ने दीक्षा ली और अरहत बन गए। फिर भी वे अपने उद्देश्य को भूल गए। अंततः उन्होंने अपने सबसे विश्वसनीय अनुयायी कालुदायी को भेजा। कालुदायी और उनके अनुयायी, उनसे पहले के अन्य अनुयायियों की तरह, अरहत बन गए। राजा की इच्छा सर्वोपरि थी। उन्होंने उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की। उन्होंने तब तक इंतजार किया जब तक प्रकृति ऐसी यात्रा के लिए अनुकूल नहीं हो गई। कालुदायी ने संकेत दिया और बुद्ध प्रसन्न हुए। बुद्ध के आगमन पर लगभग बीस हजार अरहत उपस्थित थे। कालुदायी ने हाथ में कुंड लेकर वायु में प्रकट होकर अपने आगमन की सूचना दी। यह खुशखबरी सुनकर राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने कटोरे को उत्तम भोजन से भरवाया और पूज्य बुद्ध से वहीं भोजन ग्रहण करने का अनुरोध किया, साथ ही बुद्ध को भोजन अर्पित करने का वचन भी दिया।
जब पूज्य गुरु ने ऐसा किया, तो राजा ने भी वही क्रिया दोहराई। पूज्य गुरु ने राजा के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वे बुद्ध के आगमन तक प्रतिदिन आकर इस प्रक्रिया को दोहराते रहें। और प्रतिदिन पूज्य गुरु राजा को धन्यवाद के रूप में उपदेश देते थे। यह पुण्य का अर्पण (पुण्य का हस्तांतरण) था।
इसके कुछ समय बाद ही बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि पूज्य कालुदाई, संघ में अपने रिश्तेदारों को धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने में अग्रणी थे।
पाप : अकुशल कर्म । वे सभी कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक अभिक्रियाएँ अस्वास्थ्यकर हैं, जो लोभ (लालच), द्वेष (दोष) या केवल मोह (मोह) से ग्रस्त हों; और ये सभी घटनाएँ प्रतिकूल कर्म परिणामों का कारण हैं और इनमें दुखद भाग्य या पुनर्जन्म के बीज निहित हैं।
अकुसला-साधारण-चेतसिका : सभी अस्वास्थ्यकर कार्यों (इच्छाओं) से जुड़े सामान्य अस्वास्थ्यकर (पाप) मानसिक कारक चार हैं: (1) नैतिक लज्जा (अहिरिका) का अभाव; (2) नैतिक भय (अनोत्तप्पा) का अभाव ; (3) बेचैनी (उद्धच्च); (4) भ्रम (मोह)।
मूल : हेतु कहलाने वाले वे तत्व हैं जो अपनी उपस्थिति से किसी इच्छाशक्ति की वास्तविक नैतिक गुणवत्ता (चेतना) और उससे जुड़े चेतना एवं मानसिक कारकों, यानी कर्म की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। ऐसे छह मूल तत्व हैं, जिनमें से तीन कर्मिक रूप से

लाभकारी और तीन हानिकारक हैं, अर्थात्: लोभ, घृणा, मोह (लोभ , दोष , मोह) और लोभहीनता, घृणाहीनता, मोहहीनता (लोभ , दोष , मोह)।

लोभ किसी आकर्षक वस्तु पर अनुचित चिंतन से उत्पन्न होता है, जबकि घृणा किसी अप्रिय वस्तु पर अनुचित चिंतन से। इस प्रकार, लोभ (लोभ या राग) में किसी वस्तु के प्रति आकर्षण की सभी अवस्थाएँ समाहित होती हैं, जो एक सूक्ष्म लालसा से लेकर घोर अहंकार तक होती हैं, जबकि घृणा (दोष) में घृणा की सभी अवस्थाएँ समाहित होती हैं, जो हल्के से द्वेष से लेकर घोर क्रोध तक होती हैं। पाप कर्म — हत्या, चोरी, अवैध यौन संबंध, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर भाषा, व्यर्थ की बातें, लालच, द्वेष और गलत विचार — ये सब लोभ, घृणा या भ्रम के कारण होते हैं।

कामवासना में डूबा हुआ, घृणा से क्रोधित, भ्रम में अंधा, व्याकुल, मन में फँसा हुआ मनुष्य अपने विनाश, दूसरों के विनाश, और दोनों के विनाश का लक्ष्य रखता है, और मानसिक पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है। वह कर्मों, वचनों और विचारों में बुराई के मार्ग पर चलता है, और वास्तव में न तो अपना कल्याण जानता है, न दूसरों का, और न ही दोनों का। ये बातें उसे अंधा और अज्ञानी बनाती हैं, उसके ज्ञान में बाधा डालती हैं, पीड़ादायक होती हैं, और उसे शांति की ओर नहीं ले जातीं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 118

(धम्मपद 117) <<<< पिछला || धम्मपद 118 || अगला >>>> (धम्मपद 119 और 120)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 118 - लजादेवाधिता वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 118 - लजादेवाधिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Punnace puriso kayira
kayira nam punappunam
tamhi chandam kayiratha
sukho punnassa uccayo.

श्लोक 118 : यदि कोई व्यक्ति अच्छा काम करता है, तो उसे बार-बार करना चाहिए; उसे उसमें आनंद लेना चाहिए; पुण्य का संचय सुख की ओर ले जाता है।

लाजादेवधिता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (118) का उच्चारण किया, जो लाजा नामक स्त्री देव के संदर्भ में है।

एक समय थेरा महाकस्सपा पिप्पली गुफा में सात दिनों तक एकाग्रता में लीन रहे। समाधि से उठने के तुरंत बाद, उन्होंने किसी को समाधि से उठे हुए थेरा को कुछ भेंट करने का अवसर देने की इच्छा से बाहर देखा और एक झोपड़ी में एक युवती को भुट्टा भूनते हुए पाया। इसलिए वे भिक्षा मांगने के लिए उसके दरवाजे पर खड़े हो गए और युवती ने सारा भुट्टा थेरा के कटोरे में डाल दिया। थेरा को भुट्टा भेंट करने के बाद जब वह वापस मुड़ी, तो उसे एक विषैले सांप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में हुआ और वह लाजा (भुट्टा) देवधिता के नाम से जानी गई।

लाजा को एहसास हुआ कि उनका पुनर्जन्म तावतिंसा में इसलिए हुआ है क्योंकि उन्होंने थेरा महाकस्सपा को पॉपकॉर्न चढ़ाया था और उनके प्रति अत्यंत कृतज्ञता व्यक्त की थी। तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि उन्हें अपनी सौभाग्य को और अधिक स्थायी बनाने के लिए थेरा की कुछ सेवाएँ करते रहना चाहिए। इसलिए, वह हर सुबह थेरा के मठ में जातीं, परिसर की सफाई करतीं, पानी के बर्तन भरतीं और अन्य सेवाएँ करतीं। पहले तो थेरा को लगा कि ये सेवाएँ युवा समनेरों ने की हैं; लेकिन एक दिन उन्हें पता चला कि एक महिला देव (परी) ये सेवाएँ कर रही थी। इसलिए उन्होंने उसे मठ में न आने के लिए कहा, क्योंकि अगर वह आती रही तो लोग उसके बारे में बातें

करने लगेंगे। लाजादेवधिता बहुत दुखी हुईं; उन्होंने थेरा से विनती की और रोते हुए कहा, "कृपया मेरी संपत्ति, मेरे धन को नष्ट न करें।" बुद्ध ने उसकी चीखें सुनीं और अपने कक्ष से प्रकाश भेजा तथा देवी से कहा, "देवधिता, मेरे पुत्र कश्यप का यह कर्तव्य है कि वह तुम्हें मठ में आने से रोके; पुण्य कमाना चाहने वाले का यही कर्तव्य है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 118 : यदि कोई व्यक्ति अच्छा काम करता है, तो उसे बार-बार करना चाहिए; उसे उसमें आनंद लेना चाहिए; पुण्य का संचय सुख की ओर ले जाता है।

प्रवचन के अंत में, लाजादेवधिता ने सोतापत्ति की सिद्धि प्राप्त की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
देवी लाजा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवी लाजा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कुछ समय के लिए पूज्य कस्सपा महान पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, वे समाधि में चले गए और सात दिनों तक वहीं रहे। सातवें दिन समाधि से जागने पर उन्होंने अलौकिक दृष्टि से उन स्थानों का अवलोकन किया जहाँ वे भिक्षा मांगने जाना चाहते थे। जब उन्होंने चारों ओर देखा, तो उन्हें धान के खेत की रखवाली करने वाली एक स्त्री दिखाई दी, जो अपने द्वारा तोड़े गए धान की बालियों को भून रही थी। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या वह आस्थावान है या नहीं?" तुरंत यह जानकर कि वह आस्थावान है, उन्होंने विचार किया, "क्या वह मेरी सहायता कर पाएगी?" तभी उन्हें यह बात समझ में आई, "यह नेक युवती बुद्धिमान और साधन संपन्न है; वह मेरी सहायता करेगी और ऐसा करने के फलस्वरूप उसे भरपूर प्रतिफल मिलेगा।" अतः उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए, हाथ में भिक्षापात्र लिया और धान के खेत के पास जाकर खड़े हो गए। जब उस नेक युवती ने पूज्यवर को देखा, तो उसका हृदय आस्तिक हो गया और उसका शरीर पाँचों प्रकार के आनंद से भर गया। "एक क्षण रुकिए, पूज्यवर," उसने कहा। भुने हुए चावल लेकर वह शीघ्रता से उनके पास गई, चावल पूज्यवर के कटोरे में डाले और फिर पाँचों विश्रामों से उन्हें प्रणाम करते हुए उसने हार्दिक निवेदन किया, "पूज्यवरवर, क्या मैं उस सत्य की भागीदार बन सकती हूँ जिसे आपने देखा है?" "ऐसा ही हो," पूज्यवर ने धन्यवाद के शब्द कहते हुए उत्तर दिया। तब उस नेक युवती ने पूज्यवर को प्रणाम किया और पूज्यवर को दिए गए दान पर विचार करते हुए वापस लौटने लगी।
धान के खेतों के किनारे सड़क के पास एक गड्ढे में एक विषैला साँप छिपा रहता था। वह पूज्यवर के पैर को काट नहीं पाता था, क्योंकि वह उनके पीले वस्त्र से ढका हुआ था। लेकिन जब वह नेक युवती लौटते समय उस स्थान पर पहुँची, पूज्यवर को दिए गए अपने दान के बारे में सोचते हुए, साँप अपने गड्ढे से निकला, उसे काट लिया और उसे वहीं जमीन पर गिरा दिया। श्रद्धापूर्वक प्राण त्यागते हुए, वह स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर लौटी। देवी के रूप में वह समय-समय पर नीचे आती और पूज्यवर के स्थान की देखभाल करती, परिसर की सफाई आदि करती। पूज्यवर ने जब यह सब देखा, तो उन्होंने सोचा, "यह सेवा किसी प्रशिक्षु या नौसिखिए ने ही की होगी।" दूसरे दिन भी देवी ने वही किया, और पूज्यवर फिर उसी निष्कर्ष पर पहुँचे। लेकिन तीसरे दिन पूज्यवर ने उनके झाड़ू लगाने की आवाज सुनी, और चाबी के छेद से झाँककर देखा, तो उन्हें उनका प्रकाशमान शरीर दिखाई दिया। और उसने तुरंत पूछा, "झाड़ू कौन लगा रही है?" "हे पूज्यवर, मैं आपकी शिष्या, देवी लाजा हूँ।" "इस नाम की मेरी कोई शिष्या नहीं है।" "हे पूज्यवर, जब मैं एक युवती थी और धान के खेत में काम करती थी, तब मैंने आपको भुने हुए धान दिए थे; लौटते समय मुझे एक साँप ने काट लिया, और मैं विश्वास के साथ मर गई और स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। क्योंकि आपके द्वारा ही मुझे यह महिमा प्राप्त हुई, इसलिए मैंने मन ही मन कहा, 'मैं आपके सभी छोटे-बड़े कर्तव्यों का पालन करूँगी और इस प्रकार अपना मोक्ष सुनिश्चित करूँगी।' इसलिए मैं यहाँ आई हूँ, हे पूज्यवर।" "क्या तुमने ही कल और उससे पहले के दिनों में मेरे लिए इस जगह की झाड़ू लगाई थी और पीने का पानी रखा था?" "जी हाँ, हे पूज्यवर।" "कृपा करके यहाँ से चली जाइए, देवी। आपने जो भी कर्तव्य निभाए हैं, उनकी चिंता न कीजिए, लेकिन अब से यहाँ मत आना।" "हे पूज्यवर, मुझे नष्ट मत कीजिए। मुझे आपके सभी छोटे-बड़े कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति दीजिए और इस प्रकार अपना मोक्ष सुनिश्चित कीजिए।" "देवी, यहाँ से चली जाइए, कहीं ऐसा न हो कि भविष्य में जब धर्म के व्याख्याता रंगीन पंखा लेकर बैठ जाएँ, तो उन्हें यह कहने का कारण मिले, 'सुना है कि एक देवी आती हैं और पूज्य कस्सपा के लिए बड़े-छोटे सभी काम करती हैं, उनके लिए पीने का पानी रखती हैं।'" तब देवी हवा में स्थिर खड़ी होकर रोने-पीटने लगीं। इस घटना के विषय में बुद्ध ने कहा, "सचमुच, इस लोक में और परलोक में, केवल अच्छे कर्म करने से ही सुख मिलता है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 118)
पुरिसो सी पुन्नं कयिरा तं पुन्नपुनं कयिरथा

तं हि चंदं कयिरथ पुन्नस्सा उचायो सुखो

पुरिसो [purisa]: कोई व्यक्ति; चे पुन्ञं [puñña]: यदि पुण्य कर्म; कायिरा : किए जाएँ; तं : वह; पुनप्पुनं [punappuna]: बार-बार; कायिरा : किया जाए; तं ही : उसमें; चंदं [chanda]: आनंद; कायिराथा : लिया जाए; पुन्ञस्स : पुण्य का; उच्चयो [uccaya]: संचय; सुखो [sukha]: सुख की ओर ले जाता है

एक व्यक्ति कोई पुण्य कर्म कर सकता है। उसे वह कर्म बार-बार दोहराते रहना चाहिए। उसे उस पुण्य कर्म में आनंद लेना चाहिए। पुण्य संचय से सुख प्राप्त होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 118)

पुण्य : पुण्य कर्म। ऐसे कर्मों को दर्शाने के लिए कुसला एक अन्य शब्द है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 119,120

(धम्मपद 118) <<<< पिछला || धम्मपद 119 और 120 || अगला >>>> (धम्मपद 121)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 119 और 120 - अनाथपिंडिकासेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 119 और 120 - अनाथपिंडिकासेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Papopi passati bhadram
yava papam na paccati
yada ca paccati papam
atha papo papam passati.

भद्रोपी पासाति पापम
yava bhadram na paccati
yada ca paccati bhadram
atha bhadro bhadrani passati.

श्लोक 119 : एक दुष्ट व्यक्ति भी तब तक सुख पा सकता है जब तक उसके बुरे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसके बुरे कर्मों का फल मिल जाता है तो उसे बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

श्लोक 120 : एक अच्छे व्यक्ति को भी तब तक कष्ट सहना पड़ सकता है जब तक कि उसके अच्छे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसका फल मिलेगा तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभों का आनंद उठाएगा।

अनाथपिंडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (119) और (120) का उच्चारण किया।

अनाथपिंडिका जेतवन मठ के दाता थे, जिसका निर्माण चौवन करोड़ रुपये की लागत से हुआ था। वे न केवल उदार थे, बल्कि बुद्ध के प्रति सच्चे भक्त भी थे। वे प्रतिदिन तीन बार जेतवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करते थे। सुबह वे चावल का दलिया, दिन में कोई उपयुक्त पौष्टिक भोजन या औषधि और शाम को फूल और अगरबत्ती लाते थे। कुछ समय बाद अनाथपिंडिका गरीब हो गए, लेकिन

एक दैत्य होने के कारण वे दुर्भाग्य से विचलित नहीं हुए और उन्होंने अपने दैनिक दान-पुण्य कार्य जारी रखे। एक रात, अनाथपिंडिका के घर के द्वार की रक्षा करने वाली आत्मा उनके सामने प्रकट हुई और बोली, "मैं तुम्हारे द्वार का रक्षक हूँ। तुम अपने भविष्य की चिंता किए बिना समना गौतम को अपनी संपत्ति अर्पित करते रहे हो। इसीलिए तुम अब गरीब हो। अतः तुम्हें समना गौतम को और दान नहीं करना चाहिए और अपने व्यवसाय पर ध्यान देना चाहिए तथा फिर से समृद्ध होना चाहिए।"

अनाथपिंडिका ने ऐसी बातें कहकर संरक्षक देवता को अपने घर से निकाल दिया। चूंकि अनाथपिंडिका एक सोतापन्न थे, इसलिए संरक्षक देवता उनकी अवज्ञा नहीं कर सके और उन्हें परिसर छोड़ना पड़ा। उनके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं थी और वे वापस लौटना चाहते थे, लेकिन अनाथपिंडिका से डरते थे। इसलिए, वे देवताओं के राजा सक्का के पास गए। सक्का ने उन्हें पहले अनाथपिंडिका का भला करने और उसके बाद उनसे क्षमा मांगने की सलाह दी। फिर सक्का ने आगे कहा, "कुछ व्यापारियों ने अनाथपिंडिका से लगभग अठारह करोड़ रुपये का ऋण लिया है जो अभी तक चुकाया नहीं गया है; अनाथपिंडिका के पूर्वजों द्वारा दफ़नाए गए अठारह करोड़ रुपये समुद्र में बह गए हैं, और अठारह करोड़ रुपये किसी स्थान पर दफ़नाए गए हैं, जिनका कोई मालिक नहीं है। जाओ और अपनी अलौकिक शक्ति से यह सारा धन वापस लाओ और अनाथपिंडिका के कमरों को भर दो। ऐसा करने के बाद, तुम उनसे क्षमा मांग सकते हो।" संरक्षक देवता ने सक्का के निर्देशानुसार कार्य किया और अनाथपिंडिका फिर से धनी हो गए।

जब संरक्षक आत्मा ने अनाथपिंडिका को सक्का द्वारा दी गई जानकारी और निर्देशों के बारे में बताया, जिसमें पृथ्वी के नीचे से, समुद्र के भीतर से और देनदारों से अपनी संपत्ति की वसूली के बारे में बताया गया था, तो वह विस्मय से भर गया। तब अनाथपिंडिका संरक्षक आत्मा को बुद्ध के पास ले गया। बुद्ध ने उन दोनों से कहा, "हो सकता है कि किसी अच्छे कर्म का फल लंबे समय तक न मिले और बुरे कर्म का परिणाम भुगतना पड़े; लेकिन वह समय अवश्य आएगा जब उसके अच्छे या बुरे कर्म का फल अवश्य मिलेगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 119 : एक दुष्ट व्यक्ति भी तब तक सुख पा सकता है जब तक उसके बुरे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसके बुरे कर्मों का फल मिल जाता है तो उसे बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

श्लोक 120 : एक अच्छे व्यक्ति को भी तब तक कष्ट सहना पड़ सकता है जब तक कि उसके अच्छे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसका फल मिलेगा तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभों का आनंद उठाएगा।

प्रवचन के अंत में, अनाथपिंडिका के घर के द्वार के संरक्षक देवता ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अनाथपिंडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

अनाथपिंडिका, जिन्होंने अकेले जेतवन मठ में बुद्ध के धर्म में चौवन अरब का खजाना खर्च किया, जेतवन में बुद्ध के निवास के दौरान दिन में तीन बार भव्य रूप से बुद्ध की सेवा करने जाते थे। जब भी वे वहां जाने के लिए निकलते, वे सोचते, "प्रशिक्षु और नौसिखिए मेरे हाथों को देखकर पूछेंगे, 'यह अपने साथ भेंट के रूप में क्या लाया है?'" और इसलिए वे कभी खाली हाथ नहीं जाते थे।

जब वह सुबह सवेरे वहाँ जाता था तो अपने साथ चावल की दलिया ले जाता था; नाश्ते के बाद वह घी, ताजा मक्खन और अन्य औषधियाँ ले जाता था; शाम को वह अपने साथ इत्र, मालाएँ, मलहम और वस्त्र ले जाता था। अब व्यापार से जीविका चलाने वालों ने उससे अठारह अरब का खजाना उधार लिया था। इसके अलावा, उसके परिवार का अठारह अरब का खजाना, जो नदी के किनारे गुप्त रूप से दबा हुआ था, नदी के उफान के समय विशाल सागर में बह गया था। परिणामस्वरूप, वह धीरे-धीरे दरिद्रता की स्थिति में पहुँच रहा था। लेकिन इसके बावजूद, वह पहले की तरह ही भिक्षुओं के संघ को दान देता रहा, यद्यपि वह पहले की तरह उत्तम भोजन देने में असमर्थ था।

एक दिन बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या हमारे गृहस्थ के घर में हमारे लिए भिक्षा का प्रबंध है?" अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया, "जी हाँ, पूज्यवर, परन्तु भोजन तो केवल पक्षियों का दाना और खट्टी दलिया है।" तब बुद्ध ने उनसे कहा, "गृहस्थ, यह मत सोचो कि 'मैं बुद्ध को केवल कच्चा भोजन दे रहा हूँ,' और इस बात से विचलित मत हो। यदि नीयत शुद्ध हो, तो बुद्धों और अन्य लोगों को वास्तव में कच्चा भोजन देना असंभव है।"

जब बुद्ध और उनके शिष्य अनाथपिंडिका के घर में प्रवेश कर रहे थे, तो द्वार पर निवास करने वाली देवी, उनकी अपार अच्छाई से अभिभूत होकर, वहाँ ठहर न पाने के कारण मन ही मन सोचने लगीं, "मैं गृहस्थ को उसकी निष्ठा से विमुख कर दूँगी, ताकि वे फिर कभी इस घर में प्रवेश न कर सकें।" यद्यपि देवी गृहस्थ से बात करने के लिए व्याकुल थीं, परन्तु उनके धन और शक्ति के चरम पर होने के

कारण वे उनसे एक शब्द भी नहीं कह सकीं। परन्तु इस समय उन्होंने मन ही मन सोचा, "गृहस्थ अब निर्धन है, अतः वह मेरी बातों पर ध्यान देगा।" तदनुसार वे रात में गईं, राजकोष के कक्ष में प्रवेश किया और हवा में स्थिर खड़ी हो गईं। जब राजकोष ने उन्हें देखा, तो उन्होंने कहा, "यह कौन है?" "हे महामहिम, मैं आपके चौथे द्वार पर निवास करने वाली देवी हूँ। मैं आपको उपदेश देने आई हूँ।" "तो फिर, जो कहना है कहिए।"

"हे महान कोषाध्यक्ष, भविष्य की चिंता किए बिना आपने अपनी अपार संपत्ति गौतम भिक्षु के धर्म में लुटा दी है। अब, यद्यपि आप दरिद्र हो चुके हैं, फिर भी आप अपनी संपत्ति दान करते रहते हैं। यदि आप इसी प्रकार दान करते रहे, तो कुछ ही दिनों में आपके पास अपने वस्त्र और भोजन के लिए भी पर्याप्त धन नहीं बचेगा। गौतम भिक्षु आपके किस काम के हैं? अपना फिजूलखर्ची छोड़ दें, व्यापार पर ध्यान दें और धनवान बनें।" "क्या यही सलाह देने आप आए हैं?" "जी हां, कोषाध्यक्ष।" "तो चले जाइए। चाहे आप जैसे एक लाख लोग भी कोशिश करें, आप मुझे मेरे मार्ग से नहीं हटा पाएंगे। आपने मुझसे वह बात कही है जो कहने का आपको अधिकार नहीं था; आपको मेरे घर में रहने का क्या अधिकार है? तुरंत मेरा घर छोड़ दीजिए।" धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त कर चुके एक श्रेष्ठ शिष्य के शब्दों को सहन न कर पाने के कारण देवी अपने बच्चों को साथ लेकर उसका घर छोड़कर चली गईं।

लेकिन देवी के उसके घर से चले जाने के बाद, उसे कहीं और रहने की जगह नहीं मिली। तब उसने मन ही मन सोचा, "मैं कोषाध्यक्ष से क्षमा मांगूंगी और इस घर में फिर से रहने की अनुमति मांगूंगी।" तदनुसार, वह नगर के संरक्षक देवता के पास गई, उन्हें अपनी गलती बताई और कहा, "आइए, मुझे कोषाध्यक्ष के पास ले चलिए, उन्हें मुझे क्षमा करने के लिए मनाइए और उन्हें अपने घर में फिर से रहने की अनुमति देने के लिए राजी कीजिए।" लेकिन नगर के संरक्षक देवता ने उत्तर दिया, "तुमने ऐसी बात कह दी है जो तुम्हें नहीं कहनी चाहिए थी; मेरे लिए तुम्हारे साथ कोषाध्यक्ष के घर जाना असंभव होगा।" इस प्रकार नगर के संरक्षक देवता ने उसकी विनती को अस्वीकार कर दिया। तब वह चार महान राजाओं के पास गई, लेकिन उन्होंने भी उसकी विनती को अस्वीकार कर दिया। तब वह देवताओं के राजा सक्का के पास गई, उन्हें अपनी कहानी सुनाई और उनसे और भी अधिक गंभीरता से विनती की। उसने कहा, "महाराज, मुझे रहने के लिए कोई जगह नहीं मिल रही है, मैं अपने बच्चों को साथ लेकर बिना किसी सुरक्षा के भटक रही हूँ। कृपया मुझे अपने पुराने निवास स्थान पर लौटने की अनुमति दें।" सक्का ने उत्तर दिया, "लेकिन मेरे लिए कोषाध्यक्ष से आपकी ओर से बात करना संभव नहीं होगा। फिर भी, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ।" "बहुत अच्छा, महाराज; मुझे बताइए वह क्या है।"

"जाओ, कोषाध्यक्ष के सहायक का वेश धारण करो; कोषाध्यक्ष के हाथ से लिखे एक पन्ने पर उसके पास मौजूद धन-संपत्ति की सूची लिखो; अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग करो और व्यापार से जीविका चलाने वालों द्वारा उधार ली गई अठारह अरब की संपत्ति को वापस लाओ और कोषाध्यक्ष के खाली भंडारगृह को उससे भर दो। इस संपत्ति के अलावा, अठारह अरब की संपत्ति ऐसी है जो विशाल सागर में बह गई है। इसके अलावा, अठारह अरब की संपत्ति ऐसी भी है जिसका कोई मालिक नहीं है, जो फलां-फलां स्थान पर पाई जा सकती है।"

इन सबको इकट्ठा करो और इससे उसका खाली भंडारगृह भर दो। इस प्रकार अपने अपराध का प्रायश्चित करके, उससे क्षमा मांगो।"

"ठीक है," देवी ने कहा। और उसने तुरंत वही किया जो देवताओं के राजा सक्का ने उसे करने को कहा था। ऐसा करने के बाद, वह हवा में स्थिर खड़ी हो गई, और अलौकिक प्रकाश से राजकोष के कक्ष को प्रकाशित कर दिया।

"वह कौन है?" कोषाध्यक्ष ने पूछा। "मैं हूँ," देवी ने उत्तर दिया, "वह अंधी, मूर्ख देवी जो कभी आपके चौथे द्वार पर निवास करती थी। अपनी अंधी मूर्खता में मैंने आपसे जो शब्द कहे थे, उनके लिए मुझे क्षमा करें। देवताओं के राजा सक्का के आदेश का पालन करते हुए, मैंने चौवन अरब धन पुनः प्राप्त कर लिया है और आपके खाली भंडारगृह को उससे भर दिया है; इस प्रकार मैंने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है; मेरे पास रहने के लिए कोई स्थान नहीं है, और इसलिए मैं बहुत थकी हुई हूँ।" अनाथपिंडिका ने मन ही मन सोचा, "यह देवी मुझसे कह रही है, 'मैंने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है,' और अपने दोष को स्वीकार कर रही है; मैं इसे परम प्रबुद्ध के पास ले जाऊँगा।" तदनुसार, वह उसे बुद्ध के पास ले गया और उससे कहा, "बुद्ध को अपने सभी कर्मों का वर्णन करें।" देवी बुद्ध के चरणों में गिर पड़ी और बोली, "आदरणीय, अपनी मूर्खता के कारण मैंने आपके उत्कृष्ट गुणों को नहीं पहचाना और बुरे शब्द कहे; मुझे क्षमा करें।" इस प्रकार देवी ने बुद्ध और महान कोषाध्यक्ष दोनों से क्षमा मांगी।

तब बुद्ध ने कोषाध्यक्ष और अप्सरा दोनों को अच्छे और बुरे कर्मों के फलने-फूलने के बारे में समझाते हुए कहा, "हे महान कोषाध्यक्ष, इस जन्म में, जब तक बुरे कर्मों का फल नहीं निकलता, तब तक दुष्ट भी सुख देखता है। परन्तु जैसे ही उसके बुरे कर्मों का फल निकल जाता है, तब वह केवल बुराई ही देखता है। इसी प्रकार, जब तक अच्छे कर्मों का फल नहीं निकलता, तब तक भले ही बुराई ही देखता है; परन्तु जैसे ही उसके अच्छे कर्मों का फल निकल जाता है, तब वह केवल सुख ही देखता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 119)

यव पापं न पच्चति पापो अपि भद्रं पस्सति
यदा च पापं पक्कति अथ पापो पापनि पस्सति

याव : जब तक; पापं [पाप]: बुरा कर्म; न पच्चति : परिपक्व नहीं होता; पापो अपि : बुरा कर्म करने वाला; भद्रं पसति : उसे अच्छा मानता है; यदा च : जब; पापं [पाप]: बुराई; पच्चति : परिपक्व होने लगती है; अथ : तब; पापो : बुरा कर्म करने वाला; पापानी : बुराई का वास्तविक स्वरूप; पसति : देखता है

बुराई करने वाला बुराई को भी अच्छाई समझने लगता है। जब बुराई परिपक्व होने लगती है, तब बुराई करने वाला बुराई को बुराई के रूप में समझने लगता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 120)

यव भद्रं न पच्चति भद्रो अपि पापं पस्सति
यदा च भद्रं पच्चति अथ भद्रो भद्राणि पस्सति

याव : जब तक; भद्रं [भद्र]: अच्छा; न पच्चति : परिपक्व नहीं होता; भद्रो अपि: अच्छा भी; पापं पसति : बुरा प्रतीत होता है; यदा : जब; च भद्रं [भद्र]: जो अच्छा है; पच्चति : परिपक्व होने लगता है; अथ : तब; भद्रो [भद्र]: अच्छा; भद्राणि पसति : वास्तव में अच्छा प्रतीत होता है

एक व्यक्ति अच्छे काम कर सकता है। लेकिन वे अच्छे काम शुरू में बुरे लग सकते हैं। लेकिन जब अच्छाई परिपक्व हो जाती है, तब वह वास्तव में अच्छी साबित होती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 119-120)

अनाथपिंडिका : ये दो श्लोक बुद्ध ने एक ऐसे आयोजन के दौरान कहे थे जिसमें कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका उपस्थित थे। करोड़पति अनाथपिंडिका बुद्ध के प्रमुख गृहस्थ शिष्य और समर्थक थे। उनके नाम अनाथपिंडिका का अर्थ है 'असहायों का भोजन कराने वाला'। उनका मूल नाम सुदत्त था। उनकी अतुलनीय उदारता के कारण उन्हें यह नया नाम दिया गया था। उनका जन्मस्थान सावत्थी था।

अथा पापो पापनि पस्साति : एक दुष्ट व्यक्ति अपने पूर्व कर्मों के फलस्वरूप समृद्ध जीवन जी सकता है। वह अपने पूर्व कर्मों की वर्तमान बुराई पर विजय पाने की क्षमता के कारण सुख का अनुभव करेगा — यह एक ऐसा अन्याय है जो अक्सर इस संसार में व्याप्त रहता है। जब कर्म के अटल नियम के अनुसार उसके बुरे कर्म फल देने लगते हैं, तब उसे अपने दुष्टता के कष्टदायी परिणाम बोध होते हैं।

अथा भद्रो भद्राणि पस्साति : एक गुणी व्यक्ति को, जैसा कि अक्सर होता है, अपने अतीत के बुरे कर्मों के फलदायी होने के कारण वर्तमान के अच्छे कर्मों की तुलना में विपत्ति का सामना करना पड़ सकता है। उसे अपने वर्तमान अच्छे कर्मों की सार्थकता का अहसास तभी होता है जब उचित समय पर वे फलदायी होकर उसे प्रचुर आनंद प्रदान करते हैं। यह तथ्य कि कभी-कभी दुष्ट समृद्ध होते हैं और गुणी दुर्भाग्यशाली, स्वयं कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास का प्रबल प्रमाण है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 121

(धम्मपद 119 और 120) <<<< पिछला || धम्मपद 121 || अगला >>>> (धम्मपद 122)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 121 - असन्नतापरिखरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 121 - असन्नतापरिक्खरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

मावमन्नेथा पापासा
na mandam agamissati
udabindu nipatena
उदाकुंभोपी पुरती
balo purati papassa
thokam thokampi acinam.

श्लोक 121 : बुराई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि "थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा"; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही मूर्ख भी थोड़ी-थोड़ी बुराई जमा करके उससे भर जाता है।

एक लापरवाह भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (121) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो मठ से संबंधित फर्नीचर के उपयोग में लापरवाह था।

यह भिक्षु मठ के किसी भी फर्नीचर, जैसे कि सोफा, बेंच या स्टूल का उपयोग करने के बाद, उसे बाहर परिसर में छोड़ देता था, जिससे वह बारिश, धूप और दीमक के संपर्क में आ जाता था। जब अन्य भिक्षुओं ने उसके इस गैरजिम्मेदाराना व्यवहार के लिए उसे फटकारा, तो वह कहता, "मेरा इरादा इन चीजों को नष्ट करने का नहीं है; आखिर, नुकसान तो बहुत कम हुआ है," और इसी तरह वह अपना व्यवहार जारी रखता था। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने उस भिक्षु को बुलवाया और उससे कहा, "भिक्षु, तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए: तुम्हें किसी भी बुराई को हल्के में नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कितनी भी छोटी क्यों न हो, क्योंकि यदि तुम इसे आदत के रूप में करोगे तो यह बड़ी हो जाएगी।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 121 : बुराई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि "थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा"; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही मूर्ख भी थोड़ी-थोड़ी बुराई जमा करके उससे भर जाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक लापरवाह भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में कहा था जो मठ के फर्नीचर के उपयोग में लापरवाह था। यह भिक्षु मठ के किसी भी फर्नीचर (जैसे सोफा, बेंच या स्टूल) का उपयोग करने के बाद उसे बाहर परिसर में छोड़ देता था, जिससे वह बारिश, धूप और दीमक के संपर्क में आ जाता था। जब अन्य भिक्षुओं ने उसके इस गैरजिम्मेदाराना व्यवहार के लिए उसे डांटा, तो वह कहता, "मेरा इरादा इन चीजों को नष्ट करने का नहीं है; आखिर, नुकसान तो बहुत कम हुआ है," और इसी तरह वह अपना व्यवहार जारी रखता था। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भिक्षु को बुलवाया और उससे कहा, "भिक्षु, तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए; तुम्हें किसी भी बुरे काम को हल्के में नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो; क्योंकि, अगर तुम इसे आदत के रूप में करोगे तो यह बड़ा रूप ले लेगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 121)

तं मां न अगामिस्सति पपास्स मा अप्पमन्नेथा
उदबिंदु निपातेन अपि उदकुंभो पूर्ति
थोकथोकं अपि अचिनं बालो पपास पुरति

taṃ : वह छोटा सा पाप: maṃ : मेरे प्रति; na āgamissati : बुरे परिणाम नहीं लाएगा; pāpassa : बुरे कर्म के बारे में; mā appamaññetha : कम मत समझो; udabindu nipātena api : केवल बूंद-बूंद करके; udakumbho [udakumbha]: जल पात्र; pūrati : भर जाता है; thokathokaṃ api : थोड़ा-थोड़ा करके भी; ācina [ācina]: संचय करते हुए; bālo : अज्ञानी; pāpassa : बुराई से; pūrati : भर जाता है

कुछ लोग बुराई को हल्के में लेते हैं। उनका रवैया यह होता है कि वे कुछ भी करके बच सकते हैं। वे कहते हैं, "मैं जैसा चाहूँ वैसा व्यवहार करूँगा। मुझे कभी कोई बुरा परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा।" लेकिन बुराई धीरे-धीरे बढ़ती है, ठीक वैसे ही जैसे पानी का घड़ा बूंद-बूंद करके भरता है। धीरे-धीरे बुराई बढ़ती जाती है, जब तक कि व्यक्ति उससे भर न जाए।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 121)

भिक्षु की आवश्यकताएँ । यह श्लोक बुद्ध द्वारा एक ऐसे भिक्षु के बारे में कहा गया है जो मठवासी जीवन की आवश्यकताओं का दुरुपयोग करता है। भिक्षु की आवश्यकताएँ परंपरागत रूप से बहुत सरल होती हैं। भिक्षु के लिए पवित्रता और मोक्ष के मार्ग पर प्रगति हेतु चार आवश्यकताएँ (चतु पच्चया) हैं: वस्त्र, भोजन, आवास और औषधि। ये मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। मूलतः ये एक गृहस्थ की भी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। बुद्ध की यह प्रथा थी कि वे भिक्षुओं से मिलने पर उनसे पूछते थे: “आप कैसे हैं? आप कैसे हैं? मुझे आशा है कि आप कुशल मंगल हैं और आपको भोजन की कमी नहीं है।” एक चरवाहे की मार्मिक कहानी है जो खोए हुए बैल को खोजते हुए दोपहर का भोजन नहीं कर पाया। वापस लौटते समय, थका हुआ और भूखा, वह बुद्ध

के प्रवचन सुनने के लिए उनके पास गया। लेकिन भगवान बुद्ध यह जानते हुए कि उस व्यक्ति ने दिन भर कुछ नहीं खाया था, लोगों से पूछा कि क्या पहले उसे भोजन कराया जा सकता है। बुद्ध जानते थे कि इस व्यक्ति की भूख मिटाए बिना उसे उपदेश देना व्यर्थ है।

यद्यपि बुद्ध ने मुख्य रूप से भौतिक प्रगति पर ध्यान केंद्रित नहीं किया, फिर भी उन्होंने इसे पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया। बुद्ध भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक कल्याण के कुछ पहलुओं के बारे में बहुत मुखर थे।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि गरीबी अपराध का एक प्रमुख कारण है। यदि लोगों को ऊपर वर्णित चार मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रखा जाए, या यदि ये आवश्यकताएँ, विशेषकर भोजन, दुर्लभ हों, तो उनका मन अशांत रहता है। वे नैतिक आचरण के बारे में नहीं सोचते और न ही धार्मिक जीवन के बारे में विचार करते हैं। आवश्यकता का कोई नियम नहीं होता और वे जीविका कमाने के लिए अन्यायपूर्ण और अधार्मिक तरीकों का सहारा लेते हैं। आर्थिक असुरक्षा और धन की कमी के कारण लोग चोरी और अन्य अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। कूटदंतसूत्र में कहा गया है कि किसी देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए किसानों और व्यापारियों को खेती और व्यापार करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए और लोगों को पर्याप्त मजदूरी दी जानी चाहिए। इस प्रकार, जब उनके पास जीविका के लिए पर्याप्त धन होता है और वे आर्थिक रूप से सुरक्षित होते हैं, तो अपराध कम हो जाता है और शांति और सद्भाव का माहौल बनता है।

एक अन्य प्रवचन में, बुद्ध अनाथपिंडिका (वह धनाढ्य जिसने संघ को जेतवन मठ दान किया था) को गृहस्थ को प्राप्त होने वाले चार प्रकार के सुखों के बारे में समझाते हैं। पहला है स्वामित्व का संतोष (अत्थि-सुख), यानी आर्थिक सुरक्षा, जिससे व्यक्ति के पास अपने प्रयासों से विधिवत अर्जित पर्याप्त साधन हों; दूसरा है उपभोग का आनंद (भोग-सुख), यानी विधिवत धन के विवेकपूर्ण उपयोग से प्राप्त सुख; तीसरा है ऋणमुक्ति का सुख (अनना-सुख), यानी यह सोचकर प्राप्त होने वाला आनंद और संतोष कि "मैं किसी का ऋणी नहीं हूँ"; चौथा है निर्दोषता का आनंद (अनवज्जसुख), जो इस विचार से प्राप्त होने वाला संतोष है कि "मैं शरीर, वाणी और मन से निष्कलंक कर्मों से धन्य हूँ।"

बौद्ध धर्म में ये सभी चर्चाएँ और उपदेश यह दर्शाते हैं कि समाज के एक सदस्य के रूप में, आम आदमी को जीविका कमाने और अपनी आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा को मजबूत करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए, अन्यथा वह स्वयं और दूसरों पर बोझ बन जाएगा, लेकिन साथ ही उसे गलत और अधार्मिक जीवन शैली से बचना चाहिए और आत्म-बलिदान, दान, आत्म-संयम, संयम, धैर्य, वैराग्य, ध्यान आदि के मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए।

बुद्ध के सही आजीविका संबंधी निर्देश और सलाह गृहस्थों और संघ के सदस्यों दोनों के लिए हैं। उन्होंने अपने शिष्यों को स्पष्ट रूप से समझाया है कि भिक्षु का जीवन पूर्णतः शुद्ध और छल-कपट से मुक्त होना चाहिए। गुरु इस विषय पर अत्यंत बल देते हुए कहते हैं: "हे भिक्षुओं, जो भी भिक्षु धोखेबाज, हठी, बकवास करने वाले, धूर्त, भावुक, अभिमानी और अशांत हैं, वे मेरे अनुयायी नहीं हैं। वे इस धम्म-विनय (सिद्धांत और अनुशासन) से विमुख हो गए हैं, और न ही वे इस धम्म-विनय में वृद्धि, विकास और समृद्धि प्राप्त करते हैं ।" गुरु आगे कहते हैं: "हे भिक्षुओं, यह पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) न तो लोगों को धोखा देने के लिए, न ही षड्यंत्र रचने के लिए, न ही लाभ और अनुग्रह के लिए, न ही मान-सम्मान के लिए जिया जाता है। यह न तो गपशप के लिए है, न ही इस इरादे से कि 'लोग मुझे फलां-फलां के रूप में जानें।'" लेकिन, भिक्षुओं, यह पवित्र जीवन संयम, त्याग, वैराग्य और विश्राम के लिए जिया जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 122

(धम्मपद 121) <<<< पिछला || धम्मपद 122 || अगला >>>> (धम्मपद 123)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 122 - बिलालापादकसेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 122 - बिलालापादकसेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
मावमन्नेथा पुन्नस्सा
na mandam agamissati
उदाबिन्दुनिपतेना
उदाकुंभोपी पुरती
dhiro purati punnassa
thokam thokampi acinam.

श्लोक 122 : किसी को भी भलाई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि 'थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा'; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा करके पुण्य अर्जित करता है।

बिलालापादका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (122) का उच्चारण किया, जो कि धनी व्यक्ति बिलालापादक के संदर्भ में था।

एक बार, श्रावस्ती के एक व्यक्ति ने बुद्ध का प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने का निश्चय किया। उपदेश यह था कि स्वयं दान करने के साथ-साथ दूसरों को भी दान करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है और परलोक में अनेक अनुयायी प्राप्त होते हैं। अतः उस व्यक्ति ने बुद्ध और जेतवन मठ के सभी भिक्षुओं को अगले दिन भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। फिर वह प्रत्येक घर में जाकर निवासियों को सूचित किया कि अगले दिन बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन दिया जाएगा, इसलिए वे अपनी इच्छा अनुसार दान करें। धनी बिलालपादक ने उस व्यक्ति को घर-घर घूमते देखकर उसके इस व्यवहार को अस्वीकार कर दिया और उससे घृणा करने लगा। उसने मन ही मन कहा, "हे इस दुष्ट व्यक्ति! लोगों को भिक्षा मांगने के बजाय, इसने स्वयं जितने भिक्षुओं को भिक्षा दे सकता था, उतने को आमंत्रित क्यों नहीं किया?" इसलिए उसने उस आदमी से अपना कटोरा लाने को कहा और उस कटोरे में उसने थोड़ा सा चावल, थोड़ा सा मक्खन और थोड़ा सा गुड़ डाला। ये चीजें अलग-अलग ले जाई गईं और दूसरों द्वारा दी गई चीजों में नहीं मिलाई गईं। अमीर आदमी को समझ नहीं आया कि उसकी चीजें अलग क्यों रखी गई हैं, और उसने सोचा कि शायद वह आदमी दूसरों को यह दिखाना चाहता है कि उसके जैसे अमीर आदमी ने बहुत कम दान दिया है और इस तरह उसे शर्मिंदा करना चाहता है। इसलिए उसने एक नौकर को पता लगाने के लिए भेजा।

दान के सूत्रधार ने धनी व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रत्येक दान को चावल, करी और मिठाई के विभिन्न बर्तनों में थोड़ा-थोड़ा करके डाल दिया, ताकि धनी व्यक्ति को पुण्य प्राप्त हो सके। उसके सेवक ने जो कुछ देखा था, वह सब बता दिया; परन्तु बिलालापादक को इसका अर्थ समझ नहीं आया और वह दान के सूत्रधार के इरादे को लेकर अनिश्चित था। यद्यपि, अगले दिन वह उस स्थान पर गया जहाँ दान दिया जा रहा था। उसी समय वह अपने साथ एक चाकू भी ले गया, क्योंकि उसका इरादा दान के मुख्य सूत्रधार को मार डालने का था, यदि वह सार्वजनिक रूप से यह प्रकट कर दे कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने कितना कम दान दिया है।

लेकिन दान के इस प्रचारक ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, यह दान हम सबका संयुक्त दान है; किसी ने कम दिया हो या ज्यादा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; हम सबने आस्था और उदारता से दान दिया है; इसलिए हम सबको समान पुण्य मिले।" ये शब्द सुनकर बिललपादक को एहसास हुआ कि उसने उस व्यक्ति के साथ अन्याय किया है और सोचने लगा कि अगर वह अपनी गलती स्वीकार करके दान के प्रचारक से क्षमा नहीं मांगेगा, तो उसका पुनर्जन्म चार लोकों (अपय) में से किसी एक में होगा। इसलिए उसने कहा, "मेरे मित्र, मैंने आपके बारे में बुरा सोचकर आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।" बुद्ध ने धनी व्यक्ति को क्षमा मांगते हुए सुना और पूछताछ करने पर कारण का पता लगाया। इसलिए बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, अच्छे कर्म को, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, हल्के में मत लो, क्योंकि छोटे कर्म भी आदतन करने से बड़े हो जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 122 : किसी को भी भलाई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि 'थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा'; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा करके पुण्य अर्जित करता है।

प्रवचन के अंत में, धनी बिलालापादक ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बिलालापादक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने धनी व्यक्ति बिलालापादक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, सावत्थी के एक व्यक्ति ने बुद्ध का प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने का निश्चय किया। उपदेश यह था कि स्वयं दान करने के साथ-साथ दूसरों को भी दान करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है और परलोक में अनेक अनुयायी प्राप्त होते हैं। अतः उस व्यक्ति ने बुद्ध और जेतवन मठ के सभी भिक्षुओं को अगले दिन भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। फिर वह प्रत्येक घर में जाकर निवासियों को सूचित किया कि अगले दिन बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन दिया जाएगा, इसलिए वे अपनी इच्छा अनुसार दान करें। धनी बिलालापादक ने उस व्यक्ति को घर-घर घूमते देखकर उसके इस व्यवहार को अस्वीकार कर दिया और उससे घृणा करने लगा। उसने मन ही मन कहा, "हे इस दुष्ट व्यक्ति! लोगों को भिक्षा देने के लिए इधर-उधर भटकने के बजाय, उसने स्वयं जितने भिक्षुओं को भिक्षा दे सकता था, उतने को आमंत्रित क्यों नहीं किया!" इसलिए उसने उस आदमी से अपना कटोरा लाने को कहा और उस कटोरे में उसने थोड़ा सा चावल, थोड़ा सा मक्खन और थोड़ा सा गुड़ डाला। ये चीजें अलग-अलग ले जाई गईं और दूसरों द्वारा दी गई चीजों में नहीं मिलाई गईं। धनी व्यक्ति को समझ नहीं आया कि उसकी चीजें अलग क्यों रखी गईं, और उसने सोचा कि शायद वह आदमी दूसरों को यह दिखाना चाहता था कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने बहुत कम दान दिया है और इस तरह उसे शर्मिंदा करना चाहता था। इसलिए उसने एक नौकर को पता लगाने के लिए भेजा।

दान के प्रचारक ने धनी व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रत्येक दान को चावल, करी और मिठाई के विभिन्न बर्तनों में थोड़ा-थोड़ा करके डाल दिया, ताकि धनी व्यक्ति को पुण्य प्राप्त हो सके। उसके सेवक ने जो कुछ देखा था, वह सब बता दिया; परन्तु बिलालापादक को इसका अर्थ समझ नहीं आया और वह दान के प्रचारक के इरादे को लेकर अनिश्चित था। यद्यपि, अगले दिन वह उस स्थान पर गया जहाँ दान दिया जा रहा था। उसी समय वह अपने साथ एक चाकू भी ले गया, क्योंकि उसका इरादा दान के मुख्य प्रचारक को मार डालने का था, यदि वह सार्वजनिक रूप से यह प्रकट कर दे कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने कितना कम दान दिया है।

लेकिन दान के इस प्रवर्तक ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह दान हम सबका संयुक्त दान है; किसी ने कम दिया हो या ज्यादा, इसका कोई महत्व नहीं है; हम सबने श्रद्धा और उदारता से दान दिया है; इसलिए हम सब को समान पुण्य मिले।" ये शब्द सुनकर बिलालापादक को एहसास हुआ कि उसने उस व्यक्ति के साथ अन्याय किया है और उसने सोचा कि यदि वह अपनी गलती स्वीकार न करे और दान के प्रवर्तक से क्षमा न मांगे, तो उसका पुनर्जन्म चार निम्न लोकों (अपायों) में से किसी एक में होगा। इसलिए उसने कहा, "मेरे मित्र, मैंने आपके बारे में बुरा सोचकर आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।" बुद्ध ने धनी व्यक्ति को क्षमा मांगते हुए सुना और पूछताछ करने पर कारण का पता लगाया। इसलिए बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, अच्छे कर्म को, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, हल्के में न लें, क्योंकि छोटे कर्म भी आदतन करने से बड़े हो जाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 122)

तं मां न अगामिस्सति पुन्नस्सा मा अवमन्नेथा

उदबिंदु निपातेन अपि उदकुंभो पूर्ति

थोकथोकं अपि अचिनं धीरो पुन्नस्सा पुरति

taṃ : वह पुण्य कर्म; maṃ : मेरे प्रति; na āgamissati : अच्छे परिणाम नहीं लाएगा; puññassa : पुण्य कर्म; mā avamaññetha : कम मत समझो; udabindu nipātena api : बूंद-बूंद करके; udakumbho [udakumbha]: जल पात्र; pūrati : भर जाता है; thokathokaṃ api : थोड़ा-थोड़ा करके भी; ācina [ācina]: एकत्रित; dhīro [dhīra]: महान पुरुष; puññassa : पुण्य से; pūrati : भर जाता है।

कुछ लोग यह मानते हैं कि सद्‌गुणों को हल्के में लिया जा सकता है, और उनका अभ्यास करने से कोई असाधारण लाभ नहीं मिलता। यह विचार पूरी तरह सही नहीं है। व्यक्ति द्वारा किए गए अच्छे कर्म धीरे-धीरे एकत्रित होते हैं। यह प्रक्रिया ठीक उसी तरह है जैसे किसी घड़े में बूंद-बूंद करके पानी भरता है। समय बीतने के साथ-साथ, सद्‌गुणों के छोटे-छोटे कार्य एकत्रित होते जाते हैं, जब तक कि सद्‌गुण करने वाला व्यक्ति पूरी तरह से सद्‌गुणों से भर नहीं जाता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 122)

māppamaññetha ; mā avamaññetha : कम मत समझो। इस श्लोक का उद्देश्य यह बताना है कि भले ही छोटा-सा कर्म कितना भी तुच्छ क्यों न लगे, उसे कम नहीं समझना चाहिए। क्योंकि कर्म से सुख मिलता है, इसलिए थोड़ी सी भी भलाई सहायक हो सकती है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 123

(धम्मपद 122) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 123 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 124)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 123 - महाधनवनिजा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 123 - महाधनवनिजा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vanijova bhayam maggam
अप्पसत्थो महाद्धानो
विसम जीवितुकामोवा
papani parivajjaye.

श्लोक 123 : जिस प्रकार कम सेवकों वाला धनी व्यापारी खतरनाक मार्ग से बचता है, जिस प्रकार जीवित रहने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार बुराई से बचना चाहिए।

महाधना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने व्यापारी महाधन के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (123) कहा।

महाधना सावत्थी के एक धनी व्यापारी थे। एक बार पाँच सौ लुटेरे उन्हें लूटने की योजना बना रहे थे, लेकिन उन्हें मौका नहीं मिला। इसी बीच, उन्हें पता चला कि व्यापारी जल्द ही बहुमूल्य माल से लदी पाँच सौ गाड़ियों के साथ यात्रा पर निकलेंगे। व्यापारी महाधना ने उन भिक्षुओं को भी अपने साथ यात्रा पर जाने का निमंत्रण दिया जो उनके साथ जाना चाहते थे, और उन्होंने रास्ते में उनकी जरूरतों का ध्यान रखने का वादा किया। इस प्रकार पाँच सौ भिक्षु उनके साथ चल दिए। लुटेरों को यात्रा की खबर मिली और वे व्यापारी के काफिले की प्रतीक्षा में आगे बढ़ गए। लेकिन व्यापारी जंगल के बाहरी इलाके में रुक गए जहाँ लुटेरे प्रतीक्षा कर रहे थे। काफिला वहाँ कुछ दिनों तक डेरा डालने के बाद आगे बढ़ने वाला था। लुटेरों को प्रस्थान की खबर मिली और वे काफिले को लूटने के लिए तैयार हो गए; व्यापारी को भी लुटेरों की गतिविधियों की खबर मिली और उन्होंने घर लौटने का फैसला किया। लुटेरों को अब पता चला कि व्यापारी घर जा रहे हैं; इसलिए वे घर वापसी के रास्ते में उनका इंतजार करने लगे। कुछ ग्रामीणों ने व्यापारी को डाकुओं की गतिविधियों के बारे में सूचना भेजी, और अंततः व्यापारी ने कुछ समय के लिए गाँव में ही रहने का निर्णय लिया। जब उसने भिक्षुओं को अपने निर्णय के बारे में बताया, तो भिक्षु स्वयं ही सावत्थी लौट गए।

जेतवन मठ पहुँचकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी यात्रा रद्द होने की सूचना दी। तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, महाधन डाकुओं से घिरी यात्रा से दूर रहता है; जो मरना नहीं चाहता वह विष से दूर रहता है; उसी प्रकार, एक बुद्धिमान भिक्षु, यह जानकर कि अस्तित्व के तीनों स्तर (1) खतरे से घिरी यात्रा के समान हैं, बुराई करने से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 123 : जिस प्रकार कम सेवकों वाला धनी व्यापारी खतरनाक मार्ग से बचता है, जिस प्रकार जीवित रहने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार बुराई से बचना चाहिए।

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

1. अस्तित्व के तीन स्तर इस प्रकार हैं:

ए. कामभाव, इंद्रियजन्य अस्तित्व का स्तर; जिसमें इंद्रिय इच्छा के ग्यारह क्षेत्र शामिल हैं;

ख. रूपाभवा, सूक्ष्म भौतिक अस्तित्व का स्तर: जिसमें ब्रह्मा के सोलह लोक शामिल हैं;
ग. अरुपहबवा, जो कि गैर-भौतिक अस्तित्व का स्तर है; इसमें ऊपरी ब्रह्माओं के चार क्षेत्र शामिल हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
महाधन की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने व्यापारी महाधन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
महाधन श्रावस्ती का एक धनी व्यापारी था। एक बार पाँच सौ लुटेरे उसे लूटने की योजना बना रहे थे, पर उन्हें मौका नहीं मिला। इसी बीच, उन्हें पता चला कि व्यापारी जल्द ही बहुमूल्य माल से लदी पाँच सौ गाड़ियों के साथ यात्रा पर निकलेगा। व्यापारी महाधन ने अपने साथ यात्रा करने के इच्छुक भिक्षुओं को भी आमंत्रित किया और रास्ते में उनकी जरूरतों का ध्यान रखने का वादा किया। इस प्रकार, पाँच सौ भिक्षु उसके साथ चल दिए। लुटेरों को यात्रा की खबर मिली और वे व्यापारी के काफिले की प्रतीक्षा में आगे बढ़ गए। लेकिन व्यापारी जंगल के बाहरी इलाके में रुक गया जहाँ लुटेरे इंतजार कर रहे थे। काफिला वहाँ कुछ दिनों तक डेरा डालने के बाद आगे बढ़ने वाला था। लुटेरों को प्रस्थान की खबर मिली और वे काफिले को लूटने के लिए तैयार हो गए; व्यापारी को भी लुटेरों की गतिविधियों की खबर मिली और उसने घर लौटने का फैसला किया। लुटेरों को अब पता चला कि व्यापारी घर जा रहा है; इसलिए वे घर वापसी के रास्ते में इंतजार करने लगे। कुछ ग्रामीणों ने व्यापारी को डाकुओं की गतिविधियों के बारे में सूचना भेजी, और अंततः व्यापारी ने कुछ समय के लिए गाँव में ही रहने का निर्णय लिया। जब उसने भिक्षुओं को अपने निर्णय के बारे में बताया, तो भिक्षु स्वयं ही सावत्थी लौट गए।
जीतावन मठ पहुँचने पर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी यात्रा रद्द होने की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, महाधन डाकुओं से घिरी यात्रा से दूर रहता है, जो मरना नहीं चाहता वह विष से दूर रहता है; उसी प्रकार, एक बुद्धिमान भिक्षु, यह जानते हुए कि तीनों लोकों का अस्तित्व खतरों से भरी यात्रा के समान है, बुराई करने से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 123)
महद्धनो अप्पसत्थो वाणीजो भयं मग्गं
इव जीवितुकामो विसं इव पापानि परिवज्जाये
महाद्धनो [महाद्धना]: अत्यंत धनी; अप्पसत्थो [अप्पसत्था]: कारवां के छोटे दल के साथ; वाणिजो [वाणिजा]: व्यापारी के समान; भयं मगगं इव : जोखिम भरे मार्ग से बचना; जीवितुकामो [जीवितुकामा]: जीवन से प्रेम करना; विषं इव : विष के समान; पापानी : बुरे कर्म; परिवज्जये : पूरी तरह से त्याग करना
माल ढोने वाला एक धनी और बुद्धिमान व्यापारी किसी भी खतरनाक सड़क (डाकुओं के कब्जे वाली सड़क) से पूरी सावधानी से बचेगा, विशेषकर तब जब उसके पास सुरक्षा के लिए पर्याप्त काफिला न हो। इसी प्रकार, अपने जीवन से प्रेम करने वाला व्यक्ति जहर से अत्यंत सावधानी से बचेगा। ठीक इसी तरह, बुराई से पूरी तरह दूर रहना चाहिए।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 123)
अप्पसत्थो : व्यापारियों का छोटा कारवां। ' सत्था ' शब्द व्यापारियों के समूह को दर्शाता है। ये व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हुए अपना माल बेचते हैं। कभी-कभी ये विशाल कारवां में यात्रा करते हैं। प्राचीन काल में ऐसे कारवां बैलगाड़ियों और रथों से बने होते थे, जिन्हें बैलों द्वारा खींचा जाता था। चूंकि उन्हें विभिन्न प्रकार के भूभागों से होकर गुजरना पड़ता था, इसलिए कभी-कभी उन पर डाकुओं द्वारा हमले किए जाते थे। ऐसे हमलों का मुकाबला करने के लिए, व्यापारी बड़े समूहों में यात्रा करते थे, जो डाकुओं के हमले को विफल करने में सक्षम थे। पारंपरिक टीकाओं में सत्था (व्यापारियों) को दो श्रेणियों में वर्णित किया गया है: (1) जंघासत्था : फेरीवाले और विक्रेता जो ज्यादातर अकेले ही अपना माल ढोते हुए यात्रा करते थे; (2) सक्त सत्था : वे जो अपने माल से भरी गाड़ियां लेकर यात्रा करते थे। बुद्ध के समय में, इन गाड़ीगाड़ियों के कारवां अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थे। इस श्लोक में, इन अत्यंत धनी व्यापारियों की एक आदत पर जोर दिया गया है। यदि वे बहुत धनी होते, लेकिन यदि उनका काफिला छोटा होता (अप्पसत्थो), तो वे 'भयंकर रास्तों' (भयंकर मार्ग) से बचते । भयंकर रास्ते वे होते थे जहाँ डाकुओं का वास माना जाता था।
पापनि : शरीर, वाणी और विचार की बुराई। ये लोभ, द्वेष और मोह में निहित हैं । ये भावनात्मक क्रियाएं स्वयं और दूसरों दोनों के लिए दुख का कारण बनती हैं। बुराई डाकुओं और विष की तरह ही खतरनाक और विशिष्ट है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 124

(धम्मपद 123) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 124 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 125)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 124 - कुक्कुटमित्तनेसदा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 124 - कुक्कुटमित्तनेसदा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Panimhi ce vano nassa
हरेय्या पनीना विसम
निब्बानम विसामनवेति
natthi papam akubbato.

श्लोक 124 : यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो कोई विष को छू सकता है; विष उस पर असर नहीं करता जिस पर कोई घाव न हो; जिसका कोई बुरा इरादा न हो, उसके लिए कोई बुराई नहीं हो सकती।

कुक्कुतामित्ता की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शिकारी कुक्कुटामित्त और उसके परिवार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (124) कहा।
राजगृह में एक धनी व्यक्ति की पुत्री रहती थी, जिसने कम उम्र में ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया था। एक दिन, कुक्कुतामित्त नामक एक शिकारी बैलगाड़ी में बैठकर हिरण का मांस बेचने आया। कुक्कुतामित्त को देखते ही धनी युवती को उससे प्रेम हो गया; वह उसके पीछे गई, उससे विवाह किया और उसके साथ एक छोटे से गाँव में रहने लगी। इस विवाह से उनके सात पुत्र हुए और समय बीतने पर सभी पुत्रों का विवाह हो गया। एक दिन, बुद्ध ने सुबह-सुबह अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया और पाया कि शिकारी, उसके सात पुत्र और उनकी पत्नियाँ सोतापत्ति फल प्राप्त करने के योग्य थे। इसलिए, बुद्ध उस स्थान पर गए जहाँ शिकारी ने जंगल में अपना जाल बिछाया था। उन्होंने जाल के पास अपने पदचिह्न छोड़े और जाल से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी की छाया में बैठ गए।
जब शिकारी आया, तो उसने जाल में कोई जानवर नहीं देखा; उसने पैरों के निशान देखे और अनुमान लगाया कि उससे पहले कोई आया होगा और जानवर को काट गया होगा। इसलिए, जब उसने झाड़ी की छाया में बुद्ध को देखा, तो उसने उन्हें ही जानवर को जाल से मुक्त करने वाला व्यक्ति समझ लिया और क्रोधित हो गया। उसने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाला, लेकिन जैसे ही उसने धनुष खींचा, वे स्थिर हो गए और मूर्ति की तरह उसी स्थिति में बने रहे। उसके पुत्र पीछे-पीछे आए और अपने पिता को पाया; उन्होंने भी कुछ दूरी पर बुद्ध को देखा और सोचा कि वे उनके पिता के शत्रु होंगे। उन सभी ने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाले, लेकिन वे भी स्थिर हो गए और अपनी-अपनी मुद्राओं में बने रहे। जब शिकारी और उसके पुत्र वापस नहीं लौटे, तो शिकारी की पत्नी अपनी सात बहुओं के साथ उनके पीछे जंगल में गई। अपने पति और सभी पुत्रों को बुद्ध पर तीर ताने हुए देखकर, उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई: "मेरे पिता को मत मारो।"
जब उसके पति ने उसकी बातें सुनीं, तो उसने सोचा, "ये मेरे ससुर जी होंगे", और उसके बेटों ने सोचा, "ये हमारे दादा जी होंगे"; और उनके मन में प्रेम और दया का भाव आया। तब उस महिला ने उनसे कहा, " अपने धनुष-बाण रख दो और मेरे पिता जी को प्रणाम करो।" बुद्ध ने देखा कि इस समय तक शिकारी और उसके बेटे का मन शांत हो चुका था, इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वे उठें और अपने धनुष-बाण रख दें। अपने धनुष-बाण रखने के बाद, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया। अंत में, शिकारी, उसके सात पुत्र और सात बहुएँ, सभी पंद्रह लोगों ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।
फिर बुद्ध मठ लौट आए और थेरा आनंद और अन्य भिक्षुओं को शिकारी कुक्कुतामित्त और उसके परिवार के सुबह-सुबह सोतापत्ति फल प्राप्त करने के बारे में बताया। भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर, क्या सोतापन्न शिकारी की पत्नी भी जीवनघात की दोषी नहीं है, यदि वह अपने पति के शिकार पर जाने पर उनके लिए जाल, धनुष और बाण जैसी वस्तुएँ लाती रही है?” इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, सोतापन्न हत्या नहीं करते, वे दूसरों के मारे जाने की कामना नहीं करते। शिकारी की पत्नी तो केवल अपने पति की

आज्ञा का पालन करते हुए उनके लिए वस्तुएँ ला रही थी। जैसे जिस हाथ में घाव न हो, उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार, क्योंकि उसका कोई बुरा करने का इरादा नहीं है, इसलिए वह कोई बुरा कार्य नहीं कर रही है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 124 : यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो कोई विष को छू सकता है; विष उस पर असर नहीं करता जिस पर कोई घाव न हो; जिसका कोई बुरा इरादा न हो, उसके लिए कोई बुराई नहीं हो सकती।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुक्कुटमित्त की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शिकारी कुक्कुटमित्त और उसके परिवार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
राजगृह में एक समय एक धनी व्यक्ति की पुत्री रहती थी जिसने कम उम्र में ही सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक दिन कुक्कुटमित्त नामक एक शिकारी बैलगाड़ी में बैठकर हिरण का मांस बेचने आया। कुक्कुटमित्त को देखते ही धनी युवती को उससे प्रेम हो गया; वह उसके पीछे गई, उससे विवाह किया और एक छोटे से गाँव में उसके साथ रहने लगी। इस विवाह से उनके सात पुत्र हुए और समय बीतने पर सभी पुत्रों का विवाह हो गया। एक दिन बुद्ध ने सुबह-सुबह अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया और पाया कि शिकारी, उसके सात पुत्र और उनकी पत्नियाँ सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य थे। इसलिए बुद्ध उस स्थान पर गए जहाँ शिकारी ने जंगल में अपना जाल बिछाया था। उन्होंने जाल के पास अपने पदचिह्न छोड़े और जाल से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी की छाया में बैठ गए।
जब शिकारी आया, तो उसने जाल में कोई जानवर नहीं देखा; उसने पैरों के निशान देखे और अनुमान लगाया कि उससे पहले कोई आया होगा और जानवर को छोड़ गया होगा। इसलिए, जब उसने झाड़ी की छाया में बुद्ध को देखा, तो उसने उन्हें ही जानवर को जाल से मुक्त करने वाला व्यक्ति समझ लिया और क्रोधित हो गया। उसने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाला, लेकिन जैसे ही उसने धनुष खींचा, वे स्थिर हो गए और मूर्ति की तरह उसी स्थिति में बने रहे। उसके पुत्र पीछे-पीछे आए और अपने पिता को पाया; उन्होंने भी कुछ दूरी पर बुद्ध को देखा और सोचा कि वे उनके पिता के शत्रु होंगे। उन सभी ने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाले, लेकिन वे भी स्थिर हो गए और अपनी-अपनी मुद्राओं में बने रहे। जब शिकारी और उसके पुत्र वापस नहीं लौटे, तो शिकारी की पत्नी अपनी सात बहुओं के साथ उनके पीछे जंगल में गई। अपने पति और सभी पुत्रों को बुद्ध पर तीर ताने हुए देखकर, उसने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई, "मेरे पिता को मत मारो।"
जब उनके पति ने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने सोचा, "ये मेरे ससुर जी होंगे", और उनके बेटों ने सोचा, "ये हमारे दादा जी होंगे", और उनके मन में प्रेम और दया का भाव आया। तब उस महिला ने उनसे कहा, "अपने धनुष-बाण रख दो और मेरे पिता जी को प्रणाम करो।" बुद्ध ने महसूस किया कि तब तक शिकारी और उसके बेटों का मन शांत हो चुका था, इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वे उठें और अपने धनुष-बाण रख दें। अपने धनुष-बाण रखने के बाद, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया। अंत में, शिकारी, उसके सात पुत्र और सात बहुएँ, सभी पंद्रह लोगों ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया। तब बुद्ध मठ लौट आए और पूज्य आनंद और अन्य भिक्षुओं को शिकारी कुक्कुटमित्त और उनके परिवार के सुबह-सुबह सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त करने के बारे में बताया। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, क्या शिकारी की पत्नी, जो एक सोतापन्न है, भी जीवन लेने की दोषी नहीं है, यदि वह अपने पति के शिकार पर जाने पर उसके लिए जाल, धनुष और बाण जैसी वस्तुएँ लाती है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सोतापन्न हत्या नहीं करते, वे दूसरों की मृत्यु नहीं चाहते। शिकारी की पत्नी तो केवल अपने पति की आज्ञा का पालन करते हुए उसके लिए वस्तुएँ ला रही थी। जैसे जिस हाथ में घाव नहीं होता, उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही, क्योंकि उसका कोई बुरा करने का इरादा नहीं है, इसलिए वह कोई बुरा काम नहीं कर रही है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 124)
सी पणिमहि वनो न अस्सा पणिन विसं हारेया
विसं अब्बनं न अन्वेति अकुब्बतो पापं नत्थि
ce : यदि; pāṇimhi : हथेली में; vano : घाव; nā assa : मौजूद नहीं है; pāṇinā : हथेली में; visaṃ [visa]: विष; hareyya : लिया जा सकता है; visaṃ [visa]: विष; abbanaṃ [abbana]: हथेली में घाव रहित व्यक्ति; na anveti : प्रवेश नहीं करेगा; akubbato [akubbata]: उसी प्रकार, जो व्यक्ति बुराई नहीं करता; pāpaṃ natthi : कोई बुराई नहीं होती
यदि किसी व्यक्ति की हथेली पर कोई घाव न हो, तो वह अपने हाथ में विष रख सकता है। इसका कारण यह है कि विष उसके शरीर में अवशोषित नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार, जिसने कोई बुरा कर्म नहीं किया है, उसे बुरे परिणामों का कोई भय नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 124)

विषम् : विष। यदि किसी व्यक्ति की हथेली पर कोई घाव न हो और वह विष को छू ले, तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार, जो व्यक्ति बुरे कर्म नहीं करता, उस पर बुराई का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 125

————————————————————————

(धम्मपद 124) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 125 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 126)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 125 - कोकासुनाखलुद्दका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 125 - कोकासुनाखलुद्दका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यो अप्पादुत्थस्सा नरस्सा(1) दुस्साति
सुधास्सा पोसासा(1) अनंगनासा
tameva balam pacceti papam
सुखुमो रजो पतिवतमव खित्तो।

————————————————————————

श्लोक 125 : यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अन्याय करता है जिसके साथ अन्याय नहीं किया जाना चाहिए, जो पवित्र है और नैतिक दोषों से मुक्त है, अर्थात् एक अरहत, तो वह बुराई उस मूर्ख पर वापस आ पड़ती है, जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

————————————————————————

1. नरसा/पोसासा: एक अरहत (प्रबुद्ध व्यक्ति)।

————————————————————————

शिकारी कोका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शिकारी कोका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (125) कहा।

एक सुबह, जब कोका अपने कुत्तों के झुंड के साथ शिकार पर जा रहा था, तो उसकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई जो भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश कर रहा था। उसने इसे अपशगुन समझा और मन ही मन बड़बड़ाया, "इस अभागे को देखकर लगता है कि आज मुझे कुछ नहीं मिलेगा," और वह अपने रास्ते चला गया। जैसा कि उसने सोचा था, उसे कुछ नहीं मिला। घर लौटते समय भी उसने उसी भिक्षु को शहर में भिक्षा मांगने के बाद मठ लौटते देखा, और शिकारी बहुत क्रोधित हो गया। इसलिए उसने अपने कुत्तों को भिक्षु पर छोड़ दिया। भिक्षु तेजी से एक पेड़ पर चढ़ गया और कुत्तों की पहुँच से थोड़ा दूर हो गया। फिर शिकारी पेड़ के नीचे गया और अपने तीर की नोक से भिक्षु की एड़ियों में वार किया। भिक्षु को बहुत दर्द हुआ और वह अपने वस्त्रों को पकड़ नहीं पा रहा था; इस प्रकार, वस्त्र उसके शरीर से फिसलकर पेड़ की तलहटी में खड़े शिकारी पर गिर गया।

पीले वस्त्र को देखकर कुत्तों ने सोचा कि भिक्षु पेड़ से गिर गया है और वे उसके शरीर पर झपट पड़े, उसे बेरहमी से काटने और खींचने लगे। भिक्षु ने पेड़ पर शरण लेकर एक सूखी शाखा तोड़ी और कुत्तों पर फेंक दी। तब कुत्तों को एहसास हुआ कि वे भिक्षु पर नहीं बल्कि अपने ही स्वामी पर हमला कर रहे थे और वे जंगल में भाग गए। भिक्षु पेड़ से नीचे उतरे और देखा कि शिकारी मर चुका है और उन्हें उस पर दया आई। उन्होंने यह भी सोचा कि क्या वे उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, क्योंकि शिकारी की मृत्यु उसके पीले वस्त्रों से ढके होने के कारण हुई थी।

अतः वह अपने संदेह को दूर करने के लिए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, "मेरे पुत्र, निश्चिंत रहो और संदेह मत करो; शिकारी की मृत्यु के लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो; उस मृत्यु से तुम्हारा शील भी कलंकित नहीं हुआ है। वास्तव में, उस शिकारी ने एक ऐसे व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया जिसके साथ उसे अन्याय नहीं करना चाहिए था और इसीलिए उसका यह दुखद अंत हुआ।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 125 : यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अन्याय करता है जिसके साथ अन्याय नहीं किया जाना चाहिए, जो पवित्र है और नैतिक दोषों से मुक्त है, अर्थात् एक अरहत, तो वह बुराई उस मूर्ख पर वापस आ पड़ती है, जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
शिकारी कोका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शिकारी कोका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक सुबह, जब कोका अपने कुत्तों के झुंड के साथ शिकार पर जा रहा था, तो उसकी मुलाकात शहर में भिक्षा मांगने आए एक भिक्षु से हुई। उसने इसे अपशगुन समझा और मन ही मन बड़बड़ाया, "इस दुष्ट को देखकर लगता है आज मुझे कुछ नहीं मिलेगा," और वह अपने रास्ते चला गया। जैसा उसने सोचा था, उसे कुछ नहीं मिला। घर लौटते समय भी उसने उसी भिक्षु को मठ लौटते देखा, और शिकारी बहुत क्रोधित हो गया। उसने अपने कुत्तों को भिक्षु पर छोड़ दिया। भिक्षु फुर्ती से एक पेड़ पर चढ़ गया और कुत्तों की पहुँच से थोड़ा दूर हो गया। फिर शिकारी पेड़ के नीचे गया और अपने तीर की नोक से भिक्षु की एड़ी में वार कर दिया। भिक्षु को बहुत दर्द हुआ और वह अपने वस्त्रों को संभाल नहीं पाया; इसलिए वस्त्र उसके शरीर से फिसलकर पेड़ के नीचे खड़े शिकारी पर गिर पड़े।
पीले वस्त्र को देखकर कुत्तों ने सोचा कि भिक्षु पेड़ से गिर गया है और वे शरीर पर झपट पड़े, उसे बेरहमी से काटने और खींचने लगे। पेड़ पर शरण लिए हुए भिक्षु ने एक सूखी शाखा तोड़कर कुत्तों पर फेंक दी। तब कुत्तों को एहसास हुआ कि वे भिक्षु पर नहीं बल्कि अपने ही स्वामी पर हमला कर रहे थे और वे जंगल में भाग गए। भिक्षु पेड़ से नीचे उतरे और पाया कि शिकारी मर चुका है और उन्हें उस पर दया आई। उन्होंने यह भी सोचा कि क्या वे उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, क्योंकि शिकारी की मृत्यु उसके पीले वस्त्रों से ढके होने के कारण हुई थी।
अतः वह अपने संदेह दूर करने के लिए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, "मेरे पुत्र, निश्चिंत रहो और संदेह मत करो; शिकारी की मृत्यु के लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो; उस मृत्यु से तुम्हारा नैतिक सद्गुण (शील) भी कलंकित नहीं हुआ है। वास्तव में, उस शिकारी ने एक ऐसे व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया जिसके साथ उसे अन्याय नहीं करना चाहिए था, और इसीलिए उसका यह दुखद अंत हुआ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 125)
यो अप्पादुथस्स सुधास्स अनंगनस्स नरससा
पोस्सा दुस्सति (तं) पापं पतिवतं खित्तो
सुखुमो रजो इव तं बालं एव पचेती
यदि कोई व्यक्ति; अप्पदुत्तस्स : निष्कलंक हो; शुद्धस्स : पवित्र हो; अनंगणस्स : दोषों से मुक्त हो; नरस्स पोस्स : ऐसे मनुष्य के प्रति; दुस्सति : यदि कोई व्यक्ति कठोर हो जाए; पापं [पाप]: वह बुरा कर्म; पाटिवातं [पाटिवात]: हवा के विपरीत; खित्तो [खित्त]: फेंका जाए; सुखुमों राजो इव : जैसे कोई महीन धूल; तं बलं एव : उस अज्ञानी व्यक्ति को ही; पच्चेति : लौट आए
यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति किसी निर्दोष, पवित्र और भ्रष्टाचार से मुक्त व्यक्ति के प्रति कठोर और असभ्य व्यवहार करे, तो वह पाप कर्म उसी पर लौट आएगा। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल, फेंकने वाले के पास वापस लौट आती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 125)
अनंगणस : दोषों से रहित व्यक्ति । अंगण वे दोष हैं जो राग (वासना), दोष (द्वेष) और मोह (अज्ञान) से उत्पन्न होते हैं। इन्हें अंगण (शाब्दिक रूप से, खुले स्थान; खेल के मैदान) कहा जाता है क्योंकि इनमें बुराई बिना किसी रोक-टोक के खेल सकती है। कभी-कभी 'दाग' को भी अंगण कहा जाता है । व्युत्पत्ति के अनुसार, अंगण का अर्थ दोषों से दूषित व्यक्ति को भ्रष्ट करने की क्षमता भी है। कुछ संदर्भों में, अंगण का अर्थ गंदगी भी होता है। दोषों से रहित व्यक्ति को अनंगण कहा जाता है ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 126

(धम्मपद 125) <<<< पिछला || धम्मपद 126 || अगला >>>> (धम्मपद 127)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 126 - मणिकारकुलुपक तिस्सत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 126 - मणिकारकुलुपक तिस्सत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Gabbhameke uppajjanti(1)
निरयम पापकम्मिनो
saggam sugatino yanti
parinibbanti anasava(2).
[गब्बमेक उप्पज्जन्ति,
निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यंति,
परिणिब्बन्ति अनासवा॥

हिन्दी अर्थ :
कुछ (प्राणि) गर्भ में जन्म लेते हैं,
पापकर्मी नरक में जाते हैं।
सुकर्मी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं,
और निवास स्थान आसव (क्लेश) नष्ट हो जाते हैं, वे परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।]

श्लोक 126 : कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं, दुष्ट निरंतर यातना (निरय) के स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं। धर्मात्मा देवलोक जाते हैं, और जो नैतिक व्यसनों से मुक्त होते हैं (अर्थात अरहत), वे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

---

1. गब्भमेके उप्पंजन्ति: शाब्दिक अर्थ, कुछ गर्भ में प्रवेश करते हैं; इस संदर्भ में, "कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।"
2. अनसवा: नैतिक मादक पदार्थों या वासनाओं से मुक्त। (अवस) अर्थात्, वे खिनसवा या अनसवा या अरहतस्स हो गए हैं।

थेरा टिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (126) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक रत्न तराशने वाला और उसकी पत्नी रहते थे; वहाँ एक थेरा भी रहते थे, जो एक अरहत थे। दंपति प्रतिदिन थेरा को भिक्षा देते थे। एक दिन, जब रत्न तराशने वाला मांस तराश रहा था, तभी कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) का एक दूत एक माणिक लेकर आया, जिसे काटकर और तराशकर राजा को वापस भेजना था। रत्न तराशने वाले ने अपने रक्त से सने हाथ से माणिक उठाया, उसे एक मेज पर रखा और हाथ धोने के लिए घर के अंदर चला गया। परिवार के पालतू सारस ने रक्त से सने माणिक को मांस का टुकड़ा समझकर उठा लिया और थेरा के सामने ही निगल गया। जब रत्न तराशने वाला लौटा, तो उसने पाया कि माणिक गायब है। उसने अपनी पत्नी और बेटे से पूछा, तो उन्होंने कहा कि उन्होंने नहीं लिया। फिर उसने थेरा से पूछा, तो थेरा ने कहा कि उन्होंने नहीं लिया; लेकिन वे संतुष्ट नहीं हुए। घर में कोई और न होने के कारण, रत्न पॉलिश करने वाले ने यह निष्कर्ष निकाला कि कीमती माणिक्य अवश्य ही किसी थेरेपिस्ट ने लिया होगा: इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि चोरी की बात कबूल करवाने के लिए उसे थेरेपिस्ट को प्रताड़ित करना होगा।

लेकिन उनकी पत्नी ने उत्तर दिया, "यह थेरा पिछले बारह वर्षों से हमारे मार्गदर्शक और शिक्षक रहे हैं, और हमने उन्हें कभी कोई बुराई करते नहीं देखा; कृपया थेरा पर आरोप न लगाएँ। एक कुलीन व्यक्ति पर आरोप लगाने से बेहतर है कि राजा की सज़ा भुगती जाए।" लेकिन उनके पति ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया; उन्होंने एक रस्सी ली और थेरा को बांधकर डंडे से कई बार पीटा, जिसके परिणामस्वरूप थेरा के सिर, कान और नाक से बहुत खून बहने लगा और वे ज़मीन पर गिर पड़े। सारस ने खून देखकर उसे पीने की

इच्छा से थेरा के पास आया। रत्न पॉलिश करने वाला, जो उस समय बहुत क्रोधित था, ने सारस को पूरी ताकत से लात मारी और पक्षी तुरंत मर गया। तब थेरा ने कहा, "कृपया देखें कि सारस मरा है या नहीं," और रत्न पॉलिश करने वाले ने उत्तर दिया, "तुम भी इस सारस की तरह मरोगे।" जब थेरा को यकीन हो गया कि सारस मर गया है, तो उन्होंने धीरे से कहा, "मेरे शिष्य, सारस ने माणिक निगल लिया।"

यह सुनकर रत्न-तराशने वाले ने सारस को काटकर उसके पेट में माणिक पाया। तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और वह भय से कांप उठा। उसने थेरा से क्षमा मांगने और भिक्षा मांगने के लिए उनके द्वार पर खड़े रहने की अनुमति देने की विनती की। थेरा ने उत्तर दिया, "मेरे शिष्य, यह न तो तुम्हारी गलती है और न ही मेरी। यह हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का फल है; यह संसार में हमारा ऋण है; मुझे तुमसे कोई द्वेष नहीं है। वास्तव में, यह इसलिए हुआ है क्योंकि मैं एक घर में प्रवेश कर गया था। आज से मैं किसी घर में प्रवेश नहीं करूंगा; मैं केवल द्वार पर खड़ा रहूंगा।" यह कहकर थेरा का निधन हो गया।

बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उपरोक्त प्रसंग के विभिन्न पात्रों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "सारस का पुनर्जन्म रत्न पॉलिश करने वाले के पुत्र के रूप में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले का पुनर्जन्म निरय में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले की पत्नी का पुनर्जन्म देवलोक में हुआ; और थेरा, जो अपने जीवनकाल में ही अरहत थे, ने परिनिर्वाण प्राप्त किया।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 126 : कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं, दुष्ट निरंतर यातना (निरय) के स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं। धर्मात्मा देवलोक जाते हैं, और जो नैतिक व्यसनों से मुक्त होते हैं (अर्थात अरहत), वे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार, सावत्थी में एक रत्न-तराशने वाला और उसकी पत्नी रहते थे; वहाँ एक पूज्य (वरिष्ठ भिक्षु) भी रहते थे, जो अरहत थे। दंपति प्रतिदिन पूज्य तिस्सा को भिक्षा देते थे। एक दिन, जब रत्न-तराशने वाला मांस का काम कर रहा था, तभी कोसल के राजा पसेनादि का एक दूत एक माणिक लेकर आया, जिसे काटकर और तराशकर राजा को वापस भेजना था। रत्न-तराशने वाले ने अपने रक्त से सने हाथ से माणिक उठाया, उसे एक मेज पर रखा और हाथ धोने के लिए घर के अंदर चला गया। परिवार के पालतू सारस ने रक्त से सने माणिक को मांस का टुकड़ा समझकर उठा लिया और पूज्य तिस्सा के सामने ही निगल गया। जब रत्न-तराशने वाला लौटा, तो उसने पाया कि माणिक गायब है। उसने अपनी पत्नी और बेटे से पूछा और उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने उसे नहीं लिया था। फिर उसने पूज्यवर से पूछा, जिन्होंने कहा कि उन्होंने इसे नहीं लिया। रत्न पॉलिश करने वाला संतुष्ट नहीं हुआ। घर में कोई और नहीं था, इसलिए रत्न पॉलिश करने वाले ने निष्कर्ष निकाला कि पूज्यवर ने ही कीमती माणिक लिया होगा: इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि चोरी कबूल करवाने के लिए उसे पूज्यवर को प्रताड़ित करना होगा।

लेकिन उनकी पत्नी ने उत्तर दिया, "यह पूज्यवर पिछले बारह वर्षों से हमारे मार्गदर्शक और शिक्षक रहे हैं, और हमने उन्हें कभी कोई बुराई करते नहीं देखा; कृपया पूज्यवर पर आरोप न लगाएँ। एक कुलीन व्यक्ति पर आरोप लगाने से बेहतर है राजा का दंड भुगतना।"

लेकिन उनके पति ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया; उन्होंने एक रस्सी ली और पूज्यवर को बांधकर डंडे से कई बार पीटा। इसके परिणामस्वरूप, पूज्यवर के सिर, कान और नाक से बहुत खून बहने लगा और वे ज़मीन पर गिर पड़े। सारस ने खून देखकर उसे पीने की इच्छा से पूज्यवर के पास आया। रत्न पॉलिश करने वाला, जो उस समय बहुत क्रोधित था, ने सारस को पूरी ताकत से लात मारी और पक्षी तुरंत मर गया। तब पूज्यवर ने कहा, "कृपया देखें कि सारस मरा है या नहीं," और रत्न पॉलिश करने वाले ने उत्तर दिया, "तुम भी इस सारस की तरह मरोगे।" जब पूज्यवर को यकीन हो गया कि सारस मर गया है, तो उन्होंने धीरे से कहा, "मेरे शिष्य, सारस ने माणिक निगल लिया।"

यह सुनकर रत्न-तराशने वाले ने सारस को काटकर उसके पेट में माणिक पाया। तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और वह भय से कांप उठा। उसने पूज्य गुरु से क्षमा मांगने और भिक्षा मांगने के लिए उनके द्वार पर आते रहने की विनती की। पूज्य गुरु ने उत्तर दिया, "मेरे शिष्य, यह न तो तुम्हारी गलती है और न ही मेरी। यह हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का फल है; यह संसार में हमारा ऋण है; मुझे तुमसे कोई द्वेष नहीं है। वास्तव में, यह इसलिए हुआ क्योंकि मैं एक घर में प्रवेश कर गया था। आज से मैं किसी घर में प्रवेश नहीं करूंगा; मैं केवल द्वार पर खड़ा रहूंगा।" यह कहने के तुरंत बाद, पूज्य गुरु का चोटों के कारण देहांत हो गया।

बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उपरोक्त प्रसंग के विभिन्न पात्रों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "सारस का पुनर्जन्म रत्न पॉलिश करने वाले के पुत्र के रूप में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले का पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले की पत्नी का पुनर्जन्म देवलोक में हुआ; और पूज्य बुद्ध, जो अपने जीवनकाल में ही अरहत थे, ने परिनिर्वाण प्राप्त किया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 126)
एके गभं उप्पज्जन्ति पापकमिनो निरयं
सुगतिनो सग्गं यंति अनासाव परिनिब्बन्ति
एके : कुछ; गब्बं [गब्ब]: गर्भ में; उपज्जन्ति : गर्भ धारण करना; पापकम्मिनो [पापकम्मिना]: दुष्ट; निरयं [निरय]: नरक में (जन्म लेना); सुगतिनो [सुगतिना]: अच्छे मार्ग वाले; सग्गं [सग्ग]: स्वर्ग; यन्ती : पहुंचना; अनासवा : जो दोष और भ्रष्टाचार से मुक्त हैं; परिनिब्बन्ति : पूर्ण निर्वाण प्राप्त करना
कुछ लोग मृत्यु के बाद गर्भ धारण करते हैं। जो लोग अपने जीवनकाल में पाप करते हैं, वे नरक में जन्म लेते हैं। जिनके आचरण जीवनकाल में सदाचारी रहे हों, वे मृत्यु के बाद स्वर्ग जाते हैं। ये निष्कलंक, जो पूर्णतः दोष और भ्रष्टाचार से मुक्त हैं, अपने नश्वर जीवन का त्याग करने पर पूर्ण निर्वाण प्राप्त करते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 126)
सग्ग : स्वर्ग। पारंपरिक टीकाओं में, सग्ग की परिभाषा इस प्रकार है: रूपादिहि पंच काम गुणेहि सुत्तु अग्गोति — सग्गो । इसका अर्थ है: वह स्थान जहाँ पाँचों इंद्रियाँ उच्चतम स्तर पर होती हैं। स्वर्ग में रहने वालों को देव (देवदूत या भगवान) कहा जाता है।
gabbhaṃ eke uppajjanti : [गब्बं एके उप्पज्जन्ति सरल हिंदी अर्थ कुछ जीव गर्भ में जन्म लेते हैं।]बौद्ध धर्म के अनुसार जन्म के चार प्रकार होते हैं — अर्थात्, अंडाणु से जन्म (अण्डज), गर्भ से जन्म (जलबुज), नमी से जन्म (संसेदज), और स्वतःस्फूर्त जन्म (ओपपातिका)।
निरयं पापकम्मिनो : निरय = नि + अय = सुख से रहित। निरय चार प्रकार के होते हैं — दुःखपूर्ण अवस्था (अपाय), पशु जगत (तिरच्छानयोनी), पेटलोक (पेटायोनी) और असुरलोक (असुरयोनी) । इनमें से कोई भी अवस्था शाश्वत नहीं है। अपने बुरे कर्मों के अनुसार प्राणी ऐसी दुःखपूर्ण अवस्थाओं में जन्म ले सकते हैं। इन अवस्थाओं से मुक्त होकर वे अपने पिछले अच्छे कर्मों के अनुसार आनंदमय अवस्थाओं में जन्म ले सकते हैं।
parinibbanti anāsavā : [पाली (देवनागरी लिपि में) **परिनिब्बन्ति अनासावा** सरल हिंदी अर्थ
जहाँ आसव नष्ट हो गए हैं, वे परिनिर्वाण प्राप्त होते हैं।] अरहंत, मृत्यु के बाद, फिर कभी जन्म नहीं लेते, बल्कि परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 127

———————————————————————

(धम्मपद 126) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 127 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 128)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 127 - तयोजना वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 127 - तयोजना वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

न अन्तलिक्खे न समुद्दमजिहे
na pabbatanam vivaram pavissa
na vijjati so jagatippadeso
yatthatthito mucceyya papakamma.

न पब्बतनं विवरं पविस्स
न विज्जति सो जगतिपदेसो
यत्थथितो मुच्चेय पापकम्मा।

हिन्दी अर्थ

न तो पहाड़ों की गुफाओं में प्रवेश करके,
और न ही दुनिया के किसी स्थान में,
ऐसी कोई जगह है जहां ठहरकर
इंसान अपने पापकर्मों से बच सके।

श्लोक 127 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ कोई बुरे कर्म के परिणामों से बच सके।

तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीन असाधारण घटनाओं के संबंध में भिक्षुओं के तीन समूहों द्वारा उठाए गए प्रश्नों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (127) कहा।
पहला समूह: भिक्षुओं का एक समूह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था और रास्ते में एक गाँव में रुका। कुछ लोग उन भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन पका रहे थे, तभी एक घर में आग लग गई और आग का एक घेरा हवा में उठ उठा। उसी क्षण, एक कौआ उड़ता हुआ आया, आग के घेरे में फंस गया और गाँव के मध्य भाग में गिरकर मर गया। मृत कौए को देखकर भिक्षुओं ने सोचा कि केवल बुद्ध ही बता सकते हैं कि इस कौए को किस बुरे कर्म के कारण इस तरह मरना पड़ा। भिक्षा भोजन ग्रहण करने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने और उस दुर्भाग्यशाली कौए के बारे में पूछने के लिए अपनी यात्रा पर आगे बढ़े।
दूसरा समूह: भिक्षुओं का एक और समूह नाव में यात्रा कर रहा था; वे भी बुद्ध को प्रणाम करने जा रहे थे। जब वे समुद्र के बीच में थे, तो नाव हिल नहीं पा रही थी। इसलिए, यह पता लगाने के लिए पर्ची निकाली गई कि दुर्भाग्यशाली कौन है; तीन बार पर्ची कप्तान की पत्नी के नाम निकली। तब कप्तान ने दुखी होकर कहा, "इस दुर्भाग्यशाली स्त्री के कारण बहुत से लोग न मरें; इसके गले में रेत का घड़ा बांधकर इसे पानी में फेंक दो ताकि मैं इसे न देख सकूँ।" कप्तान के निर्देशानुसार स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया और नाव आगे बढ़ सकी। अपने गंतव्य पर पहुँचने पर, भिक्षु नाव से उतरे और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस बुरे कर्म के कारण उस दुर्भाग्यशाली स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया था।
तीसरा समूह: सात भिक्षुओं का एक समूह भी बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था। रास्ते में उन्होंने एक मठ में पूछा कि क्या आस-पास कोई उपयुक्त स्थान है जहाँ वे रात बिता सकें। उन्हें एक गुफा का पता बताया गया और उन्होंने वहीं रात बिताई; लेकिन आधी रात को ऊपर से एक बड़ा पत्थर खिसक गया और गुफा का प्रवेश द्वार बंद हो गया। सुबह पास के मठ से गुफा में आए भिक्षुओं ने देखा कि क्या हुआ है और वे सात गाँवों से लोगों को बुलाने गए। इन लोगों की मदद से उन्होंने पत्थर को हटाने की कोशिश की, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। इस प्रकार, सातों भिक्षु सात दिनों तक बिना भोजन और पानी के गुफा में फंसे रहे। सातवें दिन, चमत्कारिक रूप से पत्थर अपने आप हट गया और भिक्षु बाहर आ गए और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस पूर्व कर्म के कारण उन्हें सात दिनों तक गुफा में बंद रहना पड़ा।
यात्रियों के तीनों समूह रास्ते में मिले और सब मिलकर बुद्ध के पास गए। प्रत्येक समूह ने बुद्ध को अपने रास्ते में देखी या अनुभव की गई बातें बताईं और बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिए।
पहले समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक किसान के पास एक बैल था। बैल बहुत आलसी और जिद्दी था। उसे कोई काम करने के लिए राजी करना नामुमकिन था; वह या तो जुगाली करता रहता या सो जाता। इस आलसी और जिद्दी जानवर के कारण किसान को कई बार गुस्सा आया; इसलिए गुस्से में उसने बैल के गले में पुआल की रस्सी बांधकर आग लगा दी, और बैल मर गया। इस बुरे कर्म के कारण किसान को निरय में लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा, और अपने दंड के शेष भाग को पूरा करते हुए, पिछले सात जन्मों में उसकी मृत्यु जलकर हुई।"
दूसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार एक स्त्री के पास एक पालतू कुत्ता था। वह जहाँ भी जाती, कुत्ते को अपने साथ ले जाती थी और शहर के लड़के उसका मज़ाक उड़ाते थे। वह बहुत क्रोधित और शर्मिंदा हुई, इसलिए उसने कुत्ते को मारने की योजना बनाई। उसने एक घड़ा रेत से भरकर कुत्ते के गले में बाँध दिया और उसे पानी में फेंक दिया; और कुत्ता डूब गया। इस बुरे कर्म के कारण उस स्त्री

को निरयण में बहुत समय व्यतीत करना पड़ा और अपने दंड के शेष भाग को भुगतते हुए, उसे पिछले सौ जन्मों से पानी में डुबोकर मरने के लिए भेजा जा रहा है।"

तीसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार सात ग्वालों ने एक इगुआना को एक टीले में जाते देखा और उन्होंने टीले के सातों द्वारों को पेड़ों की टहनियों और शाखाओं से बंद कर दिया। द्वार बंद करने के बाद वे चले गए और टीले में फंसी इगुआना को पूरी तरह से भूल गए। सात दिन बाद ही उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और वे जल्दी से उस जगह पर वापस आए जहाँ उन्होंने शरारत की थी और इगुआना को बाहर निकाल दिया। इस बुरे कर्म के कारण, वे सातों पिछले चौदह जन्मों में सात दिनों तक बिना भोजन के एक साथ कैद रहे।"

तब एक भिक्षु ने कहा, "अरे! जिसने बुरा कर्म किया है, उसे बुरे कर्मों के फल से कोई नहीं बच सकता, चाहे वह आकाश में हो, सागर में हो या गुफा में।" बुद्ध ने उससे कहा, "जी भिक्षु! तुम सही कह रहे हो; चाहे आकाश में हो या कहीं और, कोई भी स्थान बुरे कर्मों के प्रभाव से मुक्त नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 127 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ कोई बुरे कर्म के परिणामों से बच सके।

प्रवचन के अंत में सभी भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी

भिक्षुओं का एक समूह बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा था और रास्ते में एक गाँव में रुका। कुछ लोग उन भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन पका रहे थे, तभी एक घर में आग लग गई और आग का एक घेरा हवा में उठ उठा। उसी क्षण, एक कौआ उड़ता हुआ आया, आग के घेरे में फंस गया और गाँव के मध्य में गिरकर मर गया। मृत कौए को देखकर भिक्षुओं ने सोचा कि केवल बुद्ध ही बता सकते हैं कि इस कौए ने ऐसा कौन सा बुरा कर्म किया था जिसके कारण उसकी मृत्यु इस प्रकार हुई। भिक्षा भोजन ग्रहण करने के बाद, वे कौए के बारे में पूछने के लिए बुद्ध के पास गए। भिक्षुओं का एक और समूह बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा था। जब वे समुद्र के बीच में थे, तो नाव हिल नहीं पा रही थी। इसलिए, यह पता लगाने के लिए पर्ची निकाली गई कि दुर्भाग्यशाली कौन है। तीन बार पर्ची कप्तान की पत्नी के नाम निकली। तब कप्तान ने दुखी स्वर में कहा, "इस अभागी स्त्री के कारण बहुत से लोगों की मृत्यु न हो; इसके गले में रेत का घड़ा बाँधकर इसे पानी में फेंक दो।" स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया और जहाज चलने लगा। अपने गंतव्य पर पहुँचकर भिक्षु जहाज से उतरे और बुद्ध के पास जाने के लिए आगे बढ़े। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस बुरे कर्म के कारण उस अभागी स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया था।

सात भिक्षुओं का एक समूह भी बुद्ध को प्रणाम करने गया। रास्ते में उन्होंने एक मठ में पूछताछ की, जहाँ से उन्हें एक गुफा का पता मिला और उन्होंने वहीं रात बिताई। लेकिन आधी रात को ऊपर से एक बड़ा पत्थर खिसक कर गुफा का प्रवेश द्वार बंद कर दिया। सुबह पास के मठ से गुफा में आए भिक्षुओं ने यह देखा और वे सात गाँवों से लोगों को बुलाने गए। इन लोगों की मदद से उन्होंने पत्थर को हटाने की कोशिश की, लेकिन सातों भिक्षु सात दिनों तक बिना भोजन और पानी के गुफा में फंसे रहे। सातवें दिन चमत्कारिक रूप से पत्थर अपने आप हट गया और भिक्षु बाहर आ गए और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि उनके पिछले किसी बुरे कर्म के कारण उन्हें सात दिनों तक गुफा में क्यों बंद रहना पड़ा।

भिक्षुओं के तीनों समूह बुद्ध के पास गए। प्रत्येक समूह ने बुद्ध को अपने मार्ग में देखी गई घटनाओं के बारे में बताया और बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिए।

पहले समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार एक किसान के पास एक बहुत आलसी और जिद्दी बैल था। किसान ने क्रोधित होकर बैल के गले में भूसे की रस्सी बांधकर आग लगा दी, जिससे बैल मर गया। इस बुरे कर्म के कारण किसान को नरक (निरय) में लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा। पिछले सात जन्मों में उसे जलकर मृत्यु प्राप्त हुई।" पिछले कर्मों के फलस्वरूप ही वर्तमान कष्ट भोगना पड़ा।

दूसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार एक स्त्री के पास एक कुत्ता था। वह जहाँ भी जाती, कुत्ता हमेशा उसके पीछे-पीछे जाता। परिणामस्वरूप, कुछ लड़के उसका मज़ाक उड़ाते थे। वह बहुत क्रोधित और शर्मिंदा हुई, इसलिए उसने कुत्ते को मार डालने की योजना बनाई। उसने एक घड़ा रेत से भरकर कुत्ते के गले में बाँध दिया और उसे पानी में फेंक दिया; और कुत्ता डूब गया। इस बुरे कर्म के कारण उस स्त्री को लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा और उसके फल के रूप में उसे भी पानी में फेंककर डुबो दिया गया।"

तीसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार सात ग्वालों ने एक इगुआना को टीले में जाते देखा और मजे के लिए उन्होंने टीले के सभी द्वार बंद कर दिए। वे टीले में फंसी इगुआना को पूरी तरह भूल गए। सात दिन बाद उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और वे इगुआना को बाहर निकालने के लिए तुरंत उस जगह पर गए जहाँ उन्होंने शरारत की थी। इस बुरे कर्म के कारण तुम सातों को सात दिन तक बिना भोजन के एक साथ कैद में रखा गया है।"

बुद्ध ने उत्तर दिया, "आकाश में हो या कहीं और, ऐसी कोई जगह नहीं है जो बुराई के परिणामों की पहुँच से बाहर हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 127)

यत्थतितो पापकम्मा मुन्सेय्य सो जगतिप्पदेसो
न विज्जति अंतलिक्खे न समुद्दमज्जे
न पब्बतानं विवरं पविस्सा न

यत्था : कहीं; ṭhito [ṭhita]: शरण लेना; पापकम्मा : बुरे कर्मों के फल से; मुन्चेय्य : (कोई) बच सकता है; सो : उस प्रकार का; जगतिपदेशो [jagatippadesa]: पृथ्वी पर स्थान; न विज्जति : दिखाई नहीं देता; अंतलिक्खे : अंतरिक्ष में; न : ऐसा कोई स्थान नहीं है; समुद्दमज्जे न : न ही (ऐसा कोई स्थान) समुद्र के बीच में है; पब्बतान [pabbatāna]: पहाड़ों का; विवर [vivara]: दरार, खाई या खुला स्थान; पविस्सा : प्रवेश करने के बाद: न : (कोई बच नहीं सकता)

पृथ्वी पर ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कोई दुष्ट व्यक्ति अपने बुरे कर्मों के परिणामों से बचने के लिए शरण ले सके। न ही अंतरिक्ष में, न ही समुद्र के बीच में ऐसी कोई जगह दिखाई देती है। न ही किसी चट्टानी पर्वत की दरार, छिद्र या खाई में वह अपने बुरे कर्मों के परिणामों से बचने के लिए शरण ले सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 127)

na vijjati so jagatippadeso : कोई स्थान नहीं है। यहाँ तात्पर्य यह है कि न तो ज़मीन पर, न समुद्र में और न ही आकाश में कोई ऐसा स्थान है जहाँ कोई पापी अपने कुकर्मों के परिणामों से बच सके। श्लोक में कुछ ऐसे स्थानों का उल्लेख है जिन्हें सुरक्षित माना जा सकता है: अंतलिक्खे (आकाश); समुद्दमज्जे (समुद्र के बीच में); पब्बतानं विवरं (चट्टान की दरारें)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 128

———————————————————

(धम्मपद 127) <<<< पिछला || धम्मपद 128 || अगला >>>> (धम्मपद 129)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 128 - सुप्पबुद्धसाक्य वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 128 - सुप्पबुद्धसाक्य वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
na pabbatanam vivaram pavissa
na vijjati so jagatippadeso
यत्थट्ठितं नप्पसहेय मक्कु।

———————————————————

श्लोक 128 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ मृत्यु से पीड़ित न हो सके।

राजा सुप्पबुद्ध (भगवान बुद्ध के ससुर) की कहानी
निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजा सुप्पबुद्ध के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (128) कहा।
राजा सुप्पबुद्ध, देवदत्त के पिता और राजकुमार सिद्धार्थ के ससुर थे, जो बाद में गौतम बुद्ध बने। राजा सुप्पबुद्ध दो कारणों से बुद्ध के घोर विरोधी थे। पहला, क्योंकि राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में उन्होंने अपनी पत्नी यशोधरा, जो राजा सुप्पबुद्ध की पुत्री थीं, को त्यागकर संसार त्याग दिया था; और दूसरा, क्योंकि उनके पुत्र देवदत्त, जिन्हें गौतम बुद्ध ने संघ में प्रवेश दिया था, बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानने लगे थे। एक दिन, यह जानकर कि बुद्ध भिक्षा मांगने आ रहे हैं, उन्होंने शराब पीकर रास्ता रोक दिया। जब बुद्ध और भिक्षु आए, तो सुप्पबुद्ध ने रास्ता देने से इनकार कर दिया और संदेश भेजा, "मैं समना गौतम को रास्ता नहीं दे सकता, जो मुझसे बहुत छोटे हैं।" रास्ता अवरुद्ध देखकर बुद्ध और भिक्षु वापस लौट गए। तब सुप्पबुद्ध ने किसी को गुप्त रूप से बुद्ध का पीछा करने और यह पता लगाने के लिए भेजा कि बुद्ध ने क्या कहा और उन्हें सूचना देने के लिए भेजा।
जब बुद्ध पीछे मुड़े, तो उन्होंने आनंद से कहा, "आनंद, क्योंकि राजा सुप्पबुद्ध ने मुझे रास्ता देने से इनकार कर दिया था, इसलिए आज से सातवें दिन वह अपने महल के शिखर वाले हॉल की सीढ़ियों के नीचे धरती में समा जाएगा।" राजा के जासूस ने ये शब्द सुने और राजा को सूचना दी। राजा ने कहा कि वह उन सीढ़ियों के पास नहीं जाएगा और बुद्ध के शब्दों को गलत साबित करेगा। इसके अलावा, उसने अपने आदमियों को उन सीढ़ियों को हटाने का आदेश दिया, ताकि वह उनका उपयोग न कर सके; उसने कुछ आदमियों को भी तैनात किया, जिन्हें निर्देश दिया गया था कि यदि वह सीढ़ियों की ओर जाए तो उसे रोक लें।
जब बुद्ध को राजा के अपने सैनिकों को दिए गए निर्देशों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! चाहे राजा सुप्पबुद्ध किसी ऊंचे शिखर वाले टावर में रहें, या आकाश में, या समुद्र में, या किसी गुफा में, मेरा वचन कभी गलत नहीं हो सकता; राजा सुप्पबुद्ध उसी स्थान पर पृथ्वी में समा जाएंगे, जिस स्थान का मैंने तुम्हें उल्लेख किया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 128 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ मृत्यु से पीड़ित न हो सके।

सातवें दिन, भिक्षा भोज के समय के आसपास, राजसी घोड़ा किसी अज्ञात कारण से भयभीत हो गया और ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने और बेतहाशा लात मारने लगा। अपने घोड़े की डरावनी आवाज़ें सुनकर राजा को लगा कि उसे अपने पालतू घोड़े को संभालना चाहिए और सभी सावधानियों को भूलकर वह दरवाजे की ओर चल पड़ा। दरवाजा अपने आप खुल गया, पहले से टूटी हुई सीढ़ियाँ भी वहीं थीं, उसके आदमियों ने उसे नीचे जाने से रोकना भूल गए थे। इसलिए राजा सीढ़ियों से नीचे उतर गया और जैसे ही उसने धरती पर कदम रखा, वह फट गई और उसे निगल लिया और सीधे अविचि निरय (नरक) में खींच ले गई।
अध्याय नौ का अंत: बुराई (पापावग्गा)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजा सुप्पबुद्ध की कहानी
निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजा सुप्पबुद्ध के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
राजा सुप्पबुद्ध, देवदत्त के पिता और राजकुमार सिद्धार्थ के ससुर थे, जो बाद में गौतम बुद्ध बने। राजा सुप्पबुद्ध दो कारणों से बुद्ध के घोर विरोधी थे। पहला, क्योंकि राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में उन्होंने अपनी पत्नी यशोदरा, जो राजा सुप्पबुद्ध की पुत्री थीं, को छोड़कर संसार त्याग दिया था; और दूसरा, क्योंकि उनके पुत्र देवदत्त, जिन्हें गौतम बुद्ध ने संघ में शामिल किया था, बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानने लगे थे। एक दिन, यह जानकर कि बुद्ध भिक्षा मांगने आ रहे हैं, उन्होंने शराब पीकर रास्ता रोक दिया। जब बुद्ध और भिक्षु आए, तो सुप्पबुद्ध ने रास्ता देने से इनकार कर दिया और संदेश भेजा, "मैं समना गौतम को रास्ता नहीं दे सकता, जो मुझसे बहुत छोटे हैं।" रास्ता अवरुद्ध देखकर बुद्ध और भिक्षु वापस लौट गए। तब सुप्पबुद्ध ने किसी को गुप्त रूप से बुद्ध का पीछा करने और यह पता लगाने के लिए भेजा कि बुद्ध ने क्या कहा और उन्हें सूचना देने के लिए भेजा।
जब बुद्ध पीछे मुड़े, तो उन्होंने आनंद से कहा, "आनंद, क्योंकि राजा सुप्पबुद्ध ने मुझे रास्ता देने से इनकार कर दिया, इसलिए आज से सातवें दिन वे अपने महल के शिखर वाले हॉल की सीढ़ियों के नीचे धरती में समा जाएंगे।" राजा के जासूस ने ये शब्द सुने और राजा को सूचना दी। राजा ने कहा कि वे उन सीढ़ियों के पास नहीं जाएंगे और बुद्ध के वचन को गलत साबित करेंगे। इसके अलावा, उन्होंने अपने आदमियों को उन सीढ़ियों को हटाने का आदेश दिया, ताकि वे उनका उपयोग न कर सकें; उन्होंने कुछ आदमियों को भी तैनात किया, जिन्हें निर्देश दिया गया था कि यदि वे सीढ़ियों की ओर जाएं तो उन्हें रोक लें।

जब बुद्ध को राजा के अपने सैनिकों को दिए गए निर्देशों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! चाहे राजा सुप्पबुद्ध किसी शिखर वाली मीनार में रहें, या आकाश में, या समुद्र में, या किसी गुफा में, मेरा वचन कभी गलत नहीं हो सकता; राजा सुप्पबुद्ध उसी स्थान पर पृथ्वी में समा जाएंगे, जिस स्थान का मैंने तुम्हें उल्लेख किया है।"
सातवें दिन, भिक्षा भोज के समय के आसपास, राजसी घोड़ा किसी अज्ञात कारण से भयभीत हो गया और ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने और बेतहाशा लात मारने लगा। अपने घोड़े की डरावनी आवाज़ें सुनकर राजा को लगा कि उसे अपने पालतू घोड़े को संभालना चाहिए और सभी सावधानियों को भूलकर वह दरवाजे की ओर चल पड़ा। दरवाजा अपने आप खुल गया, पहले से टूटी हुई सीढ़ियाँ भी वहीं थीं, उसके आदमियों ने उसे नीचे जाने से रोकना भूल गए थे। इसलिए राजा सीढ़ियों से नीचे उतर गया और जैसे ही उसने धरती पर कदम रखा, वह फट गई और उसे निगलकर सीधे अविची नरक में खींच ले गई। इस प्रकार, मूर्ख राजा चाहे कितनी भी कोशिश करे, वह अपने बुरे कर्मों के फल से बच नहीं सका।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 128)
यत्थथितं मक्कु नप्पासहेथा सो जगतिप्पदेसो
न विज्जति अंतलिक्खे न समुद्दमज्जे
न पब्बतानं विवरं पविस्सा न
यत्थ : कहीं; ṭ्हितं [ṭ्हिता]: आश्रय लेना; मक्कू : मृत्यु से; नप्पासहेथा : अभिभूत नहीं होंगे; तो : उस प्रकार का; जगतिप्पदेसो [जगतिप्पदेसा]: पृथ्वी पर स्थान; न विज्जति : देखा नहीं जाता; अंतलिक्खे : अंतरिक्ष में; ना : ऐसी कोई जगह नहीं है; समुद्दमज्जे न : न समुद्र के मध्य में; पब्बताणं [पब्बताना]: पहाड़ों का; विवरं [विवर]: दरार, दरार या खुलापन; पाविसा : प्रवेश करके; ना : कोई बच नहीं सकता
न तो आकाश में, न ही सागर के बीचोंबीच, और न ही किसी पर्वत की गुफा में, ऐसी कोई छिपने की जगह है जहाँ कोई मृत्यु से बच सके।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 128)
नप्पसहेथा मच्चु : वह स्थान जहाँ मृत्यु किसी व्यक्ति को पराजित नहीं कर सकती। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ मृत्यु किसी व्यक्ति को पराजित न कर सके। स्पष्ट शब्दों में कहें तो, मृत्यु से कोई बच नहीं सकता, चाहे कोई कहीं भी चला जाए।

अध्याय 10. दंडवग्ग: हिंसा (129-145)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 129

(धम्मपद 128) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 129 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 130)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 129 - छब्बग्गिया भिक्खु वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 129 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Sabbe tasanti dandassa
sabbe bhayanti maccuno
attanam upamam katva

na haneyya na ghataye.

श्लोक 129 : सभी लाठी से डरते हैं, सभी मृत्यु से डरते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को मारना या जान से नहीं मारना चाहिए।

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (129) का उच्चारण किया, जिसमें छह भिक्षुओं (छब्बाग्गी) के एक समूह का जिक्र था, जिन्होंने सत्रह भिक्षुओं वाले दूसरे समूह के साथ झगड़ा किया था।

एक बार सत्रह भिक्षु जेतवन मठ परिसर में एक इमारत की सफाई कर रहे थे, ताकि उस पर कब्जा कर सकें। तभी छह भिक्षुओं का एक दूसरा समूह वहाँ आ पहुँचा। छह भिक्षुओं के समूह ने पहले समूह से कहा, "हम आपसे वरिष्ठ हैं, इसलिए बेहतर होगा कि आप हमें रास्ता दें; हम इस जगह पर कब्जा कर लेंगे।" सत्रह भिक्षुओं के समूह ने हार नहीं मानी, तो उन्होंने दूसरे समूह की पिटाई कर दी, जिससे वे दर्द से चिल्ला उठे। बुद्ध को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने उन्हें फटकारा और भिक्षुओं द्वारा दूसरों को पीटने पर रोक लगाने का नियम बनाया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 129: सभी लाठी से डरते हैं, सभी मृत्यु से डरते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को मारना या जान से मारना नहीं चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, भिक्षुओं का एक समूह जेतवन मठ में एक इमारत की सफाई कर रहा था, ताकि उस पर कब्ज़ा कर सके। तभी वहाँ आए भिक्षुओं के एक अन्य समूह ने उनके काम में बाधा डाली। बाद में आए भिक्षुओं ने सफाई कर रहे पहले समूह से कहा, “हम आपसे बड़े और वरिष्ठ हैं, इसलिए बेहतर होगा कि आप हमारा सम्मान करें और हमें रास्ता दें; हम इस जगह पर कब्ज़ा करने जा रहे हैं और कोई भी हमें ऐसा करने से नहीं रोक सकता।”

हालांकि, भिक्षुओं के पहले समूह ने वरिष्ठ भिक्षुओं के अवांछित हस्तक्षेप का विरोध किया और उनकी मांगों के आगे नहीं झुके, जिसके परिणामस्वरूप वरिष्ठ भिक्षुओं ने उन्हें तब तक पीटा जब तक कि वे मार सहन नहीं कर सके और दर्द से चिल्ला उठे।

इस उपद्रव की खबर बुद्ध तक पहुंच गई थी, जिन्होंने भिक्षुओं के दोनों समूहों के बीच झगड़े के बारे में जानकर उन्हें फटकार लगाई और अनुशासनात्मक नियम लागू किया जिसके अनुसार भिक्षुओं को एक दूसरे को चोट पहुंचाने से बचना चाहिए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 129)

सब्बे दण्डास्सा तसन्ति सब्बे मैकुणो भयन्ति

अत्तनं उपमं कत्वा न हानिय न घटये

सबे : सभी; दण्डस्स : दंड से; तसन्ति : भयभीत; सबे : सभी; मच्चुनो [मच्चुना]: मृत्यु; भयन्ति : भय; अत्तानं [अत्तान]: स्वयं से; उपमं कत्वा : उदाहरण के रूप में लेते हुए; न हनेय्या : हत्या न करो; न घटये : किसी और से हत्या न करवाओ

हिंसा से सब कांपते हैं, मृत्यु से सब भयभीत होते हैं। दूसरों से अपनी तुलना करना उचित नहीं है; किसी को हानि न पहुंचाएं, किसी की हत्या न करें।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

मच्चुनो भयंति : मृत्यु से डरना। बौद्ध धर्म ने मृत्यु की घटना का काफी विस्तार से विश्लेषण किया है। पटिच्च-समुप्पाद पुनर्जन्म की प्रक्रिया का सूक्ष्म तकनीकी शब्दों में वर्णन करता है और मृत्यु के निम्नलिखित चार कारणों में से एक को बताता है:

1) कर्मिक ऊर्जा (कम्मक्खया) का क्षय। बौद्ध मान्यता है कि जीवनकाल में जो विचार, संकल्प या इच्छा अत्यंत प्रबल होती है, वह मृत्यु के समय प्रबल हो जाती है और अगले जन्म को प्रभावित करती है। इस अंतिम विचार प्रक्रिया में एक विशेष संभाव्यता निहित होती है। जब इस जनक कर्म की संभाव्य ऊर्जा समाप्त हो जाती है, तो उस भौतिक रूप की जैविक गतिविधियाँ, जिसमें जीवन शक्ति समाहित होती है, उस विशेष स्थान पर जीवनकाल समाप्त होने से पहले ही रुक जाती हैं। ऐसा अक्सर अपाय अवस्था में जन्म लेने वाले प्राणियों के मामले में होता है, लेकिन यह अन्य लोकों में भी हो सकता है।

2) आयुक्षय (जीवन काल) की समाप्ति, जो विभिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न होती है। वृद्धावस्था के कारण होने वाली प्राकृतिक मृत्यु को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। विभिन्न लोकों में आयु सीमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। चाहे कर्मिक शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो, अधिकतम आयु सीमा तक पहुँचने पर व्यक्ति को मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। यदि प्रजनन कर्मिक शक्ति अत्यंत प्रबल हो, तो कर्मिक ऊर्जा उसी लोक में या, देवताओं के मामले में, किसी उच्च लोक में पुन: प्रकट हो जाती है।
3) प्रजनन कर्मिक ऊर्जा की एक साथ समाप्ति और जीवन-अवधि (उभयक्षय) की समाप्ति।
4) जीवनकाल समाप्त होने से पहले ही प्रबल कर्मों द्वारा प्रजनन कर्मों के प्रवाह में अप्रत्याशित अवरोध उत्पन्न होना (उपच्छेदक कर्म)। व्यक्तियों और बच्चों की असमय मृत्यु इसी कारण होती है। अधिक शक्तिशाली विरोधी बल उड़ते हुए तीर का मार्ग रोककर उसे जमीन पर गिरा सकता है। अतः अतीत का एक अत्यंत शक्तिशाली कर्म बल अंतिम विचार प्रक्रिया की संभाव्य ऊर्जा को नष्ट कर सकता है और इस प्रकार प्राणी के मानसिक जीवन को नष्ट कर सकता है। उदाहरण के लिए, पूज्य देवदत्त की मृत्यु उनके जीवनकाल में किए गए एक विनाशकारी कर्म के कारण हुई थी।
पहले तीन कारणों को सामूहिक रूप से काल - मरण कहा जाता है , और चौथे कारण को असमय मृत्यु कहा जाता है । उदाहरण के लिए, एक तेल का दीपक निम्नलिखित चार कारणों में से किसी एक से बुझ सकता है — जैसे कि बाती का खत्म होना, तेल का खत्म होना, बाती और तेल दोनों का एक साथ खत्म होना, या हवा के झोंके जैसा कोई बाहरी कारण। इसी प्रकार, मृत्यु भी उपरोक्त चार कारणों में से किसी एक से हो सकती है।
वास्तव में, बहुत कम लोग मरने के लिए तैयार होते हैं। वे और अधिक समय तक जीना चाहते हैं, एक ऐसा भ्रम जिसे समकालीन शोध साकार होने की अधिक संभावना दे रहा है। इस जीवन को और अधिक जीने की लालसा कुछ हद तक कम हो जाती है, यदि कोई यह मानता है, जैसा कि बहुत से लोग मानते हैं, कि यह जीवन श्रृंखला का केवल एक हिस्सा है। जो लोग जीवन की लालसा रखते हैं, उनके लिए और भी बहुत से जीवन उपलब्ध हैं और इस जीवन में शुरू किया गया कार्य जल्दबाजी में समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि इसे बाद के जन्मों में फिर से शुरू किया जा सकता है। मरने की वास्तविक पीड़ाएँ निश्चित रूप से भिन्न-भिन्न होती हैं और सभी लोग शारीरिक पीड़ाओं से नहीं गुजरते। लेकिन एक अलग प्रकार की पीड़ा भी होती है; वह भयानक तनाव जो उस व्यक्ति के मन में उत्पन्न होता है जिसका शरीर उसकी इच्छा के विरुद्ध मर रहा होता है। यह वास्तव में इस बात का अंतिम प्रमाण है कि शरीर मेरा नहीं है, क्योंकि यदि होता, तो मैं इसके साथ जो चाहूँ कर सकता था; लेकिन मृत्यु के समय, यद्यपि मैं निरंतर जीवन की इच्छा रखता हूँ, यह बस चला जाता है और मर जाता है - और इसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता। यदि मैं बिना तैयारी के मृत्यु की ओर बढ़ता हूँ, तो शरीर के मरने के समय, भय और असुरक्षा की भावना का अनुभव होगा, जो शरीर को स्वयं के रूप में गलत तरीके से पहचानने का परिणाम होगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 130

(धम्मपद 129) <<<< पिछला || धम्मपद 130 || अगला >>>> (धम्मपद 131 और 132)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 130 - छब्बग्गिया भिक्खु वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 130 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbe tasanti dandassa

सब्बेसम जीवतम पियाम
attanam upamam katva
na haneyya na ghataye.

श्लोक 130 : सभी हिंसा से भयभीत हैं, सभी अपने जीवन को प्रिय मानते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को भी दूसरों को पीटना या मारना नहीं चाहिए।

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (130) कहा।
पहली बार हाथापाई होने के बाद, भिक्षुओं के वही दो समूह उसी भवन को लेकर फिर झगड़ पड़े। चूंकि दूसरों को पीटने पर रोक का नियम पहले ही बना हुआ था, इसलिए छह भिक्षुओं के समूह ने दूसरे समूह को हाथ उठाकर धमकाया। सत्रह भिक्षुओं का समूह, जो छब्बग्गियों से कनिष्ठ था, भयभीत होकर चिल्ला उठा। यह सुनकर बुद्ध ने हाथ उठाकर धमकी देने पर रोक लगाने का नियम बना दिया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 130 : सभी हिंसा से भयभीत हैं, सभी अपने जीवन को प्रिय मानते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को भी दूसरों को पीटना या मारना नहीं चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। यह पिछले श्लोक से संबंधित है।
जेतवन मठ में हुई घटना को लेकर आपस में मारपीट करने के बाद, भिक्षुओं के वही दो समूह उसी भवन को लेकर फिर से झगड़ पड़े। चूंकि दूसरों को शारीरिक रूप से चोट पहुँचाने के संबंध में नियम बुद्ध द्वारा पहले ही निर्धारित किए जा चुके थे, इसलिए दोनों समूहों ने इस विशेष नियम का कड़ाई से पालन किया।
हालांकि, इस बार दोनों समूहों में से एक ने दूसरे समूह को धमकी भरे इशारे किए, जिससे दूसरा समूह डर के मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओं के इस धमकी भरे रवैये के बारे में सुनकर बुद्ध ने एक-दूसरे को धमकी भरे इशारे करने से रोकने का नियम लागू किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 130)
सब्बे दण्डस्सा तसन्ति सब्बेसं जीवितं पियं
अत्तनं उपमं कत्वा न हानिय न घटये
सब्बे : सभी; दण्डस्स : दंड से; तसन्ति : भयभीत; सब्बेसं [सब्बेसा]: सभी को; जीवित [जीवित]: जीवन; पिया [पिया]: प्रिय; अत्तान [अत्तान]: स्वयं को; उपमं कत्वा : उदाहरण के रूप में लेते हुए; न हनेय्या : हत्या न करो; न घटये : किसी और से हत्या न करवाओ
सभी को चोट लगने या जान को किसी भी तरह के खतरे का डर सताता है। जीवन सभी के लिए अनमोल है। यह देखकर कि दूसरे भी ऐसा ही महसूस करते हैं, और दूसरों को अपने समान समझकर, किसी को नुकसान पहुंचाने या जान से मारने से बचना चाहिए।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 130)
न हनेय्या , न घटये : विनाश न करो; हत्या न करो। यहाँ जिस गुण का पोषण किया जा रहा है, वह करुणा है। असहमति और विवाद करुणा के अभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। सार्वभौमिक करुणा तभी उत्पन्न होती है जब सच्ची वास्तविकता का ज्ञान हो। करुणा स्वयं को अच्छे कर्मों के माध्यम से प्रकट करती है। करुणा केवल करुणामय विचार करना नहीं है। इसे करुणामय कर्मों के माध्यम से प्रकट होना चाहिए। करुणा संसार में अन्य प्राणियों के कष्टों पर ध्यान देना है। यह पीड़ित प्राणियों, चाहे मनुष्य हों या अन्य, की दुर्दशा के प्रति कठोर उदासीनता पर विजय प्राप्त करती है। इसी प्रकार, यह व्यक्ति के जीवन में जहाँ संभव हो, सहायता देने और संकट में पड़े लोगों की मदद करने की तत्परता के रूप में परिलक्षित होनी चाहिए। दूसरों के दुखों को समझने से स्वार्थ कम होता है। यह भगवान बुद्ध द्वारा क्रूरता के लिए दी गई औषधि है, क्योंकि जब कोई व्यक्ति दूसरों को इतना कष्ट सहते हुए देख चुका हो, तो वह कैसे हानि पहुँचा सकता है? इसके दो शत्रु भी हैं: 'निकट' शत्रु मात्र दुःख है, जबकि इसका 'दूर' शत्रु क्रूरता है।

मैत्री : करुणा-प्रेम-दया। मैत्री चार उदात्त अवस्थाओं में से पहली है। इसका अर्थ है वह अवस्था जो हृदय को कोमल बनाती है, या एक सच्चे मित्र की अवस्था। इसे सभी जीवित प्राणियों के कल्याण और सच्ची खुशी की हार्दिक कामना के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे मित्रतापूर्ण स्वभाव के रूप में भी समझाया जाता है, क्योंकि एक सच्चा मित्र अपने मित्र के कल्याण की हार्दिक कामना करता है।

"जिस प्रकार एक माँ अपने इकलौते बच्चे की रक्षा अपनी जान जोखिम में डालकर भी करती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति असीम प्रेम और दया भाव रखना चाहिए," बुद्ध का उपदेश है। यहाँ माँ के अपने बच्चे के प्रति भावुक प्रेम की बात नहीं की जा रही है, बल्कि उसके बच्चे के वास्तविक कल्याण की सच्ची कामना की बात की जा रही है। दया भाव न तो शारीरिक प्रेम है और न ही व्यक्तिगत स्नेह, क्योंकि दोनों से ही दुःख उत्पन्न होता है। दया भाव केवल पड़ोसियों के प्रति सद्भावना नहीं है, क्योंकि यह पड़ोसियों और अन्य लोगों में कोई भेद नहीं करती। दया भाव केवल सार्वभौमिक भाईचारा नहीं है, क्योंकि इसमें सभी जीवित प्राणी समाहित हैं, जिनमें पशु, हमारे वे छोटे भाई-बहन भी शामिल हैं जिन्हें अधिक करुणा की आवश्यकता है क्योंकि वे असहाय हैं। दया भाव धार्मिक भाईचारा भी नहीं है। तथाकथित धार्मिक भाईचारे की दुखद सीमाओं के कारण मनुष्यों के सिर बिना किसी संकोच के काट दिए गए हैं, ईमानदार और मुखर पुरुषों और महिलाओं को जिंदा जला दिया गया है; अनेक अत्याचार किए गए हैं जिनका वर्णन करना असंभव है; क्रूर युद्ध लड़े गए हैं जिन्होंने विश्व इतिहास के पन्नों को कलंकित कर दिया है। इस तथाकथित प्रबुद्ध बीसवीं सदी में भी, एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्मों के अनुयायियों से घृणा करते हैं, उन पर निर्मम अत्याचार करते हैं और यहाँ तक कि उनकी हत्या भी कर देते हैं, केवल इसलिए कि वे उन्हें अपने समान सोचने के लिए बाध्य नहीं कर सकते या क्योंकि उनका नाम अलग है। यदि धार्मिक विचारों के कारण विभिन्न धर्मों के लोग भाई-बहनों की तरह एक मंच पर नहीं मिल सकते, तो निश्चित रूप से करुणामय विश्व शिक्षकों का मिशन दयनीय रूप से विफल हो गया है। मधुर मैत्री इन सभी संकीर्ण भाईचारे से परे है। इसका दायरा असीमित है। इसमें कोई बाधा नहीं है। यह भेदभाव नहीं करती। मैत्री व्यक्ति को संपूर्ण विश्व को अपनी मातृभूमि और सभी को सह-मानव मानने में सक्षम बनाती है। जिस प्रकार सूर्य बिना किसी भेदभाव के सभी पर अपनी किरणें बिखेरता है, उसी प्रकार उदात्त मैत्री अपने मधुर आशीर्वाद को सुखद और अप्रिय, धनी और गरीब, ऊँच-नीच, दुष्ट और सदाचारी, पुरुष और स्त्री, और मनुष्य और पशु सभी पर समान रूप से बरसाती है।

बुद्ध की असीम करुणा ऐसी थी कि वे अपने प्रियजनों के साथ-साथ अपने शत्रुओं और यहाँ तक कि उन्हें हानि पहुँचाने और जान से मारने का प्रयास करने वालों के कल्याण और सुख के लिए भी कार्य करते थे। बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल, अपने शत्रु देवदत्त, अपने सेवक आनंद, अपने प्रशंसकों और अपने विरोधियों के प्रति समान रूप से करुणा दिखाई । यह करुणा स्वयं के प्रति, मित्र, शत्रु और तटस्थ सभी के प्रति समान रूप से दिखानी चाहिए। मान लीजिए कि एक डाकू जंगल से गुजर रहे एक व्यक्ति के पास आता है, जिसके साथ उसका एक घनिष्ठ मित्र, एक तटस्थ व्यक्ति और एक शत्रु है, और वह उनमें से किसी एक को बलि के रूप में चढ़ाने की मांग करता है। यदि यात्री यह कहे कि उसे स्वयं मार दिया जाए, तो उसकी स्वयं के प्रति कोई करुणा नहीं है। यदि वह यह कहे कि अन्य तीन व्यक्तियों में से किसी को मार दिया जाए, तो उसकी उनके प्रति कोई करुणा नहीं है ।

यही सच्ची करुणा का गुण है । इस असीम प्रेम का अभ्यास करते समय स्वयं को उपेक्षित नहीं करना चाहिए। इस सूक्ष्म बिंदु को गलत नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आत्म-त्याग एक मधुर गुण है और अहंकारहीनता उससे भी उच्च गुण है। इस करुणा की पराकाष्ठा सभी प्राणियों के साथ स्वयं को एकाग्र करना (सब्बत्तता) है, जिसमें स्वयं और दूसरों के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। तथाकथित 'मैं' समग्रता में विलीन हो जाता है। अलगाववाद समाप्त हो जाता है। एकत्व का अहसास होता है।

पाली भाषा के इस सुंदर शब्द 'मेट्टा' का अंग्रेजी में कोई उपयुक्त पर्याय नहीं है । सद्भावना, प्रेम, परोपकार और सार्वभौमिक प्रेम को इसके सर्वोत्तम अर्थ के रूप में सुझाया जाता है। 'मेट्टा' का विलोम क्रोध, दुर्भावना, घृणा या अरुचि है। क्रोध या प्रतिशोध की भावना के साथ 'मेट्टा' का अस्तित्व नहीं हो सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 131,132

(धम्मपद 130) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 131 और 132 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 133 और 134)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 131 और 132 - संबहुला कुमारक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 131 और 132 - संबहुला कुमारक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
सुखाकमणि भूटानी
yo dandena vihimsati
attano sukhamesano
pecca so na labhate sukham.

सुखाकमणि भूटानी
yo dandena na himsati
attano sukhamesano
pecca so labbate sukhatm.

श्लोक 131 : जो व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार करके अपनी खुशी की तलाश करता है, जबकि दूसरे भी सुख की इच्छा रखते हैं, उसे अगले जन्म में सुख नहीं मिलेगा।

श्लोक 132 : जो दूसरों पर अत्याचार न करके, जो सुख की इच्छा रखते हैं, अपनी खुशी की तलाश करता है, उसे अपने अगले जन्म में सुख मिलेगा।

कई युवाओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कई युवकों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (131) और (132) का उच्चारण किया।
एक बार बुद्ध श्रावस्ती में भिक्षा मांग रहे थे, तभी उन्होंने कुछ युवकों को लाठियों से एक सांप को पीटते हुए देखा। पूछने पर युवकों ने उत्तर दिया कि वे सांप को इसलिए पीट रहे थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं सांप उन्हें काट न ले। बुद्ध ने उनसे कहा, "यदि तुम स्वयं को हानि नहीं पहुंचाना चाहते, तो दूसरों को भी हानि न पहुंचाओ; यदि तुम दूसरों को हानि पहुंचाओगे, तो तुम्हें परलोक में सुख नहीं मिलेगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 131 : जो व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार करके अपनी खुशी की तलाश करता है, जबकि दूसरे भी सुख की इच्छा रखते हैं, उसे अगले जन्म में सुख नहीं मिलेगा।

श्लोक 132 : जो दूसरों पर अत्याचार न करके, जो सुख की इच्छा रखते हैं, अपनी खुशी की तलाश करता है, उसे अपने अगले जन्म में सुख मिलेगा।

प्रवचन के अंत में सभी युवकों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त कर लिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कई युवाओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई युवकों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार बुद्ध सावत्थी में भिक्षा मांगने निकले थे, तभी उन्होंने कुछ युवकों को लाठियों से एक सांप को पीटते हुए देखा। पूछने पर युवकों ने उत्तर दिया कि वे सांप को इसलिए पीट रहे थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं सांप उन्हें काट न ले। बुद्ध ने उनसे कहा, “यदि तुम स्वयं को हानि नहीं पहुंचाना चाहते, तो दूसरों को भी हानि न पहुंचाओ; यदि तुम दूसरों को हानि पहुंचाओगे, तो तुम्हें परलोक में सुख नहीं मिलेगा।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 131)
यो अतनो सुखं एसाणो सुख कामानि भूतानि
दण्डेन विहिंसति सो पेक्का सुखं न लभते
यदि कोई व्यक्ति सुख की तलाश में हो , तो उसे दंड से पीड़ा न मिले ।

जो लोग खुश रहना पसंद करते हैं और सुख की तलाश में रहते हैं, वे अपनी खुशी के लिए हिंसा के विभिन्न कृत्यों से दूसरों को चोट पहुंचाते हैं। ये पीड़ित भी उतना ही खुश रहना चाहते हैं जितना कि उन्हें पीड़ा पहुंचाने वाले। पीड़ा पहुंचाने वालों को अगले जन्म में भी सुख नहीं मिलता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 132)

यो अतनो सुखं एसाणो सुख कामानि भूतानि

दण्डेन न हिंसति , सो पेक्का सुखं लभते

यो : यदि कोई; अत्तनो [अत्तना]: अपना; सुखं एस्सानो [एस्साना]: सुख चाहने वाला; सुख कामानी : समान रूप से सुख चाहने वाला; भूतानि : प्राणी; दंडेन : छड़ियों से (विभिन्न प्रकार के कष्टों के साथ); न हिंसति : चोट नहीं पहुँचाता, यातना नहीं देता या पीड़ा नहीं देता; सो : वह व्यक्ति; पेच्च : परलोक में; सुखं [सुख]: सुख; लभते : प्राप्त करता है

जो लोग स्वयं सुख चाहते हैं और अपने लिए आनंद की तलाश में रहते हैं, यदि वे दूसरों को चोट नहीं पहुंचाते, उन्हें यातना नहीं देते या उन्हें पीड़ा नहीं देते, तो उन्हें अगले जन्म में भी सुख प्राप्त होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 131-132)

अनाथपिंडिका और जेतवन : धम्मपद के अधिकांश श्लोक बुद्ध ने जेतवनाराम में निवास करते हुए कहे थे, जिसका निर्माण अनाथपिंडिका ने करवाया था। अतः ये दोनों स्थान बौद्ध धर्म, विशेषकर धम्मपद के अनुयायियों के लिए महत्वपूर्ण हैं। अनाथपिंडिका, जिसका अर्थ है असहायों का भोजन कराने वाला, का मूल नाम सुदत्त था । अपनी अतुलनीय उदारता के कारण वे बाद में अपने नए नाम से जाने गए। उनका जन्मस्थान श्रावस्ती था। एक दिन वे अपने बहनोई से कुछ काम से राजगृह गए। बहनोई ने हमेशा की तरह उनका स्वागत नहीं किया, लेकिन सुदत्त ने उन्हें बगीचे में भोज की तैयारी करते हुए पाया। पूछताछ करने पर, उन्हें असीम प्रसन्नता हुई कि ये व्यवस्थाएँ अगले दिन बुद्ध के स्वागत के लिए की जा रही थीं। बुद्ध शब्द सुनते ही उनकी रुचि जागृत हुई और वे बुद्ध के दर्शन के लिए तरसने लगे। उन्हें बताया गया था कि बुद्ध पास के सीतावन वन में निवास कर रहे हैं और वे उन्हें अगली सुबह देख सकेंगे, इसलिए वे सो गए। बुद्ध से मिलने की उनकी तीव्र इच्छा इतनी प्रबल थी कि उन्हें रात भर नींद नहीं आई और वे सुबह असामान्य समय पर सीतावन के लिए निकल पड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध के प्रति उनकी अटूट आस्था के कारण उनके शरीर से प्रकाश निकला। वे एक कब्रिस्तान से होते हुए सीतावन की ओर चल पड़े। वहाँ घोर अंधेरा था और उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। उन्होंने वापस लौटने का विचार किया।

तब स्वयं अदृश्य यक्ष शिवक ने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा:

सौ हाथी और घोड़े भी।

हाँ, और खच्चरों द्वारा खींचे गए सौ रथ।

एक लाख युवतियाँ, उनके कानों में

रत्नजड़ित अंगूठियां:— सभी की कीमत नहीं होती।

एक कदम का सोलहवाँ अंश।

हे नागरिक, आगे बढ़ो!

तुम्हारे लिए पीछे हटने से आगे बढ़ना बेहतर है।

उसका भय दूर हो गया और उसकी जगह बुद्ध में आस्था जागृत हो गई। प्रकाश फिर से प्रकट हुआ और वह साहसपूर्वक आगे बढ़ा। फिर भी, यह सब दूसरी बार और फिर तीसरी बार हुआ। अंततः वह सीतावन पहुँचा जहाँ बुद्ध खुले में उसके आने की प्रतीक्षा में चहलकदमी कर रहे थे। बुद्ध ने उसे उसके पारिवारिक नाम सुदत्त से पुकारा और उसे अपने पास बुलाया। अनाथपिंडिका बुद्ध द्वारा इस प्रकार संबोधित किए जाने से प्रसन्न हुआ और आदरपूर्वक पूछा कि क्या बुद्ध सुखपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया:

वह हर समय खुशी से आराम करता है।

वह अरहत जिसमें सभी अग्नियां बुझ जाती हैं।

जो कामुक इच्छाओं से चिपके नहीं रहते,

उसके पूरे शरीर को ठंडा कर दिया, सारे कीटाणुओं को दूर कर दिया।

जो नया जीवन लाते हैं, सभी बाधाओं को दूर करते हैं।

हृदय के दर्द और तड़प को शांत कर दिया।

वह शांत और निर्मल होकर सुखपूर्वक विश्राम कर रहा है।

क्योंकि उसने अपने मन में शांति प्राप्त कर ली है।

धम्म का उपदेश सुनकर, वह सोतापन्न (नदी-यात्री) बन गया और उसने बुद्ध को वर्षा ऋतु में सावत्थी में रहने का निमंत्रण दिया। बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और कहा कि बुद्धों को एकांत में आनंद आता है। सावत्थी लौटकर, अनाथपिंडिका ने राजकुमार जेत का उद्यान खरीदा, जिसकी कीमत कथा के अनुसार, पूरे स्थल को सोने के सिक्कों से ढककर तय की गई थी, और वहाँ उसने भारी लागत से

प्रसिद्ध जेतवन मठ का निर्माण करवाया। बुद्ध ने यहाँ उन्नीस वर्षा ऋतुएँ बिताईं। यह मठ, जहाँ बुद्ध ने अपने जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया, वह स्थान था जहाँ उन्होंने अपने अनेक उपदेश दिए। कई प्रवचन, जो विशेष रूप से गृहस्थों के लिए रुचिकर थे, अनाथपिंडिका को दिए गए, यद्यपि उसने बुद्ध से कोई प्रश्न नहीं पूछा, कहीं ऐसा न हो कि वह उन्हें ऊबा दे।

एक बार, बुद्ध ने उदारता पर प्रवचन देते हुए अनाथपिंडिका को याद दिलाया कि बुद्ध के साथ संघ को दान देना अत्यंत पुण्यकारी है; परन्तु ऐसे दान से भी अधिक पुण्यकारी है संघ के उपयोग हेतु मठ का निर्माण करना; ऐसे मठों से भी अधिक पुण्यकारी है बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना; बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेने से भी अधिक पुण्यकारी है पंच नियमों का पालन करना; ऐसे पालन से भी अधिक पुण्यकारी है क्षण भर के लिए प्रेम-कृपा (मेट्टा) पर ध्यान करना; और सबसे अधिक पुण्यकारी है वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति (पसना) के प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करना।

एक अन्य अवसर पर जब बुद्ध अनाथपिंडिक के घर गए, तो उन्होंने घर के अंदर एक असामान्य शोर सुना और पूछा कि क्या हो रहा है। अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, यह मेरी बहू सुजाता है, जो हमारे साथ रहती है। वह धनी है और एक समृद्ध परिवार से यहाँ आई है। वह न तो अपनी सास का आदर करती है, न अपने ससुर का, न अपने पति का; न ही वह बुद्ध का आदर, सम्मान, श्रद्धा या आदर करती है।"

बुद्ध ने उन्हें अपने पास बुलाया और आधुनिक समाज में भी विद्यमान सात प्रकार की पत्नियों पर एक ज्ञानवर्धक प्रवचन दिया, जैसा कि प्राचीन काल में था।

जो दुष्ट मन वाली, द्वेषपूर्ण, निर्दयी, पति की उपेक्षा करने वाली, वेश्यावृत्ति करने वाली और सताने पर तुली हुई हो, ऐसी स्त्री को कष्टदायी पत्नी कहा जाता है। (वधकभरिया)

जो स्त्री अपने पति की थोड़ी-बहुत कमाई को भी, चाहे वह शिल्प, व्यापार या खेती से ही क्यों न हो, लुटाने की इच्छा रखती है, वह चोरनी कहलाती है। (कोराभरिया)

जो किसी काम में रुचि न रखती हो, आलसी हो, पेटू हो, कठोर हो, निर्दयी हो, अपशब्दों की शौकीन हो, और कर्मठों पर प्रभुत्व जमाए रहती हो, ऐसी स्त्री को अय्याभरिया कहा जाता है ।

जो सदा दयालु और करुणामयी हो, अपने पति की माँ की तरह रक्षा करे, अपने बेटे की रक्षा करे, अपने पति की संचित संपत्ति की रक्षा करे — ऐसी स्त्री को मातृवत पत्नी कहा जाता है। (मातुभारिया)

जो स्त्री अपने पति के प्रति उसी प्रकार आदर रखती है जैसे छोटी बहन अपने बड़े भाई के प्रति, जो विनम्र हो और अपने पति की इच्छाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करती हो, उसे भगिनीभरिया कहा जाता है ।

जो स्त्री अपने पति को देखकर उसी प्रकार प्रसन्न होती है जैसे कोई मित्र अपने लंबे समय बाद आए साथी को देखकर प्रसन्न होता है, वह कुलीन, गुणी और पवित्र होती है — ऐसी स्त्री को सखीभारिया कहा जाता है ।

जो स्त्री हानि और दंड की धमकी मिलने पर क्रोधित न होकर शांत रहती है, अपने पति की सभी बातों को निर्दयी हृदय से सहन करती है, घृणा से मुक्त रहती है और अपने पति की इच्छाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करती है, उसे दासी (दासिभरिया) कहा जाता है।

बुद्ध ने सात प्रकार की पत्नियों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा कि उनमें से कष्टदायक पत्नी (वधकभरिया), चोर पत्नी (कोरभरिया) और अभिमानी पत्नी (अय्यभरिया) बुरी और अवांछनीय हैं, जबकि मातृत्वपूर्ण पत्नी (मातुभरिया), बहन के समान पत्नी (भागिनीभरिया), मित्रवत पत्नी (सखीभरिया) और दासीभरिया अच्छी और प्रशंसनीय हैं।

"ये सुजाताएं , एक पुरुष की सात प्रकार की पत्नियां हो सकती हैं: और तुम इनमें से कौन सी हो?" "हे प्रभु, आज से बुद्ध मुझे दासिभरिया (दासिभरिया) समझें। "

अनाथपिंडिका प्रतिदिन बुद्ध के दर्शन करने जाते थे और यह देखकर कि बुद्ध की अनुपस्थिति में लोग निराश हो जाते हैं, उन्होंने पूज्य आनंद से यह जानना चाहा कि क्या बुद्ध के उपदेश भ्रमण पर जाने के दौरान उनके श्रद्धालु उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं। यह बात बुद्ध को बताई गई, जिसके फलस्वरूप मठ के प्रवेश द्वार पर आनंद-बोधि वृक्ष लगाया गया, जो आज भी खड़ा है।

सुखम् : सुख। गृहस्थ द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले चार प्रकार के सुखों पर टिप्पणी करते हुए, बुद्ध ने घोषणा की: "इंद्रियों के सुखों का आनंद लेने वाले गृहस्थ को समय-समय पर और अवसर मिलने पर ये चार प्रकार के सुख प्राप्त हो सकते हैं: स्वामित्व का सुख (अत्थिसुख), आनंद का सुख (भोगसुख), ऋणमुक्ति का सुख (अननासुख), और निर्दोषता का सुख (अनवज्जसुख)।"

स्वामित्व का सुख क्या है? इसमें एक कुलवासी के पास वह धन होता है जो उसने अथक परिश्रम से अर्जित किया है, बलपूर्वक इकट्ठा किया है, पसीने से कमाया है, और जो वैध और विधिवत रूप से प्राप्त किया गया है। यह सोचकर कि यह धन मेरा है, अथक परिश्रम से अर्जित किया गया है, और विधिवत रूप से प्राप्त किया गया है, उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसे ही स्वामित्व का सुख कहते हैं।

"ऋणमुक्ति का सुख क्या है?" इसमें कुल के किसी सदस्य पर किसी का भी छोटा-बड़ा कोई ऋण नहीं होता। यह सोचकर कि मुझ पर किसी का भी छोटा-बड़ा कोई ऋण नहीं है, मुझे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसी को ऋणमुक्ति का सुख कहते हैं।

“निर्दोषता का सुख क्या है? इसमें आर्य शिष्य को निष्कलंक देह, निष्कलंक वाणी और निष्कलंक मन की क्रिया का आशीर्वाद प्राप्त होता है। जब वह सोचता है, ‘मैं निष्कलंक देह, वाणी और मन की क्रिया से धन्य हूँ’, तो उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसी को निर्दोशता का सुख कहते हैं।”

कर्जमुक्ति का सुख प्राप्त करने वाला व्यक्ति
तब शायद उन्हें वास्तव में कुछ पाने के आनंद की याद आ सके।
जब वह धन के सुख का आनंद लेता है, तब वह देखता है
यह बुद्धिमत्ता के कारण ही है। जब वह देखता है, तब वह जान जाता है।
इस प्रकार वह वास्तव में दोनों ही मामलों में बुद्धिमान है।
लेकिन इनमें उस आनंद का सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं है।
(जो किसी निर्दोष व्यक्ति को प्राप्त होता है)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 133,134

———————————————————————————

(धम्मपद 131 और 132) <<<< पिछला ll धम्मपद 133 और 134 ll अगला >>>> (धम्मपद 135)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 133 और 134 - कोंडाधनथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 133 और 134 - कोंडाधनत्थेरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Mavoca pharusam kanci
vutta pativadeyyu tam
dukkha hi sarambkakatha(1)
patidanda phuseyyu tam.

Sace neresi attanam
kamso upahato yatha
esa pattosi nibbanam
sarambho te na vijjati.

———————————————————————————

श्लोक 133 : किसी से कठोर शब्द न बोलो; जिन लोगों से कठोर शब्द बोले जाते हैं वे पलटवार करते हैं। द्वेषपूर्ण बातें वास्तव में दुःख का कारण होती हैं और तुम्हें उसका फल भुगतना पड़ेगा।

———————————————————————————

श्लोक 134 : यदि तुम अपने आप को टूटे हुए घंटे की तरह शांत और स्थिर रख सको, जो अब गूंजता नहीं है, तो तुम निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर लोगे, तुममें कोई कठोरता नहीं होगी।

———————————————————————————

1. सरम्बककथा: द्वेषपूर्ण बातें। टीका के अनुसार इसका अर्थ है दूसरों को नीचा दिखाने वाली बातें।

थेरा कोंडाधना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा कोंडाधना के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (133) और (134) का उच्चारण किया।

कोंडाधना के संघ में प्रवेश के दिन से ही एक स्त्री की छवि उनका पीछा करती रही। यह छवि दूसरों को दिखाई देती थी, लेकिन कोंडाधना स्वयं इसे नहीं देख पाते थे और इसलिए इसके बारे में उन्हें पता भी नहीं था।

जब वह भिक्षु भिक्षा मांगने निकलते थे, तो लोग उन्हें दो चम्मच देते हुए कहते थे, "यह आपके लिए है, पूज्यवर, और यह आपकी स्त्री साथी के लिए है।" भिक्षु को एक स्त्री के साथ घूमते देख, लोग कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के पास गए और भिक्षु और स्त्री के बारे में उन्हें बताया। उन्होंने राजा से कहा, "हे महाराज! इस भिक्षु को, जो नैतिक गुणों से रहित है, अपने राज्य से निकाल दीजिए।" तब राजा उस मठ में गए जहाँ वह भिक्षु ठहरे हुए थे और अपने सैनिकों से उसे घेर लिया।

कुछ आवाज़ें और शोर सुनकर भिक्षु बाहर आए और द्वार पर खड़े हो गए। मूर्ति भी भिक्षु से कुछ ही दूरी पर थी। राजा के आने का पता चलने पर भिक्षु उनके इंतज़ार में कमरे में चले गए। जब राजा कमरे में आए, तो मूर्ति वहाँ नहीं थी। राजा ने भिक्षु से पूछा कि वह स्त्री कहाँ है, तो उन्होंने कहा कि उन्हें कोई स्त्री नहीं दिखी। राजा यह सुनिश्चित करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भिक्षु को कुछ देर के लिए कमरे से बाहर जाने को कहा। भिक्षु कमरे से बाहर चले गए, लेकिन जब राजा ने बाहर देखा, तो उन्हें वह स्त्री फिर से भिक्षु के पास दिखाई दी। लेकिन जब भिक्षु कमरे में वापस आए, तो वह स्त्री वहाँ नहीं थी। राजा ने निष्कर्ष निकाला कि वह स्त्री वास्तविक नहीं थी, इसलिए भिक्षु निर्दोष होंगे। अतः उन्होंने भिक्षु को प्रतिदिन महल में भिक्षा मांगने के लिए आमंत्रित किया।

जब दूसरे भिक्षुओं ने यह सुना, तो वे हैरान रह गए और उस भिक्षु से बोले, "हे निर्लज्ज भिक्षु! अब जब राजा ने तुम्हें अपने राज्य से निकालने के बजाय भिक्षा के लिए आमंत्रित किया है, तो तुम्हारा तो नाश होना तय है!" भिक्षु ने जवाब दिया, "केवल तुम ही निर्लज्ज हो; केवल तुम ही नाश होगे क्योंकि तुम ही स्त्रियों के साथ घूमते हो!"

तब भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई। बुद्ध ने कोदादधना को बुलवाया और उससे कहा, "मेरे पुत्र, क्या तुमने उन भिक्षुओं के साथ कोई स्त्री देखी है जिनसे तुमने इस प्रकार बात की है? तुमने उनके साथ कोई स्त्री नहीं देखी, जबकि उन्होंने तुम्हारे साथ एक स्त्री देखी है। मुझे लगता है कि तुम्हें यह अहसास नहीं है कि तुम्हें पिछले जन्म में किए गए किसी बुरे कर्म के कारण शाप मिला है। अब सुनो, मैं तुम्हें समझाता हूँ कि तुम्हें एक स्त्री की छवि क्यों दिखाई देती है।"

"अपने पिछले जन्म में तुम एक देव (देवदूत) थे। उस समय दो भिक्षु थे जो एक-दूसरे से बहुत स्नेह रखते थे। लेकिन तुमने स्त्री का रूप धारण करके और उनमें से एक भिक्षु का पीछा करके उन दोनों के बीच कलह पैदा करने की कोशिश की। उस बुरे कर्म के कारण अब एक स्त्री की छवि तुम्हारा पीछा कर रही है। इसलिए, मेरे पुत्र, आगे से किसी भी भिक्षु से वाद-विवाद मत करना; टूटे हुए किनारे वाले घंटे की तरह मौन रहना, और तुम्हें निर्वाण प्राप्त हो जाएगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 133 : किसी से कठोर शब्द न बोलो; जिन लोगों से कठोर शब्द बोले जाते हैं वे पलटवार करते हैं। द्वेषपूर्ण बातें वास्तव में दुःख का कारण होती हैं और तुम्हें उसका फल भुगतना पड़ेगा।

श्लोक 134 : यदि तुम अपने आप को टूटे हुए घंटे की तरह शांत और स्थिर रख सको, जो अब गूंजता नहीं है, तो तुम निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर लोगे, तुममें कोई कठोरता नहीं होगी।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय कुण्डधान की कहानी

जीतावन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य कुण्डधान के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

जिस दिन कुण्डधान ने भिक्षु दीक्षा ली, उसी दिन से एक स्त्री उनके साथ रहने लगी। पूज्य कुण्डधान ने स्वयं उसे कभी नहीं देखा, परन्तु सब लोग उसे देखते थे। वास्तव में, जब भी पूज्य कुण्डधान किसी गाँव में भिक्षा मांगने जाते, तो गाँव वाले पहले उन्हें भिक्षा का एक भाग देते हुए कहते, “पूज्यवर, यह आपके लिए है,” और फिर उस स्त्री को भिक्षा का दूसरा भाग देते हुए कहते, “और यह हमारी सहेली के लिए है।” कथा के अनुसार, बुद्ध कस्सपा के युग में दो सहोदर भिक्षु थे जो एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे मानो वे एक ही माता की कोख से उत्पन्न हुए हों। और बुद्ध दीघायु के युग में, वर्ष दर वर्ष और माह जब भी भिक्षु व्रत रखने के लिए एकत्रित होते, तो वही दो भिक्षु अपने आश्रम से बाहर आकर एक दूसरे से कहते, “चलो साथ में साधना कक्ष चलते हैं।”

उस समय स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेने वाली एक देवी ने उन दो भिक्षुओं को देखकर सोचा, “ये दोनों भिक्षु बहुत अधिक साथ हैं; क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे मैं इन्हें अलग कर सकूँ?” जैसे ही उसने यह मूर्खतापूर्ण विचार किया, उनमें से एक भिक्षु ने अपने साथी से कहा, “भाई, एक क्षण रुकिए; मुझे शौच करना है।” यह सुनते ही देवी ने स्त्री का रूप धारण कर लिया और पूज्य भिक्षु के साथ झाड़ियों में प्रवेश कर गई। जब वह बाहर आए, तो वह उनके पीछे-पीछे चल पड़ी, एक हाथ से अपने बालों का गुच्छा और दूसरे हाथ से अपने अंतर्वस्त्र को संवारती हुई। पूज्य भिक्षु स्वयं उसे नहीं देख सके, लेकिन जब बाहर उनका इंतजार कर रहे भिक्षु ने मुड़कर देखा, तो उसने स्त्री को अपने बाल और अंतर्वस्त्र संवारते हुए बाहर आते देखा। जैसे ही स्त्री ने देखा कि प्रतीक्षा कर रहे भिक्षु ने उसे देख लिया है, वह गायब हो गई। जब पूज्य भिक्षु अपने प्रतीक्षा कर रहे भिक्षु के पास आए, तो उसने उनसे कहा, “भाई, आपने अपने ब्रह्मचर्य के व्रत को तोड़ दिया है।” “मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, भाई।” “अरे, मैंने अभी-अभी एक युवती को तुम्हारे पीछे आते हुए देखा, वो ये सब कर रही थी। फिर भी तुम कहते हो कि तुमने कुछ नहीं किया।”

आदरणीय भिक्षु ने ऐसा व्यवहार किया मानो उन पर बिजली गिर पड़ी हो। उन्होंने कहा, “भाई, मुझे बर्बाद मत करो। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है।” भिक्षु ने कहा, “जो मैंने देखा, वह मैंने अपनी आँखों से देखा। क्या आप मुझसे विश्वास की अपेक्षा करते हैं?” और तुरंत ही उन्होंने अपनी छड़ी का सिरा तोड़ दिया और चले गए। इतना ही नहीं, जब वे विश्राम कक्ष में बैठे, तो उन्होंने कहा, “मैं उनके साथ व्रत नहीं रखूँगा।” आदरणीय भिक्षु ने भिक्षुओं से कहा, “भाइयों, मेरी पवित्रता पर एक कण के बराबर भी धूल नहीं है।” लेकिन भिक्षु ने फिर दोहराया, “जो मैंने देखा, वह मैंने अपनी आँखों से देखा।” जब स्त्री आत्मा ने देखा कि भिक्षु आदरणीय भिक्षु के साथ व्रत नहीं रखना चाहता, तो उसने मन ही मन सोचा, “मैंने बहुत बड़ी गलती की है।” और तुरंत ही उसने भिक्षु से कहा, “आदरणीय भिक्षु, मेरे आदरणीय गुरु ने वास्तव में अपनी पवित्रता की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी है। मैंने यह केवल उनकी परीक्षा लेने के लिए किया था। कृपया उनके साथ व्रत रखें, जैसा कि वे हमेशा करते हैं।” जब भिक्षु ने स्त्री आत्मा को हवा में स्थिर देखा और उसके शब्द सुने, तो उसने उस पर विश्वास किया और पूज्य भिक्षु के साथ व्रत रखा। यद्यपि, वह पूज्य भिक्षु के प्रति पहले की तरह दयालु नहीं था। स्त्री आत्मा का पिछला कार्य ऐसा ही था।

अपने जीवन की नियत अवधि समाप्त होने पर, पूज्य भिक्षुओं का उनकी इच्छा अनुसार पुनर्जन्म हुआ। स्त्री आत्मा का पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ, और दो बुद्धों के बीच के अंतराल के बराबर समय तक वहाँ कष्ट भोगने के बाद, वर्तमान बुद्ध के युग में श्रावस्ती में पुरुष के रूप में पुनर्जन्म हुआ। जब वह वयस्क हो गए, तो उन्होंने संसार त्याग दिया और भिक्षु बनने का निश्चय किया, और बाद में इसे अपना पूर्ण जीवनयापन बना लिया। जिस दिन से उन्होंने संसार त्यागा, एक स्त्री रूपी प्रेत उनके पीछे-पीछे चलने लगा। इसलिए उन्होंने उसका नाम कुण्डधान रखा। जब भिक्षुओं ने देखा कि एक स्त्री उनका पीछा कर रही है, तो उन्होंने अनाथपिंडिका से कहा, “धन्यवाद, इस अपवित्र भिक्षु को अपने मठ से निकाल दीजिए, क्योंकि इसके कारण अन्य सभी भिक्षुओं पर कलंक लगेगा।” “परन्तु, पूज्य भिक्षुओं, क्या बुद्ध मठ में नहीं हैं?” “हे शिष्य, वे हैं।” “तो फिर, केवल बुद्ध ही जानते होंगे।” भिक्षुओं ने जाकर विशाखा से भी यही बात कही और उन्होंने उन्हें वही उत्तर दिया।

दोनों शिष्यों से कोई संतोषजनक जवाब न मिलने पर भिक्षुओं ने राजा को यह बात बताई और कहा, “महाराज, कुण्डधान एक स्त्री के साथ घूमता है और इस प्रकार उसने सभी भिक्षुओं पर कलंक लगाया है। उसे अपने राज्य से निकाल दीजिए।” “पर वह कहाँ है, पूज्यवर?” “मठ में, महाराज।” “वह किस मठ में रहता है?” “अमुक मठ में।” “ठीक है, आप जाइए। मैं उसे पकड़वा दूँगा।” अतः शाम को राजा मठ गए, पूज्यवर के कक्ष को अपने सैनिकों से घेर लिया और स्वयं पूज्यवर की कुटिया के प्रवेश द्वार के सामने खड़े हो गए।

तेज आवाज सुनकर पूज्य भिक्षु बाहर आए और मठ की ओर मुख करके खड़े हो गए। राजा ने तुरंत अपने पीछे उस प्रेत स्त्री को खड़ा देखा। जब पूज्य भिक्षु ने देखा कि राजा अपनी कोठरी में चले गए हैं, तो वे फिर से मठ में ऊपर चले गए और बैठ गए, लेकिन राजा ने पूज्य भिक्षु को प्रणाम नहीं किया। राजा को वह स्त्री फिर कभी नहीं दिखी। उन्होंने दरवाजे के अंदर और पलंग के नीचे भी देखा, फिर भी वह उन्हें नहीं मिली। अंत में उन्होंने भिक्षु से कहा, “पूज्य भिक्षु, मैंने इस स्थान पर एक स्त्री को देखा था; वह कहाँ है?” “मुझे कोई नहीं दिखी, महाराज।” तब राजा ने कहा, “मैंने अभी-अभी उसे आपकी पीठ के पीछे देखा था।” लेकिन पूज्य भिक्षु ने पहले की तरह ही उत्तर दिया, “मुझे कोई स्त्री नहीं दिखी, महाराज।” “पूज्य भिक्षु, कृपया एक क्षण के लिए यहाँ बाहर आ जाइए।” भिक्षु बाहर आए और मठ की ओर मुख करके नीचे खड़े हो गए। फिर से वह स्त्री पूज्य भिक्षु के पीछे खड़ी थी। राजा ने उसे देखकर एक बार फिर ऊपरी मंजिल पर चढ़ गए। पूज्य भिक्षु ने देखा कि राजा चले गए हैं, तो वे बैठ गए। राजा ने फिर से हर जगह देखा, लेकिन फिर भी वह स्त्री उन्हें नहीं दिखी। फिर उसने भिक्षु से पूछा, “आदरणीय, वह स्त्री कहाँ है?” “मुझे वह दिखाई नहीं दे रही।” “मुझे सच बताइए, आदरणीय। मैंने अभी-अभी आपके पीछे एक स्त्री को खड़े देखा है।” “जी हाँ, महाराज; यही तो सब कहते हैं। सब कहते हैं, 'एक स्त्री हर जगह आपका पीछा करती है,' लेकिन मुझे वह कभी दिखाई नहीं देती।”

राजा को संदेह हुआ कि यह कोई प्रेत है, इसलिए उसने पूज्यवर से कहा, “पूज्यवर, आपके साथ इतनी अपवित्रता है कि कोई आपको भोजन तक नहीं देगा। इसलिए, नियमित रूप से मेरे घर आइए, मैं ही आपको चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करूँगा।” यह निमंत्रण देकर

वह चला गया। भिक्षुओं ने जाकर बुद्ध को यह बात बताई। तब बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के पिछले जन्म में स्त्री आत्मा के रूप में किए गए दुष्ट कर्म के बारे में बताया और धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 133)

कांची चरणं मा अवोका वुत्ता तं पतिवादेयुं

हाय सरंभकथा दुक्ख पतिदा तं फुसेयुं

kañci : किसी से भी; pharusaṃ [pharusa]: कठोर शब्द; mā avoca : न बोलें; vuttā : यदि आप कठोर शब्द बोलेंगे; taṃ : आपसे; paṭivadeyyuṃ [paṭivadeyyu]: बदले में कठोर शब्द बोले जाएँगे; hi : किसी कारण से; sārambhakathā : परस्पर विरोधी बातें; dukkhā : कष्टदायक है; paṭidaṇḍā : पारस्परिक आक्रमण; taṃ : आप; phuseyyuṃ [phuseyyu]: सहारा ले सकते हैं

कभी भी कठोर शब्दों का प्रयोग न करें। यदि आप ऐसा करेंगे, तो आपको भी उसी तरह का जवाब मिलेगा। इस तरह की तीखी नोकझोंक कष्टदायक होती है। इससे मारपीट तक की नौबत आ सकती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 134)

ससे उपहतो कांसो यथा अत्तनं नेरेसि

एसो निब्बाणं पत्तो असि ते सरम्भो न विज्जति

sace : ठीक वैसे ही; upahato [upahata]: चपटा किया हुआ; kaṃso yathā : धातु का बर्तन; attānaṃ [attāna]: स्वयं; neresi : मौन हो गया है; eso : उस तरह; nibbānaṃ patto asi : आप निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं; te : आपके लिए; sārambho [sārambha]: शब्दों का आदान-प्रदान करने की आवश्यकता है; na vijjati : दिखाई नहीं देता

जब कोई व्यक्ति चपटे धातु के घड़े की तरह शांत और स्थिर होता है, तो ऐसा लगता है मानो उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया हो। ऐसा व्यक्ति व्यर्थ की बातों में नहीं पड़ता। यहाँ तक कि चोट लगने पर भी वह चपटे धातु के घड़े से कोई ध्वनि नहीं निकालता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 133-134)

फरुसं मा अवोच : कठोर शब्द न बोलें। यहाँ सकारात्मक सलाह यह है कि सही वाणी का अभ्यास करें। सही वाणी का अर्थ है: (1) झूठ से बचना और हमेशा सच बोलना; (2) चुगली से बचना, जिससे कलह और असामंजस्य उत्पन्न होता है, और ऐसे शब्द बोलना जो मेलजोल और सद्भाव को बढ़ावा देते हैं; (3) कठोर और अपशब्दों से बचना, और इसके बजाय दयालु और सौम्य शब्द बोलना; और (4) व्यर्थ की बातों, फिजूल की चर्चाओं या गपशप से बचना, और इसके बजाय अर्थपूर्ण और निर्दोष शब्द बोलना।

कांसो : धातु का बर्तन। कांसो शब्द पाँचों धातुओं—सोना, चाँदी, तांबा, लोहा या सीसा—में से किसी एक के लिए प्रयोग किया जाता है। यहाँ इसकी तुलना धातु के बर्तन से की गई है। जब इसका बर्तन जैसा आकार समाप्त हो जाता है और यह चपटा हो जाता है, तो इससे कोई ध्वनि नहीं निकलती। यह मंद और मौन हो जाता है।

Esa patto ' si nibbānaṃ : जो इस अनुकरणीय अभ्यास का पालन करता है, भले ही उसने अभी तक निर्वाण प्राप्त न किया हो, उसे निर्वाण प्राप्त माना जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 135

———————————————————————————

(धम्मपद 133 और 134) <<<< पिछला || धम्मपद 135 || अगला >>>> (धम्मपद 136)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 135 - उपोसथिका इत्थिनं वथु

1.1डॉ माया टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 135 - उपोसाथिका इत्थिनं वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा दंडेना गोपालो
gavo pajeti gocaram
evam jara ca maccu ca
ayum pajenti paninam.

श्लोक 135 : जैसे चरवाहा अपने मवेशियों को चरागाह में ले जाने के लिए छड़ी का इस्तेमाल करता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों के जीवन को चलाती है।

नैतिक सिद्धांतों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (135) का उच्चारण पाँच सौ महिलाओं के संदर्भ में किया।

एक बार, सावत्थी से पाँच सौ महिलाएँ उपोसथा शिला (उपवास और नैतिक व्रत) निभाने के लिए पुब्बाराम मठ में आईं। मठ की दानदाता, प्रसिद्ध विशाखा ने विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से पूछा कि वे उपवास क्यों कर रही हैं। उन्हें अलग-अलग आयु वर्ग की महिलाओं से अलग-अलग उत्तर मिले, क्योंकि वे अलग-अलग कारणों से मठ में आई थीं। वृद्ध महिलाएँ उपवास इसलिए कर रही थीं क्योंकि उन्हें आशा थी कि अगले जन्म में उन्हें देवताओं (देवदूतों) का धन और यश प्राप्त होगा; मध्यम आयु वर्ग की महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अपने पतियों की रखैल के साथ नहीं रहना चाहती थीं। नवविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे चाहती थीं कि उनका पहला बच्चा पुत्र हो, और अविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अच्छे पतियों से विवाह करना चाहती थीं।

इन उत्तरों को प्राप्त करने के बाद, विशाखा सभी महिलाओं को बुद्ध के पास ले गईं। जब उन्होंने बुद्ध को विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं के विभिन्न उत्तरों के बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा, "विशाखा! जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु मनुष्य में सदा सक्रिय रूप से कार्यरत हैं; क्योंकि मनुष्य जन्म लेता है, इसलिए वह वृद्धावस्था और क्षय के अधीन है, और अंततः मृत्यु के अधीन है। फिर भी, वे जन्म-मृत्यु के इस चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करतीं; वे अभी भी संसार में ही रहना चाहती हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 135 : जैसे चरवाहा अपने मवेशियों को चरागाह में ले जाने के लिए छड़ी का इस्तेमाल करता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों के जीवन को चलाती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नैतिक सिद्धांतों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ महिलाओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, सावत्थी से पाँच सौ महिलाएँ अष्टम व्रत रखने के लिए पुब्बाराम मठ में आईं। मठ की दानदाता, प्रसिद्ध विशाखा ने विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से पूछा कि वे व्रत रखने क्यों आई हैं। उन्हें विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से अलग-अलग उत्तर मिले, क्योंकि वे अलग-अलग कारणों से मठ में आई थीं। वृद्ध महिलाएँ व्रत रखने इसलिए आई थीं क्योंकि उन्हें आशा थी कि अगले जन्म में उन्हें स्वर्गिक सुख-समृद्धि प्राप्त होगी; मध्यम आयु वर्ग की महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अपने पतियों की रखैल के साथ नहीं रहना चाहती थीं। नवविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे चाहती थीं कि उनका पहला बच्चा पुत्र हो, और अविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अच्छे पतियों से विवाह करना चाहती थीं।

इन उत्तरों को प्राप्त करने के बाद, विशाखा सभी स्त्रियों को बुद्ध के पास ले गईं। जब उन्होंने बुद्ध को विभिन्न आयु वर्ग की स्त्रियों के विभिन्न उत्तरों के बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा, “विशाखा! जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु मनुष्य में सदा सक्रिय रूप से चलते रहते हैं; जन्म लेने के कारण ही वृद्धावस्था और क्षय का भागी होता है, और अंततः मृत्यु के अधीन होता है। फिर भी, वे जन्म-मृत्यु के इस चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करतीं ; वे संसार में ही लीन रहना चाहती हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 135)

यथा गोपालो दण्डेन गावो गोचरण पसेटि
एवं जरा च मैक्कु च पणिनं अयुं पसेटि

यथा : जैसे; गोपालो [गोपाल]: ग्वाला; दण्डेन : अंकुश से; गावो : मवेशी; गोचरं [गोचर]: चरागाह की ओर; पाचेति : हांकना; एवं : इसी प्रकार; जरा च : क्षय; मच्चू च : और मृत्यु; पाणिनं [पानिन]: प्राणियों की; आयुं : जीवनकाल; पाचेति : हांकना

चरवाहा लाठी से मवेशियों को चरागाह की ओर ले जाता है। ठीक उसी प्रकार, क्षय और मृत्यु प्राणियों के जीवनकाल को निर्धारित करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 135)

विशाखा : विशाखा पर विशेष टिप्पणी । विशाखा धनंजय की पुत्री थीं। उनकी माता सुमना देवी थीं और उनके प्रिय दादा धनी मेंडक थे। जब वह मात्र सात वर्ष की थीं, तब संयोगवश बुद्ध अंग राज्य में स्थित उनके जन्मस्थान भद्दिया में आए। बुद्ध के आगमन की सूचना सुनकर उनके दादाजी ने उनसे कहा, "प्रिय पुत्री, यह तुम्हारे लिए और मेरे लिए भी शुभ दिन है। अपनी सेविकाओं को बुलाओ, रथों पर सवार हो जाओ और अपनी दासियों के दल के साथ बुद्ध का स्वागत करने के लिए जाओ।"

उसने तुरंत सहमति दे दी और सलाह के अनुसार बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गई। बुद्ध उसके सुसंस्कृत व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे और अन्य लोगों को धम्म का उपदेश दिया। यद्यपि वह कम उम्र की थी, फिर भी नैतिक दृष्टि से वह अपेक्षाकृत अधिक उन्नत थी। इस प्रकार, धम्म सुनने के तुरंत बाद ही उसने कम उम्र में ही संतत्व की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) प्राप्त कर ली। ग्रंथों में लिखा है कि अपनी युवावस्था में भी उसमें पुरुषोचित शक्ति थी और वह स्त्रीत्व के सभी गुणों से परिपूर्ण थी। उसके बाल मोर की पूंछ के समान थे और खोलने पर उसकी स्कर्ट के किनारे तक पहुँचते थे, फिर बालों के सिरे ऊपर की ओर मुड़ जाते थे। उसके होंठ चमकीले लाल रंग के थे और छूने में चिकने और कोमल थे। उसके दाँत सफेद थे और बिना किसी अंतराल के समान रूप से जड़े हुए थे और हीरों की पंक्ति की तरह चमकते थे। उसकी त्वचा, बिना किसी सौंदर्य प्रसाधन के, नीले कमल की माला के समान चिकनी और सुनहरे रंग की थी। कई संतानों को जन्म देने के बावजूद भी वह अपनी युवावस्था में ही सुंदर दिखती थी।

स्त्री सौंदर्य के इन पांच प्रकारों - बाल, मांस, अस्थि, त्वचा और यौवन - से संपन्न युवा विशाखा सांसारिक ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि दोनों में उत्कृष्ट थीं।

जब वह लगभग पंद्रह या सोलह वर्ष की थी, एक त्यौहार के दिन, वह अपने दल के साथ उत्सव के उत्साह में नदी में स्नान करने के लिए पैदल गई। अचानक अप्रत्याशित रूप से बारिश होने लगी, और युवा विशाखा को छोड़कर बाकी सभी लोग बेमन से जितनी तेज़ी से दौड़ सकते थे, दौड़े और एक हॉल में प्रवेश किया जहाँ कुछ ब्राह्मण अपने युवा स्वामी के लिए पाँचों प्रकार के सौंदर्य से युक्त एक उपयुक्त कन्या की तलाश में आए थे। सुसंस्कृत विशाखा, बिना किसी विशेष जल्दबाजी के, अपनी सामान्य चाल से आगे बढ़ी और भीगे हुए वस्त्रों और आभूषणों के साथ हॉल में प्रवेश किया। जिज्ञासु ब्राह्मणों ने उसकी आलोचना की कि उसने दूसरों की तरह अपनी गति क्यों नहीं बढ़ाई और इस प्रकार बारिश में भीगने से बच गई।

प्रतिभावान विशाखा ने अवसर का लाभ उठाते हुए अपने दृष्टिकोण से आचरण पर तात्कालिक प्रवचन दिया। उन्होंने कहा कि वे और भी तेज़ दौड़ सकती थीं, लेकिन उन्होंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया। फिर उन्होंने समझाया कि सभी आभूषणों से सजे राजा के लिए महल के प्रांगण में कमर कसकर दौड़ना उचित नहीं है। इसी प्रकार, पूरी तरह से सुसज्जित राजसी हाथी का दौड़ना भी उचित नहीं है; उसे हाथी की स्वाभाविक शालीनता के साथ चलना चाहिए। भिक्षुओं की भी आलोचना होती है जब वे आम लोगों की तरह दौड़ते हैं। इसी प्रकार, किसी स्त्री को पुरुष की तरह दौड़ते देखना गरिमापूर्ण दृश्य नहीं है।

ब्राह्मण उसके ज्ञानवर्धक प्रवचन से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपने स्वामी के लिए आदर्श पत्नी समझा। तदनुसार, उसका विवाह उनके स्वामी पुन्नवद्धन से करने की व्यवस्था की गई, जो स्वयं मिगारा नामक एक धनी व्यक्ति का पुत्र था और बुद्ध का अनुयायी नहीं था।

विवाह समारोह भव्य पैमाने पर आयोजित किया गया था। शादी के दिन, एक बड़े दहेज और एक अत्यंत समृद्ध आभूषण (महालातापितन्धन) के अलावा , उसके बुद्धिमान पिता ने उसे निम्नलिखित उपदेश दिए:

घर के अंदर लगी आग को बाहर न ले जाएं;

बाहर लगी आग को अंदर न ले जाएं;

केवल उन्हीं को दान दें जो दान देते हैं;

जो लोग दान नहीं देते, उन्हें दान न दें;

जो देते हैं और जो नहीं देते, दोनों को दें;

खुशी से बैठो;

खुशी से खाएं;

चैन से सोएं;

आग जलाए रखें और

घर के देवी-देवताओं का सम्मान करें।

पुस्तकों में लिखा है कि उन्हें दस सौभाग्यशाली पुत्रों और दस सौभाग्यशाली पुत्रियों की सुखी माता होने का सौभाग्य प्राप्त था। उनकी मृत्यु एक सौ बीस वर्ष की परिपक्व आयु में हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 136

(धम्मपद 135) <<<< पिछला || धम्मपद 136 || अगला >>>> (धम्मपद 137, 138, 139 और 140)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 136 - गजपेटा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 136 - अजगरपेटा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अथा पापनी कम्मनी
karam balo na bujjhati
sehi kammehi dummedho
aggidaddhova tappati.

श्लोक 136 : मूर्ख व्यक्ति बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानता कि वे बुरे हैं; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों का फल उसी प्रकार भुगतता है जैसे आग से जलने वाला।

पायथन पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते शरीर वाला पायथन जैसा भूत)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

एक बार, जब थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक अजगर पेटा देखा और मुस्कुराए, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब वे जेतवन मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में लखना को उस अजगर पेटा के बारे में बताया, जिसका लंबा शरीर आग की लपटों में जल रहा था। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं भी बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस अजगर पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करके वे बुद्ध के साथ घोर अन्याय करेंगे। अतः इन प्राणियों के प्रति करुणावश बुद्ध मौन रहे। फिर उन्होंने आगे कहा, "अब जब मोग्गलाना गवाह हैं, तो मैं आपको इस अजगर पेटा के बारे में बताता हूँ। यह पेटा कश्यप बुद्ध (पूर्व युग के बुद्ध) के समय का चोर था। एक चोर और क्रूर हृदय वाले व्यक्ति के रूप में, उसने एक धनी व्यक्ति के घर में सात बार आग लगाई थी। और इतने से संतुष्ट न होकर, उसने उसी धनी व्यक्ति द्वारा कश्यप बुद्ध को दान किए गए सुगंधित हॉल में भी आग लगा दी, जब कश्यप बुद्ध भिक्षा मांगने गए हुए थे। इन बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसने निरय (नरक) में लंबे समय तक कष्ट भोगा। अब, पेटा के रूप में अपने कष्टों को भोगते हुए, उसके शरीर पर ऊपर-नीचे उठती हुई लपटों की चिंगारियों से उसे जलाया जा रहा है। भिक्षुओं, मूर्ख लोग बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानते कि वे बुरे हैं; परन्तु वे बुरे परिणामों से बच नहीं सकते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 136 : मूर्ख व्यक्ति बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानता कि वे बुरे हैं; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों का फल उसी प्रकार भुगतता है जैसे आग से जलने वाला।

---

(1) पेटा: हमेशा भूखी रहने वाली आत्मा या भूत (संस्कृत/हिन्दी में प्रीटा)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-घोस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, पूज्य मोग्गलाना, पूज्य लक्खना के साथ गिद्ध शिखर से नीचे उतर रहे थे, तभी उन्हें अलौकिक दृष्टि से एक पच्चीस मील लंबा, नाग के रूप में एक प्रेत दिखाई दिया। उसके सिर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके अंगों पर गिर रही थीं; उसके दोनों ओर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके मध्य भाग पर गिर रही थीं। पूज्य मोग्गलाना ने उस प्रेत को देखकर मुस्कुरा दिया। जब पूज्य लक्खना ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, “भाई, अभी इस प्रश्न का उत्तर देने का उचित समय नहीं है; जब हम बुद्ध के समक्ष उपस्थित हों, तब मुझसे पूछिएगा।”

इसलिए, जब पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद बुद्ध के समक्ष आए, तो पूज्य लखन ने अपना प्रश्न दोहराया। पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया, “भाई, मैंने उस स्थान पर एक भूत देखा, जिसका रूप ऐसा था। उसे देखकर मैंने मन ही मन सोचा, ‘ऐसा भूत मैंने पहले कभी नहीं देखा।’ इसीलिए मैं मुस्कुराया।” तब बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, मेरे शिष्यों के पास आंखें हैं और वे उनका उपयोग करते हैं।” उन्होंने पूज्य मोग्गलाना के कथन की पुष्टि करते हुए आगे कहा, “मैंने उस भूत को ज्ञान के सिंहासन पर बैठे हुए देखा था। लेकिन मेरे मन में यह विचार आया कि ‘यदि कोई मेरी बात पर विश्वास न करे, तो यह उनके लिए हानिकारक हो सकता है।’ इसलिए मैंने इस बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन अब जब मोग्गलाना साक्षी हैं, तो मैं यह बात कहता हूँ।” जब उन्होंने भिक्षुओं के अनुरोध के जवाब में इस प्रकार बात की, तो उन्होंने बताया कि भूत ने अपने पिछले जन्म में क्या किया था।

कथा के अनुसार, बुद्ध कश्यप के युग में, सुमंगला नामक एक कोषाध्यक्ष ने बीस उसभा (फ़दम) की दूरी तक सोने की ईंटें बिछाईं, उतनी ही राशि का खजाना एक मठ के निर्माण में खर्च किया और उतनी ही राशि का खजाना मठ के उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक उत्सव के आयोजन में लगाया। एक दिन, सुबह-सुबह, जब वह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था, तो उसने नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में एक चोर को छिपा हुआ देखा, जिसके पैर कीचड़ से सने थे और उसने अपना वस्त्र सिर पर ओढ़ा हुआ था। कोषाध्यक्ष ने मन ही मन सोचा, "कीचड़ से सने पैरों वाला यह आदमी अवश्य ही कोई रात में छुपकर घूमने वाला चोर होगा।" चोर ने सोचा, "कोई बात नहीं, मुझे तुमसे बदला लेने का तरीका पता है।" कोषाध्यक्ष से द्वेष रखते हुए, उसने उसके खेत को सात बार जलाया, उसके गौशाला में सात बार पशुओं के पैर काटे और उसके घर को सात बार जलाया।

लेकिन इन सब के बावजूद, वह कोषाध्यक्ष के प्रति अपनी दुश्मनी शांत नहीं कर सका। इसलिए उसने कोषाध्यक्ष के सेवक से मित्रता की और उससे पूछा, “तुम्हारे स्वामी, कोषाध्यक्ष को सबसे अधिक क्या प्रिय है?” सेवक ने उत्तर दिया, “उन्हें सुगंधित कक्ष से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं है।” चोर ने सोचा, “ठीक है, मैं सुगंधित कक्ष को जला दूंगा और इस प्रकार अपनी दुश्मनी शांत कर लूंगा।” तदनुसार, जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में आए, तो उसने खाने-पीने के सभी बर्तन तोड़ दिए और सुगंधित कक्ष में आग लगा दी। जब कोषाध्यक्ष ने “सुगंधित कक्ष में आग लग गई है!” की आवाज सुनी, तो वह तुरंत वहां पहुंचा, लेकिन उसके पहुंचने से पहले ही वह कक्ष जलकर राख हो चुका था। कोषाध्यक्ष ने मठ का पुनर्निर्माण किया और चोर को उसके अपराधों के लिए क्षमा कर दिया। चोर का पुनर्जन्म पेटा-भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 136)

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुझति
दुम्मेधो सेहि कम्मेहि अग्गिदोदो इव तप्पति

अथा : इसके अलावा; पापानि कम्मानि : बुरे कर्म; करं [करा]: करना; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; नो बुझति : अनभिज्ञ; दुम्मेधो [दुम्मेधा]: नासमझ व्यक्ति; सेहि कम्मेहि : अपने बुरे कर्मों के कारण; अग्गिदद्दो इव : मानो आग से जल गया हो; तपपति : जलता है (पीड़ित होता है)

मूर्ख, जो बुराई के प्रतिफल से अनभिज्ञ होते हैं, बुरे कर्मों से स्वयं को ही हानि पहुँचाते हैं। जैसे मक्खियाँ आग में कूदकर जल जाती हैं, वैसे ही वे स्वयं अपने जल्लाद बन जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 136)

दुम्मेधो : वह व्यक्ति जिसमें बुद्धि का अभाव हो। यहाँ बुद्धि से तात्पर्य सही और गलत का विवेक करने की क्षमता से है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 137,138,139,140

(धम्मपद136) <<<< पिछला|| धम्मपद 137, 138, 139 और 140 ||अगला >>>> (धम्मपद141)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 137, 138, 139 और 140 - महा मोग्गलनत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 137, 138, 139 और 140 - महा मोग्गलनत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यो डांडेना एडंडेसु
appadutthesu dussati
dasannarnannataram thanam
khippameva nigacchati.

Vedanam pharusam janim
sarirassa va bhedanam
garukam vapi abadham
cittakkhepam va papune.

Rajato va upasaggam
abbhakkhanam va darunam
परिक्खयम वा नतिनाम
भोगनम वा पभंगुरम.

Atha vassa agarani
aggi dahati pavako
kayassa bheda duppanno
nirayam so papajjati.

श्लोक 137 : जो व्यक्ति निर्दोषों को, जिन्हें हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए, हथियारों से हानि पहुँचाता है, वह शीघ्र ही इन दस बुरे परिणामों में से किसी एक का शिकार होगा।

श्लोक 138, 139 और 140 : उसे घोर पीड़ा, दरिद्रता, शारीरिक क्षति (अर्थात अंगों का नुकसान), गंभीर बीमारी (जैसे कुष्ठ रोग), पागलपन, राजा के क्रोध के कारण विपत्तियाँ, अनुचित और गंभीर आरोप, रिश्तेदारों की हानि, धन का विनाश, या आग या बिजली से घरों का जल जाना जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। शरीर के नष्ट होने के बाद, मूर्ख का पुनर्जन्म निरंतर पीड़ा के लोक (निरय) में होगा।

थेरा महा मोग्गलाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (137), (138), (139) और (140) का उच्चारण किया।

एक बार निगंथ तपस्वियों ने थेरा महा मोग्गलाना की हत्या करने की योजना बनाई, क्योंकि उनका मानना था कि थेरा महा मोग्गलाना को मार डालने से बुद्ध की यश और समृद्धि भी कम हो जाएगी। इसलिए उन्होंने कुछ हत्यारों को थेरा महा मोग्गलाना को मारने के लिए भेजा, जो उस समय राजगृह के पास कलाशिला में रह रहे थे। हत्यारों ने मठ को घेर लिया; लेकिन थेरा महा मोग्गलाना ने अपनी असाधारण शक्ति से पहले एक चाबी के छेद से और दूसरी बार छत के रास्ते भाग निकले। इस प्रकार, वे दो महीने तक थेरा को पकड़ नहीं पाए। जब तीसरे महीने में हत्यारों ने फिर से मठ को घेर लिया, तो थेरा महा मोग्गलाना को याद आया कि उन्हें अपने पिछले जन्मों में किए गए बुरे कर्मों का प्रायश्चित करना बाकी है, इसलिए उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार वे पकड़े गए और हत्यारों ने उन्हें तब तक पीटा जब तक उनकी सारी हड्डियाँ टूट नहीं गईं। उसके बाद, उन्होंने उनके शरीर को एक झाड़ी में छोड़ दिया, यह सोचकर कि उनका निधन हो गया है। लेकिन थेरा ने अपनी ध्यान शक्ति से स्वयं को पुनर्जीवित किया और जेतवन मठ में बुद्ध से मिलने गए। जब उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे जल्द ही राजगृह के पास कलाशिला में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, तो बुद्ध ने उनसे कहा कि वे भिक्षुओं की सभा को धर्म का उपदेश देने के बाद ही जाएँ, क्योंकि यह उनका अंतिम दर्शन होगा। अतः थेरा महा मोग्गलाना ने धर्म का उपदेश दिया और बुद्ध को सात बार प्रणाम करने के बाद वहाँ से चले गए।
हत्यारों के हाथों थेरा महा मोग्गलाना के देहांत की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। राजा अजातसत्तु ने अपने सैनिकों को जांच करने और दोषियों को पकड़ने का आदेश दिया। हत्यारों को पकड़ लिया गया और उन्हें जलाकर मार डाला गया। भिक्षुओं को थेरा महा मोग्गलाना की मृत्यु पर गहरा शोक हुआ और वे समझ नहीं पा रहे थे कि थेरा महा मोग्गलाना जैसे महान व्यक्तित्व की मृत्यु हत्यारों के हाथों क्यों हुई। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! यह देखते हुए कि मोग्गलाना ने इस जन्म में एक नेक जीवन व्यतीत किया था, उनकी मृत्यु इस प्रकार नहीं होनी चाहिए थी। परन्तु अपने पिछले जन्मों में से एक में उन्होंने अपने माता-पिता, जो दोनों अंधे थे, के साथ घोर अन्याय किया था। आरंभ में वे एक अत्यंत आज्ञाकारी पुत्र थे, परन्तु विवाह के बाद उनकी पत्नी ने कलह उत्पन्न करना शुरू कर दिया और उन्हें अपने माता-पिता से छुटकारा पाने का सुझाव दिया। वे अपने अंधे माता-पिता को एक बैलगाड़ी में बिठाकर जंगल में ले गए और वहाँ उन्हें पीट-पीटकर मार डाला और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि कोई चोर उन्हें पीट रहा है। उस दुष्ट कर्म के कारण उन्होंने निरयण में दीर्घकाल व्यतीत किया; और इस जन्म में, जो उनका अंतिम जन्म है, वे हत्यारों के हाथों मारे गए। निश्चय ही, जिनका अपमान नहीं करना चाहिए, उनके साथ अन्याय करने का फल भोगना ही है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 137 : जो व्यक्ति निर्दोषों को, जिन्हें हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए, हथियारों से हानि पहुँचाता है, वह शीघ्र ही इन दस बुरे परिणामों में से किसी एक का शिकार होगा।

श्लोक 138, 139 और 140 : उसे घोर पीड़ा, दरिद्रता, शारीरिक क्षति (अर्थात अंगों का नुकसान), गंभीर बीमारी (जैसे कुष्ठ रोग), पागलपन, राजा के क्रोध के कारण विपत्तियाँ, अनुचित और गंभीर आरोप, रिश्तेदारों की हानि, धन का विनाश, या आग या बिजली से घरों का जल जाना जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। शरीर के नष्ट होने के बाद, मूर्ख का पुनर्जन्म निरंतर पीड़ा के लोक (निरय) में होगा।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महा मोग्गलाना की कहानी
जीतावन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य महा मोग्गलाना के संदर्भ में ये श्लोक कहे। एक बार विधर्मी एकत्रित हुए और आपस में बोले, "भाइयों, क्या आप जानते हैं कि बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंटें इतनी अधिक क्यों हो गई हैं?" "नहीं, हम नहीं जानते; लेकिन क्या आप जानते हैं?" "जी हाँ, हम जानते हैं; यह सब पूज्य मोग्गलाना के कारण हुआ है। पूज्य मोग्गलाना स्वर्ग जाते हैं और देवताओं से पूछते हैं कि उन्होंने कौन से पुण्य कर्म किए; फिर वे पृथ्वी पर लौटकर मनुष्यों से कहते हैं, 'यह और वह करने से मनुष्य को इतना यश प्राप्त होता है।' फिर वे नरक जाते हैं और नरक में पुनर्जन्म लेने वालों से भी पूछते हैं कि उन्होंने क्या किया; और फिर पृथ्वी पर लौटकर मनुष्यों से कहते हैं, 'यह और वह करने से मनुष्य को इतना दुख भोगना पड़ता है।' लोग उसकी बातें सुनते हैं और बहुमूल्य उपहार और भेंट लाते हैं। यदि हम उसे मारने में सफल हो जाते हैं, तो ये सभी बहुमूल्य उपहार और भेंट हमें मिल जाएँगे।
"यह तो वाकई एक तरीका है!" सभी विधर्मी एकमत होकर बोले। इस प्रकार सभी विधर्मियों ने सर्वसम्मति से संकल्प लिया, "हम उसे किसी भी तरह मार डालेंगे।" तदनुसार उन्होंने अपने समर्थकों को इकट्ठा किया, एक हजार सिक्के जुटाए और पूज्य मोग्गलाना की हत्या की योजना बनाई। कुछ घुमंतू चोरों को बुलाकर उन्होंने उन्हें एक हजार सिक्के दिए और कहा, "पूज्य मोग्गलाना ब्लैक रॉक में रहते हैं।

वहाँ जाओ और उन्हें मार डालो।” सिक्कों ने चोरों को आकर्षित किया और वे तुरंत आज्ञा मानने को तैयार हो गए। “जी हाँ, हम पूज्य को मार डालेंगे।” इस प्रकार वे गए और पूज्य के निवास स्थान को घेर लिया।

पूज्यवर यह जानते हुए कि उनका निवास स्थान चारों ओर से घिरा हुआ है, चुपके से ताले के छेद से निकल कर भाग निकले। चोरों ने उस दिन पूज्यवर को न देखकर अगले दिन फिर से उनके निवास स्थान को घेर लिया। परन्तु पूज्यवर यह जानते हुए घर के गोलाकार शिखर को तोड़कर हवा में उड़ गए। इस प्रकार चोरों ने पहले और दूसरे महीने में पूज्यवर को पकड़ने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहे। परन्तु जब तीसरा महीना आया, तो पूज्यवर ने अपने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्म के प्रबल प्रभाव को महसूस किया और भागने का कोई प्रयास नहीं किया।

अंततः चोर पूज्यवर को पकड़ने में सफल हो गए। ऐसा करने के बाद, उन्होंने उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उनकी हड्डियों को तब तक पीसा जब तक वे चावल के दानों के समान बारीक न हो गईं। फिर यह सोचकर कि “वह मर गया है,” उन्होंने उनकी हड्डियों को झाड़ियों के एक झुंड के पीछे फेंक दिया और चले गए। पूज्यवर ने मन ही मन सोचा, “निर्वाण में प्रवेश करने से पहले मैं बुद्ध को प्रणाम करूंगा।” तदनुसार उन्होंने ध्यान में खुद को वस्त्र की तरह लपेट लिया, खुद को कठोर बना लिया और हवा में उड़ते हुए बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, “पूज्यवर, मैं निर्वाण में प्रवेश करने वाला हूँ।” “आप निर्वाण में प्रवेश करने वाले हैं, मोग्गलाना?” “जी हाँ, पूज्यवर।” “आप पृथ्वी के किस क्षेत्र में जा रहे हैं?” “काले पत्थर में, पूज्यवर।” “तो फिर, मोग्गलाना, जाने से पहले मुझे धर्म का उपदेश दीजिए, क्योंकि इसके बाद मुझे आप जैसा शिष्य नहीं मिलेगा।” “जी, मैं ऐसा ही करूंगा,” पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया। इस प्रकार, उन्होंने पहले बुद्ध को प्रणाम किया, फिर वायु में विलीन हो गए, और पूज्य सारिपुत्त के समान ही अनेक चमत्कार किए, जिस दिन वे निर्वाण प्राप्त हुए थे, धर्म का उपदेश दिया, बुद्ध को प्रणाम किया, और फिर काले पत्थर के वन में जाकर निर्वाण प्राप्त किया।

देखते ही देखते यह खबर पूरे दक्षिण एशिया में फैल गई। “चोरों ने पूज्य गुरु की हत्या कर दी है।” राजा अजातसत्तु ने तुरंत चोरों की तलाश में जासूस भेजे। तभी वे चोर एक सराय में शराब पी रहे थे, तभी उनमें से एक ने दूसरे की पीठ पर वार किया और उसे ज़मीन पर गिरा दिया। दूसरे चोर ने पहले को कोसते हुए कहा, “अरे बदमाश, तूने मेरी पीठ पर वार करके मुझे ज़मीन पर क्यों गिराया?” “अरे चोर, तूने ही तो पूज्य मोग्गलाना पर सबसे पहले वार किया था।” “तुम्हें पता भी नहीं कि मैंने वार किया था या नहीं।” चारों ओर से ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें आने लगीं, “मैंने ही वार किया था, मैंने ही वार किया था।”

उन जासूसों ने चोरों की बातें सुन लीं, सभी चोरों को पकड़ लिया और राजा को सूचना दी। राजा ने चोरों को अपने समक्ष बुलवाया और उनसे पूछा, “क्या तुमने ही पूज्यवर की हत्या की है?” “जी महाराज।” “तुम्हें किसने उकसाया?” “नग्न तपस्वियों ने, महाराज।” राजा ने पाँच सौ नग्न तपस्वियों को पकड़वाया, उन्हें पाँच सौ चोरों के साथ महल के प्रांगण में खोदे गए गड्ढों में कमर तक डुबो दिया, उनके शरीरों को भूसे के गट्ठों से ढक दिया और फिर भूसे के गट्ठों में आग लगा दी। जब उसे पता चला कि वे जल गए हैं, तो उसने उनके शरीरों को लोहे के हल से जोतवाया और इस प्रकार उन्हें चूर-चूर कर दिया।

सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने चर्चा शुरू की: “आदरणीय मोग्गलाना की मृत्यु ऐसी हुई जिसके वे पात्र नहीं थे।” उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर क्या कह रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, यदि आप केवल इस वर्तमान अवस्था पर ध्यान दें, तो आदरणीय मोग्गलाना की मृत्यु वास्तव में ऐसी हुई जिसके वे पात्र नहीं थे। परन्तु वास्तव में, उनकी मृत्यु का तरीका उनके पिछले जन्म में किए गए कर्म के बिल्कुल अनुरूप था।” तब भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, “परन्तु, आदरणीय, उन्होंने पिछले जन्म में क्या कर्म किया था?” उत्तर में बुद्ध ने उनके पूर्व कर्म का विस्तृत वर्णन किया।

कथा के अनुसार, बहुत समय पहले की बात है, एक अच्छे परिवार का युवक घर के सारे काम, जैसे चावल कूटना और खाना पकाना, स्वयं करता था और अपने माता-पिता की देखभाल भी करता था। एक दिन उसके माता-पिता ने उससे कहा, “बेटा, घर और जंगल दोनों जगह सारा काम करते-करते तुम थक रहे हो। हम तुम्हारे लिए एक युवती को घर लाएंगे, जो तुम्हारी पत्नी बनेगी।” बेटे ने उत्तर दिया, “माता-पिता जी, आपको ऐसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। जब तक आप दोनों जीवित रहेंगे, मैं स्वयं आपकी सेवा करूंगा।” यद्यपि उसने उनकी बात नहीं मानी, फिर भी उन्होंने बार-बार अनुरोध किया और अंततः उसके लिए एक युवती को घर ले आए, जो उसकी पत्नी बनी।

कुछ दिनों तक ही वह उसके माता-पिता की सेवा करती रही। कुछ दिन बीतने के बाद, वह उन्हें देखना भी सहन नहीं कर पा रही थी और अपने पति से बड़े क्रोध से बोली, “अब मैं तुम्हारे माता-पिता के साथ एक ही घर में नहीं रह सकती।” लेकिन उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए एक दिन, जब वह घर से बाहर गया हुआ था, उसने मिट्टी के टुकड़े, पेड़ की छाल और चावल के दलिया का झाग लिया और उन्हें घर में इधर-उधर बिखेर दिया। जब उसका पति लौटा और उससे पूछा कि इसका क्या मतलब है, तो उसने कहा, “यही तो तुम्हारे अंधे बूढ़े माता-पिता ने किया है; वे पूरे घर में गंदगी फैलाते फिरते हैं; अब मैं उनके साथ एक ही जगह पर नहीं रह सकती।”

वह बार-बार यही दोहराती रही। नतीजा यह हुआ कि अंततः उसके जैसा इतना प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली थी, भी अपने माता-पिता से अलग हो गया।

“कोई बात नहीं,” पति ने कहा, “मैं इनसे निपटने का कोई न कोई तरीका ज़रूर ढूंढ लूंगा।” भोजन कराने के बाद उसने उनसे कहा, “प्यारे माता-पिता, फलां जगह पर आपके रिश्तेदार रहते हैं जो चाहते हैं कि आप उनसे मिलने आएं; चलिए वहीं चलते हैं।” उन्हें गाड़ी में बिठाकर वह उनके साथ चल पड़ा। जब वह जंगल के भीतरी हिस्से में पहुंचा, तो उसने अपने पिता से कहा, “प्यारे पिता, लगाम पकड़िए; बैल रास्ता इतना अच्छी तरह जानते हैं कि बिना मार्गदर्शन के ही चले जाएंगे; यह वह जगह है जहां चोर यात्रियों का इंतजार करते हैं; मैं गाड़ी से उतरने जा रहा हूं।” लगाम अपने पिता को सौंपकर वह गाड़ी से उतर गया और जंगल की ओर चल पड़ा।

ऐसा करते हुए वह शोर मचाने लगा, और शोर की तीव्रता इतनी बढ़ गई कि ऐसा लगा मानो चोरों का कोई गिरोह हमला करने वाला हो। जब उसके माता-पिता ने शोर सुना, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “चोरों का कोई गिरोह हम पर हमला करने वाला है।” इसलिए उन्होंने अपने बेटे से कहा, “बेटा, हम बूढ़े हो चुके हैं; अपनी जान बचाओ, और हमारी परवाह मत करो।” लेकिन जैसे ही उसके माता-पिता ने इस तरह चिल्लाना शुरू किया, बेटे ने चोरों की तरह चिल्लाते हुए उन्हें पीट-पीटकर मार डाला और उनके शवों को जंगल में फेंक दिया। ऐसा करके वह घर लौट आया।

जब बुद्ध ने पूज्य मोग्गलाना के पिछले जन्म के कुकर्म की कहानी सुनाई, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, पूज्य मोग्गलाना ने इतना जघन्य पाप किया था कि उन्होंने अनगिनत लाखों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा; और उसके बाद, क्योंकि उनके बुरे कर्म का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए सौ जन्मों तक उन्हें इसी प्रकार पीटा और चूर-चूर किया गया और इस प्रकार उनकी मृत्यु हुई। अतः पूज्य मोग्गलाना की मृत्यु का तरीका उनके पिछले जन्म के कुकर्म के बिल्कुल अनुरूप था। इसी प्रकार, पाँच सौ विधर्मी, जिन्होंने पाँच सौ चोरों के साथ मिलकर मेरे पुत्र के विरुद्ध अपराध किया, जबकि मेरे पुत्र ने उनके विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया था, उन्हें ठीक वही मृत्यु मिली जिसके वे पात्र थे। क्योंकि जो निर्दोष के विरुद्ध अपराध करता है, उसे दस प्रकार की विपत्तियों और हानियों का सामना करना पड़ता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 137)

यो अदांडेसु अप्पादुत्थेसु दंडेना दुस्साति
दशन्नम अनंतरं थनं खिप्पम एव निगच्छति

यदि कोई व्यक्ति हिंसा के माध्यम से कष्ट पहुँचाता है , तो वह दस प्रकार के कष्टों का अनुभव करेगा ।

यदि कोई किसी निर्दोष पर हमला करता है, या निर्दोष प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसे यहीं और अभी दस कष्टदायी अवस्थाओं का सामना करना पड़ेगा, जिनमें से किसी एक में वह निश्चित रूप से गिरेगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 138)

चरणं वेदानां जानिं शरीरं भेदानं वा
अपि गरुकां अबाधं वा चित्तक्षेपं वा पापुने

फरुसाम् [pharusa]: गंभीर; वेदनम् [vedana]: पीड़ा ; जानीम् [jāni]: विपत्ति; शरीरस भेदनम् [bhedana]: शारीरिक क्षति; वा अपि : भी; गरुकम् आबाधम् [ābādha]: गंभीर बीमारी; चित्तक्खेपम् [cittakkhepa]: मानसिक विकार; पापुणे : घटित होगा।

निर्दोष, निर्दोष संतों को पीड़ा पहुँचाने वालों को निम्नलिखित दस प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे: गंभीर पीड़ा; विपत्ति; शारीरिक चोट; गंभीर बीमारी; मानसिक विकार।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 139)

राजतो उपसग्गं वा दारुणं अबभक्खाणं वा
नातीनं परिक्खयं वा भोगानं पभंगुरं वा

राजतो [राजता]: राजाओं से; उपसग्गं वा : परेशानी; दारुणम् [दारुण]: कब्र; अबभक्खानां [अब्भक्खाना]: आरोप; वा नातिनां [नातिना]: रिश्तेदारों का; परिक्खयं [परिक्खय]: हानि; भोगानं पभंगुरं [पभंगुरं]: संपत्ति की हानि

शासकों से परेशानी; गंभीर आरोप; रिश्तेदारों की हानि; संपत्ति की हानि।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 140)

अथा इवा अस्सा अगारनि पावको अग्गि हहति सो
दुप्पन्नो कायस्सा भेदा निरयं उपपज्जति

atha ivā : अन्यथा; assa : उसके; agārāni pāvako aggi ḍahati : घरों को आग जला देगी; so duppañño [duppañña]: वह अज्ञानी व्यक्ति; kāyassa bhedā : शरीर के विघटन पर; nirayaṃ [niraya]: नरक में; upapajjati : जन्म लेगा

अन्यथा, उसके घर आग से जल जाएंगे और मृत्यु के बाद वह दुष्ट व्यक्ति नरक में पुनर्जन्म लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 137-140)

आदरणीय मोग्गलाना : ये चार श्लोक मुख्य शिष्य मोग्गलाना के दुखद निधन से संबंधित हैं। यदि सारिपुत्त को बुद्ध के दाहिनी ओर का मुख्य शिष्य माना जा सकता है, तो मोग्गलाना उनके बाईं ओर के मुख्य शिष्य थे। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और वे कई पूर्व जन्मों से एक दूसरे के साथ जुड़े रहे; अंतिम जन्म में भी वे एक दूसरे के साथ थे। यह विश्व की सबसे पुरानी ज्ञात मित्रताओं में से एक है। आदरणीय मोग्गलाना मानसिक शक्ति में श्रेष्ठ संघ के प्रमुख थे। एक बार नंदोपानंद नामक नागों का राजा, जो अपनी मानसिक शक्तियों के लिए भी प्रसिद्ध था, बुद्ध और कुछ अरहतों को धमका रहा था। नागों के राजा को वश में करने के लिए बुद्ध को संघ के विभिन्न सदस्यों से प्रस्ताव प्राप्त हुए। अंत में आदरणीय मोग्गलाना की बारी आई और बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्हें पता था कि वे इस कार्य को पूरा करने में सक्षम हैं। इसका परिणाम नाग राजा के साथ एक मानसिक संघर्ष था, जिसमें नाग राजा पराजित हुए और उन्होंने शांति की भीख मांगी। इस पूरे संघर्ष के दौरान बुद्ध उपस्थित थे।

इस महान पराक्रम का वर्णन जयमंगल गाथा के सातवें श्लोक में मिलता है, जिसका पाठ लगभग हर बौद्ध समारोह में किया जाता है। चाहे स्वर्ग के शासक सक्का के संगमरमर के महल को अपने अंगूठे से हिलाना हो या नरक का भ्रमण करना हो, वे दोनों ही स्थितियों में सहज थे। इन भ्रमणों ने उन्हें एक प्रकार का सूचना केंद्र बना दिया। वे इस पृथ्वी पर रहने वालों को उनके पूर्व मित्रों या रिश्तेदारों के भाग्य का सजीव वर्णन कर सकते थे। कैसे बुरे कर्मों के कारण कुछ लोग नरक में अपमानजनक पुनर्जन्म पाते हैं, और अच्छे कर्मों के कारण अन्य लोग छह स्वर्गों में से किसी एक में शुभ पुनर्जन्म पाते हैं। इन कार्यों ने उनके संप्रदाय को बहुत प्रसिद्धि दिलाई, जिससे अन्य संप्रदायों को बहुत कष्ट हुआ। उनका जीवन एक उदाहरण और एक गंभीर चेतावनी है। यहां तक कि एक प्रमुख शिष्य, जो इतने वीरतापूर्ण कार्यों में सक्षम था, भी सुदूर अतीत में किए गए बुरे कर्मों के अवशेष से अछूता नहीं था। यह एक जघन्य अपराध था। उन्होंने अत्यंत घृणित परिस्थितियों में माता-पिता की हत्या की थी। नरक में अनेक जन्म भी उस जघन्य कर्म के बुरे प्रभावों को पूरी तरह से मिटा नहीं सके। बहुत समय पहले, अपनी युवा पत्नी की इच्छा पूरी करने के लिए, जिसका एकमात्र जुनून अपने सास-ससुर से छुटकारा पाना था, वह अपने वृद्ध माता-पिता को जंगल में ले गया, मानो किसी यात्रा पर जा रहा हो। वहाँ उसने रास्ते में रोककर उन्हें लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला। माता-पिता चीखते-चिल्लाते अपने बेटे से विनती कर रहे थे कि वह लुटेरों से बच निकले, जिन्हें वे अपने ऊपर हमला करने वाला समझ रहे थे। ऐसी क्रूरता के बावजूद, उसके माता-पिता का प्रेम अत्यंत मार्मिक था। मोग्गलाना के अंतिम जन्म में, वह कर्म के निर्दयी प्रभाव से बच नहीं सका। क्योंकि अरहत के परिनिर्वाण से कर्म के अच्छे या बुरे प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। वह दो बार लुटेरों के जाल में फँसा, लेकिन हर बार बच निकला। परन्तु तीसरी बार, उसने अपनी दिव्य दृष्टि से भागने की निरर्थकता देख ली। उसे इतनी बेरहमी से पीटा गया कि उसका शरीर एक बोरी में भी डाला जा सकता था। परन्तु मृत्यु को ही उसका भाग्य निर्धारित था। ऐसा लिखा है कि एक प्रमुख शिष्य को न केवल बुद्ध से पहले मर जाना चाहिए, बल्कि उनकी मृत्यु से पहले उनका उपचार (परिनिर्वाण) भी करना चाहिए, चमत्कारिक कार्य करने चाहिए और विदाई में श्लोक बोलने चाहिए, और बुद्ध को बदले में उनके गुणों का वर्णन करना चाहिए। वे भी अपवाद नहीं थे। इस तरह एक गौरवशाली जीवन का अंत हुआ।

महान संघ ने एक सबसे ऊर्जावान व्यक्तित्व को खो दिया। मुख्य शिष्य मोग्गलाना की जीवन कहानी सह-मुख्य शिष्य सारिपुत्त की जीवन कहानी से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है।

राजगृह से कुछ ही दूरी पर उपतिस्सा नामक गाँव में, जिसे नालक के नाम से भी जाना जाता है, सारिपुत्त नाम का एक अत्यंत बुद्धिमान युवक रहता था। गाँव के प्रमुख परिवार से होने के कारण उसे उपतिस्सा भी कहा जाता था। ब्राह्मण धर्म में पले-बढ़े होने के बावजूद, जीवन के प्रति उनके व्यापक दृष्टिकोण और परिपक्व ज्ञान ने उन्हें अपने पैतृक धर्म को त्यागकर बुद्ध गौतम की अधिक सहिष्णु और वैज्ञानिक शिक्षाओं को अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनके भाई-बहनों ने भी उनके इस नेक उदाहरण का अनुसरण किया। उनके पिता, वांगंत, स्पष्ट रूप से ब्राह्मण धर्म का पालन करते थे। उनकी माता, जो पुत्र के बौद्ध बनने से असंतुष्ट थीं, ने अपने निधन के समय स्वयं बौद्ध धर्म अपना लिया।

उपतिस्सा का पालन-पोषण विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ। उन्हें कोलिता, जिन्हें मोग्गलाना के नाम से भी जाना जाता था, में एक घनिष्ठ मित्र मिला, जिनके साथ उनका प्राचीन काल से गहरा संबंध था। एक दिन, जब वे दोनों एक पहाड़ी पर उत्सव मना रहे थे, तब उन्हें अहसास हुआ कि सभी इंद्रिय सुख कितने व्यर्थ और क्षणभंगुर हैं। उन्होंने तुरंत संसार त्यागकर मोक्ष का मार्ग खोजने का निश्चय किया। वे शांति की खोज में स्थान-स्थान भटकते रहे।

दोनों युवा साधक सर्वप्रथम संजय के पास गए, जिनके बहुत से अनुयायी थे, और उनसे दीक्षा लेने का निश्चय किया। शीघ्र ही उन्होंने अपने गुरु द्वारा प्रदत्त अल्प ज्ञान प्राप्त कर लिया, परन्तु उनकी शिक्षाओं से असंतुष्ट होकर, क्योंकि उन्हें उस सर्वव्यापी पीड़ा का कोई समाधान नहीं मिला जिससे मानवता ग्रस्त है, उन्होंने संजय को त्याग दिया और शांति की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध ब्राह्मणों और तपस्वियों से संपर्क किया, परन्तु हर जगह निराशा ही हाथ लगी। अंततः वे अपने गाँव लौट आए और आपस में यह निश्चय किया कि जो भी सबसे पहले मार्ग की खोज करेगा, वही दूसरे को सूचित करेगा।

उसी समय बुद्ध ने अपने पहले साठ शिष्यों को विश्व में परम धम्म का प्रचार करने के लिए भेजा। बुद्ध स्वयं उरुवेला की ओर प्रस्थान कर गए, और उनके पहले पाँच शिष्यों में से एक पूज्य अस्सजी राजगृह की दिशा में गए।

अब साधकों के अच्छे कर्मों का प्रभाव प्रकट हुआ, मानो वे सहानुभूति भरी दृष्टि से उनकी आध्यात्मिक प्रगति को देख रहे हों। उपतिस्सा राजगृह नगर में घूमते हुए संयोगवश एक तपस्वी से मिले, जिनका आदरणीय रूप और संतमय आचरण ने तुरंत उनका ध्यान आकर्षित कर लिया। इस तपस्वी की आँखें उनसे कुछ दूरी पर झुकी हुई थीं, और उनके शांत चेहरे पर गहरी शांति झलक रही थी। सुगठित शरीर और सुव्यवस्थित वस्त्रों के साथ, यह आदरणीय व्यक्ति संयमित कदमों से एक द्वार से दूसरे द्वार तक जाते हुए, दानवीर द्वारा उनके कटोरे में रखे गए भोजन के निवाले ग्रहण कर रहे थे। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैंने पहले कभी ऐसा तपस्वी नहीं देखा। निश्चय ही, वे अर्हतत्व प्राप्त कर चुके होंगे, या अर्हतत्व की ओर ले जाने वाले मार्ग का अनुसरण कर रहे होंगे। अगर मैं उनके पास जाकर पूछूँ, 'हे महाराज, आपने संसार का त्याग किसके लिए किया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?'"

उपतिस्सा ने उनसे प्रश्न न करने का निर्णय लिया, क्योंकि उन्हें लगा कि इससे उनकी मौन भिक्षायात्रा में बाधा उत्पन्न होगी। अरहत अस्सजी ने अपनी थोड़ी सी आवश्यकता पूरी कर ली थी और भोजन करने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहे थे। यह देखकर उपतिस्सा ने सहर्ष उन्हें अपनी कुर्सी और अपने घड़े से जल प्रदान किया। इस प्रकार शिष्य के प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन करते हुए उन्होंने उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और आदरपूर्वक पूछा, "आदरणीय, आपकी इंद्रियाँ शांत और निर्मल हैं, आपकी त्वचा निर्मल और सुंदर है। आपने संसार का त्याग किसके लिए किया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?" सभी महान पुरुषों के स्वभाव के अनुरूप, सरलता से अरहत अस्सजी ने उत्तर दिया, "भाई, मैं संघ में अभी नया हूँ और मैं आपको धम्म का विस्तृत उपदेश नहीं दे सकता।"

"मैं उपतिस्सा हूँ, पूज्यवर। आप अपनी क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा बोलें, इसे सौ या हजार तरीकों से समझना मेरा काम है।"

"थोड़ा बोलो या ज्यादा," उपतिस्सा ने आगे कहा, "मुझे सिर्फ सारगर्भित बात बताओ। मुझे सिर्फ सारगर्भित बात चाहिए। मात्र शब्दों का बेतरतीब संग्रह किसी काम का नहीं।"

आदरणीय असजी ने चार पंक्तियों का एक श्लोक सुनाकर, कारण और परिणाम के नियम की सत्यता पर गुरु के गहन दर्शन को कुशलतापूर्वक संक्षेप में प्रस्तुत किया।

Ye dhammā hetuppabhavā
tesaṃ hetuṃ tathāgato
Aha tesañ ca yo nirodho
evaṃ vādi mahā samano .

(जिन चीजों का कोई कारण होता है, उनके कारण और समाप्ति के बारे में बुद्ध ने बताया है। महान तपस्वी यही शिक्षा देते हैं।)

उपतिस्सा इतने प्रबुद्ध थे कि वे इतने सरल शब्दों में व्यक्त किए गए इतने उच्च कोटि के उपदेश को भी समझ सके। सत्य को जानने के लिए उन्हें केवल एक संकेत की आवश्यकता थी। पूज्य अस्सजी ने उन्हें उनके आध्यात्मिक मार्ग पर इतनी कुशलता से मार्गदर्शन किया कि पहली दो पंक्तियाँ सुनते ही उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापत्ति प्राप्त कर ली । नवदीक्षित उपतिस्सा निस्संदेह अपने पूज्य गुरु को बुद्ध के उदात्त उपदेशों से परिचित कराने के लिए हार्दिक धन्यवाद देने के लिए शब्दहीन रहे होंगे। उन्होंने सत्य के उनके उत्कृष्ट स्पष्टीकरण के लिए अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त की और गुरु के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बाद उनसे विदा ली। बाद में, अपने गुरु के प्रति उनकी भक्ति ऐसी थी कि जब से उन्होंने पूज्य अस्सजी से धम्म का ज्ञान प्राप्त किया, वे जिस भी दिशा में अपने गुरु के निवास की खबर सुनते, उस दिशा में श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते और सोते समय अपना सिर उसी दिशा में घुमाते।

अब, समझौते के अनुसार, वे अपने साथी कोलिता को यह शुभ समाचार देने के लिए लौट आए। कोलिता, जो अपने मित्र के समान ही प्रबुद्ध थे, ने भी संपूर्ण श्लोक सुनकर संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त कर ली। शांति की अपनी सफल खोज से प्रसन्न होकर, वे अपने कर्तव्य के अनुसार अपने गुरु संजय से मिलने गए, ताकि उन्हें नए सिद्धांत में परिवर्तित कर सकें। अपने प्रयास में असफल होने पर, उपतिस्सा और कोलिता, संजय के कई अनुयायियों के साथ, जो सहर्ष उनके साथ शामिल हो गए, अपने प्रख्यात गुरु बुद्ध से मिलने के लिए वेलुवन मठ गए।

उनकी प्रार्थना का पालन करते हुए, बुद्ध ने मात्र "एथा भिक्खवे !" (आओ, हे भिक्षुओं!) कहकर उन दोनों को संघ में प्रवेश दे दिया। पखवाड़े भर बाद, पूज्य सारिपुत्त ने बुद्ध द्वारा विचरणरत तपस्वी दीघनाखा को वेदना परिग्ह सूत्र का उपदेश देते हुए सुनकर अर्हतत्व प्राप्त किया । उसी दिन शाम को, बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने चारों ओर एकत्रित किया, और संघ में प्रथम और द्वितीय शिष्यों के उच्च पद क्रमशः पूज्य उपतिस्सा (सारिपुत्त) और कोलिता (मोग्गलाना) को प्रदान किए गए, जिन्होंने एक सप्ताह पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 141

(धम्मपद 137, 138, 139 और 140) <<<< पिछला|| धम्मपद141 ||अगला >>>> (धम्मपद142)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 141 - बहुभांडिका भिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 141 - बहुभांडिका भिक्खु वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

न नग्गाकारिया न जाता न पंका
nanasaka thandilasayika va
rajojallam ukkutikappadhanam
सोधेन्ति मैक्कम अवितिन्नकनखम।

———————————————————————

श्लोक 141 : न तो नंगा चलना, न ही जटाधारी बाल रखना, न ही कीचड़ से खुद को लपेटना, न उपवास करना, न नंगी जमीन पर सोना, न धूल से खुद को ढकना, न ही उकड़ू बैठकर प्रयास करना, उस प्राणी को शुद्ध कर सकता है जिसने अभी तक संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है।

———————————————————————

भिक्खु बहुभांडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (141) का उच्चारण किया, जो बहुभंडिका नामक एक भिक्षु के संदर्भ में था, जिसके पास बहुत सारी संपत्ति थी।

सावत्थी में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, उसने भिक्षु बनने का निश्चय किया। लेकिन संघ में प्रवेश करने से पहले, उसने एक मठ बनवाया, जिसमें एक रसोईघर और एक भंडारगृह था। वह अपने साथ फर्नीचर, बर्तन और चावल, तेल, मक्खन और अन्य खाद्य सामग्री का बड़ा भंडार भी लाया था। वह जो भी खाना चाहता, उसके नौकर उसके लिए पकाते थे। इस प्रकार, भिक्षु रहते हुए भी वह सुख-सुविधाओं में रहता था, और अपने साथ इतनी सारी चीजें होने के कारण वह 'बहुबंधिका' के नाम से जाना जाता था। एक दिन, अन्य भिक्षु उसे बुद्ध के पास ले गए, और बुद्ध के सामने उसने बताया कि वह अपने साथ मठ में कितनी सारी चीजें लाया है, और यह भी कि वह अभी भी एक धनी व्यक्ति की तरह विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है। तब बुद्ध ने बहुबंधिका से कहा, "मेरे पुत्र, मैं तुम सबको संयमी जीवन जीने की शिक्षा देता रहा हूँ; तुम अपने साथ इतनी सारी संपत्ति क्यों लाए हो?" इतनी डांट सुनकर भी वह भिक्षु क्रोधित हो गया और गुस्से से बोला, "जी हां, पूज्यवर! अब मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही जीवन व्यतीत करूंगा।" ऐसा कहते हुए उसने अपना ऊपरी वस्त्र उतार दिया।

उसे इस प्रकार देखकर बुद्ध ने उससे कहा, “मेरे पुत्र, अपने पिछले जन्म में तुम एक राक्षस थे; राक्षस होते हुए भी तुममें लज्जा और बुराई करने का भय था। अब जब तुम मेरे उपदेशों में भिक्षु हो, तो तुम्हें लज्जा और बुराई करने के भय को क्यों त्यागना है?” ये शब्द सुनकर भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ; उसकी लज्जा और बुराई करने का भय फिर से जागृत हो गया, और उसने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और क्षमा मांगी। तब बुद्ध ने उससे कहा, “वहाँ बिना वस्त्र के खड़े रहना उचित नहीं है; केवल वस्त्र आदि त्याग देने से तुम तपस्वी भिक्षु नहीं बन जाते; भिक्षु को अपने संशय का भी त्याग करना चाहिए।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 141 : न तो नंगा चलना, न ही जटाधारी बाल रखना, न ही कीचड़ से खुद को लपेटना, न उपवास करना, न नंगी जमीन पर सोना, न धूल से खुद को ढकना, न ही उकड़ू बैठकर प्रयास करना, उस प्राणी को शुद्ध कर सकता है जिसने अभी तक संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय बहुभांडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बहुभांडिक नामक एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसके पास बहुत सी संपत्ति थी।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, उसने भिक्षु बनने का निश्चय किया। संघ में प्रवेश करने से पहले, उसने एक मठ बनवाया, जिसमें एक रसोईघर और एक भंडारगृह था। वह अपने साथ फर्नीचर, बर्तन और चावल, तेल, मक्खन और अन्य खाद्य सामग्री का बड़ा भंडार भी लाया था। उसके नौकर उसकी इच्छा के अनुसार व्यंजन बनाते थे। इस प्रकार, भिक्षु रहते हुए भी वह सुख-सुविधाओं में रहता था, और इतनी सारी संपत्ति होने के कारण वह बहुभांडिक के नाम से जाना जाता था। एक दिन, अन्य भिक्षु उसे बुद्ध के पास ले गए, और उनके सामने उसने बुद्ध को बताया कि वह अपने साथ मठ में कितनी सारी चीजें लाया है, और यह भी कि वह अभी भी एक धनी व्यक्ति की तरह विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है। तब बुद्ध ने बहुभांडिक से कहा, "मेरे पुत्र, मैंने तुम सबको संयमी जीवन जीने की शिक्षा दी है; तुम इतनी सारी संपत्ति अपने साथ क्यों लाए हो?" इतनी डांट सुनकर भी वह भिक्षु क्रोधित हो गया और गुस्से से बोला, "जी हां, पूज्यवर! अब मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही जीवन व्यतीत करूंगा।" ऐसा कहते हुए उसने अपना ऊपरी वस्त्र उतार दिया।

उसे इस प्रकार देखकर बुद्ध ने उससे कहा, "मेरे पुत्र, अपने पिछले जन्म में तुम एक दुष्ट आत्मा थे; दुष्ट आत्मा होने पर भी तुममें लज्जा और बुराई करने का भय था। अब जब तुम मेरे उपदेशों में भिक्षु हो, तो तुम्हें लज्जा और बुराई करने के भय को क्यों त्यागना है?" ये शब्द सुनकर भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ; उसकी लज्जा और बुराई करने का भय फिर से जागृत हो गया, और उसने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और क्षमा मांगी। तब बुद्ध ने उससे कहा, "वहाँ बिना वस्त्र के खड़े रहना उचित नहीं है; केवल वस्त्र आदि त्याग देने से तुम कठोर भिक्षु नहीं बन जाते; एक भिक्षु को अपने संशय का भी त्याग करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 141)

नग्गाकारिया न जाता न पंका न अनासका न थंडिलसायिका वा ,

रजो जलं वा उक्कुटिकप्पाधनं वा अवितिण्-कंखं मक्कं न सोधेन्ति

naggacariyā : नग्न अवस्था में घूमने से; jaṭā : उलझे हुए बालों से; paṅkā : शरीर पर मिट्टी मलने से; ānāsakā : उपवास करने से; thaṇḍilasāyikā vā : यहाँ तक कि नंगी ज़मीन पर लेटने से भी; rajo jallaṃ vā : शरीर पर धूल जमा करने से; ukkuṭikappadhānaṃ [ukkuṭikappadhāna] : उकड़ू बैठने से; avitiṇṇa-kaṅkhaṃ [kaṅkha] : जो अपने मन के व्याकुलता पर विजय प्राप्त नहीं कर सका; maccaṃ [macca] : नश्वर; na sodhenti : आध्यात्मिक रूप से शुद्ध नहीं होगा

आत्मा की शुद्धि चाहने वाला व्यक्ति नग्न अवस्था में घूमने का अनुष्ठान कर सकता है; या पगड़ी पहन सकता है; अपने शरीर पर मिट्टी मल सकता है; शुद्धता प्राप्त करने के लिए भोजन का त्याग भी कर सकता है; नंगी ज़मीन पर लेट सकता है; या अपने पूरे शरीर पर धूल मल सकता है। कुछ लोग उकड़ू आसन का अभ्यास भी करते हैं। लेकिन यदि मन की चंचलता पर विजय प्राप्त नहीं की गई है, तो ये सभी उपाय व्यक्ति को आध्यात्मिक शुद्धता प्रदान नहीं करेंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 141)

na naggacariyā : नग्न होकर भटकने से नहीं। यह श्लोक विभिन्न तपस्वियों और मुक्ति चाहने वालों द्वारा पालन किए जाने वाले असंख्य रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को संदर्भित करता है। उनके भ्रामक प्रयासों पर यहाँ विचार किया गया है।

जंबुद्वीप में आज भी व्यायाम विद्या का अभ्यास किया जाता है। कुछ लोग बाहरी गंदगी को संतत्व का प्रतीक मानते हैं। बुद्ध ने ऐसी बाहरी चीजों तक सीमित कठोर तपस्या की निंदा की है। उनके ब्रह्मचारी संघ के सदस्य मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं, आत्म-यातना और आत्म-भोग की अति से बचते हैं। सादगी, नम्रता और दरिद्रता भिक्षुओं के प्रमुख गुण होने चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे स्वच्छता। मूर्ख लोग उलझे हुए बालों को बिना धोए पवित्रता का प्रतीक मानते हैं। केवल दांत साफ न करना, शरीर पर मिट्टी मलना और उपवास करना शुद्धि की ओर नहीं ले जाता। भिक्षु दोपहर से लेकर अगली सुबह तक प्रतिदिन उपवास करते हैं। जमीन पर सोने से पवित्रता प्राप्त नहीं होती। भिक्षु केवल आलीशान और ऊंचे पलंगों से परहेज करते हैं। कुछ तपस्वियों द्वारा आज भी शरीर पर राख मलने का अभ्यास किया जाता है।

सतही रीति-रिवाजों और प्रतिज्ञाओं से व्यक्ति शुद्ध नहीं होता, चाहे उनका अभ्यास कितने भी समय तक किया जाए। जब तक मन अच्छे और बुरे के बीच डगमगाता रहता है (और उसमें वह स्थिरता नहीं आ जाती जहाँ मन बिना किसी संकोच के अच्छाई पर स्थिर हो जाता

है), तब तक मन की शुद्धता प्राप्त नहीं होती। डगमगाहट पर विजय पाना ही इस स्थिरता की प्राप्ति है, जो मानसिक शुद्धि की प्रक्रिया का आरंभ है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 142

———————————————————————

(धम्मपद141) <<<< पिछला|| धम्मपद142 ||अगला >>>> (धम्मपद 143 और 144)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 142 - संतति महामत्त वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 142 - संतति महामत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Alankato cepi samam careyya
santo danto niyato brahmacari
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम्
सो ब्रम्हणो सो समानो स भिक्खु(1)

———————————————————————

श्लोक 142 : यद्यपि वह सुंदर वस्त्र पहने हो, यदि वह शांत हो, नैतिक विकारों से मुक्त हो और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे, यदि वह मार्ग अंतर्दृष्टि में स्थापित हो, यदि वह शुद्ध हो और सभी प्राणियों के प्रति शत्रुता (यानी, शस्त्र) त्याग दे, तो वह वास्तव में ब्राह्मण, समन और भिक्षु है।

———————————————————————

1. टीका के अनुसार, इस संदर्भ में ब्राह्मण, समन और भिक्षु सभी अरहत हैं।

———————————————————————

संतति मंत्री की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के मंत्री संतति के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (142) कहा।

एक बार, मंत्री संतति सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर लौटे। राजा पसेनदी (प्रसेनजित) उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मंत्री को एक शासक के धन-दौलत और वैभव का उपहार दिया, साथ ही सात दिनों के मनोरंजन के लिए एक नर्तकी भी दी। सात दिनों तक, राजा के मंत्री ने खूब मौज-मस्ती की, शराब के नशे में चूर रहे और उस युवती के प्रति आसक्त होते रहे। सातवें दिन, अलंकृत राज हाथी पर सवार होकर वे नदी में स्नान करने गए। रास्ते में, उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई जो भिक्षा मांग रहे थे। नशे में होने के कारण उन्होंने बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया। बुद्ध मुस्कुराए और आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। तब बुद्ध ने आनंद से कहा, "आनंद, यह मंत्री आज ही मुझसे मिलने आएगा और मेरे संक्षिप्त प्रवचन के बाद अर्हत बन जाएगा। अर्हत बनने के तुरंत बाद वह परिनिर्वाण प्राप्त कर लेगा।"

संतति और उनके साथियों ने पूरा दिन नदी किनारे स्नान करने, खाने-पीने और खूब आनंद उठाने में बिताया। शाम को मंत्री और उनके साथी और पेय लेने तथा नर्तकी के मनोरंजन के लिए बगीचे में गए। नर्तकी ने भी मंत्री का मनोरंजन करने की पूरी कोशिश की। पूरे सप्ताह उसने खुद को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए कम भोजन किया था। नृत्य करते समय उसे तीव्र आघात लगा और वह गिर पड़ी, और उसी क्षण उसकी आंखें और मुंह खुले रह गए और उसकी मृत्यु हो गई। मंत्री को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। व्यथित होकर उन्होंने सहारा ढूंढने की कोशिश की और उन्हें बुद्ध याद आए। वे अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध के पास गए और नर्तकी की अचानक

मृत्यु के कारण अपने दुःख और पीड़ा के बारे में उन्हें बताया। फिर उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! कृपया मुझे मेरे दुःख से उबरने में सहायता करें; मेरी शरण बनें और मुझे मन की शांति प्रदान करें।" बुद्ध ने उनसे कहा, "निश्चिंत रहो मेरे पुत्र, तुम एक ऐसे व्यक्ति के पास आए हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है, जो तुम्हारा निरंतर सहारा और शरणस्थली होगा। इस नर्तकी की मृत्यु के कारण तुमने जन्म-जन्मांतर के चक्र में जितने आँसू बहाए हैं, वे समस्त सागरों के जल से भी अधिक हैं।" इसके बाद बुद्ध ने मंत्री को श्लोक में उपदेश दिया। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है।

"अतीत में तुम्हारे भीतर व्यथा (उपादान) थी; इसे त्याग दो। भविष्य में भी ऐसी व्यथा न होने दो। वर्तमान में भी किसी प्रकार की व्यथा न रखो; व्यथा न होने से व्यथा और वासना शांत हो जाएगी और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।"

श्लोक सुनने के बाद मंत्री ने अर्हतत्व प्राप्त किया। तब, जब उन्हें एहसास हुआ कि उनका जीवनकाल समाप्त हो रहा है, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! अब मुझे परिनिर्वाण प्राप्त करने दीजिए, क्योंकि मेरा समय आ गया है।" बुद्ध की सहमति से, संतति सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक आकाश में उठे और वहाँ अग्नि तत्व (तेजो कसिना) का ध्यान करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर उनका प्राण त्याग दिया गया। उनका शरीर ज्वाला में जल उठा, उनका रक्त और मांस जलकर राख हो गया और अस्थि अवशेष (धातु) आकाश से गिरकर उस स्वच्छ वस्त्र पर गिरे जिसे भिक्षुओं ने बुद्ध के निर्देशानुसार बिछाया था।

सभा में भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर! मंत्री ने पूर्ण वस्त्र धारण करके परिनिर्वाण प्राप्त किया है; क्या वे ब्राह्मण और समन दोनों हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! मेरे पुत्र को समन और ब्राह्मण दोनों कहा जा सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 142 : यद्यपि वह सुंदर वस्त्र पहने हो, यदि वह शांत हो, नैतिक विकारों से मुक्त हो और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे, यदि वह मार्ग अंतर्दृष्टि में स्थापित हो, यदि वह शुद्ध हो और सभी प्राणियों के प्रति शत्रुता (यानी, शस्त्र) त्याग दे, तो वह वास्तव में ब्राह्मण, समन और भिक्षु है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

संतति मंत्री की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी के मंत्री संतति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, मंत्री संतति सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर लौटे। राजा पसेनादि उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मंत्री को एक शासक के धन-दौलत और वैभव का उपहार दिया, साथ ही सात दिनों तक उनका मनोरंजन करने के लिए एक नर्तकी भी दी। सातवें दिन, अलंकृत राज हाथी पर सवार होकर वे नदी किनारे स्नान करने गए। रास्ते में उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई जो भिक्षा मांग रहे थे। नशे में होने के कारण उन्होंने बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया। बुद्ध मुस्कुराए और आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। तब बुद्ध ने आनंद से कहा, "आनंद, यह मंत्री आज ही मुझसे मिलने आएगा और मेरे संक्षिप्त प्रवचन के बाद वह अरहत बन जाएगा। अरहत बनने के तुरंत बाद उसे परिनिर्वाण प्राप्त हो जाएगा।"

संतति और उनके साथियों ने पूरा दिन नदी किनारे स्नान करने, खाने-पीने और खूब आनंद उठाने में बिताया। शाम को मंत्री और उनके साथी और पेय लेने तथा नर्तकी के मनोरंजन के लिए बगीचे में गए। नर्तकी ने भी मंत्री का मनोरंजन करने की पूरी कोशिश की। पूरे सप्ताह उसने खुद को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए कम भोजन किया था। नृत्य करते समय उसे तीव्र आघात लगा और वह गिर पड़ी, और उसी क्षण उसकी आंखें और मुंह खुले रह गए और उसकी मृत्यु हो गई। मंत्री को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। व्यथित होकर उन्होंने सहारा ढूंढने की कोशिश की और उन्हें बुद्ध याद आए। वे अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध के पास गए और नर्तकी की अचानक मृत्यु के कारण अपने दुःख और पीड़ा के बारे में उन्हें बताया। फिर उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! कृपया मुझे मेरे दुःख से उबरने में सहायता करें; मेरी शरण बनें और मुझे मन की शांति प्रदान करें।" बुद्ध ने उनसे कहा, "निश्चिंत रहो मेरे पुत्र, तुम उसके पास आए हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है, जो तुम्हारा निरंतर सहारा और शरणस्थल होगा। इस नर्तकी की मृत्यु के कारण तुमने जन्म-जन्मांतर के चक्र में जितने आँसू बहाए हैं, वे समस्त सागरों के जल से भी अधिक हैं।" तब बुद्ध ने मंत्री को श्लोक में उपदेश दिया। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है: "भूतकाल में तुम्हारे भीतर भोग-विलास के कारण आसक्ति (उपादान) थी; इसे त्याग दो। भविष्य में ऐसी आसक्ति अपने भीतर न आने दो। वर्तमान में भी किसी प्रकार की आसक्ति न रखो; आसक्ति न होने से भोग-विलास और वासना शांत हो जाएगी और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।"

श्लोक सुनने के बाद मंत्री ने अर्हतत्व प्राप्त किया। तब, जब उन्हें एहसास हुआ कि उनका जीवनकाल समाप्त हो रहा है, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! अब मुझे परिनिर्वाण (महान मृत्यु) प्राप्त करने दीजिए, क्योंकि मेरा समय आ गया है।" बुद्ध की सहमति से, संतति सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक आकाश में उठे और वहाँ अग्नि तत्व (तेजो कसिना) का ध्यान करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर उनका अंत हो गया। उनका शरीर ज्वाला में जल उठा, उनका रक्त और मांस जलकर राख हो गया और अस्थि अवशेष (धातु) आकाश से

गिरे और उस स्वच्छ वस्त्र पर गिरे जिसे भिक्षुओं ने बुद्ध के निर्देशानुसार बिछाया था। भिक्षुओं ने पूछा, “मंत्री ने पूर्ण वस्त्र धारण किए हुए परिनिर्वाण प्राप्त किया; क्या वे समन हैं या ब्राह्मण?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “मेरे पुत्र को समन और ब्राह्मण दोनों कहा जा सकता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 142)

अलंकातो एपी सीई संतो दंतो नियतो ब्रह्मचारी समं कैरेया
सब्बेसु भूतेसु दण्डं निधाय सो ब्राह्मणो सो समानो स भिक्खु

अलॅंकतो अपि : भले ही कोई व्यक्ति आकर्षक ढंग से कपड़े पहने हो; चे : यदि; संतो : शांत; दन्तो : संयमित; नियतो : निश्चित मुक्ति वाला; ब्रह्मचारी : उच्चतर जीवन व्यतीत करने वाला; समं : विनम्र; करेय्य : व्यवहार करने वाला; सब्बेसु भूतेसु : प्रत्येक प्राणी के प्रति; दण्डं : हिंसा ; निधाय : त्यागने वाला (परहेज़ करने वाला); सो ब्राह्मणो : वह वास्तव में एक पुजारी है; सो समणो : वह वास्तव में एक तपस्वी है; स भिक्खु : वह वास्तव में एक भिक्षु है

भले ही कोई व्यक्ति आकर्षक वस्त्र पहने हो, उसका व्यवहार सौहार्दपूर्ण होता है। वह शांत, संयमित और मोक्ष के प्रति आश्वस्त होता है। वह धार्मिक जीवन व्यतीत करता है। वह प्राणियों के प्रति हिंसक नहीं होता। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में ब्राह्मण , तपस्वी और भिक्षु होता है ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 142)

ब्रह्मचर्या : शुद्ध (पवित्र) या पवित्र जीवन, यह भिक्षु के जीवन के लिए प्रयुक्त शब्द है। साथ ही, यह उस गृहस्थ भक्त को भी संदर्भित करता है जो आठ नैतिक नियमों का पालन करता है और तीसरे नियम के रूप में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेता है, यानी यौन संबंधों से पूर्ण परहेज करता है। ब्रह्मचर्या का सर्वोच्च लक्ष्य मन की अविचल मुक्ति है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 143,144

———————————————————————

(धम्मपद 142) <<<< पिछला || धम्मपद 143 और 144 || अगला >>>> (धम्मपद 145)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 143 और 144 - पायलटिकातिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 143 और 144 - पायलटिकातिसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Hirinisedho puriso
koci lokasmi vijjati
yo niddam apabodheti
asso bhadro kasamiva.

अस्सो यथा भद्रो कसानिवित्थो
atapino samvegino bhavatha
सद्धया सिलेना सीए विरियेना सीए
समाधिना धम्मविनिच्चयेना(1) सीए
sampannavijjacarana patissata
जहिस्सथा दुक्खमिदम अनप्पकम।

____

श्लोक 143 : इस संसार में ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है जो शर्म के कारण बुराई करने से खुद को रोकता है और अच्छे घोड़े की तरह सतर्क रहता है जिसे कोड़े मारने का कोई कारण नहीं मिलता।

____

श्लोक 144 : जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक के स्पर्श से उत्तेजित हो जाता है, वैसे ही सचेत रहो और पुनर्जन्मों के अंतहीन चक्र (अर्थात संसार) से भयभीत रहो। विश्वास, नैतिकता, प्रयास, एकाग्रता और धर्म के विवेक से नैतिकता के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण हो जाओ और सचेतनता से इस असीम दुःख (संसार/संसार के कष्ट) को त्याग दो।

____

1. धम्मविनिच्येन (धम्म + विनिच्य): धर्म या विधि का विवेक। टीका में इसे कारणकरण जननम् के रूप में समझाया गया है, जिसका अर्थ है चीजों के सही और गलत कारणों को जानना।

____

थेरा पिलोतिकतिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पिलोतिकतिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (143) और (144) का उच्चारण किया। एक बार थेरा आनंद ने एक फटेहाल कपड़े पहने युवक को भीख मांगते देखा; उन्हें उस युवक पर दया आई और उन्होंने उसे समनेर बना दिया। उस युवक ने अपने पुराने कपड़े और भिक्षापात्र एक पेड़ की शाखा पर रख दिए। जब वह भिक्षु बना तो उसे पिलोतिकतिस्सा के नाम से जाना जाने लगा। भिक्षु बनने के बाद उसे भोजन और वस्त्र की चिंता नहीं करनी पड़ती थी क्योंकि वह समृद्ध परिवार में था। फिर भी, कभी-कभी वह भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं होता था और गृहस्थ जीवन में लौटने का विचार करता था। जब भी उसे ऐसा लगता, वह उस पेड़ के पास लौट जाता जहाँ उसने अपने पुराने कपड़े और भिक्षापात्र छोड़े थे। वहाँ, पेड़ की तलहटी में, वह स्वयं से यह प्रश्न पूछता, "हे निर्लज्ज! क्या तुम उस स्थान को छोड़ना चाहते हो जहाँ तुम्हें भरपेट भोजन और वस्त्र मिलते हैं? क्या तुम अब भी ये फटेहाल कपड़े पहनकर, हाथ में यह पुराना थाली लेकर फिर से भीख मांगने जाना चाहते हो?" इस प्रकार, वह स्वयं को फटकारता और शांत होने के बाद मठ में वापस चला जाता।

दो-तीन दिन बाद, उन्हें फिर से भिक्षु जीवन छोड़ने का मन हुआ, और वे फिर से उस वृक्ष के पास गए जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे। अपने आप से वही पुराना प्रश्न पूछने और अपने पुराने जीवन की दयनीयता को याद करने के बाद, वे मठ लौट आए। यह कई बार दोहराया गया। जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे अक्सर उस वृक्ष के पास क्यों जाते हैं जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते हैं, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वे अपने गुरु से मिलने जाते हैं।(2) इस प्रकार अपने पुराने वस्त्रों को ध्यान का विषय बनाकर, उन्होंने खन्धों (अर्थात अनित्य, दुःख, अनात्म) के समुच्चय के वास्तविक स्वरूप को जान लिया, और अंततः वे अरहत बन गए। फिर, उन्होंने वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। अन्य भिक्षुओं ने देखा कि पिलोतिकतिस्सा ने उस वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया है जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे, तो उन्होंने उनसे पूछा, "आप अब अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उनसे कहा, "जब मुझे आवश्यकता थी, तब मुझे उनके पास जाना पड़ा; परन्तु अब मुझे उनके पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।" भिक्षुओं ने जब उनका उत्तर सुना, तो वे उन्हें बुद्ध के दर्शन कराने ले गए। जब वे उनके समक्ष आए, तो उन्होंने कहा, "आदरणीय महोदय! यह भिक्षु दावा करता है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वह अवश्य झूठ बोल रहा होगा।" परन्तु बुद्ध ने उनका खंडन करते हुए कहा, "भिक्षुओं! पिलोतिकतिस्सा झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य कह रहा है। यद्यपि उसका अपने गुरु से पूर्व में संबंध था, परन्तु अब उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं है। थेरा पिलोतिकतिस्सा ने स्वयं को सही और गलत के बीच भेद करना तथा वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को समझना सिखाया है। वह अब अर्हत बन चुका है, अतः उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं रह गया है।"

तब बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा:

____

श्लोक 143 : इस संसार में ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है जो शर्म के कारण बुराई करने से खुद को रोकता है और अच्छे घोड़े की तरह सतर्क रहता है जिसे कोड़े मारने का कोई कारण नहीं मिलता।

____

श्लोक 144 : जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक के स्पर्श से उत्तेजित हो जाता है, वैसे ही सचेत रहो और पुनर्जन्मों के अंतहीन चक्र (अर्थात संसार) से भयभीत रहो। विश्वास, नैतिकता, प्रयास, एकाग्रता और धर्म के विवेक से नैतिकता के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण हो जाओ, और सजगता से इस असीम दुःख (संसार/संसार के कष्ट) को त्याग दो।

____

(2) शिक्षक: यहाँ पायलटिका के पुराने कपड़ों और उसकी भीख मांगने की थाली का जिक्र है; वे उसके लिए एक शिक्षक की तरह हैं क्योंकि उन्होंने उसे शर्म की गहरी भावना से भर दिया और उसे सही रास्ते पर डाल दिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय पिलोतिकतिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पिलोतिकतिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार पूज्य आनंद ने एक फटेहाल वस्त्रधारी युवक को भीख मांगते देखा; उन्हें उस युवक पर दया आई और उन्होंने उसे सामनेर बना दिया। उस युवा भिक्षु ने अपने पुराने वस्त्र और भिक्षापात्र एक वृक्ष की शाखा पर रख दिए। जब वह भिक्षु बना तो उसे पिलोतिकतिस्सा के नाम से जाना जाने लगा। भिक्षु बनने के बाद उसे भोजन और वस्त्र की चिंता नहीं करनी पड़ती थी क्योंकि वह समृद्ध परिवार में था। फिर भी, कभी-कभी वह भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं होता था और गृहस्थ जीवन में लौटने का विचार करता था। जब भी उसे ऐसा लगता, वह उस वृक्ष के पास लौट जाता जहाँ उसने अपने पुराने वस्त्र और थाली छोड़ी थी। वहाँ वृक्ष की तलहटी में वह स्वयं से यह प्रश्न पूछता, "हे निर्लज्ज! क्या तू उस स्थान को छोड़ना चाहता है जहाँ तुझे भरपेट भोजन और वस्त्र मिलते हैं? क्या तू फिर से ये फटेहाल वस्त्र पहनकर हाथ में यह पुरानी थाली लेकर भीख मांगने जाना चाहता है?" इस प्रकार वह स्वयं को धिक्कारता और शांत होने के बाद मठ लौट जाता। दो-तीन दिन बाद, उन्हें फिर से भिक्षु जीवन छोड़ने का मन हुआ, और वे फिर से उस वृक्ष के पास गए जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे। अपने आप से वही पुराना प्रश्न पूछने और अपने पुराने जीवन की दयनीयता को याद करने के बाद, वे मठ लौट आए। यह कई बार दोहराया गया। जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे अक्सर उस वृक्ष के पास क्यों जाते हैं जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते हैं, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वे अपने गुरु से मिलने जाते हैं। इस प्रकार अपने पुराने वस्त्रों को ध्यान का विषय बनाकर, उन्होंने अनित्य , दुःख , अनात्म जैसे खंधों के समूह के वास्तविक स्वरूप को जान लिया और अंततः वे अरहत बन गए। फिर, उन्होंने वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। अन्य भिक्षुओं ने देखा कि पिलोतिकतिस्सा ने उस वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया है जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे, तो उन्होंने उनसे पूछा, "आप अब अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उत्तर दिया, 'जब मुझे आवश्यकता हुई, तो मुझे उनके पास जाना पड़ा; लेकिन अब मुझे उनके पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।" जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो वे उन्हें बुद्ध के पास ले गए। जब वे उनके समक्ष आए, तो उन्होंने कहा, "आदरणीय! यह भिक्षु दावा करता है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वह अवश्य झूठ बोल रहा होगा।" लेकिन बुद्ध ने उनका खंडन करते हुए कहा, "भिक्षुओं! पिलोतिकतिस्सा झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य कह रहा है। यद्यपि उसका अपने गुरु से पूर्व में संबंध था, अब उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं है। आदरणीय पिलोतिकतिस्सा ने स्वयं को सही और गलत कारणों में भेद करने और चीजों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रशिक्षण दिया है। वह अब अर्हत बन चुका है, इसलिए उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं रह गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 143)

भद्रो अस्सो कासं इव यो निंदां अप्पाबोधति

हिरि निसेधो पुरिसोलोकास्मि कोचि विज्जति

भद्रो अस्सो : अच्छे नस्ल का घोड़ा; कसां इव : घोड़े के चाबुक से; यो : यदि कोई व्यक्ति; निंदां [ninda]: अपमान; अप्पबोधति : टालता है; हिरि निसेधो [निसेधा]: शर्म के माध्यम से बुराई छोड़ देता है; पुरिसो [पुरिसा]: ऐसा व्यक्ति; लोकस्मिं कोचि : दुनिया में शायद ही कभी; विज्जति : देखा जाता है

दुनिया में ऐसा व्यक्ति बहुत कम मिलता है जो शर्म से बंधा रहता है। जैसे एक सलीकेदार घोड़ा कोड़े से बच जाता है, वैसे ही वह अपमान से बचता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 144)

कसा निवित्थो भद्रो अस्सो यथा अतापिनो भवथा ; संवेगिनो भवथा ;

सद्धया च सिलेना च वीरियेन च समाधिना च धम्मविनिच्चयेन च

संपन्नविज्जाचरण पतिसत्ता अनप्पाकं इदं दुक्खं पहस्सथ

कसा : चाबुक से; निविट्ठो : नियंत्रित ; भद्रो : सुसंस्कृत ; असो : घोड़ा; यथा : किस प्रकार; आतापिनो : पश्चात्ताप करते हुए; संवेगिनो: गहरी प्रेरणा से; सद्धाय : भक्ति से; सीलेन च : अनुशासन से; वीरियेन च : और दृढ़ता से; समाधिना च : मानसिक शांति से; धम्मविनिच्येन च : अनुभव की परीक्षा से; संपन्नविज्जाचरणा : सचेत प्रतिक्रिया की प्राप्ति से; पतिसत्ता : आत्मनिरीक्षण से; अनप्पकम् : कम नहीं; idaṃ dukkhaṃ [dukkha]: यह पीड़ा; pahassatha : इससे छुटकारा दिलाता है

एक अनुशासित और प्रशिक्षित घोड़े की तरह, जिसे चाबुक से उचित अनुशासन सिखाया गया हो, आप दृढ़ और गंभीर रहें। भक्ति, अनुशासन और दृढ़ता से, और शांत मन से अपने अनुभवों का विश्लेषण करें। सुस्थापित आत्मनिरीक्षण के माध्यम से सचेत प्रतिक्रिया प्राप्त करें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 143-144)
शील : सद्‌गुण। बोधिसत्व की इस असाधारण उदारता के साथ-साथ उनका सदाचारी आचरण (शील) भी निहित है। पाली शब्द का अर्थ सद्‌गुण है। इसमें वे कर्तव्य शामिल हैं जिनका पालन करना चाहिए (चरित्त) और वे संयम जिनका अभ्यास करना चाहिए (वरित्त)। माता-पिता, बच्चों, पति, पत्नी, शिक्षकों, शिष्यों, मित्रों, भिक्षुओं, अधीनस्थों आदि के प्रति इन कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन सिगालोवादा सूत्र में किया गया है ।

आम आदमी के कर्तव्यों को संबंधों की एक श्रृंखला में वर्णित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक को, स्मरणीय कारणों से, पाँच मदों में विभाजित किया गया है:

(1) बच्चे को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए: (i) उनका सहारा बनकर, (ii) उनके कर्तव्यों का पालन करके, (iii) परिवार की वंश परंपरा को बनाए रखकर, (iv) इस प्रकार कार्य करके कि वह अपनी विरासत के योग्य हो और इसके अलावा, (v) अपने दिवंगत रिश्तेदारों के सम्मान में दान देकर।

(2) जिन माता-पिता की उनके बच्चे इस प्रकार सेवा करते हैं, उन्हें चाहिए कि (i) उन्हें बुराई से रोकें, (ii) उन्हें अच्छा करने के लिए प्रेरित करें, (iii) उन्हें कोई कला सिखाएं, (iv) उनका विवाह एक उपयुक्त पत्नी से करा दें, और (v) उचित समय पर उन्हें उनकी विरासत सौंप दें।

(3) एक छात्र को शिक्षक की सेवा करनी चाहिए: (i) उठकर, (ii) उसकी सेवा करके, (iii) ध्यानपूर्वक सुनकर, (iv) व्यक्तिगत सेवा करके, और (v) आदरपूर्वक निर्देश ग्रहण करके।

(4) इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा सेवा प्राप्त शिक्षकों को चाहिए कि: (i) उन्हें सर्वोत्तम अनुशासन में प्रशिक्षित करें, (ii) उन्हें वह ग्रहण करवाएं जो वे अच्छी तरह से मानते हैं, (iii) उन्हें हर उपयुक्त कला और विज्ञान सिखाएं, (iv) उन्हें उनके मित्रों और साथियों से परिचित कराएं, और (v) हर क्षेत्र में उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करें।

(5) पति को अपनी पत्नी की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) शिष्टाचार द्वारा, (ii) उसका अपमान न करके, (iii) वफादारी द्वारा, (iv) उसे अधिकार सौंपकर, और (v) उसे आभूषण प्रदान करके।

(6) पत्नी, जिसकी सेवा उसके पति द्वारा इस प्रकार की जाती है, उसे चाहिए: (i) अपने कर्तव्यों को पूर्ण रूप से निभाना, (ii) आसपास के लोगों के प्रति आतिथ्य सत्कारपूर्ण होना, (iii) वफादार होना, (iv) जो कुछ वह लाता है उसकी रक्षा करना, और (v) अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में परिश्रमी और आलसी नहीं होना।

(7) एक कुलीन वंशज को अपने मित्रों और सहयोगियों की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) उदारता, (ii) शिष्ट वाणी, (iii) उनकी भलाई को बढ़ावा देना, (iv) समानता, और (v) सत्यवादिता।

(8) जो मित्र और सहयोगी किसी कुलीन वंशज द्वारा इस प्रकार सेवा प्राप्त करते हैं, उन्हें चाहिए: (i) जब वह लापरवाह हो तो उसकी रक्षा करें, (ii) जब वह लापरवाह हो तो उसकी संपत्ति की रक्षा करें, (iii) जब वह भयभीत हो तो शरणस्थली बनें, (iv) जब वह खतरे में हो तो उसे न छोड़ें, और (v) उसकी संतान के प्रति विचारशील रहें।

(9) स्वामी को सेवकों और कर्मचारियों की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए: (i) उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार काम सौंपकर, (ii) उन्हें भोजन और मजदूरी प्रदान करके, (iii) बीमारी में उनकी देखभाल करके, (iv) उनके साथ विशेष व्यंजन साझा करके, और (v) समय-समय पर उन्हें राहत देकर।

(10) वे सेवक और कर्मचारी, जिनकी सेवा उनके स्वामी द्वारा इस प्रकार की जाती है, उन्हें चाहिए: (i) उनके सामने उठना, (ii) उनके बाद सोना, (iii) केवल वही लेना जो दिया गया हो, (iv) अपने कर्तव्यों को संतोषजनक ढंग से निभाना, और (v) उनके अच्छे नाम और प्रसिद्धि का प्रचार करना।

(11) एक कुलीन वंशज को तपस्वियों और ब्राह्मणों की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) प्रेमपूर्ण कर्मों द्वारा, (ii) प्रेमपूर्ण शब्दों द्वारा, (iii) प्रेमपूर्ण विचारों द्वारा, (iv) उनके लिए द्वार बंद न करके, और (v) उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके।

(12) जो तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार किसी कुलीन वंशज द्वारा सेवा किए जाते हैं, उन्हें चाहिए: (i) उसे बुराई से रोकना, (ii) उसे अच्छा करने के लिए प्रेरित करना, (iii) उससे दयालु हृदय से प्रेम करना, (iv) उसे वह सुनाना जो उसने नहीं सुना है और जो उसने पहले ही सुना है उसे स्पष्ट करना, और (v) उसे स्वर्गिक अवस्था का मार्ग दिखाना।

जो बोधिसत्व इन सभी सामाजिक कर्तव्यों (चरित्त शील) का पालन करता है, वह सही मायने में एक सभ्य सज्जन बन जाता है। इन कर्तव्यों के अलावा, वह चरित्त शील (संयम) से संबंधित अन्य नियमों का पालन करने का भरसक प्रयास करता है और इस प्रकार एक आदर्श बौद्ध जीवन व्यतीत करता है। कर्म और फल के नियम को सही ढंग से समझते हुए, वह स्वेच्छा से बुराई से दूर रहता है और अपनी क्षमता के अनुसार भलाई करता है। वह स्वयं और दूसरों के लिए आशीर्वाद बनना अपना कर्तव्य मानता है, न कि किसी के लिए अभिशाप।

जीवन सभी के लिए अनमोल है और किसी को भी दूसरे का जीवन छीनने का अधिकार नहीं है, इसलिए वह प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रति दया और प्रेम का भाव रखता है, यहाँ तक कि अपने पैरों के पास रेंगने वाले सबसे छोटे जीव के प्रति भी, और किसी भी जीवित प्राणी को मारने या चोट पहुँचाने से परहेज करता है। मनुष्य की पशु प्रवृत्ति ही उसे निर्दयतापूर्वक कमजोरों को मारने और उनका मांस खाने के लिए प्रेरित करती है। चाहे भूख मिटाने के लिए हो या मनोरंजन के लिए, किसी भी असहाय जानवर को मारना या मरवाना किसी भी तरीके से, चाहे वह क्रूर हो या मानवीय, उचित नहीं है। और यदि किसी जानवर को मारना गलत है, तो मनुष्यों की हत्या के बारे में क्या कहा जा सकता है, चाहे पहली नज़र में उद्देश्य कितना भी नेक क्यों न लगे।
इसके अलावा, बोधिसत्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी प्रकार की चोरी से दूर रहता है और इस प्रकार ईमानदारी, विश्वसनीयता और सत्यनिष्ठा विकसित करता है। मनुष्य के उच्चतर स्वरूप को दूषित करने वाले दुराचार से दूर रहकर, वह अपने यौन जीवन में पवित्रता और शुद्धता बनाए रखने का प्रयास करता है। वह झूठी वाणी, कठोर भाषा, निंदा और व्यर्थ की बातों से बचता है और केवल सत्य, मधुर, शांतिपूर्ण और सहायक शब्द ही बोलता है। वह मादक पेय पदार्थों से दूर रहता है जो मानसिक भटकाव और भ्रम पैदा करते हैं और सजगता तथा स्पष्ट दृष्टि का अभ्यास करता है।
एक बोधिसत्व इन पाँच सिद्धांतों का पालन करता है जो उसके कर्मों और वाणी को नियंत्रित करते हैं, चाहे वे उसके अपने हित के विरुद्ध हों या नहीं। उचित अवसर पर वह अपने सिद्धांतों के लिए न केवल संपत्ति और धन का त्याग करता है, बल्कि अपने प्राणों का भी बलिदान देता है। यह नहीं समझना चाहिए कि संसार में भ्रमण के दौरान एक बोधिसत्व का व्यवहार पूर्ण होता है। सांसारिक होने के कारण, उसमें भी अपनी कमियाँ और सीमाएँ होती हैं। कुछ जातक ग्रंथ, जैसे काणवेरा जातक, उसे एक अत्यंत क्रूर लुटेरे के रूप में चित्रित करते हैं। हालाँकि, यह अपवाद है, नियम नहीं। बुद्धत्व के साधक द्वारा सद्गुणों को दिया जाने वाला महत्व शीलवीमांस जातक से स्पष्ट है, जहाँ बोधिसत्व कहते हैं: "सद्गुण के बिना बुद्धि का कोई मूल्य नहीं है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 145

———————————————————————————

(धम्मपद 143 और 144) <<<< पिछला|| धम्मपद145 ||अगला >>>> (धम्मपद146)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 145 - सुखसामनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 145 - सुखसामनेरा वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Udakam hi nayanti nettika
usukara namayanti tejanam
darum namayanti tacchaka
attanam damayanti subbata.

———————————————————————————

श्लोक 145 : किसान1 पानी को नहर में बदलते हैं; तीर बनाने वाले तीरों को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान लोग खुद को वश में रखते हैं।

———————————————————————————

1. किसान: शाब्दिक अर्थ, सिंचाई नहरों के निर्माता।

समनेरा (2) सुखा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सुखा नामक एक समनेरा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (145) कहा।
सुखा को सात वर्ष की आयु में थेरा सारिपुत्त द्वारा समनेर बनाया गया। समनेर बनने के आठवें दिन वह थेरा सारिपुत्त के साथ भिक्षाटन के लिए निकल पड़ा। भिक्षाटन के दौरान उन्हें कुछ किसान अपने खेतों की सिंचाई करते, कुछ बाणधारी अपने बाणों को सीधा करते और कुछ बढ़ई बैलगाड़ी के पहिए आदि बनाते हुए मिले। इन्हें देखकर सुखा ने थेरा सारिपुत्त से पूछा कि क्या इन निर्जीव वस्तुओं को इच्छानुसार निर्देशित किया जा सकता है या इनसे मनचाही वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, और थेरा ने उसे हाँ में उत्तर दिया। युवा समनेर ने तब विचार किया कि यदि ऐसा है, तो फिर मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करने में असमर्थ होने का कोई कारण नहीं है।
अतः उन्होंने थेरा से मठ लौटने की अनुमति मांगी। वहां उन्होंने अपने कमरे में एकांतवास किया और एकांत में ध्यान का अभ्यास किया। सक्का और देवों ने भी मठ को अत्यंत शांत रखकर उनके अभ्यास में सहायता की। उसी दिन, समनेरा बनने के आठवें दिन, सुखा ने अर्हत पद प्राप्त किया। इस संबंध में बुद्ध ने भिक्षुओं की सभा से कहा, "जब कोई व्यक्ति लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देव भी उसकी रक्षा और सहायता करते हैं। मैंने स्वयं सारिपुत्त को प्रवेश द्वार पर रखा है ताकि सुखा को कोई विवश न करे। समनेरा किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, बाणकारों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को प्रशिक्षित करता है और धम्म का अभ्यास करता है। इस प्रकार, वह अब अर्हत बन गया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 145 : किसान(3) पानी को नहर में बदलते हैं; तीर बनाने वाले तीरों को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान लोग खुद को वश में रखते हैं।

---

(2) यह कहानी समनेरा पंडित की कहानी के समान है (श्लोक 80)
(3) किसान: शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता
अध्याय दस का अंत: दंड (दंडवग्गा)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नवोदित भिक्षु सुखा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सुखा नामक एक सामनेर (नवदीक्षित भिक्षु) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
सुखा को सात वर्ष की आयु में पूज्य सारिपुत्त द्वारा भिक्षु बनाया गया। भिक्षु बनने के आठवें दिन वह पूज्य सारिपुत्त के साथ भिक्षाटन के लिए निकल पड़ा। भिक्षाटन के दौरान उन्हें कुछ किसान अपने खेतों की सिंचाई करते, कुछ तीर-कमान बनाने वाले अपने बाणों को सीधा करते और कुछ बढ़ई बैलगाड़ी के पहिए जैसी चीजें बनाते हुए मिले। यह देखकर सुखा ने पूज्य सारिपुत्त से पूछा कि क्या इन निर्जीव वस्तुओं को इच्छानुसार निर्देशित किया जा सकता है या इनसे मनचाही वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, और भिक्षु ने उसे हाँ में उत्तर दिया। तब युवा भिक्षु ने सोचा कि यदि ऐसा है, तो फिर मन को वश में करके शांति और अंतर्मन का अभ्यास करने में असमर्थ होने का कोई कारण नहीं है।
अतः उन्होंने भिक्षु से मठ लौटने की अनुमति मांगी। उसी दिन, बुद्ध, जो सुबह जल्दी बाहर गए थे, सुगंधित कक्ष में बैठे हुए मन ही मन सोचने लगे, “आज नवोदित सुखा ने अपने गुरु को अपना कुंड और वस्त्र देकर यह कहते हुए लौटाया, ‘मैं अर्हतत्व प्राप्ति के लिए पूरी लगन से प्रयास करूंगा;’ क्या उसने अपना कार्य पूरा कर लिया है?” तुरंत ही उन्हें पता चला कि नवोदित सुखा ने तीनों मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। इस विषय पर और विचार करने पर बुद्ध को यह ज्ञान प्राप्त हुआ, “आज नवोदित सुखा अर्हतत्व प्राप्त कर लेगा।” यह विचार मन में लिए बुद्ध सुगंधित कक्ष से बाहर निकले और द्वार पर पहरा देने के लिए खड़े हो गए।
पूज्य भिक्षु भोजन लेकर आए। बुद्ध ने उनसे चार प्रश्न पूछे, और जब उन्होंने अंतिम प्रश्न का उत्तर दिया, तो भिक्षु अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। तब बुद्ध ने पूज्य भिक्षु से कहा, “जाओ, सारिपुत्त, भिक्षु को भोजन दो।” वरिष्ठ भिक्षु गए और दरवाजा तोड़ दिया, जिसके बाद भिक्षु बाहर आए और पूज्य भिक्षु को प्रणाम किया। पूज्य भिक्षु ने कहा, “जो भोजन मैं लाया हूँ, उसे खाओ।”
तभी बुद्ध पास आए और पूछा, “भिक्षुओं, आप यहाँ बैठकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “आदरणीय, आज सुबह बहुत लंबी लगी और शाम भी देर से आई। नौसिखिए ने अभी-अभी अपना भोजन समाप्त किया है। सूर्य अभी-अभी हमारी आँखों के सामने शीर्ष से ऊपर चला गया है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, जब पुण्यवान ध्यान में लीन होते हैं तो ऐसा ही होता है। आज

नौसिखिए सुखा ने जलधारा में पानी ले जाते हुए गड्ढा खोदने वालों, बाण बनाने वालों को बाण तीखा करते हुए और बढ़ईयों को पहिए बनाते हुए देखा। इन सब चीजों को देखकर उसने स्वयं को वश में कर लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 145)

नेत्तिका हि उदकं नयन्ति उसुकारा तेजानां नमयन्ति

तच्चका दारुं नामयंती सुब्बता अत्तनं दमयंती पंडिता

नेट्टिका : सिंचाई करने वाले; उदकम् [उदका]: जल; नयन्ति : उन्हें जो भी स्थान पसंद हो, साथ लेकर चलें; उसुकारा : फ्लेचर्स; तेजानां [तेजना]: तीर बाण; नामयंती : आकार; तच्चका : बढ़ई; दारुं [दारू]: लकड़ी; नामयंती : झुकना; सुब्बता : कर्तव्यनिष्ठ; अट्टणं [अत्तना]: स्वयं; दमयंती : नियंत्रण; पंडिता : बुद्धिमान व्यक्ति

सिंचाई करने वाले पानी को नियंत्रित करते हैं। तीर बनाने वाले तीरों को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को तराशते हैं। बुद्धिमान लोग विवेकपूर्ण तरीके से खुद पर नियंत्रण रखते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 145)

सुब्बता : आज्ञाकारी व्यक्ति। सुब्बता वह व्यक्ति होता है जो सलाह को सहजता से मानता है। वह दी गई सलाह का पालन करता है। पारंपरिक टीकाओं में उनका वर्णन इस प्रकार किया गया है: सुखेना ओवादितब्बा , अनुसासि तब्बाति सुब्बता ... ऐसा व्यक्ति जिसे आसानी से सलाह और निर्देश दिया जा सकता है। एक सच्चा आज्ञाकारी व्यक्ति (सुब्बता) किसी भी सलाह का विरोध नहीं करता, चाहे वह कितनी भी कठोर क्यों न हो। ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया होती है — “यदि आप मुझे सलाह नहीं देंगे, तो और कौन देगा?”

अध्याय 11. जरावग्ग: वृद्धावस्था (146-156)

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 146

(धम्मपद 145) <<<< पिछला || धम्मपद 146 || अगला >>>> (धम्मपद 147)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 146 - विशाखाया सहायिकानं वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 146 - विशाखया सहायिकानं वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ko nu haso kimanando
niccam pajjalite(1) sati
andhakarena(2) onaddha
padipam(3) na gavesatha.

श्लोक 146 : हंसी क्यों है? आनंद क्यों है जबकि (संसार) सदा जल रहा है? अंधकार में घिरे होने पर प्रकाश की तलाश क्यों न करें?

---

1. पज्जलित: इस संदर्भ में, इसका अर्थ है वासना आदि की आग से जलना। (टीका)
2. अंधकारेण: इस संदर्भ में अंधकार का अर्थ है चार आर्य सत्यों का अज्ञान। (टीका)
3. पदिपम: इस संदर्भ में प्रकाश, यानी ज्ञान। (टीका)

विशाखा के साथियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने विशाखा के साथियों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (146) कहा।

श्रावस्ती से पाँच सौ पुरुष अपनी पत्नियों को विशाखा की तरह उदार, दयालु और गुणी बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें विशाखा के पास भेजा ताकि वे उनकी निरंतर सहेलियाँ बन सकें। सात दिनों तक चलने वाले एक उत्सव के दौरान, उन पुरुषों की पत्नियों ने अपने पतियों द्वारा छोड़ी गई सारी शराब पी ली और विशाखा की अनुपस्थिति में खूब शराब पी। इस दुर्व्यवहार के लिए उनके पतियों ने उन्हें पीटा। एक अन्य अवसर पर, बुद्ध के प्रवचन सुनने की इच्छा जताते हुए, उन्होंने विशाखा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और चुपके से अपने कपड़ों में शराब की छोटी बोतलें छिपा लीं।

मठ पहुँचते ही उन्होंने अपने साथ लाई सारी शराब पी ली और बोतलें फेंक दीं। विशाखा ने बुद्ध से उन्हें धम्म सिखाने का अनुरोध किया। तब तक वे स्त्रियाँ मदमस्त हो चुकी थीं और उन्हें गाने-नाचने का मन कर रहा था। मारा ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें और भी निर्भीक बना दिया, और जल्द ही वे मठ में शोर-शराबा करते हुए गाने, नाचने, ताली बजाने और उछलने लगीं। बुद्ध ने इन स्त्रियों के निर्भीक व्यवहार में मारा का हाथ देखा और मन ही मन कहा, "मारा को यह अवसर नहीं मिलना चाहिए।" अतः बुद्ध ने अपने शरीर से गहरे नीले रंग की किरणें भेजीं और पूरा कमरा अंधकारमय हो गया; स्त्रियाँ भयभीत हो गईं और उनका नशा उतरने लगा। फिर बुद्ध अपने आसन से विलीन हो गए और मेरु पर्वत की चोटी पर खड़े हो गए, और वहाँ से उन्होंने सफेद किरणें भेजीं जिससे आकाश हजारों चंद्रमाओं की तरह जगमगा उठा। इस प्रकार अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के बाद, बुद्ध ने उन पाँच सौ स्त्रियों से कहा, "हे देवियों, आपको इस अचेत अवस्था में मेरे मठ में नहीं आना चाहिए था। आपकी लापरवाही के कारण मारा को मेरे मठ में आपको निर्लज्जतापूर्वक हँसने और गाने का अवसर मिला। अब, अपने भीतर की वासना (राग) की आग को बुझाने का प्रयास करें।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 146 : हंसी क्यों है? आनंद क्यों है जबकि (संसार) सदा जल रहा है? अंधकार में घिरे होने पर प्रकाश की तलाश क्यों न करें?

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ महिलाओं ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा के साथियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने विशाखा के साथियों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी के पाँच सौ पुरुष अपनी पत्नियों को विशाखा के समान उदार, दयालु और गुणी बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें विशाखा के पास भेजा ताकि वे उनकी निरंतर सहेलियाँ बन सकें। सात दिनों तक चले एक मादक उत्सव के दौरान, उन पुरुषों की पत्नियों ने अपने पतियों द्वारा छोड़ी गई सारी शराब पी ली और विशाखा की अनुपस्थिति में खूब शराब पी। इस दुर्व्यवहार के लिए उनके पतियों ने उन्हें पीटा। एक अन्य अवसर पर, बुद्ध के प्रवचन सुनने की इच्छा जताते हुए, उन्होंने विशाखा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और चुपके से अपने कपड़ों में शराब की छोटी बोतलें छिपा लीं।

मठ पहुँचते ही उन्होंने अपने साथ लाई सारी शराब पी ली और बोतलें फेंक दीं। विशाखा ने बुद्ध से उन्हें धम्म सिखाने का अनुरोध किया। तब तक वे स्त्रियाँ मदहोश हो चुकी थीं और उन्हें गाने-नाचने का मन कर रहा था। मारा ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें और भी निर्भीक बना दिया, और जल्द ही वे मठ में शोर-शराबा करते हुए गाने, नाचने, ताली बजाने और उछलने लगीं। बुद्ध ने इन स्त्रियों के निर्भीक व्यवहार में मारा का हाथ देखा और मन ही मन कहा, “मारा को यह अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।” अतः बुद्ध ने अपने शरीर से गहरे नीले रंग की किरणें निकालीं और पूरा कमरा अंधकारमय हो गया; स्त्रियाँ भयभीत हो गईं और उनका नशा उतरने लगा। फिर बुद्ध अपने आसन से विलीन हो गए और मेरु पर्वत की चोटी पर खड़े हो गए, और वहाँ से उन्होंने सफेद किरणें निकालीं जिससे आकाश हजारों चंद्रमाओं की तरह जगमगा उठा। इस प्रकार अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के बाद, बुद्ध ने उन स्त्रियों से कहा; “हे स्त्री, आपको इस अचेतन अवस्था में मेरे मठ में नहीं आना चाहिए था। आपकी लापरवाही के कारण मारा को आपके द्वारा मेरे मठ में बेशर्मी से हंसने और जोर-जोर से गाने का अवसर मिला। अब, अपने भीतर के कामवासना (राग) के बंधनों को तोड़ने का प्रयास करें।” प्रवचन के अंत में, उन स्त्रियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 146)

निक्कं पज्जलिते सति को नु हासो कि आनंदो

अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ

निच्चं [निच्च]: निरंतर; पज्जलिते सति : जलना; को नु हासो : कैसी हंसी; किं आनन्दो [आनंद]: कैसा आनंद; अंधकारकारेण : अंधकार के साथ; ओनद्धा : घिरा हुआ; पदीपं [पदीप]: एक प्रकाश; न गवेसथ : क्यों न खोजो
जब तुम निरंतर वासना की ज्वालाओं में जलते रहते हो, तो कैसी हंसी, कैसा आनंद? जब तुम अज्ञान के अंधकार में घिरे रहते हो, तो उस अंधकार को दूर करने के लिए ज्ञान के प्रकाश की खोज क्यों नहीं करते?
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 146)
विशेष टिप्पणी : इन अधिकांश पृष्ठभूमि कथाओं में, बुद्ध द्वारा श्लोकों के उच्चारण से लोगों को सोतापत्ति का फल प्राप्त होता है। सोतापत्ति की स्थिति : सोतापन्न , अर्थात् सोतापत्ति, आठ श्रेष्ठ शिष्यों में सबसे निम्नतम है। तीन प्रकार के सोतापत्तियों में अंतर किया जाना चाहिए: अधिकतम सात पुनर्जन्मों वाला (सत्तक्खत्तु-परम), एक श्रेष्ठ परिवार से दूसरे श्रेष्ठ परिवार में जाने वाला (कोलनकोला), और केवल एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (एक-बीजी)।
(1) यदि कोई व्यक्ति तीन बंधनों (व्यक्तित्व-विश्वास, संशयपूर्ण संदेह, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति) के विलीन होने के बाद निर्वाण की धारा में प्रवेश कर लेता है, तो वह निम्न लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहता, दृढ़ता से स्थापित हो जाता है और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए नियत हो जाता है। स्वर्ग और मनुष्यों के बीच सात बार और पुनर्जन्म का चक्र पूरा करने के बाद, वह दुखों का अंत कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को अधिकतम सात पुनर्जन्मों वाला (सत्तक्खत्तु-परम) कहा जाता है।
(2) यदि कोई व्यक्ति तीनों बंधनों के समाप्त होने के बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियत हो, तो वह दो या तीन बार पुनर्जन्म के चक्र से गुजरने के बाद दुखों का अंत कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को एक कुलीन परिवार से दूसरे कुलीन परिवार में जाने वाला (कोलांकोला) कहा जाता है।
(3) यदि कोई व्यक्ति तीनों बंधनों के समाप्त होने के बाद पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत हो, तो वह केवल एक बार फिर मानव जीवन में लौटकर दुखों का अंत कर देता है। ऐसे व्यक्ति को केवल एक बार ही अंकुरित होने वाला (एक-बीजी) कहा जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 147

———————————————————————

(धम्मपद 146) <<<< पिछला || धम्मपद 147 || अगला >>>> (धम्मपद 148)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 147 - सिरिमा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 147 - सिरिमा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Passa cittakatam bimbam
arukayam samussitam
aturam babusankappam(1)
yassa natthi dhuvam thiti.

———————————————————————

श्लोक 147 : इस सजे-धजे शरीर को देखो, जो घावों का ढेर है, हड्डियों के सहारे टिका हुआ है, बीमार है, और कई कामुक विचारों का विषय है। निश्चय ही, यह शरीर न तो स्थायी है और न ही टिकाऊ।

———————————————————————

1. बहुसंकप्पम: शरीर, जो कामुक इच्छा और प्रशंसा के अनेक विचारों का विषय है।

सिरिमा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (147) का उच्चारण किया, जो कि वेश्या सिरीमा के संदर्भ में था।

राजगृह में एक समय की बात है, सिरीमा नाम की एक अत्यंत सुंदर वेश्या रहती थी। सिरीमा प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भिक्षा देती थी। इन्हीं भिक्षुओं में से एक ने अन्य भिक्षुओं को सिरीमा की सुंदरता और उसके द्वारा प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा की। यह सुनकर एक युवक भिक्षु सिरीमा को देखे बिना ही उससे प्रेम करने लगा। अगले दिन वह युवक अन्य भिक्षुओं के साथ सिरीमा के घर गया। उस दिन सिरीमा की तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन भिक्षुओं को प्रणाम करने की इच्छा से उसे उनके समक्ष लाया गया। सिरीमा को देखकर युवक भिक्षु मन ही मन सोचने लगा, "बीमार होने के बावजूद वह कितनी सुंदर है!" और उसके मन में उसके लिए तीव्र इच्छा जागृत हुई। उसी रात, सिरीमा का निधन हो गया। राजा बिम्बिसार बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि जीवक की बहन सिरीमा का निधन हो गया है। बुद्ध ने राजा बिम्बिसार को शव को श्मशान ले जाने और तीन दिन तक बिना दफनाए वहीं रखने का आदेश दिया, लेकिन यह भी कहा कि उसे कौवों और गिद्धों से बचाकर रखा जाए। राजा ने वैसा ही किया जैसा उन्हें बताया गया था। चौथे दिन, सुंदर सिरीमा का शव न तो सुंदर रहा और न ही आकर्षक; वह फूल गया और उसके नौ छिद्रों से कीड़े निकल आए। उस दिन, बुद्ध अपने भिक्षुओं को लेकर सिरीमा के शव को देखने के लिए श्मशान गए। राजा भी अपने आदमियों के साथ आए। वह युवा भिक्षु, जो सिरीमा से अत्यधिक प्रेम करता था, यह नहीं जानता था कि सिरीमा का निधन हो गया है। जब उसे पता चला कि बुद्ध और भिक्षु सिरीमा को देखने जा रहे हैं, तो वह भी उनके साथ चला गया। श्मशान में, सिरीमा का शव बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं, राजा और उनके आदमियों से घिरा हुआ था।

तब बुद्ध ने राजा से कहा कि वह एक उद्घोषक से यह घोषणा करवाए कि सिरीमा एक हजार रुपये नकद प्रति रात्रि के भुगतान पर उपलब्ध है। परन्तु कोई भी उसे एक हजार रुपये में, या पांच सौ रुपये में, या ढाई सौ रुपये में, या यहाँ तक कि निःशुल्क दिए जाने पर भी स्वीकार नहीं करेगा। तब बुद्ध ने श्रोताओं से कहा, “भिक्षुओं! सिरीमा को देखो। जब वह जीवित थी, तब बहुत से लोग उसके साथ एक रात्रि बिताने के लिए एक हजार रुपये देने को तैयार थे; परन्तु अब तो उसे निःशुल्क दिए जाने पर भी कोई स्वीकार नहीं करता। मनुष्य का शरीर क्षय और क्षीणता के अधीन है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 147 : इस सजे-धजे शरीर को देखो, जो घावों का ढेर है, हड्डियों के सहारे टिका हुआ है, बीमार है, और कई कामुक विचारों का विषय है। निश्चय ही, यह शरीर न तो स्थायी है और न ही टिकाऊ।

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिरिमा की कहानी

मठ में, बुद्ध ने यह श्लोक वेश्या सिरिमा के संदर्भ में कहा था।

एक समय की बात है, राजगृह में सिरिमा नाम की एक अत्यंत सुंदर वेश्या रहती थी। सिरिमा प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भिक्षा देती थी। इनमें से एक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं से सिरिमा की सुंदरता और उनके द्वारा प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा की। यह सुनकर एक युवा भिक्षु को सिरिमा को देखे बिना ही उससे प्रेम हो गया। अगले दिन वह युवा भिक्षु अन्य भिक्षुओं के साथ सिरिमा के घर गया। उस दिन सिरिमा की तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन भिक्षुओं को प्रणाम करने की इच्छा से उसे उनके समक्ष लाया गया। सिरिमा को देखकर उस युवा भिक्षु ने मन ही मन सोचा, “बीमार होने के बावजूद वह कितनी सुंदर है!” और उसके मन में उसके लिए तीव्र आकर्षण उत्पन्न हो गया।

उसी रात सिरिमा की मृत्यु हो गई। राजा बिम्बिसार बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि “जीवक की बहन सिरिमा का निधन हो गया है।” बुद्ध ने राजा बिम्बिसार को शव को श्मशान ले जाकर तीन दिन तक बिना दफनाए रखने का आदेश दिया, लेकिन यह भी कहा कि कौवों और गिद्धों से उसकी रक्षा की जाए। राजा ने वैसा ही किया जैसा उन्हें बताया गया था। चौथे दिन, सुंदर सिरिमा का शव न तो सुंदर रहा और न ही आकर्षक; वह फूल गया और उसके नौ छिद्रों से कीड़े निकलने लगे। उस दिन, बुद्ध अपने भिक्षुओं को लेकर सिरिमा के शव को देखने श्मशान गए। राजा भी अपने आदमियों के साथ आए। युवा भिक्षु, जो सिरिमा से अत्यधिक प्रेम करता था, यह नहीं जानता था कि सिरिमा का निधन हो गया है। जब उसे पता चला कि बुद्ध और भिक्षु सिरिमा को देखने जा रहे हैं, तो वह भी उनके साथ चला गया। श्मशान में, सिरिमा का शव बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं, राजा और उनके आदमियों से घिरा हुआ था।

भिक्षुओं के समूह से घिरे बुद्ध शव के एक ओर खड़े थे; भिक्षुणियों का समूह, राजा का दल और उनके शिष्य, पुरुष और स्त्री, शव के दूसरी ओर, अपने-अपने स्थान पर खड़े थे। बुद्ध ने राजा से पूछा, "महाराज, यह स्त्री कौन है?" "आदरणीय, यह जीवक की बहन सिरिमा हैं।" "क्या यह सिरिमा हैं?" "जी हां, आदरणीय।" "अच्छा! पूरे नगर में ढोल बजवाकर यह घोषणा करवाइए, 'जो सिरिमा के लिए एक हजार सिक्के देगा, वह उसे पा सकता है।'" किसी ने भी कुछ नहीं कहा। राजा ने कीमत घटाकर एक पैसा, फिर आधा पैसा, फिर एक चौथाई पैसा, फिर एक आठवां पैसा कर दी। अंत में उन्होंने ढोल की थाप के साथ घोषणा की, "वे उसे मुफ्त में पा सकते हैं।" किसी ने भी कुछ नहीं कहा। तब राजा ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, कोई भी उसे भेंट के रूप में भी स्वीकार नहीं करेगा।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, आप जनमानस की दृष्टि में स्त्री का मूल्य देख लीजिए। इसी नगर में पुरुष इस स्त्री के साथ एक रात बिताने के लिए हज़ारों सिक्के देते थे। अब कोई भी उसे भेंट के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। उसकी सुंदरता इतनी असीम थी कि वह नष्ट हो गई। हे भिक्षुओं, इस शरीर को देखिए, यह रोगग्रस्त और विकृत हो गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 147)

यस्सा धुवं रीति नत्थि । अरुकायं समुस्सितम्

आतुरं बहुसंकप्पं चित्तकटं बिंबं पस

यस्स : इस शरीर के लिए; धुवं थिति : स्थायी अस्तित्व; नत्थि : नहीं है; अरुकायं [अरुकाय]: (वास्तव में) घावों से भरा शरीर; समुस्सितं [समुस्सित]: अनेक हड्डियों से टिका हुआ; आतुरं [आतुर]: (यह) रोगग्रस्त है; बहुसंकप्पं [बहुसंकप्प]: अनेक सुविचारित लोगों द्वारा संवारा हुआ; चित्तकतं [चित्तकत]: सुंदर ढंग से सँवारा हुआ; बिंबं [बिंब]: यह शरीर; पस्सा : अवलोकन करना

इस शरीर का कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। वास्तव में यह घावों से भरा शरीर है। यह रोगग्रस्त है। यह अनेक प्रकार की हड्डियों पर टिका हुआ है। कई लोग इसे अच्छा मानते हैं। कई लोग इसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इसे खूबसूरती से सजाया गया है। शरीर के इस वास्तविक स्वरूप को ध्यान से देखें।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 147)

natthi dhuvaṃ ṭhiti : यह शरीर स्थायी नहीं है। इसका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है—arukāyaṃ। वास्तव में, यह घावों का शरीर है।

आतुरं : यह रोगग्रस्त है; बहुसंकप्पं : बहुतों द्वारा प्रशंसित; समुस्सितं : शरीर में कई हड्डियाँ होती हैं। ये हड्डियाँ इसे सहारा देती हैं; चित्तकतं : आकर्षक ढंग से संवारा हुआ। ये सभी शरीर के बारे में भ्रामक धारणाओं की श्रेणी में आते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 148

———————————————————————

(धम्मपद 147) <<<< पिछला || धम्मपद 148 || अगला >>>> (धम्मपद 149)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 148 - उत्तरथेरि वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 148 - उत्तरथेरि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

परिजिन्नामिदम रूपम
रोगानिलम पभंगुरम
bhijjati putisandeho
maranantam hi jivitam.

श्लोक 148 : यह शरीर उम्र से क्षीण हो चुका है, यह रोगों का घर है, यह क्षय के अधीन है। यह सड़ा हुआ शरीर विघटित हो जाता है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है।

थेरी उत्तरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उत्तरा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (148) कहा।

एक सौ बीस वर्ष की थेरी उत्तरा एक दिन भिक्षाटन से लौट रही थीं, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई और उन्होंने उनसे भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया। निर्दयी भिक्षु ने उनका सारा भिक्षा ग्रहण कर लिया; इसलिए उन्हें उस दिन भोजन नहीं करना पड़ा। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ। इस प्रकार थेरी उत्तरा लगातार तीन दिनों तक भोजनहीन रहीं और दुर्बल महसूस करने लगीं। चौथे दिन, जब वह भिक्षाटन कर रही थीं, तो संकरे रास्ते पर उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और पीछे हट गईं। ऐसा करते समय, गलती से उनका पैर अपने ही वस्त्र पर पड़ गया और वह जमीन पर गिर गईं, जिससे उनके सिर में चोट लग गई। बुद्ध उनके पास गए और बोले, "तुम्हारा शरीर बहुत बूढ़ा और दुर्बल हो रहा है, यह टूटने के कगार पर है, यह शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 148 : यह शरीर उम्र से क्षीण हो चुका है, यह रोगों का घर है, यह क्षय के अधीन है। यह सड़ा हुआ शरीर विघटित हो जाता है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है।

प्रवचन के अंत में, थेरी उत्तरा ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून उत्तरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नून उत्तरा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक सौ बीस वर्ष की भिक्षुणी उत्तरा एक दिन भिक्षाटन से लौट रही थीं, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई और उन्होंने उनसे भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया; इस प्रकार उन्हें उस दिन भोजन नहीं करना पड़ा। अगले दो दिनों तक भी यही स्थिति रही। इस प्रकार भिक्षुणी उत्तरा लगातार तीन दिनों तक भोजनहीन रहीं और दुर्बल महसूस करने लगीं। चौथे दिन, जब वे भिक्षाटन कर रही थीं, तो संकरे मार्ग पर उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और पीछे हट गईं। ऐसा करते समय, गलती से उनका पैर अपने ही वस्त्र पर पड़ गया और वे जमीन पर गिर गईं, जिससे उनके सिर में चोट लग गई। बुद्ध उनके पास गए और बोले, “तुम्हारा शरीर बहुत बूढ़ा और दुर्बल हो रहा है, यह टूटने के कगार पर है, यह शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।” प्रवचन के अंत में, भिक्षुणी उत्तरा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 148)

इदं रूपं परिजिनं रोगनिधं पभंगुरं

पूतिसंदेहो भिज्जति हि जीवितं मरणन्तं

idaṃ rupaṃ [rupa]: यह रूप; parijiṇṇaṃ [parijiṇṇa]: पूरी तरह से टूटा हुआ; roganiḍḍhaṃ [roganiḍḍha]: (यह) रोगों के घोंसले के समान है; pabhaṅguraṃ [pabhaṅgura]: आसानी से विघटित हो जाता है; pūtisandeho [pūtisandeha]: इसमें से सड़ा हुआ पदार्थ रिसता है; bhijjati : यह आसानी से टूट जाता है; hi jīvitaṃ maraṇantaṃ [maraṇanta]: मृत्यु इसका अंत कर देती है

यह रूप—यह शरीर—पूरी तरह से विघटित हो चुका है। यह सचमुच रोगों का अड्डा है। यह आसानी से बिखर जाता है। इसके नौ छिद्रों से लगातार सड़ा हुआ पदार्थ रिसता रहता है। यह टूटकर बिखर जाता है। मृत्यु ही इसका अंत करती है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री

जीवन का अंत मृत्यु में होता है । इस श्लोक का मुख्य उद्देश्य जीवन की अनित्यता को स्पष्ट करना है। अनित्यता (अनिच्चा) अस्तित्व के तीन गुणों (तिलक्खना) में से पहला गुण है । अधिकांश ग्रंथों में अनित्यता के इसी तथ्य से अन्य दो गुण, दुःख (दुक्खा) और अनात्म (अनत्ता), व्युत्पन्न किए गए हैं। वस्तुओं की अनित्यता का अर्थ है वस्तुओं का उदय, अस्त होना और परिवर्तन होना, या उत्पन्न या अस्तित्व में आई वस्तुओं का लुप्त हो जाना। इसका अर्थ यह है कि ये वस्तुएँ कभी भी एक ही रूप में स्थिर नहीं रहतीं, बल्कि क्षण-क्षण लुप्त होती और विलीन होती रहती हैं।

अनित्यता सभी सशक्त घटनाओं का मूल गुण है, चाहे वे भौतिक हों या मानसिक, स्थूल हों या सूक्ष्म, स्वयं की हों या बाह्य। सभी रचनाएँ अनित्य हैं। संपूर्ण अस्तित्व के अनित्य होने को अक्सर बारह इंद्रिय आधारों, पाँच स्कंधों के संदर्भ में भी व्यक्त किया जाता है। केवल निर्वाण, जो असंबद्ध है और किसी रचना का हिस्सा नहीं है (असंकत), ही स्थायी है।
मुक्ति के पहले चरण, यानी धारा-प्रवेश की ओर ले जाने वाली अंतर्दृष्टि को अक्सर अनित्यता के रूप में व्यक्त किया जाता है: "जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह समाप्त भी हो जाता है।" परिनिर्वाण से पहले अपने अंतिम उपदेश में, बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को अस्तित्व की अनित्यता की याद दिलाते हुए उन्हें गंभीर प्रयास करने के लिए प्रेरित किया: "देखो, भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी संरचनाएँ नष्ट हो जाएँगी। पूरी लगन से प्रयास करो!"
अस्तित्व की सभी घटनाओं की अनित्यता और सारहीनता की गहरी समझ के बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः प्रत्यक्ष ध्यान अनुभव द्वारा प्राप्त अनित्यता की समझ, अंतर्दृष्टि ज्ञान की दो श्रेणियों में सबसे ऊपर है: (क) अनित्यता का चिंतन अठारह प्रमुख प्रकार की अंतर्दृष्टि में से प्रथम है; (ख) उत्पत्ति और अपाप का चिंतन नौ प्रकार के ज्ञान में से प्रथम है, जो मार्ग सम्मेलन के ज्ञान और दर्शन द्वारा शुद्धि की ओर ले जाता है। अनित्यता का चिंतन बिना शर्त मोक्ष की ओर ले जाता है। यद्यपि इसमें विश्वास की शक्ति उत्कृष्ट होती है, जो इस मार्ग से धारा-प्रवेश के मार्ग को प्राप्त करता है, उसे विश्वास-भक्त कहा जाता है और सात उच्चतर अवस्थाओं में उसे विश्वास-मुक्त कहा जाता है।
pabhaṅguraṃ : शरीर आसानी से विघटित हो सकता है।
pūtisandeho : इसके नौ छिद्रों से सड़ा हुआ पदार्थ रिसता है।
अनित्यता : अनित्यता। अनित्यता के विषय में, भले ही हम किसी वृक्ष पर नए और खिलते हुए पत्ते देखें, कुछ परिपक्व और कुछ सूखे और पीले, फिर भी अनित्यता हमारे हृदय में गहराई तक नहीं उतरती। भले ही वर्षों में हमारे बाल काले से भूरे और फिर सफेद हो जाते हैं, फिर भी हम इस परिवर्तन के स्पष्ट संदेश - अनित्यता - को नहीं समझ पाते। अनित्यता के सत्य को मन में कभी-कभार स्वीकार करने या ज़बान से मानने और हृदय में इसे निरंतर अनुभव करने में बहुत बड़ा अंतर है। समस्या यह है कि बौद्धिक रूप से हम अनित्यता को सत्य मान लेते हैं, लेकिन भावनात्मक रूप से हम इसे स्वीकार नहीं करते, विशेषकर अपने और अपने के संदर्भ में। लेकिन लालच की हमारी अकुशल भावनाएँ चाहे जो भी स्वीकार करें या न करें, अनित्यता एक सत्य बनी रहती है, और जितनी जल्दी हम अंतर्दृष्टि से इस सत्य को जान लेते हैं, उतना ही हम सुखी होंगे, क्योंकि इससे हमारी चिंतन शैली वास्तविकता के निकट हो जाएगी।

(धम्मपद 148) <<<< पिछला || धम्मपद 149 || अगला >>>> (धम्मपद 150)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 149 - संभुला अधिमानिकाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 149 - सम्बहुला अधिमानिकाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
यानिमणि अपत्थानी
अलाबुनवा सरदे
kapotakani atthini
tani disvana ka rati

श्लोक 149 : पतझड़ में फेंके गए लौकी की तरह ये कबूतर-धूसर हड्डियाँ हैं; इन्हें देखने में क्या आनंद है?

आधिमानिक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (149) का उच्चारण कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में किया, जिन्होंने स्वयं को बहुत अधिक महत्व दिया था।

पांच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वनों में प्रवेश किया। वहां उन्होंने पूर्ण लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही गहन ध्यान (झान) की अवस्था प्राप्त कर ली। उन्हें लगा कि वे इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गए हैं और अतः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। वास्तव में, वे केवल अपने आप को अतिशयोक्ति कर रहे थे। फिर वे बुद्ध के पास यह बताने के इरादे से गए कि उन्होंने जो समझा था वह अर्हतत्व की प्राप्ति थी।

जब वे मठ के बाहरी द्वार पर पहुँचे, तो बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "अभी मेरे दर्शन करने से इन भिक्षुओं को कोई लाभ नहीं होगा; वे पहले श्मशान जाएँगे और उसके बाद ही मेरे दर्शन करेंगे।" पूज्य आनंद ने बुद्ध का संदेश उन भिक्षुओं को सुनाया, और उन्होंने मनन किया, "प्रबुद्ध व्यक्ति सर्वज्ञानी हैं; हमें पहले श्मशान भेजने के पीछे उनका कोई कारण अवश्य होगा।" अतः वे श्मशान चले गए।

वहाँ, जब उन्होंने सड़ी-गली लाशें देखीं, तो उन्हें वे महज़ कंकाल और हड्डियाँ ही लगीं, परन्तु जब उन्होंने कुछ ताज़ी लाशें देखीं, तो उन्हें भय से अहसास हुआ कि उनके भीतर अभी भी कुछ कामुक इच्छाएँ जागृत हो रही हैं। बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश भेजा; फिर वे उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "भिक्षुओं! इन फीकी हड्डियों को देखकर क्या तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार की कामुक इच्छा रखना उचित है?"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 149 : पतझड़ में फेंके गए लौकी की तरह ये कबूतर-धूसर हड्डियाँ हैं; इन्हें देखने में क्या आनंद है?

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अधिमानिक भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ ऐसे भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था जिन्होंने स्वयं को अत्यधिक महत्व दिया था।

बहुत से भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वनों में चले गए। वहाँ उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और शीघ्र ही गहन ध्यान (झान) की अवस्था प्राप्त कर ली। उन्हें लगा कि वे इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गए हैं और अतः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। वास्तव में, वे केवल अपने आप को अतिशयोक्ति कर रहे थे। फिर वे बुद्ध के पास यह बताने के इरादे से गए कि उन्होंने जो समझा था वह अर्हतत्व की प्राप्ति थी।

जब वे मठ के बाहरी द्वार पर पहुँचे, तो बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, “अभी मेरे दर्शन करने से इन भिक्षुओं को कोई लाभ नहीं होगा; वे पहले श्मशान जाएँगे और उसके बाद ही मेरे दर्शन करेंगे।” पूज्य आनंद ने बुद्ध का संदेश उन भिक्षुओं को सुनाया, और उन्होंने सोचा, “बुद्ध सर्वज्ञ हैं; हमें पहले श्मशान भेजने के पीछे उनका कोई कारण अवश्य होगा।” अतः वे श्मशान चले गए।

वहाँ, जब उन्होंने सड़ी-गली लाशें देखीं, तो उन्हें वे केवल कंकाल और हड्डियाँ ही लगीं, लेकिन जब उन्होंने कुछ ताज़ी लाशें देखीं, तो उन्हें भय के साथ एहसास हुआ कि उनके भीतर अभी भी कुछ कामुक इच्छाएँ जागृत हो रही हैं। बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और अपना प्रकाश भेजा; फिर वे उनके सामने प्रकट हुए और बोले, “भिक्षुओं! इन फीकी हड्डियों को देखकर, क्या तुम्हारे लिए कामुक इच्छाएँ रखना उचित है?” प्रवचन के अंत में, भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

तब बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 149)

सारदे अपत्थानि अलापुनि इव कपोत्कानि

यानि इमानी अथिनि तानि दिसवन का रति

सारदे : शरद ऋतु के दौरान; अपत्थानी : लापरवाही से बिखरा हुआ; अलापुनि इव : लौकी की तरह; कपोतकनि : भूरे रंग का; यानि इमानी : ऐसा; अथिनि तानि : ये हड्डियाँ; दिस्वना : देखा हुआ; का रति : जो कोई भी वासना करेगा

शरद ऋतु के शुष्क मौसम में, चारों ओर हड्डियाँ और खोपड़ियाँ बिखरी हुई दिखाई देती हैं। ये सूखी, भूरे रंग की खोपड़ियाँ इधर-उधर फेंके गए लौकी की तरह लगती हैं। इन्हें देखकर भला कौन वासना करेगा?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 149)
अत्तिनी : हड्डियाँ। यह श्लोक एक कब्रिस्तान में बिखरी हुई विभिन्न प्रकार की मानव हड्डियों का वर्णन करता है। ये हड्डियाँ क्षय के सार्वभौमिक नियम — जरा — का प्रतीक हैं ।
जरा : वृद्धावस्था, क्षय। वृद्धावस्था (क्षय) तीन दिव्य दूतों में से एक है। दिव्य दूत वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का प्रतीकात्मक नाम है, क्योंकि ये तीनों चीजें मनुष्य को उसके भविष्य की याद दिलाती हैं और उसे गंभीर प्रयास करने के लिए प्रेरित करती हैं। कहा जाता है, “हे मनुष्य, क्या तुमने संसार में कभी अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष के किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो दुर्बल, छत की तरह टेढ़ा, झुका हुआ, बैसाखियों के सहारे लड़खड़ाते कदमों से चलता हो, बीमार हो, जिसकी जवानी बहुत पहले ही बीत चुकी हो, जिसके दांत टूटे हों, बाल भूरे और कम हों, या गंजा हो, झुर्रियों वाला हो, और जिसके अंग धब्बेदार हों? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बुढ़ापे के अधीन हो, कि तुम भी इससे बच नहीं सकते? क्या तुमने संसार में कभी किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार हो, और अपनी ही गंदगी में लोट रहा हो, जिसे कुछ लोगों ने ऊपर उठाया हो और दूसरों ने नीचे गिरा दिया हो? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बीमारी के अधीन हो, कि तुम भी इससे बच नहीं सकते? क्या तुमने संसार में कभी किसी पुरुष या स्त्री का शव नहीं देखा, जो मृत्यु के एक, दो या तीन दिन बाद फूला हुआ, नीले-काले रंग का और सड़न से भरा हो? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बुढ़ापे के अधीन हो? मृत्यु के अधीन, क्या तुम भी इससे बच नहीं सकते?
जब हम जीवन में हर चीज की क्षणभंगुरता को देखते हैं: जिस पर हम निर्भर हैं और जिससे हमारा लगाव है, वह सब बदलता रहता है, हमसे बिछड़ जाता है या नष्ट हो जाता है, तो अंत में केवल भावनात्मक अशांति ही रह जाती है: असुरक्षा, अकेलापन, भय, चिंता, व्याकुलता और दुख की भावना। सुख पाने का एकमात्र तरीका है अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना और मन को शांत करना, अपने सोचने के तरीके को बदलकर। हमें चीजों से विरक्त होना होगा और भावनात्मक रूप से स्वतंत्र होना होगा। यह इस बात को समझकर ही संभव है कि संसार में किसी भी चीज पर हमारा अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि स्वयं पर भी: शरीर, मन और आत्मा पर भी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 150

———————————————————————

(धम्मपद 149) <<<< पिछला || धम्मपद 150 || अगला >>>> (धम्मपद 151)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 150 - जिला कल्याणी रूपानंदथेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 150 - जनपदकल्याणी रूपानन्दथेरी वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
अत्थिनम नागरम कटम
mamsalohita lepanam
yattha jara ca maccu ca
mano makkho ca ohito.

———————————————————————

श्लोक 150 : यह शरीर (शाब्दिक रूप से, शहर) हड्डियों से बना है जो मांस और रक्त से ढकी हुई हैं; इसके भीतर क्षय और मृत्यु, अभिमान और निंदा (दूसरों के गुणों और प्रतिष्ठा की) निवास करते हैं (शाब्दिक रूप से, जमा होते हैं)।

———————————————————————

थेरी रूपानंद (जनपदकल्याणी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने जनपदकल्याणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (150) कहा। राजकुमारी जनपदकल्याणी गौतम बुद्ध की सौतेली माता गौतमी की पुत्री थीं; अत्यंत सुंदर होने के कारण वे रूपानंद के नाम से भी जानी जाती थीं। उनका विवाह बुद्ध के चचेरे भाई नंदा से हुआ था। एक दिन उन्होंने चिंतन किया, “मेरे बड़े भाई, जो सर्वशक्तिमान सम्राट बन सकते थे, ने संसार त्याग कर भिक्षु बनने का निश्चय किया; वे अब बुद्ध हैं। मेरे बड़े भाई के पुत्र राहुल और मेरे पति राजकुमार नंदा भी भिक्षु बन गए हैं। मेरी माता गौतमी भी भिक्षुणी बन गई हैं, और मैं यहाँ बिल्कुल अकेली हूँ!” ऐसा कहकर वे कुछ भिक्षुणियों के मठ में गईं और स्वयं भिक्षुणी बन गईं। इस प्रकार, वे आस्था के कारण नहीं, बल्कि दूसरों के अनुकरण में और एकाकीपन की अनुभूति के कारण भिक्षुणी बनीं।

रूपानंद ने दूसरों से सुना था कि बुद्ध अक्सर खन्धों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में उपदेश देते हैं। इसलिए उसने सोचा कि यदि बुद्ध उसे देख लें तो उसकी सुंदरता की निंदा करेंगे; और ऐसा सोचकर वह बुद्ध से दूर रहती थी। लेकिन मठ से लौट रही अन्य भिक्षुणियाँ बुद्ध की प्रशंसा करती रहती थीं; इसलिए एक दिन उसने अन्य भिक्षुणियों के साथ मठ जाने का निर्णय लिया।

बुद्ध ने उसे देखा और मन ही मन सोचा, "काँटा काँटे से ही निकाला जा सकता है; रूपानंद अपने शरीर से बहुत आसक्त है और अपनी सुंदरता पर बहुत घमंड करती है, इसलिए मुझे सुंदरता के द्वारा ही उसका यह घमंड और आसक्ति दूर करनी होगी।" अतः, अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने लगभग सोलह वर्ष की एक अत्यंत सुंदर स्त्री की छवि को अपने पास बैठा दिया, जो उन्हें पंखा कर रही थी। यह युवती केवल रूपानंद और बुद्ध को ही दिखाई दे रही थी। जब रूपानंद ने उस स्त्री को देखा, तो उसे अहसास हुआ कि उस स्त्री के सामने वह स्वयं एक सुंदर सफेद हंस के सामने एक बूढ़े, बदसूरत कौवे जैसी है। रूपानंद ने उस स्त्री को ध्यान से देखा और उसे बहुत पसंद किया। फिर उसने दोबारा देखा और यह देखकर आश्चर्यचकित रह गई कि वह स्त्री लगभग बीस वर्ष की हो गई थी। उसने बार-बार बुद्ध के बगल में बैठी उस आकृति को देखा और हर बार उसने पाया कि वह स्त्री और अधिक उम्र की होती जा रही है। इस प्रकार, वह स्त्री एक वयस्क महिला, फिर एक अधेड़ महिला, एक बूढ़ी महिला, एक दुर्बल और अंत में एक अत्यंत बूढ़ी महिला में परिवर्तित हो गई। रूपानंद ने यह भी देखा कि एक नई छवि के प्रकट होते ही पुरानी छवि लुप्त हो जाती थी, और उन्हें यह अहसास हुआ कि शरीर में निरंतर परिवर्तन और क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है। इस अहसास के साथ ही शरीर के प्रति उनका आसक्ति कम हो गई। इसी बीच, बुद्ध के पास खड़ी आकृति एक बूढ़ी, जर्जर महिला में बदल गई, जो अपने शारीरिक कार्यों पर नियंत्रण खो बैठी थी और अपने ही मल में लोट रही थी। अंत में, उसकी मृत्यु हो गई, उसका शरीर फूल गया, नौ छिद्रों से मवाद और कीड़े निकलने लगे और कौवे और गिद्ध मृत शरीर को नोचने की कोशिश कर रहे थे।

यह सब देखकर रूपानंदा ने मन ही मन सोचा, "यह युवती बूढ़ी होकर कमजोर हो गई और मेरी आँखों के सामने इसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। उसी प्रकार मेरा शरीर भी बूढ़ा होकर कमजोर हो जाएगा; यह रोगों का शिकार होगा और मैं भी मर जाऊँगी।" इस प्रकार, उन्हें खंधों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी समय, बुद्ध ने खंधों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में बताया, और रूपानंदा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 150 : यह शरीर (शाब्दिक रूप से, शहर) हड्डियों से बना है जो मांस और रक्त से ढकी हुई हैं; इसके भीतर क्षय और मृत्यु, अभिमान और निंदा (दूसरों के गुणों और प्रतिष्ठा की) निवास करते हैं (शाब्दिक रूप से, जमा होते हैं)।

प्रवचन के अंत में, रूपानंद ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षुणी रूपानंदा (जनपदकल्याणी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जनपदकल्याणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

राजकुमारी जनपदकल्याणी, गौतम बुद्ध की सौतेली माता गौतमी की बहू थीं; अपनी सुंदरता के कारण वे रूपानंद के नाम से भी जानी जाती थीं। उनका विवाह बुद्ध के सौतेले भाई नंदा से हुआ था। एक दिन उन्होंने सोचा, “मेरे बड़े भाई, जो सर्वशक्तिमान सम्राट बन सकते थे, उन्होंने संसार त्याग कर भिक्षु बनने का निश्चय किया; वे अब बुद्ध हैं। मेरे बड़े भाई के पुत्र राहुल और मेरे पति राजकुमार नंदा भी भिक्षु बन गए हैं। मेरी माता गौतमी भी भिक्षुणी बन गई हैं, और मैं यहाँ बिल्कुल अकेली हूँ!” ऐसा सोचकर वे कुछ भिक्षुणियों के मठ में गईं और स्वयं भी भिक्षुणी बन गईं। इस प्रकार, वे आस्था के कारण नहीं, बल्कि दूसरों का अनुकरण करते हुए और एकाकीपन महसूस करते हुए भिक्षुणी बनीं।

रूपानंद ने दूसरों से सुना था कि बुद्ध अक्सर खन्धों (घटक पदार्थों) की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का उपदेश देते हैं। इसलिए उन्हें लगा कि यदि वे उन्हें देख लें तो उनकी सुंदरता की निंदा करेंगे; और ऐसा सोचकर वे बुद्ध से दूर रहीं। परन्तु मठ से लौट रही अन्य भिक्षुणियाँ बुद्ध की प्रशंसा करती रहीं; इसलिए एक दिन उन्होंने अन्य भिक्षुणियों के साथ मठ जाने का निश्चय किया।

बुद्ध ने उसे देखा और मन ही मन सोचा, "काँटे को काँटे से ही निकाला जा सकता है; रूपानंद अपने शरीर से बहुत आसक्त है और अपनी सुंदरता पर बहुत घमंड करती है, इसलिए मुझे सुंदरता के द्वारा ही उसका यह घमंड और आसक्ति दूर करनी होगी।" अतः, अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने लगभग सोलह वर्ष की एक अत्यंत सुंदर स्त्री की छवि को अपने पास बैठा दिया, जो उन्हें पंखा कर रही थी। यह युवती केवल रूपानंद और बुद्ध को ही दिखाई दे रही थी। जब रूपानंद ने उस युवती को देखा, तो उन्हें एहसास हुआ कि उस युवती के सामने वे स्वयं एक सुंदर सफेद हंस के सामने एक बूढ़े, बदसूरत कौवे जैसी थीं। रूपानंद ने उस युवती को ध्यान से देखा और उन्हें वह बहुत पसंद आई। फिर उन्होंने दोबारा देखा और यह देखकर आश्चर्यचकित रह गईं कि युवती की आयु लगभग बीस वर्ष हो गई थी। उन्होंने बार-बार बुद्ध के बगल में बैठी उस आकृति को देखा और हर बार उन्होंने पाया कि युवती की आयु बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार, वह लड़की एक वयस्क महिला में, फिर एक अधेड़ महिला में, और अंत में एक बहुत बूढ़ी महिला में परिवर्तित हो गई। रूपानंद ने यह भी देखा कि एक नई छवि के प्रकट होने के साथ ही पुरानी छवि लुप्त हो जाती थी, और उन्हें यह अहसास हुआ कि शरीर में निरंतर परिवर्तन और क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है। इस अहसास के साथ ही शरीर के प्रति उनका आसक्ति कम हो गई। इसी बीच, बुद्ध के पास की आकृति एक बूढ़ी, जीर्ण-शीर्ण महिला में परिवर्तित हो गई, जो अब अपने शारीरिक कार्यों पर नियंत्रण नहीं रख पा रही थी और अपने ही मल में लोट रही थी। अंत में, उसकी मृत्यु हो गई, उसका शरीर फूल गया, नौ छिद्रों से मवाद और कीड़े निकलने लगे और कौवे और गिद्ध मृत शरीर को नोचने की कोशिश कर रहे थे।

यह सब देखकर रूपानंदा ने मन ही मन सोचा, "यह युवती बूढ़ी होकर कमजोर हो गई और मेरी आँखों के सामने इसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। उसी प्रकार मेरा शरीर भी बूढ़ा होकर कमजोर हो जाएगा; यह रोगग्रस्त होगा और मैं भी मर जाऊँगी।" इस प्रकार, उन्हें खन्धों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी समय, बुद्ध ने खन्धों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में बताया, और रूपानंदा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 150)

यत्थ जरा च मक्कू च मानो च मक्खो च ओहितो
मानसलोहिता लेपनं अथिणं कटं नागरं

यत्थ : कहाँ; जरा च : क्षय; मैक्कु सीए : मृत्यु; मनो मक्खो च : अभिमान भी और कृतघ्नता भी; ओहिटो [ओहिता]: जमा किए गए हैं; मानसलोहिता लेपनं [लेपना]: मांस और रक्त से सना हुआ; अथिहनं [अथिहिना]: हड्डियों का; काटां [काटा]: बनाया गया है; नागराँ [नागारा]: एक शहर

शरीर हड्डियों से बना होता है जो इसकी संरचना का निर्माण करती हैं। इस नंगी संरचना को प्लास्टर से ढककर मांस और रक्त से भर दिया जाता है। इस किले के भीतर क्षय, मृत्यु, अहंकार और कृतघ्नता समाहित हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 150)

मक्खो : कृतघ्नता; निंदा। दूसरों को नीचा दिखाने और उनकी अच्छाइयों पर कलंक लगाने की प्रवृत्ति को मक्खो कहा जाता है । इस अभिव्यक्ति से दूसरों के उच्चतम गुणों को भी नकारने के बुरे गुण का तात्पर्य है। आम लोग और धर्मगुरु दोनों ही एक-दूसरे के द्वारा किए गए अच्छे कार्यों को नकारने की इस प्रवृत्ति के दोषी हो सकते हैं। यहाँ इसे एक सामान्य मानवीय दोष माना गया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 151

(धम्मपद 150) <<<< पिछला || धम्मपद 151 || अगला >>>> (धम्मपद 152)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 151 - मल्लिकादेवी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 151 - मल्लिकादेवी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Jiranti ve rajaratha sucitta
atho sarirampi jaram upeti
सतांका धम्मो(1) न जराम उपेति
संतो हे सभ्भि पवेदयन्ति।

श्लोक 151 : अलंकृत राजसी रथ भी घिस जाते हैं, शरीर भी वृद्ध हो जाता है, परन्तु गुणी व्यक्तियों का धर्म कभी नष्ट नहीं होता। गुणी लोग आपस में यही कहते हैं।

---

1. धम्मो/धम्म: नौ पारलौकिक तत्व, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण, साथ ही अच्छे कर्म या अच्छे गुण।

रानी मल्लिका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) की रानी मल्लिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (151) कहा।
एक दिन मल्लिका स्नानघर में चेहरा, हाथ और पैर धोने गई। उसका पालतू कुत्ता भी अंदर आ गया; जब वह पैर धोने के लिए झुकी, तो कुत्ते ने उसके साथ यौन संबंध बनाने की कोशिश की, और रानी को यह देखकर हंसी आ रही थी और कुछ हद तक खुशी भी हो रही थी। राजा ने अपने शयनकक्ष की खिड़की से यह अजीब घटना देखी। जब रानी अंदर आई, तो उसने गुस्से से रानी से कहा, "अरे, दुष्ट स्त्री! तुम स्नानघर में उस कुत्ते के साथ क्या कर रही थी? जो मैंने अपनी आँखों से देखा है, उसे मत झुठलाओ।" रानी ने उत्तर दिया कि वह केवल चेहरा, हाथ और पैर धो रही थी, इसलिए उसने कुछ भी गलत नहीं किया था। फिर उसने आगे कहा, "लेकिन, वह कमरा बहुत अजीब है। अगर कोई उस कमरे में जाता है, तो इस खिड़की से देखने वाले को दो लोग दिखाई देंगे। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, हे राजा, तो कृपया उस कमरे में जाइए और मैं इस खिड़की से देख लूंगी।"
तो राजा स्नानघर में चले गए। जब वे बाहर आए, तो मल्लिका ने राजा से पूछा कि उन्होंने उस कमरे में एक बकरी के साथ ऐसा दुराचार क्यों किया। राजा ने इससे इनकार किया, लेकिन रानी ने ज़ोर देकर कहा कि उसने उन्हें अपनी आँखों से देखा था। राजा हैरान थे, लेकिन अपनी कम बुद्धि के कारण उन्होंने रानी की बात मान ली और यह निष्कर्ष निकाला कि स्नानघर वाकई बहुत अजीब था।
उस समय से रानी को राजा से झूठ बोलने और उस पर बकरी के साथ दुर्व्यवहार का आरोप लगाने के लिए गहरा पश्चाताप हुआ। इसलिए, मृत्यु के निकट आने पर भी वह अपने पति के साथ किए गए महान और अद्वितीय दान-पुण्य के बारे में भूल गई और केवल यही याद करती रही कि उसने उनके साथ अन्याय किया था। परिणामस्वरूप, जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ। उसके दाह संस्कार के बाद, राजा ने बुद्ध से यह पूछने का इरादा किया कि उसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने राजा की भावनाओं को ठेस न पहुँचाने की इच्छा की और यह भी नहीं चाहा कि राजा धम्म में अपना विश्वास खो दे। इसलिए उन्होंने इच्छा की कि यह प्रश्न उनसे न पूछा जाए, और राजा पसेनदी (प्रसेनजित) बुद्ध से यह प्रश्न पूछना भूल गए।
हालांकि, निरय (नरक) में सात दिन बिताने के बाद, रानी का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। उस दिन, बुद्ध राजा पसेनादि के महल में भिक्षा मांगने गए; उन्होंने राजसी रथों के आश्रयगृह में विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। भिक्षा देने के बाद, राजा ने बुद्ध से पूछा कि रानी मल्लिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मल्लिका का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "उनका पुनर्जन्म और कहाँ हो सकता था? वे हमेशा अच्छे कर्म करने के बारे में सोचती रहती थीं, हमेशा इस बारे में सोचती रहती थीं कि अगले दिन बुद्ध को क्या अर्पित करें। आदरणीय! अब जब वे चली गई हैं, तो मैं, आपका विनम्र शिष्य, समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ।" बुद्ध ने उनसे कहा, "अपने पिता और दादा के इन रथों को देखो; ये सब घिस-पिट कर बेकार पड़े हैं; तुम्हारा शरीर भी ऐसा ही है, जो मृत्यु और क्षय के अधीन है। केवल पुण्य का धर्म ही क्षय से मुक्त है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 151 : अलंकृत राजसी रथ भी घिस जाते हैं, शरीर भी वृद्ध हो जाता है, परन्तु गुणी व्यक्तियों का धर्म कभी नष्ट नहीं होता। गुणी लोग आपस में यही कहते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
रानी मल्लिका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी की रानी मल्लिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन मल्लिका स्नानघर में चेहरा, हाथ और पैर धोने गईं। उनका पालतू कुत्ता अंदर आ गया; जब वह पैर धोने के लिए झुकीं, तो कुत्ते ने उनके साथ यौन संबंध बनाने की कोशिश की, और रानी को यह देखकर हंसी आ रही थी और कुछ हद तक खुशी भी हो रही थी। राजा ने अपने शयनकक्ष की खिड़की से यह अजीब घटना देखी। जब रानी अंदर आईं, तो उन्होंने क्रोधित होकर रानी से कहा, "अरे, दुष्ट स्त्री! तुम स्नानघर में उस कुत्ते के साथ क्या कर रही थीं? जो मैंने अपनी आँखों से देखा है, उसे मत झुठलाओ।" रानी ने उत्तर दिया कि वह केवल चेहरा, हाथ और पैर धो रही थीं, इसलिए उन्होंने कुछ भी गलत नहीं किया था। फिर उन्होंने आगे कहा, "पर, वह कमरा बहुत अजीब है। अगर कोई उस कमरे में जाए, तो इस खिड़की से देखने वाले को दो लोग दिखाई देंगे। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, हे राजा, तो कृपया उस कमरे में जाइए और मैं इस खिड़की से देख लूंगी।"
तो राजा स्नानघर में चले गए। जब वे बाहर आए, तो मल्लिका ने राजा से पूछा कि उन्होंने उस कमरे में एक बकरी के साथ ऐसा दुराचार क्यों किया। राजा ने इससे इनकार किया, लेकिन रानी ने जोर देकर कहा कि उन्होंने उन्हें अपनी आँखों से देखा था। राजा हैरान थे, लेकिन अपनी कम बुद्धि के कारण उन्होंने रानी की बात मान ली और यह निष्कर्ष निकाला कि स्नानघर वाकई बहुत अजीब था।
उस समय से रानी को राजा से झूठ बोलने और उस पर बकरी के साथ दुर्व्यवहार का आरोप लगाने के लिए गहरा पश्चाताप हुआ। इसलिए, मृत्यु के निकट आने पर भी वह अपने पति के साथ किए गए महान और अद्वितीय दान-पुण्य के बारे में भूल गई और केवल यही याद करती रही कि उसने उनके साथ अन्याय किया था। परिणामस्वरूप, जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ। उसके अंतिम संस्कार के बाद, राजा ने बुद्ध से यह पूछने का इरादा किया कि उसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध उसकी भावनाओं को ठेस न पहुँचाना चाहते थे और यह भी नहीं चाहते थे कि राजा धम्म में अपना विश्वास खो दे। इसलिए उन्होंने इच्छा की कि यह प्रश्न उससे न पूछा जाए और राजा पसेनादि बुद्ध से यह प्रश्न पूछना भूल गया।
हालांकि, निरय में सात दिन बिताने के बाद, रानी का तुषिता देवलोक में पुनर्जन्म हुआ। उस दिन, बुद्ध राजा पसेनादि के महल में भिक्षा मांगने गए; उन्होंने राजसी रथों के आश्रयगृह में विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। भिक्षा देने के बाद, राजा ने बुद्ध से पूछा कि रानी मल्लिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मल्लिका का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "उनका पुनर्जन्म और कहाँ हो सकता था? वे हमेशा अच्छे कर्म करने के बारे में सोचती रहती थीं, हमेशा इस बारे में सोचती रहती थीं कि कल बुद्ध को क्या अर्पित करें। आदरणीय! अब जब वे चली गई हैं, तो मैं, आपका विनम्र शिष्य, समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ।" बुद्ध ने उनसे कहा, "अपने पिता और दादा के इन रथों को देखो; ये सब घिस-पिट कर बेकार पड़े हैं; तुम्हारा शरीर भी ऐसा ही है, जो मृत्यु और क्षय के अधीन है। केवल सद्गुणी का धर्म ही क्षय से मुक्त है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 151)
सुचित्ता राजरथ वे जिरन्ति अथो शरीरं अपि जरां उपेति ,
सतां धम्मो च जरां न उपेति , संतो सभी हवे पवेदयन्ति ।
सुचित्ता : अच्छी तरह से सजाया गया; राजरथ : शाही गाड़ियाँ; वे जिरन्ति : निश्चित रूप से विघटित; एथो : इसी तरह; शरीरं अपि : शरीर भी: जरां [जरा]: क्षय; उपेति : पहुँचता है; सतां [सता]: महान व्यक्ति का (बुद्ध की तरह); धम्मो [धम्म]: शिक्षण; सीए जरां [जरा]: क्षय; न उपेति : नहीं पहुंचता; सैंटो [सांता]: वे सर्वोच्च अनुशासित व्यक्ति; सब्भि : अच्छे लोगों के साथ; है : बिना किसी संदेह के; पवेद्यन्ति : संवाद करें
राजाओं के रथ जैसी सुंदर और आकर्षक वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य का शरीर भी क्षीण हो जाता है। परन्तु सत्य का अनुभव कभी नष्ट नहीं होता। शांत मन वाले ही इस सत्य का अनुभव करते हैं।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 151)
जबकि सब कुछ क्षय होकर नष्ट हो जाता है, यदि कोई अविचलित मन बनाए रख सकता है, तो वह शांति ही एकमात्र स्थिर अनुभव है जो केवल उन्हीं लोगों को ज्ञात है जिन्होंने निर्वाण की शांति प्राप्त कर ली है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 152

(धम्मपद151) <<<< पिछला|| धम्मपद152 ||अगला >>>> (धम्मपद 153 और 154(1))

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 152 - उत्तरादये थेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 152 - लालूदायी थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
अप्पसुतायम पुरिसो
balibaddova grati
mamsani tassa vaddhanti
panna tassa na vaddhati.

———————————————————————

श्लोक 152 : यह अल्पज्ञानी व्यक्ति बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है; केवल उसका शरीर बढ़ता है, उसकी बुद्धि नहीं।

———————————————————————

थेरा लालुदायि (या कलुदायि) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (152) का उच्चारण लालुदायी के संदर्भ में किया, जो अल्प बुद्धि वाला एक थेरा था।
लालुदयी एक मंदबुद्धि और अत्यंत भुलक्कड़ भिक्षु थे। वे चाहे कितनी भी कोशिश कर लें, कभी भी अवसर के अनुरूप बात नहीं कर पाते थे। इस प्रकार, शुभ और आनंदमय अवसरों पर वे दुःख की बातें करते थे, और दुःखमय अवसरों पर प्रसन्नता और आनंद की बातें करते थे। इसके अलावा, उन्हें कभी इस बात का एहसास भी नहीं हुआ कि वे अवसर के अनुरूप बातें नहीं कर रहे हैं। जब बुद्ध ने उन्हें इस बारे में बताया, तो उन्होंने कहा, "लालुदयी जैसा कम ज्ञान वाला व्यक्ति बैल के समान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 152 : यह अल्पज्ञानी व्यक्ति बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है; केवल उसका शरीर बढ़ता है, उसकी बुद्धि नहीं।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय कालुदाई की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अल्प बुद्धि वाले भिक्षु कालुदाई के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कहा जाता है कि पूज्य कालुदायी किसी ऐसे घर में जाते थे जहाँ लोग कोई त्योहार मना रहे होते थे और वे अंत्येष्टि के लिए उपयुक्त श्लोक पढ़ते थे, जैसे, "वे दीवारों के बाहर खड़े हैं।" इसी प्रकार वे किसी ऐसे घर में जाते थे जहाँ अंत्येष्टि चल रही होती थी, और "वे दीवारों के बाहर खड़े हैं" कहने के बजाय वे त्योहार के ऐसे श्लोक पढ़ते थे, जैसे, "दान और भक्ति।" या फिर वे रत्न सूत्र पढ़ते थे, जिसमें ऐसे श्लोक होते हैं, "इस लोक में या परलोक में जो भी धन-संपत्ति है।"
दरअसल, वह जहाँ भी जाता, चाहे उसका इरादा कुछ और कहने का ही क्यों न होता, वह हमेशा कुछ और ही कह देता। जिन भिक्षुओं ने उसे बोलते सुना, उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई और कहा, “हे पूज्यवर, कालुदायी के उत्सवों या अंत्येष्टि स्थलों पर जाने का क्या लाभ? जहाँ सही बात कहनी चाहिए, वहाँ वह हमेशा गलत बात कहता है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब उसने ऐसा कहा है; पिछले जन्म में भी वह हमेशा सही बात के बजाय गलत बात ही कहता था।” इतना कहकर उन्होंने यह कथा सुनाई।
बहुत समय पहले, बनारस में अग्गिदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसका एक पुत्र था जिसका नाम सोमदत्त कुमार था और वह राजा की सेवा करता था। सोमदत्त राजा का प्रिय और प्यारा था। एक दिन उसके दो बैलों में से एक मर गया। तब ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा, “प्रिय सोमदत्त, राजा से एक बैल मांगो और उसे मेरे पास ले आओ।” सोमदत्त ने मन ही मन सोचा, “यदि मैं राजा से ऐसी विनती

करूंगा, तो वह सोचेगा कि मैं उससे अपने संबंध का दुरुपयोग कर रहा हूं।" इसलिए उसने अपने पिता से कहा, "प्रिय पिता, आप स्वयं जाइए और राजा से मांगिए।" "ठीक है, प्रिय पुत्र, मुझे भी साथ ले चलो।"
फिर उसने अपने पिता को निम्नलिखित श्लोक सिखाया:
हे महामहिम राजा, मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं अपना खेत जोतता था;
लेकिन उन दोनों में से एक मर चुका है; कृपया मुझे दूसरा प्रदान करें, योद्धा-राजकुमार।
लेकिन जब वह राजा के पास गया तो उसने यह कहा:
हे महामहिम राजा, मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं अपना खेत जोतता था;
लेकिन उन दोनों में से एक मर चुका है; कृपया मेरे दूसरे योद्धा-राजकुमार को ले आओ।
उस समय मूर्ख ब्राह्मण कालूदाई था।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 152)
अप्पासुतो अयं पुरिसो बलिवद्दो इव जिरति
तस्स मंसानि वन्धन्ति तस्स पन्ना न वन्धति
अप्पासुतो [अप्पासुता]: जिसने शायद ही सुना हो; अयं पुरिसो [पुरिसा]: यह व्यक्ति; बालिवद्दो इवा : बैल की तरह; जिरति : बढ़ता है; तस्सा : उसका; मांसानि : मांसपेशियाँ; वन्धन्ति : बढ़ो; तस्सा : उसका; पन्ना : स्वयं को समझना; न वधति : नहीं बढ़ता।
जिस व्यक्ति ने शिक्षा को मुश्किल से ही सुना है, उसका शरीर मोटे बैल की तरह बढ़ता है। यद्यपि उसका शरीर बढ़ता है, पर उसकी आत्म-समझ नहीं बढ़ती।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 152)
अप्पस्सुतो : कम ज्ञान वाला व्यक्ति; शाब्दिक अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने बहुत कम 'सुना' हो। बुद्ध के समय में, ज्ञान मुख्यतः बुद्धिमान लोगों की बातें सुनकर ही प्राप्त होता था।
बलिवाड्डो : बैल: उसकी वृद्धि और परिपक्वता का माप उसका शारीरिक आकार है।
maṃsāni : उसकी मांसपेशियां बढ़ती हैं; उसका दिमाग बढ़ता है।
paññā tassa navø�ḍhati : उसका आत्मज्ञान नहीं बढ़ता।
पन्ना : समझ, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि। पन्ना का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हालांकि, बौद्ध धर्म में आंतरिक अनुभव की विशिष्ट गहन जागरूकता, मोक्ष के अष्टमार्ग (मग्ग) का एक हिस्सा है। यह अंतर्दृष्टि (विपस्सना) है, अर्थात् अनुभव की वह विवेकी जागरूकता, जो संतत्व के चार चरणों और निर्वाण की प्राप्ति कराती है, और जिसमें अस्तित्व के सभी रूपों की अनित्यता, दुख और निराकारता की गहरी समझ शामिल है।
इसके उत्पन्न होने की स्थिति के संबंध में, ज्ञान को तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है: चिंतन पर आधारित ज्ञान, अधिगम पर आधारित ज्ञान और मानसिक विकास पर आधारित ज्ञान।
'विचार पर आधारित' वह ज्ञान है जिसे किसी व्यक्ति ने दूसरों से सीखे बिना, अपने स्वयं के चिंतन के माध्यम से अर्जित किया है।
'सीखने पर आधारित' वह ज्ञान है जो किसी व्यक्ति ने दूसरों से सुना है और इस प्रकार सीखने के माध्यम से प्राप्त किया है।
'मानसिक विकास पर आधारित' वह ज्ञान है जो किसी व्यक्ति ने मानसिक विकास के माध्यम से किसी न किसी रूप में प्राप्त किया है और जो पूर्ण समझ के स्तर तक पहुंच चुका है।
पन्ना पांच मानसिक क्षमताओं में से एक है, तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में से एक है, और पारमिता (अतींद्रिय प्राप्ति) के लिए आवश्यक शर्तों में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 153,154

(धम्मपद 152) <<<< पिछला || धम्मपद 153 और 154(1) || अगला >>>> (धम्मपद 155 और 156)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 153 और 154(1) - उदान वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 153 और 154(1) - उदान वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अनेकाजतिसंसारम
sandhavissam anibbisam
gahakaram gavesanto(2)
dukkha jati punappunam(3)
Gahakaraka ditthosi(4)
puna geham na kahasi(5)
sabba te phasuka bhagga(6)
gahakotam visankhatam(7)
visankharagatam cittam(8)
tanhanam khayamajjhaga(9)

श्लोक 153 : मैं, जो इस शरीर (घर) के निर्माता की खोज में भटकता रहा हूँ, ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त करने में असफल रहा हूँ, जिससे मैं उसे पा सकूँ, और संसार में अनगिनत जन्मों से भटकता रहा हूँ। बार-बार जन्म लेना वास्तव में दुःख है!

श्लोक 154 : हे गृह निर्माता! तुम प्रकट हो चुके हो, अब तुम मेरे लिए कोई गृह नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट चुकी हैं, तुम्हारा छत का तख़्ता नष्ट हो चुका है। मेरा मन निर्वाण (यानी निर्वाण) की अवस्था में पहुँच चुका है; व्यथा का अंत (अरहत्त फल) हो चुका है।

---

1. श्लोक 153 और 154 के फुटनोट: ये दो श्लोक बुद्ध द्वारा ज्ञान प्राप्ति के क्षण में अनुभव किए गए तीव्र और उदात्त आनंद की अभिव्यक्ति हैं; इस प्रकार, वे उदात्त अर्थ और गहरी भावना के भंडार से परिपूर्ण हैं।

2. gahakaram gavesanto: शाब्दिक अर्थ, "मैं जिसने घर के निर्माता को खोजने का प्रयास किया है" घर शरीर है, निर्माता लालसा (तन्हा) है। टीका में दिए गए श्लोक (153) का अर्थ इस प्रकार है:
मैं, जो इस भवन के निर्माता की खोज में लगा हुआ हूँ, यह जानते हुए कि उन्हें केवल एक विशेष ज्ञान से ही देखा जा सकता है, दीपांकर बुद्ध की भविष्यवाणी के बाद से ही उस ज्ञान (बोधि नाना) को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ कि एक दिन मैं उनके समान बुद्ध बनूँगा। परन्तु बोधि नाना प्राप्त न कर पाने के कारण मैं लाखों जन्मों के इस अंतहीन चक्र में भटकता रहा हूँ।

3. दुःख जाति पुनप्पुनम्: बार-बार जन्म लेना दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) है। यही कारण है कि इस घर के निर्माता, बढ़ई की खोज की जा रही है।
जन्म, जो वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के साथ आता है, दु:ख है; इसीलिए मैं लगातार गृहस्थी की लालसा की तलाश में हूँ।

4. दित्तोसी: आप देखे गए हैं: मैंने अब आपको देखा है क्योंकि मैंने अपनी अंतर्दृष्टि से ज्ञान या बोधि नाना, सर्वव्यापी ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

5. पुना गेहम ना कहसी: कोई घर नहीं बनाया जाएगा: तुम इस पुनर्जन्म के चक्र में (मेरे लिए) दूसरा घर नहीं बनाओगे।

6. sabba te phasuka bhagga: All your shipments are broken: I have destroyed all the remaining defilements.

7. gahakutam visankhatam छत का पेड़ नष्ट हो गया है: मैंने अज्ञान को दूर कर दिया है।

8. विसंखरागतं चित्तम्: शाब्दिक अर्थ, मेरा मन निर्वाण को अपना विषय बनाकर, निर्वाण को प्राप्त कर चुका है।

9. तन्हानाम खयामज्जाग: व्यथा का अंत हो गया है। मैंने अरहत्त फल प्राप्त कर लिया है।

बुद्ध के उल्लासपूर्ण शब्दों से संबंधित कहानी

ये दो श्लोक बुद्ध द्वारा परम ज्ञान प्राप्ति (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) के क्षण में अनुभव किए गए गहन और उदात्त आनंद की अभिव्यक्ति हैं। पूज्य आनंद के अनुरोध पर जेतवन मठ में इन श्लोकों का पाठ किया गया था।

शाक्यों राज्य के राजा सुद्धोदन और रानी माया के पुत्र गौतम वंश के राजकुमार सिद्धार्थ ने उनतीस वर्ष की आयु में संसार त्याग दिया और धम्म (सत्य) की खोज में तपस्वी बन गए। छह वर्षों तक वे गंगा घाटी में विचरण करते रहे, प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं से मिले और उनके सिद्धांतों और विधियों का अध्ययन किया। उन्होंने संयमी जीवन व्यतीत किया और कठोर तपस्या का पालन किया; परन्तु उन्होंने इन सभी पारंपरिक प्रथाओं को अनुचित पाया। वे अपने तरीके से सत्य को खोजने के लिए दृढ़ थे, और अत्यधिक इंद्रिय भोग और आत्म-यातना (10) की दो चरम सीमाओं से बचकर उन्होंने मध्य मार्ग पाया जो पूर्ण शांति, निर्वाण की ओर ले जाता है। यह मध्य मार्ग (मज्झिमपतिपदा) आठ घटकों का श्रेष्ठ मार्ग है, अर्थात्, सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

इस प्रकार, एक संध्या पर, नेरंजारा नदी के किनारे एक बोधि वृक्ष (पीपल वृक्ष) के नीचे बैठे हुए, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने पैंतीस वर्ष की आयु में परम ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त किया। रात्रि के प्रथम पहर में, राजकुमार ने पूर्व जन्मों के स्मरण की शक्ति (पुब्बेनिवासनुस्सति-नाना) प्राप्त की और द्वितीय पहर में उन्होंने दिव्य दृष्टि (दिब्बचक्खु नाना) प्राप्त की। फिर, रात्रि के तृतीय पहर में उन्होंने अनुलोम और मृत्यु के क्रम में प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत का चिंतन किया। भोर होते ही, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बुद्धि और अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझ लिया। चार आर्य सत्य हैं: दुःख/पीड़ा का आर्य सत्य (दुक्खा आर्य सच्च), दुःख/पीड़ा के कारण का आर्य सत्य (दुक्खा समुदय आर्य सच्च), दुःख/पीड़ा के निवारण का आर्य सत्य (दुक्खा निरोध आर्य सच्च), और दुःख/पीड़ा के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य (दुक्खा निरोध गामिनी पतिपदा आर्य सच्च)। उनमें प्रत्येक आर्य सत्य के स्वरूप का ज्ञान (सच्चा नाना), प्रत्येक आर्य सत्य के लिए आवश्यक कर्म का ज्ञान (किच्चा नाना), और प्रत्येक आर्य सत्य के लिए आवश्यक कर्म की पूर्णता का ज्ञान (कटा नाना) भी प्रकट हुआ; और इस प्रकार, उन्होंने बुद्ध का सब्बन्नुत नाना (बोधि नाना) प्राप्त किया। उस समय से वे गौतम बुद्ध के नाम से जाने गए।

इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि जब चारों आर्य सत्य, अपने तीन पहलुओं (अर्थात बारह गुणों) के साथ, बुद्ध को पूर्णतः स्पष्ट हो गए, तभी उन्होंने मनुष्य जगत, देवों (देवदूतों) के जगत और ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के जगत में यह स्वीकार किया कि उन्होंने सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है और अतः वे बुद्ध बन गए हैं।

बुद्धत्व प्राप्ति के क्षण में,
बुद्ध ने निम्नलिखित दो श्लोक कहे:

श्लोक 153 : मैं, जो इस शरीर (घर) के निर्माता की खोज में भटकता रहा हूँ, ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त करने में असफल रहा हूँ, जिससे मैं उसे पा सकूँ, और संसार में अनगिनत जन्मों से भटकता रहा हूँ। बार-बार जन्म लेना वास्तव में दुःख है!

श्लोक 154 : हे गृह निर्माता! तुम प्रकट हो चुके हो, अब तुम मेरे लिए कोई गृह नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट चुकी हैं, तुम्हारा छत का तख़्ता नष्ट हो चुका है। मेरा मन निर्वाण (यानी निर्वाण) की अवस्था में पहुँच चुका है; व्यथा का अंत (अरहत्त फल) हो चुका है।

---

(10) कामसुखल्लिकानुयोग और अट्टकियामाथानुयोग।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय आनंद के श्लोक: यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने बोधि वृक्ष (ज्ञान के वृक्ष) के चरणों में बैठकर गंभीर प्रवचन (उदान) के रूप में दिया था और बाद में एक प्रश्न के उत्तर में आदरणीय आनंद को सुनाया गया था।

सूर्य अस्त होने से पहले, बोधि वृक्ष की तलहटी में बैठे बुद्ध ने मारा की शक्ति पर विजय प्राप्त की; प्रथम पहर में उन्होंने पूर्व की अवस्थाओं को ढकने वाले अंधकार को दूर भगाया; मध्य पहर में उन्होंने अलौकिक दृष्टि प्राप्त की; और अंतिम पहर में, प्राणियों के प्रति दया भाव से, आश्रित उत्पत्ति पर ध्यान केंद्रित करके और उस पर आगे-पीछे ध्यान लगाकर, सूर्योदय के समय उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने असंख्य बुद्धों के समान एक गंभीर घोषणा की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 153) पुनप्पुनं जाति दुक्खा गहकारकम् गवेसंतो
अनेकजति संसारं अनिब्बिसं संधाविस्सां

पुनप्पुनं [पुनप्पुना]: बार-बार, लगातार; जाति : जन्म; दुःख : दुःख से भरा; गहकारकं [गहकारक]: (इस प्रकार) घर बनाने वाला; गेवेसन्तो [गेवेसन्त]: खोज; अनेकजाति संसारं [संसार]: अस्तित्व के इस प्रतीत्यतः अंतहीन चक्र में अनेक जन्म; अनिब्बिसं [अनिबिस]: बिना सामना किए; संधाविस्सं [संधाविस्स]: यात्रा की

यह यात्रा, यह जीवनचक्र, कई जन्मों से गुज़र चुका है, लेकिन सृष्टिकर्ता, संसार और स्वयं के सृजनकर्ता से मिले बिना, उनकी खोज में भटकता रहा है। क्योंकि बार-बार जन्म लेना कष्टदायी होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 154) गहकारक दिथो असि । पुना गेहं न कहासि
ते सब्बा फासुका भग्गा गहकुटं विसंखितं
चित्तं विसंखरागतं । तन्हाणं खयं अज्झागा
गहकारक : हे गृह निर्माता; दिठ्ठो असि : मैंने तुम्हें फिर से देखा है ; पुना : एक बार फिर; गेहं [गेह]: गृह; न काहसि : नहीं बनाएगा; ते : तुम्हारा; सब्बा फासुका : सभी आधार; भग्गा : नष्ट हो गए; गहकूत [गहकूत]: गृह की संरचना; विसंखित [विसंखित]: ध्वस्त हो गई; चित्त [चित्त]: मन; विसंखारगत [विसंखारगत]: बद्धता समाप्त हो गई; तन्हानां खयं [खय]: इच्छा का अंत; अज्जगा : प्राप्त हो गया
हे निर्माता, हे सृष्टिकर्ता, अंततः आप प्रकट हुए। आप इस घर और स्वयं को फिर कभी नहीं बनाएंगे। आपके सभी आधार नष्ट हो गए हैं; संरचना ध्वस्त हो गई है। मन अब बद्ध नहीं है, इच्छा समाप्त हो गई है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 153-154) विशेष टिप्पणी। अपने ज्ञानोदय के दिन ही, भोर में बुद्ध ने आनंद का यह स्तुतिगान (उदान) किया, जो उनकी दिव्य नैतिक विजय और उनके आंतरिक आध्यात्मिक अनुभव का सजीव वर्णन करता है। उन्हें इस संसार यात्रा पर विवश होना पड़ा और फलस्वरूप कष्ट भोगना पड़ा, क्योंकि वे उस वास्तुकार को नहीं खोज सके जिसने इस शरीर और आत्मा का निर्माण किया था। अपने अंतिम जन्म में, अपनी विचरण यात्रा के दौरान, जो उन्होंने अत्यंत विकसित कर ली थी, एकांत ध्यान में लीन रहते हुए, अथक खोज के बाद, उन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि से उस मायावी वास्तुकार को खोज निकाला जो बाहर नहीं, बल्कि उनके अपने हृदय की गहराई में निवास करता था। यह बोध और कल्पना की मानसिक प्रक्रिया (संस्कार) और अस्तित्व की बाध्यकारी इच्छा (भव तन्हा) ही थी जो सृष्टिकर्ता, वास्तुकार, निर्माता थी, जो सभी में अंतर्निहित एक मानसिक प्रक्रिया है। जो स्वयं द्वारा सृजित किया जाता है, उसे स्वयं ही नष्ट किया जा सकता है। वास्तुकार की खोज मानसिक प्रक्रिया की आत्मनिरीक्षणात्मक जागरूकता है, जिसने प्रक्रिया को रोककर अर्हतत्व की प्राप्ति कराई। इन श्लोकों में इसे 'इच्छा का अंत' कहा गया है।
स्वयं निर्मित इस घर का आधार प्रेरणा है। यह संरचना मानसिक संरचना (संस्कार) है। इस प्रक्रिया के प्रति सचेत होकर संरचना के टूटने से घर का पूर्णतः विध्वंस हो जाता है।
घर के विध्वंस के साथ ही मन निर्वाण की अवस्था प्राप्त कर लेता है। यहाँ बुद्ध अपने अतीत के कष्टमय कष्टों को स्वीकार करते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि पुनर्जन्म मात्र एक विश्वास नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म के अभ्यास का वास्तविक आधार है। यही वह समस्या है जिसे बुद्ध ने समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए हल करने का निश्चय किया था।
tanhānaṃ khayaṃ ajjhagā : शाब्दिक अर्थ है तृप्ति की समाप्ति, जो निर्वाण है, यानी अमरता।
निर्वाण बौद्ध धर्म का सर्वोच्च लक्ष्य है ।
जातक टीका में वर्णित है कि बोधिसत्व ने अपने जन्म के समय तपस्वी सुमेध के रूप में इस प्रकार चिंतन किया:
“यद्यपि दुख है ही,
फिर भी खुशी भी पाई जा सकती है।
अतः, यद्यपि वास्तव में अस्तित्व है,
अस्तित्वहीनता की खोज की जानी चाहिए।
"भले ही गर्मी हो,
फिर भी, सुखद शीत ऋतु भी पाई जाती है।
अतः, यद्यपि त्रिविध अग्नि विद्यमान है,
इसी प्रकार निर्वाण की खोज करनी चाहिए।
“यद्यपि बुराई मौजूद है,
जो अच्छा है, वह भी पाया जाता है।
तो, यह सच है कि जन्म का अस्तित्व है।
जो जन्म से संबंधित नहीं है, उसकी खोज करनी चाहिए।
पाली शब्द निब्बाना (संस्कृत — निर्वाण) ' न ' और ' वान ' से मिलकर बना है। न एक ऋणात्मक कण है। वान का अर्थ है गति। “इसे निब्बाना इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह गति करने की उस बाध्यकारी इच्छा (नि) का अभाव है , जो किसी जीव की उस उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया है जिसे वान कहा जाता है ।” जब तक व्यक्ति इस इच्छा से प्रेरित रहता है, तब तक वह नए कर्मों का संचय करता रहता है, जो किसी न किसी रूप में जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र को जारी रखते हैं। जब इस इच्छा के सभी रूप समाप्त हो जाते हैं, तो प्रजनन कर्म शक्तियां कार्य करना बंद कर देती हैं, और व्यक्ति निब्बाना प्राप्त कर लेता है , जिससे जन्म और मृत्यु का चक्र रुक जाता है। बौद्ध धर्म में मुक्ति का अर्थ है जीवन और मृत्यु के निरंतर चक्र को रोकना।

निर्वाण को कामवासना (लोभ), घृणा (दोष) और मोह (मोह) के बंधनों के नाश के रूप में भी समझाया गया है । बुद्ध कहते हैं, “सारा संसार ज्वालाओं में घिरा है। यह किस अग्नि से प्रज्वलित है? कामवासना, घृणा और मोह की अग्नि से; जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा की अग्नि से यह प्रज्वलित है।” एक अर्थ में, निर्वाण को इन ज्वालाओं के नाश के रूप में समझा जा सकता है। निर्वाण इन ज्वालाओं के नाश के सिवा कुछ नहीं है। ज्वालाओं का नाश होना निर्वाण प्राप्त करने का साधन नहीं है , बल्कि यह स्वयं निर्वाण का लक्ष्य है।

कुछ लेखक यह कहने में संकोच करते हैं कि निर्वाण शून्यता है। वे बौद्ध धर्म में निहित 'शून्यता' (सुञ्ञता) की सर्वोपरि अवधारणा को भूल जाते हैं। वे निर्वाण में भी किसी न किसी चीज़ की लालसा रखते हैं। परन्तु जब तक हम 'कुछ भी न चाहना' नहीं, तब तक हम निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते। यदि निर्वाण शून्यता है, तो यह आकाश के समान होना चाहिए । आकाश और निर्वाण दोनों ही शाश्वत और अपरिवर्तनीय हैं। आकाश शाश्वत है क्योंकि यह पदार्थ की अनुपस्थिति है। निर्वाण स्थान और समय दोनों से रहित है। यह कहना गलत है कि आकाश या निर्वाण 'नहीं है'। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पदार्थ के संबंध में आकाश 'है'; और दुख के संबंध में निर्वाण 'है'।

बुद्ध ने अस्तित्व के विभिन्न स्तरों की चर्चा करते हुए विशेष रूप से 'शून्यता के लोक' (आकिंचन्यातना) का उल्लेख किया है, जिसे निर्वाण से अलग समझना आवश्यक है । शून्यता का लोक किसी अनुपस्थिति का नहीं, बल्कि शून्यता की अनुभूति का है।

इस चित्र में बुद्ध स्वयं को एक गृह निर्माता द्वारा निर्मित घर के रूप में वर्णित करते हैं। गृह निर्माता इन श्लोकों में तृष्णा (तन्हा) से स्वयं को जोड़ते हैं। इस प्रकार के जुड़ाव का कारण यह है कि बुद्ध के सिद्धांत के अनुसार, तृष्णा ही वह कारक है जो जन्म-मृत्यु के चक्र में बार-बार जन्म लेने का कारण बनती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 155,156

———————————————————————

(धम्मपद 153 और 154(1)) <<<< पिछला || धम्मपद 155 और 156 || अगला >>>> (धम्मपद 157)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 155 और 156 - महाधनसेट्ठिपुत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 155 और 156 - महाधनसेट्ठिपुत्त वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

अचरित्वा ब्रह्मचर्यम
aladdha yobbane dhanam
जिन्नाकोन्कावा झायंती
khinamaccheva pallale.
अचरित्वा ब्रह्मचर्यम
aladdha yobbane dhanam
senti capatikhinava
puranani anutthunam.

———————————————————————

श्लोक 155 : वे लोग, जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, मछली रहित सूखते हुए तालाब पर जीर्ण-शीर्ण बगुले की तरह निराशा में क्षीण हो जाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 156 : वे लोग जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, गतिहीन तीरों की तरह असहाय पड़े रहते हैं, अतीत के लिए विलाप और आहें भरते रहते हैं।

महाधना के पुत्र की कहानी

मिगदया वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (155) और (156) का उच्चारण किया, जो बारानासी के एक धनी व्यक्ति महाधना के पुत्र के संदर्भ में था।

महाधन के पुत्र ने बचपन में पढ़ाई नहीं की; जब वह वयस्क हुआ तो उसने एक धनी व्यक्ति की पुत्री से विवाह किया, जो उसकी ही तरह अशिक्षित थी। दोनों पक्षों के माता-पिता की मृत्यु के बाद, उन्हें दोनों तरफ से अस्सी करोड़ रुपये की संपत्ति विरासत में मिली और वे बहुत धनी हो गए। लेकिन वे दोनों अज्ञानी थे और उन्हें केवल पैसा खर्च करना आता था, उसे बचाना या बढ़ाना नहीं। वे बस खाते-पीते और मौज-मस्ती करते रहे, अपना सारा पैसा लुटाते रहे। जब उनका सारा पैसा खत्म हो गया, तो उन्होंने अपने खेत और बगीचे बेच दिए और अंत में अपना घर भी बेच दिया। इस प्रकार, वे बहुत गरीब और असहाय हो गए; और क्योंकि उन्हें जीविका कमाना नहीं आता था, इसलिए उन्हें भीख मांगनी पड़ी। एक दिन, बुद्ध ने धनी व्यक्ति के पुत्र को मठ की दीवार से टिके हुए, मठवासियों द्वारा दिए गए बचे हुए भोजन को खाते हुए देखा; उसे देखकर बुद्ध मुस्कुराए।

आदरणीय आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, इस अत्यंत धनी व्यक्ति के पुत्र को देखो; इसने व्यर्थ जीवन, लक्ष्यहीन, सुखमय जीवन जिया है। यदि उसने अपने जीवन के प्रथम चरण में ही धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह उच्च कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह अरहत होता और उसकी पत्नी अनागामी होती। यदि उसने अपने जीवन के द्वितीय चरण में धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह द्वितीय कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह अनागामी होता और उसकी पत्नी सकदागामी होती। यदि उसने अपने जीवन के तृतीय चरण में धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह तृतीय कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह सकदागामी होता और उसकी पत्नी सोतापन्न होती। परन्तु, क्योंकि उसने तीनों चरणों में कुछ भी नहीं किया, अपने जीवन में उसने अपनी सारी सांसारिक संपत्ति खो दी थी, साथ ही उसने किसी भी मगस या फलस को प्राप्त करने के सभी अवसर भी खो दिए थे।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 155 : वे लोग, जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, मछली रहित सूखते हुए तालाब पर जीर्ण-शीर्ण बगुले की तरह निराशा में क्षीण हो जाते हैं।

श्लोक 156 : वे लोग जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, गतिहीन तीरों की तरह असहाय पड़े रहते हैं, अतीत के लिए विलाप और आहें भरते रहते हैं।

अध्याय ग्यारह का अंत: बुढ़ापा (जारवग्गा)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोषाध्यक्ष के पुत्र महाधन की कहानी

इसिपताना में निवास करते समय, बुद्ध ने कोषाध्यक्ष के पुत्र महाधन (महान धन) के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि महान धन का पुनर्जन्म बनारस में अस्सी अरब की संपत्ति वाले एक परिवार में हुआ। उनके माता-पिता ने सोचा, "हमारे घर में अपार धन है, और हमारे बेटे को अपनी इच्छा के अनुसार आनंद लेने के अलावा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।" तदनुसार, उन्होंने उसे गायन और वाद्ययंत्र बजाना सिखाया, और यही उसकी एकमात्र शिक्षा थी। इसी प्रकार, उसी शहर में, अस्सी अरब की संपत्ति वाले एक परिवार में, एक बेटी का भी जन्म हुआ। उसके माता-पिता के मन में भी यही विचार आया, और उन्होंने उसे केवल नृत्य और गायन सिखाया। जब दोनों की आयु हुई, तो उनका विवाह रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ। समय बीतने के साथ, दोनों माता-पिता का देहांत हो गया, और तब उसी परिवार में अस्सी अरब की संपत्ति का दुगुना भंडार रह गया।

कोषाध्यक्ष के पुत्र की यह प्रथा थी कि वह दिन में तीन बार राजा की सेवा करने जाता था। एक दिन उस शहर में रहने वाले कुछ बदमाशों ने सोचा, "अगर यह कोषाध्यक्ष का पुत्र नशे में धुत हो जाए, तो हमारे लिए बड़ी बात होगी। चलो इसे नशे में धुत होना सिखाते हैं।" तदनुसार, उन्होंने तेज़ शराब जुटाई, भुना हुआ मांस, नमक और चीनी अपने कपड़ों के किनारों में छिपा ली, और कंद और जड़ें लेकर

एक सुविधाजनक स्थान पर बैठ गए, और उस रास्ते पर नज़र रखने लगे जिससे राजा राजमहल से आता था। जब उन्होंने राजा को आते देखा, तो वे तेज़ शराब पीने लगे, अपने मुँह में नमक और चीनी के दाने रखे, और कंद और जड़ें दाँतों में दबाकर चबाने लगे। और वे कहने लगे, "हे स्वामी, कोषाध्यक्ष के पुत्र, सौ वर्ष की आयु पाओ! आपकी कृपा से हम जी भर कर खा-पी सकें!" ये शब्द सुनकर, युवक ने अपने पीछे चलने वाले छोटे सेवक से पूछा, "ये लोग क्या पी रहे हैं?" "एक खास पेय, स्वामी।" "क्या इसका स्वाद अच्छा है?" "गुरुजी, इस संसार में इससे बढ़कर कोई पेय नहीं है।" "तो फिर," युवक ने कहा, "मुझे भी थोड़ा पीना चाहिए।" इसलिए उसने सेवक से पहले थोड़ा और फिर थोड़ा और मंगवाया, और वह सारा पी गया।

जल्द ही उन बदमाशों को पता चल गया कि उसे शराब पीने की आदत पड़ गई है। फिर वे सब उसके चारों ओर जमा हो गए। समय बीतने के साथ-साथ उसके आसपास जमा होने वाली भीड़ बढ़ती गई। वह एक बार में सौ-दो सौ सिक्के शराब पर खर्च कर देता था। कुछ समय बाद उसकी आदत बन गई कि वह जहाँ भी होता, सिक्कों का ढेर लगा लेता और शराब पीते हुए चिल्लाता, "यह सिक्का लो और मेरे लिए फूल लाओ! यह सिक्का लो और मेरे लिए इत्र लाओ! यह आदमी जुए में माहिर है, यह नाचने में, यह गाने में और यह वाद्ययंत्र बजाने में! इस आदमी को एक हजार और इस आदमी को दो हजार दो!" इस तरह वह अपना पैसा खर्च करता था।

कुछ ही समय में उसने अपना सारा 80 अरब का खजाना लुटा दिया। तब उन धूर्तों ने उससे कहा, "मालिक, आपकी सारी दौलत खत्म हो गई।" "क्या मेरी पत्नी के पास पैसा नहीं है?" "जी मालिक, उसके पास है।" "तो फिर, वह भी ले आओ।" और उसने अपनी पत्नी का पैसा भी ठीक उसी तरह उड़ा दिया। समय बीतने के साथ, उसने अपने खेत, पार्क, बगीचे और रथ बेच दिए। उसने खाने के बर्तन, चादरें, लबादे और सोफे तक बेच दिए। जो कुछ भी उसका था, उसने सब बेच दिया और उससे मिले पैसे अय्याशी में उड़ा दिए। बुढ़ापे में उसने अपना घर बेच दिया, जो उसके खानदान की संपत्ति थी। और जिन्हें उसने घर बेचा था, उन्होंने उस पर कब्जा कर लिया और उसे तुरंत बाहर निकाल दिया। तब वह अपनी पत्नी को साथ लेकर दूसरों के घरों की दीवार के पास रहने लगा। हाथ में टूटा हुआ घड़ा लिए वह भीख मांगने घूमता फिरता था। अंततः उसने दूसरों के बचे हुए भोजन को खाना शुरू कर दिया।

एक दिन वह एक विश्रामगृह के द्वार पर खड़ा था, जहाँ नौसिखियों और प्रशिक्षुओं द्वारा दिए गए भोजन के बचे हुए टुकड़े उसे दिए जा रहे थे। बुद्ध ने उसे देखा और मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। बुद्ध ने अपनी मुस्कान का कारण बताते हुए कहा, "आनंद, यहाँ इस धनवान को देखो, जो कोषाध्यक्ष का पुत्र है! इसी नगर में उसने 280 अरब का धन लुटा दिया है। अब वह अपनी पत्नी के साथ भिक्षा माँग रहा है। क्योंकि यदि उसने अपने यौवन में ही अपना धन लुटाया न होता, बल्कि व्यापार में लगा होता, तो वह इसी नगर का प्रधान कोषाध्यक्ष होता; और यदि वह संसार त्यागकर भिक्षु बन जाता, तो वह अर्हतत्व प्राप्त कर लेता, और उसकी पत्नी तृतीय मार्ग के फल में स्थापित हो जाती।"

यदि मध्य आयु में उन्होंने अपनी संपत्ति का अपव्यय न किया होता, बल्कि व्यापार में लगे होते, तो वे दूसरे कोषाध्यक्ष बन जाते; और यदि वे संसार से विमुख होकर भिक्षु बन जाते, तो उन्हें तीसरे मार्ग का फल प्राप्त हो जाता, और उनकी पत्नी दूसरे मार्ग के फल में स्थापित हो जातीं। यदि जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने अपनी संपत्ति का अपव्यय न किया होता, बल्कि व्यापार में लगे होते, तो वे तीसरे कोषाध्यक्ष बन जाते; और यदि वे संसार से विमुख होकर भिक्षु बन जाते, तो उन्हें दूसरे मार्ग का फल प्राप्त हो जाता, और उनकी पत्नी धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित हो जातीं। परन्तु अब वे गृहस्थ के धन से विमुख हो गए हैं और साथ ही धार्मिक व्यक्ति के धन से भी विमुख हो गए हैं। वे सूखे तालाब में बगुले के समान हो गए हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 155)

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा योब्बन धनं अलद्धा
खिनमच्चे पल्लेले जिन्नाकोनचा इव झायन्ति

ब्रह्मचरियं अचरित्वा : उच्चतर जीवन न जीने वाला; योब्बने : यौवन में; धनं [धन]: धन; अलद्धा : संचय न करने वाला; खीणमच्छे : मछली रहित; पल्लले : झील में; जिण्णकोंचा इव : दुबले-पतले और उड़ने में असमर्थ बगुले के समान; झायन्ती : क्षीण हो जाना

जवानी में उन्होंने उच्च आध्यात्मिक जीवन नहीं जिया। जवानी में उन्होंने धन-संपत्ति भी अर्जित नहीं की। अब वे बूढ़े और लाचार हो गए हैं। वे उन दुबले-पतले, बूढ़े और उड़ने में असमर्थ सारसों के समान हैं जो मछलीविहीन झील के किनारे आहें भरते रहते हैं। झील में मछलियाँ न होने के कारण इन सारसों को भोजन नहीं मिलता, जिससे वे दुबले-पतले हो गए हैं। मछलियाँ इसलिए गायब हो गई हैं क्योंकि दूसरे पक्षियों ने उन्हें पकड़ लिया है। बूढ़े और थके होने के कारण वे उड़ नहीं सकते। वे केवल आहें भर सकते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 156)

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा योब्बन धनं अलद्धा
चपा अतीखिना इव पुराणानि अनुत्थुनं सेन्ति

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा : उच्चतर जीवन न जीने के कारण; योब्बने : यौवन में; धनं [धन]: धन; अलद्धा : संचय न करने के कारण; चापा : धनुष से निकले तीरों के समान; आतिखीना इव : तीरों के समान (व्यर्थ तीरों के समान); पुराणानि : अतीत के गौरव के लिए; अनुत्थुनं [अनुत्थुन]: आहें भरना; सेंटी : पछतावा

जवानी में उन्होंने उच्च आध्यात्मिक जीवन नहीं जिया। जवानी में उन्होंने धन-संपत्ति भी अर्जित नहीं की। अब वे बूढ़े और लाचार हो गए हैं। वे उन दुबले-पतले, बूढ़े और उड़ने में असमर्थ सारसों के समान हैं जो मछलीविहीन झील के किनारे आहें भरते रहते हैं। झील में मछलियाँ नहीं हैं, इसलिए इन सारसों को भोजन नहीं मिल रहा है, जिससे वे दुबले-पतले हो गए हैं। मछलियाँ भी चली गई हैं क्योंकि उन्हें दूसरों ने पकड़ लिया है। बूढ़े और थके होने के कारण वे उड़ नहीं सकते। वे केवल आहें भर सकते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 155-156)

जिन्नाकोंच इव : बूढ़े, उड़ने में असमर्थ बगुले की तरह। अपनी जवानी बर्बाद कर चुके एक बूढ़े व्यक्ति की यह छवि धम्मपद में सबसे मार्मिक उदाहरणों में से एक है। जिस तालाब पर उसे निर्भर रहना पड़ता है, उसमें मछलियाँ नहीं हैं। लेकिन, बूढ़ा बगुला उड़ नहीं सकता, क्योंकि वह उड़ने में असमर्थ है। यहाँ उस वृद्ध व्यक्ति की निरर्थकता को दर्शाया गया है जिसने अपनी जवानी बर्बाद कर दी है। यह श्लोक एक ऐसी स्थिति को दर्शाता है जो सार्वभौमिक रूप से सत्य है। अधिकांश लोग अपनी जवानी को अनमोल दिनों को व्यर्थ ही गुज़ार देते हैं, बिना उस अपरिहार्य बुढ़ापे के बारे में सोचे जो उन्हें घेर लेगा। जवानी को भौतिक या आध्यात्मिक धन अर्जित किए बिना ही बीतने दिया जाता है। इस श्लोक में बुद्ध का मानवजाति को उपदेश है कि उन्हें समय के साथ-साथ समय के बीतने और जवानी के आकर्षण के शीघ्र ही लुप्त होने के प्रति सचेत होना चाहिए। तिब्बती बौद्ध विद्वान मिलारेपा ने अपनी एक गीतात्मक रचना में इस क्षणभंगुरता को बखूबी व्यक्त किया है।

यह अंश इन दो छंदों की काव्यात्मक व्याख्या के समान है:

"युवावस्था ग्रीष्म ऋतु के फूल के समान है—
अचानक यह गायब हो जाता है।
बुढ़ापा आग की तरह फैलता जाता है
खेतों के बीच से गुजरते हुए—अचानक वह आपके पीछे आ जाता है।
बुद्ध ने एक बार कहा था:
जन्म और मृत्यु
ये सूर्योदय और सूर्यास्त की तरह हैं।
अब आओ, अब जाओ।
बीमारी एक छोटे पक्षी की तरह होती है
गुलेल से घायल।
आपको नहीं पता, स्वास्थ्य और शक्ति
क्या समय आने पर वह आपको छोड़ देगा?

अध्याय 12. अत्तवग्ग : आत्मा (157-166)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 157

————————————————————————

(धम्मपद 155 और 156) <<<< पिछला|| धम्मपद157 ||अगला >>>> (धम्मपद158)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 157 - बोधिराजकुमार वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 157 - बोधिराजकुमार वत्थु

————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अटैन्स पियाम जन्ना

rakkheyya nam surakkhitam

तिन्नम अन्नतराम यमम(1)
patijaggeyya pandito.

श्लोक 157 : यदि कोई जानता है कि वह स्वयं को प्रिय है, तो उसे अपनी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। जीवन के तीनों पहरों में बुद्धिमान व्यक्ति को बुराई से सावधान रहना चाहिए।

---

1. यमन: रात को तीन पहरों में बांटा गया है। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में पहर मनुष्य के जीवन की तीन अवस्थाओं को दर्शाते हैं, अर्थात् बचपन, जवानी और बुढ़ापा।

बोधिराजकुमार की कहानी
भेषकला वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजकुमार बोधि (बोधिराजकुमार) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (157) कहा।
एक बार राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक भव्य महल बनवाया। महल बनकर तैयार होने पर उन्होंने बुद्ध को भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित किया। इस विशेष अवसर के लिए उन्होंने महल को सजाया और चार प्रकार की सुगंधों और अगरबत्तियों से महकाया। साथ ही, दहलीज से लेकर कमरे के अंदर तक फर्श पर एक लंबा कपड़ा बिछाया गया। फिर, क्योंकि उनके कोई संतान नहीं थी, राजकुमार ने गंभीर प्रतिज्ञा की कि यदि उन्हें संतान हो तो बुद्ध उस कपड़े पर पैर रखें। जब बुद्ध आए, तो राजकुमार बोधि ने आदरपूर्वक तीन बार उनसे कमरे में प्रवेश करने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध हिलने के बजाय केवल आनंद की ओर देखते रहे। आनंद उनकी बात समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से दहलीज से कपड़ा हटाने को कहा। तभी बुद्ध महल में प्रवेश कर पाए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादिष्ट और उत्तम भोजन परोसा। भोजन के बाद, राजकुमार ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने कपड़े पर पैर क्यों नहीं रखा। बुद्ध ने बदले में राजकुमार से पूछा कि क्या उन्होंने भी वह कपड़ा बिछाते समय यह गंभीर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि यदि उन्हें संतान का आशीर्वाद मिले तो बुद्ध उस पर पैर रखेंगे; राजकुमार ने सकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उससे कहा कि उनके और उनकी पत्नी के अतीत के बुरे कर्मों के कारण उन्हें कोई संतान नहीं होगी। फिर बुद्ध ने उन्हें उनके अतीत की कहानी सुनाई।
अपने पिछले जन्मों में से एक में, राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज़ दुर्घटना में अकेले जीवित बचे थे। वे एक सुनसान द्वीप पर पहुँच गए थे और वहाँ उन्होंने पक्षियों के अंडे, चूजे और अन्य पक्षियों को खाकर अपना जीवन व्यतीत किया, बिना किसी पश्चाताप के। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान प्राप्ति का सुख नहीं मिला। यदि उन्होंने अपने जीवन के किसी भी चरण में अपने कर्म के लिए थोड़ा सा भी पश्चाताप किया होता, तो इस जन्म में उनके एक या दो बच्चे हो सकते थे। फिर बुद्ध ने राजकुमार की ओर मुड़कर कहा, "जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे जीवन के सभी चरणों में, या कम से कम जीवन के एक चरण में, स्वयं की रक्षा करनी चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 157 : यदि कोई जानता है कि वह स्वयं को प्रिय है, तो उसे अपनी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। जीवन के तीनों पहरों में बुद्धिमान व्यक्ति को बुराई से सावधान रहना चाहिए।

प्रवचन के अंत में, बोधिराजकुमार ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बोधिराजकुमार की कहानी
भेषकाल वन में निवास करते समय, बुद्ध ने राजकुमार बोधि (बोधिराजकुमार) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक भव्य महल बनवाया। महल बनकर तैयार होने पर उन्होंने बुद्ध को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। इस विशेष अवसर के लिए उन्होंने महल को चार प्रकार की सुगंधों और अगरबत्तियों से सजाया और सुगंधित किया। साथ ही, दहलीज से लेकर कमरे के अंदर तक फर्श पर एक लंबा कपड़ा बिछाया गया। फिर, क्योंकि उनके कोई संतान नहीं थी, राजकुमार ने गंभीर प्रतिज्ञा की कि यदि उन्हें संतान हो तो बुद्ध उस कपड़े पर पैर रखें। जब बुद्ध आए, तो राजकुमार बोधि ने आदरपूर्वक तीन बार उनसे कमरे में प्रवेश करने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध हिलने के बजाय केवल आनंद की ओर देखते रहे। आनंद उनकी बात समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से दहलीज से कपड़ा हटाने का अनुरोध किया। तभी बुद्ध महल में प्रवेश कर पाए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादिष्ट और उत्तम भोजन परोसा। भोजन के बाद, राजकुमार ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने कपड़े पर पैर क्यों नहीं रखा। बुद्ध ने बदले में राजकुमार से पूछा कि क्या उन्होंने भी वह कपड़ा बिछाते समय यह गंभीर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि यदि उन्हें संतान

का आशीर्वाद मिले तो बुद्ध उस पर पैर रखेंगे; राजकुमार ने सकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उससे कहा कि उनके और उनकी पत्नी के अतीत के बुरे कर्मों के कारण उन्हें कोई संतान नहीं होगी। फिर बुद्ध ने उन्हें उनके अतीत की कहानी सुनाई।

अपने पिछले जन्मों में से एक में, राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज़ दुर्घटना में अकेले जीवित बचे थे। वे एक सुनसान द्वीप पर पहुँच गए थे और वहाँ उन्होंने पक्षियों के अंडे, चूजे और अन्य पक्षियों को खाकर अपना जीवन व्यतीत किया, बिना किसी पश्चाताप के। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान प्राप्ति का सुख नहीं मिला। यदि उन्होंने अपने जीवन के किसी भी चरण में अपने कर्म के लिए थोड़ा सा भी पश्चाताप किया होता, तो इस जन्म में उनके एक या दो बच्चे हो सकते थे। फिर बुद्ध ने राजकुमार की ओर मुड़कर कहा, "जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे जीवन के सभी चरणों में, या कम से कम जीवन के एक चरण में, स्वयं की रक्षा करनी चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 157)

सीई अत्तनं पियं जनना नं सुरक्खितं रक्खेया
पण्डितो तिन्नं अनन्तरं यमं पतिजग्गेया

ce : यदि; attānaṃ [attāna]: स्वयं; piyaṃ [piya]: जिससे स्नेह हो; jaññā : जागरूक; naṃ : वह आत्मा; surakkhitaṃ [surakkhita]: अच्छी तरह से संरक्षित; rakkheyya : सुरक्षा; paṇḍito [paṇḍita]: एक बुद्धिमान व्यक्ति; tiṇṇaṃ aññataraṃ yāmaṃ [yāma]: जीवन के तीन चरणों में से किसी एक के दौरान; paṭijaggeyya : अपनी सुरक्षा के लिए सद्गुण अर्जित करना

यदि आप जानते हैं कि आप स्वयं से प्रेम करते हैं, तो इसकी रक्षा करना ही सर्वोत्तम सुरक्षा उपाय है। आपको जीवन के तीनों चरणों में से किसी एक में स्वयं की रक्षा के उपाय अवश्य अपनाने चाहिए — चाहे वह बचपन हो, युवावस्था हो या वृद्धावस्था। सर्वोत्तम सुरक्षा उपाय सद्‌गुणों का विकास है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 157)

attānaṃ surakkhitaṃ rakkheyya : स्वयं की रक्षा करना, स्वयं को सुरक्षित रखना। यह उपदेश बौद्ध धर्म के प्रमुख लक्षण पर बल देता है। आत्म-मुक्ति स्वयं की जिम्मेदारी है। कोई और इसे आपके लिए नहीं कर सकता। बौद्ध धर्म का अन्य धार्मिक प्रणालियों से अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे समझना आवश्यक है। राइस डेविड्स ने प्रश्न पूछा: "धर्म से क्या तात्पर्य है?" इसकी उत्पत्ति अनिश्चित है। सिसरो ने एक संदर्भ में इसे re और lego से व्युत्पन्न किया और माना कि इसका वास्तविक अर्थ प्रार्थनाओं और मंत्रों का दोहराव था। एक अन्य व्याख्या इस शब्द को re और logo से व्युत्पन्न करती है और इसके मूल अर्थ को आसक्ति, निरंतर बंधन (अर्थात, निस्संदेह देवताओं से) के रूप में प्रस्तुत करती है। एक तीसरी व्युत्पत्ति इस शब्द को lex से जोड़ती है और इसे विधि-पालन करने वाली, अत्यंत कर्तव्यनिष्ठ मानसिकता के रूप में समझाती है।

बौद्ध धर्म उस अर्थ में धर्म नहीं है जिस अर्थ में इसे आमतौर पर समझा जाता है, क्योंकि यह किसी अलौकिक देवता के प्रति निष्ठा रखने वाली आस्था और पूजा की प्रणाली नहीं है। बौद्ध धर्म अपने अनुयायियों से अंधविश्वास की मांग नहीं करता। इसलिए, मात्र विश्वास को त्यागकर उसके स्थान पर ज्ञान पर आधारित विश्वास को स्थान दिया जाता है। एक बौद्ध के लिए कभी-कभार संदेह होना संभव है, जब तक कि वह संतत्व की पहली अवस्था (सोतापत्ति) को प्राप्त नहीं कर लेता, जब बुद्ध, धम्म और संघ के बारे में सभी संदेह पूरी तरह से दूर हो जाते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद ही व्यक्ति बुद्ध का सच्चा अनुयायी बनता है।

बुद्ध के अनुयायी का विश्वास किसी प्रख्यात चिकित्सक के प्रति रोगी के विश्वास या किसी शिष्य के अपने गुरु के प्रति विश्वास के समान होता है। यद्यपि बौद्ध बुद्ध को अपना अतुलनीय मार्गदर्शक और शिक्षक मानकर उनकी शरण लेते हैं, जो पवित्रता का मार्ग दिखाते हैं, फिर भी वे उनके प्रति दासतापूर्ण समर्पण नहीं करते। बौद्ध यह नहीं सोचते कि केवल बुद्ध की शरण लेने या उन पर विश्वास करने से ही उन्हें पवित्रता प्राप्त हो जाएगी। दूसरों की अशुद्धियों को दूर करना बुद्ध के भी बस में नहीं है। वास्तव में, कोई भी किसी दूसरे को न तो शुद्ध कर सकता है और न ही अपवित्र कर सकता है। बुद्ध, शिक्षक के रूप में, एक माध्यम हो सकते हैं, लेकिन हमारी शुद्धि स्वयं हमारी जिम्मेदारी है। बौद्ध किसी पुस्तक या किसी व्यक्ति के दास नहीं होते। न ही वे बुद्ध के अनुयायी बनकर अपने विचारों की स्वतंत्रता का त्याग करते हैं। उन्हें अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग करने और अपने ज्ञान को बुद्धत्व प्राप्त करने तक विकसित करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, क्योंकि सभी बुद्ध बनने की क्षमता रखते हैं। स्वाभाविक रूप से बौद्ध बुद्ध को अपना प्रमाण मानते हैं, लेकिन बुद्ध ने समस्त अधिकार का त्याग कर दिया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 158

(धम्मपद 157) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 158 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 159)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 158 - उपनन्दसाक्यपुत्तथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 158 - उपनन्दसाक्यपुत्तत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्तनामेव पथमम

patirupe nivesaye

athannamanusaseyya

na kilisseyya pandito.

श्लोक 158 : पहले स्वयं को उचित आचरण में स्थापित करना चाहिए; फिर ही दूसरों को सिखाना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को निंदा का पात्र नहीं बनना चाहिए।

थेरा उपनंद शाक्यपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शाक्य वंश के एक थेरा उपनंद के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (158) कहा।

उपनंद एक अत्यंत प्रभावशाली उपदेशक थे। वे दूसरों को लोभ न करने और सीमित इच्छाओं को रखने का उपदेश देते थे तथा संतोष, मितव्ययिता और कठोर साधनाओं के गुणों पर बड़े ही सजीव ढंग से प्रवचन देते थे। यद्यपि वे स्वयं अपने उपदेशों का पालन नहीं करते थे तथा दूसरों द्वारा त्यागे गए सभी वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ स्वयं धारण कर लेते थे।

एक बार उपनंद वर्षा ऋतु से ठीक पहले एक गाँव के मठ में गए। उनकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर कुछ युवा भिक्षुओं ने उनसे वर्षा ऋतु के तीन महीने अपने मठ में बिताने का अनुरोध किया। उन्होंने उनसे पूछा कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षा ऋतु के लिए दान में कितने वस्त्र मिलते हैं, तो उन्होंने बताया कि उन्हें आमतौर पर एक-एक वस्त्र मिलता है। इसलिए वे वहीं नहीं रुके, बल्कि अपनी चप्पलें वहीं छोड़ दीं। अगले मठ में उन्हें पता चला कि भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दो-दो वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी लाठी छोड़ दी। अगले मठ में भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दान में तीन-तीन वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी पानी की बोतल छोड़ दी। अंत में, जिस मठ में प्रत्येक भिक्षु को चार वस्त्र मिलते थे, वहाँ उन्होंने वर्षा ऋतु बिताने का निर्णय लिया।

वर्षा ऋतु के अंत में, उन्होंने उन अन्य मठों से अपने वस्त्रों का हिस्सा लिया जहाँ उन्होंने अपना सामान छोड़ा था। फिर उन्होंने अपना सारा सामान एक गाड़ी में इकट्ठा किया और अपने पुराने मठ में लौट आए। रास्ते में उनकी मुलाकात दो युवा भिक्षुओं से हुई जो दो वस्त्रों और एक कीमती मखमली कंबल को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। जब वे किसी समझौते पर नहीं पहुँच सके, तो उन्होंने उपनंद से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। उपनंद ने उन्हें एक-एक वस्त्र दिया और मध्यस्थ की भूमिका निभाने के बदले में कीमती मखमली कंबल ले लिया।

दोनों युवा भिक्षु इस निर्णय से संतुष्ट नहीं थे, पर वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। असंतुष्टि और निराशा से व्याकुल होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताई। तब बुद्ध ने कहा, "जो दूसरों को शिक्षा देता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और जैसा उसने सिखाया है, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 158 : पहले स्वयं को उचित आचरण में स्थापित करना चाहिए; फिर ही दूसरों को सिखाना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को निंदा का पात्र नहीं बनना चाहिए।

प्रवचन के अंत में दोनों युवा भिक्षुओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय उपनंद शाक्यपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शाक्य वंश के भिक्षु उपनंद के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उपनंद एक अत्यंत प्रभावशाली उपदेशक थे। वे दूसरों को लोभ न करने और सीमित इच्छाओं को रखने का उपदेश देते थे तथा संतोष, मितव्ययिता और कठोर साधनाओं के गुणों पर बड़े ही सजीव ढंग से प्रवचन देते थे। यद्यपि वे स्वयं अपने उपदेशों का पालन नहीं करते थे तथा दूसरों द्वारा दिए गए सभी वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ स्वयं धारण कर लेते थे।

एक बार उपनंद वर्षा ऋतु से ठीक पहले एक गाँव के मठ में गए। उनकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर कुछ युवा भिक्षुओं ने उनसे वर्षा ऋतु में अपने मठ में रहने का अनुरोध किया। उन्होंने उनसे पूछा कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षा ऋतु के लिए दान में कितने वस्त्र मिलते हैं, तो उन्होंने बताया कि उन्हें आमतौर पर एक-एक वस्त्र मिलता है। इसलिए वे वहीं नहीं रुके, बल्कि अपनी चप्पलें वहीं छोड़ दीं। अगले मठ में उन्हें पता चला कि भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दो-दो वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी लाठी छोड़ दी। अगले मठ में भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दान में तीन-तीन वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी पानी की बोतल छोड़ दी। अंत में, जिस मठ में प्रत्येक भिक्षु को चार वस्त्र मिलते थे, वहाँ उन्होंने वर्षा ऋतु बिताने का निर्णय लिया।

वर्षावास समाप्त होने पर, उन्होंने उन अन्य मठों से अपने वस्त्रों का हिस्सा लिया जहाँ उन्होंने अपना निजी सामान छोड़ा था। फिर उन्होंने अपना सारा सामान एक गाड़ी में लादा और अपने पुराने मठ में लौट आए। रास्ते में उनकी मुलाकात दो युवा भिक्षुओं से हुई जो दो वस्त्रों और एक कीमती मखमली कंबल को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। जब वे सौहार्दपूर्ण समझौता नहीं कर पाए, तो उन्होंने उपनंद से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। उपनंद ने उन्हें एक-एक वस्त्र दिया और मध्यस्थ की भूमिका निभाने के बदले कीमती मखमली कंबल ले लिया।

दोनों युवा भिक्षु इस निर्णय से संतुष्ट नहीं थे, पर वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। असंतोष और निराशा से व्याकुल होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "जो दूसरों को शिक्षा देता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और जैसा उसने सिखाया है, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 158)

पथमं अत्तनं एव पतिरूपे निवेसये
अथ अन्नं अनुसासेय पंडितो न किलिस्सेय

paṭhamaṃ [paṭhama]: सबसे पहले; attānaṃ eva : स्वयं; patīrūpe : उचित सद्‌गुण में; nivesaye : स्थापित करना; atha : उसके बाद; aññaṃ [añña]: अन्य; anusāseyya : सलाह देना; paṇḍito [paṇḍita]: ज्ञानी व्यक्ति; na kilisseyya : दोषरहित होता है

यदि आप दूसरों को सलाह देने के इच्छुक हैं, तो सर्वप्रथम स्वयं को उचित सद्‌गुणों में स्थापित करें। तभी आप दूसरों को शिक्षा देने के योग्य बन पाएंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 158)

paṭhamaṃ attanaṃ eva : सर्वप्रथम, स्वयं। इस उपदेश का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि बुद्ध ने स्वार्थ का समर्थन किया। इसके विपरीत, बुद्ध केवल प्राथमिकताओं को सही ढंग से निर्धारित करते हैं। सर्वप्रथम, अपनी मुक्ति की रक्षा करो। उसके बाद ही दूसरों की रक्षा करो। यह बुद्ध के धम्म—बुद्ध की शिक्षा—के सार के अनुरूप है। इसका अर्थ केवल यह है कि अपने स्वार्थ पर विजय प्राप्त किए बिना, आप दूसरों की सहायता नहीं कर सकते। धम्म का शाब्दिक अर्थ है, वह जो सहारा देता है; यह हमारे भीतर का सत्य है, जिस पर भरोसा करके और जिसका अभ्यास करके हम दुखों और चिंताओं के सागर को पार कर सकते हैं। धम्म सत्य के वे सूत्र भी हैं जिनका हम अभ्यास कर सकते हैं यदि हम ऐसा करने में रुचि रखते हैं। धम्म में कोई मत या सिद्धांत नहीं है। एक बौद्ध बुद्ध के धम्म के किसी भी भाग पर प्रश्न उठाने के लिए स्वतंत्र है, वास्तव में, बुद्ध ने उसे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिस पर प्रश्न उठाना उसके लिए वर्जित हो, न ही कोई ऐसी शिक्षा है जिसके बारे में उसे अपना मन बंद करके अंधविश्वास करना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि बौद्ध धर्म में आस्था कोई अंधभक्ति नहीं है, बल्कि यह ज्ञान से जुड़ी होती है। इस प्रकार, व्यक्ति धम्म की ओर आकर्षित होता है क्योंकि उसमें कुछ सत्य को समझने का ज्ञान होता है, और साथ ही वह उन शिक्षाओं को भी आस्था के साथ स्वीकार करता है जिन्हें उसने अभी तक सिद्ध नहीं किया है। धम्म का अभ्यास करने पर वह पाता है कि यह वास्तव में कारगर है—यह व्यावहारिक है, और इस प्रकार उसका विश्वास बढ़ता है। अपने विश्वास के बढ़ने के साथ वह और अधिक गहराई से अभ्यास करने में सक्षम होता है, और ऐसा करने से वह सत्य को और अधिक जान पाता है—इस प्रकार उसका विश्वास और मजबूत होता है। इस प्रकार, आस्था और ज्ञान अभ्यास के साथ एक दूसरे के पूरक और मजबूत होते हैं। इस मामले में, जैसा कि कई अन्य बौद्ध शिक्षाओं में होता है, यह समझना आसान है कि बौद्ध शिक्षा को चक्र द्वारा क्यों दर्शाया जाता है, क्योंकि यह एक गतिशील प्रतीक है। लेकिन जिसने स्वयं में धम्म-सत्य को देख लिया है, जो सभी मानसिक विकारों और कष्टों से मुक्त है, एक अरहत, उसमें आस्था नहीं होती, उसके पास उससे कहीं बेहतर, अटूट ज्ञान होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 159

(धम्मपद 158) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 159 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 160)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 159 - पदनिकतिसथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 159 - पदनिकतिसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Attanance tatha kayira
यथान्नमनुसति
sudanto vata dametha
atta hi kara duddamo.

श्लोक 159 : व्यक्ति को स्वयं वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह दूसरों को सिखाता है; स्वयं पूर्णतः वश में किए बिना दूसरों को वश में नहीं करना चाहिए। स्वयं को वश में करना वास्तव में कठिन है।

थेरा पधानिकतिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पधानिकतिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (159) कहा।

थेरा पधानिकतिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद पाँच सौ अन्य भिक्षुओं के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को अपने ध्यान अभ्यास में सदा सचेत और लगनशील रहने का निर्देश दिया। इस प्रकार दूसरों को उपदेश देने के बाद वे स्वयं लेट गए और सो गए। युवा भिक्षुओं ने भी वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। उन्होंने रात्रि के पहले पहर में ध्यान का अभ्यास किया और जब वे सोने वाले होते, तो पधानिकतिस्सा उठकर उन्हें अपने अभ्यास में वापस जाने का निर्देश देते। दूसरे और तीसरे पहर में ध्यान अभ्यास के बाद लौटने पर भी वे उनसे यही बात कहते।

उनके इस तरह के व्यवहार के कारण युवा भिक्षुओं को कभी मन की शांति नहीं मिली, और इसलिए वे ध्यान साधना या ग्रंथों के पाठ पर भी एकाग्र नहीं हो सके। एक दिन, उन्होंने यह जानने का निश्चय किया कि क्या उनके गुरु वास्तव में उतने ही उत्साही और सतर्क हैं जितना वे स्वयं को दिखाते हैं। जब उन्हें पता चला कि उनके गुरु पधानिकतिस्सा केवल दूसरों को उपदेश देते हैं और स्वयं अधिकांश समय सोते रहते हैं, तो उन्होंने कहा, "हमारा तो बुरा हाल हो गया है। हमारे गुरु को केवल हमें डांटना आता है, वे स्वयं समय बर्बाद कर रहे हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं।" इस समय तक, भिक्षुओं को पर्याप्त आराम नहीं मिल रहा था, इसलिए वे थक चुके थे और कमजोर हो गए थे। परिणामस्वरूप, किसी भी भिक्षु ने अपनी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं की।

वर्षा ऋतु के अंत में, वे जेतवन मठ लौट आए और बुद्ध को सारी बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जो दूसरों को शिक्षा देना चाहता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और उचित आचरण करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 159 : व्यक्ति को स्वयं वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह दूसरों को सिखाता है; स्वयं पूर्णतः वश में किए बिना दूसरों को वश में नहीं करना चाहिए। स्वयं को वश में करना वास्तव में कठिन है।

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय पधानिकतिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पधानिकतिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
आदरणीय पधानिकतिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर कई अन्य भिक्षुओं के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को अपने ध्यान अभ्यास में सदा सचेत और लगनशील रहने का निर्देश दिया। इस प्रकार दूसरों को उपदेश देने के बाद वे स्वयं लेट गए और सो गए। युवा भिक्षुओं ने भी वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। उन्होंने रात्रि के पहले पहर में ध्यान का अभ्यास किया और जब वे सोने वाले होते, तो पधानिकतिस्सा उठकर उन्हें अपने अभ्यास में वापस जाने के लिए कहते। दूसरे और तीसरे पहर में ध्यान अभ्यास के बाद लौटने पर भी वे उनसे यही बात कहते।
उनके इस तरह के व्यवहार के कारण युवा भिक्षुओं को कभी मन की शांति नहीं मिली, और इसलिए वे ध्यान साधना या ग्रंथों के पाठ पर भी एकाग्र नहीं हो सके। एक दिन, उन्होंने यह पता लगाने का निर्णय लिया कि क्या उनके गुरु वास्तव में उतने ही उत्साही और सतर्क हैं जितना वे स्वयं को दिखाते हैं। जब उन्हें पता चला कि उनके गुरु पधानिकतिस्सा केवल दूसरों को उपदेश देते हैं और स्वयं अधिकांश समय सोते रहते हैं, तो उन्होंने कहा, “हमारा तो बुरा हाल हो गया है। हमारे गुरु को केवल हमें डांटना आता है, वे स्वयं समय बर्बाद कर रहे हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं।” इस समय तक, भिक्षुओं को पर्याप्त आराम नहीं मिल रहा था, इसलिए वे थक चुके थे और कमजोर हो गए थे। परिणामस्वरूप, किसी भी भिक्षु ने अपनी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं की।
निवास पूरा करने के बाद वे बुद्ध के पास लौट आए। बुद्ध ने उनसे सामान्य सौहार्दपूर्ण अभिवादन करने के बाद पूछा, “भिक्षुओं, क्या आपने सजगता का पालन किया? क्या आपने निष्ठापूर्वक ध्यान किया?” तब भिक्षुओं ने उन्हें पूरी कहानी सुनाई।
बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, यदि किसी व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना है, तो उसे पहले स्वयं को वश में करना होगा; क्योंकि यदि वह स्वयं अच्छी तरह से वश में होकर दूसरों को उपदेश देता है, तो वह दूसरों को भी वश में कर सकता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 159)
अन्नं यथा अनुससति सी अत्तानं तथा कयिरा
वात सुदन्तो दम्मेथा अत्ता हि किरा दुद्दमो
aññaṃ [añña]: दूसरों को; yathā : किस प्रकार; anusāsati : आप निर्देश देते हैं; ce attānaṃ [attāna]: आप स्वयं; tathā : उस प्रकार; kayirā : व्यवहार करना चाहिए; vata : निश्चित रूप से; sudanto [sudanta]: सबसे अनुशासित व्यक्ति; dammetha : दूसरों को अनुशासित करेगा; attā hi kira : स्वयं को अनुशासित करना वास्तव में कठिन है; duddamo [duddama]: अनुशासित करना कठिन है।
यदि आप दूसरों को भी उसी प्रकार अनुशासित करना चाहते हैं, तो आपको स्वयं भी उसी प्रकार व्यवहार करना होगा। सबसे अनुशासित व्यक्ति ही दूसरों को सबसे अच्छे तरीके से अनुशासित कर सकता है। वास्तव में, स्वयं को अनुशासित करना सबसे कठिन है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 159)
अत्तानं तथा कयिरा : तुम्हें स्वयं ऐसा व्यवहार करना चाहिए। यह उन लोगों के संदर्भ में कहा गया है जो दूसरों को उपदेश देते हैं, लेकिन स्वयं उस उपदेश के विपरीत व्यवहार करते हैं। स्वयं बुद्ध इस मनोवृत्ति को पुष्ट करने का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। बुद्ध का परोपकारी और सफल उपदेश काल पैंतालीस वर्षों तक चला। अपने पैंतीसवें वर्ष, यानी ज्ञान प्राप्ति के वर्ष से लेकर अस्सीवें वर्ष में अपनी मृत्यु तक, उन्होंने अपने जीवन और उपदेशों दोनों से मानवता की सेवा की। पूरे वर्ष वे स्थान-स्थान पर विचरण करते रहे, कभी अकेले, कभी अपने शिष्यों के साथ, लोगों को धम्म का उपदेश देते रहे और उन्हें संसार के बंधनों से मुक्त करते रहे। जुलाई से नवंबर तक वर्षा ऋतु (वस्सना) के दौरान, निरंतर वर्षा के कारण, वे अपने समय के सभी तपस्वियों की प्रथा के अनुसार एकांतवास में रहते थे।
बुद्ध का ज़ोर स्वयं करके सीखने पर था—व्यवहार पर। उन्होंने अपने मिशन को केवल उपदेश देने तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने अभ्यास का उदाहरण प्रस्तुत किया। जो लोग अधिक समझदार हैं, वे जानते हैं कि बुद्ध ने जो ज्ञान प्राप्त किया, वह उन सभी के लिए सुलभ है जो उनके उपदेशों का निष्ठापूर्वक अभ्यास करते हैं। वास्तव में, प्रत्येक मनुष्य के मन में सदियों पुराने ज्ञान के ढेर के नीचे छिपे ज्ञान के रत्न को खोजने की क्षमता है। इसी में सबसे सुरक्षित आश्रय पाया जा सकता है। स्वयं बुद्ध ने कहा: "किसी बाहरी शरण में मत जाओ।" इस प्रकार, इस संसार में प्रकट होने वाले अंतिम बुद्ध गौतम थे और उन्होंने अपने अनुयायियों, भिक्षुओं और गृहस्थों, को अपने समान बनने के लिए प्रेरित किया, ताकि वे अपने जीवन और अभ्यास को उनके जीवन और अभ्यास का आदर्श बना सकें, क्योंकि उनका जीवन और अभ्यास परम ज्ञान पर आधारित है। उन्होंने घोषणा की कि कोई भी व्यक्ति उपदेशों का पालन कर सकता है, एकाग्रता प्राप्त कर सकता है, झूठे अहंकार को त्याग सकता है और ज्ञान के प्रकाश में खिल सकता है। बुद्ध अपने अनुयायियों को

निचले स्तर पर और स्वयं को सर्वोच्चता के एक अप्राप्य शिखर पर स्थापित नहीं करते, बल्कि उन्हें कई कुशल तरीकों से प्रोत्साहित करते हैं ताकि वे उस चीज़ को प्राप्त कर सकें जो उन्होंने स्वयं प्राप्त की है, क्योंकि यह एक व्यावहारिक बात है, एक ऐसी चीज़ है जिसका अनुभव प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 160

(धम्मपद 159) <<<< पिछला || धम्मपद 160 || अगला >>>> (धम्मपद 161)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 160 - कुमारकस्सपमातुत्थेरी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 160 - कुमारकस्सपमातुत्थेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अत्ता ही अत्तानो नाथो
ko hi natho paro siya
attana hi sudantena
natam labhati dullabham.

श्लोक 160 : वास्तव में व्यक्ति स्वयं ही अपना आश्रय है; तो दूसरे उसके लिए आश्रय कैसे हो सकते हैं? स्वयं को पूर्णतः वश में करके ही वह आश्रय (अर्थात अरहत्त फल) प्राप्त कर सकता है, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

कुमारकस्सपा की माता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुमारकस्सपा की माता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (160) कहा।
एक बार एक नवविवाहित युवती ने अपने पति से भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी। अनजाने में वह देवदत्त की शिष्याओं के साथ शामिल हो गई। भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी, लेकिन उस समय उसे इस बात का पता नहीं था। कुछ समय बाद उसकी गर्भावस्था स्पष्ट हो गई और अन्य भिक्षुणियां उसे अपने गुरु देवदत्त के पास ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ जीवन में लौटने का आदेश दिया। तब उसने अन्य भिक्षुणियों से कहा, "मैंने आपके गुरु देवदत्त के अधीन भिक्षुणी बनने का इरादा नहीं किया था; मैं गलती से यहां आ गई हूं। कृपया मुझे जेतवन मठ ले चलें, मुझे बुद्ध के पास ले चलें।" इस प्रकार वह बुद्ध के पास पहुंची। बुद्ध जानते थे कि भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी और इसलिए निर्दोष थी; लेकिन उन्होंने इस मामले को अपने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत), प्रसिद्ध धनी अनाथपिंडिका, पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा और कई अन्य व्यक्तियों को बुलवाया। फिर उन्होंने थेरा उपाली को सार्वजनिक रूप से मामले का निपटारा करने का आदेश दिया।
विशाखा उस युवती को पर्दे के पीछे ले गईं; उन्होंने उसकी जांच की और थेरा उपाली को बताया कि जब वह भिक्षुणी बनीं तब वह गर्भवती थीं। थेरा उपाली ने तब सभा में घोषणा की कि युवती पूरी तरह निर्दोष थी और इसलिए उसने अपने नैतिक मूल्यों (शील) को दूषित नहीं किया था। समय आने पर, उन्हें एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक को राजा पसेनादि (प्रसेनजित) ने गोद लिया और उसका नाम कुमारकस्सपा रखा। जब बालक सात वर्ष का हुआ, तो अपनी माता के भिक्षुणी होने का पता चलने पर वह भी बुद्ध के मार्गदर्शन में समनेर बन गया। वयस्क होने पर वह संघ में शामिल हो गया; भिक्षु के रूप में, उसने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और वन में चला

गया। वहाँ उसने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। हालाँकि, वह बारह वर्ष और वन में ही रहा।

इस प्रकार उनकी माता ने उन्हें बारह वर्षों से नहीं देखा था और वे अपने पुत्र को देखने के लिए बहुत व्याकुल थीं। एक दिन, उन्हें देखकर, माता भिक्षुणी रोते हुए और उनका नाम पुकारते हुए उनके पीछे दौड़ पड़ीं। अपनी माता को देखकर कुमारकस्सपा ने सोचा कि यदि वे अपनी माता से मधुरता से बात करेंगे तो वे अब भी उनसे आसक्त रहेंगी और उनका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। इसलिए उनके भविष्य (निर्वाण प्राप्ति) के लिए उन्होंने जानबूझकर कठोर होकर उनसे कहा: "यह कैसे हो सकता है कि आप, संघ की सदस्य होकर, अपने पुत्र के प्रति इस स्नेह को भी नहीं छोड़ सकीं?" माता को लगा कि उनका पुत्र उनके प्रति बहुत निर्दयी है, और उन्होंने उनसे पूछा कि उनका क्या अर्थ है। कुमारकस्सपा ने वही दोहराया जो उन्होंने पहले कहा था। उनका उत्तर सुनकर कुमारकस्सपा की माता ने मन ही मन सोचा: "ओह, बारह वर्षों से मैं अपने इस पुत्र के लिए आँसू बहा रही हूँ। फिर भी, इसने मुझसे कठोर बातें की हैं। इसके प्रति मेरे स्नेह का क्या लाभ?" तब उन्हें अपने पुत्र के प्रति अपने आसक्ति की निरर्थकता का अहसास हुआ, और उसी क्षण उन्होंने अपने पुत्र से अपना आसक्ति समाप्त करने का निश्चय किया। अपने पुत्र से पूर्णतः आसक्ति समाप्त करके, कुमारकस्सपा की माता ने उसी दिन अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

एक दिन भिक्षुओं की सभा में, कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! यदि कुमारकस्सपा की माता ने देवदत्त की बात मान ली होती, तो वे और उनका पुत्र दोनों अरहत न बन पाते। निश्चय ही देवदत्त ने उनके साथ घोर अन्याय करने का प्रयास किया था; परन्तु हे पूज्यवर, आप उनके लिए शरणस्थल हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! देवलोक (देवदूत लोक) तक पहुँचने या अरहतत्व प्राप्त करने के प्रयास में आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते, आपको स्वयं परिश्रम करना होगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 160 : वास्तव में व्यक्ति स्वयं ही अपना आश्रय है; तो दूसरे उसके लिए आश्रय कैसे हो सकते हैं? स्वयं को पूर्णतः वश में करके ही वह आश्रय (अर्थात अरहत्त फल) प्राप्त कर सकता है, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुमारकस्सपा की माता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुमारकस्सपा की माता के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार एक नवविवाहित युवती ने अपने पति से भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी। अनजाने में वह देवदत्त की शिष्याओं के साथ शामिल हो गई। भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी, लेकिन उस समय उसे इस बात का पता नहीं था। कुछ समय बाद उसकी गर्भावस्था स्पष्ट हो गई और अन्य भिक्षुणियां उसे अपने गुरु देवदत्त के पास ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ जीवन में लौटने का आदेश दिया। तब उसने अन्य भिक्षुणियों से कहा, "मैंने आपके गुरु देवदत्त के अधीन भिक्षुणी बनने का इरादा नहीं किया था; मैं गलती से यहां आ गई हूं। कृपया मुझे जेतवन मठ ले चलें, मुझे बुद्ध के पास ले चलें।" इस प्रकार वह बुद्ध के पास पहुंची। बुद्ध जानते थे कि वह भिक्षुणी बनने से पहले ही गर्भवती थी और इसलिए निर्दोष थी; लेकिन उन्होंने इस मामले को अपने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि, प्रसिद्ध धनी अनाथपिंडिका, पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा और कई अन्य व्यक्तियों को बुलवाया। फिर उन्होंने वरिष्ठ उपाली को सार्वजनिक रूप से मामले का निपटारा करने का आदेश दिया।

विशाखा उस युवती को पर्दे के पीछे ले गईं; उन्होंने उसकी जाँच की और पूज्य उपाली को बताया कि जब वह नन बनीं तब वह गर्भवती थीं। पूज्य उपाली ने तब उपस्थित लोगों के सामने घोषणा की कि वह स्त्री पूरी तरह निर्दोष थीं और इसलिए उन्होंने अपने नैतिक मूल्यों (शील) को दूषित नहीं किया था। समय आने पर, उन्हें एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक को राजा पसेनादि ने गोद लिया और उसका नाम कुमारकस्सपा रखा गया। जब बालक सात वर्ष का हुआ, तो अपनी माता के नन होने का पता चलने पर वह भी बुद्ध के मार्गदर्शन में सामनेर बन गया। जब वह वयस्क हुआ तो संघ में शामिल हो गया; एक भिक्षु के रूप में, उसने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और वन में चला गया। वहाँ उसने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। हालाँकि, वह बारह वर्ष और वन में ही रहा। इस प्रकार उसकी माता ने उसे बारह वर्षों तक नहीं देखा था और वह अपने पुत्र को देखने के लिए बहुत व्याकुल थी। एक दिन, उसे देखकर, माता भिक्षुणी अपने पुत्र के पीछे रोते हुए और उसका नाम पुकारते हुए दौड़ी। अपनी माता को देखकर कुमारकस्साप ने सोचा कि यदि वह अपनी माता से मधुरता से बात करेगा तो वह उससे आसक्त ही रहेगी और उसका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। इसलिए, उसके भविष्य (निर्वाण प्राप्ति) के लिए, वह जानबूझकर कठोर हुआ और उससे कड़े शब्दों में बोला: "यह कैसे हो सकता है कि तुम, संघ की सदस्य होकर, अपने पुत्र के प्रति इस आसक्ति को भी नहीं छोड़ सकती?" माता ने सोचा कि उसका पुत्र उसके प्रति बहुत निर्दयी है, और उसने उससे पूछा कि उसका क्या अर्थ है। कुमारकस्साप ने वही दोहराया जो उसने पहले कहा था।

उसका उत्तर सुनकर, कुमारकस्साप की माता ने मन ही मन सोचा: “ओह, बारह वर्षों से मैं अपने इस पुत्र के लिए आँसू बहा रही हूँ, फिर भी वह मुझसे कठोर शब्दों में बात करता है। उसके प्रति मेरे स्नेह का क्या लाभ?” तब, उसे अपने पुत्र के प्रति अपनी आसक्ति की निरर्थकता का अहसास हुआ और उसी क्षण उसने अपने पुत्र से अपनी आसक्ति को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। कुमारकस्सपा की माता ने अपने आसक्ति को पूर्णतः त्याग कर उसी दिन अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! देवलोक पहुंचने या अर्हतत्व प्राप्त करने के प्रयास में आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते, आपको स्वयं कड़ी मेहनत करनी होगी।”

व्याख्यात्मक अनुवाद

अत्तनो अत्ता ही नाथो परो को ही नाथो सिया सुदन्तेन
अत्तना एव दुल्लभं नाथं लभति

attano [attana]: स्वयं को; attā hi : स्वयं को; nātho [nātha]: उद्धारकर्ता है; paro ko hi : अन्य कौन; nātho siyā : (आपका) उद्धारकर्ता होगा; sudantena : सुशासित; attanā eva : केवल स्वयं को; dullabhaṃ [dullabha]: प्राप्त करना कठिन; nāthaṃ [nātha]: सहायता; labhati : प्राप्त करेगा

स्वयं का उद्धारक स्वयं ही है। भला और कौन आपका उद्धारक हो सकता है? स्वयं का उद्धारक बनना एक कठिन प्रकार की सहायता है। यह केवल आत्म-अनुशासन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 160)

आदरणीय कुमारकस्सपा : राजा की सहमति से कुमारकस्सपा ने भिक्षु जीवन व्यतीत किया। वे अंधवन नामक वन में चले गए। वहाँ उन्होंने चींटी के टीले की उपमा पर प्रवचन सुना। कुमारकस्सपा के लिए यह प्रवचन एक रहस्योद्घाटन था। एक लाख युगों से उनके समक्ष जो आदर्श था, अंततः साकार हुआ। प्रवचन द्वारा प्रकट किए गए अर्थों की विशालता ने उन्हें उस निर्वाण का अहसास कराया जो इतने लंबे समय से उनकी पहुँच से बाहर था। युगों से तर्कशास्त्र में निपुण होने की लालसा रखने वाले कुमारकस्सपा को बिम्बों की विस्मयकारी विविधता ने मोहित कर लिया। बुद्ध पद्ममुत्तरा की भविष्यवाणी, अन्य सभी बुद्धों की भविष्यवाणियों की तरह, पूर्ण हुई। तर्कशास्त्रीय भाषण कला में कुमारकस्सपा का कोई सानी नहीं था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 161

(धम्मपद 160) <<<< पिछला || धम्मपद 161 || अगला >>>> (धम्मपद 162)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 161 - महाकाल उपासक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 161 - महाकाल उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Attana hi katam papam
अत्तजम अत्तसंभवम
abhimatthati dummedham
vajiramva'smamayam manim.

श्लोक 161 : स्वयं द्वारा किया गया, स्वयं में उत्पन्न हुआ और स्वयं के कारण हुआ पाप मूर्ख व्यक्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हीरा उस चट्टान को पीस देता है जिससे वह बनता है।

———————————————————————————

महाकाल उपासक की कथा

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (161) का उच्चारण महाकाल, एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में किया।

एक व्रत के दिन, महाकाल नामक एक गृहस्थ शिष्य जेतवन मठ गए। उस दिन उन्होंने उपोसथ शील का पालन करते हुए व्रत रखा और रात भर धर्म प्रवचन सुने। संयोगवश, उसी रात कुछ चोर एक घर में सेंध लगा बैठे; और जब घर के मालिक जागे तो वे चोरों के पीछे भागे। चोर चारों दिशाओं में भाग गए। कुछ मठ की ओर भागे। भोर होने वाली थी, और महाकाल मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे। चोरों ने अपना चुराया हुआ सामान महाकाल के सामने गिरा दिया और भाग गए। जब घर के मालिक वापस आए, तो उन्होंने महाकाल को चुराए हुए सामान के साथ देखा। उन्हें चोर समझकर उन्होंने उन पर चिल्लाया, धमकाया और बुरी तरह पीटा। महाकाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई। सुबह तड़के, जब मठ के कुछ युवा भिक्षु और समनेर तालाब से पानी लेने आए, तो उन्होंने शव देखा और उसे पहचान लिया।

मठ लौटकर उन्होंने जो देखा था, वह बुद्ध को बताया और कहा, "हे पूज्यवर! जो गृहस्थ शिष्य रात भर इस मठ में धार्मिक प्रवचन सुन रहा था, उसकी मृत्यु वैसी हुई है जैसी वह नहीं होनी चाहिए थी।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! यदि तुम उसके इस जन्म में किए गए अच्छे कर्मों को देखो, तो वास्तव में उसकी मृत्यु वैसी नहीं हुई जैसी वह होना चाहिए था। परन्तु वास्तव में उसने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्मों का फल भुगता है। अपने पिछले जन्मों में से एक में, जब वह राजा के महल में दरबारी था, तब उसे दूसरे पुरुष की पत्नी से प्रेम हो गया था और उसने उसके पति को पीट-पीटकर मार डाला था। अतः, बुरे कर्म निश्चित रूप से कष्ट लाते हैं; वे तो चारों अपयों की ओर भी ले जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 161 : स्वयं द्वारा किया गया, स्वयं में उत्पन्न हुआ और स्वयं के कारण हुआ पाप मूर्ख व्यक्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हीरा उस चट्टान को पीस देता है जिससे वह बनता है।

———————————————————————————

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

महाकाल उपासक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य महाकाल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक व्रत के दिन, महाकाल नामक एक गृहस्थ शिष्य जेतवन मठ गए। उस दिन उन्होंने आठ नैतिक नियमों (उपोसथ शील) का पालन करते हुए व्रत रखा और रात भर धर्म प्रवचन सुने। संयोगवश, उसी रात कुछ चोर एक घर में सेंध लगा बैठे; और जब घर के मालिक जागे तो वे चोरों के पीछे भागे। चोर चारों दिशाओं में भाग गए। कुछ मठ की ओर भागे। तब भोर होने वाली थी, और महाकाल मठ के पास स्थित तालाब में अपना चेहरा धो रहे थे। चोरों ने अपना चुराया हुआ सामान महाकाल के सामने गिरा दिया और भाग गए। जब घर के मालिक वापस आए, तो उन्होंने महाकाल को चुराए हुए सामान के साथ देखा। उन्हें चोर समझकर उन्होंने उन पर चिल्लाया, उन्हें धमकाया और बुरी तरह पीटा। महाकाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई। सुबह-सुबह जब मठ के कुछ युवा भिक्षु और सामनेरा तालाब से पानी लेने आए, तो उन्होंने मृत शरीर को देखा और उसे पहचान लिया।

मठ लौटकर उन्होंने जो देखा था, वह बुद्ध को बताया और कहा, "आदरणीय! जो शिष्य रात भर इस मठ में धार्मिक प्रवचन सुन रहा था, उसकी मृत्यु ऐसी हुई है जिसका वह हकदार नहीं था।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! यदि आप उसके इस जन्म में किए गए अच्छे कर्मों को देखें, तो वास्तव में उसकी मृत्यु ऐसी हुई है जिसका वह हकदार नहीं था। लेकिन असलियत यह है कि उसने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्मों का फल भुगता है। अपने पिछले जन्मों में से एक में, जब वह राजा के महल में दरबारी था, तो उसे दूसरे आदमी की पत्नी से प्रेम हो गया और उसने उसके पति को पीट-पीटकर मार डाला। इस प्रकार, बुरे कर्म निश्चित रूप से मुसीबत लाते हैं; वे तो चारों अपायों की ओर भी ले जाते हैं ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 161)

अत्तना एव कतं अत्तजं अत्तसंभवं पापं अस्मामयम्

मनिं वजिरं इव दुम्मेधं अभिमन्थति

अत्तना एव : स्वयं के द्वारा; काटां [काटा]: हो गया; अट्टजं [अट्टजा]: स्वयं का जन्म; अत्तसंभवम् [अत्तसंभव]: स्वयं से उत्पन्न; पापं [पापा]: बुरा कार्य; अस्मामयं [अस्मामय]: स्वयं निर्मित; मणिm [मणि]: कीमती पत्थर; वजीरं इव : हीरे के समान; दुम्मेधं [दुम्मेध]: मूर्ख व्यक्ति; अभिमन्थति : पीसता है

हीरा पत्थर से ही उत्पन्न होता है, पत्थर से ही पैदा होता है और पत्थर से ही निकलता है। लेकिन वह कीमती पत्थर को काटता है। उसी प्रकार, बुरा कर्म बुरे कर्म करने वाले से ही उत्पन्न होता है, उसी से पैदा होता है और उसी से निकलता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 161)

वजिरं इव : हीरे के समान। इस श्लोक में, दुष्ट व्यक्ति के आत्म-विनाशकारी दुराचार के लिए हीरे की उपमा का प्रयोग किया गया है, जो स्वयं एक पत्थर होते हुए भी अन्य सभी रत्नों को काट देता है।

इस श्लोक में वजिरा के रूप में संदर्भित हीरे को पारंपरिक टीकाओं में इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

वजतेव न पतिहन्ते यस्सा गमनं केनचिति - वजीरं (जो सभी प्रकार की वस्तुओं को काटता है वह हीरा है। इसका विरोध नहीं किया जा सकता है।)

निम्नलिखित छंद इस विचार पर बल देता है:

Prithivyāṃ yāni ratnāni

ye cānye loha dhātavah

Sarvāni vilikhedvajram

tacca tair na vilikhyate

हीरा पृथ्वी पर मौजूद सभी धातुओं और सभी बहुमूल्य पत्थरों को काट सकता है।

हालांकि यह इन सभी को काट सकता है, लेकिन इनमें से कोई भी हीरे को नहीं काट सकता।

हीरों से संबंधित प्राचीन कथाओं में कहा गया है कि हीरा पहनने से अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु का लाभ होता है। इस चित्र में, हीरे की अन्य पत्थरों को काटने की क्षमता की तुलना व्यक्ति की स्वयं की कमियों के कारण होने वाले आत्म-विनाश से की गई है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 162

———————————————————————————

(धम्मपद 161) <<<< पिछला || धम्मपद 162 || अगला >>>> (धम्मपद 163)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 162 - देवदत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 162 - देवदत्त वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa accantadussilyam
maluva salamivotthatam
करोति सो तथात्तनम
यथा नाम इच्छति दिसो.

———————————————————————————

श्लोक 162 : जैसे लता (मलुवा) साल के पेड़ को गला घोंट देती है, वैसे ही एक वास्तव में अनैतिक व्यक्ति (लालसा से ग्रस्त) अपने साथ वही करता है जो उसका शत्रु उससे करवाना चाहता है।

———————————————————————————

देवदत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (162) कहा।

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में बातें कर रहे थे, तभी बुद्ध आए और उनसे उनकी बातचीत का विषय पूछा। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के बारे में बात कर रहे थे और फिर आगे इस प्रकार कहा:

"आदरणीय गुरुदेव! देवदत्त वास्तव में एक अनैतिक व्यक्ति है; वह अत्यंत लालची भी है। उसने अजातसत्तु का विश्वास जीतकर कुटिल साधनों से यश और धन प्राप्त करने का प्रयास किया है। उसने अजातसत्तु को यह विश्वास दिलाने का भी प्रयास किया कि अपने पिता को हटाकर वह (अजातसत्तु) तुरंत एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। देवदत्त के बहकावे में आकर अजातसत्तु ने अपने पिता, परम पूज्य राजा बिम्बिसार की हत्या कर दी। देवदत्त ने आपको, हमारे परम पूज्य गुरुदेव, तीन बार जान से मारने का प्रयास भी किया है। देवदत्त वास्तव में अत्यंत दुष्ट और सुधरने योग्य नहीं है!"

भिक्षुओं की बातें सुनने के बाद, बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने न केवल अभी बल्कि अपने पिछले जन्मों में भी उन्हें मारने का प्रयास किया है। फिर बुद्ध ने एक हिरण शिकारी की कहानी सुनाई।

एक बार जब राजा ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का जन्म हिरण के रूप में हुआ और देवदत्त उस समय हिरण शिकारी थे। एक दिन, शिकारी ने एक पेड़ के नीचे हिरण के पदचिह्न देखे। इसलिए, उसने पेड़ पर बाँस का एक चबूतरा बनाया और हिरण की प्रतीक्षा में भाला लेकर बैठ गया। हिरण आया, लेकिन वह बहुत सावधानी से आया। शिकारी ने उसे हिचकिचाते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए पेड़ के कुछ फल फेंके। लेकिन इससे हिरण और भी सतर्क हो गया; उसने और ध्यान से देखा और पेड़ पर बैठे शिकारी को पहचान लिया। उसने अनदेखा करने का नाटक किया और धीरे से मुड़ गया। कुछ दूरी से उसने पेड़ को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे वृक्ष! तुम हमेशा अपने फल सीधे गिराते हो, लेकिन आज तुमने प्रकृति के नियम को तोड़ दिया है और अपने फल तिरछे गिराए हैं। क्योंकि तुमने वृक्षों के प्रकृति नियम का उल्लंघन किया है, इसलिए मैं अब तुम्हें छोड़कर दूसरे वृक्ष पर जा रहा हूँ।'

हिरण को मुँह मोड़ते देख, हिरण का शिकार करने वाले ने अपना भाला ज़मीन पर गिरा दिया और कहा, 'हाँ, अब तुम आगे बढ़ सकते हो; क्योंकि आज मेरी गणना गलत हुई है।' भावी बुद्ध रूपी हिरण ने उत्तर दिया, 'हे शिकारी! आज तुम्हारी गणना सचमुच गलत हुई है, लेकिन तुम्हारा बुरा कर्म कोई गलती नहीं करेगा; वह तुम्हारा पीछा अवश्य करेगा।' इस प्रकार, देवदत्त ने न केवल आज बल्कि अतीत में भी मुझे मारने का प्रयास किया था, फिर भी वह कभी सफल नहीं हुआ।' तब बुद्ध ने आगे कहा, 'भिक्षुओं! जिस प्रकार लता अपने पेड़ को जकड़ लेती है, उसी प्रकार नैतिकताहीन लोग कामवासना में लीन होकर अंततः निरय (नरक) में गिर जाते हैं।'

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 162 : जैसे लता (मलुवा) साल के पेड़ को गला घोंट देती है, वैसे ही एक वास्तव में अनैतिक व्यक्ति (लालसा से ग्रस्त) अपने साथ वही करता है जो उसका शत्रु उससे करवाना चाहता है।

प्रवचन के अंत में, कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

देवदत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में बातें कर रहे थे, तभी बुद्ध आए और उनसे उनकी बातचीत का विषय पूछा। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के बारे में बात कर रहे हैं और फिर आगे कहा, "हे पूज्यवर! देवदत्त वास्तव में अनैतिक व्यक्ति है; वह अत्यंत लालची भी है। उसने अजातसत्तु का विश्वास जीतकर कुटिल साधनों से यश और धन प्राप्त करने का प्रयास किया है। उसने अजातसत्तु को यह विश्वास दिलाने का भी प्रयास किया कि अपने पिता को मारकर वह (अजातसत्तु) तुरंत एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। देवदत्त के बहकावे में आकर अजातसत्तु ने अपने पिता, परम पूज्य राजा बिम्बिसार की हत्या कर दी। देवदत्त ने तो तीन बार आपको, हमारे परम पूज्य गुरु, मारने का प्रयास भी किया है। देवदत्त वास्तव में अत्यंत दुष्ट और सुधरने योग्य नहीं है!"

भिक्षुओं की बातें सुनने के बाद, बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने न केवल अभी बल्कि अपने पिछले जन्मों में भी उन्हें मारने का प्रयास किया था। फिर बुद्ध ने एक हिरण शिकारी की कहानी सुनाई।

"एक बार जब राजा ब्रह्मदत्त बारानासी में शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का जन्म हिरण के रूप में हुआ और देवदत्त उस समय हिरण शिकारी थे। एक दिन, शिकारी ने एक पेड़ के नीचे हिरण के पदचिह्न देखे। इसलिए, उसने पेड़ पर बाँस का एक चबूतरा बनाया और भाला तैयार करके हिरण की प्रतीक्षा करने लगा। हिरण आया, लेकिन वह बहुत सावधानी से आया। शिकारी ने उसे हिचकिचाते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए पेड़ के कुछ फल फेंके। लेकिन इससे हिरण और भी सतर्क हो गया; उसने और ध्यान से देखा और पेड़ पर शिकारी को देख लिया। उसने अनदेखा करने का नाटक किया और धीरे से मुड़ गया। कुछ दूरी से उसने पेड़ को इस प्रकार संबोधित

किया: 'हे वृक्ष! तुम हमेशा अपने फल सीधे गिराते हो, लेकिन आज तुमने प्रकृति के नियम का उल्लंघन किया है और अपने फल तिरछे गिराए हैं। क्योंकि तुमने वृक्षों के प्राकृतिक नियम का उल्लंघन किया है, इसलिए मैं अब तुम्हें छोड़कर दूसरे वृक्ष पर जा रहा हूँ।'
"हिरण को मुँह मोड़ते देख, शिकारी ने अपना भाला ज़मीन पर गिरा दिया और कहा, 'जी हाँ, अब तुम आगे बढ़ सकते हो; क्योंकि आज मेरी गणना गलत हुई है।' भावी बुद्ध रूपी हिरण ने उत्तर दिया, 'हे शिकारी! आज तुम्हारी गणना सचमुच गलत हुई है, परन्तु तुम्हारा बुरा कर्म तुम्हें नहीं भूलेगा; वह तुम्हारा पीछा अवश्य करेगा।' इस प्रकार, देवदत्त ने न केवल आज, बल्कि अतीत में भी मुझे मारने का प्रयास किया था, परन्तु वह कभी सफल नहीं हुआ।" तब बुद्ध ने आगे कहा, "भिक्षुओं! जैसे लता अपने पेड़ को जकड़कर गला घोंट देती है, वैसे ही नैतिकताहीन लोग कामवासना में लीन होकर अंततः निरय में गिर जाते हैं ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 162)
यस्सा एकांत दुसिल्यं सलं मालुवा इव ओटाटं
दिसो नं यथा इच्छाति सो अत्तानं तथा करोति
यस्सा अक्कन्ता दुस्सिल्यं [दुस्सिल्य]: किसी में सद्गुणों की अत्यधिक कमी; सालम मालुवा इव ओटाटम् [ओटाटा]: ठीक वैसे ही जैसे मालुवा लता साल के पेड़ को कुचल देती है; दिसां [डिसा]: शत्रु के रूप में; यथा इच्छाति : नुकसान पहुंचाने का इरादा; अत्तनं तथा करोति : स्वयं को हानि पहुँचाना
सद्गुणहीन व्यक्ति का अत्यंत बुरा कर्म परजीवी मालुवा लता के समान है। लता पेड़ पर उगती है और उसे कुचलकर नष्ट कर देती है। उसी प्रकार, पापी का कर्म भी उसे उसी प्रकार कुचल देता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 162)
अच्चान्त दुस्सील्यं : अनुशासन और सद्गुण का पूर्ण अभाव। यहाँ भिक्षुओं के अनुशासन के अभाव का तात्पर्य है। पारंपरिक टीकाओं के अनुसार, अनुशासन और सद्गुण का यह घोर अभाव तेरह गंभीर दोषों (गरुकापत्ति) के कारण होता है।
उन तेरहों के नाम इस प्रकार हैं:
सुक्कविसाठी ,
काया संसग्गा ,
duṭṭhulla vācā ,
attakāmapāricariyā ,
sañcarittā ,
कुटिकारका ,
महल्लका ,
विहार ,
दुत्थाडोसा ,
dutiyadutthadosa ,
संघभेद
दुतिया संघभेद ,
दुब्बाका और
कुलादुसाका .
यह श्लोक देवदत्त के अनुशासनहीनता के कारण लिखा गया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 163

———————————————————————

(धम्मपद 162) <<<< पिछला || धम्मपद 163 || अगला >>>> (धम्मपद 164)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 163 - संघभेदप्रिसक्कन वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 163 - संघभेदापरिसक्कन वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
सुकरानी असाधुनी
अत्तनो अहितानि सीए
yam ve hitanca sadhunca
tam ve paramadukkaram.

श्लोक 163 : अपने लिए बुरे और लाभहीन काम करना आसान है, लेकिन वास्तव में, लाभप्रद और अच्छे काम करना सबसे कठिन है।

संगठन में फूट की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (163) का उच्चारण देवदत्त के संदर्भ में किया, जिसने भिक्षुओं के संघ में फूट डालने का अपराध किया था।

एक बार जब बुद्ध वेलुवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और सुझाव दिया कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, इसलिए संघ के कर्तव्यों को उसे (देवदत्त को) सौंप दिया जाना चाहिए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उसे फटकारते हुए "थूक निगलने वाला" (खेलासिका) कहा। उस समय से देवदत्त बुद्ध के प्रति बहुत द्वेषपूर्ण हो गया। उसने तीन बार बुद्ध को जान से मारने का प्रयास भी किया, लेकिन उसके सभी प्रयास विफल रहे। बाद में, देवदत्त ने एक और चाल चली। इस बार, वह बुद्ध के पास आया और भिक्षुओं के लिए जीवन भर पालन करने हेतु अनुशासन के पाँच नियम प्रस्तावित किए।

उसने प्रस्ताव किया:
(i) भिक्षुओं को वन में रहना चाहिए;
(ii) कि उन्हें केवल भिक्षा-अनुभागों में प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन करना चाहिए;
(iii) कि उन्हें केवल कूड़े के ढेरों से एकत्रित कपड़े के टुकड़ों से बने वस्त्र पहनने चाहिए;
(iv) कि वे पेड़ों के नीचे निवास करें; और
(v) कि उन्हें मछली या मांस नहीं खाना चाहिए।

बुद्ध को इन नियमों पर कोई आपत्ति नहीं थी और न ही उन्होंने उन लोगों पर कोई आपत्ति जताई जो इनका पालन करने को तैयार थे, लेकिन विभिन्न वैध कारणों से, वे सामान्य रूप से भिक्षुओं पर अनुशासन के इन नियमों को लागू करने के लिए तैयार नहीं थे।

देवदत्त ने दावा किया कि उनके द्वारा प्रस्तावित नियम अनुशासन के मौजूदा नियमों से कहीं बेहतर थे, और कुछ नए भिक्षुओं ने उनकी बात मान ली। एक दिन, बुद्ध ने देवदत्त से पूछा कि क्या यह सच है कि वे संघ में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं, और उन्होंने यह स्वीकार किया। बुद्ध ने उन्हें चेतावनी दी कि यह एक बहुत गंभीर अपराध है, लेकिन देवदत्त ने उनकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के दौरान थेरा आनंद से मिले, तो देवदत्त ने थेरा आनंद से कहा, "आनंद, आज से मैं उपोसथ व्रत रखूंगा और बुद्ध और उनके भिक्षु संघ से स्वतंत्र होकर संघ के कर्तव्यों का पालन करूंगा।" भिक्षा मांगने से लौटने पर, थेरा आनंद ने बुद्ध को देवदत्त की कही हुई बातें बताईं।

यह सुनकर बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "देवदत्त ने बहुत गंभीर अपराध किया है; यह उसे अविची निरय (नरक) में भेजेगा। एक गुणी व्यक्ति के लिए अच्छे कर्म करना आसान और बुरे कर्म करना कठिन होता है; परन्तु एक दुष्ट व्यक्ति के लिए बुरे कर्म करना आसान और अच्छे कर्म करना कठिन होता है। वास्तव में, जीवन में अपंग कर्म करना आसान है, परन्तु लाभकारी कर्म करना अत्यंत कठिन है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 163 : अपने लिए बुरे और लाभहीन काम करना आसान है, लेकिन वास्तव में, लाभप्रद और अच्छे काम करना सबसे कठिन है।

फिर, उपोसथ दिवस (उपवास दिवस) पर, देवदत्त पाँच सौ वज्जीय भिक्षुओं के साथ संघ से अलग हो गए और गयासिसा चले गए। हालाँकि, जब दो प्रमुख शिष्य, सारिपुत्त और मोग्गलाना, देवदत्त के साथ गए भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बात की, तो उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनमें से अधिकांश दोनों प्रमुख शिष्यों के साथ बुद्ध के पास लौट आए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

संघ में विभाजन की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने भिक्षुओं के संघ में फूट डालने का अपराध किया था।

एक बार जब बुद्ध वेलुवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और सुझाव दिया कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, इसलिए संघ के कर्तव्यों को उसे (देवदत्त को) सौंप दिया जाना चाहिए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उसे फटकारते हुए उसे घिनौना (खेलासिक) कहा। उस समय से देवदत्त बुद्ध के प्रति बहुत द्वेषपूर्ण हो गया। उसने तीन बार बुद्ध को जान से मारने का प्रयास भी किया, लेकिन उसके सभी प्रयास विफल रहे। बाद में, देवदत्त ने एक और चाल चली। इस बार वह बुद्ध के पास आया और भिक्षुओं के लिए जीवन भर पालन करने हेतु अनुशासन के पाँच नियम प्रस्तावित किए। उसने प्रस्ताव दिया कि (i) भिक्षुओं को वन में रहना चाहिए; (ii) उन्हें केवल भिक्षाटन से प्राप्त भोजन पर ही निर्भर रहना चाहिए; (iii) उन्हें केवल कूड़े के ढेर से एकत्रित कपड़े के टुकड़ों से बने वस्त्र पहनने चाहिए; (iv) उन्हें वृक्षों के नीचे निवास करना चाहिए; और (v) उन्हें मछली या मांस नहीं खाना चाहिए। बुद्ध को इन नियमों पर कोई आपत्ति नहीं थी और न ही उन्होंने उन लोगों पर कोई आपत्ति जताई जो इनका पालन करने को तैयार थे, लेकिन विभिन्न वैध कारणों से, वे सामान्य रूप से भिक्षुओं पर अनुशासन के इन नियमों को लागू करने के लिए तैयार नहीं थे।

देवदत्त ने दावा किया कि उनके द्वारा प्रस्तावित नियम अनुशासन के मौजूदा नियमों से कहीं बेहतर थे, और कुछ नए भिक्षुओं ने उनसे सहमति जताई। एक दिन, बुद्ध ने देवदत्त से पूछा कि क्या यह सच है कि वे संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं, और उन्होंने स्वीकार किया कि ऐसा ही है। बुद्ध ने उन्हें चेतावनी दी कि यह एक बहुत गंभीर अपराध है, लेकिन देवदत्त ने उनकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद, जब वे राजगृह में भिक्षाटन के दौरान पूज्य आनंद से मिले, तो देवदत्त ने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, आज से मैं व्रत (उपोसथ) का पालन करूँगा, और बुद्ध और उनके भिक्षु संघ से स्वतंत्र रूप से संघ के कर्तव्यों का पालन करूँगा।" भिक्षाटन से लौटने पर, पूज्य आनंद ने बुद्ध को देवदत्त की कही हुई बातें बताईं।

यह सुनकर बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "देवदत्त ने बहुत गंभीर अपराध किया है; यह उसे अविची निरय को भेजेगा । एक गुणी व्यक्ति के लिए अच्छे कर्म करना आसान और बुरे कर्म करना कठिन होता है; परन्तु एक दुष्ट व्यक्ति के लिए बुरे कर्म करना आसान और अच्छे कर्म करना कठिन होता है। वास्तव में, जीवन में अपलाभदायक कार्य करना आसान है, परन्तु लाभकारी कार्य करना अत्यंत कठिन है।"

फिर उपोसथ दिवस पर, देवदत्त पाँच सौ वज्जीय भिक्षुओं के साथ संघ से अलग होकर गयासीसा चला गया। परन्तु जब दो प्रमुख शिष्य, सारिपुत्त और मोग्गलाना, देवदत्त के साथ गए भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बात की, तो उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनमें से अधिकांश दो प्रमुख शिष्यों के साथ बुद्ध के पास लौट आए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 163)

असाधुनि अत्तनो अहितानि च सुकराणि यं वे

हितञ्च साधुं च तं वे परम दुक्करं

असधुनी : बुरे कर्म; अत्तनो अहितानि च : स्वयं के लिए हानिकारक कर्म; सुकरानि : आसानी से किए जा सकने वाले कर्म; यं : यदि कोई कर्म; वे हितंच : वास्तव में स्वयं के लिए अच्छा है; साधुंच च : यदि वह सही भी है; तं : उस प्रकार का कर्म; वे : (निश्चित रूप से) है; परम दुक्करं [दुक्कर]: करना अत्यंत कठिन है

वे कार्य जो स्वयं के लिए हानिकारक और नुकसानदायक हों, उन्हें करना अत्यंत सरल होता है। परन्तु यदि कोई कार्य अपने लिए लाभकारी हो; यदि वह उचित भी हो, तो निश्चिततः उस प्रकार का कार्य करना अत्यंत कठिन सिद्ध होगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 163)

अत्तनो अहितानि सुकरानि : स्वयं को हानि पहुँचाने वाले कर्म आसानी से किए जा सकते हैं। यह कथन देवदत्त द्वारा किए गए विभाजन के संदर्भ में कहा गया है। यद्यपि बुद्ध का उद्देश्य पूर्णतः शुद्ध था और वे मानवता की सेवा में निस्वार्थ थे, फिर भी अपने उपदेशों और शिक्षाओं के प्रसार में उन्हें प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। अन्य किसी भी धार्मिक शिक्षक की तुलना में उनकी कड़ी आलोचना हुई, उन्हें गालियाँ दी गईं, उनका अपमान किया गया और उन पर निर्मम आक्रमण किए गए। उनके प्रमुख विरोधी प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों के शिक्षक और विधर्मी विचारधाराओं के अनुयायी थे, जिनकी पारंपरिक शिक्षाओं और अंधविश्वासी रीति-रिवाजों की उन्होंने उचित आलोचना की। उनका सबसे बड़ा व्यक्तिगत शत्रु, जिसने उन्हें जान से मारने का व्यर्थ प्रयास किया, उनका अपना बहनोई और पूर्व शिष्य देवदत्त था। देवदत्त राजा सुप्पबुद्ध और बुद्ध की मौसी पमिता का पुत्र था। यशोदरा उसकी बहन थी। इस प्रकार वह बुद्ध का चचेरा

भाई और बहनोई था। बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में वे आनंद और अन्य शाक्य राजकुमारों के साथ संघ में शामिल हुए। वे संतत्व की किसी भी अवस्था को प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु सांसारिक मानसिक शक्तियों (पोथुज्जनिक-इद्धि) के लिए विख्यात थे। उनके प्रमुख समर्थकों में से एक राजा अजातसत्तु थे, जिन्होंने उनके लिए एक मठ का निर्माण करवाया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 164

———————————————————————————

(धम्मपद 163) <<<< पिछला || धम्मपद 164 || अगला >>>> (धम्मपद 165)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 164 - कलत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 164 - कलत्थेरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo sasanam arahatam
अरियानम धम्मजीवनम
patikkosati dummedho
ditthim nissaya papikam
फलानी कत्थकस्सेवा
attghataya phallati.

———————————————————————————

श्लोक 164 : वह मूर्ख व्यक्ति जो अपने गलत विचारों के कारण धम्म के अनुसार जीवन जीने वाले आदरयोग्य श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की शिक्षा का तिरस्कार करता है, वह उस बांस के समान है जो अपने ही विनाश के लिए फल देता है।

———————————————————————————

थेरा काला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा काला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (164) कहा।

एक बार सावत्थी में, एक बुजुर्ग महिला काला नामक एक थेरा की अपने बेटे की तरह देखभाल करती थी। एक दिन पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों के बारे में सुनकर, उनकी तीव्र इच्छा हुई कि वे जेतवन मठ जाकर बुद्ध के प्रवचन सुनें। उन्होंने थेरा काला को अपनी इच्छा बताई; लेकिन थेरा ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी। उन्होंने तीन बार उनसे अपनी इच्छा व्यक्त की, लेकिन थेरा ने हर बार उन्हें मना कर दिया। लेकिन एक दिन, उनके मना करने के बावजूद, महिला ने जाने का निश्चय कर लिया। अपनी बेटी से थेरा काला की जरूरतों का ध्यान रखने के लिए कहकर वह घर से निकल गईं। जब थेरा काला भिक्षा-भोजन के लिए अपने नियमित दौर पर निकले, तो उन्हें पता चला कि घर की मालकिन जेतवन मठ के लिए निकल चुकी हैं। तब उन्होंने सोचा, "शायद इस घर की मालकिन का मुझ पर से विश्वास कम हो रहा है।" इसलिए, उन्होंने जल्दी से उनका पीछा करते हुए मठ तक गए। वहाँ उन्होंने उन्हें बुद्ध के प्रवचन सुनते हुए पाया। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "हे पूज्यवर! यह स्त्री बहुत मंदबुद्धि है; यह उदात्त धम्म को नहीं समझ पाएगी; कृपया इसे केवल दान और शील के बारे में ही शिक्षा दें।"

बुद्ध भली-भांति जानते थे कि थेरा काला द्वेष और किसी गुप्त इरादे से बोल रहा है। इसलिए उन्होंने थेरा काला से कहा, "भिक्षु! क्योंकि तुम मूर्ख हो और तुम्हारी गलत सोच है, इसलिए तुम मेरे उपदेशों का तिरस्कार करते हो। तुम स्वयं अपनी बर्बादी के कारण हो; वास्तव में, तुम केवल स्वयं को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 164 : वह मूर्ख व्यक्ति जो अपने गलत विचारों के कारण धम्म के अनुसार जीवन जीने वाले आदरयोग्य श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की शिक्षा का तिरस्कार करता है, वह उस बांस के समान है जो अपने ही विनाश के लिए फल देता है।

प्रवचन के अंत में उस बुजुर्ग महिला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय काला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य काल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार सावत्थी में एक बुजुर्ग महिला काला नामक भिक्षु की अपने बेटे की तरह देखभाल करती थी। एक दिन, पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों के बारे में सुनकर, उनकी तीव्र इच्छा हुई कि वे जेतवन मठ जाकर बुद्ध के प्रवचन सुनें। उन्होंने पूज्य काला को अपनी इच्छा बताई, लेकिन भिक्षु ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी। उन्होंने तीन बार उनसे अपनी इच्छा व्यक्त की, लेकिन उन्होंने हर बार उन्हें मना कर दिया। लेकिन एक दिन, उनकी बार-बार की मनाही के बावजूद, महिला ने जाने का निश्चय कर लिया। अपनी बेटी से पूज्य काला की जरूरतों का ध्यान रखने को कहकर वह घर से निकल गईं। जब पूज्य काला भिक्षा-भोजन के लिए अपने नियमित दौर से निकले, तो उन्हें पता चला कि घर की मालकिन जेतवन मठ के लिए निकल चुकी हैं। तब उन्होंने सोचा, "शायद इस घर की मालकिन का मुझ पर से विश्वास कम हो रहा है।" इसलिए, उन्होंने जल्दी से उनका पीछा करते हुए मठ तक गए। वहाँ उन्होंने उन्हें बुद्ध के प्रवचन सुनते हुए पाया। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, “हे पूज्यवर! यह स्त्री बहुत मंदबुद्धि है; वह उदात्त धम्म को नहीं समझ पाएगी; कृपया उसे केवल दान और नैतिकता के बारे में ही शिक्षा दें ।”

बुद्ध भली-भांति जानते थे कि पूज्य काल द्वेष और गुप्त इरादे से बोल रहे हैं। इसलिए उन्होंने पूज्य काल से कहा, “भिक्षु! क्योंकि तुम मूर्ख हो और तुम्हारी गलत धारणा है, इसलिए तुम मेरे उपदेशों का तिरस्कार करते हो। तुम स्वयं अपनी बर्बादी के कारण हो; वास्तव में, तुम केवल स्वयं को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हो।” प्रवचन के अंत में, उस वृद्ध महिला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 164)

यो दुम्मेधो पापिकां दितिथिं निस्साय अरहतम्

धम्मजीविनं अरियाणं सासनं पतिकोसति

कत्थकस्सा फलानि इव अत्तघन्याय फलति

यो दुमेधो [दुमेधा]: यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति है; पापिकां दितिथिं निस्साय : मिथ्या विश्वासों के कारण; अरहतम् [अरहत]: गुणी; धम्मजीविनं [धम्मजीविना]: जीवन को सही ढंग से संचालित करना; एरियानां [एरियाना]: कुलीन'; सासनं [सासन]: शिक्षण; पतिकोसति : बाधा डालना; कत्थकस्सा : उसकी क्रिया (बांस के पेड़ की); फलानि इव : फल के समान; अट्टघन्याय : स्वयं का विनाश; फल्लति : अनुकूल है

कुछ अज्ञानी लोग हानिकारक विचारों के कारण उन महान संतों की शिक्षाओं में बाधा डालते हैं जो धार्मिक जीवन जीते हैं। वे बांस के पौधों की तरह, जो फल लगने पर नष्ट हो जाते हैं, स्वयं ही विनाशकारी होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 164)

diṭṭhiṃ nissāya : क्योंकि विचारों के कारण.

दिट्ठी : दृष्टिकोण, विश्वास, काल्पनिक मत, अंतर्दृष्टि। यदि इसके साथ सम्मा शब्द का प्रयोग न किया जाए , तो यह अधिकतर गलत और दुष्ट दृष्टिकोण या मत को संदर्भित करता है, और केवल कुछ ही मामलों में सही दृष्टिकोण, समझ या अंतर्दृष्टि को (जैसे, दिट्ठीपट्टा ; दिट्ठी - विशुद्धि , अंतर्दृष्टि का शुद्धिकरण; दिट्ठी-संपन्न , अंतर्दृष्टि से युक्त)।

बुरी सोच (मिच्छा-दिट्ठी) को पूरी तरह से अस्वीकार्य घोषित किया गया है, क्योंकि ये गलत और दुष्ट आकांक्षाओं और आचरण का स्रोत हैं, और कभी-कभी मनुष्य को पतन की गहरी खाई में धकेल सकती हैं। जैसा कि कहा गया है: “हे भिक्षुओं, मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे अस्वास्थ्यकर चीजें जो अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं, उत्पन्न होती हैं और जो पहले से उत्पन्न हो चुकी हैं, वे बढ़ती और पूर्ण होती हैं। मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे स्वास्थ्यकर चीजें जो अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं, उनके उत्पन्न होने में बाधा आती है और जो पहले से उत्पन्न हो चुकी हैं, वे लुप्त हो जाती हैं। मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे

मनुष्य शरीर के विघटन के समय, मृत्यु के समय, दुख के मार्ग पर, दुःख के संसार में, नरक में प्रवेश करता है।" आगे: "बुरे विचारों से भरा हुआ व्यक्ति जो कुछ भी करता है या करने का बीड़ा उठाता है, या उसके मन में जो भी इच्छाशक्ति, आकांक्षा, लालसा और प्रवृत्ति होती है, ये सभी चीजें उसे अवांछनीय, अप्रिय और कष्टदायी स्थिति की ओर ले जाती हैं, जिससे उसे दुख और पीड़ा सहनी पड़ती है।"
इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब भी बुरे विचार उत्पन्न होते हैं, वे लोभ से जुड़े होते हैं। अनेक काल्पनिक मत और सिद्धांत, जिन्होंने हमेशा से मानव जाति को प्रभावित किया है और अभी भी प्रभावित कर रहे हैं, सुत्त ग्रंथों में उद्धृत हैं। यद्यपि, उनमें से वह गलत विचार जिसने हर जगह और हर समय मानव जाति को सबसे अधिक गुमराह और भ्रमित किया है, वह है व्यक्तित्व-विश्वास, अहंकार-भ्रम। यह व्यक्तित्व-विश्वास (सक्कायादित्ति) या अहंकार-भ्रम (अत्तादित्ति) दो प्रकार के होते हैं: शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास।
शाश्वतता का विश्वास (सस्सता-दिट्ठी) एक निरंतर विद्यमान अहंकार-सत्ता, आत्मा या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो जीवन के भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं से स्वतंत्र रूप से विद्यमान है और मृत्यु के बाद भी बना रहता है। दूसरी ओर, विनाश का विश्वास (उच्छेद-दिट्ठी) एक अहंकार-सत्ता या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो कमोबेश उन भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं के समान है, और इसलिए, मृत्यु के अंत में, उसका भी विनाश हो जाएगा। अब, बुद्ध न तो मृत्यु के बाद बने रहने वाले व्यक्तित्व की शिक्षा देते हैं, न ही मृत्यु के समय नष्ट होने वाले व्यक्तित्व की, बल्कि वे हमें दिखाते हैं कि व्यक्तित्व, अहंकार, व्यक्ति, मनुष्य आदि मात्र पारंपरिक पदनाम (वोहार-वचन) हैं और परम अर्थ में (परमत्थ-सच्च) केवल भौतिक और मानसिक घटनाओं की यह स्व-विनाशकारी प्रक्रिया है जो निरंतर उत्पन्न होती है और तुरंत ही लुप्त हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 165

———————————————————————

(धम्मपद 164) <<<< पिछला || धम्मपद 165 || अगला >>>> (धम्मपद 166)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 165 - कुलकाल उपासक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 165 - कुलकाल उपासक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Attana hi katam pipam
attana samkilissati
attana akatam papam
attanava visujjhati
शुद्धि अशुद्धि पच्चत्तम
nanno annanam visodhaye.

———————————————————————

श्लोक 165 : स्वयं के कर्मों से ही बुराई होती है और स्वयं के कर्मों से ही अपवित्रता होती है; स्वयं के कर्मों से ही बुराई नहीं होती और स्वयं के कर्मों से ही पवित्रता प्राप्त होती है। पवित्रता और अपवित्रता पूरी तरह से स्वयं पर निर्भर करती है; कोई भी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

———————————————————————

चुलकाला उपासक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (165) का उच्चारण किया, जो कि गृहस्थ शिष्य चुलकाला के संदर्भ में था।

गृहस्थ शिष्य कुलकला ने एक व्रत के दिन उपोसथ (उपवास) के नियमों का पालन किया और पूरी रात जेतवन मठ में रहकर धार्मिक प्रवचन सुने। सुबह तड़के जब वह मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे, तभी कुछ चोरों ने उनके पास एक गठरी गिरा दी। मालिकों ने उन्हें चोरी का सामान लिए देख लिया और उन्हें चोर समझकर बुरी तरह पीटा। सौभाग्य से पानी भरने आई कुछ दासियों ने गवाही दी कि वे उन्हें जानती हैं और वह चोर नहीं हैं। इसलिए कुलकला को छोड़ दिया गया।

जब बुद्ध को इस बारे में बताया गया, तो उन्होंने चुलकाला से कहा, "तुम्हें न केवल इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि दासियों ने कहा कि तुम चोर नहीं हो, बल्कि इसलिए भी कि तुमने चोरी नहीं की और इसलिए निर्दोष हो। बुराई करने वाले निरय (नरक) में जाते हैं, लेकिन अच्छाई करने वाले देवलोक में पुनर्जन्म लेते हैं या निर्वाण प्राप्त करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 165 : स्वयं के कर्मों से ही बुराई होती है और स्वयं के कर्मों से ही अपवित्रता होती है; स्वयं के कर्मों से ही बुराई नहीं होती और स्वयं के कर्मों से ही पवित्रता प्राप्त होती है। पवित्रता और अपवित्रता पूरी तरह से स्वयं पर निर्भर करती है; कोई भी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

प्रवचन के अंत में, गृहस्थ शिष्य चुलकाला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय काला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य चूलकाला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

चूलाकला, जो एक गृहस्थ शिष्य थे, ने एक व्रत के दिन उपोसथ के नियमों का पालन किया और जेतवन मठ में रात्रि व्यतीत की, जहाँ उन्होंने रात भर धार्मिक प्रवचन सुने। सुबह तड़के, जब वे मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे, तभी कुछ चोरों ने उनके पास एक गठरी गिरा दी। मालिकों ने उन्हें चोरी का सामान लिए देख लिया और उन्हें चोर समझकर बुरी तरह पीटा। सौभाग्यवश, पानी भरने आई कुछ दासियों ने गवाही दी कि वे उन्हें जानती हैं और वे चोर नहीं हैं। इस प्रकार चूलाकला को रिहा कर दिया गया।

जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने चूलकाला से कहा, “तुम्हें न केवल इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि दासियों ने कहा कि तुम चोर नहीं हो, बल्कि इसलिए भी कि तुमने चोरी नहीं की और इसलिए निर्दोष हो। बुराई करने वाले निरयण में जाते हैं , परन्तु अच्छाई करने वाले देवलोक में पुनर्जन्म लेते हैं या निर्वाण प्राप्त करते हैं।” प्रवचन के अंत में, चूलकाला नामक गृहस्थ शिष्य ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 165)

अत्तना एव पापं कटं अत्तना संकिलिस्सति ,
अत्तना पापं अकत् अत्तना एव विसुज्जति ,
शुद्धि अशुद्धि पच्चट्टं अण्णो अणं न विशोधये

attanā eva : यदि कोई स्वयं से पाप करे; पापम् [pāpa]: बुरा कर्म; कतम् [kata]: (किया जाए); attanā saṅkilissati : यदि कोई स्वयं से पाप करे; पापम् [pāpa] : बुरा कर्म; अकतम् [akata]: न किया जाए; attanā eva : स्वयं से; विसुज्जति : शुद्ध हो जाए; शुद्धि : शुद्धता; अशुद्धि : अशुद्धता; पच्चत्तम् [paccatta]: स्वयं पर निर्भर; आञ्ञो : एक; आञ्ञम् [añña]: दूसरा; न विसोधये : शुद्ध न करे

बुराई स्वयं के कर्मों से ही होती है। अपने कर्मों से ही व्यक्ति अपवित्र होता है। यदि कोई व्यक्ति बुरे कर्म न करे, तो वह शुद्ध हो जाता है। व्यक्ति स्वयं अपने कर्मों से ही पूर्णतः शुद्ध होता है। कोई दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता। शुद्धता और अशुद्धता दोनों ही स्वयं पर निर्भर करती हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 165)

añño aññaṃ na visodhaye : एक व्यक्ति दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता। बौद्ध धर्म में, प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को शुद्ध करना होता है; अन्य, धार्मिक शिक्षक या पुजारी, उसे शुद्ध नहीं कर सकते। बुद्ध की शुद्धि प्रक्रिया को विशुद्धि कहा जाता है ।

विशुद्धि : शुद्धि, पवित्रता। शुद्धि के सात चरण (सत्तविशुद्धि) उपतिस्सा के विमुक्ति-मग्ग (मुक्ति का मार्ग) की आधारशिला हैं, जो केवल चीनी भाषा में संरक्षित है; साथ ही बुद्धघोष के महान ग्रंथ विशुद्धि-मग्ग, शुद्धि का मार्ग, जो पूर्व ग्रंथ पर आधारित है, की भी

आधारशिला हैं। धर्मग्रंथ में इन सात प्रकार की शुद्धि का उल्लेख केवल एक ही स्थान पर मिलता है, वह है कोच की उपमा, जिसमें इनके उद्देश्य और लक्ष्य को दर्शाया गया है। वहाँ कहा गया है कि वास्तविक और अंतिम लक्ष्य नैतिकता, मन या दृष्टिकोण आदि की शुद्धि में नहीं, बल्कि पूर्ण मुक्ति और निर्वाण में निहित है। अब, जिस प्रकार कोई पहले कोच पर सवार होकर दूसरे कोच तक जाता है, फिर दूसरे कोच पर सवार होकर तीसरे कोच तक जाता है, और इसी प्रकार आगे बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार (1) नैतिकता की शुद्धि (शील-विशुद्धि) का लक्ष्य है; (2) मन की शुद्धि (चित्त), इसका लक्ष्य है; (3) दृष्टि की शुद्धि (दिट्ठी), इसका लक्ष्य है; (4) संशय पर विजय की शुद्धि (कन्खा-वितरण), इसका लक्ष्य है; (5) मार्ग और अपतटीय के ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि (मग्गामग्ग-ज्ञानदस्सान), इसका लक्ष्य है; (6) मार्ग-प्रगति के ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि (पतिपदा-ज्ञानदस्सान), इसका लक्ष्य है; (7) ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि (ज्ञानदस्सान); लेकिन इस शुद्धि का लक्ष्य सभी आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त करना है।

इनमें से, ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि (ज्ञानदस्सान-विशुद्धि) वह ज्ञान है जो चार प्रकार की अलौकिक मार्ग-चेतना से संबंधित है। "इस अनुकूलन ज्ञान के तुरंत बाद परिपक्वता-ज्ञान (गोत्रभू-ज्ञान) उत्पन्न होता है, जो बिना शर्त, अस्तित्व की स्थिरता, बनने की अनुपस्थिति, समाप्ति, निर्वाण को विषय बनाता है, जबकि साथ ही साथ गोत्र, वंश, पदनाम और सांसारिक (पुथुज्जन) के स्तर से ऊपर उठकर श्रेष्ठ (अरीय) के स्तर और स्तर में प्रवेश करता है , निर्वाण को विषय बनाकर उसकी ओर पहला मोड़, उसका पहला चिंतन, उस पर पहली एकाग्रता और मार्ग निर्माण की शर्त है - अंतर्दृष्टि की पराकाष्ठा, और फिर कभी इस रूप में वापस नहीं आता।

उस परिपक्व ज्ञान (गोत्रभू-ज्ञान) के ठीक बाद , प्रथम मार्ग-चेतना (धारा-प्रवेश) उत्पन्न होती है, जो अस्तित्व के दस बंधनों (संयोजन) में से पहले तीन को सदा के लिए नष्ट कर देती है और निम्न लोकों के प्रवेश द्वार को बंद कर देती है। इस मार्ग-ज्ञान के तुरंत बाद, इसके फलस्वरूप, चेतना की दो या तीन मार्ग-जनित अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें फल-चित्त (फल-चित्त) कहा जाता है। इस चेतना के अस्तित्व की अवचेतन धारा में विलीन होने के तुरंत बाद, पूर्वव्यापी ज्ञान (पच्चवेक्खना-ज्ञान) उत्पन्न होता है, जिसका विषय मार्ग-चेतना होती है।

चारों प्रकार की पथ-चेतना एक ही समय में चार कार्य करती है, अर्थात्: दुख की पूर्ण समझ (परिञ्ञा) का कार्य, दुख के मूल को दूर करने (पाहन) का कार्य, दुख के निवारण को अनुभव करने (सच्चिकिरिया) का कार्य, और अलौकिक पवित्र अष्टांगिक मार्ग (मग्ग) को विकसित करने (भावना) का कार्य ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 166

(धम्मपद 165) <<<< पिछला || धम्मपद 166 || अगला >>>> (धम्मपद 167)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 166 - अत्तादत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 166 - अत्तादत्तत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्तदत्तम(1) परत्थेना
bahunapi na hapaye
attadatthamabhinnaya
sadatthapasuto siya.

श्लोक 166 : चाहे दूसरे का भला कितना भी बड़ा क्यों न हो, अपने स्वयं के (नैतिक) भले की उपेक्षा न करो। अपने भले को स्पष्ट रूप से समझते हुए, उसे प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करो।

---

1. अत्तदत्तम्: स्वयं का लाभ। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में स्वयं के लाभ का अर्थ है मार्ग, फल और निर्वाण। (नोट: उपरोक्त कथन बुद्ध ने अंतर्दृष्टि ध्यान के संदर्भ में किया था।)

थेरा अट्टादत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अट्टादत्था के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (166) कहा।

जब बुद्ध ने घोषणा की कि वे चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु(2) चिंतित हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें; इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। परन्तु अत्तदत्त बुद्ध के पास नहीं गए और बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करने का संकल्प लेकर ध्यान साधना में लगे रहे। अन्य भिक्षु उन्हें समझ नहीं पाए और उन्हें बुद्ध के पास ले गए तथा कहा, "आदरणीय गुरु, यह भिक्षु हमारी तरह आपका प्रेम और आदर नहीं करता प्रतीत होता; यह तो एकांत में ही रहता है।" तब थेरा ने उन्हें समझाया कि वह बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे और यही एकमात्र कारण था कि वे बुद्ध के पास नहीं आए थे।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, जो मुझसे प्रेम करते हैं और मेरा आदर करते हैं, उन्हें अत्तदत्त के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और धूप चढ़ाने और मेरे दर्शन करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं; आप मुझे प्रणाम केवल मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म, अर्थात् लोकउत्तरा धम्म का अभ्यास करके ही कर रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 166 : चाहे दूसरे का भला कितना भी बड़ा क्यों न हो, अपने स्वयं के (नैतिक) भले की उपेक्षा न करो। अपने भले को स्पष्ट रूप से समझते हुए, उसे प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करो।

प्रवचन के अंत में थेरा अट्टादत्था ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) पुथुज्जन भिक्षु: वे भिक्षु जिन्होंने अभी तक कोई मार्ग प्राप्त नहीं किया है।

बारहवें अध्याय का अंत: स्वयं (अत्तवग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अट्टादत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अत्तदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब बुद्ध ने घोषणा की कि वे चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु चिंतित हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें; इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। परन्तु अत्तदत्त बुद्ध के पास नहीं गए और बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करने का संकल्प लेकर ध्यान साधना में लगे रहे। अन्य भिक्षु उन्हें समझ नहीं पाए और उन्हें बुद्ध के पास ले गए तथा कहा, "आदरणीय, यह भिक्षु हमारी तरह आपसे प्रेम और आदर नहीं करता प्रतीत होता; यह तो एकांत में ही रहता है।" तब आदरणीय ने उन्हें समझाया कि वे बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे और यही एकमात्र कारण था कि वे बुद्ध के पास नहीं आए थे।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, जो मुझसे प्रेम करते हैं और मेरा आदर करते हैं, उन्हें अत्तदत्त के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती चढ़ाने और मेरे दर्शन करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं; आप मुझे प्रणाम केवल मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म, अर्थात् लोकउत्तरा धम्म का अभ्यास करके ही कर रहे हैं।"

प्रवचन के अंत में, पूज्य अट्टादत्था ने अरहत पद प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 166)

बहुना अपि परत्थेन अत्तदत्तं न हापये ;

अत्तदत्तं अभिनयाय सदत्थपसुतो सिया

बहुना अपि : अधिकता के कारण; परथेना : दूसरों की सेवा; अट्टदत्तम् [अट्टदत्त]: किसी की अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए लाभ; न हापये : बाधा मत डालो; अट्टदत्तः [अट्टदत्त]: स्वयं के लिए लाभ; अभिनयाय : पूरी तरह से समझा जाना चाहिए; सदत्थपसुतो सिया : (इसलिए) अपने स्वयं के आध्यात्मिक हित के प्रवर्तक बनें
दूसरों की सेवा में लगे रहने के चक्कर में व्यक्ति को अपनी आध्यात्मिक प्रगति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अपने आध्यात्मिक स्वार्थ के प्रति पूर्णतः सजग रहें और अपने उच्चतर लक्ष्यों को बढ़ावा दें।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 166)
अतदत्तं : कल्याण । बाह्य सम्मान के लिए व्यक्तिगत पुण्य प्राप्ति का त्याग नहीं करना चाहिए।
इस श्लोक का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि हमें निस्वार्थ भाव से दूसरों के कल्याण के लिए काम नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने निस्वार्थ सेवा की अत्यधिक प्रशंसा की है।
यहां 'कल्याण' से तात्पर्य व्यक्ति के अंतिम लक्ष्य, अर्थात् निर्वाण से है।
निर्वाण क्या है? इस सरल और सहज प्रश्न के उत्तर में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं; लेकिन इनसे समस्या स्पष्ट होने के बजाय और अधिक उलझ गई है। इस प्रश्न का एकमात्र तर्कसंगत उत्तर यही है कि इसका पूर्ण और संतोषजनक उत्तर शब्दों में देना संभव नहीं है, क्योंकि मानव भाषा परम सत्य या निर्वाण के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करने में असमर्थ है। भाषा का निर्माण और उपयोग मनुष्यों द्वारा अपनी इंद्रियों और मन द्वारा अनुभव की गई चीजों और विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। परम सत्य जैसा अलौकिक अनुभव इस श्रेणी में नहीं आता। इसलिए उस अनुभव को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हो सकते, ठीक वैसे ही जैसे मछली के पास ठोस भूमि के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं थे। कछुए ने अपने मित्र मछली से कहा कि वह (कछुआ) अभी-अभी जमीन पर टहलने के बाद झील में लौटा है। मछली ने कहा, 'ज़रूर, तुम्हारा मतलब तैरने से है।' कछुए ने समझाने की कोशिश की कि ज़मीन पर तैरना संभव नहीं है, वह ठोस है और उस पर चला जाता है। लेकिन मछली ने ज़ोर देकर कहा कि ऐसी कोई चीज़ हो ही नहीं सकती, वह उसकी झील की तरह तरल होनी चाहिए, जिसमें लहरें हों और वहाँ गोता लगाकर तैरा जा सकता हो।
आइए मूल पाली ग्रंथों में पाए जाने वाले निर्वाण की कुछ परिभाषाओं और विवरणों पर विचार करें:
'यह उस 'प्यास' (तन्हा) का पूर्ण रूप से समाप्त होना है, उसे त्याग देना, उसका परित्याग करना, उससे मुक्ति पाना, उससे वैराग्य प्राप्त करना है।'
'सभी बद्ध चीजों को शांत करना, सभी दोषों का त्याग करना, प्यास का बुझना, वैराग्य, समाप्ति, निर्वाण।'
'हे भिक्षुओं, परम सत्य (असंखत , बिना शर्त) क्या है? हे भिक्षुओं, यह इच्छा का नाश (रागक्खयो), घृणा का नाश (दोसक्खयो), और भ्रम का नाश (मोहक्खयो) है। हे भिक्षुओं, यही परम सत्य कहलाता है।'
'हे राधा, प्यास का नाश होना ही निर्वाण है।'
'हे भिक्षुओं, चाहे जो भी वस्तुएँ सशर्त हों या निर्शर्त, उनमें वैराग्य (विराग) सर्वोच्च है।'
अर्थात्, अहंकार से मुक्ति, प्यास का नाश, आसक्ति का जड़ से उखाड़ना, निरंतरता का विच्छेद, प्यास का अंत (तण्हा), वैराग्य, समाप्ति, निर्वाण।
'यहाँ ठोसता, तरलता, ऊष्मा और गति के चार तत्वों का कोई स्थान नहीं है; लंबाई और चौड़ाई, सूक्ष्म और स्थूल, अच्छा और बुरा, नाम और रूप की धारणाएँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं; न तो यह लोक, न ही दूसरा लोक, न आना, न जाना, न रुकना, न मृत्यु, न जन्म, न ही इंद्रिय-विषय पाए जाते हैं।'
यह सोचना गलत है कि निर्वाण भोग-विलास के निषेचन का स्वाभाविक परिणाम है। निर्वाण किसी भी चीज़ का परिणाम नहीं है। यदि यह परिणाम होता, तो यह किसी कारण से उत्पन्न प्रभाव होता। यह संखत होता, 'उत्पन्न' और 'परिबद्ध'। निर्वाण न तो कारण है और न ही प्रभाव। यह कारण और प्रभाव से परे है। सत्य न तो परिणाम है और न ही प्रभाव। यह ध्यान या समाधि जैसी किसी रहस्यमय, आध्यात्मिक मानसिक अवस्था की तरह उत्पन्न नहीं होता ।

अध्याय 13. लोकवग्गा: विश्व (167-178)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 167

(धम्मपद 166) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 167 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 168 और 169)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 167 - दाहरभिक्खु वथु

1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 167 - दाहरभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Hinam dhammam na seveyya
pamadena na samvase
micchaditthim na seveyya
na siya lokavaddhano.

श्लोक 167 : नीच मार्गों का अनुसरण न करो, लापरवाही में न जियो, गलत विचारों को न अपनाओ, संसार (शाब्दिक रूप से, दुनिया) को लंबा करने वाले मत बनो।

एक युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक युवा भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (167) कहा।

एक बार एक युवा भिक्षु एक वृद्ध भिक्षु के साथ विशाखा के घर गया। चावल का दलिया खाने के बाद, वृद्ध भिक्षु युवा भिक्षु को विशाखा के घर छोड़कर कहीं और चले गए। विशाखा की पोती युवा भिक्षु के लिए पानी छान रही थी, और जब उसने बड़े बर्तन में अपना प्रतिबिंब देखा तो वह मुस्कुरा उठी। उसे मुस्कुराते हुए देखकर युवा भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया। जब उसने देखा कि युवा भिक्षु उसे देख रहा है और मुस्कुरा रहा है, तो उसे गुस्सा आ गया और वह क्रोधित होकर बोली, "तुम, मुंडे हुए सिर वाले! मुझ पर क्यों मुस्कुरा रहे हो?" युवा भिक्षु ने कहा, "तुम स्वयं मुंडे हुए सिर वाली हो; तुम्हारे माता-पिता भी मुंडे हुए सिर वाले हैं!" इस प्रकार, दोनों में झगड़ा हुआ, और वह लड़की रोते हुए अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा ने आकर युवा भिक्षु से कहा, "कृपया मेरी पोती पर क्रोधित न हों। लेकिन, एक भिक्षु अपने बाल मुंडवाता है, अपने हाथों और पैरों के नाखून कटवाता है, और कटे हुए टुकड़ों से बने वस्त्र पहनकर बिना किनारे वाले भिक्षापात्र के साथ भिक्षा मांगने जाता है। इस युवती ने जो कहा, वह एक तरह से बिल्कुल सही है, है ना?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "यह सच है, लेकिन इस बात पर उसे मुझे क्यों बुरा-भला कहना चाहिए?" इसी समय, बड़े भिक्षु वापस आ गए; लेकिन विशाखा और बड़े भिक्षु दोनों ही युवा भिक्षु और युवती को शांत करने में असफल रहे।

इसके तुरंत बाद, बुद्ध वहाँ पहुँचे और उन्हें झगड़े के बारे में पता चला। बुद्ध जानते थे कि युवा भिक्षु के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। फिर, युवा भिक्षु को अपनी बातों के प्रति अधिक जागरूक करने के लिए, उन्होंने मानो उसका पक्ष लिया और विशाखा से कहा, "विशाखा, तुम्हारी पोती मेरे बेटे को केवल इसलिए मुंडा हुआ क्यों कह रही है क्योंकि उसने अपना सिर मुंडवाया है? आख़िरकार, उसने मेरे संघ में प्रवेश करने के लिए ही तो अपना सिर मुंडवाया था, है ना?"

ये शब्द सुनकर युवा भिक्षु घुटनों के बल बैठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और बोला, “आदरणीय गुरुदेव! केवल आप ही मुझे समझते हैं; न तो मेरे गुरु और न ही मठ के महान दानदाता मुझे समझते हैं।” बुद्ध जानते थे कि भिक्षु उस समय ग्रहणशील अवस्था में था, इसलिए उन्होंने कहा, “इंद्रिय सुख की इच्छा से मुस्कुराना नीच है; नीच विचार रखना उचित नहीं है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 167 : नीच मार्गों का अनुसरण न करो, लापरवाही में न जियो, गलत विचारों को न अपनाओ, संसार (शाब्दिक रूप से, दुनिया) को लंबा करने वाले मत बनो।

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार एक युवा भिक्षु एक वृद्ध भिक्षु के साथ विशाखा के घर गए। चावल का दलिया खाने के बाद, वृद्ध भिक्षु युवा भिक्षु को विशाखा के घर छोड़कर कहीं और चले गए। विशाखा की पोती युवा भिक्षु के लिए पानी छान रही थी, और जब उसने बड़े बर्तन में अपना प्रतिबिंब देखा तो वह मुस्कुरा उठी। उसे इस तरह मुस्कुराते देख युवा भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया। जब उसने देखा कि युवा भिक्षु उसे देख रहा है और मुस्कुरा रहा है, तो उसे गुस्सा आ गया और वह क्रोधित होकर बोली, "हे मुंडे सिर वाले! मुझ पर क्यों मुस्कुरा रहे हो?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "तुम स्वयं मुंडे सिर वाली हो: तुम्हारी माँ और तुम्हारे पिता भी मुंडे सिर वाले हैं!" इस प्रकार, दोनों में झगड़ा हुआ, और वह युवती रोते हुए अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा आईं और युवा भिक्षु से बोलीं, "कृपया मेरी पोती पर क्रोधित न हों। लेकिन, एक भिक्षु अपने बाल मुंडवाता है, अपने हाथों और पैरों के नाखून कटवाता है, और कटे हुए टुकड़ों से बने वस्त्र पहनकर भिक्षापात्र लेकर भिक्षा मांगने जाता है। इस युवती ने जो कहा वह बिल्कुल सही था।" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "यह सच है, लेकिन इस बात पर वह मुझे क्यों बुरा-भला कह रही है?" इसी समय, वृद्ध भिक्षु लौट आए; लेकिन विशाखा और वृद्ध भिक्षु दोनों ही झगड़ रहे युवा भिक्षु और युवती को शांत करने में असफल रहे।

इसके तुरंत बाद, बुद्ध वहाँ पहुँचे और उन्हें झगड़े के बारे में पता चला। बुद्ध जानते थे कि युवा भिक्षु के लिए सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त करने का समय आ गया है। तब, युवा भिक्षु को अपनी बातों के प्रति अधिक ग्रहणशील बनाने के लिए, उन्होंने मानो उसका पक्ष लिया और विशाखा से कहा, "विशाखा, आपकी पोती मेरे पुत्र को केवल इसलिए मुंडा हुआ क्यों कह रही है क्योंकि उसने अपना सिर मुंडवाया है? आख़िरकार, उसने मेरे संघ में प्रवेश करने के लिए ही तो अपना सिर मुंडवाया था?" ये शब्द सुनकर युवा भिक्षु घुटनों के बल बैठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय! केवल आप ही मुझे समझते हैं: न तो मेरे गुरु और न ही मठ के महान दानदाता मुझे समझते हैं।" बुद्ध जानते थे कि भिक्षु उस समय ग्रहणशील अवस्था में था, इसलिए उन्होंने कहा, "इंद्रिय सुख से मुस्कुराना उचित नहीं है और नीच विचार रखना अनुचित है।" प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद

हीनं धम्मं न सेवेया पमादेन न सवसे

मिच्छादिथिं न सेवैया लोकवधनो न सिया

हिनां [हिना]: भ्रष्ट; धम्मम् [धम्म]: जीवन के तरीके, लक्षण; ना सेवेय्या : खेती मत करो; पमादेना : आलस्यपूर्वक; न संवसे : अपना जीवन मत जियो; मिच्छादिथिः [मिच्छादिथि]: झूठे विचार; ना सेवैया : की ओर मत मुड़ो; लोकवन्धनो [लोकवन्धन]: संसार का कृषक; न सिया : मत बनो

भ्रष्ट मार्गों और नीच इच्छाओं को बढ़ावा देने वाली प्रथाओं का सहारा न लें। आलसी जीवन न जिएं। झूठे विचारों वाले लोगों से संगति न रखें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 167)

मिच्छादित्तिं न सेवेय्या : झूठे विचारों को मत अपनाओ। ये विचार बुद्ध की शिक्षाओं—धर्म—के विरुद्ध हैं। झूठे विचारों को अपनाने वालों को झूठे मार्ग पर चलने वाला कहा जा सकता है— मिच्छा-मग्ग जो अत्थांगिक है ।

अष्टांगिक मार्ग, अर्थात्

गलत दृष्टिकोण (मिच्छा-दिट्ठी)

गलत विचार (मिच्छा-संकप्पा):

ग़लत भाषण (मिच्चा-वाका):

गलत शारीरिक क्रिया (मिच्छा-कम्मंता):

गलत आजीविका (मिच्छा-आजीव):

गलत प्रयास (मिच्चा-वायम):

गलत ध्यान (मिच्छा-सति):

गलत एकाग्रता (मिच्छा-समाधि)।

जिस प्रकार अष्टांग मार्ग (सम्मा-मग्ग) में आठ कड़ियाँ शामिल हैं, उसी प्रकार यहाँ भी आठ कड़ियाँ मानसिक संरचनाओं (संखार-खंड) के समूह में आती हैं। कड़ियाँ 2, 6, 7 और 8 कर्मिक रूप से अस्वस्थ चेतना की प्रत्येक अवस्था से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं। अक्सर 3, 4 या 5 भी मौजूद होती हैं, कभी-कभी कड़ी 1 भी।

विशेष टिप्पणी : बुद्ध के समय में जिन धार्मिक व्यक्तियों के मत गलत थे, उनमें से छह बहुत प्रसिद्ध हैं।

उनके नाम और उनके द्वारा प्रतिपादित प्रणालियाँ नीचे दी गई हैं:

पुराण कस्सप - अकिरिया वडा (अक्षमता का सिद्धांत);
अजिता केसकंबाला - उचेदा वडा (विनाशवाद का भौतिकवादी सिद्धांत);
पकुडा कक्कायण - अक्रुन्क्ततत्वदा (शून्यवाद);
मक्खलि-गोसाल — दैव वदा (भाग्यवाद);
संजय बेलाथिपुत्त अमरविक्खेपा वादे - अनिश्चिता वादा (तर्कसंगत संशयवाद का सिद्धांत);
निगंठनाथपुत्त - चातुयामा संवर वदा (अहिंसा का सिद्धांत)।
इन छह शिक्षकों में से, चार, अर्थात्, पुराण कस्सप , अजिता केसकंबाला , पाकुडा कच्चायन और संजय बेलाथिपुत्त के बारे में जानकारी दीघनिकाय के समन्नफल सुत्त में दी गई है । अन्य दो के संबंध में जानकारी जैन और बौद्ध साहित्य दोनों में दी गई है।
इन छह शिक्षकों की शिक्षाओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:
अस्थिवाद (आत्मा और परलोक के अस्तित्व में विश्वास):
नास्तिक वाद (आत्मा और परलोक में तथा अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों में अविश्वास)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 168,169

———————————————————————————

(धम्मपद 167) <<<< पिछला ll धम्मपद 168 और 169 ll अगला >>>> (धम्मपद 170)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Uttitthe nappamajjeyya
धम्मम सुकारितम(1) देखभाल
धम्मकारी सुखम सेती
asmim loke paramhi ca.
Dhammam care sucaritarm
na nam duccaritam(2) care
धम्मकारी सुखम सेती
asmim loke paramhi ca.

———————————————————————————

श्लोक 168 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) की उपेक्षा न करो; उचित धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो। जो उचित अभ्यास का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

———————————————————————————

श्लोक 169 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो; अनुचित अभ्यास का पालन मत करो। जो धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

———————————————————————————

1. धम्मं सुचरितम्: उचित अभ्यास या मार्ग। टीका कहती है कि यहाँ तपस्वी के लिए उचित अभ्यास का अर्थ है भिक्षायात्रा के दौरान एक के बाद एक घर में भिक्षा ग्रहण करना, सिवाय उन स्थानों के जहाँ जाना उचित न हो (जैसे कि वेश्या का घर)।
2. ना नाम दुकारितम: अनुचित व्यवहार। यहाँ इसका अर्थ है उपरोक्त नियमों का पालन न करना।

———————————————————————————

राजा सुद्धोदना की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने गौतम बुद्ध के पिता राजा सुद्धोदन के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (168) और (169) का उच्चारण किया।

जब बुद्ध पहली बार कपिलवस्तु लौटे, तो वे निग्रोधरमा मठ में ठहरे। वहाँ उन्होंने अपने सगे-संबंधियों को धम्म का उपदेश दिया। राजा सुद्धोदन को लगा कि गौतम बुद्ध, जो उनके अपने पुत्र थे, किसी और स्थान पर नहीं जाएँगे, बल्कि अगले दिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए उनके महल में अवश्य आएँगे; परन्तु उन्होंने बुद्ध को भिक्षा ग्रहण करने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित नहीं किया। फिर भी, अगले दिन उन्होंने बीस हजार भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन तैयार किया। उस सुबह बुद्ध सभी बुद्धों की परंपरा के अनुसार भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने निकले।

राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा ने, उनके संसार त्यागने से पहले, महल की खिड़की से बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा। उन्होंने अपने ससुर, राजा सुद्धोदन को इसकी सूचना दी, और राजा शीघ्र ही बुद्ध के पास गए। राजा ने बुद्ध से कहा कि शाही क्षत्रिय वंश के किसी सदस्य के लिए घर-घर जाकर भिक्षा मांगना लज्जाजनक है। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया कि सभी बुद्धों की यह प्रथा रही है कि वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगें, इसलिए उनके लिए भी इस परंपरा को निभाना उचित है।

———————————————————————————

श्लोक 168 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) की उपेक्षा न करो; उचित धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो। जो उचित अभ्यास का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

———————————————————————————

श्लोक 169 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो; अनुचित अभ्यास का पालन मत करो। जो धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में गौतम बुद्ध के पिता ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

राजा सुद्धोदना की कहानी

बरगद के वन में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने पिता के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कुछ समय बाद बुद्ध ने कपिल नगर की अपनी पहली यात्रा की, और जब वे वहाँ पहुँचे, तो उनके सगे-संबंधी उनका स्वागत करने के लिए उमड़ पड़े। उस अवसर पर, अपने सगे-संबंधियों के अत्यधिक अहंकार को तोड़ने के लिए, उन्होंने अलौकिक मानसिक शक्ति से आकाश में रत्नों का एक आश्रम बनाया, और उस आश्रम में घूम-घूम कर धर्म का उपदेश दिया। उनके सगे-संबंधियों के ह्रदय तुरंत श्रद्धा से भर गए, और महान राजा सुद्धोदन से लेकर सभी ने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उनके सगे-संबंधियों की सभा पर वर्षा हुई, जिसके विषय में लोगों के बीच चर्चा हुई। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मेरे सगे-संबंधियों की सभा पर वर्षा हुई है: ऐसा ही मेरे पिछले जन्म में भी हुआ था।" ऐसा कहकर उन्होंने वेस्सन्तर जातक कथा सुनाई। उनके धर्मोपदेश को सुनकर उनके रिश्तेदार बिना बुद्ध को निमंत्रण दिए ही चले गए। इसी प्रकार, राजा के मन में यह विचार आया, "यदि मेरा पुत्र मेरे घर नहीं आएगा, तो वह कहाँ जाएगा?", फिर भी वह उसे आमंत्रित किए बिना ही घर लौट गया। परन्तु जब वह राजमहल पहुँचा, तो उसने बीस हजार भिक्षुओं के लिए चावल का दलिया और अन्य प्रकार के भोजन तैयार करवाए और उनके लिए बैठने की व्यवस्था भी करवाई।

अगले दिन, जब बुद्ध भिक्षा लेने के लिए नगर में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या पूर्व के बुद्ध अपने पिता के नगर में प्रवेश करते ही सीधे अपने सगे-संबंधियों के घर जाते थे, या वे नियमित रूप से घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे?" यह जानकर कि वे हमेशा घर-घर जाते थे, बुद्ध ने भी पहले घर से शुरुआत की और घर-घर जाकर भिक्षा मांगी। उन्होंने यह बात राजा को बताई। राजा जल्दी से अपने निवास से बाहर आए, जाते समय अपना वस्त्र ठीक किया और बुद्ध के समक्ष प्रणाम करते हुए बोले, "पुत्र, तुम मुझे क्यों अपमानित कर रहे हो? तुम्हें घर-घर जाकर भिक्षा मांगते देखकर मैं लज्जित हो रहा हूँ। इसी नगर में जहाँ तुम सोने के रथ में यात्रा करते थे, वहाँ सोने की पालकी में घर-घर जाकर भिक्षा मांगना अनुचित है। तुम मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो?" "महाराज, मैं आपको लज्जित नहीं कर रहा हूँ: मैं तो बस अपने वंश की परंपरा का पालन कर रहा हूँ।" "परन्तु, मेरे प्रिय पुत्र, क्या मेरे वंश में भिक्षा माँगकर जीविका

कमाना एक परंपरा है?" "नहीं, महाराज, यह आपके वंश की परंपरा नहीं है। परन्तु यह मेरे वंश की परंपरा है, क्योंकि असंख्य बुद्धों ने घर-घर जाकर भिक्षा माँगी है और इसी प्रकार अपनी जीविका अर्जित की है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 168)

उत्तिष्ठे नप्पमज्जेय धम्मं सुचरितं देखभाल

धम्मचारी अस्मि लोके परमहि च सुखं सेति

उत्तित्ते : वास्तविकता को जागो; नप्पमज्जेय्या : भ्रमित मत हो; धम्मं [धम्म]: वास्तविकता में; सुचरितं केयर : सही ढंग से जियो; धम्मचारी : यथार्थवादी जीवन जीने वाला; अस्मिं लोके : इस दुनिया में; परम्हि च : और अगली दुनिया में; सुखं [सुख]: आराम से; सेति : जीवन

वास्तविकता को जागो: भ्रम में मत रहो। वास्तविकता के अनुसार जीवन जियो। यथार्थवादी व्यक्ति इस दुनिया में और अगली दुनिया में सुखी रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 169)

धम्मं सुचरितं केयर नं दुच्चैरितं न केयर

धम्मचारी अस्मि लोके परमहि च सुखं सेति

धम्मं [धम्म]: वास्तविकता के भीतर; सुचरितं देखभाल : सही ढंग से जीना; नं : वह; दुच्चरितं [दुच्चरित]: गलत तरीके से जीना; न देखभाल : न जीना; धम्मचारि : जो यथार्थवादी जीवन जीता है; अस्मिं लोके : इस दुनिया में; परम्हि च : और अगली दुनिया में; सुखं [सुख]: आराम से; सेति : जीवन जीता है

धम्म का पूर्णतया अभ्यास करो। इसका गलत या दोषपूर्ण तरीके से अभ्यास मत करो। जो व्यक्ति उचित ढंग से शिक्षा का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में शांति और सुख का अनुभव करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 168-169)

राजा सुद्धोदन : यह खबर वृद्ध राजा सुद्धोदन तक पहुँची कि बुद्ध राजगृह में निवास कर रहे हैं और धर्म का प्रचार कर रहे हैं, और अपने ज्ञानी पुत्र के दर्शन करने की उनकी उत्सुकता और भी बढ़ गई। उन्होंने नौ बार अपने नौ दरबारी भेजे, जिनमें से प्रत्येक के साथ एक बड़ा समूह था, ताकि बुद्ध को कपिलवस्तु में आमंत्रित किया जा सके। उनकी अपेक्षा के विपरीत, उन सभी ने धर्म का उपदेश सुना और अर्हतत्व प्राप्त करके संघ में प्रवेश किया। चूंकि अर्हत सांसारिक चीजों के प्रति उदासीन थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को यह संदेश नहीं दिया। निराश राजा ने अंततः एक और वफादार दरबारी, कालुदायी को भेजा, जो बुद्ध का बचपन का साथी था। अन्य दरबारियों की तरह, उसे भी अर्हतत्व प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और वह संघ में शामिल हो गया। लेकिन, दूसरों के विपरीत, उसने बुद्ध को यह संदेश दिया और उन्हें अपने वृद्ध पिता से मिलने के लिए राजी किया। चूंकि यात्रा के लिए मौसम सबसे उपयुक्त था, इसलिए बुद्ध अपने शिष्यों के एक बड़े दल के साथ धीरे-धीरे यात्रा करते हुए रास्ते में धम्म का प्रचार करते रहे और उचित समय पर दो महीने में कपिलवस्तु पहुंचे। उनके रहने की व्यवस्था शाक्य निग्रोध उद्यान में की गई। अहंकारी वृद्ध शाक्य मन ही मन सोच रहे थे, "यह हमारा छोटा भाई, हमारा भतीजा, हमारा पोता है," और उन्होंने युवा राजकुमारों से कहा, "आप उन्हें प्रणाम कीजिए; हम आपके पीछे बैठेंगे।" जब वे बिना उचित सम्मान दिए बैठ गए, तो उन्होंने वायु में उठकर अपने शरीर से जल और ऊष्मा निकालकर उनके अहंकार को चकनाचूर कर दिया। इस अद्भुत घटना को देखकर राजा ने तुरंत उन्हें प्रणाम किया और कहा कि यह उनका तीसरा प्रणाम था। उन्होंने पहली बार उन्हें तब प्रणाम किया था जब उन्होंने शिशु राजकुमार के चरणों को तपस्वी असिता के सिर पर रखा हुआ देखा था, जिनका वे चाहते थे कि बालक आदर करे। उनका दूसरा प्रणाम हल चलाने के उत्सव में हुआ, जब उन्होंने शिशु राजकुमार को पलंग पर पालथी मारकर ध्यान में लीन देखा। तब सभी शाक्य उन्हें उचित सम्मान देने के लिए विवश हो गए।

तब बुद्ध आकाश से अवतरित हुए और उनके लिए तैयार आसन पर विराजमान हुए। उनके विनम्र संबंधी उत्सुकतापूर्वक उनके उपदेश सुनने के लिए बैठ गए। उसी क्षण शाक्य परिजनों पर अचानक वर्षा होने लगी। इस विचित्र घटना के कारण उनमें आपस में चर्चा हुई। तब बुद्ध ने वेस्सन्तरा जातक का उपदेश दिया और बताया कि पिछले जन्म में भी उनके परिजनों के समक्ष ऐसी ही घटना घटी थी। शाक्य प्रवचन से प्रसन्न हुए और वे यह जाने बिना चले गए कि बुद्ध और शिष्यों को दोपहर के भोजन के लिए आमंत्रित करना उनका कर्तव्य था। राजा को बुद्ध को आमंत्रित करने का विचार नहीं आया, यद्यपि उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मेरा पुत्र मेरे घर नहीं आएगा, तो वह कहाँ जाएगा?" घर पहुँचकर उन्होंने उनके आगमन की प्रतीक्षा में कई प्रकार के भोजन तैयार किए।

अगले दिन दोपहर के भोजन के लिए कोई विशेष निमंत्रण न होने के कारण, बुद्ध और उनके शिष्य अपने नियमित भिक्षाटन के लिए तैयार हो गए। आगे बढ़ने से पहले उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या पूर्वज ऋषि अपने सगे नगर में प्रवेश करते ही सीधे उनके घरों में प्रवेश करते थे, या वे नियमित रूप से घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे?" यह जानकर कि वे ऐसा ही करते थे, बुद्ध कपिलवस्तु की गलियों में भिक्षा मांगने चले गए। बुद्ध के इस प्रतीत होने वाले अपमानजनक आचरण के बारे में उनकी बहू यशोदरा से सुनकर, व्याकुल होकर, वह बुद्ध के पास जल्दी से पहुंची और उन्हें प्रणाम करते हुए बोली, "पुत्र, तुम मुझे क्यों अपमानित कर रहे हो? तुम्हें भिक्षा मांगते देखकर

मैं लज्जित हो रही हूँ। क्या तुम्हारे लिए, जो सोने की पालकी में यात्रा करते थे, इस नगर में भिक्षा मांगना उचित है? तुम मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो?”

“हे महाराज, मैं आपको लज्जित नहीं कर रहा हूँ! मैं अपने वंश की परंपरा का पालन कर रहा हूँ,” बुद्ध ने राजा को आश्चर्यचकित करते हुए उत्तर दिया। “परन्तु, हे पुत्र, क्या मेरे वंश में भिक्षा माँगकर जीविका चलाना प्रथा है? निश्चय ही हमारा वंश महासम्मत का योद्धा वंश है, और आज तक किसी योद्धा ने भिक्षा नहीं माँगी।” “हे महाराज, यह तो आपके राजवंश की प्रथा है। परन्तु यह मेरे बुद्ध वंश की प्रथा है। हजारों ऋषियों ने भिक्षा माँगकर जीवन यापन किया है।” सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने राजा को यह उपदेश दिया: “भिक्षा माँगने में लापरवाही न करें। धर्मपरायण जीवन व्यतीत करें। धर्मपरायण इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं।” यह सुनकर राजा ने उपदेश को आत्मसात कर लिया और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त कर ली। इसके तुरंत बाद, उन्होंने बुद्ध का कुंड लिया और उन्हें तथा उनके शिष्यों को महल में ले जाकर उत्तम भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने उन्हें फिर से इस प्रकार उपदेश दिया: “धर्मपरायण जीवन जियो, भ्रष्ट जीवन नहीं। धर्मपरायण लोग इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं।”

इसके बाद राजा ने संतत्व की दूसरी अवस्था (सकदागामी) और प्रजापति गौतमी ने संतत्व की पहली अवस्था (सोतापत्ति) प्राप्त की। बाद में जब बुद्ध को बताया गया कि राजा अपने पुत्र की कठोर तपस्या के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त किए बिना मृत्यु को मानने से इनकार कर रहे हैं, तो बुद्ध ने धम्मपाल जातक का उपदेश देकर यह दर्शाया कि पिछले जन्म में भी उन्होंने अपने पुत्र की मृत्यु को मानने से इनकार कर दिया था, जबकि उन्हें अस्थियों का ढेर दिखाया गया था। इस समय उन्होंने संतत्व की तीसरी अवस्था (अनागामी) प्राप्त की। अपनी मृत्यु शैय्या पर राजा ने बुद्ध से अंतिम बार धम्म सुना और अर्हतत्व प्राप्त किया। सात दिनों तक मोक्ष के आनंद का अनुभव करने के बाद, जब बुद्ध लगभग चालीस वर्ष के थे, तब वे एक गृहस्थ अर्हत के रूप में परलोक विदा हो गए। राजा सुद्धोदन को अपने पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ से अत्यंत स्नेह था। कुछ परंपराओं में राजा द्वारा देखे गए सात सपनों का उल्लेख है, जो राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा चार शगुन देखने और गृहस्थ जीवन का त्याग करने से ठीक पहले देखे गए थे।

ये हैं वो सपने:

(1) इंद्र के समान एक विशाल शाही ध्वज के चारों ओर असंख्य लोगों की भीड़ जमा हो गई, और उन्होंने उसे उठाकर और ऊपर लहराते हुए कपिलवस्तु से होते हुए आगे बढ़े, और अंत में पूर्वी द्वार से शहर से बाहर चले गए:

(2) राजकुमार सिद्धार्थ विशाल हाथियों द्वारा खींचे गए शाही रथ पर सवार होकर दक्षिणी द्वार से गुजरे:

(3) राजकुमार एक अत्यंत भव्य चार घोड़ों वाले रथ में सवार होकर फिर पश्चिमी द्वार से आगे बढ़े:

(4) एक शानदार रत्नजड़ित चक्र हवा में उड़ता हुआ उत्तरी द्वार से होकर गुजरा:

(5) कपिलवस्तु के चार महान राजमार्गों के मध्य में बैठा राजकुमार, एक बड़ी गदा धारण किए हुए, उससे एक बड़े ढोल पर प्रहार कर रहा था:

(6) राजकुमार कपिलवस्तु के केंद्र में स्थित एक ऊंचे टॉवर के शीर्ष पर बैठा था, और उसने वहां आए असंख्य जीव-जंतुओं द्वारा एकत्रित किए गए अनगिनत रत्नों को स्वर्ग के चारों दिशाओं में बिखेर दिया था;

(7) कपिलवस्तु नगर के बाहर, बहुत दूर नहीं, छह पुरुषों ने ऊँची आवाज़ में विलाप किया और रोए, और अपने हाथों से अपने सिर के बाल नोचकर मुट्ठी भर ज़मीन पर फेंक दिए।

जब राजा के ब्राह्मण सलाहकारों को स्वप्न देखने के लिए बुलाया गया, तो उन्होंने राजा के स्वप्नों की व्याख्या करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब एक देवता ब्राह्मण के वेश में महल के द्वार पर प्रकट हुए और कहा कि वे राजा के स्वप्नों की व्याख्या कर सकते हैं। जब राजा ने उनसे संपर्क किया और स्वप्नों की व्याख्या करने का अनुरोध किया, तो उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की:

(1) पहले सपने के अनुसार: राजकुमार जल्द ही अपनी वर्तमान स्थिति को त्याग देगा, और असंख्य देवताओं से घिरा हुआ, वह शहर से निकलकर संन्यासी बन जाएगा:

(2) दूसरे सपने के अनुसार: राजकुमार अपना घर छोड़कर बहुत जल्द ज्ञान और मन की दस शक्तियों को प्राप्त कर लेगा:

(3) तीसरे सपने के अनुसार: राजकुमार ज्ञान प्राप्त करने के बाद चार निर्भीकताओं को प्राप्त करेगा:

(4) चौथे सपने के अनुसार: राजकुमार देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिए अच्छे उपदेश के पहिये को गतिमान करेगा:

(5) पाँचवें सपने के अनुसार: राजकुमार के बुद्ध बनने और धम्म के चक्र को गतिमान करने के बाद, उसके उपदेश की ध्वनि उच्चतम स्वर्गों तक फैलेगी:

(6) छठे सपने के अनुसार: ज्ञान प्राप्ति के बाद वह देवताओं, मनुष्यों और आठ प्रकार के प्राणियों के हित में धम्म के रत्नों को बिखेरेगा।

(7) सातवें सपने ने उन छह विधर्मी शिक्षकों के दुख और पीड़ा को दर्शाया जिन्हें राजकुमार ज्ञान प्राप्त करने के बाद पराजित और बेनकाब करेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 170

(धम्मपद 168 और 169) <<<< पिछला|| धम्मपद170 ||अगला >>>> (धम्मपद171)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 170 - पंचसताविपासकभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 170 - पंचसताविपासकभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा पब्बुलकम पासे
यथा पासे मारसिकम
evam lokam avekkhantam(1)
maccuraja na passati.

श्लोक 170 : यदि कोई व्यक्ति संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को उसी प्रकार देखे जैसे कोई बुलबुला या मृगतृष्णा को देखता है, तो मृत्यु का राजा उसे नहीं पाएगा।

---

1. evam jokam avekkhantam: वह व्यक्ति जो संसार को एक ही तरह से देखता है, अर्थात् संसार को एक बुलबुले की तरह क्षणभंगुर और एक मृगतृष्णा की तरह अभौतिक मानता है।

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (170) कहा।

एक बार पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु उन्हें बहुत कम लाभ हुआ; अतः वे बुद्ध के पास लौटकर ध्यान का अधिक उपयुक्त विषय माँगने लगे। बुद्ध के पास जाते समय उन्होंने एक मृगतृष्णा देखी और उस पर ध्यान किया। जैसे ही वे मठ के परिसर में प्रवेश कर पाए, एक तूफ़ान आ गया; बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं और ज़मीन पर बुलबुले बन गए जो तुरंत गायब हो गए। उन बुलबुलों को देखकर भिक्षुओं ने मन में विचार किया, "हमारा यह शरीर बुलबुलों के समान नाशवान है", और उन्होंने स्कंधों (खंधों) की अनित्यता को समझा।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश प्रसारित करते हुए उनके दर्शन किए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 170 : यदि कोई व्यक्ति संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को उसी प्रकार देखे जैसे कोई बुलबुला या मृगतृष्णा को देखता है, तो मृत्यु का राजा उसे नहीं पाएगा।

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, बहुत से भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु उन्हें बहुत कम लाभ हुआ, इसलिए वे बुद्ध के पास लौटकर ध्यान के लिए अधिक उपयुक्त विषय माँगने लगे। बुद्ध के पास जाते समय, उन्होंने एक मृगतृष्णा देखी और उस पर ध्यान किया। जैसे ही वे मठ के परिसर में पहुँचे, एक तूफान आ गया: बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं और ज़मीन पर बुलबुले बन गए जो तुरंत गायब हो गए। उन बुलबुलों को देखकर भिक्षुओं ने कहा, "हमारा यह शरीर बुलबुलों की तरह नश्वर है..." और उन्होंने स्कंधों (खन्दों) की अनित्यता को समझ लिया। प्रवचन के अंत में, भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश प्रसारित करते हुए उनके दर्शन किए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 170)
बुब्बुलकं यथा पससे , मरीचिकां यथा पससे ,
एवं लोकं अवेक्खन्तं मक्कुराजा न पस्सति
बुब्बुलाकाँ [बुब्बुलाका]: एक पानी का बुलबुला; यथा : जैसे; पासे : कोई देखता है; मारीसिकाम् [मारीसिका]: मृगतृष्णा; एवम् : उस ढंग से; लोकं [लोका]: संसार; अवेक्खन्तं [अवेक्खंता]: वह व्यक्ति जो देखता है; मैकुराजा : मृत्यु का राजा; न पासति : नहीं देखता
एक बुलबुले को देखो। यह कितना क्षणभंगुर है! एक मृगतृष्णा को देखो। कितना भ्रम है! अगर तुम दुनिया को इस नजरिए से देखोगे, तो मौत का बादशाह भी तुम्हें नहीं देख पाएगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 170)
लोकं : संसार। लोक से तात्पर्य संपूर्ण ब्रह्मांड को समाहित करने वाले अस्तित्व के तीन क्षेत्रों से है, अर्थात्
इंद्रियलोक (कामलोक), या पांचों इंद्रियों का जगत:
रूपलोक (रूपलोक), जो मानसिक विश्राम (झान) के चार स्तरों के अनुरूप है :
निराकार जगत (अरूपलोक), जो चार मानसिक रिक्तियों (समापत्ति) के अनुरूप है।
इंद्रिय जगत में निम्नलिखित शामिल हैं:
नरक (निरय),
पशु जगत (तिराच्छना-योनि),
भूतलोक (पेटालोक)
असुर राक्षसों का संसार (असुर-निकाय),
मानव जगत (मनुष्यलोक) और
छह इंद्रियजन्य दिव्य लोक।
बुब्बुलकं , मरीसिकं : एक बुलबुला, एक मृगतृष्णा। यह श्लोक बौद्ध ध्यान के एक पहलू को प्रकट करता है। ध्यान करने वाला व्यक्ति संसार को एक घटना के रूप में देखता है।
कहीं-कहीं संवेदना की तुलना फव्वारे से और बोध की तुलना मृगतृष्णा से की गई है। संवेदना और बोध अनुभव के मूलभूत तत्व हैं। इन्हें मानसिक रचनाएँ (चित्त-संस्कार) कहा जाता है। बोध (वितक्का) को शाब्दिक रचना (वची-संस्कार) कहा जाता है। जिस संसार को हम अनुभव और कल्पना करते हैं, वह इन क्षणिक मनो-शारीरिक प्रक्रियाओं की रचना है। इसीलिए संसार को फव्वारे या मृगतृष्णा के रूप में देखना आवश्यक है। संसार की शून्यता को इस प्रकार देखने से सभी आसक्ति समाप्त हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 171

———————————————————————

(धम्मपद 170) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 171 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 172)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 171 - अभयराजकुमार वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 171 - अभयराजकुमार वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Etha passathimam lokam
चित्तम राजारथुपमम
yattha bala visidanti
nattbi sango vijanatam.

श्लोक 171 : आओ, इस संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को देखो, जो एक अलंकृत राजसी रथ के समान है। मूर्ख इस खन्धों के संसार में भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान इससे आसक्त नहीं रहते।

राजकुमार अभय की कहानी
वेलुवन मठ में रहते हुए, बुद्ध ने राजकुमार अभय (अभयराजकुमार) के संदर्भ में, इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया।
एक बार राजकुमार अभय सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर विजयी होकर लौटे। राजा बिम्बिसार उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने सात दिनों तक अभय को शासक का शान-शौकत और सम्मान दिया, साथ ही उनके मनोरंजन के लिए एक नर्तकी भी दी। अंतिम दिन, जब नर्तकी बगीचे में राजकुमार और उनके साथियों का मनोरंजन कर रही थी, तभी उसे तीव्र हृदय गति रुकी; वह गिर पड़ी और मौके पर ही उसकी मृत्यु हो गई। राजकुमार को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। दुखी होकर वे सांत्वना पाने के लिए बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उनसे कहा, "हे राजकुमार, जन्म-जन्मांतर के चक्र में तुमने जितने आँसू बहाए हैं, उनका कोई माप नहीं है। यह षट्कोणीय संसार (अर्थात्, खन्धों का संसार) मूर्खों का ही स्थान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 171 : आओ, इस संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को देखो, जो एक अलंकृत राजसी रथ के समान है। मूर्ख इस खन्धों के संसार में भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान इससे आसक्त नहीं रहते।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमार अभय की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजकुमार अभय (अभयराजकुमार) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, राजकुमार अभय ने सीमावर्ती क्षेत्र में हुए विद्रोह को दबा दिया, जिससे उनके पिता बिम्बिसार इतने प्रसन्न हुए कि जब राजकुमार लौटे, तो राजा ने उन्हें नृत्य और गायन में निपुण एक स्त्री भेंट की और सात दिनों के लिए राज्य का कार्यभार सौंप दिया। तदनुसार, राजकुमार सात दिनों तक घर से बाहर नहीं निकले, बल्कि राजसी वैभव का आनंद लेते हुए भीतर ही रहे। आठवें दिन वे नदी के किनारे स्थित स्नानागार गए और स्नान किया। स्नान करने के बाद, वे अपने आनंद उद्यान में प्रवेश कर गए, राजा के मंत्री संतति की तरह बैठ गए और उस स्त्री को नृत्य और गायन करते देखने लगे। यद्यपि, जैसे ही उसने नृत्य और गायन शुरू किया, ठीक उसी क्षण, राजा के मंत्री संतति की स्त्री की तरह, उसे तीव्र पीड़ा हुई और वहीं उसकी मृत्यु हो गई।
राजकुमार अभय उस स्त्री की मृत्यु से गहरे शोक में डूब गए। तुरंत उनके मन में यह विचार आया, "बुद्ध के सिवा कोई भी मेरे शोक को दूर नहीं कर सकता।" इसलिए वे बुद्ध के पास गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कृपया मेरा शोक दूर करें।" बुद्ध ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, "राजकुमार, इस अनंत जन्म-जन्म चक्र में, इस स्त्री की इस प्रकार मृत्यु की संख्या का कोई हिसाब नहीं है, और न ही आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं का कोई माप है।" यह देखकर कि इस उपदेश से राजकुमार का शोक शांत हो गया है, उन्होंने कहा, "राजकुमार, शोक न करें: केवल अपरिपक्व लोग ही अपने आप को शोक के सागर में डूबने देते हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 171)
यत्थ बाला विशिदन्ति विजानतम सङ्गो नत्थि चित्तं
राजरथुपमं इमं लोकं एथा पस्सथ
यत्था : जिसमें: बाला : अपरिपक्व; विसीदन्ति : डूबकर नष्ट हो जाते हैं; विजानतं [विजानत]: वास्तविकता से अवगत लोगों के लिए; संगो [संग]: आसक्ति रखने वाले; नत्थि : नहीं है; चित्तं [चित्त]: (जैसे) सुशोभित; राजरथूपमं [राजरथूपम]: राजसी रथ; इमं लोकं [लोक]: यह संसार; एथा : आओ; पसथ : देखो

आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व लोग इस संसार में पूरी तरह डूबे रहते हैं, जिसकी चकाचौंध किसी शाही रथ की सजावट की तरह भ्रामक होती है। वास्तविकता से अवगत लोग इन सांसारिक वस्तुओं से आसक्त नहीं रहते। संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में देखें।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 171)
विज्ञानतं : वे जो वास्तविकता को देखते हैं। बौद्ध धर्म में, धम्म, बुद्ध की शिक्षा, सच्ची वास्तविकता है। बौद्ध धर्म के लिए मूल पाली शब्द धम्म है , जिसका शाब्दिक अर्थ है वह जो इसके सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करने वाले को सहारा देता है और इस प्रकार उसे दुखद अवस्थाओं में गिरने से बचाता है। पाली शब्द के अर्थ को सटीक रूप से व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त अंग्रेजी पर्याय नहीं है। धम्म वह है जो वास्तव में है। यह वास्तविकता का सिद्धांत है। यह दुख से मुक्ति का साधन और स्वयं मुक्ति है। बुद्धों का जन्म हो या न हो, धम्म अनादि काल से विद्यमान है। यह एक बुद्ध ही हैं जो इस धम्म को समझते हैं, जो अज्ञानी मनुष्यों की दृष्टि से तब तक छिपा रहता है, जब तक कि बुद्ध आकर करुणापूर्वक इसे संसार के सामने प्रकट नहीं करते।
हे भिक्षुओं, चाहे बुद्ध प्रकट हों या न हों, यह एक अटल सत्य, एक स्थापित सिद्धांत, एक प्राकृतिक नियम है कि समस्त सत्व-प्राप्त वस्तुएँ क्षणभंगुर (अनिच्च), दुःखमय (दुक्खा) और आत्माहीन (अनत्ता) हैं। तथागत इस सत्य को भलीभांति जानते हैं और जब वे इसे भलीभांति जान लेते हैं, तो वे इसकी घोषणा करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं और इसे स्पष्ट करते हैं कि समस्त सत्व-प्राप्त वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुःखमय और आत्माहीन हैं। मज्झिमा निकाय ग्रंथ में बुद्ध कहते हैं: "बुद्ध केवल एक ही बात सिखाते हैं: दुख और दुखों का निवारण।" यही वास्तविकता का सिद्धांत है।
जो लोग इस वास्तविकता को पूर्णतः देख पाते हैं, उन्हें विजानतम् — 'वास्तविकता की सच्ची जागरूकता' कहा जाता है। वास्तविकता को देखने के लिए प्रयास और अनुशासन आवश्यक हैं। अनुशासन शब्दों और कर्मों को नियंत्रित करता है; एकाग्रता मन को वश में करती है; परन्तु अंतर्दृष्टि (पञ्ञा), जो तीसरा और अंतिम चरण है, वही संत बनने के इच्छुक व्यक्ति को समाधि द्वारा रोके गए दोषों को पूर्णतः दूर करने में सक्षम बनाती है ।
आरंभ में वह दृष्टि की शुद्धता (दिट्ठी विशुद्धि) का अभ्यास करते हैं ताकि चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख सकें। शांत मन से वे इस तथाकथित अस्तित्व का विश्लेषण और परीक्षण करते हैं। यह गहन परीक्षण दर्शाता है कि जिसे उन्होंने 'मैं' व्यक्तित्व कहा है, वह केवल क्षणभंगुर घटनाओं का एक निराकार समूह है जिसे वैयक्तिक बना दिया गया है। जब घटनाओं का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है, तो यह घटनात्मक अनुभव निराकार हो जाता है। यही आत्म-अस्तित्व का अंत है। यही दुख, जन्म और मृत्यु का अंत है। यही निर्वाण का अनुभव है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 172

(धम्मपद 171) <<<< पिछला || धम्मपद 172 || अगला >>>> (धम्मपद 173)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 172 - सम्मज्जनथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 172 - सम्मज्जनत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
यो कै पुब्बे पमाज्जित वा
pacchi so nappamajjati
so'mam locam pabhaseti
abbha muttova candima.

श्लोक 172 : जो पहले लापरवाह था, परन्तु बाद में सचेत हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चंद्रमा की तरह मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है।

थेरा सम्मज्जना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सम्मज्जना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (172) कहा।

थेरा सम्मज्जना अपना अधिकांश समय मठ परिसर की सफाई में व्यतीत करते थे। उस समय थेरा रेवता भी मठ में ही रह रहे थे; सम्मज्जना के विपरीत, थेरा रेवता अपना अधिकांश समय ध्यान या गहन मानसिक एकाग्रता में व्यतीत करते थे। थेरा रेवता के इस व्यवहार को देखकर सम्मज्जना को लगा कि दूसरे थेरा अपना समय यूं ही बर्बाद कर रहे हैं। इसलिए, एक दिन सम्मज्जना थेरा रेवता के पास गए और उनसे कहा, "आप बहुत आलसी हो गए हैं, केवल दान-पुण्य से प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन कर रहे हैं; क्या आपको नहीं लगता कि आपको कभी-कभी फर्श, परिसर या किसी अन्य स्थान की सफाई करनी चाहिए?" इस पर थेरा रेवता ने उत्तर दिया, "मित्र, एक भिक्षु को अपना सारा समय सफाई में नहीं व्यतीत करना चाहिए। उसे सुबह जल्दी सफाई करनी चाहिए, फिर भिक्षा मांगने निकलना चाहिए। भोजन के बाद, अपने शरीर का चिंतन करते हुए, उसे तत्वों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए, या फिर सूर्यास्त तक शास्त्रों का पाठ करना चाहिए। उसके बाद, यदि वह चाहे तो पुनः सफाई कर सकता है।" थेरा सम्मज्जना ने थेरा रेवता द्वारा दी गई सलाह का कड़ाई से पालन किया और शीघ्र ही अरहत पद प्राप्त कर लिया।

अन्य भिक्षुओं ने परिसर में कूड़ा जमा होते देखा और उन्होंने सम्मज्जना से पूछा कि वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं कर रहे हैं। सम्मज्जना ने उत्तर दिया, "जब मैं ध्यानमग्न था, तब मैं हर समय सफाई करता रहता था; लेकिन अब मैं ध्यानमग्न नहीं हूँ।" भिक्षुओं को उनका उत्तर सुनकर संदेह हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, "आदरणीय महोदय! थेरा सम्मज्जना स्वयं को अरहत होने का झूठा दावा कर रहे हैं; वे झूठ बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "सम्मज्जना ने वास्तव में अरहत पद प्राप्त कर लिया है; वे सत्य कह रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 172 : जो पहले लापरवाह था, परन्तु बाद में सचेत हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चंद्रमा की तरह मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सम्मुंजनी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सम्मुंजनी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय सम्मुंजनी अपना अधिकांश समय मठ परिसर की सफाई में व्यतीत करते थे। उस समय आदरणीय रेवता भी मठ में ही रह रहे थे: सम्मुंजनी के विपरीत, आदरणीय रेवता अपना अधिकांश समय ध्यान या गहन चिंतन में व्यतीत करते थे। आदरणीय रेवता के इस व्यवहार को देखकर सम्मुंजनी को लगा कि दूसरा भिक्षु अपना समय यूं ही बर्बाद कर रहा है। इसलिए, एक दिन सम्मुंजनी आदरणीय रेवता के पास गए और उनसे कहा, “आप बहुत आलसी हैं, केवल दान-पुण्य से प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन कर रहे हैं: क्या आपको नहीं लगता कि आपको कभी-कभी फर्श, परिसर या किसी अन्य स्थान की सफाई करनी चाहिए?” इस पर पूज्य रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र, भिक्षु को अपना सारा समय झाड़ू लगाने में नहीं व्यतीत करना चाहिए। उसे सुबह जल्दी झाड़ू लगानी चाहिए, फिर भिक्षा मांगने निकलना चाहिए। भोजन के बाद, अपने शरीर का ध्यान करते हुए, उसे तत्वों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए, या फिर सूर्यास्त तक शास्त्रों का पाठ करना चाहिए। उसके बाद, यदि वह चाहे तो पुनः झाड़ू लगा सकता है।” पूज्य सम्मुंजनी ने पूज्य रेवता की सलाह का पूर्णतया पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

अन्य भिक्षुओं ने परिसर में कूड़ा जमा होते देखा और उन्होंने सम्मुंजनी से पूछा कि वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं कर रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, “जब मैं ध्यानमगन था, तब मैं हर समय सफाई करता रहता था; लेकिन अब मैं ध्यानमगन नहीं हूँ।” जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना तो उन्हें संदेह हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, “आदरणीय! आदरणीय सम्मुंजनी अपने आप को अरहत होने का झूठा दावा कर रहे हैं; वे झूठ बोल रहे हैं।” बुद्ध ने उनसे कहा, “सम्मुन्जनी ने वास्तव में अरहत पद प्राप्त कर लिया है; वे सत्य कह रहे हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 172)

यो पुब्बे पमज्जित्वा च सो पच्च नप्पमज्जति
सो अब्भा मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं पभसेति
यो : यदि कोई; पुब्बे : पहले; पमज्जित्वा : भ्रमित होने के कारण; च सो : वह यहाँ भी; पच्चा : बाद में; नप्पमज्जति : मोहभंग हो जाता है; सो : वह; अब्भा मुत्तो [मुत्त]: अंधकार के बादल से मुक्त; चन्दिमा इव : चंद्रमा के समान; इमं लोकं [लोक]: यह संसार; पभासेति : प्रकाशित होता है
कोई व्यक्ति अतीत में भ्रम में रहा हो सकता है। लेकिन बाद में वह अपने विचारों को सुधारता है और भ्रममुक्त हो जाता है। इसलिए, वह उस चंद्रमा के समान है जो घने बादल के पीछे से निकला है: इस प्रकार, वह दुनिया को रोशन करता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 172)
abbhā mutto candimā iva : जैसे चंद्रमा अंधकार के बादलों से मुक्त हो जाता है। यह उपमा उन लोगों के लिए प्रयोग की जाती है जिन्होंने आध्यात्मिकता की उच्च अवस्थाएँ प्राप्त कर ली हैं। अंधकार के बादलों से मुक्त होने पर चंद्रमा अपनी पूरी चमक के साथ जगमगाता है। सत्य की खोज करने वाले जब सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाते हैं, तो वे भी प्रकाशमान हो उठते हैं। सांसारिक बाधाओं के अंधकार के बादलों से मुक्ति कई चरणों में होती है। जब अवरोधों को अस्थायी रूप से हटाकर ध्यान विकसित किया जाता है (निवारण), तो मन इतना शुद्ध हो जाता है कि वह एक पॉलिश किए हुए दर्पण के समान हो जाता है, जिसमें सब कुछ स्पष्ट रूप से सही परिप्रेक्ष्य में प्रतिबिंबित होता है।
अनुशासन (सीला) शब्दों और कर्मों को नियंत्रित करता है; संयम (समाधि) मन को शांत करता है; परन्तु अंतर्दृष्टि (पञ्ञा), तीसरा और अंतिम चरण, संतत्व के साधक को समाधि द्वारा अस्थायी रूप से दूर किए गए दोषों को पूर्णतः मिटाने में सक्षम बनाता है । आरंभ में, वह दृष्टि की शुद्धता (दिट्ठी विशुद्धि) का अभ्यास करता है ताकि चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख सके।
शांत मन से वह अपने अनुभव का विश्लेषण और परीक्षण करता है। यह गहन परीक्षण दर्शाता है कि जिसे उसने 'मैं' व्यक्तित्व कहा है, वह मात्र मनो-शारीरिक गतिविधि की एक अवैयक्तिक प्रक्रिया है।
इस प्रकार तथाकथित अस्तित्व की वास्तविक प्रकृति का सही दृष्टिकोण प्राप्त करने के बाद, एक स्थायी आत्मा की झूठी धारणा से मुक्त होकर, वह इस अहंकार के कारणों की खोज करता है।
तब वह इस सत्य पर विचार करता है कि सभी रचनाएँ क्षणभंगुर (अनिच्च), पीड़ादायक (दुक्ख) और निराकार (अनत्ता) हैं। जिधर भी उसकी नज़र जाती है, उसे ये तीनों विशेषताएँ स्पष्ट रूप से उभरती हुई दिखाई देती हैं। वह समझता है कि जीवन आंतरिक और बाह्य कारणों से संचालित एक प्रवाह मात्र है। उसे कहीं भी वास्तविक सुख नहीं मिलता, क्योंकि सब कुछ क्षणिक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 173

———————————————————————

(धम्मपद 172) <<<< पिछला || धम्मपद 173 || अगला >>>> (धम्मपद 174)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 173 - अंगुलिमालथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 173 - अंगुलिमालत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa papam katam kammam
kusalena(1) pidhiyati
so'mam locam pabhaseti

abbha muttova candima.

———————————————————————————————

श्लोक 173 : जो व्यक्ति अपने किए हुए बुरे कर्मों को अच्छाई से ढक लेता है, वह इस संसार को (मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से) प्रकाशित करता है, जैसे बादलों से मुक्त चंद्रमा करता है।

———————————————————————————————

1. कुसलेना: अच्छे कर्म के साथ; इस संदर्भ में अच्छे का अर्थ अरहत्ता मग्गा है, चौथा और अंतिम मार्ग ज्ञान।

———————————————————————————————

थेरा अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अंगुलिमाला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (173) कहा।

अंगुलिमाला कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के दरबार में प्रधान पुजारी का पुत्र था। उसका मूल नाम अहिंसक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसे तक्षशिला भेजा गया, जो एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नगर था। अहिंसक बुद्धिमान और अपने गुरु का आज्ञाकारी था। इसलिए वह गुरु और उनकी पत्नी को प्रिय था; परिणामस्वरूप, अन्य छात्र उससे ईर्ष्या करने लगे। इसलिए वे गुरु के पास गए और झूठी खबर फैलाई कि अहिंसक का गुरु की पत्नी के साथ संबंध है। पहले तो गुरु ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया, लेकिन कई बार सुनने के बाद उन्होंने विश्वास कर लिया; और इसलिए उन्होंने लड़के से बदला लेने की कसम खाई। लड़के को मारना उनके लिए कलंक साबित होता; इसलिए उन्होंने हत्या से भी बदतर एक योजना बनाई। उन्होंने अहिंसक को एक हजार पुरुषों या महिलाओं को मारने के लिए कहा और बदले में लड़के को अमूल्य ज्ञान देने का वादा किया। लड़का यह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था, लेकिन जीवन लेने से बहुत हिचकिचा रहा था। हालांकि, उसने कही गई बात मानने का फैसला किया।

इस प्रकार, वह लोगों को मारता रहा और गिनती न भूलने के लिए, उसने मारे गए प्रत्येक व्यक्ति की एक-एक उंगली पिरोकर माला की तरह अपने गले में पहन ली। इसी कारण वह अंगुलिमाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पूरे क्षेत्र में आतंक का पर्याय बन गया। राजा को स्वयं अंगुलिमाला के कारनामों के बारे में पता चला और उसने उसे पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाला की माता मंतानी को राजा के इरादे का पता चला, तो अपने पुत्र के प्रेम के कारण वह उसे बचाने के लिए जंगल में चली गई। तब तक अंगुलिमाला के गले में बंधी माला में नौ सौ निन्यानवे उंगलियां थीं, जो एक हजार से केवल एक कम थीं।

उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अंगुलिमाला को दर्शन दिए और सोचा कि यदि उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया, तो अंगुलिमाला, जो एक हजार लोगों की सूची में अंतिम व्यक्ति की तलाश में था, अपनी माता को देख लेगा और शायद उनकी हत्या कर देगा। ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला को अनंत काल तक निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिए करुणावश बुद्ध अंगुलिमाला के निवास स्थान, जंगल की ओर चल पड़े।

कई दिनों और रातों तक बिना सोए रहने के बाद अंगुलिमाला बहुत थका हुआ और लगभग बेहाल था। साथ ही, वह अपने एक हजार के लक्ष्य को पूरा करने के लिए आखिरी व्यक्ति को मारने के लिए भी बहुत बेचैन था। उसने मन बना लिया कि वह सबसे पहले जिस व्यक्ति से मिलेगा उसे मार डालेगा। अचानक, जैसे ही उसने बाहर देखा, उसे बुद्ध दिखाई दिए और वह अपनी छुरी उठाकर उनके पीछे दौड़ पड़ा। लेकिन पूरी तरह से थक जाने के कारण वह बुद्ध तक नहीं पहुँच सका। तब, बुद्ध को देखकर वह चिल्लाया, "हे भिक्षु, रुको! रुको!" और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं रुक गया हूँ, केवल तुम नहीं रुके हो।" अंगुलिमाला बुद्ध के शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाया, इसलिए उसने पूछा, "हे भिक्षु! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आप रुक गए हैं और मैं नहीं रुका हूँ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, “मैं कहता हूँ कि मैंने त्याग कर दिया है, क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना छोड़ दिया है, सभी प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करना छोड़ दिया है, और चिंतन के माध्यम से सार्वभौमिक प्रेम, धैर्य और ज्ञान में स्वयं को स्थापित कर लिया है। परन्तु तुमने हत्या करना या दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ा है और तुम अभी तक सार्वभौमिक प्रेम और धैर्य में स्थापित नहीं हुए हो। अतः तुम ही हो जिसने त्याग नहीं किया है।” बुद्ध के मुख से ये शब्द सुनकर अंगुलिमाला ने मन ही मन सोचा, “ये तो एक बुद्धिमान व्यक्ति के शब्द हैं। यह भिक्षु इतना बुद्धिमान और इतना साहसी है; यह अवश्य ही भिक्षुओं का स्वामी होगा। वास्तव में, यह स्वयं बुद्ध ही होंगे! वे मुझे ज्ञान दिलाने के लिए ही विशेष रूप से यहाँ आए होंगे।” ऐसा सोचकर उसने अपना शस्त्र फेंक दिया और बुद्ध से भिक्षु संघ में प्रवेश देने का निवेदन किया। उसी क्षण बुद्ध ने उसे भिक्षु बना दिया।

अंगुलिमाला की माता ने जंगल में हर जगह अपने पुत्र को ढूंढा और उसका नाम पुकारती रहीं, लेकिन जब वह नहीं मिला तो वे घर लौट आईं। जब राजा और उसके सैनिक अंगुलिमाला को पकड़ने आए, तो उन्होंने उसे बुद्ध के मठ में पाया। यह देखकर कि अंगुलिमाला ने अपने बुरे मार्ग त्याग दिए थे और भिक्षु बन गया था, राजा और उसके सैनिक घर लौट गए। मठ में रहने के दौरान, अंगुलिमाला ने लगन और परिश्रम से ध्यान किया और थोड़े ही समय में उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

फिर एक दिन, जब वे भिक्षा मांगने निकले थे, तो वे एक ऐसी जगह पर पहुँचे जहाँ कुछ लोग आपस में झगड़ रहे थे। वे एक-दूसरे पर पत्थर फेंक रहे थे, तभी कुछ पत्थर भटककर थेरा अंगुलिमाला के सिर पर लगे और वे गंभीर रूप से घायल हो गए। फिर भी, वे किसी तरह बुद्ध के पास वापस आ गए, और बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र अंगुलिमाला! तुमने बुराई का नाश कर दिया है। धैर्य रखो। तुम इस जन्म में अपने कर्मों का फल भोग रहे हो। इन कर्मों के कारण तुम्हें अनगिनत वर्षों तक निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ता।" इसके कुछ ही समय बाद, अंगुलिमाला का शांतिपूर्वक निधन हो गया; उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया था।

अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि अंगुलिमाला का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और जब बुद्ध ने उत्तर दिया, "मेरे पुत्र ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है", तो उन्हें इस पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि क्या यह संभव है कि इतने लोगों को मारने वाला व्यक्ति परिनिर्वाण प्राप्त कर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! अंगुलिमाला ने बहुत बुराई की क्योंकि उसके अच्छे मित्र नहीं थे। लेकिन बाद में, उसे अच्छे मित्र मिले और उनकी सहायता और अच्छे परामर्श से वह धर्म के अभ्यास में दृढ़ और सचेत रहा। इसलिए, उसके बुरे कर्म अच्छे कर्मों से दब गए हैं (अर्थात् अरहत्त मार्ग)।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 173 : जो व्यक्ति अपने किए हुए बुरे कर्मों को अच्छाई से ढक लेता है, वह इस संसार को (मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से) प्रकाशित करता है, जैसे बादलों से मुक्त चंद्रमा करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अंगुलिमाला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अंगुलिमाला कोसल के राजा पसेनादि के दरबार में प्रधान पुरोहित का पुत्र था। उसका मूल नाम अहिंसक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नगर तक्षशिला भेजा गया। अहिंसक बुद्धिमान और अपने गुरु का आज्ञाकारी था। इसलिए गुरु और उनकी पत्नी उसे पसंद करते थे, जिसके परिणामस्वरूप अन्य छात्र उससे ईर्ष्या करने लगे। इसलिए वे गुरु के पास गए और झूठी खबर फैलाई कि अहिंसक का गुरु की पत्नी के साथ संबंध है। पहले तो गुरु ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया, लेकिन कई बार सुनने के बाद उन्होंने विश्वास कर लिया और लड़के से बदला लेने की कसम खाई। लड़के को मारना उनके लिए कलंक साबित होता, इसलिए उन्होंने हत्या से भी बदतर योजना बनाई। उन्होंने अहिंसक को एक हजार पुरुषों या महिलाओं को मारने के लिए कहा और बदले में उसे अमूल्य ज्ञान देने का वादा किया। लड़का यह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था, लेकिन किसी की जान लेने से बहुत हिचकिचा रहा था। फिर भी, उसने वैसा ही करने के लिए सहमति दे दी जैसा उसे कहा गया था। इस प्रकार, वह लोगों को मारता रहा और गिनती न भूलने के लिए, उसने मारे गए प्रत्येक व्यक्ति की एक-एक उंगली पिरोकर अपने गले में माला की तरह पहन ली। इसी कारण वह अंगुलिमाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पूरे क्षेत्र में आतंक का पर्याय बन गया। राजा को स्वयं अंगुलिमाला के कारनामों के बारे में पता चला और उसने उसे पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाला की माता मंतानी को राजा के इरादे का पता चला, तो अपने पुत्र के प्रेम के कारण वह उसे बचाने के लिए जंगल में चली गई। तब तक अंगुलिमाला के गले में बंधी माला में नौ सौ निन्यानवे उंगलियां थीं, जो एक हजार से केवल एक कम थीं।

उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अंगुलिमाला को दर्शन दिए और सोचा कि अगर उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया, तो अंगुलिमाला, जो एक हजार लोगों की पूर्ति के लिए अंतिम व्यक्ति की तलाश में था, अपनी माता को देख लेगा और शायद उनकी हत्या कर देगा। ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला को अनंत काल तक निरयण में कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिए करुणावश बुद्ध उस जंगल की ओर चल पड़े जहाँ अंगुलिमाला था। कई दिनों और रातों तक बिना सोए रहने के कारण अंगुलिमाला बहुत थका हुआ और लगभग क्षीण हो चुका था। साथ ही, वह एक हजार लोगों की पूर्ति के लिए अंतिम व्यक्ति को मारने के लिए बहुत बेचैन था ताकि उसका कार्य पूरा हो सके। उसने मन बना लिया कि वह सबसे पहले मिलने वाले व्यक्ति को ही मार डालेगा। अचानक, जब उसने बाहर देखा तो उसे बुद्ध दिखाई दिए और वह चाकू उठाकर उनके पीछे दौड़ा। लेकिन बुद्ध तक पहुँचना संभव नहीं था क्योंकि वे स्वयं पूरी तरह से थक चुके थे। तब, बुद्ध को देखकर वह चिल्लाया, “हे भिक्षु, रुकिए! रुकिए!” और बुद्ध ने उत्तर दिया, “मैं रुक गया हूँ, केवल आप नहीं रुके हैं।” अंगुलिमाला बुद्ध के शब्दों का महत्व नहीं समझ पाया, इसलिए उसने पूछा, "हे भिक्षु! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आप रुक गए हैं और मैं नहीं रुका हूँ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, “मैं कहता हूँ कि मैंने त्याग कर दिया है, क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना छोड़ दिया है, सभी प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करना छोड़ दिया है, और चिंतन के माध्यम से सार्वभौमिक प्रेम, धैर्य और ज्ञान में स्वयं को स्थापित कर लिया है। परन्तु तुमने हत्या करना या दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ा है और तुम अभी तक सार्वभौमिक प्रेम और धैर्य में स्थापित नहीं हुए हो। अतः तुम ही हो जिसने त्याग नहीं किया है।” बुद्ध के मुख से ये शब्द सुनकर अंगुलिमाला ने सोचा, “ये तो एक बुद्धिमान व्यक्ति के शब्द हैं। यह भिक्षु इतना बुद्धिमान और इतना साहसी है: यह स्वयं बुद्ध ही होंगे! वे मुझे ज्ञान दिलाने के लिए ही विशेष रूप से यहाँ आए होंगे।”

ऐसा सोचकर उसने अपना शस्त्र फेंक दिया और बुद्ध से उसे भिक्षुओं के संघ में शामिल करने का निवेदन किया। उसी क्षण बुद्ध ने उसे भिक्षु बना दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 173)

यस्सा कटं पापं कम्मं कुसलेना पिथियाति

सो अब्भा मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं पभसेति

यस्सा : यदि किसी के द्वारा; कटं पापं कम्मं [कम्म]: किया गया बुरा कार्य; कुसलेना : अच्छे से; पिथीयति : रुका हुआ है; इसलिए वह; अब्भा मुत्तो [मुत्ता]: काले बादल से बच गया; कैंडिमा इव : चंद्रमा की तरह; इमं लोकं [लोका]: यह दुनिया; पभसेति : प्रकाशित करता है

यदि किसी व्यक्ति की बुरी आदतें उसके अच्छे व्यवहार से प्रतिस्थापित हो जाएं, तो वह दुनिया को रोशन करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 173)

यह श्लोक अंगुलिमाला के संदर्भ में उच्चारित किया गया था। वे बुद्ध के सबसे प्रसिद्ध और अत्यंत रंगीन व्यक्तित्व वाले शिष्यों में से एक थे।

कुसलेना पिथीयति : व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। परन्तु संसार में किए गए सभी कर्मों का फल भोगना अनिवार्य नहीं है। यदि ऐसा होता, तो जन्म-मृत्यु से मुक्ति असंभव हो जाती। कभी-कभी शक्तिशाली अच्छे कर्म करके बुरे कर्मों को मिटाया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 174

(धम्मपद 173) <<<< पिछला || धम्मपद 174 || अगला >>>> (धम्मपद 175)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 174 - पेसाकारधिता वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 174 - पेसाकारधिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Andhabhuto ayam loko

तनुकेत्था विपस्सति

sakuno jalamuttova

appo saggaya gacchati.

श्लोक 174 : इस संसार के लोग अंधे हैं; इस संसार में केवल कुछ ही लोग स्पष्ट दृष्टि से देख पाते हैं। जैसे कुछ ही पक्षी जाल से बच पाते हैं, वैसे ही कुछ ही लोग देवलोक (और निर्वाण) पहुँच पाते हैं।

बुनकर लड़की की कहानी

अलावी देश में अगगवाला मंदिर के पास मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (174) का उच्चारण एक युवती के संदर्भ में किया, जो एक बुनकर थी।

अलावी में एक दान समारोह के समापन पर, बुद्ध ने स्कंधों (कन्धों) की अनित्यता पर प्रवचन दिया। उस दिन बुद्ध ने जिन मुख्य बिंदुओं पर जोर दिया, उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:
"मेरा जीवन क्षणभंगुर है; मेरे लिए केवल मृत्यु ही स्थायी है। मुझे निश्चित रूप से मरना है; मेरा जीवन मृत्यु में समाप्त होता है। जीवन स्थायी नहीं है; मृत्यु स्थायी है।"
बुद्ध ने श्रोताओं को सदा सचेत रहने और समग्र स्वरूप को समझने का प्रयास करने का उपदेश दिया। उन्होंने कहा, "जैसे कोई व्यक्ति लाठी या भाले से लैस होकर शत्रु (जैसे विषैले साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो व्यक्ति मृत्यु के प्रति सजग रहता है, वह मृत्यु का सामना भी सजगता से करेगा। तब वह इस संसार को छोड़कर एक शुभ गंतव्य (सुगति) की ओर प्रस्थान करेगा।"
अनेक लोगों ने इस उपदेश को गंभीरता से नहीं लिया, परन्तु सोलह वर्ष की एक बुनकर युवती ने इस संदेश को स्पष्ट रूप से समझ लिया। प्रवचन देने के बाद बुद्ध जेतवन मठ लौट गए।
तीन वर्ष बीतने के बाद, जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में वह युवती दिखाई दी और वे समझ गए कि अब उस कन्या के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः बुद्ध दूसरी बार धर्म का उपदेश देने के लिए अलावी देश आए। जब उस कन्या ने सुना कि बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पुनः आए हैं, तो वह भी जाकर उनका प्रवचन सुनना चाहती थी। यद्यपि उसके पिता ने उसे कुछ सूत की चरखी भी लपेटने को कहा था, जिसकी उन्हें तत्काल आवश्यकता थी, इसलिए उसने तुरंत कुछ चरखे लपेटे और उन्हें अपने पिता के पास ले गई। अपने पिता के पास जाते समय, वह बुद्ध का प्रवचन सुनने आए श्रोताओं के बाहरी किनारे पर एक क्षण के लिए रुकी।
इस बीच, बुद्ध को पता था कि वह युवती उनका प्रवचन सुनने आएगी; उन्हें यह भी पता था कि वह बुनाईशाला पहुँचते ही मर जाएगी। इसलिए, यह अत्यंत महत्वपूर्ण था कि वह बुनाईशाला जाते समय धम्म सुने, न कि लौटते समय। अतः, जब वह युवती सभा के किनारे पर प्रकट हुई, तो बुद्ध ने उसकी ओर देखा। जब उसने देखा कि बुद्ध उसे देख रहे हैं, तो उसने अपनी टोकरी नीचे रख दी और आदरपूर्वक बुद्ध के पास गई। तब उन्होंने उससे चार प्रश्न पूछे और उसने उन सभी के उत्तर दिए। प्रश्न और उत्तर नीचे दिए गए हैं।
प्रश्न
जवाब
(1) आप कहाँ से आए हैं?
(1) मुझे नहीं पता.
(2) तुम कहाँ जा रहे हो?
(2) मुझे नहीं पता.
(3) क्या आपको नहीं पता?
(3) हाँ, मुझे पता है.
(4) क्या आप जानते हैं?
(4) मुझे नहीं पता, आदरणीय महोदय।
उसके जवाब सुनकर श्रोताओं को लगा कि युवा बुनकर बहुत ही असभ्य व्यवहार कर रही है। तब बुद्ध ने उससे पूछा कि उसके जवाबों का क्या अर्थ है, और उसने समझाया।
आदरणीय महोदय! चूंकि आप जानते हैं कि मैं अपने घर से आया हूँ, इसलिए मैंने आपके पहले प्रश्न से यह समझा कि आप मुझसे यह पूछना चाहते हैं कि मैं किस पूर्व जन्म से यहाँ आया हूँ। अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।' दूसरे प्रश्न का अर्थ है कि मैं यहाँ से किस भविष्य के जन्म में जाऊँगा; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।' तीसरे प्रश्न का अर्थ है कि क्या मुझे यह नहीं पता कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी; अतः मेरा उत्तर है, 'हाँ, मुझे पता है।' अंतिम प्रश्न का अर्थ है कि क्या मुझे यह पता है कि मेरी मृत्यु कब होगी; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।'
बुद्ध उसकी व्याख्या से संतुष्ट हुए और उन्होंने श्रोताओं से कहा, "आपमें से अधिकांश लोग शायद उस युवती द्वारा दिए गए उत्तरों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाए होंगे। अज्ञानी लोग अंधकार में हैं, वे अंधों के समान हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 174 : इस संसार के लोग अंधे हैं; इस संसार में केवल कुछ ही लोग स्पष्ट दृष्टि से देख पाते हैं। जैसे कुछ ही पक्षी जाल से बच पाते हैं, वैसे ही कुछ ही लोग देवलोक (और निर्वाण) पहुँच पाते हैं।

प्रवचन के अंत में, युवा बुनकर ने सोतापत्ति की सिद्धि प्राप्त कर ली।

फिर वह बुनाई की झोपड़ी की ओर चल पड़ी। जब वह वहाँ पहुँची, तो उसके पिता बुनकर की कुर्सी पर सो रहे थे। अचानक जागते ही उन्होंने गलती से शटल खींच दी, और शटल की नोक लड़की के स्तन पर जा लगी। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई, और उसके पिता का हृदय टूट गया। आँखों में आँसू भरे हुए वे बुद्ध के पास गए और उनसे भिक्षु संघ में प्रवेश देने की विनती की। इस प्रकार वे भिक्षु बन गए, और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुनकर लड़की की कहानी

आलवी देश में अग्गलवा मंदिर के पास स्थित मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा महिला, जो एक बुनकर थी, के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आलवी में एक भिक्षादान समारोह के समापन पर, बुद्ध ने षष्ठमों (खंधाओं) की अनित्यता पर प्रवचन दिया। उस दिन बुद्ध ने जिन मुख्य बिंदुओं पर बल दिया, उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: "मेरा जीवन अनित्य है: मेरे लिए केवल मृत्यु ही स्थायी है। मुझे निश्चित रूप से मरना है: मेरा जीवन मृत्यु में समाप्त होता है। जीवन स्थायी नहीं है: मृत्यु स्थायी है।" बुद्ध ने श्रोताओं को सदा सचेत रहने और षष्ठमों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने यह भी कहा, "जैसे कोई व्यक्ति लाठी या भाले से लैस होकर शत्रु (जैसे विषैला साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो व्यक्ति सदा मृत्यु के प्रति सचेत रहता है, वह मृत्यु का सामना भी सचेत होकर करेगा। तब वह इस संसार को छोड़कर एक अच्छे गंतव्य (सुगति) की ओर प्रस्थान करेगा।" अनेक लोगों ने इस उपदेश को गंभीरता से नहीं लिया, परन्तु सोलह वर्ष की एक बुनकर युवती ने इस संदेश को स्पष्ट रूप से समझ लिया। प्रवचन देने के बाद, बुद्ध जेतवन मठ लौट गए।

तीन वर्ष बीतने के बाद, जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में वह युवती दिखाई दी और वे समझ गए कि अब उस लड़की के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः बुद्ध दूसरी बार धम्म का उपदेश देने के लिए आलवी आए। जब उस लड़की ने सुना कि बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पुनः आए हैं, तो वह भी जाकर उनका प्रवचन सुनना चाहती थी। हालाँकि, उसके पिता ने उसे कुछ सूत की चरखी भी लपेटने को कहा था, जिसकी उन्हें तत्काल आवश्यकता थी, इसलिए उसने तुरंत कुछ चरखे लपेटे और उन्हें अपने पिता के पास ले गई। अपने पिता के पास जाते समय, वह बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए एकत्रित श्रोताओं के एक कोने में क्षण भर के लिए रुक गई।

इस बीच, बुद्ध को पता था कि वह युवती उनका प्रवचन सुनने आएगी; उन्हें यह भी पता था कि वह बुनाईशाला पहुँचते ही मर जाएगी। इसलिए, यह बहुत महत्वपूर्ण था कि वह बुनाईशाला जाते समय धम्म सुने, न कि लौटते समय। अतः, जब युवती सभा के किनारे पर प्रकट हुई, तो बुद्ध ने उसकी ओर देखा। जब उसने देखा कि बुद्ध उसे देख रहे हैं, तो उसने अपनी टोकरी नीचे रख दी और आदरपूर्वक बुद्ध के पास गई। तब उन्होंने उससे चार प्रश्न पूछे और उसने सभी के उत्तर दिए। उसके उत्तर सुनकर लोगों को लगा कि युवती बहुत अनादर कर रही है। तब बुद्ध ने उससे अपने उत्तरों का अर्थ समझाने को कहा, और उसने समझाया। "आदरणीय! चूंकि आप जानते हैं कि मैं अपने घर से आई हूँ, इसलिए मैंने आपके पहले प्रश्न का यह अर्थ निकाला कि आप मुझसे यह पूछना चाहते हैं कि मैं किस पूर्व जन्म से यहाँ आई हूँ। अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता;' दूसरे प्रश्न का अर्थ है कि मैं यहाँ से किस भविष्य के जन्म में जाऊँगी; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता;'" तीसरे प्रश्न का अर्थ है कि क्या मैं जानती हूँ कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी; इसलिए मेरा उत्तर है, 'हाँ, मैं जानती हूँ;' अंतिम प्रश्न का अर्थ है कि क्या मैं जानती हूँ कि मेरी मृत्यु कब होगी; इसलिए मेरा उत्तर है, 'मैं नहीं जानती।' बुद्ध उसकी व्याख्या से संतुष्ट हुए और उन्होंने श्रोताओं से कहा, "आपमें से अधिकांश लोग इस युवती द्वारा दिए गए उत्तरों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाए होंगे। अज्ञानी लोग अंधकार में हैं, वे देख नहीं सकते।" फिर वह बुनाई के शेड की ओर चल पड़ी। जब वह वहाँ पहुँची, तो उसके पिता बुनकर की कुर्सी पर सो रहे थे। अचानक जागते ही उन्होंने शटल खींच ली और शटल की नोक युवती के स्तन पर जा लगी। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई और उसके पिता का हृदय क्षुद्र हो गया। आँखों में आँसू भरे हुए वे बुद्ध के पास गए और उनसे संघ में शामिल होने का अनुरोध किया। इस प्रकार वे भिक्षु बन गए और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 174)

अयं लोको अंधभूतो एत्थ तनुको विपश्यति

जालमुत्तो सकुन्तो इव अप्पो सग्गया गच्छति

अयं लोको : ये सांसारिक लोग; अंधभूतो [अंधभूत]: अंधे हैं; एत्थ : उनमें से; तनुको [तनुका] : कुछ; विपस्सति : अच्छी तरह से देखने में सक्षम हैं; जाल से बच निकले; सकुंतो इव : पक्षी की तरह; अप्पो : कुछ; सग्गाय गच्छति : स्वर्ग जाते हैं

इस संसार में अधिकतर लोग देख नहीं पाते। वे वास्तविकता को ठीक से नहीं देख पाते। उनमें से भी केवल कुछ ही लोग अंतर्दृष्टि प्राप्त कर पाते हैं। केवल वही लोग सही दृष्टि रखते हैं। कुछ ही लोग, जैसे कोई भटका हुआ पक्षी जाल से बच निकलता है, स्वर्ग तक पहुँच

पाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री : अंधा । सांसारिक लोग, जो मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाते, उन्हें यहाँ अंधा कहा गया है। मुट्ठी भर लोग जो “देखने” में सक्षम हैं, वे सांसारिकता के जाल से बचकर स्वर्ग पहुँच जाते हैं।
सग्गा : आनंदमय अवस्थाएँ, शाश्वत स्वर्ग नहीं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 175

(धम्मपद 174) <<<< पिछला || धम्मपद 175 || अगला >>>> (धम्मपद 176)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 175 - तिम्सभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 175 - तिम्सभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Hamsa diccapathe yanti
ikase yanti iddhiya
niyanti dhira lokamha
jetva maram savahinim.

श्लोक 175 : हंस आकाश में विचरण करते हैं; अलौकिक शक्तियों वाले अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; बुद्धिमान लोग मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त करके इस दुनिया से चले जाते हैं (अर्थात निर्वाण प्राप्त करते हैं)।

तीस भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (175) कहा।
एक बार तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। उनके आने पर, पूज्य आनंद, जो उस समय बुद्ध की सेवा कर रहे थे, कमरे से बाहर निकलकर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय बाद, थेरा आनंद अंदर गए, लेकिन उन्हें कोई भी भिक्षु नहीं मिला। इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि वे सभी भिक्षु कहाँ चले गए। बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, उन सभी भिक्षुओं ने मेरा प्रवचन सुनकर अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है, और अपनी अलौकिक शक्तियों से वे अंतरिक्ष में विचरण कर रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 175 : हंस आकाश में विचरण करते हैं; अलौकिक शक्तियों वाले अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; बुद्धिमान लोग मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त करके इस दुनिया से चले जाते हैं (अर्थात निर्वाण प्राप्त करते हैं)।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन तीस भिक्षु, जो विदेशों में रहते थे, बुद्ध से मिलने आए। पूज्य आनंद बुद्ध की सेवा करने के लिए उनके पास पहुँचते ही उन भिक्षुओं को देख लिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं तब तक प्रतीक्षा करूँगा जब तक बुद्ध इन भिक्षुओं से सौहार्दपूर्ण अभिवादन न कर लें, फिर मैं बुद्ध की सेवा करूँगा।" तदनुसार, वे द्वार पर प्रतीक्षा करने लगे। जब बुद्ध ने उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन कर लिया, तो उन्होंने उन्हें मधुरता से धम्म का उपदेश दिया। धम्म सुनने के बाद उन सभी भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे आकाश में विचरण करते हुए चले गए।

जब वे रुके, तो पूज्य आनंद बुद्ध के पास आए और बोले, "पूज्यवर, तीस भिक्षु यहाँ आए थे। वे कहाँ हैं?" "चले गए हैं, आनंद।" "वे किस मार्ग से गए, पूज्यवर?" "वायु के द्वारा, आनंद।" "पर क्या उन्होंने अपने पापों से मुक्ति पा ली है?" "जी हाँ, आनंद। मेरे धम्म प्रवचन सुनने के बाद, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।" तभी कुछ हंस वायु में उड़ते हुए आए। बुद्ध ने कहा, "आनंद, जिसने चारों प्रकार की जादुई शक्तियाँ पूर्णतः विकसित कर ली हैं, वह हंस की तरह वायु में उड़ता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 175)

हंसा आदिचपथे यान्ति इद्धिया आकाशे यान्ति
धीरा सवाहिनि मरं जेत्वा लोकम्हा नयन्ति

हंस : हंस; आदिच्चपथे : सूर्य के पथ (आकाश) में; यंति : उड़ना; इद्धिया : मानसिक शक्तियों वाले; आकाशे : आकाश में; यंति : घूमना; धीरा : बुद्धिमान; सवाहिणिं मारं [मार]: मृत्यु अपने दल सहित; जेत्वा : पराजित करके; लोकमहा : इस संसार से बाहर; नीयन्ति : निर्वाण की ओर प्रस्थान।

हंस सूर्य के पथ के समान आकाश में उड़ जाते हैं। मानसिक शक्ति से संपन्न लोग आकाश में विचरण करते हैं। वे परिश्रमी, बुद्धिमान संत मृत्यु और उसकी सेनाओं पर विजय प्राप्त करके संसार को त्याग देते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 175)

इद्धि : शक्ति, जादुई शक्ति। जादुई शक्तियाँ छह प्रकार की उच्च आध्यात्मिक शक्तियों (अभिज्ञा) में से एक हैं। जादुई शक्तियों के अनेक प्रकार हैं, जैसे, दृढ़ संकल्प की शक्ति (अधित्थान इद्धि): अर्थात् स्वयं को अनेक रूपों में बदलने की शक्ति, रूपांतरण की शक्ति (विकुब्बाना): अर्थात् दूसरा रूप धारण करने की शक्ति, आध्यात्मिक सृजन की शक्ति (मनोमय): अर्थात् इस शरीर से मानसिक रूप से उत्पन्न दूसरे शरीर को उत्पन्न करने की शक्ति, गहन ज्ञान की शक्ति (ज्ञान-विप्फार): अर्थात् खतरे में भी अप्रभावित रहने की अंतर्निहित अंतर्दृष्टि, और गहन एकाग्रता की शक्ति (समाधि-विप्फार), जो समान परिणाम उत्पन्न करती है।

श्रेष्ठ शक्ति (अरिया-इद्धि) वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को इस प्रकार नियंत्रित कर सकता है कि वह किसी अप्रिय वस्तु को अप्रिय और अप्रिय वस्तु को अप्रिय न समझे, और इस प्रकार सदा अविचलित और समभाव से परिपूर्ण बना रहे। मन के इस प्रशिक्षण का उल्लेख सूत्रों में बार-बार मिलता है , परन्तु केवल एक बार ही इसे अरिया-इद्धि कहा गया है।

सिद्धि-पाद : शक्ति (या सफलता) के मार्ग निम्नलिखित चार गुण हैं, क्योंकि ये मार्गदर्शक के रूप में शक्ति से जुड़े मार्ग को इंगित करते हैं; और क्योंकि ये मार्ग की सफलता का आधार बनने वाली शक्ति के मार्गों की तैयारी करते हैं, अर्थात् इच्छाशक्ति के प्रयास से युक्त इरादे की एकाग्रता (चंद-समाधि) , ऊर्जा की एकाग्रता (वीर्य), चेतना की एकाग्रता (चित्त), और इच्छाशक्ति के प्रयास से युक्त अन्वेषण की एकाग्रता (विमंस)। इस प्रकार, ये अलौकिक (लोकउत्तर) हैं, अर्थात् मार्ग या मार्ग की सफलता से जुड़े हुए हैं। लेकिन प्रमुख कारकों के रूप में ये सांसारिक (लोकीय) भी हैं, क्योंकि कहा गया है: "चूंकि भिक्षु इरादे को प्रमुख कारक बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है, इसलिए इसे इरादे की एकाग्रता (चंद-समाधि) कहा जाता है, इत्यादि।"

शक्ति के ये चार मार्ग जादुई शक्ति की प्राप्ति और उसे अर्जित करने, जादुई रूपांतरण की शक्ति, जादुई शक्ति के सृजन और उसमें निपुणता और कौशल प्राप्त करने की ओर ले जाते हैं। एक बार जब भिक्षु इन चारों मार्गों को विकसित कर लेता है और उनका बार-बार अभ्यास करता है, तो वह विभिन्न जादुई शक्तियों का आनंद लेता है—दिव्य कान से स्वर्गीय और मानवीय ध्वनियों को सुनता है—अपने मन से अन्य प्राणियों के मन को अनुभव करता है—अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है—दिव्य दृष्टि से प्राणियों के मृत्यु-मृत्यु के बाद पुनर्जन्म को देखता है—पक्षपातों के नाश होने पर मन की मुक्ति और पूर्वाग्रहों से मुक्त ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है।

हे भिक्षुओं, जिसने भी शक्ति के चारों मार्गों को खो दिया है, उसने दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले सही मार्ग को खो दिया है; परन्तु हे भिक्षुओं, जिसने भी शक्ति के चारों मार्गों को प्राप्त कर लिया है, उसने दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले सही मार्ग को प्राप्त कर लिया है।

iddhiyā ākāse yanti : आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त (अरहत) आकाश में विचरण करते हैं। अरहत को यह अहसास होता है कि जो करना था वह हो चुका है, दुःख का भारी बोझ अंततः उतर गया है, और सभी प्रकार की लालसाएँ और अज्ञान के सभी रूप पूर्णतः नष्ट हो गए हैं। सुखी तीर्थयात्री अब स्वर्ग से भी ऊँची ऊँचाइयों पर खड़े हैं, अनियंत्रित भावनाओं और संसार के दोषों से दूर, निर्वाण के अवर्णनीय आनंद का अनुभव कर रहे हैं।

पुनर्जन्म का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि नए कर्मों से अब कोई प्रजनन बीज उत्पन्न नहीं होते। यद्यपि वे अरहत हैं, फिर भी वे शारीरिक कष्टों से पूर्णतः मुक्त नहीं हैं, क्योंकि मुक्ति का यह आनंद क्षणिक ही होता है, और उन्होंने अभी तक अपना भौतिक शरीर त्यागा भी नहीं है। अरहत को असिख कहा जाता है, अर्थात् वे जो प्रशिक्षण नहीं लेते, क्योंकि उन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। सोतापत्ति अवस्था से अरहत पथ अवस्था तक के अन्य संतों को सीख कहा जाता है क्योंकि वे अभी भी प्रशिक्षण ले रहे हैं।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना उचित होगा कि रूप और अरूप ध्यान विकसित कर चुके अनागामी और अरहत इस जीवन में भी सात दिनों तक निरंतर निर्वाणिक आनंद का अनुभव कर सकते हैं। पाली भाषा में इसे निरोध-समापत्ति कहते हैं । इस अवस्था में आर्य पूर्णतः पीड़ामुक्त होते हैं और उनकी सभी मानसिक गतिविधियाँ रुक जाती हैं। चेतना का प्रवाह अस्थायी रूप से थम जाता है।

(धम्मपद 175) <<<< पिछला || धम्मपद 176 || अगला >>>> (धम्मपद 177)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 176 - सिन्कामनविका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 176 - सिन्कामनविका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ekam dhammam atitassa
musavadissa jantuno
vitinnaparalokassa
natthi papam akariyam.

आयत 176 : जो सत्य का उल्लंघन करता है, झूठ बोलने का आदी है और परलोक के प्रति उदासीन है, उसके लिए कोई बुराई नहीं है जिसे करने का वह साहस न करे।

सिनकामनाविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने चिनकामनाविक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (176) कहा।

जैसे-जैसे बुद्ध धर्म का उपदेश देते गए, वैसे-वैसे अधिकाधिक लोग उनके अनुयायियों की ओर आकर्षित होते गए और अन्य धर्मों के तपस्वियों के अनुयायी कम होते चले गए। इसलिए उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी एक समर्पित शिष्या, अत्यंत सुंदर चिंचमनविका को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "यदि आप हमारे हित में हैं, तो कृपया हमारी सहायता करें और समना गौतम को लज्जित करें।" चिंचमनविका ने यह बात मान ली।

उसी शाम, वह कुछ फूल लेकर जेतवन मठ की ओर चल पड़ीं। जब लोग उनसे पूछते कि वे कहाँ जा रही हैं, तो वे कहतीं, "तुम्हें क्या पता कि मैं कहाँ जा रही हूँ?" फिर वे जेतवन मठ के पास अन्य तपस्वियों के स्थान पर जातीं और सुबह जल्दी लौट आतीं ताकि ऐसा लगे कि उन्होंने रात जेतवन मठ में बिताई है। पूछे जाने पर वे कहतीं, "मैंने समना गौतम के साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रात बिताई।" तीन-चार महीने बीतने के बाद, उन्होंने अपने पेट को कपड़े से लपेट लिया ताकि वे गर्भवती लगें। फिर, आठ-नौ महीने बाद, उन्होंने

अपने पेट को पतले लकड़ी के गोल तख्ते से लपेट लिया; उन्होंने अपनी हथेलियों और पैरों को पीट-पीटकर फुला लिया और थकावट और कमजोरी का नाटक किया। इस प्रकार, उन्होंने गर्भावस्था के अंतिम चरण में एक महिला का पूर्ण रूप धारण कर लिया। फिर, शाम को, वे बुद्ध से मिलने जेतवन मठ गईं।

उस समय बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों की सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। उन्हें मंच पर उपदेश देते देख, उसने बुद्ध पर यह आरोप लगाया: "हे बड़े समना! आप तो केवल दूसरों को ही उपदेश देते हैं। मैं आपसे गर्भवती हूँ, फिर भी आप मेरे प्रसव के लिए कुछ नहीं करते। आपको तो केवल अपने सुख का ही ज्ञान है!" बुद्ध ने कुछ देर के लिए उपदेश रोक दिया और उससे कहा, "बहन, केवल आप और मैं ही जानते हैं कि आप सच कह रही हैं या नहीं," और चिनचमनविका ने उत्तर दिया, "हाँ, आप सही कह रहे हैं, जो बात केवल आप और मैं जानते हैं, उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं?"

उसी क्षण, देवताओं के राजा सक्का को जेतवन मठ में पनप रही गड़बड़ी का पता चला, इसलिए उन्होंने अपने चार देवदूतों को युवा चूहों के रूप में भेजा। चारों चूहे चिंचमनविका के वस्त्रों के नीचे घुस गए और उसके पेट के चारों ओर बंधी लकड़ी की डोरियों को काट डाला। डोरियाँ टूटते ही लकड़ी की डोरी नीचे गिर गई, जिससे उसके पैरों का अगला भाग कट गया। इस प्रकार चिंचमनविका का छल उजागर हो गया, और भीड़ में से कई लोग क्रोध में चिल्ला उठे, "हे दुष्ट स्त्री! झूठी और धोखेबाज़! हमारे परम गुरु पर आरोप लगाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई!" उनमें से कुछ ने उस पर थूका और उसे बाहर निकाल दिया। वह जितनी तेज़ी से भाग सकती थी भागी, और कुछ दूर जाने पर धरती फट गई और वह उसमें समा गई।

अगले दिन, जब भिक्षु चिनचमनविका के बारे में चर्चा कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षु, जो झूठ बोलने से नहीं डरता और भविष्य में क्या होगा इसकी परवाह नहीं करता, वह कोई भी बुराई करने से नहीं हिचकेगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

आयत 176 : जो सत्य का उल्लंघन करता है, झूठ बोलने का आदी है और परलोक के प्रति उदासीन है, उसके लिए कोई बुराई नहीं है जिसे करने का वह साहस न करे।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिंकामानविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चिंचमानविका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जैसे-जैसे बुद्ध धर्म का उपदेश देते गए, वैसे-वैसे अधिकाधिक लोग उनके अनुयायियों की ओर आकर्षित होते गए और अन्य धर्मों के तपस्वियों के अनुयायी घटते चले गए। इसलिए उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी एक समर्पित शिष्या, अत्यंत सुंदर चिंचामानविका को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, “यदि आप हमारे हित में हैं, तो कृपया हमारी सहायता करें और समना गौतम को लज्जित करें।” चिंचामानविका ने यह बात मान ली।

उसी शाम, वह कुछ फूल लेकर जेतवन मठ की ओर चल पड़ीं। जब लोग उनसे पूछते कि वे कहाँ जा रही हैं, तो वे कहतीं, “तुम्हें क्या पता कि मैं कहाँ जा रही हूँ?” फिर वे जेतवन मठ के पास अन्य तपस्वियों के स्थान पर जातीं और सुबह जल्दी लौट आतीं ताकि ऐसा लगे कि उन्होंने रात जेतवन मठ में बिताई है। पूछे जाने पर वे कहतीं, “मैंने समना गौतम के साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रात बिताई।” तीन-चार महीने बीतने के बाद, उन्होंने अपने पेट को कपड़े से लपेट लिया ताकि वे गर्भवती लगें। फिर, आठ-नौ महीने बाद, उन्होंने अपने पेट को पतले लकड़ी के गोल तख्ते से लपेट लिया; उन्होंने अपनी हथेलियों और पैरों को पीट-पीटकर फुला लिया और थकावट और कमजोरी का नाटक किया। इस प्रकार, उन्होंने गर्भावस्था के अंतिम चरण में एक महिला का पूर्ण रूप धारण कर लिया। फिर, शाम को, वे बुद्ध से मिलने के लिए जेतवन मठ गईं।

उस समय बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों की सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। उन्हें मंच पर उपदेश देते देख, एक स्त्री ने बुद्ध पर यह आरोप लगाया: “हे बड़े समना! आप तो केवल दूसरों को ही उपदेश देते हैं। मैं आपसे गर्भवती हूँ, फिर भी आप मेरे प्रसव के लिए कुछ नहीं करते। आपको तो केवल अपने सुख का ही ज्ञान है!” बुद्ध ने कुछ देर के लिए उपदेश देना बंद कर दिया और उससे कहा, “बहन, केवल तुम और मैं ही जानते हैं कि तुम सच कह रही हो या नहीं,” और चिन्कामानविका ने उत्तर दिया, “जी हाँ, आप सही कह रहे हैं, जो बात केवल आप और मैं जानते हैं, उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं?”

उसी क्षण, देवताओं के राजा सक्का को जेतवन मठ में हुई गड़बड़ी का पता चला, इसलिए उन्होंने अपने चार देवताओं को युवा चूहों के रूप में भेजा। चार चूहे चिंचामानविका के वस्त्रों के नीचे घुस गए और उनके पेट के चारों ओर बंधी लकड़ी की डोरियों को काट डाला। डोरियाँ टूटते ही लकड़ी की डोरी नीचे गिर गई। इस प्रकार, चिंचामानविका का छल उजागर हो गया, और भीड़ में से कई लोग क्रोध में चिल्ला उठे, “हे दुष्ट स्त्री! झूठी और धोखेबाज! तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई बुद्ध पर आरोप लगाने की!” उनमें से कुछ ने उस पर थूका और

उसे बाहर निकाल दिया। वह जितनी तेज़ी से भाग सकती थी भागी, और जब वह कुछ दूर गई तो धरती फट गई और उसमें दरार पड़ गई और वह उसमें समा गई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 176)

एकं धम्मं अतितास मुसावदिस्सा वितिण

परलोकस्सा जन्तुनो अकार्यं पापं नत्थि

एकं धम्मं [धम्म]: वह एक सद्गुण (सत्यवादिता); अतितस्स : उल्लंघन करने वाला; मुसावादिस्स : झूठ बोलने वाला; वितिष्ण परलोकस्स : जिसने परलोक त्याग दिया है; जंतुनो [जंटुना]: ऐसे व्यक्ति द्वारा; अकारियं पापं [पाप]: एक ऐसा बुरा कर्म जो नहीं किया जा सकता; नत्थि : नहीं है

सत्यवादिता का गुण त्यागने वाला दुष्ट व्यक्ति परलोक की सभी आशाओं को त्याग देता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 176)

झूठ बोलने वाला व्यक्ति । झूठ का विपरीत सत्य है। धम्म के अभ्यास से हम सत्य के दो स्तरों, सापेक्ष और परम, के बारे में अधिक जागरूक हो जाते हैं, पहले स्तर की क्षणिक प्रकृति को समझते हैं और दूसरे स्तर को समझने का प्रयास करते हैं।

ज्ञानोदय के क्षण में, जैसा कि बुद्ध और अन्य ऋषियों के मामले में हुआ, उस परम सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है जिसे हम 'वास्तविक सत्य' या 'धर्मों का वास्तविक स्वरूप देखना' कह सकते हैं, जिससे बौद्ध मार्ग के सभी चरणों को जोड़ने वाला एक सत्य सूत्र स्थापित हो जाता है। निर्वाण का अनुभव होने के बाद, जैसा कि बुद्ध ने कहा है, "सत्य अद्वितीय है।" इस पूर्णता का अभ्यास एक विनम्र स्तर पर विधुर-पंडित की प्रसिद्ध जन्म कथा में देखा जा सकता है, जिन्हें जंगल में एक नरभक्षी ने बंदी बना लिया था। उन्होंने इतनी निर्भीकता से अपनी मृत्यु की व्यवस्थित तैयारी की कि उनके बंदी बनाने वाले की जिज्ञासा जागृत हो गई। विधुर-पंडित ने उनकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा के लिए उन्हें कुछ समय के लिए अपने शहर लौटने की अनुमति दी। यद्यपि उनसे कम योग्य कई अन्य लोगों ने नरभक्षी की भूख मिटाने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया, विधुर-पंडित ने स्वयं अपने वादे के अनुसार लौटने पर जोर दिया। उसकी सत्यनिष्ठा का फल यह हुआ कि नरभक्षी उसकी महानता से बहुत प्रभावित हुआ, उसे उसके दायित्वों से मुक्त कर दिया और स्वयं पांच सिद्धांतों का पालन करने लगा।

natthi pāpaṃ akāriyaṃ : असत्य, आत्मसम्मान से रहित, परलोक में विश्वास न रखने वाला और बुराई के परिणामों से भयभीत न होने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार का पाप करने के लिए उत्तरदायी होता है। ऐसा व्यक्ति न तो सांसारिक सुख, न ही स्वर्गीय सुख और न ही निर्वाणिक सुख का अनुभव करता है। (टीका)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 177

———————————————————————

(धम्मपद 176) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 177 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 178)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 177 - असादिसादन वत्थु

1.1डॉ माया टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 177 - असादिसादन वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

न वे कादरिया देवलोकं वजन्ति

bala have nappasamsanti danam

dhiro ca danam anumodamano

टेनेवा सो होती सुखी पराठा।

श्लोक 177 : निःसंदेह, कंजूस लोग देवताओं के धाम में नहीं जाते; मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; परन्तु बुद्धिमान लोग दान में प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार परलोक में सुख प्राप्त करते हैं।

अद्वितीय दान-पुण्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के अद्वितीय दान के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (177) कहा।

एक बार राजा ने बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भव्य दान दिया। उनकी प्रजा ने उनसे प्रतिस्पर्धा करते हुए राजा से भी बड़े पैमाने पर एक और दान समारोह आयोजित किया। इस प्रकार, राजा और उनकी प्रजा के बीच दान देने की होड़ जारी रही। अंततः, रानी मल्लिका ने एक योजना बनाई; इस योजना को लागू करने के लिए उन्होंने राजा से एक भव्य मंडप बनवाने का अनुरोध किया। फिर उन्होंने पाँच सौ सफेद छतरियाँ और पाँच सौ पालतू हाथी मंगवाए; इन पाँच सौ हाथियों को पाँच सौ भिक्षुओं के ऊपर पाँच सौ सफेद छतरियाँ थामे रखना था। मंडप के बीच में दस नावें रखी गईं जो इत्र और अगरबत्ती से भरी हुई थीं। वहाँ ढाई सौ राजकुमारियाँ भी थीं, जो पाँच सौ भिक्षुओं को पंखा झलती रहती थीं। चूंकि राजा की प्रजा के पास न तो राजकुमारियाँ थीं, न सफेद छतरियाँ और न ही हाथी, इसलिए वे राजा से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकीं। जब सभी तैयारियाँ पूरी हो गईं, तो दान-भोजन परोसा गया। भोजन के बाद, राजा ने मंडप में मौजूद सभी वस्तुओं का दान किया, जिनकी कीमत चौदह करोड़ रुपये थी।

उस समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। उनमें से जुन्हा नामक मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को इतनी उदारता से दान देने के लिए राजा की प्रशंसा की। उसने यह भी कहा कि ऐसा दान केवल एक राजा ही दे सकता है। वह इस बात से बहुत खुश था कि राजा अपने अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँट रहा था। संक्षेप में, मंत्री जुन्हा राजा के अद्वितीय दान में उनके साथ प्रसन्न था। दूसरी ओर, मंत्री काला का मानना था कि राजा एक ही दिन में चौदह करोड़ रुपये दान करके केवल धन की बर्बादी कर रहा है और भिक्षु मठ में जाकर सो जाएँगे।

भोजन के बाद, बुद्ध ने श्रोताओं की ओर देखा और जान गए कि मंत्री काल कैसा महसूस कर रहा है। फिर उन्होंने सोचा कि यदि वे प्रशंसा का लंबा प्रवचन देंगे, तो काल और अधिक असंतुष्ट हो जाएगा, और फलस्वरूप उसे अगले जन्म में और अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा। अतः काल पर दया करते हुए, बुद्ध ने संक्षिप्त प्रवचन दिया और जेतवन मठ लौट गए। राजा को प्रशंसा के लंबे प्रवचन की उम्मीद थी, इसलिए बुद्ध के संक्षिप्त प्रवचन से वे बहुत दुखी हुए। राजा को लगा कि शायद उन्होंने कुछ ऐसा नहीं किया जो किया जाना चाहिए था, और इसलिए वे मठ गए।

राजा को देखकर बुद्ध ने कहा, "महाराज! आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने अद्वितीय दान (असदिसादना) करने में सफलता प्राप्त की है। ऐसा अवसर बहुत दुर्लभ होता है; प्रत्येक बुद्ध के प्रकट होने पर यह केवल एक बार आता है। लेकिन आपके मंत्री काल को यह व्यर्थ लगा और उन्होंने इसकी बिल्कुल भी सराहना नहीं की। इसलिए, यदि मैं लंबा प्रवचन देता, तो वे और अधिक असंतुष्ट और असहज हो जाते, और परिणामस्वरूप, उन्हें इस जन्म में और अगले जन्म में भी अधिक कष्ट भोगना पड़ता। इसीलिए मैंने संक्षेप में प्रवचन दिया।"

तब बुद्ध ने आगे कहा, "हे महाराज! मूर्ख लोग दूसरों द्वारा दिए गए दान में प्रसन्न नहीं होते और निम्न लोकों में चले जाते हैं। बुद्धिमान लोग दूसरों के दान में प्रसन्न होते हैं और कृतज्ञता के माध्यम से दूसरों द्वारा अर्जित पुण्य में भागीदार होते हैं और देवताओं के धाम में जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 177 : निःसंदेह, कंजूस लोग देवताओं के धाम में नहीं जाते; मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; परन्तु बुद्धिमान लोग दान में प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार परलोक में सुख प्राप्त करते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिंकामानविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के अद्वितीय दान-पुण्य के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार राजा ने बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भव्य दान दिया। उनकी प्रजा ने उनसे प्रतिस्पर्धा करते हुए राजा से भी बड़े पैमाने पर एक और दान समारोह आयोजित किया। इस प्रकार, राजा और उनकी प्रजा के बीच दान देने की होड़ जारी रही। अंततः, रानी मल्लिका ने

एक योजना बनाई: इस योजना को लागू करने के लिए, उन्होंने राजा से एक भव्य मंडप बनवाने का अनुरोध किया। इसके बाद, उन्होंने पाँच सौ सफेद छतरियाँ और पाँच सौ पालतू हाथी मंगवाए: ये पाँच सौ हाथी पाँच सौ भिक्षुओं के ऊपर पाँच सौ सफेद छतरियाँ थामे रहेंगे। मंडप के बीच में, उन्होंने इत्र और अगरबत्ती से भरी दस नावें रखीं। साथ ही ढाई सौ राजकुमारियाँ भी थीं, जो पाँच सौ भिक्षुओं को पंखा झलती रहती थीं। चूंकि राजा की प्रजा के पास न तो राजकुमारियाँ थीं, न सफेद छतरियाँ और न ही हाथी, इसलिए वे राजा से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। जब सभी तैयारियाँ पूरी हो गईं, तो दान-भोजन अर्पित किया गया। भोजन के बाद, राजा ने मंडप में रखी सभी वस्तुओं का दान किया, जिनका मूल्य चौदह अरब था।

उस समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। उनमें से जुन्हा नामक मंत्री बहुत प्रसन्न था और उसने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को इतनी उदारता से दान देने के लिए राजा की प्रशंसा की। उसने यह भी कहा कि ऐसा दान केवल एक राजा ही दे सकता है। वह बहुत खुश था क्योंकि राजा अपने अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँट रहा था। संक्षेप में, मंत्री जुन्हा राजा के अद्वितीय दान में उसके साथ प्रसन्न था। दूसरी ओर, मंत्री काल का मानना था कि राजा एक ही दिन में चौदह अरब दान देकर केवल धन की बर्बादी कर रहा है और भिक्षु मठ में जाकर सो जाएँगे। भोजन के बाद, बुद्ध ने उपस्थित लोगों की ओर देखा और मंत्री काल की भावनाओं को समझ गए। फिर उन्होंने सोचा कि यदि वे प्रशंसा का लंबा प्रवचन देंगे, तो काल और अधिक असंतुष्ट हो जाएगा और परिणामस्वरूप उसे अगले जन्म में और अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा।

राजा को देखकर बुद्ध ने कहा, "महाराज! आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने अद्वितीय दान (असदिसदान) करने में सफलता प्राप्त की है। ऐसा अवसर बहुत दुर्लभ होता है: प्रत्येक बुद्ध के प्रकट होने पर यह केवल एक बार आता है। लेकिन आपके मंत्री काल ने इसे व्यर्थ समझा और इसकी बिल्कुल भी सराहना नहीं की। इसलिए, यदि मैं लंबा प्रवचन देता, तो वह और अधिक असंतुष्ट और असहज हो जाता, और परिणामस्वरूप, उसे इस जन्म में और अगले जन्म में भी अधिक कष्ट भोगना पड़ता। इसीलिए मैंने संक्षेप में प्रवचन दिया।" फिर बुद्ध ने आगे कहा, "महाराज! मूर्ख लोग दूसरों द्वारा दिए गए दान में प्रसन्न नहीं होते और निम्न लोकों में चले जाते हैं। बुद्धिमान लोग दूसरों के दान में प्रसन्न होते हैं, और सराहना के माध्यम से, वे दूसरों द्वारा अर्जित पुण्य में भागीदार होते हैं और देवताओं के धाम में जाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 177)

कादरिया वे देवलोकं न वजन्ति , बाला हवे दानं नप्पसंशन्ति

धीरो च दानं अनुमोदमानो सो तेन एव परत सुखी होति

कदरिया : अत्यंत कंजूस; वे : निश्चित रूप से; देवलोक : देवताओं का लोक; न वजंति : न पहुँचें; बाला : अज्ञानी; हैव : निश्चित रूप से; दान : दान ; नप्पसंसन्ति : प्रशंसा न करें; धीरो च : जहाँ तक बुद्धिमान श्रेष्ठ व्यक्ति का सवाल है; दान : दान का कार्य; अनुमोदमानो : प्रसन्न होना; इसलिए : वह (अतः); तेन एव : उसी स्वीकृति के द्वारा; परत्थ : अगले जन्म में; सुखी : सुख का आनंद लेने वाला; होति : हो जाता है

अत्यंत कंजूस लोग स्वर्गलोक नहीं पहुँच पाते। दुष्ट और अज्ञानी लोग दान-पुण्य को स्वीकार नहीं करते। परन्तु बुद्धिमान और श्रेष्ठ लोग दान-पुण्य को स्वीकार करते हैं और स्वयं भी दान करते हैं। फलस्वरूप वे अगले जन्म में सुखी होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 177)

दान : परोपकार का कार्य: उदारता। दान प्रथम सिद्धि (पारामी) है। यह दाता को स्वार्थ के अनैतिक विचारों को रोकने और निस्वार्थता के शुद्ध विचारों को विकसित करने का दोहरा आशीर्वाद प्रदान करता है। "यह देने वाले और लेने वाले दोनों को आशीर्वाद देता है।" एक बोधिसत्व को इस बात की चिंता नहीं होती कि प्राप्तकर्ता वास्तव में जरूरतमंद है या नहीं, क्योंकि उदारता का अभ्यास करने का उनका एकमात्र उद्देश्य अपने भीतर सुप्त लालसा को समाप्त करना है। सेवा का आनंद, उससे प्राप्त सुख और दुखों का निवारण उदारता के अन्य आशीर्वाद हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 178

(धम्मपद 177) <<<< पिछला || धम्मपद 178 || अगला >>>> (धम्मपद 179 और 180)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 178 - अनाथपिंडिकापुत्तकला वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 178 - अनाथपिंडिकापुत्तकला वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
पथब्या एकराज्जेना
saggassa gamanena va
sabbalokadhipacce na
sotapattifalam varam.

———————————————————————

श्लोक 178 : पृथ्वी पर प्रभुत्व से कहीं श्रेष्ठ, या देवों के निवासों में जाने से कहीं श्रेष्ठ, या संपूर्ण ब्रह्मांड पर सर्वोच्च शासन करने से कहीं श्रेष्ठ, सोतापत्ति फल की प्राप्ति है।

———————————————————————

अनाथपिण्डिक के पुत्र कला की कथा
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (178) का उच्चारण किया, जिसमें सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के पुत्र काला का उल्लेख किया गया है।
अनाथपिंडिका का पुत्र काला, जब भी बुद्ध और उनके भिक्षुओं का समूह उनके घर आता, हमेशा उनसे दूर रहता था। अनाथपिंडिका को डर था कि यदि उसका पुत्र इसी प्रकार व्यवहार करता रहा, तो उसका पुनर्जन्म किसी निम्न लोक (अपय) में होगा। इसलिए, उसने अपने पुत्र को धन का लालच दिया। उसने वादा किया कि यदि युवक मठ जाकर एक दिन का उपवास रखेगा, तो वह उसे सौ रुपये देगा। इसलिए, युवक मठ गया और अगले दिन सुबह जल्दी घर लौट आया, बिना कोई धार्मिक प्रवचन सुने। उसके पिता ने उसे चावल का दलिया दिया, लेकिन उसने भोजन करने के बजाय सबसे पहले धन की मांग की।
अगले दिन पिता ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, यदि तुम बुद्ध से शास्त्र का एक श्लोक सीख लो, तो लौटने पर मैं तुम्हें एक हजार श्लोक दूंगा।" अतः काला फिर से मठ गया और बुद्ध से कहा कि वह कुछ सीखना चाहता है। बुद्ध ने उसे एक छोटा श्लोक याद करने को दिया; साथ ही उन्होंने यह इच्छा भी की कि युवक उसे पूरी तरह से याद न कर पाए। इस प्रकार, युवक को एक ही श्लोक को कई बार दोहराना पड़ा, परन्तु बार-बार दोहराने के कारण अंततः उसे धम्म का पूर्ण अर्थ समझ में आ गया और उसने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया।
अगली सुबह सवेरे, वह बुद्ध और भिक्षुओं के पीछे-पीछे अपने घर लौट आया। उस दिन वह मन ही मन सोच रहा था, "काश मेरे पिता बुद्ध के सामने मुझे एक हजार न देते। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने केवल धन के लिए व्रत रखा था।" उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को, और उसे भी, चावल का दलिया दिया। फिर उसके पिता एक हजार लेकर आए और काला को पैसे लेने को कहा, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि उसने लेने से इनकार कर दिया। उसके पिता ने उसे पैसे लेने के लिए ज़ोर दिया, लेकिन उसने फिर भी इनकार कर दिया। तब अनाथपिंडिका ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय गुरु, मेरा पुत्र बिल्कुल बदल गया है; अब वह बहुत ही सुखद व्यवहार करता है।" फिर उसने बुद्ध को बताया कि कैसे उसने युवक को धन का लालच देकर मठ में व्रत रखने और कुछ धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए राजी किया था। बुद्ध ने उनसे कहा, "अनाथपिंडिका! आज तुम्हारे पुत्र ने सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया है, जो सार्वभौम सम्राट, देवों (देवदूतों) या ब्रह्माओं के धन से कहीं श्रेष्ठ है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 178 : पृथ्वी पर प्रभुत्व से कहीं श्रेष्ठ, या देवों के निवासों में जाने से कहीं श्रेष्ठ, या संपूर्ण ब्रह्मांड पर सर्वोच्च शासन करने से कहीं श्रेष्ठ, सोतापत्ति फल की प्राप्ति है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
अनाथपिण्डिक के पुत्र काल की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के पुत्र काल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अनाथपिंडिक के पुत्र काल, जब भी बुद्ध और उनके भिक्षुओं का समूह उनके घर आता, हमेशा दूर ही रहता था। अनाथपिंडिक को डर था कि यदि उनका पुत्र इसी प्रकार व्यवहार करता रहा, तो उसका पुनर्जन्म निम्न लोकों (अपायों) में होगा। इसलिए, उन्होंने अपने पुत्र को धन का लालच दिया। उन्होंने वादा किया कि यदि युवक एक दिन के लिए मठ जाकर व्रत रखेगा, तो वे उसे सौ रुपये देंगे। इसलिए, युवक मठ गया और अगले दिन सुबह जल्दी घर लौट आया, बिना कोई धार्मिक प्रवचन सुने। उसके पिता ने उसे चावल का दलिया दिया, लेकिन उसने भोजन करने के बजाय सबसे पहले धन की मांग की।

अगले दिन पिता ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, यदि तू बुद्ध से शास्त्र का एक श्लोक याद कर ले, तो लौटकर मैं तुझे एक हजार श्लोक दूंगा।" अतः काल फिर से मठ गया और बुद्ध से कहा कि वह कुछ सीखना चाहता है। बुद्ध ने उसे एक छोटा श्लोक याद करने को दिया और साथ ही यह इच्छा भी की कि वह युवक उसे पूरी तरह से याद न कर पाए। इस प्रकार, युवक को एक ही श्लोक को कई बार दोहराना पड़ा, परन्तु बार-बार दोहराने के कारण अंततः उसे धम्म का पूर्ण अर्थ समझ में आ गया और उसने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

अगली सुबह, वह बुद्ध और भिक्षुओं के पीछे-पीछे अपने घर गया। लेकिन उस दिन वह मन ही मन सोच रहा था, "काश मेरे पिता बुद्ध के सामने मुझे एक हजार न देते। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने केवल पैसों के लिए व्रत रखा था।" उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को, और उसे भी, चावल का दलिया दिया। फिर, उसके पिता एक हजार लेकर आए और काला को पैसे लेने को कहा, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि उसने मना कर दिया। उसके पिता ने उसे पैसे लेने के लिए ज़ोर दिया, लेकिन उसने फिर भी मना कर दिया।

तब अनाथपिंडिका ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, आज मेरे पुत्र का व्यवहार मुझे प्रसन्न कर रहा है।" "यह कैसे, महाधन्यवाद?" "परसों मैंने उसे मठ में यह कहकर भेजा था कि मैं तुम्हें सौ सोने के सिक्के दूंगा। कल उसने भोजन नहीं किया क्योंकि मैंने उसे पैसे नहीं दिए थे; परन्तु आज जब मैंने उसे पैसे दिए, तो उसने उन्हें छूने से भी इनकार कर दिया।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "यह सच है, महाधन्यवाद। आज, धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त करके, आपके पुत्र ने वह प्राप्ति कर ली है जो सार्वभौम सम्राट की प्राप्ति, देवताओं के लोक की प्राप्ति, ब्रह्मा के लोक की प्राप्ति से भी बढ़कर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 178)

पथव्या एकराजजेना , सग्गस्सा गमनेन वा ,

सब्बलोकाधिपच्चेन , सोतापत्तिफलं वरं

पथव्य : पूरी पृथ्वी का; एकराज्जेन : एकमात्र राजा; सग्गस्स : स्वर्ग लोकों तक; गमनेन वा : साथ-साथ चलने वाला; सब्बलोकधिपच्चेन : सार्वभौमिक राजा; सोतापत्तिफल : धारा - संग्रह का फल; वर : (उन सभी से) महान

धारा-प्रबंधन के फल की प्राप्ति आध्यात्मिक सफलता की प्राप्ति का प्राथमिक चरण है। यह अवस्था सर्वव्यापी सम्राट होने या स्वर्ग प्राप्त करने से भी श्रेष्ठ है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 178)

पथव्य एकरज्जेन : पृथ्वी पर एकमात्र शासक होना। पारंपरिक कथाओं के अनुसार, कुछ युगों में एक सार्वभौमिक राजा प्रकट होता है। वह पूरी पृथ्वी पर शासन करता है। इस पद को पृथ्वी पर सर्वोच्च और सर्वोपरि माना जाता है। परंपरा के अनुसार, केवल वही व्यक्ति इस अद्वितीय सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है जो अपने सभी पुण्य कर्मों का फल एक साथ भोगने में सक्षम हो। इस कथा के अनुसार, पृथ्वी पर उसके आगमन की भविष्यवाणी देवताओं के समूह द्वारा उसके आगमन से एक शताब्दी पहले की जाती है। वह सात महान खजानों का स्वामी बनता है। ये सार्वभौमिक राजा उच्चतम भौतिक और सांसारिक विलासिता के प्रतीक हैं। परंपरा कहती है कि इनमें से कोई भी दो राजा एक ही समय में विश्व में प्रकट नहीं होंगे। जब कोई सार्वभौमिक राजा शासन कर रहा हो तब बुद्ध प्रकट नहीं होंगे, और न ही जब कोई बुद्ध पृथ्वी पर प्रकट हो चुका हो तब कोई सार्वभौमिक राजा प्रकट होगा।

सोतापत्ति : यहाँ सोता का अर्थ है वह धारा जो निर्वाण की ओर ले जाती है। यह श्रेष्ठ अष्टमार्ग है। ' आ ' का अर्थ है पहली बार। ' पत्ति ' का अर्थ है प्राप्ति। सोतापत्ति का अर्थ है धारा की पहली बार प्राप्ति। यह पहली बार निर्वाण का अहसास है। यह संतत्व का पहला चरण है। धारा-प्राप्तकर्ता दुखद अवस्थाओं में जन्म नहीं लेते, परन्तु सांसारिक महान लोग इससे मुक्त नहीं हैं।

अध्याय 14. बुद्धवग्ग: बुद्ध (179-196)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 179,180

(धम्मपद178) <<<< पिछला|| धम्मपद 179 और 180 ||अगला >>>> (धम्मपद181)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 179 और 180 - मरधितारा वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 179 और 180 - मराधितारा वत्थु

————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa jitam navajiyati(1)
जीतम यस्सा नोयति कोसि लोके(2)
tam buddhamanantagocaram(3)
अपदम(4) केना पदेन नेसथः।
Yassa jalini visattika
tanha nathti kuhinci netave
tam buddhamanantagocaram
अपदम केना पड़ेना नेसथ(5)

————————————————————————

श्लोक 179 : बुद्ध, जिन्होंने (नैतिक विकारों पर) पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिनमें इस संसार में आगे कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

————————————————————————

श्लोक 180 : बुद्ध, जिनमें कोई लालसा नहीं है, जो उन्हें जाल की तरह किसी भी अस्तित्व (संसार) में वापस ले आए, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

————————————————————————

1. जितम नवजियाति: 'विजय पूर्ण हो गई है' का अर्थ है कि आगे और विजय की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब और कोई नैतिक दोष नहीं हैं जिन पर विजय प्राप्त करनी हो।
2. jitam yassa no'yati koci loke: शाब्दिक अर्थ: जिनके विरक्त दोषों का इस संसार में कोई और दोष नहीं हो सकता।
3. अनंतगोकारम: बुद्ध के ज्ञान की सीमा उनकी सर्वज्ञता, सब्बानुता नाना के कारण अनंत है।
4. अपदम: शाब्दिक अर्थ, 'बिना मार्ग वाला'। बुद्ध, तृष्णा, आसक्ति, वासना आदि जैसे पुनर्जन्म के बंधनों से मुक्त होकर, संसार में अपने मार्ग या यात्रा को समाप्त कर चुके हैं। (टिप्पणी)
[यही विचार आयत 92 और 93 में भी व्यक्त किया गया है, जिनमें यह बताया गया है कि अरहत इस कदर इस दुनिया से चले जाते हैं कि वे अपने पीछे अस्तित्व का कोई निशान नहीं छोड़ते, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी हवा में उड़ते हुए अपना निशान छोड़ जाता है।]
5. केना पदेना नेसथा: शाब्दिक अर्थ, तुम उसे किस मार्ग से ले जाओगे? इसका अर्थ है कि वह किसी भी प्रलोभन से बहकाया नहीं जा सकता।

————————————————————————

मारा (अर्थात शैतान/शैतान की) की तीन बेटियों की कहानी
बुद्ध ने सबसे पहले बोधि वृक्ष के पास निवास करते हुए इस पुस्तक के श्लोक (179) और (180) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने मारा की तीन पुत्रियों का उल्लेख किया। उन्होंने कुरु देश की यात्रा के दौरान ब्राह्मण मगंदिया को ये श्लोक दोहराए।
कुरु राज्य में ब्राह्मण मगंदिया और उनकी पत्नी अपनी अत्यंत सुंदर पुत्री मगंदिया के साथ रहते थे। मगंदिया इतनी सुंदर थी कि उसके पिता ने उसके सभी दूल्हों को कठोर भाव से ठुकरा दिया। एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने पाया कि ब्राह्मण मगंदिया और उनकी पत्नी के लिए अनागामी पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः, बुद्ध ने अपना कुंड और वस्त्र लेकर उस स्थान की ओर प्रस्थान किया जहाँ ब्राह्मण अग्नि यज्ञ करने जाते थे।

बुद्ध को देखते ही ब्राह्मण ने तुरंत निर्णय लिया कि बुद्ध ही उसकी पुत्री के योग्य हैं। उसने बुद्ध से वहीं रुकने की विनती की और अपनी पत्नी और पुत्री को लाने के लिए जल्दी से चला गया। बुद्ध ने अपना पदचिह्न छोड़ा और पास ही एक दूसरे स्थान पर चले गए। जब ब्राह्मण और उसका परिवार वहाँ पहुँचा, तो उन्हें केवल पदचिह्न ही मिला। पदचिह्न देखकर ब्राह्मण की पत्नी ने कहा कि यह उस व्यक्ति का पदचिह्न है जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है। तब ब्राह्मण ने बुद्ध को देखा और अपनी पुत्री का विवाह उनसे करने का प्रस्ताव रखा।

बुद्ध ने न तो प्रस्ताव स्वीकार किया और न ही अस्वीकार किया, बल्कि पहले उन्होंने ब्राह्मण को बताया कि बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद मारा की पुत्रियों ने उन्हें कैसे प्रलोभित किया। बुद्ध ने मारा की सुंदर पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा से कहा था, "जो व्यथा, आसक्ति और वासना से मुक्त है, उसे प्रलोभित करने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि वह किसी भी प्रलोभन से प्रभावित नहीं हो सकता।" तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 179 : बुद्ध, जिन्होंने (नैतिक विकारों पर) पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिनमें इस संसार में आगे कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

श्लोक 180 : बुद्ध, जिनमें कोई लालसा नहीं है, जो उन्हें जाल की तरह किसी भी अस्तित्व (संसार) में वापस ले आए, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

तब बुद्ध ने आगे कहा, "ब्राह्मण मगंदिया, जब मैंने मारा की उन अद्वितीय पुत्रियों को देखा, तब भी मेरे मन में कोई कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं हुई। आख़िर तुम्हारी पुत्री का यह शरीर कैसा है? यह मूत्र और मैल से भरा है; मैं इसे अपने पैर से भी छूना नहीं चाहता!" बुद्ध के ये शब्द सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया। बाद में वे संघ में शामिल हो गए और अंततः दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

तेरहवें अध्याय का अंत: लोकवग्ग (विश्व)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

मारा की तीन बेटियों की कहानी

बोधि वृक्ष के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने मारा की तीन पुत्रियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे। उन्होंने ये श्लोक कुरुओं के राज्य के ब्राह्मण मागंदिया को सुनाए। कुरुओं के राज्य में रहने वाले मागंदिया नामक एक ब्राह्मण की पुत्री का नाम भी मागंदिया था, जो अत्यंत सुंदर थी। अनेक धनी और प्रतिष्ठित ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे और उन्होंने मागंदिया को संदेश भेजा, "हमें अपनी पुत्री दे दो।" परन्तु उन्होंने सभी को यह कहकर अस्वीकार कर दिया, "तुम मेरी पुत्री के योग्य नहीं हो।"

एक दिन, जब बुद्ध ने भोर होते हुए संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने देखा कि मागंदिया उनके ज्ञान के जाल में प्रवेश कर चुका है। वह ब्राह्मण प्रतिदिन गाँव के बाहर अग्नि की देखभाल करता था; इसलिए बुद्ध सुबह सवेरे ही कुंड और वस्त्र लेकर उसी स्थान पर गए। बुद्ध के भव्य स्वरूप को देखकर ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "इस संसार में इस पुरुष के समान कोई पुरुष नहीं है; यह पुरुष मेरी पुत्री के लिए उपयुक्त है; मैं अपनी पुत्री का विवाह इसी पुरुष से कराऊँगा।" उसने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी एक पुत्री है, और मैंने उसके लिए उपयुक्त वर की व्यर्थ ही खोज की है। मैंने उसका विवाह किसी से नहीं कराया है। परन्तु आप उसके लिए उपयुक्त हैं। मैं अपनी पुत्री का विवाह आपको देना चाहता हूँ; जब तक मैं उसे लेकर न आऊँ, आप यहीं प्रतीक्षा कीजिए।" बुद्ध ने उसकी बातें सुनीं, परन्तु उन्होंने न तो स्वीकृति व्यक्त की और न ही अस्वीकृति।

अतः ब्राह्मण ने अपनी पुत्री को सुंदर वस्त्र पहनाए और पुत्री एवं पत्नी को साथ लेकर उस स्थान पर गया जहाँ उसकी बुद्ध से मुलाकात हुई थी। बुद्ध ब्राह्मण द्वारा बताए गए स्थान पर रुकने के बजाय वहाँ से चले गए और दूसरे स्थान पर खड़े हो गए, तथा अपने पहले के स्थान पर पदचिह्न छोड़ गए।

ब्राह्मण की पत्नी, जो उनके साथ आई थीं, ने उनसे पूछा, "यह आदमी कहाँ है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैंने उससे कहा था, 'यहीं ठहरो।'" चारों ओर देखते हुए ब्राह्मण को पदचिह्न दिखाई दिए और उन्होंने अपनी पत्नी को दिखाते हुए कहा, "यह उसका पदचिह्न है।" ब्राह्मण की पत्नी संकेतों से संबंधित श्लोकों से परिचित थीं और उन्होंने तुरंत ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, यह पाँच वासनाओं का पालन करने वाले व्यक्ति का पदचिह्न नहीं है।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "पत्नी, तुम हमेशा पानी की एक बूँद में मगरमच्छ देखती हो। जब मैंने उस भिक्षु से कहा, 'मैं तुम्हें अपनी पुत्री दे दूँगा,' तो उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।" ब्राह्मण की पत्नी ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, आप जो चाहें कहें, लेकिन यह पदचिह्न केवल वासना से मुक्त व्यक्ति का है।" तब ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, इस तरह बड़बड़ाना बंद करो; मेरे साथ चुपचाप आओ।" थोड़ा आगे बढ़ने पर उसने बुद्ध को देखा, और उनकी ओर इशारा करते हुए कहा, "वह

रहा वह व्यक्ति!" बुद्ध के पास पहुँचकर उसने कहा, "आदरणीय, मैं अपनी पुत्री आपको पत्नी के रूप में देना चाहता हूँ।" बुद्ध ने "मुझे तुम्हारी पुत्री की आवश्यकता नहीं है" कहने के बजाय कहा, "ब्राह्मण, मुझे तुमसे कुछ कहना है; सुनो।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "कहिए; मैं सुनूँगा।" तब बुद्ध ने ब्राह्मण को अपने पिछले जीवन की कथा सुनाई, जिसकी शुरुआत महासन्यास से हुई। बुद्ध ने प्रभुत्व का शयनकक्ष त्याग कर अपने घोड़े कंठक पर सवार होकर चन्ना को अपने साथ लेकर महासन्यास के लिए प्रस्थान किया। जब वे नगर के द्वार के पास पहुँचे, तो पास खड़े मारा ने उनसे कहा, "सिद्धार्थ, अपने मार्ग पर लौट जाओ; सात दिन बाद एक सर्वशक्तिमान सम्राट का जादुई चक्र तुम्हें दिखाई देगा।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं भी यह जानता हूँ, मारा, परन्तु मुझे इसकी इच्छा नहीं है।" "तो फिर आप किस उद्देश्य से संन्यास लेने जा रहे हैं?" "ताकि मुझे सर्वज्ञता प्राप्त हो सके।" "अच्छा, तो फिर यदि आज से आपके मन में कोई कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आए, तो मैं जानता हूँ कि आपके मामले में क्या करना है।"

और तब से मारा सात वर्षों तक उनका पीछा करता रहा, अपने अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। बुद्ध ने छह वर्षों तक तपस्या की, और जब उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से बोधि वृक्ष (बकरी चराने वाले बरगद के वृक्ष) के चरणों में सर्वज्ञता प्राप्त की और मुक्ति के आनंद का अनुभव किया, तब मारा राजमार्ग के किनारे बैठ गया, इस विचार से व्याकुल होकर, "इतने समय तक मैं उनका पीछा करता रहा, अपने अवसर की तलाश में, लेकिन उनमें कोई दोष नहीं पाया; अब वे मेरे वश से निकल गए हैं।"

अब मारा की तीन पुत्रियों, तृष्णा, कामवासना और वासना ने उनसे पूछा, "प्रिय पिता, आप इतने उदास और निराश क्यों हैं?" उन्होंने उन्हें सारी बात बताई। तब उन्होंने उनसे कहा, "प्रिय पिता, आप चिंतित न हों; हम उसे अपने वश में कर यहाँ ले आएँगी।" बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे कहा, "हम आपकी विनम्र दासियाँ बनेंगी।" बुद्ध ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, न ही उन्होंने अपनी आँखें खोलकर उनकी ओर देखा। मारा की पुत्रियों ने फिर कहा, "पुरुषों की रुचियाँ अनेक और विविध होती हैं। कुछ को कुंवारी कन्याएँ पसंद हैं, कुछ को यौवन प्राप्त स्त्रियाँ, कुछ को मध्य आयु प्राप्त स्त्रियाँ, और कुछ को मध्य आयु पार कर चुकी स्त्रियाँ। हम उसे विभिन्न रूपों में लुभाएँगी।" इस प्रकार, उन्होंने एक-एक करके विभिन्न आयु वर्ग की स्त्रियों का रूप धारण किया, अलौकिक शक्ति से प्रत्येक ने सौ-सौ स्त्रियाँ बनाईं, और उनसे कहा, "हम आपकी विनम्र दासियाँ बनेंगी।"

बुद्ध ने उनसे कहा, "चले जाओ; तुम ऐसा क्या देखते हो कि इस प्रकार प्रयास कर रहे हो? ऐसे कर्म तो उन लोगों के सामने किए जाने चाहिए जिन्होंने कामवासनाओं और अन्य बुरी भावनाओं से खुद को मुक्त नहीं किया है। तथागत ने कामवासनाओं और अन्य बुरी भावनाओं से खुद को मुक्त कर लिया है। तुम मुझे अपने वश में करने का प्रयास क्यों कर रहे हो?" बुद्ध ने अपना जीवनी संबंधी प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "मागंदिया, बहुत समय पहले जब मैंने मारा की इन तीन पुत्रियों को देखा, जिनके शरीर सोने के समान थे, कफ और अन्य शारीरिक अशुद्धियों से मुक्त थे, तब भी मुझे कामुक सुखों की कोई इच्छा नहीं हुई। परन्तु तुम्हारी पुत्री का शरीर तो बत्तीस अशुद्धियों से भरा हुआ है, मानो वह अशुद्धियों से भरा हुआ कोई पात्र हो, जिस पर बाहर से सुंदर रंग चढ़ा हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 179)

यस्सा जितं लोके न अवजियाति अस्सा जितं कोचि नो याति
अनंतगोचरं अपादं तं बुद्धं केन पदेन नेसथा

यस्स : उस प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा; जितं [जित]: जिसे जीता गया; लोके ना अवजीयति : इस संसार में कभी नहीं जीता जा सकता; अस्स : उस बुद्ध द्वारा; जितं [जित]: जिसे (इस संसार में) जीता गया है; कोचि : किसी अन्य दोष द्वारा; नो यति : अनुसरण नहीं किया जाएगा; अनंतगोचरं [अनंतगोचर]: उनका ध्यान अनंत है; अपदं [अपद]: उनके पास कोई मार्ग नहीं बचा है; तं बुद्धं [बुद्ध]: वह प्रबुद्ध व्यक्ति; केना पदेन : किस मार्ग से; नेसथ : आप अनुसरण कर सकते हैं?

बुद्ध की विजय अनुचित नहीं है। कोई भी बुद्ध की विजय को पराजय में नहीं बदल सकता। उन्होंने जो कुछ भी जीता है, वह न तो वापस लौट सकता है और न ही उनका पीछा कर सकता है, क्योंकि उनकी विजय पूर्ण है: उनका ज्ञान अनंत है। आप उन्हें किस प्रकार प्रलोभित या फँसा सकते हैं?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 180)

यस्सा कुहिनसि नेतवे जालिनी विसात्तिका तन्हा नत्थि ,
अनंत गोचरं अपादं तं बुद्धं केन पदेन नेसथ

yassa : वह बुद्ध; kuhiñci netave : जिसे पकड़ा जा सके; jālinī : जाल के समान; visattikā : विष के समान; taṇhā : लालसा; natthi : नहीं पाया जाता; ananta gocaraṃ [gocara] : जिसका ध्यान अनंत है; apadaṃ [apada] : जिसकी कोई जड़ नहीं बची; taṃ Buddhaṃ [Buddha] : वह बुद्ध; kena padena : किस माध्यम से; nessatha : क्या आप उसे प्रलोभित कर सकते हैं?

बुद्ध, जिनमें लुभाने वाले जाल को पकड़ने की कोई प्यास (तन्हा) नहीं है, जिनका ज्ञान अनंत है, उन्हें आप किस तरह लुभा सकते हैं?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 179-180)

बुद्ध : प्रबुद्ध व्यक्ति । छह वर्षों के अथक संघर्ष के बाद, 35 वर्ष की आयु में, किसी भी अलौकिक शक्ति की सहायता या मार्गदर्शन के बिना, केवल अपने प्रयासों और बुद्धि पर निर्भर रहते हुए, उन्होंने सभी दोषों का नाश किया, आसक्ति की प्रक्रिया को समाप्त किया और अपने असाधारण ज्ञान से चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानकर बुद्ध - प्रबुद्ध व्यक्ति - बन गए।
इसके बाद, वे बुद्ध गौतम के नाम से जाने गए, जो अतीत में प्रकट हुए और भविष्य में प्रकट होने वाले बुद्धों की लंबी श्रृंखला में से एक हैं। वे जन्म से बुद्ध नहीं थे, बल्कि अपने स्वयं के प्रयासों से चेतना के स्वैच्छिक विकास की प्रक्रिया द्वारा बुद्ध बने। पाली शब्द बुद्ध, बोधि से लिया गया है , जिसका अर्थ है जागृत होना। जैसे ही उन्होंने चारों असाधारण वास्तविकताओं का पूर्ण अनुभव किया और अज्ञानता की नींद से जागे, वे एक स्वार्थी प्राणी से शाब्दिक रूप से और हर अर्थ में, निस्वार्थ गैर-अस्तित्व या गैर-व्यक्ति में पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गए। उन्होंने न केवल उस अवस्था को प्राप्त किया, बल्कि उन्होंने अपने द्वारा अनुभव की गई वास्तविकता का प्रतिपादन भी किया और दूसरों को ज्ञान प्रदान किया। उन्हें सम्मा सम्बुद्ध कहा जाता है - एक सामंजस्यपूर्ण रूप से जागृत व्यक्ति - ताकि उन्हें पच्चेक (एकांत) बुद्धों से अलग किया जा सके जो केवल वास्तविकता का अनुभव करते हैं लेकिन दूसरों को ज्ञान प्रदान करने में असमर्थ होते हैं।
ज्ञान प्राप्ति से पहले, उन्हें बोधिसत्व कहा जाता था, जिसका अर्थ है बुद्धत्व प्राप्त करने की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति। बुद्धत्व के प्रत्येक साधक को बोधिसत्व अवस्था से गुजरना पड़ता है — यह गहन अभ्यास और उदारता, अनुशासन, त्याग, ज्ञान, ऊर्जा, सहनशीलता, सत्यनिष्ठा, दृढ़ संकल्प, परोपकार और पूर्ण समभाव जैसे गुणों के विकास का काल होता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 181

————————————————————————

(धम्मपद 179 और 180) <<<< पिछला|| धम्मपद181 ||अगला >>>> (धम्मपद182)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 181 - देवोरोहण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 181 - देवोरोहण वत्थु

————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

ये झनपसुता धीरा
नेक्खम्मुपासामे राता
devapi tesam pihayanti
sambuddhanam satimatam.

————————————————————————

श्लोक 181 : जो ज्ञानी ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, वे इंद्रिय सुखों और नैतिक विकारों से मुक्ति की शांति में आनंदित होते हैं। ऐसे ज्ञानी और सचेतन, जो वास्तव में चार आर्य सत्यों को समझते हैं (अर्थात अरहत और बुद्ध), देवताओं को भी प्रिय होते हैं।

————————————————————————

तावतिंसा देवलोक से बुद्ध की वापसी की कहानी

तावतिंसा देव (देवदूत) लोक से लौटने पर, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के स्वागत के शब्दों के उत्तर में संकसनागर में इस पुस्तक का श्लोक (181) कहा।

एक बार, श्रावस्ती में रहते हुए, बुद्ध ने विभिन्न संप्रदायों के तपस्वियों की चुनौती का उत्तर देते हुए युगल का चमत्कार किया। इसके बाद, बुद्ध तावतिंसा देवलोक गए; उनकी माता, जिनका तुषिता देवलोक में संतुसिता नामक देव के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, वे भी तावतिंसा देवलोक आईं। वहाँ बुद्ध ने वर्षा ऋतु के तीन महीनों के दौरान देवों और ब्रह्माओं को अभिधम्म का उपदेश दिया। फलस्वरूप, संतुसिता देव ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया; और अनेक अन्य देवों और ब्रह्माओं ने भी ऐसा ही किया।

उस दौरान थेरा सारिपुत्त ने वर्षा ऋतु (तीन महीने) संकसननगर में बिताई, जो श्रावस्ती से तीस योजन दूर था। वहाँ रहते हुए, बुद्ध के नियमित निर्देशानुसार, उन्होंने अपने साथ रहने वाले पाँच सौ भिक्षुओं को अभिधम्म का उपदेश दिया और वर्षा ऋतु के अंत तक पूरा पाठ्यक्रम संपन्न कर दिया।

वर्षा ऋतु के अंत में, थेरा महा मोग्गलाना बुद्ध से मिलने के लिए तावतिंसा देवलोक गए। तब उन्हें बताया गया कि बुद्ध वर्षा ऋतु के अंत में पूर्णिमा के दिन मानवलोक में उस स्थान पर लौटेंगे जहाँ थेरा सारिपुत्त वर्षा ऋतु व्यतीत कर रहे थे।

प्रतिज्ञा के अनुसार, बुद्ध अपने शरीर से निकलती छह रंग की किरणों के साथ असायुज माह की पूर्णिमा की रात को, जब चंद्रमा चमक रहा था, संकसनगर नगर के द्वार पर आए। उनके साथ एक ओर देवों (देवदूतों) का एक विशाल समूह और दूसरी ओर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) का एक विशाल समूह था। थेरा सारिपुत्त के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह ने बुद्ध का इस संसार में पुनः स्वागत किया; और पूरा नगर प्रकाश से जगमगा उठा। बुद्ध के आगमन के इस भव्य और महिमामय दृश्य को देखकर थेरा सारिपुत्त विस्मित हो गए। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "आदरणीय गुरुदेव! हमने ऐसा भव्य और तेजस्वी रूप न कभी देखा है और न ही सुना है। वास्तव में, आदरणीय गुरुदेव, देवों, ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) और मनुष्यों द्वारा समान रूप से प्रेम, आदर और श्रद्धा के पात्र हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, अद्वितीय गुणों से संपन्न बुद्धों को मनुष्य और देव (देवदूत) दोनों ही समान रूप से प्रेम करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 181 : जो ज्ञानी ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, वे इंद्रिय सुखों और नैतिक विकारों से मुक्ति की शांति में आनंदित होते हैं। ऐसे ज्ञानी और सचेतन, जो वास्तव में चार आर्य सत्यों को समझते हैं (अर्थात अरहत और बुद्ध), देवताओं को भी प्रिय होते हैं।

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के पांच सौ शिष्यों ने अरहतत्व प्राप्त किया और मंडली के कई लोगों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तावतिंस देवलोक से बुद्ध की वापसी की कथा

तावतिंस देवलोक से लौटने पर, बुद्ध ने साणकसनगर में पूज्य सारिपुत्त के स्वागत शब्दों के उत्तर में यह श्लोक कहा।

एक बार, सावत्थी में रहते हुए, बुद्ध ने विभिन्न संप्रदायों के तपस्वियों की चुनौती के उत्तर में समकालिक उद्भव का चमत्कार प्रदर्शित किया। इसके बाद, बुद्ध तावतिंस देवलोक गए; उनकी माता, जिनका तुषिता देवलोक में संतुसिता नामक देवी के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, वे भी तावतिंस देवलोक आईं। वहाँ बुद्ध ने वर्षा के तीन महीनों के दौरान देवताओं और ब्रह्माओं को अभिधम्म का उपदेश दिया। फलस्वरूप, संतुसिता देव ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया; और अनेक अन्य देवताओं और ब्रह्माओं ने भी यही फल प्राप्त किया।

जब बुद्ध चले गए, तो लोगों ने मोग्गलाना से पूछा, "बुद्ध कहाँ गए हैं?" हालाँकि पूज्य मोग्गलाना स्वयं भली-भांति जानते थे कि बुद्ध कहाँ गए हैं, फिर भी उन्होंने मन ही मन सोचा, "दूसरों की भी अद्‌भुत शक्तियों का ज्ञान हो," और इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, "पूज्य अनुराधा से पूछिए।" तब लोगों ने पूज्य अनुराधा से पूछा, "पूज्यवर, बुद्ध कहाँ गए हैं?" पूज्य अनुराधा ने उत्तर दिया, "वे तैंतीस लोकों में निवास करने के लिए पीले पत्थर के सिंहासन पर विराजमान हुए हैं; वे वहाँ अपनी माता को अभिधम्म पिटक का उपदेश देने गए हैं।"

उस दौरान पूज्य सारिपुत्त ने श्रावस्ती से तीस योजन दूर स्थित संकसननगर में वर्षावास व्यतीत किया। वहाँ अपने प्रवास के दौरान, बुद्ध के नियमित निर्देशानुसार, उन्होंने अपने साथ रहने वाले भिक्षुओं के विशाल समूह को अभिधम्म का उपदेश दिया और वर्षावास के अंत तक संपूर्ण पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया।

वर्षावास के अंत में, पूज्य मोग्गलाना बुद्ध से मिलने तावतिंस देवलोक गए। तब उन्हें बताया गया कि बुद्ध वर्षावास के अंत में पूर्णिमा के दिन मानवलोक में उस स्थान पर लौटेंगे जहाँ पूज्य सारिपुत्त वर्षावास कर रहे थे।

प्रतिज्ञा के अनुसार, बुद्ध अपने शरीर से निकलती छह रंग की किरणों के साथ असायुज माह की पूर्णिमा की रात को, जब चंद्रमा चमक रहा था, संकसनगर नगर के द्वार पर आए। उनके साथ एक ओर देवताओं का एक बड़ा समूह और दूसरी ओर ब्रह्माओं का एक बड़ा समूह था। पूज्य सारिपुत्त के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह ने बुद्ध का इस संसार में पुनः स्वागत किया; और पूरा नगर प्रकाश से जगमगा उठा। पूज्य सारिपुत्त बुद्ध के आगमन के पूरे दृश्य की भव्यता और महिमा को देखकर विस्मित हो गए। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "पूज्यवर! हमने ऐसी भव्य और तेजस्वी महिमा न कभी देखी है और न ही सुनी है। वास्तव में, पूज्यवर, आप

देवताओं, ब्रह्माओं और मनुष्यों द्वारा समान रूप से प्रिय, आदरणीय और पूजनीय हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, अद्वितीय गुणों से संपन्न ऋषि वास्तव में मनुष्यों और देवताओं द्वारा समान रूप से प्रिय होते हैं।"

प्रवचन के अंत में, पूज्य सारिपुत्त के शिष्य भिक्षुओं के समूह ने अर्हतत्व प्राप्त किया और मंडली के बहुत से लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 181)

ये धीरा झानापसुत नेक्खम्मुपसमे रता सतीमतम्

तेसं संबुद्धानं देवा अपि पिहयन्ति

ये धीरा : वे महान लोग; झानापसुत : ध्यान में तत्पर हैं; नेक्खम्मुपासमे रता : अपवित्रता, विजय (निब्बाण) पर आमादा हैं; सतीमतम् [सतीमत]: ध्यानपूर्ण; तेसं संबुद्धानां [संबुद्धन]: वे प्रबुद्ध लोग; देवा अपि : यहां तक कि देवता भी; पिहयंती : आराधना

वे श्रेष्ठ और ज्ञानी जन ध्यान में लीन रहते हैं। वे विकारों पर विजय प्राप्त करने, अर्थात् निर्वाण प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित रहते हैं। वे सचेत रहते हैं; और ऐसे प्रबुद्ध जन सभी के प्रिय होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 181)

देव : प्रकाशमान; स्वर्गीय प्राणी, देवता, दिव्य प्राणी। ये सुखमय लोकों में निवास करते हैं और सामान्यतः मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। यद्यपि, सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, ये भी पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में बंधे होते हैं, और इस प्रकार जीवन चक्र से मुक्त नहीं होते, दुख से मुक्त नहीं होते। स्वर्गीय प्राणियों के अनेक वर्ग हैं:

इंद्रियलोक के दिव्य प्राणी (काम-वचर या काम-लोक);

रूपलोक (रूपावचर या रूपलोक) के दिव्य प्राणी और

निराकार लोक के दिव्य प्राणी (अरूपावचर या अरूपलोक)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 182

(धम्मपद181) <<<< पिछला|| धम्मपद182 ||अगला >>>> (धम्मपद 183, 184 और 185)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 182 - एरकपट्टनागराज वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 182 - एरकपट्टनागराज वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

किच्चो मनुस्सपतिलभो

किच्चम मच्चना जीवतम

किच्चम सद्धम्मसवनाम

kiccho buddhanamuppado.

श्लोक 182 : मनुष्य के रूप में जन्म पाना कठिन है; मनुष्यों का जीवन कठिन है; आर्य धम्म (बुद्धों की शिक्षा) सुनने का अवसर पाना कठिन है; बुद्ध का प्रकट होना कठिन है।

नागा राजा एरकपट्टा की कहानी

बरनासी के पास निवास करते हुए बुद्ध ने नागों (ड्रैगन) के राजा एराकापट्टा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (182) कहा।
एक समय की बात है, एराकापट्टा नाम का एक नाग राजा था। अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, वह लंबे समय तक भिक्षु रहा था। उस दौरान किए गए एक छोटे से अपराध के कारण चिंता (कुक्कुच्चा) से प्रेरित होकर, उसका पुनर्जन्म नाग के रूप में हुआ। नाग के रूप में, वह बुद्ध के प्रकट होने की प्रतीक्षा करता रहा। एराकापट्टा की एक बहुत सुंदर पुत्री थी, और उसने बुद्ध को खोजने के लिए उसका उपयोग एक साधन के रूप में किया। उसने यह घोषणा की कि जो कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर देगा, वह उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर सकेगा। एराकापट्टा महीने में दो बार उसे खुले में नृत्य करवाता और उससे प्रश्न गवाता था। कई लोग उससे विवाह करने की आशा में उसके प्रश्नों का उत्तर देने आए, लेकिन कोई भी सही उत्तर नहीं दे सका।
एक दिन बुद्ध ने अपने दर्शन में उत्तरा नामक एक युवक को देखा। उन्हें यह भी ज्ञात था कि नाग एराकापत्ता की पुत्री द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने से ही उस युवक को सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त होगी। तब तक वह युवक एराकापत्ता की पुत्री से मिलने जा रहा था। बुद्ध ने उसे रोककर प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका सिखाया। जब उत्तरा को यह विधि सिखाई जा रही थी, तभी उसे सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त हो गई। सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी के प्रति उसकी कोई इच्छा नहीं रही। फिर भी, उत्तरा अनेक अन्य प्राणियों के हित में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए चला गया।
पहले चार प्रश्न ये थे:
1. शासक कौन होता है?
2. क्या नैतिक विकारों के कोहरे से घिरे व्यक्ति को शासक कहा जा सकता है?
3. कौन सा शासक नैतिक दोषों से मुक्त है?
4. किस प्रकार के व्यक्ति को मूर्ख कहा जाता है?
उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार थे:
1. जो छह इंद्रियों को वश में रखता है, वही शासक है।
2. जो नैतिक विकारों के कोहरे से घिरा हुआ हो, उसे शासक नहीं कहा जा सकता; जो लालसा से मुक्त हो, वही शासक कहलाता है।
3. जो शासक लालसा से मुक्त होता है, वह नैतिक दोषों से मुक्त होता है।
4. जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों की लालसा रखता है, उसे मूर्ख कहा जाता है।
उपरोक्त प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी ने कामुक इच्छाओं, पुनर्जन्म, झूठे सिद्धांतों और अज्ञानता की बाढ़ (ओघों) के बारे में प्रश्न पूछे और उनसे निपटने के तरीके पूछे। उत्तरा ने बुद्ध द्वारा सिखाई गई विधि के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर दिए। जब एराकापट्टा ने ये उत्तर सुने तो उन्हें पता चला कि इस संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं। इसलिए उन्होंने उत्तरा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया। बुद्ध को देखकर एराकापट्टा ने उन्हें बताया कि कैसे वे कश्यप बुद्ध के समय में भिक्षु थे, कैसे नाव में यात्रा करते समय उनसे गलती से घास का एक तिनका टूट गया था, और कैसे उन्होंने निर्धारित प्रायश्चित न करने के कारण उस छोटी सी गलती पर चिंता व्यक्त की थी, और अंत में कैसे उनका पुनर्जन्म नाग के रूप में हुआ। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने उन्हें बताया कि मनुष्यलोक में जन्म लेना कितना कठिन है, और बुद्धों के प्रकट होने के समय या उनके उपदेशों के समय जन्म लेना तो और भी कठिन है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 182 : मनुष्य के रूप में जन्म पाना कठिन है; मनुष्यों का जीवन कठिन है; आर्य धम्म (बुद्धों की शिक्षा) सुनने का अवसर पाना कठिन है; बुद्ध का प्रकट होना कठिन है।

उपरोक्त प्रवचन से अनेक प्राणियों को लाभ हुआ। एराकापट्टा एक पशु होने के कारण उस समय सोतापत्ति फल प्राप्त नहीं कर सका।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नाग राजा एराकापट्टा की कहानी
बारानासी के निकट निवास करते समय बुद्ध ने नागों के राजा एराकापट्टा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, एराकापट्टा नाम का एक नाग राजा था। अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, वह लंबे समय तक भिक्षु रहा था। उस दौरान किए गए एक छोटे से अपराध के कारण चिंता से प्रेरित होकर, उसने नाग के रूप में पुनर्जन्म लिया। नाग के रूप में, वह बुद्ध के प्रकट होने की प्रतीक्षा करता रहा। एराकापट्टा की एक बहुत सुंदर पुत्री थी, और उसने बुद्ध को खोजने के लिए उसका उपयोग एक साधन के रूप में किया। उसने यह घोषणा की कि जो कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर देगा, वह उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर सकता है। एराकापट्टा महीने में दो बार उसे खुले में नृत्य करवाता और उससे प्रश्न गवाता था। कई लोग उससे विवाह करने की आशा में उसके प्रश्नों का उत्तर देने आए, लेकिन कोई भी सही उत्तर नहीं दे सका।

एक दिन बुद्ध ने अपने दर्शन में उत्तरा नामक एक युवक को देखा। उन्हें यह भी ज्ञात था कि नाग एराकापत्त की पुत्री द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने से ही उस युवक को सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त होगा। तब तक वह युवक एराकापत्त की पुत्री से मिलने जा रहा था। बुद्ध ने उसे रोककर प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका सिखाया। जब उत्तरा को यह ज्ञान सिखाया जा रहा था, तभी उसे सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त हो गया। सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी के प्रति उसकी कोई इच्छा नहीं रही। फिर भी, उत्तरा अनेक अन्य प्राणियों के हित में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए चला गया।

पहले चार प्रश्न थे: (1) शासक कौन है? (2) क्या नैतिक विकारों के कोहरे से घिरे व्यक्ति को शासक कहा जा सकता है? (3) कौन सा शासक नैतिक विकारों से मुक्त है? (4) किस प्रकार के व्यक्ति को मूर्ख कहा जाता है?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं: (1) जो छह इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, वही शासक है। (2) जो नैतिक विकारों के कोहरे में घिरा रहता है, उसे शासक नहीं कहा जा सकता; जो लालसा से मुक्त होता है, वही शासक कहलाता है। (3) जो शासक लालसा से मुक्त होता है, वह नैतिक विकारों से मुक्त होता है। (4) जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों की खोज करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

उपरोक्त प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी ने कामुक इच्छाओं, पुनर्जन्म, झूठे सिद्धांतों और अज्ञान के ओघों (बाढ़) के बारे में प्रश्न पूछे और उनसे कैसे पार पाया जा सकता है, यह भी पूछा। उत्तरा ने बुद्ध द्वारा सिखाई गई शिक्षा के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर दिए। जब एराकापट्टा ने ये उत्तर सुने, तो वह समझ गया कि इस संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं। इसलिए उसने उत्तरा से उसे बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया। बुद्ध को देखकर, एराकापट्टा ने बुद्ध को बताया कि कैसे वह कश्यप बुद्ध के समय में एक भिक्षु था, कैसे नाव में यात्रा करते समय उससे गलती से घास का एक तिनका टूट गया था, और कैसे उसने निर्धारित प्रायश्चित न करने के कारण उस छोटी सी गलती पर चिंता व्यक्त की थी, और अंत में कैसे उसका पुनर्जन्म एक नाग के रूप में हुआ। उसकी बात सुनकर, बुद्ध ने उसे बताया कि मानव जगत में जन्म लेना कितना कठिन है, और बुद्धों के प्रकट होने के समय या उनके उपदेशों के समय जन्म लेना कितना कठिन है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 182)

मनुस्सा पतिलाभो किच्चो मक्कन जीवितं किच्चं
सद्धम्म सावनं किच्चं बुद्धानं उप्पदो किच्चो

मनुस्सा पतिलाभो [पतिलाभ]: मानव अस्तित्व को जीतना; किच्चो [किच्चा]: (है) कठिन; मक्काना : नश्वर लोगों का; जेविताम् [जेविता]: जीवन; किच्चाँ [किच्चा]: (है) कठिन; सधम्म सवानाम् [सवाना]: धम्म सुनना; किच्चाँ [किच्चा]: (है) कठिन; बुद्धानं उप्पादो [उप्पादा]: बुद्ध का जन्म; किच्चो [किच्चा]: कठिन और दुर्लभ है

इस पुनर्जन्म के चक्र में मनुष्य के रूप में जन्म लेना दुर्लभ है। उत्तम शिक्षा सुनने का अवसर मिलना भी मुश्किल और दुर्लभ है। वास्तव में, बुद्ध का जन्म होना तो और भी दुर्लभ है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 182)

मच्चाना जीवितं : नश्वर प्राणी का जीवन। मच्चा (नश्वर) शब्द मनुष्य के लिए प्रयोग किया जाता है क्योंकि वह मृत्यु के अधीन है। सभी जीव मृत्यु के अधीन हैं। लेकिन मच्चा शब्द मनुष्यों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है; क्योंकि सभी प्राणियों में मनुष्य ही एकमात्र ऐसे प्राणी हैं जो मृत्यु की अनिवार्यता को जान सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 183,184,185

(धम्मपद 182) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 183, 184 और 185 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 186 और 187)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 183, 184 और 185 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 183, 184 और 185 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
सब्बपपस्स अकरनम
ku salassa upasampada
सचित्तपरियोडापनम
etam buddhana sasanam.
Khanti paramam tapo titikkha
निब्बानं परमं वदन्ति बुद्ध
na hi pabbajito parupaghati
न समणो होति परम विहेथयन्तो।
अनुपवादो अनुपघातो
patimokkhe ca samvaro
mattannuta ca bhattasmim
pantanca sayanasanam
adhicitte ca ayogo
etam buddhana sasanam.

श्लोक 183 : बुराई न करना, पुण्य का विकास करना, मन को शुद्ध करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

श्लोक 184 : सबसे उत्तम नैतिक अभ्यास धैर्य और सहनशीलता है; बुद्धों ने कहा है, "निर्वाण सर्वोच्च है"। भिक्षु दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता; जो दूसरों को हानि पहुँचाता है वह भिक्षु नहीं है।

श्लोक 185 : निंदा न करना, किसी को हानि न पहुँचाना, भिक्षुओं के लिए मूलभूत निर्देशों के अनुसार संयम बरतना, भोजन में संयम बरतना, एकांत स्थान में निवास करना, उच्चतर एकाग्रता में स्वयं को समर्पित करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (183), (184) और (185) का उच्चारण किया, जो पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत निर्देशों के संबंध में थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में था।
एक बार थेरा आनंद ने बुद्ध से पूछा कि क्या पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत उपदेश वही हैं जो स्वयं बुद्ध ने दिए हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि सभी बुद्धों द्वारा दिए गए उपदेश निम्नलिखित श्लोकों में दिए गए हैं:
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 183 : बुराई न करना, पुण्य का विकास करना, मन को शुद्ध करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

श्लोक 184 : सबसे उत्तम नैतिक अभ्यास धैर्य और सहनशीलता है; बुद्धों ने कहा है, "निर्वाण सर्वोच्च है"। भिक्षु दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता; जो दूसरों को हानि पहुँचाता है वह भिक्षु नहीं है।

श्लोक 185 : निंदा न करना, किसी को हानि न पहुँचाना, भिक्षुओं के लिए मूलभूत निर्देशों के अनुसार संयम बरतना, भोजन में संयम बरतना, एकांत स्थान में निवास करना, उच्चतर एकाग्रता में स्वयं को समर्पित करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इन श्लोकों का कथन पूज्य आनंद द्वारा पूर्व बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत निर्देशों के संबंध में उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में किया था।

हमें बताया जाता है कि पूज्य बुद्ध अपने विश्राम कक्ष में बैठे हुए मन ही मन सोचने लगे, "बुद्ध ने सात बुद्धों के माता-पिता, उनकी आयु, जिस वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ, उनके शिष्यों का समूह, उनके प्रमुख शिष्य और उनके मुख्य समर्थक का वर्णन किया है। बुद्ध ने इन सबका वर्णन किया है। लेकिन उन्होंने उनके उपवास के तरीके के बारे में कुछ नहीं बताया, क्या वह आज के तरीके जैसा ही था या उससे अलग था?" तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा।

इन बुद्धों के संदर्भ में, यद्यपि समय में अंतर था, उनके द्वारा प्रयुक्त श्लोकों में कोई अंतर नहीं था। परम प्रबुद्ध विपस्सी बुद्ध सात वर्ष में एक बार व्रत रखते थे, परन्तु एक दिन में दिया गया उनका उपदेश सात वर्षों के लिए पर्याप्त था। सिख और वेस्साभू छह वर्ष में एक बार व्रत रखते थे; काकुसंध और कोनागमना प्रत्येक वर्ष व्रत रखते थे; दस शक्तियों के स्वामी कस्सपा बुद्ध छह माह में एक बार व्रत रखते थे, परन्तु उनका उपदेश छह माहों के लिए पर्याप्त था। इसी कारण बुद्ध ने पूज्य बुद्धों को समय के इस अंतर को समझाने के बाद यह स्पष्ट किया कि सभी मामलों में व्रत रखने का तरीका एक समान था।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 183)

सब्बापास्सा अकरणं कुसलस्सा उपसम्पदा
सचित्त परियोदापनं एतं बुद्धं शासनं

सब्बापापास : सभी बुरे कार्यों से; अकारणं [अकारण]: बचना; कुसलस्सा : अच्छे कार्य; उपसम्पदा : उत्पादन और रखरखाव; सचित्त परियोदपनाम् [परियोदपना]: अपने मन को शुद्ध करना और अनुशासित करना; एताम् : यह है; बुद्धानं [बुद्धाना]: बुद्धों का; सासनं [सासन]: शिक्षण।

सभी बुराइयों का त्याग करके, अच्छाई की अवस्था में प्रवेश करना और स्वयं अपने मन को शुद्ध करना—यही बुद्ध की शिक्षा है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 184)

तितिक्खा खांति परमं तपो , बुद्ध निब्बाणं परमं वदन्ति ,
परुपघाति पब्बजितो न हि होति परं विहेथयंतो समणो न हि होति

तितिक्खा : सहनशील; खांति : धैर्य; परमं तपो : (है) सर्वोच्च तप; बुद्ध : बुद्ध; निब्बाणम् [निब्बाण]: अविचलता; परमं [परम]: (है) सर्वोच्च; वदन्ति : अवस्था; परुपघाती : दूसरों को चोट पहुँचाना; पब्बाजितो [पब्बाजिता]: एक त्यागी; ना ही होती : निश्चित रूप से नहीं है; परं विहेहयंतो [विहेहयंत]: जो दूसरों को नुकसान पहुंचाता है; समणो न होति : निश्चित रूप से साधु नहीं है

धीरज रखना सर्वोच्च तपस्या है। बुद्ध कहते हैं कि निर्भयता (निब्बान) सर्वोच्च है। जो किसी दूसरे को दुख पहुँचाता है, वह संन्यासी नहीं है। सच्चा संत (समना) वही है जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 185)

अनुपवादो अनुपघाटो पतिमोक्खे संवरो च
भट्टस्मिं मत्तनुता च पंथं सयानासनं च
अधिचित्ते अयोगो च एतं बुद्धं सासनं

anūpavādo [anūpavāda]: दूसरों में दोष न निकालना; anūpaghāto [anūpaghāta]: दूसरों को परेशान करने से बचना; pātimokkhe : अनुशासन के मुख्य रूपों में; saṃvaro [saṃvara]: अच्छी तरह से संयमित; ca bhattasmiṃ [bhattasmi]: भोजन में; mattññutā : संयमित; ca panthaṃ sayanāsanaṃ [sayanāsana]: एकांत स्थानों (मानव बस्तियों से दूर) में आनंद लेना; adhicitte ca : उच्च ध्यान में भी; āyogo [āyoga]: (और) निरंतर अभ्यास में; etaṃ : यह सब; Buddhānaṃ [Buddhāna]: बुद्धों का; sāsanaṃ [sāsana]: (है) शिक्षा

दूसरों में दोष ढूंढने से बचना, दूसरों को चोट पहुंचाने से बचना, अनुशासन और आचरण के उच्चतम रूपों में प्रशिक्षित होना; भोजन करने में संयम बरतना; एकांत में आनंद लेना; और उच्च चिंतन (जो कि ध्यान है) में संलग्न होना।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 183-185)

सब्बपापास अकारण : इस श्लोक में बुद्ध के धर्म का सारांश दिया गया है।

आसक्ति (लोभ), द्वेष (दोष) और मोह (मोह) इन तीन अनैतिक जड़ों से जुड़ी चीजें बुरी होती हैं। वहीं उदारता (आलोभ), सद्भावना (आदोष) और ज्ञान (अमोह) इन तीन नैतिक जड़ों से जुड़ी चीजें अच्छी होती हैं।

पब्बाजितो : वह व्यक्ति जिसने अपनी अशुद्धियों को त्याग दिया है और संसार को छोड़ दिया है।

समानो : वह व्यक्ति जिसने अपनी वासनाओं को वश में कर लिया हो, एक तपस्वी।

खन्ती परमं तपो : धैर्य सर्वोच्च तपस्या है। यह दूसरों द्वारा स्वयं पर किए गए कष्टों को धैर्यपूर्वक सहना और दूसरों के अन्याय को सहन करना है। एक बोधिसत्व इतना धैर्यवान होता है कि हाथ-पैर काटे जाने पर भी वह क्रोधित नहीं होता। खन्तीवादी जातक में यह प्रकट

होता है कि बोधिसत्व ने न केवल उस शराबी राजा द्वारा दी गई यातनाओं को प्रसन्नतापूर्वक सहन किया, जिसने निर्दयतापूर्वक उनके हाथ-पैर, नाक और कान काटने का आदेश दिया था, बल्कि उन चोटों का प्रतिफल आशीर्वाद से दिया। अपने ही रक्त के गहरे कुंड में, क्षत-विक्षत अंगों के साथ जमीन पर लेटे हुए, बोधिसत्व ने कहा, "उस राजा की जय हो, जिसने मेरे शरीर को इस प्रकार क्रूरता से काटा।" मेरे जैसे पवित्र आत्माएं ऐसे कर्मों को क्रोध से नहीं देखते।

उनकी सहनशीलता के बारे में कहा जाता है कि जब भी उन्हें कोई हानि पहुँचती है, वे हमलावर के बारे में सोचते हैं — 'यह व्यक्ति मेरा ही साथी है। जानबूझकर या अनजाने में, उकसावे का स्रोत मैं स्वयं ही रहा हूँगा, या यह मेरे किसी पिछले बुरे कर्म का परिणाम हो सकता है। क्योंकि यह मेरे अपने कर्म का परिणाम है, तो मुझे उसके प्रति दुर्भावना क्यों रखनी चाहिए?'

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि बोधिसत्व किसी भी मनुष्य के निर्लज्ज आचरण से विचलित नहीं होते। अपने शिष्यों को सहनशीलता का अभ्यास करने की सलाह देते हुए बुद्ध ने काकाचूपमा सूत्र में कहा , "यद्यपि डाकू, जो लुटेरे हैं, दोधारी आरी से तुम्हारे अंगों को काट दें, तो भी यदि तुम इससे अपने मन को दूषित करोगे, तो तुम मेरे उपदेश के अनुयायी नहीं रहोगे। इसलिए तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: हमारा हृदय निर्मल रहे। हमारे मुख से कोई बुरा शब्द न निकले। दयालु और करुणामय हृदय से, किसी के प्रति द्वेष न रखते हुए, हम इन डाकुओं को भी प्रेममय विचारों से घेर लें। और उनसे आगे बढ़कर, हम प्रेममय विचारों से पूरे संसार को फैलाते हुए, विशाल, असीम, परोपकारी और एकीकृत रूप से निवास करें।"

एक बोधिसत्व दूसरों में कुरूपता देखने के बजाय धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास करते हुए सभी में अच्छाई और सुंदरता को खोजने का प्रयास करता है।

खन्ती : धैर्य; सहनशीलता। यह एक उत्कृष्ट गुण है जिसकी बौद्ध धर्मग्रंथों में बहुत प्रशंसा की गई है। इसे आसानी से तभी विकसित किया जा सकता है जब मन में बेचैनी और घृणा को शांत कर लिया गया हो, जैसा कि ध्यान के अभ्यास से होता है। अधीरता, जो व्यक्ति को जल्दबाजी करने और इस प्रकार कई अच्छे अवसरों को खोने की प्रवृत्ति रखती है, शांत बैठने और चीजों को अपने आप सुलझने देने की अक्षमता से उत्पन्न होती है, जबकि कभी-कभी वे बिना हस्तक्षेप के भी सुलझ जाती हैं। धैर्यवान व्यक्ति को कई ऐसे फल प्राप्त होते हैं जो जल्दबाजी करने वाले व्यक्ति को नहीं मिलते। उनमें से एक है शांत मन, क्योंकि अधीरता मन को मंथन कराती है और आधुनिक व्यावसायिक जगत की जानी-पहचानी चिंता-बीमारियों को जन्म देती है। धैर्य चुपचाप सहन करता है - यही गुण इसे मानसिक प्रशिक्षण और विशेष रूप से ध्यान में इतना मूल्यवान बनाता है। पाँच मिनट के अभ्यास के बाद तत्काल ज्ञान की अपेक्षा करना व्यर्थ है। कॉफी भले ही तुरंत मिल जाए, लेकिन ध्यान नहीं मिलता और इसे जल्दी करने की कोशिश करने से केवल नुकसान ही होगा। सदियों से यह कूड़ा जमा होता आ रहा है, मानसिक कचरे का एक विशाल ढेर। ऐसे में जब कोई छोटी सी चम्मच लेकर आता है और इसे हटाना शुरू करता है, तो कितनी जल्दी इसके गायब होने की उम्मीद की जा सकती है? धैर्य ही इसका उत्तर है और इसके साथ दृढ़ संकल्प भी आवश्यक है। धैर्यवान ध्यान करने वाले को वास्तव में स्थायी लाभ मिलते हैं, जबकि 'त्वरित विधियों' या 'अचानक ज्ञानोदय' की खोज करने वाला व्यक्ति अपने ही रवैये के कारण लंबे समय तक निराशा का शिकार होता है।

धम्म का अध्ययन करने वाले किसी भी व्यक्ति को यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो जाएगी कि ये शिक्षाएँ अधीर लोगों के लिए नहीं हैं। एक बौद्ध अपने वर्तमान जीवन को लगभग अस्सी वर्षों का एक छोटा सा काल मानता है, और ऐसे अनेक जन्मों में से यह उसका अंतिम जन्म है। इसे ध्यान में रखते हुए, वह इस जीवन में ज्ञान प्राप्ति के लिए यथासंभव प्रयास करने का निश्चय करता है, परन्तु वह अपनी क्षमताओं को अतिरंजित नहीं करता और शांत और धैर्यपूर्वक प्रतिदिन धम्म का पालन करता रहता है। ज्ञान प्राप्ति की शीघ्रता (या जिसे कोई ज्ञान समझता है) से कोई बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकता, जब तक कि वह कोई असाधारण व्यक्ति न हो जो इस प्रकार का उपचार सहन कर सके और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह ध्यान के किसी कुशल गुरु के प्रति समर्पित हो।

धैर्य से व्यक्ति को चोट नहीं पहुँचती, बल्कि वह मार्ग पर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता है। हम जानते हैं कि बोधिसत्व इस बात से भलीभांति परिचित थे और उन्होंने अपने मन को इस पूर्णता से संवारा था, जिससे संसार में घटित होने वाली किसी भी अप्रिय घटना से उनका मन विचलित नहीं होता था। उन्होंने निश्चय किया कि वे बाहरी परिस्थितियों के प्रति धैर्यवान रहेंगे — चाहे सूर्य की गर्मी अधिक हो या मौसम ठंडा; कीड़े-मकोड़े जैसे जीवों द्वारा शरीर पर आक्रमण करने पर भी विचलित नहीं होंगे। न ही वे तब विचलित होंगे जब लोग उनके बारे में कठोर शब्द, झूठ या अपशब्द बोलेंगे, चाहे उनके सामने या उनकी पीठ पीछे। यहाँ तक कि जब उनके शरीर को यातनाएँ, मार-पीट, लाठी-पत्थर, यातनाएँ दी गईं, तब भी उनका धैर्य नहीं टूटा; मृत्यु को भी उन्होंने दृढ़ता से सहन किया, उनका धैर्य इतना अटूट था। बौद्ध भिक्षुओं को भी इसी प्रकार अभ्यास करने की सलाह दी जाती है।

सचित्त परियोदपनम् : मन को शांत करना। बौद्ध धर्म में, उच्चतर बोध मन की शुद्धि से प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप, मन-साधना और ध्यान बौद्ध धर्म के उचित अभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ध्यान नामक मानसिक अभ्यास सभी धार्मिक प्रणालियों में पाया जाता है। प्रार्थना एक प्रकार का विवेचनात्मक ध्यान है, और हिंदू धर्म में श्लोकों और मंत्रों का पाठ मन को ग्रहणशीलता की अवस्था में शांत करने के लिए किया जाता है। इनमें से अधिकांश प्रणालियों में लक्ष्य को प्राप्त होने वाले विशिष्ट मानसिक परिणामों से पहचाना जाता है, जैसे कि अर्ध-सम्मोहन अवस्था में आने वाले दर्शन या सुनाई देने वाली ध्वनियाँ। बौद्ध धर्म में प्रचलित ध्यान के रूपों में ऐसा नहीं है।

मन, उसके कार्यों और उसकी शक्तियों के बारे में अपेक्षाकृत कम जानकारी है, और अधिकांश लोगों के लिए आत्म-सम्मोहन, माध्यम बनने की अवस्थाओं और मानसिक स्पष्टता एवं प्रत्यक्ष बोध की वास्तविक प्रक्रिया के बीच अंतर करना कठिन है, जो बौद्ध मानसिक विकास का उद्देश्य है जिसे भावना (ध्यान) कहा जाता है। यह तथ्य कि प्रत्येक धर्म के रहस्यवादियों ने स्वयं में ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न की हैं जिनमें वे अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप दर्शन और वाणी सुनते हैं, यह दर्शाता है कि उनके ध्यान का परिणाम केवल सांस्कृतिक परिवेश के कारण उनके मन की गहरी परतों में पहले से ही अंतर्निहित अवधारणाओं को सतह पर लाना है। ईसाई उन संतों को देखते और उनसे संवाद करते हैं जिन्हें वे पहले से जानते हैं, हिंदू हिंदू देवताओं की कल्पना करते हैं, इत्यादि। जब बंगाली रहस्यवादी श्री रामकृष्ण परमहंस ने ईसाई धर्म की ओर अपना ध्यान केंद्रित करना शुरू किया, तो उन्होंने अपने ध्यान में हिंदू अवतारों की अपनी पूर्व स्पष्ट छवियों के स्थान पर यीशु के दर्शन देखे ।

सम्मोहन का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सम्मोहनकर्ता द्वारा दिए गए सुझावों के प्रति अधिक से अधिक सहजता से आत्मसमर्पण करने लगता है, और इस विषय का अध्ययन करने वाला कोई भी व्यक्ति सम्मोहनकर्ता द्वारा प्राप्त की गई मानसिक स्थिति और सम्मोहनकर्ता द्वारा अपनी इच्छा अनुसार किसी भी प्रकार के अनुभव को सहजता से प्राप्त करने की क्षमता के बीच संबंध अवश्य देख सकता है। ध्यान के अभ्यास में एक और संभावना भी निहित है: माध्यम बनने की क्षमता का विकास, जिसके द्वारा व्यक्ति वास्तव में अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर विद्यमान प्राणियों, जैसे देवलोक और प्रेतों के लोक को देख और सुन सकता है। ये लोक हमारे अपने लोक के सबसे निकट होने के कारण अधिक सुलभ हैं, और यही पश्चिमी अध्यात्मवाद की मानसिक घटनाओं की वास्तविक व्याख्या हो सकती है।

लेकिन बौद्ध ध्यान का उद्देश्य इनमें से कोई भी नहीं है। ये चीजें ध्यान में त्रुटियों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं, लेकिन ये न केवल इसका लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि ऐसी बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। यीशु को देखने वाला ईसाई या भगवान कृष्ण से संवाद करने वाला हिंदू इस बात से पूरी तरह संतुष्ट हो सकता है कि उसने अपने धार्मिक जीवन का उद्देश्य पूरा कर लिया है, लेकिन बुद्ध का दर्शन करने वाला बौद्ध इस तथ्य से ही जान जाता है कि वह केवल अपने मन पर एक विश्वास को प्रतिबिंबित करने में सफल हुआ है, क्योंकि बुद्ध अपने परिनिर्वाण के बाद, स्वयं उनके शब्दों में, किसी को भी दिखाई नहीं देते।

इसलिए, बौद्ध ध्यान और अन्य प्रणालियों में अभ्यास किए जाने वाले ध्यान में एक मूलभूत अंतर है। ध्यान का मार्ग अपनाने वाले बौद्ध के लिए इस अंतर को पहचानना और अपने मन में यह स्पष्ट रूप से स्थापित करना आवश्यक है कि वह वास्तव में क्या करने का प्रयास कर रहा है।

पुनर्जन्म और दुख का मूल कारण अज्ञान (अविज्जा) और प्यास (तन्हा) का संयोजन है । ये दोनों कारण एक दुष्चक्र बनाते हैं; एक ओर अवधारणाएँ भावनाओं को जन्म देती हैं, और दूसरी ओर भावनाएँ अवधारणाओं को जन्म देती हैं। इस भौतिक संसार का अर्थ हमारे स्वयं के द्वारा की गई व्याख्या से परे कुछ भी नहीं है।

जब व्याख्या अतीत के पूर्वाग्रहों पर आधारित होती है, तो हम विपल्लास या विकृतियों, संज्ञा-विपल्लास (धारणा की विकृति), चित्त-विपल्लास (स्वभाव की विकृति) और दिट्ठी-विपल्लास (अवधारणाओं की विकृति) के शिकार हो जाते हैं, जिसके कारण हम अनित्य (अनिच्च) को स्थायी, पीड़ादायक (दुक्ख) को सुखदायक और निराकार (अनत्ता) को साकार मान लेते हैं। परिणामस्वरूप, हम छह इंद्रियों (चक्खु , सोत , नाक , जीभ , स्पर्श और मन) के माध्यम से प्राप्त सभी संवेदी अनुभवों की गलत व्याख्या करते हैं। यह ज्ञात है कि इन इंद्रियों के माध्यम से हम जिन घटनाओं को जानते हैं, वे वास्तव में भौतिक जगत से मेल नहीं खातीं। इससे बौद्ध मत की पुष्टि होती है। हम अपनी इंद्रियों के बहकावे में आ जाते हैं। जिसे हम वांछनीय समझते हैं, सुख का स्रोत मानते हैं, उसकी खोज में हम वास्तव में एक परछाई का पीछा कर रहे होते हैं, एक मृगतृष्णा को पकड़ने का प्रयास कर रहे होते हैं। ये घटनाएँ अस्थिर, पीड़ादायक और निराकार होती हैं। हम स्वयं, जो इन भ्रमों का पीछा करते हैं, भी क्षणभंगुर हैं, दुख के अधीन हैं और उनमें कोई वास्तविक व्यक्तित्व नहीं है; एक परछाई जो दूसरी परछाई का पीछा कर रही है।

इसलिए बौद्ध ध्यान का उद्देश्य इस सत्य की बौद्धिक समझ से कहीं अधिक गहन समझ प्राप्त करना, भ्रम से मुक्ति पाना और इस प्रकार अज्ञान और प्यास दोनों का अंत करना है। यदि ध्यान से व्यक्ति के चरित्र और जीवन के प्रति उसके संपूर्ण दृष्टिकोण में कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन नहीं होता, तो स्पष्ट है कि या तो ध्यान पद्धति में कोई त्रुटि है या अभ्यास विधि में। केवल प्रकाश देखना, दर्शन प्राप्त करना या परमानंद का अनुभव करना पर्याप्त नहीं है। ये घटनाएँ इतनी सामान्य हैं कि बौद्ध ध्यान के उद्देश्य को सही मायने में समझने वाले व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पातीं।

बुद्ध के ध्यान साधना पर आधारित महान प्रवचन, महा-सतिपट्टाना सूत्र में , ध्यान का उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के साधन स्पष्ट रूप से बताए गए हैं। शरीर की गतियों और मन की निरंतर बदलती अवस्थाओं पर ध्यान देना आवश्यक है, ताकि उनके वास्तविक स्वरूप को जाना जा सके। इन भौतिक और मानसिक घटनाओं को स्वयं की झूठी अवधारणा से जोड़ने के बजाय, हमें उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए; एक ओर भौतिक शरीर की गतियों के रूप में, जो कारण-कार्य के भौतिक नियमों के अधीन हैं, और दूसरी ओर बाहरी उद्दीपनों के फलस्वरूप उत्पन्न होने और लुप्त होने वाली संवेदनाओं, भावनात्मक अवस्थाओं और अवधारणाओं की एक क्रमिक

श्रृंखला के रूप में। इन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से देखना चाहिए, मानो ये ऐसी प्रक्रियाएँ हों जो हमसे संबंधित न हों, बल्कि निराकार घटनाओं की एक श्रृंखला हों।

आत्मबोध (सक्कायादिट्ठी) के अलावा स्वार्थ और अहंकार की उत्पत्ति और क्या हो सकती है? यदि किसी भी प्रकार की ध्यान साधना में स्वार्थ या अहंकार का प्रभाव बना रहता है, तो वह सफल नहीं है। वृक्ष का मूल्यांकन उसके फलों से होता है और मनुष्य का उसके कर्मों से; इसके अलावा कोई अन्य मापदंड नहीं है। बौद्ध मनोविज्ञान में यह विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों से ही बनता है। सच्चे अर्थों में, केवल कर्म और विपाक की निरंतरता ही किसी स्थायी पहचान का दावा कर सकती है, न केवल जीवन के विभिन्न चरणों में, बल्कि जन्म और मृत्यु के इस संसार चक्र में विभिन्न जन्मों में भी । शरीर और मन के प्रति सजगता आत्मबोध के भ्रम को दूर करती है, और इतना ही नहीं, यह बाहरी वस्तुओं के प्रति लालसा और आसक्ति को भी समाप्त करती है, जिससे अंततः न तो लालसा करने वाला आत्म रहता है और न ही लालसा का कोई विषय। यह एक लंबी और कठिन साधना है, जिसे केवल एकांतवास में ही किया जा सकता है। इस अनुशासन का अस्थायी पाठ्यक्रम अच्छे परिणाम दे सकता है क्योंकि यह एक ऐसी मानसिकता विकसित करता है जिसे जीवन की सामान्य परिस्थितियों में कुछ हद तक लागू किया जा सकता है। अनासक्ति और वस्तुनिष्ठता स्पष्ट चिंतन के लिए अमूल्य सहायक हैं। ये व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति का बिना किसी पूर्वाग्रह, चाहे वह व्यक्तिगत हो या अन्य, के आकलन करने और उस परिस्थिति में साहस और विवेक के साथ कार्य करने में सक्षम बनाते हैं। इसका एक अन्य वरदान एकाग्रता है - किसी भी विषय पर मन को स्थिर रखने की क्षमता। यही किसी भी कार्य में सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है। मन को वश में करना कठिन है; यह हवा की तरह या बेकाबू घोड़े की तरह बेचैनी से इधर-उधर भटकता रहता है, लेकिन जब यह पूरी तरह से नियंत्रण में होता है, तो यह पूरे ब्रह्मांड का सबसे शक्तिशाली साधन बन जाता है।

सर्वप्रथम, वह भयमुक्त है। भय इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि हम मन और शरीर (नाम - रूप) को स्वयं से जोड़ते हैं, परिणामस्वरूप, इनमें से किसी को भी हानि पहुँचाना स्वयं को हानि पहुँचाना समझा जाता है। परन्तु जिसने इस भ्रम को तोड़कर यह जान लिया है कि पंच वृत्त की प्रक्रिया मात्र कारण और परिणाम की अभिव्यक्ति है, वह मृत्यु या दुर्भाग्य से नहीं डरता। वह सफलता और असफलता में एकसमान रहता है, प्रशंसा या निंदा से अप्रभावित। वह केवल बुरे कर्मों से भयभीत होता है, क्योंकि वह जानता है कि संसार में कोई भी वस्तु या व्यक्ति उसे स्वयं के सिवा हानि नहीं पहुँचा सकता, और जैसे-जैसे उसका वैराग्य बढ़ता है, वैसे-वैसे वह बुरे कर्मों से कम प्रभावित होता जाता है। बुरे कर्म बुरे मन से उत्पन्न होते हैं, और जैसे-जैसे मन शुद्ध होता है, विकारों से मुक्त होता है, नकारात्मक कर्मों का संचय समाप्त हो जाता है। वह बुरे कर्मों से घृणा करने लगता है और अलोभ , आदोष और अमोह से उत्पन्न कर्मों में अधिकाधिक आनंद लेने लगता है — उदारता, परोपकार और ज्ञान से।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 186,187

(धम्मपद 183, 184 और 185) <<<< पिछला || धम्मपद 186 और 187 || अगला >>>> (धम्मपद 188 से 192)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 186 और 187 - अनाभिरताभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 186 और 187 - अनाभिरताभिक्खु वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na kahapana vassena
titti kamesu vijjati
appassada dukha kama
iti vinnaya pandito.

आपि दिब्बेसु कामेसु
ratim so nadhigacchati
तनख्खयारतो होती
sammasambuddhasavako.

श्लोक 186 एवं 187 : सिक्कों की वर्षा से इंद्रिय सुख तृप्त नहीं होते; इंद्रिय सुख अल्प ही होते हैं और उनका परिणाम दुःख ही होता है। यह जानकर, बुद्ध के शिष्य ज्ञानी व्यक्ति को देवताओं के सुखों में भी आनंद नहीं मिलता, परन्तु वह भोग-विलास के निवारण (अर्थात निर्वाण) में प्रसन्न होता है।

एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (186) और (187) का उच्चारण एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया, जो भिक्षु के रूप में अपने जीवन से नाखुश था।

एक समय की बात है, जेतवन मठ में एक युवा भिक्षु रहता था। एक दिन उसके गुरु ने उसे अध्ययन के लिए दूसरे मठ में भेज दिया। जब वह दूर था, उसके पिता गंभीर रूप से बीमार हो गए और उसे देखे बिना ही उनका निधन हो गया। लेकिन उसके पिता ने उसके लिए उसके भाई, जो कि उसका मामा था, के पास सौ कहपना (सिक्के) छोड़ दिए। लौटने पर, उसके मामा ने उसे उसके पिता की मृत्यु और उसके लिए छोड़े गए सौ कहपना (सिक्कों) के बारे में बताया। पहले तो उसने कहा कि उसे पैसों की कोई ज़रूरत नहीं है। बाद में, उसने सोचा कि गृहस्थ जीवन में लौटना बेहतर होगा, और परिणामस्वरूप, वह भिक्षु जीवन से असंतुष्ट हो गया। धीरे-धीरे, उसकी जीवन में रुचि कम होने लगी और उसका वजन भी घटने लगा। जब अन्य भिक्षुओं को इस बारे में पता चला, तो वे उसे बुद्ध के पास ले गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या यह सच है कि वे भिक्षु जीवन से नाखुश हैं और क्या उनके पास गृहस्थ जीवन शुरू करने के लिए पर्याप्त धन है? उन्होंने उत्तर दिया कि यह सच है और उनके पास सौ कहपन (सिक्के) हैं जिनसे वे अपना जीवन शुरू कर सकते हैं। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उन्हें भोजन, वस्त्र, घरेलू बर्तन, दो बैल, हल, कुल्हाड़ी, चाकू आदि की आवश्यकता होगी, इसलिए उनके सौ कहपन से खर्चा पूरा करना मुश्किल होगा। बुद्ध ने उन्हें बताया कि मनुष्यों के लिए कभी भी पर्याप्त नहीं हो सकता, यहाँ तक कि उन सर्वशक्तिमान सम्राटों के लिए भी नहीं जो किसी भी क्षण सिक्कों, रत्नों या किसी भी मात्रा में धन और खजाने की वर्षा करवा सकते हैं। आगे, बुद्ध ने सर्वशक्तिमान सम्राट मंदातु की कहानी सुनाई, जिन्होंने चतुमहाराजिका और तावतिंसा दोनों लोकों में लंबे समय तक देवों (देवदूतों) की महिमा का आनंद लिया। तवातिमसा में लंबा समय बिताने के बाद, एक दिन मंदातु ने इच्छा जताई कि वह सक्का के साथ तावातिमसा को साझा करने के बजाय उसका एकमात्र शासक हो। लेकिन इस बार उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी और वह तुरंत बूढ़ा और दुर्बल हो गया; वह मानवलोक लौट आया और कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 186 एवं 187 : सिक्कों की वर्षा से इंद्रिय सुख तृप्त नहीं होते; इंद्रिय सुख अल्प ही होते हैं और उनका परिणाम दुःख ही होता है। यह जानकर, बुद्ध के शिष्य ज्ञानी व्यक्ति को देवताओं के सुखों में भी आनंद नहीं मिलता, परन्तु वह भोग-विलास के निवारण (अर्थात निर्वाण) में प्रसन्न होता है।

प्रवचन के अंत में युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक एक ऐसे युवा भिक्षु के संदर्भ में कहे थे जो भिक्षु के रूप में असंतुष्ट था।

कथा के अनुसार, संघ में प्रवेश लेने और पूर्ण दीक्षा लेने के बाद, उनके गुरु ने उन्हें यह कहकर विदा किया, "फलां स्थान पर जाकर विधि-विधान सीखो।" भिक्षु के वहां पहुंचते ही उनके पिता बीमार पड़ गए। पिता अपने पुत्र से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल थे, परन्तु उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उन्हें बुला सके। मृत्यु के निकट आकर वे पुत्र के प्रेम में बड़बड़ाने लगे। अपने सबसे छोटे पुत्र के हाथों में सौ सिक्के रखते हुए उन्होंने कहा, "यह धन लो और इससे मेरे पुत्र के लिए एक कुंड और वस्त्र खरीद लो।" ऐसा कहते ही उनका प्राण थम गया।

जब युवा भिक्षु घर लौटे, तो उनके सबसे छोटे भाई ने उनके चरणों में गिरकर ज़मीन पर लोटते हुए रोते हुए कहा, "आदरणीय, आपके पिता ने मरते समय आपकी प्रशंसा की थी और मेरे हाथ में सौ सोने के सिक्के रख दिए थे। मैं इनका क्या करूँ?" युवा भिक्षु ने धन लेने से इनकार कर दिया और कहा, "मुझे इस धन की कोई आवश्यकता नहीं है।" कुछ समय बाद, उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मुझे घर-घर जाकर भिक्षा माँगकर ही अपना जीवन यापन करना पड़े, तो जीने का क्या लाभ? ये सौ सिक्के मेरे जीवनयापन के लिए पर्याप्त हैं; मैं गृहस्थ जीवन में लौट जाऊँगा।"

असंतोष से व्याकुल होकर उसने पवित्र ग्रंथों का पाठ और ध्यान का अभ्यास छोड़ दिया, और उसका चेहरा पीलिया जैसा दिखने लगा। युवकों ने उससे पूछा, "क्या बात है?" उसने उत्तर दिया, "मैं असंतुष्ट हूँ।" इसलिए उन्होंने यह बात उसके गुरु और गुरु को बताई, और गुरु उसे बुद्ध के पास ले गए और उसे उसकी समस्या समझाई।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या यह बात सच है कि आप असंतुष्ट हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "जी हां, पूज्यवर।" बुद्ध ने फिर उनसे पूछा, "आपने ऐसा क्यों किया? क्या आपके पास जीविका का कोई साधन है?" "जी हां, पूज्यवर।" "आपकी संपत्ति कितनी है?" "पूज्यवर ...

तब बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षु, तुम्हारे पास जो सिक्के हैं वे बहुत कम हैं। इतने कम सिक्कों से तुम अपनी इच्छा कैसे पूरी कर सकते हो? अतीत में ऐसे लोग रहते थे जो सार्वभौमिक सम्राटों की तरह शासन करते थे, जो केवल भुजाओं को हिलाकर ही रत्नों की वर्षा करवा सकते थे, जिससे बारह मील तक की भूमि कमर तक रत्नों से ढक जाती थी; इन लोगों ने छत्तीस सक्कों की मृत्यु तक शासन किया; और इतने लंबे समय तक देवताओं पर प्रभुत्व रखने के बावजूद, वे अपनी इच्छा पूरी किए बिना ही मर गए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 186)

कहापना वस्सेन कामेसु तिति न विज्जति

पण्डितो काम अप्पसदा दुःख इति विन्याय

kahāpaṇa vassena : सोने के सिक्कों की वर्षा से भी; kāmesu : कामुकता की इच्छा; titti : तृप्ति; na vijjati : दिखाई नहीं देता; paṇḍito [paṇḍita]: एक बुद्धिमान व्यक्ति; kāmā : कामुक सुख; appassādā : (असंतुष्ट मानता है); dukhā : (और) कष्टदायक; iti : इस तरह; viññāya : समझकर

इंद्रिय सुख कभी तृप्त नहीं होते। सोने की वर्षा से भी ये तृप्त नहीं होते। बुद्धिमान जानते हैं कि इंद्रिय सुख से संतुष्टि कम और पीड़ा अधिक मिलती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 187)

सो दिब्बेसु कामेसु अपि रतिम नाधिगच्छति

सम्मासंबुद्धसावको तनहक्खयारतो होति

इसलिए वह; दिब्बेसु : (स्वर्गीय) सुखों में भी; कामेसु अपि : भोग- विलास में भी ; नाधिगच्छति : पास नहीं आएगा; सम्मासंबुद्धसावको [सम्मासंबुद्धसावका]: प्रबुद्ध व्यक्ति का वह शिष्य; तनखख्यरतो [तनखख्यरता]: जिसका मन केवल इच्छाओं के अंत पर स्थिर है; होति : वह है

बुद्ध का शिष्य दिव्य सुखों के पीछे भी नहीं भागता। बुद्ध के शिष्य का मन केवल अपनी इच्छाओं को समाप्त करने की प्रक्रिया पर ही केंद्रित रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 186-187)

सम्मा सम्बुद्ध सावका : बुद्ध के शिष्य। बुद्ध के भिक्षु शिष्यों की लंबी परंपरा बुद्ध के प्रथम उपदेश - धम्मचक्क पवत्तना सूत्र - के प्रकाशन से शुरू हुई । यह उपदेश पाँच तपस्वियों को संबोधित था। अंततः उन पाँचों ने अर्हतत्व प्राप्त किया - जो आध्यात्मिक प्राप्ति का सर्वोच्च स्तर है। इस प्रकार अर्हतत्व प्राप्त करने वाले और बुद्ध के प्रथम शिष्य बनने वाले पाँच विद्वान भिक्षु ब्राह्मण कोण्डञ्ञ, भद्दिया, वप्पा, महानामा और अस्सजी थे।

कोण्डाञ्ञ उन आठ ब्राह्मणों में सबसे छोटे और सबसे बुद्धिमान थे जिन्हें राजा सुद्धोदन ने शिशु राजकुमार का नामकरण करने के लिए बुलाया था। अन्य चार ब्राह्मण उन बड़े ब्राह्मणों के पुत्र थे। ये सभी पाँचों बोधिसत्व के बुद्धत्व प्राप्ति के प्रयास में उनकी प्रतीक्षा में वनवास में चले गए। जब उन्होंने व्यर्थ की तपस्या और कठोर साधनाओं को त्यागकर अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए संयमित आहार लेना शुरू किया, तो उनके इस बदले हुए तरीके से निराश होकर उनके इन प्रिय अनुयायियों ने उन्हें त्याग दिया और इसिपताना चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया। पूज्य कोण्डाञ्ञ प्रथम अरहत और संघ के सबसे वरिष्ठ सदस्य बने। पाँचों में से एक अस्सजी ने ही बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्त को परिवर्तित किया था। तब से संघ के सदस्यों की संख्या बढ़ती गई।

वाराणसी में यासा नाम का एक करोड़पति का पुत्र रहता था, जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था। एक सुबह वह जल्दी उठा और अपनी दासियों और संगीतकारों को घृणित मुद्रा में सोते हुए देखकर उसे घोर घृणा हुई। यह दृश्य इतना घृणित था कि महल किसी श्मशान की तरह उदास दिखाई दे रहा था। सांसारिक जीवन की व्यर्थता को भांपकर वह चुपके से घर से निकल गया और बोला, "मैं व्यथित हूँ, मैं पीड़ित हूँ", और इसिपताना की ओर चल पड़ा, जहाँ पाँच भिक्षुओं के अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद बुद्ध अस्थायी रूप से

निवास कर रहे थे। उस समय बुद्ध हमेशा की तरह एक खुले मैदान में टहल रहे थे। दूर से उसे आते देख बुद्ध अपने चहलकदमी से बाहर आए और एक तैयार आसन पर बैठ गए। उनसे कुछ ही दूरी पर यासा खड़ा था और रोते हुए बोला, “हे व्यथित हूँ! मैं पीड़ित हूँ!” तब बुद्ध ने कहा, “हे यस! यहाँ कोई कष्ट नहीं है! यहाँ कोई अत्याचार नहीं है! हे यस! इधर आओ! बैठो। मैं तुम्हें धर्म का उपदेश दूंगा।” दुखी यस बुद्ध के प्रोत्साहन भरे शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने अपनी स्वर्ण की पांव उतारकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश दिया और उसने संतत्व की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) प्राप्त की। सबसे पहले बुद्ध ने उसे दान, नैतिकता, दिव्य अवस्था, कामदीन के दुष्परिणाम और त्याग के आशीर्वाद के बारे में बताया । जब उन्होंने पाया कि उसका मन ग्रहणशील है और गहन शिक्षा को ग्रहण करने के लिए तैयार है, तो उन्होंने उसे चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया।
यासा की माता ने सबसे पहले अपने पुत्र के लापता होने का पता लगाया और इसकी सूचना अपने पति को दी। पति ने तुरंत चारों दिशाओं में घुड़सवार भेजे और स्वयं सोने की चप्पलों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए इसिपताना की ओर चल पड़ा। बुद्ध ने उसे दूर से आते हुए देखा और अपनी मानसिक शक्तियों से यह निश्चय किया कि वह अपने पुत्र को न देख पाए। जब वह बुद्ध के पास पहुँचा और आदरपूर्वक पूछा कि क्या उन्होंने उसके पुत्र यासा को देखा है, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, “अच्छा, तो कृपया यहाँ बैठ जाइए। आप अपने पुत्र को देख पाएँगे।” इस शुभ समाचार से प्रसन्न होकर वह बैठ गया। बुद्ध ने उसे प्रवचन दिया और वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने कहा, “हे प्रभु, यह उत्तम है! यह ऐसा है मानो कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, या अंधकार में दीपक जला दे, ताकि देखने वाले देख सकें!” इसी प्रकार बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत की व्याख्या की है। “मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेता हूँ। बुद्ध मुझे आज से जीवन के अंत तक अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें!” वे तीन सूत्र का प्रयोग करते हुए शरण लेने वाले पहले गृहस्थ अनुयायी थे। अपने पिता को दिए गए प्रवचन को सुनकर यासा ने अर्हतत्व प्राप्त किया। इसके बाद बुद्ध ने अपनी इच्छाशक्ति वापस ले ली ताकि यासा के पिता अपने पुत्र को देख सकें। उन्होंने अपने पुत्र को देखा और अगले दिन बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने मौन रहकर निमंत्रण स्वीकार किया। करोड़पति यासा के जाने के बाद उन्होंने बुद्ध से लघु और उच्च दीक्षा प्रदान करने की विनती की। “आओ, हे भिक्षुओं! धर्म अच्छी तरह से सिखाया गया है। दुखों का पूर्ण अंत करने के लिए धार्मिक जीवन व्यतीत करो।” इन शब्दों के साथ बुद्ध ने उन्हें उच्च दीक्षा प्रदान की। पूज्य यासा के साथ अर्हतों की संख्या बढ़कर छह हो गई।
निमंत्रण पर, बुद्ध अपने छह शिष्यों के साथ करोड़पति के घर गए। पूज्य यासा की माता और उनकी पूर्व पत्नी ने बुद्ध द्वारा प्रतिपादित उपदेश सुने और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त करके उनकी पहली दो महिला अनुयायी बनीं। पूज्य यासा के चार विशिष्ट मित्र थे, जिनके नाम विमला, सुभहु, पुन्णजी और गवम्पति थे। जब उन्होंने सुना कि उनके परम मित्र ने अपने बाल मुंडवा लिए हैं और पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तो वे पूज्य यासा के पास आईं और उनका अनुसरण करने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य यासा ने उनका परिचय बुद्ध से कराया और धम्म सुनकर वे भी अर्हतत्व प्राप्त कर गईं।
पूज्य यासा के पचास और योग्य मित्र, जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख परिवारों से थे, बुद्ध से शिक्षा प्राप्त करके अर्हत पद प्राप्त कर संघ में शामिल हो गए। उनके ज्ञानोदय के लगभग दो महीने ही बीते थे कि अर्हतों की संख्या धीरे-धीरे बढ़कर साठ हो गई। वे सभी प्रतिष्ठित परिवारों से थे और योग्य पिताओं के योग्य पुत्र थे। बुद्ध, जो बहुत पहले ही साठ शिष्यों को ज्ञान प्रदान करने में सफल हो चुके थे, ने उन्हें सत्य के दूतों के रूप में भेजने का निश्चय किया ताकि वे बिना किसी भेदभाव के सभी को अपना नया धर्म सिखा सकें। उन्हें विभिन्न दिशाओं में भेजने से पहले उन्होंने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया:
“हे भिक्षुओं, मैं सभी बंधनों से मुक्त हूँ, चाहे वे दैवीय हों या मानवीय।”
“हे भिक्षुओं, आप भी सभी बंधनों से मुक्त हैं, चाहे वे दैवीय हों या मानवीय।”
हे भिक्षुओं, अनेकों के कल्याण के लिए, अनेकों की खुशी के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए आगे बढ़ो। एक मार्ग से दो लोग न जाएं।
हे भिक्षुओं, धम्म का प्रचार करो, जो आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम है, भावना और अक्षर दोनों में। पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन का प्रचार करो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 188 से 192

(धम्मपद 186 और 187) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 188 से 192 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 193)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 188 से 192 - अग्गीदत्तब्राह्मण वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 188 से 192 - अग्गिदत्तब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Bahum ve saranam yanti
pabbatani vanani ca
aramarukkhacetyani
manussa bhayatajjita.
Netam kho saranam khemam
netam saranamuttamam
netam saranamagamma
sabbadukkha pamuccati.
Yo ca buddhanca dhammanca
samghanca saranam gato
cattari ariyasaccani
सम्मप्पन्नया पस्साति.
दुक्खम दुक्खसमुप्पदम
dukkhassa ca atikkamam
ariyam catthangikam maggam
दुःखुपासमगमिनम।
Etam kho saranam khemam
एतम सरनमुत्तमम
etam saranamagamma
sabbadukkha pamuccati.

———————————————————————

श्लोक 188 : जब खतरे का सामना करना पड़ता है, तो लोग अनेक शरणस्थलों की ओर जाते हैं, - पहाड़ों और जंगलों में, उद्यानों और उद्यानों में, और पवित्र वृक्षों की ओर।

———————————————————————

श्लोक 189 : परन्तु ऐसा शरणस्थान सुरक्षित शरणस्थान नहीं है, न ही सर्वोत्तम शरणस्थान है। ऐसे शरणस्थान में आने से व्यक्ति जीवन के सभी बुरे परिणामों (दुःख) से मुक्त नहीं हो जाता।

———————————————————————

श्लोक 190 और 191 : जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, वह मार्ग अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को देखता है, अर्थात् दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण और आठ घटकों का आर्य मार्ग जो दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाता है।

———————————————————————

श्लोक 192 : यही वास्तव में सुरक्षित शरण है; यही सर्वोत्तम शरण है। इस शरण में आने से व्यक्ति सभी दुःखों (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

अग्गिदत्ता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (188) से (192) तक कहे।
अग्गिदत्त राजा महाकोसला के शासनकाल में प्रमुख पुजारी थे, जो राजा पसेनदी के पिता थे। राजा महाकोसला की मृत्यु के बाद, अग्गिदत्त ने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी और फिर अपना घर छोड़कर गैर-बौद्ध तपस्वी बन गए। वे अपने दस हजार अनुयायियों के

साथ अंग, मगध और कुरु राज्यों की सीमा के पास एक स्थान पर रहने लगे, जो एक शक्तिशाली नाग के निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर स्थित था। अग्गिदत्त अपने अनुयायियों और इन तीनों राज्यों के लोगों को उपदेश देते थे: "जंगलों, पहाड़ों, उद्यानों, बगीचों और वृक्षों को प्रणाम करो; ऐसा करने से तुम जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाओगे।"
एक दिन बुद्ध ने अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों को दर्शन दिए और महसूस किया कि उनके लिए अरहतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना को अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों के पास भेजा और उनसे कहा कि वे स्वयं बाद में उनके पास आएंगे। थेरा महा मोग्गलाना अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों के स्थान पर गए और उनसे एक रात के लिए आश्रय मांगा। उन्होंने पहले तो उनका अनुरोध ठुकरा दिया, लेकिन अंततः वे उन्हें नाग के निवास स्थान, रेत के टीले पर रुकने देने के लिए सहमत हो गए। नाग थेरा महा मोग्गलाना का घोर विरोधी था, और नाग और थेरा के बीच द्वंद्व युद्ध हुआ; दोनों पक्षों ने धुआं और ज्वालाएं निकालकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। हालांकि, अंत में नाग पराजित हुआ। उसने स्वयं को रेत के टीले के चारों ओर लपेट लिया और अपना सिर उठाकर थेरा महा मोग्गलाना के ऊपर छाते की तरह फैला दिया, इस प्रकार उनके प्रति सम्मान दिखाया। सुबह तड़के, अग्गिदत्ता और अन्य तपस्वी यह पता लगाने के लिए रेत के टीले पर आए कि थेरा महा मोग्गलाना जीवित हैं या नहीं; उन्हें उम्मीद थी कि वे मर चुके होंगे। जब उन्होंने नाग को वश में पाया, और वह विनम्रतापूर्वक अपना सिर थेरा महा मोग्गलाना के ऊपर छाते की तरह रखे हुए था, तो वे अत्यंत आश्चर्यचकित रह गए।
तभी बुद्ध वहाँ पहुँचे और थेरा महा मोग्गलाना टीले पर अपने आसन से उठकर बुद्ध को प्रणाम किया। तब थेरा महा मोग्गलाना ने तपस्वियों के समूह से कहा, "ये मेरे गुरु, परम बुद्ध हैं, और मैं इस महान गुरु का एक विनम्र शिष्य मात्र हूँ!" उनकी बात सुनकर, थेरा महा मोग्गलाना की शक्ति से भी अत्यंत प्रभावित तपस्वी बुद्ध की अपार शक्ति के सामने विस्मित हो गए। तब बुद्ध ने अग्गिदत्त से पूछा कि वह अपने अनुयायियों और आस-पास के निवासियों को क्या शिक्षा देते हैं। अग्गिदत्त ने उत्तर दिया कि उन्होंने उन्हें पर्वतों, वनों, उद्यानों, उद्यानों और वृक्षों को प्रणाम करना सिखाया है, और ऐसा करने से वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाएँगे। अग्गिदत्त को बुद्ध ने उत्तर दिया, “अग्गिदत्त, जब लोग खतरे में पड़ते हैं तो वे पहाड़ों, जंगलों, उद्यानों, उद्यानों और पेड़ों की शरण लेते हैं, परन्तु ये चीजें उन्हें कोई सुरक्षा नहीं दे सकतीं। केवल वे ही जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेते हैं, पुनर्जन्म के चक्र (संसार) से मुक्त होते हैं।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 188 : जब खतरे का सामना करना पड़ता है, तो लोग अनेक शरणस्थलों की ओर जाते हैं, - पहाड़ों और जंगलों में, उद्यानों और उद्यानों में, और पवित्र वृक्षों की ओर।

श्लोक 189 : परन्तु ऐसा शरणस्थान सुरक्षित शरणस्थान नहीं है, न ही सर्वोत्तम शरणस्थान है। ऐसे शरणस्थान में आने से व्यक्ति जीवन के सभी बुरे परिणामों (दुःख) से मुक्त नहीं हो जाता।

श्लोक 190 और 191 : जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, वह मार्ग अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को देखता है, अर्थात् दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण और आठ घटकों का आर्य मार्ग जो दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाता है।

श्लोक 192 : यही वास्तव में सुरक्षित शरण है; यही सर्वोत्तम शरण है। इस शरण में आने से व्यक्ति सभी दुःखों (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

प्रवचन के अंत में अग्गिदत्त और उनके सभी अनुयायी अर्हतत्व प्राप्त कर चुके थे। वे सभी भिक्षु संघ में प्रवेश कर गए। उस दिन जब अंग, मगध और कुरु से अग्गिदत्त के शिष्य उन्हें प्रणाम करने आए, तो उन्होंने अपने गुरु और उनके अनुयायियों को भिक्षुओं के वेश में देखा और वे व्याकुल होकर सोचने लगे, "अधिक शक्तिशाली कौन है? हमारे गुरु या समना गौतम? हमारे गुरु तो अधिक शक्तिशाली होंगे क्योंकि समना गौतम हमारे गुरु के पास आए हैं।" बुद्ध उनकी सोच को समझ गए थे; अग्गिदत्त ने भी महसूस किया कि उन्हें उनके संदेह को दूर करना चाहिए। इसलिए, उन्होंने अपने शिष्यों की उपस्थिति में बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! आप मेरे गुरु हैं, मैं तो आपका शिष्य मात्र हूँ।" इस प्रकार, सभी उपस्थित लोगों को बुद्ध की सर्वोच्चता का ज्ञान प्राप्त हुआ।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिदत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि अग्गिदत्त महा कोसल के गृह-पुजारी थे। महा कोसल की मृत्यु के बाद, उनके पुत्र राजा पसेनादि कोसल ने अग्गिदत्त के प्रति सम्मानपूर्वक, क्योंकि वे उनके पिता के गृह-पुजारी रह चुके थे, उन्हें उसी पद पर पुनः नियुक्त कर दिया। जब भी अग्गिदत्त राजा से मिलने आते, राजा उनसे मिलने आगे आते और उन्हें अपने समान सम्मान के साथ आसन प्रदान करते तथा कहते, "गुरुजी, कृपया यहाँ बैठिए।" कुछ समय बाद, अग्गिदत्त ने मन ही मन सोचा, "यह राजा मुझे बहुत आदर देते हैं, परन्तु राजा की कृपा हमेशा के लिए बनी रहना असंभव है। राजा के गृहस्थी में जीवन राजा के समान आयु के व्यक्ति के लिए बहुत सुखद होता है। परन्तु मैं तो वृद्ध हो चुका हूँ, इसलिए मेरे लिए भिक्षु बनना ही सर्वोत्तम है।" तदनुसार, अग्गिदत्ता ने राजा से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी, पूरे शहर में ढोल बजवाया, एक सप्ताह के भीतर अपनी सारी संपत्ति दान में दे दी और संसार त्याग कर एक विधर्मी संप्रदाय का भिक्षु बन गया। अनेक पुरुषों ने भी उसका अनुसरण करते हुए भिक्षु बनने का मार्ग अपनाया।

अग्गिदत्त अपने भिक्षुओं के साथ अंग और मगध तथा कुरु देश की सीमा पर रहने लगे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने भिक्षुओं से कहा, "हे मित्रों, यदि तुममें से किसी के मन में कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आएं, तो तुममें से प्रत्येक नदी से रेत भरकर एक घड़ा इस स्थान पर उंडेल दो।" भिक्षुओं ने कहा, "ठीक है," और ऐसा करने का वचन दिया। अतः, जब भी उनके मन में कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आते, वे अग्गिदत्त के आदेशानुसार कार्य करते। समय बीतने के साथ-साथ रेत का एक विशाल ढेर बन गया और नागों के राजा अहिच्छत्त ने उस पर अधिकार कर लिया। अंग और मगध तथा कुरु राज्य के निवासी हर माह उन भिक्षुओं के सम्मान में बहुमूल्य भेंट लाते थे। अब अग्गिदत्ता ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया, "जिस प्रकार तुम पर्वत की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम वन की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम उपवन की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम वृक्ष की शरण लेते हो, उसी प्रकार तुम समस्त कष्टों से मुक्त हो जाओगे।" इस उपदेश के साथ अग्गिदत्ता ने अपने शिष्यों को यह समझाया।

इस समय भावी बुद्ध, महान संन्यास पर जाने और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद, सावत्थी के निकट जेतवन मठ में निवास करने लगे। भोर में संसार का अवलोकन करते हुए उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अग्गिदत्त अपने शिष्यों के साथ उनके ज्ञान के जाल में प्रवेश कर चुके हैं। अतः उन्होंने मन ही मन विचार किया, "क्या इन सभी प्राणियों में अर्हतत्व के लिए आवश्यक गुण हैं?" यह जानकर कि उनमें आवश्यक गुण हैं, उन्होंने संध्या पर पूज्य मोग्गलाना से कहा, "मोग्गलाना, क्या आप देखते हैं कि ब्राह्मण अग्गिदत्त भीड़ को उचित मार्ग के अलावा किसी अन्य मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं? जाइए और उन्हें समझाइए।" मोग्गलाना ने कहा, "पूज्यवर, ये भिक्षु बहुत संख्या में हैं, और यदि मैं अकेला जाऊँगा, तो मुझे भय है कि वे अड़ियल साबित होंगे; परन्तु यदि आप भी जाएँगे, तो वे वश में हो जाएँगे।" मोग्गलाना ने कहा, "मोग्गलाना, मैं भी जाऊँगा, लेकिन आप आगे जाइए।"

जब पूज्य भिक्षु आगे बढ़े, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "ये भिक्षु शक्तिशाली और संख्या में बहुत हैं। अगर मैं इनके एकत्रित होने पर एक शब्द भी कहूँ, तो ये सब मिलकर मेरे विरुद्ध विद्रोह कर देंगे।" इसलिए उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से भारी वर्षा करवाई। जब वर्षा की वे बूँदें गिरीं, तो भिक्षु एक-एक करके उठे और प्रत्येक अपने-अपने पत्तों और घास के कुँवारी में चले गए। पूज्य भिक्षु अग्गिदत्त की पत्तों से बनी कुँवारी के द्वार पर जाकर खड़े हो गए और पुकारा, "अग्गिदत्त!" जब अग्गिदत्त ने पूज्य भिक्षु की आवाज सुनी, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मुझे नाम से पुकार सके; कौन है जो मुझे इस प्रकार नाम से पुकार रहा है?" और अहंकार में आकर उन्होंने उत्तर दिया, "वह कौन है?" "मैं हूँ, ब्राह्मण।" "तुम्हें क्या कहना है?" "मुझे यहाँ कोई ऐसी जगह बता दो जहाँ मैं आज रात ठहर सकूँ।" "यहाँ आपके रहने की कोई जगह नहीं है; यहाँ तो बस एक ही भिक्षु के लिए पत्तों और घास की झोपड़ी है।" "अग्गिदत्त, मनुष्य मनुष्यों के घर जाते हैं, पशु पशुओं के घर जाते हैं और भिक्षु भिक्षुओं के घर जाते हैं; ऐसा मत करो; मुझे रहने की जगह दो।" "क्या तुम भिक्षु हो?" "हाँ, मैं भिक्षु हूँ।" "यदि तुम भिक्षु हो, तो तुम्हारा भिक्षापात्र कहाँ है? तुम्हारे पास कौन-कौन से भिक्षु-सामान हैं?" "मेरे पास बर्तन तो हैं, लेकिन उन्हें इधर-उधर ले जाना असुविधाजनक है, इसलिए मैं उन्हें यहीं से लाता हूँ और फिर चला जाता हूँ।" "तो तुम उन्हें यहीं से लाकर चला जाओगे!" अग्गिदत्त ने पूज्यवर से क्रोधित होकर कहा। पूज्यवर ने उससे कहा, "चले जाओ, अग्गिदत्त, क्रोधित मत हो; मुझे कोई ऐसी जगह दिखाओ जहाँ मैं रात बिता सकूँ।" "यहाँ रहने की कोई जगह नहीं है।" "अच्छा, उस रेत के ढेर पर कौन रहता है?" "एक नाग-राजा।" "मुझे रेत का ढेर दे दो।" "मैं तुम्हें रेत का ढेर नहीं दे सकता; यह उसका घोर अपमान होगा।" "कोई बात नहीं, मुझे दे दो।" "ठीक है; लगता है सिर्फ तुम्हें ही पता है।"

पूज्य साधु रेत के ढेर की ओर चल पड़े। नागराज ने उन्हें आते देख मन ही मन सोचा, "वह साधु इधर आ रहा है। निःसंदेह वह नहीं जानता कि मैं यहाँ हूँ। मैं उस पर अग्नि उगलकर उसे मार डालूँगा।" पूज्य साधु ने मन ही मन सोचा, "यह नागराज अवश्य ही सोच रहा होगा, 'केवल मैं ही धुआँ उगल सकता हूँ; अन्य ऐसा नहीं कर सकते।'" अतः पूज्य साधु ने स्वयं अग्नि उगल दी। दोनों के शरीरों से धुएँ के गुबार उठे और ब्रह्मालोक की ओर चले गए। धुएँ के गुबार से पूज्य साधु को कोई कष्ट नहीं हुआ, परन्तु नागराज को अत्यंत कष्ट हुआ। नागराज धुएँ के प्रकोप को सहन न कर सका और अग्नि में प्रज्वलित हो गया। पूज्य साधु ने अग्नि तत्व का ध्यान किया और समाधि अवस्था में प्रवेश कर गए। इसके बाद वे अग्नि में प्रज्वलित हो गए और अग्नि में प्रज्वलित होकर ब्रह्मालोक की ओर चले गए। उनका पूरा शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मशालों से जला दिया गया हो। ऋषियों का समूह यह सब देख रहा था और मन ही मन सोच

रहा था, “नाग-राज भिक्षु को जला रहा है; हमारे वचन न मानने के कारण इस भले भिक्षु ने अपना प्राण खो दिया।” जब पूज्य भिक्षु ने नाग-राज को वश में कर लिया और उसे उसके कुकर्म से विमुख कर दिया, तो वह रेत के ढेर पर बैठ गया। तब नाग-राज ने रेत के ढेर को खाने-पीने की वस्तुओं से घेर लिया और एक गुंबद के भीतरी भाग के बराबर विशाल फन बनाकर पूज्य भिक्षु के सिर पर रख दिया। सुबह तड़के ऋषियों के समूह ने मन ही मन सोचा, “हम पता लगाएंगे कि भिक्षु जीवित हैं या मृत।” अतः वे पूज्य भिक्षु के पास गए और जब उन्हें रेत के ढेर पर बैठे देखा, तो उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, “भिक्षु, नागराज ने आपको बहुत सताया होगा।” “क्या आप उसे मेरे सिर पर फन उठाए वहाँ खड़े नहीं देख रहे?” तब ऋषियों ने कहा, “भिक्षु ने इतने शक्तिशाली नागराज को परास्त करके कितना अद्‌भुत कार्य किया!” और वे पूज्य भिक्षु के चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो गए।

उसी क्षण बुद्ध पास आ गए। पूज्यवर ने बुद्ध को देखकर उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। ऋषियों ने पूज्यवर से कहा, “क्या यह व्यक्ति आपसे श्रेष्ठ है?” पूज्यवर ने उत्तर दिया, “यह बुद्ध हैं; मैं तो केवल उनका शिष्य हूँ।” बुद्ध रेत के ढेर के शिखर पर बैठ गए। ऋषियों का समूह आपस में कहने लगा, “यदि एक साधारण शिष्य में इतनी अलौकिक शक्ति है, तो इस व्यक्ति की अलौकिक शक्ति कैसी होगी?” और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उन्होंने बुद्ध की स्तुति की। बुद्ध ने अग्गिदत्त से कहा, “अग्गिदत्त, अपने शिष्यों और समर्थकों को उपदेश देते समय तुम उन्हें किस प्रकार उपदेश देते हो?” अग्गिदत्त ने उत्तर दिया, “मैं उन्हें इस प्रकार उपदेश देता हूँ, ‘इस पर्वत की शरण लो, इस वन, उपवन या वृक्ष की शरण लो। क्योंकि जो इनकी शरण लेता है, उसे समस्त दुखों से मुक्ति मिलती है।’” बुद्ध ने कहा, “नहीं, अग्गिदत्त, जो इनकी शरण लेता है, उसे दुखों से मुक्ति नहीं मिलती। परन्तु जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, उसे दुखों के चक्र से मुक्ति मिलती है।”

प्रवचन के समापन पर उन सभी ऋषियों ने अरहतत्व और अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति की। इसके बाद उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और संघ में प्रवेश का अनुरोध किया। बुद्ध ने अपने वस्त्र के नीचे से हाथ बढ़ाकर कहा, “आओ, भिक्षुओं! धार्मिक जीवन व्यतीत करो।” उसी क्षण उन्हें आठ आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हुईं और वे मानो सौ वर्ष के भिक्षु बन गए।

यह वह दिन था जब अंग, मगध और कुरु देश के सभी निवासी समृद्ध भेंट लेकर आते थे। जब वे अपनी भेंट लेकर आए और देखा कि सभी ऋषि भिक्षु बन गए हैं, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “क्या हमारे ब्राह्मण अग्गिदत्त महान हैं या भिक्षु गौतम?” और क्योंकि बुद्ध अभी-अभी आए थे, उन्होंने निष्कर्ष निकाला, “केवल अग्गिदत्त ही महान हैं।” बुद्ध ने उनके विचारों को समझा और कहा, “अग्गिदत्त, अपने शिष्यों के मन में जो संदेह है उसे दूर करो।” अग्गिदत्त ने उत्तर दिया, “यही तो मैं करना चाहता हूँ।” अतः उन्होंने अलौकिक शक्ति से सात बार वायु में उत्थान किया और पृथ्वी पर उतरकर बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, “आदरणीय, आप मेरे गुरु हैं और मैं आपका शिष्य हूँ।” इस प्रकार अग्गिदत्त ने स्वयं को बुद्ध का शिष्य घोषित किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 188)

भयतज्जिता मानुषा पब्बतानि वनानि अरामा
रुक्ख सीतानि च वे बहुं शरणं यंति

भयतज्जिता : भय से कांपते हुए; मनुस्सा : मनुष्य; पब्बतानि : चट्टानें; वनानी : वन; आराम : उद्यान; रुक्खा : वृक्ष; चेत्यानि च : और मंदिर; वे : निश्चित रूप से; बहुं शरणं [सरण]: अनेक शरणस्थल; यंति : जाना

भय से कांपते हुए मनुष्य पहाड़ों, जंगलों, पार्कों, पेड़ों और तीर्थस्थलों में शरण लेते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 189)

एतं शरणं खो न खेमं एतं शरणं न उत्तमं
एतं शरणं अगम्मा , सबदुक्खा न पमुक्कति

इस प्रकार की शरण निःसंदेह सुरक्षित नहीं है; इस प्रकार की शरण सर्वोच्च नहीं है; उस शरण में आने से सभी कष्टों से मुक्ति नहीं मिलती ।

ये सुरक्षित शरणस्थल नहीं हैं। ये सर्वोच्च शरणस्थल नहीं हैं। इनमें शरण लेने वाला व्यक्ति सभी कष्टों से मुक्त नहीं हो जाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 190)

यो च बुद्धाञ्च धम्मञ्च संघाञ्च शरणं
गतो कत्तारि अरियासच्चनि सम्मप्पन्नया पस्सति

यो सीए : यदि कोई; बुद्धान्का : बुद्ध में; धम्मञ्च : धम्म में; संघांक : और संघ (आदेश) में; शरणं गतो ;शरण लेता है; कट्टारी अरियासाक्कनी : चार असाधारण वास्तविकताएं; सम्मा : अच्छा; पनन्या : भेदक अंतर्दृष्टि के साथ; पासती : (वह) देखेगा

यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ले, तो वह उच्च बुद्धि के साथ चार आर्य सत्यों का पालन करेगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 191)

दुक्खं दुक्खसमुप्पदं दुक्खस्सा अतिक्कमं च
दुक्खुपासमगामिनं अरियं अष्टांगिकं मग्गं च

दुक्खां [दुक्खा]: कष्ट; दुक्खसमुप्पदां [दुक्खसमुप्पदा]: दुख से उत्पन्न; दुक्खस्सा अतिक्कमं [अतिक्कमा]: दुख का अंत; च दुक्खुपाससमागमिनाम् [दुक्खुपाससमागमिना]: और दुख के अंत का मार्ग; अरियं अष्टांगिकां मग्गं [मग्गा]: (अर्थात) अष्टांगिक मार्ग चार असाधारण वास्तविकताएं हैं: दुख; दुख का उत्पन्न होना; दुख का अंत; और दुख के अंत की ओर ले जाने वाला अष्टमार्ग।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 192)

एतं शरणं खो खेमं एतं शरणं उत्तमं

एतं शरणं अगम्मा , सबदुक्खा पमुक्कति

etaṃ saraṇaṃ kho : निःसंदेह यह शरणस्थल है; khemaṃ [khema]: सुरक्षित; etaṃ saraṇaṃ [saraṇa]: यह शरणस्थल है; uttamaṃ [uttama]: सर्वोच्च; etaṃ saraṇaṃ āgamma : जब आप इस शरणस्थल में पहुँचते हैं; sabbadukkhā : समस्त कष्टों से; pamuccati : (आप) मुक्त हो जाते हैं

त्रिविध शरण में शरण लेना निःसंदेह पूर्णतः सुरक्षित है। यही सर्वोच्च शरण है। इस शरण में आने से समस्त कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 188-192)

N ' etaṃ kho saraṇaṃ khemaṃ : मनुष्य का सर्वोत्तम आश्रय स्वयं ही है। एक बौद्ध जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए बुद्ध, धम्म और संघ में शरण लेता है, जो गुरु, शिक्षा और शिष्य तीनों हैं। बुद्ध सर्वोच्च गुरु हैं जो मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। धम्म अद्वितीय मार्ग है। संघ उन शिष्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने मार्ग का अनुसरण किया है और सजीव उदाहरण बन गए हैं। इस त्रिरत्न (तिसारण) में बुद्धिमानी से शरण लेने से व्यक्ति औपचारिक रूप से बौद्ध बनता है। एक बौद्ध इस आशा से बुद्ध की शरण नहीं लेता कि वह स्वयं किसी मुक्तिदायक कार्य से उद्धार पाएगा। बुद्ध में बौद्ध का विश्वास वैसा ही है जैसा किसी बीमार व्यक्ति का किसी प्रसिद्ध चिकित्सक में या किसी छात्र का अपने गुरु में होता है।

यो च बुधंच धम्मंच संघंच शरणं गतो : वे जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेते हैं। यद्यपि संघ की शुरुआत केवल साठ शिष्यों से हुई थी, लेकिन यह हजारों तक फैल गया, और उन शुरुआती दिनों में एक अनुयायी तीन शरणों के रूप में जाने जाने वाले तीन गुना सूत्र का उच्चारण करके इसमें प्रवेश चाहता था:

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि
दुतियामपि बुद्धं शरणं गच्छामि
दुतियामपि धम्मं शरणं गच्छामि
दुतीयमपि संघं शरणं गच्छामि
तत्यामपि बुद्धं शरणं गच्छामि
तत्यामपि धम्मं शरणं गच्छामि
तत्यामपि संघं शरणं गच्छामि
मैं बुद्ध (गुरु) की शरण में जाता हूँ।
मैं धम्म (शिक्षा) की शरण लेता हूँ।
मैं संघ (विद्वानों) की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार बुद्ध की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार धम्म की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार संघ की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार बुद्ध की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार धम्म की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार संघ की शरण में जा रहा हूँ।

यहां बुद्ध ने जीवन के दैनिक कष्टों से मुक्ति और शुद्धि के लिए व्यक्तिगत प्रयास के महत्व पर विशेष बल दिया है। दूसरों से प्रार्थना करने या दूसरों पर निर्भर रहने में कोई लाभ नहीं है। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि बौद्धों को बुद्ध, धम्म और संघ की शरण क्यों लेनी चाहिए, जबकि बुद्ध ने अपने अनुयायियों को स्पष्ट रूप से दूसरों की शरण न लेने की सलाह दी थी। त्रिरत्न की शरण लेने में, बौद्ध बुद्ध को केवल एक गुरु मानते हैं जो मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, धम्म को एकमात्र मार्ग या साधन और संघ को जीवन जीने के सजीव उदाहरण मानते हैं। बौद्ध यह नहीं मानते कि केवल इन प्रतिज्ञा शब्दों का जाप करने से उन्हें मुक्ति मिल जाएगी। इसका अभ्यास करना आवश्यक है।

चत्तरी अरियासच्चानि : चार असाधारण वास्तविकताएँ। सच्चा पाली भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है वह वास्तविकता जिसका बुद्ध ने अनुभव किया, जो सामान्य से भिन्न है और इसलिए असाधारण है। बुद्ध ने चार प्रकार की वास्तविकता का प्रतिपादन किया है, जो उनके उपदेशों का आधार है और जिसे अस्तित्व या सजीवता कहा जाता है। बुद्धों का जन्म हो या न हो, यह वास्तविकता बनी रहती है और एक बुद्ध ही इसे भ्रमित संसार के समक्ष प्रकट करते हैं। यह समय के साथ बदलती नहीं है और न ही बदल सकती है, क्योंकि यह हमेशा उपलब्ध रहती है। बुद्ध इस वास्तविकता के अहसास के लिए किसी के ऋणी नहीं थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने प्रवचन में कहा है: "पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।" ये शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये उनके अनुभव की मौलिकता की गवाही देते हैं।

पाली भाषा में इस वास्तविकता को आर्य सच्चानि कहा जाता है । इन्हें आर्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनकी खोज परम आर्य ने की थी, अर्थात् वह जिसने साधारण अवस्था को पार कर असाधारण अवस्था प्राप्त कर ली हो। आर्य शब्द, जिसका सामान्य अनुवाद श्रेष्ठ होता है, यहाँ असाधारण के रूप में अनुवादित किया गया है, जो साधारण (पुथुज्जन) के विपरीत है । हम यहाँ आम आदमी द्वारा देखी जाने वाली साधारण या सरल वास्तविकता और बुद्ध तथा उनके शिष्यों द्वारा अनुभव की गई असाधारण वास्तविकता के बीच अंतर कर रहे हैं।

असाधारण वास्तविकता का पहला भाग दुःख से संबंधित है , जिसे अंग्रेज़ी में बेहतर अर्थ में पीड़ा कहा गया है। दुःख का अर्थ है दर्द। संक्षेप में, पीड़ादायक वह व्यक्तित्व है जो एक असंभव बोझ है जिसे हम निरंतर ढोते रहते हैं। हम इसे बनाए रखने में असमर्थ हैं क्योंकि यह अवास्तविक है। असंभव को करने के प्रयास से ही दुख उत्पन्न होता है।

सामान्य मनुष्य केवल सतही दृष्टि से ही चीजों को देखते हैं। आर्य व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है। आर्य व्यक्ति के लिए जीवन दुखमय है और उसे इस संसार में कोई वास्तविक सुख नहीं मिलता, जो उसे मायावी सुखों से धोखा देता है। भौतिक सुख मात्र किसी इच्छा की पूर्ति मात्र है।

सभी जन्म (जाति) के अधीन हैं और फलस्वरूप क्षय (जरा), रोग (व्याधि) और अंततः मृत्यु (मरण) के अधीन हैं। जीवन के इन चारों चरणों से कोई भी अछूता नहीं है। जीवन स्थिर नहीं है, बल्कि परिवर्तनशील एक गतिशील प्रक्रिया है। स्वयं एक स्थिर अवधारणा है जिसे हम गतिशील वास्तविकता में बनाए रखने का प्रयास करते हैं। यह इच्छा पूरी न होने पर दुख का कारण बनती है। इस स्वयं को बनाए रखने के प्रयास में व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है या वह वस्तुओं या व्यक्तियों से विमुख हो जाता है। कभी-कभी, जिसकी सबसे कम अपेक्षा होती है या जिसकी सबसे कम इच्छा होती है, वह हम पर आ पड़ती है। ऐसी अप्रत्याशित, अप्रिय परिस्थितियाँ इतनी असहनीय और पीड़ादायक हो जाती हैं कि कमजोर लोग कभी-कभी आत्महत्या कर लेते हैं, मानो ऐसा करने से समस्या का समाधान हो जाएगा।

इस पीड़ा का कारण अनुभवों को व्यक्तिगत रूप देने की भावनात्मक प्रवृत्ति है। व्यक्तित्व का निर्माण इसी व्यक्तिगतकरण के माध्यम से होता है।

तीन प्रकार की इच्छाएँ होती हैं।

पहली इच्छा है इंद्रिय सुखों का आनंद लेने की (कामतन्हा)।

दूसरा है अस्तित्व में आने या होने की इच्छा (भवतण्हा)।

तीसरी प्रवृत्ति है अस्तित्व समाप्त करने की इच्छा (विभवतान्हा)।

टीकाओं के अनुसार, अंतिम दो आवेग शाश्वतवाद (सस्सतादिष्ठी) और विनाशवाद (उच्छेदादिष्ठी) में विश्वास से जुड़े हैं। भावतण्हा को रूप लोकों से आसक्ति और विभावतण्हा को निराकार लोकों से आसक्ति के रूप में भी समझा जा सकता है, क्योंकि रूपराग और अरूपराग को दो बंधनों (संयोजन) के रूप में माना जाता है।

यह प्रबल इच्छा सभी में अंतर्निहित एक शक्तिशाली भावनात्मक शक्ति है, और जीवन के कष्टों का मूल कारण है। यही इच्छा, स्थूल या सूक्ष्म रूप में, संसार में बार-बार जन्म लेने की ओर ले जाती है और व्यक्ति को जीवन और व्यक्तित्व के सभी रूपों से आसक्त रखती है।

सुख की इस तीव्र इच्छा के स्थूल रूप सकदागामी (संतत्व की दूसरी अवस्था) प्राप्त करने पर कम हो जाते हैं, और अनागामी (संतत्व की तीसरी अवस्था) प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की इस तीव्र इच्छा के सूक्ष्म रूप अर्हतत्व प्राप्त करने पर समाप्त हो जाते हैं ।

असाधारण वास्तविकता का तीसरा पहलू दुखों का पूर्ण निवारण है, जो निर्वाण है, बौद्धों का अंतिम लक्ष्य। इसे सभी इच्छाओं के पूर्ण उन्मूलन द्वारा इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस निर्वाण को बाह्य संसार से सभी आसक्तियों का त्याग करके प्राप्त किया जा सकता है । यह व्यक्तित्व या आत्मा का निर्माण करने वाले व्यक्तिगत अनुभवों के समूह (पंचुपादनक्खंड) का निराकारीकरण है ।

इस तीसरे असाधारण सत्य को असाधारण अष्टांगिक मार्ग (अरियट्टंगिक मार्ग) का विकास (भावेतब्बा) करके ही प्राप्त किया जा सकता है । यही अद्वितीय मार्ग निर्वाण का एकमात्र सीधा मार्ग है। यही चौथा असाधारण सत्य है।

ariyañchaṭṭhangikaṃ maggaṃ : असाधारण अष्टांगिक मार्ग। यह अनूठा मार्ग दो चरम सीमाओं से बचता है: आत्म-यातना जो शरीर को कमजोर करती है और आत्म-भोग जो मन को मंदबुद्धि बनाती है।
इसमें निम्नलिखित आठ कारक शामिल हैं:
सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य (सम्मा दिति);
सामंजस्यपूर्ण भावना (सम्मा संकप्पा);
सामंजस्यपूर्ण भाषण (सम्मा वाचा);
सामंजस्यपूर्ण क्रिया (सम्मा कम्मंता);
सामंजस्यपूर्ण जीवन (सम्मा अजीवा);
सामंजस्यपूर्ण अभ्यास (सम्मा वायामा);
सामंजस्यपूर्ण आत्मनिरीक्षण (सम्मा सती);
सामंजस्यपूर्ण संतुलन (सम्मा समाधि)।
1. सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य को चार असाधारण वास्तविकताओं के ज्ञान के रूप में समझाया गया है। दूसरे शब्दों में, यह स्वयं को उसी रूप में समझना है जैसा कि व्यक्ति वास्तव में है, क्योंकि जैसा कि रोहितास्सा सूत्र में कहा गया है, ये सत्य मनुष्य के एक तीतर लंबे शरीर से संबंधित हैं। बौद्ध धर्म का मूल तत्व यही सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य है जो भीतर और बाहर के सभी संघर्षों को दूर करता है।
2. स्पष्ट दृष्टि से स्पष्ट भावना उत्पन्न होती है। अतः मार्ग का दूसरा कारक सम्मा संकल्प है । अंग्रेज़ी अनुवाद — सही संकल्प, सही आकांक्षाएँ — पाली शब्द का वास्तविक अर्थ व्यक्त नहीं करते। सही भावनाएँ इसके निकटतम अंग्रेज़ी पर्याय के रूप में सुझाई जा सकती हैं।

यह भावना या अनुभूति ही है जो किसी व्यक्ति को या तो दूषित करती है या शुद्ध करती है। भावनाएँ व्यक्ति के स्वभाव को आकार देती हैं और भाग्य को नियंत्रित करती हैं। बुरी भावनाएँ व्यक्ति को नीचा दिखाती हैं, जबकि अच्छी भावनाएँ व्यक्ति को ऊपर उठाती हैं। कभी-कभी एक ही भावना विनाश या उद्धार दोनों कर सकती है।
सम्मा संकल्प का दोहरा उद्देश्य है: बुरी भावनाओं और विचारों का निवारण करना और अच्छी भावनाओं का विकास करना। इस विशेष संदर्भ में, सही भावनाएँ तीन प्रकार की होती हैं: (i) नेक्खम्म - सांसारिक सुखों के त्याग की इच्छा, जो आसक्ति, स्वार्थ और आत्म-अधिकार के विपरीत है; (ii) अव्यापाद - प्रेम, सद्भावना या परोपकार की भावनाएँ, जो घृणा, दुर्भावना या अरुचि के विपरीत हैं; और (iii) अविहिंसा - अहिंसा या करुणा की भावनाएँ, जो क्रूरता और संवेदनहीनता के विपरीत हैं।
ये अच्छे और बुरे भाव सभी में सुप्त अवस्था में होते हैं। जब तक हम साधारण मनुष्य हैं, बुरे भाव अप्रत्याशित क्षणों में प्रबल रूप से उभर आते हैं। अरहतत्व प्राप्त करने पर जब ये भाव पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं, तब चेतना का प्रवाह शुद्ध हो जाता है।
सामंजस्यपूर्ण भावनाएँ स्वतः ही सामंजस्यपूर्ण वाणी और कर्म की ओर ले जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत होता है।
इन सुखद भावनाओं को बनाए रखने के लिए बुरे विचारों को रोकने और दूर करने तथा अच्छे विचारों को विकसित करने और बनाए रखने का निरंतर अभ्यास आवश्यक है। इससे भीतर के अनुभवों के प्रति निरंतर आत्मनिरीक्षण की भावना उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप मानसिक संतुलन प्राप्त होता है। यह शांत मन वास्तविकता से अवगत होता है। यह जागरूकता उस शांति को बनाए रखती है जिसे भंग नहीं किया जा सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 193

(धम्मपद 188 से 192) <<<< पिछला|| धम्मपद193 ||अगला >>>> (धम्मपद194)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 193 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 193 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
दुल्लभो पुरिसजन्नो(1)
na so sabbattha jayati
yattha so jayati dhiro
tam kulam sukhamedhati.(2)

श्लोक 193 : श्रेष्ठतम पुरुष को खोजना कठिन है; वह हर जगह या हर कुल में जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति जन्म लेता है, वह कुल समृद्ध होता है।

---

1. पुरिसजन्नो: टीका के अनुसार, यहाँ बुद्ध का उल्लेख है।
2. सुखमेधाति: शाब्दिक अर्थ, सुख प्राप्त करना या सुख में फलना-फूलना।

थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (193) कहा।
एक दिन, थेरा आनंद ने चिंतन करते हुए कहा: "हमारे गुरु ने हमें बताया है कि हाथियों की शुद्ध नस्लें केवल छद्दंत और उपोसथ नस्लों में ही पैदा होती हैं, घोड़ों की शुद्ध नस्लें केवल सिंध नस्ल में ही पैदा होती हैं, और मवेशियों की शुद्ध नस्लें केवल उस्भा नस्ल में ही पैदा होती हैं। इस प्रकार, उन्होंने हमसे केवल हाथियों, घोड़ों और मवेशियों की शुद्ध नस्लों के बारे में ही बात की थी, न कि श्रेष्ठतम पुरुषों (पुरिसजन्नो) के बारे में।"
इस प्रकार विचार करने के बाद, थेरा आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे श्रेष्ठतम पुरुष के बारे में प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "आनंद, श्रेष्ठतम पुरुष हर जगह जन्म नहीं लेता, वह केवल क्षत्रियमहासला और ब्राह्मणमहासला में ही जन्म लेता है, जो क्षत्रिय और ब्राह्मण के धनी कुल हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 193 : श्रेष्ठतम पुरुष को खोजना कठिन है; वह हर जगह या हर कुल में जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति जन्म लेता है, वह कुल समृद्ध होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन पूज्य आनंद ने चिंतन करते हुए कहा, "हमारे गुरु ने हमें बताया है कि हाथियों की शुद्ध नस्लें केवल छद्दंत और उपोसथ नस्लों में ही पैदा होती हैं, घोड़ों की शुद्ध नस्लें केवल सिंध नस्ल में ही पैदा होती हैं, और मवेशियों की शुद्ध नस्लें केवल उस्भा नस्ल में ही पैदा होती हैं। इस प्रकार, उन्होंने हमसे केवल हाथियों, घोड़ों और मवेशियों की शुद्ध नस्लों के बारे में ही बात की थी, न कि श्रेष्ठतम पुरुषों (पुरिसाजन्नो) के बारे में।"
इस प्रकार विचार करने के बाद, पूज्य आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे श्रेष्ठ पुरुषों के बारे में प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "आनंद, श्रेष्ठ पुरुष हर जगह जन्म नहीं लेते, वे क्षत्रियमहासाल और ब्राह्मणमहासाल में जन्म लेते हैं, जो क्षत्रिय और ब्राह्मण के धनी कुल हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 193)
पुरिसजान्नो दुल्लभो , सो सब्बत्थ न जयति
सो धीरो यथा जयति तं कुलं सुखं एधति

पुरिसाजाञ्ञो [purisājañña]: मनुष्यों में श्रेष्ठ (बुद्ध); दुल्लभो [dullabha]: दुर्लभ; सो : उस प्रकार का दुर्लभ प्राणी; सब्बत्थ : सभी स्थानों में; न जायति : जन्म नहीं लेता; सो धीरो [dhīra]: वह श्रेष्ठ और बुद्धिमान व्यक्ति; यत्थ : यदि किसी स्थान पर; जायति : यदि जन्म लेता है; तं कुलं [kula]: वह परिवार; सुखं एधति : सुख की ओर आता है

बुद्ध सचमुच दुर्लभ हैं। ऐसे दुर्लभ व्यक्ति हर जगह पैदा नहीं होते। यदि किसी कुल में ऐसा नेक और बुद्धिमान व्यक्ति जन्म ले, तो वह कुल सुखवान होगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 193)

सब्बत्थ न जायति : हर जगह जन्म नहीं। यह संदर्भ बुद्ध के जन्म से है। बुद्ध का जन्म कहीं भी नहीं होता। भावी ऋषि स्वर्ग में थे जब देवताओं और ब्रह्माओं ने उन्हें पृथ्वी पर बुद्ध के रूप में जन्म लेने का निमंत्रण दिया। लेकिन बुद्ध ने उनकी इच्छा स्वीकार करने से पहले पाँच महान अवलोकन (पंच महा-विलोकन) किए। उन्होंने समय, महाद्वीप, देश, परिवार और माता तथा उनके जीवनकाल का अवलोकन किया। इन अवलोकनों में से पहले में उन्होंने स्वयं से पूछा कि क्या यह सही समय है या नहीं। “जब मनुष्यों का जीवनकाल एक लाख वर्ष से अधिक हो, तो यह उचित समय नहीं है। और यह उचित समय क्यों नहीं है? क्योंकि तब प्राणियों का जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु प्रकट नहीं होते, और बुद्धों के धम्म का कोई भी उपदेश इन तीन लक्षणों से मुक्त नहीं होता, इसलिए जब वे (बुद्ध) इन (लोगों) से अनित्यता, पीड़ा और अनात्म के बारे में बात करते हैं, तो वे कहते हैं, 'ये लोग क्या बात कर रहे हैं?' और सोचते हैं कि इसे न तो सुनना चाहिए और न ही इस पर विश्वास करना चाहिए। परिणामस्वरूप, कोई अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती। ऐसा होने पर, यह एक ऐसा उपदेश है जो आगे नहीं ले जाता। इसलिए, यह उचित समय नहीं है।” “और यह सही समय नहीं है जब मनुष्यों का जीवन सौ वर्ष से कम हो। और यह सही समय क्यों नहीं है? क्योंकि उस समय प्राणी अशुद्धियों से भरे होते हैं; और अशुद्धियों से भरे लोगों को दी गई नसीहत का कोई असर नहीं होता, बल्कि पानी की सतह पर छड़ी से खींची गई निशानी की तरह वह तुरंत गायब हो जाती है। इसलिए, यह भी सही समय नहीं है।”

लेकिन जब मनुष्यों का जीवनकाल सौ वर्ष और एक लाख वर्ष के बीच होता है, तब जन्म का सही समय होता है। उस समय मनुष्यों का जीवनकाल सौ वर्ष था; तदनुसार, बुद्ध ने देखा कि यही उनके जन्म का सही समय था।

इसके बाद उन्होंने महाद्वीप के बारे में विचार किया। चारों महाद्वीपों और उनके आसपास के द्वीपों को देखते हुए उन्होंने सोचा, “तीन महाद्वीपों में बुद्धों का जन्म नहीं होता; केवल जंबूद्वीप में ही उनका जन्म होता है।” इस प्रकार उन्होंने इस महाद्वीप का चयन किया। फिर उन्होंने स्थान के बारे में विचार किया। उन्होंने सोचा, “जंबूद्वीप महाद्वीप विशाल है, दस हजार मील चौड़ा। इसके किस देश में बुद्धों का जन्म होता है?” और उस क्षेत्र का अवलोकन करते हुए उन्होंने कपिलवस्तु नगर के मध्य देश का चयन किया।

फिर उन्होंने परिवार के विषय में यह विचार किया। उन्होंने सोचा, “बुद्ध न तो व्यापारी परिवार में जन्म लेते हैं और न ही शुद्ध परिवार में। बल्कि वे या तो कुलीन परिवार में जन्म लेते हैं या ब्राह्मण परिवार में, जो भी परिवार उस समय संसार में अधिक प्रतिष्ठित होता है। वर्तमान में कुलीन परिवार संसार में अधिक प्रतिष्ठित है। मैं उसी परिवार में जन्म लूंगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरे पिता होंगे।” इस प्रकार उन्होंने परिवार का चयन किया।

फिर उन्होंने माता के विषय में एक विचार किया। उन्होंने सोचा, “बुद्ध की माता न तो व्यभिचारी होती हैं, न ही शराबी, बल्कि वे होती हैं जिन्होंने एक लाख जन्म चक्रों में सिद्धियाँ प्राप्त की हों और जन्म से ही पंच धर्म नियमों का अटूट पालन किया हो। अब यह रानी, महामाया, ऐसी ही हैं। वे मेरी माता होंगी। परन्तु उनका जीवनकाल कितना होगा?” तब उन्हें पता चला कि उनका जीवनकाल दस माह और सात दिन होगा।

इस प्रकार पाँच महान अवलोकन करने के बाद, उन्होंने देवताओं को उनकी प्रार्थना का उत्तर देते हुए कहा, “हे पूज्यवर, आप सही हैं। मेरे बुद्धत्व का समय आ गया है।” फिर, तुषिता स्वर्ग के देवताओं से घिरे हुए और अन्य सभी देवताओं को विदा करते हुए, वे तुषिता स्वर्ग के नंदनवन में प्रवेश कर गए, क्योंकि प्रत्येक स्वर्ग में एक नंदनवन होता है। वहाँ देवताओं ने कहा, “अपने अगले जन्म में अपने उच्च भाग्य को प्राप्त करो,” और उन्हें याद दिलाते रहे कि उन्होंने अपने संचित कर्मों से पहले ही इसके लिए मार्ग प्रशस्त कर लिया है। अब जब वे इस प्रकार इन देवताओं से घिरे हुए और अपने संचित कर्मों की निरंतर याद दिलाए जाने के बीच निवास कर रहे थे, तभी उनका निधन हो गया और वे रानी महामाया के गर्भ में गर्भ धारण कर सके। यह घटना एसाला (जुलाई, अगस्त) माह में, पूर्णिमा के दिन, उत्तरासाल्हा नक्षत्र के प्रभाव में, सुबह-सुबह घटी।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 194

(धम्मपद193) <<<< पिछला|| धम्मपद194 ||अगला >>>> (धम्मपद 195 और 196)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 194 - संबहुलाभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 194 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सुखो बुद्धनमुप्पादो
सुखा सद्धम्मदसाना
सुखा संघा समाग्गी
samagganam tapo sukho.

श्लोक 194 : बुद्ध का उदय होना सुखद है; आर्य धम्म का विवेचन होना सुखद है; संघ में सामंजस्य होना सुखद है; सामंजस्य में रहने वालों का अभ्यास होना सुखद है।

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कई भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (194) कहा।

एक बार पाँच सौ भिक्षु "सुख क्या है?" इस प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। इन भिक्षुओं ने महसूस किया कि अलग-अलग लोगों के लिए सुख का अर्थ अलग-अलग होता है। इसलिए उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजा के समान धन-दौलत और यश पाना सुख है, कुछ लोगों के लिए इंद्रिय सुख सुख है, परन्तु दूसरों के लिए मांस के साथ पका हुआ अच्छा चावल खाना ही सुख है।" जब वे चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आए। उनकी चर्चा का विषय जानने के बाद बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, आपने जिन सुखों का उल्लेख किया है, वे आपको पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति नहीं दिलाते। इस संसार में, ये ही सुख हैं: बुद्ध का उदय, परम सत्य की शिक्षा सुनने का अवसर और भिक्षुओं के बीच सामंजस्य।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 194 : बुद्ध का उदय होना सुखद है; आर्य धम्म का विवेचन होना सुखद है; संघ में सामंजस्य होना सुखद है; सामंजस्य में रहने वालों का अभ्यास होना सुखद है।

प्रवचन के अंत में पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, कई भिक्षु "सुख क्या है?" इस प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि अलग-अलग लोगों के लिए सुख का अर्थ अलग-अलग होता है। इसलिए, उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजा के समान धन और यश पाना सुख है, कुछ लोगों के लिए इंद्रिय सुख सुख है, लेकिन दूसरों के लिए मांस के साथ पका हुआ अच्छा चावल खाना ही सुख है।" जब वे चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आए। उनकी चर्चा का विषय जानने के बाद, बुद्ध ने कहा, "जिन सुखों का तुमने उल्लेख किया है, वे तुम्हें पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति नहीं

दिलाते। इस संसार में, ये ही सुख हैं: बुद्ध का उदय, परम सत्य की शिक्षा सुनने का अवसर और भिक्षुओं के बीच सद्भाव।" प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 194)

बुद्धानं उप्पादो सुखो , सद्धम्मदेसाना सुखा ,
संघस्स समाग्गि सुख , समग्गनं तपो सुखो

बुद्धानं [बुद्धाना]: बुद्ध का; उप्पादो [उप्पाडा]: उत्पन्न होना; सुखो [सुखा]: (है) हर्षित; सद्धम्मदेसाना : धम्म की उद्घोषणा; सुखा : आनंदमय है; संघसः भाईचारे का; सामग्गी : सौहार्द (एकता); सुखा : (है) हर्षित; समग्गनम् [samaggāna]: सामंजस्य रखने वालों में से; तपो : धार्मिक अभ्यास; सुखो [सुखा]: (है) हर्षित

बुद्धों का उदय आनंदमय है। धम्म का प्रचार आनंदमय है। संघ की एकता आनंदमय है। वास्तव में, सामंजस्यपूर्ण आध्यात्मिक साधना आनंदमय है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 194)

बुद्धानं उप्पादो सुखो : बुद्ध का उदय एक आनंदमय घटना है। राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म से संबंधित पारंपरिक कथाओं में, जो बाद में बुद्ध बने, इस बात का संकेत मिलता है कि वे बुद्ध के रूप में संसार को कितना सुख प्रदान करेंगे। अन्य मनुष्य गर्भ से जन्म लेते समय अप्रिय प्रतीत होते हैं; परन्तु बोधिसत्व ऐसे नहीं थे। वे अपनी माता के गर्भ से ऐसे निकले मानो कोई उपदेशक अपने मंच से उतर रहा हो, या कोई व्यक्ति सीढ़ियों से नीचे उतर रहा हो, दोनों हाथ-पैर फैलाए हुए, बिना किसी अशुद्धता के, जैसे वाराणसी वस्त्र पर कोई रत्न बिखरा हो।

इस आनंदमय घटना के बारे में और अधिक जानकारी उपलब्ध है।

बच्चे के जमीन पर पैर रखने से पहले ही, चार देवता उसका स्वागत करते हैं और उसे माँ के सामने पेश करते हुए कहते हैं, "हे रानी, आनंदित होइए, आपने एक महान प्राणी को जन्म दिया है।"

चार महान राजाओं ने देवता से बालक को तेंदुए की कोमल खाल में ग्रहण किया, और फिर रानी के दल ने उसे रेशमी वस्त्र में उनके पास से ले लिया। बालक ने धरती पर कदम रखा और पूर्व दिशा की ओर मुख किया। उसके ऊपर एक सफेद चंदवा उठाया गया।

असंख्य ब्रह्मांड एक संयुक्त रूप में प्रकट हुए। देवताओं और मनुष्यों ने फूल, धूप आदि से भेंट चढ़ाई और कहा, "हे महानुभाव, यहाँ आपके समान कोई नहीं है; भला आपसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है?" बुद्ध ने चारों ओर देखा तो उन्हें अपने समान कोई नहीं दिखा और उन्होंने उत्तर दिशा में सात कदम बढ़ाए। सातवां कदम बढ़ाते ही बुद्ध ने घोषणा की, "मैं संसार का मुखिया हूँ। यह मेरा अंतिम जन्म है। अब मेरा कोई जन्म नहीं होगा।" क्योंकि यह बुद्ध का जन्म है, जो अद्वितीय और अद्भुत प्राणी हैं, जिन्होंने संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए संसार में जन्म लिया है।

बुद्ध के जन्म के साथ ही, देवताओं से भी कहीं अधिक असीम प्रकाश पूरे ब्रह्मांड में फैल गया। तावतिंसा स्वर्ग में असंख्य देवता भावी बुद्ध के जन्म की खबर सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और खूब मौज-मस्ती और खेलकूद में जुट गए।

बुद्ध के जन्म के समय ही भद्धकच्चाना (यशोधरा), मंत्री चन्ना और कालुदाई तथा अश्व कंठक का भी जन्म हुआ था। बोधि वृक्ष और चार महान रत्न भी इसी समय उत्पन्न हुए थे।

संघ , बुद्ध द्वारा स्थापित सबसे प्राचीन, लोकतांत्रिक रूप से गठित, ऐतिहासिक ब्रह्मचारी संघ है। सही मायने में, संघ उन श्रेष्ठ शिष्यों को दर्शाता है जिन्होंने चार मार्ग और चार फल प्राप्त कर लिए हैं। आज के साधारण भिक्षु केवल उनके प्रतिनिधि हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 195,196

———————————————————————

(धम्मपद 194) <<<< पिछला || धम्मपद 195 और 196 || अगला >>>> (धम्मपद 197, 198 और 199)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 195 और 196 - कस्सापादसबालासा सुवन्नासेतिया वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 195 और 196 - कस्सापादसबालास्सा सुवन्नासेटिया वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
195. पुजाराहे पुजयातो
buddhe yadi va savake
papancasamatikkante(1)
tinnasokapariddave.
196.Te tadise pujayato
nibbute akutobhaye
na sakka punnam sahkhatum
imettamapi kenaci.

श्लोक 195 : वह उन लोगों को प्रणाम करता है जो आदर के योग्य हैं, चाहे वे बुद्ध हों या उनके शिष्य जिन्होंने (अंतर्दृष्टि विकास में) बाधाओं को पार कर लिया हो और स्वयं को दुःख और विलाप से मुक्त कर लिया हो।

श्लोक 196 : जो व्यक्ति नैतिक दोषों से मुक्त और भयमुक्त लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उसके द्वारा अर्जित पुण्य को कोई भी इस या उस रूप में नहीं माप सकता।

---

1. papancasamatikkante: शाब्दिक अर्थ: वे लोग जिन्होंने लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से छुटकारा पा लिया है, जो संसार को लंबा करने वाले कारक हैं।

कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी
सावत्थी से बरनासी की यात्रा करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण और कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (195) और (196) का उच्चारण किया।
एक बार बुद्ध और उनके अनुयायी बरनासी की यात्रा पर थे, तभी वे एक ऐसे खेत में पहुँचे जहाँ एक आध्यात्मिक मंदिर था। मंदिर से कुछ ही दूरी पर एक ब्राह्मण खेत जोत रहा था। बुद्ध ने ब्राह्मण को देखकर उसे अपने पास बुलाया। जब वह आया, तो ब्राह्मण ने मंदिर को प्रणाम किया, लेकिन बुद्ध को नहीं। बुद्ध ने उससे कहा, "ब्राह्मण, मंदिर को प्रणाम करके तुम पुण्य कर्म कर रहे हो।" यह सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उसे प्रसन्न करने के बाद, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप को प्रकट किया और उसे आकाश में प्रकट रहने दिया। फिर बुद्ध ने ब्राह्मण और अन्य भिक्षुओं को समझाया कि स्तूप के योग्य चार वर्ग होते हैं: वे बुद्ध (तथागत) जो आदर के योग्य और पूर्णतः आत्मज्ञानी हैं, पच्चेकबुद्ध, आर्य शिष्य और सर्वसमर्थ। उन्होंने इन चार वर्गों के व्यक्तियों के सम्मान में निर्मित तीन प्रकार के स्तूपों के बारे में भी बताया। जिन स्तूपों में भौतिक अवशेष स्थापित होते हैं, उन्हें शरीरधातु चैत्य कहा जाता है; जिन स्तूपों और प्रतिमाओं को उपरोक्त चार व्यक्तियों के समान बनाया जाता है, उन्हें उद्दिस्सा चैत्य कहा जाता है; और जिन स्तूपों में इन पूजनीय व्यक्तियों के वस्त्र, कुंड आदि जैसी व्यक्तिगत वस्तुएँ स्थापित होती हैं, उन्हें परिभोग चैत्य कहा जाता है। बोधि वृक्ष भी परिभोग चैत्य में शामिल है। बुद्ध ने फिर उन लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के महत्व पर जोर दिया जो आदर के योग्य हैं।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 195 : वह उन लोगों को प्रणाम करता है जो आदर के योग्य हैं, चाहे वे बुद्ध हों या उनके शिष्य जिन्होंने (अंतर्दृष्टि विकास में) बाधाओं को पार कर लिया हो और स्वयं को दुःख और विलाप से मुक्त कर लिया हो।

श्लोक 196 : जो व्यक्ति नैतिक दोषों से मुक्त और भयमुक्त लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उसके द्वारा अर्जित पुण्य को कोई भी इस या उस रूप में नहीं माप सकता।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त की। कश्यप बुद्ध का स्तूप सात दिनों तक दिखाई देता रहा और लोग निरंतर दर्शन और श्रद्धा अर्पित करने आते रहे। सात दिनों के अंत में, बुद्ध की इच्छा से, स्तूप लुप्त हो गया और आत्माओं के लिए निर्मित मंदिर के स्थान पर चमत्कारिक रूप से एक विशाल पत्थर का स्तूप प्रकट हो गया।
अध्याय चौदह का अंत: बुद्ध (बुद्धवग्ग)

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी
सावत्थी से वाराणसी की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने एक ब्राह्मण और कश्यप के स्वर्ण स्तूप के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक दिन बुद्ध कई भिक्षुओं के साथ सावत्थी से वाराणसी के लिए रवाना हुए। रास्ते में वे तोदेय्या गाँव के पास एक मंदिर में पहुँचे। वहाँ बुद्ध बैठ गए और आनंद को भेजा तथा पास में खेत जोत रहे एक ब्राह्मण को बुलाने का आदेश दिया। जब ब्राह्मण आया, तो उसने बुद्ध को प्रणाम नहीं किया, बल्कि केवल मंदिर को प्रणाम किया। ऐसा करने के बाद, वह बुद्ध के सामने खड़ा हो गया। बुद्ध ने कहा, “हे ब्राह्मण, तुम इस स्थान को कैसे देखते हो?” ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “यह मंदिर पीढ़ियों से हमें विरासत में मिला है, और इसीलिए मैं इसे प्रणाम करता हूँ, हे गौतम।” इस पर बुद्ध ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, “हे ब्राह्मण, तुमने इस स्थान को प्रणाम करके अच्छा किया है।”
जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ और उन्होंने कहा, “आपने यह प्रशंसा किसलिए की?” उनके संदेह दूर करने के लिए, बुद्ध ने मज्झिमा निकाय में घटीकार सूत्र का पाठ किया । फिर उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से वायु में बुद्ध कश्यप के स्वर्ण मंदिर से दुगुना, एक मील ऊँचा स्वर्ण पर्वत निर्मित किया। इसके बाद, अपने असंख्य शिष्यों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, “ब्राह्मण, इन जैसे सम्मान के योग्य पुरुषों को सम्मान देना और भी अधिक उचित है।” फिर, महामृत्यु सूत्र के शब्दों में, उन्होंने घोषणा की कि बुद्ध और अन्य चार व्यक्ति, मंदिरों के योग्य हैं। फिर उन्होंने तीन प्रकार के मंदिरों का विस्तार से वर्णन किया: शारीरिक अवशेषों का मंदिर, स्मृति अवशेषों का मंदिर और उपयोग या आनंदित वस्तुओं का मंदिर। पाठ के समापन पर ब्राह्मण को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 195)
पापांका समतिक्कंते तिन सोकापरिद्दवे
पूजारे बुद्धे यदि वा सावके पूज्यतो
papañca samatikkante : वे जो सामान्य बोध से परे चले गए हैं; tiṇṇa sokapariddave : वे जो दुःख और विलाप से पार हो गए हैं; pūjārahe : वे जो पूजा के योग्य हैं; Buddhe : (अर्थात्) बुद्ध; yadi vā : और साथ ही: sāvake : बुद्ध के शिष्य; pūjayato [pūjayata]: यदि कोई उनकी पूजा करे
वे लोग जो सामान्य दृष्टि से संसार को देखने के तरीके से परे चले गए हैं, जो दुःख और विलाप से ऊपर उठ गए हैं, वे पूजा के योग्य हैं; अर्थात् बुद्ध और उनके शिष्य।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 196)
निब्बुते अकुतोभये तदिसे ते पूज्यतो पुन्नं
इमां मत्तं इति संखातुं केन सी अपि न सक्का
निब्बुते : जो अविचलितता प्राप्त कर चुके हों; अकुतोभये : जो कांपते या भयभीत होते हों; तादिसे : उस प्रकार के प्राणी; ते पूजयातो [पूजयाता]: आदर करने वाला; पुण्य [पुण्य]: गुण; इमम् मत्तम् इति : इतना या उतना; संखातु [संखातु]: मात्रा निर्धारित करना; न सक्का : असमर्थ; केनाचि : किसी के द्वारा
जो व्यक्ति अविचलित और निर्भय है, उसकी उपासना करता है, वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा अर्जित पुण्य का मापन किसी से नहीं किया जा सकता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 195-196)
पूजाहो पूजातो , बुद्धे यदिव सावके : पूजा के योग्य लोगों की पूजा करो, बुद्धों और उनके शिष्यों की। बुद्ध की पूजा क्यों की जानी चाहिए? उनकी ज्ञान प्राप्ति और उनका मिशन इसका स्पष्टीकरण प्रदान करेगा। बुद्ध 2500 वर्ष पूर्व जंबूद्वीप में निवास करते थे और सिद्धार्थ (संस्कृत में सिद्धार्थ, जिसका उद्देश्य पूर्ण हो गया हो) के नाम से जाने जाते थे। गौतम उनका पारिवारिक नाम था। उनके पिता, सुद्धोदन, नेपाली सीमा पर कपिलवस्तु में शाक्यों के राज्य पर शासन करते थे। कोलियों की राजकुमारी महामाया सुद्धोदन की रानी थीं। मई माह की पूर्णिमा के दिन—वसंत ऋतु में, जब जंबूद्वीप में वृक्ष पत्तों, फूलों और फलों से लदे हुए थे—और मनुष्य, पक्षी और पशु सभी आनंदित थे, तब रानी महामाया अपने मायके कपिलवस्तु से देवदहा, अपने मायके, के लिए शान से यात्रा कर रही थीं, उस समय की

प्रथा के अनुसार, अपने बच्चे को जन्म देने के लिए। लेकिन ऐसा होना संभव नहीं था, क्योंकि दोनों शहरों के बीच में, लुम्बिनी वन में, एक फूलदार साल के पेड़ की छाया में, उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया।

बच्चे के जन्म के सातवें दिन ही माता, रानी महामाया का देहांत हो गया और बच्चे का पालन-पोषण उसकी माता की बहन, प्रजापति गौतमी ने किया। बच्चे का पालन-पोषण युवावस्था तक अत्यंत सुख-सुविधाओं और विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ। पिता ने अपने पुत्र को वह शिक्षा दिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जो एक राजकुमार को मिलनी चाहिए। वह ज्ञान की अनेक शाखाओं और युद्ध कलाओं में निपुण हो गया और उसने सर्वथा दूसरों को पीछे छोड़ दिया। फिर भी, बचपन से ही राजकुमार गहन चिंतन में लीन रहता था। जब राजकुमार बड़ा हुआ तो पिता की प्रबल इच्छा थी कि उसका पुत्र विवाह करे, परिवार बसाए और उसका योग्य उत्तराधिकारी बने; परन्तु उन्हें भय था कि कहीं राजकुमार एक दिन घर छोड़कर तपस्वी का जीवन व्यतीत न करने लगे।

उस समय की प्रथा के अनुसार, सोलह वर्ष की कम उम्र में ही राजकुमार सिद्धार्थ का विवाह उनकी चचेरी बहन यशोदरा से हो गया, जो कोलिय वंश के राजा सुप्पबुद्ध और रानी पामिता की इकलौती पुत्री थीं। राजकुमारी भी राजकुमार की ही उम्र की थीं। भौतिक सुखों से भरपूर होने के कारण सिद्धार्थ को दुखों का कोई ज्ञान नहीं था। फिर भी, पिता द्वारा पुत्र को इंद्रियों के वश में रखने और सांसारिक बनाने के सभी प्रयास व्यर्थ रहे। राजा सुद्धोदन द्वारा जीवन के दुखों को पुत्र की जिज्ञासु दृष्टियों से दूर रखने के प्रयासों ने ही राजकुमार सिद्धार्थ की जिज्ञासा और सत्य एवं ज्ञान की खोज को और भी तीव्र कर दिया।

जैसे-जैसे उम्र और परिपक्वता बढ़ती गई, राजकुमार को संसार की समस्याओं का आभास होने लगा। कहा जाता है कि उन्होंने चार दृश्य देखे: पहला, एक वृद्ध, निर्बल व्यक्ति; दूसरा, एक दुबला-पतला, अत्यंत दुखी और अकेला व्यक्ति, किसी बीमारी से ग्रसित; तीसरा, शोक संतप्त रिश्तेदारों का एक समूह, अपने प्रिय के शव को दाह संस्कार के लिए कंधों पर उठाए हुए। इन भयावह दृश्यों ने उन्हें अत्यंत विचलित कर दिया। परन्तु चौथे दृश्य ने उन पर अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने एक एकांतवासी को देखा, शांत, निर्मल, एकांतप्रिय और स्वतंत्र, और उन्हें पता चला कि वह ऐसा व्यक्ति था जिसने पवित्र जीवन जीने, सत्य की खोज करने और जीवन के रहस्य को सुलझाने के लिए अपना घर त्याग दिया था। त्याग के विचार राजकुमार के मन में कौंधे और गहन चिंतन में लीन होकर वे अपने घर की ओर लौट गए। व्यथित और पीड़ित मानवता की पीड़ा ने उनके हृदय में भी गहरी संवेदना उत्पन्न की। जैसे-जैसे वह अपने महल की दीवारों के बाहर की दुनिया के संपर्क में आता गया, वैसे-वैसे वह इस बात से और अधिक आश्वस्त होता गया कि दुनिया में सच्ची खुशी का अभाव है।

उस चांदनी रात की खामोशी में (जुलाई की पूर्णिमा थी) उनके मन में ऐसे विचार उठे: "जवानी, जीवन का राजकुमार, बुढ़ापे में समाप्त हो जाती है और मनुष्य की इंद्रियां तब साथ छोड़ देती हैं जब उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। स्वस्थ और तंदुरुस्त व्यक्ति भी बीमारी के अचानक आ लगने से अपनी शक्ति खो बैठते हैं। अंत में, मृत्यु आती है, शायद अचानक और अप्रत्याशित रूप से, और जीवन के इस संक्षिप्त काल का अंत कर देती है। निश्चित रूप से, इस असंतोष, बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्ति पाने का कोई न कोई रास्ता जरूर होगा।" इस प्रकार जवानी, स्वास्थ्य और जीवन का वह महान नशा उनसे दूर हो गया। तीनों नशों की व्यर्थता और खतरे को देखकर, वे अमरता को पाने और उसे हासिल करने की प्रबल इच्छा से भर गए, बुढ़ापे, बीमारी और दुख से मुक्ति पाने के लिए प्रयास करने लगे, अपने लिए और सभी पीड़ित प्राणियों के लिए। यह उनकी गहरी करुणा ही थी जिसने उन्हें ज्ञानोदय, बुद्धत्व की खोज की ओर अग्रसर किया। यह करुणा ही थी जिसने अब उनके हृदय को त्याग की ओर प्रेरित किया और उनके लिए गृहस्थ जीवन के परम बंधन के द्वार खोल दिए। करुणा ही वह कारण था जिसने उनके संकल्प को उनकी प्रिय पत्नी की अंतिम दृष्टि के बावजूद भी अडिग रखा, जो अपने शिशु को गोद में लिए सो रही थीं। अब उनतीस वर्ष की आयु में, युवावस्था के चरम पर, जिस दिन उनकी सुंदर यशोदरा ने उनके इकलौते पुत्र राहुल को जन्म दिया, जिसने उनके बिछड़ने को और भी दुःखमय बना दिया, उन्होंने स्वयं को त्याग दिया। राजकुमार ने असाधारण इच्छाशक्ति से पत्नी, पुत्र, पिता और सत्ता एवं यश के वचन से युक्त मुकुट का त्याग कर दिया। एक निर्धन तपस्वी के वेश में, वे वन एकांत में चले गए, जीवन के शाश्वत सत्यों की खोज में, बंधन से मुक्ति के सर्वोच्च मार्ग - निर्वाण - की प्राप्ति के लिए। जीवन के सार्वभौमिक दुराचार का उपाय खोजने के महान कार्य में स्वयं को समर्पित करते हुए, उन्होंने दो प्रसिद्ध ऋषियों, अलारा कलाम और उद्दक रामपुत्त से मार्गदर्शन मांगा, इस आशा के साथ कि ध्यान के स्वामी होने के नाते वे उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखाएंगे। उन्होंने मानसिक स्थिरता का अभ्यास किया और इस प्रकार ध्यान की उच्चतम अवस्था को प्राप्त किया, लेकिन वे ज्ञानोदय से कम किसी भी चीज़ से संतुष्ट नहीं थे। हालाँकि, उनका ज्ञान और रहस्यमय अनुभव उन्हें वह प्रदान करने के लिए अपर्याप्त था जिसकी उन्हें वास्तव में तलाश थी। इसलिए, वे अज्ञात सत्य की खोज में उन्हें छोड़कर चले गए। अपनी यात्रा में वे अंततः गया में नेरांजरा नदी के किनारे उरुवेला पहुँचे। वे वहाँ के शांत और घने उपवनों और नदी के निर्मल जल से आकर्षित हुए। यह जानकर कि यह ज्ञानोदय की खोज जारी रखने के लिए उपयुक्त स्थान है, उन्होंने वहीं रहने का निर्णय लिया। उनके दृढ़ प्रयास से प्रभावित पाँच अन्य तपस्वियों ने उनकी सेवा की। वे थे कोंडञ्ञ, भद्दिया, वप्पा, महानामा और असजी।

जंबुद्वीप में कई तपस्वियों के बीच यह मान्यता थी और आज भी है कि कठोर आत्म-यातना से शुद्धि और परम पापों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। तपस्वी गौतम ने इसकी सत्यता का परीक्षण करने का निश्चय किया। उरुवेला में उन्होंने अपने शरीर को वश में करने का दृढ़ संघर्ष शुरू किया, इस आशा में कि उनका मन, भौतिक शरीर से मुक्त होकर, मोक्ष की ऊँचाइयों तक पहुँच सकेगा। वे इन

साधनाओं में अत्यंत तत्पर थे। वे पत्तों और जड़ों पर जीवन व्यतीत करते थे, भोजन की मात्रा लगातार कम होती जाती थी, वे फटे-पुराने वस्त्र पहनते थे, वे शवों के बीच या काँटों के बिस्तरों पर सोते थे। उन्होंने कहा, "मैंने अपनी तपस्या में कठोरता बरती है। मैं अन्य सभी से कहीं अधिक कठोर रहा हूँ। मेरे सभी अंग सूखे, मुरझाए सरकंडों के समान हो गए हैं।" इन्हीं शब्दों में, बाद के वर्षों में, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने अपनी प्रारंभिक तपस्याओं का विस्मयकारी वर्णन किया। इस प्रकार छह वर्षों तक संघर्ष करते हुए वे लगभग मृत्यु के कगार पर पहुँच गए, परन्तु अपने लक्ष्य से अभी भी दूर थे। आत्म-यातना की निरर्थकता उन्हें अपने अनुभव से भलीभांति सिद्ध हो गई; ज्ञान प्राप्ति के लिए आत्म-यातना का उनका प्रयोग विफल रहा। परन्तु निराश न होकर, उनका सक्रिय मन अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुँचने के नए मार्ग खोजने लगा। तभी उन्हें बचपन में एक रसभरी के नीचे ध्यान करते हुए प्राप्त हुई शांति याद आई और उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा: "यही ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है।" यद्यपि वे जानते थे कि अपने इतने दुर्बल शरीर के साथ वे इस मार्ग पर सफलता की किसी भी संभावना के साथ नहीं चल सकते। अतः उन्होंने आत्म-यातना और कठोर उपवास त्याग दिया और सामान्य भोजन ग्रहण किया। उनका दुर्बल शरीर शीघ्र ही स्वस्थ हो गया और उनकी खोई हुई शक्ति लौट आई। अब उनके पाँच साथी निराश होकर उन्हें छोड़कर चले गए; क्योंकि उन्हें लगा कि उन्होंने प्रयास छोड़ दिया है और विलासितापूर्ण जीवन जीने का निश्चय कर लिया है।

फिर भी, दृढ़ संकल्प और अपनी पवित्रता और सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास के साथ, बिना किसी गुरु की सहायता के, बिना किसी साथी के, बोधिसत्व (जैसा कि वे ज्ञान प्राप्ति से पहले जाने जाते थे) ने पूर्ण एकांत में अपनी अंतिम खोज करने का निश्चय किया। वे नेरांजरा नदी के तट पर, गया (जिसे अब बुद्ध-गया के नाम से जाना जाता है) में, एक वृक्ष के नीचे पालथी मारकर बैठ गए, जिसे बाद में बोधि वृक्ष, ज्ञान का वृक्ष या बुद्धि का वृक्ष के रूप में जाना गया — "इंद्रियों को सुखदायक और मन को उत्तेजित करने वाले एक सुखद स्थान" पर, उन्होंने अटल संकल्प के साथ अंतिम प्रयास किया: "यद्यपि केवल मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही शेष रहें, और मेरा रक्त और मांस सूखकर नष्ट हो जाए, तब भी मैं पूर्ण ज्ञान (सम्मासंबोधि) प्राप्त होने तक इस आसन से नहीं हिलूंगा।" वे प्रयास में इतने अथक थे और सत्य को जानने और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतने दृढ़ थे कि उन्होंने सचेत श्वास-अंदर लेने (आना + अपाना सती) का अभ्यास किया, जो ध्यान उन्होंने अपने बचपन में विकसित किया था, और बोधिसत्व ध्यान की पहली अवस्था (झान ; संस्कृत, ध्यान) में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो गए।

अध्याय 15. सुखवग्गा: ख़ुशी (197-208

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 197,198,199

———————————————————————

(धम्मपद 195 और 196) <<<< पिछला || धम्मपद 197, 198 और 199 || अगला >>>> (धम्मपद 200)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 197, 198 और 199 - नातिक्लाहवुपासमना वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 197, 198 और 199 - नातिकलाहवुपासमना वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सुसुखम वात जीवमा
verinesu averino
verinesu manussesu
viharama averino.
सुसुखम वात जीवमा
अतुरेसु(1) अनातुरा
aturesu manussesu

विहारमा अनातुरा.
सुसुखम वात जीवमा
उस्सुकेसु अनुसुका
उस्सुकेसु मानुस्सेसु
विहारमा अनुसुका.

श्लोक 197 : निःसंदेह हम बहुत सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, घृणा करने वालों में से किसी से घृणा नहीं करते; घृणा करने वालों के बीच हम किसी से घृणा किए बिना रहते हैं।

श्लोक 198 : वास्तव में हम बहुत सुखी हैं, बीमारों के बीच अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं; बीमार लोगों के बीच हम अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं।

श्लोक 199 : निःसंदेह हम बहुत सुखपूर्वक रहते हैं, उन लोगों के बीच (इंद्रिय सुखों के लिए) प्रयास नहीं करते जो उनके लिए प्रयास करते हैं; जो लोग उनके लिए प्रयास करते हैं, उनके बीच हम बिना प्रयास किए रहते हैं।

1. aturesu/atura: बीमार या रोग; यहाँ नैतिक रोग का तात्पर्य है।

बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कहानी

बुद्ध ने शाक्य देश में इस पुस्तक के श्लोक (197) से (199) तक का उच्चारण अपने उन रिश्तेदारों के संदर्भ में किया जो रोहिणी नदी के पानी के उपयोग को लेकर झगड़ रहे थे।

शाक्यों का नगर कपिलवस्तु और कोल्यों का नगर कोलिया, रोहिणी नदी के दोनों किनारों पर स्थित थे। दोनों नगरों के किसान रोहिणी नदी से सिंचित खेतों में खेती करते थे। एक वर्ष पर्याप्त वर्षा नहीं हुई और धान एवं अन्य फसलें सूखने लगीं, तो दोनों किनारों के किसानों ने रोहिणी नदी का जल अपने खेतों में मोड़ने का निर्णय लिया। कोलिया के निवासियों का कहना था कि नदी में दोनों किनारों के लिए पर्याप्त जल नहीं है और यदि एक बार भी जल उनके खेतों में मोड़ दिया जाए, तो धान की फसल पकने के लिए पर्याप्त होगा। दूसरी ओर, कपिलवस्तु के लोगों का तर्क था कि ऐसा करने पर उन्हें जल का उपयोग करने से वंचित कर दिया जाएगा और उनकी फसलें निश्चित रूप से बर्बाद हो जाएंगी, और उन्हें दूसरों से खरीदना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि वे भोजन के बदले अपना धन और कीमती सामान नदी के दूसरे किनारे तक ले जाने को तैयार नहीं हैं।

दोनों पक्षों को पानी केवल अपने उपयोग के लिए चाहिए था और अपशब्दों और एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप के कारण उनके बीच काफी दुर्भावना थी। किसानों के बीच शुरू हुआ यह झगड़ा संबंधित मंत्रियों के कानों तक पहुंचा और उन्होंने अपने-अपने शासकों को इसकी सूचना दी, जिसके बाद दोनों पक्ष युद्ध के लिए तैयार हो गए।

बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्तियों से संसार का अवलोकन करते हुए देखा कि नदी के दोनों किनारों पर उनके रिश्तेदार युद्ध के लिए आ रहे हैं और उन्होंने उन्हें रोकने का निश्चय किया। वे अकेले ही आकाश में विचरण करते हुए उनके पास गए और नदी के मध्य में रुक गए। उनके रिश्तेदारों ने उन्हें आकाश में शक्तिशाली और शांत भाव से विराजमान देखकर अपने सभी हथियार एक तरफ रख दिए और बुद्ध को प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उनसे कहा, “थोड़े से पानी के लिए, जिसका कोई मूल्य नहीं है, तुम्हें अपने अनमोल जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए। तुमने यह मूर्खतापूर्ण कार्य क्यों किया? यदि मैंने आज तुम्हें न रोका होता, तो तुम्हारा खून नदी की तरह बह रहा होता। तुम अपने शत्रुओं से घृणा करते हो, परन्तु मेरा कोई शत्रु नहीं है; तुम नैतिक विकारों से ग्रस्त हो, परन्तु मैं उनसे मुक्त हूँ; तुम इंद्रिय सुखों के लिए तरस रहे हो, परन्तु मैं उनके लिए तरसता नहीं हूँ।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 197 : निःसंदेह हम बहुत सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, घृणा करने वालों में से किसी से घृणा नहीं करते; घृणा करने वालों के बीच हम किसी से घृणा किए बिना रहते हैं।

श्लोक 198 : वास्तव में हम बहुत सुखी हैं, बीमारों के बीच अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं; बीमार लोगों के बीच हम अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं।

श्लोक 199 : निःसंदेह हम बहुत सुखपूर्वक रहते हैं, उन लोगों के बीच (इंद्रिय सुखों के लिए) प्रयास नहीं करते जो उनके लिए प्रयास करते हैं; जो लोग उनके लिए प्रयास करते हैं, उनके बीच हम बिना प्रयास किए रहते हैं।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कहानी

बुद्ध ने ये श्लोक शाक्यन देश में रोहिणी नदी के जल के उपयोग को लेकर आपस में झगड़ रहे रिश्तेदारों के संदर्भ में कहे थे।

कथा के अनुसार, शाक्य और कोलिया शासकों ने रोहिणी नदी के जल को कपिलवस्तु और कोलिया नगरों के बीच एक ही बांध में रोककर नदी के दोनों किनारों पर खेतों की खेती की। अब जेठमूल माह में फसलें खराब होने लगीं, जिस पर दोनों नगरों के निवासियों द्वारा नियोजित मजदूर एकत्रित हुए। कोलिया नगर के निवासियों ने कहा, “यदि इस जल को नदी के दोनों किनारों पर मोड़ दिया जाए, तो न तो आपके लिए और न ही हमारे लिए पर्याप्त होगा। परन्तु हमारी फसलें एक ही बार सिंचाई से पक जाएंगी। इसलिए हमें यह जल दे दीजिए।”

शाक्यों ने उत्तर दिया, “जब आप अपने भंडारगृह भर लेंगे, तब हमारा मन नहीं करेगा कि हम सोना, पन्ना और सिक्के लेकर, टोकरियाँ और बोरे लेकर घर-घर जाकर आपसे भीख माँगें। हमारी फसलें भी एक बार पानी देने से पक जाएँगी। इसलिए हमें यह पानी दीजिए।” “हम आपको यह नहीं देंगे।” “हम भी आपको यह नहीं देंगे।” बात इतनी तीखी हो गई कि अंत में एक ने उठकर दूसरे को मुक्का मार दिया। दूसरे ने भी वैसा ही मुक्का मारा और दोनों के बीच ज़बरदस्त लड़ाई शुरू हो गई। लड़ने वालों ने दोनों शाही परिवारों की उत्पत्ति पर आरोप लगाकर मामले को और बिगाड़ दिया।

कोलियों के यहाँ काम करने वाले मजदूरों ने कहा, “कपिलवस्तु नगर में रहने वाले तुम अपने बच्चों को लेकर अपने घर चले जाओ। क्या हम उन हाथियों, घोड़ों, ढालों और हथियारों से नुकसान उठाने की हिम्मत कर सकते हैं जो कुत्तों और सियार की तरह अपनी ही बहनों के साथ रहते हैं?” शाक्यों के यहाँ काम करने वाले मजदूरों ने जवाब दिया, “तुम कुष्ठ रोगियों, अपने बच्चों को लेकर अपने घर चले जाओ। क्या हम उन हाथियों, घोड़ों, ढालों और हथियारों से नुकसान उठाने की हिम्मत कर सकते हैं जो जानवरों की तरह पेड़ों पर रहते हैं?” दोनों पक्षों के मजदूरों ने जाकर काम के प्रभारी मंत्रियों को झगड़े की सूचना दी, और मंत्रियों ने यह बात राजपरिवार को बता दी। तब शाक्य युद्ध के लिए हथियार लेकर निकले और चिल्लाए, “हम दिखाएंगे कि अपनी बहनों के साथ रहने वालों की क्या ताकत और शक्ति होती है।” इसी प्रकार कोलियों ने भी युद्ध के लिए हथियार लेकर निकले और चिल्लाए, “हम दिखाएंगे कि पेड़ों पर रहने वालों की क्या ताकत और शक्ति होती है।”

भोर होते ही जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया और अपने सगे-संबंधियों को देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “यदि मैं इनके पास नहीं गया, तो ये आपस में ही नष्ट हो जाएँगे। मेरा यही कर्तव्य है कि मैं इनके पास जाऊँ।” तदनुसार, वे अकेले ही वायु में उड़कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उनके सगे-संबंधी एकत्रित थे, और रोहिणी नदी के मध्य में पाँव-पालक होकर बैठ गए। बुद्ध के सगे-संबंधियों ने जब उन्हें देखा, तो उन्होंने अपने शस्त्र फेंक दिए और उन्हें प्रणाम किया। बुद्ध ने अपने सगे-संबंधियों से कहा, “हे महाराज, यह सब झगड़ा किस बात का है?” “हम नहीं जानते, आदरणीय।” “तो फिर कौन जान सकता है?” “सेनापति को ही पता होगा।” सेनापति ने कहा, “वाइसराय को ही पता होगा।” इस प्रकार बुद्ध ने पहले एक से और फिर दूसरे से प्रश्न पूछा, और अंत में दासों से पूछा। दासों ने उत्तर दिया, “झगड़ा पानी को लेकर है।”

तब बुद्ध ने राजा से पूछा, “हे महाराज, जल का मूल्य कितना है?” “बहुत कम, पूज्यवर।” “हे महाराज, शाक्यों का मूल्य कितना है?” “हे पूज्यवर, शाक्यों अनमोल हैं।” “थोड़े से जल के कारण अनमोल शाक्यों का नाश करना उचित नहीं है।” वे चुप रहे। तब बुद्ध ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा, “हे महाराज, आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? यदि मैं आज यहाँ उपस्थित न होता, तो आप रक्त की नदी बहा देते। आपने अत्यंत अशोभनीय कार्य किया है। आप शत्रुता में लीन रहते हैं, पाँच प्रकार की घृणा में लिप्त रहते हैं। मैं घृणा से मुक्त रहता हूँ। आप बुरी वासनाओं के रोग से ग्रस्त रहते हैं। मैं रोगमुक्त रहता हूँ। मैं किसी भी चीज़ की लालसा से मुक्त रहता हूँ।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 197)

वेरिनेसु अवेरिनो वात सुसुखं जीवमा

मनुस्सेसु वेरिनेसु एवरिनो विहारा

वेरिनेसु : घृणा से भरे लोगों के बीच; अवेरिनो वत : निःसंदेह घृणा रहित; सुसुखं [सुसुख]: सुखपूर्वक; जीवाम : हम निवास करते हैं; मनुस्सेसु : घृणा से भरे लोगों के बीच; वेरिनेसु : घृणा रहित; अवेरिनो [अवेरिना]: घृणा रहित; विहाराम : (हम) जीवन व्यतीत करते रहते हैं

जो लोग घृणा करते हैं, उनके बीच हम बिना घृणा किए रहते हैं। जब वे घृणा करते हैं, तब हम बिना घृणा किए रहते हैं। घृणा करने वालों के बीच हम अत्यंत सुखपूर्वक रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 198)

आतुरेसु अनातुरा वत सुसुखं जीवम्

मनुस्सेसु आतुरेसु अनातुरा विहारा

āturesu : जो लोग (अशुद्धियों से) बीमार हैं; anāturā : (हम) रोगमुक्त हैं; vata : वास्तव में; susukhaṃ [susukha]: अत्यंत सुख में; jīvāma : हम रहते हैं; manussesu āturesu : जो लोग बीमार हैं उनके बीच; anāturā : बिना बीमार हुए; viharāma : हम रहते हैं

जो लोग बीमार और विकारों से ग्रस्त हैं, उनके बीच हम, जो इन विकारों से मुक्त हैं, सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। बीमारों के बीच हम निर्मल होकर अत्यंत सुखी रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 199)

उस्सुकेसु अनुसुका वात सुसुखं जीवमा

मनुस्सेसु उस्सुकेसु अनुसुका विहारा

हम उन लोगों में रहते हैं जो सांसारिक सुखों के पीछे बेचैनी से भागते हैं; हम बिना किसी प्रयास के भी अत्यंत सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। हम उन लोगों में रहते हैं जो बेचैनी से प्रयास करते हैं; हम बिना किसी प्रयास के भी जीवन व्यतीत करते हैं।

उन चिंतित पुरुषों और महिलाओं के बीच, जो लगातार सांसारिक वस्तुओं की खोज में लगे रहते हैं, हम, जो सांसारिक वस्तुओं की ऐसी तीव्र खोज नहीं करते, अत्यंत सुखी जीवन जीते हैं। सांसारिक वस्तुओं की खोज करने वालों के बीच, सुख की तलाश करने वालों के बीच, हम सुख की खोज किए बिना जीते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 197-199)

ये श्लोक बुद्ध ने तब कहे थे जब उन्होंने अपने ही रिश्तेदारों के कुलों के बीच एक ऐसे संघर्ष को टाला था जो एक खूनी युद्ध में तब्दील हो सकता था। बुद्ध का जन्म राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में हुआ था, जो शाक्य शासक राजा सुद्धोदन के पुत्र थे। बुद्ध (राजकुमार सिद्धार्थ) के करीबी रिश्तेदार बौद्ध संघ से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। राजकुमार सिद्धार्थ की माता, रानी महामाया का निधन उनके जन्म के कुछ ही दिनों बाद हो गया था। राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा उनकी चचेरी बहन थीं। राजकुमारी यशोधरा, जिन्हें राहुलमाता, बिम्बा और भद्दकच्चाना के नाम से भी जाना जाता था, कोलिय वंश के शासक राजा सुप्पबुद्ध और राजा सुद्धोदन की बहन पामिता की पुत्री थीं। उनकी आयु राजकुमार सिद्धार्थ के समान थी, जिनसे उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था। अपनी सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करके ही उन्होंने यशोदरा का हाथ जीता था। यशोदरा ने अत्यंत सुखमय और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किया। उनतीस वर्ष की आयु में, जिस दिन उन्होंने अपने इकलौते पुत्र राहुल को जन्म दिया, उसी दिन उनके बुद्धिमान और चिंतनशील पति, जिनसे वे अत्यंत प्रेम करती थीं, ने संसार त्याग कर जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने का निश्चय किया। अपनी निष्ठावान और आकर्षक पत्नी को विदाई दिए बिना ही वे रात में महल छोड़कर चले गए, और युवा यशोदरा को बच्चे की देखभाल के लिए अकेला छोड़ दिया। वे हमेशा की तरह अपने प्रिय पति का स्वागत करने के लिए उठीं, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि वे वहाँ नहीं थे। जब उन्हें यह अहसास हुआ कि उनके आदर्श राजकुमार उन्हें और नवजात शिशु को छोड़कर चले गए हैं, तो वे अवर्णनीय दुःख से भर उठीं। उनकी सबसे प्रिय संपत्ति हमेशा के लिए खो गई थी। महल अपने सभी आकर्षणों के साथ अब एक कालकोठरी जैसा लग रहा था; सारा संसार निर्जीव प्रतीत हो रहा था। उनका एकमात्र सहारा उनका शिशु पुत्र था। यद्यपि कई क्षत्रिय राजकुमारों ने उनका हाथ मांगा, उन्होंने उन सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया और अपने प्रिय पति के प्रति सदा निष्ठावान रहीं। अपने पति के संन्यासी जीवन का भोग-विलास सुनकर, उन्होंने अपने सभी आभूषण उतार दिए और सादे पीले वस्त्र धारण किए। छह वर्षों तक जब तपस्वी गौतम बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, राजकुमारी यशोदरा ने उनके कार्यों को ध्यानपूर्वक देखा और उनका अनुसरण किया। जब बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद कपिलवस्तु आए और अगले दिन राजा महल में उनका स्वागत कर रहे थे, तो राजकुमारी यशोदरा को छोड़कर सभी लोग उन्हें प्रणाम करने आए। उन्होंने सोचा, “यदि मुझमें कोई सद्गुण है, तो बुद्ध अवश्य मेरे पास आएंगे। तब मैं उनका आदर करूंगी।”

भोजन समाप्त होने के बाद बुद्ध ने राजा को कटोरा सौंप दिया और अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ यशोदरा के कक्ष में प्रवेश किया। वे अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए और बोले, “राजा की पुत्री मुझे अपनी इच्छानुसार प्रणाम करें। कुछ न कहें।” बुद्ध के आगमन की सूचना पाकर यशोदरा ने दरबार की सभी स्त्रियों को पीले वस्त्र पहनने का आदेश दिया। जब बुद्ध बैठे, तो यशोदरा शीघ्रता से उनके पास आईं और उनके टखनों को पकड़कर अपना सिर उनके चरणों पर रखकर अपनी इच्छानुसार प्रणाम किया। इस प्रकार अपना स्नेह और आदर प्रकट करते हुए वे आदरपूर्वक बैठ गईं। तब राजा ने उसके गुणों की प्रशंसा की और उसकी प्रेम और निष्ठा पर टिप्पणी करते हुए कहा, “हे प्रभु, जब मेरी पुत्री ने सुना कि आप पीले वस्त्र पहन रहे हैं, तो उसने भी पीले वस्त्र पहन लिए; जब उसने सुना कि आप दिन में एक बार भोजन कर रहे हैं, तो उसने भी वैसा ही किया; जब उसने सुना कि आपने ऊँचे पलंगों का त्याग कर दिया है, तो वह नीचे के

पलंगों पर सोई; जब उसने सुना कि आपने मालाएँ और सुगंध त्याग दी हैं, तो उसने भी उन्हें त्याग दिया; जब उसके रिश्तेदारों ने उसे भोजन कराने का संदेश भेजा, तो उसने उनमें से किसी की ओर देखा तक नहीं। मेरी पुत्री इतनी गुणी थी।"

"हे महाराज, न केवल इस जन्म में, बल्कि पिछले जन्म में भी उन्होंने मेरी रक्षा की और मेरे प्रति समर्पित और वफादार रहीं," बुद्ध ने चंदकिन्नार जातक का हवाला देते हुए कहा। उनके साथ बीते समय के संबंध को याद करते हुए, उन्होंने उन्हें सांत्वना दी और महल से चले गए। राजा सुद्धोदन की मृत्यु के बाद, जब प्रजापति गौतमी भिक्षुणी बन गईं , तो यशोदरा भी संघ में शामिल हो गईं और अर्हतत्व प्राप्त किया।

महिला शिष्यों में वे महाअभिज्ञा प्राप्त करने वाली प्रमुख शिष्याओं में से एक थीं । अठहत्तर वर्ष की आयु में उनका देहांत हुआ। उनका नाम थेरीगाथा में नहीं मिलता , लेकिन उनके रोचक श्लोक अपादना में पाए जाते हैं ।

राहुल राजकुमार सिद्धार्थ और राजकुमारी यशोद्धरा के इकलौते पुत्र थे। उनका जन्म उस दिन हुआ जब राजकुमार सिद्धार्थ ने संसार त्यागने का निश्चय किया था। जब वे उद्यान में ध्यानमग्न थे, तभी उन्हें अपने पुत्र के जन्म की शुभ सूचना मिली। सामान्य अपेक्षाओं के विपरीत, समाचार सुनकर प्रसन्न होने के बजाय, उन्होंने कहा, " राहु जातो , बंधनं जातम् " (राहु का जन्म हुआ है, बंधन उत्पन्न हुआ है!)। इसी कारण उनके दादा, राजा सुद्धोदन ने बालक का नाम राहुल रखा।

राहुल का पालन-पोषण उनकी माता और दादा ने पिताविहीन बच्चे के रूप में किया। जब वे सात वर्ष के थे, तब बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद पहली बार कपिलवस्तु का दर्शन किया। उनके आगमन के सातवें दिन राजकुमारी यशोदरा ने युवा राहुल को सुंदर वस्त्र पहनाए और बुद्ध की ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, पुत्र, वह तपस्वी, ब्रह्मा के समान, बीस हजार तपस्वियों से घिरे हुए! वे तुम्हारे पिता हैं, और उनके पास अपार धन था। उनके संन्यास के बाद से हम उन्हें नहीं देख पाते। उनके पास जाओ और अपना उत्तराधिकार मांगो, और कहो, "पिताजी, मैं राजकुमार हूँ। मेरे राज्याभिषेक के बाद मैं सर्वशक्तिमान सम्राट बनूँगा। मुझे धन की आवश्यकता है। कृपया मुझे धन प्रदान करें, क्योंकि पुत्र ही पिता की संपत्ति का स्वामी होता है।"

भोले-भाले राहुल बुद्ध के समक्ष आए और अपनी माता के उपदेशानुसार, अपने उत्तराधिकार का अनुरोध करते हुए अत्यंत स्नेहपूर्वक बोले, "हे तपस्वी, आपकी परछाई भी मुझे प्रिय है।" भोजन के बाद, बुद्ध महल से चले गए और राहुल उनके पीछे-पीछे "मुझे मेरा उत्तराधिकार दीजिए" कहते हुए और अन्य कई बातें कहते हुए चले गए। किसी ने भी उन्हें रोकने का प्रयास नहीं किया। न ही बुद्ध ने उन्हें अपने पीछे आने से रोका। उद्यान पहुँचकर बुद्ध ने सोचा, "यह अपने पिता के धन की इच्छा रखता है, परन्तु वह संसार के साथ जुड़ा है और कष्टों से भरा है। मैं इसे बोधि वृक्ष के चरणों में प्राप्त सात गुना श्रेष्ठ धन दूँगा और इसे दिव्य उत्तराधिकार का स्वामी बनाऊँगा।" उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को बुलाया और उनसे लघु राहुल को दीक्षा देने का अनुरोध किया।

उस समय केवल सात वर्ष के राहुल को संघ में शामिल किया गया था।

अपने प्रिय पोते के अचानक दीक्षा लेने की खबर सुनकर राजा सुद्धोदन को गहरा दुःख हुआ। उन्होंने बुद्ध से विनती करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा कि माता-पिता की पूर्व सहमति के बिना किसी को भी दीक्षा न दी जाए। उन्होंने आगे कहा, "जब बुद्ध ने संसार त्यागा, तब मुझे बहुत दुःख हुआ। नंदा के त्याग के समय भी ऐसा ही हुआ, और विशेषकर राहुल के मामले में। पिता का पुत्र के प्रति प्रेम त्वचा, मांस, नस, हड्डी और मज्जा तक को भेद देता है। कृपया मेरी प्रार्थना स्वीकार करें कि माता-पिता की अनुमति के बिना किसी पुत्र को दीक्षा न दी जाए।" बुद्ध ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसे विनय ग्रंथ में नियम बना दिया। सात वर्ष के एक छोटे लड़के का धार्मिक जीवन व्यतीत करना लगभग अकल्पनीय है। परन्तु समनेर (नवदीक्षित) राहुल, जो सुसंस्कृत, असाधारण रूप से आज्ञाकारी और अनुशासित थे, अपने वरिष्ठों से शिक्षा ग्रहण करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। ऐसा कहा जाता है कि वे सुबह जल्दी उठकर मुट्ठी भर रेत उछालते हुए कहते थे, "आज मुझे अपने गुरुओं से उतना ही उपदेश मिले जितना इन रेत के कणों से मिलता है।" दीक्षा के तुरंत बाद उन्हें दिए गए शुरुआती उपदेशों में से एक अंबलत्तिका-राहुलोवाद सूत्र था , जिसमें उन्होंने सत्यनिष्ठा के महत्व पर जोर दिया था।

एक दिन बुद्ध पूज्य राहुल के पास गए। दूर से उन्हें आते देख राहुल ने उनके लिए आसन की व्यवस्था की और पैर धोने के लिए जल उपलब्ध कराया। बुद्ध ने उनके पैर धोए और पात्र में थोड़ा सा जल छोड़कर कहा, "हे राहुल, क्या तुम पात्र में बचे इस थोड़े से जल को देख रहे हो?" "जी, प्रभु।" "इसी प्रकार, हे राहुल, जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में तुच्छ है।" फिर बुद्ध ने वह थोड़ा सा जल फेंक दिया और कहा, "जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में व्यर्थ है।" बुद्ध ने पात्र को उल्टा कर दिया और कहा, "जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में उलट गया है।"

अंत में बुद्ध ने पात्र को सीधा किया और कहा, "जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का सामंतत्व वास्तव में व्यर्थ है। मैं कहता हूँ कि जो जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म नहीं करता, उससे कोई भी बुराई नहीं हो सकती। इसलिए, हे राहुल, तुम्हें भी ऐसा ही अभ्यास करना चाहिए। मैं खेल में भी झूठ नहीं बोलूँगा।"

सरल उदाहरणों के माध्यम से सत्यनिष्ठा के महत्व पर बल देते हुए, बुद्ध ने उन्हें चिंतन का महत्व और नैतिकता के मापदंड को इस प्रकार समझाया कि एक बच्चा भी समझ सके। बुद्ध ने पूछा, "राहुल, दर्पण किस उद्देश्य से होता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "प्रतिबिंबित

करने के उद्देश्य से, हे प्रभु।" "इसी प्रकार, राहुल, चिंतन करने के बाद ही शारीरिक क्रिया करनी चाहिए; चिंतन करने के बाद ही वाणी क्रिया करनी चाहिए; चिंतन करने के बाद ही मानसिक क्रिया करनी चाहिए।"

"शरीर से जो भी क्रिया आप करना चाहें, उस क्रिया के बारे में आपको यह सोचना चाहिए: 'अब, यह क्रिया जो मैं शरीर से करना चाहता हूँ—क्या यह क्रिया मेरे स्वयं के लिए, या दूसरों के लिए, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी?' तो, यह क्रिया अकुशल है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होगा।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं जो शारीरिक क्रिया करना चाहता हूँ, वह मेरे स्वयं के लिए, दूसरों के लिए, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी।' तो यह शारीरिक क्रिया अनुचित है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होगा। ऐसी शारीरिक क्रिया आपको किसी भी हालत में नहीं करनी चाहिए।" "दूसरी ओर, यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं जो शारीरिक क्रिया करना चाहता हूँ, वह न तो मेरे लिए, न ही दूसरों के लिए, और न ही मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी।' तो यह शारीरिक क्रिया कुशल है, क्योंकि इससे आनंद और प्रसन्नता प्राप्त होगी। ऐसी शारीरिक क्रिया आपको अवश्य करनी चाहिए।" सामनेर राहुल को अपने कार्यों के दौरान और बाद में चिंतन करने की सलाह देते हुए बुद्ध ने कहा, "जब आप शरीर से कोई क्रिया कर रहे हों, तो उस क्रिया के बारे में चिंतन करें: 'क्या यह क्रिया जो मैं अपने शरीर से कर रहा हूँ, मेरे स्वयं के लिए हानिकारक है, या दूसरों के लिए हानिकारक है, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक है?' तो यह शारीरिक क्रिया अकुशल है, जिससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होता है।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं अपने शरीर से जो क्रिया कर रहा हूँ, वह मेरे स्वयं के लिए, दूसरों के लिए और स्वयं तथा दूसरों दोनों के लिए हानिकारक है।' तो यह शारीरिक क्रिया अनुचित है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होता है। ऐसी शारीरिक क्रिया से आपको अवश्य विरक्त रहना चाहिए।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मेरे द्वारा किया गया यह शारीरिक कार्य न तो मेरे स्वयं के लिए हानिकारक है, न ही दूसरों के लिए, और न ही मेरे और दूसरों दोनों के लिए।' तो यह शारीरिक कार्य कुशल है, जिससे सुख और आनंद प्राप्त होता है। ऐसा शारीरिक कार्य आपको बार-बार करना चाहिए।" बुद्ध ने कहा, "यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मेरे द्वारा किया गया यह कार्य अकुशल है।' तो ऐसे कार्य को स्वीकार करें, प्रकट करें और बुद्ध, या विद्वानों, या अपने साथी धर्मनिष्ठों के समक्ष प्रकट करें। स्वीकार करने के बाद, आपको भविष्य में संयम प्राप्त करना चाहिए।" इन विभिन्न संबंधों और एक निरर्थक युद्ध को रोकने की इच्छा ने बुद्ध को शाक्यों और कोलियों के बीच संघर्ष को समाप्त करने के लिए प्रेरित किया।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 200

———————————————————————

(धम्मपद 197, 198 और 199) <<<< पिछला|| धम्मपद200 ||अगला >>>> (धम्मपद201)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 200 - मरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 200 - मरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सुसुखम वात जीवमा
yesam no naththi kincanam(1)
pitibhakkha bhavissama
देव अभासर(2) यथा.

श्लोक 200 : वास्तव में हम बिना किसी चिंता के (अर्थात लोभ, द्वेष और अज्ञान के बिना) बहुत सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं; आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह हम भी आनंदमय तृप्ति (पीति) को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करेंगे।

---

1. नत्थी किंचनम्: बिना किसी चिंता के, यहाँ इसका अर्थ है लालच, दुर्भावना और अज्ञान (राग, दोष और मोह) के बिना।
2. देव आभासर: आभासर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) द्वितीय रूपावचारा ध्यान ब्रह्मलोक के निवास स्थान के तेजस्वी ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हैं।

मारा की कहानी (मृत्यु/रोग/बुराई/भौतिक सुख/धन का देवता, अर्थात् शैतान)
बुद्ध ने पंचशाला (पांच हॉल वाला गांव) नामक ब्राह्मण गांव में इस पुस्तक के श्लोक (200) का उच्चारण मारा के संदर्भ में किया।
एक बार बुद्ध ने दिव्य दर्शन में देखा कि पंचासला गाँव की पाँच सौ कन्याएँ सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने वाली थीं। इसलिए वे उस गाँव के पास ही रहने चले गए। पाँच सौ कन्याएँ नदी किनारे स्नान करने गईं; स्नान के बाद वे सज-धज कर गाँव लौट आईं, क्योंकि उस दिन एक त्योहार था। लगभग उसी समय, बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए पंचासला गाँव में गए, लेकिन गाँव वालों में से किसी ने भी उन्हें कुछ नहीं दिया क्योंकि वे मारा के वश में थे।
वापस लौटने पर बुद्ध की मुलाकात मारा से हुई, जिसने तुरंत उनसे पूछा कि क्या उन्हें बहुत सारा भिक्षा-भोजन प्राप्त हुआ था।
उस दिन भिक्षा प्राप्त न कर पाने में बुद्ध को मारा का हाथ दिखाई दिया और उन्होंने कहा, "हे दुष्ट मारा! तूने ही तो ग्रामीणों को मेरे विरुद्ध भड़काया है। तेरे प्रभाव में आकर उन्होंने मुझे भिक्षा नहीं दी। क्या मैं सही नहीं हूँ?" मारा ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसने सोचा कि बुद्ध को गाँव वापस बुलाना और ग्रामीणों से उनका उपहास निकलवाना मनोरंजक होगा। इसलिए उसने कहा, "हे बुद्ध, आप फिर से गाँव क्यों नहीं जाते? इस बार आपको भिक्षा अवश्य मिलेगी।"
तभी पांच सौ ग्राम कन्याएं वहां पहुंचीं और बुद्ध को प्रणाम किया। उनकी उपस्थिति में, मारा ने बुद्ध का उपहास करते हुए कहा, "हे बुद्ध, चूंकि आपने आज सुबह भिक्षा ग्रहण नहीं की, इसलिए आप भूख से व्याकुल होंगे!" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे दुष्ट मारा, भले ही हमें कोई भोजन न मिले, आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह, जो केवल ध्यान के आनंदमय संतोष (पीति) और सुख (सुख) पर ही जीवित रहते हैं, हम धम्म के आनंदमय संतोष और सुख पर ही जीवित रहेंगे।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 200 : वास्तव में हम बिना किसी चिंता के (अर्थात लोभ, द्वेष और अज्ञान के बिना) बहुत सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं; आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह हम भी आनंदमय तृप्ति (पीति) को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करेंगे।

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ कन्याओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा की कहानी
बुद्ध ने यह श्लोक पंचशाला (पांच कक्षों वाला गांव) नामक एक ब्राह्मण गांव में मारा के संदर्भ में कहा था।
एक बार बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि पंचासाल गाँव की कई कन्याएँ सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने वाली थीं। इसलिए वे उस गाँव के पास ही रहने चले गए। वे कन्याएँ नदी किनारे स्नान करने गईं; स्नान के बाद वे सज-धज कर गाँव लौट आईं, क्योंकि उस दिन एक त्योहार था। लगभग उसी समय, बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए पंचासाल गाँव में गए, लेकिन गाँव वालों में से किसी ने भी उन्हें कुछ नहीं दिया क्योंकि वे मारा के वश में थे।
लौटकर बुद्ध की मुलाकात मारा से हुई, जिसने तुरंत उनसे पूछा कि क्या उन्हें भिक्षा में पर्याप्त भोजन मिला। बुद्ध ने उस दिन भिक्षा न मिलने में मारा का हाथ देखा और उत्तर दिया, “हे दुष्ट मारा! तूने ही तो ग्रामीणों को मेरे विरुद्ध भड़काया है। तेरे प्रभाव में आकर उन्होंने मुझे भिक्षा नहीं दी। क्या मैं सही नहीं हूँ?” मारा ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसने सोचा कि बुद्ध को गाँव वापस बुलाकर ग्रामीणों से उनका अपमान करवाना मनोरंजक होगा। इसलिए उसने कहा, “हे बुद्ध, क्यों न आप फिर से गाँव जाएँ? इस बार आपको भिक्षा अवश्य मिलेगी।”
तभी पांच सौ ग्राम कन्याएं वहां पहुंचीं और बुद्ध को प्रणाम किया। उनकी उपस्थिति में, मारा ने बुद्ध का उपहास करते हुए कहा, “हे बुद्ध, क्योंकि आपने आज सुबह भिक्षा ग्रहण नहीं की, आप भूख से व्याकुल होंगे!” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, “हे दुष्ट मारा, भले ही हमें कोई

भोजन न मिले, आभासर ब्रह्मों की तरह, जो केवल गहन ध्यान (झान) के आनंदमय संतोष (पीति) और सुख (सुख) पर ही जीवित रहते हैं , हम धम्म के आनंदमय संतोष और सुख पर ही जीवित रहेंगे।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 200)

हां ं नो किंचनं नत्थि वात सुसुखं जीवम्

आभास्सर देव यथा पतिभक्खा भविस्सामा

yesaṃ no : हम जो इस प्रकार हैं; kiñcanaṃ natthi : हमारे पास कुछ भी नहीं है; vata susukhaṃ [susukha] : निश्चित रूप से सुखी; jīvāma : (हम) जीते हैं; ābhassarā devā yathā : आभासर स्वर्ग के देवताओं के समान; pītibhakkhā : आनंद पर निर्भर; bhavissāma : (हम) जीवन यापन करते हैं।

हम सुखी हैं, जिन्हें संपत्ति की चिंता नहीं है। आनंद में लीन होकर हम प्रकाशमान आभासर स्वर्ग के देवताओं के समान जीवन व्यतीत करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 200)

सुख : सुखद, प्रसन्न; आनंद, प्रसन्नता, उल्लास, परमानंद। यह तीन भावों (वेदना) में से एक है और यह शारीरिक या मानसिक हो सकता है। ग्रंथों में इंद्रियों के सुख और त्याग के सुख, सांसारिक (शारीरिक; सामिस) और अलौकिक (अनास्निमिक; निरमिस) सुख के बीच अंतर बताया गया है। प्रसन्नता (पीति) ध्यान की प्रारंभिक अवस्था (समाधि) का एक अनिवार्य घटक है । यह प्रथम अवस्था (प्रथम ध्यान) के पाँच घटकों (झानंग) में से एक है और द्वितीय अवस्था (द्वितीय ध्यान) तक इसमें समाहित है।

सुख-संज्ञा : वास्तव में पीड़ा में सुख की अनुभूति (दुक्खे सुख-संज्ञा) जो कि चार विकृतियों (विपल्लास) में से एक है।

आभासरा : प्रकाशमान प्राणी रूपलोक के दिव्य प्राणियों का एक वर्ग हैं ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 201

———————————————————————————

(धम्मपद200) <<<< पिछला || धम्मपद201 || अगला >>>> (धम्मपद202)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 201 - कोसलारन्नो परजाया वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 201 - कोसलारन्नो परजाया वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

जयम वेरम पसावती
dukkham seti parajito
upasanto1 sukham seti
हित्वा जयपराजयम।

———————————————————————————

श्लोक 201 : विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित लोग दुख में जीते हैं; शांतिप्रिय लोग विजय और पराजय का त्याग करके सुखी जीवन जीते हैं।

———————————————————————————

कोसल के राजा की पराजय की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (201) का उच्चारण किया, जिसमें कोसल के राजा का जिक्र था, जो अपने भतीजे अजातसत्तु द्वारा युद्ध में पराजित हुआ था।

अजातसत्तु के विरुद्ध युद्ध में कोसल के राजा को तीन बार परास्त होना पड़ा। अजातसत्तु राजा बिम्बिसार और उनकी बहन रानी वेदेही का पुत्र था। कोसल के राजा अपनी पराजय से लज्जित और अत्यंत दुखी थे। उन्होंने विलाप करते हुए कहा, "कितना अपमान! मैं इस बालक को भी नहीं जीत सका, जिसमें अभी भी माँ के दूध की महक है। इससे अच्छा तो मैं मर जाऊँ।" दुखी और लज्जित होकर राजा ने भोजन त्याग दिया और बिस्तर पर पड़े रहे। राजा के इस कष्ट की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई और जब बुद्ध को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जो विजय प्राप्त करता है, उसमें शत्रुता और घृणा बढ़ती है; जो पराजित होता है, उसे पीड़ा और कष्ट सहना पड़ता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 201 : विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित लोग दुख में जीते हैं; शांतिप्रिय लोग विजय और पराजय का त्याग करके सुखी जीवन जीते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोसल के राजा की पराजय की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसे युद्ध में उसके अपने भतीजे अजातसत्तु ने पराजित किया था।

अजातसत्तु के विरुद्ध युद्ध में कोसल के राजा को तीन बार परास्त होना पड़ा। अजातसत्तु राजा बिंबिसार और उनकी बहन रानी वेदेही का पुत्र था। कोसल के राजा अपनी पराजय से लज्जित और अत्यंत दुखी थे। उन्होंने विलाप करते हुए कहा, "कितना अपमान! मैं इस बालक को भी नहीं जीत सका, जिसमें अभी भी माँ के दूध की महक है। इससे अच्छा तो मैं मर जाऊँ।" दुखी और अत्यंत लज्जित होकर राजा ने भोजन त्याग दिया और बिस्तर पर पड़े रहे। राजा के इस कष्ट की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई और जब बुद्ध को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जो विजय प्राप्त करता है, उसमें शत्रुता और घृणा बढ़ती है; जो पराजित होता है, उसे पीड़ा और कष्ट भोगना पड़ता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 201)

जयं वेरं पसवति पराजितो दुक्खं सेति
उपसंतो जयापराजयं हित्वा सुखं सेति

जयं [जया]: विजय; वेरं पश्वति : घृणा उत्पन्न करता है; पराजितो [पराजिता]: पराजित; दुक्खाँ [दुक्खा]: दुःख में; सेति : रहता है; उपसंतो [उपसंता]: शांत व्यक्ति; जयपराजयं हित्वा : विजय और पराजय दोनों से ऊपर उठकर; सुखं [सुखा]: ख़ुशी में; सेति : निवास करता है

विजय से घृणा उत्पन्न होती है। पराजित व्यक्ति दुख में जीता है। परन्तु जिसका मन शांत और स्थिर होता है, वह सुखी जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि वह विजय और पराजय दोनों से ऊपर उठ चुका होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 201)

राजा कोसल । विजय और पराजय की वास्तविकता को समाहित करने वाला यह श्लोक बुद्ध ने राजा कोसल की अपने भतीजे राजा अजातसत्त के हाथों हुई पराजय के अवसर पर कहा था। राजा महा कोसल के पुत्र राजा पसेनदी कोसल, जो सावत्थी को राजधानी बनाकर कोसल राज्य पर शासन करते थे, बुद्ध के एक अन्य संरक्षक थे। वे बुद्ध के समकालीन थे और विभिन्न कलाओं में निपुण होने के कारण, उन्हें अपने पिता द्वारा जीवित रहते हुए ही राजा बनाए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका धर्म परिवर्तन संभवतः बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में हुआ होगा। संयुत्त निकाय में वर्णित है कि एक बार वे बुद्ध के पास आए और उनसे उनके ज्ञानोदय के बारे में प्रश्न करते हुए उन्हें कम उम्र और कम दीक्षा वाला बताया।

बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे महाराज, चार ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका उपेक्षित या तिरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए। वे हैं क्षत्रिय (योद्धा), नाग, अग्नि और भिक्षु।" इसके बाद उन्होंने राजा को इस विषय पर एक रोचक उपदेश दिया। उपदेश के समापन पर राजा ने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और तुरंत बुद्ध के अनुयायी बन गए। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक वे बुद्ध के प्रति अत्यंत आसक्त रहे। कहा जाता है कि एक बार राजा ने बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और उनके चरणों को चूमते हुए सहलाया।

उनकी प्रमुख रानी मल्लिका, जो एक अत्यंत धर्मनिष्ठ और बुद्धिमान महिला थीं और धम्म की भली-भांति ज्ञाता थीं, उनके धार्मिक उत्साह के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। एक सच्चे मित्र की तरह, उन्हें कई अवसरों पर उनके धार्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ा।

एक दिन राजा ने सोलह विचित्र सपने देखे और उनका वास्तविक अर्थ न जानते हुए वे अत्यंत व्याकुल हो गए। उनके ब्राह्मण सलाहकारों ने उनका अर्थ अशुभ संकेत बताया और उन्हें इससे उत्पन्न होने वाले खतरों को दूर करने के लिए एक भव्य पशु बलि देने का निर्देश दिया। सलाह के अनुसार, उन्होंने इस अमानवीय बलि के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ कर लीं, जिसके परिणामस्वरूप हजारों असहाय प्राणियों की जान चली जाती। रानी मल्लिका ने इस बर्बर कृत्य के बारे में सुनकर राजा को बुद्ध से अपने सपनों का अर्थ जानने के लिए प्रेरित किया, जिनकी समझ सांसारिक ब्राह्मणों की समझ से कहीं अधिक थी। राजा बुद्ध के पास गए और अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। उन्होंने अपने सोलह सपनों का वर्णन करते हुए उनका अर्थ जानना चाहा, और बुद्ध ने उन्हें उनका पूर्ण अर्थ समझाया।
बिंबिसार राजा के विपरीत, कोसल राजा को बुद्ध के अनेक ज्ञानवर्धक और शिक्षाप्रद प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संयुत्त निकाय में कोसल संयुत्त नामक एक विशेष खंड है जिसमें बुद्ध द्वारा राजा को दिए गए अधिकांश प्रवचन और प्रवचन दर्ज हैं।
एक बार जब राजा बुद्ध के साथ बैठे थे, तब उन्होंने कुछ घने बालों वाले शरीर और लंबे नाखूनों वाले तपस्वियों को वहाँ से गुजरते देखा। वे अपनी सीट से उठकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए अपना नाम पुकारा, "हे पूज्यजनों, मैं कोसल का राजा, पसेनादि हूँ।" उनके चले जाने पर वे बुद्ध के पास लौट आए और जानना चाहा कि क्या वे अरहत थे या अरहतत्व प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बुद्ध ने समझाया कि भौतिक सुखों में लिप्त साधारण गृहस्थों के लिए यह परखना कठिन है कि दूसरे अरहत हैं या नहीं, और उन्होंने निम्नलिखित रोचक बातें कहीं: " किसी के आचरण (शील) को संगति (सम्वासेन) से समझा जा सकता है, और वह भी अल्पकाल में नहीं, बल्कि सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा। किसी की पवित्रता (सोचेय्यम) को संवाद (सम्वहारेन) से समझा जा सकता है। संकट के समय में ही किसी के धैर्य को समझा जा सकता है। किसी की बुद्धिमत्ता को चर्चा से समझा जा सकता है, और वह भी अल्पकाल में नहीं, बल्कि सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा।"

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 202

(धम्मपद 201) <<<< पिछला || धम्मपद 202 || अगला >>>> (धम्मपद 203)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 202 - अन्नतारकुलदारिका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 202 - अन्नतारकुलदारिका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Natthi ragasamo aggi
natthi dosasamo kali
natthi khandhasama dukkha
natthi santiparam sukham.

श्लोक 202 : जुनून जैसी कोई आग नहीं; नफरत जैसी कोई बुराई नहीं; खन्धों के बोझ जैसा कोई दुख नहीं; पूर्ण शांति (अर्थात निर्वाण) से बढ़कर कोई आनंद नहीं।

एक युवा दुल्हन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य के घर पर इस पुस्तक के श्लोक (202) का उच्चारण एक युवा दुल्हन के संदर्भ में किया।

जिस दिन एक युवती का विवाह एक युवक से होने वाला था, उस दिन दुल्हन के माता-पिता ने बुद्ध और उनके अस्सी शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। युवती को घर में इधर-उधर घूमते और भिक्षा भोजन में मदद करते देख दूल्हा अत्यंत उत्साहित हो गया और वह बुद्ध और अन्य भिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ रहा। बुद्ध दूल्हा की भावनाओं को भलीभांति जानते थे और यह भी कि दूल्हा और दुल्हन दोनों के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया था।

अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने यह इच्छा की कि दूल्हा, दुल्हन को न देख पाए। जब युवक को युवती दिखाई देना बंद हो गई, तो वह बुद्ध पर पूर्ण ध्यान दे सका और उसके मन में बुद्ध के प्रति प्रेम और आदर और भी प्रबल हो गया। तब बुद्ध ने युवक से कहा, "हे युवक, कामवासना की आग के समान कोई अग्नि नहीं; क्रोध और घृणा के समान कोई बुराई नहीं; पाँचों स्कंधों के बोझ के समान कोई कष्ट नहीं; निर्वाण की पूर्ण शांति के समान कोई आनंद नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 202 : जुनून जैसी कोई आग नहीं; नफरत जैसी कोई बुराई नहीं; खन्धों के बोझ जैसा कोई दुख नहीं; पूर्ण शांति (अर्थात निर्वाण) से बढ़कर कोई आनंद नहीं।

प्रवचन के अंत में दूल्हा और दुल्हन दोनों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक युवा दुल्हन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य के घर में एक युवा दुल्हन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जिस दिन एक युवती का विवाह एक युवक से होने वाला था, उस दिन दुल्हन के माता-पिता ने बुद्ध और उनके अस्सी शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। युवती को घर में भिक्षा भोजन में मदद करते देख दूल्हा अत्यंत उत्साहित हो गया और वह बुद्ध और अन्य भिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ रहा। बुद्ध दूल्हे की भावनाओं को भलीभांति जानते थे और यह भी कि दूल्हा और दुल्हन दोनों के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया था।

अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने यह इच्छा की कि दूल्हा, दुल्हन को न देख पाए। जब युवक को दुल्हन दिखाई देना बंद हो गई, तो वह बुद्ध पर पूर्ण ध्यान दे सका और उसके मन में बुद्ध के प्रति प्रेम और आदर और भी प्रबल हो गया। तब बुद्ध ने युवक से कहा, "हे युवक, प्रेम की आग के समान कोई अग्नि नहीं; क्रोध और घृणा के समान कोई बुराई नहीं; पांचों स्कंधों के बोझ के समान कोई कष्ट नहीं; निर्वाण के समान कोई आनंद नहीं।" प्रवचन के अंत में, दूल्हा और दुल्हन दोनों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 202)

रागसमो अग्गि नत्थि , दोसासोमो काली नत्थि

खंडसामा दुक्खा नत्थि , नत्थि शांतिपरं सुखं

रागसमो [रागसम]: वासना की तरह; अग्गी नत्थि : (वहां) कोई आग नहीं है; दोसासामो [दोसासामा]: क्रोध की तरह; काली नत्थि : (कोई अपराध नहीं है); खंडसमा : भौतिक अस्तित्व की तरह; दुक्खा नत्थि : (कोई दर्द नहीं है); शांतिपारां [शांतिपारा]: मन की शांति से भी ऊंचा; सुखं नत्थि : कोई खुशी नहीं है

जुनून जैसी कोई आग नहीं। क्रोध जैसा कोई अपराध नहीं। अनेक अनुभवों के व्यक्तिगत समूह जैसा कोई दर्द नहीं। परम शांति से बढ़कर कोई सुख नहीं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 202)

खन्धासमादुक्खा नत्थि : शारीरिक पीड़ा के समान कोई पीड़ा नहीं। अस्तित्व के पाँच समूह या आसक्ति के समूह (उपादानक्खन्ध); वैकल्पिक अर्थ: समूह, आसक्ति के विषयों की श्रेणियाँ।

ये वे पाँच पहलू हैं जिनमें बुद्ध ने अस्तित्व की सभी भौतिक और मानसिक घटनाओं का सार प्रस्तुत किया है, और जो अज्ञानी व्यक्ति को उसके अहंकार या व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं, अर्थात्:

रूपाखंड समूह (रूपाखंड);

वेदना (बोध);

धारणा (सन्ना);

मानसिक संरचना (संखार);
चेतना-समूह (विञ्ञानखंड)।
"भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल की जो भी भौतिक वस्तुएँ विद्यमान हैं, चाहे वे स्वयं की हों या बाहरी, स्थूल हों या सूक्ष्म, उच्च हों या निम्न, दूर हों या निकट, वे सब भौतिकता समूह में आती हैं। जो भी भावनाएँ, बोध, मानसिक संरचनाएँ और चेतनाएँ विद्यमान हैं, वे सब चेतना समूह में आती हैं।"
एक अन्य विभाजन मन और देह (नामा-रूप) के दो समूहों में है , जबकि धम्मसंगनी में सभी घटनाओं को तीन समूहों के रूप में माना जाता है। जिसे व्यक्तिगत अस्तित्व कहा जाता है, वह वास्तव में उन मानसिक और शारीरिक घटनाओं की एक प्रक्रिया मात्र है, एक ऐसी प्रक्रिया जो अनादि काल से चली आ रही है और मृत्यु के बाद भी अकल्पनीय रूप से लंबे समय तक जारी रहेगी। हालांकि, ये पांच समूह न तो अकेले और न ही सामूहिक रूप से किसी स्व-निर्भर वास्तविक अहं-सत्ता या व्यक्तित्व (अत्ता) का निर्माण करते हैं, और न ही इनसे अलग कोई ऐसी सत्ता पाई जाती है।
अत: ऐसे अहं-सत्ता या व्यक्तित्व को परम अर्थ में वास्तविक मानना मात्र एक भ्रम सिद्ध होता है।
जब सभी घटक भाग मौजूद हों,
'गाड़ी' पदनाम का प्रयोग किया जाता है;
ठीक इसी प्रकार, जहाँ पाँच समूह मौजूद हैं,
हम सजीव प्राणियों की बात कर रहे हैं।
यहां इस तथ्य पर जोर देना आवश्यक है कि ये पांच समूह, सही मायने में, बुद्ध द्वारा किया गया एक अमूर्त वर्गीकरण मात्र हैं, लेकिन वास्तव में इनका कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि चेतना की किसी भी अवस्था में इन समूहों के केवल एक-एक प्रतिनिधि ही उत्पन्न हो सकते हैं, जो अधिकतर परिवर्तनशील होते हैं। उदाहरण के लिए, चेतना की एक इकाई के साथ केवल एक ही प्रकार की भावना, जैसे कि आनंद या दुःख, जुड़ी हो सकती है, एक से अधिक कभी नहीं। इसी प्रकार, दो भिन्न-भिन्न बोध एक ही क्षण में उत्पन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकार, विभिन्न प्रकार की इंद्रिय-ज्ञान या चेतना में से, एक समय में केवल एक ही मौजूद हो सकती है, उदाहरण के लिए, देखना, सुनना या आंतरिक चेतना। हालांकि, पचास मानसिक संरचनाओं में से, प्रत्येक चेतना अवस्था के साथ कम या अधिक संख्या में संरचनाएं हमेशा जुड़ी रहती हैं।
बौद्ध धर्म पर कुछ लेखकों ने यह नहीं समझा है कि पाँच खंधा केवल वर्गीकरणात्मक समूह हैं, और उन्होंने इन्हें ठोस इकाइयों (ढेरों, बंडलों) के रूप में माना है, जबकि वास्तव में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये समूह कभी भी अपने सभी घटकों की एक साथ समग्रता में विद्यमान नहीं होते। साथ ही, किसी समूह के वे एकल घटक जो किसी भी देह-मन प्रक्रिया में उपस्थित होते हैं, क्षणभंगुर प्रकृति के होते हैं, और यही बात उनके विभिन्न संयोजनों पर भी लागू होती है। भावना, बोध और मानसिक संरचनाएँ चेतना की एक इकाई के केवल विभिन्न पहलू और कार्य हैं। वे चेतना के लिए वैसे ही हैं जैसे सेब के लिए लालिमा, कोमलता और मिठास, और उनका अलग अस्तित्व उतना ही कम है जितना उन गुणों का।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 203

(धम्मपद 202) <<<< पिछला || धम्मपद 203 || अगला >>>> (धम्मपद 204)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 203 - एक उपासक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 203 - एक उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
जिघच्छपरमा रोग
संखारपरमा दुःख
etam natva yathabhutam

nibbanam paramam sukham.

———————————————————————

श्लोक 203 : भूख सबसे बड़ा रोग है, खन्ध सबसे बड़ा रोग है। ज्ञानी, इन्हें इनके वास्तविक स्वरूप में जानकर, निर्वाण, परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

———————————————————————

एक गृहस्थ शिष्य की कहानी

बुद्ध ने अलावी गाँव में इस पुस्तक का श्लोक (203) एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में कहा।

एक दिन बुद्ध ने दिव्य दर्शन में देखा कि अलावी गाँव में एक गरीब व्यक्ति सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। इसलिए वे उस गाँव गए, जो सावत्थी से तीस योजन दूर था। संयोगवश, उसी दिन उस व्यक्ति का बैल खो गया था। इसलिए वह बैल की तलाश में था। इसी दौरान, अलावी गाँव के एक घर में बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी जा रही थी। भोजन के बाद, लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए तैयार हो गए; लेकिन बुद्ध उस युवक की प्रतीक्षा करते रहे। अंततः, अपना बैल पाकर, वह व्यक्ति दौड़ता हुआ उस घर में आया जहाँ बुद्ध थे। वह व्यक्ति थका हुआ और भूखा था, इसलिए बुद्ध ने दानदाताओं को उसे भोजन देने का निर्देश दिया। जब उस व्यक्ति को भोजन मिल गया, तभी बुद्ध ने प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने चरण-दर-चरण धम्म की व्याख्या की और अंत में चार आर्य सत्यों की ओर अग्रसर हुए। प्रवचन के अंत में उस गृहस्थ शिष्य ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

इसके बाद बुद्ध और उनके शिष्य जेतवन मठ लौट आए। रास्ते में भिक्षुओं ने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि बुद्ध ने प्रवचन देने से पहले उन लोगों को उस युवक को भोजन कराने का निर्देश दिया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! आपकी बात सत्य है, परन्तु आप यह नहीं समझते कि मैं यहाँ तीस योजन की इतनी दूरी तय करके इसलिए आया हूँ क्योंकि मैं जानता था कि वह धम्म ग्रहण करने के लिए उपयुक्त अवस्था में है। यदि वह बहुत भूखा होता, तो भूख की पीड़ा उसे धम्म को पूर्णतः ग्रहण करने से रोक सकती थी। वह व्यक्ति सुबह से अपने बैल की खोज में निकला था, और बहुत थका हुआ और भूखा था। भिक्षुओं, अंततः भूख से अधिक कष्टदायी कोई रोग नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 203 : भूख सबसे बड़ा रोग है, खन्ध सबसे बड़ा रोग है। ज्ञानी, इन्हें इनके वास्तविक स्वरूप में जानकर, निर्वाण, परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक गृहस्थ शिष्य की कहानी

बुद्ध ने यह श्लोक आलवी गांव में एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में कहा था।

एक दिन बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि आलवी गाँव में एक गरीब व्यक्ति को सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त होगा। अतः वे उस गाँव गए, जो सावत्थी से तीस योजन (लीग) दूर था। संयोगवश, उसी दिन उस व्यक्ति के बैल खो गए। इसलिए वह बैलों की खोज में लगा हुआ था। इसी दौरान, आलवी गाँव के एक घर में बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी जा रही थी। भोजन के बाद, लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए तैयार हो गए; परन्तु बुद्ध उस युवक की प्रतीक्षा करते रहे। अंततः, अपने बैल पाकर वह व्यक्ति दौड़ता हुआ उस घर में आया जहाँ बुद्ध थे। वह व्यक्ति थका हुआ और भूखा था, इसलिए बुद्ध ने दानदाताओं को उसे भोजन देने का निर्देश दिया। जब उस व्यक्ति को भोजन मिल गया, तभी बुद्ध ने प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने चरण-दर-चरण धम्म की व्याख्या की और अंत में चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में गृहस्थ शिष्य को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

इसके बाद बुद्ध और उनके शिष्य जेतवन मठ लौट आए। रास्ते में भिक्षुओं ने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि बुद्ध ने प्रवचन देने से पहले रुककर उन लोगों को उस युवक को भोजन कराने का निर्देश दिया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! आपकी बात सत्य है, परन्तु आप यह नहीं समझते कि मैं यहाँ तीस योजन की इतनी दूरी तय करके इसलिए आया हूँ क्योंकि मैं जानता था कि वह धम्म ग्रहण करने के लिए उपयुक्त अवस्था में है। यदि वह बहुत भूखा होता, तो भूख की पीड़ा उसे धम्म को पूर्णतः ग्रहण करने से रोक सकती थी। वह व्यक्ति सुबह से अपने बैलों की खोज में निकला था, और बहुत थका हुआ और भूखा था। भिक्षुओं! अंततः, भूख से अधिक कष्टदायी कोई रोग नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 203)

रोगा जिघच्चा परमा दुख संखारा परमा
एतं यथाभूतं नात्वा निब्बाणं परमं सुखं

रोगा : रोगों में सबसे बुरा; जिगच्छा परमा : भूख सबसे बुरी है; दुःखा : पीड़ाओं में सबसे बुरा; संखारा परमा : इनके घटक सबसे बुरे हैं; एतं : ये; यथाभूतं [यथाभूत]: (जब) वास्तविकता से; ञत्वा : समझा जाता है; निर्वाणं [निब्बान]: अमरता; परमं सुखं [सुख]: सर्वोच्च आनंद है

भूख सबसे गंभीर रोग है। सबसे कष्ट शरीर के सूक्ष्म अंगों में होता है। यदि इस बात को वास्तविकता से समझा जाए, तो निर्वाण ही सर्वोच्च आनंद है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 203)

संखारा परमा दुःख : संखारा के घटक सबसे भीषण पीड़ा हैं। संखारा शब्द के विभिन्न अर्थ होते हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक समझना चाहिए। इसके सबसे अधिक प्रयोग में, संदर्भ के अनुसार, सामान्य शब्द 'निर्माण' का प्रयोग किया जा सकता है। यह शब्द निर्माण की क्रिया, या निर्मित होने की निष्क्रिय अवस्था, या दोनों को संदर्भित कर सकता है।

(1) आश्रित उत्पत्ति के सूत्र (पटिच्च-समुप्पाद) की दूसरी कड़ी के रूप में , संस्कार का सक्रिय पहलू है, जो सृजन करता है, और कर्म को दर्शाता है जो शरीर (काय), वाणी (वची) या मन (चित्त या मनो) की लाभकारी या अलाभकारी इच्छा-संबंधी गतिविधि (चेतना) है । क्योंकि, इसी अर्थ में, लेखक ने 'कर्म-सृजन' शब्द गढ़ा है। अन्य अंशों में, इसी संदर्भ में, संस्कार को (क) पुण्य कर्म-सृजन (पुण्याभिसंखार), (ख) पाप कर्म (अपुण्याभिसंखार), (ग) अविचलित (आनेंजभिसंखार) के संदर्भ में परिभाषित किया गया है । यह त्रिविध विभाजन अस्तित्व के सभी क्षेत्रों में कर्मिक गतिविधि को समाहित करता है: पुण्य कर्म- सृजन इंद्रिय और सूक्ष्म-भौतिक क्षेत्र तक विस्तारित होते हैं, पापी कर्म केवल इंद्रिय क्षेत्र तक और अविचल केवल अभौतिक क्षेत्र तक।

(2) उपर्युक्त तीन शब्द, काय- , वची- और चित्त (या मनो), कभी-कभी बिल्कुल अलग अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं, जैसे (क) शारीरिक क्रिया जैसे श्वास लेना और छोड़ना; (ख) मौखिक क्रिया जैसे विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन; और (ग) मानसिक क्रिया जैसे भावना, बोध।

(3) यह अस्तित्व के चौथे समूह (संखार-क्खन ध) को भी दर्शाता है, और इसमें सभी मानसिक संरचनाएं शामिल हैं, चाहे वे कर्मिक रूप से गठित चेतना से संबंधित हों या नहीं।

(4) यह आगे चलकर किसी भी निर्मित (संखत) और सशर्त वस्तु के अर्थ में आता है , और इसमें संसार की सभी वस्तुएँ, अस्तित्व की सभी घटनाएँ शामिल हैं। यह अर्थ प्रसिद्ध वाक्य "सभी रचनाएँ अनित्य हैं... दुख के अधीन हैं" (सब्बे संखारा अनिच्चा ... दुक्खा) पर लागू होता है। हालाँकि, उस संदर्भ में, संखारा शब्द और भी व्यापक और सर्वव्यापी शब्द धम्म (वस्तु) के अधीन है; क्योंकि धम्म में अनिर्मित या अशर्त तत्व (असंखत-धातु), अर्थात् निर्वाण भी शामिल है (उदाहरण के लिए, सब्बे धम्म अनत्ता में : सभी वस्तुएँ आत्मा रहित हैं)।

संखारा का अर्थ 'इच्छित प्रयास' भी है, उदाहरण के लिए, रोड्स टू पावर (इद्धि-पाद) के सूत्र में; ससंखारा- और असंखारा-परिनिब्बायी (अनगामी) में; और अभिधम्म के शब्दों असंखारिका और ससंखारिका-चित्त में , अर्थात् बिना प्रयास के - सहज रूप से, और प्रयास के साथ - प्रेरित होकर।

प्रतीत्यसमुत्पाद में, संस्कार न तो अवचेतन है और न ही मात्र एक प्रवृत्ति, बल्कि यह पूर्णतः चेतन और सक्रिय कर्मिक संकल्प है। पांच पंथों के संदर्भ में, मानसिक संरचनाओं (संस्कार-खंड) के कुछ ही कारक अवचेतन के सहवर्ती के रूप में उपस्थित होते हैं, परन्तु वे केवल अवचेतन तक ही सीमित नहीं हैं और न ही वे मात्र प्रवृत्तियाँ हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 204

(धम्मपद 203) <<<< पिछला || धम्मपद 204 || अगला >>>> (धम्मपद 205)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 204 - पसेनादिकोसल वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 204 - पसेनादिकोसल वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
आरोग्यपरम लाभ
संतुत्थिपराामम धनम
vissasaparama(1) nati
nibbanam paramam sukham.

श्लोक 204 : स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, एक विश्वसनीय मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है, निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।

---

1. vissasaparama: vissasa + parama: vissasa का यहाँ अर्थ विश्वास है, जिसे आत्मीयता के रूप में भी समझा जाता है।

कोसला के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (204) कहा।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) सुबह का भरपेट भोजन करने के बाद जेतवन मठ गए। कहा जाता है कि उस दिन राजा ने एक चौथाई टोकरी (लगभग आधा बुशेल) चावल मांस की करी के साथ खाए थे; इसलिए बुद्ध के प्रवचन सुनते समय उन्हें बहुत नींद आ रही थी और वे लगातार ऊंघ रहे थे। उन्हें ऊंघते देख बुद्ध ने उन्हें प्रतिदिन थोड़ा कम चावल खाने और धीरे-धीरे मात्रा कम करते हुए न्यूनतम मात्रा का सोलहवाँ भाग तक लाने की सलाह दी। राजा ने ऐसा ही किया और पाया कि कम खाने से वे पतले तो हो गए, लेकिन उन्हें बहुत हल्कापन महसूस हुआ और उनका स्वास्थ्य बहुत बेहतर हो गया। जब उन्होंने बुद्ध को इस बारे में बताया, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "हे राजा! स्वास्थ्य एक बड़ा वरदान है; संतोष एक बड़ा धन है; एक करीबी और भरोसेमंद मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है; निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 204 : स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, एक विश्वसनीय मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है, निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसला के राजा पसेनादी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। अपने जीवन के एक निश्चित काल में, राजा पसेनादि कोसल बाल्टी भर-भरकर उबले हुए चावल, और उतनी ही मात्रा में चटनी और करी खाते थे। एक दिन नाश्ता करने के बाद, अधिक खाने से उत्पन्न हुई सुस्ती से उबरने में असमर्थ होकर, वे बुद्ध के दर्शन करने गए और उनके सामने अत्यंत थके हुए रूप में इधर-उधर टहलने लगे। उन्हें नींद आने की तीव्र इच्छा हुई, लेकिन लेटने और शरीर को फैलाने का साहस न होने के कारण, वे एक करवट बैठ गए। तब बुद्ध ने उनसे कहा, “हे महाराज, क्या आप अच्छी तरह से विश्राम किए बिना आए हैं?” “नहीं, पूज्यवर; लेकिन मुझे भोजन करने के बाद हमेशा बहुत कष्ट होता है।”
तब बुद्ध ने उनसे कहा, “महाराज, अधिक खाने से इतना कष्ट होता है।” ऐसा कहकर बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया: “यदि कोई व्यक्ति आलस्य में लिप्त हो जाए, अधिक खाए, सोने में समय व्यतीत करे, और अनाज खाए हुए सूअर की तरह इधर-उधर लोटता रहे, तो ऐसा मूर्ख व्यक्ति बार-बार जन्म लेता रहेगा।” इस श्लोक से राजा को उपदेश देने के बाद बुद्ध ने आगे कहा, “महाराज, भोजन में संयम बरतना चाहिए, क्योंकि संयमित भोजन में सुख है।” और आगे उपदेश देते हुए बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया: “यदि कोई व्यक्ति सदा सचेत रहे, भोजन में संयम बरते, तो उसके कष्ट कम होंगे; वह धीरे-धीरे वृद्ध होगा और अपना जीवन व्यतीत करेगा।”
राजा इस श्लोक को याद नहीं कर पा रहे थे। इसलिए बुद्ध ने पास खड़े राजा के भतीजे, राजकुमार सुदस्सन से कहा, “इस श्लोक को याद कर लो।” सुदस्सन ने बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर, इस श्लोक को याद करने के बाद मुझे क्या करना चाहिए?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “जब राजा भोजन करें, और उबले हुए चावल का अंतिम टुकड़ा उठाने ही वाले हों, तब तुम्हें यह श्लोक पढ़ना है। राजा इसका अर्थ

समझ जाएंगे और तुरंत चावल का वह टुकड़ा फेंक देंगे। जब राजा के अगले भोजन के लिए चावल उबालने का समय हो, तब तुम्हें उतने ही ताजे चावल लाने हैं जितने उबले हुए चावल के दाने उस टुकड़े में थे।" "बहुत अच्छा, हे पूज्यवर," सुदस्सन ने उत्तर दिया। इसलिए, सुबह और शाम, जब राजा भोजन करते थे, तो उनके भतीजे ठीक उसी समय वह श्लोक सुनाते थे जब राजा उबले हुए चावल का आखिरी टुकड़ा खाने वाले होते थे, और फिर राजा के अगले भोजन के लिए उतने ही ताजे चावल लाते थे जितने उबले हुए चावल के दाने राजा द्वारा फेंके गए उबले हुए चावल के टुकड़े में थे। और हर बार जब राजा वह श्लोक सुनते थे, तो वे एक हजार सिक्के दान में दे देते थे। राजा प्रतिदिन एक प्याला उबले हुए चावल खाकर संतुष्ट रहते थे, इससे अधिक कभी नहीं खाते थे। कुछ समय बाद वे प्रसन्न और दुबले-पतले हो गए।

एक दिन राजा बुद्ध को प्रणाम करने गए और उन्हें प्रणाम करके बोले, "हे पूज्यवर, अब मैं प्रसन्न हूँ। मैं फिर से शिकार करने और जंगली पशुओं और घोड़ों को पकड़ने में सक्षम हूँ। मैं अपने भतीजे से झगड़ा करता रहता था। लेकिन हाल ही में मैंने अपनी पुत्री, राजकुमारी वजिरा, का विवाह अपने भतीजे से करवाया है। मैंने उसे यह गाँव भी दे दिया है ताकि वह स्नान कर सके। मेरे भतीजे से मेरा झगड़ा समाप्त हो गया है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ। कुछ दिन पहले राजपरिवार का एक कीमती पत्थर खो गया था; वह अभी हाल ही में मुझे वापस मिला है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ। आपके शिष्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने की इच्छा से मैंने आपके एक रिश्तेदार की पुत्री को अपने घर में रखा है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे महाराज, स्वास्थ्य सबसे बड़ा वरदान है, जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उससे संतोष सबसे बड़ा धन है, और विश्वास सबसे अच्छा रिश्तेदार है। लेकिन निर्वाण से बढ़कर कोई सुख नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 204)

लाभ आरोग्यपरमा धनं सन्तुति परमं

नाति विश्सपरायणं निब्बाणं परमं सुखं

लाभ : सभी प्राप्तियों में सर्वोपरि; आरोग्यपरमा : स्वास्थ्य सर्वोपरि; धनं [धन]: सभी धन में सर्वोपरि; संतोष परमं [परमा]: सुख सर्वोपरि; ञाती : सभी संबंधों में सर्वोपरि; विश्वासयोग्य लोग सर्वोपरि; निर्वाण [निब्बान]: अमरता; परमं सुखं [सुख]: परम आनंद है

प्राप्तियों में सर्वोपरि है अच्छा स्वास्थ्य। धन में सर्वोपरि है मन की शांति। सगे-संबंधियों में सबसे विश्वसनीय और सर्वोच्च है निर्वाण।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 204)

vissāsā paramā ñātī : भरोसेमंद ही सबसे बड़े रिश्तेदार होते हैं। रिश्तेदार आम तौर पर सबसे भरोसेमंद होते हैं। रिश्ते भरोसे की नींव पर टिके होते हैं। पारंपरिक टीका कहती है: Mātā vā hotu pitā vā tena saddhim vissāso natthi , yena aññatakena pana saddhim vissāso atthi so asambandhopi paramo uttamo ñātī . यदि किसी को अपने माता-पिता या अन्य रिश्तेदारों पर भी भरोसा नहीं है, तो वे वास्तव में रिश्तेदार नहीं हैं। लेकिन, दूसरी ओर, यदि कोई किसी ऐसे व्यक्ति पर भरोसा कर सकता है जो रिश्तेदार न हो, तो वह वास्तव में एक बड़ा रिश्तेदार है। भरोसे का अर्थ है सहमति, घनिष्ठता और विश्वास। कुछ लोगों के इरादों को समझना कभी-कभी मुश्किल होता है, और कुछ लोग दुष्ट स्वभाव के होते हैं, इसलिए ऐसे लोगों पर भरोसा करना—चाहे वे रिश्तेदार हों या अजनबी—दु:खद परिणाम ला सकता है। इस प्रकार, ऐसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सके। सच्चे और वास्तविक भरोसे से ही अच्छे परिणाम मिलते हैं। तीन चीजें हैं जो मनुष्य के पतन का कारण बनती हैं: लोभ प्रमाद विश्वास पुरुषो नाशयते त्रिभि : तस्मा लोभो नकार्तव्यं प्रमादो न विश्वासेत् । मनुष्य के पतन का कारण बनने वाली तीन चीजें हैं: कंजूसी, आलस्य और गलत विश्वास।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 205

(धम्मपद204) <<<< पिछला|| धम्मपद205 ||अगला >>>> (धम्मपद 206, 207 और 208)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 205 - तिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 205 - तिसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Pavivekarasam pitva
रसम उपासमस्स च
niddaro hoti nippapo
धम्मपितिरसम पिवम.

श्लोक 205 : एकांत का स्वाद और निर्वाण की पूर्ण शांति का स्वाद चखने के बाद, जो धम्म के सार के आनंद में डूबा रहता है, वह भय और बुराई से मुक्त हो जाता है।

थेरा टिस्सा की कहानी
बुद्ध ने वैशाली में थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (205) कहा।
जब बुद्ध ने घोषणा की कि चार महीने में वे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु चिंतित हो गए। वे असमंजस में थे और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें, इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। लेकिन थेरा तिस्सा ने यह निश्चय कर लिया था कि वे बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे, इसलिए वे बुद्ध के पास नहीं गए, बल्कि ध्यान साधना के लिए एकांत स्थान पर चले गए। अन्य भिक्षुओं को उनका यह व्यवहार समझ नहीं आया, इसलिए वे उन्हें बुद्ध के पास ले गए और कहा, "आदरणीय, ऐसा प्रतीत होता है कि यह भिक्षु आपका आदर नहीं करता; यह आपके दर्शन करने के बजाय एकांत में ही रहता है।" तब थेरा तिस्सा ने उन्हें समझाया कि वे बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहे थे, और यही कारण था कि वे बुद्ध से मिलने नहीं आए थे।
उनकी व्याख्या सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! जो मुझसे प्रेम और आदर करते हैं, उन्हें तिस्सा के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती अर्पित करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। आप मुझे केवल लोकउत्तरा धम्म, अर्थात् अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करके ही प्रणाम कर रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 205 : एकांत का स्वाद और निर्वाण की पूर्ण शांति का स्वाद चखने के बाद, जो धम्म के सार के आनंद में डूबा रहता है, वह भय और बुराई से मुक्त हो जाता है।

प्रवचन के अंत में थेरा तिस्सा ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय तिस्सा की कहानी
बुद्ध ने यह श्लोक पूज्य तिस्सा के संदर्भ में कहा था। जब बुद्ध ने घोषणा की कि चार महीने में उन्हें परिनिर्वाण (पूर्ण निर्वाण) प्राप्त हो जाएगा, तो कई सांसारिक भिक्षु चिंतित हो गए। वे असमंजस में थे और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें, इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। लेकिन पूज्य तिस्सा ने यह निश्चय कर लिया था कि वे बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करेंगे, इसलिए वे उनके पास नहीं गए, बल्कि ध्यान साधना के लिए एक एकांत स्थान पर चले गए।
अन्य भिक्षुओं को उसका व्यवहार समझ नहीं आया, इसलिए वे उसे बुद्ध के पास ले गए और बोले, “आदरणीय! यह भिक्षु आपका आदर-भाव नहीं करता; यह आपके दर्शन करने के बजाय एकांत में ही रहता है।” तब आदरणीय तिस्सा ने उन्हें समझाया कि बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही वह अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहा था, और यही एकमात्र कारण था कि वह बुद्ध से मिलने नहीं आया था।

उनकी व्याख्या सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं! जो मुझसे प्रेम और आदर करते हैं, उन्हें तिस्सा के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती अर्पित करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। आप मुझे केवल लोकउत्तरा धम्म , जैसे कि अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करके ही प्रणाम कर रहे हैं।” प्रवचन के अंत में, पूज्य तिस्सा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 205)

पविवेकरसं उपसमस्सा रसं च पीत्वा
धम्मपीतिरसं पिबं निद्दरो निप्पापो होति

पविवेकरसाः [पविवेकरसा]: एकांत का स्वाद; उपसमस्सा रसं च : दोषों की अनुपस्थिति से उत्पन्न शांति का स्वाद भी; पीतवा : स्वाद चखकर; धम्मपीतिरसं [धम्मपीतिरस]: धम्म के आनंद की मिठास; पिबां [पिबा]: चखना; निद्दारो [निद्दारा]: अप्रभावित; निप्पापो [निप्पापा]: निष्कलंक; होती : हो जाता है

उन्होंने एकांत का आनंद चखा है। उन्होंने दोषों की अनुपस्थिति से उत्पन्न शांति का अनुभव भी किया है। यथार्थवादी जागरूकता के आनंद की मिठास का अनुभव करते हुए वे दोषों से अप्रभावित और बुराई से रहित हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 205)

परिनिर्वाण : परम निर्वाण। यह श्लोक बुद्ध द्वारा अपने महान निधन की घोषणा के अवसर पर उच्चारित किया गया था। बुद्ध के निधन—महान निधन (परिनिर्वाण)—का बौद्ध साहित्य में विस्तृत वर्णन किया गया है। पूज्य सुभद्दा, जो एक अरहत थे, बुद्ध के अंतिम व्यक्तिगत अनुयायी थे। पूज्य आनंद यह जानना चाहते थे कि बुद्ध के शरीर का क्या किया जाए।

बुद्ध ने उत्तर दिया, “मेरे अवशेषों का सम्मान करने में स्वयं को संलग्न न करो। अपने कल्याण (अर्थात् अर्हतत्व) की चिंता करो। सचेत रहो, परिश्रम करो और अपने हित के लिए तत्पर रहो। बुद्धिमान योद्धा, बुद्धिमान ब्राह्मण और बुद्धिमान गृहस्थ हैं जो बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे मेरे अवशेषों का सम्मान करेंगे।”

इन वार्ताओं के समापन पर पूज्य आनंद एक तरफ जाकर रोने लगे और सोचने लगे, 'हाय! मैं अभी भी एक विद्यार्थी हूँ और मुझे अभी बहुत कुछ सीखना है। लेकिन मेरे गुरु अंततः इस दुनिया से चले जाएँगे। वही जो मेरे हमदर्द हैं।' बुद्ध ने उनकी अनुपस्थिति देखकर उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा, “बस करो, हे आनंद! शोक मत करो, रोओ मत। क्या मैंने तुम्हें पहले ही नहीं बताया है कि हमें अपने आप को उन सभी चीजों से अलग करना होगा जो हमें प्रिय और सुखद हैं?” “हे आनंद, तुमने बहुत पुण्य कर्म किए हैं। शीघ्र ही तुम विकारों से मुक्त हो जाओ।”

इसके बाद बुद्ध ने पूज्य आनंद को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके प्रमुख गुणों का वर्णन किया। पूज्य आनंद को विभिन्न प्रकार से उपदेश देने के बाद, बुद्ध ने उन्हें कुशीना में प्रवेश करने और मल्ल समुदाय को अपनी आसन्न मृत्यु की सूचना देने का आदेश दिया। मल्ल समुदाय को सूचना दी गई और वे अपनी पत्नियों, युवकों और युवतियों के साथ रोते हुए बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि देने आए।

तब बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, “आनंद, हो सकता है तुम ऐसा कहो: ‘गुरु के बिना ही परम शिक्षा संभव है! हमारे लिए कोई गुरु नहीं है...’ नहीं, आनंद, तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। आनंद, मैंने जो भी सिद्धांत और अनुशासन सिखाए और प्रचारित किए हैं, वे मेरे जाने के बाद तुम्हारे गुरु होंगे। हे आनंद, यदि संघ चाहे तो मेरी मृत्यु के बाद लघु और गौण नियमों को निरस्त कर दे।” इस संदर्भ में बुद्ध ने आज्ञावाचक रूप के बजाय संभाव्य रूप का प्रयोग किया है। यदि उनकी इच्छा होती कि गौण नियमों को निरस्त किया जाए, तो वे आज्ञावाचक रूप का प्रयोग कर सकते थे। टीकाकार के अनुसार, बुद्ध ने यह पूर्वाभास कर लिया था कि प्रथम सभा के अध्यक्ष पूज्य कस्सपा संघ की सहमति से किसी भी नियम को निरस्त नहीं करेंगे — इसीलिए उन्होंने संभाव्य रूप का प्रयोग किया है। चूंकि बुद्ध ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया कि ये छोटे नियम क्या थे और चूंकि अरहत भी इनके बारे में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके, इसलिए उन्होंने किसी भी नियम को बदलने के बजाय सभी नियमों को यथावत बनाए रखना बेहतर समझा।

फिर बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, “हे शिष्यों, यदि बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या विधि के विषय में कोई संदेह हो, तो मुझसे प्रश्न पूछो, और बाद में यह सोचकर पश्चाताप मत करो कि ‘हम गुरु के सामने उपस्थित थे, फिर भी उनकी उपस्थिति में उनसे प्रश्न नहीं पूछ सके।’” जब उन्होंने ऐसा कहा तो शिष्य चुप रहे। दूसरी और तीसरी बार भी बुद्ध ने शिष्यों को इसी प्रकार संबोधित किया। और दूसरी और तीसरी बार भी शिष्य चुप रहे। फिर बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, “शायद गुरु के प्रति आदर के कारण ही तुम मुझसे प्रश्न नहीं पूछते। हे शिष्यों, अपने किसी मित्र से कहो कि वह दूसरे को बता दे।” फिर भी शिष्य चुप रहे।

तब पूज्य आनंद ने बुद्ध से इस प्रकार कहा, “हे भगवान! अद्भुत! हे भगवान! मैं शिष्यों के इस समूह से अत्यंत प्रसन्न हूँ। एक भी शिष्य ऐसा नहीं है जिसे बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग और विधि के विषय में कोई संदेह या उलझन हो।” “आनंद, आप इस विषय में श्रद्धापूर्वक बोल रहे हैं। तथागत को ज्ञात है कि शिष्यों के इस समूह में एक भी शिष्य ऐसा नहीं है जिसे सिद्धांत, संघ, मार्ग और विधि के विषय में कोई संदेह या उलझन हो। हे आनंद, इन पाँच सौ शिष्यों में से जो अंतिम है, वह सफलता की राह पर चलने वाला है, पतन से अछूता है, परन्तु निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्ति के लिए नियत है।”

अंत में, बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए अपना अंतिम उपदेश दिया: “हे शिष्यों, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। लगन से प्रयास करो। (vayadhammā samkhārā appamādena sampādetha)।” ये बुद्ध के अंतिम शब्द थे। बुद्ध ने प्रथम समाधि (झान) प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ समाधि प्राप्त की। चतुर्थ समाधि से निकलकर उन्होंने अनंत आकाश (आकाशणंचायतन) के क्षेत्र को प्राप्त किया। फिर बुद्ध ने बोध और संवेदनाओं के अंत से निकलकर न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने शून्यता के क्षेत्र को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने अनंतता के क्षेत्र को प्राप्त किया। चेतना की अवस्था से निकलकर, उन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने चौथी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने तीसरी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने दूसरी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने पहली परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने परिनिर्वाण को प्राप्त किया ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 206, 207, 208

(धम्मपद 205) <<<< पिछला || धम्मपद 206, 207 और 208 || अगला >>>> (धम्मपद 209, 210 और 211)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 206, 207 और 208 - सक्का वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 206, 207 और 208 - सक्का वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

साहू दस्सनामारियानम
sannivaso sada sukho
अदस्सनेना बलनम
niccameva sukhi siya.
Balasangatacari hi
दिघमद्धना सोकाती
dukkho balehi samvaso
अमिततेनेवा सब्बादा
dhiro ca sukhasamvaso
natinam va samagamo.
तस्मा ही
धिरांका पन्नंका बहुसुतांका
धोरयहसीलं वातवंतमरियम्
तम तदिसं सप्पुरिसं सुमेधम्
भजेथा नक्खट्टपथम्वा कैंडिमा।

श्लोक 206 : श्रेष्ठ व्यक्तियों (आरियों) को देखना अच्छा है; उनके साथ रहना हमेशा सुखद होता है; मूर्खों को न देखना भी हमेशा सुखद होता है।

श्लोक 207 : मूर्खों की संगति में चलने वाले को लंबे समय तक दुःख सहना पड़ता है। मूर्खों की संगति सदा कष्टदायी होती है, मानो शत्रु के साथ रहना हो; बुद्धिमानों की संगति सुखदायी होती है, मानो सगे संबंधियों के साथ रहना हो।

श्लोक 208 : इसलिए किसी को दृढ़ निश्चयी, बुद्धिमान, विद्वान, दृढ़ निश्चयी और कर्तव्यनिष्ठ आर्य का अनुसरण करना चाहिए; ऐसे गुणी और बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, जैसे चंद्रमा तारों के पथ का अनुसरण करता है।

सक्का (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) की कहानी

वेलुवा गाँव में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (206), (207) और (208) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का के संदर्भ में है।

बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से लगभग दस माह पहले, वे वैशाली के पास वेलुवा गाँव में वर्षा ऋतु (तीन महीने) बिता रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्हें पेचिश हो गई। जब सक्का को पता चला कि बुद्ध बीमार हैं, तो वह वेलुवा गाँव आया ताकि वह स्वयं उनकी सेवा कर सके। बुद्ध ने उसे कहा कि वह अपने स्वास्थ्य की चिंता न करे, क्योंकि उसके आस-पास कई भिक्षु हैं; लेकिन सक्का ने उनकी बात नहीं मानी और बुद्ध के ठीक होने तक उनकी सेवा करता रहा।

भिक्षु यह देखकर आश्चर्यचकित और विस्मयचकित हो गए कि स्वयं सक्का बुद्ध की सेवा में उपस्थित हैं। जब बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! सक्का का मेरे प्रति प्रेम और भक्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। एक बार जब पूर्व सक्का वृद्ध हो रहे थे और मृत्यु के निकट थे, तब वे मुझसे मिलने आए। तब मैंने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। धर्म सुनते हुए उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया; फिर उनका देहांत हो गया और वे वर्तमान सक्का के रूप में पुनर्जन्म लिए। यह सब उनके साथ केवल इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने मेरे द्वारा उपदेशित धर्म को सुना। वास्तव में, भिक्षुओं, आर्यों के दर्शन करना सुखद है; उनके साथ रहना सुखदायक है; मूर्खों के साथ रहना वास्तव में कष्टदायक है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 206 : श्रेष्ठ व्यक्तियों (आरियों) को देखना अच्छा है; उनके साथ रहना हमेशा सुखद होता है; मूर्खों को न देखना भी हमेशा सुखद होता है।

श्लोक 207 : मूर्खों की संगति में चलने वाले को लंबे समय तक दुःख सहना पड़ता है। मूर्खों की संगति सदा कष्टदायी होती है, मानो शत्रु के साथ रहना हो; बुद्धिमानों की संगति सुखदायी होती है, मानो सगे संबंधियों के साथ रहना हो।

श्लोक 208 : इसलिए किसी को दृढ़ निश्चयी, बुद्धिमान, विद्वान, दृढ़ निश्चयी और कर्तव्यनिष्ठ आर्य का अनुसरण करना चाहिए; ऐसे गुणी और बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, जैसे चंद्रमा तारों के पथ का अनुसरण करता है।

पंद्रहवें अध्याय का अंत: सुख (सुखवग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सक्का की कहानी

वेलुवना गांव में निवास करते समय, बुद्ध ने देवताओं के प्रमुख सक्का के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

जब बुद्ध का जीवन समाप्त होने वाला था और वे पेचिश से पीड़ित थे, तब देवताओं के राजा सक्का को इसका आभास हुआ और उन्होंने मन ही मन सोचा, “बुद्ध के पास जाना और उनकी बीमारी में उनकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है।” तदनुसार, उन्होंने अपना शरीर, जो पौने मील लंबा था, एक तरफ रख दिया, बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और अपने हाथों से बुद्ध के चरणों को मला। बुद्ध ने उनसे कहा, “यह कौन है?” “मैं हूं, आदरणीय सक्का।” “आप यहां क्यों आए हैं?” “आपकी बीमारी में आपकी सेवा करने के लिए, आदरणीय।” “सक्का, देवताओं के लिए मनुष्यों की गंध, सौ मील की दूरी से भी, गले से बंधे मुर्दे की गंध के समान होती है; यहां से चले जाओ, क्योंकि मेरे पास भिक्षु हैं जो मेरी बीमारी में मेरी सेवा करेंगे।” “आदरणीय, चौरासी हजार मील की दूरी से भी मैंने आपकी अच्छाई की सुगंध महसूस की, इसलिए मैं यहां आया हूं; मैं ही आपकी बीमारी में आपकी सेवा करूंगा।” सक्का ने किसी और को बुद्ध और उनके मल से भरे पात्र को छूने तक की अनुमति नहीं दी; बल्कि उन्होंने स्वयं उस पात्र को अपने सिर पर उठाकर बाहर ले गए। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने मुंह की मांसपेशियों को जरा भी सिकोड़े बिना उसे बाहर ले गए, मानो वे इत्र से भरा कोई पात्र ढो रहे हों। इस प्रकार सक्का ने बुद्ध की सेवा की। वे तभी गए जब बुद्ध को अधिक आराम महसूस हुआ।

भिक्षुओं ने चर्चा शुरू करते हुए कहा, “अरे, बुद्ध के प्रति सक्का का स्नेह कितना महान होगा! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि सक्का ने अपनी दिव्य महिमा को त्यागकर बुद्ध की बीमारी में उनकी सेवा की! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उसने बुद्ध के शरीर के मल से भरे

पात्र को अपने सिर पर इस प्रकार उठाया, मानो वह इत्र से भरा पात्र उठा रहा हो, और उसके मुँह की मांसपेशियों में जरा भी संकुचन नहीं हुआ!" उनकी बातें सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, तुम क्या कहते हो? यह बिलकुल भी आश्चर्य की बात नहीं है कि देवताओं के राजा सक्का मेरे प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं। क्योंकि मेरे कारण ही देवताओं के राजा सक्का ने वृद्ध सक्का का रूप त्याग दिया, धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और युवा सक्का का रूप धारण किया। एक बार जब वे मृत्यु के भय से भयभीत होकर मेरे पास आए, उनके आगे-आगे दिव्य संगीतकार पंचसिखा थे, और वे देवताओं के बीच इंद्राशाला गुफा में बैठ गए, तो मैंने उनसे कहा, "वासव, जो भी प्रश्न तुम्हारे मन में हो, मुझसे पूछो; मैं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर दूंगा।" उनके कष्ट को दूर करने के बाद, मैंने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में चौदह अरब जीवों ने धर्म को समझ लिया, और स्वयं सक्का ने भी, वहीं बैठे-बैठे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और युवा सक्का बन गए।" इसलिए मैं उसका बहुत बड़ा सहायक रहा हूँ, और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह मेरे प्रति गहरा स्नेह रखता है। क्योंकि, भिक्षुओं, कुलीनों को देखना सुखद होता है, और उनके साथ एक ही स्थान पर रहना भी सुखद होता है; परन्तु मूर्खों से कोई भी संबंध रखना कष्टदायी होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 206)

अरियाणं दस्साणं साधु सन्निवासो सदा सुखो
बलानां अडस्सनेन निक्कं एव सुखी सिया

अरियानां [अरियाना]: महान प्राणियों का; दासानां [दासाना]: दृष्टि; साधु : (है) अच्छा; सन्निवासो [सन्निवास]: उनके साथ जुड़ना; सदा : (है) सदैव; सुखो [सुखा]: खुश; बालानां [बालाना]: अज्ञानी; अदसानेना : नहीं देख रहा; निक्कं एव : सदैव; सुखी सिया : सुख के लिए अनुकूल है

नेक लोगों को देखना अच्छा होता है। उनके साथ रहना हमेशा सुखदायी होता है। अज्ञानी लोगों को न देखना हमेशा सुख देता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 207)

हि बालसंगतचारि दीघं अद्धानं सोचति
बलेहि संवासो अमितेन इव सब्दा दुक्खो
धीरो च नातिनां समागमो इव सुख संवासो

ही : यह सच है; बालसंगतचारी : जो अज्ञानी लोगों की घनिष्ठ संगति में रहता है; दीघं अधानं [अधान]: लंबे समय तक; सोचति : पछताता है (दुखी होता है); बालेहि संवासो [संवास]: अज्ञानी लोगों के साथ संगति करना; अमित्तेन इव सब्बादा दुःखो [दुक्खा]: शत्रु के साथ रहने जितना कष्टदायी होता है; धीरो च : वास्तव में बुद्धिमानों के साथ; ञातीनं समागमो इव : रिश्तेदारों की गर्मजोशी भरी संगति के समान; सुख संवासो [संवास]: सुखदायी मिलन होता है

अज्ञानियों की संगति में रहने वाला व्यक्ति लंबे समय तक दुःख भोगता रहता है। अज्ञानियों के साथ रहना शत्रुओं की संगति में रहने के समान है — इससे हमेशा दुःख ही प्राप्त होता है। वहीं, बुद्धिमानों की संगति में रहना अपने सगे-संबंधियों से मिलने के समान है — इससे हमेशा सुख ही प्राप्त होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 208)

तस्मा हि , धीरणं च पन्नं च बहुसुतं च धोरायहसीलं वतवंतं अरियं
सुमेधं तदिसं तं सप्पुरिसं कैंडिमा नक्खट्ट पथं इव भजेथा

तस्मा ही : इसलिए; धीरं च : बुद्धिमान; पन्नां च : ज्ञान से युक्त; बहुसुतं च : सुशिक्षित; धोरायहसीलं [धोरायहसील]: शिक्षा का सावधानीपूर्वक अभ्यास करने वाले; वातवन्तं [वातवन्त]: आध्यात्मिक दिनचर्या का पालन करने में निपुण; अरियां [अरिया]: श्रेष्ठ; सुमेधं [सुमेध]: विवेकशील; तादिसं [तादिसा]: उस प्रकार का; तं सप्पुरिसं [सप्पुरिस]: गुणी व्यक्ति; चन्दिमा इव : चंद्रमा के समान; नक्खत्त पथं [पथ]: आकाश से संगति करने वाला—तारों का पथ; भजेत : (तुम्हें) संगति करनी चाहिए

चंद्रमा तारों के पथ पर चलता है। ठीक उसी प्रकार, मनुष्य को ऐसे नेक व्यक्तियों की संगति में रहना चाहिए जो स्थिर स्वभाव के हों, गहन ज्ञान से परिपूर्ण हों, अत्यधिक विद्वान हों, निरंतर प्रयास करने में सक्षम हों, कर्तव्यनिष्ठ हों, कुलीन हों और उच्च कोटि के मनुष्य हों।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 206-208)

बुद्ध का रोग : ये तीन श्लोक बुद्ध के अंतिम दिनों का वर्णन करते हैं। जब बुद्ध बीमार थे, तब सक्का स्वर्ग से उनकी देखभाल करने आए थे। बुद्ध के रोग, जिसके कारण उनका अंत हुआ, का बौद्ध साहित्य में विस्तृत वर्णन मिलता है। बुद्ध एक असाधारण व्यक्तित्व थे। फिर भी वे नश्वर थे, सभी प्राणियों की तरह रोग और क्षय के अधीन थे। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि वे अस्सी वर्ष की आयु में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे। अपनी विनम्रता के कारण उन्होंने अपने अंतिम प्राण सावत्थी या राजगृह जैसे प्रसिद्ध शहरों में नहीं, जहाँ उनका केंद्र था, बल्कि कुसिनारा जैसे एक दूरस्थ और महत्वहीन गाँव में धारण करने का निर्णय लिया।

यहां बुद्ध के निधन का विस्तृत विवरण दिया गया है।

बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, ककुधा नदी में उतरे, उसका जल पिया और वहाँ स्नान किया। नदी पार करने के बाद, वे आम के बाग में गए और पूज्य चुंडा से बात की। पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए, बुद्ध ने कहा कि चुंडा को इस बात का कोई दुःख नहीं होना चाहिए कि उनके द्वारा अर्पित भोजन ग्रहण करने के बाद बुद्ध बीमार पड़ गए। बुद्ध भिक्षुओं के साथ हिरण्यवती नदी के उस पार कुसिनारा के मल्लों के साल वन में आए। वहाँ बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "मेरे लिए उत्तर दिशा की ओर मुख करके दो साल वृक्षों के बीच एक पलंग तैयार कीजिए। मैं थक गया हूँ और लेटना चाहता हूँ।"

वहाँ तैयार किए गए पलंग पर बुद्ध एकाग्र मन से दाहिनी ओर सिंह मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे पर टिका हुआ था। उस समय जुड़वां साल के वृक्ष असमय ही पूरी तरह खिले हुए थे, और बुद्ध का शरीर श्रद्धापूर्वक गिरे फूलों से ढका हुआ था। ऊपर से दिव्य मंदार के फूल गिर रहे थे। स्वर्ग से दिव्य चंदन का चूर्ण बरस रहा था। इन सभी ने श्रद्धापूर्वक बुद्ध के शरीर को ढक लिया था। दिव्य संगीत वातावरण में गूंज रहा था। बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "हे आनंद, ये सभी फूल, चंदन का चूर्ण और दिव्य संगीत मुझे श्रद्धापूर्वक अर्पित किए गए हैं। परन्तु केवल इनसे श्रद्धा नहीं अर्पित की जा सकती। यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी या कोई पुरुष या स्त्री गृहस्थ शिष्य मेरे उपदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करे और उनका अनुसरण करे, तो वह मुझे उचित आदर देता है; वह मुझे उचित सम्मान देता है; और यही मेरे लिए सर्वोच्च अर्पण है। अतः, आनंद, तुम्हें मेरे उपदेशों के अनुसार कार्य करना चाहिए और सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए, और इसे इसी प्रकार सिखाया जाना चाहिए।"

अब पूज्य उपवान बुद्ध के सामने खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। बुद्ध को उनका वहाँ खड़े रहना पसंद नहीं आया और उन्होंने उन्हें एक तरफ जाने को कहा। पूज्य आनंद जानते थे कि पूज्य उपवान बुद्ध के पुराने सेवक थे और उन्हें समझ नहीं आया कि उन्हें एक तरफ जाने के लिए क्यों कहा गया। इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उस भिक्षु को एक तरफ जाने के लिए क्यों कहा गया। बुद्ध ने समझाया कि उस समय मल्ल वंश के साल वन के चारों ओर बारह मील की दूरी तक दिव्य प्राणी खड़े थे, जहाँ एक सुई गिरने की भी जगह नहीं थी, और वे इस बात का कुंठा कर रहे थे कि वे बुद्ध को उनके अंतिम क्षणों में नहीं देख पा रहे थे क्योंकि वे एक महान भिक्षु से ढके हुए थे। बुद्ध ने बताया कि सांसारिक देवता उनके देहांत से कितने दुखी थे, लेकिन जो देवता आसक्ति से मुक्त और सचेत थे, उन्होंने इस विचार से स्वयं को सांत्वना दी कि सभी समूह क्षणभंगुर हैं।

बुद्ध ने पूज्य आनंद को फिर संबोधित करते हुए कहा, "हे आनंद, ये चार स्थान हैं जिनका सच्चे अनुयायी को श्रद्धापूर्वक दर्शन करना चाहिए। ये स्थान हैं बुद्ध का जन्मस्थान, बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति का स्थान, धर्म के चक्र का आरंभ और बुद्ध के परलोक का स्थान। इन स्थानों की तीर्थयात्रा के दौरान प्राण त्यागने वाले लोग पुण्यवत जन्म लेंगे।" पूज्य आनंद के उत्तर में बुद्ध ने कहा कि बुद्ध का अंतिम संस्कार एक विश्व सम्राट के समान होना चाहिए और बुद्ध के सम्मान में चारों मार्गों के संगम पर एक स्तूप स्थापित किया जाना चाहिए। बुद्ध ने यह भी कहा कि चार ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी स्मृति में स्तूप स्थापित किए जाने चाहिए, वे हैं बुद्ध, पच्चेक बुद्ध, बुद्ध के शिष्य और विश्व सम्राट।

आदरणीय आनंद की यह इच्छा थी कि बुद्ध का निधन कुसिनारा जैसे छोटे और साधारण नगर में नहीं, बल्कि चंपा जैसे महान नगर में हो। राजगृह ने बताया कि कुसिनारा एक महान नगर था जिसका लंबा इतिहास था, और उन्होंने आदरणीय आनंद से कुसिनारा के मल्ल राजकुमारों को बुद्ध के आसन्न निधन की सूचना देने का अनुरोध किया। तदनुसार, मल्ल राजकुमारों को उनके नगर भवन में यह सूचना दी गई। मल्ल राजकुमार अत्यंत व्यथित अवस्था में साल वन में आए और रात्रि के पहले पहर में बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत हुए।

ठीक इसी समय, सुभद्ध नाम के एक भ्रमणशील तपस्वी बुद्ध से एक विशेष विषय पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए मिलना चाहते थे, लेकिन पूज्य आनंद ने उन्हें तीन बार प्रवेश देने से इनकार कर दिया। बुद्ध ने उनकी बातचीत सुन ली और उनका स्वागत किया। वे जानना चाहते थे कि क्या पूर्ण कस्सपा जैसे छह धर्मगुरु सही मार्ग पर हैं। बुद्ध ने कहा कि केवल वही लोग मोक्ष के सही मार्ग पर हैं जो उनके द्वारा दिखाए गए अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करते हैं। सुभद्ध बुद्ध के शिष्य बनना चाहते थे। तदनुसार, उन्हें बुद्ध के अंतिम शिष्य के रूप में स्वीकार किया गया और वे एक दीक्षित व्यक्ति बन गए। भिक्षु समुदाय को आगे सलाह देते हुए, बुद्ध ने कहा कि भविष्य में, युवा भिक्षुओं को अपने बड़ों को उनके नाम या गोत्र के नाम से या मित्र कहकर संबोधित नहीं करना चाहिए, बल्कि पूज्य या आदरणीय महोदय कहकर संबोधित करना चाहिए। हालांकि, बड़े भिक्षु युवा भिक्षुओं को मित्र या गोत्र के नाम से संबोधित कर सकते हैं।

बुद्ध ने आगे कहा, "यदि आप में से किसी को भी बुद्ध, उनकी शिक्षा, भिक्षु समुदाय, मार्ग या साधना के बारे में कोई संदेह या अनिश्चितता हो, तो आप अभी स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते हैं। बाद में यह मत कहना कि आप बुद्ध के समक्ष उपस्थित थे।" यद्यपि बुद्ध ने ऐसा तीन बार कहा, फिर भी कोई प्रश्न नहीं पूछा गया, और पूज्य आनंद ने गुरु को उनके प्रति अपने अटूट विश्वास का आश्वासन दिया। बुद्ध ने कहा कि उन पाँच सौ भिक्षुओं में से अंतिम भिक्षु ने भी सोतापत्ति का मार्ग प्राप्त कर लिया था और उसे मोक्ष का पूरा विश्वास था।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने अंतिम शब्द कहे; "हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी वस्तुएँ नश्वर हैं। अपने उद्धार के लिए पूरी लगन से प्रयास करो।"

बुद्ध ने मन की अनेक अवस्थाओं में प्रवेश किया और समाधि की चौथी अवस्था से बाहर आने के बाद उनका देहांत हो गया। तुरंत ही एक भयानक भूकंप आया और आकाश से ज़ोरदार गर्जना हुई।

जब बुद्ध का देहांत हुआ, तब पूज्य अनुराधा ने कहा: "स्थिर मन वाले, भावहीन बुद्ध का श्वास-श्वास थम गया है और वे परम आनंद की अवस्था में विलीन हो गए हैं। उन्होंने खुले मन से पीड़ा सहन की और उनके मन का विलीन होना ज्वाला के बुझने के समान था।" पूज्य आनंद ने कहा: "बुद्ध के देहांत से रोंगटे खड़े हो गए हैं।" सहमपति ब्रह्मा ने टिप्पणी की: "चूंकि यह गुरु, जो संसार के सर्वोच्च पुरुष हैं, सर्वशक्ति और सर्वज्ञता से संपन्न हैं, देहांत हो गया है, इसलिए संसार के सभी प्राणियों का प्राण त्यागना स्वाभाविक है।" सक्का ने कहा: "सभी तत्व वास्तव में अनित्य हैं। सब कुछ उदय और अस्त होने के स्वभाव का है। जो भी उदय होता है, उसका अंत निश्चित है और उसका अस्त होना आनंदमय है।" सांसारिक भिक्षुओं ने विलाप करना शुरू कर दिया, लेकिन पूज्य अनुराधा ने उन्हें विलाप जारी न रखने का आग्रह किया।

आदरणीय अनुरुद्ध और आदरणीय आनंद ने उस रात का शेष समय धार्मिक चर्चा में बिताया। फिर आदरणीय अनुरुद्ध ने सुझाव दिया कि बुद्ध के देहांत की दुखद खबर कुसिनारा के मल्ल राजकुमारों को दी जानी चाहिए। तदनुसार, आदरणीय आनंद, एक अन्य भिक्षु के साथ, नगर भवन में उनकी सभा में गए और उन्हें यह दुखद खबर दी। मल्ल राजकुमार और अन्य सभी जिन्होंने यह खबर सुनी, शोक से व्याकुल हो गए और गहन विलाप करने लगे।

मल्लों ने अपने राज्य के सभी फूल और सुगंध एकत्र किए और अपने सभी उपलब्ध संगीत के साथ बुद्ध के पार्थिव शरीर के दर्शन के लिए गए। सात दिनों तक उन्होंने बुद्ध के पार्थिव शरीर को पूर्ण श्रद्धा अर्पित की। सातवें दिन, मल्लों के आठ प्रमुखों ने स्नान किया और स्वच्छ वस्त्र धारण करके पार्थिव शरीर को उठाकर दक्षिणी द्वार से दाह संस्कार के लिए बाहर ले जाने का प्रयास किया। परन्तु वे पार्थिव शरीर को हिला नहीं सके और इस विषय में पूज्य अनुराधा से परामर्श लिया। पूज्य अनुराधा ने उन्हें बताया कि यह देवताओं की इच्छा है कि बुद्ध के पार्थिव शरीर को उनकी इच्छानुसार सम्मान दिया जाए और उत्तरी द्वार से नगर के मध्य में ले जाकर पूर्वी द्वार से मल्लों के मकुताबंधन चैत्य में दाह संस्कार किया जाए। इसके बाद यह मामला देवताओं की इच्छा पर छोड़ दिया गया।

अब कुसिनारा नगर पूरी तरह से घुटनों तक दिव्य मंदार फूलों से भरा हुआ था। देवताओं और मल्लों द्वारा फूलों, इत्रों और संगीत से उचित सम्मान अर्पित करने के बाद, शव को मल्लों के मकुताबंधन चैत्य ले जाया गया। पूज्य आनंद से परामर्श करके, मल्लों ने शव को एक सर्वमान्य सम्राट के समान सम्मान दिया। मल्लों के चार प्रमुखों ने नए वस्त्र धारण करके चिता को प्रज्वलित करने का प्रयास किया, लेकिन वे असफल रहे। उन्होंने इस संबंध में पूज्य अनुराधा से परामर्श किया, और उन्हें बताया गया कि जब तक पूज्य महा कस्सपा आकर शव को सम्मान नहीं देते, तब तक कोई भी चिता को प्रज्वलित नहीं कर सकता। अब इस समय, पूज्य महा कस्सपा पांच सौ भिक्षुओं के साथ पावा से कुसिनारा की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ते में वे सड़क के किनारे एक पेड़ की छाया में विश्राम कर रहे थे। तभी उन्होंने कुसिनारा की दिशा से एक तपस्वी को हाथ में मंदारा का फूल लिए आते देखा। पूज्य तपस्वी ने उनसे पूछा, "मित्र, क्या आप हमारे गुरु को जानते हैं?" तपस्वी ने उत्तर दिया, "जी हां, मित्र, मैं उन्हें जानता हूं। वे पूज्य गौतम गौतम हैं, जिनका सात दिन पहले देहांत हो गया। मैं यह मंदारा का फूल उनके देहांत स्थल से लाया हूं।"

जब सांसारिक भिक्षुओं ने यह दुखद समाचार सुना, तो वे रोने और विलाप करने लगे, परन्तु उनमें से जो पवित्र थे, उन्होंने यह कहकर स्वयं को सांत्वना दी कि सभी समूह क्षणभंगुर हैं। सुभद्दा नाम के एक भिक्षु, जिन्होंने वृद्धावस्था में संघ में प्रवेश किया था, ने बुद्ध के देहांत पर राहत की अनुभूति व्यक्त की क्योंकि अब वे अनुशासन आदि के विभिन्न नियमों से मुक्त हो जाएंगे। पूज्य कस्सपा ने वहाँ उपस्थित सभी भिक्षुओं को उपदेश दिया और कुसिनारा की ओर प्रस्थान किया।

आदरणीय महा कस्सपा मल्ला समुदाय के मकुताबंधन चैतिया पहुंचे और बुद्ध की चिता के पास गए। उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर चिता की तीन परिक्रमा की। फिर उन्होंने बुद्ध के पार्थिव शरीर के चरणों को नंगा करके उनकी पूजा की। उनके साथ आए पांच सौ भिक्षुओं ने भी बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित की। देखते ही देखते चिता स्वतः प्रज्वलित हो गई और बुद्ध का शरीर ज्वाला में भस्म हो गया। एक सप्ताह तक नगर भवन में एक जलकुंड के ऊपर और नीचे से जल की धाराएं और मल्ला समुदाय द्वारा प्रदत्त सुगंधित जल से बुद्ध के अवशेषों की रक्षा और सम्मान किया गया।

बुद्ध के अवशेषों पर निम्नलिखित में से प्रत्येक ने दावा किया, अर्थात् मगध के राजा अजातसत्तु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लाकप्प के बुली, रामगाम के कोलिय, पावा के मल्ल और वेथादीप के एक ब्राह्मण ने। लेकिन कुसिनारा के मल्लों का कहना था कि बुद्ध का निधन उनके राज्य में हुआ था, और वे अवशेषों का कोई भी भाग किसी को नहीं देंगे। ब्राह्मण दोना ने यह कहकर विवाद सुलझाया कि ऐसे पवित्र व्यक्तित्व के अवशेषों पर झगड़ा करना उचित नहीं है, जिन्होंने संसार को सहनशीलता का उपदेश दिया। उन्होंने अवशेषों को आठ भागों में बाँटा और प्रत्येक दावेदार को एक भाग दिया। उन्होंने कहा कि खाली भाग के बदले उनके संबंधित राज्यों में बुद्ध के पवित्र अवशेषों को समाहित करते हुए एक स्तूप का निर्माण किया जाए।

सप्पुरिसं : गुणी व्यक्ति। ये श्लोक आर्यों , अच्छे लोगों के गुणों की प्रशंसा करते हैं । गुणी व्यक्तियों के गुणों और विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। निम्नलिखित दृष्टिकोण एक सप्पुरिसं , एक अच्छे व्यक्ति के स्वरूप को स्थापित करता है।

नैतिकता का पालन करना घर को चोरों से बचाने के लिए बाड़ लगाने के समान है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक आदर्श नैतिकता में निहित हैं। जीवन का सार प्रेम है और नैतिकता उसकी रीढ़ है। सद्गुण के बिना जीवन का अस्तित्व नहीं है और प्रेम के बिना जीवन मृत है। जीवन का विकास सद्गुण के विकास पर निर्भर करता है और सद्गुण के बढ़ने पर प्रेम का प्रवाह भी बढ़ता है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव से परिपूर्ण नहीं है, इसलिए उसे अच्छा बनने के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करना पड़ता है। इस प्रकार नैतिकता हर किसी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू बन जाती है। उदाहरण के लिए, नैतिकता का संबंध वस्त्रों से नहीं है। एक जलवायु, काल या सभ्यता के लिए उपयुक्त वस्त्र दूसरे में अशोभनीय माने जा सकते हैं; यह पूरी तरह से रीति-रिवाज का मामला है, इसमें नैतिक विचार शामिल नहीं हैं, फिर भी परंपराओं को लगातार वैध और अपरिवर्तनीय सिद्धांतों के साथ भ्रमित किया जा रहा है।

अध्याय 16. पियावग्ग: स्नेह (209-220)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 209,210,211

(धम्मपद 206, 207 और 208) <<<< पिछला || धम्मपद 209, 210 और 211 || अगला >>>> (धम्मपद 212)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 209, 210 और 211 - तयोजनापबजिता वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 209, 210 और 211 - तयोजनापबजिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ayoge yunja'mattanam
yogasminca ayojayam
attham hit va piyaggahi
piheta'ttanuyoginam.
Ma piyehi samaganchi
appiyehi kudacanam
piyanam adassanam dukkham
appiyananca dassanam.
तस्मा पियाम ना कायिरथा
piyapayo hi papako
gantha tesam na vijjanti
yesam natthi piyappiyam.

श्लोक 209 : जो व्यक्ति वह करता है जो नहीं करना चाहिए और वह करने में विफल रहता है जो करना चाहिए, जो जीवन के महान उद्देश्य (अर्थात नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि) को त्याग देता है और इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित होता है, वह उन लाभों की लालसा करता है जो ध्यान में परिश्रम करने वालों को प्राप्त होते हैं।

श्लोक 210 : अपने प्रियजनों के साथ संगति न करो, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उनके साथ कभी संगति न करो; प्रियजनों को न देखना कष्टदायी है, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उन्हें देखना भी कष्टदायी है।

श्लोक 211 : इसलिए किसी को भी प्रिय नहीं मानना चाहिए; प्रियजनों से वियोग पीड़ादायक होता है; जो प्रेम या घृणा नहीं करते, उनके लिए कोई बंधन नहीं होते।

तीन तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (209), (210) और (211) का उच्चारण किया, जिसमें एक पिता, एक माता और एक पुत्र से मिलकर बने एक त्रिमूर्ति का उल्लेख है।

श्रावस्ती में एक परिवार का इकलौता बेटा सबसे पहले भिक्षु बना; पिता ने भी उनका अनुसरण किया और अंत में माता भी भिक्षुणी बन गईं। वे एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए थे कि वे शायद ही कभी अलग रहते थे। परिवार मठ में ऐसे रहता था जैसे वे अपने घर में हों, साथ में बातें करते और खाते थे, जिससे वे दूसरों के लिए असुविधा का कारण बनते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनके इस व्यवहार की सूचना बुद्ध को दी और उन्होंने उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "एक बार जब आप संघ में शामिल हो जाते हैं, तो आपको परिवार की तरह साथ नहीं रहना चाहिए। प्रियजनों को न देखना और प्रियजनों को न देखना, दोनों ही कष्टदायी हैं; इसलिए आपको किसी भी प्राणी या वस्तु को प्रिय नहीं मानना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 209 : जो व्यक्ति वह करता है जो नहीं करना चाहिए और वह करने में विफल रहता है जो करना चाहिए, जो जीवन के महान उद्देश्य (अर्थात नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि) को त्याग देता है और इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित होता है, वह उन लाभों की लालसा करता है जो ध्यान में परिश्रम करने वालों को प्राप्त होते हैं।

श्लोक 210 : अपने प्रियजनों के साथ संगति न करो, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उनके साथ कभी संगति न करो; प्रियजनों को न देखना कष्टदायी है, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उन्हें देखना भी कष्टदायी है।

श्लोक 211 : इसलिए किसी को भी प्रिय नहीं मानना चाहिए; प्रियजनों से वियोग पीड़ादायक होता है; जो प्रेम या घृणा नहीं करते, उनके लिए कोई बंधन नहीं होते।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीन तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पिता, माता और पुत्र की त्रिमूर्ति के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि सावत्थी के एक परिवार में एक इकलौता बेटा था, जो अपने माता-पिता का लाडला और प्रिय था। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उनके घर भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन समाप्त होने के बाद उन्होंने धन्यवाद के वचन पढ़े। धम्म के वचन सुनते ही युवक के मन में भिक्षु बनने की इच्छा जागृत हुई और उसने तुरंत अपने माता-पिता से अनुमति मांगी। माता-पिता ने उसे अनुमति देने से इनकार कर दिया। तब उसके मन में यह विचार आया, "जब मेरे माता-पिता नहीं देख रहे होंगे, मैं घर छोड़कर भिक्षु बन जाऊंगा।"

जब भी पिता घर से बाहर जाते, वे पुत्र को उसकी माता के हवाले करते हुए कहते, “कृपा करके उसे सुरक्षित और स्वस्थ रखना।” और जब भी माता घर से बाहर जातीं, वे पुत्र को पिता के हवाले कर देतीं। एक दिन, पिता के घर से बाहर जाने के बाद, माता ने मन ही मन कहा, “मैं अपने पुत्र को अवश्य सुरक्षित और स्वस्थ रखूंगी।” इसलिए उन्होंने एक पैर दरवाजे के एक चौखट पर और दूसरा पैर दूसरे चौखट पर टिकाया और इस प्रकार जमीन पर बैठकर सूत कातने लगीं। युवक ने मन ही मन सोचा, “मैं उसे चकमा देकर भाग जाऊंगा।” इसलिए उसने अपनी माता से कहा, “प्रिय माता, कृपया अपना पैर थोड़ा हटा लें; मुझे शौच करना है।” माता ने अपना पैर हटा लिया और वह बाहर चला गया। वह जितनी जल्दी हो सके मठ पहुंचा और भिक्षुओं के पास जाकर बोला, “हे आदरणीय, मुझे संघ में शामिल कर लीजिए।” भिक्षुओं ने उसकी विनती मान ली और उसे संघ में शामिल कर लिया।

जब पिता घर लौटे, तो उन्होंने माता से पूछा, “मेरा बेटा कहाँ है?” माता ने कहा, “पतिदेव, वह अभी कुछ देर पहले यहीं था।” पिता ने सोचा, “मेरा बेटा कहाँ हो सकता है?” और चारों ओर देखने लगे। उसे कहीं न देखकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला, “वह मठ चला गया होगा।” इसलिए पिता मठ गए और अपने बेटे को भिक्षु के वस्त्रों में देखकर रो पड़े और विलाप करते हुए बोले, “प्रिय पुत्र, तू मुझे क्यों

दुखी कर रहा है?" लेकिन कुछ क्षण बाद उन्होंने मन ही मन सोचा, "अब जब मेरा बेटा भिक्षु बन गया है, तो मैं गृहस्थ जीवन क्यों जीऊँ?" इसलिए उन्होंने भी स्वेच्छा से भिक्षुओं से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया और वहीं संसार त्याग कर भिक्षु बन गए।

युवक की माता ने मन ही मन सोचा, "मेरा बेटा और पति इतनी देर क्यों लगा रहे हैं?" चारों ओर देखते हुए, अचानक उसके मन में विचार आया, "निश्चित रूप से वे मठ में जाकर भिक्षु बन गए होंगे।" इसलिए वह मठ गई और अपने बेटे और पति दोनों को भिक्षुओं के वस्त्र पहने देखकर मन ही मन सोचने लगी, "चूंकि मेरे बेटे और पति दोनों भिक्षु बन गए हैं, तो मुझे गृहस्थ जीवन की क्या आवश्यकता है?" और अपनी इच्छा से वह ननों के समुदाय में शामिल हो गई और संसार से विरक्त हो गई।

लेकिन माता-पिता और पुत्र के संसार त्याग कर धार्मिक जीवन अपनाने के बाद भी वे एक-दूसरे से अलग नहीं रह पाते थे; चाहे वे मठ में हों या भिक्षुणियों के आश्रम में, वे अकेले बैठकर दिनभर बातें करते रहते थे। भिक्षुओं ने बुद्ध को सब कुछ बताया। बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और पूछा, "क्या यह बात सच है कि तुम लोग ऐसा-वैसा कर रहे हो?" उन्होंने हाँ में उत्तर दिया। तब बुद्ध ने कहा, "तुम ऐसा क्यों करते हो? भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए ऐसा आचरण उचित नहीं है।" "परन्तु हमारे लिए अलग रहना असंभव है।" "संसार त्यागने के समय से ऐसा आचरण अत्यंत अनुचित है; प्रिय लोगों के दर्शन से वंचित रहना और अप्रिय चीजों को देखना दोनों ही कष्टदायी हैं; इसलिए चाहे व्यक्ति हों या भौतिक वस्तुएँ, किसी को भी प्रिय या अप्रिय चीजों की परवाह नहीं करनी चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 209)

अत्तनं अयोगे युञ्जं योगस्मिं अयोजयं च
अत्थं हित्वा पियाग्गहि अत्तानुयोगिनं पिहेति

attānaṃ [attāna]: (जहाँ) किसी को; ayoge : नहीं लगना चाहिए; yuñjaṃ [yuñja]: जो लग जाता है; yogasmiṃ [yogasmi]: जहाँ लगना चाहिए; ayojayaṃ [ayojaya]: जो नहीं लगता; ca atthaṃ [attha]: क्या करना चाहिए; hitvā : उपेक्षा करने वाला; piyaggāhi : केवल मनभावन चीजों को पकड़ने वाला; attānuyoginaṃ [attānuyogina]: जो स्वार्थी उद्देश्यों की पूर्ति चाहते हैं; piheti : इच्छा रखने वाला

गलत बातों में लिप्त रहकर, सही बातों में लिप्त न रहकर, अपना कल्याण त्यागकर, व्यक्ति इंद्रिय सुखों के पीछे भागता है। ऐसा करने से वह उन लोगों से ईर्ष्या करता है जो स्वयं का विकास करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 210)

पियेहि अप्पियेहि कुदाकनं मा समागांचि पियानं
अदस्सानं अप्पियानं दस्सनं च दुक्खं

पियेहि : प्रियतम; अप्पियेहि : नापसंद; कुडाचनम् [कुडाचन]: कभी नहीं; मा समागंचि : कभी निकट संबंध नहीं रखना; पियानम् [पियान]: प्रियजनों में से; अदस्सनम् [अदस्सन]: न देखना; अप्पियेनम् दस्सनम् च : (और) नापसंद व्यक्तियों को देखना; दुःखम् [दुक्खा]: (दोनों) कष्टदायी हैं

जिनसे आप प्यार करते हैं, उनसे भी कभी एक जैसा मेलजोल न रखें, चाहे आप उन्हें नापसंद करें। जिनसे आप प्यार करते हैं, उनसे बिछड़ना कष्टदायक होता है। और जिनसे आप नापसंद करते हैं, उनके साथ रहना भी उतना ही कष्टदायक होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 211)

तस्मा पियं न कयिरथ , हाय पियापायो पापाको
येसं पियाप्पियं नत्थि तेसं गंथा न विज्जन्ति

तस्मा : इसलिए; पियां न कयिराथ : पसंद नहीं करते; ही : क्योंकि; पियापायो [पियापाया]: जिनसे हम प्यार करते हैं उनसे अलग होना; पापको [पापक]: बुरा है; येसं [येसा]: किसी के लिए; पियाप्पियं [पियाप्पिय]: सुखद या अप्रिय; नत्थि : नहीं है; तेसं [तेसा]: उनके लिए; गंथा : अशुद्धियों की गांठें; न विज्जन्ति : दिखाई नहीं देतीं

इसलिए, किसी को भी प्रेम भाव नहीं रखना चाहिए; क्योंकि वियोग पीड़ादायी होता है। जो बंधनों से मुक्त होते हैं, उनके लिए न तो प्रेम भाव होता है और न ही अनासक्ति।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 209-211)

दुःख : पीड़ा। दुःख चार आर्य सत्यों में से पहला है। भावना के रूप में दुःख का अर्थ है वह जिसे सहन करना कठिन हो (दु - कठिन; खा - सहन करना)। अमूर्त सत्य के रूप में दुःख का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण (दु) और शून्यता (खा) के अर्थ में किया जाता है । संसार पीड़ा पर टिका है - इसलिए यह तिरस्कारपूर्ण है। संसार किसी भी वास्तविकता से रहित है - इसलिए यह खाली या शून्य है। दुःख का अर्थ है तिरस्कारपूर्ण शून्यता।

सामान्य मनुष्य केवल सतही दृष्टि से ही चीजों को देखते हैं। आर्य मनुष्य चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है। आर्य मनुष्य के लिए समस्त जीवन दुखमय है और उसे इस संसार में कोई वास्तविक सुख नहीं मिलता, जिसने मनुष्य को मायावी सुखों से धोखा दिया है। भौतिक सुख मात्र किसी इच्छा की पूर्ति है। मनचाही वस्तु प्राप्त होते ही उसका तिरस्कार होने लगता है। सभी इच्छाएँ अतृप्त हैं। सभी

जन्म (जाति) के अधीन हैं, और फलस्वरूप क्षय (जरा), रोग (व्याधि) और अंततः मृत्यु (मरण) के अधीन हैं। इन चार अपरिहार्य दुखों से कोई भी मुक्त नहीं है।

अधूरी इच्छा भी कष्टदायी होती है। हम उन चीजों या व्यक्तियों से जुड़ना नहीं चाहते जिनसे हमें घृणा होती है, न ही हम उन चीजों या व्यक्तियों से अलग होना चाहते हैं जिनसे हमें प्रेम होता है। हालांकि, हमारी प्रिय इच्छाएं हमेशा पूरी नहीं होतीं। अक्सर वही हम पर थोपा जाता है जिसकी हमें सबसे कम उम्मीद होती है या जिसकी हम सबसे कम इच्छा रखते हैं। कई बार ऐसी अप्रत्याशित अप्रिय परिस्थितियां इतनी असहनीय और पीड़ादायक हो जाती हैं कि कमजोर और अज्ञानी लोग आत्महत्या करने पर विवश हो जाते हैं, मानो ऐसा करने से समस्या हल हो जाएगी।

सच्ची खुशी भीतर ही निहित है, और इसे धन, शक्ति, सम्मान या विजय के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता। यदि ऐसी सांसारिक संपत्तियां बलपूर्वक या अन्यायपूर्वक प्राप्त की गई हों, या उनका दुरुपयोग किया गया हो, या उनसे आसक्ति की भावना रखी गई हो, तो वे प्राप्तकर्ताओं के लिए पीड़ा और दुःख का स्रोत बनेंगी।

सामान्यतः, इंद्रिय सुखों का आनंद लेना ही एक औसत व्यक्ति के लिए सर्वोच्च और एकमात्र सुख है। ऐसे क्षणिक भौतिक सुखों की प्रत्याशा, तृप्ति और स्मरण से बेशक क्षणिक आनंद मिलता है, परन्तु ये मायावी और अस्थायी होते हैं। बुद्ध के अनुसार अनासक्ति (विरागतता) या भौतिक सुखों से परे जाना ही परम आनंद है। संक्षेप में, यह मिश्रित शरीर ही दुख का कारण है।

दुःख का यह प्रथम सत्य, जो तथाकथित अस्तित्व और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है, का गहन विश्लेषण और अध्ययन किया जाना चाहिए। यह अध्ययन व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप को सही ढंग से समझने की ओर ले जाता है।

बुद्ध ने कहा है: जन्म दुख है । जन्म का अर्थ है गर्भाधान से लेकर प्रसव तक की संपूर्ण जीवन प्रक्रिया। यहाँ विशेष रूप से गर्भाधान की बात की गई है। तृष्णा के बंधनों में जकड़े हुए, एक ठोस, क्षयशील, भौतिक शरीर से बंधे रहना ही दुख है । तृष्णा के प्रलोभन से जन्म लेना हो या कर्म के कारण विवश होना हो , दुख का अनुभव अवश्य होता है। जन्म की संपूर्ण प्रक्रिया इतनी पीड़ादायक होती है कि यदि किसी प्रकार से इसमें कोई गड़बड़ी हो जाए, जैसा कि आधुनिक मनोविज्ञान ने पाया है, तो शिशु के मन पर एक गहरा मानसिक घाव, एक प्रकार का आघात, रह सकता है। भगवान बुद्ध ने अपने अनंत जन्मों के अनुभवों से कहा है कि जन्म लेना एक भयावह अनुभव है, इतना कि अधिकांश लोग इसे भूलना ही बेहतर समझते हैं। एक अन्य अर्थ में भी जन्म वास्तव में दुख है , क्योंकि बुद्ध की शिक्षाओं में जन्म और मृत्यु क्षण-क्षण अस्तित्व के विभिन्न चरण हैं। जैसे शरीर में पुरानी कोशिकाओं के स्थान पर नई कोशिकाएँ बनती रहती हैं, वैसे ही मन में भी नए विचार आते हैं, उनका विश्लेषण होता है और वे लुप्त हो जाते हैं। यह निरंतर प्रवाह दिन-रात चलता रहता है, और यदि इसका ध्यानपूर्वक (अंतर्दृष्टि से) अध्ययन किया जाए, तो यह एक ऐसा अनुभवजन्य रोग प्रतीत होता है जो न तो शांति देता है, न सुरक्षा प्रदान करता है और न ही कोई स्थायी संतोष देता है। अनुभव के एक क्षण में घटनाएँ उत्पन्न होती हैं, विद्यमान होती हैं और लुप्त हो जाती हैं, लेकिन जन्म-मृत्यु का यह अर्थ केवल गहन ध्यान और अंतर्दृष्टि की सहायता से ही सही मायने में समझा जा सकता है।

बुढ़ापा दुःख है । यह शायद सबसे स्पष्ट है। दांत गिरने लगते हैं, सुंदर, चमकदार बाल पतले और सफेद हो जाते हैं, पेट मनपसंद भोजन पचाने से इनकार कर देता है, जोड़ों में दर्द और कटकने की आवाज आती है और मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं; इन शारीरिक कष्टों से कहीं अधिक गंभीर हैं दृष्टि का कमजोर होना या सुनने में कठिनाई — इन सबका वर्णन करने के लिए कई पन्ने भरे जा सकते हैं। सबसे भयानक है मन की समझने और बुद्धिमानी से प्रतिक्रिया करने की क्षमता का कम होना, आदतों और पूर्वाग्रहों की पकड़ का बढ़ना, आगे देखने की अनिच्छा (जहां मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है) और अतीत की यादों में खो जाना, जो धीरे-धीरे झूठे होते जा रहे हैं। अंत में, मन की उस कोमलता का जिक्र किया जा सकता है जिसे शिष्टता से 'दूसरा बचपन' कहा जाता है, और सटीक रूप से 'बुढ़ापा' कहा जाता है। सभी प्राणी, सभी लोग इन सभी स्थितियों से नहीं गुजरेंगे, लेकिन बुढ़ापा निश्चित रूप से इनमें से कुछ का अनुभव कराता है, एक ऐसा अनुभव जो केवल अरुचिकर ही हो सकता है।

बीमारी दुख है । हालांकि यह काफी आम बात है, फिर भी जीवन में सभी लोग बीमारियों से प्रभावित नहीं होते। इस शरीर पर विचार करें: यह कितना जटिल है, और यह कितना अद्भुत है कि यह पांच मिनट के लिए भी सुचारू रूप से काम करता है, आठ साल की तो बात ही छोड़ दें। एक छोटी सी ग्रंथि या कुछ छोटी कोशिकाएं कहीं गड़बड़ कर दें, तालमेल बिगाड़ दें, तो कितना कष्ट हो सकता है! ज्यादातर लोग इसके बारे में सोचना पसंद नहीं करते और इसलिए जब उन्हें इसका सामना करना पड़ता है तो वे और भी अधिक कष्ट भोगते हैं। बीमारी की व्यापकता को समझने के लिए, बस अस्पतालों में जाकर देखें, डॉक्टरों और नर्सों से बात करें, या चिकित्सा की पाठ्यपुस्तक खोलें। जिन बीमारियों के बारे में जानकारी मिल सकती है, उनकी संख्या बहुत अधिक है और वे कई तरह की भयावह स्थितियों में विलीन हो जाती हैं, जिनके कारणों का पता विज्ञान अभी तक नहीं लगा पाया है। लालच और घृणा के साथ मिश्रित अत्यधिक प्रबल भ्रम से उत्पन्न मानसिक रोग भी इसमें शामिल हैं।

बुद्ध के प्रथम उपदेश में, केंद्रीय अवधारणा दुख की धारणा है। बुद्ध ने कहा:

दुख का महान सत्य यह है: जन्म ही दुख है; बुढ़ापा दुख है; बीमारी दुख है; मृत्यु दुख है; अप्रिय संगति दुख है; प्रियजनों से वियोग दुख है; मनचाही वस्तुओं की प्राप्ति न होना दुख है। संक्षेप में, दुख के ये सभी पाँच तत्व दुख हैं।

"दुख के कारण का महान सत्य यह है: यही लालसा पुनर्जन्म का कारण बनती है, जो भोग-विलास से जुड़ी होती है। यह यहाँ-वहाँ आनंद लेती है, अर्थात् इंद्रिय सुखों में, अस्तित्व में और विनाश में।"

"दुखों के निवारण का महान सत्य यह है: यह उस लालसा से पूर्ण रूप से बचना, उसका निवारण करना, उसे त्याग देना, उससे मुक्ति पाना और उससे अनासक्ति प्राप्त करना है।"

"इस पीड़ा के निवारण का महान सत्य उचित दृष्टि और उचित विचार से युक्त अष्टमार्ग है।"

"दुख का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जिसके बारे में मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना आवश्यक है।"

"दुख के कारण का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, दुःख के इस कारण का वास्तव में त्याग करना आवश्यक है; और मैंने इसका त्याग कर दिया है।"

"दुखों के निवारण का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जिसके बारे में मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, इस महान सत्य का विकास अवश्य होना चाहिए; और मैंने इसका विकास कर दिया है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 212

———————————————————————

(धम्मपद 209, 210 और 211) <<<< पिछला || धम्मपद 212 || अगला >>>> (धम्मपद 213)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 212 - अन्नतारकुटुम्बिका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 212 - अन्नतारकुटुम्बिका वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Piyato jayati soko
piyato jayati bhayam
piyato vippamuttassa
natthi soko kuto bhayam.

———————————————————————

श्लोक 212 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

———————————————————————

एक धनी गृहस्थ की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (212) का उच्चारण किया, जो एक धनी गृहस्थ के संदर्भ में था जिसने अपने बेटे को खो दिया था।

एक बार एक गृहस्थ अपने पुत्र की मृत्यु से बहुत दुखी था। वह अक्सर श्मशान जाकर रोता था। एक सुबह बुद्ध ने उस धनी गृहस्थ को दर्शन दिए। इसलिए, एक भिक्षु को साथ लेकर बुद्ध उस गृहस्थ के घर गए। वहाँ उन्होंने उससे पूछा कि वह इतना दुखी क्यों है। तब उस गृहस्थ ने बुद्ध को अपने पुत्र की मृत्यु और अपने दुख-दर्द के बारे में बताया। बुद्ध ने उससे कहा, "मेरे शिष्य, मृत्यु केवल एक ही स्थान पर नहीं होती। सभी जन्म लेने वाले प्राणियों को एक दिन मरना ही है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है। तुम्हें सदा इस तथ्य को याद रखना चाहिए कि जीवन का अंत मृत्यु में होता है। यह मत सोचो कि केवल तुम्हारा प्रिय पुत्र ही मृत्यु के अधीन है। इतना दुखी या विचलित मत हो। दुख और भय स्नेह से उत्पन्न होते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 212 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

प्रवचन के अंत में, धनी गृहस्थ ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक धनी गृहस्थ की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक धनी गृहस्थ के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने अपने पुत्र को खो दिया था।
कथा के अनुसार, अपने पुत्र की मृत्यु से व्याकुल एक गृहस्थ इतना दुखी हुआ कि वह प्रतिदिन श्मशान जाकर रोता था, क्योंकि वह अपने दुःख को रोक नहीं पाता था। जब बुद्ध ने भोर में संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने देखा कि उस गृहस्थ में धर्म परिवर्तन के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं। इसलिए जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो उन्होंने एक भिक्षु को साथ लेकर उस गृहस्थ के घर गए। जब उस गृहस्थ ने सुना कि बुद्ध उसके घर आए हैं, तो उसने मन ही मन सोचा, "वे मुझसे कुशल मंगल और शिष्टाचार का अभिवादन करना चाहते होंगे।" अतः उसने बुद्ध को अपने घर में आमंत्रित किया, उन्हें प्रांगण में बैठने की व्यवस्था की, और जब बुद्ध बैठ गए, तो वह उसके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए।
तभी बुद्ध ने उससे पूछा, "हे गृहस्थ, तुम दुखी क्यों हो?" गृहस्थ ने उत्तर दिया, "मैंने अपना पुत्र खो दिया है, इसलिए मैं दुखी हूँ।" बुद्ध ने कहा, "शोक मत करो, गृहस्थ। जिसे मृत्यु कहते हैं, वह किसी एक स्थान या किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि इस संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों के लिए समान है। अस्तित्व का कोई भी तत्व स्थायी नहीं है। इसलिए हमें शोक में डूबे नहीं रहना चाहिए, बल्कि मृत्यु के प्रति तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जैसा कि कहा गया है, 'नश्वरता ने नश्वरता को सहा, नश्वरता ने नश्वरता को सहा।'"
पुराने समय के बुद्धिमान लोग पुत्र की मृत्यु पर शोक नहीं करते थे, बल्कि मृत्यु पर ध्यान लगाते हुए मन ही मन कहते थे, 'नश्वर का नश्वर होना तय है, विघटन का विघटन तय है।' बीते समय में बुद्धिमान लोग पुत्र की मृत्यु पर वैसा नहीं करते थे जैसा आप कर रहे हैं। आपने अपने नियमित कार्य छोड़ दिए हैं, भोजन त्याग दिया है और अपना समय शोक मनाने में व्यतीत कर रहे हैं। पुराने समय के बुद्धिमान लोग ऐसा नहीं करते थे। इसके विपरीत, वे मृत्यु पर ध्यान लगाते थे, शोक नहीं करते थे, हमेशा की तरह भोजन करते थे और अपने नियमित कार्य करते थे। इसलिए अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु पर शोक न करें। क्योंकि शोक या भय चाहे जो भी हो, वह केवल किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के कारण ही होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 212)
पियातो सोको जयति पियातो भयं जयति पियातो
विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो
पियातो [पियाता]: प्रेम के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; पियातो [पियाता]: प्रेम के कारण; भयं [भय]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; पियातो विप्पामुत्तस्सा : प्रेम से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [भय]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से भय उत्पन्न होता है। स्नेह से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता। तो ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 212)
बुद्ध की दिनचर्या : इस श्लोक और कई अन्य श्लोकों को जन्म देने वाली कथा के अनुसार, बुद्ध प्रत्येक सुबह संसार का चिंतन करते थे और उन लोगों की तलाश करते थे जिनकी सहायता की जानी चाहिए। बुद्ध को पृथ्वी पर रहने वाले सभी धार्मिक शिक्षकों में सबसे ऊर्जावान और सबसे सक्रिय माना जा सकता है। वे अपने शारीरिक कार्यों को पूरा करने के अलावा, सारा दिन धार्मिक गतिविधियों में

लीन रहते थे। वे अपने दैनिक कर्तव्यों के निर्वाह में विधिवत और व्यवस्थित थे। उनका आंतरिक जीवन ध्यान में व्यतीत होता था और वे निर्वाणिक आनंद की प्राप्ति में लगे रहते थे, जबकि उनका बाह्य जीवन संसार के नैतिक उत्थान के लिए निस्वार्थ सेवा में समर्पित था। स्वयं प्रबुद्ध होकर, उन्होंने दूसरों को भी प्रबुद्ध करने और उन्हें जीवन के दुष्चक्रों से मुक्त करने का भरसक प्रयास किया।
उनका दिन पाँच भागों में विभाजित था, अर्थात्:
सुबह का सत्र,
दोपहर का सत्र,
पहली घड़ी,
बीच वाली घड़ी और
आखिरी पहरा।
सामान्यतः, वे सुबह-सुबह अपनी दिव्य दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हैं कि वे किसकी सहायता कर सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति को उनकी आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता होती है, तो वे बिना बुलाए ही चले जाते हैं, अक्सर पैदल, कभी-कभी अपनी मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए हवाई मार्ग से, और उस व्यक्ति को सही मार्ग पर ले आते हैं। वे आमतौर पर दुष्टों और अपवित्रों की खोज में जाते हैं, परन्तु शुद्ध और गुणी लोग उनकी खोज में आते हैं। उदाहरण के लिए, बुद्ध स्वयं लुटेरे और हत्यारे अंगुलिमाला और दुष्ट राक्षस आलवक को परिवर्तित करने गए, परन्तु धर्मात्मा युवा विशाखा, उदार करोड़पति अनाथपिंडिका और बुद्धिमान सारिपुत्त और मोग्गलाना आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए उनके पास आए। जहां भी आवश्यक हो, आध्यात्मिक सेवा करते समय, यदि किसी विशेष स्थान पर किसी गृहस्थ समर्थक द्वारा भिक्षा देने का निमंत्रण न मिले, तो वे, जिनके समक्ष राजा भी नतमस्तक होते थे, अकेले या अपने शिष्यों के साथ, हाथ में भिक्षापात्र लिए गलियों और सड़कों पर भिक्षा मांगने निकल पड़ते थे। प्रत्येक घर के द्वार पर चुपचाप खड़े होकर, बिना कुछ बोले, वे जो भी भिक्षापात्र दिया जाता था, उसे एकत्र करके अपने कटोरे में रख देते थे और मठ लौट आते थे। यहां तक कि अस्सी वर्ष की आयु में भी, जब वे वृद्ध और अस्वस्थ थे, तब भी वे वैशाली में भिक्षा मांगने जाते थे। दोपहर से पहले वे अपना भोजन समाप्त कर लेते थे। दोपहर के भोजन के तुरंत बाद वे प्रतिदिन लोगों को संक्षिप्त प्रवचन देते थे, उन्हें तीन शरणों और पांच उपदेशों में स्थापित करते थे और यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता था, तो उसे संतत्व का मार्ग दिखाते थे। कभी-कभी वे संघ में प्रवेश चाहने वालों को दीक्षा प्रदान करते थे और फिर अपने कक्ष में लौट जाते थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 213

(धम्मपद 212) <<<< पिछला || धम्मपद 213 || अगला >>>> (धम्मपद 214)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 213 - विशाखा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 213 - विशाखा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Pemato jayati soko
pemato jayati bhayam
pemato vippamuttassa
natthi soko kuto bhayam.

श्लोक 213 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

———————————————————————

विशाखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (213) कहा।

एक दिन विशाखा की पोती सुदत्ता की मृत्यु हो गई। विशाखा को इस हानि का गहरा दुख हुआ और वह बच्ची की मृत्यु पर शोक मना रही थी। इसलिए वह बुद्ध के पास गई। बुद्ध ने उसे देखकर कहा, "विशाखा, क्या तुम्हें यह एहसास नहीं है कि श्रावस्ती में प्रतिदिन कितने लोग मरते हैं? यदि तुम उन सभी को अपनी पोती के समान मानोगी तो तुम्हें निरंतर रोना और शोक मनाना पड़ेगा। बच्चे की मृत्यु से इतना प्रभावित मत हो। शोक और भय स्नेह से उत्पन्न होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 213 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ की प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। कथा के अनुसार, विशाखा अपनी अनुपस्थिति में अपने पुत्र की पुत्री दत्ता को अपने घर में भिक्षुओं की सेवा करने की अनुमति देती थीं। कुछ समय बाद दत्ता का निधन हो गया। विशाखा ने उनके पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार में भाग लिया और फिर अपने शोक को वश में न कर पाने के कारण दुखी और शोकाकुल होकर बुद्ध के पास गईं और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गईं। बुद्ध ने विशाखा से कहा, “हे विशाखा, तुम यहाँ दुखी और शोकाकुल होकर, आँखों में आँसू लिए, क्यों रो रही हो?”

तब विशाखा ने बुद्ध को मामला समझाते हुए कहा, “आदरणीय, वह कन्या मुझे बहुत प्रिय थी और वह निष्ठावान और सच्ची थी; मुझे उसके जैसी कोई और नहीं मिलेगी।” “परन्तु, विशाखा, सावत्थी में कितने निवासी हैं?” “मैंने आपको कहते सुना है, आदरणीय, कि वहाँ सत्तर करोड़ लोग हैं।” “परन्तु मान लीजिए कि ये सभी लोग दत्ता की तरह ही आपको प्रिय होते; क्या आप ऐसा चाहते?” “जी हाँ, आदरणीय।” “परन्तु सावत्थी में प्रतिदिन कितने लोग मरते हैं?” “बहुत सारे, आदरणीय।” “तो फिर यह निश्चित है कि आपको अपने शोक को कम करने का समय नहीं मिलेगा, आप दिन-रात विलाप करते रहेंगे।” “बिल्कुल, आदरणीय; मैं समझती हूँ।” तब बुद्ध ने कहा, “ठीक है, शोक मत करो। क्योंकि चाहे शोक हो या भय, वह केवल स्नेह से ही उत्पन्न होता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 213)

पेमातो सोको जयति पेमातो भयं जयति

पेमातो विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो ?

पेमाटो [पेमाटा]: स्नेह के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; पेमाटो [पेमाटा]: स्नेह के कारण; भयं [भय]: भय, जयति : उत्पन्न होता है; पेमातो विप्पामुत्तस्सा : स्नेह से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [भय]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?

स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से भय उत्पन्न होता है। स्नेह रहित व्यक्ति को दुःख नहीं होता। इसलिए, ऐसे व्यक्ति के लिए भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 213)

विशाखा का शोक : बुद्ध ने यह श्लोक बुद्धशासन (बुद्ध का धर्म) के आरंभिक दिनों में बुद्ध की सबसे बड़ी महिला अनुयायी विशाखा को शांत करने के लिए कहा था। विशाखा का जीवन बौद्ध धर्म के प्रारंभिक इतिहास से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके जीवन में एक ऐसी घटना है जो पशुओं के प्रति भी उनकी कर्तव्यपरायणता को दर्शाती है। जब उन्हें पता चला कि उनकी सुसंस्कृत घोड़ी ने आधी रात को एक बछड़े को जन्म दिया है, तो वे तुरंत अपनी महिला परिचारिकाओं के साथ मशालें लेकर अस्तबल में गईं और घोड़ी की सभी जरूरतों का अत्यंत ध्यान रखा।

उनके ससुर निगंठनातपुत्त के कट्टर अनुयायी थे, इसलिए उन्होंने बड़ी संख्या में नग्न तपस्वियों को भिक्षा के लिए अपने घर आमंत्रित किया। उनके आने पर विशाखा से इन तथाकथित अरहतों को प्रणाम करने का अनुरोध किया गया। अरहत शब्द सुनकर वह प्रसन्न हुईं और तुरंत हॉल में गईं, जहाँ उन्होंने देखा कि तपस्वी निर्लज्ज थे। विशाखा जैसी सुसंस्कृत महिला के लिए यह दृश्य असहनीय था।

उन्होंने अपने ससुर को फटकारा और उनका स्वागत किए बिना अपने कमरे में लौट गईं। नग्न तपस्वियों को यह बात बुरी लगी और उन्होंने करोड़पति पर तपस्वी गौतम की एक महिला अनुयायी को अपने घर लाने का आरोप लगाया। उन्होंने उनसे उसे तुरंत घर से निकालने को कहा। करोड़पति ने उन्हें शांत किया। एक दिन वह एक कीमती आसन पर बैठे और सोने के कटोरे में मीठी दूध की दलिया खाने लगे। उसी समय एक भिक्षु भिक्षा मांगने घर में दाखिल हुए। विशाखा अपने ससुर को पंखा कर रही थी और बिना उन्हें बताए एक तरफ हट गई ताकि वे उन्हें देख सकें। हालांकि उन्होंने उन्हें देख लिया था, फिर भी वे ऐसे खाते रहे मानो उन्होंने उन्हें देखा ही न हो।
विशाखा ने विनम्रता से भिक्षु से कहा, "हे पूज्यवर, आप आगे बढ़िए, मेरे ससुर बासी भोजन (पुराण) खा रहे हैं।" अज्ञानी करोड़पति ने उसके शब्दों का गलत अर्थ निकाला और इतना क्रोधित हो गया कि उसने कटोरा हटाने और विशाखा को घर से निकालने का आदेश दिया। विशाखा घर के सभी लोगों की प्रिय थी, इसलिए कोई भी उसे छूने की हिम्मत नहीं करता था। लेकिन विशाखा, अनुशासित स्वभाव की होने के कारण, अपने ससुर से भी इस तरह का व्यवहार चुपचाप स्वीकार नहीं कर सकी। उसने विनम्रता से कहा, "पिताजी, यह आपके घर छोड़ने का पर्याप्त कारण नहीं है। आप मुझे यहाँ किसी नदी के किनारे से दासी की तरह नहीं लाए हैं। जिन बेटियों के माता-पिता जीवित होते हैं, वे इस तरह घर नहीं छोड़तीं। इसी कारण से, जब मैं यहाँ आने के लिए निकली थी, तब मेरे पिता ने आठ कुलियों को बुलाया और मुझे उनके हवाले करते हुए कहा, 'यदि मेरी पुत्री में कोई दोष हो, तो उसकी जाँच कीजिए।'" उन्हें संदेश भेजो और उन्हें मेरी गलती या बेगुनाही की जांच करने दो।
करोड़पति ने उसके उचित प्रस्ताव को मान लिया और उन्हें बुलाकर कहा, "त्योहार के समय, जब मैं सोने के कटोरे में बैठकर मीठी दूध की चावल की दलिया खा रहा था, तब इस लड़की ने कहा कि मैं जो खा रहा हूँ वह अशुद्ध है। इस गलती के लिए उसे दोषी ठहराओ और घर से निकाल दो।" विशाखा ने अपनी निर्दोषता साबित करते हुए कहा, "मैंने ठीक ऐसा नहीं कहा था। जब एक साधु भिक्षा मांगने दरवाजे पर खड़ा था, तब मेरे ससुर उसे अनदेखा करते हुए मीठी दूध की चावल की दलिया खा रहे थे। यह सोचकर कि मेरे पिता ने इस जीवन में कोई अच्छा कर्म नहीं किया है, वे केवल पिछले कर्मों का फल भोग रहे हैं, मैंने साधु से कहा, 'आदरणीय, आगे बढ़िए, मेरे ससुर बासी खाना खा रहे हैं।' इसमें मेरी क्या गलती है?"
उन्हें आरोप से बरी कर दिया गया, और ससुर ने स्वयं मान लिया कि वह दोषी नहीं थीं। लेकिन उस द्वेषपूर्ण करोड़पति ने उन पर फिर से आरोप लगाया कि वह आधी रात को पुरुष और महिला सेवकों के साथ घर के पीछे गई थीं। जब उन्होंने समझाया कि वास्तव में वह प्रसव पीड़ा से जूझ रही घोड़ी की देखभाल करने के लिए गई थीं, तो परिवार के सदस्यों ने कहा कि उनकी कुलीन बेटी ने एक अनुकरणीय कार्य किया है जो एक दासी भी नहीं करती। इस प्रकार उन्हें दूसरे आरोप से भी बरी कर दिया गया। लेकिन प्रतिशोधी करोड़पति तब तक चैन से नहीं बैठा जब तक कि वह दोषी साबित न हो जाए। अगली बार उसने बिना किसी कारण के उन पर दोष मढ़ा। उसने कहा कि घर से निकलने से पहले उनके पिता ने उन्हें दस नसीहतें दी थीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने उनसे कहा, "घर की आग को बाहर नहीं ले जाना चाहिए। क्या वास्तव में बिना अपने दोनों ओर के पड़ोसियों को भी आग दिए जीना संभव है?" करोड़पति ने सवाल किया।
उसने इस अवसर का लाभ उठाते हुए दसों चेतावनियों को विस्तार से समझाया और उसे पूरी तरह संतुष्ट कर दिया। करोड़पति चुप हो गया और उसके पास आरोप लगाने के लिए कुछ नहीं बचा। अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के बाद, स्वाभिमानी विशाखा अब घर छोड़ने की इच्छा रखती थी, जैसा कि उसे शुरू में आदेश दिया गया था। करोड़पति का विशाखा के प्रति रवैया पूरी तरह बदल गया और वह अपनी बहू से अपनी अज्ञानता में कही गई बातों के लिए क्षमा मांगने के लिए विवश हो गया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 214

(धम्मपद 213) <<<< पिछला || धम्मपद 214 || अगला >>>> (धम्मपद 215)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 214 - लिच्छवि वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 214 - लिच्छवि वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Ratiya jayati soko
ratiya jayati bhayam
रतिया विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

श्लोक 214 : आसक्ति (इंद्रिय सुखों से) दुःख उत्पन्न करती है, आसक्ति भय उत्पन्न करती है। जो आसक्ति से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
वेसाली में कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने लिच्छवी राजकुमारों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (214) कहा।
एक त्यौहार के दिन, बुद्ध भिक्षुओं के एक दल के साथ वैशाली नगर में प्रवेश कर रहे थे। रास्ते में, उनकी मुलाकात कुछ लिच्छवी राजकुमारों से हुई, जो भव्य वस्त्रों में सजे हुए थे। बुद्ध ने उन्हें पूर्ण वेशभूषा में देखकर भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, जो लोग तावतिंसा देवलोक में नहीं गए हैं, उन्हें इन लिच्छवी राजकुमारों को अवश्य देखना चाहिए।" राजकुमार एक आनंद उद्यान की ओर चल पड़े। वहाँ, वे एक वेश्या को लेकर आपस में झगड़ पड़े और जल्द ही मारपीट शुरू हो गई। परिणामस्वरूप, उनमें से कुछ को खून बहते हुए घर ले जाना पड़ा। जब बुद्ध नगर में भोजन करने के बाद भिक्षुओं के साथ लौटे, तो उन्होंने घायल राजकुमारों को घर ले जाते हुए देखा।
उपरोक्त घटना के संदर्भ में भिक्षुओं ने कहा, "एक स्त्री के कारण ये लिच्छवी राजकुमार बर्बाद हो गए।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, दुख और भय इंद्रिय सुखों के भोग और उनसे आसक्ति के कारण उत्पन्न होते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 214 : आसक्ति (इंद्रिय सुखों से) दुःख उत्पन्न करती है, आसक्ति भय उत्पन्न करती है। जो आसक्ति से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
वेसाली के कूटागार मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने लिच्छवी राजकुमारों के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
कथा के अनुसार, एक त्यौहार के दिन, लिच्छवी राजकुमार, अत्यंत विविध आभूषणों से सजे हुए, आनंद उद्यान जाने के लिए शहर से निकले। जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने उन्हें देखा और भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं, उन लिच्छवी राजकुमारों को देखो! तुममें से जिन्होंने तैंतीस देवताओं के दर्शन नहीं किए हैं, एक बार इन राजकुमारों को देखो!” इतना कहकर बुद्ध शहर में प्रवेश कर गए।
आनंद उद्यान जाते समय राजकुमारों ने एक वेश्या को देखा और उसे अपने साथ ले गए। वेश्या के कारण दोनों आपस में ईर्ष्या करने लगे और इस तरह खून की नदी बहने लगी। लोगों ने उन्हें गद्दों पर लिटाया, उठाया और ले गए। बुद्ध ने भोजन करने के बाद नगर छोड़ दिया। जब भिक्षुओं ने लिच्छवी राजकुमारों को इस प्रकार ले जाते हुए देखा, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, सुबह-सुबह लिच्छवी राजकुमार देवताओं के समान सजे-धजे नगर से निकले थे। परन्तु अब एक स्त्री के कारण वे इस दयनीय स्थिति में आ गए हैं।” बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, चाहे दुःख हो या भय, वह केवल कामवासना के कारण ही उत्पन्न होता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 214)
रतिया सोको जयति रतिया भयं जयति रतिया
विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो ?
रतिया : वासना के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; रतिया : वासना के कारण; भयं [भय]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; रतिया विप्पमुत्तस्स : वासना से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [भय]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है। कामवासना से भय उत्पन्न होता है। कामवासना से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति में भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 214)
लिच्छवी राजकुमार : यह श्लोक बुद्ध ने एक ऐसी घटना के संदर्भ में कहा था जिसमें लिच्छवी राजकुमारों का जिक्र था। लिच्छवी वंश, जिसकी राजधानी वैशाली थी— जो बुद्ध के समय में भारत के सबसे महान शहरों में से एक था—एक अत्यंत अभिमानी राजवंश था। निम्नलिखित घटना इसे दर्शाती है।
वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि बुद्ध वैशाली आए हैं और अंबपाली के आम के बाग में ठहरे हैं। वे कीमती वाहनों के काफिले में सवार होकर आम के बाग की ओर चल पड़े। उनमें से कुछ गहरे नीले रंग के थे और उन्होंने गहरे नीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ पीले रंग के थे और उन्होंने पीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ लिच्छवी लाल रंग के थे और उन्होंने लाल रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ पीले रंग के थे और उन्होंने पीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे।
अंबापाली ने अपने वाहनों को युवा लिच्छवियों के वाहनों के विरुद्ध इस प्रकार दौड़ाया, जैसे धुरी से धुरी, पहिए से पहिए और जुए से जुआ। तब लिच्छवियों ने अंबापाली को संबोधित किया।
"हे अंबपाली, तुम युवा लिच्छवियों के विरुद्ध इस प्रकार धुरी से धुरी, पहिए से पहिए और जुए से जुए को जोड़कर क्यों गाड़ी चलाते हो?"
"ऐसा इसलिए है क्योंकि मैंने कल अपने निवास पर भिक्षुओं के समुदाय सहित भगवान बुद्ध को भिक्षा देने के लिए आमंत्रित किया है," अंबपाली ने कहा।
"क्या आप हमें यह मौका देंगे, अंबपाली, एक लाख सोने के सिक्कों के बदले?" लिच्छवियों ने पूछा।
"नहीं, मेरे स्वामियों, यदि आप मुझे अपने सभी उपनिवेशों सहित संपूर्ण वैशाली भी पेश कर दें, तो भी मैं आपको भोजन अर्पित करने का यह अवसर नहीं दूंगा।"
लिच्छवियों ने उंगलियां चटकाते हुए कहा, "हम आम के बाग की इस स्त्री से हार गए हैं। हम आम के बाग की इस स्त्री से पराजित हो गए हैं।"
हालांकि, वे आम के बाग की ओर बढ़ गए, और बुद्ध ने उन्हें दूर से देखकर भिक्षुओं के समूह से कहा, "आपमें से जिन भिक्षुओं ने तावतिंस लोक के देवताओं को नहीं देखा है, वे इन लिच्छवी राजकुमारों को देखें और उन्हें तावतिंस के देवताओं के समान समझें।"
लिच्छवी राजकुमार अपने वाहनों से उतरे और उस स्थान तक गए जहाँ बुद्ध विराजमान थे। वे एक तरफ बैठ गए और बुद्ध के उपदेश सुनने लगे। यद्यपि उन्होंने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को अगले दिन भिक्षा के लिए आमंत्रित किया, पर बुद्ध ने कहा कि उन्होंने पहले ही अंबपाली से भिक्षा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। लिच्छवी राजकुमारों ने चुटकी बजाते हुए कहा, "हम हार गए, और आम के बाग की स्त्री ने हमें परास्त कर दिया।"
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 215

(धम्मपद 214) <<<< पिछला ll धम्मपद 215 ll अगला >>>> (धम्मपद 216)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 215 - अनिट्ठिगन्धकुमार वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 215 - अनिट्ठिगन्धकुमार वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Kamato jayati soko
कामतो जयति भयम्
कामतो विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

श्लोक 215 : कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है, कामवासना से भय उत्पन्न होता है। जो कामवासना से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

अनित्थिगंधा कुमार की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनित्थिगंधा नामक एक युवक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (215) कहा।

अनित्थिगंधा सावत्थी में रहते थे। उनका विवाह मद्दाओं के देश में स्थित सागला नगर की एक सुंदर युवती से होने वाला था। जब दुल्हन अपने घर से सावत्थी आ रही थी, तो वह बीमार पड़ गई और रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। जब दूल्हे को अपनी दुल्हन की इस दुखद मृत्यु के बारे में पता चला तो वह अत्यंत स्तब्ध रह गया।

इस समय, बुद्ध यह जानते हुए कि युवक के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है, उसके घर गए। युवक के माता-पिता ने बुद्ध को भिक्षा दी। भोजन के बाद, बुद्ध ने उसके माता-पिता से युवक को अपने समक्ष लाने को कहा। जब वह आया, तो बुद्ध ने उससे पूछा कि वह इतने दुःख और पीड़ा में क्यों है, और युवक ने अपनी युवा दुल्हन की दुखद मृत्यु की पूरी कहानी सुनाई। तब बुद्ध ने उससे कहा, "हे अनित्थिगंधा! कामवासना दुःख को जन्म देती है; वस्तुओं की लालसा और इंद्रिय सुखों की लालसा के कारण ही दुःख और भय उत्पन्न होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 215 : कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है, कामवासना से भय उत्पन्न होता है। जो कामवासना से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

प्रवचन के अंत में अनित्थिगंधा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अनित्थिगंधा कुमार की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनित्थिगंधा नामक एक युवक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

हमें बताया जाता है कि अनित्थिगंधा ब्रह्मालोक से निकलकर श्रावस्ती लोक में एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लिया। जन्म से ही उन्होंने किसी स्त्री के निकट जाने से इनकार कर दिया। जब वे वयस्क हुए तो उनके माता-पिता ने उनसे कहा, “पुत्र, हम तुम्हारा विवाह कराना चाहते हैं।” युवक ने उत्तर दिया, “मुझे स्त्री की कोई आवश्यकता नहीं है।” उन्होंने बार-बार उनसे कहा, और हर बार उन्होंने इनकार कर दिया। अंततः उन्होंने पाँच सौ सुनारों से सोने की एक ठोस प्रतिमा बनवाई, जो अत्यंत सुंदर स्त्री के रूप में थी, और अपने माता-पिता से कहा, “यदि आप मुझे ऐसी ही कोई कन्या लाकर देंगे, तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।” ऐसा कहते हुए उन्होंने सोने की प्रतिमा की ओर इशारा किया। तब उनके माता-पिता ने कई प्रतिष्ठित ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें यह कहते हुए भेजा, “हमारे पुत्र में बहुत गुण हैं; अवश्य ही कोई कन्या होगी जिसने उनके साथ पुण्य कर्म किए होंगे। इस सोने की प्रतिमा को अपने साथ ले जाओ, विदेश जाओ और अपने साथ ऐसी ही सुंदर कन्या लाकर लाओ।” “सहमत हैं,” ब्राह्मणों ने कहा, और वे एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हुए मद्दा राज्य के सागला नगर में पहुँचे।

इस नगर में लगभग सोलह वर्ष की एक युवती रहती थी, जो अत्यंत सुंदर थी। ब्राह्मणों ने सोने की मूर्ति को स्नानघर की ओर जाने वाली सड़क के किनारे स्थापित कर दिया। जब उस युवती की दाई ने मूर्ति देखी, तो उसने मन ही मन कहा, “मैंने सोचा था कि यह मेरी अपनी बेटी है; भला यह क्या हो सकती है?” तब ब्राह्मणों ने उससे पूछा, “हे स्त्री, क्या तुम्हारी बेटी इस मूर्ति जैसी दिखती है?” “मेरी बेटी के सामने यह मूर्ति क्या है?” “तो फिर हमें अपनी बेटी दिखाओ।” दाई ब्राह्मणों के साथ घर तक गई। घर के मुखिया और स्वामिन ने ब्राह्मणों का सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और फिर अपनी पुत्री को नीचे बुलाकर महल के निचले तल पर सोने की प्रतिमा के पास खड़ा कर दिया। कन्या इतनी सुंदर थी कि प्रतिमा उसके सामने फीकी लगने लगी। ब्राह्मणों ने प्रतिमा उन्हें दे दी, कन्या को अपने साथ ले गए और अनित्तिगंधा कुमार के माता-पिता को सूचना देने चले गए। वे प्रसन्न होकर ब्राह्मणों से बोले, “इस कन्या को शीघ्र यहाँ ले आओ।” ऐसा कहकर उन्हें बहुमूल्य भेंटों के साथ भेजा गया। अनित्तिगंधा कुमार ने जब यह सूचना सुनी तो उन्होंने कहा, “कन्या को शीघ्र यहाँ ले आओ।” वह युवती एक गाड़ी में सवार हुई, लेकिन वह इतनी नाज़ुक थी कि रास्ते में गाड़ी के झटकों से उसे ऐंठन होने लगी और उसकी मृत्यु हो गई। जब युवक को उसकी मृत्यु की सूचना मिली, तो वह बोला, “अफ़सोस, मैं इतनी सुंदर स्त्री से मिलने से चूक गया!” वह गहरे शोक में डूब गया और दुःख और पीड़ा से व्याकुल हो गया।

बुद्ध ने देखा कि युवक धर्म परिवर्तन के लिए तैयार है, इसलिए भिक्षा मांगने के दौरान वे उसके घर के द्वार पर रुके। युवक के माता-पिता ने उन्हें भोजन के लिए अंदर बुलाया। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने युवक से पूछा, "युवक, तुम बहुत दुखी लग रहे हो।" युवक ने उत्तर दिया, "जी जी, पूज्यवर, अभी-अभी रास्ते में एक अत्यंत सुंदर स्त्री का निधन हो गया है, और उसकी मृत्यु की खबर से मैं बहुत दुखी हूँ; मेरा दुख इतना गहरा है कि मुझे भोजन भी नहीं पच रहा है।" तब बुद्ध ने उससे कहा, "परन्तु, युवक, क्या तुम अपने इस गहरे दुःख का कारण जानते हो?" "नहीं, पूज्यवर, मैं नहीं जानता।" बुद्ध ने कहा, "युवक, प्रेम के कारण तुम पर गहरा दुःख आया है; दुःख और भय दोनों प्रेम से उत्पन्न होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 215)

कामतो सोको जयति कामतो भयं जयति
कामातो विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो

कामातो [कामता]: जुनून के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; कामातो [कामता]: जुनून के कारण; भयं [भय]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; कामातो विप्पमुत्तस्स : जुनून से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [भय]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?

इच्छा से दुख उत्पन्न होता है। इच्छा से भय उत्पन्न होता है। इच्छा से मुक्त व्यक्ति को दुख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 215)

विशेष टिप्पणी : राजकुमार अनित्थिगंधा की कहानी राजा कुश की कहानी से उल्लेखनीय रूप से मिलती-जुलती है। हालांकि, कुश की कहानी के विपरीत, इस कहानी में राजकुमार अत्यंत सुंदर है। यह समानता राजकुमार की दृष्टि में नारी सौंदर्य के आदर्श को दर्शाने वाली एक स्वर्ण प्रतिमा के निर्माण में प्रकट होती है। इस कहानी में और कुश की घटना में भी, राजकुमार आदर्श दुल्हन की तलाश में ब्राह्मणों को स्वर्ण प्रतिमा के साथ भेजता है। लेकिन इस कहानी में, स्वर्ण प्रतिमा से मेल खाने वाली एक सुंदर स्त्री की खोज होती है, और घटना का अंत दुखद होता है, क्योंकि राजकुमार से मिलने के रास्ते में ही दुल्हन की मृत्यु हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 216

(धम्मपद 215) <<<< पिछला || धम्मपद 216 || अगला >>>> (धम्मपद 217)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 216 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 216 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

तनहया जपति सोको
तनहया जयति भयम्
तनहया विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

श्लोक 216 : लालसा दुख को जन्म देती है, लालसा भय को जन्म देती है। जो लालसा से मुक्त है, उसे दुख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

एक ब्राह्मण की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (216) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया जो किसान था।
वह ब्राह्मण सावत्थी में रहता था और बौद्ध नहीं था। लेकिन बुद्ध जानते थे कि वह ब्राह्मण निकट भविष्य में सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। इसलिए बुद्ध उस ब्राह्मण के पास गए जो अपना खेत जोत रहा था और उससे बात की। ब्राह्मण उससे मित्रवत हो गया और बुद्ध का आभारी था कि उन्होंने उसमें और उसके खेत के काम में रुचि दिखाई। एक दिन उसने बुद्ध से कहा, "समना गौतम, जब मैं इस खेत से अपना चावल इकट्ठा कर लूंगा, तो पहले आपको थोड़ा सा अर्पित करूंगा। मैं आपको चावल दिए बिना अपना चावल नहीं खाऊंगा।"
हालांकि, बुद्ध पहले से ही जानते थे कि उस वर्ष ब्राह्मण को अपने खेत से चावल काटने का अवसर नहीं मिलेगा, लेकिन वे चुप रहे।
फिर, ब्राह्मण की धान की कटाई से एक रात पहले, भारी बारिश हुई जिससे धान की पूरी फसल बह गई। ब्राह्मण बहुत दुखी हुआ, क्योंकि अब वह अपने मित्र समना गौतम को धान भेंट नहीं कर पाएगा।
बुद्ध ब्राह्मण के घर गए और ब्राह्मण ने उन्हें अपने ऊपर आई विपत्ति के बारे में बताया। उत्तर में बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, तुम दुःख का कारण नहीं जानते, पर मैं जानता हूँ। दुःख और भय उत्पन्न होते हैं तो वे लालसा के कारण उत्पन्न होते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 216 : लालसा दुख को जन्म देती है, लालसा भय को जन्म देती है। जो लालसा से मुक्त है, उसे दुख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ब्राह्मण की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक किसान ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण, जिसके विचार भ्रामक थे, एक दिन नदी के किनारे अपना खेत साफ करने गया। बुद्ध ने देखा कि वह धर्म परिवर्तन के लिए तैयार है, इसलिए वे उसके पास गए। ब्राह्मण ने बुद्ध को देखा तो भी उन्हें कोई आदर नहीं दिया और चुप रहा। बुद्ध ने पहले ही बात की और पूछा, “ब्राह्मण, तुम क्या कर रहे हो?” “हे पूज्यवर, मैं अपना खेत साफ कर रहा हूँ।” बुद्ध ने और कुछ नहीं कहा और अपने मार्ग पर चले गए। अगले दिन, ब्राह्मण अपना खेत जोतने गया। बुद्ध उसके पास गए और पूछा, “ब्राह्मण, तुम क्या कर रहे हो?” “हे पूज्यवर, मैं अपना खेत जोत रहा हूँ।” उसका उत्तर सुनकर बुद्ध अपने मार्ग पर चले गए। कई दिनों तक लगातार बुद्ध ब्राह्मण के पास गए और वही प्रश्न पूछा। उत्तर मिलने पर, “हे पूज्यवर, मैं अपने खेत में बीज बो रहा हूँ, मैं अपने खेत से खरपतवार निकाल रहा हूँ, मैं अपने खेत की रखवाली कर रहा हूँ,” बुद्ध अपने मार्ग पर चले गए। एक दिन ब्राह्मण ने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, जब से मैंने अपना खेत साफ किया है, आप यहाँ आते रहे हैं। यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं उसे आपके साथ बाँटूँगा। मैं स्वयं आपको दिए बिना नहीं खाऊँगा। अब से आप मेरे सहभागी होंगे।”
समय बीतने के साथ-साथ उनकी फसल खूब फली-फूली। एक दिन उन्होंने मन ही मन कहा, “मेरी फसल खूब फली-फूली है; कल मैं कटाई करने वालों को काम पर लगाऊंगा।” अतः उन्होंने कटाई की तैयारी शुरू कर दी। लेकिन उसी रात भयंकर बारिश हुई और उनकी सारी फसल बह गई; खेत ऐसा लग रहा था मानो उसे पूरी तरह से काट दिया गया हो। लेकिन बुद्ध को शुरू से ही पता था कि उनकी फसल अच्छी नहीं होगी। सुबह जब ब्राह्मण ने देखा कि खेत पूरी तरह से साफ हो गया है, तो उन्होंने गहरे दुःख से सोचा, “जिस दिन से मैंने पहली बार खेत साफ किया है, उस दिन से भिक्षु गौतम इस खेत में आते रहे हैं और मैंने उनसे कहा है, 'यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं इसे आपके साथ बाँट लूँगा। मैं स्वयं आपको दिए बिना नहीं खाऊँगा। अब से आप मेरे सहभागी होंगे।' परन्तु मेरे हृदय की इच्छा पूरी नहीं हुई।” और इसलिए उन्होंने भोजन करने से इनकार कर दिया और सोने चले गए। अब बुद्ध अपने घर के द्वार पर रुक गए। जब ब्राह्मण ने सुना कि बुद्ध आ गए हैं, तो उसने कहा, “मेरे सहभागी को अंदर लाओ और उन्हें यहाँ बैठने दो।” उनके सेवकों ने ऐसा ही किया। जब बुद्ध अपने आसन पर बैठ गए, तो उन्होंने पूछा, “क्या बात है, ब्राह्मण?” “आदरणीय, जब से मैंने अपना खेत साफ किया है, तब से आप मुझसे मिलने आते रहे हैं, और मैंने आपसे कहा है, 'यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं उसे आपके साथ बाँट लूँगा।' परन्तु मेरे मन की इच्छा पूरी नहीं हुई। इसलिए, मुझे दुःख हुआ है, और अब मुझे भोजन से लाभ नहीं होता।” तब बुद्ध ने उनसे कहा, “परन्तु, ब्राह्मण, क्या तुम जानते हो कि इस दुःख का कारण क्या है?” “नहीं, आदरणीय, यह मैं नहीं जानता। परन्तु आप जानते हैं।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “जी, ब्राह्मण। दुःख हो या भय, वह केवल इच्छा से ही उत्पन्न होता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 216)
तन्हाय सोको जयति , तन्हाय भयं जयति
तन्हाय विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो
तन्हाय : इच्छा के कारण; सोको : दु:ख; जयति : जन्म लेता है; तन्हाय : इच्छा के कारण; भयं [भय]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; तन्हाय विप्पमुत्तस्स : इच्छा से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दु:ख नहीं है; भयं [भय]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
व्यथा से दु:ख उत्पन्न होता है। व्यथा से भय उत्पन्न होता है। व्यथा से मुक्त व्यक्ति को दु:ख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 216)
ताण्हा : प्यास; लालसा। लालसा ही दुख का मुख्य कारण है, और पुनर्जन्म के निरंतर चक्र का भी। "हे भिक्षु, दुख का मूल क्या है? यह वही लालसा है जो नए जन्म को जन्म देती है और सुख और कामवासना से बंधी हुई, यहाँ-वहाँ नए-नए आनंद की खोज करती है। यह इंद्रिय-तना (काम-तना), अस्तित्व की लालसा (भव-तना), और गैर-अस्तित्व की लालसा (विभव-तना) है। ताण्हा आश्रित उत्पत्ति (पटिच्च-समुप्पाद) के सूत्र में आठवीं कड़ी है ।"
छह इंद्रिय-विषयों के अनुरूप, छह प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं: दृश्य वस्तुओं की तृष्णा, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, शारीरिक अनुभूतियों और मानसिक अनुभूतियों की तृष्णा (रूपा-तन्हा , सद्धा , गंध , रस , फोत्तब्बा और धम्म)। त्रिगुणी अस्तित्व के अनुरूप, तीन प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं: इंद्रिय-संबंधी अस्तित्व की तृष्णा (काम-तन्हा), सूक्ष्म भौतिक अस्तित्व की तृष्णा (रूप) और अभौतिक अस्तित्व की तृष्णा (अरूप)।
आंतरिक रूप से उत्पन्न अठारह विचार-मार्ग (तन्हा-विचरित) और बाह्य रूप से उत्पन्न अठारह विचार-मार्ग हैं ; भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल में घटित होने के कारण इनकी कुल संख्या एक सौ आठ है। प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार, तृष्णा भावना से प्रेरित होती है। अस्तित्व की तृष्णा (भव-तन्हा) के बारे में कहा गया है: "हे भिक्षुओं, अस्तित्व की तृष्णा का कोई ऐसा आरंभ नहीं देखा जा सकता जिसके पहले वह न हो और जिसके बाद वह उत्पन्न हो। परन्तु यह देखा जा सकता है कि अस्तित्व की तृष्णा की एक विशिष्ट स्थिति होती है। हे भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व की तृष्णा का भी एक पोषण देने वाला (साहारम्) कारक होता है और वह इसके बिना नहीं होती। और वह क्या है? उत्तर है, अज्ञान।" अस्तित्व की तृष्णा और अज्ञान को सुखी और दु:खी नियतियों (जीवन पथों) के प्रमुख कारण कहा जाता है।

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 217 - पञ्चसतादारक वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 217 - पञ्चसतादारक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
सिलादससनसम्पन्नम
धम्मत्थम सच्चवेदिनाम
अत्तानो कम्म कुब्बनम
tam jano kurute piyam.

श्लोक 217 : जो व्यक्ति सद्गुण और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है, जो धम्म में स्थापित है, जिसने सत्य को जान लिया है और अपने कर्तव्यों का पालन करता है, वह सभी मनुष्यों का प्रिय है।

पांच सौ लड़कों की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ लड़कों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (217) कहा।
एक त्यौहार के दिन, बुद्ध कई भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह नगर में प्रवेश किया। रास्ते में, उन्हें पाँच सौ लड़के एक उद्यान की ओर जाते हुए मिले। लड़कों के पास पैनकेक से भरी कुछ टोकरियाँ थीं, लेकिन उन्होंने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को कुछ भी भेंट नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, आज तुम ये पैनकेक खा लो; स्वामी हमारे पीछे आ रहा है। हम इनमें से कुछ पैनकेक लेकर ही आगे बढ़ेंगे।" यह कहकर, बुद्ध और उनके भिक्षु एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे। ठीक उसी समय थेरा कस्सपा वहाँ से गुज़रे, और उन्हें देखकर लड़कों ने उन्हें प्रणाम किया और अपने सारे पैनकेक थेरा को भेंट कर दिए।
तब थेरा ने लड़कों से कहा, "मेरे गुरु, परम पूज्य बुद्ध, वहाँ एक वृक्ष के नीचे कुछ भिक्षुओं के साथ विश्राम कर रहे हैं; जाओ और उन्हें और भिक्षुओं को अपने पैनकेक भेंट करो।" लड़कों ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। बुद्ध ने उनके पैनकेक का प्रसाद स्वीकार किया। बाद में, जब भिक्षुओं ने कहा कि लड़के थेरा कस्सपा के प्रति बहुत स्नेह रखते हैं, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र कस्सपा के समान सभी भिक्षु देवदूतों और मनुष्यों दोनों को प्रिय होते हैं। ऐसे भिक्षुओं को भिक्षुओं के लिए आवश्यक चारों वस्तुओं का भरपूर प्रसाद प्राप्त होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 217 : जो व्यक्ति सद्गुण और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है, जो धम्म में स्थापित है, जिसने सत्य को जान लिया है और अपने कर्तव्यों का पालन करता है, वह सभी मनुष्यों का प्रिय है।

प्रवचन के अंत में पांच सौ लड़कों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ लड़कों की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ लड़कों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन, एक विशेष पर्व के अवसर पर, जब बुद्ध अपने आठ प्रमुख भिक्षुओं और पाँच सौ भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि पाँच सौ युवक अपने कंधों पर केक की टोकरियाँ लिए शहर से निकलकर एक उद्यान की ओर जा रहे हैं। बुद्ध को देखकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और बिना किसी भिक्षु से "एक केक खाओ" कहे अपने मार्ग पर आगे बढ़ गए। उनके चले जाने पर, बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप कुछ केक खाना चाहेंगे?" "आदरणीय, मेरे केक कहाँ हैं?" "क्या आप उन युवकों को अपने कंधों पर केक की टोकरियाँ लिए जाते हुए नहीं देख रहे हैं?" "आदरणीय, ऐसे युवक कभी किसी को केक नहीं देते।" "भिक्षुओं, यद्यपि इन युवकों ने आपको या मुझे अपने केक में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया है, फिर भी केक का स्वामी एक भिक्षु पीछे-पीछे आ रहा है। आगे बढ़ने से पहले आपको कुछ केक अवश्य खाने चाहिए।" बुद्ध किसी भी मनुष्य के प्रति द्वेष या घृणा की भावना नहीं रखते। अत: बुद्ध ने ऐसा कहा। और ऐसा कहकर वे भिक्षुओं के समूह के साथ गए और एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।
जब युवकों ने पूज्य महा कस्सपा को पीछे-पीछे आते देखा, तो वे तुरंत उनसे मोहित हो गए। वास्तव में, उन्हें देखकर उनके शरीर में आनंद की लहर दौड़ गई। उन्होंने तुरंत अपनी टोकरियाँ नीचे रख दीं, पाँच विश्राम करने वाले बुजुर्ग को प्रणाम किया, टोकरियाँ समेत सभी रोटी और प्रसाद ऊपर उठाए और बुजुर्ग को प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "पूज्यवर, कुछ रोटी ग्रहण कीजिए।" उत्तर में बुजुर्ग ने उनसे कहा, "बुद्ध भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। आप अपनी भेंट लेकर जाइए और भिक्षुओं के साथ भोजन कीजिए।" "अच्छी बात है, पूज्यवर," युवकों ने उत्तर दिया। फिर भी, वे मुड़कर वापस बुजुर्ग के पास गए, उन्हें रोटी दी, एक तरफ खड़े होकर उन्हें देखते रहे और भोजन समाप्त होने पर उन्हें जल पिलाया। भिक्षु नाराज हो गए और बोले, "इन युवकों ने भिक्षा देने में पक्षपात किया है; इन्होंने न तो बुद्ध से और न ही प्रमुख भिक्षुओं से भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया, परन्तु पूज्य महा कस्सपा को देखते ही अपनी टोकरियाँ लेकर उन्हें रोटी भेंट करने चले गए।" बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र महा कस्सपा जैसे भिक्षु देवताओं और मनुष्यों दोनों को समान रूप से प्रिय हैं; ऐसे व्यक्ति को वे चारों आवश्यक वस्तुओं से आदर देना पसंद करते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 217)
शिलादासनं सम्पन्नं धम्मथं सच्चवादिनं
अत्तनो कम्म कुब्बनं तं जानो पियं कुरुते
सिलादासन सम्पन्नं [सम्पन्न]: अनुशासन और अंतर्दृष्टि से संपन्न; dhammaṭṭhaṭ [dhammaṭṭha]: धम्म में अच्छी तरह से स्थापित; सच्चवादिनं [सक्कवादिना]: सच्चा; अट्टानो [अट्टाना]: अपना; कम्म कुब्बाणं [कुब्बाना]: गतिविधियों की देखभाल करना; तं : उस प्रकार का अस्तित्व; जानो : जनता; पियं कुरुते : प्यार (स्नेह में पकड़)
वह अनुशासन और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हैं। वे धर्म के नियमों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे सत्य बोलते हैं। वे अपने सांसारिक और आध्यात्मिक दायित्वों का निर्वाह करते हैं। जनता ऐसे व्यक्ति की आराधना करती है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 217)
सच्चवादिनं : सत्य को जान लेने वाले।
बुद्ध ने चार आर्य सत्यों में दृढ़ विश्वास रखा, जिन्हें उन्होंने शाश्वत मानवीय स्थिति के रूप में खोजा था। सत्यनिष्ठा (सच्च) सातवीं पूर्णता है। यहाँ सच्चा से तात्पर्य अपने वचन का पालन करना है। यह बोधिसत्व का एक प्रमुख गुण है, क्योंकि वह अपने वचन का उल्लंघन नहीं करता। वह जैसा बोलता है, वैसा ही करता है, और जैसा करता है, वैसा ही बोलता है (यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी)। हरित जातक के अनुसार, बोधिसत्व अपने जीवन के भ्रमण के दौरान कभी भी असत्य नहीं बोलता, यद्यपि कभी-कभी वह अन्य चार नियमों का उल्लंघन कर सकता है। वह सत्य को कभी नहीं छुपाता, यहाँ तक कि शिष्टाचारवश भी नहीं। वह सत्य को अपना मार्गदर्शक बनाता है और अपने वचन का पालन करना अपना परम कर्तव्य मानता है। वह वचन देने से पहले अच्छी तरह विचार करता है, लेकिन एक बार वचन दे देने के बाद उसे हर हाल में पूरा करता है, चाहे इसके लिए उसे अपने प्राणों की भी कीमत चुकानी पड़े।
हिरी जातक में बोधिसत्व सलाह देते हैं: "अपने हर वादे के प्रति कर्म में सच्चे रहो, जो तुम नहीं कर सकते उसका वादा करने से इनकार करो; बुद्धिमान लोग खोखले शेखीबाजों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।"
महा सुतसोमा जातक में फिर से वर्णित है कि एक प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए बोधिसत्व अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए भी तैयार थे। "जिस प्रकार आकाश में सूर्योदय का तारा सदा स्थिर रहता है, और समस्त ऋतुओं, कालों और वर्षों में भी सत्य के मार्ग पर चलता रहता है, उसी प्रकार वे सर्वप्रसिद्ध वाणी में सत्य के मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।"
एक बोधिसत्व भरोसेमंद, ईमानदार और सच्चा होता है। वह जो सोचता है, वही बोलता है। उसके विचारों, शब्दों और कर्मों में पूर्ण सामंजस्य होता है। वह अपने सभी व्यवहारों में सुसंगत और स्पष्टवादी होता है। वह पाखंडी नहीं होता क्योंकि वह अपने उच्च सिद्धांतों का कड़ाई से पालन करता है। उसके अंतर्मन और बाहरी वाणी में कोई भेद नहीं होता। उसका निजी जीवन उसके सार्वजनिक जीवन के अनुरूप होता है।
वह चापलूसी से दूसरों का दिल नहीं जीतता, उनकी प्रशंसा पाने के लिए स्वयं को बड़ा नहीं समझता, न ही अपनी कमियों को छुपाता है और न ही अपने गुणों का व्यर्थ प्रदर्शन करता है। प्रशंसनीय की वह बिना द्वेष के प्रशंसा करता है, निंदनीय की वह विवेकपूर्ण ढंग से निंदा करता है, तिरस्कार से नहीं बल्कि करुणा से। (हालाँकि, वह हमेशा सच नहीं बोलता।) यदि ऐसा कथन दूसरों के भले और सुख के लिए लाभकारी न हो, तो वह मौन रहता है। यदि कोई सत्य दूसरों के लिए लाभकारी प्रतीत होता है, तो वह उसे बोलता है, चाहे वह स्वयं के लिए कितना भी हानिकारक क्यों न हो। और वह दूसरों के वचन का उतना ही सम्मान करता है जितना अपने वचन का।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 218

———————————————————————————

(धम्मपद217) <<<< पिछला|| धम्मपद218 ||अगला >>>> (धम्मपद 219 और 220)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 218 - एका अनागमित्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 218 - एका अनागमित्थेरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
चंदजातो अनक्खते
manasa ca phuto siya
kamesu ca appatibaddhacitto
"uddhamsoto"(1) ti vuccati.

श्लोक 218 : जिसने अवर्णनीय (अर्थात निर्वाण) की इच्छा विकसित कर ली है, जिसका मन उसी तक पहुँचता है, और जो अब इंद्रिय जगत (कमलोक) से आसक्त नहीं है, उसे उद्धांशोतो (उद्धांशोतो) कहा जाता है।

---

1. उद्धमसोतो: वह जो धारा के विपरीत दिशा में जा रहा हो, अर्थात् वह जो "शुद्ध लोकों" (सुधावास ब्रह्मलोक) की ओर अग्रसर हो। यहाँ अनागामी या अब लौटने वाले व्यक्ति का संदर्भ है, जो अविहा शुद्धवास में जन्म लेता है और वहाँ से ऊपर की ओर बढ़ते हुए अकनित्थ शुद्धवास पहुँचता है, जो पाँचों शुद्ध लोकों में सर्वोच्च है।

एक अनागामी थेरा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (218) का उच्चारण किया, जो एक थेरा के संदर्भ में था जो अनागामी थे।
एक बार थेरा के शिष्यों ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने किसी मार्ग को प्राप्त किया है; लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, हालांकि उन्होंने अनागामी मार्ग, तीसरा मार्ग प्राप्त कर लिया था। वे चुप रहे क्योंकि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त होने तक अपनी उपलब्धि के बारे में बात न करने का संकल्प लिया था। लेकिन थेरा अर्हतत्व प्राप्त किए बिना और अनागामी मार्ग अंतर्दृष्टि की अपनी उपलब्धि के बारे में कुछ भी कहे बिना ही इस दुनिया से चले गए।
उनके शिष्यों को लगा कि उनके गुरु का निधन किसी भी मार्ग को प्राप्त किए बिना हो गया है और उन्हें उन पर बहुत दुख हुआ। वे बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि उनके गुरु का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं! तुम्हारे गुरु, जो निधन से पहले अनागामी थे, अब ब्रह्माओं/प्रधान देवलोक (शुद्धवास ब्रह्मलोक) में पुनर्जन्म ले चुके हैं। उन्होंने अनागामी मार्ग की प्राप्ति का खुलासा नहीं किया क्योंकि उन्हें इस बात का लज्जा था कि वे केवल इतना ही प्राप्त कर पाए थे, और वे अरहतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहे थे। तुम्हारे गुरु अब इंद्रियलोक (कमलोक) के आसक्ति से मुक्त हो चुके हैं और निश्चित रूप से उच्चतर लोकों में विचरण करेंगे।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 218 : जिसने अवर्णनीय (अर्थात निर्वाण) की इच्छा विकसित कर ली है, जिसका मन उसी तक पहुँचता है, और जो अब इंद्रिय जगत (कमलोक) से आसक्त नहीं है, उसे उद्धांशोतो (उद्धांशोतो) कहा जाता है।

प्रवचन के अंत में उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक अनागामी पूज्य की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अनागामी (प्रधानाचार्य) बुजुर्ग के संदर्भ में यह श्लोक कहा था ।
एक बार, बड़े गुरु के शिष्यों ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त किया है; लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, हालांकि उन्होंने अनागामी मार्ग , तीसरा मार्ग प्राप्त कर लिया था। वे चुप रहे क्योंकि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त होने तक अपनी उपलब्धि के बारे में बात न करने का संकल्प लिया था। लेकिन गुरु अर्हतत्व प्राप्त किए बिना और अनागामी मार्ग की अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के बारे में कुछ भी कहे बिना ही इस दुनिया से चले गए।
उनके शिष्यों को लगा कि उनके गुरु का निधन बिना किसी मार्ग को प्राप्त किए ही हो गया है और उन्हें उन पर बहुत दुख हुआ। वे बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि उनके गुरु का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं! तुम्हारे गुरु, जो निधन से पहले अनागामी थे, अब ब्राह्मणों के निवास (शुद्धवास ब्रह्मलोक) में पुनर्जन्म ले चुके हैं। उन्होंने अनागामी मार्ग की प्राप्ति का खुलासा नहीं

किया क्योंकि उन्हें इस बात का लज्जा था कि वे केवल इतना ही प्राप्त कर पाए थे, और वे अरहतत्व प्राप्त करने के लिए अत्यंत प्रयासरत थे। तुम्हारे गुरु अब इंद्रियलोक (कामलोक) के आसक्ति से मुक्त हो चुके हैं और निश्चित रूप से उच्चतर लोकों में विचरण करेंगे।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 218)

अनक्खते छंदजातो मनसा फूटो च सिया कामेसु
अप्पतिबद्धचित्तो च उद्धंसोतो इति वुकाति

अनक्खाते : (जिसमें) अवर्णनीय (निर्वाण) में; चंदजातो [चंदजात]: लालसा उत्पन्न हुई है; मनसा : मन में; फुटो च सिया : ने भी (निर्वाण) को स्पर्श किया है; कामेसु : इच्छाओं में; अप्पटिबद्धचित्तो च : अनासक्त भी; उद्धंसोतो इति : (ऐसा व्यक्ति) कहलाता है; वच्चति : धारा के विपरीत दिशा में जाने वाला

उस व्यक्ति में निर्वाण के लिए एक गहरी तड़प उत्पन्न हो चुकी है। उसने मानसिक रूप से निर्वाण को स्पर्श कर लिया है। उसे धारा के विपरीत तैरने वाला, विपरीत दिशा में जाने वाला व्यक्ति कहा जाता है। उसने निर्वाण की ओर अपनी यात्रा शुरू कर दी है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 218)

अनागामी : जो वापस नहीं लौटता। इस श्लोक के वरिष्ठ व्यक्ति ने अनागामी (वापसी न करने वाले) का मार्ग प्राप्त कर लिया था , लेकिन उन्होंने इसका खुलासा नहीं किया।

अनागामी, पवित्रता के तीसरे चरण पर स्थित एक श्रेष्ठ शिष्य (अरीय-पुग्गला) हैं। गैर-वापसी करने वालों के पाँच वर्ग हैं और ऐसा कहा जाता है:

"एक प्राणी पांच निम्न बंधनों (संयोजन) के लुप्त होने से उच्च लोक (शुद्ध धामों के देवताओं के बीच, शुद्धवास) में पुन: प्रकट होता है, और उस लोक से (इंद्रिय लोक में) वापस आए बिना वह वहाँ निर्वाण प्राप्त करता है।"

(1) "वह वहाँ (शुद्ध निवासों में) प्रकट होने के तुरंत बाद या अर्ध जीवन काल से आगे बढ़े बिना ही उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त कर सकता है। ऐसे प्राणी को वह कहा जाता है जो जीवन के पहले आधे भाग में निर्वाण प्राप्त कर लेता है (अंतरापरिनिब्बायी)।

(2) "या, अर्ध-जीवनकाल से अधिक समय तक जीवित रहते हुए, या मृत्यु के क्षण में, वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को अर्ध-जीवनकाल पार करने के बाद निर्वाण प्राप्त करने वाला (उपहच्च-परिनिब्बायी) कहा जाता है।"

(3) "या, परिश्रम से वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करने वाला कहा जाता है" (ससंखार-परिनिब्बायी)।

(4) "या फिर, बिना प्रयास किए वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के पवित्र मार्ग को प्राप्त कर लेता है। ऐसे प्राणी को निर्वाण प्राप्त करने वाला (असंखार-परिनिब्बायी) कहा जाता है।"

(5) "या, अविहा-देवताओं के स्वर्ग (शुद्धावास) से लुप्त होने के बाद, वह निश्चिंत (आतप्पा) देवताओं के स्वर्ग में प्रकट होता है। वहाँ से लुप्त होने के बाद वह स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले (सुदस्स) देवताओं के स्वर्ग में, वहाँ से स्पष्ट दृष्टि वाले (सुदस्सी) देवताओं के स्वर्ग में, और वहाँ से सर्वोच्च (अकानिट्ठ) देवताओं के स्वर्ग में प्रकट होता है । वहाँ वह उच्च बंधनों से मुक्ति पाने के पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को सर्वोच्च देवताओं तक धारा के विपरीत जाने वाला (उद्धम्सोत-अकानिट्ठ-गामी) कहा जाता है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद

(धम्मपद218) <<<< पिछला|| धम्मपद 219 और 220 ||अगला >>>> (धम्मपद221)

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

धम्मपद छंद 219 और 220 - नंदिया वत्थु

Cirappavsim purisam
durato sotthimagatam
natimitta suhajja ca
अभिनन्दन्ति अगतम.
तथावा कटपुन्नम्पी
asma loka param gatam
punnani patiganhanti
piyam nativa agatam.

श्लोक 219 : एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था और दूर से सुरक्षित घर लौट आया है, उसके लौटने पर रिश्तेदारों, दोस्तों और शुभचिंतकों द्वारा उसका खुशी से स्वागत किया जाता है।

श्लोक 220 : इसी प्रकार, जब कोई नेक काम करने वाला इस दुनिया से दूसरी दुनिया में जाता है, तो उसके अच्छे कर्म उसका स्वागत करेंगे, जैसे रिश्तेदार किसी प्रियजन के लौटने पर उसका स्वागत करते हैं।

नंदिया की कहानी

इसिपताना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने नंदिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (219) और (220) का उच्चारण किया।

नंदिया बरनासी का एक धनी व्यक्ति था। भिक्षुओं के लिए मठ बनाने के लाभों पर बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, नंदिया ने इसिपताना में महाविहार मठ का निर्माण करवाया। यह भवन शिखरयुक्त और पूर्ण रूप से सुसज्जित था। जैसे ही मठ बुद्ध को समर्पित किया गया, नंदिया के लिए तावतिंसा देवलोक में एक महल का निर्माण हो गया।

एक दिन, जब थेरा महा मोग्गलाना तावतिंसा देवलोक गए, तो उन्होंने इसिपताना में महाविहार मठ के दानदाता के लिए बने महल को देखा। तावतिंसा देवलोक से लौटते समय, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर! क्या पुण्य कर्म करने वालों के लिए इस संसार में रहते हुए भी देवलोक में महल और अन्य धन-संपत्ति तैयार रहती है?” बुद्ध ने उनसे कहा, “मेरे पुत्र, तुम ऐसा क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं तावतिंसा देवलोक में नंदिया के लिए प्रतीक्षारत महल और धन-संपत्ति नहीं देखी? देव अच्छे और उदार लोगों के आने की प्रतीक्षा करते हैं, जैसे रिश्तेदार लंबे समय से अनुपस्थित व्यक्ति के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं। जब अच्छे लोग मर जाते हैं, तो उनका देवलोक में आनंदपूर्वक स्वागत किया जाता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 219 : एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था और दूर से सुरक्षित घर लौट आया है, उसके लौटने पर रिश्तेदारों, दोस्तों और शुभचिंतकों द्वारा उसका खुशी से स्वागत किया जाता है।

श्लोक 220 : इसी प्रकार, जब कोई नेक काम करने वाला इस दुनिया से दूसरी दुनिया में जाता है, तो उसके अच्छे कर्म उसका स्वागत करेंगे, जैसे रिश्तेदार किसी प्रियजन के लौटने पर उसका स्वागत करते हैं।

अध्याय सोलह का अंत: स्नेह (पियावग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नंदिया की कहानी

इसिपताना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने नंदीय के संदर्भ में ये श्लोक कहे। कथा के अनुसार, बनारस में नंदीय नामक एक युवक रहता था, जो एक धर्मपरायण परिवार का पुत्र था। वह अपने माता-पिता की इच्छा के अनुरूप, निष्ठावान, विश्वासयोग्य और संघ का सेवक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसके माता-पिता चाहते थे कि उसका विवाह उसके मामा की पुत्री रेवती से हो, जो सामने वाले घर में रहती थी। परन्तु रेवती नास्तिक थी और दान देने की आदी नहीं थी, इसलिए नंदीय उससे विवाह नहीं करना चाहता था। तब नंदीय की माता ने रेवती से कहा, “प्रिय पुत्री, इस घर में जहाँ भिक्षु बैठते हैं, वहाँ फर्श को अच्छी तरह से साफ करो, बैठने की व्यवस्था करो, खाने के लिए स्टैंड सही जगह पर रखो, और जब भिक्षु आएँ, तो उनके प्याले लेकर उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करो और उनके लिए पानी

छान दो; जब वे भोजन कर लें, तो उनके प्याले धो दो। यदि तुम ऐसा करोगी, तो तुम मेरे पुत्र की कृपा पाओगी।” रेवती ने वैसा ही किया। नंदिया की माता ने अपने पुत्र से कहा, “रेवती अब उपदेश सहने के लिए तैयार है।” नंदिया ने सहमति दे दी, विवाह का दिन तय हुआ और उनका विवाह हो गया। नंदिया ने अपनी पत्नी से कहा, “यदि तुम भिक्षुओं के संघ और मेरे माता-पिता की निष्ठापूर्वक सेवा करोगी, तो तुम्हें इस घर में रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा; इसलिए सावधान रहना।” रेवती ने कहा, “ठीक है,” और ऐसा करने का वचन दिया। कुछ ही दिनों में उसने सच्चे विश्वासी की तरह व्यवहार करना सीख लिया। उसने अपने पति की सच्ची आज्ञा का पालन किया और समय के साथ दो पुत्रों को जन्म दिया।

नंदिया के माता-पिता के निधन के बाद, वह घर की एकमात्र मुखिया बन गईं। माता-पिता की मृत्यु के बाद नंदिया को अपार धन-संपत्ति प्राप्त हुई, जिससे उन्होंने भिक्षुओं के लिए भिक्षा का कार्य शुरू किया और अपने घर के द्वार पर गरीबों और यात्रियों को नियमित रूप से पका हुआ भोजन वितरित करने की व्यवस्था की। कुछ समय बाद, बुद्ध के धर्मोपदेश को सुनने के बाद, भिक्षुओं को निवास स्थान दान करने से प्राप्त होने वाले आशीर्वादों पर विचार करते हुए, उन्होंने इसिपताना के महान मठ में एक चौगुने भवन का निर्माण और उसे सुसज्जित करवाया। बिस्तर और पलंग लगवाकर, उन्होंने यह निवास स्थान बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को दान में दिया और बुद्ध के दाहिने हाथ में दान का जल अर्पित किया। जब दान का जल बुद्ध के दाहिने हाथ में गिरा, तो तैंतीस लोकों में बारह मील तक फैला, सौ मील ऊँचा, सात प्रकार के रत्नों से बना और अप्सराओं से भरा एक दिव्य महल प्रकट हुआ। एक दिन जब पूज्य महा मोग्गलाना देवताओं के लोक की तीर्थयात्रा पर गए, तो वे इस महल के पास रुके और उनके पास आए कुछ देवताओं से पूछा, “किसके पुण्य से अप्सराओं से भरा यह दिव्य महल अस्तित्व में आया?” तब उन देवताओं ने उन्हें महल के स्वामी के बारे में बताया, “पूज्यवर, नंदीय नामक एक गृहस्थ पुत्र ने इसिपताना में एक मठ बनवाया और उसे बुद्ध को दान कर दिया, और उनके पुण्य से यह दिव्य महल अस्तित्व में आया।” तब अप्सराओं का समूह उस महल से नीचे उतरा और उस बुजुर्ग से कहा, “हे पूज्यवर, हम नंदीय की दासी बनना चाहती हैं। यद्यपि हमारा पुनर्जन्म यहाँ हुआ है, फिर भी हम अत्यंत दुखी हैं क्योंकि हम उन्हें देख नहीं पा रहे हैं; कृपया उनसे यहाँ आने का अनुरोध कीजिए। क्योंकि मनुष्य रूप त्यागकर देवता का रूप धारण करना मिट्टी के बर्तन को तोड़कर सोने का बर्तन उठाने के समान है।” बुजुर्ग वहाँ से चले गए और बुद्ध के पास पहुँचकर उनसे पूछा, “हे पूज्यवर, क्या यह सत्य है कि मनुष्य अपने सद्गुणों के फल स्वरूप मनुष्यलोक में रहते हुए ही स्वर्गिक महिमा प्राप्त करते हैं?”

बुद्ध ने उत्तर दिया, “मोग्गलाना, तुमने स्वयं अपनी आँखों से नंदीय को देवताओं के लोक में प्राप्त दिव्य महिमा को देखा है; तुम मुझसे ऐसा प्रश्न क्यों पूछते हो?” बड़े ने कहा, “तो यह सचमुच सत्य है, पूज्यवर!” बुद्ध ने कहा, “मोग्गलाना, तुम ऐसा क्यों कहते हो? यदि कोई पुत्र या भाई जो लंबे समय से घर से अनुपस्थित रहा हो, घर लौटता है, तो गाँव के द्वार पर जो भी उसे देखता है, वह तुरंत घर जाकर कहता है, 'अमुक लौट आया है।' और तुरंत उसके रिश्तेदार प्रसन्न होकर उसका स्वागत करने के लिए दौड़ पड़ते हैं और कहते हैं, 'प्रिय मित्र, तुम अंततः लौट आए!' ठीक उसी प्रकार, जब कोई स्त्री या पुरुष जिसने इस लोक में पुण्य कर्म किए हों, इस लोक को छोड़कर परलोक जाता है, तो स्वर्ग के देवता दस प्रकार के उपहार लेकर उससे मिलने और उसका स्वागत करने के लिए जाते हैं और कहते हैं, 'मुझे पहले मिलने दो! मुझे पहले मिलने दो!'”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 219)

सिरप्पावासिं पुरिसं दुरतो सोत्थिं अगतं
नातिमित्त सुहज्जा च , सगतं अभिनन्दन्ति

Cirappavāsiṃ purisaṃ [purisa]: वह व्यक्ति जो लंबे समय तक घर से दूर रहा हो; dūrato [dūrata]: दूर से; sotthiṃ āgataṃ [āgata]: जब वह सुरक्षित घर लौटता है; ñātimittā : मित्र और रिश्तेदार; suhajjā ca : शुभचिंतक; sāgataṃ [sāgata]: उसकी सुरक्षित वापसी; abhinandanti : स्वागत

जब कोई व्यक्ति, जो लंबे समय तक घर से दूर रहा हो, सुरक्षित रूप से घर लौटता है, तो उसके मित्र, रिश्तेदार और शुभचिंतक उसका स्वागत करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 220)

तथा एव कता पुन्नं अपि अस्मा लोक परं
गतं पुन्नानि गतं पियं नातिं इव पतिगनन्ति

तथा एव : इसी प्रकार; कत पुण्यं अपि : जिसने (यहाँ) पुण्य कर्म किए हैं; अस्मा लोका परं गतं [गत]: इस लोक को छोड़कर परलोक चला गया है; पुण्यं : पुण्य कर्म; गतं पियां ञातं इव : जैसे कोई निकट संबंधी यात्रा से लौटा हो; पटिगंहन्ति : उसका स्वागत करो

इसी प्रकार, जब इस दुनिया में पुण्य कर्म करने वाले लोग परलोक में जाते हैं, तो उनके पुण्य कर्म उनका स्वागत करते हैं, जैसे रिश्तेदार लंबी यात्रा से लौटने वाले रिश्तेदारों का स्वागत करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 219-220)

puññāni paṭigaṇhanti : उनके पुण्य कर्मों (puñña) द्वारा स्वागत किया गया।

पुण्य : पुण्य; पुण्यकारी। पुण्य कर्मिक रूप से लाभकारी (कुशल) कर्मों के लिए एक लोकप्रिय शब्द है । विलोम शब्द: अपुष्ण , पाप; पाप , बुरा, दुष्ट। पुण्यकारी कर्मों के महत्व पर अक्सर जोर दिया जाता है, उदाहरण के लिए, खजाना सूत्र में। पवित्र भिक्षुओं का समुदाय (आर्य-संघ), तीसरा आश्रय, संसार में अतुलनीय पुण्य क्षेत्र (अनुत्तरम् पुण्यक्खेत्तम् लोकस्स) कहा जाता है ।

इस प्रकार के दस प्रकार के पुण्य कर्म (कुसलकम्मा) हैं — अर्थात्,

उदारता (दान),

नैतिकता (सीला)

ध्यान (भावना)

आदर (अपचायण)

सेवा (veyyāvacca),

योग्यता का स्थानांतरण (पट्टीदाना),

दूसरों के अच्छे कर्मों में प्रसन्न होना (अनुमोदना),

धर्मोपदेश सुनना (धम्म सवना),

धर्म की व्याख्या करना (धम्मदेशना), और

अपने विचारों को सुदृढ़ करना (diṭṭhijjukamma)।

कभी-कभी, इन दस नैतिक कार्यों को (7) और (10) में उप-विभाजन शुरू करके बारह माना जाता है।

दूसरों के अच्छे कर्मों की प्रशंसा (पसम्सा) को दूसरों के पुण्य की सराहना (अनुमोदना) में जोड़ा जाता है । तीन शरणों (सरना) और सजगता (अनुस्सति) को अपने विचारों को दृढ़ करने के स्थान पर अपनाया जाता है।

उदारता से धन की प्राप्ति होती है। नैतिकता से श्रेष्ठ परिवारों और सुखमय अवस्थाओं में जन्म होता है। ध्यान से साकार और निराकार लोकों में जन्म होता है और उच्च ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्त करने में सहायता मिलती है। पुण्य का हस्तांतरण भविष्य के जन्मों में प्रचुर दान का कारण बनता है। दूसरों के पुण्य में प्रसन्नता से जन्म के स्थान पर आनंद प्राप्त होता है। धम्म का उपदेश देना और सुनना दोनों ही ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होते हैं। आदर से श्रेष्ठ माता-पिता की प्राप्ति होती है। सेवा से भक्तगण की प्राप्ति होती है। दूसरों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करने से स्वयं प्रशंसा प्राप्त होती है। तीन शरणों का पालन करने से वासना का नाश होता है। सजगता अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति का कारण बनती है।

कुसला कर्म जो रूप के क्षेत्र में परिपक्व हो सकता है।

ये पाँच प्रकार के (रूप-झान) या परमानंद हैं जो विशुद्ध रूप से मानसिक होते हैं:

(1) पहला झान , नैतिक चेतना जिसमें प्रारंभिक अनुप्रयोग (वितक्का), निरंतर अनुप्रयोग (विचार), सुखमय रुचि (पीति), सुख (सुख), और एकाग्रता (एकग्गता) शामिल हैं;

(2) दूसरा झान , नैतिक चेतना जिसमें निरंतर अभ्यास, सुखदायक रुचि, खुशी और एकाग्रता शामिल है;

(3) तीसरा झान , नैतिक चेतना जिसमें सुखदायक रुचि, खुशी और एकाग्रता शामिल है;

(4) चौथा ध्यान , नैतिक चेतना जिसमें सुख और एकाग्रता शामिल है; और

(5) पाँचवाँ झान , नैतिक चेतना जिसमें समभाव (उपेक्खा) और एकाग्रता शामिल है ।

इन ध्यान का रूप के क्षेत्र में भी अपना-अपना प्रभाव होता है।

कुसला कम्मा जो निराकार लोकों में परिपक्व हो सकता है:

ये चार अरूप झान हैं जिनका निराकार लोकों में संबंधित प्रभाव होता है — अर्थात्,

(1) अंतरिक्ष की अनंतता में निवास करने वाली नैतिक चेतना (akāsānañcāyatana);

(2) चेतना की अनंतता पर ध्यान केंद्रित करने वाली नैतिक चेतना (विञ्ञाञ्चायतन);

(3) शून्यता पर ध्यान केंद्रित करने वाली नैतिक चेतना (अकिंचाञ्ञायतन); और

(4) नैतिक चेतना जिसमें धारणा न तो है और न ही नहीं है (n ' eva saññānāsaññāyatana)।

बुद्ध ने अनाथपिंडिक को पुण्य कर्मों के विभिन्न स्तरों के बारे में बताया। एक बार, बुद्ध ने उदारता पर प्रवचन देते हुए अनाथपिंडिक को याद दिलाया कि बुद्ध के साथ संघ को दान देना अत्यंत पुण्यकारी है; लेकिन ऐसे दान से भी अधिक पुण्यकारी है संघ के उपयोग के लिए एक मठ का निर्माण करना; ऐसे मठों से भी अधिक पुण्यकारी है बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना; बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेने से भी अधिक पुण्यकारी है पाँच नियमों का पालन करना; ऐसे नियमों के पालन से भी अधिक पुण्यकारी है क्षणभंगुर प्रेम (मेट्टा) का ध्यान करना; और इन सबसे अधिक पुण्यकारी है वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति (विपस्सना) का ज्ञान प्राप्त करना। इस प्रवचन से स्पष्ट है कि उदारता बौद्ध जीवन के मार्ग का पहला चरण है। उदारता से भी अधिक महत्वपूर्ण है आचरण के कम से कम पाँच नियमों का पालन करना, जो शब्दों और कर्मों को अनुशासित करने में सहायक होते हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और लाभकारी है प्रेम और

करुणा जैसे उदात्त गुणों का विकास करना, जो आत्म-विकास की ओर ले जाते हैं। आत्म-अनुशासन में सबसे महत्वपूर्ण और लाभकारी है चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझने का सच्चा प्रयास करना।

अध्याय 17. कोधवग्ग: क्रोध (221-234)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 221

(धम्मपद 219 और 220) <<<< पिछला|| धम्मपद221 ||अगला >>>> (धम्मपद222)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
कोधं जहे विप्पजहेय मनम
समन्वयम्(1) सब्बामटिक्कमेय्या
tam namarupasmimasajjanamam
अकिंचनम्(2) नानुपतन्ति दुक्खा।

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दुःख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

---

1. सम्योजनम्: एक बंधन। मनुष्य की वासना के दस बंधन हैं जो मनुष्य को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं; ये बंधन मार्ग अंतर्दृष्टि के विभिन्न चरणों में टूट जाते हैं।
2. अकिंचनम्: किंचन (अपवित्रता) से मुक्त: तीन किंचन हैं कामवासना, द्वेष और अज्ञान।

बुद्ध द्वारा कुष्ठ रोगी के उपचार की कहानी
निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (221) कहा।
एक बार थेरा अनुराद्ध कपिलवस्तु गए। वहाँ के मठ में ठहरते समय, उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। थेरा अनुराद्ध ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भवन बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। थेरा अनुराद्ध ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी भवन निर्माण में सहायता करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को भवन निर्माण के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, और उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बरनास के राजा की प्रधान रानी थीं। संयोग से, राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और प्रधान रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से गौ-हेज की फलियों से बना खुजलीदार पाउडर नर्तकी के पलंग, कंबल आदि में डलवा दिया। फिर, उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में, उस पर

थोड़ा सा खुजलीदार पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली हो रही थी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से तड़प रही थी। असहनीय खुजली के कारण वह दौड़कर अपने कमरे और बिस्तर पर चली गई, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में आकर मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दुःख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित कई लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमारी रोहिणी की कहानी
निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य अनुराधा कपिलवस्तु आए। जब वे वहाँ के मठ में ठहरे हुए थे, तो उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। पूज्य अनुराधा ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भोजन कक्ष बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। पूज्य अनुराधा ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी हॉल के निर्माण में मदद करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को निर्माण कार्य के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बारानासी के राजा की मुख्य रानी थीं। राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और मुख्य रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से नर्तकी के पलंग और कंबल में खुजली का पाउडर डलवा दिया। फिर उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में उस पर खुजली का पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली होने लगी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से पीड़ित हो गई। असहनीय खुजली से परेशान होकर वह अपने कमरे और बिस्तर की ओर भागी, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी। प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित अनेक लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 221)
कोढं जहे मनं विप्पजहेय सब्बं संनोजानं अतिक्कमेय्या
नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं तं दुक्खा न अनुपातन्ति
कोढ़ां [कोढ़ा]: क्रोध; जहे : त्यागना; मनं [मन]: अभिमान; विप्पजहेय्या : पूरी तरह से त्याग दो; सब्बाṃ [सब्बा]: सभी; संनोजनं [संनोजाना]: बेड़ियाँ; अतिक्कमेय्या : छुटकारा पाना; नामरूपस्मिः [नामरूपस्मि]: नाम और रूप में; असज्जमानाम् [असज्जमाना]: अनासक्त; अकिंचानाṃ [अकिंचना]: उपांगों से मुक्त; तं : उस व्यक्ति पर; दुक्खा न अनुपातन्ति : कष्ट और दुःख नहीं आते
क्रोध का त्याग करो। अहंकार को पूरी तरह छोड़ दो। सभी आसक्तियों से मुक्त हो जाओ। जो व्यक्ति नाम और रूप से आकर्षित नहीं होता और आसक्तियों से मुक्त होता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 221)

क्रोध : क्रोध। व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सभी भावनाओं में क्रोध सबसे बुरा है। क्रोध का सामना क्रोध से करने पर वह दस गुना बढ़ जाता है, लेकिन यदि शांत भाव से उसका सामना किया जाए तो वह अक्सर शीघ्र ही शर्मिंदगी की भावना में तब्दील हो जाता है, जो उससे कहीं अधिक प्रबल होती है। यह सभी भावनाओं में सबसे अतार्किक है। तीव्र क्रोध के क्षण में मनुष्य वास्तव में मनुष्य नहीं रह जाता; वह एक विनाशकारी पशु बन जाता है। दूसरों के साथ हुए अन्याय पर क्रोध करना भी सही समाधान की ओर ले जाने वाली मानसिक स्थिति नहीं है। लेकिन स्वयं से निपटने में, क्रोध की यह मनोदशा शांत विश्लेषण के आगे टिक नहीं सकती। स्पष्ट है कि ये दोनों मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और प्रारंभ में, यदि क्रोध पहले से ही एक आदत बन चुका है, तो वह अन्य सभी चीजों को दरकिनार कर सकता है। लेकिन अभ्यास से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, और हम खुद को देखकर कह सकते हैं, “कौन नाराज़ है? इस गुस्से का कारण क्या है?” गुस्सा जल्द ही शांत हो जाता है और अक्सर कारण जानने की कोशिश में भुला दिया जाता है। बाद में, यह जानकर कि हमने गुस्से के हावी होने पर होने वाली संभावित मूर्खतापूर्ण कार्रवाई से खुद को बचा लिया, हमें खुशी होती है कि हमने ऐसा आत्म-संयम बरता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 222

———————————————————

(धम्मपद221) <<<< पिछला || धम्मपद222 || अगला >>>> (धम्मपद223)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 222 - अन्नतारभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 222 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

———————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ve uppatitam kodham
ratham bhantamva varaye
tamaham sarathim brumi
rasmiggaho itaro jano.

———————————————————

श्लोक 222 : जो अपने बढ़ते क्रोध को एक कुशल सारथी की तरह नियंत्रित करता है, जैसे एक तेज गति से दौड़ते रथ को नियंत्रित करता है, उसे मैं सच्चा सारथी कहता हूँ; अन्य सारथी तो केवल लगाम थामे रहते हैं।

———————————————————

एक भिक्षु की कहानी

अलवी नगर में अग्गलावा स्तूप में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (222) कहा।

एक बार, अलावी के एक भिक्षु ने अपने लिए एक मठ बनाने की इच्छा जताई और इसलिए उसने एक पेड़ काटना शुरू कर दिया। उस पेड़ में निवास करने वाली देवदूत (रुक्खा देवता) ने उसे रोकने का प्रयास किया और कहा कि उसके और उसके शिशु पुत्र के पास जाने के लिए कोई जगह नहीं है। भिक्षु को रोकने में असफल रहने पर उसने अपने पुत्र को एक शाखा पर बिठा दिया, इस उम्मीद में कि इससे वह पेड़ काटने से रुक जाएगा। तब तक भिक्षु अपनी कुल्हाड़ी चला रहा था और वह समय रहते उसे रोक नहीं पाया और अनजाने में बच्चे का एक हाथ काट दिया। अपने बच्चे को इस तरह घायल देखकर माता क्रोधित हो उठी और भिक्षु को जान से मारने ही वाली थी।

जैसे ही उसने भिक्षु पर प्रहार करने के लिए हाथ उठाए, अचानक उसने खुद को रोका और सोचा, "यदि मैं किसी भिक्षु को मार डालूँ, तो मैं एक ऐसे व्यक्ति को मार डालूँगी जो नैतिक नियमों (शील) का पालन करता है; ऐसे में मुझे निश्चित रूप से निरयण (नरक) में जाना पड़ेगा। वृक्षों के अन्य संरक्षक देव (देवदूत) भी मेरे उदाहरण का अनुसरण करेंगे और अन्य भिक्षु भी मारे जाएँगे। लेकिन इस भिक्षु का एक गुरु है; मुझे जाकर उसके गुरु से मिलना चाहिए।" इसलिए वह रोते हुए बुद्ध के पास गई और उन्हें सारी घटना बताई।
बुद्ध ने उनसे कहा, "हे रुक्खा देवता! आपने स्वयं पर अच्छा नियंत्रण रखा है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 222 : जो अपने बढ़ते क्रोध को एक कुशल सारथी की तरह नियंत्रित करता है, जैसे एक तेज गति से दौड़ते रथ को नियंत्रित करता है, उसे मैं सच्चा सारथी कहता हूँ; अन्य सारथी तो केवल लगाम थामे रहते हैं।

प्रवचन के अंत में देवदूत ने सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त की, और उन्हें निवास स्थान के रूप में बुद्ध के सुगंधित कक्ष के पास एक वृक्ष भेंट किया गया। इस घटना के बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं को घास, पौधे, झाड़ियाँ और वृक्ष जैसी वनस्पतियों को काटने से मना किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक भिक्षु की कहानी
आलवी नगर के अग्गलव स्तूप में निवास करते समय, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
जब बुद्ध ने भिक्षुओं को मठ की दीवारों के बाहर रहने की अनुमति दे दी, और राजगृह के कोषाध्यक्ष और अन्य लोग ऐसे आवास उपलब्ध कराने में व्यस्त थे, तब आलवी के एक भिक्षु ने अपने लिए एक आवास बनाने का निर्णय लिया और अपनी पसंद का एक पेड़ देखकर उसे काटने लगे। तभी उस पेड़ में पुनर्जन्म लेने वाली एक आत्मा, जिसके साथ एक शिशु था, अपने बच्चे को गोद में लिए हुए उस भिक्षु के सामने प्रकट हुई और उनसे पेड़ न काटने की विनती करते हुए कहा, “गुरुजी, मेरा घर मत काटिए; मेरे लिए अपने बच्चे को लेकर बिना घर के भटकना असंभव होगा।” लेकिन भिक्षु ने कहा, “मुझे ऐसा दूसरा पेड़ नहीं मिलेगा,” और उन्होंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वृक्ष-आत्मा ने मन ही मन सोचा, “यदि वह इस बच्चे को देख ले, तो वह रुक जाएगा,” और उसने बच्चे को पेड़ की एक शाखा पर रख दिया। लेकिन भिक्षु ने कुल्हाड़ी चला दी थी, वह अपनी उठी हुई कुल्हाड़ी की ताकत को रोक नहीं पाया और बच्चे का हाथ काट दिया। क्रोध से आग बबूला होकर वृक्ष-प्रेत ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई, "मैं इसे मार डालूँगी।" लेकिन तभी उसके मन में यह विचार आया, "यह भिक्षु एक धर्मात्मा है; अगर मैं इसे मार डालूँगी, तो मैं नरक में जाऊँगी। इसके अलावा, अगर दूसरे वृक्ष-प्रेत भिक्षुओं को अपने ही पेड़ काटते देखेंगे, तो वे मन ही मन कहेंगे, 'अमुक वृक्ष-प्रेत ने अमुक परिस्थितियों में एक भिक्षु को मार डाला,' और मेरे उदाहरण का अनुसरण करते हुए दूसरे भिक्षुओं को मार डालेंगे। इसके अलावा, इस भिक्षु का एक गुरु है; इसलिए मैं इस मामले की सूचना उसके गुरु को देकर ही संतुष्ट हो जाऊँगी।"
अपने उठे हुए हाथों को नीचे करके, वह रोते हुए बुद्ध के पास गई और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ खड़ी हो गई। बुद्ध ने कहा, “क्या बात है, वृक्ष-प्रेत?” वृक्ष-प्रेत ने उत्तर दिया, “आदरणीय, आपके शिष्य ने मेरे साथ यह-वह किया। मुझे उसे जान से मारने का बहुत मन हुआ, लेकिन मैंने यह-वह सोचकर खुद को रोका और यहाँ आ गई।” ऐसा कहकर उसने उन्हें पूरी कहानी विस्तार से सुनाई। जब बुद्ध ने उसकी कहानी सुनी, तो उन्होंने उससे कहा, “शाबाश, शाबाश, प्रेत! तुमने क्रोध को इतनी तेजी से दौड़ते रथ की तरह काबू में रखा, जब वह इतना उग्र हो गया था।”
पाठ के समापन पर वृक्ष-आत्मा को परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ; वहाँ उपस्थित सभी लोगों को भी इसका लाभ मिला। परन्तु परिवर्तन का फल प्राप्त होने के बाद भी वृक्ष-आत्मा रोती रही। बुद्ध ने उससे पूछा, “क्या बात है, वृक्ष-आत्मा?” उसने उत्तर दिया, “आदरणीय, मेरा घर नष्ट हो गया है; अब मैं क्या करूँ?” बुद्ध ने कहा, “बस करो, वृक्ष-आत्मा; विचलित मत हो; मैं तुम्हें निवास स्थान दूँगा।” ये कहकर उन्होंने जेतवन के सुगंधित कक्ष के पास एक वृक्ष की ओर इशारा किया, जिससे एक वृक्ष-आत्मा पिछले दिन चली गई थी, और कहा, “अमुक स्थान पर एक वृक्ष है जो अकेला खड़ा है; उसमें प्रवेश करो।” तदनुसार वृक्ष-आत्मा उस वृक्ष में प्रवेश कर गई। तब से, क्योंकि वृक्ष-आत्मा को बुद्ध से निवास स्थान उपहार में मिला था, यद्यपि महान शक्ति वाली आत्माएँ उस वृक्ष के पास आती थीं, वे उसे हिला नहीं पाती थीं। बुद्ध ने इस अवसर का उपयोग भिक्षुओं को उपदेश देने और पौधों और पेड़ों को नुकसान पहुंचाने के संबंध में उपदेश के पालन को निर्धारित करने के लिए किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 222)
यो वे उपपतितं कोधं भंतं रथं इव धारये
तं अहं सारथिं ब्रूमी इतारो जानो रस्मिगाहो

यो : यदि कोई व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; उपपतितं कोधं [कोढ़ा]: क्रोध उत्पन्न हुआ; भन्तं रथं इव : अनियंत्रित रथ की तरह; धारये : रोकता है; तं : उसे; अहं : मैं; सारथिं ब्रूमि : सारथी को बुलाओ; इतारो जानो : दूसरा (सारथी का प्रकार); रसमिग्गाहो [रस्मिग्गाहा]: एक मात्र बागडोर धारक है

जो व्यक्ति अचानक आने वाले क्रोध को नियंत्रित करने में सक्षम होता है, वह उस कुशल सारथी के समान होता है जो अनियंत्रित होकर दौड़ते रथ को रोक लेता है। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा सारथी कहता हूँ। दूसरे प्रकार के सारथी तो केवल लगाम थामे रहने वाले होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 222)

उपपतितं कोधं : उत्पन्न क्रोध। अधिकांश मनुष्य क्रोधी स्वभाव के होते हैं। उनके क्रोधित होने की प्रवृत्ति के कई कारण होते हैं। सभी मनुष्यों ने कभी न कभी दुर्व्यवहार सहा है और उसके निशान सभी पर हैं। कई लोगों का बचपन दुखद रहा है और उनका चरित्र विकृत हो गया है। हम भी इसी तरह के अपूर्ण अतीत से उबरने के लिए मानसिक स्वास्थ्य की तलाश में हैं। मानसिक स्वास्थ्य दूसरों में भी उसी तरह फैलता है जैसे गलत विचार। किसी भी स्थिति में, जब तक मन की ऐसी सभी गलत मनोवृत्तियों को दूर नहीं कर लिया जाता, तब तक लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग संभव नहीं है। इसलिए, चाहे हम कितनी भी बार असफल हों, हमें अपनी असफलता को खुलकर स्वीकार करना चाहिए और प्रयास जारी रखना चाहिए।

कुछ जीव दिन में देख नहीं सकते, जबकि कुछ अन्य रात में अंधे हो जाते हैं। लेकिन घृणा की चरम सीमा पर पहुंचा हुआ व्यक्ति दिन हो या रात, कुछ भी नहीं देख पाता। बुद्ध कहते हैं: "क्रोध को प्रेम से, बुराई को अच्छाई से, कंजूस को उदारता से और झूठे को सत्य से जीतो।" जब आप क्रोधित होते हैं, तो आप किससे और किससे लड़ते हैं? आप स्वयं से लड़ते हैं, क्योंकि आप स्वयं के सबसे बड़े शत्रु हैं। मन आपका सबसे अच्छा मित्र और सबसे बड़ा शत्रु है। आपको नैतिकता, एकाग्रता और ज्ञान के माध्यम से अपने मन में छिपी वासना, घृणा और अज्ञानता को नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 223

(धम्मपद222) <<<< पिछला || धम्मपद223 || अगला >>>> (धम्मपद224)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 223 - उत्तर उपासिका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 223 - उत्तर उपासिका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Akkodhena jine kodham
asadhum sadhuna jine
jine kadariam danena
saccena' likavidinam.

श्लोक 223 : क्रोधित व्यक्ति को क्रोधित न होकर (अर्थात् प्रेम और दया से) जीतो; दुष्ट को अच्छाई से जीतो; कंजूस को उदारता से जीतो, और झूठे को सत्य बोलकर जीतो।

उत्तरा नामक गृहस्थ शिष्या की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (223) का उच्चारण उत्तरा नामक एक महिला गृहस्थ शिष्या के संदर्भ में किया।

उत्तरा, पुन्ना नामक एक खेतिहर मजदूर और उसकी पत्नी की पुत्री थी। पुन्ना राजगृह में सुमना नामक एक धनी व्यक्ति के यहाँ काम करता था। एक दिन, पुन्ना और उसकी पत्नी ने थेरा सारिपुत्त को उनके गहन ध्यान (निरोध समापत्ति) से उठने के तुरंत बाद भिक्षा दी, और इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे अचानक बहुत धनी हो गए। पुन्ना को अपने खेत में, जहाँ वह हल चला रहा था, सोना मिला, और राजा ने उसे आधिकारिक तौर पर राजकोषीय धनी घोषित कर दिया। एक बार, पुन्ना के परिवार ने सात दिनों तक बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी, और सातवें दिन, बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, परिवार के तीनों सदस्यों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

बाद में, पुन्ना की पुत्री उत्तरा का विवाह धनी सुमना के पुत्र से हुआ। वह परिवार बौद्ध नहीं था, इसलिए उत्तरा अपने पति के घर में प्रसन्न नहीं थी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, आपने मुझे इस पिंजरे में क्यों रखा है? यहाँ मुझे कोई भिक्षु नहीं दिखता और न ही किसी भिक्षु को कुछ भेंट करने का अवसर मिलता है।" उसके पिता को उस पर दया आई और उन्होंने उसे पंद्रह हजार रुपये नकद भेजे। इस धन से, अपने पति से अनुमति लेकर, उत्तरा ने अपने पति की देखभाल के लिए एक वेश्या को नियुक्त किया। इस प्रकार यह व्यवस्था की गई कि एक प्रसिद्ध और अत्यंत सुंदर वेश्या, सिरिमा, पंद्रह दिनों के लिए उसकी पत्नी के रूप में सेवा करेगी।

उस दौरान, उत्तरा ने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। पंद्रहवें दिन, जब वह रसोई में भोजन बना रही थी, उसके पति ने उसे शयनकक्ष की खिड़की से देखा और मुस्कुराया, फिर मन ही मन बुदबुदाया, "कितनी मूर्ख है! इसे आनंद लेना नहीं आता। यह भिक्षा देने के इस अनुष्ठान में खुद को थका रही है!" सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा, और यह भूलकर कि वह केवल एक वेतनभोगी स्थानापन्न पत्नी थी, उत्तरा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। अपने आप को नियंत्रित न कर पाने के कारण, सिरिमा रसोई में गई और उत्तरा के सिर पर डालने के इरादे से उबलता हुआ मक्खन एक करछुल भर ले आई। उत्तरा ने उसे आते देखा, लेकिन उसके मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। उसने सोचा कि सिरिमा के उसकी जगह लेने के कारण ही वह पंद्रह दिनों तक धर्म का पाठ सुन सकी, भिक्षा दे सकी और अन्य दान-पुण्य कार्य कर सकी। इसलिए वह सिरिमा की बहुत आभारी थी। अचानक, उसे एहसास हुआ कि सिरिमा उसके बहुत करीब आ गई है और उस पर उबलता हुआ मक्खन डालने वाली है; इसलिए उसने यह प्रतिज्ञा की: "यदि मेरे मन में सिरीमा के प्रति कोई दुर्भावना है तो यह खौलता हुआ मक्खन मुझे जला दे; यदि मेरे मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है तो यह मुझे न जलाए।"

उत्तरा के मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी, इसलिए सिरिमा द्वारा सिरिमा के सिर पर डाला गया खौलता मक्खन ठंडे पानी के समान लगा। तब सिरिमा ने सोचा कि मक्खन ठंडा हो गया होगा; और जैसे ही वह खौलते मक्खन का एक और चम्मच लेने के लिए आगे बढ़ी, उत्तरा के सेवकों ने उस पर हमला कर दिया और उसे बुरी तरह पीटा। उत्तरा ने अपने सेवकों को रोका और उन्हें निर्देश दिया कि वे सिरिमा पर औषधीय मरहम मलें।

तब सिरिमा को अपनी वास्तविक स्थिति का अहसास हुआ और उन्हें उत्तरा के प्रति अपने किए पर खेद हुआ। उन्होंने उत्तरा से क्षमा मांगी। उत्तरा ने उत्तरा से कहा, "मेरे पिता हैं; मैं उनसे पूछूंगी कि क्या मुझे तुम्हारी क्षमा स्वीकार करनी चाहिए।" तब सिरिमा ने कहा कि वह तुरंत जाकर उत्तरा के पिता, जो धनी थे, से क्षमा मांग लेंगी। उत्तरा ने सिरिमा को समझाया, "सिरिमा, जब मैंने 'मेरे पिता' कहा, तो मेरा तात्पर्य मेरे वास्तविक पिता से नहीं था, जिन्होंने मुझे इस पुनर्जन्म के चक्र में फंसाया था। मेरा तात्पर्य मेरे पिता, बुद्ध से था, जिन्होंने मुझे पुनर्जन्म के इस चक्र को तोड़ने में सहायता की थी, जिन्होंने मुझे धम्म, आर्य सत्यों का उपदेश दिया था।" तब सिरिमा ने बुद्ध से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अतः अगले दिन उत्तरा के घर पर सिरिमा द्वारा बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

भोजन के बाद, बुद्ध को सिरिमा और उत्तरा के बीच हुई सारी बातें बताई गईं। सिरिमा ने स्वीकार किया कि उसने उत्तरा के साथ गलत किया था और बुद्ध से क्षमा की विनती की, क्योंकि अन्यथा उत्तरा उसे क्षमा नहीं करती। बुद्ध ने उत्तरा से पूछा कि जब सिरिमा ने उसके सिर पर उबलता हुआ मक्खन डाला, तो उसके मन में क्या भाव थे? उत्तरा ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, क्योंकि मैं सिरिमा की बहुत ऋणी थी, इसलिए मैंने अपना आपा न खोने और उसके प्रति कोई द्वेष न रखने का निश्चय किया था। मैंने उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।" बुद्ध ने कहा, "शाबाश, शाबाश, उत्तरा! किसी के प्रति द्वेष न रखकर तुमने घृणा से तुम्हें नुकसान पहुँचाने वाले पर विजय प्राप्त कर ली है। गाली न देकर तुम गाली देने वाले पर विजय प्राप्त कर सकती हो; उदारता दिखाकर तुम कंजूस पर विजय प्राप्त कर सकती हो; सत्य बोलकर तुम झूठ बोलने वाले पर विजय प्राप्त कर सकती हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 223 : क्रोधित व्यक्ति को क्रोधित न होकर (अर्थात् प्रेम और दया से) जीतो; दुष्ट को अच्छाई से जीतो; कंजूस को उदारता से जीतो, और झूठे को सत्य बोलकर जीतो।

प्रवचन के अंत में सिरिमा और पांच सौ महिलाओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उत्तरा नामक गृहस्थ शिष्या की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक अपनी एक गृहस्थ शिष्या उत्तरा के संदर्भ में कहा था।

उत्तरा, पुन्ञ नामक एक खेतिहर मजदूर और उसकी पत्नी की पुत्री थी। पुन्ञ राजगृह में सुमन नामक एक धनी व्यक्ति के यहाँ काम करता था। एक दिन, पुन्ञ और उसकी पत्नी ने पूज्य सारिपुत्त को उनके गहन ध्यान (निरोध समाधि) से उठने के तुरंत बाद भिक्षा दी, और इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे अचानक बहुत धनी हो गए। पुन्ञ को अपने खेत में, जहाँ वह हल चला रहा था, सोना मिला, और राजा ने उसे आधिकारिक तौर पर राजकोषीय धनी घोषित कर दिया। एक बार, पुन्ञ के परिवार ने सात दिनों तक बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी, और सातवें दिन, बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, परिवार के तीनों सदस्यों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में, पुन्ञ की पुत्री उत्तरा का विवाह धनी व्यक्ति सुमन के पुत्र से हुआ। वह परिवार बौद्ध नहीं था, इसलिए उत्तरा अपने पति के घर में खुश नहीं थी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, आपने मुझे इस पिंजरे में क्यों रखा है? यहाँ मुझे कोई भिक्षु नहीं दिखता और न ही किसी भिक्षु को कुछ भेंट करने का अवसर मिलता है।" उसके पिता को उस पर दया आई और उन्होंने उसे पंद्रह हजार रुपये नकद भेजे। इस पैसे से, अपने पति से अनुमति लेकर, उत्तरा ने अपने पति की देखभाल के लिए एक वेश्या को नियुक्त किया। इस प्रकार यह तय हुआ कि एक प्रसिद्ध और बेहद खूबसूरत वेश्या, सिरिमा, पंद्रह दिनों के लिए उसकी पत्नी बनकर रहेगी।

उस दौरान, उत्तरा ने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। पंद्रहवें दिन, जब वह रसोई में भोजन बना रही थी, तो उसके पति ने उसे शयनकक्ष की खिड़की से देखा और मुस्कुराया, फिर मन ही मन बुदबुदाया, "कितनी मूर्ख है! इसे आनंद लेना नहीं आता। यह भिक्षा देने के अनुष्ठान में खुद को थका रही है!" सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा और यह भूलकर कि वह केवल एक वेतनभोगी स्थानापन्न पत्नी थी, उत्तरा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। अपने आप को रोक न पाने के कारण, सिरिमा रसोई में गई और उत्तरा के सिर पर डालने के इरादे से उबलता हुआ मक्खन एक करछुल भर ले आई। उत्तरा ने उसे आते हुए देखा, लेकिन उसके मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। उसने सोचा कि सिरिमा के उसकी जगह सेवा करने के कारण ही वह पंद्रह दिनों तक धर्म का पाठ सुन सकी, भिक्षा दे सकी और अन्य परोपकारी कार्य कर सकी। इसलिए वह सिरिमा की बहुत आभारी थी। अचानक, उसे एहसास हुआ कि सिरिमा उसके बहुत करीब आ गई है और उस पर उबलता हुआ गर्म मक्खन डालने वाली है; इसलिए उसने यह प्रार्थना की: "यदि मेरे मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना है तो यह उबलता हुआ गर्म मक्खन मुझे जला दे; यदि मेरे मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है तो यह मुझे न जलाए।" उबलते हुए गर्म मक्खन से उसे ज़रा भी नुकसान नहीं हुआ।

तब सिरिमा ने बुद्ध से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अतः अगले दिन उत्तरा के घर पर सिरिमा द्वारा बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देने की व्यवस्था की गई। भोजन के बाद, सिरिमा और उत्तरा के बीच जो कुछ हुआ था, वह सब बुद्ध को बताया गया। सिरिमा ने स्वीकार किया कि उसने उत्तरा के साथ गलत किया था और बुद्ध से क्षमादान की विनती की, क्योंकि अन्यथा उत्तरा उसे क्षमा नहीं करती। तब बुद्ध ने उत्तरा से पूछा कि जब सिरिमा ने उनके सिर पर खौलता हुआ मक्खन डाला, तो उनके मन में क्या भाव थे, और उत्तरा ने उत्तर दिया, "हे पूज्यवर, क्योंकि मैं सिरिमा की ऋणी थी, इसलिए मैंने अपना क्रोध न करने और उनके प्रति कोई दुर्भावना न रखने का निश्चय किया था। मैंने उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।" तब बुद्ध ने कहा, "शाबाश, शाबाश, उत्तरा! किसी से द्वेष न रखकर तुमने घृणा के कारण तुम्हें अपमानित करने वाले पर विजय प्राप्त कर ली है। गाली न देकर तुम कंजूस पर विजय प्राप्त कर लोगी; सत्य बोलकर तुम झूठ बोलने वाले पर विजय प्राप्त कर लोगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 223)

कोढं अक्कोधेन जिने असाधुं साधुं जिने

कादरियां दानेन अलीकावादिनं सकैना जिने

कोढ़ां [कोढ़ा]: क्रोधित व्यक्ति; अक्कोधेना : क्रोध न करने के साथ; जीन : जीतना; असाधुम् [असाधु]: निर्गुण व्यक्ति; साधुना : अच्छाई के साथ; जीन : जीतना; कादरियाम् [कादरिया]: कंजूस; दानेना : दान के माध्यम से (जीतना); अलिकावादिनं [अलिकावादिना]: झूठा; सैकेना : सत्य से; जीन : जीतो

क्रोध को संयम से जीतें। बुरे को अच्छाई से जीतें। कंजूसी को दान से जीतें। झूठे को सत्य से जीतें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 223)

निरोध समापत्ति : शांति की अवस्था की प्राप्ति। इस कथा के अनुसार, पुण्ण अत्यंत धनी हो गए क्योंकि उन्होंने निरोध समापत्ति (जिसे गहन मानसिक विश्राम भी कहा जाता है) से उठने के तुरंत बाद पूज्य सारिपुत्त को दान दिया था। संवेदना और बोध की समाप्ति (संज्ञा वेदयित निरोध) सभी चेतना और मानसिक गतिविधियों का अस्थायी निलंबन है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 224

(धम्मपद223) <<<< पिछला || धम्मपद224 || अगला >>>> (धम्मपद225)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 224 - महामोग्गलानपन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 224 - महामोग्गलानपन्हा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Saccam bhane na kujjheyya
dajja appampi yacito
etehi tihithanehi
gacche devana santike.

श्लोक 224 : सत्य बोलना चाहिए, क्रोध पर काबू रखना चाहिए, और माँगने पर थोड़ा-थोड़ा ही सही, देना चाहिए। इन तीनों के माध्यम से ही व्यक्ति देवलोक में जा सकता है।

थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (224) कहा।

एक बार, थेरा महा मोग्गलाना देवलोक गए और वहाँ उन्होंने कई देवों को आलीशान महलों में रहते देखा। उन्होंने उनसे पूछा कि किस पुण्य कर्म के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला है, और उन्होंने उन्हें अलग-अलग उत्तर दिए। उनमें से एक को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं मिला कि उन्होंने बहुत धन दान किया था या धर्म का पालन किया था, बल्कि इसलिए मिला कि वे हमेशा सत्य बोलते थे। दूसरी एक स्त्री देवलोक थी, जिसे देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि वह अपने गुरु से क्रोधित नहीं होती थी और उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रखती थी, भले ही वे अक्सर उसे पीटते और गाली देते थे। अपने क्रोध को नियंत्रित रखने और घृणा का त्याग करने के कारण उसे देवलोक में पुनर्जन्म मिला। फिर, कुछ अन्य देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिले क्योंकि उन्होंने किसी भिक्षु या किसी अन्य व्यक्ति को गन्ने की डंडी, फल या कुछ सब्जियां जैसी छोटी-छोटी वस्तुएँ भेंट की थीं।

देवलोक से लौटने पर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा कि क्या केवल सत्य बोलने, कर्मों पर संयम रखने या फल-सब्जियों जैसी तुच्छ वस्तुओं का थोड़ा सा दान करने से इतने महान लाभ प्राप्त करना संभव है? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, तुम क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं नहीं देखा और देवलोकों की बातें नहीं सुनीं? तुम्हें कोई संदेह नहीं होना चाहिए। छोटे-छोटे पुण्य कर्म निश्चित रूप से व्यक्ति को देवलोक की ओर ले जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 224 : सत्य बोलना चाहिए, क्रोध पर काबू रखना चाहिए, और माँगने पर थोड़ा-थोड़ा ही सही, देना चाहिए। इन तीनों के माध्यम से ही व्यक्ति देवलोक में जा सकता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना देवलोक गए और उन्होंने वहाँ अनेक देवों को आलीशान महलों में रहते देखा। उन्होंने उनसे पूछा कि किस पुण्य कर्म के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला है, और उन्होंने उन्हें अलग-अलग उत्तर दिए। उनमें से एक को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं मिला कि उन्होंने बहुत धन दान किया था या धर्म का पालन किया था, बल्कि इसलिए मिला कि वे सदा सत्य बोलते थे। दूसरी एक स्त्री देव थीं, जिन्हें देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि वे अपने गुरु से क्रोधित नहीं हुईं और उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रखा, जबकि गुरु अक्सर उन्हें पीटते और गाली देते थे। अपने क्रोध पर नियंत्रण रखने और घृणा का त्याग करने के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला। फिर कुछ अन्य देवों को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि उन्होंने किसी भिक्षु या किसी अन्य व्यक्ति को गन्ने की डंडी, फल या कुछ सब्जियां जैसी छोटी-छोटी वस्तुएँ भेंट की थीं।
देवलोक से लौटने पर पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा कि क्या केवल सत्य बोलने, कर्मों पर संयम रखने या फल-सब्जियों जैसी तुच्छ वस्तुओं का थोड़ा सा दान करने से इतने महान लाभ प्राप्त करना संभव है? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, तुम क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं नहीं देखा और देवताओं की बातें नहीं सुनीं? तुम्हें कोई संदेह नहीं होना चाहिए। पुण्य के छोटे-छोटे कर्म ही मनुष्य को देवलोक की ओर ले जाते हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 224)
सच्चं भाणे न कुज्जेया यचितो अप्पस्मिं अपि
दज्जा एतेहि तीहि ठाणेहि देवानां संतिके गच्छे
saccaṃ [sacca]: सत्य; bhaṇe : बोलो; na kujjheyya : क्रोधित मत हो; yācito [yācita]: पूछे जाने पर; āppasmiṃ api : थोड़ा सा भी; dajjā : दो; etehi : इनमें; tīhi ṭhānehi : तीन कारक; devānaṃ santike : देवताओं की उपस्थिति तक; gacche : पहुँचना
सच बोलो। क्रोधित मत हो। पूछे जाने पर थोड़ी सी भी मदद करो। ये तीन बातें तुम्हें देवताओं तक पहुँचा देंगी।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 224)
ना कुज्जेय्या : क्रोधित मत हो। क्रोध (गुस्सा) कुछ लोगों के मन में उत्पन्न होने वाली कठोरता है। क्रोध की भावना में उतार-चढ़ाव होता रहता है, खासकर जब यह विभिन्न चरणों से गुजरती है। क्रोध के आरंभ से मनुष्य की जो अस्थिरता उत्पन्न होती है, वह मन की प्रारंभिक अशांति से शुरू होकर अंततः हथियारों के विनाशकारी उपयोग में परिणत होती है। इस प्रकार का क्रोध कभी-कभी स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन की हानि का कारण भी बन सकता है।
परंपरागत व्याख्या में क्रोध के तरीकों के बारे में यह कहा गया है:
कोधानो दुब्बानोहोति — अथो दुक्खमपि सेति सो
अथो अत्थम गहेतावना - अनत्थम अधिगच्छति ।
(क्रोधित व्यक्ति का रंग-रूप और खान-पान दोनों ही कम प्रभावित होते हैं। यद्यपि वह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता है, फिर भी वह दुखी रहता है। लाभकारी और स्वास्थ्यवर्धक चीजों को देखते-देखते वह पतन की ओर अग्रसर होता चला जाता है।)
ततो कायेन वचन - वधं कत्वान् कोधानो
कोधाभिभूतो पुरिसो - धनजानिम् निगच्छुति ।
(गुस्से की गिरफ्त में आने वाला व्यक्ति शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से जीवन को नष्ट कर देगा। अंत में, वह धन-संपत्ति की हानि झेलेगा और जीवन को बर्बाद कर देगा।)
दुम्मनकुयांसा दस्सेटा - धूमग्गिवीय पावको
यतो पतयति कोधो - येन कुज्झन्ति मनावा ।
(एक बार क्रोधित होने पर उसका चेहरा सुलगती आग की तरह विकृत हो जाता है। क्रोध का कारण चाहे जो भी हो, एक बार क्रोधित होने पर पुरुष और स्त्रियाँ निर्लज्ज हो जाते हैं। उनके शब्द असंगत और अर्थहीन होते हैं। क्रोधित व्यक्ति पूरी तरह से असहाय हो जाता है।)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 225

(धम्मपद224) <<<< पिछला ‖ धम्मपद225 ‖ अगला >>>> (धम्मपद226)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 225 - बुद्धपितुब्राह्मण वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 225 - बुद्धपितुब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ahimsaka ye munayo
niccam kayena sarmvuta
te yanti accutam(1) thanam
yattha gantva na socare.

श्लोक 225 : वे अरहत, जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते और अपने कार्यों में हमेशा संयमित रहते हैं, अमर निर्वाण में जाते हैं, जहाँ कोई दुःख नहीं होता।

---

1. accutam: अपरिवर्तनीय; मृत्युहीन। इसका अर्थ अमरता नहीं है।

उस ब्राह्मण की कहानी जो 'बुद्ध के पिता' थे।

साकेत के पास अंजना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (225) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसने दावा किया कि बुद्ध उसका पुत्र है।

एक बार बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए साकेत नगर में प्रवेश किया। वृद्ध ब्राह्मण ने बुद्ध को देखकर उनसे कहा, "हे पुत्र, आपने हमें इतने समय तक दर्शन क्यों नहीं कराए? मेरे साथ आइए और अपनी माता को भी दर्शन कराइए।" ऐसा कहकर उन्होंने बुद्ध को अपने घर आमंत्रित किया। घर पहुँचने पर ब्राह्मण की पत्नी ने भी बुद्ध से वही बातें कहीं और अपने बच्चों को बुद्ध से "बड़े भाई" कहकर परिचय कराया और उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने को कहा। उस दिन से, दंपति प्रतिदिन बुद्ध को भिक्षा देने लगे और धार्मिक प्रवचन सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों को समय आने पर अनागामी पुण्य प्राप्त हो गया।

भिक्षु यह जानकर हैरान थे कि ब्राह्मण दंपति ने बुद्ध को अपना पुत्र क्यों कहा; इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, उन्होंने मुझे पुत्र इसलिए कहा क्योंकि मैं पंद्रह सौ जन्मों तक उन दोनों का पुत्र या भतीजा था।" बुद्ध तीन महीने और ब्राह्मण दंपति के पास ही रहे और इस दौरान ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया और फिर परिनिर्वाण का अनुभव किया।

भिक्षुओं को यह नहीं पता था कि ब्राह्मण दंपति अरहत बन चुके हैं, इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया:

"जो लोग अरहत बन चुके हैं, वे कहीं भी पुनर्जन्म नहीं लेते; उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 225 : वे अरहत, जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते और अपने कार्यों में हमेशा संयमित रहते हैं, अमर निर्वाण में जाते हैं, जहाँ कोई दुःख नहीं होता।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस ब्राह्मण की कहानी जो बुद्ध के पिता थे

साकेत के पास अंजना वन में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने दावा किया था कि बुद्ध उसका पुत्र है।

एक बार बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए साकेता नगर में गए। वृद्ध ब्राह्मण ने बुद्ध को देखकर उनसे कहा, "हे पुत्र, आपने हमें इतने समय तक दर्शन क्यों नहीं कराए? मेरे साथ आइए और अपनी माता को भी आपसे मिलवाइए।" ऐसा कहकर उन्होंने

बुद्ध को अपने घर आमंत्रित किया। घर पहुँचकर ब्राह्मण की पत्नी ने भी बुद्ध से वही बातें कहीं और अपने बच्चों को बुद्ध से "आपके बड़े भाई" के रूप में परिचित कराया और उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने को कहा। उस दिन से, दंपति प्रतिदिन बुद्ध को भिक्षा देने लगे और धार्मिक प्रवचन सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों को समय आने पर अनागामी पुण्य प्राप्त हो गया। भिक्षु यह जानकर आश्चर्यचकित रह गए कि ब्राह्मण दंपति ने बुद्ध को अपना पुत्र क्यों कहा; इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा।

तब बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, वे मुझे पुत्र इसलिए कहते थे क्योंकि मैं पंद्रह सौ जन्मों तक आप दोनों का पुत्र या भतीजा रहा था।" बुद्ध उस ब्राह्मण दंपत्ति के पास तीन महीने और रहे और इस दौरान ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया और परिनिर्वाण प्राप्त किया। भिक्षुओं को जब पता चला कि ब्राह्मण दंपत्ति अर्हत बन चुके हैं, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "जो अर्हत बन चुके हैं, उनका कहीं पुनर्जन्म नहीं होता; उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 225)

ये मुनायो अहिंसा निच्चं कायेन संवुता
ते यत्थ गन्त्वा न सोकेरे एकुतं थानं यंति

ये मुनयो [मुनया]: वे ऋषि; अहिंसका : (हैं) हानिरहित; निच्चं [निच्च]: निरंतर; कायेन संवुता : शरीर में संयमित; ते : वे; यत्थ : किसी स्थान पर; गन्त्वा : गए; न सोकारे : शोक न करें; अच्चुतं ठनं [ठन]: उस अमर स्थान पर; यंति : पहुँचें

वे निर्दोष ऋषि, जो सदा शरीर से बंधे रहते हैं, अमरता के स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे शोक नहीं करते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 225)

अच्चुतं ठानं : वह स्थान जो अपरिवर्तनीय है। यह निर्वाण की एक और परिभाषा है—अमरता। सब कुछ बदलता है—पर यह नियम निर्वाण पर लागू नहीं होता। संसार , यानी भौतिक अस्तित्व के विपरीत , निर्वाण शाश्वत (धुव), वांछनीय (सुभ) और सुखमय (सुख) है।

बौद्ध धर्म के अनुसार, सांसारिक और अलौकिक सभी वस्तुओं को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है: कारण-आधारित (संक्षिप्त) और असंक्षिप्त (असम्क्षिप्त)। "सभी बद्ध वस्तुओं के तीन लक्षण हैं : उत्पत्ति (उप्पाद), समाप्ति (वय) और अवस्था परिवर्तन (थितस्स अञ्ञतत्तम्)।" उत्पत्ति या बनना प्रत्येक उस वस्तु का अनिवार्य लक्षण है जो किसी कारण या कारणों से बद्ध है। जो भी उत्पन्न होता है या बनता है, वह परिवर्तन और विघटन के अधीन है। प्रत्येक बद्ध वस्तु निरंतर बनती और बदलती रहती है। परिवर्तन का सार्वभौमिक नियम ब्रह्मांड में मौजूद प्रत्येक वस्तु पर लागू होता है — चाहे वह मानसिक हो या भौतिक — सूक्ष्मतम बीज या कण से लेकर उच्चतम सत्ता या विशाल वस्तु तक। मन, यद्यपि अगोचर है, पदार्थ से भी अधिक तेजी से बदलता है।

निर्वाण, बुद्धों और अरहतों द्वारा प्राप्त की गई एक अलौकिक अवस्था है, जिसे किसी भी कारण से बाध्य नहीं माना जाता है। इसलिए यह किसी भी उत्पत्ति, परिवर्तन और विनाश के अधीन नहीं है। यह जन्म रहित (अजात), क्षय रहित (अजर) और अमर (अमर) है। वास्तव में, निर्वाण न तो कारण है और न ही परिणाम। इसलिए यह अद्वितीय (केवल) है। जो कुछ भी किसी कारण से उत्पन्न होता है, उसका अंत निश्चित है, और इस प्रकार वह अवांछनीय (असुभ) है ।

जीवन मनुष्य की सबसे अनमोल संपत्ति है, लेकिन जब उसे अथाह कठिनाइयों और असहनीय बोझों का सामना करना पड़ता है, तो वही जीवन एक असहनीय बोझ बन जाता है। कभी-कभी वह आत्महत्या करके राहत पाने की कोशिश करता है, मानो आत्महत्या से उसकी सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। शरीर को सजाया-संवारा और पूजा जाता है। लेकिन समय और रोग से विकृत होने पर वे आकर्षक, मनमोहक और लुभावने रूप अत्यंत घृणित हो जाते हैं। मनुष्य अपने प्रियजनों के साथ शांतिपूर्वक और सुखपूर्वक जीवन जीना चाहता है, मनोरंजन और सुखों से घिरा रहना चाहता है, लेकिन यदि किसी दुर्भाग्यवश यह दुष्ट संसार उसकी महत्वाकांक्षाओं और इच्छाओं के विपरीत हो जाए, तो अपरिहार्य दुःख लगभग अवर्णनीय रूप से तीव्र हो जाता है।

निम्नलिखित सुंदर दृष्टांत जीवन की क्षणभंगुरता और उसके मोहक सुखों को बखूबी दर्शाता है। एक व्यक्ति घने, काँटों और पत्थरों से घिरे जंगल से होकर गुजर रहा था। अचानक, उसे बहुत हैरानी हुई जब एक हाथी प्रकट हुआ और उसका पीछा करने लगा। वह डर के मारे भागने लगा और एक कुआँ देखकर उसमें छिप गया। लेकिन जब उसने कुएँ की तलहटी में एक साँप देखा तो वह भयभीत हो गया। बचने का कोई और रास्ता न देखकर वह कुएँ में कूद गया और उसमें उग रही एक काँटेदार लता को पकड़ लिया। ऊपर देखने पर उसने दो चूहों को, एक सफेद और एक काला, लता को कुतरते हुए देखा। उसके चेहरे के ऊपर एक मधुमक्खी का छत्ता था जिससे कभी-कभी शहद की बूँदें टपक रही थीं। यह व्यक्ति अपनी इस खतरनाक स्थिति से बेखबर, लालच से शहद चख रहा था। एक दयालु व्यक्ति ने उसे भागने का रास्ता दिखाने की पेशकश की। लेकिन लालची व्यक्ति ने कहा कि जब तक वह आनंद न ले ले, तब तक उसे जाने की अनुमति दे दी जाए।

काँटों भरा मार्ग संसार है , जीवन का सागर। यह कठिनाइयों और बाधाओं से भरा है, जिन पर विजय प्राप्त करनी होती है, विरोध और अनुचित आलोचना का सामना करना पड़ता है, आक्रमण और अपमान सहने पड़ते हैं। जीवन का काँटों भरा मार्ग ऐसा ही है। यहाँ हाथी मृत्यु का प्रतीक है; सर्प वृद्धावस्था का; लता जन्म का; दो चूहे रात और दिन का। शहद की बूँदें क्षणभंगुर इंद्रिय सुखों का प्रतीक हैं।

मनुष्य तथाकथित प्राणी का प्रतिनिधित्व करता है। दयालु व्यक्ति बुद्ध का प्रतिनिधित्व करता है। क्षणिक भौतिक सुख केवल किसी इच्छा की पूर्ति है। जब वांछित वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है। सभी इच्छाएँ अतृप्त हैं। दु:ख जीवन का अनिवार्य अंग है, और इससे बचा नहीं जा सकता। निर्वाण, अबद्ध होने के कारण, शाश्वत (धुव), वांछनीय (सुभ) और सुखमय (सुख) है। निर्वाण के सुख को सामान्य सांसारिक सुख से भिन्न समझना चाहिए। निर्वाण का आनंद न तो बासी होता है और न ही नीरस। यह एक प्रकार का सुख है जो कभी नहीं थकता, कभी नहीं बदलता। यह वासनाओं को शांत करके (वूपसम) उत्पन्न होता है, उस क्षणिक सांसारिक सुख के विपरीत जो किसी इच्छा की पूर्ति से प्राप्त होता है (वेदयित)।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 226

(धम्मपद225) <<<< पिछला|| धम्मपद226 ||अगला >>>> (धम्मपद 227, 228, 229 और 230)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 226 - पुन्नदासि वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 226 - पुन्नादासि वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

सदा जागृतमनम
ahorattanusi kkhinam
निब्बानम अधिमुत्तनम
attham gacchanti asava.

श्लोक 226 : जो लोग सदा सतर्क रहते हैं, जो दिन-रात तीनों विद्याओं (अर्थात् शील, समाधि और पन्ना) का अभ्यास करते हैं, और जिनका मन निर्वाण की ओर उन्मुख होता है, उनमें नैतिक मादक पदार्थ विलुप्त हो जाते हैं।

पुन्ना नाम की दासी की कहानी

गिज्झकुटा पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने राजगृह में एक दासी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (226) कहा।

एक रात, पुन्ना नाम की दासी अपने स्वामी के लिए चावल कूट रही थी। थककर वह थोड़ी देर आराम करने लगी। आराम करते समय उसने देखा कि थेरा डब्बा कुछ भिक्षुओं को धम्म प्रवचन सुनकर उनके मठों की ओर ले जा रहे हैं। उन्हें इतनी देर तक जागते देखकर पुन्ना सोचने लगी, "मुझे इतनी देर तक जागना पड़ता है क्योंकि मैं बहुत गरीब हूँ और मुझे कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन ये भले लोग इतनी देर तक क्यों जाग रहे हैं? शायद कोई भिक्षु बीमार है, या उन्हें कोई साँप परेशान कर रहा है?"

अगले दिन सुबह-सुबह पुन्ना ने कुछ टूटे हुए चावल लिए, उन्हें पानी में भिगोया और उनकी एक रोटी बनाई। नदी किनारे बैठकर उसे खाने के इरादे से वह अपनी सस्ती, खुरदरी रोटी अपने साथ ले गई। रास्ते में उसने बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा। वह अपनी रोटी बुद्ध को अर्पित करना चाहती थी, लेकिन उसे यकीन नहीं था कि बुद्ध इतनी सस्ती, खुरदरी रोटी खाने की कृपा करेंगे। बुद्ध उसकी बात समझ गए। उन्होंने उसकी रोटी स्वीकार कर ली और थेरा आनंद से ज़मीन पर छोटी चटाई बिछाने को कहा। बुद्ध चटाई पर बैठ गए और दासी द्वारा अर्पित रोटी खा ली। खाने के बाद, बुद्ध ने पुन्ना को अपने पास बुलाया और उसके मन में उठ रहे प्रश्न का उत्तर दिया। बुद्ध ने दासी

से कहा, "पुन्ना, तुम सो नहीं सकती क्योंकि तुम गरीब हो और इसलिए तुम्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। जहाँ तक मेरे पुत्र भिक्षुओं की बात है, वे सोते नहीं हैं क्योंकि उन्हें हमेशा सतर्क और सचेत रहना पड़ता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 226 : जो लोग सदा सतर्क रहते हैं, जो दिन-रात तीनों विद्याओं (अर्थात् शील, समाधि और पन्ना) का अभ्यास करते हैं, और जिनका मन निर्वाण की ओर उन्मुख होता है, उनमें नैतिक मादक पदार्थ विलुप्त हो जाते हैं।

प्रवचन के अंत में पुन्ना ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पुण्णा नामक दासी की कहानी
गिज्झकूत पर्वत पर निवास करते समय, बुद्ध ने राजगृह की एक दासी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, एक दिन उन्हें बहुत सारा चावल कूटने को दिया गया। वे रात देर तक चावल कूटती रहीं, और काम करते समय एक दीपक जलाती रहीं; अंत में, वे बहुत थक गईं और आराम करने के लिए बाहर निकलकर हवा में खड़ी हो गईं, उनका शरीर पसीने से तर था। उस समय मल्ला दब्बा भिक्षुओं के आवास के प्रबंधक थे। धम्म सुनकर, ताकि वे भिक्षुओं को उनके आवासों का मार्ग दिखा सकें, उन्होंने अपनी उंगली में दीपक जलाया और भिक्षुओं के आगे-आगे चलते हुए अलौकिक शक्ति से उनके लिए प्रकाश उत्पन्न किया। प्रकाश के कारण पुण्णा ने भिक्षुओं को पर्वत पर चलते हुए देखा। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं तो अपनी ही बेचैनी से परेशान हूँ, और इसलिए इस समय भी सो नहीं पा रही हूँ। आदरणीय भिक्षु क्यों नहीं सो पा रहे हैं?" इस पर विचार करने के बाद, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं, "ज़रूर वहाँ रहने वाला कोई भिक्षु बीमार है, या किसी सरीसृप के काटने से पीड़ित है।" भोर होते ही उसने थोड़ा सा चावल का चूरा लिया, उसे हथेली पर फैलाया, पानी से गीला किया और उससे एक रोटी बनाकर कोयले की आंच पर पकाया। फिर मन ही मन सोचते हुए, "मैं इसे नदी के किनारे स्नान स्थल की ओर जाने वाले रास्ते पर खाऊंगी," उसने रोटी को अपने वस्त्र की तह में रखा और हाथ में पानी का घड़ा लेकर नदी के किनारे स्नान स्थल की ओर चल पड़ी।
बुद्ध भी उसी मार्ग पर चल पड़े, उनका इरादा भी भिक्षा मांगने के लिए उसी गाँव में प्रवेश करने का था। जब पुण्णा ने बुद्ध को देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "पहले जब भी मैंने बुद्ध को देखा है, तो मेरे पास उन्हें देने के लिए कुछ नहीं था, या अगर कुछ देने के लिए था भी, तो मैं उनसे मिल नहीं पाई; लेकिन आज तो न केवल मैं बुद्ध से आमने-सामने मिल रही हूँ, बल्कि मेरे पास उन्हें देने के लिए भिक्षा भी है। यदि वे इस रोटी को बिना यह सोचे समझे स्वीकार कर लें कि यह उत्तम है या उत्तम, तो मैं उन्हें दे दूँगी।" अतः उन्होंने अपना पानी का घड़ा एक तरफ रखकर बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "हे पूज्यवर, इस साधारण भोजन को स्वीकार कीजिए और मुझे अपना आशीर्वाद दीजिए।" बुद्ध ने पूज्य आनंद की ओर देखा, जिस पर पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र की तह से एक कटोरा निकाला और बुद्ध को भेंट किया, जो एक महान राजा की ओर से बुद्ध को भेंट था। बुद्ध ने कटोरा आगे बढ़ाया और उसमें रोटी का प्रसाद ग्रहण किया। जब पुण्णा ने केक को बुद्ध के कटोरे में रख दिया, तो उसने पांच विश्रामों से उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, "आदरणीय, जो सत्य आपने देखा है, वह मेरे लिए भी उपयोगी हो।"
बुद्ध ने उत्तर दिया, "ऐसा ही हो।" बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "इस स्त्री के मन में क्या विचार था?" उनके मन की बात समझकर, बुद्ध ने पूज्य आनंद की ओर देखा और बैठने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य आनंद ने एक वस्त्र बिछाया और बुद्ध को बैठने के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध बैठ गए और नाश्ता किया। नाश्ता समाप्त करने के बाद, उन्होंने पुण्णा से कहा, "पुण्णा, तुमने मेरे शिष्यों पर दोष क्यों लगाया?" पुण्णा ने कहा, "मैं आपके शिष्यों पर दोष नहीं लगाती, पूज्य।" "तो फिर तुमने मेरे शिष्यों को देखकर क्या कहा?" "आदरणीय, इसका स्पष्टीकरण बहुत सरल है। मैंने मन ही मन सोचा, 'मैं तो अपनी ही बेचैनी से परेशान हूँ, इसलिए सो नहीं पा रही; तो फिर अन्य आदरणीय क्यों सो नहीं पा रहे? अवश्य ही वहाँ रहने वाला कोई भिक्षु बीमार होगा, या किसी सरीसृप के काटने से पीड़ित होगा।'" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और फिर उनसे कहा, "पुण्णा, तुम्हारे मामले में तो तुम बेचैनी से पीड़ित हो, इसलिए सो नहीं पा रही हो। परन्तु मेरे शिष्य तो पूरी तरह सतर्क रहते हैं, इसलिए सोते नहीं हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 226)
सदा जगरामानां अहोरत्तं अनुसिक्खिनं
निब्बाणं अधिमुत्तनं आसव अत्थं गच्छन्ति

सदा : सदैव; जगरामानां [जगरामाना]: जाग्रत; अहोराट्टं [अहोरात्ता]: दिन और रात; अनुसिक्खिनं [अनुसिक्खिना]: अनुशासन के लिए दिया गया; निब्बाणं अधिमुत्तनम् [अधिमुत्तन]: निब्बाण पर तुला हुआ; आसव : (उस व्यक्ति का) कलंक; अत्थं गच्छन्ति : बुझ जाओ

जो लोग निरंतर जागृत, सजग और सतर्क रहते हैं, जो स्वयं को अनुशासित करने और दिन-रात अध्ययन करने में लगे रहते हैं, निर्वाण की प्राप्ति के लिए तत्पर रहते हैं, उनके सारे दोष और कलंक मिट जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 226)

आसवा : दोष; दाग। ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में बुद्ध ने आसवाओं को समझा ; उनके उत्पन्न होने और समाप्त होने की प्रक्रिया को जाना। इस ज्ञान से उनका मन आसवाओं (दोषों) से मुक्त हो गया: कामसव (इंद्रिय सुख), भावसव (भाव) और अविज्जसव (अज्ञान)। इस प्रकार उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 227,228,229,230

(धम्मपद 226) <<<< पिछला || धम्मपद 227, 228, 229 और 230 || अगला >>>> (धम्मपद 231, 232, 233 और 234)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 227, 228, 229 और 230 - अतुल उपासक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 227, 228, 229 और 230 - अतुल उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

पोरानामेटम अतुला
netam ajjatanamiva
nindanti tunhimasinam
निंदन्ति बहुभाननाम
mitabhanimpi nindanti
natthi loke anindito.
Na cahu na ca bhavissati
na cetarahi vijjati
ekantam nindito poso
ekantam va pasamsito.
Yam ce vinnu pasamsanti
anuvicca suve suve
acchiddavuttim medhavim
pannasilasamahitam.
निक्खम जंबोनादाससेवा(1)
ko tam ninditumarahati
devapi nam pasamsanti

brahmunapi pasamsito.

श्लोक 227 : हे अतुल! यह कोई नई बात नहीं है! यह प्राचीन काल से होता आ रहा है। वे चुप रहने वाले को दोष देते हैं, वे बहुत बोलने वाले को दोष देते हैं, वे कम बोलने वाले को दोष देते हैं। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसे दोष न दिया गया हो।

श्लोक 228 : न कभी कोई ऐसा था, न कभी कोई ऐसा होगा, और न ही अब कोई ऐसा है, जिसकी हमेशा निंदा की जाती हो या जिसकी हमेशा प्रशंसा की जाती हो।

श्लोक 229-230 : यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हैं, यह जानते हुए कि वे वास्तव में निर्दोष, बुद्धिमान और ज्ञान एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, तो भला कौन उनकी निंदा करेगा, जो शुद्ध सोने के निक्खा के समान हैं? देव (देवदूत) उनकी स्तुति करते हैं; महान ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करते हैं।

---

1. निक्खम जंबोनादाससेवा: जंबोनादा सोने के निक्खा की तरह। जंबू नदी से प्राप्त जंबोनादा सोना सबसे उत्तम सोना होता है। निक्खा सोने की एक इकाई, आभूषण या सिक्का हो सकता है।

गृहस्थ शिष्य अतुल की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अतुल और उनके साथियों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (227) से (230) तक कहे।

एक बार अतुल और उनके पाँच सौ साथी धर्म के उपदेश सुनने की इच्छा से थेरा रेवता के पास गए। परन्तु थेरा सिंह के समान एकांतप्रिय थे; उन्होंने उनसे कुछ नहीं कहा। वे अत्यंत असंतुष्ट हुए और इसलिए वे थेरा सारिपुत्त के पास गए। जब थेरा सारिपुत्त को उनके आने का कारण पता चला, तो उन्होंने अभिधम्म का विस्तृत उपदेश दिया। वे भी उन्हें पसंद नहीं आए और उन्होंने शिकायत की कि थेरा सारिपुत्त का उपदेश बहुत लंबा और गहन था। इसके बाद अतुल और उनके साथी थेरा आनंद के पास गए। थेरा आनंद ने उन्हें धर्म के मूल तत्व समझाए। इस बार उन्होंने कहा कि थेरा आनंद का उपदेश बहुत संक्षिप्त और सारगर्भित था। अंततः वे बुद्ध के पास आए और उनसे कहा, "आदरणीय बुद्ध, हम आपका उपदेश सुनने आए हैं। यहाँ आने से पहले हम कई अन्य गुरुओं के पास जा चुके हैं, लेकिन उनमें से किसी से भी संतुष्ट नहीं हुए। थेरा रेवता ने हमें उपदेश देने की जहमत ही नहीं उठाई और वे मौन ही बैठे रहे; थेरा सारिपुत्त का उपदेश बहुत विस्तृत था और उनके द्वारा सिखाया गया धम्म हमारे लिए बहुत कठिन था। थेरा आनंद का उपदेश भी बहुत संक्षिप्त और सारगर्भित था। हमें उनके किसी भी प्रवचन में रुचि नहीं है।"

बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे शिष्यों, दूसरों पर दोषारोपण करना कोई नई बात नहीं है। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिस पर कभी दोषारोपण न हुआ हो; लोग राजा पर भी, या बुद्ध पर भी दोषारोपण कर देते हैं। किसी मूर्ख द्वारा दोषारोपित या प्रशंसा किए जाने का कोई महत्व नहीं है; वास्तव में दोषारोपित व्यक्ति तभी होता है जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति दोषारोपित करता है, और वास्तव में प्रशंसा तभी होती है जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति प्रशंसा करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 227 : हे अतुल! यह कोई नई बात नहीं है! यह प्राचीन काल से होता आ रहा है। वे चुप रहने वाले को दोष देते हैं, वे बहुत बोलने वाले को दोष देते हैं, वे कम बोलने वाले को दोष देते हैं। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसे दोष न दिया गया हो।

श्लोक 228 : न कभी कोई ऐसा था, न कभी कोई ऐसा होगा, और न ही अब कोई ऐसा है, जिसकी हमेशा निंदा की जाती हो या जिसकी हमेशा प्रशंसा की जाती हो।

श्लोक 229-230 : यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हैं, यह जानते हुए कि वे वास्तव में निर्दोष, बुद्धिमान और ज्ञान एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, तो भला कौन उनकी निंदा करेगा, जो शुद्ध सोने के निक्खा के समान हैं? देव (देवदूत) उनकी स्तुति करते हैं; महान ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करते हैं।

प्रवचन के अंत में अतुल और उनके साथियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

(धम्मपद 227, 228, 229 और 230) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 231, 232, 233 और 234 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 235, 236, 237 और 238)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 231, 232, 233 और 234 - चब्बग्गिया वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 231, 232, 233 और 234 - चब्बग्गिया वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Kayappakopam rakkheyya
kayena sambyuto siya
kayaduccharitam hitva
kayena sucaritam care.
Vacipakopam rakkheyya
vacaya samvuto siya
vaciduccaritam hitva
vacaya sucaritam care.
मनोपाकोपम रक्खेय्या
manasa samvuto siya
manoduccaritam hitva
manasa sucaritam care.
Kayena samvuta dhira
atho vacaya sambuta
manasa samvuta dhira
te ye suparisamvuta.

श्लोक 231 : बुरे कर्मों से सावधान रहो, अपने शरीर पर नियंत्रण रखो। बुरे कर्मों का त्याग करके अच्छे कर्म करो।

श्लोक 232 : बुरी वाणी से सावधान रहो, अपनी वाणी पर नियंत्रण रखो। बुरी वाणी का त्याग करके अच्छी वाणी का अभ्यास करो।

श्लोक 233 : बुरे विचारों से सावधान रहो, अपने मन को वश में रखो। बुरे विचारों का त्याग करके अच्छे विचारों का विकास करो।

श्लोक 234 : बुद्धिमान लोग कर्मों में संयमित होते हैं, वे वाणी में संयमित होते हैं, वे विचारों में संयमित होते हैं। वास्तव में, वे पूर्णतः आत्मसंयमित होते हैं।

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (231) से (234) तक कहे। लकड़ी की चप्पलें पहने और दोनों हाथों में लाठी लिए छह भिक्षु एक बड़ी पत्थर की पटिया पर शोर मचाते हुए इधर-उधर चल रहे थे। शोर सुनकर बुद्ध ने थेरा आनंद से पूछा कि क्या हो रहा है, और थेरा आनंद ने उन्हें उन छह भिक्षुओं के बारे में बताया। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को लकड़ी की चप्पलें पहनने से मना किया। उन्होंने भिक्षुओं को वचन और कर्म दोनों में संयम बरतने की भी सलाह दी।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 231 : बुरे कर्मों से सावधान रहो, अपने शरीर पर नियंत्रण रखो। बुरे कर्मों का त्याग करके अच्छे कर्म करो।

श्लोक 232 : बुरी वाणी से सावधान रहो, अपनी वाणी पर नियंत्रण रखो। बुरी वाणी का त्याग करके अच्छी वाणी का अभ्यास करो।

श्लोक 233 : बुरे विचारों से सावधान रहो, अपने मन को वश में रखो। बुरे विचारों का त्याग करके अच्छे विचारों का विकास करो।

श्लोक 234 : बुद्धिमान लोग कर्मों में संयमित होते हैं, वे वाणी में संयमित होते हैं, वे विचारों में संयमित होते हैं। वास्तव में, वे पूर्णतः आत्मसंयमित होते हैं।

सत्रहवें अध्याय का अंत: क्रोध (कोधवग्ग)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक दिन छह भिक्षुओं के एक समूह ने अपने पैरों में लकड़ी के जूते पहने और दोनों हाथों में लकड़ी की लाठियाँ लेकर एक समतल चट्टान पर इधर-उधर चलने लगे। बुद्ध ने खड़खड़ाहट सुनकर पूज्य आनंद से पूछा, "आनंद, यह कैसी आवाज़ है?" पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, "छह भिक्षुओं का एक समूह लकड़ी के जूते पहनकर चल रहा है; वे ही यह खड़खड़ाहट कर रहे हैं जो आप सुन रहे हैं।" यह सुनकर बुद्ध ने यह उपदेश दिया, "भिक्षु को अपने कर्मों, अपने शब्दों और अपने विचारों पर नियंत्रण रखना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 231)
कायप्पकोपं रक्खेया , कायेन संवुतो सिया ,
काया दुचरितं हित्वा कायेन सुचरितं देखभाल ।
कायप्पकोपम् [कायप्पकोप]: शरीर की उत्तेजना; रक्खेय्य : स्वयं को संभालना; कायन संवुतो सिया : शरीर को अनुशासित रखना; काय दुच्चरितम् [दुच्चरित]: शारीरिक दुराचार; हित्वा : त्याग देना; कायन : शरीर के साथ; सुचरितम् देखभाल : सद्गुणपूर्ण व्यवहार करना
अपनी भावनाओं को शारीरिक रूप से प्रकट करने से बचें। शारीरिक व्यवहार में संयम बरतें। शारीरिक दुराचार से दूर रहें। स्वस्थ शारीरिक व्यवहार का अभ्यास करें।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 232)
वाचिपकोपं रक्खेय वाचाय सवुतो सिया
वसीदुच्चरितं हित्वा वचन सुचरितं देखभाल
vacīpakopaṃ [vacīpakopa]: वाणी की उत्तेजना; rakkheyya : स्वयं को संभालना; vācāya saṃvuto siyā : वाणी में संयम बरतना; vacīduccaritaṃ [vacīduccarita]: वाणी में दुराचार; hitvā : त्याग देना ; vācāya : अपनी वाणी से; sucaritaṃ care : सद्गुणपूर्ण व्यवहार करना
अपनी भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करने से बचें। अपने वाणी व्यवहार में संयम बरतें। वाणी के दुर्व्यवहार से बचें। अच्छे वाणी व्यवहार का अभ्यास करें।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 233)
मनोपकोपं रक्खेया , मनसा संवुतो सिया ,

मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं ध्यान

मनोपकोपम् [मनोपकोप]: मन की उत्तेजना; रक्खेय्य : स्वयं को संभालना; मनसा संवुतो सिया : मन में अनुशासन रखना; मनोदुच्चरितम् [मनदुच्चरित]: मन का दुराचार; हित्वा : त्याग देना; मनसा : मन से; सुचरितम् देखभाल : अच्छे आचरण का अभ्यास करना

अपनी भावनाओं को मन में प्रकट करने से बचें। अपने मन के व्यवहार में संयम बरतें। मानसिक दुराचार से दूर रहें। स्वस्थ मानसिक व्यवहार का अभ्यास करें।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 234)

धीरा कायेन संवुता अथो वचन संवुता

मनसा संवुता ते धीरा वे सुपरिसंवुता

धीरा : वे बुद्धिमान प्राणी; कायेन : शरीर से; संवुता : अनुशासित हैं; अथो : फिर से; वाचाय : वाणी से; संवुता : संयमित हैं; मनसा : मन से; संवुता : अनुशासित हैं; ते धीरा : वे बुद्धिमान प्राणी; वे : निश्चित रूप से; सुपरिसंवुता : पूर्णतः संयमित

ज्ञानी पुरुष शरीर से संयमित होते हैं। वे वाणी से भी संयमित होते हैं। वे मन से भी पूर्णतः अनुशासित होते हैं। जिन्होंने शरीर, वाणी और मन - तीनों द्वारों की रक्षा कर ली है, वे परम संयमी होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 231-234)

कायप्पकोपं वचीपकोपं मनोपकोपं रक्खेय्य : शरीर, वाणी और मन के कुकर्मों से सावधान रहो। ये श्लोक बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह को चेतावनी देने के लिए कहे थे, जिनका व्यवहार भिक्षुओं के अनुशासन के अनुरूप नहीं था। बुद्ध ने उनसे कुकर्मों से बचने के लिए कहा। बौद्ध धर्म में भिक्षुओं के संयम के लिए कड़े नियम निर्धारित हैं। यदि भिक्षुओं को आध्यात्मिक प्रगति के उच्चतर चरणों को प्राप्त करना है, तो संयमित व्यवहार आवश्यक है। निर्वाण के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिए संयमित व्यवहार के ये मूलभूत सिद्धांत आवश्यक हैं, मुख्यतः इसलिए क्योंकि ये कर्म और वाणी दोनों को नियंत्रित करते हैं। इनका उल्लंघन मार्ग पर नैतिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है। इनका पालन मार्ग पर सुचारू और स्थिर प्रगति का साधन है।

अपनी क्रमिक उन्नति में एक कदम और आगे बढ़ते हुए, साधक अब अपनी इंद्रियों को वश में करने का प्रयास करता है। भोजन की लालसा को नियंत्रित करने और मन एवं शरीर के अर्थ को बढ़ावा देने के लिए महीने में एक दिन उपवास करना उचित है। विलासितापूर्ण जीवन की तुलना में सादा जीवन श्रेष्ठ है, क्योंकि विलासितापूर्ण जीवन व्यक्ति को वासनाओं का गुलाम बना देता है। ब्रह्मचर्य का जीवन अनुशंसित है, क्योंकि इस प्रकार संरक्षित बहुमूल्य ऊर्जा का उपयोग स्वयं और दूसरों के बौद्धिक एवं नैतिक कल्याण के लिए किया जा सकता है। ऐसे जीवन में व्यक्ति उन अतिरिक्त सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है जो नैतिक प्रगति में बाधा डालते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग सभी आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने शरीर का पोषण संयम से किया है और कठोर ब्रह्मचर्य, सादगी, स्वैच्छिक दरिद्रता और आत्म-संयम का जीवन व्यतीत किया है। जैसे-जैसे साधक नियमित रूप से, नियमित वाणी और कर्म तथा इंद्रिय-संयम के साथ धीरे-धीरे प्रगति करता है, कर्म की प्रेरणा उसे सांसारिक सुखों का त्याग करने और तपस्वी जीवन अपनाने के लिए विवश करती है।

तब उनके मन में यह विचार आता है कि:

गृहस्थ जीवन कलह का अड्डा होता है।
और परिश्रम और अभाव से भरा हुआ,
लेकिन खुले आकाश की तरह स्वतंत्र और ऊँचा
बेघर लोग ऐसा ही जीवन जीते हैं।

इस प्रकार इंद्रिय सुखों की व्यर्थता को जानकर, वह स्वेच्छा से सभी सांसारिक संपत्तियों का त्याग कर, तपस्वी वेश धारण करके ऋषिमय जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है। यद्यपि, यह बाहरी रूप नहीं है जो मनुष्य को पवित्र बनाता है, बल्कि आंतरिक शुद्धि और अनुकरणीय जीवन है। परिवर्तन भीतर से आना चाहिए, बाहर से नहीं। निर्वाण प्राप्त करने के लिए एकांतवास में जाकर तपस्वी जीवन व्यतीत करना पूर्णतः आवश्यक नहीं है। भिक्षु का जीवन निस्संदेह आध्यात्मिक प्रगति को गति प्रदान करता है और सुगम बनाता है, परन्तु गृहस्थ रहते हुए भी संतत्व प्राप्त किया जा सकता है। जो व्यक्ति सभी प्रलोभनों का सामना करते हुए गृहस्थ रहते हुए अर्हतत्व प्राप्त करता है, वह निःसंदेह उस भिक्षु से अधिक प्रशंसनीय है जो विचलित न करने वाले परिवेश में रहते हुए अर्हतत्व प्राप्त करता है।

एक मंत्री के विषय में, जिसने अपने सर्वोत्तम वस्त्रों में सजे-धजे और हाथी पर बैठे हुए अर्हतत्व प्राप्त किया, बुद्ध ने टिप्पणी की:

भले ही कोई व्यक्ति कितना भी सुसज्जित क्यों न हो, यदि वह शांति से चलता है,
यदि वह शांत, संयमित, निश्चित और पवित्र हो,
और यदि वह किसी भी जीवित प्राणी को हानि पहुँचाने से परहेज करता है,
वह व्यक्ति ब्राह्मण है, वह व्यक्ति संन्यासी है, वह व्यक्ति भिक्षु है।

ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें गृहस्थों ने संसार का त्याग किए बिना निर्वाण प्राप्त किया। सबसे धर्मनिष्ठ और उदार गृहस्थ अनुयायी अनाथपिंडिक एक सोतापन्न थे, शाक्य महानामा एक सकदागामी थे, कुम्हार घटिकारा एक अनागामी थे और बुद्ध के पिता राजा सुद्धोदन एक अरहत के रूप में प्राण त्यागे।

एक भिक्षु से चार प्रकार की उच्च नैतिक मान्यताओं का पालन करने की अपेक्षा की जाती है—अर्थात्:

पतिमोक्ख सिला - मौलिक नैतिक संहिता,

इंद्रियसंवर शील - इंद्रिय-संयम से संबंधित नैतिकता,

Ājīvapārisuddhi sīla — आजीविका की शुद्धता से संबंधित नैतिकता,

Paccayasannissita sīla —जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उपयोग से संबंधित नैतिकता।

इन चार प्रकार के नैतिक मूल्यों को सामूहिक रूप से शील-विशुद्धि (सद्गुणों की शुद्धता) कहा जाता है, जो निर्वाण की ओर जाने वाले सात चरणों में से पहला चरण है। जब कोई व्यक्ति संघ में प्रवेश करता है और उच्च दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त करता है, तो उसे भिक्षु कहा जाता है। पाली शब्द भिक्षु का कोई ऐसा अंग्रेजी पर्याय नहीं है जो इसके अर्थ को सटीक रूप से व्यक्त करता हो । भिक्षु शब्द इसका सबसे उपयुक्त अनुवाद हो सकता है, भिक्षा मांगने वाले के अर्थ में नहीं, बल्कि भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले के अर्थ में।

भिक्षु के लिए कोई प्रतिज्ञा नहीं होती। वह अपनी इच्छा से धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए भिक्षु बनता है। वह संघ छोड़ने के लिए स्वतंत्र है। भिक्षु विनय में वर्णित 227 नियमों का पालन करने के लिए बाध्य है, इसके अतिरिक्त कई अन्य छोटे नियम भी हैं। पूर्ण ब्रह्मचर्य, चोरी, हत्या और उच्च आध्यात्मिक शक्तियों के झूठे दावे से संबंधित चार प्रमुख नियमों का कड़ाई से पालन करना अनिवार्य है। यदि वह इनमें से किसी एक का भी उल्लंघन करता है, तो वह पराजित (पाराजिका) हो जाता है और स्वतः ही भिक्षु नहीं रह जाता। यदि वह चाहे, तो वह संघ में पुनः प्रवेश कर सकता है और सामान्यर (नवदीक्षित) के रूप में रह सकता है। अन्य नियमों के उल्लंघन के मामले में, उसे अपराध की गंभीरता के अनुसार प्रायश्चित करना होता है। भिक्षु के प्रमुख गुणों में पवित्रता, पूर्ण ब्रह्मचर्य, स्वैच्छिक निर्धनता, विनम्रता, सादगी, निस्वार्थ सेवा, आत्म-संयम, धैर्य, करुणा और अहिंसा शामिल हैं।

भिक्षु का जीवन, या दूसरे शब्दों में, सांसारिक सुखों और महत्वाकांक्षाओं का त्याग, निर्वाण प्राप्त करने का केवल एक प्रभावी साधन है, लेकिन यह अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है।

नैतिकता के मार्ग पर दृढ़ आधार स्थापित करने के बाद, साधक समाधि की उच्च साधना में संलग्न होता है , जो मन का नियंत्रण और संवर्धन है, और पवित्रता के मार्ग का दूसरा चरण है। समाधि मन का संतुलन है। यह मन की स्थिरता या मानसिक गतिविधि का विश्राम है। बौद्ध धर्म के अनुसार, चालीस ध्यान विषय (कम्मट्ठाना) हैं जो व्यक्तियों के स्वभाव के अनुसार भिन्न होते हैं।

वे हैं:

(1) दस विस्तार (कासिना), अर्थात्: (ए) पृथ्वी कासिना , (बी) जल कासिना , (सी) अग्नि कासिना , (डी) वायु कासिना , (ई) नीला कासिना , (एफ) पीला कासिना , (जी) लाल कासिना , (एच) सफेद कासिना , (आई) प्रकाश कासिना और (जे) अंतरिक्ष कासिना ।

(2) दस अप्रिय (असुभ), अर्थात् दस शव जो क्रमशः इस प्रकार हैं: (क) फूले हुए (उद्धुमातक), (ख) बदरंग (विनीलाक), (ग) सड़ते हुए (विपुब्बक), (घ) विच्छेदित (विच्चिद्दक), (ङ) कुतर-कुतर कर टुकड़े किए हुए (विक्खायितक), (च) टुकड़ों में बिखरे हुए (विक्खित्तक), (छ) क्षतविक्षत और टुकड़ों में बिखरे हुए (हतविक्खित्तक), (ज) रक्त से लथपथ (लोहितक), (झ) कृमिग्रस्त (पुलावक), और (झ) कंकाल (अट्ठिका)।

(3) दस चिंतन (अनुस्सति), अर्थात्, आठ चिंतन: (क) बुद्ध (बुद्धानुस्सति), (ख) सिद्धांत (धम्मानुस्सति), (ग) संघ (संघानुस्सति), (घ) सद्गुण (सीलानुस्सति), (ङ) उदारता (चागानुस्सति), (च) देव (देवतानुस्सति), (छ) शांति (उपसमानुस्सति), (ह) मृत्यु (मरनानुस्सति), क्रमशः, साथ ही (छ) शरीर के प्रति सजगता (कायगतासति) और (श) श्वसन के प्रति सजगता (आनापानसति)।

(4) चार असीम या दिव्य आचरण के चार तरीके (ब्रह्मविहार), अर्थात्, प्रेम (मेट्टा), करुणा (करुणा), प्रशंसात्मक आनंद (मुदिता), और समभाव (उपेक्खा)।

(5) एक धारणा, अर्थात् भौतिक भोजन की घृणास्पदता की धारणा (āhāre patikkiūlasaññā)।

(6) एक विश्लेषण, अर्थात् चार तत्वों का विश्लेषण (चतुधातुविवत्थाना)।

(7) चार अरूप झान , अर्थात् अंतरिक्ष की अनंतता का क्षेत्र (आकासानंचायतन), चेतना की अनंतता का क्षेत्र (विञ्ञानंचायतन), और न तो बोध और न ही अबोध का क्षेत्र (न ' एव सञ्ञा न ' आसान्चायतन)।

ग्रंथों के अनुसार, दस अशुद्धियाँ और शरीर के प्रति सजगता, जैसे कि बत्तीस अंग, कामुक स्वभाव वाले लोगों के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि वे शरीर के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं जो इंद्रियों को मोहित करता है।

चार असीम तत्व और चार रंगों के कसिन घृणाशील स्वभाव वालों के लिए उपयुक्त हैं। बुद्ध आदि का चिंतन भक्तिमय स्वभाव वालों के लिए उपयुक्त है। मृत्यु और शांति का चिंतन, भौतिक भोजन की घृणास्पदता का बोध और चार तत्वों का विश्लेषण बौद्धिक स्वभाव

वालों के लिए उपयुक्त है। शेष विषय, मुख्यतः बुद्ध का चिंतन, प्रेम-कृपा का ध्यान, शरीर के प्रति सजगता और मृत्यु का चिंतन, स्वभाव की परवाह किए बिना सभी के लिए उपयुक्त हैं।

स्वभाव (कारिता) छह प्रकार के होते हैं । वे इस प्रकार हैं:

कामुक स्वभाव (रागचरित)

घृणास्पद स्वभाव (दोसाचरिता)

अज्ञानी स्वभाव (मोहकारिता),

सद्धाचरित (भक्तिपूर्ण स्वभाव)

बौद्धिक स्वभाव (बुद्धचरित), और

विवेचनात्मक स्वभाव (विताक्कचरिता)।

चरिता व्यक्ति के आंतरिक स्वभाव को दर्शाती है, जो तब प्रकट होता है जब व्यक्ति किसी भी चीज़ में लीन न होकर सामान्य अवस्था में होता है। लोगों के स्वभाव उनके कर्मों की विविधता के कारण भिन्न होते हैं। नियमित क्रियाएँ विशिष्ट स्वभावों को आकार देती हैं।

कुछ लोगों में राग या कामवासना प्रबल होती है, जबकि अन्य में दोष या क्रोध, घृणा, द्वेष आदि। अधिकांश लोग इन्हीं दो श्रेणियों में आते हैं। कुछ अन्य लोग बुद्धिहीन होते हैं और कमोबेश अज्ञानी (मोहचरित) होते हैं। अज्ञानी लोगों के समान वे लोग हैं जिनका मन चंचल होता है — वे जानबूझकर किसी एक चीज पर ध्यान केंद्रित करने में असमर्थ होते हैं (वितक्कचरित)। स्वभाव से कुछ लोग असाधारण रूप से भक्त (सद्धाचरित) होते हैं, जबकि अन्य असाधारण रूप से बुद्धिमान (बुद्धचरित) होते हैं ।

इन छह प्रकारों को आपस में मिलाने पर तिरसठ प्रकार प्राप्त होते हैं। चिंतनशील स्वभाव (दिट्ठिचरित) को शामिल करने पर चौंसठ प्रकार हो जाते हैं। ध्यान के विषय इन विभिन्न स्वभावों और लोगों के प्रकारों के अनुरूप अनुकूलित किए गए हैं।

समाधि का अभ्यास करने से पहले, योग्य साधक को ध्यान के विषय पर गहन विचार करना चाहिए। प्राचीन काल में, शिष्यों के लिए यह प्रथा थी कि वे अपने स्वभाव के अनुसार उपयुक्त विषय चुनने के लिए किसी योग्य शिक्षक से मार्गदर्शन प्राप्त करें। लेकिन आज, यदि कोई योग्य शिक्षक उपलब्ध न हो, तो साधक को स्वयं विवेक का प्रयोग करना चाहिए और ऐसा विषय चुनना चाहिए जो उसे अपने स्वभाव के लिए सबसे उपयुक्त लगे।

विषय का चयन हो जाने के बाद, व्यक्ति को किसी शांत स्थान पर चले जाना चाहिए जहाँ कम से कम व्यवधान हो। जंगल, गुफा या कोई भी एकांत स्थान सबसे उपयुक्त होता है, क्योंकि वहाँ अभ्यास के दौरान व्यवधान की संभावना सबसे कम होती है।

यह समझना आवश्यक है कि एकांत हम सभी के भीतर मौजूद है। यदि हमारा मन शांत न हो, तो एक शांत जंगल भी हमारे लिए अनुकूल स्थान नहीं होगा। परन्तु यदि हमारा मन शांत हो, तो एक व्यस्त शहर का केंद्र भी अनुकूल हो सकता है। जिस वातावरण में हम रहते हैं, वह हमारे मन को शांत करने में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होता है। साधक को अगला निर्णय लेना चाहिए कि अभ्यास के लिए सबसे उपयुक्त समय कौन सा है, जब वह स्वयं और उसका परिवेश दोनों ही सर्वोत्तम स्थिति में हों।

सुबह-सुबह, जब मन तरोताजा और सक्रिय होता है, या सोने से पहले, यदि थकान न हो, तो ध्यान के लिए आमतौर पर सबसे उपयुक्त समय होता है। लेकिन समय चाहे जो भी चुना जाए, प्रतिदिन उसी समय पर ध्यान करना उचित है, क्योंकि इससे हमारा मन अभ्यास के लिए अभ्यस्त हो जाता है।

ध्यान मुद्रा भी एकाग्रता बढ़ाने में एक शक्तिशाली सहायक है। ध्यान करने वाले आमतौर पर पालथी मारकर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हुए। वे दाहिना पैर बाईं जांघ पर और बायां पैर दाहिनी जांघ पर रखते हैं। यह पूर्ण मुद्रा है। यदि यह मुद्रा कठिन हो, जैसा कि कई लोगों के लिए होता है, तो अर्ध मुद्रा अपनाई जा सकती है, यानी दाहिना पैर बाईं जांघ पर या बायां पैर दाहिनी जांघ पर रखना। इस त्रिभुजाकार मुद्रा में शरीर संतुलित रहता है। दाहिना हाथ बाएं हाथ पर रखना चाहिए, गर्दन सीधी रखनी चाहिए ताकि नाक नाभि के साथ सीधी रेखा में हो, जीभ तालू पर टिकी होनी चाहिए। कमरबंद ढीला रखना चाहिए और कपड़े ठीक से पहनने चाहिए। कुछ लोग अनावश्यक प्रकाश और बाहरी दृश्यों से बचने के लिए आंखें बंद करना पसंद करते हैं। हालांकि आंखें बंद करने के कुछ फायदे हैं, लेकिन यह हमेशा अनुशंसित नहीं है क्योंकि इससे नींद आने लगती है। तब मन अनियंत्रित होकर भटकने लगता है, अनपेक्षित विचार उत्पन्न होते हैं, शरीर का सीधापन बिगड़ जाता है, अनायास ही मुँह खुल जाता है, लार टपकने लगती है और सिर हिलने लगता है। बुद्ध आमतौर पर आधी बंद आँखों से नाक की नोक से देखते हुए बैठते थे और चार फीट से अधिक दूरी पर नहीं होते थे।

जिन लोगों को पालथी मारकर बैठना कठिन लगता है, वे कुर्सी या किसी अन्य ऊँची चीज़ पर आराम से बैठ सकते हैं, जिससे उनके पैर ज़मीन पर टिक सकें। बैठने का तरीका सहज और आरामदायक होना चाहिए, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता। मन की एकाग्रता प्राप्त करने के इच्छुक साधक को किसी भी अवांछित विचार को उसके आरंभ में ही नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए।

सुत्त निपाता में उल्लेख के अनुसार, उस पर निम्नलिखित द्वारा हमला किया जा सकता है:

कामुक इच्छाएँ (काम),

असंतोष (आरती),

भूख और प्यास (खुप्पिपासा),
आग्रह (तन्हा),
आलस्य और सुस्ती (थिनामिद्धा),
भय
संदेह (vicikicchā)
विकर्षण और हठ (मक्खा , थम्भा),
लाभ, प्रशंसा, सम्मान और अनुचित रूप से अर्जित प्रसिद्धि (लोभ , सिलोका , सक्कारा , मिच्चायसा), और
आत्म-प्रशंसा और दूसरों के प्रति अवमानना (अट्टुक्कमसाना परावंभना)।
ऐसे अवसरों पर बुद्ध द्वारा दिए गए निम्नलिखित व्यावहारिक सुझाव लाभकारी सिद्ध हुए:
(1) अतिक्रमण करने वाले विचार के विपरीत अच्छा विचार रखना: घृणा के मामलों में प्रेम और दया।
(2) संभावित बुरे परिणामों पर विचार करना: क्रोध जिसके परिणामस्वरूप दुर्भावना उत्पन्न होती है।
(3) साधारण उपेक्षा या उनके प्रति पूर्णतः असावधान हो जाना।
(4) उन अस्वस्थ विचारों के उत्पन्न होने के कारण का पता लगाना और इस प्रकार पूर्वव्यापी प्रक्रिया में उन्हें भूल जाना।
(5) प्रत्यक्ष शारीरिक बल।
जैसे बलवान व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है, वैसे ही शारीरिक बल से बुरे विचारों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। बुद्ध सलाह देते हैं, “दांत भींचकर और जीभ को तालू से दबाकर, मनुष्य को अपने मन को बलपूर्वक वश में करना चाहिए।”
बौद्ध धर्म का सार : इन श्लोकों में, बुद्ध ने अनुशासनहीन भिक्षुओं के एक समूह को व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान किया, जिससे बुद्ध की शिक्षाओं का मूल गुण स्थापित होता है। बौद्ध धर्म का केंद्र बिंदु अभ्यास है। बौद्ध धर्म के सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षाओं को जीवन में उतारना आवश्यक है।
बौद्ध धर्म न तो आध्यात्मिक मार्ग है और न ही कर्मकांडीय मार्ग:
यह न तो संशयवादी है और न ही कट्टरपंथी।
यह न तो शाश्वतवाद है और न ही शून्यवाद।
यह न तो आत्म-यातना है और न ही आत्म-भोग।
यह न तो निराशावाद है और न ही आशावाद, बल्कि यथार्थवाद है।
यह न तो पूरी तरह से इस दुनिया का है और न ही पूरी तरह से परलोक का।
यह बहिर्मुखी नहीं बल्कि अंतर्मुखी है।
यह ईश्वर-केंद्रित नहीं बल्कि अहंकार-केंद्रित है।
यह ज्ञान प्राप्ति का एक अनूठा मार्ग है।
बौद्ध धर्म के लिए मूल पाली शब्द धम्म है , जिसका शाब्दिक अर्थ है वह जो सहारा देता है या बनाए रखता है (जो इसके सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करता है और इस प्रकार उसे दुखद अवस्थाओं में गिरने से रोकता है)।

अध्याय 18. मालवग्ग: अशुद्धि (235-255)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 235,236,237,238

———————————————————————

(धम्मपद 231, 232, 233 और 234) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 235, 236, 237 और 238 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 239)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 235,236,237,238 - गोघटकपुत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 235,236,237,238 - गोघटकपुत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Pandupalasova danisi
yamapurisapi ca te upatthita
uyyogamukhe(1) ca titthasi
patheyyampi ca te na vijjati.
So karohi dipamattano
khippam vayama pandito bhava
niddhantamalo anangano
दिब्बम अरियाभूमिम(2) उपेहिसी।
Upanitavayo ca danisi
sampayatosi yamassa santikam
vase te nathti antara
patheyyampi ca te na vijjati.
So karohi dipamattano
khippam vayama pandito bhava
niddhantamalo anangano
na punam jatijaram upehisi.

आयत 235 : तुम अब मुरझाए हुए पत्ते के समान हो; मृत्यु के दूत तुम्हारे निकट हैं; तुम एक लंबी यात्रा पर निकलने वाले हो; (फिर भी), तुम्हारे पास (यात्रा के लिए) कोई प्रावधान नहीं है।

श्लोक 236 : अपने लिए दृढ़ आधार बनाओ; परिश्रम करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम आर्यों के निवासों (अर्थात शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक) में प्रवेश करोगे।

श्लोक 237 : अब तुम वृद्ध हो चुके हो; तुम मृत्यु के राजा की उपस्थिति में जा रहे हो और तुम रास्ते में रुक नहीं सकते; (फिर भी) तुम्हारे पास यात्रा के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

श्लोक 238 : अपने लिए एक मजबूत आधार बनाओ; कड़ी मेहनत करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम पुनर्जन्म और क्षय के अधीन नहीं रहोगे।

---

1. उय्योगमुखे: शाब्दिक अर्थ, लंबी यात्रा पर निकलने वाला, अर्थात् संसार की यात्रा।
2. दिब्बम अरियाभूमिम्: आर्यों का दिव्य लोक। यहाँ शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक या उन पवित्र निवासों का उल्लेख है जहाँ केवल अनागामी (अनेक लौटकर आने वाले) ही निवास करते हैं।

एक कसाई के बेटे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कसाई के बेटे के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (235) से (238) तक कहे।
सावत्थी में एक आदमी रहता था जो पचपन साल से कसाई का काम करता था। इतने समय तक वह मवेशियों को काटकर उनका मांस बेचता था और हर दिन चावल के साथ मांस की करी खाता था। एक दिन उसने परिवार के लिए मांस पकाने के लिए अपनी पत्नी के पास कुछ मांस छोड़ दिया और फिर नदी किनारे नहाने चला गया। उसकी अनुपस्थिति में, एक दोस्त ने उसकी पत्नी को बहला-फुसलाकर वह मांस का टुकड़ा उसे बेच दिया। नतीजतन, उस दिन कसाई को मांस की करी नहीं मिली। लेकिन चूंकि कसाई मांस की

करी के बिना भोजन नहीं करता था, इसलिए वह जल्दी से अपने घर के पीछे गया, जहाँ एक बैल खड़ा था। उसने तुरंत बैल की जीभ काट ली और उसे आग पर भून लिया। भोजन करते समय, कसाई ने बैल की जीभ का एक टुकड़ा खाया, लेकिन ऐसा करते ही उसकी अपनी जीभ भी कटकर चावल की थाली में गिर गई। इस प्रकार बैल और कसाई दोनों की जीभ कट गई। कसाई असहनीय पीड़ा से तड़प रहा था और अपने घुटनों के बल बेचैनी से इधर-उधर भटक रहा था, उसके मुंह से लगातार खून टपक रहा था। फिर कसाई की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ।

कसाई की पत्नी बहुत व्याकुल थी और वह चाहती थी कि उसका बेटा किसी दूसरी जगह चला जाए, कहीं उसे भी यह विपत्ति न आ पड़े। इसलिए उसने अपने बेटे को तक्षशिला भेज दिया। तक्षशिला में उसने सुनार का काम सीखा। बाद में उसने अपने मालिक की बेटी से विवाह किया और उनके कुछ बच्चे हुए। जब उनके बेटे बड़े हुए तो वह श्रावस्ती लौट आया। बेटों में बुद्ध के प्रति गहरी आस्था थी और वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे अपने पिता के बारे में चिंतित थे, जो बूढ़े हो चुके थे और उन्हें न तो धर्म की चिंता थी और न ही अपने भविष्य के बारे में। इसलिए एक दिन उन्होंने बुद्ध और भिक्षुओं को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, आज हम अपने पिता की ओर से आपको यह भेंट अर्पित कर रहे हैं। कृपया उनके लिए विशेष प्रवचन दें।" तब बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य! तुम बूढ़े हो रहे हो; लेकिन तुमने अपने परलोक के लिए पुण्य कर्मों का कोई प्रबंध नहीं किया है; अब तुम्हें अपने लिए सहारा ढूंढना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

आयत 235 : तुम अब मुरझाए हुए पत्ते के समान हो; मृत्यु के दूत तुम्हारे निकट हैं; तुम एक लंबी यात्रा पर निकलने वाले हो; (फिर भी), तुम्हारे पास (यात्रा के लिए) कोई प्रावधान नहीं है।

श्लोक 236 : अपने लिए दृढ़ आधार बनाओ; परिश्रम करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम आर्यों के निवासों (अर्थात शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक) में प्रवेश करोगे।

श्लोक 237 : अब तुम वृद्ध हो चुके हो; तुम मृत्यु के राजा की उपस्थिति में जा रहे हो और तुम रास्ते में रुक नहीं सकते; (फिर भी) तुम्हारे पास यात्रा के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

श्लोक 238 : अपने लिए एक मजबूत आधार बनाओ; कड़ी मेहनत करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम पुनर्जन्म और क्षय के अधीन नहीं रहोगे।

प्रवचन के अंत में भिक्षा-भोजन दान करने वालों के पिता (अर्थात कसाई के पुत्र) ने अनागामी फल प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक कसाई के बेटे की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कसाई के पुत्र के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि सावत्थी में एक कसाई रहता था। वह गायों को मारकर उनके मांस के सबसे उत्तम भाग चुनकर अपने लिए रख लेता, उसे पकाकर अपने बेटे और पत्नी के साथ बैठकर खाता था; बाकी बचा हुआ मांस वह बेच देता था। पचपन वर्षों तक वह गायों को मारने का यही काम करता रहा। इस पूरे समय में, यद्यपि बुद्ध पास के एक मठ में रहते थे, उसने कभी भी बुद्ध को एक चम्मच चावल का दलिया या उबले हुए चावल तक भिक्षा नहीं दी। यदि उसके पास खाने के लिए मांस होता, तो वह कभी चावल नहीं खाता था। एक दिन जब उजाला था, कुछ गोमांस बेचने के बाद, उसने अपनी पत्नी को अपने रात के खाने के लिए गोमांस का एक टुकड़ा पकाने को दिया और फिर स्नान करने के लिए तालाब चला गया।

जब वह घर से बाहर थे, तो उनका एक मित्र घर आया और उनकी पत्नी से कहा, "मुझे थोड़ा सा गोमांस दे दीजिए जो आपके पति ने बेचने के लिए रखा है; मेरे घर एक मेहमान आया है।" पत्नी ने कहा, "हमारे पास बेचने के लिए गोमांस नहीं है। आपके मित्र ने अपना सारा गोमांस बेच दिया है और नहाने के लिए तालाब गए हैं।" "मेरी विनती को मना मत कीजिए; अगर आपके घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी हो, तो मुझे दे दीजिए।" पत्नी ने कहा, "घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी नहीं है, सिवाय उस एक टुकड़े के जो आपके मित्र ने अपने खाने के लिए अलग रखा है, और चूंकि वह बिना मांस के नहीं खाता, इसलिए वह आपको यह टुकड़ा बिल्कुल नहीं देगा।" लेकिन उन्होंने गोमांस का टुकड़ा लिया और चले गए।

कसाई नहाने के बाद घर लौटा। जब उसकी पत्नी ने उसके लिए उबले हुए चावल परोसे, जिनमें उसने खुद के पकाए हुए पत्ते डाले थे, तो उसने उससे पूछा, “मांस कहाँ है?” “पतिदेव, मांस नहीं है।” “क्या मैंने घर से निकलने से पहले तुम्हें मांस पकाने के लिए नहीं दिया था?” “तुम्हारा एक दोस्त घर आया और मुझसे कहा, ‘मेरे घर एक मेहमान आया है; मुझे थोड़ा सा गोमांस दे दो जो तुम बेच रहे हो।’ मैंने उससे कहा, ‘घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी नहीं है, सिवाय उस टुकड़े के जो तुम्हारे दोस्त ने अपने खाने के लिए अलग रखा है, और वह तब तक नहीं खाएगा जब तक उसे मांस न मिले।’ लेकिन मेरी बात न मानते हुए भी, उसने गोमांस का टुकड़ा खुद ही ले लिया और चला गया।” “जब तक मुझे इसके साथ मांस न मिले, मैं चावल नहीं खाऊँगा; इसे हटा दो।” “क्या करें, पतिदेव? कृपया चावल खा लीजिए।” “मैं नहीं खाऊँगा।” अपनी पत्नी से चावल हटवाकर, उसने हाथ में चाकू लिया और घर से निकल गया।

उसके घर के पीछे एक बैल बंधा हुआ था। वह आदमी बैल के पास गया, अपना हाथ उसके मुंह में डाला, उसकी जीभ खींचकर बाहर निकाली, चाकू से जड़ से काट दी और उसे लेकर घर लौट आया। उसने उसे कोयलों पर पकाकर उबले हुए चावलों पर रखा और रात का खाना खाने बैठ गया। उसने पहले एक निवाला चावल खाया, फिर मांस का एक टुकड़ा अपने मुंह में डाला। उसी क्षण उसकी जीभ दो टुकड़ों में कट गई और उसके मुंह से निकलकर चावलों की थाली में गिर गई। उसी क्षण उसे अपने किए पाप का फल मिला। मुंह से खून बहता हुआ वह अपने घर के आंगन में आया और बैल की तरह रंभाते हुए हाथों और घुटनों के बल रेंगने लगा।

उस समय उसका बेटा पास ही खड़ा अपने पिता को देख रहा था। उसकी माँ ने उससे कहा, “बेटा, देखो, यह कसाई घर के आँगन में हाथों और घुटनों के बल रेंग रहा है और बैल की तरह रंभा रहा है। यह सज़ा शायद तुम्हारे सिर पर ही पड़ेगी। मेरी बात मत सुनो, बल्कि भागकर अपनी जान बचाओ।” मृत्यु के भय से भयभीत होकर बेटे ने अपनी माँ को अलविदा कहा और भाग गया। भागने में सफल होकर वह तक्सिला चला गया। जहाँ तक गाय मारने वाले की बात है, वह कुछ देर तक घर के आँगन में बैल की तरह रंभाते हुए रेंगने के बाद मर गया और अविची नरक में पुनर्जन्म लिया। बैल भी मर गया।

तक्कासिला जाकर कसाई का बेटा एक सुनार के यहाँ प्रशिक्षु बन गया। एक दिन जब उसका गुरु गाँव के लिए रवाना हुआ, तो उसने उससे कहा, “तुम्हें फलाँ आभूषण बनाना है।” इतना कहकर उसका गुरु चला गया। प्रशिक्षु ने निर्देशानुसार आभूषण बनाया। जब उसका गुरु लौटा और उसने आभूषण देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “यह युवक जहाँ कहीं भी जाए, अपनी जीविका कमा सकेगा।” इसलिए जब प्रशिक्षु बड़ा हुआ, तो सुनार ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। उसके पुत्र-पुत्रियाँ हुए। जब उसके पुत्र बड़े हुए, तो उन्होंने विभिन्न कलाएँ सीखीं और बाद में श्रावस्ती जाकर बस गए, अपने-अपने घर बसाए और बुद्ध के सच्चे अनुयायी बन गए। उनके पिता तक्कासिला में ही रहे, बिना कोई पुण्य कर्म किए अपना जीवन व्यतीत किया और अंत में वृद्ध हो गए। उनके पुत्रों ने मन ही मन सोचा, “हमारे पिता अब बूढ़े हो गए हैं,” और उन्हें अपने साथ रहने के लिए बुलवाया।

तब उन्होंने मन ही मन सोचा, “चलो अपने पिता की ओर से दान करें।” तदनुसार उन्होंने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। अगले दिन उन्होंने अपने घर में बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह के लिए बैठने की व्यवस्था की, उन्हें भोजन परोसा, उनका विशेष ध्यान रखा और भोजन समाप्त होने पर बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, यह भोजन जो हमने आपको अर्पित किया है, वही भोजन है जिससे हमारे पिता का जीवन चलता है; अतः हमारे पिता को धन्यवाद दीजिए।” तब बुद्ध ने उनसे कहा, “हे गृहस्थ शिष्य, तुम वृद्ध हो गए हो। तुम्हारा शरीर परिपक्व होकर सूखे पत्ते के समान हो गया है। परलोक की यात्रा के लिए तुम्हारे पास कोई अच्छे कर्म नहीं हैं। अपने लिए एक आश्रय बनाओ। बुद्धिमान बनो; मूर्ख मत बनो।” इस प्रकार बुद्ध ने धन्यवाद के शब्द कहे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 235)

इदानि पाण्डुपलासो इव असि तं यमपुरीसा अपि च उपथिता

उययोगमुखे च तिथसि ते पाथेयं अपि । च न विज्जति

idāni : अब; paṇḍupalāso iva : मुरझाए और पीले पत्ते की तरह; asi : तुम हो; taṃ : तुम्हारे लिए; yamapurisā api ca : मृत्यु की शक्तियाँ भी; upaṭṭhitā : आ गई हैं; uyyogamukhe ca : मृत्यु के द्वार पर; tiṭṭhasi : तुम खड़े हो; te : तुम्हारे लिए; pātheyyaṃ api ca : यहाँ तक कि मार्ग के लिए भी भोजन; na vijjati : दिखाई नहीं देता

अब तुम मुरझाए, पीले पड़े सूखे पत्ते के समान हो। हवा का पहला झोंका ही तुम्हें गिरा देगा। मृत्यु की शक्तियाँ तुम्हें लेने आ चुकी हैं। तुम मृत्यु के द्वार पर खड़े हो। तुम्हारे पास रास्ते के लिए भी कोई साधन नहीं है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 236)

सो अतनो दीपं करोहि खिप्पं वयम पण्डितो भव

निद्धान्तमालो अनंगणो दिब्बं अरियाभूमिम् एहिसि

अतः तुम; अत्तनो [अत्तना]: अपने आप को; दीपं [दीप]: एक दीपक; करोहि : बनो; खीप्पं [खीप्प]: लगन से (शीघ्र); वायामा : प्रयास करो; पंडितो भव : एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो; निद्धंतमलो [निद्धंतमल]: दोषों से रहित; अनंगणो [अनंगण]: कष्टों से रहित; दिब्बं [दिब्ब]: स्वर्गिक; अरियाभूमि [अरियाभूमि]: श्रेष्ठों के लोक; एहिसी : पहुँचो

जैसी परिस्थितियाँ हैं, वैसे ही स्वयं के लिए एक दीपक, एक द्वीप, एक आश्रय बनो। लगन और परिश्रम से प्रयास करो और एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो। दोषों से रहित, दोषों से मुक्त होकर, श्रेष्ठजनों के स्वर्गलोक को प्राप्त करो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 237)

इदानि उपनितवयो च असि यमस्सा संतिके संपयातो असि
ते अंतरा वासो अपि च नत्थि ते पाथेयं अपि च न विज्जति

idāni : अब; upanītavayo ca : व्यथित जीवनकाल के; asi : तुम हो; yamassa : मृत्यु के राजा के; santike : उपस्थिति; sampayāto asi : तुम आए हो; te : तुम्हारे लिए; antarā : बीच में; vāso api ca : आश्रय भी नहीं है; natthi : है नहीं; te : तुम्हारे लिए; pātheyyaṃ api ca : मार्ग के लिए राशन भी नहीं है; na vijjati : दिखाई नहीं देते

अब आपका निर्धारित जीवन काल समाप्त हो चुका है। आप मृत्यु के राजा (यम) के समक्ष पहुँच चुके हैं। अब आपके लिए बीच में विश्राम का कोई स्थान नहीं है। आगे की यात्रा के लिए भी आपके पास कोई व्यवस्था नहीं दिखती।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 238)

सो अतनो दीपं करोहि खिप्पं वयम पण्डितो भव
निद्धान्तमलो अनंगणो पुना जातिं जरां न उपेहिसि ।

अतः तुम; अत्तनो [अत्तना]: अपने लिए; दीपं [दीपा]: एक दीपक; करोहि : बनो; खीप्पं [खीप्पा]: लगन से (शीघ्र); वायम : प्रयास करो; पंडितो भव : एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो; निद्धंतमलो [निद्धंतमल]: दोषों से रहित; अनंगणो [अनंगण]: दोषों से मुक्त; पुना : फिर से; जातिं जरं [जर]: जन्म और मृत्यु का चक्र; न उपेहिसि : प्रवेश न करो

इसलिए, स्वयं के लिए एक दीपक, एक द्वीप, एक आश्रय बनो। लगन से प्रयास करो और एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो। दोषों से रहित, दोषों से मुक्त होकर, तुम जन्म और मृत्यु के चक्र में फिर कभी नहीं पड़ोगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 235-238)

उपनीतवयो : व्यथित जीवनकाल का। इन श्लोकों का केंद्रबिंदु मृत्यु है। जीवन के अंत के प्रति सजग रहने की आवश्यकता इन श्लोकों में निहित है। बुद्ध वृद्ध व्यक्ति को मृत्यु की संभावना के प्रति सचेत रहने और कष्टों को समाप्त करने के लिए व्यवस्था करने का उपदेश देते हैं। यह उन्हें मृत्यु के निरंतर मंडराते खतरे के प्रति सचेत और जागरूक बनाने का प्रयास है। बौद्ध ध्यान पद्धति में, मृत्यु के प्रति जागरूकता और सजगता ध्यान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मृत्यु के इस ध्यानपूर्ण चिंतन के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका सभी के लिए आवश्यक है। ध्यान का यह रूप मरणानुस्सति भावना कहलाता है - मृत्यु के प्रति सजगता का ध्यान। मरणानुस्सति का अर्थ है मृत्यु पर निरंतर चिंतन। मृत्यु पर चिंतन करते हुए किए जाने वाले ध्यान को मरणानुस्सति भावना कहते हैं । जैसे सूर्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर गतिमान रहता है, वैसे ही इस संसार के सभी प्राणियों का जीवन जन्म से मृत्यु तक चलता रहता है। इस संसार में कोई भी अमर नहीं है। किसी प्राणी का जीवन उतना ही क्षणभंगुर है जितना भोर में घास के तिनके के सिरे पर ओस की एक बूंद। यह पानी पर खींची गई रेखा या पानी की सतह पर बने बुलबुले की तरह क्षणिक है। जीवन का अंत मृत्यु के साथ ही हो जाता है, चाहे वह बचपन हो, युवावस्था हो या वृद्धावस्था।

मृत्यु एक ऐसा देन है जो सभी प्राणियों को प्राप्त है, चाहे वे मनुष्य हों, पशु हों, देवता हों या ब्रह्मा हों। इस संसार का यही स्वभाव है कि जो भी अस्तित्व में आता है, एक दिन उसका अंत अवश्य हो जाता है। यह अनित्यता, जिसमें अस्तित्व में आना और अंत होना शामिल है, संसार के सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं में समान है।

हमें यह तथ्य याद रखना चाहिए कि पेड़, पहाड़, नदियाँ, शहर, महासागर, सूर्य और चंद्रमा, मशीनें और अन्य उपकरण—ये सभी परिवर्तनशील और क्षयशील हैं। संसार के सभी प्राणियों को किसी न किसी दिन तीन प्रकार के भय का सामना करना पड़ता है, अर्थात् वृद्धावस्था (जरा), रोग (व्याधि) और मृत्यु (मरण)। धन, पद, शक्ति या विद्या जैसे कारकों से इन भयों को दूर करना संभव नहीं है। इसलिए, हम जीवन को संतोषजनक या सुखदायी नहीं मान सकते।

जो व्यक्ति मृत्यु के बारे में नहीं सोचता, वह जीवन की क्षणभंगुर प्रकृति को नहीं समझ सकता। ऐसे व्यक्ति का मन द्वेष, प्रतिशोध, लोभ, स्वार्थ और अहंकार जैसे बुरे और खतरनाक विचारों के प्रति संवेदनशील होता है। मरणानुसति भावना का अभ्यास इन बुरे विचारों को दूर करने और दया, करुणा, ईमानदारी, समानता, अहिंसा और उदारता जैसे गुणों को विकसित करने में अत्यंत सहायक होता है।

बुद्ध ने हमें दिखाया है कि समाज में तीन दिव्य संदेशवाहक हैं जो हमें तीन महत्वपूर्ण सबक सिखाते हैं। वे हैं वृद्ध, रोगग्रस्त और मृत। हम इन संदेशवाहकों से अक्सर मिलते हैं। जब आप किसी वृद्ध व्यक्ति को देखते हैं, तो इस बात पर विचार करें कि एक दिन आप भी ऐसी ही स्थिति में होंगे; जब आप किसी बीमार व्यक्ति को देखते हैं, तो अपने आप के बीमार होने की संभावना के बारे में सोचें; जब आप किसी अंत्येष्टि में शामिल होते हैं या जब आप किसी मृत शरीर को देखते हैं या किसी की मृत्यु के बारे में सुनते हैं, तो इस बात पर विचार करें कि एक दिन आप भी मरेंगे। ऐसा करने से आप स्वाभाविक रूप से बड़ों का सम्मान करना, गरीबों और पीड़ितों की सहायता करना

और सदाचारी जीवन जीना शुरू कर देंगे। इसके अलावा, यह आपको धन, पद, शक्ति, वंश, ज्ञान और यौवन से उत्पन्न होने वाले अहंकार को त्यागकर सुख और शांति का जीवन जीने में मदद करेगा।

प्रतिदिन मरणानुस्सति भावना का अभ्यास करने से आप धीरे-धीरे मृत्यु के भय से मुक्त हो सकते हैं। इसके अलावा, माता-पिता, भाई-बहन या अन्य प्रियजनों की मृत्यु पर भी आपको अत्यधिक शोक नहीं होगा। यह तथ्य मल्लिका, पताचारा और किसागोतमी की प्राचीन कथाओं या उरग जातक जैसी जातक कथाओं से स्पष्ट होता है। इसलिए, मरणानुस्सति ध्यान के अभ्यास से प्राप्त होने वाले महान लाभों पर हमेशा विचार करें ।

मरणानुसति भावना का अभ्यास शुरू करने से पहले , आपको स्वयं को शुद्ध करना चाहिए, फूल आदि अर्पित करने चाहिए, त्रिरत्न की शरण लेनी चाहिए और अन्य प्रकार की ध्यान विधियों में बताए गए पंचांगों का पालन करना चाहिए। इसके बाद, ध्यान के अनुकूल स्थान पर उचित मुद्रा में बैठें। अब, निम्नलिखित तथ्यों पर बार-बार चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास शुरू करें।

(1) मैं वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हूँ। मेरी ही तरह संसार के सभी प्राणी वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

अब आप दूसरे चरण में प्रवेश कर सकते हैं, जिसके लिए आपको निम्नलिखित बिंदुओं पर शुरू से अंत तक बार-बार चिंतन करना होगा:

(2) मेरा जीवन क्षणभंगुर है। मृत्यु निश्चित है। मैं वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हूँ।

(3) मेरे माता-पिता का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(4) मेरे शिक्षकों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(5) मेरे भाई-बहनों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(6) मेरे रिश्तेदारों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(7) मेरे प्रियजनों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(8) मेरे पड़ोसियों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के अधीन हैं।

(9) जो लोग मेरे प्रति द्वेष रखते हैं, उनका जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(10) इस संसार में सभी प्राणियों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

जब आप लंबे समय तक इस ध्यान का अभ्यास करेंगे, तो आपका शरीर, वाणी और मन शुद्ध हो जाएगा। आप समाज को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। आपके कर्म, वाणी और विचार सभी के हित में होंगे।

जो व्यक्ति निरंतर इस ध्यान का अभ्यास करता है, उसका जीवन वास्तव में सुखमय होगा और वह मृत्यु का सामना बिना किसी भय के कर सकेगा। इसके अलावा, यह उसे परलोक में देवताओं और मनुष्यों के सुखों की प्राप्ति में सहायक होगा और अंततः निर्वाण प्राप्त करने में भी मदद करेगा।

आम आदमी के लिए मृत्यु कोई सुखद विषय नहीं है जिस पर चर्चा की जा सके। यह एक निराशाजनक और दमनकारी चीज़ है — मानो आनंद को क्षीण करने वाली, केवल अंतिम संस्कार के लिए उपयुक्त विषय। आम आदमी, जो स्वार्थ में डूबा रहता है, सुख की तलाश में रहता है, इंद्रियों को उत्तेजित और संतुष्ट करने वाली चीज़ों के पीछे भागता रहता है, इस बात पर गंभीरता से विचार करने से इनकार कर देता है कि सुख और संतुष्टि के ये साधन भी एक दिन समाप्त हो जाएँगे। यदि कोई समझदार सलाह न दे और इस अविवेकी, सुख-चाहने वाले व्यक्ति को गंभीरता से यह सोचने के लिए प्रेरित न करे कि मृत्यु उसके दरवाजे पर भी दस्तक दे सकती है, तो केवल अपने ही घर में किसी अपने की मृत्यु का आघात, माता-पिता, पत्नी या बच्चे की अचानक और असमय मृत्यु ही उसे इंद्रिय सुख के इस उन्माद से जगाएगी और जीवन की कठोर सच्चाई से अवगत कराएगी। तभी उसकी आँखें खुलेंगी, तभी वह स्वयं से यह पूछना शुरू करेगा कि मृत्यु जैसी घटना क्यों है? यह अपरिहार्य क्यों है? ये पीड़ादायक बिछड़ना क्यों जीवन से उसके सुख छीन लेते हैं?

हममें से अधिकांश लोगों के मन में कभी न कभी मृत्यु का दृश्य अवश्य ही गहरे विचारों और गहन प्रश्नों को जन्म देता है। जीवन का क्या अर्थ है, यदि कभी महान कर्म करने वाले सक्षम शरीर आज निर्जीव और ठंडे पड़े हों? जीवन का क्या अर्थ है, यदि कभी आनंद से चमकने वाली, प्रेम से दमकने वाली आँखें अब हमेशा के लिए बंद हो गई हों, गतिहीन और जीवनहीन हो गई हों? ऐसे विचारों को दबाना नहीं चाहिए। ये जिज्ञासु विचार ही, यदि बुद्धिमानी से इनका अनुसरण किया जाए, अंततः मानव मन में निहित सर्वोच्च सत्य को ग्रहण करने की क्षमता को उजागर करेंगे।

बौद्ध दर्शन के अनुसार, मृत्यु को त्यागने या उससे बचने का विषय नहीं माना जा सकता, बल्कि यह जीवन के रहस्य को उजागर करने वाली कुंजी है। मृत्यु को समझकर ही हम जीवन को समझ सकते हैं; क्योंकि मृत्यु व्यापक अर्थ में जीवन की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। दूसरे शब्दों में, जीवन और मृत्यु एक ही प्रक्रिया के दो छोर हैं, और यदि आप प्रक्रिया के एक छोर को समझ लेते हैं, तो आप दूसरे छोर को भी समझ जाते हैं। अतः मृत्यु के उद्देश्य को समझकर ही हम जीवन के उद्देश्य को समझ पाते हैं। मृत्यु का चिंतन, यह गहन विचार कि एक दिन यह हम पर आएगी, कठोरतम हृदयों को भी कोमल कर देता है, प्रेम और करुणा के बंधन में बांध देता है, और इस पृथ्वी के

लोगों के बीच जाति, धर्म और नस्ल के भेदों को नष्ट कर देता है, क्योंकि सभी का भाग्य मृत्यु ही है। मृत्यु सबको समान कर देती है। जन्म का अभिमान, पद का अभिमान, धन का अभिमान, सत्ता का अभिमान, सब कुछ अपरिहार्य मृत्यु के विचार के आगे झुकना ही पड़ता है।

मृत्यु का यही समतावादी पहलू है जिसने कवि को यह कहने पर मजबूर किया:

राजदंड और मुकुट
नीचे गिरना ही होगा
और धूल में समान रूप से निर्मित हो जाओ
उस बेचारे टेढ़े-मेढ़े दरांती और कुदाल के साथ।

मृत्यु का चिंतन ही इंद्रिय सुख के मोह को नष्ट करने में सहायक है। मृत्यु का चिंतन ही अहंकार को नष्ट करता है। मृत्यु का चिंतन ही हमारे अति उत्तेजित, भ्रामक मूल्यों से ग्रस्त मन को संतुलन और उचित अनुपात की भावना प्रदान करता है। मृत्यु का चिंतन ही उस चंचल मानव मन को शक्ति, स्थिरता और दिशा प्रदान करता है जो कभी एक दिशा में तो कभी दूसरी दिशा में, बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य के भटकता रहता है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को मृत्यु के प्रति सजगता का अभ्यास करने की अत्यंत उच्च कोटि की प्रशंसा की है, और यह व्यर्थ नहीं है। इसे ' मरणानुस्सति भावना' के नाम से जाना जाता है । जो इसका अभ्यास करना चाहता है, उसे नियमित समय पर और समय-समय पर ' मरणं भविस्सति ' के विचार पर लौटना चाहिए , 'मृत्यु घटित होगी'। मृत्यु का यह चिंतन विशुद्धि मार्ग (शुद्धि का मार्ग) में वर्णित शास्त्रीय ध्यान विषयों में से एक है, जिसमें कहा गया है कि पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए, इस ध्यान का अभ्यास सही तरीके से करना चाहिए, अर्थात् सती भाव से, संवेग भाव से और समझ से । उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक युवा शिष्य इस बात को गंभीरता से नहीं समझ पाता कि मृत्यु किसी भी क्षण उस पर आ सकती है, और इसे दूर भविष्य में वृद्धावस्था में होने वाली घटना मानता है, तो मृत्यु पर उसका चिंतन सशक्त और स्पष्ट नहीं होगा, यहाँ तक कि वह सफलता के लिए अनुकूल नहीं होगा।

विशुद्धि मार्ग में वर्णित निम्नलिखित लाभकारी प्रभावों से मृत्यु के चिंतन का महत्व और उपयोगिता स्पष्ट होती है — "जो शिष्य मृत्यु के चिंतन में संलग्न होता है, वह सदा सजग रहता है, किसी भी रूप में जीवन का आनंद नहीं लेता, जीवन के प्रति लालसा का त्याग करता है, बुरे कर्मों की निंदा करता है, जीवन की आवश्यकताओं के प्रति लालसा से मुक्त रहता है; उसकी अनित्यता की अनुभूति दृढ़ हो जाती है, वह जीवन की पीड़ादायक और आत्माहीन प्रकृति को जान लेता है और मृत्यु के क्षण में वह भयमुक्त होकर सचेत और आत्मसंयमित रहता है। अंत में, यदि वह इस जीवन में निर्वाण प्राप्त करने में असफल रहता है, तो शरीर के नष्ट होने पर वह सुखद भाग्य की ओर अग्रसर होता है।" इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि मृत्यु के प्रति सजगता न केवल मन को शुद्ध और परिष्कृत करती है, बल्कि मृत्यु के भय और आतंक को भी दूर करती है, और उस गंभीर क्षण में जब व्यक्ति अपनी अंतिम सांस ले रहा होता है, उसे धैर्य और शांति के साथ उस स्थिति का सामना करने में सहायता करती है। वह मृत्यु के विचार से कभी विचलित नहीं होता, बल्कि हमेशा इसके लिए तैयार रहता है। ऐसा ही व्यक्ति सचमुच कह सकता है, "हे मृत्यु, तेरा डंक कहाँ है?"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 239

(धम्मपद 235, 236, 237 और 238) <<<< पिछला|| धम्मपद239 ||अगला >>>> (धम्मपद240)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 239 - अन्नतर ब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 239 - अन्नतर ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अनुपब्बेना मेधावी
थोकम थोकम खाने खाने
kammaro rajatasseva
niddhame malamattano.

श्लोक 239 : धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों (नैतिक दोषों) को दूर करता है, जैसे एक लोहार चांदी या सोने की मैल को दूर करता है।

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (239) कहा।

एक बार एक ब्राह्मण ने भिक्षुओं के एक समूह को भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले अपने वस्त्रों को ठीक करते हुए देखा। देखते-देखते उन्होंने पाया कि कुछ भिक्षुओं के वस्त्र ज़मीन को छू रहे थे और घास पर ओस के कारण गीले हो रहे थे। इसलिए उन्होंने उस जगह को साफ कर दिया। अगले दिन उन्होंने देखा कि भिक्षुओं के वस्त्र ज़मीन को छूते ही गंदे हो रहे थे। इसलिए उन्होंने उस जगह को रेत से ढक दिया। फिर उन्होंने देखा कि धूप में भिक्षुओं को पसीना आता था और बारिश में वे भीग जाते थे। अंत में, उन्होंने उस स्थान पर भिक्षुओं के लिए एक विश्रामगृह बनवाया जहाँ वे भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले एकत्रित होते थे।

जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो उन्होंने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण ने बुद्ध को समझाया कि उन्होंने यह पुण्य कर्म किस प्रकार चरण-दर-चरण किया। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! ज्ञानी लोग अपने पुण्य कर्म थोड़े-थोड़े करके करते हैं, और धीरे-धीरे और निरंतर नैतिक दोषों की अशुद्धियों को दूर करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 239 : धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों (नैतिक दोषों) को दूर करता है, जैसे एक लोहार चांदी या सोने की मैल को दूर करता है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण सुबह-सुबह शहर से बाहर निकला, उस स्थान पर रुका जहाँ भिक्षु वस्त्र धारण करते थे, और उन्हें वस्त्र धारण करते हुए देखने लगा। वह स्थान घनी घास से भरा हुआ था। जब एक भिक्षु ने अपना वस्त्र धारण किया, तो उसके वस्त्र का किनारा घास में घिसटता हुआ ओस की बूंदों से भीग गया। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ से घास हटा देनी चाहिए।" अतः अगले दिन वह अपनी कुदाल लेकर वहाँ गया, उस स्थान को साफ किया और उसे खलिहान की तरह चिकना और समतल बना दिया। उसके अगले दिन वह फिर उसी स्थान पर गया। जब भिक्षु वस्त्र धारण कर रहे थे, तो उसने देखा कि एक भिक्षु के वस्त्र का किनारा जमीन पर गिर गया और धूल में घिसटने लगा। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ रेत छिड़क देनी चाहिए।" अतः वह रेत लाया और उसे जमीन पर छिड़क दिया।

एक दिन, नाश्ते से पहले, भीषण गर्मी थी। इस अवसर पर ब्राह्मण ने देखा कि भिक्षुओं ने वस्त्र धारण करते ही उनके शरीर से पसीना बहने लगा। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ मुझे एक मंडप बनवाना चाहिए।" तदनुसार उन्होंने एक मंडप बनवाया। फिर एक दिन, सुबह-सुबह वर्षा हुई। इस अवसर पर भी, जब ब्राह्मण भिक्षुओं को देख रहे थे, तो उन्होंने देखा कि उनके वस्त्र वर्षा की बूंदों से भीग गए थे। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ मुझे एक हॉल बनवाना चाहिए।" अतः उन्होंने वहाँ एक हॉल बनवाया। हॉल के पूरा होने पर उन्होंने मन ही मन सोचा, "अब मैं हॉल के पूर्ण होने के उपलक्ष्य में एक उत्सव आयोजित करूँगा।" तदनुसार उन्होंने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को आमंत्रित किया, भिक्षुओं को हॉल के अंदर और बाहर बैठाया और दान दिया।

भोजन समाप्त होने पर उन्होंने बुद्ध का कटोरा लेकर धन्यवाद के शब्द कहे। उन्होंने कहा, "आदरणीय, जब मैं इस स्थान पर खड़ा होकर भिक्षुओं को वस्त्र धारण करते हुए देख रहा था, तब मैंने यह और वह देखा और मैंने यह और वह किया।" और उन्होंने शुरुआत से ही बुद्ध को पूरी कहानी सुनाई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर कहा, "हे ब्राह्मण, एक बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे कर्म करके, समय-समय पर, थोड़ा-थोड़ा करके अपने बुरे कर्मों के दागों को धीरे-धीरे मिटा देता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 239)
मेधावी अनुपुब्बेना खाने खाने ठोकथोकम्
राजतस्सा कम्मरो इव अत्तानो मलं निद्धमे
मेधावी : बुद्धिमान व्यक्ति; अनुपुब्बेना : धीरे-धीरे; खणे खणे : हर पल; थोकथोकम् [थोकथोका]: थोड़ा-थोड़ा करके; राजतस्सा : चांदी का; कम्मरो इव : लोहार की तरह; अत्तनो मलं [माला]: किसी के अपने दोष; निद्धमे : शुद्ध करें
बुद्धिमान व्यक्ति पल-पल, थोड़ा-थोड़ा करके अपने भीतर से दोषों को दूर करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे लोहार चांदी से दोषों को दूर करते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 239)
मलं : दाग, धब्बा, कलंक। इन्हें आमतौर पर क्लेश कहा जाता है । क्लेश , यानी अशुद्धियाँ, मन को दूषित करने वाले, अस्वास्थ्यकर गुण हैं। दस अशुद्धियाँ हैं, जिन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि वे स्वयं अशुद्ध हैं और उनसे जुड़े मानसिक कारकों को भी अशुद्ध करती हैं।
वे हैं:
लोभ (लालच);
नफरत (डोसा);
मोह ;
अहंकार (माना);
सट्टा विचार (दिट्ठी);
संशयपूर्ण संदेह (vicikicchā);
मानसिक सुस्ती (थीना);
बेचैनी (उद्धच्च);
निर्लज्जता (अहिरिका);
नैतिक भय या कर्तव्यनिष्ठा का अभाव (अनोत्तप्पा)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 240

———————————————————————————
(धम्मपद239) <<<< पिछला || धम्मपद240 || अगला >>>> (धम्मपद241)
———————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 240 - तिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 240 - तिसत्थेरा वत्थु

———————————————————————————
डॉ म्या टिन संस्करण
Ayasava malan samutthitam
tatutthaya tameva khadati
evam atidhonacarinam(1)
सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिम्।

———————————————————————————
श्लोक 240 : जिस प्रकार लोहे से जंग लगती है और वह लोहे को ही नष्ट कर देती है, उसी प्रकार उसके अपने कर्म ही पापी को निम्न स्तर के अस्तित्व (दुग्गति) की ओर ले जाते हैं।

———————————————————————————

1. अतिधोनाचारिनम् - उल्लंघनकर्ता: अर्थात्, वह व्यक्ति जो भिक्षु के चार आवश्यक तत्वों 'धोना' का उल्लंघन करता है या उसका अत्यधिक उपयोग करता है।

थेरा टिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (240) कहा।
एक समय श्रावस्ती में तिस्सा नाम के एक थेरा रहते थे। एक दिन उन्हें उत्तम वस्त्रों का एक जोड़ा मिला और वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अगले दिन उन्हें पहनने का इरादा किया। लेकिन उसी रात उनकी मृत्यु हो गई और क्योंकि वे उन उत्तम वस्त्रों से आसक्त थे, इसलिए उनका पुनर्जन्म एक जूं के रूप में हुआ और वे वस्त्रों की तहों में रहने लगे। उनकी संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए यह निर्णय लिया गया कि वस्त्रों का यह विशेष जोड़ा अन्य भिक्षुओं में बाँट लिया जाए। जब भिक्षु आपस में वस्त्र बाँटने की तैयारी कर रहे थे, तो जूं बहुत व्याकुल हो गई और चिल्लाई, "वे मेरे वस्त्र नष्ट कर रहे हैं!" यह पुकार बुद्ध ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से सुन ली। इसलिए उन्होंने किसी को भिक्षुओं को रोकने के लिए भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे वस्त्रों का निपटान केवल सात दिनों के अंत में ही करें। आठवें दिन, थेरा तिस्सा के वस्त्र भिक्षुओं में बाँट लिए गए।
बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने थेरा तिस्सा के वस्त्रों को बांटने से पहले उन्हें सात दिन तक प्रतीक्षा करने के लिए क्यों कहा था। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “मेरे पुत्रों, मृत्यु के समय तिस्सा का मन विशेष वस्त्रों से आसक्त था, अतः उसका पुनर्जन्म जूं के रूप में हुआ और वह वस्त्रों की तहों में ही रहा। जब तुम सब वस्त्र बाँटने की तैयारी कर रहे थे, तब जूं तिस्सा अत्यंत पीड़ा में था और वस्त्रों की तहों में इधर-उधर भाग रहा था। यदि तुम उस समय वस्त्र ले लेते, तो जूं तिस्सा तुम पर बहुत क्रोध करता और उसे निरय (नरक) जाना पड़ता। परन्तु अब तिस्सा का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है, इसीलिए मैंने तुम्हें वस्त्र लेने की अनुमति दी है। हे भिक्षुओं, आसक्ति अत्यंत हानिकारक है; जैसे जंग लोहे को नष्ट कर देती है, वैसे ही आसक्ति मनुष्य का विनाश करती है और उसे निरय (नरक) भेजती है। भिक्षु को चार आवश्यक वस्तुओं का अत्यधिक उपयोग नहीं करना चाहिए और न ही उनसे अत्यधिक आसक्त होना चाहिए।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 240 : जिस प्रकार लोहे से जंग लगती है और वह लोहे को ही नष्ट कर देती है, उसी प्रकार उसके अपने कर्म ही पापी को निम्न स्तर के अस्तित्व (दुग्गति) की ओर ले जाते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने पूज्य तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, सावत्थी में रहने वाले एक प्रतिष्ठित परिवार के युवक ने संसार त्यागकर संन्यास ले लिया और पूर्ण दीक्षा लेकर आदरणीय तिस्सा के नाम से ख्यातिप्राप्त हुए। बाद में, जब वे ग्रामीण क्षेत्र के एक मठ में निवास कर रहे थे, तब उन्हें आठ हाथ लंबा एक मोटा कपड़ा प्राप्त हुआ। निवास पूरा करने के बाद, उन्होंने अंतिम पर्व मनाया और अपना कपड़ा साथ लेकर घर गए और उसे अपनी बहन को सौंप दिया। उनकी बहन ने सोचा, “यह वस्त्र मेरे भाई के लिए उपयुक्त नहीं है।” इसलिए उन्होंने एक तेज चाकू से उसे पट्टियों में काटा, ओखली में कूटा, कोड़े से पीटा और साफ किया, और फिर महीन सूत कातकर उससे एक वस्त्र बुनवाया। आदरणीय तिस्सा ने धागा और सुई मंगवाई और कुछ कुशल वस्त्र निर्माता युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को इकट्ठा करके अपनी बहन के पास गए और कहा, “मुझे वह कपड़ा दे दीजिए; मैं उससे एक वस्त्र बनवाऊंगा।” उसने नौ हाथ लंबा एक वस्त्र उतारा और अपने सबसे छोटे भाई के हाथों में रख दिया। उसने उसे लिया, फैलाया और कहा, “मेरा वस्त्र मोटा था, आठ हाथ लंबा, लेकिन यह बढ़िया है, नौ हाथ लंबा। यह मेरा नहीं है; यह आपका है। मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे वही वस्त्र दे दीजिए जो मैंने आपको दिया था।” “आदरणीय, यह वस्त्र आपका है; इसे ले लीजिए।” उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया।
तब उसकी बहन ने उसे अपने किए हुए सारे काम बताए और उसे वह कपड़ा वापस देते हुए कहा, “आदरणीय, यह आपका है; इसे ले लीजिए।” अंततः उसने कपड़ा लिया, मठ गया और वस्त्र बनाने वालों को काम पर लगा दिया। उसकी बहन ने वस्त्र बनाने वालों के लिए चावल का दलिया, उबले हुए चावल और अन्य राशन तैयार किया, और जिस दिन वस्त्र बनकर तैयार हुआ, उस दिन उन्हें अतिरिक्त भत्ता दिया। तिस्सा ने वस्त्र को देखा और उसे पसंद करने लगा। उसने कहा, “कल मैं इसे ऊपरी वस्त्र के रूप में पहनूंगा।” इसलिए उसने उसे मोड़कर बांस के रैक पर रख दिया।
रात के समय, खाए हुए भोजन को पचा न पाने के कारण, उसकी मृत्यु हो गई और उसी वस्त्र में एक जूं के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। जब भिक्षुओं ने उसके शरीर का अंतिम संस्कार किया, तो उन्होंने कहा, “चूंकि उसकी बीमारी में उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं

था, इसलिए यह वस्त्र भिक्षुओं के समूह का है; आइए इसे आपस में बाँट लें।" इस पर उस जूं ने चीखते हुए कहा, "ये भिक्षु मेरी संपत्ति लूट रहे हैं!" और चीखते हुए वह इधर-उधर भागने लगा। बुद्ध, जो सुगंधित कक्ष में बैठे थे, ने अलौकिक श्रवण शक्ति से वह आवाज सुनी और पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, उनसे कहो कि वे तिस्सा का वस्त्र सात दिनों के लिए अलग रख दें।" पूज्य आनंद ने ऐसा ही करवाया। सात दिनों के बाद उस जूं की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तुषिता देवताओं के धाम में हुआ। आठवें दिन बुद्ध ने यह आदेश दिया, "भिक्षु अब तिस्सा के वस्त्र को आपस में बाँट लें और अपने-अपने हिस्से ले लें।" भिक्षुओं ने ऐसा ही किया और आपस में इस बात पर चर्चा की कि बुद्ध ने तिस्सा के वस्त्रों को सात दिनों के लिए अलग रखने का आदेश क्यों दिया था।

जब बुद्ध को उनकी बातचीत के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, तिस्सा अपने ही वस्त्र में जूं के रूप में पुनर्जन्म लेकर आया। जब तुम लोग वस्त्र बाँटने लगे, तो वह चिल्लाया, 'ये मेरी संपत्ति लूट रहे हैं।' यदि तुम उसका वस्त्र ले लेते, तो वह तुमसे द्वेष रखता और इस पाप के कारण नरक में पुनर्जन्म लेता। इसीलिए मैंने वस्त्र को अलग रखने का आदेश दिया था। परन्तु अब वह तुषी देवताओं के धाम में पुनर्जन्म ले चुका है, और इसी कारण मैंने तुम्हें वस्त्र लेने और उसे आपस में बाँटने की अनुमति दी है।" बुद्ध ने आगे कहा, "यद्यपि वास्तव में इस संसार में प्राणियों के लिए तृप्ति एक गंभीर दोष है। जिस प्रकार लोहे में जंग लगकर उसे नष्ट कर देती है और उसे बेकार कर देती है, उसी प्रकार यह तृप्ति नामक दोष, जब इस संसार में प्राणियों में उत्पन्न होती है, तो उन्हीं प्राणियों को नरक में पुनर्जन्म लेने का कारण बनती है और उन्हें विनाश की ओर ले जाती है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 240)

अयसा एव समुत्थितं मलं तदुत्थाय तमेव खादति ,
एवं अतिधोनाचारिनं सकाकम्मानि दुग्गतिं नयन्ति

अयसा एव : लोहे से ही; समुत्थितं मलं [माला]: जंग जो उत्पन्न हो गई है; तदुत्थाय : वहीं से उत्पन्न; तमेव : वही; खादति : खाता है (क्षरण करता है); एवम् : इस प्रकार; अतिधोनाकारिनाम् [अतिधोनाकारिना]: भिक्षु जो सीमाओं का उल्लंघन करते हैं; सकाकम्मानि : स्वयं के (बुरे) कार्य; दुग्गतीं [दुग्गति]: बुरी स्थिति में; नयन्ति : नेतृत्व (बुरा करने वाला)

लोहे में लगने वाली जंग लोहे को ही नष्ट कर देती है। ठीक उसी प्रकार, किसी व्यक्ति के बुरे कर्म उस व्यक्ति का ही विनाश कर देते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 240)

दुगती : बुरी अवस्था; दयनीय अवस्था; जीवन का दयनीय मार्ग। यह शब्द दु + गति से व्युत्पन्न है ।

गति : जीवन का मार्ग, नियति, गंतव्य। जीवन के पाँच मार्ग हैं: नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, मनुष्यलोक और स्वर्गलोक। इनमें से पहले तीन मार्ग दुखद मार्ग (दुग्गति , अपाया) हैं, जबकि अंतिम दो मार्ग सुखद मार्ग (सुगति) हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 241

(धम्मपद240) <<<< पिछला|| धम्मपद241 ||अगला >>>> (धम्मपद 242 और 243)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 241 - उदितद (कालूद) वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 241 - लालूदायी (कालूदायी) वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

असज्जयामाला मंता
अनुत्थानामाला घरा

malam vanaassa kosajjam
pamado rakkhato malam.

श्लोक 241 : पाठ न करना विद्या पर कलंक है; रखरखाव न करना घरों पर कलंक है; आलस्य सौंदर्य पर कलंक है; असावधानी जागते रहने वाले पर कलंक है।

लालूदायी (या कलुदायी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा लालुदयी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (241) कहा।

सावत्थी में, थेरा सारिपुत्त और थेरा महा मोग्गलाना के प्रवचन सुनकर लौटने वाले लोग हमेशा इन दोनों प्रमुख शिष्यों की प्रशंसा करते थे। एक बार, लालुदयी ने उनकी प्रशंसा सुनकर कहा कि उनके प्रवचन सुनने के बाद वे भी उनके बारे में ऐसी ही प्रशंसा करेंगे। इसलिए लालुदयी को प्रवचन देने के लिए कहा गया; वे मंच पर चढ़े, लेकिन कुछ बोल नहीं पाए। तब उन्होंने श्रोताओं से कहा कि पहले किसी दूसरे भिक्षु को बोलने का मौका दें और फिर वे बोलेंगे। इस तरह उन्होंने तीन बार बारी-बारी से बोलने का प्रयास किया।

श्रोता उससे तंग आ गए और चिल्लाने लगे, "अरे मूर्ख! जब हमने दो प्रमुख शिष्यों की प्रशंसा की थी, तब तुम व्यर्थ ही शेखी बघार रहे थे कि तुम भी उनकी तरह उपदेश दे सकते हो। अब क्यों नहीं उपदेश देते?" तब लालुदयी भाग गया और भीड़ उसके पीछे दौड़ी। डर के मारे और ध्यान न देते हुए वह एक शौचालय के गड्ढे में गिर गया।

जब बुद्ध को इस घटना के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "ललुदयी ने धम्म का बहुत कम ज्ञान प्राप्त किया था; वह नियमित रूप से धार्मिक ग्रंथों का पाठ नहीं करता था; उसने कुछ भी याद नहीं किया था। जो थोड़ा-बहुत उसने सीखा था, वह पाठ न करने के कारण क्षीण हो गया था।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 241 : पाठ न करना विद्या पर कलंक है; रखरखाव न करना घरों पर कलंक है; आलस्य सौंदर्य पर कलंक है; असावधानी जागते रहने वाले पर कलंक है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कालुदयी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य कालुदयी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। बताया जाता है कि सावत्थी में, अनेक श्रेष्ठ शिष्यों ने नाश्ते से पहले दान दिया और नाश्ते के बाद घी, तेल, शहद, गुड़, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर मठ गए और धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश सुनने के बाद जब वे विदा हुए, तो उन्होंने पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों की प्रशंसा की। पूज्य उदय ने उनकी बातें सुन लीं और उनसे कहा, "तुमने केवल इन्हीं पूज्यों को धर्मोपदेश देते हुए सुना है, इसीलिए तुम इस प्रकार बातें करते हो; मुझे आश्चर्य है कि यदि तुम मुझे धर्मोपदेश देते हुए सुनते तो क्या कहते।" उनकी यह बात सुनकर सभी ने मन ही मन सोचा, "यह अवश्य ही कोई महान धर्मोपदेशक होंगे; हमें भी निश्चित रूप से इस पूज्य का धर्मोपदेश सुनना चाहिए।" अतः एक दिन उन्होंने पूज्यवर से यह निवेदन किया, "पूज्यवर, आज वह दिन है जब हम धर्म का प्रवचन सुनने जाते हैं। भिक्षुओं की सभा में दान देने के बाद, हे पूज्यवर, कृपा करके हमें दिन में धर्म का प्रवचन दीजिए।" पूज्यवर ने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया।

जब उनके लिए धम्म सुनने का समय आया, तो वे पूज्य गुरु के पास गए और बोले, "पूज्य गुरु, हमें धम्म का उपदेश दीजिए।" तब पूज्य उदयि आसन पर बैठ गए, हाथ में एक रंगीन पंखा लिया और उसे आगे-पीछे हिलाया, लेकिन धम्म का एक भी शब्द न जानते हुए उन्होंने कहा, "मैं पवित्र वचन का पाठ करूँगा; कोई और धम्म का उपदेश दे।" ऐसा कहकर वे आसन से उतर गए। शिष्यों ने किसी और से धम्म का उपदेश करवाया और उन्हें फिर से आसन पर बैठने में सहायता की ताकि वे पवित्र वचन का पाठ कर सकें। लेकिन दूसरी बार भी, पूज्य गुरु, जो पाठ करने और उपदेश देने दोनों में असमर्थ थे, बोले, "मैं रात में पवित्र वचन का पाठ करूँगा; कोई और अभी पवित्र वचन का पाठ कर दे।" तब शिष्यों ने किसी और से पवित्र वचन का पाठ करवाया और रात में पूज्य गुरु को फिर से ले आए। लेकिन रात में भी उन्हें पाठ करना उतना ही मुश्किल लगता था, और उन्होंने कहा, "मैं भोर में पाठ करूँगा; रात में कोई और पाठ कर ले।" इतना कहकर वे आसन से उतर गए। शिष्यों ने किसी और से रात में पवित्र वचन का पाठ करवाया और भोर में पूज्य गुरु को फिर से ले आए। लेकिन एक बार फिर वे असफल रहे।

तब भीड़ ने मिट्टी के ढेले, लाठियाँ और अन्य वस्तुएँ उठाकर उन्हें धमकाते हुए कहा, "मूर्ख, जब हम पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों के बारे में बात कर रहे थे, तब आपने ये-वो कहा। अब क्यों नहीं कुछ कहते?" पूज्य सारिपुत्त भागने लगे और भीड़ उनके पीछे

दौड़ी। भागते-भागते वे एक गंदे नाले में गिर पड़े। भीड़ ने उस दिन की घटनाओं पर चर्चा करते हुए कहा, “जब कालुदाई ने पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों की हमारी प्रशंसा सुनी, तो वह ईर्ष्यालु हो गया, उसने स्वयं को धम्म का उपदेशक घोषित कर दिया, और जब लोगों ने उसका सम्मान किया और उससे कहा, 'हम धम्म सुनना चाहते हैं,' तो वह चार बार धम्म के आसन पर बैठ गया, जबकि उसे पाठ करने योग्य एक भी शब्द ज्ञात नहीं था। फिर, जब हमने उससे कहा, 'फिर भी तुमने स्वयं को हमारे पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के बराबर बताया,' और मिट्टी के ढेले, डंडे और अन्य वस्तुएँ उठाकर उसे धमकाया, तो वह भाग गया और एक गंदे नाले में गिर गया।”
बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इसने गंदे पानी में लोटपोट किया है; इसने पिछले जन्म में भी ऐसा ही किया था।” इस जातक कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बाद, बुद्ध ने कहा, “उस समय सिंह पूज्य सारिपुत्त थे और सूअर कालुदयी थे।”
प्रवचन समाप्त करते हुए, बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, उदययी ने धम्म का केवल एक अंश ही सीखा था, परन्तु उन्होंने ग्रंथों का पुनरावलोकन नहीं किया। पवित्र वचन का कितना भी कम या अधिक ज्ञान हो, उसका पुनरावलोकन न करना घोर पाप है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 241)
मंता असज्जयमाला घर अनुष्ठानमाला
वनस्सा कोसज्जां मलं रक्खतो पमादो मलं
मंता : मंत्र और सूत्र; असज्ज्हयामाला : अभ्यास न करना उनके जंग के समान है; घरा : घर; अनुष्ठानमाला : कैदियों की सुस्ती को जंग की तरह महसूस करना; वनस्सः रंग; कोसज्जं मलं [माला]: परवाह न करना जंग है; रक्खातो [रक्खाता]: रक्षा करने वाले के लिए; पमाडो [पमाडा]: लापरवाही; मलम् [माला]: जंग है
जिन सूत्रों को याद करना पड़ता है, उन्हें बार-बार न दोहराने से उनमें जंग लग जाती है। घरों के लिए, उनमें रहने वालों की उपेक्षा से जंग लग जाती है। त्वचा के लिए, लापरवाही से जंग लग जाती है। पहरेदार के लिए, असावधानी से जंग लग जाती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 241)
पामादो : असावधानी। बुद्ध ने हमेशा सजग जीवन का समर्थन किया। बुद्ध के अंतिम शब्द भी सजगता के प्रति उनकी इस चिंता को दर्शाते हैं। अपने अंतिम उपदेश में बुद्ध ने कहा, “हे भिक्षुओं, अब मैं तुमसे कहता हूँ। सभी परिस्थितियाँ क्षणभंगुर हैं। लगन से प्रयास करो। बुद्ध का देहांत शीघ्र ही होगा। आज से तीन माह के अंत में बुद्ध का देहांत हो जाएगा।”

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 242,243

————————————————————————

(धम्मपद 241) <<<< पिछला || धम्मपद 242 और 243 || अगला >>>> (धम्मपद 244 और 245)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 242 और 243 - अन्नतारकुलपुत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 242 और 243 - अन्नतारकुलपुत्त वत्थु

————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
मालित्थिया दुकारिताम
maccheram dadato malam
mala ve papaka dhamma
asmim loke paramhi ca.
Tato mala malataram

अविज्जा परमम मलम
etam malam pahantvana
nimmala hotha bhikkhavo.

श्लोक 242 : यौन दुराचार स्त्री का कलंक है; कंजूसी दाता का कलंक है; बुरे मार्ग वास्तव में इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी कलंक हैं।

श्लोक 243 : इन सबसे भी बदतर दोष अज्ञान (सत्य का अज्ञान) है, जो सबसे बड़ा दोष है। हे भिक्षुओं, इस दोष को त्याग दो और दोषरहित हो जाओ।

एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (242) और (243) का उच्चारण एक ऐसे व्यक्ति के संदर्भ में किया जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया था।
एक बार एक पुरुष की पत्नी ने व्यभिचार किया। वह अपनी पत्नी के दुराचार से इतना लज्जित हुआ कि किसी का सामना करने की हिम्मत नहीं कर पाया; वह बुद्ध से भी दूर रहा। कुछ समय बाद वह बुद्ध के पास गया और बुद्ध ने उससे पूछा कि वह इतने समय तक अनुपस्थित क्यों रहा, तो उसने सब कुछ स्पष्ट कर दिया। अनुपस्थिति का कारण जानकर बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, स्त्रियाँ नदी, सड़क, शराब की दुकान, विश्रामगृह या सड़क किनारे पानी के ठेले के समान होती हैं; वे हर प्रकार के लोगों के साथ संगति करती हैं। वास्तव में, व्यभिचार स्त्री के विनाश का कारण होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 242 : यौन दुराचार स्त्री का कलंक है; कंजूसी दाता का कलंक है; बुरे मार्ग वास्तव में इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी कलंक हैं।

श्लोक 243 : इन सबसे भी बदतर दोष अज्ञान (सत्य का अज्ञान) है, जो सबसे बड़ा दोष है। हे भिक्षुओं, इस दोष को त्याग दो और दोषरहित हो जाओ।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया
वेलुवन में निवास करते समय, बुद्ध ने एक प्रतिष्ठित परिवार के एक युवक के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, एक युवक ने अपने ही कुल की एक युवती से विवाह किया। विवाह के दिन से ही उसकी पत्नी व्यभिचार करने लगी। उसके व्यभिचार से लज्जित होकर युवक का लोगों से आमने-सामने मिलने का साहस नहीं रहा। कुछ दिन बीतने के बाद, बुद्ध की सेवा करना उसका कर्तव्य बन गया। इसलिए वह बुद्ध के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। बुद्ध ने पूछा, "शिष्य, अब तुम क्यों किसी के दर्शन नहीं करते?" युवक ने बुद्ध को पूरी कहानी सुनाई। तब बुद्ध ने उससे कहा, "शिष्य, पिछले जन्म में भी मैंने कहा था, 'स्त्रियाँ नदियों के समान हैं, और एक बुद्धिमान व्यक्ति को उन पर क्रोधित नहीं होना चाहिए।' परन्तु पुनर्जन्म तुमसे छिपा हुआ है, इसलिए तुम इसे नहीं समझते।"
युवक के अनुरोध पर बुद्ध ने निम्नलिखित जातक कथा सुनाई:
नदी, सड़क, सराय, हॉल, झोपड़ी की तरह, इस दुनिया की महिलाएं भी ऐसी ही होती हैं: उनका समय कभी ज्ञात नहीं होता।
बुद्ध ने कहा, "कामुकता स्त्री पर कलंक है; कंजूसी भिक्षा देने वाले पर कलंक है; बुरे कर्म, इस लोक और परलोक दोनों में विनाश का कारण बनते हैं, इसलिए सभी जीवों पर कलंक हैं; लेकिन सभी कलंकों में अज्ञान सबसे बुरा कलंक है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 242)
इत्थिया दुकारितं मळं ददातो मच्छेरं मळं
पापाका धम्म अस्मि लोके परमहि च वे माला

itthiya : स्त्री के लिए; duccarita: बुरा व्यवहार; mala : दोष है ; dadato : दाता के लिए ; macchera : कंजूसी ; mala : दोष है; pāpakā dhammā : बुरे कर्मों के लिए; asmiṃ loke paramhi ca : यह लोक और परलोक (दोनों); ve malā : निश्चित रूप से दोष हैं

महिलाओं के लिए दुराचार कलंक है। दानशील व्यक्तियों के लिए कंजूसी कलंक है। बुरे कर्म इस दुनिया में और परलोक में भी कलंक हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 243)

भिक्खवो , ततो माला मालतरं अविज्जा परमं

मळं एतं मळं पहतवना निम्मला होथा

भिक्खावो [भिक्खवा]: हे भिक्षु: ततो माला मालतरं [मालतारा]: उन सभी दागों से ऊपर (वहां है) एक सबसे खराब दाग; अविज्जा : अज्ञान; परमं मलम् [माला]: सबसे बुरा दाग है; एतं मलं [माला]: यह दाग; पहत्वाना : छुटकारा पाकर; निम्मला होथा : स्टेनलेस बनें

हे भिक्षुओं, इन सभी दागों से भी बदतर एक दाग है। सबसे बुरा दाग है अज्ञानता। इस दाग से छुटकारा पाकर निर्मल और बेदाग बन जाओ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 242-243)

इत्तिया दुच्चरितं मलं : स्त्री के लिए बुरा व्यवहार कलंक है। समकालीन धार्मिक नेताओं में बुद्ध का स्त्री-द्वेष के प्रति सबसे उदार दृष्टिकोण था। बुद्ध ने ही स्त्री-द्वेष का उत्थान किया और उन्हें समाज में उनके महत्व का अहसास कराया। बुद्ध के आगमन से पहले भारत में स्त्री-द्वेष को उच्च स्थान नहीं दिया जाता था। एक भारतीय लेखक, हेमचंद्र, स्त्री-द्वेष को नरक का मार्ग प्रशस्त करने वाली मशाल मानते थे — नरकमार्गद्वारस्य दीपिका । बुद्ध ने स्त्री-द्वेष का अपमान नहीं किया, बल्कि उन्हें स्वभाव से दुर्बल माना। उन्होंने पुरुष और स्त्री दोनों के अंतर्निहित गुणों को देखा और अपने उपदेशों में उन्हें उनका उचित स्थान दिया। लिंग शुद्धि या सेवा में कोई बाधा नहीं है।

पाली भाषा में महिलाओं के लिए कभी-कभी मतुगामा शब्द का प्रयोग किया जाता है , जिसका अर्थ है 'मातृसत्ता' या 'माताओं का समाज'। बौद्ध धर्म में एक माँ के रूप में स्त्री का विशेष सम्मान है। माँ को स्वर्ग तक पहुँचने का एक सुगम मार्ग माना जाता है, और पत्नी को पति की सबसे अच्छी सहेली (परमा सखा) समझा जाता है।

यद्यपि शुरुआत में बुद्ध ने तर्कसंगत कारणों से महिलाओं को संघ में शामिल करने से इनकार कर दिया था, फिर भी बाद में वे पूज्य आनंद और उनकी पालक माता महा प्रजापति गौतमी के आग्रह के आगे झुक गए और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की। इस प्रकार बुद्ध ने ही नियमों और विनियमों के साथ महिलाओं के लिए पहले समाज की स्थापना की।

जिस प्रकार अरहत सारिपुत्त और मोग्गलाना को संघ का दो प्रमुख शिष्य बनाया गया, जो कि सबसे प्राचीन लोकतांत्रिक रूप से गठित ब्रह्मचारी संघ है, उसी प्रकार अरहत खेमा और उप्पलावन्ना को भिक्षुणियों के संघ की दो प्रमुख महिला शिष्य बनाया गया। कई अन्य महिला शिष्यों को भी स्वयं बुद्ध ने सबसे विशिष्ट और धर्मपरायण अनुयायियों में गिना है। वज्जी समुदाय में भी, महिलाओं को मिली स्वतंत्रता को उनकी समृद्धि के प्रमुख कारणों में से एक माना जाता था। बुद्ध के आगमन से पहले महिलाओं को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी और वे अपनी जन्मजात आध्यात्मिक क्षमताओं और मानसिक प्रतिभाओं को प्रदर्शित करने के अवसर से वंचित थीं। प्राचीन भारत में, जैसा कि आज भी देखा जाता है, परिवार में पुत्री का जन्म एक अवांछित और बोझिल जुड़ाव माना जाता था।

एक बार जब बुद्ध राजा कोसल से बातचीत कर रहे थे, तभी एक दूत आया और उसने राजा को सूचित किया कि उनके घर पुत्री का जन्म हुआ है। यह सुनकर राजा स्वाभाविक रूप से अप्रसन्न हुए। लेकिन बुद्ध ने उन्हें सांत्वना देते हुए और प्रोत्साहित करते हुए कहा, “हे मनुष्यों के स्वामी, पुत्री पुत्री से भी श्रेष्ठ संतान सिद्ध हो सकती है।”

बुद्ध के आगमन से पहले विभिन्न कठिनाइयों का सामना कर रही महिलाओं के लिए भिक्षुणियों के संघ की स्थापना एक वरदान सिद्ध हुई। इस संघ में रानियाँ, राजकुमारियाँ, कुलीन परिवारों की पुत्रियाँ, विधवाएँ, शोक संतप्त माताएँ, असहाय महिलाएँ, वेश्याएँ, सभी अपनी जाति या पद के बावजूद एक समान स्तर पर मिलती थीं, पूर्ण सांत्वना और शांति का अनुभव करती थीं, और उस मुक्त वातावरण में सांस लेती थीं जो झोपड़ियों और आलीशान महलों में कैद महिलाओं को प्राप्त नहीं था। अनेक ऐसी महिलाएं, जो अन्यथा गुमनामी में खो जातीं, उन्होंने संघ में शरण लेकर विभिन्न तरीकों से अपनी पहचान बनाई और मुक्ति प्राप्त की।

खेमा, जो पहली प्रमुख महिला शिष्या थीं, राजा बिम्बिसार की सुंदर पत्नी थीं। शुरुआत में वे बुद्ध से मिलने से हिचकिचा रही थीं क्योंकि उन्होंने सुना था कि बुद्ध बाहरी सुंदरता को तुच्छ समझते थे। एक दिन वे महल का नजारा देखने के लिए ही मठ में गईं। धीरे-धीरे वे उस हॉल की ओर आकर्षित हो गईं जहाँ बुद्ध उपदेश दे रहे थे। बुद्ध ने उनके मन की बात जान ली और अपनी अलौकिक शक्तियों से एक सुंदर युवती को उनके बगल में पंखा करते हुए प्रकट किया। खेमा उस युवती की सुंदरता की मुग्ध हो गईं। बुद्ध ने उस प्रकट छवि को युवावस्था से अधेड़ और फिर वृद्धावस्था में बदलते हुए दिखाया, यहाँ तक कि अंत में वह टूटे हुए दाँतों, सफ़ेद बालों और झुर्रीदार त्वचा के साथ ज़मीन पर गिर पड़ी। तब जाकर उन्हें बाहरी सुंदरता की व्यर्थता और जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास हुआ। उन्होंने सोचा, “क्या ऐसा शरीर इस तरह नष्ट होने के लिए आया है? तो मेरा शरीर भी ऐसा ही होगा।”

बुद्ध ने उसके मन की बात जान ली और कहा:
जो लोग कामवासना के गुलाम होते हैं, वे धारा के साथ बह जाते हैं।
जैसे कोई मकड़ी जाले पर सरकती है
उसने स्वयं ही काम किया। लेकिन रिहा किए गए व्यक्ति ने...
जिनके सारे बंधन टूटकर बिखर गए हैं,
कहीं और विचार केंद्रित करके, संसार को त्याग दो।
और इंद्रियों से मिलने वाले सभी सुखों को दूर कर दिया गया।

खेमा ने अर्हतत्व प्राप्त किया और राजा की सहमति से संघ में प्रवेश किया। वे भिक्षुणियों में अंतर्दृष्टि में अग्रणी थीं। पताचारा, जिन्होंने अत्यंत दुखद परिस्थितियों में अपने दो बच्चों, पति, माता-पिता और भाई को खो दिया था, बुद्ध की इच्छाशक्ति से आकर्षित होकर उनकी उपस्थिति की ओर खिंची चली गईं। बुद्ध के सुखदायक वचन सुनकर उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त की और संघ में प्रवेश किया। एक दिन, जब वे अपने पैर धो रही थीं, तो उन्होंने देखा कि पहले पानी थोड़ा सा बहकर रुक गया, दूसरी बार थोड़ा और बहकर रुक गया, और तीसरी बार और बहकर रुक गया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मनुष्य भी इसी प्रकार मरते हैं, या तो बचपन में, या अधेड़ उम्र में, या बुढ़ापे में।" बुद्ध ने उनके विचारों को पढ़ लिया और उनके सामने अपनी छवि प्रकट करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया और बाद में कई शोक संतप्त माताओं के लिए सांत्वना का स्रोत बनीं।

धम्मदिन्ना और भद्दा कापिलानी दो ऐसी भिक्षुणियां थीं जिन्हें धम्म की सम्मानित व्याख्याता माना जाता था।

दुष्ट मारा के उत्तर में, नन सोमा ने कहा: "जिस स्त्री का मन स्थिर हो और ज्ञान में वृद्धि हो, और जिसे धम्म का अधिकार प्राप्त हो, उसमें स्त्रीत्व की क्या भूमिका होनी चाहिए? जो इस प्रश्न से संशय में हो कि 'क्या मैं इन मामलों में स्त्री हूँ, या पुरुष हूँ, या फिर मैं क्या हूँ?' — दुष्ट को ही इस विषय पर बात करने का अधिकार है।"

आम लोगों में भी कई ऐसी महिलाएं थीं जो अपनी धर्मनिष्ठा, उदारता, भक्ति, ज्ञान और दयालुता के लिए विख्यात थीं।

संघ की प्रमुख दानदाता विसाखा इन सबमें सर्वोपरि हैं। सुप्पिया एक अत्यंत धर्मनिष्ठ महिला थीं, जो बाजार से मांस न मिलने पर एक बीमार भिक्षु के लिए सूप बनाने के लिए अपनी जांघ से मांस का एक टुकड़ा काट कर लाईं।

नकुलमाता एक निष्ठावान पत्नी थीं, जिन्होंने अपने गुणों का बखान करके अपने पति को मृत्यु के मुंह से बचाया। सामावती एक धर्मपरायण और प्रेममयी रानी थीं, जिन्होंने बिना किसी द्वेष के अपनी प्रतिद्वंद्वी के प्रति प्रेम और दया का भाव दिखाया, यहाँ तक कि तब भी जब उनकी साजिश के कारण उनकी मृत्यु हो गई। रानी मल्लिका ने अनेक अवसरों पर अपने पति, राजा पसेनादि को सलाह दी। एक दासी, खुज्जुत्तारा ने धर्म का उपदेश देकर अनेकों को धर्म परिवर्तन कराया।

पुनब्बासुमाता धर्म को सुनने में इतनी लीन थीं कि उन्होंने अपने रोते हुए बच्चे को इस प्रकार चुप कराया:
हे मौन, नन्ही उत्तरा! शांत रहो!
पुनाबासु, ताकि मैं नॉर्म को सुन सकूँ
गुरु द्वारा, सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी व्यक्ति द्वारा सिखाया गया।
हमें अपना बच्चा प्रिय है, और प्रिय
हमारे पति; इन सबसे भी अधिक प्रिय
इस सिद्धांत का उद्देश्य मार्ग का अन्वेषण करना है।

एक चिंतनशील माँ से जब पूछा गया कि वह अपने इकलौते बच्चे की मृत्यु पर क्यों नहीं रोई, तो उसने कहा: "वह बिना बुलाए यहाँ आया, बिना कहे ही चला गया; जैसे आया वैसे ही चला गया। इसमें शोक का क्या कारण है?"

सुमना और सुभद्दा दो ऐसी बहनें थीं जिनका चरित्र अनुकरणीय था और बुद्ध में उनकी अटूट आस्था थी। ये कुछ उदाहरण बुद्ध के समय में, विशेषकर बुद्ध के मार्गदर्शन में, महिलाओं द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 244,245

————————————————————————

(धम्मपद 242 और 243) <<<< पिछला || धम्मपद 244 और 245 || अगला >>>> (धम्मपद 246, 247 और 248)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 244 और 245 - कुलासरिभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 244 और 245 - कुलासरिभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
सुजीवम अहिरिकेना
kakasurena dhamsina
pakkhandina pagabbhena
samkilitthena jivitam.
हिरिमाता च दुज्जिवम
niccam sucigavesina
alinena' ppagabbhena
suddhajivena passata.

श्लोक 244 : जीवन उस व्यक्ति के लिए आसान है जो कौवे की तरह निर्भीक और साहसी है, जो दूसरों की निंदा करता है और ढोंगी, आक्रामक और भ्रष्ट है।

श्लोक 245 : जीवन उस व्यक्ति के लिए कठिन है जिसमें लज्जा की भावना होती है, जो सदा पवित्रता की खोज करता है, जो आसक्ति से मुक्त होता है, जो विनम्र होता है और जो उचित आजीविका को स्पष्ट रूप से देखता है।

कुलासारी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (244) और (245) का उच्चारण किया, जो कि चुलसारी नामक एक भिक्षु के संदर्भ में था, जो चिकित्सा का अभ्यास करता था।
एक दिन, कुलासारी एक रोगी की सेवा करके लौट रहे थे। रास्ते में उनकी मुलाकात थेरा सारिपुत्त से हुई और उन्होंने उन्हें बताया कि वे एक रोगी का इलाज करने गए थे और उन्हें अपनी सेवा के बदले कुछ स्वादिष्ट भोजन दिया गया था। उन्होंने थेरा सारिपुत्त से विनती की कि वे उनसे कुछ भोजन स्वीकार कर लें। थेरा सारिपुत्त ने उन्हें कुछ नहीं कहा और अपने रास्ते पर चलते रहे। थेरा सारिपुत्त ने उस भिक्षु से भोजन लेने से इनकार कर दिया क्योंकि उस भिक्षु ने भिक्षुओं को चिकित्सा करने से रोकने वाले नियम का उल्लंघन किया था। अन्य भिक्षुओं ने इस बात की सूचना बुद्ध को दी और उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जो भिक्षु निर्लज्ज होता है, वह विचार, वचन और कर्म में कठोर होता है। वह कौवे के समान अहंकारी होता है, वह अवैध तरीकों से जीविका कमाता है और आराम से जीवन व्यतीत करता है। दूसरी ओर, जो भिक्षु लज्जित होता है, उसका जीवन आसान नहीं होता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 244 : जीवन उस व्यक्ति के लिए आसान है जो कौवे की तरह निर्भीक और साहसी है, जो दूसरों की निंदा करता है और ढोंगी, आक्रामक और भ्रष्ट है।

श्लोक 245 : जीवन उस व्यक्ति के लिए कठिन है जिसमें लज्जा की भावना होती है, जो सदा पवित्रता की खोज करता है, जो आसक्ति से मुक्त होता है, जो विनम्र होता है और जो उचित आजीविका को स्पष्ट रूप से देखता है।

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुल्ला सारी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चिकित्सा का अभ्यास करने वाले चुल्ला सारी नामक एक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। कथा के अनुसार, एक दिन एक भिक्षु ने चिकित्सा उपचार किया, जिसके बदले में उसे उत्तम भोजन प्राप्त हुआ। भोजन लेकर निकलते समय रास्ते में उसकी मुलाकात एक पूज्य भिक्षु से हुई और उसने उनसे कहा, "पूज्य भिक्षु, यह भोजन मुझे चिकित्सा उपचार के बदले में प्राप्त हुआ है। ऐसा भोजन आपको कहीं और नहीं मिलेगा। इसे लीजिए और खाइए। अब से जब भी मुझे चिकित्सा उपचार के बदले में ऐसा भोजन प्राप्त होगा, मैं उसे आपके पास लाऊंगा।" पूज्य भिक्षु ने उसकी बात सुनी, लेकिन बिना कुछ कहे चले गए। भिक्षु मठ गए और बुद्ध को इस बात की सूचना दी। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जो कौवे के समान निर्लज्ज और ढीठ है, जो इक्कीस प्रकार के दुराचार करता है, वह सुखी जीवन व्यतीत करता है। परन्तु जो लज्जावान और मृत्यु पाप के भय से परिपूर्ण है, वह दुःख में जीवन व्यतीत करता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 244)

अहिरिकेन काकासुरेण धसीना पखंडिना
पगब्बेण संकिलित्थेन जीवितं सुजीवं

अहिरिकेना : निर्लज्ज व्यक्ति द्वारा; काकासूरेन : कौवे के समान चालाक; धंसीना : निंदा करना; पक्खंदीना : फिसलन भरा; पगब्बेन : चिकना; संकिलिट्ठेन : भ्रष्ट ; जीवित : जीवित; सुजीव : आसानी से बहकाया जा सकने वाला

यदि किसी व्यक्ति में लज्जा का भाव न हो, तो उसका जीवन आसान प्रतीत होता है, क्योंकि वह सार्वजनिक राय की परवाह किए बिना अपनी इच्छानुसार जी सकता है। वह कौवे की तरह बड़ी कुशलता से मनचाहा विनाश कर सकता है। कौवे की ही तरह, निर्लज्ज व्यक्ति का जीवन भी अपवित्र होता है। वह घमंडी होता है और दूसरों की बिल्कुल परवाह नहीं करता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 245)

हिरिमाता च निक्कं सुसिगावेसिना अलीनेना
अप्पगब्बेण शुद्धजीवेन पस्सता दुज्जिवं

हिरिमाता च : विनम्र व्यक्ति के लिए; निच्चं [निच्च]: निरंतर; सुचिगावेसिना : शुद्धता का अनुसरण करने वाला; अलीनेन : अनासक्त; अप्पगब्बेन : चालाक नहीं; शुद्ध जीवन जीने वाला; पसाता : अंतर्दृष्टि रखने वाला; दुज्जीवं [दुज्जीव]: जीवन आसान नहीं है

जो व्यक्ति विनम्र, संवेदनशील और संयमी हो, जो निरंतर शुद्धता की खोज में लगा रहता हो, आसक्त न हो, जो चालाक और उद्दंड न हो, जो शुद्ध जीवन जी रहा हो और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हो, उसके लिए जीवन कठिन होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 244-245)

काकासुरन : कौवे के समान धूर्त। निर्लज्ज व्यक्ति का रवैया एक धूर्त कौवे के समान है, जो अवसर की प्रतीक्षा में घात लगाए बैठा रहता है और जो कुछ भी उसे मिल सके, उसे छीन लेता है। श्लोक कहता है कि ऐसे धूर्त व्यक्ति के लिए जीवन आसान है, लेकिन संघ (भाईचारे) के सदस्य के लिए यह उचित रवैया नहीं है। भाईचारा बौद्ध धर्म के तीन रत्नों में से अंतिम है।

तीन शरणों में से अंतिम, संघ का रत्न, पर अभी विचार किया जाना बाकी है। इसे इस खंड के लिए इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि व्यवहारिक रूप से इस पर विचार करना अधिक उपयुक्त है। बुद्ध की शिक्षाएँ सभी के लिए हैं। लिंग, जाति या रंग के आधार पर किसी को भी बौद्ध बनने से नहीं रोका गया है। यह व्यक्तिगत बौद्ध (और उसकी परिस्थितियों) पर निर्भर करता है कि वह गृहस्थ रहे या भिक्षु (या भिक्षुणी) बने। प्रत्येक वर्ग को दूसरे से जो लाभ मिलता है वह पारस्परिक है: गृहस्थ भिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, आश्रय और औषधियाँ देते हैं और ये भिक्षु के जीवनयापन के साधन हैं। भिक्षु (और भिक्षुणियाँ) बदले में गृहस्थों को सबसे अनमोल वस्तु देते हैं: धम्म, जैसा कि उन्होंने अध्ययन, अभ्यास और अनुभव किया है। इस प्रकार गृहस्थ बौद्ध किसी मठ में वहाँ के किसी शिक्षक से या शायद अपने किसी पुत्र, चाचा या किसी अन्य रिश्तेदार से, जो स्थायी रूप से या कुछ समय के लिए नौसिखिया, भिक्षु या भिक्षुणी के रूप में अभ्यास कर रहा हो, आसानी से सलाह और सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार, एक संतुलन बना रहता है, प्रत्येक समूह दूसरे को सही आजीविका के लिए आवश्यक कुछ न कुछ देता है।

भिक्षुओं और नौसिखियों के जीवन में मार्गदर्शन के लिए नियमों का एक समूह होता है, जिनका पालन वे स्वेच्छा से आत्म-प्रशिक्षण के रूप में करते हैं। इन्हें स्वेच्छा से छोड़ा भी जा सकता है, जैसे कि जब कोई भिक्षु पुनः नौसिखिया बनता है या गृहस्थ जीवन में लौटता है। कुछ देशों में, गृहस्थों के लिए कुछ समय नौसिखिया या भिक्षु के रूप में बिताना एक आम प्रथा है (बाद वाला दीक्षा संस्कार केवल बीस वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को दिया जाता है)। आमतौर पर यह स्कूल या कॉलेज की शिक्षा पूरी होने के बाद, काम शुरू करने से पहले, लगभग जुलाई से अक्टूबर या नवंबर तक तीन या चार महीने की अवधि के लिए किया जाता है। इस अवधि को, जब भिक्षुओं को अपने मठ में रहना होता है, वर्षा ऋतु निवास के रूप में जाना जाता है और यह अध्ययन, ध्यान या किसी अन्य गहन आध्यात्मिक गतिविधि के लिए समर्पित अवधि होती है। इस वार्षिक वर्षा ऋतु निवास के समाप्त होने के बाद, भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार अन्य मठों

में या वन में जाने के लिए स्वतंत्र होते हैं। बौद्ध संघ में, भिक्षुओं को धन नहीं रखना चाहिए और उन्हें कम से कम संपत्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए।

भिक्षु होने के नाते, उन्हें किसी भी प्रकार के यौन संबंध से बचना चाहिए, इस प्रकार 'पवित्रता' का पालन करना चाहिए। लेकिन उन पर बिना किसी प्रश्न के 'आज्ञापालन' करने का कोई नियम नहीं है, हालांकि एक गुरु के शिष्य के रूप में उनके कुछ दायित्व होते हैं और सभी अच्छे भिक्षु इनका कड़ाई से पालन करते हैं। कम से कम पांच वर्षों के बाद, जब उन्हें कुछ ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो जाता है और वे अपने नियमों को भली-भांति जान लेते हैं, तो वे अपनी इच्छानुसार इधर-उधर घूमने, अच्छे गुरुओं की खोज करने या स्वयं अभ्यास करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

भिक्षु के नियमों में उल्लिखित चार सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनका उल्लंघन करने पर व्यक्ति को संघ से निष्कासित कर दिया जाता है और वह इस जीवन में पुनः कभी भिक्षु नहीं बन सकता। ये चार नियम हैं: 1) कभी भी यौन संबंध न रखना; 2) जानबूझकर किसी मनुष्य की हत्या न करना, न ही किसी अन्य व्यक्ति को हत्या का आदेश देना, चाहे वह अन्य मनुष्य हो या स्वयं; 3) किसी अन्य वस्तु को अपने अधिकार में लेने के इरादे से न लेना; 4) किसी भी आध्यात्मिक उपलब्धि, शक्ति या ज्ञान के स्तर का झूठा दावा न करना (यदि वह पागल, अभिमानी या गैर-गंभीर हो तो उसे छूट दी जाती है)।

एक भिक्षु की वास्तविक संपत्ति बहुत कम होती है और उसके आसपास की अन्य सभी वस्तुएं संघ से उधार ली गई मानी जाती हैं। उसके पास केवल आठ आवश्यक वस्तुएं होती हैं: दोहरी परत वाला बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र, अंतर्वस्त्र, भोजन इकट्ठा करने के लिए कटोरा, वस्त्रों की मरम्मत के लिए सुई और धागा, अंतर्वस्त्र के लिए कमरबंद, एक तरकश और पीने के पानी से छोटे जीवों को अलग करने के लिए पानी छानने वाला यंत्र, ताकि न तो उन्हें और न ही स्वयं भिक्षु को कोई हानि हो।

उसके कर्तव्य सरल हैं, पर उनका निर्वाह करना आसान नहीं है। उसे अपने गुरु, प्रबुद्ध पुरुष, द्वारा दी गई सभी शिक्षाओं का व्यापक ज्ञान और गहन समझ प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए; उसे शिक्षाओं का अभ्यास करना चाहिए, सद्‌गुणों का पालन करना चाहिए, एकाग्रता को मजबूत करना चाहिए और ज्ञान का विकास करना चाहिए; तब वह अपने अभ्यास के अनुसार बुद्ध की शिक्षाओं को साकार करेगा; और अंत में, अपनी क्षमताओं के अनुसार, वह अपने उदाहरण द्वारा, उपदेश द्वारा, पुस्तकें लिखकर आदि के माध्यम से शिक्षा दे सकता है।

संघ की शरण लेते समय, यह न सोचें कि सभी भिक्षुओं के समूह की शरण ले रहे हैं, क्योंकि यद्यपि उनमें से कुछ श्रेष्ठ हैं (परम ज्ञान की अग्नि द्वारा दोषों को भस्म करने के बाद प्राप्त होने वाली सच्ची श्रेष्ठता), फिर भी काफी संख्या में भिक्षु सांसारिक हैं और धम्म का अभ्यास कर रहे हैं। गृहस्थों में भी श्रेष्ठ भिक्षु हो सकते हैं। श्रेष्ठ भिक्षु और गृहस्थ मिलकर श्रेष्ठ संघ बनाते हैं, जो कि समस्त लोकों के बंधनों से मुक्त हो चुके और मुक्त करने वाले लोगों से बना होने के कारण वास्तव में एक सुरक्षित शरणस्थल है। गृहस्थों का इस अलौकिक श्रेष्ठता को प्राप्त करना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि यह शिक्षा उनके लिए भी है, यद्यपि इसके लिए उन्हें पूर्ण अभ्यास करना होगा।

संघ के इस रत्न ने भगवान बुद्ध के निकटवर्ती शिष्यों में से कई महान शिक्षकों को जाना है, जैसे कि पूज्य अञ्ञाकोण्डञ्ञ, सारिपुत्त, मोग्गल्लाना, महाकस्सपा, आनंद; और पूज्य भिक्षुणियां जैसे महाप्रजापति, खेमा, उप्पलवन्ना, धम्मदिन्ना; साथ ही परोपकारी अनाथपिंडिका जैसे गृहस्थ पुरुष और विशाखा जैसी प्रसिद्ध गृहस्थ महिलाएं; और प्रबुद्ध शिष्यों का यह महान सिलसिला युगों से लेकर आज तक जारी है।

यद्यपि कोई व्यक्ति बाह्य सुगठित संघ की शरण ले सकता है, परन्तु वास्तविक शरण तो भीतर ही खोजनी चाहिए। यह सुगठित गुणों (जैसे आस्था, ऊर्जा, सजगता, संयम और ज्ञान) का संग्रह है, जो संतुलित और सुसंस्कृत व्यक्ति को सुगठित होकर सुगठित संघ का सदस्य बनने की ओर अग्रसर करता है।

बौद्ध मान्यताओं और त्रिरत्न या त्रिविध शरण में उनके आधार का वर्णन करने के बाद, अब यह बताने का समय है कि बौद्ध प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षाओं को साकार करने के लिए क्या अभ्यास करते हैं, और इस प्रकार अपने स्वयं के अनुभव में उन सिद्धांतों को प्रमाणित करते हैं जिन पर उन्होंने प्रारंभ में विश्वास किया था।

यहां विचार किए जाने योग्य शिक्षाओं के विशाल समूह के लिए एक रूपरेखा के रूप में, शिक्षा का एक प्राचीन त्रिगुणात्मक सारांश उपयोग किया जाता है: सद्‌गुण, संयम और ज्ञान।

भगवान बुद्ध ने इन बातों को एक श्लोक में संक्षेप में व्यक्त किया है, जो सभी बौद्ध देशों में प्रसिद्ध है:

किसी भी प्रकार की बुराई न करना (सद्‌गुण को दर्शाता है)
लाभदायक कौशल को परिपूर्ण बनाना, (एकजुटता की ओर)
हृदय का शुद्धिकरण भी (ज्ञान की ओर)।
यह बुद्धों की शिक्षा है।

इन्हें तीन प्रशिक्षणों के रूप में जाना जाता है, लेकिन चूंकि अंतिम प्रशिक्षण, ज्ञान, सांसारिक और अलौकिक दोनों है, इसलिए धम्म के दायरे (हालांकि पूर्ण सार से बहुत दूर) को समाहित करने वाले चार खंड तैयार किए गए हैं: सांसारिक ज्ञान, सद्‌गुण, संयम और अलौकिक ज्ञान।

विशेष टिप्पणी : कुछ स्थानों पर यह भ्रामक धारणा प्रचलित है कि बौद्ध धर्म केवल भिक्षुओं के लिए है। यह सत्य से कोसों दूर है। जैसा कि हम यहाँ प्रदर्शित करने का प्रयास करेंगे, भिक्षुओं और गृहस्थों, सभी के लिए कुछ न कुछ है। यह सत्य है कि बुद्ध के अनेक उपदेश भिक्षुओं को संबोधित हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि गृहस्थ उनके विषयवस्तु का उपयोग नहीं कर सकते। बौद्ध शिक्षाओं को जीवन में कितना अपनाना है, यह कुछ हद तक परिवेश (कार्य, परिवार आदि) पर निर्भर करता है, जबकि गृहस्थों के मामले में यह अधिकतः व्यक्ति की तत्परता और दृढ़ संकल्प पर निर्भर करता है। भिक्षु को बुद्ध की शिक्षाओं को जीवन में उतारने के लिए अधिक अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है, क्योंकि गृहस्थों की तुलना में उनका ध्यान कम भटकता है। भिक्षुओं में भी योग्यता और रुचि स्वाभाविक रूप से भिन्न होती है। भिक्षु के लिए 'पुजारी' शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया जाना चाहिए , इसका सर्वोत्तम अनुवाद 'भिक्षु' ही है।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां भोजन के लिए भीख नहीं मांगते और न ही भिखारी होते हैं। भिक्षुओं के भोजन संग्रह के लिए एक सख्त आचार संहिता का पालन किया जाता है। उदाहरण के लिए, वे लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए किसी भी प्रकार का शोर नहीं मचा सकते—जैसे चिल्लाना या गाना। वे चुपचाप चलते हैं और ध्यानमग्न भिक्षुओं के मामले में, अपना मन ध्यान के विषय पर केंद्रित रखते हैं, और लोगों द्वारा दी जाने वाली हर चीज को स्वीकार करते हैं। भगवान बुद्ध ने एक बार एक गरीब बच्चे की भेंट को गंभीरता से स्वीकार किया, जिसके पास मुट्ठी भर धूल के अलावा देने के लिए कुछ नहीं था: बच्चे को महान गुरु पर विश्वास था। इससे यह सीख मिलती है कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि क्या दिया गया है, बल्कि यह है कि वह कैसे दिया गया है। भिक्षु को जो कुछ भी दिया जाता है, चाहे वह भोजन हो या मन-शरीर के संतुलन को बनाए रखने के लिए औषधि, उससे संतुष्ट रहना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 246,247,248

(धम्मपद 244 और 245) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 246, 247 और 248 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 249 और 250)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 246, 247 और 248 - पंच उपासक वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.3टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 246-248)
1.3.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 246, 247 और 248 - पंच उपासक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo panamatipatiti
musavadanca bhasati
loke adinnamadiyati
paradaranca gacchati.
सुरमेरायापानंका
yo naro anuyunjati
idheva meso lokasmim

mulam khanati attano.
एवम भो पुरिसा जनाहि
पापधम्मा असन्नता
ma tam lobho adhammo ca
ciram dukkhaya randhayum.

श्लोक 24 6 और 247: जो जीवन को नष्ट करता है, झूठ बोलता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है, व्यभिचार करता है और मादक पेय पीता है, वह इसी जीवन में अपनी ही जड़ें उखाड़ता है।

श्लोक 248 : हे मनुष्य, यह जान लो! अपने आप को संयमित न रखना बुराई है; लोभ और द्वेष को अपने ऊपर दीर्घकालीन कष्ट का कारण न बनने दो।

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (246), (247) और (248) कहे।
एक बार जेतवन मठ में पाँच गृहस्थ शिष्य उपवास कर रहे थे। उनमें से अधिकांश पाँच नैतिक नियमों (शील) में से केवल एक या दो का ही पालन कर रहे थे। प्रत्येक शिष्य, जो किसी विशेष नियम का पालन कर रहा था, दावा करता था कि वह नियम सबसे कठिन है और इस बात पर बहुत बहस हुई। अंत में, वे इस समस्या को लेकर बुद्ध के पास आए। बुद्ध ने उनसे कहा, "तुम्हें किसी भी नियम को आसान या महत्वहीन नहीं समझना चाहिए। प्रत्येक नियम का कड़ाई से पालन करना चाहिए। किसी भी नियम को हल्के में मत लो; किसी का भी पालन करना आसान नहीं है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 24 6 और 247: जो जीवन को नष्ट करता है, झूठ बोलता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है, व्यभिचार करता है और मादक पेय पीता है, वह इसी जीवन में अपनी ही जड़ें उखाड़ता है।

श्लोक 248 : हे मनुष्य, यह जान लो! अपने आप को संयमित न रखना बुराई है; लोभ और द्वेष को अपने ऊपर दीर्घकालीन कष्ट का कारण न बनने दो।

प्रवचन के अंत में पांच गृहस्थ शिष्यों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ गृहस्थ शिष्यों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
इन पाँच सौ गृहस्थ शिष्यों में से एक ने केवल जीव-जंतुओं का वध न करने का नियम अपनाया; दूसरे ने कोई और नियम, और इसी प्रकार अन्य शिष्य भी। एक दिन वे आपस में झगड़ पड़े, और प्रत्येक ने कहा, “मुझे जो करना है वह कठिन है; मुझे जिस नियम का पालन करना है वह कठिन है।” वे बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और सारा मामला उनके समक्ष रखा। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं, और फिर किसी भी नियम को कम महत्वपूर्ण बताए बिना कहा, “सभी नियम कठिन हैं।” ऐसा कहकर बुद्ध ने ये श्लोक कहे।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 246)
यो पणं अतिपतेति मुसावादं च भासति
लोके अदिनं आदियति , परदारं च गच्छति
यदि कोई व्यक्ति; पाणं अतिपातेति : जीवन लेता है; मुसावादं च भासति : झूठ बोलता है; लोके : इस संसार में; अदिन्नं [अदिन्न]: जो नहीं दिया गया; आदियति : लेता है; परदारं च गच्छति : व्यभिचार करता है
यदि इस संसार में कोई व्यक्ति जीवन का नाश करता है; झूठ बोलता है; बिना माँगे वस्तुएँ लेता है और व्यभिचार करता है, तो वह दूसरे पुरुष की पत्नी के पास जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 247)
यो नरो सुरामेरायपानं च अनुयुञ्जति एसो
इधा लोकस्मि एव अत्तानो मूलं खनाति
यो नारो : यदि कोई; सुरामेरायपानं च : नशीला पेय लेना; अनुयुञ्जति : भोगता है; एसो : वह; इधा लोकस्मि एव : यहीं इस दुनिया में; अट्टानो [अट्टाना]: अपना; मूलं [मूल]: जड़; खनाति : खोदता है
मादक पेय पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति स्वयं को इस संसार से ही उखाड़ देता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 248)
भो पुरिसा पापधम्म असंन्याता एवं जनाहि लोभो च
अधम्मो च तं सीरं दुक्खाय मा रंधायुं
भो पुरिसा : हे मनुष्य!; पापधम्मा : बुरा कर्म; असञ्जता : संयम से रहित; एवं : इस मार्ग को ; जानाहि : (तुम्हें) जानना चाहिए; लोभो [लोभ]: लोभ; अधम्मो च : और बुरे मार्ग; तं : (इन दोनों) को तुम; चिरं [चिर]: लंबे समय तक; दुःखाय : कष्ट में; मा रंधयुं [रंधयु]: तुम्हें अपने वश में न रखने दो
हे मनुष्य, बुरे कर्मों पर कोई रोक या नियंत्रण नहीं होता। इसलिए, तुम्हें यह समझना चाहिए कि लोभ और क्रोध जैसे बुरे कर्मों को अपने ऊपर लंबे समय तक कष्ट का कारण नहीं बनने देना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 246-248)
इन तीन श्लोकों में उन पाँच सिद्धांतों का वर्णन है जिनका पालन आम लोगों को प्रारंभ में करना चाहिए। निम्नलिखित में इन पाँचों सिद्धांतों का विश्लेषण प्रस्तुत है।
सही आचरण के नियमों में सबसे निचले स्तर पर पंचशील हैं , जो प्रशिक्षण के पाँच नियम हैं, बौद्ध नैतिकता के मूल सिद्धांत। ये गृहस्थ अनुयायी के लिए बुनियादी सिद्धांत हैं। वे इस प्रकार हैं:
(1) मैं किसी भी जीवित प्राणी को मारने से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता हूँ;
(2) मैं प्रशिक्षण के इस नियम का पालन करता हूँ कि जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है, उसे लेने से परहेज़ करूँ।
(3) मैं यौन दुराचार से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता/करती हूँ।
(4) मैं झूठ बोलने से परहेज करने के प्रशिक्षण उपदेश का पालन करता हूँ।
(5) मैं नशा और असावधानी पैदा करने वाले पेय से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता हूँ।
सर एडविन अर्नोल्ड ने अपनी पुस्तक 'द लाइट ऑफ एशिया' में पांच सिद्धांतों को इन शब्दों में व्यक्त किया है:
दया के नाम पर हत्या मत करो—वरना तुम हत्या कर दोगे
अपने क्षेत्र में सबसे घटिया चीज।
खुलकर दें और पाएं, लेकिन किसी से कुछ न लें।
लालच, बल या धोखाधड़ी से, जो उसका अपना है।
झूठी गवाही न दो, निंदा न करो और झूठ न बोलो;
सत्य आंतरिक पवित्रता की वाणी है।
मादक पदार्थों और शराब से दूर रहें, क्योंकि ये बुद्धि के दुरुपयोग को बढ़ावा देते हैं;
मन को शांत रखें, शरीर को स्वस्थ रखें, सोमा जूस की जरूरत नहीं।
अपने पड़ोसी की पत्नी को मत छुओ, न ही उसके साथ कोई अपराध करो।
देह संबंधी पाप गैरकानूनी और अनुचित हैं।
इन सीलाओं को अपने दैनिक जीवन में धारण करना और उन पर अमल करना आवश्यक है; ये केवल पाठ करने, दिखावटी तौर पर कहने या दूसरों पर लागू करने के लिए नहीं हैं।
जो उपदेशों को कंठस्थ जानता है, परन्तु उनका पालन नहीं करता, वह उस व्यक्ति के समान है जो दीपक जलाकर अपनी आँखें बंद कर लेता है।
बौद्ध धर्म में गृहस्थ अनुयायी से वह सब अपेक्षा नहीं की जाती जो संघ के सदस्य से की जाती है। परन्तु चाहे भिक्षु हो या गृहस्थ, नैतिक आदतें आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। जो व्यक्ति तीन शरण लेकर बौद्ध बनता है, उससे कम से कम पाँच मूलभूत नियमों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है, जो इस मार्ग का आरंभिक बिंदु है। ये नियम किसी विशेष दिन या स्थान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जीवन भर, हर जगह, हर समय इनका पालन करना चाहिए। यह भी संभव है कि प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) प्राप्त कर चुके लोगों को छोड़कर बाकी सभी इनका उल्लंघन कर सकते हैं। फिर भी, जब कोई अपराध हो जाए तो अपनी कमजोरियों और कमियों के लिए

पश्चाताप करना व्यर्थ है, क्योंकि पश्चाताप से न तो स्वयं को और न ही दूसरों को कोई लाभ होगा। यह केवल मन को विचलित करेगा। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध धर्म के अनुसार, कुकर्म को 'पाप' नहीं माना जाता, क्योंकि यह शब्द बुद्ध की शिक्षाओं से परे है। बुद्ध के नियमों का उल्लंघन जैसी कोई बात नहीं है, क्योंकि वे न तो नियम निर्माता थे और न ही ऐसे मध्यस्थ जो बुरे कर्मों को दंडित और अच्छे कर्मों को पुरस्कृत करते हों। इसलिए, पाप के लिए पश्चाताप, शोक या अफसोस जैसी कोई बात नहीं है। कर्म करने वाला अपने कर्मों के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है; उसे उनके परिणाम भुगतने पड़ते हैं, और यह उसकी जिम्मेदारी है कि वह अच्छा कर्म करे या पापी बने। यह भी स्पष्ट है कि सभी कर्म, चाहे अच्छे हों या बुरे, फलदायी नहीं होते। अच्छे कर्म बुरे कर्मों को दबा सकते हैं और इसके विपरीत भी हो सकता है।

जैसा कि सूत्र से स्पष्ट है, इसमें कोई नियम या आदेश नहीं हैं। आप स्वेच्छा से प्रशिक्षण के नियमों का पालन करने का वचन देते हैं, इसमें कोई बाध्यता या दबाव नहीं है; आप स्वयं अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी हैं। यदि आप अपने वचन का उल्लंघन करते हैं, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि आप दृढ़ निश्चय करें कि आप इसे नहीं दोहराएंगे, बल्कि अपनी कमजोरी को सुधारें और पुनः चूक न करने का भरसक प्रयास करें। एक सजग व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि इन नियमों का पालन करने का एकमात्र उद्देश्य स्वयं को प्रशिक्षित करना, अपनी भावनाओं, बुरी प्रवृत्तियों और गलत कार्यों पर नियंत्रण रखना है, और इस प्रकार शुद्धि और सुख का मार्ग प्रशस्त करना, समाज को सुरक्षा प्रदान करना और सौहार्द को बढ़ावा देना है। गहन विश्लेषण से हम पाते हैं कि इन नियमों का पालन ही समाज में सभी बुराइयों के मूल कारणों, जैसे कि कामवासना (लोभ), घृणा और भ्रम को कम करने का एकमात्र उपाय है। उदाहरण के लिए, पहले नियम का उल्लंघन घृणा और क्रूरता के विचारों के बिना नहीं किया जा सकता, तीसरे नियम के मामले में यह विशेष रूप से वासना के कारण होता है, दूसरा और चौथा नियम लोभ और घृणा दोनों के कारण हो सकता है, और पांचवा नियम लोभ के कारण हो सकता है, जबकि भ्रम इन सभी पांच नियमों के पीछे है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मादक पेय का सेवन भ्रम पैदा करता है। यह स्पष्ट सोच को बाधित करता है, तर्क शक्ति को कम करता है और लापरवाही, मोह और अन्य कई बुराइयों को जन्म देता है। एक शराबी अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होता और कोई भी अपराध कर सकता है। इसलिए, इस एक सिद्धांत का उल्लंघन व्यक्ति को अन्य सभी सिद्धांतों को तोड़ने के लिए प्रेरित कर सकता है।

बुद्ध कहते हैं:

इस बुराई की जड़ को त्याग दो
जिससे पागलपन की स्थिति उत्पन्न होती है।
मानसिक शोषण करना।

अब कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि सीमित मात्रा में शराब पीना हानिरहित है, लेकिन एक कहावत है:

पहले एक आदमी पेय पीता है,
फिर पेय एक घूंट लेता है,
फिर शराब आदमी को अपने वश में कर लेती है।

इसलिए बुद्ध की इस चेतावनी को हमेशा याद रखना बेहतर है: "सचेत, संयमी और शांत रहो।" हमें मादक पदार्थों और शराब से दूर रहना चाहिए जो जीवन के सत्यों और मुक्ति के मार्ग दोनों से हमें अंधा कर देते हैं।

ध्यान रखें कि तीसरे और पाँचवें उपदेश में घनिष्ठ संबंध है, वे एक दूसरे का समर्थन करते हैं और दोनों आनंद (रसासाद) प्रदान करते हैं। पाली धर्मग्रंथों में कभी-कभी पाँचवें उपदेश को छोड़ दिया जाता है और उसे तीसरे उपदेश में शामिल कर लिया जाता है, जैसा कि अष्टांगिक मार्ग में वर्णित नैतिक संहिता के मामले में है। फिर दस उपदेश या प्रशिक्षण के विषय हैं जो नौसिखियों (सामनेरों) के लिए हैं। ये पहले से उल्लिखित उपदेशों में पाँच और जोड़कर बनाए गए हैं।

शील : नैतिक शुद्धता। इन श्लोकों में जिन पाँच भिक्षुओं का उल्लेख किया गया है, वे शील — नैतिक शुद्धता — की ओर ले जाने वाले अनुशासन का अभ्यास कर रहे थे ।

मानसिक शुद्धि के साधन के रूप में ध्यान के लिए नैतिक शुद्धता (शील-विशुद्धि) का होना आवश्यक है, जो इसका मूलभूत आधार है। बौद्ध शिक्षा में नैतिकता का आंतरिक मूल्य इस तथ्य में निहित है कि यह मन को उसकी निम्न प्रवृत्तियों से मुक्त करती है और उसे सच्चे ज्ञान के आंतरिक प्रकाश की प्राप्ति के लिए तैयार करती है। मन, जो अपनी सामान्य, निम्न अवस्था में चंचल होता है और निम्न प्रवृत्तियों के प्रत्येक सांसारिक आवेग और वासना की मांगों के आगे झुकने का आदी होता है, उसे नियंत्रित करना कठिन होता है जब उच्च प्रेरणा पहली बार एक अजनबी के रूप में प्रकट होती है जिसका कोई अधिकार नहीं होता। चूंकि ध्यान सामान्य चेतना को उच्च अवस्था में रूपांतरित करने का साधन है, इसलिए यह आवश्यक है कि निम्न चेतना पर कुछ पूर्व प्रशिक्षण और अनुशासन लागू किया जाए, जो उसकी सामान्य गतिविधियों को तब तक नियंत्रित और सीमित करे जब तक कि वह उच्च मन के मार्गदर्शन के प्रति पूर्णतः समर्पित न हो जाए। इसके लिए मन को पहले विश्वास, जागरूकता, ऊर्जा और ज्ञान जैसे उच्च नैतिक गुणों से सुसज्जित होना चाहिए

और उन्हें ऐसी स्थिति में स्थापित करना चाहिए कि वे अपने शत्रुओं द्वारा कुचले न जा सकें। इसलिए बौद्ध प्रशिक्षण की सभी योजनाओं में हम पाते हैं कि नैतिकता (शील) का प्रशिक्षण आगे की प्रगति के लिए एक आवश्यक प्रारंभिक चरण है। अतः शिष्य को सर्वप्रथम शील के इस प्रारंभिक प्रशिक्षण में पूर्णतः निपुणता प्राप्त कर लेनी चाहिए, क्योंकि यही उच्च धार्मिक संस्कृति का आरंभ है। संयुत्त निकाय के शब्दों में : उच्च अवस्थाओं का आरंभ क्या है? पूर्ण पवित्रता का शील।

ध्यान में शील का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह पश्चाताप और मानसिक अस्थिरता का प्रतिकार है, जो मन की एकाग्रता के लिए हानिकारक हैं। इसी संदर्भ में कहा गया है: आनंद, नैतिक गुणों का लाभ पश्चाताप का अभाव है। इसके अतिरिक्त, आकंकेय सूत्र में हम पढ़ते हैं :

हे भिक्षु, यदि कोई भिक्षु उदात्त, अलौकिक, चेतना की उच्च अवस्थाओं, सुखी जीवन के लिए सहायक ध्यान प्राप्त करना चाहता है, तो उसे नैतिक सद्‌गुणों का पालन करना चाहिए... यदि वह शांति... मानसिक शक्तियों... उच्च ज्ञान... आसवों का पूर्ण निवारण चाहता है, तो उसे नैतिक सद्‌गुणों का पालन करना चाहिए।

शील , बौद्ध धर्म का एक मूलभूत लक्षण होने के नाते, उन सभी अच्छे गुणों को समाहित करता है जो इसकी नैतिक शिक्षाओं की श्रेणी में आते हैं। कड़ाई से कहें तो, इसमें प्रथम तो अनैतिक आचरण से परहेज द्वारा निर्मित चेतना और द्वितीय, नैतिक शुद्धता के लिए निर्धारित सकारात्मक नियमों के पालन से संबंधित विचार शामिल हैं।

इसकी दो प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

समाधान , मन और विचारों को एक साथ सामंजस्य में दृढ़ता से स्थापित करना, और

उपधारणा , सभी अच्छे गुणों को सहारा देने और उन्हें एक साथ बनाए रखने की शक्ति।

शील के दो पहलू , नकारात्मक और सकारात्मक, धार्मिक और नैतिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। नकारात्मक पहलू पापों से परहेज (जो कि वरित्त हैं) पर जोर देता है , और सकारात्मक पहलू पुण्य संचय करने और अपने कर्तव्य (चरित) को पूरा करने की आवश्यकता पर बल देता है । उपदेशों से संबंधित प्रत्येक सूत्र में ये दो पहलू समाहित हैं। उदाहरण के लिए, (i) वह हत्या से परहेज करता है, लाठी और तलवार त्याग देता है; (ii) दया और करुणा से परिपूर्ण होकर वह सभी जीवित प्राणियों के कल्याण और सुख के लिए जीवन व्यतीत करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 249,250

———————————————————————

(धम्मपद 246, 247 और 248) <<<< पिछला || धम्मपद 249 और 250 || अगला >>>> (धम्मपद 251)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 249 और 250 - तिस्सादहारा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 249 और 250 - तिस्सादहारा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Dadati ve yathasaddham
यथापसदनम जानो
tattha yo ca manku bhavati
paresam panabhojane
na so diva va rattim va
समाधिमधिगच्छति.

Yassa cetam samucchinnam
mulaghaccam samuhatam
sa ve diva va rattim va
समाधिमधिगच्छति.

श्लोक 249 : लोग अपने विश्वास और भक्ति के अनुसार दान करते हैं; जो दूसरों को भोजन और पेय प्राप्त करते देखकर अप्रसन्न होता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं कर सकता।

श्लोक 250 : जो व्यक्ति इस अप्रसन्नता की भावना को काट कर जड़ से उखाड़ देता है, वह दिन हो या रात, निश्चित रूप से एकाग्रता (समाधि) प्राप्त कर लेगा।

तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने युवा भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (249) और (250) का उच्चारण किया।
युवा भिक्षु तिस्सा को दूसरों के दान और अच्छे कार्यों की निंदा करने की बुरी आदत थी। वह अनाथपिंडिका और विशाखा जैसे प्रसिद्ध दानदाताओं द्वारा दिए गए दान की भी आलोचना करता था। इसके अलावा, वह अपने रिश्तेदारों के धनवान होने का घमंड करता था और कहता था कि वे एक ऐसे कुएं के समान हैं जहाँ कोई भी पानी लेने आ सकता है। उसकी इस तरह की शेखी सुनकर अन्य भिक्षु बहुत संशय में पड़ गए; इसलिए उन्होंने सच्चाई जानने का फैसला किया।
कुछ युवा भिक्षु उस गाँव में गए जहाँ से वह आया था और पूछताछ की। उन्हें पता चला कि तिस्सा के सभी रिश्तेदार गरीब थे और इतने समय से तिस्सा केवल व्यर्थ का घमंड कर रहा था। जब बुद्ध को इस बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरों को दान और भेंट स्वीकार करने से अप्रसन्न होता है, वह कभी भी मग और फल प्राप्त नहीं कर सकता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 249 : लोग अपने विश्वास और भक्ति के अनुसार दान करते हैं; जो दूसरों को भोजन और पेय प्राप्त करते देखकर अप्रसन्न होता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं कर सकता।

श्लोक 250 : जो व्यक्ति इस अप्रसन्नता की भावना को काट कर जड़ से उखाड़ देता है, वह दिन हो या रात, निश्चित रूप से एकाग्रता (समाधि) प्राप्त कर लेगा।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने युवा भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
नवोदित भिक्षु तिस्सा के बारे में कहा जाता है कि वे गृहस्थ अनाथपिंडिका, उनकी शिष्या विशाखा और यहाँ तक कि अनेक श्रेष्ठ शिष्यों के दान में भी दोष निकालते रहते थे; यहाँ तक कि वे अतुलनीय दानों में भी कमी निकालते थे। जब भी उन्हें उनके भोजनालय में ठंडा भोजन मिलता, वे शिकायत करते कि वह ठंडा है; जब भी उन्हें गर्म भोजन मिलता, वे शिकायत करते कि वह गर्म है। जब भी वे थोड़ा दान देते, वे उन्हें कोसते हुए कहते, “ये लोग इतना कम क्यों देते हैं?” और जब भी वे भरपूर दान देते, वे उन्हें भी कोसते हुए कहते, “शायद उनके घर में इसे रखने की जगह नहीं थी; या फिर, “उन्हें भिक्षुओं को उतना ही दान देना चाहिए जितना उनके जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हो; इतना दलिया और उबले हुए चावल तो बिलकुल व्यर्थ हैं।” लेकिन अपने रिश्तेदारों के बारे में बात करते हुए वह कहते थे, “ओह, हमारे रिश्तेदारों का घर तो चारों दिशाओं से आने वाले सभी भिक्षुओं के लिए एक बेहतरीन सराय है!” इस प्रकार वह अपने रिश्तेदारों की प्रशंसा करते थे।
दरअसल, तिस्सा एक द्वारपाल का पुत्र था। कुछ बढ़ईयों के साथ देश की यात्रा करते हुए, वह सावत्थी पहुँचकर संसार त्याग कर भिक्षु बन गया। जब भिक्षुओं ने देखा कि वह मनुष्यों के दान और अन्य अच्छे कार्यों में दोष निकाल रहा है, तो उन्होंने सोचा, “चलो इसके बारे में सच्चाई का पता लगाते हैं।” इसलिए उन्होंने उससे पूछा, “भाई, तुम्हारे रिश्तेदार कहाँ रहते हैं?” तिस्सा ने उत्तर दिया, “अमुक गाँव में।” भिक्षुओं ने कुछ नौसिखियों को वहाँ जाँच करने के लिए भेजा। नौसिखिए वहाँ गए और गाँव वालों से, जिन्होंने उन्हें विश्राम गृह में बैठने और खाने की व्यवस्था की, पूछा, “इस गाँव से तिस्सा नाम का एक नौसिखिया आया है जिसने संसार त्याग कर लिया है; उसके

रिश्तेदार कौन हैं?" गाँव वालों ने सोचा, "इस गाँव में ऐसा कोई युवक नहीं है जिसने किसी सज्जन का घर छोड़कर संसार त्याग किया हो; ये नौसिखिए क्या कह रहे हैं?" तब उन्होंने नौसिखियों से कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, हमने एक द्वारपाल के पुत्र के बारे में सुना है जो बढ़ईयों के एक समूह के साथ यात्रा करके संसार से संन्यास ले लिया था; निःसंदेह वही वह नौसिखिया है जिसकी आप चर्चा कर रहे हैं।" जब युवा भिक्षुओं को पता चला कि तिस्सा का वहाँ कोई महत्वपूर्ण रिश्तेदार नहीं है, तो वे सावत्थी लौट आए और भिक्षुओं को अपनी जानकारी देते हुए कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, तिस्सा बिना किसी उचित कारण के इधर-उधर बकवास करता रहता है।" भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब वह निंदा और व्यर्थ की शेखी बघार रहा है; पिछले जन्म में भी वह शेखीबाज़ था।" बुद्ध ने आगे कहा, "भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति इस बात से नाराज़ होता है कि दूसरे उसे थोड़ा या ज़्यादा देते हैं, या मोटा या उत्तम भोजन देते हैं, या जब वह दूसरों को देता है और उसे कुछ नहीं देते, तो ऐसा व्यक्ति समाधि, अंतर्दृष्टि, मार्ग और फल प्राप्त नहीं कर सकता।" इस प्रकार, बुद्ध ने इन श्लोकों का उच्चारण करके धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 249)

जानो वे यथा सद्धं यथा पसादनं ददाति
यो परेसं तत्थ पानभोजन मंकु भवति
सो वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं न अधिगच्छति

जानो : लोग; वे : निःसंदेह; यथा सद्धं [सद्ध]: अपने विश्वास के अनुसार; यथा पसादनं [पसादन]: अपनी इच्छा के अनुसार; ददाति : देना; यो : यदि कोई; परेसं [परेष]: अन्य; तत्त पानभोजने : भोजन और पेय के योग्य; मंकु भवति: ईर्ष्या करता है; सो : वह; वे : निश्चित रूप से; दिवा वा रत्तिं वा : दिन हो या रात; समाधिं [समाधि]: मन की शांति; न अधिगच्छति : नहीं होगा

लोग दान देने में उतना ही विश्वास रखते हैं जितना उन्हें प्राप्तकर्ता पर होता है। वे अपनी प्रसन्नता के अनुसार दान देते हैं। यदि कोई व्यक्ति भोजन और पेय प्राप्त करने पर ईर्ष्या करता है, तो उसे कभी भी मन की शांति प्राप्त नहीं होगी—दिन हो या रात।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 250)

यस्सा एतं समुच्चिन्नं च मूलघक्कं समुहत् ,
सा वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति

यस्सा : यदि किसी का; एताम् : यह (ईर्ष्या); समुच्चिन्नं [समुच्चिन्ना]: पूरी तरह से उखाड़ देता है; सीए : भी; मूलाघक्कम [मूलाघक्का]: पूरी तरह से मिटा देता है; समुहताम् [समुहता]: इसे नष्ट कर देता है; सा : वह; दिवा वे रत्तिं वा : दिन और रात; समाधिम् [समाधि]: शांति; अधिगच्छति : प्राप्त होगा

यदि कोई इस ईर्ष्या को जड़ से उखाड़ फेंके और पूरी तरह से नष्ट कर दे, तो वह निःसंदेह दिन-रात शांति प्राप्त कर लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 249-250)

समाधि : मन की शांति। सही एकाग्रता (समाधि) अष्टांगिक मार्ग का एक चरण है। मन को एक ही वस्तु पर स्थिर रखना (चित्तकग्गता , जिसका शाब्दिक अर्थ है मन की एकाग्रता): यही एकाग्रता है। व्यापक अर्थ में, 'सही एकाग्रता' (सम्मासमाधि) वह मानसिक एकाग्रता है जो चेतना की प्रत्येक स्वस्थ अवस्था (कुशल-चित्त) में विद्यमान होती है, और इसलिए इसमें कम से कम सही विचार (दूसरा चरण), सही प्रयास (छठा चरण) और सही जागरूकता (सातवां चरण) शामिल होते हैं। गलत एकाग्रता अस्वस्थ चेतना की अवस्थाओं में विद्यमान होती है, और इसलिए यह केवल इंद्रियजन्य अवस्था में ही संभव है, उच्चतर स्तर पर नहीं। सूत्रों में, समाधि शब्द का प्रयोग केवल सम्मा-समाधि या सही एकाग्रता के लिए किया जाता है।

ध्यान के चार मूल सिद्धांत (सातवाँ चरण): ये एकाग्रता के विषय हैं। चार महान प्रयास (छठा चरण): ये एकाग्रता के लिए आवश्यक तत्व हैं।

इन चीजों का अभ्यास, विकास और संवर्धन करना ही एकाग्रता का विकास (भावना) है। सही एकाग्रता (सम्मासमाधि) के विकास के दो स्तर हैं: (1) आस-पास की एकाग्रता (उपचार-समाधि), जो प्रथम समाधि के निकट पहुँचती है, यद्यपि उसे प्राप्त नहीं करती; (2) प्राप्ति एकाग्रता (अप्पनासमाधि), जो चारों समाधियों (झान) में विद्यमान एकाग्रता है । ये समाधियाँ पाँचों इंद्रियों की पहुँच से परे मानसिक अवस्थाएँ हैं, जो केवल एकांत में और एकाग्रता के निरंतर अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती हैं। इन अवस्थाओं में पाँचों इंद्रियों की सभी क्रियाएँ रुक जाती हैं। उस समय कोई दृश्य या श्रव्य अनुभूति नहीं होती, कोई शारीरिक संवेदना नहीं होती। परन्तु, यद्यपि सभी बाहरी इंद्रिय अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं, फिर भी मन सक्रिय, पूर्णतः सचेत और पूरी तरह से जागृत रहता है।

इन समाधियों की प्राप्ति, पवित्रता के चार अलौकिक मार्गों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य नहीं है; न ही निकट एकाग्रता और न ही प्राप्ति एकाग्रता, स्वयं में चार अलौकिक मार्गों में प्रवेश प्रदान करने की शक्ति रखती हैं; अतः, वास्तव में इनमें किसी को हमेशा के लिए बुरे कर्मों से मुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है। चार अलौकिक मार्गों की प्राप्ति केवल अनित्यता (अनिच्चता), दुख (दुक्खता) और निराकारता (अनत्तता) की गहन अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के क्षण में ही संभव है । यह अंतर्दृष्टि भी केवल निकट एकाग्रता के दौरान ही प्राप्त की जा सकती है, प्राप्ति एकाग्रता के दौरान नहीं।

जिसने समाधि अवस्थाओं को प्राप्त किए बिना ही चारों अलौकिक मार्गों में से किसी एक को जान लिया हो, उसे सुक्क-विपस्सक या शुद्ध-विपस्सनायनिक कहा जाता है , अर्थात् जिसने केवल अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को अपना वाहन बनाया हो। वहीं, जिसने समाधि अवस्थाओं का अभ्यास करने के बाद अलौकिक मार्गों में से किसी एक को प्राप्त कर लिया हो, उसे समाथायनिक या शांति (समाथा) को अपना वाहन (यान) बनाने वाला कहा जाता है।

मन की शांति भावना ध्यान से प्राप्त होती है । समाथा भावना , एकाग्रता के साथ मन की शांति का विकास, तीन लाभों से युक्त है: यह वर्तमान जीवन में सुख, अनुकूल पुनर्जन्म और मानसिक विकारों से मुक्ति प्रदान करती है, जो अंतर्दृष्टि की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। समाथा में मन एक शांत, निर्मल तालाब के समान हो जाता है, जो पूरी तरह से अशांति और हलचल से मुक्त होता है और अपनी सतह पर चीजों के वास्तविक स्वरूप को प्रतिबिंबित करने के लिए तैयार होता है, उनका वह पहलू जो लालसा की बेचैनी के कारण सामान्य ज्ञान से छिपा रहता है। यह वह शांति और पूर्णता है जो बुद्ध के चेहरे पर चित्रित होती है, जिससे उनकी छवियों को एक ऐसा महत्व प्राप्त होता है जो उन लोगों को भी प्रभावित करता है जो इसका अर्थ नहीं जानते। बुद्ध की ऐसी छवि स्वयं ध्यान का एक उपयुक्त विषय हो सकती है, और वास्तव में, अधिकांश बौद्ध सहज रूप से इसी का उपयोग करते हैं। शांत बुद्ध छवि के दर्शन मात्र से सांसारिक आशाओं और भय से व्याकुल मन शांत हो सकता है। यह निर्वाण का निश्चित और प्रत्यक्ष आश्वासन है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 251

———————————————————————

(धम्मपद 249 और 250) <<<< पिछला|| धम्मपद251 ||अगला >>>> (धम्मपद252)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 251 - पंच उपासक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 251 - पंच उपासक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Natthi ragasamo aggi
natthi dosasamo gaho
नत्थी मोहसमम जलम
natthi tanhaisama nadi(1)

———————————————————————

श्लोक 251 : जुनून जैसी कोई आग नहीं, दुर्भावना जैसी कोई पकड़ नहीं, अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

———————————————————————

1. नात्थि तन्हासमा नाड़ी: तृप्ति जैसी कोई नदी नहीं है। इसका कारण यह है कि यद्यपि नदी कभी-कभी भर सकती है, तृप्ति कभी भी पूरी तरह से भर नहीं सकती, अर्थात् तृप्त नहीं हो सकती।

———————————————————————

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (251) कहा।

एक बार जेतवन मठ में बुद्ध जब धम्म का प्रवचन दे रहे थे, तब पाँच शिष्य उपस्थित थे। उनमें से एक बैठे-बैठे सो रहा था, दूसरा ज़मीन पर उंगलियों से रेखाएँ खींच रहा था, तीसरा एक पेड़ को हिलाने की कोशिश कर रहा था, चौथा आकाश की ओर देख रहा था। पाँचवाँ शिष्य ही एकमात्र ऐसा था जो आदरपूर्वक और ध्यानपूर्वक बुद्ध का प्रवचन सुन रहा था। बुद्ध के पास बैठे थेरा आनंद, जो उन्हें पंखा कर रहे थे, ने पाँचों शिष्यों के इस भिन्न व्यवहार को देखा और बुद्ध से कहा, "आदरणीय गुरुदेव! जब आप आकाश से बरसती वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों की तरह धम्म का प्रवचन दे रहे थे, तब इन पाँचों में से केवल एक ही ध्यानपूर्वक सुन रहा था।" तब थेरा आनंद ने अन्य चार शिष्यों के भिन्न व्यवहार का वर्णन बुद्ध से किया और उनसे पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं।

तब बुद्ध ने थेरा आनंद को समझाया, "आनंद, ये लोग अपनी पुरानी आदतों से छुटकारा नहीं पा सके। अपने पिछले जन्मों में, पहला जन्म एक सर्प के रूप में हुआ था; जैसे एक सर्प कुंडली मारकर सो जाता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी धम्म सुनते हुए सो गया। जो व्यक्ति हाथ से धरती को कुरेद रहा था वह केंचुआ था, जो पेड़ को हिला रहा था वह बंदर था, जो आकाश की ओर देख रहा था वह खगोलशास्त्री था और जो ध्यान से धम्म सुन रहा था वह एक विद्वान ज्योतिषी था। इस संदर्भ में, आनंद, तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि धम्म को समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और ऐसे बहुत से लोग हैं जो कही गई बातों को समझ नहीं पाते।"

तब थेरा आनंद ने बुद्ध से पूछा, "आदरणीय गुरुदेव! वे कौन सी बातें हैं जो लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, राग, द्वेष और मोह, ये तीन बातें लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं। वासना मनुष्य को जला देती है; वासना जैसी कोई अग्नि नहीं है। जब आकाश में सात सूर्य उदय होंगे तो संसार जलकर राख हो सकता है, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। वासना सदा जलती रहती है और कभी रुकती नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 251 : जुनून जैसी कोई आग नहीं, दुर्भावना जैसी कोई पकड़ नहीं, अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

प्रवचन के अंत में, जो ध्यानपूर्वक सुन रहा था, उसे सोतापत्ति फल प्राप्त हुआ।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, ये पाँच पुरुष धम्म का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से मठ गए और बुद्ध को प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्धों के मन में कभी ऐसा विचार नहीं आता, "यह पुरुष क्षत्रिय है, यह पुरुष ब्राह्मण है, यह पुरुष धनी है, यह पुरुष गरीब है; मैं इस पुरुष को इस प्रकार धम्म का उपदेश दूँगा जिससे उसका उत्थान हो; परन्तु दूसरे पुरुष के मामले में ऐसा नहीं करूँगा।" बुद्ध चाहे किसी भी विषय पर धम्म का उपदेश दें, वे धम्म के प्रति श्रद्धा को सर्वोपरि रखते हैं और धम्म का उपदेश ऐसे देते हैं मानो वे आकाश से दिव्य नदी को अवतरित कर रहे हों।

लेकिन जब बुद्ध ने अपने चारों ओर बैठे पाँचों पुरुषों को इस प्रकार धम्म का उपदेश दिया, तो उनमें से एक बैठे-बैठे सो रहा था, दूसरा ज़मीन पर उंगलियों से रेखाएँ खींच रहा था, तीसरा एक पेड़ को हिलाने की कोशिश कर रहा था, चौथा आकाश की ओर देख रहा था। पाँचवाँ ही एकमात्र ऐसा था जो आदरपूर्वक और ध्यान से बुद्ध की बातें सुन रहा था। पूज्य आनंद, जो बुद्ध के पास बैठे उन्हें पंखा कर रहे थे, ने पाँचों शिष्यों के इस भिन्न व्यवहार को देखकर बुद्ध से कहा, "पूज्यवर! जब आप आकाश से गिरती हुई बड़ी-बड़ी बूंदों की तरह धम्म का उपदेश दे रहे थे, तब इन पाँचों में से केवल एक ही ध्यान से सुन रहा था।" तब पूज्य आनंद ने अन्य चार के भिन्न व्यवहार का वर्णन बुद्ध को किया और उनसे पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं।

तब बुद्ध ने पूज्य आनंद को समझाया, "आनंद, ये लोग अपनी पुरानी आदतों से छुटकारा नहीं पा सके। अपने पिछले जन्मों में, पहला जन्म एक सर्प के रूप में हुआ था; जैसे एक सर्प कुंडली मारकर सो जाता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी धम्म सुनते हुए सो गया। जो व्यक्ति हाथ से धरती को कुरेद रहा था वह केंचुआ था, जो पेड़ को हिला रहा था वह बंदर था, जो आकाश की ओर देख रहा था वह खगोलशास्त्री था और जो ध्यानपूर्वक धम्म सुन रहा था वह एक विद्वान ज्योतिषी था। इस संदर्भ में, आनंद, आपको यह याद रखना चाहिए कि धम्म को समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और ऐसे बहुत से लोग हैं जो कही गई बातों का पालन नहीं कर पाते।"

तब पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा, "पूज्यवर! वे कौन सी बातें हैं जो लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, वे कामवासना, घृणा और मोह के कारण ऐसा नहीं कर पाते। क्योंकि कामवासना की आग के समान कोई अग्नि नहीं है, जो जीवित प्राणियों को भस्म कर देती है और राख का एक अंश भी नहीं छोड़ती। यह सच है कि युग का अंत करने वाली विश्व प्रलय पूरी दुनिया को जलाकर राख कर देती है, लेकिन यह अग्नि केवल सात सूर्यों के प्रकट होने पर ही भड़कती है और यह अग्नि केवल विशेष समय और ऋतुओं में ही जलती है। परन्तु कामवासना की अग्नि तो ऐसी है जैसे कोई समय न हो जब कामवासना की अग्नि न जलती हो।

इसलिए मैं कहता हूँ कि कामवासना की अग्नि के समान कोई अग्नि नहीं, घृणा के समान कोई बंधन नहीं, मोह के समान कोई फंदा नहीं और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।" प्रवचन के अंत में, जो ध्यानपूर्वक सुन रहा था, उसने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 251)

रागसामो अग्गि नत्थि , दोसासामो गहो नत्थि ,
मोहसामं जालं नत्थि , तन्हासामा नदी नत्थि

रागसमो [नत्थि रागसम]: वासना के बराबर; अग्गी : आग; नत्थि : नहीं है; दोसासामो [दोसासामा]: घृणा के बराबर; गाहो : एक पकड़; नत्थि : नहीं है; मोहसामं [मोहासामा]: अज्ञानता के बराबर; जालम् [जाल]: एक जाल; नत्थि : नहीं है; तन्हासामा : इच्छा के तुलनीय; नदी : एक नदी; नत्थी : नहीं है

जुनून जैसी कोई आग नहीं। नफरत जैसी कोई पकड़ नहीं। अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं। लालसा जैसी कोई बाढ़ नहीं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 251)

रागसमो , दोससमो , मोहसमं , तन्हासमा : मनुष्य के मन के सभी प्रमुख दोषों की तुलना मनुष्य को प्रभावित करने वाली विभिन्न आपदाओं से की गई है। कामवासना (रागो) की तुलना अग्नि से की गई है। घृणा (दोस) को जकड़न के रूप में समझा गया है। अज्ञान (मोह) की तुलना जाल से की गई है। लालसा (तन्हा) की तुलना प्रचंड बाढ़ से की गई है: इससे लोगों को मानसिक दोषों को भौतिक रूप में समझने में सहायता मिलती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 252

(धम्मपद251) <<<< पिछला || धम्मपद252 || अगला >>>> (धम्मपद253)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 252 - मेंडकासेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 252 - मेंडकासेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सुदस्सम वज्जमन्नेसम
attano pana duddsam
paresam hi so vajjani
opunati yatha bhusam
attano pana chadeti
कलिम्वा कितवा सथो(1)

श्लोक 252 : दूसरों की कमियाँ देखना आसान है, परन्तु अपनी कमियाँ देखना कठिन। मनुष्य दूसरों की कमियों को हवा में भूसे की तरह फैलाता है, परन्तु अपनी कमियों को एक चतुर शिकारी की तरह छुपाता है।

---

1. सथो: एक धोखेबाज, एक जुआरी। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है एक धूर्त शिकारी।

धनी मेंडका की कहानी

बददिया नगर के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने प्रसिद्ध धनी व्यक्ति मेंडका और उसके परिवार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (252) कहा।

एक बार, अंग और उत्तर क्षेत्रों की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि मेंडक, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, उनकी बहू, उनकी पोती और उनके सेवक के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। इन छह लोगों को सोतापत्ति फल प्राप्त करते देख, बुद्ध बद्दिया नगर गए।

मेंडका एक अत्यंत धनी व्यक्ति थे। कहा जाता है कि उन्हें अपने घर के पिछवाड़े में बकरियों की आदमकद सोने की कई मूर्तियाँ मिलीं। इसी कारण वे धनी मेंडका (बकरी) के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह भी कहा जाता है कि विपस्सी बुद्ध के समय में उन्होंने विपस्सी बुद्ध के लिए एक मठ और उपदेशक के लिए चबूतरे सहित एक सभा भवन दान किया था। इन भवनों के निर्माण के बाद उन्होंने विपस्सी बुद्ध और भिक्षुओं को चार महीने तक भिक्षा दी। फिर, अपने एक और पिछले जन्म में, जब वे बनारसी में एक धनी व्यक्ति थे, तब पूरे क्षेत्र में अकाल पड़ा था। एक दिन, परिवार के सदस्यों के लिए पर्याप्त भोजन पकाया ही था कि एक पच्चेकबुद्ध भिक्षा मांगने के लिए दरवाजे पर आ खड़े हुए। उन्होंने वहीं सारा भोजन दान कर दिया। लेकिन उनकी अटूट आस्था और उदारता के कारण, चावल का बर्तन चमत्कारिक रूप से फिर से भर गया; उनके अन्न भंडार भी भर गए।

बुद्ध के बद्दिया आने की खबर सुनकर मेंदका और उनका परिवार उन्हें प्रणाम करने गए। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद मेंदका, उनकी पत्नी चंदपदुम, पुत्र दानंचया, बहू सुमनदेवी, पोती विशाखा और सेवक पुन्ना ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। तब मेंदका ने बुद्ध को बताया कि रास्ते में कुछ तपस्वियों ने बुद्ध की निंदा की थी और उन्हें बुद्ध से मिलने आने से रोकने की कोशिश की थी। तब बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी कमियों को न देखें और दूसरों की कमियों और खामियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताएं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 252 : दूसरों की कमियाँ देखना आसान है, परन्तु अपनी कमियाँ देखना कठिन। मनुष्य दूसरों की कमियों को हवा में भूसे की तरह फैलाता है, परन्तु अपनी कमियों को एक चतुर शिकारी की तरह छुपाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धनी मेन्दक की कहानी

भद्दिया नगर के निकट निवास करते समय, बुद्ध ने प्रसिद्ध धनी व्यक्ति मेण्डक और उनके परिवार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, अंग और उत्तर क्षेत्रों की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि मेन्दक, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, उनकी बहू, उनकी पोती और उनके सेवक के लिए सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। इन छह लोगों को सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करते देख, बुद्ध भद्दिया नगर गए।

मेन्दक एक अत्यंत धनी व्यक्ति थे। कहा जाता है कि उन्हें अपने घर के पिछवाड़े में बकरियों की आदमकद सोने की कई मूर्तियाँ मिलीं। इसी कारण वे मेन्दक (बकरी) धनी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह भी कहा जाता है कि विपश्य बुद्ध के समय में उन्होंने विपश्य बुद्ध के लिए एक मठ और उपदेशक के लिए चबूतरे सहित एक सभा भवन दान किया था। इन भवनों के निर्माण के बाद उन्होंने विपश्य बुद्ध और भिक्षुओं को चार महीने तक भिक्षा दी। फिर, अपने एक और पिछले जन्म में, जब वे बारानासी में एक धनी व्यक्ति थे, तब पूरे क्षेत्र में अकाल पड़ा था। एक दिन उन्होंने परिवार के सदस्यों के लिए पर्याप्त भोजन पकाया ही था कि एक पच्चेकबुद्ध भिक्षा मांगने के लिए दरवाजे पर आ खड़े हुए। उन्होंने वहीं सारा भोजन दान कर दिया। लेकिन उनकी अटूट आस्था और उदारता के कारण बाद में चावल का बर्तन चमत्कारिक रूप से फिर से भर गया; उनके अन्न भंडार भी भर गए।

मेन्दक और उनका परिवार यह सुनकर भद्दिया आ रहे हैं कि बुद्ध उन्हें प्रणाम करने जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें कई विधर्मी मिले जिन्होंने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, तुम जो आत्माओं की गतिविधि में विश्वास करते हो, उस ऋषि गौतम के पास क्यों जाते हो जो ऐसा नहीं करते?" इस प्रकार विधर्मी उन्हें उनके उद्देश्य से विमुख करना चाहते थे। लेकिन उन्होंने उनकी बातों पर ध्यान न देते हुए बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। तब बुद्ध ने उन्हें क्रमबद्ध तरीके से धम्म का उपदेश दिया।

बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, मेन्दक, उनकी पत्नी चंदपदुम, उनके पुत्र धनंजय, उनकी बहू सुमनादेवी, उनकी पोती विशाखा और सेवक पुन्ण ने सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त किया। मेन्दक ने बुद्ध को बताया कि कैसे रास्ते में कुछ तपस्वियों ने बुद्ध की निंदा की और उन्हें बुद्ध से मिलने आने से रोकने की कोशिश की। तब बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी कमियों को न देखें और दूसरों की कमियों और खामियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताएं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 252)

अण्नेसं◌ं वज्जं सुदस्सं अत्तनो पण दुद्दसं◌ं

हाय सो परेसं वज्जनि भूषण यथा ओपुनति
कलिं कितावा साथो इव अत्तनो पण चदेति

anñesaṃ [anñesa]: अन्य'; वज्जं [वज्जा]: दोष; सुदस्सां [सुदस्सा]: देखने में आसान; अतनो पना : लेकिन अपनी ही (गलती); दुद्दसां [दुद्दसा]: देखना कठिन है; नमस्ते : तो यह है; इसलिए वह; परेसां [परेसा]: अन्य'; वज्जानि : दोष; भूसां यथा : भूसी की तरह; ओपुनति : प्रमुखता में विन्नोज़; कलिः [काली]: अपना शरीर; कितावा : पत्तियों और शाखाओं को छिपाने के साथ; सत्थो इव : पक्षी-शिकारी की तरह; अतनो पाना : स्वयं के दोष; छादेति : छुपाता है

दूसरों की कमियां स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। लेकिन अपनी कमियां देखना मुश्किल होता है। व्यक्ति दूसरों की कमियों को भूसे की तरह छांटकर प्रमुखता देता है। वह अपनी कमियों को उसी तरह छुपाता है जैसे कोई शिकारी अपने आप को पत्तों और टहनियों से छिपा लेता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 252)

कितावा : छलावरण। यहाँ एक पक्षी शिकारी (सथो) की छवि का उपयोग किया गया है जो पक्षियों से अपनी उपस्थिति छिपाने के लिए खुद को टहनियों और शाखाओं से ढक लेता है। ठीक उसी तरह, दुष्ट व्यक्ति भी दूसरों को धोखा देने के लिए अपने इरादों को छुपाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 253

(धम्मपद 252) <<<< पिछला || धम्मपद 253 || अगला >>>> (धम्मपद 254 और 255)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 253 - उज्जहनसन्नित्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 253 - उज्जहनसन्नित्थेरा वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

परवज्जनुपस्सिसा
niccam ujjhanasannino
asava tassa vaddhanti
अरा सो असवक्खया.

श्लोक 253 : जो व्यक्ति लगातार दूसरों के दोष देखता है और हमेशा उनकी निंदा करता है, उसमें नैतिक आसव (नैतिक मादक पदार्थ) बढ़ जाते हैं; वह नैतिक मादक पदार्थों के निरोध से बहुत दूर है (अर्थात, वह अर्हतत्व की प्राप्ति से बहुत दूर है)।

थेरा उज्जनासननी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा उज्जनसन्नी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (253) कहा।

थेरा उज्जनासन्नि हमेशा दूसरों की कमियां निकालते और उनकी बुराई करते रहते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनके बारे में बुद्ध को बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, यदि कोई किसी दूसरे की कमियां इसलिए निकालता है ताकि उसे अच्छे मार्ग की शिक्षा दे सके, तो यह कोई बुराई नहीं है और इसलिए निंदनीय नहीं है। परन्तु, यदि कोई केवल द्वेष और दुर्भावना से ही दूसरों की कमियां निकालता और

उनकी बुराई करता रहता है, तो वह एकाग्रता और ध्यान (ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाएगा। वह धम्म को नहीं समझ पाएगा और उसमें नैतिक (नशे वाले आसव) बढ़ेंगे।"

———————————————————————

श्लोक 253 : जो व्यक्ति लगातार दूसरों के दोष देखता है और हमेशा उनकी निंदा करता है, उसमें नैतिक आसव (नैतिक मादक पदार्थ) बढ़ जाते हैं; वह नैतिक मादक पदार्थों के निरोध से बहुत दूर है (अर्थात, वह अर्हतत्व की प्राप्ति से बहुत दूर है)।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय उज्जनासन्नि की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य उज्जनासन्नि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय उज्जनासंझी हमेशा दूसरों की कमियां निकालते और उनकी बुराई करते रहते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनकी शिकायत बुद्ध से की। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, यदि कोई किसी दूसरे की कमियां निकालकर उसे अच्छे मार्ग सिखाए, तो यह कोई बुराई नहीं है और इसलिए निंदनीय नहीं है। परन्तु यदि कोई केवल द्वेष और दुर्भावना से ही दूसरों की कमियां निकालता रहे और उनकी बुराई करता रहे, तो वह एकाग्रता और ध्यान (ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाएगा। वह धम्म को नहीं समझ पाएगा और उसमें नैतिक व्यसन (आसव) बढ़ जाएंगे।"

तब बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 253)

परवज्जनुपास्सिस्सा निक्कं उज्झानसैनिनो

तस्स आसव वन्धन्ति सो आसवक्खया अरा

परवज्जानुपस्सिस : जो दूसरों की कमियों को देखने की आदत रखते हैं; निच्चं [निच्च]: निरंतर; उज्जनासंञ्ञो [उज्जनासंञ्ञा]: दूसरों का उपहास करते हैं; तस्स : उसका; आसवा : कलंकित करता है; वड्ढन्ति : बढ़ता है; इसलिए : वह; आसवक्खया : दोषरहित अवस्था से; आरा : दूर है

कुछ लोग दूसरों की कमियों को देखने की आदत रखते हैं। वे लगातार दूसरों की निंदा करते रहते हैं। उनके अंदर के दोष पनपते रहते हैं और वे दोषरहितता से बहुत दूर रहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 253)

उज्जनासाञ्ञो : दूसरों को विभाजित करने की प्रवृत्ति रखने वाला। कहानी में पूज्य व्यक्ति का नाम दूसरों में दोष ढूंढने की उनकी व्यक्तिगत कमजोरी से लिया गया है, जिसका उद्देश्य केवल उन्हें नष्ट करना है।

परवज्जानुपस्सिस : वे लोग जिन्हें दूसरों की कमियां निकालने की आदत होती है। यह अधिकांश मनुष्यों की एक कमी है। यह सांसारिक जीवन का लगभग स्वाभाविक परिणाम है। रोजमर्रा के जीवन में, इस आदत के कारण बहुत दुख होता है। यह आदत कुछ लोगों के बातूनी स्वभाव के कारण उत्पन्न होती है। जब वे बिना किसी झिझक के बोलते हैं, तो दूसरों की कमियां निकालना भी स्वाभाविक हो जाता है।

"ज्यादा बात करना खतरे का स्रोत है।"

मौन रहने से दुर्भाग्य से बचा जा सकता है।

पिंजरे में बंद बातूनी तोता बंद है।

जबकि जो पक्षी बोल नहीं सकते वे स्वतंत्र रूप से उड़ते हैं।

(तिब्बती योग)

हम कितनी बार सोच-समझकर बोलते हैं? कितनी बार हमें पता होता है कि हम क्या कहने वाले हैं, इससे पहले कि शब्द हमारे मुँह से निकल जाएँ? और कभी-कभी हम खुद भी अपने कहे पर उतना ही हैरान हो जाते हैं जितना कि हम सामने वाले को हैरान और चौंका देते हैं। और अक्सर हम कहने के बाद सोचते हैं कि काश हमने ऐसा न कहा होता। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है, क्योंकि एक बार निकले हुए शब्द कभी वापस नहीं लिए जा सकते, चाहे हम उनके लिए माफी मांग लें और उन्हें वापस ले लें। क्योंकि वे व्यक्त हो चुके हैं और हमेशा के लिए वहीं रह जाते हैं। हमारे स्वर यंत्रों द्वारा उत्पन्न ध्वनि कंपन दुनिया का हिस्सा बन जाते हैं, दुनिया का एक अंग बन जाते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि यही बात विचारों पर भी लागू होती है; कि एक बार बना हुआ विचार, चाहे अच्छा हो या बुरा, कभी भी अस्तित्व से गायब नहीं होता। यह एक बहुत ही गंभीर विचार है जब हम याद करते हैं कि हम क्रोध, नापसंदगी, तिरस्कार या निर्दयता में कितनी आसानी से शब्द बोल देते हैं, और ये शब्द सहज प्रतिक्रियाएँ होती हैं। कोई घटना घटित होती है जो हमें परेशान करती है और इससे पहले कि हम जागरूक हों, कुछ गुस्से भरे शब्द हमारे मुँह से निकल जाते हैं। और अगला चरण, ज़ाहिर है, अपनी बातों पर ध्यान देने के बाद, अपने विचारों पर ध्यान देना है, क्योंकि बोलने से पहले सोचना ज़रूरी है, हालाँकि आम तौर पर विचार इतने तेज़ होते हैं कि

शब्दों में घुलमिल जाते हैं। बड़ों से अक्सर सुनने को मिलता है कि "बोलने से पहले सोचो!" (हालाँकि वे खुद ऐसा कम ही करते हैं) - इसका मतलब है कि हमें अपने जवाबों की गति धीमी करनी चाहिए ताकि हम अपने विचारों को बोलने से पहले जान सकें; तब हमें पता चलेगा कि हम क्या कह रहे हैं। अगर आप अपनी बातों पर ध्यान देने की आदत डाल लें और उनके बारे में सोचें, तो आप जल्द ही समझ जाएँगे कि किस तरह की बातें सबसे तेज़ी से और सबसे हिंसक रूप से निकलती हैं - वे बातें जो दूसरों को सबसे ज़्यादा दुख पहुँचाती हैं। जब आप किसी बात पर तर्क करते हैं तो आपको सोचना पड़ता है और इसलिए धीरे-धीरे बोलना पड़ता है, लेकिन जब आपकी भावनाएँ उत्तेजित होती हैं, जब आपको गुस्सा, नापसंदगी, दया, दुख या नाराज़गी महसूस होती है, तो आपकी भावनाएँ (जिनका केंद्र मस्तिष्क का मध्य भाग है) जीभ को निर्देश देती हैं और तेज़, हिंसक शब्द आपके रोकने से पहले ही बाहर निकल आते हैं। विचार नियंत्रित करने का अर्थ है शब्द नियंत्रित करना, और शब्द नियंत्रित करने का अर्थ है क्रिया नियंत्रित करना, क्योंकि क्रोधित शब्द अक्सर मारपीट में परिणत होते हैं, और शब्दों और क्रियाओं पर नियंत्रण का अर्थ है कि आप लड़ाई के लिए उकसाए नहीं जा सकते और शायद चाकू निकालकर किसी को गंभीर चोट नहीं पहुंचा सकते। वास्तव में, खुद को उकसाने से इनकार करके आप किसी पर जो प्रभाव डालते हैं, उसे देखना काफी मजेदार होता है। वे और अधिक क्रोधित होते जाते हैं क्योंकि वे आपको क्रोधित करने की कोशिश करते हैं और सफल नहीं हो पाते। फिर आप देख सकते हैं कि लोग अपना आपा खोते हुए कितने मूर्ख दिखते हैं, और आपको पता चल जाएगा कि आप अपना आपा खोते हुए कितने मूर्ख दिखेंगे। इसलिए याद रखें, आपकी जीभ वास्तव में आपकी सेवक है और आप उसके स्वामी हैं, और इसलिए उसे वही कहना चाहिए जो आप चाहते हैं, न कि अपनी मनमानी करनी चाहिए जैसा कि वह अक्सर करती है। क्योंकि दुर्भाग्य से, हममें से अधिकांश के साथ, हमारी जीभ ही हमारी स्वामी है और हम उसके गुलाम हैं।और हमें वह सुनना होगा जो यह हमारे नाम पर बोलता है, और हम इसे हिलने से रोकने में असमर्थ प्रतीत होते हैं।

“केवल बहुत बोलने से कोई बुद्धिमान नहीं बन जाता, न ही अधिक बोलने से कोई धर्म का ज्ञाता हो जाता है।” (बुद्ध)

कभी-कभी बहस के ज़रिए सच्चाई का पता लगाना बहुत मुश्किल होता है। वाक्पटु व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश कर सकता है और छिपा सकता है, और आसानी से दूसरे के दृष्टिकोण को नकार सकता है। विशेष रूप से, तीखी बहसें कभी भी अच्छे परिणाम नहीं देतीं। जो व्यक्ति वास्तविक तथ्यों को जानना चाहता है, उसे शांत मन से सोचना चाहिए और दूसरों से शांतिपूर्वक और विनम्रता से चर्चा करनी चाहिए। सच्चाई कभी भी तीखी बहसों या दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने से सामने नहीं आती; क्योंकि हर कोई अपनी प्रतिष्ठा बचाने की कोशिश करता है, भले ही वह जानता हो कि वह गलत है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 254,255

(धम्मपद 253) <<<< पिछला ll धम्मपद 254 और 255 ll अगला >>>> (धम्मपद 256 और 257)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 254 और 255 - सुभद्दापरिबजका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 254 और 255 - सुभद्दापरिबजका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अकासेवा पदम नत्थी
samano natthi bahire
papancabhirata paja
nippapanca tathagata.

अकासेवा पदम नत्थी
samano natthi bahire
sankhara sassatta natthi
natthi buddhanaminjitam.

श्लोक 254 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। सभी प्राणी उन बंधनों (अर्थात व्याकुलता, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) में आनंदित होते हैं जो संसार को लंबा खींचते हैं; सभी बुद्ध इन बंधनों से मुक्त हैं।

श्लोक 255 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। कोई भी बद्ध वस्तु स्थायी नहीं है; सभी बुद्ध (लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से) अविचलित हैं।

घुमंतू तपस्वी सुभद्दा की कहानी
इस पुस्तक के श्लोक (2 54) और (255) बुद्ध द्वारा कुसिनारा के पास मल्ला राजकुमारों के साल वन में, बुद्ध के परिनिर्वाण (मृत्यु) से ठीक पहले, सुभद्दा, जो एक भ्रमणशील तपस्वी (परिब्बजक) थे, द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में कहे गए थे।

सुभद्दा नामक घुमंतू तपस्वी कुसिनारा में ठहरे हुए थे, जब उन्हें पता चला कि गौतम बुद्ध का परिनिर्वाण उस रात के अंतिम पहर में होगा। सुभद्दा के मन में तीन प्रश्न थे जो उन्हें लंबे समय से परेशान कर रहे थे। उन्होंने ये प्रश्न अन्य धार्मिक नेताओं, जैसे पुराण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबला, पकुधा कच्चयन, संचय बेलत्थपुत्त और निगंथ नटपुत्त से पूछे थे, लेकिन उनके उत्तरों से वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने अभी तक गौतम बुद्ध से ये प्रश्न नहीं पूछे थे, और उन्हें लगा कि केवल बुद्ध ही उनके प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। इसलिए, वे जल्दी से साल वन की ओर चल पड़े, लेकिन पूज्य आनंद ने उन्हें बुद्ध से मिलने नहीं दिया, क्योंकि बुद्ध उस समय बहुत दुर्बल थे। बुद्ध ने उनकी बातचीत सुन ली और सुभद्दा से मिलने के लिए सहमत हो गए। सुभद्दा ने तीन प्रश्न पूछे। वे ये हैं: (1) क्या आकाश में कोई पदचिह्न हैं? (2) क्या बुद्ध की शिक्षाओं से बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) हैं? और (3) क्या कोई ऐसी वस्तु (संस्कार) है जो स्थायी है? उपरोक्त सभी प्रश्नों का बुद्ध का उत्तर नकारात्मक था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 254 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। सभी प्राणी उन बंधनों (अर्थात व्याकुलता, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) में आनंदित होते हैं जो संसार को लंबा खींचते हैं; सभी बुद्ध इन बंधनों से मुक्त हैं।

श्लोक 255 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। कोई भी बद्ध वस्तु स्थायी नहीं है; सभी बुद्ध (लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से) अविचलित हैं।

प्रवचन के अंत में सुभद्दा ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया और उनकी इच्छा के अनुसार बुद्ध ने उन्हें भिक्षु संघ में शामिल कर लिया। सुभद्दा बुद्ध के जीवनकाल में भिक्षु बनने वाले अंतिम व्यक्ति थे। अंततः सुभद्दा ने अर्हत पद प्राप्त किया।
अठारहवें अध्याय का अंत: अशुद्धियाँ

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
घुमंतू तपस्वी सुभद्दा की कहानी
कुसिनारा नगर के उपवत्तना में मल्लाओं के साल वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने परिनिर्वाण (महान मृत्यु) से ठीक पहले सुभद्दा नामक विचरण करने वाले तपस्वी द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, बहुत समय पहले, जब सुभद्दा के छोटे भाई ने एक विशेष फसल के प्रथम फल नौ बार दान किए, तो सुभद्दा की स्वयं दान करने की कोई इच्छा नहीं थी और उन्होंने मना कर दिया, परन्तु अंत में उन्होंने दान कर ही दिया। इसी कारण वे प्रथम और द्वितीय दोनों ही ज्ञानोदय काल में बुद्ध के दर्शन नहीं कर पाए। परन्तु अंतिम ज्ञानोदय काल में, जब बुद्ध का महामृत्यु का समय आ गया, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे तीन बातों पर संदेह है और मैंने वृद्ध भिक्षुओं से अपने संदेह दूर करने का अनुरोध किया है। परन्तु क्योंकि

मैंने भिक्षु गौतम को नौसिखिया समझा है, इसलिए मैंने उनसे कभी नहीं पूछा। परन्तु अब उनका महामृत्यु का समय आ गया है, और यदि मैं अब उनसे नहीं पूछूंगा, तो मुझे परसों पछताना पड़ेगा।" अतः वे बुद्ध के पास गए।

आदरणीय आनंद ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। परन्तु बुद्ध ने उन्हें पास आने की अनुमति देते हुए आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, सुभद्दा को दूर मत रखिए; उन्हें अपना प्रश्न मुझसे पूछने दीजिए।" अतः सुभद्दा परदे के भीतर प्रवेश कर पलंग के चरणों में बैठ गए और बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे, "हे भिक्षु, क्या वायु में कोई मार्ग होता है? क्या कोई परग्रही भिक्षु कहला सकता है? क्या स्कंध शाश्वत हैं?" इस पर बुद्ध ने उन्हें बताया कि इन बातों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है और इन श्लोकों में धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 254)

आकाशे पदं नत्थि , बहिरे समणो नत्थि ,

पजा पापञ्चाभिरता , तथागत निप्पञ्चा

आकाश में; पदं नत्थि : पदचिह्न दिखाई नहीं देते; बाहर : बाहर; समणो [समण]: भिक्षु; नत्थि : नहीं पाए जाते; पजा : आम जनता; पापंचाभिराता : सांसारिक आकर्षणों में लीन हैं; तथागत : बुद्ध; निप्पपंचा : सांसारिक चिंताओं से पूरी तरह मुक्त हैं।

आकाश में कोई पदचिह्न दिखाई नहीं देते। ठीक उसी प्रकार, बौद्ध धर्म से बाहर, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे समण (भिक्षु) के रूप में पहचाना जा सके। आम जनता सांसारिक बाधाओं से घिरी रहती है। लेकिन बुद्ध इन बाधाओं से अप्रभावित रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 255)

आकाशे पदं नत्थि बहिरे समणो नत्थि ,

सस्साता संखारा नत्थि बुद्धानं इंजितं नत्थि

आकाशे : आकाश में; पदं नत्थि : पदचिह्न नहीं देखे जाते; बहिरे : बाहर; समानो [समाना]: भिक्षुओं; नत्थि : नहीं मिलते; सस्साता : अनंत काल; संखरा : घटक वस्तु का; नत्थि : नहीं है; बुद्धानं [बुद्धाना]: बुद्ध के लिए; इंजितां [इंजिता]: उत्तेजना या चिंता; नत्थी : नहीं है

आकाश में कोई पदचिह्न दिखाई नहीं देते। उसी प्रकार, बौद्ध धर्म के बाहर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे समणा-भिक्षु कहा जा सके। कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। बुद्ध को कोई व्याकुलता या चिंता नहीं होती।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 254-255)

तपस्वी सुभद्दा । बुद्ध के अंतिम व्यक्तिगत शिष्य तपस्वी सुभद्दा थे। इसी कारण बौद्ध धर्म के इतिहास में उनका विशेष स्थान है। बुद्ध के परिनिर्वाण के समय, सुभद्दा नामक एक भ्रमणशील तपस्वी कुसिनारा में निवास कर रहे थे। उन्होंने यह समाचार सुना कि तपस्वी गौतम रात के अंतिम पहर में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। उन्होंने सोचा, "मैंने बड़े-बड़े गुरुओं और उनके गुरुओं, यानी भ्रमणशील तपस्वियों को यह कहते सुना है कि इस संसार में परमप्रधान, पूर्णतः प्रबुद्ध अरहत बहुत कम ही प्रकट होते हैं। आज रात अंतिम पहर में तपस्वी गौतम परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ है, और मुझे तपस्वी गौतम पर पूरा भरोसा है। वास्तव में, तपस्वी गौतम इस सिद्धांत को सिखाने में सक्षम हैं जिससे मेरा संदेह दूर हो जाएगा।"

समणो नत्थि बहिरे : बुद्ध की व्यवस्था (सासन) के बाहर।

यहां 'समण' से तात्पर्य उन संतों से है जिन्होंने चारों मार्ग और चारों फल प्राप्त कर लिए हैं। वे आर्य संत हैं जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

ऐसी कोई एक बाधा नहीं है जैसे कि लालसा, अहंकार आदि, जिनके माध्यम से बुद्ध बद्ध वस्तुओं को शाश्वत मानते हैं।

तब सुभद्दा, जो एक विचरणशील तपस्वी थे, मल्ल वंश के उपवत्तना साल वन में गए जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे, और उनके पास पहुँचकर उन्होंने कहा, "मैंने वयस्क और वृद्ध गुरुओं और उनके गुरुओं, विचरणशील तपस्वियों को यह कहते सुना है कि इस संसार में परम ज्ञानी और पूर्णतः प्रबुद्ध अरहत बहुत कम ही प्रकट होते हैं। आज रात के अंतिम पहर में तपस्वी गौतम परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है, और मुझे तपस्वी गौतम पर पूरा विश्वास है। वास्तव में, तपस्वी गौतम इस सिद्धांत को सिखाने में सक्षम हैं जिससे मेरी शंकाएँ दूर हो जाएँगी। हे आनंद, क्या मुझे तपस्वी गौतम के दर्शन का अवसर मिलेगा?"

"बस करो, मित्र सुभद्दा, बुद्ध को परेशान मत करो। बुद्ध थक चुके हैं," पूज्य आनंद ने कहा।

सुभद्दा ने दूसरी और तीसरी बार अपना अनुरोध दोहराया, और पूज्य आनंद ने दूसरी और तीसरी बार उसी तरह उत्तर दिया।

बुद्ध ने पूज्य आनंद और सुभद्दा के बीच की बातचीत सुनी और आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, सुभद्दा को मत रोको। हे आनंद, सुभद्दा को सिद्ध पुरुष के दर्शन करने दो। सुभद्दा मुझसे जो कुछ भी पूछेगा, वह ज्ञान की इच्छा से पूछेगा, न कि मुझे परेशान करने के लिए। और मैं जो कुछ भी उत्तर दूंगा, वह उसे सहजता से समझ लेगा।"

तब पूज्य आनंद ने सुभद्दा का परिचय बुद्ध से कराया। सुभद्दा ने बुद्ध से सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर कहा, "हे गौतम, ये तपस्वी और पुरोहित हैं, जो समूहों और सभाओं के नेता हैं, संप्रदायों के प्रमुख हैं और प्रसिद्ध, विख्यात धार्मिक शिक्षक हैं,

जिन्हें जनमानस में अच्छे पुरुष के रूप में सम्मान दिया जाता है, जैसे कि पूरण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चायन, संजय बेल्लत्थिपुत्त, निगंठ नाथपुत्त — क्या इन सभी ने, जैसा कि वे स्वयं दावा करते हैं, सत्य को पूर्णतः समझा है या नहीं, या उनमें से कुछ ने समझा है और कुछ ने नहीं?"

"हे सुभद्दा! चिंता मत करो कि सभी ने इसे समझा है या नहीं। मैं तुम्हें यह सिद्धांत सिखाऊंगा। सुनो और इसे अच्छी तरह याद रखो। मैं बोलता हूँ।" "ऐसा ही हो, प्रभु!" सुभद्दा ने उत्तर दिया।

बुद्ध ने इस प्रकार कहा: "जिस भी युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान नहीं है, उसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ समण भी नहीं पाया जाता। हे सुभद्दा, जिस भी युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान है, उसमें प्रथम समण, द्वितीय समण, तृतीय समण और चतुर्थ समण भी पाए जाते हैं। हे सुभद्दा, इस युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान है।"

"यहाँ प्रथम समण, द्वितीय समण, तृतीय समण और चतुर्थ समण पाए जाते हैं। अन्य विदेशी संप्रदायों में समण नहीं हैं। हे सुभद्दा, यदि शिष्य सही मार्ग पर चलें, तो संसार अरहतों से रहित नहीं होगा। जब मैं सद्‌गुण की खोज में निकला, तब मेरी आयु उनतीस वर्ष थी। अब दीक्षा लिए हुए 15 वर्ष बीत चुके हैं। इस संप्रदाय के बाहर एक भी ऐसा तपस्वी नहीं है जो इस सिद्ध सिद्धांत का आंशिक रूप से भी पालन करता हो।"

तब सुभद्दा ने बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे प्रभु, यह उत्तम है! हे प्रभु, मानो कोई मनुष्य किसी उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, किसी छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, किसी भटके हुए व्यक्ति को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि जिसे आँखें हों वह देख सकें, ठीक उसी प्रकार बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। हे प्रभु, मैं बुद्ध, सिद्धांत और संघ की शरण लेता/लेती हूँ। मुझे बुद्ध की उपस्थिति में ही निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त हो!"

"हे सुभद्दा," बुद्ध ने कहा, "जो कोई भी अन्य धर्मों में पहले से ही समर्पित होते हुए भी निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह चार महीने की परीक्षा में रहता है। चार महीने के अंत में, शिष्यों की स्वीकृति से, उसे दीक्षा दी जाती है और भिक्षु का दर्जा दिया जाता है। फिर भी, समझ के आधार पर, मैं इस मामले में अपवाद बनाता हूँ।"

तब सुभद्दा ने कहा, "हे प्रभु, यदि अन्य मतों के प्रति समर्पित वे लोग जो इस युग में लघु एवं उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, चार माह की परिवीक्षा अवधि में रहें, तो मैं भी परिवीक्षा अवधि में रहूँगा; और उस अवधि की समाप्ति के बाद, यदि शिष्य स्वीकृति दें, तो मुझे संघ में शामिल कर लिया जाए और भिक्षु का दर्जा प्रदान किया जाए।"

तब बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, तुम सुभद्दा को दीक्षा दे सकते हो।" "जी हाँ, प्रभु!" आनंद ने उत्तर दिया।

और भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा ने पूज्य आनंद से कहा, "हे पूज्य आनंद, यह आपके लिए लाभ की बात है! यह वास्तव में आपके लिए बहुत बड़ा लाभ है, क्योंकि आपको स्वयं बुद्ध की उपस्थिति में शिष्यत्व का अभिषेक प्राप्त हुआ है।" सुभद्दा ने बुद्ध की उपस्थिति में निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त की।

उच्च दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद, पूज्य सुभद्दा ने एकांतवास में, मनुष्यों से दूर, परिश्रमी, ऊर्जावान और दृढ़ निश्चयी होकर, इसी जीवन में अपने अंतर्ज्ञान से उस अतुलनीय पवित्र जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर लिया और उस अवस्था में निवास किया जिसके लिए कुलीन परिवारों के पुत्र गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, और इस जीवन के बाद कोई दूसरा जीवन नहीं है।

अध्याय 19. धम्मत्थावग्ग: न्यायप्रिय (256-272)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 256,257

(धम्मपद 254 और 255) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 256 और 257 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 258)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 256 और 257 - विनिच्चयामहत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 256 और 257 - विनिच्चयामहत्त वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena hoti dhammattho
yenattham sahasa naye
yo ca attham anatthanca
ubbo niccheyya pandito.
Asahasena dhammena
samena nayati pare
धम्मस्सा गुट्टो मेधावी
"dhammattho" ti pavuccati.

श्लोक 256 : यदि कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से किसी मामले का निर्णय करता है तो वह न्यायसंगत नहीं है; बुद्धिमान व्यक्ति को उचित और अनुचित दोनों बातों पर विचार करने के बाद निर्णय लेना चाहिए।

श्लोक 257 : जो बुद्धिमान व्यक्ति मनमाने ढंग से नहीं बल्कि कानून के अनुसार निर्णय लेता है, वही कानून का रक्षक है; उसे 'धर्ममत्थो' कहा जाना चाहिए।

न्यायाधीश की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (256) और (257) का उच्चारण कुछ भ्रष्ट न्यायाधीशों के संदर्भ में किया।

एक दिन कुछ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद लौट रहे थे तभी बारिश होने लगी और वे एक अदालत में शरण लेने चले गए। वहाँ उन्हें पता चला कि कुछ न्यायाधीश रिश्वत लेकर मनमाने ढंग से फैसले सुना रहे हैं। उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई और बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं! यदि कोई व्यक्ति स्नेह या धन के लालच में फैसले सुनाता है, तो उसे 'न्यायी' या 'कानून का पालन करने वाला न्यायाधीश' नहीं कहा जा सकता। यदि कोई व्यक्ति साक्ष्यों का बुद्धिमानी से मूल्यांकन करके निष्पक्ष रूप से फैसला सुनाता है, तो उसे 'न्यायी' या 'कानून का पालन करने वाला न्यायाधीश' कहा जा सकता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 256 : यदि कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से किसी मामले का निर्णय करता है तो वह न्यायसंगत नहीं है; बुद्धिमान व्यक्ति को उचित और अनुचित दोनों बातों पर विचार करने के बाद निर्णय लेना चाहिए।

श्लोक 257 : जो बुद्धिमान व्यक्ति मनमाने ढंग से नहीं बल्कि कानून के अनुसार निर्णय लेता है, वही कानून का रक्षक है; उसे 'कानून का पालन करने वाला (धम्मत्थो)' कहा जाना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

न्यायाधीश की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भ्रष्ट न्यायाधीशों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक दिन भिक्षुओं ने सावत्थी के उत्तरी द्वार पर स्थित एक बस्ती में भिक्षाटन किया और मठ की तीर्थयात्रा से लौटते समय नगर के मध्य से होकर गुजरे। उसी क्षण एक बादल छा गया और वर्षा होने लगी। सामने स्थित न्याय कक्ष में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि न्यायाधीश रिश्वत ले रहे थे और वैध मालिकों की संपत्ति छीन रहे थे। यह देखकर उन्होंने सोचा, “अरे, ये लोग तो अधर्मी हैं! अब तक तो हम इन्हें न्यायपूर्ण निर्णय देने वाला ही मानते थे।” वर्षा थमने पर वे मठ गए, बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठकर उन्हें घटना का विवरण दिया। बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो बुरी इच्छाओं के वश में होकर हिंसा से किसी मामले का निर्णय करते हैं, वे उचित रूप से

न्यायाधीश नहीं कहलाते; केवल वे ही उचित रूप से न्यायाधीश कहलाते हैं जो अन्याय की तह तक जाकर बिना हिंसा के किए गए अन्याय के अनुसार न्याय करते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 256)

येन अत्थं सहसा नये तेन धम्मथो न होति

पण्डितो यो च अत्थं च अनत्थं च उभो निश्चेया

येना : यदि किसी कारणवश; अत्थं [अत्थ]: अर्थ; सहसा नये : गलत निर्णय दिया गया; तेना : उसके द्वारा; धम्मठो [धम्मठ]: न्याय पर आधारित; न होति : वह नहीं है; पंडितो [पंडित]: बुद्धिमान व्यक्ति; यो च : अपने मार्ग में; अत्थं च : न्याय; अनत्थं च : और अन्याय; उभो : ये दोनों; निच्चेय : निर्णय करता है

यदि किसी कारणवश कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से सही और गलत का निर्णय करे, तो वह निर्णय न्यायसंगत नहीं होता। परन्तु, बुद्धिमान व्यक्ति बिना किसी पूर्वाग्रह के, विवेकपूर्ण ढंग से सही और गलत का निर्णय करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 257)

असाहसेना धम्मेना समेना परे नयति धम्मस्सा

गुत्तो मेधावी धम्मथितो ति पावुक्कति

असाहसेन : मनमाना हुए बिना; धम्मेना : धर्मपूर्वक; समेना : निष्पक्ष रूप से; पारे : अन्य; नयति : न्यायाधीश; धम्मस्सा : धार्मिकता के नियम से; गुट्टो [गुट्टा]: संरक्षित; मेधावी : वह बुद्धिमान व्यक्ति; धम्मत्थितो ति : धर्म में स्थापित; पावुकाति : कहा जाता है

वह बुद्धिमान व्यक्ति जो निष्पक्ष रूप से, बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना किसी मनमानी के न्याय करता है और दूसरों का न्याय करता है, धर्म के नियम का पालन करता है और उसके अंतर्गत संरक्षित रहता है। ऐसे व्यक्ति को धर्म में सुस्थापित कहा जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 256-257)

धम्मत्तितो : वह व्यक्ति जो धर्म में दृढ़ है। बुद्ध ने हमेशा यह स्पष्ट किया है कि धम्म की जटिलताओं का बौद्धिक रूप से बोध करना तब तक पूर्णतः फलदायी नहीं है जब तक व्यक्ति धम्म में दृढ़तापूर्वक स्थापित न हो जाए—अर्थात् उसे अपने जीवन को धम्म के अनुरूप व्यवस्थित करना चाहिए। इस स्तर पर, बुद्धों के वचन को जानना आवश्यक है।

यदि कोई स्वयं बुद्ध के वचन जानना चाहता है, तो बौद्ध धर्म की पुस्तकें पर्याप्त नहीं होंगी और उसे पाली ग्रंथ में संकलित उनके उपदेशों का अध्ययन करना चाहिए। बुद्ध के वचनों का यह प्रामाणिक संग्रह एक ही संक्षिप्त पुस्तक में समाहित नहीं किया जा सकता, यद्यपि इसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से धम्म के कई संक्षिप्त सूत्र मौजूद हैं। बुद्ध ने पैंतालीस वर्षों तक उपदेश दिया, इसलिए उनके धम्म और विनय ग्रंथ इतने व्यापक हैं।

पाली भाषा के अधिकांश ग्रंथों का एक बार अनुवाद हो चुका है, बहुत कम ग्रंथों के दो या तीन अनुवाद हुए हैं, जबकि केवल एक ग्रंथ का ही अंग्रेजी में कई बार अनुवाद हुआ है (धम्मपद)। नीचे दिए गए सारांश में केवल पाली भाषा के ग्रंथों का उल्लेख है, जो बुद्ध की भाषा थी और जिनके पूर्ण ग्रंथ उपलब्ध हैं। संस्कृत ग्रंथ या तो खंडित हैं, जो केवल चीनी और तिब्बती अनुवादों में ही मौजूद हैं और जिनका अंग्रेजी में अनुवाद नहीं हुआ है, या फिर वे बहुत बाद के ग्रंथों से बने हैं, जिन्हें अक्सर गौतम बुद्ध से जोड़ा जाता है, लेकिन ये उनके शब्द नहीं हो सकते।

बुद्ध के परनिर्वाण के बाद आयोजित प्रथम सभा में पाली भाषा के ग्रंथों को संहिताबद्ध किया गया। बाद में इसमें कुछ अंश जोड़े गए। इस ग्रंथ का प्रसार उन भिक्षुओं द्वारा हुआ जिन्होंने अपने गुरुओं से प्रवचनों के अंश कंठस्थ किए और फिर उन्हें अपने शिष्यों को सुनाया। यह मौखिक प्रसार लगभग चार सौ वर्षों तक चला। ग्रंथों को याद करने की कला में प्रशिक्षित कई ब्राह्मण भिक्षु बने और उन्होंने श्रीलंका में आयोजित चौथी सभा तक पाली भाषा में इस ग्रंथ का निष्ठापूर्वक प्रसार किया।

उस समय की अशांत परिस्थितियों के कारण, वरिष्ठ भिक्षुओं ने संपूर्ण धर्मग्रंथ को लिखित रूप में दर्ज करने का निर्णय लिया। वे इस उद्देश्य से एकत्रित हुए और ताड़ के पत्तों पर धातु की कलम से बुद्ध के वचन उकेरे। तब से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मुद्रित संस्करणों के प्रकाशन तक, धर्मग्रंथ की नकलें उन्हीं सामग्रियों का उपयोग करके की जाती रहीं। पहला पूर्ण मुद्रित संस्करण पंचम राजा राम (चुललोंगकोर्न) के आदेश पर थाई लिपि में प्रकाशित किया गया था।

पश्चिम में, पाली टेक्स्ट सोसाइटी की स्थापना 1881 में टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स द्वारा संपूर्ण धर्मग्रंथ को लैटिन लिपि में प्रकाशित करने के उद्देश्य से की गई थी। यह कार्य अब पूर्ण हो चुका है और इसका अधिकांश भाग अंग्रेजी में अनुवादित होकर उसी सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

इस ग्रंथ में निम्नलिखित खंड और उपखंड शामिल हैं। जब तक अन्यथा उल्लेख न किया गया हो, इन ग्रंथों के पाली नामों का अंग्रेजी अनुवाद पाली पाठ सोसायटी (पीटीएस) द्वारा प्रकाशित अनुवादों के शीर्षक हैं।

I. विनय - पिटक : "अनुशासन की पुस्तक" (शाब्दिक अर्थ: अनुशासन का ग्रंथ) छह पुस्तकों का पूर्ण अनुवाद।

(1) भिक्खु - विभंग - भिक्षुओं के लिए अनुशासन का मैट्रिक्स।

(2) भिक्खुनी - विभंग - भिक्षुणियों के लिए अनुशासन का मैट्रिक्स।
(3) महावग्ग — विविध विषयों का महान संग्रह।
(4) कुल्लवग्गा — विविध विषयों का छोटा संग्रह।
(5) परिवारा — श्रीलंका में रचित सारांश।
(6) भिक्खु -पातिमोक्खा-भिक्षुओं के लिए 227 मूलभूत प्रशिक्षण नियम (महामाकुट प्रेस, बैंकॉक द्वारा प्रकाशित)।
द्वितीय. सूत्र - पिटक : (शाब्दिक अर्थ: प्रवचनों का संग्रह)।
(1) दीघा - निकाय —“बुद्ध के संवाद” (शाब्दिक अर्थ: विस्तारित संग्रह) तीन पुस्तकें जिनमें 34 लंबे प्रवचन हैं।
(2) मज्झिमा - निकाय - "मध्यम लंबाई के कथन" (शाब्दिक अर्थ: मध्य लंबाई का संग्रह) तीन पुस्तकें जिनमें मध्यम लंबाई के 152 प्रवचन हैं।
(3) संयुत्त - निकाय —“संबंधी कथन” (शाब्दिक अर्थ: संबंधित संग्रह) पाँच पुस्तकें जिनमें विषय के अनुसार व्यवस्थित 7,762 प्रवचन हैं।
(4) अंगुत्तरा - निकाय —“क्रमिक कथन” (शाब्दिक अर्थ: एक-आगे का संग्रह) पाँच पुस्तकें जिनमें 9,557 प्रवचन हैं, जिन्हें एक से ग्यारह तक संख्यात्मक समूहों में व्यवस्थित किया गया है।
(5) खुद्दाका - निकाय - "लघु संकलन" (अर्थात: लघु संग्रह) पंद्रह अलग-अलग कार्यों से बना है:
खुद्दकपाठ - "लघु पाठ" (और चित्रकार - इसकी टिप्पणी)। आवश्यक चीज़ों की एक संक्षिप्त पुस्तिका.
धम्मपद — (अनेक चित्रों सहित) 26 अध्याय जिनमें 423 प्रेरणादायक श्लोक हैं।
उदाना — “उत्थान के श्लोक” — से प्रेरित कथन।
इतिवुत्तका —“जैसा कहा गया”— लघु प्रवचनों का एक संग्रह।
सुत्त - निपाता — “बुनी हुई लय” — अधिकतर पद्य में प्रवचन।
विमानवत्थु — “भवनों की कहानियां” — स्वर्ग का वृत्तांत।
पेटवत्थु — “मृतकों की कहानियां” — भूतों के वृत्तांत।
थेरागाथा — “भाइयों के भजन” — “पूजनीयों के श्लोक” — प्रबुद्ध भिक्षुओं द्वारा बोले गए प्रेरित श्लोक।
थेरीगाथा — “बहनों के भजन” — ऊपर जैसा ही, लेकिन ननों के लिए।
जातक —“जातक कथाएँ”—बुद्ध के 550 पूर्व जन्म तीन पुस्तकों में संकलित हैं (केवल श्लोक ही प्रामाणिक हैं, कथाएँ टीकाएँ हैं)।
निद्देसा — ऊपर दिए गए (v) पर प्राचीन टीका।
पतिसंभिदामग्गा -विश्लेषणात्मक कार्य।
अपदान — शिष्यों के इन पूर्व जन्मों का कोई अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध नहीं है।
बुद्धवंश — दो अनुवाद: “बुद्धों की वंशावली” और “बुद्धों का इतिहास”।
Cariyā - piṭaka — 'आचरण के तरीकों का संग्रह'.
तृतीय. अभिधम्म - पिटक : (शाब्दिक: आगे की शिक्षाओं का खंड) अब तक अनुवाद में पाँच पुस्तकें।
(1) धम्मसंगनी — 'बौद्ध मनोवैज्ञानिक नैतिकता'।
(2) विभागा — 'विश्लेषण की पुस्तक'.
(3) धातुकथा — 'तत्वों पर प्रवचन'।
(4) पुग्गलपन्नत्ती — 'मानव प्रकारों का पदनाम'।
(5) कथावत्थु — 'विवाद के बिंदु' तीसरी परिषद में जोड़े गए।
(6) यमाका —जोड़े.
(7) पट्ठाना — 'सशर्त संबंध'.
लेकिन धम्म के अभ्यास और गहन अध्ययन के लिए बुद्ध के सभी वचनों और विस्तृत टीकाओं को पढ़ना आवश्यक नहीं है, हालांकि कुछ मामलों में यह उपयोगी हो सकता है। बुद्ध ने कहा है:
धम्म का वह एक शब्द श्रेष्ठ है जिसे सुनकर मन को शांति मिलती है।
कविता की बाढ़ की तुलना में, जो हजार गुना अधिक निरर्थक और लाभहीन है।
(धम्मपद, श्लोक 102)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 258

(धम्मपद 256 और 257) <<<< पिछला || धम्मपद 258 || अगला >>>> (धम्मपद 259)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 258 - चब्बगिया वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 258 - चब्बग्गिया वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena pandito hoti
yavata bahu bhasati
khemi averi abhayo
"pandito" ti pavuccati.

श्लोक 258 : कोई व्यक्ति केवल इसलिए बुद्धिमान नहीं हो जाता क्योंकि वह बहुत बोलता है; केवल वही व्यक्ति 'बुद्धिमान' कहलाने योग्य है जो शांत स्वभाव का हो, द्वेष से मुक्त हो और दूसरों को हानि न पहुँचाता हो।

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (258) कहा।

एक बार छह भिक्षुओं का एक समूह था जो मठ या गाँव में भोजन करते समय उपद्रव मचाता था। एक दिन, जब कुछ भिक्षु भिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तब वे छह भिक्षु आए और घमंड से बोले, "देखो! केवल हम ही बुद्धिमान हैं।" फिर वे भोजन स्थल पर चीजें फेंकने लगे और उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो बहुत बोलता है, गाली देता है और दूसरों को धमकाता है, वह बुद्धिमान है। केवल वही बुद्धिमान है जो द्वेष से मुक्त है और किसी को हानि नहीं पहुँचाता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 258 : कोई व्यक्ति केवल इसलिए बुद्धिमान नहीं हो जाता क्योंकि वह बहुत बोलता है; केवल वही व्यक्ति 'बुद्धिमान' कहलाने योग्य है जो शांत स्वभाव का हो, द्वेष से मुक्त हो और दूसरों को हानि न पहुँचाता हो।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार छह भिक्षुओं का एक समूह था जो मठ या गाँव में भोजन करते समय उपद्रव मचाता था। एक दिन, जब कुछ सामनेर भिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो वे छह भिक्षु आए और सामनेरों से घमंड से बोले, “देखो! केवल हम ही बुद्धिमान हैं।” फिर वे भोजन स्थल पर चीजें फेंकने लगे और उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो बहुत बोलता है, गाली देता है और दूसरों को धमकाता है, वह बुद्धिमान है। केवल वही बुद्धिमान है जो द्वेष से मुक्त है और किसी को हानि नहीं पहुँचाता।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 258)

यावत बहु भासति तेन पण्डितो न होति
खेमि अवेरी अभयो पण्डितो इति पावुक्कति
यावता : केवल इसलिए; बहु भासति : (कोई) बहुत बोलता है; तेन : इससे; पंडितो न होति : वह बुद्धिमान नहीं बनता; खेमी : मुक्त; अवेरी : घृणा न करने वाला; अभयो [अभय]: निर्भीक (व्यक्ति); पंडितो इति : बुद्धिमान व्यक्ति; पवुच्चति : कहलाता है
किसी व्यक्ति को केवल इसलिए विद्वान नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह बहुत बोलता है। विद्वान वह व्यक्ति होता है जो स्वतंत्र, निश्चिंत, घृणा रहित और निर्भीक हो।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 258)
खेमी , अवेरी , अभयो : मुक्त, घृणा रहित, निर्भय। ये तीन गुण इस श्लोक में सराहे गए हैं। इन गुणों का निरंतर अभ्यास करने से मनुष्य बुद्धिमान बनता है, लेकिन बातूनीपन नहीं। मन को इन गुणों में अनुशासित करने और सच्चा बुद्धिमान (पंडितो) बनने के लिए मन को प्रशिक्षित करना (भावना) आवश्यक है। इस संबंध में सबसे प्रभावी विधि है करुणा का ध्यान। मैत्री या करुणा शब्द का अर्थ है प्रेम। तदनुसार, ध्यान का वह रूप जो व्यक्ति को इस संसार के सभी प्राणियों, यहाँ तक कि पशुओं को भी, अपना मित्र मानने की क्षमता प्राप्त करने में सहायक होता है, करुणा भावना कहलाता है ।
सभी प्राणी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों, सभी प्राणी कुशल हों — इन विचारों को सभी प्राणियों के प्रति व्यक्त करना, चाहे वे रिश्तेदार हों या गैर-रिश्तेदार, मित्र हों या शत्रु, मनुष्य हों या पशु, मैत्री भावना है। केवल मनुष्यों के लिए सुख की कामना करना मैत्री का सही अर्थ नहीं है । सच्ची मैत्री का अर्थ है संपूर्ण जगत के लिए, यहाँ तक कि सबसे छोटे जीव के लिए भी सुख की कामना करना। बुद्ध इस संसार में मैत्री का सर्वोच्च उदाहरण हैं। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों के प्रति समान रूप से मैत्री दिखाई है , चाहे वे मित्र हों या शत्रु, मनुष्य हों या निर्जीव। मैत्री सर्वोच्च पुण्य है। यह चार उदात्त अवस्थाओं (ब्रह्म विहार) में से एक है। यह परम ज्ञान (सम्मा सम्बोधि) की प्राप्ति के लिए आवश्यक सिद्धियों (पारमिता) में से एक है। खंड सूत्र के प्रवचन के अनुसार, यदि सर्पों या जंगली जानवरों के प्रति प्रेम और दया का भाव रखा जाए तो उनसे कोई हानि नहीं पहुंचाई जा सकती।
मैत्री भावना के लाभों का वर्णन मैत्रीसंसा के प्रवचन में किया गया है । इसमें मैत्री भावना का अभ्यास करने के ग्यारह लाभ बताए गए हैं ।
आरामदायक नींद।
आराम से जागना।
बुरे सपने न आना।
सभी मनुष्यों द्वारा प्यार किया जाना।
देवताओं द्वारा प्रेम किया जाना।
देवताओं द्वारा संरक्षण।
आग, जहर और हथियारों से खतरे में न होना।
मानसिक संतुलन।
चेहरे की रंगत में निखार।
बिना किसी भय के मृत्यु का सामना करने की क्षमता।
एकाग्रता विकसित कर चुके और इस जीवन में अरहतत्व प्राप्त न कर पाने वाले व्यक्ति का मृत्यु के बाद ब्रह्म लोक में जन्म होता है।
यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि इन ग्यारह लाभों में से दस इसी जीवन में प्राप्त किए जा सकते हैं। सुखी जीवन जीने के लिए यह ध्यान अत्यंत उपयोगी है। मनुष्य का सबसे बड़ा धन मानसिक शांति है। मानसिक शांति का अभाव मुख्यतः मन में शत्रुता की उपस्थिति के कारण होता है। यदि इस ध्यान को निरंतर जारी रखा जाए तो व्यक्ति चारों दिव्य अवस्थाओं को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही दूसरों की खुशी और प्रगति से ईर्ष्या करता है। इसलिए, सच्ची प्रेममयी भावना प्राप्त करना काफी कठिन है। मनुष्य अपने बच्चों और पत्नियों के सौभाग्य पर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति रखता है। यह वास्तविक प्रेम नहीं है , बल्कि इच्छा का प्रेम का रूप है। यह प्रेम के विरुद्ध एक सिद्धांत है और इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
सच्ची मैत्री भावना दूसरों की खुशी की कामना करना है, बिना किसी भी प्रकार के लाभ की अपेक्षा किए। मैत्री भावना को अपने परिवार के हितों को बढ़ाने की इच्छा से भ्रमित नहीं करना चाहिए। इसके अलावा, सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना भाव रखे बिना दूसरों के स्वास्थ्य, धन और सुख की कामना करना व्यर्थ है। मैत्री भावना मैत्री का अभ्यास करने वाले व्यक्ति और उन व्यक्तियों दोनों को लाभ पहुंचाती है जिनके प्रति यह भावना निर्देशित होती है। सच्ची मैत्री भावना से ही दोनों पक्षों को लाभ होता है ।
मेट्टा की खेती इस प्रकार करनी चाहिए:
माता यथा नियं पुत्तं
Āyusā ekaputtamanurakkhe
Evampi sabbabhūtesu

मनसंभवये अपरिमाणं
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 259

(धम्मपद 258) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 259 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 260 और 261)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 259 - एकुदानखिनासव वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 259 - एकुदानखिनासव वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Na tavata dhammadharo
yavata bahu bhasati
yo ca appampi sutvana
धम्मम कायना पस्साती
sa ve dhammadharo hoti
yo dhammam nappamajjati.

श्लोक 259 : जो अधिक बोलता है, वह "धम्म में पारंगत (धम्मधर)" नहीं हो जाता। जो कम सुनता है, परन्तु धम्म को समझता है और असावधान नहीं रहता, वही वास्तव में "धम्म में पारंगत" है।

अरहत एकुदन की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (259) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो एक अरहत था।
यह भिक्षु सावत्थी के पास एक वन में रहते थे। उन्हें एकुदन के नाम से जाना जाता था, क्योंकि उन्हें उदाना (उत्साह) का केवल एक श्लोक ही कंठस्थ था। परन्तु वे श्लोक में निहित धम्म के अर्थ को भली-भांति समझते थे। प्रत्येक व्रत के दिन वे दूसरों को धम्म सुनने के लिए प्रेरित करते और स्वयं भी अपने ज्ञात श्लोक का पाठ करते। हर बार पाठ समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवता उनकी स्तुति करते और उनका अभिनंदन करते। एक व्रत के दिन त्रिपिटक के ज्ञाता दो विद्वान थेरे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ उनके स्थान पर आए। एकुदन ने दोनों थेरों से धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने पूछा कि क्या इस एकांत स्थान पर बहुत से लोग धम्म सुनने के इच्छुक हैं। एकुदाना ने सकारात्मक उत्तर दिया और उन्हें यह भी बताया कि जंगलों के संरक्षक देवता भी आमतौर पर आते हैं, और वे प्रवचनों के अंत में प्रशंसा और तालियाँ बजाते हैं।
अतः, दोनों विद्वान थेरों ने बारी-बारी से धम्म का उपदेश दिया, परन्तु उनके प्रवचन समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवताओं ने कोई ताली नहीं बजाई। दोनों विद्वान थेरे अचंभित हुए; उन्हें एकुदन की बातों पर संदेह भी हुआ। परन्तु एकुदन ने जोर देकर कहा कि संरक्षक देवता आते थे और प्रत्येक प्रवचन के अंत में हमेशा ताली बजाते थे। तब दोनों थेरों ने एकुदन से स्वयं उपदेश देने का आग्रह किया। एकुदन ने पंखा अपने सामने रखा और वही श्लोक पढ़ा। श्लोक के अंत में, संरक्षक देवताओं ने हमेशा की तरह ताली बजाई। दोनों विद्वान थेरों के साथ आए भिक्षुओं ने शिकायत की कि वन में निवास करने वाले देवता (देवदूत) बहुत पक्षपाती हैं।

जेतवन मठ पहुँचने पर उन्होंने बुद्ध को इस मामले की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो भिक्षु बहुत कुछ सीखता है और धम्म का बहुत प्रचार करता है, वही धम्म का ज्ञाता (धम्मधर) है। बल्कि वह है जिसने बहुत कम सीखा है और धम्म का केवल एक श्लोक जानता है, परन्तु चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझता है और सदा सचेत रहता है, वही वास्तव में धम्म का ज्ञाता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 259 : जो अधिक बोलता है, वह "धम्म में पारंगत (धम्मधर)" नहीं हो जाता। जो कम सुनता है, परन्तु धम्म को समझता है और असावधान नहीं रहता, वही वास्तव में "धम्म में पारंगत" है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अरहत एकूदान की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अरहत भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

यह भिक्षु सावत्थी के पास एक उपवन में रहता था। वह एकूदान के नाम से जाना जाता था, क्योंकि उसे उल्लास (उदान) का केवल एक श्लोक ही याद था।

उच्च विचारों वाले, सजग, मौन के मार्ग में स्वयं को प्रशिक्षित करने वाले भिक्षु को, ऐसे शांत और सदा सचेत भिक्षु को दुख नहीं आते।

लेकिन भिक्षु श्लोक में निहित धम्म के अर्थ को भलीभांति समझ गए थे। प्रत्येक व्रत के दिन वे दूसरों को धम्म सुनने के लिए प्रेरित करते और स्वयं अपने ज्ञात एक श्लोक का पाठ करते। हर बार पाठ समाप्त होने पर वनों के संरक्षक देव उनकी स्तुति और प्रशंसा करते। एक व्रत के दिन, त्रिपिटक के ज्ञाता दो विद्वान वृद्ध भिक्षु पाँच सौ भिक्षुओं के साथ उनके स्थान पर आए। एकूदान ने दोनों वृद्ध भिक्षुओं से धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने पूछा कि क्या इस एकांत स्थान पर बहुत से लोग धम्म सुनना चाहते हैं। एकूदान ने हाँ में उत्तर दिया और उन्हें यह भी बताया कि वनों के संरक्षक देव भी अक्सर आते हैं और प्रवचनों के अंत में स्तुति और प्रशंसा करते हैं। अतः, दोनों विद्वान गुरुओं ने बारी-बारी से धम्म का उपदेश दिया, परन्तु उनके प्रवचन समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवताओं ने कोई ताली नहीं बजाई। दोनों विद्वान गुरु चकित रह गए; उन्हें एकूदान की बातों पर संदेह भी हुआ। परन्तु एकूदान ने दृढ़तापूर्वक कहा कि संरक्षक देवता पहले आते थे और प्रत्येक प्रवचन के अंत में ताली बजाते थे। तब दोनों गुरुओं ने एकूदान से स्वयं उपदेश देने का आग्रह किया।

एकूदान ने पंखा अपने सामने रखा और हमेशा की तरह श्लोक का पाठ किया। पाठ समाप्त होने पर, संरक्षक देवताओं ने हमेशा की तरह तालियाँ बजाईं। दो विद्वान बुजुर्गों के साथ आए भिक्षुओं ने शिकायत की कि जंगलों में रहने वाले देवता बहुत पक्षपाती हैं।

जेतवन मठ पहुँचने पर उन्होंने बुद्ध को इस मामले की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो भिक्षु बहुत कुछ सीख चुका है और धम्म का बहुत प्रचार करता है, वही ‘धम्म का ज्ञाता’ (धम्मधर) है। बल्कि, जिसने बहुत कम सीखा है और धम्म का केवल एक श्लोक जानता है, परन्तु चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझता है और सदा सचेत रहता है, वही वास्तव में धम्म का ज्ञाता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 259)

यावता बहु भासति , तावता धम्मधरो न
यो च अप्पं अपि सुत्वन कायेन धम्मं पस्सति ,
सो वे धम्मधरो होति सो धम्मं नप्पमज्जति ।

यावत : सिर्फ इसलिए; बहु भासति : बहुत बोलता है; तावता : उसके द्वारा; धम्मधरो न : कोई धम्म का धारक नहीं बनता; यो सीए : यदि कोई; अप्पं अपि : थोड़ा सा भी धम्म; सुतवना : सुना हुआ; कायेन : उसके शरीर द्वारा; धम्मं पस्सति : धम्म का अभ्यास करता है; इसलिए वह; वे : बिना किसी संदेह के; धम्मधरो होति : धम्म का धारक बन जाता है; यो : यदि कोई; धम्मम् [dhamma]: धम्म में; नप्पमज्जति : मेहनती है (वह भी धम्म का संरक्षक है)

केवल अधिक बोलने से कोई धर्म के अनुयायी नहीं बन जाता। भले ही उसने थोड़ा ही सुना हो, यदि वह अपने शरीर से धर्म का अनुभव करे और लगन से उसका पालन करे, तो वह वास्तव में धर्म का अनुयायी है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 259)

बहु भासति : निःसंकोच बोलना। अत्यधिक बोलने की प्रवृत्ति को मन की शांति से नियंत्रित किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने का साधन ध्यान है। ध्यान में मन को देखना और मन को शांत होने देना, मन के चिंतन (चित्त विपश्यना) के माध्यम से संभव है।

लेकिन मन का चिंतन कैसे किया जाए? इसमें शिष्य लोभी मन को लोभी और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; क्रोधित मन को क्रोधित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; भ्रमित मन को भ्रमित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; संकुचित मन को

संकुचित और बिखरे हुए मन को बिखरा हुआ जानता है; विकसित मन को विकसित और अविकसित मन को अविकसित जानता है; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपरिभूत मन को अपरिभूत जानता है; एकाग्र मन को एकाग्र और असंबद्ध मन को असंबद्ध जानता है; मुक्त मन को मुक्त और अपरिभूत मन को अपरिभूत जानता है।

इस प्रकार वह मन के चिंतन में लीन रहता है, चाहे स्वयं के विषय में हो, या अन्य व्यक्तियों के विषय में, या दोनों के विषय में। वह देखता है कि मन कैसे उत्पन्न होता है; कैसे नष्ट होता है; मन के उत्पन्न होने और नष्ट होने की प्रक्रिया को देखता है। 'मन विद्यमान है': यह स्पष्ट जागरूकता उसमें ज्ञान और सजगता के लिए आवश्यक सीमा तक विद्यमान रहती है; और वह स्वतंत्र, संसार की किसी भी वस्तु से अनासक्त होकर जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार शिष्य मन के चिंतन में लीन रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 260,261

(धम्मपद 259) <<<< पिछला || धम्मपद 260 और 261 || अगला >>>> (धम्मपद 262 और 263)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 260 और 261 - लकुंडकभद्दयथेरा वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.3वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.3.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 260 और 261 - लकुंदकभद्दियत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena thero so hoti
yenassa palitam siro
paripakko vayo tassa
"moghajinno" ti vuccati.
Yamhi saccanca dhammo ca
अहिंसा सम्यामो दमो
sa ve vantamalo(1) dhiro
"thero2" iti pavuccati.

श्लोक 260 : वह केवल इसलिए थेरा नहीं है क्योंकि उसके सिर के बाल सफेद हो गए हैं; जो केवल उम्र में परिपक्व होता है उसे "व्यर्थ में बूढ़ा" कहा जाता है।

श्लोक 261 : केवल वही बुद्धिमान व्यक्ति जो चार आर्य सत्यों और धम्म को समझता है, जो निर्दोष और गुणी है, जो अपनी इंद्रियों को संयमित करता है और नैतिक विकारों से मुक्त है, वास्तव में थेरा कहलाता है।

---

1. वंतामलो: शाब्दिक अर्थ, अशुद्धियाँ उल्टी कर दी हैं।
2. थेरो: एक वरिष्ठ, अर्थात् बौद्ध संघ का एक वरिष्ठ सदस्य; लेकिन अक्सर इसका प्रयोग सामान्य रूप से भिक्षुओं के लिए किया जाता है।

थेरा भद्दिया की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा भद्दिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (260) और (261) का उच्चारण किया। उन्हें लकुंदक भद्दिया के नाम से भी जाना जाता था क्योंकि वे कद में बहुत छोटे थे।
एक दिन तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। बुद्ध जानते थे कि उन तीस भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कमरे में प्रवेश करते समय किसी थेरा को देखा था। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने किसी थेरा को नहीं देखा, बल्कि केवल एक युवा समनेरा को देखा। इस पर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! वह व्यक्ति समनेरा नहीं है, वह एक वरिष्ठ भिक्षु है, यद्यपि वह कद में छोटा और अत्यंत विनम्र है। मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति केवल इसलिए थेरा नहीं बन जाता क्योंकि वह वृद्ध है और थेरा जैसा दिखता है; केवल वही व्यक्ति थेरा कहलाता है जो चार आर्य सत्यों को समझता है और दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

———————————————————————————

श्लोक 260 : वह केवल इसलिए थेरा नहीं है क्योंकि उसके सिर के बाल सफेद हो गए हैं; जो केवल उम्र में परिपक्व होता है उसे "व्यर्थ में बूढ़ा" कहा जाता है।

———————————————————————————

श्लोक 261 : केवल वही बुद्धिमान व्यक्ति जो चार आर्य सत्यों और धम्म को समझता है, जो निर्दोष और गुणी है, जो अपनी इंद्रियों को संयमित करता है और नैतिक विकारों से मुक्त है, वास्तव में थेरा कहलाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय लकुंटक भद्दिया की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। वे कद में बहुत छोटे होने के कारण लकुंटक भद्दिया के नाम से भी जाने जाते थे।
एक दिन यह पूज्य भिक्षु बुद्ध से मिलने गए। उनके जाने पर तीस वनवासी भिक्षुओं ने उन्हें देखा। भिक्षु बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने यह जानकर कि वे अर्हत पद के योग्य हैं, उनसे पूछा, "क्या तुमने किसी पूज्य भिक्षु को इस स्थान से जाते देखा?" "नहीं, पूज्य भिक्षु, हमने नहीं देखा।" "नहीं देखा?" "हमने एक नवोदित भिक्षु को देखा, पूज्य भिक्षु।" "भिक्षुओं, वह नवोदित भिक्षु नहीं थे; वह पूज्य भिक्षु थे।" "वह अत्यंत युवा थे, पूज्य भिक्षु।" "भिक्षुओं, मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए पूज्य नहीं कहता कि वह वृद्ध है, या पूज्य भिक्षु के आसन पर बैठा है; बल्कि वह जो सत्यों को समझता है और सदा दूसरों के प्रति दयालु रहता है, वही वास्तव में पूज्य है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 260)
येना अस्सा सिरो पालिटं तेना थेरो न होति
तस्सा वायो परिपक्को मोघाजिनो इति वुकाति
येना : किसी कारण से; अस्सा : किसी का; सिरो पलिटं [पलिता]: बाल सफ़ेद हो जाते हैं; टेना : सिर्फ इसलिए; थेरो ना होती : कोई बड़ा नहीं बनता; तस्सा वायो : उसकी उम्र; परिपक्को [परिपक्का]: परिपक्व हो जाता है; मोघाजिनो इति : वर्षों में पका हुआ लेकिन पुण्य में नहीं; वुकाति : कहा जाता है
बाल सफेद हो जाने मात्र से कोई व्यक्ति बुजुर्ग नहीं बन जाता। जो व्यक्ति केवल उम्र में ही बूढ़ा हो जाता है, वह व्यर्थ ही परिपक्व हो जाता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 261)
यमहि सच्चं च धम्मो च अहिंसा सन्नमो
दमो वंतमालो सा धीरो वे थेरो इति पवुक्कति
यमहि : यदि किसी व्यक्ति में; सक्कं च : चार गुना सत्य; धम्मो सीए : बुद्ध की शिक्षा; अहिंसा : हानिरहितता; सन्नामो [सन्नामा]: संयम; दामो : अनुशासन (मौजूद हैं); वंतमालो [वंतमाला]: यदि उसने अपवित्रता के दाग से छुटकारा पा लिया है; सा : वह व्यक्ति; धीरो [धीरा]: प्रयास से भरा व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; थेरो [थेरा]: सच्चा बुजुर्ग; इति पवुक्कति : (उसे) कहा जाता है
मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सब मन से उत्पन्न होता है। मनुष्य के वचन और कर्म उसके मन से निकलते हैं। कभी-कभी उसका मन दूषित होता है—दुष्ट होता है। यदि वह दुष्ट मन से बोले या कार्य करे, तो उसका अपरिहार्य परिणाम दुख होता है। वह जहाँ भी जाए, यह

दुख उसका पीछा करता रहता है। वह इस दुख से छुटकारा नहीं पा सकता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाड़ी का पहिया बैल के कदमों का अनुसरण करता है, जो गाड़ी से जुता हुआ है। गाड़ी का पहिया बैल का पीछा करता रहता है। बैल उससे हमेशा के लिए बंधा रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 260-261)

थेरा : यह शब्द उन भिक्षुओं के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्होंने उच्च दीक्षा प्राप्त करने के बाद संघ में कम से कम दस वर्ष बिताए हों। थेरा का शाब्दिक अर्थ है सुस्थापित — दृढ़ और स्थिर। अंग्रेजी में, इस शब्द का सामान्यतः अनुवाद एल्डर (बुजुर्ग) होता है। जो भिक्षु संघ में बीस वर्ष पूरे कर लेते हैं, उन्हें महा थेरा (महान आदरणीय) कहा जाता है। संस्कृत में, थेरा के लिए शब्द स्थविर है । सच्चं : सत्य। यहाँ, चार आर्य सत्यों का तात्पर्य है।

धम्म : नौ अलौकिक अवस्थाओं को नौ लोकउत्तर धम्म के रूप में वर्णित किया गया है। ये चार मार्ग और चार फल हैं, और नौवां निर्वाण है। चार मार्ग और चार फल इस प्रकार हैं:

sotāpanna path
सोतापन्ना फल
सकादागामी पथ
सकादागामी फल
अनागामी पथ
अनागामी फल
अरहत पथ
अरहत फल
निब्बाण

जैसे रात्रि में यात्री बिजली की चमक से अपने आसपास के परिदृश्य को देखता है, और इस प्रकार प्राप्त चित्र उसकी चकाचौंध भरी आंखों के सामने बहुत देर तक तैरता रहता है, उसी प्रकार साधक अंतर्दृष्टि के चमकते प्रकाश से निर्वाण की ऐसी स्पष्टता से झलक पाता है कि वह चित्र उसके मन से कभी नहीं मिटता।

जब आध्यात्मिक तीर्थयात्री को पहली बार निर्वाण का अनुभव होता है, तो उसे सोतापन्न कहा जाता है , यानी वह व्यक्ति जिसने पहली बार निर्वाण की ओर ले जाने वाली धारा में प्रवेश किया है। यह धारा आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग का प्रतीक है।

धारा में जीत हासिल करने वाला व्यक्ति अब सांसारिक (पुथुज्जना) नहीं रहता, बल्कि आर्य (कुलीन) बन जाता है।

संतत्व की इस प्रथम अवस्था को प्राप्त करने पर, वह अस्तित्व से बंधे निम्नलिखित तीन बंधनों (संयोजन) को नष्ट कर देता है, जिन्हें इस प्रकार जाना जाता है:

(1) सक्काया - दिट्ठी = सती + काये - दिट्ठी - शाब्दिक अर्थ है, जब कोई समूह या यौगिक विद्यमान हो। यहाँ, काये से तात्पर्य पदार्थ, भावना, बोध, मानसिक अवस्थाओं और चेतना के पाँच समुच्चयों से है। यह धारणा कि जब मनो-शारीरिक समुच्चयों का एक जटिल यौगिक मौजूद हो, तब एक अपरिवर्तनीय सत्ता, एक स्थायी आत्मा विद्यमान होती है, सक्काया - दिट्ठी कहलाती है । धम्मसंगनी ने ऐसे बीस प्रकार के आत्मा-सिद्धांतों का वर्णन किया है। सक्काया - दिट्ठी को सामान्यतः आत्म-भ्रम, व्यक्तित्व का सिद्धांत या व्यक्तिवाद का भ्रम के रूप में समझा जाता है।

(2) विचिचिच्छा —संदेह। ये संदेह हैं (i) बुद्ध, (ii) धम्म, (iii) संघ, (iv) अनुशासनात्मक नियम (सिक्खा), (v) भूतकाल, (vi) भविष्यकाल, (vii) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों, और (viii) आश्रित उत्पत्ति (पटिच्च - समुप्पाद)।

(3) सीलाब्बतपरमासा — (गलत) रीति-रिवाजों और समारोहों का पालन।

धम्मसंगानी इसे इस प्रकार समझाते हैं: "इस सिद्धांत से बाहर के तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत है कि शुद्धि नैतिक आचरण के नियमों, या अनुष्ठानों, या नैतिक आचरण के नियमों और अनुष्ठानों दोनों के द्वारा प्राप्त की जाती है।"

शेष सात बंधनों से मुक्ति पाने के लिए, सोतापन्न अधिकतम सात बार पुनर्जन्म लेता है। वह बुद्ध, धम्म और संघ में पूर्ण विश्वास प्राप्त करता है। वह किसी भी कारण से पांचों नियमों का उल्लंघन नहीं करता। वह दुखमय अवस्थाओं में पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह ज्ञान प्राप्ति के लिए नियत है।

निर्वाण के इस दूरस्थ दर्शन के परिणामस्वरूप नए साहस के साथ, महान तीर्थयात्री तेजी से प्रगति करता है और अपनी अंतर्दृष्टि को परिपूर्ण करते हुए, दो अन्य बंधनों - अर्थात्, इंद्रिय-इच्छाओं (कामराग) और द्वेष (पटीघा) को शिथिल करके एक सकदागामी (एक बार लौटने वाला) बन जाता है, जो संतत्व का दूसरा चरण है।

अब, उन्हें एक बार जन्म लेने वाला कहा जाता है क्योंकि यदि वे उसी जन्म में अर्हतत्व प्राप्त न कर लें तो वे केवल एक बार ही मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। यह रोचक तथ्य है कि आर्य संत, जो संतत्व की दूसरी अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, वे अनादि काल से अपने

ऊपर बंधे इन दो शक्तिशाली बंधनों को केवल शिथिल कर सकते हैं। कभी-कभी, हालांकि थोड़ी मात्रा में, उनके मन में कामवासना और क्रोध के विचार आ सकते हैं।
संतत्व की तीसरी अवस्था, अनागामी (अनाद्दत्यम) की अवस्था प्राप्त करके ही वे इन दोनों बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं। इसके बाद वे न तो इस संसार में लौटते हैं और न ही स्वर्गलोक में जन्म लेते हैं, क्योंकि उन्होंने इंद्रिय सुख की इच्छा को जड़ से उखाड़ फेंका होता है। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म शुद्धावास में होता है , जो अनागामीयों के लिए आरक्षित वातावरण है । वहाँ वे अर्हतत्व प्राप्त करते हैं और जीवन के अंत तक वहीं निवास करते हैं।
जब कोई आम आदमी अनागामी बन जाता है तो वह ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है।
अब अनागामी संत अपनी अंतिम यात्रा पर आगे बढ़ते हैं और शेष पाँच बंधनों—अर्थात्, रूपलोक से आसक्ति (रूपराग), निराकारलोक से आसक्ति (अरूपराग), अहंकार (मान), बेचैनी (उद्धच्च) और अज्ञान (अविज्जा)—को नष्ट करके अरहतत्व प्राप्त करते हैं, जो संतत्व की अंतिम अवस्था है।
जो लोग एक बार प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं, एक बार लौट चुके हैं और कभी नहीं लौटते, उन्हें 'सेखा' कहा जाता है क्योंकि उन्हें अभी प्रशिक्षण प्राप्त करना बाकी है। अरहतों को ' असेखा ' कहा जाता है क्योंकि उन्हें अब कोई प्रशिक्षण नहीं लेना पड़ता।
अरहत, यानी एक योग्य व्यक्ति, पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह नए कर्मों का संचय नहीं करता। उसके पुनर्जन्म के सभी बीज नष्ट हो चुके होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 262,263

(धम्मपद 260 और 261) <<<< पिछला || धम्मपद 262 और 263 || अगला >>>> (धम्मपद 264 और 265)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 262 और 263 - संबहुलाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 262 और 263 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na vakkaranamattena
vannapokkharataya va
sadhurupo naro hoti
issuki macchari satho.
Yassa cetam samucchinnam
mulaghaccam samuhatam
sa vantadoso medhavi
"sadhurupo" ti vuccati.

श्लोक 262 : मीठी बातों से या अच्छे दिखने से कोई व्यक्ति नेक दिल नहीं हो सकता, यदि वह ईर्ष्यालु, कंजूस और धूर्त हो।

श्लोक 263 : जो बुद्धिमान व्यक्ति इन सब को काट कर, जड़ से उखाड़ कर और हटा कर नैतिक विकारों से मुक्त हो गया है, वही वास्तव में नेक दिल वाला व्यक्ति कहलाता है।

———————————————————————

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (262) और (263) का उच्चारण कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में किया जो अन्य भिक्षुओं से बहुत ईर्ष्या करते थे।

मठ में, युवा भिक्षु और समनेर अपने गुरुओं, यानी वरिष्ठ भिक्षुओं की सेवा करने के लिए जाने जाते थे। वे उनके वस्त्र धोते और रंगते थे, या उनके लिए अन्य छोटे-मोटे काम करते थे। कुछ भिक्षुओं ने इन सेवाओं को देखकर वरिष्ठ भिक्षुओं से ईर्ष्या की, और इसलिए उन्होंने एक ऐसी योजना बनाई जिससे उन्हें आर्थिक लाभ हो। उनकी योजना यह थी कि वे बुद्ध से यह सुझाव दें कि युवा भिक्षुओं और समनेरों को अपने-अपने गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी आगे की शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए उनके पास आना अनिवार्य होना चाहिए। जब वे यह प्रस्ताव लेकर बुद्ध के पास गए, तो बुद्ध ने उनके इरादे को भली-भांति जानते हुए इसे अस्वीकार कर दिया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि तुम केवल इसलिए अच्छे हृदय के हो क्योंकि तुम धाराप्रवाह बोल सकते हो। केवल वही व्यक्ति अच्छे हृदय का कहलाता है जिसने अरहत मार्ग के द्वारा लोभ और सभी बुराइयों से मुक्ति प्राप्त कर ली हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 262 : मीठी बातों से या अच्छे दिखने से कोई व्यक्ति नेक दिल नहीं हो सकता, यदि वह ईर्ष्यालु, कंजूस और धूर्त हो।

———————————————————————

श्लोक 263 : जो बुद्धिमान व्यक्ति इन सब को काट कर, जड़ से उखाड़ कर और हटा कर नैतिक विकारों से मुक्त हो गया है, वही वास्तव में नेक दिल वाला व्यक्ति कहलाता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक समय की बात है, कुछ पूज्यजनों ने कुछ युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को अपने गुरुओं के वस्त्र रंगते और अन्य कार्य करते देखा। तब उन्होंने मन ही मन कहा, “हम स्वयं शब्दों को जोड़ने में तो कुशल हैं, परन्तु फिर भी हमें ऐसा सम्मान नहीं मिलता। मान लीजिए कि हम बुद्ध के पास जाकर उनसे कहें, ‘पूज्यजन, पवित्र शास्त्र के अक्षरशः अर्थ में हम भी निपुण हैं; इन युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को इस प्रकार आदेश दीजिए — यद्यपि आपने शास्त्र का ज्ञान दूसरों से प्राप्त किया है, परन्तु जब तक आप इन पूज्यजनों के मार्गदर्शन में शास्त्र का गहन अध्ययन न कर लें, तब तक उसका अभ्यास न करें।’ इस प्रकार हमारा लाभ और सम्मान बढ़ेगा।”

तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी सहमति के अनुसार सब कुछ बताया। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और उन्हें यह ज्ञान हुआ, “इस धर्म में, परंपरा के अनुसार, ऐसा कहना बिल्कुल उचित है। परन्तु ये पूज्यवर केवल अपना ही लाभ चाहते हैं।” इसलिए उन्होंने उनसे कहा, “मैं तुम्हें केवल तुम्हारी वाणी के कारण सिद्ध नहीं मानता। परन्तु वह व्यक्ति, जिसमें ईर्ष्या और अन्य बुरे गुण अरहतत्व के मार्ग से जड़ से उखड़ गए हों, वही वास्तव में सिद्ध है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 262)

वक्कारणमत्तेन वनपोक्खराटय वा

इस्सुकी मछरी साथो नरो साधुरूपो न होति

वाक्करणमत्तेन : केवल अलंकृत वाणी के कारण; वण्णपोक्खरताय वा : या रूप-रंग की सुंदरता के कारण; इस्सुकी : ईर्ष्यालु; मच्छरी : लालची; सठो [सठ]: कुटिल; नरो : मनुष्य; साधुरूपो [साधुरूप]: स्वीकार्य व्यक्ति; न होति : शोभा नहीं देता।

महज अपनी वाक्पटुता, प्रभावशाली बोलने के अंदाज या आकर्षक व्यक्तित्व के कारण, एक लालची, ईर्ष्यालु और कपटी व्यक्ति स्वीकार्य व्यक्ति नहीं बन जाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 263)

यस्सा एतं समुच्चिन्नं च मूलघक्कं समुहतां

वन्तदोसो मेधावी सो साधुरूपो इति वुकाति

yassa : यदि किसी एक व्यक्ति द्वारा; etaṃ : ये सभी बुराइयाँ; samucchinnaṃ [samucchinna] : जड़ से उखाड़ी जा रही हैं; ca : और; mūlaghaccaṃ [mūlaghacca] : जड़ से उखाड़ी जा रही हैं; samūhataṃ [samūhata] : पूर्णतः नष्ट की जा रही

हैं; vantadoso [vantadosa] : जिसने इन सभी बुराइयों का त्याग कर दिया है; medhāvi : बुद्धिमान; so : वह बुद्धिमान व्यक्ति; sādhurūpo iti : एक गुणी व्यक्ति; vuccati : कहलाता है

यदि किसी व्यक्ति ने इन सभी बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंका है और अपने दोषों से छुटकारा पा लिया है, तो ऐसा व्यक्ति वास्तव में एक स्वीकार्य व्यक्ति है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 262-263)

बुद्ध एक शिक्षक के रूप में : इन श्लोकों में, बुद्ध उन वरिष्ठ भिक्षुओं को फटकार लगाते हैं जो यह मानते हैं कि वे युवा भिक्षुओं को सिखाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं, केवल इसलिए कि वे शब्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं। बुद्ध कहते हैं कि एक कुशल आध्यात्मिक शिक्षक बनने के लिए शब्दों के चतुर प्रयोग से कहीं अधिक गुण आवश्यक हैं। अपने पूरे जीवन में, बुद्ध ने लोगों को आध्यात्मिक मामलों में — और कभी-कभी सांसारिक मामलों में भी — शिक्षा और मार्गदर्शन दिया। उन्होंने न केवल उपदेश दिया, बल्कि अपने उपदेशों के अनुसार जीवन भी जिया।

बुद्ध स्वयं उन सद्गुणों के साकार रूप थे जिनका उन्होंने उपदेश दिया। अपने सफल और घटनापूर्ण पैंतालीस वर्षों के उपदेश काल में उन्होंने अपने वचनों को कर्मों में उतारा। उन्होंने कभी भी मानवीय दुर्बलता या नीच वासना का प्रदर्शन नहीं किया। फिर भी बुद्ध की नैतिक संहिता विश्व में अब तक की सबसे परिपूर्ण नैतिक संहिता है।

पच्चीस शताब्दियों से भी अधिक समय से, लाखों लोगों ने उनके उपदेशों से प्रेरणा और शांति पाई है। उनका उपदेश आज भी थके हुए तीर्थयात्रियों को निर्वाण की सुरक्षा और शांति की ओर आमंत्रित करता है।

बुद्ध के लिए धर्म कोई सौदा नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग था। वे अंधविश्वासी अनुयायी नहीं चाहते थे; वे ऐसे अनुयायी चाहते थे जो स्वतंत्र और बुद्धिमानी से विचार कर सकें।

बुद्ध ने कभी किसी व्यक्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव नहीं दिखाया। यहाँ तक कि अपने विरोधियों और कट्टर शत्रुओं के प्रति भी उन्होंने कोई शत्रुता नहीं व्यक्त की। कुछ पूर्वाग्रही लोग बुद्ध के विरुद्ध हो गए और उन्हें जान से मारने की कोशिश की; फिर भी बुद्ध ने उन्हें कभी शत्रु नहीं माना। बुद्ध ने एक बार कहा था, "जैसे युद्ध के मैदान में हाथी तीर सह लेता है, वैसे ही मैं भी दूसरों के अपमान और शत्रुतापूर्ण शब्दों को सहन करूँगा।"

इतिहास में बुद्ध के समान किसी भी व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता जिन्होंने समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं को इतना समर्पित किया हो। ज्ञान प्राप्ति से लेकर जीवन के अंत तक उन्होंने मानव जाति के उत्थान के लिए अथक परिश्रम किया। वे दिन में केवल दो घंटे ही सोते थे। यद्यपि इस महान गुरु के निधन को पच्चीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, फिर भी उनका प्रेम और ज्ञान का संदेश आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है। यह संदेश आज भी मानवता के भाग्य को निर्णायक रूप से प्रभावित कर रहा है। वे परम करुणावान थे जिन्होंने इस संसार को प्रेम और करुणा से प्रकाशित किया।

निर्वाण प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने एक अमर संदेश छोड़ा जो आज भी हमारे बीच जीवित है। आज हम विश्व शांति के लिए एक गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। विश्व के इतिहास में कभी भी उनके संदेश की इतनी आवश्यकता नहीं रही जितनी आज है।

बुद्ध का जन्म अज्ञान के अंधकार को दूर करने और संसार को दुख और बीमारी, क्षय और मृत्यु तथा जीवित प्राणियों की चिंताओं और कष्टों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाने के लिए हुआ था।

सही समझ की दिशा में निर्देशित न होने वाली कोई भी बातचीत या चर्चा मोक्ष की ओर नहीं ले जाएगी। यही वह सिद्धांत था जिसने बुद्ध के उपदेशों का मार्गदर्शन किया।

बुद्ध उन आध्यात्मिक समस्याओं से चिंतित नहीं थे जो केवल मनुष्य को भ्रमित करती हैं और उसके मानसिक संतुलन को बिगाड़ती हैं। उनका समाधान निश्चित रूप से मानव जाति को दुख और कष्ट से मुक्ति नहीं दिलाएगा। यही कारण था कि बुद्ध ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में संकोच करते थे, और कई बार उन प्रश्नों की व्याख्या करने से भी बचते थे जो अक्सर गलत तरीके से पूछे जाते थे। बुद्ध एक व्यावहारिक शिक्षक थे। उनका एकमात्र उद्देश्य दुख , पीड़ा, जीवन के सार्वभौमिक सत्य की समस्या को विस्तार से समझाना, लोगों को इसकी पूरी शक्ति का अनुभव कराना और उन्हें इसके प्रति आश्वस्त करना था। उन्होंने स्पष्ट रूप से हमें बताया है कि वे क्या समझाते हैं और क्या नहीं समझाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 264,265

———————————————————

(धम्मपद 262 और 263) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 264 और 265 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 266 और 267)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 264 और 265 - हत्थक वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 264 और 265 - हत्थक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na mundakena samano
abbato alikam bhanam
icchalobhasamapanno
samano kim bhavissati.
Yo ca sameti papani
anumthulani sabbaso
samitatta hi papanam
"samano" ti pavuccati.

श्लोक 264 : सिर मुंडवाने से कोई व्यक्ति समना नहीं बन जाता, यदि उसमें नैतिकता और कठोर आचरण का अभाव हो और वह झूठ बोलता हो। जो लोभ और लालच से भरा हो, वह समना कैसे हो सकता है?

श्लोक 265 : जिसने सभी प्रकार की बुराई, बड़ी और छोटी, पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर ली है, उसे समना कहा जाता है क्योंकि उसने सभी बुराई पर विजय प्राप्त कर ली है।

भिक्खु हत्थका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने हत्थक नामक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (264) और (265) का उच्चारण किया। भिक्षु हत्थक को गैर-बौद्ध धर्मों के तपस्वियों को धार्मिक विषयों पर बहस करने के लिए किसी विशेष स्थान पर चुनौती देने की आदत थी। फिर वे अकेले ही उस स्थान पर चले जाते थे। जब कोई नहीं आता तो वे शेखी बघारते हुए कहते, "देखो, वे भटकते हुए तपस्वी मुझसे मिलने की हिम्मत नहीं करते, मैंने उन्हें हरा दिया है!", और इसी तरह की अन्य बातें कहते थे। बुद्ध ने हत्थक को अपने पास बुलाया और कहा, "भिक्षु! तुम ऐसा व्यवहार क्यों करते हो? जो ऐसी बातें कहता है, वह सिर मुंडवाने के बावजूद समन नहीं हो सकता। केवल वही समन कहलाता है जिसने अपने आप को सभी बुराइयों से मुक्त कर लिया हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 264 : सिर मुंडवाने से कोई व्यक्ति समना नहीं बन जाता, यदि उसमें नैतिकता और कठोर आचरण का अभाव हो और वह झूठ बोलता हो। जो लोभ और लालच से भरा हो, वह समना कैसे हो सकता है?

श्लोक 265 : जिसने सभी प्रकार की बुराई, बड़ी और छोटी, पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर ली है, उसे समना कहा जाता है क्योंकि उसने सभी बुराई पर विजय प्राप्त कर ली है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय हत्थका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने हत्थका नामक एक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि जब भी हत्थक किसी वाद-विवाद में हार जाते थे, तो वे कहते थे, "कृपा करके फलां स्थान पर फलां समय पर आएं, हम फिर से चर्चा करेंगे।" फिर वे अपने प्रतिद्वंद्वी से पहले तय स्थान पर पहुँच जाते और कहते, "देखो! विधर्मी मुझसे इतना डरते हैं कि मुझसे मिलने की हिम्मत नहीं करते; यह उनकी हार की स्वीकारोक्ति है।" वे ऐसा ही और भी बहुत कुछ कहते थे। जब भी उन्हें हार का सामना करना पड़ता, वे एक के बाद एक प्रतिद्वंद्वी के साथ यही रणनीति अपनाते थे। बुद्ध ने जब सुना कि हत्थक ऐसा कर रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया और पूछा, "हत्थक, क्या यह खबर सच है कि तुम ऐसा कर रहे हो?" "हाँ, सच है," हत्थक ने उत्तर दिया। तब बुद्ध ने कहा, "तुम ऐसा क्यों करते हो? जो व्यक्ति इस तरह के झूठ बोलता है, उसे केवल सिर मुंडवाने मात्र से भिक्षु कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु जो छोटे-बड़े सभी पापों पर विजय प्राप्त करता है, वही सच्चा भिक्षु है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 264)

मुंदकेना समणो न अब्बतो अलिकं भाणं
इच्छा-लोभासमापन्नो किं समानो भविष्यति

मुंडकेन : मुंडे हुए सिर से; समानो न : कोई साधु नहीं बनता; अब्बतो [अब्बता]: सिद्धांतहीन; अलिकं भाणं [भाण]: झूठ बोलने के लिए दिया गया; इच्छा - लोभासमापन्नो [लोभासमापन्न]: वह इच्छा और लालच से भर गया; किं समणो भविष्यसति : साधु कैसे हो सकता है

क्या कोई ऐसा व्यक्ति जो धर्म का पालन नहीं करता, झूठ बोलता है और इच्छा और लोभ से भरा हुआ है, केवल सिर मुंडवाने के कारण तपस्वी बन सकता है?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 265)

यो च अनुं थुलानि पापानि सब्बसो समेटि
पापानं समितत्त हि समानो इति पवुक्कति

यो च : यदि कोई; अनु : सूक्ष्म; थूलानि : विशाल; पापानि : बुरे कर्म; सब्बासो [सब्बासा] : पूरी तरह; समेति : शांत करता है; पापाना [पापाना] : बुरे कर्म; समितत्ता हि : (जैसे) पूरी तरह से मिटा दिया है; समणो [समण] : (वह) भिक्षु; इति पावुच्चति : कहलाता है

यदि कोई व्यक्ति सभी छोटे-बड़े पापों का निवारण कर लेता है, तो उसे तपस्वी कहा जाता है क्योंकि उसने पापों का निवारण कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 264-265)

जेतवन मठ : धम्मपद के अधिकांश श्लोक जेतवन मठ में ही रचे गए थे। अतः, धम्मपद के आध्यात्मिक निवास के रूप में इस मठ का विशेष महत्व है।

जेतवन मठ का निर्माण अनाथपिंडिक ने करवाया था, जो बौद्ध धर्म के सर्वकालिक समर्थकों में एक प्रमुख व्यक्ति थे। अनाथपिंडिक ने बुद्ध के उपदेश देने के तरीके की प्रशंसा की और बुद्ध के गृहस्थ शिष्य के रूप में त्रिरत्न की शरण ली। उन्होंने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को अगले दिन अपने बहनोई के निवास पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया और आदरपूर्वक बुद्ध से विदा ली।

राजगृह के करोड़पति ने जब अपने बहनोई द्वारा बुद्ध को आमंत्रित किए जाने की सूचना सुनी, तो उन्होंने कहा, "आप स्वयं यहाँ अतिथि हैं; इसलिए मैं आपके भिक्षादान संबंधी सभी खर्चों का प्रबंध करूँगा।" इस पर अनाथपिंडिका ने कहा, "धन्यवाद, हे करोड़पति, मेरे पास इसके लिए पर्याप्त धन है।" राजगृह के उपनगरों के प्रमुख और स्वयं राजा बिम्बिसार ने भी इसी प्रकार के प्रस्ताव रखे, परन्तु अनाथपिंडिका ने इनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। भिक्षादान के समापन पर, अनाथपिंडिका ने बुद्ध को भिक्षुओं के समूह के साथ श्रावस्ती में निवास करने के लिए आमंत्रित किया।

"सुकून से गए लोग एकांत स्थानों में आनंदित होते हैं," बुद्ध ने कहा। "मैं जानता हूँ, पूज्यवर," अनाथपिंडिक ने कहा। बुद्ध ने अनाथपिंडिक को उपदेश दिया और वहाँ से चले गए। राजगृह में अपना कार्य समाप्त करने के बाद अनाथपिंडिक सावत्थी के लिए रवाना हुए। वे अनेक मित्रों और सहयोगियों वाले व्यक्ति थे और दूसरों को अच्छी सलाह देते थे। रास्ते में उन्होंने लोगों से कहा, "मित्रों, उद्यान बनाओ, मठ बनाओ और दान करो। बुद्ध संसार में जन्म ले चुके हैं। मैंने उन्हें सावत्थी का निमंत्रण दिया है; और वे इसी मार्ग से आएँगे।"

इस प्रकार अनाथपिंडिक से प्रेरित होकर लोगों ने बाग-बगीचे लगाने, मठों का निर्माण करने और भिक्षादान की व्यवस्था करने का काम शुरू कर दिया। अनाथपिंडिक के सावत्थी पहुँचते ही उन्होंने बुद्ध के निवास के लिए उपयुक्त स्थान की खोज की और राजकुमार जेत का बाग देखा। इसलिए वे राजकुमार से मिलने गए और बोले, "महोदय, क्या आप मुझे अपना बाग मठ बनाने के लिए देंगे?" राजकुमार ने कहा, "नहीं, मैं अपना बाग नहीं दूंगा, चाहे आप वहाँ एक अरब सोने के सिक्के ही क्यों न बिखेर दें।" इस पर करोड़पति ने कहा, "तो मैंने आपका बाग खरीद लिया है, राजकुमार।" दूसरे ने कहा, "नहीं।"

इस बात को लेकर विवाद कि क्या बगीचा अनाथपिंडिका द्वारा खरीदा गया था या नहीं, न्यायिक अधिकारियों के समक्ष ले जाया गया जिन्होंने अनाथपिंडिका के पक्ष में फैसला सुनाया, क्योंकि जमीन की खरीद तब हुई थी जब कीमत तय की गई थी।
अनाथपिंडिका एक अरब सोने के सिक्के गाड़ियों में भरकर लाया और ज़मीन को सोने से ढक दिया। लेकिन एक छोटा सा हिस्सा छूट गया, तो उसने अपने आदमियों को और सोने के सिक्के लाने का आदेश दिया ताकि बाकी हिस्से को भी ढका जा सके। तब राजकुमार जेत ने सोचा कि जिस कारण से करोड़पति अपना सोना दान कर रहा है, वह मामूली नहीं हो सकता, और उसने कहा, "नहीं, करोड़पति, आपको बाकी हिस्से को सोने से ढकने की ज़रूरत नहीं है। मैं वह ज़मीन दान कर देता हूँ।"
करोड़पति ने राजकुमार का अनुरोध मान लिया, क्योंकि राजकुमार एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और उनका संरक्षण बहुत मायने रखता था। राजकुमार ने उस क्षेत्र पर एक भवन का निर्माण करवाया। अनाथपिंडिका ने जेतवन में मठ, अध्ययन कक्ष, भंडारगृह, भिक्षागृह, अग्निगृह, शौचालय, स्नानघर, पैदल मार्ग, परिक्रमा मार्ग, कुएँ, तालाब, गर्म कमरे और मंडप बनवाए।
राजगृह में पर्याप्त समय व्यतीत करने के बाद, बुद्ध वैशाली की ओर प्रस्थान कर गए और उचित समय पर वैशाली पहुँच गए। वहाँ से वे सावत्थी पहुँचे और जेतवन मठ में आए। अनाथपिंडिक ने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को दान दिया और बुद्ध की सलाह पर, जेतवन मठ को चारों दिशाओं के भिक्षु समुदाय को दान कर दिया, चाहे वे वहाँ उपस्थित हों या न हों।
समण : यह शब्द धार्मिक पुरोहितों को दर्शाने के लिए प्रयोग किया जाता है। बौद्ध संघ के सदस्यों को भी समण कहा जाता है। इस श्लोक में बुद्ध उस व्यक्ति का वर्णन करते हैं जो समण कहलाने के योग्य है ।
बुद्ध के चार शिष्यों - भिक्षु , भिक्षुणी , उपासक और उपासिका - में से भिक्षुओं का संघ सबसे अधिक बुद्ध से जुड़ा हुआ है। बौद्ध भिक्षु का कर्तव्य बुद्ध की शिक्षाओं का अध्ययन करना और इन शिक्षाओं के अनुसार मार्गदर्शन और सलाह देना है। उन्हें धार्मिक कर्तव्यों और अनुष्ठानों का पालन करना भी आवश्यक है। उनका कर्तव्य केवल बुद्ध के वचनों का संरक्षण करना ही नहीं है; उनका कर्तव्य विश्व भर में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करना भी है। भिक्षुओं से उचित मार्गदर्शन और सहायता प्राप्त किए बिना विश्व के किसी भी भाग में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करना आसान नहीं है।
बौद्ध भिक्षुओं को पुजारी नहीं माना जाता क्योंकि वे ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ का कार्य नहीं करते। वे केवल मोक्ष की राह दिखाने का काम करते हैं। बुद्ध तक पहुँचने के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। किसी पुजारी या किसी विशेष व्यक्ति के हस्तक्षेप की भी कोई आवश्यकता नहीं है।
संघ की स्थापना के प्रारंभ से ही भिक्षुओं के दो अलग-अलग समूह बने: ग्रंथ धुर और विदर्भ धुर । ग्रंथ धुर वे भिक्षु हैं जो जनता के साथ रहते हैं। वे समाज को अपनी धार्मिक सेवाएँ प्रदान करते हैं। शिक्षित युवा जो भिक्षु बनते हैं, वे आमतौर पर इस समूह में शामिल होते हैं। विदर्भ धुर वे भिक्षु हैं जो व्यस्त समाज से दूर रहकर अपना समय ध्यान में लगाते हैं। अधिकांश वृद्ध पुरुष जो भिक्षु बनते हैं, वे आमतौर पर इस समूह में शामिल होते हैं। जनता के साथ रहने वाले भिक्षुओं को अपने ध्यान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्हें प्रतिदिन कम से कम कुछ मिनट ध्यान के लिए समर्पित करने का प्रयास करना चाहिए। जो अपना समय केवल ध्यान में लगाते हैं, उन्हें दूसरों को ध्यान करने के आवश्यक निर्देश देने चाहिए। भिक्षुओं के दोनों समूह समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। कुछ बौद्ध देशों में, कुछ भिक्षु ध्यान के लिए निश्चित समय निर्धारित करते हैं; फिर वे समाज की सेवा में लौट आते हैं।
बौद्ध भिक्षु अत्यंत सरल जीवन व्यतीत करते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सहिष्णुता और संतोष से परिपूर्ण होता है। भिक्षुओं के निवास वाले मठों में शांति, सुकून और स्थिरता का वातावरण रहता है। कई भिक्षुओं के मुस्कुराते चेहरों पर शांति और स्थिरता का भाव झलकता है। उनके चेहरे पर गरिमा, कोमलता, वैराग्य और गृहस्थ जीवन की बाध्यताओं से मुक्ति का भाव दिखाई देता है। दयालुता, सत्यनिष्ठा और धर्म के प्रति समर्पण उनके कर्तव्य हैं।
कई बौद्ध देशों में, भिक्षु न केवल धार्मिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों में भी सेवा प्रदान करते हैं। वास्तव में, बौद्ध देशों में मठ पारंपरिक रूप से सामाजिक सेवा के केंद्र होते हैं।
यदि बुद्ध ने संघ की स्थापना न की होती, तो बुद्ध की शिक्षाएँ बहुत पहले ही इस संसार से लुप्त हो गई होतीं। बौद्ध सभाओं की परंपरा, जिसने बुद्ध के वचनों को निरंतर संरक्षित रखा है, भिक्षुओं द्वारा ही आरंभ की गई थी। बौद्ध धर्म के प्रामाणिक ग्रंथों और सिद्धांतों को उनके शुद्ध स्वरूप में संकलित करने के लिए अनेक सभाएँ आयोजित की गईं। बुद्ध के निधन के तुरंत बाद राजगृह में आयोजित प्रथम सभा की अध्यक्षता अरहंत महाकस्सपा ने की थी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 266,267

(धम्मपद 264 और 265) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 266 और 267 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 268 और 269)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 266 और 267 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 266 और 267 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena bhikkhu so hoti
yavata bhikkhate(1) pare
vissam dhammam samadaya
bhikkhu hoti na tavata.
Yo'dha punnanca papanca
बहेत्व ब्रह्मचरियवा
संख्या लोके चरती
sa ve "bhikkhu" ti vuccati.

श्लोक 266 : कोई व्यक्ति केवल भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े होने मात्र से भिक्षु नहीं बन जाता। वह धम्म के अनुरूप न होने वाले विश्वास के अनुसार कार्य करने से भी भिक्षु नहीं बन सकता।

श्लोक 267 : इस संसार में, जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों को त्याग देता है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, और खन्ध समुच्चयों का ध्यान करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

---

1. भिक्खते: शाब्दिक अर्थ, भीख मांगना।

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (266) और (267) का उच्चारण किया।

एक समय की बात है, एक ब्राह्मण भिक्षा मांगने का शौकीन था। एक दिन उसने सोचा, "समना गौतम ने कहा है कि जो भिक्षा मांगकर जीवन यापन करता है, वह भिक्षु होता है। इसलिए मुझे भी भिक्षु कहा जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा कि उसे (ब्राह्मण को) भी भिक्षु कहा जाना चाहिए, क्योंकि वह भी भिक्षा मांगता है। बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, मैं तुम्हें केवल भिक्षा मांगने से भिक्षु नहीं कहता। जो गलत धर्म का पालन करता है और उसी के अनुसार कार्य करता है, उसे भिक्षु नहीं कहा जा सकता। केवल वही भिक्षु कहलाता है जो समुच्चय की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का ध्यान करते हुए जीवन यापन करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 266 : कोई व्यक्ति केवल भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े होने मात्र से भिक्षु नहीं बन जाता। वह धम्म के अनुरूप न होने वाले विश्वास के अनुसार कार्य करने से भी भिक्षु नहीं बन सकता।

श्लोक 267 : इस संसार में, जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों को त्याग देता है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, और खन्ध समुच्चयों का ध्यान करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने संसार त्याग दिया और एक विधर्मी संप्रदाय का भिक्षु बन गया। भिक्षा मांगने के दौरान उसने मन ही मन सोचा, "बुद्ध अपने शिष्यों को, जो भिक्षा मांगने जाते हैं, भिक्षु कहकर संबोधित करते हैं; उन्हें मुझे भी भिक्षु कहकर संबोधित करना चाहिए।" इसलिए वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैं भी भिक्षा मांगकर अपना जीवन यापन करता हूँ; कृपया मुझे भिक्षु कहकर संबोधित करें।" लेकिन बुद्ध ने उससे कहा, "ब्राह्मण, मैं किसी व्यक्ति को केवल भिक्षा मांगने मात्र से भिक्षु नहीं कहता। क्योंकि जो व्यक्ति सभी गुणों का पालन करता है, वह भिक्षु नहीं होता। परन्तु जो व्यक्ति सभी गुणों का विवेकपूर्वक मूल्यांकन करता है और उसी के अनुसार कर्म करता है, वही वास्तव में भिक्षु है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 266)

यावता परे भिक्खते तेन भिक्खु न होति,

विस्सां धम्मं समादाय तवता भिक्खु न होति

यावता : क्योंकि (कोई); परे : दूसरों से; भिक्खते : भीख मांगता है; तेना : उसके द्वारा; भिक्खु न होती : (वह) भिक्षु नहीं बनता; विस्सं धम्मं [धम्म]: घृणित विश्वास; समादय : आलिंगन करना; तावता : उस हद तक; भिक्खु न होती : भिक्षु नहीं बनता

कोई भी व्यक्ति केवल दूसरों से भीख मांगने से भिक्षु नहीं बन जाता। भीख मांगने वाला व्यक्ति भी दुष्ट और घृणित मान्यताओं को अपनाने से भिक्षु नहीं बन जाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 267)

इधा यो पुन्नं च पापं च बहेत्वा ब्रह्मचर्यव

लोके संखया चराति स वे भिक्खु इति वुकाति

इधा : इस (व्यवस्था) में; यो : यदि कोई; पुण्यं च : पुण्य; पापं च : और बुरे कर्म; बाहेत्वा : त्यागकर (ऊपर उठकर); ब्रह्मचर्यवा : उच्च अनुशासन का पालन करते हुए; लोके : इस संसार में; सांखाय : बुद्धिमानी से चिंतन करते हुए; चरति : यदि कोई जीवित रहता है; च : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; भिक्खु इति : एक भिक्षु; वच्चति : कहलाता है

जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों से ऊपर उठकर, बुद्धिमानी से चिंतन करते हुए उच्च अनुशासन के मार्ग पर चलता है, वही व्यक्ति वास्तव में भिक्षु कहलाने का पात्र है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 266-267)

बुद्ध का ब्राह्मणों से सामना : अपने सांसारिक जीवन के दौरान बुद्ध का सामना अधिकतर आक्रामक ब्राह्मणों से हुआ, जिन्होंने उनका विरोध किया। इनमें से एक अनाम ब्राह्मण है जिसके कारण ये श्लोक लिखे गए हैं। यद्यपि वह इतना महत्वपूर्ण नहीं था कि उसका नाम ज्ञात हो, फिर भी कुछ अन्य ब्राह्मण जिनसे बुद्ध को निपटना पड़ा, वे उल्लेखनीय रूप से प्रसिद्ध थे। उनमें से कुछ ये थे:

सोनदण्ड : बुद्ध, अनेक भिक्षुओं के एक समूह के साथ, अंग राज्य के चंपा नगर में पहुँचे और गग्गरा तालाब के किनारे ठहरे। उस समय ब्राह्मण सोनदण्ड चंपा में रह रहे थे और राजा बिम्बिसार द्वारा दान में दी गई भूमि का आनंद ले रहे थे।

शहर के लोग बुद्ध के गुणों और उपलब्धियों के बारे में सुनकर बड़ी संख्या में उस गग्गरा कुंड की ओर चल पड़े जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे। सोनदण्ड ने लोगों को बड़ी संख्या में कुंड की ओर जाते देखा और अपने सेवक से सुना कि वे बुद्ध के दर्शन करने जा रहे हैं। सोनदण्ड ने अपने सेवक से कहा कि वह लोगों को बता दे कि वह स्वयं भी उनके साथ बुद्ध के दर्शन करना चाहता है।

चंपा में आए लगभग पाँच सौ ब्राह्मणों को सोनदण्ड की बुद्ध दर्शन की इच्छा का पता चला और वे उनके पास जाकर उनसे कहने लगे कि बुद्ध से मिलने जाना उनके लिए उचित नहीं है, और उचित तो यह है कि बुद्ध स्वयं आकर सोनदण्ड से मिलें। जब इन ब्राह्मणों ने सोनदण्ड को उनके जन्म, गुणों और उपलब्धियों की याद दिलाई, तो उन्होंने बुद्ध के उच्च जन्म, सर्वोच्च गुणों और उपलब्धियों का विस्तृत वर्णन किया। अंततः, सोनदण्ड उन्हें बुद्ध की महानता के बारे में आश्वस्त करने में सफल हुए और उनके साथ बुद्ध से मिलने गए।

सोनदण्ड ने बुद्ध से वार्तालाप किया और उनके उपदेशों की लंबी व्याख्या सुनी। बुद्ध की शिक्षाओं से पूर्णतः संतुष्ट होकर उन्होंने त्रिरत्न की शरण ली और आजीवन बुद्ध भक्त बन गए। बुद्ध और भिक्षुओं को भोजन पर आमंत्रित करने के बाद, उन्होंने अगले दिन अपने निवास पर उन्हें दान दिया।

कुटदंत । जब बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ मगध में यात्रा कर रहे थे, तब वे ब्राह्मणों के गाँव खानुमाता पहुँचे और वहाँ के आम के बाग में ठहरे। उस समय ब्राह्मण कुटदंत राजा बिम्बिसार द्वारा दान में दिए गए इस गाँव में रह रहे थे। उन्होंने बड़े पैमाने पर पशु बलि की तैयारी भी कर रखी थी और प्रत्येक समूह में सात सौ की संख्या में गाय, बछड़े, बकरियाँ और मेमने बलि के लिए बाँधे गए थे।

गांव के लोग बड़ी संख्या में बुद्ध के दर्शन के लिए आम के बाग में जा रहे थे, और उन्हें कूटदंत ने देख लिया। जब उन्हें उनके आने का उद्देश्य पता चला, तो उन्होंने भी उनके साथ जाने की इच्छा व्यक्त की। हालांकि, यज्ञ में भाग लेने आए सैकड़ों ब्राह्मणों ने उन्हें बुद्ध के दर्शन के लिए जाने से रोकने की कोशिश की और उनकी प्रतिष्ठा और उपलब्धियों का बड़े-बड़े शब्दों में वर्णन किया। उनकी बातें सुनने के बाद, कूटदंत ने उन्हें बुद्ध की सर्वांगीण महानता के बारे में बताया और उन्हें बुद्ध की महानता का विश्वास दिलाने के बाद, वे उनके साथ आम के बाग में उनके दर्शन के लिए चले गए।

बुद्ध ने उन्हें एक लंबा प्रवचन दिया, जिसमें मुख्य रूप से नैतिकता और उपदेशों के पालन पर बल दिया गया और चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन किया गया। कूटदंत ने प्रवचन सुनते हुए सोतापत्ति के फल को अनुभव किया। उन्होंने पशु बलि त्याग दी और अगले दिन यज्ञशाला में बुद्ध और भिक्षुओं को दान दिया।

पोक्खरसाती । जब बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ कोसल राज्य में यात्रा कर रहे थे, तब वे इच्छानांगल नामक ब्राह्मण गाँव में आए और इच्छानांगल उपवन में समय व्यतीत करने लगे। उस समय ब्राह्मण पोक्खरसाती उक्कट्ठा नगर में रह रहे थे और वहाँ की आय का आनंद ले रहे थे। यह नगर उन्हें कोसल के राजा पसेनदी ने दान में दिया था।

पोक्खरसाती के अधीन अंबट्ठ नामक एक विद्वान शिष्य था। उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि वह वन में जाकर बुद्ध के दर्शन करे और यह पता लगाए कि क्या बुद्ध वास्तव में उतने ही महान थे जितना कि लोग उन्हें मानते हैं। शिष्य ने गुरु से पूछा कि वह कैसे पता लगा सकता है कि बुद्ध वास्तव में उतने ही महान हैं जितना कि उन्हें माना जाता है। गुरु ने अपने शिष्य को सलाह दी कि वह बुद्ध में एक महान व्यक्ति के बत्तीस लक्षण देखे, क्योंकि उनके उपदेशों के अनुसार, ऐसा व्यक्ति यदि गृहस्थ बना रहता है तो वह विश्व सम्राट बनेगा, और यदि वह संसार का त्याग कर लेता है तो पूर्णतः प्रबुद्ध संत बनेगा।

अंबट्ठ ने अपने गुरु से विदा ली और कई युवकों के साथ रथ पर सवार होकर उस वन में गए जहाँ बुद्ध निवास करते थे। बाहर खड़े भिक्षुओं के निर्देशानुसार जब उन्होंने बुद्ध के कक्ष का द्वार खटखटाया, तो बुद्ध ने द्वार खोल दिया। अंबट्ठ अपने अनुयायियों के साथ कक्ष में प्रवेश कर गए और बैठ गए। वे खड़े-खड़े चलते हुए बुद्ध से बातें करते रहे।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने गुरुओं और बड़ों से इसी तरह बात करते थे? उन्होंने कहा कि उनके साथ उनका व्यवहार अलग था, लेकिन मुंडे हुए सिर वाले काले भिक्षुओं से वे इसी तरह बात करते थे। बुद्ध ने टिप्पणी की कि वे कम पढ़े-लिखे और अनुशासनहीन हैं। तब अंबत्थ ने शाक्यों वंश की आलोचना की और उनके बारे में अपमानजनक शब्द कहे। बुद्ध ने उन्हें याद दिलाया कि वे शाक्यों वंश की एक दासी के वंशज हैं, और उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली।

बुद्ध के लंबे प्रवचन को सुनने और यह सुनिश्चित करने के बाद कि उनमें बत्तीस महान लक्षण हैं, अंबट्ठ ने बुद्ध से विदा ली और अपने गुरु पोक्खरसाती के पास गए। उन्होंने पोक्खरसाती को बताया कि बुद्ध में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं और उन्होंने उनसे लंबी बातचीत की है। जब पोक्खरसाती ने सुना कि उनके शिष्य ने बुद्ध से क्या कहा, तो वे क्रोधित हो गए और उन्होंने गुस्से में अंबट्ठ को लात मार दी।

पोक्खरसाती ने तुरंत बुद्ध के पास जाकर अपने शिष्य की कमियों के लिए उनसे क्षमा मांगी और बुद्ध के उपदेश सुने। उन्होंने उपदेश को समझा और त्रिरत्न की शरण ली तथा आजीवन बुद्ध के भक्त के रूप में स्वयं को समर्पित कर दिया।

जानुसोनी । जानुसोनी एक विद्वान ब्राह्मण थे जो कोसल राज्य के मानसाकट नामक ब्राह्मण गाँव में रहते थे। जब बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास कर रहे थे, तब जानुसोनी दोपहर के समय श्रावस्ती नगर से होकर गुजर रहे थे, उनके रथ को श्वेत घोड़ियाँ खींच रही थीं। रास्ते में उनकी मुलाकात घुमंतू तपस्वी पिलोतिक से हुई और उन्होंने उनसे पूछा कि वे कहाँ से आ रहे हैं। पिलोतिक ने बताया कि वे पूज्य गौतम से मिलने आ रहे हैं।

"आप पूज्य गौतम के बारे में क्या सोचते हैं? क्या वे अत्यंत ज्ञानी हैं? क्या वे बहुत विद्वत्तापूर्ण हैं?" जानूसोनी ने पूछा। "मैं कौन होता हूँ पूज्य गौतम की बुद्धिमत्ता को समझने और उनके ज्ञान का आकलन करने वाला? केवल गौतम जैसे भिक्षु ही उनकी बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता को माप और आंक सकते हैं।"

"आप गौतम भिक्षुओं की बहुत प्रशंसा कर रहे हैं," जानुसोनी ने कहा। "मैं कौन होता हूँ गौतम भिक्षुओं की प्रशंसा करने वाला? उनकी प्रशंसा तो प्रशंसनीय लोग ही करते हैं। वे सभी देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं," पिलोतिका ने कहा। जानुसोनी ने पूछा, "आप गौतम भिक्षुओं से इतने प्रसन्न कैसे हो गए?" पिलोतिका ने हाथी के चरणों के उपमा का प्रयोग करते हुए बुद्ध की महानता का वर्णन किया। पिलोतिका की बात सुनकर जानुसोनी बुद्ध से मिलने के लिए शीघ्रता से गए और उनसे मुलाकात की। उन्होंने बुद्ध को वे सभी बातें बताईं जो पिलोतिका ने हाथी के चरणों के उपमा का प्रयोग करते हुए बुद्ध के बारे में कही थीं। बुद्ध ने उपमा पर प्रवचन पूरा किया और चूलाहत्तिपादोपमा सूत्र का पूर्ण उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में, जानुसोनी ने बुद्ध की प्रशंसा की और जीवन भर के लिए उनके शिष्य बन गए।

एक अन्य अवसर पर, बुद्ध ने उन्हें भयभेरव सूत्र का उपदेश दिया, जिसमें उन्होंने कारण और प्रभाव के सिद्धांत की व्याख्या की और कहा कि उनका सिद्धांत एक मध्यम मार्ग की शिक्षा है जो भौतिकवाद और शून्यवाद दोनों से बचती है।

सेला और केनिया । जब बुद्ध अंगुत्तरापा क्षेत्र में एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के साथ यात्रा कर रहे थे, तब वे आपाना के उपनगर में पहुँचे। जटाधारी तपस्वी केनिया, जिन्होंने बुद्ध की महानता के बारे में बहुत कुछ सुना था, उनसे मिलने गए। बुद्ध के उपदेश सुनने के बाद वे उनसे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षुओं के समुदाय में भिक्षा देने के लिए आमंत्रित किया।
लेकिन बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया, क्योंकि भिक्षुओं का समुदाय बड़ा था और केनिया ब्राह्मणों के अनुयायी थे। जब केनिया ने तीसरी बार विनती की और अपना अनुरोध किया, तो बुद्ध ने मौन ही उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। केनिया अपने आश्रम गए और अपने मित्रों और रिश्तेदारों की सहायता से बुद्ध के सम्मान में आयोजित भव्य भोज की सभी तैयारियाँ कीं। मंडप का निर्माण कार्य स्वयं केनिया ने करवाया।
जब ये तैयारियाँ चल रही थीं, तब सेला नामक एक उच्च शिक्षित ब्राह्मण, जो तीन सौ शिष्यों के गुरु और केनिया के अनुयायी थे, उस स्थान पर आए और यह जानने की कोशिश की कि ये तैयारियाँ किस लिए की जा रही हैं। उन्हें पता चला कि ये तैयारियाँ बुद्ध के लिए की जा रही हैं, जो उनके उपनगर आपाना में निवास कर रहे थे। जब सेला ने बुद्ध के व्यक्तित्व को देखा, जो एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण थे, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कई श्लोकों में बुद्ध के व्यक्तित्व की प्रशंसा की। बुद्ध द्वारा उत्तर दिए जाने पर, उन्होंने दीक्षा का अनुरोध किया और अपने अनुयायियों के साथ संघ में प्रवेश किया और उच्च दीक्षा प्राप्त की। समय आने पर वे सभी दीक्षित हो गए।
अगले दिन, केनिया ने अपने आश्रम में बुद्ध और भिक्षुओं के समुदाय को एक भव्य भोज दिया, जिसके अंत में बुद्ध ने दो श्लोकों में उन्हें पुण्य प्रदान किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 268,269

———————————————————

(धम्मपद 266 और 267) <<<< पिछला || धम्मपद 268 और 269 || अगला >>>> (धम्मपद 270)

———————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 268 और 269 - तित्थिया वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 268 और 269 - तित्थिया वत्थु

———————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
न मोनेना मुनि होतिमुलहरूपो अविद्दसु
yo ca tulamva paggayha
varama(1) daya pandito.
पापनी परिवज्जेती
sa muni tena so muni
यो मुनति उभो लोके(2)
"muni" tena pavuccati.

———————————————————

श्लोक 268 एवं 269: मौन रहकर कोई मुनि नहीं बन जाता, यदि वह मंदबुद्धि और अज्ञानी हो। तराजू के समान, बुद्धिमान व्यक्ति अच्छाई को ग्रहण करता है और बुराई को त्याग देता है। इसी कारण वह मुनि कहलाता है। जो आंतरिक और बाह्य दोनों तत्वों को समझता है, वह भी इसी कारण मुनि कहलाता है।

———————————————————

1. वरम: सर्वश्रेष्ठ, अच्छा, श्रेष्ठ। इस संदर्भ में इसका अर्थ है नैतिकता (शील), एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान (पन्न), आदि।

2. उभो लोके: शाब्दिक अर्थ, दोनों लोक, जिसका अर्थ है आंतरिक और बाह्य समूह, या स्वयं के समूह और साथ ही दूसरों के समूह।

———————————————————————————

गैर-बौद्ध सिद्धांतों के अनुयायियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ गैर-बौद्ध तपस्वियों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (268) और (269) का उच्चारण किया।

जो लोग उन्हें भोजन या अन्य वस्तुएँ भेंट करते थे, उन्हें वे तपस्वी आशीर्वाद देते थे। वे कहते थे, "आप खतरे से मुक्त रहें, आप समृद्ध और धनी हों, आप दीर्घायु हों," इत्यादि। उस समय, बुद्ध के अनुयायी अपने गृहस्थ शिष्यों से कुछ भी ग्रहण करने के बाद कुछ नहीं कहते थे। इसका कारण यह था कि बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद पहले बीस वर्षों तक उन्हें भेंट ग्रहण करते समय मौन रहने का निर्देश दिया गया था। चूंकि बुद्ध के अनुयायी अन्य मतों के तपस्वियों द्वारा अपने शिष्यों को प्रसन्न करने वाली बातें कहने पर मौन रहते थे, इसलिए लोगों ने दोनों समूहों की तुलना करना शुरू कर दिया।

जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भिक्षुओं को दान ग्रहण करने के बाद अपने शिष्यों को आशीर्वाद देने की अनुमति दी। इसके परिणामस्वरूप, अधिक से अधिक लोग बुद्ध के अनुयायियों को भिक्षा के लिए आमंत्रित करने लगे। तब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों ने तिरस्कारपूर्वक कहा, “हम मुनि के मार्ग पर चलते हैं और मौन रहते हैं, जबकि समना गौतम के अनुयायी भोजनालयों में उत्साहपूर्वक बातें करते फिरते हैं।” इन अपमानजनक टिप्पणियों को सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं! कुछ लोग अज्ञान और भय के कारण मौन रहते हैं, और कुछ लोग अपने गहन ज्ञान को दूसरों के साथ साझा नहीं करना चाहते। केवल वही व्यक्ति मुनि कहलाता है जिसने बुराई पर विजय प्राप्त की हो।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 268 एवं 269: मौन रहकर कोई मुनि नहीं बन जाता, यदि वह मंदबुद्धि और अज्ञानी हो। तराजू के समान, बुद्धिमान व्यक्ति अच्छाई को ग्रहण करता है और बुराई को त्याग देता है। इसी कारण वह मुनि कहलाता है। जो आंतरिक और बाह्य दोनों तत्वों को समझता है, वह भी इसी कारण मुनि कहलाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गैर-बौद्ध सिद्धांतों के अनुयायियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ गैर-बौद्ध तपस्वियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि जब भी विधर्मी किसी स्थान पर भोजन करते थे, तो वे अपने मेज़बानों से कहते थे, “आपको शांति मिले, आपको सुख मिले, आपकी आयु लंबी हो। फलाँ स्थान पर कीचड़ है, फलाँ स्थान पर काँटे हैं; उस स्थान पर मत जाओ।” इस प्रकार वे धन्यवाद और शुभकामनाएँ व्यक्त करते थे और ऐसा करने के बाद ही वे प्रस्थान करते थे। लेकिन ज्ञानोदय के प्रारंभिक काल में, धन्यवाद कहने का नियम लागू होने से पहले, भिक्षु अपने मेज़बानों को एक शब्द भी धन्यवाद कहे बिना भोजनालय से प्रस्थान कर जाते थे। इससे लोग नाराज़ हुए और कहने लगे, “हम विधर्मियों से धन्यवाद और शुभकामनाएँ सुनते हैं, लेकिन पूज्य भिक्षु पूरी तरह मौन होकर प्रस्थान करते हैं।” भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई।

बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, अब से भोजनालयों और ऐसे अन्य स्थानों में अपनी इच्छा अनुसार धन्यवाद दें और अपने मेज़बानों के पास बैठकर उनसे मधुरता से बात करें।” इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें धन्यवाद देने का आदेश दिया और उन्होंने उनके आदेश का पालन किया। जब लोगों ने धन्यवाद के शब्द सुने, तो उन्होंने और अधिक प्रयास किए, भिक्षुओं को अपने घरों में भोजन के लिए आमंत्रित किया और उन्हें भरपूर भेंटें दीं। तब विधर्मी नाराज हो गए और कहने लगे, “हम तो ऋषि हैं और मौन रहते हैं, परन्तु बुद्ध के शिष्य भोजनालयों और ऐसे अन्य स्थानों में लंबे-लंबे प्रवचन देते हैं।” जब बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, मैं किसी व्यक्ति को केवल मौन रहने से ऋषि नहीं कहता। क्योंकि कुछ लोग अज्ञानता के कारण चुप रहते हैं, कुछ आत्मविश्वास की कमी के कारण, और कुछ इतने कंजूस होते हैं कि वे दूसरों को वह ज्ञान भी सीखने से रोकते हैं जो वे स्वयं जानते हैं। इसलिए, मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति केवल मौन रहने से ऋषि नहीं कहलाता; बल्कि वह बुराई को दबाने के कारण ऋषि कहलाता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 268)

मूहरूपो अविद्दसु मोनेना मुनि न होति

पण्डितो यो च तुलां पग्गयः इव वरं अदायः

मूलहरूपो [आदाय मूलहरूप]: मूर्खतापूर्ण आचरण वाला; अविद्दसु : अज्ञानी; मोनेना : केवल मौन रहने के अनुष्ठान से; मुनी न होति : ऋषि नहीं बनता; पंडितो [पंडित]: बुद्धि से संपन्न; यो च : कोई; तुलं पग्गयह इव : तराजू पकड़े हुए व्यक्ति के समान; वरं आदाय : श्रेष्ठ का निर्णय करने वाला

अज्ञानी व्यक्ति, जो मूर्खतापूर्ण आचरण रखता है और भ्रमित प्रतीत होता है, मुनियों के समान मौन का अभ्यास कर सकता है । परन्तु इससे वह ऋषि नहीं बन जाता। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति तराजू की तरह अच्छे और बुरे का तौल करता है और श्रेष्ठ का चयन करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 269)

पापानि परिवज्जेति , स मुनि । तो तेना मुनि ,

यो उभो लोके मुनाति , तेना मुनि पवुक्कति ।

पापानी परिवज्जेति : (वह) बुराई से छुटकारा दिलाता है; स : फलस्वरूप; मुनी सो : मुनि (ऋषि) के रूप में वर्णित है ; तेन : इसलिए; मुनी : वह ऋषि; यो : वह जो; उभो लोके : दोनों लोकों (आंतरिक और बाह्य); मुनाति : अपनी बुद्धि से समझता है; तेन : इसी कारण; मुनी पवुच्चति : मुनि (ऋषि) के रूप में वर्णित है।

सही और गलत का विवेक रखते हुए, वे बुराई से दूर रहते हैं। इसी कारण वे मुनि कहलाते हैं । वे अपने विद्वत्तापूर्ण ज्ञान से दोनों लोकों का संतुलन स्थापित करने में सक्षम हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 268-269)

विधर्मी : अनेक अवसरों पर संन्यासियों ने बुद्ध और उनकी शिक्षाओं के बारे में प्रतिकूल अफवाहें फैलाईं। ये श्लोक भी विधर्मियों द्वारा बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के ऐसे ही प्रयास के कारण रचे गए हैं। बुद्ध के चरित्र को कलंकित करने के विधर्मियों के कुछ प्रयासों ने भयावह रूप धारण कर लिया। यहाँ ऐसे ही कुछ प्रयासों का वर्णन है।

एक समय जब बुद्ध जीतावन मठ में निवास कर रहे थे, तब विधर्मी अपने भविष्य को लेकर बहुत चिंतित थे। बुद्ध और भिक्षु समुदाय को जनता द्वारा बहुत सम्मान, आदर, देखभाल और आज्ञापालन प्राप्त था, और उन्हें भोजन, वस्त्र, आसन, औषधियाँ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जाती थीं। दूसरी ओर, विधर्मियों को उतना सम्मान, आदर, देखभाल और आज्ञापालन प्राप्त नहीं था, और उन्हें भोजन, वस्त्र, आसन, औषधियाँ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थीं।

विधर्मी इस स्थिति का सामना करने में असमर्थ थे, इसलिए वे एक महिला तपस्वी के पास गए, जो अपने शारीरिक सौंदर्य के कारण सुंदरी (सुंदरता) के नाम से प्रसिद्ध थी। वह कम उम्र की थी, लेकिन उसका चरित्र सुचारु नहीं था। विधर्मियों की योजना इस तपस्वी के माध्यम से बुद्ध और भिक्षुओं के चरित्र और प्रतिष्ठा पर हमला करने की थी।

उन्होंने उससे पूछा, “बहन, क्या आप अपने रिश्तेदारों के लिए कुछ कर सकती हैं?” “आप मुझसे क्या करवाना चाहते हैं? मैं आपके लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ। मैं अपने रिश्तेदारों के लिए अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार हूँ,” महिला तपस्वी ने आश्वासन दिया।

विधर्मियों ने उससे कहा कि वह तुरंत जेतवन जाए और नियमित रूप से वहाँ जाती रहे। तदनुसार, उसने सज-धज कर जेतवन जाना शुरू किया, उस समय जब लोग बुद्ध के प्रवचन सुनकर मठ से लौट रहे होते थे। जब लोगों ने उससे पूछा कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने कहा कि वह बुद्ध के साथ सुगंधित कक्ष में रात्रि व्यतीत करने जा रही है। वास्तव में वह विधर्मियों के एक आश्रम में रात्रि व्यतीत करती और सुबह जल्दी जेतवन मठ से होकर शहर लौट आती। जब लोगों ने उससे पूछा कि वह कहाँ से आ रही है, तो उसने कहा कि वह बुद्ध के सुगंधित कक्ष में रात्रि व्यतीत करने के बाद घर लौट रही है।

एक दिन विधर्मियों ने कुछ भाड़े के गुंडों से इस महिला तपस्वी की हत्या करवा दी और उसे जीतावन मठ की खाई में एक गड्ढे में दफना दिया, और फिर राजा पसेनादि के पास जाकर शिकायत की कि सुंदरी लापता है।

“तुम्हें क्या लगता है कि वह कहाँ हो सकती है?” राजा ने पूछा। “जेतवन मठ में,” उन्होंने तुरंत उत्तर दिया।

राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर वे उसे महल में ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, “हे महाराज, बुद्ध के अनुयायियों ने इस परिब्बाजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।” राजा ने उत्तर दिया, “तो फिर आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।” इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाने लगे, “देखो बुद्ध के अनुयायियों ने क्या किया है; देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!” फिर जुलूस महल लौट आया।

इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने उन्हें आदेश दिया कि वे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करें।

इसलिए वे पूरे शहर में घूम-घूमकर कहने लगे, 'सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उनके शिष्यों पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।' इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध के प्रति सम्मान बहुत बढ़ गया, जिससे उनकी महिमा हुई।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 270

———————————————————————————

(धम्मपद 268 और 269) <<<< पिछला || धम्मपद 270 || अगला >>>> (धम्मपद 271 और 272)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 270 - बालिसिका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 270 - बालिसिका वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Na tena ariyo hoti
yena panani himsati
अहिंसा सब्बपपनाम
"ariyo" ti pavuccati.

———————————————————————————

श्लोक 270 : जो किसी जीव को हानि पहुँचाता है, वह इसी कारण आर्य (महान) नहीं कहलाता; जो किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वही आर्य कहलाता है।(1)

———————————————————————————

1. अरिया: वह व्यक्ति जिसने चार मार्गों में से किसी एक को प्राप्त कर लिया हो।

———————————————————————————

आरिया नाम के एक मछुआरे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आर्य नामक एक मछुआरे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (270) कहा।
एक समय की बात है, श्रावस्ती के उत्तरी द्वार के पास एक मछुआरा रहता था। एक दिन बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि मछुआरे के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए भिक्षाटन से लौटते समय, बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ उस स्थान के पास रुके जहाँ आर्य मछली पकड़ रहा था। जब मछुआरे ने बुद्ध को देखा, तो उसने अपने मछली पकड़ने के उपकरण फेंक दिए और बुद्ध के पास आकर खड़ा हो गया। तब बुद्ध ने मछुआरे की उपस्थिति में अपने भिक्षुओं के नाम पूछे और अंत में मछुआरे का नाम पूछा। जब मछुआरे ने उत्तर दिया कि उसका नाम आर्य है, तो बुद्ध ने कहा कि आर्य किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाते, लेकिन चूंकि मछुआरा मछलियों का जीवन ले रहा था, इसलिए वह आर्य नाम के योग्य नहीं था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 270 : जो किसी जीव को हानि पहुँचाता है, वह इसी कारण आर्य (महान) नहीं कहलाता; जो किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वही आर्य कहलाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आरिया नाम के एक मछुआरे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आर्य नामक एक मछुआरे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, श्रावस्ती के उत्तरी द्वार के पास एक मछुआरा रहता था। एक दिन बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि मछुआरे के लिए सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ उस स्थान के पास रुके जहाँ आर्य मछली पकड़ रहा था। जब मछुआरे ने बुद्ध को देखा, तो उसने अपने मछली पकड़ने के उपकरण फेंक दिए और बुद्ध के पास आकर खड़ा हो गया। तब बुद्ध ने मछुआरे की उपस्थिति में अपने भिक्षुओं के नाम पूछे और अंत में मछुआरे का नाम पूछा। जब मछुआरे ने अपना नाम आर्य बताया, तो बुद्ध ने कहा कि आर्य किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाते, लेकिन चूंकि मछुआरा मछलियों का जीवन ले रहा था, इसलिए वह आर्य नाम के योग्य नहीं था। प्रवचन के अंत में, मछुआरे ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त कर लिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 270)
येना पनानि हिंसति तेन अरीयो न होति
सब्बापानं अहिंसा अरियो इति पावुक्कति
येन : यदि कोई; पाणानि : जीव; हिंसति : पीड़ा पहुँचाता है; तेन : इसके कारण; अरियो [अरिया]: एक श्रेष्ठ व्यक्ति; न होति : (वह) नहीं बनता; सब्बपाणानं [सब्ब्याणान]: सभी जीव; अहिंसा : पीड़ा नहीं पहुँचाता; अरियो इति पावुच्चति : (इसके कारण) उसे श्रेष्ठ कहा जाता है
जो व्यक्ति जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाता है, वह नेक इंसान नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति, जो किसी भी जीवित प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसे अरियो , यानी नेक इंसान कहा जाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 270)
अहिंसा : अहिंसा। बौद्ध नैतिकता का सर्वव्यापी सार अहिंसा है । इस अवधारणा की व्याख्या सम्राट अशोक ने अमरतापूर्वक की, जिनके प्रचारकों ने बुद्ध के संदेश को उस समय के ज्ञात विश्व के अधिकांश केंद्रों तक पहुँचाया। चार वर्षों तक अशोक, यद्यपि वास्तव में अपने राज्य के शासक थे, उन्हें अपने राज्य को वश में करने और अपने क्षेत्रों का विस्तार करने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ा, जिसमें कालिंग को भी अपने अधीन करना शामिल था। यह अशोक का दिग्विजय या सैन्य विजय का युद्ध था। अशोक के इस दिग्विजय के पूर्ण होने के बाद ही, इसमें शामिल मानव वध की भयावहता से पश्चाताप करते हुए, उन्होंने धर्मविजय या धर्म द्वारा विजय की नीति अपनाई, जो बुद्ध के धम्म द्वारा सिखाए गए प्रेम और करुणा के उच्च आदर्शों से ओतप्रोत थी। इसके बाद वे धर्माशोक के नाम से जाने गए।
धर्म के मार्ग पर चलते हुए, बौद्ध धर्म को अपनाकर अशोक ने अपने साम्राज्य और दूर-दराज के देशों में भी इस धर्म का प्रचार-प्रसार शुरू किया। उन्होंने अपने दोनों बच्चों, पुत्र महिंदा और पुत्री संघमित्रा को दीक्षा दिलाई और महिंदा को श्रीलंका में धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा, जबकि संघमित्रा बाद में महा बोधि वृक्ष का पौधा लेकर बुद्धगया आईं और बौद्ध भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की।
अशोक की नीति यह थी कि:
(1) सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा ,
(2) कठोर और अभद्र भाषा से परहेज करना,
(3) माता-पिता, शिक्षकों और बड़ों का आदर करना,
(4) ब्राह्मणों, पुरोहितों और सेवकों का ध्यान रखते हुए,
(5) धार्मिक जीवन जीना, जिसमें करुणा, उदारता, सत्यवादिता, पवित्रता, नम्रता, कृतज्ञता और अपनी सामर्थ्य के अनुसार खर्च करना शामिल है।
(6) धर्मयात्रियों या तीर्थयात्राओं में संलग्न होना,
(7) कुओं और तालाबों का निर्माण तथा फलों और औषधीय जड़ी-बूटियों का रोपण, और
(8) अपनी प्रजा के प्रति पुत्रवत आदर और स्नेह रखना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक

———————————————————————

(धम्मपद 270) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 271 और 272 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 273, 274, 275 और 276)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 271 और 272 - सम्बहुलासिलादिसम्पन्नाभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 271 और 272 - सम्बहुलासिलादिसम्पन्नाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na silabbatamattena
bahusaccena va pana
atha va samadhilabhena
vivittasayanena va.
फुसामी नेक्खम्मासुखम(1)
अपुथुज्जनसेविटम
भिक्खु विस्सासामपदी
appatto asavakkhayam.

श्लोक 271 और 272: केवल नैतिक अभ्यास से, न ही अधिक ज्ञान से, न ही एकाग्रता प्राप्त करने से, न ही एकांतवास में रहने से, और न ही स्वयं को यह आश्वासन देने से कि "मैं अनागामी फल के उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो सामान्य सांसारिक लोगों (पुथुज्जनों) को प्राप्त नहीं होता है," भिक्षु को नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) के अंत को प्राप्त किए बिना (अर्थात, अरहतत्व प्राप्त किए बिना) संतुष्ट रहना चाहिए।

---

1. नेक्खमसुखम: इस संदर्भ में, अनागामिसुखम। यानी, अनागामी फल, वह फल जो अनागामी मग्गा की प्राप्ति के बाद होता है।

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (271) और (272) कहे।

एक समय की बात है, कुछ भिक्षु सद्गुणों से परिपूर्ण थे; उनमें से कुछ कठोर तपस्या (धुतंग) का पालन करते थे, कुछ को धम्म का व्यापक ज्ञान था, कुछ ने ध्यान (झान) प्राप्त कर लिया था, कुछ ने अनागामी फल आदि प्राप्त कर लिए थे। उन सभी का मानना था कि चूंकि उन्होंने इतना कुछ प्राप्त कर लिया है, इसलिए उनके लिए अरहत्त फल प्राप्त करना अत्यंत सरल होगा। इसी विचार के साथ वे बुद्ध के पास गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "भिक्षुओं, क्या आपने अरहत्त फल प्राप्त कर लिया है?" तब उन्होंने उत्तर दिया कि वे ऐसी स्थिति में हैं कि उनके लिए किसी भी समय अरहत्त फल प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! केवल इसलिए कि आप नैतिकता (शील) से संपन्न हैं, केवल इसलिए कि आपने अनागामी फल प्राप्त कर लिया है, आपको आत्मसंतुष्ट नहीं होना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए कि बस थोड़ा सा और करना बाकी है; जब तक आप सभी नैतिक आसवों (अस्वों) का नाश नहीं कर लेते, तब तक आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि आपने अरहत्त फल के पूर्ण आनंद को प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 271 और 272: केवल नैतिक अभ्यास से, न ही अधिक ज्ञान से, न ही एकाग्रता प्राप्त करने से, न ही एकांतवास में रहने से, और न ही स्वयं को यह आश्वासन देने से कि "मैं अनागामी फल के उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो सामान्य सांसारिक लोगों (पुथुज्जनों) को प्राप्त नहीं होता है," भिक्षु को नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) के अंत को प्राप्त किए बिना (अर्थात, अरहतत्व प्राप्त किए बिना) संतुष्ट रहना चाहिए।

प्रवचन के अंत में उन सभी भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।
अध्याय उन्नीस का अंत: न्यायप्रिय या धर्मी

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुछ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ गुणी भिक्षुओं के संदर्भ में इन श्लोकों का उच्चारण किया था।
कथा के अनुसार, इनमें से कुछ भिक्षुओं ने मन ही मन विचार किया, "हमने सद्‌गुण प्राप्त कर लिए हैं; हमने शुद्ध साधनाओं का मार्ग अपनाया है; हम अत्यंत विद्वान हैं; हम एकांत और एकांत स्थानों में निवास करते हैं; हमने समाधि जैसी ध्यान साधना से अलौकिक शक्तियाँ विकसित कर ली हैं। हमारे लिए अर्हतत्व प्राप्त करना कोई कठिन बात नहीं है; वास्तव में, हम जब चाहें अर्हतत्व प्राप्त कर सकते हैं।" इसी प्रकार, तीसरे मार्ग का फल प्राप्त कर चुके भिक्षुओं ने भी मन ही मन विचार किया, "हमारे लिए अब अर्हतत्व प्राप्त करना कोई कठिन बात नहीं है।" एक दिन वे सभी बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए।
बुद्ध ने उनसे पूछा, "लेकिन, भिक्षुओं, क्या आपने अपने धार्मिक कर्तव्यों को पूर्ण कर लिया है?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "आदरणीय, हमने इतनी पवित्रता प्राप्त कर ली है। इसलिए, जब भी हम चाहें, हम अर्हतत्व प्राप्त कर सकते हैं। इसी विचार के साथ हम निवास करते हैं।" जब बुद्ध ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, किसी भिक्षु के लिए केवल इसलिए यह सोचना उचित नहीं है कि 'हमारे वर्तमान जीवन में कष्ट बहुत कम हैं।' इसके विपरीत, जब तक वह अपने पापों का नाश न कर ले, तब तक उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि 'मैंने सच्चा आनंद प्राप्त कर लिया है।'"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 271)
सिलब्बतामात्तेन पुना बहुसच्चेन वा
अथवा समाधि लभेण विविच्च सयानेन वा
sīlabbatamattena : केवल उपदेशों और अधिकारों के माध्यम से; puna : और साथ ही; bāhusaccena vā : बहुत अधिक ज्ञान के माध्यम से; athavā : केवल नहीं; samādhi lābhena : शांति की प्राप्ति के माध्यम से; vivicca sayanena vā : या एकांतवास के माध्यम से
ये दो श्लोक निर्मलता की अवस्था (निर्वाण) प्राप्त करने का प्रयास कर रहे भिक्षुओं को उपदेश देते हैं। उनसे कहा गया है कि वे उन उपलब्धियों से संतुष्ट होकर मुक्ति प्राप्त करने के अपने प्रयास में ढिलाई न बरतें जो केवल अंतिम लक्ष्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 272)
आपुथुज्जनसेवितं नेक्खमसुखं फुसामि
भिक्खु आसवक्खयं अप्पत्तो विस्सासं न अपादि
aputhujjanasevitaṃ [aputhujjanasevita]: सांसारिक सुखों से ऊपर उठ चुके लोगों द्वारा संरक्षित; nekkhammasukhaṃ [nekkhammasukha]: त्याग का आनंद; phusāmi : मैं अपने मन से स्पर्श करता हूँ; bhikkhu : भिक्षु; āsavakkhayaṃ appatto [appatta]: दोषों से मुक्ति प्राप्त किए बिना; vissāsaṃ [vissāsa]: विश्वास तक; na āpādi : न पहुँचना
भिक्षुओं, नियमों और रीति-रिवाजों से संतुष्ट मत होइए। यहाँ तक कि गहन विद्या से भी संतुष्ट मत होइए। न ही मानसिक समाधि की अवस्था प्राप्त करने से संतुष्ट होइए। एकांतवास में रहकर यह सोचकर संतुष्ट मत होइए कि "मैंने वैराग्य का वह आनंद अनुभव कर लिया है जो साधारणों के लिए संभव नहीं है।" निर्वाण प्राप्त करने तक अपने प्रयास में ढिलाई मत बरतो।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 271-272)
नेक्खम्मसुखं : त्याग का आनंद। आध्यात्मिक जीवन के उच्चतर आनंद को प्राप्त करने के लिए नेक्खम्म (त्याग) आवश्यक है।
एक बार बुद्ध वाराणसी के पास इसिपताना में स्थित हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। तब बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं के समूह को इस प्रकार संबोधित किया:
हे भिक्षुओं, ये दो चरम सीमाएँ (अंता) हैं जिनसे त्याग करने वाले (पब्बजितेन) को बचना चाहिए:
(1) इंद्रिय सुखों में लिप्त होना – यह नीच, अश्लील, सांसारिक, घृणित और लाभहीन है, और
(2) आत्म-यातना की लत – यह कष्टदायक, नीच और लाभहीन है।
इन दोनों चरम सीमाओं को त्यागकर बुद्ध ने मध्य मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) को समझा है, जो दृष्टि (चक्खु) और ज्ञान (ज्ञान) को बढ़ावा देता है , और जो शांति (वूपसमय), उच्चतर ज्ञान (अभिञ्ञाय), ज्ञानोदय (संबोधाय) और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

हे भिक्षुओं, बुद्ध ने जिस मध्य मार्ग को समझा है, वह क्या है? वह मार्ग दृष्टि और ज्ञान को बढ़ावा देता है, और शांति, उच्चतर बुद्धि, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।
वह अत्यंत श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग—अर्थात,
सही समझ (सम्मादिट्ठी),
सही विचार (सम्मा संकल्प),
सम्यक वाणी (सम्मा वाचा),
सही कार्य (सम्मा - कम्मंता),
सही आजीविका (सम्मा अजीव),
सही प्रयास (सम्मा वायामा),
सही जागरूकता (सम्मासति), और
सही एकाग्रता (सम्मा समाधि),
—हे भिक्षुओं, यही वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने समझा है।
हे भिक्षुओं, यही दुख का महान सत्य है ! जन्म दुख है, क्षय दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है, अप्रिय से जुड़ाव दुख है, सुखद से अलगाव दुख है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुख है। संक्षेप में , आसक्ति के पाँचों समूह दुख हैं।
हे भिक्षुओं, यही दुख के कारण का महान सत्य है (दुक्खा - समुदय - अरीयसच्च):
यही लालसा पुनर्जन्म (पोनोभविका) का कारण बनती है, जिसके साथ आसक्ति और जीवन के प्रति आसक्ति भी जुड़ी रहती है। यह इंद्रिय सुखों की लालसा (कामतन्हा), अस्तित्व की लालसा (भवतन्हा) और गैर-अस्तित्व की लालसा (विभवतन्हा) है।
अब, हे भिक्षुओं, यह दुख की समाप्ति का महान सत्य है (दुक्ख - निरोध - अरियासक्का):
यह इस लालसा से पूर्ण रूप से अलग होना और इसका विनाश करना, इसका त्याग करना, इससे मुक्ति पाना और इससे अनासक्ति प्राप्त करना है।
अब, हे भिक्षुओं, यह दुख की समाप्ति (दुक्ख - निरोध - गामिनी - पतिपद - अरियासक्का) की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है।
यह वही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है—अर्थात्, सही समझ, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।
(1) i. "यह दुख का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुख के इस महान सत्य को समझना चाहिए (परिञ्ञेय्य)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुख के इस महान सत्य को अनुभव किया गया है (परिञ्ञता)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(2) i. "यह दुख के कारण का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुख के कारण के इस महान सत्य का उन्मूलन किया जाना चाहिए (पहातब्ब)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुख के कारण का यह महान सत्य मिटा दिया गया है (पाहीनं)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(3) i. "यह दुख के निवारण का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुखों के निवारण के इस महान सत्य को साकार किया जाना चाहिए (सच्चिकातब्बा)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुखों के निवारण का यह महान सत्य सिद्ध हो गया है (सच्चिकतं)।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(4) i. "यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

ii. “दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले इस महान सत्य का विकास किया जाना चाहिए (भावेतब्बं)।” इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. “दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले इस महान सत्य का विकास हुआ है (भावितं)।” इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन चार आर्य सत्यों के तीन पहलुओं और बारह गुणों के संबंध में पूर्ण सत्य सहज ज्ञान पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो गया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देवता, मार और ब्रह्मा शामिल हैं, और तपस्वियों और पुरोहितों, देवताओं और मनुष्यों के समूह के बीच, यह स्वीकार नहीं किया कि मैंने अतुलनीय सर्वोच्च ज्ञान (अनुत्तरं सम्मासंबोधिं) प्राप्त कर लिया है।
हे भिक्षुओं, जब इन चार आर्य सत्यों के तीन पहलुओं और बारह गुणों के संबंध में पूर्णतः सत्य सहज ज्ञान मुझे स्पष्ट हो गया, तभी मैंने इस संसार में, जिसमें देवता, मार, ब्रह्मा, तपस्वियों और पुरोहितों, देवताओं और मनुष्यों की भीड़ है, यह स्वीकार किया कि मैंने अतुलनीय सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है।
और मुझमें यह ज्ञान और अंतर्दृष्टि (ज्ञानदस्सना) उत्पन्न हुई — “मेरे मन की मुक्ति अटल है। यह मेरा अंतिम जन्म है, और अब मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।”
इस प्रकार बुद्ध ने प्रवचन दिया और प्रसन्न भिक्षुओं ने बुद्ध के शब्दों की सराहना की।
जब इस सिद्धांत का प्रतिपादन हो रहा था, तब पूज्य कोण्डञ्ञ में धूल रहित, निष्कलंक, सत्य-दर्शन करने वाली आँख (धम्मचक्खु) उत्पन्न हुई और उन्होंने देखा कि "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब कुछ समाप्ति के अधीन है।"
जब बुद्ध ने धम्मचक्र का उपदेश दिया, तो पृथ्वी पर स्थित देवताओं ने कहा, "यह उत्कृष्ट धम्मचक्र, जिसका उपदेश इस संसार में किसी तपस्वी, पुरोहित, देवता, मार या ब्रह्मा द्वारा नहीं दिया जा सकता था, उसका उपदेश बुद्ध ने वाराणसी के निकट इसिपताना के हिरण उद्यान में दिया है।"

अध्याय 20. मग्गावग्गा: मार्ग (273-289)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 273,274,275,276

(धम्मपद 271 और 272) <<<< पिछला || धम्मपद 273, 274, 275 और 276 || अगला >>>> (धम्मपद 277, 278 और 279)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 273, 274, 275 और 276 - पंचसताभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद छंद 273, 274, 275 और 276 - पंचसताभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Magganatthangiko(1) settho
saccanam caturo pada(2)
virago settho dhammanam(3)
dvipadananca cakkhuma.
Eseva maggo natthanno
dassanassa visuddhiya
etanhi tumhe patipajjatha

marassetam pamohanam.
Etanhi tumhe patipanna
dukkhassantam karissatha
akkhato vo rnaya maggo
annaya sallakantanam.
तुमहेही किच्चामतप्पम
अक्खतरो तथागत
पतिपन्ना पामोक्खंती
jhayino marabandhana.

श्लोक 273 : मार्गों में, अष्टम तत्वों का मार्ग श्रेष्ठ है; सत्यों में, चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं; धर्मों में, भोग का अभाव (अर्थात निर्वाण) श्रेष्ठ है; दो पैरों वाले प्राणियों में, सर्वदर्शी बुद्ध श्रेष्ठ हैं।

श्लोक 274 : यही एकमात्र मार्ग है, और दृष्टि की पवित्रता के लिए इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसी मार्ग का अनुसरण करो; यह मारा को भी चकित कर देगा।

श्लोक 275 : इस मार्ग पर चलकर तुम दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाओगे। मैंने स्वयं नैतिक विकारों के कांटों को दूर करने वाले मार्ग को जान लिया है, इसलिए मैंने तुम्हें वह मार्ग दिखाया है।

श्लोक 276 : आप स्वयं प्रयास करें; तथागत (बुद्ध) ही मार्ग दिखा सकते हैं। जो लोग शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

---

1. अत्थांगिको: आर्य अत्थांगिका मार्ग, या आठ तत्वों का श्रेष्ठ मार्ग। यह वह मार्ग है जिसे बुद्ध ने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने के लिए बताया है। आठ तत्व हैं: सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही जीवन, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।
2. चतुरोपाद: चतुरि आर्यसच्चानी, या चार आर्य सत्य। ये वे चार सत्य हैं जिन पर बुद्ध का संपूर्ण सिद्धांत आधारित है। वे हैं: (क) दुःख का आर्य सत्य; (ख) दुःख के कारण का आर्य सत्य, अर्थात् तृष्णा; (ग) दुःख के निवारण का आर्य सत्य; और (घ) दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। (ध्यान दें: इस संदर्भ में दुःख का अर्थ पाँच प्रकार की आसक्ति या पंचुपादनक्खन्ध है)।
3. धम्म: सशर्त और निर्शर्त दोनों प्रकार की वस्तुएँ।

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (273) से (276) तक कहे।

पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करने के बाद जेतवन मठ लौट आए। शाम को वे यात्रा के बारे में, विशेषकर उस भूमि की प्रकृति के बारे में चर्चा कर रहे थे, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, चिकनी मिट्टी वाली थी या पथरीली आदि। बुद्ध उनकी बातचीत के बीच में उनके पास आए और उनसे कहा, "भिक्षुओं, जिस मार्ग की आप चर्चा कर रहे हैं वह आपके लिए बाह्य है; एक भिक्षु को केवल आर्यों के मार्ग पर ही ध्यान देना चाहिए और आर्य मार्ग (मार्ग) की प्राप्ति के लिए जो कुछ भी करना चाहिए, वह करने का प्रयास करना चाहिए, जो पूर्ण शांति (निर्वाण) की प्राप्ति की ओर ले जाता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 273 : मार्गों में, अष्टम तत्वों का मार्ग श्रेष्ठ है; सत्यों में, चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं; धर्मों में, भोग का अभाव (अर्थात निर्वाण) श्रेष्ठ है; दो पैरों वाले प्राणियों में, सर्वदर्शी बुद्ध श्रेष्ठ हैं।

श्लोक 274 : यही एकमात्र मार्ग है, और दृष्टि की पवित्रता के लिए इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसी मार्ग का अनुसरण करो; यह मारा को भी चकित कर देगा।

श्लोक 275 : इस मार्ग पर चलकर तुम दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाओगे। मैंने स्वयं नैतिक विकारों के कांटों को दूर करने वाले मार्ग को जान लिया है, इसलिए मैंने तुम्हें वह मार्ग दिखाया है।

श्लोक 276 : आप स्वयं प्रयास करें; तथागत (बुद्ध) ही मार्ग दिखा सकते हैं। जो लोग शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, एक बार बुद्ध देश भर की यात्रा करने के बाद सावत्थी लौट आए और धम्म सभा में विराजमान हुए। उनके बैठने के बाद, पाँच सौ भिक्षु अपने-अपने यात्रा मार्गों के बारे में चर्चा करने लगे। वे कहने लगे, “अमुक गाँव का मार्ग चिकना है; अमुक गाँव का मार्ग ऊबड़-खाबड़ है; अमुक गाँव का मार्ग कंकड़ों से भरा है; अमुक गाँव का मार्ग बिना कंकड़ के है।” इसी प्रकार वे अपने यात्रा मार्गों पर चर्चा करते रहे। बुद्ध ने यह जानकर कि वे अर्हतत्व के योग्य हैं, धम्म सभा में गए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठकर पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, यह मार्ग हमारे हित से परे है; भिक्षु को श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि केवल ऐसा करने से ही वह समस्त दुखों से मुक्ति पा सकता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 273)
मग्गनं अथंगिको सेठो सैकानं कैटुरो पदा
धम्मणं विरागो सेठो दिपदानं च चक्खुमा
maggānaṃ [maggāna]: मार्गों में से; aṭṭhangiko maggo [magga]: अष्टांगिक मार्ग है; seṭṭho [seṭṭha]: सबसे श्रेष्ठ है; saccānaṃ [saccāna]: सत्यों में से; caturo padā : चार आर्य सत्य (सबसे श्रेष्ठ हैं); dhammānaṃ [dhammāna]: अवस्थाओं में से; virāgo [virāga]: वैराग्य-निर्वाण; dipadānaṃ [dipadāna]: दो पैरों वाले में से; cakkhumā : नेत्र धारण करने वाला (बुद्ध) सबसे श्रेष्ठ है
सभी मार्गों में अष्टांगिक मार्ग सर्वोपरि है। सत्यों में चार आर्य सत्य सर्वोपरि हैं। निर्वाण सर्वोपरि है। और दो पैरों वाले प्राणियों में, जिन्हें आंखें प्राप्त हैं, बुद्ध सर्वोपरि हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 274)
विशुद्धिआ दस्सानासा एसो इवा मग्गो नत्थि आन्नो
तुम्हें एतमहि पतिपज्जथा एतं मरस्स पमोहनं
visuddhiyā dassanassa : अंतर्दृष्टि की स्पष्टता के लिए; eso eva maggo [magga]: यही एकमात्र मार्ग है; natthi añño : कोई अन्य (मार्ग) नहीं; tumhe : (इसलिए) तुम; etamhi : इस मार्ग का; paṭipajjatha : अनुसरण करो; etaṃ : इस मार्ग का; mārassa : मृत्यु; pamohanaṃ [pamohana]: भ्रमित करेगी
यही मार्ग है। अंतर्दृष्टि की स्पष्टता प्राप्त करने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आपको मारा के पूर्ण विस्मय में डूबने के लिए इसी मार्ग का अनुसरण करना होगा।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 275)
एतामहि पतिपन्ना तुम्हें दुक्खस्सा अंतं करिस्सथा
मया सल्लसंथनं मग्गो अनन्याय वे अक्खेतो
एतम्ही : यह मार्ग; पतिपन्ना : अनुसरण करना; तुमहे : तुम्हारे द्वारा; दुःखस्स : कष्टों का; अंतं करिसथ : (तुम्हें) इसका अंत करना होगा; मया : मेरे द्वारा; सल्लसंथनं [सल्लसंथन]: शरीर से तीर निकालने के लिए; मग्गो [मग्गा]: मार्ग; अञ्ञाय : जानकर; वे : निश्चित रूप से; अक्खेतो [अक्खेत]: घोषित किया गया

इस मार्ग का अनुसरण करने से आपको दुखों का अंत प्राप्त होगा। बाणों को निकालने का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, मैंने इस मार्ग का पता लगाया है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 276)

तुमहे अट्टप्पां किच्चं तथागत अक्खातारो

पतिपन्ना झायिनो मरबंधना पमोक्खन्ति

तुमहेहि : स्वयं द्वारा; आतप्पं [आतप्प]: (दोषों से मुक्ति पाने का) प्रयास; किच्चं [किच्च]: किया जाना चाहिए; तथागत : पथप्रदर्शक (बुद्ध); अक्खतारो [अक्खतारा]: (निर्वाण के) उद्घोषक; पटिपन्ना : मार्ग के अनुयायी; झायिनो [झायिना]: ध्यान करने वाले; मारबंधना : मृत्यु के बंधनों से मुक्त होना; पामोक्खंति : पूर्णतः मुक्त होना

प्रयास तो आपको स्वयं ही करना होगा। बुद्ध (गुरु) केवल मार्ग दिखाते हैं और मार्गदर्शन करते हैं। जो ध्यानमग्न साधक इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे मृत्यु के जाल से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 273-276)

Eso va maggaṃ natthi añño dassanassa visuddhiyā : दृष्टि की शुद्धता प्राप्त करने का इस मार्ग के सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जो लोग बुद्ध द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर दृष्टि की शुद्धता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ध्यान की उस तकनीक का अभ्यास करना होगा, जिससे दृष्टि की शुद्धता प्राप्त की जा सकती है।

सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति सात चरणों से गुजरते हुए इस अवस्था को प्राप्त करता है। परिणामस्वरूप, इस प्रक्रिया को सप्त विशुद्धि (शुद्धता के सात चरण) के रूप में जाना जाता है। शुद्धता के सात चरण इस प्रकार हैं:

शील विशुद्धि (नैतिकता की शुद्धता)

चित्त विशुद्धि (मन की शुद्धता)

Diṭṭhi visuddhi (विचारों की शुद्धता)

कंखावितरण विशुद्धि (संदेहों पर विजय की शुद्धता)

Maggāmagga ñaṇadassana visuddhi (ज्ञान की शुद्धता और सही-गलत मार्ग की अंतर्दृष्टि)

Patipadā ñaṇadassana visuddhi (ज्ञान की शुद्धता और प्रगति की अंतर्दृष्टि)

Ñaṇadassana visuddhi (ज्ञान की शुद्धता और श्रेष्ठ मार्ग में अंतर्दृष्टि)।

(1) शीलविशुद्धि —नैतिक शुद्धता—

अशुद्ध चरित्र वाले व्यक्ति को हमेशा यह भय सताता रहता है कि दूसरे लोग उसमें दोष निकालेंगे, उसे लज्जित करेंगे या उससे बदला लेंगे। इसी प्रकार, उसका अंतरात्मा भी उसे कचोटता रहता है, यह कहते हुए कि उसने कुछ गलत किया है। ऐसे विचारों से अगुणी व्यक्ति का मन दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार दुर्बल मन वाला व्यक्ति ध्यान करने पर भी कोई लाभ नहीं प्राप्त करेगा। जैसे बंजर मिट्टी में लगाया गया वृक्ष, वैसे ही उसका मन एकाग्रता से ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाएगा। इसलिए, यदि कोई योगावस्कार एकाग्रता से ध्यान लगाकर उच्च अवस्था प्राप्त करना चाहता है या ध्यान द्वारा सही मार्ग पाना चाहता है, तो उसे सबसे पहले ध्यान के लिए मार्ग तैयार करना चाहिए, जैसे एक किसान खेती के लिए भूमि तैयार करता है। यदि वह गृहस्थ है, तो उसे गृहस्थ के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। यदि वह भिक्षु है, तो उसे भिक्षु के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। गृहस्थ यदि गुणवान बनना चाहता है, तो उसे कम से कम पांच नियमों का पालन करना चाहिए। सद्गुण तभी उत्पन्न होते हैं जब सभी दोष दूर हो जाते हैं। इसलिए, उसे यह महसूस करने के बजाय कि वह एक सदाचारी जीवन जीने में असमर्थ है और ध्यान छोड़ देने के बजाय, एक सदाचारी जीवन जीकर स्वयं को शुद्ध करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

(2) चित्तविशुद्धि — मन की शुद्धता —

नामरूप (मन और पदार्थ) के स्वरूप को समझना अत्यंत कठिन है, क्योंकि वे व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, मनुष्य और अन्य अवधारणाओं के भ्रमों से ढके हुए हैं। पुस्तकों से प्राप्त नामरूप का ज्ञान हमारे दोषों को दूर करने और मोक्ष एवं ज्ञानोदय के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अपर्याप्त है। पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान परोक्ष ज्ञान है, जिसका स्वयं अनुभव नहीं हुआ है, क्योंकि यह व्यक्ति द्वारा स्वयं अनुभव नहीं किया गया है। यह आत्म-साक्षात्कार नहीं है।

सही मार्ग पाने के लिए हमें किताबों से मिले ज्ञान से कहीं अधिक की आवश्यकता है; हमें एक स्पष्ट दर्शन की आवश्यकता है जिसे हम स्वयं समझ सकें। यह दर्शन केवल ध्यान से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी कठोर वस्तु को काटने से पहले अपनी छुरी को तेज करता है, उसी प्रकार नाम रूप को समझने के लिए योगावस्कार को सर्वप्रथम अपने मन को तैयार करना चाहिए। जब उसका मन बाधाओं से मुक्त हो जाता है, तब वह चित्त विशुद्धि प्राप्त करता है ।

अपने मन को शुद्ध करने के लिए हमें एकाग्रता शक्ति बढ़ानी चाहिए। मन का स्वभाव किसी एक वस्तु पर लंबे समय तक एकाग्र रहने का नहीं, बल्कि विभिन्न वस्तुओं पर भटकने का है। जो व्यक्ति बहुत तेज गति से यात्रा कर रहा होता है, वह सड़क के किनारे दिखाई देने

वाली किसी भी वस्तु को समझ नहीं पाता, क्योंकि उसका मन, जो एकाग्र नहीं हुआ है और विभिन्न वस्तुओं पर भटकता रहता है, वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाता। जब हम अंतर्दृष्टि ध्यान के द्वारा मन और पदार्थ के वास्तविक स्वरूप पर एकाग्र होते हैं, यदि मन इस पर लंबे समय तक स्थिर न रहे, तो वह बहुत तेजी से विभिन्न वस्तुओं पर भटकने लगता है। ऐसा मन परम सत्य को ग्रहण नहीं कर पाएगा। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ है, तो उसमें अंतर्दृष्टि ध्यान का ज्ञान शीघ्र उत्पन्न नहीं होगा। इसलिए, यदि वह अंतर्दृष्टि ज्ञान को शीघ्र विकसित करना चाहता है, तो उसे एकाग्र होना चाहिए और अपने मन को इस कार्य के लिए तैयार करना चाहिए। निरंतर अभ्यास के बाद व्यक्ति में मन को एक वस्तु पर लंबे समय तक एकाग्र रखने की क्षमता आ जाती है। मन की यह एकाग्रता समाधि (मानसिक अनुशासन) से प्राप्त होती है । इस दौरान मन में किसी और विचार को आने दिए बिना, यदि कोई व्यक्ति लंबे समय तक मन को एक वस्तु पर एकाग्र रख पाता है, तो वह समाधि की अवस्था में होता है। कुछ योगावकार ऐसे भी होते हैं जो आरंभ में ही एकाग्रता विकसित किए बिना उच्च कोटि की अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए, जो लोग एकाग्रता विकसित नहीं करना चाहते, यदि वे शुद्ध अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लें तो इसमें कोई हानि नहीं है। जो लोग एकाग्रता के बाद अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं, उनमें से कुछ समाधि की अवस्था में ही यह अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। कुछ अन्य एक निश्चित स्तर तक एकाग्रता विकसित करते हैं और एकाग्रता की प्रथम अवस्था तक पहुँचते ही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। कुछ अन्य एकाग्रता और अंतर्दृष्टि दोनों को एक साथ विकसित करते हैं और इन दोनों का उपयोग करते हुए ध्यान करते हैं। इन सभी प्रणालियों में से, समाधि की अवस्था प्राप्त करने के बाद अंतर्दृष्टि प्राप्त करना वर्तमान समय के अनुकूल नहीं है। यदि कोई ऐसा करता है तो हो सकता है कि वह लंबे समय तक अंतर्दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम न हो पाए।

हमारा मानना है कि सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी एकाग्रता विकसित करनी चाहिए और उसके बाद एकाग्रता एवं अंतर्दृष्टि दोनों को विकसित करने की विधि अपनानी चाहिए। यही सर्वोत्तम पद्धति प्रतीत होती है।

(3) दिट्ठिविशुद्धि —दृष्टिकोण की शुद्धता—

बुद्ध का ध्यान करके या किसी अन्य ध्यान पद्धति का अभ्यास करके मन को शुद्ध करने के लिए, सबसे पहले दिट्ठी विशुद्धि भावना से शुरुआत करनी चाहिए। आत्म दिट्ठी दृष्टि क्या है ? आत्म दिट्ठी दृष्टि का अर्थ है मन और पदार्थ को मन और पदार्थ के रूप में, स्वयं को स्वयं के रूप में, माता को माता के रूप में, पिता को पिता के रूप में, भाई को भाई के रूप में, बहन को बहन के रूप में, शत्रु को शत्रु के रूप में, मित्र को मित्र के रूप में न समझना, और अन्य विभिन्न व्यक्तियों को एक ही स्वरूप के प्राणी मानकर उनके साथ एक जैसा व्यवहार करना और उन्हें उसी रूप में स्वीकार करना। यही आत्म दृष्टि है। सक्कायादिट्ठी इसका दूसरा नाम है (सक्कायादिट्ठी का अर्थ है आत्मा या स्वयं में विश्वास)। अंतर्दृष्टि का अर्थ है मन और पदार्थ के स्वरूप को मन और पदार्थ के रूप में ही समझना, न कि स्वयं के रूप में, न ही पिता, माता या किसी अन्य प्राणी के रूप में। आत्म दृष्टि से मुक्त इस अंतर्दृष्टिपूर्ण ज्ञान को दिट्ठी विशुद्धि कहते हैं । दिट्ठी विशुद्धि का संक्षिप्त अर्थ है ज्ञान की शुद्धता।

अंतर्दृष्टि ध्यान की शुरुआत दिट्ठी विशुद्धि भावना से होती है । योगावस्कार को इस दिट्ठी विशुद्धि — शुद्ध ज्ञान — को प्राप्त करने में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है । उसे दिट्ठी विशुद्धि में पूर्णतः निपुण होना चाहिए । यदि योगावस्कार दिट्ठी विशुद्धि में पूर्णतः निपुण हुए बिना आगे बढ़ने का प्रयास करता है, तो उसका ध्यान अभ्यास भ्रमित हो जाएगा। इस पर इस प्रकार निपुण होना चाहिए कि मन और पदार्थ के सिद्धांत को स्वयं, माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति के रूप में देखा जा सके, जैसे हम केले के पेड़ की छाल को छीलकर अपने ज्ञान को अलग-अलग भागों में विभाजित करते हैं। इस ध्यान को तब तक विकसित करना होगा जब तक हम उन विचारों से छुटकारा न पा लें जो पहले हमारे मन में 'मेरा', 'मेरे पिता', 'मेरा भाई', 'मेरा बेटा', 'मेरी पत्नी' जैसी धारणाओं के रूप में मौजूद थे - अर्थात्, उन्हें प्राणी और व्यक्ति के रूप में मानने की अवधारणा से - और जब तक हम उन्हें 'मैं मैं नहीं हूँ' और 'मेरे पिता मेरे पिता नहीं हैं' के रूप में न देख और उनका विश्लेषण न कर लें, और उन्हें केवल पदार्थ और मन के घटक के रूप में न समझ लें।

बौद्ध दर्शन के अनुसार, कोई भी स्थायी, अपरिवर्तनीय आत्मा या सत्ता नहीं है जिसे हम पदार्थ के विपरीत स्वयं, आत्मा या अहंकार मान सकें, और चेतना या विज्ञान को पदार्थ के विपरीत आत्मा नहीं माना जाना चाहिए। इस बात पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह गलत धारणा सदियों से बनी हुई है कि चेतना एक प्रकार की आत्मा है जो जीवन भर एक स्थायी पदार्थ के रूप में विद्यमान रहती है। बुद्ध ने इसे एक उदाहरण देकर और स्पष्ट किया है। आग का स्वरूप उस पदार्थ के आधार पर बताया जाता है जिसके कारण वह जलती है। यदि वह भूसे के कारण जलती है तो उसे भूसे की आग कहते हैं। इसी प्रकार चेतना का वर्णन उस परिस्थिति के अनुसार किया जाता है जिसके कारण वह उत्पन्न होती है।

बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि चेतना पदार्थ, संवेदना, बोध और मानसिक अवधारणाओं पर निर्भर है और इनके बिना विद्यमान नहीं रह सकती। चेतना पदार्थ को अपने साधन (रूपायं), पदार्थ को अपने लक्ष्य (रूपारम्मण) और पदार्थ को अपने आधार (रूपपतिठितं) के रूप में धारण करके विद्यमान होती है और सुख की खोज में बढ़ती, विकसित होती और विकसित होती है। चेतना संवेदना को अपने साधन या मानसिक अवधारणा को अपने आधार के रूप में धारण करके भी विद्यमान हो सकती है और सुख की खोज में बढ़ती, विकसित होती और विकसित होती है।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि “मैं पदार्थ, संवेदना, बोध और मानसिक अवधारणा से अलग चेतना के आगमन, प्रस्थान, अपव्यय, उद्भव, वृद्धि, विकास या विकास को दिखाऊंगा,” तो वह किसी ऐसी चीज़ की बात कर रहा होगा जिसका अस्तित्व ही नहीं है। संक्षेप में, पंचखंडों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। जिसे हम प्राणी, व्यक्ति या 'मैं' कहते हैं, वह केवल इन पाँच समूहों के संयोजन को दिया गया एक सुविधाजनक नाम या लेबल है। ये सभी क्षणभंगुर हैं और निरंतर परिवर्तन के अधीन हैं। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुःख है। बुद्ध के शब्दों का वास्तविक अर्थ संक्षेप में यह है: आसक्ति के पाँच समूह दुःख के समान हैं। दो लगातार क्षणों के लिए वे एक समान नहीं होते। इसलिए, 'अ' 'अ' के बराबर नहीं है। वे क्षणिक उद्भव या अपव्यय का प्रवाह हैं।

“हे ब्राह्मण, यह एक पर्वतीय नदी के समान है जो दूर तक तीव्र गति से बहती है और अपने साथ सब कुछ बहा ले जाती है। ऐसा कोई क्षण, कोई पल या सेकंड नहीं होता जब यह बहना बंद कर दे, बल्कि यह निरंतर बहती रहती है। इसी प्रकार, मनुष्य जीवन भी एक पर्वतीय नदी के समान है।” इन शब्दों में बुद्ध ने रट्ठपाल को समझाया कि संसार निरंतर परिवर्तनशील है और क्षणभंगुर है।

एक वस्तु के लुप्त होने से अगली वस्तु का प्रकट होना निर्धारित होता है, और इस प्रकार कारण-परिणाम की एक श्रृंखला चलती रहती है। इनमें कोई अपरिवर्तनीय तत्व नहीं है। इनके पीछे ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे स्थायी आत्मा या स्व कहा जा सके। यह सर्वविदित होगा कि न तो पदार्थ, न संवेदना, न बोध, न ही इनमें से कोई मानसिक क्रिया, न ही चेतना को वास्तव में "मैं" कहा जा सकता है। परन्तु ये पाँच स्वतंत्र भौतिक और मानसिक समूह एक शारीरिक-मनोवैज्ञानिक यंत्र की तरह मिलकर "मैं" का आभास देते हैं। परन्तु यह एक भ्रामक आभास है, एक मानसिक अवधारणा जो स्वयं के आभास, चौथे समूह की उन बावन मानसिक अवधारणाओं में से एक है।

इन पाँचों तत्वों को सामूहिक रूप से दुख ही कहा जाता है। इन पाँचों तत्वों के पीछे न तो कोई अन्य प्राणी है और न ही मैं स्वयं, जो दुख का अनुभव करता है ।

कम्मास्सा कारका नत्थि-विपाकस्साचा वेदको शुद्धधम्म पवत्तन्ति-एवेतं सम्मदासनम्

(4) कंखावितरण विशुद्धि —संदेहों पर विजय की शुद्धता—

परम अवस्था को प्राप्त करने में संदेह एक बड़ी बाधा है। किसी भी चीज के मूल को मिटाने के लिए हमें उसके कारणों का पता लगाना होगा। पुनर्जन्म के चक्र को उसके कारणों का पता लगाकर ही नष्ट किया जा सकता है।

(5) Maggāmagga ñāṇadassana visuddhi — सही और गलत मार्ग के ज्ञान और अंतर्दृष्टि की शुद्धता।—

यहां, मार्गा का अर्थ है ध्यान की सही विधि। इस ज्ञान की अवस्था को प्राप्त करने के लिए तिलक्खण ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। नाम और रूप को एक साथ लेने पर उन्हें संस्कार कहा जाता है । प्रतीत्य समुप्पाद में वर्णित संस्कार कर्मों के कारण और परिणाम को दर्शाते हैं। यद्यपि हम अनित्य , दुःख और अनत्त्व जैसे शब्दों को अक्सर सुनते हैं , फिर भी हम यह नहीं समझ पाते कि इनका कितना गहरा अर्थ है। हम जानते हैं कि सभी जीव मृत्यु के अधीन हैं, लेकिन यह विपश्यना भावना के लिए पर्याप्त नहीं है । केवल दुःख के गुणों को जानना ही काफी नहीं है। यह समझना हमारे लिए कठिन है क्योंकि हमारा मन भ्रम से ग्रस्त है।

(6) पटिपदाञ्चन्नदस्सन विशुद्धि — ज्ञान की शुद्धता और प्रगति में अंतर्दृष्टि।

शिष्य जो दोषों के हानिकारक प्रभावों से मुक्त होकर पिछले चरण में पवित्रता और सही-गलत के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, वह इस अंतिम चरण में गहन समझ की व्यवस्थित और निरंतर प्रगति के माध्यम से अपनी अंतर्दृष्टि को पराकाष्ठा तक विकसित करता है। इसे पटिपदा — क्रमिक प्रगति — कहा जाता है, जिसमें नौ प्रकार की अंतर्दृष्टि और ज्ञान शामिल हैं जो पारलौकिक अवस्थाओं की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

(7) Ñāṇadassana visuddhi — ज्ञान की शुद्धता और श्रेष्ठ मार्ग की अंतर्दृष्टि।

उच्चतर उपलब्धि के चार चरणों तक पहुंचने के मार्ग को जानने की चार प्रकार की बुद्धिमत्ताएँ मिलकर इसे बनाती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 277,278,279

(धम्मपद 273, 274, 275 और 276) <<<< पिछला॥ धम्मपद 277, 278 और 279 ॥अगला >>>> (धम्मपद280)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 277, 278 और 279 - अनिक्कलक्खन वत्थु, दुक्खलक्खन वत्थु, अनात्तलक्खन वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 277, 278 और 279 - अनिक्कलक्खन वत्थु, दुक्खलक्खन वत्थु, अनात्तलक्खन वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
"Sabbe sankhara anicca" ti
yada pannaya(1) passati(2)
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

"Sabbe sankhara dukkha" ti
yada pannaya passati
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

"Sabbe dhammā anatta" ti
yada pannaya passati
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

श्लोक 277 : अनिच्छ (3) - "सभी संस्कार (4) अनित्य/अस्थायी (अनिच्छ) हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

श्लोक 278 : दुःख(5) - "सभी संस्कार दुःख हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

श्लोक 279 : अनत्ता(6) - "सभी धम्म आत्म-रहित (अनत्ता) हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

1. पन्ना : प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त अंतर्दृष्टि-ज्ञान (विपस्सना पन्ना), सत्य को प्रत्यक्ष रूप से देखना और जानना। इसका अर्थ समाधि की अवस्था और उससे प्राप्त ज्ञान भी है। यह संस्कृत/हिंदी शब्द प्रज्ञा (प्रत्यक्ष+ज्ञान) से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष+ज्ञान। पन्ना का तात्पर्य सांसारिक और पारलौकिक (ब्रह्मांड से परे) दोनों अनुभवों से है, जो ध्यान में समाधि की अवस्था में प्रवेश करने पर प्राप्त होते हैं। अभिधम्म (DS1.16,29) में भगवान बुद्ध ने पन्ना को शक्ति (पन्नबलं), पन्ना को तलवार (पन्नसत्थं), पन्ना को (ऊंची) ऊँचाई (पन्नपसादो), पन्ना को (चमकती हुई) रोशनी (पन्ना-आलोको), पन्ना को (पन्ना-आलोको) के रूप में विस्तार से बताया है। महिमा (पन्ना-ओभासो), पन्ना के रूप में (चमकदार) वैभव (पन्ना-पज्जोतो सं. प्रज्जवलितो), पन्ना के रूप में (चमक) कीमती पत्थर (पन्ना-रत्नं)।
2. पस्सति: प्रत्यक्ष रूप से देखना, अवलोकन करना, यहाँ यह विपश्यना ध्यान को संदर्भित करता है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई प्रमुख तकनीक है। यहाँ 'वि' शब्द 'विशेष' या 'विशेष' से लिया गया है, अर्थात् आंतरिक भावनाओं, मनोभावों और संवेदनाओं के प्रत्यक्ष अवलोकन की विशेष तकनीक, जिसमें अवलोकन (ध्यान) को अनासक्ति/अनासक्ति के दृष्टिकोण के साथ जोड़ा जाता है, न पसंद न नापसंद।
3. अनिच्छ: क्षणभंगुर/परिवर्तनशील। संस्कृत/हिंदी शब्द अनित्य है। बुद्ध ने इस विचार का उपदेश सांसारिक इच्छाओं से विरक्ति उत्पन्न करने के लिए दिया, जो कभी संतुष्ट नहीं होतीं। यह इसके विपरीत है, अर्थात् नित्य (शाश्वत) की अवस्था, जो निर्वाण/निब्बान/मोक्ष के अंतिम ज्ञान में प्राप्त होती है, जहाँ परम शाश्वत आनंद प्राप्त होता है।

4. संस्कार: आंतरिक परिस्थितिजन्य घटनाएँ जैसे भावनाएँ, मनोभाव, इच्छाएँ, आसक्ति, प्रवृत्तियाँ, प्रतिक्रियाएँ, व्यसन आदि, जो किसी व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार का निर्माण करती हैं, अर्थात् कामुकता, क्रोध, घृणा, लोभ, स्नेह, मोह आदि से संबंधित गुण। इसका संस्कृत/हिंदी शब्द संस्कार (या कर्म संस्कार) है।
5. दुःख: पीड़ा (मानसिक या शारीरिक) जैसे दर्द, बीमारी, असफलता, दुर्घटनाएँ, तनाव, दबाव, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि। यहाँ इसका अर्थ यह है कि सभी भौतिक सुख और इच्छाएँ दुःख की ओर ले जाती हैं, इसलिए इनसे अनासक्ति विकसित करना आवश्यक है।
6. अनात्म: अनात्म + आत्म; इसका अर्थ है आत्म का अस्तित्व न होना। इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई व्यक्ति ध्यान में अंतिम ज्ञानोदय/समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है, जब शारीरिक आत्म भौतिक शरीर से परे जाकर सार्वभौमिक आत्म बन जाता है (मैं सर्वत्र हूँ, मैं सर्वस्व हूँ), तो शारीरिक आत्म के अनुभव की घटना का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

अनित्या (क्षणिकता), दुःख (पीड़ा) और अनात्म (अनात्म) से संबंधित कहानियां
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (277), (278) और (279) का उच्चारण किया, जिसमें प्रत्येक में पाँच सौ भिक्षुओं के तीन समूहों का उल्लेख किया गया था।
अनित्यता (अनिच्चा) पर
पांच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद वन में जाकर ध्यान का अभ्यास किया, लेकिन उन्हें कोई खास प्रगति नहीं मिली। इसलिए वे बुद्ध के पास लौटकर एक ऐसे विषय के बारे में पूछने लगे जो उनके लिए अधिक उपयुक्त हो। विचार करने पर बुद्ध को पता चला कि उन भिक्षुओं ने कश्यप बुद्ध के समय में अनित्यता का ध्यान किया था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी (पुनर्जन्म का कारण बनने वाले) कर्म/नैतिक दोष परिवर्तन और क्षय के अधीन हैं और इसलिए अनित्य हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 277 : "सभी संस्कार अनित्य हैं; जब कोई इस बात को अंतर्दृष्टि से समझ लेता है, तो वह दुःख से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।"

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
दुःख (पीड़ा) पर
अगली कहानी अनिक्का की कहानी के समान ही है। यहाँ, बुद्ध ने चिंतन करते हुए पाया कि पाँच सौ भिक्षुओं के एक अन्य समूह ने दुःख (पुनर्जन्म/कष्ट) पर ध्यान किया था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी क्षुद्र समूह दमनकारी और असंतोषजनक हैं; अतः सभी क्षुद्र दुःख (कष्ट) हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 278 : "सभी संस्कार दुःख हैं"; जब कोई इस बात को अंतर्दृष्टि (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
सारहीनता या अनात्म (अनात्म) पर
अगली कहानी अनित्या (क्षणिकता) और दुःख (दुःख/पुनर्जन्म) की कहानियों के समान है। यहाँ, बुद्ध ने चिंतन करते हुए पाया कि पाँच सौ भिक्षुओं का एक और समूह अनात्म (अनात्मता) पर ध्यान कर रहा था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी स्कंध समूह अनात्म हैं; वे किसी के वश में नहीं हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 279 : "सभी धर्म अनात्म रहित हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि और ज्ञान से देखता है, तो वह दुःख से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

प्रवचन के अंत में उन सभी पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
यह कहानी इस प्रकार है कि बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने वाले और अरहतत्व प्राप्त किए बिना जंगल में अथक परिश्रम करने वाले ये पांच सौ भिक्षु, अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बेहतर ध्यान विषय प्राप्त करने के उद्देश्य से बुद्ध के पास लौट आए।
बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "इन भिक्षुओं के लिए सबसे लाभदायक ध्यान का विषय क्या होगा?" फिर उन्होंने मन ही मन विचार किया, "बुद्ध कस्सपा के युग में इन भिक्षुओं ने बीस हजार वर्षों तक अनित्यता के गुण पर ध्यान लगाया; अतः अनित्यता का गुण ही मेरे द्वारा दिए जाने वाले एकमात्र श्लोक का विषय होगा।"
और उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इंद्रियजन्य अस्तित्व के क्षेत्र में और अस्तित्व के अन्य क्षेत्रों में, अस्तित्व के सभी समूह अवास्तविकता के कारण क्षणभंगुर हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 277)
सब्बे संखारा अनिच्च इति यदा पन्नया पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सभी; संखारा : घटक वस्तुएँ; अनिच्चा : क्षणभंगुर हैं; इति यदा : जब यह; पञ्ञाय पसति : (आप) अंतर्दृष्टि से अनुभव करते हैं; अथ : तब; दुक्खे : दुख से; निब्बिंदति : (आप) विरक्त हो जाते हैं; एसा : यह है; विशुद्धिया : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निर्वाण); मग्गो [मग्गा]: मार्ग
सभी घटक वस्तुएँ, सभी संयोजित वस्तुएँ, सभी सृजित वस्तुएँ क्षणभंगुर, अस्थिर और अस्थाई हैं। अंतर्दृष्टि से इस ज्ञान के फलस्वरूप, व्यक्ति दुखों से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दोषों से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 278)
सब्बे संखारा दुक्खा इति यदा पनन्या पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सब; संखारा : घटक वस्तुएँ; दुक्खा ' ति : पीड़ित हैं; इति यदा : जब यह; पनन्या पस्सति : (आप) अंतर्दृष्टि से महसूस करते हैं; अथः तब; दुक्खे : कष्ट से; निब्बिंदति : (आप) अलग हो जाओ; ईएसए : यह है; विशुद्धिआ : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निब्बाण); मग्गो [मग्गा]: पथ
सभी घटक वस्तुएँ—सभी संयोजित वस्तुएँ—सभी सृजित वस्तुएँ दुःख से भरी हैं। जब अंतर्दृष्टि के माध्यम से यह अहसास होता है, तो व्यक्ति दुःख से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दुःख से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 279)
सब्बे धम्म अनात्ता इति यदा पनन्या पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सभी; धम्मा : अस्तित्व की अवस्थाएँ; अनत्ता : (वे) आत्मा रहित हैं; इति यदा: जब यह; पञ्ञाय पसति : (आप) अंतर्दृष्टि से अनुभव करते हैं; अथा : तब; दुःखे : दुख से; निब्बिंदति : (आप) विरक्त हो जाते हैं; एसा : यह है; विशुद्धिया : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निर्वाण); मग्गो [मग्गा]: मार्ग
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 277-279)
सभी अवस्थाएँ आत्माविहीन होती हैं। जब अंतर्दृष्टि के माध्यम से इस बात का अहसास होता है, तो व्यक्ति दुख से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दुख से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
अनित्य : क्षणभंगुर। बौद्ध धर्म में, अस्तित्व के तीन लक्षण हैं - अनित्य , दुःख और अनात्म । क्षणभंगुरता का अर्थ है कि अस्तित्व के सभी रूप अंततः क्षय और मृत्यु में परिणत होते हैं। निर्वाण को छोड़कर, यह सभी घटनाओं पर लागू होता है।
जो व्यक्ति निरंतर इस तथ्य को ध्यान में रखता है कि उसे एक दिन मृत्यु का सामना करना पड़ेगा और मृत्यु अपरिहार्य है, वह मृत्यु से पहले अपने साथी मनुष्यों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उत्सुक रहेगा, और यह निश्चित रूप से उसे इस लोक और परलोक के प्रति सजग बनाएगा। इसलिए कहा गया है कि "मृत्यु के चिंतन में लीन रहने वाला भिक्षु सदा सजग रहता है (मरणसति-मनुयुत्तो भिक्खु सततम् अप्पमत्तो होति)।
हालांकि, कुछ अतिवादी यह कहते हैं कि मृत्यु पर चिंतन एक अनावश्यक विचार है जो व्यक्ति की प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है। ऐसा नहीं है। क्योंकि विष्णुशर्मन ने पंचतंत्र में यही कहा है :
Samcintya tamugradandam

मृत्युं मनुष्यस्य विकासस्य
वर्षसंबुसिक्ता इव कर्मबन्धः
सर्वप्रयत्नः सिथिलि भवन्ति ।
(जो बुद्धिमान व्यक्ति निरंतर कठोर दंड देने वाली मृत्यु के बारे में सोचता रहता है, उसके सभी प्रयास बारिश के पानी से भीगे चमड़े के थैलों की तरह सहज और लचीले हो जाते हैं।)
हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि बौद्ध धर्म ने कभी भी मृत्यु के बारे में सोचकर निराशा और अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने का समर्थन नहीं किया। इसके विपरीत, बौद्ध धर्म में मृत्यु के निकट भी अपने कर्तव्यों और दायित्वों को सर्वोत्तम संभव तरीके से पूरा करने की शिक्षा दी जाती है। बुद्ध ने अपने कर्तव्यों को टालने का स्पष्ट विरोध किया था: बुद्ध कहते हैं:
Ajjeva kiccam ātappaṃ Ko jañña Māraṇaṃ suve ... (आज ही अपने कार्यों को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए; क्योंकि कौन जानता है कि कल मृत्यु आ जाए...)
उरगा जातक कथा के अनुसार, एक पिता ने अपने इकलौते बेटे की सर्प के काटने से हुई मृत्यु पर घरवालों को सूचना भेजी और उनके आने की प्रतीक्षा किए बिना ही अपना खेत जोतना जारी रखा। वह मृत्यु का नियमित ध्यान करने वाला व्यक्ति था। इस प्रकार मृत्यु की अनिवार्यता पर चिंतन करने से व्यक्ति अपने कर्तव्यों के निर्वाह में अधिक सक्रिय हो जाता है; मृत्यु के प्रति निर्भयता का भाव भी विकसित होता है। इसके अलावा, ऐसा व्यक्ति परलोक में कष्ट भोगने वाले किसी भी पाप से बचने का ध्यान रखता है; वह अपने प्रियजनों और अन्य वस्तुओं से सभी बंधनों और आसक्तियों को त्यागकर स्वतंत्र हो जाता है।
भिक्षु और गृहस्थ, दोनों ही मृत्यु के प्रति उदासीन और स्वयं को अमर समझते हुए, अक्सर सद्गुणों के विकास में लापरवाही बरतते हैं। वे कलह और वाद-विवाद में लिप्त रहते हैं और अक्सर निराश हो जाते हैं, उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। कभी-कभी वे भविष्य में किसी कार्य को बड़े पैमाने पर करने की आशा में उसे स्थगित कर देते हैं, और अंत में कुछ भी करने में असमर्थ रह जाते हैं। इसलिए, प्रतिदिन मृत्यु पर चिंतन करना उचित है। बौद्धों के लिए निर्धारित चार प्रकार के ध्यान विषयों (सब्बत्था कम्मत्थाना) में से, मृत्यु पर चिंतन चौथा विषय (बुद्धानुस्सति मेट्टा च - असुभं मरणस्सति) है।
“ एकधम्मो भिक्कवे भावितो बहुलीकतो एकान्त निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बाणाय संवत्तति ; कतमो एकधम्मो मरणस्सति ।” हे भिक्षुओं, एक ही धर्म है जिसका निरंतर ध्यान और अभ्यास करने से सांसारिक विरक्ति, सभी दोषों से मुक्ति, सांसारिक दुखों से छुटकारा, उच्च ज्ञान की प्राप्ति, चार आर्य सत्यों का ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह धर्म क्या है? यह मृत्यु पर निरंतर चिंतन है। मृत्यु पर चिंतन की महानता और महत्व इस धार्मिक ग्रंथ से स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है।
दुःख : पीड़ा। यह अस्तित्व के तीन लक्षणों में से दूसरा है। चारों आर्य सत्य भी दुःख (दुःख) के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं।
बुद्ध के चार आर्य सत्यों से संबंधित उपदेश दुख के ज्ञान, दुख के कारण, उसके निवारण और निवारण के मार्ग से संबंधित हैं। दुख से संबंधित सत्य हमें बताता है कि सभी प्राणी जन्म, क्षय, रोग और मृत्यु के अधीन हैं। संक्षेप में, पाँच स्कंध (रूप) , वेदना , अनुभूति , कर्म और चेतना , ये सभी दुख का कारण बनते हैं। यही दुख से संबंधित सत्य है, और इसकी सही समझ सम्मादिष्ठी है । सम्मादिष्ठी जगत के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अनिवार्य है। चार आर्य सत्यों में दुख की समझ सर्वोपरि है, इसलिए इसे सर्वप्रथम माना जाता है ।
दूसरा आर्य सत्य दुख के कारण से संबंधित है, और वह है तृष्णा या आसक्ति (तन्हा)। इसी तृष्णा के कारण समस्त प्राणी संसार के चक्र में जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करते हैं । जिसे प्राणी सुख समझता है, वह वास्तव में दुख है, जो इसी तृष्णा या आसक्ति से उत्पन्न होता है। मनुष्य इसी तृष्णा या आसक्ति के कारण मृगजल में फंसे हिरण की तरह सुख की खोज में अनेक सुखों का पीछा करता है। संसार या जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए तृष्णा के सत्य को समझना आवश्यक है।
यह लालसा तीन रूप धारण करती है:
काम तन्हा (इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति);
भव तन्हा (अस्तित्व के प्रति आसक्ति);
विभव तन्हा (अस्तित्वहीनता से आसक्ति)।
काम तन्हा सक्कायादित्ति से उत्पन्न होता है , यानी इस विचार से कि कोई अपरिवर्तनीय सत्ता या स्थायी आत्मा विद्यमान है—अर्थात 'मैं' नामक कोई सत्ता है। ऐसा भ्रम ग्रस्त व्यक्ति सदा अपनी पाँचों इंद्रियों को तृप्त करने का प्रयास करता है। काम तन्हा के कारण ही सुख को पाँचों इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाला आनंद माना जाता है। यह एक भ्रम है। काम तन्हा बढ़ने के साथ-साथ दुख भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार काम तन्हा दुख का कारण है।
भव तन्हा वह लालसा है जो किसी प्राणी में जीवन के अंत के लिए उत्पन्न होती है। यह लालसा उस प्राणी में उत्पन्न होती है जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखता है (सस्सतादिट्ठी)।

विभाव तन्हा वह लालसा है जो किसी प्राणी में इंद्रिय सुखों के उपभोग को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर उत्पन्न होती है। यह लालसा परलोक में अविश्वास (उच्चेदादित्ति) के कारण उत्पन्न होती है। चार्वाक और अजित केशकंबल का लोकायत सिद्धांत इसी श्रेणी में आता है। बौद्ध धर्मग्रंथ ब्रह्मजाल सूत्र में उच्चेदावाद के सात प्रकारों का वर्णन किया गया है।

जो व्यक्ति सही समझ विकसित कर लेता है, जो कि अष्टांगिक मार्ग का पहला घटक है, वह यह जान लेता है कि यही लालसा दुख का कारण है। चार आर्य सत्यों में से दूसरा सत्य इस लालसा या दुख के कारण से संबंधित है। सही समझ दुख को समाप्त करने का ज्ञान प्रदान करती है। तीसरा आर्य सत्य दुख के निवारण से संबंधित है। दुख के तीन प्रकारों (तनख्खय) को नष्ट करके ही दुख का निवारण होता है, जो दुख का कारण बनते हैं। यही निर्वाण है।

सही समझ हमें दुखों के निवारण के मार्ग का ज्ञान देती है। चौथा आर्य सत्य दुखों के निवारण से संबंधित है (दुक्खनिरोधगामिनि पतिपादाज्ञान)। दुखों के निवारण का मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग है। यही मध्य मार्ग है। अतः मध्य मार्ग का अनुसरण किए बिना दुख उत्पन्न करने वाली तीनों प्रकार की भोग-विलास को समाप्त करना असंभव है।

अनात्म : आत्माहीनता की अवधारणा। यह बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अस्तित्व के तीन गुणों में से तीसरा है। आत्मा का अभाव, या एक स्थायी और स्थिर स्व, या एक शाश्वत आत्मा का अभाव, अधिकांश व्यक्तियों के लिए समझना अत्यंत कठिन है।

बौद्ध धर्म में सिखाए जाने वाले परिवर्तन के सिद्धांत का सार यह है कि अस्तित्व से जुड़ी सभी घटक वस्तुएँ एक प्रक्रिया हैं, न कि स्थिर सत्ताओं का समूह। परन्तु परिवर्तन इतनी तीव्र गति से होते हैं कि लोग मन और शरीर को स्थिर सत्ताएँ मान लेते हैं। वे उनके उद्भव और विघटन को नहीं देखते, बल्कि उन्हें एक इकाई के रूप में, एक पिंड (घाना सन्ज्ञा) या संपूर्ण मानते हैं।

वे तपस्वी और ब्राह्मण जो आत्मा की अवधारणा को विभिन्न तरीकों से समझते हैं, वे इसे या तो आसक्ति के पांच समूहों के रूप में, या उनमें से किसी एक के रूप में समझते हैं।

"यहाँ अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति... शरीर को आत्मा मानता है, आत्मा को शरीर से युक्त मानता है, आत्मा को शरीर में समाहित मानता है... इसी प्रकार भावना, बोध, इच्छाशक्ति निर्माण और चेतना के बारे में भी यही मानता है... अतः यह गलत दृष्टिकोण है। 'मैं हूँ' की अवधारणा का त्याग नहीं किया जाता..."

जो लोग अपने मन, शरीर और बाह्य जगत को मानसिक कल्पनाओं के आधार पर संपूर्ण, अविभाज्य इकाई मानकर देखते रहते हैं, उनके लिए इस 'संपूर्णता' के झूठे भ्रम से छुटकारा पाना वास्तव में बहुत कठिन है। जब तक मनुष्य चीजों को प्रक्रियाओं, गतियों के रूप में नहीं देखेगा, तब तक वह बुद्ध के अनात्म (आत्माहीनता) सिद्धांत को कभी नहीं समझ पाएगा। इसीलिए लोग अभद्रता और अधीरता से यह प्रश्न पूछते हैं: "यदि आत्मा या आत्मन (स्वयं) जैसी कोई स्थायी सत्ता, कोई अपरिवर्तनीय सिद्धांत नहीं है, तो वह क्या है जो इस जन्म और परलोक में कर्मों के फल भोगता है?"

अस्तित्व के तीन गुणों का एक अन्य दृष्टिकोण अनित्यता (अनिच्चा), दुःख (दुक्खा) और अनात्म (अनात्म) हैं। ये तीनों गुण अस्तित्व में हमेशा मौजूद रहते हैं या उससे जुड़े होते हैं, और ये अस्तित्व के वास्तविक स्वरूप को दर्शाते हैं। ये हमें अस्तित्व से निपटने में मदद करते हैं। इन तीनों गुणों को समझने के परिणामस्वरूप हम जो सीखते हैं, वह है वैराग्य। एक बार जब हम समझ जाते हैं कि अस्तित्व सार्वभौमिक रूप से अनित्यता, दुःख और अनात्म से चिह्नित है, तो हम अस्तित्व से अपना आसक्ति समाप्त कर देते हैं। अस्तित्व से अपना आसक्ति समाप्त करते ही हम निर्वाण की दहलीज पर पहुँच जाते हैं। यही इन तीनों गुणों को समझने का उद्देश्य है। यह भ्रमों को दूर करके आसक्ति को दूर करता है, इस गलतफहमी को दूर करता है कि अस्तित्व स्थायी है, सुखद है और इसका आत्मा से कुछ संबंध है। इसीलिए इन तीनों गुणों को समझना ज्ञान का केंद्र है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 280

(धम्मपद 277, 278 और 279) <<<< पिछला|| धम्मपद280 ||अगला >>>> (धम्मपद281)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 280 - पधानकम्मिकतिसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 280 - पधानकम्मिकतिसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Utthana kalamhi anutthahano
yuva bali Alasiyam upeto
samsanna sankappamano kusito
पन्नया मग्गम अलासो न विंदति।

श्लोक 280 : वह आलसी व्यक्ति जो उस समय प्रयास नहीं करता जब उसे प्रयास करना चाहिए, जो युवा और बलवान होते हुए भी आलस्य में लिप्त रहता है, जिसके विचार कमजोर और भटकते रहते हैं, वह उस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाएगा जो केवल बुद्धि से ही प्राप्त किया जा सकता है।

आलसी थेरा टिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (280) का उच्चारण किया, जो एक आलसी भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में था। एक बार, श्रावस्ती में बुद्ध ने पाँच सौ युवकों को संघ में प्रवेश दिया। बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, एक को छोड़कर सभी नए भिक्षु ध्यान का अभ्यास करने के लिए वन में चले गए। उन्होंने लगन और सतर्कता से अभ्यास किया, जिसके परिणामस्वरूप समय आने पर उन सभी ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ लौटे, तो बुद्ध उनकी उपलब्धि से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। भिक्षु तिस्सा, जो वहीं रह गए थे, ने कोई प्रयास नहीं किया और इसलिए उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।
जब तिस्सा ने देखा कि बुद्ध और उन भिक्षुओं के बीच बहुत सौहार्दपूर्ण और घनिष्ठ संबंध है, तो उन्हें उपेक्षित महसूस हुआ और उन्हें खेद हुआ कि उन्होंने अपना सारा समय व्यर्थ कर दिया। इसलिए उन्होंने पूरी रात ध्यान करने का संकल्प लिया। उस रात ध्यान करते हुए चलते समय वे फिसल गए और उनकी जांघ की हड्डी टूट गई। उनकी चीख सुनकर अन्य भिक्षु उनकी सहायता के लिए दौड़े। इस घटना के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जो व्यक्ति परिश्रम करने के समय परिश्रम नहीं करता और अपना समय व्यर्थ व्यतीत करता है, वह ध्यान (ज्ञान) और अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 280 : वह आलसी व्यक्ति जो उस समय प्रयास नहीं करता जब उसे प्रयास करना चाहिए, जो युवा और बलवान होते हुए भी आलस्य में लिप्त रहता है, जिसके विचार कमजोर और भटकते रहते हैं, वह उस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाएगा जो केवल बुद्धि से ही प्राप्त किया जा सकता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आलसी तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आलसी भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार, सावत्थी में बुद्ध ने कई युवकों को संघ में शामिल किया। बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद, एक को छोड़कर सभी नए भिक्षु ध्यान का अभ्यास करने के लिए वन में चले गए। उन्होंने लगन और सतर्कता से अभ्यास किया, जिसके परिणामस्वरूप समय आने पर उन सभी ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ लौटे, तो बुद्ध उनकी उपलब्धि से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। भिक्षु तिस्सा, जो वहीं रह गए थे, ने कोई प्रयास नहीं किया और इसलिए उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।
जब तिस्सा ने देखा कि बुद्ध और उन भिक्षुओं के बीच बहुत सौहार्दपूर्ण और घनिष्ठ संबंध है, तो उन्हें उपेक्षित महसूस हुआ और उन्हें खेद हुआ कि उन्होंने अपना सारा समय व्यर्थ कर दिया। इसलिए उन्होंने पूरी रात ध्यान करने का संकल्प लिया। उस रात ध्यान करते हुए चलते समय वे फिसल गए और उनकी जांघ की हड्डी टूट गई। उनकी चीख सुनकर अन्य भिक्षु उनकी सहायता के लिए दौड़े। इस घटना के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो व्यक्ति परिश्रम करने के समय परिश्रम नहीं करता और आलस्य में समय व्यतीत करता है, वह ध्यान (ज्ञान) और अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता ।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 280)
उत्थानकलामहि अनुत्थानो युवा बलि अलसीयम् उपेतो ,
संसन्न संकप्पामानो कुसितो अलसो पन्नया मग्गं न विंदति

उत्ठानाकालम्ही : जब प्रयास करना आवश्यक हो; अनुत्तहहानो [अनुत्तहहान]: प्रयास नहीं करता; युवा : (यद्यपि) युवा; बलि : (यद्यपि) बलवान; आलसियं उपेतो [उपेता]: (यदि) सुस्त हो; संसन्न संकप्पमनो [संकप्पमन]: यदि अच्छे विचार दबा दिए जाएं; कुसीतो [कुसीता]: आलसी; अलसो [अलसा]: सुस्त; पञ्ञाय मग्गं [मग्ग]: ज्ञान का मार्ग; न विन्दति : नहीं पाता

यदि कोई व्यक्ति उस समय भी प्रयास नहीं करता जब परिश्रम करना आवश्यक होता है, यदि कोई व्यक्ति युवा और बलवान होने पर भी सुस्त रहता है, यदि कोई व्यक्ति अपने मन में उठने वाले अच्छे विचारों को दबाता है, यदि वह आलसी है, तो उसे ज्ञान का मार्ग नहीं मिलेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 280)

paññāya maggaṃ : वह मार्ग जिसे बुद्धि के माध्यम से समझना आवश्यक है।

पन्ना : समझ, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि, एक बहुत व्यापक क्षेत्र को समाहित करता है। हालाँकि, विशिष्ट बौद्ध ज्ञान या बुद्धि, मोक्ष के अष्टांगिक मार्ग के एक भाग के रूप में, अंतर्दृष्टि है, अर्थात् वह सहज ज्ञान जो पवित्रता के चार चरणों और निर्वाण की प्राप्ति कराता है और जो अस्तित्व के सभी रूपों की अनित्यता, दुख और निराकारता के भेदन में निहित है।

इसके उत्पन्न होने की स्थिति के संबंध में, ज्ञान के तीन प्रकारों में अंतर किया जाता है: चिंतन पर आधारित ज्ञान (चिंता-मय-पञ्ञा), अधिगम पर आधारित ज्ञान (सुत-मय-पञ्ञा), और मानसिक विकास पर आधारित ज्ञान (भावना-मय-पञ्ञा)।

चिंतन पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने स्वयं के चिंतन से अर्जित किया हो, न कि दूसरों से सीखा हो। अधिगम पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने दूसरों से सुनकर अधिगम के माध्यम से प्राप्त किया हो। मानसिक विकास पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने किसी न किसी प्रकार के मानसिक विकास के माध्यम से अर्जित किया हो और जो पूर्ण एकाग्रता की अवस्था तक पहुँच चुका हो।

बुद्धि पांच मानसिक क्षमताओं में से एक है, तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में से एक है और पूर्णताओं में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 281

———————————————————————

(धम्मपद280) <<<< पिछला || धम्मपद281 || अगला >>>> (धम्मपद282)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 281 - सुकारपेटा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 281 - सुकारपेटा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Vacanurakkhi manasa susamvuto
kayena ca nakusalam kayira
ete tayo kammapathe visodhaye
अराधये मग्गा' मिसिप्पवेदितम्।

———————————————————————

श्लोक 281 : वाणी में सावधानी बरतनी चाहिए, मन को संयमित रखना चाहिए और शारीरिक रूप से भी किसी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टम मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

———————————————————————

एक सूअर-पेटा (मानव शरीर वाला सूअर का सिर वाला भूत) की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।
एक बार थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोग्गलाना मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस सूअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस सूअर-पेटा की कहानी सुनाई।
कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम अच्छा चल रहा है क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को मठ छोड़कर चला जाए और पूरा मठ अपने लिए खाली कर ले तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक भिक्षु को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को एक सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को विचार, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 281 : वाणी में सावधानी बरतनी चाहिए, मन को संयमित रखना चाहिए और शारीरिक रूप से भी किसी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टम मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक सूअर की आत्मा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सूअर की आत्मा के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे रहने वाले जीव (पेटा) को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस पेटा के बारे में बताया , जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस पेटा की कहानी सुनाई ।
कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम बहुत अच्छा चल रहा था क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को वहाँ से भगा दे और मठ पर उसका पूरा अधिकार हो जाए तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था, जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को मन, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 281)
वचनुरक्खी मनसा सुसानवुतो , कायेना च
अकुसलं न कयिरा एते तयो कम्मपथे
विशोधये इशिप्पवेदितं मग्गं अराध्ये
वाचनुरक्खी : वाणी में सजग; मनसा : मन में; सुसंवुतो [सुसंवुत]: संयमित; कायेन च : शरीर से भी; अकुसल [अकुसल]: बुरे कर्म; न कायिरा : नहीं किए जाते; एते तयो कम्मपथे : कर्म के इन तीन द्वारों का पालन करता है; विसोधये : शुद्ध; इसिप्पवेदित [इसिप्पवेदित]: ऋषियों द्वारा प्राप्त; मग्गा [मग्ग]: श्रेष्ठ अष्टमार्ग; आराधये : (वह) प्राप्त करेगा
यदि कोई व्यक्ति वाणी में सजग रहे, मन में संयम रखे और शारीरिक रूप से पाप करने से परहेज करे, तो वह निश्चित रूप से ऋषियों द्वारा प्राप्त किए गए श्रेष्ठ अष्टमार्ग को प्राप्त कर लेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 281)
तायो कम्मपथे : कर्म के तीन द्वार — वाणी, मन और शरीर। कर्म के संबंध में विचार अक्सर विवादास्पद होते हैं। यद्यपि हम अपने कर्म के पूर्णतः स्वामी या दास नहीं हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि कर्म के फल पर बाहरी परिस्थितियों, परिवेश, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत प्रयास

आदि का कुछ हद तक प्रभाव पड़ता है। कर्म का यही सिद्धांत बौद्ध को सांत्वना, आशा, भरोसा और नैतिक साहस प्रदान करता है। जब अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, कठिनाइयाँ, असफलताएँ और दुर्भाग्य उसके सामने आते हैं, तो बौद्ध को यह अहसास होता है कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है और अतीत के ऋण को चुका रहा है। कर्म पर सब कुछ छोड़ देने के बजाय, वह खरपतवारों को उखाड़ने और उनके स्थान पर उपयोगी बीज बोने का भरसक प्रयास करता है, क्योंकि भविष्य उसके हाथों में है। कर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सबसे भ्रष्ट व्यक्ति की भी निंदा नहीं करता, क्योंकि उनके पास किसी भी क्षण स्वयं को सुधारने का अवसर होता है। दुखदायी अवस्थाओं में कष्ट भोगने के लिए बाध्य होते हुए भी, उन्हें शाश्वत शांति की आशा रहती है। अपने कर्मों से वे स्वयं अपना नरक बनाते हैं, और अपने कर्मों से ही अपना स्वर्ग भी बना सकते हैं। कर्म के नियम में पूर्णतः विश्वास रखने वाला बौद्ध मुक्ति के लिए किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं करता, बल्कि अपने आप पर ही विश्वास रखता है। किसी भी प्रकार का आत्मसमर्पण करने या किसी अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के बजाय, वह अपनी इच्छाशक्ति पर भरोसा करता है और सभी के कल्याण और सुख के लिए निरंतर कार्य करता है।

कर्म में विश्वास, "उसके प्रयासों को सार्थकता प्रदान करता है और उसके उत्साह को बढ़ाता है" क्योंकि यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी सिखाता है। एक साधारण बौद्ध के लिए कर्म एक निवारक का काम करता है, जबकि एक बुद्धिजीवी के लिए यह अच्छे कर्म करने के लिए एक प्रेरणा का काम करता है। कर्म का यह नियम दुख की समस्या, कुछ धर्मों में वर्णित भाग्य और नियति के रहस्य और सबसे बढ़कर मानव जाति की असमानता की व्याख्या करता है। हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। हम अपने सृजनकर्ता स्वयं हैं। हम अपने विनाशक स्वयं हैं। हम अपने स्वर्ग स्वयं बनाते हैं। हम अपने नरक स्वयं बनाते हैं। हम जो सोचते हैं, बोलते हैं और करते हैं, वह हमारा अपना हो जाता है। ये विचार, शब्द और कर्म ही कर्म का नाम धारण करते हैं और जन्म-जन्मांतर तक हमारे संसार के भ्रमण में हमारा उत्थान और पतन करते रहते हैं ।

बुद्ध ने कहा:
मनुष्य के गुण और उसके द्वारा किए गए पाप:
यही वह चीज है जो उसके पास है, और इसी के सहारे वह यहाँ से जाता है।
वह परछाई की तरह उसका पीछा करता है।
इसलिए उसे भविष्य में जीवनयापन के लिए अच्छी बचत कर लेनी चाहिए।
किसी अन्य भविष्य की दुनिया में अवश्य ही एक मंच होगा।
अच्छे प्राणियों को उनके सद्गुणों का फल अवश्य मिलेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 282

———————————————————————

(धम्मपद281) <<<< पिछला॥ धम्मपद282 ॥अगला >>>> (धम्मपद 283 और 284)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 282 - पोथिलत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 282 - पोथिलत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yoga ve jayati bhuri
ayoga bhurisankhayo
etam dvedhapatham natva

भावया विभावया च
तथा ट्टानाम निवेशेय्या
यथा भूरी पावद्धति.

———————————————————————

श्लोक 282 : निःसंदेह, बुद्धि ध्यान से उत्पन्न होती है; ध्यान के बिना बुद्धि लुप्त हो जाती है। बुद्धि की प्राप्ति और हानि के इस दोहरे मार्ग को जानकर, मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे बुद्धि में वृद्धि हो।

———————————————————————

थेरा पोथिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पोथिला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (282) कहा।
पोत्थिला एक वरिष्ठ भिक्षु थे जो पिटक ग्रंथ के ज्ञाता थे और वास्तव में पाँच सौ भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा दे रहे थे। पिटक ग्रंथ के ज्ञान के कारण वे बहुत अहंकारी थे। बुद्ध उनकी इस कमजोरी को जानते थे और चाहते थे कि वे अपना आचरण सुधारें और सही मार्ग पर चलें। इसलिए, जब भी पोत्थिला प्रणाम करने आते, बुद्ध उन्हें 'निकम्मा पोत्थिला' कहकर संबोधित करते। जब पोत्थिला ने ये बातें सुनीं, तो उन्होंने बुद्ध के इन शब्दों पर विचार किया और उन्हें यह अहसास हुआ कि बुद्ध ने ये कठोर शब्द इसलिए कहे थे क्योंकि उन्होंने (पोत्थिला ने) ध्यान का अभ्यास करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया था और न ही वे किसी भी मार्ग को प्राप्त कर पाए थे, यहाँ तक कि ध्यान की किसी भी अवस्था को भी नहीं।
इस प्रकार, किसी को बताए बिना, थेरा पोथिला जेतवन मठ से बीस योजन दूर एक मठ में चले गए। उस मठ में तीस भिक्षु थे। सबसे पहले, वे सबसे वरिष्ठ भिक्षु के पास गए और विनम्रतापूर्वक उनसे अपना गुरु बनने का अनुरोध किया; लेकिन थेरा ने उन्हें विनम्र बनाए रखने के लिए अगले वरिष्ठ भिक्षु के पास जाने को कहा, जिन्होंने उन्हें आगे अगले के पास भेज दिया। इस प्रकार, उन्हें एक के बाद एक भेजा जाता रहा, जब तक कि वे एक सात वर्षीय अर्हत समनेर के पास नहीं पहुँच गए। युवा समनेर ने पोथिला को शिष्य के रूप में तभी स्वीकार किया जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि पोथिला उनके निर्देशों का आज्ञाकारी रूप से पालन करेंगे। समनेर के निर्देशानुसार, थेरा पोथिला ने अपना ध्यान शरीर के वास्तविक स्वरूप पर दृढ़ता से केंद्रित रखा; वे अपने ध्यान में अत्यंत तल्लीन और सतर्क थे।
बुद्ध ने अपने दर्शन में पोथिला को देखा और अलौकिक शक्ति के माध्यम से पोथिला को अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और उसे दृढ़ और उत्साही रहने के लिए प्रोत्साहित किया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 282 : निःसंदेह, बुद्धि ध्यान से उत्पन्न होती है; ध्यान के बिना बुद्धि लुप्त हो जाती है। बुद्धि की प्राप्ति और हानि के इस दोहरे मार्ग को जानकर, मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे बुद्धि में वृद्धि हो।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में पोत्थिला ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पूज्य पोथिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पोथिला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
पोथिला एक वरिष्ठ भिक्षु थे जो पिटक ग्रंथ के ज्ञाता थे और वास्तव में कई भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा दे रहे थे। पिटक ग्रंथ के ज्ञान के कारण वे बहुत अहंकारी भी थे। बुद्ध उनकी इस कमजोरी को जानते थे और चाहते थे कि वे अपना आचरण सुधारें और सही मार्ग पर चलें। इसलिए, जब भी पोथिला प्रणाम करने आते, बुद्ध उन्हें 'निकम्मे पोथिला' कहकर संबोधित करते। जब पोथिला ने ये बातें सुनीं, तो उन्होंने बुद्ध के इन शब्दों पर विचार किया और उन्हें यह अहसास हुआ कि बुद्ध ने ये कठोर शब्द इसलिए कहे थे क्योंकि पोथिला ने ध्यान का अभ्यास करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया था और न ही उन्होंने किसी मार्ग को प्राप्त किया था, यहाँ तक कि किसी भी स्तर की ध्यानमग्नता (झान) को भी नहीं।
इस प्रकार, पूज्य पोथिला ने किसी को बिना बताए जेतवन मठ से बीस योजन दूर एक मठ के लिए प्रस्थान किया। उस मठ में तीस भिक्षु थे। सर्वप्रथम वे सबसे वरिष्ठ भिक्षु के पास गए और उनसे विनम्रतापूर्वक अपना गुरु बनने का अनुरोध किया; परन्तु वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें विनम्र बनाए रखने के लिए अगले वरिष्ठ भिक्षु के पास जाने को कहा, जिन्होंने उन्हें आगे अगले भिक्षु के पास भेज दिया। इस प्रकार वे एक के बाद एक भिक्षुओं के पास जाते रहे, अंततः एक सात वर्षीय अर्हत सामनेर के पास पहुँचे। युवा सामनेर ने पोथिला को शिष्य के रूप में तभी स्वीकार किया जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि पोथिला उनके निर्देशों का आज्ञाकारी रूप से पालन करेंगे। सामनेर के

निर्देशानुसार, पूज्य पोथिला ने अपना ध्यान शरीर के वास्तविक स्वरूप पर दृढ़तापूर्वक केंद्रित रखा; वे अपने ध्यान में अत्यंत तल्लीन और सजग थे।

बुद्ध ने अपने दर्शन में पोथिला को देखा और अलौकिक शक्ति से उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया तथा उन्हें दृढ़ और उत्साही बने रहने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रवचन के अंत में, पोथिला ने अर्हत पद प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 282)

योग वे भूरि जयति अयोग भूरिसंखयो

भावाय विभावाय च एतं द्वेधा पाठं नात्वा

यथा भूरि पवन्धति तथा अत्तनं निवेसेय

योगा : ध्यान से; वे : निश्चित रूप से; भूरी : परिष्कृत बुद्धि; जायति : उत्पन्न होती है; अयोगा : ध्यान न करने से; भूरिसंखयो [भूरिसंखय]: बुद्धि का क्षरण होता है; भावाय : प्रगति; विभावाय च : पतन भी; एतां द्वेधा पथं [पथ]: ये दो मार्ग; ञत्वा : जानकर; यथा : किस प्रकार; भूरी पवद्धति : बुद्धि बढ़ती है; तथा : उस प्रकार; अत्तानं [अत्तान]: स्वयं; निवेश्य : स्थापित करना

चिंतन और एकाग्रता से परिष्कृत ज्ञान का उदय होता है। एकाग्रता का अभ्यास न करने से ज्ञान क्षीण हो जाता है। एक बार जब ये दोनों मार्ग — एक प्रगति की ओर और दूसरा पतन की ओर — पहचान लिए जाएं, तो व्यक्ति को ज्ञान बढ़ाने के लिए आचरण करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 282)

योगा वे भूरी जायति : ध्यान निश्चय ही बुद्धि को परिष्कृत करता है। ध्यान (भावना) स्वस्थ क्षमताओं, विशेष रूप से मानसिक क्षमताओं को परिष्कृत करने की एक प्रक्रिया है। मानसिक विकास (शाब्दिक अर्थ: अस्तित्व में लाना, उत्पन्न करना) को अंग्रेजी में सामान्यतः, लेकिन कुछ अस्पष्ट रूप से, ध्यान कहा जाता है। दो प्रकारों में अंतर करना आवश्यक है - शांति (समाथाभावना) का विकास, अर्थात् एकाग्रता (समाधि), और अंतर्दृष्टि (विपस्सना-भावना) का विकास, अर्थात् ज्ञान (पञ्ञा)।

ये दो महत्वपूर्ण शब्द, शांति और अंतर्दृष्टि (समथ-विपस्सना), अक्सर सूत्र और अभिधम्म दोनों में मिलते हैं और इनकी व्याख्या की जाती है।

शांति (समथा) मन की एकाग्र, अविचलित, शांत और इसलिए निर्मल अवस्था है, जबकि अंतर्दृष्टि (विपस्सना) अस्तित्व की सभी शारीरिक और मानसिक घटनाओं की अनित्यता, दुख और निराकारता (अनिच्च , दुःख , अनात्म) में सहज अंतर्दृष्टि है , जो अस्तित्व के पांच समूहों में शामिल हैं, अर्थात् शारीरिकता, भावना, बोध, मानसिक संरचनाएं और चेतना।

संखेपवण्णा (अभिधम्मत्थ-संघ की टीका) के अनुसार , मन की शांति या एकाग्रता तीन प्रकार के आशीर्वाद प्रदान करती है: अनुकूल पुनर्जन्म, वर्तमान सुखी जीवन और मन की पवित्रता, जो अंतर्दृष्टि की अवस्था है। एकाग्रता (समाधि) पांच मानसिक दोषों या बाधाओं (निवरण) से मन को शुद्ध करके अंतर्दृष्टि का अनिवार्य आधार और पूर्व शर्त है, जबकि अंतर्दृष्टि (विपस्सना) पवित्रता और मन की मुक्ति की चार अलौकिक अवस्थाओं को उत्पन्न करती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं: "हे भिक्षुओं, आप मानसिक एकाग्रता विकसित करें; क्योंकि जो मानसिक रूप से एकाग्र होता है वह चीजों को वास्तविकता के अनुसार देखता है।" और यह भी कहा गया है, "जैसे किसी अंधेरे कमरे में जलता हुआ दीपक लाने पर उसकी रोशनी अंधकार को नष्ट कर देती है और प्रकाश उत्पन्न करके फैला देती है, वैसे ही अंतर्दृष्टि, एक बार उत्पन्न होने पर, अज्ञान के अंधकार को नष्ट कर देती है और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करती है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 283,284

———————————————————————————

(धम्मपद282) <<<< पिछला|| धम्मपद 283 और 284 ||अगला >>>> (धम्मपद285)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 283 और 284 - पंचमहल्लकभिक्खु वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 283 और 284 - पंचमहल्लकभिक्खु वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Vanam chindatha ma rukkham

वनतो जयते भयम्
chetva vananca vanathanca
nibbana hotha bhikkhavo.
Yava hi vanatho na chijjati
अनुमत्तोपि नरसा नारिसु
patibaddhamanova tava so
vaccho khirapakova matari.

श्लोक 283 : हे भिक्षुओं, भोग-विलास के जंगल को काट डालो, असली वृक्ष को नहीं; भोग-विलास का जंगल पुनर्जन्म का खतरा पैदा करता है। भोग-विलास के जंगल और उसकी झाड़ियों को काट डालो और भोग-विलास से मुक्त हो जाओ।

श्लोक 284 : जब तक स्त्री के लिए पुरुष की लालसा कम नहीं हो जाती और उसका जरा सा भी अंश शेष रहता है, तब तक उसका मन उसी प्रकार बंधन में रहता है जैसे बछड़ा अपनी माँ से बंधा रहता है।

पांच वृद्ध भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच वृद्ध भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (283) और (284) का उच्चारण किया।

एक समय की बात है, सावत्थी में पाँच मित्र थे जिन्होंने वृद्धावस्था में ही भिक्षुत्व ग्रहण किया। ये पाँचों भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए अपने वृद्धाश्रम जाया करते थे। इन पाँचों की पूर्व पत्नियों में से एक, मधुरापचिका, विशेष रूप से कुशल रसोइया थीं और उनकी अच्छी देखभाल करती थीं। इसलिए, ये पाँचों भिक्षु अक्सर उनके घर ही जाते थे। लेकिन एक दिन मधुरापचिका बीमार पड़ गईं और अचानक उनका निधन हो गया। वृद्ध भिक्षुओं को गहरा दुःख हुआ और वे सब मिलकर उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए और अपने देह त्याग पर शोक व्यक्त करते हुए रोए।

बुद्ध ने उन भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा, "भिक्षुओं! तुम सब पीड़ा और शोक भोग रहे हो क्योंकि तुम लोभ, घृणा और अज्ञान (राग, दोष, मोह) से मुक्त नहीं हो, जो एक जंगल के समान हैं। इस जंगल को काट डालो, और तुम लोभ, घृणा और अज्ञान से मुक्त हो जाओगे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 283 : हे भिक्षुओं, भोग-विलास के जंगल को काट डालो, असली वृक्ष को नहीं; भोग-विलास का जंगल पुनर्जन्म का खतरा पैदा करता है। भोग-विलास के जंगल और उसकी झाड़ियों को काट डालो और भोग-विलास से मुक्त हो जाओ।

श्लोक 284 : जब तक स्त्री के लिए पुरुष की लालसा कम नहीं हो जाती और उसका जरा सा भी अंश शेष रहता है, तब तक उसका मन उसी प्रकार बंधन में रहता है जैसे बछड़ा अपनी माँ से बंधा रहता है।

प्रवचन के अंत में पांचों वृद्ध भिक्षुओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच वृद्ध भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच वृद्ध भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कथा के अनुसार, संसार में रहते हुए वे सावत्थी के धनी और समृद्ध गृहस्थ थे। घनिष्ठ मित्र होने के कारण वे अच्छे कर्म करने के लिए एक साथ जुड़ गए। बुद्ध के धम्म उपदेश सुनकर उन्होंने मन ही मन कहा, “हम तो बूढ़े हो चुके हैं; अब गृहस्थ क्यों रहें?” अतः उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया और संसार त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। वृद्धावस्था के कारण वे धम्म को कंठस्थ नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने मठ के बाहरी इलाके में पत्तों और घास से एक कुटिया बनाई और वहीं रहने लगे। भिक्षा मांगने के दौरान वे आम तौर पर अपने पुत्रों और पत्नियों के घर जाते और वहीं भोजन करते थे।

अब उन वृद्ध भिक्षुओं में से एक की पूर्व पत्नी का नाम मधुरपाचिका था, और वह उन सभी की अच्छी मित्र थीं। इसलिए, वे सभी प्राप्त भोजन उनके घर ले जाते थे, और वहाँ बैठकर खाते थे, और मधुरपाचिका उन्हें अपने भंडार से चटनी और करी देती थीं। समय बीतने

पर उन्हें कोई बीमारी हो गई और उनका निधन हो गया। तब वे वृद्ध भिक्षु अपनी एक कुटिया में एकत्रित हुए, और एक-दूसरे के गले लगकर रोने और विलाप करने लगे, और कहने लगे, "मधुरपाचिका, हमारी गृहस्थ शिष्या, का निधन हो गया।" तब चारों ओर से भिक्षु दौड़ते हुए आए और पूछा, "भाइयों, क्या बात है?" वृद्ध भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "आदरणीय भिक्षुओं, हमारे साथी की पूर्व पत्नी का निधन हो गया है। वह हमारी अत्यंत उदार कृषक थीं। अब हमें उनके जैसी दूसरी कहाँ मिलेगी? इसीलिए हम रो रहे हैं।"
सत्य के हॉल में भिक्षु उस घटना पर चर्चा करने लगे। तभी बुद्ध आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब उन्होंने ऐसा व्यवहार किया है; यही घटना उनके पिछले जन्म में भी घटी थी। पिछले जन्म में वे सब कौवे के रूप में पुनर्जन्म लिए थे। जब वह समुद्र के किनारे चल रही थी, तो समुद्र की एक लहर ने उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई, जिस पर वे सब रोने और विलाप करने लगे। उन्होंने कहा, 'हम उसे फिर से बाहर निकाल लेंगे,' और तुरंत अपनी चोंच से विशाल सागर को खाली करने में जुट गए; अंत में वे अपने काम से थक गए।"
बुद्ध ने काक जातक का विस्तृत वर्णन करने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्योंकि तुम कामवासना, घृणा और भ्रम के वन के कारण इस कष्ट को भोग रहे हो, इसलिए तुम्हें इस वन को काट डालना चाहिए; ऐसा करने से तुम्हें कष्टों से मुक्ति प्राप्त होगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 283)
भिक्खवो वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो भयं
जयति वनञ्च वनथञ्च चेत्वा निब्बाना होथा
भिक्खवो [भिक्खव]: हे भिक्षुओं; वनं [वन]: दोषों का वन; चिन्दथ : काट डालो; मा रुक्खं [रुक्खा]: वृक्ष को मत काटो; वनतो [वनत]: दोषों के वन से; भयं [भय]: भय; जायति : उत्पन्न होता है; वनंच : वन; वनथंच : और झाड़ियाँ भी; चेत्वा : काटकर; निब्बाना होथ : अमरता (वनहीनता) प्राप्त करो।
हे भिक्षुओं, विकारों के जंगलों को काट डालो। परन्तु वृक्षों को मत काटो। भय विकारों के जंगलों से उत्पन्न होता है। जंगलों और झाड़ियों दोनों को साफ करो। ऐसा करने से निर्वाण की अवस्था प्राप्त हो जाएगी।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 284)
नरस्सा नारिसु अनुमत्तो अपि वनथो यावं हि न चिज्जति ,
तव सो मातरि खिरपाको वाचो इव पतिबद्धमानो एव
नरस्सा : मनुष्य का; नारिसु : स्त्रियों के प्रति; अणुमत्तो अपि : थोड़ा सा भी; वनथो [वनथा]: दोषों का एक छोटा सा आवरण (मौजूद है); यावं हि : जब तक; न चिज्जति : (यह) नष्ट नहीं हो जाता; ताव : तब तक; इसलिए : वह मनुष्य; मातरि : माता के प्रति (आसक्त); खीरापको [खीरापका]: दूध पीने वाला; वच्छो इव : बछड़े के समान; पटिबद्धमानो एव : निश्चित रूप से (स्त्रियों के प्रति) आसक्त होगा।
जब तक किसी पुरुष का मन स्त्री से जुड़ा रहता है, चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, जैसे कोई छोटी सी झाड़ी जिसे काटा न गया हो, तब तक उसका मन दूध पीते बछड़े की तरह अपनी मां गाय से जुड़ा रहेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 283-284)
नरस्सा नारिसु : पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण। बुद्ध यहाँ पुरुष के स्त्री के प्रति प्रबल और अनियंत्रित आसक्ति का उल्लेख कर रहे हैं। बुद्ध के प्रवचनों के कुछ अंशों में यौन संबंध के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है। अंगुत्तरा निकाय के आरंभिक प्रवचन में कहा गया है: हे भिक्षुओं, मुझे किसी अन्य रूप का ज्ञान नहीं है जिससे पुरुष का हृदय स्त्री के रूप के समान आकर्षित होता हो। हे भिक्षुओं, स्त्री का रूप पुरुष के मन को भर देता है।
भिक्षुओं, मुझे किसी और ध्वनि का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और गंध का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और स्वाद का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और स्पर्श का ज्ञान नहीं है... जिससे पुरुष का हृदय स्त्री के स्पर्श की तरह आकर्षित होता हो। स्त्री की ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श पुरुष के मन को भर देते हैं।
भिक्षुओं, मुझे किसी अन्य रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श का ज्ञान नहीं है जिससे स्त्री का हृदय पुरुष के रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श की तरह आकर्षित हो। भिक्षुओं, स्त्री का मन इन्हीं चीजों से भरा रहता है।
यहां कामुकता पर एक ऐसा उपदेश है जिसे स्पष्ट भाषा में समझाया गया है, जिसकी सच्चाई को कोई भी समझदार व्यक्ति नकारने की हिम्मत नहीं कर सकता। बुद्ध ने कामुकता को मनुष्य की सबसे प्रबल प्रवृत्ति बताया है। यदि कोई इस प्रवृत्ति का गुलाम बन जाता है, तो सबसे शक्तिशाली व्यक्ति भी कमजोर हो जाता है; यहां तक कि ऋषि भी उच्चतर स्तर से निम्नतर स्तर पर गिर सकते हैं। कामुकता की

इच्छा, विशेषकर यौवन में, एक ऐसी आग है जिसे सावधानीपूर्वक संभालना आवश्यक है। यदि कोई विचारशील और संयमित न रहे, तो यह अथाह हानि पहुंचा सकती है। कामवासना जैसी कोई आग नहीं है। वासनाएं बुझती नहीं हैं: वे जलकर नष्ट हो जाती हैं।

बुद्ध एक व्यावहारिक दार्शनिक थे, इसलिए उन्होंने अपने गृहस्थ अनुयायियों से तपस्वी जीवन की अपेक्षा नहीं की। वास्तव में, उन्होंने उन्हें इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले (गिही कामभोगी) कहा। मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, इच्छाओं और लालसाओं से भलीभांति परिचित होने के कारण, गुरु ने भिक्षुओं की तरह गृहस्थों के लिए यौन संबंधों पर प्रतिबंध नहीं लगाया। परन्तु उन्होंने मनुष्य को यौन इच्छा को संतुष्ट करने के गलत तरीकों से सावधान किया। उन्होंने एक कदम आगे बढ़कर गृहस्थों को उपवास के दिनों में या आवश्यकतानुसार आठ नियमों का पालन करने की सलाह दी, विशेष रूप से तीसरे नियम पर जोर दिया ।

यदि कोई व्यक्ति अविवाहित जीवन जीने का निश्चय कर ले, तो उसे शरीर, वाणी और विचार से पवित्र रहने का वास्तविक प्रयास करना चाहिए। यदि वह अविवाहित रहने के लिए पर्याप्त रूप से दृढ़ नहीं है, तो वह विवाह कर सकता है, लेकिन उसे ऐसे यौन संबंधों से बचना चाहिए जो गलत और हानिकारक हों। जैसा कि बुद्ध ने पतन पर अपने प्रवचन में समझाया है:

यदि कोई व्यक्ति स्त्रियों का आदी है (अनैतिक जीवन व्यतीत करता है), शराबी है, जुआरी है और अपनी सारी कमाई लुटा देता है, तो यही उसके पतन का कारण है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नियों से संतुष्ट नहीं होता है, और वेश्याओं और दूसरों की पत्नियों के साथ संबंध रखता है, तो यह उसके पतन का कारण बनता है।

जवानी बीत जाने के बाद, किसी किशोरी से शादी कर लेना, और ईर्ष्या के कारण नींद न आना—यह सब किसी के पतन का कारण बनता है।

बुद्ध ने व्यभिचार के बुरे परिणामों का विश्लेषण इन शब्दों में किया है:

जो व्यक्ति उचित आचरण का पालन नहीं करता और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं: पुण्य कर्म, अज्ञानता, निंदा और निरयण में कष्ट । इस प्रकार, पुण्य कर्म होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है । पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 285

(धम्मपद 283 और 284) <<<< पिछला॥ धम्मपद285 ॥अगला >>>> (धम्मपद286)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 285 - सुवन्नाकरत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 285 - सुवन्नाकरत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ucchinda sinehamattano
kumudam saradikamva panina
santimaggameva(1) bruhaya
Nibbanam sugatena desitam.

श्लोक 285 : अपनी लालसा को उसी प्रकार त्याग दो जैसे शरद ऋतु में हाथ से लिली तोड़ते हैं। बुद्ध ने निर्वाण का वर्णन किया है; उस मार्ग का अनुसरण करो जो निर्वाण की ओर ले जाता है।

---

1. सन्तिमग्गम: निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग, अर्थात् आठ घटकों वाला मार्ग।

एक सुनार रहे थेरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (285) का उच्चारण थेरा सारिपुत्त के शिष्य भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार, एक सुनार के युवा, सुंदर पुत्र को थेरा सारिपुत्त ने संघ में प्रवेश दिया। थेरा सारिपुत्त ने उस युवा भिक्षु को मृत शरीर के प्रति घृणा को ध्यान का विषय बनाया। ध्यान का विषय बनने के बाद वह वन में चला गया और वहाँ ध्यान का अभ्यास किया; परन्तु उसे बहुत कम प्रगति प्राप्त हुई। इसलिए वह आगे के निर्देशों के लिए दो बार थेरा सारिपुत्त के पास लौटा। फिर भी उसे कोई प्रगति नहीं हुई। तब थेरा सारिपुत्त उस युवा भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए और उसके बारे में सब कुछ बताया।

बुद्ध जानते थे कि वह युवक एक सुनार का पुत्र था, और पिछले पाँच सौ जन्मों से सुनारों के परिवार में ही जन्मा था। इसलिए बुद्ध ने युवक भिक्षु के लिए ध्यान का विषय बदल दिया; घृणा के स्थान पर उन्हें सुख का ध्यान करने का निर्देश दिया गया। अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने एक सुंदर कमल का फूल बनाया जो बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था और युवक भिक्षु को उसे मठ के ठीक बाहर रेत के टीले पर लगाने को कहा। युवक भिक्षु ने उस बड़े, सुंदर और सुगंधित कमल पर ध्यान केंद्रित किया और अपनी बाधाओं से मुक्त हो गया। वह परम सुख (पीति) से भर गया, और धीरे-धीरे प्रगति करते हुए वह ध्यान की चौथी अवस्था (झान) तक पहुँच गया।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उसे देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से फूल को पल भर में मुरझा दिया। फूल को मुरझाते और उसका रंग बदलते देख भिक्षु ने फूल और सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अनित्यता को जान लिया। इससे उसे सभी बद्ध वस्तुओं की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का अहसास हुआ। उसी क्षण, बुद्ध ने अपना प्रकाश प्रकट किया और साक्षात भिक्षु के सामने प्रकट होकर उसे तृष्णा (तन्हा) से मुक्ति पाने का उपदेश दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 285 : अपनी लालसा को उसी प्रकार त्याग दो जैसे शरद ऋतु में हाथ से लिली तोड़ते हैं। बुद्ध ने निर्वाण का वर्णन किया है; उस मार्ग का अनुसरण करो जो निर्वाण की ओर ले जाता है।

प्रवचन के अंत में उस युवा भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक सम्मानित व्यक्ति की कहानी जो पहले सुनार हुआ करता था

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के एक शिष्य, एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, एक सुनार के सुंदर और युवा पुत्र को पूज्य सारिपुत्त ने संघ में प्रवेश दिया। पूज्य सारिपुत्त ने उस युवा भिक्षु को मृत शरीर के प्रति घृणा को ध्यान का विषय बनाया। इस विषय को ग्रहण करने के बाद वह वन में जाकर ध्यान करने लगा; परन्तु उसे बहुत कम प्रगति प्राप्त हुई। इसलिए वह आगे के निर्देशों के लिए दो बार पूज्य सारिपुत्त के पास लौटा। फिर भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ। तब पूज्य सारिपुत्त उस युवा भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए और उसके बारे में सब कुछ बताया।

बुद्ध जानते थे कि वह युवक एक सुनार का पुत्र था, और पिछले पाँच सौ जन्मों से सुनारों के परिवार में ही जन्मा था। इसलिए बुद्ध ने युवक के ध्यान का विषय बदल दिया; घृणा के स्थान पर उन्हें सुख का ध्यान करने का निर्देश दिया गया। अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने एक सुंदर कमल का फूल बनाया जो बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था और युवक को उसे मठ के ठीक बाहर रेत के टीले पर लगाने को कहा। युवक ने उस बड़े, सुंदर और सुगंधित कमल पर ध्यान केंद्रित करते हुए अपनी सारी बाधाओं को दूर कर लिया। वह परम सुख (पीति) से भर गया, और धीरे-धीरे प्रगति करते हुए वह ध्यान की चौथी अवस्था (झान) तक पहुँच गया ।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उसे देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से फूल को पल भर में मुरझा दिया। फूल को मुरझाते और उसका रंग बदलते देख भिक्षु ने फूल और सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अनित्यता को समझ लिया। इससे उसे सभी बद्ध वस्तुओं की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का अहसास हुआ। उसी क्षण, बुद्ध ने अपना प्रकाश प्रकट किया और साक्षात युवा भिक्षु के सामने प्रकट होकर उसे तृष्णा (तन्हा) से मुक्ति पाने का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 285)

सारदिकं कुमुदं पणिन इव अत्तानो सिनेहम उच्छिंडा

शांतिमग्गम एव ब्रुहय निब्बाणं सुगतेन देसिटं

सारदिकं [सारदिक]: शरद ऋतु में; कुमुदं [कुमुद]: एक लिली; पाणिना इव : अपने हाथ से तोड़ने जैसा; अत्तनो सिनेहम : आत्म-लगाव, उच्चिन्द : उखाड़ फेंकना; सन्तिमग्गम एव : निर्वाण का एकमात्र मार्ग; बृहय निर्वाणं [निवाण]: खेती करना; सुगतेन : बुद्ध द्वारा; देसितां [देसिता]: उपदेश दिया गया है

जैसे कोई व्यक्ति अपने हाथ से लिली का फूल तोड़ता है, वैसे ही अपने आप से मोह को उखाड़ फेंकें। बुद्ध द्वारा बताए गए निर्वाण के मार्ग पर चलें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 286)

कुमुदं : कमल का फूल। इस चित्र में कमल के फूल को हाथ से तोड़ने का चित्रण इस बात पर बल देता है कि युवा भिक्षु ने कितनी सहजता से अर्हतत्व प्राप्त किया। यहाँ चिंतन का विषय कमल था। यही वह वस्तु थी जो उन्हें ध्यान के लिए दी गई थी। ध्यान में ऐसी वस्तु (कसीण) का उपयोग बौद्ध मन प्रशिक्षण प्रणाली में एक व्यापक प्रथा थी।

अत्तनो : इस श्लोक के अनुसार, इसका अर्थ पाँच स्कंध हैं। ये पाँच स्कंध हैं: पदार्थ (रूपक्खन्ध); संवेदनाएँ (वेदनाक्खन्ध); बोध (संज्ञाक्खन्ध); मानसिक संरचनाएँ (संस्कारक्खन्ध) और चेतना (विज्ञानाक्खन्ध)।

ये पाँच प्रकार के समूह हैं। जिसे हम प्राणी, व्यक्ति या 'मैं' कहते हैं, वह इन पाँच समूहों के संयोजन को दिया गया एक सुविधाजनक नाम या उपाधि मात्र है। ये सभी क्षणभंगुर हैं, सभी निरंतर परिवर्तनशील हैं। जो क्षणभंगुर है, वही दुःख है (yad aniccaṃ tam dukkhaṃ)। बुद्ध के शब्दों का यही सच्चा अर्थ है: संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुःख हैं। वे दो क्षणों के लिए एक समान नहीं रहते।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 286

———————————————————————

(धम्मपद285) <<<< पिछला || धम्मपद286 || अगला >>>> (धम्मपद287)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 286 - महाधनवनिजा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 286 - महाधनवनिजा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Idha vassam vasissami
इधा हेमन्तागिमहिसु
iti balo vicinteti
अंतरायम ना बुझती.

———————————————————————

श्लोक 286 : "मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा; मैं यहाँ सर्दी के मौसम में और गर्मी के मौसम में रहूँगा", मूर्ख ऐसा सोचता है, मृत्यु के खतरे को न समझते हुए।

———————————————————————

महाधना नामक व्यापारी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (286) का उच्चारण किया, जो बरनासी के एक व्यापारी महाधना के संदर्भ में था।

एक बार, बरनासी का एक व्यापारी सावत्थी में एक उत्सव में भाग लेने के लिए पाँच सौ गाड़ियाँ भरकर वस्त्र और अन्य सामान लेकर आया। जब वह सावत्थी के पास एक नदी के किनारे पहुँचा, तो नदी उफान पर थी; इसलिए वह नदी पार नहीं कर सका। सात दिनों तक भारी बारिश होती रही और पानी कम नहीं हुआ, इसलिए वह वहीं फंसा रहा। तब तक वह उत्सव में पहुँचने से पहले ही देर हो चुका था, और नदी पार करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

क्योंकि वह बहुत दूर से आया था, इसलिए वह अपने माल से लदे हुए घर वापस नहीं लौटना चाहता था। इसलिए उसने वर्षा ऋतु, शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु वहीं बिताने का निर्णय लिया और अपने सहायकों को यह बात बता दी। बुद्ध भिक्षा मांगने गए थे, तभी उन्हें व्यापारी के इस निर्णय का पता चला और वे मुस्कुराए। आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, क्या तुम उस व्यापारी को देख रहे हो? वह सोच रहा है कि वह यहीं रहकर पूरे साल अपना माल बेचेगा। उसे यह नहीं पता कि सात दिनों में उसकी मृत्यु यहीं हो जाएगी। जो करना चाहिए, वह आज ही कर लेना चाहिए। कौन जानता है कि कल मृत्यु हो जाएगी? मृत्यु के देवता के साथ हमारी कोई निश्चित तिथि नहीं है। जो दिन-रात सचेत रहता है, जो नैतिक विकारों से विचलित नहीं होता और ऊर्जावान है, उसके लिए एक रात का जीवन भी सार्थक है।"

तब बुद्ध ने आनंद को व्यापारी महाधन के पास भेजा। आनंद ने महाधन को समझाया कि उसका समय समाप्त हो रहा है और उसे लापरवाही के बजाय ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अपनी आसन्न मृत्यु के बारे में जानकर महाधन भयभीत हो गया। इसलिए, उसने सात दिनों तक बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। सातवें दिन, बुद्ध ने आभार व्यक्त करते हुए प्रवचन दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 286 : "मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा; मैं यहाँ सर्दी के मौसम में और गर्मी के मौसम में रहूँगा", मूर्ख ऐसा सोचता है, मृत्यु के खतरे को न समझते हुए।

प्रवचन के अंत में, व्यापारी महाधन ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। वह कुछ दूर तक बुद्ध के पीछे चला और लौट आया। लौटने पर उसे तीव्र सिरदर्द हुआ और कुछ ही समय बाद उसका निधन हो गया। महाधन का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक व्यापारी महाधन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वाराणसी के एक व्यापारी महाधन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार वाराणसी का एक व्यापारी वस्त्रों और अन्य सामानों से लदी कई गाड़ियाँ लेकर सावत्थी में एक उत्सव में आया। जब वह सावत्थी के पास एक नदी के किनारे पहुँचा तो नदी उफान पर थी; इसलिए वह नदी पार नहीं कर सका। भारी बारिश के कारण पानी कम नहीं हुआ और वह सात दिनों तक फंसा रहा। तब तक वह उत्सव के लिए पहले ही देर हो चुका था, और नदी पार करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

क्योंकि वह बहुत दूर से आया था, इसलिए वह अपने माल से लदे हुए घर वापस नहीं लौटना चाहता था; अतः उसने वर्षा ऋतु, शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु उसी स्थान पर बिताने का निर्णय लिया और अपने सहायकों को यह बात बता दी। बुद्ध भिक्षा मांगने निकले थे, तभी उन्हें व्यापारी के इस निर्णय का पता चला और वे मुस्कुराए।

आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, “आनंद, क्या तुम उस व्यापारी को देख रहे हो? वह सोच रहा है कि वह यहीं रहकर पूरे साल अपना माल बेचेगा। उसे यह नहीं पता कि सात दिन बाद उसकी मृत्यु यहीं हो जाएगी। जो करना चाहिए, वह आज ही कर लेना चाहिए। भला किसे पता कि कल मृत्यु हो जाएगी?”

मृत्यु के राजा के साथ हमारी कोई निश्चित तिथि नहीं है। जो व्यक्ति दिन-रात सचेत रहता है, जो नैतिक विकारों से विचलित नहीं होता और ऊर्जावान होता है, उसके लिए मात्र एक रात का जीवन भी सार्थक होता है।

तब बुद्ध ने आनंद को व्यापारी महाधन के पास भेजा। आनंद ने महाधन को समझाया कि उसका समय समाप्त हो रहा है और उसे लापरवाही के बजाय ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अपनी आसन्न मृत्यु के बारे में जानकर महाधन भयभीत हो गया। इसलिए, उसने सात दिनों तक बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। सातवें दिन, बुद्ध ने प्रशंसा में प्रवचन दिया (अनुमोदना)। प्रवचन के अंत में, व्यापारी महाधन ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। वह कुछ दूर तक बुद्ध के पीछे गया और लौट आया। लौटने पर उसे तेज सिरदर्द हुआ और कुछ ही समय बाद उसका निधन हो गया। महाधन का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 286)

वस्सां इधा वस्सीसामि हेमन्तगिम्हिसु इधा

इति बालो विचिंतेति अंतरायं न बुज्जति

वस्सं [वस्सा]: वर्षा के चार महीनों के दौरान; इध : इस स्थान पर; वसिस्सामि : मैं निवास करूँगा; हेमंतगिम्हिसु : सर्दी और गर्मी में; इध : यहाँ (मैं निवास करता हूँ); इति : इस रास्ते; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; विसिनतेति : सोचता है; अंतरायं अपने आप को खतरे में; न बुझति : (वह) अनभिज्ञ है

एकांतवास के दौरान, चाहे सर्दी हो या गर्मी, चुने हुए स्थान पर चार महीनों में अज्ञानी लोग मृत्यु के खतरे से अनभिज्ञ होकर योजनाएँ बनाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 286)

अंतरायं न बुझति । अपने जीवन के खतरे को नहीं देखता। इस कहानी का व्यापारी मृत्यु के तथ्य से बेखबर था। इस संसार में विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे लोग हैं जो मृत्यु शब्द से ही घृणा करते हैं, चिंतन करना तो दूर की बात है। दीर्घायु, अच्छे स्वास्थ्य, यौवन और समृद्धि के मोह में डूबे हुए वे इस तथ्य को पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे मृत्यु के अधीन हैं। पांचों इंद्रियों के क्षणभंगुर सुखों में डूबे हुए वे केवल इस संसार में भौतिक उन्नति की खोज करते हैं, भविष्य के जीवन की पूरी तरह अवहेलना करते हैं और मन, शरीर और वाणी के माध्यम से बुराइयों में लिप्त रहते हैं। वे इस क्षणिक और नश्वर जीवन को स्थायी और शाश्वत मानते हैं। बुद्ध ने इन शब्दों का उपदेश ऐसे अंधे और अज्ञानी लोगों में असंतोष की भावना जगाने, माता-पिता और बच्चों जैसे सजीव वस्तुओं और धन और संपत्ति जैसे निर्जीव वस्तुओं के वियोग से उत्पन्न दुःख की पीड़ा को कम करने, सभी प्राणियों में अनित्यता के सिद्धांत को स्थापित करने, उन्हें जीवन की असंतोषजनकता के प्रति आश्वस्त करने और उन्हें शाश्वत शांति की प्राप्ति की ओर निर्देशित करने के लिए दिया था।

जो व्यक्ति बुद्ध के उपदेशों को नहीं समझ पाया है, वह दीर्घायु के प्रति आसक्त होकर स्वयं को अमर समझता है, भले ही वह अपने आसपास अनेकों मृत्यु देखता हो; वह उत्तम स्वास्थ्य के प्रति आसक्त होकर स्वयं को रोगमुक्त समझता है, भले ही वह अपने आसपास असंख्य रोगग्रस्त व्यक्तियों को देखता हो; वह यौवन के प्रति आसक्त होकर स्वयं को वृद्धावस्था से अछूता समझता है; वह धन और समृद्धि के प्रति आसक्त होकर असंख्य व्यक्तियों को धन की हानि से निर्धन होते देखता है; और वह एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचता कि वह स्वयं भी ऐसी ही स्थिति में आ सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 287

(धम्मपद286) <<<< पिछला|| धम्मपद287 ||अगला >>>> (धम्मपद 288 और 289)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 287 - किसागोतामि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 287 - किसागोतामि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

तम पुत्तपसुसम्मत्तम
ब्यासत्तमनसम नरम
suttam gamam mahoghova
maccu adaya gacchati.

श्लोक 287 : जो व्यक्ति अपने बच्चों और अपने पशुओं के झुंड पर मोहित रहता है, जिसका मन इंद्रिय सुखों के लिए तरसता है और उनसे आसक्त रहता है, वह मृत्यु द्वारा उसी प्रकार ले जाया जाता है जैसे कोई सोता हुआ गाँव एक बड़ी बाढ़ में बह जाता है।

किसागोतमी की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (287) का उच्चारण किया, जिसमें श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री किसागोतमी का उल्लेख था।

किसगोतमी अपने इकलौते बेटे की मृत्यु से व्याकुल होकर बुद्ध के पास आईं। बुद्ध ने उनसे कहा, "किसगोतमी, तुम सोचती हो कि केवल तुमने ही पुत्र को खोया है। मृत्यु सभी प्राणियों के लिए आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने साथ ले जाती है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 287 : जो व्यक्ति अपने बच्चों और अपने पशुओं के झुंड पर मोहित रहता है, जिसका मन इंद्रिय सुखों के लिए तरसता है और उनसे आसक्त रहता है, वह मृत्यु द्वारा उसी प्रकार ले जाया जाता है जैसे कोई सोता हुआ गाँव एक बड़ी बाढ़ में बह जाता है।

प्रवचन के अंत में किसागोतमी ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
(1) यह कहानी आयत 114 में दी गई है

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
किसागोतमी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री किसागोतमी के संदर्भ में कहा था।
किसागोतमी अपने इकलौते बेटे की मृत्यु से व्याकुल होकर बुद्ध के पास आईं। बुद्ध ने उनसे कहा, "तुम्हें यह सोचना व्यर्थ है कि केवल तुमने ही अपना बच्चा खोया है। परन्तु यह समस्त प्राणियों के लिए शाश्वत नियम है। क्योंकि मृत्यु प्रचंड जलप्रपात के समान समस्त प्राणियों को बहा ले जाती है और विनाश के सागर में फेंक देती है; फिर भी उनकी मनोकामनाएँ अधूरी रह जाती हैं।" प्रवचन के अंत में, किसागोतमी ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 287)
पुट्टपससुसमट्टं ब्यासत्तमनसं तं नारां
सुत्तं गमं महोघो इव मक्कु अदाय गच्छति
पुत्तपससम्मत्तम् [puttapasusammatta]: बच्चों, पशुओं आदि के धन-दौलत से मदहोश। ब्यासत्तमनसम् [byāsattamanasa]: व्याकुल मन से; तम् नरम् [nara]: वह व्यक्ति; सुत्तम् गाम् [gāma]: सोया हुआ गाँव; महोगो इव : एक बड़ी बाढ़ की तरह; मच्चु : मृत्यु; आदाय गच्छति : उसे अपने साथ (बाढ़ में) ले जाता है।
पुरुष अपने बच्चों, पशुओं और अन्य प्रकार की संपत्ति पर गर्व करते हैं। वे अक्सर इस तरह से गर्व करते हैं क्योंकि उनका मन दोषों से भरा होता है। बाढ़ सोते हुए गाँव को बहा ले जाती है, अपने साथ सभी लोगों और उनकी संपत्ति को भी ले जाती है। ठीक उसी तरह, मृत्यु अचानक आती है और लोगों को अपने साथ बहा ले जाती है, चाहे वे अपनी संपत्ति पर कितना भी गर्व क्यों न करें।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 287)
किसागोतमी, कठोर वस्त्र धारण करने की क्षमता के कारण, श्रेष्ठ संघ की महिला महा अरहतों में अग्रणी थीं। उनका उल्लेख सर्वप्रथम पद्ममुत्तर बुद्ध के युग में मिलता है। उन्होंने अपने जैसी एक महिला को देखा और तुरंत उनके पदचिन्हों पर चलने का संकल्प लिया। उन्होंने दान दिया और ध्यान का अभ्यास किया। उनका जन्म देवलोक में हुआ था। उनका जन्म इसी युग में एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उनका विधिवत विवाह हुआ, लेकिन लोगों ने उन पर ध्यान नहीं दिया। वे दुबली-पतली थीं, इसलिए उन्हें किसा कहा जाता था। अतः उनका अपना नाम गौतमी, किसा से जुड़ गया और वे किसागोतमी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जब उन्हें पुत्र हुआ, तो वे लोकप्रिय हो गईं। बालक के वयस्क होते ही उसकी मृत्यु हो गई।
जिस सहारे पर वह टिकी हुई थी, वह अचानक हट गया। लगाव ने उसे अंधा कर दिया था। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मर चुका है। इसलिए, मृत बच्चे को गोद में लिए वह उसके ठीक होने की दवा की तलाश में भटकने लगी। लोग उस पर हँसे और उसका उपहास करने लगे। वह हद से ज़्यादा परेशान थी। वह लगभग पागल हो रही थी।
एक दिन, एक दयालु महिला ने जेतवनाराम का मार्ग बताया, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। जब वह वहाँ पहुँची, तो बुद्ध भिक्षुओं को प्रवचन दे रहे थे। वह हॉल के अंत में खड़ी होकर भगवान से उस औषधि के लिए प्रार्थना करने लगी, जिसे वह अब तक व्यर्थ ही खोज रही थी। बुद्ध ने उसका भविष्य देख लिया। बुद्ध ने देखा कि वह मृत्यु से अछूती थी। इसलिए बुद्ध ने उससे कुछ सरसों के बीज लाने को कहा। उसे लगा कि उसका बच्चा जल्द ही ठीक हो जाएगा और वह सरसों लाने के लिए निकलने ही वाली थी। बुद्ध ने आगे कहा, "लेकिन थोड़ा रुको, वह सरसों के बीज ऐसे घर (अर्थात कुल) से लाए जाने चाहिए जिसने मृत्यु का स्वाद न चखा हो।"
हालांकि, उसे लगा कि यह काफी सरल है। लेकिन वह खोज की यात्रा पर थी। एक बार फिर, श्रावस्ती की गलियों में बच्चे के शव को गोद में लिए एक व्याकुल माँ का दृश्य दिखाई दे रहा था। हर घर में बहुप्रतीक्षित सरसों तो आसानी से मिल रही थी, लेकिन अफसोस! वे बीज नहीं थे जो बुद्ध चाहते थे। मृत्यु से अधिक बार आने वाला कोई आगंतुक नहीं था। धीरे-धीरे उसे मृत्यु की सार्वभौमिकता का ज्ञान हुआ। मृत्यु की शक्ति ने उसे वश में कर लिया। उसने देखा कि बुद्ध उसे महान पाठ सिखाना चाहते हैं। उसने जल्दी से शव को कब्रिस्तान ले जाकर वहाँ रख दिया और कहा कि मरने वाला वह अकेला बच्चा नहीं था। अतीत में किए गए उसके ध्यान अभ्यास ने उसकी सहायता की। उसके लिए यह समझना कठिन नहीं था कि कुछ भी शाश्वत नहीं है। यह ब्रह्मलोक सहित जीवन के सभी लोकों में

ऐसा ही है। केवल एक अर्हत ही पूर्णतः देहत्याग करता है, जो न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही मरता है। उसने उस आनंद का अनुभव किया। वह एक दुखी और समझदार स्त्री बनकर लौटी। उसने अब औषधि की खोज नहीं की। वह उस अचूक इलाज की लालसा रखती थी जो उसे हमेशा के लिए ठीक कर दे।
उसने महान चिकित्सक से अपने मानसिक रोग के उपचार की विनती की। बुद्ध का निदान अद्वितीय था। बुद्ध ने उपदेश दिया। संसार के सागर में चार शक्तिशाली धाराएँ (ओगा) थीं जो मनुष्यों को इधर-उधर धकेलती थीं ।
चार धाराएँ इस प्रकार हैं:
शारीरिक सुख (काम);
अस्तित्व से आसक्ति (भाव);
विभिन्न गलत मान्यताओं से आसक्ति (दिट्ठी);
अज्ञान (अविज्जा)।
किसागोतमी ने उस सत्य को ग्रहण किया जिसे सामान्य मनुष्य समझ नहीं पाते। बुद्ध ने यह भी स्वीकार किया कि जो व्यक्ति एक दिन के लिए भी परम आनंद का अनुभव करता है, वह उस व्यक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जो एक शताब्दी तक अज्ञानता में अंधा रहता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 288,289

———————————————————————

(धम्मपद 287) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 288 और 289 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 290)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 288 और 289 - पटाकरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 288 और 289 - पटाकरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na santi putta tanaya
na pita napi bandhava
antakena' dhipannassa
naththi natisu tanata.
Etamatthavasam natva
pandito silasamvuto
nibbanagamanam maggam
khippameva visodhaye.

———————————————————————

श्लोक 288 : न तो पुत्र, न माता-पिता, न ही निकट संबंधी मृत्यु से पीड़ित व्यक्ति की रक्षा कर सकते हैं; वास्तव में, न तो सगे-संबंधी और न ही रिश्तेदार सुरक्षा दे सकते हैं।

———————————————————————

श्लोक 289 : यह जानकर, नैतिकता से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को शीघ्र ही दूर कर देना चाहिए।

———————————————————————

पटाकारा की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (288) और (289) का उच्चारण किया, जो श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री पताकारा के संदर्भ में था।

पताकारा ने अपने पति और दो बेटों के साथ-साथ अपने माता-पिता और तीन भाइयों को लगभग एक ही समय में खो दिया था, जिससे वह लगभग पागल हो गई थी। जब वह बुद्ध के पास पहुँची, तो उन्होंने उससे कहा, "पाताकारा, बेटे-बेटियाँ तुम्हारी देखभाल नहीं कर सकते; इसलिए भले ही वे जीवित हों, वे तुम्हारे लिए अस्तित्वहीन हैं। ज्ञानी व्यक्ति नैतिकता (शील) का पालन करता है और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 288 : न तो पुत्र, न माता-पिता, न ही निकट संबंधी मृत्यु से पीड़ित व्यक्ति की रक्षा कर सकते हैं; वास्तव में, न तो सगे-संबंधी और न ही रिश्तेदार सुरक्षा दे सकते हैं।

श्लोक 289 : यह जानकर, नैतिकता से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को शीघ्र ही दूर कर देना चाहिए।

प्रवचन के अंत में पताकारा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

(1) यह कहानी आयत 113 में दी गई है

अध्याय बीस का अंत: मार्ग

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पटाचारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री पातचारा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

उस समय बुद्ध ने देखा कि पातचारा का दुःख शांत हो गया है, तो उन्होंने उससे कहा, “पातचारा, हे परलोक जाने वाले के लिए न पुत्र, न पिता, न रिश्तेदार कभी शरण, न आश्रय, न शरणस्थल। इसलिए, भले ही वे जीवित हों, उनका कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जो बुद्धिमान है, उसे अपने सद्‌गुणों को स्पष्ट करना चाहिए; उसे निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को स्पष्ट करना चाहिए।” उपदेश के समापन पर पातचारा ने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया; इसी प्रकार अनेक अन्य लोगों ने भी धर्म परिवर्तन का फल और दूसरे एवं तीसरे मार्ग के फल प्राप्त किए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 288)

अंतकेना अधिपन्नस्सा तनया पुत्ता न शांति ,

पिता ना , पि बंधवा ना , नातिसु तनता नत्थि

अंतकेना : अंतकर्ता (मृत्यु) द्वारा; अधिपन्नस : जकड़ा हुआ व्यक्ति; ताणाय : सुरक्षा के लिए; पुत्त : बच्चे; न सन्ति : वहाँ नहीं; पिता : पिता; न : (वहाँ) नहीं; पि : भी; बंधवा : रिश्तेदार; न : (वहाँ) नहीं हैं; ञातीसु : (इस तरह) रिश्तेदारों से; ताणता नत्थि : (उसे) कोई सुरक्षा नहीं है

जब कोई व्यक्ति मृत्यु के शिकंजे में आ जाता है, तो पुत्र उसकी रक्षा नहीं कर सकते। यहाँ तक कि पिता भी उसे मृत्यु के चंगुल से नहीं बचा सकते। न ही रिश्तेदार उसकी मदद के लिए आगे आ सकते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 289)

पण्डितो एतां अत्तवसं नात्वा सिलासनवुतो

निब्बानगमनं मग्गं खिप्पं एव विसोधये

paṇḍito [paṇḍita]: बुद्धिमान; etāṃ atthavasaṃ [atthavasa]: यह विषय; ñatvā : जागरूक; sīlasaṃvuto [sīlasaṃvuta]: संयमित और अनुशासित; nibbānagamanaṃ maggaṃ [magga]: अमरता का मार्ग; khippaṃ [khippa]: शीघ्र; eva visodhayī : निश्चित रूप से स्पष्ट होना चाहिए

यह जानते हुए कि मृत्यु से कोई भी आपको नहीं बचा सकता, संयमित और अनुशासित बुद्धिमान व्यक्ति को समय की हानि किए बिना निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 288-289)

Antakenādhipannassa natthi ñātīsu tāṇatā : जब कोई व्यक्ति मृत्यु के शिकंजे में आ जाता है, तो कोई भी, यहाँ तक कि उसके रिश्तेदार भी, उसे इससे बचा नहीं सकते।

सल्ला सूत्र (शोक का स्तंभ) में इसे और भी बलपूर्वक इस प्रकार बताया गया है:

(1) ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे जन्म लेने वाला व्यक्ति मृत्यु से बच सके।

(2) वृद्धावस्था प्राप्त कर लेने पर मृत्यु अपरिहार्य है।

(3) जैसे पके फल अवश्य गिरते हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले मनुष्यों को सदा मृत्यु का भय रहता है।

(4) जिस प्रकार कुम्हार द्वारा बनाया गया मिट्टी का बर्तन टूट जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी टूट जाता है।

(5) वयस्क और युवा, बुद्धिमान और मूर्ख—ये सभी मृत्यु के वश में आ जाते हैं।

(6) कोई पिता अपने बेटे को नहीं बचा सकता, कोई रिश्तेदार अपने रिश्तेदारों को नहीं बचा सकता, जब वे मृत्यु में चले जाते हैं।

(7) रिश्तेदार खड़े होकर विलाप करते हैं, देखो कैसे प्राणियों को मृत्यु की ओर ले जाया जाता है, जैसे मवेशियों को वधशाला में ले जाया जाता है।

(8) चूंकि प्राणी इस प्रकार मृत्यु और वृद्धावस्था से घिरे होते हैं, इसलिए इस संसार की प्रकृति को जानने वाले बुद्धिमान शोक नहीं करते।

(9) मृतकों पर विलाप करना व्यर्थ है, क्योंकि तुम नहीं जानते कि वे कहाँ से आए और कहाँ जाते हैं।

(10) यदि विलाप करने से शोक करने वाले के शोक के कष्ट दूर हो जाते हैं, तो केवल बुद्धिमान ही विलाप करें।

(11) विलाप करने से मन की शांति प्राप्त नहीं होती। इससे केवल दुःख होता है और शरीर को कष्ट मिलता है।

(12) शोक करने से शोक करने वाला केवल कमजोर और पीला पड़ जाता है। इससे दिवंगत आत्मा को कोई सहायता नहीं मिलती। इसलिए, शोक करना व्यर्थ है।

(13) दुःख को न त्यागकर वह और अधिक पीड़ा की ओर बढ़ता है। वह दुःख के क्षेत्र में और भी गहराई तक जाता है।

(14) देखो कि इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेने वाले अन्य लोग भी मृत्यु के प्रभाव में कांपते हैं।

(15) लोग चीजों के बारे में चाहे जिस तरह से सोचते हैं, चीजें वैसी ही हो जाती हैं। चीजों का स्वभाव ही विपरीत है। संसार के स्वभाव को इसी प्रकार देखो।

(16) भले ही कोई व्यक्ति सौ वर्ष या उससे अधिक जीवित रहे, उसे अंततः अपना जीवन त्यागना ही होगा, वह मित्रों और रिश्तेदारों से वंचित हो जाएगा।

(17) इसलिए, अरहतों की बात सुनकर और किसी दिवंगत व्यक्ति को देखकर, अपने विलाप को नियंत्रित करो, यह सोचकर कि वह फिर कभी तुम्हारे साथ नहीं होगा।

(18) जैसे कोई जलते हुए घर की लपटों को पानी से बुझाता है, वैसे ही एक दृढ़ और बुद्धिमान व्यक्ति दुःख को हवा की तरह जल्दी से दूर कर दे (मुट्ठी भर) रुई।

(19) जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करता है, उसे अपने द्वारा बोए गए विलाप और शोक के तीरों को उखाड़ फेंकना चाहिए।

इन बाणों को निकाल देने और मानसिक शांति प्राप्त कर लेने से व्यक्ति धन्य हो जाता है और शोक से मुक्त होकर सभी दुखों पर विजय प्राप्त कर लेता है। मृत्यु, संतान हानि या धन हानि की स्थिति में भी इसी प्रकार चिंतन करना चाहिए:

(1) अनाज, धन, चांदी, सोना और जो भी संपत्ति हो,

(2) दास, शिल्पकार, दिहाड़ी मजदूर और सभी आश्रित,

(3) इन सभी को छोड़ते समय त्यागना होगा।

(4) परन्तु जो कुछ भी मनुष्य कर्म, वचन या विचार से करता है, वही उसका होता है; वही वह अपने साथ ले जाता है और वही उसके पीछे अविभाज्य छाया की तरह चलता है।

सभी प्राणी मरते हैं। जीवन का अंत मृत्यु में होता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है, उन्हें अपने पुण्य और पाप कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। पाप कर्म करने वाले दुखमय लोक में जाते हैं और पुण्य कर्म करने वाले आनंदमय लोक में पहुँचते हैं। इसलिए, सदा अच्छे कर्म करते रहें, जो परलोक में जीवन के लिए भंडार का काम करते हैं। पुण्य कर्म परलोक में प्राणियों को बहुत सहारा देते हैं।

उरगा जातक (मनुष्य का नश्वर शरीर त्यागना) में एक जमींदार की कहानी है जिसके पुत्र की मृत्यु हो गई थी। यहाँ, बुद्ध उस जमींदार के घर गए और बैठने के बाद उन्होंने पूछा, "महोदय, आप शोक क्यों मना रहे हैं?" उनके उत्तर देने पर, "जी, पूज्यवर, पुत्र की मृत्यु के बाद से ही मैं शोक मना रहा हूँ," बुद्ध ने कहा, "महोदय, जो विघटन के अधीन है वह विघटन हो जाता है, और जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है, और यह केवल एक व्यक्ति या एक गाँव में ही नहीं, बल्कि असंख्य लोकों में और तीनों भावों में होता है। ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो मृत्यु के अधीन न हो, और न ही कोई ऐसी वस्तु है जो इस स्थिति में रह सकती है। सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, और

सभी यौगिक विघटन के अधीन हैं। परन्तु प्राचीन ऋषि, जब अपने पुत्र को खो देते थे, तो कहते थे, 'जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है... और शोक नहीं मनाते थे।" और फिर उस व्यक्ति के अनुरोध पर उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब वाराणसी में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म वाराणसी के द्वार के बाहर एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उन्होंने अपना परिवार बसाया। वे खेतों में मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। उनके दो बच्चे थे, एक पुत्र और एक पुत्री। जब पुत्र बड़ा हुआ, तो पिता ने अपने ही परिवार के एक प्रतिष्ठित परिवार से उसके लिए एक पत्नी को घर लाया। इस प्रकार, एक दासी के साथ उनका परिवार छह सदस्यों का हो गया; बोधिसत्व और उनकी पत्नी, पुत्र और पुत्री, बहू और दासी। वे सब सुख-सुविधाओं के साथ रहते थे। बोधिसत्व ने अन्य पाँच शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा, "जैसा तुमने पाया है, दान करो, पवित्र दिनों का पालन करो, नैतिक नियमों का पालन करो, मृत्यु के विषय में चिंतन करो, अपनी नश्वर अवस्था के प्रति सचेत रहो। क्योंकि हम जैसे प्राणियों के लिए मृत्यु निश्चित है, जीवन अनिश्चित: सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर और क्षय के अधीन हैं। इसलिए, दिन-रात अपने आचरण के प्रति सजग रहो।" उन्होंने सहर्ष उनकी शिक्षा को ग्रहण किया और मृत्यु के विषय में गहन चिंतन किया।

एक दिन बोधिसत्व अपने पुत्र के साथ खेत जोतने गए, तभी युवक को एक साँप ने काट लिया और वह गिर पड़ा। उसे गिरते देख बोधिसत्व अपने बैल छोड़कर उसके पास आए और जब उन्होंने देखा कि वह मर चुका है, तो उन्होंने उसे उठाया और एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया। उन्होंने उसे एक चादर से ढक दिया और न तो रोए और न ही विलाप किया। उन्होंने कहा, "जो कुछ भी विघटन के अधीन है, वह विघटित हो जाता है, और जो कुछ भी मृत्यु के अधीन है, वह मर जाता है। सभी मिश्रित अस्तित्व क्षणभंगुर हैं और मृत्यु के योग्य हैं।" वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति को पहचानते हुए, वे खेत जोतने लगे। पास से गुजरते हुए एक पड़ोसी को देखकर उन्होंने पूछा, "मित्र, क्या तुम घर जा रहे हो?" जब उसने उत्तर दिया, "हाँ," तो उसने कहा, "तो कृपया हमारे घर जाइए और मालकिन से कहिए, 'आज आप पहले की तरह दो लोगों के लिए भोजन न लाएँ, बल्कि केवल एक के लिए लाएँ। अब तक केवल दासी ही भोजन लाती थी, लेकिन आज आप चारों स्वच्छ वस्त्र पहनें और हाथों में इत्र और फूल लेकर आएँ'।" "ठीक है," उसने कहा और जाकर ब्राह्मण की पत्नी से यही बातें कहीं। उसने पूछा, "महोदय, यह संदेश किसने दिया?" "ब्राह्मण ने," उसने उत्तर दिया। वह समझ गई कि उसका पुत्र मर गया है। लेकिन वह जरा भी नहीं डरी।

इस प्रकार पूर्ण आत्मसंयम दिखाते हुए, श्वेत वस्त्र पहने और हाथ में इत्र और फूल लिए, उन्होंने भोजन लाने का आदेश दिया और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खेत में गईं। परन्तु उनमें से किसी ने भी न तो आँसू बहाए और न ही विलाप किया। बोधिसत्व अभी भी उस छाया में बैठे थे जहाँ युवक लेटा हुआ था, और उन्होंने अपना भोजन किया। भोजन समाप्त होने पर, सभी ने लकड़ियाँ लीं और शव को चिता पर रखकर, इत्र और फूलों की भेंट चढ़ाई और फिर उसे अग्नि दी। परन्तु किसी ने भी एक आँसू नहीं बहाया। सभी मृत्यु के विचार में लीन थे। उनके सद्गुण का प्रभाव ऐसा था कि सक्का के सिंहासन में ऊष्मा के लक्षण प्रकट हुए। सक्का ने कहा, "मुझे आश्चर्य है कि कौन मुझे मेरे सिंहासन से नीचे उतारना चाहता है?" और चिंतन करने पर, उन्होंने पाया कि ऊष्मा इन लोगों में विद्यमान सद्गुण की शक्ति के कारण थी, और अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने कहा, "मुझे उनके पास जाकर सिंह के दहाड़ की तरह उल्लासपूर्ण जयजयकार करना चाहिए, और उसके तुरंत बाद उनके निवास को सात रत्नों से भर देना चाहिए।" वहाँ जल्दी से पहुँचकर वह चिता के पास खड़ा हो गया और बोला, "तुम लोग क्या कर रहे हो?" "हम एक मनुष्य का शरीर जला रहे हैं, हे प्रभु।" उसने कहा, "तुम किसी मनुष्य को नहीं जला रहे हो, मुझे लगता है कि तुम किसी जानवर का मांस भून रहे हो जिसे तुमने मारा है।" उन्होंने कहा, "ऐसा नहीं है, हे प्रभु, हम केवल एक मनुष्य का शरीर जला रहे हैं।" तब उसने कहा, "यह कोई शत्रु रहा होगा।" बोधिसत्व ने कहा, "यह हमारा सच्चा पुत्र है, शत्रु नहीं।" "तो फिर वह तुम्हें पुत्र के समान प्रिय नहीं रहा होगा।"

"वह तो बहुत प्रिय थे, मेरे प्रभु।" "तो फिर आप क्यों नहीं रोते?"

तब बोधिसत्व ने अपने न रोने का कारण बताते हुए पहला श्लोक कहा:

जीवन में सुख समाप्त हो जाने पर मनुष्य अपने नश्वर शरीर को त्याग देता है।
जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली को उतार फेंकता है;
किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए: उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।

बोधिसत्व की बातें सुनकर सक्का ने ब्राह्मण की पत्नी से पूछा, "हे देवी, वह मृत पुरुष आपको कैसा लगता था?" पत्नी ने उत्तर दिया, "मैंने उसे दस महीने अपने गर्भ में पाला, उसे दूध पिलाया, उसके हाथों और पैरों की गतिविधियों का मार्गदर्शन किया, और वह मेरा बड़ा पुत्र था, हे मेरे स्वामी।" "हे देवी, यह सच है कि एक पिता स्वभाव से रो नहीं सकता, लेकिन एक माँ का हृदय तो कोमल होता ही है। तो फिर आप क्यों नहीं रो रही हैं?" और अपने न रोने का कारण बताते हुए उन्होंने दो श्लोक कहे:

वह बिना बुलाए यहाँ आया, बिना कहे जल्द ही चला जाएगा;
वह जैसे आया वैसे ही चला गया। इसमें दुख की क्या बात है?

किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।
ब्राह्मण की पत्नी की बातें सुनकर सक्का ने बहन से पूछा, “महोदय, वह मृत व्यक्ति आपके लिए क्या था?” “वह मेरे भाई थे, मेरे स्वामी।” “महोदय, बहनें अपने भाइयों के प्रति प्रेम रखती हैं। आप क्यों नहीं रो रही हैं?” लेकिन उसने अपने न रोने का कारण बताते हुए कुछ पंक्तियाँ दोहराईं:
अगर मैं उपवास करूं और रोऊं, तो इससे मुझे क्या लाभ होगा?
मेरे सगे-संबंधी, अफसोस! इससे भी अधिक दुखी होंगे
किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।
बहन की बातें सुनकर सक्का ने अपनी पत्नी से पूछा, “महोदय, वह आपके लिए क्या थे?” “वह मेरे पति थे, मेरे स्वामी।” “जब पति की मृत्यु हो जाती है, तो स्त्रियाँ विधवा के रूप में असहाय हो जाती हैं। आप क्यों नहीं रोतीं?” लेकिन उसने भी अपने न रोने का कारण बताया।

अध्याय 21. पकिन्नकवग्गा: विविध (290-305)
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 290

———————————————————————

(धम्मपद 288 और 289) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 290 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 291)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 290 - अट्टनोपुब्बकम्मा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 290 - अट्टनोपुब्बकम्मा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Matta sukhapariccaga
passe ce vipulam sukham
caje mattasukhirh dhiro
संपस्सम् विपुलम् सुखम्(1)

———————————————————————

श्लोक 290 : यदि छोटे सुखों का त्याग करने से महान सुख प्राप्त हो सकता है, तो बुद्धिमानों को महान सुख की संभावना को देखते हुए छोटे सुखों का त्याग कर देना चाहिए।

———————————————————————

1. विपुलम सुखम: टीका के अनुसार, इसका अर्थ है निर्वाण का आनंद।

———————————————————————

बुद्ध के पूर्व कर्मों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (290) का उच्चारण किया, जिसमें बुद्ध की शक्ति और महिमा का उल्लेख किया गया है, जैसा कि वैशाली की उनकी यात्रा के दौरान कई लोगों ने देखा था।

एक बार वैशाली में अकाल पड़ गया। इसकी शुरुआत भीषण सूखे से हुई। सूखे के कारण लगभग सारी फसलें बर्बाद हो गईं और कई लोग भूख से मर गए। इसके बाद बीमारियों की महामारी फैल गई और शवों के अंतिम संस्कार में असमर्थ होने के कारण वातावरण में दुर्गंध फैल गई। इस दुर्गंध ने राक्षसों को आकर्षित किया। वैशाली के लोग अकाल, बीमारी और राक्षसों के प्रकोप से जूझ रहे थे। अपने दुख और शोक में वे शरण की तलाश करने लगे। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से सहायता लेने के बारे में सोचा, लेकिन अंततः उन्होंने बुद्ध को आमंत्रित करने का निर्णय लिया। इसलिए लिच्छवी राजकुमार महाली और प्रमुख ब्राह्मण के पुत्र के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल को राजा बिम्बिसार के पास भेजा गया ताकि बुद्ध से वैशाली आकर उनकी संकट की घड़ी में सहायता करने का अनुरोध किया जा सके। बुद्ध जानते थे कि यह यात्रा कई लोगों के लिए लाभकारी होगी, इसलिए उन्होंने वैशाली जाने की सहमति दी।

तदनुसार, राजा बिम्बिसार ने राजगृह और गंगा नदी के तट के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई। उन्होंने अन्य तैयारियाँ भी कीं और प्रत्येक योजन के अंतराल पर विशेष विश्राम स्थल बनवाए। जब सब कुछ तैयार हो गया, तो बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वैशाली के लिए रवाना हुए। राजा बिम्बिसार भी बुद्ध के साथ गए। पाँचवें दिन वे गंगा नदी के तट पर पहुँचे और राजा बिम्बिसार ने लिच्छवी राजकुमारों को संदेश भेजा। नदी के दूसरी ओर, लिच्छवी राजकुमारों ने नदी और वैशाली के बीच की सड़क की मरम्मत करवा दी थी और विश्राम स्थल बनवाए थे, ठीक वैसे ही जैसे राजा बिम्बिसार ने अपने तट पर करवाए थे। बुद्ध लिच्छवी राजकुमारों के साथ वैशाली गए, लेकिन राजा बिम्बिसार वहीं रुक गए।

जैसे ही बुद्ध नदी के दूसरे किनारे पर पहुँचे, मूसलाधार बारिश होने लगी, जिससे वैशाली नगर पूरी तरह से साफ हो गया। बुद्ध को नगर के मध्य में विशेष रूप से उनके लिए तैयार किए गए विश्रामगृह में ठहराया गया। देवताओं के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए और राक्षस भाग गए। उसी शाम बुद्ध ने रत्न सूत्र का उपदेश दिया और पूज्य आनंद से कहा कि वे लिच्छवी राजकुमारों के साथ नगर की तीन दीवारों के बीच परिक्रमा करके इसका पाठ करें। पूज्य आनंद ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। जब सुरक्षात्मक श्लोकों (परित्तों) का पाठ हो रहा था, तो बहुत से बीमार लोग ठीक हो गए और पूज्य आनंद के साथ बुद्ध के पास आ गए। बुद्ध ने उसी सूत्र का उपदेश दिया और सात दिनों तक उसका पाठ किया। सात दिनों के अंत में, वैशाली में सब कुछ सामान्य हो गया। लिच्छवी राजकुमार और वैशाली के लोग बहुत राहत महसूस कर रहे थे और अत्यंत प्रसन्न थे। वे बुद्ध के प्रति अत्यंत कृतज्ञ भी थे। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और भव्य और उदारतापूर्वक भेंटें अर्पित कीं। वे तीन दिनों की यात्रा के बाद गंगा तट पर पहुँचने तक बुद्ध के साथ उनकी वापसी यात्रा में भी शामिल रहे।

नदी तट पर पहुँचने पर राजा बिम्बिसार बुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे; उनके साथ-साथ देवदूत, ब्रह्मा और नागों के राजा भी अपने-अपने दल के साथ उपस्थित थे। सभी ने बुद्ध को प्रणाम किया और भेंटें अर्पित कीं। देवदूतों और ब्रह्माओं ने छतरियों, फूलों आदि से बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी स्तुति में गीत गाए। नाग सोने, चांदी और माणिक से बनी नौकाओं में बुद्ध को नागलोक में आमंत्रित करने आए थे; उन्होंने जल की सतह पर पाँच सौ प्रकार के कमल भी बिखेरे थे। यह बुद्ध के जीवन के उन तीन अवसरों में से एक था जब मनुष्य, देवदूत और ब्रह्मा सभी बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक साथ आए थे। पहला अवसर वह था जब बुद्ध ने अपनी शक्ति और महिमा को जोड़ों के चमत्कार द्वारा प्रकट किया, प्रकाश की किरणें और जल की फुहारें उत्सर्जित कीं; और दूसरी घटना अभिधम्म का उपदेश देने के बाद तावतिंसा देवलोक से उनकी वापसी पर हुई थी।

नागों का आदर करने की इच्छा से बुद्ध भिक्षुओं के साथ नागलोक गए। बुद्ध और उनके साथी नागों द्वारा लाई गई पाँच सौ नौकाओं में सवार होकर गए। नागलोक की यात्रा के बाद बुद्ध राजा बिम्बिसार के साथ राजगृह लौट आए। वे पाँचवें दिन राजगृह पहुँचे। राजगृह पहुँचने के दो दिन बाद, जब भिक्षु वैशाली की यात्रा की भव्यता और महिमा के बारे में चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आ पहुँचे। उनकी बातों का विषय जानकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, ब्रह्माओं, देवों और मनुष्यों द्वारा समान रूप से मेरा इतना आदर किया जाना और इस अवसर पर इतनी भव्य और उदारतापूर्वक भेंट अर्पित करना मेरी वर्तमान शक्ति के कारण नहीं है; बल्कि यह इसलिए है क्योंकि मैंने अपने पिछले जन्मों में कुछ छोटे पुण्य कर्म किए थे, जिनके कारण मुझे अब इतने महान लाभ प्राप्त हो रहे हैं।" फिर बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों में से एक की कहानी सुनाई, जब वे शंख नाम के एक ब्राह्मण थे।

तक्षशिला नगर में शंख नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनका एक पुत्र था जिसका नाम सुसीमा था। जब सुसीमा सोलह वर्ष के हुए, तो उनके पिता ने उन्हें ज्योतिष का अध्ययन करने के लिए एक अन्य ब्राह्मण के पास भेज दिया। उनके गुरु ने उन्हें वह सब कुछ सिखाया जो सीखना चाहिए था, लेकिन सुसीमा पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। इसलिए, उनके गुरु ने उन्हें उस समय इसिपताना में रह रहे पच्चेकबुद्धों के पास जाने का निर्देश दिया। सुसीमा इसिपताना गए, लेकिन पच्चेकबुद्धों ने उनसे कहा कि उन्हें पहले भिक्षु बनना होगा। इस प्रकार, वे भिक्षु बन गए और उन्हें भिक्षु के रूप में आचरण करने के तरीके सिखाए गए। सुसीमा ने लगन से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही

उन्होंने चार आर्य सत्यों को समझ लिया, बोधिनान प्राप्त किया और स्वयं पच्चेकबुद्ध बन गए। लेकिन अपने पिछले कर्मों के फलस्वरूप सुसीमा दीर्घ नहीं रहे; उन्होंने शीघ्र ही परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।

सुसीमा के पिता शंख अपने पुत्र की खोज में आए, लेकिन जब वे वहाँ पहुँचे तो उन्हें केवल वही स्तूप मिला जहाँ उनके पुत्र के अवशेष रखे हुए थे। ब्राह्मण अपने पुत्र के बिछड़ने से अत्यंत व्यथित हुए। उन्होंने स्तूप परिसर की सफाई की, घास और खरपतवार साफ किए; फिर उन्होंने ज़मीन पर रेत बिछाई और उस पर पानी छिड़का। इसके बाद, वे पास के जंगल में गए और कुछ जंगली फूल लाकर गीली ज़मीन पर लगा दिए। इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र पच्चेकबुद्ध को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और उन्हें सम्मान दिया। अपने पिछले जन्म में किए गए उस पुण्य कर्म के कारण ही बुद्ध को इतने लाभ प्राप्त हुए, उन्हें इतनी प्रचुर भेंटें दी गईं, और उस विशेष अवसर पर उन्हें इतनी गहरी श्रद्धा और भक्ति दिखाई गई।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 290 : यदि छोटे सुखों का त्याग करने से महान सुख प्राप्त हो सकता है, तो बुद्धिमानों को महान सुख की संभावना को देखते हुए छोटे सुखों का त्याग कर देना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुद्ध के पूर्व कर्मों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वैशाली की अपनी यात्रा के दौरान कई लोगों द्वारा देखी गई बुद्ध की शक्ति और महिमा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार वैशाली में अकाल पड़ गया। इसकी शुरुआत भीषण सूखे से हुई। सूखे के कारण लगभग सारी फसलें बर्बाद हो गईं और कई लोग भूख से मर गए। इसके बाद बीमारियों की महामारी फैल गई, और शवों के अंतिम संस्कार में असमर्थ होने के कारण वातावरण में दुर्गंध फैल गई। इस दुर्गंध ने राक्षसों को आकर्षित किया। वैशाली के लोग अकाल, बीमारी और राक्षसों के प्रकोप से विनाश के खतरे का सामना कर रहे थे। अपने दुख और शोक में वे शरण की तलाश करने लगे। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से सहायता लेने के बारे में सोचा, लेकिन अंततः उन्होंने बुद्ध को आमंत्रित करने का निर्णय लिया। इसलिए लिच्छवी राजकुमार माहाली और प्रमुख ब्राह्मण के पुत्र के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल को राजा बिम्बिसार के पास भेजा गया ताकि बुद्ध से वैशाली आकर उनकी संकट की घड़ी में सहायता करने का अनुरोध किया जा सके। बुद्ध जानते थे कि यह यात्रा कई लोगों के लिए लाभकारी होगी, इसलिए उन्होंने वैशाली जाने की सहमति दी। तदनुसार, राजा बिम्बिसार ने राजगृह और गंगा नदी के तट के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई। उन्होंने अन्य तैयारियाँ भी कीं और प्रत्येक योजन के अंतराल पर विशेष विश्राम स्थल बनवाए। जब सब कुछ तैयार हो गया, तो बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वैशाली के लिए रवाना हुए। राजा बिम्बिसार भी बुद्ध के साथ गए। पाँचवें दिन वे गंगा नदी के तट पर पहुँचे और राजा बिम्बिसार ने लिच्छवी राजकुमारों को संदेश भेजा। नदी के दूसरी ओर, लिच्छवी राजकुमारों ने नदी और वैशाली के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई थी और विश्राम स्थल बनवाए थे, ठीक वैसे ही जैसे राजा बिम्बिसार ने अपने तट पर बनवाए थे। बुद्ध लिच्छवी राजकुमारों के साथ वैशाली गए, लेकिन राजा बिम्बिसार वहीं रुक गए। जैसे ही बुद्ध नदी के दूसरे तट पर पहुँचे, मूसलाधार बारिश हुई, जिससे वैशाली शुद्ध हो गया। बुद्ध को नगर के मध्य भाग में विशेष रूप से उनके लिए तैयार किए गए विश्राम गृह में ठहराया गया। देवों के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए और राक्षस भाग गए। उसी शाम बुद्ध ने रत्न सूत्र का उपदेश दिया और पूज्य आनंद से कहा कि वे लिच्छवी राजकुमारों के साथ नगर की तीन दीवारों के बीच घूमकर इसका पाठ करें। पूज्य आनंद ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। जब सुरक्षात्मक श्लोकों (परित्तों) का पाठ हो रहा था, तो बहुत से बीमार लोग ठीक हो गए और पूज्य आनंद के साथ बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उसी सूत्र का उपदेश दिया और सात दिनों तक उसका पाठ किया। सात दिनों के अंत में, वैशाली में सब कुछ सामान्य हो गया। लिच्छवी राजकुमार और वैशाली के लोग बहुत राहत महसूस कर रहे थे और अत्यंत प्रसन्न थे। वे बुद्ध के प्रति अत्यंत कृतज्ञ भी थे। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और भव्य और उदारतापूर्वक भेंटें अर्पित कीं। वे तीन दिनों की यात्रा के बाद गंगा नदी के तट पर पहुँचने तक बुद्ध के साथ उनकी वापसी यात्रा में भी शामिल रहे।

नदी तट पर पहुँचने पर राजा बिम्बिसार बुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे; उनके साथ-साथ देवता, ब्रह्मा और नागों के राजा भी अपने-अपने दल के साथ उपस्थित थे। सभी ने बुद्ध को प्रणाम किया और भेंटें अर्पित कीं। देवताओं और ब्रह्माओं ने छतरियों, फूलों आदि से श्रद्धांजलि अर्पित की और बुद्ध की स्तुति में गीत गाए। नाग सोने, चांदी और माणिक से बनी नौकाओं में बुद्ध को नागलोक में आमंत्रित करने आए थे; उन्होंने जल की सतह पर पाँच सौ प्रकार के कमल भी बिखेरे थे। यह बुद्ध के जीवन के उन तीन अवसरों में से एक था जब मनुष्य, देवता और ब्रह्मा बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक साथ आए थे। पहला अवसर वह था जब बुद्ध ने जोड़ों के चमत्कार द्वारा अपनी शक्ति और महिमा प्रकट की, प्रकाश की किरणें और जल की फुहारें उत्सर्जित कीं; और दूसरी घटना तावतिंसा देवलोक से अभिधम्म का उपदेश देने के बाद उनकी वापसी पर हुई थी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 290)
मत्तासुखा परिचागा सी विपुलम सुखं पससे
विपुलं सुखं सम्पासं धीरो मत्त सुखं चजे
मत्तासुखा परिचागा : थोड़ा सा आराम छोड़कर; सीई : यदि; सुखं [सुखा]: एक बड़ी ख़ुशी; पासे : देखा गया है; विपुलं सुखं [सुखा]: (वह) महान खुशी; संपासां [संपासा]: अच्छी तरह से देखना; धीरो [धीरा]: बुद्धिमान व्यक्ति; मत्ता सुखाम् [सुखा]: वह हल्का सा आराम; काजे : हार मान लेता है
सांसारिक सुखों से मिलने वाले थोड़े से सुख का त्याग करके, यदि व्यक्ति को अपार सुख—यानी निर्वाण—की प्राप्ति का आश्वासन मिल सकता है, तो बुद्धिमान व्यक्ति को निश्चित रूप से उस थोड़े से सुख का त्याग कर देना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 291

———————————————————————

(धम्मपद 290) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 291 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 292 और 293)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 291 - कुक्कुटंदखडिका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 291 - कुक्कुटंदखडिका वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
परदुक्खुपधानेना
athno sukhamiccati
verasamsaggasamsattho
vera so na parimuccati.

———————————————————————

श्लोक 291 : जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर अपनी खुशी चाहता है, वह द्वेष के बंधन में फँसकर द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।

———————————————————————

उस महिला की कहानी जिसने मुर्गी के अंडे खा लिए
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (291) का उच्चारण किया, जो एक महिला और एक मुर्गी के बीच झगड़े के संदर्भ में है।
एक समय की बात है, सावत्थी के पास एक गाँव में एक स्त्री रहती थी। उसके घर में एक मुर्गी थी; मुर्गी जब भी अंडा देती, उसे खा जाती थी। मुर्गी को बहुत दुख हुआ और वह क्रोधित हो गई। उसने स्त्री से बदला लेने की कसम खाई और कामना की कि उसका पुनर्जन्म किसी ऐसे प्राणी के रूप में हो जो स्त्री की संतानों को मार सके। मुर्गी की यह कामना पूरी हुई और उसका पुनर्जन्म बिल्ली के रूप में हुआ और स्त्री का पुनर्जन्म उसी घर में मुर्गी के रूप में हुआ। बिल्ली मुर्गी के अंडे खा जाती थी। अगले जन्म में मुर्गी तेंदुआ बनी और बिल्ली हिरण। तेंदुए ने हिरण और उसकी संतानों को खा लिया। इस प्रकार, दोनों प्राणियों के बीच पाँच सौ जन्मों तक दुश्मनी चलती रही। बुद्ध के समय में उनमें से एक स्त्री के रूप में और दूसरी राक्षसी के रूप में जन्मी थी।
एक बार एक स्त्री अपने माता-पिता के घर से सावत्थी के पास स्थित अपने घर लौट रही थी। उसके साथ उसका पति और छोटा बेटा भी थे। सड़क किनारे एक तालाब के पास विश्राम करते समय उसका पति तालाब में स्नान करने चला गया। उसी क्षण स्त्री ने राक्षसी को देखा और उसे अपनी पुरानी शत्रु के रूप में पहचान लिया। अपने बच्चे को लेकर वह राक्षसी से भागकर सीधे जेतवन मठ में गई, जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे, और अपने बच्चे को बुद्ध के चरणों में रख दिया। राक्षसी, जो स्त्री का पीछा कर रही थी, मठ के द्वार तक आ गई, लेकिन द्वारपाल की आत्मा ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। बुद्ध ने उसे देखकर पूज्य आनंद को राक्षसी को अपने समक्ष लाने के लिए भेजा। जब राक्षसी आई, तो बुद्ध ने स्त्री और राक्षसी दोनों को उनके बीच लंबे समय से चले आ रहे द्वेष के लिए फटकारा। उन्होंने आगे

कहा, "अगर तुम दोनों आज मेरे पास नहीं आते, तो तुम्हारा झगड़ा अंतहीन चलता रहता। दुश्मनी को दुश्मनी से शांत नहीं किया जा सकता; इसे केवल प्रेम और दया से ही शांत किया जा सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 291 : जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर अपनी खुशी चाहता है, वह द्वेष के बंधन में फँसकर द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।

प्रवचन के अंत में राक्षसी ने तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली, और स्त्री ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस महिला की कहानी जिसने मुर्गी के अंडे खा लिए
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक स्त्री और एक मुर्गी के बीच हुए झगड़े के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी के पास एक गाँव में एक स्त्री रहती थी। उसके घर में एक मुर्गी थी; मुर्गी जब भी अंडा देती, वह अंडा खा जाती थी। मुर्गी को बहुत दुख हुआ और वह क्रोधित हो गई। उसने स्त्री से बदला लेने की कसम खाई और कामना की कि उसका पुनर्जन्म किसी ऐसे प्राणी के रूप में हो जो स्त्री की संतान को मार सके। मुर्गी की यह इच्छा पूरी हुई और उसका पुनर्जन्म बिल्ली के रूप में हुआ और स्त्री का पुनर्जन्म उसी घर में मुर्गी के रूप में हुआ। बिल्ली मुर्गी के अंडे खा जाती थी। अगले जन्म में मुर्गी तेंदुआ बनी और बिल्ली हिरण। तेंदुए ने हिरण और उसके बच्चों को खा लिया। इस प्रकार, दोनों प्राणियों के बीच पाँच सौ जन्मों तक दुश्मनी चलती रही। बुद्ध के समय में उनमें से एक स्त्री के रूप में और दूसरी स्त्री आत्मा के रूप में जन्मी।
एक बार एक स्त्री अपने माता-पिता के घर से सावत्थी के पास स्थित अपने घर लौट रही थी। उसके साथ उसका पति और छोटा बेटा भी थे। सड़क किनारे एक तालाब के पास विश्राम करते समय उसका पति तालाब में स्नान करने चला गया। उसी क्षण स्त्री ने एक प्रेतात्मा को देखा और उसे अपनी पुरानी शत्रु के रूप में पहचान लिया। अपने बच्चे को लेकर वह प्रेतात्मा से भागकर सीधे जेतवन मठ गई, जहाँ बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे, और अपने बच्चे को बुद्ध के चरणों में रख दिया। प्रेतात्मा, जो स्त्री का पीछा कर रही थी, मठ के द्वार तक आ गई, लेकिन द्वारपाल प्रेत ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। बुद्ध ने उसे देखकर पूज्य आनंद को प्रेतात्मा को अपने समक्ष लाने के लिए भेजा। जब प्रेतात्मा आई, तो बुद्ध ने स्त्री और प्रेतात्मा दोनों को उनके बीच लंबे समय से चले आ रहे द्वेष के लिए फटकारा। उन्होंने आगे कहा, “अगर तुम दोनों आज मेरे पास नहीं आते, तो तुम्हारा झगड़ा अंतहीन चलता रहता। दुश्मनी को दुश्मनी से शांत नहीं किया जा सकता; इसे केवल प्रेम और दया से ही शांत किया जा सकता है।”
जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अपनी खुशी की तलाश करता है, वह द्वेष के बंधन में जकड़ा हुआ होता है और कभी भी द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।
प्रवचन के अंत में, स्त्री आत्मा ने तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली, और स्त्री ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 291)
परदुक्खुपदानेन अत्तानो सुखं इच्छति ,
वेरासंसग्गसासंथो सो वेरा न परिमुच्चति
परदुक्खुपदानेन : यदि दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर; अट्टानो [अट्टाना]: कोई; सुखं [सुखा]: खुशी; इच्छाति : इच्छाएँ; verasaṃsaggasaṭṭho [verasaṃsaggasaṭṭha]: जो क्रोध के स्पर्श से दूषित है; इसलिए वह; वेरा : क्रोध से; ना परिमुक्कति : रिहाई हासिल नहीं होगी
जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर सुख प्राप्त करता है, वह क्रोध से मुक्त नहीं हो पाता क्योंकि वह अन्य लोगों के क्रोध के संपर्क में आने के कारण क्रोध के जाल में फँस जाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 291)
so verā no parimuccati : मनभावन वस्तु आसक्ति उत्पन्न करती है, जबकि अवांछनीय वस्तु घृणा उत्पन्न करती है। वेरा वह प्रचंड अग्नि है जो समस्त संसार को जला देती है। अज्ञान की सहायता से ये दोनों मिलकर संसार के समस्त दुखों का कारण बनते हैं।
खन्ती : धैर्य या सहनशीलता। खन्ती क्रोध का प्रतिकार है। खन्ती (सहनशीलता) बुद्ध बनने की इच्छा रखने वाले साधकों द्वारा अभ्यास किए जाने वाले गुणों में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 292,293

(धम्मपद 291) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 292 और 293 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 294 और 295)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 292 और 293 - भद्दियानं भिक्खुनं वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.3भद्दिया के पूज्यों की कहानी
1.3.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 292 और 293 - भद्दियानं भिक्खुनं वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yam hi kiccam apaviddham
akiccam pana kariyati
उन्नालानम पमत्तनम
tesam vaddhanti asava.
Yesanca susamaraddha
niccam kayagata sati
akiccam te na sevanti
kicce sataccakarino
सतनम सम्पजाननम
attham gacchanti asava.

श्लोक 292 : जो लोग वास्तव में किए जाने वाले काम को नहीं करते, परन्तु जो काम नहीं किए जाने चाहिए, जो अभिमानी और लापरवाह हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ बढ़ते हैं।

श्लोक 293 : जो लोग शरीर पर ध्यान लगाने में हमेशा अच्छा प्रयास करते हैं, जो निषिद्ध कार्य नहीं करते बल्कि सदा उचित कार्य करते हैं, जो सचेत और स्पष्ट समझ से संपन्न होते हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

बदिया भिक्षुओं की कहानी

बददिया नगर के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (292) और (293) कहे।
एक बार बद्दिया में ठहरे कुछ भिक्षुओं ने कुछ प्रकार की सरकंडों और घासों से अलंकृत चप्पलें बनाईं। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप अरहत्त फल प्राप्त करने के उद्देश्य से बौद्ध संघ में प्रवेश कर चुके हैं। फिर भी, आप केवल चप्पलें बनाने और उन्हें सजाने में ही परिश्रम कर रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 292 : जो लोग वास्तव में किए जाने वाले काम को नहीं करते, परन्तु जो काम नहीं किए जाने चाहिए, जो अभिमानी और लापरवाह हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ बढ़ते हैं।

श्लोक 293 : जो लोग शरीर पर ध्यान लगाने में हमेशा अच्छा प्रयास करते हैं, जो निषिद्ध कार्य नहीं करते बल्कि सदा उचित कार्य करते हैं, जो सचेत और स्पष्ट समझ से संपन्न होते हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भद्दिया के पूज्यों की कहानी
भद्दिया नगर के निकट निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार भद्दिया में ठहरे कुछ भिक्षुओं ने सरकंडों और घासों से अलंकृत चप्पलें बनाईं। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "हे पूज्यवरों, आप अरहत्त फल प्राप्त करने के उद्देश्य से संघ में प्रवेश कर चुके हैं । फिर भी, आप केवल चप्पलें बनाने और उन्हें सजाने में ही परिश्रम कर रहे हैं।"
प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 292)
यं हि किच्चं तं अपविद्धं अकिच्चं पण कयिरति
उन्नानां पमत्तनं तेसं आसव वधंति
यम हाय : अगर कुछ; किक्कां [किक्का]: किया जाना चाहिए; तं : वह; अपविद्धाम् [अपविद्धा]: यदि उपेक्षित हो; अकिक्कां [अकिक्का]: जो नहीं किया जाना चाहिए; पना काइरति : वास्तव में हो गया है; उन्ननाणं [उन्नाना]: गर्व करने वालों में से; पमट्टणं [पमत्तन]: आलसी; टेसां [टेसा]: उनका; आसव : दोष; वन्धन्ति : वृद्धि
यदि लोग वह काम करते हैं जो नहीं करना चाहिए और वह काम करने की उपेक्षा करते हैं जो करना चाहिए, तो उन अहंकारी और आलसी लोगों के दोष बढ़ने लगते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 293)
येसं च कायगता सति निच्चं सुसमरद्धा
किच्चे सातक्काकारिनो ते अकिच्चं न सेवंती
सतानं-संपजन्नं आसव अत्थं गच्छन्ति
येसांच : यदि कोई; कायगत सति : भौतिक वास्तविकता के संबंध में ध्यान; निच्चं [निच्च]: हमेशा; सुसमाराद्धा : अच्छी तरह अभ्यास करें; किच्चे : जो करना है उसमें; सतच्चकारिनो [सातच्चकारिना]: निरंतर अभ्यास बनाए रखें; ते : वह; अकिच्चं [अकिच्च]: जो नहीं करना चाहिए; न सेवंति : नहीं करता; सतानं [सताना]: सचेत रहने वाले; संपजन्नं [संपजन्न]: सचेत मन वालों में से; आसवा अत्थं [अत्थ]: अवनति; गच्छन्ति : जाना
यदि कोई व्यक्ति भौतिक वास्तविकता के प्रति सजगता का निरंतर अभ्यास करे, और जो करना आवश्यक है उस पर स्थिर ध्यान केंद्रित रखे, तो वह उन कार्यों से दूर रहेगा जो नहीं करने चाहिए। सजग और सतर्क व्यक्तियों के दोष मिट जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 292-293)
कायगतासति भावना : इसे पटिक्कुलमनसिकार भावना कहते हैं । इस ध्यान का अर्थ है शरीर की संरचना और उसके वास्तविक स्वरूप को समझना। बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, किसी प्राणी का शरीर बत्तीस अशुद्धियों से बना होता है।
इन बत्तीस अशुद्धियों को पांच-पांच के चार समूहों और छह-छह के दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है:
(1) केसा , लोमा , नखा , दांता , टैको [टाका]।
(सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा।)
(2) मंसां [मंसा], सहारू , आथि , अथिमिञ्जा , वक्कं [वक्का]।
(मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दे।)
(3) हदायं [हदया], याकिनं [याकिना], किलोमकं [किलोमाका], पिहाकमं [पिहाका], पप्पासां [पप्पासा]।
(हृदय, यकृत, मध्य भाग, प्लीहा, फेफड़े।)
(4) अंतः [अन्ता], अंतगुणः [अन्तागुण], उडारियाम् [उडारिया], करिसाः [करीसा], मत्तालुंगाः [मत्तालुंगा]।
(आंतों, अंतर्मन, गला, गोबर, मस्तिष्क।)
(5) पित्तं [पित्त], सेम्हां [सेम्हा], पब्बो [पब्बा], लोहितां [लोहिता], सेडो [सेडा], मेडो [मेडा]।
(पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा।)

(6) अस्सु , वासा , खेलो [खेला], सिघानिका , लसिका , मुत्तं [मुत्ता]।
(आंसू, चिकनाई, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल, पेशाब।)
इस प्रकार वर्गीकृत किए गए पाँच अशुद्धियों के पहले समूह पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक चिंतन करना चाहिए। इसके बाद, पाँच अशुद्धियों के दूसरे समूह पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक चिंतन करना चाहिए। फिर, पहले और दूसरे समूह की अशुद्धियों पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक एक साथ चिंतन करना चाहिए। तीसरे समूह पर भी इसी प्रकार ध्यान करने के बाद, अन्य सभी समूहों पर भी इसी प्रकार चिंतन करना चाहिए।
इस ध्यान का अभ्यास निम्नलिखित सात विधियों द्वारा किया जाना चाहिए:
vacasā
मनसा
वण्णतो [वण्णता]
संथानातो [संथानात्]
disāto [disāta]
okāsato [okāsata]
परिच्छेदतो [परिच्छेदता].
वाचसा का अर्थ है उपर्युक्त बत्तीस अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए उन्हें मौखिक रूप से दोहराते हुए ध्यान करना।
मनसा का अर्थ है मन में उन्हें दोहराते हुए ध्यान करना।
वण्णतो [वण्णता] का अर्थ है बालों आदि जैसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए, उनके रंगों का निर्धारण करते हुए ध्यान करना।
संठनातो [संठनाता] का अर्थ है बालों आदि जैसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए, उनके आकार का निर्धारण करते हुए ध्यान करना।
दिसातो [दिसाता] का अर्थ है शरीर की अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए ध्यान लगाना, साथ ही शरीर के अंगों की स्थिति को नाभि के ऊपर या नीचे, शरीर के ऊपरी या निचले हिस्से में दिशात्मक रूप से निर्धारित करना।
ओकासातो [ओकासाता] का अर्थ है ऐसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए ध्यान लगाना और शरीर में इन अंगों द्वारा प्राप्त स्थान का निर्धारण करना।
परिच्छेदातो [परिच्छेदाता] का अर्थ है ऐसी अशुद्धियों पर अलग-अलग विचार करते हुए ध्यान करना।
काया-गत-सति : शरीर के प्रति सजगता। कभी-कभी इसका तात्पर्य केवल शरीर के बत्तीस अंगों के चिंतन से होता है, और कभी-कभी शरीर के चिंतन (कायानुपस्सना) के अंतर्गत आने वाली सभी विभिन्न ध्यान विधियों से, जो सजगता (सतिपट्टाना) के चार आधारों में से पहला है , जिसमें आंशिक रूप से एकाग्रता (समाधि) अभ्यास और आंशिक रूप से अंतर्दृष्टि (विपस्सना) अभ्यास शामिल हैं।
दूसरी ओर, पहले सतिपट्टाना में वर्णित श्मशान ध्यान (सीवथिका) लगभग दस घृणास्पद चिंतन (असुभ-भावना) के समान हैं, जबकि अन्यत्र शरीर के बत्तीस अंगों के चिंतन को अशुद्धता पर चिंतन (पटिक्कूल-संज्ञा) कहा जाता है।
बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षुओं, एक ही चीज़ है जिसका निरंतर अभ्यास और विकास करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह है शरीर का चिंतन।" यहाँ संदर्भ प्रथम सतिपट्ठाना में वर्णित सभी अभ्यासों से है ।
विशुद्धिमग्ग में शरीर के बत्तीस अंगों पर ध्यान विकसित करने की विधि का विस्तृत वर्णन और व्याख्या दी गई है। यह अभ्यास केवल प्रथम समाधि (झान) ही उत्पन्न कर सकता है। सतिपट्ठान सूत्र और अन्यत्र दिए गए पाठ में —मस्तिष्क को छोड़कर—इस प्रकार लिखा है:
"और आगे, हे भिक्षुओं, भिक्षु इस शरीर का ध्यान पैर के तलवे से ऊपर की ओर और बालों के शीर्ष से नीचे की ओर, त्वचा सहित, और अनेक अशुद्धियों से भरे हुए, करता है: "इस शरीर में शरीर के बाल, सिर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, मज्जा, गुर्दा, हृदय, यकृत, डायाफ्राम, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, पेट, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा, चिकनाई, थूक, नाक का बलगम, जोड़ों का तेल, मूत्र इत्यादि हैं।"
विशुद्धिमग्ग में कहा गया है: इस अभ्यास के शब्दों को बार-बार दोहराने से व्यक्ति शब्दों से भलीभांति परिचित हो जाएगा, मन इधर-उधर नहीं भटकेगा, शरीर के विभिन्न अंग स्पष्ट हो जाएंगे और उंगलियों की पंक्ति या बाड़ के खंभों की पंक्ति की तरह दिखाई देंगे। अब, जिस प्रकार व्यक्ति शब्दों में अभ्यास दोहराता है, उसी प्रकार मन में भी दोहराना चाहिए। मन में दोहराने से विशिष्ट लक्षणों को समझने की अवस्था प्राप्त होती है। जो व्यक्ति इस प्रकार शरीर के अंगों का रंग, आकार, क्षेत्र, स्थान और सीमाओं के अनुसार निरीक्षण करता है और उन्हें एक-एक करके, और जल्दबाजी किए बिना, घृणित समझकर ध्यान लगाता है, उसे शरीर का चिंतन करते समय ये सभी चीजें एक साथ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। लेकिन जब व्यक्ति अपना ध्यान बाहरी रूप से, जैसे कि अन्य प्राणियों के शरीरों पर, स्थिर रखता है और जब सभी अंग स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, तो सभी मनुष्य और पशु जो इधर-उधर घूम रहे हैं, जीवित प्राणियों का रूप खो देते हैं और अनेक विभिन्न वस्तुओं के ढेर की तरह दिखाई देते हैं। और ऐसा लगता है मानो उनके द्वारा ग्रहण किए गए भोजन और पेय पदार्थ

इसी ढेर में समाहित हो रहे हों। अब, जब कोई फिर से 'घृणित!' की धारणा बना रहा है—समय के साथ कई भागों को छोड़ते हुए—धीरे-धीरे एकाग्रता की प्राप्ति (अप्पना-समाधि , अर्थात् ध्यान की एकाग्रता) हो जाएगी। इस संदर्भ में, रूपों का प्रकट होना अर्जित छवि (उग्घ-निमित्त) कहलाता है, जबकि घृणा का उत्पन्न होना प्रति-छवि (पटिभाग-निमित्त) कहलाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 294,295

———————————————————————

(धम्मपद 292 और 293) <<<< पिछला || धम्मपद 294 और 295 || अगला >>>> (धम्मपद 296 से 301)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 294 व 295 - लकुंडका भदिया वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 294 और 295 - लकुंडका भद्दिया वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

मातरम पितरम हन्त्वा
rajano dye ca khattiye
rattham sanucaram hantva
anigho yati(1) brahmano.
मातरम पितरम हन्त्वा
rajano dve ca sotthiye
veyagghapancamam(2) hantva
anigho yati brahmano.

———————————————————————

श्लोक 294 : माता (अर्थात् तृष्णा), पिता (अर्थात् अहंकार) और दोनों राजाओं (अर्थात् शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास) का वध करके, और राज्य (अर्थात् इंद्रिय आधार और इंद्रिय विषय) को उसके राजस्व अधिकारी (अर्थात् आसक्ति) सहित नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात् अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

श्लोक 295 : माता, पिता, दो ब्राह्मण राजाओं का वध करके और पाँचवीं (अर्थात संदेह) बाघ से भरी यात्रा के समान बाधाओं को नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

1. अनिघो यति: अक्षुण्ण हो जाता है, अर्थात्, पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) से मुक्त हो जाता है।
2. वेयग्घपंचमम्: वेयग्घ + पंचमम्, अर्थात् बाघ की तरह + पाँचवाँ। पाँच अवरोध हैं, निवारण हैं। यहाँ पाँचवें अवरोध, अर्थात् संदेह (विचीकिच्च) का उल्लेख है।

———————————————————————

थेरा भद्दिया की कहानी, छोटी वाली

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (294) और (295) का उच्चारण थेरा भद्दिया के संदर्भ में किया, जो अपने छोटे कद के कारण लकुंदक भद्दिया के नाम से भी जाने जाते थे।

एक बार कुछ भिक्षु जेतवन मठ में बुद्ध के दर्शन और श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तभी लकुंदक भद्दिया उनसे कुछ ही दूरी पर से गुजर रहे थे। बुद्ध ने उनका ध्यान उस छोटे कद के भिक्षु की ओर आकर्षित किया और उनसे कहा, "भिक्षुओं, उस भिक्षु को देखो। उसने अपने माता-पिता दोनों को मार डाला है, और अपने माता-पिता को मारने के बाद वह बिना किसी दु:ख

(पुनर्जन्म/कष्ट) के घूम रहा है।" भिक्षु बुद्ध के इस कथन को समझ नहीं पाए। इसलिए उन्होंने बुद्ध से इसे स्पष्ट करने का अनुरोध किया और बुद्ध ने उन्हें इसका अर्थ समझाया।

उपरोक्त कथन में बुद्ध एक ऐसे अरहत का उल्लेख कर रहे थे, जिन्होंने व्यथा, अहंकार, गलत धारणाओं और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों से आसक्ति को नष्ट कर दिया था। बुद्ध ने यह कथन उपमाओं के माध्यम से कहा है। इस प्रकार, 'माता' और 'पिता' शब्दों का प्रयोग क्रमशः व्यथा और अहंकार को दर्शाने के लिए किया गया है। शाश्वतता (सस्सतादित्थी) और संहार (उच्छेदादित्थी) की तुलना दो राजाओं से की गई है, आसक्ति की तुलना एक राजस्व अधिकारी से और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों (अज्जत्त और बहिद्ध आयतन) की तुलना एक राज्य से की गई है।

उन्हें अर्थ समझाने के बाद, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 294 : माता (अर्थात् तृष्णा), पिता (अर्थात् अहंकार) और दोनों राजाओं (अर्थात् शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास) का वध करके, और राज्य (अर्थात् इंद्रिय आधार और इंद्रिय विषय) को उसके राजस्व अधिकारी (अर्थात् आसक्ति) सहित नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात् अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

श्लोक 295 : माता, पिता, दो ब्राह्मण राजाओं का वध करके और पाँचवीं (अर्थात संदेह) बाघ से भरी यात्रा के समान बाधाओं को नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

प्रवचन के अंत में, अतिथि भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे, जिन्हें उनके छोटे कद के कारण लकुंटक भद्दिया के नाम से भी जाना जाता था।

एक बार कुछ भिक्षु जेतवन मठ में बुद्ध के दर्शन और श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तभी लकुंटक भद्दिया उनसे कुछ ही दूरी पर से गुजर रहे थे। बुद्ध ने उनका ध्यान उस छोटे भिक्षु की ओर आकर्षित किया और उनसे कहा, "हे पूज्यवरों, उस भिक्षु को देखो। उसने अपने माता-पिता दोनों को मार डाला है, और अपने माता-पिता को मारने के बाद भी वह बिना किसी दु:ख के घूम रहा है।" भिक्षु बुद्ध के इस कथन को समझ नहीं पाए। इसलिए उन्होंने बुद्ध से इसे स्पष्ट करने का अनुरोध किया और बुद्ध ने उन्हें इसका अर्थ समझाया।

उपरोक्त कथन में बुद्ध एक ऐसे अरहत का उल्लेख कर रहे थे, जिन्होंने भोग-विलास, अहंकार, गलत धारणाओं और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों से आसक्ति का नाश कर दिया था। बुद्ध ने यह कथन उपमाओं के माध्यम से कहा है। इस प्रकार, माता और पिता शब्दों का प्रयोग क्रमशः भोग-विलास और अहंकार को दर्शाने के लिए किया गया है। शाश्वतता (सस्सतादिष्ठी) और विनाश (उच्छेदादिष्ठी) की तुलना दो राजाओं से की गई है, आसक्ति की तुलना एक राजस्व अधिकारी से और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों (अज्जत्त और बहिद्ध आयतन) की तुलना एक राज्य से की गई है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 294)

मातरं पितरं द्वे च खत्तिये राजनो हन्त्वा
शानुचरं रथं हन्त्वा ब्राह्मणो अनिघो यति

मातरम् [मातर]: माँ (लालसा); पितरं [पिटारा]: पिता (अहंकार); दवे च खट्टिये राजनो [राजन]: दो योद्धा राजा भी; हन्त्वा : हत्या करके; सनुकाराम् [सनुकारा]: अपने अधीनस्थों के साथ; रथः [रथ]: राज्य; हन्त्वा : नष्ट करके; ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: संत (जिसने दोषों से छुटकारा पा लिया है); अनिघो यति : बिना किसी घबराहट के चलता है

ब्राह्मण माता- तृष्णा का वध करता है; पिता- तृष्णा का वध करता है; दो योद्धा राजाओं का वध करता है। ये दोनों शाश्वतवाद और शून्यवाद के दो दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो बौद्ध विचारों के विपरीत हैं। अधीनस्थ नंदी राग हैं, जो जीवन से आसक्ति रखते हैं। वह उस राज्य का विनाश करता है। यह बारह आयतनों से बना राज्य है । वह अधीनस्थों, यानी नंदी रागों का विनाश करता है । ये वे दोष हैं जो जीवन से आसक्ति रखते हैं। इन सभी का विनाश करने के बाद, ब्राह्मण (अरहत) को कोई दंड नहीं मिलता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 295)

मातरं पितरं द्वे च सोत्थ्ये राजनो हन्त्वा
वेयघपञ्चम हन्त्वा ब्राह्मणो अनिघो यति

मातारं [मातारा]: माता (लालसा); पितरम [पितरा]: पिता (अहंकार); द्वे च सोत्थिये राजानो [राजाना]: दो ब्राह्मण राजा (शाश्वतवाद और शून्यवाद) भी; हन्त्वा : हत्या करके; वेय्यग्घपंचमं [वेय्यग्घपंचम]: पाँच भयंकर बाघ (पाँच बाधाएँ); हन्त्वा : नष्ट करके; ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: संत (जो दोषों से मुक्त हो गया है); अनिघो यति : बिना किसी भय के जाता है

ब्राह्मण (अरहत) माता-पिता की लालसा का वध करता है; पिता-प्रेम और आत्मसम्मान का वध करता है; दो विद्वान राजाओं का वध करता है। ये दोनों ही शाश्वतवाद और शून्यवाद नामक दो भ्रामक विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह मार्ग में बाधा डालने वाले पाँच बाघों (निवरण) का वध करता है। और इन सभी वधों को करने के बाद, अरहत अविचलित होकर आगे बढ़ता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 294-295)

ये दोनों श्लोक उन विभिन्न प्रकार के गलत विचारों को दर्शाते हैं जिन्हें आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च फलों को प्राप्त करने के इच्छुक साधक को नष्ट करना होगा।

ये विचार दिठ्ठी की श्रेणी में आते हैं । इस शब्द का अर्थ है दृष्टिकोण, विश्वास, काल्पनिक राय, अंतर्दृष्टि।

यदि इसे सम्मा (सही) से योग्य नहीं बनाया गया है, तो यह ज्यादातर गलत और बुरे दृष्टिकोण या राय को संदर्भित करता है, और केवल कुछ मामलों में सही दृष्टिकोण, समझ या अंतर्दृष्टि को संदर्भित करता है (जैसे दिठ्ठी-प्पत्त , दिठ्ठी विशुद्धि , अंतर्दृष्टि का शुद्धिकरण; दिठ्ठी-संपन्न , अंतर्दृष्टि से युक्त)।

गलत या बुरे विचार (दिठ्ठी या मिच्छा-दिठ्ठी) को पूरी तरह से अस्वीकार्य घोषित किया गया है क्योंकि वे गलत और बुरी आकांक्षाओं और आचरण का स्रोत होते हैं, और कभी-कभी मनुष्य को दुराचार की सबसे गहरी खाई में ले जा सकते हैं।

बुद्ध ने कहा: हे भिक्षुओं, मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे अविकसित अशुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं और जो अशुद्धियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे भी बढ़ती और पूर्ण होती हैं। मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे अविकसित अशुद्धियाँ उत्पन्न होने से रुक जाती हैं और जो अशुद्धियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे भी लुप्त हो जाती हैं। मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के समय मनुष्य दुख के मार्ग पर, दुःख के संसार में, नरक में जाता है। बुरे विचारों से भरा मनुष्य जो भी कार्य करता है या जो भी इच्छा, आकांक्षा, लालसा और प्रवृत्ति रखता है, ये सब उसे अवांछनीय, अप्रिय और कष्टदायी स्थिति की ओर ले जाते हैं।

अभिधम्म से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब भी बुरे विचार उत्पन्न होते हैं, वे लालच से जुड़े होते हैं।

सूत्र ग्रंथों में अनेक काल्पनिक मत और सिद्धांत उद्धृत हैं, जिन्होंने हमेशा से मानव जाति को प्रभावित किया है और अभी भी प्रभावित कर रहे हैं। हालांकि, इनमें से वह गलत धारणा, जिसने हर जगह और हर समय मानव जाति को सबसे अधिक गुमराह और भ्रमित किया है, वह है व्यक्तित्व-विश्वास, अहंकार-भ्रम। यह व्यक्तित्व-विश्वास (सक्काया-दिठ्ठी), या अहंकार-भ्रम (अत्ता-दिठ्ठी), दो प्रकार का होता है: शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास।

शाश्वतता में विश्वास (सस्सता-दिठ्ठी) एक निरंतर रहने वाली अहंकार-सत्ता, आत्मा या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो कमोबेश उन भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं के समान है, और इसलिए, मृत्यु के समय विघटन होने पर, वह भी नष्ट हो जाएगी।

बुद्ध न तो मृत्यु के बाद भी बने रहने वाले व्यक्तित्व की शिक्षा देते हैं, न ही मृत्यु के समय नष्ट होने वाले व्यक्तित्व की, बल्कि वे हमें यह दिखाते हैं कि व्यक्तित्व, अहंकार, व्यक्ति आदि मात्र पारंपरिक पदनाम (वोहार-वचन) हैं और परम अर्थ में (पमत्थ-सच्च) केवल भौतिक और मानसिक घटनाओं की यह स्वतः नष्ट होने वाली प्रक्रिया है जो निरंतर उत्पन्न होती है और तुरंत ही लुप्त हो जाती है।

बुद्ध किसी भी सिद्धांत से मुक्त हैं (दिठ्ठिगता), क्योंकि उन्होंने शरीर का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और यह भी जान लिया है कि यह कैसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। उन्होंने यह भी जान लिया है कि भावना, बोध, मानसिक रचनाएँ, चेतना क्या हैं और ये कैसे उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि बुद्ध ने सभी कल्पनाओं और अटकलों, और अहंकार पर आधारित सभी व्यर्थ अभिमानों के विनाश, लुप्त होने, लुप्त होने, त्याग और निष्कासन के माध्यम से पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली है।

सत्त-निपात के एक अध्याय , अट्ठक-वग्ग में अटकलबाजी वाले विचारों और सिद्धांतों का खंडन एक प्रमुख विशेषता है ।

नियति से जुड़े तथाकथित बुरे विचार (नियात-मिच्छादित्ति), जो दस अस्वास्थ्यकर कर्मों (कम्मपथ) में से अंतिम हैं, निम्नलिखित तीन हैं:

(1) अस्तित्व की अकारणता का भाग्यवादी दृष्टिकोण (अहेतुकदिठ्ठी)। यह बुद्ध के समकालीन मक्खली-गोसाला द्वारा सिखाया गया था, जिन्होंने प्राणियों की भ्रष्टता और पवित्रता के लिए हर कारण से इनकार किया और दावा किया कि सब कुछ भाग्य द्वारा सूक्ष्म रूप से पूर्वनिर्धारित है।

(2) कर्म की निरर्थकता का दृष्टिकोण (अकिरिया-दिठ्ठी)। यह बुद्ध के समकालीन पूरण-कस्सपा द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जिन्होंने अच्छे और बुरे कर्मों के किसी भी कर्म फल को नकार दिया था। हत्या, चोरी, डकैती आदि करने वाले को कुछ भी बुरा नहीं होगा। जहाँ तक उदारता, संयम, सत्यनिष्ठा आदि की बात है, तो उनसे किसी भी प्रकार का प्रतिफल अपेक्षित नहीं है।

(3) शून्यवाद (नत्थिका-दिट्ठी)। यह बुद्ध के तीसरे समकालीन अजित-केशकंबली द्वारा सिखाया गया था, जिन्होंने दावा किया कि अच्छे कर्म और उसके फल में कोई भी विश्वास मात्र एक भ्रम है, कि मृत्यु के बाद कोई और जीवन नहीं होगा, कि मनुष्य मृत्यु के समय तत्वों में विलीन हो जाएगा।
अक्सर दस विरोधाभासों (antagāhikā micchādiṭṭhi) का भी उल्लेख किया जाता है: संसार सीमित है या संसार अनंत है... शरीर और आत्मा एक समान हैं या शरीर और आत्मा भिन्न हैं।
ब्रह्मजाल सूत्र में बासठ भ्रामक विचारों को वर्गीकृत और वर्णित किया गया है, जिनमें मनुष्य और संसार के बारे में सभी संभावित गलत विचार और अटकलें शामिल हैं।
गलत विचार (दिट्ठी) तीन प्रकार के विकारों (अनुसय), आसव और उपादान में से एक हैं, जो विपल्लास नामक तीन प्रकार के विकारों में से एक हैं । लोभ में निहित अस्वस्थ चेतना (अकुशल चित्त) गलत विचारों के साथ या उनके बिना भी हो सकती है (दिट्ठीगत-संपयुत्त या विपयुत्त)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 296-301

(धम्मपद 294 और 295) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 296 से 301 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 302)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 296 से 301 - दारूसाकटिकापुत्त वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 296 से 301 - दारूसाकटिकापुत्त वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam buddhagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam dhammagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam samghagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam kayagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती

सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
ahimsaya rato mano.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
भवनया रातो मनो.

श्लोक 296 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात बुद्ध के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 297 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस हैं, जो दिन-रात धम्म के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 298 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात संघ के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 299 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात शरीर के घटकों के प्रति सचेत रहते हैं।

श्लोक 300 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और हमेशा चौकस रहते हैं, जिनका मन दिन-रात हमेशा करुणा (शाब्दिक रूप से, हानिरहित) होने में आनंदित रहता है।

श्लोक 301 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सजग और हमेशा सतर्क रहते हैं, जिनका मन दिन-रात सभी के प्रति सद्भावना के संवर्धन में आनंदित रहता है।

एक लकड़हारे के बेटे की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (296) से (301) तक एक लकड़हारे के बेटे के संदर्भ में कहे।

राजगाह में एक लकड़हारा अपने बेटे के साथ लकड़ियाँ काटने जंगल गया। शाम को घर लौटते समय वे भोजन करने के लिए एक कब्रिस्तान के पास रुके। उन्होंने अपने दोनों बैलों से जुआ उतार दिया ताकि वे पास में चर सकें; लेकिन दोनों बैल बिना उनकी नज़र में आए गायब हो गए। जैसे ही उन्हें पता चला कि बैल गायब हैं, लकड़हारा उन्हें ढूंढने चला गया और अपने बेटे को लकड़ियों से भरी गाड़ी के साथ वहीं छोड़ दिया। पिता अपने बैलों को ढूंढते हुए कस्बे में गया। जब वह अपने बेटे के पास लौटा तो काफी रात हो चुकी थी और कस्बे का द्वार बंद हो चुका था। इसलिए, उस छोटे लड़के को रात अकेले अपनी गाड़ी के नीचे बितानी पड़ी।

लकड़ी काटने वाले का बेटा, हालांकि छोटा था, हमेशा सचेत रहता था और बुद्ध के अद्वितीय गुणों का चिंतन करने का आदी था। उस रात दो राक्षस उसे डराने और नुकसान पहुंचाने आए। जब एक राक्षस ने लड़के का पैर खींचा, तो वह चिल्लाया, "मैं बुद्ध को प्रणाम करता हूँ (नमो बुद्धस्स)। लड़के के ये शब्द सुनकर राक्षस डर गए और उन्हें लगा कि उन्हें लड़के की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए, उनमें से एक लड़के के पास ही रुका रहा और उसे हर खतरे से बचाता रहा; दूसरा राजा के महल में गया और राजा बिम्बिसार की भोजन-थाली ले आया। फिर दोनों राक्षसों ने लड़के को अपने बेटे की तरह भोजन कराया। महल में, राक्षस ने शाही भोजन-थाली के बारे में एक लिखित संदेश छोड़ा; और यह संदेश केवल राजा को ही दिखाई दिया।

सुबह राजा के आदमियों ने देखा कि शाही भोजन की थाली गायब है और वे बहुत परेशान और भयभीत हो गए। राजा को राक्षस का संदेश मिला और उन्होंने अपने आदमियों को उसे खोजने का निर्देश दिया। राजा के आदमियों को शाही भोजन की थाली गाड़ी में लकड़ियों के ढेर के बीच मिली। उन्हें वह लड़का भी मिला जो अभी भी गाड़ी के नीचे सो रहा था। पूछने पर लड़के ने बताया कि उसके माता-पिता रात में उसे भोजन कराने आए थे और भोजन करने के बाद वह निश्चिंत होकर सो गया। लड़के को बस इतना ही पता था, इससे ज्यादा कुछ नहीं। राजा ने लड़के के माता-पिता को बुलवाया और उन्हें बुद्ध के पास ले गए। तब तक राजा को पता चल चुका था कि लड़का हमेशा बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान रखता था और यह भी कि जब राक्षस ने रात में उसका पैर खींचा था, तब उसने "नमो बुद्धस्स" का उच्चारण किया था।

राजा ने बुद्ध से पूछा, "क्या बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान ही एकमात्र धर्म है जो बुराई और खतरे से सुरक्षा प्रदान करता है, या धर्म के अद्वितीय गुणों का ध्यान भी उतना ही शक्तिशाली है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे राजा, मेरे शिष्य! छह ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान बुराई और खतरे से अच्छी तरह सुरक्षा प्रदान करता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 296 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात बुद्ध के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 297 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस हैं, जो दिन-रात धम्म के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 298 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात संघ के गुणों का ध्यान रखते हैं।

श्लोक 299 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात शरीर के घटकों के प्रति सचेत रहते हैं।

श्लोक 300 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और हमेशा चौकस रहते हैं, जिनका मन दिन-रात हमेशा करुणा (शाब्दिक रूप से, हानिरहित) होने में आनंदित रहता है।

श्लोक 301 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सजग और हमेशा सतर्क रहते हैं, जिनका मन दिन-रात सभी के प्रति सद्भावना के संवर्धन में आनंदित रहता है।

प्रवचन के अंत में बालक और उसके माता-पिता ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में वे संघ में शामिल हो गए और अंततः अरहत बन गए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक लकड़हारे के बेटे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक लकड़हारे के पुत्र के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार राजगृह में एक लकड़हारा अपने बेटे के साथ लकड़ियाँ काटने जंगल गया। शाम को घर लौटते समय वे भोजन करने के लिए एक कब्रिस्तान के पास रुके। उन्होंने अपने दोनों बैलों से जुआ उतार दिया ताकि वे पास में चर सकें; लेकिन दोनों बैल बिना उनकी नज़र में आए गायब हो गए। जैसे ही उन्हें पता चला कि बैल गायब हैं, लकड़हारा उन्हें ढूंढने निकल पड़ा और अपने बेटे को लकड़ियों से भरी गाड़ी के साथ वहीं छोड़ दिया। पिता अपने बैलों को ढूंढते हुए कस्बे में दाखिल हुआ। जब वह अपने बेटे के पास लौटा तो काफी रात हो चुकी थी और कस्बे का द्वार बंद हो चुका था। इसलिए, उस छोटे लड़के को रात अकेले अपनी गाड़ी के नीचे बितानी पड़ी।
लकड़ी काटने वाले का बेटा, हालांकि छोटा था, हमेशा सचेत रहता था और बुद्ध के अद्वितीय गुणों का चिंतन करने का आदी था। उस रात, दो दुष्ट आत्माएँ उसे डराने और नुकसान पहुँचाने आईं। जब एक दुष्ट आत्मा ने लड़के का पैर खींचा, तो वह चिल्लाया, “मैं बुद्ध को प्रणाम करता हूँ” (नमो बुद्धस्स)। ये शब्द सुनकर दुष्ट आत्माएँ भयभीत हो गईं और उन्हें लगा कि उन्हें लड़के की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए उनमें से एक लड़के के पास ही रही और उसे हर खतरे से बचाती रही; दूसरी राजा के महल में गई और राजा बिम्बिसार की भोजन की थाली ले आई। फिर दोनों दुष्ट आत्माओं ने लड़के को ऐसे खिलाया जैसे वह उनका अपना बेटा हो। महल में, दुष्ट आत्मा ने शाही भोजन की थाली के बारे में एक लिखित संदेश छोड़ा; और यह संदेश केवल राजा को ही दिखाई दिया।
सुबह राजा के आदमियों ने देखा कि शाही भोजन की थाली गायब है और वे बहुत परेशान और भयभीत हो गए। राजा को दुष्ट आत्मा का संदेश मिला और उन्होंने अपने आदमियों को उसे खोजने का निर्देश दिया। राजा के आदमियों को शाही भोजन की थाली गाड़ी में लकड़ियों के ढेर के बीच मिली। उन्हें वह लड़का भी मिला जो अभी भी गाड़ी के नीचे सो रहा था। पूछने पर लड़के ने बताया कि उसके माता-पिता रात में उसे भोजन कराने आए थे और भोजन करने के बाद वह निश्चिंत होकर सो गया था। लड़के को बस इतना ही पता था, इससे ज्यादा कुछ नहीं। राजा ने लड़के के माता-पिता को बुलवाया और उन्हें बुद्ध के पास ले गए। तब तक राजा को पता चल चुका था कि लड़का हमेशा बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान रखता था और यह भी कि जब दुष्ट आत्मा ने रात में उसका पैर खींचा था, तब उसने " नमो बुद्धस्स " का उच्चारण किया था।

राजा ने बुद्ध से पूछा, “क्या बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान ही एकमात्र धर्म है जो बुराई और खतरे से सुरक्षा प्रदान करता है, या धर्म के अद्वितीय गुणों का ध्यान भी उतना ही शक्तिशाली है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “हे राजा, मेरे शिष्य! छह ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान बुराई और खतरे से अच्छी तरह सुरक्षा प्रदान करता है।”

फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया।

प्रवचन के अंत में, बालक और उसके माता-पिता ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में, वे संघ में शामिल हो गए और अंततः अरहत बन गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 296)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगतसति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [हाँ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [रट्टा]: और रात में; निक्कां [निक्का]: लगातार; बुद्धगतसति : बुद्ध-चेतनता का अभ्यास करें; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात अपने गुरु के गुणों का ध्यान रखते हैं, वे पूरी तरह जागृत और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 297)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [हाँ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [रट्टा]: और रात में; निक्कां [निक्का]: लगातार; धम्मगता सती : धम्म-चेतनता का अभ्यास करता है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात धम्म के गुणों के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 298)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं संघगता
सति सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [हाँ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [रट्टा]: और रात में; निक्कां [निक्का]: लगातार; संघगत सती : संघ-चेतना का अभ्यास करती है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात संघ—भाईचारे—के गुणों के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 299)

येसं दिवा च रत्तो च निक्कं कायगता सति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [हाँ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [रट्टा]: और रात में; निक्कां [निक्का]: लगातार; कायगता सती : भौतिक वास्तविकता के संबंध में ध्यान का अभ्यास करता है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात शरीर की वास्तविक प्रकृति के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 300)

येसं मनो दिवा च रत्तो च अहिंसा रतो
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

येसं मनो : यदि किसी का मन; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [रट्टा]: और रात में; अहिंसा : हानिरहितता में; रटो प्रसन्न; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छे से जागो

बुद्ध के वे शिष्य जिनका मन दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 301)

येसं मनो दिवा च रत्तो च भवनाय रतो
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [हाँ]: अगर किसी का; मनो : मन; दिवा च रत्तो च : दिन और रात; भावनाय : ध्यान में; रेटो : प्रसन्नता; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं [सुप्पबुद्ध]: व्यापक जागृत; पबुज्जन्ति : उठो

बुद्ध के वे शिष्य जिनका मन दिन-रात ध्यान में लीन रहता है, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 296-301)

बुद्धानुस्सति भावना : ध्यान की यह विधि युवा और वृद्ध दोनों के लिए उपयुक्त है। अनुस्सति शब्द का अर्थ है चिंतन। अतः बुद्धानुस्सति भावना का अर्थ है बुद्ध के गुणों का चिंतन करते हुए किया जाने वाला ध्यान।

बुद्ध के अनंत गुण हैं। लेकिन ये नौ मुख्य गुणों में समाहित हैं। इन्हें बुद्ध के नौ गुना गुण कहा जाता है, जिनका वर्णन इस प्रकार है: इतिपिसो भगवा ... बुद्धानुस्सति भावना। इन गुणों का चिंतन करते हुए बुद्धानुस्सति भावना का अभ्यास करना चाहिए।

बुद्ध के सभी गुणों पर एक साथ चिंतन करते हुए ध्यान करना कठिन है। इसलिए, अनेक गुणों में से किसी एक गुण पर चिंतन करना अधिक सरल है। बाद में, सभी गुणों पर चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास किया जा सकता है। इसकी शुरुआत पहले गुण, अर्थात् अरहत से की जा सकती है और इस प्रकार आगे बढ़ा जा सकता है:

सर्वप्रथम, व्यक्ति को अपने शरीर को शुद्ध करना चाहिए और पुष्प अर्पित करके त्रिरत्न की आराधना करनी चाहिए, फिर त्रिविध शरणासन करना चाहिए और पंच नियमों का पालन करना चाहिए। इसके बाद, बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष उचित मुद्रा में बैठकर, प्रेम और श्रद्धा से बुद्ध की छवि को अपने मन में समेटने का प्रयास करना चाहिए। फिर, आंखें बंद करके और दाहिना हाथ बाएं हाथ पर रखकर, इस प्रकार चिंतन करना चाहिए, यह जानते हुए कि बुद्ध मन में विद्यमान हैं।

(1) भगवान बुद्ध गुप्त रूप से भी कोई पाप नहीं करते। इसलिए उन्हें अरहत कहा जाता है।

(2) कुछ समय तक इसी प्रकार चिंतन करते रहना चाहिए। उसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिए: बुद्ध गुप्त रूप से भी कोई पाप नहीं करते। उन्होंने समस्त दोषों का नाश कर दिया है। वे सभी भेंटों के योग्य हैं। अतः बुद्ध को अरहत कहा जाता है।

इस प्रकार हमें बुद्ध के अन्य गुणों का भी ध्यान करते रहना चाहिए। इस प्रकार ध्यान करने से हमारा मन अन्य विषयों की ओर भटके बिना सीधे बुद्ध पर केंद्रित रहता है। इससे हमारा मन शुद्ध होता है और हमें शांति मिलती है। हम बुद्ध के गुणों को थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, प्राप्त करना शुरू कर देते हैं। इसलिए हमें इस ध्यान का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

धम्मानुपस्सना भावना : धम्मानुपस्सना का अर्थ है विचारों (चेतसिका धम्म), रूप , वेदना आदि तत्वों (खंड), नेत्र और कान जैसे इंद्रिय-आधारों (आयतनधम्म), सती , धम्मविचार (बोज्झंगधम्म) जैसे ज्ञान के कारकों और चार आर्य सत्यों (चतुरार्य सच्च) पर चिंतन करना। इस ध्यान को सतिपट्ठान ध्यान श्रृंखला में सबसे कठिन माना जा सकता है ।

धम्मानुपस्सना भावना के पाँच मुख्य भाग हैं , जैसे:

विवरण परिग्हा ,

खंधा परिग्गाह ,

āyatana parriggaha ,

bojjhanga parighaha , and

sacca parigaha .

निवारण परिग्: : निर्वाण के मार्ग में पाँच बाधाएँ हैं। इन्हें निवारण कहते हैं । वे हैं:

कामच्छंद

व्यापाद ,

थिनामिद्धा ,

उद्धच्च कुक्कुच्च , और

vicikicchā .

कामच्छंद : इसका अर्थ है इंद्रिय-संबंधी इच्छा। यह वस्तुओं को संतोषप्रद मानने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। व्यक्ति को निम्नलिखित पाँच तरीकों से कामच्छंद पर चिंतन करना चाहिए:

जब किसी के मन में उसकी उपस्थिति के प्रति सजग होने की इंद्रिय-इच्छा (कामच्छंद) उत्पन्न होती है;

जब मन में इसकी अनुपस्थिति के प्रति सजग होने की कोई इंद्रिय-इच्छा न हो;

किसी ऐसी इंद्रिय-इच्छा के उत्पन्न होने के तरीके के प्रति सचेत रहना जो अब तक मन में उत्पन्न नहीं हुई हो;

मन में उत्पन्न हुई इंद्रिय-इच्छा के समाप्त होने के तरीके के प्रति जागरूक होना;

इस बात से अवगत होना कि मन में समाप्त हो चुकी कोई इंद्रिय-इच्छा पुनः उत्पन्न नहीं होगी।

व्यापाद : इसका अर्थ है दुर्भावना। यह मन को विकृत करता है और निर्वाण के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। व्यापाद पर निम्नलिखित पाँच तरीकों से चिंतन करना चाहिए:

जब मन में दुर्भावना (व्यापाद) उत्पन्न हो, तो उसकी उपस्थिति के प्रति सचेत रहना;

जब मन में दुर्भावना न हो, तो उसकी अनुपस्थिति के प्रति सजग रहना;

इस बात से अवगत होना कि किस प्रकार मन में अब तक उत्पन्न न हुई दुर्भावनाएं उत्पन्न हो सकती हैं;

मन में उत्पन्न दुर्भावना के समाप्त होने के तरीके के प्रति जागरूक होना;

इस बात से अवगत होना कि मन में समाप्त हो चुकी दुर्भावना दोबारा उत्पन्न नहीं होगी।

थिनामिद्धा : इसका अर्थ है मन और शरीर में आलस्य। इस पर भी, पहले वर्णित पाँच तरीकों से, कामच्छंद और व्यापाद की तरह ही चिंतन करना चाहिए ।

उद्धच्च कुक्कुच्च : इसका अर्थ है मन में उत्पन्न होने वाली बेचैनी और चिंता। यह मानसिक व्याकुलता शांति को रोकती है और निर्वाण के मार्ग में बाधा है। इस पर भी, पहले बताए गए पाँच तरीकों से, चिंतन करना चाहिए।

vicikicchā : इसका अर्थ है सिद्धांत के संबंध में निम्नलिखित 8 कारकों पर उत्पन्न होने वाला संशयपूर्ण संदेह, अर्थात्:

बुद्ध के बारे में संदेह;

धम्म के संबंध में संदेह;

संघ के संबंध में संदेह;

नियमों के संबंध में संदेह (सिक्खा);

अपने पिछले जन्म के बारे में संदेह;

अपने अगले जन्म के बारे में संदेह;

अपने पिछले जन्म और अगले जन्म के बारे में संदेह होना;

आश्रित उत्पत्ति के सिद्धांत (पटिक्च समुप्पाद) के संबंध में संदेह।

इस पर भी पूर्वोक्त पाँच तरीकों से चिंतन करना चाहिए। पाँच प्रकार की बाधाओं (निवरण) पर अलग-अलग चिंतन को निवरण परिग्हार कहा जाता है ।

खन्ध परिग्: : एक प्राणी पाँच आसक्ति समूहों से बना होता है। यह वह समूह है जो जीवन को धारण करता है, जो इस पर आधारित है:

पदार्थ का समूह (रूप उपादानक्खन्ध);

संवेदनाओं या भावनाओं का समूह (वेदना उपादानक्खन्ध);

धारणाओं का समूह (सञ्ञा उपादानक्खन्ध);

मानसिक संरचनाओं का समूह (संखार उपादानक्खन्ध);

चेतना का समूह (विज्ञाना उपादानक्खन्ध)।

व्यक्ति को पदार्थ (रूप) पर निम्नलिखित प्रकार से चिंतन करना चाहिए:

पदार्थ सांसारिक प्रकृति का है। पदार्थ इसी प्रकार अस्तित्व में आया है। पदार्थ का अस्तित्व भी इसी प्रकार समाप्त हो जाएगा। आसक्ति के अन्य समूहों पर चिंतन करते समय भी यही प्रक्रिया अपनानी चाहिए। इस ध्यान का उद्देश्य इन समूहों के प्रति आसक्ति से मुक्ति पाना और इनकी अनित्य प्रकृति को समझना है।

आयतन परिग्: : आयतन का अर्थ है इंद्रिय-आधार। ये बारह होते हैं और इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है — बाह्य और आंतरिक। छह आंतरिक इंद्रिय-आधार (अध्यात्म आयतन) इस प्रकार हैं:

eye— chakkāyatana ,

ear— sotāyatana ,

नाक— घनायतन ,

जीभ — जिवहायतन

शरीर — कायातना , और

मन — मनायतन ।

छह बाह्य इंद्रिय-आधार (बाहिरायतन) इस प्रकार हैं:

रूप— rūpāyatana ,

sound— saddāyatana ,

गंध — गंधायतन

स्वाद — रसायतन

संपर्क– poṭṭhabbāyatana , और
मानसिक वस्तुएँ – धम्मायतन ।
इन सभी इंद्रिय-आधारों को ध्यान में रखते हुए, हमें निम्नलिखित पांच तरीकों से उन पर विचार करना चाहिए:
यह जानते हुए कि यह क्या है,
यह जानते हुए कि यह कैसे अस्तित्व में आया है,
यह जानते हुए कि अब तक उत्पन्न न हुई इंद्रिय-आधार कैसे अस्तित्व में आती है,
यह जानना कि अस्तित्व में आ चुकी इंद्रिय-आधार का अस्तित्व कैसे समाप्त हो जाता है, और
यह जानना कि एक बार अस्तित्वहीन हो जाने पर इंद्रिय-आधार पुनः अस्तित्व में नहीं आता।
एक बार जब इस ध्यान का अभ्यास स्वयं के संबंध में किया जाता है, तो इसे दूसरों तक भी बढ़ाया जा सकता है।
बोज्झंगा परिग्हा : बोज्झंगा , या ज्ञानोदय के कारक, से तात्पर्य उन स्थितियों से है जिनका पालन ज्ञानोदय के लिए प्रयासरत व्यक्ति को करना चाहिए।
वे संख्या में सात हैं:
sati sambojjhanga ,
धम्म विचया सम्बोज्जंग ,
viriya sambojjhanga ,
pīti sambojjhanga ,
passaddhi sambojjhanga ,
समाधि संबोज्जंग ,
upekkhā sambojjhanga .
सती से शुरू होने वाली ये सात अवस्थाएँ ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में लगे व्यक्ति में धीरे-धीरे उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ हैं और एक दूसरे से संबंधित हैं। इसलिए, इनका अलग-अलग वर्णन करना कठिन है।
ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करने वाला व्यक्ति अपने सभी विचारों और शारीरिक क्रियाओं के प्रति सचेत रहता है। इस प्रकार की सचेतता को यहाँ सती कहा गया है। इस सचेतता से वह सही और गलत में भेद करता है और उनका विवेकपूर्ण विश्लेषण करता है। इस प्रकार के आलोचनात्मक विश्लेषण को धम्मविचार कहा गया है । ज्ञान से जुड़ा यह गुण ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करने वाले व्यक्ति में विकसित होता है। अधार्म से मुक्त होकर धर्म का विकास करने के लिए ऐसे व्यक्ति के प्रयास को वीर्य कहा गया है । इस प्रकार प्रयास करने वाले व्यक्ति में वीर्य संबोज्जंग विकसित होता है। धर्म की स्थापना और विकास से मन में उत्पन्न होने वाले सुख को पीति संबोज्जंग कहा गया है । इंद्रिय-इच्छाओं से रहित सुख के विकास से मन और शरीर में उत्पन्न होने वाली शांति को पसद्धि कहा गया है । इस प्रक्रिया का पालन करने वाले व्यक्ति में पसद्धि संबोज्जंग विकसित होता है। इस शांति के आधार पर मन को किसी अच्छे (कुशल) विषय पर केंद्रित करना समाधि संबोज्झंग कहलाता है । एकाग्रता के विकास के साथ व्यक्ति को संवेदनाओं की निरर्थकता का अहसास होता है और सुख-दुख से अप्रभावित होकर समभाव (उपेक्खा) की भावना विकसित होती है। इसे उपेक्षा संबोज्झंग कहते हैं ।
इस ध्यान का अभ्यास करते समय, व्यक्ति को निम्नलिखित चार तरीकों से इन कारकों में से प्रत्येक पर चिंतन करना चाहिए:
स्वयं में ज्ञानोदय (बोझ्झंग) के कारक की उपस्थिति को जानना, जब वह उपस्थित हो;
ज्ञानोदय के किसी कारक (बोज्झंग) की अनुपस्थिति को जानना, जब वह अनुपस्थित हो;
यह जानना कि स्वयं में अनुपस्थित होने पर भी ज्ञानोदय के कारक को कैसे विकसित किया जा सकता है,
यह जानना कि स्वयं में उत्पन्न ज्ञानोदय के कारक को और कैसे विकसित किया जा सकता है।
इस प्रकार चिंतन करने से उन सात कारकों को विकसित करना संभव होगा जो व्यक्ति को निर्वाण प्राप्त करने में सहायता करते हैं।
sacca parighaha : इसका अर्थ है चार आर्य सत्यों से संबंधित तथ्यों की अनुभूति, अर्थात्:
दुःख
समुदाय
निरोध , और
मग्गा ।
दुःख : दुःख का सत्य: बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, संपूर्ण संसार, जो परिवर्तनशील अवस्था में है, दुःख से भरा हुआ है। बुद्ध ने दुःख को समाप्त करने का मार्ग दिखाया है। दुःख को बारह तरीकों से समझाया जा सकता है।
जन्म दुखदायी है (जाति);
बुढ़ापा कष्टदायी होता है (जरा);

मृत्यु कष्ट है (मरण);
दुःख पीड़ा है (सोका);
विलाप करना पीड़ा है (परिदेव);
शारीरिक पीड़ा कष्ट है (दुक्खा);
मानसिक पीड़ा कष्ट (डोमानास्सा) है;
परिश्रमपूर्ण परिश्रम कष्टदायी होता है (उपायस);
अप्रिय व्यक्तियों और परिस्थितियों के साथ संगति कष्टदायी होती है (अप्पियेहिसंपयोग);
प्रियजनों और सुखद परिस्थितियों से वियोग दुखदायी होता है (पियेहिविप्पायोग);
मनचाही चीज न मिलना दुख का कारण है (yampiccam nalabhati tampi dukkaṃ);
संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुख हैं (samkhittena pañcupādānakkhandhā dukkhā)।
दुःख की अवधारणा को सात पहलुओं से भी देखा जा सकता है, जैसे:
शारीरिक पीड़ा (दुक्खा) से उत्पन्न कष्ट
परिवर्तन से उत्पन्न पीड़ा (विपरिनामदुक्खा),
सशर्त अवस्थाओं के उत्पन्न होने और समाप्त होने से उत्पन्न होने वाला कष्ट (समखतादुक्खा),
शारीरिक और मानसिक रोगों से उत्पन्न होने वाला कष्ट, लेकिन जिसका कारण अज्ञात हो (पटिच्चन्नदुक्खा)।
विभिन्न परीक्षाओं और कष्टों से उत्पन्न होने वाला दुख, जिसके उत्पन्न होने के कारण स्पष्ट हों (अप्पटिच्चन्न दुःख)।
दुःख-दुःख (परियादुःख) के अलावा अन्य सभी प्रकार के दुःखों से उत्पन्न दुःख , और
शारीरिक और मानसिक पीड़ा को दुक्ख-दुक्खा (निप्पारिया दुक्खा) कहा जाता है।
अत: दुख का विभिन्न पहलुओं से चिंतन करना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए कि यह कारण और परिणाम से उत्पन्न होने वाली अवस्था है। इस प्रकार दुख के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए।
समुदय : दुख की उत्पत्ति का सत्य: इससे तात्पर्य लालसा से है, जो समस्त दुखों का मूल कारण है।
यह मुख्यतः तीन प्रकार का है:
काम (सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति),
भाव (निरंतरता और विकास के प्रति आसक्ति), और
विभाव (इस विचार से आसक्ति कि कोई निरंतरता और विकास नहीं है)।
इस लालसा को विभिन्न इंद्रिय-विषयों के संबंध में आगे वर्गीकृत किया गया है:
रूपा तन्हा (रूप की लालसा),
sadda taṇhā (ध्वनि की लालसा),
गंध तन्हा (गंध की लालसा),
रस तन्हा (स्वाद की लालसा),
poṭṭhabba taṇhā (संपर्क की लालसा), और
धम्म तन्हा (मानसिक विषयों की लालसा)।
निरोध : दुखों के निवारण का सत्य: इसका अर्थ है सभी दोषों के निवारण से प्राप्त होने वाली निर्वाण की सर्वोच्च अवस्था।
यह दो प्रकार का है, अर्थात्:
निर्वाण प्राप्त करना और जीवन जीना जारी रखना (सोपादिसेसा निर्वाण), और
मृत्यु के समय निर्वाण प्राप्त करना (निरुपादिस निर्वाण)।
मार्ग : निर्वाण प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग, श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग, मार्ग कहलाता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं :
सही समझ (सम्मादिट्ठी);
सही विचार (सम्मासंकप्पा);
सही वाणी (सम्मावाचा);
सही कर्म (सम्माकम्मन्त);
सही आजीविका (सम्मा अजीव);
सही प्रयास (सम्मावायमा);
सही जागरूकता (सम्मासति);

सही एकाग्रता (सम्मा समाधि)।
इनमें से प्रत्येक कारक को अलग-अलग रूप से लिया जाना चाहिए और उस पर विचार किया जाना चाहिए तथा व्यक्ति को रोजमर्रा की जिंदगी में सोच-समझकर उनका अभ्यास करने का प्रयास करना चाहिए।
व्यक्ति को अपने विचारों के प्रति सचेत रहना चाहिए और बुरे विचारों से छुटकारा पाने तथा सही समझ (सम्मादिट्ठी) का अभ्यास करके अच्छे विचारों (सम्मा संकल्प) को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए । फलस्वरूप, व्यक्ति अपने शरीर, वाणी और मन को संयमित कर सकता है और सही एकाग्रता (सम्मा समाधि) के माध्यम से मन को निर्वाण की प्राप्ति की ओर केंद्रित कर सकता है।
अब तक वर्णित इस चार प्रकार की सतिपट्ठान ध्यान विधि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विचारों को प्रारंभ से अंत तक बिना किसी रुकावट के एकाग्र करने पर जोर दिया जाता है। इस ध्यान का लगन से अभ्यास करने से व्यक्ति निर्वाण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

विशुद्धिमग्ग और अन्य महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथों के अनुसार, इस ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लिए किसी विद्वान और श्रेष्ठ गुरु का साथ होना अनिवार्य है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे गुरु के अभाव में इस ध्यान का अभ्यास करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति भटक सकता है।
सतिपट्ठाना ध्यान के विभिन्न भागों का दैनिक दिनचर्या में अभ्यास करने से व्यक्ति अपने जीवन को सफलतापूर्वक नियंत्रित और समायोजित कर सकेगा और इस प्रकार शांति और संतोष से भरा गृहस्थ जीवन जी सकेगा।
अहिंसा रतो : अहिंसा में आनंद लेना, करुणा का अभ्यास करने में विशेष आनंद लेना। बुद्ध की शिक्षाओं की एक विशेष विशेषता यह है कि उनमें सभी प्राणियों के प्रति दयालु होने की आवश्यकता को केंद्रीय स्थान दिया गया है। करुणा (मेट्टा) , जिसका अभ्यास अहिंसा को सुनिश्चित करता है, पर बुद्ध ने विस्तार से चर्चा की है।
राहुल को उपदेश देते हुए बुद्ध ने कहा: हे राहुल, प्रेम और करुणा का ध्यान करो; क्योंकि प्रेम और करुणा का अभ्यास करने से द्वेष दूर हो जाता है। हे राहुल, करुणा का ध्यान करो; क्योंकि करुणा और क्रूरता का अभ्यास करने से नुकसान और क्रूरता दूर हो जाती है।
इससे स्पष्ट है कि मैत्री और करुणा क्रमशः दुर्भावना और क्रूरता के बिल्कुल विपरीत हैं। दुर्भावना या घृणा, इंद्रिय-इच्छा (वासना) की तरह, इंद्रियों द्वारा इंद्रिय-विषयों के संपर्क में आने से उत्पन्न होती है। जब किसी व्यक्ति की आँख किसी दृश्य वस्तु के संपर्क में आती है, जो उसकी सोच के अनुसार अप्रिय और अवांछनीय है, तो यदि वह व्यवस्थित और विवेकपूर्ण ध्यान का प्रयोग नहीं करता है, तो घृणा उत्पन्न होती है। कान और ध्वनि, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, मन और मानसिक विषयों के साथ भी ऐसा ही होता है। यहाँ तक कि सुखद वस्तुएँ, चाहे सजीव हों या निर्जीव, जो मनुष्य को अत्यधिक आनंद प्रदान करती हैं, भी अरुचि और दुर्भावना का कारण बन सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को रिझा सकता है जिससे वह प्रेम करता है और कामुक स्नेह के विचार मन में रखता है, लेकिन यदि प्रिय व्यक्ति वही स्नेह नहीं दिखाता है या अपेक्षा के बिल्कुल विपरीत व्यवहार करता है, तो संघर्ष और आक्रोश उत्पन्न होता है। यदि वह तब व्यवस्थित ध्यान का प्रयोग करने में विफल रहता है, यदि वह विवेकपूर्ण नहीं है, तो वह मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर सकता है, और उसका व्यवहार विपत्ति, यहाँ तक कि हत्या या आत्महत्या का कारण भी बन सकता है। इन भावनाओं का खतरा इतना अधिक है कि इन्हें करुणा के द्वारा वश में करना ही पड़ेगा ।
मैत्री : बौद्धों में एक प्रचलित शब्द है, फिर भी कोई भी अंग्रेजी शब्द इसके सटीक अर्थ को व्यक्त नहीं कर पाता। मित्रता, परोपकार, सद्भावना, सार्वभौमिक प्रेम, दयालुता इसके पसंदीदा अर्थ हैं। मैत्री सभी प्राणियों के कल्याण और सुख की कामना है, बिना किसी बंधन के। इसमें एक परोपकारी मित्र के गुण होते हैं। इसका प्रत्यक्ष शत्रु द्वेष (घृणा) है, जबकि अप्रत्यक्ष या छिपा हुआ शत्रु कामुक प्रेम या स्वार्थी स्नेहपूर्ण इच्छा (पेमा , संस्कृत: पेमा) है, जो मैत्री से बिल्कुल भिन्न है । मैत्री के वेश में कामुक प्रेम स्वयं को और दूसरों को बहुत हानि पहुँचा सकता है। इस छिपे हुए शत्रु से सावधान रहना आवश्यक है। अक्सर लोग कामुक भावनाओं के विचार मन में लाते हैं और इसे वास्तविक मैत्री समझकर सोचते हैं कि वे मैत्री का अभ्यास कर रहे हैं , और उन्हें यह पता नहीं होता कि वे गलत रास्ते पर हैं। यदि कोई निष्पक्ष होकर ऐसे विचारों का विश्लेषण करे तो उसे यह अहसास होगा कि उनमें इंद्रिय-संबंधी आसक्ति का अंश है। यदि प्रेम की भावना आसक्ति और लगाव का प्रत्यक्ष परिणाम है, तो वास्तव में वह प्रेम नहीं है ।
शारीरिक प्रेम या पेमा एक प्रकार की लालसा है जो अत्यधिक पीड़ा, शोक और विलाप उत्पन्न करने में सक्षम है। बुद्ध ने अपने प्रवचनों में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझाया है, और धम्मपद के सोलहवें अध्याय के पाँच श्लोक स्नेह पर इस प्रकार बल देते हैं:
प्रिय वस्तु से ही दुःख उत्पन्न होता है।
प्रिय वस्तु से ही भय उत्पन्न होता है।
जो अपने प्रेम से मुक्त है
कोई दुःख नहीं है, इसलिए कोई भय भी नहीं है।
स्नेह से ही दुःख उत्पन्न होता है...

आसक्ति से ही दुःख उत्पन्न होता है...
कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है...
लालसा से ही दुःख उत्पन्न होता है...
जैसा कि सर्वविदित है, किसी से प्रेम करने का अर्थ है उससे लगाव विकसित करना, और जब वह भी आपसे उतना ही प्रेम करता है तो एक बंधन बनता है। परन्तु जब आप वियोग में पड़ जाते हैं या जब प्रियजन का स्नेह क्षीण हो जाता है, तो आप दुखी हो जाते हैं और यहाँ तक कि मूर्खतापूर्ण व्यवहार भी कर सकते हैं। दुख के महान सत्य को प्रतिपादित करते हुए बुद्ध कहते हैं: अप्रिय के साथ संगति दुखदायी है, प्रिय से वियोग दुखदायी है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुखदायी है... परन्तु मेत्ता मनुष्य की एक अत्यंत शुद्ध, उदात्त अवस्था है, पारे की तरह यह किसी से भी आसक्त नहीं हो सकती। यह गुणों में एक शांत, गैर-आक्रामक, अति-विलायक है।
किसी व्यक्ति से निःसंवेदन, बिना किसी आसक्ति, बिना स्वार्थ, बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करना कठिन है; क्योंकि मनुष्य में 'मैं' की भावना प्रबल होती है। बिना किसी भेद के, बिना किसी के बीच बंधन बनाए, सभी को भाई-बहन मानकर असीम प्रेम करना लगभग असंभव प्रतीत हो सकता है, लेकिन जो थोड़ा सा भी प्रयास करते हैं, उन्हें फल अवश्य मिलता है; यह प्रयास सार्थक है। निरंतर प्रयास और दृढ़ संकल्प से ही व्यक्ति चरणबद्ध तरीके से अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।
दयालुता का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को स्वार्थी और निर्दयी लोगों से सावधान रहना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि जब कोई व्यक्ति विनम्र और ईमानदार होता है, तो दूसरे लोग उसके अच्छे गुणों का अपने स्वार्थ के लिए फायदा उठाने की कोशिश करते हैं। इसे बढ़ावा नहीं देना चाहिए। यदि कोई स्वार्थी लोगों को अपनी दयालुता और सहनशीलता का अनुचित उपयोग करने देता है , तो इससे समाज की बुराइयाँ और दुख कम होने के बजाय और बढ़ जाते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 302

(धम्मपद 296 से 301) <<<< पिछला || धम्मपद 302 || अगला >>>> (धम्मपद 303)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 302 - वज्जिपुत्तकभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 302 - वज्जिपुत्तकभिक्खु वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
दुप्पब्बाज्जम दुराभिरामम
दुरावसा घरा दुःख
dukkho' samanasamvaso
dukkhanupatitaddhagu
tasma na caddhagu siya
na ca dukkhanupatito siya.

श्लोक 302 : भिक्षु बनना कठिन है; भिक्षु साधना में सुख पाना कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना कष्टदायी है। संसार में भटकने वाला निरंतर दुःख का शिकार होता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो; बार-बार दुःख का शिकार होने वाले मत बनो।

वज्जियों के देश के भिक्षु की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (302) का उच्चारण किया, जो कि वज्जी देश के एक शहर वैशाली के एक भिक्षु के संदर्भ में था।

कत्तिका पूर्णिमा की रात को वैशाली नगर के लोगों ने नक्षत्रों का त्योहार (नक्खत्त) बड़े धूमधाम से मनाया। पूरा नगर रोशनी से जगमगा रहा था और लोग गीत-नाच-नाच कर खूब आनंद मना रहे थे। मठ में अकेले खड़े भिक्षु ने नगर की ओर देखा तो उन्हें अकेलापन और अपनी स्थिति से असंतुष्टि महसूस हुई। धीरे से उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरी स्थिति से बदतर किसी की नहीं हो सकती।" उसी क्षण वन का रक्षक उनके सामने प्रकट हुआ और बोला, "निरय (नरक) में रहने वाले प्राणी देवलोक में रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य वन में अकेले रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं।" ये शब्द सुनकर भिक्षु को उनकी सत्यता का अहसास हुआ और उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने भिक्षु की स्थिति को इतना कम क्यों समझा था।

अगले दिन सुबह-सुबह भिक्षु बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। जवाब में बुद्ध ने उसे सभी प्राणियों के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 302 : भिक्षु बनना कठिन है; भिक्षु साधना में सुख पाना कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना कष्टदायी है। संसार में भटकने वाला निरंतर दु:ख का शिकार होता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो; बार-बार दु:ख का शिकार होने वाले मत बनो।

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

वज्जियों के देश के भिक्षु की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वज्जी देश के एक शहर वैशाली के एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कत्तिका माह की पूर्णिमा की रात को वैशाली नगर के लोगों ने नक्षत्रों का त्योहार (नक्खत्त) बड़े धूमधाम से मनाया। पूरा नगर रोशनी से जगमगा रहा था और लोग गीत-नाच-नाच कर खूब मौज-मस्ती कर रहे थे। मठ में अकेले खड़े भिक्षु ने नगर की ओर देखा तो उन्हें अकेलापन और अपनी स्थिति से असंतुष्टि महसूस हुई। धीरे से उन्होंने मन ही मन कहा, "मुझसे बदतर स्थिति किसी की नहीं हो सकती।" उसी क्षण वनों के रक्षक देवता उनके सामने प्रकट हुए और बोले, " निरय लोक में रहने वाले प्राणी देवलोक में रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य वनों में अकेले रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं।" ये शब्द सुनकर भिक्षु को उनकी सत्यता का अहसास हुआ और उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने भिक्षु की स्थिति को इतना कम क्यों समझा था।

अगले दिन सुबह-सुबह भिक्षु बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। जवाब में बुद्ध ने उसे सभी प्राणियों के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताया। फिर बुद्ध ने यह श्लोक कहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 302)

दुप्पबज्जं दुरभिरामं घरा दुरवासा
दुक्खा असामानसंवासो दुक्खो अद्धगु
दुक्खानुपतितो तस्मा अद्धगु न च सिया

dukkhānupatito na ca siyā duppabbajjaṃ [duppabbajja]: संन्यासी जीवन कठिन है; durabhiramaṃ [durabhirama]: उस जीवन में आनंद लेना कठिन है; gharā : गृहस्थी; durāvāsā : उनमें रहना कठिन है; dukkhā : कष्टदायक; asamānasamvāso [asamānasamvāsa]: निराशावादी विचारों वाले लोगों के साथ रहना; dukkho [dukkha]: कष्टदायक है; addhagū : संसार के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति ; dukkhānupatito [dukkhānupatita]: कष्टों से ग्रस्त रहता है; tasmā : इसलिए; addhagū : संसार का यात्री; na ca siyā : ऐसा नहीं बनना चाहिए; दु:खानुपतितो [दु:खानुपतिता]: दु:ख से ग्रस्त व्यक्ति; ना च सिया : दु:ख से ग्रस्त व्यक्ति नहीं होना चाहिए

संन्यासी बनना कठिन है; संन्यासी जीवन में सुख पाना भी कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी होता है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना भी कष्टदायी होता है। संसार में भटकने वाला व्यक्ति निरंतर दु:ख से ग्रस्त रहता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो ; दु:ख से बार-बार ग्रस्त होने वाले मत बनो ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 302)

संसार : पुनर्जन्म का चक्र, शाब्दिक अर्थ: निरंतर भटकना। संसार वह नाम है जिससे जीवन के सागर को दर्शाया जाता है, जो निरंतर ऊपर-नीचे होता रहता है, और जन्म लेने, वृद्ध होने, दुख भोगने और मृत्यु के इस निरंतर चक्र का प्रतीक है। अधिक सटीक रूप से कहें

तो, संसार पंच-खंड संयोजनों की अटूट श्रृंखला है , जो पल-पल बदलती रहती है और अनंत काल तक एक के बाद एक चलती रहती है। इस संसार का एक जीवनकाल मात्र एक छोटा और क्षणभंगुर अंश है; इसलिए सार्वभौमिक दुख के प्रथम महान सत्य को समझने के लिए, व्यक्ति को संसार पर , पुनर्जन्मों की इस भयावह श्रृंखला पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, न कि केवल एक जीवनकाल पर, जो निश्चित रूप से कभी-कभी कम पीड़ादायक हो सकता है।
बुद्ध ने कहा: हे भिक्षुओं, यह निरंतर चक्र (संसार) का कोई प्रत्यक्ष अंत नहीं है, और अज्ञान (अविज्जा) में डूबे और प्यास (इच्छा, तन्हा) के बंधनों में जकड़े प्राणियों के भटकने और इधर-उधर भागने का पहला आरंभ प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता...
और आगे, जीवन की निरंतरता का मुख्य कारण अज्ञान है, इस विषय पर बुद्ध ने कहा: अज्ञान (अविज्जा) की पहली शुरुआत को इस तरह से नहीं समझा जाना चाहिए कि यह मान लिया जाए कि एक निश्चित बिंदु के बाद कोई अज्ञान नहीं था।
इसलिए, यह कहना संभव नहीं है कि एक निश्चित बिंदु से परे जीवन का अस्तित्व ही नहीं था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 303

(धम्मपद 302) <<<< पिछला || धम्मपद 303 || अगला >>>> (धम्मपद 304)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 303 - चित्तागहापति वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 303 - चित्तागहापति वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Saddho silena sampanno
yaso bhogasamappito
यम यम पदेसम भजाति
tattha tattheva pujito.

श्लोक 303 : जो व्यक्ति विश्वास और सद्‌गुण से परिपूर्ण है, और प्रसिद्धि और धन से भी संपन्न है, वह जहाँ भी जाता है, आदरपूर्वक उसका सम्मान किया जाता है।

गृहस्थ चित्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने मच्चिकासंडा नगर के गृहस्थ चित्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (303) कहा।
चित्त ने पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनकर अनागामी मार्ग और फल की प्राप्ति की। एक दिन चित्त ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए पाँच सौ रथों में भोजन और अन्य भेंट लादकर तीन हजार अनुयायियों के साथ सावत्थी के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने प्रतिदिन एक योजन की यात्रा की और एक महीने के अंत में सावत्थी पहुँचे। तब चित्त अपने पाँच सौ साथियों के साथ जेतवन मठ की ओर चल पड़े। जब वे बुद्ध को प्रणाम कर रहे थे, तभी चमत्कारिक रूप से ऊपर से वर्षा की तरह फूलों की वर्षा हुई। चित्त पूरे एक महीने तक मठ में रहे, बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा भोजन देते रहे और अपने तीन हजार साथियों को भी भोजन कराते रहे। इस पूरे समय देव (देवदूत) उनके भोजन और अन्य भेंटों की आपूर्ति करते रहे।
अपनी वापसी यात्रा की पूर्व संध्या पर, चित्त ने अपने साथ लाई हुई सभी वस्तुओं को मठ के कमरों में बुद्ध को भेंट के रूप में रख दिया। तब देवताओं (देवदूतों) ने खाली रथों को विभिन्न प्रकार की अनमोल वस्तुओं से भर दिया। आदरणीय आनंद ने चित्त के धन को इस प्रकार बढ़ते हुए देखकर बुद्ध से पूछा, “आदरणीय! क्या चित्त को ये सभी धन केवल आपके पास आने पर ही प्राप्त होते हैं? क्या उन्हें कहीं और जाने पर भी इसी प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त होता है?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “आनंद, यह शिष्य आस्था और उदारता से परिपूर्ण

है; वह गुणी भी है और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका आदर होता है और उस पर धन की वर्षा होती है।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 303 : जो व्यक्ति विश्वास और सद्‌गुण से परिपूर्ण है, और प्रसिद्धि और धन से भी संपन्न है, वह जहाँ भी जाता है, आदरपूर्वक उसका सम्मान किया जाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गृहस्थ चित्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मच्चिकासन्द नगर के गृहस्थ चित्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
चित्त ने पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनकर अनागामी मार्ग और फल की प्राप्ति की । एक दिन चित्त ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए पाँच सौ रथों में भोजन और अन्य भेंट लादकर तीन हजार अनुयायियों के साथ सावत्थी के लिए प्रस्थान किया। वे प्रतिदिन एक योजन (लीग) की गति से यात्रा करते हुए एक महीने के अंत में सावत्थी पहुँचे। तब चित्त अपने पाँच सौ साथियों के साथ जेतवन मठ की ओर चल पड़े। जब वे बुद्ध को प्रणाम कर रहे थे, तभी चमत्कारिक रूप से ऊपर से वर्षा की तरह फूलों की वर्षा हुई। चित्त पूरे एक महीने तक मठ में रहे, बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देते रहे और अपने तीन हजार साथियों को भी भोजन कराते रहे। इस पूरे समय देवता उनके भोजन और अन्य भेंटों की आपूर्ति करते रहे।
अपनी वापसी यात्रा की पूर्व संध्या पर, चित्त ने अपने साथ लाई हुई सभी वस्तुओं को मठ के कमरों में बुद्ध को भेंट के रूप में रख दिया। तब देवताओं ने खाली रथों को विभिन्न प्रकार की अनमोल वस्तुओं से भर दिया। पूज्य आनंद ने चित्त के धन को इस प्रकार बढ़ते हुए देखकर बुद्ध से पूछा, “पूज्यवर! क्या चित्त को ये सभी धन केवल आपके पास आने पर ही प्राप्त होते हैं? क्या उन्हें कहीं और जाने पर भी इसी प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त होता है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “आनंद, यह शिष्य आस्था और उदारता से परिपूर्ण है; वह गुणी भी है और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका आदर होता है और उस पर धन की वर्षा होती है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 303)
साधो सिलेना संपन्नो यशोभोग समाप्पितो
यं यं पदेसं भजति तत्थ तथा एव पूजितो
साधो [सद्ध]: जो समर्पित है; सिलेना : अनुशासन के साथ; संपन्नो [संपन्ना]: सुशोभित; यशोभोग समप्पितो [समप्पिता]: महिमा और धन से संपन्न; यं यं पदेसं [पदेसा]: जो भी स्थान हो; भजति : वह बार-बार आता है; तत्थ तत्थ एव : उन सभी स्थानों में; पूजितो [पूजिता]: वह पूजनीय है
जो व्यक्ति आस्था और सद्‌गुणों से परिपूर्ण हो, और साथ ही प्रसिद्धि और धन का भी स्वामी हो, वह जहाँ भी जाता है, आदर का पात्र बनता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 303)
श्रद्धा : विश्वास, आस्था। बौद्ध भिक्षु को आस्थावान तब कहा जाता है जब वह बुद्ध के ज्ञानोदय या तीन रत्नों (तिरत्न) में विश्वास रखता है और उनकी शरण लेता है । उसकी आस्था तर्कसंगत और समझ पर आधारित होनी चाहिए ; और उसे अपनी आस्था के विषय की जांच-पड़ताल करने के लिए कहा जाता है। बौद्ध की आस्था जिज्ञासा की भावना के विपरीत नहीं होती, और संदेह करने योग्य विषयों पर संदेह स्वीकार्य है तथा उनकी जांच को प्रोत्साहित किया जाता है। आस्था की क्षमता (सद्धिन्द्रिय) को ज्ञान की क्षमता (पञ्ञिन्द्रिय , इंद्रिय-समत्त) के साथ संतुलित किया जाना चाहिए। कहा जाता है: जो भिक्षु समझदार होता है , वह अपनी आस्था को उसी समझ के अनुसार स्थापित करता है। ज्ञान और समझ के माध्यम से, आस्था अपने अनुभव पर आधारित एक आंतरिक निश्चितता और दृढ़ विश्वास बन जाती है।
विश्वास को सभी स्वस्थ अवस्थाओं का बीज कहा जाता है क्योंकि, टीकात्मक व्याख्याओं के अनुसार, यह मन को आत्मविश्वास (ओकप्पना , पसादा) और दृढ़ संकल्प (अधिमोक्खा) से प्रेरित करता है, ताकि संसार के सैलाब को पार करने के लिए आगे बढ़ा जा सके ।
पवित्रता के प्रथम चरण, धारा-प्रवेश (सोतापत्ति , अरियापुग्गला) तक पहुँचने पर अविचल विश्वास प्राप्त होता है, जब तीन रत्नों में संशयपूर्ण संदेह (विसीकिच्चा) का बंधन धारा-विजेता (सोतापन्नसस अंगानि) के विशिष्ट गुणों में से एक होता है।
आस्था एक मानसिक तत्व है, जो सभी कर्मिक रूप से सद्‌गुणों और उनसे संबंधित तटस्थ चेतना में विद्यमान है। यह पुण्य के चार स्रोतों (पुण्णाधारो) में से एक है, पाँच आध्यात्मिक शक्तियों (इन्द्रिय) में से एक है, आध्यात्मिक शक्तियों (बल) में से एक है, प्रयास के तत्वों (पधानियंग) में से एक है और सात रत्नों (धन) में से एक है।

(धम्मपद 303) <<<< पिछला || धम्मपद 304 || अगला >>>> (धम्मपद 305)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 304 - कुलसुभद्दा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 304 - कुलसुभद्दा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Dure santo pakasenti
हिमवंतोवा पब्बाटो
asantettha na dissanti
rattim khitta yatha sara.

श्लोक 304 : हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में चलाए गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

चुलसुभद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की पुत्री चुलसुभद्दा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (304) कहा।

अनाथपिंडिका और उगा के धनी उगा, दोनों ने बचपन में एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की। उगा का एक पुत्र और अनाथपिंडिका की एक पुत्री थी। जब उनके बच्चे बड़े हुए, तो उगा ने अनाथपिंडिका से अपने दोनों बच्चों के विवाह के लिए सहमति मांगी। विवाह संपन्न हुआ और अनाथपिंडिका की पुत्री चुलसुभद्दी को अपने सास-ससुर के घर में रहना पड़ा। उगा और उनका परिवार गैर-बौद्ध तपस्वियों के अनुयायी थे। कभी-कभी वे उन गैर-बौद्ध तपस्वियों को अपने घर आमंत्रित करते थे। ऐसे अवसरों पर, चुलसुभद्दी के सास-ससुर उनसे उन नग्न तपस्वियों को प्रणाम करने के लिए कहते थे, लेकिन वह हमेशा ऐसा करने से इनकार कर देती थीं। इसके बजाय, वह अपनी सास को बुद्ध और उनके अद्वितीय गुणों के बारे में बताती थीं।

चुलसुभद्दा की सास, जब उनकी बहू ने उन्हें बुद्ध के बारे में बताया, तो उनके दर्शन के लिए बहुत उत्सुक थीं। उन्होंने चुलसुभद्दा को बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने की अनुमति भी दे दी। इसलिए, चुलसुभद्दा ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए भोजन तैयार किया और अन्य भेंटें एकत्र कीं। फिर वे घर के ऊपरी भाग में गईं और जेतवन मठ की ओर देखते हुए, उन्होंने फूल और अगरबत्ती अर्पित की और बुद्ध के अद्वितीय गुणों और सद्गुणों का चिंतन किया। फिर उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की, "आदरणीय गुरुदेव! कृपया आप अपने शिष्यों के साथ कल हमारे घर आएँ। मैं, आपकी समर्पित गृहस्थ शिष्या, आपको अत्यंत आदरपूर्वक आमंत्रित करती हूँ। कृपया इस संकेत और हावभाव से मेरा यह निमंत्रण आपको ज्ञात हो जाए।" फिर उन्होंने आठ मुट्ठी चमेली लीं और उन्हें आकाश में उछाल दिया। फूल हवा में तैरते हुए जेतवन मठ तक पहुँचे और उस सभा-महल की छत से लटक गए जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे। प्रवचन के अंत में, चुलसुभद्दा के पिता अनाथपिंडिका ने बुद्ध के पास आकर उन्हें अगले दिन अपने घर में भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। लेकिन बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होंने चुलसुभद्दा का निमंत्रण अगले दिन के लिए पहले ही स्वीकार कर लिया है।

बुद्ध के उत्तर से अनाथपिंडिका व्याकुल हो गए और बोले, "परन्तु, पूज्यवर! चुलसुभद्दा यहाँ श्रावस्ती में नहीं रहतीं; वे यहाँ से एक सौ बीस योजन दूर उगा में रहती हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, यह सत्य है, परन्तु अच्छे लोग भले ही दूर रहते हों, वे प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित प्रतीत होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 304 : हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में चलाए गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

अगले दिन बुद्ध चुलसुभद्द के ससुर उगा के घर आए। इस यात्रा में बुद्ध के साथ पाँच सौ भिक्षु भी थे; वे सभी देवों के राजा सक्का के आदेश से निर्मित अलंकृत नौकाओं में वायु के मार्ग से आए थे। बुद्ध को उनकी वैभवशाली और तेजस्वी अवस्था में देखकर चुलसुभद्द के ससुर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया। इसके बाद, अगले सात दिनों तक उगा और उनके परिवार ने बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी और अन्य भेंटें अर्पित कीं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चूलसुभद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनाथपिंडिक की पुत्री चूलसुभद्दा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अनाथपिंडिका और उगा के धनी उगा, दोनों ने युवावस्था में एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की। उगा का एक पुत्र और अनाथपिंडिका की एक पुत्री हुई। जब उनके बच्चे वयस्क हुए, तो उगा ने अनाथपिंडिका से अपने दोनों बच्चों के विवाह के लिए सहमति मांगी। विवाह संपन्न हुआ और अनाथपिंडिका की पुत्री चूलसुभद्दा को अपने सास-ससुर के घर में रहना पड़ा। उगा और उनका परिवार गैर-बौद्ध तपस्वियों के अनुयायी थे। कभी-कभी वे उन गैर-बौद्ध तपस्वियों को अपने घर आमंत्रित करते थे। ऐसे अवसरों पर, चूलसुभद्दा को उन नग्न तपस्वियों को प्रणाम करने के लिए कहा जाता था, लेकिन वह हमेशा ऐसा करने से इनकार कर देती थी। इसके बजाय, वह अपनी सास को बुद्ध और उनके अद्वितीय गुणों के बारे में बताती थी।

चूलसुभद्दा की सास, जब उनकी बहू ने उन्हें बुद्ध के बारे में बताया, तो उनके दर्शन के लिए बहुत उत्सुक थीं। उन्होंने चूलसुभद्दा को बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने की अनुमति भी दे दी। चूलसुभद्दा ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए भोजन तैयार किया और अन्य भेंटें एकत्र कीं। फिर वे घर के ऊपरी भाग में गईं और जेतवन मठ की ओर देखते हुए, उन्होंने फूल और अगरबत्ती अर्पित की और बुद्ध के अद्वितीय गुणों और सद्गुणों का चिंतन किया। इसके बाद उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की, "आदरणीय! कृपया कल अपने शिष्यों के साथ हमारे घर आइए। मैं, आपकी समर्पित गृहस्थ शिष्या, आपको अत्यंत आदरपूर्वक आमंत्रित करती हूँ। मेरी यह निमंत्रण इस प्रतीक और हावभाव से आपको ज्ञात हो जाए।" फिर उन्होंने चमेली के आठ मुट्ठी भर फूल लिए और उन्हें आकाश में उछाल दिया। फूल हवा में तैरते हुए जेतवन मठ तक पहुँचे और उस सभा कक्ष की छत से लटकने लगे जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे।

प्रवचन के अंत में, चूलसुभद्दा के पिता अनाथपिंडिक, बुद्ध के पास अगले दिन अपने घर में भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने आए। लेकिन बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होंने चूलसुभद्दा का निमंत्रण अगले दिन के लिए पहले ही स्वीकार कर लिया है। बुद्ध के इस उत्तर से अनाथपिंडिक व्याकुल हो गए और बोले, "परन्तु पूज्यवर! चूलसुभद्दा यहाँ सावत्थी में नहीं रहतीं; वे यहाँ से एक सौ बीस योजन दूर उगा में रहती हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, यह सत्य है, परन्तु भले ही अच्छे लोग दूर रहते हों, वे प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित प्रतीत होते हैं।"

अगले दिन बुद्ध चूलसुभद्दा के ससुर उगा के घर आए। इस यात्रा में बुद्ध के साथ कई भिक्षु भी थे; वे सभी देवों के राजा सक्का के आदेश से निर्मित अलंकृत नौकाओं में वायु के मार्ग से आए थे। बुद्ध को उनकी वैभवशाली और तेजस्वी अवस्था में देखकर चूलसुभद्दा के ससुर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया। इसके बाद, अगले सात दिनों तक उगा और उनके परिवार ने बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी और अन्य भेंटें अर्पित कीं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 304)

संतो दुरे हिमवंतो पब्बतो वा पकासेन्ति

एत्था असन्तो रत्ती खित्ता सारा यथा न दिसंति

संतो [santa]: दबे हुए लोग; दूरे : दूर से भी; हिमवंतो पब्बतो इवा : बर्फीले पहाड़ की चोटी की तरह; पकासेन्ति : स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं; एत्था : इस दुनिया में; असन्तो [asanta]: अनुशासनहीन व्यक्ति; रत्ती खिट्टा : अंधेरे में तीर से मारे गए; सर यथा : तीरों की तरह; न दिसन्ती : दिखाई नहीं देते

हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में छोड़े गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 304)

संतो ; असंतो : शांत और अनुशासनहीन। इसके अनुसार, अच्छे संत लोग हिमालय की तरह दूर से दिखाई देते हैं। दुष्ट लोग अंधेरे में छोड़े गए तीरों की तरह अदृश्य होते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 305

(धम्मपद 304) <<<< पिछला || धम्मपद 305 || अगला >>>> (धम्मपद 306)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 305 - एकविहारित्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 305 - एकविहारित्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

एकासनम एकसेय्यम
eko caramatandito
एको दमायमत्तनम
vanante ramito siya.

श्लोक 305 : जो अकेला बैठता है, अकेला लेटता है, अकेला चलता है (1), लगन से अभ्यास करता है, और अकेले ही खुद को वश में करता है, उसे जंगल में रहने में आनंद मिलेगा।

---

1. ये सभी मुद्राएँ अंतर्दृष्टि विकास की साधना से जुड़ी हैं।

एकांतप्रिय चिकित्सक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (305) का उच्चारण एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में किया जो एकांतवास में रहता था। क्योंकि वह आमतौर पर एकांतवास में रहता था, इसलिए उसे थेरा एकाविहारी के नाम से जाना जाता था।

थेरा एकविहारी अन्य भिक्षुओं के साथ ज्यादा मेलजोल नहीं रखते थे, बल्कि आमतौर पर अकेले ही रहते थे। वे अकेले ही सोते, लेटते, खड़े होते या चलते रहते थे। अन्य भिक्षुओं को एकविहारी अच्छे नहीं लगते थे और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। लेकिन बुद्ध ने उन्हें दोष नहीं दिया; बल्कि उन्होंने कहा, "जी हां, मेरे पुत्र ने अच्छा किया है; क्योंकि एक भिक्षु को एकांत और एकांत में ही रहना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 305 : जो अकेला बैठता है, अकेला लेटता है, अकेला चलता है, लगन से अभ्यास करता है और अकेले ही खुद को वश में करता है, उसे जंगल में रहने में आनंद मिलेगा।

अध्याय इक्कीस का अंत: विविध

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो एकांत में रहा

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक एकाकी भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। चूंकि वे आमतौर पर अकेले रहते थे, इसलिए उन्हें पूज्य एकाविहारी के नाम से जाना जाता था।

आदरणीय एकविहारी अन्य भिक्षुओं के साथ अधिक मेलजोल नहीं रखते थे, बल्कि आमतौर पर अकेले ही रहते थे। वे अकेले ही सोते, लेटते, खड़े होते या चलते रहते थे। अन्य भिक्षुओं को एकविहारी के बारे में बुरा लगता था और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। लेकिन बुद्ध ने उन्हें दोष नहीं दिया। इसके बजाय, उन्होंने कहा, "जी हाँ, मेरे 'पुत्र' ने अच्छा किया है; क्योंकि एक भिक्षु को एकांत और एकांत में ही रहना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 305)

एको अत्तनं दमयं एकासनं एकसेयं
अतंदितो एको कैरम वनंते रमितो सिया

एको : वह, बिल्कुल अकेला; अत्तानं दमयं [दमया]: स्वयं को अनुशासित करता है; एकासनं [एकासन]: बिल्कुल अकेला बैठता है; एकसेय्यां [एकसेय्या]: अकेले सोता है; अतंदितो [अतंदित]: आलस्य महसूस किए बिना; एको : बिल्कुल अकेला; चरम : घूमता है; वनन्ते : घने जंगल में; रमितो [रमित]: आनंद लेता है

जो व्यक्ति अकेले बैठता है, अकेले लेटता है, अकेले चलता है, लगन से अभ्यास करता है और अकेले ही स्वयं को वश में करता है, उसे जंगल में रहने का आनंद मिलेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 305)

वनन्ते रामितो : वन में आनंद लेने वाला। यह श्लोक बुद्ध ने वनवास में आनंद लेने वाले भिक्षु के गुणों की प्रशंसा करने के लिए कहा था। इस प्रकार ध्यानमग्न भिक्षु के लिए वन के विशेष गुणों का वर्णन किया गया है।

विनय ग्रंथ में दी गई व्याख्या के अनुसार , वन में गाँव और उसके परिसर के बाहर का सारा क्षेत्र समाहित होता है। अभिधम्म ग्रंथ कहता है कि गाँव की सीमा पार करने पर वन की शुरुआत होती है। परन्तु, सुत्तंत ग्रंथ की व्याख्या के अनुसार, तपस्या के संदर्भ में वनवास गाँव की सीमा से कम से कम पाँच सौ धनुष की दूरी पर स्थित होना चाहिए।

वन में रहने के निम्नलिखित लाभ हैं: वन में रहने वाला भिक्षु सहजता से ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर सकता है जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं की है, या पहले से प्राप्त एकाग्रता को और विकसित कर सकता है। इसके अलावा, उसका गुरु उससे प्रसन्न होता है, जैसा कि बुद्ध ने कहा है: मैं नागिता भिक्षु के वनवास से प्रसन्न हूँ। वन में रहने वाले का मन अवांछित वस्तुओं से विचलित नहीं होता। नैतिक शुद्धता के आवश्यक गुण से पोषित होने के कारण, वन में रहते हुए वह उन भयों से भयभीत नहीं होता जो वचन, कर्म और विचार से अशुद्ध लोगों को होते हैं; यह भयभेरव सूत्र में कहा गया है : जीवन की सभी लालसाओं को त्यागकर, वह शांति और एकांत के आनंदमय सुख का अनुभव करता है।

विशुद्धि-मग्ग के शब्दों में :

एकांतप्रिय, उदासीन, एकांत में आनंद लेने वाला,
वनवास में रहने के कारण भिक्षु बुद्ध को अपना प्रिय बना लेता है।
जंगल में अकेले रहकर वह उस आनंद को प्राप्त करता है।
जिसका स्वाद इंद्र सहित अन्य देवता भी नहीं चखते।
केवल पंसुकूला को कवच के रूप में धारण करके और अन्य तपस्वी प्रतिज्ञाओं से सुसज्जित होकर वन युद्धक्षेत्र में प्रवेश करते हुए,
वह जल्द ही मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त कर लेगा।
इसलिए बुद्धिमानों को वन जीवन का आनंद लेना चाहिए।

अध्याय 22. निरयवग्गा: नरक (306-319)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 306

———————————————————————————

(धम्मपद 305) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 306 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 307)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 306 - सुंदरीपरिबब्जिका वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 306 - सुंदरीपरिबब्जिका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Abhutavadi nirayam upeti
yo vapi katva na karomi caha
ubhopi te pecca sama bhavanti
nihinakamma manuja parattha.

श्लोक 306 : जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है, वह निरय (नरक) में जाता है; जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं की", वह भी निरय (नरक) में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में निरय (नरक) में एक समान कष्ट भोगते हैं।

घुमंतू स्त्री तपस्वी सुंदरी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (306) का उच्चारण सुंदरी नामक एक भ्रमणशील महिला तपस्वी के संदर्भ में किया।

जैसे-जैसे बुद्ध का आदर करने वालों की संख्या बढ़ती गई, गैर-बौद्ध तपस्वियों ने पाया कि उनके अनुयायियों की संख्या घटती जा रही है। इसलिए वे बुद्ध से बहुत ईर्ष्या करने लगे; उन्हें यह भी डर था कि यदि उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए कुछ नहीं किया तो स्थिति और बिगड़ जाएगी। अतः उन्होंने सुंदरी को बुलवाया और उससे कहा, "सुंदरी, तुम बहुत सुंदर और चतुर युवती हो। हम चाहते हैं कि तुम समना गौतम को शर्मिंदा करो, यह दिखाकर कि तुम्हारा उनके साथ यौन संबंध है। ऐसा करने से उनकी छवि धूमिल होगी, उनके अनुयायी कम होंगे और बहुत से लोग हमारे पास आएंगे। अपनी सुंदरता का भरपूर उपयोग करो और चतुराई से काम लो।"

सुंदरी समझ गई थी कि उससे क्या अपेक्षा की जा रही है। इसलिए, देर शाम को वह जेतवन मठ की ओर चल पड़ी। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं समना गौतम से मिलने जा रही हूँ; मैं उनके साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रहती हूँ।" यह कहकर वह गैर-बौद्ध तपस्वियों के स्थान की ओर चल पड़ी। अगले दिन सुबह तड़के वह घर लौट आई। यदि कोई उससे पूछता कि वह कहाँ से आई है, तो वह उत्तर देती, "मैं समना गौतम के साथ रात्रि बिताने के बाद सुगंधित कक्ष से आई हूँ।" वह दो दिन तक इसी तरह चलती रही। तीन दिन बीतने के बाद, उन तपस्वियों ने कुछ शराबी लोगों को सुंदरी की हत्या करने और उसके शरीर को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंकने के लिए भेजा।

अगले दिन, तपस्वियों ने परिब्बजिका सुंदरी के लापता होने की खबर फैलाई। वे राजा के पास यह मामला और अपना संदेह बताने गए। राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर, वे उसे महल ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, "हे राजा, गौतम के अनुयायियों ने इस परिब्बजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।" राजा ने उन्हें उत्तर दिया, "तो फिर, आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।" इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाते रहे, "देखो! गौतम के अनुयायियों ने क्या किया है; देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!" फिर जुलूस महल लौट आया। जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वे तपस्वी उनकी प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाने और उनकी छवि को धूमिल करने के लिए क्या कर रहे थे। लेकिन बुद्ध ने केवल इतना कहा, "मेरे पुत्रों, तुम उन्हें बस इतना ही बताओ," और फिर उन्होंने छंदों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 306 : जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है, वह निरय (नरक) में जाता है; जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं की", वह भी निरय (नरक) में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में निरय (नरक) में एक समान कष्ट भोगते हैं।

इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने तब गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया, और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने तब उन्हें आदेश दिया कि वे पूरे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करें। इसलिए वे पूरे शहर में घूमकर कहने लगे, "सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उन पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।" इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध की शक्ति, यश और सौभाग्य में बहुत वृद्धि हुई।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
घुमंतू महिला तपस्वी सुंदरी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक सुंदरी नामक एक भ्रमणशील महिला तपस्वी के संदर्भ में कहा था।
जैसे-जैसे बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखने वालों की संख्या बढ़ती गई, गैर-बौद्ध तपस्वियों ने देखा कि उनके अनुयायियों की संख्या घटती जा रही है। इसलिए वे बुद्ध से बहुत ईर्ष्या करने लगे; उन्हें यह भी डर था कि यदि उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए कुछ नहीं किया तो स्थिति और बिगड़ जाएगी। अतः उन्होंने सुंदरी को बुलवाया और उससे कहा, "सुंदरी, तुम बहुत सुंदर और चतुर युवती हो। हम चाहते हैं कि तुम समना गौतम को शर्मिंदा करो, यह दिखाकर कि तुम्हारा उनके साथ यौन संबंध है। ऐसा करने से उनकी छवि धूमिल होगी, उनके अनुयायी कम होंगे और बहुत से लोग हमारे पास आ जाएँगे। अपनी सुंदरता का भरपूर उपयोग करो और चतुराई से काम लो।"
सुंदरी समझ गई थी कि उससे क्या अपेक्षा की जा रही है। इसलिए, देर शाम को वह जेतवन मठ की ओर चल पड़ी। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं समना गौतम से मिलने जा रही हूँ; मैं उनके साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रहती हूँ।" यह कहकर वह गैर-बौद्ध तपस्वियों के स्थान की ओर चल पड़ी। अगले दिन सुबह तड़के वह घर लौट आई। यदि कोई उससे पूछता कि वह कहाँ से आई है, तो वह उत्तर देती, "मैं समना गौतम के साथ रात्रि बिताने के बाद सुगंधित कक्ष से आई हूँ।" वह दो और दिनों तक इसी तरह चलती रही। तीन दिन बीतने के बाद, उन तपस्वियों ने कुछ शराबी लोगों को सुंदरी की हत्या करने और उसके शरीर को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंकने के लिए भेजा।
अगले दिन, तपस्वियों ने परिब्बाजिका सुंदरी के लापता होने की खबर फैलाई। वे राजा के पास यह मामला और अपना संदेह बताने गए। राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर, वे उसे महल ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, "हे राजा, गौतम के अनुयायियों ने परिब्बाजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।" राजा ने उत्तर दिया, "तो फिर आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।" इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाते रहे, "देखो गौतम के अनुयायियों ने क्या किया है! देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!" फिर जुलूस महल लौट आया। जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वे तपस्वी उनकी प्रतिष्ठा को धूमिल करने और उनकी छवि को धूमिल करने के लिए क्या कर रहे हैं। लेकिन बुद्ध ने केवल इतना कहा, "मेरे पुत्रों, तुम उन्हें बस इतना ही बता दो," और फिर उन्होंने छंदों में इस प्रकार कहा:
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 306)
भूतवादी निरायं उपेति पि च यो कत्वा न करोमि इति च अहा
निहिनकम्मा ते उभो मनुजा आपि पेक्का परत समा भवन्ति
अभूतवादी : जो झूठ बोलता है; अपि यो कत्वा : और जिसने पाप किए हैं; न करोमीति : कहेगा कि मैंने नहीं किया; आह : यदि वह ऐसा कहता है; निरयं उपेति : (वह) नरक में जाएगा; निहीनकम्मा : भ्रष्ट कर्मों का; ते उभो आपि मनुजा : ये दोनों प्रकार के व्यक्ति; पेच्च : इस लोक से विदा होकर; परत्थ : परलोक में; समा भवन्ति : एक समान हो जाते हैं। जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है वह नरक में जाता है (निरय); जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं किया", वह भी नरक में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में (नरक में) एक समान कष्ट भोगते हैं।
इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने तब गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया, और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने तब उन्हें पूरे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करने का आदेश दिया। इसलिए वे पूरे शहर में घूमकर कहने लगे, "सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उन पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।" इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध की शक्ति, यश और सौभाग्य में बहुत वृद्धि हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 307

———————————————————————

(धम्मपद 306) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 307 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 308)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 307 - दुकारिताफलापिलिता वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 307 - दुकारितफलापिलिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

कसवकांथा बहवो
पापधम्मा असन्नता
papa papehi kammehi
nirayam te upapajjare.

श्लोक 307 : बहुत से पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं हैं, अपने बुरे कर्मों के कारण निरय/नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा।

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ पेटों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (307) कहा।

एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, थेरा लखाना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने कुछ पेटा देखे। मठ लौटने पर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में थेरा लखाना को बताया कि उन्होंने एक पेटा को देखा है जो केवल कंकाल मात्र था। फिर उन्होंने बताया कि उन्होंने पाँच भिक्षुओं को भी देखा है जिनके शरीर आग की लपटों में जल रहे थे। उन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, "कस्सपा बुद्ध के समय में, उन भिक्षुओं ने बहुत बुरे कर्म किए थे। उन बुरे कर्मों के कारण उन्हें निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा और अब वे पेटा के रूप में अपने शेष कष्टों को भोग रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 307 : बहुत से पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं हैं, अपने बुरे कर्मों के कारण निरय/नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा।

वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ प्रेतों (भूतों) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पहाड़ी से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने कुछ भूत देखे। मठ लौटने पर पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में पूज्य लखन को बताया कि उन्होंने एक भूत देखा है जो केवल कंकाल था। उन्होंने आगे बताया कि उन्होंने पाँच भिक्षुओं को भी देखा है जिनके शरीर आग की लपटों में जल रहे थे। उन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, "कस्सपा बुद्ध के समय में उन भिक्षुओं ने बहुत बुरे कर्म किए थे। उन बुरे कर्मों के कारण उन्हें नरक में कष्ट भोगना पड़ा और अब वे भूतों के रूप में अपने शेष कष्ट भोग रहे हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 307)

कसावकंठ पापधम्म असंन्याता बहावो
ते पापा पापेहि कम्मेहि निरयं उपपज्जरे

कसावकंठ : उनके गले में भगवा वस्त्र के साथ; पापा धम्म : पापी पुरुष; असंन्याता : अनियंत्रित लोग; बहावो [बहावा]: अनेक हैं; ते पापा : ये पापी; पापेहि काम्मेहि : उनके पापपूर्ण कृत्यों के कारण; निरयं [niraya]: नरक में; उपपज्जरे : पैदा होते हैं

बहुत से ऐसे पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए रहते हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट होता है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं होते, अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 307)

इस कथा में पूज्य महा मोग्गलाना के एक साथी का उल्लेख है, जिनका नाम पूज्य लखन था। पूज्य महा मोग्गलाना के इस मित्र और साथी ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के युग में पुण्य कर्म किए। तब से उन्होंने बहुत पुण्य अर्जित किया और अंततः लखन नाम से ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया। उनके अनुयायी उरुवेला काश्यप और उनके दो भाई गया और नदी थे। उनके धर्म परिवर्तन के बाद, वे भी बाद में अरहत बन गए। वे महा मोग्गलाना के मित्र और साथी थे। अपनी यात्रा के दौरान, उनका सामना गिज्जकूट पर्वत पर एक अमानवीय आत्मा से हुआ, जो विपत्ति (प्रेत लोक) की चार अवस्थाओं में से एक में थी ।

अन्य अवस्थाएँ नरक, पशु और राक्षस अवस्थाएँ थीं। उसका रूप कौवे जैसा था और वह ज्वालाएँ उगल रहा था। अपने कष्टों का कारण पूछे जाने पर उसने कहा कि एक समय वह रॉबिन पक्षी के परिवार में एक पक्षी के रूप में जन्मा था। कश्यप बुद्ध के समय, जब लोग भिक्षुओं को भिक्षा दे रहे थे, तभी यह पक्षी अचानक उस दिशा में उड़ा और तीन मुट्ठी चावल छीनकर उड़ गया। यह उसी कर्म का फल था।

एक अन्य अवसर पर, उसी स्थान पर, जब वही जोड़ा जा रहा था, महा मोग्गलाना ने केवल एक सर्प को देखा जिसकी विशाल लंबाई ज्वालाओं से घिरी हुई थी, जिसका चेहरा मनुष्य जैसा और मुंह सूअर जैसा था। पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन बुद्ध से मिलने तक उन्होंने अपनी मुस्कान का कारण नहीं बताया। पूज्य लक्खना ने अवसर की प्रतीक्षा की और फिर पूछा। पूज्य मोग्गलाना ने समझाया कि उस प्राणी के कष्टों के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी, उन्होंने राहत की सांस ली और मुस्कुराए, क्योंकि उनके लिए अब ऐसे कष्टों का सामना करना संभव नहीं था। बुद्ध ने सहमति व्यक्त की और कहा कि उन्होंने भी गया में ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसी सर्प को देखा था, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा क्योंकि संदेह करने वाले लोग थे। बुद्ध जो प्रकट करते हैं, उस पर विश्वास न करना पाप होगा। इसके अलावा, बुद्ध का वचन समय पर होता है। यह उन वैज्ञानिक विकासों पर भी लागू होता है जिनके बारे में बुद्ध मौन रहे। अतः यह आवश्यक नहीं है कि बुद्ध उन्हें नहीं जानते थे। इसके अलावा, वे उनके मिशन का हिस्सा नहीं थे। स्वयं बुद्ध द्वारा प्रमाणित यह प्रमाण है। लखन संघ के आठ महान अरहतों में से एक थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 308

(धम्मपद 307) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 308 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 309 और 310)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 308 - वग्गुमुदातिरिया भिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 308 - वग्गुमुदातिरिया भिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Seyyo ayogulo bhutto
tatto aggisikhupamo
yance bhunjeyya dussilo
रत्थपिंडमासन्नतो.

श्लोक 308 : यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन (शील) और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।

वाग्गुमुदा नदी के किनारे रहने वाले भिक्षुओं की कहानी

वैशाली के पास महावन वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (308) का उच्चारण किया, जो कि उन भिक्षुओं के संदर्भ में है जिन्होंने वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु के 3 महीने) वाग्गुमुदा नदी के किनारे बिताई थी।

उस समय वज्जी लोगों के देश में अकाल पड़ा हुआ था। इसलिए, उन्हें पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के लिए, उन भिक्षुओं ने लोगों को यह आभास कराया कि उन्होंने मग्गा और फला अवस्था प्राप्त कर ली है, जबकि वास्तव में उन्होंने ऐसा नहीं किया था। गाँव के लोगों ने उन पर विश्वास किया और उनका सम्मान करते हुए उन्हें बहुत सारा भोजन दान कर दिया, अपने लिए बहुत कम छोड़ा।
वर्षा ऋतु की समाप्ति पर, प्रथा के अनुसार, देश के सभी भागों से भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। वाग्गुमुदा नदी के किनारे से भी भिक्षु आए। वे स्वस्थ और तंदुरुस्त दिख रहे थे, जबकि अन्य भिक्षु पीले और थके हुए लग रहे थे। बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से बात की और वर्षा ऋतु के दौरान उनके हालचाल पूछे। वाग्गुमुदा नदी के किनारे से आए भिक्षुओं से बुद्ध ने विशेष रूप से पूछा कि क्या अकाल के कारण उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई हुई। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।
बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं ने भिक्षा के रूप में पर्याप्त भोजन कैसे जुटाया था। लेकिन वे उन्हें इस विषय पर कुछ सिखाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पूछा, "वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान आपने इतनी अच्छी तरह से भिक्षा कैसे जुटाई?" तब भिक्षुओं ने उन्हें बताया कि उन्होंने आपस में चर्चा की और तय किया कि वे एक-दूसरे से इस प्रकार बात करें कि गाँव वालों को लगे कि उन्होंने वास्तव में ध्यान, मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। तब बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने वास्तव में ध्यान, मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें फटकारा।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 308 : यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन (शील) और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
वग्गुमुदा नदी के किनारे रहने वाले भिक्षु
वैशाली के पास महावन वन में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उन भिक्षुओं के संदर्भ में कहा था जो वर्षा ऋतु में वग्गुमुदा नदी के किनारे समय बिताते थे।
उस समय वज्जी लोगों के देश में अकाल पड़ा हुआ था। इसलिए, लोगों को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के लिए, उन भिक्षुओं ने लोगों को यह आभास कराया कि उन्होंने मग्गा और फला प्राप्त कर लिया है, जबकि वास्तव में उन्होंने ऐसा नहीं किया था। गाँव के लोगों ने उन पर विश्वास किया और उनका सम्मान करते हुए, उन्हें बहुत सारा भोजन दान कर दिया और अपने लिए बहुत कम छोड़ा।
वर्षा ऋतु (वस्सा) के अंत में, प्रथा के अनुसार, देश के सभी भागों से भिक्षु बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वग्गुमुदा नदी के किनारे से भी भिक्षु आए। वे स्वस्थ और तंदुरुस्त दिख रहे थे, जबकि अन्य भिक्षु पीले और थके हुए लग रहे थे। बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से बात की और पूछा कि वर्षा ऋतु में उनका कैसा हाल रहा। वग्गुमुदा नदी के किनारे से आए भिक्षुओं से बुद्ध ने विशेष रूप से पूछा कि क्या अकाल के कारण उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई हुई। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।
बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं ने भिक्षा के लिए पर्याप्त भोजन कैसे जुटाया था। लेकिन वे उन्हें इस विषय पर कुछ सिखाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पूछा, “वर्षा ऋतु में आप इतनी अच्छी तरह से भिक्षा कैसे जुटा पाए?” तब भिक्षुओं ने उन्हें बताया कि उन्होंने आपस में चर्चा की और यह निर्णय लिया कि वे एक-दूसरे से इस प्रकार बात करें कि ग्रामीणों को लगे कि उन्होंने वास्तव में ध्यान , मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं । तब बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने वास्तव में ध्यान , मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं ? जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें फटकारा और यह श्लोक सुनाया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 308)
आसननतो दुस्सिलो सी यान रथपिंडं भुञ्जेय्य ,
तत्थो अग्गीसिखुपमो , अयोगुओ भुट्टो सेय्यो
asaññato [asaññata]: अनुशासनहीन; dussīlo [dussīla]: सद्गुणों से रहित; ce : यदि; yañ : किसी कारण से; ratthapiṇḍaṃ [ratthapiṇḍa]: लोगों द्वारा दिया गया भोजन; bhuñjeyya : खाने के लिए; tattho [tattha]: गर्म; aggisikhūpamo [aggisikhūpama]: ज्वाला के समान; ayoguḷo [ayoguḷa]: लोहे की गेंद; bhutto [bhutta]: खाना; seyyo [seyya]: बेहतर है
यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन (सीला) है और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 308)
वर्षा : यह श्लोक बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में कहा था, जिन्होंने वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु) वाग्गुमुदा नदी के किनारे बिताई थी।

प्राचीन काल में, आज की ही तरह, भारत में तीन नियमित ऋतुएँ प्रचलित थीं, अर्थात् वर्षा , हेमंत और ग्रीष्म । वर्षा ऋतु आषाढ़ से शुरू होकर आषाढ़ तक , यानी लगभग जुलाई के मध्य से नवंबर के मध्य तक चलती है।
वर्षा ऋतु के दौरान , मूसलाधार बारिश के कारण नदियाँ और नाले अक्सर उफान पर आ जाते हैं, सड़कें जलमग्न हो जाती हैं, संचार व्यवस्था ठप हो जाती है और लोग आमतौर पर अपने घरों और गाँवों में ही सिमट जाते हैं तथा पिछली ऋतुओं में एकत्रित किए गए भोजन पर ही जीवन यापन करते हैं। इस दौरान तपस्वियों के लिए स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए उपदेश देना कठिन हो जाता है। वनस्पतियों और जीव-जंतुओं की इतनी अधिक विविधता उत्पन्न हो जाती है कि लोग अनजाने में उन्हें नष्ट किए बिना इधर-उधर नहीं जा सकते। इसलिए, बुद्ध के शिष्यों सहित सभी तपस्वी अपने भ्रमण को स्थगित कर देते थे और एकांत स्थानों में विश्राम करते थे। आमतौर पर बुद्ध और उनके शिष्यों को वर्षा ऋतु में किसी मठ या एकांत उद्यान में रहने के लिए आमंत्रित किया जाता था। कभी-कभी वे वनों में भी विश्राम करते थे। इन वर्षा ऋतुओं में लोग बुद्ध के दर्शन करने के लिए उनके पास उमड़ पड़ते थे और इस प्रकार उनकी उपस्थिति का भरपूर लाभ उठाते थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 309,310

———————————————————————

(धम्मपद 308) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 309 और 310 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 311, 312 और 313)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 309 और 310 - ख़ेमकसेट्ठिपुत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 309 और 310 - खेमकसेट्ठिपुत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Cattari thanani naro pamatto
अपज्जति परदरुपसेवी
अपुन्नलभम ना निकमसेय्यम
निंदम ततीयम् निरायम् चतुत्थम्।
Apunnalahho ca gati ca papika
भितास्सा भिताया रति च ठोकिका
raja ca dandam garukam paneti
tasma naro paradaram na seve.

———————————————————————

श्लोक 309 : जो व्यक्ति उचित आचरण के प्रति असावधान रहता है और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ आती हैं: कर्मों का संचय, नींद में खलल, निंदा और निरय/नरक में कष्ट।

———————————————————————

श्लोक 310 : इस प्रकार, पुण्य का संचय होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है। पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

———————————————————————

एक धनी व्यक्ति के पुत्र खेमाका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (309) और (310) का उच्चारण एक धनी व्यक्ति के पुत्र खेमक के संदर्भ में किया। खेमक प्रसिद्ध अनाथपिंडिका का भतीजा भी था।
खेमाका धनवान होने के साथ-साथ बेहद सुंदर भी था और स्त्रीयाँ उसकी ओर आकर्षित होती थीं। वे उसका विरोध नहीं कर पाती थीं और स्वाभाविक रूप से उसके जाल में फँस जाती थीं। खेमाका ने निर्भीक व्यभिचार किया। राजा के आदमियों ने उसे तीन बार यौन दुराचार के आरोप में पकड़ा और राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि खेमाका अनाथपिंडिका का भतीजा था। इसलिए अनाथपिंडिका स्वयं अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने खेमाका को यौन दुराचार की नीचता और उसके गंभीर परिणामों के बारे में समझाया।

श्लोक 309 : जो व्यक्ति उचित आचरण के प्रति असावधान रहता है और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ आती हैं: कर्मों का संचय, नींद में खलल, निंदा और निरय/नरक में कष्ट।

श्लोक 310 : इस प्रकार, पुण्य का संचय होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है। पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गिल्ड लीडर खेमा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने धनी व्यक्ति के पुत्र खेमा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। खेमा प्रसिद्ध अनाथपिंडिक का भतीजा भी था।
खेमा धनवान होने के साथ-साथ बेहद सुंदर भी था और स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होती थीं। वे उसका विरोध नहीं कर पाती थीं और स्वाभाविक रूप से उसके वश में हो जाती थीं। खेमा ने निर्भीक होकर व्यभिचार किया। राजा के आदमियों ने उसे तीन बार यौन दुराचार के आरोप में पकड़ा और राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु कोसल के राजा पसेनादि ने कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि खेमा अनाथपिंडिक का भतीजा था। इसलिए अनाथपिंडिक स्वयं अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने खेमा को यौन दुराचार की नीचता और उसके गंभीर परिणामों के बारे में समझाया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 309)
परदारूपसेवि पमत्तो नरो अपुनलाभं न निकमसेयम्
तत्यां निन्दं चतुत्थं निरयं चत्तारि ठानानि अपज्जति
परदारूपसेवी : वह व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के पास जाता है; पमट्टो [पमट्टा]: विचारहीन; नारो : मनुष्य; अपुन्नलाभम् [अपुन्नलाभ]: पाप का अर्जन; न निकमसेयम् [निकमसेय]: आरामदायक नहीं होना, पर्याप्त नींद; ततियां [ततिया]: तीसरा; निंदां [ninda]: शर्म; कटुत्थम् [कटुत्था]: चौथा; निरयं [niraya]: नरक में जन्म लेना; कत्तारि ठानानि : इन चार रूपों को; आपज्जति : जाएगा
जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे किसी दूसरे पुरुष की पत्नी के पास जाता है, उसे चार बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं। पहला, उसे अमन की नींद नहीं आती। तीसरा, उसकी बदनामी होती है। चौथा, वह नरक में जन्म लेता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 309)
यह बात बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय कही थी, और उन्होंने यह बात अनाथपिंडिका के भतीजे और कोषाध्यक्ष के पुत्र खेमा के संदर्भ में कही थी।
उनका पूर्व कर्म क्या था? कहा जाता है कि बुद्ध कश्यप के युग में वे एक कुशल पहलवान थे, और एक दिन उन्होंने बुद्ध के स्वर्ण मंदिर पर दो रंगीन झंडे गाड़ दिए और यह हार्दिक कामना की, 'मेरे सगे-संबंधियों को छोड़कर, जो भी स्त्री मुझे देखे, वह मुझसे प्रेम करने लगे।' यही उनका पूर्व कर्म था। इसी कारण, जिन-जिन स्थानों पर उनका पुनर्जन्म हुआ, वहाँ उन्हें देखकर अन्य पुरुषों की पत्नियाँ अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पाईं।
खेमा अत्यंत सुंदर युवक बताया जाता है। उसे देखने वाली सभी स्त्रियाँ वासना से इतनी व्याकुल हो जाती थीं कि वे अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पाती थीं। खेमा अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने का आदी था। एक रात राजा के आदमियों ने उसे बंदी बना लिया और राजा के सामने पेश किया। राजा ने सोचा, "मुझे इस महान कोषाध्यक्ष पर शर्म आती है।" इसलिए बिना कुछ कहे उसे जाने दिया। परन्तु खेमा ने अपनी बुरी आदतों को नहीं छोड़ा। दूसरी और तीसरी बार राजा के आदमियों ने उसे बंदी बना लिया और राजा के सामने पेश किया, और हर बार राजा ने उसे जाने दिया। जब महान कोषाध्यक्ष को सब कुछ पता चला, तो वह अपने भतीजे के साथ बुद्ध के पास गया, उससे अपनी कहानी सुनाई और बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, इस युवक को धर्म का उपदेश दीजिए।" तब बुद्ध ने उसे उपरोक्त श्लोक सुनाकर अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने के दुराचार का अर्थ समझाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 310)
अपुन्नलाभो च पपीका गति च भितस्सा भिताया रति च ठोकिका
राजा च गरुकं दण्ड पनेति तस्मा नरो पारदारं न सेवे
अपुञ्ञलाभो च : पाप करना; पापीका च गति : पापियों के लिए योग्य नीच अवस्था (उसका भाग्य होगा); भीतस्स : एक भयभीत पुरुष का; भीताय : और एक भयभीत स्त्री का; रती : आलिंगन; ठोकिका : बहुत हल्का; राजा च : राजा भी; गरुकं दण्डं [दण्ड]: कठोर दंड; पणेति : लगाएगा; तस्मा : इसके कारण; नरो : पुरुष; परदारं [परदार]: दूसरे की पत्नी; न सेवे : संगति नहीं करनी चाहिए
पुण्य अर्जित होगा। पापी को नरक की नीच अवस्था ही प्राप्त होगी। क्योंकि पुरुष और स्त्री दोनों भयभीत हैं, इसलिए उनके आलिंगन से बहुत कम आनंद मिलेगा। राजा का कानून कठोर दंड देगा। इन सब कारणों से, कोई पुरुष दूसरे की पत्नी की लालसा नहीं करेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 310)
ये श्लोक अनाथपिंडिका के भतीजे, एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के कुकर्म से उत्पन्न हुए हैं। यह उस सेवा का एक उदाहरण है जो बुद्ध को सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों मामलों में लोगों की सहायता और मार्गदर्शन करने के लिए करनी पड़ी थी।
बुद्ध स्वयं उन सभी सद्‌गुणों के साकार रूप थे जिनका उन्होंने उपदेश दिया। अपने सफल और घटनापूर्ण 45 वर्षों के उपदेश काल में उन्होंने अपने वचनों को कर्मों में उतारा। उन्होंने कभी भी मानवीय दुर्बलता या नीच वासना का प्रदर्शन नहीं किया। बुद्ध की नैतिक संहिता विश्व में अब तक की सबसे परिपूर्ण नैतिक संहिता है।
पच्चीस शताब्दियों से भी अधिक समय से लाखों लोगों ने उनके उपदेशों से प्रेरणा और शांति पाई है। उनकी महानता सूर्य के समान है जो कमतर प्रकाशों की चमक को फीका कर देती है। उनका उपदेश आज भी थके हुए तीर्थयात्री को निर्वाण की सुरक्षा और शांति की ओर आकर्षित करता है। किसी अन्य व्यक्ति ने पीड़ित मानवता के लिए इतना बलिदान नहीं दिया है।
बुद्ध मानव इतिहास के पहले धार्मिक नेता थे जिन्होंने लोगों को किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुँचाने और पशु बलि न देने की सलाह दी और उनसे अपील की।
बुद्ध के लिए धर्म कोई सौदा नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग था। उन्हें अंधविश्वासी अनुयायी नहीं चाहिए थे; उन्हें ऐसे अनुयायी चाहिए थे जो बुद्धिमानी से सोच-विचार कर सकें।
बुद्ध के आगमन से हम सभी को राहत और सुकून मिला। संपूर्ण मानव जाति उनके आगमन से धन्य हुई है।
बुद्ध ने कभी किसी व्यक्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव नहीं दिखाया। यहाँ तक कि अपने विरोधियों और कट्टर शत्रुओं के प्रति भी उन्होंने कोई शत्रुता नहीं व्यक्त की। कुछ पूर्वाग्रही लोग बुद्ध के विरुद्ध हो गए और उन्हें जान से मारने की कोशिश की; फिर भी बुद्ध ने उन्हें कभी शत्रु नहीं माना। बुद्ध ने एक बार कहा था, "जैसे युद्ध के मैदान में हाथी तीर सह लेता है, वैसे ही मैं भी दूसरों के अपमान और शत्रुतापूर्ण शब्दों को सहन करूँगा।"
इतिहास में बुद्ध के समान किसी भी व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता, जिन्होंने समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं को इतना समर्पित किया हो। ज्ञान प्राप्ति से लेकर जीवन के अंत तक, उन्होंने मानव जाति के उत्थान के लिए अथक परिश्रम किया। वे दिन में केवल दो घंटे ही सोते थे। इस महान गुरु के निधन को पच्चीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, फिर भी उनका प्रेम और ज्ञान का संदेश आज भी पूर्णतः विद्यमान है। यह संदेश आज भी मानवता के भाग्य को निर्णायक रूप से प्रभावित कर रहा है। वे परम करुणावान थे जिन्होंने इस संसार को प्रेम और करुणा से प्रकाशित किया।
निर्वाण प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने एक अमर संदेश छोड़ा जो आज भी हमारे बीच जीवित है। आज हम विश्व शांति के लिए एक गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। विश्व के इतिहास में उनके संदेश की आवश्यकता आज से पहले कभी इतनी नहीं रही।
बुद्ध का जन्म अज्ञान के अंधकार को दूर करने और संसार को दुख, रोग, क्षय, मृत्यु और जीवित प्राणियों की सभी चिंताओं और कष्टों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाने के लिए हुआ था।
कुछ मान्यताओं के अनुसार, समय-समय पर कोई विशेष देवता इस संसार में प्रकट होकर दुष्टों का नाश करते हैं और भले लोगों की रक्षा करते हैं। बुद्ध इस संसार में दुष्टों का नाश करने नहीं, बल्कि उन्हें सही मार्ग दिखाने के लिए प्रकट हुए थे।
विश्व के इतिहास में बुद्ध के समय तक, क्या हमने कभी किसी ऐसे धार्मिक गुरु के बारे में सुना है जो बुद्ध की तरह व्यथित मानवता के प्रति इतनी गहरी सहानुभूति और प्रेम से परिपूर्ण रहा हो? बुद्ध के कुछ शताब्दियों बाद, हमने ग्रीस के कुछ बुद्धिमान पुरुषों के बारे में सुना: सुकरात, प्लेटो और अरस्तू। लेकिन ये लोग केवल नीरस विचारक और सत्य के खोजी थे; उनमें व्यथित जनसमूह के प्रति किसी प्रकार का प्रेरणादायक प्रेम नहीं था।
बुद्ध का मानव जाति को बचाने का तरीका उन्हें मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग सिखाना था। उन्हें कुछ गिने-चुने शारीरिक या मानसिक कष्टों को दूर करने में कोई रुचि नहीं थी। वे एक ऐसा मार्ग प्रकट करने के लिए अधिक उत्सुक थे जिसका अनुसरण सभी लोग कर सकें।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 311,312,313

(धम्मपद 309 और 310) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 311, 312 और 313 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 314)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 311, 312 और 313 - दुब्बाकाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 311, 312 और 313 - दुब्बाकाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Kuso yatha duggahito
hatthameva' nukantati
samannam dupparamattham
nirayayu' pakadhati.
Yam kinci sithilam kammam
samkilitthanca yam vatam
संकस्सरम ब्रह्मचर्यम
na tam hoti mahapphalam.
Kayira ce kayirathenam
dalhamenam parakkame
sithilo hi paribbajo
bhiyyo akirate rajam.

श्लोक 311 : जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है, वैसे ही भिक्षु का कुटिल जीवन उसे निरय/नरक में खींच ले जाता है।

श्लोक 312 : लापरवाही से किया गया कार्य, भ्रष्ट आचरण या भिक्षु का संदिग्ध आचरण अधिक लाभदायक नहीं होता।

श्लोक 313 : यदि कुछ करना हो तो उसे अच्छी तरह करो; दृढ़ता और ऊर्जा के साथ करो; क्योंकि भिक्षु का शिथिल जीवन (नैतिक दोषों की) बहुत धूल फैलाता है।

हठी भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (311), (312) और (313) एक हठी भिक्षु के संदर्भ में कहे।

एक बार एक भिक्षु अनजाने में घास काटने के कारण पश्चाताप कर रहा था। उसने यह बात दूसरे भिक्षु को बताई। दूसरा भिक्षु स्वभाव से लापरवाह और हठी था, और वह छोटी-मोटी गलतियों को ज्यादा महत्व नहीं देता था। इसलिए उसने पहले भिक्षु से कहा, "घास काटना तो बहुत मामूली अपराध है; अगर तुम बस दूसरे भिक्षु से अपनी गलती मान लेते हो, तो तुम अपने आप ही क्षमा हो जाओगे। चिंता की कोई बात नहीं है।" इतना कहकर उसने दोनों हाथों से घास उखाड़ दी, यह दिखाने के लिए कि वह ऐसे मामूली अपराधों को कितना तुच्छ समझता है। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने उस लापरवाह और हठी भिक्षु को फटकारा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 311 : जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है, वैसे ही भिक्षु का कुटिल जीवन उसे निरय/नरक में खींच ले जाता है।

श्लोक 312 : लापरवाही से किया गया कार्य, भ्रष्ट आचरण या भिक्षु का संदिग्ध आचरण अधिक लाभदायक नहीं होता।

श्लोक 313 : यदि कुछ करना हो तो उसे अच्छी तरह करो; दृढ़ता और ऊर्जा के साथ करो; क्योंकि भिक्षु का शिथिल जीवन (नैतिक दोषों की) बहुत धूल फैलाता है।

प्रवचन के अंत में उस निर्भीक और हठी भिक्षु ने भिक्षु जीवन में संयम के महत्व को समझा और भिक्षुओं के लिए निर्धारित मूलभूत नियमों का कड़ाई से पालन किया। बाद में, अंतर्दृष्टि ध्यान के अभ्यास से उस भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

हठी भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक हठी भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार एक भिक्षु अनजाने में घास काटने के कारण पश्चाताप कर रहा था। उसने यह बात दूसरे भिक्षु को बताई। दूसरा भिक्षु स्वभाव से लापरवाह और हठी था, और वह छोटी-मोटी गलतियों को ज्यादा महत्व नहीं देता था। इसलिए उसने पहले भिक्षु से कहा, "घास काटना तो बहुत छोटी सी गलती है; अगर तुम बस दूसरे भिक्षु से अपनी गलती मान लेते हो, तो तुम अपने आप ही क्षमा हो जाओगे। चिंता की कोई बात नहीं है।" इतना कहकर उसने दोनों हाथों से घास उखाड़ दी, यह दिखाने के लिए कि वह ऐसी छोटी-मोटी गलतियों को कितना तुच्छ समझता है। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने उस लापरवाह और हठी भिक्षु को फटकारा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 311)

यथा कुसो दुग्गहितो हत्थं एव अनुकांतति

दुप्परामथं समाणं निरायौ पकाढति

यथा : जैसे; कुसो : कुसा घास का एक ब्लेड; दुग्गहितो [दुग्गहितो]: गलत तरीके से आयोजित; हत्थम एव : हाथ स्वयं ही करेगा; अनुकांतति : कट जाओ; दुप्परामाठः [दुप्परामाठः]: गलत तरीके से अभ्यास किया गया; समानाँ [समाना]: मठवासी जीवन; निरययु : नरक में; पकडधति : नीचे खींच लेगा

कुश घास की पत्ती को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट सकता है। ठीक उसी प्रकार, यदि कोई संन्यासी जीवन को गलत तरीके से अपनाए—नियमों के विरुद्ध जाए—तो वह उसे नरक की ओर खींच ले जाएगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 312)

सिथिलं यं किंचि कम्मं सङ्किलिट्ठं यं वातं च

संकस्सरं ब्रह्मचर्यं तं महप्फलं न होति

सिथिलां [सिथिला]: आकस्मिक रूप से; यां किंचि कम्मं [कम्म]: योग्यता का कोई कार्य; सांकिलिट्ठान् : दोषपूर्ण; वातं च : कुछ अभ्यास; संकस्सारं च : संदिग्ध; ब्रह्म-चैरियम् [कैरिया]: उच्च जीवन; तं : यह सब; महप्फलं न होति : उच्च परिणाम नहीं देगा

कोई पुण्य कर्म अनजाने में हो सकता है। किसी धार्मिक अनुष्ठान में दोष लग सकता है। उच्च जीवन को संदिग्ध तरीके से व्यतीत किया जा सकता है। इन सब से अच्छे परिणाम नहीं मिलेंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 313)

सीई कयिरा एतं कयिरथ दधम परक्कमे

हि सिथिलो परिबाजो भय्यो राजं अकीरते

ce : यदि; kayirā : कोई पुण्य कर्म किया जा रहा हो; kayirā etaṃ : वह कर्म करो; daḷham parakkame : चिंता और प्रतिबद्धता के साथ; hi : यदि किसी कारण से; sithilo [sithila]: आकस्मिक; paribbājo [paribbāja]: तपस्या; bhiyyo [bhiyya]: प्रचुर मात्रा में; rājaṃ ākirate : छिड़काव करेंगे

यदि आपको कोई पुण्य कर्म करना है, तो उसे पूरी निष्ठा और लगन से करें। परन्तु यदि संन्यासी जीवन का अभ्यास लापरवाही से किया जाए, तो धूल कम होने के बजाय और अधिक धूल फैल जाएगी।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 311-313)

ये श्लोक सही और गलत कर्म की प्रकृति का अवलोकन प्रस्तुत करते हैं। बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धांत मुख्यतः बुद्ध के कर्म संबंधी उपदेशों में निहित है।

कर्म एक अवैयक्तिक, प्राकृतिक नियम है जो हमारे कर्मों के अनुसार कार्य करता है। यह स्वयं में एक नियम है और इसका कोई नियम-निर्माता नहीं है। कर्म किसी बाहरी, स्वतंत्र, शासी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना अपने क्षेत्र में कार्य करता है।

कम्मा को कई अलग-अलग 'भाषाओं' में समझाया जा सकता है।

कर्म को बच्चे की सरल भाषा में समझाया जा सकता है: अच्छा करो, तुम्हें अभी और भविष्य में भी अच्छा फल मिलेगा। बुरा करो, तुम्हें अभी और भविष्य में भी बुरा फल मिलेगा।

फसल की भाषा में, कर्म को इस प्रकार समझाया जा सकता है: यदि आप अच्छे बीज बोते हैं, तो आपको अच्छी फसल मिलेगी। यदि आप बुरे बीज बोते हैं, तो आपको बुरी फसल मिलेगी।

विज्ञान की भाषा में, कर्म को कारण और प्रभाव का नियम कहा जाता है। इसका एक अन्य नाम नैतिक कारणता का नियम है। नैतिक कारणता नैतिक क्षेत्र में उसी प्रकार कार्य करती है जैसे भौतिक क्षेत्र में क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम कार्य करता है।

धम्मपद में कर्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है: मन सभी सुखी अवस्थाओं का मूल (अग्रदूत) है। यदि आप अच्छे मन से बोलते या कार्य करते हैं, तो सुख आपका अनुसरण करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पहिया बैल के खुर का अनुसरण करता है।

कर्म का सीधा अर्थ है क्रिया। सजीव प्राणियों के भीतर एक शक्ति या बल होता है जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे सहज प्रवृत्ति, चेतना आदि। यह जन्मजात प्रवृत्ति प्रत्येक सचेत प्राणी को गतिमान करती है। वह मानसिक या शारीरिक रूप से गति करता है, उसकी गति ही क्रिया है। क्रियाओं की पुनरावृत्ति आदत है और आदत उसका चरित्र बन जाती है। बौद्ध धर्म में इस प्रक्रिया को कर्म कहते हैं।

अपने परम अर्थ में, कर्म का अर्थ अच्छा और बुरा, मानसिक क्रिया या संकल्प दोनों है। बुद्ध कहते हैं, "कर्म ही संकल्प है।" इस प्रकार कर्म कोई इकाई नहीं बल्कि एक प्रक्रिया, क्रिया, ऊर्जा और बल है। कुछ लोग इस बल को 'क्रिया-प्रभाव' के रूप में व्याख्यायित करते हैं। यह हमारे अपने कर्मों का हम पर ही प्रभाव है। मनुष्य को जो सुख-दुख प्राप्त होते हैं, वे उसके अपने कर्मों, शब्दों और विचारों के परस्पर प्रभाव का परिणाम हैं। हमारे कर्म, शब्द और विचार ही हमारी समृद्धि और असफलता, हमारे सुख और दुख का कारण बनते हैं।

कर्म एक निराकार, प्राकृतिक नियम है जो हमारे कर्मों के अनुरूप ही कार्य करता है। यह स्वयं में एक नियम है और इसका कोई निर्धारक नहीं है। कर्म किसी बाहरी, स्वतंत्र शासी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना अपने क्षेत्र में कार्य करता है। चूंकि कोई गुप्त शक्ति पुरस्कार और दंड का निर्देशन या प्रशासन नहीं करती, इसलिए बौद्ध किसी अलौकिक शक्ति को प्रभावित करने के लिए प्रार्थना पर निर्भर नहीं रहते।

बुद्ध के अनुसार, कर्म न तो पूर्वनियति है और न ही किसी रहस्यमय अज्ञात शक्ति या बल द्वारा हम पर थोपा गया कोई नियतिवाद है जिसके सामने हमें असहाय रूप से आत्मसमर्पण करना पड़ता है।

बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है; हम अपने अतीत के परिणाम हैं और अपने वर्तमान स्वरूप के परिणाम होंगे। दूसरे शब्दों में, मनुष्य पूर्णतः वह नहीं है जो वह अतीत में था और पूर्णतः वह नहीं होगा जो वह वर्तमान में है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कर्म पूर्णतः नियतिवाद नहीं है: बुद्ध ने स्पष्ट किया कि यदि सब कुछ नियत है, तो स्वतंत्र इच्छाशक्ति का अस्तित्व ही नहीं होगा और नैतिक या आध्यात्मिक जीवन संभव नहीं होगा। हम केवल अपने अतीत के गुलाम बनकर रह जाएंगे। दूसरी ओर, यदि सब कुछ अनिश्चित है, तो नैतिक और आध्यात्मिक विकास संभव ही नहीं होगा। इसलिए बुद्ध ने न तो पूर्णतः नियतिवाद को स्वीकार किया और न ही पूर्णतः अनिश्चिततावाद को।

अंगुत्तरा निकाय में कर्म के संबंध में इन गलत व्याख्याओं या अतार्किक विचारों का वर्णन किया गया है, जिसमें सुझाव दिया गया है कि बुद्धिमान व्यक्ति निम्नलिखित बातों की जांच करके उन्हें त्याग दें: (1) कुछ लोग मानते हैं कि सब कुछ पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम है; (2) कुछ अन्य लोग मानते हैं कि सब कुछ सर्वोच्च शासक की सृष्टि का परिणाम है; (3) कुछ अन्य लोग मानते हैं कि सब कुछ बिना किसी कारण के उत्पन्न होता है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति हत्यारा, चोर, व्यभिचारी आदि बन जाता है, यदि उसके कर्म पिछले जन्मों के कर्मों के कारण हैं, या सर्वोच्च शासक की सृष्टि से हैं, या केवल संयोगवश घटित होते हैं, तो वह व्यक्ति अपने बुरे कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

कर्म के बारे में एक और गलत धारणा यह है कि यह केवल कुछ खास लोगों या कुछ खास धर्मों के लोगों पर ही लागू होता है। लेकिन किसी व्यक्ति का परलोक में भाग्य उसके द्वारा चुने गए धर्म पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं करता। उसका धर्म चाहे जो भी हो, उसका भाग्य पूरी तरह से उसके कर्मों, वाणी और विचारों पर निर्भर करता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह खुद को कौन सा धार्मिक नाम देता है, यदि वह अच्छे कर्म करता है और दूसरों को हानि पहुंचाए बिना सभ्य जीवन जीता है, तो उसे परलोक में सुखमय जीवन अवश्य मिलेगा। यदि वह बुराई करता है और अपने मन में बुरे विचार रखता है, तो उसे निश्चित रूप से दुखमय जीवन जीना पड़ेगा। इसलिए, बौद्ध यह उपदेश नहीं देते कि वे ही एकमात्र ऐसे लोग हैं जो मृत्यु के बाद स्वर्ग जा सकते हैं। उसका धर्म चाहे जो भी हो, इस जीवन और परलोक दोनों में उसकी स्थिति स्वयं ही निर्धारित होती है। कर्म की शिक्षा मृत्यु के बाद के न्याय का संकेत नहीं देती। बुद्ध, जिनका कोई

स्वार्थी उद्देश्य नहीं था, ने इस कर्म के नियम को अमीरों की रक्षा करने और गरीबों को परलोक में भ्रामक सुख का वादा करके दिलासा देने के लिए नहीं सिखाया।

बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि कर्म ही मानव जाति में व्याप्त असमानताओं का कारण है। ये असमानताएं न केवल वंशानुगत कारकों, पर्यावरण और प्रकृति के कारण होती हैं, बल्कि कर्मों के फलस्वरूप भी होती हैं।

क्योंकि कर्म एक अदृश्य शक्ति है, इसलिए हम इसे अपनी भौतिक आँखों से नहीं देख सकते। कर्म की कार्यप्रणाली को समझने के लिए, हम इसकी तुलना बीजों से कर सकते हैं: कर्म के फल अवचेतन मन में उसी प्रकार संग्रहित होते हैं जैसे किसी वृक्ष के पत्ते, फूल, फल और तना उसके बीज में संग्रहित होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में, कर्म के फल उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे नमी और प्रकाश मिलने पर किसी वृक्ष के पत्ते और तना उसके छोटे से बीज से अंकुरित होते हैं।

कर्मों की कार्यप्रणाली की तुलना बैंक खाते से की जा सकती है: जो व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन में सदाचारी, दानशील और परोपकारी है, वह अपने अच्छे कर्मों में वृद्धि कर रहा है। लेकिन उसे अपने द्वारा लिए गए कर्मों की भरपाई करनी ही होगी, अन्यथा एक दिन उसका खाता खाली हो जाएगा और वह दिवालिया हो जाएगा। तब वह अपनी दयनीय स्थिति के लिए किसे दोष देगा?

वह न तो दूसरों को दोष दे सकता है और न ही भाग्य को। वह स्वयं ही जिम्मेदार है। इसलिए एक सच्चा बौद्ध पलायनवादी नहीं हो सकता। उसे जीवन का सामना यथार्थ रूप में करना होगा, उससे भागना नहीं। निष्क्रियता से कर्म के फल को वश में नहीं किया जा सकता। स्वयं की खुशी के लिए अच्छे कार्यो में सक्रिय रहना अनिवार्य है। पलायनवाद कायरों का सहारा है; लेकिन पलायनवादी कर्म के फल से बच नहीं सकता।

कर्म के नियम को समझना यह अहसास करना है कि हम स्वयं अपने सुख और दुख के लिए जिम्मेदार हैं। हम अपने कर्मों के निर्माता हैं। बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि मनुष्य के पास अपने कर्मों को ढालने और इस प्रकार अपने जीवन की दिशा को प्रभावित करने की पूर्ण क्षमता है। मनुष्य अपने कर्मों का पूर्णतः बंदी नहीं है; वह अपने कर्मों का गुलाम नहीं है। न ही मनुष्य कोई ऐसी मशीन है जो स्वतः ही उन सहज शक्तियों को उत्पन्न करती है जो उसे गुलाम बनाती हैं। न ही मनुष्य प्रकृति की मात्र उपज है। मनुष्य के भीतर अपने कर्मों को नियंत्रित करने की शक्ति और क्षमता है। वह अपने कर्मों से कहीं अधिक शक्तिशाली है, इसलिए कर्म के नियम को मनुष्य के हित में ढाला जा सकता है। मनुष्य को अपने कर्मों के फल के लिए अपनी आशा, प्रयास और बुद्धि का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्व में किए गए बुरे कर्मों के फल को संतुलित करने के लिए, मनुष्य को प्रार्थना, पूजा या धार्मिक अनुष्ठान करने के बजाय पुण्य कर्म करने और अपने मन को शुद्ध करने की आवश्यकता है।

मनुष्य को अपने आदर्शों को बढ़ावा देने के लिए उन संसाधनों का उपयोग करना चाहिए जो उसे प्राप्त हैं। जीवन के खेल में पत्ते हमें दिए जाते हैं। हम उन्हें चुनते नहीं हैं। वे हमारे पिछले कर्मों से जुड़े होते हैं; लेकिन हम अपनी इच्छा अनुसार पत्ते चुन सकते हैं, जो भी पत्ता हम चाहें उससे शुरुआत कर सकते हैं और खेलते-खेलते हम लाभ और हानि दोनों प्राप्त कर सकते हैं।

अंगुलिमाला और अशोक के चरित्रों में आए आमूलचूल परिवर्तन मनुष्य की स्वयं पर नियंत्रण पाने की क्षमता को दर्शाते हैं।

अंगुलिमाला एक लुटेरा था जिसने कई लोगों की जान ली। क्या हम उसके बाहरी कर्मों के आधार पर उसका न्याय कर सकते हैं? क्योंकि अपने जीवनकाल में ही वह अरहत बन गया और इस प्रकार उसने अपने सभी पिछले कुकर्मों को मिटा दिया।

भारतीय सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने और युद्ध लड़ने के लिए हजारों लोगों को मार डाला। फिर भी युद्ध जीतने के बाद, उन्होंने स्वयं को पूरी तरह से सुधारा और अपने जीवन को इस हद तक बदल दिया कि आज, 'इतिहास के पन्नों में दर्ज हजारों सम्राटों के नामों के बीच, जिनमें महाराजा और राजसी उच्चाधिकारी आदि शामिल हैं, अशोक का नाम एक तारे की तरह लगभग अकेला ही चमकता है।'

यद्यपि बौद्ध धर्म में यह विश्वास है कि मनुष्य अंततः अपने कर्मों को नियंत्रित कर सकता है, लेकिन वे यह नहीं मानते कि सब कुछ कर्मों के कारण ही होता है। वे प्रकृति की अन्य शक्तियों की भूमिका को भी अनदेखा नहीं करते।

बौद्ध धर्म के अनुसार, भौतिक और मानसिक जगत में पाँच प्रकार के नियम या प्रक्रियाएँ (नियम) संचालित होते हैं:

मौसमी परिवर्तनों आदि से संबंधित भौतिक नियम (उतु नियम)

रोगाणुओं और बीजों के क्रम से संबंधित जैविक नियम (बीज नियम)

कर्म नियम (कम्म नियम) जो नैतिक कारण या कर्म और परिणाम के क्रम से संबंधित है।

विद्युत बलों, ज्वार-भाटे की गति आदि से संबंधित आध्यात्मिक घटनाएँ (धम्म नियम) और

मनोवैज्ञानिक नियम (चित्त नियम) जो चेतना की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

कर्म को इस संसार में विविधता का कारण बनने वाले पांच प्राकृतिक नियमों में से एक माना जाता है।

कर्म अक्सर बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित होता है: लाभकारी और हानिकारक शक्तियाँ इस स्वतः-संचालित नियम का विरोध करने और उसका समर्थन करने के लिए कार्य करती हैं। कर्म को सहायता या बाधा पहुँचाने वाली अन्य शक्तियाँ हैं: जन्म, समय या परिस्थितियाँ, सौंदर्य और प्रयास।

शुभ जन्म (गति संपत्ति) या अशुभ जन्म (विपत्ति) कर्मों के फल को बढ़ा या घटा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति कुलीन परिवार में या सुखी अवस्था में जन्म लेता है, तो उसका सौभाग्यशाली जन्म उसके अच्छे कर्मों को फलने-फूलने का आसान अवसर प्रदान करेगा। एक बुद्धिहीन व्यक्ति, जो किसी अच्छे कर्म के फलस्वरूप राजपरिवार में जन्म लेता है, अपने कुलीन वंश के कारण जनता द्वारा सम्मानित होगा। यदि वही व्यक्ति कम भाग्यशाली परिवार में जन्म लेता, तो उसके साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता।

सुंदरता (उपादि संपत्ति) और कुरूपता (उपादि विपत्ति) दो ऐसे कारक हैं जो कर्मों के फल को प्रभावित करते हैं या उसमें बाधा डालते हैं। यदि किसी अच्छे कर्म के कारण व्यक्ति को अच्छा जन्म मिलता है, लेकिन किसी बुरे कर्म के कारण वह कुरूप पैदा होता है, तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभकारी परिणामों का पूर्ण रूप से आनंद नहीं ले पाएगा। यहां तक कि सिंहासन का वैध उत्तराधिकारी भी शारीरिक या मानसिक रूप से कुरूप होने पर शायद उस उच्च पद तक न पहुंच पाए। दूसरी ओर, सुंदरता व्यक्ति के लिए एक संपत्ति होती है। गरीब माता-पिता का सुंदर पुत्र दूसरों का ध्यान आकर्षित कर सकता है और उनके प्रभाव से स्वयं को प्रतिष्ठित कर सकता है। इसके अलावा, हम ऐसे उदाहरण भी पाते हैं जहां गरीब, साधारण पारिवारिक पृष्ठभूमि के लोग फिल्म अभिनेता या अभिनेत्री या सौंदर्य रानियों के रूप में प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त करते हैं।

समय और परिस्थिति भी कर्मों के फल को प्रभावित करने वाले अन्य कारक हैं। अकाल या युद्ध के समय, सभी लोग बिना किसी अपवाद के एक ही स्थिति का सामना करने के लिए विवश होते हैं। ऐसे में प्रतिकूल परिस्थितियाँ बुरे कर्मों के फलने-फूलने की संभावनाएँ पैदा करती हैं। वहीं दूसरी ओर, अनुकूल परिस्थितियाँ बुरे कर्मों के फलने-फूलने से रोकती हैं।

कर्म के फलने-फूलने को प्रभावित करने वाले सभी कारकों में प्रयास शायद सबसे महत्वपूर्ण है। प्रयास के बिना सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति असंभव है। यदि कोई व्यक्ति किसी बीमारी से खुद को ठीक करने, अपनी कठिनाइयों से खुद को बचाने या अपनी प्रगति के लिए लगन से प्रयास नहीं करता है, तो उसके बुरे कर्मों को अपना उचित प्रभाव दिखाने का उपयुक्त अवसर मिल जाता है। वहीं, यदि वह अपनी कठिनाइयों पर विजय पाने का प्रयास करता है, तो उसके अच्छे कर्म उसकी सहायता के लिए आगे आते हैं। गहरे समुद्र में जहाज़ डूबने की स्थिति में, बोधिसत्व महा जनक ने खुद को बचाने का प्रयास किया, जबकि अन्य लोगों ने देवताओं से प्रार्थना की और अपना भाग्य उन्हीं के हाथों में छोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बोधिसत्व बच गए जबकि अन्य लोग डूब गए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 314

(धम्मपद 311, 312 और 313) <<<< पिछला || धम्मपद 314 || अगला >>>> (धम्मपद 315)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 314 - इस्सपकटा इत्थि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 314 - इस्सपकटा इत्थि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अकातम दुक्कतम सेयो
पच्चा तप्पति दुक्कटम
katanca sukatam seyyo
yam katva nanutappati.

श्लोक 314 : बुरा कर्म न करना बेहतर है; बुरा कर्म बाद में कष्ट देता है। अच्छा कर्म करना बेहतर है क्योंकि इसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

ईर्ष्यालु स्वभाव वाली एक महिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (314) का उच्चारण किया, जो स्वभाव से बहुत ईर्ष्यालु महिला के संदर्भ में था।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक अत्यंत ईर्ष्यालु स्त्री अपने पति के साथ रहती थी। उसे पता चला कि उसके पति का उसकी दासी के साथ संबंध है। इसलिए एक दिन उसने दासी को मजबूत रस्सियों से बांध दिया, उसके कान और नाक काट दिए और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। ऐसा करने के बाद, उसने अपने पति से जेतवन मठ चलने को कहा। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, दासी के कुछ रिश्तेदार उनके घर आए और उसे बंधे हुए और कमरे में बंद पाया। उन्होंने कमरा तोड़कर उसे खोला और मठ ले गए। वे मठ पहुंचे, उस समय बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे। दासी ने बुद्ध को बताया कि उसकी मालकिन ने उसके साथ क्या किया था, उसे कैसे पीटा गया था और उसके नाक और कान कैसे काट दिए गए थे। वह भीड़ के बीच खड़ी हो गई ताकि सभी देख सकें कि उसके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया गया था। इसलिए बुद्ध ने कहा, "यह सोचकर बुराई मत करो कि लोगों को इसके बारे में पता नहीं चलेगा। गुप्त रूप से किया गया बुरा कर्म, जब प्रकट होता है, तो बहुत पीड़ा और दुख लाता है; लेकिन अच्छा कर्म गुप्त रूप से किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल सुख लाता है, दुख नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 314 : बुरा कर्म न करना बेहतर है; बुरा कर्म बाद में कष्ट देता है। अच्छा कर्म करना बेहतर है क्योंकि इसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

प्रवचन के अंत में दंपति को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ईर्ष्यालु स्वभाव वाली एक महिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ऐसी स्त्री के संदर्भ में कहा था जो स्वभाव से बहुत ईर्ष्यालु थी।

एक समय की बात है, एक अत्यंत ईर्ष्यालु स्त्री अपने पति के साथ सावत्थी में रहती थी। उसे पता चला कि उसके पति का उसकी दासी के साथ संबंध है। इसलिए एक दिन उसने दासी को मजबूत रस्सियों से बांध दिया, उसके कान और नाक काट दिए और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। ऐसा करने के बाद, उसने अपने पति से जेतवन मठ चलने को कहा। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, दासी के कुछ रिश्तेदार उनके घर आए और उसे बंधे हुए और कमरे में बंद पाया। उन्होंने कमरा तोड़कर उसे खोला और मठ ले गए। वे मठ पहुंचे, उस समय बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे। दासी ने बुद्ध को बताया कि उसकी मालकिन ने उसके साथ क्या किया था, उसे कैसे पीटा गया था और उसके नाक और कान कैसे काट दिए गए थे। वह भीड़ के बीच खड़ी हो गई ताकि सभी देख सकें कि उसके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया गया था।

इसलिए बुद्ध ने कहा, “यह सोचकर बुराई मत करो कि लोगों को इसके बारे में पता नहीं चलेगा। गुप्त रूप से किया गया बुरा कर्म, जब प्रकट होता है, तो बहुत पीड़ा और दुख लाता है; परन्तु अच्छा कर्म गुप्त रूप से किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल सुख लाता है, दुख नहीं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 314)

दुक्कतं अकतम सेय्यो दुक्कतं पच्च तपति

यं कत्वा न नुतप्पति सुकतं कटञ्च सेय्यो

दुक्कतं [दुक्कत]: एक बुरा कर्म; अकतं [अकत]: यदि न किया गया हो; सेय्यो [सेय्य]: यह बड़ा है; दुक्कतं [दुक्कत]: बुरा कर्म; पच्छा : बाद में; तपति : पीड़ा देता है; तं : यदि कोई कर्म; कत्वा : करने के बाद; ना नुतप्पति : पश्चाताप न करे; सुकतं [सुकत]: उस प्रकार का पुण्य कर्म; कतंच : यदि किया गया हो; सेय्यो [सेय्य]: वह बहुत अच्छा है

बुरे कर्म न करना ही बेहतर है; बुरे कर्म का फल बाद में भुगतना पड़ता है। अच्छे कर्म करना बेहतर है क्योंकि उसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 314)

ये श्लोक बुरे कर्मों के बुरे परिणामों को दर्शाते हैं। कर्म के परिणाम को विपाक कहा जाता है । कर्म और विपाक पर संक्षिप्त टिप्पणी इस प्रकार है :

कर्म क्रिया है, और विपाक , फल या परिणाम, उसकी प्रतिक्रिया है। जैसे प्रत्येक वस्तु की छाया होती है, वैसे ही प्रत्येक इच्छाजनित क्रिया का अपना उचित परिणाम अवश्य होता है। कर्म संभावित बीज के समान है। वृक्ष से उत्पन्न होने वाला फल विपाक है , जो उसका परिणाम है। जैसे कर्म अच्छा या बुरा हो सकता है, वैसे ही विपाक भी अच्छा या बुरा हो सकता है। जैसे कर्म मानसिक है, वैसे ही विपाक

भी मानसिक है; कर्म के बीज की प्रकृति के अनुसार इसे सुख या आनंद, दुख या दुःख के रूप में अनुभव किया जाता है। आनिसंस भौतिक परिस्थितियों के लिए लाभकारी सहवर्ती तत्व हैं, जैसे समृद्धि, स्वास्थ्य और दीर्घायु।
विपाक के अन्य परिणाम हानिकारक होते हैं और इन्हें आदिनव (बुरे परिणाम) के रूप में जाना जाता है। ये गरीबी, कुरूपता, बीमारी, अल्पजीवन आदि के रूप में प्रकट होते हैं।
कर्म से तात्पर्य सांसारिक चेतना के नैतिक और अनैतिक प्रकारों (कुसला अकुसला लोकीय चित्त) से है, और विपाक से सांसारिक चेतना के परिणामी प्रकारों (लोकीय विपाकचित्त) से है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 315

(धम्मपद 314) <<<< पिछला || धम्मपद 315 || अगला >>>> (धम्मपद 316 और 317)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 315 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 315 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Nagaram yatha paccantam
गुट्टम संतराबहिरम
evam gopetha attanam(1)
khano vo ma upaccaga
khanatita hi socanti
nirayamhi samappita.

श्लोक 315 : जैसे सीमावर्ती नगर की भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। उचित समय को व्यर्थ न जाने दो, क्योंकि जो इस अवसर को चूक जाते हैं, उन्हें निरय/नरक में गिरकर दुःख सहना पड़ता है।

---

1. एवं गोपेथा अत्तनम्: अतः अपनी रक्षा करो; अर्थात् आंतरिक और बाह्य दोनों इंद्रियों की रक्षा करो। छह आंतरिक इंद्रियाँ (इंद्रिय आधार) हैं आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन; छह बाह्य इंद्रियाँ (इंद्रिय विषय) हैं दृश्य वस्तु, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचार।

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (315) का उच्चारण किया, जिसमें भिक्षुओं के एक समूह का जिक्र है, जिन्होंने वर्षा (वर्षा ऋतु के 3 महीने) एक सीमावर्ती शहर में बिताए थे।
उस सीमावर्ती कस्बे में अपने प्रवास के पहले महीने में, भिक्षुओं को कस्बेवासियों द्वारा भरपूर भोजन और देखभाल प्रदान की गई। अगले महीने कस्बे को कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ लोगों को बंधक बना लिया गया। इसलिए कस्बेवासियों को अपने कस्बे का

पुनर्निर्माण और किलेबंदी को मजबूत करना पड़ा। इस कारण वे भिक्षुओं की जरूरतों का उतना ध्यान नहीं रख पाए जितना वे रखना चाहते थे और भिक्षुओं को स्वयं ही अपना गुजारा करना पड़ा। वर्षा ऋतु के अंत में, वे भिक्षु श्रावस्ती के जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वर्षा ऋतु के दौरान उनके द्वारा झेली गई कठिनाइयों के बारे में जानकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इस या किसी और बात के बारे में मत सोचो; चिंतामुक्त और सहज जीवन जीना हमेशा कठिन होता है। जिस प्रकार नगरवासी अपने नगर की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार भिक्षु को भी सतर्क रहना चाहिए और अपना ध्यान दृढ़ता से अपने शरीर पर केंद्रित रखना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 315 : जैसे सीमावर्ती नगर की भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। उचित समय को व्यर्थ न जाने दो, क्योंकि जो इस अवसर को चूक जाते हैं, उन्हें निरय/नरक में गिरकर दु:ख सहना पड़ता है।

प्रवचन के अंत में उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कई भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उन भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में कहा था, जिन्होंने वर्षा ऋतु एक सीमावर्ती शहर में बिताई थी।
उस सीमावर्ती कस्बे में अपने प्रवास के पहले महीने में, भिक्षुओं को कस्बेवासियों द्वारा अच्छी तरह से भोजन और भोजन की व्यवस्था की गई थी और उनकी अच्छी देखभाल की गई थी। अगले महीने कस्बे को कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ लोगों को बंधक बना लिया गया। इसलिए, कस्बेवासियों को अपने कस्बे का पुनर्निर्माण करना पड़ा और किलेबंदी को मजबूत करना पड़ा। इस प्रकार, वे भिक्षुओं की जरूरतों का उतना ध्यान नहीं रख पाए जितना वे रखना चाहते थे और भिक्षुओं को स्वयं ही अपना गुजारा करना पड़ा। वर्षा ऋतु के अंत में, वे भिक्षु सावत्थी के जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वर्षा ऋतु के दौरान उनके द्वारा झेली गई कठिनाइयों के बारे में जानकर, बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इस या किसी और बात के बारे में मत सोचो; चिंतामुक्त, सहज जीवन जीना हमेशा कठिन होता है। जिस प्रकार कस्बेवासी अपने कस्बे की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार एक भिक्षु को भी सतर्क रहना चाहिए और अपना ध्यान दृढ़ता से अपने शरीर पर केंद्रित रखना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 315)
पच्चन्तं संतराबहिरं गुट्टं नागरं यथा ,
एवं अत्तनं गोपेथा हि खनातिता निरायमहि
समप्पिता समप्पिता सोकांत इ खानो वे मा उपक्कागा
पच्चन्तं [पच्चन्त]: सीमा पर स्थित; संतराबाहिरं [संतराबाहिर]: भीतर और बाहर; गुट्तं [गुत्त]: संरक्षित; नगरं [नगर]: एक शहर; यथा एवं : ठीक उसी प्रकार; अत्तानं [अत्तान]: मन; गोपेठ : रक्षा करना; हि : यदि किसी कारणवश; खणातीता : एक क्षण बीत जाए; निरयंहि : नरक में; सम्पिता : जन्म लेने के बाद; सोचन्ति : पश्चाताप कर सकता है; खणो [खण]: (इसलिए) वह क्षण; वे : निश्चित रूप से; मा उपच्चगा : भागने न दें—न फेंकें
जैसे सीमावर्ती शहर की सुरक्षा अंदर और बाहर दोनों तरफ से की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। इस अवसर को हाथ से जाने मत दो। जो इस अवसर को चूक जाएंगे, उन्हें नरक में गिरकर पछतावा होगा।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 315)
इस श्लोक में बुद्ध की सलाह है कि मन की रक्षा उसी प्रकार की जाए जैसे शासक सीमावर्ती नगर की रक्षा करते हैं। मन की रक्षा करना मन की एकाग्रता (भावना) के अंतर्गत आता है , जिसका मूल उद्देश्य मन को निरंतर सजग रखना है।
बौद्ध ध्यान सिद्धांत का उद्देश्य सही एकाग्रता (सम्मा-समाधि) का अभ्यास करना है , जो अष्टांगिक मार्ग की पराकाष्ठा है। इस मार्ग का सर्वप्रथम वर्णन बुद्ध के आरंभिक उपदेश ' धम्मचक्कप्पवत्तना ' में मिलता है, जिसे 'धर्मचक्र का घुमाव' भी कहा जाता है। आत्मज्ञान प्राप्ति की विधि के रूप में अष्टांगिक मार्ग, जो बौद्ध धर्म का लक्ष्य है, को मध्य मार्ग कहा जाता है । इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह संयम की ओर अग्रसर होता है और दो अतिवादों से बचता है: एक ओर इंद्रिय सुखों में लिप्त होना और दूसरी ओर आत्म-यातना का पालन करना।
अतः इस विधि का अभ्यास दो चरम सीमाओं के बीच का मध्य मार्ग है, जो किसी भी प्रकार की अति से बचता है। किसी भी दिशा में अति से बचना चाहिए क्योंकि यह खतरनाक है। इसलिए, बौद्ध ध्यान का अभ्यास सांसारिक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता, जो अपनी सांसारिक इच्छाओं को कम करने के लिए तैयार नहीं है, और न ही यह किसी ऐसे व्यक्ति के लिए संभव है जो तपस्या में कट्टर है।

संयम का पालन करने के लिए एक ओर दृढ़ता और दूसरी ओर विचारशीलता का होना आवश्यक है। अतः हम मार्ग के सूत्र में पाते हैं कि सही एकाग्रता को सही प्रयास और सही जागरूकता के दो सिद्धांतों द्वारा अच्छी तरह से समर्थन मिलता है। इनमें से, सही प्रयास इंद्रिय सुख में डूबने की प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति में उत्थान की क्षमता को बढ़ावा देता है; जबकि सही जागरूकता तपस्या की अति में गिरने से बचाव का काम करती है।
सही एकाग्रता उस नैतिक शुद्धता के बिना संभव नहीं है जो अशुद्ध कर्मों, शब्दों और विचारों से मुक्ति दिलाती है, और इसलिए यह सही वाणी, सही कर्म और सही आजीविका को अनिवार्य बनाती है। ये शील या नैतिक शुद्धता के तीन सिद्धांत हैं, जो ध्यान की अनिवार्य तैयारी हैं। इन सिद्धांतों का प्रशिक्षण बौद्ध धर्म का सबसे मूलभूत पहलू है और चिंतनशील जीवन का महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए, सबसे पहले, व्यक्ति को मध्यम मार्ग के नियमों के अनुसार नैतिक शुद्धता का प्रशिक्षण लेना चाहिए, ताकि प्रगति के बढ़ते क्रम में ध्यान के पूर्ण और तत्काल परिणाम प्राप्त हो सकें। जो शिष्य इन आदर्शों का पालन करता है, उसे आत्मविश्वास, आंतरिक शुद्धता, बाहरी भय का अभाव और इस प्रकार मानसिक शांति प्राप्त होती है, जो ध्यान में अंतिम सफलता के लिए अनिवार्य कारक हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 316,317

————————————————————————————————

(धम्मपद 315) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 316 और 317 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 318 और 319)

————————————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 316 और 317 - निगंठ वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 316 और 317 - निगंठ वत्थु

————————————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Alajjitaye lajjanti
lajjitaye na lajjare
मिच्चदित्तिसमादाना
satta gacchanti duggatim.
अभये थायादास्सिनो
bhaye cabhayadassino
मिच्चदित्तिसमादाना
satta gacchanti duggatim.

————————————————————————————————

श्लोक 316 : वे प्राणी जो उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, जो उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे शर्मिंदा होना चाहिए, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

————————————————————————————————

श्लोक 317 : जो प्राणी खतरनाक चीजों में खतरा देखते हैं, जो खतरनाक चीजों में खतरा नहीं देखते, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

————————————————————————————————

निगंथ तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (316) और (317) निगंथा (जैन) तपस्वियों के संदर्भ में कहे, जिन्होंने अपने शरीर के केवल सामने के हिस्से को ढका था।

एक दिन कुछ निगंथ (जैन) भिक्षु भिक्षा मांगने निकले और उन्होंने अपने भिक्षापात्रों को कपड़े से ढक रखा था। कुछ भिक्षुओं ने उन्हें देखकर कहा, "शरीर के अगले भाग को ढकने वाले ये निगंथ तपस्वी उन अचेलक तपस्वियों से अधिक आदरणीय हैं जो नग्न अवस्था में भिक्षा मांगते हैं।" यह सुनकर उन तपस्वियों ने उत्तर दिया, "जी हाँ, हम अपने अगले भाग को (अपने भिक्षापात्रों को ढककर) ढकते हैं; लेकिन हम नग्न होने की शर्म से ऐसा नहीं करते। हम अपने भिक्षापात्रों को केवल इसलिए ढकते हैं ताकि भोजन पर धूल न पड़े, क्योंकि धूल में भी जीवन होता है।"

जब भिक्षुओं ने निगंथ तपस्वियों की बातें बताईं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जो तपस्वी अपने शरीर के केवल आगे के भाग को ढक कर घूमते हैं, वे उस बात से लज्जित नहीं होते जिससे उन्हें लज्जित होना चाहिए, बल्कि वे उस बात से लज्जित होते हैं जिससे उन्हें लज्जित नहीं होना चाहिए; अपने इस गलत दृष्टिकोण के कारण वे केवल बुरे गंतव्यों की ओर ही जाएंगे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 316 : वे प्राणी जो उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, जो उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे शर्मिंदा होना चाहिए, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

श्लोक 317 : जो प्राणी खतरनाक चीजों में खतरा देखते हैं, जो खतरनाक चीजों में खतरा नहीं देखते, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

प्रवचन के अंत में कई निगंथ तपस्वी भयभीत हो गए और बौद्ध धर्म में शामिल हो गए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुरे तपस्वियों के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने निगंठ तपस्वियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे, जो अपने शरीर के केवल सामने के हिस्से को ही ढकते थे।

एक दिन कुछ निगंठ भिक्षु भिक्षा मांगने निकले, उनके भिक्षापात्र कपड़े से ढके हुए थे। कुछ भिक्षुओं ने उन्हें देखकर कहा, “शरीर के अगले भाग को ढकने वाले ये निगंठ भिक्षु उन अचेलक भिक्षुओं से अधिक आदरणीय हैं जो नग्न अवस्था में घूमते हैं।” यह सुनकर उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “जी हाँ, हम अपने अगले भाग को (अपने भिक्षापात्रों को ढककर) ढकते हैं; लेकिन हम नग्न होने की शर्म से ऐसा नहीं करते। हम अपने भिक्षापात्रों को केवल इसलिए ढकते हैं ताकि भोजन पर धूल न पड़े, क्योंकि धूल में भी जीवन होता है।”

जब भिक्षुओं ने निगंठ तपस्वियों की बात बताई, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, जो तपस्वी अपने शरीर के केवल आगे के हिस्से को ढक कर घूमते हैं, वे उस बात से शर्मिंदा नहीं होते जिससे उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए, बल्कि वे उस बात से शर्मिंदा होते हैं जिससे उन्हें शर्मिंदा नहीं होना चाहिए; अपने इस गलत दृष्टिकोण के कारण वे केवल बुरे गंतव्यों की ओर ही जाएंगे।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 316)

अलज्जितये लज्जन्ति लज्जिताये न लज्जरे मिच्चा

दिट्ठि समाधानं सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति

alajjitāye : जिसमें किसी को शर्म नहीं आनी चाहिए; lajjanti : (यदि किसी को) शर्म आनी चाहिए; lajjitāye : और जिसमें किसी को शर्म आनी चाहिए; na lajjare : कोई शर्मिंदा नहीं है; micchā diṭṭhi samādānā : झूठे विश्वासों को अपनाना; sattā : ये प्राणी; duggatiṃ [duggati]: दुखद अवस्थाओं (नरक) में; gacchanti : प्रस्थान करना

जो लोग उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे उन्हें शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, और जो लोग उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए, वे सभी जो झूठे विचारों को अपनाते हैं, दुखद अवस्थाओं (नरक) में जाते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (317)

अभये भयादस्सिनो , भये चाभयदस्सिनो

मिच्छादिथिसमदाना सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति

अभय : जिससे भयभीत नहीं होना चाहिए; भयदस्सिनो च : जो भय देखते हैं; भय : जिससे भयभीत होना चाहिए; अभयदस्सिनो च : भय न देखने वाले; मिच्छदिट्ठिसमादाना : झूठे विश्वासों को अपनाने वाले; सत्ता : वे प्राणी; दुग्गतिं [दुग्गति]: दुखद अवस्थाओं (नरक) में; गच्छन्ति : प्रस्थान करने वाले

कुछ लोग उन चीजों से डरते हैं जिनसे उन्हें डरना नहीं चाहिए। वहीं कुछ लोग उन चीजों से नहीं डरते जिनसे उन्हें वास्तव में डरना चाहिए। झूठे विश्वासों को अपनाने वाले सभी लोग दुखद अवस्थाओं की ओर अग्रसर होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 316-317)

यह घटना निगंठों (नग्न तपस्वियों) के एक समूह के व्यवहार के कारण घटी । बुद्ध के समय में जंबूद्वीप विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचालित अनेक आध्यात्मिक और धार्मिक प्रणालियों से भरा हुआ था।

बौद्ध साहित्य में बुद्ध के लगभग छह वरिष्ठ समकालीनों का बार-बार उल्लेख मिलता है, उदाहरण के लिए दीघनिकाय (सामञ्ञफल-सूत्र और इसका संस्कृत संस्करण)। इन संदर्भों से यह प्रतीत होता है कि मगध के राजा अजातशत्रु ने इनमें से कई शिक्षकों से मुलाकात की और उनसे अलग-अलग अपने तपस्या के परिणामों को स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में बताने को कहा। ये सभी देश में अपने अनुयायियों से भरे धार्मिक संप्रदायों के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके नाम और उनके विशिष्ट सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण ग्रंथ में दिया गया है। हालांकि, यह संभव है कि दी गई जानकारी पक्षपातपूर्ण हो, क्योंकि यह उनके विरोधियों से प्राप्त हुई है; वास्तव में, उनके द्वारा किए गए गलत कथन आंशिक रूप से जानबूझकर और आंशिक रूप से अज्ञानता के कारण हैं। फिर भी, बौद्ध धर्म के संस्थापक के विचारों को सही ढंग से समझने और उनकी सराहना करने के लिए उनके विचारों का अध्ययन करना रुचिकर है।

इन छह विचारकों में से निगंठ नातपुत्त, जो जैन परंपरा के अनुसार वर्तमान विश्व चक्र के संस्थापक या अंतिम पैगंबर महावीर हैं, बुद्ध से कुछ अधिक उम्र के प्रतीत होते हैं। उन्होंने नैतिक सिद्धांतों का प्रचार किया, लेकिन उन्हें शायद यह जानकारी नहीं थी कि इसी तरह के विचार एक अतुलनीय वरिष्ठ तपस्वी पार्श्व के भी थे। पार्श्व को अब महावीर का पूर्ववर्ती माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि वे महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले जीवित थे। पार्श्व की नैतिक संहिता में चार नियम थे, जबकि महावीर की संहिता में पाँच नियम थे। इनमें से पहले तीन नियम, अर्थात् जीवित प्राणियों की हत्या न करना, बिना दान के उपयोग की वस्तुएँ न लेना और झूठ न बोलना, पार्श्व और महावीर दोनों के सिद्धांतों में समान हैं। पार्श्व की शिक्षाओं का चौथा नियम, अपरिग्रह का नियम , जिसमें पत्नी सहित किसी भी सांसारिक संपत्ति का अभाव है, को महावीर ने दो भागों में विभाजित करके पाँच नियमों की संहिता बनाई। महावीर की संहिता का चौथा नियम है पत्नी न लेना या ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना, और महावीर की संहिता का पाँचवाँ नियम है वस्त्रों के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक संपत्ति का अभाव। ये दोनों नियम मिलकर पार्श्व के चौथे नियम का निर्माण करते प्रतीत होते हैं। पार्श्व और महावीर की आचार संहिता के व्यावहारिक या बाह्य पहलुओं में मुख्य अंतर यह प्रतीत होता है कि पार्श्व और उनके अनुयायी अचेलक थे , जबकि महावीर और उनके अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते थे, तथा अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु का अभाव रखते थे। दूसरे शब्दों में, महावीर द्वारा प्रचारित जैन धर्म पार्श्व धर्म के समान ही है, परन्तु कुछ अधिक आधुनिक है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि पार्श्व की मृत्यु के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद ये दोनों संप्रदाय एक हो गए, जब पार्श्व और महावीर के शिष्य श्रावस्ती में मिले और उनका विलय हुआ। बाद में जैनों ने पार्श्व से पहले बाईस और नबी जोड़कर इस विलय की व्याख्या अलग ढंग से की, जिससे पार्श्व उनके तेईसवें और महावीर चौबीसवें नबी बन गए। हालांकि, यह मानना बिलकुल सही होगा कि पार्श्व और महावीर ने स्वतंत्र रूप से एक ऐसा दर्शन और धार्मिक प्रणाली विकसित की जिसके सिद्धांत एक समान थे।

सामञ्ञफल-सूत्र में निगंठ नातपुत्त का उल्लेख चार प्रकार के संयम के सिद्धांत का पालन करने वाले के रूप में किया गया है: ठंडे पानी के उपयोग से परहेज, क्योंकि उसमें जीवन होता है, और हत्या और यौन संबंध जैसे पापी कार्यों से परहेज। वे सभी पापों से मुक्त थे और उन्होंने स्वयं को शुद्ध कर लिया था। उदंबरिका-सीहनाद-सूत्र में उनके लिए वर्णित संयम भिन्न हैं, लेकिन पार्श्व के चार व्रतों के समान हैं। जैन धर्म के अनुसार , जैन धर्म केवल एक नैतिक प्रणाली नहीं है, बल्कि अनेकांत या स्याद्वाद के सिद्धांत पर आधारित एक दर्शन भी है । यह सिद्धांत हर चीज के दो पहलुओं, शाश्वत और गैर-शाश्वत, पर विचार करता है। आत्मा अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार शरीर-स्थानांतरण करती है। जैन धर्म हर चीज में जीव (जीवन) के अस्तित्व को मानता है, इसलिए यह ऐसे आचरण का आदेश देता है जिससे किसी भी जीव को हानि न पहुंचे । यदि आत्मा इंद्रिय विषयों के प्रभाव में आ जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और संसार में लीन हो जाती है । आत्मा को इन अशुद्धियों से शुद्ध रखने और उसकी मुक्ति सुनिश्चित करने के लिए संयम का अभ्यास करना आवश्यक है। इसके लिए सही ज्ञान, आस्था और आचरण का सहारा लेना या उन्हें प्राप्त करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, बौद्ध स्रोत, जैसे कि अंगुत्तरा और एकनिपात के चौहत्तर सूत्र , जैन धर्म की अवधारणाओं का उपहास उड़ाते हैं, विशेष रूप से पाप पर विजय पाने के उसके विचार, गतिविधियों पर उसके प्रतिबंध और कुछ प्रकार के वस्त्रों पर उसके जोर का।

बुद्ध के अगले महत्वपूर्ण समकालीन मक्खली गोसाला थे। वे अचेलक संप्रदाय से संबंधित थे , और जैसा कि उनके नाम के पहले भाग से स्पष्ट है, वे बाँस की छड़ी (मस्कारिन) धारण करते थे। कहा जाता है कि वे कुछ समय के लिए महावीर के शिष्य रहे, लेकिन बाद में उनसे विमुख हो गए। इसके बाद, उन्होंने संभवतः आजीविका संप्रदाय के नाम से एक स्वतंत्र संप्रदाय की स्थापना की। बाद के लेखकों

ने दो पूर्ववर्तियों, नंदा वच्छ और किसा संकिच्छ का उल्लेख किया है, इस प्रकार इस संप्रदाय के तीन पैगंबरों का उल्लेख किया है। यह संप्रदाय अब विलुप्त हो चुका है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लोकप्रियता और यहाँ तक कि राजशाही संरक्षण भी प्राप्त था। गोसाला द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को संसार-विशुद्धि कहा जाता है , जिसका अर्थ है सभी प्रकार के अस्तित्व से गुजरकर ही पवित्रता प्राप्त करना। गोसाला का मानना था कि मनुष्य के दुख या उसके उद्धार का कोई विशेष कारण नहीं है। वे मानवीय प्रयासों में विश्वास नहीं करते थे और मानते थे कि सभी प्राणी भाग्य के आगे असहाय हैं। उनका मानना था कि सभी प्राणी, चाहे बुद्धिमान हों या मूर्ख, संसार से गुजरने के लिए नियत हैं और इस चक्र के पूरा होने पर उनका दुख समाप्त हो जाएगा। किसी भी मानवीय प्रयास से यह अवधि कम या ज्यादा नहीं हो सकती। धागे के गोले की तरह, संसार की एक निश्चित अवधि होती है जिससे प्रत्येक प्राणी को गुजरना पड़ता है।
शेष चार शिक्षक, जिनका उल्लेख बुद्ध के समकालीन के रूप में किया गया है, ने भावी पीढ़ियों पर वैसी छाप नहीं छोड़ी जैसी महावीर और कुछ हद तक गोसाला ने छोड़ी थी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 318,319

(धम्मपद 316 और 317) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 318 और 319 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 320, 321 और 322)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 318 और 319 - तिट्ठियास्वक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 318 और 319 - तिट्ठियास्वक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Avajje vajjamatino
vajje cavajjadassi no
micchaditthisamada
satta gacchanti duggatim.
Vajjanca vajjato natva
avajjanca avajjato
सम्मदित्तिसमदना
satta gacchanti suggatim.

श्लोक 318 : जो प्राणी जो गलत नहीं है उसमें गलत की कल्पना करते हैं, जो गलत में गलत नहीं देखते हैं, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

श्लोक 319 : जो प्राणी गलत को गलत जानते हैं, जो सही को सही जानते हैं और जो सही विचार रखते हैं, वे सुखी अस्तित्व के तल (सुग्गति) पर जाते हैं।

गैर-बौद्ध तपस्वियों के शिष्यों की कहानी

निग्रोदरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तित्थी (गैर-बौद्ध तपस्वियों) के कुछ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (318) और (319) का उच्चारण किया।

तित्थी संप्रदाय के शिष्य नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे बुद्ध के अनुयायियों के बच्चों के साथ घुलें-मिलें। वे अक्सर अपने बच्चों से कहते थे, "जेतवन मठ मत जाओ, शाक्य वंश के भिक्षुओं को प्रणाम मत करो।" एक बार, जब तित्थी संप्रदाय के लड़के जेतवन मठ के प्रवेश द्वार के पास एक बौद्ध लड़के के साथ खेल रहे थे, तो उन्हें बहुत प्यास लगी। चूंकि तित्थी संप्रदाय के शिष्यों के बच्चों को उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश न करने के लिए कहा था, इसलिए उन्होंने उस बौद्ध लड़के से मठ जाकर उनके लिए पानी लाने को कहा। पानी पीने के बाद, वह बौद्ध लड़का बुद्ध को प्रणाम करने गया और उसने बुद्ध को अपने उन दोस्तों के बारे में बताया जिन्हें उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश करने से मना किया था। तब बुद्ध ने उस लड़के से कहा कि वह गैर-बौद्ध लड़कों को मठ में आकर पानी पीने के लिए कहे। जब वे लड़के आए, तो बुद्ध ने उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें प्रवचन दिया। परिणामस्वरूप, वे लड़के तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ आस्था रखने लगे।

जब लड़के घर लौटे, तो उन्होंने जेतवन मठ की अपनी यात्रा और बुद्ध द्वारा उन्हें तीन रत्नों के उपदेश दिए जाने के बारे में बातें कीं। लड़कों के माता-पिता अज्ञानी होने के कारण रोने लगे, "हमारे बेटों ने हमारे धर्म के प्रति विश्वासघात किया है, वे बर्बाद हो गए हैं," इत्यादि। कुछ समझदार पड़ोसियों ने रोते हुए माता-पिता को सलाह दी कि वे रोना बंद करें और अपने बेटों को बुद्ध के पास भेजें। किसी तरह वे मान गए और लड़के अपने माता-पिता के साथ बुद्ध के पास गए।

बुद्ध ने उनके आने का कारण जानकर उनसे निम्नलिखित छंदों में बात की:

श्लोक 318 : जो प्राणी जो गलत नहीं है उसमें गलत की कल्पना करते हैं, जो गलत में गलत नहीं देखते हैं, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

श्लोक 319 : जो प्राणी गलत को गलत जानते हैं, जो सही को सही जानते हैं और जो सही विचार रखते हैं, वे सुखी अस्तित्व के तल (सुग्गति) पर जाते हैं।

प्रवचन के अंत में वे सभी लोग तीन रत्नों में दृढ़ आस्था रखने लगे, और बुद्ध के आगे के प्रवचनों को सुनने के बाद, उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

अध्याय बाईस का अंत: निरय (नरक)

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गैर-बौद्ध शिक्षकों के शिष्यों की कहानी

निग्रोदारामा मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तित्थियों (गैर-बौद्ध तपस्वियों) के कुछ शिष्यों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

तित्थी संप्रदाय के शिष्य नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे बुद्ध के अनुयायियों के बच्चों के साथ घुलें-मिलें। वे अक्सर अपने बच्चों से कहते थे, “जेतवन मठ मत जाओ, शाक्य वंश के भिक्षुओं को प्रणाम मत करो।” एक बार, जब तित्थी संप्रदाय के लड़के जेतवन मठ के प्रवेश द्वार के पास एक बौद्ध लड़के के साथ खेल रहे थे, तो उन्हें बहुत प्यास लगी। चूंकि तित्थी संप्रदाय के शिष्यों के बच्चों को उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश न करने के लिए कहा था, इसलिए उन्होंने उस बौद्ध लड़के से मठ जाकर उनके लिए पानी लाने को कहा। पानी पीने के बाद, वह बौद्ध लड़का बुद्ध को प्रणाम करने गया और उसने बुद्ध को अपने उन दोस्तों के बारे में बताया जिन्हें उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश करने से मना किया था। तब बुद्ध ने उस लड़के से कहा कि वह गैर-बौद्ध लड़कों को मठ में आकर पानी पीने के लिए कहे। जब वे लड़के आए, तो बुद्ध ने उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें प्रवचन दिया। परिणामस्वरूप, वे लड़के तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ आस्था रखने लगे।

जब लड़के घर लौटे, तो उन्होंने जेतवन मठ की अपनी यात्रा और बुद्ध द्वारा उन्हें तीन रत्नों के उपदेश दिए जाने के बारे में बातें कीं। लड़कों के माता-पिता अज्ञानी होने के कारण रोने लगे, “हमारे बेटों ने हमारे धर्म के प्रति विश्वासघात किया है, वे बर्बाद हो गए हैं।” कुछ समझदार पड़ोसियों ने रोते हुए माता-पिता को सलाह दी कि वे रोना बंद करें और अपने बेटों को बुद्ध के पास भेजें। किसी तरह वे मान गए और लड़के, साथ ही उनके माता-पिता, बुद्ध के पास गए।

बुद्ध यह जानते हुए कि वे किस उद्देश्य से आए थे, उन्होंने उन्हें श्लोक सुनाए।

प्रवचन के अंत में, वे सभी लोग तीन रत्नों में दृढ़ आस्था रखने लगे, और बुद्ध के आगे के प्रवचन को सुनने के बाद, उन्होंने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 318)

अवज्जे वज्जदस्सिनो वज्जे सीए वज्जदस्सिनो सीए
मिच्छादिथिसमदाना सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति
अवज्जे : जो गलत नहीं है; वज्जादास्सिनो [वज्जादास्सिना]: वे गलत मानते हैं; वज्जे सीए : जो गलत है उसमें; वज्जादासिनो [वज्जादासिना]: वे गलत देखते हैं; मिच्छादिथिसमादान : ऐसी झूठी मान्यताओं को अपनाना; सत्ता : वे प्राणी; डुग्गतिं [डुग्गाति]: दुखद स्थिति के लिए; गच्छन्ति : प्रस्थान
जो लोग सही को गलत मानते हैं, और जो लोग गलत को सही मानते हैं, ये दोनों ही अपने झूठे विश्वासों के कारण मृत्यु के समय दयनीय स्थिति में पहुँच जाते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 319)
वज्जं च वज्जतो नात्वा , अवज्जं अवज्जतो च
सम्मादिथिसमदाना सत्ता सुग्गतिं गच्छन्ति
वज्जं [वज्ज]: जो गलत है; वज्जतो [वज्जत]: गलत के रूप में; ञत्वा : जानकर; अवज्जं [अवज्ज]: जो गलत नहीं है; अवज्जतो [अवज्जत]: गलत के रूप में नहीं; सम्मादित्तिसमादाना : सही दृष्टिकोण रखने वाले; सत्ता : प्राणी; सुग्गतिं [सुग्गति]: स्वर्ग को; गच्छन्ति : जाना
वे त्रुटि को त्रुटि और सत्य को सत्य मानते हैं। जो लोग सत्यवादी विचारों को अपनाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 318-319)
बुद्ध के समय का सामाजिक परिवेश विभिन्न धर्मों और आध्यात्मिक प्रणालियों का एक जटिल मिश्रण था। इनमें से कुछ प्रणालियों का नेतृत्व उन लोगों द्वारा किया जाता था जो बुद्ध के विरोधी थे। इन श्लोकों को जन्म देने वाली घटना दर्शाती है कि कैसे गैर-बौद्ध माता-पिता ने अपने बच्चों को जेतवन मठ में प्रवेश करने से रोकने का प्रयास किया। बुद्ध के समकालीन धार्मिक नेताओं पर एक और टिप्पणी।
बौद्ध साहित्य में बुद्ध के लगभग छह वरिष्ठ समकालीनों का बार-बार उल्लेख मिलता है, उदाहरण के लिए, दीघ-निकाय (सामञ्ञफल-सूत्र और इसका संस्कृत संस्करण)। इन संदर्भों से प्रतीत होता है कि मगध के राजा अजातसत्तु ने इनमें से कई शिक्षकों से मुलाकात की और उनसे अलग-अलग अपने तपस्या के परिणामों को स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में बताने को कहा। ये सभी देश में अपने अनुयायियों से भरे धार्मिक संप्रदायों के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके नाम और उनके विशिष्ट सिद्धांतों का संक्षिप्त उल्लेख ग्रंथ में मिलता है। हालांकि, यह संभव है कि दी गई जानकारी पक्षपातपूर्ण हो, क्योंकि यह उनके विरोधियों से प्राप्त हुई है; वास्तव में, उनके द्वारा की गई गलत व्याख्याएं आंशिक रूप से जानबूझकर और आंशिक रूप से अज्ञानता के कारण हैं। फिर भी, बौद्ध धर्म के संस्थापक के विचारों को सही ढंग से समझने और उनकी सराहना करने के लिए उनके विचारों का अध्ययन करना रुचिकर है।
कई ऐसे व्यक्ति थे जो सत्य की खोज में अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। इनमें छह ऐसे धार्मिक शिक्षक भी शामिल थे जो उत्तर भारत के कई राज्यों में सुप्रसिद्ध थे और जिनके काफी अनुयायी थे।
ये छह शिक्षक थे,
पूर्णा कस्सपा,
मक्खली गोसाला,
अजिता केसकंबली,
पकुधा कच्चायना,
समजय बेलाथिपुत्त और
निगण्ड नाथपुत्त।
इन छह शिक्षकों के अलावा, नंदा वच्चा और किसा समकिच्चा जैसे अन्य शिक्षक भी थे।
इन छह विचारकों में से निगंठ नाथपुत्त, जो जैन परंपरा के अनुसार वर्तमान विश्व चक्र के संस्थापक या अंतिम पैगंबर महावीर हैं, बुद्ध से कुछ अधिक उम्र के प्रतीत होते हैं। उन्होंने नैतिक सिद्धांतों का प्रचार किया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि इसी तरह के विचार एक अतुलनीय वरिष्ठ तपस्वी पार्श्व के भी थे। पार्श्व को अब महावीर का पूर्ववर्ती माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि वे महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले जीवित थे। पार्श्व की नैतिक संहिता में चार नियम थे, जबकि महावीर की संहिता में पाँच नियम थे। इनमें से पहले तीन नियम, अर्थात् जीवित प्राणियों की हत्या न करना, बिना दान के उपयोग की वस्तुएँ न लेना और झूठ न बोलना, पार्श्व और महावीर दोनों के सिद्धांतों में समान हैं। पार्श्व की शिक्षाओं का चौथा नियम, अपरिग्रह का नियम, जिसमें पत्नी सहित किसी भी सांसारिक संपत्ति का त्याग करना शामिल है, को महावीर ने दो भागों में विभाजित करके पाँच नियमों की संहिता बनाई। महावीर की संहिता का चौथा नियम है पत्नी न लेना या ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना, और महावीर की संहिता का पाँचवाँ नियम है वस्त्रों के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक संपत्ति का त्याग करना। ये दोनों नियम मिलकर पार्श्व के चौथे नियम का निर्माण करते प्रतीत होते हैं। पार्श्व और महावीर की आचार संहिता के व्यावहारिक या बाह्य पहलुओं में मुख्य अंतर यह प्रतीत होता है कि पार्श्व और उनके

अनुयायी अचेलक या नग्न थे, जबकि महावीर और उनके अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते थे, तथा अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु का त्याग करते थे। दूसरे शब्दों में, महावीर द्वारा प्रचारित जैन धर्म पार्श्व के धर्म के समान ही है, परन्तु कुछ अधिक आधुनिक है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि ये दोनों संप्रदाय एक हो गए, जैसा कि वास्तव में पार्श्व की मृत्यु के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद हुआ, जब पार्श्व और महावीर के शिष्य श्रावस्ती में मिले और उनका विलय हुआ। बाद में, जैनों ने पार्श्व से पहले बाईस पैगंबरों को जोड़कर इस संप्रदाय के विलय की व्याख्या अलग ढंग से की, जिससे पार्श्व उनके तेईसवें और महावीर चौबीसवें पैगंबर बन गए। हालांकि, यह मानना बिल्कुल सही होगा कि पार्श्व और महावीर ने स्वतंत्र रूप से एक दर्शन और एक धार्मिक प्रणाली विकसित की, जिसके सिद्धांत एक समान थे।

सामञ्ञफल-सूत्र में निगंठ नाथपुत्त का उल्लेख चार प्रकार के संयम के सिद्धांत का पालन करने वाले के रूप में किया गया है: ठंडे पानी के उपयोग से परहेज, क्योंकि उसमें जीवन होता है, और हत्या और यौन संबंध जैसे पापी कार्यों से परहेज। वे सभी पापों से मुक्त थे और उन्होंने स्वयं को शुद्ध कर लिया था। उदंबरिका-सीहनाद-सूत्र में उनके लिए वर्णित संयम भिन्न हैं, लेकिन पार्श्व के चार व्रतों के समान हैं।

बुद्ध के अगले महत्वपूर्ण समकालीन मक्खली गोसाला थे। वे अचेलक संप्रदाय से संबंधित थे, और जैसा कि उनके नाम के पहले भाग से स्पष्ट है, वे बाँस की छड़ी (मस्कारिन) धारण करते थे। कहा जाता है कि वे कुछ समय के लिए महावीर के शिष्य रहे, लेकिन बाद में उनसे विमुख हो गए। इसके बाद, उन्होंने संभवतः आजीविका संप्रदाय के नाम से एक स्वतंत्र संप्रदाय की स्थापना की। बाद के लेखकों ने दो पूर्ववर्तियों, नंदा वच्छ और किसा समकिच्छ का उल्लेख किया है, इस प्रकार इस संप्रदाय के तीन पैगंबर बताए गए हैं। यह संप्रदाय अब विलुप्त हो चुका है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लोकप्रियता और यहाँ तक कि राजशाही संरक्षण भी प्राप्त था। गोसाला द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को संसार-विशुद्धि कहा जाता है, जिसका अर्थ है सभी प्रकार के अस्तित्व से गुजरकर ही पवित्रता प्राप्त करना। गोसाला का मानना था कि मनुष्य के दुख या उसके उद्धार का कोई विशेष कारण नहीं है। वे मानवीय प्रयासों में विश्वास नहीं करते थे, और मानते थे कि सभी प्राणी भाग्य के आगे असहाय हैं। उनका मानना था कि सभी प्राणी, चाहे बुद्धिमान हों या मूर्ख, संसार से गुजरने के लिए नियत हैं और इस चक्र के पूरा होने पर उनका दुख समाप्त हो जाएगा। किसी भी मानवीय प्रयास से यह अवधि कम या ज्यादा नहीं हो सकती। धागे के गोले की तरह, संसार की एक निश्चित अवधि होती है, जिससे प्रत्येक प्राणी को गुजरना पड़ता है।

मखली गोसाला का जन्म एक गौशाला में हुआ था। एक दिन वह कीचड़ भरे मैदान में अपने स्वामी के पीछे सिर पर तेल का घड़ा लेकर चल रहा था, तभी स्वामी ने उससे कहा (मा खली) 'गिरना मत', लेकिन वह फिसलकर गिर गया। डर के मारे वह भागने लगा, पर स्वामी ने उसे कपड़े से पकड़ लिया। हालांकि, स्वामी के हाथों में कपड़ा छोड़कर वह भाग गया और गांव में उसका वैसा ही स्वागत हुआ जैसा पूर्ण कस्सपा का हुआ था।

शेष चार शिक्षक, जिनका उल्लेख बुद्ध के समकालीन के रूप में किया गया है, ने भावी पीढ़ियों पर वैसी छाप नहीं छोड़ी जैसी महावीर और कुछ हद तक गोसाला ने छोड़ी थी।

पूर्णा कस्सपा का कुल नाम कस्सपा था, और उन्हें पूर्णा (पूर्ण करने वाला) कहा जाता था क्योंकि उनके जन्म से ही घर में सौ दासों की सूची पूरी हो गई थी। उस घर में उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया, इसलिए वे वहाँ से भाग निकले, लेकिन चोरों ने उनके कपड़े चुरा लिए। घास या सरकंडे जैसी किसी और चीज़ से खुद को ढकना न जानने के कारण, वे बिना कपड़ों के एक गाँव में प्रवेश कर गए। उन्हें देखकर लोगों ने सोचा कि वे एक पवित्र तपस्वी हैं, जिन्हें किसी भी चीज़ से लगाव नहीं है, और उन्हें भोजन देने और उनकी देखभाल करने लगे। हालाँकि उन्हें बाद में वस्त्र मिले, लेकिन उन्होंने उन्हें नहीं पहना, क्योंकि लोग वस्त्रों से उनके अनासक्ति के कारण उनका सम्मान करते थे। इस प्रकार उनके तप की शुरुआत हुई, और समय के साथ उनके पाँच सौ तपस्वी अनुयायी बन गए।

अजिथा केसकंबली को यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि वे मानव बालों से बना एक वस्त्र पहनते थे जो सर्दी के मौसम में ठंडा और गर्मी के मौसम में गर्म रहता था, और जिसकी गंध दुर्गंधयुक्त होती थी और शरीर के लिए असहज था।

पकुधा कच्चायना ठंडे पानी से हमेशा परहेज करते थे। जब वे किसी नदी या धारा को पार करते थे, तो वे अपने नियमों का उल्लंघन मानते थे और अपने नियमों को बहाल करने के लिए रेत का स्तूप खड़ा करते थे।

संजय बेल्लत्थिपुत्त बेल्लत्था के पुत्र थे। निगंठ नाथपुत्त नाथ के पुत्र थे, और उनका दावा था कि उन्हें किसी भी चीज से कोई लगाव नहीं है और वे कभी भी वस्त्र नहीं पहनते थे।

बुद्ध के ज्ञानोदय से बहुत पहले, ये छह शिक्षक विभिन्न राज्यों में यात्रा कर रहे थे और अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने स्वयं को मान्यता प्राप्त धार्मिक शिक्षकों के रूप में स्थापित कर लिया था और वे लोगों के बीच सुप्रसिद्ध थे।

जब वे अपनी यात्रा के दौरान सावत्थी पहुंचे, तो उनके अनुयायियों ने जाकर राजा पसेनादि को इन शिक्षकों के आगमन और उनके ज्ञान प्राप्त करने की सूचना दी। राजा ने कहा:

“आप स्वयं उन्हें आमंत्रित करके महल में ले आइए।” लोग गए और उन्हें बताया कि राजा ने उन्हें महल में भोजन के लिए आमंत्रित किया है। परन्तु उन्होंने निमंत्रण स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। जब लोगों ने उनसे बार-बार महल आने का अनुरोध किया, तो उन्होंने अपने अनुयायियों के प्रति शिष्टाचारवश सहमति दे दी और साथ में महल चले गए।

राजा ने उन्हें बैठने के लिए जगह दी, लेकिन वे महंगी सीटों पर नहीं बैठे, बल्कि बेंचों और ज़मीन पर बैठ गए। राजा उनके व्यवहार से समझ गया कि उनमें ज्ञान की कमी है, इसलिए उसने उन्हें भोजन नहीं दिया, बल्कि तुरंत पूछा कि क्या वे ज्ञानी हैं। वे जानते थे कि यदि वे ज्ञानी होने का दावा करेंगे, तो राजा उनसे उनके ज्ञान के बारे में प्रश्न करेगा, और यदि वे उसे संतुष्ट नहीं कर पाए, तो वह उन्हें शारीरिक क्षति पहुँचाएगा। इसलिए, अपने हित में, उन्होंने स्वीकार किया कि वे ज्ञानी नहीं हैं। राजा ने उन्हें महल से बाहर भेज दिया। जब वे महल से बाहर आ रहे थे, तो उनके अनुयायियों ने पूछा:
"क्या राजा ने प्रश्न पूछे और क्या उन्होंने आपके साथ अच्छा व्यवहार किया?" उन्होंने कहा: "राजा ने हमसे पूछा कि क्या हम ज्ञानी हैं, लेकिन चूंकि राजा ज्ञानी होने के नाते हमारी बात समझ नहीं पाते और हमसे नाराज़ हो जाते, इसलिए हमने उनके प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहा कि हम ज्ञानी नहीं हैं। हम तो वास्तव में ज्ञानी हैं और हमारा ज्ञान जल से भी नष्ट नहीं हो सकता।"

अध्याय 23. नागवग्गा: हाथी (320-333)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 320,321,322

————————————————————————
(धम्मपद 318 और 319) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 320, 321 और 322 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 323)
————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 320, 321 और 322 - अत्तादंत वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद छंद 320, 321 और 322 - अत्तादंत वत्थु
————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
अहम नागोवा संगमे
capato patitam saram
ativakyam titikkhissam
dussilo hi bahujjano.
Dantam nayanti samitim
dantam raja' bhiruhati
दान्तो सेत्थो मनुस्सेसु
yo' tivakyam titikkhati.
Varamassatara danta
ajaniya ca sindhava
kunjara ca mahanaga
अतदन्तो ततो वरम्।
————————————————————————
श्लोक 320 : जैसे युद्ध के मैदान में हाथी धनुष से चलाए गए तीर को सहन कर लेता है, वैसे ही मैं भी दुर्व्यवहार सहन करूँगा। निश्चय ही, बहुत से लोग नैतिकताहीन हैं।
————————————————————————

श्लोक 321 : केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) ही लोगों की सभाओं में ले जाए जाते हैं; राजा केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) पर ही सवार होता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ वे हैं जो वश में किए हुए हैं और दुर्व्यवहार सहते हैं।

श्लोक 322 : खच्चर, उत्तम नस्ल के घोड़े, सिंध के घोड़े और बड़े हाथी तभी श्रेष्ठ होते हैं जब उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है; परन्तु जिसने स्वयं को (मग्ग अंतर्दृष्टि के माध्यम से) वश में कर लिया है, वह कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

स्वयं को वश में करने की कहानी

घोषिताराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (320), (321) और (322) का उच्चारण किया, जो राजा उदेना की तीन रानियों में से एक मगंदिया के भाड़े के सैनिकों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर स्वयं द्वारा प्रकट किए गए धैर्य और सहनशीलता के संदर्भ में है।

एक बार, बुद्ध के व्यक्तित्व और रूप से अत्यंत प्रभावित होकर मगंदिया के पिता ने अपनी अत्यंत सुंदर पुत्री का विवाह गौतम बुद्ध से करने का प्रस्ताव रखा। परन्तु बुद्ध ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और कहा कि वे ऐसी वस्तु को छूना भी पसंद नहीं करते जो मैल और मल से लथपथ हो, यहाँ तक कि अपने पैरों से भी नहीं। यह सुनकर मगंदिया के माता-पिता ने सत्यता को पहचान लिया और अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया। परन्तु मगंदिया बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानती थी और उनसे बदला लेने पर तुली हुई थी।

बाद में, वह राजा उदेना की तीन रानियों में से एक बनीं। जब मगंदिया ने सुना कि बुद्ध कोसंबी आए हैं, तो उसने कुछ नागरिकों और उनके सेवकों को काम पर रखा ताकि जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करें तो वे उनका अपमान करें। वे भाड़े के लोग बुद्ध के पीछे-पीछे गए और उन्हें 'चोर, मूर्ख, ऊंट, गधा, निरय (नरक) जाने वाला' जैसे अपशब्दों से अपमानित किया। ये अपमानजनक शब्द सुनकर पूज्य आनंद ने बुद्ध से नगर छोड़कर किसी अन्य स्थान पर जाने की विनती की। लेकिन बुद्ध ने इनकार कर दिया और कहा, "दूसरे नगर में भी हमारा अपमान हो सकता है और हर बार अपमान होने पर नगर छोड़ना संभव नहीं है। समस्या का समाधान वहीं करना बेहतर है जहाँ वह उत्पन्न होती है। मैं युद्ध के मैदान में हाथी के समान हूँ; जिस प्रकार हाथी चारों ओर से आने वाले तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मैं भी अनैतिक लोगों के अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करूँगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 320 : जैसे युद्ध के मैदान में हाथी धनुष से चलाए गए तीर को सहन कर लेता है, वैसे ही मैं भी दुर्व्यवहार सहन करूँगा। निश्चय ही, बहुत से लोग नैतिकताहीन हैं।

श्लोक 321 : केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) ही लोगों की सभाओं में ले जाए जाते हैं; राजा केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) पर ही सवार होता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ वे हैं जो वश में किए हुए हैं और दुर्व्यवहार सहते हैं।

श्लोक 322 : खच्चर, उत्तम नस्ल के घोड़े, सिंध के घोड़े और बड़े हाथी तभी श्रेष्ठ होते हैं जब उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है; परन्तु जिसने स्वयं को (मग्ग अंतर्दृष्टि के माध्यम से) वश में कर लिया है, वह कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

प्रवचन के अंत में, जिन्होंने बुद्ध का अपमान किया था, उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने उनका सम्मान करना शुरू कर दिया; उनमें से कुछ ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

स्वयं को वश में करने के संबंध में, घोषिताराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक कहे थे, जो राजा उदेना की तीन रानियों में से एक, मगण्डिया के भाड़े के सैनिकों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर स्वयं द्वारा प्रदर्शित धैर्य और सहनशीलता के संदर्भ में थे।

एक बार, मागंडिया के पिता बुद्ध के व्यक्तित्व और रूप से अत्यंत प्रभावित होकर अपनी सुंदर पुत्री का विवाह गौतम बुद्ध से करने का प्रस्ताव लेकर आए। परन्तु बुद्ध ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और कहा कि वे ऐसी वस्तु को छूना भी पसंद नहीं करते जो मैल और मल से भरी हो, यहाँ तक कि अपने पैरों से भी नहीं। यह सुनकर मागंडिया के माता-पिता ने सत्यता को समझकर अनागामी पुण्य प्राप्त किया। परन्तु मागंडिया बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानती थीं और उनसे बदला लेने पर तुली हुई थीं।

बाद में, वह राजा उदेना की तीन रानियों में से एक बनीं। जब मागंडिया ने सुना कि बुद्ध कोसंबी आए हैं, तो उन्होंने कुछ नागरिकों और उनके सेवकों को काम पर रखा ताकि जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करें तो उनका अपमान किया जा सके। वे भाड़े के

लोग बुद्ध के पीछे-पीछे गए और उन्हें चोर, मूर्ख, ऊंट, गधा, निरयण की ओर जाने वाला जैसे अपशब्दों से अपमानित किया । उन अपमानजनक शब्दों को सुनकर, पूज्य आनंद ने बुद्ध से नगर छोड़कर किसी अन्य स्थान पर जाने की विनती की। लेकिन बुद्ध ने इनकार कर दिया और कहा, "दूसरे नगर में भी हमारा अपमान हो सकता है और हर बार अपमान होने पर नगर छोड़ना संभव नहीं है। समस्या का समाधान वहीं करना बेहतर है जहाँ वह उत्पन्न होती है। मैं युद्ध के मैदान में हाथी के समान हूँ; जिस प्रकार हाथी चारों ओर से आने वाले तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मैं भी अनैतिक लोगों के अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करूँगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 320)

हाय बहुज्जणो दुस्सिलो संगमे कपातो पतितम्
सारं नागो इव अहं अतिवाक्यं तितिक्खिसं

ही : जैसे; बहुज्जनो [बहुज्जना]: बहुमत; दुस्सीलो [दुस्सीला]: दुष्ट हैं; संगामे : युद्ध में; कापातो [कापात]: धनुष से छोड़ा गया; पतितं [पतित]: तीर; सरं [सर]: तीर की तरह; नागो इव : हाथी की तरह; अहं : मैं करूँगा; अतिवाक्यं [अतिवाक्य]: अपशब्द—ऐसे शब्द जो शालीनता की सीमा से परे हों; तितिक्खिस्सां [तितिक्खिस्सा]: सहन करना

मैं उन दुराचारी लोगों के शब्दों को सहन करूँगा जो शालीनता की सीमाओं को पार कर जाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे हाथी युद्ध में तीरों का सामना करता है। बेशक, दुराचारी लोग ही दुनिया में बहुसंख्यक हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 321)

दन्तं समितिं नयन्ति दन्तं अभिरुहति यो
अतिवाक्यं तितिक्खति दंतो मनुस्सेसु सेठो

दन्तं [दन्त]: अनुशासित (हाथी या घोड़ा); समितिं [समिति]: सभा में; नयन्ति : नेतृत्व किया जाता है; राजा : राजा; अभिरूहति : सवार होता है; यो : यदि कोई; अतिवाक्यं [अतिवाक्य]: कठोर शब्द; शालीनता की सीमा से परे जाने वाले कथन; तितिक्खति : सहन करता है; दन्तो [दन्त]: अनुशासित; सो : वह; मनुष्यसु : मनुष्यों में; सेठो [सेठ]: महान है

अनुशासित पशु (हाथी या घोड़ा) को ही सभा में ले जाया जाता है। राजा अनुशासित हाथी या घोड़े पर सवार होता है। मनुष्यों में अनुशासित व्यक्ति ही सबसे महान होता है। वह जनता के कठोर शब्दों को सहन कर लेता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 322)

वरं अस्सतार अजन्या च सिंधवा महानगा
कुंजरा दन्त वरं ततो अतदन्तो वरं

वरं [वर]: महान हैं; असत्तारा : खच्चर; अजनिया : कुलीन; सिंधवा : सिंधु घोड़े; महानागा कुंजारा : बड़े दाँत वाले हाथी; दंता : जब वश में किया गया; वरं [वर]: महान हैं; ततो : उन सभी से अधिक; अत्तदन्तो [अत्तदन्त]: वह व्यक्ति जिसने स्वयं को अनुशासित किया है

अच्छी तरह से प्रशिक्षित खच्चर उपयोगी होते हैं। सिंधु नस्ल के घोड़े श्रेष्ठ माने जाते हैं। हाथियों में कुंजारा नस्ल के हाथी सबसे महान होते हैं। लेकिन इन सबमें सर्वश्रेष्ठ वह व्यक्ति है जिसने स्वयं को वश में कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 320-322)

बुद्ध के गुण : ये श्लोक बुद्ध के गुणों की प्रशंसा करते हैं। स्वयं बुद्ध ने कहा है कि वे अभद्र लोगों के निंदनीय शब्दों को सहन करेंगे। बुद्ध को नौ आंतरिक गुणों से युक्त बताया गया है। वे इस प्रकार हैं:

(1) अरहं : बुद्ध को पाँच रूपों में अरहत के रूप में चित्रित किया गया है, अर्थात्:

(क) उसने सभी अशुद्धियों का त्याग कर दिया है;

(ख) उसने अशुद्धियों के उन्मूलन से जुड़े सभी शत्रुओं को दबा दिया है;

(ग) उसने अस्तित्व के चक्र की तीलियों को नष्ट कर दिया है; (घ) वह भेंट चढ़ाने और सम्मान देने के योग्य है, और

(ई) उन्होंने अपने चरित्र या अपनी शिक्षाओं में कोई रहस्य नहीं छिपाया।

बुद्ध मानव इतिहास के सबसे महान व्यक्तित्व थे, परिपूर्ण, अचूक, निष्कलंक और निर्मल। बोधि वृक्ष की चरणों में उन्होंने समस्त बुराइयों पर विजय प्राप्त की और परम पवित्रता की अवस्था को प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्त करके उन्होंने समस्त दुखों का अंत किया। वे विश्व के पूजनीय थे और हर मायने में श्रद्धा के पात्र थे। उनकी शिक्षाओं में कोई रहस्य या गूढ़ता नहीं है और वे सबके लिए खुली किताब की तरह हैं, जिसे सब देख सकते हैं।

(2) सम्मा-संबुद्धो : बुद्ध को सम्मा-संबुद्धो कहा गया क्योंकि उन्होंने संसार के अस्तित्व को उसके उचित परिप्रेक्ष्य में समझा और अपने स्वयं के ज्ञान से चार आर्य सत्यों की खोज की। राजकुमार के रूप में जन्म लेकर उन्होंने संसार का त्याग किया और छह वर्षों तक ज्ञान प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। इस दौरान उन्होंने उस समय के सभी प्रसिद्ध गुरुओं से संपर्क किया और उनके द्वारा सिखाई गई सभी विधियों का प्रयास किया। अपने गुरुओं के समान ज्ञान प्राप्त करने के बावजूद भी वे ज्ञान के मायावी लक्ष्य को नहीं पा सके। अंततः,

अपने शोध, तर्कसंगत समझ और मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए, पौराणिक धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं के पारंपरिक मार्ग से विमुख होकर, उन्होंने असंतोष, संघर्ष और निराशा (दुःख) की सार्वभौमिक समस्याओं का अंतिम समाधान पाया। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम - कारण और प्रभाव के नियम - की खोज की, जिसे उन्होंने संसार की वास्तविकता के रूप में परखा और इस प्रकार सर्वोच्च प्रबुद्ध व्यक्ति बन गए।

(3) विज्जा - चरण संकल्प : इस शब्द विज्जा - चरण संकल्प का अर्थ है कि बुद्ध पूर्ण स्पष्ट दृष्टि और अनुकरणीय आचरण से संपन्न थे। इसके दो महत्वपूर्ण पहलू हैं, जैसा कि त्रिविध ज्ञान और अष्टविध बुद्धि में दर्शाया गया है।

तीन प्रकार का ज्ञान निम्नलिखित प्रकार से सूचीबद्ध है:

(क) सबसे पहले, बुद्ध अपने पिछले जन्म को याद कर सकते थे और अपने साथ-साथ दूसरों के पिछले जन्मों का भी पता लगा सकते थे।

(ख) दूसरे, अतीत का वर्णन करने में सक्षम होने के अलावा, उनके पास भविष्य को देखने और किसी भी क्षण में पूरे ब्रह्मांड की कल्पना करने की अद्वितीय दूरदर्शिता थी।

(ग) तीसरा, उन्हें अरहतत्व से संबंधित गहन ज्ञान था।

अष्टांगिक ज्ञान के संदर्भ में, बुद्ध को अंतर्दृष्टि का अनूठा उपहार, अलौकिक कारनामे करने की शक्ति, दिव्य श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों को पढ़ने की शक्ति, विभिन्न शारीरिक शक्तियां, पिछले जन्मों को याद करने की क्षमता, दिव्य दृष्टि और शांत पवित्रता के जीवन से संबंधित उत्कृष्ट ज्ञान से संपन्न बताया गया है।

चरण या अच्छे आचरण शब्द के संदर्भ में , इस पहलू को पंद्रह विभिन्न श्रेणियों या गुणों में विभाजित किया गया है जो बुद्ध में पूर्णतः समाहित थे। इन अतिरिक्त गुणों को कर्म और वचन में संयम, इंद्रिय-प्रभावों के अवशोषण में संयम, भोजन के सेवन में संयम, अत्यधिक नींद से परहेज, आस्था में निर्मल दृष्टि बनाए रखना, बुराई करने में लज्जा का अहसास, बुराई करने में भय का अहसास, ज्ञान, ऊर्जा, सजगता और समझ की प्यास के रूप में वर्गीकृत किया गया है - ये चार प्रवृत्तियाँ भौतिक जगत से संबंधित हैं। पन्ना और करुणा को ज्ञान और करुणा के रूप में दर्शाया गया है, जो बुद्ध के दो मूलभूत गुण हैं। पन्ना ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया जबकि करुणा ने उन्हें मानव जाति की सेवा करने की करुणा प्रदान की। उन्होंने अपने ज्ञान के माध्यम से सभी प्राणियों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसका अहसास किया और अपनी करुणा के माध्यम से उन्होंने अपने अनुयायियों को बुराई और दुख से दूर किया। बुद्ध के महान गुणों ने उन्हें अपने उपदेशों में भाईचारे की सर्वोच्च डिग्री और सभी प्राणियों में पाए जाने वाले उत्कृष्ट गुणों को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाया।

(4) सुगतो : बुद्ध को सुगतो भी कहा जाता था , जिसका अर्थ है कि उनका मार्ग अच्छा है, गंतव्य उत्तम है और मार्ग दिखाने के लिए प्रयुक्त शब्द और विधियाँ निर्दोष और दोषरहित हैं। आनंद प्राप्ति का बुद्ध का मार्ग सही और शुद्ध, सीधा, प्रत्यक्ष और निश्चित है। उनके वचन उदात्त और अचूक हैं। कई प्रसिद्ध इतिहासकारों और महान वैज्ञानिकों ने टिप्पणी की है कि एकमात्र धार्मिक शिक्षा जिसे विज्ञान और स्वतंत्र विचारकों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, वह बुद्ध के वचन हैं।

(5) लोकविद् : लोकविद् शब्द बुद्ध के लिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उन्हें संसार का अत्यंत ज्ञान था। बुद्ध ने सांसारिक जीवन के सभी पहलुओं, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों, का अनुभव किया, उन्हें जाना और उनमें प्रवेश किया। वे सर्वप्रथम थे जिन्होंने यह देखा कि ब्रह्मांड में हजारों विश्व प्रणालियाँ हैं। वे सर्वप्रथम थे जिन्होंने यह घोषणा की कि संसार केवल एक अवधारणा है। उनके शब्दों में, संसार या ब्रह्मांड की उत्पत्ति और अंत पर अटकलें लगाना व्यर्थ है। उन्होंने सिखाया कि संसार की उत्पत्ति, उसका अंत और उसके अंत का मार्ग मनुष्य के देह में ही निहित है, जिसमें उसकी बोध शक्ति और चेतना शामिल है।

(6) अनुत्तरो पुरिसा-दम्म-सारथी : अनुत्तरो का अर्थ है अतुलनीय और अद्वितीय। पुरिसा - दम्म उन व्यक्तियों को संदर्भित करता है जिन्हें धम्म का वरदान दिया जाना है, जबकि सारथी का अर्थ है नेता। इन तीनों शब्दों का एक साथ अर्थ है एक अतुलनीय नेता जो पथभ्रष्ट लोगों को धर्म के मार्ग पर लाने में सक्षम हो। जिन लोगों को धम्म के मार्ग पर चलने और बुराई से दूर रहने के लिए प्रेरित किया गया, उनमें अंगुलिमाला, आलावक और नालागिरि जैसे कुख्यात दुष्ट व्यक्ति; सच्चक जैसे लुटेरे, नरभक्षी और हठी लोग शामिल थे। इन सभी को धम्म के मार्ग पर लाया गया, और कुछ ने तो अपने जीवनकाल में ही संतत्व प्राप्त कर लिया। यहां तक कि बुद्ध के कट्टर शत्रु देवदत्त को भी बुद्ध ने अपनी महान करुणा से पुनर्वासित किया।

(7) सत्था देव-मनुस्सनां : इस शब्द का अनुवाद यह है कि बुद्ध देवों और मनुष्यों के बुद्ध थे। ध्यान देने योग्य है कि इस संदर्भ में देवों से तात्पर्य उन प्राणियों से है जो अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मानव अवस्था से आगे विकसित हुए हैं, जिसे जैविक विकास की अंतिम अवस्था नहीं माना जाता है। बौद्ध संदर्भ में देवों का प्राचीन पारंपरिक धार्मिक मिथकों से कोई संबंध नहीं है। बुद्ध एक असाधारण बुद्ध थे जो लचीले थे और देवों और मनुष्यों की विभिन्न क्षमताओं और मानसिकता के अनुरूप विविध तकनीकों को विकसित करने में सक्षम थे। उन्होंने सभी को धार्मिक जीवन जीने का निर्देश दिया। बुद्ध वास्तव में एक सार्वभौमिक बुद्ध थे।

(8) बुद्धो : यह विशेष शब्द, बुद्धो , इस श्रेणी के दूसरे शब्द की पुनरावृत्ति प्रतीत होता है, यद्यपि इसका अपना अलग अर्थ है। बुद्धो का अर्थ है कि सर्वज्ञ होने के कारण बुद्धों में अपने धर्म का उत्कृष्ट उपदेश देकर दूसरों को अपनी महान खोज के प्रति आश्वस्त करने की

असाधारण शक्ति थी। उनकी तकनीकें किसी अन्य बुद्ध से अतुलनीय थीं। बुद्धो शब्द का दूसरा अर्थ जागृत होना है, क्योंकि मनुष्य की सामान्य अवस्था निरंतर सुस्ती की अवस्था में रहती है। बुद्ध पहले व्यक्ति थे जो जागृत हुए और इस सुस्ती की अवस्था से बाहर निकले। इसके बाद उन्होंने दूसरों को भी जागृत होने और सांसारिक सुस्ती या सुस्ती की अवस्था से दूर रहने के लिए प्रेरित किया।

(9) भगवा : बुद्ध का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त सभी शब्दों में, बुद्धो और भगवा शब्द , अलग-अलग या एक साथ बुद्धो भगवा के रूप में प्रयुक्त होते हैं , जिसका अर्थ है धन्य व्यक्ति, सबसे लोकप्रिय और सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं।

श्रद्धा और आदर के योग्य, उनका नाम धन्य है। इसलिए, कुछ प्रशंसाओं के अनुसार, 'भगवान' शब्द के अनेक अर्थ हैं। बुद्ध को भगवान या धन्य कहा गया क्योंकि वे सभी बुराइयों पर विजय प्राप्त करने, सर्वोच्च धम्म का प्रतिपादन करने और असाधारण बौद्धिक क्षमताओं से संपन्न होने के कारण मानवजाति में सबसे सुखी और भाग्यशाली थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 323

(धम्मपद 320, 321 और 322) <<<< पिछला || धम्मपद 323 || अगला >>>> (धम्मपद 324)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 323 - हत्थकारियपुब्बक भिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 323 - हत्थाकारियपुब्बक भिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na hi etehi yanehi
gaccheyya agatam disam
यथा' तना सुदन्तेना
danto dantena gacchati.

श्लोक 323 : निःसंदेह, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो (अर्थात निर्वाण); परन्तु अपने आप को पूरी तरह वश में करके, वश में किया हुआ व्यक्ति (1) उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच सकता है।

---

1. वश में किया हुआ व्यक्ति: वह व्यक्ति जिसने पहले इंद्रियों को वश में कर लिया, और बाद में मग्गा अंतर्दृष्टि विकसित कर ली।

उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (323) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो पहले हाथी प्रशिक्षक था।

एक बार कुछ भिक्षुओं ने अचिरवती नदी के किनारे एक हाथी प्रशिक्षक और उसके हाथी को देखा। प्रशिक्षक को हाथी को काबू में करने में कठिनाई हो रही थी, तभी एक पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं को बताया कि इसे आसानी से कैसे संभाला जा सकता है। प्रशिक्षक ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया और हाथी तुरंत वश में हो गया। मठ लौटकर भिक्षुओं ने यह घटना बुद्ध को सुनाई। बुद्ध ने पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा, "हे व्यर्थ भिक्षु, जो अभी तक मार्ग और फल से दूर हो! हाथियों को वश में करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। हाथियों को वश में करके कोई भी उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक नहीं पहुँच सकता जहाँ वह कभी नहीं गया हो; केवल वही व्यक्ति वहाँ पहुँच सकता है जिसने स्वयं को वश में कर लिया हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 323 : निःसंदेह, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो (अर्थात निर्वाण); परन्तु अपने आप को पूर्णतः वश में करके ही वश में किया हुआ व्यक्ति उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच सकता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस श्लोक का उल्लेख एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में किया था जो पहले हाथी प्रशिक्षक रह चुका था।

एक बार कुछ भिक्षुओं ने अचिरवती नदी के किनारे एक हाथी प्रशिक्षक और उसके हाथी को देखा। प्रशिक्षक को हाथी को काबू में करने में कठिनाई हो रही थी, तभी एक पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं को बताया कि इसे आसानी से कैसे संभाला जा सकता है। प्रशिक्षक ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया और हाथी तुरंत वश में हो गया। मठ लौटकर भिक्षुओं ने यह घटना बुद्ध को सुनाई। बुद्ध ने पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा, "हे व्यर्थ भिक्षु, जो अभी तक मार्ग और फल से दूर हो ! हाथियों को वश में करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होता। हाथियों को वश में करके कोई भी उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक नहीं पहुँच सकता जहाँ वह कभी नहीं गया हो; केवल वही व्यक्ति वहाँ पहुँच सकता है जिसने स्वयं को वश में कर लिया हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 323)

दन्तो दन्तेन सुदन्तेन अत्ताना अगतं दिसं

यथा गच्छति एतेहि यानेहि नहि गच्छेया

दंतो [दन्त]: अनुशासित व्यक्ति; दंतेन : अनुशासन के कारण; सुदन्तेन : सुशासित; अत्तना : मन; अगतं [अगत]: पहले नहीं गया; दिसां [दिसा]: क्षेत्र; यथा: इस प्रकार; गच्छति : जाता है ; एतेहि यानेहि : ये वाहन; नहि गच्छेय्या : नहीं जा सकते

वास्तव में, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो, बल्कि स्वयं को पूरी तरह से वश में करके ही वश में किया हुआ व्यक्ति उस स्थान - निर्वाण - तक पहुँच सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 323)

यह श्लोक बुद्ध के अपने शिष्यों और संपूर्ण संसार के प्रति दृष्टिकोण का सार प्रस्तुत करता है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने उद्धार के लिए प्रयास करना चाहिए।

बुद्ध गुप्त सिद्धांतों का दावा करने वालों से घृणा करते थे, और कहते थे: गोपनीयता झूठे सिद्धांतों की पहचान है। अपने निजी सेवक, पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए बुद्ध ने कहा, "आनंद, मैंने धम्म का उपदेश बाह्य और आंतरिक सिद्धांतों में कोई भेद किए बिना दिया है, क्योंकि हे आनंद, सत्य के संदर्भ में बुद्ध का कोई ऐसा गुरु नहीं है जो शिष्य से कोई आवश्यक ज्ञान छुपाता हो। उन्होंने धम्म को सभी के लिए स्वतंत्र रूप से और समान रूप से घोषित किया। उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया और न ही अपने शिष्यों से अपने और अपने उपदेशों में अंधभक्ति और आज्ञाकारी विश्वास की अपेक्षा की। उन्होंने विवेकपूर्ण परीक्षण और बुद्धिमत्तापूर्ण पूछताछ पर जोर दिया। उन्होंने जिज्ञासु कलामों को संबोधित करते हुए, जिसे सही ही 'स्वतंत्र चिंतन का पहला संविधान' कहा गया है, आलोचनात्मक जांच का स्पष्ट रूप से आग्रह किया।"

किसी भी बात पर विश्वास करना बौद्ध धर्म की भावना के विरुद्ध है, इसलिए हमें बुद्ध और उनके शिष्यों के बीच यह संवाद मिलता है:

—यदि अब, यह जानते हुए और इसे संरक्षित करते हुए, क्या आप कहेंगे: 'हम अपने गुरु का सम्मान करते हैं और उनके प्रति सम्मान के माध्यम से हम उनकी शिक्षाओं का सम्मान करते हैं?'

नहीं। आदरणीय।

—हे शिष्यों, जिस बात की आप पुष्टि करते हैं, क्या वह वही नहीं है जिसे आपने स्वयं पहचाना, देखा और समझा है?

—जी हां, पूज्यवर।

और सच्ची जांच-पड़ताल के इस पूर्णतः सही दृष्टिकोण के अनुरूप, बौद्ध तर्कशास्त्र पर एक ग्रंथ में कहा गया है: 'जिस प्रकार बुद्धिमान लोग सोने को जलाकर, काटकर और (कसौटी पर) रगड़कर परखते हैं, उसी प्रकार आपको मेरे शब्दों को परखने के बाद ही स्वीकार करना चाहिए, न कि केवल मेरे प्रति सम्मान के कारण।'

बौद्ध धर्म किसी भी प्रकार के दबाव या ज़बरदस्ती से मुक्त है और अनुयायियों से अंधविश्वास की अपेक्षा नहीं करता। आरंभ में ही संशयवादी को इसके अन्वेषण के आह्वान से प्रसन्नता होगी। बौद्ध धर्म प्रारंभ से अंत तक उन सभी के लिए खुला है जिनके पास देखने की दृष्टि और समझने की बुद्धि है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 324

———————————————————————

(धम्मपद 323) <<<< पिछला || धम्मपद 324 || अगला >>>> (धम्मपद 325)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 324 - परिजिन्नब्राह्मणपुत्त वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 324 - परिजिन्ना ब्राह्मणपुत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Dhanapalo nama kunjaro
katukabhedano dunnivarayo
बद्धो कबालम न भुंजति
sumarati nagavanassa kunjaro.

———————————————————————

श्लोक 324 : धनपाला नामक हाथी, अत्यधिक भूख और अनियंत्रित अवस्था में, कैद में होने के कारण, एक निवाला भी नहीं खाता, अपने मूल वन के लिए तरसता है (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरसता है)।

———————————————————————

एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक वृद्ध ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (324) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक बूढ़े ब्राह्मण रहते थे जिनके पास आठ लाख रुपये नकद थे। उनके चार पुत्र थे; प्रत्येक पुत्र के विवाह पर वे उसे एक लाख रुपये देते थे। इस प्रकार उन्होंने कुल चार लाख रुपये दान कर दिए। बाद में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। उनके पुत्र उनके पास आए और उनकी बहुत अच्छी देखभाल की; वास्तव में, वे उनसे बहुत स्नेह और प्रेम करते थे। कुछ समय बाद, उन्होंने किसी तरह उन्हें मनाकर शेष चार लाख रुपये भी ले लिए। इस प्रकार वे लगभग पूरी तरह से निर्धन हो गए।

पहले वह अपने सबसे बड़े बेटे के घर रहने गया। कुछ दिनों बाद, बहू ने उससे कहा, "क्या तुमने अपने सबसे बड़े बेटे को सौ-हज़ार रुपये ज़्यादा दिए? क्या तुम्हें अपने दूसरे बेटों के घरों का रास्ता नहीं पता?" यह सुनकर बूढ़ा ब्राह्मण बहुत क्रोधित हुआ और अपने सबसे बड़े बेटे का घर छोड़कर अपने दूसरे बेटे के घर चला गया। उसके दूसरे बेटे की पत्नी ने भी यही बात कही और बूढ़ा ब्राह्मण अपने तीसरे बेटे के घर गया और अंत में अपने चौथे और सबसे छोटे बेटे के घर गया। उसके सभी बेटों के घरों में यही हाल हुआ। इस प्रकार, बूढ़ा ब्राह्मण असहाय हो गया; तब उसने एक लाठी और एक कटोरा लेकर बुद्ध से सुरक्षा और सलाह लेने के लिए प्रार्थना की।

मठ में ब्राह्मण ने बुद्ध को बताया कि उसके पुत्रों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया है और उनसे सहायता मांगी। तब बुद्ध ने उसे कुछ श्लोक याद करने को दिए और निर्देश दिया कि जहाँ भी लोगों की भीड़ हो, वहाँ इनका पाठ करे। श्लोकों का सार यह है: "मेरे चार मूर्ख पुत्र राक्षस के समान हैं। वे मुझे 'पिता, पिता' कहकर पुकारते हैं, परन्तु ये शब्द केवल उनके मुख से निकलते हैं, उनके हृदय से नहीं। वे कपटी और षड्यंत्रकारी हैं। अपनी पत्नियों की सलाह पर उन्होंने मुझे अपने घरों से निकाल दिया है। अतः अब मुझे भीख माँगनी पड़ रही

है। मेरे ये पुत्र मेरे इस डंडे से भी कम उपयोगी हैं।" जब वृद्ध ब्राह्मण ने इन श्लोकों का पाठ किया, तो भीड़ में मौजूद कई लोग, उन्हें सुनकर, उसके पुत्रों पर क्रोधित हो उठे और कुछ ने तो उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी।

यह देखकर पुत्र भयभीत हो गए और अपने पिता के चरणों में घुटने टेककर क्षमा मांगने लगे। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि उस दिन से वे अपने पिता की ठीक से देखभाल करेंगे और उनका आदर, प्रेम और सम्मान करेंगे। फिर वे अपने पिता को अपने-अपने घर ले गए; उन्होंने अपनी पत्नियों को भी चेतावनी दी कि वे अपने पिता की अच्छी तरह देखभाल करें अन्यथा उन्हें मार डाला जाएगा। प्रत्येक पुत्र ने एक-एक कपड़ा दिया और प्रतिदिन भोजन की थाली भेजी। ब्राह्मण पहले से अधिक स्वस्थ हो गया और शीघ्र ही उसका वजन भी बढ़ गया। उसे अहसास हुआ कि ये सभी लाभ उसे बुद्ध के कारण प्राप्त हुए हैं। इसलिए वह बुद्ध के पास गया और विनम्रतापूर्वक उनसे निवेदन किया कि वे अपने पुत्रों से प्रतिदिन प्राप्त होने वाली चार भोजन की थालियों में से दो स्वीकार कर लें। फिर उसने अपने पुत्रों को निर्देश दिया कि वे दो भोजन की थालियाँ बुद्ध को भेजें।

एक दिन, सबसे बड़े बेटे ने बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद, बुद्ध ने माता-पिता की देखभाल करने से मिलने वाले लाभों पर प्रवचन दिया। फिर उन्होंने उन्हें धनपाल नामक हाथी की कहानी सुनाई, जो अपने माता-पिता की देखभाल करता था। जब धनपाल को पकड़ लिया गया, तो वह जंगल में छूटे अपने माता-पिता के लिए तड़पने लगा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 324 : धनपाला नामक हाथी, अत्यधिक भूख और अनियंत्रित अवस्था में, कैद में होने के कारण, एक निवाला भी नहीं खाता, अपने मूल वन के लिए तरसता है (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरसता है)।

प्रवचन के अंत में, वृद्ध ब्राह्मण के साथ-साथ उनके चारों पुत्रों और उनकी पत्नियों ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक वृद्ध ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे जिनके पास आठ लाख रुपये नकद थे। उनके चार पुत्र थे; प्रत्येक पुत्र के विवाह पर वे उसे एक लाख रुपये देते थे। इस प्रकार उन्होंने कुल चार लाख रुपये दान कर दिए। बाद में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। उनके पुत्र उनके पास आए और उनकी बहुत अच्छी देखभाल की; वास्तव में, वे उनसे बहुत स्नेह और प्रेम करते थे। कुछ समय बाद, उन्होंने किसी तरह उन्हें बहला-फुसलाकर शेष चार लाख रुपये भी ले लिए। इस प्रकार वे लगभग निर्धन हो गए।

पहले वह अपने बड़े बेटे के घर रहने गया। कुछ दिनों बाद बहू ने उससे कहा, "क्या तुमने अपने बड़े बेटे को सौ-हजार रुपये ज़्यादा दिए? क्या तुम्हें अपने दूसरे बेटों के घरों का रास्ता नहीं पता?" यह सुनकर बूढ़ा ब्राह्मण बहुत क्रोधित हुआ और अपने बड़े बेटे का घर छोड़कर अपने दूसरे बेटे के घर चला गया। उसके सभी बेटों के घरों में भी यही हाल हुआ। इस प्रकार बूढ़ा ब्राह्मण असहाय हो गया; तब उसने एक लाठी और एक कटोरा लेकर बुद्ध से सुरक्षा और सलाह लेने के लिए प्रार्थना की।

मठ में ब्राह्मण ने बुद्ध को बताया कि उसके पुत्रों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया है और उनसे सहायता मांगी। तब बुद्ध ने उसे कुछ श्लोक याद करने को दिए और निर्देश दिया कि जहाँ भी लोगों की भीड़ हो, वहाँ इनका पाठ करे। श्लोकों का सार यह है: "मेरे चारों मूर्ख पुत्र राक्षस के समान हैं। वे मुझे 'पिता, पिता' कहकर पुकारते हैं, परन्तु ये शब्द केवल उनके मुख से निकलते हैं, उनके हृदय से नहीं। वे कपटी और षड्यंत्रकारी हैं। अपनी पत्नियों की सलाह पर उन्होंने मुझे अपने घरों से निकाल दिया है। अतः अब मुझे भीख माँगनी पड़ रही है। मेरे ये पुत्र मेरे इस डंडे से भी कम उपयोगी हैं।" जब वृद्ध ब्राह्मण ने इन श्लोकों का पाठ किया, तो भीड़ में मौजूद अनेक लोग, उन्हें सुनकर, अपने पुत्रों पर क्रोधित हो उठे और कुछ ने तो उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी।

यह देखकर पुत्र भयभीत हो गए और अपने पिता के चरणों में घुटने टेककर क्षमा मांगने लगे। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि उस दिन से वे अपने पिता की ठीक से देखभाल करेंगे और उनका आदर, प्रेम और सम्मान करेंगे। फिर वे अपने पिता को अपने-अपने घर ले गए; उन्होंने अपनी पत्नियों को भी चेतावनी दी कि वे अपने पिता की अच्छी तरह देखभाल करें अन्यथा उन्हें मार डाला जाएगा। प्रत्येक पुत्र ने एक कपड़ा दिया और प्रतिदिन भोजन की थाली भेजी। ब्राह्मण पहले से अधिक स्वस्थ हो गया और शीघ्र ही उसका वजन भी बढ़ गया। उसे अहसास हुआ कि ये सभी लाभ उसे बुद्ध के कारण प्राप्त हुए हैं। इसलिए वह बुद्ध के पास गया और विनम्रतापूर्वक उनसे निवेदन किया कि वे अपने पुत्रों से प्रतिदिन प्राप्त होने वाली चार थालियों में से दो थालियाँ स्वीकार कर लें। फिर उसने अपने पुत्रों को निर्देश दिया कि वे दो थालियाँ बुद्ध को भेजें।

एक दिन, बड़े बेटे ने बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद, बुद्ध ने माता-पिता की देखभाल करने से मिलने वाले लाभों पर प्रवचन दिया। फिर उन्होंने उन्हें धनपाल नामक हाथी की कहानी सुनाई, जो अपने माता-पिता की देखभाल करता था। जब धनपाल को पकड़ लिया गया, तो वह जंगल में छूटे अपने माता-पिता के लिए तड़पने लगा।
प्रवचन के अंत में, वृद्ध ब्राह्मण के साथ-साथ उनके चारों पुत्रों और उनकी पत्नियों ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 324)
धनपालको नाम कुंजरो कटुकप्पभेदन दुनिवारयो
बद्धो कबलां न भुञ्जति कुंजरो नागवनस्सा सुमारति
धनपालको नाम : धनपाल नामित; कबलां [कबला]: भोजन; न भुञ्जति : नहीं खाता; कुंजरो [कुंजारा]: हाथी; कटुकप्पभेदन : गहराई में; दुनिवारयो [दुनिवारया]: रोकना कठिन; बद्धो [बध]: बेड़ियों में जकड़ा हुआ; नागा वनसा : हाथी-वन; सुमरति : तरसती रहती है
धनपाल नाम का हाथी, जो मदमस्त और अनियंत्रित था, कैद में होने के कारण एक निवाला भी नहीं खा रहा था क्योंकि वह अपने मूल जंगल के लिए तरस रहा था (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरस रहा था)।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 324)
यह श्लोक और जिस कहानी से यह उत्पन्न हुआ है, वह हमारे वर्तमान समय के लिए उल्लेखनीय रूप से प्रासंगिक है, जब वृद्धों की उपेक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा बन गई है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 325

(धम्मपद 324) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 325 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 326)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 325 - पसेनादिकोसल वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 325 - पसेनादिकोसल वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
मिद्धि यदा होति महघघसो च
niddayita samparivattasayi
महावराहोवा निवपपुत्थो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मंदो।

श्लोक 325 : मूर्ख, जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो अच्छी तरह से पाले हुए सूअर की तरह लोटता रहता है, वह बार-बार पुनर्जन्म का भागी होता है।

कोसला के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (325) कहा।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भरपेट भोजन करने के तुरंत बाद बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ गए। राजा को पके हुए चावल और मांस की करी का एक चौथाई टोकरी (आधा बुशेल) खाने की आदत थी। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर राजा को इतनी

नींद आने लगी कि वे लगातार ऊंघते रहे और मुश्किल से जाग पाते थे। तब उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! भोजन करने के बाद से मुझे बहुत बेचैनी हो रही है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हे राजा! अधिक खाने वालों को ऐसा ही कष्ट होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 325 : मूर्ख, जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो अच्छी तरह से पाले हुए सूअर की तरह लोटता रहता है, वह बार-बार पुनर्जन्म का भागी होता है।

प्रवचन सुनने के बाद, राजा ने संदेश को समझ लिया और धीरे-धीरे अपने भोजन की मात्रा कम कर दी। परिणामस्वरूप, वह अधिक सक्रिय और सतर्क हो गया और इसलिए प्रसन्न भी हो गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसला के राजा पसेनादी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि ने भरपेट भोजन करने के तुरंत बाद बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ में गए। राजा को पके हुए चावल और मांस की करी का एक चौथाई टोकरी (आधा बुशेल) खाने की आदत थी। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर राजा को इतनी नींद आने लगी कि वे लगातार ऊंघते रहे और मुश्किल से जाग पाते थे। तब उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! भोजन करने के बाद से मुझे बहुत बेचैनी हो रही है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हे राजा! पेटू लोग इसी प्रकार कष्ट भोगते हैं।"
प्रवचन सुनने के बाद, राजा ने संदेश को समझ लिया और धीरे-धीरे अपने भोजन की मात्रा कम कर दी। परिणामस्वरूप, वह अधिक सक्रिय और सतर्क हो गया और इसलिए प्रसन्न भी हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 325)
यदा मिद्धि होति महघ्घसो च निवापापुत्थो महावराहो इव
निददायिता संपरिवत्सयि होति मंदो पुनप्पुनं गब्बम उपेति
यदा : यदि कभी भी; मिद्धी होति : यदि मनुष्य सुस्त हो जाए; महाग्घसो च : यदि वह अधिक खाने लगे; निवापपुट्ठो [निवापपुट्ठ]: अनाज खाकर मोटा हो जाए; महावराहो इव : एक बड़े सूअर की तरह; निद्दायिता : यदि वह सो जाए; सम्परिवत्तसाय : करवटें बदलते हुए; मंदो [मंदा]: वह अज्ञानी व्यक्ति; पुनप्पुनं [पुनप्पुना]: बार-बार; गब्बम : गर्भ में; उपेति : बार-बार लौटता रहे
वह मूर्ख जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो एक भरे-पूरे सूअर की तरह लोटपोट होता रहता है, बार-बार पुनर्जन्म लेता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 325)
इस श्लोक की रचना कोसल के राजा पसेनादि द्वारा भारी भोजन के बाद बुद्ध से मिलने पर प्रदर्शित की गई नींद की स्थिति के कारण हुई थी।
सावत्थी को राजधानी बनाकर शासन करने वाले कोसल राज्य के राजा महा कोसल के पुत्र राजा पसेनादि कोसल, बुद्ध के एक अन्य शाही संरक्षक थे। वे बुद्ध के समकालीन थे और विभिन्न कलाओं में निपुणता के कारण, उन्हें अपने पिता द्वारा जीवित रहते हुए ही राजा बनाए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।
उनका धर्मांतरण संभवतः बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में हुआ होगा। संयुत्त निकाय में उल्लेख है कि एक बार उन्होंने बुद्ध के पास जाकर उनके पूर्ण ज्ञान के बारे में प्रश्न किया और उन्हें आयु और दीक्षा दोनों में युवा बताया।
बुद्ध ने उत्तर दिया — 'हे महाराज, चार वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी उपेक्षा या तिरस्कार नहीं किया जाना चाहिए। वे हैं क्षत्रिय (योद्धा राजकुमार), सर्प, अग्नि और भिक्षु।'
फिर उन्होंने राजा को इस विषय पर एक रोचक उपदेश दिया। उपदेश के अंत में राजा ने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और तुरंत बुद्ध के अनुयायी बन गए। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक वे बुद्ध के प्रति अत्यंत आसक्त रहे। कहा जाता है कि एक बार राजा ने बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और उनके चरणों को चूमते हुए उन्हें सहलाया।
उनकी प्रमुख रानी मल्लिका, जो एक अत्यंत धर्मनिष्ठ और बुद्धिमान महिला थीं और धम्म की भली-भांति ज्ञाता थीं, उनके धार्मिक उत्साह के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। एक सच्चे मित्र की तरह, उन्हें कई अवसरों पर उनके धार्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ा।
एक दिन राजा ने सोलह विचित्र सपने देखे और उनका वास्तविक अर्थ न जानते हुए वे अत्यंत व्याकुल हो गए। उनके ब्राह्मण सलाहकारों ने उनका अर्थ अशुभ संकेत बताया और उन्हें सलाह दी कि वे अशुभता से बचने के लिए एक भव्य पशु बलि दें। सलाह के अनुसार उन्होंने इस अमानवीय बलि के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ कर लीं, जिसके परिणामस्वरूप हजारों असहाय प्राणियों की जान चली

जाती। रानी मल्लिका ने इस बर्बर कृत्य के बारे में सुनकर राजा को बुद्ध से अपने सपनों का अर्थ जानने के लिए प्रेरित किया, जिनकी समझ उन सांसारिक ब्राह्मणों की समझ से कहीं अधिक थी। राजा बुद्ध के पास गए और अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। उन्होंने अपने सोलह सपने सुनाए और बुद्ध ने उन्हें उनका पूर्ण अर्थ समझाया।
राजा बिम्बिसार के विपरीत, राजा पसेनादि को बुद्ध से कई शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संयुत्त निकाय में कोसल संयुत्त नामक एक विशेष खंड है जिसमें बुद्ध द्वारा राजा को दिए गए अधिकांश प्रवचन और बातें दर्ज हैं।
एक बार जब राजा बुद्ध के साथ बैठे थे, तो उन्होंने कुछ घने बालों वाले शरीर और लंबे नाखूनों वाले तपस्वियों को वहाँ से गुजरते देखा। वे अपनी सीट से उठकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए अपना नाम पुकारा: 'मैं राजा हूँ, आदरणीय, कोसल का पसेनादि।' उनके चले जाने पर वे बुद्ध के पास वापस आए और जानना चाहा कि क्या वे अरहत थे या अरहतत्व प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बुद्ध ने समझाया कि भौतिक सुखों में लिप्त साधारण गृहस्थों के लिए यह जानना कठिन है कि दूसरे अरहत हैं या नहीं, और उन्होंने निम्नलिखित रोचक बातें कहीं:
संगति (संवासेना) से ही किसी के आचरण (सीला) को समझा जा सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, न कि थोड़े समय में; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा। संवाद (संवोहारेना) से ही किसी की पवित्रता (सोचेय्यं) को समझा जा सकता है। संकट के समय में ही किसी के धैर्य को समझा जा सकता है। चर्चा से ही किसी की बुद्धिमत्ता को समझा जा सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, न कि थोड़े समय में; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 326

———————————————————————

(धम्मपद 325) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 326 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 327)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 326 - सनुसमनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 326 - सनुसमनेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Idam pure cittamacari carikam
येनिच्चकं यत्थकमं यथासुखम्
तदज्जहम् निग-गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पाभिन्नं विया अंकुसग्गहो।

———————————————————————

श्लोक 326 : अतीत में, यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से वश में रखूँगा, जैसे महावत अपने अंकुश से मदमस्त हाथी को वश में रखता है।

———————————————————————

समनेरा सानु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (326) का उच्चारण किया, जो सानु नामक एक युवा समनेरा के संदर्भ में था।
एक दिन, वरिष्ठ भिक्षुओं ने समनेरा सानु से मंच पर चढ़कर पाली ग्रंथों के कुछ अंश पढ़ने का आग्रह किया। पाठ समाप्त करने के बाद उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, "आज इन पवित्र ग्रंथों का पाठ करके मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ है, वह मेरे माता-पिता को भी प्राप्त हो।" उस

समय, देव और राक्षसी, जो पिछले जन्म में समनेरा सानु की माता थीं, उनका पाठ सुन रही थीं। उनके शब्द सुनकर राक्षसी प्रसन्न हुईं और तुरंत बोलीं, "मेरे प्रिय पुत्र, तुम्हारे पुण्य में भागीदार होकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है; तुमने अच्छा किया है, मेरे पुत्र। शाबाश! शाबाश! (साधु! साधु!)।" समनेरा सानु के कारण, माता राक्षसी का बहुत सम्मान हुआ और देवों और अन्य राक्षसों द्वारा उन्हें सभाओं में सर्वोच्च स्थान दिया जाने लगा।

जैसे-जैसे समनेरा बड़ा होता गया, वह एक आम आदमी का जीवन जीना चाहता था; वह घर गया और अपनी माँ से अपने कपड़े माँगे। उसकी माँ नहीं चाहती थी कि वह संघ छोड़े और उसने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह अपने फैसले पर अडिग था। इसलिए, उसकी माँ ने उसे भोजन के बाद कपड़े देने का वादा किया। जब उसकी माँ खाना बना रही थी, तभी उसकी पिछली जन्म की माँ, राक्षसी ने सोचा, "अगर मेरा बेटा सानू संघ छोड़ देता है, तो मैं शर्मिंदा हो जाऊँगी और दूसरे राक्षसों और देवताओं के बीच हंसी का पात्र बन जाऊँगी; मुझे उसे संघ छोड़ने से रोकना ही होगा।" इस तरह, युवा समनेरा पर उसका साया आ गया; लड़का ज़मीन पर लोटने लगा, मुँह से लार टपक रही थी और वह कुछ बुदबुदा रहा था। माँ घबरा गई; पड़ोसी आए और आत्माओं को शांत करने की कोशिश की। फिर राक्षसी ने कहा, “यह समनेरा धार्मिक संघ को छोड़कर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता है; यदि वह ऐसा करता है तो वह दुःख (पुनर्जन्म/कष्ट) से बच नहीं पाएगा।” ये शब्द कहकर राक्षसी ने लड़के का शरीर त्याग दिया और लड़का फिर से सामान्य हो गया।

अपनी माँ को रोते हुए और पड़ोसियों को अपने चारों ओर जमा देखकर उसने पूछा कि क्या हुआ था। उसकी माँ ने उसे सब कुछ बताया और समझाया कि गृहस्थ जीवन छोड़ने के बाद वापस लौटना बहुत मूर्खता होगी; वास्तव में, जीवित रहते हुए भी वह एक मृत व्यक्ति के समान होगा। तब उस भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ। अपनी माँ से तीनों वस्त्र लेकर वह वापस मठ गया और जल्द ही भिक्षु के रूप में प्रवेश पा गया।

समनेरा सानु के बारे में सुनकर, बुद्ध ने उन्हें मन पर नियंत्रण का ज्ञान देने की इच्छा से कहा, "हे मेरे पुत्र, जो मन को भटकने से नहीं रोकता, उसे सुख नहीं मिल सकता। इसलिए, अपने मन को उसी प्रकार वश में रखो जैसे एक महावत हाथी को वश में रखता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 326 : अतीत में, यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से वश में रखूँगा, जैसे महावत अपने अंकुश से मदमस्त हाथी को वश में रखता है।

प्रवचन के अंत में थेरा सानु ने चार आर्य सत्यों को समझा और बाद में अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सामनरा सानु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सानु नामक एक युवा सामनेर के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, वरिष्ठ भिक्षुओं ने सामनरा सानु से मंच पर चढ़कर पाली ग्रंथों के कुछ अंश पढ़ने का आग्रह किया। पाठ समाप्त करने के बाद उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, “आज इन पवित्र ग्रंथों का पाठ करके मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ है, वह मेरे माता-पिता को भी प्राप्त हो।” उस समय, देवियाँ और एक दुष्ट आत्मा, जो पिछले जन्म में युवा सामनरा की माता रह चुकी थी, उनका पाठ सुन रही थीं। उनके शब्दों को सुनकर दुष्ट आत्मा प्रसन्न हुई और तुरंत बोली, “मेरे प्रिय पुत्र, तुम्हारे पुण्य में भागीदार होकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है; तुमने अच्छा किया है, मेरे पुत्र। शाबाश! शाबाश! (साधु! साधु!)” सामनरा सानु के कारण, दुष्ट आत्मा को देवियों और अन्य दुष्ट आत्माओं द्वारा बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और उनकी सभाओं में उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया गया।

जैसे-जैसे सामनेर बड़े होते गए, वे गृहस्थ जीवन में लौटना चाहते थे; वे घर गए और अपनी माँ से अपने वस्त्र माँगे। उनकी माँ नहीं चाहती थीं कि वे संघ छोड़ें और उन्होंने उन्हें ऐसा न करने के लिए समझाने का प्रयास किया, लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग थे। इसलिए, उनकी माँ ने उन्हें भोजन के बाद वस्त्र देने का वादा किया। जब उनकी माँ भोजन पका रही थीं, तभी एक दुष्ट आत्मा, जो पिछले जन्म में उनकी माँ थीं, ने सोचा, “यदि मेरा पुत्र सानु संघ छोड़ दे, तो मैं लज्जित हो जाऊँगी और अन्य दुष्ट आत्माओं और देवताओं के बीच उपहास का पात्र बन जाऊँगी; मुझे उसे संघ छोड़ने से रोकना ही होगा।” इस प्रकार, उस युवा सामनेर पर उस आत्मा का साया हो गया; लड़का ज़मीन पर लोटने लगा, मुँह से लार टपकते हुए अस्पष्ट बड़बड़ाने लगा। उनकी माँ घबरा गईं; पड़ोसी आए और दुष्ट आत्माओं को शांत करने का प्रयास किया। तब दुष्ट आत्मा ने कहा, “यह सामनेर धार्मिक संघ को छोड़कर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता है; यदि वह ऐसा करेगा तो वह दुखों से बच नहीं पाएगा।” ये शब्द कहकर दुष्ट आत्मा लड़के के शरीर से निकल गई और वह फिर से सामान्य हो गया।

अपनी माँ को रोते हुए और पड़ोसियों को अपने चारों ओर जमा देखकर उसने पूछा कि क्या हुआ था। उसकी माँ ने उसे सब कुछ बताया और समझाया कि गृहस्थ जीवन छोड़ने के बाद वापस लौटना बहुत मूर्खता होगी; वास्तव में, जीवित रहते हुए भी वह एक मृत व्यक्ति के

समान होगा। तब उस सामनेर को अपनी गलती का एहसास हुआ। अपनी माँ से तीनों वस्त्र लेकर वह मठ लौट गया और जल्द ही उसे फिर से भिक्षु के रूप में प्रवेश मिल गया।

जब बुद्ध ने सामनेरा सानु के बारे में सुनाते हुए, उन्हें मन के संयम के बारे में सिखाने की इच्छा से कहा, "मेरे पुत्र, जो अपने भटकते हुए मन को नियंत्रित नहीं करता, उसे सुख नहीं मिल सकता। इसलिए, अपने मन को उसी प्रकार नियंत्रित करो जैसे एक महावत हाथी को नियंत्रित करता है।"

प्रवचन के अंत में, पूज्य सानु ने चार आर्य सत्यों को समझा और बाद में अरहतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 326)

शुद्ध इदं चित्तं येनिच्चकं यत्थकामं यथासुखं चारिकं अचरि
अहं अज तं पभिन्नं हत्थिं विया अंकुसाग्गहो योनिसो निग-अहेस्सामि

शुद्ध : पहले; idaṃ cittam : यह मन; yenicchakaṃ [yenicchaka]: जिस भी दिशा में चाहे; yatthakāmaṃ [yatthakāma]: जहाँ भी चाहे; yathāsukhaṃ [yathāsukha]: प्रसन्नता से; cārikaṃ acāri : घूमता रहा; ahaṃ : मैं; ajja : आज; taṃ : वह मन; pabhinnaṃ [pabhinna]: मद में; hatthiṃ viya : हाथी; aṅkusaggaho [aṅkusaggaha]: जैसे महावत कुल्हाड़ी पकड़े हो; yoniso [yonisa]: बुद्धिमानी से; nigg-ahessāmi : संयमित

अतीत में यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से नियंत्रित करूँगा, जैसे एक महावत हाथी को वश में करने के लिए अंकुश का प्रयोग करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 326)

बौद्ध साहित्य में हाथी को नियंत्रित करने की छवि का प्रयोग आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति द्वारा स्वयं को नियंत्रित करने के कार्य के समानांतर किया जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 327

(धम्मपद 326) <<<< पिछला || धम्मपद 327 || अगला >>>> (धम्मपद 328, 329 और 330)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 327 - पवेयाकहत्थि वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 327 - पवेय्याकहत्थि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदरता होथा
सचित्तमनुरक्खथा
dugga uddharath' attanam
panke sannova kunjaro.

श्लोक 327 : सजगता में आनंद लो, अपने मन की अच्छी तरह रक्षा करो। जैसे कीचड़ में फंसा हाथी खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही तुम भी नैतिक विकारों के कीचड़ से खुद को बाहर निकालो।

पावेय्याका नामक हाथी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (327) का उच्चारण किया, जिसमें पावेय्याका नामक हाथी का उल्लेख किया गया है।

युवा पावेय्याका बहुत बलवान थे; समय के साथ वे बूढ़े और दुर्बल हो गए। एक दिन, जब बूढ़े पावेय्याका एक तालाब में उतरे तो वे कीचड़ में फंस गए और किनारे पर नहीं आ सके। जब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) को इसकी सूचना मिली, तो उन्होंने हाथी को कीचड़ से निकालने में मदद के लिए एक हाथी प्रशिक्षक को भेजा। हाथी प्रशिक्षक उस स्थान पर गया जहाँ हाथी फंसा हुआ था। वहाँ उसने संगीतकारों से एक युद्ध संगीत बजाने को कहा। सैन्य संगीत सुनकर हाथी को ऐसा लगा मानो वह युद्ध के मैदान में हो; उसका मनोबल बढ़ा, उसने अपनी पूरी ताकत से खुद को खींचा और जल्द ही कीचड़ से बाहर निकल आया।

जब भिक्षुओं ने बुद्ध को इस बारे में बताया तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जिस प्रकार उस हाथी ने स्वयं को कीचड़ से बाहर निकाला, उसी प्रकार तुम सबको भी नैतिक विकारों के कीचड़ से स्वयं को बाहर निकालना होगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 327 : सजगता में आनंद लो, अपने मन की अच्छी तरह रक्षा करो। जैसे कीचड़ में फंसा हाथी खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही तुम भी नैतिक विकारों के कीचड़ से खुद को बाहर निकालो।

प्रवचन के अंत में भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पावेय्याका नामक हाथी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पावेय्याका नामक हाथी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

युवावस्था में पावेय्याका बहुत बलवान थे; समय के साथ वे बूढ़े और दुर्बल हो गए। एक दिन, जब बूढ़े पावेय्याका एक तालाब में गए तो वे कीचड़ में फंस गए और किनारे पर नहीं आ सके। जब कोसल के राजा पसेनादि को इसकी सूचना मिली, तो उन्होंने हाथी को कीचड़ से निकालने में मदद के लिए एक हाथी प्रशिक्षक को भेजा। हाथी प्रशिक्षक उस स्थान पर गया जहाँ हाथी फंसा हुआ था। वहाँ उसने संगीतकारों से एक युद्ध संगीत बजाने को कहा। सैन्य संगीत सुनकर हाथी को ऐसा लगा मानो वह युद्ध के मैदान में हो; उसका मनोबल बढ़ा, उसने अपनी पूरी ताकत से खुद को खींचा और शीघ्र ही कीचड़ से बाहर निकल आया।

जब भिक्षुओं ने बुद्ध को इस बारे में बताया तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं! जिस प्रकार उस हाथी ने स्वयं को कीचड़ से बाहर निकाला, उसी प्रकार तुम सबको भी नैतिक विकारों के कीचड़ से स्वयं को बाहर निकालना होगा।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 327)

अप्पमादारता होथा , सचितम अनुरक्खथा ,

पंके सत्तो कुंजरो इव अत्तनं दुग्गा उद्रथ

appamādaratā hotha : परिश्रम में आनंद लेना; sacittam : मन; anurakkhatha : रक्षा करना; paṅke : कीचड़ में; satto [satta]: कीचड़ में फंसा हुआ; kuñjaro iva : हाथी की तरह; attānaṃ [attāna]: मन; duggā : दलदली सड़क जिस पर चलना कठिन हो; uddharatha : उठाना

ध्यान में आनंद लें, अपने मन की रक्षा करें। जैसे एक हाथी कीचड़ में फंसकर खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही आप भी नैतिक विकारों के दलदल से खुद को बाहर निकालें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 327)

बुद्ध द्वारा पसंद की जाने वाली शिक्षा पद्धति में समकालीन घटनाओं से नैतिक या आध्यात्मिक सत्य को चुनना शामिल था। इस श्लोक में कीचड़ में फंसे हाथी द्वारा स्वयं को कीचड़ से बाहर निकालने के सफल प्रयास को भिक्षुओं को यह सिखाने का अवसर बनाया गया है कि उन्हें स्वयं भी नैतिक विकारों के दलदल से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिए।

बुद्ध द्वारा लोगों को सत्य सिखाने के लिए किसी घटना का उपयोग करने के अन्य उदाहरण भी हैं। निम्नलिखित उनमें से एक है:

एक भिक्षु को दस्त हो रहे थे और वह उठने में असमर्थ होकर अपने मल में लेटा हुआ था। बुद्ध पूज्य आनंद के साथ उसके निवास में आए और पूछा, "हे भिक्षु, तुम्हें क्या कष्ट है?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "पूज्यवर, मुझे दस्त हो रहे हैं। क्या आपकी सेवा करने वाला कोई नहीं है?" "नहीं, पूज्यवर।" "दूसरे भिक्षु आपकी सेवा क्यों नहीं करते?" भिक्षु ने कहा, "चूंकि मैं दूसरे भिक्षुओं की सेवा नहीं करता, इसलिए वे भी मेरी सेवा नहीं करते।"

बुद्ध ने पूज्य आनंद को पानी लाने के लिए कहा। बुद्ध ने बीमार भिक्षु पर पानी डाला और पूज्य आनंद ने उन्हें धोया। बुद्ध ने उनका सिर पकड़ा और पूज्य आनंद ने उनके पैर पकड़े और उन्हें पलंग पर लिटा दिया।

बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाया और उन्हें सलाह दी कि वे बीमार भिक्षु की सेवा करें, चाहे उसने उनकी सेवा की हो या न की हो। बुद्ध ने कहा, “जो भिक्षु बीमारों की सेवा करते हैं, वे वास्तव में मेरी सेवा करते हैं।”

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 328,329,330

———————————————————————

(धम्मपद 327) <<<< पिछला || धम्मपद 328, 329 और 330 || अगला >>>> (धम्मपद 331, 332 और 333)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 328, 329 और 330 - संबहुलाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 328, 329 और 330 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Sace labhetha nipakam sahayam
सद्धिम कैरम साधु विहारी धीरेम
अभिभूय सब्बानि परिस्यानि
careyya tena' ttamano satima.
नो सीई लभेथा निपाकम सहायम्
सद्धिम कैरम साधु विहारी धीरेम
राजवा रत्तम विजितम पहया
एको केयर मतंगा' रन्नेवा नागो।
Ekassa caritam seyyo
natthi bale sahayata
eko care na ca papani kayira
अप्पोसुक्को मातंगा' रन्नेवा नागो।

———————————————————————

श्लोक 328 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र मिल जाए, जो सदाचारी और दृढ़ साथी हो, तो उसे सभी खतरों पर विजय प्राप्त करते हुए, उसके साथ आनंदपूर्वक और सचेत रूप से रहना चाहिए।

———————————————————————

श्लोक 329 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र न मिले, जो गुणी और दृढ़ साथी हो, तो उसे उस राजा की तरह अकेले रहना चाहिए जिसने अपने जीते हुए देश को त्याग दिया और जंगल में अकेले भटकने वाले हाथी मतंगा की तरह।

———————————————————————

श्लोक 330 : अकेले रहना बेहतर है; मूर्ख के साथ संगति नहीं करनी चाहिए। इसलिए अकेले रहना चाहिए, बुराई नहीं करनी चाहिए और जंगल में अकेले घूमने वाले हाथी मतंगा की तरह निश्चिंत रहना चाहिए।

———————————————————————

कई भिक्षुओं की कहानी

पलिलेय्य वन में निवास करते हुए, जहाँ हाथी पलिलेयक उनकी सेवा करता था, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (328), (329) और (330) का उच्चारण किया।

एक बार कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए; एक समूह विनय के गुरु के पीछे चला और दूसरा धम्म के शिक्षक के पीछे। उन्होंने बुद्ध की बात भी नहीं मानी, जिन्होंने उन्हें शांति बनाए रखने का उपदेश दिया था। इसलिए, बुद्ध उन्हें छोड़कर वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान जंगल में अकेले रहे, जहाँ हाथी पलिलेयक उनकी सेवा में था।

वर्षा ऋतु के अंत में, पूज्य आनंद पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वन में गए। भिक्षुओं को कुछ दूरी पर छोड़कर, पूज्य आनंद अकेले बुद्ध के पास पहुँचे। तब बुद्ध ने आनंद से अन्य भिक्षुओं को बुलाने को कहा। सभी भिक्षु आए, बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "पूज्यवर! इस वन में अकेले वर्षा ऋतु बिताने में आपको बहुत कठिनाई हुई होगी।"

इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, ऐसा मत कहो; हाथी पलिलेयक इस पूरे समय मेरी देखभाल करता रहा। वह वास्तव में एक बहुत अच्छा मित्र था, सच्चा मित्र। यदि किसी के पास ऐसा अच्छा मित्र हो तो उसे उसी के साथ रहना चाहिए; परन्तु यदि अच्छा मित्र न मिले तो अकेले रहना ही बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 328 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र मिल जाए, जो सदाचारी और दृढ़ साथी हो, तो उसे सभी खतरों पर विजय प्राप्त करते हुए, उसके साथ आनंदपूर्वक और सचेत रूप से रहना चाहिए।

श्लोक 329 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र न मिले, जो गुणी और दृढ़ साथी हो, तो उसे उस राजा की तरह अकेले रहना चाहिए जिसने अपने जीते हुए देश को त्याग दिया और जंगल में अकेले भटकने वाले हाथी मतंगा की तरह।

श्लोक 330 : अकेले रहना बेहतर है; मूर्ख के साथ संगति नहीं करनी चाहिए। इसलिए अकेले रहना चाहिए, बुराई नहीं करनी चाहिए और जंगल में अकेले घूमने वाले हाथी मतंगा की तरह निश्चिंत रहना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं को उपदेश

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने परिलेय्यक के निकट संरक्षित वन में निवास करते समय भिक्षुओं के एक समूह को संबोधित करते हुए दिया था। यह कथा यमका वग्ग में 'अन्य लोग नहीं समझते' शब्दों से शुरू होती है। क्योंकि वहाँ कहा गया है:

गुलाब-अरब की भूमि में यह बात सर्वप्रसिद्ध हो गई कि बुद्ध एक पवित्र वन में एक उत्कृष्ट हाथी के साथ निवास कर रहे हैं। सावत्थी नगर से अनाथपिंडिका, विशाखा (प्रख्यात महिला शिष्या) और अन्य महान व्यक्तियों ने पूज्य आनंद को यह संदेश भेजा, "हे पूज्य, हमें बुद्ध के दर्शन का सौभाग्य प्रदान कीजिए।" इसी प्रकार वर्षा ऋतु की समाप्ति पर विदेश में रहने वाले पाँच सौ भिक्षु पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनसे यह निवेदन किया, "हे आनंद, बुद्ध के मुख से धम्म प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। हे भाई आनंद, यदि आप कृपा करें, तो हमें बुद्ध के मुख से धम्म प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो।"

अतः पूज्य आनंद अपने साथ उन भिक्षुओं को लेकर संरक्षित वन में चले गए। वन पहुँचकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "बुद्ध तीन माह से एकांतवास में हैं। इसलिए यह उचित नहीं कि मैं अपने साथ इतने सारे भिक्षुओं को लेकर एक साथ उनके पास जाऊँ।" अतः वे अकेले ही बुद्ध के पास गए। जब हाथी परिलय्यक ने पूज्य आनंद को देखा, तो उसने अपना दंड उठाया और उनकी ओर दौड़ पड़ा। बुद्ध ने चारों ओर देखा और हाथी से कहा, "परिलय्यक, वापस लौट आओ; इसे मत भगाओ। यह बुद्ध का सेवक है।" हाथी ने तुरंत अपना दंड फेंक दिया और पूज्य आनंद का कुंड और वस्त्र ग्रहण करने का अनुरोध किया। पूज्य आनंद ने इनकार कर दिया। हाथी ने मन ही मन सोचा, "यदि वह शिष्टाचार के नियमों से भलीभांति परिचित है, तो वह अपनी भिक्षु सामग्री उस शिला पर नहीं रखेगा जहाँ बुद्ध बैठने के लिए अभ्यस्त हैं।" पूज्य आनंद ने अपना कुंड और वस्त्र जमीन पर रख दिया। (शिष्टाचार के नियमों में पारंगत लोग अपने आध्यात्मिक गुरुओं के आसन या पलंग पर कभी भी अपनी मठवासी वस्तुएँ नहीं रखते।) बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या आप अकेले आए हैं?" पूज्य भिक्षु ने बताया कि वे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आए हैं। "पर वे कहाँ हैं?" बुद्ध ने पूछा। "मुझे नहीं पता था कि आपको कैसा लगेगा, इसलिए मैंने उन्हें बाहर छोड़ दिया और अकेले अंदर आ गया।" "उन्हें अंदर आने के लिए कहिए।" पूज्य भिक्षु ने वैसा ही किया। बुद्ध ने भिक्षुओं से सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "पूज्य बुद्ध, आप एक कोमल बुद्ध हैं, एक कोमल राजकुमार हैं। आपने इन तीन महीनों के दौरान अकेले खड़े और बैठे रहकर बहुत कष्ट सहा होगा। क्योंकि निश्चित रूप से आपके लिए बड़े और छोटे कर्तव्यों का पालन करने वाला कोई नहीं था, न ही आपको कुल्ला करने के लिए जल देने वाला कोई था और न ही आपके लिए कोई अन्य कर्तव्य निभाने वाला कोई था।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, हाथी

परिलय्यक ने मेरे लिए ये सभी कार्य किए। क्योंकि जिसे ऐसा साथी मिल जाए, वह अकेले भी रह सकता है; यदि कोई ऐसा साथी न पाए, तो भी एकांत जीवन बेहतर है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 328)

निपाकं सद्धिं चरणं साधुविहारिं धीरम सहायं ससे लभेथा

सब्बानि परिस्यानि अभिभूय तेन अत्तमानो सतिमा कैरेया

निपकाम् [निपका]: बुद्धिमान; सद्धिम् चरम् [चरा]: किसी के साथ रहने वाला; साधुविहारी : सद्‌गुणों से जीवन जीने वाला; धीरम् [धीरा]: दृढ़ और बुद्धिमान; सहायम् : साथी; सचे लभेत : यदि आप पा सकते हैं; सब्बानि परिस्सायनी : सभी बुराईयों से; हर खतरे से; अभिभुय्या : विजय प्राप्त करने वाला; तेन : उसके साथ; अत्तमानो [अत्तमान]: प्रसन्न मन से; सतीमा : सचेतनता से; करेय्य : जीवन यापन करने वाला

यदि आपको कोई बुद्धिमान, परिपक्व साथी मिले जिसके तौर-तरीके सदाचारी हों, तो आपको उससे अवश्य संगति करनी चाहिए क्योंकि तब आप सुखी और सतर्क जीवन जी सकेंगे और सभी खतरों से पार पा सकेंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 329)

निपाकं सद्धिं चरण साधुविहारी धीराम सहायं सी नो लभेथा

विजितं रथं पाहाय राजा इव अरण्ये मातंगो नागो इव एको केयर

निपका : बुद्धिमान; सद्धिं चरं : किसी के साथ रहने वाला; साधुविहारी : सद्‌गुणों से जीवन यापन करने वाला ; धीरं : दृढ़ और बुद्धिमान; सहायं : साथी; सचे नो लभेत : यदि न मिल सके; विजयतं : पराजित ; हारा हुआ; रट्ठं : राज्य ; पहाय : त्यागने वाला; राजा इव : राजा के समान; अरञ्ञे : वन में; मातंगो नाग इव : हाथी मातंग के समान, वन में अकेला; एको : बिल्कुल अकेला; देखभाल : घूमना-फिरना

यदि आपको कोई बुद्धिमान, परिपक्व साथी न मिले जिसके तौर-तरीके सदाचारी हों, तो आपको अपना जीवन अकेले ही गुजारना होगा, ठीक वैसे ही जैसे कोई राजा अपने जीते हुए राज्य को छोड़कर निर्वासन में रहता है, या फिर हाथी मातंगा की तरह, जो जंगल में एकांत में घूमता रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 330)

एकस्सा चरितं सेय्यो बाले सहायता नत्थि अरण्ये

मातंगो नागो इवा अप्पोसुक्को एको केयर पापनी ना कै काइरा

एकास्सा : अकेले व्यक्ति का; चरितम् [चरिता]: व्यवहार; सेय्यो [सेय्य]: महान है; बाले : अज्ञानी के साथ; नत्थि सहायता : कोई साथी नहीं; अरञ्ञे : जंगल में; मातंगो नागो इव : हाथी मातंग की तरह; अप्पोसुक्को [अप्पोसुक्का]: सीमित आवश्यकताओं के साथ; एको केयर : अकेले घूमना; पापानि न च कायिरा : कोई बुराई न करना

एकांत जीवन जीना अधिक प्रशंसनीय है। अज्ञानी लोगों की संगति उचित नहीं है। सीमित आवश्यकताओं के साथ, एकांत जीवन व्यतीत करें, कोई कुकर्म न करें, ठीक वैसे ही जैसे हाथी मातंगा करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 328-330)

पारिलेय्यक वन में निवास करते समय, जहाँ हाथी पारिलेय्यक उनकी सेवा करता था, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

बुद्ध अपने उपदेश के नौवें वर्ष में कोसंबी में स्थित घोषिताराम मठ में निवास कर रहे थे, जिसका निर्माण घोषिता ने करवाया था। एक भिक्षु ने अनुशासनहीनता का अपराध किया था, जिसे वह अपराध मानता था, जबकि अन्य भिक्षु इसे अपराध नहीं मानते थे। बाद में, अपराध करने वाले भिक्षु ने इसे अपराध नहीं माना, जबकि अन्य भिक्षुओं का मानना था कि वह दोषी था।

आरोप यह था कि भिक्षु ने शौचालय का उपयोग करने के बाद बर्तन में थोड़ा पानी छोड़ दिया था और उसे खाली नहीं किया था। जब अन्य भिक्षुओं ने उससे पूछताछ की तो उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इसके बाद अन्य भिक्षुओं ने मिलकर उसके निष्कासन का आदेश जारी कर दिया।

वह भिक्षु विद्वान, ज्ञानवान, प्रवचनों और अनुशासन में पारंगत और आचरण में निपुण था। वह संघ में अपने मित्रों और शुभचिंतकों के पास गया और उन्हें सारी घटना समझाई तथा अपनी निर्दोषता का विश्वास दिलाया। ये भिक्षु अपने मित्र के निष्कासन आदेश जारी करने वाले भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बहस करने लगे, परन्तु मामला सुखद अंत तक नहीं पहुंचा।

भिक्षु दो गुटों में बंट गए और यह बात बुद्ध के कानों तक पहुंची। बुद्ध ने देखा कि भिक्षु समुदाय में फूट पड़ गई है और वे निष्कासन आदेश देने वाले भिक्षुओं के पास गए। उन्होंने उन्हें उनके इस कार्य की मूर्खता समझाई, क्योंकि इससे भिक्षु समुदाय में फूट पड़ सकती थी। इसके बाद, बुद्ध दूसरे गुट के अनुयायियों के पास गए और उनके आचरण की निंदा की, क्योंकि इससे भी भिक्षुओं में अप्रत्याशित फूट पड़ सकती थी।

बुद्ध की चेतावनी के बाद, निष्कासन आदेश देने वाले भिक्षुओं ने मठ परिसर के भीतर ही अपने अनुशासनात्मक अनुष्ठान जारी रखे, जबकि दूसरे गुट ने मठ की सीमा से बाहर अपने अनुष्ठान करने शुरू कर दिए। जब बुद्ध का ध्यान इस स्थिति की ओर आकर्षित हुआ, तो उन्होंने इसमें कुछ भी गलत नहीं पाया।
लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हुई। कोसंबी के भिक्षु दो गुटों में बंट गए और वे गांव में, भिक्षागृह में और जहां भी मिलते, आपस में झगड़ते रहते थे। गांव के लोग भिक्षुओं के इस व्यवहार से नाराज हो गए और उन्हें फटकारने और बुरा-भला कहने लगे।
कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से इस मामले में हस्तक्षेप करने और भिक्षु समुदाय में व्याप्त इन विवादों और मतभेदों को समाप्त करने का अनुरोध किया। अतः बुद्ध भिक्षुओं की सभा में आए और उन्हें आपस में मतभेद न करने की चेतावनी दी। फिर बुद्ध ने उन्हें काशी के राजा ब्रह्मदत्त और कोसल के राजा दीघिति की कथा तथा राजकुमार दीघायु के आचरण का उपदेश दिया, ताकि वे झगड़ों की बुराइयों और सहनशीलता के लाभों को समझ सकें।
राजाओं के धैर्य और सौम्यता का हवाला देते हुए, बुद्ध ने भिक्षुओं से आग्रह किया कि वे अपने मतभेदों को भुलाकर धैर्य रखें, क्योंकि वे पहले से ही भिक्षु जीवन जी रहे थे। हालांकि, झगड़ालू भिक्षुओं के एक गुट के प्रवक्ता ने कहा कि बुद्ध को उनके विवादों से दूर रहना चाहिए और उन्हें अकेला छोड़ देना चाहिए।
बुद्ध सभा छोड़कर यह कहते हुए चले गए: "ये मूर्ख लोग अपना आपा खो चुके हैं। इन्हें समझाना और मनाना मुश्किल है।"
अगली सुबह बुद्ध ने कोसंबी में भिक्षा मांगने के बाद दोपहर का भोजन किया और भिक्षुओं के समुदाय के बीच शत्रुता और फूट की बुराइयों और एकांत के लाभों के बारे में बात की, जहाँ अच्छे लोगों का साथ नहीं मिल पाता।
भिक्षुओं के समुदाय से बात करने के बाद, बुद्ध कोसंबी नगर से अकेले ही निकल पड़े और बालाकलोंकारामा (नमक बनाने वाले बालाका) गाँव की ओर प्रस्थान किया, जहाँ उनका स्वागत पूज्य भगु ने किया। वहाँ से वे पचिना वंश उद्यान गए, जहाँ पूज्य अनुरुद्ध, नंदीय और किंबिला ठहरे हुए थे।
उद्यान के रक्षक ने बुद्ध को उद्यान में आने से रोकने का प्रयास किया, लेकिन तीनों भिक्षु आदरपूर्वक बुद्ध का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़े। यह सुनकर कि वे एक-दूसरे के प्रति अत्यंत एकता और आदर का भाव रखते हैं, बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और परिलय्यक वन की ओर प्रस्थान कर दिया।
बुद्ध परिलय्यक वन में पहुँचे, रक्खिता उपवन (पवित्रस्थल) में प्रवेश किया और एक ऊँचे साल वृक्ष की तलहटी में विश्राम करने लगे।
अकेले में बैठे बुद्ध बहुत प्रसन्न और राहत महसूस कर रहे थे, क्योंकि वे कोसंबी के उन झगड़ालू और विवाद करने वाले भिक्षुओं से दूर थे जो अक्सर अपनी शिकायतें लेकर उनके पास आते थे।
उस जंगल में हाथियों के झुंड का सरदार, एक हाथी अपने झुंड से तंग आ चुका था और उसने एकांत जीवन के बारे में सोचा। क्योंकि उसके द्वारा लाई गई पेड़ों की डालियाँ झुंड के अन्य हाथी खा जाते थे और पानी से बाहर आते समय मादा हाथी उसके शरीर से रगड़ खाते थे। हाथी उस स्थान पर आया जहाँ बुद्ध बैठे थे और बुद्ध की सेवा करने लगा, उस स्थान की सफाई करने लगा और अपनी सूंड से उनके लिए भोजन और पेय लाने लगा। इस प्रकार, उसे भी एकांत जीवन में आनंद आने लगा। तब बुद्ध ने एकांत के लाभों पर आनंदमय प्रवचन दिए।
परिलय्यक वन में तीन माह व्यतीत करने के बाद, बुद्ध जेतवन मठ लौट आए। कोसंबी के नागरिक झगड़ालू भिक्षुओं से नाराज़ थे और उन्होंने उन्हें भिक्षा देने या अन्य कोई सम्मान देने से इनकार कर दिया। तब भिक्षुओं ने गृहस्थ भक्तों से कहा कि वे बुद्ध से मिलने जाएंगे और उनके मार्गदर्शन में अपने सभी मतभेदों का समाधान करेंगे।
पूज्य सारिपुत्त, मोग्गलाना, महा कस्सपा, रीवत, अनुराधा, उपाली, आनंद और राहुल को झगड़ालू भिक्षुओं के आने की सूचना मिली और उन्होंने बुद्ध से उनके साथ व्यवहार करने के संबंध में परामर्श मांगा। बुद्ध ने उन्हें अनुशासन के सिद्धांतों के बारे में उपदेश दिया।
इसी प्रकार, महा प्रजापति गौतमी, अनाथपिंडिका और विशाखा ने झगड़ालू भिक्षुओं के दो गुटों के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, इस बारे में बुद्ध से परामर्श मांगा। बुद्ध ने उन्हें दोनों गुटों को दान आदि देने और दोनों की बात सुनने की सलाह दी, लेकिन सही पक्ष का अनुसरण करने को कहा।
भिक्षुओं के दोनों गुटों ने अपने विवाद सुलझा लिए और बुद्ध के पास जाकर उनसे क्षमा मांगी। बुद्ध ने उन्हें अनुशासन के संबंध में और भी उपदेश और निर्देश दिए।
बुद्ध ने कहा, "हाथी परिलय्यक इतने समय से मेरी देखभाल कर रहा था। यदि किसी के पास ऐसा अच्छा मित्र हो तो उसे उसके साथ रहना चाहिए। परन्तु यदि अच्छा मित्र न मिले तो अकेले रहना ही बेहतर है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 331,332,333

(धम्मपद 328, 329 और 330) <<<< पिछला ll धम्मपद 331, 332 और 333 ll अगला >>>> (धम्मपद 334, 335, 336 और 337)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 331, 332 और 333 - मारा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 331, 332 और 333 - मारा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Atthamhi jatamhi sukha sahaya
tutthi sukha ya itaritarena
पुन्नं सुखं जीवितसंखयामहि
सब्बास्सा दुक्खस्सा सुखं पहानम्।
सुखा मतेय्या लोके
atho petteyyata sukha
सुखा समन्नत लोके
atho brahmannata sukha.
Sukham yava jara silam
सुख सद्धा पतित्तिता
सुखो पन्नया पतिलभो
papanam akaranam sukham.

श्लोक 331 : आवश्यकता पड़ने पर मित्र होना अच्छा है; जो कुछ भी उपलब्ध है उससे संतुष्ट रहना अच्छा है; जीवन के अंत के समय पुण्य होना अच्छा है; सभी दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाना अच्छा है।

श्लोक 332 : इस संसार में माता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना अच्छा है; पिता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना भी अच्छा है। इस संसार में समनों(1) की सेवा करना अच्छा है; ब्राह्मणों(2) की सेवा करना भी अच्छा है।

श्लोक 333 : वृद्धावस्था तक सद्गुण बनाए रखना अच्छा है, अटूट विश्वास रखना अच्छा है, ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है, बुराई न करना अच्छा है।

---

1. समना: संन्यासी, भिक्षु आदि, जो बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करते हैं।
2. ब्राह्मण: यहाँ बुद्धों, पच्चेकबुद्धों या अरहतों आदि से तात्पर्य उन लोगों से है जिन्होंने सत्य को जान लिया है।

मारा की कहानी (अर्थात् शैतान/राक्षस द्वारा बुद्ध को राजा के रूप में शासन करने के लिए लुभाने की कहानी)

हिमालय के पास एक मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (331), (332) और (333) का उच्चारण किया, जो मारा के संदर्भ में थे, जिसने उन्हें राजा के रूप में शासन करने के लिए लुभाने की कोशिश की थी।

एक बार जब बुद्ध हिमालय के निकट निवास कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि कुछ दुष्ट राजा अनेक लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं। तब उनके मन में यह विचार आया कि क्या ऐसा संभव है जिससे उन लोगों को अत्याचार करने से रोका जा सके जिन पर अत्याचार नहीं किया जाना चाहिए और राजाओं को न्यायपूर्वक और बुद्धिमानी से शासन करने के लिए प्रेरित किया जा सके। मारा बुद्ध के विचारों को जानता था और उसने बुद्ध को राजा बनने के लिए लुभाने की योजना बनाई। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे दुष्ट मारा! तुम्हारा उपदेश और मेरा उपदेश बिल्कुल भिन्न हैं। हम दोनों के बीच कोई चर्चा नहीं हो सकती। यही मेरा उपदेश है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 331 : आवश्यकता पड़ने पर मित्र होना अच्छा है; जो कुछ भी उपलब्ध है उससे संतुष्ट रहना अच्छा है; जीवन के अंत के समय पुण्य होना अच्छा है; सभी दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाना अच्छा है।

श्लोक 332 : इस संसार में माता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना अच्छा है; पिता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना भी अच्छा है। इस संसार में सामनों की सेवा करना अच्छा है; ब्राह्मणों की सेवा करना भी अच्छा है।

श्लोक 333 : वृद्धावस्था तक सद्‌गुण बनाए रखना अच्छा है, अटूट विश्वास रखना अच्छा है, ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है, बुराई न करना अच्छा है।

अध्याय तेईस का अंत: हाथी

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा की कहानी
यह सैद्धांतिक उपदेश बुद्ध ने हिमालय देश के एक वन-कुटिया में निवास करते समय मारा के संदर्भ में दिया था।
परंपरा के अनुसार, उस समय राजा अपने अधीन प्रजा पर अत्याचार करते थे। जब बुद्ध ने इन दुष्ट राजाओं के शासन में लोगों को दंडित और सताते देखा, तो वे करुणा से भर उठे। उन्होंने मन ही मन सोचा, “क्या बिना हत्या किए या हत्या करवाए, बिना विजय प्राप्त किए या विजय दिलवाए, बिना दु:ख दिए या दु:ख पहुँचाए, न्याय और धर्म के साथ शासन करना संभव नहीं है?” तभी दुष्ट मारा ने बुद्ध के मन में चल रहे विचार को भांप लिया और सोचा, “भिक्षु गौतम मन ही मन सोच रहे हैं, ‘क्या शासन करना संभव नहीं है?’ अवश्य ही वे अब शासन करना चाहते हैं। और यह शासन जिसे संप्रभुता कहा जाता है, वह लापरवाही का कारण है। यदि वे शासन करते हैं, तो मैं उन्हें धोखे में ले सकता हूँ। इसलिए मैं जाकर उनकी महत्वाकांक्षा को जगाऊँगा।”
तदनुसार, मारा ने बुद्ध को संप्रभुता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया; सुखी व्यक्ति को संप्रभुता का प्रयोग करना चाहिए, बिना हत्या किए या हत्या का कारण बने, बिना विजय प्राप्त किए या विजय का कारण बने, बिना शोक किए या शोक का कारण बने, न्याय और धर्म के साथ। बुद्ध ने मारा से कहा, “दुष्ट, मुझमें ऐसा क्या है जो तुम मुझसे ऐसा कह रहे हो?” मारा ने कहा, “आदरणीय, परम पूज्य बुद्ध ने जादूई शक्ति के चारों आधारों को पूर्णत: विकसित कर लिया है। क्योंकि यदि बुद्ध यह संकल्प लें, 'पर्वतों के राजा हिमालय को सोने में बदल दिया जाए,' तो वह पर्वत सोने का हो जाएगा। मैं भी इस धन से वे सभी कार्य करूँगा जो धन से किए जा सकते हैं। इस प्रकार आप न्याय और धर्म के साथ शासन करें।”
तब बुद्ध ने कहा:
सोने का पूरा पहाड़, वह भी शुद्ध सोने का।
एक के लिए भी पर्याप्त नहीं थे।
यह जानते हुए, मनुष्य को न्यायसंगत मार्ग पर चलना चाहिए।
जिस व्यक्ति ने दुख के स्रोत को देख लिया हो, वह इंद्रिय सुखों में कैसे लिप्त हो सकता है?
जिस व्यक्ति को संसार में आसक्ति कहलाने वाले अस्तित्व के मूल तत्व का ज्ञान हो गया हो, उसे केवल इसी को वश में करने का प्रशिक्षण लेना चाहिए।
इन श्लोकों के द्वारा बुद्ध ने दुष्ट मारा को प्रज्वलित और भयभीत किया। फिर उन्होंने उससे कहा, “हे दुष्ट, मैं तुझे एक बार फिर चेतावनी देता हूँ। मेरा तुझसे कोई संबंध नहीं है। इसलिए मैं तुझे चेतावनी देता हूँ।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 331)
अत्थमहि जातमहि सहाय सुखा इतरितरेण य तूति सुक्खा
जीवितसंखायमहि पुन्नं सुखं सब्बस्सा दुक्खस्सा पहानं सुखं

अत्तम्ही : जब कोई कार्य उत्पन्न होता है ; जाताम्ही : मित्र और सहयोगी; इतरीतरेन : यदि किसी संपत्ति से संतुष्टि मिलती है; या तुट्ठी : सुख मिलता है; सुख : आराम मिलता है; जीवन के अंत में; पुण्य : पुण्य ; सुख : आराम मिलता है; सब्बस : सभी; दुःख : दुःख ; पहान : उन्मूलन ; सुख : आनंद मिलता है

संकट के समय मित्र ही सहारा होते हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत आपके पास है, उसी से संतुष्ट रहना भी सुकून देता है। जीवन के अंत में पुण्य का फल मिलना भी सुकून देता है। वास्तव में, सभी दुखों का नाश हो जाना ही परम आनंद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 332)

लोके मत्तेयता सुखा अथो पेटेयता
ब्रह्मणत समानत सुखा

लोके : इस संसार में; मत्तेय्यता : मातृत्व; सुखा : एक आशीर्वाद है; एथो : उसी प्रकार; पेटेय्यता : पितृत्व; ब्राह्मणता : अरहत की अवस्था; समन्नता : साधुत्व

इस संसार में मातृत्व एक आशीर्वाद है। उसी प्रकार, पितृत्व भी एक आशीर्वाद है। संन्यास भी एक आशीर्वाद है। और इन सबसे बढ़कर, अरहत्व एक आशीर्वाद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 333)

यव जरा सिलं सुखं सद्ध पतिथिता सुखा
पन्याय पतिलाभो सुखो पापानां अकरणं सुखं

याव जरा : शारीरिक क्षय तक; सिलां [सिला]: पुण्य में; सुखं [सुखा]: एक आशीर्वाद है; पतितिहित : दृढ़ता से स्थापित होना; पनन्या : बुद्धि; पतिलाभो [पतिलाभ]: अधिग्रहण; सुखो [सुखा]: एक आशीर्वाद है; पापनां [पापना]: अस्वास्थ्यकरता; अकारणं [अकारण]: गैर-कमीशन

वृद्धावस्था और क्षीणता तक सद्‌गुणों का अनुसरण करना एक आशीर्वाद है। ज्ञान की प्राप्ति एक आशीर्वाद है। अस्वास्थ्यकर कार्यों से दूर रहना एक आशीर्वाद है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 331-333)

इन श्लोकों में बुद्ध सहायों (मित्रों और सहयोगियों) पर जोर देते हैं और मातृत्व, पितृत्व, भिक्षुत्व और अरहत्व को आशीर्वाद के रूप में मानने की आवश्यकता पर बल देते हैं। बुद्ध ने युवा गृहस्थ सिगाला को, जो छह दिशाओं की पूजा करने का आदी था, याद दिलाया कि छह दिशाओं का एक और समूह है जिसकी उसे पूजा करनी चाहिए। ये छह दिशाएँ परिवार के सदस्यों और सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्तियों से बनी हैं, जिनका सम्मान करना उचित है। तो कहानी इस प्रकार है।

सिगाला नाम का एक युवक अपने मरणासन्न पिता द्वारा दी गई अंतिम सलाह का पालन करते हुए आकाश की छह दिशाओं - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नादिर और शीर्ष - की पूजा करता था। बुद्ध ने उस युवक को बताया कि उनके उपदेश के 'महान अनुशासन' (अरीयस्स विनये) में ये छह दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके 'महान अनुशासन' के अनुसार ये छह दिशाएँ इस प्रकार थीं: पूर्व: माता-पिता; दक्षिण: शिक्षक; पश्चिम: पत्नी और बच्चे; उत्तर: मित्र, रिश्तेदार और पड़ोसी; नादिर: सेवक, श्रमिक और कर्मचारी; शीर्ष: धार्मिक पुरुष।

बुद्ध ने कहा, "मनुष्य को इन छह दिशाओं की उपासना करनी चाहिए।" यहाँ उपासना (नमस्सेय्य) शब्द का विशेष महत्व है, क्योंकि उपासना किसी पवित्र वस्तु की, आदर और सम्मान के योग्य वस्तु की की जाती है। बौद्ध धर्म में ऊपर वर्णित इन छह पारिवारिक और सामाजिक समूहों को पवित्र, आदर और उपासना के योग्य माना जाता है। परन्तु इनकी उपासना कैसे की जाए? बुद्ध कहते हैं कि इनकी उपासना केवल इनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करके ही की जा सकती है। इन कर्तव्यों की व्याख्या उन्होंने सिगाला को दिए अपने उपदेश में की है।

सर्वप्रथम: माता-पिता अपने बच्चों के लिए पवित्र होते हैं। बुद्ध कहते हैं: "माता-पिता को ब्रह्म कहा जाता है" (ब्रह्माति मातापितारो)। भारतीय चिंतन में ब्रह्म शब्द सर्वोच्च और सबसे पवित्र अवधारणा को दर्शाता है, और बुद्ध इसमें माता-पिता को भी शामिल करते हैं। अतः वर्तमान समय में अच्छे बौद्ध परिवारों में बच्चे प्रतिदिन सुबह-शाम अपने माता-पिता की पूजा करते हैं। उन्हें अपने माता-पिता के प्रति कुछ कर्तव्य निभाने होते हैं: वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करना; उनकी ओर से जो भी करना हो, करना; परिवार की प्रतिष्ठा बनाए रखना और पारिवारिक परंपरा को आगे बढ़ाना; माता-पिता द्वारा अर्जित धन की रक्षा करना; और उनकी मृत्यु के बाद उनके अंतिम संस्कार करना। माता-पिता की भी अपने बच्चों के प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं: उन्हें अपने बच्चों को बुरे मार्गों से दूर रखना; उन्हें अच्छे और लाभकारी कार्यों में लगाना; उन्हें अच्छी शिक्षा देना; अच्छे परिवारों में उनका विवाह कराना; और समय आने पर संपत्ति उन्हें सौंप देना।

दूसरा: शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का संबंध ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी शिक्षक का सम्मान करे और उसकी आज्ञा का पालन करे; उसकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखे; और लगन से अध्ययन करे। शिक्षक को भी अपने विद्यार्थी को उचित प्रशिक्षण और

मार्गदर्शन देना चाहिए; उसे अच्छी तरह पढ़ाना चाहिए; उसे अपने मित्रों से मिलवाना चाहिए; और शिक्षा पूरी होने के बाद उसके लिए सुरक्षा या रोजगार दिलाने का प्रयास करना चाहिए।

तीसरा: पति-पत्नी का संबंध: पति-पत्नी के बीच प्रेम को लगभग धार्मिक या पवित्र माना जाता है। इसे सदारब्रह्मचर्य 'पवित्र पारिवारिक जीवन' कहा जाता है। यहाँ भी ब्रह्म शब्द का महत्व स्पष्ट है: इस संबंध को सर्वोच्च सम्मान दिया जाता है। पति-पत्नी को एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान, आदरणीय और समर्पित होना चाहिए, और उनके एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं: पति को हमेशा अपनी पत्नी का आदर करना चाहिए और कभी भी उसके प्रति अनादर नहीं दिखाना चाहिए; उसे उससे प्रेम करना चाहिए और उसके प्रति निष्ठावान रहना चाहिए; उसकी स्थिति और सुख-सुविधाओं को सुनिश्चित करना चाहिए; और उसे वस्त्र और आभूषण भेंट करके प्रसन्न करना चाहिए। (बुद्ध ने पति द्वारा पत्नी को दिए जाने वाले उपहारों जैसी बातों का भी उल्लेख किया है, जो दर्शाता है कि वे सामान्य मानवीय भावनाओं के प्रति कितने संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण थे।) पत्नी को भी घर के कामकाज की देखरेख करनी चाहिए; मेहमानों, आगंतुकों, मित्रों, रिश्तेदारों और कर्मचारियों का सत्कार करना चाहिए; अपने पति से प्रेम करना चाहिए और उसके प्रति निष्ठावान रहना चाहिए; उसकी आय की रक्षा करनी चाहिए; और सभी कार्यों में कुशल और ऊर्जावान होना चाहिए।

चौथा: मित्रों, रिश्तेदारों और पड़ोसियों के बीच संबंध: उन्हें एक-दूसरे के प्रति आतिथ्य सत्कार और दयालु होना चाहिए; उन्हें मधुर और सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करनी चाहिए; उन्हें एक-दूसरे के कल्याण के लिए काम करना चाहिए; उन्हें एक-दूसरे के साथ समान व्यवहार करना चाहिए; उन्हें आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिए; उन्हें जरूरत के समय एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए; और मुश्किल समय में एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

पांचवा: स्वामी और सेवक का संबंध: स्वामी या नियोक्ता का अपने सेवक या कर्मचारी के प्रति अनेक दायित्व होते हैं: योग्यता और क्षमता के अनुसार कार्य सौंपा जाना चाहिए; पर्याप्त वेतन दिया जाना चाहिए; चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए; समय-समय पर दान या बोनस दिया जाना चाहिए। बदले में, सेवक या कर्मचारी को भी परिश्रमी होना चाहिए, आलसी नहीं; ईमानदार और आज्ञाकारी होना चाहिए और स्वामी को धोखा नहीं देना चाहिए; उसे अपने काम में लगन से काम करना चाहिए।

छठा: धार्मिक (यानी संन्यासी और ब्राह्मण) और गृहस्थों के बीच संबंध: गृहस्थों को प्रेम और सम्मान के साथ धार्मिकों की भौतिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए; धार्मिकों को प्रेमपूर्ण हृदय से गृहस्थों को ज्ञान और विद्या प्रदान करनी चाहिए और उन्हें बुराई से दूर अच्छे मार्ग पर ले जाना चाहिए।

मत्तय्याता : इसका अर्थ है माताओं के प्रति सजगता और अच्छा आचरण — नारी जाति के प्रति सजगता। विश्व के धर्मों में बुद्ध का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि वे एक ऐसे आध्यात्मिक नेता थे जो महिलाओं को विशेषाधिकार प्रदान करने के लिए अत्यंत चिंतित थे।

बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति अद्वितीय है। बुद्ध ने महिलाओं को धार्मिक जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता दी। बुद्ध पहले धार्मिक गुरु थे जिन्होंने महिलाओं को यह धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। बुद्ध से पहले, महिलाओं का कर्तव्य रसोई तक ही सीमित था; उन्हें किसी मंदिर में प्रवेश करने या धार्मिक पाठ करने की भी अनुमति नहीं थी। बुद्ध के समय में समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न थी। जब बुद्ध ने महिलाओं को यह स्वतंत्रता दी, तो तत्कालीन व्यवस्था ने उनकी कड़ी आलोचना की। महिलाओं को धार्मिक मार्ग पर चलने की अनुमति देना उस समय के लिए अत्यंत क्रांतिकारी कदम था। फिर भी, बुद्ध ने महिलाओं को स्वयं को सिद्ध करने और यह दिखाने का अवसर दिया कि उनमें भी पुरुषों के समान ही अरहंतत्व प्राप्त करके धार्मिक जीवन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने की क्षमता है। विश्व की प्रत्येक महिला को बुद्ध का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने उन्हें वास्तविक धार्मिक जीवन का मार्ग दिखाया और विश्व इतिहास में पहली बार उन्हें ऐसी स्वतंत्रता प्रदान की।

बुद्ध के समय में महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण का एक अच्छा उदाहरण मारा के इन शब्दों में मिलता है:

"अपनी दो उंगलियों के ज्ञान से कोई भी स्त्री उन ऊंचाइयों तक पहुंचने की आशा नहीं कर सकती जो केवल ऋषियों द्वारा ही प्राप्त की जाती हैं।"

निःसंदेह बुद्ध ने इस प्रकार के विचारों का पुरजोर खंडन किया। जिस भिक्षुणी से मारा ने ये शब्द कहे थे, उसने निम्नलिखित उत्तर दिया:

"जब किसी का मन पूरी तरह से एकाग्र होता है और ज्ञान कभी विफल नहीं होता, तो क्या स्त्री होने से कोई फर्क पड़ता है?"

राजा कोसल को जब पता चला कि उनकी रानी ने एक बच्ची को जन्म दिया है, तो उन्हें बहुत निराशा हुई। उन्हें बेटे की उम्मीद थी। दुखी राजा को सांत्वना देने के लिए बुद्ध ने कहा:

"हे मनुष्यों के स्वामी, एक कन्या संतान सिद्ध हो सकती है।"
यहां तक कि नर संतान से भी बेहतर संतान।
ताकि वह बुद्धिमान और गुणी बनकर बड़ी हो सके।
अपने पति की मां का सम्मान करने वाली, सच्ची पत्नी।
वह जिस बेटे को जन्म देगी, वह महान कर्म करेगा।
और महान राज्यों पर शासन करे, हाँ, ऐसा पुत्र।

एक कुलीन पत्नी अपने देश की मार्गदर्शक बन जाती है।

एक ऐसे ही अवसर पर उन्होंने स्वीकार किया कि केवल पुरुष ही बुद्धिमान नहीं होता; स्त्री भी बुद्धिमान होती है।

अध्याय 24. तन्हावग्ग: लालसा (334-359)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 334,335,336,337

(धम्मपद 331, 332 और 333) <<<< पिछला || धम्मपद 334, 335, 336 और 337 || अगला >>>> (धम्मपद 338 से 343)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 334, 335, 336 और 337 - कपिलमच्च वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 334, 335, 336 और 337 - कपिलमच्च वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Manujassa pamattacarino
tanha vaddhati maluva viya
so plavati hura huram
फलामिच्छम्व वनस्मि वनारो।
Yam esa sahate jammi
tanha loke visattika
soka tassa pavaddhanti
abhivatthamva biranam.
Yo cetam sahate jammim
tanham loke duraccayam
soka tamha papatanti
udabindu va pokkhara.
Tam vo vadami bhaddam vo
yavante' ttha samagata
tanhaya mulam khanatha
usiratthova biranam
ma vo nalamva sotova
maro bhanji punappunam.

श्लोक 334 : जो व्यक्ति लापरवाह होता है, उसमें लालसा लता की तरह बढ़ती है। वह जन्म-जन्मांतर तक ऐसे ही भागता रहता है, जैसे कोई बंदर जंगल में फल ढूंढता है।

श्लोक 335 : इस संसार में, जो व्यक्ति इंद्रियों से चिपकी रहने वाली इस नीच लालसा से ग्रस्त होता है, उसमें दुःख उसी प्रकार बढ़ता है जैसे अच्छी तरह से सींची गई बिरना घास बहुतायत से उगती है।

श्लोक 336 : इस संसार में, जो व्यक्ति इस घृणित लालसा पर विजय प्राप्त कर लेता है, जिससे छुटकारा पाना कठिन है, उससे दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें गिर जाती हैं।

श्लोक 337 : अतः मैं आप सभी उपस्थित लोगों को यह सार्थक प्रवचन दूंगा। लालसा की जड़ को उसी प्रकार उखाड़ फेंको, जैसे सुगंधित जड़ पाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति बिरना घास को उखाड़ फेंकता है। मार को बार-बार तुम्हें नष्ट न करने दो, जैसे बाढ़ सरकंडे को नष्ट कर देती है।

कपिला मछली की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (334), (335), (336) और (337) का उच्चारण किया, जिसमें एक सुंदर, सुनहरे रंग और बदबूदार मुंह वाली मछली का जिक्र था।

कश्यप बुद्ध के समय में कपिल नाम का एक भिक्षु था, जो पिटकों का बहुत बड़ा ज्ञाता था। अपने ज्ञान के कारण उसने बहुत प्रसिद्धि और धन अर्जित किया; वह बहुत अहंकारी हो गया और अन्य भिक्षुओं के प्रति तिरस्कार भाव रखता था। जब अन्य भिक्षु उसे उचित और अनुचित के बारे में बताते, तो वह हमेशा कहता, "तुम्हें कितना ज्ञान है?" जिसका अर्थ यह था कि वह उन भिक्षुओं से कहीं अधिक जानता है। समय बीतने के साथ, सभी अच्छे भिक्षुओं ने उसका बहिष्कार कर दिया और केवल बुरे भिक्षु ही उसके आसपास एकत्रित होने लगे। एक उपवास के दिन, जब भिक्षु भिक्षुओं के लिए मूलभूत उपदेशों (अर्थात पतिमोक्ख) का पाठ कर रहे थे, कपिल ने कहा, "सूत्र, अभिधम्म या विनय जैसी कोई चीज नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हें पतिमोक्ख सुनने का अवसर मिले या न मिले," इत्यादि, और भिक्षुओं की सभा छोड़कर चला गया। इस प्रकार, कपिला शिक्षा (शासन) के विकास और वृद्धि में बाधक था।

इस बुरे कर्म के कारण कपिल को कश्यप बुद्ध और गौतम बुद्ध के बीच निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा। बाद में उनका पुनर्जन्म अचिरवती नदी में एक मछली के रूप में हुआ। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस मछली का शरीर अत्यंत सुंदर और सुनहरा था, परन्तु उसके मुँह से अत्यंत दुर्गंध आती थी। एक दिन कुछ मछुआरों ने उस मछली को पकड़ लिया और उसकी सुंदरता के कारण उसे नाव में राजा के पास ले गए। राजा उस मछली को बुद्ध के पास ले गए। जब मछली ने अपना मुँह खोला, तो उसकी दुर्गंध चारों ओर फैल गई। तब राजा ने बुद्ध से पूछा कि इतनी सुंदर मछली से इतनी दुर्गंध क्यों आती है। राजा और उपस्थित लोगों को बुद्ध ने समझाया, "हे राजा! कश्यप बुद्ध के समय में एक बहुत विद्वान भिक्षु थे जो दूसरों को धम्म का उपदेश देते थे। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, जब उनका पुनर्जन्म हुआ, तो मछली के रूप में भी, उन्हें स्वर्णमय शरीर प्राप्त हुआ। परन्तु वह भिक्षु बहुत लालची, अभिमानी और दूसरों का घोर तिरस्कार करने वाला था; उसने अनुशासनों की अवहेलना की और अन्य भिक्षुओं का अपमान किया। इन बुरे कर्मों के कारण, उनका पुनर्जन्म निरय/नरक में हुआ, और अब, वे एक सुंदर मछली बन गए हैं जिसका मुँह दुर्गंधयुक्त है।" बुद्ध ने फिर मछली की ओर मुड़कर पूछा कि क्या वह जानती है कि अगले जन्म में उसे कहाँ जाना होगा। मछली ने उत्तर दिया कि उसे फिर से निरय/नरक जाना होगा और वह घोर निराशा से भर गई। जैसा कि भविष्यवाणी की गई थी, अपनी मृत्यु के बाद मछली का पुनर्जन्म निरय/नरक में हुआ, जहाँ उसे निरंतर पीड़ा भोगनी पड़ी।

मछली के बारे में सुनकर वहां मौजूद सभी लोग घबरा गए। तब बुद्ध ने विद्या और अभ्यास को एक साथ करने के लाभों पर प्रवचन दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 334 : जो व्यक्ति लापरवाह होता है, उसमें लालसा लता की तरह बढ़ती है। वह जन्म-जन्मांतर तक ऐसे ही भागता रहता है, जैसे कोई बंदर जंगल में फल ढूंढता है।

श्लोक 335 : इस संसार में, जो व्यक्ति इंद्रियों से चिपकी रहने वाली इस नीच लालसा से ग्रस्त होता है, उसमें दुःख उसी प्रकार बढ़ता है जैसे अच्छी तरह से सींची गई बिरना घास बहुतायत से उगती है।

श्लोक 336 : इस संसार में, जो व्यक्ति इस घृणित लालसा पर विजय प्राप्त कर लेता है, जिससे छुटकारा पाना कठिन है, उससे दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें गिर जाती हैं।

श्लोक 337 : अतः मैं आप सभी उपस्थित लोगों को यह सार्थक प्रवचन दूंगा। लालसा की जड़ को उसी प्रकार उखाड़ फेंको, जैसे सुगंधित जड़ पाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति बिरना घास को उखाड़ फेंकता है। मार को बार-बार तुम्हें नष्ट न करने दो, जैसे बाढ़ सरकंडे को नष्ट कर देती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अतीत की कहानी: अभिमानी भिक्षु

कथा के अनुसार, बहुत समय पहले जब बुद्ध कश्यप निर्वाण प्राप्त हुए, तब एक प्रतिष्ठित परिवार के दो बंधुओं ने संसार त्याग कर अपने शिष्यों के अधीन भिक्षु बन गए। बड़े बंधुओं का नाम शोधन और छोटे बंधुओं का नाम लाल कपिला था। इसी प्रकार उनकी माता साधिनी और छोटी बहन तपना ने भी संसार त्याग कर भिक्षुणी बन गईं। भिक्षु बनने के बाद, दोनों बंधुओं ने अपने गुरुओं और उपदेशकों के प्रति नियमित और निष्ठापूर्वक अपने सभी प्रमुख और गौण कर्तव्यों का पालन किया। एक दिन उन्होंने यह प्रश्न पूछा, "आदरणीय, इस धर्म में कितने भार हैं?" और उन्हें यह उत्तर मिला, "दो भार हैं: अध्ययन का भार और ध्यान का भार।" तब बड़े बंधुओं ने कहा, "मैं ध्यान का भार पूरा करूंगा," और पाँच वर्षों तक अपने गुरु और उपदेशक के साथ रहे। अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए एक ध्यान विषय प्राप्त करके, वे वन में प्रवेश कर गए, और अथक परिश्रम और संघर्ष के बाद अर्हतत्व प्राप्त किया।

छोटे भाई ने कहा, "मैं अभी जवान हूँ; जब बूढ़ा हो जाऊँगा, तब ध्यान का भार पूरा करूँगा।" तदनुसार, उन्होंने अध्ययन का भार अपने ऊपर लिया और तीनों पिटकों को कंठस्थ कर लिया । ग्रंथों के ज्ञान से उन्होंने बहुत से अनुयायी प्राप्त किए और उनके माध्यम से उन्हें भरपूर दान मिला। ज्ञान के नशे में चूर और लाभ की लालसा से ओतप्रोत होकर, वे अपने ज्ञान के घमंड में इतने चूर हो गए कि दूसरों द्वारा कही गई बात को, चाहे वह सही हो, गलत हो, सही हो, निर्दोष हो, पापी हो, और पापी हो, निर्दोष हो, तब भी निर्दोष हो जाते थे। दयालु भिक्षु उनसे कहते, "भाई कपिल, ऐसा मत बोलो," और उन्हें उपदेश देते हुए उपदेश और अनुशासन का पाठ पढ़ाते। परन्तु कपिल उत्तर देते, "तुम्हें क्या पता, खाली हाथ?" और दूसरों को नीचा दिखाने और उनकी निंदा करने में लग जाते।

भिक्षुओं ने यह बात उनके भाई पूज्य शोधन को बताई। शोधन उनके पास गए और बोले, "भाई कपिल, आप जैसे लोगों के लिए सही आचरण ही धर्म का जीवन है; इसलिए आपको सही आचरण नहीं छोड़ना चाहिए, जो सही और उचित है उसे त्यागकर अपनी बात नहीं कहनी चाहिए।" इस प्रकार शोधन ने अपने भाई कपिल को समझाया। लेकिन कपिल ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। शोधन ने उन्हें दो-तीन बार समझाया, लेकिन जब उन्होंने देखा कि कपिल ने उनकी बात नहीं मानी, तो वे यह कहकर चले गए, "भाई, अब तो तुम अपने कर्मों के लिए बदनाम हो जाओगे।" और उस समय से बाकी दयालु भिक्षुओं ने उनसे कोई वास्ता नहीं रखा।

इस प्रकार, भिक्षु कपिल ने दुष्ट आचरण अपनाया और अपने जैसे ही दुष्ट आचरण में दृढ़ साथियों के साथ घूमने लगा। एक दिन उसने मन ही मन कहा, "मैं अनुशासन कक्ष में पातिमोक्खा का पाठ करूँगा।" अतः एक पंखा लेकर धर्म आसन पर बैठकर उसने पातिमोक्खा का पाठ किया और सामान्य प्रश्न पूछा, "भाइयों, क्या यहाँ एकत्रित भिक्षुओं में से कोई ऐसा है जिसे अपने पापों का प्रायश्चित करना हो?" भिक्षुओं ने सोचा, "इस व्यक्ति को उत्तर देने का क्या लाभ?" यह देखकर कि सभी भिक्षु मौन रहे, उसने कहा, "भाइयों, यहाँ कोई सिद्धांत या अनुशासन नहीं है; पातिमोक्खा सुनने या न सुनने से क्या फर्क पड़ता है?" इतना कहकर वह आसन से उठ गया। इस प्रकार उसने बुद्ध कश्यप के वचन के प्रचार में बाधा डाली।

पूज्य शोधन ने उसी अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया। कपिल का अपने जीवन काल की समाप्ति पर अविचि नामक महान नरक में पुनर्जन्म हुआ । कपिल की माता और बहन ने भी उनका अनुसरण किया, दयालु भिक्षुओं का अपमान किया और उसी नरक में पुनर्जन्म लिया।

उस समय पाँच सौ लोग थे जो गाँवों को लूटकर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन गाँव के लोगों ने उनका पीछा किया, तो वे भागकर जंगल में चले गए। वहाँ कोई शरण न देखकर, उन्हें एक वनवासी साधु मिला, तो उन्होंने उसे प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय साधु, हमारी शरण कीजिए।" साधु ने उत्तर दिया, "तुम्हारे लिए नैतिकता के उपदेशों के समान कोई शरण नहीं है। तुम सब पाँच उपदेशों का पालन करो।" "ठीक है," डाकुओं ने सहमति जताई और पाँच उपदेशों का पालन किया। तब साधु ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, "अब जब तुमने उपदेशों का पालन कर लिया है, तो अपने जीवन को बचाने के लिए भी नैतिक नियमों का उल्लंघन न करो, न ही बुरे विचार रखो।" "ठीक है," डाकुओं ने वचन देते हुए कहा।

जब ग्रामीण लोग उस स्थान पर पहुँचे, तो उन्होंने हर जगह खोजबीन की और डाकुओं को पाकर उन सभी को मार डाला। इस प्रकार डाकू मर गए और देवताओं के लोक में पुनर्जन्म लिया; डाकुओं का सरदार उस समूह का प्रमुख देवता बन गया। दो बुद्धों के बीच के अंतराल के बराबर समय तक देवताओं के लोक में जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करने के बाद, वर्तमान बुद्ध के युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी नगर के द्वार के पास स्थित पाँच सौ घरों वाले मछुआरों के एक गाँव में हुआ।

देवताओं के समूह के मुखिया का नया जन्म मछुआरों के मुखिया के घर में हुआ, और बाकी देवताओं का दूसरे मछुआरों के घरों में। इस प्रकार एक ही दिन सभी का नया जन्म हुआ और वे अपनी-अपनी माताओं के गर्भ से बाहर आए। मछुआरों के मुखिया ने मन ही मन सोचा, "क्या आज इस गाँव में कुछ और लड़के पैदा नहीं हुए थे?" खोजबीन करवाने पर उन्हें पता चला कि उनके साथी भी उसी स्थान पर पुनर्जन्म ले चुके थे। उन्होंने सोचा, "ये मेरे बेटे के साथी बनेंगे," और उनके भरण-पोषण के लिए भोजन भेजा। वे सब आपस में खेलने-कूदने लगे और दोस्त बन गए, और समय के साथ-साथ जवान हो गए। मछुआरों के बेटों में सबसे बड़े ने प्रसिद्धि और यश प्राप्त किया और समूह का मुखिया बन गया।

दो बुद्धों के बीच के अंतराल में कपिल को नरक में कष्ट भोगना पड़ा, और उनके बचे हुए बुरे कर्मों के फल स्वरूप, वे अचिरावती नदी में मछली के रूप में पुनर्जन्म लेकर इस समय वहाँ पहुँचे। उनकी त्वचा सुनहरे रंग की थी, परन्तु उनके मुँह से दुर्गंध आती थी।

वर्तमान की कहानी: मछुआरे और बदबूदार सांस वाली मछली

एक दिन उन साथियों ने आपस में कहा, "चलो कुछ मछलियाँ पकड़ते हैं।" इसलिए उन्होंने जाल लेकर नदी में फेंका। संयोग से एक मछली उनके जाल में गिर गई। मछुआरों के गाँव के निवासियों ने जब मछली देखी, तो वे खुशी से झूम उठे और कहने लगे, "हमारे बेटों ने पहली बार मछली पकड़ी थी, उन्हें सुनहरी मछली मिली थी; अब राजा हमें भरपूर धन देंगे।" साथियों ने मछली को नाव में डाला और राजा के पास चले गए। राजा ने मछली को देखकर पूछा, "यह क्या है?" साथियों ने उत्तर दिया, "मछली, महाराज।" जब राजा ने देखा कि यह एक सुनहरी मछली है, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "बुद्ध को ही पता होगा कि इस मछली का रंग सुनहरा क्यों है।" इसलिए उन्होंने मछली को अपने पास लाने का आदेश दिया और बुद्ध के पास चले गए। जैसे ही मछली ने अपना मुँह खोला, पूरे जेतवन में दुर्गंध फैल गई। राजा ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, इस मछली का रंग सुनहरा कैसे हो गया? और इसकी साँस से दुर्गंध क्यों आ रही है?"

"महाराज, बुद्ध कश्यप के समय में यह मछली कपिला नामक भिक्षु थी। कपिला बहुत विद्वान और बहुत से अनुयायी थे। परन्तु वह धन-लोभ के लालच में इतना व्याकुल हो गया कि जो उसकी बात नहीं मानते थे, उन्हें अपशब्द कहता और गाली देता था। इस प्रकार उसने बुद्ध कश्यप के धर्म का प्रसार बाधित किया, अतः उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ, और क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए उसका पुनर्जन्म मछली के रूप में हुआ है। अब क्योंकि उसने लंबे समय तक बुद्ध के वचनों का प्रचार किया और बुद्ध की स्तुति की, इसी कारण उसे स्वर्णमय रंग प्राप्त हुआ है। परन्तु भिक्षुओं को अपशब्द कहने और गाली देने के कारण उसकी श्वास दुर्गंधयुक्त हो गई है। महाराज, मैं उसे स्वयं अपने बारे में बताने देता हूँ।" "आदरणीय, उसे स्वयं अपने बारे में बताने दीजिए।"

तब बुद्ध ने मछली से पूछा, "क्या तुम कपिल हो?" "जी, पूज्यवर, मैं कपिल हूँ।" "तुम कहाँ से आए हो?" "आदरणीय, अविचि के महान नरक से।" "तुम्हारे बड़े भाई शोधन का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका निर्वाण हुआ।" "पर तुम्हारी माता साधिनी का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका पुनर्जन्म नरक में हुआ।" "और तुम्हारी छोटी बहन तपना का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका पुनर्जन्म नरक में हुआ।" "अब तुम कहाँ जाओगे?" " आदरणीय, अविचि के महान नरक में ।" ऐसा कहते हुए, मछली पश्चाताप से व्याकुल होकर नाव से अपना सिर टकराया, वहीं मर गई और नरक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ खड़े लोग अत्यंत उत्तेजित हो गए, यहाँ तक कि उनके रोंगटे खड़े हो गए।

उस समय बुद्ध ने वहां एकत्रित लोगों की मनोस्थिति को भांपते हुए, उस अवसर के अनुरूप धम्म का उपदेश दिया।

धार्मिकता का जीवन, पवित्रता का जीवन, इसे ही वे सर्वोच्च मूल्यवान रत्न कहते हैं।

इन्हीं शब्दों से प्रारंभ करते हुए, बुद्ध ने सुत्त निपाता में पाए जाने वाले कपिल सूत्र का पूर्ण पाठ किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 334)

मनुजस्सा पमत्तकारिनो तन्हा वधति मालुवा विया सो

प्लवति हुरधुरं फलं इच्छां वनसिं वानरो इव

मनुजस्स : मनुष्य का; पमत्तचारिनो [पमत्तचारिना]: आलसी स्वभाव का; तन्हा : लालसा; वड्धति : बढ़ता है; मालुवा विय : वृक्षों को नष्ट करने वाली लता के समान; इसलिए : वह; प्लावति : कूदता रहता है; हुराधुरं [हुराधुरा]: जन्म-जन्म से; फलम इच्छां [इच्छा]: फल प्रेमी; वनसं [वनसं]: वन में; वानर इव : बंदर के समान

मनुष्य की लालसा मालुवा लता की तरह बढ़ती है । अंत में, लता ही वृक्ष को नष्ट कर देती है। जैसे बंदर वृक्ष के फल से संतुष्ट नहीं होता, वैसे ही लालसा से ग्रस्त मनुष्य एक जीवन से दूसरे जीवन में भटकता रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 335)

जम्मी विसात्तिका एसा तन्हा लोके यम सहति

तस्स अभिवत्थं बिराणं इव सोका

जम्मी : नीच; विसत्तिका : विषैला और आसक्ति; एस्सा तन्हा : यह लालसा; लोके : इस संसार में; यं : यदि कोई; सहती : कुचल देता है; तस्स : उस व्यक्ति को; अभिवड्ढं [अभिवड्ढ]: बार-बार वर्षा के संपर्क में आने वाला; बीरणं इव : बीरण घास के समान; शोका : उसके दुख; वड्ढंति : वृद्धि।

यदि कोई व्यक्ति ऐसी लालसा से ग्रस्त हो जाता है जिसे नीच और विषैला बताया गया है, तो उसके दुख उतनी ही तेजी से और प्रचुर मात्रा में बढ़ते हैं जितनी कि बार-बार बारिश के संपर्क में आने के बाद बीरण घास बढ़ती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 336)

लोके यो च जम्मिं दुराक्कयं एतं तन्हा सहति

तम्हा सोका पोक्खरा उदबिंदु इव पापान्ति

लोके : इस संसार में; यो च : यदि कोई; जम्मिं [जम्मी]: नीच; दुराच्चायं [दुराच्चाय]: जिसे पार करना कठिन हो; एतं तन्हा : यह लालसा; सहाती : वश में कर लेती है; तम्हा : उससे; सोका : दु:ख; पोक्खरा उदबिंदु इव : कमल के पत्ते से पानी की तरह; पापतन्ति : फिसल जाता है

लालसा एक नीच प्रवृत्ति है। लालसा से बचना मुश्किल है। लेकिन इस संसार में, यदि कोई लालसा पर विजय प्राप्त कर ले, तो उसके दुख कमल के पत्ते से पानी की तरह फिसल जाएंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 337)

यावंतो एत्थ समागता वो भद्दं तं वो वदामि

उसीरत्थो बिरणं इव तन्हाय मूलं खनाथ

नालं सोतो इव मारो वो पुनप्पुनं मा भन्जी

यावन्तो [यावन्त]: वे सभी; एत्थ : यहाँ; समागत : एकत्रित हुए हैं; वो : आप सभी; भद्दं [भद्द]: आपका भला हो; तं : इसलिए; वो : आपको; वदामि : मैं यह सलाह दूंगा; उसिरत्थो [उसिरत्थ]: जो सुगंधित उसिर घास की जड़ों की तलाश करते हैं; बीरणं इव : जैसे ही वे बीरण घास खोदते हैं; तन्हाय : लालसा से; मूलं [मूल]: जड़; खनाथा : खोदना; नलं इव : सरकंडों को उखाड़ना; सोतो : बाढ़; मारो : मृत्यु; पुनप्पुनं [पुनप्पुन]: बार-बार; nabhañji : आपको यातना नहीं दे सकता

आप सभी उपस्थित लोगों को शुभकामनाएँ। मैं आप सभी को आपके कल्याण के लिए सलाह देता हूँ। जो व्यक्ति सुगंधित उसीरा की जड़ें प्राप्त करना चाहता है, उसे पहले बीरण घास की जड़ें खोदनी चाहिए । उसी प्रकार, व्यथा की जड़ों को खोद डालो। ऐसा करने से, मृत्यु आपको बाढ़ की तरह बार-बार पीड़ा नहीं देगी।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 334-337)

मालुवा विया : मालुवा लता की तरह । मालुवा लता वृक्षों पर उगने वाली एक परजीवी लता है। यह लता वृक्ष को जकड़ लेती है और अंततः उसे नष्ट कर देती है। इसी प्रकार, मन में पनपने वाली लालसा उसे नष्ट कर देती है।

फल की तलाश में भटकते बंदर की तरह। बंदर एक ही पेड़ के फल से संतुष्ट नहीं होता। वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदता रहता है ।

विसत्तिका : व्यस्तिका शब्द का प्रयोग कई कारणों से किया जाता है। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह उलझाता है। यह विषैला भी होता है, इसलिए इसे यह नाम दिया गया है।

बीरण घास : यह एक प्रकार की घास है जो तेजी से बढ़ती है। बार-बार बारिश होने पर यह और भी तेजी से बढ़ती है। कई बारिशों के बाद शोक को बीरण घास के समान बताया गया है।

दुरच्चयं : लालसा एक प्रबल प्रलोभन है, इसे अनदेखा करना या नजरअंदाज करना कठिन है।

उसीरा घास : उसीरा घास की जड़ से मीठी सुगंध आती है। इसे प्राप्त करने के लिए पहले बीरण घास को हटाना पड़ता है। अतः उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए पहले व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक है।

इस उदाहरण में वर्णित श्लोक एक विचित्र मछली पकड़ने वाले कुछ लोगों से हुई मुलाकात से प्रेरित हैं। यह घटना बुद्ध के जीवन में आए विभिन्न प्रकार के लोगों को दर्शाती है। बुद्ध की एक अन्य मुलाकात एक साधारण किसान से हुई थी, जिसका उदाहरण नीचे दिया गया है:

आलवी का भूखा किसान : एक सुबह, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ से निकले और एक गरीब किसान की मदद के लिए आलवी पहुँचे। आलवी के लोगों ने बुद्ध और भिक्षुओं के समूह को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया । भोजन के बाद, जब उपदेश देने और पुण्य भोगने का समय आया, तो बुद्ध मौन रहे।

आलवी में बुद्ध के आगमन की खबर सुनकर एक गरीब किसान को अपना खोया हुआ बैल ढूंढने में पूरी सुबह लग गई। भूख से व्याकुल होकर वह वापस लौटा। लेकिन घर जाकर भोजन किए बिना ही वह बुद्ध के दर्शन करने के इरादे से उनके स्थान पर आ गया।

जब किसान ने आकर बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया, तो बुद्ध ने सेवकों से पूछा कि क्या कुछ भोजन बचा है। जब उन्होंने हाँ में उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें भोजन करने के लिए कहा। भोजन समाप्त करने के बाद, बुद्ध ने प्रवचन दिया, और प्रवचन के अंत में किसान को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

वापसी के रास्ते में भिक्षुओं ने बुद्ध के इस दयालु कार्य के बारे में चर्चा शुरू की। सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने समझाया कि भूख से पीड़ित व्यक्ति किसी भी उपदेश को नहीं समझ सकता। भीड़ में से कई लोगों ने सोतापत्ति जैसे लाभों को महसूस किया।
बुद्ध की विभिन्न मानवीय परिस्थितियों में लोगों से मुलाकातों का एक और उदाहरण निम्नलिखित कहानी द्वारा प्रस्तुत किया गया है:
सर्प पर हमला करते लड़के : एक दिन, जब बुद्ध सावत्थी के जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, वे दोपहर में शहर में भिक्षा मांगने निकले। मठ से कुछ ही दूरी पर एक स्थान पर, बुद्ध ने बड़ी संख्या में लड़कों को लाठियों से सर्प पर हमला करते देखा।
"तुम लोग क्या कर रहे हो?" बुद्ध ने पूछा।
"हम इस सांप पर लाठी से हमला करेंगे," लड़कों ने जवाब दिया।
बुद्ध ने पूछा, "तुम सर्प को क्यों मारना चाहते हो?"
"इस डर से कि सांप हमें काट लेगा।"
बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया: जो सुख की खोज में सुख चाहने वालों पर आक्रमण करते हैं, उन्हें अंत में कुछ भी लाभ नहीं मिलता। इसी प्रकार, जो सुख की खोज में सुख चाहने वालों पर आक्रमण करने से बचते हैं, वे अंततः परमानंद की प्राप्ति करते हैं।
उपदेश के अंत में, लड़कों को सोतापत्ति का फल समझ में आया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 338-343

(धम्मपद 334, 335, 336 और 337) <<<< पिछला || धम्मपद 338 से 343 || अगला >>>> (धम्मपद 344)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 338 से 343 - सुकरापोटिका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

Dhammapada Verses 338 to 343 - Sukarapotika Vatthu

00:07
41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathapi mule anupaddave dalhe
चिन्नौपि रुक्खो पुनरेव रुहति
evampi tanhanusaye anuhate
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनम्।
Yassa chattimsati sota
manapasavana bhusa
maha vahanti dudditthim
sankappa raganissita.
Savanti sabbadhi sota
lati uppajja titthati
tanca disva latam jatam
mulam pannaya chindatha.
Saritani sinehatani ca
somanassani bhavanti jantuno
te satasita sukhesino

te ve jatijarupaga nara.
Tasinaya purakkhata paja
parisappanti sasova bandhito
सम्योजनसंगसत्तक
दुक्खमुपेंती पुनप्पुनम सिरया।
Tasinaya purakkhata paja
parisappanti sasova bandhito
tasma tasinam vinodaye
akankhanta viragamattano.

श्लोक 338 : जिस प्रकार एक पेड़ जिसकी जड़ें अक्षुण्ण और दृढ़ हों, काटे जाने पर भी फिर से उग आता है, उसी प्रकार यदि सुप्त लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह दु:ख/पीड़ा (जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की) बार-बार उत्पन्न होती है।

श्लोक 339 : वह व्यक्ति जिसके विचार गलत हैं, और जिसमें सुखदायक वस्तुओं की ओर बहने वाली छत्तीस धाराएँ (इच्छा की) प्रबल हैं, वह अपने कामवासना से जुड़े अनेक विचारों से बहक जाता है।

श्लोक 340 : कृतज्ञता की धारा सभी इंद्रिय विषयों की ओर बहती है; कृतज्ञता की लता (छह इंद्रिय द्वारों पर) उगती है और (छह इंद्रिय विषयों पर) जड़ जमा लेती है। कृतज्ञता की उस लता को बढ़ते हुए देखकर, उसकी जड़ों को मग्ग्अंतर्दृष्टि से काट डालो।

श्लोक 341 : प्राणियों में ऐसी खुशी बहती है जो लालसा से मलिन होती है; जो प्राणी सुख से जुड़े होते हैं और सुख की खोज करते हैं, वे वास्तव में जन्म और वृद्धावस्था के अधीन होते हैं।

श्लोक 342 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत होते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार, लंबे समय तक दु:ख/पीड़ा (पुनर्जन्म का चक्र) भोगते हैं।

श्लोक 343 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत हो जाते हैं। इसलिए, जो व्यक्ति लालसा से मुक्त होना चाहता है, उसे लालसा का नाश करना चाहिए।

एक युवा सूअर की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (338) से (343) तक एक युवा सूअर के संदर्भ में कहे।
एक बार जब बुद्ध राजगृह में भिक्षा मांग रहे थे, तब उन्होंने एक युवा, गंदी सुअरनी देखी और मुस्कुराए। जब पूज्य आनंद ने उनसे पूछा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, यह युवा सुअरनी काकुसंध बुद्ध के समय में मुर्गी थी। उस समय वह एक मठ में भोजन कक्ष के पास रहती थी और पवित्र ग्रंथों का पाठ और धम्म पर प्रवचन सुनती थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म एक राजकुमारी के रूप में हुआ। एक बार शौचालय जाते समय राजकुमारी ने कीड़े देखे और उसे शरीर की घिनौनीपन आदि का आभास हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म ब्रह्मा (प्रधान देव) लोक में पुथुज्जन ब्रह्मा (प्रधान देव) के रूप में हुआ, लेकिन बाद में किसी बुरे कर्म के कारण उसका पुनर्जन्म एक सुअरनी के रूप में हुआ। आनंद! देखो, अच्छे और बुरे कर्मों के कारण जन्म-मृत्यु का चक्र कभी समाप्त नहीं होता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 338 : जिस प्रकार एक पेड़ जिसकी जड़ें अक्षुण्ण और दृढ़ हों, काटे जाने पर भी फिर से उग आता है, उसी प्रकार यदि सुप्त लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह दु:ख/पीड़ा (जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की) बार-बार उत्पन्न होती है।

श्लोक 339 : वह व्यक्ति जिसके विचार गलत हैं, और जिसमें सुखदायक वस्तुओं की ओर बहने वाली छत्तीस धाराएँ (इच्छा की) प्रबल हैं, वह अपने कामवासना से जुड़े अनेक विचारों से बहक जाता है।

श्लोक 340 : कृतज्ञता की धारा सभी इंद्रिय विषयों की ओर बहती है; कृतज्ञता की लता (छह इंद्रिय द्वारों पर) उगती है और (छह इंद्रिय विषयों पर) जड़ जमा लेती है। कृतज्ञता की उस लता को बढ़ते हुए देखकर, उसकी जड़ों को मग्ग्अंतर्दृष्टि से काट डालो।

श्लोक 341 : प्राणियों में ऐसी खुशी बहती है जो लालसा से मलिन होती है; जो प्राणी सुख से जुड़े होते हैं और सुख की खोज करते हैं, वे वास्तव में जन्म और वृद्धावस्था के अधीन होते हैं।

श्लोक 342 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत होते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार, लंबे समय तक दुःख/पीड़ा (पुनर्जन्म का चक्र) भोगते हैं।

श्लोक 343 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत हो जाते हैं। इसलिए, जो व्यक्ति लालसा से मुक्त होना चाहता है, उसे लालसा का नाश करना चाहिए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

युवा सूअर

कथा के अनुसार, एक दिन जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्होंने एक युवा सुअर को देखा और मुस्कुरा उठे। पूज्य आनंद ने उनके दांतों से निकलती हुई प्रकाश की किरण को देखकर, जो उनके खुले मुंह से बाहर आ रही थी, बुद्ध से उनके मुस्कुराने का कारण पूछा, "पूज्यवर, आपके मुस्कुराने का कारण क्या है?" बुद्ध ने उनसे कहा, "आनंद, उस युवा सुअर को देखो!"

"जी, मैं उसे देख रहा हूँ।"

"परमेश्वर काकुसंध के युग में, वह एक मुर्गी थी जो एक सभा-गृह के पास रहती थी। वह एक ऐसे भिक्षु को सुनती थी जो ध्यान में मग्न रहता था और अंतर्दृष्टि की ओर ले जाने वाली ध्यान विधि को दोहराता था। केवल उन पवित्र शब्दों को सुनकर, जब वह उस अवस्था से विलीन हो गई, तो उसका पुनर्जन्म राजपरिवार में उब्बारी नामक राजकुमारी के रूप में हुआ।"

"एक दिन वह शौचालय गई और वहाँ उसे कीड़ों का ढेर दिखाई दिया। वहीं, कीड़ों को निहारते हुए, उसने कीड़ों की कल्पना की और प्रथम समाधि में प्रवेश कर गई। अपने लिए निर्धारित जीवनकाल तक उस अवस्था में रहने के बाद, वह उस अवस्था से बाहर निकल गई और ब्रह्मा लोक में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से पुनर्जन्म के चक्र से गुज़रते हुए, अब उसका पुनर्जन्म एक युवा सुअर के रूप में हुआ है। इन परिस्थितियों को जानकर ही मैं मुस्कुराया।"

आदरणीय आनंद के नेतृत्व में भिक्षुओं ने जब बुद्ध के प्रवचन सुने तो वे अत्यंत भावुक हो गए। बुद्ध ने उनकी भावनाओं को झकझोरते हुए तृप्ति की मूर्खता का बखान किया और सड़क के बीचोंबीच खड़े होकर निम्नलिखित श्लोक कहे:

338. जैसे कोई वृक्ष, यदि उसे काट दिया जाए, तो भी यदि उसकी जड़ें मजबूत और दृढ़ हों तो वह फिर से उग आता है, उसी प्रकार, यदि लालसा की प्रवृत्ति को नष्ट न किया जाए, तो यह दुख इस संसार में बार-बार उत्पन्न होता है।

339. जो व्यक्ति सुख की ओर बहने वाली छत्तीस शक्तिशाली धाराओं के खीझ में है, ऐसा व्यक्ति, गुमराह होकर, कामवासना की लहरों में बह जाता है।

340. धाराएँ सभी दिशाओं में बहती हैं; लताएँ कलियाँ और शाखाएँ निकालती हैं; जब आप लता को बढ़ते हुए देखें, तो बुद्धिमानी से उसकी जड़ काट दें।

341. प्राणी के आनंद प्रवाहमय और चिकने होते हैं; मनुष्य स्वयं को सुख में समर्पित करते हैं और सुख की खोज करते हैं; इसलिए वे जन्म और मृत्यु के चक्र से गुजरते हैं।

342. लालसा से ग्रस्त होकर मनुष्य शिकार किए गए खरगोश की तरह इधर-उधर भागते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार और लंबे समय तक कष्ट भोगते हैं।

343. व्यथा से ग्रस्त होकर मनुष्य शिकार किए गए खरगोश की तरह इधर-उधर भटकते हैं। इसलिए भिक्षु को व्यथा का त्याग करना चाहिए और स्वयं कामवासना से मुक्ति की कामना करनी चाहिए।

उस जन्म के बाद, वह युवा सुअरनी सुवण्णभूमि में राजपरिवार में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह बनारस में पुनर्जन्म लेकर लौटी; फिर सुप्पारक बंदरगाह पर घोड़ों के व्यापारी के घर में, उसके बाद कावीरा बंदरगाह पर एक नाविक के घर में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह अनुराधापुरा में एक उच्च पदस्थ रईस के घर में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह दक्षिण देश के

भोक्कंत गाँव में सुमना नामक गृहस्थ की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी, और अपने पिता के नाम पर उसका नाम सुमना रखा गया।

जब यह गाँव अपने निवासियों द्वारा छोड़ दिया गया, तो उसके पिता दीघवापी राज्य चले गए और महामुनि गाँव में रहने लगे। किसी कार्य से यहाँ पहुँचकर राजा दुट्ठगामनी के मंत्री लकुंटक अतिंबरा ने उससे मुलाकात की, बड़े धूमधाम से उसका विवाह किया और उसे अपने साथ महापुण्ण गाँव में रहने के लिए ले गए। एक दिन पूज्य अनुला, जिनका निवास स्थान कोटिपब्बत का महा विहार था, भिक्षा माँगते हुए उसके घर के द्वार पर रुके और उसे देखकर भिक्षुओं से कहा, "पूज्यवरों, यह कितनी अद्‌भुत बात है कि एक युवा सुअरनी राजा के प्रधान मंत्री लकुंटक अतिंबरा की पत्नी बन गई!"

जब उसने उनके वचन सुने, तो उसे अपने पिछले जन्मों का ज्ञान प्राप्त हुआ और उसे पूर्व जन्मों को याद करने की शक्ति प्राप्त हुई। वह अत्यंत भावुक हो उठी और अपने पति की अनुमति लेकर बड़े धूमधाम से संसार त्याग कर पंचबालक भिक्षुणियों के संघ में दीक्षित हो गई। तिस्सा महा विहार में महासतिपट्टाना सूत्र का पाठ सुनने के बाद , उसे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ। बाद में, दमिलों के नाश होने के बाद, वह भोक्कंत गाँव लौट आई, जहाँ उसके माता-पिता रहते थे, और वहीं निवास करने लगी। कल्लक महा विहार में आसीविशोपमा सूत्र सुनने के बाद , उसने अर्हतत्व प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्त करने से एक दिन पहले, भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा पूछे जाने पर, उसने भिक्षुणियों के समुदाय को यह पूरी कहानी शुरू से अंत तक सुनाई; इसी प्रकार, भिक्षुओं के एकत्रित समुदाय के बीच, उन्होंने धम्मपद के पाठकर्ता और मंडलारामा निवासी पूज्य महा तिस्सा से जुड़कर, निम्नलिखित कथा सुनाई:

"पूर्वकाल में मैं मनुष्य रूप से गिरकर मुर्गी के रूप में पुनर्जन्म लिया। इस अवस्था में मेरा सिर एक बाज़ ने काट डाला। मेरा पुनर्जन्म राजगृह में हुआ, मैंने संसार त्याग दिया और एक भिक्षुणी बन गई, और प्रथम समाधि अवस्था में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म एक कोषाध्यक्ष के घर में हुआ। थोड़े ही समय में मैं उस अवस्था से गुजरकर एक युवा सूअर के रूप में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म सुवण्णभूमि में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म वाराणसी में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म सुप्पारक बंदरगाह में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म कावीरा बंदरगाह में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म अनुराधापुरा में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म भोक्कंत गाँव में हुआ। इस प्रकार जन्म लेकर, तेरह अवस्थाओं से गुज़रते हुए, चाहे अच्छा हो या बुरा, अपनी वर्तमान अवस्था में मैं असंतुष्ट हुई, संसार से संन्यास लिया, भिक्षुणी बनी और अर्हतत्व प्राप्त किया। तुम सब, अपनी मुक्ति के लिए लगन से प्रयास करो।" इन शब्दों से उन्होंने चारों प्रकार के शिष्यों को भावुक कर दिया; और ऐसा करने के बाद निर्वाण प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 338)

यथा अपि मूले अनुपद्दवे दाढे छिन्नो अपि रुक्खो पुन एव रुहति
एवं अपि तन्हानुसये अनुहते इदं दुक्खं पुनप्पुनं निब्बत्तति

यथा अपि : जब; मूल : जड़; अनुपद्दवे : अक्षुण्ण; दड्हे : (और) मजबूत; चिन्नो अपि : यद्यपि काट दिया गया हो; रुक्खो [रुक्खा]: वृक्ष; पुना एव : एक बार फिर; रूहति : उगता है; एवम् अपि : उसी तरह; तन्हानुसये : लालसा के छिपे हुए निशान; न ऊहते : जब पूरी तरह से उखाड़ा न गया हो; इदं दुःखं [दुक्खा]: यह पीड़ा; पुनप्पुनं [पुनप्पुना]: बार-बार; निब्बत्तति : बढ़ेगी

यदि किसी पेड़ को काट दिया जाए, तो भी यदि उसकी जड़ें मजबूत और अक्षुण्ण हों तो वह पुनः उग आएगा। इसी प्रकार, जब तक लालसा के अंश शेष रहते हैं, तब तक दुख बार-बार उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 339)

यस्सा छत्तीसति सोता मनापस्वना भूसा
दुद्दिथिं रागनिसिता संकप्पा वाहंति

यस्स : जिनमें; चत्तिंशती सोता : छत्तीस धाराएँ; मनपसवना : मन को आकर्षित करने वाली; भूसा : (लालसा) प्रबल होती हैं; दुद्दिट्ठि [दुद्दिट्ठि]: मूर्ख; रागनिस्सिता : कामुकता से मिश्रित; संकप्पा : विचार और भावनाएँ; वाहा : (अत्यंत) शक्तिशाली होती हैं; वहन्ति : (यह) उन्हें (नरक की ओर) ले जाता है।

यदि किसी व्यक्ति में छत्तीस धाराएँ सुखदायक विचारों की ओर प्रबल रूप से बहती हैं, तो वह भ्रष्ट विचारों वाला व्यक्ति लालसा की उन धाराओं में बह जाएगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 340)

सोता सावंति सबधि लता उब्भिज्ज तिथति जाताम्
तं लतं च दिस्व पन्याय मूलं छिन्दथ

सोता : (लालसा की) धाराएँ; सवन्ती : बहती हैं; सब्बधी : हर जगह; लता : लता; उब्भिज्ज : उग आई है; तिट्ठति : (और) ठहरती है; जातं [जात]: जो उग आई है; लता : (लालसा की) लता; दिस्वा : देखकर; पञ्ञाय : बुद्धि से; मूलं [मूल]: जड़; चिन्दथ : काट दिया गया

लालसा की धाराएँ हर जगह वस्तुओं की ओर बहती हैं। परिणामस्वरूप, एक लता उगती है और फलती-फूलती है। बुद्धिमान व्यक्ति जब इस लता को देखे, तो उसे बुद्धिमानी से इसकी जड़ काट देनी चाहिए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 341)

सरितानि सिनेहितानि सोमनस्सनि जंतुनो भवन्ति
ते सतासिता सुखेसिनो ते नारा वे जातिजरूपगा

सरितानि : वस्तुओं की ओर बहने वाला; सिनेहितानि : लालसा से लथपथ; सोमनस्सानि : सुख; जंतुनो [जंटुना]: लोग; भवन्ति : रखने वाले; ते : वे; सातसिता : सुख की तलाश करने वाले; सुखेषिनो [सुखेसिना]: सुख की खोज करने वाले; ते नारा : ऐसे व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; जातिजरूपगा : जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं

मनुष्यों में लालसा बहती धाराओं की तरह उत्पन्न होती है। यह सुख और इंद्रिय सुख की ओर बहती है। ऐसे लोग जो सुखों में लिप्त रहते हैं, वे जन्म और मृत्यु के चक्र में बार-बार फंसते रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 342)

तसिनाय पुरक्खता पजा बधितो ससो एव परिस्पप्पन्ति
संनोजनसंगसत्ता सिरया पुनप्पुनं दुक्खम उपेन्ति

tasiṇāya : लालसा से; purakkhatā : घिरे हुए; pajā : जनसमूह; bādhito [bādhita]: फँसे हुए; saso eva : खरगोश की तरह; parisappanti : काँपना; saññojanasaṅgasattā : बेड़ियों से जकड़े हुए; cirāya : लंबे समय तक; punappunaṃ [punappuna]: बार-बार; dukkham : कष्ट सहना; upenti : आना

लालसा से घिरे जनसमूह जाल में फंसे खरगोश की तरह कांपते हैं। दस बेड़ियों और सात संगों से जकड़े हुए पुरुष और स्त्रियां लंबे समय तक बार-बार पीड़ा भोगते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 343)

तसिनाय पुरक्खता पजा परिस्पप्पन्ति ससो इव बधितो
तस्मा तसीनं विनोदये भिक्खु आकांखि तसीनं विनोदये

तसिनाय : लालसा से; पुरक्खता : घिरा हुआ; पजा : जनसमूह; पेरिसप्पन्ति : कांपना; सासो इवा : खरगोश की तरह; बधितो [बधिता]: फँसा हुआ; तस्मा : इसलिए; अत्तनो [अत्तना]: स्वयं के प्रति, विनोदाय : दूर रहना चाहिए; भिक्खु : तपस्वी; आकांखी : इच्छा करना; तसीनां [तसीना]: लालसा

व्यथा से घिरे हुए मनुष्य जाल में फंसे खरगोश की तरह कांपते हैं। इसलिए, निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले भिक्षु को व्यथा का त्याग करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 338-343)

anupaddave daḷhe : इसकी तुलना एक पेड़ से की जा रही है। यदि पेड़ की छंटाई भी कर दी जाए, और उसकी जड़ें अक्षुण्ण और मजबूत हों, तो वह फिर से उग जाएगा।

पुनरेव रूहति : यदि जड़ें मजबूत और अक्षुण्ण हों, तो तना कट जाने पर भी वृक्ष फिर से अंकुरित हो जाएगा।

चत्तिं सती सोता : तृष्णा की छत्तीस धाराएँ। आंतरिक और बाह्य (आयतन) पर निर्भर अठारह आधार: चेतना की धारा में उत्पन्न होने वाली तृष्णा, जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल से संबंधित छह विषयों के प्रति होती है, उसे ही 'तृष्णा के अठारह आधार' कहा जाता है। छत्तीस धाराएँ: अर्थात्, वे अठारह आधार जो आंतरिक आयतनों , जैसे आँखें आदि, को अपने क्षेत्र में रखते हैं, और वे अठारह आधार जो बाह्य आयतनों , जैसे रूप आदि, को अपने क्षेत्र में रखते हैं। यहां, छत्तीस प्रकार की भोग-विलास तीन आयामों में विद्यमान है, अर्थात्, कामुकता की भोग-विलास, अस्तित्व की भोग-विलास, अस्तित्व के अंत की भोग-विलास, जिसके क्षेत्र में छह आंतरिक आयतन (अर्थात, $3 \times 6 = 18$) हैं, जैसे कि आंखें, कान, नाक, जीभ, शरीर, मन, और छह बाहरी आयतन (अर्थात, $3 \times 6 = 18$) हैं, जैसे कि रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, धर्म, इसे ($18 + 18$) छत्तीस धाराएँ कहा जाता है।

राग निस्सिता : वे विचार जो वासना और कामुकता के विचारों से मिश्रित होते हैं।

सवंती : लालसा की धाराएँ बह रही हैं। पूरे श्लोक में इसी विचार को आगे बढ़ाया गया है।

latā ubbhijja tiṭṭhati : कृपा की धाराओं से सींची गई एक लता उगती है, जो कृपा की लता है।

mūlaṃ paññāya chindatha : बुद्धिमानी से जड़ काट दो।

सरितानी : धारा की अवधारणा जारी है। सरितानी का अर्थ है वस्तुओं की ओर बहना।

सातसिता : वे लोग जो लालसा से ग्रस्त होते हैं। वे आनंददायक और सुखदायक अनुभवों में लिप्त रहते हैं।

बाधितो : फँसा हुआ; जाल में फँसा हुआ। खरगोश आम तौर पर डरपोक प्राणी होता है। फँसने पर उसका डर कहीं अधिक बढ़ जाता है।

संज्ञाजनसंग : दस बंधन (संयोजन) सात बंधन (संग) जनता को संसार से बांधते हैं ।

दस संयोजन , या दोष, इस प्रकार हैं:
स्थाई महत्व की राय पर कायम रहना (sakkāyadiṭṭhi),
(संशयपूर्ण) संदेह (vicikicchā)
उपदेशों और प्रथाओं से चिपके रहना (सीलब्बतपरमासा),
कामुक इच्छाओं के प्रति जुनून (कामराग),
दुर्भावना (व्यापाद)
सूक्ष्म भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति (रूपराग),
निराकार (लोक) के प्रति आसक्ति (अरूपराग),
आत्म-मूल्यांकन (मान),
आंदोलन (उद्धच्चं), और
अज्ञान (अविज्जा)।

ये दो प्रकार के होते हैं: (i) ऊपरी भाग से संबंधित और (ii) निचले भाग से संबंधित। इन्हें बंधन कहा जाता है क्योंकि ये प्राणियों को संसार में बांधे रखते हैं , इस अर्थ में कि ये बार-बार पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। पाँच प्रकार के बंधन, जिनमें से पहला है स्थायी सार तत्व का मत, आदि, निचले भाग से संबंधित कहलाते हैं, क्योंकि ये ग्यारह इंद्रिय लोकों में जन्म का कारण बनते हैं, जिन्हें निम्न (लोक) कहा जाता है। वहीं पाँच प्रकार के बंधन, जिनमें से पहला है सूक्ष्म पदार्थ के प्रति आसक्ति, आदि, ऊपरी भाग से संबंधित कहलाते हैं, क्योंकि ये सूक्ष्म पदार्थ और निराकार लोकों में जन्म का कारण बनते हैं, जिन्हें उच्च (लोक) कहा जाता है। प्राणियों को संसार से तब तक मुक्ति नहीं मिलती जब तक कि इन दो प्रकार के संसार के बंधनों को जड़ से उखाड़ न दिया जाए।

सात प्रकार के आसक्ति भाव (संगयो) हैं: तृष्णा, मनोभाव, आत्म-सम्मान, क्रोध, अज्ञान, दोष और दुराचार। कुछ लोग इन्हें सात अंतर्निहित स्वभाव (अनुसय) कहते हैं, अर्थात्, जुनून, घृणा, आत्म-सम्मान, मनोभाव, संशय, अस्तित्व के प्रति आसक्ति और अज्ञान। पाँच स्कंधों को सजीव, व्यक्ति आदि मानकर संस्कारों के प्रति आसक्ति की क्रिया या तो तृष्णा, मनोभाव आदि के गुण में होती है या जुनून, घृणा आदि के गुण में। अतः इन्हें आसक्ति कहा जाता है।

आकंखी विरागम : वह व्यक्ति जो निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने का इच्छुक हो।

पुनर्जन्म : यह कथा पुनर्जन्म की अनेक परतों से परिपूर्ण है। इनमें से कुछ पुनर्जन्म बुद्ध के समय के बाद भी हुए। कुछ मामलों में ये पुनर्जन्म श्रीलंका में घटित हुए। जीवन की उत्पत्ति और पुनर्जन्म की अवधारणाओं की विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। यहाँ एक दृष्टिकोण प्रस्तुत है:

पुनर्जन्म, जिसे बौद्ध धर्म में महज एक सिद्धांत नहीं बल्कि प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सकने वाला एक तथ्य माना जाता है, बौद्ध धर्म का एक मूलभूत सिद्धांत है, यद्यपि इसका लक्ष्य, निर्वाण, इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। बोधिसत्व आदर्श और उससे संबंधित पूर्णता प्राप्त करने की स्वतंत्रता का सिद्धांत इसी पुनर्जन्म के सिद्धांत पर आधारित है।

दस्तावेजों से पता चलता है कि पुनर्जन्म में इस विश्वास को शेली, टेनीसन और वड्र्सवर्थ की कई महान कविताओं में और पूर्व के साथ-साथ पश्चिम के कई आम लोगों के लेखन में भी आत्मा के स्थानांतरण या पुनर्जन्म के रूप में देखा जाता है।

बौद्ध धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धांत को अन्य प्रणालियों के पुनर्जन्म और आत्मा के स्थानांतरण के सिद्धांत से अलग किया जाना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म किसी देवता द्वारा निर्मित या परमात्मा (दिव्य सार) से उत्पन्न होने वाली, शरीर के स्थानांतरण करने वाली स्थायी आत्मा के अस्तित्व को नकारता है।

कर्म ही पुनर्जन्म का आधार है। भूतकाल के कर्म वर्तमान जन्म को निर्धारित करते हैं; और वर्तमान कर्म, भूतकाल के कर्मों के साथ मिलकर, भविष्य को निर्धारित करते हैं। वर्तमान, भूतकाल की संतान है, और बदले में, भविष्य का जनक बनता है।

वर्तमान की वास्तविकता को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह स्वतः सिद्ध है। अतीत की वास्तविकता स्मृति और सूचनाओं पर आधारित होती है, जबकि भविष्य की वास्तविकता दूरदर्शिता और अनुमान पर आधारित होती है।

यदि हम अतीत, वर्तमान और भविष्य के जीवन की परिकल्पना करते हैं, तो हमारे सामने तुरंत यह समस्या आती है कि जीवन का अंतिम स्रोत क्या है?

एक मत इस समस्या को सुलझाने के प्रयास में एक प्रथम कारण की परिकल्पना करता है, चाहे वह ब्रह्मांडीय शक्ति हो या सर्वशक्तिमान सत्ता। दूसरा मत प्रथम कारण को नकारता है, क्योंकि सामान्य अनुभव में, कारण ही परिणाम बनता है और परिणाम ही कारण बनता है। कारण और परिणाम के इस चक्र में प्रथम कारण की कल्पना करना असंभव है। पहले मत के अनुसार, जीवन का आरंभ हुआ है; दूसरे मत के अनुसार, इसका कोई आरंभ नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार, प्रथम कारण की अवधारणा ऐसी है जैसे किसी त्रिभुज को गोल कहना।

कोई यह तर्क दे सकता है कि जीवन की शुरुआत अनंत अतीत में हुई होगी और वह शुरुआत ही प्रथम कारण, यानी सृष्टिकर्ता है।

ऐसे में कोई कारण नहीं है कि कुछ लोग एक परिकल्पित निर्माता के बारे में भी यही मांग न करें।

इस कथित प्रथम कारण के संबंध में लोगों के विचार बहुत भिन्न-भिन्न रहे हैं। इस प्रथम कारण की व्याख्या करने में अनेक नामों का प्रयोग किया गया है।

हिंदू धर्म में जीवन की उत्पत्ति एक रहस्यमय परमात्मा से मानी जाती है , जिससे सभी आत्माएं उत्पन्न होती हैं और एक जन्म से दूसरे जन्म में विलीन होकर अंततः परमात्मा में समाहित हो जाती हैं। यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या इन समाहित आत्माओं का आगे भी कोई जन्म-मृत्यु चक्र होता है।

जैसा कि शोपेनहाउर कहते हैं, "जो कोई भी स्वयं को शून्य से उत्पन्न मानता है, उसे यह भी सोचना चाहिए कि वह फिर से शून्य हो जाएगा; क्योंकि यह सोचना कि उसके अस्तित्व में आने से पहले एक अनंत काल बीत चुका है, और फिर एक दूसरा अनंत काल शुरू हुआ है, जिसके माध्यम से उसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होगा, एक विकृत विचार है।"

"इसके अतिरिक्त, यदि जन्म ही परम आरंभ है, तो मृत्यु ही परम अंत होनी चाहिए; और यह धारणा कि मनुष्य का निर्माण शून्य से हुआ है, अनिवार्य रूप से इस धारणा की ओर ले जाती है कि मृत्यु ही उसका परम अंत है।" स्पेंसर लुईस तर्क देते हैं, "धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार, मनुष्य का सृजन मनमाने ढंग से और उसकी इच्छा के बिना हुआ है, और सृजन के क्षण में ही वह या तो धन्य होता है या दुर्भाग्यशाली, महान होता है या पतित, अपने शारीरिक सृजन की प्रक्रिया के पहले चरण से लेकर अपनी अंतिम सांस तक, उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं, आशाओं, महत्वाकांक्षाओं, संघर्षों या समर्पित प्रार्थनाओं की परवाह किए बिना। यही धर्मशास्त्रीय भाग्यवाद है।"

अपनी वृद्धावस्था की कविता "निराशा" में, लॉर्ड टेनीसन ने आस्तिक धर्मशास्त्र का जिक्र करते हुए कहा:

मैं शांति स्थापित करता हूँ और बुराई का सृजन करता हूँ।

उस असीम प्रेम को, जिसने हमारी इतनी अच्छी सेवा की है, मैं क्या कहूँ? बल्कि असीम क्रूरता, जिसने शाश्वत नरक का निर्माण किया। उसने हमें बनाया, हमारे बारे में पहले से ही जान लिया, हमारी बर्बादी पहले से ही तय कर दी, और वह अपने लोगों के साथ जो चाहे करता है।

हमारी उस निर्दयी माँ का मर जाना ही बेहतर है जिसने कभी हमारी कराहें नहीं सुनीं।

"यह सिद्धांत कि सभी मनुष्य पापी हैं और उनमें आदम का मूल पाप निहित है, न्याय, दया, प्रेम और सर्वशक्तिमान निष्पक्षता के लिए एक चुनौती है।" हक्सले ने कहा: "यदि हम यह मान लें कि किसी ने जानबूझकर इस अद्‌भुत ब्रह्मांड की रचना की है, तो मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह शब्दों के किसी भी बोधगम्य अर्थ में पूर्णतः परोपकारी और न्यायप्रिय नहीं है, बल्कि वह न तो पूरी तरह से द्वेषपूर्ण है और न ही अन्यायपूर्ण।"

आइंस्टीन के अनुसार: "यदि यह सत्ता सर्वशक्तिमान है, तो प्रत्येक घटना, जिसमें प्रत्येक मानवीय क्रिया, प्रत्येक मानवीय विचार और प्रत्येक मानवीय भावना और आकांक्षा शामिल है, उसी का कार्य है; ऐसे सर्वशक्तिमान के समक्ष मनुष्यों को उनके कर्मों और विचारों के लिए उत्तरदायी ठहराना कैसे संभव है?"

दंड और पुरस्कार देते समय, वह एक हद तक स्वयं पर ही न्याय कर रहे होते हैं। भला इसे उनके गुणों और धार्मिकता के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है?

चार्ल्स ब्रैडलॉ के अनुसार: "बुराई का अस्तित्व आस्तिक के लिए एक भयानक बाधा है। पीड़ा, दुख, अपराध, गरीबी शाश्वत अच्छाई के पैरोकार के सामने खड़ी हो जाती हैं और सर्व-कल्याणकारी, सर्व-ज्ञानी और सर्वशक्तिमान ईश्वर की उसकी घोषणा को अकाट्य शक्ति से चुनौती देती हैं।" मानव पीड़ा और सृष्टिकर्ता पर टिप्पणी करते हुए, प्रो. जेबीएस हाल्डेन लिखते हैं: "या तो मानव चरित्र को परिपूर्ण बनाने के लिए पीड़ा आवश्यक है, या ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है। पहला सिद्धांत इस तथ्य से गलत साबित होता है कि कुछ लोग जिन्होंने बहुत कम पीड़ा झेली है, लेकिन अपने वंश और शिक्षा में भाग्यशाली रहे हैं, उनका चरित्र बहुत अच्छा है। दूसरे सिद्धांत पर आपत्ति यह है कि केवल संपूर्ण ब्रह्मांड के संदर्भ में ही ईश्वर की परिकल्पना से भरे जाने योग्य कोई बौद्धिक अंतर है। और एक सृष्टिकर्ता संभवतः जो चाहे वह बना सकता है।"

प्राचीन काल के कट्टरपंथी लेखकों ने आधिकारिक रूप से यह घोषित किया था कि सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को अपने स्वरूप में बनाया है। कुछ आधुनिक विचारक इसके विपरीत कहते हैं कि मनुष्य ने अपने सृष्टिकर्ता को अपने स्वरूप में बनाया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ ईश्वर के प्रति मनुष्य की अवधारणा अधिकाधिक परिष्कृत होती जा रही है। वर्तमान में इस व्यक्तिगत सृष्टिकर्ता के स्थान पर एक निराकार ईश्वर को स्थापित करने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। वोल्टेयर कहते हैं कि सृष्टिकर्ता की अवधारणा मनुष्य की सबसे श्रेष्ठ रचना है।

हालांकि, ब्रह्मांड के भीतर या बाहर, ऐसे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्राणी की कल्पना करना असंभव है, जो हर अच्छी चीज का प्रतीक हो।

आधुनिक विज्ञान अपने सीमित व्यवस्थित ज्ञान के आधार पर इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, हम अपने माता-पिता द्वारा प्रदान किए गए शुक्राणु और अंडाणु कोशिकाओं के प्रत्यक्ष उत्पाद हैं। लेकिन विज्ञान मन के विकास के

संबंध में संतोषजनक व्याख्या नहीं दे पाता, जो मनुष्य के भौतिक शरीर की कार्यप्रणाली से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक " Omne vivum ex vivo " (जीवित से ही जीवन की उत्पत्ति) का दावा करते हुए यह मानते हैं कि मन और जीवन का विकास निर्जीव से हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो हम पूर्णतः माता-पिता से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार हमारा जीवन अनिवार्य रूप से हमारे माता-पिता के जीवन से पहले आता है, और यह सिलसिला चलता रहता है। इसी तरह एक जीवन दूसरे जीवन से पहले आता है, जब तक कि हम पहले प्रोटोप्लाज्म या कोलाइड तक नहीं पहुँच जाते। हालांकि, इस पहले प्रोटोप्लाज्म या कोलाइड की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिक अनभिज्ञता जताते हैं।

जीवन की उत्पत्ति के संबंध में बौद्ध धर्म का क्या दृष्टिकोण है? प्रारंभ में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि बुद्ध मानव जाति को व्याकुल करने वाले सभी नैतिक और दार्शनिक प्रश्नों का हल निकालने का प्रयास नहीं करते। न ही वे ऐसे अटकलों और सिद्धांतों पर विचार करते हैं जो न तो ज्ञानवर्धन करते हैं और न ही आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। न ही वे अपने अनुयायियों से अंधविश्वास की अपेक्षा करते हैं। उनका मुख्य ध्यान एक व्यावहारिक और विशिष्ट समस्या पर है - दुख और उसके विनाश की समस्या; अन्य सभी गौण मुद्दों को वे पूरी तरह से अनदेखा करते हैं।

"यह ऐसा है मानो किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर से घायल कर दिया गया हो, और उसके मित्र और रिश्तेदार किसी शल्यचिकित्सक को बुलाएँ, और फिर वह व्यक्ति कहे, 'मैं बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक वे मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, संसार सीमित है या अनंत...' वह व्यक्ति इन प्रश्नों का बुद्ध द्वारा स्पष्टीकरण किए जाने से पहले ही मर जाएगा।"

"यदि यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत है, तो क्या पवित्र जीवन का पालन किया जाएगा? उस स्थिति में—नहीं! यदि यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत नहीं है, तो क्या पवित्र जीवन का पालन किया जाएगा? उस स्थिति में भी—नहीं! परन्तु, चाहे यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत है या नहीं, जन्म है, वृद्धावस्था है, मृत्यु है, और इन सबका अंत इसी जीवन में मैं प्रकट करता हूँ।"

"मालंक्यपुत्त, मैंने यह प्रकट नहीं किया है कि संसार शाश्वत है या नहीं, संसार सीमित है या अनंत। मैंने इन्हें क्यों प्रकट नहीं किया? क्योंकि ये लाभप्रद नहीं हैं, पवित्रता के आधारों से संबंधित नहीं हैं, विरक्ति, वासनाहीनता, निश्चिंतता, शांति, सहज ज्ञान, आत्मज्ञान या निर्वाण के लिए सहायक नहीं हैं। इसलिए मैंने इन्हें प्रकट नहीं किया है।" बौद्ध धर्म के अनुसार, हम कर्म के आधार (कम्मयोनि) से जन्म लेते हैं। माता-पिता केवल हमें भौतिक आवरण प्रदान करते हैं। इसलिए अस्तित्व, अस्तित्व से पहले आता है। गर्भाधान के क्षण में, कर्म ही प्रारंभिक चेतना को अभिकृत करता है जो भ्रूण को जीवन प्रदान करती है। यह अदृश्य कर्मिक ऊर्जा, जो पिछले जन्म से उत्पन्न होती है, मानसिक घटनाओं और जीवन की घटनाओं को पहले से विद्यमान भौतिक घटनाओं में उत्पन्न करती है, जिससे मनुष्य का त्रित्व पूर्ण होता है।

जीवों की उत्पत्ति के विषय में बुद्ध कहते हैं: "जहाँ तीनों का संयोजन होता है, वहाँ जीवन का बीज बोया जाता है। यदि माता-पिता का मिलन हो, लेकिन माता की प्रजनन अवधि न हो, और गर्भस्थ प्राणी (गंधब्बा) उपस्थित न हो, तो जीवन का बीज बोया नहीं जाता। यदि माता-पिता का मिलन हो, और माता की प्रजनन अवधि हो, लेकिन गर्भस्थ प्राणी उपस्थित न हो, तो भी जीवन का बीज बोया नहीं जाता। यदि माता-पिता का मिलन हो, और माता की प्रजनन अवधि हो, और गर्भस्थ प्राणी उपस्थित हो, तो इन तीनों के संयोजन से जीवन का बीज बोया जाता है।"

यहां गंधब्बा (=गंतब्बा) का अर्थ 'देवों का एक वर्ग, जो गर्भाधान की प्रक्रिया का अधिष्ठाता माना जाता है' नहीं है, बल्कि यह उस विशेष गर्भ में जन्म लेने के लिए तैयार एक उपयुक्त प्राणी को संदर्भित करता है। इस शब्द का प्रयोग केवल इसी विशेष संदर्भ में किया गया है और इसे स्थायी आत्मा समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। किसी प्राणी के यहां जन्म लेने के लिए, कहीं न कहीं उसकी मृत्यु अवश्य होती है। किसी प्राणी का जन्म, जिसका सटीक अर्थ इस वर्तमान जीवन में स्कंधों (खंडानं पातुभावो) या मनो-शारीरिक घटनाओं का उदय है, पिछले जन्म में प्राणी की मृत्यु के अनुरूप है; ठीक वैसे ही जैसे, सामान्य शब्दों में, एक स्थान पर सूर्योदय का अर्थ दूसरे स्थान पर सूर्यास्त होता है। इस गूढ़ कथन को जीवन को एक सीधी रेखा के बजाय एक तरंग के रूप में कल्पना करके बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। जन्म और मृत्यु एक ही प्रक्रिया के दो चरण हैं। जन्म मृत्यु से पहले होता है, और मृत्यु जन्म से पहले होती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन-प्रवाह के संबंध में जन्म और मृत्यु का यह निरंतर क्रम ही तकनीकी रूप से संसार - आवर्ती भ्रमण - के रूप में जाना जाता है।

जीवन का अंतिम स्रोत क्या है? बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं: प्रत्यक्ष आरंभ के बिना यह संसार, जो अज्ञान और भोग-विलास से ग्रस्त होकर भटकने वाले प्राणियों का सर्वप्रथम बिंदु है, अनुभव नहीं किया जा सकता। यह जीवनधारा अनंत तक बहती रहती है, जब तक कि इसे अज्ञान और भोग-विलास के मैले जल से पोषित किया जाता है। जब ये दोनों पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं, तभी जीवनधारा का प्रवाह रुकता है, पुनर्जन्म समाप्त होता है, जैसा कि बुद्धों और अरहतों के मामले में होता है। इस जीवनधारा का प्रथम आरंभ निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसी कोई अवस्था नहीं देखी जा सकती जब यह जीवन शक्ति अज्ञान और भोग-विलास से मुक्त थी। यह समझना चाहिए कि बुद्ध ने यहाँ केवल जीवित प्राणियों की जीवनधारा के आरंभ का उल्लेख किया है।

पुनर्जन्म : परन्तु चारों मानसिक तत्व, अर्थात् चेतना और नाम (चेतना की इकाई) बनाने वाले तीन अन्य मानसिक कारक, पहले की तरह निरंतर उत्पन्न और लुप्त होते रहते हैं, परन्तु उसी परिवेश में नहीं, क्योंकि वह परिवेश अब विद्यमान नहीं है। उन्हें तुरंत एक नया भौतिक आधार खोजना पड़ता है, जिस पर वे कार्य कर सकें—एक नई भौतिक परत जो सभी तत्वों के सामंजस्य में कार्य करने के लिए उपयुक्त और अनुकूल हो। कर्म का नियम यही कार्य करता है, और तुरंत तत्वों का पुनर्व्यवस्थापन होता है, जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं। लेकिन यह समझना आवश्यक है कि बौद्ध मान्यता के अनुसार, आत्मा या किसी भी पदार्थ का एक शरीर से दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं होता। बौद्ध दर्शन के अनुसार, वास्तव में जो होता है वह यह है कि मरणासन्न व्यक्ति की अंतिम जावना या सक्रिय विचार प्रक्रिया कुछ ऐसी शक्तियों को मुक्त करती है जो उस क्रम में पाँच जावना विचार क्षणों की शुद्धता के अनुसार भिन्न होती हैं । (सामान्य सात जावना विचार क्षणों के बजाय पाँच)। इन शक्तियों को कर्म वेग या कर्मिक ऊर्जा कहा जाता है जो माता के गर्भ में माता-पिता द्वारा निर्मित भौतिक परत की ओर आकर्षित होती है। इस गर्भस्थ संरचना में मौजूद भौतिक समुच्चयों में ऐसे गुण होने चाहिए जो उस विशेष प्रकार की कर्मिक ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हों। माता-पिता द्वारा निर्मित विभिन्न प्रकार के भौतिक समुच्चयों का इस प्रकार का आकर्षण मृत्यु की क्रिया द्वारा होता है और मरणासन्न व्यक्ति को अनुकूल पुनर्जन्म प्रदान करता है। एक अशुभ विचार प्रतिकूल पुनर्जन्म देता है।

संक्षेप में, पाँच तत्वों के संयोजन को जन्म कहते हैं। इन तत्वों के एक समूह के रूप में विद्यमान होने को जीवन कहते हैं। इनके विलीन होने को मृत्यु कहते हैं। और इन तत्वों के पुनर्संयोजन को पुनर्जन्म कहते हैं। हालांकि, एक आम इंसान के लिए यह समझना आसान नहीं है कि ये तथाकथित तत्व कैसे पुनर्संयोजित होते हैं। इस संदर्भ में तत्वों की प्रकृति, मानसिक और कर्मिक ऊर्जाओं तथा ब्रह्मांडीय ऊर्जाओं के सहयोग को समझना महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों के लिए, यह सरल और स्वाभाविक घटना - मृत्यु - पाँच तत्वों का उन्हीं पाँच तत्वों में मिल जाना है और उसके बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। कुछ के लिए, इसका अर्थ आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरण है; और दूसरों के लिए, इसका अर्थ आत्मा का अनिश्चित काल तक रुका रहना है; दूसरे शब्दों में, न्याय के दिन की प्रतीक्षा करना। बौद्धों के लिए, मृत्यु इस क्षणिक घटना का अस्थायी अंत मात्र है। यह इस तथाकथित अस्तित्व का पूर्ण विनाश नहीं है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 344

(धम्मपद 338 से 343) <<<< पिछला || धम्मपद 344 || अगला >>>> (धम्मपद 345 और 346)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 344 - विभन्ताभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 344 - विभ्भन्ताभिक्खु वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo nibbanatho vanadhimutto
vanamutto vanameva dhavati
tam puggalametha passatha
मुत्तो बंधनमेव धवती.

श्लोक 344 : वह भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में लौट आता है।

एक पूर्व भिक्षु की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (344) का उच्चारण किया, जो पूज्य महाकस्सपा के शिष्य भिक्षु के संदर्भ में था।
आदरणीय महाकस्सपा के शिष्य के रूप में, इस भिक्षु ने चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ (झान) प्राप्त कर ली थीं। लेकिन एक दिन, जब वे अपने मामा के घर भिक्षा मांगने गए, तो उन्होंने एक स्त्री को देखा और उसके प्रति तीव्र इच्छा जागृत हुई। तब उन्होंने भिक्षु संघ छोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में वे असफल रहे क्योंकि उन्होंने परिश्रम नहीं किया। इसलिए, उनके मामा ने उन्हें घर से निकाल दिया, और बाद में वे कुछ चोरों के साथ मिल गए। उन सभी को अधिकारियों ने पकड़ लिया और मृत्युदंड देने के लिए श्मशान ले जाया गया। आदरणीय महाकस्सपा ने अपने शिष्य को बाहर ले जाते हुए देखा और उनसे कहा, "मेरे शिष्य, अपना मन एकाग्रचित्त ध्यान के विषय पर लगाओ।" निर्देशानुसार, उन्होंने एकाग्रचित्त होकर गहरी ध्यान अवस्था में लीन हो गए। श्मशान में, जब जल्लाद उन्हें मारने की तैयारी कर रहे थे, तब पूर्व भिक्षु अत्यंत शांत थे और उनमें भय या चिंता का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। जल्लाद और तमाशबीन उस व्यक्ति के साहस और संयम को देखकर अचंभित और अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने उसके बारे में राजा और बुद्ध को सूचना दी। राजा ने उस व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दिया। बुद्ध ने यह जानकर अपनी ज्योति भेजी और मानो स्वयं उस चोर के दर्शन किए।
तब बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 344 : वह भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में लौट आता है।

प्रवचन के अंत में, वह चोर जो निरंतर अपने मन को सभी तत्वों के उद्भव और विनाश पर केंद्रित रखे हुए था, उसने सभी बद्ध वस्तुओं के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप को भलीभांति जान लिया और शीघ्र ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया। बाद में, वह जेतवन मठ में बुद्ध के पास गया, जहाँ बुद्ध ने उसे पुनः संघ में प्रवेश दिया और उसने तुरंत अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक भिक्षु की कहानी जिसने अपने वस्त्र त्याग दिए
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक भिक्षु के संदर्भ में कहा था, जो पूज्य महाकस्सपा का शिष्य था।
आदरणीय महाकस्सपा के शिष्य के रूप में, इस भिक्षु ने चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ (झान) प्राप्त कर ली थीं। लेकिन एक दिन, जब वे अपने मामा के घर भिक्षा मांगने गए, तो उन्होंने एक स्त्री को देखा और उसके प्रति तीव्र इच्छा जागृत हुई। तब उन्होंने संघ छोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में वे असफल रहे क्योंकि उन्होंने परिश्रम नहीं किया। इसलिए, उनके मामा ने उन्हें घर से निकाल दिया, और बाद में वे कुछ चोरों के साथ मिल गए। उन सभी को अधिकारियों ने पकड़ लिया और मृत्युदंड देने के लिए श्मशान ले जाया गया। आदरणीय महाकस्सपा ने अपने शिष्य को बाहर ले जाते हुए देखा और उनसे कहा, “मेरे शिष्य, अपना मन एकाग्रचित्त ध्यान के विषय पर लगाओ।” निर्देशानुसार, उन्होंने एकाग्रचित्त होकर गहरी ध्यान अवस्था में लीन हो गए। श्मशान में, जब जल्लाद उन्हें मारने की तैयारी कर रहे थे, तब पूर्व भिक्षु अत्यंत शांत थे और उनमें भय या चिंता का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। जल्लाद और तमाशबीन उस व्यक्ति के साहस और संयम से चकित और अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने उसके बारे में राजा और बुद्ध को सूचना दी। राजा ने उस व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दिया। इस मामले के बारे में सुनकर बुद्ध ने अपनी ज्योति भेजी और साक्षात चोर के सामने प्रकट हुए, जिसके बाद उन्होंने यह श्लोक सुनाया।
प्रवचन के अंत में, वह चोर जो निरंतर अपने मन को सभी तत्वों के उद्भव और विनाश पर केंद्रित रखे हुए था, उसने सभी बद्ध वस्तुओं के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप को भलीभांति जान लिया और शीघ्र ही सोतापत्ति का फल प्राप्त कर लिया। बाद में, वह जेतवन मठ में बुद्ध के पास गया, जहाँ बुद्ध ने उसे पुनः संघ में प्रवेश दिया और उसने तुरंत अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 344)
यो निब्बानथो वनधिमुत्तो वनमुत्तो वनं एव धावति
तं मुत्तो बंधनं एव धावति तं पुग्गलं एव पषथ

यो : कोई व्यक्ति; निब्बानथो [निब्बानथा]: व्यथाओं से मुक्त; वनाधिमुत्तो [वनाधिमुत्त]: वनवासी सत्य साधक के जीवन में आनंद लेने वाला; वनामुत्तो [वनामुत्त]: व्यथाओं के वन से मुक्त; वनम एव : उसी वन की ओर; धावती : दौड़ता है; मुत्तो [मुत्त]: गृहस्थ के बंधनों से मुक्त; बंधनम एव : उसी बंधन की ओर; तं पुग्गलं [पुग्गल]: वह व्यक्ति; पसथ : देखो

भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर वह साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में वापस लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में वापस लौट आता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 344)

इस श्लोक में वन (वन) की छवि का प्रयोग अनेक अर्थों को व्यक्त करने के लिए किया गया है। सर्वप्रथम, व्यक्ति भोग-विलास के जंगल से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मुक्त होकर वह जंगल छोड़ देता है, जो वन आश्रम के एकांत का प्रतीक है। भोग-विलास के जंगल से मुक्त होने के बाद ऐसा व्यक्ति सांसारिक जीवन के जंगल में वापस लौट आता है। अंत में, वह एक बार फिर वन आश्रम के एकांत में लौट आता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 345,346

————————————————————————

(धम्मपद 344) <<<< पिछला || धम्मपद 345 और 346 || अगला >>>> (धम्मपद 347)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 345 और 346 - बंधननगर वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 345 और 346 - बंधननगर वत्थु

————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

न तं दल्हं बंधनमहु धीरा
yadayasam darujapabbajanca
सरत्तारत्ता मणिकुंडलेसु
puttesu daresu ca ya apekkha.
एतं दल्हं बंधनमहु धीरा
oharinam sithilam duppamuncam
etampi chetvana paribbajanti
अनापेक्खिनो कामसुखम पहाया।

————————————————————————

श्लोक 345 एवं 346: ज्ञानी लोग यह नहीं कहते कि लोहे, लकड़ी और भांग से बने बंधन मजबूत होते हैं; वे कहते हैं कि केवल रत्नों, आभूषणों, बच्चों और पत्नियों के प्रति आसक्ति और लगाव ही मजबूत बंधन हैं। ये बंधन व्यक्ति को निम्नतम स्तरों की ओर खींचते हैं और यद्यपि ये लचीले प्रतीत होते हैं, इन्हें तोड़ना कठिन होता है। ज्ञानी लोग इस (लालसा के) बंधन को तोड़कर और इंद्रिय सुखों का दृढ़तापूर्वक त्याग करके संसार का त्याग कर देते हैं।

————————————————————————

कारावास की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (345) और (346) का उच्चारण किया, जो कुछ चोरों के संदर्भ में था जिन्हें जंजीरों में रखा गया था।
एक दिन तीस भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी आए। भिक्षा मांगते समय उन्होंने कुछ कैदियों को हाथों और पैरों में जंजीरें बांधे बाहर लाते देखा। मठ लौटकर उन्होंने सुबह जो देखा था, वह सब बुद्ध को बताया और उनसे पूछा कि क्या इन बंधनों से भी अधिक मजबूत कोई बंधन है? बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं! ये बंधन भोजन, वस्त्र, धन और परिवार की लालसा के आगे कुछ भी नहीं हैं। लालसा इन जंजीरों, हथकड़ियों और पिंजरों से हज़ार गुना, बल्कि एक लाख गुना अधिक शक्तिशाली है। यही कारण है कि ज्ञानी भिक्षु लालसा का त्याग कर संसार को छोड़ देते हैं और भिक्षु संघ में प्रवेश करते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 345 एवं 346: ज्ञानी लोग यह नहीं कहते कि लोहे, लकड़ी और भांग से बने बंधन मजबूत होते हैं; वे कहते हैं कि केवल रत्नों, आभूषणों, बच्चों और पत्नियों के प्रति आसक्ति और लगाव ही मजबूत बंधन हैं। ये बंधन व्यक्ति को निम्नतम स्तरों की ओर खींचते हैं और यद्यपि ये लचीले प्रतीत होते हैं, इन्हें तोड़ना कठिन होता है। ज्ञानी लोग इस (लालसा के) बंधन को तोड़कर और इंद्रिय सुखों का दृढ़तापूर्वक त्याग करके संसार का त्याग कर देते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कारागार
कथा के अनुसार, एक समय की बात है, कोसल के राजा के सामने अपराधी, सेंधमार, लुटेरे और हत्यारे लाए गए। राजा ने उन्हें बेड़ियों, रस्सियों और जंजीरों से बांधने का आदेश दिया। तभी तीस भिक्षु बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा से आए और बुद्ध को प्रणाम करके विदा हुए। अगले दिन, जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने गए, तो वे कारागार के पास पहुँचे और उन अपराधियों को देखा। भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, वे संध्याकाल में बुद्ध के पास पहुँचे और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, आज जब हम भिक्षा मांगने गए थे, तो हमने कारागार में बहुत से अपराधियों को देखा। वे बेड़ियों, रस्सियों और जंजीरों से बंधे हुए थे और बहुत कष्ट भोग रहे थे। वे इन बेड़ियों को तोड़कर भाग नहीं सकते। क्या इन बंधनों से भी अधिक मजबूत कोई बंधन है?"
उनके प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, ये बंधन किस प्रकार के हैं? बुरी वासनाओं के बंधन पर विचार करो, उस बंधन पर विचार करो जिसे लालसा कहते हैं, धन, फसल, पुत्रों और पत्नियों के प्रति आसक्ति के बंधन पर विचार करो। यह बंधन उन सभी बंधनों से सौ गुना, बल्कि हज़ार गुना अधिक बलवान है जिन्हें तुमने देखा है। परन्तु इतना बलवान और तोड़ना इतना कठिन होते हुए भी, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने इसे तोड़ दिया और हिमालय देश जाकर संसार से संन्यास ले लिया।" ऐसा कहकर उन्होंने आगे कहा:
अतीत की कहानी: पति और पत्नी
बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का पुनर्जन्म एक गरीब गृहस्थ परिवार में हुआ। युवावस्था में उनके पिता का देहांत हो गया; इसलिए उन्होंने मजदूरी करके अपनी माता का भरण-पोषण किया। उनकी माता ने उनके विरोध के बावजूद, एक प्रतिष्ठित परिवार की पुत्री से उनका विवाह करवाया। कुछ समय बाद उनकी माता का देहांत हो गया। कुछ समय बाद उनकी पत्नी गर्भवती हुई।
पत्नी के गर्भ में होने की जानकारी न होने के कारण पति ने उससे कहा, "प्रिय पत्नी, तुम मजदूरी करके अपना जीवन यापन करो; मैं भिक्षु बनना चाहता हूँ।" इस पर पत्नी ने पति से कहा, "मेरे गर्भ में बच्चा है। मेरे जन्म का इंतज़ार करो और उसे देखो, फिर भिक्षु बन जाना।" पति ने कहा, "ठीक है," और ऐसा करने का वादा किया।
जब पत्नी ने बच्चे को जन्म दिया, तो पति ने उससे विदा लेते हुए कहा, "प्रिय पत्नी, तुमने अपने बच्चे को सुरक्षित जन्म दिया है; अब मैं भिक्षु बनूंगा।" लेकिन पत्नी ने उत्तर दिया, "बस थोड़ा इंतजार करो जब तक तुम्हारा बेटा माँ का दूध पीना छोड़ न दे।" पति के इंतजार करते-करते पत्नी दूसरे बच्चे की गर्भवती हो गई।
पति ने मन ही मन सोचा, "अगर मैं उसकी इच्छा पूरी करूँ तो कभी बच नहीं पाऊँगा; मैं भाग जाऊँगा और बिना उसे कुछ बताए साधु बन जाऊँगा।" इसलिए अपनी पत्नी को अपने इरादों के बारे में एक शब्द भी बताए बिना, वह रात में उठा और भाग गया। शहर के पहरेदारों ने उसे पकड़ लिया। लेकिन उसने उन्हें मना लिया और उनसे कहा, "गुरुजी, मुझे अपनी माँ का पालन-पोषण करना है; मुझे छोड़ दीजिए।"
कुछ समय तक एक स्थान पर रहने के बाद वे हिमालय चले गए और तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। अलौकिक शक्तियों और उच्चतर ज्ञान को प्राप्त करके वे वहाँ समाधि में लीन होकर अपना ध्यान लगाते रहे। वहाँ रहते हुए उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैंने इस बंधन को तोड़ दिया है, जो तोड़ना बहुत कठिन है, बुरी वासनाओं का बंधन, पुत्र और पत्नी के प्रति आसक्ति का बंधन।" ऐसा कहते हुए उन्होंने गंभीर स्वर में प्रार्थना की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 345)
अयासं दारुजं बब्बाजं यं च तं धीरा दढहं बंधनं
न अहु मणिकुंडलेसु शरत्तारत्ता पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा
āyasaṃ [āyasa]: लोहा; dārujaṃ [dāruja]: लकड़ी का; babbajañ ca : बबूल घास का; taṃ : ये सभी बंधन; dhīrā : बुद्धिमान; dalhaṃ bandhanamāhu : 'कठिन' के रूप में वर्णित नहीं करते; maṇikuṇḍalesu : रत्नजड़ित कान के आभूषणों के लिए; sārattarattā : दृढ़ता से आसक्त; puttesu : पुत्रों के लिए; dāresu : पत्नियों के लिए; yā apekkhā : यदि कोई इच्छा हो
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 346)
एतं धीरा दहं बंधनं आहु ओहरिणं सिथिलं दुप्पमुञ्चं
ओहारिनं एतं पि चेत्वाना अनापेक्खिनो कामसुखं पहाय परिब्बजंति
एतं : यह बंधन; धीरा : बुद्धिमान लोग; दल्हं बंधनम् आहु : एक मजबूत बंधन की घोषणा करना; ओहरिनं [ओहरिन]: नीचे खींचता है; भ्रष्ट करता है; सिथिलं [सिथिल]: ढीला; दुप्पमुंचं [दुप्पमुंच]: छुटकारा पाना आसान नहीं; एतं पि : यह बंधन भी; चेत्वाना : काट कर; अनापेक्खिनो [अनापेक्खिना]: कामुकता की लालसा के बिना; कामसुखं [कामसुख]: कामुक सुख; पहाय : त्याग कर; परिब्बजंति : मठवासी जीवन अपनाना
बुद्धिमान लोग इस बात से सहमत हैं कि यह एक मजबूत बंधन है। यह भ्रष्टता की ओर ले जाता है। यद्यपि यह बंधन ढीला प्रतीत होता है, फिर भी इससे मुक्त होना कठिन है। प्रक्रिया चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हो, इंद्रिय सुखों की लालसा से मुक्त होकर बुद्धिमान लोग गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं और तपस्वी बन जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 345-346)
ayasaṃ ; dārujaṃ ; babbajaṃ : ये सभी सामग्रियाँ हैं जिनसे बेड़ियाँ, बंधन बनाए जाते हैं — लोहा, लकड़ी और घास (रस्सियों के लिए)।
maṇikuṇḍalesu : रत्न जड़ित कान के आभूषण: गहने।
सारत्तरत्ता : गहराई से आसक्त।
ओहारिनं : पतन की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखने वाला, भ्रष्टता की ओर प्रवृत्त होने वाला।
sithilù� : ढीला; शिथिल। यदि कोई टाई ढीली है, तो वह समस्या कैसे हो सकती है? ढीली होने के बावजूद, यह गति को प्रतिबंधित करती है। इसकी प्रतिबंधात्मकता का पता तभी चलता है जब कोई भोजन की ओर बढ़ने का प्रयास करता है।
दुप्पामुंचं : जिसे खोलना मुश्किल हो।
अनापेक्खिनो कामसुखं : त्याग की ओर अग्रसर होने के लिए इंद्रिय सुखों की लालसा को त्यागना आवश्यक है।
कामसुखं : इंद्रियों के सुख।
आरंभ में बुद्ध ने अपने शिष्यों को दो अतिवादी रास्तों से बचने की चेतावनी दी। उनके शब्द थे: दो अतिवादी रास्ते (अंता) हैं जिनका सहारा संन्यासी (पब्बजितेन) को नहीं लेना चाहिए। विशेष रूप से अंत या चरम सीमा (अंता) और पब्बजित (संसार का त्याग करने वाला) शब्दों पर जोर दिया गया।
बुद्ध के स्वयं के शब्दों में, एक चरम अवस्था इंद्रिय सुखों के प्रति निरंतर आसक्ति (कामसुखल्लिकानुयोग) थी। बुद्ध ने इस चरम अवस्था को नीच, अश्लील, सांसारिक, घृणित और लाभहीन बताया।
इसका यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि बुद्ध अपने सभी अनुयायियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे भौतिक सुखों का त्याग करके इस जीवन का आनंद लिए बिना वनवास में चले जाएं। बुद्ध इतने संकीर्ण विचारक नहीं थे।
भ्रमित इंद्रियप्रिय व्यक्ति चाहे इसके बारे में कुछ भी सोचे, उदासीन विचारक के लिए इंद्रिय सुख का आनंद स्पष्ट रूप से क्षणभंगुर होता है, कभी पूर्णतः तृप्त नहीं करता और अप्रिय प्रतिक्रियाओं का परिणाम होता है। सांसारिक सुख के विषय में बुद्ध कहते हैं कि धन का संचय और संपत्ति का आनंद एक सामान्य व्यक्ति के लिए सुख का स्रोत है। परन्तु एक समझदार संन्यासी इन क्षणभंगुर सुखों की खोज में आनंद नहीं खोजेगा। सामान्य व्यक्ति को आश्चर्य होगा कि वह इनसे दूर रहेगा। जो पहले वाले के लिए सुख है, वही दूसरे वाले के लिए भय का कारण है, जिसके लिए केवल त्याग ही सुख है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 347

(धम्मपद 345 और 346) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 347 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 348)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 347 - खेमथेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 347 - खेमथेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Ye ragaratt'nupatanti sotam
sayamkatam makkatakova jalam
etampi chetvana vajanti dhira
अनापेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाया।

श्लोक 347 : कामवासना में लिप्त प्राणी, मकड़ी की तरह अपने ही जाले में वापस गिर जाते हैं। ज्ञानी पुरुष कामवासना के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं।

थेरी खेमा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने रानी खेमा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (347) कहा।
रानी खेमा राजा बिम्बिसारा की प्रधान रानी थीं। वह बेहद खूबसूरत और घमंडी भी थीं।
राजा चाहते थे कि वह वेलुवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करे। लेकिन उसने सुना था कि बुद्ध हमेशा सुंदरता की निंदा करते थे, इसलिए उसने बुद्ध से मिलने से बचने की कोशिश की।
राजा को बुद्ध के प्रति रानी के दृष्टिकोण का ज्ञान था; उन्हें यह भी पता था कि रानी को अपनी सुंदरता पर कितना गर्व था। इसलिए राजा ने अपने संगीतकारों को वेलुवाना मठ की प्रशंसा में गीत गाने का आदेश दिया, जिसमें उसके सुखद और शांत वातावरण आदि का वर्णन था। गीत सुनकर रानी खेमा को रुचि हुई और उन्होंने वेलुवाना मठ जाने का निश्चय किया।
जब रानी खेमा मठ पहुँचीं, तो बुद्ध एक सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। अपनी अलौकिक शक्ति से, बुद्ध ने एक अत्यंत सुंदर युवती को अपने पास प्रकट किया, जो उनके निकट बैठी उन्हें पंखा कर रही थी। जब रानी खेमा सभा-गृह में आईं, तो उन्होंने ही उस सुंदर युवती को देखा। युवती की असाधारण सुंदरता की तुलना अपनी सुंदरता से करते हुए, खेमा ने महसूस किया कि उनकी सुंदरता युवती की सुंदरता से कहीं कम है। जब उन्होंने फिर से युवती को ध्यान से देखा, तो उनकी सुंदरता धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। अंत में, उन्होंने अपनी आँखों के सामने एक वृद्ध, जीर्ण-शीर्ण शरीर देखा, जो फिर से एक शव में परिवर्तित हो गया, जिसका दुर्गंधयुक्त शरीर कीड़ों से भरा हुआ था। उसी क्षण, रानी खेमा ने सुंदरता की क्षणभंगुरता और निरर्थकता को महसूस किया।
बुद्ध ने रानी खेमा की मनःस्थिति को जानते हुए कहा, "हे खेमा! इस क्षय होते शरीर को ध्यान से देखो, जो हड्डियों के ढांचे पर बना है और रोग एवं क्षय के अधीन है। उस शरीर को ध्यान से देखो जिसे मूर्ख लोग इतना महत्व देते हैं। इस युवती की सुंदरता की निरर्थकता को देखो।" यह सुनकर रानी खेमा ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 347 : कामवासना में लिप्त प्राणी, मकड़ी की तरह अपने ही जाले में वापस गिर जाते हैं। ज्ञानी पुरुष कामवासना के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं।

प्रवचन के अंत में रानी खेमा ने अरहत पद प्राप्त किया और संघ में प्रवेश पाकर बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बन गईं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
थेरी खेमा की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने रानी खेमा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
रानी खेमा राजा बिम्बिसार की प्रधान रानी थीं। वह अत्यंत सुंदर और अभिमानी थीं। राजा चाहते थे कि वह वेलुवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करें। लेकिन उन्होंने सुना था कि बुद्ध सौंदर्य के बारे में हमेशा नकारात्मक बातें करते हैं, इसलिए वह बुद्ध से मिलने से बचती थीं। राजा उनकी बुद्ध के प्रति मनोवृत्ति को समझते थे; उन्हें यह भी पता था कि उन्हें अपने सौंदर्य पर कितना गर्व था। इसलिए राजा ने अपने संगीतकारों को वेलुवन मठ की प्रशंसा में गीत गाने का आदेश दिया, जिसमें उसके सुखद और शांत वातावरण आदि का वर्णन था। गीत सुनकर रानी खेमा को रुचि हुई और उन्होंने वेलुवन मठ जाने का निश्चय किया।
जब रानी खेमा मठ पहुँचीं, तो बुद्ध एक सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। अपनी अलौकिक शक्ति से, बुद्ध ने एक अत्यंत सुंदर युवती को अपने पास प्रकट किया, जो उनके निकट बैठी उन्हें पंखा कर रही थी। जब रानी खेमा सभा-गृह में आईं, तो उन्होंने ही उस सुंदर युवती को देखा। युवती की असाधारण सुंदरता की तुलना अपनी सुंदरता से करते हुए, खेमा ने महसूस किया कि उनकी सुंदरता युवती की सुंदरता से कहीं कम थी। जब उन्होंने दोबारा युवती को देखा, तो उनकी सुंदरता धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। अंत में, उन्होंने अपनी आँखों के सामने एक वृद्ध, जर्जर शरीर देखा, जो फिर से एक शव में परिवर्तित हो गया, जिसका दुर्गंधयुक्त शरीर कीड़ों से भरा हुआ था। उसी क्षण, रानी खेमा ने सुंदरता की क्षणभंगुरता और निरर्थकता को महसूस किया।
बुद्ध ने रानी खेमा के मन की स्थिति को जानते हुए कहा, "हे खेमा! इस क्षय होते शरीर को ध्यान से देखो, जो हड्डियों के ढांचे पर बना है और रोग एवं क्षय के अधीन है। उस शरीर को ध्यान से देखो जिसे मूर्ख लोग इतना महत्व देते हैं। इस युवती की सुंदरता की निरर्थकता को देखो।" यह सुनकर रानी खेमा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
प्रवचन के अंत में, रानी खेमा ने अरहत पद प्राप्त किया और संघ में प्रवेश पाकर बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बन गईं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 347)
रागरत्ता ये सयं कतं जालं मक्कटको इव सोतं पतन्ति धीरा
एतं अपि चेत्वाना अनापेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय वजन्ति
रागरत्ता : वासना की गर्मी में; ये : वे; सयं कतं [कत]: स्वयं द्वारा बनाया गया; जालं [जाल]: जाला; मक्कटक इव : मकड़ी के समान; सोतं [सोत]: (लालसा की) धारा में; पटन्ति : गिरना; धीरा : बुद्धिमान; एतं अपि: यहाँ तक कि; चेत्वाना : काटकर; अनापेक्खिनो [अनापेक्खिना]: (इंद्रिय सुखों के लिए) कोई लालसा नहीं; सब्बदुक्खं पहाय : सभी कष्टों पर विजय प्राप्त करके; वजंति : निर्वाण में प्रवेश करना
कामवासना में लिप्त प्राणी उसी लालसा की धारा में वापस गिर जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने बुने हुए जाले में गिर जाती है। ज्ञानी पुरुष लालसा के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 347)
makkaṭako va jālaṃ : मकड़ी के जाले की तरह, जो वह स्वयं बनाती है। मकड़ी अपने शिकार को पकड़ने के लिए जाले के विभिन्न धागों का अनुसरण करती है।
अनुपतन्ति सोतं : जो लोग वासना की गर्मी में होते हैं, वे भी अपने द्वारा निर्मित इंद्रिय सुखों की धाराओं का अनुसरण करते हैं और उन्हीं धाराओं में गिर जाते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 348

———————————————————————

(धम्मपद 347) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 348 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 349 और 350)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 348 - उग्गसेना वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 348 - उग्गसेना वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Muncapure1munca pacchato2
majjhe3munca bhavassa paragu4
सब्बत्था विमुत्तमनसो
na punam jatijaram upehisi.

श्लोक 348 : अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से पड़कर, समस्त (बद्धताओं) से मुक्त मन से, तुम फिर कभी जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।

1, 2, 3. शुद्ध, पच्छतो, मज्झे: संदर्भ भूतकाल, भविष्य और वर्तमान खंडा समुच्चय से लगाव को दर्शाता है।
4. भावस परागु: वह व्यक्ति जो दूसरे तट या अस्तित्व के अंत (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच चुका हो; एक अरहत।

उगासेना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (348) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने एक धनी व्यक्ति के पुत्र उगसेना का जिक्र किया, जिसे एक नर्तकी से प्यार हो गया था।
एक बार, पाँच सौ नर्तकों और कुछ कलाबाज़ों का एक घुमंतू नाट्य दल राजगृह आया और राजा बिम्बिसार के महल के मैदान में सात दिनों तक प्रदर्शन किया। वहाँ, एक कलाबाज़ की बेटी, एक युवा नर्तकी ने एक लंबे बाँस के खंभे पर गाते और नाचते हुए नृत्य किया। एक धनी व्यक्ति का युवा पुत्र, उगासेना, उस नर्तकी के प्रेम में बुरी तरह पड़ गया और उसके माता-पिता उसे उससे विवाह करने से नहीं रोक सके। उसने उस युवा नर्तकी से विवाह किया और दल के साथ चल पड़ा। चूंकि वह न तो नर्तक था और न ही कलाबाज़, इसलिए वह दल के लिए ज़्यादा उपयोगी नहीं था। इसलिए, जब दल एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था, तो उसे बक्से उठाने, गाड़ियाँ चलाने आदि में मदद करनी पड़ती थी।
कुछ समय बाद, उगासेना और उनकी पत्नी, जो एक नर्तकी थीं, के एक पुत्र का जन्म हुआ। नर्तकी अक्सर उस बच्चे को एक गीत सुनाती थीं, जो इस प्रकार था: "हे, उस व्यक्ति के पुत्र जो गाड़ियों की रखवाली करता है; उस व्यक्ति के पुत्र जो बक्से और गट्ठे ढोता है! हे, उस अज्ञानी के पुत्र जो कुछ नहीं कर सकता!" उगासेना ने गीत सुना; वह समझ गए कि उनकी पत्नी उन्हीं के बारे में कह रही हैं और उन्हें बहुत दुख हुआ और वे बहुत उदास हो गए। इसलिए वे अपने ससुर, जो एक कलाबाज थे, के पास गए और उनसे कलाबाजी सिखाने का अनुरोध किया। एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद, उगासेना एक कुशल कलाबाज बन गए।
फिर, उगासेना राजगृह लौट आए, और यह घोषणा की गई कि उगासेना सात दिनों के भीतर सार्वजनिक रूप से अपना कौशल प्रदर्शित करेंगे। सातवें दिन, एक लंबा खंभा खड़ा किया गया और उगासेना उस पर खड़े हो गए। नीचे से संकेत मिलते ही उन्होंने खंभे पर सात बार कलाबाज़ी की। लगभग इसी समय, बुद्ध ने अपने दर्शन में उगासेना को देखा और जान लिया कि उगासेना के अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए, वे राजगृह में प्रवेश कर गए और यह इच्छा व्यक्त की कि दर्शक उगासेना के कलाबाज़ी के लिए तालियाँ बजाने के बजाय उन पर ध्यान दें। जब उगासेना ने देखा कि उनकी उपेक्षा की जा रही है, तो वे खंभे पर बैठ गए, अत्यंत असंतुष्ट और निराश महसूस करते हुए। तब बुद्ध ने उगासेना को संबोधित करते हुए कहा, "उगासेना, एक बुद्धिमान व्यक्ति को सभी खण्डों से आसक्तियों का त्याग करना चाहिए और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 348 : अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से पड़कर, समस्त (बद्धताओं) से मुक्त मन से, तुम फिर कभी जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।

प्रवचन के अंत में, जो अभी भी खंभे के शीर्ष पर था, उगसेना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। वह नीचे उतरा और शीघ्र ही बुद्ध द्वारा संघ में शामिल कर लिया गया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उगासेना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उगसेना के संदर्भ में कहा था, जो एक धनी व्यक्ति का पुत्र था और एक नर्तकी से प्रेम कर बैठा था।
एक बार, पाँच सौ नर्तकों और कुछ कलाबाज़ों का एक घुमंतू नाट्य दल राजगृह आया और राजा बिम्बिसार के महल के मैदान में सात दिनों तक प्रदर्शन किया। वहाँ, एक कलाबाज़ की पुत्री, एक युवा नर्तकी, एक लंबे बाँस के खंभे पर गाती और नाचती थी। एक धनी व्यक्ति का युवा पुत्र, उगासेना, उस नर्तकी के प्रेम में बुरी तरह पड़ गया और उसके माता-पिता उसे उससे विवाह करने से नहीं रोक सके। उसने उस युवा नर्तकी से विवाह किया और दल के साथ चलने लगा। चूंकि वह न तो नर्तक था और न ही कलाबाज़, इसलिए वह दल के लिए ज़्यादा उपयोगी नहीं था। इसलिए, जब दल एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था, तो उसे बक्से ढोने, गाड़ियाँ चलाने आदि का काम करना पड़ता था।
कुछ समय बाद, उगासीना और उनकी पत्नी, जो एक नर्तकी थीं, के एक पुत्र का जन्म हुआ। नर्तकी अक्सर उस बच्चे को एक गीत सुनाती थीं, जिसके बोल कुछ इस प्रकार थे: "हे उस व्यक्ति के पुत्र जो गाड़ियों की रखवाली करता है; उस व्यक्ति के पुत्र जो बक्से और गट्ठे ढोता है! हे उस अज्ञानी के पुत्र जो कुछ नहीं कर सकता!" उगासीना ने गीत सुना; वह समझ गए कि उनकी पत्नी उन्हीं के बारे में कह रही हैं और उन्हें बहुत दुख हुआ और वे बहुत उदास हो गए। इसलिए वे अपने ससुर, जो एक कलाबाज थे, के पास गए और उनसे कलाबाजी सिखाने का अनुरोध किया। एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद, उगासीना एक कुशल कलाबाज बन गए।
फिर, उगासेन राजगृह लौट गए, और यह घोषणा की गई कि सात दिनों के भीतर उगासेन सार्वजनिक रूप से अपना कौशल प्रदर्शित करेंगे। सातवें दिन, एक लंबा खंभा खड़ा किया गया और उगासेन उस पर खड़े हो गए। नीचे से मिले संकेत पर उन्होंने खंभे पर सात बार कलाबाज़ी की। लगभग इसी समय, बुद्ध ने अपने दर्शन में उगासेन को देखा और जान लिया कि उगासेन के अरहतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए वे राजगृह में प्रवेश कर गए और यह इच्छा व्यक्त की कि दर्शक उगासेन की कलाबाज़ी की सराहना करने के बजाय उन पर ध्यान दें। जब उगासेन ने देखा कि उनकी उपेक्षा की जा रही है, तो वे खंभे पर बैठ गए, अत्यंत असंतुष्ट और निराश होकर। तब बुद्ध ने उगासेन को संबोधित करते हुए कहा, "उग्गसेन, एक बुद्धिमान व्यक्ति को सभी खण्डों से आसक्तियों का त्याग कर पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 348)
शुद्ध मुन्चा पच्चतो मुन्चा माज्जे मुन्चा भावसा परागु
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुना जातिजरं न उपेहिसि
शुद्ध : भूतकाल के शारीरिक रूपों की लालसा; मुंच : त्याग देना; स्वयं को मुक्त करना; पच्छतो [पच्छता]: भविष्य के शारीरिक रूपों की लालसा; मज्झे : वर्तमान शारीरिक रूपों की लालसा; भवस : अस्तित्व का; पारगू : आप अंत तक पहुँच गए हैं (आप दूसरे तट पर चले गए हैं); सब्त : हर जगह; हर चीज में; विमुत्तमनसो [विमुत्तमनस]: (आप) अनासक्त मन के हैं; पुन : फिर से; जातिजरं [जातिजर]: जन्म और मृत्यु के लिए; न उपेहिसि : आप नहीं आएंगे
अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से प्रवेश करके, समस्त बंधनों से मुक्त मन के साथ, तुम पुनः जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।
प्रवचन के अंत में, खंभे के शीर्ष पर स्थित उगसेना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। वे नीचे उतरे और शीघ्र ही बुद्ध द्वारा संघ में शामिल कर लिए गए।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 348)
भावस पारगू : अस्तित्व के अंत तक पहुँच जाना — भाव । भाव : बनना, अस्तित्व की प्रक्रिया, तीन स्तरों से मिलकर बनी है: इंद्रिय-संबंधी अस्तित्व (काम-भाव), सूक्ष्म-भौतिक अस्तित्व (रूपभाव), अभौतिक अस्तित्व (अरूपभाव)।
जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को दो पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है:
(1) कर्म-प्रक्रिया (कर्म-भाव), अर्थात् अस्तित्व का कर्मिक रूप से सक्रिय पक्ष, पुनर्जन्म का कारण है और इसमें शुभ और अशुभ स्वैच्छिक क्रियाएँ शामिल हैं।
(2) कर्म-जनित पुनर्जन्म या पुनर्जनन प्रक्रिया (उप्पतिभाव), यानी अस्तित्व का कर्मिक रूप से निष्क्रिय पक्ष जिसमें कर्म-जनित और इसलिए नैतिक रूप से तटस्थ मानसिक और शारीरिक अस्तित्व की घटनाओं का उदय और विकास शामिल है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 349,350

(धम्मपद 348) <<<< पिछला || धम्मपद 349 और 350 || अगला >>>> (धम्मपद 351 और 352)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 349 और 350 - कुलधनुग्गहा पंडिता वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 349 और 350 - कुलधनुग्गहा पंडिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vitakkamathitassa jantuno
tibbaragassa subbhanupassino
bhiyyo tanha pavaddhati
एसा खो दल्हं करोति बंधनम्।
Vitakkupasame ca yo rato
asubham bhavayate sada sato
esa kho byanti kahiti
esa cheechati marabandhanam.

श्लोक 349 : जो व्यक्ति कामुक विचारों से व्याकुल रहता है, जिसकी वासनाएँ प्रबल होती हैं, और जो वस्तुओं को सुखदायक समझता रहता है, उसकी लालसा और भी बढ़ती जाती है। निःसंदेह, वह अपने बंधन को और भी मजबूत कर लेता है।

श्लोक 350 : जो व्यक्ति (इंद्रिय) विचारों को शांत करने में आनंद लेता है, जो सदा सचेत रहता है, और (शरीर आदि की) अशुद्धता पर ध्यान करता है, वह निश्चय ही (इच्छा से) मुक्त हो जाएगा; यह व्यक्ति मार के बंधन को काट देगा।

कुशल धनुर्धर कुलधनुग्गहा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (349) और (350) का उच्चारण एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया, जो अपने पिछले जन्मों में से एक में एक कुशल धनुर्धर था।

एक बार एक युवा भिक्षु ने नगर में भिक्षुओं के लिए विशेष रूप से निर्मित एक आश्रम में भिक्षा ग्रहण की। भोजन के बाद उसे प्यास लगी। वह एक घर में गया और पानी माँगा। एक युवती उसे पानी देने के लिए बाहर आई। युवती ने उस युवा भिक्षु को देखते ही उससे प्रेम कर बैठी। उसे लुभाने के लिए उसने उसे प्यास लगने पर अपने घर आने का निमंत्रण दिया। कुछ समय बाद उसने उसे भिक्षा ग्रहण के लिए अपने घर बुलाया। उस दिन उसने बताया कि घर में उनकी हर इच्छा पूरी होती है, लेकिन घर के कामकाज संभालने के लिए कोई पुरुष नहीं है। ये सुनकर युवा भिक्षु को बात समझ आ गई और वह उस आकर्षक युवती के प्रति आसक्त होता चला गया। वह भिक्षु जीवन से बहुत असंतुष्ट हो गया और दुबला-पतला होता जा रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उसके बारे में बुद्ध को बताया।

बुद्ध ने उस युवा भिक्षु को अपने पास बुलाया और उससे कहा, "मेरे पुत्र, मेरी बात सुनो। यह युवती तुम्हारा विनाश करेगी, ठीक वैसे ही जैसे पिछले जन्म में हुई थी। पिछले जन्मों में तुम एक कुशल धनुर्धर थे और वह तुम्हारी पत्नी थी। एक बार जब तुम दोनों यात्रा कर रहे थे, तुम्हारा सामना लुटेरों के एक गिरोह से हुआ। उसे गिरोह के सरदार से प्रेम हो गया। जब तुम और सरदार आपस में लड़ रहे थे और तुमने उससे तलवार माँगी, तो उसने तलवार लुटेरे को दे दी, जिसने तुरंत तुम्हें मार डाला। इस प्रकार, वह तुम्हारी मृत्यु का कारण बनी। अब भी, यदि तुम उसके पीछे जाओगे और उसके लिए मेरे संघ को छोड़ दोगे, तो वह तुम्हारा विनाश करेगी।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 349 : जो व्यक्ति कामुक विचारों से व्याकुल रहता है, जिसकी वासनाएँ प्रबल होती हैं, और जो वस्तुओं को सुखदायक समझता रहता है, उसकी लालसा और भी बढ़ती जाती है। निःसंदेह, वह अपने बंधन को और भी मजबूत कर लेता है।

श्लोक 350 : जो व्यक्ति (इंद्रिय) विचारों को शांत करने में आनंद लेता है, जो सदा सचेत रहता है, और (शरीर आदि की) अशुद्धता पर ध्यान करता है, वह निश्चय ही (इच्छा से) मुक्त हो जाएगा; यह व्यक्ति मार के बंधन को काट देगा।

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
युवा बुद्धिमान तीरंदाज
कथा के अनुसार, एक बार एक युवा भिक्षु ने अपने हिस्से में आई टिकट ली, उससे टिकट का दलिया लिया और सभा भवन गया। वहाँ पानी न पाकर वह पानी लेने के उद्देश्य से एक घर में गया। वहाँ एक युवती ने उसे देखा और देखते ही उससे प्रेम करने लगी। युवती ने कहा, "हे पूज्यवर, यदि आपको फिर कभी पानी की आवश्यकता हो, तो कृपया यहीं आइए; कहीं और मत जाइए।"
उसके बाद, जब भी उसे पीने का पानी नहीं मिलता, वह उसके घर जाता और कहीं और नहीं जाता। वह उसका कटोरा लेकर उसे पानी पिलाती। समय बीतने के साथ, वह उसे चावल का दलिया भी देने लगी। एक दिन उसने वहीं उसके लिए आसन बनाया और उसे उबले हुए चावल दिए। उसके पास बैठकर उसने बातचीत शुरू की और कहा, "आदरणीय, इस घर में बहुत सन्नाटा है; यहाँ तो कोई यात्री भी नहीं आता।" कुछ दिनों तक उसकी बातें सुनकर युवा भिक्षु असंतुष्ट हो गया।
एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उसे देखा और पूछा, "भाई, तुम इतने पीले क्यों हो गए हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं असंतुष्ट हूँ।" इसलिए वे उसे उसके गुरु और गुरु के पास ले गए। उसके गुरु और गुरु उसे बुद्ध के पास ले गए और उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने पूछा, "भिक्षु, क्या यह सच है कि तुम असंतुष्ट हो?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "हाँ, सच है।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षु, मेरे जैसे शक्तिशाली बुद्ध के धर्म में संसार से संन्यास लेने के बाद, तुम अपने बारे में यह कहलवाने के बजाय कि तुमने धर्म परिवर्तन का फल या द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त कर लिया है, असंतुष्ट क्यों होने देते हो? तुम एक गंभीर पाप के दोषी हो।" आगे बढ़ते हुए, बुद्ध ने युवा भिक्षु से पूछा, "तुम असंतुष्ट क्यों हो?" उसने उत्तर दिया, "आदरणीय, एक स्त्री ने मुझसे यह-वह कहा।"
"भिक्षु, उसका ऐसा करना बिलकुल भी आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि पिछले जन्म में उसने भारत के सबसे बुद्धिमान पुरुष धनुग्गहा को त्याग दिया था और एक डाकू के प्रति आसक्ति में आकर अपने पति की हत्या कर दी थी।" भिक्षुओं ने बुद्ध से इस मामले को स्पष्ट करने का अनुरोध किया और उनके अनुरोध का पालन करते हुए उन्होंने निम्नलिखित बातें बताईं:
अतीत की कहानी: युवा बुद्धिमान तीरंदाज
पुराने समय में, युवा धनुर्धर (कुल्ला धनुग्घा) नामक एक ज्ञानी व्यक्ति रहते थे। उन्होंने तकासिला में एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से कला और शिल्पकला सीखी। उनके गुरु उनकी प्रगति से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया। युवा धनुर्धर अपनी पत्नी को लेकर बनारस के लिए निकल पड़े। जंगल के प्रवेश द्वार पर उन्होंने पचास तीरों से पचास डाकुओं को मार गिराया। जब उनके सारे तीर समाप्त हो गए, तो उन्होंने डाकुओं के सरदार को पकड़कर जमीन पर पटक दिया। "पत्नी, मेरी तलवार लाओ!" वे चिल्लाए। लेकिन जैसे ही उनकी पत्नी ने उस डाकू को देखा, उन्हें उस पर प्रेम हो गया और उन्होंने तलवार की मूठ डाकू के हाथ में थमा दी। डाकू ने तुरंत युवा धनुर्धर को मार डाला। फिर वह अपनी पत्नी को लेकर अपने रास्ते चला गया।
चलते-चलते उसने मन ही मन सोचा, "अगर इस स्त्री ने किसी और पुरुष को देख लिया तो वो मुझे भी वैसे ही मार डालेगी जैसे अपने पति को मारा था। ऐसी स्त्री का मुझे क्या उपयोग है?" एक नदी देखकर उसने स्त्री को किनारे पर ही छोड़ दिया, उसके गहने ले लिए और कहा, "तुम यहीं रहो, मैं तुम्हारे गहने नदी पार करा दूं।" और फिर वहीं छोड़कर चला गया। जब स्त्री को पता चला कि डाकू उसे छोड़कर चला गया है, तो उसने कहा, "ब्राह्मण, तुमने मेरे सारे गहने ले लिए और नदी पार कर दी। जल्दी लौट आओ; अब मुझे भी नदी पार करा दो।"
डाकू ने उत्तर दिया, "हे स्त्री, तुमने अपने उस पति को, जिसे तुम लंबे समय से जानती हो, मेरे लिए त्याग दिया है, एक ऐसे पति के लिए जिसे तुम जानती भी नहीं हो; तुमने अपने परखे-परखे पति को एक ऐसे पति के लिए त्याग दिया है जिसे तुमने आजमाया नहीं है। हे स्त्री, तुम मुझे किसी और पुरुष से बदल सकती हो। इसलिए मैं यहाँ से दूर चला जाऊँगा।"
उस स्त्री को लज्जित करने के लिए, सक्का अपने सारथी और संगीतकार के साथ नदी पर जाता है। सक्का सियार का रूप धारण करता है, सारथी मछली का और संगीतकार पक्षी का। सियार अपने मुँह में मांस का एक टुकड़ा लेकर स्त्री के सामने खड़ा हो जाता है। मछली पानी से बाहर उछलती है, और सियार मछली को पकड़ने के लिए आगे बढ़ता है, जिससे मांस का टुकड़ा गिर जाता है। पक्षी मांस के

टुकड़े को पकड़ लेता है और हवा में उड़ जाता है। मछली पानी में गायब हो जाती है। इस प्रकार सियार मछली और मांस दोनों खो देता है। स्त्री जोर से हंसती है।

[सियार कहता है:]

कैसिया की झाड़ियों में इतनी जोर से कौन हंस रहा है? यहाँ न तो नाच-गाना है, न ही ताली बजाना।

हे सुडौल नितंबों वाली, रोने का समय आ गया है। भला तुम क्यों हंस रही हो, सुंदरी?

[महिला जवाब देती है:]

हे मूर्ख, बेवकूफ सियार! तुझमें जरा भी बुद्धि नहीं है, सियार।

तुमने मछली और मांस दोनों खो दिए हैं; तुम एक कंगाल की तरह विलाप कर रहे हो।

[सियार कहता है:]

दूसरों की गलतियाँ आसानी से दिख जाती हैं, लेकिन अपनी गलतियाँ देखना मुश्किल होता है।

आपने पति और प्रेमी दोनों को खो दिया है। मुझे यकीन है कि आप भी शोक मना रही होंगी।

[महिला कहती है:]

तो जैसा आपने कहा, सियार, जानवरों का राजा है।

इसलिए मैं यहाँ से जाऊंगी और पति की इच्छा के आगे झुक जाऊंगी।

[सियार कहता है:]

जो मिट्टी का बर्तन चुराएगा, वह तांबे का बर्तन भी चुराएगा।

तुमने एक बार बुराई की है, और आगे भी करोगे।

जब बुद्ध ने पंचम निपात में वर्णित चुल्ला धनुग्गहार जातक का विस्तृत वर्णन किया, तो उन्होंने कहा, "उस समय तुम ज्ञानवान युवा धनुर्धर थे, वह स्त्री यह कन्या थी, और देवताओं का राजा जो सियार के रूप में आया और उसे लज्जित किया, वह मैं स्वयं था। इसी प्रकार इस स्त्री को एक डाकू से पहली ही नज़र में प्रेम हो गया और उसने भारत के सबसे ज्ञानी पुरुष का प्राण छीन लिया। हे भिक्षु, इस स्त्री के प्रति अपने भीतर उत्पन्न हुई इस इच्छा को जड़ से उखाड़ फेंको और नष्ट कर दो।" इस प्रकार भिक्षु को उपदेश देने के बाद, उन्होंने श्लोकों का पाठ करते हुए धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 349)

vitakkapamathitassa tibbarāgassa subhānupassino jantuno

भय्यो तन्हा पवधति , एसा खो बंधनं दढं करोति

विटक्कपामथित्स्सा : संदेह और आशंकाओं से प्रभावित लोग; तिब्बारागास्सा : तीव्र जुनून के साथ; सुभानुपासिनो [सुभानुपासिना]: कामुक सुखों को अच्छा मानना; जंतुनो [जंतुना]: उनमें; भिय्यो [भिय्या]: बहुत; पवदहति : बढ़ती है; ऐसा खो : यह; बंधनम् [बंधन]: बंधन की पकड़; दःहं करोति : मजबूत बनाता है

जिनके मन में व्याकुलता और संदेह व्याप्त होते हैं, जिनकी वासनाएँ और इंद्रियाँ तीव्र हो जाती हैं, उनमें लालसा और भी बढ़ती जाती है। इससे बंधन और भी मजबूत हो जाते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 350)

यो वितक्कुपासमे रतो च सदा सातो अशुभं भावयति

एसा खो व्यन्तिकाहिती एसा मरबन्धनं चेच्चति

यदि कोई व्यक्ति संशय और संदेह के निवारण में लगा रहता है , तो वह हमेशा सदृश रहता है । वह व्यक्ति व्यन्तिकाहिति तृप्ति का निवारण करेगा और मारबंधन के बंधनों को काट डालेगा ।

जो व्यक्ति मन में उठने वाले संदेहों और शंकाओं को निरंतर दूर करने में लगा रहता है, जो गंभीर और हमेशा सतर्क रहता है, वह वास्तविकता के संसार को सुखद नहीं मानता। वह लालसा का नाश करेगा और मृत्यु के बंधनों को तोड़ देगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 351,352

———————————————————————

(धम्मपद 349 और 350) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 351 और 352 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 353)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 351 और 352 - मारा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 351 और 352 - मारा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
नित्थांगतो असंतसी
vitatanho anangano
अच्चिंदी भावासल्लानी
antimoyam samussayo.
Vitatanho anadano
niruttipadakovido(1)
अक्खरनम सन्निपातम
जन्ना पब्बापरानी सीए
sa ve "antimasariro
महपन्नो महापुरिसो" ती वुकाति।

श्लोक 351 : जो अरहतत्व प्राप्त कर लेता है, वह भय से मुक्त, लालसा से मुक्त और नैतिक दोषों से मुक्त हो जाता है। उसने जीवन के कांटों (जैसे कामवासना) को काट डाला है। यही उसका अंतिम जन्म है।(2)

श्लोक 352 : जो लालसा और आसक्ति से मुक्त है, जो शब्दों के अर्थ के ज्ञान में निपुण है, जो अक्षरों के समूह और उनके क्रम को जानता है, वही वास्तव में "अपना अंतिम जीवन जी चुका व्यक्ति, महान ज्ञान का धनी व्यक्ति, महान व्यक्ति" कहलाता है।

---

1. निरुत्तीपादकोविदो: निरुत्तीपतिसंभिदा में कुशल अर्थात शब्दों के ज्ञान में कुशल।
2. शाब्दिक अर्थ, शरीर या पुनर्जन्म।

मारा (अर्थात शैतान/राक्षस) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (351) और (352) का उच्चारण किया, जो मारा के संदर्भ में था, जो गौतम बुद्ध के पुत्र समनेरा राहुल को डराने आया था।
एक बार जेतवन मठ में बड़ी संख्या में भिक्षु आए। अतिथि भिक्षुओं के ठहरने के लिए समनेरा राहुल को बुद्ध के कक्ष के ठीक बाहर, द्वार के पास जाकर सोना पड़ा। मारा, अपने पुत्र के माध्यम से बुद्ध को परेशान करने के इरादे से, हाथी का रूप धारण करके समनेरा के सिर को अपनी सूंड से घेरकर एक भयानक शोर मचाने लगा, ताकि उन्हें डरा सके। लेकिन राहुल टस से मस नहीं हुए। बुद्ध अपने कक्ष से सब कुछ जानते हुए बोले, "हे दुष्ट मारा! तुम्हारे जैसे हज़ार भी मेरे पुत्र को नहीं डरा सकते। मेरा पुत्र निर्भय है, वह व्यथा से मुक्त है, वह सजग है, वह बुद्धिमान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 351 : जिसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है, वह भय, लालसा और नैतिक दोषों से मुक्त है। उसने जीवन के कांटों (जैसे कामवासना) को काट डाला है। यही उसका अंतिम जन्म है।

श्लोक 352 : जो लालसा और आसक्ति से मुक्त है, जो शब्दों के अर्थ के ज्ञान में निपुण है, जो अक्षरों के समूह और उनके क्रम को जानता है, वही वास्तव में "अपना अंतिम जीवन जी चुका व्यक्ति, महान ज्ञान का धनी व्यक्ति, महान व्यक्ति" कहलाता है।

———————————————————————

उपरोक्त शब्द सुनकर, मारा को एहसास हुआ कि बुद्ध उसकी चालों से वाकिफ हैं और वह तुरंत गायब हो गया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा का राहुल को डराने का प्रयास व्यर्थ जाता है।
एक दिन अनेक पूज्य साधु असमय जेतवन मठ में प्रवेश कर गए और पूज्य राहुल के कक्ष में जाकर उन्हें जगा दिया। राहुल को सोने के लिए कोई और स्थान न देखकर वे बुद्ध के सुगंधित कक्ष के सामने लेट गए। यद्यपि वे मात्र आठ वर्ष के थे, फिर भी वे अर्हतत्व प्राप्त कर चुके थे। जब मारा वासवत्ती ने अपने स्वाभाविक रूप में उन्हें सुगंधित कक्ष के सामने लेटे हुए देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "भिक्षु गौतम का पुत्र सुगंधित कक्ष के बाहर लेटा है, मानो उसकी उंगली में दर्द हो रहा हो; स्वयं भिक्षु सुगंधित कक्ष के भीतर लेटे हैं, और यदि उनके पुत्र की उंगली को चुटकी लग जाए, तो उन्हें स्वयं भी चुभन महसूस होगी।" अतः मारा ने एक विशाल हाथी-राजा का रूप धारण किया और राहुल के पास आकर अपनी सूंड से उनके सिर को घेर लिया तथा ऊँची आवाज में बगुले की वाणी निकाली।
सुगंधित कक्ष में विश्राम करते हुए भी बुद्ध ने यह जान लिया कि यह मारा हैं, और कहा, "मारा, तुम्हारे जैसे एक लाख लोगों के होते हुए भी मेरे पुत्र को डराना असंभव है। मेरा पुत्र निर्भीक है, व्यथा रहित है, अपार शक्ति से परिपूर्ण है और महान ज्ञान से भरपूर है।"
351. जो पूर्णता प्राप्त कर चुका है, जो निर्भय है, जो व्यथा से मुक्त है, जो कामवासना से रहित है, जिसने अस्तित्व के तीरों को काट डाला है, ऐसा व्यक्ति अपने अस्तित्व की अंतिम अवस्था को प्राप्त कर चुका है। 352. जो व्यथा से मुक्त है, जो आसक्ति रहित है, जो प्राचीन बोली के शब्दों का अर्थ समझने में निपुण है, जो अक्षरों के क्रम को पहले से आखिरी तक जानता है, ऐसा व्यक्ति अपना अंतिम शरीर प्राप्त कर चुका है, ऐसा व्यक्ति महान ऋषि है, महान पुरुष है।
पाठ के समापन पर कई लोगों ने धर्म परिवर्तन का फल और द्वितीय एवं तृतीय मार्ग के फल प्राप्त किए। दुष्ट मारा ने मन ही मन कहा, "भिक्षु गौतम मुझे जानते हैं," और वहीं पर वह लुप्त हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 351)
निथंगतो असन्तसि वितानहो ओनंगानो
भवसल्लानि अच्चिन्दि अयं अन्तिमो समुस्सायो
निट्ठंगतो [निट्ठंगत]: जिसने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है; असंतसि : भय से मुक्त; विततण्हो [विततणह]: भोग से रहित; अनंगनो [अनंगन]: आसक्ति के दोषों से मुक्त; भवसल्लानि : अस्तित्व के कांटों से मुक्त; अच्चिंदि : टूट गया; अयं : यह; अंतिमोससयो [समुस्सया]: उसका अंतिम स्वरूप है
उन्होंने संन्यास का अंत कर लिया है। वे अपने संन्यासी जीवन के लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं। वे भय, लालसा और दोषरहित हैं। उन्होंने जीवन के काँटों को तोड़ दिया है। यही उनका अंतिम रूप है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 352)
वितातंहो अनादानो निरुत्तिपदाकोविदो अक्खरनं
सन्निपातं पुब्बापराणि च जनाना अन्तिमसारिरो
सा वे महापन्नो महा पुरिसो इति वुकाति
वीततङ्हो [वीततङ्हा]: लालसा का अंत; अनादानो [अनादान]: बिना किसी लोभ के; निरुत्तिपदाकोविदो [निरुत्तिपदाकोविदा]: व्युत्पत्ति और प्रयोगों में पारंगत; अक्खरानं [अक्खरान]: अक्षरों से अवगत; सन्निपातं [सन्निपता]: और उनके संयोजनों में प्रयोग; पुबबपराणि च : उनका क्रम—पहले क्या आता है और बाद में क्या; अंतिमसारीरो [अंतिमसारीरा]: जो अपने अंतिम जन्म में है; यो : वह व्यक्ति; महापञ्ञो [महापञ्ञा]: महान ज्ञानी; इति वच्चति : कहलाता है
वह लालसा से मुक्त है और लोभ से रहित है। वह शब्द-व्युत्पत्ति और भाषा-रचनाओं का भली-भांति ज्ञाता है। वह अक्षरों और उनके संयोजनों से भली-भांति परिचित है। वह अक्षरों के क्रम को जानता है। वह प्राचीन बोली को जानता है। यह उसका अंतिम शरीर है। वह व्यक्ति एक महान ज्ञानी पुरुष है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 351-352)
राहुल : इसी युग में राजकुमार सिद्धार्थ के पुत्र राहुल का जन्म हुआ। जब गौतम बुद्ध महा अरहतों के उत्तम समूह के साथ पहली बार कपिलवस्तु आए, तो उनकी माता यशोदरा, जो उस समय केवल सात वर्ष के थे, ने बुद्ध की ओर इशारा करते हुए नौ श्लोकों (नरसीह गाथा) का पाठ किया। इन श्लोकों का नाम नरसीह गाथा इसलिए पड़ा क्योंकि इनमें पुरुषों के राजा का सिर से पैर तक पूर्ण वर्णन था,

जबकि अंतिम श्लोक में बुद्ध को उनके शिष्यों के बीच तारों से भरे आकाश में चमकते चंद्रमा के समान चित्रित किया गया था। प्रत्येक बौद्ध बच्चे को इन श्लोकों को याद करना अनिवार्य था।

यशोदरा को उनके गुलाबी रंग के कारण बिम्बा देवी के नाम से भी जाना जाता था। दीक्षा के बाद, वे भद्दा कच्चाना के नाम से प्रसिद्ध हुईं। माता ने बालक से अपने पिता से अपनी विरासत मांगने का अनुरोध किया। जैसे ही उनकी मुलाकात हुई, युवा राहुल बुद्ध की ओर आकर्षित होकर बोले, "हे भगवान, आपकी छाया कितनी मधुर है!" अपनी विरासत के लिए व्याकुल राहुल बुद्ध के पीछे-पीछे मंदिर तक गए, जबकि बुद्ध मौन रहे। पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए, बुद्ध ने उनसे राहुल को दीक्षा देने का अनुरोध किया, क्योंकि सांसारिक धन केवल उनके सांसारिक अस्तित्व को ही बढ़ाएगा। इसके बजाय, दीक्षा के बाद उन्हें सात प्रकार के आर्य गुण प्राप्त होंगे। इनमें शामिल हैं: (i) श्रद्धा ; (ii) शील ; (iii) अपवित्रता के प्रति लज्जा; (हिरी), (iv) अस्वस्थता के प्रति डर (ओट्टप्पा), (v) प्रवचन सुनकर सीखना (सुट्टा), (vi) उदारता (कागो), और (vii) अंतर्दृष्टि (पन्ना)।

इसके बाद एक रोचक घटनाक्रम सामने आया। राजा सुद्धोदन को यह जानकर गहरा दुःख हुआ कि उनके पोते को दीक्षा दी गई है। वे तुरंत बुद्ध के पास गए और अपना सारा दुख उनके सामने प्रकट किया।

उनके विलाप में गहरा दुख था। “तुम्हें ढूँढ़ना मेरे लिए कितना कठिन था, पहले नंदा और अब राहुल, एक के बाद एक घर छोड़कर चले गए। इस दुःख ने मेरी हड्डियों तक को झकझोर दिया है। कृपया मुझे यह वरदान दीजिए कि अब से माता-पिता की सहमति के बिना किसी भी कम उम्र के बच्चे को दीक्षा न दी जाए।” बुद्ध ने सहर्ष यह वरदान दे दिया।

आम सहमति से, राहुल उपदेशों का कड़ाई से पालन करते थे। वे एक प्रशंसनीय शिष्य भी थे। प्रतिदिन सुबह उनकी यह प्रथा थी कि वे मुट्ठी भर रेत उछालते और कामना करते कि उन्हें उन रेत के कणों के समान पर्याप्त उपदेश प्राप्त हो। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया कि उन्हें मजाक में भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। इस उपदेश को अंबलत्थिका राहुलवाद सूत्र कहा जाता है । बुद्ध ने झूठे व्यक्ति की तुलना खाली पात्र से की। एक बार भिक्षा मांगने के दौरान, अठारह वर्ष के राहुल बुद्ध के साथ थे और जल्द ही स्वयं की तुलना बुद्ध से करने लगे और उनकी समानता से मोहित हो गए। भगवान बुद्ध ने तुरंत महा राहुलवाद सूत्र का उपदेश देकर उन्हें रोका । यहाँ 'वाद' का अर्थ है सलाह। एक मार्मिक कहानी है कि राहुल ने बुद्ध के शौचालय में जगह की कमी के कारण पूरी रात बिताई। ऐसा भगवान बुद्ध द्वारा एक नियम घोषित किए जाने के कारण हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि आम लोगों को धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए मंदिर में कई दिनों तक रुकने की आदत थी। इसके अलावा, कुछ लोग दूर-दूर से आते थे। इनमें से अधिकांश लोग सोते समय अनेक घृणित हरकतें करते थे। भिक्षुओं का उनके बीच सोना उचित नहीं था। यह दिलचस्प है कि बुद्ध द्वारा शौचालय के द्वार पर दस्तक देने पर, राहुल ने केवल अर्थहीन "मैं हूँ" कहने के बजाय "मैं राहुल हूँ" कहा।

बुद्ध ने तुरंत सारिपुत्त के नेतृत्व में भिक्षुओं को बुलाया और उनसे घटना का वर्णन करने को कहा।

तब बुद्ध ने नियम में ढील दी और इसे तीसरे दिन के बाद ही लागू किया। यही भिक्षुओं के बीच चर्चा का मुख्य विषय बन गया। बुद्ध के पुत्र पूज्य राहुल अत्यंत विनम्र और सरल स्वभाव के थे, जबकि वे इससे कहीं अधिक सरल स्वभाव के हो सकते थे। यह सुनकर बुद्ध ने अतीत की एक छोटी सी कहानी, तिपालत्थमिगा जातक, सुनाई, जिससे यह पता चलता है कि राहुल का स्वभाव सुदूर अतीत में भी ऐसा ही था।

“एक समय की बात है, वाराणसी में मगध राज करता था और बोधिसत्व हिरणों के झुंड का सरदार था। सरदार का एक छोटा भतीजा था और उसकी माता के अनुरोध पर उसने उसे शत्रुओं को मात देने की कला सिखाने का बीड़ा उठाया। एक दिन, वह छोटा हिरण फंस गया। उसने बेहोश होने का नाटक किया और मरने का ढोंग किया। उसका पेट फूल गया और उसने अपनी सांसों को इस कदर नियंत्रित किया कि कौवे और मक्खियाँ भी उसके शरीर के चारों ओर मंडराने लगीं। शिकारी ने हिरण को मरा हुआ समझकर वहीं पर खाने के लिए छोड़ दिया। आग जलाई गई। वह छोटा हिरण तुरंत उठा और भाग गया।”

थेरागाथा में राहुल द्वारा कहे गए चार श्लोक हैं। बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि उनके महान अरहतों में, पूज्य राहुल धर्म के नियमों का पालन करने में सर्वोपरि थे।

राहुल धर्म के पालन में सर्वोपरि एक महान अर्हत थे। उनके जीवन का विवरण लगभग महा अर्हत रट्ठपाल के जीवन से मिलता-जुलता है। धनी परिवारों में जन्मे और यद्यपि उनके पिछले जन्मों के बारे में बहुत कम जानकारी है, फिर भी सुमेध की तरह वयस्क होने पर उन्होंने अपना धन त्याग दिया। दोनों ने ही धन संचय को मूर्खता समझा। उन्होंने गरीबों में धन बाँटकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। इसी समय दो ऋषि, जिनमें आध्यात्मिक शक्ति थी, आए। एक नाग राज्य से, जिसके राजा का नाम पथविन्दर था, और दूसरा तावतिंस (तैंतीस देवताओं के स्वर्गलोक) से आया। दोनों ऋषियों के एक-एक शिष्य थे। इन ऋषियों ने न केवल अपना आशीर्वाद दिया, बल्कि अपने-अपने निवास स्थानों के गुणों का भी बखान किया। मृत्यु के बाद, प्रत्येक ऋषि का जन्म उसी क्षेत्र में हुआ जहाँ से वे आए थे। अत: एक का जन्म पथविन्दरा में नागों के राजा के रूप में हुआ और दूसरे का जन्म स्वर्गलोक में सक्का के रूप में हुआ।

पथविन्दरा और साक्का ने पृथ्वी पर एक साथ जन्म लेने का निर्णय लिया, क्योंकि पृथ्वी पर एक बुद्ध प्रकट हो रहे थे, और वे दोनों राहुल और रट्ठपाल थे।

(धम्मपद 351 और 352) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 353 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 354)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 353 - उपकजीवक वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 353 - उपकजीवक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

सब्बभिभु सब्बविदुहमस्मी
sabbesu dhammesu anupalitto
सब्बंजहो तंहक्खये विमुत्तो
सयं अभिनयाय कमुद्दीसेयम्।

श्लोक 353 : मैंने सब पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब जानता हूँ, मैं सब से विरक्त हूँ, मैंने सब त्याग दिया है; मैं नैतिक दोषों से मुक्त हो गया हूँ, मैंने व्यथा का नाश कर लिया है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

उपका की कहानी

बुद्ध ने इस पुस्तक का श्लोक (353) उपक नामक एक गैर-बौद्ध तपस्वी के प्रश्न के उत्तर में कहा, जब बुद्ध मिगदया उद्यान (मिगदया) जा रहे थे, जहाँ पंच भिक्षुओं का समूह (पंच वग्गी) ठहरे हुए थे। बुद्ध वहाँ पंच वग्गियों, अपने पुराने साथियों, कोंडन्ना, भद्दिया, वप्पा, असजी और महानामा को धम्म चक्कप्पवत्तना सूत्र का उपदेश देने जा रहे थे। जब उपक ने गौतम बुद्ध को देखा, तो वे बुद्ध के तेजस्वी मुखमंडल से अत्यंत प्रभावित हुए और उनसे कहा, "मित्र, आप इतने शांत और पवित्र प्रतीत होते हैं; क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके गुरु कौन हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि उनका कोई गुरु नहीं है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 353 : मैंने सब पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब जानता हूँ, मैं सब से विरक्त हूँ, मैंने सब त्याग दिया है; मैं नैतिक दोषों से मुक्त हो गया हूँ, मैंने व्यथा का नाश कर लिया है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

प्रवचन के अंत में उपका ने न तो सहमति व्यक्त की और न ही असहमति, बल्कि केवल कुछ बार सिर हिलाया और अपने रास्ते चले गए।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उपका की कहानी
बुद्ध ने यह श्लोक उपक नामक एक गैर-बौद्ध तपस्वी के प्रश्न के उत्तर में कहा था, जब वे मिगदया (हिरण उद्यान) जा रहे थे, जहाँ पाँच भिक्षु (पंच वग्गी) ठहरे हुए थे। बुद्ध वहाँ अपने पुराने साथियों, कोंडन्ना, भद्दिया, वप्पा, असजी और महानामा को धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र का उपदेश देने जा रहे थे। उपक ने जब बुद्ध को देखा, तो वे उनके तेजस्वी चेहरे से बहुत प्रभावित हुए और उनसे कहा, “मित्र, आप कितने शांत और पवित्र दिखते हैं; क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके गुरु कौन हैं?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि उनका कोई गुरु नहीं है। प्रवचन के अंत में, उपका ने न तो सहमति व्यक्त की और न ही असहमति, बल्कि बस कुछ बार सिर हिलाया और अपने रास्ते चले गए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 353)
अहं सब्बाभिभू अस्मि सब्बविदु सब्बेसु धम्मेसु अनुपालितो
सब्बन जहो तनहक्खये विमुत्तो सयांः अभिनयाय काम उदिसेयं
अहं : मैं हूं; सब्बाभिभू : जिसने (अस्तित्व के) तीनों स्तरों के सभी धम्मों पर विजय पा ली है; अस्मि : मैं हूं; सब्बविदु : सर्वज्ञ; सब्बेसु धम्मेसु : सभी मामलों में; ना उपालिट्टो [उपालिट्टा]: संलग्न नहीं; सब्बान जाहो [सब्बान जाहा]: सब कुछ छोड़ दिया; तनहक्खये : तृष्णाहीनता की स्थिति में (निर्वाण); विमुत्तो [विमुत्त]: मैंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है; सयं [सया]: अपने आप से; अभिनयाय : बिल्कुल अच्छी तरह से जानना; कम : किसको; uddiseyyaṃ [uddiseyya]: क्या मैं अपने शिक्षक को बुला सकता हूँ
मैंने सब कुछ जीत लिया है, मैं सब कुछ जानता हूँ, मैं सब कुछ से विरक्त हूँ, मैंने सब कुछ त्याग दिया है; मैंने व्यथा को मिटाकर नैतिक दोषों से मुक्ति पा ली है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 353)
सब्बाभिभू : बुद्ध ने स्वयं को सब्बाभिभू बताया । इस अभिव्यक्ति का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने तीनों लोकों के सभी धम्मों पर विजय प्राप्त कर ली हो।
सब्बा-विदु : चेतना के चार स्तरों के सभी धम्मों को समझ लिया गया है। चार स्तर हैं: काम लोक (कामुकता का क्षेत्र), रूप लोक (ललित सामग्री क्षेत्र), अरूप लोक (निराकार क्षेत्र) और लोकुत्तारा (विश्व-पारगमन क्षेत्र)।
सब्बेसु धम्मेसु अनुपालित्टो : तीनों लोकों के समस्त धर्मों के संबंध में लालसाओं और गलत विचारों से अछूता।
सब्बांजहो : तीनों लोकों के सभी धर्मों का त्याग करके।
taṇhakkhaye vimutto : सभी इच्छाओं से परे जाकर मुक्त होना।
sayaṃ abhiññāya : मैंने स्वयं ही उच्च ज्ञान को प्राप्त कर लिया है।
इन सब बातों को कहने के बाद, बुद्ध पूछते हैं, "यदि मैंने ये सब कुछ पूरी तरह से स्वयं के प्रयासों से प्राप्त किया है, तो मैं किसे अपना गुरु (काम उद्दिसेय्यं) कहूँ?" इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई नहीं है जिसे उनका गुरु कहा जा सके।
चूंकि बुद्ध का कोई गुरु नहीं था, बल्कि उन्होंने स्वयं ही ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिए उन्हें शुरू में इस बात पर संदेह था कि क्या अन्य लोग उनके ज्ञान को समझ पाएंगे। यह बात निम्नलिखित में निहित है:
यह वह चीज है जिसे मैंने अनेक परिश्रमों के बाद प्राप्त किया है।
बस, मुझे इसे क्यों बताना चाहिए?
वासना और घृणा से ग्रस्त लोगों द्वारा,
इस सच्चाई को समझा नहीं जा सकेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 354

—————————————————————————

(धम्मपद 353) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 354 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 355)

—————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 354 - सक्कपन्हा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 354 - सक्कपन्हा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
सब्बदानम धम्मदानम जिनति
sabbarasam dhammaraso jinati
sabbaratim dhammarati jinati
तंहक्खायो सब्बादुक्खं जिनाति।

श्लोक 354 : धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों (संसार दुःख) पर विजय प्राप्त कराता है।

सक्का (शक्र या इंद्र, देवदूतों के राजा) द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (354) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का द्वारा उठाए गए चार प्रश्नों के संदर्भ में था।
एक बार तावतिंसा लोक में देवों (देवदूतों) की एक सभा में चार प्रश्न उठे, लेकिन देव (देवदूत) उनके सही उत्तर नहीं दे पाए। अंततः, सक्का इन देव (देवदूतों) को जेतवन मठ में बुद्ध के पास ले गए। उनकी कठिनाई समझाने के बाद, सक्का ने निम्नलिखित चार प्रश्न प्रस्तुत किए:

(क) उपहारों में से सर्वश्रेष्ठ उपहार कौन सा है?
(ख) स्वादों में से सबसे अच्छा कौन सा है?
(ग) आनंदों में से सर्वश्रेष्ठ कौन सा है?
(घ) लालसा का उन्मूलन सबसे उत्तम क्यों कहा जाता है?

इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे सक्का, धम्म सभी उपहारों में श्रेष्ठ है, सभी स्वादों में सर्वश्रेष्ठ है और सभी आनंदों में सर्वश्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण ही अर्हतत्व की प्राप्ति की ओर ले जाता है और अतः यह सभी विजयों में सबसे महान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 354 : धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों (संसार दुःख) पर विजय प्राप्त कराता है।

प्रवचन के अंत में, सक्का ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यदि धर्म का दान सभी दानों से श्रेष्ठ है, तो धर्म के दान करते समय हमें पुण्य का हिस्सा क्यों नहीं दिया जाता? हे पूज्यवर! मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब से हमें अच्छे कर्मों के पुण्य में हिस्सा दिया जाए।" तब बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एकत्रित होने के लिए कहा और उन्हें अपने सभी अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँटने का उपदेश दिया।
तब से यह एक प्रथा बन गई है कि जब भी कोई अच्छा कर्म किया जाता है, तो इकत्तीस लोकों (भूमियों) के सभी प्राणियों को आमंत्रित किया जाता है ताकि वे पुण्य साझा कर सकें।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सक्का द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवों के राजा सक्का द्वारा पूछे गए चार प्रश्नों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार तावतिंस लोक में देवताओं की एक सभा में चार प्रश्न उठाए गए, लेकिन देवता उनके सही उत्तर नहीं दे पाए। अंततः, सक्का इन देवताओं को जेतवन मठ में बुद्ध के पास ले गए।
अपनी समस्या समझाने के बाद, सक्का ने निम्नलिखित चार प्रश्न प्रस्तुत किए:
उपहारों में से सबसे अच्छा कौन सा है?

स्वादों में सबसे अच्छा कौन सा है?
इन सब आनंदों में से सर्वश्रेष्ठ कौन सा है?
लालसा का उन्मूलन सबसे उत्तम क्यों कहा जाता है?
इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे सक्का, धम्म सभी उपहारों में श्रेष्ठ है, सभी स्वादों में सर्वश्रेष्ठ है और सभी आनंदों में सर्वश्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण अर्हतत्व की प्राप्ति की ओर ले जाता है और इसलिए यह सभी विजयों में सबसे महान है।"
प्रवचन के अंत में, सक्का ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यदि धर्म का दान सभी दानों से श्रेष्ठ है, तो धर्म के दान करते समय हमें पुण्य का हिस्सा क्यों नहीं दिया जाता? मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब से हमें अच्छे कर्मों के पुण्य में हिस्सा दिया जाए।" तब बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एकत्रित होने के लिए कहा और उन्हें अपने सभी अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँटने का आग्रह किया।
तब से यह एक प्रथा बन गई है कि जब भी कोई अच्छा कर्म किया जाता है, तो इकत्तीस लोकों (भूमियों) के सभी प्राणियों को आमंत्रित किया जाता है ताकि वे पुण्य साझा कर सकें।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 354)
धम्मदानं सब्बदानं जिनाति सब्बं रसं जिनाति धम्मरति
सब्बं रतिं जिनाति धम्मरसो तनहक्खयो सब्बादुक्खं जिनाति
धम्मदानं [धम्मदान]: धम्म का उपहार; सब्बादानं [सब्बादान]: सभी उपहार; जिनाति : जीतता है; धम्मरति : धम्म का स्वाद; सब्बं रसं [रस]: सभी स्वादों पर विजय प्राप्त होती है; जिनाति : जीतता है; धम्मरति : धम्म का प्रेम; सब्बं रतिं [रति]: सभी प्रेम जीत जाते हैं; तंहक्खायो [तंहकखाय]: जिसने तृष्णा से छुटकारा पा लिया है; सब्बादुक्खाँ [सब्बादुक्खा]: सभी कष्ट; जिनाति : जीतता है.
धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों (संसार दुःख) पर विजय प्राप्त कराता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 354)
सब्बादानं धम्मदानं : धम्म का दान सभी दानों पर विजय प्राप्त करता है। बुद्ध ने इस कथन की व्याख्या करते हुए आगे कहा कि बुद्ध, धम्म और संघ को दिए गए सभी महान और प्रभावशाली भौतिक दान धम्म के दान के कारण ही संभव हो पाए। धम्म के दान ने दानदाताओं को अन्य भौतिक दान देने के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि महान संतों ने भी अपनी उच्च आध्यात्मिक विजय पूरी तरह से धम्म के दान के कारण ही प्राप्त की।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 355

(धम्मपद 354) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 355 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 356, 357, 358 और 359)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 355 - अपुत्तकसेट्ठि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 355 - अपुत्तकसेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
हनंती भोग दुम्मेधम
no ca paragavesino
भोगतनहया दुम्मेधो
hanti anneva attanam.

श्लोक 355 : धन मूर्खों का नाश करता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।

एक निःसंतान धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (355) का उच्चारण एक निःसंतान धनी व्यक्ति के संदर्भ में किया।
एक बार कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) बुद्ध को प्रणाम करने आए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्हें देर हो गई है क्योंकि उसी दिन सुबह सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए उन्हें उस व्यक्ति की सारी संपत्ति जब्त करनी पड़ी। फिर उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में बताया, जो बहुत धनी होते हुए भी अत्यंत कंजूस था। अपने जीवनकाल में उसने दान में कुछ भी नहीं दिया। वह अपने ऊपर भी पैसा खर्च करने से कतराता था, इसलिए वह बहुत कम खाता था और केवल सस्ते, मोटे कपड़े पहनता था। यह सुनकर बुद्ध ने राजा और उपस्थित लोगों को उस व्यक्ति के पिछले जन्म के बारे में बताया। उस जन्म में भी वह धनी था।
एक दिन जब एक पच्चेकबुद्ध उनके घर भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को कुछ दान देने को कहा। उनकी पत्नी सोचती थी कि उनके पति उन्हें किसी को कुछ भी दान देने की अनुमति बहुत कम ही देते हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षापात्र में उत्तम भोजन भर दिया। धनी व्यक्ति को घर लौटते समय फिर से पच्चेकबुद्ध मिले और उन्होंने भिक्षापात्र पर नजर डाली। अपनी पत्नी द्वारा पर्याप्त मात्रा में उत्तम भोजन दान करते देख उन्होंने सोचा, "अरे, इस भिक्षु को तो अच्छे भोजन के बाद ही अच्छी नींद आएगी। अगर मेरे नौकरों को भी इतना अच्छा भोजन मिलता तो बेहतर होता; कम से कम वे मेरी बेहतर सेवा तो करते।" दूसरे शब्दों में, उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को भोजन दान करने को क्यों कहा। इसी व्यक्ति का एक भाई भी था जो धनी था। उनके भाई का एक ही पुत्र था। अपने भाई की संपत्ति के लालच में उन्होंने अपने युवा भतीजे की हत्या कर दी थी और इस प्रकार अपने भाई की मृत्यु के बाद उनकी संपत्ति पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया था।
क्योंकि उस व्यक्ति ने पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी थी, इसलिए वह इस जन्म में धनी हो गया; पच्चेकबुद्ध को भिक्षा देने के पश्चाताप के कारण वह अपने ऊपर भी कुछ खर्च नहीं करना चाहता था। अपने भाई के धन के लिए अपने भतीजे की हत्या करने के कारण उसे सात जन्मों तक निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा। उसके बुरे कर्मों का फल भोगने के बाद वह मनुष्यलोक में जन्मा, परन्तु यहाँ भी उसे कोई पुण्य प्राप्त नहीं हुआ। तब राजा ने कहा, “हे पूज्यवर! यद्यपि वह स्वयं बुद्ध के जीवनकाल में यहाँ रहा, फिर भी उसने बुद्ध या उनके शिष्यों को कुछ भी दान नहीं दिया। वास्तव में, उसने एक बहुत अच्छा अवसर खो दिया; वह बहुत मूर्ख था।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 355 : धन मूर्खों का नाश करता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक निःसंतान धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक निःसंतान धनी व्यक्ति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार कोसल के राजा पसेनादि बुद्ध को प्रणाम करने आए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्हें देर हो गई है क्योंकि उसी दिन सुबह सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और उनकी कोई संतान नहीं थी, इसलिए उन्हें उस व्यक्ति की सारी संपत्ति जब्त करनी पड़ी। फिर उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में बताया जो बहुत धनी होते हुए भी अत्यंत कंजूस था। अपने जीवनकाल में उन्होंने दान में कुछ भी नहीं दिया। वे अपने ऊपर भी पैसा खर्च करने से कतराते थे और इसलिए बहुत कम खाते थे और केवल सस्ते, मोटे कपड़े पहनते थे। यह सुनकर बुद्ध ने राजा और उपस्थित लोगों को उस व्यक्ति के पिछले जन्म के बारे में बताया। उस जन्म में भी वह धनी थे।
एक दिन जब एक पच्चेकबुद्ध (सन्यासी बुद्ध) उनके घर भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को कुछ दान देने को कहा । उनकी पत्नी सोचती थी कि उनके पति उन्हें किसी को कुछ भी दान देने की अनुमति बहुत कम ही देते हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षापात्र में उत्तम भोजन भर दिया। धनी व्यक्ति को घर लौटते समय फिर से पच्चेकबुद्ध मिले और उन्होंने भिक्षापात्र पर नजर डाली। अपनी पत्नी द्वारा पर्याप्त मात्रा में उत्तम भोजन दान करते देख उन्होंने सोचा, “अरे, इस भिक्षु को तो अच्छे भोजन के बाद ही अच्छी नींद आती होगी। अगर मेरे नौकरों को भी ऐसा ही अच्छा भोजन मिलता तो बेहतर होता; कम से कम वे मेरी बेहतर सेवा तो करते।” दूसरे शब्दों में, उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को भोजन दान करने को क्यों कहा । इसी व्यक्ति का

एक भाई भी था जो धनी था। उसके भाई का एक ही पुत्र था। अपने भाई की संपत्ति के लालच में उसने अपने युवा भतीजे की हत्या कर दी थी और इस प्रकार अपने भाई की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर गलत तरीके से कब्जा कर लिया था।

क्योंकि उस व्यक्ति ने पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी थी , इसलिए वह इस जन्म में धनी हो गया; क्योंकि उसे पच्चेकबुद्ध को भिक्षा देने का पछतावा हुआ , इसलिए वह अपने ऊपर भी कुछ खर्च नहीं करना चाहता था। क्योंकि उसने अपने भाई के धन के लिए अपने भतीजे की हत्या कर दी थी, इसलिए उसे सात जन्मों तक नरक भोगना पड़ा। उसके बुरे कर्मों का फल भोगने के बाद वह मनुष्यलोक में जन्मा, परन्तु यहाँ भी उसे कोई पुण्य प्राप्त नहीं हुआ। तब राजा ने कहा, "आदरणीय! यद्यपि वह स्वयं बुद्ध के जीवनकाल में यहाँ रहा, फिर भी उसने बुद्ध या उनके शिष्यों को कुछ भी दान नहीं दिया। वास्तव में, उसने एक बहुत अच्छा अवसर खो दिया; वह बहुत मूर्ख था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 355)

भोगा दुमेधं हनन्ति परागवेसिनो नो वे
दुम्मेधो भोगतन्हाय अन्ने इव अत्तनं हन्ति

भोग : धन; दममेधं [दुमेध]: अज्ञानी; हनन्ति : नष्ट कर देता है; परागवेसिनो [परागवेसिना]: जो लोग आगे के किनारे की तलाश करते हैं (सच्चाई की तलाश करने वाले निब्बान की खोज करते हैं); नो वी : नष्ट मत करो; दुमेधो [दुमेधा]: अज्ञानी; भोगतानहाय : धन के लालच के कारण; अन्ने इव : मानो (नष्ट कर रहा हो) दूसरों को; अत्ताणं [अत्ताना]: स्वयं का स्वंय; हन्ति : नष्ट कर देता है

धन मूर्खों का नाश कर देता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 355)

पच्चेकबुद्ध : स्वतंत्र रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति, या पृथक रूप से (पच्चेक) प्रबुद्ध व्यक्ति (मौन या निजी बुद्ध के रूप में अनुवाद बहुत उपयुक्त नहीं हैं)। इस श्लोक की उत्पत्ति की कथा पच्चेकबुद्धों से संबंधित है । पच्चेकबुद्ध उस अरहत के लिए एक शब्द है जिसने दूसरों से बुद्ध के उपदेश सुने बिना निर्वाण प्राप्त किया है। वह किसी भी गुरु से स्वतंत्र होकर, अपने स्वयं के प्रयास से चार आर्य सत्यों को व्यक्तिगत रूप से (पच्चेक) समझता है। हालांकि, उनमें दूसरों को प्रभावी ढंग से उपदेश देने की क्षमता नहीं होती है, और इसलिए वे पूर्ण या सार्वभौमिक बुद्ध (सम्मा-संबुद्ध) की तरह देवताओं और मनुष्यों के गुरु नहीं बनते हैं। परंपरा के अनुसार, वे पूर्ण बुद्ध के युग में उत्पन्न नहीं होते हैं; बल्कि कई युगों के प्रयास के बाद पूर्णता प्राप्त करने के लिए, उन्हें पूर्ण बुद्ध के समक्ष यह आकांक्षा व्यक्त करनी पड़ती है।

प्रामाणिक संदर्भ कम हैं: उन्हें स्तूप (दागोबा) के योग्य कहा जाता है; खजाना-पत्थर सूत्र (निदिखंड सूत्र) में पच्चेक-बोधि का उल्लेख है ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 356-359

———————————————————

(धम्मपद 355) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 356, 357, 358 और 359 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 360 और 361)

———————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 356, 357, 358 और 359 - अकोरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 356, 357, 358 और 359 - अंकुरा वत्थु

———————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Tinadosani khettani
ragadosa ayam paja
tasma hi vitaragesu

दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
dosadosa ayam paja
तस्मा हि विताडोसेसु
दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
मोहदोसा अयम पजा
tasma hi vitamohesu
दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
icchadosa ayam paja
tasma hi vigaticchesu
दिन्नम होती महाप्पलम.

श्लोक 356 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; कामवासना सभी प्राणियों को बिगाड़ देती है। इसलिए, कामवासना से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

श्लोक 357 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; द्वेष सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, द्वेष से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

श्लोक 358 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; अज्ञान सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, अज्ञान से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

श्लोक 359 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; लोभ सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, लोभ से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

देव (देवदूत) अंकुरा की कहानी
तावतिंसा देव (देवदूत) लोक की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने अंकुरा नामक देव (देवदूत) के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (356) से (359) तक कहे।
बुद्ध ने अपनी माता संतूसीता को अभिधम्म का उपदेश देने के लिए तावतिंसा देवलोक का दौरा किया। उस समय तावतिंसा में इंदका नामक एक देवलोक निवास कर रहे थे। अपने अंतिम जन्म में इंदका ने थेरा अनुराद्ध को थोड़ा सा भिक्षादान किया था। बुद्ध के उपदेश काल में थेरा को यह दान देने के कारण उन्हें भरपूर प्रतिफल मिला। इस प्रकार, अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तावतिंसा लोक में हुआ और उन्हें देवलोक की सभी सुख-सुविधाओं का भरपूर वरदान प्राप्त हुआ। उस समय तावतिंसा में अंकुरा नामक एक अन्य देवलोक भी निवास कर रहे थे, जिन्होंने बहुत दान दिया था; वास्तव में, इंदका से कई गुना अधिक। लेकिन उनका दान किसी भी बुद्ध के उपदेश काल के बाहर हुआ था। अतः, अपने उदार और भव्य दान के बावजूद, अंकुर को देव (देवदूत) के जीवन के लाभ इंदका की तुलना में बहुत कम मिल रहे थे, जिसने बहुत कम दान दिया था। उस समय बुद्ध तावतिंसा में थे, अंकुर ने उनसे लाभों में इस असमानता का कारण पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे देव! दान देते समय आपको यह चुनना चाहिए कि आप किसे दान दे रहे हैं, क्योंकि दान बीज के समान है। उपजाऊ मिट्टी में बोए गए बीज मजबूत, स्वस्थ पौधे या वृक्ष बनते हैं और खूब फल देते हैं; परन्तु आपने अपना बीज बंजर मिट्टी में बोया है, इसलिए आपको कम फल मिलेगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 356 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; कामवासना सभी प्राणियों को बिगाड़ देती है। इसलिए, कामवासना से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

श्लोक 357 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; द्वेष सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, द्वेष से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

श्लोक 358 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; अज्ञान सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, अज्ञान से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

श्लोक 359 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; लोभ सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, लोभ से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

अध्याय चौबीस का अंत: लालसा

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बड़ा और छोटा उपहार

कहा जाता है कि एक बार जब पूज्य अनुराद्ध भिक्षा मांगने के लिए गांव में आए, तो इंदका नामक एक देवता ने उन्हें अपने भोजन का एक चम्मच दिया। यह उनके पिछले जन्म का पुण्य कर्म था। यद्यपि अंकुर ने दस हजार वर्षों तक बारह मील लंबी अग्नि-स्तंभों की एक पंक्ति स्थापित की थी और प्रचुर मात्रा में भिक्षा दी थी, फिर भी इंदका को उससे कहीं अधिक प्रतिफल प्राप्त हुआ; इसलिए इंदका ने ऐसा कहा। जब अंकुर ने ऐसा कहा, तो बुद्ध ने कहा, “अंकुरा, भिक्षा देते समय विवेक का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे में भिक्षा देना, अच्छी मिट्टी में बोए गए बीज के समान, भरपूर फल देता है। परन्तु तुमने ऐसा नहीं किया; इसलिए तुम्हारी भिक्षा से कोई बड़ा फल नहीं मिला।”

और इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, “भिक्षा हमेशा विवेक से देनी चाहिए। इस प्रकार दी गई भिक्षा भरपूर फल देती है।”

विवेकपूर्ण दान देना सुखी व्यक्ति द्वारा प्रशंसनीय माना जाता है। संसार में दान के योग्य प्राणियों को दिया गया दान, अच्छी भूमि में बोए गए बीजों के समान भरपूर फल देता है।

इस प्रकार कहने के बाद, उन्होंने धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 356)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा रागदोसा

तस्मा वीतरागेसु दिनं महप्फलं होति

खेताणि : खेतों के लिए; तिणदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए; रागदोसा : वासना अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; वीतरगेसु : वासनाहीन लोगों के लिए; दिन्नं [दिन्ना]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : महान परिणाम देगा

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए वासना अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उन लोगों को दी जाने वाली शक्ति से ही संभव है जो वासना रहित हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 357)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा दोसादोसानि

तस्मा वितादोसा हि दिनं महप्फलं होति

खेतानि : खेतों के लिए; तिनदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए; दोसादोसानि : दुर्भावना अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; वीतदोसा : जिनके मन में दुर्भावना नहीं है; दिन्नं [दिन्ना]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : उससे महान परिणाम प्राप्त होंगे

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए दुर्भावना अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उन्हीं लोगों को दी जाने वाली सहायता से संभव है जो दुर्भावना से मुक्त हों।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 358)

खेतानि तिनादोसानि अयं पजा मोहदोसा

तस्मा हि वितामोहेसु दिनं महप्फलं होति

खेतानि : खेतों के लिए; तिनदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों; मोहदोसा : का अभिशाप माया है; तस्मा : इसलिए; वीतमोहेषु : मायाहीन लोगों के लिए; दिन्नं [दिन्ना]: जो दिया गया है; महाप्पलं होति : महान परिणाम देगा

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए भ्रम अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है जो भ्रम से मुक्त हो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 359)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा इच्छादोसा
तस्माहि विगत्चेसु दिन्नं महप्फलं होति
खेताणि : खेतों के लिए; तिणदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए ; इच्छादोसा : लोभ अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; विगत्चेसु : लोभ रहित लोगों के लिए; दिन्नां [दिन्ना]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : उससे महान परिणाम प्राप्त होंगे
खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए लालच अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उसी व्यक्ति को दी जाती है जो लालच से मुक्त हो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 356-359)

इन आयतों में कहा गया है कि पुण्य के संदर्भ में उच्च उपज केवल उन्हीं लोगों को दी जाने वाली चीजों के माध्यम से संभव है जो वासना रहित हैं, जो द्वेष रहित हैं, जो भ्रम रहित हैं और जो लोभ से मुक्त हैं।

ये सभी विशेषताएँ सिद्ध पुरुषों — अरहतों और इस सिद्धि की ओर अग्रसर पुरुषों — की पहचान हैं। इस स्तर के संतों को आर्य-पुग्गला (महान व्यक्ति) भी कहा जाता है। संस्कृत में अरहत का अर्थ है परिपूर्ण, योग्य। यह शब्द अरहत , जो विशेष रूप से बुद्ध और उनके सिद्ध शिष्यों के लिए प्रयोग किया जाता था, सर्वप्रथम स्वयं बुद्ध के लिए प्रयोग किया गया था।

अरहत वह है जिसके सभी दोष (आसव) नष्ट हो चुके हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जो करना था वह कर लिया है, बोझ उतार दिया है, चरणबद्ध तरीके से अरहतत्व प्राप्त किया है, जो बनने के बंधन को पूर्णतः नष्ट कर चुका है, जो सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त है। क्योंकि उसकी इंद्रियाँ नष्ट नहीं हुई हैं, वह सुखद और अप्रिय, सुख और दुख दोनों का अनुभव करता है। पाँचों तत्व बने रहते हैं। काम, घृणा और मोह का उसका नाश होना ही निर्वाण तत्व कहलाता है, जिसमें आधार शेष रहता है (सौपादिसेष निर्वाणधातु)।

बुद्ध ने कहा:

"और हे भिक्षुओं, वह निर्वाण तत्व कौन सा है जिसका कोई आधार शेष नहीं रहता (अनुपादिसेष निर्वाणधातु)?" "यहाँ, भिक्षु वह है जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जो करना था वह कर लिया है, बोझ उतार दिया है, चरणबद्ध तरीके से अर्हतत्व प्राप्त किया है, बनने के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, जो सही ज्ञान से मुक्त है। उसकी सभी भावनाएँ अनुत्तेजित और प्रसन्न न होने के कारण (अनभिनन्दितानि) यहीं और अभी शांत हो जाएँगी: हे भिक्षुओं, यही वह निर्वाण तत्व कहलाता है जिसका कोई आधार शेष नहीं रहता।"

"हे भिक्षुओं, ये दो निर्वाण तत्व हैं।" बुद्ध ने इस तथ्य की घोषणा की:
अतः यह कहा जाता है:
निर्वाण के इन दो तत्वों की व्याख्या की गई है।
उस प्रत्यक्षदर्शी, स्थिर और अनासक्त ईश्वर की कसम:
जब एक तत्व जिसका आधार इस जीवन से संबंधित है
जो चीज विकास की ओर ले जाती है, वह नष्ट हो जाती है;
जब कोई व्यक्ति उस आधार के बिना प्रकट होता है
परलोक में सभी प्रक्रियाएं समाप्त हो जाती हैं।
जो लोग इस अनुकूलित अवस्था को जानते हैं, उनके मन
जो कुछ भी बनने की ओर ले जाता है, उसे नष्ट करके ही ये चीजें प्राप्त होती हैं:
वे धम्म के सार को समझते हैं और शांति में रहते हैं।
आनंदित होकर, वे दृढ़ता से सभी प्रकार के आडंबरों का त्याग कर देते हैं।

किसी भी प्राणी में पाँच तत्व होते हैं, अर्थात् मन और पदार्थ। ये निरंतर बदलते रहते हैं और इसलिए क्षणभंगुर होते हैं। इनका जन्म होता है और ये नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि जो कुछ भी उत्पन्न होने की प्रकृति का है, वही सब कुछ नष्ट होने की प्रकृति का है।

मनुष्य में वासना, घृणा और भ्रम के कारण बार-बार जन्म लेने की नौबत आती है, क्योंकि कहा जाता है: वासना, घृणा और भ्रम का त्याग किए बिना मनुष्य जन्म-मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकता...

काम, घृणा और मोह को जड़ से उखाड़ फेंकने से व्यक्ति जीवित रहते हुए ही अरहतत्व, अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसे शेष आधार के साथ निर्वाण तत्व (सौपादिसेष निर्वाणधातु) कहा जाता है। अरहत के पाँच स्कंध या शेष आधार उसके अनंत अतीत के काम, घृणा और मोह से ग्रस्त होते हैं। चूंकि वह अभी भी जीवित है, इसलिए उसके स्कंध कार्य करते हैं, और इसलिए वह इंद्रिय विषयों के संपर्क से उत्पन्न होने वाले सुखद और दुखद दोनों प्रकार के भावों का अनुभव करता है। लेकिन, चूंकि वह आसक्ति, भेद और आत्मबोध से मुक्त है, इसलिए वह इन भावों से विचलित नहीं होता।

अब, जब कोई अरहत देहांतवास करता है, तो उसके समुच्चय, उसके शेष आधार, कार्य करना बंद कर देते हैं; वे मृत्यु के समय विघटित हो जाते हैं; उसकी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, और कामवासना, घृणा और भ्रम के उन्मूलन के कारण, उसका पुनर्जन्म नहीं

होता है, और स्वाभाविक रूप से, फिर भावनाओं का कोई अस्तित्व नहीं रहता है; और इसलिए कहा जाता है: उसकी भावनाएँ शीतल हो जाएँगी (सीतिभाविसन्ति)।

उदाना में इस विचार को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

शरीर टूट गया, चेतना समाप्त हो गई।

सभी भावनाएँ शांत हो गईं, सभी संरचनाएँ स्थिर हो गईं।

चेतना लुप्त हो गई।

इसे आधारहीन निर्वाण तत्व (अनुपादिसेसा निर्वाणधातु) के रूप में जाना जाता है।

जब कोई व्यक्ति काम, घृणा और मोह, इन तीनों गुणों को पूरी तरह से नष्ट कर देता है, जो जन्म का कारण बनते हैं, तो वह संसार के बंधनों से , बार-बार जन्म लेने के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह शब्द के पूर्ण अर्थ में स्वतंत्र हो जाता है। उसमें ऐसा कोई गुण नहीं रह जाता जो उसे पुनर्जन्म लेने के लिए प्रेरित करे, क्योंकि उसने निर्वाण, यानी निरंतर जन्म और जन्म की प्रक्रिया के पूर्ण अंत (भव-निरोध) को प्राप्त कर लिया है; वह सांसारिक गतिविधियों से ऊपर उठकर संसार में रहते हुए भी एक उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। उसके कर्म निरर्थक होते हैं, कर्मिक रूप से अप्रभावी होते हैं, क्योंकि वे इन तीनों गुणों, मानसिक विकारों (किलेसा) से प्रेरित नहीं होते। वह सभी बुराइयों, हृदय के सभी विकारों से मुक्त हो जाता है। उसमें कोई भी अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) नहीं होती; वह अच्छे और बुरे से परे होता है, उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया होता है; वह अतीत, भविष्य और वर्तमान से भी चिंतित नहीं होता। वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं है, इसलिए वह विचलित नहीं होता। जीवन के उतार-चढ़ाव से वह विचलित नहीं होता। सांसारिक परिस्थितियों से उसका मन अविचलित रहता है; वह दुःख रहित, निष्कलंक और निश्चिंत (अशोकं , विरजं , खेमन) है।

इस प्रकार, निर्वाण एक ऐसी अवस्था है जिसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है (दित्तधम्मनिब्बान)। विचारक, जिज्ञासु मन को इस अवस्था को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि यह केवल अरहत के लिए ही परिकल्पित की जा सकती है, किसी अन्य प्राणी के लिए नहीं, न तो इस संसार में और न ही स्वर्गिक भोगों के लोकों में।

यद्यपि सजीव प्राणी जीवन की असंतोषजनक प्रकृति का अनुभव करता है, और प्रत्यक्ष रूप से जानता है कि दुख क्या है, दोष क्या हैं और लालसा क्या है, फिर भी वह दोषों के पूर्ण निवारण को नहीं जानता, क्योंकि उसने कभी इसका अनुभव नहीं किया है। यदि वह ऐसा कर ले, तो आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से वह जान जाएगा कि दोषों से मुक्त होना क्या है, निर्वाण या वास्तविकता क्या है, और सच्चा सुख क्या है। अरहत निर्वाण का वर्णन अपने अनुभव से करते हैं, न कि सुनी-सुनाई बातों से, परन्तु अरहत अपने स्वयं के अनुभव से दूसरों को निर्वाण समझा नहीं सकते। जिसने अपनी प्यास बुझा ली है, वह अपने द्वारा प्राप्त मुक्ति को जानता है, परन्तु वह इस मुक्ति को दूसरों को समझा नहीं सकता। चाहे वह इसके बारे में कितना भी बोले, दूसरे इसका अनुभव नहीं कर पाएंगे; क्योंकि यह स्वयं का अनुभव है, स्वयं का ज्ञान है। यह ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत होता है। प्रत्येक को स्वयं खाना-पीना और सोना चाहिए, और अपने रोगों का उपचार स्वयं करना चाहिए; ये तो केवल दैनिक आवश्यकताएं हैं, लेकिन जब बात मनुष्य के आंतरिक विकास और मन की मुक्ति की हो तो इनकी आवश्यकता कितनी अधिक बढ़ जाती है।

जिस बात को समझना कठिन है, वह है निर्वाण तत्व का बिना किसी आधार के शेष रहना (अनुपादिसेसा-निर्वाण), दूसरे शब्दों में, अरहत का परिनिर्वाण या अंतिम निधन।

उदाना का एक अक्सर उद्धृत अंश कहता है: भिक्षुओं, अजन्मा, अनादि, अनिर्मित और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान है। यदि अजन्मा, अनादि, अनादि और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान न होती, तो जन्मा, निर्मित, सृजित और सप्रतिबंधित सत्ता के लिए कोई मुक्ति मार्ग न होता। क्योंकि अजन्मा, अनादि, अनादि और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान है, इसलिए जन्मा, निर्मित, सृजित और सप्रतिबंधित सत्ता के लिए मुक्ति मार्ग है।

यहां न तो ठोसपन (विस्तार), न तरलता (संलग्नता), न ऊष्मा और न गति का तत्व है, न अनंत अंतरिक्ष का क्षेत्र, न अनंत चेतना का क्षेत्र, न शून्यता का क्षेत्र, न बोध का क्षेत्र और न अबोध का क्षेत्र, न यह संसार और न दूसरा संसार, न सूर्य और न चंद्रमा। यहां न कोई आना है, न कोई जाना है, न कोई अस्तित्व है, न मृत्यु और न जन्म। बिना सहारे के, बिना अस्तित्व के, बिना इंद्रिय बोध के, यही है दुख का अंत ।

अरहतों को आर्य पुग्गला या आर्य (कुलीन, कुलीन व्यक्ति) के रूप में भी वर्णित किया जाता है ।

आठ आर्य पुग्गला वे हैं जिन्होंने पवित्रता के आठ चरणों में से एक को प्राप्त कर लिया है, अर्थात् चार अलौकिक मार्ग (मग्गा) और इन मार्गों के चार अलौकिक फल (फल)।

चार जोड़े हैं:

वह व्यक्ति जो धारा-जीतने का मार्ग जान लेता है (सोटापत्ति-मग्ग);

वह व्यक्ति जो धारा-जीतने की सफलता को प्राप्त करता है (सोटापत्ति फल);

जो एक बार वापसी के मार्ग को जान लेता है (सकदागामी-मग्ग);
जो एक बार वापसी (सकदागामी-फल) के फल को प्राप्त कर लेता है;
अनागामी मार्ग को जानने वाला (अनगामी-मग्ग);
जो अनागमी-फल (गैर-वापसी) के फल को प्राप्त कर लेता है;
जो पवित्रता के मार्ग (अरहत्त-मग्गा) को जान लेता है और
जो पवित्रता के फल को प्राप्त कर लेता है (अरहत्त-फला)।
संक्षेप में, चार महान व्यक्ति हैं (अरीय-पुग्गला); धारा-विजेता (सोतापन्न); एक बार लौटने वाला (सकदागामी); न लौटने वाला (अनागामी); पवित्र (अरहत)।
अभिधम्म के अनुसार, अलौकिक मार्ग, या केवल मार्ग (मग्ग), पवित्रता के चार चरणों में से एक में प्रवेश करने के क्षण का पदनाम है - निर्वाण इसका लक्ष्य है - जो अस्तित्व की अनित्यता, दुख और निराकारता में अंतर्ज्ञानात्मक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) द्वारा उत्पन्न होता है, जो चमकता है और व्यक्ति के जीवन और स्वभाव को हमेशा के लिए बदल देता है।
फल प्राप्ति (फला) से तात्पर्य चेतना के उन क्षणों से है, जो मार्ग के परिणाम स्वरूप तुरंत बाद आते हैं, और जो कुछ परिस्थितियों में, जीवनकाल के दौरान अनगिनत बार दोहराए जा सकते हैं।
(1) धारा-प्राप्ति (सोतापत्ति-मग्ग) के मार्ग से व्यक्ति उन तीन बंधनों (संयोजन) से मुक्त हो जाता है (जबकि फल प्राप्ति में व्यक्ति मुक्त हो जाता है) जो प्राणियों को इंद्रिय जगत में अस्तित्व से बांधते हैं, अर्थात्: (i) व्यक्तित्व-विश्वास (सक्काया-दिट्ठी), (ii) संशयपूर्ण संदेह (विसीकिच्चा), (iii) केवल नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति (सिलब्बतपरमासा)।
(2) एक बार लौटने के मार्ग (सकदागामी-मग्ग) से व्यक्ति लगभग चौथे और पाँचवें बंधनों से मुक्त हो जाता है, अर्थात्: (iv) कामुक लालसा (काम-च्छन्द = काम-राग), (v) द्वेष (व्यापाद = दोष)।
(3) अनागामी-मग्ग के मार्ग से व्यक्ति ऊपर बताए गए पाँच निम्न बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।
(4) पवित्रता के मार्ग (अरहत्त-मग्ग) के माध्यम से व्यक्ति पाँच उच्च बंधनों से मुक्त हो जाता है, अर्थात्: (vi) भौतिक अस्तित्व (रूप-राग) की लालसा, (vii) अमूर्त अस्तित्व (अरूप-राग) की लालसा, (viii) अहंकार (मान), (ix) बेचैनी (उद्धच्च), (x) अज्ञान (अविज्जा)।
सामान्य सूत्र पाठ इस प्रकार है:
(1) तीनों बंधनों के विलीन होने के बाद, भिक्षु ने (निर्वाण की ओर) धारा जीत ली है और अब वह निम्न लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं है, दृढ़ता से स्थापित है, पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत है;
(2) तीनों बंधनों के लुप्त होने और लोभ, घृणा और भ्रम के कम होने के बाद, वह केवल एक बार फिर लौटेगा; और इस संसार में एक बार फिर लौटकर वह दुखों का अंत करेगा;
(3) पाँच बंधनों के लुप्त होने के बाद वह एक उच्चतर लोक में प्रकट होता है, और वहाँ वह उस लोक (इंद्रिय लोक) से कभी वापस लौटे बिना निर्वाण प्राप्त करता है।
(4) सभी दोषों (आसव-क्खया) के निवारण के माध्यम से वह इसी जीवन में मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति, जो दोषों से मुक्त है, और जिसे उसने स्वयं समझा और अनुभव किया है, प्राप्त कर लेता है।
श्रेष्ठ शिष्यों का सात प्रकार का वर्गीकरण इस प्रकार है:
आस्थावान भक्त (सद्धानुसारी)
आस्था से मुक्त व्यक्ति (सद्धा-विमुत्त),
शरीर-साक्ष्य (काया=सक्खी),
दोनों दिशाओं से मुक्त व्यक्ति (उभतो-भाग-विमुत्त),
धम्म भक्त (धम्मनुसारि)
दृष्टि प्राप्त करने वाला (दिट्ठी-पत्ता),
ज्ञान से मुक्त व्यक्ति (पञ्ञा-विमुत्त)।
ये चार श्लोक दान , यानी उदारता के गुणों की प्रशंसा करते हैं ।
दान प्रथम पारमी है । यह दानकर्ता को स्वार्थ के अनैतिक विचारों को रोकने और निस्वार्थता के शुद्ध विचारों को विकसित करने का दोहरा आशीर्वाद प्रदान करता है: यह देने वाले और लेने वाले दोनों को आशीर्वाद देता है।
एक बोधिसत्व को इस बात की चिंता नहीं होती कि दान पाने वाला वास्तव में जरूरतमंद है या नहीं, क्योंकि उनके द्वारा किए जाने वाले दान का एकमात्र उद्देश्य अपने भीतर सुप्त लालसा को समाप्त करना है। सेवा का आनंद, उससे प्राप्त सुख और दुखों का निवारण दान के अन्य आशीर्वाद हैं।

असाधारण उदारता से प्रेम का प्रसार करते हुए, वे किसी भी प्राणी में भेद नहीं करते, बल्कि इस उदारता में विवेकपूर्ण निर्णय लेते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई शराबी उनकी सहायता मांगे, और यदि उन्हें विश्वास हो जाए कि शराबी उनके दान का दुरुपयोग करेगा, तो बोधिसत्व बिना किसी संकोच के उसे अस्वीकार कर देंगे, क्योंकि ऐसी अनुचित उदारता पारमी नहीं कहलाएगी ।

यदि कोई व्यक्ति किसी नेक उद्देश्य से उसकी सहायता मांगे, तो वह दिखावटी गरिमा का ढोंग करने या झूठे दावे करने के बजाय, दिए गए अवसर के लिए अपना गहरा आभार व्यक्त करेगा और सहर्ष और विनम्रतापूर्वक हर संभव सहायता प्रदान करेगा। फिर भी, वह इसे कभी भी किसी दूसरे पर किया गया उपकार नहीं मानेगा, न ही उस व्यक्ति को अपनी सेवा का ऋणी समझेगा। उसकी रुचि केवल अच्छे कार्य में है, उससे उत्पन्न होने वाले किसी अन्य लाभ में नहीं। वह बदले में किसी पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करता, न ही इससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की लालसा रखता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 360,361

———————————————————————

(धम्मपद 356, 357, 358 और 359) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 360 और 361 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 362)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 360 और 361 - पंचभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 360 और 361 - पंचभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

चक्खुना समवरो साधु
sadhu sotena samvaro
घनेना समवरो साधु
sadhu jivhaya sarmvaro.
Kayena samvaro sadhu
sadhu vacaya samvaro
manasa samvaro sadhu
sadhu sabbattha samvaro
sabattha sambuto bhikkhu
sabbadukkha pamuccati.

———————————————————————

श्लोक 360 : आँखों को संयम में रखना अच्छा है, कानों को संयम में रखना अच्छा है; नाक को संयम में रखना अच्छा है, जीभ को संयम में रखना अच्छा है।

———————————————————————

श्लोक 361 : शरीर में संयम अच्छा है, वाणी में संयम अच्छा है; मन में संयम अच्छा है, सभी इंद्रियों में संयम अच्छा है। सभी इंद्रियों में संयम रखने वाला भिक्षु सभी दुखों (संसार दुःख) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

पांच भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (360) और (361) का उच्चारण किया।
एक समय श्रावस्ती में पाँच भिक्षु थे। उनमें से प्रत्येक पाँचों इंद्रियों में से केवल एक को ही वश में करने का अभ्यास करता था और प्रत्येक का दावा था कि वह जिस अभ्यास को कर रहा है वह सबसे कठिन है। इस पर उनके बीच तीखी बहस हुई और वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। अंततः, वे बुद्ध के पास उनका निर्णय जानने के लिए गए। बुद्ध ने उनसे कहा, "प्रत्येक इंद्रिय को वश में करना उतना ही कठिन है जितना कि दूसरी को; लेकिन सभी भिक्षुओं को केवल एक ही नहीं बल्कि सभी पाँचों इंद्रियों को वश में करना चाहिए। केवल वे ही जो सभी इंद्रियों को वश में कर लेते हैं, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 360 : आँखों को संयम में रखना अच्छा है, कानों को संयम में रखना अच्छा है; नाक को संयम में रखना अच्छा है, जीभ को संयम में रखना अच्छा है।

श्लोक 361 : शरीर में संयम अच्छा है, वाणी में संयम अच्छा है; मन में संयम अच्छा है, सभी इंद्रियों में संयम अच्छा है। सभी इंद्रियों में संयम रखने वाला भिक्षु सभी दुखों (संसार दुःख) से मुक्त हो जाता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सावत्थी में पाँच भिक्षुओं की कहानी
एक समय की बात है, सावत्थी में पाँच भिक्षु थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पाँचों भिक्षुओं में से प्रत्येक इंद्रियों के पाँच द्वारों में से एक द्वार की रक्षा करता था। एक दिन वे मिले और आपस में बहस करने लगे, "मैं ही उस द्वार की रक्षा करता हूँ जिसकी रक्षा करना कठिन है! मैं ही उस द्वार की रक्षा करता हूँ जिसकी रक्षा करना कठिन है!" अंत में उन्होंने कहा, "हम बुद्ध से प्रश्न पूछकर इस विषय का सत्य जान सकते हैं।" अतः वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा, "आदरणीय, हममें से प्रत्येक इंद्रियों के पाँच द्वारों में से एक द्वार की रक्षा करता है, और हममें से प्रत्येक यह मानता है कि वह जिस द्वार की रक्षा कर रहा है, वह सभी द्वारों में सबसे कठिन है। अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि हममें से कौन उस द्वार की रक्षा कर रहा है जिसकी रक्षा करना सबसे कठिन है।"
बुद्ध ने किसी भी भिक्षु को उसके साथियों से हीन स्थिति में रखने से सावधानीपूर्वक परहेज किया और उत्तर में कहा, "भिक्षुओं, इन सभी द्वारों की रक्षा करना कठिन है। लेकिन यह पहली बार नहीं है जब आप इन पाँचों बातों में संयम बरतने में असफल रहे हैं। पिछले जन्म में भी आप अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रख पाए थे, और इसी कारण, और बुद्धिमानों की सलाह न मानने के कारण, आपका विनाश हुआ।" "वह कब हुआ था, पूज्यवर?" पाँचों भिक्षुओं ने पूछा।
अतीत की कहानी: तक्कशिला जातक
उनकी विनती का पालन करते हुए, बुद्ध ने तक्कासिला जातक का विस्तृत वर्णन किया, जिसमें उन्होंने बताया कि कैसे सुदूर अतीत में, एक राजा के घर को दुष्ट आत्माओं द्वारा नष्ट कर दिए जाने के बाद, बुद्ध ने राजा द्वारा औपचारिक रूप से जल छिड़काव प्राप्त किया, सफेद छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठे हुए, अपनी महिमा और वैभव का अवलोकन करते हुए, मन ही मन सोचा, "मनुष्यों को अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करना चाहिए," और निम्नलिखित गंभीर वचन कहे:
क्योंकि मैंने दृढ़ साहस के साथ भले लोगों की सलाह का पालन किया, क्योंकि मैंने भय या डर नहीं दिखाया, इसलिए मैं दुष्ट आत्माओं के वश में नहीं आया। मैं बड़े खतरे से दृढ़तापूर्वक बच निकला।
इस श्लोक का पाठ करने के बाद, बुद्ध ने जातक का सारांश इस प्रकार दिया: "उस समय तुम पाँच पुरुष थे, जब महान पुरुष तकशिला राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिए निकले, तो तुम अपने हाथों में हथियार लिए उनके चारों ओर मार्ग की रक्षा कर रहे थे। परन्तु जब तुम मार्ग पर यात्रा कर रहे थे, तो स्त्री दुष्ट आत्माओं ने तुम्हें दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श जैसी इंद्रियों को प्रसन्न करने वाली वस्तुओं से लुभाया, तब तुमने सभी संयम त्याग दिए, तब तुमने ज्ञानी पुरुष की चेतावनियों की अवहेलना की, तब तुम स्त्री दुष्ट आत्माओं के प्रलोभनों के वश में आ गए; और उन्होंने तुम्हें भस्म कर दिया, और तुम पूर्णतः नष्ट हो गए। वह ज्ञानी पुरुष जिसने स्वयं को संयमित रखा और उनके प्रलोभनों के वश में नहीं आया, जिसने अपने पीछे आने वाली दिव्य सौंदर्य की राक्षसी पर ध्यान नहीं दिया, और जो सुरक्षित रूप से तकशिला पहुँचकर राजा बना, वह मैं स्वयं था।"
जातक कथा का सार प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने कहा, "एक भिक्षु को सभी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि केवल इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करके ही वह सभी दुखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 360)
चक्खुना संवरो साधु सोतेन संवरो

साधु घनेन संवरो साधु जिव्हाय संवरो
चक्खुना संवरो [संवर]: नेत्र अनुशासन; साधु : अच्छा है; सोतेन संवरो [संवर]: कान अनुशासन; साधु : अच्छा है; घानेन संवरो [संवर]: नाक अनुशासन; साधु : अच्छा है; जिव्हाया संवरो [संवर]: जीभ अनुशासन
आँखों पर नियंत्रण रखना अच्छा है। कानों पर नियंत्रण रखना अच्छा है। नाक पर नियंत्रण रखना अच्छा है। जीभ पर नियंत्रण रखना अच्छा है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 361)
कायेन संवरो साधु वचनाय संवरो साधु मनसा
संवरो साधु मनसा सब्बत्थ संवरो साधु
सब्बत्थ सवुतो भिक्खु सब्बादुक्खा पमुक्कति
कायेन संवरो [संवर]: शारीरिक अनुशासन; साधु : अच्छा है; वाचाय संवरो [संवर]: शब्दों के प्रयोग में अनुशासन; साधु : अच्छा है; मनसा संवरो [संवर]: मन का अनुशासन; साधु : अच्छा है; सब्त : हर जगह; संवरो [संवर]: अनुशासन; साधु : अच्छा है; सब्त संवुतो [संवुता]: हर चीज में और हर तरह से अनुशासित; साधु : अच्छा है; भिक्षु : भिक्षु; सब्बा : सभी का; दुःख : पीड़ा; पामुच्चति : मुक्त हो जाता है
शरीर को अनुशासित रखना अच्छा है। शब्दों को अनुशासित रखना अच्छा है। मन को अनुशासित रखना अच्छा है। इन सभी क्षेत्रों में अनुशासित भिक्षु को समस्त दुखों से मुक्ति प्राप्त होगी।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 360-361)
इन श्लोकों में बुद्ध भिक्षुओं को सभी 'बोध द्वारों' की रक्षा करके अनुशासित रहने की सलाह देते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ध्यान (भावना) है।
मन के विकास के माध्यम से किया जाने वाला ध्यान भावना कहलाता है । अन्य तकनीकी शब्दों के विपरीत, भावना का प्रयोग केवल मानसिक प्रशिक्षण की व्यावहारिक विधियों को दर्शाने के लिए किया जाता है। इसके व्यापक अर्थ में संपूर्ण प्रणाली, साथ ही उससे विकसित अभ्यास भी शामिल हैं। जब शास्त्रों में भावना शब्द आता है, तो यह सामान्यतः ध्यान के अभ्यास या साधना को इंगित करता है और भावेति क्रिया का प्रयोग 'अभ्यास करना' या 'साधना करना' के लिए किया जाता है।
मेत्तं, राहुला, भवनं, भवेहि ।
राहुल, मित्रता पर ध्यान का अभ्यास करो।
Asubhāya cittaṃ bhāvehi .
अशुद्धियों पर ध्यान लगाकर मन को विकसित करें।
झायति (जिसका प्रयोग केवल किसी मानसिक विषय पर चिंतन करने या किसी बाहरी वस्तु से ली गई मानसिक छवि को धारण करने के लिए किया जाता है) के विपरीत , भावेति का प्रयोग किसी भी प्रकार के मानसिक विकास के लिए किया जाता है: कुसलं चित्तं भावेति , वह नैतिक चेतना का विकास या वृद्धि करता है; " झानं भावेति , संआधिं भावेति , विपस्सनां भावेति , मग्गं भावेति ," "वह झान , समाधि, विपस्सना या मार्ग का अभ्यास करता है।"
विभिन्न प्रकार के ध्यान को अलग करने के लिए, 'भावना' शब्द का प्रयोग ध्यान के विषयों को दर्शाने वाले शब्दों जैसे कि ' झान-भावना' , 'समाधि-भावना' , 'मेत्त-भावना' आदि के साथ किया जाता है।
बुद्धघोष थेरा ने भावेति क्रिया को भू मूल से व्युत्पन्न बताया है, जिसका अर्थ है होना या बनना, और इसकी तुलना जनेति (जन्म देना), उप्पादेति (उत्पन्न करना या उत्पन्न करना), वड्ढेति (बढ़ाना या विकसित करना) से की है। उन्होंने शास्त्रों के उद्धरणों से यह दर्शाया है कि भावेति का प्रयोग उत्पन्न करने (उप्पादन) और बढ़ाने (वड्ढन) के अर्थ में किया जाता है ।
भावना शब्द का अर्थ अंग्रेजी शब्द 'ध्यान' से कहीं अधिक व्यापक और सक्रिय है। इस शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे उत्पन्न करना, प्राप्त करना, निपुणता प्राप्त करना, विकसित करना, साधना करना, चिंतन और ध्यान। यहाँ हम इस शब्द का प्रयोग अभ्यास और साधना के अर्थ में करेंगे, क्योंकि ये अनुवाद 'ध्यान' शब्द की तुलना में इसके मूल 'होना' या 'बनना' से संबंध को अधिक स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।
यह सत्य है कि भावना में एक निश्चित चिंतन प्रक्रिया होती है, जो मानसिक प्रार्थना के समान होती है, और विभिन्न अभ्यासों में कुछ विशेष शब्दों या वाक्यांशों का दोहराव भी होता है, जैसे कि मैत्रीपूर्ण साधना में 'खुश रहो, खुश रहो'; या काशिन साधना में 'पृथ्वी, पृथ्वी ', जैसा कि मौखिक प्रार्थना में होता है। लेकिन भावना इससे कहीं अधिक है। यह एक विशेष प्रकार का चिंतन है, जो स्वयं में किसी ऐसी चीज का विकास करता है जो हमेशा अच्छी होती है। इसलिए, भावना का सार इसका उत्पादक कारक है, जो चिंतन के विषय में निहित सार गुण या सत्य को व्यक्ति के चरित्र में उत्पन्न या प्रकट करता है। उदाहरण के लिए, जब कोई मैत्रीपूर्ण भावना का अभ्यास करता है , तो वह न केवल मित्रता का चिंतन करता है, बल्कि उसे अपने मन में उत्पन्न और मजबूत भी करता है, ताकि शत्रुता, द्वेष, घृणा आदि के विचारों का नाश हो सके; और अंत में, साधक सभी जीवित प्राणियों के प्रति मित्रवत हो जाता है। इस अर्थ में, यह विकसित हो रहा है।

अंत में, यह कहना उचित होगा कि भावना शब्द का अर्थ है अपने भीतर सभी अच्छे गुणों का संचय करना, ताकि निर्वाण की प्राप्ति के लिए व्यक्ति योग्य और उपयुक्त बन सके। इसके अलावा, भावना थेरवाद संप्रदाय में धार्मिक जीवन के एक भाग के रूप में ध्यान के लिए प्रचलित और लोकप्रिय अभिव्यक्ति है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 362

————————————————————————

(धम्मपद 360 और 361) <<<< पिछला || धम्मपद 362 || अगला >>>> (धम्मपद 363)

————————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 362 - हंसघातकाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 362 - हंसघातकभिक्खु वत्थु

————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
हत्थसम्यतो पदसम्यतो
vacasamyato samyatuttamo
ajjhattarato samahito
एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुम।

————————————————————————

श्लोक 362 : जो अपने हाथ, पैर, वाणी को नियंत्रित करता है और अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है; उसे भिक्षु कहते हैं।

————————————————————————

एक भिक्षु की कहानी जिसने हंस (हंस) को मार डाला
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (362) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जिसने एक हंस को मार डाला था।
एक समय की बात है, एक भिक्षु पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था; वह तेज गति से चलने वाली वस्तुओं को भी अचूक भेद सकता था। एक दिन, अचिरवती नदी में स्नान करने के बाद, वह एक अन्य भिक्षु के साथ बैठा था, तभी उसने कुछ दूरी पर दो हंसों को उड़ते देखा। उसने अपने मित्र से कहा कि वह एक हंस पर पत्थर फेंककर उसे मार गिराएगा। उसी क्षण, हंस ने कुछ आवाजें सुनकर अपनी गर्दन घुमाई और भिक्षु ने पक्षी पर एक छोटा पत्थर फेंका। पत्थर पक्षी की एक आंख से होकर दूसरी आंख से निकल गया। पक्षी दर्द से कराह उठा और उस युवा भिक्षु के चरणों में गिरकर मर गया।
अन्य भिक्षुओं ने यह घटना देखकर उस युवक को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने उसे फटकारा और कहा, "मेरे पुत्र, तुमने इस पक्षी को क्यों मारा? विशेष रूप से तुमने ही क्यों, जो मेरे संघ का सदस्य हो और जिसे सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और करुणा का अभ्यास करना चाहिए तथा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति के लिए निरंतर प्रयास करना चाहिए? शिक्षा के दौर से बाहर भी, ज्ञानी लोग नैतिकता का पालन करते थे और नियमों का अनुपालन करते थे। एक भिक्षु को अपने हाथों, पैरों और जीभ पर नियंत्रण रखना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

————————————————————————

श्लोक 362 : जो अपने हाथ, पैर, वाणी को नियंत्रित करता है और अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है; उसे भिक्षु कहते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी जिसने हंस का वध किया (हंसा)

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था जिसने एक हंस को मार डाला था।

कहा जाता है कि सावत्थी के दो निवासी संसार त्यागकर संघ के पूर्ण सदस्य बन गए और घनिष्ठ मित्र बन गए, और अक्सर साथ-साथ घूमने जाते थे। एक दिन वे अचिरावती नदी पर गए और स्नान करने के बाद किनारे पर धूप सेंकते हुए सुखद बातें करने लगे। तभी दो हंस हवा में उड़ते हुए आए। तब एक युवा भिक्षु ने एक छोटा पत्थर उठाकर कहा, "मैं इनमें से एक हंस की आंख में मारूंगा।" दूसरे ने कहा, "तुम ऐसा नहीं कर सकते।"

“तुम बस इंतज़ार करो,” पहले भिक्षु ने कहा; “मैं पहले इसकी इस तरफ की आँख पर प्रहार करूँगा, फिर दूसरी तरफ की आँख पर।”

“तुम ऐसा भी नहीं कर सकते,” दूसरे ने कहा। “तो फिर, खुद ही देख लो,” पहले ने कहा और दूसरा कंकड़ उठाकर हंस की तरफ फेंक दिया। हंस ने पत्थर की सरसराहट सुनकर अपना सिर घुमाया और पीछे देखा। फिर दूसरे भिक्षु ने एक गोल पत्थर उठाया और उसे इस तरह फेंका कि वह दूर वाली आँख पर लगा और पास वाली आँख से निकल गया। हंस दर्द से चीख उठा और हवा में लुढ़कते हुए दोनों भिक्षुओं के चरणों में गिर पड़ा।

पास खड़े कुछ भिक्षुओं ने यह घटना देखी और हंस को मारने वाले भिक्षु से कहा, “भाई, बुद्ध के धर्म में संन्यास लेकर आपने किसी जीवित प्राणी का प्राण छीनकर अत्यंत अशोभनीय कार्य किया है।” और उन दोनों भिक्षुओं को अपने साथ लेकर वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुए। बुद्ध ने हंस को मारने वाले भिक्षु से पूछा, “क्या यह आरोप सत्य है कि आपने किसी जीवित प्राणी का प्राण छीना है?” भिक्षु ने उत्तर दिया, “जी, पूज्यवर, यह सत्य है।”

बुद्ध ने पूछा, “हे भिक्षु, मेरे जैसे मोक्षदायी धर्म में दीक्षित होकर संसार से संन्यास लेने के बाद भी तुमने ऐसा क्यों किया? बुद्ध के संसार में प्रकट होने से पहले, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष गृहस्थ जीवन की चिंताओं में रहते हुए भी तुच्छतम बातों पर भी संशय करते थे। परन्तु तुम, बुद्ध के धर्म में दीक्षित होकर संसार से संन्यास लेने के बावजूद, बिलकुल भी संशय नहीं करते?”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 362)

हत्था सञ्ञतो पदा सञ्ञतो वाचाया सञ्ञतो सञ्ञतुत्तमो

अज्झत्थरतो समाहितो एको संतुसितो तं भिक्खुं आहु

हत्था सन्नातो [सन्नाटा]: यदि किसी के हाथ में रोक है; पद सन्नातो [सन्नता]: यदि किसी के पैर में रोक है; वाक्या सन्नातो [सन्नाटा]: शब्दों में संयमित; सन्नतुत्तमो [सन्नतुत्तम]: शरीर में संयमित; अज्झत्थरतो [अज्झत्थरता]: यदि वह अपने ध्यान के उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करता है; समाहितो [समाहित]: यदि उसका मन शांत है; एको : यदि वह एकांत में है; सैंटुसिटो [सैंटुसिटा]: यदि वह संतुष्ट है; तं : उसे; भिक्खुँ [भिक्खु]: साधु; आहु : कहा जाता है

जो अपने हाथ, पैर और वाणी पर नियंत्रण रखता है और स्वयं पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है, उसे भिक्षु कहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 362)

समाहितो : एक शांत मन: एक ऐसा मन जिसने पूर्ण एकाग्रता के माध्यम से समाधि - शांति प्राप्त कर ली हो।

समाधि शब्द का सबसे सटीक अर्थ एकाग्रता है। यह स्वयं बुद्ध द्वारा प्रयुक्त मूल शब्दों में से एक है, क्योंकि यह उनके प्रथम उपदेश में मिलता है। इसका प्रयोग सम्मा-समाधि , यानी सही एकाग्रता के अर्थ में किया जाता है। समाधि शब्द ' सनाधा' मूल से आया है , जिसका अर्थ है एक साथ रखना या एकाग्र होना, और यह मन की एक विशेष अवस्था को दर्शाता है। तकनीकी रूप से, यह मन की अवस्था और उस अवस्था को उत्पन्न करने की विधि दोनों को दर्शाता है।

धम्मदिन्ना और भक्त विशाखा के संवाद में समाधि पर मन की एक अवस्था और मानसिक प्रशिक्षण की विधि दोनों के रूप में चर्चा की गई है। विशाखा ने पूछा, “ समाधि क्या है ?” बहन ने उत्तर दिया, “ समाधि चित्तस एकग्गता है ।” “इसे कौन प्रेरित करता है?” “ सतिपट्ठाना के चार अनुप्रयोग इसे प्रेरित करते हैं।” “इसके लिए क्या आवश्यक है?” “ सम्पधान के चार सर्वोच्च प्रयास इसके लिए आवश्यक हैं।” “इसकी भावना क्या है ?” “उन्हीं सिद्धांतों — भावना और सर्वोच्च प्रयास — का अभ्यास और संवर्धन ही इसकी भावना है।”

इस चर्चा में समाधि को एक मानसिक अवस्था के रूप में चित्तस्स एकग्गता के रूप में परिभाषित किया गया है , और ऐसा प्रतीत होता है कि सूत्रों में इसकी यही पहली परिभाषा है। अभिधम्म में इस परिभाषा को दोहराया गया है और कई ऐसे शब्दों के साथ विस्तृत किया गया है जो बहुत मिलते-जुलते हैं, वास्तव में लगभग समानार्थी हैं।

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 363 - कोलिका वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 363 - कोकालिका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo mukhasamyato bhikkhu
mantabhani anuddhato
attham dhammanca dipeti
madhuram tassa bhasitam.

श्लोक 363 : वह भिक्षु जो अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के अर्थ और पाठ की व्याख्या करता है, उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

भिक्षु कोकालिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (363) कहा।

भिक्षु कोकालिका ने दो प्रमुख शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना का अपमान किया था। इस पाप कर्म के कारण कोकालिका पृथ्वी में समा गया और उसे पद्म निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ा। कोकालिका के इस अंजाम को जानकर भिक्षुओं ने कहा कि उसे इतना कष्ट इसलिए सहना पड़ा क्योंकि उसने अपनी वाणी पर नियंत्रण नहीं रखा था। उन भिक्षुओं से बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! एक भिक्षु को अपनी वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए; उसका आचरण अच्छा होना चाहिए; उसका मन शांत, संयमित और अपनी इच्छा से भटकने वाला नहीं होना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 363 : वह भिक्षु जो अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के अर्थ और पाठ की व्याख्या करता है, उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु कोकालिका की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय कोकालिका के संदर्भ में कहा था।

कोकालिका के कमल नरक में पुनर्जन्म लेने के बाद, सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने इस घटना पर चर्चा शुरू की और कहा, "हाय, भिक्षु कोकालिका का नाश हुआ क्योंकि उसने अपनी ज़ुबान पर लगाम नहीं रखी! क्योंकि जब उसने दो प्रमुख शिष्यों का अपमान किया, तो

धरती फट गई और उसे निगल लिया।" उसी क्षण बुद्ध वहाँ आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि कोकालिका का नाश हुआ है; उसके साथ पिछले जन्म में भी ऐसा ही हुआ था।" भिक्षुओं ने तुरंत इस मामले के बारे में सब कुछ जानने की इच्छा व्यक्त की। उनकी विनती को मानते हुए, मामले को स्पष्ट करने के लिए, बुद्ध ने निम्नलिखित बातें बताईं।

बहुत समय पहले हिमालय देश की एक झील में एक कछुआ रहता था। एक दिन भोजन की तलाश में भटकते हुए दो युवा हंसों की उससे मुलाकात हुई और देखते ही देखते वे पक्के दोस्त बन गए। एक दिन हंसों ने कछुए से कहा, "मित्र कछुए, हम हिमालय देश में चित्तकूट पर्वत पर एक सुनहरी गुफा में रहते हैं, और वह रहने के लिए बहुत ही रमणीय स्थान है। क्या तुम हमारे साथ वहाँ चलना चाहोगे?" कछुए ने उत्तर दिया, "स्वामी, मैं वहाँ कैसे पहुँचूँगा?" हंसों ने कहा, "यदि तुम चुप रहोगे, तो हम तुम्हें ले जाएँगे।" कछुए ने उत्तर दिया, "मैं चुप रहूँगा, मित्रों। मुझे अपने साथ ले चलो, और हम चलें।" हंसों ने कहा, "ठीक है।" तो हंसों ने कछुए को अपने दांतों से एक छड़ी के बीचोंबीच पकड़ने पर मजबूर कर दिया, और फिर छड़ी के दोनों सिरों को अपनी चोंच में पकड़कर हवा में उड़ गए।

कुछ गाँव के लड़कों ने एक कछुए को हंसों द्वारा इस प्रकार ले जाते हुए देखा और तुरंत चिल्ला उठे, "देखो, वे दो हंस एक कछुए को डंडे पर ले जा रहे हैं!" कछुए ने सोचा, "अरे आवारा, मेरे दोस्त मुझे अपने साथ ले जा रहे हैं तो तुम्हें इससे क्या लेना-देना?" और उसने अपने मन की बात कहने के लिए अपना मुँह खोला। तभी हंस बहुत तेज़ी से उड़ने लगे और वे वाराणसी शहर के राजमहल के ठीक ऊपर पहुँच गए। इसलिए जब कछुए ने डंडा छोड़ा, तो वह राजमहल के प्रांगण के ठीक बीचोंबीच ज़मीन पर गिर पड़ा और ज़मीन पर गिरते ही दो टुकड़ों में बिखर गया।

द्वितीय ग्रंथ में पाए जाने वाले इस बहुभाणी जातक का वर्णन करते हुए बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, एक भिक्षु को अपनी जीभ पर नियंत्रण रखना चाहिए, शांत जीवन जीना चाहिए, अपने आप को अहंकारी नहीं होने देना चाहिए और अपने हृदय को बुरी भावनाओं से मुक्त करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 363)

मुखसन्नतो मंतभानि अनुद्धतो यो भिक्खु
अत्थं धम्मञ्च दिपेति तस्स भासीतं मधुरं

मुखसन्नतो [मुखसन्नता]: मुँह में अनुशासित; मंतभानि : संयम से बोलना; अनुद्धतो [अनुद्धता]: अभिमान नहीं; यो भिक्खु : एक साधु; अत्थं [अत्थ]: महत्व; धम्म : शिक्षण; दीपेति : यह प्रदर्शित करता है; तस्सा : उसका; भासीताम् [भासीता]: उच्चारण; मधुरं [मधुरा]: मधुर

जो भिक्षु अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के पाठ का अर्थ समझाता है — उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 363)

इस श्लोक में उचित वाणी के गुणों (जो कि श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का एक भाग है) का समर्थन किया गया है। बुद्ध ने अनियंत्रित और अनुशासनहीन वाणी के पाँच दोषों और खतरों की ओर इशारा किया है। जो व्यक्ति वाणी में अनुशासित नहीं होता, वह (i) झूठ बोलने का आदी होता है; (ii) निंदा करने की प्रवृत्ति रखता है; (iii) कठोर और आलसी वाणी का आदी होता है; और (iv) मृत्यु के बाद बुरे कर्मों में जन्म लेता है।

सही वाणी के चार गुण हैं। वे इस प्रकार हैं:

(1) झूठ बोलने से परहेज करता है। ऐसा व्यक्ति ईमानदार, सच्चा और भरोसेमंद होता है;

(2) जो व्यक्ति सही वाणी का अभ्यास करता है, वह निंदा या चुगली नहीं करता। जो व्यक्ति इन प्रकार की बुरी बातों से बचता है, वह सामाजिक सद्भाव में योगदान देता है;

(3) जो लोग सही वाणी का अभ्यास करते हैं, वे कठोर शब्दों का प्रयोग करने से बचते हैं। इस प्रकार, वे लोगों को खुशी देते हैं और कठोर शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाली मानसिक पीड़ा की संभावना से बचते हैं।

(4) यह अभ्यासकर्ता को व्यर्थ और निरर्थक शब्दों से बचने में सक्षम बनाता है। बुद्ध ने चेतावनी दी कि व्यर्थ की बातों और गपशप में लिप्त होने से चुप रहना कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 364

———————————————————————

(धम्मपद 363) <<<< पिछला || धम्मपद 364 || अगला >>>> (धम्मपद 365 और 366)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 364 - धम्मरामत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 364 - धम्मरामत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

धम्मरमो धम्मरतो
धम्मम अनुविचिन्तयम
धम्मम अनुस्सरम भिक्खु
saddhamma(1) na parihayati.

श्लोक 364 : जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित रहता है, जो धम्म का ध्यान करता है और सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह धर्मात्माओं के धम्म से विचलित नहीं होता।(1)

---

1. सद्धम्म: गुणी लोगों का धम्म; अर्थात्, ज्ञानोदय के सैंतीस कारक (बोधिपक्खीय धम्म) और नौ पारलौकिक (लोकुत्तरा धम्म)।

थेरा धम्मराम की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा धम्मराम के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (364) कहा।

जब शिष्यों को यह पता चला कि बुद्ध चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो अधिकांश पुथुज्जन भिक्षु (अर्थात, वे भिक्षु जिन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त नहीं किया था) अत्यंत निराश और व्याकुल हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वे बुद्ध के निकट ही रहे, शायद ही कभी उनकी उपस्थिति से दूर गए। हालांकि, धम्मराम नाम का एक भिक्षु था जो एकांत में ही रहा और बुद्ध के पास नहीं गया। उसका इरादा बुद्ध के देहांत से पहले अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करना था। इसलिए उसने अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में गहन परिश्रम किया। अन्य भिक्षुओं ने उसके इस दृष्टिकोण और उसकी महान महत्वाकांक्षा को न समझते हुए उसके व्यवहार को गलत समझा।

उन भिक्षुओं ने धम्मराम को बुद्ध के पास ले जाकर उनसे कहा, “हे पूज्यवर! ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु को आपके प्रति कोई स्नेह, आदर या श्रद्धा नहीं है; यह एकांत में ही रहता है जबकि अन्य भिक्षु हर समय आपकी उपस्थिति में उपस्थित रहते हैं।” जब अन्य भिक्षुओं ने अपनी बात कह दी, तो धम्मराम ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि वे उनसे मिलने क्यों नहीं आए थे और यह भी बताया कि वे अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में पूर्ण परिश्रम कर रहे थे।

बुद्ध धम्मराम के स्पष्टीकरण और आचरण से संतुष्ट और अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र धम्मराम, तुमने बहुत अच्छा किया है। जो भिक्षु मुझसे प्रेम और आदर करता है, उसे तुम्हारे समान व्यवहार करना चाहिए। जो लोग मुझे फूल, सुगंध और अगरबत्ती अर्पित करते हैं, वे वास्तव में मुझे प्रणाम नहीं करते। केवल वे ही जो धम्म का अभ्यास करते हैं, वे ही वास्तव में मुझे प्रणाम करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 364 : जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित होता है, जो धम्म का ध्यान करता है और सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह सद्गुणी धम्म से विचलित नहीं होता।

प्रवचन के अंत में थेरा धम्मराम ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय धम्मराम की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य धम्मराम के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब शिष्यों को यह पता चला कि बुद्ध चार महीनों में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे , तो अधिकांश पुथुज्जन भिक्षु (अर्थात, वे भिक्षु जिन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त नहीं किया था) अत्यंत निराश और व्याकुल हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वे बुद्ध के निकट ही रहे, शायद ही कभी उनकी उपस्थिति से दूर गए। हालांकि, धम्मराम नाम का एक भिक्षु था जो एकांत में रहता था और बुद्ध के पास नहीं जाता था। उसका इरादा बुद्ध के देहांत से पहले अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करना था। इसलिए उसने अंतर्दृष्टि ध्यान का गहन अभ्यास किया। अन्य भिक्षुओं ने उसके दृष्टिकोण और उसकी महान महत्वाकांक्षा को न समझते हुए उसके व्यवहार को गलत समझा।

वे भिक्षु धम्मराम को बुद्ध के पास ले गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर! ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु को आपके प्रति कोई स्नेह, आदर या श्रद्धा नहीं है; यह एकांत में ही रहता है जबकि अन्य भिक्षु हर समय आपके निकट रहते हैं।" जब अन्य भिक्षुओं ने अपनी बात कह दी, तो धम्मराम ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि वे बुद्ध से मिलने क्यों नहीं आए थे और यह भी बताया कि वे अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में पूर्ण परिश्रम कर रहे थे।

बुद्ध धम्मराम के स्पष्टीकरण और आचरण से संतुष्ट और अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र धम्मराम, तुमने बहुत अच्छा किया है। जो भिक्षु मुझसे प्रेम और आदर करता है, उसे तुम्हारे समान व्यवहार करना चाहिए। जो लोग मुझे फूल, सुगंध और अगरबत्ती अर्पित करते हैं, वे वास्तव में मुझे प्रणाम नहीं करते। केवल वे ही जो धम्म का अभ्यास करते हैं, सच्चे अर्थों में मुझे प्रणाम करते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 364)

धम्मरामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिंतयम्

धम्मं अनुसारं भिक्खु सद्धम्म न परिहायति

धम्मरामो [धम्मराम]: उसका निवास स्थान शिक्षण है; धम्मरतो [धम्मरता]: धम्म से जुड़ा हुआ; धम्मं अनुविचिंतयं [अनुविचिंतय]: वह धम्म पर बार-बार चिंतन करता है; धम्मं अनुसारं [अनुस्सर]: धम्म को याद रखना और याद रखना; भिक्खु : साधु; सधम्म : महान शिक्षण से; न परिहायति : भटकता नहीं

जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित रहता है, जो धम्म का ध्यान करता है और जो सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह सदाचारी धम्म से विचलित नहीं होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 364)

धम्म के गुण : यह श्लोक बुद्ध ने एक ऐसे भिक्षु की प्रशंसा में कहा था जो धम्म के गुणों पर पूर्ण एकाग्रता के साथ रहता था।

धम्म के छह उत्कृष्ट गुणों का वर्णन इस प्रकार है:

(1) स्वक्खातो भगवता धम्मो: बुद्ध ने धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की है। यह आरंभ में उत्तम है, मध्य में उत्तम है और अंत में उत्तम है। धम्म में हमेशा केवल एक ही स्वाद होता है - निर्वाण का;

(2) संदित्तिको: इसका तात्पर्य यह है कि धम्म के लाभकारी परिणाम यहीं और अभी प्रकट होंगे;

(3) अकालिको: धम्म कालातीत है। क्योंकि धम्म वास्तविकता है, इसलिए यह समय के साथ कभी नष्ट नहीं होता;

(4) एहिपस्सिको: धम्म किसी के भी आने और देखने के लिए खुला है - एहिपस्सिको का शाब्दिक अर्थ है आओ और देखो;

(5) ओपनायिको: इसका अर्थ है कि जो लोग धम्म का पालन करते हैं वे शाश्वत शांति और सुख की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चलेंगे;

(6) वेदिताब्बो विञ्ञुहि: इसका तात्पर्य यह है कि धम्म को प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को स्वयं समझना होगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 365,366

(धम्मपद 364) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 365 और 366 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 367)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 365 और 366 - विपक्खासेवक भिक्खु वत्थु

1.1डॉ माया टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद छंद 365 और 366 - विपक्खासेवक भिक्खु वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
सलाभम नटिमनेय्या
na' nnesam pihayam care
annesam pihayam bhikkhu
समाधिं नाधिगच्छति.
Appalabhopi ce bhikkhu
salabham nati mannati
tam ve deva pasamasanti
suddhajivim atanditam.

श्लोक 365 : जो कुछ उचित साधनों से प्राप्त हुआ हो, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के लाभों से ईर्ष्या करनी चाहिए। जो भिक्षु दूसरों से ईर्ष्या करता है, वह समाधि प्राप्त नहीं कर सकता।

श्लोक 366 : यद्यपि उसे थोड़ा ही प्राप्त होता है, यदि कोई भिक्षु उचित साधनों से प्राप्त हुई वस्तु का तिरस्कार नहीं करता, तो देव (देवदूत) निश्चित रूप से उसकी प्रशंसा करेंगे जो शुद्ध जीवन व्यतीत करता है और आलसी नहीं है।

देवदत्त के अनुयायी के साथ संबंध रखने वाले एक भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (365) और (366) का उच्चारण किया, जो देवदत्त के अनुयायी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखने वाले एक भिक्षु के संदर्भ में था।
एक बार, बुद्ध के एक भिक्षु शिष्य, देवदत्त के एक अनुयायी के साथ घनिष्ठ मित्रता के कारण, देवदत्त के मठ में गए और कुछ दिनों तक वहाँ रहे। अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वह देवदत्त के अनुयायियों के साथ मेलजोल रख रहे थे और यहाँ तक कि देवदत्त के मठ में भी गए थे, जहाँ उन्होंने कुछ दिन भोजन, विश्राम और वहाँ के उत्तम भोजन और सुख-सुविधाओं का आनंद लिया। बुद्ध ने उस भिक्षु को बुलवाया और उनसे पूछा कि क्या उनके व्यवहार के बारे में सुनी गई बातें सच हैं। भिक्षु ने स्वीकार किया कि वह कुछ दिनों के लिए देवदत्त के मठ में गए थे, लेकिन उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्होंने देवदत्त की शिक्षाओं को नहीं अपनाया था।
तब बुद्ध ने उन्हें फटकारा और बताया कि उनका व्यवहार देवदत्त के अनुयायी जैसा प्रतीत होता है। बुद्ध ने उनसे कहा, "हे मेरे पुत्र, यद्यपि तुमने देवदत्त के सिद्धांतों को नहीं अपनाया है, फिर भी तुम उनके अनुयायियों की तरह व्यवहार कर रहे हो। एक भिक्षु को जो कुछ प्राप्त होता है, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए और दूसरों के लाभों का लालच नहीं करना चाहिए। जो भिक्षु दूसरों के सौभाग्य से ईर्ष्या करता है, वह न तो समाधि, न अंतर्दृष्टि और न ही निर्वाण के मार्ग को प्राप्त कर सकता है। केवल वही भिक्षु जो अपने प्राप्त हुए सभी लाभों से संतुष्ट रहता है, एकाग्रता, अंतर्दृष्टि और मार्ग को प्राप्त कर सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 365 : जो कुछ उचित साधनों से प्राप्त हुआ हो, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के लाभों से ईर्ष्या करनी चाहिए। जो भिक्षु दूसरों से ईर्ष्या करता है, वह समाधि प्राप्त नहीं कर सकता।

श्लोक 366 : यद्यपि उसे थोड़ा ही प्राप्त होता है, यदि कोई भिक्षु उचित साधनों से प्राप्त हुई वस्तु का तिरस्कार नहीं करता, तो देव (देवदूत) निश्चित रूप से उसकी प्रशंसा करेंगे जो शुद्ध जीवन व्यतीत करता है और आलसी नहीं है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गद्दार भिक्षु की कहानी
एक बार, बुद्ध के एक भिक्षु का देवदत्त के नेतृत्व वाले गुट के एक भिक्षु से घनिष्ठ मित्रता थी। देवदत्त बुद्ध का विरोधी था। एक दिन जब वह अपने साथी भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के बाद नाश्ता करके लौट रहा था, तो उस गुट-विरोधी भिक्षु ने उससे मुलाकात की और

पूछा, "आप कहाँ गए थे?" भिक्षु ने कहा, "अमुक स्थान पर भिक्षा मांगने गया था।" "क्या आपको कुछ खाने को मिला?" भिक्षु ने कहा, "हाँ, मिला।" भिक्षु ने कहा, "यहाँ हमें भरपूर दान और भेंट मिलती है; कुछ दिन हमारे साथ यहीं ठहरिए।" भिक्षु ने अपने मित्र की बात मानी, देवदत्त के भिक्षुओं के साथ कई दिन बिताए और फिर अपने समुदाय में लौट आया।

भिक्षुओं ने बुद्ध को उसके अपराध की सूचना देते हुए कहा, "हे पूज्यवर, यह भिक्षु देवदत्त को दिए गए उपहारों और भेंटों का आनंद ले रहा है; यह देवदत्त का पक्षधर है।" बुद्ध ने भिक्षु को अपने समक्ष बुलाया और उससे पूछा, "क्या यह बात सच है कि तुमने ऐसा किया है?" "जी हे पूज्यवर, मैं अपने एक मित्र युवक भिक्षु के कारण कुछ दिनों के लिए देवदत्त के भिक्षुओं के साथ रहा, परन्तु मैं देवदत्त के विचारों का समर्थक नहीं हूँ।" बुद्ध ने कहा, "यह ठीक है कि तुम्हारे विचार गलत नहीं हैं; फिर भी तुम ऐसे घूमते हो मानो तुम हर किसी के विचार को मानते हो। परन्तु यह पहली बार नहीं है जब तुमने ऐसा किया है; तुमने पिछले जन्म में भी ऐसा ही किया था।"

भिक्षुओं ने कहा, "हे पूज्यवर, हमने अभी-अभी जो कुछ उन्होंने किया, वह अपनी आँखों से देखा है; लेकिन पिछले जन्म में उनके क्या विचार थे? कृपया हमें इसके बारे में सब कुछ बताइए।" तो उनके अनुरोध के उत्तर में, बुद्ध ने निम्नलिखित कथा सुनाई:

अतीत की कहानी: महिलामुख जातक (एलिफेंट डैम्सेल-फेस)

चोरों और हत्यारों की बातें सुनकर एक शांत स्वभाव का हाथी उग्र हो गया और उसने अपने रखवालों को मार डाला। लेकिन ऋषियों और ब्राह्मणों की बातें सुनकर वह फिर से शांत हो गया। वह हाथी, जिसका चेहरा अपनत्वमय था, असल में गद्दार भिक्षु था।

पुराने समय के चोरों की बातें सुनकर, सुंदर चेहरे वाला हाथी इधर-उधर भटकता रहा, मारता-पीटता रहा। लेकिन संयमी पुरुषों की बातें सुनकर, इस श्रेष्ठ हाथी ने अपने सभी अच्छे गुण पुनः प्राप्त कर लिए।

जब बुद्ध ने इस महिलामुख जातक का वर्णन किया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जो भी भिक्षु है, उसे केवल अपने द्वारा प्राप्त वस्तुओं से ही संतुष्ट रहना चाहिए और दूसरों की वस्तुओं का लालच नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि वह दूसरों की वस्तुओं का लालच करेगा, तो उसे न तो समाधि की अवस्था प्राप्त होगी, न आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि, न मार्ग, न फल — इनमें से कुछ भी नहीं। परन्तु यदि वह केवल अपने द्वारा प्राप्त वस्तुओं से ही संतुष्ट रहेगा, तो ये सब वस्तुएँ उसे प्राप्त हो जाएँगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 365)

सलभं नातिमान्येया अन्यानेसं पिहायं न केयर
अन्नेसां पिहायं भिक्खु समाधिं न अधिगच्छति

salābhaṃ [salābha]: जो किसी ने दिया है; nātimaññeyya : कम मत समझो; āññesaṃ [āññesa]: दूसरों का लाभ; pihayaṃ [pihaya]: अपेक्षा रखना; na care : इधर-उधर मत भटकना; aññesaṃ pihayaṃ bhikkhu : वह भिक्षु जो दूसरों के लाभ की अपेक्षा रखता है; samādhiṃ [samādhi]: मन की शांति; nādhigacchati : नहीं पहुँचेगा

आपको जो मिला है, उसे कम मत समझिए। और फिर, दूसरों को जो मिला है, उसकी अपेक्षा मत कीजिए। यदि कोई साधु दूसरों को जो मिला है, उसकी लालसा करता है, तो उसे कभी मन की शांति प्राप्त नहीं होगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 366)

भिक्खु अप्पलाभो अपि सीई सलभं नातिमन्नति
शुद्धाजीवम् अतंदितं तं देवा वे पसंशन्ति

भिक्खु : भिक्षु; अप्पलाभो अपि : बहुत कम प्राप्त करने पर भी; चे : यदि; सलाभम् [सलाभ]: जो किसी ने प्राप्त किया हो; नातिमञ्ञति : उपेक्षा नहीं करता; शुद्धजीवी [शुद्धजीवी]: शुद्ध जीवन धारण करने वाला; अतंदितम् [अतंदित]: सुस्त नहीं; तम् : वह भिक्षु; देवा अपि: देवता भी; पसंसन्ति : प्रशंसा

भिक्षु को भले ही थोड़ा ही प्राप्त हुआ हो, लेकिन वह उसे कम नहीं आंकता। वह जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, उससे संतुष्ट है। ऐसा भिक्षु, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, देवताओं द्वारा सराहा जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 365-366)

इस श्लोक में बुद्ध भिक्षुओं को जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहने की सलाह देते हैं। उन्हें दूसरों को क्या प्राप्त होता है, इस बारे में न सोचने की सलाह दी जाती है। जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहना अप्पिच्छता और पच्चय संतोष कहलाता है । अप्पिच्छता — कम इच्छाओं का होना (संतोष) — भिक्षु के अनिवार्य गुणों में से एक है। भिक्षु के चार श्रेष्ठ नियम हैं: किसी भी वस्त्र से संतुष्ट रहना, किसी भी भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहना, किसी भी निवास से संतुष्ट रहना और ध्यान और वैराग्य में आनंद लेना। "अब, भिक्षु किसी भी वस्त्र से, किसी भी भिक्षा भोजन से, किसी भी निवास से संतुष्ट रहता है, मानसिक साधना और वैराग्य में आनंद और प्रसन्नता पाता है। परन्तु वह इस कारण अहंकारी नहीं होता, न ही दूसरों को नीचा देखता है। अब, जो भिक्षु इसमें योग्य और अथक है, जो स्पष्ट रूप से सचेत और जागरूक रहता है, ऐसे भिक्षु के बारे में कहा जाता है कि वह प्राचीन, श्रेष्ठ नियमों में दृढ़ता से स्थापित है, जिन्हें सर्वोच्च नियम माना जाता है।"

भिक्षु संघ : भिक्षु संघ (बुद्धत्व) की शुरुआत उन पांच प्रकार के भिक्षुओं से हुई जिन्हें बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था। उस समय से, यासा के संघ में शामिल होने के बाद संघ का विस्तार हुआ।

वाराणसी में यासा नाम का एक करोड़पति का पुत्र था, जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था। सांसारिक जीवन की निरर्थकता को जानकर, वह घर से चुपके से निकल गया और कहने लगा, "मैं व्यथित हूँ, मैं पीड़ित हूँ," और इसिपताना की ओर चल पड़ा, जहाँ बुद्ध पाँच भिक्षुओं को अरहंत पद प्राप्त कराने के बाद अस्थायी रूप से निवास कर रहे थे।

तब बुद्ध ने कहा, "हे यस! यहाँ कोई कष्ट नहीं है! हे यस! यहाँ कोई उत्पीड़न नहीं है! हे यस! इधर आओ! बैठो। मैं तुम्हें धम्म का उपदेश दूंगा।"

दुखी यासा बुद्ध के उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी स्वर्ण की चप्पलें उतारकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) प्राप्त की।

प्रारंभ में बुद्ध ने उनसे दान, नैतिकता, दिव्य अवस्थाओं, कामदीनव के दुष्परिणामों और त्याग के लाभों के बारे में बात की । जब उन्होंने पाया कि उनका मन ग्रहणशील है और गहन शिक्षाओं को समझने के लिए तैयार है, तो उन्होंने उन्हें चार आर्य सत्यों की शिक्षा दी।

यासा की माता ने सबसे पहले अपने पुत्र के लापता होने का पता लगाया और अपने पति को इसकी सूचना दी। करोड़पति ने तुरंत चारों दिशाओं में घुड़सवार भेजे और स्वयं सोने की चप्पलों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए इसिपताना की ओर चल पड़ा। बुद्ध ने उसे दूर से आते हुए देखा और अपनी मानसिक शक्तियों से यह निश्चय किया कि वह अपने पुत्र को न देख पाए। करोड़पति बुद्ध के पास पहुँचा और आदरपूर्वक पूछा कि क्या उन्होंने उसके पुत्र यासा को देखा है।

"अच्छा, तो महाराज, कृपया नीचे आइए। आप अपने पुत्र को देख सकेंगे," बुद्ध ने कहा। यह खुशखबरी सुनकर वे प्रसन्न हुए और बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया, और वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने खुशी से जयजयकार कर दी।

"अद्भुत! यह ऐसा है मानो कोई व्यक्ति उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जला दे ताकि देखने वाले देख सकें! बुद्ध ने भी इसी प्रकार विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत की व्याख्या की है।"

"मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेता हूँ। बुद्ध मुझे आज से जीवन के अंत तक अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें!" वे त्रिविध सूत्र के साथ शरण लेने वाले पहले गृहस्थ अनुयायी थे।

अपने पिता को दिए गए प्रवचन को सुनकर यासा ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद बुद्ध ने अपनी इच्छाशक्ति वापस ले ली ताकि यासा के पिता अपने पुत्र को देख सकें। करोड़पति ने अपने पुत्र को देखा और अगले दिन बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने मौन रहकर निमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

धनी व्यक्ति के चले जाने के बाद, यासा ने बुद्ध से निम्न और उच्च दीक्षा प्रदान करने की विनती की। "आओ, हे भिक्षुओं! मैंने जो सिखाया है वही सिद्धांत है। दुखों का पूर्ण अंत करने के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।" इन शब्दों के साथ बुद्ध ने उन्हें उच्च दीक्षा प्रदान की। पूज्य यासा के साथ अरहंतों की संख्या बढ़कर छह हो गई।

निमंत्रण पर, बुद्ध अपने छह शिष्यों के साथ उस धनी व्यक्ति के घर गए। पूज्य यासा की माता और उनकी पूर्व पत्नी ने बुद्ध द्वारा प्रतिपादित उपदेश सुने और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त करके, उनकी पहली दो गृहस्थ महिला अनुयायी बनीं।

आदरणीय यासा के चार विशिष्ट मित्र थे, जिनके नाम विमला, सुबाहु, पुन्नाजी और गवम्पति थे। जब उन्हें पता चला कि उनके परम पूज्य मित्र ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया है, तो वे आदरणीय यासा के पास आए और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की इच्छा व्यक्त की। आदरणीय यासा ने उन्हें बुद्ध से परिचित कराया, और धम्म को सुनकर उन्होंने भी अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

पूज्य यासा के पचास और योग्य मित्र, जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख परिवारों से थे, बुद्ध से शिक्षा प्राप्त करके अरहंत बन गए और पवित्र संघ में प्रवेश कर गए। उनके ज्ञानोदय के लगभग दो महीने ही बीते थे कि अरहंतों की संख्या धीरे-धीरे बढ़कर साठ हो गई। वे सभी प्रतिष्ठित परिवारों से थे और योग्य पिताओं के योग्य पुत्र थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 367

(धम्मपद 365 और 366) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 367 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 368 से 376)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 367 - पंचगगदायक ब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 367 - पंचगगदायक ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbaso namarupasmim
yassa natthi mamayitam
asata ca na socati
sa ve "bhikkhu" ti vuccati.

श्लोक 367 : जो मन और शरीर के समूह (नाम-रूप) को "मैं और मेरा" नहीं मानता, और जो (मन और शरीर के) विघटन पर शोक नहीं करता, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

अपने श्रम के प्रथम फल देने वाले की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (367) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जो पाँच बार प्रथम फल दान करने की आदत रखता था। यहाँ प्रथम फल से तात्पर्य खेत की प्रथम उपज से है। खेत की प्रथम उपज कटाई के समय, अनाज निकालने के समय, भंडारण के समय, खाना पकाने के समय और भोजन परोसने के समय दान की जाती है।

एक दिन बुद्ध ने ब्राह्मण और उनकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि दंपति के अनागामी पुण्य प्राप्ति का समय आ गया है। तदनुसार, बुद्ध उनके घर की ओर चल पड़े और भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े हो गए। ब्राह्मण उस समय भोजन कर रहे थे और घर के भीतरी भाग की ओर मुख किए हुए थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को नहीं देखा। उनकी पत्नी, जो उनके पास ही थीं, ने बुद्ध को देखा, लेकिन उन्हें डर था कि यदि उनके पति ने बुद्ध को भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़ा देख लिया, तो वे अपनी थाली के सारे चावल भिक्षा में दे देंगे और फिर उन्हें दोबारा खाना बनाना पड़ेगा। यह सोचकर वे अपने पति के पीछे खड़ी हो गईं ताकि वे बुद्ध को न देख सकें; फिर वे चुपचाप पीछे हटती गईं और धीरे-धीरे बुद्ध के पास आकर उनसे फुसफुसाकर बोलीं, "आदरणीय महोदय! आज हमारे पास आपके लिए भिक्षा नहीं है।" लेकिन बुद्ध ने घर से न जाने का निश्चय कर लिया था; उन्होंने बस अपना सिर हिलाया। यह देखकर ब्राह्मण की पत्नी अपनी हंसी नहीं रोक पाईं और जोर से हंस पड़ीं।

उसी क्षण ब्राह्मण ने मुड़कर देखा और बुद्ध को देखा। वह तुरंत समझ गया कि उसकी पत्नी ने क्या किया है, और वह चिल्लाया, "हे मेरी अभागी पत्नी! तूने मुझे बर्बाद कर दिया।" फिर, चावल की थाली उठाकर वह बुद्ध के पास गया और क्षमा याचना करते हुए बोला, "आदरणीय महोदय! कृपया मेरे इस चावल को स्वीकार कर लें, जो मैंने आधा खा लिया है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! मेरे लिए कोई भी चावल स्वीकार्य है, चाहे वह अभी तक खाया न गया हो, आधा खाया गया हो, या यहाँ तक कि आखिरी चम्मच ही बचा हो।" बुद्ध के उत्तर से ब्राह्मण बहुत आश्चर्यचकित हुआ; साथ ही, उसे प्रसन्नता भी हुई क्योंकि बुद्ध ने उसके चावल का अर्पण स्वीकार कर लिया था। ब्राह्मण ने बुद्ध से पूछा कि भिक्षु का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाता है और भिक्षु की परिभाषा क्या है। बुद्ध जानते थे कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने मन और शरीर (नाम-रूप) के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था; तब उन्होंने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता, उसे भिक्षु कहते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 367 : जो मन और शरीर के समूह (नाम-रूप) को "मैं और मेरा" नहीं मानता, और जो (मन और शरीर के) विघटन पर शोक नहीं करता, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस ब्राह्मण की कहानी जिसने बुद्ध को भिक्षा दी

एक समय की बात है, सावत्थी में एक ब्राह्मण रहता था, जो बहुत उदार था और हमेशा बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा में भोजन देता था।

एक दिन बुद्ध ने ब्राह्मण और उनकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों अनागामी (पापस्थित) हो सकते हैं। तदनुसार, बुद्ध उनके घर की ओर चल पड़े और द्वार पर खड़े हो गए। ब्राह्मण उस समय भोजन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को नहीं देखा। उनकी पत्नी ने उन्हें देखा, लेकिन उन्हें डर था कि बुद्ध को देखकर उनके पति अपना सारा भोजन उन्हें अर्पित कर देंगे, और फिर उन्हें दोबारा खाना बनाना पड़ेगा। इसी विचार के साथ, वह अपने पति के सामने खड़ी हो गईं ताकि वे बुद्ध को न देख सकें। फिर वह चुपचाप पीछे हट गईं और धीरे-धीरे बुद्ध के पास आकर फुसफुसाते हुए बोलीं, "आदरणीय! आज हमारे पास आपके लिए भिक्षा का भोजन नहीं है।" बुद्ध ने केवल अपना सिर हिलाया। उनका यह हावभाव देखकर ब्राह्मण की पत्नी अपनी हंसी नहीं रोक पाईं और जोर से हंस पड़ीं।

उसी क्षण ब्राह्मण ने मुड़कर देखा और बुद्ध को देखा। वह तुरंत समझ गया कि उसकी पत्नी ने क्या किया है और रोते हुए बोला, "पत्नी, मैं बर्बाद हो गया। जब हमारे पूज्य गुरु द्वार पर खड़े थे, तब तुम्हें मुझे सूचित करना चाहिए था। ऐसा न करके तुमने मुझे बहुत शर्मिंदा किया है।" फिर, चावल की थाली उठाकर वह बुद्ध के पास गया और क्षमा याचना करते हुए बोला, "पूज्यवर! कृपया मेरे इस चावल को स्वीकार करें, जिसे मैंने आधा खा लिया है। मुझे बहुत खेद है कि मुझे आपको आधा खाया हुआ भोजन अर्पित करना पड़ रहा है।" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! भिक्षा में प्राप्त कोई भी भोजन मेरे लिए उपयुक्त है, चाहे वह खाया गया हो या नहीं।" ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि बुद्ध ने उसका भोजन ग्रहण कर लिया था। उसने पूछा कि भिक्षु का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाता है और भिक्षु की परिभाषा क्या है। बुद्ध जानते थे कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों को मन और शरीर (नाम-रूप) का ज्ञान था, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता, वही भिक्षु कहलाता है।" प्रवचन के अंत में, ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने संतत्व की तीसरी अवस्था प्राप्त कर ली।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 367)

यस्सा नामरूपस्मि सब्बसो ममयितं नत्थि

असता च न सोकाति सो वे भिक्खु इति वुकाति

यस्सा : किसी के लिए; नामरूपस्मि: [नामरूपस्मि]: नाम और रूप में; सब्बासो [सब्बासा]: सभी रूपों में; ममयितं नत्थि : कोई स्वार्थ नहीं है; असता च : जब वे क्षय हो जाते हैं तब भी; ना सोकाती : कोई रोना नहीं है; तो : वह व्यक्ति; सीई : निश्चित रूप से; भिक्खु इति : एक साधु; वुकाति : कहा जाता है

वह अपने नाम और स्वरूप के बोध से परे जा चुका है। उसके लिए 'मैं', 'मेरा' या 'मेरी' का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि उसका नाम और स्वरूप नष्ट हो जाए, तो भी वह शोक नहीं करेगा। ऐसे व्यक्ति को भिक्षु कहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 367)

नाम-रूपस्मिं : मन और शरीर; मानसिकता और देह। यह प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) में चौथा सूत्र है, जहाँ यह चेतना से बद्ध है, और स्वयं छह प्रकार की इंद्रिय-आधार की शर्त है। प्रतीत्यसमुत्पाद के विभिन्न रूपों वाले दो ग्रंथों में, चेतना और मन-शरीर की परस्पर बद्धता का वर्णन किया गया है, और बाद वाले को इंद्रिय-प्रभाव (फस्सा) की शर्त कहा गया है।

सात शुद्धिकरणों (विशुद्धि) में से तीसरा , दृष्टियों का शुद्धिकरण, मन और शरीर के सही अवलोकन के रूप में परिभाषित किया गया है और इसमें अंतर्दृष्टि ध्यान (विपस्सना) के माध्यम से मन और शरीर के विवेक के विभिन्न तरीके दिए गए हैं। इस संदर्भ में, मन (नाम) में चेतना सहित सभी चार मानसिक समूह शामिल हैं।

पंच-भाव में मन और शरीर अविभाज्य और परस्पर निर्भर होते हैं; इसे दो गट्ठों के गट्ठों से तुलना करके समझाया गया है जो एक दूसरे के सहारे रखे गए हैं: एक के गिरने पर दूसरा भी गिर जाएगा; और एक मजबूत टांगों वाले अंधे व्यक्ति द्वारा अपने कंधों पर तेज दृष्टि वाले कमजोर टांगों वाले व्यक्ति को ले जाने के उदाहरण से भी समझाया गया है: वे केवल एक दूसरे की सहायता से ही कुशलतापूर्वक चल-फिर सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 368,376

———————————————————————

(धम्मपद 367) <<<< पिछला || धम्मपद 368 से 376 || अगला >>>> (धम्मपद 377)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 368 से 376 - संभुलाभिक्खु वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 368 से 376 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु
———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Mettavihari yo bhikkhu
pasanno buddhasasane
adhigacche padam santam
sankharupasamam sukham.
Sinca bhikkhu imam navam
sitta te lahumessati
chetva raganca dosanca
tato nibbanamehisi.
Panca(1) chinde panca(2) jahe
panca(3) cuttari bhavaye
pancasangatigo(4) bhikkhu
"oghatinno" ti vuccati.
Jhaya bhikkhu ma pamado
ma te kamagune ramessu cittam
ma lohagulam gili pamatto
मा कंडी "दुक्खमिदन" ती दयहमनो।
नत्थी झनम अपन्नस्स
पन्ना नत्थी अजहयातो
yamhi jhananca panna ca
sa ve nibbanasantike.
सुननगरम पवित्तस्सा
संतचित्तस्सा भिक्खुनो
amanusi rati hoti
सम्मा धम्मम विपस्सतो.
यतो यतो सम्मासति
खन्धनाम उदयब्बायम
लभाति पिटिपमोज्जम
amatam tam vijanatam.
तात्रयामादि भवति
idha pannassa bhikkhuno
indriyagutti santutthi
patimokkhe ca samvaro.
Mitte bhajassu kalyane

suddhajive atandite
पतिसंथारवुत्यास्सा
acarakusalo siya
tato pamojjabahulo(5)
dukkhassantam karissati.

श्लोक 368 : जो भिक्षु प्रेम और करुणा का अभ्यास करते हुए जीवन व्यतीत करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित रहता है, वह निर्वाण (शांति, बिना शर्त, आनंदमयी अवस्था) को प्राप्त करेगा।

श्लोक 369 : हे भिक्षु, इस नाव (अपने शरीर) से (गलत विचारों का) पानी निकाल दो; खाली होने पर यह तेजी से चलेगी; कामवासना और द्वेष को त्यागकर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

श्लोक 370 : पाँचों (निचले पाँच बंधनों) को काट डालो, पाँचों (ऊपरी पाँच बंधनों) का त्याग कर दो; और पाँचों (नियंत्रण शक्तियों) को विकसित करो। जो भिक्षु पाँचों बंधनों (वासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) से मुक्त हो जाता है, उसे "संसार के जलप्रपात को पार करने वाला" कहा जाता है।

श्लोक 371 : हे भिक्षु, ध्यान करो और असावधान मत रहो; अपने मन को इंद्रिय सुखों में लिप्त मत होने दो। असावधान होकर लोहे का (गर्म) टुकड़ा मत निगलो; जब तुम (निरय/नरक में) जल रहे हो, तो यह मत कहो, "यह तो वास्तव में कष्ट है।"

श्लोक 372 : बुद्धि के अभाव में एकाग्रता संभव नहीं; एकाग्रता के अभाव में बुद्धि संभव नहीं। जो एकाग्रता और बुद्धि दोनों रखता है, वही वास्तव में निर्वाण के निकट है।

श्लोक 373 : वह भिक्षु जो एकांतवास में जाता है (ध्यान करने के लिए), जिसका मन शांत है, जो धम्म को स्पष्ट रूप से समझता है, वह उस आनंद का अनुभव करता है जो (साधारण) मनुष्यों के आनंद से परे है।

श्लोक 374 : जब भी वह खन्धों के उद्भव और विनाश को स्पष्ट रूप से समझ लेता है, तो उसे आनंद और परमानंद प्राप्त होता है। बुद्धिमानों के लिए यही निर्वाण (अमरता) का मार्ग है।

श्लोक 375 : इस शिक्षा में एक बुद्धिमान भिक्षु के लिए, यह (निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का) आरंभ है: इंद्रियों पर नियंत्रण, संतोष और मूलभूत उपदेशों के अनुसार संयम।

श्लोक 376 : अच्छे मित्रों की संगति करो, जो ऊर्जावान हों और जिनकी आजीविका शुद्ध हो; उसे मिलनसार और आचरण में सही होना चाहिए। तब वह (अक्सर) अत्यधिक आनंद का अनुभव करते हुए (पुनर्जन्म के चक्र के) दुःख/कष्ट से मुक्ति पाएगा।

---

1. निम्न पाँच बंधन (ओरंभागीय संयोजन) हैं: अहंकार (सक्कयादित्ति); संशय (विच्चिच्च); नैतिकता और व्यवहार के गलत विचार (सिलब्बतपरमस); कामुक इच्छा (कामराग) और द्वेष (ब्यापाद)। प्रथम, द्वितीय और तृतीय मार्गों के द्वारा इनसे मुक्ति पाई जा सकती है।
2. उच्चतर पाँच बंधन (उद्धंभागीय संयोजन) हैं: भौतिक सुखों की लालसा (रूप राग); अभौतिक सुखों की लालसा (अरूप राग); अहंकार (मान); बेचैनी (उद्धच्च) और अज्ञान (अविज्जा)। इन पाँचों बंधनों से अरहतत्व द्वारा मुक्ति पाई जा सकती है।
3. पाँच नियंत्रण क्षमताएँ (पंचिन्द्रिय) हैं: विश्वास (सद्ध); परिश्रम (विरिया); सचेतनता (सती); एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान (पन्ना)।
4. पाँच संग हैं: कामवासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत विचार।
5. पामोज्जाबाहुलो: शाब्दिक अर्थ, बहुत आनंद; टीका के अनुसार, इस संदर्भ में, अक्सर आनंद महसूस करना।

बहुत से भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने नौ सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (368) से (376) तक कहे।
सावत्थी से लगभग एक सौ बीस योजन दूर कुराराघरा नगर में एक बहुत धनी महिला रहती थी। उनका एक पुत्र था जो भिक्षु बन गया था; उसका नाम सोना था। एक बार भिक्षु सोना अपने गृह नगर से गुजर रहे थे। जेतवन मठ से लौटने पर उनकी माताजी उनसे मिलीं और उनके सम्मान में एक भव्य दान-पुण्य का आयोजन किया। यह सुनकर कि भिक्षु सोना धम्म का बहुत अच्छा उपदेश दे सकते हैं, उनकी माताजी ने उनसे अपने और गृह नगर के अन्य लोगों को भी धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। भिक्षु सोना ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस प्रकार एक मंडप बनवाया गया और भिक्षु सोना के प्रवचन के लिए एक सभा का आयोजन किया गया। मंडप में बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे; भिक्षु की माताजी भी अपने पुत्र द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनने के लिए गईं। वह अपने घर के सभी सदस्यों को साथ ले गईं, केवल एक दासी को घर की देखभाल के लिए छोड़ दिया।
जब मालकिन घर से बाहर गई हुई थी, तब कुछ चोर घर में घुस गए। उनका सरदार उस मंडप में गया जहाँ घर की मालकिन थी, उसके पास बैठ गया और उस पर नज़र रखने लगा। उसका इरादा था कि अगर मालकिन को चोरी के बारे में पता चले और वह जल्दी घर लौट आए, तो उसे मार डाले। नौकरानी ने चोरों को घर में घुसते देख मालकिन को बताने गई, लेकिन मालकिन ने बस इतना कहा, "चोर मेरा सारा पैसा ले जाएं, मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता; लेकिन जब मैं धर्म-पाठ कर रही हूँ, तब आकर मुझे परेशान मत करो। बेहतर होगा कि तुम वापस चली जाओ।" तो नौकरानी घर चली गई।
वहाँ लड़की ने चोरों को उस कमरे में सेंध लगाते देखा जहाँ उसकी मालकिन अपने सारे चाँदी के बर्तन रखती थी। वह फिर से उस मंडप में गई जहाँ उसकी मालकिन थी और उसे बताया कि चोर उसके चाँदी के बर्तन ले जा रहे हैं, लेकिन उसे पहले जैसा ही जवाब मिला। इसलिए उसे वापस घर लौटना पड़ा। वहाँ उसने चोरों को उस कमरे में सेंध लगाते देखा जहाँ उसकी मालकिन अपना सोना रखती थी और उसने यह बात अपनी मालकिन को बताई। इस बार उसकी मालकिन उस पर चिल्लाई, "अरे प्यारी! चोरों को जो चाहिए ले जाने दो; जब मैं धर्म पर प्रवचन सुन रही हूँ तो तुम फिर से आकर मुझे क्यों परेशान कर रही हो? जब मैंने तुम्हें जाने के लिए कहा था तो तुम वापस क्यों नहीं गई? फिर कभी मेरे पास आने की हिम्मत मत करना और चोरी या चोरों के बारे में कुछ मत कहना।"
पास ही खड़े चोरों के गिरोह के सरदार ने महिला की सारी बातें सुन लीं और वह बेहद हैरान रह गया। उसके शब्दों ने उसे यह सोचने पर मजबूर कर दिया, "अगर हम इस बुद्धिमान और नेक शख्सियत की संपत्ति चुरा लेंगे, तो हमें ज़रूर सज़ा मिलेगी; हो सकता है हम पर बिजली गिर जाए और हमारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएं।" सरदार इस आशंका से घबरा गया और जल्दी से महिला के घर वापस गया और अपने साथियों से चुराई हुई सारी चीज़ें लौटाने को कहा। फिर वह अपने सभी साथियों को घर की मालकिन के पास ले गया; वह अभी भी मंडप में बैठी ध्यान से धर्म की बातें सुन रही थी।
थेरा सोना ने भोर होते ही धर्म पर अपना प्रवचन समाप्त किया और उस मंच से नीचे उतरे जहाँ से उन्होंने धर्म का प्रवचन दिया था। चोरों का सरदार उस धनी, कुलीन महिला के पास पहुँचा, उन्हें प्रणाम किया और अपनी पहचान बताई। उसने उन्हें बताया कि कैसे उन्होंने उनके घर को लूटा था और यह भी कि जब उन्होंने अपनी दासी को बताया कि रात में चोरी हुई थी, तो उन्होंने उनकी सारी संपत्ति लौटा दी थी। फिर सरदार और सभी चोरों ने महिला से अपने किए पर क्षमा मांगी। इसके बाद उन्होंने थेरा सोना से उन्हें भिक्षु संघ में शामिल करने का अनुरोध किया। संघ में शामिल होने के बाद, नौ सौ भिक्षुओं में से प्रत्येक ने थेरा सोना से ध्यान का एक विषय लिया और एकांत में ध्यान का अभ्यास करने के लिए पास के जंगल में चले गए।
एक सौ बीस योजन की दूरी से बुद्ध ने उन भिक्षुओं को देखा और उन पर अपना प्रकाश भेजा, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे उनके बीच में बैठे हों।
फिर उनके व्यक्तिगत स्वभाव को देखकर बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

श्लोक 368 : जो भिक्षु प्रेम और करुणा का अभ्यास करते हुए जीवन व्यतीत करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित रहता है, वह निर्वाण (शांति, बिना शर्त, आनंदमयी अवस्था) को प्राप्त करेगा।

श्लोक 369 : हे भिक्षु, इस नाव (अपने शरीर) से (गलत विचारों का) पानी निकाल दो; खाली होने पर यह तेजी से चलेगी; कामवासना और द्वेष को त्यागकर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

श्लोक 370 : पाँचों (निचले पाँच बंधनों) को काट डालो, पाँचों (ऊपरी पाँच बंधनों) का त्याग कर दो; और पाँचों (नियंत्रण शक्तियों) को विकसित करो। जो भिक्षु पाँचों बंधनों (वासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) से मुक्त हो जाता है, उसे "संसार के जलप्रपात को पार करने वाला" कहा जाता है।

श्लोक 371 : हे भिक्षु, ध्यान करो और असावधान मत रहो; अपने मन को इंद्रिय सुखों में लिप्त मत होने दो। असावधान होकर लोहे का (गर्म) टुकड़ा मत निगलो; जब तुम (निरय/नरक में) जल रहे हो, तो यह मत कहो, "यह तो वास्तव में कष्ट है।"

———————————————————————

श्लोक 372 : बुद्धि के अभाव में एकाग्रता संभव नहीं; एकाग्रता के अभाव में बुद्धि संभव नहीं। जो एकाग्रता और बुद्धि दोनों रखता है, वही वास्तव में निर्वाण के निकट है।

———————————————————————

श्लोक 373 : वह भिक्षु जो एकांतवास में जाता है (ध्यान करने के लिए), जिसका मन शांत है, जो धम्म को स्पष्ट रूप से समझता है, वह उस आनंद का अनुभव करता है जो (साधारण) मनुष्यों के आनंद से परे है।

———————————————————————

श्लोक 374 : जब भी वह खन्धों के उद्भव और विनाश को स्पष्ट रूप से समझ लेता है, तो उसे आनंद और परमानंद प्राप्त होता है। बुद्धिमानों के लिए यही निर्वाण (अमरता) का मार्ग है।

———————————————————————

श्लोक 375 : इस शिक्षा में एक बुद्धिमान भिक्षु के लिए, यह (निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का) आरंभ है: इंद्रियों पर नियंत्रण, संतोष और मूलभूत उपदेशों के अनुसार संयम।

———————————————————————

श्लोक 376 : अच्छे मित्रों की संगति करो, जो ऊर्जावान हों और जिनकी आजीविका शुद्ध हो; उसे मिलनसार और आचरण में सही होना चाहिए। तब वह (अक्सर) अत्यधिक आनंद का अनुभव करते हुए (पुनर्जन्म के चक्र के) दुःख/कष्ट से मुक्ति पाएगा।

———————————————————————

प्रत्येक श्लोक के अंत में, नौ सौ भिक्षुओं में से सौ भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक धर्मनिष्ठ महिला और चोरों की कहानी

एक समय की बात है, जब पूज्य महा कच्चाना अवंती देश में कुरारघारा नगर के निकट एक पर्वत पर निवास कर रहे थे, तब सोन कूटिकण्ण नामक एक गृहस्थ शिष्य, भिक्षु के उपदेशों से धम्म की सत्यता से आश्वस्त होकर, संसार त्याग कर उनके अधीन भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य महा कच्चाना बार-बार कहते रहे, “सोन, अकेले भोजन करना, अकेले रहना और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना कठिन है,” और उन्होंने दो बार उन्हें अस्वीकार कर दिया।

लेकिन सोन भिक्षु बनने के लिए दृढ़ निश्चयी थे, और पूज्य गुरु से तीसरी बार अनुरोध करने पर संघ में प्रवेश पाने में सफल रहे। दक्षिण में भिक्षुओं की कमी के कारण, उन्होंने उस देश में तीन वर्ष व्यतीत किए, और फिर संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण दीक्षा ली। बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा से उन्होंने अपने गुरु से अनुमति ली, और उनसे संदेश लेकर जेतवन मठ के लिए प्रस्थान किया। जेतवन पहुँचकर उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, जिन्होंने उनका सौहार्दपूर्ण ढंग से स्वागत किया और उन्हें अपने साथ एकांत में सुगंधित कक्ष में ठहरने की अनुमति दी।

सोन ने रात का अधिकांश समय खुले में बिताया, और फिर सुगंधित कक्ष में प्रवेश करके शेष रात अपने लिए निर्धारित पलंग पर व्यतीत की। भोर होते ही उन्होंने बुद्ध के आदेशानुसार सोलह अष्टक मंत्रों का पाठ किया। पाठ पूरा होने पर बुद्ध ने उन्हें धन्यवाद दिया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, “शाबाश, शाबाश, भिक्षु!” बुद्ध द्वारा दी गई प्रशंसा सुनकर पृथ्वी, नाग और सुपन्न देवताओं से लेकर ब्रह्मा लोक तक सभी देवताओं ने एक साथ जयजयकार की।

उसी क्षण जेतवन से एक सौ बीस मील की दूरी पर स्थित कुरारघारा नगर में पूज्य सोन की माता, जो एक प्रख्यात महिला शिष्या थीं, के घर में विराजमान देवता ने ज़ोरदार जयजयकार की। शिष्या ने देवता से पूछा, “यह कौन है जो जयजयकार कर रहा है?” देवता ने उत्तर दिया, “मैं हूँ, बहन।” “आप कौन हैं?” “मैं आपके घर में रहने वाला देवता हूँ।” “आपने पहले कभी मेरी जयजयकार नहीं की; आज क्यों कर रहे हैं?” “मैं आपकी जयजयकार नहीं कर रहा हूँ।” “तो फिर आप किसकी जयजयकार कर रहे हैं?” “अपने पुत्र पूज्य कूटिकण्न सोन की।” “मेरे पुत्र ने क्या किया है?”

“आज, आपके पुत्र ने सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहते हुए बुद्ध को धम्म का पाठ किया। बुद्ध आपके पुत्र के धम्म पाठ से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा की; इसलिए मैंने भी उसकी प्रशंसा की। क्योंकि जब देवताओं ने बुद्ध द्वारा आपके पुत्र की प्रशंसा सुनी, तो पृथ्वी के देवताओं से लेकर ब्रह्मा लोक तक सभी ने एक साथ जयजयकार की।” “गुरुजी, क्या आपका सचमुच यही मतलब है कि मेरे पुत्र ने बुद्ध को धम्म का पाठ किया? क्या बुद्ध ने मेरे पुत्र को धम्म का पाठ नहीं किया?” “आपके पुत्र ने ही बुद्ध को धम्म का पाठ किया।”

जब देवता ने ऐसा कहा, तो शिष्या के भीतर पाँचों प्रकार के आनंद का संचार हुआ और वह आनंद उसके पूरे शरीर में व्याप्त हो गया। तब उसके मन में यह विचार आया, "यदि मेरा पुत्र सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहकर उन्हें धर्म का पाठ कर सकता है, तो वह मुझे भी धर्म का पाठ कर सकेगा। जब मेरा पुत्र लौटेगा, तो मैं धर्म के पाठ की व्यवस्था करूँगी और उसके धर्म उपदेश को सुनूँगी।"

जब बुद्ध ने पूज्य सोन की प्रशंसा की, तो सोन ने मन ही मन सोचा, "अब समय आ गया है कि मैं अपने गुरु का संदेश सुनाऊँ।" तदनुसार, पूज्य सोन ने बुद्ध से पाँच वरदान माँगे, जिनमें से पहला वरदान सीमावर्ती क्षेत्र में स्थित पाँच भिक्षुओं के संघ में पूर्ण प्रवेश था, जिनमें से एक विनय विद्या में पारंगत भिक्षु थे। कुछ दिनों तक वे बुद्ध के साथ रहे, और फिर मन ही मन सोचते हुए, "अब मैं अपने गुरु से मिलने जाऊँगा," बुद्ध से विदा लेकर जेतवन मठ से प्रस्थान किया और उचित समय पर अपने गुरु के निवास पर पहुँचे।

अगले दिन पूज्य कच्चाना पूज्य सोन को अपने साथ लेकर भिक्षा मांगने निकले और सोन की माता, जो उनकी गृहस्थ शिष्या थीं, के घर गए। सोन की माता ने अपने पुत्र को देखकर आनंद से भर उठीं। उन्होंने सोन का विशेष ध्यान रखा और उनसे पूछा, "प्रिय पुत्र, क्या यह सच है कि तुम सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहे और बुद्ध को धर्म का पाठ सुनाया?" सोन ने पूछा, "शिष्य, यह बात आपको किसने बताई?" "प्रिय पुत्र, इस घर में निवास करने वाले देवता ने स्तुतिगान किया और जब मैंने पूछा, 'यह कौन है जो स्तुतिगान कर रहा है?' तो देवता ने उत्तर दिया, 'मैं ही हूँ,' और ऐसा कहा।"

"उसकी बातें सुनने के बाद मेरे मन में यह विचार आया, 'यदि मेरे पुत्र ने बुद्ध को धम्म सुनाया है, तो वह मुझे भी सुना सकेगा।' प्रिय पुत्र, क्योंकि तुमने बुद्ध को धम्म सुनाया है, इसलिए तुम मुझे भी सुना सकोगे। अतः फलाँ दिन मैं धम्म प्रवचन की व्यवस्था करूँगी और तुम्हारा धम्म प्रवचन सुनूँगी।" उसने सहमति दे दी। उस गृहस्थ शिष्या ने भिक्षुओं के समूह को दान दिया और उनका आदर किया। फिर उसने मन ही मन कहा, 'मैं अपने पुत्र का धम्म प्रवचन सुनूँगी।' और घर की रखवाली के लिए केवल एक दासी को छोड़कर, वह अपनी सभी सेविकाओं को साथ लेकर धम्म प्रवचन सुनने चली गई। नगर में, धम्म प्रवचन के लिए निर्मित एक मंडप में, उसका पुत्र धम्म के भव्य आसन पर विराजमान हुआ और धम्म प्रवचन देने लगा।

उस समय नौ सौ चोर इधर-उधर मंडरा रहे थे और इस महिला साध्वी के घर में घुसने का कोई रास्ता तलाश रहे थे। चोरों से बचाव के लिए, उनके घर के चारों ओर सात दीवारें बनी हुई थीं, सात बुर्जदार द्वार थे, और दीवारों के चारों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खूंखार कुत्ते बंधे हुए थे। इसके अलावा, घर के अंदर, जहाँ छत से पानी टपकता था, वहाँ एक खाई खोदी गई थी और उसमें सीसा भरा गया था। दिन के समय यह सीसा सूर्य की किरणों में पिघलकर गाढ़ा हो जाता था, और रात के समय इसकी सतह सख्त और कठोर हो जाती थी। खाई के पास ही लोहे के बड़े-बड़े खंभे लगातार जमीन में गाड़े गए थे। ये थे इस महिला साध्वी द्वारा चोरों से बचाव के लिए किए गए एहतियाती उपाय।

घर के बाहर की सुरक्षा व्यवस्था और अंदर शिष्या की उपस्थिति के कारण चोर अंदर घुसने का कोई रास्ता नहीं खोज पाए थे। लेकिन उस दिन, जब उन्होंने देखा कि वह घर से बाहर गई हुई है, तो उन्होंने सीसे की खाई और लोहे की चौखटों के नीचे एक सुरंग खोदी और इस तरह घर में घुसने में सफल हो गए। घर में प्रवेश करने के बाद, उन्होंने सरगना को घर की मालकिन पर नज़र रखने के लिए भेजा और उससे कहा, "यदि उसे पता चले कि हम घर में घुस गए हैं, और वह मुड़कर घर की ओर आने लगे, तो उसे अपनी तलवार से मार डालना।"

गिरोह की सरगना उसके पास जाकर खड़ी हो गई। चोरों ने घर में घुसते ही दीपक जलाया और उस कमरे का दरवाजा खोल दिया जहाँ तांबे के सिक्के रखे थे। दासी ने चोरों को देखा और अपनी स्वामिनी शिष्या के पास जाकर कहा, "स्वामी जी, बहुत से चोर आपके घर में घुस आए हैं और उस कमरे का दरवाजा खोल दिया है जहाँ तांबे के सिक्के रखे हैं।" शिष्या ने उत्तर दिया, "चोर जितने भी तांबे के सिक्के देखें, ले लें। मैं अपने पुत्र का धर्मोपदेश सुन रही हूँ। मेरे लिए धर्म को भंग मत कीजिए। घर जाइए।" इतना कहकर उसने उसे वापस भेज दिया।

जब चोरों ने तांबे के सिक्कों वाले कमरे को खाली कर दिया, तो उन्होंने चांदी के सिक्कों वाले कमरे का दरवाजा खोल दिया। दासी एक बार फिर अपनी मालकिन के पास गई और उन्हें सारी बात बताई। दासी ने उत्तर दिया, "चोर जो चाहें ले जाएं; मेरे लिए धर्म को अपवित्र न करें," और उसे वापस भेज दिया। जब चोरों ने चांदी के सिक्कों वाले कमरे को खाली कर दिया, तो उन्होंने सोने के सिक्कों वाले कमरे का दरवाजा खोल दिया। दासी एक बार फिर अपनी मालकिन के पास गई और उन्हें सारी बात बताई। तब दासी ने उससे कहा, "हे स्त्री! तुम दो बार मेरे पास आ चुकी हो, और मैंने तुमसे कहा है, 'चोर जो चाहें ले जाएं; मैं अपने पुत्र का धर्मोपदेश सुन रही हूँ; मुझे परेशान मत करो।' लेकिन मेरे कहने के बावजूद तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया; बल्कि तुम बार-बार वैसे ही यहाँ आती हो। अगर तुम एक बार फिर यहाँ आई, तो मैं तुम्हारे कर्मों का फल तुम्हें दूंगी। वापस घर जाओ।" इतना कहकर उसने उसे वापस भेज दिया।

जब चोरों के सरदार ने उस महिला शिष्या की ये बातें सुनीं, तो उसने मन ही मन कहा, "यदि हम ऐसी स्त्री का सामान चुराएँगे, तो इंद्र का वज्र गिरेगा और हमारे सिर चकनाचूर हो जाएँगे।" इसलिए वह चोरों के पास गया और बोला, "जल्दी करो और उस महिला शिष्या का धन वापस उसी स्थान पर रख दो जहाँ वह पहले था।" तब चोरों ने तांबे के सिक्कों वाले कमरे को तांबे के सिक्कों से और सोने-चाँदी

वाले कमरों को सोने-चाँदी के सिक्कों से भर दिया। हमें बताया जाता है कि जो कोई धर्म के मार्ग पर चलता है, धर्म उसे सुरक्षित रखता है।

इसलिए बुद्ध ने कहा,
जो व्यक्ति धार्मिकता के मार्ग पर चलता है, धर्म ही उसकी रक्षा करता है।
धार्मिक जीवन जीने से सुख मिलता है।
धार्मिक जीवन जीने का यही लाभ है:
जो व्यक्ति धार्मिकता के मार्ग पर चलता है, वह कभी भी कष्ट की अवस्था में नहीं जाएगा।

चोर मंडप में गए और धम्म का पाठ सुनने लगे। जैसे-जैसे रात ढलती गई, पूज्य गुरु ने अपना धम्म पाठ समाप्त किया और धम्म आसन से नीचे उतरे। उसी क्षण चोरों के सरदार ने महिला शिष्या के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा, "मुझे क्षमा कीजिए, मेरी स्वामिनी।" "मित्र, आपका क्या तात्पर्य है? मुझे आपसे घृणा हो गई थी और मैं आपको जान से मारने के इरादे से आपके पास खड़ी थी।" "ठीक है, मित्र, मैं आपको क्षमा करती हूँ।" बाकी चोरों ने भी ऐसा ही किया। "मित्रों, मैं आपको क्षमा करती हूँ," महिला शिष्या ने कहा। तब चोरों ने महिला शिष्या से कहा, "मेरी स्वामिनी, यदि आप हमें क्षमा कर दें, तो हमें अपने पुत्र के अधीन संघ में प्रवेश करने का सौभाग्य प्रदान कीजिए।"

उस महिला शिष्या ने अपने पुत्र को प्रणाम किया और कहा, "प्रिय पुत्र, ये चोर मेरे अच्छे गुणों और तुम्हारे धम्म पाठ से इतने प्रसन्न हुए हैं कि वे संघ में प्रवेश लेना चाहते हैं; इन्हें संघ में प्रवेश दे दीजिए।" "अच्छी बात है," पूज्य भिक्षु ने उत्तर दिया। अतः उन्होंने उनके अंतर्वस्त्रों के पल्लू कटवा दिए, उनके वस्त्रों को लाल मिट्टी से रंगवाया, उन्हें संघ में प्रवेश दिया और उन्हें धर्मोपदेशों में स्थापित किया। जब उन्होंने संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली, तो उन्होंने उनमें से प्रत्येक को ध्यान का एक अलग विषय दिया। तब उन नौ सौ भिक्षुओं ने अपने-अपने प्राप्त नौ सौ ध्यान विषयों को लेकर एक पर्वत पर चढ़ाई की और प्रत्येक ने अलग-अलग वृक्षों की छाया में बैठकर ध्यान किया।

बुद्ध, एक सौ बीस मील दूर स्थित जेतवन के महान मठ में बैठे हुए भी, उन भिक्षुओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते थे, उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप शिक्षा का एक रूप चुनते थे, अपनी एक तेजस्वी छवि प्रकट करते थे, और मानो उनके सामने बैठकर उनसे बात कर रहे हों, श्लोक सुनाते थे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 368)
यो भिक्खु मेत्ताविहारी बुद्धसासने पसन्नो
संखारूपसमं सुखं संतं पदं अधिगच्छे

यदि कोई भिक्षु प्रेम से परिपूर्ण हो, तो वह बुद्ध के उपदेशों में आनंदित होता है । वह अपने जीवन की बेचैनी को शांत करते हुए परमानंद की अवस्था में पहुँचता है ।

जो भिक्षु सभी के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है, बुद्ध की शिक्षाओं में आनंद लेता है, वह परमानंद की अवस्था, निर्वाण की खुशी प्राप्त करेगा, जो अस्तित्व की बेचैनी को शांत करने का प्रतीक है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 369)
भिक्खु इमाम नावं सिन्का ते सित्ता लाहुम एस्सति
रागं च दोसं च चेत्वा ततो निब्बाणं एहिसि

भिक्खु : हे भिक्षु; इमं नावं [नाव]: यह नाव; मानव जीवन; सिंघ : खाली; ते : आपके द्वारा; सिट्टा : खाली (यह नाव); लहुम : हल्का और तेज होकर; एस्साति : निर्वाण पहुँचेगा; रागांच : जुनून; दोसांच : दुर्भावना; चेत्वा : काट दिया, ततो : तब; निब्बानम एहिसी : निर्वाण पहुँचेगा।

हे भिक्षु, अपनी नाव से पानी निकाल दें, क्योंकि यदि उसमें पानी जमा हो गया तो वह डूब जाएगी। पानी निकल जाने और नाव खाली हो जाने पर, कामवासना और घृणा दोनों दूर हो जाने पर, वह शीघ्र ही अपने गंतव्य — निर्वाण — तक पहुँच जाएगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 370)
पञ्च छिन्दे जहे पञ्च च उत्तरि भावये
पञ्च संगतिगो भिक्खु ओघटिनो इति वुक्काति

पंच : पाँच (निचले बंधन); चिंदे : तोड़ना; पंच : पाँच (ऊपरी बंधन); जहे : छुटकारा पाना; पंच : पाँच (अच्छी इंद्रियाँ); उत्तरी : विशेष रूप से; भावये : विकसित करना; पंच संगातिगो [संगतिगा]: पाँच संग बंधनों से परे जाना; ओघतिण्णो इति : धारा पार कर जाना; वच्चति : कहलाता है

मनुष्य को पाँच निम्न बंधनों से मुक्त होना चाहिए। उसे पाँच उच्च बंधनों से छुटकारा पाना चाहिए। उसे पाँचों इंद्रियों का विकास करना चाहिए। उसे पाँचों आसक्तियों से परे जाना चाहिए। इन सबको प्राप्त करने वाले भिक्षु को जलप्रपात पार करने वाला कहा जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 371)
भिक्खु झाया मा च पमादो ते चित्तं कामगुणे मा भमास्सु
पमत्तो लोहगुलं मा गिलि दयहमणो इदं दुक्खम कांडी
भिक्खु : हे साधु; झाया : ध्यान करें; मा च पमादो [पमादा]: आलसी मत बनो; ते चित्तं [चित्त]: आपका मन; कामगुणे : पांच गुना कामुक आकर्षण में; मा भमास्सु : घूमने की अनुमति न दें; पमट्टो [पमट्टा]: अकर्मण्य होना; लोहागुलं [लोहागुला]: लोहे की गेंदें; मा गिली : निगलो मत; ḍayhamāno [ḍayhamāna]: जलना; इदं दुक्खम : ओह, यह दुख है; माँ कंडी : शोक मत करो
हे भिक्षु, ध्यान करो और आलसी मत बनो। अपने मन को इंद्रिय सुखों में भटकने मत दो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो नरक में तुम्हारे गले में लोहे के गोले ठूंस दिए जाएँगे। तुम अपने भाग्य पर विलाप करते हुए कहोगे, "यही तो दुख है।" ऐसा होने मत दो।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 372)
अपान्नस्स झानं नत्थि अझायतो पणना नत्थि
यमहि झाणञ्च पन्ना च सो वे निब्बानसान्तिके
अपाञ्ञस्स : नासमझों के लिए; झानम् नत्थि : (उसमें) ध्यान नहीं है; अझायतो [अझायत]: ध्यानहीन व्यक्ति के लिए; पन्ना नत्थि : (उसमें) ज्ञान नहीं है; यंहि : किसी व्यक्ति में; झानंच : ध्यान और; पन्ना च : ज्ञान (मौजूद हैं); इसलिए : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; निब्बानसन्तिके : निर्वाण के निकट है
जिसमें ध्यान का अभाव होता है, उसमें ज्ञान का अभाव होता है। ध्यान और ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं और एक के बिना दूसरा प्राप्त नहीं हो सकता। यदि किसी व्यक्ति में ध्यान और ज्ञान दोनों विद्यमान हों, तो वह निर्वाण के निकट होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 373)
सुननगरं पवित्रस्स संतचित्तस्स धम्मं
सम्मा विपश्यतो भिक्खुनो अमानुषि रति होति
सुञ्ञागारं [सुञ्ञागार]: एक खाली घर; पविट्ठस्स : प्रवेश करने वाले के लिए; शांतचित्तस्स : शांत मन वाले व्यक्ति के लिए; धम्मं [धम्म]: चीजों की वास्तविकता; सम्मा : अच्छा; विपस्सतो [विपस्सता]: अंतर्दृष्टि रखने वाला; भिक्खुनो [भिक्खुना]: भिक्षु; अमानुसी : आम मनुष्यों द्वारा ज्ञात नहीं; रति : परमानंद; होति : घटित होना
एक भिक्षु जो किसी खाली घर में प्रवेश करता है, जिसका मन शांत होता है, और जो चीजों की वास्तविकता को देखने में सक्षम होता है, उसे एक ऐसे परमानंद का अनुभव होता है जो सामान्य मनुष्यों को ज्ञात नहीं होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 374)
यतो यतो खंडानं उदयबबयं सम्मासति
पित पमोज्जं लभति तं विजानतं अमातं
यतो यतो : कब तक; खंडाणं [खंडाणां]: समुच्चय; उदयबबयं [उदयबबया]: उठता है और नष्ट हो जाता है; सम्मासति : बुद्धिमानी से चिंतन करें; पिटि पमोज्जां [पमोज्जा]: खुशी और परमानंद; लभाति : अर्जित होगा; तं : यह; विजानताम् [विजानता]: उन लोगों के लिए जो जानते हैं; अमाताम् [अमाता]: मृत्युहीन है
जब ध्यान करने वाला व्यक्ति शरीर के तत्वों के उदय और क्षय पर चिंतन करता है, तो उसे एक आनंद और परमानंद का अनुभव होता है, जो निर्वाण (अमत) का पूर्वाभास होता है, उन लोगों के लिए जो इसे जानते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 375)
इधा पन्नस्सा भिक्खुनो तत्र अयं आदि भवति
इंद्रियगुट्टी संतुथि पतिमोक्खे च सांवरो
च शुद्धजिवे अतंदिते कल्याणे मित्ते भजस्सु
इधा : इस शिक्षा में; पन्नास्स : बुद्धिमान ध्यानियों के लिए; तत्र : उत्थान और पतन के इस चिंतन में; अयं : इस प्रकार; आदि भवति : पहला कदम है; इंद्रियगुत्ति : इंद्रियों की रक्षा; संतुत्थी : तीन प्रकार की संतुष्टि; पातिमोक्खे : अनुशासन संहिता में; संवरो च : संयम; शुद्धाजीवे : जीवन की शुद्धता वाले; अतंदित : आराम न करने वाले; कल्याणे मित्ते : लाभकारी मित्र; भजस्सु : सहयोगी
समुच्चयों के उत्थान और पतन की जागरूकता के माध्यम से प्राप्त होने वाला आनंद, निर्वाण के पूर्वाभास के रूप में, ज्ञानी ध्यानी के लिए पहला कदम है। इंद्रियों पर नियंत्रण, समभाव और अनुशासन नैतिकता के प्रमुख सिद्धांत हैं, और साथ ही ऐसे अच्छे मित्रों का साथ भी महत्वपूर्ण है जो निरंतर प्रयास करते हैं और जिनका व्यवहार शुद्ध होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 376)
पतिसंथारावुटियास्सा अकारकुसलो सिया
ततो पमोज्जबाहुलो दुक्खस्सन्तम्

paṭisanthāravuti : विनम्र और सुखद व्यवहार; assa : ऐसा होना चाहिए; ācārakusalo [ācārakusala]: धर्म के अभ्यास में कुशल; tato : इसके कारण; pāmojjabahulo [pāmojjabahula]: परमानंद की स्थिति में होना; dukkhassa antaṃ karissati : आपके दुख समाप्त हो जाएंगे

व्यक्ति को शिष्ट और सुखद व्यवहार वाला होना चाहिए। उसे उचित रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का कुशलतापूर्वक पालन करना चाहिए। इनसे व्यक्ति को अपार आनंद प्राप्त होता है, जो उसे दुखों के अंत की ओर ले जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 368-376)

मेट्टाविहारी : बौद्ध धर्म में प्रेम और करुणा के साथ जीवन जीने पर काफी जोर दिया जाता है, जिसे मेट्टाविहारी कहते हैं ।

मैत्री , असीम परोपकार या मित्रता, स्वयं साधक के आत्म-बलिदान और समर्पित सेवा के सकारात्मक स्वरूप पर बल देती है, जो किसी एक भाग या अस्तित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है और इसमें सभी प्राणी शामिल हैं, उच्चतम से निम्नतम तक, और जीवन के सबसे बड़े से सबसे छोटे रूप तक। जैसा कि बुद्ध और उनके अनुयायियों में उदाहरण के रूप में देखा गया है और शास्त्रों में वर्णित है, मैत्री क्षणिक भावना का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि सेवा, सद्भावना और मित्रता का एक निरंतर और अभ्यस्त मानसिक दृष्टिकोण है, जो कर्म, वचन और विचार में व्यक्त होता है। बुद्ध की शिक्षाओं में इस दिव्य अवस्था को दिए गए महत्व की पुष्टि करने वाले अनेक अंशों का संकलन किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो, मैत्री भाव का अभ्यास एक नैतिक गुण है, जो ध्यान की बजाय सद्भावना की भावना को विकसित करने में सहायक होता है। शिष्य को अन्य प्रकार के ध्यान के साथ-साथ मैत्री भाव का अभ्यास करना चाहिए ; क्योंकि क्रोध और द्वेष से मन को शुद्ध करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा, शिष्य को यह भी पता चलेगा कि यह ध्यान के अभ्यास में एक महत्वपूर्ण सहारा है, जो तत्काल सफलता दिलाता है और उन बाहरी बाधाओं से सुरक्षा प्रदान करता है जिनका उसे सामना करना पड़ सकता है।

महा राहुलवाद सूत्र में हम पढ़ते हैं कि बुद्ध ने अपने पुत्र, पूज्य राहुल को मैत्री का अभ्यास करने की सलाह दी, क्योंकि मैत्री का अभ्यास करने से क्रोध दूर हो जाता है। मेघिया सूत्र में पूज्य मेघिया को भी यही सलाह दी गई है, जो शुरू में लगातार उठने वाले बुरे विचारों के कारण ध्यान में सफलता प्राप्त नहीं कर पाए थे। बाद में उन्होंने विकसित मैत्री की सहायता से बुरे विचारों को दूर करके अर्हतत्व प्राप्त किया।

स्वतंत्र ध्यान विधि के रूप में मेट्टा का अभ्यास करने की कई विधियाँ विभिन्न संदर्भों में ग्रंथों में वर्णित हैं। इस विषय पर चर्चा करते समय हमें सुत्त पिटक में वर्णित चार विधियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

इन चारों में से, ब्रह्मविहार अभ्यास का वह सूत्र जो निकायों में सबसे अधिक बार आता है और जो तेविज्ज सूत्र में पाया जा सकता है, मुख्य रूप से 'दिसाफरन' विधि से संबंधित है। इसमें संपूर्ण जगत को सभी दिशाओं में विस्तारित मैत्रीपूर्ण विचार से व्याप्त करना शामिल है और यह ध्यान की अवस्थाओं से जुड़ा है।

हम यहां इस सूत्र को, इसके पाली संस्करण के साथ, उद्धृत कर रहे हैं ताकि इसकी विशिष्ट प्रकृति को दर्शाया जा सके:

तो मेत्तसहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहारति। तथा दुतियाम्, तथा चतुत्थम् ,

इति उद्धं अधो, तिरियं, सब्बाधि, सब्बत्तताय, सब्बवंतं लोकं मेत्तसहागतेन चेतसा ,

विपुलेन, महग्गतेन, अप्पमानेन, अवेरेना, अब्यपज्जेन फरित्वा विहारति ।

शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार है:

वह अपने मित्रतापूर्ण मन से एक चौथाई भाग को भावपूर्ण बनाकर रहता है।

इसी प्रकार, दूसरा, तीसरा और चौथा; यानी ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह।

वह अपने आप में ही संपूर्ण संसार में मित्रता से परिपूर्ण भाव से व्याप्त रहता है।

प्रचुर, महान, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।

इस सूत्र की चर्चा बुद्धघोष थेरा ने अपने विशुद्धिमग्ग में की है , जहाँ वे इसे विकुब्बना के रूप में परिभाषित करते हैं । यह शब्द इद्धिविध के संदर्भ में विकुब्बना-इद्धि के रूप में भी प्रयोग होता है , जिसका अर्थ है विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करना। इसका तात्पर्य परोपकारी विचारों के एक विशाल क्षेत्र की स्थापना से है, जो अप्पणा या झान अवस्था तक विस्तारित होता है। अतः, यह सूत्र मैत्री के अभ्यास द्वारा झान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अभ्यस्त मानसिक दृष्टिकोण को इंगित करता है और हम इसे करुणा , मुदिता और उपेक्षा जैसी अन्य परोपकारी भावनाओं के साथ बारी-बारी से दोहराते हुए पाते हैं ।

धार्मिक साधक द्वारा अपनाई जाने वाली विशेष जीवन शैली का वर्णन करते हुए, यह सूत्र बाह्य जगत के प्रति, विशेषकर ध्यान अवस्था में, उसके मानसिक दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त, यह उस व्यक्ति के दृष्टिकोण का वर्णन करता है जो न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को चोट पहुँचाता है, बल्कि संतुष्ट, शांत और स्थिर जीवन जीता है, शांति के सुख का आनंद लेता है, स्वयं एक ब्रह्म (ब्रह्म भूतेन अत्तना) है। इस सूत्र का विशेष संदर्भ उपाली सूत्र से मेल खाता है , जहाँ कहा गया है कि

जिन लोगों ने ध्यान और मानसिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं, परन्तु अभी तक मैत्री का विकास नहीं किया है , वे क्रोध के कारण अपने मन को विचलित करके ही दूसरों को नष्ट कर सकते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में दंडक, कालिंग, मेझ और मातंग नामक वन कुछ प्राचीन ऋषियों के क्रोध के कारण वन बन गए थे (पुब्बका इसयो)। लेकिन, जैसा कि सूत्र कहता है, बुद्ध का शिष्य अपने असीम प्रेम और करुणा से पूरे ब्रह्मांड को व्याप्त करते हुए , क्रोध और द्वेष से मुक्त रहता है।

सुप्रसिद्ध मेट्टा सूत्र , या करणीय मेट्टा सूत्र , आत्मरक्षा और कर्मठता दोनों के रूप में मेट्टा के अभ्यास का तरीका बताता है । इसमें सुख और शांति की तलाश करने वाले इस धार्मिक प्रशिक्षण प्रणाली का पालन करने वाले शिष्य के लिए मेट्टा को एक आवश्यक कर्तव्य के रूप में बल दिया गया है। यह सूत्र धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान पाठ और परित्त समारोह में जप के लिए चुने गए सबसे महत्वपूर्ण प्रवचनों में से एक है , जो आमतौर पर शुभ अवसरों पर, या किसी विपत्ति, महामारी या व्यक्तिगत बीमारी की स्थिति में आयोजित किया जाता है। ध्यान के शिष्य के लिए इसका विशेष महत्व है।

योगावचार के नियमावली में हम पढ़ते हैं कि सभी ध्यान अभ्यासों से पहले की जाने वाली प्रार्थना के भाग के रूप में, मैत्री सूत्र का पाठ पाली रूप में किया जाना चाहिए। इस सूत्र का पाठ इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि शब्दों में एक विशेष ध्वनि उत्पन्न होती है, जिसका विशेष महत्व है, और इसका पाठ हमेशा एक विशेष स्वर में किया जाता है। लेकिन सूत्र का मुख्य उद्देश्य मैत्री के अभ्यास की व्याख्या करना और ध्यान अभ्यास की एक निश्चित प्रणाली तैयार करना है। इसके अलावा, यह मैत्री को व्याप्त करने की विधि का एक विशेष विस्तार है और तेविज्ज सूत्र के सूत्र में दर्शाई गई विधि के अनुरूप है । इतना ही नहीं, इसी मैत्री सूत्र में मैत्री की तुलना मातृ प्रेम से की गई है और इसे विशेष रूप से ब्रह्म-विहार कहा गया है । केवल इस ध्यान के अभ्यास से ही पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है, जैसा कि इस कथन में बल दिया गया है, 'इसलिए, वह कभी पुनर्जन्म में वापस नहीं आएगा।'

मैत्री का एक अन्य विशेष प्रयोग खंड परित्त में मिलता है , जहाँ इसे साँपों से होने वाले नुकसान से बचाव के रूप में बताया गया है। इसमें कहा गया है कि सावत्थी के एक भिक्षु की मृत्यु साँप के काटने से हुई। कई भिक्षुओं ने यह समाचार बुद्ध को दिया, जिन्होंने कथित तौर पर कहा, "भिक्षु ने साँपों के चार कुलों के प्रति मैत्री का अभ्यास नहीं किया था। साँपों के चार कुल (कुल) हैं, अर्थात् विरुपाक्ख , एरापथ , छब्यापुत्त और काण्हागोतमक । यदि उन्होंने इन चारों प्रकार के साँपों के प्रति मैत्री का अभ्यास किया होता, तो उनकी मृत्यु साँप के काटने से नहीं होती। मैं आप भिक्षुओं को सलाह देता हूँ कि आप अपनी सुरक्षा के लिए इन साँपों के प्रति मैत्रीपूर्ण विचार रखें (यानी मन में मैत्रीपूर्ण विचार रखें)।"

यहां मंत्रों में संवहन की वास्तविक विधि दी गई है, और इसे चार नाग परिवारों से शुरू करते हुए धीरे-धीरे विस्तारित किया जाना है, इस प्रकार:

क्या मुझे विरुपाक्खों के साथ मित्रता का संबंध रखने की अनुमति है?
क्या मुझे चब्यपुत्तों के साथ मित्रता का अवसर मिल सकता है?
एरापथों के साथ मेरी मित्रता बनी रहे,
मुझे कण्हागोतमकों के साथ मित्रता प्राप्त हो।

इसके बाद यह विस्तार धीरे-धीरे कई चरणों में आगे बढ़ता है और इसमें विभिन्न प्रकार के जीव शामिल होते हैं; जैसे कि बिना पैरों वाले, दो पैरों वाले, चौपाए और अनेक पैरों वाले। इसके बाद शिष्य की आकांक्षा इस प्रकार होती है:

पैरविहीन मुझे हानि न पहुंचाएं।
और न ही वे जिनके दो पैर होते हैं;
चौपाये मुझे नुकसान न पहुंचाएं।
और न ही वे जिनके कई पैर हों।

फिर वह असीम प्रसार को विकसित करते हुए आगे बढ़ता है:

Sabbe sattā sabbe pāṇā
Sabbe bhūtā ca kevalā —
Sabbe bhadrāni passantu ;
Mā kañci pāpamāgamā .

सभी प्राणी, सभी जीवित प्राणी,
जन्म लेने वाले सभी लोग, और हर कोई,
सभी को सुख मिले।
और किसी को कोई हानि न हो।

इस श्लोक में कुछ वास्तविक शब्द (जैसे सब्बे सत्ता , सब्बे पाना , सब्बे भूता इत्यादि) शामिल हैं जो बाद के ग्रंथों में दिए गए ध्यान के सूत्र में आते हैं। इसके बाद आह्वान आता है:

बुद्ध, धम्म और संघ का सद्‌गुण अनंत है;
परिमित जीवों में रेंगने वाले जीव शामिल हैं, जैसे सांप, बिच्छू, कनखजूरा।
मकड़ियां, घरेलू छिपकलियां, चूहे और गिलहरी।
मैंने अपनी सुरक्षा और बचाव कर लिया है।
सभी प्राणी शांतिपूर्वक मुंह फेर लें।
बुद्ध के प्रति श्रद्धा, सात पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा।

इस सूत्र की परंपरा बहुत पुरानी और सुस्थापित है। यह खंड-वत्त जातक में मिलता है , जहाँ बोधिसत्व ने अपने अनुयायियों को सर्पों से बचाव के लिए इसी परित्त (जो इसी रूप में दिया गया है) का पालन करने की सलाह दी थी; क्योंकि वे हिमालय घाटी के एक ऐसे स्थान पर रह रहे थे जहाँ ऐसे विषैले जीव बहुतायत में पाए जाते थे। इस सलाह का पालन करते हुए, ऐसा कहा जाता है कि तपस्वी लंबे समय तक निर्हान्य रहे, उस दौरान जब स्वयं बोधिसत्व, जो ब्रह्म-विहार का अभ्यास कर रहे थे, ब्रह्मलोक में बंधे हुए थे। अपने अतीत के इस वृत्तांत को सुनाते हुए बुद्ध ने भिक्षुओं को इसी परित्त का पालन करने की सलाह दी ।

यह ध्यान अभ्यास चुल्लवग्ग के खुद्दक-वट्ट-खंडक में अनुशासन और कर्तव्य के नियम के रूप में दिया गया है, और विशेष नाम खंड परित्त संभवतः इसी संबंध से लिया गया है।

इन दो परित्तों में से, मेट्टा सूत्र में वर्णित विधि झान अवस्था में अपनाई जाने वाली विधि के अनुरूप है , जैसा कि तेविज्ज सूत्र में पाया जाने वाला सूत्र भी है ; जबकि दूसरी विधि आरोहण का अधिक आदिम रूप प्रतीत होती है। यद्यपि, दोनों में आरोहण के असीमित और सीमित रूप समाहित हैं , जिनका वर्णन पातिसंभिदा -मग्ग में किया गया है , जैसा कि आगे देखा जाएगा। असीमित और सीमित दोनों विधियाँ, दिशाफरण विधि के साथ मिलकर , चार प्रकार के अभ्यास के सूत्र में दी गई सभी दिशाओं या क्षेत्रों में आरोहण करती हैं। शब्दों में भिन्न हो सकती हैं, लेकिन भावार्थ सर्वत्र एक ही है।

इन सूत्रों के अनुरूप, मैत्री भाव का अधिक व्यापक प्रसार पतिसंभिदामग्ग की मैत्रीकथा में वर्णित है , जहाँ हमें कई विधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो संख्यात्मक क्रम में व्यवस्थित हैं; इन्हें पाँच इंद्रियों , पाँच बल , सात बोध्झंग और अष्टांगिक मार्ग के बोधिपक्खीय सिद्धांतों के साथ अलग-अलग रूप से संयोजित किया गया है। सबसे पहले, अंगुत्तरा निकाय में मिलने वाले मैत्रीसंभाव का उल्लेख किया गया है , जो मैत्री भाव के ग्यारह लाभों को प्रस्तुत करता है ।

इसके बाद मैत्रीपूर्ण प्रेम को फैलाने की निम्नलिखित विधियाँ बताई गई हैं: तीन विधियाँ हैं, अर्थात्:
अनोधिसो फराना — बिना किसी सीमा के व्याप्त;
odhiso Pharanā — एक सीमा से परिपूर्ण, और
दिसा फराना — दिशाओं या दिशाओं में व्याप्त।

(1) अनोधिसो विधि को पाँच भागों में उपविभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक भाग एक अलग ध्यान सूत्र बनाता है। वे इस प्रकार हैं:
सब्बे सत्ता — सभी प्राणी;
सब्बे पाना — सभी जीवित प्राणी;
सब्बे भूता — सभी प्राणी;
सब्बे पुग्गला — सभी व्यक्ति और
सब्बे अत्तभाव परियापन्ना — वे सभी जो व्यक्तिगत अस्तित्व में आए हैं।
इन पांचों में से प्रत्येक आकांक्षा के चार संयोजकों से जुड़ा हुआ है:
averā hontu —उन्हें शत्रुता से मुक्त होने दो;
abyāpajjā hontu —उन्हें द्वेष से मुक्त होने दो;
anighā hontu —उन्हें बीमारी से छुटकारा मिले और
सुखी अत्तानं परिहरन्तु — उन्हें स्वयं को सुखी रखना चाहिए।

उपरोक्त के संदर्भ में, पूर्ण सूत्र को इस प्रकार दोहराया जाना चाहिए: सभी प्राणी शत्रुता से मुक्त हों; दुर्भावना से मुक्त हों; बीमारी या पीड़ा से मुक्त हों; और वे स्वयं को सुखी रखें।

इसी प्रकार: सभी जीवित प्राणी, सभी जीव, सभी व्यक्ति और जो कुछ भी विद्यमान है (क्रमशः), वे शत्रुता, घृणा और द्वेष से मुक्त रहें और अपने आप को सुखी रखें।

इस विधि का अनुसरण करते हुए साधक सभी प्राणियों को अपने प्रेममय विचारों में समाहित करता है और उन्हें असीम प्रेम से परिपूर्ण करता है—जैसा कि व्याख्या में कहा गया है, वह सभी को बिना किसी सीमा के स्पर्श करता है। अतः, यह अनौधिसो फरना है , यानी बिना किसी सीमा या बंधन के परिपूर्ण करना।

(2) ओधिसो फराना , या सीमित विधि के सात रूप हैं :

sabbe itthiyo — सभी महिलाएं;

सब्बे पुरिसा — सभी पुरुष;

सब्बे अरिया — सभी योग्य व्यक्ति, या वे जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है;

सब्बे अनारिया — सभी अयोग्य लोग, या वे जो अपूर्ण हैं;

सब्बे देवा — सभी देवता;

सब्बे मनुस्सा — सभी मनुष्य;

sabbe vinipātikā — वे सभी जो दुखी अवस्था में हैं।

इनमें से प्रत्येक को चार आकांक्षाओं से जोड़ा जाना चाहिए और ध्यान की अवधि के दौरान अलग-अलग या सामूहिक रूप से दोहराया जाना चाहिए।

इस विधि का प्रयोग करते हुए साधक में मैत्री भाव व्याप्त होता है , साथ ही वह प्राणियों को उनकी प्रकृति और स्थिति के अनुसार समूहों में विभाजित करता है। अतः इस ध्यान को ओधिसो फराना या किसी सीमा या भाग के भीतर मैत्री भाव व्याप्त करना कहा जाता है।

(3) पूर्व दिशा से शुरू करते हुए, दिशाओं और मध्यवर्ती दिशाओं में मैत्री फैलाने के दस तरीके हैं । इनमें दिशाओं के आठ बिंदु शामिल हैं: चार मुख्य बिंदु, चार मध्यवर्ती बिंदु, और ऊपर और नीचे।

सूत्र इस प्रकार हैं:

पूर्व दिशा के सभी प्राणी द्वेष, घृणा और दुर्भावना से मुक्त रहें और सुखी रहें।

समान तरीके में:

पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और उत्तर-पूर्व में रहने वाले सभी प्राणी...

दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व,

ऊपर और नीचे, शत्रुता से मुक्त रहो, इत्यादि।

मैत्री को प्रसारित करने की इन तीन विधियों में बाईस (पाँच, सात और दस) सूत्र हैं; और प्रत्येक, टीका के अनुसार, उस मैत्री को संदर्भित करता है जो अप्पणा या झान अवस्था की ओर ले जाती है। पाँच अनोधिसो फरनाओं में से ,

'सभी प्राणी द्वेष से मुक्त हों' यही एक अप्पणा है;

'द्वेष से मुक्त रहो' एक और कहावत है;

'बुराई से छुटकारा पाना' एक और उदाहरण है;

'उन्हें खुद को खुश रखने दो' चौथा कथन है।

इस प्रकार, असीमित प्रसार की विधि में बीस अप्पणाएँ होती हैं , अर्थात् पाँचों सूत्रों में से प्रत्येक में चार। इसी प्रकार, सीमित प्रसार की विधि में सात सूत्रों में से प्रत्येक में चार अप्पणाएँ होती हैं, जिससे कुल अट्ठाईस अप्पणाएँ प्राप्त होती हैं।

ओधिसो विधि के पाँच (i से v) सूत्रों को दस दिशाओं के साथ मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:

पूर्व दिशा के सभी प्राणी शत्रुता से मुक्त हों... इत्यादि। इस प्रकार, दो सौ अप्पणाएँ हैं , प्रत्येक दिशा में बीस-बीस।

इसी प्रकार, सात (1 से 7) सूत्रों को दस निर्देशों के साथ मिलाकर इस प्रकार दिया जा सकता है:

पूर्व की सभी महिलाएं... और इसी तरह कुल मिलाकर दो सौ अस्सी अप्पनाएं दें , अर्थात् प्रत्येक चौथाई भाग में अट्ठाईस।

इस प्रकार, चार सौ अस्सी अप्पणाएँ हैं। कुल मिलाकर, पतिसंभिदा-मग्ग में पाँच सौ अट्ठाईस अप्पणाओं (बीस, अट्ठाईस, दो सौ और दो सौ अस्सी) का उल्लेख है ।

टीका में कहा गया है कि अन्य तीन विहार , करुणा , मुदिता और उपेक्षा , भी उसी प्रकार से व्याप्त करने की विधि से प्रयोग किए जाते हैं; और जो शिष्य इनमें से किसी भी अप्पणा अवस्था के माध्यम से इनका अभ्यास करता है, वह निम्नलिखित मेट्टानिसंसा सूत्र के अंश में वर्णित ग्यारह आशीर्वादों का आनंद लेता है :

भिक्षु, मित्रता के माध्यम से मन को मुक्त करने के अभ्यास से, ग्यारह आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। यदि वे इस अभ्यास को बढ़ाते हैं, इसमें वृद्धि करते हैं, इसे अपना आधार बनाते हैं, इस पर दृढ़ता से अमल करते हैं, इसे भली-भांति परिचित कराते हैं और इसे सुव्यवस्थित करते हैं, तो उन्हें ग्यारह आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। वे ग्यारह आशीर्वाद क्या हैं? वह सुखी नींद सोता है; सुखी जागता है; उसे बुरे सपने नहीं आते; वह मनुष्यों का प्रिय होता है; अमानवों का प्रिय होता है; देवता उसकी रक्षा करते हैं; आग, विष या तलवार उसके पास नहीं आते;

उसका मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है; उसका रंग निखरा हो जाता है; वह मन की उलझन से मुक्त होकर प्राण त्यागता है; यदि उसे कोई और प्राप्ति न हो, तो वह ब्रह्मलोक में जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 377

(धम्मपद 368 से 376) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 377 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 378)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 377 - पञ्चसताभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 377 - पञ्चसताभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vassika viya pupphani
maddavani pamuncati
evam raganca dosanca
vippamuncetha bhikkhavo.

श्लोक 377 : हे भिक्षुओं! जैसे चमेली (वस्सिका) का पौधा अपने मुरझाए हुए फूलों को गिरा देता है, वैसे ही तुम्हें भी कामवासना और द्वेष का त्याग करना चाहिए।

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (377) कहा।

श्रावस्ती के पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करके वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि सुबह खिलने वाले चमेली के फूल शाम को पौधों से गिरकर जमीन पर आ जाते हैं। तब भिक्षुओं ने निश्चय किया कि वे फूलों के गिरने से पहले ही अपने आप को सभी नैतिक दोषों से मुक्त करने का भरसक प्रयास करेंगे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने सुगंधित कक्ष से देखा। अतः उन्होंने अपना प्रकाश उन पर भेजा और उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जिस प्रकार मुरझाया हुआ फूल पौधे से गिर जाता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी जन्म-जन्म के चक्र से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 377 : हे भिक्षुओं! जैसे चमेली (वस्सिका) का पौधा अपने मुरझाए हुए फूलों को गिरा देता है, वैसे ही तुम्हें भी वासना और द्वेष का त्याग करना चाहिए।

प्रवचन के अंत में पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चमेली के फूलों पर ध्यान लगाने की कहानी

सावत्थी के भिक्षुओं का एक समूह, बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर, ध्यान करने के लिए वन की ओर चल पड़ा। ध्यान करते समय उन्होंने देखा कि उसी सुबह खिले हुए चमेली के फूल शाम को डंठल से गिर रहे थे। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "हम कामवासना, घृणा और मोह से मुक्ति पा लेंगे, इससे पहले कि तुम अपने डंठल से मुक्त हो जाओ," और नए जोश के साथ ध्यान में जुट गए। बुद्ध ने उन भिक्षुओं को देखकर कहा, "हे भिक्षुओं, जैसे फूल अपने डंठल से अलग हो जाता है, वैसे ही भिक्षु को जन्म-जन्म के कष्ट से मुक्ति पाने का प्रयास करना चाहिए।" और सुगंधित कक्ष में बैठे हुए उन्होंने प्रकाश भेजा और निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया,

"भिक्षुओं! जैसे मुरझाया हुआ फूल पौधे से झड़ जाता है, वैसे ही भिक्षु को भी सांसारिक कष्टों से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

पाठ के समापन पर, उन सभी भिक्षुओं को अरहत पद की उपाधि प्राप्त हुई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 377)

वस्सिका विया पुप्फानि मदवनि पमुञ्चति

एवं रागान्च दोसांच विप्पमुन्चेथा भिक्खवो

वस्सिका : चमेली की लता; पुप्पानि : फूल; मद्दवानी : मुरझाए हुए; पामुंचति विय : जैसे (यह) त्याग देता है; एवं रागंच : वासना; द्वेष : दुर्भावना ; विप्पमुंचेत : मन से त्याग देना; भिक्खवो [भिक्खव]: हे भिक्षुओं

चमेली की लता अपने मुरझाए फूलों को गिरा देती है, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अपने जुनून और द्वेष का त्याग करो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 377)

यह श्लोक भिक्षुओं के एक समूह से संबंधित है जो चमेली के फूलों के जमीन पर गिरने और बेल से उनके डंठल अलग होने पर ध्यान लगा रहे थे। कई उदाहरणों में, ध्यान करने वालों ने किसी वस्तु पर एकाग्रता से उच्च ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध की मन-प्रशिक्षण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य मन को सभी दोषों और विकृतियों से शुद्ध करना है, ताकि इसकी आंतरिक लचीलेपन को विकसित किया जा सके और पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सके, जो दुःख और शोक की अवस्थाओं से ऊपर उठने का साधन है।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध धर्म में निर्दिष्ट मानसिक प्रशिक्षण उच्च विचारों, उदात्त आदर्शों और नैतिक एवं सद्गुणी सिद्धांतों पर मन की एकाग्रता का प्रशिक्षण है। मन जो पूर्णतः किसी लाभकारी अनुभूति में लीन हो जाता है, वह अपनी मूल अवस्था में शुद्ध रूप से प्रकाशमान और प्रबुद्ध हो जाता है (पभस्सरमिदं)।

अत: आरंभ में, मन में शुद्ध चित्र बनाने के लिए, ध्यान को पूरी तरह से मनोभावों से मुक्त किसी वस्तु (आरम्मण) पर केंद्रित करना आवश्यक है। ध्यान करने वाला इस चित्र को अपने आदर्श के रूप में धारण करता है और अपने मन को इस पर एकाग्र करने का अभ्यास कराता है। मन अपने स्वभाव से नहीं, बल्कि शुद्ध और अशुद्ध विचारों के उत्पन्न होने से शुद्ध या अशुद्ध होता है। अतः, प्रारंभिक ध्यान केंद्रित करने के लिए चुनी गई वस्तु पवित्रता, सद्गुण और सत्य से संबंधित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, ध्यान के लिए चुनी गई वस्तु या आदर्श ऐसा होना चाहिए जो ध्यान करने वाले की विशेष प्रवृत्ति के अनुकूल मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करे।

शास्त्रों में दर्ज है कि बुद्ध ने उन लोगों की विविध मानसिक प्रवृत्तियों और जन्मजात स्वभावों को समझा, जो उनसे मुक्ति की उम्मीद करते थे, और उन्हें विभिन्न विधियाँ सुझाईं; और इन विधियों को समय के साथ-साथ विकसित किया गया क्योंकि इस प्रणाली में प्रशिक्षण के अवसर को विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियों तक विस्तारित करना आवश्यक हो गया था।

बाद में इन विधियों को संशोधित, विस्तारित और विभिन्न तरीकों से समूहीकृत किया गया, जिससे ध्यान की विभिन्न योजनाएँ बनीं। यह संशोधन उनके मनोवैज्ञानिक प्रभाव और चेतना की उच्च अवस्थाओं को प्रेरित करने में उनके महत्व के साथ-साथ विभिन्न व्यक्तिगत स्वभावों के लिए उनकी उपयुक्तता को ध्यान में रखते हुए किया गया। ये विधियाँ निकायों , अभिधम्म और टीकाओं के साथ-साथ ध्यान से संबंधित अन्य ग्रंथों में भी उसी रूप में पाई जाती हैं जिस रूप में इनका अभ्यास और पालन थेरवाद संप्रदाय में किया जाता रहा है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 378

(धम्मपद 377) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 378 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 379 और 380)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 378 - संतकयत्थेरा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 378 - संतकयत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Santakayo santavaco
santava susamahito
vantalokamiso bhikkhu
"Upasanto" ti vuccati.

———————————————————————

श्लोक 378 : वह भिक्षु जो शरीर से शांत, वाणी से शांत और मन से शांत है, जो सुसंतुलित है और जिसने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, त्याग दिया है), उसे "शांत" कहा जाता है।

———————————————————————

थेरा संतकाया की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा संतकाय के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (378) कहा।
एक समय संतकाया नाम के एक थेर थे, जो अपने पिछले जन्म में शेर थे। कहा जाता है कि शेर आमतौर पर एक दिन भोजन की तलाश में निकलते हैं और फिर अगले सात दिनों तक बिना हिले-डुले गुफा में विश्राम करते हैं। संतकाया, अपने पिछले जन्म में शेर होने के कारण, शेर की तरह ही व्यवहार करते थे। वे बहुत कम चलते थे; उनकी चाल धीमी और स्थिर होती थी; और वे आमतौर पर शांत और संयमित रहते थे। अन्य भिक्षुओं को उनका व्यवहार बहुत विचित्र लगा और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। भिक्षुओं द्वारा बताई गई बात सुनकर, बुद्ध ने उन सभी से कहा, "भिक्षुओं! एक भिक्षु को शांत और संयमित होना चाहिए; उसे संतकाया की तरह व्यवहार करना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 378 : वह भिक्षु जो शरीर से शांत, वाणी से शांत और मन से शांत है, जो सुसंतुलित है और जिसने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, त्याग दिया है), उसे "शांत" कहा जाता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में थेरा संतकाया ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय संतकाया की कहानी
संतकाय नाम के एक भिक्षु थे, जो अपने पिछले जन्म में शेर थे। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कभी भी हाथ-पैर की अनुचित हरकत नहीं की। वे कभी जम्हाई नहीं लेते थे और न ही अपने हाथ-पैर फैलाते थे, बल्कि हमेशा शांत और गरिमापूर्ण रहते थे। कथा के अनुसार, यह पूज्य भिक्षु एक शेरनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। शेरनियों के बारे में कहा जाता है कि यदि किसी दिन उन्हें शिकार मिल जाता है, तो वे चांदी, सोने, रत्नों और मूंगे की गुफाओं में से किसी एक में प्रवेश करती हैं और लाल आर्सेनिक और पीले ऑर्पिमेंट के चूर्ण से बने पलंगों पर सात दिनों तक लेटती हैं। सातवें दिन वे उठती हैं और अपने पलंगों का निरीक्षण करती हैं, और यदि वे देखती हैं कि उनकी पूंछ, कान, अगले या पिछले पैरों की हरकत से लाल आर्सेनिक और पीले ऑर्पिमेंट का चूर्ण बिखर गया है, तो वे मन ही मन कहती हैं, "यह तुम्हारे जन्म या वंश को शोभा नहीं देता," और फिर से लेट जाती हैं और सात दिनों तक उपवास करती हैं। फिर, यदि चूर्ण बिखरा न हो, तो वे मन ही मन कहते हैं, "यही तुम्हारा जन्म और वंश है," अपनी मांद से बाहर आते हैं, जम्हाई लेते हैं और अंगड़ाई लेते हैं, चारों दिशाओं का अवलोकन करते हैं, तीन बार सिंह की गर्जना करते हैं और शिकार की तलाश में निकल पड़ते हैं। इसी प्रकार की सिंहनी के गर्भ से इस भिक्षु का जन्म हुआ।

इस भिक्षु की शांति और गरिमा ने अन्य भिक्षुओं का ध्यान आकर्षित किया और उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्य, हमने पूज्य संतकाय जैसा भिक्षु कभी नहीं देखा। जब वे बैठते हैं, तो न तो अपने हाथ हिलाते हैं, न अपने पैर हिलाते हैं, न जम्हाई लेते हैं और न ही अपने हाथ-पैर फैलाते हैं।” यह सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो भिक्षु बनना चाहता है, उसे पूज्य संतकाय की तरह कर्म, वाणी और विचार में शांत रहना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 378)

संतकायो संतवाको संतवा सुसामहितो
वंता लोकामिसो भिक्खु उपसंतो इति वुकाति

संतकाय [santakāya]: शरीर से संयमित; संतवाको [santavāca]: वाणी से संयमित; संतवा : मन से संयमित; सुसमाहितो [susamāhita]: जो पूर्णतः अनुशासित है; वन्त लोकामिसो [lokāmisa]: जिसने भौतिक वस्तुओं का त्याग कर दिया है; उपसन्तो इति वुच्चति : जिसे पूर्णतः शांत बताया गया है

किसी भिक्षु को पूर्णतः शांत होने के लिए शरीर और वाणी पर संयम रखना आवश्यक है। यह अनुशासन मन के संयम से उत्पन्न होता है। जब ये तीनों प्रकार के संयम प्राप्त हो जाते हैं, तो भिक्षु स्वतः ही पूर्णतः शांत हो जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 378)

यह श्लोक संतकाय नामक एक भिक्षु के अनुकरणीय संयमपूर्ण व्यवहार से संबंधित है, जिसका नाम उसके शांत स्वभाव (शरीर से संयमित) को दर्शाता है। इस श्लोक की उत्पत्ति की कथा में, पूज्य भिक्षु को 'शेरनी के गर्भ से उत्पन्न' बताया गया है। यह कथा शेरनी के उत्तम गुणों का वर्णन करती है। बुद्ध ने एक संदर्भ में स्वयं को भी शेर कहा है, क्योंकि वे शेरों के उत्तम गुणों से प्रभावित प्रतीत होते थे।

बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, पशुओं का राजा सिंह संध्याकाल में अपनी मांद से निकलता है। वह अंगड़ाई लेता है। ऐसा करने के बाद, वह चारों दिशाओं में देखता है। ऐसा करने के बाद, वह तीन बार सिंह की गर्जना करता है। तीन बार सिंह की गर्जना करने के बाद, वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।”

हे भिक्षुओं, जो भी जानवर पशुओं के राजा सिंह की दहाड़ सुनते हैं, उनमें से अधिकांश भयभीत हो जाते हैं; वे कांपने लगते हैं। बिलों में रहने वाले जीव उन्हें ढूंढने लगते हैं; जल में रहने वाले जल की ओर भागते हैं; वन में रहने वाले वन में प्रवेश करते हैं; पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं। फिर गांव, शहर या महल में शासक के जो भी हाथी मजबूत चमड़े की रस्सियों से बंधे होते हैं, वे उन रस्सियों को तोड़कर भाग निकलते हैं; मल त्याग करते हैं और घबराकर इधर-उधर भागने लगते हैं। हे भिक्षुओं, पशुओं के राजा सिंह की शक्ति ऐसी ही है। वह अत्यंत शक्तिशाली और महिमामय है। ठीक इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई बुद्ध संसार में प्रकट होते हैं, जो अरहत, पूर्णतः प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, प्रशिक्षित होने योग्य लोगों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, एक बुद्ध, एक उच्च कोटि के व्यक्ति होते हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं। यही आत्मा है; यही वह मार्ग है जो स्वयं के अंत की ओर ले जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 379,380

——————————————————————

(धम्मपद378) <<<< पिछला|| धम्मपद 379 और 380 ||अगला >>>> (धम्मपद381)

——————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 379 और 380 - नंगलकुलाथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 379 और 380 - नंगलकुलाथेरा वत्थु

——————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अट्टाना चोदयत्तनम
पतिममसेथा अत्तना
so attagutto satima
sukham bhikkhu vihahisi.
अत्ता ही अत्तानो नाथो
(ko hi natho paro siya)(1)
अत्ता ही अत्तानो गति
तस्मा सम्यममत्तनम
assam bhadramva vanijo.

श्लोक 379 : हे भिक्षु, स्वयं को उपदेश दो और अपना आत्मनिरीक्षण करो; इस प्रकार अपनी रक्षा करते हुए और सचेत रहते हुए तुम शांति से रहोगे।

श्लोक 380 : वास्तव में, स्वयं ही अपना आश्रय है, (अन्य भला कोई कैसे अपना आश्रय हो सकता है?)1 वास्तव में, स्वयं ही अपना स्वर्ग है; इसलिए, अपना ध्यान उसी प्रकार रखो जैसे एक घोड़ा व्यापारी एक उत्तम नस्ल के घोड़े का ध्यान रखता है।

---

1. कुछ विदेशी संस्करणों में नहीं पाया जाता है।

थेरा नंगलाकुला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा नांगला के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (379) और (380) का उच्चारण किया।

नांगला एक किसान के यहाँ काम करने वाला एक गरीब मजदूर था। एक दिन, एक भिक्षु ने उसे पुराने कपड़ों में खेत जोतते हुए देखा और उससे पूछा कि क्या वह भिक्षु बनना चाहेगा। जब उसने हाँ में जवाब दिया, तो भिक्षु उसे अपने साथ मठ ले गया और उसे भिक्षु बना दिया। संघ में प्रवेश के बाद, अपने गुरु के निर्देशानुसार, उसने अपना हल और पुराने कपड़े मठ से कुछ ही दूरी पर एक पेड़ पर छोड़ दिए। क्योंकि उस गरीब ने संघ में शामिल होने के लिए अपना हल छोड़ दिया था, इसलिए उसे थेरा नांगला (नांगला = हल) के नाम से जाना जाने लगा। मठ में बेहतर जीवन यापन के कारण, थेरा नांगला स्वस्थ हो गया और जल्द ही उसका वजन भी बढ़ गया। हालाँकि, कुछ समय बाद, वह भिक्षु जीवन से ऊब गया और अक्सर घर लौटने की इच्छा करने लगा। जब भी उसे ऐसा महसूस होता, वह मठ के पास उस पेड़ के पास जाता, जहाँ उसने अपना हल और पुराने कपड़े छोड़े थे। वहाँ वह स्वयं को कोसते हुए कहता, "अरे निर्लज्ज! क्या तू अब भी ये पुराने चिथड़े पहनकर मज़दूर का कठोर और नीच जीवन जीना चाहता है?" इसके बाद भिक्षु जीवन से उसकी असंतुष्टि दूर हो जाती और वह मठ लौट जाता। इस प्रकार, वह हर तीन-चार दिन के अंतराल पर उस वृक्ष के पास जाता, ताकि उसे अपने पुराने दयनीय जीवन की याद दिला सके।

जब दूसरे भिक्षुओं ने उनसे वृक्ष के पास बार-बार जाने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे अपने गुरु के पास जाना पड़ता है।" समय बीतने के साथ, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया और वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। यह देखकर दूसरे भिक्षुओं ने उनसे चिढ़ाते हुए पूछा, "अब तुम अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उन भिक्षुओं को उत्तर दिया, "मैं अपने गुरु के पास इसलिए जाता था क्योंकि मुझे उनकी आवश्यकता थी; लेकिन अब मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है।" भिक्षु उनकी बात समझ गए और वे बुद्ध के पास जाकर बोले, "हे पूज्यवर! थेरा नांगला अर्हतत्व प्राप्त करने का दावा करते हैं। यह सच नहीं हो सकता; वह अवश्य ही घमंड कर रहे होंगे, अवश्य ही झूठ बोल रहे होंगे।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! ऐसा मत कहो; क्योंकि नांगला झूठ नहीं बोल रहे हैं। मेरे पुत्र नांगला ने स्वयं को फटकारकर और सुधार कर वास्तव में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 379 : हे भिक्षु, स्वयं को उपदेश दो और अपना आत्मनिरीक्षण करो; इस प्रकार अपनी रक्षा करते हुए और सचेत रहते हुए तुम शांति से रहोगे।

श्लोक 380 : वास्तव में, स्वयं ही अपना आश्रय है, (अन्य भला कोई कैसे अपना आश्रय हो सकता है?) वास्तव में, स्वयं ही अपना स्वर्ग है; इसलिए, अपना ध्यान उसी प्रकार रखो जैसे एक घोड़ा व्यापारी अपने उत्तम नस्ल के घोड़े का ध्यान रखता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय नांगला कुल की कहानी (पुराने कपड़ों से लगाव)

कथा के अनुसार, एक गरीब आदमी था जो दूसरों के लिए काम करके अपना जीवन यापन करता था। एक दिन एक भिक्षु ने उसे फटी हुई धोती पहने, कंधे पर हल उठाए हुए जाते देखा। भिक्षु ने किसान से कहा, "यदि यही तुम्हारा जीवन यापन का तरीका है, तो तुम भिक्षु क्यों नहीं बन जाते?" "आदरणीय, मेरे जैसे व्यक्ति को कौन भिक्षु बनाएगा?" "यदि तुम भिक्षु बनना चाहो, तो मैं तुम्हें भिक्षु बना दूंगा।" "ठीक है, आदरणीय; यदि आप मुझे भिक्षु बनाएंगे, तो मैं भिक्षु बन जाऊंगा।" तब आदरणीय भिक्षु उसे जेतवन ले गए, अपने हाथों से उसे स्नान कराया और उसे परिसर के भीतर खड़ा करके भिक्षु बना दिया। ऐसा करने के बाद, आदरणीय भिक्षु ने उसे अपनी धोती और हल लेकर परिसर की सीमा पर उगे एक पेड़ की शाखा पर टांगने को कहा। संघ के सदस्य के रूप में अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा लेने पर, उन्हें नांगलकुला थेरा, आदरणीय हलवान, नाम प्राप्त हुआ।

बुद्धों को दिए जाने वाले बहुमूल्य उपहारों और भेंटों से कुछ समय तक जीवन यापन करने के बाद, पूज्य हलवान असंतुष्ट हो गए। असंतोष दूर न होने पर उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं अब भक्तों द्वारा दिए गए पीले वस्त्र पहनकर नहीं घूमूंगा।" अतः वे वृक्ष की तलहटी में गए और एकांत में स्वयं को इस प्रकार उपदेश दिया, "हे निर्लज्ज, निर्लज्ज व्यक्ति! तो तुमने सचमुच ये चिथड़े-चिट्ठे पहनकर संसार में लौटने और मजदूरी करने का निश्चय कर लिया है!" कुछ समय तक इस प्रकार स्वयं को उपदेश देने के बाद उनका संकल्प कमजोर पड़ गया और वे फिर से मठ लौट आए। कुछ दिनों बाद वे फिर असंतुष्ट हो गए। अतः उन्होंने पहले की तरह ही स्वयं को उपदेश दिया और अपना विचार फिर से बदल लिया। और इसी प्रकार, जब भी वे असंतुष्ट होते, वे वृक्ष की तलहटी में जाकर स्वयं को उपदेश देते।

भिक्षुओं ने देखा कि वह बार-बार वृक्ष की तलहटी में जाते थे। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा, "भाई नांगलकुला, आप वहाँ क्यों जाते हैं?" उन्होंने कहा, "आदरणीय, मैं अपने गुरु से मिलने जाता हूँ।" कुछ दिनों बाद उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। तब भिक्षुओं ने उनका उपहास करते हुए कहा, "भाई नांगलकुला, ऐसा लगता है कि अब आप उस मार्ग का उपयोग नहीं करते जिससे आप पहले आते-जाते थे। निस्संदेह आप अब अपने गुरु से मिलने नहीं जाते।" उन्होंने कहा, "बिल्कुल सही, आदरणीय; जब मैं संसार में था, तब मैं आता-जाता था; लेकिन अब जब मैंने संसार से संबंध तोड़ लिया है, तो मैं ऐसा नहीं करता।" यह सुनकर भिक्षुओं ने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "यह भिक्षु असत्य बात कहता है, झूठ बोलता है।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, वह जो कहता है वह बिल्कुल सत्य है। मेरे पुत्र ने स्वयं को उपदेश दिया है, और इस प्रकार धार्मिक जीवन की पूर्णता प्राप्त की है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 379)

अत्तना अत्तनं कोडय अत्तना अत्तं पतिमासे

भिक्खु सो अत्तागुत्तो सतिमा सुक्खं विहाहिसी

अत्तना : स्वयं; अत्तनं चोदया : प्रेरित करना चाहिए; अत्तना : स्वयं द्वारा, अत्तं पतिमासे : परीक्षा ली जानी चाहिए; भिक्षु : हे भिक्षु; इसलिए : अतः तुम; अत्तगुत्तो [अत्तगुत्त]: आत्म-संरक्षित; सतिमा : सतर्क और सचेत; सुखं [सुक्खा]: सुखपूर्वक; विहाहिसी : जीना

स्वयं को स्वयं ही प्रेरित करना चाहिए। हे भिक्षु, स्वयं का आकलन और परीक्षण करो; इस प्रकार स्वयं की रक्षा करो। सदा सचेत रहो। इस प्रकार आनंदमय जीवन व्यतीत करो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 380)

हाय अत्ता अत्तनो नाथो हाय अत्ता अत्तनो गति तस्मा

भद्रं अस्सं वानिजो इव अत्तनं सन्नमय

ही : यथार्थ; अत्ता : स्वयं; अत्तनो [अत्तना]: स्वयं को, नाथो [नाथ]: शरण; अत्ताहि : वास्तव में स्वयं; अत्तनो गति : स्वयं का मार्गदर्शक; तस्मा : इसलिए; भद्रं अस्सं इव : एक सम्मानित घोड़े के समान; वानीजो [वानीज]: एक व्यापारी; अत्तनं [अत्तना]: स्वयं; सन्नमय : अनुशासन

आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपकी शरणस्थली है। आप स्वयं ही अपने मार्गदर्शक हैं। इसलिए, अपने ऊपर उसी प्रकार अनुशासन बनाए रखें जैसे एक व्यापारी अपने उत्तम घोड़े का सत्कार करता है और उसे प्रशिक्षित करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 379-380)

अत्तना अत्तनं चोदया : व्यक्ति को स्वयं आध्यात्मिक कर्म में अग्रसर होना चाहिए। यह बुद्ध का एक प्रमुख सिद्धांत है। यह जानते हुए कि कोई भी बाह्य स्रोत, आस्था या अनुष्ठान उसे मुक्ति नहीं दिला सकते, बौद्ध अपने स्वयं के प्रयासों पर निर्भर रहने के लिए विवश महसूस करता है। वह आत्मनिर्भरता के माध्यम से आत्मविश्वास प्राप्त करता है। लेकिन उसे यह समझना चाहिए कि उसके वर्तमान जीवन के साथ-साथ भविष्य के जीवन की संपूर्ण जिम्मेदारी पूरी तरह से उस पर ही निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपनी मुक्ति प्राप्त करनी होगी। मुक्ति प्राप्त करना किसी बीमारी के इलाज के समान है: यदि कोई बीमार है, तो उसे डॉक्टर के पास जाना चाहिए। डॉक्टर बीमारी का निदान करता है और उचित दवाइयाँ देता है। केवल डॉक्टर की प्रशंसा करने और उसकी प्रशंसा करने से वह कभी ठीक नहीं

होगा। न ही डॉक्टर के सम्मान में उत्सव आयोजित करने से, या दूसरों को यह समझाने की कोशिश करने से कि वही एकमात्र डॉक्टर है जिससे उन्हें परामर्श लेना चाहिए, वह ठीक होगा।

इनमें से कोई भी उपाय उसकी बीमारी ठीक नहीं करेगा। न ही यह काफी है कि वह अपनी लिखित पर्ची स्वीकार करे, उसे एक डिब्बे में रखे, हाथी की पीठ पर रखे और संगीत और नृत्य के साथ जुलूस निकाले। इससे भी रोगी ठीक नहीं होगा। न ही यह काफी है कि वह दवा की दुकान से दवा ले, उसे एक शेल्फ पर रखे और उसके सामने फूलों का गुलदस्ता रखे, अगरबत्ती जलाए और मोमबत्तियां जलाकर यह घोषणा करे, "डॉक्टर द्वारा दी गई यह पर्ची कितनी अद्भुत है। इस पर्ची से मेरी बीमारी ठीक हो जाए!"

यह काफी नहीं है। और न ही उनकी चिंतित पत्नी का यह कहना काफी है, "वे बूढ़े, कमजोर और दुर्बल हैं। और दवा उन्हें बहुत कष्ट देती है। मैं उनके लिए यह कड़वी दवा पी लूँगी।" इससे भी उनका इलाज नहीं होगा।

ठीक होने के लिए, व्यक्ति को स्वयं अपने आहार और आचरण के संबंध में दिए गए निर्देशों का पालन करना होगा। तभी वह ठीक होगा और अंततः स्वस्थ होने का अहसास करेगा। इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति को अपने लोभ, घृणा और अज्ञान का निवारण करके, बुद्ध द्वारा दी गई आवश्यक सावधानियों का पालन करके और बुद्ध की सलाह पर अमल करके ही मोक्ष प्राप्त करना होगा। तभी वह मोक्ष प्राप्त कर सकेगा। केवल बुद्ध की स्तुति करने, उन्हें कुछ अर्पित करने या पर्व मनाने से कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 381

———————————————————————

(धम्मपद 379 और 380) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 381 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 382)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 381 - वक्कलिथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 381 - वक्कलिथेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamojjabahulo bhikkhu
pasanno buddhasasane
adhigacche padam santam
sankharupasamam sukham.

———————————————————————

श्लोक 381 : जो भिक्षु बार-बार आनंद का अनुभव करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित है, वह निर्वाण प्राप्त करेगा—शांत, बिना शर्त, आनंदमय।

———————————————————————

थेरा वक्कली की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा वक्कली के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (381) कहा।

वक्कली श्रावस्ती में रहने वाला एक ब्राह्मण था। एक दिन जब उसने बुद्ध को नगर में भिक्षा मांगते देखा, तो वह बुद्ध के उदात्त रूप से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसी समय, उसके मन में बुद्ध के प्रति गहरा स्नेह और श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने उनके निकट रहने के लिए संघ में शामिल होने की अनुमति मांगी। एक भिक्षु के रूप में, वक्कली हमेशा बुद्ध के निकट रहता था; वह भिक्षु के अन्य कर्तव्यों की परवाह नहीं करता था और एकाग्रता ध्यान का अभ्यास बिल्कुल नहीं करता था। तब बुद्ध ने उससे कहा, "वक्कली, मेरे निकट रहकर और मेरे

मुख को निहारते रहने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हें एकाग्रता ध्यान का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि वास्तव में, जो धम्म को देखता है, वही मुझे देखता है। जो धम्म को नहीं देखता, वह मुझे नहीं देखता। इसलिए, तुम्हें मेरी उपस्थिति से दूर जाना चाहिए।" ये शब्द सुनकर वक्कली बहुत उदास हो गया। उसने आदेशानुसार बुद्ध को छोड़ दिया और चोटी से कूदकर आत्महत्या करने के इरादे से गिज्जकूट पर्वत पर चढ़ गया।

वक्कली के गहरे दुःख और निराशा को भलीभांति जानते हुए, बुद्ध ने सोचा कि कहीं इस दुःख और निराशा के कारण वक्कली मगों को प्राप्त करने का अवसर न चूक जाए। इसलिए, उन्होंने अपना प्रकाश वक्कली पर भेजा, उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और स्वयं उनके समक्ष प्रकट हुए। बुद्ध के निकट आने से वक्कली शीघ्र ही अपना सारा दुःख भूल गए; वे प्रसन्न और अत्यंत उत्साहित हो गए।

बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 381 : जो भिक्षु बार-बार आनंद का अनुभव करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित है, वह निर्वाण प्राप्त करेगा—शांत, बिना शर्त, आनंदमय।

प्रवचन के अंत में वक्कली ने अरहत पद प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु वक्काली की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवाना में निवास करते समय पूज्य वक्कली के संदर्भ में दिया था।

हमें बताया जाता है कि पूज्य वक्कली का पुनर्जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। एक दिन, युवावस्था में पहुँचने पर, उन्होंने बुद्ध को भिक्षा माँगते हुए नगर में प्रवेश करते देखा। बुद्ध के सुंदर रूप को देखकर वे संतुष्ट नहीं हुए और मन ही मन बोले, "मैं सदा बुद्ध के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा।" अतः उन्होंने संसार त्याग दिया और बुद्ध के शिष्य बन गए। वे हमेशा ऐसे स्थान पर खड़े रहते जहाँ से वे दस शक्तियों के स्वामी वक्कली के दर्शन कर सकें, और शास्त्र का पाठ और ध्यान का अभ्यास छोड़कर, वे अपना सारा समय बुद्ध के दर्शन में व्यतीत करते थे। बुद्ध ने उनके ज्ञान के परिपक्व होने की प्रतीक्षा की और एक शब्द भी नहीं कहा। एक दिन बुद्ध ने अपने भीतर यह आभास किया, "अब उनका ज्ञान परिपक्व हो गया है;" अतः उन्होंने उनसे कहा, "वक्कली, मेरे इस नश्वर शरीर को देखने से तुम्हें क्या लाभ होगा? हे वक्कली, जो कोई भी धम्म का दर्शन करता है, वह मुझे ही देखता है।" इस प्रकार बुद्ध ने पूज्य वक्कली को उपदेश दिया।

लेकिन बुद्ध की चेतावनी के बावजूद, वक्काली बुद्ध को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहता था और न ही उन्हें अपने पास से जाने देना चाहता था। अंततः बुद्ध ने सोचा, "जब तक इस भिक्षु को कोई आघात नहीं लगेगा, तब तक यह कभी नहीं समझेगा।" अब वर्षा ऋतु निकट थी, और बुद्ध निवास करना चाहते थे। इसलिए निवास करने के नियत दिन, बुद्ध राजगृह गए और वक्काली को यह कहकर विदा कर दिया, "वापस जाओ, वक्काली।" इस प्रकार तीन महीने तक वक्काली बुद्ध के साथ नहीं रह सका और मन ही मन कहता रहा, "बुद्ध मुझसे बात नहीं करते।" अंततः उसने मन ही मन कहा, "अब मेरे जीने का क्या लाभ? मैं किसी पर्वत की चोटी से कूद जाऊँगा।" और यही सोचकर वह गिद्ध शिखर पर चढ़ गया।

बुद्ध ने देखा कि भिक्षु उदास और संसार से विरक्त है, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि इस भिक्षु को मुझसे कोई सांत्वना या दिलासा नहीं मिलेगा, तो वह मोक्ष के मार्ग और उसके फल प्राप्त करने की अपनी प्रवृत्ति को नष्ट कर देगा।" तदनुसार, उन्होंने अपना एक तेजस्वी स्वरूप प्रकट किया और भिक्षु के समक्ष दर्शन दिए। जैसे ही भिक्षु ने बुद्ध को देखा, उसके ऊपर से दुःख का बोझ हट गया। फिर बुद्ध ने मानो किसी सूखी झील को जल की धारा से भर दिया हो, भिक्षु के भीतर तीव्र आनंद और संतोष का संचार कर दिया।

आदरणीय वक्काली ने सोचा, "मैंने दस शक्तियों के स्वामी को देखा है, और वे मुझसे कह रहे हैं, 'आओ!'" तत्काल ही उन्हें गहन आनंद का अनुभव हुआ। उन्होंने सोचा, "मैं कैसे जाऊँ?" और पर्वत की चोटी पर खड़े होकर, यद्यपि उन्हें कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था, श्लोक के पहले शब्द सुनते ही वे दस शक्तियों के स्वामी के सामने वायु में उछल पड़े। और वायु में उड़ते हुए, बुद्ध द्वारा दिए गए श्लोकों का चिंतन करते हुए, उन्होंने आनंद की भावना को पूरी तरह से दबा दिया और अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध की स्तुति करते हुए, वे नीचे उतरे और बुद्ध की उपस्थिति में खड़े हो गए। एक अवसर पर बुद्ध ने उन्हें आस्थावान लोगों में सर्वोपरि स्थान दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 381)

पमोज्जाबहुलो बुद्धसासने पसन्नो भिक्खु

संखारूपसमं सुखं संतं पदं अधिगच्छे

पमोज्जबहुलो [पमोज्जबहुला]: प्रचुर परमानंद का; बुद्धासन : बुद्ध की शिक्षा में; पसन्नो [पसन्ना]: आनंद लेना; भिक्खु : साधु; संखारूपसमाम् [संखारूपसमा]: सभी कंडीशनिंग की समाप्ति; सुखं [सुखा]: आनंदमय; संतं पदं [पद]: शांति की स्थिति (निब्बान); अधिगच्छे : पहुँच जायेंगे
उनका परमानंद असीम है। वे बुद्ध की शिक्षाओं में आनंदित होते हैं। ऐसा भिक्षु सभी बंधनों के सुखद अंत के माध्यम से पूर्ण शांति की अवस्था - निर्वाण - को प्राप्त करेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 381)
संखारूपसमं : सभी बंधनों का निवारण। संखार पाँच स्कंदों (अस्तित्व के पाँच समूह या आसक्ति के समूह) में से एक है। संखार को मानसिक संरचना के रूप में वर्णित किया गया है। इन स्कंदों को खंड भी कहा जाता है । ये संखार पचास मानसिक घटनाओं से मिलकर बने हैं, जिनमें से ग्यारह सामान्य मनोवैज्ञानिक तत्व हैं, पच्चीस उच्च (शोभन) गुण और चौदह कर्मिक रूप से अस्वास्थ्यकर गुण हैं। संखार प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्च समुत्पाद) के सूत्र की दूसरी कड़ी है। संखार का प्रयोग किसी भी निर्मित, बद्ध या सृजित वस्तु के अर्थ में भी किया जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 382

———————————————————————

(धम्मपद 381) <<<< पिछला || धम्मपद 382 || अगला >>>> (धम्मपद 383)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 382 - सुमनसमनेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 382 - सुमनसमनेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
यो हैव दहारो भिक्खु
yunjati buddhasasane
so' mam locam pabhaseti
abbha muttova candima.

———————————————————————

श्लोक 382 : एक भिक्षु जो युवा होते हुए भी बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, वह संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादल से मुक्त चंद्रमा करता है।

———————————————————————

समनेरा सुमना की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा सुमना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (382) कहा।
समनेरा सुमना थेरा अनुराधा के शिष्य थे। मात्र सात वर्ष की आयु में ही वे अरहत थे, यानी असाधारण शक्तियों से संपन्न थे। एक बार जब उनके गुरु अनुराधा हिमालय के वन में स्थित एक मठ में बीमार थे, तब उन्होंने अनोटत्ता झील से जल प्राप्त किया, जो मठ से पाँच सौ योजन दूर थी। यह यात्रा उन्होंने भूमि मार्ग से नहीं, बल्कि अपनी असाधारण शक्ति के बल पर वायु मार्ग से की। बाद में, थेरा अनुराधा समनेरा सुमना को बुद्ध के पास ले गए, जो उस समय विशाखा द्वारा दान किए गए पुब्बाराम मठ में निवास कर रहे थे।
वहाँ, अन्य युवा भिक्षु और समनेरा उनके सिर पर थपथपाकर, उनके कान, नाक और बांहें खींचकर उन्हें चिढ़ा रहे थे और मज़ाक में पूछ रहे थे कि क्या उन्हें ऊब नहीं लग रही है। बुद्ध ने उन्हें देखा और सोचा कि वे उन युवा भिक्षुओं को युवा समनेरा सुमन के दुर्लभ गुणों से

अवगत कराएँगे। इसलिए बुद्ध ने यह घोषणा की कि उन्हें किसी समनेरा से अनोतत्ता झील से पानी का एक घड़ा लाने की आवश्यकता है। पूज्य आनंद ने पुब्बाराम मठ के भिक्षुओं और समनेराओं में खोज की, लेकिन कोई भी यह काम करने में सक्षम नहीं था। अंत में, पूज्य आनंद ने समनेरा सुमन से पूछा, जो अनोतत्ता झील से पानी लाने के लिए तुरंत सहमत हो गए। उन्होंने मठ से एक बड़ा सोने का घड़ा लिया और शीघ्र ही बुद्ध के लिए अनोतत्ता झील से पानी ले आए। पहले की तरह, वे अनोतत्ता झील गए और अपनी अलौकिक शक्ति से हवा में उड़कर वापस आ गए।
संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में भिक्षुओं ने बुद्ध को समनेरा सुमना की अद्भुत यात्रा के बारे में बताया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जो व्यक्ति सतर्कता और लगन से धम्म का अभ्यास करता है, वह युवावस्था में भी अलौकिक शक्तियां प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 382 : एक भिक्षु जो युवा होते हुए भी बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, वह संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादल से मुक्त चंद्रमा करता है।

अध्याय पच्चीस का अंत: भिक्षु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नवदीक्षित भिक्षु सुमना की कहानी, जिसने एक चमत्कार किया।
समनेरा सुमन पूज्य अनुरुद्ध के शिष्य थे। कम उम्र में ही, अपने अच्छे कर्मों के कारण वे अलौकिक शक्तियों से संपन्न अरहत बन गए। एक बार जब उनके गुरु अनुरुद्ध बीमार थे, तो उन्होंने अनोटत्ता झील से पानी लाया, जो मठ से बहुत दूर और दुर्गम थी। लेकिन अपनी अलौकिक शक्ति के कारण वे वायु में यात्रा करने में सक्षम रहे। कुछ समय बाद, अनुरुद्ध सुमन को पुब्बाराम मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित कराने ले गए।
मठ में, कई सामनरों ने सुमना को चिढ़ाया और उसका मज़ाक उड़ाया क्योंकि वह बहुत छोटा था। बुद्ध उन सामनरों को सुमना के असाधारण गुणों से परिचित कराना चाहते थे। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि वे कुछ सामनरों को अनोतत्ता झील से पानी का एक घड़ा लाने के लिए कहेंगे। लेकिन उनमें से कोई भी यह काम करने में सक्षम नहीं था। अंततः, पूज्य आनंद के अनुरोध पर, सुमना बुद्ध के लिए पानी का घड़ा लेने गया। पहले की तरह, वह अनोतत्ता झील गया और अपनी अलौकिक शक्ति से हवा में उड़कर वापस आ गया।
संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में, भिक्षुओं ने बुद्ध को सुमना की अद्भुत यात्रा के बारे में बताया। बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो व्यक्ति उत्साहपूर्वक धम्म का अभ्यास करता है, वह युवावस्था में भी अलौकिक शक्तियां प्राप्त करने में सक्षम होता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 382)
दाहरो यो भिक्खु बुद्धासने युञ्जति सो अब्भा
मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं हवे पभसेति
दहारो [दहारा]: युवा; यो भिक्खु : कोई साधु; बुद्धासन : बुद्ध की शिक्षा में; युञ्जति : परिश्रम करता है; तो : वह साधु; अब्भा मुत्तो [मुत्ता]: बादल से मुक्त; कैंडिमा इव :
चंद्रमा की तरह; इमं लोकं [लोक]: यह दुनिया; हा वे : निश्चित रूप से; पभासेति : चमकीला रूप से प्रकाशित करेगी
यह सत्य है। यदि कोई युवा भिक्षु बुद्ध की शिक्षाओं में पूरी लगन से परिश्रम करे, तो वह निश्चित रूप से संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करेगा जैसे कोई चंद्रमा कुछ समय के लिए छिपे हुए काले बादल के पीछे से निकलकर प्रकट होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 382)
यह श्लोक एक बहुत ही युवा भिक्षु से संबंधित है जो चमत्कार करने में सक्षम था। ये चमत्कार एकाग्र ध्यान का परिणाम थे।
आत्म-विकास के साधन के रूप में ध्यान एक सकारात्मक, गतिशील शक्ति है जो आत्म-ज्ञान की ओर ले जाती है, न कि जीवन की अनिश्चितताओं से मात्र एक नकारात्मक पलायन। वास्तव में, यह मनुष्य की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जागृत करने का सर्वोत्तम साधन है, जिससे उसे दो लाभ प्राप्त होते हैं: बुरी प्रवृत्तियों से पूर्ण मुक्ति और आध्यात्मिक ज्ञान की असाधारण शक्ति।
समाधि ध्यान के दौरान एकाग्रता में निरंतर वृद्धि के साथ मन निम्न आवेगों और इंद्रिय-संबंधी भावनाओं से मुक्त हो जाता है, और इस प्रकार बाधाओं को दूर करके नकारात्मक अच्छाई प्राप्त करता है। नकारात्मक अच्छाई की आत्मसंतुष्टि अनिवार्य रूप से उच्च विकास की एक जीवंत शक्ति द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है, जो अंततः सकारात्मक अच्छाई को जन्म देती है। जब मन इस सकारात्मक अच्छाई में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तो यह एक अत्यंत प्रशंसनीय साधन बन जाता है जो अलौकिक कार्यों और दिव्य दर्शनों के लिए उपयुक्त और योग्य होता है, जो सामान्य मन के लिए चमत्कार के समान प्रतीत होते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि ध्यान का अभ्यास करने वाला शिष्य अलौकिक गुणों (उत्तरी-मनुष्य-धम्म) में निपुण हो जाता है, जो उसके अभ्यास के असाधारण लाभ हैं। झान विधि से ध्यान का अभ्यास करने वाले शिष्यों को अपने जीवनकाल में समापत्ति का सुख प्राप्त होता है , जो मानसिक शांति की परमानंदमय अवस्था है। इसके अतिरिक्त, कसिण विधि से ध्यान का अभ्यास करने वालों को असाधारण लाभ के रूप में अभिज्ञा की शक्तियाँ , यानी उच्चतर या विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। विशुद्धिमग्ग शास्त्रों में वर्णित इन लाभों का विस्तृत वर्णन करता है।

अध्याय 26. ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण (383-423)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 383

(धम्मपद 382) <<<< पिछला || धम्मपद 383 || अगला >>>> (धम्मपद 384)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 383 - पसद्बहुलब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 383 - पसादबहुलब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
चिंदा सोतम परक्कम्मा
कामे पानुदा ब्राह्मण
sankharanam khayam natva
akatannusi brahmana.

श्लोक 383 : हे ब्राह्मण, परिश्रम से भोग की धारा को काट डालो और इंद्रिय इच्छाओं का त्याग कर दो। हे ब्राह्मण, बद्धता के अंत को देखकर, निर्वाण, अबद्धता को प्राप्त करने वाले अर्हत बनो।

एक ऐसे ब्राह्मण की कहानी जिसका अटूट विश्वास था
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (383) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसने कुछ भिक्षुओं के प्रति अत्यधिक भक्ति दिखाई।
एक बार, श्रावस्ती में एक ब्राह्मण रहता था, जो बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद उनके प्रति अत्यंत समर्पित हो गया था। वह प्रतिदिन भिक्षुओं को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित करता था। जब भिक्षु उसके घर आते, तो वह उन्हें "अरहत" कहकर संबोधित करता और आदरपूर्वक उन्हें अपने घर में प्रवेश करने का निवेदन करता। इस प्रकार संबोधित किए जाने पर पुथुज्जन भिक्षु और अरहत दोनों ही लज्जित हुए और उन्होंने अगले दिन ब्राह्मण के घर न जाने का निर्णय लिया।
जब ब्राह्मण को पता चला कि भिक्षु उसके घर दोबारा नहीं आए तो वह दुखी हुआ। वह बुद्ध के पास गया और उन्हें भिक्षुओं के न आने की बात बताई। बुद्ध ने उन भिक्षुओं को बुलवाया और उनसे स्पष्टीकरण मांगा। भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि ब्राह्मण उन सभी को अरहत कहकर संबोधित करता था। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या इस प्रकार संबोधित किए जाने पर उन्हें कोई झूठा अभिमान या अनुचित प्रसन्नता महसूस होती है? भिक्षुओं ने नकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, यदि अरहत कहकर संबोधित किए जाने पर आपको कोई झूठा अभिमान या अनुचित प्रसन्नता महसूस नहीं होती, तो आप भिक्षुओं के अनुशासन के किसी भी नियम का उल्लंघन

करने के दोषी नहीं हैं। वास्तव में, ब्राह्मण ने आपको ऐसा इसलिए कहा क्योंकि वह अरहतों के प्रति अत्यंत समर्पित था। इसलिए, मेरे पुत्रों, आपको व्यथा से मुक्ति पाने और अरहतत्व प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 383 : हे ब्राह्मण, परिश्रम से भोग की धारा को काट डालो और इंद्रिय इच्छाओं का त्याग कर दो। हे ब्राह्मण, बद्धता के अंत को देखकर, निर्वाण, अबद्धता को प्राप्त करने वाले अर्हत बनो।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

महान आस्था रखने वाले ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ब्राह्मण के संदर्भ में कहा था, जिसने कुछ भिक्षुओं के प्रति अत्यधिक भक्ति दिखाई थी।

कहा जाता है कि एक बार एक ब्राह्मण ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और इतना प्रसन्न हुआ कि उसके बाद वह नियमित रूप से अपने घर पर सोलह भिक्षुओं को भोजन कराने लगा। जब भिक्षु आते, तो वह उनके कटोरे लेकर कहता, "आदरणीय अरहतों, कृपया पास आएं! आदरणीय अरहतों, कृपया बैठें!" वह जिसे भी संबोधित करता, सभी भिक्षुओं को अरहत कहकर संबोधित करता। अब जिन भिक्षुओं ने अभी तक धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त नहीं किया था, वे मन ही मन सोचने लगे, "यह गृहस्थ यह नहीं जानता कि हमने अरहत पद प्राप्त नहीं किया है।" इसका परिणाम यह हुआ कि सभी भिक्षु शर्मिंदा हो गए और उसके घर जाना बंद कर दिया।

इससे वह आम आदमी बहुत दुखी और उदास हो गया। उसने सोचा, "अरे, मेरे घर तो कोई पूज्य भिक्षु नहीं आते?" इसलिए वह मठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें सारी बात बताई। तब बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा, "भिक्षुओं, इसका क्या अर्थ है?" भिक्षुओं ने उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने कहा, "लेकिन, भिक्षुओं, क्या आपको यह अच्छा नहीं लगता कि वह आपको अरहत कहकर अभिवादन करें?" "नहीं, पूज्यवर, हमें यह अच्छा नहीं लगता।" "फिर भी, भिक्षुओं, यह तो मनुष्य के आनंद की अभिव्यक्ति मात्र है; और आनंद की अभिव्यक्ति में कोई दोष नहीं हो सकता। ब्राह्मणों का अरहतों के प्रति प्रेम असीम है। इसलिए, यह उचित है कि आप भी तृष्णा की धारा को त्याग दें और अरहतत्व की प्राप्ति से कम किसी भी चीज़ से संतुष्ट न हों।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 383)

ब्राह्मण परक्कम्मा सोतं छिन्दा कामे पनुदा

ब्राह्मण संखारणं खयं नात्वा अकतन्नि असि

ब्राह्मण : हे ब्राह्मण; परक्कम्मा : कड़ी मेहनत करें; सभी आवश्यक प्रयास करें; चिन्दा : काट दिया; सोतां [सोता]: धारा; कामे : कामुक इच्छाएँ; पनुडा : छुटकारा पाना; संखारणम् [संखारण]: वातानुकूलित चीजों का; खायं [खाया]: क्षरण; णत्वा : जान कर; अकातान्नुसि : अनिर्मित के ज्ञाता बनें

अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करो और जीवन के प्रवाह को काट डालो। वासना से मुक्त हो जाओ। सांसारिक चीजों के क्षय को जान लो। और फिर, तुम निर्वाण के ज्ञाता बन जाओगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 383)

sotaṃ chinda : धारा को काट दो। यहाँ धारा लालसा है। जो धारा को काट देता है, वह धारा-विजेता (sotāpanna) बन जाता है । धारा-विजेता सांसारिक (puthujjana) नहीं रहता, बल्कि आर्य (महान) बन जाता है।

संतत्व की इस प्रथम अवस्था को प्राप्त करने पर, वह अस्तित्व से बंधे हुए निम्नलिखित तीन बंधनों (संयोजन) को नष्ट कर देता है, अर्थात्:

(1) सक्काया-दिट्ठी — शाब्दिक अर्थ है, वह दृष्टिकोण जब कोई समूह या यौगिक विद्यमान हो। यहाँ काया से तात्पर्य पदार्थ के पाँच समुच्चयों - भावना, बोध, मानसिक अवस्थाएँ और चेतना - से है। यह दृष्टिकोण कि जब मनो-शारीरिक समुच्चयों का एक जटिल यौगिक मौजूद हो, तब एक अपरिवर्तनीय सत्ता, एक स्थायी आत्मा विद्यमान होती है, सक्काया-दिट्ठी कहलाता है। धम्मसंगनी ने ऐसे बीस प्रकार के आत्मा-सिद्धांतों की गणना की है। सक्काया-दिट्ठी को सामान्यतः आत्म-भ्रम, व्यक्तित्व का सिद्धांत या व्यक्तिवाद का भ्रम के रूप में अनुवादित किया जाता है;

(2) विचिकिच्चा —संदेह। ये संदेह हैं (i) बुद्ध के बारे में, (ii) धम्म के बारे में, (iii) संघ के बारे में, (iv) अनुशासनात्मक नियमों (सिक्खा) के बारे में, (v) भूतकाल के बारे में, (vi) भविष्य के बारे में, (vii) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के बारे में, और (viii) आश्रित उत्पत्ति (पटिच्च-समुप्पाद) के बारे में;

(3) सिलब्बतपरमासा — (गलत) रीति-रिवाजों और समारोहों का पालन।

धम्मसंगानी इसे इस प्रकार समझाता है: इस सिद्धांत से बाहर के तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह सिद्धांत है कि नैतिक आचरण और अनुष्ठानों के नियमों द्वारा शुद्धि प्राप्त की जाती है ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 384

———————————————————————

(धम्मपद 383) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 384 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 385)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 384 - संबहुलाभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 384 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yada dvayesu dhammesu
paragu hoti brahmano
athassa sabbe samyoga
attham gacchanti janato.

———————————————————————

श्लोक 384 : जब ब्राह्मण दो धर्मों (अर्थात् शांति/समता और अंतर्दृष्टि/विपश्यना ध्यान) में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तब उस ज्ञानी में सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।

———————————————————————

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (384) कहा।

एक बार तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। पूज्य सारिपुत्त ने देखा कि उन भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है, इसलिए वे बुद्ध के पास गए और केवल उन्हीं भिक्षुओं के लाभ के लिए एक प्रश्न पूछा। प्रश्न यह था: "दो धर्म क्या हैं?" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "सारिपुत्त! शांति (समता) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) ध्यान ही दो धर्म हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 384 : जब ब्राह्मण दो धर्मों (अर्थात् शांति/समता और अंतर्दृष्टि/विपश्यना ध्यान) में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तब उस ज्ञानी में सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में सभी तीस भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त कर लिया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, विदेशों में रहने वाले तीस भिक्षु आए और बुद्ध को प्रणाम करके बैठ गए। पूज्य सारिपुत्त यह जानते हुए कि उनमें अर्हतत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं, बुद्ध के पास गए और बिना बैठे ही उनसे यह प्रश्न पूछा, “पूज्यवर, दो अवस्थाओं का अक्सर उल्लेख होता है; वे दो अवस्थाएँ क्या हैं?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “सारिपुत्त, उन दो अवस्थाओं से मेरा तात्पर्य शांति और अंतर्दृष्टि है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 384)

ब्राह्मणो यदा द्वयेसु धम्मेसु परागु होति

अथ जानतो अस्स सब्बे संयोग अत्थं गच्छन्ति

यदा : जब; द्वयसु धम्मेसु : 'दो अवस्थाओं' में; पारगू होति : सिद्ध हो जाता है; अथ : तब; जानतो [जानता] : (उसमें) जो जानता है; अस : उसके; सब्बे संयोग : सभी बंधन; अत्थं गच्छन्ति : लुप्त हो जाते हैं

जब ब्राह्मण—सत्य के साधक—एकाग्रता और अंतर्दृष्टि की दो अवस्थाओं को पूरी तरह से समझ लेता है, तो उस व्यक्ति में, जो इन्हें जानता है, सभी बंधन क्षीण हो जाते हैं, कम हो जाते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 384)

द्वयसु धम्मेसु : दो अवस्थाओं में। ये दो अवस्थाएँ हैं एकाग्रता (समथा) और अंतर्दृष्टि (विपस्सना)। सत्य की खोज करने वाले को अगली अवस्था तक ले जाने के लिए मन के अनुशासन की ये दो प्रणालियाँ आवश्यक हैं। इन दो अवस्थाओं में से पहली है समथा — एकाग्रता, शांति, निर्मलता। चित्तेकग्गता (मन की एकाग्रता) और अविक्खेप (विचलित न होना)। यह स्वस्थ चेतना के मानसिक कारकों में से एक है।

अगला है विपश्यना — अंतर्दृष्टि। अंतर्दृष्टि वह सहज ज्ञान है जो प्रकट होकर अस्तित्व की अनित्यता, दुख और समस्त भौतिक एवं मानसिक घटनाओं के निराकार और सारहीन स्वरूप के सत्य को उजागर करता है। बौद्ध धर्म में अंतर्दृष्टि-ज्ञान ही निर्णायक मुक्तिदायक कारक है, यद्यपि इसे नैतिकता और एकाग्रता के दो अन्य प्रशिक्षणों के साथ विकसित करना आवश्यक है। अंतर्दृष्टि-अभ्यास की पराकाष्ठा सीधे पवित्रता की अवस्था की ओर ले जाती है।

समाधि या समाथा : एकाग्रता। शाब्दिक अर्थ: दृढ़ता से स्थिर रहने की (मानसिक) अवस्था—मन का किसी एक वस्तु पर स्थिर होना। मन की एकाग्रता (चित्तस्स एकग्गता) को एकाग्रता कहते हैं। एकाग्रता, यद्यपि अक्सर बहुत कमजोर होती है, सात मानसिक गुणों में से एक है जो सभी चेतना से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई है। सही एकाग्रता (सम्मा - समाधि), अष्टांग मार्ग (मग्ग) की अंतिम कड़ी के रूप में , चार ध्यानात्मक समाधि (झान) के रूप में परिभाषित की गई है। व्यापक अर्थ में, एकाग्रता की बहुत कमजोर अवस्थाओं को भी समाहित करते हुए, यह सभी कर्मिक रूप से लाभकारी (कुशल) चेतना से जुड़ी है। गलत एकाग्रता (मिच्छा - समाधि) सभी कर्मिक रूप से हानिकारक (अकुशल) चेतना से जुड़ी एकाग्रता है । ग्रंथों में जहां भी इस शब्द को सही या गलत में विभाजित नहीं किया गया है, वहां सही एकाग्रता का अर्थ है।

एकाग्रता में तीव्रता के तीन स्तर होते हैं:

(1) मानसिक अभ्यास के आरंभ में विद्यमान प्रारंभिक एकाग्रता (परिकम्मा-समाधि);

(2) आस-पास की एकाग्रता (उपचार-समाधि), जैसे एकाग्रता जो प्रथम तल्लीनता (झान) के निकट पहुँचती है लेकिन अभी तक उसे प्राप्त नहीं करती है, जो कुछ मानसिक अभ्यासों में तथाकथित प्रति-छवि (पटिभाग-निमित्त) के प्रकट होने से चिह्नित होती है, और

(3) प्राप्ति एकाग्रता (अप्पणा-समाधि), जैसे कि वह एकाग्रता जो समाधि के दौरान मौजूद होती है।

चार श्रेष्ठ मार्ग-क्षणों (मग्ग) और फल-क्षणों (फल) से संबंधित एकाग्रता को लोकउत्तरा कहा जाता है , जिसका लक्ष्य निर्वाण होता है। अन्य सभी प्रकार की एकाग्रता, यहाँ तक कि उदात्त समाधि की एकाग्रता भी, केवल लोकीय होती है । एकाग्रता के विकास (समाधि - भावना) से चार प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त हो सकते हैं: (i) चार समाधि के माध्यम से वर्तमान सुख; (ii) बोध के माध्यम से ज्ञान और दृष्टि (ज्ञान - दस्सना) — यहाँ संभवतः दैवीय आँख (अभिज्ञा) के समान — की प्राप्ति।

विपश्यना : अंतर्दृष्टि। अंतर्दृष्टि वह सहज ज्ञान है जो प्रकट होकर अस्तित्व की अनित्यता, दुख और समस्त भौतिक एवं मानसिक घटनाओं के निराकार और सारहीन स्वरूप के सत्य को उजागर करती है। बौद्ध धर्म में अंतर्दृष्टि-ज्ञान (विपश्यना - पञ्ञा) ही निर्णायक मुक्तिदायक कारक है, यद्यपि इसे नैतिकता और एकाग्रता के दो अन्य प्रशिक्षणों के साथ विकसित करना आवश्यक है। अंतर्दृष्टि अभ्यास की पराकाष्ठा सीधे पवित्रता की अवस्थाओं की ओर ले जाती है।

अंतर्दृष्टि महज बौद्धिक समझ का परिणाम नहीं है, बल्कि अपने शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष ध्यानपूर्ण अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होती है। टीकाओं में अंतर्दृष्टि-ध्यान विकसित करने का क्रम इस प्रकार दिया गया है:

शारीरिक (रूप) का विवेक;

मानसिक (नामा) विवेक;

दोनों का चिंतन (नामरूप) जैसे कि वास्तविक घटनाओं में उनका युग्म-वार घटित होना और उनकी परस्पर निर्भरता;

दोनों को सशर्त माना जाता है (आश्रित उत्पत्ति का अनुप्रयोग, (पटिकसमुप्पाद);

मन और शरीर की स्थितियों पर तीनों विशेषताओं (अस्थिरता आदि) का अनुप्रयोग।

धीरे-धीरे बढ़ती अंतर्दृष्टि के चरणों का वर्णन नौ अंतर्दृष्टि-ज्ञान (विपस्सना - ज्ञान) में किया गया है, जो शुद्धि की छठी अवस्थाओं का गठन करते हैं: उत्थान और पतन के ज्ञान से शुरू होकर सत्य के अनुकूलन के साथ समाप्त होते हैं।

अठारह प्रमुख प्रकार के अंतर्दृष्टि-ज्ञान (या मुख्य अंतर्दृष्टि; (महा - विपस्सना)) सूचीबद्ध और वर्णित किए गए हैं:

अनित्यता का चिंतन (aniccānupassanā),

दु:खों का चिंतन (दुक्खानुपस्सना),
अनात्म का चिंतन (anattānupassanā),
घृणा का चिंतन (निब्बिदानुपस्सना),
वैराग्य का चिंतन (विरागानुपस्सना),
मृत्यु के चिंतन (निरोधानुपस्सना)
त्यागने का चिंतन (paṭinissaggānupassanā),
घटते हुए प्रकाश का चिंतन (खयानुप),
लुप्त होने का चिंतन (वयानुप),
परिवर्तन का चिंतन (विपरीणमानुप),
बिना शर्त (या चिह्नहीन) का चिंतन (animittānup),
इच्छाहीनता का चिंतन (अप्पणिहितानुप),
शून्यता का चिंतन (सुञ्ञतानुप),
घटनाओं की अंतर्दृष्टि का चिंतन जो उच्चतर ज्ञान है (अधिपञ्ञा - धम्म - विपस्सना)।
वास्तविकता के अनुसार ज्ञान और दृष्टि (यथा - भूत - ज्ञानदस्सना),
दु:ख (या खतरे) का चिंतन (आदिनवानुपस्सना),
चिंतन करना (पटीसंखानुप),
मुँह मोड़ने का चिंतन (विवट्टानुपस्सना)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 385

(धम्मपद 384) <<<< पिछला || धम्मपद 385 || अगला >>>> (धम्मपद 386)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 385 - मरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 385 - मरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa param aparam va
paraparam na vijjati
विट्टाडारम विसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 385 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसके लिए न तो यह किनारा (अर्थात इंद्रिय-आधार) है और न ही दूसरा किनारा (अर्थात इंद्रिय विषय), और जो दुखी नहीं है और नैतिक दोषों से मुक्त है(1)।

---

1. 'यह किनारा' और 'दूसरा किनारा' का प्रयोग आंतरिक और बाह्य आयतनों के संदर्भ में किया जाता है। आंतरिक आयतन इंद्रिय आधार हैं, जैसे आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन; बाह्य आयतन इंद्रिय विषय हैं, जैसे दृश्य वस्तु, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और मन का विषय।

एक सच्चे ब्राह्मण (अर्थात्, अरहत) के लिए न तो 'यह किनारा' है और न ही 'दूसरा किनारा', जिसका अर्थ है कि अरहत की इंद्रियां शांत हो जाती हैं और उसकी वासनाएं समाप्त हो जाती हैं।

———————————————————————

मारा की कहानी (अर्थात शैतान/राक्षस द्वारा बुद्ध से 'परम' का अर्थ पूछना)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने मारा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (385) कहा।

एक बार मारा मनुष्य का वेश धारण करके बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "आदरणीय महोदय, आप अक्सर 'परम' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस शब्द का क्या अर्थ है?" बुद्ध यह जानकर कि यह प्रश्न मारा पूछ रहा है, उसे फटकारा, "हे दुष्ट मारा! 'परम' और 'अपरम' शब्दों का तुमसे कोई संबंध नहीं है। 'परम' जिसका अर्थ है 'दूसरा किनारा', वहाँ केवल वे अरहत ही पहुँच सकते हैं जो नैतिक दोषों से मुक्त हों।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 385 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसके लिए न तो यह किनारा (अर्थात इंद्रिय-आधार) है और न ही दूसरा किनारा (अर्थात इंद्रिय विषय), और जो दुखी नहीं है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

मारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मारा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार मारा मनुष्य का वेश धारण करके बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "आदरणीय! आप अक्सर 'पारं' शब्द का प्रयोग करते हैं; इस शब्द का क्या अर्थ है?" बुद्ध यह जानकर कि यह प्रश्न मारा पूछ रहा है, उसे फटकारा, "हे दुष्ट मारा! ' पारं' और 'अपारं' शब्दों का तुमसे कोई संबंध नहीं है। पारं , जिसका अर्थ है दूसरा किनारा, केवल उन अरहतों द्वारा ही पहुँचा जा सकता है जो नैतिक दोषों से मुक्त हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 385)

यस्सा पारं अपरं वा पारंपारं न विज्जति

वीतद्दरं विसंयुत्तं तं अहं ब्रूमि ब्राह्मणम्

यस्सा : किसके लिए; पारं [पारा]: दूर का किनारा; अपरं [अपरा]: निकट तट; परापाराम् [परापारा]: इधर-उधर किनारे; न विज्जति : अस्तित्व में नहीं; वीतद्दरं [वीतद्दर]: निष्कलंक; विसंयुत्तं [विसंयुत्त]: सभी अशुद्धियों से मुक्त; तं : वह संत; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणम् [ब्राह्मण]: ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

उसके लिए कोई दूर का किनारा नहीं है, न ही कोई पास का किनारा है। उसके लिए ये दोनों किनारे अस्तित्वहीन हैं। वह चिंता मुक्त है और बंधनों से मुक्त है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 385)

पारं : इंद्रिय क्षेत्र। बारह इंद्रिय क्षेत्र होते हैं, जिनमें से छह व्यक्तिगत इंद्रिय क्षेत्र हैं, और अन्य छह बाह्य इंद्रिय क्षेत्र हैं। इन्हें आयतन कहा जाता है , जो चार अमूर्त अवशोषणों का नाम है। बारह आधार या स्रोत जिन पर मानसिक प्रक्रियाएं निर्भर करती हैं, उनमें पाँच भौतिक इंद्रियां और चेतना शामिल हैं, जो छह व्यक्तिगत (अज्जत्तिक) आधार हैं; और छह वस्तुएं, जिन्हें बाह्य (बाहिरा) आधार कहा जाता है।

आँख, या दृष्टि अंग; दृश्य वस्तु,

कान, या श्रवण अंग; ध्वनि, या श्रव्य वस्तु,

नाक, या सूंघने वाला अंग; गंध, या सूंघने वाली वस्तु,

जीभ, या स्वाद लेने वाला अंग; स्वाद, या स्वाद का स्रोत

शरीर, या स्पर्श अंग; शरीर की छाप, या स्पर्श वस्तु,

मन का आधार, या चेतना; मन का विषय (मनायतन) (धम्मायतन)

दृश्य अंग (चक्खायतन) से तात्पर्य आँख के संवेदी भाग (चक्खु - पसाद) से है, जो चार तत्वों से निर्मित है और इंद्रिय-उत्तेजनाओं (सपत्तिघ) के प्रति प्रतिक्रिया करता है । इसी प्रकार शेष चार शारीरिक इंद्रियों का भी वर्णन किया गया है ।
मन-आधार (मानायतन) सभी प्रकार की चेतना के लिए एक सामूहिक शब्द है, और इसलिए इसे मन-तत्व (मनो - धातु) के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जो केवल इंद्रिय-विषय पर ध्यान देने (वज्जन) और इंद्रिय-विषय को ग्रहण करने (संपटिच्छन) का कार्य करता है । मन (विज्ञाना - किच्च) के कार्यों पर :
दृश्य वस्तु (रूपायतन) को उस घटना के रूप में वर्णित किया गया है जो चार भौतिक तत्वों से निर्मित होती है और रंगों के रूप में प्रकट होती है। दृष्टि से, यानी चक्खु-विज्ञान द्वारा जो देखा जाता है , वह रंग और प्रकाश के अंतर होते हैं, न कि त्रि-आयामी भौतिक वस्तुएँ।
मन-विषय-आधार (धम्मायतन) मन-विषय-तत्व (धम्म - धातु और धम्मरम्मण) के समान है। यह भौतिक या मानसिक, भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्यकाल का, वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है।
पांचों शारीरिक इंद्रियों को इंद्रिय शक्तियाँ भी कहा जाता है , और इन शक्तियों के बारे में कहा जाता है: प्रत्येक पांचों शक्ति का अपना अलग क्षेत्र होता है, और कोई भी शक्ति दूसरी शक्ति के क्षेत्र में भागीदार नहीं होती...; उनका आधार मन होता है... वे प्राण शक्ति से नियंत्रित होती हैं... लेकिन प्राण शक्ति फिर से ऊष्मा से नियंत्रित होती है... ऊष्मा फिर से प्राण शक्ति से नियंत्रित होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे जलते हुए दीपक का प्रकाश और लौ परस्पर नियंत्रित होते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 386

(धम्मपद 385) <<<< पिछला || धम्मपद 386 || अगला >>>> (धम्मपद 387)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 386 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 386 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Jhayim viraja' masinam
katakicca' manasavam
उत्तमत्था' मनुप्पट्टम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 386 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो एकांत में शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है और नैतिक दोषों से मुक्त है; जिसने अपने कर्तव्यों का पालन किया है, नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) से मुक्त है और उच्चतम लक्ष्य (अरहतत्व) को प्राप्त कर लिया है।

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (386) कहा।

एक दिन एक ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, “गौतम बुद्ध अपने शिष्यों को ‘ब्राह्मण’ कहते हैं। मैं भी जाति से ब्राह्मण हूँ। क्या मुझे भी ब्राह्मण नहीं कहा जाना चाहिए?” यह सोचकर वह बुद्ध के पास गया और उनसे यह प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, “मैं किसी को केवल उसकी जाति के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया हो।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 386 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो एकांत में शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है और नैतिक दोषों से मुक्त है; जिसने अपने कर्तव्यों का पालन किया है, नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) से मुक्त है और सर्वोच्च लक्ष्य (अरहतत्व/निर्वाण/ज्ञानोदय) को प्राप्त कर लिया है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, एक दिन उस ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, “बुद्ध अपने शिष्यों को ‘ब्राह्मण’ कहते हैं, मैं तो जन्म और वंश से ब्राह्मण हूँ; इसलिए उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।” अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय में पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, “मैं किसी व्यक्ति को केवल जन्म और वंश के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं इस उपाधि से केवल उसी व्यक्ति को पुकारता हूँ जिसने परम लक्ष्य, अर्हतत्व को प्राप्त कर लिया हो।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 386)

झायिम विरजम असीनं कतकिच्चं अनासवं

उत्तममथं अनुप्पट्टं तं अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि

झायिम : ध्यान करना; विरजम : दोषों से मुक्त; असीनां [असीना]: एकांत में बैठा हुआ; काटाकिक्कां [काटाकिक्का]: जिसने अपने कार्य पूरे कर लिए हैं; अनासवम् [अनासव]: दागों से मुक्त; उत्तममत्थम् [उत्तममत्था]: उच्चतम अवस्था (निब्बान); अनुप्पट्टं [अनुप्पट्टा]: पहुंच गया; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणम् [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

वह एकाग्रचित्त है। वह हर तरह के दोषों से मुक्त है—वह धूल जो किसी प्राणी को अशुद्ध करती है। वह एकांत में बैठा है। उसके सभी आध्यात्मिक कार्य और कर्तव्य पूर्ण हैं। वह सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 386)

उत्तमत्तं अनुप्पत्तं : जिसने सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्थाएँ प्राप्त कर ली हैं – अरहंतत्व: संतत्व, श्रेष्ठ व्यक्ति, श्रेष्ठ पुरुष।

चार महान व्यक्ति हैं (आरिया - पुग्गला):

धारा-विजेता (सोटापन्ना);

एक बार लौटने वाला (सकादागामी);

अनागामी (वापसी न करने वाला); और

पवित्र व्यक्ति (अरहत)।

(1) धारा-जीतने के मार्ग (सोतापत्ति-मग्ग) के माध्यम से व्यक्ति उन तीन बंधनों (संयोजन) से मुक्त हो जाता है जो प्राणियों को इंद्रिय जगत में अस्तित्व से बांधते हैं, (i) सक्कायादिट्ठी-व्यक्तित्व-विश्वास; (ii) विचिकिच्चा-संदेहपूर्ण शंका; (iii) सीलाब्बत-परमासा-केवल नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति।

(2) एक बार लौटने के मार्ग (सकदागामी-मग्ग) से व्यक्ति लगभग चौथे और पाँचवें बंधनों से मुक्त हो जाता है, (iv) कामच्छंद-इंद्रिय-वासना; (v) व्यापाद-द्वेष।

(3) अनागामी-मग्ग के मार्ग से व्यक्ति ऊपर बताए गए पाँच निम्न बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

(4) पवित्रता के मार्ग (अरहत्त-मग्ग) के माध्यम से व्यक्ति पाँच उच्च बंधनों से मुक्त हो जाता है, (vi) रूपराग – भौतिक अस्तित्व की लालसा; (vii) अरूपराग – अमूर्त अस्तित्व की लालसा; (viii) मान – अहंकार; (ix) उद्दच्च – बेचैनी; (x) अविज्जा – अज्ञान।

(1) सोतापञ्ञा – तीन बंधनों के लुप्त होने के बाद, वह भिक्षु जिसने (निर्वाण की ओर) धारा जीत ली है और अब निचले लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं है, दृढ़ता से स्थापित है, पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत है।

(2) सकादागामी – तीनों बंधनों के लुप्त होने और लोभ, घृणा और भ्रम के कम होने के बाद, वह केवल एक बार फिर लौटेगा; और एक बार फिर इस दुनिया में लौटकर वह दुखों का अंत करेगा।

(3) अनागामी — पाँच बंधनों के लुप्त होने के बाद वह एक उच्चतर लोक में प्रकट होता है, और वहाँ वह संसार (इंद्रिय लोक) से कभी वापस लौटे बिना निर्वाण प्राप्त करता है।
(4) अरहन्त — सभी दोषों (आसवक्खय) के निवारण के द्वारा वह इसी जीवन में मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति, जो दोषों से मुक्त है, और जिसे उसने स्वयं समझा और अनुभव किया है, प्राप्त कर लेता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 387

(धम्मपद 386) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 387 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 388)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 387 - आनंदत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 387 - आनंदत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Diva tapati adicco
रत्ती मभाती चंडीमा
sannaddho khattiyo tapati
jhayi tapati brahmano
atha sabbamahorattim
buddho tapati tejasa.

श्लोक 387 : दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा चमकता है; राजसी वस्त्रों में राजा चमकता है; ध्यान में अरहत चमकता है; परन्तु बुद्ध अपनी महिमा में दिन और रात, हर समय चमकते हैं।

थेरा आनंद की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य आनंद के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (387) कहा।
कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) सातवें माह की पूर्णिमा के दिन बुद्ध से मिलने आए थे। राजा अपने शाही वस्त्रों में परिपूर्ण थे। उसी समय थेरा कलुदयी भी उसी कक्ष में सभा के किनारे बैठे थे। वे गहन ध्यान में लीन थे, उनका शरीर प्रकाशमान और स्वर्णिम था। आदरणीय आनंद ने आकाश में देखा कि सूर्य अस्त हो रहा था और चंद्रमा अभी-अभी निकल रहा था, सूर्य और चंद्रमा दोनों से प्रकाश की किरणें निकल रही थीं।
आदरणीय आनंद ने राजा, थेरा और सूर्य एवं चंद्रमा के प्रकाश को देखा। अंत में, आदरणीय आनंद ने बुद्ध की ओर देखा और उन्हें अचानक यह अहसास हुआ कि बुद्ध से निकलने वाला प्रकाश अन्य सभी से निकलने वाले प्रकाश से कहीं अधिक था। बुद्ध को उनकी महिमा और वैभव में देखकर, आदरणीय आनंद तुरंत बुद्ध के पास गए और बोले, "हे आदरणीय! आपके दिव्य शरीर से निकलने वाला प्रकाश राजा, थेरा, सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश से कहीं अधिक है।"
बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 387 : दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा चमकता है; राजसी वस्त्रों में राजा चमकता है; ध्यान में अरहत चमकता है; परन्तु बुद्ध अपनी महिमा में दिन और रात, हर समय चमकते हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय आनंद की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, महाप्रसव के दिन, पसेनादि कोसला सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर, हाथों में इत्र, मालाएँ आदि लिए हुए मठ में गए। उस समय पूज्य कालुदाई सभा के बाहरी घेरे में समाधि अवस्था में विराजमान थे। उनका शरीर स्वर्णिम होने के कारण दर्शन में अत्यंत सुंदर था। ठीक उसी समय चंद्रमा उदय हुआ और सूर्य अस्त हुआ। पूज्य आनंद ने सूर्यास्त के समय सूर्य की चमक और उदय के समय चंद्रमा की चमक को देखा; फिर उन्होंने राजा के शरीर की चमक, पूज्य बुद्ध के शरीर की चमक और तथागत बुद्ध के शरीर की चमक को देखा। बुद्ध की चमक अन्य सभी बुद्धों की चमक से कहीं अधिक थी।

आदरणीय आनंद ने बुद्ध को प्रणाम करते हुए कहा, "आदरणीय, आज मैंने इन सभी शरीरों की चमक देखी, लेकिन केवल आपके शरीर की चमक ने ही मुझे तृप्त किया; क्योंकि आपका शरीर इन सभी अन्य शरीरों की चमक से कहीं अधिक तेजस्वी था।" बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में, राजा जब सज-धज कर होता है, और अरहत जब मानवीय सान्निध्य त्यागकर समाधि में लीन हो जाता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात चमकते हैं, और वे पंचांग ज्योति से प्रकाशित होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 387)

आदिको दिवा तपती कैंडिमा रत्तिं ओभाति खट्टियो

सन्नद्धो तपति ब्राह्मणो झायि तपति

अथ सब्बं अहोरत्तीं बुद्धो तेजसा तपति

एडिक्को [एडिकका]: सूर्य; दिवा : दिन के दौरान; तपती : चमकता है; कैंडिमा : चंद्रमा; रत्तीं [रत्ती]: रात में; ओभाति : चमकता है; खट्टियो [खट्टिया]: योद्धा; सन्नद्धो [सन्नद्ध]: अपना कवच पहने हुए; तपती : चमकती है; ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: ब्राह्मण; झायी : ध्यान में; तपती : चमकता है; अथा : परंतु; सब्बाṃ [सब्बा]: भर में; अहोरात्तीं [अहोरात्ती]: दिन और रात; बुद्धो [बुद्ध]: बुद्ध; तेजसा : उसकी महिमा में; तपती : चमकती है

सूर्य दिन में चमकता है। चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। योद्धा कवच पहने होने पर ही चमकता है। ब्राह्मण ध्यानमग्न होने पर ही चमकता है। इन सभी लोगों के चमकने के अलग-अलग समय होते हैं। लेकिन बुद्ध अपने ज्ञानोदय के दौरान दिन-रात चमकते रहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 387)

झायी : ध्यान करना; ध्यान की अवस्था; एकाग्रता का अभ्यास करना । झान में लीन होना एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो पांचों इंद्रियों की पहुंच से परे है। यह अवस्था केवल एकांत में और निरंतर एकाग्रता के अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती है।

इंद्रियजन्य वस्तुओं से विरक्त होकर, बुरी चीजों से विरक्त होकर, शिष्य प्रथम समाधि में प्रवेश करता है, जो विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन के साथ होती है, वैराग्य से उत्पन्न होती है, और परमानंद और खुशी से भरी होती है।

यह सूक्ष्म भौतिक जगत से संबंधित प्रथम समाधि (रूपावचराज्झान) है। यह तब प्राप्त होती है जब एकाग्रता की शक्ति से पांचों इंद्रिय क्रियाएं अस्थायी रूप से निलंबित हो जाती हैं और पांचों अवरोध भी दूर हो जाते हैं।

प्रथम समाधि पाँच चीजों से मुक्त होती है, और पाँच चीजें उसमें मौजूद होती हैं। जब शिष्य प्रथम समाधि में प्रवेश करता है, तो पाँच बाधाएँ - कामवासना, द्वेष, सुस्ती और आलस्य, बेचैनी और मानसिक चिंता, संदेह - दूर हो जाती हैं; और वहाँ - विचार-अवधारणा (वितक्का), विवेचनात्मक चिंतन (विचार), परमानंद (पीति), सुख (सुख), और एकाग्रता (चित्त एकग्गता - समाधि) मौजूद होती हैं ।

प्रथम समाधि में उपस्थित ये पाँच मानसिक कारक समाधि के कारक (या घटक) कहलाते हैं (झानंग)। वितक्का (अमूर्त विचार का प्रारंभिक निर्माण) और विचार (विवेचनात्मक चिंतन, मनन) मन के क्रियात्मक कार्य (वाच - संस्कार) कहलाते हैं; अतः ये चेतना की तुलना में गौण हैं। विशुद्धि - मग्ग में , वितक्का की तुलना घड़े को पकड़ने से और विचार की तुलना उसे पोंछने से की जाती है। प्रथम समाधि में ये दोनों ही कारक दुर्बल अवस्था में उपस्थित होते हैं और बाद की समाधि में पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं।

और इसके अलावा, विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन के शांत होने के बाद, और आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त करने से, वह विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन से मुक्त अवस्था में प्रवेश करता है, दूसरी समाधि, जो एकाग्रता (समाधि) से उत्पन्न होती है और परमानंद (पीति) और सुख (सुख) से भरी होती है।

दूसरी समाधि अवस्था में, समाधि के तीन कारक होते हैं: खुशी और एकाग्रता।

और आगे, जब परमानंद की अवस्था समाप्त हो जाती है, तो वह समभाव, सजगता और स्पष्ट जागरूकता में लीन हो जाता है; और वह स्वयं उस अनुभूति का अनुभव करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: सुखी है वह जो समभाव और सजग है — इस प्रकार वह तीसरे समाधि में प्रवेश करता है।
तीसरे समाधि में समाधि के दो कारक हैं: समभाव सुख (उपेक्खा - सुख) और एकाग्रता (चित्त'एकगत्ता) ।
और इसके अलावा, सुख और दुख का त्याग करने के बाद, और पूर्व के सुख और दु:ख के लुप्त हो जाने के बाद, वह सुख और दुख से परे की अवस्था में प्रवेश करता है, चौथी समाधि में, जो समभाव और जागरूकता से शुद्ध होती है।
चौथे अवशोषण में अवशोषण के दो कारक हैं: एकाग्रता और समभाव (उपेक्खा)।
विशुद्धि - मग्ग में ध्यान के चालीस विषयों (कम्मट्ठाना) का विस्तृत वर्णन और विवेचना की गई है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 388

————————————————————————

(धम्मपद 387) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 388 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 389 और 390)

————————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 388 - अन्नतरब्राह्मण पब्बजिता वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 388 - अन्नतरब्राह्मण पब्बजिता वत्थु

————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

बहितापापोती ब्राह्मणो
समाकारिया(1) "समानो" ती वुक्काती
pabbajayamattano malam
तस्मा "पब्बाजिटो"(2) ती वुकाति।

————————————————————————

श्लोक 388 : क्योंकि उसने बुराई का त्याग कर दिया है, इसलिए उसे 'ब्राह्मण' कहा जाता है; क्योंकि वह शांत जीवन जीता है, इसलिए उसे 'समना' कहा जाता है; और क्योंकि वह अपनी अशुद्धियों से छुटकारा पा लेता है, इसलिए उसे 'पब्बजित' कहा जाता है।

————————————————————————

1. समाचरिया: शाब्दिक अर्थ, शांत जीवन जीना, अर्थात् नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए अभ्यास करना।
2. पब्बजिता: वह व्यक्ति जो गृहस्थ जीवन छोड़कर एकांतवासी का बेघर जीवन अपनाता है; बौद्ध धर्म में इसका अर्थ है वह व्यक्ति जिसने गृहस्थ जीवन की अशुद्धियों का त्याग करके भिक्षु बन जाता है।

————————————————————————

एक ब्राह्मण संन्यासी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (388) कहा।
एक समय श्रावस्ती में एक ब्राह्मण तपस्वी रहते थे। एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि बुद्ध अपने शिष्यों को पब्बजिता भिक्षु कहते हैं और चूंकि वे भी एक संन्यासी थे, इसलिए उन्हें भी पब्बजिता कहा जाना चाहिए। अतः वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा कि उन्हें पब्बजिता क्यों नहीं कहा जाना चाहिए। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया: "केवल संन्यासी होने से कोई स्वतः पब्बजिता नहीं बन जाता; पब्बजिता बनने के लिए अन्य योग्यताएँ भी आवश्यक हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 388 : क्योंकि उसने बुराई का त्याग कर दिया है, इसलिए उसे 'ब्राह्मण' कहा जाता है; क्योंकि वह शांत जीवन जीता है, इसलिए उसे 'समना' कहा जाता है; और क्योंकि वह अपनी अशुद्धियों से छुटकारा पा लेता है, इसलिए उसे 'पब्बजित' कहा जाता है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ब्राह्मण संन्यासी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक ब्राह्मण की कहानी प्रचलित है कि उसने बुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु के मार्गदर्शन में संसार त्याग दिया और ऐसा करने के बाद मन ही मन सोचा, "बुद्ध अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं; मैं भी एक भिक्षु हूँ, और उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।"
अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय में पूछा। बुद्ध ने कहा, "मैं किसी व्यक्ति को भिक्षु केवल उस कारण से नहीं कहता जो तुमने बताया है। बल्कि इसलिए कहता हूँ कि उसके भीतर से बुरी भावनाएँ और अशुद्धियाँ निकल गई हैं, इसलिए उसे भिक्षु कहा जाता है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 388)
बहितपापो इति ब्राह्मणो वुक्कति समाचर्या समानो इति
वुकाति अत्तानो मलं पब्बजयति तस्मा पब्बाजितो इति वुकाति
बहितपापो इति : क्योंकि उसने बुराई से छुटकारा पा लिया है; ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: ब्राह्मण; वुकाति : कहा जाता है; समाचर्या : इंद्रियों की शांति के साथ रहता है; समानो इति वुकाति : समाना उसे कहा जाता है; अत्तनो मलं पब्बजयति : वह अपने दोषों से छुटकारा पाता है; तस्मा : उसके कारण; पब्बाजितो इति वुकाति : उसे ए कहा जाता है; पब्बाजिता
जिसने पाप कर्मो से मुक्ति पा ली हो, उसे ब्राह्मण कहते हैं । जिसकी इंद्रियां शांत हों, उसे समण कहते हैं। जिसने अपने सभी दोषों का त्याग कर दिया हो, उसे पब्बजित कहते हैं ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 388)
ब्राह्मणो , समणो पब्बजितो : ब्राह्मण, भिक्षु, घुमंतू तपस्वी। ये सभी बुद्ध के समय के धार्मिक परिवेश में पुरोहितों की श्रेणियां थीं। वे मोक्ष के अनेक मार्गो का अनुसरण करते थे । यहां बुद्ध बताते हैं कि सच्चा पुरोहित, भिक्षु या ब्राह्मण कौन होता है। उनके समय में धार्मिक प्रणालियां अनेक और विविध थीं। समकालीन धार्मिक संप्रदायों में से सबसे रोचक निघन्तनाथपुत्त द्वारा स्थापित प्रणाली थी।
निघ्ङ्तृनाथपुत्त का जीवन-वृत्तांत बुद्ध के जीवन-वृत्तांत से बहुत मिलता-जुलता है। यद्यपि ये दोनों महान गुरु समकालीन थे और एक ही क्षेत्र में विचरण और उपदेश देते थे, फिर भी कहीं भी यह दर्ज नहीं है कि वे एक-दूसरे से मिले हों। निघ्ङ्तृनाथपुत्त ने अर्ध मगधी भाषा में उपदेश दिया , जबकि बुद्ध ने शुद्ध मगधी में उपदेश दिया । बाद के समय में जैन धर्म में दो संप्रदायों का विभाजन हुआ: (1) श्वेतांबर जैन (श्वेत वस्त्रधारी संप्रदाय) और (2) दीघांबर जैन (नग्न वस्त्रधारी संप्रदाय)।
निघ्ङ ...
त्रिदण्ड को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है:
कायदण्ड (शरीर पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन);
वाग्दण्ड (भाषण पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन); और
मनोदण्ड (विचारों पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन)।
इस प्रणाली के अनुसार, निघन्तनाथपुत्त के अनुयायियों को अपने धर्म के पालन में निरंतर आत्म-यातना के मार्ग का अनुसरण करना होता है। बौद्ध धर्म में चेतना (इच्छा या संकल्प) की अवधारणा की तरह, जैन धर्म कर्म और उसके परिणामों में विश्वास रखता था। लोगों ने इस शिक्षा को काफी हद तक स्वीकार किया। जैन धर्म के प्रभाव के कारण बुद्ध को शिखापद (विनय नियम) की रचना करनी पड़ी। विशेष रूप से, वर्षा ऋतु से संबंधित विनय नियम बुद्ध द्वारा जैन धर्म के प्रभाव में निर्धारित किए गए थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय जैन धर्म का सामाजिक रूप से बहुत सम्मान था। जैन शिक्षा के अनुसार, पौधों में भी आत्मा होती है। जो लोग धागा भी पहनते हैं, वे सांसारिक सुख-सुविधाओं से आसक्ति दर्शाते हैं। सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं में आत्मा होती है। इसलिए, इसी मान्यता के कारण जैन यात्रा पर जाते समय भी अपने मुंह को कपड़े से ढकते हैं।
जैन धर्म के अनुसार, आत्मा तीन प्रकार की होती है:
नित्यसिद्धात्मय (यह हिंदुओं के परमात्मा के समान है);
मुक्तात्मय (यह बौद्धों के आसव के समान है);

बद्धात्मा (यह बौद्धों के कर्म के समान है)।

ऐसा कहा जाता है कि जब तक आत्मा कर्म में लीन रहती है, यह बद्धात्मय व्यक्ति के शरीर की कोशिकाओं में व्याप्त रहता है। संसार से मुक्ति पाना असंभव है। केवल आत्म-यातना के द्वारा ही कर्म से छुटकारा पाया जा सकता है। यह शिक्षा बौद्ध धर्म से बिल्कुल भिन्न है, जो कर्म की व्याख्या एक अलग तरीके से करता है। जैन धर्म की शिक्षाओं के अनुसार, कर्म के एक सौ अट्ठावन विभिन्न प्रकार होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 389,390

———————————————————————

(धम्मपद 388) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 389 और 390 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 391)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 389 और 390 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 389 और 390 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na brahmanssa pahareyya
nassa muncetha brahmano
dhi brahmanassa hantaram
tato dhi yassa muncati.
न ब्राह्मणस्से' तदाकिन्सि सेय्यो
yada nisedho manaso piyehi
yato yato himsamano nivattati
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खम्।

———————————————————————

श्लोक 389 : ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए; ब्राह्मण को अपने हमलावर पर क्रोधित नहीं होना चाहिए; ब्राह्मण पर प्रहार करना शर्मनाक है; अपने हमलावर पर क्रोधित होना उससे भी अधिक शर्मनाक है।

———————————————————————

श्लोक 390 : ब्राह्मण को क्रोध से बचने में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि क्रोध उसके मन में उत्पन्न होता है। हानि करने के इरादे से विमुख होने पर दुःख/पीड़ा उसी अनुपात में कम हो जाती है।

———————————————————————

थेरा सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (389) और (390) का उच्चारण किया।

पूज्य सारिपुत्त की धैर्य और सहनशीलता की अनेकों द्वारा प्रशंसा की जाती थी। उनके शिष्य उनके बारे में अक्सर कहते थे: "हमारे गुरु अत्यंत धैर्यवान और सहनशील हैं। यदि कोई उनका अपमान करे या उन्हें पीटे भी, तो भी वे क्रोधित नहीं होते, बल्कि शांत और संयमित रहते हैं।" पूज्य सारिपुत्त के बारे में यह बात अक्सर कही जाती थी, तभी एक ब्राह्मण ने, जिसके विचार गलत थे, सारिपुत्त के प्रशंसकों से कहा कि वह उन्हें क्रोधित करेगा। उसी क्षण, भिक्षाटन कर रहे पूज्य सारिपुत्त वहाँ प्रकट हुए; ब्राह्मण उनके पीछे गया और उनकी पीठ पर

ज़ोर से प्रहार किया। गुरु ने मुड़कर यह भी नहीं देखा कि उन पर हमला किसने किया है, बल्कि वे ऐसे आगे बढ़ गए मानो कुछ हुआ ही न हो। गुरु की महानता और धैर्य को देखकर ब्राह्मण अत्यंत भयभीत हो गया। वह पूज्य सारिपुत्त के चरणों में घुटने टेककर, अपने द्वारा थेरा को गलत तरीके से मारने की बात स्वीकार करते हुए क्षमा मांगने लगा। ब्राह्मण ने आगे कहा, "पूज्यवर, यदि आप मुझे क्षमा कर दें, तो कृपया मेरे घर भिक्षा ग्रहण करने आइए।"

शाम को, अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि पूज्य सारिपुत्त एक ब्राह्मण के घर भिक्षा मांगने गए थे, जिसने उन्हें पीटा था। उन्होंने यह भी देखा कि वह ब्राह्मण और भी निर्भीक हो जाएगा और जल्द ही अन्य भिक्षुओं पर भी हमला करेगा। उन भिक्षुओं को बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, एक सच्चा ब्राह्मण दूसरे सच्चे ब्राह्मण को नहीं पीटता; केवल एक साधारण मनुष्य या साधारण ब्राह्मण ही क्रोध और द्वेष में किसी अरहत को पीटता है। इस द्वेष को अनागामी मार्ग द्वारा दूर किया जाना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 389 : ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए; ब्राह्मण को अपने हमलावर पर क्रोधित नहीं होना चाहिए; ब्राह्मण पर प्रहार करना शर्मनाक है; अपने हमलावर पर क्रोधित होना उससे भी अधिक शर्मनाक है।

श्लोक 390 : ब्राह्मण को क्रोध से बचने में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि क्रोध उसके मन में उत्पन्न होता है। हानि करने के इरादे से विमुख होने पर दु:ख/पीड़ा उसी अनुपात में कम हो जाती है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कथा के अनुसार, एक बार कई लोग एक स्थान पर एकत्रित हुए और पूज्य गुरु के गुणों का गुणगान करते हुए बोले, "हे हमारे परम पूज्य गुरु, वे इतने धैर्यवान हैं कि जब लोग उनका अपमान करते हैं और उन्हें मारते हैं, तब भी वे जरा क्रोधित नहीं होते!" इस पर एक ब्राह्मण, जिसके विचार भ्रामक थे, ने पूछा, "ये कौन हैं जो कभी क्रोधित नहीं होते?" "हमारे पूज्य गुरु।" "ऐसा अवश्य ही होगा कि किसी ने उन्हें क्रोधित नहीं किया होगा।" "ऐसा नहीं है, ब्राह्मण।" "तो फिर मैं उन्हें क्रोधित करूँगा।" "यदि कर सकते हो तो कर दिखाओ!" "मुझ पर विश्वास करो!" ब्राह्मण ने कहा; "मुझे पता है कि उनके साथ क्या करना है।"

तभी पूज्यवर भिक्षा मांगने नगर में प्रवेश कर रहे थे। ब्राह्मण ने उन्हें देखते ही उनके पीछे जाकर उनकी पीठ पर मुक्के से जोरदार प्रहार किया। पूज्यवर ने कहा, "यह क्या था?" और बिना पीछे मुड़े ही अपने रास्ते पर चल दिए। ब्राह्मण के शरीर के हर अंग में पश्चाताप की ज्वाला भड़क उठी। ब्राह्मण ने कहा, "हे पूज्यवर कितने महान गुणों से संपन्न हैं!" और पूज्यवर के चरणों में गिरकर उसने कहा, "मुझे क्षमा कीजिए, पूज्यवर।" पूज्यवर ने पूछा, "क्या कहना है?" ब्राह्मण ने कहा, "मैं आपकी सहनशीलता की परीक्षा लेना चाहता था, इसलिए मैंने आपको मारा।" "ठीक है, मैं आपको क्षमा करता हूँ।" ब्राह्मण ने कहा, "यदि आप मुझे क्षमा करने को तैयार हैं, तो अब से केवल मेरे घर में ही भोजन करें।" ऐसा कहकर ब्राह्मण ने पूज्यवर का कटोरा ले लिया, पूज्यवर ने सहर्ष उसे सौंप दिया और उसे अपने घर ले जाकर भोजन कराया।

वहाँ खड़े लोग क्रोधित हो गए। उन्होंने कहा, "इस व्यक्ति ने हमारे पूज्य गुरुदेव पर लाठी से प्रहार किया है, जो किसी भी अपराध से मुक्त हैं; इसे भागने नहीं दिया जाना चाहिए; हम इसे यहीं मार डालेंगे।" और मिट्टी के ढेले, डंडे और पत्थर लेकर वे ब्राह्मण के घर के द्वार पर प्रतीक्षा करने लगे। जब पूज्य गुरुदेव अपनी सीट से उठकर जाने लगे, तो उन्होंने अपना कुंड ब्राह्मण के हाथ में रख दिया। जब वहाँ खड़े लोगों ने ब्राह्मण को पूज्य गुरुदेव के साथ बाहर जाते देखा, तो उन्होंने कहा, "पूज्य गुरुदेव, इस ब्राह्मण को, जिसने आपका कुंड लिया है, वापस लौटने का आदेश दीजिए।" "आपका क्या मतलब है, शिष्यों?" "उस ब्राह्मण ने आप पर प्रहार किया है और हम उसके कर्मों का फल उसे देंगे।" "आपका क्या मतलब है? क्या उसने आप पर प्रहार किया या मुझ पर?" "आप पर, पूज्य गुरुदेव।" "यदि उसने मुझ पर प्रहार किया है, तो उसने क्षमा मांग ली है; आप जाइए।" ऐसा कहकर उन्होंने वहां खड़े लोगों को विदा किया और ब्राह्मण को वापस मुड़ने की अनुमति देकर पूज्य गुरुजी वापस मठ में चले गए।

भिक्षु बहुत नाराज हुए। वे बोले, "यह कैसी बात है! एक ब्राह्मण ने पूज्य सारिपुत्त को मारा, और पूज्य सारिपुत्त तुरंत उसी ब्राह्मण के घर वापस गए जिसने उन्हें मारा था और उसके हाथों से भोजन ग्रहण किया! जिस क्षण से उन्होंने सारिपुत्त को मारा है, उस क्षण से वे किसका आदर करेंगे? वे हर किसी को इधर-उधर पीटते फिरेंगे।" उसी क्षण बुद्ध पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" "यही वह विषय है जिस पर हम चर्चा कर रहे थे।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, कोई ब्राह्मण कभी

दूसरे ब्राह्मण को नहीं मारता; यह एक गृहस्थ ब्राह्मण ही हो सकता है जिसने एक भिक्षु-ब्राह्मण को मारा हो; क्योंकि जब मनुष्य तृतीय मार्ग का फल प्राप्त कर लेता है, तो उसमें सारा क्रोध पूर्णतः नष्ट हो जाता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 389)

ब्राह्मणस्स न पहारेया ब्राह्मणो अस्स न मुन्चेथा
ब्राह्मणस्स हन्तारं धी यस्सा मुञ्चति ततो धी

ब्राह्मण पर आक्रमण न करो; आक्रमण करने वाले पर क्रोध मत करो; घृणा मत रखो ; ब्राह्मण पर आक्रमण करने वाले की निंदा करो; क्रोधित होने वाले की निंदा करो ।

किसी को भी ब्राह्मण—पवित्र संत—पर प्रहार नहीं करना चाहिए। पीड़ित ब्राह्मण को प्रतिशोध में आक्रमणकारी पर प्रहार नहीं करना चाहिए, अन्यथा क्रोध प्रकट करना चाहिए। ब्राह्मण पर आक्रमण करने वाले पर कलंक है; और प्रतिशोध में क्रोध प्रकट करने वाले पर तो और भी अधिक कलंक है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 390)

एतं ब्राह्मणस्स न किञ्चि सेय्यो यदा मनसो पियेहि (यो) निसेधो
यतो हिंसामानो निवत्तति ततो ततो दुक्खं सम्मतमेव

ब्राह्मणसः ब्राह्मण का; अकिन्सि सेय्यो ना : बिल्कुल भी छोटी संपत्ति नहीं; यदा : यदि, एताम् : यह (गैर-प्रतिशोध); मनसो [मनसा]: उसके मन में जो नफरत करता है; पियेहि : सुखद; निसेधो [निसेधा]: दुर्भावना से मुक्त विचार उत्पन्न होता है; यतो यतो : किसी कारण से; हिंसामानो [हिंसामान]: हिंसक मन; निवत्तति : समाप्त हो जाता है; ततो ततो : इन उदाहरणों में; दुक्खं [दुक्खा]: दर्द; सम्मतमेव : निश्चित रूप से शांत हो जाता है ब्राह्मण के लिए, नफरत का जवाब न देने का कार्य कोई छोटी संपत्ति नहीं है - यह वास्तव में एक बड़ी संपत्ति है। यदि किसी ऐसे मन में सकारात्मक परिवर्तन आता है जो आमतौर पर घृणास्पद कृत्यों में आनंद लेता है, तो यह कोई छोटी जीत नहीं है। हर बार जब हिंसक मन शांत होता है, तो पीड़ा भी कम हो जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 389-390)

hiṃsamāno nivattati : हानि करने का इरादा समाप्त हो जाता है। ये श्लोक मुख्य रूप से करुणा की आवश्यकता पर बल देते हैं, यहाँ तक कि उन लोगों के प्रति भी जो आक्रामक रवैया अपनाते हैं। बौद्ध धर्म में आक्रामक व्यवहार का मुकाबला करने के लिए चार श्रेष्ठ गुणों का समर्थन किया जाता है। इन चार गुणों को ब्रह्म विहार कहा जाता है । इसका अर्थ उदात्त मनोभाव भी हो सकता है। ये चार मनोभाव हैं प्रेम , करुणा , मुदिता और समभाव । ये चारों गुण आक्रामक, शत्रुतापूर्ण व्यवहार को रोकते हैं और सकारात्मक रूप से अहिंसा, स्नेह, दया, करुणा और सहानुभूति को बढ़ावा देते हैं। इन चारों में से प्रेम और करुणा सर्वोपरि है।

मनुष्य को उदात्त बनाने वाला दूसरा सद्गुण करुणा है । इसे उस गुण के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दूसरों के कष्टों को देखकर अच्छे लोगों के हृदय को व्याकुल कर देता है, या जो दूसरों के कष्टों को दूर करता है। इसका प्रमुख लक्षण दूसरों के दुखों को दूर करने की इच्छा है।

करुणावान व्यक्तियों का हृदय फूलों से भी अधिक कोमल होता है। वे दूसरों के कष्टों को दूर किए बिना संतुष्ट नहीं हो सकते। कई बार तो वे दूसरों के कष्टों को कम करने के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने तक चले जाते हैं। व्याघ्री जातक की कथा , जिसमें बोधिसत्व ने एक भूखी बाघिन और उसके शावकों को बचाने के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया, इसका एक उदाहरण है।

करुणा ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करने के लिए प्रेरित करती है। सच्चा करुणामय व्यक्ति अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए जीता है। वह दूसरों की सेवा करने के अवसर तलाशता है, प्रतिफल की अपेक्षा किए बिना, यहाँ तक कि कृतज्ञता की भी नहीं।

हमारे बीच बहुत से लोग करुणा के पात्र हैं। गरीब और जरूरतमंद, बीमार और असहाय, अकेले और निर्धन, अज्ञानी और दुष्ट, अपवित्र और अनुशासनहीन - ये सभी ऐसे लोग हैं जो दयालु और नेक दिल पुरुषों और महिलाओं की करुणा के पात्र हैं, चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हों।

कुछ देश भौतिक रूप से समृद्ध हैं लेकिन आध्यात्मिक रूप से गरीब हैं, जबकि कुछ अन्य आध्यात्मिक रूप से समृद्ध हैं लेकिन भौतिक रूप से गरीब हैं। भौतिक रूप से समृद्ध और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध दोनों देशों को इन दयनीय स्थितियों पर विचार करना होगा।

धनवानों का यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वे गरीबों की सहायता करें, जिन्हें दुर्भाग्यवश जीवन की अधिकांश आवश्यक वस्तुओं का अभाव है।

जिनके पास प्रचुर मात्रा में धन है, वे निःसंदेह स्वयं को असुविधा पहुंचाए बिना अपनी अतिरिक्त संपत्ति गरीबों और जरूरतमंदों को दे सकते हैं।

एक बार एक युवा छात्र ने अपने घर के दरवाजे का पर्दा उतारकर एक गरीब व्यक्ति को दे दिया और उसकी दयालु माँ से कहा कि दरवाजे को तो ठंड नहीं लगती, लेकिन गरीबों को जरूर लगती है। युवा लड़के-लड़कियों का ऐसा दयालु भाव अत्यंत सराहनीय है।

यह देखकर खुशी होती है कि कुछ धनी देशों ने अल्पविकसित देशों, विशेष रूप से जंबुदीपा में, हर संभव तरीके से मदद करने के लिए विभिन्न परोपकारी संस्थाओं का गठन किया है।

सभी देशों में पुरुषों, महिलाओं और छात्रों द्वारा गरीबों और जरूरतमंदों को हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए धर्मार्थ संगठन स्थापित किए गए हैं। धार्मिक संस्थाएं भी इस संबंध में अपने-अपने तरीके से अपनी-अपनी जिम्मेदारियां निभाती हैं। अल्पविकसित देशों में वृद्धाश्रम, अनाथालय और इसी प्रकार के अन्य धर्मार्थ संस्थानों की आवश्यकता है।

जिस प्रकार भौतिक रूप से संपन्न लोगों को भौतिक रूप से निर्धन लोगों के प्रति दया भाव रखना चाहिए और उनका उत्थान करने का प्रयास करना चाहिए, उसी प्रकार आध्यात्मिक रूप से संपन्न लोगों का भी यह कर्तव्य है कि वे आध्यात्मिक रूप से निर्धन लोगों के प्रति दया भाव रखें और उनका उत्थान करें, भले ही वे भौतिक रूप से संपन्न हों। केवल धन से ही सच्ची खुशी नहीं मिल सकती।

मन की शांति भौतिक संपदा से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक संपदा से प्राप्त की जा सकती है। इस संसार में बहुत से लोग पर्याप्त आध्यात्मिक पोषण की सख्त जरूरत में हैं, जो आसानी से प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आध्यात्मिक रूप से गरीब लोगों की संख्या भौतिक रूप से गरीब लोगों से कहीं अधिक है, क्योंकि वे अमीर और गरीब दोनों में पाए जाते हैं।

इन दोनों प्रकार के रोगों के कारण होते हैं। करुणावान पुरुषों और महिलाओं को प्रभावी उपचार के लिए इन कारणों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। विभिन्न देशों ने न केवल मनुष्यों बल्कि पशुओं के रोगों की रोकथाम और उपचार के लिए प्रभावी उपाय अपनाए हैं।

बुद्ध ने स्वयं बीमारों की सेवा करके और अपने शिष्यों को इन यादगार शब्दों से प्रेरित करके एक महान उदाहरण प्रस्तुत किया:

"जो बीमारों की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।"

कुछ निस्वार्थ चिकित्सक पीड़ा कम करने के लिए नि:शुल्क सेवाएं प्रदान करते हैं। कुछ चिकित्सक अपना पूरा समय और ऊर्जा गरीब मरीजों की सेवा में लगा देते हैं, यहां तक कि अपनी जान जोखिम में डालकर भी। अस्पताल और नि:शुल्क औषधालय मानवता के लिए वरदान साबित हुए हैं, लेकिन इनकी और अधिक आवश्यकता है ताकि गरीबों को इनका लाभ मिल सके। अविकसित देशों में गरीब चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में पीड़ित रहते हैं। बीमारों को इलाज के लिए मीलों दूर तक बड़ी असुविधा के साथ निकटतम अस्पताल या औषधालय तक ले जाना पड़ता है। कभी-कभी रास्ते में ही उनकी मृत्यु हो जाती है। गर्भवती माताओं को सबसे अधिक कष्ट सहना पड़ता है। पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पताल, औषधालय, प्रसूति गृह आदि आवश्यक हैं। निम्न वर्ग और जरूरतमंदों को धनी पुरुषों और महिलाओं की करुणा की आवश्यकता है। कभी-कभी नौकरों और श्रमिकों को उचित वेतन, भोजन या वस्त्र नहीं मिलते और अक्सर उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें न्याय नहीं मिलता। उनकी उपेक्षा की जाती है और वे शक्तिहीन होते हैं क्योंकि उनके लिए आवाज उठाने वाला कोई नहीं होता। अमानवीय क्रूरता के कुछ गंभीर मामले ही कुछ अपवादों में सार्वजनिक होते हैं। ऐसे कई मामले अज्ञात रह जाते हैं। इन दुर्भाग्यशाली लोगों के पास पृथ्वी की मौन पीड़ा सहने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। बुद्ध द्वारा करुणा का उपदेश हमारे समय में अत्यंत प्रासंगिक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 391

(धम्मपद 389 और 390) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 391 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 392)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 391 - महापजापतिगोतामि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 391 - महापजापतिगोतामि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa kayena vacaya

manasa natthi dukkatam
samvutam tihi thanehi
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 391 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्म, वचन या विचार से कोई बुराई नहीं करता, जो इन तीनों मामलों में संयमित है।

थेरी महापजापति गौतमी (बुद्ध की चाची और सौतेली माँ) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी महाप्रजापति गौतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (391) कहा।

महाप्रजापति गौतमी गौतम बुद्ध की सौतेली माँ थीं। राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद रानी की मृत्यु हो जाने पर महाप्रजापति गौतमी राजा सुद्धोदन की मुख्य रानी बन गईं। उस समय उनका अपना पुत्र नंदा केवल पाँच दिन का था। उन्होंने अपने पुत्र को एक धाय से दूध पिलाया और स्वयं भावी बुद्ध, राजकुमार सिद्धार्थ का पालन-पोषण किया। इस प्रकार, महाप्रजापति गौतमी राजकुमार सिद्धार्थ की महान उपकारिका थीं।

जब राजकुमार सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु लौटे, तो महाप्रजापति गौतमी बुद्ध से मिलने गईं और उनसे निवेदन किया कि महिलाओं को भी भिक्षुणी के रूप में बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए; लेकिन बुद्ध ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। बाद में, राजा सुद्धोदन ने अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद प्राण त्याग दिए। तब, जब बुद्ध वैशाली के निकट महावन वन में निवास कर रहे थे, महाप्रजापति पाँच सौ महिलाओं के साथ कपिलवस्तु से पैदल वैशाली आईं। उन्होंने अपने सिर मुंडवा लिए थे और रंगे हुए वस्त्र पहन लिए थे। वहाँ, महाप्रजापति ने दूसरी बार बुद्ध से बौद्ध संघ में महिलाओं को स्वीकार करने का निवेदन किया। पूज्य आनंद ने भी उनकी ओर से मध्यस्थता की। इसलिए, बुद्ध ने इस शर्त के साथ उनकी बात मान ली कि महाप्रजापति आठ विशेष नियमों (गरुधम्मों) का पालन करें। महाप्रजापति ने गरुधम्मों का पालन करने का वचन दिया, और बुद्ध ने उन्हें संघ में प्रवेश दे दिया। इस प्रकार, महाप्रजापति भिक्षुणी संघ में प्रवेश पाने वाली पहली महिला थीं। उनके बाद अन्य महिलाओं को बुद्ध के निर्देशानुसार भिक्षुओं द्वारा संघ में प्रवेश दिया गया।

समय बीतने के साथ, कुछ भिक्षुणियों के मन में यह विचार आया कि महाप्रजापति गौतमी को विधिवत भिक्षुणी के रूप में प्रवेश नहीं दिया गया था क्योंकि उनका कोई गुरु नहीं था; अतः महाप्रजापति गौतमी सच्ची भिक्षुणी नहीं थीं। इस विचार के कारण उन्होंने उनके साथ उपवास (उपोसथा) और वर्षा (पावरना) के अनुष्ठान करना बंद कर दिया। वे बुद्ध के पास गईं और महाप्रजापति गौतमी के गुरु न होने के कारण भिक्षुणी संघ में विधिवत प्रवेश न दिए जाने की समस्या उनके समक्ष रखी। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "तुम ऐसा क्यों कहती हो? मैंने स्वयं महाप्रजापति को आठ गरुड़म दिए थे और उन्होंने मेरी अपेक्षा के अनुसार गरुड़मों का अध्ययन और अभ्यास किया था। मैं स्वयं उनका गुरु हूँ और तुम्हारा यह कहना कतई गलत है कि उनका कोई गुरु नहीं है। तुम्हें किसी अर्हत के बारे में कोई संदेह नहीं रखना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 391 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्म, वचन या विचार से कोई बुराई नहीं करता, जो इन तीनों मामलों में संयमित है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय भिक्षुणी महापजापति गौतमी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भिक्षुणी महाप्रजापति गौतमी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अष्टम उपदेशों के सार्वजनिक प्रचार से पहले, बुद्ध ने उन्हें निजी तौर पर सुनाया था, और महाप्रजापति गौतमी ने उन्हें सिर झुकाकर स्वीकार किया था, ठीक वैसे ही जैसे आभूषणों की अभ्यस्त कोई व्यक्ति सुगंधित फूलों की माला को सिर झुकाकर स्वीकार करता है। ठीक इसी प्रकार, उनके सभी अनुयायियों ने भी ऐसा ही किया। बुद्ध के अलावा उनका कोई गुरु या शिक्षक नहीं था। इस प्रकार उन्हें संघ की पूर्ण सदस्यता प्राप्त हुई।

एक बार उनके अनुयायियों ने इस भिक्षुणी को संघ में पूर्ण सदस्यता दिए जाने के तरीके पर टिप्पणी करते हुए कहा, “महाप्रजापति गौतमी का कोई गुरु या साध्वी नहीं है; उन्होंने स्वयं अपने हाथों से पीले वस्त्र धारण किए हैं।” यह सुनकर अन्य भिक्षुणियाँ असंतुष्ट हो गईं और उसके बाद उन्होंने उनके साथ व्रत रखने या अंतिम पर्व मनाने से इनकार कर दिया। बुद्ध के पास जाकर उन्होंने उन्हें यह बात बताई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और उत्तर दिया, “मैंने स्वयं महाप्रजापति गौतमी को आठ प्रमुख उपदेश दिए हैं। मैं ही उनका गुरु हूँ; मैं ही उनका साध्वी हूँ। जिन्होंने कर्म, वाणी और विचार के पापों का त्याग कर दिया है, जिन्होंने बुरी भावनाओं से मुक्ति पा ली है, उन्हें कभी भी असंतुष्टि नहीं रखनी चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 391)
यस्सा कायेन वचन मनसा दुक्कतं नत्थि तिहि
ठाणेहि संवुतं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यस्स : जिसने; कायेन : शरीर द्वारा; वाचाय : वाणी द्वारा; मनसा : मन द्वारा; दुक्कतं नत्थि : कोई पाप नहीं किया; संवुतं [संवुत]: सावधान; तिहि ठानेहि : इन तीनों क्षेत्रों में; तमहं [तमह]: वह व्यक्ति; ब्राह्मणं ब्रूमि : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।
यदि कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छी तरह से सुरक्षित है, और इन तीनों क्षेत्रों में कोई अपराध नहीं किया है, जो अच्छी तरह से संयमित है, तो मैं उस प्रकार के व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण - महान संत कहता हूं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 391)
महाप्रजापति गौतमी : यह श्लोक नन महाप्रजापति गौतमी के विषय पर हुई चर्चा के कारण लिखा गया है। महाप्रजापति गौतमी राजा सुप्पबुद्ध की सबसे छोटी बहन थीं। उनकी बड़ी बहन महारानी महा माया थीं। दोनों का विवाह राजा सुद्धोदन से हुआ था। उनकी एक पुत्री नंदा और एक पुत्र नंदा थे। बाद में दोनों संघ में शामिल हो गए। महा माया के निधन के बाद उन्होंने अपनी बहन के पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ को गोद ले लिया और अपने पुत्र नंदा को दाइयों की देखरेख में सौंप दिया। उनका पारिवारिक नाम गौतमी था और उन्हें महाप्रजापति नाम दिया गया क्योंकि ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक विशाल अनुयायी समूह की मुखिया बनेंगी। जब बुद्ध ने महल का दौरा किया और अपने पिता को धम्मपाल जातक का उपदेश दिया , तब उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त की। सुद्धोदन राजा की मृत्यु के बाद, जब राजकुमार सिद्धार्थ और नंदा दोनों ने संसार त्याग दिया, तो उन्होंने भी संघ में प्रवेश करने और पवित्र जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। जब बुद्ध शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी की सिंचाई को लेकर हुए विवाद को सुलझाने के लिए कपिलवस्तु आए और निग्रोध उद्यान में निवास कर रहे थे, तब महाप्रजापति गौतमी बुद्ध के पास आईं और उनसे संघ में महिलाओं के प्रवेश की अनुमति देने का अनुरोध करते हुए कहा, “हे प्रभु, यदि महिलाओं को अपने गृहस्थी त्यागकर बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षा और अनुशासन के अंतर्गत गृहस्थी जीवन व्यतीत करने की अनुमति दी जाए तो यह उचित होगा।” बुद्ध ने कारण बताए बिना ही स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया और कहा, “हे गौतमी, बस करो, तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।” दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने अपना अनुरोध दोहराया, और बुद्ध ने वही उत्तर दिया। बाद में, बुद्ध ने कपिलवस्तु में अपनी इच्छानुसार कुछ समय व्यतीत करने के बाद वैशाली की यात्रा की और उचित समय पर वहाँ पहुँचकर कूटागार हॉल में स्थित महावन में निवास किया।
दृढ़ निश्चयी प्रजापति गौतमी ने अपनी निराशा से विचलित हुए बिना अपने बाल कटवा लिए, पीले वस्त्र धारण किए और कई शाक्य स्त्रियों से घिरी हुई कपिलवस्तु से वैशाली तक लगभग 150 मील की दूरी पैदल तय की, जिसमें उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ वे वैशाली पहुँचीं और शिखरनुमा हॉल के बरामदे के बाहर खड़ी हो गईं। पूज्य आनंद ने उन्हें रोते हुए पाया और उनके दुःख का कारण जानकर बुद्ध के पास जाकर कहा, “हे प्रभु, देखिए, महाप्रजापति गौतमी सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ बरामदे के बाहर खड़ी हैं और दुखी हैं। कृपया स्त्रियों को बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अनुसार गृहस्थी त्याग कर निर्जन जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दें। हे प्रभु, यदि स्त्रियों को गृहस्थी त्याग कर निर्जन जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए तो यह सर्वथा उचित होगा।” “बस करो, आनंद, तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए!” बुद्ध ने उत्तर दिया। दूसरी और तीसरी बार भी उन्होंने उनके पक्ष में विनती की, लेकिन बुद्ध नहीं माने।
अतः पूज्य आनंद ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाते हुए आदरपूर्वक बुद्ध से प्रश्न किया: “हे प्रभु, क्या स्त्रियाँ, बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षा और अनुशासन के अंतर्गत गृहस्थी से विमुख होकर निकलने पर, सोतापन्न, सकदागामी और अनागामी तथा अरहत की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम हैं?” बुद्ध ने उत्तर दिया कि वे संतत्व को प्राप्त करने में सक्षम हैं। इस अनुकूल उत्तर से उत्साहित होकर, पूज्य आनंद ने पुनः निवेदन करते हुए कहा, “हे पूज्य, यदि वे संतत्व प्राप्त करने योग्य हैं, क्योंकि महाप्रजापति गौतमी ने बुद्ध की बड़ी सेवा की थी, जब उन्होंने मौसी और दाई के रूप में उनका पालन-पोषण किया और उन्हें दूध पिलाया, और उनकी माता के निधन पर उन्हें अपने स्तन से दूध पिलाया, तो हे प्रभु, यह उचित होगा कि स्त्रियों को भी संसार त्यागने और बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अंतर्गत वतन में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए।” “हे आनंद, यदि महाप्रजापति गौतमी आठ प्रमुख नियमों को स्वीकार करती हैं, तो इसे ही उनके दीक्षा संस्कार के रूप में गिना जाए,” बुद्ध ने अंततः पूज्य आनंद के निवेदन को स्वीकार करते हुए कहा।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 392

(धम्मपद 391) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 392 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 393)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 392 - सारिपुत्तथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 392 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
यम्हा धम्मं विजयनेय्या
सम्मासम्बुद्धदेसीतम
sakkaccam tam namasseyya
aggihuttamva brahmano.

———————————————————————

श्लोक 392 : यदि कोई व्यक्ति किसी से बुद्ध की शिक्षा सीखता है, तो उसे उस गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, जैसे ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है।

———————————————————————

थेरा सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (392) कहा।
पूज्य सारिपुत्त का जन्म उपतिस्सा ग्राम के ब्राह्मण माता-पिता के घर हुआ था; इसीलिए उनका नाम उपतिस्सा रखा गया। उनकी माता का नाम सरी था। उनके घनिष्ठ मित्र कोलिता थे, जो मोग्गली के पुत्र और एक अन्य ब्राह्मण युवक थे। दोनों युवक जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले सही धर्म की खोज में लगे थे और दोनों ही धर्म में प्रवेश करने की प्रबल इच्छा रखते थे। सर्वप्रथम वे संचय के पास गए, परन्तु उनकी शिक्षा से संतुष्ट नहीं हुए। फिर वे जंबूद्वीप में ऐसे गुरु की खोज में भटकते रहे जो उन्हें अमरता का मार्ग दिखा सके, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ रही। कुछ समय बाद वे इस समझौते के साथ विदा हुए कि जो पहले सच्चे धर्म को पा लेगा, वही दूसरे को सूचित करेगा।
लगभग उसी समय, बुद्ध अपने साथ भिक्षुओं के एक समूह को लेकर राजगृह पहुँचे, जिनमें पंचवग्गी (पहले पाँच भिक्षुओं) में से एक थेरा अस्सजी भी शामिल थे। थेरा अस्सजी जब भिक्षा माँग रहे थे, तब उपतिस्सा ने उन्हें देखा और उनके उदात्त चेहरे से अत्यंत प्रभावित हुए। इसलिए उपतिस्सा ने आदरपूर्वक थेरा के पास जाकर पूछा कि उनके गुरु कौन हैं, वे कौन से सिद्धांत सिखाते हैं, और क्या सिद्धांत सिखाते हैं, और क्या वे संक्षेप में उन्हें समझा सकते हैं। तब थेरा अस्सजी ने उपतिस्सा को बुद्ध के उद्भव और राजगृह के वेलुवन मठ में उनके प्रवास के बारे में बताया। थेरा ने चार आर्य सत्यों से संबंधित एक छोटा श्लोक भी सुनाया।
श्लोक इस प्रकार है:
Ye dhamma hetuppa bhava
tesam hetum tathagato aha
tesanca yo nirodho
evam vadi maha samano.
इसका मतलब है:
तथागत ने सभी घटनाओं के कारण और उनके निवारण का वर्णन किया है। यही सिद्धांत महान समना द्वारा माना जाता है।
श्लोक के आधे भाग तक ही पहुंचने पर उपतिस्सा ने सोतापत्ति की प्राप्ति कर ली।
अपने वादे के मुताबिक, उपतिस्सा अपने मित्र कोलिता के पास यह सूचना देने गए कि उन्हें सच्चा धर्म मिल गया है। तब वे दोनों मित्र, ढाई सौ अनुयायियों के साथ, राजगृह में स्थित बुद्ध के पास गए। वेलुवन मठ पहुँचकर उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति माँगी और उपतिस्सा एवं कोलिता, अपने ढाई सौ अनुयायियों सहित, भिक्षु बन गए। सरी के पुत्र उपतिस्सा और मोग्गली के पुत्र कोलिता,

सारिपुत्त और मोग्गलाना के नाम से जाने जाने लगे। संघ में प्रवेश के तुरंत बाद, बुद्ध ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया और ढाई सौ भिक्षु अर्हतत्व प्राप्त कर लिया; परन्तु मोग्गलाना और सारिपुत्त को क्रमशः सात और पंद्रह दिन बाद अर्हतत्व प्राप्त हुआ। अर्हतत्व प्राप्त करने में देरी का कारण यह था कि उन्होंने प्रधान शिष्य बनने की इच्छा की थी, जिसके लिए पूर्णता प्राप्त करने हेतु अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है।

पूज्य सारिपुत्त को हमेशा याद रहता था कि पूज्य असाजी के माध्यम से ही वे बुद्ध से मिल पाए थे और अमरत्व प्राप्त कर पाए थे। इसलिए वे हमेशा अपने गुरु की दिशा में प्रणाम करते थे और सोते समय भी अपना सिर उसी दिशा में रखते थे। जेतवन मठ में उनके साथ रह रहे अन्य भिक्षुओं ने उनके इस कार्य को गलत समझा और बुद्ध से कहा, “पूज्यवर! पूज्य सारिपुत्त आज भी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नादिर और शिखर दिशाओं की पूजा करते हैं, जैसा कि वे ब्राह्मण युवक के रूप में करते थे; ऐसा लगता है मानो उन्होंने अपने पुराने विश्वासों को नहीं छोड़ा है।” बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को बुलवाया और सारिपुत्त ने बुद्ध को समझाया कि वे केवल अपने गुरु, पूज्य असाजी को प्रणाम कर रहे थे, न कि विभिन्न दिशाओं की पूजा कर रहे थे। बुद्ध पूज्य सारिपुत्त द्वारा दी गई व्याख्या से संतुष्ट हुए और अन्य भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! पूज्य सारिपुत्त विभिन्न दिशाओं की पूजा नहीं कर रहे थे; वे केवल अपने गुरु और उपकारक को प्रणाम कर रहे थे, जिनके माध्यम से उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया था। ऐसे गुरु को प्रणाम करना उनके लिए बिलकुल उचित और सही है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 392 : यदि कोई व्यक्ति किसी से बुद्ध की शिक्षा सीखता है, तो उसे उस गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, जैसे ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

हमें बताया जाता है कि इस पूज्य भिक्षु ने सर्वप्रथम पूज्य अस्सजी के मुख से धम्म सुना; और जिस दिन से उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया, जिस भी दिशा में उन्हें पूज्य अस्सजी के निवास का पता चलता, वे उसी दिशा में आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करते, और सोते समय अपना सिर उसी दिशा में घुमाते। भिक्षुओं ने आपस में कहा, “पूज्य सारिपुत्त के विचार भ्रामक हैं; आज ही के दिन वे चारों दिशाओं को प्रणाम कर रहे हैं,” और उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई।

बुद्ध ने उस वरिष्ठ भिक्षु को अपने समक्ष बुलाया और उनसे पूछा, “सारिपुत्त, क्या यह बात सच है कि आप चारों दिशाओं को प्रणाम करते हैं?” सारिपुत्त ने उत्तर दिया, “हे पूज्यवर, आप मुझे जानते हैं, और आप स्वयं जानते हैं कि मैं चारों दिशाओं को प्रणाम करता हूँ या नहीं।” तब बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, सारिपुत्त चारों दिशाओं को प्रणाम नहीं करते। वास्तव में, उन्होंने सर्वप्रथम धम्म को पूज्य अस्सजी के मुख से सुना, और जिस दिन से उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया, तब से वे अपने गुरु का आदर करते हैं। क्योंकि एक भिक्षु को उस गुरु का आदर उसी श्रद्धा से करना चाहिए जिससे उसने धम्म सीखा है, जिस श्रद्धा से एक ब्राह्मण पवित्र अग्नि का आदर करता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 392)

यम्हा सम्मासंबुद्ध देसिटं धम्मं विजानेया

aggihuttaṃ brāhmaṇo iva taṃ sakkaccaṃ namasseyya

याम्हा : किसी से; सम्मासंबुद्ध देसिटं धम्मम् [धम्म]: प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा उपदेशित धम्म; विजयेण्य : सीखा हुआ है; अग्गिहुत्तं ब्राह्मणो इव : ब्राह्मण यज्ञ अग्नि के समान; सक्कक्काṃ [सक्कक्का]: सावधानीपूर्वक; विधिवत; नमस्सेय : (उसे) सलाम

यदि सत्य की खोज करने वाला कोई व्यक्ति किसी गुरु से प्रबुद्ध व्यक्ति के वचन सीखता है, तो उस शिष्य को गुरु का उचित सम्मान करना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे एक ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि के प्रति श्रद्धापूर्वक और निष्ठापूर्वक श्रद्धा अर्पित करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 392)

आदरणीय अस्सजी : यह श्लोक आदरणीय सारिपुत्त द्वारा आदरणीय अस्सजी की आराधना के कारण रचा गया था, जो कि पांच भिक्षुओं में से अंतिम थे, लेकिन किसी भी तरह से कमतर नहीं थे, जिन्होंने महान संघ के अग्रदूतों का गठन किया था।

उनका जीवन अन्य चार भिक्षुओं के जीवन के समान ही था। ये पाँचों भिक्षु आदर्श के प्रति उतने ही समर्पित थे, जितने कि उनके पाँच समकक्षों ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के युग में मार्ग दिखाया था। इतिहास या यूँ कहें कि इतिहास स्वयं को दोहरा रहा था। उन्हें यह विशिष्ट गौरव प्राप्त था कि वे पहले अरहत थे जिन्होंने ब्राह्मण उपतिस्सा को मार्ग दिखाया, जो बाद में पूज्य सारिपुत्त के रूप में उनके प्रमुख शिष्य बने। उन्होंने वह श्लोक सुनाया जो बौद्ध जगत में विश्व प्रसिद्ध हुआ। बाद में यह श्लोक अस्सजी श्लोक के नाम से जाना गया। आरंभ में अस्सजी ने उपतिस्सा को यह कहकर टालने का प्रयास किया कि वे नौसिखिया हैं। परन्तु उपतिस्सा ने धम्म का सार सुनने पर अड़े रहे,

चाहे वह संक्षिप्त हो या संक्षिप्त। जैसा कि भारत में हजारों बौद्ध तीर्थस्थलों पर अंकित है, उन्होंने कहा, "बुद्ध ने उन सभी चीजों के बारे में बताया है जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं — और यह भी कि वे कैसे समाप्त होती हैं, बुद्ध ने इसका भी वर्णन किया है।" दूसरे शब्दों में कहें तो, बुद्ध के प्रथम उपदेश में द्वितीय और तृतीय सत्य प्रकट हुए। इसका सीधा अर्थ यह है कि बुद्ध ने न केवल यह दिखाया कि किसी प्राणी का जन्म कैसे होता है, बल्कि यह भी बताया कि उसका अस्तित्व शाश्वत रूप से कैसे समाप्त हो सकता है। यदि कोई लालसा है, तो उसका अंत अवश्य होगा। उपतिस्सा के लिए यह किसी परिचित कमरे का द्वार खोलने जैसा था। दूसरी पंक्ति उद्धृत होने से पहले ही सत्य उनकी दृष्टि में कौंध गया और वे संतत्व के मार्ग पर चल पड़े। शीघ्र ही, उपतिस्सा प्रमुख शिष्य बन गए। उनकी बुद्धि असाधारण थी, जो केवल बुद्ध की बुद्धि के समान ही थी।
ऐसा कहा जाता है कि कृतज्ञता के महान गुण से प्रेरित होकर, मुख्य शिष्य हमेशा जहाँ भी संभव होता, अपना सिर उस दिशा की ओर करके सोता था जहाँ उसके गुरु, पूज्य अस्सजी, निवास करते थे। भोजन की तलाश में चक्कर लगाते समय अस्सजी का व्यवहार इतना प्रभावशाली था कि उपतिस्सा जैसे महान व्यक्ति भी उनसे निकट जाने के लिए प्रेरित हुए।
वह आखिरी पांच लोगों में से एक था।
लेकिन सबसे पहले रास्ता दिखाना।
भगवान के प्रमुख उपतिस्सा को,
धम्म के सेनापति
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 393

———————————————————————

(धम्मपद 392) <<<< पिछला ll धम्मपद 393 ll अगला >>>> (धम्मपद 394)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 393 - जटिलब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 393 - जटिलब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na jatahi na gottena
na jacca hoti brahmano
यमही सक्कंका(1) धम्मो(2) सीए
so suci so ca brahmano.

———————————————————————

श्लोक 393 : जटाधारी बालों को धारण करने से, न वंश से, न जाति से कोई ब्राह्मण बनता है; केवल वही शुद्ध होता है जो सत्य और धम्म को जान लेता है; वही ब्राह्मण होता है।

———————————————————————

1. सक्का: चार आर्य सत्य।
2. धम्म: नौ पारलौकिक तत्व, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण।

———————————————————————

जटिला ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (393) का उच्चारण किया, जिसमें जटाधारी ब्राह्मण तपस्वी जटिला का उल्लेख था।
एक बार एक ब्राह्मण तपस्वी ने मन ही मन सोचा कि बुद्ध ने अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहा था और जन्म से ब्राह्मण होने के कारण उसे भी 'ब्राह्मण' कहा जाना चाहिए। ऐसा सोचकर वह बुद्ध के पास गया और अपना विचार उनके सामने रखा। लेकिन बुद्ध ने उसके विचार

को अस्वीकार करते हुए कहा, "हे ब्राह्मण, मैं किसी को उसके जटाओं को संवारने या केवल जन्म के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं किसी को ब्राह्मण तभी कहता हूँ जब वह चारों आर्य सत्यों को पूर्णतः समझ लेता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 393 : जटाधारी बालों को धारण करने से, न वंश से, न जाति से कोई ब्राह्मण बनता है; केवल वही शुद्ध होता है जो सत्य और धम्म को जान लेता है; वही ब्राह्मण होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
ब्राह्मण जटिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जटिला नामक एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो जटाधारी थे।
कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने एक दिन मन ही मन कहा, "मैं माता और पिता दोनों की ओर से उत्तम कुल का हूँ, क्योंकि मेरा पुनर्जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। अब गौतम भिक्षु अपने शिष्यों को ब्राह्मण कहते हैं। उन्हें मुझे भी यही उपाधि देनी चाहिए।" तब ब्राह्मण बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा। बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, मैं किसी व्यक्ति को केवल उसकी जटाओं के कारण, या उसके जन्म और वंश के कारण ब्राह्मण नहीं कहता। परन्तु जो सत्य को प्राप्त कर लेता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 393)
जाताहि ब्राह्मणो न होति गोतेन ब्राह्मणो न होति जच्चा ब्राह्मणो
न होति यमहि सच्चा धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणो
जटाहि : जटाधारी बालों के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; गोत्र : वंश के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; जच्चा : जन्म के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; यम्ही: किसी व्यक्ति में; सच्चं [सच्च]: सत्य की जागरूकता; धम्मो च : और आध्यात्मिक वास्तविकता (अस्तित्व में); सो सुची : यदि वह शुद्ध है; सो च ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: वह सच्चा ब्राह्मण है
जटाधारी कन्याओं से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता। न ही कुल से कोई ब्राह्मण बनता है। जन्म से भी कोई ब्राह्मण नहीं बनता। सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला, शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला और शुद्ध स्वभाव का व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 393)
na jaccā hoti Brāhmāno : जन्म मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता। यह कथन बुद्ध के क्रांतिकारी दर्शन को दर्शाता है, जिसने भारतीय समाज के ब्राह्मण-प्रधान उच्च वर्ग को झकझोर दिया। उस समय के ब्राह्मण स्वयं को ब्रह्मा का चुना हुआ मानते थे और उनका मानना था कि जन्म से ही वे सभी के आदर के पात्र हैं। बुद्ध ने इस गहरी जड़ें जमा चुकी धारणा पर प्रहार किया।
उस समय समाज वर्णों नामक चार वर्गों में विभाजित था । यह स्पष्ट है कि इस महान गुरु के उपदेशों ने इस वर्ण व्यवस्था का खंडन किया। उस समय के भारतीय समाज को बुद्ध के उपदेशों से विशेष लाभ हुआ क्योंकि यह पहली बार था जब जातिवाद की कठोर व्यवस्था का खंडन किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञानता में डूबे भारत के लोगों को बुद्ध के इस नए उपदेश से अपार सांत्वना मिली। इसी महत्वपूर्ण तथ्य के कारण बुद्ध का महान आध्यात्मिक उपदेश पूरे भारत में फैलने लगा।
ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, जब बुद्ध का जन्म हुआ और कई दर्शनों का प्रतिपादन हुआ, तब जंबूद्वीप के जटिल समाज के बारे में त्रिपिटक नामक बौद्ध साहित्य में विविध जानकारियों का विशाल भंडार मौजूद है। विभिन्न धर्मों और दर्शनों के संस्थापकों ने मनुष्यों के लिए मोक्ष के विविध मार्ग बताए। बुद्धिजीवी वर्ग ने यह जानने के लिए खोजबीन की कि इनमें से कौन सा मार्ग सत्य है।
बौद्ध विचारधारा नैतिक यथार्थवाद का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जिसमें पारंपरिक सामाजिक संरचना की प्रकृति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है। बुद्ध से पहले उच्च आध्यात्मिक साधनाएँ केवल विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के लिए ही सुलभ थीं। लेकिन बुद्ध ने आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता रखने वाले सभी लोगों के लिए ज्ञानोदय का मार्ग खोल दिया।
चूंकि यह स्थापित व्यवस्था पर हमला था, इसलिए कई ब्राह्मण बुद्ध से इस बात पर बहस करने के लिए प्रेरित हुए कि सच्चा ब्राह्मण कौन है। यह श्लोक ऐसी ही एक बहस से उत्पन्न हुआ है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 394

(धम्मपद 393) <<<< पिछला || धम्मपद 394 || अगला >>>> (धम्मपद 395)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 394 - कुहकब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 394 - कुहकब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Kim te jatahi dummedha
kim te ajinasatiya
abbhantaram te gahanam
बहिराम परिमज्जासी.

श्लोक 394 : हे मूर्ख! उलझे हुए बालों को पहनने का क्या लाभ? हिरण की खाल से बने वस्त्र पहनने का क्या लाभ? तुझमें (नैतिक दोषों का) जंगल है; तू केवल बाहरी रूप से ही अपने आप को शुद्ध करता है।

एक कपटी ब्राह्मण की कहानी

वैशाली में कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक कपटी ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (394) कहा।

एक बार वैशाली नगर के द्वार के पास एक कपटी ब्राह्मण एक वृक्ष पर चढ़ गया और चमगादड़ की तरह उसकी एक शाखा से उल्टा लटक गया। इस विचित्र स्थिति में वह लगातार बुदबुदा रहा था, "हे लोगों! मेरे लिए सौ पशु, बहुत से चाँदी के सिक्के और कई दास लाओ। यदि तुम ये सब नहीं लाओगे और मैं इस वृक्ष से गिरकर मर जाऊँगा, तो तुम्हारा यह नगर निश्चित रूप से नष्ट हो जाएगा।" नगरवासियों को डर था कि ब्राह्मण के गिरकर मरने से उनका नगर नष्ट हो जाएगा, इसलिए उन्होंने वैशाली की माँगी हुई सभी वस्तुएँ लाकर उसे नीचे उतरने की विनती की।

इस घटना के बारे में सुनकर भिक्षुओं ने बुद्ध को सूचना दी और बुद्ध ने उत्तर दिया कि कपटी व्यक्ति केवल अज्ञानी लोगों को ही धोखा दे सकता है, बुद्धिमान लोगों को नहीं।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 394 : हे मूर्ख! उलझे हुए बालों को पहनने का क्या लाभ? हिरण की खाल से बने वस्त्र पहनने का क्या लाभ? तुझमें (नैतिक दोषों का) जंगल है; तू केवल बाहरी रूप से ही अपने आप को शुद्ध करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण की कहानी

तुम्हारी उलझी हुई जटाओं का क्या फायदा? यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने पगोडा हॉल में निवास करते समय एक ऐसे ब्राह्मण के संदर्भ में दिया था जो चमगादड़ की नकल करता था।

कहा जाता है कि वह ब्राह्मण वैशाली नगर के द्वार के पास उगने वाले एक ककुढ वृक्ष पर चढ़ता, अपने दोनों पैरों से एक शाखा को पकड़ता और सिर नीचे की ओर करके उससे झूलता था। इस प्रकार लटकते हुए वह पुकारता था, "मुझे सौ कपिला दो! मुझे पैसे दो! मुझे एक दासी दो! यदि तुम मुझे मेरी माँगी हुई वस्तुएँ नहीं दोगे, तो मैं इस वृक्ष से कूदकर आत्महत्या कर लूँगा और इस नगर को ऐसा बना दूँगा मानो यह कभी नगर था ही नहीं!"

जब बुद्ध भिक्षुओं के साथ नगर में प्रवेश कर रहे थे, तब भिक्षुओं ने उस ब्राह्मण को वृक्ष से लटका हुआ देखा। नगर से निकलते समय भी वह वहीं लटका हुआ था, ठीक वैसे ही जैसे प्रवेश करते समय लटका था। नगरवासियों ने मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति सुबह से इसी वृक्ष से लटका हुआ है; यदि वह गिर गया, तो यह नगर मानो कभी नगर ही न रहा हो।" अपने नगर के विनाश के भय से उन्होंने उसकी सभी माँगें मान लीं और उसे सब कुछ दे दिया। उन्होंने कहा, "हमने आपको वह सब कुछ दे दिया है जो आपने माँगा था।" तब वह वृक्ष से उतरा और लूट का माल लेकर चला गया।

भिक्षुओं ने उस छल करने वाले ब्राह्मण को मठ के आसपास गाय की तरह रंभाते हुए घूमते देखा और उसे तुरंत पहचान लिया। उन्होंने पूछा, "ब्राह्मण, क्या तुम्हें तुम्हारी मनचाही चीज़ मिल गई?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हाँ, मुझे मेरी मनचाही चीज़ मिल गई।" भिक्षुओं ने मठ में बुद्ध को घटना की सूचना दी। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह ब्राह्मण पहली बार छल और चोरी नहीं कर रहा है; वह अपने पिछले जन्म में भी छल और चोरी करता था। परन्तु अपने वर्तमान जन्म में तो वह भोले-भाले लोगों को धोखा देता है, जबकि अपने पिछले जन्म में वह बुद्धिमानों को भ्रमित करने में असफल रहा।" भिक्षुओं के अनुरोध पर, बुद्ध ने उस झूठे तपस्वी और छिपकलियों के राजा के बारे में अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, एक तपस्वी किसानों के एक गाँव के पास रहता था, और वह तपस्वी पाखंडी था। एक परिवार था जो उसकी देखभाल करता था: दिन में, वे अपने बच्चों की तरह ही, चाहे भोजन हो या कठोर, तपस्वी को भी एक हिस्सा देते थे; और शाम को वे अपने भोजन के लिए तैयार किए गए भोजन का एक हिस्सा अलग रख देते थे, जिसे वे अगले दिन तपस्वी को देते थे।

अब, उसकी पत्तों की कुटिया से कुछ ही दूरी पर, एक चींटी के टीले में छिपकलियों का राजा रहता था, और छिपकलियों के राजा की यह प्रथा थी कि वह समय-समय पर तपस्वी से मिलने आता और उसे प्रणाम करता। लेकिन उस विशेष दिन तपस्वी ने मन ही मन कहा, "मैं उस छिपकली को मार डालूँगा," और अपने वस्त्रों की तह में एक छड़ी छिपाकर, वह उस चींटी के टीले के बिल्कुल पास लेट गया और सोने का नाटक करने लगा। जब छिपकलियों का राजा अपने चींटी के टीले से बाहर आया और तपस्वी के पास पहुँचा, तो उसने तपस्वी की अजीब मुद्रा देखकर मन ही मन कहा, "आज मेरे गुरु का यह व्यवहार मुझे पसंद नहीं आया," और मुड़कर दूसरी दिशा में रेंगने लगा। तपस्वी ने देखा कि छिपकली मुड़ गई है, तो उसने उसे मारने के इरादे से छड़ी उस पर फेंकी, लेकिन छड़ी निशाने से चूक गई। छिपकलियों का राजा चींटियों के टीले में रेंगता हुआ आया और अपना सिर बाहर निकालकर चारों ओर देखते हुए तपस्वी से बोला, "इतने समय से मैं व्यर्थ ही तुम्हें तपस्वी समझता रहा, परन्तु अभी जिस क्षण तुमने मुझे जान से मारने की इच्छा से मुझ पर अपनी छड़ी फेंकी, उसी क्षण तुम तपस्वी नहीं रहे। तुम्हारे जैसे बुद्धिहीन व्यक्ति के लिए उलझे बालों का क्या लाभ? तुम्हारे नाखूनों से भरी त्वचा का क्या लाभ? क्योंकि तुम्हारे भीतर तो एक जंगल है; तुम तो केवल बाहरी आवरण को ही चमकाते और साफ करते हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 394)

दुम्मेधा ते जातहि किं ते अजिनासतिया किं ते
अभ्भन्तरं ते गहनं बहिरं परिमाज्जसि

दुम्मेधा : हे मूर्ख मनुष्य; ते : तुम्हारा; जटाहि : उलझे हुए बाल; किं : किस काम का; ते : तुम्हारा; अजिनसातिया : तेंदुए की खाल; किं : किस काम का; ते अब्भंतरं [अब्भंतर]: तुम्हारा भीतर; आत्मा; गहनं [गहन]: दोषों से भरी है; बाहिरं [बाहिर]: जो बाहर है; प र इमज्जसि : जिसे तुम सजाते हो।

आपकी तपस्या के बाहरी दिखावे का क्या फायदा: आपके उलझे हुए बाल; आपके तेंदुए की खाल के वस्त्र? आप बाहर से तो साफ-सुथरे और चमकदार रहते हैं, जबकि भीतर से आप अशुद्धियों से भरे हुए हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 395

(धम्मपद394) <<<< पिछला || धम्मपद395 || अगला >>>> (धम्मपद396)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 395 - किसागोतामि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 395 - किसागोतामि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamsukuladharam jantum
kisam dhamanisanthatam
एकम वनस्मिम झयन्तम
tamaham brumi brahamanam.

श्लोक 395 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है (कचरे के ढेर से उठाए गए), जो दुबला-पतला है, जिसकी नसें उभरी हुई हैं, जो जंगल में अकेले ध्यान करता है।

किसागोतमी की कहानी
गिज्झकुटा पहाड़ी पर निवास करते हुए, बुद्ध ने किसागोतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (395) कहा।
एक बार, देवों के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए। उसी समय, थेरी किसागोतमी अपनी अलौकिक शक्ति से आकाश से प्रकट होकर बुद्ध को प्रणाम करने आईं। परन्तु जब उन्होंने सक्का और उनके अनुयायियों को बुद्ध को प्रणाम करते देखा, तो वे पीछे हट गईं। सक्का ने उन्हें देखकर बुद्ध से पूछा कि वे कौन हैं, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे सक्का! वे मेरी पुत्री किसागोतमी हैं। एक बार वे अपने पुत्र की मृत्यु के दुःख और व्यथा में मेरे पास आईं और मैंने उन्हें समस्त सत्वों के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप का दर्शन कराया। फलस्वरूप उन्होंने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया, संघ में शामिल हुईं और अरहत बन गईं। वे मेरी प्रख्यात महिला शिष्यों में से एक हैं और कूड़े के ढेर से एकत्रित चिथड़ों से बने वस्त्र धारण करने की तपस्या में अद्वितीय हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 395 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है (कचरे के ढेर से उठाए गए), जो दुबला-पतला है, जिसकी नसें उभरी हुई हैं, जो जंगल में अकेले ध्यान करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
किसा गौतमी की कहानी, जो चिथड़े-चिथड़े पहनती थी
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास करते समय किसा गौतमी के संदर्भ में दिया था।
उस समय, पहले पहर के अंत में, कई देवताओं से घिरे सक्का बुद्ध के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए और उनके द्वारा दिए जा रहे धर्म उपदेशों को उनके सामान्य मधुर ढंग से सुनने लगे। उसी क्षण किसा गौतमी ने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध के दर्शन करने जाऊंगी," और वायु के माध्यम से वहाँ चली गईं। लेकिन जब उन्होंने सक्का को देखा, तो वे वापस लौट गईं। सक्का ने उन्हें बुद्ध को प्रणाम करते और वापस लौटते देखा, और तुरंत बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, यह कौन हैं जो आपके पास आती हैं और फिर आपको देखकर वापस लौट जाती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, यह मेरी पुत्री किसा गौतमी हैं, जो चिथड़े-चिथड़े पहनने वाली भिक्षुणियों में श्रेष्ठ हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 395)
पंसुकुलधरं किसानं धमनिसंततं वनस्मिं
एकं झायंतं तं जंतुं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
paṃsukūladharaṃ [paṃsukūladhara]: पुराने कपड़ों से बने वस्त्र पहनने वाला; kisaṃ [kisa]: दुबला-पतला; dhamanisanthataṃ [dhamanisanthata]: उभरी हुई नसों वाला; vanasmiṃ [vanasmi]: वन में रहने वाला; ekaṃ : एकांतवासी; jhāyantaṃ [jhāyanta]: ध्यान करने वाला; taṃ jantuṃ [jantu]: वह व्यक्ति; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi : ब्राह्मण
वह पुराने चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है। वह इतना संयमी और दुबला-पतला है कि उसकी नसें उभरी हुई हैं। वह जंगल में एकांत में ध्यान करता है। सत्य के ऐसे साधक को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 395)
पंचकूलाधरं : पुराने और बेकार कपड़ों से बने वस्त्र पहनना। केवल पुराने कपड़ों से बने वस्त्र पहनने का व्रत (पंचकूलिकंग) तपस्या के शुद्धिकरण नियमों में से एक है। इन नियमों को धुतंग कहा जाता है । धुतंग का अर्थ है (अशुद्धियों को) दूर करना, शुद्धिकरण का साधन, तपस्वी या कठोर साधना। ये वे कठोर अनुष्ठान हैं जो बुद्ध ने भिक्षुओं को संतोष, वैराग्य, ऊर्जा आदि गुणों को विकसित करने में सहायता के लिए सुझाए हैं। इनमें से एक या अधिक अनुष्ठानों का पालन कम या अधिक समय के लिए किया जा सकता है।
नैतिकता में स्वयं को प्रशिक्षित करने वाले भिक्षु को शुद्धि के साधनों को अपनाना चाहिए, ताकि वह उन गुणों को प्राप्त कर सके जिनके माध्यम से नैतिकता की शुद्धता पूर्ण हो जाएगी, अर्थात्: आवश्यकताओं की कमी, संतोष, तपस्या, वैराग्य, ऊर्जा, संयम आदि।
तेरह धुतंगों में निम्नलिखित व्रत शामिल हैं:
फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए;

केवल तीन वस्त्र पहने हुए;
भिक्षा मांगने जाना;
भिक्षा मांगने जाते समय किसी भी घर को न छोड़ना;
एक ही बार में भोजन करना;
केवल भिक्षापात्र से ही भोजन करना;
आगे का सारा भोजन लेने से इनकार करना;
जंगल में रहना;
पेड़ के नीचे रहना;
खुले वातावरण में रहना;
कब्रिस्तान में रहना;
किसी भी आवास में संतुष्ट रहना;
बैठकर सोना चाहिए (कभी भी लेटकर नहीं)।

पहली प्रतिज्ञा इन शब्दों में ली जाती है: मैं गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्रों को अस्वीकार करता हूँ, या: मैं केवल चिथड़ों से बने वस्त्र पहनने की प्रतिज्ञा लेता हूँ। इनमें से कुछ अभ्यास गृहस्थ अनुयायी भी कर सकते हैं।

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि संघ में प्रवेश करने के तुरंत बाद प्रत्येक नवदीक्षित भिक्षु को सलाह दी जाती है कि वह जो भी वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और दवा प्राप्त करे, उसी से संतुष्ट रहे: "भिक्षुओं का जीवन एकत्रित भिक्षा पर भोजन के रूप में निर्भर करता है... वृक्ष की जड़ पर आवास के रूप में... और चिथड़ों को जोड़कर बनाए गए वस्त्रों पर।"

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 396

(धम्मपद 395) <<<< पिछला || धम्मपद 396 || अगला >>>> (धम्मपद 397)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 396 - एक ब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 396 - एक ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Na caham brahmanam brumi
योनिजं मत्तिसंभवम्,
भोवादी(1) नामा सो होती
sace hoti sakincano
akincanam anadanam
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 396 : मैं उसे ब्राह्मण मात्र इसलिए नहीं कहता कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। नैतिक दोषों से मुक्त न होने पर वह केवल भोवदी ब्राह्मण है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त हो।

---

1. भोवादी: 'भो' एक परिचित संबोधन है जिसका प्रयोग निम्न और समतुल्य दोनों के लिए किया जाता है। अतः 'भोवादी' उपाधि अहंकार का प्रतीक है। ब्राह्मण आमतौर पर बुद्ध को 'भो गौतम!' कहकर संबोधित करते थे। बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों के लिए 'भोवादी' शब्द का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण ढंग से किया जाता है।

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (396) कहा।

एक बार, श्रावस्ती के एक ब्राह्मण ने सोचा कि चूंकि बुद्ध ने अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहा है, इसलिए उन्हें भी ब्राह्मण कहलाना चाहिए क्योंकि वे ब्राह्मण माता-पिता की संतान हैं। जब उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "हे ब्राह्मण! मैं उसे केवल ब्राह्मण माता-पिता की संतान होने के कारण ब्राह्मण नहीं कहता। मैं उसे ब्राह्मण तभी कहता हूँ जब वह नैतिक दोषों से मुक्त हो और जीवन के सभी मोह से मुक्त हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 396 : मैं उसे ब्राह्मण मात्र इसलिए नहीं कहता कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। नैतिक दोषों से मुक्त न होने पर वह केवल भोवदी ब्राह्मण है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त हो।

प्रवचन के अंत में उस ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण कौन होता है?

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने एक दिन मन ही मन कहा, "गौतम भिक्षु अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। मेरा पुनर्जन्म एक ब्राह्मण माता के गर्भ से हुआ है, इसलिए उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।" अतः वह बुद्ध के पास गए और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा। बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण नहीं कहता कि उसने ब्राह्मण माता के गर्भ से पुनर्जन्म लिया है। बल्कि जो सांसारिक वस्तुओं से रहित है, जो इस संसार की वस्तुओं के प्रति आसक्त नहीं है, वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 396)

योनिजं मतिसंभवं ब्राह्मणं अहं न च

ब्रूमि सा सी साकिंकानो होति सो भोवादी नामा होति

अकिंचनं आनंदं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

योनिजं मत्तिसंभवं [मत्तिसंभव]: ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण; अहं न च ब्रूमि : मैं नहीं पुकारूँगा; स चे सकिंचानो [सकिंचाना]: यदि उसमें दोष हों; सो भोवादी नाम होति : उसे ऐसा व्यक्ति कहा जा सकता है जो लोगों को 'महोदय' कहकर संबोधित करता हो; अकिंचाना [अकिंचाना]: यदि वह दोषों से मुक्त हो; अनादानं [अनादान]: भोग की पकड़ से मुक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण नहीं कहूँगा कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। न ही मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण कहूँगा कि वह लोगों को भो (सिर) कहकर संबोधित करता है। ये सभी लोग दोषों से भरे हुए हैं। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो दोषरहित है और व्यथाओं से मुक्त है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 396)

ब्राह्मण : इस श्लोक के अनुसार, बुद्ध से मिलने वाले अनाम ब्राह्मण ने ब्राह्मण उपाधि का दावा किया क्योंकि वह योनिजं मत्तिसंभवं था , अर्थात् ब्राह्मण माता की कोख से जन्मा था। परन्तु बुद्ध ने कहा कि वे ब्राह्मण केवल उसी व्यक्ति को कहेंगे जो कामवासना जैसे दोषों से मुक्त हो और लोभ से रहित हो।

भोवादी : बुद्ध के समय के ब्राह्मणों की यह प्रथा थी कि वे सभी बाहरी रीति-रिवाजों में निपुण होते थे। वे विनम्र और शिष्ट थे और लोगों को भो (श्री) कहकर संबोधित करते थे। बुद्ध ने कहा कि ऐसा विनम्र और शिष्ट व्यवहार पर्याप्त नहीं था। ब्राह्मण की उपाधि प्राप्त करने के लिए उन्हें आंतरिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से शुद्ध होना आवश्यक था। अन्यथा, वे केवल भो कहने वाले ही रह जाते थे।

ब्राह्मण दोण : बौद्ध साहित्य में प्रमुखता से वर्णित ब्राह्मणों में से एक दोण हैं ।

बुद्ध के अवशेषों पर निम्नलिखित में से प्रत्येक ने दावा किया, अर्थात् मगध के राजा अजातसतु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्लाकप्पा के बूली, रामागम के कोलिय, पावा के मल्ल और वेठद्वीप के एक ब्राह्मण ने। परन्तु कुसिनारा के मल्लों का कहना था कि बुद्ध का निधन उनके राज्य में हुआ था, और वे अवशेषों का कोई भी भाग किसी को नहीं देंगे। ब्राह्मण दोण ने यह कहकर विवाद सुलझाया कि ऐसे पवित्र व्यक्तित्व के अवशेषों पर झगड़ा करना उचित नहीं है, जिन्होंने संसार को सहनशीलता का उपदेश दिया। उन्होंने अवशेषों को आठ भागों में बाँटा और प्रत्येक दावेदार को एक-एक भाग दिया। उन्होंने खाली भाग वापस माँगकर उस पर एक स्तूप बनवाया। पिप्पलीवना के मोरिया शासकों ने भी अवशेषों के एक हिस्से पर दावा किया, लेकिन चूंकि उनके लिए कुछ भी नहीं बचा था,

इसलिए वे अंगारों को ले गए और उनके ऊपर एक टीला बना दिया, जबकि अन्य जिन्होंने अवशेष प्राप्त किए, उन्होंने अपने-अपने राज्यों में बुद्ध के पवित्र अवशेषों को समाहित करते हुए स्तूपों का निर्माण किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 397

———————————————————————

(धम्मपद396) <<<< पिछला ‖ धम्मपद397 ‖ अगला >>>> (धम्मपद398)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 397 - उग्गसेनसेट्ठिपुत्त वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 397 - उग्गसेनसेट्ठिपुत्त वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbasamyojanam chetva
yo ve na paritassati
संगतिगम विसाम्यत्तम
tamaham brumi brahamanam.

———————————————————————

श्लोक 397 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने सभी बंधनों को काट दिया है और जो निर्भय है, जो आसक्ति से परे है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————

एक धनी व्यक्ति के पुत्र उगासेना की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (397) का उच्चारण एक धनी व्यक्ति के पुत्र उग्गेसेना के संदर्भ में किया।

एक नाट्य मंडली की नर्तकी से विवाह करने के बाद, उगासेना को उनके ससुर, जो एक कलाबाज थे, द्वारा प्रशिक्षित किया गया और वे कलाबाजी में अत्यंत कुशल हो गए। एक दिन जब वे अपना कौशल दिखा रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ प्रकट हुए। बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर, उगासेना ने एक लंबे बांस के खंभे पर अपने करतब दिखाते हुए ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद, वे खंभे से नीचे उतरे और बुद्ध से उन्हें भिक्षु के रूप में स्वीकार करने की विनती की, और तदनुसार उन्हें संघ में प्रवेश मिल गया।

एक दिन जब दूसरे भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि इतनी ऊँचाई (लगभग नब्बे फीट) से उतरते समय क्या उन्हें ज़रा भी डर नहीं लगा, तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। भिक्षुओं ने इसका अर्थ यह निकाला कि उगसेना अभी भी अर्हत होने का दावा कर रहे हैं। इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, "हे पूज्यवर! उगसेना स्वयं को अर्हत बताते हैं; वे झूठ बोल रहे होंगे।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र उगसेना की तरह, जिसने सभी बंधनों को तोड़ दिया है, उसे कोई भय नहीं होता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 397 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने सभी बंधनों को काट दिया है और जो निर्भय है, जो आसक्ति से परे है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कलाबाज उगासेना की कहानी
इस कहानी का विस्तृत वर्णन उस श्लोक की व्याख्या में किया गया है जो इन शब्दों से शुरू होता है, "अतीत की बातों को त्याग दो, भविष्य की बातों को त्याग दो।"
क्योंकि उस समय जब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, उगसेना कहते हैं, 'मुझे कोई भय नहीं है;' निःसंदेह वह असत्य बात कहते हैं, झूठ बोलते हैं,” तो बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, जो मेरे पुत्र की तरह आसक्तियों से मुक्त हैं, उन्हें कोई भय नहीं है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 397)
ये सब्बासंन्नोजनां चेत्वा वे न परितासससति
संगतिगं विसंयुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
ये : कोई; सब्बासंज्ञाजनम् [सब्बासंज्ञाजन]: सभी दस बंधनों से मुक्त; चेत्वा : छुटकारा पा लिया; वे : निश्चित रूप से; न परितस्सति : भय से मुक्त; निर्भीक; संगातिगम् [संगातिगा]: सभी प्रकार के आसक्ति से परे हो गया; विसंयुत्तम् [विसंयुत्त]: दोषों से मुक्त; तम् : उसे; अहम् : मैं; ब्राह्मणम् [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : पुकारना
उसने सभी बंधनों से मुक्ति पा ली है। फलस्वरूप, वह भयमुक्त और निर्भीक है। उसने सभी बंधनों से परे यात्रा की है। बंधनों से मुक्त होकर वह संसार से बंधा नहीं है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 397)
sabba saññojanaṃ chetvā : दस बंधनों से मुक्त होकर, जो इस प्रकार हैं:
व्यक्तित्व-विश्वास (sakkāya - diṭṭhi);
संशयपूर्ण संदेह (vicikkichā);
मात्र नियमों और अनुष्ठानों से चिपके रहना (सिलब्बता - परमासा);
कामुक लालसा (काम - राग);
दुर्भावना (व्यापाद);
भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति लालसा (रूप - राग);
अमूर्त अस्तित्व की लालसा (अरूपा - राग);
अहंकार (मान); (9) बेचैनी (उद्धच्च);
अज्ञान (अविज्जा)।
इनमें से पहले पाँच को 'निम्न बंधन' (ओरम्भागीय - संयोजन) कहा जाता है, क्योंकि ये इंद्रिय जगत से जुड़े होते हैं। बाद के पाँच को 'उच्च बंधन' (उद्धम्भागीय - संयोजन) कहा जाता है, क्योंकि ये उच्चतर जगतों से जुड़े होते हैं, अर्थात् सूक्ष्म भौतिक और अभौतिक जगत से।
संगतिगम् : आसक्ति के चार रूप, अर्थात् कामवासना, गलत दृष्टिकोण, नियमों और अनुष्ठानों से चिपके रहना और सारगर्भित प्रथम स्थान धारण करना (अत्तवाद)।
जो विचलित नहीं होता , वह कांपता नहीं; वह विचलित नहीं होता। जो सांसारिक सुखों में फंसे रहते हैं, वे विचलित हो जाते हैं। जो सांसारिक सुखों से परे जा चुके हैं, वे भयभीत नहीं होते; वे निर्भीक होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 398

———————————————————————

(धम्मपद397) <<<< पिछला || धम्मपद398 || अगला >>>> (धम्मपद399)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 398 - द्वे ब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 398 - द्वे ब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Chetva naddhim varattanca
संदानम सहानुक्कमम
ukkhittapalidham buddham
tamaham brumi brahamanam.

श्लोक 398 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दुर्भावना का पट्टा, लालसा का पट्टा और छिपे हुए दोषों सहित गलत विचारों की डोरी काट दी है, जिसने अज्ञान के द्वार को बंद करने वाली बाधा को हटा दिया है, और जो सत्य को जानता है।

दो ब्राह्मणों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने दो ब्राह्मणों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (398) कहा।

एक समय श्रावस्ती में दो ब्राह्मण रहते थे, जिनमें से प्रत्येक के पास एक-एक बैल था। दोनों का दावा था कि उनका बैल बेहतर और अधिक बलवान है। अंत में, उन्होंने अपने पशुओं की परीक्षा लेने का निर्णय लिया। इसलिए वे अचिरवती नदी के किनारे गए और वहाँ उन्होंने एक गाड़ी में रेत भर दी। एक-एक करके बैलों ने गाड़ी को खींचा, लेकिन उनका प्रयास व्यर्थ रहा, क्योंकि गाड़ी हिली नहीं और केवल रस्सियाँ टूट गईं। भिक्षुओं ने यह देखकर बुद्ध को सूचना दी और बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जिन पट्टियों को आप अपनी आँखों से देख सकते हैं, उन्हें तोड़ना आसान है; कोई भी उन्हें तोड़ या काट सकता है। परन्तु मेरे पुत्रों, एक भिक्षु को द्वेष की पट्टी और भोग की डोरी को काटना चाहिए जो आपके भीतर हैं और जो आपको बांधती हैं।"

श्लोक 398 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दुर्भावना का पट्टा, लालसा का पट्टा और छिपे हुए दोषों सहित गलत विचारों की डोरी काट दी है, जिसने अज्ञान के द्वार को बंद करने वाली बाधा को हटा दिया है, और जो सत्य को जानता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

रस्साकशी की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय दो ब्राह्मणों के संदर्भ में दिया था।

कथा के अनुसार, इन दो ब्राह्मणों में से एक के पास 'छोटा लाल' (चुल्ला रोहित) नाम का एक बैल था और दूसरे के पास 'बड़ा लाल' (महा रोहित) नाम का एक बैल था। एक दिन वे अपने-अपने बैलों की ताकत को लेकर बहस करने लगे, "मेरा बैल ही ताकतवर है! मेरा बैल ही ताकतवर है!" बहस से थककर उन्होंने कहा, "इस पर बहस करने का क्या फायदा? हम दोनों बैलों को चलाकर देख सकते हैं।" तदनुसार, वे अचिरवती नदी के किनारे गए, अपनी गाड़ी में रेत भरी और बैलों को जोत दिया। उसी समय कुछ भिक्षु स्नान करने के लिए नदी के किनारे आए। ब्राह्मणों ने अपने बैलों को चाबुक मारा, लेकिन गाड़ी टस से मस नहीं हुई। अचानक उसके पट्टे और रस्सियाँ टूट गईं। भिक्षुओं ने यह सब देखा और जब वे मठ लौटे, तो उन्होंने बुद्ध को सब कुछ बताया। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, ये तो बाहरी बंधन और डोरियाँ हैं, जिन्हें कोई भी काट सकता है। परन्तु भिक्षु को क्रोध के आंतरिक बंधन और लालसा की डोरी को काटना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 398)

नन्दहिं वरतं सहनुक्कमं संदामं चेत्वा
उक्खित्तपघं बुद्धं तम अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि

नन्दिः [नन्दि]: घृणा का पट्टा; वराट्टं [वराट्ट]: लालसा की पेटी; सहनुक्कमं संदामं [संदामा]: इसकी कड़ियों सहित प्रमुख बंधन; चेत्वा : अनेक होना; उक्खित्तपधिघं [उक्खित्तप◌ंघ]: क्रॉस-बार उठा लिया; बुद्धम् [बुद्ध]: वास्तविकता से अवगत हो जाओ; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णित

उसने द्वेष की बेड़ी से छुटकारा पा लिया है। उसने लालसा के बंधन से खुद को मुक्त कर लिया है। उसने उस विशाल बेड़ी से मुक्ति पा ली है जिसके सभी बंधन टूट गए हैं। ये वे झूठे विचार हैं जो लोगों को बांधे रखते हैं। उसने अज्ञान की बेड़ी को हटा दिया है। उसे चार आर्य सत्यों का ज्ञान हो गया है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 398)
इस श्लोक में सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति की तुलना बैलगाड़ी चलाने वाले व्यक्ति से की गई है।
नंदिं : गाड़ी में पट्टा बांधने की उपमा। आध्यात्मिक मुक्ति की खोज में यही वह चीज है जो व्यक्ति को बांधती और जकड़ती है।
वरत्तं : बैलगाड़ी और बैल के उपमा में थोंग। यह आध्यात्मिक खोज में तृप्ति है क्योंकि यह फँसा देती है।
संदामं सहनुक्कमं : बैलगाड़ी और बैल के उपमा में, ये अभिव्यक्तियाँ लगाम के साथ-साथ रस्सी को संदर्भित करती हैं। आध्यात्मिक खोज में, ये बासठ गलत धारणाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।
बुद्ध का सुनी हुई बातों के प्रति दृष्टिकोण : यह श्लोक और कई अन्य श्लोक उन घटनाओं के संदर्भ में कहे गए थे जिनकी जानकारी बुद्ध को प्राप्त हुई थी। बुद्ध अपने संवाद के तरीके में किसी भी ऐसी घटना या प्रसंग का उपयोग करते हैं जिससे श्रोताओं को लाभ होने की संभावना हो।
एक दिन जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने जेतवन मठ से कुछ ही दूरी पर स्थित एक सूखे जलाशय में कुछ बच्चों को मछली पकड़ते और मारते देखा। बुद्ध बच्चों के पास गए और उनसे पूछा, "बच्चों, क्या तुम दुख से डरते हो और क्या तुम्हें दुख नापसंद है?" बच्चों ने कहा, "जी, पूज्यवर, हम दुख से डरते हैं और हमें दुख नापसंद है।" बुद्ध ने कहा, "यदि तुम दुख से डरते हो और उसे नापसंद करते हो, तो कोई भी बुरा काम न करो, चाहे खुलेआम हो या छिपकर। यदि तुम अभी या भविष्य में कोई बुरा काम करोगे, तो तुम्हें दुख से छुटकारा नहीं मिलेगा, चाहे तुम उससे भागने की कितनी भी कोशिश करो।"
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 399

———————————————————————

(धम्मपद 398) <<<< पिछला || धम्मपद 399 || अगला >>>> (धम्मपद 400)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 399 - अक्कोसाकाभारद्वाज वत्थु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 399 - अक्कोसाकाभारद्वाज वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Akkosam vadhabandhanca
aduttho yo titikkhati
खंतिबलम बलानिकम
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 399 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो क्रोध रहित होकर अपमान, मार-पीट और बंधन सहन करता है, और जिसके लिए धैर्य की शक्ति सेना की शक्ति के समान है।

———————————————————————

दुर्व्यवहार करने वाले ब्राह्मण भाइयों की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (399) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपमानजनक भारद्वाज बंधुओं का उल्लेख किया।
एक समय की बात है, एक ब्राह्मण की पत्नी को छींक आने पर या किसी के अनजाने में छूने पर अचानक कुछ शब्द बोलने की आदत थी। एक दिन ब्राह्मण ने अपने कुछ मित्रों को भोजन पर आमंत्रित किया और अचानक उसकी पत्नी ने कुछ शब्द बोल दिए। क्योंकि वह सोतापन्न थी, इसलिए उसके मुख से स्वतः ही "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्संबुद्धस्स" निकल आए। बुद्ध के प्रति श्रद्धा के ये शब्द

उसके पति, ब्राह्मण को अत्यंत अप्रिय लगे। इसलिए क्रोधित होकर वह बुद्ध के पास गया, यह सोचकर कि वह उनसे कुछ चुनौतीपूर्ण प्रश्न पूछेगा। उसका पहला प्रश्न था, "सुखद और शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए हमें क्या त्यागना होगा?" और दूसरा प्रश्न था, "आप किस धर्म का त्याग करने को उचित मानते हैं?" इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, सुखी और शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए द्वेष (दोष) का नाश करना होगा। द्वेष का नाश करना बुद्धों और अरहतों को प्रिय और प्रशंसनीय है।" बुद्ध की वाणी सुनकर ब्राह्मण इतना प्रभावित और संतुष्ट हुआ कि उसने संघ में प्रवेश करने की अनुमति मांगी। तदनुसार, उसने संघ में प्रवेश किया और बाद में अरहत बन गया।

इस ब्राह्मण का एक भाई था जो अपने अपशब्दों के लिए कुख्यात था और अक्कोसाका भारद्वाज के नाम से जाना जाता था। जब अक्कोसाका भारद्वाज को पता चला कि उसका भाई भिक्षु संघ में शामिल हो गया है, तो वह क्रोधित हो गया। वह तुरंत मठ गया और बुद्ध को अपशब्द कहे। बुद्ध ने बदले में पूछा, "हे ब्राह्मण, मान लो कि तुमने कुछ मेहमानों को भोजन दिया और वे बिना भोजन लिए घर से चले गए। चूंकि मेहमानों ने तुम्हारा भोजन स्वीकार नहीं किया, तो वह भोजन किसका होगा?" इस प्रश्न के उत्तर में ब्राह्मण ने कहा कि वह भोजन उसका ही होगा। यह उत्तर सुनकर बुद्ध ने कहा, "इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, चूंकि मैं तुम्हारा अपशब्द स्वीकार नहीं करता, इसलिए वह अपशब्द तुम पर ही वापस जाएगा।" अक्कोसाका भारद्वाज को तुरंत उन शब्दों की बुद्धिमत्ता का एहसास हुआ और उनके मन में बुद्ध के प्रति गहरा आदर उत्पन्न हुआ। उन्होंने भी संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अर्हत बन गए।

अक्कोसाका भारद्वाज के संघ में प्रवेश करने के बाद, उनके दो छोटे भाई भी बुद्ध का अपमान करने के उसी इरादे से उनसे मिलने आए। बुद्ध ने उन्हें भी सही राह दिखाई और वे भी संघ में प्रवेश कर गए। अंततः, वे दोनों अरहत बन गए।

एक शाम भिक्षुओं की सभा में, भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, “हे बुद्ध के गुण कितने अद्भुत और महान हैं! चार ब्राह्मण भाई बुद्ध का अपमान करने यहाँ आए थे; उनसे बहस करने के बजाय, उन्होंने उन्हें सही राह दिखाई, और परिणामस्वरूप, बुद्ध उनके लिए शरणस्थली बन गए हैं।” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “भिक्षुओं! क्योंकि मैं धैर्यवान और सहनशील हूँ, और जो मेरा अपमान करते हैं, उनके साथ मैं कोई अन्याय नहीं करता, इसलिए मैं बहुतों के लिए शरणस्थली बन गया हूँ।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 399 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो क्रोध रहित होकर अपमान, मार-पीट और बंधन सहन करता है, और जिसके लिए धैर्य की शक्ति सेना की शक्ति के समान है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धैर्यवान व्यक्ति द्वारा अभिमानी को वश में करने की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय अक्कोसा भारद्वाज के संदर्भ में दिया था।

अक्कोसा भारद्वाज का एक भाई भारद्वाज था और उनकी पत्नी धनंजनी थीं, जिन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त कर लिया था। जब भी उन्हें छींक आती, खांसी होती या वे लड़खड़ा जातीं, तो वे गंभीर स्वर में कहतीं, “सर्वोच्च, सर्वगुण संपन्न, परम प्रबुद्ध परमेश्वर की स्तुति हो!” एक दिन, ब्राह्मणों को भोजन वितरण के दौरान, वे लड़खड़ा गईं और तुरंत ही हमेशा की तरह ऊँची आवाज़ में वही गंभीर स्वर दोहराया।

ब्राह्मण को बहुत क्रोध आया और उसने मन ही मन कहा, “यह नीच स्त्री जहाँ भी ठोकर खाती है, इस मुंडे हुए भिक्षु की इसी प्रकार प्रशंसा करने लगती है।” उसने उससे कहा, “अब, हे नीच स्त्री, मैं जाकर तेरे उस गुरु को वाद-विवाद में हरा दूँगा।” उसकी पत्नी ने उत्तर दिया, “ज़रूर जाइए, ब्राह्मण; मैंने आज तक किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जो बुद्ध को वाद-विवाद में हरा सके। फिर भी, जाइए और बुद्ध से एक प्रश्न पूछिए।”

ब्राह्मण बुद्ध के पास गया और उन्हें प्रणाम किए बिना ही एक तरफ खड़ा हो गया और उनसे निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए एक प्रश्न पूछा:

सुखमय जीवन जीने के लिए क्या नष्ट करना आवश्यक है? दुःख से बचने के लिए क्या नष्ट न करना आवश्यक है? गौतम, आप किस एक शर्त पर विनाश की अनुशंसा करते हैं?

इसके उत्तर में बुद्ध ने निम्नलिखित श्लोक कहा:

यदि मनुष्य क्रोध का नाश कर ले, तो वह शांति से जीवन व्यतीत करेगा; यदि वह क्रोध का नाश कर ले, तो उसे फिर कभी दुःख नहीं होगा।

क्रोध की जड़ विषैली होती है, और उसका शिखर मधुर होता है, ब्राह्मण।

इसलिए, कुलीन लोग क्रोध के नाश की सराहना करते हैं।

क्योंकि जब यह नष्ट हो जाता है, तो कोई दुःख नहीं रह जाता।

उस ब्राह्मण ने बुद्ध में विश्वास किया, संसार से संन्यास लिया और अरहतत्व प्राप्त किया।
अब उनके छोटे भाई, जिनका नाम अक्कोसा भारद्वाज था, ने यह खबर सुनी कि "तुम्हारा भाई संसार से संन्यास ले चुका है," और इससे बहुत क्रोधित होकर, जाकर बुद्ध को अपशब्द कहे। परन्तु बुद्ध ने अजनबियों को दिए जाने वाले कठोर भोजन का उदाहरण देकर उन्हें भी वश में कर लिया, और उन्होंने भी बुद्ध पर विश्वास किया, संसार से संन्यास लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसी प्रकार अक्कोसा भारद्वाज के दो छोटे भाई, सुंदरी भारद्वाज और बिलांगिक भारद्वाज ने भी बुद्ध को अपशब्द कहे, परन्तु बुद्ध ने उन्हें वश में कर लिया, और उन्होंने भी संसार से संन्यास लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया।
एक दिन सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने यह चर्चा शुरू की: "बुद्धों के गुण कितने अद्‌भुत हैं! यद्यपि इन चार भाइयों ने बुद्ध का अपमान किया, फिर भी बुद्ध ने बिना कुछ कहे ही उनकी शरण ली।" उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "अमुक विषय पर।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, क्योंकि मुझमें धैर्य की शक्ति है, क्योंकि मैं पापियों के बीच भी पापरहित हूँ, इसलिए मैं वास्तव में भीड़ का शरणस्थल हूँ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 399)
यो अक्कोसं वधबंधं च अदुत्थो तितिक्खति
खांतिबलं बालनिकं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यो : यदि कोई व्यक्ति; अक्कोसां [अक्कोसा]: गाली देता है; वधबन्धं च : यातना, कारावास; अदुत्थो तितिक्खति : बिना क्रोध खोए सहन करता है; खन्तीबलं [खन्तीबल]: (जिसके पास) धैर्य ही शक्ति है; बलाणीकं [बलाणीक]: और उसकी सेना; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण; ब्रूमी : पुकारता है
उनका अपमान और दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें यातनाएं दी जाती हैं, कैद किया जाता है और बांध दिया जाता है। लेकिन वे इन सब को बिना उत्तेजित हुए या अपना आपा खोए सहन करते हैं। ऐसा व्यक्ति, जिसके लिए धैर्य ही उसकी शक्ति और सामर्थ्य है, मैं उसे सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 400

(धम्मपद 399) <<<< पिछला || धम्मपद 400 || अगला >>>> (धम्मपद 401)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 400 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 400 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अक्कोधनम वातवंतम
सिलवंतम अनुसदम
दंतम अंतिमासरिरम(1)
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 400 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध से मुक्त है, जो तपस्या का अभ्यास करता है, जो गुणी और लालसा से मुक्त है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है और जिसके लिए यह शरीर (अर्थात अस्तित्व) अंतिम है।

---

1. अंतिमासरिरम: शाब्दिक अर्थ, वह व्यक्ति जिसका अंतिम शरीर है। यह उसका अंतिम शरीर है क्योंकि उसका पुनर्जन्म नहीं होगा; वह एक अरहत है।

थेरा सारिपुत्त की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (400) कहा।

जब बुद्ध वेलुवन मठ में निवास कर रहे थे, तब पूज्य सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नलका गाँव में प्रवेश कर अपनी माता के घर के द्वार पर भिक्षा मांगने के लिए खड़े हुए। उनकी माता ने उन्हें घर में आमंत्रित किया। लेकिन अपने पुत्र को भोजन देते हुए उन्होंने कहा, "हे जूठे भोजन खाने वाले, अस्सी करोड़ का त्याग करके भिक्षु बनने वाले, तुमने हमें बर्बाद कर दिया है।" फिर उन्होंने अन्य भिक्षुओं को भिक्षा दी और उनसे कठोर शब्दों में कहा, "तुम सबने मेरे पुत्र को अपना सेवक बनाया; अब अपना भोजन करो।" पूज्य सारिपुत्त ने कोई उत्तर नहीं दिया, वे नम्रतापूर्वक अपना कटोरा लेकर मठ लौट आए। मठ में लौटकर भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि कैसे पूज्य सारिपुत्त ने धैर्यपूर्वक अपनी माता के डांट-फटकार और अपशब्द सहन किए। बुद्ध ने उनसे कहा कि अरहत कभी क्रोधित नहीं होते, वे कभी अपना आपा नहीं खोते।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 400 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध से मुक्त है, जो तपस्या का अभ्यास करता है, जो गुणी और लालसा से मुक्त है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है और जिसके लिए यह शरीर (अर्थात अस्तित्व) अंतिम है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धैर्यवान व्यक्ति द्वारा अभिमानी को वश में करने की कहानी

उस समय, जैसा कि कथा में कहा गया है, पूज्य सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नालक गाँव में भिक्षा माँगते हुए अपनी माता के घर पहुँचे। उनकी माता ने उन्हें बैठने के लिए जगह दी और भोजन परोसते हुए उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई, “अरे, जूठा खाने वाले! खट्टी चावल की दलिया न मिलने पर तू घर-घर अजनबियों के बीच घूमता है और चम्मच के पिछले हिस्से पर चिपकी खट्टी चावल की दलिया चाटता है! और इसी के लिए तूने अस्सी अरब धन त्याग कर भिक्षु बन गया! तूने मुझे बर्बाद कर दिया! अब खा ले!” इसी प्रकार भिक्षुओं को भोजन देते हुए उन्होंने कहा, “तो तुम ही हो जिन्होंने मेरे पुत्र को अपना सेवक बना लिया है! अब खा ले!” पूज्य सारिपुत्त ने भोजन ग्रहण किया और मठ लौट गए।

आदरणीय राहुल ने बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने पूछा, “राहुल, तुम कहाँ गए थे?” “आदरणीय, मैं अपनी दादी के गाँव गया था।” “और तुम्हारी दादी ने तुम्हारे गुरु से क्या कहा?” “आदरणीय, मेरी दादी ने मेरे गुरु को खूब खरी-खोटी सुनाई।” “उन्होंने क्या कहा?” “यह और वह, आदरणीय।” “और तुम्हारे गुरु ने क्या उत्तर दिया?” “उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, आदरणीय।”

यह सुनकर भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा शुरू कर दी। उन्होंने कहा, “भाइयों, पूज्य सारिपुत्त के गुण कितने अद्‌भुत हैं! जब उनकी माता ने उनका इस प्रकार अपमान किया, तब भी वे जरा भी क्रोधित नहीं हुए।” बुद्ध उनके पास आए और भिक्षुओं से पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?” भिक्षुओं ने कहा, “अमुक विषय पर।” तब बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, वे क्रोध से मुक्त हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 400)

अक्कोधनं वातवन्तं शीलवन्तं अनुसुतम्

दन्तं अन्तिमशरीरं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

अक्कोडनं [अक्कोडन]: क्रोध से मुक्त; वतवंतं [वतवंत]: अपने कर्तव्यों और अनुष्ठानों के प्रति सचेत; सीलावंतं [सीलावंत]: सद्‌गुणों के प्रति अनुशासित; अनुस्सुतं [लालच से रहित]; दन्तं [दन्त]: संयमित; अंतिमसारीरं [अन्तिमसारीर]: अंतिम शरीर में निवास करने वाला; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : पुकार

वह क्रोध से मुक्त है। वह अपने धार्मिक कर्तव्यों का सावधानीपूर्वक पालन करता है और नियमों का ध्यान रखता है। वह सद्‌गुणों के मामले में अनुशासित है। वह संयमित है। जन्म-जन्म का चक्र समाप्त होने के बाद, यही उसका अंतिम शरीर होगा। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 400)

सारिपुत्त की कथा : बौद्ध जगत में अनेकों को प्रेरित करने वाला नाम सारिपुत्त है। सारिपुत्त भगवान बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों में से अग्रणी थे। यदि बुद्ध के निरंतर सेवक आनंद को उनकी सुस्मृति के कारण धम्म का कोषाध्यक्ष कहा जाता है, तो सारिपुत्त को धम्म का सेनापति कहा जाता है। शिक्षा और ज्ञान में वे बुद्ध के बाद दूसरे स्थान पर थे।

जब भी भगवान बुद्ध को विश्राम की आवश्यकता होती, वे अक्सर उपदेश देने के लिए तैयार हो जाते थे। एक बार एक ब्राह्मण ने उनकी सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए उन्हें ज़ोर से मारा। वे अविचलित रहे। तब ब्राह्मण ने क्षमा मांगी, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद ब्राह्मण ने उन्हें दोपहर के भोजन में शामिल होने का निमंत्रण दिया, जिसे उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया। क्या ऐसा

आचरण केवल स्वयं भगवान बुद्ध के समान ही हो सकता है? सात वर्षीय सामनेर के प्रति उनका व्यवहार अत्यंत मार्मिक है। यह उनकी विनम्रता का प्रमाण है। एक बार वह विनय नियमों के विरुद्ध अपने अंतर्वस्त्र का एक कोना घसीटते हुए घूम रहे थे। सामनेर ने इस ओर उनका ध्यान दिलाया। उन्होंने तुरंत प्रणाम करते हुए धन्यवाद दिया और गलती सुधार ली। वे राहुल और उनकी माता राहुलमाता का विशेष आदर करते थे। जब राहुलमाता को पेट फूलने की समस्या थी, तो उन्होंने उनके लिए एक विशेष आम का रस मंगवाया, जो औषधि का काम करता था। जब वह पेट की किसी बीमारी से पीड़ित थी, तो उसने राजा पसेनादी से घी में मिला हुआ और लाल मछली से सुगंधित चावल प्राप्त किया, ताकि उसका इलाज किया जा सके।

जब कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका मरणासन्न अवस्था में थे, तब उन्होंने आनंद के साथ उनसे मुलाकात की और उन्हें अनाथपिंडिकोवादा सूत्र नामक उपदेश दिया ।

उनका नाम उनकी माता, ब्राह्मण महिला सारी के नाम पर रखा गया था। यह लिखा गया था कि दो प्रमुख शिष्यों का निधन बुद्ध से पहले होना चाहिए। परंपरा के अनुसार, सारिपुत्त ने बुद्ध को प्रणाम करने के बाद अपनी माता के निवास स्थान नालगामक (नालंदा) में गए। इसी अवसर पर उन्होंने कहा कि उनकी नश्वर आंखें अब कभी भी अपने गुरु के दिव्य चरणों को नहीं देख पाएंगी। सांसारिक जीवन समाप्त हो गया था। रोगग्रस्त अवस्था में, उनके भाई चुंडा समनुद्देसा ने उनकी सेवा की।

यह उनकी आखिरी यात्रा के दौरान ही हुआ था कि उनकी कट्टर हिंदू माता का धर्म परिवर्तन हुआ, जब देवलोक के चार संरक्षक देवता, सक्का और महा ब्रह्मा, बारी-बारी से उस स्थान को प्रकाश की बढ़ती हुई चमक से भरते हुए, उनकी बीमार शय्या पर उनसे मिलने आए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 401

(धम्मपद400) <<<< पिछला || धम्मपद401 || अगला >>>> (धम्मपद402)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 401 - उप्पलवन्ना थेरी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 401 - उप्पलवन्ना थेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vari pokkharapatteva
araggeriva sasapo
yo na limpati kamesu
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 401 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होता, जैसे जल कमल के पत्ते से नहीं चिपकता, या राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।

थेरी उप्पलवन्ना की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उप्पलावन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (401) कहा।

एक बार कुछ भिक्षु अरहत थेरी उप्पलावन्ना के बारे में बात कर रहे थे, जिनका युवा नंदा द्वारा यौन उत्पीड़न किया गया था और बाद में नंदा पृथ्वी में समा गए थे। इस संबंध में उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या अरहत इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते, क्योंकि उनका शरीर भी अन्य मनुष्यों के समान ही होता है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अरहत इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते; वे इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे इंद्रियों और इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्त नहीं होते, ठीक वैसे ही जैसे जल कमल के पत्ते से या सरसों का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 401 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होता, जैसे जल कमल के पत्ते से नहीं चिपकता, या राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।

---

(1) यह कहानी श्लोक 69 में दी गई कहानी का सिलसिला है: थेरी उप्पलावन्ना की कहानी

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन उप्पलवन्ना की कहानी
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय भिक्षुणी उप्पलावण्णा के संदर्भ में दिया था। यह कथा श्लोक की टीका में विस्तार से वर्णित है, जिसकी शुरुआत इन शब्दों से होती है, 'मूर्ख को बुरा कर्म शहद के समान मीठा लगता है।' क्योंकि वहाँ कहा गया है:
कुछ समय बाद, सत्य के हॉल में एकत्रित भीड़ ने निम्नलिखित चर्चा शुरू की: "निःसंदेह, जिन्होंने अपने आप को बुराइयों से मुक्त कर लिया है, वे अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। वे ऐसा क्यों न करें? क्योंकि वे कोलापा वृक्ष या चींटियों के टीले नहीं हैं, बल्कि नम मांस से बने सजीव प्राणी हैं। इसलिए वे भी प्रेम के सुखों को पसंद करते हैं।" उसी क्षण बुद्ध पास आए। उन्होंने पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय।" बुद्ध ने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को विकारों से मुक्त कर लिया है, वे प्रेम के सुखों को पसंद नहीं करते और न ही अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। क्योंकि जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी जल की बूँद उस पर टिकती नहीं, बल्कि लुढ़क कर गिर जाती है; जिस प्रकार सरसों का दाना सुई की नोक पर चिपकता नहीं, बल्कि लुढ़क कर गिर जाता है, ठीक उसी प्रकार दोहरे प्रेम का भाव विकारों से मुक्त व्यक्ति के हृदय में नहीं टिकता और न ही वहाँ बना रहता है।" और इस संबंध को जोड़ते हुए, उन्होंने एक श्लोक के साथ धम्म का उपदेश दिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 401)
पोक्खरापत्ते वारि इव अरग्गे ससापो इव सो
कामेसु न लिम्पति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
pokkharapatte : कमल के पत्ते पर; vāri iva : पानी की तरह; āragge : सुई की नोक पर; sāsapo iva : सरसों के दाने की तरह; so : यदि कोई; kāmesu : इंद्रिय सुखों में; na limpati : आसक्त नहीं है; taṃ : उसे; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi एक ब्राह्मण को पुकारता हूँ
कमल के पत्ते की सतह पर जल नहीं चिपकता। राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता। उसी प्रकार, ज्ञानी व्यक्ति का मन इंद्रिय सुखों से नहीं जुड़ता। ऐसे अनासक्त व्यक्ति को ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 401)

नन उप्पलावण्णा की कहानी : उप्पलावण्णा का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था और उनका नाम कमल के फूल के नाम पर रखा गया था - उप्पला-वण्णा।
जब वह बालिग हुई, तो चारों ओर से विवाह के प्रस्ताव आने लगे और व्यथित पिता किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकार करके उसे नाराज नहीं करना चाहते थे। पिता को लगा कि प्रतिष्ठित संघ में दीक्षा लेना ही एकमात्र उपाय है।
अपनी नियति के अनुरूप, पुत्री ने सहमति दे दी। दीक्षा ग्रहण करने पर उसे उस सभा कक्ष का प्रभार सौंपा गया जहाँ ननें अपने पापों की स्वीकारोक्ति के लिए एकत्रित होती थीं। उसे दीपों की देखभाल करनी पड़ती थी। उसने देखा कि प्रकाश बाती और तेल से ही जलता रहता है।
कभी-कभी, प्रकाश या तो ऊर्जा की कमी से या हवा के झोंके से बुझ जाता था। इसलिए जीवन कर्मिक शक्ति के कारण था। यह बात उसे अरहत बनने तक सोचती रही। उसे अपने पिछले जन्म याद आते रहे।
जब वह जंगल में अकेली रह रही थी, तभी नंदा नाम का एक युवक, जो उसका रिश्तेदार था, उस पर मोहित हो गया और भिक्षा मांगने के बाद लौटते ही उसने उसके साथ यौन अपराध किया। दोपहर की तेज धूप से अंधेरी गुफा में आने पर, जहाँ वह रहती थी, उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए विरोध करने के बावजूद वह अचानक इस घटना से ग्रसित हो गई। उसने यह घिनौना काम किया और धरती के फटने और उस मूर्ख युवक को निगलने के साथ ही वह तुरंत नरक (निरय) में जन्म ले लिया। हालांकि, धरती के फटने से पहले ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी।
इस घटना के बाद ही भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठ संघ की महिला शिष्यों को जंगल में एकांतवास करने से मना किया था।

इसके कुछ ही समय बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए घोषणा की कि उप्पला वण्णा महा थेरी मानसिक शक्ति में सर्वोपरि थे, जैसे पूज्य महा मोग्गलाना महा अरहतों में से एक थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 402

(धम्मपद401) <<<< पिछला || धम्मपद402 || अगला >>>> (धम्मपद403)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 402 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 402 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo dukkhassa pajanati
idheva khayamattano
पन्नाभरम विसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 402 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में भी दुःख/पीड़ा/पुनर्जन्म (अर्थात निर्वाण) के अंत को जान लेता है, जिसने (खन्धों का) बोझ उतार दिया है और जो नैतिक दोषों से मुक्त है।

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (402) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसका दास अरहत बन गया।

एक समय की बात है, एक ब्राह्मण का एक युवक दास था। एक दिन, अपने स्वामी के घर से भागकर वह भिक्षु संघ में शामिल हो गया और समय आने पर अर्हत बन गया। एक बार जब वह बुद्ध के साथ भिक्षा मांगने गया, तो उसके पूर्व स्वामी, ब्राह्मण ने उसे देख लिया और उसका वस्त्र कसकर पकड़ लिया। जब बुद्ध ने पूछा कि क्या बात है, तो ब्राह्मण ने बताया कि वह युवक भिक्षु कभी उसका दास था। बुद्ध ने उससे कहा, "इस भिक्षु ने (खंडों का) बोझ उतार दिया है।" ब्राह्मण ने इसका अर्थ यह निकाला कि उसका दास अर्हत बन गया है। इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए, उसने बुद्ध से पूछा कि क्या यह सचमुच है कि युवक भिक्षु अर्हत बन गया है, और बुद्ध ने अपने कथन की पुष्टि की।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 402 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में भी दुःख/पीड़ा (अर्थात निर्वाण) के अंत को जान लेता है, जिसने (खन्धों का) बोझ उतार दिया है और जो नैतिक दोषों से मुक्त है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक गुलाम की कहानी जिसने अपना बोझ उतार दिया

कथा के अनुसार, संघ में भगोड़े दासों के प्रवेश पर रोक लगाने वाले नियम के लागू होने से पहले, इस ब्राह्मण का एक दास भाग गया, संघ में प्रवेश पाकर अर्हत बन गया। ब्राह्मण ने उसे हर जगह खोजा, पर वह नहीं मिला। एक दिन, जब वह दास बुद्ध के साथ नगर में प्रवेश कर रहा था, ब्राह्मण ने उसे द्वार पर देखा और उसका वस्त्र कसकर पकड़ लिया। बुद्ध ने मुड़कर पूछा, “इसका क्या अर्थ है,

ब्राह्मण?” “यह मेरा दास है, श्री गौतम।” “इसका बोझ उतर गया है, ब्राह्मण।” बुद्ध के यह कहने पर कि “इसका बोझ उतर गया है,” ब्राह्मण तुरंत समझ गया कि उनका अर्थ है, “यह अर्हत है।” इसलिए, उसने फिर बुद्ध से पूछा, “क्या ऐसा है, श्री गौतम?” “जी, ब्राह्मण,” बुद्ध ने उत्तर दिया, “इसका बोझ उतर गया है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 402)

यो इधा एव अत्तनो दुक्खस्सा खयं पजानाति

पन्नभरं विषुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यदि कोई व्यक्ति; इधा एव : इसी जीवन में; अत्तनो [अत्तना]: अपने; दु:खस्स खयम : दुखों के अंत को; पजानति : पूर्णतः जानता है; पन्नाभारं [पन्नाभार]: बोझ से मुक्त; विसंयुत्तं [विसंयुत्त]: (और) दोषों से मुक्त है; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक सच्चा ब्राह्मण ब्रूमि : घोषणा करता हूँ

उन्होंने इसी संसार में दुखों के अंत का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वे बोझ से मुक्त हो गए हैं: उन्होंने अपना बोझ उतार दिया है। वे उन बंधनों से मुक्त हो गए हैं जिन्होंने उन्हें जकड़ रखा था। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 402)

यह श्लोक बुद्ध द्वारा एक भगोड़े दास की सहायता करने की घटना का वर्णन करता है, जो बाद में अरहत बना। बुद्ध ने कई दासों (पुरुष और महिला) को सहारा दिया था, जिन्होंने उनके ज्ञानवर्धक मार्गदर्शन से निर्वाण प्राप्त किया। उनमें से एक पुन्णा थीं। पुन्णा राजगृह के एक करोड़पति के घर में काम करने वाली एक सेविका थीं। एक रात धान कूटने के बाद, वह आंगन में निकलीं और उन्होंने कई भिक्षुओं को रात में बाहर देखा। अगली सुबह, उन्होंने चावल का एक तवा बनाया, उसे पकाया और कुएँ पर जाते समय खाने के लिए अपने साथ ले गईं।

उस दिन बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए उसी रास्ते पर आए और उन्होंने पुण्णा को हाथ में घड़ा लिए देखा। उन्होंने बुद्ध को अपनी चावल की रोटी भेंट की, जिसे बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पुण्णा सोच रही थीं कि कहीं बुद्ध इसे फेंककर किसी महल या करोड़पति के घर में भोजन न कर लें। लेकिन बुद्ध वहीं सड़क किनारे पूज्य आनंद द्वारा बिछाई गई चटाई पर बैठ गए और नाश्ते में चावल की रोटी खाई। बुद्ध ने उन्हें समझाया कि भिक्षु रात में अपने धार्मिक कर्तव्यों के लिए जागते रहते हैं, और उन्होंने उन्हें उपदेश दिया। उपदेश के अंत में, पुन्ण ने सोतापत्ति के फल को अनुभव किया।

बुद्ध के मार्गदर्शन से अर्हत बनने वाली एक अन्य सेविका रज्जुमाला थीं, जो गया गाँव के एक घर में काम करती थीं, जहाँ उनकी मालकिन उन्हें लगातार प्रताड़ित और अपमानित करती थीं। मालकिन उनके बाल खींचती और पीटती थीं। इस मार से बचने के लिए उन्होंने अपने बाल मुंडवा लिए, लेकिन मालकिन ने उनके सिर में रस्सी बाँधकर उन्हें घसीटा। उनके सिर में रस्सी बंधे रहने के कारण उन्हें रज्जुमाला (जिसके सिर पर रस्सी की माला हो) कहा जाने लगा।

अपनी मालकिन के अधीन जीवन से तंग आकर, राज्जुमाला पानी लाने के बहाने घर से निकली, लेकिन जंगल में जाकर उसने फांसी लगाने की कोशिश की। तभी बुद्ध, जिन्होंने उसमें सोतापत्ति के फल को प्राप्त करने की क्षमता देखी, वहाँ पहुँचे और उसे उपदेश दिया। उसने सोतापत्ति के फल को प्राप्त किया और घर लौटकर बुद्ध से अपनी मुलाकात की कहानी सुनाई।

मालकिन अपने ससुर के साथ बुद्ध से मिलने आई और उन्हें अपने घर ले जाकर दान दिया। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और बताया कि कैसे राज्जुमाला ने पिछले जन्म में अपनी वर्तमान मालकिन के साथ दुर्व्यवहार किया था। राज्जुमाला को मुक्त कर दिया गया और मालकिन के ससुर ने उसे गोद ले लिया। उसकी मृत्यु के बाद, उसका जन्म तावतिंसा स्वर्ग में हुआ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 403

———————————————————————

(धम्मपद402) <<<< पिछला ॥ धम्मपद403 ॥ अगला >>>> (धम्मपद404)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 403 - खेमभिक्खुनि वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 403 - खेमभिक्खुनि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

गम्भीरपन्नम मेधाविम
maggamaggassa kovidam(1)
उत्तमत्था मनुप्पट्टम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 403 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बुद्धिमान और गहन ज्ञान वाला हो, जो सही मार्ग और गलत मार्ग को जानता हो, और जिसने सर्वोच्च लक्ष्य (अर्थात अर्हतत्व) प्राप्त कर लिया हो।

---

1. maggamaggassa kovidam: सही मार्ग और गलत मार्ग में भेद करने में कुशल, अर्थात्, निर्वाण की प्राप्ति की ओर ले जाने वाले और न ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान।

थेरी खेमा की कहानी(2)
गिज्झकुटा पहाड़ी पर निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी खेमा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (403) कहा।
एक रात, देवताओं के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तब थेरी खेमा ने अपनी अलौकिक शक्ति से आकाश से उतरकर बुद्ध को प्रणाम किया। लेकिन चूंकि सक्का और उनके साथी बुद्ध के साथ थे, इसलिए उन्होंने केवल बुद्ध को प्रणाम किया और शीघ्र ही चली गईं। सक्का ने बुद्ध से पूछा कि वह भिक्षुणी कौन हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "वह मेरी विशिष्ट शिष्याओं में से एक हैं; उन्हें थेरी खेमा के नाम से जाना जाता है। वह भिक्षुणियों में अद्वितीय हैं और सही-गलत का भेद जानती हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 403 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बुद्धिमान और गहन ज्ञान वाला हो, जो सही मार्ग और गलत मार्ग को जानता हो, और जिसने सर्वोच्च लक्ष्य (अर्थात अर्हतत्व) प्राप्त कर लिया हो।

---

(2) श्लोक 347 भी देखें: थेरी खेमा की कहानी

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बुद्धिमान खेमा
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास करते समय भिक्षुणी खेमा को दिया था।
एक दिन, पहले पहर के तुरंत बाद, देवताओं के राजा सक्का अपने देवमंडल के साथ आए, बैठ गए और बुद्ध के धर्मोपदेश को उनके हमेशा की तरह मधुर और आनंददायक ढंग से सुनने लगे। उसी क्षण भिक्षुणी खेमा ने मन ही मन कहा, “मैं बुद्ध से मिलने जाऊंगी,” और बुद्ध के पास पहुंची। लेकिन जब उन्होंने सक्का को देखा, तो हवा में स्थिर रहते हुए उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, मुड़ गईं और चली गईं। सक्का ने उन्हें देखकर बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर, वह कौन थीं जो आपके पास आईं और फिर हवा में स्थिर रहते हुए आपको प्रणाम करके मुड़ गईं और चली गईं?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “हे महाराज, वह मेरी पुत्री खेमा थीं, जो महान ज्ञान से परिपूर्ण हैं और मार्ग और अपराध का भली-भांति ज्ञान रखती हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 403)
गंभीरापन्नं मेधाविं मग्गमग्गं कोविदं
उत्तममथं अनुप्पट्टं तं अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि
गंभीरपञ्ञं [गम्भीरपञ्ञ]: गहन ज्ञान वाला; मेधाविं [मेधावी]: अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण; मग्गामग्गं [मग्गामग्ग]: सही और गलत रास्तों में अंतर करने वाला; कोविदं [कोविद]: सक्षम; उत्तमत्तं [उत्तमत्त]: उच्चतम अवस्था; अनुप्पत्तं (जो) पहुँच गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : घोषित करना
वह गहन ज्ञान से परिपूर्ण है। वह अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है। वह सही मार्ग और गलत मार्ग में अंतर करने में सक्षम है। उसने सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 403)

खेमा की कहानी : खेमा का जन्म सागल में एक राजपरिवार में हुआ था। उनका नाम खेमा ही था। उनका रंग स्वर्णिम था। वे अत्यंत सुंदर थीं। उनका विवाह कोसल के राजा बिम्बिसार से हुआ। हालांकि, वे बुद्ध से मिलने जाने से हिचकिचाती थीं, क्योंकि उन्हें डर था कि भगवान बुद्ध क्षणभंगुर सौंदर्य पर उपदेश देंगे।
जब भी वह मंदिर जाती, बुद्ध से बचती रहती। एक दिन राजा ने अपने आदमियों को उसे जबरदस्ती बुद्ध के पास ले जाने का आदेश दिया। उसके आने पर, बुद्ध ने अपने सेवक के रूप में एक अत्यंत सुंदर प्रेत का सृजन किया। खेमा उसकी सुंदरता से मोहित हो गई। जब वह उसे देख रही थी, तब उसे लगा कि सुंदरता केवल धोखा दे सकती है। बुद्ध ने उस आकृति को युवावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था और उसके बाद परम वृद्धावस्था तक ले गए, जहाँ उसका कोई भी गुण नहीं था। इस प्रकार सुंदरता कुरूपता में परिवर्तित हो गई। यह एक सजीव चित्रण था। खेमा अर्थ समझ गई और उसे आभास हो गया कि उसके साथ क्या होने वाला है। अनित्यता , दुःख और अनात्म : दूसरे शब्दों में, क्षणभंगुरता और दुःख — बिना किसी स्थायी आत्मा के।
इस प्रकार तैयार मन को बुद्ध ने उपदेश दिया। बीज अच्छे बीज के रूप में गिरे। वह संतत्व की धारा में प्रवेश कर गईं (सोतापन्न)। बुद्ध ने मकड़ी और जाले की कहानी सुनाकर अपने उपदेश को समझाया। जैसे ही कोई मक्खी जाले से टकराती है, मकड़ी उस गति से उसे संकेत समझकर उस पर हमला करती है और उसे खा जाती है। यह सिलसिला चलता रहता है। मकड़ी जाले से बंध जाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी वासना और कामवासना से बंध जाते हैं। उनके मन ने सब कुछ देख लिया। वह अरहत बन गईं। उन्होंने राजा से दीक्षा के लिए अनुमति मांगी। राजा, जो स्वयं एक उभरते हुए संत थे, ने तुरंत सहमति दे दी। एक दिन देवता मारा ने एक युवक का रूप धारण करके खेमा को प्रलोभित किया। उस युवक को करारा झटका लगा। उसकी पराजय पूर्ण हुई। वह भाग गया। एक रात खेमा ने बुद्ध से मिलने का विचार किया। लेकिन बुद्ध देवताओं के राजा सक्का के साथ थे। बुद्ध को विचलित करने के बजाय, खेमा हवा में चक्कर लगाकर गायब हो गईं।
सक्का ने जब यह दर्शन देखा, तो बुद्ध ने उन्हें शीघ्र ही इस विषय पर ज्ञान प्रदान किया। बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि महिला शिष्यों में खेमा ज्ञान में सर्वोपरि थीं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 404

———————————————————————

(धम्मपद403) <<<< पिछला ॥ धम्मपद404 ॥ अगला >>>> (धम्मपद405)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 404 - पब्बरावसिटिससत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 404 - पब्बरावसिटिससत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Asamsattham gahatthehi
अनागरेही कुभयम
anokasari mappiccham
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 404 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो गृहस्थ या बेघर या दोनों के साथ संगति नहीं करता, जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है और जिसकी कम इच्छाएँ हैं।

———————————————————————

थेरा टिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (404) कहा।
थेरा तिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद एक पर्वत की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्हें एक गुफा मिली जो उनके लिए उपयुक्त थी और उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने उसी गुफा में बिताने का निश्चय किया। वे गुफा में ही रहने लगे और प्रतिदिन सुबह

भिक्षा मांगने गाँव जाते थे। गाँव में एक वृद्ध महिला रहती थीं जो उन्हें नियमित रूप से भिक्षा देती थीं। गुफा में गुफा का संरक्षक देवता भी निवास करता था। थेरा तिस्सा का नैतिक आचरण शुद्ध था, इसलिए गुफा के देवता को थेरा के साथ एक ही गुफा में रहने की हिम्मत नहीं हुई; साथ ही, उनमें थेरा को गुफा छोड़ने के लिए कहने का साहस भी नहीं था। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई जिससे वे थेरा में कोई दोष निकाल सकें और उन्हें गुफा छोड़ने के लिए विवश कर सकें।

गुफा की आत्मा ने उस बुजुर्ग महिला के बेटे को अपने वश में कर लिया, जिसके घर में थेरा अक्सर भिक्षा मांगने जाते थे। आत्मा ने लड़के के व्यवहार को बहुत विचित्र बना दिया, वह अपना सिर पीछे की ओर घुमाने लगा और अपनी आँखें चौड़ी करके घुमाने लगा। उसकी माँ घबरा गई और रोने लगी। गुफा की आत्मा ने, जिसने लड़के को अपने वश में कर लिया था, कहा, "अपने गुरु, थेरा से कहो कि वे अपने पैर पानी से धोएँ और वह पानी अपने बेटे के सिर पर डालें।" अगले दिन जब थेरा भिक्षा मांगने उसके घर आए, तो उसने गुफा की आत्मा की सलाह मानी और लड़का शांत हो गया। गुफा की आत्मा गुफा में वापस चली गई और थेरा के लौटने का इंतजार करने लगी। जब थेरा भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो आत्मा ने अपना असली रूप प्रकट किया और कहा, "मैं इस गुफा की रक्षा करने वाली आत्मा हूँ। हे वैद्य, इस गुफा में प्रवेश मत करो।" थेरा जानते थे कि उन्होंने थेरा बनने के दिन से ही पवित्र जीवन व्यतीत किया है, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें चिकित्सा करने की कोई याद नहीं है। तब गुफा की आत्मा ने उस पर आरोप लगाया कि उसी सुबह उसने एक वृद्ध महिला के घर में एक राक्षस से ग्रसित लड़के का इलाज किया था। लेकिन थेरा ने सोचा कि यह वास्तव में चिकित्सा करना नहीं था और उसे एहसास हुआ कि गुफा की आत्मा को भी उसमें कोई और दोष नहीं मिला। इससे उसे परमानंद (पीति) प्राप्त हुई और उसने पीति को त्यागकर और अंतर्दृष्टि ध्यान पर गहन एकाग्रता से गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़े-खड़े ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

थेरा अब अरहत बन चुके थे, इसलिए उन्होंने गुफा के प्रेत को गुफा छोड़ने की सलाह दी। थेरा वर्षा ऋतु के अंत तक वहीं रहे और फिर बुद्ध के पास लौट आए। जब उन्होंने अन्य भिक्षुओं को गुफा के प्रेत से हुई अपनी मुलाकात के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या गुफा में प्रवेश करने से मना किए जाने पर उन्हें प्रेत पर गुस्सा नहीं आया था? थेरा ने नकारात्मक उत्तर दिया, लेकिन उन्होंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। इसलिए वे बुद्ध के पास गए और कहा, "थेरा तिस्सा स्वयं को अरहत कहते हैं; वे सच नहीं बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र तिस्सा ने जब कहा कि उन्हें गुस्सा नहीं आया, तो वे सच बोल रहे थे। वे वास्तव में अरहत बन चुके हैं; वे अब किसी से आसक्त नहीं हैं; उन्हें किसी पर क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है और न ही दूसरों के साथ संगति करने की कोई आवश्यकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 404 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो गृहस्थ या बेघर या दोनों के साथ संगति नहीं करता, जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है और जिसकी कम इच्छाएँ हैं।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु और देवी की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय, पर्वतीय गुफा में रहने वाले पूज्य तिस्सा (पम्भारवासी तिस्सा थेरा) के संदर्भ में कहा था। भिक्षु तिस्सा ध्यान करने के बाद एक पर्वत पर चले गए। वहाँ उन्हें एक गुफा मिली जो उन्हें भा गई और उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने उसी गुफा में बिताए। वे प्रतिदिन सुबह भिक्षा मांगने गाँव जाते थे। गाँव में एक वृद्ध महिला रहती थी जो उन्हें नियमित रूप से भिक्षा देती थी। गुफा में एक संरक्षक आत्मा भी निवास करती थी। चूंकि तिस्सा का नैतिक आचरण शुद्ध था, इसलिए एक उच्च भिक्षु होने के कारण उस महिला को उसी गुफा में रहना कठिन लगता था। साथ ही, उनमें तिस्सा को गुफा छोड़ने के लिए कहने का साहस भी नहीं था। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई जिससे वे भिक्षु में कोई दोष निकाल सकें और उन्हें गुफा छोड़ने के लिए विवश कर सकें।

उस आत्मा ने उस स्त्री के सबसे छोटे बेटे को अपने वश में करने का निश्चय किया, जिसके घर तिस्सा अक्सर भिक्षा लेने जाता था। आत्मा ने लड़के के व्यवहार में अजीबोगरीब बदलाव ला दिए, जैसे उसका सिर पीछे की ओर मुड़ जाना और उसकी आँखें चौड़ी खुल जाना। जब स्त्री ने यह सब देखा, तो वह चीख पड़ी और आत्मा ने कहा, "मैंने तुम्हारे बेटे को अपने वश में कर लिया है। अपने भिक्षु से कहो कि वह उसके पैर पानी से धोए और उस पानी को तुम्हारे बेटे के सिर पर छिड़क दे। तभी मैं तुम्हारे बेटे को मुक्त करूँगी।" अगले दिन, जब भिक्षु भिक्षा लेने उसके घर आया, तो उसने आत्मा की बात मान ली और लड़का शांति से रह गया। आत्मा गुफा में वापस चली गई और भिक्षु का इंतज़ार करने लगी। जब तिस्सा लौटा, तो उसने अपना असली रूप प्रकट किया और कहा, "मैं इस गुफा की रखवाली करने वाली आत्मा हूँ, हे तांत्रिक, इस गुफा में प्रवेश मत करो।" भिक्षु जानता था कि उसने भिक्षु बनने के दिन से ही सदाचारी जीवन व्यतीत किया है, इसलिए उसने उत्तर दिया कि उसने भूत-प्रेत या जादू-टोना न करने के नियम का उल्लंघन नहीं किया है। फिर उसने तिस्सा पर आरोप लगाया कि उसने वृद्ध महिला के घर में भूत-प्रेत से ग्रसित लड़के का इलाज किया था। लेकिन भिक्षु ने सोचा कि

उसने भूत-प्रेत भगाने का अभ्यास नहीं किया था और उसे एहसास हुआ कि भूत भी उसमें कोई दोष नहीं निकाल सकता। इससे उसे असीम संतोष और खुशी मिली; गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़े-खड़े ही उसने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

तिस्सा अब अरहत बन चुके थे, इसलिए उन्होंने उस आत्मा से कहा कि उसने उन जैसे शुद्ध और निर्मल भिक्षु पर गलत आरोप लगाया है, और उसे आगे कोई उपद्रव न करने की सलाह भी दी। तिस्सा वर्षाकाल के अंत तक गुफा में ही रहे , और फिर जेतवन मठ लौट आए। जब उन्होंने अन्य भिक्षुओं को उस आत्मा से हुई अपनी मुलाकात के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या गुफा में प्रवेश करने से मना किए जाने पर वे उस आत्मा से क्रोधित हुए थे। उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "आदरणीय तिस्सा कहते हैं कि अब उन्हें क्रोध नहीं है। क्या यह सच है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, तिस्सा सत्य कह रहे हैं। वे वास्तव में अरहत बन चुके हैं; वे अब किसी से आसक्त नहीं हैं; उन्हें किसी से क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 404)

गहथेहि अनागारेहि च उभयं असंसठहं
अणोकसारिं अप्पिच्चं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

gahaṭṭhehi : आम लोगों के साथ; anāgārehi : संसार का त्याग करने वालों के साथ; ca ūbhayaṃ [ūbhaya]: इन दोनों समूहों के लोगों के साथ; asaṃsaṭṭhaṃ [asaṃsaṭṭha]: कोई संपर्क स्थापित न करना; ānokasāriṃ [ānokasāri]: लालसा के मार्गों में न लिप्त; appicchaṃ [appiccha]: थोड़े में संतुष्ट; taṃ : उसे; ahaṃ : मैं; brāhmanaṃ brūmi : ब्राह्मण कहो।

वह न तो आम लोगों से और न ही बेघरों से व्यापक संपर्क रखता है। वह गृहस्थ जीवन शैली से आसक्त नहीं है। वह न्यूनतम आवश्यकताओं से ही संतुष्ट रहता है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 404)

बौद्ध साहित्य में बौद्ध भिक्षुओं और वन एवं वनभूमि की आत्माओं के बीच मुठभेड़ों के अनेक संदर्भ मिलते हैं। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान के मार्ग पर चलने वाले भिक्षु वनों और पर्वतों की खोज करते थे। इनमें से कुछ मुठभेड़ों में आत्माओं का व्यवहार काफी शत्रुतापूर्ण बताया गया है। करणीय मेट्टा सूत्र नामक प्रवचन में प्रेम-करुणा के मंत्र का वर्णन है, जिसे बुद्ध ने मनुष्य और आत्माओं के बीच सामंजस्य और सद्भाव स्थापित करने के साधन के रूप में रचा था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 405

(धम्मपद404) <<<< पिछला ॥ धम्मपद405 ॥ अगला >>>> (धम्मपद406)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 405 - अन्नतारभिक्खु वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 405 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Nidhaya dandati bhutesu(1)
tasesu thavaresu(2) ca
yo na hanti na ghateti
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 405 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सभी प्राणियों के प्रति बल का प्रयोग त्याग दिया है, चाहे वे विचलित हों या अविचलित (अर्थात अरहत), और जो न तो हत्या करता है और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करता है।

---

1. निधया दंडति भूतेषु: ने सभी प्राणियों के प्रति लाठी का प्रयोग त्याग दिया है।

2. तसेसु थवारेसु: विचलित और अविचलित। विचलित वे हैं जिनमें अभी भी लालसा है और इसलिए वे आसानी से विचलित हो जाते हैं। अविचलित वे हैं जिन्होंने लालसा का त्याग कर दिया है और इसलिए वे दृढ़ और शांत हैं; वे अरहत हैं।

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (405) का उच्चारण एक भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार, एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर ध्यान करने के लिए एक वन में चले गए। अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद वे बुद्ध के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वापस लौटे। रास्ते में वे एक गाँव से गुज़रे। गाँव से गुज़रते समय, एक स्त्री अपने पति से झगड़ा करके घर से निकली और भिक्षु के पीछे-पीछे चलने लगी। पत्नी के पीछे आ रहे पति ने भिक्षु को देखकर सोचा कि भिक्षु उसकी पत्नी को अपने साथ ले जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षु पर चिल्लाया और उन्हें पीटने की धमकी दी। पत्नी ने उनसे भिक्षु को न पीटने की विनती की, लेकिन इससे वे और क्रोधित हो गए। परिणामस्वरूप, पति ने भिक्षु को बुरी तरह पीटा। भिक्षु को जी भर कर पीटने के बाद, वह अपनी पत्नी को अपने साथ ले गया और भिक्षु अपने रास्ते पर आगे बढ़ गए।

जेतवन मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने भिक्षु के पूरे शरीर पर चोट के निशान देखे और उनकी मालिश की। जब उन्होंने उससे पूछा कि क्या उसे उस व्यक्ति पर गुस्सा नहीं आया जिसने उसे इतनी बुरी तरह पीटा था, तो उसने नकारात्मक उत्तर दिया। तब अन्य भिक्षु बुद्ध के पास गए और बताया कि भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त करने का झूठा दावा किया है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अरहतों ने लाठी और तलवार त्याग दी है। वे पीटे जाने पर भी क्रोधित नहीं होते।" इस प्रकार, बुद्ध ने पुष्टि की कि भिक्षु वास्तव में अरहत बन गया था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 405 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सभी प्राणियों के प्रति बल का प्रयोग त्याग दिया है, चाहे वे विचलित हों या अविचलित (अर्थात अरहत), और जो न तो हत्या करता है और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु और स्त्री की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय एक विशेष भिक्षु के संदर्भ में कहा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद वन में जाकर लगन से ध्यान का अभ्यास किया और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध को इस महान आशीर्वाद के बारे में सूचित करूंगा," और वन से निकल पड़े। जिस गाँव से वे गुजर रहे थे, वहाँ की एक महिला का अपने पति से झगड़ा हुआ था। पति के घर से निकलते ही उसने मन ही मन कहा, "मैं अपने परिवार के घर लौट जाऊंगी।" ऐसा कहकर वह रास्ते पर चल पड़ी। रास्ते में चलते हुए उसने उस पूज्य भिक्षु को देखा। उसने मन ही मन सोचा, "मैं इस पूज्य भिक्षु से ज्यादा दूर नहीं रहूंगी," और उनके पीछे-पीछे चलने लगी। पूज्य भिक्षु ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

जब उसका पति घर लौटा और अपनी पत्नी को घर में कहीं नहीं देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "वह अपने परिवार के गाँव गई होगी," और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। जब उसने उसे देखा, तो मन ही मन सोचने लगा, "यह स्त्री अकेले इस जंगल में कैसे जा सकती है; किसके साथ जा रही है?" तभी उसने पूज्य भिक्षु को देखा। उसने सोचा, "यह भिक्षु उसे अपने साथ ले गया होगा," और भिक्षु के पास जाकर उसे धमकाया। स्त्री ने कहा, "इस भले भिक्षु ने मेरी ओर देखा तक नहीं और न ही मुझसे बात की; आप उससे कुछ मत कहिए।" उसके पति ने उत्तर दिया, "क्या तुम मुझे यह बताना चाहती हो कि तुम इस तरह चली गई? मैं उसके साथ वैसा ही व्यवहार करूँगा जैसा तुम्हारे साथ होना चाहिए।" और क्रोधित होकर, स्त्री के प्रति घृणा से, उसने पूज्य भिक्षु को बुरी तरह पीटा, और ऐसा करने के बाद, स्त्री को अपने साथ लेकर घर लौट गया।

पूज्य भिक्षु का पूरा शरीर घावों से भरा हुआ था। मठ लौटने पर, उनके शरीर की मालिश करने वाले भिक्षुओं ने उन घावों को देखा और उनसे पूछा, "इसका क्या अर्थ है?" उन्होंने उन्हें पूरी कहानी बताई। तब भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "भाई, जब इस भिक्षु ने आपको इस प्रकार मारा, तो आपने क्या कहा? क्या आपको गुस्सा आया?" उन्होंने कहा, "नहीं, भाइयों, मुझे गुस्सा नहीं आया।" तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें यह बात बताई, "पूज्य भिक्षु, जब हमने इस भिक्षु से पूछा, 'क्या आपको गुस्सा आया?' तो उसने उत्तर दिया, 'नहीं, भाइयों, मुझे गुस्सा नहीं आया।' वह सच नहीं बोलता, वह झूठ बोलता है।" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और फिर उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, उन्होंने दंड त्याग दिया है; यहां तक कि जो उन्हें मारते हैं, उनके प्रति भी वे क्रोध नहीं रखते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 405)

यो तसेसु थावरेसु च भूतेसु दण्डं निधाय
न हन्ति न घटेति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यो : यदि कोई; तसेसु : जो भयभीत हो जाते हैं; थावरेसु : जो हठी और निडर होते हैं; च : या; भूतेसु : प्राणी; दण्डं [दण्ड]: दंड; निधाय : अलग रखकर; न हन्ती : चोट नहीं पहुँचाता; न घाटेति : या किसी और को चोट पहुँचाने या मारने के लिए प्रेरित नहीं करता; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ब्राह्मण]: एक सच्चा ब्राह्मण; ब्रूमि : मैं पुकारता हूँ
उन्होंने दंड-छड़ी त्याग दी है और शस्त्र त्याग दिए हैं। वे न तो भयभीत और डरपोक प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं, न ही हठी और निर्भीक प्राणियों को। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 405)
तासेसु : वे लोग जो भय से कांपते हैं और वे लोग जो लालसा के कारण उत्पन्न भय से व्याकुल हैं।
थावरेसु : जो दृढ़, स्थिर और अविचलित हैं, क्योंकि उन्होंने लालसा का त्याग कर दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 406

———————————————————————

(धम्मपद405) <<<< पिछला || धम्मपद406 || अगला >>>> (धम्मपद407)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 406 - समानेरणं वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 406 - समानेरणं वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
अविरुद्धम विरुद्धेसु
अट्टदंडेसु निब्बुतम
सदानेसु आनंदनम्
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 406 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो शत्रुओं से शत्रुता नहीं रखता, जो शस्त्रधारियों के प्रति शांतिपूर्ण (अर्थात बल का प्रयोग त्याग दिया है) है, और जो आसक्ति की वस्तुओं से आसक्त है।

———————————————————————

चार समनेराओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (406) का उच्चारण किया, जिसमें चार समनेरों का उल्लेख था जो अरहत थे।
एक बार एक ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति को जेतवन मठ में भेजा ताकि वे चार भिक्षुओं को अपने घर पर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करें। उन्होंने उनसे विशेष रूप से ऐसे वरिष्ठ भिक्षुओं को आमंत्रित करने का अनुरोध किया जो सच्चे ब्राह्मण भी हों। लेकिन उनके साथ सात वर्ष के चार अर्हत समनेर, अर्थात् समकिच्चा, पंडित, शोपाका और रेवता को भेज दिया गया। जब उनकी पत्नी ने उन युवा समनेरों को देखा तो वे बहुत असंतुष्ट हुईं और ब्राह्मण को अपने पोते से भी छोटे समनेरों को लाने के लिए दोषी ठहराया। वास्तव में, वे अपने पति से बहुत क्रोधित थीं और इसलिए उन्होंने उन्हें बड़े भिक्षुओं को लाने के लिए वापस मठ भेज दिया। इस बीच उन्होंने युवा

समनेरों को भिक्षुओं के लिए आरक्षित उच्च स्थान देने से इनकार कर दिया; उन्हें निचले स्थान दिए गए और उन्होंने उन्हें भिक्षा भोज नहीं दिया।

जब ब्राह्मण मठ पहुंचे, तो उनकी मुलाकात पूज्य सारिपुत्त से हुई और उन्होंने उन्हें अपने घर आमंत्रित किया। पूज्य सारिपुत्त जब ब्राह्मण के घर पहुंचे, तो उन्होंने चार युवा अर्हत समनेरों को देखा और उनसे पूछा कि क्या उन्हें भिक्षा दी गई है। यह जानकर कि अर्हत समनेरों को अभी तक भिक्षा नहीं दी गई है और भोजन केवल चार व्यक्तियों के लिए ही तैयार किया गया है, पूज्य सारिपुत्त ब्राह्मण के घर से भिक्षा ग्रहण किए बिना ही मठ लौट गए। इसलिए उनकी पत्नी ने ब्राह्मण को एक और वरिष्ठ भिक्षु को लाने के लिए वापस मठ भेजा। इस बार पूज्य महा मोग्गलाना ब्राह्मण के साथ आए, लेकिन जब उन्हें पता चला कि युवा समनेरों को भिक्षा नहीं दी गई है और भोजन केवल चार व्यक्तियों के लिए ही तैयार किया गया है, तो वे भी भिक्षा ग्रहण किए बिना ही मठ लौट गए।

इस समय तक समनेरों को भूख लगने लगी थी। देवताओं के राजा सक्का ने स्थिति देखकर एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनके घर आए। ब्राह्मण और उनकी पत्नी ने वृद्ध ब्राह्मण का आदर किया और उन्हें सम्मानपूर्वक बैठने के लिए आसन दिया, लेकिन सक्का जमीन पर ही बैठ गए और चारों समनेरों का आदर किया। फिर उन्होंने अपने असली स्वरूप का खुलासा किया। यह देखकर कि सक्का स्वयं युवा समनेरों का आदर कर रहे हैं, ब्राह्मण दंपति ने सभी पांचों को भिक्षा दी। भोजन के बाद, सक्का और समनेरों ने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन करते हुए छत के रास्ते आकाश में उड़ान भरी। सक्का अपने स्वर्गलोक लौट गए और समनेर मठ में वापस चले गए।

जब अन्य भिक्षुओं ने समनेरों से पूछा कि क्या ब्राह्मण दंपति द्वारा भिक्षा देने से इनकार करने पर उन्हें क्रोध नहीं आया, तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। भिक्षुओं ने उनकी बात पर विश्वास न करते हुए बुद्ध को बताया कि चारों युवा समनेर झूठे दावे कर रहे हैं कि वे अरहत हैं। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, अरहत अपने शत्रुओं के प्रति द्वेष नहीं रखते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 406 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो शत्रुओं से शत्रुता नहीं रखता, जो शस्त्रधारियों के प्रति शांतिपूर्ण (अर्थात बल का प्रयोग त्याग दिया है) है, और जो आसक्ति की वस्तुओं से आसक्त है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चार नौसिखियों की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय चार नौसिखियों के संदर्भ में कहा था।

कहा जाता है कि एक ब्राह्मण की पत्नी ने चार विशेष भिक्षुओं के लिए भोजन तैयार किया और अपने पति से कहा, “मठ जाइए, चार वृद्ध ब्राह्मणों को चुनकर यहाँ ले आइए।” ब्राह्मण मठ गया और सात वर्ष के चार भिक्षुओं को ले आया, जिन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था: संकिच्च, पंडित, शोपाक और रेवत। ब्राह्मण की पत्नी ने महंगे आसन तैयार करवाए और प्रतीक्षा करने लगी। भिक्षुओं को देखते ही वह क्रोधित हो उठी और जैसे किसी अंगीठी पर नमक गिर जाए वैसे ही बड़बड़ाते हुए अपने पति से बोली, “तुम मठ गए और अपने साथ चार ऐसे बच्चों को ले आए हो जो तुम्हारे पोते भी नहीं हैं।” उसने उन्हें अपने द्वारा तैयार किए गए आसनों पर बैठने नहीं दिया, बल्कि उनके लिए कुछ नीची कुर्सियाँ बिछाकर बोली, “यहाँ बैठिए!” तब उसने अपने पति से कहा, “ब्राह्मण, जाओ कुछ वृद्ध ब्राह्मणों को ढूँढ़ो और उन्हें यहाँ ले आओ।” ब्राह्मण मठ गया और पूज्य सारिपुत्त को देखकर उन्हें अपने साथ घर ले आया। जब पूज्य घर पहुँचे और नौसिखियों को देखा, तो उन्होंने पूछा, “क्या इन ब्राह्मणों ने भोजन किया है?” “नहीं, उन्होंने भोजन नहीं किया है।” यह जानकर कि भोजन केवल चार लोगों के लिए तैयार किया गया था, उन्होंने कहा, “मेरा कटोरा लाओ,” और अपना कटोरा लेकर चले गए। ब्राह्मण की पत्नी ने कहा, “शायद उन्हें भोजन करने की इच्छा नहीं थी; जल्दी जाओ, किसी दूसरे ब्राह्मण को ढूँढ़ो और उसे यहाँ ले आओ।” ब्राह्मण मठ वापस गया और पूज्य महा मोग्गलाना को अपने साथ घर ले आया।

जब पूज्य मोग्गलाना महान ने नौसिखियों को देखा, तो उन्होंने भी वही बात कही जो पूज्य सारिपुत्त ने कही थी, और अपना कुंड लेकर चले गए। तब ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति से कहा, “ये पूज्य भोजन नहीं करना चाहते; ब्राह्मण के आश्रम में जाओ और अपने साथ एक वृद्ध ब्राह्मण को ले आओ।” सक्का ने वृद्धावस्था से कमजोर एक ब्राह्मण का वेश धारण करके ब्राह्मण के आश्रम में जाकर ब्राह्मणों के सबसे प्रमुख आसन पर बैठ गए। जब ब्राह्मण ने उन्हें देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “अब मेरी पत्नी प्रसन्न होगी,” और यह कहते हुए, “चलो घर चलते हैं,” वे उन्हें लेकर घर वापस चले गए। जब ब्राह्मण की पत्नी ने उन्हें देखा, तो उनका हृदय प्रसन्नता से भर गया। उसने दो सीटों पर बिछी हुई चटाई और कालीन उठाकर एक सीट पर बिछा दी और उससे कहा, “महाराज, यहाँ बैठिए।” जब सक्का घर में दाखिल हुआ, तो उसने पाँच आसनों से चारों नौसिखियों को प्रणाम किया और नौसिखियों के बैठने की जगह के किनारे पर अपने लिए जगह पाकर पालथी मारकर ज़मीन पर बैठ गया। ब्राह्मण की पत्नी ने उसे देखकर ब्राह्मण से कहा, “तुम एक ब्राह्मण को लाए हो, लेकिन

तुम अपने पिता की उम्र के एक बूढ़े व्यक्ति को वापस लाए हो। यह तो अपने पोतों की उम्र के नौसिखियों को प्रणाम कर रहा है। हमें इससे क्या लेना-देना? इसे बाहर निकाल दो!"

ब्राह्मण ने पहले उसे कंधे से, फिर बांह से, और अंत में कमर से पकड़ा और उसे घसीटकर बाहर निकालने की पूरी कोशिश की, लेकिन वह अपनी जगह से हिलने को तैयार नहीं था। तब ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति से कहा, "आओ, ब्राह्मण, तुम एक बांह पकड़ो और मैं दूसरी पकड़ लेती हूँ।" तब ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने उसकी दोनों बांहें पकड़ लीं, उसकी पीठ थपथपाई और उसे दरवाजे से घसीटकर घर से बाहर ले गए। फिर भी, सक्का उसी जगह बैठा रहा जहाँ वह पहले बैठा था, और अपने हाथों को आगे-पीछे हिलाता रहा। जब ब्राह्मण और उसकी पत्नी वापस लौटे और उसे उसी जगह बैठे देखा जहाँ वह पहले बैठा था, तो वे डर के मारे चीखने लगे और उसे छोड़ दिया।

उसी क्षण सक्का ने अपनी पहचान प्रकट की। तब ब्राह्मण और उनकी पत्नी ने अपने मेहमानों को भोजन कराया। जब उन पाँचों ने भोजन ग्रहण कर लिया, तो वे चले गए। एक नौसिखिए ने घर के गोलाकार शिखर को तोड़ दिया, दूसरे ने छत के सामने वाले हिस्से को तोड़ा, तीसरे ने छत के पीछे वाले हिस्से को तोड़ा, चौथा धरती में समा गया, जबकि सक्का दूसरे रास्ते से घर से निकल गया। इस प्रकार वे पाँचों व्यक्ति पाँच अलग-अलग रास्तों से घर से निकले। तब से, ऐसा कहा जाता है, उस घर को पाँच द्वारों वाला घर कहा जाने लगा।

जब नौसिखिए मठ लौटे, तो भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "यह कैसा था?" नौसिखियों ने उत्तर दिया, "कृपा करके हमसे न पूछें। लेकिन क्या आप उनके इस कृत्य से क्रोधित नहीं थे?" "नहीं, हम क्रोधित नहीं थे।" जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, जब ये भिक्षु कहते हैं, 'हम क्रोधित नहीं थे,' तो वे झूठ बोलते हैं, वे असत्य बोलते हैं।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, वे उनका विरोध नहीं करते जिनके द्वारा उनका विरोध किया जाता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 406)

विरुद्धेसु अविरुद्धं अत्तादंडेसु निब्बुतं
सदानेसु अनादानं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

शत्रुता रखने वालों में से; शत्रुता रहित ; शस्त्र धारण करने वालों में से; शांतिपूर्ण ; स्वार्थी लोगों में से ; निदान रहित ; उसे ; मैं ; ब्राह्मण को पुकारना

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 407

(धम्मपद406) <<<< पिछला || धम्मपद407 || अगला >>>> (धम्मपद408)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 407 - महापंथकथेरा वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण

धम्मपद श्लोक 407 - महापंथकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa rago ca doso ca
mano makkho ca patito
sasaporiva aragga
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————————

श्लोक 407 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिससे वासना, द्वेष, अहंकार और निंदा एक सूई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाती है।

———————————————————————————

थेरा महापंथक की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने चुलपंथक (1) के बड़े भाई थेरा महापंथक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (407) कहा। थेरा महापंथक पहले से ही अरहत थे जब उनके छोटे भाई चुलपंथक ने संघ में प्रवेश किया। चुलपंथक जन्म से ही मंदबुद्धि थे क्योंकि उन्होंने अपने पिछले जन्मों में से एक में एक बहुत ही मंदबुद्धि भिक्षु का उपहास किया था। चुलपंथक चार महीनों में एक श्लोक भी याद नहीं कर पाए थे। महापंथक अपने छोटे भाई से निराश थे और उन्होंने उनसे मठ छोड़ने के लिए कहा क्योंकि वे संघ के योग्य नहीं थे। इसी संदर्भ में एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि महापंथक, जो कि अर्हत थे, ने अपने छोटे भाई चुलपंथक को मठ से क्यों निकाल दिया? उन्होंने यह भी पूछा, "क्या अर्हत अब भी क्रोधित होते हैं? क्या उनमें अब भी द्वेष जैसे नैतिक दोष होते हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अर्हतों में वासना और द्वेष जैसे नैतिक दोष नहीं होते। मेरे पुत्र महापंथक ने अपने भाई के हित में ऐसा किया, न कि द्वेषवश।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 407 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिससे वासना, द्वेष, अहंकार और निंदा एक सूई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाती है।

———————————————————————————

(1) श्लोक 25 भी देखें: चुलपंथक की कहानी।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महा पंथक की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन मठ में निवास करते समय पूज्य महा पंथक के संदर्भ में कहा था।

जब कुल्ला पंथक तीन महीने में एक श्लोक भी याद नहीं कर पाए, तो महा पंथक ने उन्हें मठ से निकाल दिया और दरवाजा बंद करते हुए उनसे कहा, "तुममें धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता नहीं है, और तुम गृहस्थ जीवन के सुखों से भी विमुख हो गए हो। तुम्हें यहाँ और क्यों रहना चाहिए? यहाँ से चले जाओ।" भिक्षुओं ने इस घटना पर चर्चा शुरू कर दी और कहा, "आदरणीय महा पंथक ने ये सब किया। निःसंदेह, जो लोग पापों से मुक्त हो चुके हैं, उनके भीतर भी कभी-कभी क्रोध उत्पन्न हो जाता है।" उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" जब भिक्षुओं ने उन्हें अपनी चर्चा का विषय बताया, तो उन्होंने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, जो लोग पापों से मुक्त हो चुके हैं, उनमें वासना, घृणा और भ्रम जैसी अशुद्धियाँ नहीं होतीं। मेरे पुत्र ने जो किया, वह इसलिए किया क्योंकि उसने धर्म और धर्म की भावना को सर्वोपरि रखा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 407)

यस्सा रागो च दोसो च मनो मक्खो च अरग्गा

सासपोर ' इव पतितो तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्सा : किसी के द्वारा; रागो च : वासना; दोसो सीए : दुर्भावना; मनो [मन]: अभिमान; मक्खो सीए : (और) कृतघ्नता; अरग्गा : सुई की नोक से; सासापो इव : सरसों के बीज के समान; पतितो [पतिता]: फिसल गया; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें

उनका मन कामवासना, द्वेष, अहंकार और कृतघ्नता जैसी बुराइयों को स्वीकार ही नहीं करता। इस मामले में उनका मन उस सुई की नोक के समान है जो राई के दाने को भी नहीं पकड़ पाती। ऐसे मन वाले व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 407)

दो भिक्षु भाइयों की कहानी : महा पंथक (बड़ा मार्ग) और चुल्ला पंथक (छोटा मार्ग)। चुल्ला पंथक अपने बड़े भाई महा पंथक से जुड़े थे। दोनों का जन्म मार्ग पर हुआ था, इसलिए उन्हें पंथक कहा जाता था। चुल्ला पंथक अपनी मानसिक शक्ति से किसी भी संख्या में भौतिक आकृतियाँ बनाने की क्षमता और भौतिक जगत में रहस्यमय ध्यान साधना करने की क्षमता के कारण सभी महा अरहतों से विशिष्ट थे। ये संतानें एक कोषाध्यक्ष की पुत्री की थीं, जिसने अपने पिता के घर के एक नौकर से गुप्त विवाह कर लिया था। इससे पहले बच्चे के जन्म की व्याख्या होती है, जब गर्भवती माँ अपने प्रेमी के साथ अपने माता-पिता से मिलने जा रही थी। बच्चे का जन्म रास्ते में ही हो गया,

इसलिए वे दोनों घर लौट आए। दूसरे बच्चे के मामले में भी यही हुआ। बड़े बेटे की इच्छा संघ में प्रवेश करने की थी। उसने छोटे भाई को भी अपने साथ चलने के लिए प्रेरित किया। लेकिन छोटा भाई पाठ करने में कोई रुचि नहीं रखता था। आदरणीय भाई, हालांकि एक महा अरहत थे, अपने छोटे भाई को शिक्षक की भूमिका निभाने के कारण लगभग विकट स्थिति में पहुँच गए। चुल्ला पंथका को चार पंक्तियों का एक श्लोक याद करने के लिए कहा गया, लेकिन वे चार महीने तक ऐसा करने में असमर्थ रहे, जिसके परिणामस्वरूप बड़े भाई को लगा कि वे संघ के लिए किसी काम के नहीं हैं। चुल्ला पंथका को संघ छोड़ने के लिए कहा गया।
अत्यंत निराश कुल्ला पंथक मंदिर के एक कोने में सिसक रहा था। उसका दुःख तब और बढ़ गया जब उसके बड़े भाई ने अगले दिन (स्वयं) बुद्ध की अध्यक्षता में कई भिक्षुओं को दान देने के लिए चिकित्सक जीवक द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में भाग लेने की तैयारी की।
बुद्ध ने उसकी सहायता की। उन्होंने उसे एक बेदाग सफेद लिनेन का टुकड़ा दिया और सूर्य की ओर मुख करके उसे सहलाने को कहा, "कोई भी वस्तु इतनी पवित्र नहीं है जो अपवित्र न हो जाए।" ये शब्द थे राजोहरणम्।
कुछ समय बाद, उनके हाथ की हथेली से निकले पसीने से कपड़ा अत्यंत गंदा हो गया। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत, परिवर्तन की सार्वभौमिकता (अनिच्चा), का उन्हें अहसास हुआ। इस प्रकार चुल्ला पंथक अरहत बन गए।
उसी समय, उनकी छिपी हुई शक्ति प्रकट हुई। उन्हें किसी भी संख्या में भौतिक आकृतियाँ बनाने की मानसिक शक्ति प्राप्त हुई, जिसका जल्द ही व्यावहारिक परीक्षण किया गया। भिक्षादान का कार्यक्रम संपन्न हुआ। जब भोजन अर्पित किया गया, तो बुद्ध ने तुरंत कटोरे पर अपना हाथ रख दिया। इसका कारण यह था कि चुल्ला पंथक, जो छूट गए थे, उन्हें भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। इसलिए एक सेवक को पास के मंदिर में उन्हें लाने के लिए भेजा गया। मंदिर में एक हजार से अधिक भिक्षुओं को एक समान देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। इसकी सूचना जीवक को दी गई, जिन्होंने उसे यह कहने के लिए कहा कि चुल्ला पंथक की प्रतीक्षा की जा रही है। दूसरी बार जाने पर आश्चर्य और भी बढ़ गया। जैसे ही चुल्ला पंथक का नाम लिया गया, सभी भिक्षु कहने लगे, "मैं चुल्ला पंथक हूँ।" इस बीच, तेजी से बिगड़ती स्थिति के कारण भिक्षादान रुक गया। इसलिए जीवक ने बुद्ध के निर्देशानुसार सेवक को फिर से जाने के लिए कहा और इस बार उसे अपने निकटतम पहले भिक्षु का वस्त्र पकड़कर यह कहने के लिए कहा कि बुद्ध चुल्ला पंथक को बुला रहे हैं। जब यह सब हो गया, तो मंदिर में उस भिक्षु के अलावा कोई नहीं था जिसका वस्त्र वह पकड़े हुए था। इसलिए छोटे भाई ने दान-पुण्य में अपना स्थान ग्रहण किया। भगवान बुद्ध ने उसी को एक संक्षिप्त उपदेश देकर पुण्य कर्मों की ओर प्रेरित किया, जिसे पाली भाषा में 'पुण्यानुमोदना' कहते हैं । इसके बाद भिक्षुओं के बीच बुद्ध के इस चमत्कार पर चर्चा हुई।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 408 ---
(धम्मपद407) <<<< पिछला || धम्मपद408 || अगला >>>> (धम्मपद409)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 408 - पिलिंडावचत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 408 - पिलिंडावचत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Akakksam vinnapanim
giram sacca' mudiraye
yaya nahhisaje kanci
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 408 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो सौम्य, शिक्षाप्रद और सत्य वचन बोलता है, और जो वाणी से किसी को ठेस नहीं पहुँचाता।

थेरा पिलिंडावच्छा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (408) का उच्चारण थेरा वच्चा के संदर्भ में किया, जो अपने आक्रामक व्यवहार के कारण थेरा पिलिन्दवच्चा के नाम से भी जाने जाते थे।

थेरा पिलिन्दवचेहा लोगों को संबोधित करने का एक अत्यंत अपमानजनक तरीका अपनाते थे: वे अक्सर कहते थे, "इधर आओ, हे नीच", या "वहाँ जाओ, हे नीच" और इसी तरह की अन्य बातें। अन्य भिक्षुओं ने उनके बारे में बुद्ध को बताया। बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और इस विषय पर उनसे बात की। तब, विचार करने पर बुद्ध ने पाया कि पिछले पाँच सौ जन्मों से थेरा केवल ब्राह्मण परिवारों में ही जन्म ले रहे थे, जो स्वयं को अन्य लोगों से श्रेष्ठ मानते थे। इसलिए बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! थेरा वच्चा पाँच सौ जन्मों के ब्राह्मण जीवन में अर्जित आदत के कारण ही दूसरों को 'नीच' कहकर संबोधित करते हैं, द्वेष से नहीं। उनका दूसरों को हानि पहुँचाने का कोई इरादा नहीं है, क्योंकि एक अरहत दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 408 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो सौम्य, शिक्षाप्रद और सत्य वचन बोलता है, और जो वाणी से किसी को ठेस नहीं पहुँचाता।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय पिलिण्डवच्छ की कथा

यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय पूज्य पिलिण्डवच्छ के संदर्भ में पढ़ा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह वृद्ध भिक्षु आम लोगों और भिक्षुओं दोनों को ही उस विशेषण से संबोधित करने का आदी था जो आमतौर पर केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता था। “आओ, नीच! जाओ, नीच,” वह हर किसी से कहता था जिससे वह मिलता था। एक दिन कई भिक्षुओं ने बुद्ध से उसके इस व्यवहार की शिकायत करते हुए कहा, “आदरणीय पिलिंढवच्छ भिक्षुओं को उस विशेषण से संबोधित करते हैं जो केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।” बुद्ध ने उसे अपने समक्ष बुलाया। बुद्ध ने कहा, “क्या यह आरोप सत्य है, वाच्छ, कि तुम भिक्षुओं को उस विशेषण से संबोधित करते हो जो केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता है?” पिलिंढवच्छ ने उत्तर दिया, “जी हाँ, आदरणीय, यह आरोप सत्य है।”

बुद्ध ने उस वरिष्ठ भिक्षु के पूर्व निवासों को याद किया और कहा, “भिक्षुओं, पूज्य वच्छा से नाराज़ न हों। भिक्षुओं, पूज्य वच्छा अपने साथी भिक्षुओं को ऐसे अपशब्दों से संबोधित नहीं करते, जो केवल बहिष्कृतों के लिए ही उपयुक्त हैं। वास्तव में, पूज्य वच्छा ने पाँच सौ जन्मों को भोगा है और इन सभी जन्मों में उनका पुनर्जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। इस अपशब्द का प्रयोग करना उनकी इतनी पुरानी आदत बन चुकी है कि अब वे इसे हर किसी को आदत के कारण ही कहते हैं। जो व्यक्ति बुरी भावनाओं से मुक्त हो चुका है, वह कभी कठोर और निर्मम शब्दों का प्रयोग नहीं करता, कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता जो सुनने वाले को आहत करें। मेरा पुत्र केवल आदत के कारण ही ऐसा बोलता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 408)

याया किंची एन ' अभिसजे अक्ककसं विनापाणि सक्कम

गिरां उदिरये तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

याया : यदि एक शब्द के माध्यम से भी; किंची : कोई भी; न अभिसजे : उत्तेजित नहीं करता; अक्ककसां [अक्ककसा]: कठोर नहीं; विनापाणिम् [विनापाणि]: अच्छे अर्थ वाला; सैकम गिरां [गिरा]: सच्चे शब्द; उदिराय : यदि कोई बोले; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

उनकी वाणी सत्य है। उनके शब्द नेक, रचनात्मक और कठोर नहीं हैं। उनके शब्दों से किसी को ठेस नहीं पहुंचेगी। न ही उनके शब्द लोगों को भड़काएंगे। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 408)

पिलिंढवच्छ की कथा : पिलिंढवच्छ का जन्म श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बुद्ध के उपदेश को सुनकर वे तुरंत परिवर्तित हो गए। उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय किया।

उन्हें संघ और गृहस्थों दोनों में सभी को ' वसला' कहकर संबोधित करने की आदत थी , जिसका अर्थ नीची जाति का व्यक्ति होता है। उन्होंने यह आदत पाँच सौ जन्मों में अपनाई थी, जब वे ब्राह्मण के रूप में पैदा हुए थे, क्योंकि ब्राह्मण सभी को अपने से नीचा समझते थे। पिलिण्डवच्छ इस आदत को त्याग नहीं सके। कहते हैं कि आदत स्वभाव बन जाती है। जिस व्यक्ति ने सभी दोषों से मुक्ति पा ली हो, उसमें भी लंबे समय से चली आ रही आदत बनी रहती है। बुद्ध एकमात्र अपवाद थे। इसलिए जब यह आदत असहनीय हो गई, तो भिक्षुओं ने बुद्ध से शिकायत की।

बुद्धों ने श्रोताओं को घटना का विवरण दिया। पूज्य पिलिंढवच्छ ने जब उस शब्द का प्रयोग किया तो उनके मन में घृणा या दुर्भावना का कोई अंश नहीं था। यह केवल एक आदत थी। उनमें कोई द्वेष नहीं था। बुद्ध ने आगे कहा कि पूज्य महा अरहत सभी दोषों से मुक्त थे। ऐसे व्यक्ति को बुद्ध ब्राह्मण कहते हैं।

एक दिन तिप्पली या लंबी काली मिर्च बेचने वाला एक विक्रेता गंभीर मुसीबत में पड़ गया। पूज्य पिलिण्डवच्छ कौन थे, यह जाने बिना वह तिप्पली से भरी एक गाड़ी बेचने के लिए ले जा रहा था, जिसमें एक टोकरी में तिप्पली का एक नमूना था। एक सुबह जब उसकी मुलाकात जेतवनारमा के द्वार पर महा अरहत से हुई, जो यात्रा पर जा रहे थे, तो हमेशा की तरह महा अरहत ने विक्रेता को ' वसला' कहकर संबोधित किया और पूछा कि टोकरी में क्या है। विक्रेता अवाक रह गया। उसने जवाब दिया, "चूहों का मल।" महा अरहत ने कहा, "ऐसा ही हो," और अपने रास्ते चले गए। लंबी काली मिर्च और चूहों के मल में आश्चर्यजनक समानता थी और विक्रेता को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि न केवल वह नमूना और फिर पूरी गाड़ी, अब लंबी काली मिर्च से भरी नहीं थी, बल्कि चूहों के मल से भरी थी।

देवताओं ने यह सुनिश्चित किया कि व्यापारी को भारी कष्ट सहना पड़े, फिर भी उसका माल चूहों की विष्ठा में परिवर्तित हो जाए। व्यापारी का सारा माल नष्ट हो गया। बेचारे का दुख असीम था। हताशा में उसने थेरा से अपने क्रोध को प्रकट करने का निश्चय किया, क्योंकि उसे विश्वास था कि वह स्वयं ही इस सब का कारण है। उसकी मुलाकात एक नेक व्यक्ति से हुई जिसने उससे प्रश्न किए। पूरी कहानी सुनकर उसने व्यापारी को समझाया कि पूज्य पिलिंढवच्छ महा अरहत हैं और समस्या का समाधान उन्हीं के हाथों में है। उन्हें महा थेरा से उसी प्रकार पुनः मिलने के लिए कहा गया, जैसे उस दुर्भाग्यपूर्ण सुबह मिले थे, और जब उनसे सामान्य रूप से पूछा जाए, तो सावधानीपूर्वक केवल इतना उत्तर देने के लिए कहा गया कि वे तिप्पिली हैं। तब पूज्य पिलिंढवच्छ कहेंगे, "ऐसा ही हो।" तब तुम्हें अपने माल की वास्तविक प्रकृति का पता चल जाएगा। व्यापारी ने ऐसा ही किया और अपनी किस्मत पाकर प्रसन्न हुआ, क्योंकि तुरंत ही उसी प्रक्रिया से व्यापारी का माल अपने मूल स्वरूप में लौट आया।

इसके बाद, बुद्ध ने संघ और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि उनके महा अरहतों में पिलिंढवच्छ देवताओं को सबसे अधिक प्रिय थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 409

———————————————————————

(धम्मपद408) <<<< पिछला || धम्मपद409 || अगला >>>> (धम्मपद410)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 409 - अन्नतारत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 409 - अन्नतारत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha digham va rassam va
anum thulam subhasubham
Joke adinnam nadiyati
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 409 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो इस संसार में कुछ भी ऐसा नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो, चाहे वह लंबा हो या छोटा, बड़ा हो या छोटा, अच्छा हो या बुरा।

———————————————————————

एक थेरेपिस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक निश्चित थेरा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (409) का उच्चारण किया।

एक दिन, सावत्थी के एक ब्राह्मण ने अपना ऊपरी वस्त्र हवा लगने के लिए घर के बाहर रख दिया। एक थेरे ने मठ लौटते समय वह वस्त्र देखा। यह सोचकर कि यह किसी का फेंका हुआ कपड़ा है और इसलिए इसका कोई मालिक नहीं है, थेरे ने उसे उठा लिया। ब्राह्मण ने खिड़की से बाहर देखा और थेरे को वस्त्र उठाते हुए देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ा, उसे अपशब्द कहने लगा और उस पर आरोप लगाने लगा। "हे गंजे! तू मेरा वस्त्र चुरा रहा है!" उसने कहा; थेरे ने तुरंत वह वस्त्र ब्राह्मण को लौटा दिया।
मठ में लौटकर, थेरा ने उपरोक्त घटना अन्य भिक्षुओं को सुनाई, और उन्होंने उसका उपहास किया और मज़ाक में उससे पूछा कि वस्त्र लंबा है या छोटा, मोटा है या महीन। इस प्रश्न के उत्तर में थेरा ने कहा, "वस्त्र लंबा हो या छोटा, मोटा हो या महीन, इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता; मुझे इससे कोई लगाव नहीं है।" तब अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि थेरा झूठा दावा कर रहा है कि वह अर्हत है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! थेरा सत्य कह रहा है; अर्हत वह कुछ भी नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 409 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो इस संसार में कुछ भी ऐसा नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो, चाहे वह लंबा हो या छोटा, बड़ा हो या छोटा, अच्छा हो या बुरा।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
चोरी के आरोप में फंसे भिक्षु की कहानी
कथा के अनुसार, सावत्थी में रहने वाले एक कुटिल ब्राह्मण ने अपने शरीर की दुर्गंध से बचने के लिए, अपने वस्त्र उतारकर एक तरफ रख दिए और अपने घर की ओर मुख करके बैठ गया। तभी एक अर्हत भिक्षु नाश्ते के बाद मठ जाते समय उस वस्त्र को देखकर चारों ओर देखने पर पाया कि कोई नहीं है, इसलिए उसने सोचा कि उसका कोई मालिक नहीं है और उसे अपना कूड़ा समझकर अपने साथ ले गया। ब्राह्मण ने जब उसे देखा, तो वह उसके पास गया और उसे अपशब्द कहते हुए बोला, “हे भिक्षु, तू मेरा वस्त्र ले जा रहा है।” “क्या यह तेरा वस्त्र है, ब्राह्मण?” “जी, भिक्षु।” “मैंने किसी को नहीं देखा, और यह सोचकर कि यह कूड़ा है, इसे अपने साथ ले आया; यह रहा।” ऐसा कहकर पूज्य भिक्षु ने उसे उसका वस्त्र वापस कर दिया। फिर वह मठ गया और भिक्षुओं को पूरी घटना विस्तार से सुनाई। जब भिक्षुओं ने उसकी कहानी सुनी, तो उन्होंने उसका उपहास करते हुए कहा, “भाई, तुमने जो कपड़ा लिया है, वह लंबा है या छोटा, मोटा है या महीन?” भिक्षु ने उत्तर दिया, “भाइयों, कपड़ा लंबा हो या छोटा, मोटा हो या महीन, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; मुझे इससे कोई लगाव नहीं है। मैंने इसे कूड़ा समझकर उठा लिया था।” जब भिक्षुओं ने उसका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, “हे पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ बोल रहा है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “नहीं, भिक्षुओं, इस भिक्षु की बात बिलकुल सत्य है; जो लोग बुरी वासनाओं से मुक्त हो चुके हैं, वे दूसरों की वस्तुएँ नहीं लेते।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 409)
इधा लोके यो दीघं वा रसं वा अनुं थूलं वा सुभासुभं
आदिन्नं न आदियति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
इधा लोके : इस संसार में; यो : यदि कोई; दीघं वा : या तो लंबा; रसं वा : या छोटा; अनुं : या सूक्ष्म; थूलं वा : या बड़ा; सुभासुभं [सुभासुभ]: अच्छा या बुरा; अदिन्नं [अदिन्न]: कुछ ऐसा जो दिया नहीं गया; ना आदियति : नहीं लेता; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक सच्चे ब्राह्मण का वर्णन करें
इस संसार में यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना दी हुई कोई भी वस्तु नहीं लेता, चाहे वह लंबी हो या छोटी, सूक्ष्म हो या बड़ी, अच्छी हो या बुरी, तो मैं उसे सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 409)
ब्राह्मण : बुद्ध और उनके शिष्यों का विभिन्न प्रकार के ब्राह्मणों के साथ व्यापक संवाद हुआ। वर्तमान श्लोक जिस कथा पर आधारित है, वह ऐसा ही एक संवाद है। लेकिन बुद्ध और ब्राह्मणों के बीच इससे भी अधिक गहन दार्शनिक संवाद हुए।
एक उदाहरण यहाँ दिया गया है: ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता बिना किसी प्रश्न के अपनी परंपरा और अधिकार को एकमात्र सत्य मानकर उस पर अडिग रहती थी। एक बार विद्वान और प्रसिद्ध ब्राह्मणों का एक समूह बुद्ध से मिलने गया और उनसे लंबी चर्चा की। समूह में से एक सोलह वर्षीय ब्राह्मण युवक, कापथिका, जिसे सभी असाधारण रूप से प्रतिभाशाली मानते थे, ने बुद्ध से प्रश्न किया: “आदरणीय गौतम, ब्राह्मणों के प्राचीन पवित्र ग्रंथ हैं जो मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। उनके विषय में ब्राह्मण इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं: 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'। अब, इस विषय में बुद्ध क्या कहते हैं?” बुद्ध ने पूछा: “क्या ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा ब्राह्मण है जो यह दावा करता हो कि वह स्वयं जानता और देखता है कि 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'?”
उस युवक ने स्पष्टवादिता से कहा, "नहीं।"

“तो क्या कोई एक शिक्षक है, या ब्राह्मणों के सातवीं पीढ़ी तक के शिक्षकों का कोई गुरु है, या उन शास्त्रों के मूल लेखकों में से कोई भी ऐसा है, जो यह दावा करता हो कि वह जानता और देखता है: 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'?” “नहीं।”
“तो फिर, यह अंधों की एक पंक्ति के समान है, जिनमें से प्रत्येक पिछले वाले को पकड़े हुए है; पहला नहीं देख पाता, मध्य वाला भी नहीं देख पाता, अंतिम वाला भी नहीं देख पाता। इस प्रकार, मुझे लगता है कि ब्राह्मणों की स्थिति अंधों की एक पंक्ति के समान है।”
तब बुद्ध ने ब्राह्मणों के समूह को अत्यंत महत्वपूर्ण सलाह दी: “सत्य का पालन-पोषण करने वाले (शाब्दिक रूप से रक्षा करने वाले) बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि 'केवल यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।'”
युवा ब्राह्मण द्वारा सत्य को बनाए रखने या उसकी रक्षा करने के विचार को समझाने के लिए कहे जाने पर, बुद्ध ने कहा: “मनुष्य का एक विश्वास होता है। यदि वह कहता है 'यह मेरा विश्वास है', तो वह सत्य को बनाए रखता है। लेकिन इससे वह इस परम निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता कि 'केवल यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।' दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपनी पसंद के अनुसार विश्वास कर सकता है, और वह कह सकता है 'मैं इस पर विश्वास करता हूँ'। इस हद तक वह सत्य का सम्मान करता है। लेकिन अपने विश्वास के कारण उसे यह नहीं कहना चाहिए कि केवल वही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।”
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 410

———————————————————

(धम्मपद409) <<<< पिछला || धम्मपद410 || अगला >>>> (धम्मपद411)

———————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 410 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 410 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Asa yassa na vijjanti
asmim loke paramhi ca
nirasasam visamyuttam
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————

श्लोक 410 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसे न तो इस संसार की इच्छा है और न ही परलोक की, जो व्याकुलता और नैतिक विकारों से मुक्त है।

———————————————————

थेरा सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (410) कहा।
एक बार थेरा सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वर्षा ऋतु बिताने के लिए एक छोटे से गाँव के पास स्थित एक मठ में गए। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर, थेरा सारिपुत्त को युवा भिक्षुओं और समनेरों के लिए वस्त्रों की आवश्यकता हुई। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "यदि कोई वस्त्र भेंट करने आए, तो उन्हें मेरे पास भेज दें या मुझे सूचित करें"; और फिर वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए जेतवन मठ के लिए प्रस्थान कर गए। अन्य भिक्षुओं ने थेरा सारिपुत्त के निर्देशों को गलत समझा और बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय! थेरा सारिपुत्त अभी भी वस्त्रों और भिक्षु की अन्य आवश्यक वस्तुओं जैसी भौतिक चीजों से आसक्त हैं।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! मेरे पुत्र सारिपुत्त में अब कोई लालसा नहीं है। उसने तुम्हें वस्त्र लाने को कहा है, ताकि गृहस्थ शिष्यों के लिए पुण्य कर्म करने के अवसर कम न हों और युवा भिक्षुओं और समनेरों के लिए जो कुछ भी उन्हें उचित रूप से प्राप्त हो, उसे ग्रहण करने के अवसर कम न हों।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————

श्लोक 410 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसे न तो इस संसार की इच्छा है और न ही परलोक की, जो व्याकुलता और नैतिक विकारों से मुक्त है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सारिपुत्त के गलत समझे जाने की कहानी

कथा के अनुसार, एक समय पूज्य सारिपुत्त अपने पांच सौ भिक्षुओं के दल के साथ एक मठ में गए और वर्षा ऋतु के लिए वहाँ निवास करने लगे। जब लोगों ने सारिपुत्त को देखा, तो उन्होंने उन्हें निवास के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने का वादा किया। लेकिन जब सारिपुत्त ने अंतिम पर्व मनाया, तब भी सभी आवश्यक वस्तुएँ नहीं पहुँची थीं। इसलिए जब वे बुद्ध के पास जाने के लिए निकले, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "जब लोग युवा भिक्षुओं और नौसिखियों के लिए आवश्यक वस्तुएँ लाएँ, तो कृपया उन्हें ले जाकर भेज दें; यदि वे न लाएँ, तो कृपया मुझे सूचना भेज दें।" ऐसा कहकर वे बुद्ध के पास चले गए।

भिक्षु तुरंत इस विषय पर चर्चा करने लगे और कहने लगे, "आज पूज्य सारिपुत्त ने जो कहा, उससे तो यही लगता है कि उनके मन में अभी भी लालसा बनी हुई है। क्योंकि जब वे वापस गए, तो उन्होंने अपने साथी भिक्षुओं को दिए गए निवास संबंधी आवश्यकताओं के संदर्भ में भिक्षुओं से कहा, 'कृपया उन्हें भेज दीजिए; अन्यथा मुझे सूचना दे दीजिए।'" तभी बुद्ध पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय।" बुद्ध ने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, मेरे पुत्र को कोई लालसा नहीं है। परन्तु उनके मन में यह विचार था, 'जनता का पुण्य न ललके और न ही युवा भिक्षुओं और नौसिखियों का पुण्य ललक हो।' इसी कारण उन्होंने ऐसा कहा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 410)

यस्सा अस्मिं लोके पराहि च आस न विज्जन्ति

निरासयां विसंयुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

yassa : यदि कोई; asmiṃ loke : इस लोक में; paraṃhica : या परलोक में; āsā : भोगों से रहित; na vijjanti : वह व्यक्ति; nirāsayaṃ [nirāsaya]: भोग रहित; visaṃ yuttaṃ [yutta]: दोषों से मुक्त; taṃ : व्यक्ति; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi : किसी ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

उसे न तो इस लोक की कोई लालसा है और न ही परलोक की। वह लालसा और लोभ से मुक्त है। वह दोषों से विरक्त है। ऐसे व्यक्ति को मैं उत्तम ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 410)

आसा : यह प्यास (लालसा, तन्हा) ही है जो पुनर्जन्म और पुनरुद्भव (पोनोभविका) उत्पन्न करती है, और जो भावुक लोभ (नंदीरागसहगत) से बंधी होती है , और जो यहाँ-वहाँ नए आनंद की तलाश करती है (तत्रतत्राभिनंदिनी), जैसे (i) इंद्रिय-सुखों की प्यास (काम-तन्हा), (ii) अस्तित्व और बनने की प्यास (भवतन्हा) और (iii) अस्तित्वहीनता की प्यास (स्वयं-विनाश, विभवतन्हा)।

यह प्यास, इच्छा, लोभ, लालसा, जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, सभी प्रकार के दुखों और प्राणियों की निरंतरता को जन्म देती है। लेकिन इसे प्रथम कारण नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म के अनुसार, कोई प्रथम कारण संभव नहीं है, क्योंकि सब कुछ सापेक्ष और परस्पर निर्भर है। यहां तक कि यह प्यास, तन्हा , जिसे दुख का कारण या उत्पत्ति माना जाता है , भी किसी अन्य चीज, यानी संवेदना (वेदना) पर निर्भर करती है , और संवेदना स्पर्श (फस्सा) पर निर्भर करती है , और इसी प्रकार यह चक्र चलता रहता है जिसे परिस्थितिजन्य उत्पत्ति (पटिच्च-समुप्पाद) के रूप में जाना जाता है , जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे।

अतः तन्हा , यानी प्यास, दुःख उत्पन्न होने का पहला या एकमात्र कारण नहीं है । परन्तु यह सबसे प्रत्यक्ष और तात्कालिक कारण है, सर्वव्यापी और प्रमुख तत्व है। अतः मूल पाली ग्रंथों के कुछ स्थानों पर दुख के उद्गम या समुदय की परिभाषा में तन्हा , यानी प्यास के अतिरिक्त अन्य दोष और अशुद्धियाँ (किलेसा , ससवा धम्मा) भी शामिल हैं, जिन्हें सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। हमारी चर्चा की सीमित सीमा में यह याद रखना पर्याप्त होगा कि इस प्यास का केंद्र अज्ञान से उत्पन्न होने वाला अहंकार का झूठा विचार है।

यहां प्यास शब्द में केवल इंद्रिय सुख, धन और शक्ति की इच्छा और आसक्ति ही नहीं, बल्कि विचारों, आदर्शों, मतों, सिद्धांतों, अवधारणाओं और विश्वासों (धम्म-तन्हा) की इच्छा और आसक्ति भी शामिल है। बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार, संसार में होने वाली सभी परेशानियां और कलह, परिवारों में होने वाले छोटे-मोटे व्यक्तिगत झगड़ों से लेकर देशों और राष्ट्रों के बीच होने वाले बड़े युद्धों तक, इसी स्वार्थी प्यास से उत्पन्न होती हैं। इस दृष्टिकोण से, सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याएं इसी स्वार्थी प्यास में निहित हैं। महान राजनेता जो अंतरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने का प्रयास करते हैं और युद्ध और शांति की चर्चा केवल आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में करते हैं, वे सतही बातों को ही छूते हैं और समस्या की वास्तविक जड़ तक कभी नहीं पहुंचते। जैसा कि बुद्ध ने रट्ठपाल से कहा: संसार में अभाव और लालसा है, और वह प्यास (तन्हादासो) का गुलाम है।

(धम्मपद410) <<<< पिछला ll धम्मपद411 ll अगला >>>> (धम्मपद412)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 411 - महामोग्गलनत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 411 - महामोग्गलनत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassalaya na vijjanti
अन्नाया अकाथमकाथी
amatogadha' manuppattam
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 411 : मैंने उसे ब्राह्मण कहा है, जो लालसा रहित है, जो चार आर्य सत्यों के ज्ञान से संशय से मुक्त है, और जिसने निर्वाण (अमर) को प्राप्त कर लिया है।

थेरा महा मोग्गलाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (411) कहा।

एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध को थेरा महा मोग्गलाना के बारे में वही बात बताई जो उन्होंने थेरा सारिपुत्त के बारे में कही थी कि उन्हें अभी भी सांसारिक वस्तुओं से लगाव है। बुद्ध ने उनसे कहा कि थेरा महा मोग्गलाना ने सभी प्रकार की व्यथाओं का त्याग कर दिया है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 411 : मैंने उसे ब्राह्मण कहा है, जो लालसा रहित है, जो चार आर्य सत्यों के ज्ञान से संशय से मुक्त है, और जिसने निर्वाण (अमर) को प्राप्त कर लिया है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महा मोग्गलाना की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय पूज्य महा मोग्गलाना के संदर्भ में दिया था।

यह कथा पिछली कथा के समान ही है, सिवाय इसके कि इस अवसर पर बुद्ध ने यह जानकर कि पूज्य महा मोग्गलाना भोग-विलास से मुक्त थे, यह श्लोक कहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 411)

यस्सा अलया न विज्जन्ति अनन्याय अकथाकथि
अमतोगधं अनुप्पत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्स : यदि किसी में; आलय : आसक्तियाँ; न विज्जन्ति : दिखाई न दें; अञ्ञाय : सही जागरूकता के कारण; अकथंकथी : यदि उसे कोई संदेह न हो; अमरोगध : अमर-निर्वाण की बाढ़; अनुप्पत्त : जो पहुँच गया हो; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण का वर्णन करें उनमें कोई आसक्ति नहीं है—उनमें किसी प्रकार की आसक्ति पाई ही नहीं जा सकती। सही जागरूकता के कारण उन्हें कोई आध्यात्मिक संदेह नहीं है। वे अमरता—निर्वाण—में प्रवेश कर चुके हैं। मैं उन्हें सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 411)

आदरणीय महा मोग्गलाना की कथा : यदि सारिपुत्त को बुद्ध का दाएँ प्रमुख शिष्य माना जाए, तो मोग्गलाना उनके बाएँ प्रमुख शिष्य थे। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और अनेक पूर्व जन्मों में वे एक दूसरे से जुड़े रहे; और अंतिम जन्म में भी वे एक दूसरे के साथ ही रहे।

आदरणीय महा मोग्गलाना मानसिक चमत्कारों के प्रदर्शन के लिए महान संघ में अग्रणी थे।

एक बार नंदोपानंद नामक एक नागों का राजा, जो अपनी मानसिक क्षमताओं के लिए भी प्रसिद्ध था, हिमालय के उन सभी प्राणियों को धमकी दे रहा था जो उस रास्ते से गुजरेंगे।

नागराज को वश में करने के लिए संघ के कई सदस्यों ने बुद्ध को प्रस्ताव दिए। अंततः पूज्य महा मोग्गलाना की बारी आई और बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे जानते थे कि भिक्षु इस कार्य को बखूबी निभा सकते हैं। परिणाम स्वरूप हिमालय में नागराज से युद्ध हुआ, जिसमें नागराज युद्ध में पराजित होकर शांति की विनती करने लगा। बुद्ध पूरी घटना के दौरान उपस्थित रहे और उन्होंने मोग्गलाना को चेतावनी दी। इस ऐतिहासिक विजय का संक्षिप्त वर्णन जयमंगल गाथा के सातवें श्लोक में मिलता है , जिसका पाठ लगभग हर बौद्ध अवसर पर किया जाता है।

चाहे स्वर्ग के शासक सक्का के संगमरमर के महल को अपने अंगूठे से हिलाना हो या नरक का भ्रमण करना हो, वे हर काम में सहज थे। इन यात्राओं से उन्हें हर प्रकार की जानकारी प्राप्त होती थी। वे पृथ्वीवासियों को उनके पुराने मित्रों या रिश्तेदारों के भाग्य का सजीव वर्णन कर सकते थे; कैसे बुरे कर्मों के कारण कुछ लोग नरक में अपमानजनक पुनर्जन्म पाते हैं और अच्छे कर्मों के कारण अन्य लोग छह स्वर्गों में से किसी एक में शुभ पुनर्जन्म पाते हैं। इन कार्यों से संप्रदाय को बहुत प्रसिद्धि मिली, जिससे अन्य संप्रदायों को बहुत आपत्ति हुई। उनका जीवन एक उदाहरण और एक गंभीर चेतावनी है। यहाँ तक कि एक प्रमुख शिष्य, जो इतने वीरतापूर्ण कार्य करने में सक्षम था, भी बुरे कर्मों के अवशेष से अछूता नहीं रहा, भले ही वे कर्म बहुत पुराने समय में किए गए हों।

मोग्गलाना के अंतिम जीवन में, वे कर्मों के निर्दयी प्रभाव से बच नहीं सके। क्योंकि अरहत के परिनिर्वाण से कर्मों के अच्छे-बुरे सभी फल समाप्त हो जाते हैं। वे दो बार लुटेरों के जाल में फँसे, लेकिन हर बार बच निकले। परन्तु तीसरी बार, उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि बच निकलना व्यर्थ है। उन्हें इतनी बेरहमी से पीटा गया कि उनके शरीर को बोरी में भी डाला जा सकता था। परन्तु मृत्यु को ही उनका भाग्य था। लिखा है कि एक प्रमुख शिष्य को न केवल बुद्ध से पहले मरना चाहिए, बल्कि उनकी मृत्यु से पहले बुद्ध के पास जाकर चमत्कारिक कार्य करने चाहिए और विदाई के श्लोक बोलने चाहिए, और बुद्ध को बदले में उनके गुणों का वर्णन करना चाहिए। वे भी अपवाद नहीं थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 412

(धम्मपद411) <<<< पिछला ॥ धम्मपद412 ॥ अगला >>>> (धम्मपद413)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 412 - रेवत्तथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 412 - रेवत्तथेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha punnanca pipanca
ubho sanga'mupaccaga
asokam virajam suddham

tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 412 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों बंधनों को पार कर लिया है; जो शोक रहित है और नैतिक दोषों से मुक्त होकर शुद्ध है।

———————————————————————

समनेरा रेवता की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा रेवता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (412) कहा।

एक दिन भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "रेवत को लोगों से बहुत से दान मिल रहे हैं, वे प्रसिद्धि और धन कमा रहे हैं। यद्यपि वे वन में अकेले रहते हैं, फिर भी उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति से पाँच सौ भिक्षुओं के लिए पाँच सौ शिखर वाले मठ बनवा लिए हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र रेवत ने सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया है; उन्होंने अच्छे और बुरे दोनों को पार कर लिया है।"

———————————————————————

श्लोक 412 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों बंधनों को पार कर लिया है; जो शोक रहित है और नैतिक दोषों से मुक्त होकर शुद्ध है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अच्छे और बुरे दोनों का त्याग करो।

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने पुब्बाराम में निवास करते समय पूज्य रेवता के संदर्भ में दिया था।

एक दिन भिक्षु आपस में चर्चा करने लगे, "अरे, उस नवोदित भिक्षु का कितना बड़ा लाभ हुआ! अरे, उस नवोदित भिक्षु का कितना बड़ा पुण्य हुआ! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति ने अनेक भिक्षुओं के लिए अनेक निवास स्थान बनवाए!" तभी बुद्ध वहाँ आ गए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय पर।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र में न कोई पुण्य है और न कोई पाप: उसने दोनों का त्याग कर दिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 412)

इधा यो पुन्नं पापं च उभो संगं उपचगा

अशोकं विराजं शुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा : इस संसार में; यो : यदि कोई; पुण्यम् [पुण्य]: गुण; पापम् च : और बुराई; उभो : दोनों; संगम् [संग]: आसक्ति; उपच्चगा : पार हो गया है; अशोकम् [अशोक]: जो दु:ख रहित है; विरजम् [विरज]: दोषरहित; शुद्धम् [शुद्ध]: शुद्ध; तम् : उसे; अहम् : मैं; ब्राह्मणो ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करता हूँ

इस संसार में यदि कोई व्यक्ति अच्छे और बुरे, तथा आसक्तियों से परे यात्रा कर चुका हो, और वह दु:ख रहित हो, दोषों से मुक्त हो, और शुद्ध हो, तो मैं उसे ही सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 412)

आदरणीय रेवता की कहानी : उन्हें यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि वे किसी भी बात को हल्के में नहीं लेते थे। वे हर चीज़ को संदेह की दृष्टि से देखते थे। उन्हें हर जगह संदेह का कारण नज़र आता था। वे बार-बार ध्यान (झान) में जाने और मुक्ति (निरोधसमापत्ति) के आनंद का अनुभव करने के शौकीन थे । यह एक ऐसा वरदान था जिसके द्वारा कुछ अरहंतों को लगातार सात दिनों तक सांसारिक दुनिया से परे जाने की शक्ति प्राप्त होती थी। उन्हें इस विशेष विशेषाधिकार की तीव्र इच्छा थी। वे इसमें निपुण हो गए। अरहंत बनने से पहले, उनका मन इस बात को लेकर बहुत व्याकुल था कि क्या करना उचित है और क्या नहीं। वे सबसे प्रतिष्ठित शिष्यों में गिने जाते थे। उनमें से कुछ के साथ चर्चा में उन्होंने एकांतवास में रहने और ध्यान के आनंद की प्रशंसा की थी।

उनका जन्म श्रावस्ती में इसी युग के एक धनी परिवार में हुआ था। इसके कुछ ही समय बाद बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि संघ में कंख रेवता सबसे पहले समाधि (झान) में प्रवेश करने वाले व्यक्ति थे।

उनके लिए कारण और परिणाम ही सब कुछ हैं।

उसका खाना। सभी विषयों पर सवालिया निशान लगाता है।

वह इससे पहले एकांत की तलाश करता है

ध्यान के माध्यम से परमानंद की खोज करना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 413

———————————————————————

(धम्मपद412) <<<< पिछला ‖ धम्मपद413 ‖ अगला >>>> (धम्मपद414)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 413 - चंदभट्ठेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 413 - चंदभट्ठेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

चंदमवा विमलम शुद्धम
विप्पसन्नामनविलम
नंदीभवपरिक्खिनाम(1)
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 413 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो (बादलों रहित आकाश में) चंद्रमा के समान शुद्ध, निर्मल और शांत है, और जिसमें अस्तित्व की लालसा समाप्त हो गई है।

---

1. नंदीभवपरिक्खिनाम्: वह व्यक्ति जिसमें वर्तमान इंद्रियजन्य अस्तित्व में या रूप (सूक्ष्म भौतिक) या अरूप (अमूर्त) ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में अस्तित्व के बेहतर और उच्चतर तल में लंबे समय तक निरंतर अस्तित्व की लालसा समाप्त हो जाती है।

थेरा चंदभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चंदभा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (413) कहा।

चंदभा ने अपने पिछले जन्म में कश्यप बुद्ध के अवशेषों वाले स्तूप में चंदन का अर्पण किया था। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म श्रावस्ती के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे एक विशिष्ट चिह्न के साथ पैदा हुए थे, अर्थात् उनकी नाभि के चारों ओर से प्रकाश का एक वृत्त निकलता था। यह प्रकाश वृत्त चंद्रमा के समान दिखता था, इसलिए उन्हें चंदभा के नाम से जाना जाने लगा। कुछ ब्राह्मणों ने इस अनोखे चिह्न का लाभ उठाते हुए उन्हें एक रथ पर बिठाकर पूरे शहर में घुमाया और केवल उन्हीं लोगों को उन्हें छूने की अनुमति दी गई जिन्होंने सौ या हज़ार रुपये दिए। एक बार वे शहर और जेतवन मठ के बीच एक स्थान पर रुके। जेतवन मठ जा रहे आर्यों से उन्होंने कहा, 'बुद्ध के पास जाकर उनके प्रवचन सुनने का क्या लाभ? चंदभा के समान शक्तिशाली कोई नहीं है। जो उन्हें स्पर्श करेगा वह धनवान हो जाएगा; तुम आकर क्यों नहीं देखते?" तब आर्यों ने उनसे कहा, "केवल हमारे गुरु ही शक्तिशाली हैं; उनका कोई सानी नहीं है और वे अद्वितीय हैं।"

तब ब्राह्मण चंदभा को बुद्ध से प्रतिस्पर्धा कराने के लिए जेतवन मठ ले गए। परन्तु जब चंदभा बुद्ध के समक्ष था, प्रकाश का घेरा स्वतः ही बुझ गया। जब चंदभा को बुद्ध की दृष्टि से ओझल किया गया, तो प्रकाश का घेरा स्वतः ही फिर प्रकट हो गया; और बुद्ध के समक्ष वापस लाए जाने पर वह फिर गायब हो गया। तब चंदभा ने बुद्ध से वह मंत्र (मंत्र) माँग लिया जिससे उसकी नाभि के चारों ओर का प्रकाश का घेरा गायब हो जाए। बुद्ध ने उसे बताया कि वह मंत्र केवल उनके संघ के सदस्य को ही दिया जा सकता है। चंदभा ने ब्राह्मणों से कहा कि वह बुद्ध से एक मंत्र प्राप्त कर रहा है और उस मंत्र में महारत हासिल करने के बाद वह जंबूद्वीप का सर्वोपरि व्यक्ति बन जाएगा। अतः ब्राह्मण मठ के बाहर प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीच चंदभा भिक्षु बन गए। उन्हें शरीर का ध्यान करने का निर्देश दिया गया, अर्थात् शरीर के बत्तीस घटकों की घृणा और अशुद्धता पर चिंतन करने का। कुछ ही दिनों में चंदभा ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब मठ के बाहर प्रतीक्षा कर रहे ब्राह्मण यह पूछने आए कि क्या उन्होंने मंत्र प्राप्त कर लिया है, तो चंदभा ने उत्तर दिया, "आप लोग अभी वापस चले जाएं; मैं अब आपके साथ जाने की स्थिति में नहीं हूं।" अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर बुद्ध के पास जाकर कहा, "चंदभा झूठ बोल रहा है कि वह अर्हत बन गया है।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "चंदभा सत्य कह रहा है; उसने सभी नैतिक व्यसनों का नाश कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 413 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो (बादलों रहित आकाश में) चंद्रमा के समान शुद्ध, निर्मल और शांत है, और जिसमें अस्तित्व की लालसा समाप्त हो गई है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय चांदनी की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने पूज्य चंदाभा के संदर्भ में कहा था। राजगृह में एक धनी गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म हुआ।

उनकी नाभि के घेरे से चंद्रमा की डिस्क के समान प्रकाश निकलता था, और इसलिए उन्होंने उन्हें चांदनी, चंदाभ नाम दिया।

ब्राह्मणों ने मन ही मन सोचा, “यदि हम इसे अपने साथ ले जाएं, तो हम पूरे संसार को अपने वश में कर लेंगे।” तदनुसार, उन्होंने उसे एक रथ में बिठाया और अपने साथ लेकर चलने लगे। रास्ते में वे जिससे भी मिलते, उससे कहते, “जो कोई भी इस ब्राह्मण के शरीर को अपने हाथ से स्पर्श करेगा, उसे अमुक शक्ति और यश प्राप्त होगा।” लोग सौ या हजार सिक्के देकर ब्राह्मण के शरीर को स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त करते थे। इस प्रकार स्थान-स्थान घूमते हुए वे अंत में सावत्थी पहुंचे और शहर और मठ के बीच में ठहरने लगे।

अब सावत्थी में पाँच अरब श्रेष्ठ शिष्यों ने नाश्ते से पहले दान दिया; और नाश्ते के बाद, अपने हाथों में इत्र, मालाएँ, वस्त्र और औषधियाँ लेकर धम्म सुनने के लिए चले गए। जब ब्राह्मणों ने उन्हें देखा, तो उन्होंने उनसे पूछा, “तुम कहाँ जा रहे हो?” “बुद्ध के पास धम्म सुनने।” “अरे! वहाँ जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? हमारे ब्राह्मण चंद्रमुखी के समान कोई अलौकिक शक्ति नहीं है: जो उनके शरीर को स्पर्श करता है, उसे अष्टम शक्ति और यश प्राप्त होता है; आओ, उन्हें देखो।” “तुम्हारे ब्राह्मण की अलौकिक शक्ति क्या है? केवल हमारे गुरु ही महान अलौकिक शक्ति के स्वामी हैं।” और वे तुरंत बहस करने लगे, परन्तु दोनों पक्ष एक-दूसरे को समझाने में असफल रहे। अंत में, ब्राह्मणों ने कहा, “चलो मठ चलते हैं और पता लगाते हैं कि हमारे चंद्रमुखी या तुम्हारे गुरु में से किसके पास अधिक अलौकिक शक्ति है।” और उसे अपने साथ लेकर वे मठ की ओर चल पड़े।

जैसे ही चंद्रप्रकाश बुद्ध के पास पहुँचा, बुद्ध ने उसकी विशेष चमक को गायब कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब चंद्रप्रकाश बुद्ध के समक्ष खड़ा हुआ, तो वह मानो कोयले की टोकरी में बैठे कौवे जैसा लग रहा था। ब्राह्मण उसे एक तरफ ले गए, और तुरंत ही चमक फिर से प्रकट हो गई, पहले जैसी ही तेज। फिर वे उसे बुद्ध के समक्ष लाए, और तुरंत ही चमक गायब हो गई, ठीक वैसे ही जैसे पहली बार हुई थी। जब चंद्रप्रकाश तीसरी बार बुद्ध के समक्ष गया और उसने देखा कि चमक गायब हो गई है, तो उसने मन ही मन सोचा, “निस्संदेह इस व्यक्ति को कोई ऐसा मंत्र पता है जिससे वह इस चमक को गायब कर सकता है।” इसलिए उसने बुद्ध से पूछा, “क्या यह सच नहीं है कि आपको कोई ऐसा मंत्र पता है जिससे आप मेरी इस चमक को गायब कर सकते हैं?” “हाँ, मुझे ऐसा मंत्र पता है।” “तो फिर मुझे बताइए।” “यह मंत्र उस व्यक्ति को नहीं बताया जा सकता जिसने संसार से संन्यास नहीं लिया है।”

तब चंद्राभ ने अपने साथी ब्राह्मणों से कहा, “जैसे ही मैं यह मंत्र सीख लूँगा, मैं गुलाब-जगत में सर्वोपरि हो जाऊँगा। आप यहीं रहिए और मैं संसार त्यागकर कुछ ही दिनों में यह मंत्र सीख लूँगा।” इस प्रकार उसने बुद्ध से संघ में प्रवेश का अनुरोध किया, संसार त्याग दिया और बाद में संघ का पूर्ण सदस्य बन गया। बुद्ध ने उसे ध्यान का एक सूत्र सिखाया जिसमें शरीर के बत्तीस घटक भाग शामिल हैं। “यह क्या है?” चंदाभ ने पूछा। “यह वह विधि है जिसे आपको इस मंत्र को प्राप्त करने से पहले दोहराना होगा,” बुद्ध ने उत्तर दिया।

समय-समय पर ब्राह्मण उनके पास आकर पूछते, “क्या आपने मंत्र सीख लिया है?” “अभी नहीं, लेकिन सीख रहा हूँ।” कुछ ही दिनों में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब ब्राह्मण फिर से आकर उनसे पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, “जाओ! अब मैं उस अवस्था में पहुँच गया हूँ जहाँ से लौटना असंभव है।” भिक्षुओं ने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, “हे पूज्यवर, यह ब्राह्मण असत्य बोलता है, झूठ बोलता है।” बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, मेरे पुत्र का सांसारिक सुख समाप्त हो गया है; वह सत्य बोलता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 413)

कैंडं इव विमलं शुद्धं विप्पसन्नं अनाविलं

नन्दीभवपरिक्खिनं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

कैंडं इव : चंद्रमा की तरह; विमलं [विमला]: दोषों से मुक्त; शुद्धम् [सुधा]: शुद्ध; विप्पसन्नं [विप्पसन्ना]: असाधारण रूप से शांत; अनाविलम् [अनाविला]: अविचलित; नंदीभावपरिक्खिनं [नंदीभवपरिक्खिन]: जिसने उस लालसा को त्याग दिया है जो अस्तित्व के चक्र में आनंद लेती है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

वह पूर्णिमा के चंद्रमा के समान हैं—बिल्कुल निर्मल और बेदाग। वह शुद्ध, शांत, गंभीर और अत्यंत स्थिर हैं। वह विचलित नहीं हैं। उन्होंने जीवन चक्र में आनंद लेने वाली लालसा को त्याग दिया है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 414

———————————————————————

(धम्मपद413) <<<< पिछला || धम्मपद414 || अगला >>>> (धम्मपद415)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 414 - शिवलिथेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 414 - शिवलिथेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'mam palipatham duggam
संसारम मोहमाक्कागा
tinno parangato jhayi
अनेजो अकाथमकथी
anupadaya nibbuto
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 414 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस खतरनाक दलदल (वासनाओं के दलदल), इस कठिन मार्ग (नैतिक विकारों के मार्ग), जीवन के सागर (संसार) और अज्ञान के अंधकार (मोह) को पार कर लिया है, और चारों प्रकार की बाढ़ को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँच गया है; जो शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है, जो व्याकुलता और संशय से मुक्त है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है और पूर्ण शांति में रहता है।

थेरा सिवली की कहानी

कुंडाकोलिया शहर के पास कुंडाधना जंगल में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सिवली के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (414) कहा।

कुंडाकोलिया की राजकुमारी सुप्पवासा सात वर्षों तक गर्भवती रहीं और फिर सात दिनों तक प्रसव पीड़ा से गुज़रीं। वे बुद्ध, धम्म और संघ के अद्वितीय गुणों का चिंतन करती रहीं और अंत में उन्होंने अपने पति को बुद्ध के पास अपनी ओर से प्रणाम करने और अपनी स्थिति के बारे में सूचित करने के लिए भेजा। राजकुमारी की स्थिति जानने पर बुद्ध ने कहा, "सुप्पवासा संकट और दुःख से मुक्त हों; वे स्वस्थ और श्रेष्ठ पुत्र को सुरक्षित जन्म दें।" ये शब्द कहे जाने के ठीक बाद, सुप्पवासा ने अपने घर में पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन, बच्चे के जन्म के तुरंत बाद, बुद्ध और कुछ भिक्षुओं को उनके घर आमंत्रित किया गया। वहाँ भिक्षा दी गई और नवजात शिशु ने बुद्ध और भिक्षुओं को पानी पिलाया। बच्चे के जन्म का उत्सव मनाने के लिए, माता-पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को सात दिनों तक भोजन कराने के लिए अपने घर आमंत्रित किया।

जब बालक बड़ा हुआ तो उसे संघ में प्रवेश दिया गया और भिक्षु के रूप में वह सिवली के नाम से जाना जाने लगा। सिर मुंडवाते ही उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बाद में, वह सबसे अधिक दान ग्रहण करने वाले भिक्षु के रूप में प्रसिद्ध हुआ। दान ग्रहण करने में उसका कोई सानी नहीं था।

एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि अरहत बनने के सभी गुणों से युक्त सिवली को सात वर्ष तक अपनी माता के गर्भ में क्यों रखा गया था? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! पिछले जन्म में सिवली एक ऐसे राजा का पुत्र था जिसने अपना राज्य दूसरे राजा से हार दिया था। अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के प्रयास में उसने अपनी माता की सलाह पर नगर को घेर लिया था। परिणामस्वरूप, नगर के लोग सात दिनों तक भोजन और जल से वंचित रहे। इसी पाप के कारण सिवली को सात वर्ष तक अपनी माता के गर्भ में कैद रहना पड़ा। परन्तु अब सिवली के सभी दुःख समाप्त हो चुके हैं; उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 414 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस खतरनाक दलदल (वासनाओं के दलदल), इस कठिन मार्ग (नैतिक विकारों के मार्ग), जीवन के सागर (संसार) और अज्ञान के अंधकार (मोह) को पार कर लिया है, और चारों प्रकार की बाढ़ को पार करके दूसरे तट

(निर्वाण) पर पहुँच गया है; जो शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है, जो व्याकुलता और संशय से मुक्त है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है और पूर्ण शांति में रहता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गर्भ में सात साल

एक समय की बात है, कोलिया कुल की पुत्री सुप्पावासा सात वर्ष तक गर्भ में पलती रही। सात दिनों तक, जब तक बच्चा अविकसित अवस्था में था, वह असहनीय, तीव्र और पीड़ा से ग्रस्त रही। उसने मन ही मन कहा, "सचमुच, वह बुद्ध परम प्रबुद्ध हैं जो इस प्रकार के कष्टों को दूर करने वाले धर्म का उपदेश देते हैं। सचमुच, उस बुद्ध के शिष्यों का मार्ग धर्म के मार्ग पर चलना है, जो इस प्रकार के कष्टों को दूर करने के लिए धर्म का अनुसरण करते हैं। सचमुच, निर्वाण धन्य है, जहाँ इस प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता।" इन्हीं तीन विचारों के साथ उसने वह पीड़ा सहन की। फिर उसने अपने पति को बुद्ध के पास अपनी ओर से प्रणाम करने के लिए भेजा। जब उसके पति ने बुद्ध को प्रणाम किया और उसका संदेश दिया, तो बुद्ध ने कहा, "कोलिया कुल की युवती सुप्पावासा स्वस्थ रहे; वह स्वस्थ और सुखी पुत्र को जन्म दे।"

जैसे ही बुद्ध ने ये शब्द कहे, सुप्पावासा ने एक स्वस्थ और सुखी पुत्र को जन्म दिया। उन्होंने तुरंत बुद्ध की अध्यक्षता वाले संघ के भिक्षुओं को अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित किया और सात दिनों तक उदारतापूर्वक दान दिया। जन्म के दिन से ही उनके पुत्र ने छलनी सहित एक जलपात्र लेकर भिक्षुओं की सभा के लिए जल छानना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद उन्होंने संसार त्याग दिया, भिक्षु बन गए और अर्हतत्व प्राप्त किया। एक दिन भिक्षु सत्य के कक्ष में चर्चा करने लगे: "हे भाइयों, जरा सोचो! अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी गुणों से युक्त यह महान भिक्षु अपनी माता के गर्भ में इतने समय तक कष्ट सहता रहा! इस भिक्षु ने कितना बड़ा कष्ट सहा होगा!" बुद्ध पास आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने उसे बताया, तो उसने कहा, "भिक्षुओं, बात बिल्कुल सही है। मेरे पुत्र को इन सभी कष्टों से मुक्ति मिल गई है, और अब निर्वाण प्राप्त करके वह उसके आनंद में लीन है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 414)

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहं अक्कागा
तिनो परागतो झायी अनेजो अकथाकथी
अनुपादाय निब्बुतो तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यो : यदि कोई; इम : यह; पलिपथं [पलिपथ]: दलदल का मार्ग; दुग्गं [दुग्ग]: कठिन पारगमन; संसारं [संसार]: अस्तित्व का चक्र; मोहम् : अज्ञान; अच्चगा : पार कर गया है; तिन्नो [तिन्न]: दूसरे किनारे पर पहुँच गया है; पारगतो [पारगता]: पूरी तरह से दूसरी ओर चला गया है; झायी : ध्यान करता है; अनेजो [अनेज]: लालसा से रहित है; अकथंकथी : संदेह दूर कर लिया है; अनुपादाय : लोभ से रहित है; निब्बुतो [निब्बुत]: शांत है; स्थिर है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें

वह वासना के दलदल को पार कर चुका है। वह दोषों के कठिन मार्ग से परे जाकर जीवन चक्र को पार कर चुका है। वह पूर्णतः दूसरे तट पर पहुँच चुका है। वह ध्यानमग्न है और व्यथा से मुक्त है। उसके सभी आध्यात्मिक संदेह दूर हो चुके हैं। वह अब लोभ में लिप्त नहीं है। वह शांत हो चुका है। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 414)

अरहत सीवाली की कथा : इस महा अरहत ने अतीत में सबसे अधिक दान दिया। उन्होंने दान देने की कला का पूर्णतः अभ्यास किया। समय के साथ वे दान प्राप्त करने वालों के राजकुमार बन गए। उनके जीवन में एक उल्लेखनीय घटना तब घटी जब उनका जन्म विपस्सी बुद्ध के युग में हुआ था। उस समय राजा और उनकी प्रजा दान देने की कला में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। बुद्ध और संघ को दान देने का एक उत्सव चल रहा था। यह एक स्वस्थ और सुखद प्रतिस्पर्धा का विषय था। जब प्रजा की बारी आई, तो उनके पास दूध और शहद की कमी हो गई। यह भोजन दान देने में सफलता का मार्ग प्रशस्त करता था। उन्होंने पर्याप्त धन के साथ एक व्यक्ति को नगर द्वार पर निगरानी के लिए तैनात किया। उसकी मुलाकात एक युवक से हुई जो उनकी आवश्यकता की वस्तुएँ लेकर आ रहा था। खरीदार खरीदने के लिए उत्सुक था, लेकिन विक्रेता उतना उत्साहित नहीं था। परिणामस्वरूप, सौदेबाजी बहुत ज़ोर-शोर से हुई। पूर्व में सौदेबाजी की तुलना नदी में नाव चलाने से की जाती है। बोली एक सोने के सिक्के से शुरू हुई। भिक्षादान के बारे में जानकर विक्रेता पुण्य का भागी बनना चाहता था। यह जानकर कि कोई बाधा नहीं है, उसने पूछा कि क्या उनमें से कोई एक हजार सोने के सिक्के दे सकता है। यह जानकर कि कोई नहीं है, उसने कहा कि दही और शहद का बर्तन दो हजार सिक्कों के बराबर है और यदि अनुमति हो तो वह इसे मुफ्त में देने को तैयार है। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। हमें बताया जाता है कि बुद्ध की शक्ति से दही और शहद पर्याप्त पाए गए। उस अवसर पर उसकी यह इच्छा थी कि एक दिन वह दान प्राप्त करने वालों का मुखिया बने। इसके बाद, उसका गर्भ कोलिया के

राजा की पुत्री सुप्पावासा के गर्भ में आया। परिवार को अनेक वरदान प्राप्त हुए। भूमि उपजाऊ हो गई और खेतों में रिकॉर्ड तोड़ फसल हुई। जो कुछ भी दिया गया, प्राप्तकर्ता पूरी तरह संतुष्ट था। लेकिन माता और पुत्र दोनों ही अतीत के अकुशल कर्मों से अछूते नहीं थे । यदि संतान कमतर होती तो परिणाम दुखद होता। श्रद्धा ने चमत्कार कर दिखाया। बुद्ध में लोगों को एक निश्चित मार्गदर्शक मिला और कल्याण मित्रतासुप्पावास को स्वाभाविक रूप से लगा कि वह मृत्यु के करीब हैं। क्योंकि सातवें वर्ष के अंत में उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। तब उन्होंने अपने पति से विनती की कि वे बुद्ध और संघ के सभी सदस्यों को भिक्षा देने के लिए आमंत्रित करें। आमंत्रण मिलने पर भगवान बुद्ध ने देखा कि माता और पुत्र दोनों का उद्धार होगा। उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया और उसी क्षण बालक का जन्म हुआ। अत्यंत हर्षोल्लास हुआ। पति, जो अपना उदास घर छोड़कर गए थे, उल्लास और आनंद के बीच लौटे। इसलिए पुत्र का नाम सिवली रखा गया। इसके बाद सात दिनों तक बुद्ध और संघ के सभी सदस्यों को भिक्षा दी गई। सिवली अत्यंत प्रतिभावान बालक थे। सात दिनों के बाद - जब वे लगभग सात वर्ष के थे - बालों की पहली लट मुंडते ही उन्होंने संतत्व की पहली धारा में प्रवेश किया और अंतिम लट मुंडते ही वे पूर्णतः अर्हत बन गए। संघ में यह सर्वविदित था कि पूज्य सिवली दान प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 415

———————————————————————

(धम्मपद 414) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 415 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 416-I)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 415 - सुन्दरसमुद्दत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 415 - सुन्दरसमुद्दत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha kime pahantvana
anagaro paribbaje
कामभवपरिक्खिनाम
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 415 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में इंद्रिय सुखों का त्याग कर गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने इंद्रिय इच्छाओं का नाश कर लिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

———————————————————————

थेरा सुंदरसमुद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सुंदरसमुद्दा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (415) कहा।

सुंदरसमुद्दा सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। दीक्षा लेने के बाद वे ध्यान साधना करने के लिए सावत्थी से पैंतालीस योजन दूर स्थित राजगृह चले गए। एक दिन, जब सावत्थी में कुछ उत्सव चल रहे थे, सुंदरसमुद्दा के माता-पिता को उनकी बहुत याद आई; उन्हें अपने पुत्र के लिए भी बहुत दुख हुआ जो इन सभी सुख-सुविधाओं से वंचित था और वे रोने लगे। जब वे रो रहे थे, तभी एक वेश्या उनके पास आई और पूछा कि क्या बात है। उनके पुत्र के बारे में सुनकर वेश्या ने कहा, "यदि मैं आपके पुत्र को दीक्षा छोड़कर गृहस्थ जीवन में वापस ला सकूँ, तो आप मुझे क्या इनाम देंगे?" माता-पिता ने उत्तर दिया कि वे उसे धनवान बना देंगे। तब वेश्या ने बड़ी रकम माँगी और अपने कुछ अनुयायियों के साथ राजगृह चली गई।

राजगृह में, उसने एक सात मंजिला मीनारों वाला मकान किराए पर लिया, जो उस रास्ते पर था जहाँ थेरा सुंदरसमुद्दा भिक्षा मांगने आते थे। उसने अच्छा भोजन तैयार किया और उनका इंतज़ार करने लगी। पहले कुछ दिनों तक, उसने अपने घर के द्वार पर थेरा को भिक्षा दी। बाद में, उसने उन्हें अंदर आने का निमंत्रण दिया। इसी बीच, उसने कुछ बच्चों को पैसे देकर घर के ठीक बाहर खेलने के लिए भेज दिया, लगभग उसी समय जब थेरा भिक्षा मांगने आते थे। इससे उसे यह बहाना मिल गया कि निचली मंजिल पर बहुत धूल और शोर है; इसी बहाने उसने थेरा को ऊपरी मंजिल पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। थेरा मान गए और ऊपर चले गए, और जैसे ही वे कमरे में दाखिल हुए, वेश्या ने दरवाजा बंद कर दिया। फिर उसने थेरा को रिझाने का प्रयास शुरू कर दिया। उसने थेरा से कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया मेरे युवा और ऊर्जावान पति बनें, और मैं आपकी प्रिय पत्नी बनूँगी। हमारे लंबे और सुखी वैवाहिक जीवन के बाद हम दोनों संन्यास ग्रहण करके निर्वाण प्राप्त करने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेंगे।" ये शब्द सुनकर थेरा को अचानक अपनी गलती का एहसास हुआ और वे घबरा गए। फिर उन्होंने मन ही मन कहा, "वास्तव में, लापरवाही और असावधानी के कारण मैंने बहुत बड़ी गलती कर दी है।"

उसी क्षण, बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से राजगृह में थेरा सुंदरसमुद्दा के साथ घटित हो रही घटना को देखा। उन्होंने पूज्य आनंद को बुलाया और उनसे कहा, "आनंद! राजगृह में एक शिखर भवन की ऊपरी मंजिल पर सुंदरसमुद्दा और एक वेश्या के बीच संघर्ष चल रहा है; परन्तु अंत में थेरा की ही विजय होगी।" आनंद से यह कहने के बाद, बुद्ध ने अपना प्रकाश थेरा पर भेजा, उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और कहा, "हे मेरे पुत्र! दृढ़ निश्चय करो और धन और इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का त्याग करो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 415 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में इंद्रिय सुखों का त्याग कर गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने इंद्रिय इच्छाओं का नाश कर लिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

प्रवचन के अंत में थेरा ने अरहतत्व प्राप्त किया और अलौकिक शक्ति से छत को पार करके आकाश में चले गए और बुद्ध के पास पहुंचे।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक वेश्या एक भिक्षु को लुभाती है (सुंदरा समुद्दा)

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय, पूज्य सौंदर्य सागर, सुंदरसमुद्दा के संदर्भ में सुनाया था। कहा जाता है कि सावत्थी में, चालीस अरब खजाने वाले एक विशाल परिवार में, सौंदर्य सागर, सुंदरसमुद्दा कुमार नामक एक प्रतिष्ठित युवक का पुनर्जन्म हुआ। एक दिन नाश्ते के बाद, उन्होंने देखा कि बहुत से लोग अपने हाथों में इत्र और मालाएँ लिए जेतवन जा रहे हैं, धम्म का प्रवचन सुनने के लिए। उन्होंने पूछा, “आप कहाँ जा रहे हैं?” उन्होंने उत्तर दिया, “बुद्ध का धम्म प्रवचन सुनने।” उन्होंने कहा, “मैं भी चलूँगा,” और उनके साथ सभा के बाहरी घेरे में बैठ गए। बुद्ध के प्रवचन ने उन्हें संसार से संन्यास लेने के लिए प्रेरित किया। इसलिए, जब सभा विदा हुई, तो उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया। बुद्ध ने कहा, “बुद्ध किसी को भी संघ में तब तक शामिल नहीं करते जब तक कि उसने पहले अपने माता-पिता से अनुमति न ले ली हो।” उनकी अनुमति प्राप्त करने के बाद, उन्होंने संसार त्याग दिया और बुद्ध द्वारा संघ में प्रवेश प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण प्रतिज्ञा ली। तब उन्होंने मन में विचार किया, “यहाँ रहने का क्या लाभ?” अतः जेतवन छोड़कर वे राजगृह गए और वहाँ भिक्षा मांगने में अपना समय व्यतीत किया।

एक दिन सावत्थी में एक उत्सव था, और उस दिन सौंदर्य के सागर के माता-पिता ने अपने पुत्र के मित्रों को बड़े वैभव और वैभव के बीच आनंद लेते देखा। यह देखकर वे रोने और विलाप करने लगे, और कहने लगे, “अब तो हमारे पुत्र के बस की बात नहीं रही।” उसी क्षण एक वेश्या घर आई और उसकी माता को रोते हुए देखकर उससे पूछा, “माँ, आप क्यों रो रही हैं?” “मैं अपने पुत्र के बारे में सोचती रहती हूँ; इसीलिए रो रही हूँ।” “लेकिन, माँ, वह कहाँ है?” “संतों के बीच, संसार से विमुख होकर।” “क्या उसे संसार में वापस लाना उचित नहीं होगा?” “हाँ, बिल्कुल; लेकिन वह ऐसा नहीं चाहता। वह सावत्थी छोड़कर राजगृह चला गया है।” “मान लीजिए कि मैं उसे संसार में वापस लाने में सफल हो जाऊँ, तो आप मेरे लिए क्या करेंगे?” “हम आपको इस घर की सारी संपत्ति की स्वामिनी बना देंगे।” "ठीक है, मुझे मेरे खर्च दे दो।"

अपने खर्चों की राशि लेकर वह अपने साथ एक बड़ा दल लेकर राजगृह गई। पूज्यवर जिस गली में भिक्षा मांगने जाया करते थे, उसे ध्यान में रखते हुए उसने उसी गली में एक मकान लिया और उसमें रहने लगी। सुबह सवेरे वह उत्तम भोजन तैयार करती और जब पूज्यवर भिक्षा मांगने गली में आते, तो वह उन्हें भिक्षा देती। कुछ दिन बीतने के बाद उसने उनसे कहा, “पूज्यवर, यहीं बैठिए और भोजन कीजिए।” ऐसा कहते हुए उसने उनका भिक्षापात्र लेने की पेशकश की और पूज्यवर ने सहर्ष अपना भिक्षापात्र दे दिया। फिर उसने उन्हें

उत्तम भोजन परोसा और ऐसा करने के बाद उनसे कहा, "पूज्यवर, भिक्षा मांगने के लिए यह सबसे रमणीय स्थान है।" कुछ दिनों तक उसने उन्हें बरामदे में बैठने के लिए प्रेरित किया और वहाँ उन्हें उत्तम भोजन परोसा। उस स्त्री ने स्त्री के सभी गुणों और शालीनता का प्रयोग किया।

भिक्षु ने सोचा, "हाय, मैंने कितना बड़ा पाप कर दिया! मैंने अपने कर्मों पर ध्यान नहीं दिया।" और वह अत्यंत विचलित हुआ। उसी क्षण बुद्ध, यद्यपि पैंतालीस मील दूर जेतवन में विराजमान थे, उन्होंने यह सब देखा और मुस्कुराए। पूज्य आनंद ने उनसे पूछा, "पूज्यवर, आपके मुस्कुराने का कारण क्या है?" "आनंद, राजगृह नगर में, सात मंजिला महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर, सौंदर्य के सागर भिक्षु और एक वेश्या के बीच युद्ध चल रहा है।" "पूज्यवर, कौन जीतेगा और कौन हारेगा?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, सौंदर्य के सागर भिक्षु जीतेंगे और वेश्या हारेगी।" इस प्रकार भिक्षु की विजय की घोषणा करते हुए, बुद्ध अपने स्थान पर बैठे रहे और उन्होंने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की और कहा, "भिक्षु, दोनों कामवासनाओं का त्याग करो और इच्छाओं से मुक्त हो जाओ।" पाठ के अंत में भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया, जादुई शक्ति से वायु में विलीन हो गए, मंदिर के गोलाकार शिखर से गुज़रते हुए, और एक बार फिर सावत्थी लौटकर बुद्ध के शरीर की स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस घटना पर चर्चा करते हुए कहा, "भाइयों, जीभ से बोध होने वाले स्वादों के कारण पूज्य सौंदर्य-सागर लगभग खो गए थे, परन्तु बुद्ध उनके उद्धारक बने।" बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मैं स्वाद की लालसा के बंधन में बंधे इस भिक्षु का उद्धारक बना हूँ; ऐसा ही एक पूर्व जन्म में भी हुआ था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 415)
इधा यो कामे पहत्वाना अनागारो परिब्बाजे
कामभव परिक्खिनं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
इधा : इस संसार में: यो : यदि कोई व्यक्ति; कामे : इंद्रिय सुखों का त्याग कर चुका है; अनागारो [अनागारा]: (अपना जीवन) निर्जन बन जाता है; परिब्बजे : तपस्वी जीवन; (भटकते तपस्वी का जीवन); कामभव परिक्खीण [परिक्खीण]: जीवन चक्र को जारी रखने की इच्छा से मुक्त हो गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणो [ब्राह्मण]: ब्राह्मण घोषित करता हूँ

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 416-I

(धम्मपद 415) <<<< पिछला || धम्मपद 416-I || अगला >>>> (धम्मपद 416-II)

धम्मपद श्लोक 416-I - जतिलत्थेरा वत्थु
डॉ म्या टिन संस्करण
Yo'dha tanham pahantvana

anagaro paribbaje

तन्हभवपरिक्खिनाम

tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

थेरा जटिला की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा जटिला के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक 416-1 (1) का उच्चारण किया।

कश्यप बुद्ध के परनिर्वाण के तुरंत बाद, एक अर्हत थेरा, कश्यप बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करने के लिए एक स्वर्ण स्तूप के निर्माण हेतु दान इकट्ठा करने के लिए निकले। थेरा एक सुनार के घर गए, जहाँ सुनार और उसकी पत्नी के बीच तीखी बहस चल रही थी। सुनार ने थेरा पर चिल्लाते हुए कहा, "बेहतर होगा कि तुम अपना स्तूप पानी में फेंक दो और चले जाओ।" तब सुनार की पत्नी ने सुनार से कहा, "यदि तुम मुझसे नाराज़ हो, तो केवल मुझे ही अपशब्द कहो; चाहो तो मुझे पीट भी सकते हो; लेकिन बुद्ध और थेरा को अपशब्द कहने की क्या आवश्यकता है? तुमने तो घोर पाप किया है!" उसकी बात सुनकर सुनार को अपने किए की गंभीरता का एहसास हुआ और उसने प्रायश्चित करने का निश्चय किया। अतः उसने कुछ स्वर्ण पुष्प बनाए, उन्हें तीन स्वर्ण कलशों में रखा और कश्यप बुद्ध के स्तूप के अवशेष कक्ष में स्थापित करने के लिए अर्पित कर दिए।

अपने वर्तमान जीवन में, उनका जन्म एक धनी व्यक्ति की पुत्री के गर्भ में हुआ था, जिसका किसी अन्य व्यक्ति से अवैध प्रेम संबंध था। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उसने उसे एक घड़े में रखकर नदी में बहा दिया। नदी में स्नान कर रही एक युवती ने घड़े में बच्चे को देखा और उसे अपने साथ ले आई। उसने उसे गोद लिया और उसका नाम जटिला रखा। बाद में, एक थेरा की सलाह पर, उस युवती ने जटिला को तक्षशिला भेज दिया, जहाँ उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। तक्षशिला में रहते हुए, थेरा ने उनके लिए अपने एक शिष्य व्यापारी के घर में रहने की व्यवस्था की। कुछ समय बाद, जटिला ने व्यापारी की पुत्री से विवाह कर लिया। विवाह के तुरंत बाद, दंपति के लिए नवनिर्मित घर के पिछवाड़े में सोने का एक बड़ा ढेर प्रकट हुआ। इस विवाह से तीन पुत्रों का जन्म हुआ। इसके बाद, जटिला संघ में शामिल हो गए और कुछ ही दिनों में अर्हत बन गए।

एक बार जब बुद्ध जटिला समेत पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने निकले, तो वे जटिला के पुत्रों के घर पहुँचे। जटिला के पुत्रों ने पंद्रह दिनों तक बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी। कुछ समय बाद, भिक्षुओं ने जटिला से पूछा कि क्या वह अब भी अपने सोने के ढेर और अपने पुत्रों से आसक्त हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब उन्हें उनसे कोई आसक्ति नहीं है। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा कि जटिला अरहतत्व प्राप्त करने का झूठा दावा कर रहा है। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जटिला ने भोग-विलास और अहंकार से मुक्ति पा ली है; उसने वास्तव में अरहतत्व प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

(1) श्लोक 416 में दो कहानियां हैं। आगे थेरा ज्योतिका की कहानी पढ़ें।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 416-2

(धम्मपद 416-I) <<<< पिछला || धम्मपद 416-II || अगला >>>> (धम्मपद 417)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 416-2 - ज्योतिकत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 416-2 - ज्योतिकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha tanham pahantvana

anagaro paribbaje
तन्हभवपरिक्खिनाम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

थेरा ज्योतिका की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा ज्योतिका के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक 416-II (1) का उच्चारण किया।

जोतिका राजगृह के एक प्रसिद्ध धनी व्यक्ति थे। वे सात मंजिला शिखरों वाले एक भव्य महल में रहते थे। उनके महल के चारों ओर सात दीवारें थीं, जिनमें से प्रत्येक के प्रवेश द्वार पर देवदूत पहरा देते थे। उनकी संपत्ति की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी और कई लोग उनके महल को देखने आते थे। एक बार राजा बिम्बिसार जोतिका से मिलने आए; वे अपने पुत्र अजातसत्तु को भी साथ लाए थे। अजातसत्तु ने जोतिका के महल की भव्यता देखकर प्रतिज्ञा की कि जब वे राजा बनेंगे तो जोतिका को ऐसे भव्य महल में रहने नहीं देंगे। राजा के विदा होने पर जोतिका ने उन्हें एक बड़ा अनमोल माणिक भेंट किया। जोतिका की यह प्रथा थी कि वे अपने सभी आगंतुकों को उपहार देते थे।

अपने पिता की हत्या करके जब अजातसत्तु सिंहासन पर बैठा, तो वह अपने सैनिकों के साथ ज्योतिका के महल पर जबरदस्ती कब्जा करने आया। लेकिन चूंकि सभी द्वारों पर दिव्य राक्षसों का पहरा था, इसलिए अजातसत्तु और उसके सैनिकों को पीछे हटना पड़ा। अजातसत्तु वेलुवन मठ में भाग गया और वहाँ उसने ज्योतिका को बुद्ध का प्रवचन सुनते हुए पाया। ज्योतिका को बुद्ध के चरणों में देखकर अजातसत्तु ने कहा, "अपने रक्षकों को मुझसे लड़वाने के बाद, अब तुम प्रवचन सुनने का नाटक कर रहे हो!" ज्योतिका समझ गया कि राजा जबरदस्ती उसका स्थान लेने आया था और उसे पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा था।

पिछले जन्म में ज्योतिका ने यह गंभीर मनोकामना की थी कि उनकी संपत्ति उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे न छीनी जाए, और यह मनोकामना पूरी हुई थी। इसलिए ज्योतिका ने राजा अजातसत्तु से कहा, "हे राजा! मेरी संपत्ति मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं छीनी जा सकती।" यह कहते हुए उन्होंने अपनी दस उंगलियां फैलाईं और राजा से अपनी उंगलियों में पहनी हुई बीस अंगूठियां उतारने को कहा। राजा ने उन्हें उतारने का बहुत प्रयास किया, लेकिन सफल नहीं हुए। तब ज्योतिका ने राजा से एक कपड़ा बिछाने को कहा और जैसे ही ज्योतिका ने अपनी उंगलियां कपड़े पर रखीं, उनकी सभी अंगूठियां आसानी से उतर गईं। राजा अजातसत्तु को अपनी सभी अंगूठियां देने के बाद, ज्योतिका ने बुद्ध से संघ में प्रवेश करने की अनुमति मांगी। संघ में प्रवेश करने के शीघ्र ही ज्योतिका ने अर्हत पद प्राप्त कर लिया।

एक दिन जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि क्या उनके मन में अपने महल, धन और पत्नी के लिए कोई लालसा शेष है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब उनके मन में इन सब के लिए कोई लालसा नहीं है। तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और बोले, “हे पूज्यवर! थेरा ज्योतिका दावा करते हैं कि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वे झूठ बोल रहे हैं।” बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! ज्योतिका सत्य कहते हैं; उनके मन में अब कोई लालसा नहीं है। वे अब अर्हत हैं।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

---

(1) श्लोक 416 में दो कहानियां हैं। थेरा जटिला की कहानी पढ़ें।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अजातसत्तु ने ज्योतिका के महल पर हमला किया

यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय पूज्य ज्योतिका के संदर्भ में पढ़ा था।

अजातसत्तु कुमार ने देवदत्त के साथ मिलकर अपने पिता बिम्बिसार की हत्या कर दी और राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। तब उसने मन ही मन कहा, “मैं अब कोषाध्यक्ष के महान महल ज्योतिका पर कब्जा करूँगा।” और युद्ध के लिए तैयार होकर वह निकल

पड़ा। परन्तु रत्नजड़ित दीवारों में अपनी और अपने दल की परछाई देखकर उसने यह निष्कर्ष निकाला, "गृहस्थ युद्ध के लिए तैयार होकर अपनी सेना के साथ आ गया है।" अतः उसने महल के पास जाने का साहस नहीं किया।

उस दिन कोषाध्यक्ष ने व्रत का दायित्व ग्रहण किया था और सुबह नाश्ते के तुरंत बाद मठ में जाकर बुद्ध के धर्मोपदेश सुनने बैठ गया था। जब प्रथम द्वार पर पहरा दे रहे यक्ष यमकोली ने अजातसत्तु कुमार को देखा, तो उसने पुकार कर पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?" और तुरंत ही अजातसत्तु कुमार और उसके साथियों को खदेड़कर उनका चारों ओर पीछा किया। राजा ने उसी मठ में शरण ली जहाँ कोषाध्यक्ष गया था। जब कोषाध्यक्ष ने राजा को देखा, तो वह अपनी कुर्सी से उठा और बोला, "महाराज, क्या बात है?" राजा ने कहा, "हे गृहस्थ, अपने आदमियों को मुझसे लड़ने का आदेश देने के बाद तुम यहाँ बैठकर धर्मोपदेश सुनने का नाटक क्यों कर रहे हो?"

कोषाध्यक्ष ने कहा, "महाराज, क्या आप मेरा घर छीनने के इरादे से निकले थे?" "जी हाँ, मैं इसी उद्देश्य से निकला था।" "महाराज, हज़ार राजा भी मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा घर नहीं छीन सकते।" इस पर अजातसत्तु क्रोधित हो गया और बोला, "लेकिन क्या तुम राजा बनना चाहते हो?" "नहीं," कोषाध्यक्ष ने उत्तर दिया, "मैं राजा नहीं बनना चाहता। लेकिन न तो राजा और न ही लुटेरे मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझसे एक छोटा सा धागा भी छीन सकते हैं।" "तो क्या मैं आपकी अनुमति से घर ले सकता हूँ?" "महाराज, मेरी दस उंगलियों में बीस अंगूठियाँ हैं। मैं उन्हें तुम्हें नहीं दूँगा। अगर तुम ले सकते हो तो ले लो।"

राजा जमीन पर बैठ गया और हवा में उछला, अठारह हाथ की ऊँचाई तक; फिर खड़ा होकर दोबारा हवा में उछला, अस्सी हाथ की ऊँचाई तक। लेकिन अपनी अपार शक्ति के बावजूद, चाहे वह इधर-उधर कितना भी मुड़ जाए, वह कोषाध्यक्ष की उंगलियों से एक भी अंगूठी नहीं निकाल सका। तब कोषाध्यक्ष ने राजा से कहा, "महाराज, अपना लबादा फैलाइए।" जैसे ही राजा ने अपना लबादा फैलाया, कोषाध्यक्ष ने अपनी उंगलियाँ सीधी कीं, और तुरंत ही सारी बीस अंगूठियाँ निकल गईं।

तब कोषाध्यक्ष ने उनसे कहा, "महाराज, मेरी इच्छा के विरुद्ध आप मेरी संपत्ति नहीं ले सकते।" राजा के इस कार्य से व्यथित होकर उन्होंने कहा, "महाराज, मुझे संसार त्याग कर भिक्षु बनने की अनुमति दीजिए।" राजा ने मन ही मन सोचा, "यदि यह कोषाध्यक्ष संसार त्याग कर भिक्षु बन जाए, तो मेरे लिए उसके महल पर अधिकार करना आसान हो जाएगा।" अतः उन्होंने एक शब्द में कहा, "भिक्षु बन जाओ।" इसके बाद कोषाध्यक्ष ज्योतिका ने संसार त्याग कर बुद्ध के शिष्य बन गए और कुछ ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे पूज्य ज्योतिका के नाम से जाने गए। अर्हतत्व प्राप्त करते ही उनका सारा धन और सांसारिक वैभव लुप्त हो गया और देवता उनकी पत्नी सतुलकाय को एक बार फिर उत्तरकुरु ले गए।

एक दिन भिक्षुओं ने ज्योतिका से कहा, "भाई ज्योतिका, क्या तुम्हें अपने महल या अपनी पत्नी की कोई लालसा है?" ज्योतिका ने उत्तर दिया, "नहीं, भाइयों।" तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ का दोषी है।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह बिल्कुल सत्य है कि मेरे पुत्र को इनमें से किसी भी चीज की लालसा नहीं है।" और धम्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 416)

इधा यो तन्हां पहत्वाना अनागारो परिब्बाजे

तन्हाभाव परिक्खिनं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा : इस संसार में; यो : यदि कोई; तन्हं [तन्ह]: लालसा; पहत्वाना : त्याग दिया है; अनागारो [अनागार]: (घर ले जाया गया) बेघर; परिब्बजे : एक भटकते तपस्वी का जीवन; तन्हाभव परिक्खीण [परिक्खीण]: जीवन चक्र को जारी रखने की लालसा से मुक्त हो गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मण [ब्राह्मण]: एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

इस संसार में उन्होंने घुमंतू तपस्वी का जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया है। उन्होंने जीवन चक्र को जारी रखने की लालसा का त्याग कर दिया है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 417

———————————————————————

(धम्मपद 416-II) <<<< पिछला || धम्मपद 417 || अगला >>>> (धम्मपद 418)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 417 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 417 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
हित्वा मनुसकम योगम
dibbam yogam upaccaga
सब्बयोगविसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 417 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने मनुष्य जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) का त्याग कर दिया है, देव (देवदूत) जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) से परे जाकर सभी आसक्ति से पूर्णतः मुक्त हो गया है।

थेरा नटपुत्तका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (417) का उच्चारण किया, जो एक नर्तकी के पुत्र थे, थेरा नटपुत्तक के संदर्भ में।
एक बार एक नर्तक का पुत्र गलियों में गाते-नाचते घूम रहा था, तभी उसे बुद्ध का प्रवचन सुनने का अवसर मिला। प्रवचन सुनने के बाद उसने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। एक दिन जब बुद्ध और नटपुत्तक सहित अन्य भिक्षु भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्हें गली में एक अन्य नर्तक का पुत्र नाचता हुआ मिला। उस युवक को नाचते देख अन्य भिक्षुओं ने नटपुत्तक से पूछा कि क्या उसे अभी भी नृत्य करना पसंद है। नटपुत्तक ने उत्तर दिया, "नहीं, मुझे नहीं।" तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि थेरा नटपुत्तक झूठा दावा कर रहा है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। इस पर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! नटपुत्तक सभी आसक्ति के बंधनों से मुक्त हो गया है; वह अर्हत बन गया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 417 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने मनुष्य जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) का त्याग कर दिया है, देव (देवदूत) जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) से परे जाकर सभी आसक्ति से पूर्णतः मुक्त हो गया है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस भिक्षु की कहानी जो कभी मूक कलाकार हुआ करता था
कहा जाता है कि एक मूक अभिनय करने वाला (अभिनेता), जो जगह-जगह प्रदर्शन करता था, ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, जिसके बाद उसने संसार त्याग दिया, भिक्षु बन गया और अर्हतत्व प्राप्त किया। एक दिन, जब वह बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह के साथ भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश कर रहा था, तो भिक्षुओं ने एक मूक अभिनय करने वाले को प्रदर्शन करते देखा। तब उन्होंने उस भिक्षु से, जो कभी मूक अभिनय करता था, पूछा, “भाई, वह मूक अभिनय करने वाला ठीक वैसा ही प्रदर्शन कर रहा है जैसा आप किया करते थे; क्या आपको इस प्रकार के जीवन की कोई लालसा नहीं है?” “नहीं, भाई,” भिक्षु ने उत्तर दिया। भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, “आदरणीय, यह भिक्षु असत्य बोलता है, यह झूठ का दोषी है।” जब बुद्ध ने उनकी यह बात सुनी, तो उन्होंने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, मेरे पुत्र ने सभी बंधनों को पार कर लिया है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 417)
मानुसकं योगं हित्वा दिब्बं योगं उपचगा
सभ योग विसं युत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
मानुसकं योगं [योग]: मानवीय बंधन; हित्वा : त्याग दिया; दिब्बं योगं [योग]: दिव्य; स्वर्गीय बंधन; उपच्चगा : पार कर लिया; सब्बा योग विसं युत्तं [युत्त]: सभी बंधनों से मुक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ
उन्होंने मानवता से जुड़े बंधनों का त्याग कर दिया है। वे स्वर्ग में जीवन के आसक्ति बंधनों से भी परे जा चुके हैं। इस प्रकार वे सभी बंधनों से मुक्त हो गए हैं। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण घोषित करता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 417)
यह श्लोक एक मूक अभिनयकर्ता की कहानी से प्रेरित है। इस व्यक्ति ने अथक परिश्रम से आध्यात्मिक साधना के सर्वोच्च फल प्राप्त किए। इस आध्यात्मिक प्रयास को 'पधान ' कहा गया है। अष्टांग मार्ग (सम्मा-वायाम) के छठे चरण में चार उचित प्रयास (सम्मा-पधान) इस प्रकार हैं: (1) बचने का प्रयास (संवर-पधान), (2) विजय प्राप्त करने का प्रयास (पहाना), (3) विकास करने का प्रयास (

भावना), (4) बनाए रखने का प्रयास (अनुरक्खण): (i) अकुशल अवस्थाओं, जैसे बुरे विचारों आदि से बचने का प्रयास , (ii) अकुशल अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयास, (iii) लाभकारी अवस्थाओं , जैसे ज्ञान के सात तत्वों (बोज्झंग) का विकास करने का प्रयास , (iv) लाभकारी अवस्थाओं को बनाए रखने का प्रयास।

भिक्षु अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है ताकि असंपूर्ण और अवांछित तत्वों को उत्पन्न होने से रोका जा सके ... उन पर विजय प्राप्त की जा सके ... उन अवांछित तत्वों को विकसित किया जा सके... उन्हें बनाए रखा जा सके , उन्हें लुप्त न होने दिया जाए, बल्कि उन्हें विकास, परिपक्वता और पूर्णता की ओर ले जाया जा सके। वह प्रयास करता है, अपनी ऊर्जा को समेटता है, अपने मन को लगाता है और मेहनत करता है।

(1) हे भिक्षुओं, अब प्रयास क्या है? किसी रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, शारीरिक या मानसिक अनुभूति को ग्रहण करते हुए, भिक्षु न तो संपूर्ण पर ध्यान देता है और न ही उसके अंशों पर। वह उन चीजों से बचने का प्रयास करता है जिनसे लोभ और दुःख जैसी बुरी और अस्वस्थ चीजें उत्पन्न हो सकती हैं, यदि वह इंद्रियों को अनियंत्रित छोड़ दे; और वह अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, उन्हें वश में करता है। इसे ही प्रयास कहा जाता है।

(2) अब किस बात पर विजय प्राप्त करने का प्रयास है? भिक्षु कामुक वासना या किसी अन्य बुरी, अस्वास्थ्यकर अवस्था का कोई विचार अपने मन में नहीं रखता; वह उन्हें त्याग देता है, उनका निवारण करता है, उन्हें लुप्त कर देता है। इसी को विजय प्राप्त करने का प्रयास कहते हैं।

(3) अब किस चीज़ को विकसित करने का प्रयास है? भिक्षु एकांत, वैराग्य, निर्गमन और मुक्ति की ओर उन्मुख होकर ज्ञानोदय के कारकों को विकसित करता है, अर्थात्, सती (सती), धम्मविचय (धम्मविचय), समाधि (समाधि), प्रयास (वीर्य), पीति (आनंद), विश्राम (पस्साद्धि), समभाव (उपेक्खा)। इसे ही विकास का प्रयास कहा जाता है।

(4) अब किस बात को बनाए रखने का प्रयास है? भिक्षु अपने मन में एकाग्रता के लिए किसी अनुकूल वस्तु को दृढ़ता से धारण करता है, जैसे कि कंकाल की मानसिक छवि, कृमिग्रस्त शव, नीले-काले रंग का शव, सड़ता हुआ शव, घावों से भरा शव, सूजा हुआ शव। इसे ही बनाए रखने का प्रयास कहा जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 418

(धम्मपद 417) <<<< पिछला || धम्मपद 418 || अगला >>>> (धम्मपद 419 और 420)

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 418 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 418 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Hitva ratim ca aratim ca
sitabultam nirupadhim(1)
sabbalokabhihhum(2) viram
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 418 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने (इंद्रिय सुखों में) आनंद लेना त्याग दिया है और (एकांत में) आनंद नहीं लेता; जिसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है और नैतिक विकारों से मुक्त है; जिसने सभी पाँच खंधों (शाब्दिक रूप से, संसार) पर विजय प्राप्त कर ली है और परिश्रमी है।

---

1. निरुपधिम: टीका के अनुसार, "निरुपधिम ति निरुपक्किलसम", अर्थात, आधार से मुक्त या नैतिक दोषों से मुक्त (किलेसा)।

2. सब्बलोकभिह्हुम: शाब्दिक अर्थ, जिसने समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर ली हो, अर्थात् जिसने पुनर्जन्मों का अंत कर दिया हो, या खन्धों के उद्‌भव को समाप्त कर दिया हो।

———————————————————————————

थेरा नटपुत्तका की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (418) का उच्चारण किया, जो एक अन्य नर्तकी के पुत्र, एक अन्य थेरा नटपुत्तक के संदर्भ में था।
पिछली कहानी की तरह ही, एक नर्तक के पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और अर्हतत्व प्राप्त किया। अन्य भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें थेरा नटपुत्तक के बारे में बताया, जिसने अर्हतत्व प्राप्त करने का दावा किया था। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! नटपुत्तक ने सभी चीजों में आनंद लेना त्याग दिया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 418 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने (इंद्रिय सुखों में) आनंद लेना त्याग दिया है और (एकांत में) आनंद नहीं लेता; जिसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है और नैतिक विकारों से मुक्त है; जिसने सभी पाँच खंधों (शाब्दिक रूप से, संसार) पर विजय प्राप्त कर ली है और परिश्रमी है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस भिक्षु की कहानी जो कभी मूक कलाकार हुआ करता था
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में दिया था जो कभी मूक अभिनय करता था।
यह कहानी पहले वाली कहानी के समान ही है, सिवाय इसके कि इस अवसर पर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र ने सुख और दुख दोनों को त्याग दिया है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 418)
रतिं च अरतिं च हित्वा सतीभूतं निरूपधिं
सब्बलोकाभिभूं वीरं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
रतं च : कामवासना और निर्वाहिता दोनों; हित्वा : त्याग दिया; सीतिभूतं [सीतिभूत]: वह शांत, स्थिर और शीतल हो गया है; निरूपधिं [निरूपधि]: पूर्णतः दोषों से मुक्त; सब्बलोकभिभु [सब्बलोकभिभु]: जिसने समस्त विश्व पर विजय प्राप्त कर ली है; वीरं [वीर] : परिश्रम से परिपूर्ण; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।
उसने कामवासना का त्याग कर दिया है। उसने ध्यान साधना के प्रति अपनी अरुचि का भी त्याग कर दिया है। इस प्रकार, वह कामवासना से रहित भी है और कामवासना से मुक्त भी। उसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है। वह हाथ को दूषित करने वाले दोषों से मुक्त है। उसने समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर ली है और वह परिश्रम से परिपूर्ण है। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 418)
निरूपधि : उपाधि से मुक्त । उपाधि का अर्थ है: अस्तित्व का आधार। टीकाओं में इसके चार प्रकार बताए गए हैं: पाँच समूह (खन्ध), काम , मानसिक दोष (किलेष), और कर्म। सूत्र में यह अक्सर आता है और निर्वाण के संदर्भ में "सभी आधारों का त्याग" (सब्ब ' उपाधिपतिनिसग्गो) वाक्यांश में मिलता है। उपाधि से विरक्ति , अस्तित्व का अवक्रम, विवेकवा की ओर ले जाता है , जिसका अर्थ है वैराग्य, एकांत। निद्देश के अनुसार, विवेकवा तीन प्रकार का होता है: (1) शारीरिक वैराग्य (काया-विवेक), अर्थात् आकर्षक इंद्रिय-संबंधी वस्तुओं से मुक्त एकांत में रहना; (2) मानसिक वैराग्य (चित्त-विवेक), जैसे इंद्रिय-संबंधी चीजों से आंतरिक वैराग्य; (3) अस्तित्व के आधार से वैराग्य (उपधि-विवेक)।
वीरं : वीर। यहाँ इस शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक अर्थ में ऐसे व्यक्ति के लिए किया गया है जो आध्यात्मिक पौरुष से परिपूर्ण हो। इस पौरुष को वीरय कहा जाता है : ऊर्जा, शाब्दिक अर्थ है पौरुष, पुरुषत्व या वीरता (वीर से व्युत्पन्न, पुरुष, वीर)। वीरय पाँच आध्यात्मिक शक्तियों में से एक है , ज्ञानोदय के सात कारकों में से एक है और अष्टांगिक मार्ग के सही प्रयास के समान है। वीरय भी बल का एक रूप है। बल का अर्थ है शक्ति। विभिन्न शक्ति समूहों में से, ग्रंथों में निम्नलिखित पाँच सबसे अधिक बार पाए जाते हैं: (1) श्रद्धा (सद्धा), (2) ऊर्जा (वीरय), (3) सती (सति), (4) समाधि (सम्मोहन), (5) ज्ञान (पञ्ञा)।
इन इंद्रियों की विशिष्ट विशेषता, जो इन्हें अन्य पाँच इंद्रिय शक्तियों से अलग करती है , यह है कि ये अपने विपरीत गुणों से अविचलित रहती हैं: (1) विश्वास की शक्ति अविश्वास से अविचलित रहती है, (2) ऊर्जा आलस्य से, (3) सजगता विस्मरण से, (4) एकाग्रता विचलितता से, (5) ज्ञान अज्ञान से। अतः ये इंद्रिय शक्तियों की दृढ़ता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शक्ति (1) धारा-विजेता के चार गुणों (सोतापन्नस्स अंगानि) में, (2) चार सही प्रयासों (पधान) में, (3) ध्यान के चार आधारों (सतिपट्टाना) में, (4) चार समाधि (झान) में, और (5) चार आर्य सत्यों (सच्च) की पूर्ण समझ में प्रकट होती है।

———————————————————————

(धम्मपद 418) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 419 और 420 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 421)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 419 और 420 - वंगीसत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद छंद 419 और 420 - वंगीसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Cutim yo vedi sattanam
upapattinca sabbaso
asattam sugatam buddham
tamaham brumi brahmanam.
Yassa gatim na jananti
देव गंधब्बामनुसा
खिनासवम् अरहन्तम्
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 419 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियों के जन्म और मृत्यु को विस्तार से जानता है, जो विरक्त है, जो अच्छे आचरण का पालन करता है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

———————————————————————

श्लोक 420 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसका गंतव्य देव (देवदूत) या गंधब या मनुष्य नहीं जानते, जिसने नैतिक मादक पदार्थों का उन्मूलन कर दिया है और जो एक अरहत है।

———————————————————————

थेरा वांगिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा वंगीसा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (419) और (420) का उच्चारण किया।

एक समय राजगृह में वांगिसा नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो किसी मृत व्यक्ति की खोपड़ी पर हल्के से स्पर्श करके बता देता था कि वह व्यक्ति देवताओं के लोक में, मनुष्यों के लोक में या चार निम्न लोकों (अपय) में से किसी एक में पुनर्जन्म लेगा। ब्राह्मण वांगिसा को कई गांवों में ले जाते थे और लोग उसके पास आते थे और अपने मृत रिश्तेदारों के पुनर्जन्म के स्थान का पता लगाने के लिए उसे दस, बीस या सौ रुपये देते थे।

एक बार वांगिसा और उनके साथी जेतवन मठ से कुछ ही दूरी पर एक स्थान पर पहुँचे। बुद्ध के पास जा रहे उन लोगों को देखकर ब्राह्मणों ने उन्हें वांगिसा के पास आने का निमंत्रण दिया, क्योंकि वांगिसा बता सकते थे कि उनके रिश्तेदारों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ था। लेकिन बुद्ध के शिष्यों ने उनसे कहा, "हमारे गुरु अद्वितीय हैं, वे ही एकमात्र प्रबुद्ध हैं।" ब्राह्मणों ने इस कथन को एक चुनौती के रूप में लिया और बुद्ध से प्रतिस्पर्धा करने के लिए वांगिसा को अपने साथ जेतवन मठ ले गए। बुद्ध ने उनके इरादे को जानते हुए भिक्षुओं को निरयण/नरक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, पशुलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, देवलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति और एक अरहत की खोपड़ियाँ लाने का निर्देश दिया। फिर उन पाँचों खोपड़ियों को एक पंक्ति में रखा गया। जब वांगिसा को वे खोपड़ियाँ दिखाई गईं, तो वे पहली चार खोपड़ियों के मालिकों के पुनर्जन्म के स्थान बता सके, लेकिन जब वे अरहत की खोपड़ी पर पहुँचे, तो वे असमंजस में पड़ गए। तब बुद्ध ने कहा, "वांगिसा, क्या तुम नहीं जानते? मुझे पता है कि उस खोपड़ी का

स्वामी कहाँ है।" तब वांगिसा ने बुद्ध से वह मंत्र (जादुई मंत्र) माँगी जिससे वह यह जान सके; परन्तु बुद्ध ने कहा कि वह मंत्र केवल भिक्षु को ही दिया जा सकता है। तब वांगिसा ने ब्राह्मणों से कहा कि जब तक उसे मंत्र सिखाया जा रहा है, वे मठ के बाहर प्रतीक्षा करें। इस प्रकार, वांगिसा भिक्षु बन गया और भिक्षु के रूप में, बुद्ध ने उसे शरीर के बत्तीस तत्वों का ध्यान करने का निर्देश दिया। वांगिसा ने बुद्ध के निर्देशानुसार लगन से ध्यान का अभ्यास किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
जब मठ के बाहर प्रतीक्षा कर रहे ब्राह्मण वांगिसा से यह पूछने आए कि क्या उन्होंने मंत्र प्राप्त कर लिया है, तो वांगिसा ने कहा, "आप सभी को अब चले जाना चाहिए; मैं अब आपके साथ नहीं चलूँगा।" अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर सोचा कि वह झूठ बोल रहे हैं, इसलिए वे बुद्ध के पास गए और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! वांगिसा अरहतत्व प्राप्त करने का झूठा दावा कर रहे हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! वांगिसा वास्तव में प्राणियों के जन्म और मृत्यु को जानते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 419 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियों के जन्म और मृत्यु को विस्तार से जानता है, जो विरक्त है, जो अच्छे आचरण का पालन करता है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

श्लोक 420 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसका गंतव्य देव (देवदूत) या गंधब या मनुष्य नहीं जानते, जिसने नैतिक मादक पदार्थों का उन्मूलन कर दिया है और जो एक अरहत है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
खोपड़ी तराशने वाले की कहानी
ऐसा प्रतीत होता है कि राजगृह में वंगीसा नामक एक ब्राह्मण रहते थे, जो यह बता सकते थे कि मृत्यु के बाद मनुष्य किस अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं। वे मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर कहते थे, “यह खोपड़ी उस व्यक्ति की है जिसने नरक में पुनर्जन्म लिया है; यह व्यक्ति पशु के रूप में पुनर्जन्म लिया है; यह व्यक्ति प्रेत के रूप में पुनर्जन्म लिया है; यह खोपड़ी उस व्यक्ति की है जिसने मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लिया है।”
ब्राह्मणों ने मन ही मन सोचा, “हम इस व्यक्ति का उपयोग दुनिया को लूटने के लिए कर सकते हैं।” इसलिए उन्होंने उसे दो लाल वस्त्र पहनाए और उसे अपने साथ देश-देश में ले गए। वे हर किसी से कहते, “यह ब्राह्मण वंगीसा मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर बता सकता है कि उनका पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है; उससे पूछो कि तुम्हारे अपने सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है।” लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे दस, बीस या सौ सिक्के देते और उससे पूछते कि उनके सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है।
स्थान-स्थान यात्रा करने के बाद, वे अंततः सावत्थी पहुँचे और जेतवन के पास अपना निवास स्थान बनाया। नाश्ते के बाद उन्होंने देखा कि बड़ी संख्या में लोग अपने हाथों में इत्र, मालाएँ आदि लिए धम्म सुनने जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, “आप कहाँ जा रहे हैं?” उत्तर मिला, “धम्म सुनने के लिए मठ जा रहे हैं।” ब्राह्मणों ने पूछा, “वहाँ जाकर आपको क्या लाभ होगा? हमारे साथी ब्राह्मण वंगीसा के समान कोई नहीं है। वे मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर बता सकते हैं कि उनका पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है। उनसे पूछिए कि आपके अपने सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है।” शिष्यों ने उत्तर दिया, “वंगीसा को क्या पता है? हमारे गुरु, जो बुद्ध हैं, उनके समान कोई नहीं है।” लेकिन ब्राह्मणों ने जवाब दिया, “वांगीसा जैसा कोई नहीं है,” और विवाद और बढ़ गया। अंत में शिष्यों ने कहा, “चलो, अब हम पता लगाते हैं कि हम दोनों में से कौन अधिक ज्ञानी है, तुम्हारा वांगीसा या हमारा गुरु।” अतः वे ब्राह्मणों को अपने साथ लेकर मठ की ओर चल पड़े।
बुद्ध को जब पता चला कि वे आ रहे हैं, तो उन्होंने पाँच खोपड़ियाँ मंगवाईं और उन्हें एक पंक्ति में रख दिया। इनमें से एक खोपड़ी उन पुरुषों की थी जिनका पुनर्जन्म चार लोकों में हुआ था: नरक, पशुलोक, मनुष्यलोक और देवतालोक; और एक खोपड़ी उस पुरुष की थी जिसने अर्हतत्व प्राप्त किया था। जब वे पहुँचे, तो उन्होंने वंगीसा से पूछा, “क्या तुम वही पुरुष हो जिनके बारे में कहा जाता है कि मरे हुए पुरुषों की खोपड़ियों पर थपथपाकर तुम बता सकते हो कि उनका पुनर्जन्म किस लोक में हुआ है?” “हाँ,” वंगीसा ने कहा। “तो यह खोपड़ी किसकी है?” वंगीसा ने खोपड़ी पर थपथपाकर कहा, “यह उस पुरुष की खोपड़ी है जिसका पुनर्जन्म नरक में हुआ है।” “बहुत खूब!” बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा। फिर बुद्ध ने उनसे अगली तीन खोपड़ियों के बारे में पूछा, और वंगीसा ने बिना कोई गलती किए उत्तर दिया। बुद्ध ने उनके प्रत्येक उत्तर पर उनकी प्रशंसा की और अंत में उन्हें पाँचवीं खोपड़ी दिखाई। “यह खोपड़ी किसकी है?” उन्होंने पूछा। वंगीसा ने पांचवीं खोपड़ी पर भी उसी तरह दस्तक दी जैसे उसने बाकी खोपड़ियों पर दी थी, लेकिन उसने स्वीकार किया कि वह नहीं जानता कि वह व्यक्ति अस्तित्व की किस अवस्था में पुनर्जन्म लिया था।

तब बुद्ध ने कहा, “वंगीसा, क्या तुम नहीं जानते?” “नहीं,” वंगीसा ने उत्तर दिया, “मैं नहीं जानता।” “मैं जानता हूँ,” बुद्ध ने कहा। तब वंगीसा ने उनसे पूछा, “मुझे यह मंत्र सिखाइए।” “मैं इसे किसी गैर-भिक्षु को नहीं सिखा सकता।” ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, “काश मैं यह मंत्र जानता, तो मैं जंबुद्वीप में सर्वोत्कृष्ट होता।” तदनुसार, उन्होंने अपने साथी ब्राह्मणों को यह कहकर विदा किया, “कुछ दिनों के लिए यहीं ठहरिए; मैं भिक्षु बनने जा रहा हूँ।” और वे बुद्ध के नाम पर भिक्षु बन गए, संघ के पूर्ण सदस्य के रूप में शामिल हुए, और उसके बाद पूज्य वंगीसा के नाम से जाने गए।

उन्होंने उन्हें शरीर के बत्तीस अंगों पर ध्यान लगाने के लिए कहा और उनसे कहा, “सूत्र के प्रारंभिक शब्दों का जाप करें।” उन्होंने उनके निर्देशों का पालन किया और सूत्र के प्रारंभिक शब्दों का जाप किया। समय-समय पर ब्राह्मण उनसे पूछते, “क्या आपने सूत्र सीख लिया है?” और पूज्यवर उत्तर देते, “थोड़ा इंतजार कीजिए! मैं सीख रहा हूँ।” कुछ ही दिनों में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब ब्राह्मणों ने उनसे फिर पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, “भाइयों, अब मैं इसे सीखने में असमर्थ हूँ।” जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, “पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ बोल रहा है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, ऐसा मत कहो। भिक्षुओं, मेरा पुत्र अब प्राणियों के जन्म और मृत्यु के बारे में सब कुछ जानता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 419)

यो सत्तनं कुतिं च उपपत्तिं च सब्बासो वेदि

असत्तं सुगतं बुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यो : यदि कोई; सत्तनां [सत्तना]: प्राणियों में से; कुतिं [कुति]: क्षय; उपपत्तिं च : जन्म भी; सब्बसो [सब्बसा]: हर तरह से; वेदि : जानता है; असत्तं [असत्त]: जन्म या मृत्यु के किसी भी रूप से अनासक्त; सुगतं [सुगत]: अनुशासित मार्ग वाला; बुद्धं [बुद्ध]: ज्ञान से युक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : सच्चे ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

वह प्राणियों के जन्म और मृत्यु को हर प्रकार से जानता है। वह न तो जन्म से आसक्त है और न ही मृत्यु से। वह अपने उचित गंतव्य तक पहुँच चुका है। उसे सार का ज्ञान है। इस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 420)

यस्सा गतिं देवा गंधब्बा मानुषा न जानन्ति

खिन्नसवं अरहंतां तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्स : किसी का; गति : पुनर्जन्म की अवस्था; मार्ग; देवा : न देवता; गंधब्बा मानुसा : न आत्माएँ न मनुष्य; न जानन्ति : नहीं जानते; खीणासव : पूर्णतः दोषरहित; अरहन्त : उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर चुके हैं; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ

उनके मार्ग को न तो देवता, न आत्माएं, न मनुष्य समझ सकते हैं। उनके सारे दोष पूरी तरह से मिट गए हैं। उन्होंने उच्चतर आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर ली है। मैं इस व्यक्ति को ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 419-420)

यह कथा कुतुपापात-ज्ञान से संबंधित है, जो प्राणियों के लुप्त होने और पुन: प्रकट होने का ज्ञान है। यह ज्ञान दिव्य दृष्टि — अभिज्ञा के समान है । अभिज्ञा शब्द का प्रयोग छह उच्चतर शक्तियों, या अलौकिक ज्ञान के लिए किया जाता है, जिनमें पाँच सांसारिक (लोकीय) शक्तियाँ शामिल हैं जो पूर्णतम मानसिक एकाग्रता (समाधि) के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं, और एक अलौकिक (लोकउत्तरा) शक्ति जो विपस्सना (विपस्सना) के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है, जैसे कि सभी दोषों का नाश होना , दूसरे शब्दों में, अरहतत्व की प्राप्ति। वे हैं: (1) जादुई शक्तियाँ (इद्धि-विधा), (2) दिव्य कान (दिब्ब-सोता), (3) दूसरों के मन में प्रवेश (चेतो-परिया-ज्ञान), (4) दिव्य दृष्टि (दिब्ब-चक्खु), (5) पूर्व जन्मों का स्मरण (पुब्बे-निवासानुस्सति), और (6) दोषों का निवारण (आसवक्खय)।

हे भिक्षुओं, भिक्षु अनेक जादुई शक्तियों (इद्धिविधा) का आनंद लेता है, जैसे एक होकर अनेक रूपों में प्रकट होना और अनेक रूपों में प्रकट होकर फिर एक हो जाना। वह बिना किसी अवरोध के दीवारों और पहाड़ों को ऐसे पार कर जाता है मानो हवा में। वह धरती में गोता लगाता है और फिर ऊपर उठता है, मानो पानी में। वह पानी पर बिना डूबे चलता है, मानो धरती पर। वह पालथी मारकर हवा में ऐसे तैरता है जैसे कोई पक्षी। वह अपने हाथ से सूर्य और चंद्रमा को स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। यहाँ तक कि ब्रह्म जगत तक भी उसका अपने शरीर पर अधिकार है।

दिव्य कान (दिब्बा-सोटा) से वह दूर और पास की, स्वर्गीय और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है।

वह अन्य प्राणियों के मन को (परस्स चेतो-परिया-ज्ञान) अपने मन से भेदकर जान लेता है। वह लोभी मन को लोभी और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; घृणा करने वाले मन को घृणा करने वाला और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; भ्रमित मन को भ्रमित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; संकुचित मन को विचलित, विकसित मन को अविकसित, श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ, एकाग्र मन को असंलग्न, मुक्त मन को मुक्त और अपरिभाषित जानता है।

दिव्य दृष्टि (दिब्ब-चक्कु-यथा-कम्मूपग-ज्ञान या कुतुपपात-ज्ञान) से, पवित्र प्राणी, प्राणियों के लुप्त होने और पुन: प्रकट होने को देखता है, नीच और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, वह देखता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे पुन: प्रकट होते हैं (संस्कृत काम): 'कुछ प्राणियों ने शारीरिक क्रियाओं, शब्दों और विचारों में बुरे मार्ग अपनाए, ऋषियों का अपमान किया, बुरे विचार रखे और अपने बुरे विचारों के अनुसार कर्म किए। मृत्यु के बाद, जब उनका शरीर नष्ट हो गया, तो वे निम्न लोकों में, कष्टदायी अवस्थाओं में, दुख के लोक में, नरक में प्रकट हुए। परन्तु वे दूसरे प्राणी, जो अच्छे कर्मों से संपन्न हैं... सुखी अवस्था में, स्वर्ग लोक में प्रकट हुए हैं...'
वह अनेक पूर्व जन्मों (पब्बे-निवासानुसति) को याद करता है, जैसे एक जन्म या एक लाख जन्म; संसारों के अनेक निर्माण और विनाश को याद करता है। 'मैं वहाँ था, मेरा यह नाम था... और वहाँ से लुप्त होकर मैं कहीं और अस्तित्व में आया... और वहाँ से लुप्त होकर मैं फिर यहाँ प्रकट हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को, उनके चिह्नों और विशिष्टताओं सहित, हमेशा याद रखता है।
सभी दोषों (आसवक्खय) के नाश के द्वारा, इसी जीवन में, वह स्वयं इसे समझकर और अनुभव करके, मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 421

(धम्मपद 419 और 420) <<<< पिछला || धम्मपद 421 || अगला >>>> (धम्मपद 422)

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 421 - धम्मदिन्ना थेरी वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 421 - धम्मदिन्ना थेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa pure ca paccha ca
majjhe ca naththi kincanam
akincanam anadnam
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 421 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान कालखंडों से आसक्त नहीं होता तथा जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त होता है।

थेरी धम्मादिन्ना की कहानी
वेलुवाना मठ में रहते हुए, बुद्ध ने थेरी धम्मदिन्ना के संदर्भ में, इस पुस्तक के श्लोक (421) का उच्चारण किया।
एक समय की बात है, राजगृह में बुद्ध के एक गृहस्थ शिष्य विशाखा रहते थे। बुद्ध के प्रवचनों को बार-बार सुनने से विशाखा को अनागामी पुण्य प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "कृपया मेरी सारी संपत्ति स्वीकार कर लीजिए; आज से मैं घर के किसी भी काम में हाथ नहीं बँटाऊँगा।" उनकी पत्नी धम्मदिन्ना ने कहा, "तुम्हारी थूक कौन निगलेगा?" तब उन्होंने विशाखा से संघ में प्रवेश करने की अनुमति माँगी और भिक्षुणी बन गईं। भिक्षुणी बनने के बाद वे अन्य भिक्षुणियों के साथ ध्यान साधना करने के लिए एक छोटे से गाँव के मठ में गईं। थोड़े ही समय में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ और वे राजगृह लौट आईं।
धम्मदिन्ना के लौटने की खबर सुनकर विशाखा उनसे मिलने गए और उनसे कुछ प्रश्न पूछे। जब उन्होंने उनसे प्रथम तीन मार्ग के बारे में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिए; परन्तु जब उन्होंने उनसे अरहत मार्ग और फल मार्ग के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा, "हे गृहस्थ शिष्य! यह विषय तुम्हारे बोध से परे है; यदि तुम चाहो तो बुद्ध से पूछ सकते हो।" जब विशाखा ने बुद्ध से पूछा तो बुद्ध ने कहा, "धम्मदिन्ना ने तुम्हारे

प्रश्न का उत्तर दे दिया है। यदि तुम मुझसे पूछोगे तो मुझे भी वही उत्तर देना होगा।" यह कहकर बुद्ध ने इस तथ्य की पुष्टि की कि धम्मदिन्ना ने अरहतत्व प्राप्त कर लिया था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 421 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान कालखंडों से आसक्त नहीं होता तथा जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त होता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक पति और पत्नी की कहानी
एक दिन, जब वह संसार में रह रही थीं, उनके पति विशाखा, जो एक गृहस्थ शिष्य थे, ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और तीसरे मार्ग का फल प्राप्त किया। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे अपनी सारी संपत्ति धम्मदिन्ना को सौंप देनी चाहिए।" पहले उनकी यह प्रथा थी कि घर लौटने पर, यदि वे धम्मदिन्ना को खिड़की से बाहर देखते हुए पाते, तो उन्हें देखकर मुस्कुराते। लेकिन उस दिन, यद्यपि वह खिड़की पर खड़ी थीं, वे बिना उनकी ओर देखे ही आगे बढ़ गए। "इसका क्या अर्थ है?" उन्होंने सोचा। "कोई बात नहीं, भोजन के समय पता चल जाएगा।" इसलिए भोजन का समय आने पर, उन्होंने उन्हें उबले हुए चावल का अपना नियमित भाग दिया। पहले उनकी यह प्रथा थी कि वे कहते, "आओ, हम साथ भोजन करें।" लेकिन उस दिन वे चुपचाप, एक शब्द भी बोले बिना भोजन करते रहे। "वह किसी बात पर नाराज़ होंगे," धम्मदिन्ना ने सोचा। भोजन के बाद विशाखा आराम से बैठ गए और धम्मदिन्ना को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, "धम्मदिन्ना, इस घर का सारा धन तुम्हारा है। इसे ले लो!" धम्मदिन्ना ने सोचा, "क्रोधित लोग अपनी संपत्ति भेंट करके यह नहीं कहते, 'ले लो!' इसका क्या अर्थ है?" कुछ समय बाद उन्होंने अपने पति से कहा, "लेकिन पतिदेव, आपका क्या?" "आज से मैं सांसारिक कार्यों में संलग्न नहीं रहूँगा।" "जिस थूक को तुमने त्याग दिया है, उसे कौन ग्रहण करेगा? यदि ऐसा है, तो मुझे भी भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दो।" "बहुत अच्छा, प्रिय पत्नी," विशाखा ने उत्तर दिया और उन्हें वांछित अनुमति दे दी। उन्होंने उन्हें बहुमूल्य भेंट देकर ननों के मठ तक पहुँचाया और संघ में उनका प्रवेश कराया। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद वे धम्मदिन्ना नन के नाम से जानी गईं। धम्मदिन्ना एकांत जीवन की कामना करती थीं, इसलिए वे ननों के साथ गाँव चली गईं। वहाँ रहते हुए, उन्होंने अल्पकाल में ही अरहतत्व और अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं। तब उन्होंने मन में सोचा, "अब मेरे कारण मेरे सगे-संबंधी पुण्य कर्म करेंगे।" तदनुसार वे एक बार फिर राजगृह लौट आईं। जब गृहस्थ शिष्य विशाखा ने उनके लौटने का समाचार सुना, तो उन्होंने मन में सोचा, "उनके लौटने का क्या कारण हो सकता है?" और ननों के मठ जाकर अपनी पूर्व पत्नी नन को देखकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। उन्होंने सोचा, "मेरे लिए उनसे यह कहना अत्यंत अनुचित होगा, 'हे आदरणीय बहन, क्या आप असंतुष्ट हैं?' इसलिए मैं उनसे यह प्रश्न पूछूंगा।" अतः उन्होंने उनसे धर्म परिवर्तन के मार्ग के बारे में प्रश्न पूछा, और उन्होंने तुरंत सही उत्तर दिया। इसी क्रम में प्रश्न पूछते हुए शिष्य ने शेष मार्गों के बारे में भी पूछा। वे यहीं नहीं रुके, बल्कि अपने प्रश्न जारी रखते हुए उन्होंने उनसे अर्हतत्व के बारे में पूछा। "अद्भुत, भाई विशाखा!" धम्मदिन्ना ने कहा। "परन्तु यदि आप अर्हतत्व के बारे में जानना चाहते हैं, तो आपको बुद्ध के पास जाकर उनसे यह प्रश्न पूछना चाहिए।" विशाखा ने अपनी पूर्व पत्नी भिक्षुणी को प्रणाम किया, और अपने आसन से उठकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें अपनी बातचीत के बारे में बताया।बुद्ध ने कहा, "मेरी पुत्री धम्मदिन्ना ने जो कहा वह बहुत अच्छा था। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुझे भी इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।" फिर उन्होंने श्लोक सुनाया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 421)
यस्सा शुद्ध च पच्च च मज्झे च किंचनं नत्थि
अकिंचनं आनंदं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यस्स : जिसके लिए; शुद्ध च : अतीत का; पच्चाच : भविष्य का; मज्जेच : वर्तमान का; किंचनं नत्थि : कोई दोष नहीं; अकिंचनं [अकिंचन]: सभी दोषों से मुक्त; अनादानं : किसी भी प्रकार की लालसा से रहित; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।
उसके लिए अतीत, वर्तमान या भविष्य का कोई भी कलंक शेष नहीं रहता। वह निर्मल है। उसमें कोई आसक्ति या मोह नहीं है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 421)
धम्मदिन्ना की कथा : इस युग में, वे राजगृह के कोषाध्यक्ष विशाखा की पत्नी के रूप में जानी जाती थीं। विशाखा, बुद्ध के भक्त राजा बिम्बिसार के मित्र थे। एक दिन विशाखा, राजा बिम्बिसार के साथ बुद्ध के दर्शन करने गए। उन्होंने एक प्रवचन सुना और एक नवोदित संत (सोतापन्न) बन गए। लौटने पर, वे बिल्कुल बदल चुके थे। वे अपनी पत्नी को विचित्र प्रतीत हुए। उन्होंने इसका कारण पूछा। तब उन्होंने स्वीकार किया कि उनका मन "समृद्ध और विचित्र" रूप से परिवर्तित हो गया था। धम्मदिन्ना ने तुरंत बुद्ध के पास जाने की

अनुमति मांगी। विशाखा को अनुमति देने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। उन्हें एक स्वर्णिम पालकी में भेजा गया। उन्हें भिक्षुणी के रूप में दीक्षा दी गई। उन्हें लगा कि यदि वे भिक्षुणी जीवन में सफल नहीं हुईं, तो संघ में शामिल होने का उनका उद्देश्य व्यर्थ हो जाएगा। वह एकांत स्थान पर गईं और अरहतत्व प्राप्त करने के लिए जी-जान से प्रयास करने लगीं। उनके अच्छे कर्मों से किए गए संकल्प का फल मिला। वह अरहत बन गईं। अरहत बनने के बाद वह अपने गृह नगर राजगृह गईं ताकि अपने परिचित साथी प्राणियों की सेवा कर सकें। उनके पूर्व पति को यह बात समझ नहीं आई। उन्हें लगा कि उनका मिशन असफल रहा और वह खाली हाथ लौट रही हैं। पति ने उनसे कई प्रश्न पूछे और उन्होंने कुशलतापूर्वक उत्तर दिए। अंत में उन्होंने उनसे निर्वाण के बारे में पूछा। यहाँ उन्हें कुछ समझ नहीं आया। वह इतने उन्नत नहीं थे। उनके उत्तर उन्हें समझ नहीं आए। इसलिए उन्होंने उन्हें बुद्ध के पास भेजा, जिन्होंने न केवल उनकी बात से सहमति जताई बल्कि मज्झिमा निकाय में लघु वेदल्ल सूत्र के अध्ययन के लिए धम्मदिन्ना की प्रशंसा भी की। इसके कुछ समय बाद ही बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि पूज्य धम्मदिन्ना निस्संदेह श्रेष्ठ संघ की महिला शिष्यों में धम्म की व्याख्या करने में सबसे अग्रणी थीं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 422

———————————————————————

(धम्मपद421) <<<< पिछला ll धम्मपद422 ll अगला >>>> (धम्मपद423)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 422 - अंगुलिमत्थेरा वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण

धम्मपद श्लोक 422 - अंगुलिमत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

उसभम पवारम विराम
महेसिम विजितविनम
anejam nhatakam(1) buddham
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 422 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बैल के समान निर्भीक है, जो नेक और परिश्रमी है, जो उच्च नैतिक गुणों का साधक और (तीन मारों का) विजेता है, जो लालसा से मुक्त है, जो नैतिक दोषों से शुद्ध हो चुका है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

———————————————————————

1. न्हातकम: (नैतिक दोषों से) शुद्ध किया गया; यह ब्राह्मण द्वारा अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद किए जाने वाले औपचारिक स्नान का संकेत है।

———————————————————————

अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अंगुलिमाला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (422) कहा।

एक बार राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) और रानी मल्लिका ने बुद्ध और उनके पाँच सौ भिक्षुओं को इतना बड़ा दान दिया, जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। उस समारोह में, प्रत्येक भिक्षु के सिर पर धूप से बचाव के लिए एक हाथी द्वारा सफेद छतरी रखी जानी थी। हालांकि, उन्हें केवल चार सौ निन्यानवे प्रशिक्षित हाथी ही मिल सके, इसलिए उन्हें एक अप्रशिक्षित हाथी का इस्तेमाल करना पड़ा और उसे थेरा अंगुलिमाला के ऊपर छतरी रखने का काम सौंपा गया। सभी को डर था कि अप्रशिक्षित हाथी कोई परेशानी खड़ी कर सकता है, लेकिन जब उसे थेरा अंगुलिमाला के पास लाया गया तो वह बिल्कुल शांत था।

इसी घटना के संदर्भ में भिक्षुओं ने बाद में अंगुलिमाला से पूछा कि क्या उन्हें भय नहीं आया? इस प्रश्न के उत्तर में अंगुलिमाला ने कहा कि उन्हें भय नहीं आया। तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और कहा कि थेरा अंगुलिमाला ने अरहतत्व प्राप्त करने का दावा किया है। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! यह बिल्कुल सत्य है कि अंगुलिमाला भयभीत नहीं हुए; उनके समान लोग भी भयभीत नहीं होते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 422 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बैल के समान निर्भीक है, जो नेक और परिश्रमी है, जो उच्च नैतिक गुणों का साधक और (तीन मारों का) विजेता है, जो लालसा से मुक्त है, जो नैतिक दोषों से शुद्ध हो चुका है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
निडर अंगुलिमाला की कहानी
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय पूज्य अंगुलिमाला के संदर्भ में दिया था। यह कथा "कंजूस देवता लोक में नहीं जाते" से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या में वर्णित है। वहाँ लिखा है: भिक्षुओं ने अंगुलिमाला से पूछा, "भाई अंगुलिमाला, क्या आप भयभीत नहीं हुए जब आपने अपने सामने छत्र लिए हुए दुष्ट हाथी को खड़ा देखा?" "नहीं, भाइयों, मैं भयभीत नहीं हुआ।" भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, अंगुलिमाला झूठ बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र अंगुलिमाला को कोई भय नहीं है। क्योंकि मेरे पुत्र के समान भिक्षु सभी दोषों से मुक्त होकर श्रेष्ठ हैं और भयभीत नहीं होते।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 422)
प्रयोगं पवरं वीरं महेसिं विजितविनं
अनेजां नाहतकं बुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यूएसएभाः [यूएसएबीएच]: एक बैल-एक नेता; पावरां [पावरा]: कुलीन; वीरं [वीरा]: प्रयास से भरा हुआ; महेसिः [महेसि]: एक महान ऋषि; विजिताविनम् [विजिताविना]: जिसने पूरी तरह से जीत लिया है; अनेजां [अनेजा]: लालसा से रहित; नाहतकम् [नाहतका]: जिसने बुराई को धो दिया है; बुद्धम् [बुद्ध]: आवश्यक चीज़ों को जानना; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें
वह अपनी असीम शक्ति से आगे बढ़ने वाले बैल के समान हैं। वे एक महान ऋषि हैं क्योंकि उन्होंने मूलभूत तत्वों को जान लिया है। उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। वे सभी दोषों से रहित हैं। उन्होंने सभी बुराइयों को धो डाला है। उन्होंने मूलभूत तत्वों को जान लिया है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 422)
अंगुलिमाला की कहानी : यह एक विलक्षण व्यक्तित्व था। उसका इतिहास अद्वितीय है। एक डाकू जिसने कामयाबी हासिल की। उसका जीवन विरोधाभासों से भरा है। उसका जन्म कोसल के राजा के सलाहकार भगगवा के घर हुआ था। परंपरा के अनुसार, बच्चे को तक्षशिला विश्वविद्यालय भेजा गया जहाँ उसने शानदार जीवन व्यतीत किया। उसका नाम अहिंसक (किसी को हानि न पहुँचाने वाला) रखा गया, आंशिक रूप से इसलिए क्योंकि वह एक ऐसे परिवार से था जिसका नाम अपराध से बेदाग था, और आंशिक रूप से बच्चे के चरित्र के कारण। उसने पढ़ाई और खेल दोनों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। जल्द ही, उसके साथियों में ईर्ष्या और शत्रुता पैदा हो गई, जिन्होंने उसके खिलाफ साजिशें रचीं। लेकिन पिछले जन्म में पच्चेक बुद्ध की सेवा करने के कारण वह बहुत शक्तिशाली था। उसके शत्रु उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। वह विश्वविद्यालय के कुलपति का प्रिय था। जल्द ही, उसके शत्रुओं की कानाफूसी के कारण उसकी शत्रुता बढ़ गई। उन्होंने उसकी पत्नी के साथ उसके नाजायज प्रेम की बात फैलाई। लेकिन अहिंसक भी, एक चतुर और विद्वान व्यक्ति होने के नाते, अपनी मृत्यु के लिए उचित समय का इंतजार कर रहे थे। विदाई के समय, उन्होंने एक शिष्य द्वारा गुरु को दी जाने वाली सामान्य भेंट के रूप में एक असाधारण अनुरोध किया। उन्होंने एक हजार मनुष्यों के दाहिने अंगूठे मांगे। अहिंसक स्तब्ध रह गए और उन्होंने तुरंत इस रक्तरंजित अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। लेकिन उनका अंत अटल था। इनकार करने पर उन पर श्राप लग जाता। उन्होंने बार-बार व्यर्थ ही भेंट की गुहार लगाई। कठोर प्राचीन प्रथा से बचने का कोई रास्ता नहीं था, क्योंकि भेंट पिछले शिक्षण शुल्क के बदले में थी। अत अहिंसक ने संकोच किया — ज्ञान को बचाने के लिए उसने सहमति दे दी, क्योंकि इनकार करना ज्ञान के लिए कलंक के समान होता। हथियारबंद होकर वह कोसल राज्य के जलिता नामक वन में चला गया। उसने अपने क्षेत्र में आने वाले हर व्यक्ति को मार डाला। लेकिन उसके अंगूठे सुरक्षित नहीं रह सके। या तो जंगली जानवरों ने उन्हें खा लिया, या वे सड़ गए। इसलिए उसने एक माला बनवाई और उसे धारण कर लिया। इसीलिए उसे 'अंगुली माला' कहा जाने लगा। उसके 999 अंगूठे थे और वह इस खूनी अध्याय को समाप्त करने के लिए एक और अंगूठा प्राप्त करने के लिए बेचैन था। उसके गुरु को लगा कि अंगुली माला इस अभियान में जीवित नहीं बचेगा। वह निश्चित रूप से इस प्रक्रिया में मारा जाएगा, या राजा द्वारा बंदी बना लिया जाएगा। वह एक मनहूस सुबह थी। जनता से शिकायतें मिलने पर राजा उस डाकू को जिंदा या मुर्दा पकड़ने के लिए निकल पड़ा। उसकी माता मंतानी अपने पुत्र के भाग्य को लेकर चिंतित थी। उसने अपने पति से विनती की कि वह पुत्र को आने वाले खतरे के बारे में चेतावनी दे। लेकिन उसने उसकी बात नहीं मानी।
इसलिए माँ के प्रेम ने उसे जंगल में अकेले जाने के लिए प्रेरित किया, और वह रोते हुए कहने लगी कि बेटे को परिवार की परंपरा का पालन करते हुए हत्या करना छोड़ देना चाहिए, और राजा की सेना उसे पकड़ने के लिए आ रही है। यह बहुत संभव था कि डाकू अपनी

माँ को भी न बख्शे, क्योंकि वह हताश था। सर्व-दयालु बुद्ध ने उसकी आसन्न मृत्यु को देख लिया। वे जानते थे कि इसी जीवन में उनका अर्हत बनना तय है। उन्होंने मुक्ति की संभावना देखी। इसलिए राहगीरों की चेतावनियों के बावजूद, उन्होंने स्वयं को डाकू और उसकी माँ के बीच खड़ा कर दिया। यहाँ डाकू ने देखा कि बुद्ध का पवित्र अंगूठा खून से सने अंगूठों की श्रृंखला का एक उपयुक्त अंत होगा।
अंगुली माला अपनी आदत के अनुसार तलवार उठाए बुद्ध की ओर तेज़ी से बढ़ा। बुद्ध एक निश्चित गति से चल रहे थे, लेकिन अपनी पूरी गति के बावजूद अंगुली माला उन्हें पकड़ नहीं पाया। यह बुद्ध की इच्छा थी। यह बुद्ध का एक चमत्कार था। इतनी तेज़ी से और इतनी देर तक दौड़ने से अंगुली माला की सहनशक्ति खत्म हो गई थी। घोर हताशा में, पसीने की बूँदों के साथ, उसने बुद्ध से रुकने का आह्वान किया — तिट्ठ समना । लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे रुक चुके हैं। उन्हें भी रुकना होगा। 'रुकना' शब्द ने उसे झकझोर दिया। एक भावी अरहत के लिए इस शब्द का गहरा अर्थ होता है। यह संसार से जुड़ा हुआ है — जन्म और मृत्यु का यह निरंतर चक्र। उसने उस शब्द का अर्थ पूछा जो कुछ समय के लिए उसकी दृष्टि से ओझल हो गया था। अंगुली माला ने सोचा कि जब वह दौड़ रहा था तो बुद्ध अवश्य ही हिले होंगे। क्या ऐसा हो सकता है कि बुद्ध स्वयं झूठ के दोषी थे?
अत अंगुली माला ने बुद्ध से विश्राम का अर्थ समझाने का अनुरोध किया। यही वह अवसर था जिसकी बुद्ध को तलाश थी और उन्होंने पूर्णतया और अचूक कौशल से उपदेश दिया। अंगुली माला ने माला और हथियार एक तरफ फेंक दिए। उन्होंने दीक्षा की विनती की। उपदेश के अंत में, बुद्ध के ' एहि भिक्खु ' सूत्र के प्रयोग से वे अरहत बन गए। अंगुली माला को अरहत बनाकर बुद्ध मंदिर लौट गए। राजा की यह प्रथा थी कि वे किसी भी खतरनाक अभियान की पूर्व संध्या पर बुद्ध से मिलने जाते थे। बुद्ध ने उनसे सशस्त्र अभियान का कारण पूछा। राजा ने स्पष्टीकरण दिया। बुद्ध ने राजा को बताया कि अंगुली माला मंदिर में हैं। नाम सुनते ही राजा कांप उठे। अंगुली माला की खबर इतनी भयावह थी। बुद्ध ने शीघ्र ही समझाया कि मंदिर में अंगुली माला उस खूनी डाकू से बिलकुल भिन्न थे; अंगुली माला अब एक चींटी को भी नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। अरहत होने के बावजूद, यह नाम उन पर अड़ा रहा। एक दिन अपने भ्रमण के दौरान, पूज्य अंगुली माला ने एक गर्भवती महिला की प्रसव पीड़ा सुनी। अन्य महा अरहतों ने भी उसकी चीखें सुनी होंगी, लेकिन उनमें से कोई भी पूज्य अंगुली माला जितना विचलित नहीं हुआ। उन्होंने बुद्ध के पास जाकर इस पीड़ा पर अपनी चिंता व्यक्त की और उनसे इस कष्ट को दूर करने की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनसे सत्य की शक्ति पर ध्यान करने को कहा - क्योंकि अंगुली माला जन्म से ही निर्दय थे, इसलिए उस सत्य के बल पर उनका कष्ट दूर हो सकता है। उन्हें यही आशीर्वाद देने के लिए कहा गया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 423

(धम्मपद422) <<<< पिछला|| धम्मपद423[समाप्त] ||

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 423 - देवहितब्राह्मण वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 423 - देवहितब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Pubbenivasam yo vedi
saggapayanca passati
atho jatikkhayam patto
abhinnavosito muni
sabbavositavosanam
tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 423 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो पिछले जन्मों को जानता है, जो स्वर्गीय और साथ ही पाताल लोकों को देखता है, जो पुनर्जन्मों के अंत तक पहुँच चुका है, जो मार्ग अंतर्दृष्टि से अर्हत बन गया है और नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए जो कुछ भी किया जाना चाहिए, वह सब कर चुका है।

ब्राह्मण देवहिता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण देवहिता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (423) कहा।
एक बार बुद्ध को पेट की बीमारी हो गई और उन्होंने थेरा उपवन को ब्राह्मण देवहित से गर्म पानी लाने के लिए भेजा। बुद्ध को भेंट करने का यह दुर्लभ अवसर पाकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। इसलिए, गर्म पानी के साथ-साथ उसने बुद्ध के लिए गुड़ भी दिया। मठ में थेरा उपवन ने बुद्ध को गर्म पानी से स्नान कराया; स्नान के बाद उन्होंने बुद्ध को गुड़ और गर्म पानी का मिश्रण दिया। मिश्रण पीने के बाद बुद्ध को तुरंत आराम मिल गया। तब ब्राह्मण ने आकर बुद्ध से पूछा, "आदरणीय महोदय! किसे भेंट करने से सबसे अधिक लाभ होता है?"
बुद्ध ने उसे कहा, "ब्राह्मण! जिसने सभी बुराइयों का त्याग कर दिया है, उसे भेंट करना सबसे अधिक लाभकारी है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 423 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो पिछले जन्मों को जानता है, जो स्वर्गीय और साथ ही पाताल लोकों को देखता है, जो पुनर्जन्मों के अंत तक पहुँच चुका है, जो मार्ग अंतर्दृष्टि से अर्हत बन गया है और नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए जो कुछ भी किया जाना चाहिए, वह सब कर चुका है।

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण तीन रत्नों (बुद्ध, धम्म और संघ) में दृढ़ विश्वास के साथ दृढ़ हो गया और बुद्ध का गृहस्थ शिष्य बन गया।
अध्याय छब्बीस का अंत: ब्राह्मण
-धम्मपद का समापन: श्लोक और कथाएँ-

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उपहार देने वाला ही उपहार को सार्थक बनाता है।
यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय ब्राह्मण देवहित द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के संदर्भ में कहा था।
एक समय की बात है, बुद्ध को रस विकार हो गया था और उन्होंने पूज्य उपवन को ब्राह्मण देवांगिक के पास गर्म पानी लाने के लिए भेजा। पूज्य उपवन ब्राह्मण के पास गए, उन्हें बताया कि बुद्ध को रस विकार है और उनसे गर्म पानी मांगा। जब ब्राह्मण ने बुद्ध का अनुरोध सुना, तो उनका हृदय आनंद से भर गया। उन्होंने कहा, "मेरे लिए कितना सौभाग्य की बात है कि बुद्ध ने मुझे गर्म पानी के लिए भेजा!" ब्राह्मण ने पूज्य उपवन को गर्म पानी और गुड़ का एक घड़ा दिया और अपने एक सेवक को पिंगो पर गर्म पानी लाने का आदेश दिया। पूज्य उपवन ने बुद्ध को गर्म पानी से स्नान कराया और फिर गुड़ को गर्म पानी में मिलाकर उन्हें पीने के लिए दिया। बुद्ध का रोग तुरंत ठीक हो गया।
ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "महान प्रतिफल प्राप्त करने के लिए किसे दान देना चाहिए? मैं बुद्ध से पूछूंगा।" अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय पर यह श्लोक कहते हुए पूछा:
किसे दान देना चाहिए?
किसे दान देने से महान प्रतिफल प्राप्त होता है? दान देने वाले को वह प्रतिफल महान कैसे प्राप्त होता है?
बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "इस प्रकार के ब्राह्मण के दान से भरपूर फल प्राप्त होता है।" और सच्चे ब्राह्मण के अपने विचार को प्रकट करते हुए उन्होंने यह श्लोक दिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 423)
यो पुब्बेनिवासं वेदि सग्गापायं च पस्सति,
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिन्न वोसितो मुनि
सब्बवोसितवोसानं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यो मुनी : यदि कोई ऋषि; पुब्बेनिवासं [पुब्बेनिवास]: पूर्व जन्मों; वेदि : जानता है; सग्गापायं च : स्वर्ग और नरक; पसति : अनुभव करता है; अथो : इसके अतिरिक्त; जातिक्खयं [जातिक्खय]: अस्तित्व के अंत तक; पट्टो [पट्टा]: पहुँच गया है; अभिञ्ञा : सर्वोच्च ज्ञान से देखकर; वोसित [वोसित]: सब सिद्ध कर चुका है; मुनी : एक ऋषि; सब्बवोसितवोसानं [सब्बवोसितवोसान]: जिसने सर्वोच्च प्राप्ति करके सत्य साधक का जीवन पूर्ण कर लिया है; तम : वह पूर्ण पुरुष; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण घोषित करता हूँ।
वह अपने पूर्व जन्मों को जानता है। उसमें स्वर्ग और नरक, परमानंद और दुःख की अवस्थाओं को देखने की क्षमता है। उसने जन्मों का चक्र समाप्त कर दिया है। उसमें उच्चतर चेतना है। वह ऋषि की अवस्था तक पहुँच चुका है। उसने परम पूर्णता प्राप्त कर ली है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 423)
पूज्य उपवान की कथा : इस श्लोक की उत्पत्ति का स्रोत मानी जाने वाली कथा के अनुसार, बुद्ध ने पूज्य उपवान को ब्राह्मण देवांगिक के पास भेजा था। यह पूज्य उपवान की कथा है:
उनके पूर्वज जीवन की कथा पद्ममुत्तरा बुद्ध के देहांत के बाद घटी। यह अवसर अवशेषों के स्थापना का था। मनुष्य और देवियों द्वारा एक विशाल स्तूप का निर्माण किया जा रहा था। वे एक गरीब व्यक्ति थे जिनके वस्त्रों में एक शॉल शामिल थी। उन्होंने उस शॉल को अच्छी तरह से साफ करवाया और स्तूप के किनारे एक लंबे बांस पर ध्वज की तरह लगाकर अवशेषों का सम्मान किया।
अभिसंमथक नामक एक दुष्ट आत्माओं के सरदार ने चुपके से शॉल को दागोबा के शिखर पर रखवा दिया था। जब उसने देखा कि क्या हुआ है, तो उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। इसी पुण्य के कारण, वह जहाँ भी जन्म लेता, उसके अनुयायी हमेशा बने रहते थे। वह हमेशा एक नेता रहा। उसने कई बार देवताओं के राजा सक्का या एक शक्तिशाली राजा (चक्रवर्तीराज) के रूप में जन्म लिया। इसके बाद, इस युग में उसका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उसका नाम उपवान रखा गया।
वे भी वैदिक ज्ञान में पारंगत हो गए। पूज्य आनंद के कार्यभार संभालने से पहले वे बुद्ध के सेवक थे। बुद्ध के बीमार पड़ने पर उपवान एक गृहस्थ दाता के पास गए और बुद्ध के गुणों का गुणगान किया। उन्होंने उनसे गर्म जल और उपयुक्त औषधि प्राप्त की और बुद्ध को स्वस्थ करने के लिए चिकित्सा सहायता प्रदान की। इसके बाद, उन्होंने भिक्षु जीवन में इतनी लगन से भाग लिया कि कुछ ही समय में वे अर्हत बन गए।
भगवान बुद्ध के देहांत के संबंध में एक उल्लेखनीय घटना घटी। जब वे पलंग के पास खड़े होकर पंखा कर रहे थे, तब बुद्ध ने उनसे वहाँ से चले जाने का अनुरोध किया। वहाँ उपस्थित सभी लोग इस बात से स्तब्ध रह गए। हमेशा की तरह, वरिष्ठ आनंद ने, जो मुख्य वक्ता थे, इसका कारण पूछा। बुद्ध ने आनंद को बताया कि अदृश्य जगत के सैकड़ों-हजारों शक्तिशाली देवता और दुष्ट आत्माएँ बुद्ध के अंतिम दर्शन के लिए हर इंच, और अक्सर सूक्ष्म बिंदुओं तक, जगह की तलाश में थे। यह कोई रहस्य नहीं है कि सांसारिक प्राणियों के विपरीत, जो देवताओं और सभी की दृष्टि से अदृश्य थे, अरहत अदृश्य नहीं थे। इसलिए, पूज्य उपवान को उन्हें दर्शन करने का मार्ग देना पड़ा।
वह परम संघ के अस्सी अरहतों में से एक थे।

धम्मपद ग्रंथ (संक्षिप्त संस्करण)
यमकावग्ग : द पेयर्स खंड (श्लोक 1-20)
अप्पमदावग्गा : सतर्कता अनुभाग (21-32)
चित्तवग्ग : मन (33-43)
पुप्फागग्गा : फूल (44-59)
बलावग्ग : मूर्ख (60-75)
पंडितवग्ग : बुद्धिमान (76-89)
अरहंतवग्गा : अरहंत (90-99)
सहस्सवग्ग : हज़ारों (100-115)
पापवाग्गा : बुराई (116-128)
दंडवग्गा : हिंसा (129-145)
जारवग्गा : वृद्धावस्था (146-156)
अट्टावग्ग : स्वयं (157-166)
लोकवग्गा : द वर्ल्ड (167-178)
बुद्धवग्गा : बुद्ध (179-196)
सुखवग्गा : ख़ुशी (197-208)
पियावग्गा : स्नेह (209-220)
कोधावग्गा : क्रोध (221-234)
मालवग्गा : अशुद्धता (235-255)
धम्मत्थावग्ग : न्यायप्रिय (256-272)
मग्गावग्गा : पथ (273-289)
पकिन्नाकवग्गा : विविध (290-305)
निरयवग्ग : नरक (306-319)

नागवग्गा : हाथी (320-333)
तन्हावग्गा : लालसा (334-359)
भिक्खुवग्गा : भिक्षु (360-382)
ब्राह्मणवग्गा : ब्राह्मण (383-423)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V1:यमकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

logo

यमकावग्गा: जोड़े

1. मन सभी मानसिक अवस्थाओं से पहले आता है। मन ही इन सबका मूल है; ये सभी मन द्वारा उत्पन्न होती हैं। यदि कोई व्यक्ति अशुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो उसे उसी प्रकार कष्ट भोगना पड़ता है जैसे बैल के पैर के पीछे पहिया लगा रहता है।

2. मन सभी मानसिक अवस्थाओं से पहले आता है। मन ही इन सबका मूल है; ये सभी मन द्वारा ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख उसके साथ उसकी कभी न विदा होने वाली परछाई की तरह रहता है।

3. "उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे पीटा, उसने मुझ पर हावी होकर मुझे लूटा।" ऐसे विचार रखने वाले लोग अपनी घृणा को शांत नहीं कर पाते।

4. "उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे पीटा, उसने मुझ पर हावी होकर मुझे लूटा।" जो लोग ऐसे विचार नहीं रखते, वे अभी भी अपनी घृणा को दबाए रखते हैं।

5. इस संसार में घृणा से घृणा शांत नहीं होती। घृणा का निवारण केवल अरुचि से ही होता है। यह एक शाश्वत नियम है।

6. कुछ लोग यह नहीं समझते कि एक दिन हम सबको मरना है। लेकिन जो लोग यह समझते हैं, वे अपने झगड़े सुलझा लेते हैं।

7. जिस प्रकार आंधी एक कमजोर पेड़ को गिरा देती है, उसी प्रकार मारा उस व्यक्ति पर हावी हो जाती है जो सुख-सुविधाओं की खोज में लीन रहता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, अत्यधिक भोजन करता है, आलसी और व्यभिचारी होता है।

8. जिस प्रकार तूफान किसी चट्टानी पहाड़ पर विजय नहीं पा सकता, उसी प्रकार मारा कभी भी उस व्यक्ति पर विजय नहीं पा सकता जो अशुद्धियों पर ध्यान लगाकर जीवन व्यतीत करता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, संयमित भोजन करता है और आस्था एवं गंभीर प्रयास से परिपूर्ण होता है। 2

9. जो कोई भी पतित, आत्मसंयम और सत्यनिष्ठा से रहित होकर भिक्षु का पीला वस्त्र धारण करे, वह निश्चय ही उस वस्त्र के योग्य नहीं है।

10. परन्तु जो कोई भी दुराचार से शुद्ध हो, सद्‌गुणों में सुस्थापित हो और आत्मसंयम तथा सत्यनिष्ठा से परिपूर्ण हो, वही निःसंदेह पीले वस्त्र के योग्य है।

11. जो लोग अनावश्यक को आवश्यक और आवश्यक को अनावश्यक समझकर गलत विचारों में डूबे रहते हैं, वे कभी भी आवश्यक तक नहीं पहुँच पाते।

12. जो लोग आवश्यक को आवश्यक और अनावश्यक को अनावश्यक जानते हैं, सही विचारों में लीन रहते हुए, वे आवश्यक तक पहुँच जाते हैं।

13. जैसे बारिश खराब छप्पर वाले घर को भेद देती है, वैसे ही जुनून एक अविकसित दिमाग में प्रवेश कर जाता है।

14. जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छप्पर वाले घर को भेद नहीं पाती, उसी प्रकार वासना कभी भी सुविकसित मन में प्रवेश नहीं कर पाती।

15. दुष्ट व्यक्ति इस लोक में और परलोक में भी दु:ख भोगता है; वह दोनों लोकों में दु:ख करता है। वह अपने अपवित्र कर्मों को याद करके विलाप करता है और व्यथित होता है।

16. नेक कर्म करने वाला इस लोक में और परलोक में प्रसन्न होता है; वह दोनों लोकों में आनंदित होता है। वह अपने शुद्ध कर्मों को याद करके प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है।

17. बुराई करने वाला इस लोक में और परलोक में भी कष्ट भोगता है; वह दोनों लोकों में कष्ट सहता है। "मैंने बुराई की है" का विचार उसे सताता है, और दुख के लोकों में जाकर वह और भी अधिक कष्ट भोगता है।

18. अच्छे कर्म करने वाला इस लोक और परलोक दोनों में आनंदित होता है; वह दोनों लोकों में प्रसन्न होता है। "मैंने अच्छा कर्म किया है" यह विचार उसे प्रसन्न करता है, और आनंद के लोकों में पहुँचने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

19. भले ही वह पवित्र ग्रंथों का बहुत पाठ करे, परन्तु उसके अनुसार कार्य न करे, वह लापरवाह मनुष्य उस ग्वाले के समान है जो केवल दूसरों की गायों को गिनता है—वह पवित्र जीवन के आशीर्वादों का भागीदार नहीं होता।

20. यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों का पाठ कम ही करता है, परन्तु शिक्षा को व्यवहार में लाता है, कामवासना, घृणा और भ्रम का त्याग करता है, सच्ची बुद्धि और मुक्त मन से, इस संसार या किसी अन्य संसार की किसी भी वस्तु से आसक्ति नहीं रखता — वह वास्तव में पवित्र जीवन के आशीर्वादों का भागीदार होता है।

जब तक अन्यथा उल्लेख न किया जाए, सामुदायिक सामग्री CC-BY-SA लाइसेंस के तहत उपलब्ध है ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V2:अप्पामदवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अप्पमदावग्गा: सतर्कता

21. सजगता: अमरता का मार्ग। आलस्य: मृत्यु का मार्ग। सजग लोग मरते नहीं। आलस्य करने वाले मानो पहले से ही मरे हुए होते हैं।

22. इस भेद को सही ढंग से जानते हुए, सजग और बुद्धिमान लोग सावधानी में आनंदित होते हैं, और श्रेष्ठ लोगों की श्रेणी का आनंद लेते हैं।

23. ज्ञानी, निरंतर ध्यान में लीन, दृढ़, अपने प्रयास में स्थिर: वे बंधन से मुक्ति, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा को प्राप्त करते हैं।

24. पहल करने वाले, सचेत रहने वाले, कर्म में स्वच्छ रहने वाले, उचित विचारपूर्वक कार्य करने वाले, सावधान रहने वाले, संयमित रहने वाले और धम्म का पालन करने वाले लोगों की महिमा बढ़ती है।

25. पहल, सतर्कता, संयम और आत्म-नियंत्रण के माध्यम से, बुद्धिमान लोग एक ऐसा द्वीप बनाएंगे जिसे कोई बाढ़ डुबो नहीं सकती।

26. वे आलस्य के आदी हैं - मंदबुद्धि, मूर्ख - जबकि बुद्धिमान व्यक्ति सतर्कता को अपना सर्वोच्च धन मानता है।

27. आलस्य या कामुक सुखों के साथ घनिष्ठता में लिप्त न हो—क्योंकि ध्यान में लीन, सजग व्यक्ति को भरपूर आराम प्राप्त होता है।

28. जब ज्ञानी व्यक्ति सतर्कता से आलस्य को दूर भगाता है, विवेक के ऊँचे शिखर पर पहुँचकर, दुःखमुक्त होकर, वह दुःखित भीड़ को देखता है—जैसे कोई प्रबुद्ध व्यक्ति शिखर पर पहुँचकर नीचे जमीन पर मूर्खों को देखता है।

29. आलसी लोगों में सावधान, सोए हुए लोगों में जागृत, जैसे तेज घोड़ा कमजोरों को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ता है: वैसे ही बुद्धिमान होते हैं।

30. सतर्कता के बल पर इंद्र ने देवताओं पर आधिपत्य प्राप्त किया। सतर्कता की प्रशंसा की जाती है, आलस्य की निंदा की जाती है।

31. सतर्कता में आनंदित भिक्षु, आलस्य में खतरा देखकर, आग की तरह आगे बढ़ता है, बड़ी और छोटी बेड़ियों को जला देता है।

32. सतर्कता में आनंद लेने वाला भिक्षु, आलस्य में खतरा देखकर - पीछे हटने में असमर्थ - मुक्ति के कगार पर खड़ा है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V3:चित्तवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

चित्तवग्गा: मन
33. कांपता हुआ, डगमगाता हुआ, काबू में रखना मुश्किल: मन। ऋषि इसे सीधा करते हैं - जैसे तीर बनाने वाला तीर के डंडे को सीधा करता है। 34. जैसे पानी में अपने घर से खींची गई मछली को ज़मीन पर फेंक दिया जाता है: यह मन मारा के प्रभाव से बचने के लिए छटपटाता और फड़फड़ाता है।

35. मन को काबू में रखना कठिन है, यह फुर्तीला है, जहाँ चाहे वहाँ उतर जाता है। इसे वश में रखना अच्छा है। अच्छी तरह से वश में किया हुआ मन शांति लाता है।

36. देखना बहुत कठिन है, बहुत ही सूक्ष्म है, जहाँ चाहे वहाँ आ जाता है: मन। बुद्धिमानों को इसकी रक्षा करनी चाहिए। सुरक्षित मन से शांति मिलती है।

37. दूर-दूर तक भटकना, अकेले जाना, देहहीन होना, गुफा में लेटना: मन। जो इसे रोकते हैं: वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

38. अस्थिर मन वाले व्यक्ति के लिए, सच्चे धम्म का ज्ञान न होने पर, शांति विलीन हो जाती है: विवेक पूर्ण नहीं होता।

39. निर्मल मन, निर्मल चेतना, पुण्य एवं पाप का त्याग करने वाले, सजग व्यक्ति के लिए कोई खतरा नहीं, कोई भय नहीं।

40. यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान है, इस मन को किले के समान सुरक्षित रखते हुए, विवेक के भाले से मारा पर आक्रमण करो, फिर जो जीता है उसकी रक्षा करो, वहाँ बसने के बजाय, दावा करने के बजाय।

41. बहुत जल्द ही, यह शरीर जमीन पर पड़ा रहेगा, चेतना से रहित, लकड़ी के एक बेकार टुकड़े की तरह।

42. शत्रु जो कुछ भी शत्रु के साथ करे, या शत्रु शत्रु के साथ करे, कुप्रवृत्त मन आपके साथ उससे भी कहीं अधिक बुरा कर सकता है।

43. माता-पिता या अन्य रिश्तेदार आपके लिए जो कुछ भी करें, एक सुगठित मन आपके लिए उससे भी बेहतर कर सकता है।तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V3:चित्तवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

चित्तवग्गा: मन
33. कांपता हुआ, डगमगाता हुआ, काबू में रखना मुश्किल: मन। ऋषि इसे सीधा करते हैं - जैसे तीर बनाने वाला तीर के डंडे को सीधा करता है। 34. जैसे पानी में अपने घर से खींची गई मछली को ज़मीन पर फेंक दिया जाता है: यह मन मारा के प्रभाव से बचने के लिए छटपटाता और फड़फड़ाता है।

35. मन को काबू में रखना कठिन है, यह फुर्तीला है, जहाँ चाहे वहाँ उतर जाता है। इसे वश में रखना अच्छा है। अच्छी तरह से वश में किया हुआ मन शांति लाता है।

36. देखना बहुत कठिन है, बहुत ही सूक्ष्म है, जहाँ चाहे वहाँ आ जाता है: मन। बुद्धिमानों को इसकी रक्षा करनी चाहिए। सुरक्षित मन से शांति मिलती है।

37. दूर-दूर तक भटकना, अकेले जाना, देहहीन होना, गुफा में लेटना: मन। जो इसे रोकते हैं: वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

38. अस्थिर मन वाले व्यक्ति के लिए, सच्चे धम्म का ज्ञान न होने पर, शांति विलीन हो जाती है: विवेक पूर्ण नहीं होता।

39. निर्मल मन, निर्मल चेतना, पुण्य एवं पाप का त्याग करने वाले, सजग व्यक्ति के लिए कोई खतरा नहीं, कोई भय नहीं।

40. यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान है, इस मन को किले के समान सुरक्षित रखते हुए, विवेक के भाले से मारा पर आक्रमण करो, फिर जो जीता है उसकी रक्षा करो, वहाँ बसने के बजाय, दावा करने के बजाय।

41. बहुत जल्द ही, यह शरीर जमीन पर पड़ा रहेगा, चेतना से रहित, लकड़ी के एक बेकार टुकड़े की तरह।

42. शत्रु जो कुछ भी शत्रु के साथ करे, या शत्रु शत्रु के साथ करे, कुप्रवृत्त मन आपके साथ उससे भी कहीं अधिक बुरा कर सकता है।

43. माता-पिता या अन्य रिश्तेदार आपके लिए जो कुछ भी करें, एक सुगठित मन आपके लिए उससे भी बेहतर कर सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V4: पुप्पवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पुप्पावग्गा: फूल
44. इस पृथ्वी और इसके समस्त देवताओं सहित मृत्युलोक में कौन प्रवेश करेगा? कुशल पुष्प-सजावटकर्ता जिस प्रकार फूल को खोज निकालता है, उसी प्रकार कौन सुशिक्षित धम्म-कथन को खोज निकालेगा?

45. मार्ग पर चलने वाला विद्यार्थी इस पृथ्वी और मृत्युलोक में, इसके सभी देवताओं सहित, प्रवेश करेगा। मार्ग पर चलने वाला विद्यार्थी सुशिक्षित धम्म-कथन को उसी प्रकार खोज निकालेगा, जैसे कुशल पुष्प-सजाने वाला फूल को खोज निकालता है।

46. यह जानते हुए कि यह शरीर झाग के समान है, इसकी प्रकृति को समझते हुए - एक मृगतृष्णा - मारा के फूलों को काटकर, तुम वहाँ जाते हो जहाँ मृत्यु का राजा नहीं देख सकता।

47. फूल इकट्ठा करने में लीन वह व्यक्ति, जिसका हृदय विचलित था: मृत्यु उसे बहा ले गई - एक महान बाढ़ की तरह, एक सोए हुए गाँव की तरह।

48. फूल इकट्ठा करने में लीन वह व्यक्ति, जिसका हृदय विचलित है, इंद्रिय सुखों में अतृप्त है: अंत-निर्माता उसे अपने वश में रखता है।

49. जैसे एक मधुमक्खी फूल को नुकसान पहुंचाए बिना, उसके रंग, उसकी सुगंध को प्रभावित किए बिना, उसका रस लेकर उड़ जाती है: वैसे ही ऋषि को एक गाँव से होकर गुजरना चाहिए।

50. दूसरों के असभ्य व्यवहार पर ध्यान न दें, न ही उन्होंने क्या किया है या क्या नहीं किया है, बल्कि इस बात पर ध्यान दें कि आपने खुद क्या किया है और क्या नहीं किया है।

51. जैसे कोई फूल चमकीले रंग का होता है लेकिन उसमें कोई सुगंध नहीं होती: वैसे ही अच्छी तरह से कही गई बात भी व्यर्थ होती है जब तक उस पर अमल न किया जाए।

52. जैसे कोई फूल चमकीले रंगों से भरा और सुगंध से भरपूर होता है: वैसे ही अच्छी तरह से बोला गया शब्द तभी फलदायी होता है जब उस पर अच्छी तरह से अमल किया जाए।

53. जैसे फूलों के ढेर से कई मालाएँ बनाई जा सकती हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले और नश्वर प्राणी को भी अपने जन्म लेने वाले और नश्वर स्वभाव से कई कुशल कार्य करने चाहिए।

54. किसी भी फूल की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जाती—न चंदन की, न चमेली की, न तगरा की। लेकिन अच्छे व्यक्ति की सुगंध हवा के विपरीत जाती है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति की सुगंध हर दिशा में फैलती है।

55. चंदन, तगारा, कमल और चमेली: इन सुगंधों में, सद्‌गुण की सुगंध अतुलनीय है।

56. चंदन, तगारा की यह सुगंध लगभग नगण्य है, जबकि गुणी की सुगंध सर्वोच्च देवताओं तक पहुँचती है।

57. जो लोग सद्‌गुणों में परिपूर्ण हैं, सजगता में निवास करते हैं, सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो जाते हैं: मारा उनके पदचिह्नों का अनुसरण नहीं कर सकती।

58. जैसे राजमार्ग के किनारे फेंके गए कूड़े के ढेर में कमल उग सकता है, जो मन को प्रसन्न करने वाली स्वच्छ और सुगंधित सुगंध से भरपूर हो।

59. अतः कूड़े-कचरे जैसे, साधारण और अंधे लोगों के बीच, सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति का शिष्य विवेक से चकाचौंध कर देता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V5: बलवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

बलावग्गा: मूर्ख
60. जागृत लोगों के लिए रात लंबी लगती है। थके हुए लोगों के लिए मीलों का फासला होता है। सच्चे धम्म से अनभिज्ञ मूर्खों के लिए संसार लंबा होता है।

61. यदि अपने मार्ग में आपको अपने बराबर का, अपने से बेहतर कोई न मिले, तो दृढ़ता से अकेले ही अपना मार्ग जारी रखें। मूर्खों का कोई साथ नहीं होता।

62. 'मेरे बेटे हैं, मेरे पास धन है' - मूर्ख स्वयं को पीड़ा देता है। जब वह स्वयं का ही मालिक नहीं है, तो फिर बेटे कैसे? धन कैसे?

63. अपनी मूर्खता का बोध रखने वाला मूर्ख कम से कम उस हद तक तो बुद्धिमान होता है। परन्तु जो मूर्ख अपने आप को बुद्धिमान समझता है, वह वास्तव में मूर्ख कहलाने का पात्र है।

64. यदि मूर्ख जीवन भर बुद्धिमानों के साथ भी रहे, तो भी वह धम्म के बारे में कुछ नहीं जानता—जैसे चम्मच सूप का स्वाद नहीं जानता।

65. यदि कोई समझदार व्यक्ति क्षण भर के लिए भी बुद्धिमान के साथ रहता है, तो वह तुरंत धम्म को जान लेता है - जैसे जीभ सूप का स्वाद जान लेती है।

66. मूर्ख, जिनकी बुद्धि कमजोर होती है, जीवन में आगे बढ़ते हुए अपने ही शत्रु बन जाते हैं, और बुराई करते हैं जिसका फल कड़वा होता है।

67. ऐसा कर्म करना अच्छा नहीं है, जिसे करने के बाद आपको पछतावा हो, जिसका परिणाम आपको रोते हुए, आँसुओं से भीगे चेहरे के साथ भुगतना पड़े।

68. अच्छा है वह काम करना, जिसे करने के बाद आपको पछतावा न हो, जिसका परिणाम आपको संतुष्टि और प्रसन्नता से मिले।

69. जब तक बुराई पक नहीं जाती, मूर्ख उसे शहद समझता है। परन्तु जब वह बुराई पक जाती है, तो मूर्ख पीड़ा में पड़ जाता है।

70. महीने दर महीने मूर्ख व्यक्ति भले ही घास के एक सिरे के बराबर ही भोजन करे, परन्तु वह धम्म को समझने वालों के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा।

71. एक बुरा कर्म, जब किया जाता है, तो वह तैयार दूध की तरह तुरंत बाहर नहीं आता। यह मूर्ख का पीछा करता है, राख में छिपी आग की तरह सुलगता रहता है।

72. मूर्ख को प्रसिद्धि केवल उसके विनाश के लिए मिलती है। यह उसके उज्ज्वल भाग्य को नष्ट कर देती है और उसके दिमाग को चीर देती है।

73. वह अनुचित दर्जा, भिक्षुओं के बीच श्रेष्ठता, मठों के बीच अधिकार और आम परिवारों से सम्मान चाहता होगा।

74. 'गृहस्थ और बाहर गए हुए दोनों को लगे कि यह सब मैंने ही किया है। मैं ही तय करूँ कि क्या कर्तव्य है और क्या नहीं': मूर्ख का बढ़ता हुआ संकल्प - उसकी इच्छा और अहंकार।

75. भौतिक लाभ का मार्ग एक ही दिशा में जाता है, मुक्ति का मार्ग दूसरा। यह जानकर, ज्ञानी पुरुष के शिष्य भिक्षु को भेंटों में रुचि नहीं रखनी चाहिए, बल्कि एकांतवास का अभ्यास करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V6:पंडितवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पंडितवग्ग: बुद्धिमान
76. उसे खजाना बताने वाला, तुम्हारी गलतियों को देखकर तुम्हें सुधारने वाला बुद्धिमान समझो। ऐसे संत के साथ रहो। क्योंकि ऐसे संत के साथ रहने वाले का जीवन बेहतर होता है, बदतर नहीं। 77. उसे तुम्हें उपदेश देने, सिखाने और बुरे व्यवहार से दूर रखने दो। अच्छे लोगों को वह प्रिय लगता है; बुरे लोगों को नहीं।

78. बुरे दोस्तों से संगति मत रखो। नीच लोगों से संगति मत रखो। प्रशंसनीय दोस्तों से संगति रखो। सर्वश्रेष्ठ लोगों से संगति रखो।

79. धम्म का पान करके, धम्म से तरोताज़ा होकर, व्यक्ति निश्चिंत होकर, शांत मन से सोता है। श्रेष्ठ जनों द्वारा प्रकट किए गए धम्म में ज्ञानी व्यक्ति को सदा आनंद मिलता है।

80. सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं। तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। बुद्धिमान लोग स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।

81. जैसे हवा में चट्टान का एक टुकड़ा टस से मस नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान लोग प्रशंसा या निंदा से विचलित नहीं होते।

82. जैसे गहरी झील निर्मल, शांत और स्थिर होती है, वैसे ही ज्ञानी लोग धम्म के वचन सुनकर निर्मल और शांत हो जाते हैं।

83. सत्यतः, हर जगह सत्यनिष्ठावान ही अलग दिखते हैं। वे, अच्छे लोग, कृपा या लाभ की आशा में व्यर्थ की बातें नहीं करते। सुख-दुख में भी बुद्धिमान लोग ऊँच-नीच का भाव नहीं दिखाते।

84. जो व्यक्ति अपने लिए या किसी और के लिए भी अधर्मी साधनों से धन, पुत्र, राज्य, अपनी पूर्ति की लालसा नहीं करेगा, वह धर्मी, सद्गुणों से समृद्ध और विवेकशील होगा।

85. दूर तट तक पहुँचने वाले लोग बहुत कम हैं। बाकी लोग बस इसी तट पर सरपट दौड़ते रहते हैं।

86. परन्तु जो लोग सुशिक्षित धम्म के अनुरूप धम्म का अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के उस क्षेत्र को पार कर जाएँगे जिसे पार करना इतना कठिन है।

87. अंधकारमय प्रथाओं का त्याग करके, बुद्धिमान व्यक्ति को उज्ज्वल प्रथाओं का विकास करना चाहिए, क्योंकि वह घर से बेघर होकर एकांत में चला गया है, जिसका आनंद लेना बहुत कठिन है।

88. वहाँ उसे आनंद की कामना करनी चाहिए, कामुकता का त्याग करना चाहिए—वह जिसके पास कुछ भी नहीं है। उसे बुद्धिमानी से अपने मन को दूषित करने वाली चीजों से शुद्ध करना चाहिए।

89. जिनके मन आत्म-जागरूकता के कारकों में सुविकसित हैं, जो आसक्ति रहित होकर, मोह त्याग कर प्रसन्न होते हैं — वे तेजस्वी होते हैं, उनके प्रवाह समाप्त हो जाते हैं: वे संसार में बंधनरहित होते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V7: अरहंतावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अरहंतवग्ग: अरहंत
90. जो व्यक्ति पूर्ण मार्ग तय कर चुका है, जो दुःख से मुक्त है, जो हर तरह से पूर्णतः मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को त्याग दिया है, उसमें कोई बुखार नहीं पाया जाता।

91. सचेत व्यक्ति सक्रिय रहते हैं, आराम करने में आनंद नहीं लेते। वे हर घर का त्याग कर देते हैं, हर घर का, जैसे हंस झील से उड़ान भरते हैं।

92. जमाखोरी न करना, भोजन को समझ लेना, उनका चारागाह - शून्यता और बिना किसी संकेत के स्वतंत्रता: उनका निशान, अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह, पता नहीं लगाया जा सकता है।

93. अपशिष्ट समाप्त हो गए, पोषण से स्वतंत्र, उनका चारागाह - शून्यता और बिना किसी संकेत के स्वतंत्रता: उनका निशान, अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह, पता नहीं लगाया जा सकता है।

94. जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा प्रशिक्षित घोड़ों की तरह स्थिर हों, जिसका अहंकार त्यागा हुआ हो, जो दोषमुक्त हो, ऐसे व्यक्ति की तो देवता भी पूजा करते हैं।

95. पृथ्वी की तरह, वह प्रतिक्रिया नहीं करता—संस्कारी, इंद्र के स्तंभ की तरह, कीचड़ रहित झील की तरह। उसके लिए—ऐसा—आगे कोई यात्रा नहीं है।

96. उसका मन शांत है, उसकी वाणी और कर्म शांत हैं: जो सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, शांत हो गया है, ऐसा।

97. वह व्यक्ति जो अविश्वासी है / कृतघ्न है / जो अनगढ़ चोर को जानता है / जिसने संबंध तोड़ दिए हैं / जिसने अपने अवसरों को नष्ट कर दिया है / जो उल्टी खाता है: / जिसने उम्मीदों को त्याग दिया है: वह अंतिम व्यक्ति है।

98. गाँव हो या जंगल, घाटी हो या पठार: वह स्थान रमणीय है जहाँ अरहंत निवास करते हैं।

99. रमणीय वन्य क्षेत्र जहाँ भीड़भाड़ आनंद नहीं देती, वहाँ वासना से मुक्त लोग आनंदित होते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं कर रहे होते।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V8: सहस्सवग्ग

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

सहस्सवग्ग: हजारों
100. हजारों अर्थहीन शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है जिसे सुनकर शांति मिलती है।

101. हजारों अर्थहीन छंदों की तुलना में एक अर्थपूर्ण छंद बेहतर है जिसे सुनकर शांति मिलती है।

102. और सैकड़ों अर्थहीन श्लोकों का जाप करने से बेहतर है एक धम्म-कथन जिसे सुनने से शांति मिलती है।

103. हजारों-हजारों लोगों को जीतने वाले से भी बड़ा युद्ध में वह है जो केवल एक को जीत ले - स्वयं को। 104. दूसरों को जीतने से बेहतर है स्वयं को जीतना।

105. जब आप निरंतर आत्म-संयम में रहते हुए स्वयं को प्रशिक्षित कर लेते हैं, तो न तो कोई देव, न ही गंधर्व, और न ही ब्रह्माओं से बंधी कोई मार उस विजय को पराजय में बदल सकती है।

106. आप महीने दर महीने, हजारों की लागत से, सौ बार यज्ञ कर सकते हैं, या स्वयं को संजोकर एक व्यक्ति को एक क्षण के लिए श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं।

107. सौ वर्षों के बलिदानों से भी श्रेष्ठ वह श्रद्धा अर्पित करने का कार्य होगा। आप सौ वर्षों तक जंगल में आग जलाकर रह सकते हैं, या एक क्षण के लिए स्वयं को समर्पित श्रद्धा अर्पित कर सकते हैं।

108. सौ वर्षों के बलिदानों से भी श्रेष्ठ वह श्रद्धा अर्पित करना होगा। पुण्य की चाह में एक व्यक्ति द्वारा पूरे वर्ष संसार में अर्पित या बलिदान किया गया कुछ भी उसके एक चौथाई के बराबर नहीं होता। जो लोग सीधे मार्ग पर चल चुके हैं, उन्हें सम्मान देना ही बेहतर है।

109. यदि आप आदतन सम्मानजनक हैं, और लगातार योग्य लोगों का आदर करते हैं, तो चार चीजें बढ़ती हैं: लंबी आयु, सुंदरता, खुशी, शक्ति।

110. सद्गुण रहित, असावधान जीवन जीने से बेहतर है एक दिन जो सद्गुणी व्यक्ति ध्यान में लीन होकर जीता है।

111. और सौ वर्षों तक अविवेकी, असावधानीपूर्वक जीने से बेहतर है एक दिन जो एक विवेकशील व्यक्ति द्वारा ध्यान में लीन होकर जिया जाता है।

112. और सौ साल उदासीनता और ऊर्जाहीनता में जीने से बेहतर है एक दिन ऊर्जावान और दृढ़ होकर जीना।

113. और सौ वर्षों तक बिना उदय और अस्त होते देखे जीने से बेहतर है एक दिन उदय और अस्त होते हुए देखना।

114. और सौ वर्षों तक अमरता की अवस्था को देखे बिना जीने से बेहतर है एक दिन अमरता की अवस्था को देखकर जीना।

115. और परम धम्म को देखे बिना सौ वर्ष जीने से बेहतर है, एक दिन परम धम्म को देखकर जीना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V9:पापवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पापावग्गा: बुराई

116. प्रशंसनीय कार्यों को करने में तत्पर रहो। अपने मन को बुराई से दूर रखो। पुण्य कर्म करने में सुस्ती बरतने से बुराई मन को प्रसन्न करती है।

117. यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार ऐसा नहीं करना चाहिए, उसे बुराई की आदत नहीं डालनी चाहिए। बुराई का संचय पीड़ा लाता है।

118. यदि कोई व्यक्ति पुण्य कर्म करता है, तो उसे बार-बार पुण्य कर्म करना चाहिए, उसे पुण्य कर्म करने की आदत विकसित करनी चाहिए। पुण्य संचय करने से आराम मिलता है।

119. दुष्टों को भी तब तक सौभाग्य प्राप्त होता है जब तक उनकी बुराई परिपक्व नहीं हो जाती। परन्तु जब वह परिपक्व हो जाती है, तभी उन्हें बुराई का सामना करना पड़ता है।

120. अच्छे लोगों को भी तब तक दुर्भाग्य का सामना करना पड़ता है जब तक उनका अच्छाई का गुण परिपक्व नहीं हो जाता। लेकिन जब वह गुण परिपक्व हो जाता है, तभी उन्हें सौभाग्य प्राप्त होता है।

121. बुराई के प्रति उदासीन मत रहो ('यह मुझ तक नहीं पहुँचेगी')। बूंद-बूंद पानी गिरने से भी घड़ा भर जाता है। उसी प्रकार, मूर्ख व्यक्ति बुराई से - चाहे वह थोड़ा-थोड़ा करके ही क्यों न हो, आदतन भर लेता है।

122. पुण्य के प्रति उदासीन मत रहो ('यह मुझे प्राप्त नहीं होगा')। एक घड़ा बूंद-बूंद करके गिरने वाले पानी से भी भर जाता है। पुण्य से—चाहे थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, नियमित रूप से—ज्ञान प्राप्त व्यक्ति स्वयं को परिपूर्ण कर लेता है।

123. एक छोटे लेकिन अच्छी तरह से लदे कारवां वाले व्यापारी की तरह - एक खतरनाक सड़क, जीवन से प्यार करने वाले व्यक्ति की तरह - एक जहर, जिससे बचना चाहिए - बुरे कर्म।

124. यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो वह हाथ विष धारण कर सकता है। विष वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता जहाँ घाव न हो। जो लोग बुराई नहीं करते, उनके लिए कोई बुराई नहीं है।

125. जो कोई निर्दोष व्यक्ति को, पवित्र व्यक्ति को, बेदाग व्यक्ति को सताता है, तो बुराई मूर्ख पर उसी प्रकार लौट आती है जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

126. कुछ मनुष्य के गर्भ में जन्म लेते हैं, कुछ दुष्ट नरक में जाते हैं, अच्छे मार्ग पर चलने वाले स्वर्ग में जाते हैं, जबकि जो पाप रहित होते हैं वे पूरी तरह से मुक्त होते हैं।

127. न तो हवा में, न ही समुद्र के बीच में, न ही पहाड़ों की दरार में - पृथ्वी पर कहीं भी - ऐसी कोई जगह नहीं मिलेगी जहाँ आप रह सकें और अपने बुरे कर्म से बच सकें।

128. न तो हवा में, न ही समुद्र के बीच में, न ही पहाड़ों की दरार में - पृथ्वी पर कहीं भी - ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ आप रह सकें और मृत्यु के आगे न झुकें।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V10:दण्डवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

दंडवग्गा: हिंसा
129. सभी लोग दंड से कांपते हैं।

सभी को मृत्यु का भय है। अपने आप से तुलना करते हुए, न तो किसी की हत्या करो और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करो।

130. सभी लोग दंड से कांपते हैं,

सभी को अपना जीवन प्रिय होता है। अपने आप से तुलना करते हुए, न तो किसी की हत्या करो और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए उकसाओ।

131. जो कोई स्वयं आराम की तलाश में आराम चाहने वाले जीवों को दंड देता है, उसे मृत्यु के बाद आराम नहीं मिलेगा।

132. जो कोई स्वयं आराम की तलाश में आराम चाहने वाले प्राणियों को दंड नहीं देता, उसे मृत्यु के बाद आराम मिलेगा।

133. किसी से कठोर भाषा का प्रयोग न करें, अन्यथा शब्द आप पर ही वापस आ पड़ेंगे। विवादपूर्ण बातचीत कष्टदायी होती है, क्योंकि बदले में आपको लाठियों से मार पड़ती है।

134. यदि तुम चपटे धातु के बर्तन की तरह गूंजते नहीं हो, तो तुमने बंधनमुक्ति प्राप्त कर ली है; तुममें कोई विवाद नहीं पाया गया है।

135. जैसे चरवाहा छड़ी से गायों को खेत में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु जीवित प्राणियों के जीवन को चलाती है।

136. जब मूर्ख बुरे कर्म करता है, तो वह बेखबर रहता है। मंदबुद्धि व्यक्ति अपने कर्मों से इस प्रकार पीड़ित होता है मानो आग से जल रहा हो।

137-139. जो कोई भी छड़ी से किसी निर्दोष, निहत्थे व्यक्ति को सताता है, वह शीघ्र ही दस चीजों में से किसी एक में पड़ जाता है: कठोर पीड़ा, विनाश, टूटा हुआ शरीर, गंभीर बीमारी, मानसिक विक्षिप्तता, सरकार के साथ परेशानी, हिंसक निंदा, रिश्तेदारों का खो जाना, संपत्ति का विघटन, घरों का जल जाना।

140. शरीर के विखंडन पर यह विवेकहीन प्राणी नरक में पुनः प्रकट होता है।

141. न तो नग्नता, न उलझे हुए बाल, न कीचड़, न भोजन से इनकार, न नंगी ज़मीन पर सोना, न धूल और गंदगी, न ही कठोर तपस्या उस नश्वर को शुद्ध करती है जो संदेह से परे नहीं गया है।

142. यदि कोई व्यक्ति सजे-धजे रहते हुए भी, शांत, संयमित और आश्वस्त होकर, सभी प्राणियों के प्रति दंड का भाव त्याग कर, पवित्र जीवन के अनुरूप जीवन व्यतीत करता है, तो वह चिंतनशील ब्राह्मण है, भिक्षु है।

143. इस दुनिया में ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो अंतरात्मा से विवश है, जो निंदा के प्रति उसी प्रकार जागृत होता है जैसे एक उत्तम घोड़ा चाबुक के प्रति?

144. कोड़े से पीटे गए एक उत्तम घोड़े की तरह, उत्साही और संयमित रहो। दृढ़ विश्वास, सद्गुण, दृढ़ता, एकाग्रता, विवेक, ज्ञान और आचरण में निपुणता और सचेतनता के माध्यम से, तुम इस महत्वपूर्ण पीड़ा से मुक्ति पाओगे।

145. सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं। तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। अच्छे आचरण वाले स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » वि11: जरावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

जारवग्गा: वृद्धावस्था
146. जब निरंतर प्रज्वलित हो, तो हंसी कैसी, आनंद क्यों? अंधकार में घिरे हो, क्या तुम दीपक नहीं खोजते?

147. उस सुंदर छवि को देखो, सड़ते हुए घावों का ढेर, सहारा दिया गया: बीमार, लेकिन कई संकल्पों का विषय, जहाँ कुछ भी स्थायी या निश्चित नहीं है।

148. यह शरीर क्षीण हो चुका है, रोगों का घोंसला है, विघटित हो रहा है। यह सड़ा हुआ समूह टूटकर बिखर जाएगा, क्योंकि जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है।

149. पतझड़ में लौकी की तरह फेंकी गई इन हड्डियों को देखकर, कबूतर के भूरे रंग की: क्या आनंद है?

150. हड्डियों से बना एक शहर, जिस पर मांस और खून का लेप लगा है, जिसके छिपे हुए खजाने हैं: अभिमान और तिरस्कार, बुढ़ापा और मृत्यु।

151. यहाँ तक कि भव्य रूप से अलंकृत शाही रथ भी जर्जर हो जाते हैं, और शरीर भी वृद्धावस्था के आगे नतमस्तक हो जाता है। परन्तु सद्‌गुणों का धर्म वृद्धावस्था के आगे नतमस्तक नहीं होता: सद्‌गुण सभ्य लोगों को इसका ज्ञान कराते हैं।

152. यह अनसुना आदमी बैल की तरह परिपक्व होता है। उसकी मांसपेशियां तो विकसित होती हैं, लेकिन उसकी विवेकशक्ति नहीं।

153. अनेक जन्मों के चक्र में मैं बिना प्रतिफल, बिना विश्राम के, घर बनाने वाले की खोज में भटकता रहा। बार-बार जन्म लेना कष्टदायक है।

154. हे घर बनाने वाले, तुम दिख गए! अब तुम फिर कभी घर नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट गईं, छत का मुख्य स्तंभ नष्ट हो गया, और तुम्हारा मन व्याकुलता के अंत तक पहुँच गया।

155. न तो पवित्र जीवन जीने से और न ही जवानी में धन कमाने से, वे सूखे हुए, मछलियों से रहित झील में बूढ़े बगुले की तरह मुरझा जाते हैं।

156. न तो पवित्र जीवन जीते हैं और न ही अपनी जवानी में धन कमाते हैं, वे इधर-उधर पड़े रहते हैं, धनुष से चूक गए, पुराने दिनों पर आहें भरते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V12:अट्टवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अट्टावग्ग: स्वयं

157. यदि आप स्वयं को प्रिय मानते हैं, तो अपनी रक्षा करें, अपनी अच्छी तरह से रक्षा करें। बुद्धिमान व्यक्ति रात के तीनों पहरों में, जीवन के तीनों चरणों में, जागते हुए स्वयं की देखभाल करता है।

158. पहले वह स्वयं सही मार्ग पर दृढ़ हो जाएगा, फिर दूसरों को सिखाएगा। वह अपना नाम कलंकित नहीं करेगा: वह बुद्धिमान है।

159. यदि आप स्वयं को उसी प्रकार ढालते हैं जिस प्रकार आप दूसरों को सिखाते हैं, तो अच्छी तरह से प्रशिक्षित होकर आगे बढ़ें और वश में करें - क्योंकि, जैसा कि वे कहते हैं, जिसे वश में करना कठिन है वह आप स्वयं हैं।

160. आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका आधार है, क्योंकि आपका आधार और कौन हो सकता है? जब आप स्वयं को अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर लेते हैं, तो आप वह आधार प्राप्त कर लेते हैं जिसे प्राप्त करना कठिन होता है।

161. उसने स्वयं जो बुराई की है—स्वयं उत्पन्न, स्वयं निर्मित—वह मंदबुद्धि को हीरे, एक कीमती पत्थर की तरह पीस देती है।

162. जब आप अत्यधिक बुराई से घिरे होते हैं - जैसे बेल से घिरा हुआ साल का पेड़ - तो आप अपने साथ वही करते हैं जो एक शत्रु चाहेगा।

163. जो काम आपके लिए न तो अच्छे हैं और न ही उपयोगी, उन्हें करना आसान है। लेकिन जो काम वास्तव में उपयोगी और अच्छा है, उसे करना बेहद कठिन है।

164. धम्म का पालन करने वालों, योग्य व्यक्तियों, श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षा: जो कोई भी इसकी निंदा करता है - एक मूर्ख, बुरे विचारों से प्रेरित - वह अपने ही विनाश का फल भोगता है, जैसे बांस का फल लगना।

165. स्वयं द्वारा किया गया बुराई स्वयं ही अपवित्र हो जाता है। स्वयं द्वारा न किया गया बुराई स्वयं ही शुद्ध हो जाता है। पवित्रता और अपवित्रता स्वयं के कर्मों का परिणाम है। कोई किसी को पवित्र नहीं कर सकता। कोई दूसरा व्यक्ति किसी को पवित्र नहीं कर सकता।

166. चाहे दूसरे का भला कितना भी महान क्यों न हो, अपने स्वयं के भले को उसके हित से न जोड़ें। अपने सच्चे भले को जानते हुए, केवल उसी पर ध्यान केंद्रित करें।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V13:लोकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

लोकावग्गा: दुनिया
167. नीच गुणों से संगति न करो। लापरवाही से मेलजोल न रखो। गलत विचारों से संगति न रखो। संसार के चक्कर में न पड़ो।

168. उठो! लापरवाह मत बनो। धम्म का पालन करो। धम्म का पालन करने वाला इस लोक और परलोक में चैन से सोता है।

169. धम्म का सही ढंग से पालन करो। गलत ढंग से पालन मत करो। जो धम्म का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक में चैन से सोता है।

170. इसे एक बुलबुला समझो, इसे एक मृगतृष्णा समझो: जो दुनिया को इस तरह देखता है, उसे मृत्यु का राजा नहीं देखता।

171. आओ, इस दुनिया को देखो जो शाही रथ की तरह सजी हुई है, जहाँ मूर्ख कूद पड़ते हैं, जबकि जो जानते हैं वे चिपके नहीं रहते।

172. जो कभी लापरवाह था, लेकिन बाद में नहीं रहा, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

173. उसके बुरे कर्म की जगह कुशलता ने ले ली है: वह दुनिया को बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह रोशन करता है।

174. यह संसार अंधा है - यहाँ कितने कम लोग स्पष्ट रूप से देख पाते हैं! जैसे जाल से बच निकलने वाले पक्षी कम होते हैं, वैसे ही स्वर्ग तक पहुँचने वाले लोग भी कम होते हैं।

175. हंस सूर्य के पथ पर उड़ते हैं; शक्तिवान लोग अंतरिक्ष में उड़ते हैं; प्रबुद्ध लोग मारा की सेनाओं को पराजित करके संसार से भाग जाते हैं।

176. जो व्यक्ति झूठ बोलता है, जो इस एक बात में उल्लंघन करता है, दुनिया के प्रति चिंता से परे जाकर: ऐसा कोई बुरा काम नहीं है जो वह न कर सके।

177. कंजूस लोग देवलोक में नहीं जाते। दान की प्रशंसा न करने वाले मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग दान के प्रति अपनी स्वीकृति व्यक्त करते हैं और इस प्रकार परलोक में शांति पाते हैं।

178. पृथ्वी पर एकमात्र प्रभुत्व, स्वर्ग जाना, सभी लोकों पर आधिपत्य: धारा-प्रवेश का फल उनसे श्रेष्ठ है।
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V14:बुद्धवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

बुद्धवग्ग: बुद्ध
179. जिसकी विजय को पलटा नहीं जा सकता, जिसकी विजय तक दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता; जागृत, उसका चरागाह अनंत, पथहीन: तुम उसे किस मार्ग से गुमराह करोगे?

180. जिसमें कोई लालसा नहीं है - चिपचिपा जाल बिछाने वाला - उसे कहीं भी ले जाने के लिए; जागृत, उसका चारागाह अंतहीन, पथहीन: तुम उसे किस मार्ग से गुमराह करोगे?

181. वे प्रबुद्ध, ध्यान में लीन, शांति और त्याग में आनंदित, आत्मजागृत और सचेत: देवता भी उन्हें ईर्ष्या से देखते हैं।

182. मनुष्य जन्म पाना कठिन है। नश्वर प्राणियों का जीवन कठिन है। सच्चे धम्म को सुनने का अवसर पाना कठिन है। ज्ञानी जनों का उदय होना कठिन है।

183. किसी भी बुराई का न करना, कुशलता का प्रदर्शन करना, अपने मन को शुद्ध करना: यही जागृत व्यक्ति की शिक्षा है।

184. धैर्यपूर्वक सहनशीलता: सर्वोपरि तपस्या। बंधनमुक्ति: सर्वोपरि, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। जो दूसरे को चोट पहुँचाता है, वह ध्यानमग्न नहीं है। जो दूसरे के साथ दुर्व्यवहार करता है, वह भिक्षु नहीं है।

185. निंदा न करना, चोट न पहुँचाना, पतिमोक्खा के अनुरूप संयम, भोजन में संयम, एकांतवास, उन्नत मन के प्रति प्रतिबद्धता: यही जागृत व्यक्ति की शिक्षा है।

186. सोने के सिक्कों की वर्षा होने पर भी हमें इंद्रिय सुखों की पूर्ति नहीं होगी। 'तनावपूर्ण, वे कम आनंद देते हैं' - यह जानते हुए, बुद्धिमान व्यक्ति को दिव्य इंद्रिय सुखों में भी आनंद नहीं मिलता।

187. वह वह है जो व्यथा के अंत में आनंदित होता है, सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति का शिष्य है।

188. वे कई शरणस्थलों, पहाड़ों और जंगलों, पार्कों और वृक्षों के मंदिरों में जाते हैं: खतरे से घिरे लोग।

189. वह सुरक्षित शरणस्थल नहीं है, सर्वोच्च शरणस्थल नहीं है, वह शरणस्थल नहीं है, जहाँ जाकर आपको सभी दुख और तनाव से मुक्ति मिलती है।

190. परन्तु जब तुम बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेकर उचित विवेक से चारों आर्य सत्यों को देख लो—

191. तनाव, तनाव का कारण, तनाव से मुक्ति, और तनाव को शांत करने का अष्टमार्ग:

192. वह सुरक्षित शरणस्थल है, वह सर्वोच्च शरणस्थल है, वह शरणस्थल है, जहाँ जाकर आपको सभी दुख और तनाव से मुक्ति मिलती है।

193. एक उत्तम दर्जे का पुरुष मिलना दुर्लभ है। यह कहना बिलकुल गलत है कि वह हर जगह पैदा होता है। वह जहाँ कहीं भी पैदा हो, एक प्रबुद्ध व्यक्ति के परिवार में समृद्धि और सुख होता है।

194. एक आशीर्वाद: जागृतों का उदय। एक आशीर्वाद: सच्चे धम्म का उपदेश। एक आशीर्वाद: संघ की एकता। संघ में रहने वालों की तपस्या एक आशीर्वाद है।

195. यदि तुम पूजा के योग्य लोगों की पूजा करते हो, — जागृत जनों या उनके शिष्यों की — जिन्होंने जटिलताओं, विलाप और शोक को पार कर लिया है, जो संकटमुक्त, निर्भीक और बंधनमुक्त हैं:

196. आपकी योग्यता को 'इतना' आंकने का कोई पैमाना नहीं है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V15: सुखवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

सुखवग्ग: खुशी
197. हम कितने सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, शत्रुता से मुक्त होकर, शत्रुतापूर्ण लोगों के बीच। शत्रुतापूर्ण लोगों के बीच, हम शत्रुता से मुक्त होकर निवास करते हैं।

198. हम कितने सुख से रहते हैं, दुखों से मुक्त होकर, दुखियों के बीच। दुखियों के बीच, हम दुखों से मुक्त होकर निवास करते हैं।

199. हम कितने सुख से रहते हैं, व्यस्त लोगों के बीच व्यस्तता से मुक्त। व्यस्त लोगों के बीच, हम व्यस्तता से मुक्त रहते हैं।

200. हम कितने सुखी हैं, हम जिनके पास कुछ भी नहीं है। हम तेजस्वी देवताओं की तरह परमानंद से तृप्त होंगे।

201. जीत से शत्रुता उत्पन्न होती है। हार से व्यक्ति पीड़ा में लेट जाता है। शांत मन वाले लोग जीत और हार को भुलाकर आराम से लेट जाते हैं।

202. जुनून जैसी कोई आग नहीं, क्रोध जैसा कोई नुकसान नहीं, स्कंधों जैसा कोई दर्द नहीं, शांति के सिवा कोई आराम नहीं।

203. भूख: सबसे बड़ी बीमारी। मनगढ़ंत बातें: सबसे बड़ा दर्द। इस सत्य को उसके वास्तविक स्वरूप में जानने वाले के लिए, बंधनों से मुक्ति ही सबसे बड़ी राहत है।

204. रोग से मुक्ति: सबसे बड़ा सौभाग्य। संतोष: सबसे बड़ा धन। विश्वास: सबसे बड़ा रिश्ता। बंधन मुक्त होना: सबसे बड़ी सहजता।

205. एकांत और शांति के पोषण, उसके स्वाद का पान करने से, व्यक्ति बुराई से मुक्त हो जाता है, कष्टों से रहित हो जाता है, और धम्म में परमानंद के पोषण से तरोताज़ा हो जाता है।

206. नेक लोगों को देखना अच्छा लगता है। उनकी संगति में रहना हमेशा सुखद होता है। मूर्खों को लगातार न देखने से व्यक्ति हमेशा प्रसन्न रहता है।

207. क्योंकि मूर्ख के साथ रहने से लंबे समय तक दुःख बना रहता है। मूर्खों के साथ संगति शत्रु के समान कष्टदायी होती है—हमेशा। प्रबुद्धों के साथ संगति सत्कार सुखद होता है, जैसे सगे-संबंधियों के समूह के साथ।

208. अतः: प्रबुद्ध व्यक्ति – विवेकशील, विद्वान, सहनशील, कर्तव्यनिष्ठ, महान, बुद्धिमान, सत्यनिष्ठ व्यक्ति: उसका अनुसरण करो – इस प्रकार के व्यक्ति का – जैसे चंद्रमा, राशि चक्र के तारों का मार्ग।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V16:पियावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पियावग्गा: स्नेह
209. उसने अपना काम दूसरों के कामों में लगा दिया, और अपने कामों में नहीं लगा, अपने प्रिय लक्ष्य को पाने के लिए उसने अपने लक्ष्य की उपेक्षा की, अब वह उन लोगों से ईर्ष्या करता है जो अपने काम में लगे रहे, अपने कार्यों को पूरा करते रहे।

210. कभी भी, चाहे कुछ भी हो जाए, प्रिय हो या अप्राप्य, उससे मत जुड़ो। प्रिय या अप्राप्य को न देख पाना कष्टदायी होता है।

211. इसलिए किसी भी चीज़ को प्रिय न बनाओ, क्योंकि प्रिय से दूर रहना भयानक होता है। जिनके लिए न तो कुछ प्रिय है और न ही कुछ अप्रिय, उनके लिए कोई बंधन नहीं होता।

212. प्रिय से दुःख उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं रहता— तो भय कैसे? 213. प्रेम से दुःख उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं रहता— तो भय कैसे?

214. आनंद से दुःख उत्पन्न होता है, आनंद से भय उत्पन्न होता है। आनंद से मुक्त व्यक्ति के लिए दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

215. कामुकता से दुःख उत्पन्न होता है, कामुकता से भय उत्पन्न होता है। कामुकता से मुक्त व्यक्ति के लिए दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

216. लालसा से दुःख उत्पन्न होता है, लालसा से भय उत्पन्न होता है। लालसा से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

217. सद्‌गुण और दूरदृष्टि में परिपूर्ण, विवेकशील, सत्य बोलने वाला, अपना काम करने वाला: दुनिया उसे प्रिय मानती है।

218. यदि आपने ऐसी इच्छा को जन्म दिया है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, आपका हृदय भावुक है, आपका मन कामुक भावनाओं में उलझा हुआ नहीं है: तो आपको ऊपर की ओर बहने वाली धारा में कहा जाता है।

219. एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था, दूर से सुरक्षित घर लौट आया। उसके रिश्तेदार, उसके दोस्त, उसके साथी, उसकी वापसी से प्रसन्न हुए।

220. ठीक इसी तरह, जब आप अच्छा काम करके इस दुनिया से परलोक में चले जाते हैं, तो आपके अच्छे कर्म आपका स्वागत करते हैं - जैसे कोई रिश्तेदार, कोई प्रिय व्यक्ति घर लौट आया हो।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V17:कोडवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

कोधावग्गा: क्रोध
221. क्रोध का त्याग करो, अहंकार से मुक्त हो जाओ, हर बंधन से परे हो जाओ। जब नाम और रूप से तुम्हारा कोई लगाव न हो— कुछ भी न हो— कोई दुख नहीं, कोई तनाव नहीं, तब प्रवेश करो।

222. जब क्रोध उत्पन्न होता है, तो जो कोई भी दौड़ते हुए रथ की तरह उस पर दृढ़ नियंत्रण रखता है, उसे मैं कुशल सारथी कहता हूँ। बाकी सब तो केवल लगाम थामे रहने वाले हैं—बस इतना ही।

223. क्रोध को क्रोधहीनता से जीतो; बुराई को अच्छाई से; कंजूसी को दान से; झूठे को सत्य से।

224. सच बोलकर; क्रोधित न होकर; मांगे जाने पर चाहे कितना भी कम हो, देकर: इन तीन बातों से तुम देवताओं की उपस्थिति में प्रवेश करते हो।

225. सौम्य ऋषि, शरीर को निरंतर संयमित रखते हुए, उस अविचल अवस्था में जाते हैं जहाँ पहुँचने पर कोई दुःख नहीं होता।

226. जो लोग हमेशा जागते रहते हैं, दिन-रात अभ्यास करते हैं, मुक्ति के लिए उत्सुक रहते हैं: उनके अपशिष्ट समाप्त हो जाते हैं।

227. हे अतुल, यह बात प्राचीन काल से चली आ रही है, न कि केवल आज से: वे चुप बैठने वाले की आलोचना करते हैं, वे बहुत बोलने वाले की आलोचना करते हैं, वे अपने शब्दों को नापने वाले की आलोचना करते हैं।

228. दुनिया में कोई भी दोषरहित नहीं है। न कभी कोई ऐसा व्यक्ति था, न होगा, और न ही वर्तमान में कोई ऐसा व्यक्ति है जो पूरी तरह से दोषरहित हो या पूरी तरह से प्रशंसनीय हो।

229. यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उसे आचरण में निर्दोष, बुद्धिमान, विवेकशील और सद्‌गुणी देखकर उसकी प्रशंसा करें:

230. सोने की ईंट के समान—उनमें दोष निकालने का अधिकार किसे है? देवता भी उनकी प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मा भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

231. शरीर में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; शरीर को संयमित रखें। शारीरिक दुराचार का त्याग करके, शरीर में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 232. वाणी में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; वाणी को संयमित रखें। वाणी के दुराचार का त्याग करके, वाणी में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 233. मन में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; मन को संयमित रखें। मानसिक

दुराचार का त्याग करके, मन में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 234. शरीर से संयमित - प्रबुद्ध - वाणी और मन से संयमित - प्रबुद्ध - वे ही हैं जिनका संयम सुरक्षित है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V18: मालवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

मालवग्गा: अशुद्धि
235. अब तुम पीले पत्ते के समान हो। यमराज के सेवक पहले से ही पास खड़े हैं। तुम प्रस्थान के द्वार पर खड़े हो, परन्तु यात्रा की व्यवस्था अभी तक नहीं कर पाए हो।

236. अपने लिए एक द्वीप बनाओ! जल्दी काम करो! बुद्धिमान बनो! सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाएँगी, तुम निर्मल होकर श्रेष्ठों के दिव्य लोक में पहुँच जाओगे।

237. अब आप अपने समय के बिल्कुल अंत में हैं। आप यमराज की ओर जा रहे हैं, रास्ते में आराम करने की कोई जगह नहीं है, लेकिन आपने अभी तक यात्रा के लिए व्यवस्था नहीं की है।

238. अपने लिए एक द्वीप बनाओ! जल्दी काम करो! बुद्धिमान बनो! सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाने पर, बेदाग होकर, तुम फिर कभी जन्म और बुढ़ापे के चक्र से नहीं गुजरोगे।

239. जैसे एक चांदी का कारीगर धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल पिघली हुई चांदी की अशुद्धियों को दूर करता है - वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों को दूर करता है।

240. जिस प्रकार जंग—लोहे की अशुद्धि—उस लोहे को ही खा जाती है जिससे वह उत्पन्न होती है, उसी प्रकार लापरवाह जीवन जीने वाले व्यक्ति के कर्म उसे बुरे अंजाम की ओर ले जाते हैं।

241. कोई पाठ नहीं: मंत्रों की विनाशकारी अशुद्धता। कोई पहल नहीं: घर की। आलस्य: सुंदरता का। लापरवाही: रक्षक की।

242. स्त्री में दुराचार अशुद्धि है। दानदाता में कंजूसी। इस लोक और परलोक में बुरे कर्म ही वास्तविक अशुद्धि हैं।

243. इन अशुद्धियों से भी अधिक अशुद्ध है परम अशुद्धि: अज्ञान। हे भिक्षुओं, इस अशुद्धि का त्याग करके तुम अशुद्धि मुक्त हो जाते हो।

244. बेईमान, कौवे की तरह धूर्त, भ्रष्ट, चुगलखोर, आगे बढ़कर काम करने वाले और उद्दंड व्यक्ति के लिए जीवन जीना आसान होता है;

245. लेकिन जो व्यक्ति निरंतर सतर्क, सावधान, चौकस, ईमानदार, अपनी आजीविका में शुद्ध और अपने कार्यों में स्वच्छ रहता है, उसके लिए यह कठिन है।

246. जो कोई हत्या करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, किसी दूसरे की पत्नी के पास जाता है, और नशीले पदार्थों का आदी है, वह इसी दुनिया में जड़ से खुद को उखाड़ फेंकता है।

247. इसलिए, हे मेरे भले मनुष्य, जान लो कि बुरे कर्म लापरवाही भरे होते हैं। लोभ और अधर्म को तुम्हें दीर्घकालीन पीड़ा से पीड़ित न करने दो।

249. लोग अपने विश्वास और दृढ़ विश्वास के अनुसार दान करते हैं। जो कोई दूसरों को दिए गए भोजन और पेय से विचलित हो जाता है, उसे दिन-रात एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

250. परन्तु जिसमें यह जड़ से उखाड़कर मिटा दिया जाता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता प्राप्त कर लेता है।

251. जुनून जैसी कोई आग नहीं, क्रोध जैसा कोई आवेग नहीं, भ्रम जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

252. दूसरों की गलतियाँ देखना आसान है, लेकिन अपनी गलतियाँ देखना मुश्किल। तुम दूसरों की गलतियों को भूसे की तरह छान लेते हो, लेकिन अपनी गलतियों को छुपा लेते हो—जैसे कोई धोखेबाज, कोई बदकिस्मती भरा दांव।

253. यदि आप दूसरों की गलतियों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, लगातार दोष निकालते रहते हैं, तो आपके दुष्परिणाम बढ़ते ही जाएंगे। आप उनके अंत से बहुत दूर हैं।

254. अंतरिक्ष में कोई मार्ग नहीं है, कोई बाहरी चिंतनशील नहीं है। लोग जटिलताओं से मोहित हैं, लेकिन तथागत जटिलताओं से रहित हैं।

255. अंतरिक्ष में कोई निशान नहीं है, कोई बाहरी चिंतनशील नहीं है, कोई शाश्वत रचना नहीं है, जागृत में कोई डगमगाहट नहीं है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V19:धम्मत्थवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

धम्मत्थावग्गा: न्यायाधीश
256. जल्दबाजी में फैसला सुनाने का मतलब यह नहीं है कि आप न्यायाधीश हैं।

257. बुद्धिमान व्यक्ति, सही और गलत दोनों निर्णयों का आकलन करते हुए, दूसरों का निष्पक्ष रूप से न्याय करता है - बिना जल्दबाजी के, धम्म के अनुरूप, धम्म की रक्षा करते हुए, धम्म द्वारा संरक्षित, बुद्धिमान: उसे न्यायाधीश कहा जाता है।

258. केवल बहुत बोलने से ही कोई बुद्धिमान नहीं हो जाता। जो भी सुरक्षित हो—जिसमें शत्रुता या भय न हो—उसे बुद्धिमान कहा जाता है।

259. केवल बहुत बोलने से धम्म का पालन नहीं होता। जो कोई भी — भले ही उसने कुछ न सुना हो — अपने शरीर के माध्यम से धम्म को देखता है, वह धम्म से बेखबर नहीं है: वही धम्म का पालन करने वाला है।

260. सिर पर सफ़ेद बाल होना बुज़ुर्ग होने की निशानी नहीं है। उम्रदराज़ होने पर तो बूढ़ा मूर्ख कहा जाता है।

261. परन्तु जिसमें सत्य, संयम, ईमानदारी, नम्रता, आत्मसंयम होता है, उसे वृद्ध कहा जाता है, उसके दोष दूर हो जाते हैं, वह प्रबुद्ध हो जाता है।

262. न तो मीठी बातों से और न ही कमल जैसे रंग से कोई ईर्ष्यालु, कंजूस और धोखेबाज अनुकरणीय व्यक्ति बन जाता है।

263. लेकिन जिसमें यह जड़ से उखाड़ दिया गया हो, मिटा दिया गया हो - उसे अनुकरणीय कहा जाता है, उसकी घृणा को त्याग दिया जाता है, बुद्धिमान कहा जाता है।

264. मुंडा सिर होने से चिंतनशील व्यक्ति नहीं बन जाता। झूठा व्यक्ति जो कर्तव्यों का पालन नहीं करता, लोभ और वासना से भरा हुआ है: वह किस प्रकार का चिंतनशील है?

265. परन्तु जो कोई अपने बुरे गुणों की विसंगति को — चाहे वह बड़ी हो या छोटी — हर तरह से बुराई को सामंजस्य में लाकर दूर कर देता है, उसे चिंतनशील कहा जाता है।

266. दूसरों से भीख मांगने से कोई साधु नहीं बन जाता। जब तक कोई गृहस्थ जीवन शैली का पालन करता है, तब तक वह बिल्कुल भी साधु नहीं होता।

267. परन्तु जो कोई पुण्य और पाप दोनों को त्यागकर, पवित्र जीवन जीते हुए, संसार में विवेकपूर्वक चलता है, वह भिक्षु कहलाता है।

268. मौन रहने से भ्रमित और अज्ञानी व्यक्ति ऋषि नहीं बन जाता।

269. परन्तु जो कोई बुद्धिमान होकर, मानो तराजू को थामे, उत्तम को तौलते हुए, बुरे कर्मों का त्याग करता है, वही ऋषि कहलाता है। जो संसार के दोनों पक्षों को तौल सकता है, वही ऋषि कहलाता है।

270. जीवन को हानि पहुँचाने से कोई महान नहीं बनता। सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु होने से ही महान कहलाते हैं।

271. हे भिक्षु, अपने उपदेशों एवं अभ्यासों, महान विद्वत्ता, एकाग्रता की उपलब्धियों, एकांतवास, या इस विचार के कारण कि 'मैं उस वैरागी सुख को प्राप्त करता हूँ जिसे आम लोग नहीं जानते':

272. क्या आपने कभी अपशिष्टों के अंत के अभी तक न होने पर आत्मसंतुष्ट होने दिया है?

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V20:मग्गवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

प्रतीक चिन्ह

मगगावग्गा: पथ
273. मार्गों में अष्टांग मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। सत्यों में चार कथन सर्वश्रेष्ठ हैं। गुणों में वैराग्य सर्वश्रेष्ठ है। दो पैरों वाले प्राणियों में देखने की क्षमता रखने वाला मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।

274. दृष्टि को शुद्ध करने का यही एकमात्र मार्ग है—कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसका अनुसरण करो, और मारा का विस्मरण दूर हो जाएगा। इसका अनुसरण करके तुम दुख और तनाव का अंत करोगे।

275. मैंने तुम्हें यह मार्ग सिखाया है, क्योंकि मैं जानता हूँ - तुम्हारे जानने के लिए - तीरों को निकालना।

276. आपको पूरी लगन से प्रयास करना होगा। तथागत केवल मार्ग दिखाते हैं। जो ध्यान में लीन होकर अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

277. जब आप विवेक से यह समझ लेते हैं कि 'सभी रचनाएँ अस्थिर हैं', तो आप तनाव से मुक्त हो जाते हैं। यही पवित्रता का मार्ग है।

278. जब आप विवेक से यह समझ लेते हैं कि 'सभी बनावटी बातें तनावपूर्ण होती हैं', तो आप तनाव से विरक्त हो जाते हैं। यही पवित्रता का मार्ग है।

279. जब आप विवेक से यह देखते हैं कि 'सभी घटनाएँ अनात्म हैं', तो आप तनाव से विरक्त हो जाते हैं। यही शुद्धता का मार्ग है।

280. पहल करने का समय आने पर वह कोई पहल नहीं करता। युवा, बलवान, परन्तु सुस्त, हृदय के संकल्प क्षीण, आलसी, सुस्त व्यक्ति विवेक का मार्ग खो देता है।

281. वाणी में संशय और मन में संयम बरतते हुए, शरीर से अकुशल कार्य न करो। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करो। ऋषियों द्वारा घोषित मार्ग को साकार करो।

282. प्रयास से ज्ञान प्राप्त होता है; प्रयास न करने से ज्ञान का अंत हो जाता है। विकास और पतन के इन दो मार्गों को जानते हुए, ऐसा आचरण करो जिससे ज्ञान का विकास हो।

283. भोग-विलास के जंगल को काट डालो, वृक्षों के जंगल को नहीं। भोग-विलास के जंगल से ही खतरा और भय उत्पन्न होते हैं। इस जंगल और इसकी झाड़ियों को काटकर, हे भिक्षुओं, वनों से मुक्त हो जाओ।

284. जब तक किसी पुरुष के मन में महिलाओं के लिए थोड़ी सी भी अनबन नहीं रह जाती, तब तक दिल एक दूध पीते बछड़े की तरह अपनी माँ पर टिका रहता है।

285. अपने आत्म-आकर्षण को हाथ में शरद ऋतु के लिली फूल की तरह कुचल दो। केवल शांति के मार्ग का पोषण करो - बंधनमुक्ति - जैसा कि उस परम पूज्य ने सिखाया है जो अब इस दुनिया में नहीं है।

286. 'मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा। यहाँ, गर्मी और सर्दी के मौसम में।' मूर्ख ऐसा ही सोचता है, बाधाओं से अनभिज्ञ।

287. वह अपने बेटों और मवेशियों के नशे में चूर आदमी, जो पूरी तरह से दिमागी उलझन में है: मौत उसे बहा ले जाती है - एक बड़ी बाढ़ की तरह, एक सोए हुए गाँव की तरह।

288. एंडर द्वारा बंदी बनाए गए व्यक्ति को आश्रय देने के लिए कोई पुत्र नहीं, कोई पिता नहीं, कोई परिवार नहीं, रिश्तेदारों के बीच कोई आश्रय नहीं।

289. इस बाध्यकारी कारण से अवगत होकर, सद्गुण से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को तुरंत ही उस मार्ग को शुद्ध बनाना चाहिए जो मुक्ति की ओर जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » वी21:पाकिन्नकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पकिन्नाकवग्गा: विविध
290. यदि सीमित सुख-सुविधाओं का त्याग करके वह प्रचुर सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना चाहे, तो प्रबुद्ध व्यक्ति प्रचुर सुख-सुविधाओं के लिए सीमित सुख-सुविधाओं का त्याग कर देगा।

291. वह दूसरों को कष्ट देकर स्वयं को सुख भोगना चाहता है। शत्रुता की परस्पर क्रिया में उलझा हुआ, वह शत्रुता से मुक्त नहीं हो पाता।

292. जो लोग उचित कार्य को अस्वीकार करते हैं और अनुचित कार्य करते हैं— लापरवाह, उद्दंड— उनमें अपशकुन पनपता है।

293. लेकिन जो लोग शरीर में लीन होकर निरंतर सचेतनता का अभ्यास करते हैं; वे उन चीजों में लिप्त नहीं होते जो नहीं करनी चाहिए और उन चीजों में लगे रहते हैं जो सचेत और सतर्क रहकर करनी चाहिए — उनके लिए अपशिष्ट पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

294. माता-पिता, दो योद्धा राजाओं, राज्य और उसके अधीनता को मारकर ब्राह्मण, निश्चिंत होकर आगे बढ़ता है।

295. माता-पिता, दो विद्वान राजाओं और पाँचवें, एक बाघ को मारकर ब्राह्मण, निडर होकर आगे बढ़ता है।

296. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात बुद्ध में लीन रहती है। 297. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात धम्म में लीन रहती है। 298. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात संघ में लीन रहती है। 299. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात शरीर में लीन रहती है। 300. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनका हृदय दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है। 301. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनका हृदय दिन-रात मन के विकास में आनंदित रहता है।

302. बाहर का जीवन कठिन है, उसमें आनंद पाना मुश्किल है। दुखी गृहस्थ का जीवन कठिन है। असंगत लोगों के साथ रहना कष्टदायी है, मार्ग पर चलना कष्टदायी है। इसलिए न तो यात्री बनो और न ही दुखी।

303. दृढ़ निश्चयी, सद्गुण, यश और धन से संपन्न पुरुष: वह जहाँ भी जाता है, उसका सम्मान होता है।

304. अच्छे लोग दूर से बर्फीले हिमालय की तरह चमकते हैं। बुरे लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते, मानो रात में तीर चलाए गए हों।

305. अकेले बैठे, अकेले आराम करते, अकेले चलते, बिना थके। खुद को वश में करते हुए, वह अकेले ही आनंद लेता—जंगल में अकेले।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V22:निरायवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

निरयावग्ग: नरक
306. जो व्यक्ति यह दावा करता है कि जो हुआ ही नहीं, वह नरक में जाता है, और जो व्यक्ति यह कहकर चुप रहता है कि 'मैंने नहीं किया', वह भी नरक में जाता है। दोनों ही - नीच कर्म करने वाले लोग - वहाँ बराबर हो जाते हैं: मृत्यु के बाद, परलोक में।

307. उनके गले में गेरुए रंग का वस्त्र बंधा हुआ, अनेक दुष्ट गुणों वाले — बेलगाम, दुष्ट — अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में उठते हैं। 308. धधकती हुई लोहे की गेंद खाना बेहतर है, बजाय इसके कि तुम सिद्धांतहीन और बेलगाम होकर देश की भीख खाओ।

309. जो व्यक्ति दूसरे की पत्नी के साथ संबंध बनाता है, उसे चार बातें भुगतनी पड़ती हैं: एक तो बहुत सारे बुरे कर्म; एक बार अच्छी नींद न आना; तीसरी बात, निंदा; चौथी बात, नरक।

310. घोर पाप, बुरा भाग्य, और एक डरपोक पुरुष का एक डरपोक स्त्री के साथ क्षणिक सुख, और राजा कठोर दंड देता है। इसलिए किसी भी पुरुष को दूसरे की पत्नी के साथ संबंध नहीं बनाना चाहिए।

311. जैसे नुकीली घास, अगर गलत तरीके से पकड़ी जाए, तो पकड़ने वाले हाथ को ही घायल कर देती है — चिंतनशील जीवन, अगर गलत तरीके से पकड़ा जाए, तो आपको नरक में खींच ले जाता है।

312. कोई भी शिथिल कार्य, या अपवित्र पालन, या कपटपूर्ण पवित्रता का जीवन कोई बड़ा फल नहीं देता।

313. यदि कुछ करना है, तो दृढ़ता से काम करो, क्योंकि ढिलाई से काम करने से और भी अधिक धूल उड़ती है।

314. किसी बुरे काम को न करना ही बेहतर है। बुरा काम करने के बाद पछतावा होता है। इससे बेहतर है कि कोई अच्छा काम किया जाए, जिसे करने के बाद पछतावा न हो।

315. एक सीमावर्ती किले की तरह, जिसकी भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, अपनी रक्षा करो। इस पल को यूं ही बीतने मत दो। जिनके लिए यह पल बीत चुका है, वे शोक मनाते हैं और नरक में चले जाते हैं।

316. जो शर्मनाक नहीं है, उससे शर्मिंदा, जो शर्मनाक है, उससे शर्मिंदा नहीं, गलत विचार अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

317. जहाँ खतरा नहीं है वहाँ खतरा देखना, और जहाँ खतरा है वहाँ खतरा न देखना, गलत दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

318. जहाँ कोई त्रुटि नहीं है वहाँ त्रुटि की कल्पना करना, और जहाँ त्रुटि है वहाँ त्रुटि न देखना, गलत दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

319. परन्तु त्रुटि को त्रुटि और त्रुटिहीनता को त्रुटि न मानकर, सही दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी अच्छे गंतव्य की ओर जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V23:नागवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

नागवग्ग: हाथी
320. मैं युद्ध में हाथी की तरह, धनुष से चलाए गए तीर को सहते हुए, झूठे आरोप को सह लूँगा, क्योंकि आम जनता के पास कोई सिद्धांत नहीं है।

321. जो पालतू है, उसे सभाओं में ले जाया जाता है। जो पालतू है, उसी पर राजा सवार होता है। जो पालतू है, वह झूठे आरोप को सह लेता है, मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

322. सिंध के पालतू खच्चर, पालतू नस्ल के घोड़े और पालतू घोड़े उत्कृष्ट हैं। पालतू हाथी और विशाल हाथी भी उत्कृष्ट हैं। लेकिन स्वयं को पालतू बनाने वाले तो और भी उत्कृष्ट हैं।

323. क्योंकि इन वाहनों के द्वारा तुम उस दुर्गम भूमि पर नहीं जा सकते, जैसे कोई पालतू जानवर अपने आप को अच्छी तरह से पालतू बनाकर जाता है।

324. मदमस्त हाथी धनपालका को वश में करना कठिन है। बंधा हुआ वह एक निवाला भी नहीं खाएगा: हाथी को हाथी की लकड़ी की याद आ रही है।

325. जब सुस्त और ज़रूरत से ज़्यादा खाया हुआ, नींद में डूबा हुआ, मोटे सूअर की तरह इधर-उधर लुढ़कता रहता है, चारे पर मोटा हुआ: एक मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में प्रवेश करता है।

326. पहले यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, जिस तरह चाहे भटकता था। आज मैं इसे उचित रूप से नियंत्रण में रखूँगा—जैसे कोई अंकुश से, मदमस्त हाथी को नियंत्रित करता है।

327. सजगता में आनंद लो। अपने मन पर नज़र रखो। कीचड़ में धंसे हुए हाथी की तरह कठिन मार्ग से खुद को ऊपर उठाओ।

328. यदि आपको कोई परिपक्व साथी मिले— कोई सहयात्री, सही जीवन जीने वाला, प्रबुद्ध— तो सभी खतरों को पार करते हुए, संतुष्ट और सचेत होकर उसके साथ चलें।

329. यदि आपको कोई परिपक्व साथी न मिले — कोई सहयात्री, सही जीवन जीने वाला, प्रबुद्ध — तो अकेले जाओ जैसे कोई राजा अपने राज्य का त्याग करता है, जैसे मतंगा के जंगलों में हाथी अपने झुंड का त्याग करता है।

330. अकेले जाना बेहतर है, मूर्ख का कोई साथ नहीं होता। अकेले जाओ, कोई बुराई न करो, शांति से रहो, जैसे मतंगा के जंगलों में हाथी रहता है।

331. एक आशीर्वाद: जरूरत पड़ने पर मित्र। एक आशीर्वाद: जो कुछ भी है, उससे संतुष्ट रहना। जीवन के अंत में पुण्य एक आशीर्वाद है। एक आशीर्वाद: सभी दुखों और तनावों से मुक्ति।

332. संसार में एक आशीर्वाद: माता का आदर। एक आशीर्वाद: पिता का आदर। संसार में एक आशीर्वाद: ध्यानमग्न व्यक्ति का आदर। एक आशीर्वाद: ब्राह्मण का आदर।

333. वृद्धावस्था में आशीर्वाद मिलना सद्गुण है। आशीर्वाद: दृढ़ विश्वास। आशीर्वाद: प्राप्त विवेक। बुरे कार्यों से दूर रहना आशीर्वाद है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V24: तन्हावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

तन्हावग्गा: लालसा
334. जब कोई व्यक्ति लापरवाही से जीवन जीता है, तो उसकी लालसा लता की तरह बढ़ती जाती है। वह कभी इधर तो कभी उधर भागता है, मानो जंगल में फल की तलाश में भटक रहा बंदर हो।

335. यदि संसार में यह चिपचिपी, असभ्य लालसा तुम पर हावी हो जाए, तो तुम्हारे दुःख वर्षा के बाद जंगली घास की तरह बढ़ जाते हैं। 336. यदि संसार में तुम इस असभ्य लालसा पर विजय प्राप्त कर लो, जिससे बचना कठिन है, तो दुःख तुम पर से कमल से पानी की बूंदों की तरह बह जाते हैं।

337. आप सभी उपस्थित लोगों से मैं कहता हूँ: शुभकामनाएँ। लालसा को जड़ से उखाड़ फेंकें—जैसे औषधीय जड़ों या जंगली घास की खोज करते समय करते हैं। मारा को आपको बार-बार नष्ट न करने दें—जैसे उग्र नदी या सरकंडा।

338. यदि किसी वृक्ष की जड़ अक्षुण्ण और मजबूत बनी रहे, तो उसे काट देने पर भी वह पुनः उग आएगा। ठीक उसी प्रकार, यदि अंतर्मुखी लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह पीड़ा बार-बार लौटकर आती है।

339. जिसकी 36 धाराएँ आकर्षक चीज़ों की ओर बहती हैं, वे प्रबल होती हैं: धाराएँ— जुनून पर आधारित संकल्प—उसे नीच विचारों से दूर ले जाते हैं।

340. धाराएँ तो हर दिशा में बहती हैं, परन्तु अंकुरित लता अपनी जगह पर स्थिर रहती है। अब, जब लता उग आई है, तो विवेक से उसकी जड़ काट दो।

341. व्यक्ति के सुख ढीले और चिकने हो जाते हैं। प्रलोभन से बंधे लोग, आराम की तलाश में: जन्म और बुढ़ापे की ओर बढ़ते हैं।

342. लालसा से घिरे लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह गोल-गोल घूमते रहते हैं। बेड़ियों और बंधनों में जकड़े वे लंबे समय तक बार-बार पीड़ा भोगते रहते हैं।

343. व्यथा से घिरे हुए लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह इधर-उधर उछलते रहते हैं। अतः एक भिक्षु को व्यथा का निवारण करना चाहिए, स्वयं वैराग्य की आकांक्षा रखनी चाहिए।

344. झाड़ियों से मुक्त होकर भी जंगल के प्रति आसक्त, जंगल से आज़ाद होकर भी वह वापस जंगल की ओर दौड़ता है। देखो, उस आज़ाद इंसान को जो उन्हीं पुरानी बेड़ियों में वापस लौटता है! ज्ञानी कहते हैं कि यह कोई मज़बूत बंधन नहीं है—चाहे वह लोहे का हो, लकड़ी का हो या घास का।

345. गहनों और आभूषणों से मोहित होना, बच्चों और पत्नियों की लालसा करना: यही मजबूत बंधन है, - ऐसा प्रबुद्ध लोग कहते हैं - एक ऐसा बंधन जो बाध्यकारी, लचीला और खोलना मुश्किल है।

346. परन्तु इसे काटकर वे — प्रबुद्ध — लालसा से मुक्त होकर, इंद्रिय सुख का त्याग करके आगे बढ़ते हैं। 347. कामवासना से ग्रस्त लोग मकड़ी की तरह अपने ही जाल में फँसकर वापस उसी धारा में गिर जाते हैं। परन्तु इसे काटकर प्रबुद्ध लोग लालसा से मुक्त होकर, समस्त दुख और तनाव का त्याग करके आगे बढ़ते हैं।

348. अस्तित्व की सीमा से परे जाकर, आप आगे, पीछे, बीच में सब कुछ छोड़ देते हैं। हर जगह हृदय से त्याग के साथ, आप जन्म और वृद्धावस्था में पुनः नहीं आते।

349. अपने विचारों से विवश, अपने जुनून में उग्र, सौंदर्य पर केंद्रित व्यक्ति के लिए, लालसा और भी बढ़ जाती है। वही बंधन को मजबूत करता है।

350. लेकिन जो चिंतन को शांत करने में आनंद लेता है, जो हमेशा बुराई पर ध्यान केंद्रित करने के लिए सचेत रहता है: वही अंत करेगा, वही मारा के बंधन को तोड़ेगा।

351. निडर, निर्मल, लालसा से मुक्त होकर, वह अंतिम पड़ाव पर पहुँच गया है, उसने अस्तित्व के तीरों को काट डाला है। यह भौतिक ढेर उसका अंतिम है।

352. लालसा से मुक्त, अनासक्त, अभिव्यक्ति में निपुण, ध्वनियों के संयोजन को जानने वाला—कि कौन सी ध्वनि पहले आती है और कौन सी बाद में। उसे अंतिम शरीर वाला अत्यंत विवेकशील महान पुरुष कहा जाता है।

353. मैं सर्वविजयी, सर्वज्ञ हूँ, सभी चीजों के संबंध में अनासक्त। सभी इच्छाओं का त्याग करके, लालसा के अंत में मुक्त होकर: मैंने स्वयं ही सब कुछ जान लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु मानूँ?

354. धम्म का उपहार सभी उपहारों पर विजय प्राप्त करता है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों पर विजय प्राप्त करता है; धम्म में आनंद सभी आनंदों पर विजय प्राप्त करता है; व्याकुलता का अंत सभी दुख और तनावों का अंत करता है।

355. धन-दौलत विवेकहीन व्यक्ति को बर्बाद कर देती है, परन्तु जो लोग परलोक की खोज करते हैं, उन्हें नहीं। धन-दौलत की लालसा में विवेकहीन व्यक्ति स्वयं को ही नहीं, बल्कि दूसरों को भी बर्बाद कर देता है।

356. खेत खरपतवारों से खराब होते हैं; लोग वासना से। इसलिए जो वासना से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

357. खेत खरपतवारों से खराब होते हैं; लोग घृणा से। इसलिए जो घृणा से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

358. खेत खरपतवारों से खराब हो जाते हैं; लोग भ्रम से। इसलिए भ्रम से मुक्त लोगों को जो कुछ दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

359. खेत खरपतवारों से खराब हो जाते हैं; लोग लालसा से। इसलिए जो लालसा से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V25: भिक्खुवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

भिक्खुवग्ग: भिक्षु
360. आँखों पर संयम रखना अच्छा है, कानों पर संयम रखना अच्छा है। नाक पर संयम रखना अच्छा है, जीभ पर संयम रखना अच्छा है। शरीर पर संयम रखना अच्छा है, वाणी पर संयम रखना अच्छा है।

361. हृदय से संयम अच्छा है, हर जगह संयम अच्छा है। हर जगह संयमी भिक्षु सभी दुखों और तनावों से मुक्त हो जाता है।

362. हाथ बंधे हुए, पैर बंधे हुए, वाणी संयमित, परम संयमित - जो भीतरी है उसमें आनंदित, संतुष्ट, केंद्रित, अकेला: उसे भिक्षु कहते हैं।

363. एक भिक्षु जो अपने बोलने में संयमित है, शांत भाव से सलाह देता है, संदेश और अर्थ स्पष्ट करता है: उसकी वाणी मधुर है।

364. धम्म उसका निवास है, धम्म उसका आनंद है, धम्म पर चिंतन करने वाला, धम्म का स्मरण करने वाला भिक्षु सच्चे धम्म से विमुख नहीं होता।

365. लाभ: अपने आप को तुच्छ मत समझो, दूसरों के धन का लोभ मत करो। जो भिक्षु दूसरों के धन का लोभ करता है, उसे एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

366. भले ही उसे कुछ न मिले, वह अपने लाभों को तुच्छ नहीं समझता। शुद्ध और अथक जीवन जीते हुए, वही है जिसकी देवता प्रशंसा करते हैं।

367. जिसके लिए नाम और रूप में, हर तरह से, मेरा कोई बोध नहीं है, और जो उस चीज़ के लिए शोक नहीं करता जो नहीं है: उसे ही उचित रूप से भिक्षु कहा जाता है।

368. दयालुता में निवास करते हुए, प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में विश्वास रखने वाला भिक्षु अच्छी अवस्था, शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त करेगा: कल्पनाओं का शांत होना।

369. भिक्षु, इस नाव से पानी निकाल दो। पानी निकलने पर यह तुम्हें आसानी से ले जाएगी। जुनून और घृणा को पार करके, तुम वहाँ से मुक्ति की ओर बढ़ोगे।

370. पाँचों को काट डालो, पाँचों को त्याग दो, और पाँचों को सर्वोपरि बनाओ। पाँचों आसक्तियों से पार पा चुके भिक्षु को जलप्रलय पार करने वाला कहा जाता है।

371. हे भिक्षु, ध्यान का अभ्यास करो और लापरवाह मत बनो। अपने मन को कामुक विचारों में भटकने मत दो। लापरवाही से जलते हुए लोहे के गोले को मत निगल लो। जलकर शिकायत मत करो: 'यह पीड़ा है।'

372. विवेकहीन व्यक्ति के लिए ध्यान नहीं होता, और ध्यानहीन व्यक्ति के लिए विवेक नहीं होता। परन्तु जिसके पास ध्यान और विवेक दोनों हों, वह मुक्ति के कगार पर होता है।

373. मन से शांत भिक्षु, एक खाली निवास में जाकर, धम्म को सही ढंग से स्पष्ट रूप से देखते हुए: उसका आनंद मानवीय आनंद से कहीं अधिक है।

374. चाहे जो भी हो, वह समुच्चयों के उदय और अस्त होने को स्पर्श करता है: वह परमानंद और आनंद प्राप्त करता है: जो इसे जानते हैं, उनके लिए यह अमर है, अमरता।

375. यहाँ एक विवेकशील भिक्षु के लिए पहली चीजें हैं इंद्रियों की रक्षा करना, संतोष, पतिमोक्खा के अनुरूप संयम।

376. उसे प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करनी चाहिए, शुद्ध जीवन जीना चाहिए, अथक, आतिथ्य सत्कारपूर्ण और आचरण में कुशल होना चाहिए। अनेक प्रकार के आनंद प्राप्त करके वह दुख और तनाव का अंत करेगा।

377. हे भिक्षुओं, वासना और घृणा को त्याग दो—जैसे चमेली अपने मुरझाए हुए फूलों को त्याग देती है।

378. शरीर से शांत, वाणी से शांत, संतुलित और शांत, संसार के प्रलोभनों को त्यागकर, भिक्षु को पूर्णतः शांत कहा जाता है।

379. तुम्हें स्वयं को फटकारना चाहिए, स्वयं की जाँच करनी चाहिए। एक आत्म-संरक्षित भिक्षु की तरह, सचेत होकर, तुम सहजता से रहते हो।

380. आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका आधार है। आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका मार्गदर्शक है। इसलिए आपको स्वयं की देखभाल करनी चाहिए - जैसे एक व्यापारी, एक उत्तम घोड़े की।

381. अनेक प्रकार के आनंद से परिपूर्ण, प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में आस्था रखने वाला भिक्षु अच्छी अवस्था, शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त करेगा: कल्पनाओं का शांत होना।

382. एक युवा भिक्षु जो प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में प्रयास करता है, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V26:ब्राह्मणवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण
383. हे ब्राह्मण, परिश्रम करके धारा को काट डालो। कामुक भावनाओं को त्याग दो। हे ब्राह्मण, रचनाओं के अंत को जानकर तुम अजन्मे को जानते हो।

384. जब ब्राह्मण दो चीजों से परे चला जाता है, तब उसके सभी बंधन समाप्त हो जाते हैं - जो जानता है।

385. वह व्यक्ति जिसका परे या परे या परे-और-परे नहीं पाया जा सकता; बंधनमुक्त, बेफिक्र: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

386. चुपचाप बैठे, धूल रहित, ध्यान में लीन, उसका कार्य पूरा हो गया, अपशिष्ट दूर हो गए, अंतिम लक्ष्य प्राप्त हो गया: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

387. दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा; कवचधारी योद्धा; ध्यानमग्न ब्राह्मण। परन्तु दिन-रात, हर दिन और हर रात, प्रबुद्ध व्यक्ति वैभव में चमकता है।

388. उसे ब्राह्मण कहा जाता है क्योंकि उसने अपनी बुराई को त्याग दिया है, उसे चिंतनशील कहा जाता है क्योंकि वह सामंजस्य में रहता है, उसे आगे बढ़ा हुआ कहा जाता है क्योंकि उसने अपनी अशुद्धियों को त्याग दिया है।

389. ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए, न ही ब्राह्मण को अपना क्रोध प्रकट करना चाहिए। ब्राह्मण के हत्यारे पर कलंक है, और उससे भी अधिक कलंक उस ब्राह्मण पर है जिसका क्रोध प्रकट होता है।

390. ब्राह्मण के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं कि उसका मन सुखद और अप्रिय बातों से विमुख रहे। जैसे-जैसे उसकी हानिकारक प्रवृत्ति दूर होती जाती है, वैसे-वैसे तनाव भी शांत होता जाता है।

391. जो शरीर, वाणी और हृदय से कोई दोष नहीं करता, वह इन तीनों प्रकार से संयमित रहता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

392. जिस व्यक्ति से तुम सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म को सीखोगे: तुम्हें उसका आदर करना चाहिए - एक ब्राह्मण के समान, यज्ञ की ज्वाला के समान।

393-394. जटाधारी बालों, कुल या जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। सत्य और ईमानदारी रखने वाला ही शुद्ध ब्राह्मण है।

अरे मूर्ख, तुम्हारे उलझे बालों का क्या फायदा? तुम्हारी हिरण की खाल के लबादे का क्या फायदा? उलझन तो तुम्हारे अंदर है। तुम उसे बाहर से कंघी करो।

395. फटे-पुराने कपड़े पहने हुए - दुबला-पतला शरीर और नसों से भरा हुआ - जंगल में अकेला, ध्यान में लीन: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

396. मैं किसी को माँ से जन्म लेने या गर्भ से उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहता। जो कुछ भी धारण करता है, उसे 'भो-साहसी' कहा जाता है। परन्तु जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है, वही मेरे लिए ब्राह्मण है।

397. हर बंधन तोड़कर वह विचलित नहीं होता। आसक्ति से परे, बेड़ियों से मुक्त: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

398. पट्टा और डोरी, रस्सी और लगाम काटकर, बार को फेंककर, जागृत होकर: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

399. वह बिना क्रोधित हुए अपमान, हमले और कारावास सहता है। उसकी सेना ही शक्ति है; उसकी शक्ति ही सहनशीलता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

400. क्रोध से मुक्त, कर्तव्यों का पालन करने वाला, सिद्धांतवादी, अत्यधिक अभिमान रहित, प्रशिक्षित, 'अंतिम शरीर': मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

401. कमल के पत्ते पर पानी की तरह, सुई की नोक पर सरसों के दाने की तरह, वह कामुक सुखों से चिपके नहीं रहते: मैं उन्हें ब्राह्मण कहता हूँ।

402. वह यहीं, अपने लिए, अपने दम पर, अपने तनाव का अंत स्वयं ही समझ लेता है। बंधनमुक्त, उसका बोझ उतर गया: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

403. बुद्धिमान, विवेक में गहन, मार्ग और अनकहे मार्ग के बारे में चतुर; अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर चुका: वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

404. गृहस्थों और बेघरों से समान रूप से अछूता; बिना घर के, लगभग बिना किसी आवश्यकता के रहना: वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

405. भयभीत या दृढ़ प्राणियों के विरुद्ध हिंसा को त्यागकर, वह न तो स्वयं हत्या करता है और न ही दूसरों से हत्या करवाता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

406. विपक्ष में भी अप्रतिरोध्य, सशस्त्रों में भी स्वतंत्र, आसक्ति रखने वालों में भी अनासक्त: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

407. उसका जुनून, घृणा, अहंकार और तिरस्कार ऐसे गिर गया है जैसे सूई की नोक से सरसों का दाना: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

408. वह ऐसी बातें कहता है जो अप्रिय नहीं होतीं, शिक्षाप्रद होती हैं, सत्य होती हैं - किसी का अपमान नहीं करता: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

409. यहाँ दुनिया में वह कुछ भी अनचाहा नहीं लेता - लंबा, छोटा, बड़ा, छोटा, आकर्षक, नहीं: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

410. इस लोक और परलोक के लिए उसकी तड़प नहीं पाई जा सकती; तड़प से मुक्त, बंधनमुक्त: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

411. उसके आसक्ति, उसके घर, नहीं मिल सकते। ज्ञान के माध्यम से वह विचलित नहीं है, उसने अमरता प्राप्त कर ली है: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

412. वह यहाँ पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे हो गया है - दु:ख रहित, निष्कलंक और शुद्ध: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

413. बेदाग, शुद्ध, चाँद की तरह - निर्मल और शांत - उसके आनंद, उसके रूप, पूरी तरह से गायब: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

414. वह इस कठिन मार्ग— संसार, भ्रम—से पार हो चुका है, उससे परे चला गया है, अभाव से मुक्त है, उलझन से मुक्त है, ध्यान में लीन है, अनासक्ति से मुक्त है: वह वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

415-416. जो कोई भी यहाँ इंद्रिय सुखों का त्याग करके घर से निकल जाए—जिसके इंद्रिय सुख, उसकी अभिलाषाएँ, सब कुछ पूरी तरह से समाप्त हो जाएँ: वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो कोई भी यहाँ लालसाओं का त्याग करके घर से बाहर निकलेगा—जिसकी लालसाएँ, उसके स्वभाव, सब कुछ पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा: वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

417. मानवीय बंधन को त्यागकर, दिव्य मार्ग को पार करके, सभी बंधनों से मुक्त होकर: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

418. सुख और दु:ख को त्यागकर, शांत होकर, बिना किसी प्राप्ति के - एक ऐसा नायक जिसने समस्त संसार, हर लोक को जीत लिया है: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

419. वह प्राणियों के मृत्यु और उनके पुनरागमन को हर तरह से जानता है; अनासक्त, जागृत, अच्छी तरह से विदा हुआ: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

420. जिसका मार्ग वे नहीं जानते - देव, गंधर्व और मनुष्य - जिसके उत्सर्जन समाप्त हो गए, एक अरहंत: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

421. जिसके पास कुछ भी नहीं है - आगे, पीछे, बीच में - जिसके पास कुछ भी नहीं है और जो किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

422. एक शानदार बैल, विजेता, नायक, महान द्रष्टा - अभाव से मुक्त, जागृत, शुद्ध: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

423. वह अपने पूर्व जन्मों को जानता है। वह स्वर्ग और दुख की अवस्थाओं को देखता है, जन्म-जन्म के अंत को प्राप्त कर चुका है, वह एक ऐसा ऋषि है जिसने पूर्ण ज्ञान में महारत हासिल कर ली है, उसकी महारत पूरी तरह से सिद्ध हो चुकी है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

उदाना

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> उडान
पाली भाषा से डॉसन मेलान्चथॉन स्ट्रॉन्ग द्वारा अनुवादित

अंतर्वस्तु

1अध्याय 1 - प्रबोधन काल
2अध्याय 2 - मुसिलिंडा
3अध्याय 3 - "नंदा"
4अध्याय 4 - "मेघिया"
5अध्याय 5 - सोना थेरा
6अध्याय 6 - जकन्द
7अध्याय 7 - कुला
8अध्याय 8 - पातालगामी
9अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
10मूल पाली संस्करण
10.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
10.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

अध्याय 1 - प्रबोधन काल
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, ज्ञान के वृक्ष की तलहटी में निवास किया। उस समय भगवान बुद्ध सात दिनों तक बैठे रहने के बाद मोक्ष के आनंद का अनुभव किया।

जब सात दिन पूरे हो गए, तो भगवान बुद्ध समाधि की अवस्था से उठे और रात के पहले पहर में, कारण और परिणाम की श्रृंखला का क्रमवार गहन चिंतन किया, इस प्रकार: यदि यह (अवस्था) है, तो दूसरी (अवस्था) उत्पन्न होती है, इस (अवस्था) के उत्पन्न होने से एक (अवस्था) उत्पन्न होती है, अर्थात्:

अज्ञान से कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं, कल्पनाओं से चेतना उत्पन्न होती है, चेतना से मन और भौतिक रूप उत्पन्न होते हैं, मन और भौतिक रूप से छह इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं, छह इंद्रियों से स्पर्श उत्पन्न होता है, स्पर्श से संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, संवेदनाओं से इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा से आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से जन्म उत्पन्न होता है, जन्म से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न होती है। इस प्रकार दुखों का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है।

और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:

जब परिश्रमी ध्यानमग्न ब्राह्मण को अस्तित्व की परिस्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं, जब वह कारण और परिणाम की प्रकृति को समझ लेता है, तब सभी संदेह दूर हो जाते हैं।

2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, ज्ञान के वृक्ष की तलहटी में निवास किया। उस समय भगवान बुद्ध सात दिनों तक बैठे रहने के बाद मोक्ष के आनंद का अनुभव किया।

जब सात दिन पूरे हो गए, तो भगवान बुद्ध समाधि की अवस्था से उठे और रात के मध्य पहर में उन्होंने कारण और परिणाम की श्रृंखला का अप्रत्यक्ष क्रम में गहन चिंतन किया, जो इस प्रकार है:

"यदि यह (अवस्था) मौजूद नहीं है, तो दूसरी (अवस्था) उत्पन्न नहीं होती; इस (अवस्था) के उत्पन्न न होने से कोई (अवस्था) उत्पन्न नहीं होती, अर्थात्;"

अज्ञान के नाश से सृजनात्मक विचार (संहार/संस्कार) नष्ट होते हैं, सृजनात्मक विचारों के नाश से चेतना नष्ट होती है, चेतना के नाश से मन और भौतिक रूप नष्ट होते हैं, मन और भौतिक रूप के नाश से छह इंद्रियां नष्ट होती हैं, छह इंद्रियों के नाश से स्पर्श क्रिया नष्ट होती है, स्पर्श क्रिया के नाश से संवेदनाएं नष्ट होती हैं, संवेदनाओं के नाश से इच्छाएं नष्ट होती हैं, इच्छाएं नष्ट होने से आसक्ति नष्ट होती है, आसक्ति के नाश से सृजन क्रिया नष्ट होती है, सृजन क्रिया के नाश से पुनर्जन्म नष्ट होता है, और पुनर्जन्म के नाश से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा नष्ट होती हैं। इस प्रकार दुखों का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है।

और इस संदर्भ में, उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जब परिश्रमी, ध्यानमग्न ब्राह्मण को अस्तित्व की अवस्थाओं का ज्ञान हो जाता है, जब वह कारणों के विनाश को समझ लेता है, तब सभी संदेह दूर हो जाते हैं।
3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, ज्ञान के वृक्ष की तलहटी में निवास किया। उस समय भगवान बुद्ध सात दिनों तक बैठे रहने के बाद मोक्ष के आनंद का अनुभव किया।
सात दिन बीत जाने पर, भगवान बुद्ध समाधि अवस्था से उठे और रात्रि के अंतिम पहर में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर्मों के क्रम का गहन चिंतन किया। अब अज्ञान के पूर्ण नाश से सृष्टि का अंत हो जाता है। और इस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जब परिश्रमी, ध्यानमग्न ब्राह्मण को अस्तित्व की परिस्थितियाँ ज्ञान प्राप्त होती हैं, तो वह प्रलोभक की सेनाओं को तितर-बितर करते हुए सूर्य के समान, अंतरिक्ष में अपनी किरणों को फैलाता है।"
4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, 'बकरी चराने वाले' बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास किया। उस समय, भगवान बुद्ध सात दिनों तक बैठे रहने के बाद मोक्ष के आनंद का अनुभव किया। और सातवें दिन के अंत में भगवान बुद्ध समाधि की अवस्था से उठे।
अब एक अभिमानी ब्राह्मण भगवान बुद्ध के पास गया और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया। मित्रता और शिष्टाचार का आदान-प्रदान करने के बाद, वह आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हो गया और इस प्रकार खड़े होकर उसने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम जी, ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठता का मानक क्या है और उसे किस प्रकार के कर्म करने चाहिए?”
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जो व्यक्ति बुराई का त्याग कर लेता है, जो विनम्र, अपवित्रता से मुक्त, आत्मसंयमी, ज्ञानवान और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, वही वास्तव में ब्राह्मण कहलाता है। उसके लिए संसार में कहीं भी कोई इच्छा नहीं होती।
5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य भिक्षु सारिपुत्त, महामोगल्लन, महाकस्सपा, महाकच्चयन, महाकोत्थिता, महाकप्पिना, महाचुंड, अनुरुद्ध, रेवता, देवदत्त और आनंद भगवान बुद्ध के पास आए। भगवान बुद्ध ने दूर से ही पूज्य भिक्षुओं को आते हुए देखा और उन्हें देखकर अपने शिष्यों को पुकार कर कहा, "हे भिक्षुओं, देखो, ये पूज्य ब्राह्मण आ रहे हैं, देखो, हे भिक्षुओं, ये पूज्य ब्राह्मण निकट आ रहे हैं।"
जब ये शब्द कहे गए, तो जन्म से ब्राह्मण एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "ब्राह्मण से अपेक्षित आचरण का मानक क्या है और उसे किस प्रकार के कार्य करने चाहिए?"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जो सदा सचेत होकर चलते हैं, जिन्होंने बुराई का त्याग कर दिया है, जिन्होंने बंधनों को तोड़ दिया है, जो ज्ञानी हैं, वे ही इस संसार में ब्राह्मण हैं।"
6. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कलंदिका-निवापा में बांस के वन में स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य महाकस्सपा पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे और एक गंभीर बीमारी से पीड़ित थे। बाद में पूज्य महाकस्सपा रोग से ठीक हो गए और स्वस्थ होने पर उनके मन में यह विचार आया: "यदि मैं भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश करूं तो क्या होगा?" उस समय पूज्य महाकस्सपा की सेवा में लगभग 500 देवता थे, जो उनके लिए भिक्षा जुटाने में तत्पर थे। पूज्य महाकस्सपा ने उन 500 देवताओं को विदा करके सुबह के समय वस्त्र धारण किए और अपने साथ भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया और झुग्गी-झोपड़ियों, गरीबों की गलियों और बुनकरों के निवास वाले रास्तों पर गए।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा को राजगृह में भिक्षा मांगते हुए, झुग्गी-झोपड़ियों में, गरीबों की गलियों में और बुनकरों के निवास वाले रास्तों में घूमते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जो त्यागे हुए और अज्ञात को प्यार करता है, जिसने स्वयं को वश में कर लिया है, जो सत्य में दृढ़ रहता है, जिसने बुराई का नाश किया है और पाप को दूर किया है, उस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"
7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध पताली में, अजकालपका मठ में, अजकालपका नामक यक्ष की कुटिया में ठहरे हुए थे। उस समय भगवान बुद्ध खुले में बैठे थे, रात का घना अंधेरा था, और एक बादल से एक-एक करके बारिश की बूँदें गिर रही थीं। अजकालपका नामक यक्ष, भय, कंपकंपी और रोंगटे खड़े करने की इच्छा से भगवान बुद्ध के पास आया, और जब वह उनके बिल्कुल करीब पहुँच गया, तो उसने तीन तीखी चीखें मारते हुए कहा, "हे समना, यह तुम्हारी दुष्ट आत्मा है।" इस संबंध में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जब ब्राह्मण ज्ञान में लीन होकर अस्तित्व की अवस्थाओं से परे चला जाता है, तो न तो भूत-प्रेत उसे डरा सकते हैं और न ही राक्षस।"

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य संगमजी भगवान बुद्ध के दर्शन करने सावत्थी आए थे।
अब पूज्य संगमजी की वृद्ध पत्नी ने सुना कि उनके स्वामी संगमजी सावत्थी पहुँच गए हैं, इसलिए वह अपने बच्चे को साथ लेकर जेतवन चली गईं।
उस समय पूज्य संगमजी एक वृक्ष के नीचे दोपहर के विश्राम का आनंद ले रहे थे। उनकी वृद्धाश्रम उनके पास गईं और उनके निकट आकर बोलीं, "हे समना, यह आपका छोटा पुत्र है, आप इसे प्यार से पालें।"
जब उसने ऐसा कहा, तो पूज्य संगमजी मौन रहे। उसने दूसरी और तीसरी बार कहा, "हे समना, यह तुम्हारा छोटा बेटा है, इसका प्यार करो।" जब उसने ऐसा कहा, तो पूज्य संगमजी मौन रहे। तब वृद्धा ने बच्चे को पूज्य संगमजी के समक्ष रखकर यह कहते हुए प्रस्थान किया, "हे समना, यह तुम्हारा बेटा है, इसका प्यार करो।" पूज्य संगमजी ने न तो बच्चे की ओर देखा और न ही उससे बात की। तब वृद्धा ने पूज्य संगमजी की सहमति से थोड़ी दूर जाकर देखा कि पूज्य संगमजी न तो बच्चे की ओर देख रहे हैं और न ही उससे बात कर रहे हैं, तो उसके मन में यह विचार आया, "यह समना अपने बेटे की परवाह नहीं करता", और मुड़कर वह अपने बेटे को लेकर चली गई।
और भगवान बुद्ध ने, मनुष्यों की दृष्टि से परे स्पष्ट और दिव्य दृष्टि से, पूज्य संगमजी की वृद्ध पत्नी की इस विपत्ति को देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"वह न तो अपने आगमन पर प्रसन्न होता है, न ही अपने प्रस्थान पर शोक करता है: इस संगमजी को, जो आसक्ति से मुक्त है, मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"
9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध गया के पास गयासिस में निवास कर रहे थे। उस समय गया के पास जटाधारी तपस्वियों का एक बड़ा समूह था, जो बर्फीली सर्दियों की रातों और सुबह की ठंड में गया के पास पानी से बाहर निकलते और उसमें डुबकी लगाते, एक दूसरे का अभिषेक करते और अग्नि से यज्ञ करते थे—वे इस प्रकार शुद्धि प्राप्त करने का विचार रखते थे।
और भगवान बुद्ध ने जटाधारी तपस्वियों को गया के पास पानी से निकलते और उसमें डुबकी लगाते हुए देखा, वे एक दूसरे का अभिषेक कर रहे थे और अग्नि से यज्ञ कर रहे थे, यह सोचकर कि इस प्रकार वे शुद्धि प्राप्त करेंगे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जल से शुद्धि नहीं होती, चाहे लोग कितनी भी देर तक स्नान करें; जिसमें सत्य और धर्म का वास होता है, वही मनुष्य शुद्ध होता है, वही ब्राह्मण होता है।"
10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के जेतवन, सावत्थी में निवास कर रहे थे। उस समय बाहिया दारुचिरिया सुप्पारिका (मुंबई/बॉम्बे के पास) में समुद्र तट पर रहते थे। उनका आदर, सम्मान और आदर किया जाता था। उन्हें भिक्षुओं की सभी आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भिक्षा, बिस्तर और रोग होने पर दवा, प्राप्त होती थीं। बाहिया दारुचिरिया के मन में यह विचार आया: "क्या मैं वास्तव में इस संसार में संतों में से एक नहीं हूँ, या कम से कम उन लोगों में से एक नहीं हूँ जिन्होंने संतत्व के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है?"
कुछ देव, जो बाहिया दारुचिरिया के पूर्व रक्त संबंधी थे और उन पर दया करते थे तथा उनके कल्याण में रुचि रखते थे, उन्होंने स्वयं बाहिया दारुचिरिया के मन में आए विचार को जान लिया। वे उनके पास गए और उनके निकट आकर बोले, “हे बाहिया, तुम न तो संत हो और न ही तुमने संतत्व के मार्ग पर चलना शुरू किया है। तुम्हारा मार्ग ऐसा नहीं है जिससे तुम संत बन सको या संतत्व के मार्ग पर चल सको। परन्तु इन दिनों, इस लोक में और देवताओं के लोक में, संत और संतत्व के मार्ग पर चलने वाले लोग विद्यमान हैं। हे बाहिया, उत्तर देश में सावत्थी नामक एक नगर है। वहाँ इस समय परम पूज्य (भगवान बुद्ध), वह संत, परम बुद्ध निवास करते हैं; और वह भगवान बुद्ध, वह संत, संतत्व का उपदेश देते हैं।” इन देवताओं द्वारा उकसाए जाने पर बाहिया सुप्पारिका से निकलकर एक ही रात में सावत्थी पहुँच गया, जहाँ भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के जेतवन में निवास करते थे। उस समय बहुत से भिक्षु खुले में व्यायाम कर रहे थे। बाहिया भिक्षुओं के पास गया और उनके निकट आकर बोला, “हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध, वह संत, परम बुद्ध, अब कहाँ हैं? मैं उनके दर्शन के लिए व्याकुल हूँ।”
"हे बाहिया, परम पूज्य भगवान बुद्ध भिक्षा ग्रहण करने के लिए भीतरी प्रांगण में प्रवेश कर चुके हैं।"
बाहिया व्याकुल होकर जेतवन से निकलकर सावत्थी में भगवान बुद्ध को भिक्षा मांगने के लिए विचरण करते हुए देखा। भगवान बुद्ध कृपालु, सुंदर, शांत और संयमित थे, मानो उन्होंने आत्म-विजय की परम शांति प्राप्त कर ली हो। उन्हें देखकर बाहिया उनके पास गए और उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा, “हे भगवान बुद्ध, मुझे उपदेश दीजिए; हे सुखी, मुझे उपदेश दीजिए, ताकि जीवन भर यह मेरे सुख और कल्याण का कारण बने।” ये शब्द सुनकर भगवान बुद्ध ने बाहिया से कहा, “यह समय उपयुक्त नहीं है, मैं भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश कर चुका हूँ।”
दूसरी बार बाहिया दारुचिरिया ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, यह जानना कठिन है कि हम में से पहले मृत्यु किसे आएगी; भगवान बुद्ध को या मुझे; हे भगवान बुद्ध, मुझे यह सिद्धांत सिखाइए; हे सुखी, मुझे यह सिद्धांत सिखाइए, ताकि मेरे पूरे जीवन में यह मेरे कल्याण और सुख के लिए हो।"

दूसरी बार भगवान बुद्ध ने बाहिया से कहा: "समय ठीक नहीं चुना गया है, मैं भिक्षा मांगने के लिए शहर में आया हूं।"
हे बाहिया, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि जो देखा जाता है, उसका थोड़ा ही देखा जाता है, जो सुना जाता है, उसका थोड़ा ही सुना जाता है, जो सोचा जाता है, उसका थोड़ा ही सोचा जाता है, और जो जाना जाता है, उसका थोड़ा ही जाना जाता है; इसलिए, हे बाहिया, यह सीखना चाहिए कि क्योंकि जो देखा जाता है, उसका थोड़ा ही देखा जाता है, इत्यादि। [यहाँ पाठ त्रुटिपूर्ण है और व्याख्या अपूर्ण है। अनुवादक]; यही दुख का अंत है।
भगवान बुद्ध द्वारा धर्म के संक्षिप्त उपदेश से बाहिया का हृदय आसक्ति और पापों से मुक्त हो गया। भगवान बुद्ध ने बाहिया को इस प्रकार संक्षिप्त उपदेश देकर प्रस्थान किया। फिर हुआ यह कि भगवान बुद्ध के प्रस्थान के कुछ ही समय बाद, बाहिया को एक जंगली बछड़े ने गिरा दिया और उसकी मृत्यु हो गई। जब भगवान बुद्ध ने भिक्षा मांगने के बाद अपना दिन का भोजन समाप्त कर लिया, तो वे भिक्षुओं के एक बड़े दल के साथ नगर से निकले और उन्होंने बाहिया दारुचिरिया को मृत पाया। उन्होंने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा, "हे भिक्षुओं, बाहिया के शरीर को ले आओ, उसे पलंग पर रखो, ले जाओ और उसका दाह संस्कार करो, और बाद में अवशेषों पर एक टीला बनाओ - क्योंकि हे भिक्षुओं, यह एक साथी संत है जिसका निधन हो गया है।"
“ऐसा ही हो, प्रभु,” भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा। फिर उन्होंने बाहिया के शरीर को उठाया, पलंग पर रखा, उसे ले गए और उसका अंतिम संस्कार किया तथा बाद में अवशेषों पर एक टीला बनाया।
और वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, बाहिया का शरीर दाह संस्कार कर दिया गया है और टीला बना दिया गया है; वे कहाँ गए हैं और उनका भविष्य क्या होगा?”
"हे भिक्षुओं, एक बुद्धिमान व्यक्ति बाहिया था; उसने सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति के लिए निम्न कर्तव्यों का पालन किया; उसने मुझे धर्म के विषय में कभी कोई प्रश्न पूछकर परेशान नहीं किया। हे भिक्षुओं, बाहिया दारुचिरिया का अब अस्तित्व नहीं रहा।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जहां जल, पृथ्वी, ऊष्मा, वायु का कोई स्थान नहीं है, वहां न कोई प्रकाश जलता है, न सूर्य चमकता है, न चंद्रमा अपनी किरणें बिखेरता है, वहां अंधकार का घर नहीं है। जब गहन मौन चिंतन में पवित्र ऋषि सत्य को प्राप्त कर लेते हैं, तब वे सुख-दुख से मुक्त हो जाते हैं, साकार और निराकार जगत से मुक्त हो जाते हैं।

अध्याय 2 - मुसिलिंडा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक अवसर पर, बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद, भगवान बुद्ध उरुवेला में, नेरंजारा नदी के किनारे, मुचिलिंडा वृक्ष की तलहटी में निवास करते थे।
उस समय, भगवान बुद्ध सात दिनों तक ध्यान की मुद्रा में बैठे रहे और उन्होंने मुक्ति के आनंद का अनुभव किया।
फिर अचानक असमय एक विशाल बादल प्रकट हुआ और सात दिनों तक वर्षा होती रही, ठंडी हवाएँ चलती रहीं और अंधकार छा गया। नागराज मुचिलिंडा अपने गुप्तलोक से प्रकट हुए और भगवान बुद्ध के शरीर के चारों ओर सात बार अपनी कुंडली लपेटकर, अपने नाग फन से बुद्ध के सिर के ऊपर एक विशाल छत्र बना लिया और मन ही मन ये शब्द कहे: “भगवान बुद्ध को न तो शीतलता स्पर्श करे, न ही ऊष्मा, न मक्खियाँ, न मच्छर, न हवाएँ, न सूर्य की गर्मी उन्हें कष्ट पहुँचाए।”
सातवें दिन के अंत में, भगवान बुद्ध समाधि की अवस्था से उठे और नागराज मुचिलिंडा ने देखा कि आकाश निर्मल और बादलों से रहित है, तो उसने भगवान बुद्ध के शरीर से अपने कुंडल खोल दिए और अपने स्वरूप को छुपाते हुए एक युवक का रूप धारण कर भगवान बुद्ध के सामने हाथ जोड़कर उनका प्रणाम किया। इस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"शांतिप्रिय व्यक्ति का एकांत कितना मधुर होता है, उस व्यक्ति का जिसने सत्य को सुना और समझा है!"
द्वेष रहित होना सुखदायी है! सभी प्राणियों के प्रति संयमी होना सुखदायी है! कामवासना से मुक्त होना सुखदायी है! कामवासना पर विजय प्राप्त करने वाला सुखी है!
'मैं हूं' की धारणा को हटा देना ही परम आनंद है!
2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय बड़ी संख्या में भिक्षु परिक्रमा पूरी करके दोपहर का भोजन करने के बाद मठ के राजकीय कक्ष में एकत्रित हुए और अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। तभी यह वाद-विवाद शुरू हुआ: “हे भिक्षुओं, दो राजाओं में से, राजा मगध सेनिया बिम्बासर या राजा पसेनदी कोसल, कौन सा राजा सबसे धनी, सबसे अधिक संपत्ति, खजाने और रथों का स्वामी, सबसे बलवान, सबसे शक्तिशाली और सबसे बलवान है?” इस प्रकार के वाद-विवाद में उस समय भिक्षु व्याकुल थे।
और भगवान बुद्ध संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठे और मठ के राजकीय कक्ष में गए। वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को अपने पास बुलाकर बोले, "हे भिक्षुओं, आप सब यहाँ किस विषय पर विवाद और मतभेद उत्पन्न हुए हैं?"

अभी-अभी, प्रभु, जब हमने अपने चक्कर पूरे कर लिए और दोपहर का भोजन समाप्त कर लिया, तो हम मठ के राजकीय कक्ष में एकत्रित हुए और अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए और इस विषय पर एक विवाद उत्पन्न हुआ।
हे प्रभु, जब भगवान बुद्ध आए थे, तब यही बात हमारे बीच विवाद और मतभेद का विषय थी।
हे भिक्षुओं, आप जैसे कुलीन परिवारों के वंशजों के लिए, जिन्होंने धर्म के लिए अपने घर त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है, ऐसे विवादों में पड़ना उचित नहीं है। हे भिक्षुओं, जब आप एकत्रित हों, तो इन दो में से एक करना अनिवार्य है: धार्मिक प्रवचन या मौन।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"पृथ्वी पर या देवताओं के राज्य में जो भी इंद्रिय सुख हो, वह इच्छा के नाश से उत्पन्न होने वाले आनंद के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।"
3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय, सावत्थी और जेतवन के बीच कहीं, कुछ युवक लाठियों से एक साँप पर हमला कर रहे थे। तब भगवान बुद्ध ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेश किया। तब भगवान बुद्ध ने सावत्थी और जेतवन के बीच कहीं, इन युवकों को लाठियों से एक साँप पर हमला करते देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
वह अपनी ही खुशी की तलाश में था, उसने जीवित प्राणियों को हानि पहुंचाई।
ऐसे व्यक्ति को परलोक में कोई सुख नहीं मिलता। परन्तु जो व्यक्ति अपने सुख की खोज में जीवित प्राणियों को हानि नहीं पहुँचाता, ऐसे व्यक्ति को परलोक में सुख प्राप्त होता है।
4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध का आदर, सम्मान और श्रद्धा का भाव था। उन्हें भिक्षुओं की सभी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त थीं, जैसे वस्त्र, भिक्षा, बिस्तर और रोग की स्थिति में दवा। भिक्षुओं का संघ भी आदर, सम्मान और श्रद्धा से भरा हुआ था, और उन्हें भी भिक्षुओं की सभी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त थीं, जैसे वस्त्र, भिक्षा, बिस्तर और रोग की स्थिति में दवा।
हालांकि, विधर्मी संप्रदायों के अनुयायी घुमंतू भिक्षुओं को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था और उन्हें भिक्षुओं के लिए आवश्यक सुविधाएं प्राप्त नहीं होती थीं।
और ये विधर्मी संप्रदायों के अनुयायी, जो एक घुमंतू भिक्षु थे, भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के संघ को दिए जाने वाले सम्मान को सहन नहीं कर सके, और जब भी वे भगवान बुद्ध के शिष्यों को गांवों या जंगलों में देखते थे, तो वे उन्हें अपशब्द कहते, गाली देते, परेशान करते और तंग करते थे, और घृणित और कठोर शब्दों का प्रयोग करते थे।
और बहुत से शिष्य भगवान बुद्ध के पास गए और उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन शिष्यों ने भगवान बुद्ध से कहा:
भगवान बुद्ध, भगवान, सम्मानित हैं, इत्यादि। भिक्षुओं का संघ सम्मानित है, इत्यादि। घ. घुमंतू भिक्षुओं को सम्मान नहीं दिया जाता है। घ.
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जो व्यक्ति गांव या जंगल में सुख या दुख के संपर्क में आता है,
इसका दोष स्वयं पर या दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। इंद्रियों का स्पर्श व्यक्ति को उसकी उपाधि के कारण प्रभावित करता है।
क्या ये प्रवाह उस व्यक्ति को प्रभावित कर सकते हैं जिसने उपाधि से खुद को मुक्त कर लिया है?
5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय इच्छानंगोलाका नामक एक गृहस्थ शिष्य कुछ कार्य निपटाने के उद्देश्य से सावत्थी आया। सावत्थी में अपना कार्य पूरा करने के बाद, वह भगवान बुद्ध के पास गया और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक अलग बैठ गया। वहाँ बैठे हुए भगवान बुद्ध ने शिष्य से कहा, "हे शिष्य, तुम बहुत समय से इस प्रकार व्यवहार कर रहे हो, अर्थात् यहाँ आने के संबंध में।"
"हे प्रभु, मैं बहुत समय से भगवान बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा रखता आया हूँ, लेकिन व्यापार की व्यस्तता के कारण मैं भगवान बुद्ध के दर्शन नहीं कर पाया हूँ।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह वाणी कही:--
"धन्य है वह धर्मी और विद्वान व्यक्ति जिसके पास कोई संपत्ति नहीं है!"
देखो, धनी व्यक्ति कितना परेशान है;
किस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे का गुलाम होता है।
6.--छोड़ दिया गया।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय, एक गृहस्थ शिष्य के इकलौते और प्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई। कई गृहस्थ शिष्य, आँसुओं से भीगे वस्त्रों और बालों के साथ,

असुविधाजनक समय पर भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक अलग बैठ गए। जब वे अलग बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे शिष्यों, तुम इस प्रकार असुविधाजनक समय पर, आँसुओं से भीगे वस्त्रों और बालों के साथ मेरे पास क्यों आए हो?" ये शब्द सुनकर, गृहस्थ शिष्य ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, मेरा इकलौता और प्रिय पुत्र मर गया है, इसलिए हम इस प्रकार असुविधाजनक समय पर, आँसुओं से भीगे वस्त्रों और बालों के साथ आए हैं।" इस संबंध में, भगवान बुद्ध ने उस अवसर पर यह गंभीर वचन दिया:--

"देवताओं और अपरिवर्तित लोगों का दल,

रूप के सुखों और आनंदों से चिपके रहने वाले, मृत्यु के राजा के अधिकार में चले जाते हैं, मुरझाने और रोने के लिए। परन्तु जो दिन-रात जागते रहते हैं, और रूप में जो कुछ भी प्यारा है, उसे त्याग देते हैं; वे वास्तव में दुःख की जड़ खोदते हैं। प्रलोभनों पर विजय पाना कठिन है।

जो मृत्यु की ओर ले जाते हैं।"

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कुंडी में कुंडीत्तन वन में निवास कर रहे थे। उस समय कोलिया के राजा की पुत्री सुप्पवास सात वर्षों से निःसंतान थी और सात दिनों से प्रसव पीड़ा में थी। तीव्र, चुभने वाली और भयानक पीड़ा से ग्रस्त सुप्पवास को इन तीन विचारों से सांत्वना मिली;

"निश्चित रूप से, परम पूज्य (भगवान बुद्ध) हैं, सर्वोच्च बुद्ध जो उस सिद्धांत का उपदेश देते हैं जिससे ऐसे कष्टों से मुक्ति मिलती है।"

"निश्चित रूप से, भगवान बुद्ध के ऐसे शिष्य हैं, जो धर्म के मार्ग पर चलते हैं, जिन्होंने उस मार्ग पर प्रवेश किया है जहां इस प्रकार के दुख पीछे छूट जाते हैं।"

"ओह, कितना सुखद, कितना सुखद निर्वाण! जहाँ ऐसे दर्द नहीं रहेंगे!"

और कोलिया के राजा की पुत्री सुप्पवासा ने अपने पति को बुलाया और कहा, "हे मेरे स्वामी, जहाँ भगवान बुद्ध ठहरे हैं, वहाँ जाइए और उनके पास पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम कीजिए और उनसे पूछिए कि क्या उन्हें कोई मामूली बीमारी है, क्या वे शारीरिक कष्टों से मुक्त हैं और स्वस्थ हैं, और इस प्रकार कहिए: "हे स्वामी, कोलिया के राजा की पुत्री सुप्पवासा भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करती है और उनसे पूछती है कि क्या उन्हें कोई मामूली बीमारी है, क्या वे शारीरिक कष्टों से मुक्त हैं, स्वस्थ हैं और जीवन का आनंद ले रहे हैं।"

और कहिए; "हे प्रभु, सुप्पवास, कोलिया के राजा की पुत्री सात वर्षों तक निःसंतान रही और अब सात दिनों से प्रसव पीड़ा से ग्रस्त है; वह तीव्र पीड़ा से पीड़ित होकर इन तीन विचारों में सांत्वना पाती है।"

"ऐसा ही हो," कोलियापुत्त ने कोलिया की पुत्री सुप्पवासा की बात मानते हुए कहा और वह भगवान बुद्ध के पास गया तथा उन्हें प्रणाम करके एक तरफ आदरपूर्वक खड़ा हो गया और इस प्रकार खड़े होकर उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, सुप्पवासा, कोलिया की पुत्री अपना सिर झुकाती है..."

(और भगवान बुद्ध ने कहा; "कोलिय की पुत्री सुप्पवासा का भला हो, वह स्वस्थ पुत्र को जन्म दे।" (जिस क्षण भगवान बुद्ध ने ये शब्द कहे, उसी क्षण कोलिय की पुत्री सुप्पवासा का भला हुआ और उसने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया।)

"ऐसा ही हो, प्रभु," कोलियापुत्त ने भगवान बुद्ध के वचनों की प्रशंसा करते हुए और धन्यवाद देते हुए कहा। फिर वह अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके, उनके सामने दाहिनी ओर झुककर परिक्रमा करते हुए अपने घर लौट आए। वहाँ कोलियापुत्त ने देखा कि सुप्पवासा स्वस्थ थीं और उन्होंने एक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया था। उन्हें देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "पूर्ण पुरुष की महान शक्ति और सामर्थ्य कितनी अद्भुत और चमत्कारी है कि जिस क्षण भगवान बुद्ध ने ये वचन कहे, उसी क्षण सुप्पवासा स्वस्थ थीं और उन्होंने एक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया।" वे प्रसन्न, आनंदित और अति प्रसन्न हुए।

सुप्पवासा ने अपने पति को बुलाकर कहा, "हे प्रभु, जहाँ भगवान बुद्ध हैं, वहाँ जाइए और उनके पास जाकर मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम कीजिए और इस प्रकार कहिए: "हे प्रभु, कोलिया की पुत्री सुप्पवासा सात वर्षों तक निःसंतान रही और सात दिनों तक प्रसव पीड़ा से गुज़री; अब वह स्वस्थ है और उसने एक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया है; वह भिक्षुओं को सात दिनों तक अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित करती है। भगवान बुद्ध और भिक्षुओं को कोलिया की पुत्री सुप्पवासा के साथ सात दिनों तक भोजन करने की कृपा हो।"

"ऐसा ही हो," कोलियापुत्त ने सुप्पवासा की बात मानते हुए कहा और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, कोलिया की पुत्री सुप्पवासा सिर झुकाती हैं... [जैसा ऊपर अनुवाद है]। भगवान बुद्ध और भिक्षुओं को सात दिनों तक उनके साथ भोजन करने की कृपा हो।"

उस समय, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के संघ को एक गृहस्थ शिष्य ने कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया था। वह गृहस्थ शिष्य पूज्य महा मोग्गलाना का सेवक था। भगवान बुद्ध ने पूज्य महा मोग्गलाना को अपने पास बुलाया और कहा, "हे मोग्गलाना, उस शिष्य के पास जाओ और उसके पास जाकर कहो, "मित्र, कोलिया की पुत्री सुप्पवासा, जो सात वर्षों से निःसंतान थी, ने भगवान बुद्ध और

भिक्षुओं के संघ को सात दिनों तक अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया है। सुप्पवासा को इन सात भोजनों की व्यवस्था करने की अनुमति दें, उसके बाद आप सेवक भोजन की व्यवस्था करें।"

"हे प्रभु," आदरणीय महा मोग्गलाना ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए सहमति व्यक्त की और उस शिष्य के पास जाकर उससे कहा, "सुप्पवासा, मित्र, ने आमंत्रित किया है... इसके बाद तुम भोजन की व्यवस्था करोगे।" "यदि भगवान महा मोग्गलाना मेरी संपत्ति, मेरे जीवन और मेरे विश्वास की गारंटी दें, तो कोलिया की पुत्री सुप्पवासा सात भोजन की व्यवस्था करे, और उसके बाद मैं भोजन की व्यवस्था करूँगा।"

"हे मित्र, इन दो बातों के लिए मैं तुम्हारा ज़मानतदार बनूंगा, तुम्हारी संपत्ति और तुम्हारे जीवन के लिए, लेकिन विश्वास के मामले में तुम्हें स्वयं ही ज़मानतदार बनना होगा।"

यदि भगवान महा मोग्गलाना मेरी संपत्ति और मेरे जीवन के लिए मेरे ज़मानतदार होंगे, तो सुप्पवास सातों भोजन प्रदान करें और उसके बाद मैं भोजन प्रदान करूंगा।

तब पूज्य महा मोग्गलाना ने गृहस्थ शिष्य को मनाकर भगवान बुद्ध के पास जाकर उनसे कहा, "हे प्रभु, मैंने गृहस्थ शिष्य को मना लिया है कि वह सुप्पवास को सातों भोजन प्रदान करने की अनुमति दे और उसके बाद वह भोजन प्रदान करेगा।"

तब कोलिया की पुत्री सुप्पावासा ने सात दिनों तक अपने हाथों से मीठे व्यंजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार के, तैयार किए और उन्हें भिक्षुओं और बुद्ध को, जो मुख्य अतिथि थे, परोसा। उसने बालक, भगवान बुद्ध और भिक्षुओं को प्रणाम किया।

और पूज्य सारिपुत्त ने बालक से कहा, "मुझे आशा है, बालक, कि तुम आराम से हो, तुम्हारे पास जीवनयापन के लिए पर्याप्त भोजन है, और तुम्हें किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं है।"

हे पूज्य सारिपुत्त, मैं कैसे चैन से रह सकता हूँ, मैं कैसे स्वस्थ रह सकता हूँ, जबकि मैं सात वर्षों से अपनी माँ के कष्ट का कारण बना हुआ हूँ?

और सुप्पवासा ने मन ही मन कहा, "मेरा पुत्र धर्म के सेनापति से बात कर रहा है।" वह अत्यंत प्रसन्न हुई और आनंद से भर उठी। तब भगवान बुद्ध ने कोलिया की पुत्री सुप्पवासा से कहा, "सुप्पवासा, क्या तुम ऐसा ही एक और पुत्र चाहोगी?"

"हे भगवान, मैं इस पुत्र के समान सात और पुत्र चाहता/चाहती।"

और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--

"खुशी के वेश में आनंदहीनता, दुख के वेश में प्रसन्नता, सुख के वेश में पीड़ा, ये सब विचारहीन लोगों को अपने वश में कर लेते हैं।"

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी मठ में विशाखा मिगारमाता के मंडप में निवास कर रहे थे।

उस समय विशाखा मिगारमाता ने किसी प्रकार की कृपा प्राप्त करने की इच्छा से राजा पसेनादि कोसल से विनती की। राजा पसेनादि कोसल ने उसकी विनती स्वीकार नहीं की।

और विशाखा मिगारमाता असमय ही भगवान बुद्ध के पास गईं और पास आकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गईं।

और जब विशाखा मिगारमाता अलग बैठी थीं, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे विशाखा, तुम इस असमय पर मुझसे मिलने क्यों आई हो?" भगवान, अभी-अभी मैं राजा पसेनादि कोसल से एक वरदान प्राप्त करना चाहती थी... लेकिन उन्होंने मेरी विनती स्वीकार नहीं की।

और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--

"सारी कमजोरी दर्द है, सारी शक्ति सुख है।"

जब किसी संघर्ष का सामना करना पड़ता है, तो पुरुष शोक करते हैं:

इससे बंधन तोड़ना कठिन है।

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनुपिया में आम के बाग में निवास कर रहे थे।

उस समय, कालीगोधा के पुत्र पूज्य भद्दिया जंगलों में विचरण करते, वृक्षों की छाया में बैठते और एकांत स्थानों पर अक्सर जाते थे। वे बार-बार ये भावपूर्ण शब्द दोहराते थे: "आह, सुख, आह, सुख।"

और कई भिक्षुओं ने पूज्य भद्दिया को जंगलों में, पेड़ों के नीचे और सुनसान जगहों पर घूमते हुए बार-बार भावुक शब्दों में "आह, सुख, आह, सुख" कहते हुए सुना।

और जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन्होंने मन ही मन कहा, "निस्संदेह हमारे मित्र पूज्य भद्दिया, जिन्होंने पूर्व में राजसी सुख-सुविधाओं का आनंद लिया था, धार्मिक जीवन अपनाने के बाद दुखी हैं, और अतीत को याद करते हुए अब वे जंगलों में, पेड़ों के नीचे और सुनसान जगहों पर भटकते हैं, बार-बार भावपूर्ण शब्दों का उच्चारण करते हैं: 'आह, सुख, आह, सुख'।" और कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध को वह सब बताया जो उन्होंने देखा और सुना था।

और भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा, "हे भिक्षु, जाओ और मेरे नाम से भिक्षु भद्दिया को इस प्रकार बुलाओ; 'हे मित्र भद्दिया, गुरु ने तुम्हें बुलाया है'।"
"ऐसा ही हो, प्रभु," भिक्षु ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और वह उस स्थान पर गया जहाँ आदरणीय भद्दिया, कालिगोधा का पुत्र, था, और उसके पास पहुँचकर उसने कहा; "गुरुजी, मित्र भद्दिया, ने आपको बुलवाया है।"
“ऐसा ही हो, मित्र,” आदरणीय भद्दिया ने उस भिक्षु की बात मानकर सहमति जताई और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। भगवान बुद्ध ने आदरणीय भद्दिया से कहा, “हे भद्दिया, क्या यह सच है जो मैंने सुना है कि तुम जंगलों में घूमते हुए ये भावपूर्ण शब्द कहते हो; 'आह, सुख, आह, सुख'?”
"फिर भी, प्रभु।"
"हे भद्दिया, इसमें ऐसा क्या महत्व है जो तुम्हें जंगलों में भटकने के लिए प्रेरित करता है?"
"पहले, हे प्रभु, जब मैं एक शाही घर में रहता था, तो महल के अंदर और बाहर, शहर के अंदर और बाहर, मेरे देश के अंदर और बाहर, मेरी पूरी सुरक्षा और पहरेदारी की जाती थी।"
इस प्रकार, हे प्रभु, मेरी रक्षा की जाती थी और मुझ पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी, मैं चिंता, अविश्वास और भय की स्थिति में रहता था; अब, हे प्रभु, जब मैं जंगलों में, पेड़ों के नीचे और सुनसान स्थानों में विचरण करता हूँ, तो मैं अपने दिन निर्भय, शांत, आत्मविश्वासी, निडर, सुखी, भयभीत हुए बिना, दूसरों से प्राप्त भोजन और वस्त्रों के उपहारों से समर्थित होकर, और एक हिरण के समान मुक्त हृदय से व्यतीत करता हूँ।
मामले की गंभीरता को स्पष्ट रूप से समझते हुए, मैंने हे प्रभु, जंगलों में, पेड़ों के नीचे और सुनसान स्थानों में भटकने का विकल्प चुना, और उन भावपूर्ण शब्दों का उच्चारण किया; 'आह, आनंद, आह, आनंद'।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जिससे कोई क्रोध नहीं होता, जिसने इस संसार में जन्म और पुनर्जन्म पर विजय प्राप्त कर ली है,
ऐसा व्यक्ति, जो भय से मुक्त, सुखी और शोक रहित हो,
यह देवताओं की समझ से परे है।

अध्याय 3 - "नंदा"
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय एक भिक्षु भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे थे; वे सचेत और जागरूक होकर, अतीत में किए गए कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न तीव्र, चुभने वाली और भयानक पीड़ा को बिना किसी शिकायत के सहन कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु को पास ही में पालथी मारकर बैठे हुए देखा, जिसका शरीर सीधा, सचेत और जागरूक था, और वह बिना किसी शिकायत के अतीत में किए गए कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न तीव्र, चुभने वाली और भयानक पीड़ा सहन कर रहा था।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"कर्मों से मुक्त भिक्षु,
जिसने अतीत में संचित (पापों की) धूल झाड़ दी है, जिसने 'यह मेरा है' की भावना को दबा दिया है?
ऐसे व्यक्ति के लिए शोक करने का कोई कारण नहीं है।"

2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।

उस समय भगवान बुद्ध के चचेरे भाई, पूज्य नंदा ने कई भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए दुखी हूँ, मैं धार्मिक जीवन का भार सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मैं धर्म के नियमों को त्यागकर सांसारिक जीवन में लौटना चाहता हूँ।"
एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गया और उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गया। बैठे-बैठे उसने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, भगवान बुद्ध के एक चचेरे भाई, पूज्य नंदा ने कई भिक्षुओं से कहा है, ‘मैं दुखी हूँ, इत्यादि। मैं पाताल लोक में लौटना चाहता हूँ।’”
और भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा: "जाओ, तुम और मेरे नाम से भिक्षु नंदा को यहाँ बुलाओ, और कहो, 'हे मित्र नंदा, गुरु ने तुम्हें बुलाया है'।"
“ऐसा ही हो, प्रभु,” उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध की बात मानकर सहमति दी और वह पूज्य नंदा के पास गया और उनके पास पहुँचकर उनसे कहा: “हे भिक्षु नंदा, गुरु ने आपको बुलवाया है।” “ऐसा ही हो, भिक्षु,” पूज्य नंदा ने उस भिक्षु की बात मानकर सहमति दी और वह भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा से, जो वहाँ अलग बैठे

थे, कहा: “हे नंदा, क्या यह सच है जो मैंने सुना है कि तुमने कई भिक्षुओं से कहा है: “मैं दुखी हूँ, इत्यादि। मैं निम्न लोक में लौटना चाहता हूँ?”
"फिर भी, प्रभु।"
"नंदा, ऐसा क्यों है कि तुम धार्मिक जीवन जीकर दुखी हो और नियमों को त्यागकर निम्न जीवन में वापस लौटने का इरादा रखते हो?"

"हे प्रभु, जब मैं अपने घर से निकल रहा था, शाक्य वंश की एक पुत्री, जो समस्त देश की सबसे सुंदर कन्या थी, आधी गुंथी हुई केशविन्यास लिए खिड़की से बाहर देखते हुए मुझे पुकार रही थी, 'हे प्रभु, देर न करें, आपका लौटना निश्चित है।' हे प्रभु, उसे याद करके मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करने से दुखी हूँ, मैं धार्मिक जीवन का भार वहन करने में असमर्थ हूँ और धर्म के नियमों को त्यागकर निम्न जीवन में लौटने का इरादा रखता हूँ।"
तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय नंदा का हाथ पकड़कर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को पीछे खींचता है, वैसे ही वे जेतवन से विलीन हो गए और "महान तैंतीस"1 के स्वर्ग में पुनः प्रकट हुए।
उस समय लगभग 500 गुलाबी पैरों वाली2 अप्सराएँ देवताओं के राजा सक्का की सेवा करने के लिए वहाँ पहुँची थीं।
तब भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा को अपने पास बुलाया और कहा: "क्या तुम नहीं देखते, नंदा, ये 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराएँ?"
"फिर भी, प्रभु।"
"नंदा, तुम्हारा क्या विचार है? शाक्य वंश की वह पुत्री, जो पूरे देश की सबसे सुंदर कन्या है, या ये 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराएँ?"
"हे प्रभु, वह तो मानो झुलसी हुई बंदरिया हो, जिसके कान और नाक कटे हों। शाक्य वंश की पुत्री, समस्त लोक की सबसे सुंदर कन्या, इन 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं के सामने कुछ भी नहीं है; वह उनके अंश के बराबर भी नहीं, उनके योग्य नहीं। ये 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराएँ सबसे सुंदर, सबसे मनमोहक और सबसे मोहक हैं।" "तो हे नंदा, प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि मैं तुम्हें उन 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं का अधिकार दिलाता हूँ।"
"यदि भगवान बुद्ध मुझे इन 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं के अधिकार की गारंटी देंगे, तो हे भगवान, मैं सुखपूर्वक धार्मिक जीवन व्यतीत करूंगा।"
फिर भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा का हाथ थाम लिया, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाकर वापस मोड़ता है, ठीक उसी प्रकार वे "महान तैंतीस" के स्वर्ग से विलीन हो गए और जेतवन में पुनः प्रकट हुए।
और भिक्षुओं ने यह सूचना सुनी कि भगवान बुद्ध के चचेरे भाई, पूज्य नंदा, धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे थे क्योंकि उन्हें अप्सराओं का वरदान प्राप्त होने का वादा किया गया था, क्योंकि ऐसा कहा जाता था कि भगवान बुद्ध ने उन्हें 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं के अधिकार की गारंटी दी थी।
और पूज्य नंदा के साथी भिक्षुओं ने पूज्य नंदा को दास, नीच व्यक्ति कहा; उन्होंने कहा: "यह पूज्य नंदा एक दास, एक नीच व्यक्ति है। हमने सुना है कि यह पूज्य नंदा अप्सराओं की खातिर धार्मिक जीवन व्यतीत करता है। हमने सुना है कि भगवान बुद्ध ने उसे 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं के अधिकार का आश्वासन दिया है।"
और पूज्य नंदा अपने साथियों के अपमान से दुखी, अपमानित और नीच बन गए, जिन्होंने उन्हें दास और तुच्छ व्यक्ति कहा, — अकेले, मनुष्यों के बीच एकांत में, उत्साही, दृढ़ निश्चयी और आत्म-संयमित होकर, कुछ ही समय बाद, जिस उद्देश्य से कुलीन परिवारों के वंशज अपने घर छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं, उन्होंने स्वयं ही उच्च ज्ञान प्राप्त कर और उसे साकार करके इसी जन्म में पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन की सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया। वे जानते थे कि पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो गया है, धार्मिक जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए था वह कर लिया गया है: "मैंने इस संसार से नाता तोड़ लिया है।"
और आदरणीय नंदा भी अरहतों में से एक बन गए।
जब रात ढल चुकी थी, तब अत्यंत सुंदर कुछ दिव्य प्राणी, अपनी चमक से पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए, भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया तथा आदरपूर्वक अलग खड़े हो गए। इस प्रकार खड़े होकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे आदरणीय नंदा, भगवान बुद्ध के चचेरे भाई, ने पापों के नाश द्वारा स्वयं ही उच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसी जन्म में वे मुक्त हृदय के आनंद और ज्ञान से उत्पन्न होने वाली मुक्ति का अनुभव कर रहे हैं।”
और भगवान बुद्ध को यह ज्ञान भी प्राप्त हुआ कि पूज्य नंदा, पापों आदि के नाश से मुक्त हो गए हैं। उस रात के अंत में पूज्य नंदा भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए पूज्य नंदा ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने मुझे 500 गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं का अधिकार देने का वचन दिया था; मैं अब भगवान बुद्ध को उस वचन से मुक्त करता हूँ।” “हे नंदा, मैंने अपने मन से तुम्हारे हृदय में जो है उसे जान लिया है और जानता हूँ कि नंदा, पापों आदि के नाश से मुक्त हो गए हैं।” देवताओं ने भी मुझे यही बताया है; “हे नंदा, पापों आदि के नाश से मुक्त हो गए हैं। हे नंदा, क्योंकि तुम्हारा हृदय ‘आसक्ति’ और पापों से मुक्त हो गया है, इसलिए मैं भी उस वचन से मुक्त हो गया हूँ।”
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--

"जो अशुद्धता के दलदल को पार कर चुका है,
हे भिक्षु, जिसने कामवासना के कांटों को कुचल दिया है, वह सुख या दुख की स्थिति में भी निर्मल रहता है।
शांति में है।

3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय यशोजा के नेतृत्व में लगभग 500 भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन करने आए।
और ये नवगठित भिक्षु, निवासी भिक्षुओं के साथ शिष्टाचार का आदान-प्रदान करते हुए और अपने सोने के स्थान, भिक्षापात्र और वस्त्रों की व्यवस्था करते हुए, एक बड़ा कोलाहल पैदा कर दिया।
तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा, "हे आनंद, ये शोर मचाने वाले और उपद्रवी लोग कौन हैं? ऐसा लगता है मानो ये मछुआरे मछली पकड़ रहे हों।"
"हे प्रभु, यशोजा के नेतृत्व में लगभग 500 भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन करने के लिए सावत्थी आए हैं। और ये नए आए भिक्षु वहां के भिक्षुओं से शिष्टाचार का आदान-प्रदान करते हुए और अपने सोने के स्थान, भिक्षापात्र और वस्त्रों की व्यवस्था करते हुए यह शोर मचा रहे हैं।"
"तब, मेरे नाम से, आनंद, उन भिक्षुओं को यहाँ बुलाओ और कहो, 'आदरणीय महोदय, गुरु ने आपको बुलवाया है'।"
"ऐसा ही हो, प्रभु;" आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, गुरु ने आपको बुलवाया है।"
“ऐसा ही हो, भिक्षु,” उन भिक्षुओं ने आदरणीय आनंद की बात मानकर सहमति जताई और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। भगवान बुद्ध ने बैठे-बैठे उनसे कहा, “इस शोर-शराबे का क्या मतलब है? ऐसा लगता है मानो तुम मछुआरे हो जो मछली पकड़ रहे हो।”
ये शब्द कहे जाने के बाद, पूज्य यशोजा ने भगवान बुद्ध से कहा, "ये नए आए भिक्षु आदि [जैसा कि ऊपर बताया गया है। अनुवाद] यह कोलाहल पैदा कर रहे हैं।"
"मैं तुम्हें जाने का निर्देश देता हूँ, हे भिक्षुओं; मेरे साथ वार्तालाप करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"
“ऐसा ही हो, प्रभु,” उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और अपने आसनों से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया। उनके दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा करते हुए उन्होंने अपना बिस्तर समेटा और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर वज्जी देश की ओर प्रस्थान किया। वज्जी देश से गुजरते हुए वे वग्गुमुदा नदी के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने वग्गुमुदा नदी के किनारे पत्तों की झोपड़ियाँ बनाईं और वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत की।
और पूज्य यशोजा, जिन्होंने वर्षा ऋतु वहीं बिताई, ने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा, “मित्रों, भगवान बुद्ध ने हम पर दया और करुणा दिखाते हुए, हमारे कल्याण और भलाई की इच्छा से हमें यहाँ भेजा है। मित्रों, अब हमें ऐसा जीवन जीना चाहिए जिससे भगवान बुद्ध हमारे जीवन जीने के तरीके से प्रसन्न हों।”

“हाँ, भिक्षु,” उन भिक्षुओं ने सहमति जताते हुए कहा। और ये भिक्षु, जो मनुष्यों के निवास स्थान से दूर रहते थे, अटूट उत्साह, लगन और संयम के साथ वर्षा ऋतु के दौरान ही ‘त्रिविध ज्ञान’ प्राप्त कर लिया।
और भगवान बुद्ध ने सावत्थी में अपनी इच्छानुसार कुछ समय व्यतीत करने के बाद वैशाली के लिए प्रस्थान किया और स्थान-स्थान भटकते हुए अंततः वैशाली पहुंचे।
और भगवान बुद्ध वैशाली में महावन के पैगोडा हॉल में ठहरे थे।
और भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं के विचारों को अपने मन से समझकर, पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा, “हे आनंद, मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी का यह भाग प्रकाशित हो गया हो, प्रकाश से जगमगा उठा हो। मुझे यह अच्छा विचार आता है कि मैं उन भिक्षुओं के पास जाऊं जो वग्गुमुदा नदी के किनारे रहते हैं। हे आनंद, वग्गुमुदा नदी के किनारे रहने वाले उन भिक्षुओं के पास एक दूत भेजो; ‘गुरुजी ने पूज्य भिक्षुओं को बुलवाया है, गुरुजी उनसे मिलना चाहते हैं’।”
"ऐसा ही हो, प्रभु;" पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए सहमति व्यक्त की और वे एक भिक्षु के पास गए और उसके पास पहुँचकर उससे कहा, "हे मित्र, वाग्गुमुदा नदी के किनारे जहाँ भिक्षु रहते हैं, वहाँ जाकर उनसे कहो, 'गुरुजी ने पूज्य भिक्षुओं को बुलवाया है, गुरुजी पूज्य भिक्षुओं से मिलना चाहते हैं'।"
"ऐसा ही हो, भिक्षु;" उस भिक्षु ने आदरणीय आनंद की बात मानते हुए सहमति व्यक्त की, और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस मोड़ता है, वैसे ही वह महावन के पैगोडा हॉल से गायब हो गया और वग्गुमुदा नदी के किनारे उन भिक्षुओं के सामने फिर से प्रकट हुआ।

और उस भिक्षु ने वग्गुमुदा नदी के किनारे बैठे भिक्षुओं से कहा: "गुरुजी ने पूज्य भिक्षुओं को बुलवाया है, गुरुजी पूज्य भिक्षुओं से मिलना चाहते हैं।"
“ऐसा ही हो, भिक्षु,” उन भिक्षुओं ने उस भिक्षु की बात मानते हुए कहा और अपना बिस्तर समेटकर, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर—जैसे कोई बलवान पुरुष हो—वैसे ही वे वग्गुमुदा नदी के किनारे से गायब हो गए और महावन के पैगोडा हॉल में भगवान बुद्ध के सामने प्रकट हुए।
उस समय भगवान बुद्ध एक शांत समाधि अवस्था में बैठे हुए थे।
और उन भिक्षुओं ने मन ही मन कहा, “भगवान बुद्ध स्थिर अवस्था में हैं;” और वे सब भी स्थिर अवस्था में समाधि में बैठ गए। और पूज्य आनंद, जैसे ही रात का पहला पहर बीत रहा था, अपने आसन से उठे और अपना वस्त्र केवल एक कंधे पर रखकर (दूसरा नंगा छोड़कर) भगवान बुद्ध के पास गए और हाथ फैलाकर भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, रात बीत चुकी है, पहला पहर बीत रहा है, नए आए भिक्षुओं ने बहुत देर तक प्रतीक्षा की है। कृपा करके भगवान बुद्ध नए आए भिक्षुओं से शिष्टाचार का आदान-प्रदान करें।”
ये शब्द कहे जाने के बाद, भगवान बुद्ध मौन रहे।
दूसरी बार, जब रात का मध्य पहर बीत रहा था, पूज्य आनंद अपने आसन से उठे और अपना कुर्ता एक कंधे पर रखकर भगवान बुद्ध के पास गए और हाथ फैलाकर उनसे कहा, “हे प्रभु, रात बीत रही है, मध्य पहर बीत रहा है; नए आए भिक्षुओं ने बहुत प्रतीक्षा की है। कृपा करके भगवान बुद्ध नए आए भिक्षुओं से शिष्टाचार का आदान-प्रदान करें।”
दूसरी बार, भगवान बुद्ध मौन रहे। तीसरी बार, जब रात का अंतिम पहर बीत रहा था, भोर हो रही थी, और रात काफी बीत चुकी थी, तो पूज्य आनंद अपने आसन से उठे और केवल एक कंधे पर अपना वस्त्र रखकर भगवान बुद्ध के पास गए, और हाथ फैलाकर भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, रात बीत रही है, अंतिम पहर बीत रहा है, भोर हो रही है, रात काफी बीत चुकी है, नए आए भिक्षुओं ने बहुत प्रतीक्षा की है। कृपा करके भगवान बुद्ध नए आए भिक्षुओं से शिष्टाचार का आदान-प्रदान करें।"
और भगवान बुद्ध उस समाधि अवस्था से उठकर आदरणीय आनंद को अपने पास बुलाकर बोले: "हे आनंद, यदि तुम जानते हो, तो तुम्हें उन्हें उत्तर नहीं देना चाहिए: मैं और ये सभी 500 भिक्षु गतिहीन समाधि अवस्था में बैठे हैं।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जिसने इच्छाओं के कांटों पर विजय प्राप्त कर ली है,
जिसने दुर्व्यवहार, कोड़े और कारावास पर विजय प्राप्त की है, वह पर्वत के समान दृढ़ रहता है, चाहे सुख हो या दुख।
वह भिक्षु भयभीत नहीं होता।

4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में सावत्थी में निवास कर रहे थे।

उस समय, पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पांव-पैरों के बल सीधे बैठे थे, और स्मृति को अपने समक्ष रखे हुए थे। भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को पास ही पांव, पांव-पैरों के बल सीधे बैठे हुए देखा, और स्मृति को अपने समक्ष रखे हुए देखा। इस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जैसे पहाड़ की चट्टान अडिग खड़ी रहती है
अतः, भ्रम का वध करके भिक्षु ने
जैसे पहाड़, कांपता नहीं।

5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर को सीधा रखते हुए, शरीर पर ध्यान मग्न होकर बैठे हुए थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य महामोग्गलाना आदि को शरीर पर ध्यान में लीन देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जो शरीर पर ध्यान लगा रहा हो,
संपर्क के 'पांच क्षेत्रों' के संबंध में कौन संयमित है?
वह भिक्षु, जो सदा शांत रहता है, अपनी मुक्ति स्वयं प्राप्त कर लेगा।

6. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदिकनिवापा में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य पिलिन्दवच्छ भिक्षुओं को कोसने और उन्हें बहिष्कृत (वसलस) कहने की आदत रखते थे।

और कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए, और पास आकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए, और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, पूज्य पिलिन्दवच्छ भिक्षुओं को अपशब्द कहने और उन्हें बहिष्कृत (वसलस) कहने का आदी है।"
और भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा: "जाओ, भिक्षु (भिक्षु), और मेरे नाम से भिक्षु पिलिन्दवच्छ को यहाँ बुलाओ और कहो, 'भिक्षु, गुरु ने तुम्हें बुलाया है।'"
"ऐसा ही हो, प्रभु;" भिक्षु ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और वह आदरणीय पिलिन्दवच्छ के पास गया, और पास आकर उसने पिलिन्दवच्छ से कहा, "गुरुजी, भिक्षु, आपको बुला रहे हैं।"
“ऐसा ही हो, भिक्षु;” आदरणीय पिलिन्दवच्छ ने उस भिक्षु की बात मानकर सहमति जताई और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। भगवान बुद्ध ने बैठे-बैठे उनसे कहा, “क्या यह सच है, वच्छ, जो मैंने सुना है कि तुम भिक्षुओं को बहिष्कृत (वसलस) कहते हो?”
"फिर भी, प्रभु।"
और भगवान बुद्ध ने पिलिन्दवच्छ के पूर्व जन्म को याद करते हुए भिक्षुओं से कहा, “हे भिक्षुओं, भिक्षु वच्छ का उपहास न करो। हे भिक्षुओं, वच्छ का कोई दोष नहीं है कि वह भिक्षुओं को बहिष्कृत कहता है। पाँच सौ पिछले जन्मों में भिक्षु वच्छ एक ब्राह्मण परिवार में निम्न जाति के रूप में जन्मा था। उसे यह अपशब्द बोलने की आदत बहुत पहले लग गई थी। इसीलिए इस वच्छ की यह प्रथा है कि वह भिक्षुओं को बहिष्कृत कहता है।”
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जिससे छल या अहंकार उत्पन्न नहीं होता,
जिसमें लोभ का नाश हो गया हो, जिसने 'यह मेरा है' की भावना से मुक्ति पा ली हो, जो भावहीन हो और क्रोध त्याग चुका हो, जो सभी चिंताओं से मुक्त हो।
वह भिक्षु ब्राह्मण और समना है।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदिकनिवापा में निवास कर रहे थे।
उस समय पिप्पली गुफा में रहने वाले पूज्य महाकस्सपा सात दिनों तक पालथी मारकर बैठे रहे और समाधि की अवस्था में चले गए।
और आदरणीय महाकस्सपा सातवें दिन के अंत में उस समाधि अवस्था से उठे।
और जब वे उस समाधि की अवस्था से उठे, तो पूज्य महाकस्सपा के मन में यह विचार आया; "क्या होगा यदि मैं भिक्षा मांगने के लिए राजगृह जाऊं?"
उस समय लगभग 500 देव (देवदूत) आदरणीय महाकस्सपा के लिए भिक्षा जुटाने में तत्पर थे। आदरणीय महाकस्सपा ने उन 500 देवों को विदा करके, दोपहर के समय अपना वस्त्र धारण किया और भिक्षापात्र तथा कुर्ता लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया।
उस समय देवों के राजा सक्का, आदरणीय महाकस्सपा को दान देने के लिए उत्सुक होकर, बुनकर का रूप धारण करके बुनाई करने लगे। सुजाता असुरकन्ना ने भरा, इत्यादि।
और पूज्य महाकस्सपा भिक्षा की तलाश में घर-घर भटकते हुए देवताओं के राजा सक्का के निवास के पास पहुँचे। देवताओं के राजा सक्का ने दूर से ही पूज्य महाकस्सपा को आते देख अपने घर से निकलकर उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उनसे भिक्षापापा का पात्र लेकर उन्हें अपने घर में ले गए। उन्होंने एक बर्तन से उबले हुए चावल निकालकर भिक्षापापा के भिक्षापापा को दिए। चावल के साथ अनेक प्रकार के सूप, चटनी और स्वादिष्ट व्यंजन भी थे।
और पूज्य महाकस्सपा के मन में यह विचार आया: "यह व्यक्ति कौन हो सकता है, जिसके पास इतनी जादुई शक्तियां हैं?"
और पूज्य महाकस्सपा के मन में भी यही विचार आया: "क्या यह सक्का, देवताओं का राजा हो सकता है?"
और जब उसने देखा कि वह देवों का राजा सक्का है, तो उसने उससे कहा, "हे कोसिया, तुमने यह किया है; फिर कभी ऐसा मत करना।"
"हे पूज्य कस्सपा, हमारे लिए भी पुण्य कर्मों की आवश्यकता है, हमें भी पुण्य कर्म करने चाहिए।"
और देवों (देवदूतों) के राजा सक्का ने पूज्य कस्सपा को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर रहते हुए परिक्रमा करते हुए वायु में विलीन हो गए और आकाश में अपने स्थान से तीन बार ये भावपूर्ण शब्द कहे: "हे दया, कस्सपा द्वारा स्थापित सर्वोच्च दया।"
और भगवान बुद्ध ने, अपनी दिव्य, स्पष्ट श्रवण शक्ति से, जो मनुष्यों की तुलना में कहीं अधिक है, देवों के राजा सक्का को आकाश में अपने स्थान से तीन बार ये भावपूर्ण शब्द कहते हुए सुना: "हे दान, कश्यप द्वारा स्थापित परम दान।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"वह भिक्षु जो नियमों के अनुरूप भिक्षा ग्रहण करता है,
जो अकेले लोगों का पालन-पोषण और देखभाल करता है,

ऐसे व्यक्ति को, जो सदा सचेत और शांत रहता है, देवता भी ईर्ष्या करते हैं।

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय बड़ी संख्या में भिक्षु अपने व्रतों से लौटकर भोजन कर चुके थे और करेरी के गोलाकार हॉल में एकत्रित होकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। वहाँ इस विषय पर चर्चा हुई: "हे भिक्षुओं, जो भिक्षुण नियमों का पालन करते हुए अपने व्रतों पर जाते हैं, उन्हें समय-समय पर अपनी आँखों से मनमोहक रूप देखने, कानों से मधुर ध्वनियाँ सुनने, नाक से मनमोहक सुगंधों का अनुभव करने, जीभ से मनमोहक स्वाद चखने और स्पर्श में सुखद शरीरों के संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त होता है। हे भिक्षुओं, जो भिक्षु अपने व्रतों पर जाते समय भिक्षुण नियमों का पालन करते हैं, उन्हें आदर, सम्मान और श्रद्धा प्राप्त होती है। हे भिक्षुओं, आइए हम भी भिक्षुण नियमों का पालन करें, तब हमें भी समय-समय पर अपनी आँखों से मनमोहक रूप देखने, कानों से मधुर ध्वनियाँ सुनने और मनमोहक सुगंधों का अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।" समय-समय पर अपनी नाक से मनमोहक सुगंधों का अनुभव करना, अपनी जीभ से सुखद स्वादों को चखना और स्पर्श में सुखद शरीरों के संपर्क में आना। हम भी अपने भ्रमण के दौरान सम्मानित, आदरणीय, श्रद्धावान और प्रशंसनीय माने जाएँगे। भिक्षुओं के बीच यही चर्चा और वाद-विवाद का विषय था।
और भगवान बुद्ध संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठकर करेरी गोलाकार हॉल की ओर गए और वहाँ पहुँचकर निर्धारित आसन पर बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा, "हे भिक्षुओं, यहाँ एकत्रित आप सब के बीच क्या चर्चा हुई है, क्या विवाद उत्पन्न हुआ है?"
हे प्रभु, अभी-अभी हम सब परिक्रमा करने के बाद करेरी गोलाकार हॉल में एकत्रित हुए और अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। वहाँ निम्नलिखित विषय पर चर्चा हुई; [जैसा ऊपर दिया गया है। अनुवाद]। "भगवान बुद्ध के आगमन के समय यही चर्चा और विवाद का विषय था।"
हे भिक्षुओं, आप जैसे कुलीन परिवारों के वंशजों के लिए, जिन्होंने आस्था के कारण अपने घर त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है, ऐसी चर्चाओं में लीन रहना उचित नहीं है। जब आप एकत्रित होकर अपने-अपने स्थानों पर बैठें, तो दो में से एक मार्ग अपनाना चाहिए, या तो धार्मिक वार्तालाप, या मौन धारण करना।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जो भिक्षु भिक्षा संबंधी नियमों का पालन करता है, जो अकेले लोगों का पालन-पोषण और देखभाल करता है, देवता उससे ईर्ष्या करते हैं, बशर्ते उसका हृदय यश और सम्मान की प्राप्ति में लगा हो।"

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय कई भिक्षु [जैसा कि ऊपर अनुवाद किया गया है] उपस्थित हुए और उनके बीच यह विवाद उत्पन्न हुआ: "हे भिक्षुओं, कलाओं में निपुण कौन है, कौन सी कलाओं में स्वयं को प्रशिक्षित करता है, और कौन सी कलाओं में श्रेष्ठता प्राप्त है?"
कुछ ने कहा, "हाथियों के प्रबंधन में कौशल;" कुछ ने कहा, "घोड़ों और वाहनों के प्रबंधन में कौशल;" अन्य ने कहा, "धनुष और तलवार के मूठ बनाने में कौशल; परिवहन, गणित, अनुमान, नक्काशी, कविता, तर्कशास्त्र और कृषि में कौशल।"
भिक्षुओं के बीच यही विवाद का विषय उत्पन्न हुआ था।
और भगवान बुद्ध संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठकर बोले, "तुम लोगों के बीच जो विवाद उत्पन्न हुआ है, उसका स्वरूप क्या है?"
जब भगवान बुद्ध आए थे, तब यही विषय चर्चा और विवाद का विषय था।
"हे भिक्षुओं, जैसा ऊपर बताया गया है, वैसा करना उचित नहीं है। दो में से एक मार्ग अपनाना चाहिए, या तो धार्मिक संवाद या फिर मौन।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"निःसंदेह, जो कलाओं में निपुण नहीं है, जो कल्याण की इच्छा रखता है, जिसकी इंद्रियां शांत हैं, जो पूर्णतः मुक्त है, जो तपस्वी है, जिसके मन में 'यह मेरा है' का भाव नहीं है,"
कौन जुनून से मुक्त है?
उस भिक्षु ने प्रलोभक का वध करके, कलाओं में निपुणता की आवश्यकता के बिना, अकेले ही विचरण किया।

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, ज्ञान के वृक्ष की तलहटी में निवास किया।
उस समय भगवान बुद्ध सात दिनों तक ध्यान की मुद्रा में बैठे थे और मुक्ति के आनंद का अनुभव कर रहे थे।
और सातवें दिन के अंत में, भगवान बुद्ध समाधि की अवस्था से उठे और बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन किया।

और परम पूज्य भगवान बुद्ध ने बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए अनेक अग्नियों से झुलसे हुए, दुःख, पाप और भ्रम से ग्रस्त प्राणियों को देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"यह दुनिया एक भस्म करने वाली आग है। लोग 'संपर्क' में डूबे हुए हैं, वे बीमारी को अच्छी चीज बताते हैं।"
मनुष्य जो सोचता है, उसका ठीक उल्टा होता है। ये लोग, जो स्वयं को भेद करते हैं, अस्तित्व प्राप्त करके अस्तित्व में लीन होकर अस्तित्व की प्रशंसा करते हैं। जब मनुष्य इसकी प्रशंसा करता है, तो भय उत्पन्न होता है; जहाँ भय होता है, वहाँ दुःख होता है। अस्तित्व के प्रेम का पूर्ण त्याग ही पवित्र जीवन कहलाता है। ये सभी समन और ब्राह्मण जो कहते हैं कि अस्तित्व से अस्तित्व से मुक्ति मिलती है, मैं घोषणा करता हूँ कि वे अस्तित्व से मुक्त नहीं होंगे। परन्तु ये सभी समन और ब्राह्मण जो कहते हैं कि अस्तित्वहीनता से अस्तित्व से मुक्ति मिलती है, मैं घोषणा करता हूँ कि वे अस्तित्व से स्वतंत्र हैं। उपाधि के फलस्वरूप दुःख उत्पन्न नहीं होता; जब समस्त 'आसक्ति' नष्ट हो जाती है, तब दुःख का पुनरुत्पादन नहीं होता। इस विविध संसार को देखो, जो अज्ञान में डूबा हुआ है, सुख-प्रेमी प्राणियों से भरा हुआ है, और मुक्ति से वंचित है!
"सम्मय, चाहे कुछ भी हो या कहीं भी हो, सब कुछ क्षणभंगुर, दुखों से भरा और परिवर्तनशील है।"

अध्याय 4 - "मेघिया"
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध चालका पर्वत पर चालका में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य मेघिया भगवान बुद्ध के सेवक थे। पूज्य मेघिया भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया तथा आदरपूर्वक अलग खड़े हो गए। इस प्रकार खड़े होकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, मैं जंतु ग्राम में भिक्षा मांगने के लिए जाना चाहता/चाहती हूँ।"
"बहुत खूब, मेघिया, जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करो।"
और पूज्य मेघिया ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और कुर्ता लेकर जंतु गाँव में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। जब उन्होंने अपने चक्कर पूरे कर लिए और भोजन कर लिया, तो वे किमिकाला नदी के किनारे गए और नदी के किनारे-किनारे पैदल घूमते हुए उन्हें आमों का एक मनमोहक और सुंदर उपवन दिखाई दिया। उसे देखकर वे बोले, “यह आमों का उपवन कितना सुंदर है! सचमुच यह एक कुलीन परिवार के वंशज के लिए पुण्य प्राप्ति के लिए उपयुक्त स्थान है। यदि भगवान बुद्ध की इच्छा हुई, तो मैं इस आमों के उपवन में लौटकर पुण्य प्राप्ति के लिए प्रयास करूंगा।”

और पूज्य मेघिया भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, दोपहर के समय मैंने अपने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और कुर्ता लिया और जंतु गाँव में भिक्षा मांगने गया। जब मैंने अपने चक्कर पूरे कर लिए और भोजन कर लिया, तो मैं किमिकाला नदी के किनारे गया और पैदल घूमते हुए मुझे आमों का एक मनमोहक और सुंदर उपवन दिखाई दिया। उसे देखकर मैंने कहा, 'यह आमों का उपवन कितना सुंदर है! यह तो एक कुलीन परिवार के वंशज के लिए पुण्य प्राप्ति के लिए उपयुक्त स्थान है।' यदि भगवान बुद्ध सहमत हों, तो मैं इस आमों के उपवन में लौटकर पुण्य प्राप्ति के लिए प्रयास करूंगा।"
"हे प्रभु, यदि भगवान बुद्ध सहमत हों तो मैं उस आम के बाग में जाकर संघर्ष में शामिल हो जाऊंगा।"
ये शब्द कहे जाने के बाद, भगवान बुद्ध ने आदरणीय मेघिया से कहा: "अभी के लिए प्रतीक्षा करो, मेघिया, हम अभी अकेले हैं, कम से कम तब तक जब तक कोई दूसरा भिक्षु नहीं आ जाता।"
और दूसरी बार पूज्य मेघिया ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, भगवान बुद्ध को अब और कोई कर्तव्य निभाने की आवश्यकता नहीं है, न ही किसी और अनुभव की आवश्यकता है, परन्तु हे प्रभु, मुझे अभी भी कर्तव्य निभाने हैं और अनुभव प्राप्त करना है। हे प्रभु, यदि भगवान बुद्ध सहमत हों, तो मैं उस आम के बाग में जाकर संघर्ष में संलग्न हो जाऊँगा।”
दूसरी बार, भगवान बुद्ध ने आदरणीय मेघिया से कहा: "थोड़ी देर रुकिए, मेघिया, अब हम अकेले हैं, कम से कम तब तक जब तक कोई दूसरा भिक्षु न आ जाए।"
तीसरी बार पूज्य मेघिया ने भगवान बुद्ध से कहा: [जैसा ऊपर है। अनुवाद]

"जहाँ तक संघर्ष का सवाल है, मेघिया, मैं इसे तुम्हारे सामने किन शब्दों में व्यक्त करूँ? मेघिया, अब तुम वही करो जो तुम्हें सबसे अच्छा लगे।"
और पूज्य मेघिया अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया तथा उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनके चारों ओर घूमकर आम के बाग की ओर गए और पास आकर आम के बाग में प्रवेश किया तथा दिन की भीषण गर्मी में एक वृक्ष के चरणों में बैठ गए।

और उस आम के बाग में रहते हुए, आदरणीय मेघिया लगातार तीन प्रकार के बुरे और गैरकानूनी विचारों से घिरी रहती थीं, अर्थात् कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और क्रूर विचार।
और आदरणीय मेघिया ने मन ही मन सोचा: "यह कितना विचित्र है, कितना आश्चर्यजनक है कि मैं, जिसने आस्था के कारण अपना घर त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत किया है, इन बुरे और अवैध विचारों से भरा हुआ हूँ, अर्थात् कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और क्रूर विचार।"
और पूज्य मेघिया अपने एकांत ध्यान से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके आदरपूर्वक अलग बैठ गए और बैठे-बैठे भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, उस आम के बाग में रहते हुए, मुझ पर तीन बुरे और निषिद्ध विचार हावी हो गए, अर्थात् कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और क्रूर विचार। मैंने सोचा कि यह कितना विचित्र और आश्चर्यजनक है कि मैं, जिसने श्रद्धा के कारण अपना घर त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है, इन तीन बुरे और निषिद्ध विचारों से ग्रस्त हो रहा हूँ।"
"हे मेघिया, अपरिपक्व हृदय के परिपक्व होने के लिए पाँच स्थितियाँ सहायक होती हैं। ये पाँच स्थितियाँ क्या हैं?"
1. हे मेघिया, इस संसार में एक भिक्षु का एक गुणी मित्र और एक गुणी साथी होना चाहिए। हे मेघिया, अपरिपक्व मुक्त हृदय के लिए परिपक्वता की ओर ले जाने वाली यह पहली शर्त है।
2. इसके अतिरिक्त, मेघिया, एक भिक्षु को धार्मिक होना चाहिए, उपदेशों के अनुसार संयमी जीवन जीना चाहिए, और सही आचरण से युक्त होना चाहिए, छोटे से छोटे पाप में भी खतरे को पहचानना चाहिए, और नैतिक उपदेशों को अपनाकर उसमें अभ्यास करना चाहिए। मेघिया, अपरिपक्व मुक्त हृदय के लिए, यह दूसरी शर्त है जो परिपक्वता की ओर ले जाती है।
3. इसके अलावा, मेघिया, ऐसे प्रवचन होने चाहिए जो बुराई के उन्मूलन, हृदय के लाभकारी विस्तार, संसार से पूर्ण विरक्ति, सभी इच्छाओं के निवारण, शांति, उच्च ज्ञान, परम ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर अग्रसर हों, अर्थात् मितव्ययिता, संतोष, एकांत, एकांत, प्रयास और परिश्रम, भक्ति, आत्म-एकाग्रता, बुद्धि और ज्ञान से प्राप्त अंतर्दृष्टि से उत्पन्न मुक्ति पर प्रवचन—ऐसे प्रवचनों के माध्यम से संतोष प्राप्त होता है और कष्ट एवं कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है।
अपरिपक्व हृदय, मेघिया के लिए, यह तीसरी स्थिति है जो परिपक्वता की ओर ले जाती है।
4. इसके अलावा, मेघिया, भिक्षु को प्रयास और परिश्रम का जीवन जीना चाहिए, अवैध प्रथाओं का त्याग करना चाहिए, उसे वैध कार्यों का अभ्यास करना चाहिए, उसे दृढ़ रहना चाहिए, अपनी शक्ति लगानी चाहिए, वैध कार्यों के अभ्यास में बोझ नहीं डालना चाहिए।
अपरिपक्व हृदय, मेघिया के लिए, यह चौथी अवस्था है जो परिपक्वता की ओर ले जाती है।
5. इसके अलावा, मेघिया, भिक्षु को ज्ञान होना चाहिए, चीजों के उदय और अस्त होने का ज्ञान होना चाहिए, उदात्त अंतर्दृष्टि होनी चाहिए और उस ज्ञान से संपन्न होना चाहिए जो दुख के पूर्ण निवारण की ओर ले जाता है।

अपरिपक्व हृदय, मेघिया के लिए, यह पांचवीं अवस्था है जो परिपक्वता की ओर ले जाती है।
अपरिपक्व हृदय (मेघिया) के लिए, परिपक्वता लाने वाली ये पाँच स्थितियाँ हैं।
अतः, मेघिया, जब भिक्षु को कोई गुणी मित्र, गुणी साथी या गुणी सहयोगी मिल जाता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह धार्मिक हो जाएगा, उपदेशों के अनुसार संयमी जीवन व्यतीत करेगा और सही आचरण से युक्त होगा, तथा छोटे से छोटे पाप में भी खतरा देखकर नैतिक उपदेशों को अपनाएगा और उनका पालन करेगा; और वे प्रवचन जो बुराई के निवारण, हृदय के लाभकारी विस्तार, संसार से पूर्ण विरक्ति, सभी इच्छाओं के निवारण, शांति, उच्च ज्ञान, परम ज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं, अर्थात्, मितव्ययता, संतोष, एकांत, एकांत, परिश्रम और परिश्रम, धर्मपरायणता, आत्म-एकाग्रता, बुद्धि और ज्ञान से प्राप्त अंतर्दृष्टि से उत्पन्न मुक्ति पर प्रवचन—ऐसे प्रवचनों के माध्यम से संतोष प्राप्त होता है और कष्टों एवं कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है।
इस प्रकार, एक भिक्षु एक गुणी मित्र, एक गुणी साथी, एक गुणी सहयोगी के साथ परिश्रम और परिश्रम का जीवन व्यतीत करेगा, और अवैध प्रथाओं को त्यागकर वैध प्रथाओं का पालन करेगा; वह दृढ़ संकल्पित होगा, अपनी पूरी शक्ति लगाएगा और वैध प्रथाओं के पालन में बोझ को नहीं उतारेगा।
इस प्रकार, एक गुणी मित्र, एक गुणी साथी, एक गुणी सहयोगी के साथ रहने वाला भिक्षु ज्ञानी हो जाएगा, उसे चीजों के उदय और अस्त होने का ज्ञान, उदात्त अंतर्दृष्टि और उन चीजों का ज्ञान प्राप्त होगा जो दुखों के पूर्ण निवारण में सहायक होती हैं।

इसके अतिरिक्त, मेघिया भिक्षु, जो इन पाँच अवस्थाओं का पालन करता है, उसे चार अन्य अवस्थाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए; कामवासना का त्याग करने के लिए उसे शरीर की अशुद्धता पर ध्यान करना चाहिए, द्वेष का त्याग करने के लिए उसे दया पर ध्यान करना चाहिए, (बुरे) विचारों को दूर करने के लिए उसे श्वास-श्वास गिनते हुए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए; 'मैं हूँ' कहने वाले अहंकार को दूर करने के लिए उसे सभी चीजों की अनित्यता की चेतना का अभ्यास करना चाहिए। अनित्यता की चेतना से अहं-रहितता की चेतना स्थापित होती है, और अहं-रहितता के प्रति सचेत व्यक्ति 'मैं हूँ' की भावना को दूर करने में सफल होता है, और इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त करता है।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--

जो इन तुच्छ और सूक्ष्म विचारों को सही ढंग से नहीं समझता,
जिससे मन अहंकार से भर जाता है, ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मांतर तक भ्रम में भटकता रहता है। परन्तु बुद्धिमान, उत्साही और सचेत व्यक्ति ऐसे विचारों को वश में रखता है।
वह उन विचारों से बच निकलता है जो मन को अहंकार से भर देते हैं और उसे फुला देते हैं।

2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कुसिनारा में, उपवत्तना में, मल्ल वंश के साल वन में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, जंगल में झोपड़ियों में बड़ी संख्या में भिक्षु रहते थे।
वे अहंकारी, घमंडी, चंचल, बातूनी, बेपरवाह, अज्ञानी, बेलगाम, लापरवाह और कामुक थे।
और भगवान बुद्ध ने जंगल में बनी झोपड़ियों में रहने वाले इन भिक्षुओं को देखा, जो अहंकारी, चंचल, बातूनी, बेपरवाह, विचारहीन, अज्ञानी, अनियंत्रित, लापरवाह और कामुक थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जो अपने शरीर की देखभाल नहीं करता,
जो झूठे सिद्धांतों के वश में है, जो आलस्य और सुस्ती के आगे झुक जाता है, वह शैतान के प्रभाव में आ जाता है। परन्तु जो अपने मन पर नियंत्रण रखता है, जिसका क्षेत्र सही विचार है, जो सदा सही शिक्षा को अपने सामने रखता है, जो समय के उदय और अस्त को जानता है, जो आलस्य और सुस्ती पर विजय प्राप्त करता है,
वह भिक्षु सभी प्रकार के दंडों से मुक्त हो जाता है।

3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ कोसल देश में जगह-जगह घूम रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध मार्ग छोड़कर एक वृक्ष की तलहटी में गए और नियत आसन पर बैठ गए।
और एक चरवाहा भगवान बुद्ध के पास आया, और पास आकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अलग बैठ गया। जब चरवाहा वहाँ बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उसे धार्मिक प्रवचनों से उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया।
और भगवान बुद्ध के धार्मिक उपदेश से प्रेरित, उत्साहित, प्रज्वलित और प्रसन्न होकर चरवाहे ने कहा: "क्या भगवान बुद्ध और भिक्षु कल का भोजन मेरे साथ करना चाहेंगे?"
और भगवान बुद्ध ने अपनी मौनता से सहमति व्यक्त की।
और जब चरवाहे ने देखा कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वह अपने आसन से उठा और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुँह करके परिक्रमा करते हुए चला गया। उस रात के अंत में, चरवाहे ने अपने घर में भरपूर दलिया और छाछ तैयार करवाकर भगवान बुद्ध को बताया कि समय आ गया है, "हे प्रभु, समय आ गया है, भोजन तैयार है।"
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के संघ के साथ उस चरवाहे के घर गए, और वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए।
और उस चरवाहे ने अपने हाथों से भिक्षुओं को, जिनके मुखिया बुद्ध थे, दलिया और छाछ परोसी। जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और कटोरे से अपना हाथ हटा लिया, तो चरवाहा विनम्रतापूर्वक एक तरफ बैठ गया और जब वह बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने धार्मिक प्रवचनों से चरवाहे को उपदेश दिया, प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया और प्रसन्न किया। फिर भगवान बुद्ध अपने स्थान से उठे और चले गए। भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, एक स्त्री से झगड़े में एक व्यक्ति ने चरवाहे की हत्या कर दी। कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, ऐसा कहा जाता है कि वह चरवाहा, जिसने हाल ही में बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को दलिया और छाछ अर्पित की थी, किसी स्त्री को लेकर हुए झगड़े में एक व्यक्ति द्वारा मारा गया है।” इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
शत्रु चाहे शत्रु के साथ कुछ भी करे
या फिर एक क्रोधित व्यक्ति दूसरे क्रोधित व्यक्ति से, एक ऐसा मन जो गलत बातों पर ही केंद्रित हो।
इसके बुरे परिणाम और भी बदतर होते हैं।"1

4. एक निश्चित अवसर पर भगवान बुद्ध ने कलंदिकानिवापा में, बंबू ग्रोव में, राजगृह में निवास किया।
उस समय पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना महान कपोतकंदरा मठ में निवास कर रहे थे।
और पूज्य सारिपुत्त, जिनके बाल हाल ही में मुंडे हुए थे, चांदनी रात में खुले आसमान के नीचे बैठे हुए समाधि में लीन हो गए।
दो यक्ष, जो आपस में सहयोगी थे, कुछ काम से उत्तर देश से दक्षिण देश आए। जब उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को चांदनी रात में खुले में बैठे देखा, जिनके बाल अभी-अभी मुंडे हुए थे, तो पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा, "मित्र, मेरे मन में आ रहा है कि इस समना के सिर

पर एक प्रहार कर दूं।" यह कहकर दूसरे यक्ष ने अपने मित्र से कहा, "बस करो मित्र, समना पर प्रहार मत करो। यह समना एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, जादू में बहुत शक्तिशाली और निपुण हैं।"
दूसरी बार पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा: "मित्र, मेरे मन में यह विचार आ रहा है कि इस समना के सिर पर एक प्रहार कर दूं।"

दूसरी बार दूसरे यक्ष ने उत्तर दिया: "बस करो, मित्र, समना (तपस्वी) पर प्रहार मत करो। यह समना एक प्रसिद्ध व्यक्ति है, जो जादू में बहुत शक्तिशाली और निपुण है।"
तीसरी बार पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष से कहा: "मित्र, मेरे मन में यह विचार आ रहा है कि इस समना के सिर पर एक प्रहार कर दूं।"
और तीसरी बार दूसरे यक्ष ने उत्तर दिया: "बस करो, मित्र। यह समना एक प्रसिद्ध व्यक्ति है, जो जादू में बहुत शक्तिशाली और निपुण है।"
और पहले यक्ष ने दूसरे यक्ष की बात अनसुनी करते हुए पूज्य सारिपुत्त के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि मानो सात या साढ़े सात हाथ ऊँचा हाथी भी गिर जाए या कोई विशाल पर्वत शिखर चूर-चूर हो जाए। और वह यक्ष 'मैं जल रहा हूँ, मैं जल रहा हूँ' चिल्लाते हुए वहीं नरक में जा गिरा।
और पूज्य मोग्गलाना महान ने अपनी दिव्य दृष्टि से, जो मनुष्यों की दृष्टि से कहीं अधिक स्पष्ट थी, यक्ष द्वारा पूज्य सारिपुत्त के सिर पर किए गए प्रहार को देखा, और जब उन्होंने यह देखा, तो वे पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनके निकट आकर उनसे कहा: "हे भिक्षु, मुझे आशा है कि आप आराम से हैं, आप कुशल हैं, और आपको कोई पीड़ा नहीं है।"
"मैं शांत हूँ, भिक्षु मोग्गलाना, और ठीक हूँ, लेकिन मुझे अपने सिर में हल्का दर्द महसूस हो रहा है।"
"हे सारिपुत्त, यह कितना विचित्र है! हे सारिपुत्त, यह कितना अद्भुत है! पूज्य सारिपुत्त की जादुई शक्ति कितनी महान है, उनका सामर्थ्य कितना महान है!" हे सारिपुत्त, अभी-अभी एक यक्ष ने आपके सिर पर प्रहार किया, और वह प्रहार कितना ज़ोरदार था! वास्तव में, ऐसे प्रहार से कोई सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे हाथी को गिरा सकता है और एक विशाल पर्वत शिखर को चूर-चूर कर सकता है। और पूज्य सारिपुत्त कहते हैं: 'हे मित्र मोग्गलाना, मैं शांत हूँ, मैं ठीक हूँ, मेरे मित्र मोग्गलाना, मुझे बस सिर में हल्का सा दर्द है।'
"यह विचित्र है, भिक्षु मोग्गलाना, यह अद्भुत है, भिक्षु मोग्गलाना—आदरणीय मोग्गलाना की जादुई शक्ति कितनी महान होगी कि उन्होंने यक्ष को देखा। मैंने तो मिट्टी का एक भी अप्सरा नहीं देखा।"
और भगवान बुद्ध ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से, जो मनुष्यों की श्रवण शक्ति से कहीं अधिक स्पष्ट थी, इन दो महान नायकों के बीच हुई बातचीत को सुना।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जिसका हृदय चट्टान की तरह अडिग रहता है,
जो वासना से मुक्त है, जो क्रोधितों से क्रोधित नहीं होता, जिसका हृदय इस प्रकार प्रशिक्षित है।
ऐसे व्यक्ति को पीड़ा कैसे प्राप्त होगी?

5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कोसंबी में घोषिता मठ में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष और महिला गृहस्थ शिष्यों, राजाओं और उनके मंत्रियों, साथ ही विधर्मी संप्रदायों और उनके शिष्यों की भीड़ से घिरे हुए रह रहे थे, और उन्हें झुंझलाहट और असुविधा का सामना करना पड़ा।
और उनके मन में यह विचार आया: "भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष और महिला भक्तों, राजाओं और उनके मंत्रियों, साथ ही विधर्मी संप्रदायों और उनके शिष्यों की भीड़ से घिरे होने के कारण मुझे झुंझलाहट और असुविधा होती है। अगर मैं भीड़ से दूर, अकेले रहूँ तो क्या होगा?"

भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कोसंबी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। कोसंबी में भिक्षा मांगने के बाद वे वापस लौटे और भोजन करने के बाद उन्होंने स्वयं अपने विश्राम स्थल को व्यवस्थित किया, और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर, अपने सेवक को सूचित किए बिना और भिक्षुओं को सूचना दिए बिना, अकेले ही पालिलेय्यक की दिशा में प्रस्थान किया। वे स्थान-स्थान भटकते हुए पालिलेय्यक पहुंचे और वहां निवास करने लगे।
और भगवान बुद्ध ने पालिलेय्यक के निकट, भद्दा साल वृक्ष की तलहटी में स्थित घने वन रक्खिला में विश्राम किया।
वहाँ एक कुलीन हाथी रहता था, जिसे नर-मादा हाथियों, हाथी के बच्चों और उनके शावकों की भीड़ से बहुत परेशानी होती थी। उसे टूटी हुई घास की पत्तियाँ खानी पड़ती थीं, और वे उसकी तोड़ी हुई टहनियों को खा जाते थे। उसे दूषित पानी भी पीना पड़ता था, और जब वह पानी पार करने के लिए उसमें डुबकी लगाता था, तो मादा हाथी अपने शरीर को उससे रगड़ती थीं। इस भीड़ के कारण वह परेशान रहता था और उसका जीवन अशांत रहता था।
और उस महान हाथी के मन में यह विचार आया; "नर हाथियों, मादा हाथियों, हाथी के बच्चों और हाथी के शावकों की भीड़ से घिरा हुआ, मुझे टूटी हुई घास की पत्तियाँ खानी पड़ती हैं और वे मेरी तोड़ी हुई छोटी डालियाँ खा जाते हैं। मुझे प्रदूषित पानी भी पीना पड़ता

है और जब मैं पार जाने के लिए पानी में डुबकी लगाता हूँ, तो मादा हाथी अपने शरीर को मुझसे रगड़ती हैं। इस भीड़ के कारण मैं परेशान और बेचैन रहता हूँ। अगर मैं भीड़ से दूर, अकेला रहूँ तो क्या होगा?"
और वह श्रेष्ठ हाथी झुंड छोड़कर रक्खिता के घने जंगलों में, पलिलेय्यका के निकट, भद्दा साल वृक्ष की तलहटी में गया, जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उसने उस स्थान से घास हटाई जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और अपनी सूंड से उनके लिए पीने का पानी लाया।
और जब भगवान बुद्ध एकांत और शांति के आनंद में डूबे हुए थे, तब उनके मन में यह विचार आया: "पहले मैं भिक्षुओं और भिक्षुणियों आदि से घिरे रहकर झुंझलाहट और असुविधा भरा जीवन व्यतीत करता था। अब मैं भिक्षुओं और भिक्षुणियों आदि से घिरा नहीं हूँ। मैं सुख और आराम से जीवन व्यतीत करता हूँ।"
और उस महान हाथी के मन में यह विचार आया: "पहले मैं नर हाथियों और मादा हाथियों आदि से घिरे रहकर झुंझलाहट और असुविधा भरा जीवन जीता था। अब मैं उनसे घिरा नहीं हूँ, इसलिए आराम और सुकून से रहता हूँ।"
और भगवान बुद्ध ने अपने एकांतवास को ध्यान में रखते हुए और उस महान हाथी के मन में चल रहे विचारों को समझते हुए, यह गंभीर वचन कहा:--
"महान हाथी का हृदय (हल के डंडों जैसे दांतों वाला)"
यह परम पूज्य के हृदय से एकात्म है।
क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जंगल के एकांत में आनंदित होता है।

6. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य पिंडोलभरद्वाज भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर पालथी मारकर सीधे बैठे थे। वे वनवास में रहने वाले, भिक्षा ग्रहण करने वाले, कूड़े के ढेर से चिथड़े-चिथड़े लेकर वस्त्र बुनने वाले, भिक्षुओं के तीन वस्त्र धारण करने वाले, अल्प में संतुष्ट, एकांतप्रिय, मनुष्यों से विरक्त रहने वाले, परिश्रमी और उत्साही, धुतंगों के पालनकर्ता और उच्च विचारों में लीन रहने वाले थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य पिंडोलभरद्वाज को कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, सीधे बैठे हुए देखा; वे वनों में रहने वाले, भिक्षा ग्रहण करने वाले, कूड़े के ढेर से निकाले गए चिथड़ों से बने वस्त्र पहनने वाले, भिक्षु के तीन वस्त्र धारण करने वाले, थोड़े में संतुष्ट, प्रसन्न, एकांतप्रिय, मनुष्यों से अलग रहने वाले, परिश्रमी और उत्सुक, धुतंगों के रक्षक और उच्च विचारों में लीन थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
किसी की बुराई न करना, किसी को चोट न पहुँचाना,
नियमों के अनुसार संयम बरतना, भोजन में संयम रखना, एकांत में सोना, उच्च विचारों में लीन रहना।
यह बुद्ध का नियम है।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पांव बैठे हुए, शरीर सीधा करके, कम इच्छाओं वाले, संतुष्ट, एकांतप्रिय, अलग-थलग रहने वाले, परिश्रमी और उत्सुक तथा उच्च विचारों में लीन थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को कुछ ही दूरी पर पांव बैठे हुए देखा, वे सीधे खड़े थे, इच्छाओं से रहित, संतुष्ट, एकांतप्रिय, एकांतप्रिय, परिश्रमी, उत्साही और उच्च विचारों में लीन थे। इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"वह मौन भिक्षु जो उच्च विचारों में लीन रहता है,
जो कम ही प्रसन्न होता है, जो मौन के मार्ग में प्रशिक्षित है; ऐसा व्यक्ति, जो सदा शांत और सचेत रहता है,
दुःख नहीं आता।

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध को श्रद्धापूर्वक आदर दिया जाता था, उनका सम्मान किया जाता था और उन्हें संघ के भिक्षुओं के लिए आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भिक्षा, चटाई और बीमारी की स्थिति में दवाइयाँ प्राप्त होती थीं। भिक्षुओं को भी श्रद्धापूर्वक आदर दिया जाता था और उन्हें भिक्षुओं के लिए आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भिक्षा, चटाई और बीमारी की स्थिति में दवाइयाँ प्राप्त होती थीं। विधर्मी संप्रदायों के घुमंतू भिक्षुओं को आदर नहीं दिया जाता था, इत्यादि [जैसा ऊपर अनुवाद] और उन्हें आवश्यक वस्तुएँ भी प्राप्त नहीं होती थीं [जैसा ऊपर अनुवाद]। और विधर्मी संप्रदायों के ये घुमंतू भिक्षु भगवान बुद्ध और भिक्षुओं को दिए गए सम्मान को सहन नहीं कर सके, और वे उस स्थान पर गए जहाँ घुमंतू भिक्षुणी सुंदरी थीं और उनके पास पहुँचकर उन्होंने उनसे कहा: "क्या आप अपने रिश्तेदारों के लिए कुछ कर सकती हैं, बहन?"
महोदय, मैं क्या करूँ? मेरे बस में क्या है? मैं अपने रिश्तेदारों के लिए अपनी जान कुर्बान करने को तैयार हूँ।
"तो फिर, बहन, तुरंत जेतवन जाओ।"

"ऐसा ही हो, महोदय," विधर्मी संप्रदायों के इन घुमंतू भिक्षुओं की बात मानते हुए घुमंतू भिक्षुणी सुंदरी ने सहमति जताई और वह तुरंत जेतवन चली गई।
और क्योंकि विधर्मी दल के ये भटकते हुए भिक्षु जानते थे कि जेतवन में रहने वाले बहुत से लोगों को सुंदरी नामक उस साध्वी के अचानक वहाँ आने का अवसर मिलेगा, (वे स्वयं वहाँ गए) और (गुप्त रूप से) उसका वध करके उसे जेतवन के एक टूटे हुए कुएँ में फेंक दिया। फिर वे राजा पोसेनादि कोसल के पास गए और उनके निकट आकर कहा, “महाराज, साध्वी सुंदरी का निधन हो गया है।”
"तो फिर आपको क्या लगता है कि वह कहाँ है?"
"जेतवन में, हे महान राजा।"
"फिर जेतवन की खोज करो।"
और विधर्मी दल के उन भटकते हुए भिक्षुओं ने जेतवन में खोजबीन की, और जिस कुएँ में शव फेंका गया था, उसे वहाँ से निकालकर पालकी में रखा और रथ मार्ग से सावत्थी ले आए। जब वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ चारों मार्ग मिलते हैं, तो उन्होंने लोगों में यह कहकर हलचल मचा दी: “देखो, महोदय, शाक्य पुत्रों का काम! ये शाक्य पुत्र कितने निर्लज्ज, अधर्मी, दुष्ट, झूठे और भ्रष्ट हैं! ये स्वयं को धार्मिक, पवित्र, पवित्र, सत्यवादी, गुणी और भले पुरुष कहते हैं! इनमें न तो समता का अंश है, न ही ब्राह्मण का। इनके समता का कोई अर्थ नहीं, इनके ब्राह्मणत्व का कोई अर्थ नहीं। इनका समता कहाँ है, इनका ब्राह्मणत्व कहाँ है? भला जो पुरुष अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है, वह किसी स्त्री का प्राण कैसे छीन सकता है?” और सावत्थी के लोग जब भी भिक्षुओं को देखते, तो उन्हें अपशब्द कहते, गाली देते, परेशान करते और कठोर एवं अनुचित भाषा का प्रयोग करते हुए कहते: "ये शाक्य पुत्र निर्लज्ज, अधर्मी, दुष्ट, झूठे और भ्रष्ट हैं!"
और बहुत से भिक्षुओं ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में परिक्रमा करने और भिक्षा प्राप्त करके भोजन करने के बाद वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से कहा, “सावत्थी के लोग जब भी भिक्षुओं को देखते हैं, तो वे उन्हें अपशब्द कहते हैं, गाली देते हैं, परेशान करते हैं और तंग करते हैं; “ये शाक्य पुत्र कितने निर्लज्ज हैं!” आदि।
हे भिक्षुओं, यह उपद्रव अधिक समय तक नहीं चलेगा, यह सात दिनों तक चलेगा और सातवें दिन के अंत में शांत हो जाएगा। इसलिए, हे भिक्षुओं, उन श्रावस्तीवासियों को, जो आपको देखकर अपशब्द, गाली-गलौज आदि करते हैं, इन श्लोकों से फटकारें: “झूठा नरक में जाता है, और वह भी जो कोई कर्म करके कहता है कि ‘मैंने यह नहीं किया’; परलोक में उनमें कोई भेद नहीं रहेगा, दूसरे जन्म में वे नीच आचरण वाले होंगे।”
और इन भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में इन श्लोकों को कंठस्थ कर लिया, और फिर श्रावस्ती के उन लोगों को फटकारा जिन्होंने उपरोक्त श्लोकों से उनका अपमान किया था।
और लोगों ने आपस में कहा: "ये समना, ये शाक्य पुत्र तर्कहीन हैं, हम इन शाक्य पुत्रों से अब और कोई संबंध नहीं रखेंगे।"
इस प्रकार यह हंगामा ज्यादा देर तक नहीं चला, केवल सात दिनों तक ही चला और सातवें दिन के अंत में शांत हो गया।
कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए और उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, यह अद्भुत है! भगवान बुद्ध के ये शब्द कितने सटीक थे: ‘यह शोरगुल अधिक समय तक नहीं रहेगा, सात दिनों तक रहेगा और सातवें दिन के अंत में शांत हो जाएगा।’ हे प्रभु, शोरगुल शांत हो गया है।”
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"असंयमित लोग अपने शब्दों से दूसरों को चोट पहुंचाते हैं।"
जैसे युद्ध में एक हाथी दूसरे हाथी को चीर देता है, जब निर्मल हृदय वाला भिक्षु कठोर शब्दों का उच्चारण सुनता है,
वह उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करता है।

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदिकनिवापा में निवास कर रहे थे।
और जब पूज्य उपसेना, वांगंत के पुत्र, एकांतवास में अपने दिन बिता रहे थे, तो उनके मन में यह विचार आया: "कितना बड़ा लाभ है, कितना बड़ा फायदा है कि मुझे परम बुद्ध के रूप में गुरु प्राप्त हैं, कि मैंने सुचारु शिक्षाओं के अनुशासन में रहते हुए अपना घर त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत किया है, कि मुझे धर्मात्मा और पुण्य पुरुषों के रूप में पवित्र साथी प्राप्त हैं, कि मैंने नियमों का पालन किया है, कि मैं स्थिर, शांत मन वाला, पापों का नाश करने वाला अर्हत, शक्ति में महान, सामर्थ्य में बलवान हूँ! मेरा जीवन धन्य है, मेरी मृत्यु धन्य है!"
और उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने वंगंत के पुत्र पूज्य उपसेन के मन में इस संबंध में जो विचार थे, उन्हें अपने मन से ग्रहण करते हुए यह गंभीर वचन कहा:--
जिसे जीवन कष्ट नहीं देता,

जो मृत्यु के निकट आने पर शोक नहीं करता, यदि ऐसा व्यक्ति दृढ़ निश्चयी हो और निर्वाण प्राप्त कर चुका हो, तो वह दुःख में भी शोकरहित रहता है। शांत मन वाला भिक्षु, जिसने जीवन की लालसा को जड़ से उखाड़ फेंका हो, उसके द्वारा जन्म-जन्म का चक्र समाप्त हो जाता है।
अब उनका पुनर्जन्म नहीं होगा!

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे हुए थे और अपनी स्वयं की शांति की अवस्था का चिंतन कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने कुछ ही दूरी पर पूज्य सारिपुत्त को पालथी मारकर, शरीर सीधा करके, अपनी शांति की अवस्था का चिंतन करते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जिस भिक्षु का मन पूर्णतः शांत हो,
जिसने जीवन की इच्छा को जन्म देने वाले कारक को काट डाला है, उसी ने जन्म-जन्म के क्रम को समाप्त कर दिया है।
वह दुष्ट के बंधनों से मुक्त हो गया है।

अध्याय 5 - सोना थेरा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे।
उस समय राजा पसेनादि कोसला, देवी मल्लिका के साथ अपने प्रधान महल में आसीन हुए थे।
और राजा पसेनादि कोसल ने देवी मल्लिका से कहा:
"हे मल्लिका, क्या तुम स्वयं से अधिक किसी से प्रेम करती हो?"
"नहीं, महाराज, मैं खुद से बढ़कर किसी से प्यार नहीं करता। और वैसे भी, महाराज, आप भी खुद से बढ़कर किसी से प्यार नहीं करते।"
"मैं भी, हे मल्लिका, खुद से ज्यादा किसी से प्यार नहीं करता।"
राजा पसेनादि कोसल अपने महल से उतरकर भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, अभी मैं देवी मल्लिका के साथ अपने प्रधान महल में गया था और मैंने देवी मल्लिका से पूछा, ‘क्या आप अपने से बढ़कर किसी और से प्रेम करती हैं, मल्लिका?’ इत्यादि।”
"मैं भी, हे मल्लिका, खुद से ज्यादा किसी से प्यार नहीं करता।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जैसे कोई मनुष्य पूरी पृथ्वी का भ्रमण करता है, उसे कहीं भी स्वयं से अधिक प्रेमयोग्य कोई वस्तु नहीं मिलती; इसलिए, क्योंकि स्वयं को सभी लोग इतना प्रेम करते हैं, जो मनुष्य स्वयं से इतना प्रेम करता है, उसे दूसरों को कोई हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।"

2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य आनंद संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठकर भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करके अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, यह कितना विचित्र है, कितना अद्भुत है कि भगवान बुद्ध की माता जी का देहांत इतना अल्पकाल में हुआ! भगवान बुद्ध के जन्म के सातवें दिन उनकी माता जी का देहांत हो गया और वे तुषित देवों के समूह में पुनर्जन्म लेकर लौटीं।”
"आनंद, बोधिसत्वों की माताओं के साथ भी ऐसा ही होता है; उनका जीवनकाल अल्प होता है और बोधिसत्व के जन्म के सातवें दिन वे मर जाती हैं और तुषिता देवताओं के समूह में पुनर्जन्म लेती हैं।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"सभी प्राणी जो जन्म लेंगे,
वे सब अपने शरीर छोड़कर चले जाएंगे। ज्ञानी व्यक्ति सभी चीजों के क्षय को समझता है।
पवित्रतापूर्ण जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।

3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कलंदिकनिवापा में बांस के जंगल में स्थित राजगृह में ठहरे हुए थे।
उस समय राजगृह में सुप्पबुद्ध नाम का एक कुष्ठ रोगी रहता था, जो एक नीच, अकेला और दयनीय प्राणी था। संयोगवश, भगवान बुद्ध उस समय लोगों की एक विशाल सभा से घिरे हुए वहाँ बैठे थे और धर्म का उपदेश दे रहे थे।

कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध ने दूर से कई लोगों को इकट्ठा देखा, और उन्हें देखकर मन ही मन सोचा, "निःसंदेह उस स्थान पर पौष्टिक और पौष्टिक दोनों प्रकार का भोजन वितरित किया जा रहा होगा। यदि मैं उस सभा स्थल पर जाऊं तो शायद मुझे वहां कुछ पौष्टिक या पौष्टिक भोजन मिल जाए।"
और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध सभा स्थल पर गया। उसने भगवान बुद्ध को लोगों की एक बड़ी भीड़ से घिरे हुए, बैठकर उपदेश देते हुए देखा। भगवान बुद्ध को देखकर उसने मन ही मन कहा, "यहाँ न तो कोई भोजन वितरित किया जा रहा है, न ही कोई पौष्टिक भोजन: यहाँ समना गौतम लोगों को उपदेश दे रहे हैं। अगर मैं उपदेश सुनूँ तो क्या होगा?"
और वह वहाँ आदरपूर्वक अलग बैठ गया (मन ही मन कहते हुए): "मैं भी उपदेश सुनूंगा।"
और भगवान बुद्ध ने अपने मन से पूरी सभा के विचारों को ग्रहण करते हुए मन ही मन कहा, “इस स्थान पर कौन इस सिद्धांत को समझ सकता है?” तभी भगवान बुद्ध ने कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध को सभा के मध्य में बैठे देखा और उन्हें देखकर मन ही मन कहा, “यही वह व्यक्ति है जो इस सिद्धांत को समझ सकता है।”
और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध की ओर से, उन्होंने क्रमबद्ध रूप से निम्नलिखित प्रवचन दिए; दान पर प्रवचन, धर्मपरायणता पर प्रवचन और स्वर्ग पर प्रवचन, और उन्होंने बुरी इच्छाओं की महत्वहीनता और नीचता तथा सभी पापों से मुक्ति के लाभ को दर्शाया।
और जब भगवान बुद्ध ने देखा कि कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध का हृदय सत्य को ग्रहण करने के लिए तैयार, ग्रहणशील, बाधाओं से मुक्त, उदात्त और विश्वासयोग्य है, तो उन्होंने उन्हें बुद्ध द्वारा मूल रूप से खोजे गए सिद्धांत की व्याख्या की और उन्हें दुख के मूल और दुख को दूर करने के मार्ग को स्पष्ट किया।
जिस प्रकार एक शुद्ध और बेदाग कपड़ा आसानी से रंग सोख लेता है, उसी प्रकार कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध ने उसी स्थान पर, जहाँ वे बैठे थे, शुद्ध और बेदाग 'धर्म की दृष्टि' प्राप्त की, अर्थात् यह ज्ञान कि जिसका भी कोई उद्‌गम है, उसका अंत भी है।
और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध ने, सिद्धांत को समझकर, सिद्धांत को प्राप्त करके, सिद्धांत में लीन होकर, संदेह से मुक्त होकर, दुविधा से मुक्त होकर, गुरु के धर्म में परम विश्वास प्राप्त करके, और किसी और चीज की आवश्यकता न होने पर, अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध के पास गए और निकट आकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अलग बैठ गए, और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: “हे प्रभु, हे प्रभु; यह ऐसा ही है जैसे कोई मनुष्य गिरे हुए को उठाए, या छिपे हुए को प्रकट करे, या भटके हुए को मार्ग दिखाए, या अंधकार में दीपक जलाए, ताकि आँखों वाले लोग आकृतियों को देख सकें। ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तरीकों से सिद्धांत को स्पष्ट किया है। हे प्रभु, मैं भगवान बुद्ध की, धर्म की और भिक्षुओं के संघ की शरण लेता हूँ। कृपा करके भगवान बुद्ध मुझे स्वीकार करें।” मैं उनका शिष्य हूं; और आज से लेकर जीवन भर मैं उन्हीं की शरण में रहूंगा।"
और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध, भगवान बुद्ध के धार्मिक प्रवचनों से प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न होकर, भगवान बुद्ध के वचनों की प्रशंसा करते हुए धन्यवाद दिया। वे अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा करते हुए चले गए। फिर ऐसा हुआ कि कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध को एक जंगली बछड़े ने गिरा दिया और उनकी मृत्यु हो गई।
और बहुत से भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित, प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न किए गए कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध का निधन हो गया है। उनकी क्या स्थिति है और वे किस अवस्था में पुनर्जन्म लेंगे?”
"हे भिक्षुओं, सुप्पबुद्ध, जो कुष्ठ रोगी थे, एक बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होंने उच्चतर अवस्था की प्राप्ति के लिए निम्नतर कर्तव्यों का पालन किया। उन्होंने मुझे धर्म संबंधी विवादों से परेशान नहीं किया। हे भिक्षुओं, कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध ने तीन बंधनों को तोड़कर 'धारा में प्रवेश' किया था, वे दंड की अवस्थाओं के अधीन नहीं थे, मोक्ष के प्रति आश्वस्त थे और 'चार सत्यों' का ज्ञान उनके लिए आधार था।"
ये शब्द कहे जाने के बाद, एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, इसका मुख्य कारण क्या था, हे प्रभु, इसका समवर्ती कारण क्या था कि कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध (इस जन्म में) एक नीच, निर्धन और दयनीय प्राणी था?"
हे भिक्षुओं, पिछले जन्म में सुप्पबुद्ध नामक कुष्ठ रोगी इसी राजगृह नगर में एक धनी व्यक्ति का पुत्र था। एक उद्यान से गुजरते समय उसने पच्चेकबुद्ध, तगरसिखी को भिक्षा मांगने नगर में प्रवेश करते देखा। उसे देखकर उसने मन ही मन कहा, “यह कुष्ठ रोगी यहाँ क्या कर रहा है?” और उसने उस पर थूककर वहाँ से चला गया। इस कर्म के फलस्वरूप उसे अनेक वर्षों, सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों तक नरक में धिक्कारा गया। इस कर्म के फलस्वरूप वह अब इसी राजगृह नगर में एक दीन, निर्धन और दयनीय प्राणी के रूप में रह रहा है। परन्तु अब सिद्ध पुरुष द्वारा ज्ञात कराए गए धर्म के अनुशासन से उसने धर्म, उपदेश, उच्च ज्ञान, आत्म-बलिदान और बुद्धि को अपना लिया है। सिद्ध पुरुष द्वारा प्रतिपादित धर्म के माध्यम से उसने धर्म, उपदेश और उच्च ज्ञान को अपना लिया है। ज्ञान, आत्म-बलिदान और बुद्धि से परिपूर्ण, शरीर के विलीन होने पर, मृत्यु के बाद, वह स्वर्ग के आनंदमय राज्य में जन्म लेता है, जहाँ वह तावतिंसा देवताओं का साथी होता है। वहाँ वह यश और सौंदर्य में अन्य सभी देवताओं को भी पीछे छोड़ देता है।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--

"जिसके पास अंतर्दृष्टि हो, वह मौजूदा कठिनाइयों से जूझने का प्रयास करे; बुद्धिमान व्यक्ति को इस संसार में बुराई को दूर भगाना चाहिए।"

4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय सावत्थी और जेतवन के बीच कुछ युवक मछलियों के साथ दुर्व्यवहार कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी और जेतवन के बीच उन्होंने कुछ युवकों को मछलियों के साथ दुर्व्यवहार करते देखा। उन्हें देखकर वे उनके पास गए और निकट आकर उनसे बोले, "हे युवकों, क्या तुम स्वयं पीड़ा से भयभीत हो? क्या पीड़ा तुम्हें घृणित लगती है?"
"हाँ, प्रभु, हम दर्द से डरते हैं, दर्द हमें घृणित लगता है।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
यदि आपको पीड़ा से घृणा है, तो सार्वजनिक रूप से या निजी तौर पर कोई बुरा काम न करें।
यदि तुम कोई बुरा काम करो, या अभी करो,
दर्द आदि से बचने का कोई रास्ता नहीं है।"

5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में पूर्वी मठ में मिगारमाता के मंडप में निवास कर रहे थे।
उस समय, उपोसथ द्वितीय दिन, भगवान बुद्ध भिक्षुओं से घिरे बैठे थे। रात के पहले पहर में, पूज्य आनंद अपने आसन से उठे और अपनी कमीज़ को केवल एक कंधे पर समेटकर (दूसरे कंधे को खुला छोड़कर) भगवान बुद्ध के पास गए और हाथ जोड़कर उनसे कहा, "हे प्रभु, रात आगे बढ़ रही है, पहला पहर बीत रहा है, भिक्षुओं ने बहुत प्रतीक्षा की है, कृपा करके भगवान बुद्ध भिक्षुओं को विधिशास्त्र का पाठ करें।"
ये शब्द कहे जाने के बाद, भगवान बुद्ध मौन रहे।

दूसरी बार, जब रात बढ़ती जा रही थी और मध्य पहर बीत रहा था, तो पूज्य आनंद अपने आसन से उठे और केवल एक कंधे पर अपनी कमीज को ठीक करते हुए, अपने जुड़े हुए हाथों को फैलाकर भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, रात बढ़ती जा रही है, मध्य पहर बीत रहा है, भिक्षुओं ने लंबे समय तक प्रतीक्षा की है, कृपया भगवान बुद्ध भिक्षुओं को विधिशास्त्र का पाठ करें।"
दूसरी बार भगवान बुद्ध मौन रहे।
तीसरी बार, रात ढलते समय, जब अंतिम पहर बीत रहा था और भोर हो रही थी, और रात काफी बीत चुकी थी, पूज्य आनंद अपने आसन से उठे और केवल एक कंधे पर अपना कुर्ता ठीक करते हुए, अपने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, रात ढल रही है, अंतिम पहर बीत रहा है, भोर हो रही है, रात काफी बीत चुकी है, भिक्षुओं ने लंबे समय तक प्रतीक्षा की है, कृपया भगवान बुद्ध भिक्षुओं को विधि पाठ सुनाएं।"
"आनंदा, विधानसभा दूषित है।"
और आदरणीय महा मोग्गलाना के मन में यह विचार आया: "भगवान बुद्ध ने किस व्यक्ति के संदर्भ में कहा था: 'आनंद, सभा अपवित्र हो गई है'?"
और पूज्य महा मोग्गलाना ने अपने मन से उन सभी भिक्षुओं के मन में चल रहे विचारों को ग्रहण कर लिया।
और पूज्य महा मोग्गलाना ने भिक्षुओं की सभा के बीच एक ऐसे व्यक्ति को देखा जो अधर्मी, स्वभाव से पापी, अपवित्र, अस्थिर प्रवृत्ति वाला, गुप्त कर्म करने वाला, समन होते हुए भी समन नहीं, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने का दावा करते हुए भी उसका पालन नहीं कर रहा, भीतर से दूषित, कामवासना से भरा हुआ, कूड़े का ढेर था; और जब उन्होंने उसे देखा तो वे अपने आसन से उठे और उस व्यक्ति के पास जाकर उससे बोले: "उठो, मित्र, भगवान बुद्ध ने तुम्हें देख लिया है, भिक्षुओं के बीच यहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है।"
और वह व्यक्ति चुप रहा।
दूसरी बार पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा: "उठो, मित्र, भगवान बुद्ध ने तुम्हें देख लिया है, यह जगह तुम्हारे लिए नहीं है, यहाँ भिक्षुओं के साथ।"
दूसरी बार भी वह व्यक्ति चुप रहा।
तीसरी बार पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा: "उठो, मित्र, भगवान बुद्ध ने तुम्हें देख लिया है, यह जगह तुम्हारे लिए नहीं है, यहाँ भिक्षुओं के साथ।"
तीसरी बार भी वह व्यक्ति चुप रहा।

और पूज्य मोग्गलाना ने उसका हाथ पकड़कर उसे भवन के द्वार के बाहर खड़ा कर दिया और कुंडी कसकर बंद करके भगवान बुद्ध के पास जाकर कहा, "हे प्रभु, मैंने उस व्यक्ति को हटा दिया है। अब सभा अपवित्रता से मुक्त है। कृपया भगवान बुद्ध भिक्षुओं को विधिशास्त्र का पाठ करें।"
"कितना अजीब है! मोग्गलाना, कितना अद्‌भुत है! वह घमंडी आदमी उस जगह से आगे नहीं जाना चाहता जहाँ तक तुम उसे बांह पकड़कर ले गए थे।"
तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा: "हे भिक्षुओं, अब से मैं उपोसथा का पालन नहीं करूँगा, मैं विधि पाठ नहीं करूँगा। तुम भी अब से उपोसथा का पालन करो और उपदेशों की व्याख्या करो। हे भिक्षुओं, यह उचित अवसर नहीं है कि यह समझाया जाए कि सिद्ध पुरुष उपोसथा का पालन क्यों नहीं करेगा, विधि पाठ क्यों नहीं करेगा।"
हे भिक्षुओं, विशाल सागर में आठ विचित्र और अद्‌भुत गुण हैं, जिन्हें देखकर असुर विशाल सागर में आनंदित होते हैं।

ये आठ चीजें क्या हैं?
1. हे भिक्षुओं, महान सागर धीरे-धीरे ढलानों की एक श्रृंखला से गहराता जाता है; इसकी गुफा जैसी गहराइयों तक पहुँच क्रमिक है; इसमें किसी चट्टान की तरह अचानक गिरावट नहीं है।
हे भिक्षुओं, जैसे महान सागर धीरे-धीरे गहराता जाता है, [जैसा कि ऊपर बताया गया है। अनुवाद]; यह महान सागर की पहली विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे असुरों द्वारा देखे जाने पर वे महान सागर में आनंदित होते हैं।
2. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, महान सागर स्वभाव से स्थिर है, यह अपनी सीमाओं से आगे नहीं बढ़ता।
इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर स्वभाव से स्थिर है और अपनी सीमाओं से अधिक नहीं फैलता, यह दूसरी विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे असुरों द्वारा देखे जाने पर वे प्रसन्न होते हैं।
3. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, महासागर का शवों से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि जब महासागर में शव होते हैं, तो वह उन्हें किनारे पर फेंक देता है, उन्हें भूमि पर डाल देता है।
इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, जैसा कि महा सागर का शवों आदि से कोई संबंध नहीं है [जैसा कि ऊपर बताया गया है। अनुवाद]; यह तीसरी विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे असुरों द्वारा देखे जाने पर वे महा सागर में आनंदित होते हैं।
4. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, वे बड़ी नदियाँ, गंगा, यमुना, अचिरावती, माही, जब महा सागर में पहुँचती हैं, तो अपने प्राचीन नाम और उत्पत्ति को त्याग देती हैं और केवल महा सागर के रूप में जानी जाती हैं।
इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, जैसे वे बड़ी नदियाँ आदि [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]; यह महा सागर की चौथी विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे देखकर असुर महा सागर में आनंदित होते हैं।

5. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, यद्यपि संसार की सभी नदियाँ और आकाश से गिरने वाली सभी वर्षाएँ महा सागर में समाहित होती हैं, फिर भी महा सागर में जल की कोई कमी या अधिकता दिखाई नहीं देती।
इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, यद्यपि संसार की सभी नदियाँ आदि [जैसा ऊपर बताया गया है]; यह महा सागर की पाँचवीं विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे देखकर असुर महा सागर में आनंदित होते हैं।
6. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, महान सागर का एक ही स्वाद है, नमक का स्वाद।
और हे भिक्षुओं, जैसे विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद होता है, नमक का स्वाद: यही छठी विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे देखकर असुर विशाल सागर में आनंदित होते हैं।
7. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, महान सागर रत्नों और बहुमूल्य वस्तुओं से भरा हुआ है, जिनमें मोती, पन्ना, नीलमणि, सीप, पत्थर, मूंगा, चांदी, सोना, माणिक और खट्टी आंखें जैसी कई प्रकार की वस्तुएं शामिल हैं।
हे भिक्षुओं, जैसा कि ऊपर वर्णित है, महासागर रत्नों आदि से भरा हुआ है; यह सातवीं विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे देखकर असुर महासागर में आनंदित होते हैं।
8. इसके अलावा, हे भिक्षुओं, विशाल सागर असंख्य जीवों का निवास स्थान है; अर्थात्, वे सभी विशालकाय मछलियाँ जो 'सात पर्वतों' के बीच के महासागरों में निवास करती हैं, त्रिशूल, सर्प राजा, दिव्य संगीतकार और वे जीव जो एक, दो, तीन, चार और पाँच सौ मील लंबे हैं।
और हे भिक्षुओं, जैसा कि विशाल सागर असंख्य जीवों आदि का निवास स्थान है [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]; यह आठवीं विचित्र और अद्‌भुत स्थिति है, जिसे देखकर असुर विशाल सागर में आनंदित होते हैं।
फिर भी, हे भिक्षुओं, धर्म के अनुशासन में आठ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक स्थितियाँ हैं, जिन्हें देखकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
ये आठ चीजें क्या हैं?
1. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर धीरे-धीरे ढलानों के क्रम से गहराता जाता है और उसकी असीम गहराई तक पहुँचने का मार्ग क्रमिक होता है, तथा उसमें अचानक कोई खाई नहीं होती, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, धर्म का अभ्यास है। प्रशिक्षण क्रमिक

होता है, कर्तव्यों का नियमित क्रम होता है, प्रगति धीरे-धीरे होती है; उच्चतर ज्ञान में अचानक कोई प्राप्ति नहीं होती। धर्म के अभ्यास की यह पहली अद्भुत और आश्चर्यजनक विशेषता है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अभ्यास में आनंदित होते हैं।
2. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार महान सागर स्वभाव से स्थिर है और अपनी सीमाओं से अधिक नहीं बढ़ता, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मेरे शिष्यों, अपने अस्तित्व के लिए भी, मेरे द्वारा शिष्यों के लिए निर्धारित नियमों का उल्लंघन न करो।
यह धर्म के अनुशासन में पाई जाने वाली दूसरी विचित्र और अद्भुत स्थिति है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
3. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार महा सागर शवों से कोई संबंध नहीं रखता, और जब महा सागर में कोई शव होता है, तो वह उसे किनारे पर फेंक देता है, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, भिक्षु संघ अधर्मी, स्वभाव से दुष्ट, अपवित्र, अस्थिर, गुप्त कर्म करने वाले, स्वयं को समन कहने वाले पर समन न होने वाले, स्वयं को ब्राह्मण कहने वाले पर ब्राह्मण न होने वाले, भीतर से दूषित, कामवासना से भरे, कूड़े के ढेर जैसे व्यक्ति से कोई संबंध नहीं रखता—ऐसे व्यक्ति को सभा में बुलाते ही वह तुरंत बाहर निकाल देता है। यदि ऐसा व्यक्ति सभा के बीच में बैठता है, तो वह सभा से और सभा उससे दूर हो जाती है।
हे भिक्षुओं, जैसा कि ऊपर दिए गए अनुवाद में बताया गया है, जो व्यक्ति अधर्मी है, वह सभा से दूर है और सभा उससे दूर है; यह धर्म के अनुशासन में तीसरी विचित्र और आश्चर्यजनक स्थिति है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
4. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, माही जैसी महान नदियाँ जब महा सागर में पहुँचती हैं, तो अपने पुराने नाम और वंश को त्यागकर केवल एक ही नाम 'महा सागर' धारण करती हैं, उसी प्रकार हे भिक्षुओं, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, चारों जातियाँ, पूर्ण पुरुष द्वारा सिखाए गए धर्म के अनुशासन के अनुसार, अपने घर छोड़कर बेघर अवस्था में चली जाती हैं, अपने पुराने नाम और वंश को पीछे छोड़ देती हैं, और साक्य वंश के पुत्र, समन कहलाती हैं।
हे भिक्षुओं, जैसा कि ऊपर वर्णित है, चारों जातियों आदि को समना, शाक्य वंश के पुत्र कहा जाता है। यह विधि के अनुशासन में चौथी विचित्र और अद्भुत स्थिति है, जिसे जानकर भिक्षु विधि के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
5. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार (यद्यपि संसार की समस्त नदियाँ और आकाश से बरसने वाली समस्त वर्षाएँ महा सागर में समाहित होती हैं) महा सागर में जल की कोई कमी या अधिकता नहीं होती, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यदि असंख्य भिक्षु निर्वाण तत्व के माध्यम से उस निर्वात अवस्था को प्राप्त कर लें जिसमें निर्वाण के गुणों का कोई अंश शेष न रहे, तो निर्वाण तत्व में कोई कमी या अधिकता नहीं होती।
हे भिक्षुओं, असंख्य भिक्षुओं [जैसा कि ऊपर बताया गया है] आदि, निर्वाण तत्व में कोई कमी या अधिकता नहीं देखी जा सकती; हे भिक्षुओं, यह पाँचवीं विचित्र और अद्भुत अवस्था है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
6. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर का केवल एक ही स्वाद होता है, नमक का स्वाद, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत का भी केवल एक ही स्वाद होता है, मुक्ति का स्वाद; और हे भिक्षुओं, इस सिद्धांत का भी केवल एक ही स्वाद होता है, मुक्ति का स्वाद; यही वह छठा और अद्भुत पहलू है जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
7. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार महान सागर अनेक रत्नों आदि से भरा है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यह सिद्धांत अनेक रत्नों और बहुमूल्य वस्तुओं से भरा है; चार 'गंभीर ध्यान' और 'महान प्रयास', चार 'अलौकिक शक्ति के घटक', पाँच 'नैतिक गुण', पाँच 'बल', पाँच 'परम ज्ञान के घटक' और 'अष्टांगिक मार्ग'।
और चूंकि यह सिद्धांत अनेक रत्नों आदि से परिपूर्ण है [जैसा कि ऊपर अनुवाद है] और 'आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग'; यह धर्म के अनुशासन में सातवीं विचित्र और अद्भुत स्थिति है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं।
8. हे भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर अनेक जीवों आदि का निवास स्थान है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, धर्म के इस अनुशासन में अनेक सदस्य हैं: सोतापन्न1 जिसने सोतापन्न के फल का अहसास प्राप्त किया है, सकदगामिनी2 जिसने सकदगामिनी के फल का अहसास प्राप्त किया है, अनगामिनी1 जिसने अनगामिनी के फल का अहसास प्राप्त किया है, और अरहत2 जिसने अरहतत्व प्राप्त किया है।
हे भिक्षुओं, धर्म के इस अनुशासन में अनेक अंग आदि हैं [जैसा ऊपर बताया गया है]। यह धर्म के अनुशासन की आठवीं अवस्था है, जिसे जानकर भिक्षु धर्म के अनुशासन में आनंदित होते हैं। हे भिक्षुओं, ये धर्म के अनुशासन की आठ विचित्र और अद्भुत अवस्थाएँ हैं, जिन्हें जानकर भिक्षु उसमें आनंदित होते हैं।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
अच्छी छत वाले घर पर बारिश मूसलाधार बरस रही है
यह विरलन उस घर पर नहीं पड़ता जिसकी छत नहीं है, इसलिए जो बंद है उसे खोल दो।
और उस पर बारिश नहीं होगी।3

6. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य महाकच्चना अवंती देश में, कुराराघरा में स्थित चट्टान नामक पहाड़ी पर निवास कर रहे थे, और उस समय गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना पूज्य महाकच्चना के सेवक थे।

एकांत के आनंद में डूबे हुए, गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना के मन में यह विचार आया: "पूजनीय महाकच्चना द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार, घर में रहने वाले व्यक्ति के लिए पूर्ण संतुष्टि, पूर्ण पवित्रता और समस्त प्रकाशमान पूर्णता के साथ उच्चतर जीवन जीना आसान नहीं है। यदि मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा लूँ, पीला वस्त्र धारण कर लूँ और घर छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करने चला जाऊँ तो क्या होगा?"

और गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना, पूज्य महाकच्चना के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य महाकच्चना से कहा, "हे प्रभु, अभी जब मैं एकांत के आनंद का अनुभव कर रहा था, तभी मेरे मन में यह विचार आया: 'उपरोक्त सिद्धांत आदि के अनुसार...'"

"हे महाकच्चना भगवान, कृपा करके मुझे संसार का त्याग करने वालों के संघ में शामिल कर लें।"

ये शब्द कहे जाने के बाद, पूज्य महाकच्चना ने गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना से कहा, "हे सोना, जीवन भर उच्चतर जीवन व्यतीत करना, दिन में एक बार भोजन करना और अलग सोना कितना कठिन है। हे सोना, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम वर्तमान में गृहस्थ अवस्था में रहो, बुद्धों के उपदेशों का पालन करो, दिन में एक बार भोजन करो और अलग सोओ।"

और गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना के मन में तपस्वी जीवन के प्रति जो आकर्षण था, वह शांत हो गया।

दूसरी बार, जब गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना एकांत के आनंद में डूबे हुए थे, तब उनके मन में यह विचार आया: "ऊपर दिए गए सिद्धांत आदि के अनुसार: क्या होगा यदि मैं अपने घर से निकलकर संन्यासी अवस्था में चला जाऊं?"

दूसरी बार पूज्य महाकच्चना ने कहा: "हे सोना, यह कठिन है, इत्यादि [जैसा ऊपर है। अनुवाद]।"

तीसरी बार, जब गृहस्थ शिष्य सोना कोटिकन्ना आनंद का अनुभव कर रहे थे, आदि। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]

"हे महाकच्चना भगवान, कृपा करके मुझे संसार का त्याग करने वालों के संघ में शामिल कर लें।"

और पूज्य महाकच्चना ने गृहस्थ शिष्य सना कोटिकन्ना को संसार का त्याग करने वालों के संघ में शामिल कर लिया।

उस समय अवंती देश के दक्षिणी जिलों में भिक्षुओं की संख्या बहुत कम थी।

तीन वर्षों के अंत में, पूज्य महाकच्चना ने बड़ी कठिनाई और परेशानी से, इधर-उधर से भिक्षुओं को एकत्रित करके, दस भिक्षुओं का एक संघ गठित करने में सफलता प्राप्त की। और पूज्य सोना को संघ के उच्च पदों में प्रवेश दिया गया।

जब पूज्य सोना वर्षा ऋतु एकांतवास में बिता रहे थे, तब उनके मन में यह विचार आया: "मैंने भगवान बुद्ध को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा है, परन्तु मैंने सुना है कि वे अमुक हैं। यदि मेरे गुरु अनुमति दें, तो मैं जाकर उस परम पूज्य (भगवान बुद्ध), उस संत, उस सर्वोच्च बुद्ध के दर्शन करूंगा।"

और पूज्य सोना संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठकर पूज्य महाकच्चना के पास गए और उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे पूज्य सोना ने उनसे कहा, "हे प्रभु, वर्षा ऋतु में एकांतवास करते समय मेरे मन में यह विचार आया: 'मैंने भगवान बुद्ध के दर्शन नहीं किए हैं। मैं जाकर उनके दर्शन करूंगा... सर्वोच्च बुद्ध के दर्शन करूंगा।'"

"यह अच्छा है, सोना, यह अच्छा है; जाओ और परम पूज्य (भगवान बुद्ध), उस संत, परम बुद्ध के दर्शन करो। तुम पवित्र, कृपालु, आनंद के दाता, जिनकी इंद्रियाँ शांत हैं, जिनकी आत्मा विश्राम में है; जिन्होंने परम आत्म-विजय प्राप्त की है, - वीर, वश में, संरक्षित, जिनकी इच्छाएँ शांत हैं, उन्हें देखोगे; और जब तुम उनके दर्शन करो, तो मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम करो और कहो: "हे मेरे स्वामी, आदरणीय महाकच्चना परम पूज्य (भगवान बुद्ध) के चरणों में प्रणाम करते हुए सिर झुकाते हैं और पूछते हैं, 'क्या उन्हें कोई मामूली बीमारी है, क्या वे शारीरिक थकान से मुक्त हैं, क्या वे बलवान, मजबूत और स्वस्थ हैं'।"

“ऐसा ही हो,” पूज्य सोना ने कहा और पूज्य महाकच्चना के शब्दों की प्रशंसा करते हुए धन्यवाद दिया। उन्होंने अपने विश्राम स्थल को व्यवस्थित किया और भिक्षापात्र तथा वस्त्र लेकर सावत्थी की ओर प्रस्थान किया। स्थान-स्थान भटकते हुए वे सावत्थी में स्थित अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन पहुँचे, जहाँ भगवान बुद्ध निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एकांत में बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “मेरे स्वामी पूछते हैं कि क्या आपको कोई मामूली बीमारी है, इत्यादि।”

"हे भिक्षु, मुझे विश्वास है कि तुम कुशल मंगल हो, जीवनयापन करने में सक्षम हो, तुमने अपनी यात्रा कम थकान के साथ पूरी की है, और भिक्षा मांगने में तुम थके नहीं हो।"

"हे परम पूज्य (भगवान बुद्ध), मैं स्वस्थ हूँ, मैं जीवनयापन करने में सक्षम हूँ, मैंने कम थकान के साथ यात्रा पूरी की है, मैंने भिक्षा की खोज में स्वयं को नहीं थकाया है।"

और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "आनंद, इस नए आए भिक्षु के लिए एक विश्राम स्थल तैयार करो।"

और पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "चूंकि भगवान बुद्ध ने मुझे इस नए आए भिक्षु के लिए विश्राम स्थल तैयार करने का आदेश दिया है, इसलिए भगवान बुद्ध पूज्य सोना के साथ एकांत में रहना चाहते हैं"; और उन्होंने भगवान बुद्ध के निवास वाले मठ में पूज्य सोना के लिए विश्राम स्थल तैयार किया। और भगवान बुद्ध ने रात का अधिकांश समय खुले में बैठकर बिताया, अपने चरण धोए और मठ में प्रवेश किया। और पूज्य सोना ने भी रात का अधिकांश समय खुले में बैठकर बिताया, अपने चरण धोए और मठ में

प्रवेश किया। और भगवान बुद्ध सुबह उठकर पूज्य सोना को अपने पास बुलाकर बोले: "यह उपदेश इतना स्पष्ट हो जाए कि आप इसे भिक्षुओं को सुना सकें।"1
"ऐसा ही हो", पूज्य सोना ने भगवान बुद्ध की बात से सहमति जताते हुए कहा और उन्होंने 'अत्थक' के सभी सोलह अध्यायों का पाठ किया।
और आदरणीय सोना के पाठ के समापन पर, भगवान बुद्ध ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा: "हे भिक्षु, उत्तम! अट्ठक के वे सोलह अध्याय आपने भली-भांति समझ लिए हैं, उन पर गहन चिंतन किया है और उन्हें आत्मसात कर लिया है। आप मधुर, स्पष्ट और दोषरहित वाणी से संपन्न हैं और बातों का अर्थ समझाने में सक्षम हैं। आपको दीक्षा लिए हुए कितने वर्ष हो गए हैं?"
"एक साल, प्रभु।"
"हे भिक्षु, आपने इसमें इतनी देर क्यों की?"
"हे प्रभु, मैंने बहुत समय से इच्छाओं की निरर्थकता देखी है; इसके अलावा गृहस्थ का जीवन कामों और अनेक चिंताओं से भरा रहता है।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जिसने सांसारिक जीवन की बुराइयों को देख लिया है,
जिसने सत्य को समझ लिया है और उपाधि से मुक्त है,2; जिसने मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है, वह बुराई में आनंद नहीं लेता।
पवित्र हृदय वाले को पाप में कोई आनंद नहीं मिलता।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य कंखारवता भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे हुए थे और अपनी पवित्रता और संदेह से मुक्ति की स्थिति पर चिंतन कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य कंखारेवत को पास में ही पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे हुए, अपनी पवित्रता और संदेह से मुक्ति की अवस्था का चिंतन करते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"वे सभी ध्यानमग्न, उत्साही संत संदेह करते हैं,
चाहे इस दुनिया में हो या अगली दुनिया में, चाहे स्वयं द्वारा व्यक्त किया गया हो या दूसरों द्वारा,
वे ही हैं जो उच्चतर जीवन जीते हैं।

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदकनिवापा में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य आनंद, उपोसथ दिवस होने के कारण, दोपहर के समय वस्त्र धारण करके और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया।
और देवदत्त ने राजगृह में पूज्य आनंद को भिक्षा मांगते हुए देखा और जब उसने उन्हें देखा तो वह उनके पास गया और उनके निकट आकर उनसे कहा: "आज से मैं उपोसथ दिवस मनाऊंगा और भगवान बुद्ध या भिक्षुओं के संप्रदाय का संदर्भ लिए बिना संघ का कार्य करूंगा।"
और पूज्य आनंद ने राजगृह में परिक्रमा करने और भोजन समाप्त करने के बाद भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, अभी-अभी मैंने सुबह के समय वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र एवं वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया था।"
और देवदत्त ने जब मुझे राजगृह में चक्कर लगाते देखा तो वह मेरे पास आया और बोला: "आज से मैं उपोसथा दिवस मनाऊंगा, इत्यादि [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]।"
आज, हे प्रभु, देवदत्त सभा भंग कर देंगे और उपोसथा दिवस मनाएंगे तथा स्वयं सभा का कार्य आगे बढ़ाएंगे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"अच्छे लोगों के लिए अच्छा करना आसान होता है।"
अच्छे लोगों के लिए बुराई करना कठिन है, बुरे लोगों के लिए बुराई करना आसान है।
संत के लिए बुराई करना कठिन है।

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अपने बहुत से भिक्षुओं के साथ कोसल देश में अकेले घूम रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर कुछ युवक शोर मचा रहे थे। भगवान बुद्ध ने उन युवकों को शोर मचाते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"वाक्पटुता के धनी व्यक्ति के चतुर शब्द भी भ्रमित कर देते हैं। वे अपने मुंह जितना चाहें उतना खोलते हैं। उन्हें नहीं पता कि वे किसके द्वारा निर्देशित हैं।"1

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य चुलपंथक भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे थे और स्मृति को सीधे अपने सामने रखे हुए थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य चुलपंथक को कुछ ही दूरी पर पालथी मारकर, शरीर सीधा करके, स्मृति को सीधे अपने सामने रखते हुए बैठे देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
वह भिक्षु जो खड़ा हो, बैठा हो या लेटा हो,
इस प्रकार, जो व्यक्ति अपने शरीर और मन को एकाग्र करके स्मृति पर ध्यान केंद्रित करता है, उसे 'क्रमिक लाभ' प्राप्त होंगे। और जो व्यक्ति 'क्रमिक लाभ' प्राप्त करता है...
मृत्यु के राजा को दर्शन नहीं होंगे।

अध्याय 6 - जक्कन्ध
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध वैशाली में महावन के पगोडा हॉल में निवास कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। जब वे अपने परिक्रमा पूरी करके लौटे और भोजन समाप्त कर लिया, तो उन्होंने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "आनंद, चटाई उठा लो, मैं आज की तपिश चपाल मंदिर में बिताऊंगा।"
"ऐसा ही हो, प्रभु," आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और चटाई उठाकर, कदम-दर-कदम भगवान बुद्ध के पीछे चलने लगे।
भगवान बुद्ध चपाल मंदिर गए और पास आकर निर्धारित आसन पर बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा, “हे आनंद, गौतमक मंदिर कितना रमणीय है, सत्तम्बा मंदिर कितना रमणीय है, बहुपुत्त मंदिर कितना रमणीय है, सरंददा मंदिर कितना रमणीय है, चपाल मंदिर कितना रमणीय है! हे आनंद, जिसने भी जादुई शक्ति के तत्वों का ध्यान लगाया हो, उन्हें बढ़ाया हो, उन्हें वाहन के रूप में उपयोग किया हो, उन्हें साकार किया हो, उन्हें आधार बनाया हो, उनमें समाहित किया हो और उनके साथ पूर्णतः संघर्ष किया हो, वह चाहे तो एक कल्प या शेष कल्प तक इस संसार में रह सकता है। हे आनंद, जिसने भी जादुई शक्ति के तत्वों का ध्यान लगाया हो, उन्हें बढ़ाया हो, उन्हें वाहन के रूप में उपयोग किया हो, उन्हें साकार किया हो, उन्हें आधार बनाया हो, उनमें समाहित किया हो और उनके साथ पूर्णतः संघर्ष किया हो, वह चाहे तो एक कल्प या शेष कल्प तक इस संसार में रह सकता है।”
और पूज्य आनंद, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए प्रत्यक्ष संकेत और स्पष्ट इशारे का अर्थ समझने में असफल रहे, और उन्होंने भगवान बुद्ध से यह प्रार्थना नहीं की: "हे भगवान बुद्ध, कृपा करके इस संसार में एक कल्प के रूप में रहें, हे सुखी, कृपा करके अनेकों के कल्याण के लिए, अनेकों की खुशी के लिए, लोगों के प्रति करुणा के साथ, मनुष्यों और देवताओं के लाभ, फायदे और आनंद के लिए एक कल्प के रूप में रहें"—दुष्ट के प्रभाव में आनंद का हृदय इतना ग्रस्त था।
दूसरी बार भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा इत्यादि (ऊपर दिए गए अनुसार पुनरावृत्ति)।
तीसरी बार इत्यादि। [ऊपर दिए गए अनुसार पुनरावृति]
और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "अब जाओ, आनंद, और जो चाहो करो।"
"हे प्रभु, ऐसा ही हो," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुंह करके उनके चारों ओर चक्कर लगाते हुए, पास ही एक वृक्ष के चरणों में जाकर बैठ गए।
और पूज्य आनंद के चले जाने के तुरंत बाद, दुष्ट मारा भगवान बुद्ध के पास आया और पास आकर आदरपूर्वक अलग खड़ा हो गया। इस प्रकार खड़े होकर दुष्ट मारा ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे परम पूज्य (भगवान बुद्ध), अब आप चले जाइए, सुखी बुद्ध अब मर जाएँ; अब परम पूज्य (भगवान बुद्ध) के इसलोक से चले जाने का समय आ गया है, क्योंकि परम पूज्य (भगवान बुद्ध) ने ये शब्द कहे हैं: ‘हे दुष्ट, मैं तब तक इसलोक से नहीं जाऊँगा जब तक मुझे ऐसे भिक्षु शिष्य न मिल जाएँ जो बुद्धिमान और अनुशासित हों, सुशिक्षित हों, धर्म में दृढ़ हों, विद्वान हों, विधि के ज्ञाता हों, उच्च और निम्न धर्मों के ज्ञाता हों, अपने आचरण में सही हों, लघु कर्तव्यों का अभ्यासी हों, अपने गुरु से जो कुछ सीखा है उसे घोषित करें, सिखाएँ, ज्ञात कराएँ, स्पष्ट करें, विश्लेषण करें और स्पष्ट करें, अपने ज्ञान से धर्म के किसी भी दुष्प्रचार का खंडन और नाश करें, और चमत्कारिक सत्य का प्रसार करें। विदेश में। अब, हे प्रभु, भगवान बुद्ध ने बुद्धिमान और अनुशासित भिक्षुओं को शिष्य के रूप में प्राप्त कर लिया है। [जैसा ऊपर है। अनुवाद]: हे भगवान बुद्ध, अब आप इस दुनिया से विदा हो जाइए: हे सुखी बुद्ध, अब आपका निधन हो जाए: अब भगवान बुद्ध के इस दुनिया से विदा होने का

समय आ गया है। और भगवान बुद्ध ने ये शब्द भी कहे हैं: 'हे दुष्ट, मैं तब तक इस दुनिया से विदा नहीं होऊंगा जब तक मुझे भिक्षुणियां शिष्य के रूप में प्राप्त न हो जाएं। [जैसा ऊपर है, पुनरावृति। अनुवाद]।
जब तक मुझे पुरुष अनुयायी आदि प्राप्त नहीं हो जाते।
जब तक मुझे महिला अनुयायी आदि प्राप्त नहीं हो जाते।
भगवान बुद्ध ने आगे कहा है: "हे दुष्ट, मैं तब तक इसलोक से विदा नहीं होऊंगा जब तक 'पवित्र जीवन' सफल, समृद्ध, समस्त मानव जाति में व्यापक रूप से फैल न जाए और देवताओं एवं मनुष्यों के समक्ष पूर्णतः प्रकट न हो जाए।" हे प्रभु, अब भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित 'पवित्र जीवन' सफल, समृद्ध, समस्त मानव जाति में व्यापक रूप से फैल चुका है और देवताओं एवं मनुष्यों के समक्ष पूर्णतः प्रकट हो चुका है। हे भगवान बुद्ध, अब आप इसलोक से विदा हो जाइए, सुखी बुद्ध अब इसलोक में प्रवेश करें, अब भगवान बुद्ध के निर्वाण में प्रवेश करने का समय आ गया है।
ये शब्द कहे जाने के बाद, भगवान बुद्ध ने दुष्ट मारा से कहा: "चिंता मत करो, हे दुष्ट; शीघ्र ही पूर्ण पुरुष इसलोक से विदा हो जाएंगे: तीन माह बाद पूर्ण पुरुष निर्वाण प्राप्त करेंगे।"
और भगवान बुद्ध, वहां चपाला मंदिर में, सचेत और जागरूक अवस्था में, जीवन की स्वाभाविक अवधि का त्याग कर दिया, और जब भगवान बुद्ध ने जीवन की स्वाभाविक अवधि का त्याग किया, तो पृथ्वी कांप उठी, और आकाश से भयानक और प्रचंड गर्जना हुई।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"ऋषि ने अपने जीवन का, अपने जीवन के उद्देश्य का, चाहे वह दीर्घ हो या लघु, त्याग कर दिया। आंतरिक शांति और आनंद के साथ, उन्होंने कवच की तरह अपने जीवन के उद्देश्य को ही तोड़ डाला।"1

2. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, पूर्वी मठ में, मिगारमाता के मंडप में निवास कर रहे थे।
उस समय, भगवान बुद्ध संध्याकाल में अपने एकांत ध्यान से उठकर बाहर बरामदे में बैठे थे।
और राजा पसेनादि कोसल भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए।
उस समय, लंबे जटाधारी बालों वाले सात तपस्वी, सात निगंथ,2 सात अचेला,2 केवल एक वस्त्र धारण किए हुए सात भिक्षु, और बढ़े हुए नाखूनों और बालों वाले सात घुमंतू भिक्षु, अपने साथ भिक्षुओं की विभिन्न आवश्यक वस्तुएँ लिए हुए, भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर से गुजर रहे थे।
और जब राजा पसेनादि कोसल ने इन सात तपस्वियों आदि को भगवान बुद्ध के पास से गुजरते देखा, तो वे अपने आसन से उठे और अपना ऊपरी वस्त्र केवल एक कंधे पर रखकर (दूसरे कंधे को नंगा छोड़कर), दाहिना घुटना जमीन पर रखकर, हाथ जोड़कर तीन बार तपस्वियों को अपना नाम पुकारा: "हे पूज्यवरों, मैं राजा पसेनादि कोसल हूँ।"
तपस्वियों के चले जाने के तुरंत बाद, राजा पसेनादि कोसल भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे राजा पसेनादि कोसल ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, क्या ये तपस्वी इस संसार में संतों में गिने जाते हैं, या क्या इन्होंने संतत्व की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है?"
"हे महाराज, आपके लिए गृहस्थ जीवन का आनंद लेते हुए, पुत्रों से घिरे रहकर, बनारस के चंदन का पाउडर लगाते हुए, सुगंधित मालाएँ धारण करते हुए और सोने-चाँदी के धन-संपत्ति से युक्त होकर यह बताना कठिन है कि ये तपस्वी संत हैं या संतत्व के मार्ग पर अग्रसर हैं। हे महाराज, इनके साथ लंबे समय तक रहकर ही इनके गुणों का पता लगाया जा सकता है, और इसके लिए गहन चिंतन, मनन, बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता होती है। हे महाराज, इनके जीवन शैली में इनके साथ लंबे समय तक संगति करने से ही इनकी सत्यनिष्ठा का पता लगाया जा सकता है, और इसके लिए [उपरोक्त] आवश्यकता होती है। आदि। हे महाराज, इनके कष्टों में लंबे समय तक इनके साथ संगति करने से ही इनके धैर्य का पता लगाया जा सकता है, और इसके लिए [उपरोक्त] आवश्यकता होती है।"
"हे महाराज, उनसे लंबे समय तक बातचीत करने से ही उनकी बुद्धिमत्ता का पता लगाया जा सकता है, और इसके लिए बहुत चिंतन, विचार, बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता होती है।"
"हे प्रभु, भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए शब्द कितने अद्भुत और आश्चर्यजनक हैं: 'यह कठिन है, इत्यादि [जैसा कि ऊपर बताया गया है]।"

हे प्रभु, मेरे कुछ लोग देश में घूम रहे हैं, जो डाकुओं के समान हैं, क्योंकि वे संसार का त्याग किए बिना भीख मांगते हैं। जब ये लोग 'मार्ग' पर चल पड़ेंगे, तब मैं भी ऐसा ही करूंगा।1 हे प्रभु, अभी तक इन लोगों ने (इच्छाओं के) ढेर को नहीं हटाया है, और वे तेल से अभिषेक किए हुए, सिर और दाढ़ी मुंडवाए हुए, सफेद वस्त्र पहने हुए, पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर घूम रहे हैं।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
यदि मनुष्य प्रत्येक अवसर पर स्वयं को प्रयास में न लगाए, तो वह दूसरे के लिए अस्तित्व में नहीं रहेगा।

दूसरों के लिए जीना नहीं,
सचमुच, वह पवित्र जीवन नहीं जीता है।"2.

3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध बैठे हुए थे और अपने द्वारा त्यागी गई विभिन्न बुरी और दुष्ट परिस्थितियों पर विचार कर रहे थे, तथा अपने द्वारा पूर्ण की गई अनेक अच्छी परिस्थितियों का चिंतन कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने अपने द्वारा त्यागी गई विभिन्न बुरी और दुष्ट परिस्थितियों पर विचार करते हुए और अपनी पूर्ण की गई अनेक अच्छी परिस्थितियों का चिंतन करते हुए, उस अवसर पर यह गंभीर वचन कहा:
जो था, वह अब नहीं है; जो पहले नहीं था, वह अब है; वह न कभी था, न कभी होगा, और न ही अब है।

4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास करते थे।
उस समय अनेक संख्या में समन, ब्राह्मण और विभिन्न विधर्मी संप्रदायों के घुमंतू भिक्षु, जो अनेक मतों को धारण करते थे, अनेक विविध आकांक्षाओं वाले थे और विभिन्न विधर्मों से संबंधित चीजों का सहारा लेते थे, भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर गए।
इनमें से कुछ समन और ब्राह्मणों का मानना था कि संसार शाश्वत है और उनका तर्क था कि यह विचार सत्य है और बाकी सभी असत्य हैं।
कुछ लोगों ने कहा: दुनिया शाश्वत नहीं है।
कुछ लोगों ने कहा: दुनिया सीमित है।
कुछ लोगों ने कहा: दुनिया अनंत है।
कुछ लोगों का कहना था कि आत्मा और शरीर एक ही हैं।
कुछ लोगों ने कहा: आत्मा और शरीर एक समान नहीं हैं।
कुछ लोगों का कहना था: पूर्ण पुरुष मृत्यु के बाद भी विद्यमान रहता है।
कुछ लोगों ने कहा: पूर्ण पुरुष की मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
कुछ लोगों ने कहा: परिपूर्ण व्यक्ति का अस्तित्व है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।
कुछ लोगों ने कहा: पूर्ण पुरुष मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन होता है।
प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को सत्य और बाकी सभी को असत्य साबित करने का दावा कर रहा था।
ये झगड़ालू, उग्र और नुक्ताचीनी करने वाले भिक्षु एक-दूसरे को तीखे शब्दों (शाब्दिक रूप से मुख-भाले) से घायल करते हुए कहते थे: "यही सत्य है, ऐसा सत्य नहीं है: सत्य ऐसा नहीं है, ऐसा सत्य है।"
और बहुत से भिक्षुओं ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। जब वे अपने परिक्रमा पूरी करके भोजन समाप्त करके लौटे, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, अभी-अभी बहुत से समन, ब्राह्मण और विभिन्न मतों को मानने वाले भिक्षु सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए आए हैं और वे आपस में वाद-विवाद कर रहे हैं, कह रहे हैं: ‘यह सत्य है, वह सत्य नहीं है, इत्यादि।’”
हे भिक्षुओं, ये विधर्मी भिक्षु अंधे हैं, दृष्टिहीन हैं; इन्हें न सही का ज्ञान है, न गलत का, न सत्य का, न असत्य का। ये भिक्षु, न सही का ज्ञान रखते हैं, न गलत का, न सत्य का, न असत्य का, और वाद-विवाद करते हुए कहते हैं, 'यह सत्य है, यह सत्य नहीं है' इत्यादि। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]
हे भिक्षुओं, पुराने समय में सावत्थी नामक नगर में एक राजा रहता था। हे भिक्षुओं, राजा ने एक व्यक्ति को अपने पास बुलाया और कहा: "तुम जाओ और सावत्थी में जन्म से अंधे सभी पुरुषों को इकट्ठा करके यहाँ ले आओ।"
“हे प्रभु,” उस व्यक्ति ने राजा की बात मानकर सहमति जताई और वह सावत्थी गया तथा वहाँ जन्म से अंधे सभी पुरुषों को राजा के पास ले आया और राजा के निकट आकर बोला, “हे प्रभु, सावत्थी में जन्म से अंधे सभी पुरुष यहाँ उपस्थित हैं।”
"तो फिर, उनके सामने एक हाथी लाओ।"
“हे प्रभु,” उस व्यक्ति ने राजा की बात मानकर सहमति जताई और राजा अंधों के सामने एक हाथी लेकर आया और बोला: “हे अंधों, यह एक हाथी है।”
उसने कुछ अंधों को हाथी का सिर दिखाते हुए कहा, 'हे अंधों, हाथी ऐसा होता है।'
कुछ लोगों को उसने शव दिखाते हुए कहा: 'यह एक हाथी है।'
कुछ लोगों को उसने हाथी के पैर दिखाते हुए कहा: 'यह हाथी है।'
कुछ लोगों को उसने हाथी की पीठ दिखाते हुए कहा: 'हाथी ऐसा दिखता है।'
कुछ लोगों को उसने पूंछ दिखाते हुए कहा: 'हाथी ऐसा दिखता है।'

कुछ लोगों को उसने पूंछ का बालों वाला गुच्छा दिखाते हुए कहा: 'हाथी ऐसा दिखता है।'
हे भिक्षुओं, तमाशा दिखाने वाले ने इन अंधों को हाथी भेंट करने के बाद राजा के पास जाकर उनसे कहा, "हे प्रभु, हाथी को अंधों के सामने लाया गया है, अब आप जो उचित समझें वही करें।"
और राजा उन अंधों के पास गया और उनके करीब आकर उनसे कहा: "क्या अब तुम जानते हो कि हाथी कैसा दिखता है?"
"निश्चित रूप से, प्रभु: अब हम जानते हैं कि हाथी कैसा होता है।"
"तो मुझे बताओ, हे अंधों, हाथी कैसा दिखता है?"
और हे भिक्षुओं, उन अंधे लोगों ने, जिन्होंने हाथी का सिर महसूस किया था, कहा: 'हे प्रभु, हाथी एक बड़े गोल घड़े के समान होता है।'
जिन लोगों ने इसके कान छूकर देखे, उन्होंने कहा: 'यह सूप की टोकरी की तरह है।'
जिन लोगों ने इसके दांतों को महसूस किया था, उन्होंने कहा: 'यह हल के फाल जैसा है।'
जिन लोगों ने इसके तने को छूकर देखा था, उन्होंने कहा: 'यह हल की तरह है।'
जिन लोगों ने इसकी संरचना को महसूस किया, उन्होंने कहा: 'यह एक अन्न भंडार की तरह है।'
जिन लोगों ने इसके पैरों को महसूस किया था, उन्होंने कहा: 'यह एक खंभे की तरह है।'
जिन लोगों ने इसकी पीठ को महसूस किया था, उन्होंने कहा: 'यह एक ओखली की तरह है।'
जिन लोगों ने इसकी पूंछ को छुआ था, उन्होंने कहा: 'यह मूसल की तरह है।'
जिन लोगों ने इसकी पूंछ के गुच्छे को छुआ था, उन्होंने कहा: 'यह झाड़ू की तरह है।'
और वे सब आपस में मुट्ठियों से लड़ते हुए कहने लगे, 'हाथी ऐसा होता है, हाथी ऐसा नहीं होता, हाथी ऐसा नहीं होता, हाथी ऐसा होता है।'
और हे भिक्षुओं, राजा अत्यंत प्रसन्न हुए।
हे भिक्षुओं, ठीक इसी प्रकार ये विधर्मी लोग, जो अंधे और अंतर्दृष्टिहीन हैं, आपस में यह कहते हुए विवाद करते हैं कि 'यह सिद्धांत सत्य है, बाकी सभी असत्य हैं'।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"यह सर्वविदित है कि कुछ समन और ब्राह्मण,
जो विश्लेषण की विधियों से जुड़े रहते हैं, और किसी मामले के केवल एक पक्ष को ही समझते हैं,
एक दूसरे से असहमत होना।

5. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय अनेक विधर्मी संप्रदायों से संबंधित, विभिन्न मतों वाले, अनेक विषयों पर संशयी, विविध आकांक्षाओं वाले और विभिन्न विधर्मों से संबंधित बातों का सहारा लेने वाले बहुत से घुमंतू भिक्षु, समन और ब्राह्मण भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर गए।
इन समन और ब्राह्मणों के विभिन्न मत थे, जैसे कि:
आत्मा और संसार शाश्वत हैं।
स्वयं और संसार दोनों ही परिमित और अनंत हैं।
स्वयं और संसार न तो परिमित हैं और न ही अनंत।
स्वयं और संसार दोनों ही स्वयं-निर्मित हैं।
स्वयं और संसार दोनों ही स्वयं द्वारा निर्मित और दूसरों द्वारा निर्मित हैं।
स्वयं और संसार न तो स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं और न ही दूसरों द्वारा।
स्वयं और संसार का अस्तित्व बिना किसी कारण के उत्पन्न होता है।
स्वयं और संसार, सुख और दुख शाश्वत हैं।
स्वयं और संसार, सुख और दुख, शाश्वत नहीं हैं।

(उपरोक्त) परिमित और अनंत दोनों हैं।
(उपरोक्त) स्वयं निर्मित हैं।
(उपरोक्त) अन्य द्वारा उत्पादित हैं।
(उपरोक्त) स्वयं द्वारा निर्मित और दूसरों द्वारा निर्मित दोनों हैं।
(उपरोक्त) न तो स्वयं उत्पन्न हैं और न ही अन्य द्वारा उत्पन्न हैं, और न ही वे बिना किसी कारण के अस्तित्व में आए हैं।
इस प्रकार उनमें मतभेद हो गया, और प्रत्येक ने घोषणा की कि 'यह दृष्टिकोण सत्य है, बाकी सभी असत्य हैं।'
और कई भिक्षु आदि भगवान बुद्ध के पास गए और बोले: 'हे प्रभु, अभी-अभी कई समन और ब्राह्मण आदि [पहले की तरह] कह रहे हैं कि 'यह मत सत्य है, बाकी सभी असत्य हैं।'

हे भिक्षुओं, ये भटकते हुए भिक्षु अंधे हैं, अंतर्दृष्टिहीन हैं, विभिन्न विधर्मी संप्रदायों से संबंधित हैं, न तो सही का बोध करते हैं और न ही गलत का, न ही सत्य का ज्ञान रखते हैं और न ही असत्य का, और सही या गलत का बोध न होने और सत्य या असत्य का ज्ञान न होने के कारण, आपस में वाद-विवाद करते हैं, इत्यादि कहते हैं। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"यह तो सर्वविदित है कि कुछ समन और ब्राह्मण,
ऐसे विचारों से चिपके रहो, उनमें डूब जाओ,
और निर्वाण को प्राप्त न करो।

6. ऊपर जैसा ही, लेकिन निम्नलिखित अंत के साथ।
ये लोग 'मैं कर्ता हूँ' और 'दूसरा कर्ता है' जैसी धारणाओं से ग्रस्त हैं। वे यह नहीं समझते (कि ये दो विधर्म हैं)। उन्हें इनमें कोई हानि नहीं दिखती। जो इनमें हानि देखता है, वह 'मैं कर्ता हूँ' और 'दूसरा कर्ता है' जैसे विचारों को नहीं अपनाता।
यह लोग, जो अहंकार में डूबे हुए हैं, अहंकार में हठी हैं, अहंकार के गुलाम हैं, विधर्मी बातों में शोर मचाते हैं, जन्म और मृत्यु के सागर को पार नहीं कर पाते।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य सुभूति भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर पालथी मारकर सीधे बैठे थे और ध्यानमग्न अवस्था में लीन थे। भगवान बुद्ध ने पूज्य सुभूति को पास ही पालथी मारकर सीधे बैठे हुए देखा, वे ध्यानमग्न अवस्था में लीन थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जिसके द्वारा बुरे विचार नष्ट हो जाते हैं,
और प्रत्येक आंतरिक चिंतन पर अच्छी तरह से विचार किया जाता है, वह शारीरिक रूप से बेखबर होकर, 'आसक्ति' से परे चला जाता है।
'चार बंधनों' को पार करना पुनर्जन्म नहीं है।

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदिकनिवापा में निवास कर रहे थे।
उस समय राजगाह के दो पुरुष एक वेश्या के प्रति गहरे प्रेम में लीन थे।
वे आपस में झगड़ते, बहस करते और एक-दूसरे पर करछुल, मिट्टी के ढेलों, लाठियों और तलवारों से हमला करते रहे। इस लड़ाई में वे मृत्यु और मृत्यु की पीड़ा सहने को भी तैयार थे।
और बड़ी संख्या में भिक्षुओं ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। जब उन्होंने राजगृह में परिक्रमा पूरी कर ली और भोजन कर लिया, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने उनसे कहा, "हे प्रभु, अभी-अभी राजगृह के दो पुरुष एक वेश्या आदि के प्रति गहरे प्रेम में लीन हैं।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
कुछ लोग उपद्रव फैलाने वाले की शिक्षा को मूलभूत सत्य मानते हैं, उनका मानना है कि जो कुछ भी हासिल किया गया है या हासिल करना है, वह बुराई से भरा हुआ है। कुछ लोग नैतिकता, सुजीवन और पवित्रता को सहायक मानते हैं। यही उस व्यक्ति का एकमात्र आदर्श (लक्ष्य) है जो इस प्रकार तर्क देता है।

और एक दूसरा आदर्श है: यह कि कामवासनाओं में कोई हानि नहीं है। जीवन के ये दोनों आदर्श—अच्छाई से विमुख होने का आदर्श और इंद्रिय सुख का आदर्श—मृत्यु के दायरे को बढ़ाते हैं, और यह बदले में चिंतन को बढ़ावा देता है। कुछ लोग इन आदर्शों की वास्तविक प्रकृति को न समझकर इनसे चिपके रहते हैं, कुछ इनसे आगे निकल जाते हैं। जो लोग इन्हें भली-भांति समझते हैं, वे इनमें नहीं उलझते, इस प्रकार नहीं सोचते, उनकी यात्रा बोध से परे होती है (अर्थात, वे संसार के चक्र में नहीं घूमते, वे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं और पुनर्जन्म-मृत्यु के अधीन नहीं होते)।

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध खुले में बैठे थे, रात घोर अंधेरी थी और तेल के दीपक जल रहे थे।

और असंख्य पतंगे बार-बार इन तेल के दीयों में गिरकर विपत्ति, विनाश और पूर्ण विनाश का शिकार हो रहे थे। और भगवान बुद्ध ने इन पतंगों को बार-बार तेल के दीयों में गिरते हुए और विपत्ति, विनाश और पूर्ण विनाश का शिकार होते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
वे इसके पास और उससे आगे तक दौड़ते हैं।
लेकिन वे कभी सार तक नहीं पहुँच पाते। वे अपने लिए नए-नए बंधन बना लेते हैं। जैसे पतंगे आग की ओर आकर्षित होते हैं, वैसे ही कुछ लोग इस सिद्धांत की ओर खिंचे चले जाते हैं।
जो देखा और सुना जाता है, उसी में सार निहित है।

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करके अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, जब तक सिद्ध पुरुष, संत, परम बुद्ध संसार में जन्म नहीं लेते, तब तक विधर्मी संप्रदाय और भिक्षुणियों का आदर, पूजा, सम्मान और आदर किया जाता है और उन्हें भिक्षुओं की सभी आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भिक्षा, विश्राम स्थल और रोग की स्थिति में औषधियाँ प्राप्त होती हैं। परन्तु जब सिद्ध पुरुष, संत, परम बुद्ध पृथ्वी पर प्रकट होते हैं, तब इन विधर्मी संप्रदायों और भिक्षुणियों का आदर, पूजा, सम्मान और आदर नहीं किया जाता और उन्हें भिक्षुओं की सभी आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भिक्षा, विश्राम स्थल और रोग की स्थिति में औषधियाँ प्राप्त नहीं होतीं। अब, हे प्रभु, भगवान बुद्ध और भिक्षुओं का संघ आदर आदि के योग्य है और उन्हें आदि और रोग की स्थिति में औषधियाँ प्राप्त होती हैं।” बीमारी।"
"ऐसा ही है, आनंद; जब तक सिद्ध पुरुष, संत, परम बुद्ध आदि प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक विधर्मी संप्रदाय आदि को आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त नहीं हो जातीं।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
सूर्योदय होने तक जुगनू की रोशनी दिखाई देती है;
सूर्योदय की भव्यता में उसका प्रकाश फीका पड़ जाता है और फिर लुप्त हो जाता है। यही हाल विधर्मियों के प्रकाश का भी है। जब तक परम बुद्ध पृथ्वी पर प्रकट नहीं होते, तब तक ज्ञानी और शिष्यों को ज्ञान प्राप्त नहीं होता।
विधर्मी विचार रखने वाले लोग भी दुख से बच नहीं सकते।
अध्याय 7 - कुला
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य सारिपुत्त अनेक धार्मिक प्रवचनों से पूज्य बौने भद्दिया को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उनमें उत्साह भर रहे थे और उन्हें प्रसन्न कर रहे थे।
और इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त के अनेक धार्मिक प्रवचनों से शिक्षित, जागृत, उत्साहित और प्रसन्न होकर, पूज्य बौने भद्दिया का हृदय 'आसक्ति' और पापों से मुक्त हो गया।
और भगवान बुद्ध ने यह अनुभव किया कि पूज्य सारिपुत्त के अनेक धार्मिक प्रवचनों के माध्यम से पूज्य भद्दिया का हृदय 'आसक्ति' और पापों से मुक्त हो गया था।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
ऊपर, नीचे, हर तरह से मुक्त,
यह जानकर कि 'अहंकार' का कोई अस्तित्व नहीं है, ऐसा मुक्त व्यक्ति उस बाढ़ को पार कर चुका है जिसे पहले कभी पार नहीं किया गया था।
और उसका पुनर्जन्म नहीं होता।
2. मैंने ऐसा सुना है। उस समय भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास करते थे।
और पूज्य सारिपुत्त ने यह सोचकर कि पूज्य बौने भद्दिया अभी नौसिखिया ही हैं, उन्हें अनेक धार्मिक प्रवचनों से उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रसन्न किया।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को पूज्य बौने भद्दिया (जिन्हें वे अभी नौसिखिया समझते थे) को अनेक धार्मिक प्रवचनों से उपदेश देते, प्रेरित करते, उत्साहित करते और प्रसन्न करते हुए देखा।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"पहिया टूट गया है। 'इच्छाहीनता' प्राप्त हो गई है।"
नदी का तल सूख गया है, पानी नहीं बह रहा है, टूटा हुआ पहिया अब और नहीं लुढ़केगा;
यह दुःख का अंत है।

3. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय सावत्थी में बहुत से पुरुष रहते थे और वे सभी कामवासनाओं के बंधन में थे, अत्यधिक कामवासना से ग्रस्त, लहूलुहान, मोहित और अत्यधिक वासना से ग्रस्त होकर पाप में लिप्त और कामवासना से गर्भवती हो चुके थे।
और बहुत से भिक्षुओं ने सुबह के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में अपने परिक्रमा पूरी करके और भोजन समाप्त करके वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, इस समय बहुत से लोग सावत्थी में अपने दिन कामवासनाओं आदि के बंधन में बिता रहे हैं।”
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"ये ऐसे प्राणी हैं जो वासना से ग्रस्त हैं।"
वासना के बंधनों में जकड़े हुए, जो इन बंधनों में कोई बुराई नहीं देखते। निश्चय ही, जो मानवीय वासना के बंधनों से जकड़े हुए हैं, वे इस महान और शक्तिशाली बाढ़ को पार नहीं कर सकते।
(उस बुराई के बारे में जो मानवता को कुचल देती है।)

4. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय सावत्थी में कई पुरुष रहते थे, और वे सभी कामवासनाओं के बंधन में जकड़े हुए थे, अत्यधिक कामवासना से ग्रस्त, लहूलुहान, मोहित और पागल होकर पाप में लिप्त हो गए थे, अंधे हो गए थे और कामवासना से गर्भ धारण कर चुके थे।
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया।
और भगवान बुद्ध ने सावत्थी में रहने वाले इन लोगों को देखा और वे सभी कामवासनाओं के बंधन में जकड़े हुए थे, उत्तेजित थे आदि। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"ये लोग वासना से अंधे होकर, उलझ गए हैं,
इच्छाओं के वस्त्रों में लिपटे, आलस्य के बंधनों में जकड़े, जैसे मछली किसी फंदे के जाल में फंसी हो, वे क्षय और मृत्यु की ओर तेजी से बढ़ते हैं।
जैसे एक बछड़ा अपनी माँ का दूध पीता है।

5. मैंने ऐसा सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य बौने भद्दिया, बड़ी संख्या में भिक्षुओं के पदचिन्हों पर कदम-दर-कदम चलते हुए, उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध थे।
और जब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के पीछे-पीछे आ रहे आदरणीय बौने भद्दिया को देखा, जो बदसूरत, देखने में बुरा, नीची चाल वाला और अधिकांश भिक्षुओं द्वारा तिरस्कृत था, तो उन्होंने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा: "हे भिक्षुओं, दूर से आ रहे इस भिक्षु को देखो, जो बदसूरत, देखने में बुरा, नीची चाल वाला और अधिकांश भिक्षुओं द्वारा तिरस्कृत है।"
"फिर भी, प्रभु।"
"हे भिक्षुओं, यह भिक्षु सामर्थ्य में बलवान और बलवान है: यह पूर्णता की अवस्था, जो इस भिक्षु ने पहले कभी प्राप्त नहीं की, आसानी से प्राप्त नहीं होती; जिसके लिए कुलीन परिवारों के वंशज अपने घर छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं और स्वयं इसी जन्म में उच्च ज्ञान के माध्यम से उस सर्वोच्च पूर्णता, पवित्र जीवन को प्राप्त कर लेते हैं।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
गाड़ी एक ही पहिये पर आगे बढ़ती रहती है।
लेकिन शरीर से निर्दोष, सफेद आवरण से ढका हुआ: तो, इस (दुखी बौने) को आते हुए देखो; इसने दुःख पर विजय प्राप्त कर ली है, कामवासना की धाराओं को काट दिया है।
और उसने स्वयं को (भविष्य के जीवन की इच्छा के बंधनों से) मुक्त कर लिया।

6. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास करते थे।
उस समय पूज्य अन्नातकोंदन्ना भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पांव बैठे हुए, शरीर सीधा रखते हुए, इच्छाओं के नाश से प्राप्त होने वाली मुक्ति का चिंतन कर रहे थे।

और भगवान बुद्ध ने पूज्य अन्नतकोंदन्ना को कुछ ही दूरी पर पालथी मारकर, शरीर सीधा करके बैठे हुए देखा, जो इच्छाओं के नाश से प्राप्त होने वाली मुक्ति का चिंतन कर रहे थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जहां न तो जड़ है, न मिट्टी है, न पत्ता है,"
रेंगने वाला पौधा कैसे हो सकता है?1 बंधनों से मुक्त हुए बलवान पुरुष को दोष देने का अधिकार किसे है?
ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा देवता भी करते हैं और ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करते हैं।

7. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध चेतना और तर्क के त्याग पर ध्यान में लीन बैठे थे, जो उन्होंने बाधाओं से संबंधित था।2
और भगवान बुद्ध ने अपनी चेतना और तर्कशक्ति के त्याग और बाधाओं को भांपते हुए उस समय यह गंभीर वचन कहा:
"जिसके लिए कोई बाधा शेष न रहे, जिसने सभी बंधनों और बाधाओं को पार कर लिया हो, ऐसा संत जो इच्छा से मुक्त जीवन जीता है, न तो देवता और न ही मनुष्य उसका तिरस्कार करते हैं।"

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय पूज्य महाकच्चना भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर, पालथी मारकर, शरीर को सीधा रखते हुए, शरीर की अशुद्धता पर गहन चिंतन कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य महाकच्चना को पास में ही पालथी मारकर सीधे बैठे हुए देखा, जो शरीर की अशुद्धता पर गहन आत्मिक चिंतन कर रहे थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
जो व्यक्ति हर समय और निरंतर शरीर की अशुद्धता पर ध्यान करता रहता है;
(यह नहीं है, मेरे लिए यह नहीं हो सकता है, यह नहीं होगा, मेरे लिए यह नहीं होगा): वह, उचित समय पर, एक राज्य से दूसरे राज्य में जाता हुआ,
इच्छा की विषैली धाराओं को पार करेंगे।

9. मैंने ऐसा सुना है। उस समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के साथ मल्ल देश की यात्रा कर रहे थे और वे मल्ल देश के एक ब्राह्मण गाँव थुना में आए।
और थुना के ब्राह्मण गृहस्थों ने यह सुनकर कि समना गौतम—जो शाक्य परिवार से निकले थे—भिक्षुओं के संघ के साथ मल्ल देश की यात्रा कर रहे हैं और थुना पहुँच गए हैं, उन्होंने कुएँ को घास और भूसे से लबालब भर दिया, ताकि इन मुंडे हुए भिक्षुओं (जैसा कि वे उन्हें कहते थे) को पीने के लिए पानी न मिल सके।
और भगवान बुद्ध मार्ग छोड़कर एक वृक्ष की तलहटी में गए और पास आकर निर्धारित आसन पर बैठ गए और बैठे-बैठे आनंद से कहा: "आनंद, कृपया मुझे उस कुएँ से थोड़ा पानी ला दो।"
ये शब्द कहे जाने के बाद, पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, उस कुएँ को थून के ब्राह्मण गृहस्थों ने घास और भूसे से लबालब भर दिया है, ताकि हम, जिन्हें वे मुंडे हुए भिक्षु कहते हैं, पीने के लिए पानी न पा सकें।"
दूसरी बार भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: "आनंद, कृपया मुझे उस कुएं से थोड़ा पानी लाकर दो।"
दूसरी बार पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे प्रभु, वह कुआँ भर गया है, इत्यादि।' [जैसा ऊपर अनुवाद किया गया है।]
तीसरी बार भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा: "आनंद, कृपया मुझे उस कुएं से थोड़ा पानी लाकर दो।"
"ऐसा ही हो, प्रभु," आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और वे एक कटोरा लेकर कुएँ की ओर चल दिए।
और जब वह कुएं पर पहुंचा तो उसने पाया कि सारी घास और भूसा हटा दिया गया था और वह शुद्ध, स्वच्छ, पारदर्शी पानी से लबालब भरा हुआ था, यहां तक कि पानी छलक रहा था।
और पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "पूर्ण पुरुष की अपार शक्ति और सामर्थ्य कितनी आश्चर्यजनक और अद्भुत है कि मेरे आगमन पर सारी घास और भूसा हटा दिया गया था और कुआँ साफ, शुद्ध और पारदर्शी पानी से लबालब भरा हुआ था, यहाँ तक कि छलक रहा था।"
और कटोरे में थोड़ा पानी लेकर वह भगवान बुद्ध के पास गया और भगवान बुद्ध से कहा: "पूर्ण पुरुष की अपार शक्ति और सामर्थ्य कितनी अद्भुत और आश्चर्यजनक है, जिसके द्वारा घास और भूसा आदि हटा दिए गए।" [जैसा ऊपर अनुवाद है]
हे परम पूज्य (भगवान बुद्ध), जल पियो; हे सुखी, जल पियो।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"जब हर जगह पानी है, तो कुएं की क्या जरूरत है?"
जब इच्छा जड़ से उखाड़ दी गई हो,

मनुष्य को किस चीज की तलाश में भटकना चाहिए?

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध कोसंबी के घोसिता उद्यान में निवास कर रहे थे।
उस समय राजा उदेना के उद्यान में राजसी महिलाओं के लिए अलग रखा गया महल जलकर राख हो गया और समवती सहित 500 महिलाएं मारी गईं।
और सुबह के समय बहुत से भिक्षु वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कोसंबी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। जब उन्होंने परिक्रमा पूरी कर ली और भोजन कर लिया, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, अभी-अभी राजा उदेना के उद्यान में राजसी महिलाओं के लिए बना महल जल गया और समवती समेत 500 महिलाएं मर गईं। ये महिला भक्त कहाँ गईं और उनका भविष्य क्या होगा?”
"हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे शिष्य हैं जो इस धारा में प्रवेश कर चुके हैं, कुछ ऐसे हैं जो फिर से (इस संसार में) लौट आते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो कभी नहीं लौटते। ये सभी मृत शिष्य व्यर्थ नहीं गए।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
"भ्रमों की यह दुनिया अच्छी प्रतीत होती है;
अंधकार से घिरा मूर्ख, 'उपाधि' से बंधा हुआ,1 इसे शाश्वत मानता है।
जो सही दृष्टि रखता है, उसके लिए यह सब कुछ भी नहीं है।

अध्याय 8 - पातालगामी
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
उस समय भगवान बुद्ध निर्वाण विषय पर धार्मिक प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उनमें जोश भर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे और उन्हें आनंदित कर रहे थे।
और ये भिक्षु अर्थ को समझकर, उस पर विचार करके और संपूर्ण सिद्धांत को अपने हृदय से स्वीकार करके ध्यानपूर्वक सुनने लगे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
हे भिक्षुओं, एक ऐसी अवस्था है जहाँ न तो पृथ्वी है, न जल, न ऊष्मा, न वायु, न अनंत अंतरिक्ष, न अनंत चेतना, न शून्यता, न बोध, न अबोध, न यह संसार, न वह संसार, न सूर्य और न चंद्रमा।

हे भिक्षुओं, मैं इसे न तो आना कहता हूँ, न जाना, न खड़ा होना, न जन्म और न मृत्यु। यह स्थिरता रहित है, न क्रम रहित है, न आधार रहित है: यही दुःख का अंत है।

2. और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"मूल तत्व को समझना कितना कठिन है,"
सत्य को आसानी से नहीं समझा जा सकता, इच्छा पर उसी का अधिकार है जो इसे जानता है।
जो सही ढंग से देखता है, उसके लिए सब कुछ व्यर्थ है।
3. और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
हे भिक्षुओं, एक अजन्मा, अनादि, अनिर्मित, निराकार रूप विद्यमान है। हे भिक्षुओं, यदि यह अजन्मा, अनादि, अनादि, निराकार रूप विद्यमान न होता, तो जन्म लेने वाले, जन्म लेने वाले, निर्मित होने वाले, निर्मित होने वाले के संसार से कोई मुक्ति न होती।

हे भिक्षुओं, क्योंकि एक अजन्मा, अनादि, अनिर्मित, निराकार है, इसलिए जन्म लेने वाले, उत्पन्न होने वाले, निर्मित होने वाले, निर्मित होने वाले से मुक्ति का मार्ग है।

4. [संख्या 1, 2 और 3 के समान] और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:

जहां निर्भरता है, वहां अस्थिरता है; जहां निर्भरता नहीं है, वहां अस्थिरता नहीं है; जहां अस्थिरता नहीं है, वहां शांति है; जहां शांति है, वहां इच्छा नहीं है; जहां इच्छा नहीं है, वहां आना-जाना नहीं है; जहां आना-जाना नहीं है, वहां जन्म-मृत्यु नहीं है; जहां जन्म-मृत्यु नहीं है, वहां न यह संसार है, न वह संसार है, न दोनों हैं: यही दुःख का अंत है।

5. मैंने ऐसा सुना है। उस समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के साथ मल्ल देश से होते हुए पावा पहुंचे।
और भगवान बुद्ध पावा में, कुम्हार के पुत्र चुंडा के आम के बाग में ठहरे।
और कुम्हार के पुत्र चुंडा ने सुना कि भगवान बुद्ध मल्ला देश से गुजरते हुए पावा पहुंचे हैं और उसके आम के बाग में ठहरे हुए हैं।
और कुम्हार का पुत्र चुंडा, भगवान बुद्ध के पास गया और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गया। भगवान बुद्ध ने धार्मिक प्रवचनों से कुम्हार के पुत्र चुंडा को उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रसन्न किया।
और कुम्हार के पुत्र चुंडा ने, भगवान बुद्ध के धार्मिक प्रवचन से प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न होकर कहा: "भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के संघ को प्रसन्नता हो कि वे कल का भोजन मेरे साथ करें।"
और भगवान बुद्ध ने अपनी मौनता से सहमति व्यक्त की।
और कुम्हार के पुत्र चुंडा ने जब देखा कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वह अपने आसन से उठा और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुंह करके परिक्रमा करते हुए वहां से चला गया।
और उस रात के अंत में कुम्हार के पुत्र चुंडा ने अपने घर में कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे व्यंजन और शुक्रमद्दव की एक मात्रा तैयार करने के बाद भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, समय आ गया है, भोजन तैयार है।"
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के साथ कुम्हार के पुत्र चुंडा के घर गए और वहाँ पहुँचकर निर्धारित आसन पर बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने कुम्हार के पुत्र चुंडा को अपने पास बुलाया और कहा, "चुंडा, तुमने जो सुकरमद्दव तैयार किया है, वह मुझे दे दो और अन्य भोजन, चाहे नरम हो या कठोर, भिक्षुओं को अर्पित कर दो।"
"हे प्रभु, ऐसा ही हो," कुम्हार के पुत्र चुंडा ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा, और उसने अपने द्वारा तैयार किया हुआ सुकरमद्दव भगवान बुद्ध को दे दिया, और अन्य सभी प्रकार के भोजन, चाहे वह कठोर हो या नरम, भिक्षुओं को दे दिए।
और भगवान बुद्ध ने कुम्हार के पुत्र चुंडा को अपने पास बुलाया और कहा: "सुकरमद्दव के अवशेषों को हे चुंडा, उन्हें जमीन में एक गड्ढे में गाड़ दो, क्योंकि मार या ब्रह्मा के लोकों में, या समन या ब्राह्मणों के बीच, या देवताओं और मनुष्यों के लोकों में, मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो इस प्रकार के भोजन को पचा सके, सिवाय उस पूर्ण पुरुष के।"
"ऐसा ही हो, प्रभु," कुम्हार के पुत्र चुंडा ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा, और सुकरमद्दव के अवशेषों को एक गड्ढे में दफनाकर वह भगवान बुद्ध के पास गया और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गया।
और भगवान बुद्ध ने कुम्हार के पुत्र चुंडा को धार्मिक प्रवचन देकर उपदेश दिया, उसे प्रेरित किया, उसमें उत्साह भर दिया और उसे प्रसन्न किया, फिर वे अपने आसन से उठे और चले गए।
और कुम्हार के पुत्र चुंडा द्वारा दिए गए भोजन को खाने के बाद, भगवान बुद्ध एक गंभीर बीमारी से ग्रसित हो गए, और उन्हें भयंकर पीड़ा हुई, जिसके बाद रक्तस्राव हुआ और अंततः उनकी मृत्यु हो गई।
उस समय भगवान बुद्ध, जो अत्यंत सचेत और एकाग्रचित्त थे, ने बिना किसी शिकायत के पीड़ा सहन की।
और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "चलो, आनंद; हम कुशीनारा की ओर चलेंगे।"
"ऐसा ही हो, प्रभु;" पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध की बात स्वीकार करते हुए कहा।
मैंने ऐसा सुना है। उसने कुम्हार के पुत्र चुंडा का भोजन ग्रहण किया।
उसने धैर्यपूर्वक असहनीय, जानलेवा पीड़ा सहन की:
जब गुरु ने सुकरमद्दव खाया,
उन्हें भीषण बीमारी हो गई:
राहत मिलने के बाद, भगवान बुद्ध ने कहा: "मैं कुसिनारा नगर के लिए प्रस्थान करूंगा।"
और भगवान बुद्ध मार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गए, और पूज्य आनंद को अपने पास बुलाकर बोले, "आनंद, कृपया चार तह वाला वस्त्र तैयार कीजिए, मैं थक गया हूँ और बैठना चाहता हूँ।" भगवान बुद्ध निर्धारित आसन पर बैठ गए, और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाकर कहा, "आनंद, कृपया मेरे लिए थोड़ा पानी ला दीजिए, मुझे प्यास लगी है और मैं पीना चाहता हूँ।"
ये शब्द कहे जाने पर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, अभी-अभी लगभग 500 रथ गुजर चुके हैं, और पहियों के कारण उथला पानी मटमैला और गंदा हो गया है। हे भगवान, पास ही कुकुत्था नदी है, जिसका जल स्वच्छ, ताजगी भरा, शीतल, निर्मल और सुंदर है। भगवान बुद्ध वहां का जल पीकर अपने अंगों को शीतल कर सकते हैं।”
दूसरी बार भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "आनंद, कृपया मेरे लिए थोड़ा पानी लाओ, मुझे प्यास लगी है और मैं पीना चाहता हूँ।"

दूसरी बार पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, अभी-अभी लगभग 500 रथ गुजरे हैं, और पहियों के कारण उथला पानी मटमैला और गंदा हो गया है। हे भगवान, पास ही कुकुत्था नदी है जिसका जल स्वच्छ, ताजगी भरा, शीतल, निर्मल और सुंदर है। भगवान बुद्ध वहां से जल पीकर अपने अंगों को शीतलता प्रदान कर सकते हैं।”

तीसरी बार भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "आनंद, कृपया मेरे लिए थोड़ा पानी लाओ: मुझे प्यास लगी है और मैं पीना चाहता हूँ, आनंद।"

"ऐसा ही हो, प्रभु"; पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध की बात मानते हुए कहा और अपना कटोरा लेकर नदी की ओर चल दिए।

और वह नदी, जिसका उथला पानी पहियों के कारण अस्त-व्यस्त होकर मैला और कीचड़युक्त हो गया था, आनंद के आगमन पर स्वच्छ, चमकदार और निर्मल बह रही थी।

और आनंद ने सोचा, “परमेश्वर की महान शक्ति और सामर्थ्य कितनी अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है! यह नदी, जिसका उथला जल पहियों से अस्त-व्यस्त होकर मैला और प्रदूषित था, मेरे आने पर शुद्ध, प्रकाशमान और निर्मल बह रही है।” और अपने कटोरे में जल भरकर वे भगवान बुद्ध के पास गए और निकट आकर बोले, “हे प्रभु, परम परमेश्वर की महान शक्ति और सामर्थ्य कितनी अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है! यह नदी, जिसका जल आदि [जैसा ऊपर बताया गया है] अब शुद्ध, प्रकाशमान और निर्मल है। हे परम पूज्य (भगवान बुद्ध), इस जल को पियो, हे सुखी, इस जल को पियो।”

और भगवान बुद्ध ने उस जल को पिया।

और भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ कुकुत्था नदी पर गए, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने नदी में प्रवेश किया और स्नान किया और पानी पिया; और जब वे बाहर आए, तो वे आम के बाग में गए और पूज्य चुंडक को अपने पास बुलाकर कहा: "हे चुंडक, कृपया मेरे लिए चार तह वाला वस्त्र बिछा दीजिए, मैं थक गया हूँ, चुंडक, और लेटना चाहता हूँ।"

"ऐसा ही हो, प्रभु"; पूज्य चुंडक ने भगवान बुद्ध की सहमति में कहा और उन्होंने चार परतों वाला वस्त्र फैला दिया।

और भगवान बुद्ध शेर की तरह अपनी दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे पर रखकर, सचेत और जागरूक होकर, उठने के विचार में लीन हो गए।

और आदरणीय चुंडक भगवान बुद्ध के सामने वहां बैठे थे।

"बुद्ध शुद्ध, आनंददायी, निर्मल कुकुत्था नदी की ओर गए;
थके-हारे, गुरु, परिपूर्ण पुरुष, इस संसार में अद्वितीय, नदी में कूद पड़े:
गुरु ने स्नान किया और जल पिया;
वह शिष्यों की भीड़ से आगे बढ़ते हुए पार चला गया।
गुरु, परम पूज्य (भगवान बुद्ध), जिन्होंने धर्म का प्रतिपादन किया, आम के बाग में गए।
उसने भिक्षु चुंडा से कहा: 'मेरे लिए चार परतों वाला वस्त्र बिछा दो।'
कुंडा ने ईश्वर की बात मानी और तुरंत ही चार परतों वाला कपड़ा बिछा दिया।
थके-हारे गुरु लेट गए;
और कुंडा उसके बगल में बैठ गया।

और भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "हे आनंद, ऐसा हो सकता है कि कोई कुम्हार के पुत्र चुंडा को यह कहकर पश्चाताप का शिकार बना दे: 'हे भिक्षु चुंडा, यह आपके लिए हानि है, यह आपके लिए हानि है, भिक्षु चुंडा, कि सिद्ध पुरुष आपके हाथों से अपना अंतिम भोजन ग्रहण करके इस दुनिया से चले गए।' कुम्हार के पुत्र चुंडा के मन में इस प्रकार का कोई भी पश्चाताप उत्पन्न हो तो उसे इस प्रकार दूर किया जाना चाहिए: 'हे भिक्षु चुंडा, यह आपके लिए लाभ है, यह आपके लिए लाभ है, कि पूर्ण पुरुष आपके हाथों से अपना अंतिम भोजन ग्रहण करके इसलोक को प्राप्त करें। हे भिक्षु चुंडा, मैंने स्वयं उनकी उपस्थिति में ये शब्द सुने हैं, ये शब्द मुझे भगवान बुद्ध के मुख से प्राप्त हुए हैं: 'दो दान हैं जो मुझे सर्वोच्च लाभ, सबसे अधिक लाभ प्रदान करते हैं, अन्य सभी दानों से बढ़कर, अधिक फलदायी, अधिक परिपूर्ण हैं।' ये दो दान क्या हैं? एक वह दान जो पूर्ण पुरुष ने परम ज्ञान प्राप्त करते समय ग्रहण किया था, और दूसरा वह दान जो उन्होंने इसलोक को प्राप्त करते समय ग्रहण किया था, उस पूर्ण अंतःकरण में जिसमें 'आसक्ति' का नाश हो जाता है। ये दो दान हैं, जो परिणाम में सबसे परिपूर्ण, अपने परिणाम में सबसे पूर्ण, अन्य सभी दानों से बढ़कर, लाभ में अधिक, फल में अधिक हैं। आदरणीय चुंडा, कुम्हार के पुत्र ने ऐसे कर्म संचित किए हैं जो दीर्घायु, स्तुति, स्वर्ग, यश और सद्‌गुणों के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करने वाले प्रभाव का कारण बनते हैं। हे आनंद, कुम्हार के पुत्र चुंडा के मन में जो भी पश्चाताप उत्पन्न हो, वह इसी प्रकार दूर हो जाना चाहिए।

और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:

"दान देने वाले का पुण्य बढ़ता है;"

जब इंद्रियों पर नियंत्रण होता है तो क्रोध उत्पन्न नहीं होता। ज्ञानी लोग बुराई का त्याग करते हैं, इच्छा, पाप और मोह का नाश करके।
मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

6. मैंने ऐसा सुना है। उस समय भगवान बुद्ध कई भिक्षुओं के साथ मगध देश में घूमते हुए पाटलिगमा (पटना) पहुंचे।
और पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों ने यह सूचना सुनी कि भगवान बुद्ध, कुछ भिक्षुओं के साथ, मगध क्षेत्र में भ्रमण करने के बाद पाटालिगमा पहुंचे थे।
और पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्य भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों ने भगवान बुद्ध से कहा, "कृपा हो कि भगवान बुद्ध हमारे घर आएं।"
और भगवान बुद्ध ने अपनी मौनता से सहमति व्यक्त की।
पाटालिगमा के शिष्यों ने जब देखा कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वे अपने आसनों से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए अपने विश्रामगृह लौट गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने विश्रामगृह को व्यवस्थित किया, आसन लगाए, जलपात्र रखे और दीपक जलाए। यह सब करने के बाद वे भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग खड़े हो गए। इस प्रकार खड़े होकर पाटालिगमा के शिष्यों ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, विश्रामगृह व्यवस्थित है, आसन लगे हुए हैं, जलपात्र रखे हुए हैं और दीपक जलाए हुए हैं। अब भगवान बुद्ध अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।"
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के साथ विश्रामगृह की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर, भगवान बुद्ध ने अपने पैर धोए और विश्रामगृह में प्रवेश कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके मध्य स्तंभ के पास बैठ गए। भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोकर विश्रामगृह में प्रवेश किया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके मध्य दीवार के पास बैठ गए; भगवान बुद्ध उनके सामने थे। पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों ने भी अपने पैर धोकर विश्रामगृह में प्रवेश किया और पश्चिम दिशा की ओर मुख करके पूर्व दीवार के पास बैठ गए; भगवान बुद्ध उनके सामने थे।
और इस प्रकार भगवान बुद्ध ने पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों को संबोधित किया:
"हे गृहस्वामियों, दुराचारी के कारण दुराचारी को पाँच प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ती हैं। ये पाँच हानियाँ क्या हैं?"
(1) हे गृहस्वामियों, इस संसार में दुराचारी आलस्य के कारण सत्य में चूक करता है और उसे संपत्ति का भारी नुकसान होता है। सत्य में चूक के कारण दुराचारी को होने वाला यह पहला नुकसान है।
(2) इसके अतिरिक्त, ऐ गृहस्वामियों, दुराचारी के मामले में, जो सद्गुण में विफल हो जाता है, उसकी बदनामी होती है। सद्गुण में विफल होने वाले दुराचारी को यह दूसरी हानि होती है।
(3) ऐ गृहस्वामियों, जब भी कोई दुराचारी, जो सद्गुणों में विफल है, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहस्थ या समन जैसी सभाओं में जाता है, तो वह उनके सामने लज्जित और परेशान हो जाता है। सद्गुणों में विफल दुराचारी को यही तीसरी हानि होती है।
(4) इसके अतिरिक्त, ऐ गृहस्वामियों, जो दुराचारी सद्गुण में विफल हो जाता है, वह अशांति की अवस्था में मरता है। सद्गुण में विफल होने वाले दुराचारी को यह चौथी हानि होती है।
(5) ऐ गृहस्वामियों, दुराचारी, जो धर्महीन है, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर नरक में दंड, पीड़ा और यातना की अवस्था में जन्म लेता है। धर्महीनता के कारण दुराचारी को होने वाली यह पाँचवीं हानि है।
हे गृहस्वामियों, ये वे पाँच हानियाँ हैं जो दुराचारी को सत्यनिष्ठा के अभाव के कारण होती हैं।
हे गृहस्वामियों, सदाचारी व्यक्ति को सद्गुणों के अभ्यास से पाँच लाभ प्राप्त होते हैं। ये पाँच लाभ क्या हैं?
(1) हे गृहस्वामियों, इस संसार में सदाचारी पुरुष परिश्रम के बल पर प्रचुर धन-संपत्ति अर्जित करता है। सदाचारी पुरुष को मिलने वाला यह पहला लाभ है।
(2) इसके अतिरिक्त, ऐ गृहस्वामियों, सदाचार का अभ्यास करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति के मामले में, अच्छी प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है। यह सदाचार का अभ्यास करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति का दूसरा लाभ है।
(3) हे गृहस्वामियों, जब भी कोई धर्मनिष्ठ पुरुष, जो सद्गुणों का पालन करता है, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहस्थ या समन जैसी सभाओं में जाता है, तो वह उनके पास जाने में लज्जित या विचलित नहीं होता। यह धर्मनिष्ठ पुरुष को मिलने वाला तीसरा लाभ है।
(4) इसके अलावा, ऐ गृहस्वामियों, सदाचारी पुरुष शांतिपूर्वक मरता है। सदाचारी पुरुष को मिलने वाला यह चौथा लाभ है।
(5) ऐ गृहस्वामियों, सदाचारी पुरुष, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, स्वर्ग में सुखमयी अवस्था में जन्म लेता है। यह सदाचारी पुरुष को प्राप्त होने वाला पाँचवाँ लाभ है। ऐ गृहस्वामियों, सदाचारी पुरुष को प्राप्त होने वाले ये पाँच लाभ हैं।
और भगवान बुद्ध ने गृहस्थ शिष्यों को इस धार्मिक प्रवचन से उपदेशित, प्रेरित, उत्साहित और प्रसन्न करते हुए उन्हें विदा किया और कहा: "हे गृहस्थों, रात्रि ढल चुकी है। अब आप जो उचित समझें वही करें।"
और पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों ने भगवान बुद्ध के वचनों की प्रशंसा करते हुए और धन्यवाद देते हुए, अपने स्थानों से उठकर, उनके दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा करते हुए प्रस्थान किया।
और पाटालिगमा के गृहस्थ शिष्यों के चले जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध अपने निजी कक्ष में प्रवेश कर गए।
उस समय मगध के मंत्री सुनीधवसकरों ने वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटलिगमा में एक किला बनवाया था। उस समय भी हजारों की संख्या में देवता पाटलिगमा के घरों में निवास करते थे। जहाँ सबसे शक्तिशाली देवता निवास करते थे, वहाँ वे सबसे शक्तिशाली राजाओं और उनके मंत्रियों को निवास स्थान बनवाने के लिए प्रेरित करते थे। जहाँ कम शक्तिशाली देवता निवास करते थे, वहाँ वे

कम शक्तिशाली राजाओं और उनके मंत्रियों को निवास स्थान बनवाने के लिए प्रेरित करते थे, और जहाँ सबसे निम्न स्तर के देवता निवास करते थे, वहाँ वे सबसे निम्न स्तर के राजाओं और उनके मंत्रियों को निवास स्थान बनवाने के लिए प्रेरित करते थे।
और भगवान बुद्ध ने अपनी दिव्य, मनुष्यों से परे स्पष्ट दृष्टि से, पाटालिगमा के घरों में विचरण करने वाले इन हजारों देवताओं को देखा, और जहाँ कहीं भी सबसे शक्तिशाली देवता, आदि निवास करते थे। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]
और उस रात के बाद भोर में, भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और कहा: "हे आनंद, पाटालिगमा में इस किले का निर्माण किसने किया?"
"मगध के मंत्री सुनीधवसकरों ने वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटालिगमा में इस किले का निर्माण किया था।"
"आनंद, ऐसा प्रतीत होता है मानो मगध के मंत्री सुनीधवस्करों ने तावतिंसा देवताओं से परामर्श करने के बाद, वज्जियों को खदेड़ने के लिए पाटलिगामा में इस किले का निर्माण किया था। आनंद, मैंने अभी-अभी अपनी दिव्य और निर्मल दृष्टि से, जो मनुष्यों की दृष्टि से कहीं अधिक है, पाटलिगामा के घरों में विचरण करने वाले हजारों देवताओं की इस विशाल संख्या को देखा है। जहाँ कहीं भी सबसे शक्तिशाली देवता आदि विराजमान होते हैं..." [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]
हे आनंद, चाहे कितने ही प्रसिद्ध स्थान हों, व्यापार केंद्र हों, यह किलेबंद शहर उनमें सबसे आगे रहेगा, वाणिज्य का एक प्रमुख केंद्र होगा। परन्तु हे आनंद, पाटालिगमा पर तीन विपत्तियाँ आएंगी - आग, जल और आंतरिक कलह।
और मगध के मंत्री सुनीधवस्कर भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया। मित्रता और शिष्टाचार का आदान-प्रदान करने के बाद वे आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए और इस प्रकार खड़े होकर मगध के मंत्री सुनीधवस्करों ने भगवान बुद्ध से कहा: "कृपा हो कि भगवान गौतम और भिक्षु आज हमारे साथ भोजन करें।"
भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति व्यक्त की।
और मगध के मंत्री सुनीधवसकाराओं ने जब देखा कि भगवान बुद्ध ने सहमति दे दी है, तो वे अपने घर गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने मीठे और नरम दोनों प्रकार के भोजन तैयार करने का आदेश दिया और भगवान बुद्ध को बताया कि समय आ गया है; "हे गौतम जी, समय आ गया है, भोजन तैयार है।"
और भगवान बुद्ध ने दोपहर के समय वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के साथ सुनीधवस्सकरों के घर गए; और वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित स्थानों पर बैठ गए।
और सुनीधिवसकरों ने अपने हाथों से बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं को कठोर और नरम दोनों प्रकार के मीठे भोजन परोसे और भेंट किए।
और जब भगवान बुद्ध ने कटोरे से अपना हाथ हटाकर भोजन समाप्त कर लिया, तो सुनीधिवसकर नीचे की ओर अलग बैठ गए, और जब वे इस प्रकार बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों से सुनीधिवसकरों को प्रसन्न किया:
जिस भी देश में ज्ञानी व्यक्ति निवास करता है, वह सद्गुणी, संयमी और पवित्र लोगों का संरक्षण करते हुए, वहां के देवताओं को भेंट अर्पित करे। इस प्रकार, वे देवता उसका आदर और सम्मान करेंगे, और भविष्य में उस पर माता के समान दया दिखाएंगे। जिसे देवताओं की दया प्राप्त होती है, उसे कभी सौभाग्य की कमी नहीं होती।
और जब भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों से सुनीधवस्सकरों को प्रसन्न कर दिया, तो वे अपने आसन से उठे और चले गए।
उस समय सुनीधिवसकार भगवान बुद्ध के पीछे-पीछे कदम-दर-कदम चलते हुए कह रहे थे: "जिस द्वार से समना गौतम आज प्रस्थान कर रहे हैं, उसे गौतम द्वार कहा जाएगा, जिस घाट से वे गंगा नदी पार कर रहे हैं, उसे गौतम घाट कहा जाएगा।"
और जिस द्वार से भगवान बुद्ध निकले थे, उसे गौतम द्वार कहा जाता था।
और भगवान बुद्ध गंगा नदी के किनारे पहुँचे। उस समय नदी किनारों तक भरी हुई थी, इतनी कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता था। कुछ लोग नदी पार करने के लिए उत्सुक थे और नाव की तलाश में थे, कुछ बेड़ा खोज रहे थे, और कुछ बेड़ा बनाने में लगे हुए थे।
और भगवान बुद्ध, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस मोड़ता है, वैसे ही वे गंगा नदी के इस किनारे से गायब हो गए और भिक्षुओं के साथ दूसरे किनारे पर खड़े हो गए।
और भगवान बुद्ध ने उन लोगों को देखा, जो पार करने के लिए उत्सुक थे, कुछ नाव की तलाश में थे, कुछ बेड़ा ढूंढ रहे थे और कुछ बेड़ा बनाने में लगे हुए थे।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जो लोग दलदल को छोड़कर पुल बनाकर समुद्र पार करते हैं—जबकि दुनिया बेड़ा बना रही होती है—वे बुद्धिमान लोग बच निकलते हैं।"1

7. मैंने ऐसा सुना है। उस समय भगवान बुद्ध आदरणीय नागसमला के साथ कोसल देश के मुख्य मार्ग पर पहुँचे थे।
और पूज्य नागसमला ने रास्ते में देखा कि मार्ग दो भागों में बँट रहा है, और यह देखकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, यही मार्ग है, आइए हम इसी दिशा में चलें।"
ये शब्द कहे जाने के बाद, भगवान बुद्ध ने पूज्य नागसमला से कहा: "यही मार्ग है, नागसमला, आइए हम इस दिशा में चलें।"

[भाषण और उत्तर की पुनरावृत्ति। अनुवाद]
तीसरी बार पूज्य नागसमला ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, यही मार्ग है, आइए हम इसी दिशा में चलें।" और पूज्य नागसमला ने भगवान बुद्ध का कुंड और वस्त्र जमीन पर पटकते हुए कहा, "हे प्रभु, ये रहे आपके कुंड और वस्त्र।"
जब पूज्य नागसमला मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे, तभी लुटेरे आए और उन्होंने उन पर लाठियों से हमला किया, उनका भिक्षापात्र तोड़ दिया और उनके वस्त्र फाड़ डाले। पूज्य नागसमला टूटे हुए भिक्षापात्र और फटे हुए वस्त्रों के साथ भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, अभी जब मैं मार्ग पर आगे बढ़ रहा था, तभी लुटेरे आए और उन्होंने मुझ पर लाठियों से हमला किया, मेरा भिक्षापात्र तोड़ दिया और मेरे वस्त्र फाड़ डाले।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:--
जो किसी दूसरे के साथ चलता है, उसके साथ रहता है, उसके साथ मेलजोल रखता है,
वह विद्वान, बुराई को भांपकर उसका त्याग कर देता है।
जैसे ही नन्हा बगुला नदी को छोड़कर चला जाता है।"

8. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, पूर्वी मठ में, विशाखा-मिगारमाता के मंडप में निवास कर रहे थे।
उस समय विशाखा-मिगारमाता के प्रिय पोते का निधन हो गया।
और विशाखा-मिगारमाता असमय, आँसुओं से भीगे हाथों और बालों के साथ, भगवान बुद्ध के पास गईं और पास आकर उन्हें प्रणाम किया और अलग बैठ गईं। तब भगवान बुद्ध ने वहाँ बैठे-बैठे विशाखा-मिगारमाता से कहा, “हे विशाखा, तुम असमय यहाँ आँसुओं से भीगे हाथों और बालों के साथ क्यों आई हो?”
"हे प्रभु, मेरे प्रिय पोते की मृत्यु हो गई है; इसीलिए मैं यहाँ असमय, आँसुओं से भीगे हाथों और बालों के साथ आई हूँ।"
"हे विशाखा, क्या आपको लगता है कि सावत्थी में पुरुषों की संख्या के अनुपात में पुत्र और पोते हैं?"
"हे भगवान बुद्ध, मैंने पाया है कि पुरुषों की संख्या के अनुपात में पुत्र और पोते होते हैं।"
"और सावत्थी, विशाखा के कितने पुरुष प्रतिदिन मरते हैं?"
"हे प्रभु, कभी-कभी श्रावस्ती में प्रतिदिन दस पुरुष मर जाते हैं, कभी नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो; कभी-कभी, हे प्रभु, दिन में केवल एक ही पुरुष मरता है। श्रावस्ती में मरने वालों की कोई कमी नहीं है, हे प्रभु।"
"विशाखा, तुम क्या सोचती हो; क्या तुमने कभी कहीं ऐसे पुरुषों को देखा है जिनके वस्त्र (आंसुओं से) भीगे न हों, जिनके बाल (आंसुओं से) भीगे न हों?"
"ऐसा नहीं है, प्रभु; इतने सारे बेटों और पोतों के साथ यह कैसे संभव है?"
"हे विशाखा, जिनके सौ प्रियजन हैं, उनके सौ दुख हैं; जिनके नब्बे प्रियजन हैं, उनके नब्बे दुख हैं; जिनके अस्सी प्रियजन हैं, उनके अस्सी दुख हैं; इत्यादि, जिनके एक प्रियजन है, उनका एक दुख है।"
जिनके पास कोई प्रियजन नहीं होता, उनके लिए कोई दुख नहीं होता।
मैं घोषणा करता हूँ, ये वे लोग हैं जो शोक रहित हैं, मानवीय भावनाओं से मुक्त हैं, निराशा से रहित हैं।"
संसार में जो भी दुःख, विलाप और पीड़ा है, वह सब आसक्ति से उत्पन्न होती है; जहाँ आसक्ति नहीं होती, वहाँ ये सब नहीं होते। इसलिए सुखी और दुःखरहित वे हैं जो संसार की किसी वस्तु से आसक्ति नहीं रखते। पृथ्वी की वस्तुओं से अपना आलिंगन मत करो।

9. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, कलांदकनिवापा (गिलहरियों का अभयारण्य) में निवास करते थे।
और पूज्य दुब्बा मल्लपुत्त भगवान बुद्ध के पास गए और उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए, और इस प्रकार बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "हे सुखी, मेरे इस दुनिया से चले जाने का समय आ गया है।"
"करो, हे दुब्बा, जैसा उचित लगे।"
और पूज्य दुब्बा मल्लपुत्त अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, और उनके दाहिनी ओर मुंह करके परिक्रमा करते हुए आकाश में पालथी मारकर बैठ गए, और जब उन्होंने एक प्रमुख विचार (इस मामले में अग्नि का) पर स्थिर ध्यान केंद्रित करने से प्रेरित रहस्यमय ध्यान की उस अवस्था को प्राप्त कर लिया, तो वे और भी ऊपर उठे और अंततः निर्वाण को प्राप्त हुए।
और जब पूज्य दुब्बा मल्लपुत्त इस प्रकार आकाश में विलीन हो गए; आकाश में पालथी मारकर बैठे हुए, और एक प्रमुख विचार (इस मामले में, अग्नि का) पर स्थिर ध्यान द्वारा प्रेरित रहस्यमय ध्यान की उस अवस्था को प्राप्त करते हुए, और उससे भी ऊपर उठकर निर्वाण को प्राप्त कर गए, तो उनके शरीर का, जो ज्वालाओं से जलकर भस्म हो गया था, राख या कालिख का कोई अवशेष नहीं बचा था।

जैसे मक्खन या तेल को आग में जलाकर भस्म कर देने पर राख या कालिख का कोई अवशेष नहीं बचता, वैसे ही पूज्य दुब्बा मल्लपुत्त के साथ भी हुआ। जब उनका शरीर आग में जलकर भस्म हो गया, तो राख या कालिख का कोई अवशेष नहीं बचा, क्योंकि वे आकाश में उठकर पालथी मारकर बैठ गए थे। उन्होंने एक प्रमुख विचार (अग्नि) पर एकाग्र ध्यान केंद्रित करके रहस्यमय ध्यान की अवस्था प्राप्त कर ली थी और उससे भी ऊपर उठकर निर्वाण को प्राप्त कर लिया था।
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"शरीर विलीन हो गया है, बोध नष्ट हो गया है, सभी संवेदनाएं समाप्त हो गई हैं, अस्तित्व के तत्व मिट गए हैं, चेतना विश्राम में डूब गई है।"

10. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका के उद्यान, जेतवन में, सावत्थी में निवास कर रहे थे।
और भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने पास बुलाया और कहा: "हे शिष्यों।"
"हे प्रभु," उन शिष्यों ने भगवान बुद्ध की ओर ध्यान देते हुए कहा।
और भगवान बुद्ध ने कहा: "हे शिष्यों, जब दुब्बा मल्लपुत्त वायु में उठे और आकाश में पालथी मारकर बैठ गए, तो कोई अवशेष नहीं बचा, इत्यादि। [जैसा ऊपर बताया गया है। अनुवाद]।"
और इस संदर्भ में, उस अवसर पर, भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा:
"जैसे भट्टी से निकलने वाली ज्वलंत चिंगारियां एक-एक करके बुझ जाती हैं..."
और कोई नहीं जानता कि वे कहाँ गए हैं; ऐसा ही उन लोगों के साथ होता है जिन्होंने पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली है, जिन्होंने इच्छाओं के सैलाब को पार कर लिया है, जिन्होंने निर्वाण के शांत आनंद में प्रवेश कर लिया है।
इनका कोई निशान बाकी नहीं बचा है।

इतिवुत्तका

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया

अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तका

इतिवुत्तक, जो 112 लघु प्रवचनों का संग्रह है, का नाम प्रत्येक प्रवचन के आरंभ में दिए गए इस कथन से पड़ा है: यह (इति) भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया (वुत्तम)। इस संपूर्ण संग्रह का श्रेय खुज्जुत्तारा नामक एक गृहस्थ महिला को दिया जाता है, जो कोसंबी के राजा उदेना के महल में उनकी एक रानी समवती की सेविका के रूप में कार्य करती थी। रानी के लिए बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए महल छोड़ना संभव नहीं था, इसलिए खुज्जुत्तारा उनकी जगह गईं, बुद्ध के वचनों को याद किया और फिर रानी और उनकी 500 दासियों को प्रवचन देने के लिए महल लौट आईं। उनके इस प्रयास के लिए, बुद्ध ने खुज्जुत्तारा को उनकी विद्वत्ता के मामले में अपनी सबसे श्रेष्ठ गृहस्थ शिष्याओं में स्थान दिया। वह एक प्रभावी शिक्षिका भी थीं: जब बाद में एक अन्य ईर्ष्यालु रानी द्वारा महल के भीतरी कमरों को जला दिया गया, जिसमें रानी और उनके दल की मौत हो गई, तो बुद्ध ने (उदाना 7:10 में) टिप्पणी की कि सभी महिलाएं कम से कम जागृति के पहले चरण तक पहुंच चुकी थीं।

इतिवुत्तक में बुद्ध ध्यान करने और आत्मज्ञान प्राप्त करने का सही तरीका सिखाते हैं। वे सद्भावना, समभाव, ज्ञानोदय, निर्वाण, पुनर्जन्म, यौन विकृति बनाम ब्रह्मचर्य, देवदूत/देवता, ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) आदि जैसे कुछ बहुत ही सूक्ष्म और संवेदनशील पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

(नोट: इतिवुत्तका को पढ़ने का सबसे अच्छा तरीका पाली भाषा में सीधे पढ़ना है।)

कुछ महत्वपूर्ण सूत्र:

22. मेट्टासुत्तम (सद्भावना) - बुद्ध अपने पिछले जन्म में सात युगों (कल्पों, ब्रह्मांड के विस्तार और संकुचन के चक्रों) तक ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) थे, क्योंकि उनका मन सद्भाव से परिपूर्ण था।

24. अत्तिपुंजसुत्तम (हड्डियों का ढेर, पुनर्जन्म) - प्रत्येक व्यक्ति एक युग (कल्प) में इतनी बार पुनर्जन्म लेता है कि उसकी हड्डियाँ एकत्र करने पर एक विशाल पर्वत के समान हो जाती हैं।
42. सुक्कधम्मसुत्त (यौन विकृति बनाम ब्रह्मचर्य) - मनुष्य पशुओं से कैसे भिन्न हैं? विवेक, यौन संबंध में शर्म और संयम रखने और ब्रह्मचर्य के उच्च मार्ग का अनुसरण करने के विकल्प के द्वारा।
44. निब्बानधुतुसुत्तम - निर्वाण क्या है? यह इच्छाओं, चाहतों और लालसाओं का क्षय है।
53. दुतियावेदनसुत्तम (तीन प्रकार की संवेदनाएँ) - ध्यान में संवेदनाओं को कैसे देखें? समभाव के साथ।
82. देवसद्दसुत्तम - देवदूत कब उत्सव मनाते हैं? जब कोई व्यक्ति पवित्र मार्ग अपनाता है, प्रगति करता है और विजय प्राप्त करता है।
83. पंचपुब्बनिमित्तसुत्तम - जब देवदूत स्वर्ग से चले जाते हैं, तो उनके साथी देवदूत उनके मनुष्य रूप में पुनर्जन्म की कामना करते हैं, ताकि वे पुण्यमय जीवन जी सकें और स्वर्ग लौट सकें।
93. अग्गिसुत्तम (पुनर्जन्म) - जुनून और घृणा की आग पशुओं, राक्षसों, भूतों, नरक आदि में पुनर्जन्म का कारण बनती है। इन्हें त्यागने से मोक्ष/निर्वासन (पुनर्जन्म से मुक्ति) प्राप्त होता है।
99. तेविज्जसुत्तम (त्रिविध ज्ञान, आत्मज्ञान) - आत्मज्ञान की प्रक्रिया के तीन चरण हैं: (1) पिछले जन्मों का स्मरण, (2) दिव्य दृष्टि से अन्य प्राणियों के पुनर्जन्म को देखना और (3) इच्छाओं के अंत और भीतर प्रकाश के उदय का प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मज्ञान)।
106. सब्रह्मकासुत्तम - माता और पिता प्रधान देवदूतों/ब्रह्मा के समान हैं, इसलिए उनकी देखभाल और आदर करना आवश्यक है।

एकों का समूह (एककानिपाटो)
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1. लोभसुत्तम (लालच)
2. दोससुत्तम (घृणा, नफरत)
3. मोहसुत्तम (भ्रम)
4. कोढ़ासुत्तम (क्रोध)
5. मक्खसुत्तम (अवमानना)
6. मनसुत्तम (दंभ)
7. सब्बापरिण्णसुत्तम (सब कुछ जानना)
8. मनपरिण्णसुत्तम (दंभ)
9.लोभपरिन्नसुत्तम (लालच)
10-13.दोसापरिन्नसुत्तम+ मोहपरिन्नसुत्तम+ कोधापरिन्नसुत्तम+ मक्खपरिन्नसुत्तम (घृणा, भ्रम, क्रोध, तिरस्कार)
14.अविज्जनिवरणसुत्तम (अज्ञान)
15.तन्हासंयोजनसुत्तम (लालसा)
16.पथमशेखसुत्तम (प्रशिक्षण)
17.दुतियाशेखसुत्तम (प्रशिक्षण)
18.संघभेदसुत्तम (संघ में फूट पैदा करना)
19.संघसामग्गिसुत्तम (संघ में सौहार्द)
20.पदुत्थचित्तसुत्तम (भ्रष्ट मानसिकता)
21.पसन्नचित्तसुत्तम (आनंद-मन)
22.मेत्तसुत्तम (सद्भावना)
23.उभयत्थसुत्तम (दिमागीपन)
24.अट्ठिपुंजसुत्तम (हड्डियों का ढेर)
25.मुसवादसुत्तम (झूठ)
26.दानसुत्तम (दान)

27.मेत्तभवनसुत्तम (सद्‌भावना)

दो लोगों का समूह (डुकानिपाटो)
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

28. दुःखविहारसुत्तम (दुख के कारण)
29. सुखविहारसुत्तम (सुख)
30. तपनियासुत्तम (पाप की अग्नि में जलना)
31. अतपानियासुत्तम (पाप की अग्नि में न जलना)
32. पथमशिलासुत्तम (अनैतिकता नरक की ओर ले जाती है)
33. दुतियाशिलासुत्तम (नैतिकता स्वर्ग की ओर ले जाती है)
34. अतपिसुत्तम (मार्ग पर परिश्रम से ज्ञान प्राप्त होता है)
35. पथमनकुहनसुत्तम (ब्रह्मचर्य और ध्यान का पवित्र मार्ग निर्वाण की ओर ले जाता है)
36. दुतियानकुहनसुत्तम (ब्रह्मचर्य और ध्यान का पवित्र मार्ग निर्वाण की ओर ले जाता है)
37. सोमनससुत्तम (मार्ग पर तत्परता और परिश्रम की आवश्यकता)
38. वितक्कासुत्तम (सुरक्षा और संरक्षा प्राप्त होती है) अहिंसा)
39.देशनासुत्तम (बुराई को बुराई के रूप में देखने से मोहभंग और वैराग्य होता है)
40.विज्जासुत्तम (जानना और जागरूकता)
41.पन्नापरिहीनसुत्तम (प्रत्यक्ष ज्ञान का अभाव)
42.सुक्कधम्मसुत्तम (शर्म और ब्रह्मचर्य का महत्व)
43.अजातसुत्तम (अजन्मे, स्टेनलेस, का एक पवित्र राज्य है) दुःखरहित)
44.निब्बानधातुसुत्तम (निर्वाण/निब्बान क्या है)
45.पतिसल्लानासुत्तम (अलोभता)
46.सिक्खनिसंसुत्तम (पालन करने लायक प्रशिक्षण)
47.जागरियासुत्तम (जागृति)
48.आपायिकासुत्तम (गैर ब्रह्मचर्य नरक की ओर ले जाता है)
49.दिथिगतसुत्तम (बुराई) दार्शनिक दृष्टिकोण)

तीन का समूह (टिकानिपाटो)
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

50.मूलसुत्तम (असुरक्षा की जड़ें)
51.धातुसुत्तम (अमरता के गुण)
52.पथमवेदनासुत्तम (3 प्रकार की संवेदनाएं)
53.दुतियावेदनसुत्तम (ध्यान में संवेदनाओं को कैसे देखें)
54.पथमासानासुत्तम (खोज प्रवृत्ति समाप्त होती है)
55.दुतियाएशनसुत्तम (3 प्रकार) खोजने की प्रवृत्ति)
56.पथमासवसुत्तम (3 प्रकार की इच्छाएं/इच्छाएं)
57.दुतियासवसुत्तम (इच्छाओं/इच्छाओं का अंत)
58.तन्हासुत्तम (3 प्रकार की लालसाएं)

59.मराधेयसुत्तम (मरा द डेथलॉर्ड, शैतान को कैसे जीतें)
60.पुन्नाकिरियावत्थुसुत्तम (योग्यता कैसे प्राप्त करें)
61.चक्खुसुत्तम (आँखें और दिव्य चक्षु)
62.इंद्रियसुत्तम (ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की क्षमताएं)
63.अद्धसुत्तम (समय)
64.दुकारितासुत्तम (कदाचार नरक की ओर ले जाता है)
65.सुकारितासुत्तम (अच्छा आचरण स्वर्ग की ओर ले जाता है)
66.सोसायसुत्तम (पवित्रता)
67.मनीयासुत्तम (संतत्व के प्रकार)
68.पथमारगसुत्तम (जुनून)
69.दुतियारगसुत्तम (जुनून)
70.मिच्छदिट्ठिकासुत्तम (गलत आचरण का परिणाम)
71.सम्मदिट्ठिकासुत्तम (धर्मी आचरण का परिणाम)
72.निस्सरणीयसुत्तम (पलायन को जानना)
73.संततारसुत्तम (शांतिपूर्ण घटना)
74.पुत्तसुत्तम (बेटे और बेटियों के प्रकार)
75.अवुत्थिकासुत्तम (लोग और बादल)
76.सुखपत्थनसुत्तम (आनंद का मार्ग)
77.भिदुरसुत्तम (क्षय)
78.धातुसोसमसंदानसुत्तम (समान गुणों के अनुसार जुड़ना)
79.परिहनसुत्तम (पवित्र पथ से गिरना)
80.विटक्कसुत्तम (निष्क्रिय विचार)
81.सक्करसुत्तम (प्रसाद और सम्मान प्राप्त करना)
82.देवसद्दसुत्तम (स्वर्गदूतों/देवताओं का उत्सव)
83.पंचपुब्बनिमित्तसुत्तम (जब देवदूतों, देवताओं का स्वर्ग में समय समाप्त हो जाता है)
84.बहुजनहितसुत्तम (कई लोगों के लाभ के लिए)
85.असुभानुपासिसुत्तम (अपवित्रता पर ध्यान देना) सांसारिक)
86.धम्मनुधम्मपतिपन्नसुत्तम (धार्मिकता के साथ धम्म का अभ्यास करना)
87.अंधकारणसुत्तम (अंधेरे को दूर करना)
88.अंतरमालासुत्तम (अंदरूनी दाग/शत्रु)
89.देवदत्तसुत्तम (देवदत्त के बारे में - नरक में बर्बाद)
90.अग्गप्पासदसुत्तम (आत्मविश्वास)
91.जीविकासुत्तम (आजीविका का साधन)
92.संघातिकान्नसुत्तम (सही अनुसरण)
93.अग्गिसुत्तम (नरक अग्नि, पुनर्जन्म)
94.उपपरिक्खसुत्तम (जांच)
95.कमुपापत्तिसुत्तम (कामुक सुख प्राप्त करने के तरीके)
96.कामयोगसुत्तम (कामुकता पुनर्जन्म की ओर ले जाती है)
97.कल्याणशिलासुत्तम (अच्छा) सद्गुण)
98.दानसुत्तम (दान)
99. तेविज्जसुत्तम (त्रिविध ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया)

चटुक्कनिपातो (चारों का समूह)
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

---

1 00.ब्राह्मणधम्मयागसुत्तम (ब्राह्मण धर्म)
101.सुलभसुत्तम (आसानी से उपलब्ध)
102.असवक्खयसुत्तम (इच्छा का क्षय)
103.समानब्राह्मणसुत्तम (भिक्षु और पुजारी)
104.सिलसम्पन्नासुत्तम (सदाचार से भरपूर)
105.तन्हुप्पासुत्तम (तृष्णा का जन्मस्थान)
106.सब्रह्मकसुत्तम (माता और पिता महादूत/ब्रह्मा के समान हैं)
107.बहुकारसुत्तम (सहायक)
108.कुहासुत्तम (धोखा देने वाला)
109.नदीसोतसुत्तम (नदियाँ और झरने)
110.चरसुत्तम (चलते समय...)
111.सम्पन्नासिलसुत्तम (पूर्ण)। सदाचार)
112.लोकसुत्तम (तथागत, बुद्ध द्वारा ज्ञात सभी लोक)

इतिवुत्तक

लोभा सूत्र
त्रिपिटक की संरचना

त्रिपिटक
विनय पिटक
सुत्त पिटक
दीघा निकया
मज्झिमा निकया
सम्युत्त निकया
अंगुत्तरा निकया
खुद्दका निकया
अभिधम्म पिटक
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » इतिवुत्तक
पीटीएस : इट.1
भिक्षुओं, एक चीज का त्याग कर दो, और मैं तुम्हें पुनः जन्म का आश्वासन देता हूँ। वह एक चीज क्या है? वह एक चीज है, भिक्षुओं। उसका त्याग कर दो, और मैं तुम्हें पुनः जन्म का आश्वासन देता हूँ। भगवान ने यही कहा। अतः इस संदर्भ में कहा गया:
लोभ में लिप्त प्राणी बुरे जन्मों में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु लोभ को सही ढंग से समझकर, अंतर्दृष्टि प्राप्त प्राणी उसका त्याग कर देते हैं। लोभ का त्याग करने से वे फिर कभी इस संसार में नहीं लौटते।
मैंने जो सुना है, उसका यही अर्थ है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 2. दोसासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 1 <<<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 2 ॥ अगला>>>> इतिवुत्तक 3

2. दोसासुत्तम (घृणा, नफरत):
यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने भी यही कहा था, जैसा मैंने सुना है:
"भिक्षुओं, एक गुण का त्याग करो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ। वह कौन सा गुण है? केवल दो, घृणा (दोष) का त्याग करो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ।"
जिस घृणा (दोष) से प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं, परेशान: यह जानते हुए भी कि घृणा,जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं (विपास्सिनो) जाने दो। जाने देना, वे कभी इस दुनिया में नहीं आते दोबारा।

नोट:
1. पुनर्जन्म का उन्मूलन: पुनर्जन्म का निवारण।
2. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में पुनर्जन्म, क्रोधित राक्षस के रूप में पुनर्जन्म, या सामान्य पशु के रूप में पुनर्जन्म। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में पुनर्जन्म, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में पुनर्जन्म—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।
3. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है!

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 3. मोहसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 2 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 3 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 4

3. मोहसुत्तम (मोह):
यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने भी यही कहा था, जैसा मैंने सुना है:
"हे भिक्षुओं, एक गुण का त्याग कर दो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ। वह कौन सा गुण है? मोह (मोह) का त्याग कर दो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ।" वह मोह (मोह) जिसके साथ प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं, अस्पष्ट:
यह जानते हुए भी कि भ्रम है, समभाव से जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं (विपास्सिनो) जाने दो। जाने देना, वे कभी इस दुनिया में नहीं आते दोबारा।
नोट:
1. पुनर्जन्म का उन्मूलन: पुनर्जन्म का निवारण।
2. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में पुनर्जन्म, क्रोधित राक्षस के रूप में पुनर्जन्म, या सामान्य पशु के रूप में पुनर्जन्म। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में पुनर्जन्म, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में पुनर्जन्म—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।

3. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 4. कोधासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 3 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 4 || अगला >>> इतिवुत्तक 5

4. कोधासुत्तम (क्रोध):
यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:
"भिक्षुओं, एक गुण का त्याग करो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ। वह कौन सा गुण है? क्रोध को उस एक गुण के रूप में त्याग दो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ।" जिस क्रोध के साथ प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं, क्रोधित: यह जानते हुए कि क्रोध, जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं (विपास्सिनो) जाने दो। जाने देना, वे कभी इस दुनिया में नहीं आते दोबारा।
नोट:
1. पुनर्जन्म का उन्मूलन: पुनर्जन्म का निवारण।
2. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में पुनर्जन्म, क्रोधित राक्षस के रूप में पुनर्जन्म, या सामान्य पशु के रूप में पुनर्जन्म। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में पुनर्जन्म, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में पुनर्जन्म—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।
3. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 5. मक्खसुत्तम
थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 4 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 5 || अगला >>> इतिवुत्तक 6

5. मक्खसुत्तम (अवमानना):
यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:
"भिक्षुओं, एक गुण का त्याग करो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ। वह कौन सा गुण है? अवमानना को एक गुण के रूप में त्याग दो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ।"
जिस अवमानना के साथ

प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं,

तिरस्कारपूर्ण:

इस अवमानना को जानते हुए भी, समभाव से

जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं

(विपास्सिनो)

जाने दो।

जाने देना,

वे कभी इस दुनिया में नहीं आते

दोबारा।

नोट:
1. पुनर्जन्म का उन्मूलन: पुनर्जन्म का निवारण।
2. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में पुनर्जन्म, क्रोधित राक्षस के रूप में पुनर्जन्म, या सामान्य पशु के रूप में पुनर्जन्म। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में पुनर्जन्म, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में पुनर्जन्म—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।
3. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 6. मनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 5 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 6 || अगला >>> इतिवुत्तक 7

6. मनसुत्तम (अहंकार):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, एक गुण का त्याग करो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ। वह कौन सा गुण है? अहंकार को त्याग दो, और मैं तुम्हें पुनर्जन्म न होने का आश्वासन देता हूँ।”

जिस अहंकार के साथ

प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं,

गर्व:

यह जानते हुए भी कि अहंकार,

जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं

(विपास्सिनो)

जाने दो।

जाने देना,

वे कभी इस दुनिया में नहीं आते

दोबारा।

नोट:
1. पुनर्जन्म का उन्मूलन: पुनर्जन्म का निवारण।
2. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में पुनर्जन्म, क्रोधित राक्षस के रूप में पुनर्जन्म, या सामान्य पशु के रूप में पुनर्जन्म। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में पुनर्जन्म, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में पुनर्जन्म—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।
3. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 7. सब्बापरिन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 6 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 7 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 8

7. सब्बपरिन्नसुत्तम (सर्वज्ञान):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:
"भिक्षुओं, जिसने सर्वस्व को पूर्णतः नहीं जाना और पूर्णतः नहीं समझा है, [1] जिसका मन इसके प्रति आसक्ति से शुद्ध नहीं हुआ है, जिसने इसका त्याग नहीं किया है, वह दुखों का अंत करने में असमर्थ है। परन्तु जिसने सर्वस्व को पूर्णतः जान लिया और पूर्णतः समझ लिया है, जिसका मन इसके प्रति आसक्ति से शुद्ध हो गया है, जिसने इसका त्याग कर दिया है, वह दुखों का अंत करने में सक्षम है।"
सब कुछ जानना
चारों ओर से,
जुनून से प्रेरित नहीं
सभी स्थानों पर:
उसने समझ लिया
सभी,
आगे बढ़ गया है
सभी प्रकार के कष्ट।
नोट: 1. "सर्व" का अर्थ है छह इंद्रियाँ (दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श और चिंतन) और उनसे संबंधित विषय। इसमें अनुभव के वे सभी पहलू शामिल हैं जिनका वर्णन किया जा सकता है, लेकिन निर्वाण इसमें शामिल नहीं है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 8. मनपरिन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 7 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 8 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 9

8. मनपरिन्नसुत्तम (अहंकार):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जिसने अहंकार को पूर्णतः नहीं जाना और पूर्णतः नहीं समझा है, जिसका मन इससे शुद्ध नहीं हुआ है, जिसने इसका त्याग नहीं किया है, वह दुखों का अंत करने में असमर्थ है। परन्तु जिसने अहंकार को पूर्णतः जान लिया और पूर्णतः समझ लिया है, जिसका मन इससे शुद्ध हो गया है, जिसने इसका त्याग कर दिया है, वह दुखों का अंत करने में सक्षम है।"
लोग हैं

अहंकार से ग्रस्त

अहंकार से बंधा हुआ

होने से प्रसन्न (भाव)।

अहंकार को न समझ पाने के कारण,

वे आगे चलकर भाव (भव) की अवस्था में पहुँचते हैं।

लेकिन जो लोग अहंकार को त्याग देते हैं,

इसके विनाश में, मुक्त हो जाते हैं,

अहंकार के बंधन पर विजय प्राप्त करना,

परे जाओ

सभी बांड।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 9. लोभपरिन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 8 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 9 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 10-13

9. लोभपरिन्नसुत्तम (लालच):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, जिसने लोभ को पूर्णतः नहीं जाना और पूर्णतः नहीं समझा है, जिसने अपने मन को इससे अलग नहीं किया है और इसे त्याग नहीं दिया है, वह दुखों का अंत करने में असमर्थ है। परन्तु जिसने लोभ को पूर्णतः जान लिया है और पूर्णतः समझ लिया है, जिसने अपने मन को इससे अलग कर दिया है और इसे त्याग दिया है, वह दुखों का अंत करने में सक्षम है।”
जिस लालच के साथ

प्राणी एक बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं,

लालच करना:

यह जानते हुए भी कि लालच,

जो लोग ध्यान में गहनता से सतर्क रहते हैं

(विपास्सिनो)

जाने दो।

जाने देना,

वे कभी इस दुनिया में नहीं आते

दोबारा।

नोट:
1. बुरे जन्म: नरक में पुनर्जन्म, भूखे प्रेत के रूप में, क्रोधित राक्षस के रूप में, या सामान्य पशु के रूप में। अच्छे जन्मों की तरह—मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म, स्वर्ग में, या ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में—ये अवस्थाएँ भी क्षणिक हैं और कर्म पर निर्भर हैं।

2. विपश्यना - वे जो अंतर्दृष्टि से सचेत (समभाव से) रहते हैं। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) से देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> इतिवुत्तका >> 10-13. दोसामोहकोधामक्खा

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 9 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 10-13 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 14

10-13. दोसपरिन्नसुत्तम + मोहपरिन्नसुत्तम + कोधपरिन्नसुत्तम + मक्खपरिन्नसुत्तम (घृणा, मोह, क्रोध, तिरस्कार)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, जिसने घृणा, मोह, क्रोध, तिरस्कार को पूर्णतः नहीं जाना और पूर्णतः नहीं समझा है, जिसने अपने मन को इससे अलग नहीं किया है और इसे त्याग नहीं दिया है, वह दुखों का अंत करने में असमर्थ है। परन्तु जिसने घृणा, मोह, क्रोध, तिरस्कार को पूर्णतः जान लिया है और पूर्णतः नहीं समझा है, जिसने अपने मन को इससे अलग कर दिया है और इसे त्याग दिया है, वह दुखों का अंत करने में सक्षम है।” [इन प्रवचनों के श्लोक 2-5 के श्लोकों के समान हैं।]
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 14. अविज्जनिवरणसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 10—13 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 14 || अगला >>> इतिवुत्तक 15

14. अविज्जनिवरणसुत्तम (अज्ञान):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, मुझे अज्ञान (अविज्जा) के अवरोध के समान कोई दूसरा अवरोध दिखाई नहीं देता, जिसके कारण लोग लंबे समय तक भटकते और पुनर्जन्म लेते रहते हैं। अविज्जा के अवरोध के कारण ही लोग लंबे समय तक भटकते और पुनर्जन्म लेते रहते हैं।”
कोई और बात नहीं

इसलिए लोगों को बाधा पहुंचाता है

वे दिन-रात भटकते रहते हैं।

जैसे कि जब वे अवरुद्ध होते हैं

भ्रम के कारण।

लेकिन जो लोग भ्रम को त्याग देते हैं,

अंधकार के विशाल समूह को चकनाचूर कर दो,

अब और आगे मत भटको।

उनके कारण का पता नहीं चल पाया है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 15. तन्हासंयोजनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 14 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 15 || अगला >>> इतिवुत्तक 16

15. तन्हासंयोजनसुत्तम् (लालसा):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, मैं तन्हा के बंधन के समान किसी अन्य बंधन की कल्पना भी नहीं करता—जिससे जुड़े प्राणी लंबे समय तक भटकते और पुनर्जन्म लेते रहते हैं। तन्हा के बंधन से बंधे प्राणी
लंबे समय तक भटकते और पुनर्जन्म लेते रहते हैं।"
अपने साथी के लिए लालसा (तन्हा) के साथ, एक आदमी

बहुत लंबे समय तक भटकता रहता है।

न ही इस राज्य में यहाँ

और न ही कहीं और

क्या वह इससे आगे जाता है?

भटकते रहना।

इस कमी को जानते हुए—

वह लालसा (तन्हा) दुख को जन्म देती है—

लालसा से मुक्त (तन्हा),

आसक्ति से रहित,

ध्यानमग्न भिक्षु

वह भिक्षु जीवन व्यतीत करता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 16. पथमशेखसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 15 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 16 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 17

16. पथमसेकसुत्तम (प्रशिक्षण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, आंतरिक कारकों के संबंध में, मैं उचित ध्यान[1] जैसे किसी अन्य कारक की कल्पना नहीं करता, जो प्रशिक्षण में लगे भिक्षु[2] के लिए इतना कुछ कर सके, जिसने हृदय के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है, लेकिन बंधन से अतुलनीय सुरक्षा[3] पर ध्यान केंद्रित करता है। जो भिक्षु उचित रूप से ध्यान देता है, वह अकुशलता को त्याग देता है और कुशलता को विकसित करता है।

उचित ध्यान

एक गुणवत्ता के रूप में

प्रशिक्षण ले रहे भिक्षु का:

और कुछ नहीं

इतना करता है

सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए।

एक भिक्षु, उचित प्रयास करते हुए,

दुखों का अंत प्राप्त होता है।

टिप्पणी
1. उचित ध्यान (योनिसो मनसिकारा) वह क्षमता है जिसके द्वारा ध्यान उन प्रश्नों पर केंद्रित किया जा सकता है जो दुख के अंत की ओर ले जाते हैं। एमएन 2 में निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यान के लिए अनुपयुक्त बताया गया है: "क्या मैं अतीत में था? क्या मैं अतीत में नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? ... क्या मैं भविष्य में होऊंगा? क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? ... क्या मैं हूं? क्या मैं नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह अस्तित्व कहां से आया है? यह कहां जा रहा है?" प्रवचन में निम्नलिखित मुद्दों को भी ध्यान के लिए उपयुक्त बताया गया है: "यह दुख है। यह दुख का उद्‌गम है। यह दुख का निवारण है। यह दुख के निवारण का मार्ग है।" अन्य अंश दर्शाते हैं कि उचित ध्यान अनुभव को न केवल चार आर्य सत्यों के संदर्भ में देखता है, बल्कि उन सत्यों के अनुरूप कर्तव्यों के संदर्भ में भी देखता है। एसएन 22:122 और एसएन 46:51 देखें।
2. "प्रशिक्षण में" वह व्यक्ति है जिसने कम से कम जागृति का पहला स्तर प्राप्त कर लिया है,
लेकिन अंतिम स्तर तक नहीं पहुंचा है।
3. बंधन = चार बंधन: कामुक वासना, भाव, मनोवृत्ति और अज्ञान।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 17. दुतियाशेखसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 16 <<<पिछला ‖ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 17 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 18

17. दुतियासेखसुत्तम (प्रशिक्षण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, बाह्य कारकों के संदर्भ में, मैं प्रशंसनीय लोगों के साथ मित्रता[1] जैसे किसी अन्य कारक को प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे भिक्षु के लिए इतना महत्वपूर्ण नहीं मानता, जिसने हृदय के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है, लेकिन बंधन से पूर्णतम सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करता है। प्रशंसनीय लोगों के साथ मित्रता रखने वाला भिक्षु अकुशलता का त्याग करता है और कुशलता का विकास करता है।"
एक भिक्षु जो दोस्त है

शुभचिंतक को

—जो आदरणीय और सम्मानजनक हो,

अपने दोस्तों की सलाह मानना—

सचेत, पूरी तरह सतर्क,

चरण दर चरण प्राप्त करता है

सभी बंधनों का अंत।

नोट:
1. एसएन 45:2 में बुद्ध कहते हैं, "प्रशंसनीय लोगों (कल्याण-मित्र) को मित्र, साथी और सहकर्मी के रूप में रखना ही वास्तव में पवित्र जीवन का सार है। जब किसी भिक्षु के मित्र, साथी और सहकर्मी प्रशंसनीय होते हैं, तो उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का विकास और अनुसरण करेगा... मेरे जैसे प्रशंसनीय मित्र पर निर्भर रहने से ही जन्म के अधीन प्राणियों को जन्म... बुढ़ापा... मृत्यु... दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा से मुक्ति मिली है।"
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 18. संघभेदसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 17 <<<पिछला || एक का अध्याय: इतिवुत्तक 18 || अगला >>> इतिवुत्तक 19

18. संघभेदसूत्त (संघ में फूट उत्पन्न करना)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, जब एक बात संसार में उत्पन्न होती है, तो वह अनेकों के लिए हानि, अनेकों के लिए दुःख और अनेक प्राणियों, चाहे मनुष्य हों या देवता, के लिए दुःख का कारण बनती है। वह कौन सी बात है? संघ में फूट। जब संघ विभाजित हो जाता है, तो आपस में वाद-विवाद होता है, एक-दूसरे को अपशब्द कहे जाते हैं, एक-दूसरे के विरुद्ध गुटबंदी की जाती है, एक-दूसरे का त्याग किया जाता है। वहाँ जो लोग [शिक्षा में] कम विश्वास रखते हैं, वे अपना सारा विश्वास खो देते हैं, जबकि कुछ जो
विश्वास रखते हैं, उनका विश्वास बदल जाता है।"
एक युग के लिए अभिशप्त

अभाव की ओर,

भाड़ में:

वह व्यक्ति जिसने संघ (भिक्षुओं का संप्रदाय) को विभाजित किया हो।

गुटों में आनंद लेते हुए,

अविवेकी—

उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

गुलामी से सुरक्षा।

एकमत से संघ को विभाजित करने के बाद,

उसे युगों तक पकाया जाता है

नरक में।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 19. संघसमाग्गिसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 18 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 19 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 20

19. संघसमग्गिसुत्तम (संघ में सामंजस्य):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, जब कोई वस्तु संसार में उत्पन्न होती है, तो वह अनेकों के कल्याण, अनेकों के सुख, अनेक प्राणियों के कल्याण और सुख के लिए उत्पन्न होती है, चाहे वे मनुष्य हों या दिव्य। वह कौन सी वस्तु है? संघ में सामंजस्य। जब संघ में सामंजस्य होता है, तो आपस में कोई वाद-विवाद नहीं होता, कोई एक-दूसरे का अपमान नहीं करता, कोई एक-दूसरे के विरुद्ध गुटबंदी नहीं करता, कोई एक-दूसरे का त्याग नहीं करता। वहाँ वे लोग जो [शिक्षा में] कम विश्वास रखते हैं, उनका विश्वास बढ़ जाता है, जबकि जो पहले से ही विश्वास रखते हैं, उनका विश्वास और भी बढ़ जाता है।"
संघ (भिक्षुओं के समूह) में सामंजस्य ही आनंदमय है।

जो सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करता है—

सामंजस्य में आनंदित होना,

विवेकपूर्ण—

उसे गुलामी से सुरक्षा का अधिकार नहीं है।

संघ में सामंजस्य स्थापित करने के बाद,

वह युगों तक आनंदित रहता है

स्वर्ग में।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 20. पदुत्थचित्तसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 19 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 20 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 21

20. पदुत्थचित्तसुत्तम् (भ्रष्ट मन):

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति भ्रष्ट मन का है। उस मन को अपनी चेतना से घेरकर, मैं यह समझता हूँ, 'यदि यह व्यक्ति इसी क्षण मर जाए, तो मानो उसे उठाकर ले जाया जाए, तो वह नरक में पहुँच जाएगा।' ऐसा क्यों है? क्योंकि उसका मन भ्रष्ट है। भ्रष्ट मन के कारण ही ऐसे मामले होते हैं जहाँ प्राणी—मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर—वंचित लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोक, नरक में पुनः प्रकट होते हैं।”
मामले को जानते हुए

भ्रष्ट मानसिकता वाले व्यक्ति का,

जागृत व्यक्ति ने इसका अर्थ समझाया

भिक्षुओं की उपस्थिति में।

अगर वह व्यक्ति

यदि इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाए,

वह नरक में पुनः प्रकट होगा

क्योंकि उसका दिमाग भ्रष्ट है—

मानो उसे उठाकर ले जाया गया हो

और वहां रख दिया।

यह भ्रष्ट मानसिकता के कारण है

कि प्राणी जाते हैं

एक बुरे गंतव्य की ओर।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 21. पसन्नचित्तसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 20 <<<पिछला ‖ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 21 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 22

21. पसन्नचित्तसुत्तम् (आनंदमय मन):

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति आनंदमय मन से है। उस मन को अपनी चेतना से घेरकर, मैं यह समझता हूँ, 'यदि यह व्यक्ति इसी क्षण मर जाए, तो मानो उसे उठाकर ले जाया जाए, तो वह स्वर्ग में पहुँच जाएगा।' ऐसा क्यों है? क्योंकि उसका मन आनंदमय है। आनंदमय मन के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं।"
मामले को जानते हुए

आनंदमय मन वाले व्यक्ति का

जागृत व्यक्ति ने इसका अर्थ समझाया

भिक्षुओं की उपस्थिति में।

अगर वह व्यक्ति

यदि इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाए,

वह स्वर्ग में पुनः प्रकट होगा

क्योंकि उसका मन आनंदित है—

मानो उसे उठाकर ले जाया गया हो

और वहां रख दिया।

यह आनंदमय मन की वजह से है

कि प्राणी जाते हैं

एक अच्छे गंतव्य तक।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 22. मेट्टसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 21 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 22 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 23

22. मेट्टासुत्तम (सद्भावना)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, पुण्य कर्मों से भयभीत न हों। यह आनंदमय, वांछनीय, मनभावन, प्यारा, आकर्षक—अर्थात पुण्य कर्मों का पर्यायवाची है। मैं प्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ कि, लंबे समय तक पुण्य कर्म करने से, मैंने लंबे समय तक वांछनीय, मनभावन, प्यारा, आकर्षक परिणाम अनुभव किए। सात वर्षों तक सद्भावना का भाव विकसित करने के बाद, संकुचन और विस्तार के सात युगों तक मैं इस संसार में वापस नहीं आया। जब भी युग संकुचन के दौर से गुजर रहा था, मैं प्रकाश के लोक में प्रवेश कर गया। जब भी युग विस्तार के दौर से गुजर रहा था, मैं एक खाली ब्रह्मा (प्रधान देव) निवास में पुनः प्रकट हुआ। वहाँ मैं ब्रह्मा (प्रधान देव), महान ब्रह्मा, अजेय विजेता, पूर्ण द्रष्टा, शक्ति का स्वामी था। फिर छत्तीस बार मैं देवताओं का शासक, सक्का था। सैकड़ों बार मैं एक राजा, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट, एक धम्म के धर्मात्मा राजा, पृथ्वी के चारों कोनों पर विजय प्राप्त करने वाले, ग्रामीण क्षेत्रों पर स्थिर नियंत्रण रखने वाले, सात रत्नों से संपन्न—और उन समयों का उल्लेख नहीं जब मैं एक स्थानीय राजा था। मेरे मन में यह विचार आया, 'यह मेरे किस कर्म का फल है, किस कर्म का परिणाम है कि अब मेरे पास इतनी महान शक्ति और सामर्थ्य है?' तब मेरे मन में यह विचार आया, 'यह मेरे तीन प्रकार के कर्मों का फल है, तीन प्रकार के कर्मों का परिणाम है कि अब मेरे पास इतनी महान शक्ति और सामर्थ्य है: अर्थात् उदारता, आत्म-संयम और संयम।'

पुण्य कर्मों में प्रशिक्षण प्राप्त करें

जो परमानंद का सर्वोपरि लाभ प्रदान करते हैं—

उदारता विकसित करें,

एक सामंजस्यपूर्ण जीवन,

सद्भावपूर्ण मन।

इनका विकास करना

तीन बातें

जो आनंद लाते हैं,

बुद्धिमान लोग पुनः प्रकट होते हैं

आनंद की दुनिया में

शुद्ध।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 23. उभयत्थसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 22 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 23 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 24

23. उभयत्थसुत्तम् (सजगता):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, इस एक गुण को विकसित और अभ्यास करने से दोनों प्रकार के लाभ सुरक्षित रहते हैं: इस जीवन में लाभ और आने वाले जन्मों में लाभ। वह कौन सा गुण है? कुशल गुणों के प्रति सजगता। यही वह गुण है, जिसे विकसित और अभ्यास करने से दोनों प्रकार के लाभ सुरक्षित रहते हैं: इस जीवन में लाभ और आने वाले जन्मों में लाभ।"
वे सजगता की प्रशंसा करते हैं, बुद्धिमान लोग।

पुण्य कर्म करने में।

जब सचेत, बुद्धिमान,

आपको दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं:

इस जीवन में मिलने वाले लाभ,

और आने वाले जीवन में इसके लाभ।

आपके लाभ के लिए सफलता प्राप्त करके,

आपको प्रबुद्ध कहा जाता है।

ढंग।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 24. अट्ठिपंजसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 23 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 24 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 25

24. अत्तिपुंजसुत्तम (हड्डियों का ढेर):

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, यदि कोई एक व्यक्ति युगों (कप्पा, कल्प) तक भटकता और पुनर्जन्म लेता रहे, तो वह अपने पीछे हड्डियों की एक श्रृंखला, हड्डियों का एक ढेर, हड्डियों का एक ऐसा समूह छोड़ जाएगा जो इस वेपुल्ला पर्वत जितना बड़ा होगा, बशर्ते कोई उन्हें एकत्र करने वाला हो और वह संग्रह नष्ट न हो।"
संचय

किसी एक व्यक्ति का

युगों से हड्डियाँ

यह ढेर होगा

पहाड़ के बराबर,

महान ऋषि ने ऐसा कहा था।

(उन्होंने इसे घोषित किया)

महान माउंट वेपुल्ला

वल्चर पीक के उत्तर में

पर्वतीय घेरे में

मगधों का।)[1]

लेकिन जब वह व्यक्ति देखता है

सही प्रत्यक्ष समझ के साथ

चार आर्य सत्य—

कष्ट,

पीड़ा का कारण,

दुखों से मुक्ति पाना,

और आर्य अष्टांगिक मार्ग,

दुखों को शांत करने का मार्ग—

भटकते हुए

तो, अधिकतम सात बार ही सही।

सभी बंधनों के अंत के साथ,

वह इसे समाप्त करता है

पीड़ा का।

नोट:
1. बुद्ध के समय में मगध एक राज्य था, जो लगभग वर्तमान बिहार राज्य के बराबर था। इसकी राजधानी राजगृह पाँच पर्वतों की एक श्रृंखला से घिरी हुई थी। गिद्ध शिखर, जो श्रृंखला के मध्य में स्थित एक एकांत चट्टानी टीला था, बुद्ध का पसंदीदा स्थान था। यह भी देखें: SN 15:3
2. कल्प (संस्कृत) के लिए इऑन

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 25. मुसावादसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 24 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 25 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 26

25. मुसवदासुतम् (झूठ बोलना):

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति एक भी अपराध करता है, उसके लिए ऐसा कोई पाप नहीं है जो नहीं किया जा सकता। वह कौन सा अपराध है? यह: जानबूझकर झूठ बोलना।"
झूठ बोलने वाले व्यक्ति के लिए,

जो इस एक बात में उल्लंघन करता है,

दुनिया के प्रति चिंता से परे:

कोई बुराई नहीं है

ऐसा नहीं किया जाना चाहिए।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 26. दानसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 25 <<<पिछला ॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 26 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 27

26. दानसुत्तम (दान):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“हे भिक्षुओं, यदि प्राणी दान और साझा करने के फल को जानते, जैसा कि मैं जानता हूँ, तो वे बिना दान दिए भोजन नहीं करते, और न ही स्वार्थ का दाग उनके मन पर हावी होता। चाहे वह उनका अंतिम निवाला ही क्यों न हो, यदि कोई उनका दान ग्रहण करने वाला हो, तो वे बिना दान दिए भोजन नहीं करते। परन्तु क्योंकि प्राणी दान और साझा करने के फल को नहीं जानते, जैसा कि मैं जानता हूँ, वे बिना दान दिए भोजन करते हैं। स्वार्थ का दाग उनके मन पर हावी हो जाता है।”

यदि प्राणियों को पता होता
महान द्रष्टा ने क्या कहा,
साझा करने का परिणाम कैसा होता है
इसमें बहुत अच्छे फल लगते हैं,
फिर, स्वार्थ के कलंक को दबाते हुए
बढ़ी हुई जागरूकता के साथ,
वे मौसम में हार मान लेंगे
नेक लोगों के लिए,
जहां दान से बहुत अच्छा फल मिलता है।
भोजन देने के बाद
एक भेंट के रूप में
उन लोगों को जो भेंट के योग्य हैं,
कई दानदाताओं,
जब वे इस दुनिया से चले जाते हैं,
मानव अवस्था,
जाना
स्वर्ग के लिए।
वे वहाँ गए थे
स्वर्ग के लिए,
आनंद मनाओ,
कामुक सुखों का आनंद लेना।
वे निस्वार्थ हैं।
परिणाम में भाग लेना
साझा करने का।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 27. मेट्टभवनसुत्तम
थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 26 <<<पिछला॥ एक का अध्याय: इतिवुत्तक 27 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 28

27. मेत्तभावनासुत्तम् (सद्भावना):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, स्वर्ग में स्वतः आरोहण की ओर ले जाने वाले पुण्य कर्मों के सभी आधार सद्भावना के माध्यम से प्राप्त चेतना-मुक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। सद्भावना—उनसे कहीं बढ़कर—चमकती, प्रज्वलित और चकाचौंध करती है।

जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है, जिस प्रकार चंद्रमा—उनसे कहीं बढ़कर—चमकती, प्रज्वलित और चकाचौंध करती है, उसी प्रकार स्वर्ग में स्वतः आरोहण की ओर ले जाने वाले पुण्य कर्मों के सभी आधार सद्भावना के माध्यम से प्राप्त चेतना-मुक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। सद्भावना—उनसे कहीं बढ़कर—चमकती, प्रज्वलित और चकाचौंध करती है।”

"जैसे शरद ऋतु के अंतिम महीने में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अंधकार में डूबे हुए स्थान को भेद देता है, चमकता है, दमकता है और चकाचौंध कर देता है, ठीक उसी प्रकार, स्वर्ग में स्वतः प्रकट होने की ओर ले जाने वाले पुण्य कर्मों के सभी आधार सद्भावना के माध्यम से प्राप्त चेतना-मुक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। सद्भावना—उनसे कहीं अधिक—चमकती है, दमकती है और चकाचौंध कर देती है।

" "जैसे रात्रि के अंतिम चरण में भोर का तारा चमकता है, दमकता है और चकाचौंध कर देता है, ठीक उसी प्रकार, स्वर्ग में स्वतः प्रकट होने की ओर ले जाने वाले पुण्य कर्मों के सभी आधार सद्भावना के माध्यम से प्राप्त चेतना-मुक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। सद्भावना—उनसे कहीं अधिक—चमकती है, दमकती है और चकाचौंध कर देती है।"

जब कोई व्यक्ति सचेतनता विकसित करता है—
असीम सद्भावना,
बेड़ियाँ घिस कर टूट गई हैं।
अंत देखकर
उपाधि (मानसिक अर्जितियों/गुणों) का।
यदि निर्मल मन से
आपको अच्छा लगेगा
यहां तक कि एक प्राणी के लिए भी,
इससे आप कुशल बन जाते हैं।
लेकिन एक नेक व्यक्ति पैदा करता है
सहानुभूतिपूर्ण मन
सभी प्राणियों के लिए,
गुणों की प्रचुरता।
राजसी द्रष्टाओं ने पृथ्वी पर विजय प्राप्त की
जीवों से भरा हुआ,
उन्होंने त्याग करना शुरू कर दिया:
अश्व बलि, मानव बलि,
जल अनुष्ठान, सोमा अनुष्ठान,
और "बाधा रहित,"
लेकिन ये बराबर नहीं हैं
एक सोलहवां
एक सुविकसित, सद्भावपूर्ण मन का—
क्योंकि सभी तारामंडल ऐसा नहीं करते हैं,
एक सोलहवां
चंद्रमा की चमक का।
जो न तो हत्या करता है
और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए उकसाता है।
न ही कोई जीतता है,
और न ही दूसरों को जीत दिलाता है।
सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना के साथ,
किसी से कोई शत्रुता नहीं रखता
बिल्कुल भी।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 28. दुक्खविहारसुत्तम
थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 27 <<<पिछला॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 28॥ अगला >>> इतिवुत्तक 29

28. दुःखविहारसुत्तम (दुख के कारण)
यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, दो चीजों से युक्त होकर, भिक्षु वर्तमान जीवन में दुःख में रहता है—दुखी, दुःखमुक्त और बुखार से ग्रस्त—और मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, एक बुरे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है। वे दो चीजें क्या हैं? इंद्रियों के द्वारों की रक्षा न करना और भोजन में संयम न जानना। इन दो चीजों से युक्त होकर, भिक्षु वर्तमान जीवन में दुःख में रहता है—दुखी, दुःखमुक्त और बुखार से ग्रस्त—और मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, एक बुरे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है।"

आँख, कान और नाक जीभ, शरीर और मन:
जब कोई भिक्षु इन दरवाजों को बिना पहरे के छोड़ देता है
—खाने-पीने में संयम न जानने वाला,
अपनी इंद्रियों को नियंत्रित न करते हुए—
उसे पीड़ा का अनुभव होता है:
शरीर में पीड़ा, कष्ट
मन में।
शरीर में जलन,
मन में जल रही है,
चाहे दिन हो या रात,
इस तरह का एक
दुख और पीड़ा में जीवन व्यतीत करता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 29. सुखविहारसुत्तम
थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 28 <<<पिछला॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 29॥ अगला >>> इतिवुत्तक 30

29. सुखविहारसुत्तम (सुख):
यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:
"हे भिक्षुओं, दो गुणों से युक्त होकर भिक्षु वर्तमान जीवन में सहजता से रहता है—अविचलित, कष्टरहित और निर्बल—और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है। वे दो गुण कौन से हैं? इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करना और भोजन में संयम बरतना। इन दो गुणों से युक्त होकर भिक्षु वर्तमान जीवन में सहजता से रहता है—अविचलित, कष्टरहित और निर्बल—और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है।"

आँख, कान और नाक जीभ, शरीर और मन:
जब कोई भिक्षु इन दरवाजों की अच्छी तरह से सुरक्षा करवाता है
भोजन में संयम का ज्ञान होना,
अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करते हुए—
उसे सहजता का अनुभव होता है:
शरीर में सहजता, सहजता
मन में।
शरीर में जलन नहीं हो रही है।

मन में कोई जलन नहीं,
चाहे दिन हो या रात,
इस तरह का एक
आराम से जीवन व्यतीत करता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 30. तपनियासुत्तम
थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 29 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 30 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 31

30. तपनियासुत्तम (पाप की अग्नि में जलना)
यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:
“भिक्षुओं, पश्चाताप के दो कारण हैं। वे दो क्या हैं? एक वह व्यक्ति है जिसने प्रशंसनीय कार्य नहीं किया, कुशलता नहीं दिखाई, भय में डूबे लोगों की रक्षा नहीं की, बल्कि दुष्ट, बर्बर और क्रूर कार्य किया है। यह सोचकर कि 'मैंने प्रशंसनीय कार्य नहीं किया,' उसे पश्चाताप होता है। यह सोचकर कि 'मैंने दुष्ट कार्य किया है,' उसे पश्चाताप होता है। ये दो कारण पश्चाताप का कारण बनते हैं।”
संलग्न होने के बाद

शारीरिक दुर्व्यवहार में,

मौखिक दुर्व्यवहार,

मन का दुराचार,[1]

या जो भी अन्य त्रुटिपूर्ण हो,

कुशल कार्य न करने के कारण,

बहुत कुछ ऐसा करने के बाद जो उचित नहीं है,

शरीर के विखंडन के समय,

अविवेकी व्यक्ति पुनः प्रकट होता है

नरक।

नोट: 1. एएन 10:176 शारीरिक दुराचार को हत्या, चोरी और यौन दुराचार के रूप में परिभाषित करता है; मौखिक दुराचार को झूठ, फूट डालने वाली बातें, कठोर बातें और व्यर्थ की बकवास के रूप में; और मानसिक दुराचार को लोभ, द्वेष और गलत विचारों के रूप में परिभाषित करता है (संख्या 32 की टिप्पणी देखें)।
यह भी देखें: एएन 4:184
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 31. अतापनियासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 30 <<<पिछला ‖ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 31 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 32

31. अतापाणियसुत्तम (पाप की अग्नि में न जलना):

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, दो ऐसी बातें हैं जिनसे पश्चाताप नहीं होता। वे कौन सी दो बातें हैं? एक वह व्यक्ति है जिसने प्रशंसनीय कार्य किया है, कुशलता से कार्य किया है, भयभीत लोगों की रक्षा की है, और कोई भी बुरा, बर्बर या क्रूर कार्य नहीं किया है। यह सोचकर कि 'मैंने प्रशंसनीय कार्य किया है,' उसे पश्चाताप नहीं होता। यह सोचकर कि 'मैंने बुरा कार्य नहीं किया है,' उसे पश्चाताप नहीं होता। ये दो बातें पश्चाताप का कारण नहीं बनतीं।"
त्यागने के बाद

शारीरिक दुर्व्यवहार,

मौखिक दुर्व्यवहार,

मानसिक दुराचार

और जो कुछ भी अन्य त्रुटिपूर्ण है,

जो कार्य कुशल नहीं है, उसे न करने के कारण,

बहुत कुछ करने के बाद,

शरीर के विखंडन के समय,

विवेकशील व्यक्ति पुनः प्रकट होता है

स्वर्ग में।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 32. पथमशिलासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 31 <<<पिछला ‖ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 32 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 33

32. पथमासिलसुत्तम (अनैतिकता नरक की ओर ले जाती है)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, दो चीजों से युक्त व्यक्ति—मानो उठा ले जाया गया हो—इस प्रकार नरक में डाल दिया जाता है। वे दो चीजें क्या हैं? बुरी आदतें और बुरे विचार। इन दो चीजों से युक्त व्यक्ति—मानो उठा ले जाया गया हो—इस प्रकार नरक में डाल दिया जाता है।"
बुरी आदतें और

बुरे विचार: [1]

एक व्यक्ति, जो विवेकहीन हो।

इन दो चीजों से संपन्न,

शरीर के टूटने पर

नरक में पुनः प्रकट होता है।

नोट: 1. एमएन 22 एक बुरे दृष्टिकोण का निम्नलिखित उदाहरण देता है: "जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, भगवान बुद्ध जिन कार्यों को बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते।" एमएन 38 एक और उदाहरण देता है: "जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, यह केवल यही चेतना है जो [जन्म-जन्म] चलती और भटकती रहती है, कोई और नहीं।"
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 33. दुतियासिलसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 32 <<<पिछला || दो का अध्याय: इतिवुत्तक 33 || अगला >>> इतिवुत्तक 34

33. दुतियाशीलसुत्तम (नैतिकता स्वर्ग की ओर ले जाती है)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, दो गुणों से युक्त व्यक्ति—मानो उठाकर स्वर्ग में ले जाया गया हो—इस प्रकार स्वर्ग में पहुँच जाता है। वे दो गुण कौन से हैं? शुभ आदतें और शुभ विचार। इन दो गुणों से युक्त व्यक्ति—मानो उठाकर स्वर्ग में ले जाया गया हो—इस प्रकार स्वर्ग में पहुँच जाता है।"
शुभ आदतें और

शुभ दृश्य:

एक विवेकशील व्यक्ति

इन दो चीजों से संपन्न,

शरीर के टूटने पर

स्वर्ग में पुनः प्रकट होता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 34. अतपिसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 33 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 34 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 35

34. अतपिसुत्तम् (मार्ग में परिश्रम से ज्ञान प्राप्ति होती है)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही है, अरहंत ने कही है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति उत्साह और पश्चाताप से रहित है, वह आत्म-जागृति, निर्वाण और बंधन से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त करने में असमर्थ है। वहीं, जो व्यक्ति उत्साह और पश्चाताप से युक्त है, वह आत्म-जागृति, निर्वाण और बंधन से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम है।"

बिना किसी उत्साह के, बिना

पश्चाताप,

आलसी, कम दृढ़ता वाला,

आलस्य और सुस्ती से भरा हुआ,

निर्लज्ज, सम्मानहीन:

वह असमर्थ है।

इस तरह का एक भिक्षु,

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्मबोधि (सम्बोधि)।

लेकिन जो कोई भी ध्यान करता है, प्रयास करता है, निपुण होता है,

उत्साही, केंद्रित और सतर्क

जन्म और बुढ़ापे के बंधन को तोड़ते हुए,

ठीक यहीं स्पर्श करें

एक अद्वितीय आत्म-जागरूकता।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 35. पथमानकुहनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 34 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 35 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 36

35. पथमनकुहनसुत्तम् (निर्वाण के लिए ब्रह्मचर्य और ध्यान का पवित्र मार्ग)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, लोगों को लुभाने के लिए नहीं, लाभ, भेंट और भेंट के पुरस्कारों के लिए नहीं, और न ही इस विचार से जिया जाता है कि 'इस प्रकार लोग मुझे जानें।' यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन संयम और त्याग के लिए जिया जाता है।” भगवान ने ऐसा कहा, जो मैं आपको बताता हूँ:

इंद्रियों पर संयम बरतो।

ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें।

भगवान बुद्ध ने शिक्षा दी है,

एक पवित्र मार्ग, रुकने का मार्ग,

(जुनून/सुख)

के लिए अग्रणी

निर्वाण (मुक्ति/मोक्ष)।

इस मार्ग (मग्गा) का अनुसरण किया जाता है

महान उद्देश्य वाले लोगों द्वारा,

महान द्रष्टा।

जो लोग इसका अनुसरण करते हैं,

जैसा कि प्रबुद्ध व्यक्ति (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया है,

गुरु के मार्ग का अनुसरण करते हुए,

अंत कर देगा

सभी प्रकार के कष्टों के लिए।

इस प्रकार प्रभु ने कहा, जिसे मैंने सुना।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 36. दुतियानाकुहनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 35 <<<पिछला ‖ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 36 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 37

36. दुतियानकुहनसुत्तम् (निर्वाण के लिए ब्रह्मचर्य और ध्यान का पवित्र मार्ग)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, लोगों को लुभाने के लिए नहीं, लाभ, भेंट और भेंट के पुरस्कारों के लिए नहीं, और न ही इस विचार से जिया जाता है कि 'इस प्रकार लोग मुझे जान सकें।' यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन प्रत्यक्ष ज्ञान[1] (अनुभवजन्य) और पारलौकिक ज्ञान[2] (भौतिक क्षेत्र से परे) के लिए जिया जाता है।" भगवान ने ऐसा कहा, जो मैं बताता हूँ:

प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए और

पारलौकिक ज्ञान,

भगवान बुद्ध ने शिक्षा दी

एक पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन,

रोकने का,

(जुनून/सुख)

के लिए अग्रणी

निर्वाण (मुक्ति/मोक्ष)।

इस मार्ग (मग्गा) का अनुसरण किया जाता है

महान उद्देश्य वाले लोगों द्वारा,

महान द्रष्टा।

जो लोग इसका अनुसरण करते हैं,

जैसा कि प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाया गया है,

शिक्षक के संदेश पर ध्यान देते हुए,

अंत कर देगा

सभी प्रकार के कष्टों के लिए।

इस प्रकार प्रभु ने कहा, जिसे मैंने सुना।

नोट: 1. प्रत्यक्ष ज्ञान = अभिजान। अभि (वर्तमान, प्रत्यक्ष) + जन (ज्ञान)। धर्मग्रंथ में अभिजान के छह प्रकार भी बताए गए हैं: मानसिक शक्तियाँ, श्रवण शक्ति, दूसरों के मन को पढ़ने की क्षमता, पूर्व जन्मों का स्मरण, दूरदर्शिता और सबसे महत्वपूर्ण - मानसिक आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत का ज्ञान।
2. पारलौकिक ज्ञान = परिजान। परि (पारलौकिक) + जन (ज्ञान)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 37. सोमनस्ससुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 36 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 37 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 38

37. सोमनससुत्तम (मार्ग पर आवश्यक तत्परता और परिश्रम का भाव)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"दो गुणों से संपन्न, भिक्षु वर्तमान क्षण में सहजता से रहते हैं और आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत के लिए उचित रूप से प्रेरित होते हैं। वे दो गुण कौन से हैं? उन चीजों के प्रति तत्परता का भाव[1] जो तत्परता को प्रेरित करती हैं और तत्परता का अनुभव करते हुए, उचित परिश्रम। दो गुणों से संपन्न, भिक्षु वर्तमान क्षण में सहजता से रहते हैं और आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत के लिए उचित रूप से प्रेरित होते हैं।"
मुझे यहाँ तुरंत कार्रवाई करने की आवश्यकता महसूस हो रही है।

जिस ओर तत्परता की आवश्यकता होनी चाहिए,

समझदार,

उत्कृष्ट,

गहन ध्यान में लीन भिक्षु

जांच करनी चाहिए

प्रत्यक्ष समझ (पन्ना) के साथ।

जो व्यक्ति इस प्रकार उत्साहपूर्वक जीवन व्यतीत करता है,

बेचैन नहीं, बल्कि शांत।

जागरूकता और शांति के प्रति प्रतिबद्ध,

अंत तक पहुँच जाएगा

पीड़ा और कष्ट का।

नोट:

1. तात्कालिकता = संवेग। इस शब्द के अन्य अर्थों में विस्मय, सदमा, निराशा और अलगाव शामिल हैं। पाली कैनन में, यह भावना अक्सर भय और अत्यधिक खतरे से बचने की तीव्र आवश्यकता के साथ होती है। तात्कालिकता को प्रेरित करने वाली बातें एएन 5:57 में सूचीबद्ध पाँच चिंतनों में से पहले चार हैं: "मैं वृद्धावस्था के अधीन हूँ, वृद्धावस्था से परे नहीं गया हूँ। मैं रोग के अधीन हूँ, रोग से परे नहीं गया हूँ। मैं मृत्यु के अधीन हूँ, मृत्यु से परे नहीं गया हूँ। मैं भिन्न हो जाऊँगा, उन सभी चीजों से अलग हो जाऊँगा जो मुझे प्रिय और आकर्षक हैं।" उचित प्रयास पाँचवें चिंतन द्वारा इंगित किया गया है: "मैं कर्मों का स्वामी हूँ, कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ, कर्मों से जन्मा हूँ, कर्मों के माध्यम से संबंधित हूँ, और कर्म ही मेरे मध्यस्थ हैं। मैं जो कुछ भी करता हूँ, अच्छा या बुरा, उसी का उत्तराधिकारी होऊंगा।"
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 38. वितक्कसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 37 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 38 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 39

38. वितक्कसुत्तम (अहिंसा से ही सुरक्षा प्राप्त होती है)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कहा था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत तथागत (बुद्ध) के मन में अक्सर दो विचार आते हैं: सुरक्षा का विचार और एकांतवास का विचार। तथागत (बुद्ध) द्वेषहीनता का आनंद लेते हैं, द्वेषहीनता में प्रसन्न होते हैं। उनके मन में—द्वेषहीनता का आनंद लेते हुए, द्वेषहीनता में प्रसन्न होते हुए—अक्सर यह विचार आता है: 'इस कर्म से मैं किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़।' तथागत (बुद्ध) एकांतवास का आनंद लेते हैं, एकांतवास में प्रसन्न होते हैं। उनके मन में—एकांतवास का आनंद लेते हुए, एकांतवास में प्रसन्न होते हुए—अक्सर यह विचार आता है: 'जो कुछ भी अकुशल है, उसका त्याग कर दिया जाता है।' अतः, भिक्षुओं, आपको भी द्वेषहीनता का आनंद लेते हुए, द्वेषहीनता में प्रसन्न होते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए।" आपमें—जो द्वेषहीनता का आनंद लेते हैं, द्वेषहीनता में प्रसन्न होते हैं—अक्सर यह विचार आएगा: 'इस गतिविधि से हम किसी को भी हानि नहीं पहुँचाते, चाहे वह कमजोर हो या दृढ़।' आपको भी एकांत में रहकर, एकांत का आनंद लेते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। आपमें, जो एकांत में रहकर, एकांत का आनंद लेते हैं—अक्सर यह विचार आएगा: 'क्या अकुशल है? क्या अभी तक त्यागा नहीं गया है? हम क्या त्याग रहे हैं?'
तथागत (बुद्ध) को,

जागृत,

जिन्होंने असहनीय पीड़ा सहन की।

दो विचार मन में आते हैं:

सुरक्षा सबसे पहला विचार था जिसका उल्लेख किया गया;

दूसरे ने एकांतवास की घोषणा की।

अंधकार को दूर करने वाला, मुक्त

आसव (चाहत/इच्छा) का

महान द्रष्टा

जो इससे आगे बढ़ चुका है,

उपलब्धि प्राप्त कर ली,

महारत हासिल कर ली,

जहरों को पार कर लिया;

क्रेविंग (तन्हा) के अंत में किसे रिहा किया जाता है:

वह ऋषि

उसका अंतिम शरीर धारण किए हुए है,

उसने मारा (मृत्युदेवता) से छुटकारा पा लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।

यह उम्र बढ़ने की सीमा को पार कर चुका है।

जैसे कोई चट्टानी कगार पर खड़ा हो

नीचे चारों ओर लोगों को देख सकेंगे।

अतः बुद्धिमान व्यक्ति,

सर्वांगीण दृष्टि से,

टावर पर चढ़ने के बाद

धम्म से बना हुआ,

दुःख को पार कर लेने के बाद,

दु:ख से व्याकुल लोगों पर निगाहें गड़ाए हुए,

वृद्धावस्था और मृत्यु से पराजित।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 39. देसनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 38 <<<पिछला || दो का अध्याय: इतिवुत्तक 39 || अगला >>> इतिवुत्तक 40

39. देसनसुत्तम (बुराई को बुराई के रूप में देखकर वैराग्य और वैराग्य प्राप्त करना)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध)—योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत—ने क्रमानुसार दो धम्म प्रवचन दिए हैं। वे कौन से दो हैं? 'बुराई को बुराई के रूप में देखो।' यह पहला धम्म प्रवचन है। 'बुराई को बुराई के रूप में देखकर, वहीं पर वैराग्य और वैराग्य प्राप्त करो, वहीं पर मुक्त हो जाओ।' यह दूसरा धम्म प्रवचन है। ये दो धम्म प्रवचन हैं जो तथागत (बुद्ध)—योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत—ने क्रमानुसार दिए हैं।”
दोनों कथनों को देखें,

क्रमानुसार घोषित,

तथागत (बुद्ध) द्वारा

जागृत, सहानुभूतिपूर्ण

सभी प्राणियों के लिए।

पहला: बुराई को पहचानना।

वहाँ निष्पक्ष रहें

बुराई की ओर।

फिर, एक तटस्थ मन से,

आप अंत कर देंगे

पीड़ा और कष्ट का।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 40. विज्जसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।

पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 39 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 40 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 41

40. विजयसुत्तम (ज्ञान और जागरूकता)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा)[1] अकुशल गुणों के आगमन से पहले आता है; लज्जा का अभाव और पश्चाताप का अभाव[2] इसके बाद आते हैं। स्पष्ट ज्ञान कुशल गुणों के आगमन से पहले आता है; लज्जा और पश्चाताप इसके बाद आते हैं।"

कोई भी खराब गंतव्य

इस दुनिया में, अगली दुनिया में,

ये सभी अज्ञान (अविज्जा) में निहित हैं।

संचय

इच्छा और लोभ का।

और जब कोई व्यक्ति बुरी इच्छाएं रखता है

शर्म और सम्मान का अभाव है।

बुराई उसी से उत्पन्न होती है।

और वह इस तरह चला जाता है

अभाव की ओर।

इसलिए सफाई करना

अज्ञान (अविज्जा), इच्छा और लोभ

एक भिक्षु जो स्पष्ट ज्ञान को जन्म देता है

सभी बुरे गंतव्यों को छोड़ देंगे।

टिप्पणी:
1. अज्ञान (अविज्जा) का अर्थ है दुख, उसके उद्‌गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग का अज्ञान।
2. लज्जा (हिरी) का अर्थ है बुराई करने के विचार से उत्पन्न आत्मसम्मान से प्रेरित स्वस्थ लज्जा
। पश्चाताप (ओत्तप्पा) का अर्थ है बुराई करने के परिणामों का भय।

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 40 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 41 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 42

41. पन्नापरिहीनसुत्तम (प्रत्यक्ष ज्ञान का अभाव):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, वे प्राणी वास्तव में वंचित हैं जो श्रेष्ठ प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्न) से वंचित हैं। वे वर्तमान जीवन में कष्ट में रहते हैं—दुखी, निर्धन और बुखार से ग्रस्त—और मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, एक बुरे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है। “वे प्राणी वंचित नहीं हैं जो श्रेष्ठ प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्न) से वंचित नहीं हैं। वे वर्तमान जीवन में आराम से रहते हैं—दुखी, निर्धन और बुखार से मुक्त—और मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, एक अच्छे गंतव्य की अपेक्षा की जा सकती है।”
दुनिया को देखो

इसमें इसके दिव्य प्राणी भी शामिल हैं:

प्रत्यक्ष ज्ञान से वंचित (पन्ना),

नाम और रूप में निवास स्थान बनाना,

यह मानता है कि 'यही सत्य है।'

दुनिया में सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष समझ (पन्ना)

यही वह चीज है जो आगे ले जाती है

प्रवेश के लिए,

क्योंकि यह सही ढंग से पहचान करता है

जन्म और विकास (भाव) का पूर्ण अंत।

मनुष्य और दिव्य प्राणी

उन्हें प्रिय समझें:

जो स्वयं जागृत हैं,

ध्यानमग्न (ध्यान में),

उनके अंतिम शरीरों को ले जाते हुए

आनंदमय प्रत्यक्ष-समझ (पन्ना) के साथ।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 42. सुक्कधम्मसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 41 <<<पिछला || दो का अध्याय: इतिवुत्तक 42 || अगला >>> इतिवुत्तक 43

42. सुक्कधम्मसुत्तम (शर्म और ब्रह्मचर्य का महत्व)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा करते हैं। वे दो कौन से हैं? शर्म और संयम। यदि ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा न करते, तो “माता,” “मौसी,” “चाचा की पत्नी,” “गुरु की पत्नी,” या “सम्मान के योग्य पुरुषों की पत्नी” का भेद नहीं हो पाता। संसार व्यभिचार में डूब जाता, जैसे भेड़ें बकरियों के साथ, मुर्गे सूअरों के साथ, या कुत्ते सियार के साथ। परन्तु क्योंकि ये दो उज्ज्वल गुण संसार की रक्षा करते हैं, इसलिए “माता,” “मौसी,” “चाचा की पत्नी,” “गुरु की पत्नी,” और “सम्मान के योग्य पुरुषों की पत्नी” का भेद संभव है।”
जिनमें

शर्म और संकोच

हमेशा नहीं पाए जाते

भटक गए हैं

चमकीली जड़ से,

आगे बढ़ रहे हैं

जन्म और मृत्यु तक।

लेकिन जिनमें

शर्म और संकोच

हमेशा सही ढंग से स्थापित होते हैं,

जो पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन में परिपक्व हो चुके हैं:

वे शांत हैं।

उनका आगे का विकास (पुनर्जन्म)

सड़ गया।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 43. अजातसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 42 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 43 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 44

43. अजातसुत्तम् (एक पवित्र, निर्मल, दुःखरहित अवस्था है)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, एक अजन्मा[1] है—जो अजन्मा है—अनिर्मित है—अव्यक्त है। यदि वह अजन्मा—अजन्मा—अव्यक्त—अव्यक्त न होता, तो जन्म—जन्म—निर्मित—निर्मित से मुक्ति का ज्ञान न होता। परन्तु अजन्मा—अजन्मा—अव्यक्त—अव्यक्त होने के कारण ही जन्म—जन्म—निर्मित—निर्मित से मुक्ति का ज्ञान होता है।"
जन्म लेना, बनना, उत्पन्न होना,

निर्मित, गढ़ा हुआ, अस्थायी,

वृद्धावस्था और मृत्यु से निर्मित,

बीमारियों का एक घोंसला, नष्ट हो रहा है,

पोषण के माध्यम से अस्तित्व में आना

और वह मार्गदर्शक [जो लालसा करता है]—

आनंद के लिए अनुपयुक्त है।

उससे मुक्ति

है

शांतिपूर्ण, स्थायी,

एक ऐसा क्षेत्र जो अनुमानों से परे है,

अजन्मा, अउत्पादित,

दुःख रहित, निष्कलंक अवस्था,

कष्टदायी गुणों का अंत,

विचारों की शांति से मिलने वाला आनंद।

नोट:
1. कुछ विद्वानों का तर्क है कि “अजन्मा” शब्द का प्रयोग निर्वाण और पुनर्जन्म में अंतर करने के लिए नहीं किया जा सकता, क्योंकि कुछ प्रवचन (जैसे कि SN 15:3) यह कहते हैं कि पुनर्जन्म का कोई आरंभ बिंदु नहीं है, जिसका अर्थ है कि यह भी अजन्मा है। इसलिए उनका तर्क है कि इस अंश में ‘अजातम’ शब्द, यद्यपि भूतकालिक कृदंत है, का अनुवाद “जन्म रहित” होना चाहिए। हालांकि, यह तर्क दो संदिग्ध आधारों पर आधारित है। पहला, यह मान लेता है कि निर्वाण की तुलना यहाँ पुनर्जन्म से की जा रही है, जबकि अंश में केवल इसकी तुलना गढ़ी हुई चीज़ से की गई है। दूसरा, यदि यह मान भी लिया जाए कि “जन्म लेने वाला—बनने वाला”, आदि वाक्यांश पुनर्जन्म का संदर्भ है, तो भी विद्वानों का तर्क SN 15:3 की गलत व्याख्या पर आधारित है। वहाँ पुनर्जन्म का आरंभ बिंदु “अकल्पनीय” या “अज्ञात” बताया गया है। यह कहना कि यह अजन्मा है, इससे बहुत भिन्न है। यदि पुनर्जन्म अजन्मा होता, तो वह अकल्पनीय होता (देखें एएन 3:47), जो स्पष्ट रूप से सत्य नहीं है। अतः, इस शब्द का अनुवाद करते समय, मैंने "अजन्मा" शब्द को ही व्याकरणिक रूप से सत्य माना है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 44. निब्बानधातुसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 43 <<<पिछला || दो का अध्याय: इतिवुत्तक 44 || अगला >>> इतिवुत्तक 45

44. निर्वाण/निर्वाण क्या है?

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, निर्वाण के दो रूप हैं। वे कौन से दो हैं? शेष ईंधन के साथ निर्वाण, और शेष ईंधन के बिना निर्वाण।

और शेष ईंधन के साथ निर्वाण क्या है? एक ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु अरहंत है जिसके आसव (इच्छाएं/इच्छाएं) क्षीण हो गए हैं, जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, होने के बंधन (भाव) को नष्ट कर दिया है, और सही दिव्य जागृति के माध्यम से मुक्त हो गया है। उसकी पांच इंद्रियां अभी भी बनी हुई हैं और, उनके अक्षुण्ण होने के कारण, वह सुख और दुख का अनुभव करता है, और सुख और दुख के प्रति संवेदनशील है। उसके राग, घृणा और भ्रम का अंत शेष ईंधन के साथ निर्वाण कहलाता है।[1]

और क्या है? निर्वाह की मुक्ति (निब्बान) का वह रूप जिसमें कोई ईंधन शेष नहीं रहता? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु अरहंत है जिसके आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) क्षीण हो गए हैं, जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, होने के बंधन (भाव) को तोड़ दिया है, और सही दिव्य जागृति के माध्यम से मुक्त हो गया है। उसके लिए, जो कुछ भी इंद्रियों द्वारा अनुभव किया जाता है, वह आनंदहीन होकर यहीं ठंडा पड़ जाएगा।
इसे निर्वाह की मुक्ति का रूप कहा जाता है।

इन दोनों ने घोषणा की

दूरदर्शी व्यक्ति द्वारा,

निर्वाण (मुक्ति) के गुण एक स्वतंत्र हैं,

जो ऐसा है: [2]

इस जीवन में, एक ही संपत्ति है।

शेष ईंधन के साथ

[लालसा] के विनाश से,

भाव बनने की मार्गदर्शिका

और वह भी बिना ईंधन बचे,

इस जीवन के बाद,

जिसमें सभी भाव (भाव) बन जाते हैं

पूरी तरह से बंद हो जाता है।

जो लोग जानते हैं

यह अस्वाभाविक अवस्था,

उनके दिमाग मुक्त हो गए

[लालसा] के विनाश के माध्यम से,

बनने के लिए मार्गदर्शिका,

वे धम्म के सार को प्राप्त करके,

अंत में आनंद लेना,[3]

उन्होंने सभी प्रकार के विकास को त्याग दिया है:

वे, ऐसे।

टिप्पणी

1. ईंधन शेष (सा-उपादिशेष) और ईंधन न शेष (अनुपादिशेष): यहाँ उपमा आग से दी गई है। पहले मामले में, लपटें बुझ चुकी हैं, लेकिन अंगारे अभी भी सुलग रहे हैं। दूसरे में, आग इतनी पूरी तरह बुझ चुकी है कि अंगारे ठंडे पड़ गए हैं। यहाँ "ईंधन" पाँच स्कंद (खंड: रूप, भावनाएँ (संवेदनाएँ), बोध, विचार और चेतना: शब्दावली देखें) हैं। जब तक अरहंत जीवित रहता है, वह पाँच स्कंदों का अनुभव करता है, लेकिन वे राग, घृणा या भ्रम की आग से नहीं जलते। अरहंत के देहांत होने पर, यहाँ या कहीं और स्कंदों का कोई अनुभव नहीं रहता।
2. ऐसा (तदिन): यह विशेषण उस व्यक्ति का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है जिसने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। यह इंगित करता है कि व्यक्ति की स्थिति अवर्णनीय है और किसी भी प्रकार के परिवर्तन या प्रभाव के अधीन नहीं है।
3. बर्मी और पीटीएस संस्करणों में दिए गए पाठ के अनुसार: धम्म-सरदिगामा खाये राता। थाई संस्करण में लिखा है, धम्म-सरदिगामाक्खाये राता—धम्म के सार की प्राप्ति के अंत में आनंदित होना—जो तर्कसंगत नहीं है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 45. पतिसल्लनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 44 <<<पिछला || दो का अध्याय: इतिवुत्तक 45 || अगला >>> इतिवुत्तक 46

45. पतिसलानसुत्तम (वैराग्य):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, वैराग्य का आनंद लेते हुए, वैराग्य में प्रसन्नता पाते हुए, आंतरिक रूप से सजगता-शांति के प्रति समर्पित होकर, ध्यान (झान) का उपशामक न होकर, स्पष्ट दृष्टि से संपन्न होकर और एकांत भवनों में बार-बार जाकर जीवन व्यतीत करो। जब तुम वैराग्य का आनंद लेते हुए, वैराग्य में प्रसन्नता पाते हुए, आंतरिक रूप से सजगता-शांति के प्रति समर्पित होकर, ध्यान (झान) का उपशामक न होकर, स्पष्ट दृष्टि से संपन्न होकर और एकांत भवनों में बार-बार जाकर जीवन व्यतीत करोगे, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी क्षण दिव्य जागृति, या—यदि आसक्ति-पोषण का कोई अंश शेष हो—तो पुनर्जन्म न होना।"
शांत मन वाले लोग—

उत्कृष्ट,

ध्यानमग्न

ध्यान (सम्मोहन) में लीन—

धम्म को सही ढंग से स्पष्ट रूप से समझें,

कामुक सुखों में लिप्त न होना।

सतर्कता में आनंद लेते हुए,

शांत,

आलस्य में खतरा देखकर, वे

—जो दूर नहीं जा सकता—

वे निर्वाण (मुक्ति) की उपस्थिति में सही हैं।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 46. सिक्खनिसम्ससुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 45 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 46 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 47

46. सिक्खनिसंसासुत्तम् (अनुसरण योग्य प्रशिक्षण):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, उच्चतर सद्गुण, उच्चतर मन और उच्चतर प्रत्यक्ष-ज्ञान (पन्ना) के प्रशिक्षणों को अपने पुरस्कार के रूप में ग्रहण करो, प्रत्यक्ष-ज्ञान (पन्ना) को सर्वोपरि रखते हुए, सार (मोक्ष) को मुक्त करो, और सजगता को मार्गदर्शक सिद्धांत मानो। जब आप प्रशिक्षणों को अपने पुरस्कार के रूप में ग्रहण करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान (पन्ना) को सर्वोपरि रखते हुए, सार (मोक्ष) को मुक्त करते हैं, और सजगता को मार्गदर्शक सिद्धांत मानते हैं, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी क्षण में दिव्य जागृति, या—यदि आसक्ति-पोषण का कोई अंश शेष रहे तो अप्रतिदेयता।”
प्रशिक्षण पूरा करें,

पतन के अधीन नहीं,[1]

प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान (पन्ना) प्राप्त करने वाला व्यक्ति

सबसे ऊपर,

जन्म के रुकने, उसके अंत को देखना:

वह ऋषि

उसका अंतिम शरीर धारण किए हुए है,

उसने मारा (मृत्युदेवता) से छुटकारा पा लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।

यह उम्र बढ़ने की सीमा को पार कर चुका है।

तो, हमेशा

ध्यान में आनंदित होना,

केंद्रित (समाधि की अवस्था में),

उत्साही (प्रयास करते हुए),

पुनर्जन्म के रुकने, उसके अंत को देखकर,

मारा (राक्षस) और उसकी सेनाओं पर विजय प्राप्त करना,[2]

भिक्षुओं,

बुढ़ापे और मृत्यु से परे, विदा हो जाओ।

टिप्पणी:
1. श्रीलंका के एक संस्करण में पाया गया पाठ: अपरिहाना-धम्मम है। थाई, बर्मी और एक अन्य श्रीलंकाई संस्करण में अपहाना-धम्मम है, जिसका अर्थ है "त्याग के अधीन नहीं", जो छंद के अनुकूल तो है, लेकिन श्लोक के अर्थ से मेल नहीं खाता। टीका अधिक प्रचलित पाठ का अर्थ "भटकने के अधीन नहीं" बताती है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं करती कि ऐसा कैसे हो सकता है।
2. सं. 3:2 में मारा (शैतान) की सेनाओं को इस प्रकार पहचाना गया है: कामुक वासनाएँ; असंतोष; भूख और प्यास; लालसा; आलस्य और सुस्ती; आतंक; अनिश्चितता; पाखंड और हठ; लाभ, भेंट, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा; और स्वयं की प्रशंसा करते हुए दूसरों को नीचा दिखाने का रवैया।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 47. जगरियासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 46 <<<पिछला ‖ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 47 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 48

47. जागृति सूत्र (जागरूकता):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, एक भिक्षु को जागृत रहना चाहिए: ध्यान में एकाग्र, पूर्णतः सतर्क, समाधि में केंद्रित, आनंदित, सतर्क (विपश्यना) और उचित समय पर लाभकारी धर्म में शांत रहना चाहिए। और वहां उसे उचित समय पर, कुशल मानसिक गुणों में अंतर्दृष्टिपूर्ण रूप से सतर्क (विपश्यना) रहना चाहिए। जो भिक्षु जागृत है—ध्यान में एकाग्र, पूर्णतः सतर्क, समाधि में केंद्रित, आनंदित, सतर्क (विपश्यना) और उचित समय पर लाभकारी धर्म में शांत, कुशल मानसिक गुणों में—उसके लिए दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी क्षण दिव्य जागृति, या—यदि आसक्ति-पोषण का कोई अवशेष हो—तो पुनर्जन्म नहीं।”
जो लोग जागरूक हैं, वे इसे ध्यान से सुनें!

जो सो रहे हैं, जाग जाओ!

नींद से बेहतर जागना है।

जो लोग जागरूक हैं,

कोई खतरा नहीं, कोई डर नहीं।

जो कोई भी जागृत है,

ध्यानमग्न

पूरी तरह सतर्क,

समाधि की अवस्था में केंद्रित,

आनंदित, सतर्क (विपस्सनो),

एवं कल्याणकारी धर्म में शांत रहना,

उचित समय पर,

वह (अतींद्रिय के साथ) एकात्म हो जाने पर

अंधकार को चीर सकता है।

इसलिए जागरूकता के प्रति समर्पित रहें।

उत्साही, परिश्रमी भिक्षु

— निपुण, ध्यान (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करना,

पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के बंधन को तोड़ना—

ठीक यहीं स्पर्श करें

अद्वितीय आत्मबोध (समबोधि)।

टिप्पणी:
विपश्यना/विपस्सिनो/विपसन्नास्सा - अंतर्दृष्टिपूर्ण सतर्कता (समभाव के साथ)। यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक अंतर्दृष्टिपूर्ण ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति को आंतरिक घटनाओं (शरीर+मन+भावनाएँ+संवेदनाएँ) को अनासक्ति (समभाव/समभाव) के साथ देखना होता है, जिससे उसे शांति, आत्म-जागरूकता और ज्ञान की प्राप्ति होती है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 48. अपायिकासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 47 <<<पिछला॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 48 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 49

48. अपयिकसुत्तम (ब्रह्मचर्य न मानने से नरक होता है)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने भी यही कहा है, जैसा मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये दो लोग अपने आचरण का त्याग न करने के कारण नरक में जाने के लिए अभिशप्त हैं। वे कौन से दो हैं? एक वह जो ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करने का दिखावा करता है; और दूसरा वह जो पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले पर बिना किसी आधार के ब्रह्मचर्य का पालन न करने का आरोप लगाता है। ये दो लोग अपने आचरण का त्याग न करने के कारण नरक में जाने के लिए अभिशप्त हैं।”
वह नरक में जाता है।

जो दावा करता है

जो घटित नहीं हुआ,

जैसा कि वह भी करता है

जिसने ऐसा करने के बाद,

वह कहता है, 'मैंने नहीं किया।'

दोनों—कम अभिनय क्षमता वाले लोग—

वहाँ बराबर हो जाते हैं:

मृत्यु के बाद, परलोक में।

उनके गले में गेरू रंग का वस्त्र बंधा हुआ था।

कई लोगों में बुरे गुण होते हैं

बेलगाम, दुष्ट

उनके बुरे कर्मों के कारण, वे पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

नरक में।

लोहे की गेंद खाना बेहतर है

—चमकते हुए, जलते हुए—

इससे भी बढ़कर, सिद्धांतहीन और

अनियंत्रित,

तुम्हें देश की भीख खानी चाहिए।

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 48 <<<पिछला ॥ दो का अध्याय: इतिवुत्तक 49 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 50

49. दित्थिगतसुत्तम् (दार्शनिक दृष्टिकोणों का दोष)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"दो दृष्टिकोणों से अभिभूत होकर, हे भिक्षुओं, कुछ मनुष्य और दैवीय प्राणी पालन करते हैं, अन्य मनुष्य और दैवीय प्राणी इससे भटक जाते हैं, जबकि दूरदृष्टि वाले देखते हैं।
"और कुछ कैसे पालन करते हैं? मनुष्य और दैवीय प्राणी होने (भाव) का आनंद लेते हैं, होने (भाव) में प्रसन्न होते हैं, होने (भाव) से संतुष्ट होते हैं। जब धम्म का उपदेश होने (भाव) के निवारण के लिए दिया जाता है, तो उनका मन इसे ग्रहण नहीं करता, इससे शांत नहीं होता, इस पर स्थिर नहीं होता या इस पर दृढ़ संकल्पित नहीं होता। इस प्रकार कुछ लोग पालन करते हैं।"

"और कुछ लोग कैसे बच निकलते हैं? कुछ लोग, उस भाव से भयभीत, अपमानित और घृणाग्रस्त होकर, अस्तित्वहीनता में आनंदित होते हैं: 'जब यह आत्मा, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, नष्ट हो जाती है और मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन हो जाती है, तो वह शांति है, वह उत्कृष्टता है, वह पूर्णता है!' इस प्रकार कुछ लोग बच निकलते हैं।

"और दूरदर्शी कैसे देखते हैं? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु जो कुछ भी हुआ है उसे उसी रूप में देखता है। जो कुछ भी हुआ है उसे उसी रूप में देखकर, वह उसके प्रति अनासक्ति, उसके प्रति वैराग्य और उसके अंत का अभ्यास करता है। इस प्रकार दूरदर्शी देखते हैं।"
जिन्होंने देखा है

जो हो गया है

जैसा कि अब हो रहा है,

और जो कुछ उससे आगे बढ़ गया है

जो कुछ हुआ है,

क्रम से जारी किए जाते हैं

जो कुछ हो चुका है, उसके साथ

लालसा (तन्हा) की समाप्ति के माध्यम से

(भाव) बनने के लिए।

अगर उन्हें समझ आ गया है

जो कुछ हुआ है,

और लालसा (तन्हा) से मुक्त हैं।

बनने और न बनने के लिए,

अनुपयुक्त के साथ

जो कुछ भी हो चुका है,

भिक्षु आते हैं

आगे और न बनने की स्थिति (भाव)।

नोट: 1. यह प्रवचन तकनीकी रूप से उचित ध्यान के कार्य को दर्शाता है, जैसा कि क्रमांक 16 के नोट में समझाया गया है। एसएन 12:15 इसी बिंदु को एक अलग दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है: "यह संसार अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की ध्रुवीयता को अपना विषय बनाता है। लेकिन जब कोई सही प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान (पन्ना) के साथ संसार की उत्पत्ति (यानी छह इंद्रियों और उनके विषयों) को देखता है, तो संसार के संदर्भ में 'गैर-अस्तित्व' का विचार मन में नहीं आता। जब कोई सही प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान (पन्ना) के साथ संसार के अंत को देखता है, तो संसार के संदर्भ में 'अस्तित्व' का विचार मन में नहीं आता। कुल मिलाकर, यह संसार आसक्ति, मोह और पूर्वाग्रहों के बंधन में है। लेकिन ऐसा व्यक्ति इन आसक्ति, मोह, जागरूकता की स्थिरता, पूर्वाग्रहों या जुनूनों में संलग्न नहीं होता है और न ही इनसे चिपका रहता है; न ही वह 'मैं' पर केंद्रित होता है।" उन्हें इस बात का कोई संदेह या शंका नहीं है कि दुख उत्पन्न होने पर उत्पन्न होता है; दुख समाप्त होने पर समाप्त हो जाता है। इस मामले में उनका ज्ञान दूसरों से स्वतंत्र है। कच्छायन, सही दृष्टिकोण इसी हद तक है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 50. मूलसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 49 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 50 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 51

50. मूलसुत्तम (असुरक्षा के मूल)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, असुरक्षा के ये तीन मूल हैं। वे तीन कौन से हैं? असुरक्षा का मूल लोभ है, असुरक्षा का मूल घृणा है, असुरक्षा का मूल मोह है। ये असुरक्षा के तीन मूल हैं।"
लोभ, घृणा और भ्रम विनाश करते हैं।

वही दुष्ट मानसिकता वाला व्यक्ति

जिनसे वे पैदा हुए हैं,

फलने-फूलने की तरह

बांस का।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 51. धातुसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 50 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 51 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 52

51. धातुसुत्तम (अमरता के गुण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन गुण हैं। कौन से तीन? रूप का गुण, निराकार का गुण, और निर्वाह का गुण। [1] ये तीन गुण हैं।"
रूप के गुण को समझना,

निराकार में कोई रुख न अपनाना,

निरोध में रिहा किए गए लोग

ये वे लोग हैं जिन्होंने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है।

अपने शरीर से स्पर्श करने के बाद

अमरता

संपत्ति मुक्त

उपाधि (मानसिक अर्जितियों/गुणों) से,

त्याग का अहसास होने पर

उपाधि का,

असावा (चाहत/इच्छा)-मुक्त,

सही

स्वयंजागृत व्यक्ति (बुद्ध)

राज्य को सिखाता है

बिना किसी दुःख के,

धूल नहीं।

नोट: 1. रूप का गुणधर्म, ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) के प्रथम चार स्तरों में उपस्थित शरीर के रूप के अनुभव से संबंधित है। निराकार का गुणधर्म, ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) के चौथे स्तर पर आधारित निराकार अनुभवों से संबंधित है: अनंत अंतरिक्ष का आयाम, अनंत चेतना का आयाम, शून्यता का आयाम और न तो बोध और न ही अबोध का आयाम। दुख के पूर्ण निवारण (केंद्रीय आत्म-जागरूकता) का गुणधर्म दुख के पूर्ण निवारण का अनुभव है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 52. पथमवेदानसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 51 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 52 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 53

52. पथमावेदनासुत्तम (तीन प्रकार की संवेदनाएँ):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये तीन संवेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुख की संवेदना, दुख की संवेदना, और न सुख न दुख की संवेदना। ये तीन भावनाएँ हैं।”
समाधि की अवस्था में,

पूर्णतः जागरूक (स्वयं के भीतर),

केंद्रित,

बुद्ध का

शिष्य

संवेदनाओं को पहचानता है,

संवेदनाएं किस प्रकार भूमिका निभाती हैं,

जहां वे समाप्त हो जाते हैं,

और उनके अंत का मार्ग।

संवेदनाओं के अंत के साथ, एक भिक्षु

इच्छा से मुक्त

पूर्णतया बंधनमुक्त (निर्वाण प्राप्त)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 53. दुतियावेदनासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 52 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 53 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 54

53. दुतियावेदनसुत्तम् (ध्यान में संवेदनाओं को कैसे देखें)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन संवेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुख की संवेदना, दुख की संवेदना, और न सुख की संवेदना।

(1) सुख की संवेदना को दुखदायी समझना चाहिए।

(2) दुख की संवेदना को तीर के समान समझना चाहिए।

(3) न सुख की संवेदना को अस्थिर समझना चाहिए।

जब कोई भिक्षु सुख की संवेदना को दुखदायी, दुख की संवेदना को तीर के समान और न सुख की संवेदना को अस्थिर समझता है, तब वह श्रेष्ठ, सही दृष्टि वाला, तृष्णा (तन्हा) का नाश करने वाला, बंधनों को तोड़ने वाला और अहंकार को सही ढंग से तोड़कर दुख और पीड़ा का अंत करने वाला भिक्षु कहलाता है।"
जो भी देखता है

सुख ही दुख है,

दर्द को तीर की तरह देखता है,

शांति को न तो सुख दिखता है और न ही दुख

अस्थिर के रूप में:

वह एक भिक्षु है

जो समभाव से देखा जाता है।

उसे वहाँ से रिहा कर दिया गया।

प्रत्यक्ष ज्ञान का उस्ताद,

शांति में, (एक योगी),

वह एक ऋषि हैं

बंधनों से परे चला गया।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 54. पथमेसनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 53 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 54 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 55

54. पथमेसनसुत्तम (खोज प्रवृत्ति का अंत)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन खोजें (एस्ना) हैं। कौन सी तीन? कामुकता की खोज, भव की खोज, और ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं।"
केंद्रित (समाधि की अवस्था में),

पूर्णतः जागरूक (स्वयं के भीतर),

एकाग्रचित्त (ध्यान में),

बुद्ध का

शिष्य

खोजों को पहचानता है,

खोज किस प्रकार भूमिका निभाती है,

जहां वे समाप्त हो जाते हैं,

और उनके अंत का मार्ग।

खोज समाप्त होने के साथ ही, एक भिक्षु

इच्छा से मुक्त

पूर्णतया बंधनमुक्त (निर्वाण प्राप्त)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 55. दुतियासनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 54 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 55 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 56

55. दुतियाएशनसुत्तम (तीन प्रकार की खोज प्रवृत्तियाँ)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? कामुकता की खोज, भाव की खोज, और ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं।”
इंद्रिय-खोज, विकास-खोज,

पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन की खोज के साथ-साथ—

यानी, सत्य को हथियाने की कोशिश करना

संचय के आधार पर

दृष्टिकोणों के बारे में:

खोजों को त्यागने के माध्यम से

और (दार्शनिक) दृष्टिकोणों का उन्मूलन

किसी निष्पक्ष व्यक्ति का

सभी जुनून (राग),

और अंत में जारी किया गया

लालसा (तन्हा) की

खोजों के अंत के माध्यम से, भिक्षु

बिना उलझन के, मुक्त

लालसा की।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 56. पथमासावसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 55 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 56 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 57

56. पथमासवसुत्तम (तीन प्रकार की इच्छाएँ/इच्छाएँ):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) हैं। कौन से तीन? कामुकता का आसव, भाव का आसव, अज्ञान का आसव (अविज्ज)। ये तीन आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) हैं।"
केंद्रित (समाधि की अवस्था में),

पूर्णतः जागरूक (स्वयं के भीतर),

एकाग्रचित्त (ध्यान में),

बुद्ध का

शिष्य

आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) को पहचानता है,

आसव किस प्रकार भूमिका निभाते हैं,

जहां वे समाप्त हो जाते हैं,

और उनके अंत का मार्ग।

आसवों के समाप्त होने के साथ, एक भिक्षु

लालसा से मुक्त (तन्हा)

पूर्णतया बंधनमुक्त (निर्वाण प्राप्त)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 57. दुतियासवसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 56 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 57 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 58

57. दुतियासवसुत्तम (इच्छाओं का अंत):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) हैं। कौन से तीन? कामुकता का आसव, भाव का आसव, अज्ञान का आसव (अविज्ज)। ये तीन आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) हैं।"
उसकी कामुकता की आसव (चाहत/इच्छा)

सड़ गया,

उसका अज्ञान (अविज्जा)

फीका है,

उसका भाव (भाव)

थका हुआ:

एक पूर्णतः मुक्त, उपाधि (गुणों) से रहित,

उसका अंतिम शरीर धारण किए हुए है,

मारा (मृत्युदेवता) पर विजय प्राप्त करने के बाद

अपने घोड़े के साथ।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 58. तन्हासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 57 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 58 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 59

58. तन्हासुत्तम (तीन प्रकार की तृष्णाएँ)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की तृष्णाएँ (तन्हा) हैं। कौन सी तीन? कामुकता की तृष्णा, भाव की तृष्णा, और अनभाव की तृष्णा। ये तीन प्रकार की तृष्णाएँ (तन्हा) हैं।”
लालसा (तन्हा) के बंधन से बंधा हुआ,

उनके मन मोहित हो गए

भाव और गैर- के साथ

वे मारा (मृत्यु के देवता) के बंधन में जकड़े हुए हैं।

जिन लोगों को गुलामी से कोई सुरक्षा नहीं है,

भटकते हुए प्राणी,

जन्म और मृत्यु की ओर अग्रसर।

जबकि जिन्होंने लालसा (तन्हा) का त्याग कर दिया है,

भाव और अनात्म बनने की लालसा (तन्हा) से मुक्त।

आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत तक पहुँचना,

हालांकि दुनिया में,

आगे बढ़ गए हैं।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 59. मराधेयसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 58 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 59 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 60

59. मराधेय्यासुत्तम (मृत्यु के देवता, राक्षस मरा पर विजय कैसे प्राप्त करें):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"तीन गुणों से युक्त, भिक्षु मरा (राक्षस) के क्षेत्र (भौतिक संसार और पुनर्जन्म) से परे जाकर सूर्य के समान चमकता है। वे तीन गुण कौन से हैं? एक स्थिति वह है जब भिक्षु प्रशिक्षण से परे व्यक्ति (अर्थात अरहंत) के सद्गुणों (नैतिकता, शील) के समूह, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि (सम्मोहन) के समूह और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) के समूह से युक्त होता है। इन तीन गुणों से युक्त भिक्षु मरा के क्षेत्र से परे जाकर सूर्य के समान चमकता है।"
शील (सद्गुण), समाधि (सम्मोहन), पन्ना (दिव्य अंतर्दृष्टि):

जिसमें ये गुण अच्छी तरह विकसित हों,

मारा के क्षेत्र से परे जाते हुए,

(शैतान का क्षेत्र - भौतिक संसार, इच्छाएँ, दुख, मृत्यु, पुनर्जन्म)

चमकता

सूर्य की तरह।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 60. पुन्नकिरियावत्थुसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 59 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 60 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 61

60. पुन्नकिरियावत्थुसुत्तम् (पुण्य कैसे प्राप्त करें):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, पुण्य कर्म के ये तीन आधार हैं। वे तीन कौन से हैं? दान से उत्पन्न पुण्य कर्म का आधार, सद्गुण (नैतिकता, शील) से उत्पन्न पुण्य कर्म का आधार, और ध्यान में बोध से उत्पन्न पुण्य कर्म का आधार। ये पुण्य कर्म के तीन आधार हैं।”
पुण्य कर्मों में प्रशिक्षण प्राप्त करें

जो परमानंद का सर्वोपरि लाभ प्रदान करते हैं—

उदारता (दान करने की भावना) विकसित करना,

एक ऐसा जीवन जो धार्मिकता के अनुरूप हो।

सद्भावपूर्ण मन।

इनका विकास करना

तीन बातें

जो आनंद लाते हैं,

बुद्धिमान लोग पुनः प्रकट होते हैं

आनंद की दुनिया में

शुद्ध।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 61. चक्खुसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 60 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 61 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 62

61. चक्खुसुत्तम (आँखें और दिव्य आँखें)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये तीन आँखें हैं। कौन सी तीन? देह की आँख, दिव्य आँख, [1] और प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) की आँख। ये तीन आँखें हैं।”
मांस की आंख,

दिव्य दृष्टि,

प्रत्यक्ष ज्ञान की दृष्टि (पन्ना) अतुलनीय है:

इन तीनों आँखों को सिखाया गया था

सर्वोत्कृष्ट पुरुष द्वारा।

मांस की आंख (जागरूकता) का उदय

क्या यही दिव्य दृष्टि का मार्ग है?

जब समझ उत्पन्न होती है,

प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) की दृष्टि अतुलनीय (प्राप्त) है:

जो भी इस आंख को प्राप्त करेगा

सभी दुखों और पीड़ाओं से मुक्त है।

जारी किया।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 62. इंद्रियसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 61 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 62॥ अगला >>> इतिवुत्तक 63

62. इंद्रियसूत्तम् (ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञात की शक्तियाँ)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? 'मैं उस ज्ञान को जानने वाला हूँ जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है' की शक्ति, अंतिम ज्ञान की शक्ति, और उस व्यक्ति की शक्ति जिसने अंततः ज्ञान प्राप्त कर लिया है।[1] ये तीन शक्तियाँ हैं।”
प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थी के लिए

सीधे रास्ते पर:

सर्वप्रथम, अंत का ज्ञान;

फिर, तुरंत,

जागृति;

फिर, अंत से

बंधन का—बनना—

ज्ञान तो है ही,

एक मुक्त व्यक्ति का जागरण

जो ऐसा है: [2]

'मेरी रिहाई बिना किसी उकसावे के हुई है।' [3]

इन क्षमताओं में निपुण व्यक्ति,

शांतिपूर्ण,

शांतिपूर्ण अवस्था का आनंद लेते हुए,

उसका अंतिम शरीर धारण किए हुए है,

मारा (मृत्युदेवता) पर विजय प्राप्त करने के बाद

अपने घोड़े के साथ।

टिप्पणी:
1. टीका के अनुसार, इन क्षमताओं में से पहली क्षमता प्रथम श्रेष्ठ प्राप्ति, यानी जलप्रवेश के मार्ग से संबंधित है; दूसरी क्षमता जलप्रवेश की प्राप्ति से लेकर अरहंतत्व के मार्ग तक की अगली छह प्राप्तियों से संबंधित है; और तीसरी क्षमता सर्वोच्च प्राप्ति, यानी अरहंतत्व की प्राप्ति से संबंधित है। इस इतिवुत्तक का गद्य भाग एसएन 48:23 पर दोहराया गया है। एसएन 12:70, एएन 3:86 और क्रमांक 102 भी देखें।
2. ऐसा (तदिन): क्रमांक 44 की टिप्पणी देखें।
3. अकुप्पा। इस शब्द का अनुवाद कभी-कभी "अविचल" के रूप में किया जाता है, लेकिन इसका शाब्दिक अर्थ है, "अविचलित"। यह स्पष्ट रूप से धातु के सिद्धांत, या प्रकृति में भौतिक या मनोवैज्ञानिक घटनाओं के अंतर्निहित गुणों को संदर्भित करता है। इस सिद्धांत के अनुसार भौतिक गुण चार हैं: पृथ्वी (ठोसता), द्रव, ऊष्मा और वायु (गति)। इनमें से तीन - द्रव, ऊष्मा और वायु - संभावित रूप से सक्रिय हैं। जब वे उत्तेजित, व्याकुल या उकसाए जाते हैं—यहाँ पाली शब्द 'पकुप्पति' का प्रयोग मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी किया गया है, जिसका अर्थ है क्रोधित या परेशान—तो वे प्राकृतिक क्रिया के मूल कारण के रूप में कार्य करते हैं। उकसावा समाप्त होने पर, संबंधित क्रिया शांत हो जाती है। यद्यपि क्रमांक 44 में निर्वाण के दो गुण बताए गए हैं, ये दोनों गुण इस मायने में विशिष्ट हैं कि निर्वाण का अनुभव इनके उकसावे से उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि सच्ची मुक्ति किसी भी चीज के उकसावे से उत्पन्न नहीं होती—यह तथ्य अनुभव के तुरंत बाद ही ज्ञात हो जाता है—इसलिए यह परिवर्तन के अधीन नहीं है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 63. अद्धसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 62 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 63 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 64

63. अद्धसुत्तम (काल):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन काल हैं। कौन से तीन? भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल। ये तीन काल हैं।"
संकेतों, प्राणियों के संदर्भ में बोध करना

संकेतों पर अपना रुख स्पष्ट करें।

संकेतों को पूरी तरह से न समझ पाने के कारण, वे

बंधनों में आना

मौत की।

लेकिन संकेतों को पूरी तरह से समझना, एक

किसी संकेतक की व्याख्या नहीं करता।

मन से मुक्ति को स्पर्श करते हुए,

अद्वितीय शांति की स्थिति।

संकेतों के संदर्भ में पूर्ण,

शांतिपूर्ण,

शांतिपूर्ण अवस्था का आनंद लेते हुए,

विवेकपूर्ण,

ज्ञान प्राप्त करने वाला

वर्गीकरणों का उपयोग करता है

लेकिन इसे वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी: 1. पहली नज़र में, यहाँ दिए गए श्लोक गद्य प्रस्तावना से अधिक संबंधित नहीं लगते। हालाँकि, यदि इन्हें एमएन 2 (संख्या 16 की टिप्पणी देखें) के संदर्भ में देखा जाए, तो इनका संबंध स्पष्ट हो जाता है: जो व्यक्ति भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की अवधारणा पर उचित ध्यान देता है, वह स्वयं को इन शब्दों में परिभाषित नहीं करता, और इसलिए इन शब्दों में किसी भी प्रकार की आत्म-पहचान से आसक्त नहीं रहता। आसक्ति के बिना, व्यक्ति जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 64. दुकारितासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 63 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 64 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 65

64. दुच्चरितसुत्तम (दुराचार नरक की ओर ले जाता है)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, दुराचार के ये तीन प्रकार हैं। कौन से तीन? शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार, मानसिक दुराचार।[1] ये दुराचार के तीन प्रकार हैं।"
संलग्न होने के बाद

शारीरिक दुर्व्यवहार में,

मौखिक दुर्व्यवहार के कृत्य,

मानसिक दुराचार

या जो भी अन्य त्रुटिपूर्ण हो,

उचित कार्य न करने के कारण,

बहुत कुछ ऐसा करने के बाद जो उचित नहीं है,

शरीर के विखंडन के समय,

अविवेकी व्यक्ति पुनः प्रकट होता है

नरक।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 65. सुकारितासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 64 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 65 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 66

65. सुचरितसुत्तम (सद्गुण स्वर्ग की ओर ले जाता है)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, तीन प्रकार के सद्गुण होते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? शारीरिक सद्गुण, वाणी सद्गुण, मानसिक सद्गुण। ये तीन प्रकार के सद्गुण हैं।"

त्यागने के बाद

शारीरिक दुर्व्यवहार,

मौखिक दुर्व्यवहार के कृत्य,

मानसिक दुराचार

और जो कुछ भी अन्य त्रुटिपूर्ण है,

जो कार्य कुशल नहीं है, उसे न करने के कारण,

बहुत कुछ करने के बाद,

शरीर के विखंडन के समय,

विवेकशील व्यक्ति पुनः प्रकट होता है

स्वर्ग में।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 66. सोसेयसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 65 <<<पिछला ‖ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 66 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 67

66. समाज्यसुत्तम (शुद्धता):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, शुद्धता के ये तीन प्रकार हैं। कौन से तीन? शारीरिक शुद्धता, वाणी की शुद्धता, मानसिक शुद्धता। ये शुद्धता के तीन प्रकार हैं।”
शरीर से शुद्ध,

वाणी में शुद्ध,

शुद्ध चेतना (मन)

—आसव (चाहत/इच्छा)-मुक्त—

जो स्वच्छ हो,

स्वच्छता में निपुण,

ऐसा कहा जाता है कि उसने त्याग दिया है

सभी।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 67. मनीयासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 66 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 67 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 68

67. धन्यसूत्त (संतत्व के प्रकार)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, संतत्व के ये तीन रूप हैं। कौन से तीन? शारीरिक संतत्व, वाणी का संतत्व, मानसिक संतत्व। ये संतत्व के तीन रूप हैं।"
शरीर से संत, वाणी से संत

मन से संत, आसव (इच्छा/इच्छा) से मुक्त:

एक संत जो संतत्व से परिपूर्ण है

ऐसा कहा जाता है कि स्नान करने से बुरी शक्तियां दूर हो जाती हैं।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 68. पथमारगसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 67 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 68 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 69

68. पथमरगसुत्तम (वासना):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जिसकी वासना (राग) निःस्वार्थ है, जिसकी घृणा (दोष) निःस्वार्थ है, जिसका मोह (मोह) निःस्वार्थ है, वह मारा (राक्षस) के शिविर में चला गया है, मारा के वश में आ गया है। राक्षस उस व्यक्ति के साथ जैसा चाहे कर सकता है। परन्तु जिसकी वासना निःस्वार्थ है, जिसकी घृणा निःस्वार्थ है, जिसका मोह (मोह) निःस्वार्थ है, वह मारा के शिविर में नहीं गया है, उसने मारा के वश से मुक्त हो गया है। राक्षस उस व्यक्ति के साथ जैसा चाहे नहीं कर सकता।"
कोई भी

जिसका राग (राग), द्वेष (डोसा), और अज्ञान (अविज्जा)

लुप्त हो गए हैं,

ऐसा कहा जाता है

मन को शांत रखते हुए,

ब्रह्मा-बनना (प्रधानदेव),

जागृत, तथागत (परलोक चले गए),

जिसके लिए भय और शत्रुता

अतीत हैं,

जो त्याग दिया गया हो

सभी।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 69. दुतियारागसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 68 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 69 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 70

69. दुतियारागसुत्तम (वासना)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, कोई भी—भिक्षु या भिक्षुणी—जिसमें वासना (राग) का त्याग नहीं हुआ है, घृणा (दोष) का त्याग नहीं हुआ है, और मोह (मोह) का त्याग नहीं हुआ है, ऐसा कहा जाता है कि उसने लहरों, बवंडरों, भंवरों, पकड़ने वालों और राक्षसों सहित सागर को पार नहीं किया है।[1] कोई भी—भिक्षु या भिक्षुणी—जिसमें वासना, घृणा और मोह का त्याग हो गया है, ऐसा कहा जाता है कि उसने लहरों, बवंडरों, भंवरों, पकड़ने वालों और राक्षसों सहित सागर को पार कर लिया है। पार करके, दूर तट पर पहुँचकर, वह उच्च स्थान पर खड़ा होता है, एक ब्राह्मण।"
वह जिसका राग (राग), द्वेष (डोसा), और अज्ञान (अविज्जा)

लुप्त हो गए हैं,

इस महासागर को पार कर चुका है

अपने ज़ब्तीकर्ताओं के साथ,

राक्षस,

खतरनाक लहरें,

पार करना बहुत मुश्किल है।

उपाधि (मानसिक गुणों) से मुक्त

बंधनों पर विजय प्राप्त की गई,

मृत्यु ने त्याग दिया—

उसने पीड़ा का त्याग कर दिया है

आगे कोई और भाव उत्पन्न नहीं होता।

लक्ष्य तक पहुँचने के बाद

वह अपरिभाषित है,[2]

उसने मात दे दी है, मैं तुम्हें बताता हूँ।

मृत्यु का राजा (मारा)।

टिप्पणी:

1. क्रमांक 109 देखें।
2. क्रमांक 63 देखें। अरहंत के अपरिभाषित होने पर आगे की चर्चा के लिए, एसएन 23:2, एसएन 22:36 और प्रश्नों में कौशल, परिशिष्ट चार देखें।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 70. मिच्चादित्तिकासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 69 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 70 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 71

70. मिच्छदित्तिकसुत्तम् (गलत आचरण का परिणाम)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार से ग्रस्त थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए—मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, नरक में, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट हुए हैं। यह मैंने किसी अन्य तपस्वी (भिक्षु) या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कहा है कि मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार से ग्रस्त थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए—मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट हुए हैं। यह वह लोक है, नरक। मैंने स्वयं इसे जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं अनुभव किया है, इसलिए मैं आपको बताता हूँ कि मैंने ऐसे प्राणियों को

देखा है जो शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार से ग्रस्त थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में आकर कर्म किए—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, एक निम्न लोक, एक बुरे गंतव्य, एक निचले लोक, नरक में पुनः प्रकट हुए हैं।
गलत दिशा में निर्देशित मन के साथ,

गलत बात बोलना,

शरीर के साथ गलत काम करना:

यहां एक व्यक्ति

लगभग नगण्य ज्ञान के कारण,

बुराई करने वाला

इस लगभग नगण्य जीवन में,

शरीर के विखंडन के समय,

अविवेकी,

नरक में पुनः प्रकट होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 71. सम्मदित्तिकासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 70 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 71 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 72

71. सम्मदित्तिकसुत्तम् (धार्मिक आचरण का परिणाम)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो शारीरिक रूप से अच्छे आचरण, मौखिक रूप से अच्छे आचरण और मानसिक रूप से अच्छे आचरण से संपन्न थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुए हैं। यह मैंने किसी अन्य तपस्वी (भिक्षु) या ब्राह्मण (पुजारी) से सुनकर आपको नहीं बताया है कि मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो शारीरिक रूप से अच्छे आचरण, मौखिक रूप से अच्छे आचरण और मानसिक रूप से अच्छे आचरण से संपन्न थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुए हैं। यह मैंने स्वयं इसे जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं इसका अनुभव किया है, इसलिए मैं आपको बताता हूँ कि मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से अच्छे आचरण से संपन्न थे; जिन्होंने श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कार्य किए—शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुए।
सही दिशा में निर्देशित मन के साथ,

सही वाणी बोलना,

शरीर से सही कर्म करना:

यहां एक व्यक्ति

बहुत ज्ञानवान,

पुण्य कर्म करने वाला

इस लगभग नगण्य जीवन में,

शरीर के विखंडन के समय,

विवेकशील,

स्वर्ग में पुनः प्रकट होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 72. निस्सारण्यसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 71 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 72 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 73

72. निस्सारनियासुत्तम (मुक्ति का ज्ञान)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, मुक्ति के ये तीन गुण हैं। वे कौन से तीन हैं? यह इंद्रिय सुख से मुक्ति है: त्याग।[1] यह रूप से मुक्ति है: निराकारता। और जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, जो निर्मित है और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है, उससे मुक्ति का साधन है निश्चलता। ये मुक्ति के तीन गुण हैं।”

कामुकता से मुक्ति का मार्ग जानकर,

और रूपों पर विजय प्राप्त करना

— उत्साही

हमेशा-

शांत करने को छूना

सभी संस्कारों (मनगढ़ंत बातों/पापों/आदतों) में से:

वह एक भिक्षु है

जो समभाव से देखा जाता है।

उसे वहाँ से रिहा कर दिया गया।

प्रत्यक्ष ज्ञान का उस्ताद,

शांति पर,

वह एक ऋषि (योगी) हैं।

बंधनों से परे चला गया।

नोट: 1. यहाँ त्याग का तात्पर्य ध्यान (सम्मोहन) की प्रथम अवस्था से है, जो इंद्रिय सुख और अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त होने पर प्राप्त होती है। निराकारता और निराकारता के विषय में, क्रमांक 51 की टिप्पणी देखें। एएन 5:200 भी देखें।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 73. संततरसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 72 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 73 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 74

73. संतारासुत्तम् (शांतिपूर्ण घटनाएँ)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, निराकार घटनाएँ साकार घटनाओं से अधिक शांतिपूर्ण हैं; निर्गमन निराकार घटनाओं से अधिक शांतिपूर्ण है।"
वे प्राणी रूपों की ओर अग्रसर हुए,

और जो निराकार में खड़े हैं,

समाप्ति की जानकारी के बिना,

आगे के विकास (पुनर्जन्म) की ओर लौटना।

लेकिन, रूप को समझते हुए,

निराकार चीजों के प्रति कोई रुख न अपनाना,

जो लोग मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं

ये वे लोग हैं जिन्होंने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है।

अपने शरीर से स्पर्श करने के बाद

अमरता का गुण मुक्त

उपाधि (मानसिक अर्जितियों/गुणों) से,

त्याग का अहसास होने पर

अधिग्रहणों का,

असावा (चाहत/इच्छा)-मुक्त,

सही मायने में आत्मजागृत व्यक्ति (बुद्ध)

राज्य को सिखाता है

बिना किसी दुःख के,

कोई गंदगी नहीं।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 74. पुत्तसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 73 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 74 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 75

74. पुत्तसुत्तम (पुत्र एवं पुत्री के प्रकार)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही है, अरहंत ने कहा है, जैसा मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के पुत्र एवं पुत्रियाँ पाई जाती हैं। वे कौन से तीन हैं? एक उच्च कुल का, एक समान कुल का, और एक निम्न कुल का।

और उच्च कुल (जाति/वर्ग) का पुत्र या पुत्री कैसा होता है? ऐसा मामला है जहाँ पुत्र या पुत्री के माता-पिता ने बुद्ध की शरण नहीं ली है, धम्म की शरण नहीं ली है, संघ (भिक्षु संघ) की शरण नहीं ली है। वे जीव-जंतुओं को मारने, चोरी करने, यौन दुराचार करने, झूठी वाणी बोलने, और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज नहीं करते। वे स्वभाव से सिद्धांतहीन और दुष्ट होते हैं। वे निम्न कुल (जाति/वर्ग) के होते हैं। परन्तु उनका पुत्र या पुत्री बुद्ध की शरण में गया है, धम्म की शरण में गया है, और संघ की शरण में गया है।” वह किसी की जान लेने, चोरी करने, यौन दुराचार करने, झूठी बातें बोलने और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों से

परहेज करता है। वह स्वभाव से सिद्धांतवादी और प्रशंसनीय होता है। ऐसे व्यक्ति को उच्च कुल (जाति/वर्ग) का पुत्र या पुत्री कहा जाता है।

"सर्वोत्तम कुल (जाति/वर्ग) का पुत्र या पुत्री कैसा होता है? एक उदाहरण है, जहाँ पुत्र या पुत्री के माता-पिता बुद्ध की शरण में गए हैं, धम्म की शरण में गए हैं, संघ की शरण में गए हैं। वे हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों से परहेज करते हैं। वे स्वभाव से सिद्धांतवादी और प्रशंसनीय हैं। उनका पुत्र या पुत्री भी बुद्ध की शरण में गया है, धम्म की शरण में गया है, संघ की शरण में गया है। वह भी हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों से परहेज करता है। वह भी स्वभाव से सिद्धांतवादी और प्रशंसनीय है। इसे सर्वोत्तम कुल (जाति/वर्ग) का पुत्र या पुत्री कहा जाता है।

"निम्न कुल का पुत्र या पुत्री कैसा होता है?" एक ऐसा मामला है जहाँ पुत्र या पुत्री के माता-पिता ने बुद्ध की शरण ली है, धम्म की शरण ली है, संघ की शरण ली है। वे हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों से परहेज करते हैं। वे स्वभाव से सिद्धांतवादी और प्रशंसनीय हैं। परन्तु उनका पुत्र या पुत्री न तो बुद्ध की शरण में गया है, न धम्म की शरण में, न संघ की शरण में। वह हत्या, चोरी, यौन दुराचार, झूठी वाणी और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पेय पदार्थों से परहेज नहीं करता। वह स्वभाव से सिद्धांतहीन और दुष्ट है। इसे निम्न जाति का पुत्र या पुत्री कहा जाता है।
एक बच्चे के लिए बुद्धिमान आशा

उच्चतम या उच्च कुल का,

एक के लिए भी नहीं

निम्न जन्म दर का,

परिवार का विनाशक।

दुनिया के ये बच्चे,

आम अनुयायी

—सद्‌गुणों (शील) और आस्था से परिपूर्ण;

उदार, कंजूसी से मुक्त—

किसी भी सभा में अपनी चमक बिखेरें

चांद की तरह

जब बादल से मुक्त हो जाए।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 75. अवुत्थिकासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 74 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 75 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 76

75. अवुत्थिकासुत्तम (मनुष्य और बादल)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही है, अरहंत ने कहा है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से तीन हैं? एक बिना वर्षा वाले बादल के समान, एक स्थानीय वर्षा करने वाला, और एक हर जगह वर्षा करने वाला।

“और बिना वर्षा वाले बादल के समान व्यक्ति कैसे होता है? वह व्यक्ति किसी को भी भोजन, पेय, वस्त्र, वाहन, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास या प्रकाश नहीं देता है: न तो तपस्वियों को, न ब्राह्मणों को, न ही पुरोहितों को, न ही किसी दुखी, बेघर या भिखारी को। इस प्रकार व्यक्ति बिना वर्षा वाले बादल के समान होता है।”

“और स्थानीय वर्षा करने वाला व्यक्ति कैसे कहलाता है? एक उदाहरण यह है कि कोई व्यक्ति कुछ तपस्वियों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों, कुछ दुखी, बेघर और भिखारियों को भोजन, पेय, वस्त्र, वाहन, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश देता है, परन्तु दूसरों को नहीं। इस प्रकार एक व्यक्ति स्थानीय वर्षा करने वाला कहलाता है।

“और सर्वव्यापी वर्षा करने वाला व्यक्ति कैसे कहलाता है? एक उदाहरण यह है कि कोई व्यक्ति सभी तपस्वियों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों, सभी दुखी, बेघर और भिखारियों को भोजन, पेय, वस्त्र, वाहन, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश देता है। इस प्रकार एक व्यक्ति सर्वव्यापी वर्षा करने वाला कहलाता है। “ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो संसार में विद्यमान पाए जाते हैं।”
तपस्वियों (भिक्षुओं) के लिए नहीं।

ब्राह्मणों (पुजारियों) को

दुखी लोगों के लिए,

न ही बेघरों के लिए

क्या वह अपने द्वारा अर्जित ज्ञान को साझा करता है?

खाना,

पेय पदार्थ,

पोषण।

वह, वह नीचतम व्यक्ति,

इसे बिना बारिश वाला बादल कहा जाता है।

कुछ लोगों को वह कुछ नहीं देता।

वह दूसरों के साथ ऐसा करता है:

बुद्धिमान लोग उसे कहते हैं

जो स्थानीय स्तर पर बारिश करता है।

अनुरोधों का जवाब देने वाला व्यक्ति,

सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखने वाला,

दान-पुण्य करने में आनंदित होना:

उन्हें दे दो!

देना!"

वह कहता है।

जब बादल गरजते हुए, गड़गड़ाहट करते हुए बारिश करते हैं,

पानी से भर जाना, भीग जाना

पठार और घाटियाँ:

इस तरह का व्यक्ति

ऐसा ही है।

सही ढंग से संचित करने के बाद

पहल के माध्यम से अर्जित धन,

वह भोजन और पेय से उचित रूप से तृप्त होता है।

जो लोग गिर गए

बेघर अवस्था।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 76. सुखपत्थनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 75 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 76॥ अगला >>> इतिवुत्तक 77

76. सुखापट्टनासुत्तम (आनंद का मार्ग)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“हे भिक्षुओं, इन तीन प्रकार के आनंद की आकांक्षा रखते हुए, एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने सद्‌गुण (शील) की रक्षा करनी चाहिए। वे तीन कौन से हैं? [यह सोचकर] 'मेरी स्तुति हो,' एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने सद्‌गुण (शील) की रक्षा करनी चाहिए। [यह सोचकर] 'मेरी संपत्ति बढ़े,' एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने सद्‌गुण (शील) की रक्षा करनी चाहिए। [यह सोचकर] 'मृत्यु के बाद, शरीर के टूटने पर, मैं एक अच्छे स्थान, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूं,' एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने सद्‌गुण की रक्षा करनी चाहिए। इन तीन प्रकार के आनंद की आकांक्षा रखते हुए, एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने सद्‌गुण (शील) की रक्षा करनी चाहिए।”
बुद्धिमान,

आपको अपने सद्‌गुण (शील) की रक्षा करनी चाहिए।

तीन प्रकार के आनंद की आकांक्षा:

प्रशंसा;

धन प्राप्ति;

और, मृत्यु के बाद, आनंद मनाना

स्वर्ग में।

भले ही तुम कोई बुराई न करो

लेकिन ऐसे व्यक्ति को खोजें जो ऐसा करता हो।

आप पर बुराई करने का संदेह है।

आपकी बदनामी

बढ़ता है।

जिस तरह के व्यक्ति से दोस्ती की जा सकती है,

जिस तरह के लोगों की आप तलाश करते हैं,

तुम भी उसी तरह के इंसान बन जाते हो—

आपका साथ रहना

उस तरह का।

जो इससे जुड़ा हुआ है,

जो जोड़ता है,

जिसने स्पर्श किया है,

जो किसी दूसरे को स्पर्श करता है

—जैसे कोई तीर विष से सना हो—

तरकश को दूषित कर देता है।

इसलिए, संदूषण के डर से, बुद्धिमानों ने

साथी नहीं होने चाहिए

बुरे लोगों के साथ।

एक आदमी जो सड़ी हुई मछली लपेटता है

कुसा घास के एक तिनके में

इससे घास में बदबू आने लगती है:

सो है

यदि तुम मूर्खों की तलाश करोगे।

लेकिन एक आदमी जो पिसी हुई अगरबत्ती लपेटता है

पेड़ के पत्ते में

इससे पत्ती सुगंधित हो जाती है:

सो है

यदि आप तलाश करते हैं

समझदार।

इसलिए,

अपने परिणाम को जानना

जैसे पत्ते लपेटने वाले का,

आपको तलाश नहीं करनी चाहिए

जो अच्छे नहीं हैं।

बुद्धिमान लोग इसे जोड़ेंगे

उनके साथ जो हैं।

जो लोग अच्छे नहीं हैं

आपको नरक में ले जाएगा।

अच्छी मदद आपको पहुँचने में मदद करती है

एक अच्छा गंतव्य।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 77. भिदुरसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 76 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 77 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 78

77. भिदुरसुत्तम (क्षय):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, यह शरीर क्षीण होता है; चेतना लुप्त होने के अधीन है; सभी मानसिक गुण/प्राप्तियाँ अस्थिर, दुखद और परिवर्तनशील हैं।"
शरीर को सड़ते हुए जानते हुए,

और चेतना धीरे-धीरे विलीन होती जा रही है,

अधिग्रहणों में निहित खतरे को पहचानना (मानसिक गुण/लालसा),

आप इससे भी आगे निकल गए हैं

जन्म और मृत्यु।

सर्वोच्च शांति प्राप्त करने के बाद,

आप सही समय का इंतजार करें,

शांत।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 78. धातुसोसमसंदानसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 77 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 78 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 79

78. धातुसोसंदनासुत्तम् (समान गुणों के अनुसार संगति):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, प्राणी अपने गुणों के अनुसार एक दूसरे के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं। प्रशंसनीय स्वभाव वाले प्राणी प्रशंसनीय स्वभाव वाले प्राणियों के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं। अतीत में, प्राणी अपने गुणों के अनुसार एक दूसरे के साथ एकत्रित होते थे और संगति करते थे। भविष्य में, प्राणी अपने गुणों के अनुसार एक दूसरे के साथ एकत्रित होंगे और संगति करेंगे... और वर्तमान में, प्राणी अपने गुणों के अनुसार एक दूसरे के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं। प्रशंसनीय स्वभाव वाले प्राणी प्रशंसनीय स्वभाव वाले प्राणियों के साथ एकत्रित होते हैं और संगति करते हैं।"
झाड़ियों में पैदा हुआ

संघ का

काट दिया गया है

गैर-सहयोग द्वारा।

जैसे कोई सवार

एक छोटा लकड़ी का तख्ता

डूब जाएगा

विशाल समुद्र में,

सही जीवन जीने का तरीका भी ऐसा ही है।

डूबना,

आलसी लोगों के साथ संगति करना।

इसलिए आलसी लोगों से बचें,

जिनकी दृढ़ता कम होती है।

नेक लोगों के साथ रहो—

एकांत में, दृढ़ निश्चयी, ध्यान (सम्मोहन) में लीन,

उनकी दृढ़ता ने लगातार उत्तेजना पैदा की

समझदार।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 79. परिहनसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 78 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 79॥ अगला >>> इतिवुत्तक 80

79. परिहानसुत्तम (पवित्र मार्ग से पतन)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन बातें प्रशिक्षणार्थी भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं। वे तीन कौन सी हैं? एक स्थिति यह है कि प्रशिक्षणार्थी भिक्षु गतिविधि में आनंद लेता है, गतिविधि में प्रसन्न होता है, गतिविधि के आनंद में लीन रहता है। वह गपशप में आनंद लेता है, गपशप में प्रसन्न होता है, गपशप के आनंद में लीन रहता है। वह नींद में आनंद लेता है, नींद में प्रसन्न होता है, नींद के आनंद में लीन रहता है। ये तीन बातें प्रशिक्षणार्थी भिक्षु के पतन का कारण बनती हैं।

"ये तीन बातें प्रशिक्षणार्थी भिक्षु के पतन से बचने का कारण बनती हैं। वे तीन कौन सी हैं? एक स्थिति यह है कि प्रशिक्षणार्थी भिक्षु गतिविधि में आनंद नहीं लेता है, गतिविधि में प्रसन्न नहीं होता है, गतिविधि के आनंद में लीन नहीं रहता है। वह गपशप में आनंद नहीं लेता है, गपशप में प्रसन्न नहीं होता है, गपशप के आनंद में लीन नहीं रहता है। उसे नींद में आनंद नहीं आता, नींद से खुशी नहीं मिलती, और न ही वह नींद के आनंद पर ध्यान केंद्रित करता है। ये तीन बातें ही प्रशिक्षण ले रहे भिक्षु को पथभ्रष्ट होने से बचाती हैं।
गतिविधि का आनंद लेना,

बातचीत में आनंद लेते हुए,

नींद का आनंद लेना,

& बेचेन होना:

वह असमर्थ है

—इस तरह का एक भिक्षु—

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्मजागरूकता।

इसलिए उसे कम कर्तव्यों वाला व्यक्ति होना चाहिए।

छोटे आलसी का,

बेचैन नहीं।

वह सक्षम है

—इस तरह का एक भिक्षु—

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्मजागरूकता।

नोट:

1. गतिविधि = विभिन्न प्रकार के काम, जैसे निर्माण कार्य, वस्त्र बनाना, आदि। SN 7:17 और थिग 13:2 देखें।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 80. विटक्कसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 79 <<<पिछला ‖ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 80 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 81

80. वितक्कसुत्तम (व्यर्थ विचार)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, तीन प्रकार के अकुशल विचार होते हैं। वे कौन से तीन हैं? तिरस्कृत न होने की इच्छा से संबंधित विचार; [1] लाभ, भेंट और भेंट से संबंधित विचार; [2] दूसरों के प्रति सहानुभूति से संबंधित विचार। अकुशल विचार तीन प्रकार के होते हैं।"

जंजीरों में जकड़ा हुआ

तिरस्कृत नहीं होना चाहते;

लाभ, भेंट, सम्मान के लिए;

साथियों के साथ आनंद लेना:

आप बंधनों के अंत से बहुत दूर हैं।

लेकिन यहाँ जो भी हो,

त्यागने के बाद

बेटों,

पशु,

शादी,

घनिष्ठ संबंधियों:

वह सक्षम है

—इस तरह का एक भिक्षु—

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्मजागरूकता।

टिप्पणी:

1. एएन 3:102 देखें।
2. टीका के अनुसार, यह भिक्षु की आम लोगों के साथ अत्यधिक घनिष्ठता, उनके उतार-चढ़ाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होने, "उनके सुख में प्रसन्न होने, उनके दुख में दुखी होने, और उनके मामलों में व्यस्त रहने" की प्रवृत्ति को संदर्भित करता है।
यह भी देखें: एसएन 17:5; एसएन 17:8; थिग 5:6
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 81. सक्करसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 80 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 81 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 82

81. सक्करासुत्तम (अर्पण एवं सम्मान ग्रहण करना)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो अर्पण ग्रहण करने से पराजित हो जाते हैं, शरीर के टूटने पर, मृत्यु के बाद, वे अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं, उनका मन व्याकुल हो जाता है। मैंने ऐसे प्राणियों को भी देखा है जो

अर्पण ग्रहण न करने से पराजित हो जाते हैं—उनका मन व्याकुल हो जाता है—शरीर के टूटने पर, मृत्यु के बाद, वे अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं। मैंने ऐसे प्राणियों को भी देखा है जो अर्पण ग्रहण करने और न करने दोनों से पराजित हो जाते हैं—उनका मन व्याकुल हो जाता है—शरीर के टूटने पर, मृत्यु के बाद, वे अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं।

"यह किसी अन्य तपस्वी (भिक्षु) से सुनने से नहीं है या हे ब्राह्मण (पुजारी), मैं कहता हूँ, 'मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो भेंट ग्रहण करने से पराजित होकर व्याकुल हो जाते हैं—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं। मैंने ऐसे प्राणियों को भी देखा है जो भेंट ग्रहण न करने से पराजित होकर व्याकुल हो जाते हैं—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, उनका मन व्याकुल हो जाता है, अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं। मैंने ऐसे प्राणियों को भी देखा है जो भेंट ग्रहण करने और न करने दोनों से पराजित होकर व्याकुल हो जाते हैं—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, अभाव के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं।'

"बल्कि, मैंने स्वयं इसे जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं इसका अवलोकन किया है, इसलिए मैं कहता हूँ, 'मैंने ऐसे प्राणियों को देखा है जो भेंट ग्रहण करने से पराजित हो जाते हैं—उनका मन व्याकुल हो जाता है—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, अभाव के एक लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं। मैंने ऐसे प्राणियों को भी देखा है जो भेंट ग्रहण न करने से पराजित हो जाते हैं—उनका मन व्याकुल हो जाता है—मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर, अभाव के एक लोक में, एक बुरे गंतव्य में, एक निम्न लोक में, नरक में पुनः प्रकट होते हैं।'"
भेंट प्राप्त करते समय दोनों

& नहीं,

उनकी समाधि (सम्मोहन अवस्था)

अविचलित रहता है;

वह रहता है

सतर्क (बिना आलस्य के):

वह निरंतर ध्यान (सम्मोहन) में लीन रहता था।

आनंदमय, सजग, विपस्सकम (ध्यान में अंतर्दृष्टि से लीन),

आसक्ति के अंत का आनंद लेना—

उसे पुरुष कहा जाता है

ईमानदारी का।

नोट: विपस्सकम - यहाँ इसका तात्पर्य विपश्यना ध्यान से है, अर्थात् समभाव में आंतरिक घटनाओं (शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ, मन) के प्रति जागरूक होना।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 82. देवसद्दसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 81 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 82॥ अगला >>> इतिवुत्तक 83

82. देवसद्दसुत्तम (देवों का उत्सव)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन दिव्य ध्वनियाँ उचित अवसरों पर देवों (देवदूतों) के बीच गूंजती हैं। वे तीन कौन सी हैं?

जब कोई श्रेष्ठ जनों का शिष्य अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके, गृहस्थ जीवन छोड़कर बेघर होने का निश्चय करता है, उस अवसर पर देवों के बीच यह दिव्य ध्वनि गूंजती है: 'इस श्रेष्ठ जनों के शिष्य ने
मार (राक्षस/मृत्यु के देवता) से युद्ध करने का निश्चय किया है।' यह पहली दिव्य ध्वनि है जो उचित अवसरों पर देवों (देवदूतों) के बीच गूंजती है।

"जब कोई श्रेष्ठ जनों का शिष्य सात गुणों को विकसित करने के लिए समर्पित जीवन व्यतीत करता है जो ज्ञानोदय के पंख हैं,[1] उस अवसर पर देवों के बीच यह दिव्य ध्वनि गूंजती है: 'यह श्रेष्ठ जनों का शिष्य मार से युद्ध कर रहा है।' यह दूसरी दिव्य ध्वनि है जो उचित अवसरों पर देवताओं के बीच गूंजती है।

"जब श्रेष्ठ जनों का कोई शिष्य आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत के द्वारा आसव (इच्छा/इच्छा) रहित चेतना में मोक्ष और मोक्ष की अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ निवास करता है, और स्वयं इस क्षण में इसे प्रत्यक्ष रूप से जानता और अनुभव करता है, तब देवताओं (देवदूतों) के बीच यह दिव्य ध्वनि गूंजती है: 'श्रेष्ठ जनों के इस शिष्य ने युद्ध जीत लिया है। युद्ध की अग्रिम पंक्ति में रहकर, अब वह विजयी अवस्था में निवास करता है।' यह तीसरी दिव्य ध्वनि है जो उचित अवसरों पर देवताओं के बीच गूंजती है।

"ये तीन दिव्य ध्वनियाँ हैं जो उचित अवसरों पर देवताओं के बीच गूंजती हैं।"
यह देखकर कि उसने लड़ाई जीत ली है

—धर्मी का शिष्य

स्वयंजागृत व्यक्ति (बुद्ध का)—

यहां तक कि देवदूत भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

इस महान व्यक्ति के लिए, जो पूरी तरह से परिपक्व है।

हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको नमन—

आप जिन्होंने कठिन विजय प्राप्त की है,

मृत्यु की सेना को पराजित करना,

अबाधित

मोक्ष, निर्वाण।

इस प्रकार वे देवों (देवदूतों) को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

जो अपने लक्ष्य तक पहुँच चुका हो,

क्योंकि वे उसमें कोई साधन नहीं देखते [2]

इससे वह मृत्यु के वश में आ जाएगा।

टिप्पणी:
1. जागृति के पंख हैं ध्यान की चार स्थापनाएँ, चार उचित प्रयास, शक्ति के चार आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच सामर्थ्य, जागृति के सात कारक और आर्य अष्टांगिक मार्ग।
2. श्रीलंका संस्करण के साथ 'ना पासंती' का पाठ करें। थाई संस्करण में 'नमस्संती' लिखा है, जिसका अर्थ है "वे सम्मान करते हैं", जो अर्थहीन है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 83. पंचपुब्बनिमित्तसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 82 <<<पिछला ‖ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 83 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 84

83. पंचपुब्बनिमित्तसुत्तम् (जब स्वर्ग में देवदूतों का समय समाप्त हो जाता है)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, जब कोई देव (देवदूत) देवों (देवदूतों) की संगति से विदा होने वाला होता है, तो पाँच शगुन प्रकट होते हैं: उसकी मालाएँ मुरझा जाती हैं, उसके वस्त्र मैले हो जाते हैं, उसकी बगलों से पसीना निकलता है, उसके शरीर पर सुस्ती छा जाती है, वह अपने देव आसन में आनंदित नहीं रहता। देव (देवदूत), यह जानकर कि 'यह देवपुत्र विदा होने वाला है,' उसे तीन बातों से प्रोत्साहित करते हैं: 'हे आदरणीय, यहाँ से किसी अच्छे गंतव्य की ओर जाइए। अच्छे गंतव्य पर जाकर, जो लाभ प्राप्त करना उचित हो, उसे प्राप्त कीजिए। जो लाभ प्राप्त करना उचित हो, उसे प्राप्त करके, सुस्थापित हो जाइए।'” जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, अच्छे गंतव्य पर जाने के बारे में देवों की क्या धारणा है? उनकी धारणा क्या है? वह लाभ जिसे प्राप्त करना अच्छा है? उनके अनुसार सुस्थापित होना क्या है? “हे भिक्षुओं, मनुष्य अवस्था[1] देवताओं के अनुसार एक अच्छे
गंतव्य की ओर जाने का तरीका है। मनुष्य बनकर, तथागत (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म-और-विनय में दृढ़ विश्वास प्राप्त करना: यही देवताओं के अनुसार वह लाभ है जिसे प्राप्त करना अच्छा है। जब वह विश्वास किसी के भीतर दृढ़, स्थिर और मजबूत हो जाता है, जिसे किसी ब्राह्मण (पुजारी), तपस्वी (भिक्षु), देव (देवदूत), मार (मृत्यु के देवता), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), या संसार में किसी और द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता: यही देवताओं के अनुसार सुस्थापित होना है।”
जब कोई देवदूत (फ़रिश्ता) देहांत प्राप्त करता है

देवताओं की संगति से

अपने जीवनकाल के अंत तक,

तीन ध्वनियाँ सुनाई देती हैं

—देवताओं का प्रोत्साहन।

'जाओ यहाँ से,

माननीय महोदय,

एक अच्छे भाग्य की ओर,

साथ के लिए

मनुष्यों के साथ।

मनुष्य बनने पर,

दोषसिद्धि प्राप्त करना

नायाब

सच्चे धम्म में।

आपका वह दृढ़ विश्वास

सच्चे धम्म में, अच्छी तरह से शिक्षित,

इसका निपटारा होना चाहिए।

जड़ से जुड़ा हुआ,

स्थापित,

—अक्षयित

जब तक आप जीवित रहें।

त्यागने के बाद

शारीरिक दुर्व्यवहार,

मौखिक दुर्व्यवहार,

मानसिक दुराचार,

और जो कुछ भी अन्य त्रुटिपूर्ण है;

शरीर से कुशलतापूर्वक किए गए कार्य को पूरा करने के बाद,

और बहुत से लोग बोलने में कुशल हैं,

जो कुशल है उसे करने के बाद

असीम हृदय के साथ,

बिना किसी अभिग्रहण (मानसिक गुण/इच्छा) के,

फिर—गुणों को बहुत महत्व देने के बाद

यह स्वर्ग में स्वतः उत्पन्न होने का एक आधार है।

दान देकर—

अन्य नश्वरों को स्थापित करें

सच्चे धम्म में और

पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।'

इस सहानुभूति के साथ, देवों ने—

जब उन्हें पता चलता है कि कोई देवता देहांत में जा रहा है—

उसे प्रोत्साहित करें:

'वापस आ जाओ, देवा,'

फिर फिर।'

नोट: 1. थाई संस्करण में भिक्खवे शब्द का प्रयोग किया गया है। बर्मी और श्रीलंकाई संस्करणों में भिक्खु शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है "भिक्षु"।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 84. बहुजनहितासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 83 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 84 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 85

84. बहुजनहितसुत्तम् (अनेक के कल्याण के लिए)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन व्यक्ति, संसार में प्रकट होकर, अनेक के कल्याण, अनेक के सुख, संसार के प्रति सहानुभूति रखते हुए, मनुष्य और दैवीय प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए प्रकट होते हैं। वे कौन से तीन हैं? "एक मामला यह है कि तथागत (बुद्ध) संसार में प्रकट होते हैं, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, स्पष्ट ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुसंस्कृत, ब्रह्मांड के संबंध में विशेषज्ञ, वश में किए जाने वाले लोगों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मनुष्य और दैवीय प्राणियों के गुरु, जागृत, बुद्ध। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट स्वरूपों और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है। यह वह पहला व्यक्ति है जो संसार में प्रकट होकर अनेकों के कल्याण, अनेकों की खुशी और संसार के प्रति सहानुभूति के साथ,
मानव एवं दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए प्रकट होता है।

"इसके अतिरिक्त, उस गुरु का एक योग्य शिष्य है, जिसके आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) क्षीण हो चुके हैं, जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, होने के बंधन (भाव) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और जो सही दिव्य ज्ञान से मुक्त हो गया है। वह धर्म का उपदेश देता है जो आरंभ में प्रशंसनीय है, मध्य में प्रशंसनीय है और अंत में प्रशंसनीय है। वह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन की घोषणा करता है, जो अपने विशिष्ट स्वरूपों और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है। यह दूसरा व्यक्ति है जो संसार में प्रकट होकर अनेकों के कल्याण, अनेकों के सुख और संसार के प्रति सहानुभूति रखते हुए, मनुष्य और दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए प्रकट होता है।

इसके अतिरिक्त, उस गुरु का एक शिष्य है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए अभ्यास का अनुसरण करता है,[1] विद्वान है, जिसने अच्छे आदतों और अभ्यासों में प्रवेश कर लिया है। वह भी धर्म का उपदेश देता है जो आरंभ में प्रशंसनीय है, मध्य में प्रशंसनीय है और अंत में प्रशंसनीय है। वह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन की घोषणा करते हैं, उसके विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में, जो पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है। यह वह तीसरा व्यक्ति है जो संसार में प्रकट होकर अनेकों के कल्याण, अनेकों की खुशी और संसार के प्रति सहानुभूति के साथ, मनुष्य और दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए प्रकट होता है। "ये वे तीन व्यक्ति हैं जो संसार में प्रकट होकर अनेकों के कल्याण, अनेकों की खुशी और संसार के प्रति सहानुभूति के साथ, मनुष्य
और दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए प्रकट होते हैं।"

शिक्षक (बुद्ध),

महान द्रष्टा

यह दुनिया में पहला है;

उसके पीछे-पीछे शिष्य

शांत मन से;

और फिर विद्वान व्यक्ति

जो प्रशिक्षणार्थी के लिए अभ्यास का पालन करता है,

अच्छी आदतें अपनाने के बाद,

अभ्यास।

ये तीनों, मुख्य

देवदूतों और मनुष्यों के बीच,

प्रकाश प्रदान करना, धम्म का प्रचार करना,

अमरता के द्वार खोल दो,

कई लोगों को गुलामी से मुक्त करें।

जो लोग मार्ग (मग्गा) का अनुसरण करते हैं,

कारवां के नेता (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से शिक्षित।

अद्वितीय,

पीड़ा का अंत होगा

यहीं-

जो लोग इस संदेश पर ध्यान दे रहे हैं

तथागत (बुद्ध) का।

नोट:

1. सेक्खो पतिपदो। यह वाक्यांश एमएन 53 में भी मिलता है, जिसकी व्याख्या इसे दो शब्दों के रूप में नहीं, बल्कि एक संयुक्त शब्द के रूप में मानती है जिसका अर्थ है "वह जो सेक्खो-पतिपदा का अनुसरण करता है": दूसरे शब्दों में, वह व्यक्ति जिसने कम से कम ज्ञानोदय का पहला स्तर, धाराप्रवेश प्राप्त कर लिया है, लेकिन अभी तक अरहंत नहीं बना है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 85. असुभानुपास्सुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 84 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 85 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 86

85. असुभानुपस्सुत्तम् (सांसारिक अपवित्रता पर ध्यान):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“हे भिक्षुओं, शरीर की अशुद्धता पर ध्यान केंद्रित करो। अपने भीतर श्वास-प्रश्वास (अनापान ध्यान) को अच्छी तरह से स्थापित करो। सभी संस्कारों (आदतों/आदतों) की अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करो। जो शरीर की अशुद्धता पर ध्यान केंद्रित करता है, वह सौंदर्य के प्रति आसक्ति का त्याग कर देता है। जो अपने भीतर श्वास-प्रश्वास (अनापान ध्यान) को अच्छी तरह से स्थापित कर लेता है, उसके मन में बाहरी विचार और प्रवृत्तियाँ नहीं रहतीं। जो सभी संस्कारों (आदतों) की अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करता है, वह अज्ञान (अविज्जा) का त्याग कर देता है, और स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है।”
अपवित्रता पर ध्यान (पासी) करें

शरीर में,

सचेत

अनापान ध्यान (अनापान ध्यान) में श्वास लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना।

देख के

सभी संस्कारों (मनगढ़ंत बातों) का शांत होना

— उत्साही

हमेशा:

वह एक भिक्षु है

जिसने सही ढंग से देखा है।

उसे वहाँ से रिहा कर दिया गया।

प्रत्यक्ष ज्ञान का उस्ताद,

शांति में (एक योगी),

वह एक संत हैं

बंधनों से परे चला गया।

टिप्पणी:

पासी - विपश्यना ध्यान में सतर्कता को संदर्भित करता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 86. धम्मनुधम्मपतिपन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 85 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 86 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 87

86. धम्मनुधम्मपतिपन्नसुत्तम् (धर्म के साथ धम्म का अभ्यास)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जो भिक्षु धम्म के अनुसार धम्म का अभ्यास करते हैं, उनके धम्म के अनुसार अभ्यास करने के इस तरीके को ही धम्म के अनुसार धम्म का अभ्यास करने वाला कहा जाना चाहिए। बोलते समय वे धम्म की बात करते हैं, अधर्म की नहीं। सोचते समय वे धम्म के बारे में सोचते हैं, अधर्म के बारे में नहीं। इन दोनों चीजों से दूर रहकर वे वैरागी, एकाग्र (ध्यान में) और पूर्णतः सचेत रहते हैं।"
धम्म (धर्म) उसका निवास स्थान है।

धम्म ही उसका आनंद है।

धम्म पर चिंतन करता हुआ एक भिक्षु,

धम्म का स्मरण करते हुए,

दूर नहीं होता

सच्चे धम्म से। [1]

चाहे पैदल चलना हो,

खड़े होना,

बैठे हुए, या

लेटना

उसका मन आंतरिक रूप से संयमित था।

वो आता है

पूर्ण शांति में।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 87. अन्धकारणसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 86 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 87 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 88

87. अंधकरणसुत्तम (अंधकार का निवारण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, तीन प्रकार के अकुशल विचार हैं जो अंधकार उत्पन्न करते हैं, दृष्टिहीनता उत्पन्न करते हैं, ज्ञान की कमी उत्पन्न करते हैं, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) के अंत की ओर ले जाते हैं, कष्ट का पक्ष लेते हैं, और निर्वाण (मुक्ति) के लिए अनुकूल नहीं हैं। वे तीन कौन से हैं? कामुकता से भरा विचार... द्वेष से भरा विचार। हानि से भरा विचार अंधापन उत्पन्न करता है, दृष्टिहीनता उत्पन्न करता है, ज्ञान की कमी उत्पन्न करता है, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) के अंत की ओर ले जाता है, कष्ट का पक्ष लेता है, और निर्वाण (मुक्ति) के लिए अनुकूल नहीं है। ये तीन प्रकार के अकुशल विचार हैं जो अंधापन उत्पन्न करते हैं, दृष्टिहीनता उत्पन्न करते हैं, ज्ञान की कमी उत्पन्न करते हैं, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) के अंत की ओर ले जाते हैं, कष्ट का पक्ष लेते हैं, और निर्वाण (मुक्ति) के लिए अनुकूल नहीं हैं।” (निर्वाण)।

“तीन प्रकार के कुशल चिंतन हैं जो अंधकार से मुक्ति, दृष्टि, ज्ञान, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) को बढ़ावा देते हैं, दुःख से मुक्ति का पक्ष लेते हैं और निर्वाण की ओर अग्रसर होते हैं। वे तीन कौन से हैं? त्याग से युक्त चिंतन... द्वेष रहित चिंतन... अहिंसा से युक्त चिंतन... अहिंसा से युक्त चिंतन जो अंधत्व से मुक्ति, दृष्टि, ज्ञान, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) को बढ़ावा देता है, दुःख से मुक्ति का पक्ष लेता है और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। ये तीन प्रकार के कुशल चिंतन हैं जो अंधकार से मुक्ति, दृष्टि, ज्ञान, प्रत्यक्ष बोध (पन्न) को बढ़ावा देते हैं, दुःख से मुक्ति का पक्ष लेते हैं और निर्वाण की ओर अग्रसर होते हैं।”
तीन कुशल विचार

ऐसा सोचना चाहिए,

तीन अकुशल विचार

अस्वीकार कर दिया।

जो भी विचारों और मूल्यांकनों को शांत करता है

—जैसे बारिश से धूल का बादल उठता है—

सोच को शांत करते हुए जागरूकता के माध्यम से,

यहीं पहुँचता है

राज्य

शांति की।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 88. अंतरमालासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 87 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 88 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 89

88. अंतर्मलसुत्तम (आंतरिक दोष/शत्रु)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन आंतरिक दोष हैं, आंतरिक शत्रु, आंतरिक विरोधी, आंतरिक हत्यारे, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी। वे तीन कौन से हैं? लोभ एक आंतरिक दोष है, आंतरिक शत्रु है, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी है, आंतरिक हत्यारा है, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी है। घृणा एक आंतरिक दोष है। मोह एक आंतरिक दोष है, आंतरिक शत्रु है, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी है, आंतरिक हत्यारा है, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी है। ये तीन आंतरिक दोष हैं, आंतरिक शत्रु हैं, आंतरिक प्रतिद्वंद्वी हैं, आंतरिक हत्यारे हैं,
आंतरिक प्रतिद्वंद्वी हैं।"
लालच नुकसानदेह होता है।

लालच मन को उत्तेजित करता है।

लोगों को इसका एहसास नहीं है

एक ऐसे खतरे के रूप में जो भीतर से ही उत्पन्न होता है।

जब कोई व्यक्ति लालची होता है,

उसे अपनी भलाई की भी परवाह नहीं है;

जब लालची,

धम्म को नहीं देखता।

लालच से अभिभूत होकर,

वह अंधेरे में है, अंधा है।

लेकिन जब कोई लालच का त्याग कर देता है,

कोई लालच महसूस नहीं करता

किस बात के लिए लालच जायज होगा?

उससे लोभ दूर हो जाता है—

पानी की एक बूंद की तरह

कमल के पत्ते से।

घृणा हानि का कारण बनती है।

घृणा मन को उत्तेजित करती है।

लोगों को इसका एहसास नहीं है

एक ऐसे खतरे के रूप में जो भीतर से ही उत्पन्न होता है।

जब कोई व्यक्ति अप्रिय होता है,

उसे अपनी भलाई की भी परवाह नहीं है;

जब अप्रिय हो,

धम्म को नहीं देखता।

घृणा से अभिभूत

वह अंधेरे में है, अंधा है।

लेकिन जब कोई घृणा को त्यागकर,

कोई घृणा महसूस नहीं करता

किस बात से घृणा उत्पन्न हो सकती है?

उसके मन से घृणा दूर हो जाती है—

जैसे ताड़ का पत्ता तने से अलग हो जाता है।

भ्रम हानिकारक होता है।

भ्रम मन को उत्तेजित करता है।

लोगों को इसका एहसास नहीं है

एक ऐसे खतरे के रूप में जो भीतर से ही उत्पन्न होता है।

जब कोई व्यक्ति भ्रमित हो जाता है,

उसे अपनी भलाई की भी परवाह नहीं है;

जब भ्रमित हो,

धम्म को नहीं देखता।

भ्रम से ग्रस्त

वह अंधेरे में है, अंधा है।

लेकिन जब कोई व्यक्ति भ्रम को त्यागकर,

किसी भ्रम का अनुभव नहीं करता

किस बात को भ्रम की श्रेणी में रखा जा सकता है?

वह सभी भ्रमों को दूर करता है।

जैसे ही सूर्योदय होता है, अंधेरा छा जाता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 89. देवदत्तसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 88 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 89 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 90

89. देवदत्तसुत्तम (देवदत्त के बारे में - नरक का दंड)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, तीन प्रकार के झूठे धम्मों से पराजित होकर - उनका मन व्याकुल हो गया है - देवदत्त[1] एक युग के लिए असाध्य अभाव, नरक के दंड के लिए अभिशप्त हैं। वे तीन कौन से हैं? बुरी इच्छाओं से पराजित होकर - उनका मन व्याकुल हो गया है - देवदत्त एक युग की अवधि के लिए असाध्य अभाव, नरक के दंड के लिए अभिशप्त हैं। बुरे लोगों से मित्रता से पराजित होकर - उनका मन व्याकुल हो गया है - देवदत्त एक युग की अवधि के लिए असाध्य अभाव, नरक के दंड के लिए अभिशप्त हैं। और, आगे कुछ और किया जाना बाकी था, फिर भी उन्होंने विशिष्ट उपलब्धि के निम्न स्तर पर ही आधे रास्ते में रुक गए। इन तीन प्रकार के झूठे धम्मों से पराजित होकर - उनका मन व्याकुल हो गया है - देवदत्त असाध्य अभाव के दंड के लिए अभिशप्त हैं। युगों के लिए नरक में जाओ।"
दुनिया में कोई भी ऐसा न हो

हमेशा पुनर्जन्म होता रहेगा

बुरी इच्छा से।

जानते है कि

उसके माध्यम से

बुरी इच्छा,

उसका गंतव्य वह है

उन सभी लोगों में से जिनके मन में बुरी इच्छाएं हैं।

मैंने सुना है कि देवदत्त,

— बुद्धिमान, शांत स्वभाव का माना जाता है,

सम्मान से प्रज्वलित—

पूर्णतः जागरूक (स्वयं के भीतर)

तथागत (बुद्ध) पर हमला किया।

और वह चार द्वारों वाले उस भयानक स्थान पर गिर पड़ा:

अविची, पूर्णतः नरक।

जो कोई भी इसके खिलाफ साजिश रचता है

एक ऐसा व्यक्ति जो भ्रष्टाचार से मुक्त हो

जिसने कोई बुरा काम नहीं किया है:

वह बुराई उसे स्वयं भी छू लेती है।

मन से भ्रष्ट,

अपमानजनक।

जो कोई भी सोच सकता है

समुद्र को प्रदूषित करने के बारे में

जहर के घड़े के साथ,

सफल नहीं हो सके।

क्योंकि पानी की मात्रा बहुत अधिक है।

सो है

जब कोई गाली-गलौज से हमला करता है

तथागत (बुद्ध)

सही ही हुआ,

मन की शांति का—

उसे दुर्व्यवहार बिल्कुल भी सहन नहीं होता।

एक बुद्धिमान व्यक्ति को मित्र बनाने चाहिए।

संबद्ध करना चाहिए,

उसके जैसे व्यक्ति के साथ—

जिसका मार्ग एक भिक्षु अनुसरण कर सकता है

और अंत तक पहुंचें

पीड़ा और कष्ट का।

नोट: 1. बुद्ध के चचेरे भाइयों में से एक, देवदत्त ने संघ पर कब्ज़ा करने की साजिश रची और अंततः एक विभाजन का कारण बना। उसकी कहानी अध्याय 7 में बताई गई है। क्रमांक 18 भी देखें। उसकी "विशिष्ट उपलब्धि का निम्नतम स्तर" मानसिक शक्तियों पर उसकी महारत थी।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 90. अग्गप्पासदसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 89 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 90॥ अगला >>> इतिवुत्तक 91

90. अग्गप्पसादसुत्तम (विश्वास)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, विश्वास के ये तीन सर्वोच्च विषय हैं। वे तीन कौन से हैं? “जितने भी प्राणी हों—अंगहीन, दो पैरों वाले, चार पैरों वाले, अनेक पैरों वाले; सजीव या निराकार; बोधगम्य, अबोधगम्य, न बोधगम्य और न अबोधगम्य—उनमें तथागत (बुद्ध), योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, सर्वोच्च माने जाते हैं। जो लोग जागृत (बुद्ध) में विश्वास रखते हैं, वे सर्वोच्च में विश्वास रखते हैं; और जो सर्वोच्च में विश्वास रखते हैं, उन्हें सर्वोच्च ही परिणाम मिलता है।”

सभी धर्मों में, चाहे वे सृजित हों या असृजित, वैराग्य—नमग्नता पर काबू पाना, प्यास बुझाना, आसक्ति को जड़ से उखाड़ फेंकना, चक्र तोड़ना, तृष्णा का नाश करना, वैराग्य, निश्चिंतता, निर्वाह और मुक्ति की प्राप्ति—सर्वोच्च माना जाता है। वैराग्य धर्म में विश्वास रखने वालों को सर्वोच्च में विश्वास होता है; और सर्वोच्च में विश्वास रखने वालों को सर्वोच्च ही परिणाम प्राप्त होता है।

सभी सृजित गुणों में, श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग—सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही समाधि—सर्वोच्च माना जाता है। श्रेष्ठ मार्ग के धर्म में विश्वास रखने वालों को सर्वोच्च में विश्वास होता है; और सर्वोच्च में विश्वास रखने वालों को सर्वोच्च ही परिणाम प्राप्त होता है। चाहे कितने भी समुदाय या समूह हों, तथागत (बुद्ध) के शिष्यों का संघ (भिक्षु पंथ) सर्वोच्च माना जाता है—अर्थात्, चार [महान शिष्यों के समूह] जब जोड़े में लिए जाते हैं, और आठ जब व्यक्ति के रूप में लिए जाते हैं।[1] संघ में विश्वास रखने वाले सर्वोच्च में विश्वास रखते हैं; और सर्वोच्च में विश्वास रखने वालों को सर्वोच्च परिणाम प्राप्त होता है। “ये, भिक्षुओं, विश्वास के तीन सर्वोच्च लक्ष्य हैं।”
साथ

आत्मविश्वास,

सर्वोच्च धम्म का अहसास करना

सर्वोच्च होना;

सर्वोच्च बुद्ध में विश्वास,

नायाब

योग्य भेंटों में;

सर्वोच्च धम्म में विश्वास,

शांति और वैराग्य का आनंद;

सर्वोच्च संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) में विश्वास,

नायाब

योग्यता के क्षेत्र के रूप में;

सर्वोच्च सत्ता को उपहार देने के बाद,

व्यक्ति में सर्वोच्च योग्यता का विकास होता है।

सर्वोच्च दीर्घायु और सौंदर्य,

स्थिति, सम्मान,

आनंद और शक्ति।

सर्वोच्च सत्ता को देने के बाद,

एकाग्रचित्त व्यक्ति (समाधि की अवस्था में)

सर्वोच्च धम्म में,

चाहे दिव्य बनना हो या मनुष्य बनना हो,

प्रसन्न होता है,

सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया है।

नोट: 1. श्रेष्ठ शिष्यों के चार समूहों को जब युग्मों में लिया जाता है, तो वे हैं जिन्होंने (1) धारा-प्रवेश का मार्ग और धारा-प्रवेश का फल; (2) पुनर्जन्म का मार्ग और पुनर्जन्म का फल; (3) पुनर्जन्म रहित मार्ग और पुनर्जन्म रहित का फल; और (4) अरहंतत्व का मार्ग और अरहंतत्व का फल प्राप्त किया है। प्रत्येक उपलब्धि को अलग-अलग लेने पर आठ "व्यक्ति" प्राप्त होते हैं। यह इतिवुत्तक लगभग एएन 4:34 के समान है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 91. जीविकासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 90 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 91 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 92

91. जीविकासुत्तम (आजीविका के साधन)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, यह आजीविका का एक नीच साधन है, भिक्षा एकत्र करना। संसार में यह कहना एक प्रकार का अपमान है, 'तुम हाथ में कटोरा लेकर भिक्षा मांगने वाले की तरह घूमते हो!' फिर भी अच्छे परिवारों के समझदार युवकों ने इसे एक ठोस कारण से अपनाया है। उन्हें राजाओं या लुटेरों द्वारा, न ही ऋण, भय, या आजीविका के नुकसान के कारण, बल्कि इस विचार से विवश किया गया है: 'हम जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुखों, विलापों, पीड़ाओं, कष्टों और निराशाओं से घिरे हुए हैं, दुखों से घिरे हुए हैं, दुखों से अभिभूत हैं। हे, इस पूरे दुख और पीड़ा के अंत का ज्ञान हो जाए!' लेकिन अच्छे परिवार का यह युवक, इस मार्ग पर चलकर, इंद्रिय सुखों का लोभी हो सकता है,

उसकी वासनाएँ प्रबल हो सकती हैं, उसका मन द्वेषपूर्ण हो सकता है, उसके संकल्प भ्रष्ट हो सकते हैं, उसकी चेतना विचलित हो सकती है, वह लापरवाह हो सकता है, ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकता, उसका मन बिखरा हुआ हो सकता है और उसकी इंद्रियाँ अनियंत्रित हो सकती हैं। जैसे किसी चिता से जलती हुई, बीच में मल से ढकी हुई लकड़ी का उपयोग न तो गाँव में होता है और न ही जंगल में: मैं तुमसे कहता हूँ कि यह इस व्यक्ति के लिए एक उपमा है। वह गृहस्थ के सुखों से वंचित है और तपस्वी जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं करता।
उसे मौका नहीं मिला

गृहस्थ के आनंद पर

और तपस्वियों (भिक्षुओं) के जीवन का उद्देश्य

दुर्भाग्यशाली व्यक्ति!

इसे बर्बाद करके वह इसे फेंक देता है।

नहीं बचेगा

जैसे किसी अंत्येष्टि में जलती हुई मशाल का इस्तेमाल किया जाता है।

लोहे की गेंद खाना बेहतर है

—चमकते हुए, जलते हुए—

इससे भी बढ़कर, सिद्धांतहीन और

अनियंत्रित,

उसे देश की भीख खानी चाहिए।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 92. संघटिकन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 91 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 92 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 93

92. संघटिकन्नसुत्तम् (सही अनुसरण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु मेरे बाहरी वस्त्र को धारण करके मेरे पीछे-पीछे चले, अपने पैर मेरे पदचिह्नों पर रखे, फिर भी यदि वह इंद्रिय सुखों के प्रति लालची हो, अपने कामों में प्रबल हो, मन में द्वेष हो, अपने संकल्पों में भ्रष्ट हो, उसकी चेतना विचलित हो, वह सतर्क न हो, ध्यान का अभ्यास न करता हो, उसका मन बिखरा हुआ हो, और उसकी इंद्रियां अनियंत्रित हों, तो वह मुझसे दूर होगा, और मैं उससे दूर। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह धम्म को नहीं देखता। धम्म को न देखकर वह मुझे नहीं देखता।" "परन्तु यदि कोई भिक्षु सौ मील दूर भी रहता

हो, फिर भी यदि वह इंद्रिय सुखों के प्रति लालची न हो, अपने कामों में प्रबल न हो, मन में द्वेष न हो, अपने संकल्पों में निष्कलंक न हो, उसकी चेतना स्थिर हो, वह सतर्क हो, ध्यान का अभ्यास करता हो, उसका मन जब वह एकाग्रचित्त होता है और अपनी इंद्रियों को अच्छी तरह नियंत्रित रखता है, तब वह मेरे निकट होता है और मैं उसके निकट। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह धम्म को देखता है। धम्म को देखकर वह मुझे देखता है।
हालांकि ठीक पीछे चलते हुए,

महत्वाकांक्षी, नाराज:

देखो वो कितनी दूर है!

विक्षुब्ध

जो अविचलित है,

सीमा

अनबाउंड से,

लालची व्यक्ति

उससे जिसमें लालच नहीं है।

लेकिन वह बुद्धिमान व्यक्ति जो, इसके माध्यम से

धम्म का प्रत्यक्ष ज्ञान,

धम्म का दिव्य जागरण,

अभी भी और अविचलित रूप से बढ़ता है

जैसे कोई झील हवा से अप्रभावित हो:

देखो वो कितना करीब है!

अविचलित से अविचलित तक,

असीम से असीम तक (निर्वाण प्राप्त करना),

निःसंकोची

उस व्यक्ति के लिए जिसमें लालच नहीं है।

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 92 <<<पिछला॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 93॥ अगला >>> इतिवुत्तक 94

93. अग्गिसुत्तम (नरक की अग्नि, पुनर्जन्म)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही थी, अरहंत ने कही थी, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ये तीन अग्नियाँ हैं। कौन सी तीन? राग की अग्नि, दोष की अग्नि, मोह की अग्नि। ये तीन अग्नियाँ हैं।"
नश्वर शरीर में राग की आग जलती रहती है।

आनंद लेते हुए,

मोहित हो जाना

कामुक इच्छाएँ;

द्वेषपूर्ण व्यक्ति में घृणा की अग्नि

जीवन लेना;

भ्रमित व्यक्ति में भ्रम की आग

अज्ञानी

उस महान शिक्षा का।

इन आग की घटनाओं को न समझ पाने वाले लोग

—स्वयं की पहचान के शौकीन—

मारा (शैतान) के बंधनों से मुक्त नहीं हुआ,

नरक की संख्या बढ़ाना,

सामान्य जानवरों, राक्षसों के गर्भ,

भूखे भूतों का लोक।

जबकि वे लोग जो दिन-रात,

समर्पित हैं

संदेश के लिए

सही मायने में आत्मजागृत व्यक्ति का,

राग की आग बुझा दो।

लगातार गड़बड़ी का आभास होना।

वे, असाधारण लोग,

घृणा की आग बुझा दो

सद्भावना के साथ,

और भ्रम की आग

प्रत्यक्ष समझ (पन्ना) के साथ जो आगे ले जाती है

प्रवेश के लिए।

वे, कुशल, दिन-रात अथक परिश्रम करने वाले,

आग बुझाने के बाद,

शेषफल के बिना,

पीड़ा को समझा,

शेषफल के बिना हैं,

पूर्णतः बंधनमुक्त (निर्वाण प्राप्त कर लेता है)।

वे, बुद्धिमान लोग, ज्ञान प्राप्ति करने वाले के साथ

महान दृष्टि,

सही दिव्य जागृति,

सीधे तौर पर जानना

जन्म का अंत,

आगे कोई पुनर्जन्म न हो।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 94. उपपरिक्खसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 93 <<<पिछला ‖ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 94 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 95

94. उपपरिक्खसुत्तम (जांच)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु को इस प्रकार जांच करनी चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से बिखरी हुई हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो; वह आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो, और भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या दुख की उत्पत्ति न हो।"
एक भिक्षु के लिए जिसने त्याग दिया है

सात संलग्नक

और गाइड को काटें: [2]

जन्म में भटकना

समाप्त हो गया है;

उसके लिए है,

आगे और नहीं बढ़ना।

टिप्पणी
1. एमएन 138 में, आदरणीय महाकच्छायन इस गूढ़ कथन की निम्नलिखित व्याख्या प्रस्तुत करते हैं: "चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई क्यों नहीं कहा जाता? एक स्थिति यह है कि जब किसी रूप को आँखों से देखा जाता है, तो चेतना उस रूप के विषय के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, न ही उस रूप के विषय के आकर्षण से बंधी होती है। चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई नहीं कहा जाता। [अन्य इंद्रियों के साथ भी ऐसा ही है।] "और मन को आंतरिक रूप से स्थित क्यों नहीं कहा जाता? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु, जो कामुकता से पूर्णतः विरक्त है, अकुशल गुणों से विरक्त है, प्रथम ध्यान (समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ।" उनकी चेतना एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के बहाव का अनुसरण नहीं करती, न ही एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के आकर्षण से बंधी, जकड़ी या जुड़ी होती है। [इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान (सम्मोहन अवस्था) में भी होता है।] कहा जाता है कि मन आंतरिक रूप से स्थित नहीं होता। "और आसक्ति/पोषण के अभाव से अविचलितता कैसे उत्पन्न होती है? एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का एक दीक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म

में पारंगत और अनुशासित है—रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। उनका रूप परिवर्तनशील और अस्थिर होता है, परन्तु उनकी चेतना नहीं बदलती—क्योंकि रूप के परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण वह रूप के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होती है। रूप परिवर्तन के कारण या अकुशल मानसिक गुणों के सह-उत्पत्ति से उत्पन्न किसी भी व्याकुलता से उसका मन ग्रस्त नहीं होता। और क्योंकि उसकी चेतना व्याकुल नहीं होती, इसलिए वह न तो भयभीत होता है, न ही भयभीत होता है और न ही चिंतित होता है। [इसी प्रकार भावना (संवेदना), बोध, विचार और चेतना के समूह के साथ भी होता है।] "मित्रों, यही आसक्ति/पोषण के अभाव से उत्पन्न अहिंसा है।"

2. सात आसक्तियाँ हैं: राग, घृणा, मोह, मत, अहंकार, अपवित्रता और दुराचार। मार्गदर्शक है तृष्णा, जो पुनर्जन्म की ओर ले जाती है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 95. कमुपापत्तिसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 94 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 95 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 96

95. कामुपपत्तिसुत्तम (इंद्रिय सुख प्राप्त करने के तरीके):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, इंद्रिय सुख प्राप्त करने के ये तीन तरीके हैं। वे तीन कौन से हैं? वे जिनके इंद्रिय सुख पहले से ही उपलब्ध हैं, वे जो सृजन में आनंद लेते हैं, और वे जो दूसरों द्वारा सृजित वस्तुओं पर नियंत्रण रखते हैं। ये तीन तरीके हैं इंद्रिय सुख प्राप्त करने के।"

देव (देवदूत)[1] जिनके सुख पहले से ही प्रदान किए गए हैं,

जिनके पास नियंत्रण है,

जो लोग सृष्टि में आनंद लेते हैं,

और अन्य सभी जो इंद्रिय सुखों का आनंद ले रहे हैं

इस राज्य में यहाँ

या कहीं और,

आगे मत बढ़ो

भटकते रहना।

इस कमी को जानते हुए

इंद्रिय सुखों में, बुद्धिमान

सभी इंद्रिय संबंधी इच्छाओं का त्याग कर देना चाहिए।

चाहे मानव

या दिव्य।

लालच के प्रवाह को रोककर

सुंदर, मोहक रूपों के लिए

पार पाना बहुत कठिन है,

शेषफल के बिना,

पीड़ा को समझा,

वे बिना किसी शेष के हैं,

पूर्णतः बंधनमुक्त (निर्वाण प्राप्त कर लेता है)।

वे, बुद्धिमान लोग, ज्ञान प्राप्ति करने वाले के साथ

महान दृष्टि,

सही दिव्य जागृति,

जन्म के अंत को प्रत्यक्ष रूप से जानना,

आगे किसी भी प्रकार का जन्म न होना (पुनर्जन्म)।

नोट: 1. जैसा कि इस आयत में स्पष्ट है, ये तीन श्रेणियाँ इंद्रिय सुख के स्वर्ग में स्थित देवों (देवदूतों) के तीन स्तरों को दर्शाती हैं। "नियंत्रण में रहने वाले" इन स्तरों में सबसे उच्च स्तर पर हैं।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 96. कामयोगसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 95 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 96 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 97

96. कामयोगसुत्तम (इंद्रिय सुख पुनर्जन्म का कारण बनता है)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, जो कामुकता और पुनर्जन्म के बंधन में बंधे हैं, वे इस अवस्था में लौटते हैं। जो कामुकता के बंधन से मुक्त होकर पुनर्जन्म के बंधन में बंधे हैं, वे इस अवस्था में नहीं लौटते। जो कामुकता और पुनर्जन्म दोनों के बंधन से मुक्त हैं, वे अरहंत हैं जिनके आसव (इच्छाएँ/इच्छाएँ) क्षीण हो जाते हैं।"
दोनों से बंधा हुआ

कामुकता का जुआ

और पुनर्जन्म का बंधन (भाव, पुनर्जन्म),

प्राणी भटकते हुए आगे बढ़ते हैं

जन्म की ओर ले जाना

& मौत।

जिन्होंने इंद्रिय सुख का त्याग कर दिया है

आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत तक पहुंचे बिना,

वे बनने के बंधन (भाव) से बंधे हुए हैं।

इन्हें वापस न लौटने वाले कहा जाता है।

जबकि जिन्होंने संदेह को त्याग दिया है

अब और अहंकार मत रखो

या आगे चलकर पुनर्जन्म लेना।

जो लोग पहुँच चुके हैं

आसवों का अंत,

दुनिया में रहते हुए

चले गए हैं

आगे।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 97. कल्याणसिलसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 96 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 97 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 98

97. कल्याणशीलसुत्तम (सद्‌गुण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, जो भिक्षु शील (परोपकारी गुण), प्रशंसनीय गुण और प्रशंसनीय प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्न) से युक्त है, वह धम्म-विनय में पूर्ण, परिपूर्ण और श्रेष्ठ व्यक्ति कहलाता है।

" और भिक्षु कैसे परोपकारी गुण से युक्त होता है? एक मामला वह है जहाँ भिक्षु गुणी होता है। वह पतिमोक्खा (विनय पिटक में बौद्ध आचार संहिता) के अनुसार संयमित रहता है, अपने व्यवहार और कार्यक्षेत्र में परिपूर्ण होता है। वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। इस प्रकार भिक्षु परोपकारी गुण से युक्त होता है। अतः वह परोपकारी गुण से युक्त होता है।

"और एक भिक्षु प्रशंसनीय गुणों वाला व्यक्ति कैसे होता है? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु सात गुणों के विकास के लिए समर्पित जीवन व्यतीत करता है जो ज्ञानोदय के पंख हैं।[1] इस प्रकार एक भिक्षु प्रशंसनीय गुणों वाला व्यक्ति होता है। इस प्रकार वह परोपकारी सद्‌गुणों और प्रशंसनीय गुणों से परिपूर्ण होता है।

और एक भिक्षु प्रशंसनीय प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) वाला व्यक्ति कैसे होता है? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु—आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत के साथ—आसव-मुक्त, मोक्ष मन में पन्ना (प्रत्यक्ष ज्ञान) के साथ रहता है, और इसे स्वयं वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से जानता और अनुभव करता है। इस प्रकार एक भिक्षु प्रशंसनीय प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) वाला व्यक्ति होता है। इस प्रकार वह परोपकारी सद्‌गुणों, प्रशंसनीय गुणों और प्रशंसनीय प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्ना) से परिपूर्ण होता है। इस धम्म-और-विनय में उसे पूर्ण, परिपूर्ण और श्रेष्ठ व्यक्ति कहा जाता है।"
गलत काम से रहित

विचार, शब्द या कर्म में

उन्हें परोपकारी गुणों वाला व्यक्ति कहा जाता है:

वह भिक्षु कर्तव्यनिष्ठ था।

गुणों में अच्छी तरह विकसित

जो आत्म-जागरूकता की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं,

उन्हें प्रशंसनीय गुणों वाला व्यक्ति कहा जाता है:

भिक्षु विनम्र स्वभाव का था।

यहीं पर स्वयं निर्णय लेते हुए,

स्वयं में,

दुखों का अंत

उन्हें प्रशंसनीय प्रत्यक्ष समझ (पन्ना) वाला व्यक्ति कहा जाता है:

वह भिक्षु जिसे कोई आसव (इच्छा/इच्छा) नहीं है।

पूर्ण

ये बातें,

चिंतामुक्त, संदेह दूर हो गया।

संसार में अनासक्त,

कहा जाता है कि उसने त्याग दिया है

सभी।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 98. दानसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 97 <<<पिछला ॥ त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 98 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 99

98. दानसुत्तम (दान):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, दान दो प्रकार के होते हैं: भौतिक वस्तुओं का दान और धर्म का दान। इन दोनों प्रकार के दानों में, धर्म का दान श्रेष्ठ है। दान दो प्रकार के होते हैं: भौतिक वस्तुओं का दान और धर्म का दान। इन दोनों प्रकार के दानों में, धर्म का दान श्रेष्ठ है। सहायता दो प्रकार की होती है: भौतिक वस्तुओं में सहायता और धर्म में सहायता। इन दोनों प्रकार की सहायता में, धर्म के साथ सहायता श्रेष्ठ है।"
वह जिस उपहार का वर्णन करता है

सर्वोच्च के रूप में

और अद्वितीय,

भगवान बुद्ध ने जिस साझाकरण की प्रशंसा की है:

जो योग्यता के सर्वोच्च क्षेत्र में आश्वस्त है,

बुद्धिमान, विवेकशील—

क्या वह इसे उचित समय पर नहीं देगा?

दोनों के लिए, जो इसका दावा करते हैं

और जो सुनते हैं,

तथागत (बुद्ध) के संदेश में विश्वास रखते हुए:

यह उनके सर्वोपरि लाभ को शुद्ध करता है—

जो लोग इस संदेश पर ध्यान दे रहे हैं

तथागत (बुद्ध) का।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 99. तेविज्जासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 98 <<<पिछला || त्रिकों का अध्याय: इतिवुत्तक 99 || अगला >>> इतिवुत्तक 100

99. तेविज्जसुत्तम (त्रिविध ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया था, अरहंत द्वारा कहा गया था, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, मैं किसी व्यक्ति को त्रिविध ज्ञान से युक्त ब्राह्मण के रूप में धम्म के संदर्भ में वर्णित करता हूँ, न कि किसी अन्य को, जिसका मापन और पाठ द्वारा किया जाता है। और यह धम्म के संदर्भ में कैसे है कि मैं किसी व्यक्ति को त्रिविध ज्ञान से युक्त ब्राह्मण के रूप में वर्णित करता हूँ, न कि किसी अन्य को, जिसका मापन और पाठ द्वारा किया जाता है? "एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख के प्रति मेरी संवेदनशीलता ऐसी थी, मेरे जीवन का अंत ऐसा था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे ही कुल का था, मेरा ऐसा ही रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख के प्रति मेरी ऐसी ही संवेदनशीलता थी, मेरे जीवन का ऐसा ही अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है। "यह वह प्रथम ज्ञान है जो उसने प्राप्त किया है। अज्ञान (अविज्जा) नष्ट हो गया है; ज्ञान का उदय हुआ है; अंधकार नष्ट हो गया है; प्रकाश का उदय हुआ है—जैसा कि उस व्यक्ति में होता है जो सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है।

"फिर भिक्षु—शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से—प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह यह समझ पाता है कि वे अपने कर्मों के अनुसार कैसे हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली हैं: 'ये प्राणी—जो शारीरिक दुराचार, वाणी दुराचार और मानसिक दुराचार से ग्रस्त थे; जो लोग श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते थे, गलत विचार रखते थे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म करते थे, वे शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक, एक बुरे गंतव्य, एक निचले लोक, नरक में पुनः प्रकट

होते हैं। परन्तु वे प्राणी—जो शारीरिक रूप से अच्छे आचरण, वाणी से अच्छे आचरण और मानसिक रूप से अच्छे आचरण से संपन्न थे; जिन्होंने श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए—शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य, एक स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार—पवित्र और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते हुए देखता है, और उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। "यह वह दूसरा ज्ञान है जो उसने प्राप्त किया है। अज्ञान (अविज्जा) नष्ट हो गया है; ज्ञान (समझ) उत्पन्न हुआ है; अंधकार नष्ट हो गया है; प्रकाश उत्पन्न हुआ है—जैसा कि उस व्यक्ति में होता है जो सतर्क, उत्साही और दृढ़ रहता है।"

"फिर, आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) के अंत के साथ, भिक्षु आसव (इच्छा/इच्छा) से मुक्त मन में रहता है और प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्न) के साथ, इसे स्वयं वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से जानता और अनुभव करता है। "यह वह तीसरा ज्ञान है जो उसने प्राप्त किया है। अज्ञान (अविज्जा) नष्ट हो गया है; ज्ञान उत्पन्न हुआ है; अंधकार नष्ट हो गया है; प्रकाश उत्पन्न हुआ है—जैसा कि उस व्यक्ति में होता है जो सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है। "इस प्रकार, धम्म के संदर्भ में, मैं किसी व्यक्ति को त्रिविध ज्ञान से संपन्न ब्राह्मण के रूप में वर्णित करता हूँ, न कि किसी अन्य व्यक्ति के रूप में जिसे उद्धरण और
पाठ द्वारा मापा जाता है।"
वह अपने पिछले जन्मों को जानता है।

वह स्वर्ग और दुख की अवस्थाओं को देखता है।

जन्म की समाप्ति को प्राप्त कर चुका है,

वह एक ऐसा ऋषि है जिसने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने में महारत हासिल कर ली है।

इन तीन ज्ञानों के माध्यम से

वह त्रिज्ञानी ब्राह्मण बन जाता है। [1]

मैं उन्हें तीन ज्ञान वाला व्यक्ति कहता हूँ—

एक और नहीं,

उद्धृत करना, सुनाना।

नोट: 1. ब्राह्मण धर्म में, "त्रिज्ञानी व्यक्ति" वह होता था जिसने तीनों वेदों को याद किया हो। यह श्लोक ब्राह्मणवादी शब्द को लेकर उसे एक नया, बौद्ध अर्थ देता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 100. ब्राह्मणधम्मयागसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 99 <<<पिछला॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 100॥ अगला >>> इतिवुत्तक 101

100. ब्रह्मनाधम्मयगसुत्तम् (ब्रह्मन धर्म)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"मैं एक ब्राह्मण हूँ, भिक्षुओं, मैं सदा प्रार्थनाओं का उत्तर देने वाला, उदार हाथों वाला, अपना अंतिम शरीर धारण करने वाला, अद्वितीय चिकित्सक और शल्य चिकित्सक हूँ। तुम मेरे बच्चे हो, मेरे पुत्र हो, मेरे मुख से जन्मे हो, धम्म से जन्मे हो, धम्म द्वारा सृजित हो, धम्म के उत्तराधिकारी हो, भौतिक वस्तुओं के उत्तराधिकारी नहीं।

"दो प्रकार के दान हैं: भौतिक वस्तुओं का दान और धम्म का दान। इन दोनों प्रकार के दानों में, धम्म का दान सर्वोच्च है।

"दो प्रकार की सहभागिता है: भौतिक वस्तुओं की सहभागिता और धम्म की सहभागिता। इन दोनों प्रकार की सहभागिता में, धम्म की सहभागिता सर्वोच्च है।

"दो प्रकार की सहायता है: भौतिक वस्तुओं में सहायता और धम्म में सहायता। इन दोनों प्रकार की सहायता में, धम्म के साथ यह सर्वोच्च सहायता है।"

"सामूहिक दान दो प्रकार के होते हैं: भौतिक वस्तुओं का सामूहिक दान और धम्म का सामूहिक दान। इन दोनों प्रकार के सामूहिक दानों में से धम्म का सामूहिक दान सर्वोच्च है।"
जो व्यक्ति निःसंकोच,

धम्म का सामूहिक दान किया।

तथागत (बुद्ध),

सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखने वाला:

उस तरह के किसी एक को

सर्वश्रेष्ठ प्राणी, मनुष्य और दिव्य—

जीव-जंतु श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं—

एक चला गया

परे

पुनर्जन्म का।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 101. सुलभसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 100 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 101 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 102

101. सुलभसुत्तम (आसानी से उपलब्ध):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“भिक्षुओं, ये चार वस्तुएँ नगण्य हैं, आसानी से प्राप्त होने वाली और निष्पाप हैं। कौन सी चार वस्तुएँ? त्यागा हुआ वस्त्र नगण्य है, आसानी से प्राप्त होने वाला और निष्पाप है। भिक्षा भोजन नगण्य है, आसानी से प्राप्त होने वाला और निष्पाप है। वृक्ष की जड़ निवास स्थान के रूप में नगण्य है, आसानी से प्राप्त होने वाली और निष्पाप है। सड़े हुए मूत्र से बनी औषधि[1] नगण्य है, आसानी से प्राप्त होने वाली और निष्पाप है।

ये चार वस्तुएँ नगण्य हैं, आसानी से प्राप्त होने वाली और निष्पाप हैं। जब कोई भिक्षु नगण्य, आसानी से प्राप्त होने वाली और निष्पाप वस्तुओं से संतुष्ट होता है, तब मैं कहता हूँ कि उसमें संन्यासी जीवन के एक घटक तत्व का समावेश है।”
जो निर्दोष है, उससे संतुष्ट रहना।

उच नहीं के बराबर,

आसानी से प्राप्त किया जा सकता है,

उसका मन व्याकुल नहीं था

आवास, वस्त्र आदि के अलावा

भोजन या पेय पदार्थ:

चारों दिशाएँ उसे अवसर प्रदान करती हैं

कोई अवरोध नहीं।

इन चीजों को अनुकूल घोषित किया गया है

संन्यासी के जीवन के लिए,

भिक्षु के पास हैं

सतर्क, संतुष्ट।

नोट: 1. यह भिक्षुओं की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। इस बात पर कुछ मतभेद है कि क्या यह मूत्र में संरक्षित औषधि को संदर्भित करता है, या औषधि के रूप में मूत्र के उपयोग को (जैसा कि आज भी एशिया के कुछ हिस्सों में प्रचलित है)। यह इतिवुत्तक एएन 4:27 के समान है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 102. असवक्खयसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

इतिवुत्तक 101 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 102 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 103

102. आसवक्खयासुत्तम् (इच्छाओं का क्षय)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, मैं तुमसे कहता हूँ, जो जानता और देखता है, उसके आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) का अंत होता है, जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता और देखता है, उसके आसवों (इच्छाओं/इच्छाओं) का अंत कैसे होता है? जो जानता और देखता है, 'यह दुख है,' उसके आसवों का अंत होता है। जो जानता और देखता है, 'यह दुख का कारण है,' उसके आसवों का अंत होता है। जो जानता और देखता है, 'यह दुख का निवारण है,' उसके आसवों का अंत होता है। जो जानता और देखता है, 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला साधना मार्ग है,' उसके आसवों का अंत होता है। जो इस प्रकार जानता और देखता है, उसके आसवों का अंत होता है।"
प्रशिक्षण ले रहे शिक्षार्थी के लिए

सीधे रास्ते पर चलते हुए, यह उत्पन्न होता है:

सर्वप्रथम, अंत का ज्ञान;

तब, दिव्य जागृति अतुलनीय होती है;

फिर, मुक्त हुए व्यक्ति का दिव्य जागरण—

रिलीज-ज्ञान, अतिशयोक्तिपूर्ण,

अंत का ज्ञान:

'जंजीरें सड़ चुकी हैं।'

निश्चित रूप से उस आलसी मूर्ख द्वारा नहीं।

समझ से परे,

वहाँ प्राप्त किया गया है

निब्बान से मुक्ति

सभी संबंधों का शिथिल होना।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 103. समानब्राह्मणसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 102 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 103 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 104

103. समनाब्रह्मणसुत्तम् (भिक्षु एवं पुरोहित):

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

“हे भिक्षुओं, कोई भी तपस्वी (भिक्षु) या ब्राह्मण (पुरोहित) जो यह नहीं समझते हैं, जैसा कि हुआ है, कि 'यह दुख है,' ... कि 'यह दुख का कारण है,' ... कि 'यह दुख का निवारण है,' जो यह नहीं समझते हैं, जैसा कि हुआ है, कि 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला साधना मार्ग है': मेरे लिए ये तपस्वी (भिक्षु) और ब्राह्मण तपस्वियों में तपस्वी (भिक्षु) या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं गिने जाते। इसके अलावा, वे तपस्वी जीवन के लक्ष्य या ब्राह्मण जीवन के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और न ही उसमें बने रहते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं इसे वर्तमान क्षण में प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव किया है।

“लेकिन कोई भी वे तपस्वी (भिक्षु) या ब्राह्मण जो यह समझते हैं कि 'यही दुख है,' ... 'यही दुख का कारण है,' ... 'यही दुख का निवारण है,' जो यह समझते हैं कि 'यही दुख निवारण का मार्ग है': मेरे लिए ये तपस्वी (भिक्षु) और ब्राह्मण तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण हैं। इसके अलावा, वे तपस्वी जीवन के लक्ष्य और ब्राह्मण जीवन के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और उसमें बने रहते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं इस समय और यहीं पर इसे प्रत्यक्ष रूप से जान लिया है और अनुभव कर लिया है।
जो लोग दुख को नहीं पहचानते,

पीड़ा अपना असर दिखाने लगी है।

और जहां यह पूरी तरह से रुक जाता है,

बिना पहचाने,

जो रास्ता नहीं जानते,

दुखों को शांत करने का मार्ग:

निम्न

उनके मुक्त मन में

और समझ में स्वतंत्रता (पन्ना),

अक्षम

अंत करने का,

वे जा रहे हैं

जन्म और वृद्धावस्था के लिए।

लेकिन जो लोग दुख को समझते हैं,

पीड़ा अपना असर दिखाने लगी है।

और जहां यह पूरी तरह से रुक जाता है,

बिना पहचाने,

जो मार्ग को पहचानते हैं,

दुखों को शांत करने का मार्ग:

समाप्त

उनकी जागरूकता-जारी में

और प्रत्यक्ष समझ (पन्ना) में स्वतंत्रता,

काबिल

अंत करने का,

वे आगे नहीं बढ़ रहे हैं

पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के लिए।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 104. सिलसम्पन्नसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 103 <<<पिछला || चार अध्याय: इतिवुत्तक 104 || अगला >>> इतिवुत्तक 105

104. शिलासंपन्नसुत्तम (सद्गुणों से परिपूर्ण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, वे भिक्षु जो सद्गुणों (शील) से परिपूर्ण हैं, समाधि (सम्मोहन) से परिपूर्ण हैं, प्रत्यक्ष ज्ञान (पन्न) से परिपूर्ण हैं, मुक्ति से परिपूर्ण हैं, मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण हैं; जो उपदेश देते हैं, उदाहरण देते हैं, निर्देश देते हैं, प्रेरित करते हैं, जगाते हैं और प्रोत्साहित करते हैं; जो सही ढंग से सच्चे धम्म को इंगित करने में सक्षम हैं: मैं तुमसे कहता हूँ, उन्हें देखने से बहुत कुछ प्राप्त होता है; उन्हें सुनने से... उनके पास जाने से... उनकी देखभाल करने से... उनका स्मरण करने से, उनके पीछे चलते हुए बहुत कुछ प्राप्त होता है। ऐसा क्यों है?
"इस प्रकार के भिक्षुओं के साथ संगति करने से, उनके साथ सहभागिता करने से, उनकी देखभाल करने से, अभी तक अविकसित सद्गुणों (शील) का समूह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचता है, अभी तक अविकसित समाधि (सम्मोहन) का समूह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचता है।" विकास के क्रम में, प्रत्यक्ष बोध (पन्ना) का अभी तक पूर्ण न हुआ समुच्चय अपने विकास की पराकाष्ठा की ओर बढ़ता है, मुक्ति का अभी तक पूर्ण न हुआ समुच्चय अपने विकास की पराकाष्ठा की ओर बढ़ता है, मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का अभी तक पूर्ण न हुआ समुच्चय अपने विकास की पराकाष्ठा की ओर बढ़ता है। इस प्रकार के भिक्षुओं को शिक्षक,

रथगामी नेता, कलह का त्याग करने वाले, अंधकार को दूर करने वाले, प्रकाश उत्पन्न करने वाले, दीप्ति उत्पन्न करने वाले, चमक उत्पन्न करने वाले, दीप्ति उत्पन्न करने वाले, ज्ञान प्रदान करने वाले, महान और दृष्टि से संपन्न कहा जाता है।
यह एक स्थिति है

आनंद उत्पन्न करना

जो लोग जानते हैं उनके लिए:

धम्म का जीवन जीना

श्रेष्ठ लोगों में से,

मन को शांत रखते हुए।

वे सच्चे धम्म को प्रकाशमान करते हैं।

इसे प्रकाशित करो, यह खूब चमके।

वे प्रकाश के निर्माता हैं।

प्रबुद्ध (बुद्धिमान),

संघर्ष के परित्यागी।

उनकी आंखें हैं

जो देखते हैं।

उनका संदेश सुनकर

सही दिव्य जागृति के साथ, बुद्धिमान

सीधे तौर पर जानना

जन्म का अंत,

आगे किसी भी प्रकार का जन्म न होना (पुनर्जन्म)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 105. तनहुप्पासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 104 <<<पिछला ‖ चार अध्याय: इतिवुत्तक 105 ‖ अगला >>> इतिवुत्तक 106

105. तनहुप्पदसुत्तम (लालसा का जन्मस्थान)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, तन्हा की ये चार जन्मस्थान हैं जहाँ एक भिक्षु की तन्हा, जन्म लेते समय, उत्पन्न होती है। वे चार कौन से हैं? या तो वस्त्र के लिए, या भिक्षा भोजन के लिए, या आवास के लिए, या यह या वह बनने या न बनने के लिए, जन्म लेते समय, भिक्षु की तन्हा उत्पन्न होती है। ये चार जन्मस्थान हैं जहाँ एक भिक्षु की तन्हा, जन्म लेते समय, उत्पन्न होती है।"
अपने साथी के लिए लालसा (तन्हा) के साथ, एक आदमी

बहुत लंबे समय तक भटकता रहता है।

न ही इस राज्य में यहाँ

और न ही कहीं और

क्या वह इससे आगे जाता है?

भटकते रहना।

इस कमी को जानते हुए—

वह लालसा (तन्हा) दुख को जन्म देती है—

लालसा से मुक्त (तन्हा),

आसक्ति से रहित,

ध्यानमग्न भिक्षु

वह भिक्षु जीवन व्यतीत करता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 106. सब्रह्मकसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 105 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 106 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 107

106. सब्रह्मकसुत्तम् (माता-पिता, ब्रह्मा के समान हैं)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही है, अरहंत ने भी यही कहा है, जैसा मैंने सुना है:

“हे भिक्षुओं, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ रहने वाले वे परिवार हैं जहाँ घर में बच्चे माता-पिता का आदर करते हैं। प्रथम देवों (देवदूतों) के साथ रहने वाले वे परिवार हैं जहाँ घर में बच्चे माता-पिता का आदर करते हैं। प्रथम गुरुओं के साथ रहने वाले वे परिवार हैं जहाँ घर में बच्चे माता-पिता का आदर करते हैं। दान के योग्य लोगों के साथ रहने वाले वे परिवार हैं जहाँ घर में बच्चे माता-पिता का आदर करते हैं। 'ब्रह्म (प्रधान देवदूत)' माता-पिता का पर्यायवाची है। 'प्रथम देव (देवदूत)' माता-
पिता का पर्यायवाची है। 'प्रथम गुरु' माता-पिता का पर्यायवाची है। 'दान के योग्य लोग' माता-पिता का पर्यायवाची है। ऐसा क्यों है? माता-पिता अपने बच्चों के लिए बहुत कुछ करते हैं। वे उनकी देखभाल करते हैं। उनका पालन-पोषण करो, उन्हें इस दुनिया से परिचित कराओ।"
माँ बाप,

अपने परिवार के प्रति दयालु,

कहा जाता है

ब्रह्मा (प्रधानदेव),

पहले शिक्षक,

उपहारों के योग्य

अपने बच्चों से।

इसलिए समझदारों को उन्हें भुगतान करना चाहिए

श्रद्धांजलि,

सम्मान,

खाने-पीने के साथ,

कपड़े और बिस्तर,

अभिषेक और स्नान,

और उनके पैर धोना।

अपने माता-पिता को ये सेवाएं प्रदान करते हुए,

समझदार

यहीं उनकी प्रशंसा की जाती है

और मृत्यु के बाद

स्वर्ग में आनंद मनाओ।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 107. बहुकरसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 106 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 107 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 108

107. बहुकारसुत्तम (सहायक)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, ब्राह्मणों और गृहस्थों को आपका बहुत सहायक होना चाहिए, क्योंकि वे आपको वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के लिए चिकित्सा सामग्री प्रदान करते हैं। और आप, भिक्षुओं, ब्राह्मणों और गृहस्थों के लिए बहुत सहायक हैं, क्योंकि आप उन्हें धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है; क्योंकि आप ब्रह्मचर्य जीवन का उसके विवरण और सार दोनों में पूर्णतः पूर्ण, अत्यंत शुद्ध वर्णन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य जीवन परस्पर निर्भरता में जिया जाता है, ताकि बाढ़ को पार किया जा सके और
दुखों का सही अंत किया जा सके।"

गृहस्थ और बेघर

पारस्परिक निर्भरता में

दोनों ही सच्चे धम्म तक पहुँचते हैं:

गुलामी से अद्वितीय सुरक्षा।

गृहस्थों से लेकर बेघरों तक

आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करें: वस्त्र, आवास,

प्रतिकूल मौसम से सुरक्षा।

जबकि उन लोगों पर निर्भरता बनी हुई है जो गुजर चुके हैं,

घर से प्यार करने वाले गृहस्थों

अरहंतों में आस्था रखें

महान प्रत्यक्ष समझ (पन्ना) का

ध्यान (सम्मोहन) में लीन।

यहाँ धम्म का अभ्यास करने के बाद—

अच्छे गंतव्यों की ओर ले जाने वाला मार्ग—

देवलोक में आनंदित होते हुए,

वे प्रसन्न होते हैं,

कामुक सुखों का आनंद लेना।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 108. कुहासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 107 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 108 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 109

108. कुहासुत्तम (धोखेबाज)

यह बात भगवान बुद्ध (भागवत) ने कही है, अरहंत ने कही है, जैसा मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, जो भिक्षु धोखेबाज, हठी, बातूनी, कपटी, अहंकारी और ध्यानमग्न (सम्मोहन का अभ्यास न करने वाले) हैं, वे मेरे अनुयायी नहीं हैं। वे धम्म-विनय से विमुख हो गए हैं। वे धम्म-विनय के संदर्भ में कोई उन्नति, वृद्धि या समृद्धि प्राप्त नहीं करते।" "परन्तु जो भिक्षु धोखेबाज नहीं हैं, बातूनी नहीं हैं, जो धैर्यवान, विनम्र और ध्यानमग्न (सम्मोहन में) हैं, वे मेरे अनुयायी हैं। वे धम्म-विनय से विमुख नहीं हुए हैं। वे धम्म-विनय के संदर्भ में उन्नति, वृद्धि और समृद्धि प्राप्त करते हैं।"
कपटी, जिद्दी, बातूनी, धोखेबाज

अहंकारी, अस्थिर (सम्मोहन का अभ्यास न करने वाला):

वे धम्म में नहीं उगते

सही (पूरी तरह से) द्वारा सिखाया गया

स्वयंजागृत व्यक्ति (बुद्ध)।

न तो कपटी, न ही बातूनी।

दृढ़, लचीला,

अच्छी तरह से केंद्रित (समाधि का अभ्यास करता है):

वे धम्म में बढ़ते हैं

एक द्वारा सिखाया गया

ठीक

आत्मजागृत (बुद्ध)।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 109. नादिसोत्सुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 108 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 109 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 110

109. नादिसोतसुत्तम (नदियाँ और धाराएँ)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति नदी की सुंदर और आकर्षक धारा में बह रहा है। तभी नदी के किनारे खड़ा एक अन्य व्यक्ति, जिसकी दृष्टि अच्छी है, उसे देखकर कहता है, 'हे मेरे भले, यद्यपि तुम नदी की सुंदर और आकर्षक धारा में बह रहे हो, लेकिन यहाँ से आगे लहरों और भंवरों वाला एक कुंड है, जिसमें राक्षस और दानव हैं। उस कुंड में पहुँचकर तुम्हें मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ेगी।' तब पहला व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के शब्दों को सुनकर, धारा के विपरीत जाने के लिए अपने हाथों और पैरों से प्रयास करेगा। "मैंने आपको यह उपमा अर्थ स्पष्ट करने के लिए दी है। इसका अर्थ यह है: नदी की धारा तृष्णा (तन्हा) का प्रतीक है। सुंदर और आकर्षक छह आंतरिक इंद्रिय-माध्यमों का प्रतीक है। आगे स्थित कुंड पाँच निम्न बंधनों का प्रतीक है।[1] लहरें क्रोध और पीड़ा का प्रतीक हैं। भंवर कामुकता के पांच तार दर्शाते हैं। पकड़ने वाले और राक्षस विपरीत लिंग का प्रतीक हैं। धारा के विपरीत जाना त्याग का प्रतीक है। हाथों और पैरों से प्रयास करना दृढ़ता को जगाने का प्रतीक है। तट पर खड़ा अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति तथागत (बुद्ध) का प्रतीक है, जो योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं।
भले ही इसमें कष्ट सहना पड़े,

आपको त्याग देना चाहिए

कामुक इच्छाएँ

यदि आप आकांक्षा रखते हैं

भविष्य में गुलामी से सुरक्षा के लिए।

पूर्णतः जागरूक होकर (समभाविक ध्यान में),

मुक्त मन के साथ,

यहां-वहां (स्वयं के भीतर) अनुभूति का अनुभव करना,

ज्ञान प्राप्त करने वाला

ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत करने के बाद,

कहा जाता है कि वह चला गया है

दुनिया के अंत तक, चला गया

आगे।

नोट: 1. निम्नतम पाँच बंधन हैं: आत्म-पहचान का दृष्टिकोण, अनिश्चितता, आदतों और प्रथाओं से आसक्ति, कामुक वासना और प्रतिरोध। एएन 7:48 और एएन 10:13 भी देखें।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 110. चरसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 109 <<<पिछला ॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 110 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 111

110. चरसुत्तम (चलते समय...)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"यदि चलते समय किसी भिक्षु के मन में कामुकता, द्वेष या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न होता है, और वह उस विचार को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, नष्ट करके या मिटाकर नहीं मिटाता है, तो ऐसे भिक्षु को निरंतर आलसी और दृढ़ संकल्प में कम कहा जाता है।
"यदि खड़े होते समय...
"यदि बैठे होते समय...
"यदि लेटे होते समय किसी भिक्षु के मन में कामुकता, द्वेष या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न होता है, और वह उस विचार को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, नष्ट करके या मिटाकर नहीं मिटाता है, तो ऐसे भिक्षु को निरंतर आलसी और दृढ़ संकल्प में कम कहा जाता है।

लेकिन यदि चलते समय किसी भिक्षु के मन में कामुकता, द्वेष या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न हो, और वह उस विचार को तुरंत त्याग दे, दूर कर दे, नष्ट कर दे और मिटा दे, तो ऐसे उत्साह और पश्चाताप के साथ चलने वाले भिक्षु को निरंतर दृढ़ निश्चयी, दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण कहा जाता है।
यदि खड़े रहते समय...
यदि बैठे रहते समय...
यदि लेटे रहते समय किसी भिक्षु के मन में कामुकता, द्वेष या हानि पहुँचाने का विचार उत्पन्न हो, और वह उस विचार को तुरंत त्याग दे, दूर कर दे, नष्ट कर दे और मिटा दे, तो ऐसे उत्साह और पश्चाताप के साथ लेटे रहने वाले भिक्षु को निरंतर दृढ़ निश्चयी, दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण कहा जाता है।
चाहे चलना हो या खड़े रहना हो,

बैठे हुए, या लेटे हुए,

जो कोई भी बुरे विचार सोचता है,

घरेलू जीवन से संबंधित,

यह किसी भी मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहा है।

पीटा गया

भ्रामक चीजों के साथ।

वह अक्षम है।

इस तरह का एक भिक्षु,

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्मजागरूकता।

लेकिन जो कोई भी

चलना, खड़े होना,

बैठे हुए, या लेटे हुए

विचार पर विजय प्राप्त करता है,

विचारों के शांत होने में आनंद लेना:

वह सक्षम है।

इस तरह का एक भिक्षु,

स्पर्श करने का अतिशयोक्तिपूर्ण

आत्म-जागरूकता (बोधि)।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 111. संपन्नशिलासुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 110 <<<पिछला॥ चार अध्याय: इतिवुत्तक 111 ॥ अगला >>> इतिवुत्तक 112

111. संपन्नशीलसुत्तम (सद्‌गुणों से परिपूर्ण)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"हे भिक्षुओं, सद्गुणों से परिपूर्ण हो और पतिमोक्ख (विनय पिटक में बौद्ध आचार संहिता) का पूर्णतया पालन करो। पतिमोक्ख के अनुसार संयमित रहो, अपने आचरण और कार्यक्षेत्र में परिपूर्ण रहो। प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरे को पहचानो। जब कोई सद्गुणों से परिपूर्ण हो, पतिमोक्ख से परिपूर्ण हो; पतिमोक्ख के अनुसार संयमित रहता हो,

अपने आचरण और कार्यक्षेत्र में परिपूर्ण हो; प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता हो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरे को पहचानता हो—तो और क्या करना बाकी है?" "यदि चलते समय किसी भिक्षु का लालच, द्वेष, आलस्य, बेचैनी और चिंता दूर हो जाए, अनिश्चितता का त्याग हो जाए; यदि उसका दृढ़ संकल्प जागृत हो और शिथिल न हो; यदि उसकी जागरूकता स्थिर और स्पष्ट हो; यदि उसका

शरीर शांत और उत्तेजित न हो; यदि उसका ध्यान केंद्रित (सम्मोहन में) और एकीकृत हो: तो ऐसे उत्साह और पश्चाताप के साथ चलने वाले भिक्षु को निरंतर और सतत दृढ़ निश्चयी, जागृत दृढ़ता वाला भिक्षु कहा जाता है।

"यदि खड़े रहते समय...

"यदि बैठे रहते समय...

"यदि लेटते समय किसी भिक्षु का लालच, द्वेष, आलस्य, बेचैनी और चिंता दूर हो जाए, अनिश्चितता का त्याग हो जाए; यदि उसका दृढ़ संकल्प जागृत हो और शिथिल न हो; यदि उसकी जागरूकता स्थिर और स्पष्ट हो; यदि उसका शरीर शांत और उत्तेजित न हो; यदि उसका ध्यान केंद्रित (समाधि की अवस्था में) और एकीकृत हो, तो ऐसे उत्साह और पश्चाताप के साथ लेटे हुए भिक्षु को निरंतर और सतत दृढ़ निश्चयी, दृढ़ता से जागृत भिक्षु कहा जाता है।

चलने में नियंत्रित,

खड़े होने की स्थिति में नियंत्रित,

बैठने की स्थिति में नियंत्रित,

लेटने की स्थिति में नियंत्रित,

अपने अंगों को मोड़ने और फैलाने में नियंत्रित।

ऊपर, चारों ओर और नीचे

दुनिया की सीमा तक

इसके उद्भव और क्षय का अवलोकन करना

(ध्यान में क्षणभंगुरता को देखते हुए)

आंतरिक घटनाओं का,

समुच्चय का

(5 खंड: रूप, भावनाएँ (संवेदनाएँ), बोध, विचार और चेतना)

एक भिक्षु जो इस प्रकार उत्साहपूर्वक निवास करता है,

बेचैन नहीं, शांति में

हमेशा

सचेत, समभाव,

महारत हासिल करने का प्रशिक्षण

जागरूकता-शांति

कहा जाता है कि लगातार

दृढ़ निश्चयी।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> इतिवुत्तक >> 112. लोकसुत्तम

थानिसारो भिक्खु (जियोफ्रे डीग्राफ) द्वारा किए गए अनुवाद से रूपांतरित।
पाली त्रिपिटक से तुलना www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।
इतिवुत्तक 111 <<<पिछला ॥ चौगुने अध्याय: इतिवुत्तक 112 [समाप्त] ॥

112. लोकसुत्तम् (तथागत बुद्ध द्वारा ज्ञात समस्त लोक)

यह भगवान बुद्ध (भागवत) द्वारा कहा गया है, अरहंत द्वारा कहा गया है, जैसा कि मैंने सुना है:

"भिक्षुओं, इस संसार[1] को तथागत (बुद्ध) ने पूर्णतः ज्ञात कर लिया है। तथागत (बुद्ध) इस संसार से विमुख हैं। संसार की उत्पत्ति को तथागत (बुद्ध) ने पूर्णतः ज्ञात कर लिया है। संसार की उत्पत्ति का तथागत (बुद्ध) ने त्याग कर दिया है। संसार के अंत को तथागत (बुद्ध) ने पूर्णतः ज्ञात कर लिया है। संसार के अंत का तथागत (बुद्ध) ने अनुभव कर लिया है। संसार के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को तथागत (बुद्ध) ने पूर्णतः ज्ञात कर लिया है। संसार के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग का तथागत (बुद्ध) ने विकास किया है।[2] "इस संसार में जो कुछ भी है—अपने देवताओं (देवदूतों) सहित, मारस (राक्षस), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), उनकी पीढ़ियाँ, तपस्वियों (भिक्षुओं) , ब्राह्मणों (पुजारियों), राजकुमारों और मनुष्यों सहित—उन सभी को तथागत (बुद्ध) द्वारा पूर्णतः जागृत बुद्धि द्वारा देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और विचार किया जाता है। अतः उन्हें तथागत (बुद्ध) कहा जाता है। "जिस रात तथागत (बुद्ध) ने पूर्णतः बोधि (जागृति) प्राप्त की, उस रात से लेकर जिस रात वे पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर निर्वाणिक अवस्था में बिना किसी पुनर्जन्म के निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं,[3] तथागत (बुद्ध) ने जो कुछ भी कहा, बोला, समझाया है, वह सत्य है, अन्यथा नहीं। अतः उन्हें तथागत कहा जाता है। "तथागत वह हैं जो अपने उपदेशों का पालन करते हैं, जो उपदेश देते हैं वही करते हैं। क्योंकि वे अपने उपदेशों के अनुरूप कार्य करते हैं, और अपने कर्मों के अनुरूप उपदेश देते हैं, इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है। "इस संसार में, जहाँ देवता (देवदूत), मार (मृत्यु के देवता) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) विद्यमान हैं, और जहाँ
तपस्वियों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों, राजकुमारों और मनुष्यों की पीढ़ियाँ व्याप्त हैं, तथागत (बुद्ध) अजेय विजेता, पूर्ण द्रष्टा और शक्ति के स्वामी हैं।[4] इसीलिए उन्हें तथागत कहा जाता है।"
सीधे तौर पर पूरी दुनिया को जानना,
पूरी दुनिया जैसी वह वास्तव में है,
पूरी दुनिया से अलग होकर,

पूरी दुनिया में बेजोड़।
सभी पर विजय प्राप्त करना
सभी मायनों में,
प्रबुद्ध,
सभी बंधनों से मुक्त,
वह परम शांति को स्पर्श करता है—
निर्वाण (मुक्ति), मुक्त
डर से।

वह आसव (इच्छा/इच्छा) से मुक्त है।

परेशानी का,

जागृत,

उसके संदेह स्पष्ट रूप से सामने आ गए;

क्रिया का अंत हो चुका है।

मानसिक उपलब्धियों के विनाश में जारी किया जाता है

(विशेषताएं/इच्छाएं)।
वे जागृत हो चुके हैं, बुद्ध।
वह एक शेर है, जिसकी कोई बराबरी नहीं।
इस संसार में, इसके देवों (देवदूतों) के साथ
उसने ब्रह्मचक्र को घुमाना शुरू कर दिया।5
इसी प्रकार दिव्य और मनुष्य भी करते हैं।
जो बुद्ध की शरण में गए हैं,
सभा, श्रद्धांजलि अर्पित करना
उस महान व्यक्ति को, जो पूर्णतः परिपक्व है:
'वश में करने पर, वह सबसे अच्छा है'
उनमें से जिन्हें वश में किया जा सकता है;
शांत, द्रष्टा
उन लोगों में से जिन्हें शांत किया जा सकता है;
जारी किया गया, सर्वोच्च
जिन लोगों को रिहा किया जा सकता है उनमें से;
पार किया, सबसे आगे
उनमें से जो पार कर सकते हैं।'
इस प्रकार वे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं
उस महान व्यक्ति को, जो पूर्णतः परिपक्व है:
इस संसार में, अपने देवदूतों के साथ,
वहाँ कोई नहीं है

तुलना करने के लिए
तुम्हारे साथ।'
मैंने सुना है कि भगवान बुद्ध के वचन का भी यही अर्थ था।
टिप्पणी:
1. एसएन 35:82 में “संसार” को छह इंद्रिय क्षेत्रों, उनके विषयों, उन क्षेत्रों में चेतना, उन क्षेत्रों में संपर्क और उस संपर्क के आधार पर उत्पन्न होने वाली हर चीज के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे सुख, दुख या न सुख और न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।
2. यह अंश, एक परिवर्तन के साथ, चार आर्य सत्यों के लिए उपयुक्त कर्तव्यों के समानांतर है: दुख के उद्गम का त्याग करना, उसके निवारण को जानना और उसके निवारण की ओर ले जाने वाले साधना मार्ग का विकास करना। एकमात्र विचलन यह है कि जहाँ दुख के संबंध में कर्तव्य उसे समझना है, वहीं यहाँ तथागत संसार से विरक्त हैं। एसएन 56:11 देखें।
3. क्रमांक 44 देखें।
4. ये विशेषण सामान्यतः महाब्रह्म से जुड़े होते हैं। क्रमांक 22 देखें।
5. ब्रह्म-चक्र = धम्म-चक्र, बुद्ध के प्रथम उपदेश का नाम, क्योंकि इसमें एक "चक्र" है जो दो चरों के सभी बारह संयोजनों को सूचीबद्ध करता है: चार आर्य सत्य—दुख, उसका उद्भव, उसका निवारण और उसके निवारण का मार्ग—और प्रत्येक सत्य के लिए उपयुक्त ज्ञान के तीन स्तर: सत्य का ज्ञान, सत्य के लिए उपयुक्त कार्य का ज्ञान और कार्य
पूर्ण होने का ज्ञान। यह चक्र बुद्ध की सबसे केंद्रीय शिक्षा का सार है।
यह इतिवुत्तक एएन 4:23 के समान है।

सुत्तनिपाता

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया

अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात

सूत्र निपाता में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक और नैतिक मुद्दों पर सूत्र शामिल हैं:
जातिवाद और नस्लभेद के बारे में। सभी मनुष्य समान हैं, यद्यपि पौधों, कीड़ों, जानवरों और पक्षियों में कई उप-प्रजातियाँ हैं (3.9 वसेत्थसुत्त)।
जन्म से कोई बहिष्कृत नहीं होता। बहिष्कृत (निम्न जाति) की परिभाषा बुरे कर्मों से निर्धारित होती है (1.7 वासलसुत्त)।
संसार में हानि और लाभ क्या है (1.6 पराभवसुत्त)।
संत कौन है (1.12 मुनिसुत्त, 4.10 पुरभेदसुत्त, 4.15 अत्तदंडसुत्त)।
बुद्ध गौहत्या और पशुओं के प्रति क्रूरता के विरुद्ध हैं। बुद्ध का मानना है कि पशुओं को मारना और खाना संसार में अनेक रोगों का कारण बना है (2.7 ब्रह्मनाधम्मिकसुत्त)।
तपस्वी (भिक्षु) आलसी नहीं होते, बल्कि वे ज्ञानोदय के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परिश्रम करते हैं (1.4 काशिभरद्वाजसुत्त)।
यौन सुख की बुराई के बारे में (4.7 तिस्सामेत्तेयसुत्त)।

अंतर्वस्तु

1I. उरगवग्गा
2II. चुलवग्गा
3III. महावग्ग
4चतुर्थ. अट्ठकवग्गा
5वी. परायणवग्ग
6अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
7मूल पाली संस्करण
7.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
7.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

I. उरागवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1.1 उरगासुत्त : सभी मानवीय भावनाओं का त्याग करने वाले भिक्षु (भिक्षु) की तुलना उस साँप से की जाती है जो अपनी केंचुल उतारता है।
1.2 धानियासुत्त : धनी चरवाहे धानिया और बुद्ध के बीच संवाद, जिसमें एक अपनी सांसारिक सुरक्षा में और दूसरा अपने विश्वास में आनंदित है।
1.3 खग्गा विशनसुत्त : पारिवारिक और सामाजिक जीवन से बचना चाहिए, क्योंकि समाज में सभी बुराइयाँ व्याप्त हैं। इसलिए व्यक्ति को समाज की भ्रष्ट अवस्था को त्यागकर एकांत जीवन व्यतीत करना चाहिए।
1.4 कासिभरद्वाजसूत्र : ब्राह्मण कासिभरद्वाज गौतम (बुद्ध) को आलस्य के लिए फटकारते हैं, लेकिन गौतम उन्हें समझाते हैं कि वे भी कर्म करते हैं, और इस प्रकार ब्राह्मण परिवर्तित हो जाते हैं और अंततः संत बन जाते हैं।
1.5 चुंडासूत्र : बुद्ध लोहार चुंडा को चार प्रकार के कर्मों का वर्णन करते हैं।
1.6 पराभवसूत्र : एक देवता और बुद्ध के बीच उन चीजों पर संवाद जिनसे मनुष्य इस संसार में हानि और लाभ प्राप्त करता है।
1.7 वासलसूत्र : मतंग जातक में वर्णित मतंग की कहानी द्वारा सचित्र, बहिष्कृत व्यक्ति की परिभाषा सुनने के बाद ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज बुद्ध द्वारा परिवर्तित हो जाते हैं।
1.8 मेट्टासूत्र : शांत मन और सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना की प्रशंसा की जाती है।
1.9 हेमावतासूत्र : दो लोगों के बीच संवाद। यक्ष (गैर-मानव, आत्माएं) बुद्ध के गुणों पर विचार करते हैं। वे बुद्ध के पास जाते हैं, और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के बाद, वे दस सौ यक्षों के साथ बुद्ध के अनुयायी बन जाते हैं।
1.10 अलावकसुत्त : यक्ष (गैर-मानव, आत्मा) अलावक पहले बुद्ध को धमकाता है, फिर उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिनका बुद्ध उत्तर देते हैं, जिसके बाद अलावक परिवर्तित हो जाता है।
1.11 विजयसुत्त : मानव शरीर की निरर्थकता पर चिंतन; बुद्ध का अनुयायी शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में ही देखता है, और फलस्वरूप निर्वाण प्राप्त करता है।
1.12 मुनिसुत्त : मुनि (संत) की परिभाषा।

II. चुलवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

2.1 रत्न सूत्र : सभी प्राणियों के लिए मोक्ष केवल बुद्ध, धम्म और संघ में ही पाया जा सकता है।
2.2 आमगन्ध सूत्र : बुरे मन और बुरे कर्म ही मनुष्य को अपवित्र करते हैं; कोई भी बाहरी अनुष्ठान उसे शुद्ध नहीं कर सकता।
2.3 हिरिस सूत्र : सच्ची मित्रता पर।
2.4 महा मंगलसूत्र : बुद्ध ने देवता को दिए जाने वाले सर्वोच्च आशीर्वाद को परिभाषित किया है।
2.5 सुचिलोमा सूत्र : यक्ष (अमानवीय आत्मा) सुचिलोमा बुद्ध को धमकी देता है कि यदि वे उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए तो वह उन्हें हानि पहुँचाएगा। बुद्ध उत्तर देते हैं कि सभी मनोभाव शरीर से उत्पन्न होते हैं।
2.6 धम्मकारिया सूत्र या कपिलसूत्र : भिक्षुओं को पापी व्यक्तियों से दूर रहने की सलाह दी जाती है और उन्हें पवित्र जीवन जीने का निर्देश दिया जाता है।
2.7 ब्राह्मणमम्मिक सूत्र : धनी ब्राह्मण बुद्ध के पास आकर प्राचीन ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों के बारे में पूछते हैं। बुद्ध उनके जीवन शैली और राजा के धन को देखकर उनमें आए परिवर्तन का वर्णन करते हैं, और यह भी बताते हैं कि कैसे उन्होंने राजा को यज्ञों में जीवित प्राणियों की बलि देने का पाप करने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध के ज्ञानवर्धक प्रवचन को सुनकर धनी ब्राह्मण परिवर्तित हो जाते हैं।
2.8 नवसूत्र : एक अच्छे और विद्वान शिक्षक का चुनाव
2.9 किंशीलसूत्र : सर्वोच्च लाभ कैसे प्राप्त करें
2.10 उत्थानसूत्र : सुस्त और आलसी न होने की सलाह
2.11 राहुलसूत्र : बुद्ध राहुल को संन्यासी जीवन की सलाह देते हैं और उन्हें संसार से अपना मन हटाने और संयमी होने का उपदेश देते हैं
2.12 वंगीसासूत्र (निग्रोधकप्पसूत्र) : वंगीसा निग्रोधकप्प के भाग्य को जानना चाहता है, कि क्या वह पूरी तरह से नष्ट हो गया है, या क्या उसके कुछ अंश अभी भी शेष हैं। बुद्ध ने
2.13 सम्मपरिब्बाजनीयसूत्र में उत्तर दिया : भिक्षु के लिए सही मार्ग।
2.14 धम्मिकासूत्र में बुद्ध ने धम्मिका को बताया कि भिक्षु का जीवन कैसा होना चाहिए और गृहस्थ का जीवन कैसा होना चाहिए।

III. महावग्ग
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

3.1 पब्बज्जसूत्त : राजा बिम्बिसार बुद्ध में रुचि लेकर उन्हें धन का प्रलोभन देने का प्रयास करता है, लेकिन बुद्ध उसे हल्के से फटकारते हैं।
3.2 पधानसूत्त : मारा (मृत्यु का देवता) बुद्ध को प्रलोभन देने का प्रयास करता है, लेकिन निराश होकर उसे पीछे हटना पड़ता है।
3.3 सुभाषितसूत्त : सुभाषिक
3.4 सुंदरिकाभरद्वाजसूत्त : बुद्ध सुंदरिकाभरद्वाज को बताते हैं कि किसे आहुति देनी चाहिए, और ब्राह्मण अंततः परिवर्तित हो जाता है।
3.5 माघसूत्त : पूछे जाने पर बुद्ध माघ को आहुति के योग्य व्यक्तियों और आहुति देने के आशीर्वाद के बारे में बताते हैं।
3.6 सबियासूत्त : परिब्बजक (तपस्वी) सबिया अपने समय के छह प्रसिद्ध शिक्षकों के पास अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए जाता है, लेकिन अपने संदेह दूर न होने पर वह गौतम (बुद्ध) के पास जाता है।
3.7 सेलासुत्त : जटिला वंश केनिया ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन उनके साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ वहाँ पहुँचा; तैयारियों को देखकर उसने पूछा कि क्या हो रहा है, और उसे उत्तर मिला कि बुद्ध अगले दिन आने वाले हैं। 'बुद्ध' शब्द सुनते ही सेला ने पूछा कि बुद्ध कहाँ रहते हैं, उनके पास गया, उनसे बातचीत की और परिवर्तित हो गया; उसके अनुयायी भी परिवर्तित हो गए।
3.8 सल्लसुत्त : बुद्ध, जो पहले राम के रूप में थे, शिक्षा देते हैं - जीवन छोटा है, सभी नश्वर मृत्यु के अधीन हैं, लेकिन संसार के नियमों को जानकर बुद्धिमान शोक नहीं करते, और जो शोक छोड़ देते हैं उन्हें आशीर्वाद प्राप्त होगा।
3.9 वसेत्थसुत्त : भारद्वाज और वसेत्थ नामक दो युवकों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ, भारद्वाज का तर्क था कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है, जबकि वसेत्थ का। वे समना गौतम (बुद्ध) से पूछने के लिए सहमत हुए, और उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य केवल अपने कर्मों से ब्राह्मण होता है। दोनों युवकों का धर्म परिवर्तन हो जाता है।
3.10 कोकालिकासुत्त : कोकालिका बुद्ध के समक्ष सारिपुत्त और मोग्गलाना का अपमान करता है; इसलिए बुद्ध से विदा होते ही उसे फोड़े हो जाते हैं, उसकी मृत्यु हो जाती है और वह पद्मा नरक में चला जाता है, जिसके बाद बुद्ध भिक्षुओं को नरक में चुगली करने वालों के दंड का वर्णन करते हैं।
3.11 नालकसुत्त : इसि (ऋषि, संत) असित, जिन्हें कन्हासिरी भी कहा जाता है, देवताओं को आनंदित देखकर इसका कारण पूछते हैं, और यह सुनकर कि बुद्ध का जन्म हुआ है, वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित होते हैं। जब शाक्यों ने उन्हें बालक दिखाया, तो उन्होंने उसे सहर्ष ग्रहण किया और उसके बारे में भविष्यवाणी की। बुद्ध ने असित की बहन के पुत्र नालका को ज्ञान की उच्चतम अवस्था के बारे में समझाया
3.12 द्वयतानुपासनासुत्त : दुनिया में सभी दर्द उपाधि, अविज्जा, संखरा विन्नन, फस्सा, वेदना, तन्हा, उपदान, आरंभ, आहार, इंगिता, निस्साय, रूप, मोसाधम्म, सुखा से उत्पन्न होते हैं।

IV. अत्थकवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

4.1 कामसूत्र : इंद्रिय सुखों से बचना चाहिए।
4.2 गुहात्तकसूत्र : किसी को भी अस्तित्व और इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होना चाहिए।
4.3 दुत्थत्तकसूत्र : मुनि (संत) किसी निंदा के पात्र नहीं होते, क्योंकि उन्होंने दर्शनशास्त्र की सभी प्रणालियों को त्याग दिया है, और इसलिए वे स्वतंत्र हैं।
4.4 शुद्धत्तकसूत्र : दर्शनशास्त्र से कोई शुद्ध नहीं होता; दर्शनशास्त्र के प्रति समर्पित लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाते हैं, लेकिन बुद्धिमान लोग वासना से प्रेरित नहीं होते और संसार में किसी भी चीज को सर्वोच्च नहीं मानते।
4.5 परमत्थकसूत्र : दार्शनिक वाद-विवाद में स्वयं को नहीं लगाना चाहिए; जो ब्राह्मण दर्शनशास्त्र की किसी भी प्रणाली को नहीं अपनाता, वह अपरिवर्तनीय है, उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
4.6 जरासूत्र : स्वार्थ से दुःख और लोभ उत्पन्न होते हैं। वह भिक्षु (भिक्षु) जिसने संसार से विमुख होकर घर-बार त्याग कर विचरण किया है, स्वतंत्र है और किसी अन्य के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं रखता।
4.7 तिस्सामेत्तेयसुत्त : यौन संबंध से बचना चाहिए।

4.8 पसुरसुत्त : वाद-विवाद करने वाले एक-दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं, वे प्रशंसा की कामना करते हैं, लेकिन अस्वीकार किए जाने पर असंतुष्ट हो जाते हैं; वाद-विवाद से शुद्धि नहीं होती, बल्कि बुद्ध की शरण में रहने से होती है, जिन्होंने सभी पापों का निवारण किया है।
4.9 मगंदीयसुत्त : मगंदीय और बुद्ध के बीच संवाद। मगंदीय बुद्ध को अपनी पुत्री विवाह के लिए अर्पित करता है, लेकिन बुद्ध उसे अस्वीकार कर देते हैं। मगंदीय कहता है कि पवित्रता दर्शन से आती है, बुद्ध 'आंतरिक शांति' से। मुनि (संत) शांति के दूत होते हैं, वे विवाद नहीं करते, वे दोषरहित होते हैं।
4.10 पुरभेदसूत्र : शांत मुनि (संत) की परिभाषा।
4.11 कालहाविवादसूत्र : विवादों और कलहों का उद्गम।
4.12 चुलवियुहसूत्र : विवाद करने वाले दार्शनिकों का वर्णन। दर्शनशास्त्र के विभिन्न संप्रदाय एक दूसरे का खंडन करते हैं, वे अलग-अलग सत्य घोषित करते हैं, लेकिन सत्य एक ही है। जब तक विवाद चलते रहेंगे, तब तक संसार में कलह बनी रहेगी।
4.13 महावियुहसूत्र : दार्शनिक पवित्रता की ओर नहीं ले जा सकते, वे केवल अपनी प्रशंसा करते हैं और दूसरों को कलंकित करते हैं। लेकिन एक ब्राह्मण सभी विवादों पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह विद्या के प्रति उदासीन हो जाता है, वह शांत हो जाता है।
4.14 तुवतकसुत्त
: एक भिक्षु कैसे आनंद प्राप्त करता है, उसके कर्तव्य क्या हैं और उसे किन चीजों से बचना चाहिए। 4.15 अत्तदंडसुत्त : एक सिद्ध मुनि का वर्णन।
4.16 सारिपुत्तसुत्त : सारिपुत्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि एक भिक्षु को किस चीज के प्रति समर्पित होना चाहिए, बुद्ध ने दिखाया कि उसे कैसा जीवन जीना चाहिए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.1 उरगसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

प्रारंभ <<<<-->>>> अगला

____

जो भिक्षु सभी मानवीय भावनाओं का त्याग कर देता है, उसकी तुलना उस सांप से की जाती है जो अपनी केंचुल उतार देता है।

____

अंतर्वस्तु

11.1 उरगसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.1 उरागसुत्त
अनुवाद

1. जो भिक्षु क्रोध उत्पन्न होने पर उसे नियंत्रित करता है, जैसे औषधियों द्वारा शरीर में फैलते सर्प के विष को रोका जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (1)

2. जो भिक्षु वासना को पूर्णतः समाप्त कर देता है, जैसे जल में डुबकी लगाने के बाद झील में उगने वाले कमल को काट दिया जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (2)

3. जो भिक्षु तृष्णा को पूर्णतः समाप्त कर देता है, जैसे बहती हुई, तीव्र गति से बहने वाली तृष्णा को सुखाकर, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (3)

4. जिसने अहंकार (अहंकार/अभिमान) को पूरी तरह नष्ट कर दिया है, जैसे बाढ़ सरकंडों के बहुत कमजोर पुल को नष्ट कर देती है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (4)

5. जिसने अस्तित्वों (भाव) में कोई सार नहीं पाया है, जैसे कोई अंजीर के पेड़ों पर फूल ढूंढता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (5)

6. जिसमें क्रोध की भावना नहीं है, जिसने इस प्रकार पुनर्जन्मों पर विजय प्राप्त कर ली है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (6)

7. जिसके संशय (विचार) विलीन हो जाते हैं, जो भीतर से पूर्णतः विच्छेदित हो जाते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (7)

8. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जिसने इस समस्त भ्रम (पापंचम-मानसिकता) पर विजय प्राप्त कर ली, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (8)

9. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जिसने यह देख लिया कि संसार में सब कुछ झूठा है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (9)

10. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, लोभ से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (10)

11. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, वासना से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (11)

12. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, घृणा से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (12)

13. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जो मोह से मुक्त था, (यह देखकर) कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु (साधु) अपने और दूर के किनारे को वैसे ही छोड़ देता है जैसे एक साँप अपनी पुरानी, घिसी-पिटी केंचुली को छोड़ देता है। (13)

14. जिस भिक्षु में किसी प्रकार का स्नेह नहीं होता, जिसके पाप जड़ से नष्ट हो जाते हैं, वह इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (14)

15. जिस भिक्षु में भय से उत्पन्न कोई पाप नहीं होता, जो इस तट पर वापस आने का कारण बनते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (15)

16. जिस भिक्षु में इच्छा से उत्पन्न कोई पाप नहीं होता, जो मनुष्य को अस्तित्व से बांधे रखने का कारण बनते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (16)

17. जो पाँचों बाधाओं को छोड़कर दुख से मुक्त हो जाता है, संदेह पर विजय प्राप्त कर लेता है और पीड़ा रहित हो जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को छोड़ देता है। जैसे एक साँप अपनी पुरानी घिसी-पिटी त्वचा को छोड़ देता है। (17)

उरागसुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
खुद्दाकनिकाय
सुत्तनिपातपाली
1. उरागवाग्गो
1. उरगासुत्तं
1.
यो [यो वे (स्या.)] उपपतितं विनती कोधं, विशां सप्पविसंव ओसाधेहि [ओसाधेभि (का.)];

तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिन्नमिवत्तकम् [जिन्नमिव ताचं (सि. स्या. कं. पि.), जिन्नमिवा तकं (?)] पुराणम्।
2.
यो रागमुदच्छिदा असेसं, भिसापुप्फह्व सरोरुहं [सरेरुहं (का.)] विगयहा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिनमिवत्तकम, पुराणं।
3.
यो तन्हामुदच्छिदा असेसं, सरितं सिघसारं विसोसयित्वा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
4.
यो मनमुदबधि असेसं, नाससेतुंव सुदुब्बलं महोघो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
5.
यो नज्झागमा भावेसु सारं, विसिनं पुप्फामिव [पुप्फामिवा (बहुसु)] उदुम्बरेसु;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
6.
यस्सान्तरतो न सन्ति कोपा, इतिभावभावातञ्च [इतिब्भावभवताञ्च (का.)] विटिवत्तो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
7.
यस्सा वितक्क विधूपिता, अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
8.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां अक्कागामा इमं पपनचं;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
9.
यो नक्कासारि न पचासारि, सब्बां विताथमिदंती नात्वा [उत्वा (स्या. पि. का.)] लोके;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
10.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां वित्थमिदंति वितालोभो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
11।
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां वित्थमिदन्ति वीतरागो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
12.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बं वित्थमिदन्ति वितादोसो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
13.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बं वित्थमिदंति वितमोहो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
14.
यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूल च अकुशल समुहतासे;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
15.
यस्सा दरथजा न संति केचि, ओरं अगमनाया पचायसे;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
16.
यस्सा वनथजा न शांति केचि, विनिबन्धया भावाय हेतुकप्पा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
17.
Yo nīvaraṇe pahāya pañca, anigho tiṇṇakathaṃkatho visallo;

तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
उरगसुत्तं पथमं निहितं।

पालीदेवनागरी
॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥
कुड्डकनिकाए
सुत्तनिपातपाळि
1. उरगवग्गो
1. उर्गसुत्तं
1.
यो [यो वे (स्या०)] उप्पतितं विनेति कोधं, विसत् सप्पविसं ओस्धेहि [ओसधेभि (क०)]।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं [जिन्नमिव तचं (सी० स्या० कं० पी०), जिन्नमिव तचं (?)] पुराणं॥
2.
यो रागमुदच्छिदा असेसं, भिसुपुप्फं सरोरुहं [सरेरुहं (क०)] विगयः।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं, पुराणं॥
3.
यो तंहमुदच्छिदा असेसं, सरितं सीघसरं विशोसयित्वा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
4.
यो मनमुदब्बधि असेसं, नळसेतुं सुदुब्बलं महोघो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
5.
यो नाज्झगमा भवेसु सारं, विचिनं पुप्फामिव [पुप्फामिव (बहुसु)] उदुम्बरेसु।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
6.
य्स्सन्तरतो न सन्ति कोपा, इतिभावभवत्नच [इतिब्भवभवतञ्च (क०)] वीतिवत्तो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
7.
यस् वितका विधूपिता, अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
.
यो नाचदचसारि न पचदचसारी, सब्बं अचचगमा इमं पपञ्चसारी।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
9.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति ञत्वा [उत्वा (स्या० पी० क०)] लोके।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
1.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति वीतलोभो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
15.
यो नाचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं वित्तमिदन्ति वीतरागो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
12.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति वीतदोसो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
11.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं वित्तमिदन्ति वीतमोहो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥

14.
यस्सानुसाया न शांति केचि, मूला च अकुसला समूहसे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
15.
यस्स दरथजा न सन्ति केचि, ओरं अमाय पच्चचायसे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
16.
यस्स वनथजा न शांति केचि, विनिबन्धाय भवाय थाइकप्पा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
17.
यो नीरवने पहाय पञ्च, अनिघो तिन्नकथंकथो विस्लो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
उर्गासुत्तं पथमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.2 धन्यसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

धनी चरवाहे धनिया और बुद्ध के बीच संवाद, जिसमें एक अपनी सांसारिक सुरक्षा में आनंदित है और दूसरा अपने विश्वास में। यह सुंदर संवाद लूका के सुसमाचार 12:16 में वर्णित दृष्टांत की याद दिलाता है।

अंतर्वस्तु
11.2 धानियासुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
1.2 धानियासुत्त
अनुवाद
1. 'मैंने चावल उबाल लिए हैं, मैंने गायों का दूध दुह लिया है,' - चरवाहे धनिया ने कहा, 'मैं माही नदी के किनारे अपने साथियों के साथ रह रहा हूँ, मेरा घर ढका हुआ है, आग जल रही है: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (18)

2. 'मैं क्रोध से मुक्त हूँ, हठ से मुक्त हूँ,' - भगवान बुद्ध ने कहा, 'मैं माही नदी के किनारे एक रात के लिए ठहर रहा हूँ, मेरा घर खुला है, (वासनाओं की) आग बुझ गई है: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (19)

3. 'मेरे पास मक्खियाँ नहीं हैं,' - चरवाहे धनिया ने कहा, 'गाय घास से भरे मैदानों में चर रही हैं, और वे बारिश आने पर सहन कर सकती हैं: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (20)

4. '(मेरे द्वारा) एक अच्छी तरह से निर्मित बेड़ा बनाया गया है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैं (निर्वाण/मोक्ष) को पार कर चुका हूँ, मैं (वासनाओं की) धारा पर विजय प्राप्त करके दूसरे किनारे पर पहुँच गया हूँ; अब बेड़े का कोई उपयोग नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो वर्षा करें, हे आकाश!' (21)

5. 'मेरी पत्नी आज्ञाकारी है, व्यभिचारी नहीं है,' - चरवाहे धनिया ने कहा, - 'वह लंबे समय से (मेरे साथ) रह रही है, वह जीत रही है, और मैंने उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं सुना है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो वर्षा करें, हे आकाश!' (22)

6. 'मेरा मन आज्ञाकारी है, (साधारण सांसारिकता से) मुक्त है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'यह लंबे समय से अत्यधिक विकसित और अच्छी तरह से नियंत्रित है, मुझमें अब कोई बुराई नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (23)

7. 'मैं अपनी कमाई से अपना जीवन यापन करता हूँ,' - चरवाहे धनिया ने कहा, - 'और मेरे बच्चे मेरे आस-पास स्वस्थ हैं; मुझे उनके बारे में कोई बुराई नहीं सुनाई देती: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (24)

8. 'मैं किसी का सेवक नहीं हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैंने जो कुछ अर्जित किया है, उससे मैं पूरे संसार में घूमता हूँ, मुझे सेवा करने की कोई आवश्यकता नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (25)

9. 'मेरे पास गायें हैं, मेरे पास बछड़े हैं,' - चरवाहे धनिया ने कहा; - 'मेरे पास गर्भवती गायें और बछियाएँ हैं, और मेरे पास गायों के स्वामी के रूप में एक बैल भी है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (26)

10. 'मेरे पास गायें नहीं हैं, मेरे पास बछड़े नहीं हैं,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा; - 'मेरे पास गर्भवती गायें और बछियाएँ नहीं हैं, और मेरे पास गायों के स्वामी के रूप में कोई बैल भी नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (27)

11. 'खंभे गाड़े गए हैं, और उन्हें हिलाया नहीं जा सकता,' - चरवाहे धनिया ने कहा; - 'रस्सियाँ मूंग घास की बनी हैं, नई और अच्छी तरह से बनी हैं, गायें उन्हें तोड़ नहीं पाएंगी: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (28)

12. 'बैल की तरह बंधन तोड़कर; हाथी की तरह लता तोड़कर, मैं फिर कभी गर्भ में प्रवेश नहीं करूँगा: इसलिए, यदि तुम चाहो, तो वर्षा करो, हे आकाश!(29)

फिर अचानक मूसलाधार बारिश हुई, जिससे समुद्र और ज़मीन दोनों भर गए। आकाश से बारिश की आवाज़ सुनकर धनिया ने इस प्रकार कहा (30):

13. 'भगवान बुद्ध के दर्शन से हमें सचमुच बहुत लाभ हुआ है; हे ज्ञान की दिव्य दृष्टि से परिपूर्ण, हम आपकी शरण में आते हैं; हे महान मुनि! आप ही हमारे स्वामी हैं!' (31)

14. 'मेरी पत्नी और मैं दोनों आज्ञाकारी हैं; यदि हम सुगत बुद्ध के समक्ष ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें, तो हम जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे और दुखों का अंत करेंगे।' (32) 15. '

जिसके पुत्र होते हैं, उसे पुत्रों में आनंद मिलता है,' - दुष्ट मार (मृत्यु के देवता) ने कहा - 'जिसके पास गायें होती हैं, उसे गायों में भी आनंद मिलता है; क्योंकि उपाधि (पदार्थ) मनुष्य का आनंद है, परन्तु जिसके पास उपाधि नहीं है, उसे कोई आनंद नहीं है।' (33)

16. 'जिसके पुत्र हैं, उसे अपने पुत्रों की चिंता रहती है,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जिसके पास गायें हैं, उसे भी अपनी गायों की चिंता रहती है; क्योंकि उपाधि (लोगों की चिंताओं का कारण) है, लेकिन जिसके पास उपाधि (धन) नहीं है, उसे कोई चिंता नहीं है।' (34)

धानियासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. धानियासुत्तं
18.
"पक्कोदानो दुद्धाखिरोहमस्मि, (इति धानियो गोपो)"
अनुतिरे महिया समानावासो;
चन्न कुटि आहितो गिनी, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
19.
"अक्कोधनो विगतखिलोहमस्मि [विगतखिलोहमस्मि (सि. पि.)], (इति भगव)
Anutīre mahiyekarattivāso;
विवता कुटि निब्बुतो गिनी, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
20.

"अंधकामकासा न विज्जरे, (इति धानियो गोपो)"
कच्छे रुधातिने कैरन्ति गावो;
वुठ्ठिम्पि सहेयुमागतं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
21.
" बद्धसि भिसि सुसंखता, (इति भगवान)
तिणो परागतो विनेयया ओघं;
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
22.
"गोपी मामा असवा अलोला, (इति धानियो गोपो)
दिघरट्टम् [दिघरट्टा (का.)] संवासिया मनापा;
तस्स न सुनामि किञ्ची पापं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
23.
"चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं, (इति भगवान)
दीर्घत्तं परिभावितं सुदन्तं;
पापं पण मे न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
24.
"अत्तवेतनभतोहमस्मि, (इति धानियो गोपो)"
पुत्ता च मे समानिया अरोगा;
तेसं न सुनामि किञ्ची पापं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
25.
" नाहं भक्तकोस्मि कसासि, (इति भगवान)
Nibbiṭṭhena carāmi sabbaloke;
अत्थो भाटिया न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
26.
"अत्थि वासा अत्ति धेनुपा, (इति धानियो गोपो)"
गोधरणियो पवेणियोपि अत्ति;
उषाभोपि गवमपतिधा अत्थि, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
27.
"नत्थि वासा नत्थि धेनुपा, (इति भगवान)
गोधरणियो पवेणियोपि नत्थि;
उषाभोपि गवमपतिधा नत्थि, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
28.
"खिला निखता असमपवेदी, (इति धन्यो गोपो)"
दामा मुञ्जमय नवा सुसन्ठाना;
न हि सक्खिन्ति धेनुपापि चेट्टुम् [चेतुम् (का.)], अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
29.
"उसाभोरिवा चेत्वा [चेत्वा (स्या. का.)] बंधनानि, (इति भगव)
नागो पुतिलताव दलयित्वा [पुतिलतम् पदालयित्वा (स्या. का.)];
नाहं पुनुपेस्सां [पुना उपेस्सां (सी. स्या. कं. पि.), पुनुपेय (का.)] गब्बसेयं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देव"।
30.
"निन्नांच थलांच पुरयंतो, महामेघो पवस्सी तावदेव;
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इमामत्थं धानियो अभासथ।
31.
" लाभ वात नो अनप्पाका, ये मायां भगवन्तं अद्दसामा;
सरणं तं उपेमा चक्खुमा, सत्था नो होहि तुवं महामुनि।
32.
"गोपी च अहांचा असव, ब्रह्मचर्यम् [ब्रह्मचर्य (का.)] सुगते कैरमसे;
जातिमारनस्सा परागु [परागा (सि. स्या. कं. पि.)], दुक्खससंतकारा भावमसे"।

33.
"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति मारो पापिमा)
गोमा [गोमिको (सि. पि.), गोपिको (स्या. कां.), गोपियो (का.)] गोहि तथेव नंदति;
उपधि हि नरसा नंदना, न हि सो नंदति यो निरुपधि।"
34.
"सोकाति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति भगवान)
Gopiyo gohi tatheva socati;
उपधि हि नरस्सा सोचना, न हि सो सोचति यो निरूपधि'ति।
धनियासुत्तं दुतियां निहितं।

पाली-देवनागरी
2. धनुसुत्तं
.
"पक्कोदानो दुद्धहिरोहमस्मि, (इति धनियो गोपो)
अनुतीरे महिया समानवासो।
च संज्ञा कुति अहितो गिनी, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
19.
"अत्रकोधनो विगतखिलोहमस्मि [विगतखिलोहमस्मि (सी० पी०)], (इति भगवान)
अनुतीरे मह्येकर्त्तिवासो।
विवता कुति निब्बुतो गिनि, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
200.
"अंधकमकस न विज्जरे, (इति धनियो गोपो)
कच्छे रुळहतिने चरन्ति गावो।
वुट्ठिमपि सहेयुमागतं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
.
"बृद्धसि भिसी सुसङ्खता, (इति भगवान)
तिन्नो पारगतो विनेय ओघं।
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ चे पथयसी पवस्स देव"॥
.
"गोपी मम अस्सवा अलोला, (इति धनियो गोपो)
दीघर्त्तं [दीघ्रत् (क०)] संवासिया मनापा।
तस्सा न सुनामि किञ्चचि पापं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
23।
"चित्तं मम अस्स्वं विमुत्तं, (इति भगवान)
दीर्घरतं परिभावितं सुदन्तं।
पापं पण मे न विज्जति, अथ चे पथ्यसि पवस्स देव"॥
24.
"अत्तवेतनभतोहमस्मि, (इति धनियो गोपो)
पुत्ता च मे समानिया अरोगा।
तेसं न सुनामि किञ्चि पापं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
200%
" नाहं भत्कोस्मि कस्श्च, (इति भगवान)
निब्बिट्ठेन चरामि सब्लोके।
अत्थो भतिया न विज्जति, अथ चे पथ्यसि पवस्स देव"॥
2000.
"अथि वसा अथि धेनुपा, (इति धनियो गोपो)
गोधराणियो पवेन्योपि अथि।

उभोपि गवम्पतिध अथि, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
27.
"नत्थि वसा नत्थि धेनुपा, (इति भगवान)
गोधराणियो पवेन्योपि नत्थि।
उभोपि गवम्पतिध नत्थि, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
2020.
"खिला निखाता असम्पवेदी, (इति धनियो गोपो)"
दामा मुंजमाया नवा सुसंथाना।
न हि सक्खिन्ति धेनुपापि चेततुं [चेततुं (क०)], अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
एक दूसरे से अलग।
"उसभोरिव चेत्व [छेत्वा (स्या० क०)] बंधनानि, (इति भगवान)
नागो पूतिलतव दलयित्वा [पूतिलतं पदालयित्वा (स्या० क०)]।
नहं पुनुपेसं [पुन उपेसं (सी० स्या० कं० पी०), पुनुपेय (क०)] गब्बसेयं, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
30.
"नि संज्ञाच थलञ्च पूरयन्तो, महामेघो पवसि तवदेव।"
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इमामथं धनियो आभासथ॥
25.
"लाभा वत नो अनप्पका, ये मयां भगवन्तं अददसम।"
शरणं तं उपेम चक्खुम, सथा नो होहि तुवं महामुनि॥
.
"गोपी च अहंदच अस्स्वा, ब्रह्मचर्यं [ब्रह्मचर्य (क०)] सुगते चरमसे।
जातिमरणसस परागु [पारगा (सी० स्या० कं० पी०)], दुक्खससंतकरा भवामसे"॥
2014.
"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति मारो पापिमा)
गोमा [गोमिको (सी० पी०), गोपिको (स्या० कं०), गोपियो (क०)] गोहि तथेव नन्दति।
उपधि हि नरस नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधि॥
34.
"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति भगवान)
गोपियो गोहि तथेव सोचति।
उपधि हि नरस संगीत, न हि सो सोचति यो निष्रू पधि"ति॥
धन्युसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.3 खग्गा विसनसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

परिवार और सामाजिक जीवन से बचना चाहिए, क्योंकि समाज में सभी बुराइयाँ व्याप्त हैं; इसलिए व्यक्ति को समाज की भ्रष्ट अवस्था को त्यागकर एकांत जीवन व्यतीत करना चाहिए।

अंतर्वस्तु

11.3 खग्गा विसंसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.3 खग्गा विसनसुत्त
अनुवाद
1. सभी प्राणियों के प्रति हिंसा का भाव त्यागकर और किसी को भी हानि न पहुँचाकर, पुत्र की कामना न करे, और न ही साथी की; उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (35)

2. जो सामाजिक रूप से दूसरों से मेलजोल रखता है, उसमें स्नेह उत्पन्न होता है, और फिर स्नेह से उत्पन्न पीड़ा होती है; स्नेह से उत्पन्न होने वाले कष्ट को देखते हुए, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (36)

3. जो अपने मित्रों और विश्वासपात्रों की सहायता लेता है, वह अपने ही लाभ को खो देता है, क्योंकि उसका मन बंधा हुआ होता है; मित्रता में इस खतरे को देखते हुए, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (37)

4. जिस प्रकार एक विशाल बाँस का वृक्ष अपनी शाखाओं के साथ आपस में उलझ जाता है, उसी प्रकार संतान और पत्नी की देखभाल करनी चाहिए; परन्तु बाँस की शाखा की तरह, जो किसी चीज से चिपकी नहीं रहती, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (38)

5. जैसे जंगल में खुला जानवर अपनी इच्छा से चरता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति केवल अपनी इच्छा का ध्यान रखते हुए गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (39)

6. संगति में बैठे, खड़े, चलते और जाते समय निरंतर पुकार आती रहती है; परन्तु जो केवल इच्छा से मुक्ति और अपनी इच्छा का पालन करना चाहता है, वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (40)

7. संगति में मेलजोल और खेलकूद होता है, और बच्चों के प्रति बहुत स्नेह होता है; यद्यपि अपने प्रिय मित्रों से वियोग उसे नापसंद हो, फिर भी वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (41)

8. जो चारों लोकों में सहज हो और किसी से शत्रुता न रखता हो, जो इससे या उससे संतुष्ट हो, सभी खतरों को निडरता से पार कर ले, वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (42)

9. कुछ पब्बजित (तपस्वी) असंतुष्ट हैं, और कुछ गृहस्थ (गृहस्थ) भी जो घरों में रहते हैं; उन्हें दूसरों के बच्चों की परवाह न करते हुए गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (43)

10. कोविलारा वृक्ष के गिरे हुए पत्तों की तरह गृहस्थ के निशान मिटाकर, उसके बंधनों को वीरतापूर्वक तोड़कर गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (44)

11. यदि किसी को कोई चतुर साथी, धर्मात्मा और बुद्धिमान सहचर मिल जाए, तो वह सभी खतरों को पार करते हुए, प्रसन्न और विचारशील होकर उसके साथ घूमे। (45)

12. यदि किसी को कोई चतुर साथी, धर्मात्मा और बुद्धिमान सहचर न मिले, तो अपने जीते हुए राज्य को छोड़कर राजा की तरह गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (46)

13. हमें साथियों के होने के सौभाग्य की सराहना अवश्य करनी चाहिए; सर्वोत्तम (और हमारे बराबर के) साथियों की तलाश करनी चाहिए; ऐसे मित्र न होने पर, केवल अनुमत वस्तुओं का आनंद लेते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (47)

14. सुनार द्वारा अच्छी तरह से गढ़े गए चमकदार सोने के कंगन, एक हाथ पर दो होने पर आपस में टकराते हुए देखकर, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (48)

15. इस प्रकार (यदि मैं किसी दूसरे के साथ जुड़ जाऊँ) तो मैं अपशब्द बोलूँगा या निंदा करूँगा; भविष्य में इस खतरे को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (49)

16. वास्तव में, विभिन्न प्रकार के, मीठे और आकर्षक इंद्रिय सुख, अपने विभिन्न रूपों में मन को विचलित करते हैं; इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाले दुख को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (50)

17. ये (सुख) मेरे लिए विपत्तियाँ, फोड़े, दुर्भाग्य, रोग, तीव्र पीड़ा और खतरे हैं; इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाले इस खतरे को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (51)

18. सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास, हवा और जलता सूरज, और मक्खियाँ और साँप—इन सभी चीजों पर विजय प्राप्त करके, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (52)

19. जैसे हाथी, बलवान, चित्तीदार, विशाल, झुंड से अलग होकर जंगल में अपनी इच्छा से चलता है, वैसे ही गैंडे की तरह अकेले भटकें। (53)

20. जो व्यक्ति अस्थायी मुक्ति दिलाने वाली असुविधाओं (दूसरों के साथ भी) में आनंद लेता है, उसे आदिच्छावंश के संबंधी (बुद्ध) के वचनों पर मनन करते हुए गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (54)

21. मैंने दार्शनिक विचारों की कठोरता पर विजय प्राप्त कर ली है, मैंने आत्म-नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, मैंने (पूर्णता की ओर ले जाने वाले) मार्ग को पा लिया है, मैं ज्ञानवान हूँ और दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं होता; ऐसा कहते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (55)

22. लोभ रहित, छल रहित, लालसा रहित, निंदा रहित, वासनाओं और मूर्खता से मुक्त होकर, समस्त संसार में इच्छा से रहित होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (56)

23. ऐसे दुष्ट साथी से दूर रहें जो व्यर्थ की शिक्षा देता हो और कुटिल मार्ग पर चल पड़ा हो; ऐसे व्यक्ति की संगति न करें जो इंद्रिय सुखों में लीन हो; गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (57)

24. ऐसे मित्र की संगति करें जो विद्वान हो, धर्म का पालन करता हो, उदार और बुद्धिमान हो; अर्थ को जानकर और अपने संशयों को वश में करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (58)

25. स्वयं को अलंकृत न करके, संसार में खेल-कूद, मनोरंजन और सुख-सुविधाओं की तलाश न करके, (इसके विपरीत) दिखावटी जीवन से घृणा करते हुए, सत्य बोलते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (59)

26. पुत्र और पत्नी, पिता और माता, धन, अनाज और रिश्तेदारों, इच्छा की विभिन्न वस्तुओं को छोड़कर, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (60)

27. 'यह एक बंधन है, इसमें थोड़ा सुख है, थोड़ा आनंद है, बल्कि अधिक पीड़ा है, यह एक मछली पकड़ने का कांटा है,' ऐसा समझकर, एक विचारशील व्यक्ति गैंडे की तरह अकेले भटके। (61)

28: बंधनों को तोड़कर, पानी में मछली की तरह जाल तोड़कर, जले हुए स्थान पर न लौटने वाली आग की तरह, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (62)

29. दृष्टि झुकाए, ताक-झांक न करते हुए, अपनी इंद्रियों को संजोए रखते हुए, अपने मन को कामवासना से मुक्त रखते हुए, कामवासना की ज्वाला से मुक्त रहते हुए, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (63)

30. गृहस्थ के लक्षणों को त्यागकर, जैसे परिखत्ता वृक्ष जिसके पत्ते काट दिए गए हों, घर से विचरण करने के बाद पीले वस्त्र धारण करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (64)

31. मीठी चीजों का लालच न करते हुए, अस्थिर न होते हुए, दूसरों का सहारा न बनते हुए, घर-घर भीख न मांगते हुए, किसी गृहस्थी से बंधे न रहते हुए, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (65)

32. मन की पाँचों बाधाओं को त्यागकर, सभी पापों का निवारण करके, स्वतंत्र होकर, कामवासना के पाप का नाश करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (66)

33. शारीरिक सुख-दुख तथा पूर्व के मानसिक सुख-दुख को त्यागकर, समभाव, शांति और पवित्रता प्राप्त करके, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (67)

34. परम सुख (अर्थात निर्वाण-मुक्ति, अमरत्व) की प्राप्ति के लिए परिश्रमपूर्वक, आसक्ति रहित मन से, आलस्य में न रहकर, दृढ़ निश्चयी और शारीरिक एवं मानसिक बल से संपन्न होकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (68)

35. एकांतवास और ध्यान का त्याग न करते हुए, सदा धर्मों के अनुसार विचरण करते हुए, जन्मों में दुःख देखकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (69)

36. तन्हा-लालसा का नाश करने की इच्छा रखते हुए, सावधान, मूर्ख न होकर, विद्वान, परिश्रमी, विचारशील, संयमित और ऊर्जावान होकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (70)

37. शोर से भयभीत न होने वाले सिंह की तरह, जाल में न फँसने वाली हवा की तरह, जल से निर्मल न होने वाले कमल की तरह, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (71)

38. अपने दाँतों से बलवान सिंह की तरह, सभी पशुओं पर विजय प्राप्त करके, पशुओं के राजा के रूप में विजयी होकर विचरण करता है और दूर-दराज के निवास स्थानों में विचरण करता है, (वैसे ही) गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (72)

39. समय रहते दया, समभाव, करुणा, मुक्ति और दूसरों के साथ आनंद का भाव विकसित करते हुए, समस्त लोकों के आकर्षणों से विवश न होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (73)

40. राग, द्वेष और मोह का त्याग करके, बंधनों को तोड़कर, मृत्यु के भय से भयभीत न होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (74)

41. वे (दूसरों की संगति) लाभ के लिए करते हैं और उनकी सेवा करते हैं; निःसंकोच मित्र मिलना अब कठिन है, मनुष्य अपना लाभ जानते हैं और अपवित्र हैं; (इसलिए) गैंडे की तरह अकेले ही भटकना चाहिए। (75)

खग्गविसनसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. Khaggvisāṇasuttaṃ
35.
सब्बेसु भूतेषु निधाय दण्डं, अविहेथयं अनंतरामपि तेसां;
न पुत्तमिच्चेय कुतो सहायं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
36.
संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पहोति;
आदिनावं स्नेहजं पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
37.
मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हपेति अत्थं पतिबद्धचित्तो;
एतं भयं संथवे [संधवे (का.)] पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
38.
वंसो विशालोवा यथा विसात्तो, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा;
वंसाकाशिरोवा [वंसाकाशिरोवा (सि.), वंसाकाशिरोवा (स्या. का. पी.), वंसाकाशिरोवा (निद्देसा)] सज्जमानो, एको केयर खग्गाविसानकाप्पो।

39.
मिगो अरन्नमहि यथा अबद्धो [अबन्धो (स्या. कं.)], येनिच्चकं गच्छति गोकाराय;
विण्णु नरो सेरिटं पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
40.
अमन्ताना होति सहायमज्जे, वसे ठाणे गमने चारिकाय;
अनाभिज्जितं सेरितां पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
41.
ख़िदा रति होति सहायमज्जे, पुत्तेसु च विपुलं होति पेमम्;
पियाविप्पयोगं विजिगुच्चमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
42.
चतुद्दिसो अप्पातिघो च होति, सन्तुस्सामानो इतरितरेण;
परिस्सयाणं सहिता अचम्भि, एको केरे खग्गविसानकप्पो।
43.
दुस्संगहा पब्बजीतापि एके, अथो गहत्था घरमवसन्ता;
अप्पोसुक्को परपुत्तसु हुत्वा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
44.
ओरोपायित्वा गिहिब्यंजनानि [गिहिव्यंजनानि (स्या. कां. पि.)], सांचिन्नपट्टो [सांसिनापट्टो (सि.)] यथा कोविसारो;
चेत्वाना वीरो गिहिबन्धनानि, एको केरे खग्गविसानकप्पो।
45.
ससे लभेथा निपाकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरम्;
अभिभुय्य सब्बानि परिस्यानि, कैरेया तेनत्तमणो सतीमा।
46.
नो चे लभेथा निपाकं सहायं, सद्धिं चरणं साधुविहारिधीरम्;
राजव रथं विजितं पाहाय, एको केयर मातंगराणिनेव नागो।
47.
अद्धा पसंसामा सहायसम्पदं, सेठहा समा सेवितब्बा सहाय;
एते अलद्धा अनवज्जभोजी, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
48.
दिस्वा सुवनस्स पभस्सारणि, कम्मारपुत्तेन सुनीतिहितानि;
संघतमानानि दुवे भुजस्मिं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
49.
एवम् दुतियेना [दुतियेना (सब्बत्था)] सहा ममस्सा, वाचाभिलापो अभिसज्जना वा;
एतं भयं अयतिं पेक्खमानो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
50.
काम हि चित्र मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेण मथेन्ति चित्तं;
आदिनावं कामगुनेसु दिसवा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
51.
इति च गांडो च उपद्दवो च, रोगो च सल्लांका भयानचा मेटां;
एतं भयं कामगुनेसु दिस्व, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
52.
सिताञ्च उन्हाँचा ख़ुदं पिपासं, वातातापे दंससारिसापे [दंसाससिरींसपे (सि. स्या. कां. पि.)] सीए;
सब्बानिपेटानि अभिसम्भवित्वा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
53.
नागोव यूथानि विवज्जयित्वा, संजाताखंडो पदुमी उदारो;
यथाभिरन्तं विहारम् [विहारे (सि. पि. निद्देसा)] अरण्ये, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
54.
अथानातम संगनिकरातस्स, यं फासये [फुस्सये (स्या.)] समयिकां विमुत्तिं;
अदिक्काबंधुस्सा वाको निसम्मा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।

55.
दिथिविशुकानि उपतिवत्तो, पत्तो नियमं पतिलाद्धमग्गो;
उप्पन्नानाणोम्हि अनन्नानेय्यो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
56.
निल्लोलूपो निक्कुहो निप्पिपसो, निम्मक्खो निद्धान्तकासावमोहो;
निरासयो [निरासासो (का.)] सब्बलोके भवित्व, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
57.
पापं सहायं परिवज्जयेत, अनत्थदस्सीं विसामे निविथं;
सयं न सेवे पसुतं पमत्तं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
58.
बहुसुतं धम्मधरं भजेथा, मित्तं उदारं पतिभनवन्तं;
अनन्याय अड्ठानि विनेया कंखं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
59.
ख़िन्दं रतिं कामसुखञ्च लोके, अनलंकारित्वा अनपेक्खमानो;
विभुसनत्थान विरतो सच्चवादी, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
60.
पुत्तनच दारं पितरञ्च मातरं, धनानि धन्नानि च बंधवाणी [बंधवाणी च (पी.)];
हित्वान् कामानि यथोधिकानि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
61.
सङ्गो एसो परित्तमेत्था सोख्यं, अप्पस्सदो दुक्खमेत्था भय्यो;
गाओ एसो इति नत्वा मुतिमा [मतिमा (स्या. का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
62.
संदलयित्वाना [पदालयित्वाना (का.)] संयोगनि, जालनव भेट्वा सलीलाम्बुचारी;
अग्गिव दधं अनिवत्तमानो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
63.
ओक्खित्तचक्खु न च पदालोलो, गुत्तिन्द्रियो रक्खितमानसणो;
अनवसुतो अपरिद्यहमनो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
64.
ओहारयित्वा गिहिब्यंजनानि, संचन्नपट्टो [संचिन्नपट्टो (स्या. पि.), पच्चिन्नपट्टो (का.)] यथा परिचट्टो;
कसायवत्थो अभिनिक्खमित्वा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
65.
रसेसु गेधं अकारं अलोलो, अन्ननापोसि सपादनचारी;
कुले कुले अप्पातिबद्धचित्तो [अप्पतिबंधचित्तो (का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
66.
पहाय पंचावरणानि चेतासो, उपक्किलेसे ब्यापानुज्ज सब्बे;
अनिसिटो चेत्वा [चेत्वा (स्या. पि. का.)] सिनेहादोसां [स्नेहादोसां (का.)], एको केयर खग्गाविसानकाप्पो।
67.
विपरीतिकत्वान् सुखं दुःखञ्च, पुब्बेव च सोमनस्सादोमनस्सा:;
लद्धनुपेक्खं समथं विशुद्धं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
68.
अरद्धवीरियो परमत्थपत्तिया, अलिनचित्तो अकुसीतावुति;
दहनिक्कमो थमाबालूपपन्नो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
69.
पतिसल्लानां झनमारिंचमानो, धम्मेसु निक्कं अनुधम्मचारी;
आदिनावं सम्मासिता भावेसु, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
70.
तनहक्खायं पथयमप्पमट्टो, अनेदामुगो [एनेलामुगो (स्या. पि. का.)] सुतव सतीमा;
संखतधम्मो नियतो पधानवा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।

71.
सिहोवा सद्देसु असन्तसंतो, वातोवा जलमहि असज्जमानो;
पदुमंवा तोयेना अलिप्पमानो [अलिम्पमानो (सि. स्या. का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
72.
सिहो यथा दाथबली पसायः, राजा मिगणं अभिभूय चारी;
सेवेथा पंतानि सेनानानि, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
73.
मेत्तं उपेक्खं करुणां विमुत्तिन्, असेवामानो मुदितञ्च काले;
सब्बेन लोकेन अविरुज्जमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
74.
रागाञ्च दोसाञ्च पहाय मोहं, संदलयित्वाना संयोगनि;
असन्तसं जीवितसन्खायमहि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
75.
भजंति सेवंति च करणत्था, निष्करण दुल्लभा अज मित्ता;
अत्ताथपन्न असुचि मानुषा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
खग्गविषाणसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. खग्गविसानसुत्तं

.
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, अविहेत्थयं अञ्जन्तरमपि तेसं।
न पुत्तमिच्छेय कुतो सहायतां, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
संसग्गगतस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पहोति।
आदिनवं स्नेहजं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
37.
मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हपेति अथं पतिबद्धचित्तो।
एतं भयं संथवे [संधवे (क०)] पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
वंसो विसलोव यथा विसत्तो, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।
वंसक्राकळीरोव [वंसकळीरोव (सी०), वंसकळीरोव (स्या० क० पी०), वंसकळीरोव (निद्देस)] सज्जामानो, एको चारे खग्गगविसानकप्पो॥
39.
मिगो अरञ्नमहि यथा अब्द्धो [अबंधो (स्या० कं०)], येनिच्छकं गच्छति अवाराय।
विञ्जु नरो सेरिटं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
40.
अमन्तना होति सहायमज्झे, वासे थाने गमने चारिकाय।
अनाभिज्जितं सेरीतं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
खिद्दा रति होति सहायमज्जे, पुत्तेसु च विपुलं होति पेमं।
पियविप्पयोगं विजिगुच्छमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
चातुद्दिसो अप्पतिघो च होति, सन्तुस्मानो इतरितरेन।
परिसस्यानं सहिता अछम्भी, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
दुस्साङ्गा पब्बजितापि एके, अथो गहत्था धर्मावसन्ता।
अप्पोस्सु स्ट्रैटको परपुट्टेसु हुत्वा, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
ओरोपयित्वा गिहिब्यञ्जनानि [गिहिव्यञ्जनानि (स्या० कं० पी०)], साञ्ची संज्ञापत्तो [संसीनपट्टो (सी०)] यथा कोविळारो।
चेत्वान् वीरो गिहिबन्धनानि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
45.
सचे लभेथ निपकं सहायतां, सद्धिं चारं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा॥

.
नो चे लभेथ निपकं सहायतां, सद्धिं चारं साधुविहारिधीरं।
राजाव रथं विजितं पहाय, एको चरे मातङ्गर्नझेव नागो॥

.
अद्धा पसंसाम सहायतासम्पदं, सेत्था समा सेवित्बाबा सहायता।
एते अलद्धा अनवजदजभोजगी, एको चारे खग्गविसंकप्पो॥

.
दिस्वा सुवन्नस्स पभस्साराणि, कम्मारपुत्तेन सुनिट्ठितानि।
सङ्घत्तमनानि दुवे भुजस्मिं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
एवं दुतियेन [दुतियेन (सब्बत्थ)] सहा ममसस, वाचाभिलापो अभिसज्जन वा।
एतं भयं आयतिं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
5.
काम हि चित्र मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेण मतेन्ति चित्तं।
आदिनवं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
एति च गण्डो च उपद्दवो च, रोगो च सल्लञ्च भयञ्च मेतं।
एतं भयं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीतञ्च उंहञ्च खुदं पिपासं, वातात्पे दंसरेसिस्पे [दंससिरिंस्पे (सी० स्या० कं० पी०)] च।
सब्बानिपेतानि अभिसंभवित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
553.
नागोव यूथानि विवजदजयित्वा, सञ्जात्खन्धो पदुमी उळारो।
यथाभिरन्तं विहारं [विहरे (सी० पी० निद्देस)] अरञ्जे, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
•
अट्ठानतं सङ्गणिकारतस्स्स, यं फस्सये [फुस्सये (स्या०)] क्षेत्रं विमुत्तिं।
आदिचदचबंधुस्स वाचो निसम्म, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥
5.
दिट्ठीविसुकानि उपातिवत्तो, पत्तो नियमं पतिलद्धमग्गो।
उप्प नारायणोम्हि अनञ्जनेय्यो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
56.
निल्ललोलुपो निकुहो निप्पिपासो, निम्मक्खो निद्धन्तकसावमोहो।
निरासयो [निरासासो (क०)] सब्बलोके भवित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
पापं सहायतां परिवज्जयेत्, अनंतदस्सिं विसामे निवित्थं।
सयं न सेवे पसुतं पमत्तं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
6.
बहुसुतं धम्मधरं भजेत्, मित्तं उल्लारं पतिभवंतं।
अञ्जन्या अथानि विनेय कङ्खं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
50.
खिद्दं रतिं कामसुखञ्च लोके, अनलङ्करित्वा अनपेखमानो।
विभुसनत्थाना विरतो सचचवादी, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
पुत्तनदच दारं पितरञ्च मातरं, धनानि धन्नानि च बंधवाणि [बंधवाणि च (पी०)]।
हित्वान् कामानि यथोधिकानि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सङ्गो एसो परित्तमेत्थ सोख्यं, अप्पस्सादो दुक्खमेत्थ भय्यो।
गळो एसो इति नत्वा मुतीमा [मतिमा (स्या० क०)], एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
सन्दालयित्वान [पादालयित्वान (क०)] कोमनानि, जालव भेटवा सलिलामुचारी।
अग्गिव दन्नं अनिवत्तमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
6.
ओखित्तचक्खु न च पदलोलो, गुत्तिन्द्रियो रक्षितमानसाणो।
अनवसुतो अपेरिद्यहमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
ओहारयित्वा गिहिब्यञ्जनानि, सञ्छ संज्ञापत्तो [साञ्चि नयञ्पत्तो (स्या० पी०), पच्छि संज्ञापत्तो (क०)] यथा परिच्छत्तो।
कसायवत्थो अभिनिखमित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
रसेसु गेधं अकारं अलोलो, अन्नपोसी सपादनचारी।
कुले कुले अप्पतिबद्धचित्तो [अप्पतिबन्धचित्तो (क०)], एको चरे खग्गविसंकप्पो॥

.
पहाय पञ्चावरणानि चेतसो, उपफ्राकिलेससे बिप्नुज्जद सब्बे।
अनिस्सितो छेत्व [छेत्वा (स्या० पी० क०)] सिनेहदोसं [स्नेहदोसन (क०)], एको चरे खग्गिवसानकप्पो॥

.
विपित्तिकत्वान् सुखं दुःखञ्च, पुब्बेव च सोमनस्सदोमनसं।
लद्धानुपेक्खं समथं विशुद्धं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
अर्धविरियो परमत्थपट्टया, अलिनचित्तो अकुसीतवुति।
दळहनिकदकमो थम्बलूपप संज्ञाओ, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥
6.
पतिसललानं झानमरिञ्चमानो, धम्मेसु निच्चचं अनुधम्मचारी।
आदिनवं संमसिता भवेसु, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
70.
तंहखायं पथयमप्पमत्तो, अनेळमुगो [अनेलमुगो (स्या० पी० क०)] सुतवा सतीमा।
सङ्खातधम्मो नियतो पधानवा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीहोव सद्देसु असन्तसन्तो, वातोव जल्म्हि असजजमानो।
पदुमव तोयेन अलिप्पमानो [अलिम्पमानो (सी० स्या० क०)], एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीहो यथा दाठबली पसायः, राजा मिगनं अभिभूय चारी।
सेवेथ पन्तनि सेनासननि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
मेत्तं उपेक्खं करुणं विमुत्तिन, असेवमानो मुदितञ्च काले।
सब्बेन लोकेन अविरुज्जमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
रागं च दोषं च पहाय मोहं, सन्दलयैत्वान संयोजनानि।
असन्तसं जीवितसङ्खयम्हि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
5.
भजन्ति सेवन्ति च कारणथा, निःकारणा दुल्लभा अजदज मित्ता।
अट्टत्थपञ्जा असुचि मनुस्सा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

खग्गविसानसुत्तं तत्यं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.4 काशीभारद्वजसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

ब्राह्मण काशिभरद्वाज गौतम (बुद्ध) को आलस्य का बोध कराते हैं, लेकिन गौतम उन्हें समझाते हैं कि वे भी कर्म करते हैं, और इस प्रकार ब्राह्मण का मन बदल जाता है और अंततः वे संत बन जाते हैं। संत जॉन के सुसमाचार के अध्याय 17 से तुलना करें।

अंतर्वस्तु

11.4 कासिभरद्वाजसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.4 कासिभरद्वाजसुत्त

अनुवाद

मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) मगध के दक्षिणगिरि में ब्राह्मणों के गाँव एकनाला में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण काशीभरद्वाज के पाँच सौ हल बुवाई के मौसम में जुए में बंधे हुए थे। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने सुबह अपने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और उस स्थान पर गए जहाँ ब्राह्मण काशीभरद्वाज का कार्य चल रहा था। उस समय ब्राह्मण काशीभरद्वाज द्वारा भोजन वितरण हो रहा था। तब भगवान (भगवान बुद्ध) भोजन वितरण स्थल पर गए और वहाँ पहुँचकर एकांत में खड़े हो गए। ब्राह्मण काशीभरद्वाज ने भगवान बुद्ध को वहाँ भिक्षा माँगते हुए देखा और उन्हें देखकर उनसे कहा:

"हे तपस्वी, मैं हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और बीज बोने के बाद भोजन करता हूँ; हे तपस्वी, तुम भी हल चलाओ और बीज बोओ, और बीज बोने के बाद भोजन करो।" भगवान बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और बीज बोने के बाद भोजन करता हूँ।

फिर भी हमें पूज्य गौतम बुद्ध का जुआ, हल, फाल, अंकुश या बैल दिखाई नहीं देते।"

फिर पूज्य गौतम (बुद्ध) ने इस प्रकार कहा:

'हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और हल चलाकर बीज बोकर भोजन करता हूँ,' ऐसा भगवान (बुद्ध) ने कहा।

तब ब्राह्मण काशीभरद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक श्लोक में संबोधित किया:

1. 'आप कहते हैं कि आप हल चलाते हैं, फिर भी हम आपका हल चलाते हुए नहीं देखते; आपने अपने हल चलाने के बारे में पूछा है, तो हमें बताइए, ताकि हम आपका हल चलाना जान सकें।' (76)

2. भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया: 'विश्वास बीज है, तप (तपस्या) वर्षा है, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) मेरा जुआ और हल है, नम्रता हल का डंडा है, मन बंधन है, और जागरूकता मेरा हल का फाल और अंकुश है।' (77)

3. 'मैं शरीर के प्रति सजग हूँ, मैं वाणी के प्रति सजग हूँ, भोजन में संयमी हूँ; मैं सत्य को खरपतवारों को काटने का साधन बनाता हूँ, कोमलता ही मेरा उद्धार है। (78)

4. 'प्रयास मेरा बोझ ढोने वाला पशु है; योगाक्खेमा मेरा वाहन है, जो मुझे निर्वाण (मोक्ष) की ओर ले जाता है, वह उस स्थान पर बिना पीछे मुड़े जाता है जहाँ जाकर शोक नहीं होता। (79)

5. 'इस प्रकार जोता गया, इससे अमरता का फल प्राप्त हुआ; इस जोते जाने से समस्त पीड़ाओं से मुक्ति मिली।' (80)

तब ब्राह्मण काशिभारद्वाज ने एक स्वर्ण कटोरे में चावल का दूध डालकर भगवान (भगवान बुद्ध) को अर्पित किया और कहा, 'आदरणीय भगवान (भगवान बुद्ध) इस चावल के दूध का सेवन करें; आदरणीय गौतम (बुद्ध) एक किसान हैं, क्योंकि वे ऐसा हल चलाते हैं जो अमरत्व का फल देता है।

6. भगवान बुद्ध ने कहा: 'श्लोकों का पाठ करने से जो कुछ प्राप्त होता है, उसे मुझे नहीं खाना चाहिए; हे ब्राह्मण, यह सही दृष्टि रखने वालों का धर्म नहीं है; बुद्ध श्लोकों का पाठ करने से प्राप्त होने वाली चीजों का त्याग करते हैं, धर्म के अस्तित्व में रहने तक (बुद्धों का) यही आचरण है। (81)

7. 'जो सिद्ध महान ऋषि (संत) हैं, जिनकी वासनाएं नष्ट हो गई हैं और जिनका दुराचार समाप्त हो गया है, उन्हें अन्य भोजन और पेय पदार्थ अर्पित करने चाहिए, क्योंकि यह अच्छे कर्मों की तलाश करने वाले का क्षेत्र है।' (82)

'तो फिर, हे गौतम (बुद्ध), मैं यह चावल-दूध किसे दूँ?' काशिभारद्वाज ने कहा।

हे ब्राह्मण, इस संसार में, जहाँ मनुष्य, देवता, मार और ब्राह्मण हैं, तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य के सिवा कोई भी इस धान-दूध को ठीक से पचा नहीं सकता। अतः, हे ब्राह्मण, तुम इस धान-दूध को कम घास वाले स्थान पर डाल दो, या बिना कीड़े वाले पानी में डाल दो। ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा।

तब ब्राह्मण काशीभारद्वाज ने धान-दूध को बिना कीड़े वाले पानी में डाल दिया। पानी में डाला गया धान-दूध छलकने लगा, फुफकारने लगा और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगा; क्योंकि जैसे दिन में गर्म हुआ हल पानी में डालने पर छलकने लगता है, फुफकारने लगता है और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगता है, वैसे ही धान-दूध को पानी में डालने पर छलकने लगा, फुफकारने लगा और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगा।

तब ब्राह्मण काशीभारद्वाज भयभीत होकर भगवान बुद्ध के पास गए और उनके चरणों में सिर झुकाकर उनसे कहा:

"हे पूज्य गौतम बुद्ध! यह उत्तम है! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधेरे में दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धर्म का स्पष्टीकरण किया है। मैं पूज्य गौतम बुद्ध, धर्म और भिक्षुओं की सभा में शरण लेता हूँ।" काशिभारद्वाज ने कहा, 'मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) से पब्बज्जा प्राप्त करना चाहता हूँ, मैं उपसंपदा (वस्त्र और आदेश) प्राप्त करना चाहता हूँ।'

तब ब्राह्मण काशिभारद्वाज ने भगवान बुद्ध से पब्बज्जा और उपसम्पदा प्राप्त की। उपसम्पदा प्राप्त करने के बाद, पूज्य भारद्वाज ने एकांत, एकांत, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, अपने ध्यान और बुद्धि से थोड़े ही समय में ब्रह्मचर्य के उस सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए अच्छे परिवार के लोग अपने घर छोड़कर निर्जन जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जीवन में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य भारद्वाज अरहतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए।

काशिभारद्वाजसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. कसिभाराद्वाजसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव मगधेसु विहारति दक्खिनागिरिस्मिम् [दक्खिनागिरीस्मि (का.)] एकानाषायम् ब्राह्मणगमे। तेन खो पाना समयेन काशीभारद्वाजस ब्राह्मणस्स पंचमत्तानि नंगलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पाकाले। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व

पत्तशिवरामदाय येन काशीभारद्वाजस ब्राह्मणस्स कम्मंतो तेनुपशंकामि। तेन खो पना समयेन काशीभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसन वत्तति। अथ खो भगव येन परिवेशना तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा एकमंतं अथासि।

अद्दसा खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय स्थितम्। दिस्वाण भगवन्तं एतदावोचा - "अहं खो, समान, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि. त्वमपि, समाना, कस्सु च वपासु च; कसीत्वा च वापित्वा च भुंजस्सु'ति।

"अहंपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि'ति। "ना खो पाना मयां [ना खो पाना समाना (स्या.)] पसामा भोतो गोतमस्सा युगं वा नंगलं वा फलं वा पकाणं वा बलिबड्डे [बलीवड्डे (सी. पी.), बलिबड्डे (?)] वा. अथ च पना भावं गोतमो एवमहा - 'अहम्पि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि"ति।

अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -

76.
"कस्सको पतिजानासि, न च पसमा ते कासिं;
कासिं नो पुच्चितो ब्रुहि, यथा जनेमु ते कासिं"।

77.
"सद्ध बीजं तपो वुट्ठि, पन्ना मे युगानांगलम्;
हिरि ईसा मनो योत्तं, सति मे फलपाचनं।

78.
"कायगुट्टो वचिगुट्टो, आहारे उदारे यतो;
सच्चं करोमि निदानं, सोरक्कं मे पमोकानं।

79.
"वीर्यं मे धुराधोरयहं, योगक्खेमधिवाहनं;
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थ गन्त्वा न सोचति।

80.
"एवमेसा कसी कत्था, स होति अमतप्पला;
एतं कसीं कसीत्वना, सबदुक्खा पमुच्चति'ति।

अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो महतिया कंसपतिया पायसाम् [पयासं (सब्बत्था)] वद्धेत्वा भगवतो उपनामेसि - "भुंजतु भवं गोतमो पायसाम्।" कस्सको भवं; यं हि भावं गोतमो अमातप्पलं [अमतप्पलमपि (सां. नि. 1.197)] कसीं कसति"ति।

81.
"गाथाभिगीतां मे भोजनेयं, संपासतं ब्राह्मण नेसा धम्मो;
गाथाभिगीतां पनुदन्ति बुद्ध, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा।

82.
"अन्नेन च केवलिनं महेसिं, खिनासावं कुक्कुक्कवुपसंतम्;
अन्नेन पनेण उपाथहस्सु, खेतं हि तं पुन्नपेक्खस्सा होति'ति।

"अथ कस्सा चाहं, भो गोतम, इमं पायसं दम्मिति?" "न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामणब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय, यस्सा सो पयासो भुट्टो सम्मा परिणामं गच्छेया, अन्नत्र तथागतसा वा तथागतसावकस्सा वा. तेन हि त्वं, ब्राह्मण, तं पयसं अप्पाहारिते वा चंडेहि अप्पानाके वा उदाके ओपिलापेहि'ति।

अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायसं अप्पाणके उदाके ओपिलापेसि। अथ खो सो पयासो उदाके पक्खितो पक्खितो चिचितायति संधूपयति संधूपयति [संधूमयति संपधुमयति (स्या.)]। सेय्यथापि नाम फलो दिवसं संतत्तो [दिवससंतत्तो (सि. स्या. कां. पि.)] उदके पक्खित्टो चिचितायति संधूपयति संधुपयति; एवमेव सो पयासो उदके पक्खित्टो चिचितायति सन्धूपयति संधुपयति।

अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो सान्विग्गो लोमहतहजातो येन भगव तेनुपासंकामि; उपसंकमित्वा भगवतो पदेसु सिरसा निपतित्व भगवन्तं एतदवोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम, अभिकान्तम्, भो गोतम! सेय्याथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्या, पतिच्चन्नं वा विवरेया, मुधास्सा वा मग्गं आचिक्खेया, अंधकारे वा तेलापज्जोतम धारेया, चक्खुमंतो रूपाणी दक्खनतिति [दक्खिनति (सि. स्या. कं. पि.)]; एवमेवं भोता गोतमेना अनेकापरियायेन धम्मो पकासितो। एषाहं भवनतं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघान्च, लभेयाहं भोतो गोतमस्सा संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा'न्ति।

अलत्थ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो संतिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदाम्। अचिरुपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको विपकाठो अप्पमट्टो अतापि पहितत्तो विहारन्तो नासिरसेवा - यस्सत्थाय कुलपुत्त सम्मदेव अग्रस्मा अंगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरम् - ब्रह्मक्रियापरियोसानं दित्थेव धम्मे सयं अभिन्न सच्चिकत्वा उपसंपज्ज विहसि। "खिण जाति, वुसितं ब्रह्मचर्यं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तया'ति अभ्भन्नसि।' अन्नतरो च [अनन्तरो च खो (सि. पि.), अन्नतरो खो (स्या. का. का.)] पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसिति।

काशीभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी
4. काशीभारद्वाजसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव मगधेसु विहारति दक्खिनगिरिस्मिं [दक्खिनगिरिस्मिं (क०)] एकनाळायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पंचमत्तानि नङ्गलसतानि प्युत्तानि होन्ति वप्पकाले। अथ खो भगव पुब्नहस्यामं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय येन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो तेनुपसङकमि। तेन खो पन समयेन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो भगवान येन परिवेसना तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठसि।
अद्दसा खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिंडाय थितं। दिस्वां भगवन्तं एतदवोच - "अहं खो, समं, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भुज्जामि। त्वमपि, समान, कस्सु च वपस्सु च; कसीत्वा च वापित्वा च भुञ्जस्सु"ति।
"अहमपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वपामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भूजामिऽति। "न खो पन मयं [न खो पन समान (स्या०)] पस्मा भोतो गोतमस्स युगं वा नङ्गलं वा फलं वा पाचनं वा बलिबद्दे [बलिवद्दे (सी० पी०), बलिबद्दे (?)] वा। अथ च पन भवन गोतमो एवमः - 'अहमपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भुजामिऽ"ति।
अथ खो काशीभार्द्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं रामायणाय अज्भासि -
60.
"कस्सको पतिजनासि, न च पस्साम ते कसिं।
कसिं नो पुच्छितो ब्रुहि, यथा जानेमु ते कसिं"॥
77.
"साधा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्चा मे युगानङ्गलं।
हिरि ईसा मनो योत्तं, सति मे फलपाचनं॥

.
"कायगुत्तो वाचिगुत्तो, आहारे उड्रे यतो।
सचचं करोमि निद्दनं, सोरचं चं मे पमोचनं॥

.
"वीर्यं मे धुरधोर्यहं, योगखेमाधिवाहनं।
गच्छति अनिवत्तन्तं, यथा गन्त्वा न सोचति॥

.
"एवमेसा कसी कत्था, सा होति अमतफला।"
एतं कसिं कसीत्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चति"ति॥
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो महतिया कंसपटिया पायसं [पायासं (सब्बत्थ)] वन्नजेत्वा भगवतो अनालगेसि - "भुंजदजतु भवं गोतमो पायसं। कस्सको भवं; यं हि भावं गोतमो अमत्फलं [अमतप्फलंपि (सं० नि० 1.197)] कसिं कस्ति"ति।

.
"गाथाभिगीतं मे अभोजनेयं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा॥

.
"अञ्जेन च केवलिनं महेसिं, खिनास्वं कुकुचदचवुपसन्तं।
अ शोधेन प्राप्तेन उपट्ठहस्सु, खत्तं हि तं पुंजपेक्खस्स होता"ति॥
"अथ कस्स चाहं, भो गोतम, इमं पायसं दम्मी"ति? "न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय, यस सो पायसो भुत्तो सम्मा एस्मासं गच्छेय, अञ्जनत्र तथागतस्स वा तथागतसावकस वा। तेन हि तवं, ब्राह्मण, तं पायसं अप्हरिते वा चद्देहि अप्पनके वा उदके ओपिलापेहि"ति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायसं अप्पनके उदके ओपिलापेसि। अथ खो सो पायसो उदके पक्खिततो चिच्चितचितयति सन्धूपायति संधुपायति [संधूमायति प साधुमायति (स्या०)]। सेयथापि नाम फलो दयां सन्तत्तो [दिवससन्तत्तो (सी० स्या० कं० पी०)] उदके पखित्टो चिच्चितयति चिचितितयति संधूपायति संधुपायति; एवमेव सो पायसो उदके पक्खिततो चिच्चितचितयति संधूपयति संधूपयति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहत्थजातो येन भगवान तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो पदेसु सीआ निपतित्व भगवन्तं एतदवोच - "अभिकांतं, भो गोतम, अभिघातकांतं, भो गोतम! सेयथापि, भो गोतम, निकुज्जजितं वा उक्राकुज्जेय, पतिच्छ संज्ञां वा विवेरेय, मूङहस्स वा मग्गं अचिक्खेय, अंधकारे वा तैलपजजोतं धारेयय, चक्खुमंतो रूपाणि दक्खनतिति [दक्खिनस्ति (सी० स्या० कं० पी०)]; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकप्रिययेन धम्मो पाकसितो। एसहं भवन्तं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मनदच भिक्खुसङघञ्च, लभेयहं भोतो गोतमस्स शांतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति।
अलत्थ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो शांतिके पब्बज्जन, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्प साइनो खो पनायस्मा भार्धो एको वुपकट्ठो अप्पमत्तो अतपि पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव - यशत्थाय कुलपुत्ता सम्देव अग्रस्मा अंगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं -

ब्रह्मचर्यपरियोसानं दित्थेव धम्मे सयं अभिज्ञा सच्चिकत्व उपसम्पजज विहासि। "खिना जाति, वुसिटं ब्रह्मचर्यं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया"ति अभ्भञ्चसि। अञ्जन्तरो च [अञ्जन्तरो च खो (सि० पी०), अञ्जन्तरो खो (स्या० कं० क०)] पनायस्मा चार्जो अरहतं अहोसिति।
काशीभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.5 चुंडासुत्त
वी. फॉस्बोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

बुद्ध ने लोहार चुंडा को चार अलग-अलग प्रकार के समनाओं के बारे में बताया।

अंतर्वस्तु
11.5 चुंडासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
1.5 चुंडासुट्टा
अनुवाद
1. 'मैं महान पन्ना (प्रत्यक्ष ज्ञान) वाले मुनि (संत) से पूछता हूँ,' - लोहार चुंडा ने कहा, - 'बुद्ध, धम्म के स्वामी, जो इच्छा से मुक्त हैं, दो पैरों पर चलने वालों में श्रेष्ठ हैं, सारथियों में सबसे उत्तम हैं, संसार में कितने प्रकार के समन (भिक्षु) हैं; कृपया मुझे बताइए?' (83)

2. 'चार प्रकार के समन हैं, हे चुंडा, पाँचवाँ नहीं है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैं स्वयं पूछे जाने पर तुम्हें ये प्रकट करूँगा; (वे) मगग्जिन और मग्देशक, मगग्जीवती और मगद्सुनी हैं।' (84)

3. 'बुद्ध किसे मगग्जिन कहते हैं?' - लोहार चुंडा ने कहा, - 'मगक्खायिन अद्वितीय कैसे है?' पूछे जाने पर, मुझे एक मग्गाजीवती का वर्णन कीजिए, और मुझे एक मग्गादुसिन के बारे में बताइए। (85)

4. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पीड़ा रहित है, निर्वाण में आनंदित होता है, लोभ से मुक्त है, मनुष्य और देवता जगत का नेता है, उसे बुद्ध मग्गाजीना (अर्थात मार्ग से विजयी) कहते हैं। (86)

5. 'जिसने इस संसार में सर्वश्रेष्ठ (अर्थात निर्वाण) को सर्वश्रेष्ठ मानकर, यहाँ धम्म का उपदेश और व्याख्या की है, उसे, संदेह का निवारण करने वाले मुनि (संत), निर्लांग, भिक्षुओं में दूसरे स्थान पर मग्गादेसिन (अर्थात मार्ग का उपदेश देने वाला) कहते हैं। (87)

6. 'जो धम्मपद में अच्छी तरह से सिखाए गए मार्ग पर चलता है, संयमित, सजग, निष्कलंक शब्दों का अभ्यास करता है, उसे भिक्षुओं में तीसरे स्थान पर मग्गाजीवती (अर्थात मार्ग पर चलने वाला) कहते हैं। (88)

7. 'जो व्यक्ति सद्‌गुणों का ढोंग करते हुए भी अभिमानी, परिवारों को कलंकित करने वाला, ढीठ, कपटी, बेलगाम, बकवास करने वाला, भेस बदलकर घूमने वाला है, वह मार्ग को दूषित करने वाला है।' (89)

8. 'जिसने इन (चार समनों, भिक्षुओं) को भेद दिया है, जो गृहस्थ है, ज्ञानी है, आरहों (अर्हतों, पूर्णतः प्रबुद्ध) का शिष्य है, बुद्धिमान है, यह जानते हुए कि वे सभी ऐसे हैं, ऐसा देखकर भी उसका विश्वास नहीं डगमगाता; क्योंकि वह कैसे निर्गुण को निर्गुण के बराबर और शुद्ध को अशुद्ध के बराबर मान सकता है?' (90)

चुंडासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
5. Cundasuttaṃ
83.
"पुच्चामि मुनिं पहुतापन्नं, (इति कुंडो कम्मरापुट्टो)
बुद्धं धम्मस्सामिं वितातनहं;
द्विपदुत्तमं [दिपदुत्तमं (सि. स्या. कं. पि.)] सारथिणं पवरं, कटि लोके समाना तदिंघ ब्रुहि"।
84.
"चतुरो समाना न पंचमत्थि, (कुंडति भगवान)
ते ते अविकारोमी सक्खिपुत्थो;
मग्गाजिनो मग्गादेसाको सीए, मग्गे जीवति यो सीए मग्गादुसी"।
85.
कं मग्गाजिनं वदन्ति बुद्ध, (इति कुंडो कम्मरापुत्तो)
मग्गक्खायि कथं अतुल्यो होति;
मग्गे जीवति मे ब्रूहि पुठो, अथ मे अविकारोहि मग्गादुसीं" [मग्गादुसी (का.)]।
86.
"यो तिन्नकथंकाथो विसाल्लो, निब्बानाभिरतो अनानुगिद्धो;
लोकस्सा सदेवकस्सा नेता, तदिं मग्गाजिनं वदन्ति बुद्ध।
87.
"परमं परमंति योधा नात्वा, अक्खाति विभजते इधेव धम्मं;
तं कंखचिदं मुनिं अनेजं, दुतियां भिक्खुनमहु मग्गदेसिं।
88.
"यो धम्मपदे सुदेसिते, मग्गे जीवति सन्नतो सतीमा;
अनवज्जपादानि सेवामानो, तत्यं भिक्खुनमहु मग्गजीविम्।
89.
"चदाणं कत्वाना सुब्बतानं, पखंडि कुलदुसको पगब्बो;
मायावी असन्नतो पलापो, पतिरूपेण कैरं स मग्गदुसी।
90.
"एते च पतिविज्जि यो गहथो, सुतवा अरियासावको सपनानो;
सब्बे नेतादिसति [सब्बे ने तदिसाति (सि. स्या. पि.)] नात्वा, इति दिसवा न हपेति तस्स साध;
कथं हि दुत्थेन असम्पाददुत्थं, शुद्धं अशुद्धेन समं कार्यया'ति।
कुंडसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी
5. चुन्दसुत्तं
.
पुच्चामि मुनिं पहुतपञ्चं, (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो)
बुद्धं धम्मस्सामिं वितान्थं।
द्विपदत्तमं [दीपदुत्तमं (सी० स्या० कं० पी०)] सारथीनं पवरं, कति लोके समाना तदिङ्घ ब्रूहि"॥
व्हाट.
चतुरो समना न पंचमथि, (चुंदाति भगवान)
ते ते अविक्रोमि सक्खिपुट्ठो।
मग्गजिनो मग्गदेसको च, मग्गे जीवति यो च मग्गदूसी"॥
85.
"कं मग्गिनं वदन्ति बुद्धा, (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो)
मग्गक्खायि कथं अतुलयो होति।
मग्गे जीवति मे ब्रुहि पुत्थो, अथ मे अविक्रोहि मग्ग्दूसिं" [मग्गेउसी (क०)]॥
6.

"यो तिन्नकथंकथो विसललो, निब्बानाभिरतो अनानुगिद्धो।
लोकस्स सदेवकस्स नेता, तादिं मग्गिनं वदन्ति बुद्धा॥
.
"परमं परमंति योध ञत्वा, अक्खाति विभजते इधेव धम्मं।
तं कङ्खचिदं मुनिं अनेजं, दुतियां भिक्खुनमाहु मग्गदेसिं॥
88.
"यो धम्मपदे सुदेसिते, मग्गे जीवति संञ्ञतो सतीमा।
अनवजजपदानि सेवमानो, ततियां भिक्खुनमाहु मग्गग्विं॥
.
"छद्दनं कत्वान् सुब्बतनं, पक्खंडी कुलदुसको पगब्बो।
मायावी असञ्जन्तो पलापो, पतिरूपेण चरं स मग्गदूसि॥
90.
"एते च पतिवैजि यो गहत्थो, सुतवा अरियसावको सपञ्चनो।
सब्बे नेतादिसाति [सब्बे ने तदिसाति (सी० स्या० पी०)] नत्वा, इति दिस्वा न हापेति तस्स साध।
कथं हि दुट्ठेन असम्दुत्थं, सुद्धं असुद्धेन समं करैया"ति॥
चुन्दसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.6 परभवसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

एक देवता और बुद्ध के बीच उन चीजों पर संवाद, जिनसे मनुष्य इस संसार में हानि उठाता है और जिनसे लाभ प्राप्त करता है।

अंतर्वस्तु
11.6 प्राभवसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
1.6 पराभवसुत्त
अनुवाद
तो मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। फिर जब रात बीत गई, तो एक सुंदर रूप वाले देवता ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) के पास जाकर, उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर भगवान (भगवान बुद्ध) से श्लोकों में कहा:

1. 'हे गौतम (बुद्ध), हम आपसे एक ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछते हैं जिसे हानि हुई है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हम आपसे यह पूछने आए हैं कि हानि का कारण क्या है।' (91)

2. भगवान (भगवान बुद्ध): 'विजेता को आसानी से पहचाना जा सकता है, और हारने वाले को भी आसानी से पहचाना जा सकता है: जो धर्म से प्रेम करता है वही विजेता है, और जो धर्म से घृणा करता है वही हारने वाला है।' (92)

3. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह पहला हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें दूसरा कारण बताइए, हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण क्या है? (93)

4. भगवान (भगवान बुद्ध): 'दुष्ट लोग उसे प्रिय होते हैं, वह अच्छे लोगों को प्रिय कुछ भी नहीं करता, वह दुष्टों के धर्म का समर्थन करता है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण है।' (94)

5. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह दूसरा हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें तीसरा कारण बताइए, हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण क्या है?' (95)

6. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति सुस्त है, समाज का शौकीन है और ऊर्जाहीन है, आलसी है, क्रोधी है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण है।' (96)

7. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह तीसरा हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें चौथा कारण बताइए, हानि का कारण क्या है? (97)

8. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो धनी होते हुए भी अपने माता-पिता (वृद्ध या युवावस्था पार कर चुके) का सहारा नहीं देता, वही हानि का कारण है।' (98) 9.

देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह चौथा हानि का कारण है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें पाँचवाँ कारण बताइए, हानि का कारण क्या है?' (99)

10. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो झूठ बोलकर ब्राह्मण, समन (भिक्षु) या किसी अन्य तपस्वी को धोखा देता है, वही हानि का कारण है।' (100)

11. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह पाँचवाँ हानि का कारण है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें छठा कारण बताइए, जो व्यक्ति हानि का शिकार होता है। (101)

12. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति बहुत संपत्ति का मालिक है, जिसके पास सोना और भोजन है, (और फिर भी) केवल अपनी सुख-सुविधाओं का आनंद लेता है, वही हानि का कारण है।' (102)

13. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह छठा हानि का शिकार है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें सातवां कारण बताइए, जो व्यक्ति हानि का शिकार होता है।' (103)

14. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति अपनी उच्च जाति, अपने धन और अपने परिवार पर गर्व करता है,अपने रिश्तेदारों से घृणा करता है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए नुकसान का कारण है।' (104)

15. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह सातवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें आठवां बताइए, हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (105)

16. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति स्त्रियों, शराब और जुए में लिप्त रहता है, वह अपनी सारी कमाई बर्बाद कर देता है, यही हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण है।' (106)

17. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह आठवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें नौवां बताइए, हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (107)

18. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं होता, वह वेश्याओं और दूसरों की पत्नियों के साथ देखा जाता है, यही हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण है।' (108)

19. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह नौवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें दसवां बताइए, हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (109)

20. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो पुरुष अपनी जवानी पार कर चुका है, वह तिम्बारू फल के समान स्तनों वाली स्त्री को घर लाता है, और उससे ईर्ष्या के कारण सो नहीं पाता, वही हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण है।' (110)

21. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह दसवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें ग्यारहवां बताइए, हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (111)

22. भगवान (बुद्ध): 'जो व्यक्ति शराब पीने और फिजूलखर्ची करने वाली स्त्री या उसी प्रकार के पुरुष को सर्वोच्च स्थान देता है, वही हानि का कारण बनता है।' (112)

23. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह ग्यारहवां हानि का कारण है; हे भगवान (बुद्ध), हमें बारहवें हानि का कारण बताइए, जो हानि का कारण बनता है।' (113) 24.

भगवान (बुद्ध): 'जिसके पास थोड़ी संपत्ति है, (पर) बड़ी इच्छा है, जो क्षत्रिय परिवार में जन्म लेता है और इस संसार में राज्य की कामना करता है, वही हानि का कारण बनता है।' (114)

25. संसार में होने वाली इन हानियों को ध्यान में रखते हुए, ज्ञानवान, आदरणीय, अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण व्यक्ति, सुखी लोक (देवताओं के लोक) की साधना करता है।' (115)

परभवसुत्त समाप्त हो गया।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. पराभवसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो अन्नतर देवता अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतं स्थित खो स देवता भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
91.
"परभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छम गोतम [गोतमं (सि. स्या.)];
भगवन्तं [भवन्तं (स्या. का.)] पुथुमागम्मा, किं परभवतो मुखं"।
92.
"सुविजानो भावं होति, सुविजानो [दुविजानो (स्या. का.)] पराभावो;
धम्मकामो भावं होति, धम्मदेसि परभावो"।
93.
"इति हेतं विज्ञानं, पथमो सो परभवो;
दुतीयं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
94.
"असंतास्सा पिया होंति, संते न कुरुते पियाम्;
असतं धम्मं रोसेटी, तं परभवतो मुखं"।
95.
"इति हेतं विज्ञानं, कर्तव्यो सो परभवो;
तत्यां भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
96.
"निद्दासिलि सभासिलि, अनुथाता च यो नरो;
Alaso kodhapaññāṇo, taṃ parābhavato mukhaṃ".
97.
"इति हेतं विज्ञानं, ततियो सो परभवो;
चतुत्थं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

98.
"यो मातरं [यो मातरं वा (सि. स्या. कं. पि.)] पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं;
पाहु संतो न भारती, तं परभवतो मुखं"।
99.
"इति हेतं विज्ञानं, चतुत्थो सो परभवो;
पंचमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
100.
"यो ब्राह्मणं [यो ब्राह्मणं वा (सि. स्या. कं. पि.)] समानं वा, अन्नं वापि वाणीबकम्;
मुसावादेन वन्सेति, तं परभवतो मुखं"।
101.
"इति हेतं विज्ञानं, पंचमो सो परभवो;
चैथमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
102.
" पहुतावित्तो पुरिसो, साहिराणो सभोजनो;
एको भुञ्जति सदुनि, तं परभवतो मुखं"।
103.
"इति हेतं विज्ञानं, चत्थमो सो परभवो;
सत्तमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
104.
"जतित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो;
सन्नतिं अतिमन्नेति, तं परभवतो मुखं"।
105.
"इति हेतं विज्ञानं, सत्तमो सो परभवो;
अथमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
106.
"इत्थिधुत्तो सुरधुत्तो, अक्खधुत्तो च यो नरो;
लद्धं लद्धं विनसेति, तं परभवतो मुखं"।
107.
"इति हेतं विज्ञानं, अथामो सो परभवो;
नवमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
108.
"सेही दरेहि असंतुठो [दारेह्यसंतुठो (का.)], वेसियासु पदुस्सति [पडिस्सति (सि.)];
दुस्सति [डिस्सति (सि. पि.)] परदारेसु, तं परभवतो मुखं"।
109.
"इति हेतं विज्ञानं, नवमो सो परभवो;
दशमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
110.
"अतितायोब्बानो पोसो, अनेति टिम्बरुत्थनि:;
तस्स इस्स न सुपति, तं परभवतो मुखं"।
111.
"इति हेतं विज्ञानं, दशमो सो परभवो;
एकादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
112.
"इत्थिं सोंदिं विकिराणिं, पुरिसं वापि तदिसं;
इस्सारियास्मिं थपेति [थपेति (सि. पि.), थापेति (का.)], तं परभवतो मुखं"।
113.
"इति हेतं विज्ञानं, एकादसमो सो परभवो;
द्वादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

114.
"अप्पाभोगो महतान्हो, खत्तिये जायते कुले;
तो च रज्जं पथयति, तं परभवतो मुखं"।
115.
"एते परभावे लोके, पण्डितो समवेक्खिया;
अरियो दस्सानसम्पन्नो, स लोकं भजते शिव'न्ति।
परभवसुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. प्राभवसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्जनत्र देवता अभिकान्तराय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमन्तं थिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्भासि -
.
"पराभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छम गोतम [गोतमं (सी॰ स्या॰)]।
भगवन्तं [भवंतं (स्या॰ क॰)] पुत्थुमागम, किं परभवतो मुखं"॥
.
"सुविजानो भवन होति, सुविजानो [दुविजानो (स्या॰ क॰)] परभवो।
धम्मकामो भवन होति, धम्मदेस्सी परभवो॥
.
"इति हेतं विजानाम, पथमो सो परभवो।
दुतीयं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
.
"असन्तस्स पिया होन्ति, सन्ते न कुरुते पियं।
असतं धम्मं रोचेति, तं परभवतो मुखं"॥
.
"इति हेतं विजानाम, दुतियो सो परभवो।"
तत्यां भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
.
"निसिदालि सभासीली, अनुत्थता च यो नरो।
अलसो कोधपञ्चनो, तं परभवतो मुखं"॥
.
"इति हेतं विजानाम, ततियो सो परभवो।
चतुत्थं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
.
"यो मातरं [यो मातरं वा (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)] पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भारती, तं परभवतो मुखं॥
.
"इति हेतं विजानाम, चतुत्थो सो परभवो।
पंचचमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
100.
"यो ब्राह्मणं [यो ब्राह्मणं वा (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)] समानं वा, अञ्चं वापि वनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं परभवतो मुखं॥
1011.
"इति हेतं विजानाम, पंचमो सो परभवो।
छट्ठमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
102.

"पहुतोवित्तो पुरिसो, सहिरञ्जो सभोजनो।"
एको भुञ्जति सदुनि, तं परभवतो मुखं॥
103.
"इति हेतं विजानाम, छट्ठमो सो परभवो।
सत्तमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
14.
"जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो।
संञातिं अतिमञ्चेति, तं परभवतो मुखं"॥
105.
"इति हेतं विजानाम, सत्तमो सो परभवो।
अट्ठमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
10.
"इत्थिधुत्तो सुरधुत्तो, अक्क्खुत्तो च यो नरो।
लद्धं लद्धं विनासेति, तं परभवतो मुखं"॥
1
"इति हेतं विजानाम, अत्थमो सो परभवो।
नवमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
1/2
"सही दारेहि असंतुट्ठो [दारेह्यसंतुत्थो (क०)], वेसियासु पदुस्स्ति [पादिस्स्ति (सी०)]।
दुस्स्ति [दिस्स्ति (सी० पी०)] परदारेसु, तं परभवतो मुखं"॥
.
"इति हेतं विजानाम, नवमो सो परभवो।
दशमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
11.
"अतीतयोब्बनो पोसो, अनेति तिम्बरुत्थनिं।
तस्सा इस्सा न सुपति, तं परभवतो मुखं॥
.
"इति हेतं विजानाम, दशमो सो परभवो।
एकादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
121.
"इत्थिं सोण्डिं विकिरणिं, पुरिसं वापि तादिसं।
इस्त्रिसुमिं ओमेति [थापेति (सी० पी०), थापेति (के०)], तं परभवतो मुखं"॥
12, ...
"इति हेतं विजानाम, एकादसमो सो परभवो।
द्वादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
1.
"अप्पभोगो महतान्धो, खत्त्ये जायते कुले।"
सो च रज्जं पथयति, तं परभवतो मुखं॥
15.
"एते परभवे लोके, पण्डितो समवेखिय।
अरियो दासनसंसम्प संञाओ, स लोकं भजते शिव"न्ति॥
परभवसुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.7 वासलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

मातंग जातक में वर्णित मातंग की कहानी के माध्यम से बहिष्कृत व्यक्ति की जो परिभाषा बुद्ध ने दी है, उसे सुनने के बाद ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने बुद्ध द्वारा धर्मांतरण कर लिया।

———————————————————————

अंतर्वस्तु
11.7 वासलसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.7 वासलसुत्त
अनुवाद
तो मैंने यह सुना:
एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। सुबह भगवान ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। उस समय ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज के घर में आहुति के लिए अग्नि प्रज्वलित थी। तब भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में घर-घर भिक्षा मांगते हुए ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज के घर गए। ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने दूर से भगवान (भगवान बुद्ध) को आते देखा और उन्हें देखकर कहा: 'हे मुंडा सिर वाले, वहीं ठहरो; हे समनक (अर्थात दुखी समनक) वहीं ठहरो; हे वासलक (अर्थात बहिष्कृत) वहीं ठहरो!'

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज से पूछा, 'हे ब्राह्मण, क्या तुम जानते हो कि कोई बहिष्कृत होता है या उसे बहिष्कृत करने वाली बातें?'

'हे पूज्य गौतम बुद्ध, मैं नहीं जानता कि कोई बहिष्कृत होता है या उसे बहिष्कृत करने वाली बातें; कृपया मुझे यह अच्छी तरह से सिखाएं ताकि मैं बहिष्कृत और उसे बहिष्कृत करने वाली बातें जान सकूं।'

'तो सुनो, हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें बताऊंगा।'

'हे पूज्यवर,' ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

तब भगवान बुद्ध ने यह कहा:

1. 'जो व्यक्ति क्रोधित और द्वेषी है, जो दुष्ट और पाखंडी है, जिसने गलत विचार अपनाए हैं, जो कपटी है, उसे बहिष्कृत समझो। (116)

2. 'इस संसार में जो कोई भी जीवों को हानि पहुँचाता है, चाहे वह एक जन्म का हो या द्विजन्म का, और जिसमें जीवों के प्रति करुणा नहीं है, उसे बहिष्कृत समझो। (117)

3. 'जो कोई भी गाँवों और नगरों को नष्ट करता है या उन पर घेरा डालता है, और शत्रु के रूप में जाना जाता है, उसे बहिष्कृत समझो। (118)

4. 'चाहे गाँव में हो या जंगल में, जो कोई भी चोरी करके दूसरों की संपत्ति को हड़प लेता है, जो उसे दी नहीं गई है, उसे बहिष्कृत समझो। (119)

5. 'जो कोई भी वास्तव में किसी जो व्यक्ति कर्ज में डूबा हुआ हो और बुलाए जाने पर यह कहकर भाग जाए कि "मेरा आप पर कोई कर्ज नहीं है", उसे बहिष्कृत समझो। (120)

6. जो कोई तुच्छ वस्तु के लालच में सड़क पर चलते हुए किसी व्यक्ति को मार डाले और वह वस्तु ले ले, उसे बहिष्कृत समझो। (121)

7. जो व्यक्ति अपने लिए, दूसरों के लिए या धन के लालच में गवाह के रूप में पूछे जाने पर झूठ बोलता है, उसे बहिष्कृत समझो। (122)

8. जो कोई रिश्तेदारों या दोस्तों की पत्नियों के साथ जबरदस्ती या उनकी सहमति से देखा जाए, उसे बहिष्कृत समझो। (123)

9. जो कोई धनी होते हुए भी माता-पिता की वृद्धावस्था में उनका सहारा नहीं बनता, उसे बहिष्कृत समझो। (124)

10. जो कोई माता-पिता, भाई, बहन या सास को मारता-पीटता हो या शब्दों से उन्हें परेशान करता हो,उसे बहिष्कृत के रूप में जाना जाए। (125)

11. जो कोई भी, जब उससे अच्छे के बारे में पूछा जाए, तो वह बुरे की शिक्षा दे और (किसी से) कुछ छिपाकर सलाह दे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (126)

12. जो कोई भी बुरा कर्म करके यह आशा करे (कहते हुए) कि "कोई मुझे ऐसा करने वाला न समझे", तो उसे बहिष्कृत समझो। (127)

13. जो कोई भी किसी दूसरे के घर जाकर उसके अच्छे भोजन का सेवन करे, और उसके आने पर उसका आदर न करे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (128)

14. जो कोई भी झूठ बोलकर किसी ब्राह्मण, समन (सन्यासी) या किसी अन्य भिक्षु (तपस्वी) को धोखा दे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (129)

15. जो कोई भोजन के समय ब्राह्मण या समण को शब्दों से परेशान करे और उसे कुछ न दे, उसे बहिष्कृत समझो। (130)

16. जो कोई इस संसार में अज्ञान में डूबा हुआ तुच्छ वस्तु की लालसा करते हुए अवास्तविक बातों की भविष्यवाणी करे, उसे बहिष्कृत समझो। (131)

17. जो कोई अहंकार से नीच होकर स्वयं को बड़ा समझे और दूसरों को नीचा समझे, उसे बहिष्कृत समझो। (132)

18. जो कोई उकसाने वाला, लालची, पापी इच्छाओं वाला, ईर्ष्यालु, दुष्ट, निर्लज्ज और पाप से निर्भय हो, उसे बहिष्कृत समझो। (133)

19. जो कोई भी बुद्ध या उनके शिष्य की निंदा करता है, चाहे वह परिभज (पथरीब) हो या गृहस्थ (गहत्था), उसे बहिष्कृत समझो। (134)

20. जो कोई भी संत न होते हुए संत होने का ढोंग करता है, (और) ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के लोक सहित सभी लोकों में चोर है, वह वास्तव में सबसे नीच बहिष्कृत है; ये सभी जिनका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है, वास्तव में बहिष्कृत कहलाते हैं। (135)

21. जन्म से कोई बहिष्कृत नहीं होता, जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता; कर्मों से कोई बहिष्कृत होता है, कर्मों से कोई ब्राह्मण होता है। (136)

22. इसे इस प्रकार समझो जैसे मेरा यह उदाहरण (दिखाता है): सोपक जाति का एक चांडाल (बहिष्कृत) था, जो मतंगा के नाम से प्रसिद्ध था। (137)

23. 'इस मतंग ने सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त की, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन था, और अनेक क्षत्रिय और ब्राह्मण उनकी सेवा में आ गए। (138)

24. 'देवताओं के वाहन पर सवार होकर, (और) धूल रहित उच्च मार्ग में प्रवेश करके, इंद्रिय सुखों का त्याग करके, वे ब्रह्म (प्रधान) लोक में चले गए। (139)

25. 'उनका (जातिहीन) जन्म उन्हें ब्रह्म लोक में पुनर्जन्म लेने से नहीं रोक सका; (दूसरी ओर) ऐसे ब्राह्मण हैं, जो गुरुओं के परिवार में जन्मे हैं, वेदों के भजनों के मित्र हैं, (140)

26. 'परन्तु वे निरंतर पाप कर्मों में लिप्त रहते हैं, और इस लोक में निंदनीय हैं, जबकि आने वाले (लोक) में नरक (उनकी प्रतीक्षा कर रहा है); जन्म (जाति) उन्हें न तो नरक से बचा सकता है और न ही निंदनीयता से। (141)

27. '(अतः) जन्म (जाति) से कोई बहिष्कृत नहीं होता, जन्म (जाति) से कोई ब्राह्मण नहीं होता, कर्मों से कोई बहिष्कृत होता है, कर्मों से कोई ब्राह्मण होता है।' (142)

यह कहकर ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) को इस प्रकार उत्तर दिया:

'हे पूज्य गौतम बुद्ध! हे पूज्य गौतम बुद्ध! हे पूज्य गौतम बुद्ध! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधकार में दीपक जलाता है ताकि आँखें रखने वाले वस्तुएँ देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम बुद्ध, धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ।' आदरणीय गौतम (बुद्ध) मुझे उपासक (अनुयायी) के रूप में स्वीकार करें, जिसने जीवन भर उनकी शरण ली है।

वासलसत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. वासलसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व पट्टशिवरामादय सवत्थिम पिंडाय पविसी। तेन खो पाना समयेन अग्गिकभारद्वाजस ब्राह्मणस्स निवेशे अग्गि पज्जलितो होति आहुति पग्गहिता। अथ खो भगव सवत्थियं सपादानं पिण्डया कारमाणो येन अग्गिकभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स निवेशनं तेनुपशंकामि।
अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दुरतोवा आगच्छन्तं। दिस्वाना भगवन्तं एतदावोचा – "तत्रेवा [अत्रेवा (स्या. का.)], मुंडक; तत्रेव, समानक; तत्रेव, वसलका तिथहि'ति।
एवं वुट्टे, भगव अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदावोचा - "जानासी पाना त्वं, ब्राह्मण, वसलं वा वसलकारणे वा धम्मे'ति? "न ख्वाहं, भो गोतम, जानामि वसलं व वसलकारणे व धम्मे; साधु मे भावं गोतमो तथा धम्मं देसेतु, यथाहं जनेयं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे'ति।
"तेन हि, ब्राह्मण, सुनाही, साधुकं मनसि करोहि; भसिस्सामि'ति. "एवं, भो'ति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पचासोसि।' भगव एतादावोका -
116.
"कोधनो उपनाहि च, पापमक्खि च यो नरो;
विपन्नदिति मायावी, तं जनना वसलो इति।
117.
"एकाजं वा द्विजं [दिजं (पी.)] वापी, योधा पणं विहिंसति;
यस्सा पणे दया नत्थि, तं जनना वसलो इति।
118.
"यो हन्ति परिरुन्धति [उपरुन्धेति (स्या.), उपारुन्धति (का.)], गमानी निगमानि च;
निग्गाहाको [निग्गाताको (?)] समानातो, तां जनना वासलो इति।
119.
"गमे वा यदि वा रानने, यं परेसं ममयितम्;
थेय्य आदिन्नमदेति [अदिन्नं अदियाति (सि. पि.)], तं जनना वसालो इति।
120.
"यो है इनामदाय, कुज्जमानो [भुंजमानो (?)] पलायति;
न हि ते इनामत्थिति, तं जनना वासलो इति।
121.
"यो वे किञ्चिक्खाकम्यता, पंथास्मिं वजन्तं जनं;
हन्त्वा किन्चिक्खमादेति, तं जनना वासलो इति।
122.
"अत्ताहेतु परहेतु, धनहेतु च [धनहेतु वा (का.)] यो नरो;

सक्खिपुत्थो मुसा ब्रूति, तं जनना वासलो इति।
123.
"यो नातिनां सखिनं वा, दारेसु पतिदिस्साति;
सहसा [सहसा (सि. स्या.)] संपियेण वा, तं जनना वासलो इति।
124.
"यो मातरं पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं;
पाहु संतो न भारती, तं ज्ञान वसलो इति।
125.
"यो मातरं पितरं वा, भतारं भगिनीं ससुम्;
हन्ति रोसेति वचन, तं जनना वासलो इति।
126.
"यो अत्थं पुच्चितो संतो, अनत्थमनुससति;
पतिच्चन्नेन मन्तेति, तं जनना वासलो इति।
127.
"यो कट्वा पापकं कम्मं, मा मां जान्नति इच्छाति [विभा। 894 पासिटब्बां];
यो पतिच्चन्नकम्मन्तो, तं जनना वसलो इति।
128.
"यो वे परकुलं गन्त्वा, भुत्वन [सुत्वा च (स्या. का.)] सुचिभोजनं;
अगतं नप्पतिपूजेति, तं जनना वासलो इति।
129.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, अनन्यं वापि वाणीबकं;
मुसावादेन वेन्सेति, तं जनना वासलो इति।
130.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, भट्टकाले उपथिते;
रोसेति वाचा न च देति, तं जनना वासलो इति।
131.
"असतं योधा पब्रुति, मोहेन पालीगुंथितो;
किंचिक्खां निजिगिसानो [निजिगिसानो (सि. स्या. कां. पि.)], तं जनना वासलो इति।
132.
"यो चत्तनं समुक्कंसे, पारे च मावजानाति [मावजानाति (सि. स्या. पि.)];
निहिनो सेना मानेना, तं जनना वासलो इति।
133.
"रोसाको कादारियो च, पपीचो मछरी साथो;
अहिरिको अनोत्प्पि, तं जनना वसालो इति।
134.
"यो बुद्धं परिभासति, अथ वा तस्स सावकं;
परिब्बाजं [परिब्बाजं (का.), परिब्बाजं (स्या. कां.)] गहठहं वा, तं जनना वासलो इति।
135.
"यो वे अनाराहं [अनारहा (सि. पि.)] संतो, अरहं पतिजानाति [पतिजानाति (सि. स्या. पि.)];
कोरो सब्रह्मके लोके, एसो खो वासलाधामो।
136.
"एते खो वसाला वुत्ता, मया येते पाकसिता;
न जच्चा वसालो होति, न जच्चा होती ब्राह्मणो;
कम्मुना [कम्मना (सी.पी.)] वासलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।
137.
"तदमिनापि जानथ, यथामेदं [यथापेदं (का.)] निदस्सानं;
चांडालपुत्तो सोपाको [सपाको (?)], माटांगो इति विसुतो।
138.

"सो यसं परमं पत्तो [सो यसप्पारामप्पत्तो (स्या. का.)], मतांगो यां सुदुल्लाभां;
आगच्छुं तस्सुपत्थानं, खट्टिय ब्राह्मण बाहु।
139.
"देवयानं अभिरुय:, विराजं सो महापथं;
कामरागम विराजेत्व, ब्रह्मलोकुपगो अहु;
न नं जाति निवारेसि, ब्रह्मलोकुपपत्तिया।
140.
"अज्झायककुले जाता, ब्राह्मण मंतबंधवा;
ते च पापेसु कम्मेसु, अभिन्हमुपादिसरे।
141.
"दिट्ठेव धम्मे गरैहा, संपारये च दुग्गति;
न ने जाति निवारेति, दुग्गट्या [दुग्गाचा (सि. स्या. कं. पि.)] गरहया वा.
142.
"न जच्चा वसालो होति, न जच्चा होती ब्राह्मणो;
कम्मुना वसालो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणोऽति।
एवं वुट्टे, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदावोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम...पे... उपासकं मन भावं गोतमो धरेतु अजजतग्गे पाणुपेटं सरणं गता"न्ति.
वसलसुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. वसलसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगव पुब्नहसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय सवत्थिं पिण्डाय पविसि। तेन खो पन समयेन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसने अग्गी पज्जलितो होति आहुति पग्गहिता। अथ खो भगव सावथ्यं सपादानं पिंडाय चरमाणो येन अग्गिकभारद्वाज्स्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङकमि।
अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वां भगवंतं एतदवोच – "तत्रेव [अत्रेव (स्या० क०)], मुंडक; तत्रेव, समानक; तत्रेव, वासलक तित्थाही"ति।
एवं वुत्ते, भगवा अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदवोच - "जानासि पन त्वं, ब्राह्मण, वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति? "न ख्वाहं, भो गोतम, जानामि वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे; साधु मे भवन गोतमो तथा धम्मं देसेतु, यथाहं जानेयं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति। "तेन हि, ब्राह्मण, सुनहि, साधुकं मनसि करोहि; भसिस्सामि"ति। "एवं, भो"ति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पचदस्सोसि। भगवा एतदवोच -
116.
"कोधनो उपनाहि च, पापमक्खी च यो नरो।
विप संज्ञादिट्ठि मायावी, तं ज्ञान वासलो इति॥
11.
"एकजं वा द्विजं [दिजं (पी०)] वापि, योध पानं विहिंसति।
यस् पणे दया नत्थि, तं ज्ञान वसलो इति॥
111.
"यो हन्ति परिरुन्धति [उपरुन्धेति (स्या०), उपरुन्धति (क०)], गमनि निगमाणि च।
निग्गाहको [निघघातको (?)] समञ्जनातो, तं ज्ञान वासलो इति॥
1.
"गेमे वा यदि वा रञ्जे, यं परेसं ममायितं।
थेय अदि संज्ञामादेति [अदि नासिकं आदियति (सी० पी०)], तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो हवे इनामदाय, चुज्जमानो [भुंजजमानो (?)] पलयति।
न हि ते इनामथति, तं ज्ञान वासलो इति॥
121.
"यो वे किञ्चिचिक्ककम्यता, पंथास्मिं वजनं जनं।'

हन्त्वा किञ्चिक्खमादेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
122.
"अत्तहेतु परहेतु, धनहेतु च [धनहेतु वा (क॰)] यो नरो।
सक्खिपुत्थो मुसा ब्रूति, तं ज्ञान वासलो इति॥
12
"यो नातिनं सखिनं वा, दारेसु पतिदिसस्ति।
साहसा [सहसा (सी॰ स्या॰)] संपियेन वा, तं जञ्ञा वासलो इति॥
124.
"यो मातरं पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भारती, तं ज्ञान वासलो इति॥
12.
"यो मातरं पितरं वा, भतरं भगिनं ससुं।
हन्ति रोसेति वाचाय, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो अथं पुच्छितो सन्तो, अनन्तमनुससति।
पतीच्छ साइनेन मन्तेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो कत्वा पापकं कम्मं, मा मन ज्ञानति इच्छति [विभ॰ 894 पास्सित्बं]।
यो पतिच्छ संज्ञाकम्मन्तो, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो वे पर्कुलं गन्त्वा, भुत्वान [सुत्वा च (स्या॰ क॰)] सुचिभोजोनं।
आगतं नप्पतिपूजेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो ब्राह्मणं समनं वा, अञ्जनं वापि विनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
30.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, भट्टकाले उपत्थिते।
रोसेति वाचा न च देति, तं ज्ञान वासलो इति॥
111.
"असतं योध पब्रुति, मोहेण पलिगुण्थितो।
किञ्चिक्खं निजिगिसाणो [निजिगिंसाणो (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)], तं जञ्जञा वासलो इति॥
फरवरी.
"यो चत्तानं समुक्रांसे, परे च मवजानाति [मवजानति (सी॰ स्या॰ पी॰)]।
निहिनो सेन मानेन, तं ज्ञान वासलो इति॥
11.
"रोसको कादारियो च, पापीच्छोस्माति सातो।"
अहिरिको अनोत्तप्पि, तं ज्ञान वासलो इति॥
134.
"यो बुद्धं परिभासति, अथ वा तस्स सावकं।
परिब्बजं [परिब्बजं (क॰), परिब्बजकं (स्या॰ कं॰)] गहत्थं वा, तं जञ्जना वासलो इति॥
1 चौथाई.
"यो वे अनरहं [अनरहा (सी॰ पी॰)] सन्तो, अरहं पतिजानाति [पतिजानति (सी॰ स्या॰ पी॰)]।
चोरो सब्रह्मके लोके, एसो खो वसलाधमो॥
17 .
"एते खो वसला वुत्ता, माया येते पकासिता।"
न जच्चा वसलो होती, न जच्चा वसलो होती ब्राह्मणो।
कम्मुना [कम्मना (सी॰ पी॰)] वासलो होती है, कम्मुना होती है ब्राह्मणो॥
.

"तदमिनापि जननाथ, यथामेदं [यथापेदं (क०)] निदस्सनं।
चांडालपुत्तो सोपाको [सपाको (?)], माटङ्गो इति विस्सुतो॥
प्रति.
"सो यसं परमं पत्तो [सो यस्परमप्पत्तो (स्या० क०)], माङ्गो यं सुदुलभं।
आगच्छुं तस्सुपट्ठानं, खत्तिया ब्राह्मण बहु॥
12वीं शताब्दी.
"देवयानं अभिरुय:, विरजं सो महापथं।
कामरागं विराजेत्वा, ब्रह्मलोलुपगो अहु।
न नं जाति निवारेसि, ब्रह्मलोलुपपत्तिया॥
40.
"अज्झायककुले जात, ब्राह्मण मन्तबन्धवा।"
ते च पापेसु कम्मेसु, अभिन्हमुपदिस्सारे॥
141.
"दिट्ठेव धम्मे गार्यहा, संपराये च दुग्गति।"
न ने जाति निवारेति, दुग्गत्या [दुग्गचा (सी० स्या० कं० पी०)] गृहाय वा॥
142.
"न जच्चाचा वासलो होति, न जच्चाचा होति ब्राह्मणो।"
कम्मुना वासलो होती है, कम्मुना होती है ब्राह्मणो"ति॥
एवं वुत्ते, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच - "अभिभोकान्तं, भो गोतम...पे....उपासकं मन भवन गोतमो धारेतु अजदजतगे पाणुपेतं शरणं गत"न्ति।
वसलसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.8 मेटासुट्टा
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

शांत मन और सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना प्रशंसनीय है।

____

अंतर्वस्तु
11.8 मेट्टासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
1.8 मेट्टासुट्टा
अनुवाद
1. जो व्यक्ति निर्वाण की शांत अवस्था प्राप्त कर, अच्छे की खोज में निपुण हो, उसे जो भी कार्य करना हो: वह समर्थ, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, मृदुभाषी, विनम्र और अभिमानरहित हो। (143)

2. वह संतुष्ट, सहज, कम चिंताओं वाला, बोझ से मुक्त, शांत और बुद्धिमान हो, अभिमानरहित हो, और परिवार में घूमते समय लोभ न दिखाए। (144)

3. वह ऐसा कोई नीच कार्य न करे जिसके लिए बुद्धिमान लोग उसकी निंदा करें; सभी प्राणी सुखी और सुरक्षित रहें, वे प्रसन्न मन के हों। (145)

4. सभी जीव-जंतु, चाहे दुर्बल हों या बलवान, चाहे लंबे हों या बड़े, मध्यम आकार के हों, छोटे हों या बड़े, (146)

5. चाहे दिखाई दें या न दिखाई दें, चाहे दूर रहें या पास, चाहे जन्म लें या पुनर्जन्म की तलाश में हों, सभी प्राणी प्रसन्न मन के हों। (147)

6. कोई किसी को धोखा न दे, किसी भी स्थान पर किसी का तिरस्कार न करे, क्रोध या द्वेष से किसी का हानि न करे। (148)

7. जैसे एक माँ अपने प्राणों की परवाह किए बिना अपने इकलौते बच्चे की रक्षा करती है, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति असीम (मित्रतापूर्ण) मन रखना चाहिए। (149)

8. और उसे समस्त संसार के प्रति सद्भावना, असीम (मित्रतापूर्ण) मन रखना चाहिए, जो ऊपर, नीचे और चारों ओर निर्बाध, घृणा रहित, शत्रुता रहित हो। (150)

9. खड़े होकर, चलते हुए, बैठे हुए या लेटे हुए, जब तक वह जागृत रहे, उसे इस मन में लीन रहना चाहिए; कहते हैं कि जीने का यह तरीका संसार में सर्वश्रेष्ठ है। (151)

10. जो दार्शनिक विचारों को न अपनाकर गुणी है, पूर्ण दृष्टि से संपन्न है, इंद्रिय सुखों के लोभ को वश में करके, वह फिर कभी माँ के गर्भ में नहीं जाएगा। (152)

मेट्टासुट्टा समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. मेट्टासुत्तं
143.
करणीयमत्थकुसलेना, यंता संतं पदं अभिसमेच्च;
सक्को उजू सीए सुहुजू [सुजू (सि.)] सीए, सुवाको कैसा मुदु अनातिमानी।
144.
संतुस्साको सीए सुभारो सीए, अप्पाकिको सीए सल्लाहुकावुट्टी;
शांतिंद्रियो च निपाको च, अप्पागब्बो कुलेसवननुगिद्धो।
145.
न च खुद्माकेरे किञ्चि, येन विन्नु परे उपवदेयुं;
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बसत्ता [सब्बे सत्ता (सि. स्या.)] भवन्तु सुखितत्ता।
146.
ये केचि पणभूतत्थि, तसा वा थावरा वनवसेसा;
दीघा वा ये वा महंता [महंता (?)], मज्झिमा रस्साका अनुकथुला।
147.
दिट्ठा वा ये वा अदितिथा [अदिट्ठा (?)], ये वा [ये च (सि. स्या. कं. पि.)] दूरे वसंती अविदुरे;
भूत वा संभवेसि वा [भूत वा संभवेसि वा (स्या. कं. पि. का.)], सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्ता।
148.
न पारो परं निकुब्बेथा, नातिमन्नेथा कत्थचि न कांची [नं कांची (सि. पि.), नां किंची (स्या.), न किंची (का.)];
बयारोसाना पतिघासन्ना, नाण्णामन्नस्स दुक्खमिच्छेया।
149.
माता यथा नियं पुत्तमायुसा एकपुत्तमनुरक्खे;
एवमपि सब्बभूतेसु, मनसं भवे अपरिमाणं।
150.
मेत्तञ्च सब्बलोकस्मि, मनसां भवे अपरिमाणं;
उध्दं अधो च तिर्यञ्च, असंबाधं अवेरमासपट्टम्।
151.
तिथं कारं निसिन्नो वा [वा (सि. स्या. कं. पि.)], सयानो यावतस्स वितममिद्धो [विगतमिद्धो (बहुसु)];

एतं सतिं अधिष्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारमिधमाहु।
152.
दिथिञ्च अनुपग्गम्मा, सिलवा दस्सानेन सम्पन्नो;
कामेसु विनय [विनेया (सि. स्या. पि.)] गेधं, न हि जतुग्गभसेय पुनरेति।
मेत्तसुत्तं अठहमं निठ्ठितं।

पाली-देवनागरी
8. मेत्तसुत्तं
12
करणीयमत्थकुसलेन, यन्त सन्तं पदं अभिसमेचच।
सचित्रको उजु च सुहुजू [सुजू (सी०)] च, सुवचो चस्स मुदु अनंतिमनी॥
4.
सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्ल्हुकुवुति।
शांतिन्द्रियो च निपको च, अप्पगभो कुलेसवन्नुगिद्धो॥
15.
न च खुद्दमाचेरे किञ्चि, येन विष्णु परे उपदेयुं।
सुखिनो व ख़ेमिनो होंतु, सब्बसत्ता [सब्बे सत्ता (सी० स्या०)] भवन्तु सुखितत्ता॥

.
ये केचि पानभूत्ति, तसा वा थावरा वनवसेसा।
दीघा वा ये व महंता [महंत (?)], मज्झिमा रस्साका अन्टिकथुला॥
144.
दिट्ठा वा ये वा आदित्था [अदिट्ठ (?)], ये व [ये च (सी० स्या० कं० पी०)] दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूत वा संभावितेसी वा [भूत वा संभावितेसी वा (स्या० कं० पी० क०)], सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्॥

.
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्जेथ कत्थचि न कञ्चि [नं कञ्चचि (सी० पी०), नं किञ्चचि (स्या०), न किञ्चचि (क०)]।
ब्यारोस्ना पतिघसञ्चा, नञ्जमञ्चस्स दुक्खमिच्छेय॥

.
माता यथा नियं पुत्तमायुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवमपि सब्बुतेसु, मनसं भावये अपरिमणं॥

.
मेत्तञ्च सब्बलोकस्मि, मनसं भावये अपरिमणं।
उद्धं अधो च तिर्यञ्च, असम्बधं अवेरमस्पत्तं॥
151.
थत्थं चरं निसि स्यानो व [वा (सी० स्या० कं० पी०)], सयानो यावतस्स विटमिद्धो [विगतमिद्धो (बहुसु ति)]।
एतं सतिं अधित्थेय, ब्रह्ममेतं विहारमिधमाहु॥
152.
दिट्ठिञ्च अनुपग्गम्म, सीलवा दस्सेनें संप संज्ञाओ।
कामेसु विनय [विनेय (सी० स्या० पी०)] गेधं, न हि जातुग्गभसेय पुनरेतीति॥
मेत्तसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 1.9 हेमवतसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दो यक्षों (मानवों के विपरीत, आत्माओं) के बीच बुद्ध के गुणों पर संवाद। वे बुद्ध के पास जाते हैं और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के बाद, दस सौ यक्षों के साथ बुद्ध के अनुयायी बन जाते हैं।

अंतर्वस्तु

11.9 हेमवतसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.9 हेमवतसुत्त

अनुवाद

1. 'आज पंद्रहवाँ दिन है, उपवास का दिन है; एक सुहावनी रात आ गई है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, 'चलो हम (प्रसिद्ध) गुरु गौतम (बुद्ध) के दर्शन करने चलें।' (153)

2. 'क्या ऐसे व्यक्ति का मन सभी प्राणियों के प्रति अच्छा है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, 'क्या उसके विचार वांछित और अनचाही बातों के प्रति संयमित हैं?' (154)

3. 'ऐसे व्यक्ति का मन सभी प्राणियों के प्रति अच्छा है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, 'और उसके विचार वांछित और अनचाही बातों के प्रति संयमित हैं।' (155)

4. 'क्या वह वह नहीं लेता जो उसे (नहीं दिया गया है)?' - यक्ष हेमवत ने कहा, 'क्या वह प्राणियों के प्रति (अपने व्यवहार में) आत्म-संयमित है? क्या वह आलस्य से दूर है?' क्या वह ध्यान नहीं छोड़ता?' (156)

5. 'वह वह नहीं लेता जो उसे दिया नहीं गया है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और वह जीवों के प्रति संयमित (व्यवहार में) है, और वह लापरवाही से दूर है; बुद्ध ध्यान नहीं छोड़ते।' (157)

6. 'क्या वह झूठ नहीं बोलता?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'क्या वह कठोर भाषी नहीं है? क्या वह निंदा नहीं करता? क्या वह निरर्थक बातें नहीं करता?' (158)

7. 'वह झूठ नहीं बोलता,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'वह कठोर भाषी नहीं है, वह निंदा नहीं करता, वह विवेक से अच्छी बातें बोलता है।' (159)

8. 'क्या वह इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'क्या उसका मन अविचलित है?' क्या उसने मूर्खता पर विजय प्राप्त कर ली है? क्या वह सभी धर्मों को स्पष्ट रूप से देख पाता है?' (160)

9. 'वह इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और उसका मन अविचलित है; उसने सभी मूर्खताओं पर विजय प्राप्त कर ली है; बुद्ध सभी चीजों को स्पष्ट रूप से देखते हैं।' (161)

10. 'क्या वह ज्ञान से संपन्न है?' - यक्ष हेमावता ने कहा, - 'क्या उसका आचरण शुद्ध है? क्या उसकी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं? क्या उसके लिए कोई नया जन्म नहीं है?' (162)

11. 'वह ज्ञान से संपन्न है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और उसका आचरण शुद्ध है; उसकी सभी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं; उसके लिए कोई नया जन्म नहीं है।' (163)

12. 'मुनि (संत) का मन कर्म और वचन में सिद्ध है; ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण गौतम (बुद्ध), आइए हम धर्म का पालन करने वाले बुद्ध के दर्शन करें। (164-166)

13. 'आइए, हम गौतम (बुद्ध) के दर्शन करें, जिनके पैर हिरण के समान हैं, जो दुबले-पतले हैं, जो बुद्धिमान हैं, अल्प भोजन पर जीवन व्यतीत करते हैं, लोभ रहित हैं, और वन में ध्यान कर रहे मुनि (संत) हैं। (167)

14. 'जो अकेले घूमने वालों में सिंह के समान हैं और इंद्रिय सुखों की तलाश नहीं करते, उनके पास जाकर, आइए हम मृत्यु के फंदों से मुक्ति के उपाय पूछें। (168)

15. आइए हम गौतम (बुद्ध) से, जो उपदेशक और व्याख्याता हैं, पूछें।जो सभी चीजों में प्रवेश कर चुके हैं, बुद्ध जिन्होंने घृणा और भय पर विजय प्राप्त कर ली है।' (169)

16. 'संसार की उत्पत्ति किससे हुई है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'संसार का किससे घनिष्ठ संबंध है? संसार किस चीज से पीड़ित है, किस चीज को पाने की लालसा के कारण?' (170)

17. 'हे हेमवत, संसार की उत्पत्ति छह से हुई है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'छह से इसका घनिष्ठ संबंध है, छह चीजों को पाने की लालसा के कारण संसार छह चीजों से पीड़ित है।' (171)

18. हेमवत ने कहा: 'वह कौन सी लालसा है जिससे संसार पीड़ित है? मोक्ष के विषय में पूछे जाने पर, मुझे बताइए कि कैसे पीड़ा से मुक्ति मिलती है?' (172)

19. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'संसार में पांच इंद्रिय सुख हैं, और मन का सुख छठा है; इन सुखों की इच्छा का त्याग करने से व्यक्ति पीड़ा से मुक्त हो जाता है।' (173)

20. 'संसार के इस उद्धार के बारे में तुम्हें सत्य बताया गया है, मैं तुम्हें यही बताता हूँ: इस प्रकार व्यक्ति दुख से मुक्त हो जाता है।' (174)

21. हेमवत ने कहा: 'इस संसार में कौन (अस्तित्व की) धारा को पार करता है? इस संसार में कौन सागर को पार करता है? कौन उस गहरे सागर में नहीं डूबता जहाँ न कोई सहारा है और न कोई आधार?' (175)

22. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'जो सदा सद्‌गुणों से परिपूर्ण है, प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त है, समाधि में शांत है, आत्ममग्न है, अंतर्मन करता है और विचारशील है, जो अच्छी तरह ध्यान करता है, वह उस कठिन धारा को पार कर लेता है जिसे पार करना कठिन है।' (176)

23. 'जो इंद्रिय सुखों से विरक्त है, जिसने सभी बंधनों को पार कर लिया है और आनंद को नष्ट कर दिया है, ऐसा व्यक्ति गहरे सागर में नहीं डूबता।' (177)

24. हेमावता ने कहा: 'जो गहन पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) से संपन्न है, सूक्ष्म सत्य को देखने में कुशल है, निर्धन है, इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं है, उसे देखो जो हर तरह से मुक्त है, महान ईसि (ऋषि, संत), दिव्य मार्ग पर चल रहा है। (178)

25. 'जिसका महान नाम है, जो सूक्ष्म सत्य को देखने में कुशल है, जो पन्ना (प्रत्यक्ष समझ) प्रदान करता है; और इंद्रिय सुखों के धाम से आसक्त नहीं है, उसे देखो, सर्वज्ञ, बुद्धिमान, महान ईसि (ऋषि, संत), श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहा है। (179)

26. 'आज हमें वास्तव में एक अच्छा दृश्य दिखाई दिया है, एक शुभ सूर्योदय, एक सुंदर उदय, (क्योंकि) हमने पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्धम) को देखा है, जिसने नदी पार कर ली है, और वासना से मुक्त है। (180)

27. 'ये दस सौ यक्ष, जो अलौकिक शक्ति और प्रसिद्धि से परिपूर्ण हैं, वे सब आपकी शरण में आते हैं; आप हमारे अतुलनीय गुरु हैं। (181)

28. 'हम गाँव-गाँव, पर्वत-पर्वत घूमेंगे, पूर्णतः प्रबुद्ध और धम्म की पूर्णता की उपासना करेंगे।' (182)

हेमवतसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

9. हेमवतसुत्तं

153.
"अज्ज पन्नरसो उपोसाथो, (इति सतागिरो यक्खो)
डिब्बा [दिब्या (सि. स्या. कं. पि.)] रत्ती उपथिता;
अनोनामां सत्थारं, हांदा पासाम गोतमं"।

154.
"काच्चि मनो सुपाणिहितो, (इति हेमवतो यक्खो)
Sabbabhūtesu tādino;
Kacci iṭṭhe aniṭṭhe ca, saṅkappassa vasīkatā".

155.
"मनो कसा सुपनिहितो, (इति सतागिरो यक्खो)
Sabbabhūtesu tādino;
अथो इत्थे अनित्थे च, संकप्पास्सा वसीकाता"।

156.
"काच्चि अदिन्नं नादियाति, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci pāṇesu saññato;
कच्चि अरा पमादम्हा, कच्चि झाणं न रिंचति"।

157.
"ना सो आदिन्नं अदियाति, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho pāṇesu saññato;
अथो अरा पमादम्हा, बुद्धो झाणं न रिंचति"।

158.
"काच्चि मुसा न भानति, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci na khīṇabyappatho;
कच्चि वेभूतियं नाहा, कच्चि सम्फां न भासति"।

159.
"मूसा च सो न भानति, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho na khīṇabyappatho;
अथो वेभूतियं नाहा, मंता अत्थं च [अत्थं सो (सि. पि. का.)] भासति"।

160.
"काच्चि न राजजति कामेसु, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci cittaṃ anāvilaṃ;
कच्चि मोहं अतिक्कनतो, कच्चि धम्मेसु चक्खुमा"।

161.
"न सो रजजति कामेसु, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho cittaṃ anāvilaṃ;
सब्बमोहं अतिक्कनतो, बुद्धो धम्मेसु चक्खुमा"।

162.
"काच्चि विजयाय सम्पन्नो, (इति हेमावतो यक्खो)
Kacci saṃsuddhacāraṇo;
कच्चिस्सा आसवा खिना, कच्चि नत्थि पुनभभावो"।

163.
"विज्जाया सेवा सम्पन्नो, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho saṃsuddhacāraṇo;
सब्बस्स असव खिना, नत्थि तस्स पुनब्भावो"।

164.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, धम्मतो नं पससंसति"।

165.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, धम्मतो अनुमोदसि"।
166.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, हांदा पासाम गोतमम्।
167.
"एनिजांगघं किसान वीरं [धीरं (स्या.)], अप्पाहारं अलोलुपं;
मुनिं वनस्मिं झायंतं, एहि पासम गोतमं।
168.
"सिहंवेकाचरं नागां, कामेसु अनापक्खिनं;
उपासंकम्मा पुच्चम, मक्कुपासप्पामोकनम्।
169.
"अक्खतरं पवत्तरं, सब्बधम्मना परागुम्;
बुद्धं वेरभयतीतं, मयां पुच्छम गोतमं"।
170.
" किस्मत लोको समुप्पन्नो, (इति हेमवतो यक्खो)
किस्मत कुब्बति संथावं [संधवं (का.)];
किस्सा लोको उपादेय, किस्मत लोको विहानति"।
171.
"चासु [चस्सु (सी.पी.)] लोको समुप्पन्नो, (हेमवताति भगवान)
Chasu kubbati santhavṃ;
चन्नमेव उपादाय, चासु लोको विहानति"।
172.
"कतमं तं उपादानं, यत्थ लोको विहानति;
निय्यनं पुच्चितो ब्रुहि, कथं दुक्खा पमुक्कति" [पमुन्चति (स्या.)]।
173.
"पंच कामगुण लोके, मनोचथा पवेदिता;
एत्थ चंदं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुक्कति।
174.
"एतं लोकस्स नियमं, अक्खातां वो यथाथथं;
एतं वो अहमक्खामि, एवं दुक्खा पमुक्कति"।
175.
"को सुधा तरति ओघं, कोधा तरति अण्वं;
अप्पतिथे अनालंबे, को गंभीरे न सीदति"।
176.
"सब्बदा सिलसम्पन्नो, पन्नवा सुसामहितो;
अज्झट्टसिंति [अज्झत्साणि (स्या. कं. का.)] सतीमा, ओघं तरति दुत्तरं।
177.
"विरातो कामसंन्याय, सब्बासंयोजनातिगो;
नन्दिभवपरिक्खिनो, सो गम्भीरे न सीदति।"
178.
"गब्भिरापनं निपुनत्थदस्सीं, अकिंचनं कामभवे असत्तं;
तं पषथ सब्बाधि विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे काममानं महेसिं।
179.
"अनोमनं निपुनत्थदस्सीं, पन्नदादं कामलय असत्तं;
तं पासथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे काममानं महेसिं।
180.

"सुदिट्ठं वात नो अज, सुप्पभतां सुहुट्ठितं;
यं अद्दसाम संबुद्धं, ओघातिनमनासावं।
181.
"इमे दाससता यक्खा, इधिमंतो यस्स्सिनो;
सब्बे तं शरणं यंति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो।
182.
"ते मयां विचारिस्साम, गमा गमं नागा नागां;
नमास्समना सम्बुद्धं, धम्मस्सा च सुधम्मताऽन्ति।
हेमवतसुत्तं नवमं नियतं।

पाली-देवनागरी
9. हेमवत्सुत्तं
153.
"अज्जज प सान्यारो उपोस्थो, (इति सतागिरो यक्खो)
डिब्बा [दिब्या (सी० स्या० कं० पी०)] रत्ती उपट्ठिता।
अनोमनामं सततं, हन्द पस्साम गोतमं"॥
154.
"कच्चि मनो सुपनिहितो, (इति हेमवतो यक्खो)
सब्बभूतेसु ताड़िनो।
कच्चच्चि इत्थे अनित्थे च, सङ्क्कप्पस्स वसीकता"॥
155.
"मनो चस्स सुपनिहितो, (इति सतागिरो यक्खो)
सब्बभूतेसु ताड़िनो।
एथो इत्थे अनित्थे च, सङ्क्षप्पस्स वसीकता"॥
.
"कच्चि आदि संज्ञां नादयति, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि पनेसु संज्ञतो।
कच्चचि अरा पमादम्हा, कच्चि झानं न ऋञ्चति"॥
11.
"न सो आदि संज्ञां आदियति, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो पनेसु संजन्तो।
अथो अरा पमादम्हा, बुद्धो झानं न ऋञ्चति"॥
1वीं सदी.
"कच्चि मुसा न भनति, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि न खिणब्यप्पतो।
कच्चचि वेभूतियं नः, कच्चचि सम्फं न भासति॥
1 50.
"मुसा च सो न भान्ति, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो न खिणब्यप्पथो।
अथो वेभूतियं नः, मन्ता अथं च [अथं सो (सी० पी० क०)] भासति"॥
एक-एक करके।
"कच्चि न रजदजति कामेसु, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चि चित्तं अनाविलं।
कच्छचि मोहं अति त्रकांतो, कच्चचि धम्मेसु चखुमा"॥
111.
"न सो रजजति कामेसु, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो चित्तं अनाविलं।
सब्बमोहं अतिरक्तकांतो, बुद्धो धम्मेसु चखुमा"॥

112.
"कच्चि विजजाय संप नारायणो, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि संसुद्धचारणो।
कच्चचिस्स असवा खिना, कच्चचि नत्थि पुनब्भवो"॥
16
"विज्जाय चेव संप संज्ञाओ, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो संसुद्धचारणो।
सब्बस्स असवा खिना, नत्थि तस्स पुनब्भवो"॥
164.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नयनं, धम्मतो नं पसंस्ति"॥
16.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नासिकं, धम्मतो अनुमोदसि"॥
.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नयनं, हंद पस्साम गोतमं॥
.
"एनिजघं किसान वीरं [धीरं (स्या०)], अप्पाहारं अलोलुपं।
मुनिं वनस्मिं झायन्तं, एहि पस्साम गोतमं॥
एक पाउंड फ्लैश.
"सिहंवेकचरं नागं, कामेसु अनपेखिनं।"
उपसङकम्म पुच्छम, मच्छुपासप्पमोचनं॥
156.
"अक्खतरं पवत्तारं, सब्बधम्मन पारगुं।"
बुद्धं वीरभयातीतं, मयां पुच्छम गोतमं"॥
1 वर्ष।
"किस्मिं लोको समुप्प संज्ञाओ, (इति हेमवतो यक्खो)
सौंदर्यिं कुब्बति संथवं [संधवं (क०)]।
किस्स लोको उपायाय, सौंदर्यिं लोको विहञ्जन्ति"॥
1711.
"छसु [छस्सु (सी० पी०)] लोको समुप्प संज्ञाओ, (हेमवताति भगवान)
छस्सु कुब्बति संथवं।
च संज्ञामेव उपादेय, छसु लोको विहञ्नति"॥
172
"कतमं तं उपादानं, यथा लोको विहञ्जन्ति।
निययानं पुच्छितो ब्रूहि, कथं दुक्खा पमुच्छति" [पमुञ्चति (स्या०)]॥
17
"पञ्च कामगुणा लोके, मनोचट्ठा पवेदिता।
एत्थ छंदं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुच्चति॥
174.
"एतं लोकस्स नियंनं, अक्खातं वो यथाथं।'
एतं वो अहमक्खामि, एवं दुक्खा पमुचचति"॥
17
"को सुध तरति ओघं, कोध तरति अन्नवं।
अप्पतित्थे एनालामे, को उत्सुकते न सीदति"॥
17
"सब्बदा सीलसम्प संज्ञाओ, पञ्चवा सुसमाहितो।

अज्झत्तचिन्ति [अज्झत्तसञ्जी (स्या० कं० क०)] सतीमा, ओघं तरति दुत्तरं॥
1 7.
"विरातो कामसंन्याय, सब्बसंयोजनातिगो।
नन्दीभवपरीखिनो, सो उत्सुके न सीदति"॥
11 तिमाही.
"गब्भिरपञ्चनं रहस्यत्थदस्सिं, अकिञ्चनं कामभावे असत्तं।
तं पस्थ सब्बधि विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे कम्मनं महेसिं॥
.
"अनोमनामं नक्षत्रत्थदस्सिं, पञ्जाददं कमलये असत्तं।
तं पस्सथ सब्बिदुं सुमेधं, अरिये पथे कम्मनं महेसिं॥
0.
"सुदिट्ठं वत नो अजदज, सुप्पभातं सुहुत्थितं।
यं अददसाम सम्बुद्धं, ओघतिन्नमनासवं॥
1.
"इ दसमेसाता यक्खा, इधिमन्तो यस्स्सिनो।"
सब्बे तं शरणं यंति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो॥
122.
"ते मयं विचार्साम, गमा गमं नागा नागां।
नमस्स्माना सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मत्"न्ति॥
हेमवत्सुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.10 अलवकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

यक्ष (अमानवीय, आत्मा) अलावक पहले बुद्ध को धमकाता है, फिर उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिनका बुद्ध उत्तर देते हैं, जिसके बाद अलावक परिवर्तित हो जाता है।

अंतर्वस्तु
110. Āḷavakasuttaṃ
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

10. Āḷavakasuttaṃ
अनुवाद
तो यह मेरे द्वारा सुना गया था:

एक समय में भगव (भगवान बुद्ध) यक्खा अलावाका के क्षेत्र में अलावी में रहते थे। तब यक्खा अलावाका उस स्थान पर गया जहां भगव (भगवान बुद्ध) निवास करते थे, और वहां जाकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'बाहर आओ, हे समाना! (भिक्षु)'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवन् (भगवान बुद्ध) बाहर आये।
'प्रवेश करो, हे समाना!'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने प्रवेश किया।
दूसरी बार यक्खा अलावाका ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: 'बाहर आओ, हे समाना!'

'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवन् (भगवान बुद्ध) बाहर आये।
'प्रवेश करो, हे समाना!'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने प्रवेश किया।
तीसरी बार यक्खा अलावाका ने भगव (भगवान बुद्ध) से कहा: 'बाहर आओ, हे समाना!'
'जी हां, हे मित्र!' ऐसा कहते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) बाहर आए।
'अंदर आओ, हे समना!'
'जी हां, हे मित्र!' ऐसा कहते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) अंदर चले गए।
चौथी बार यक्ष अलावक ने भगवान (भगवान बुद्ध) से कहा: 'बाहर आओ, हे समना!'
'मैं तुम्हारे पास बाहर नहीं आऊंगा, हे मित्र, जो चाहो करो।'
'मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूंगा, हे समना (भिक्षु), यदि तुम इसका उत्तर नहीं दे सकते, तो मैं या तो तुम्हारे विचारों को बिखेर दूंगा या तुम्हारे हृदय को चीर दूंगा, या तुम्हें पैरों से पकड़कर गंगा के दूसरे किनारे पर फेंक दूंगा।'
'हे मित्र, मुझे इस संसार में, न ही देवताओं, मारों, ब्राह्मणों के संसार में, देवताओं, मनुष्यों, समनों और ब्राह्मणों से मिलकर बने प्राणियों में कोई ऐसा नहीं दिखता जो मेरे विचारों को बिखेर सके या मेरे हृदय को चीर सके, या मुझे पैरों से पकड़कर गंगा के दूसरे किनारे पर फेंक सके; फिर भी, हे मित्र, जो चाहो पूछो।'

तब यक्ष अलावक ने भगवान (बुद्ध) को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'इस संसार में मनुष्य के लिए सबसे अच्छा गुण क्या है? किसे अच्छी तरह से करने पर सुख मिलता है? वास्तव में सबसे मधुर क्या है? किस प्रकार का जीवन सर्वश्रेष्ठ कहलाता है?' (183)

2. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'इस संसार में मनुष्य के लिए सबसे अच्छा गुण आस्था है; धर्म का अच्छी तरह पालन करने पर सुख मिलता है; सत्य ही सबसे मधुर है; और जिस जीवन को समझ के साथ जिया जाता है, उसे सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।' (184)

3. अलावक ने कहा: 'मनुष्य जीवन की धारा को कैसे पार करता है? सागर को कैसे पार करता है? दुख पर विजय कैसे प्राप्त करता है? शुद्धि कैसे प्राप्त करता है?' (185)

4. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'आस्था से धारा पार होती है, उत्साह से सागर, परिश्रम से दुख पर विजय प्राप्त होती है, और प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान से शुद्धि प्राप्त होती है।' (186)

5. अलावाका ने कहा:'पन्ना (प्रत्यक्ष ज्ञान) कैसे प्राप्त किया जाता है? धन कैसे अर्जित किया जाता है? प्रसिद्धि कैसे प्राप्त की जाती है? मित्रों को कैसे बांधा जाता है? इस लोक से परलोक में जाने पर शोक कैसे न किया जाए?' (187)

6. भगवान बुद्ध ने कहा: 'जो अरहतों के धर्म (मार्ग) में आस्था रखता है, जो निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की प्राप्ति की ओर ले जाता है, वह सुनने की तत्परता, उत्साह और विवेक से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करेगा। (188)

7. 'जो उचित कार्य करता है, जो दायित्व का बोझ उठाता है और परिश्रम करता है, वह धन अर्जित करेगा, सत्य से यश प्राप्त करेगा और दानशील होकर मित्रों को अपने साथ जोड़ेगा। (189)

8. 'जो निष्ठावान है और गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तथा निम्नलिखित चार धर्मों (सद्गुणों) - सत्य, न्याय (धर्म), दृढ़ता और उदारता - को धारण करता है, वह वास्तव में मृत्यु के समय शोक नहीं करता। (190)

9. 'प्रार्थना करो, दूर-दूर तक फैले अन्य समनों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों) से भी पूछो कि क्या इस संसार में सत्य, आत्मसंयम, उदारता और सहनशीलता से बढ़कर कुछ है।' (191)

10. अलावक ने कहा: 'अब मुझे दूर-दूर तक फैले समनों और ब्राह्मणों से क्यों पूछना चाहिए? अब मैं जानता हूँ कि मेरा भविष्य का भला क्या है।' (192)

11. 'मेरे भले के लिए बुद्ध अलावी में रहने आए; अब मैं जानता हूँ कि कहाँ (अर्थात किसे) दान देने से बड़ा फल मिलेगा।' (193)

12. 'मैं गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमकर पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) और धम्म की पूर्णता की उपासना करूँगा।' (194)

अलावकसूत्र समाप्त।

___

नोटः श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

___

पाली-रोमन

10. Āḷavakasuttaṃ

एवं मे सुतं — एकं समयं भगव आडवियं विहारति आडवकस्सा यक्खस्सा भवने। अथ खो अवावको यक्खो येन भगव तेनुपसांकमि; उपसंकमित्वा भगवन्तं एतदावोचा - "निक्खमा, समाना'ति। "सधावुसो'ति भगव निक्खामि।' "पविसा, समानाति।" "सधावुसो'ति भगव पविसी।'

दुतियाम्पि खो...पे... ततियाम्पि खो आडवाको यक्खो भगवन्तं एतदावोचा - "निक्खमा, समाना"ति। "सधावुसो'ति भगव निक्खामि।' "पविसा, समानाति।" "सधावुसो'ति भगव पविसी।'

चतुत्थमपि खो आवावको यक्खो भगवन्तं एतदावोका - "निक्खमा, समाना'ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खामिस्सामि।" यं ते करणीयं, तं करोहि'ति।

" पण्हं तं, समाना, पुच्चिसामि। ससे मे न ब्याकारिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदायं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परागंगया खिपिस्सामि'ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामनाब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेया पदेसु वा गहेत्वा परागंगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्च यदकांखसि'ति। अथ खो अणवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -

183.
"किं सुधा वित्तं पुरिसस्सा सेठं, किं सु सुचिन्नं सुखमावहति;
किं सु [किं सू (सि.)] हें सदुतारं रसानां, कथं जीवं जीवितमहु सेठहं"।

184.
"सद्धिधा वित्तं पुरिसस्स सेठं, धम्मो सुचिनो सुखमावहति;
सच्चं हें सदुतारं रसानां, पण्णाजीविं जीवितमहु सेठहं"।

185.
"कथं सु तरति ओघं, कथं सु तरति अणवं;
कथं सु दुक्खमच्चेति, कथं सु परिसुज्जति"।

186.
"सद्धा तरति ओघं, अप्पमादेन अण्वं;
विरियेना [विरियेना (सि. स्या. कां. पि.)] दुक्खमचेती, पणन्या परिसुज्जति"।

187.
"कथं सु लभते पन्नं, कथं सु विन्दते धनं;
कथं सु कितिं पाप्पोति, कथं मित्तानि गंथाति;
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेक्का न सोकति"।

188.
"सद्दाहानो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया;
सुसुसुसां [सुसुसा (सी.पी.)] लभते पन्नं, अप्पमत्तो विकक्खणो।

189.
"पतिरूपकारी धुर्वा, उत्थाता विन्दते धनम्;
सच्चेना कित्तिन पप्पोति, ददां मित्तानि गंथाति।

190.
"यस्सेते कैटुरो धम्म, सद्धस्स घरमेसिनो;
सक्कां धम्मो [दामो (?)] धीति कागो, सा वे पेक्का ना सोकाती।

191.
"इंघा अण्णेपि पुच्चस्सु, पुथु समानब्राह्मणे;

यदि सच्च दाम चागा, खांत्या भयोधा विज्जति"।
192.
"कथं नु दानी पुचेयं, पुथु समानब्राह्मणे;
योहं [सोहं (सी. पी.)] अज्जा पजानामि, यो अत्थो संपारायिको।
193.
"अत्थया वात मे बुद्धो, वसायादविमगमा;
योहं [अथिंहरुहि संयुत्तो (स्या. का.)] अजजा पजानामि, यत्थ दिनं महप्फलम्।
194.
"तो अहं विचारिसामि, गमा गमं पुर पुरं;
नमास्समानो सम्बुद्धं, धम्मस्सा च सुधम्मताऽन्ति।
अङ्वकसुत्तं दशमं नियतं।

पाली-देवनागरी
दस. आळवकसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव आळवियां विहरति आळवकस यक्षस्स भवने। अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच - "निक्कम, समना"ति। "साधुसो"ति भगव निक्कमि। "पविस, समना"ति। "साधुसो"ति भगव पविसि।
दुतियाम्पि खो...पे०... तत्याम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच — "निखम, समाना"ति। "साधुसो"ति भगव निक्कमि। "पविस, समना"ति। "साधुसो"ति भगव पविसि।
चतुथम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच - "निक्कम, समना"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि। यं ते कारणं, तं करोहि"ति।
" पञ्चं तं, समं, पुच्छिस्सामि। सचे मे न बिकारिस्ससि, चित्तं वा ते हिपिस्सामि, हदयं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परगङगाय हिपिस्सामि"ति।
"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेय पदेसु वा गहेत्वा परागगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
1244.
"किं सुध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किं सुचिन्नं सुचिन्नं सुखमावहति।
किं सु [किं सु (सी०)] हवे सदुतरं रसानं, कथं जीवं जीवितमहु सेट्ठं"॥
4.
"सद्धिध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिन्नो सुखमावहति।
सच्चं हवे सदुतरं रसानं, पञ्जाजीविन जीवितमहु सेट्ठं"॥
फ़ी.
"कथं सु तरति ओघं, कथं सु तरति अन्न्वं।
कथं सु दुक्खमच्छेति, कथं सु परिसुज्जति"॥
.
"सद्धा तरति ओघं, अप्पमादेन अन्न्वं।
वीरियेन [विरियेन (सी० स्या० कं० पी०)] दुक्खमचच्छेति, पञ्चया परिसुज्जति"॥
7.
"कथं सु लभते पञ्चं, कथं सु विन्दते धनं।
कथं सु कित्तिं पप्पोति, कथं मित्तानि गांठति।
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच न सोचति"॥
128.
"सद्दधोनो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया।"
सुस्सुसं [सुस्सुसा (सी० पी०)] लभते पञ्चं, अप्पमत्तो विचखनो॥
124.
"पतिरूपकारी धुरवा, उत्थता विन्दते धनं।

सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गण्थति॥
190.
"यस्सेते चतुरो धम्मा, साधस्स घरेमेसिनो।"
सचचं धम्मो [दमो (?)] धति चागो, स वे पेचचं न सोचति॥
1911.
"इङ्घ अञ्जेपि पुच्छस्सु, पुथु समन्ब्राह्मणे।
यदि सचचा दामा चागा, खन्त्या भैयायोध विज्जदजति"॥
192.
"कथ नुं दानि पुच्छेयं, पुथु समन्ब्राह्मणे।
योहं [सोहं (सी० पी०)] अजदज पजानामि, यो अत्थो सम्प्रायिको॥
1930.
"अत्थाय वत मे बुद्धो, वसायाळविमगमा।
योहं [अड्विन्हारूहि संयुत्तो (स्या० क०)] अज्ज पजानामि, यथा दी संज्ञां महप्फलं॥
194.
"सो अहं विचारामि, गमा गमं पुरा पुरं।
नमस्स्मानो सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मत्"न्ति॥
आळवकसुत्तं दशमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.11 विजयसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

मानव शरीर की निरर्थकता पर एक चिंतन; बुद्ध का अनुयायी शरीर को केवल उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, और फलस्वरूप निर्वाण प्राप्त करता है।

अंतर्वस्तु
11.11 विजयसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
1.11 विजयसुत्त
अनुवाद
1. यदि चलते या खड़े होते समय, बैठते या लेटते समय, कोई भी अपने शरीर को सिकोड़ता (या फैलाता) है, तो यह शरीर की गति है। (195)

2. हड्डियों और नसों से बना, झिल्ली और मांस से लिपटा और त्वचा से ढका शरीर, जैसा वास्तव में है वैसा दिखाई नहीं देता। (196)

3. यह आंतों, पेट, यकृत, उदर, हृदय, फेफड़े, गुर्दे और प्लीहा से भरा होता है। (197)

4. बलगम, लार, पसीना, लसीका, रक्त, जोड़ों को चिकनाई देने वाला द्रव, पित्त और वसा से भरा होता है। (198)

5. फिर नौ धाराओं में अशुद्धता हमेशा इससे बहती रहती है; आँख से आँख का मल, कान से कान का मल, (199)

6. नाक से बलगम, मुँह से कभी पित्त निकलता है तो कभी कफ, और (पूरे) शरीर से पसीना और गंदगी निकलती है। (200)

7. फिर उसका खोखला सिर दिमाग से भर जाता है। अज्ञानता से बहका हुआ मूर्ख उसे अच्छी चीज़ समझता है। (201)

8. और जब वह मरकर, सूजा हुआ और पीला पड़कर, कब्रिस्तान में पड़ा होता है, तो रिश्तेदार उसकी परवाह नहीं करते। (202)

9. कुत्ते उसे खाते हैं और सियार, भेड़िये और कीड़े; कौवे और गिद्ध उसे खाते हैं, और जो भी दूसरे जीवित प्राणी होते हैं। (203)

10. बुद्ध के वचन सुनकर (और मार्ग का अनुसरण करके) भिक्षु इस संसार में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह निश्चित रूप से इसे (अर्थात शरीर को) हर तरह से भली-भांति जान लेता है, क्योंकि वह ध्यान में इसे जैसा है वैसा ही देखता है। (204)

11. "जैसा यह (जीवित शरीर) है वैसा ही वह (मृत शरीर) है, जैसा यह है वैसा ही (होगा); शरीर के प्रति, उसके आंतरिक और बाह्य दोनों ही रूपों में, इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।" (205)

12. ऐसा भिक्षु जो इच्छा और आसक्ति से विमुख होकर इस संसार में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह (पहले ही) अमर संतत्व, निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अपरिवर्तनीय अवस्था को प्राप्त कर चुका होता है। (206)

13. यह (शरीर) दो पैरों वाला (यद्यपि) अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त, अनेक प्रकार की बदबू से भरा और इधर-उधर रिसता हुआ है, फिर भी प्रिय है। (207)

14. जो ऐसे शरीर के साथ स्वयं को श्रेष्ठ समझता है या दूसरों को तुच्छ समझता है—यह अंधत्व के सिवा और क्या है? (208)

विजयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. विजयसुत्तं
195.
कैरं वा यदि वा तिट्ठं, निसिन्नो उदा वा सयं;
समिञ्जेति पसारेति, एसा कायस्सा इंजना।
196.
अथिन्हारुसायुत्तो, ताकामांसावलेपनो;
चविया कायो पतिच्चन्नो, यथाभूतं न डिस्सति।
197.
अंतपुरो उदारपुरो, याकानापेसासा [याकापेसासा (सि. सिया.)] वत्थिनो;
हदयस्सा पप्पास्सा, वक्कास्सा पिहाकास्सा सीए।
198.
सिंहानिकाय खेडास्सा, सेदस्सा च मेदस्सा च;
लोहितास्सा लसिकाय, पित्तस्सा च वसाया च।
199.
अथस्सा नवही सोतेहि, असुचि सवति सब्बदा;
अक्खिम्हा अक्खिगुथाको, कण्णम्हा कणगुथाको।
200.
सिंहानिका च नासतो, मुखेन वामतेकदा;
पित्तं सेमहांचा वामति, कायम्हा सेदजल्लिका।
201.
अथस्सा सुसीरं सीसं, मत्थलुंगस्स पुरितं;
सुभातो नं मन्नति, बालो अविज्जाया पुरक्खतो।
202.
यदा च सो मतो सेति, उद्धुमातो विनिलाको;

अपविद्धो सुसानस्मि, अनापेक्खा होन्ति नातयो।
203.
खादन्ति नाम सुवाना [सुपान (पि.)] सीए, सिंगला [सिगला (सि. स्या. कं. पि.)] वाका किमी;
काका गिज्जा च खदंति, ये कैने शांति पणिनो।
204.
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पन्नवा इधा;
सो खो नं परिजानाति, यथाभूतनि पस्सति ।
205.
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं;
अज्झत्तञ्च बहिद्ध च, काये छन्दं विराजये।
206.
चंद्रागविरततो सो, भिक्खु पन्ननव इधा;
अज्झागा अमातं शांतिं, निब्बाणं पदमक्कुतं।
207.
द्विपदकोयं [दिपादकोयं (सि. स्या. कं. पि.)] असुसि, दुग्गंदहो परिहारति [परिहिरति (सि. स्या. कं. पि.)];
नानाकुणापापरिपुरो, विस्वन्तो ततो ततो।
208.
Etādisena kāyena, yo maññe uṇṇametave [unnametave (?)];
परं वा अवजानेया, किमन्नात्र अडस्सनाति।
विजयसुत्तं एकादसमं निहितं।

पाली-देवनागरी
11. विजयसुत्तं
195.
चरं वा यदि वा तिट्ठं, निसि सञ्चो उद वा सयं।
समिञ्जेति पसरेति, एसा कायस इंजना॥
19.
अट्ठिनहरुसंयुत्तो, तचमंसावलेपनो।
छविया कायो पतिच्छ संज्ञाओ, यथाभूतं न दिस्सति॥
197.
अन्तपुरो उदरपुरो, यकनपेळस्स [यकपेळस्स (सी० स्या०)] वाथिनो।
हद्य्स पप्फासस्स, वक्रस्कस पिहकस च॥
198.
सिङ्घानिकाय खेळस्स, सेदस्स च मेदस्स च।
लोहितस्स लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च॥
1950.
अथस्स नवहि सोलैहि, असुचि सवति सब्बदा।
अखिम्हा अक्खिगुथको, कन्नम्हा कन्नगुथको॥
.
सिंघानिका च नासतो, मुखेन वामतेकदा।
पित्तं सेम्हाञ्च वमति, मित्रा सेदजल्लिका॥
2010.
अथस्स सुसीरं सीसं, मत्थलुङ्गस्स पूरितं।
सुभातो नं मन्नति, बालो अविज्जाजय पुरखतो॥
2002.
यदा च सो मतो सेति, उद्धुमातो विनीलको।
अपविद्धो सुसानस्मिं, अनपेक्खा होन्ति ज्ञातो॥
200.

खादन्ति नं सुवाना [सुपाना (पी०)] च, सिंगाला [सिगाला (सी० स्या० कं० पी०)] वकाकम।
काका गिज्झा च खादन्ति, ये चञ्जे सन्ति पाणिनो॥
2044.
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पञ्चानवा इध।
सो खो नं परिजानाति, यथाभूतञ्हि पस्सति॥
2005.
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्जत्तञ्च बधिधा च, काये छन्दं विराजये॥
2 सप्ताह.
चंद्रागविरत्तो सो, भिक्खु पञ्जानवा इध।
अज्झगा अमातं सन्तिं, निब्बानं पदमच्छुतं॥
2.
द्विपदकोयं [दीपकोयं (सी० स्या० कं० पी०)] असुचि, दुग्गन्धो परिहारति [परिहिरति (सी० स्या० कं० पी०)]।
नानाकुन्पापरिपूरो, विस्स्वन्तो ततो ततो॥
2.
एतादिसेन कायेन, यो मन्जे उन्नमेतवे [उ संज्ञामेतवे (?)]।
परं वा अवजानेय, किमञ्त्र अदस्सनाति॥
विजयसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.12 मुनिसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

मुनि (संत) की परिभाषा।

अंतर्वस्तु
11.12 मुनिसुत्ता
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

1.12 मुनिसुत्ता
अनुवाद
1. परिचितता से भय उत्पन्न होता है, गृहस्थ जीवन से अपवित्रता उत्पन्न होती है; गृहस्थ अवस्था, परिचितता से मुक्ति—यही वास्तव में एक मुनि (संत) का दृष्टिकोण है। (209)

2. जो कोई भी उत्पन्न हुए पाप को नष्ट करके उसे पुनः जड़ पकड़ने नहीं देता और अपने ऊपर उगने पर उसे आगे बढ़ने नहीं देता, उसे एकांत में विचरण करने वाला मुनि कहते हैं; ऐसे महान ऋषि ने शांति की अवस्था देखी है। (210)

3. पाप के कारणों पर विचार करके और उसके बीज को नष्ट करके, उसे उसकी इच्छा के आगे नहीं झुकना चाहिए; ऐसा मुनि जो पुनर्जन्म और मृत्यु के अंत (अर्थात निर्वाण, मोक्ष, अमरता) को देखता है, तर्क को त्यागकर, प्राणियों की श्रेणी में नहीं आता। (211)

4. जिसने मन के सभी विश्राम स्थलों में प्रवेश कर लिया है और उनमें से किसी की भी कामना नहीं करता, वह वास्तव में लोभ और लालच से मुक्त मुनि है, जो विश्राम स्थलों का संग्रह नहीं करता, क्योंकि वह दूसरे तट पर पहुँच चुका है। (212)

5. जिसने सब कुछ जीत लिया है, जो सब कुछ जानता है, जो अच्छी समझ से युक्त है, जो सभी चीजों (धर्म) में निष्कलंक है, सब कुछ त्याग कर, भोग (अर्थात तन्हा) के नाश में मुक्त होकर, इस प्रकार मोक्ष (ज्ञान, निर्वाण) प्राप्त कर लिया है, वह धैर्यवान मुनि कहलाता है। (213)

6. जो व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान से परिपूर्ण हो, सद्गुणों और कर्मों से युक्त हो, समाधि में स्थिर हो, आत्म-मग्न ध्यान में आनंदित हो, जागृत हो, बंधनों से मुक्त हो, अखिला और वासना से मुक्त हो, वह मुनि कहलाता है। (214)

7. जो मुनि एकांत में विचरण करता हो, उत्साही हो, निंदा और प्रशंसा से विचलित न होता हो, शोर से भयभीत न होने वाले सिंह के समान, जाल में न फँसने वाले वायु के समान, जल से अपवित्र न होने वाले कमल के समान, दूसरों का मार्गदर्शक हो, स्वयं दूसरों के द्वारा निर्देशित न होता हो, उसे ज्ञानी मुनि कहते हैं। (215)

8. जो स्नानघर में खंभे के समान दृढ़ हो, जिसकी वाणी उचित हो, वासना से मुक्त हो और जिसकी इंद्रियाँ सुगठित हों, उसे ज्ञानी मुनि कहते हैं। (216)

9. जो कोई सीधी शटल की तरह दृढ़ हो, और बुरे कर्मों से विरक्त हो, न्याय और अन्याय का चिंतन करता हो, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (217)

10. जो कोई संयमी हो और बुराई न करता हो, चाहे वह युवा हो या मध्यम आयु का मुनि, जो आत्मसंयमी हो, और जिसे किसी को उकसाना न चाहिए, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (218)

11. जो कोई दूसरों द्वारा दिए गए भोजन पर जीवन यापन करता हो, और पात्र के ऊपर, बीच या शेष भाग से चावल का एक टुकड़ा ग्रहण करता हो, और न तो देने वाले की प्रशंसा करता हो और न ही कठोर शब्द बोलता हो, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (219)

12. वह मुनि जो यौन संबंध से परहेज करते हुए विचरण करता है, जो यौवन में किसी भी प्रकार से बंधनों में नहीं बंधा होता, जो अहंकार के पागलपन से मुक्त होता है, उसे ज्ञानी मुनि (संत) कहते हैं। (220)

13. वह व्यक्ति जो संसार को भेदकर सर्वोच्च सत्य को देखता है, ऐसा व्यक्ति जो (सम्मोहन के) सागर और धारा को पार करके, सभी बंधनों को तोड़कर, स्वतंत्र और वासना से मुक्त होता है, उसे ही ज्ञानी मुनि (संत) कहते हैं। (221)

14. दो व्यक्ति जिनकी जीवनशैली और व्यवसाय बिल्कुल भिन्न हैं, समान नहीं हैं: एक गृहस्थ जो पत्नी का भरण-पोषण करता है, और एक निस्वार्थ गुणी व्यक्ति। गृहस्थ अन्य प्राणियों के विनाश पर तुला रहता है, क्योंकि वह अनियंत्रित होता है; परन्तु मुनि (संत) हमेशा प्राणियों की रक्षा करता है, क्योंकि वह संयमित होता है। (222)

15. जैसे नीली गर्दन वाला चितकबरा पक्षी (मोर) कभी हंस की गति प्राप्त नहीं कर पाता, वैसे ही गृहस्थ वन में ध्यान करने वाले एकांतवासी मुनि के समर्थ नहीं होता। (223) मुनिसुत्त

समाप्त।

उरगवग्ग समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. मुनिसुत्तं
209.
संथावतो [संधवतो (का.)] भयं जातां, निकेता जायते रजो;
अनिकेतमसंथावं, एतं वे मुनिदस्सानं।
210.

यो जातमुच्छिज्जा न रोपेय्य, जयन्तमस्सा नानुप्पवेच्चे;
तमहु एकं मुनिनं चरंतं, अद्दक्खि सो शांतिपदं महेसि।
211.
संखया वत्थुनि पमाया [पाहाय (का. सी. का.), समया (का.) पा + मी + त्वा = पमाया, यथा निस्सायतिपादं] बीजं, सिनेहामास्सा नानुप्पवेच्चे;
स वे मुनि जातिखयन्तदस्सी, तक्कं पहाय न उपेति संखं।
212.
अनन्याय सब्बानि निवेशानि, अनिकामायं अनंतरामपि तेसं;
सा वे मुनि वीतगेधो अगिद्धो, नयुहति परागतो हि होति।
213.
सब्बाभिभूं सब्बविदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनुपालित्तं;
सब्बनजहं तंहक्खये विमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि [मुनिं (सि. पि.)] वेद्यन्ति।
214.
पन्नबलं शीलवतुपपन्नं, समाहितं झनरतं सतीमं;
संगा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
215.
एकं चरंतं मुनिमप्पमत्तं, निन्दापसंससु अवेधमानं;
सिहंव सद्देसु असंतसंतं, वातंव जलमहि असज्जमानं;
पद्माण्व [पदुमंवा (सि. स्या. पि.)] तोयेना अलिप्पमानं [अलिंपामानं (स्या. का.)], नेतरमन्नेसमनान्ननेय्यं;
तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
216.
यो ओगहांने थंभोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचापरियंतम् [वाचं परियंतं (का.)] वदन्ति;
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
217.
यो वे ठितत्तो तसरण्व उज्जु, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेही;
विमान्समानो विषमं समान्च, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
218.
यो सन्नत्ततो न करोति पापं, दहारो मज्झिमो च मुनि [दहरो च मज्झो च मुनि (सि. स्या. कां. पि.)] यत्तत्तो;
अरोसनेय्यो न सो रोसेति कांची [ना रोसेति (स्या.)], तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
219.
यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा, पिंडंद लभेथा परदत्तुपजीवि;
नालं थुटुं नोपि निपक्कवदि, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
220.
मुनिं चरंतं विराटं मेथुनस्मा, यो योब्बाने नोपनिबज्जते क्वचि;
मदप्पमदा विराटं विप्पमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
221.
अनन्याय लोकं परमत्थदस्सीं, ओघं समुद्दं अतितरिया तदिं;
तं छिन्नगंथं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
222.
असामा उभो दुरविहारवुत्तिनो, गिही [गिही (का.)] दारापोसी अमामो सीए सुब्बतो;
परापानरोधाय गीही आसननतो, निक्कं मुनि रक्खति पणिने [पणिनो (सि.)] यतो।
223.
Sikhī yathā nīlagīvo [nīlagivo (syā.)] vihaṅgamo, haṃsassa nopeti javaṃ kudācanaṃ;
एवं गिहि नानुकरोति भिक्खुनो, मुनिनो विवित्तस्स वनमहि झायतोति।
Munisuttaṃ dvādasamaṃ niṭṭhitaṃ.Uragavaggo paṭhamo niṭṭhito.
Tassuddānaṃ –
उरगो धानियो सेवा, विसाणच तथा कासी;
कुंडो परभावो सेवा, वासलो मेत्ताभवना।

सतागिरो आश्वको, विजयो च तथा मुनि;
द्वादसेतानि सुत्तानि, उरगवग्गोति वुच्चति।

पाली-देवनागरी
12. मुनिसुत्तं
2.
सन्तवतो [सन्धवतो (क०)] भयं जातं, निकेता जायते रजो।
अनिकेतमसन्त्वं, एतं वे मुनिदास्सन्॥
21.
यो जातमुच्छिजज न रोपयेय्य, जायन्तमस्स नानुप्पवेच्छे।
तमहु एकं मुनिनं चरन्तं, अद्दक्खि सो शांतिपदं महेसि॥
21.
सङ्खाय वथुनि पमाय [पहाय (क० सी० क०), समय (क०) प + मी + त्वा = पमाय, यथा निस्सायतिपादं] बीजं, सिनेहमस्स नानुप्पवेच्छे।
स वे मुनि जातिख्यान्तदस्सी, तककं पहाय न उपेति सङ्खं॥
21.
अञ्जन्या सब्बानि निवेसननि, अनिकामयं अञ्जतरमपि तेसं।
स वे मुनि वीतगेधो अगिद्धो, नयुहति पारगतो हि होति॥
2.
सब्बाभिभुं सब्विदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनुपमलित्तं।
सब्बनजहं तंहक्खये विमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि [मुनिं (सी० पी०)] वेदयन्ति॥
2.
पञ्जानबलं सीलवतुप जपं, सम्मिलितं झानरतं सतीमं।
सङ्गा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
25.
एकं चरन्तं मुनिमप्पमत्तं, निन्दापसंससु अवेधमानं।
सिहंव सद्देसु असन्तसन्तं, वातव जल्म्हि असजजमानं।
पद्मनाव [पदुमव (सी० स्या० पी०)] तोयेन अलिप्पमानं [अलिम्पमानं (स्या० क०)], नेतारामञ्जेसमञ्जनेयं।
तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.
यो ओघहने थम्भोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचापरिन्तं [वचन परियन्तं (क०)] वदन्ति।
तं वीतरागं सुसहितिन्द्रियं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यो वे थितत्तो तस्रव उज्जु, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेहि।
वामंसमानो विषमं समञ्च, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यो संज्ञत्तो न करोति पापं, दहरो मज्झिमो च मुनि [दहरो च मज्झो च मुनि (सि० स्या० कं० पी०)] यत्तो।
न सो रोसेति कञ्चि [न रोसेति (स्या०)], तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा, पिण्डं लभेत् परदत्तुपजीवी।
नालं तूतुं नोपि निपच्वादि, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
28.
मुनिं चरंतं विराटं मेथुनस्मा, यो योब्बने नोपनिब्झते रवचि।
मदप्पमादा विराटं विप्पमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.
अञ्जन्या लोकं परमत्थदस्सिं, ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं।
तं चि संज्ञाघं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.

असमा उभो दूरविहारवुत्तिनो, गिही [गिहि (क॰)] दरपोसी अम्मो च सुब्बतो।
परपाग्रोधाय गहि असञ्जन्तो, निचदचं मुनि रक्खति पाणिने [पाणिनो (सी॰)] यतो॥
2.
सिखाई यथा नीलगिवो [नीलगिवो (स्या॰)] विहङ्गमो, हंसस्स नोपेति जवं कुदाचनं।
एवं गिहि नानुकरोति भिक्खुनो, मुनिनो विवित्तस्स वनमहि झायतोति॥
मुनिसुत्तं द्वादसमं निश्चितं।उर्गवग्गो पथमो निश्चितो।
तस्सुद्दनं -
उर्गो धनियो चेव, विसंञ्च तथा कसी।
चुन्दो परभवो चेव, वासलो मेत्तभावना॥
सतागिरो आळवको, विजयो च तथा मुनि।
द्वादसेतानि सुत्तानि, उर्गावग्गोति वुचदमचतीति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.1 रतनसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

सभी प्राणियों के लिए मोक्ष केवल बुद्ध, धम्म और संघ में ही पाया जा सकता है।

____

अंतर्वस्तु
12.1 रत्नसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.1 रत्नसूत्र
अनुवाद
1. पृथ्वी पर रहने वाले और आकाश में बसने वाले, यहाँ एकत्रित हुए सभी प्राण प्रसन्न हों और जो कहा जा रहा है उसे ध्यानपूर्वक सुनें। (224)

2. अतः, हे सभी ध्यान दें, दिन-रात भेंट लाने वाले मनुष्यों के प्रति दया भाव रखें; अतः उनकी पूर्णतया रक्षा करें। (225)

3. इस लोक या परलोक में जो भी धन-संपत्ति हो, या स्वर्ग में जो भी उत्तम रत्न हो, वह निश्चय ही तथागत (बुद्ध) के समर्थ नहीं है। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इसी सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (226)

4. शाक्यमुनि (बुद्ध) ने समाधि में रहकर जो वासना का नाश, वासना से मुक्ति, और उत्तम अमरता (अमत-अमृत-अमृत) प्राप्त की, उसके समर्थ कुछ भी नहीं है। यह उत्तम रत्न उस धर्म में पाया जाता है, इसी सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (227)

5. श्रेष्ठ बुद्धों द्वारा सराही गई पवित्रता, जिस ध्यान (सम्मोहन) को वे निरंतर कहते हैं, उसके समान कोई ध्यान (सम्मोहन) नहीं है। यह उत्तम रत्न धम्म में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (228)

6. धर्मात्माओं द्वारा सराहे गए आठ व्यक्ति, जो इन चार जोड़ियों का निर्माण करते हैं, वे भेंट के योग्य हैं, क्योंकि वे सुगत (बुद्ध) के शिष्य हैं; इन्हें जो कुछ भी दिया जाएगा, वह महान फल देगा। यह उत्तम रत्न संघ (सभा) में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (229)

7. जिन्होंने दृढ़ मन से और इच्छा से मुक्त होकर गौतम (बुद्ध) की आज्ञाओं का लगन से पालन किया है, उन्होंने सर्वोच्च लाभ प्राप्त किया है, अमरत्व में विलीन होकर, और बिना कुछ दिए सुख का आनंद लिया है। यह उत्तम रत्न संघ (सभा) में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (230)

8. जैसे नगर के द्वार का खंभा ज़मीन में मज़बूती से गाड़ा रहता है और चारों हवाओं से हिलता नहीं, वैसे ही मैं उस धर्मात्मा पुरुष की घोषणा करता हूँ जो आर्य सत्यों को भलीभांति समझकर उन्हें स्पष्ट रूप से देख पाता है। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (231)

9. जो लोग गहन ज्ञानी (अर्थात बुद्ध) द्वारा सिखाए गए आर्य सत्यों को भलीभांति समझते हैं, चाहे वे कितने ही विचलित क्यों न हों, उन्हें आठवाँ पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (232)

10. जब वह (सही) दृष्टि के आनंद को प्राप्त करता है, तो वह तीन धर्मों (अहंकार, संदेह और अपने सभी पुण्य एवं कर्मों) को त्याग देता है। (233)

वह चारों नरकों से भी मुक्त हो जाता है और छह घातक पापों को करने में असमर्थ हो जाता है। सभा में यह उत्कृष्ट रत्न पाया जाता है, इस सत्य के द्वारा उद्धार हो। (234)

11. चाहे वह अपने शरीर, वचन या विचार से कोई पाप करे, वह उसे छुपा नहीं सकता, क्योंकि निर्वाण (मुक्ति) की अवस्था को देख चुके व्यक्ति के लिए छुपाना असंभव है। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (235)

12. जैसे ग्रीष्म ऋतु की पहली गर्मी में फूलों से लदे वृक्षों के समूह में, वैसे ही बुद्ध ने निर्वाण (अमरता) की ओर ले जाने वाले उत्तम धम्म का उपदेश दिया, जिससे सभी को अधिकतम लाभ हुआ। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (236)

13. जो उत्तम को जानता है, जो उत्तम देता है और जो उत्तम लाता है, उस अतुलनीय ने उत्तम धम्म का उपदेश दिया। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (237)

14. पुराना नष्ट हो गया है, नया उत्पन्न नहीं हुआ है, जिनके मन भविष्य के अस्तित्व से विरक्त हैं, वे ज्ञानी जिन्होंने अपने अस्तित्व के बीज नष्ट कर दिए हैं, और जिनकी इच्छाएँ नहीं बढ़तीं, वे इस दीपक के समान बुझ जाते हैं। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (238)

15. यहाँ एकत्रित हुए सभी लोग, चाहे पृथ्वी के निवासी हों या वायु में रहने वाले हों, आइए हम देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण (तथागत) बुद्ध की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (239)

16. यहाँ एकत्रित हुए सभी लोग, चाहे पृथ्वी के निवासी हों या वायु में रहने वाले हों, आइए हम देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण तथागत (बुद्ध) और धम्म (मार्ग) की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (240)

17. पृथ्वी पर रहने वाले या हवा में रहने वाले, जो भी यहाँ एकत्रित हुए हैं, आइए हम सब मिलकर देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण तथागत (बुद्ध) और संघ की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (241)

रत्नसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. Cūḷavaggo
1. रत्नसुत्तं
224.
यानिधा भूतानि समागतानी, भुम्मानि [भूमानी (का.)] वा यानि वा अंतलिक्खे;
सब्बेव भूत सुमना भवन्तु, अथोपि सक्कच्च सुनन्तु भसीताम्।
225.
तस्मा हि भूत निसमेत्थ सब्बे, मेत्तं करोथा मानुसिया पजाय;

दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा ही न रक्खथा अप्पमत्ता।
226.
यं किंचि वित्तं इधा वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणितं;
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
227.
खयं विरागम अमातं पणितं, यदज्ज्गा शाक्यमुनि समाहितो;
न तेन धम्मेन समत्थि किञ्चि, इदम्पि धम्मे रतनं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
228.
यं बुद्धसेठो परिवणयि सुचिं, समाधिमनंतरिकान्नमाहु;
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रतनं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
229.
ये पुग्गला अट्ठा सातं पसत्था, कत्तारि एतानि युगानि होन्ति;
ते दक्खिनेय्य सुगात्स्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फालानि;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
230.
ये सुप्पयुत्ता मनसा दधेन, निक्कमिनो गोतमसासनमहि;
ते पत्तिपट्टा अमातं विगयः, लद्धा मुधा निब्बुतिम् [निब्बुति (का.)] भुंजमना;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
231.
यतिन्दखिलो पथविसिटो [पदविसिटो (का. सी.), पथविं सितो (का. सी. स्या. का. पि.)] सिया, कैटुबि वतेहि असंपकम्पियो;
तथुपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियासच्चानि एवेक्का पस्सति;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
232.
ये अरियासच्चानि विभावयंती, गंभीरापन्नेन सुदेसीतानि;
किंचापि ते होन्ति भूषणं पमत्ता, न ते भावं अट्ठममाद्यन्ति;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
233.
सहवस्सा दस्सानसंपदाय [सहवसदस्सानसंपदाय (का.)], तयस्सु धम्म जाहिता भवन्ति;
सक्कयादिथि विचिकीचिताञ्च, सिल्बत्तं वापि यदत्ति किञ्चि।
234.
कैटुहपायेहि च विप्पामुत्तो, चच्चभिठ्ठानि [च चभिट्ठानि (सि. स्या.)] भब्बा कटुँ [अभब्बो कटुँ (सि.)];
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
235.
किंकापि सो कम्म [कम्मं (सि. स्या. कं. पि.)] करोति पापकं, कायेन वाचा उदा चेतसा वा;
अभब्बा [अभब्बो (बहुसु)] सो तस्सा पतिच्चादय [पतिच्चादय (सी.)], अभब्बता दिट्ठापादस्सा वुट्टा;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
236.
वनप्पगुम्बे यथा [यथा (सि. स्या.)] फुसिटाग्गे, गिम्हानामसे पथमस्मिः [पठमस्मि (?)] गिम्हे;
तथुपमं धम्मवरं अदेसायी [अदेसायी (सि.)], निब्बानागमि परमं हिताय;
इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
237.
वरो वराण्णु वरदो वराहारो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेसायि;
इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
238.
खिन्नं पुराणं नव नत्थि संभवं, विरत्तचित्तयिके भवस्मिं;

ते खिनबीजा अविरुधिचंदा, निब्बन्ति धीरा यथायं [यथयं (का.)] पदीपो;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
239.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु।
240.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु।
241.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, संघं नमस्साम सुवत्थि होतुति।
रतनसुत्तं पथमं निहितं।

पाली-देवनागरी
2. चूळवग्गो
1. रत्नसुत्तं
2 यात्रा.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि [भूमानि (क०)] वा अर्थात व अंतलिखे।
सब्बेव भूता सुमना भवन्तु, अथोपि सचित्रचच्छ सुनन्तु भासीतं॥
2
तस्मा हि भूत निसामेथ सब्बे, मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय।
दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता॥
2.
यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रत्नं पनीतं।
न नो समं अथि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2.
खयं विरागं अमातं पनीतं, यदज्झा शाक्यमुनि सम्मिलितो।
न तेन धम्मेन समथि किन्चि, इदम्पि धम्मे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2.
यं बुद्धसेत्थो परिवैन्यि सुचिं, समाधिमनत्रिकज्ञानमाहु।
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2
ये पुग्गला अट्ठ सतं पसाथा, चत्तारि एतानि युगानि होन्ति।
ते दक्षिणेया सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महफ्फलनि।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
230
ये सुप्युत्ता मनसा दळ्हेन, निष्कामिनो गोतमसासन्महि।
ते पत्तपत्ता अमातं विगयः, लद्धा मुधा निब्बुतिं [निब्बुति (क०)] भुञ्जमना।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
231.
यथिन्दखिलो पथविसिटो [पदविसिटो (क० सी०), पठविं सितो (क० सी० स्या० कं० पी०)] सिया, चतुब्भि वतेहि असम्पकम्पियो।
तथुपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसचचानि अवेचदच पस्सति।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2वीं.
ये अरियसचाचानि विभावयन्ति, उत्सुकपञ्जेन सुदेसितानि।

किञ्चादपि ते होन्ति भूषण पमत्ता, न ते भवं अट्ठममादियन्ति।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
सहावस्स दस्संससंपदाय [सहस्सद्दसंससंपदाय (क०)], तैस्सु धम्म जहिता भवन्ति।
सक्कका यिदत्थि विचिचिच्छितञ्च, सीलब्बतं वापि यदत्थि किञ्चचि॥
2
चतुहपायेहि च विप्पमुत्तो, छच्चदाभिठानानि [च चाभिठानानि (सी० स्या०)] भब्ब कटुं [अभब्बो कटुं (सी०)]।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
किञ्चादपि सो कम्म [कम्मं (सी० स्या० कं० पी०)] करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा।
अभब्ब [अभब्बो (बहुसु)] सो तस्स पतिचदाय [पतिचदाय (सी०)], अभब्बता दिट्ठपदसस वुत्ता।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2वीं.
वनप्पगुम्बे यथा [यथा (सी० स्या०)] फुस्सिटगे, गिम्हानमासे पथमस्मिं [पथमस्मि (?)] गिम्हे।
तथुपमं धम्मवरं अदेस्यायि [अदेसि (सी०)], निब्बानगामिं परमं हिताय।
इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2
वरो वर्णनु वरदो वराहरो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेस्यायि।
इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2वीं
खिनं पुराणं नव नत्थि संभाव्यं, विकृतचित्तयतिके भवस्मिं।
ते खिनबीजा अविरुळहिछंदा, निब्बन्ति धीरा यथायं [यथ्यं (क०)] पदीपो।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमानुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवथि होतु॥
2-40.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमनुस्स्पुजितं, धम्मं नमस्साम सुवथि होतु॥
241.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमानुस्सपूजितं, सङ्घं नमस्साम सुवथि होतुति॥
रत्नसुत्तं पथमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.2 अमगंधसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दुष्ट मन और बुरे कर्म ही मनुष्य को अपवित्र करते हैं; कोई भी बाहरी अनुष्ठान उसे शुद्ध नहीं कर सकता। तुलना कीजिए संत मत्ती का सुसमाचार 15:10।

अंतर्वस्तु
12.2 आमगन्धसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.2 आमगन्धसूत्र

अनुवाद
1. अमागन्धब्राह्मण: 'जो लोग न्यायपूर्वक प्राप्त किए गए समक, किंगुलक, किनक, पट्टफल, मूलफल और गविफल (विभिन्न प्रकार की घास, पत्ते, जड़ें आदि) खाते हैं, वे झूठ नहीं बोलते, (और न ही वे) इंद्रिय सुखों की इच्छा रखते हैं। (242)

2. 'जो दूसरों द्वारा दिए गए उत्तम, शुद्ध और उत्कृष्ट भोजन को खाता है, जो चावल से बना भोजन करता है, हे कस्सप, वह अमागन्ध (अशुद्ध करने वाला) भोजन करता है। (243)

3. 'अमागन्ध का आरोप मुझ पर लागू नहीं होता,' तो आप कहते हैं, 'हे ब्राह्मण (ब्रह्मबंधु), यद्यपि आप पक्षियों के उत्तम रूप से तैयार किए गए मांस के साथ चावल से बना भोजन करते हैं। हे कस्सप, मैं आपसे पूछता हूँ, इसका अर्थ क्या है, आपका अमागन्ध किस प्रकार का है?' (244)

4. कस्सपबुद्ध: 'जीवों का नाश करना, हत्या करना, काटना, बांधना, चोरी करना, झूठ बोलना, छल और कपट, निरर्थक पठन, दूसरे की पत्नी के साथ संभोग;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (245)

5. 'जो इस संसार में इंद्रिय सुखों में अनियंत्रित हैं, मीठी चीजों के लालची हैं, अशुद्ध चीजों से संगति रखते हैं, संशयवादी (नत्थिकदित्थी), अन्यायी हैं, जिनका अनुसरण करना कठिन है;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (246)

6. 'जो कठोर, निर्दयी, चुगली करने वाले, धोखेबाज, निर्दयी, अहंकारी हैं, और अनुदार होकर किसी को कुछ नहीं देते;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (247)

7. क्रोध, नशा, हठ, कट्टरता, छल, ईर्ष्या, आडंबर, अभिमान और अहंकार, अन्यायियों से घनिष्ठता;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (248)

8. जो इस संसार में दुष्ट हैं, और जो अपने ऋण नहीं चुकाते, निंदा करते हैं, अपने लेन-देन में झूठे हैं, जालसाज हैं, जो इस संसार में सबसे नीच मनुष्य होकर पाप करते हैं;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (249)

9. जो इस संसार में जीवित प्राणियों के प्रति अनियंत्रित (व्यवहार में) हैं, जो दूसरों की (वस्तुओं) को छीनने के बाद हानि पहुँचाने पर तुले हुए हैं, दुष्ट, क्रूर, कठोर, अनादर करने वाले हैं;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (250)

10. 'वे प्राणी जो इन (जीवों) के प्रति लालची हैं, शत्रुतापूर्ण हैं, अपराध करते हैं; सदा (बुराई) पर तुले रहते हैं और इसलिए, मरने पर अंधकार में जाते हैं और अपना सिर नीचे की ओर करके नरक में गिरते हैं;--यह आमगंध है, न कि मांस खाना। (251)

11. 'न तो मछली का मांस, न उपवास, न नग्नता, न मुंडन, न जटाधारी बाल, न मैलापन, न खुरदरी चमड़ी, न अग्नि की पूजा, न संसार में की जाने वाली अनेक तप (तप), न भजन, न आहुति, न यज्ञ, न ऋतुओं का पालन, उस मनुष्य को शुद्ध करते हैं जिसने अपने संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है। (252)

12. 'ज्ञानी व्यक्ति अपनी इंद्रियों को सुरक्षित रखते हुए और उन पर विजय प्राप्त करते हुए, धम्म में दृढ़ रहते हुए, उचित और सौम्य बातों में आनंदित होकर विचरण करता है; सभी बंधनों को पार करके और सभी दुखों को पीछे छोड़कर, वह देखी और सुनी हुई बातों से आसक्त नहीं रहता।' (253)

13. इस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने इस विषय का बार-बार उपदेश दिया, और वेदों के श्लोकों में निपुण ब्राह्मण ने इसे समझा; निर्मल, स्वतंत्र और अनुगामी मुनि ने इसे विभिन्न श्लोकों में स्पष्ट किया। (254)

14. बुद्ध के निर्मल और सभी दुखों को दूर करने वाले सुविचारित वचनों को सुनकर, उन्होंने नम्रतापूर्वक तथागत (बुद्ध के चरणों) की आराधना की और तुरंत दीक्षा ली। (255)

अमगन्धसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. आमगन्धसुत्तं
242.
"समकासिङ्गुलकाचिनकानि च, पत्तप्फलं मूलफलं गविप्फलं;
धम्मेन लद्धं सातमस्नामन [सतमासमना (सी. पी.), सातमस्समना (स्या. कां.)], न कामकामा अलिकां भाणन्ति।
243.
"यदस्नामनो सुक्तं सुनीतिहितं, परेहि दिनं पयतां पणितं;
सलिनमन्नं परिभुंजमानो, सो भुंजसि कस्सप अमगंधं।
244.
"न अमागन्धो मम कप्पतिति, इक्सेवा त्वं भाससि ब्रह्मबन्धु;
सलिनमन्नं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमंसेहि सुसंखतेहि;
पुच्चामि तं कस्सप एतमत्थं, कथं पकारो तव अमागन्धो"।
245.
"पाणातिपातो वधाचेदबंधनं, थेयं मुसावादो निकतिवञ्चनानि च;
अज्जहेनकुट्टं [अज्जहेन कुज्जं (सि. पी.)] परदारसेवना, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
246.
"ये इधा कामेसु असंन्याता जना, रसेसु गिद्धा असुचिभावमसिता [असुसीकमिसिता (सि. स्या. कं. पि.)];
नत्थिकादिथि विसामा दुरन्नया, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
247.
"ये लुकासा दारुण पिथिमंसिका [ये लुकासा दारुण परपिथिमंसिका (का.)], मित्तद्दुणो निक्करुणतिमानिनो;
अडानासिला न च डेंटि कसासि, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
248.
"कोधो मदो थंभो पच्चुपठहपना [पचकुठहपना च (सि. स्या.), पच्चुठहपना (पिच.)], मया उसूया भस्सासामुस्सायो च;
मनातिमानो च असब्भि संतवो, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
249.
"ये पपासिला इनागहात्सुकाका, वोहराकुटा इधा पतिरूपिका [पतिरूपिका (?)];
नारदमा येधा करोंती किब्बिसं, एसमागन्धो न हि मानसभोजनं।
250.
"ये इधा पनेसु असन्नता जना, परेसमादाय विहेसामुय्युता;
दुस्सीलालुड्डा फरुसा अनादरा, एसामगंधो न हि मानसभोजनं।
251.
"एतेसु गिद्धा विरुद्धतिपतिनो, निक्कुय्युता पेक्का तमं वजन्ति ये;
पतन्ति सत्ता निरयं अवनसिरा, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
252.
"न मच्छमंसानासकट्टं [न मच्छमंसं न अनासक्तट्टं (सि. अट्ठ मुलापथो), न मच्छमंसानासक्कट्टं (स्या. का.)], न नग्गियं न मुंडियं जटाजल्लां;
खराजिणानि नग्गिहुत्तसुपसेवना, ये वापी लोके अमरा बाहु तपा;
मन्ताहुति यन्नमुतुपसेवना, सोधेन्ति मक्कं अवितिन्नकन्खं।
253.
"यो तेसु [सोतेसु (सी.पी.)] गुट्टो विदितिन्द्रियो केयर, धम्मे थितो अज्जवमद्दवे रतो;
संगतिगो सब्बदुक्खप्पाहिनो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या. का. का.)] दिट्ठसुतेसु धीरो"।
254.
इक्केतमत्थं भगव पुनप्पुनं, अक्खासी नं [तं (सि. पि.)] वेदयी मंतपारागु;
चित्रहि गाथाहि मुनि पकाशयि, निरामगन्धो असितो दुरन्नयो।
255.
सुत्वान बुद्धस्स सुभाषितं पदं, निरामगंधं सब्बदुक्खप्पनुदानं;

निकामानो वंदि तथागतस्स, तत्थेव पब्बज्जमरोचयित्थति।
अमागन्धसुत्तं दुतियाम् निहितम्।

पाली-देवनागरी
2. आमगंधसुत्तं
2.
"सामाक्चिङ्गुलकचीनकानि च, पत्तप्फलं मूलफलं गविप्फलं।
धम्मेन लद्धं सतमस्नमना [सतमससमान (सी० पी०), सतमस्समना (स्या० कं०)], न कामकामा अलिकं भन्ति॥
2
"यदस्नमानो सुक्तं सुनित्थितं, परेहि दी संज्ञां पयतं पनीतं।
सालीनम नासिकं परिभुञ्जमानो, सो भुञ्जसि कस्सप अमगन्धं॥
2 अपराह्न
"न अमगन्धो मम कप्पतिति, इच्छचेव त्वं भासि ब्रह्मबन्धु।"
सलीनम नासिकं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमनसेहि सुसङ्खतेहि।
पुच्छमि तं कस्सप एतमथं, कथं पकारो तव अमगंधो"॥
2.
"पाणातिपातो वधछेदबन्धनं, थेयं मुसावादो निकतिवञ्चनानि च।"
अज्जहेनकुत्तं [अज्जेन कुज़्ज़ं (सी० पी०)] परदारसेवना, असमगन्धो न हि मंसभोजनं॥
2.
"ये इध कामेसु असञ्जता जना, रसेसु गिद्ध असुचिभावमसिता [असुचिकमिसिता (सी० स्या० कं० पी०)]।
नथिकदिट्ठि विसा दुर संज्ञाया, एसामगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"ये लुखसा दारुणा पिट्ठिमंसिका [ये लुखसा दारुणा परपिट्ठिमंसिका (क०)], मित्तद्दुनो निक्रुणातिमानिनो।
अदानसिला न च दंत्ति काश्च, एसामगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"कोधो मदो थम्भो पच्चचुपत्थापना [पच्चचुत्थपना च (सी० स्या०), पच्चचुत्थपना (पी०)], माया उसुया भ्स्ससमुस्सयो च।
मानातिमानो च असब्भि संतवो, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"ये पापसीला इंघातसूचका, वोहारकूटा इध पतिरूपिका [पतिरूपिका (?)]।
नराधमा येध करोन्ति किब्बिसं, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
.
"ये इध पनेसु असञ्जता जना, परेसमादाय विहेसमुय्युता।
दुस्सील्लुद्द फ़रुसा अनादरा, असमगंधो न हि मानसभोजनं॥
2012.
"एतेसु गिद्धा विरोधातिपतिनो, निच्चचुय्युता पेचदच तमं वजन्ति ये।"
पतन्ति सत्ता निरयं अवंसिरा, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2020. ...
"न मच्छमांसानसक्तं [न मच्छमंसं न अनासक्तं (सी० अट्ठ मूलपाठो), न मच्छमंसानासक्तं (स्या० क०)], न नग्गियं न मुंडियां जटाजलदलं।
खराजिनानि नागिहुत्त्ससुपसेवना, ये वापि लोके आमरा बहु तपा।
मंतहुति यञ्जमुतुपसेवना, सोधेन्ति मच्छचं अवितिन्नकङखं॥
25
"यो तेसु [सोतेसु (सी० पी०)] गुत्तो विदितिन्द्रियो चरे, धम्मे थितो अजदजवमदवे रतो।
सङ्गातिगो सब्बदुक्खप्पाहिनो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या० कं क०)] दिट्ठसुतेसु धीरो"॥
2.
इच्छचेतमथं भगवान पुन्पपुनं, अक्षसि नं [तं (सी० पी०)] वेद्यै मन्तपरागु।
चित्राहि गाथाहि मुनि पकसाय, निरामगन्धो असितो दुर जपयो॥
255.

सुत्वान बुद्धस्स सुभासितं पदं, निरामगंधं सब्बदुक्खप्पनुदं।
नीचमनो वंदि तथागतस्स, तत्थेव पब्बजमरोचयित्थति॥
अमगंधसुत्तं दूतियां निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.3 हिरीसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

सच्ची दोस्ती पर।

अंतर्वस्तु

12.3 हिरसुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.3 हिरीसुट्टा

अनुवाद

1. जो लज्जाहीनता का उल्लंघन करता है और उसका तिरस्कार करता है, जो कहता है, 'मैं मित्र हूँ,' परन्तु कोई भी ऐसा कार्य नहीं करता जो किया जा सकता है, उसे पहचानो: 'वह मेरा मित्र नहीं है।' (256)

2. जो मित्रों से व्यर्थ ही मीठी बातें करता है, उसे बुद्धिमान लोग केवल बात करने वाला समझते हैं, वह कुछ नहीं करता। (257)

3. वह मित्र नहीं है जो हमेशा उल्लंघन की आशंका करता है और दोष ढूंढता रहता है; परन्तु जिसके साथ पुत्र माता की गोद में रहता है, वही सच्चा मित्र है जिसे कोई और अलग नहीं कर सकता। (258)

4. जो फल की आशा रखता है, वह मानवीय बोझ उठाते हुए आनंद और स्तुति दिलाने वाली ऊर्जा का संवर्धन करता है। (259)

5. एकांत और शांति की मिठास का स्वाद चखने से व्यक्ति भय और पाप से मुक्त हो जाता है, धम्म की मिठास का पान करता है। (260)

हिरिसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

3. हिरीसुट्टं

256.
हिरिं तरंतं विजिगुच्चमानं, तवहामस्मि [सखाहमस्मि (सि. स्या. कं. पि.)] इति भस्मानां;
सयहानि कम्मनि अनादियन्तं, नेसो मामन्ति इति नं विजन्या।
257.
अनन्वयं [अत्थान्वयं (का.)] पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति;
अकरोंतं भस्मानां, परिजानन्ति पंडिता।
258.
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासंकि रंधमेवानुपासि;
यास्मिन्का सेती उरसिवा पुत्तो, सा वे मिटो यो परेही अबेज्जो।
259.
पमुज्जकरणं ठाणं, पसंसावाहनं सुखं;

फलानिसंसो भवेति, वहन्तो पोरिसं धुरं।
260.
पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च;
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवंति।
हिरीसुत्तं तत्यं निहितं।

____

पाली-देवनागरी
3. हिरिसुत्तं
2.
हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, तवाहस्मि [सखाहमस्मि (सी० स्या० कं० पी०)] इति भस्मान्नं।
सयहानि कम्मानि अनादियन्तं, नेसो मामन्ति इति नं विज्ञानं॥
2.
अन्वयं [अथ्वयं (क०)] पियां वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति।
अक्रोन्तं भस्मान्नं, परिजानन्ति पण्डिता॥
2.
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदसङकि रन्धमेवानुपासि।
यस्मिञ्च सेति उर्सिव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभिजेजो॥
2.
पमुज्जक्करनं थानं, पसंसावहनं सुखं।
फलानिसंसो भवेति, वहन्तो पोरिसं धुरं॥
2 ग्राम
पविवेकरसं पित्वा, रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पपो, धम्मपीतिरसं पिवन्ति॥
हिरिसुत्तं ततियं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.4 महा-मंगलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला

____

अंतर्वस्तु
12.4 महामंगलसूत्र
1.1अनुवाद
1.2प्ले-रोमन संस्करण
1.3पाली-देवनागरी संस्करण
2.4 महा-मंगलसूत्र
अनुवाद

____

बुद्ध ने देवता को दिए जाने वाले सर्वोच्च आशीर्वाद को परिभाषित किया है।

____

मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात बीत गई, एक सुंदर रूप वाले देवता ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) के पास आकर, उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर, भगवान (भगवान बुद्ध) को एक श्लोक में संबोधित किया:

1. 'अनेक देवताओं और मनुष्यों ने सुख की कामना करते हुए आशीर्वादों की रचना की है, वे आपको (मुझे) सर्वोच्च आशीर्वाद बताते हैं।' (261)

2. बुद्ध ने कहा: 'मूर्खों की संगति न करना, बल्कि बुद्धिमानों की संगति करना, पूज्य लोगों की पूजा करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है।' (262)

3. 'एक उपयुक्त देश में रहना, पिछले जन्म में अच्छे कर्म करना और स्वयं का गहन अध्ययन करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है।' (263)

4. महान ज्ञान और कौशल, सुस्थापित अनुशासन और सुस्पष्ट वाणी, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (264)

5. माता-पिता की सेवा करना, संतान और पत्नी की रक्षा करना और शांत भाव से प्रार्थना करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (265)

6. दान देना, धर्म के अनुसार जीवन जीना, रिश्तेदारों की रक्षा करना और निष्कलंक कर्म करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (266)

7. पाप से दूर रहना, मादक पेय पदार्थों से परहेज करना और धर्म में दृढ़ता बनाए रखना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (267)

8. आदर और विनम्रता, संतोष और कृतज्ञता, उचित समय पर धर्म का श्रवण, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (268)

9. धैर्य और मधुर वाणी, भिक्षुओं से संवाद, समय-समय पर धर्म प्रवचन, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (269)

10. 'ध्यान (तपस्या) और ब्रह्मचर्य, आर्य सत्यों का विवेक, और निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की प्राप्ति, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (270)

11. 'जिसका मन लोकधर्म से प्रभावित होने पर भी विचलित नहीं होता, बल्कि दुःख, दोष और सुरक्षा से मुक्त रहता है, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (271) 12.

'जो लोग ऐसे कर्म करके हर तरह से अजेय रहते हैं, और हर जगह सुरक्षित विचरण करते हैं, उन्हें ही सर्वोच्च आशीर्वाद प्राप्त है।' (272)

महामंगल समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन संस्करण
2.4. मंगलसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो अन्नतर देवता अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतं स्थित खो स देवता भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
261. "बहु देवा मनुस्सा च, मंगलानि अचिन्तयुम्; आकंखमना सोत्थानं, ब्रूहि मंगलमुत्तमं"।
262. "असेवना च बलानां, पण्डितानाञ्च सेवना; पेज 20 सुर 93 www.tipitka.org विपश्यना अनुसंधान संस्थान पूजा च पूजनेयानां [पूजनियानां (सि. स्या. कं. पि.)], एतं मंगलमुत्तमं।
263. "पतिरूपदेसावसो च, पुब्बे च कटपुन्नता; अत्तसम्मपनिधि [अत्तसम्मपनिधि (कत्थचि)] च, एतं मंगलमुत्तमम्।
264. "बहुसाच्चान्का सिप्पांका, विनयो च सुसिक्खितो; सुभासिता च या वाचा, एतं मंगलमुत्तमम्।
265. "मातापितु उपाथनां, पुत्तदरस्स संगहो; अनाकुल च कम्मंता, एतं मंगलमुत्तमं।
266. "दानञ्च धम्मचरिया च, नाताकाञ्च संगहो;" अनवज्जनि कम्मानि, एतं मंगलमुत्तमम्।
267. "आरति विरति पापा, मज्जपना च संयमो; अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मंगलमुत्तमं।
268. "गारवो च निवातो च, सन्तुति च कतन्नुता; कालेन धम्मस्सवनं [धम्मसवनं (कत्थचि), धम्मसवनं (सि. का.)], एतं मंगलमुत्तमं।
269. "खंति च सोवाकसता, समानानच दस्सानं; कालेन धम्मसच्च, एतं मंगलमुत्तमम्।
270. "तपो च ब्रह्मकार्यञ्च, अरियासच्चन दस्सानं; निब्बानसच्चिकिरिया च, एतं मंगलमुत्तमम्।

271. "फुथस्स लोकाधम्मेहि, चित्तं यस्सा न कम्पति; अशोकं विराजं खेमं, एतं मंगलमुत्तमं।
272. "एतादिसानि कत्वाना, सब्बत्थमपराजिता; सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मंगलमुत्तम'न्ति।
मंगलसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी संस्करण
2.4. मंगलसुत्तं
एवंमे सुतं — एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्जनत्र देवता अभिकान्तराय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमन्तं थिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्भासि -
2012 .
"बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिंतयं।
एकङ्क्षमना सोथानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं"॥
200 .
"असेवनाच बालानं, पण्डितानदच सेवना।
पूजा च पूजनेय्यनं [पूजनीयानं (सी० स्या० कं० पी०)], एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"पतिरूपदेशवासो च, पुब्बे च कतपुञ्जता।
अट्टसम्मापाणिधि [अत्तसम्मापाणिधि (कत्थचि)] च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"बहुसचञ्चसिप्पञ्च, विन्यो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"मातापितु उपत्थानं, पुत्तदरस्स सङ्गहो।
ताईकुलाच कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"दञ्च धम्मचरिया च, नत्कांञ्च सङ्गहो।
अनवज्जानि कम्मनि, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"आरती विरति पापा, मज्मजपना च संयमो।"
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"गारवोच निवातो च, सन्तुत्थि च कतञ्जुता।
कालेन धम्मस्वनं [धम्मस्वनं (कत्थचि), धम्मस्वनं (सी० क०)], एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"खंति च सोचस्सता, समानान्नद च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छ, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"तपो च ब्रह्मचर्यञ्च, अरियसच्चान दशसनं।
निब्बानसचिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
.
"फुत्थस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस न कम्पति।
असोकं विरजं खीमं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
.
"एतादिसानि कत्वान्, सब्बथमपराजिता।"
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तम"न्ति॥
मङ्गलसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

यक्ष (अमानवीय, आत्मा) सुचिलोमा बुद्ध को धमकी देता है कि यदि वे उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए तो वह उन्हें हानि पहुँचाएगा। बुद्ध उत्तर देते हैं कि सभी मनोभाव शरीर से उत्पन्न होते हैं।

अंतर्वस्तु

12.5 शुचिलोमसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.5 शुचिलोमसुत्त

अनुवाद

मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) गया में यक्ष सुचिलोमा के राज्य में एक पत्थर के आसन पर विराजमान थे। उसी समय यक्ष खरा और यक्ष सुचिलोमा भगवान (भगवान बुद्ध) से कुछ दूरी पर वहाँ से गुजरे। यक्ष खरा ने यक्ष सुचिलोमा से कहा, 'क्या यह व्यक्ति समना (भिक्षु) है?'

सुचिलोमा ने उत्तर दिया, 'यह समना नहीं, समनक (दुष्ट समना) है; फिर भी मैं पता लगाऊंगा कि यह समना है या समनक।'

तब यक्ष सुचिलोमा भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए और उनके पास पहुँचकर उनका शरीर उनसे स्पर्श हो गया। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने उनका शरीर उठा लिया। तब यक्ष सुचिलोमा ने भगवान (भगवान बुद्ध) से कहा, 'हे समना (भिक्षु), क्या आप मुझसे डरते हैं?'

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: 'नहीं, मित्र, मैं तुमसे भयभीत नहीं हूँ, परन्तु तुम्हारा मुझे स्पर्श करना पाप है।'

सुचिलोमा ने कहा: 'हे समना, मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ; यदि तुम इसका उत्तर न दे सको तो मैं तुम्हारे विचारों को बिखेर दूँगा या तुम्हारे हृदय को चीर दूँगा, या तुम्हें चरणों से पकड़कर गंगा के दूसरे तट पर फेंक दूँगा।'

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: 'हे मित्र, न तो इस संसार में, न देवों, मारों, ब्राह्मणों के संसार में, न समना और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों की संतानों में, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई देता है जो मेरे विचारों को बिखेर सके या मेरे हृदय को चीर सके, या मुझे चरणों से पकड़कर गंगा के दूसरे तट पर फेंक सके। परन्तु हे मित्र, जो चाहो पूछ लो।' तब यक्ष सुचिलोमा ने भगवान बुद्ध से एक श्लोक में पूछा:

1. 'जमोद (राग), घृणा (द्वेष, दोष), अरुचि, प्रसन्नता और भय का उद्‌गम क्या है? ये कहाँ से उत्पन्न होते हैं?' क्या उत्पन्न होने के बाद संदेह मन को उसी प्रकार परेशान करते हैं, जैसे लड़के कौवे को परेशान करते हैं? (273)

2. बुद्ध ने कहा: 'राग और दोष (दोष, द्वेष) की उत्पत्ति इसी (शरीर) से होती है; घृणा, प्रसन्नता और भय इसी (शरीर) से उत्पन्न होते हैं; इसी (शरीर) से उत्पन्न होने वाले संदेह मन को उसी प्रकार परेशान करते हैं, जैसे लड़के कौवे को परेशान करते हैं। 3. 'वे इच्छा से उत्पन्न होते हैं, वे स्वयं में उत्पन्न होते हैं, बरगद के वृक्ष की शाखाओं की तरह; वे दूर-दूर तक फैले होते हैं, इंद्रिय सुखों से, जैसे मालुवा लता जंगल में फैली होती है। (274)

4. 'जो लोग जानते हैं कि जब भी यह (पाप) उत्पन्न होता है, वे इसे दूर भगा देते हैं। सुनो, हे यक्ष! वे इस कठिन और पहले कभी पार न की गई धारा को इस उद्देश्य से पार करते हैं कि उनका पुनर्जन्म न हो।' (275)

सुचिलोमसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
5. सूचिलोमासुत्तं
एवं मे सुतम् — एकं समयं भगव गय्यं विहारति तंकितमंस सुसिलोमास्सा यक्खस्सा भवने। तेना खो पाना समयेन खारो च यक्खो सुसिलोमो च यक्खो भगवतो अविदुरे अतिक्कमंती। अथा खो खारो यक्खो सुसिलोमं यक्खं एतादावोका - "एसो समानो"ति। "नेसो समानो, समानको एसो। यावाहं जानामि [याव जानामि (सि. पि.)] यदि वा सो समानो [यदि वा समानो (स्या.)], यदि वा सो समानको'ति [यदि वा समानाकोटि (सि. स्या.) पी.आई.)].
अथ खो सुसिलोमो यक्खो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगव कायं अपानामेसि। अथ खो सुसिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदावोचा - "भयसि मम्, समाना'ति? "न ख्वाहं तं, आवुसो, भयामि; एपी सीए ते सफ्फासो पापको'ती।
" पण्हं तं, समाना, पुच्चिसामि। ससे मे न ब्याकारिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदायं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परागंगया खिपिस्सामि'ति।
"न ख्वाहं तं, आवुसो, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामनाब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेया पदेसु वा गहेत्वा परागंगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्च यदकांखसि'ति। अथ खो सुसिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
273.
"रागो च दोसो च कुतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो कुतोजा;
कुतो समुत्थाय मनोवितक्का, कुमारका धन्कमिवोस्साजन्ति"।
274.
"रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो इतोजा;
इतो समुत्थाय मनोवितक्का, कुमारका धन्कमिवोस्साजन्ति।
274.
"स्नेहाजा अत्तसंभूता, निग्रोधस्सेवा खंडजा;
पुथु विसत्ता कामेसु, मालुवाव वितवने।
275.
"ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुनोहि यक्खा;
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिन्नपुब्बं अपुणभवाय'ति।
सुसिलोमसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी
5. सुचिलोमसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव गयं विहरति तक्षकितमञ्चे सुचिलोमस्स यक्षस्स भवने। तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो सुचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अति चरमकामन्ति। अथ खो खरो यक्खो सुचिलोमं यखं एतदवोच - "एसो समणो"ति। "नेसो समानो, समानको एसो। यावाहं जानामि [याव जानामि (सी० पी०)] यदि वा सो समानो [यदि वा समानो (स्या०)], यदि वा सो समानको"ति [यदि वा सो समानकोति (सी० स्या० पी०)]।
अथ खो सुचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगवान कायं अपनामेसि। अथ खो सुचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच - "भयसि मं, समान"ति? "न ख्वाहं तं, आवुसो, भायामि; अपि च ते सफ़स्सो पापको"ति।
" पञ्चं तं, समं, पुच्छिस्सामि। सचे मे न बिकारिस्ससि, चित्तं वा ते हिपिस्सामि, हदयं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परगङगाय हिपिस्सामि"ति।
"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेय पदेसु वा गहेत्वा परागगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो सुचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
।
"रागो च दोसो च कुतोनिदाना, आरती रति लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुत्थय मनोवित्रका, कुमारका धङकमिवोस्सजन्ति"॥
2.
"रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो इतोजा।

इतो समुत्थय मनोवित्रका, कुमारका धङकमिवोस्सजन्ति॥
2.
"स्नेहजा अत्तसंभूता, निग्रोधस्सेव खंडजा।
पुथु विस्ताता कामेसु, मालुवाव विटावने॥
25.
"ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुनोहि यक्ख।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिन्नपुब्बं अपुनभवाया"ति॥
सुचिलोमसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.6 धम्मकारियासुत्त या कपिलसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

भिक्षुओं को पापी व्यक्तियों से दूर रहने की सलाह दी जाती है और उन्हें पवित्र जीवन जीने का निर्देश दिया जाता है।

अंतर्वस्तु
12.6 धम्मकारियासुत्त या कपिलसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.6 धम्मकारियासुत्त या कपिलसुत्त
अनुवाद
1. गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ जीवन अपनाने वाले व्यक्ति को धर्मपरायण जीवन, ब्रह्मचर्य जीवन, सर्वश्रेष्ठ रत्न कहा जाता है। (276)

2. परन्तु यदि वह कठोर वाणी वाला हो और पशु के समान दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में आनंद लेता हो, तो ऐसे व्यक्ति का जीवन अत्यंत दुष्ट होता है और वह अपने अपवित्रता को बढ़ाता है। (277)

3. जो भिक्षु कलह में आनंद लेता है और मूर्खता में डूबा रहता है, वह बुद्ध द्वारा प्रचारित और सिखाए गए धर्म को नहीं समझता। (278)

4. अपने ही विकसित मन को पीड़ा पहुँचाकर और अज्ञान से प्रेरित होकर, वह यह नहीं समझता कि पाप ही नरक का मार्ग है। (279)

5. जन्म-जन्म, अंधकार-अंधकार में विपत्ति झेलते हुए, ऐसा भिक्षु मृत्यु के बाद वास्तव में कष्ट भोगता है। (280)

6. जैसे कई वर्षों से मल से भरा हुआ गड्ढा हो, तो पाप से भरे हुए व्यक्ति का शुद्धिकरण कठिन होता है। (281)

7. हे भिक्षुओं, यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो घर पर निर्भर है, पापी इच्छाओं, पापी विचारों से ग्रस्त है और पापी कर्मों और वस्तुओं में लिप्त है, (282)

8. तो सभी एकमत होकर उससे दूर रहें; उसे झाड़ू की तरह उड़ा दें, कूड़े की तरह फेंक दें। (283)

9. फिर उन लोगों को भूसे की तरह हटा दें जो समन नहीं हैं, केवल अपने बारे में सोचते हैं, पापी इच्छाओं और पापी कर्मों और वस्तुओं से ग्रस्त लोगों को उड़ा दें। (284)

10. शुद्ध रहें और शुद्ध लोगों के साथ विचारशील होकर रहें; फिर सहमति और बुद्धिमत्ता से आप दुख का अंत करेंगे। (285)

धम्मकारियासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. धम्मचरियासुत्तं
276.
धम्मचैरियं ब्रह्मचर्यं, एतदाहु वसुत्तमं;
पब्बाजिटोपि सी होति, अगरा अंगारियाम्।
277.
तो सीई मुखराजातिको, विहेसाभिरतो मागो;
जीवितं तस्स पापियो, राजं वधेति अत्तानो।
278.
कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधम्मेन अवुतो;
अक्खतामपि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसिटं।
279.
विहेसं भवित्ततनं, अविज्जाया पुरक्खतो;
सांकिलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं।
280.
विनिपातं समापन्नो, गब्भा गभं तम तमम्;
सा वे तदिसाको भिक्खु, पेक्का दुक्खं निगच्छति।
281.
गुत्थकूपो यथा अस्स, संपुणो गनवस्सिको;
यो च इवरूपो अस्सा, दुब्बिसोधो ही संगानो।
282.
यं इवरूपं जानथ, भिक्खवो गहनिस्सितं;
पापिच्चं पापसंकप्पं, पापाचारगोचरं।
283.
सब्बे समग्गा हुतवना, अभिनिब्बज्जीयथा [अभिनिब्बज्जयथा (सि. पि. ए. नि. 8.10)] नं;
कराण्डवम् [कराण्डं वा (स्या. का.) ए. नि. 8.10] निद्धमथ, कसम्बु अपकसथ [अवकसथ (सि. स्या. का.)]।
284.
ततो पलापे [पलसे (का.)] वेथा, असामने समानमणिने;
निद्धमित्वान पपिच्चे, पापाचारगोचरे।
285.
शुद्ध शुद्धेहि संवासं, कप्पायवो पतिस्सता;
ततो समाग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथति।
धम्मकारियासुत्तं [कपिलासुत्तं (अṭṭहा.)] चṭṭहं निःहितां।

पाली-देवनागरी
6. धम्मचरियसुत्तं
26.
धम्मचैरियं ब्रह्मचर्यं, एतदाहु वसुत्तमं।
पब्बजीतोपि चे होति, अगारा अंगारियां॥
277.
सो चे मुखजातको, विहेसाभिरतो मागो।
जीवितं तस्स पापियो, रजं वञ्जेति अत्तनो॥
2.
कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधाममेन आवुतो।
अक्खातमपि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसिटं॥
2

विहेसं भावितत्तानं, अविज्जाजाय पुरखतो।
संकिलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं॥
2.
विनिपातं समापनं दनो, गब्भा गभं तम तमं।
स वे तदिस्को भिक्खु, पेचदच दुक्खं निगच्छति॥
22.
गोथकूपो यथा अस्स, सम्पुन्नो गनवास्सिको।
यो च एवरूपो अस्स, दुब्बीसोधो हि सङ्गानो॥
22.
यं एवरूपं जननाथ, भिक्खवो गहनिस्सितं।
पापिच्छं पापसङ्कप्पं, पापाचारगोचरं॥
2025.
सब्बे समग्गा हुतवन, अभिनिब्बजज्याथ [अभिनिब्बजज्याथ (सी० पी० अ० नि० 8.10)] नं।
कारणवं [कारंडं व (स्या० क०) अ० नि० 8.10] निध्मथ, कस्म्बुं अपकसथ [अवकसथ (सी० स्या० क०)]॥
2 सप्ताह
ततो पलापे [पलसे (क०)] वाहेथ, अस्समने समानमनिने।
निद्धमित्वान पापिच्छे, पापाचारगोचरे॥
2.
सुधा सुद्धेहि संवासन, कप्पयव्हो पतिस्सता।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्थति॥
धम्मचरिसुत्तं [कपिलसुत्तं (अट्ठ०)] छट्ठं नित्थितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.7 ब्राह्मणादम्मिकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला

____

धनी ब्राह्मण बुद्ध के पास आकर प्राचीन ब्राह्मणों की रीति-रिवाजों के बारे में पूछते हैं। बुद्ध उनके जीवन शैली का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि राजा की संपत्ति देखकर उनमें क्या परिवर्तन आया। वे यह भी बताते हैं कि कैसे उन्होंने राजा को यज्ञों में प्राणियों की बलि देने का पाप करने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध के ज्ञानवर्धक प्रवचन सुनकर धनी ब्राह्मणों का धर्म परिवर्तन हो जाता है।

____

अंतर्वस्तु

12.7 ब्रह्मनादम्मिकसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.7 ब्रह्मनादमम्मिकसूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कोसल के कई धनी ब्राह्मण, जो वृद्ध, बुजुर्ग, या अत्यधिक वृद्ध थे, भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए और उनसे सुखद वार्तालाप किया। कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद, वे अलग बैठ गए। अलग बैठकर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), क्या आजकल ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों के ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों (धर्म) का पालन करते हुए देखे जाते हैं?'

भगवान (भगवान बुद्ध) ने उत्तर दिया: 'हे ब्राह्मणों, आजकल ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों के ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों का पालन करते हुए नहीं देखे जाते हैं।'

ब्राह्मणों ने कहा, "यदि आदरणीय गौतम बुद्ध को असुविधा न हो, तो वे हमें प्राचीन ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों के बारे में बताएं।"

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "तो हे ब्राह्मणों, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी हां," कहकर धनी ब्राह्मणों ने भगवान बुद्ध की बात सुनी। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

1. प्राचीन ऋषि (इसयो) संयमी और पश्चात्तापी थे; उन्होंने पांचों इंद्रियों के विषयों का त्याग कर अपने कल्याण का अध्ययन किया। (286)

2. ब्राह्मणों के लिए न तो पशु थे, न सोना, न अनाज, परन्तु ध्यान से प्राप्त धन ही उनके लिए था, और वे अपने सर्वोत्तम खजाने की रक्षा करते थे। (287)

3. जो कुछ उनके लिए तैयार किया जाता था और द्वार पर भोजन के रूप में रखा जाता था, वे उसे उन लोगों को देना समझते थे जो श्रद्धा से तैयार की गई वस्तु की तलाश करते हैं। (288)

4. विभिन्न रंगों के वस्त्रों, पलंगों और आवासों से युक्त, प्रांतों और पूरे देश के समृद्ध लोग उन ब्राह्मणों की पूजा करते थे। (289)

5. ब्राह्मण अक्षुण्ण, अजेय और धर्म द्वारा संरक्षित थे; उनके घरों के द्वार पर खड़े होकर भी कोई उनका विरोध नहीं कर सकता था। (290)

6. अड़तालीस वर्षों तक उन्होंने बाल ब्रह्मचर्य का पालन किया; पूर्व में ब्राह्मण दिव्य ज्ञान और अनुकरणीय आचरण की खोज में जाते थे। (291)

7. ब्राह्मण दूसरी जाति की स्त्री से विवाह नहीं करते थे, न ही वे पत्नी खरीदते थे; वे एक साथ आने के बाद आपसी प्रेम में सहवास करना चुनते थे। (292)

8. मासिक धर्म की समाप्ति के समय को छोड़कर ब्राह्मण यौन संबंध नहीं बनाते थे। (293)

9. उन्होंने ब्रह्मचर्य और नैतिक गुणों, सत्यनिष्ठा, नम्रता, तपस्या, कोमलता, करुणा और धैर्य की प्रशंसा की। (294)

10. उनमें श्रेष्ठ, बलवान ब्राह्मण, नींद में भी यौन संबंध नहीं बनाते थे। (295)

11. उनके आद्यतन का अनुकरण करते हुए इस संसार के कुछ ज्ञानी पुरुषों ने ब्रह्मचर्य और नैतिक गुणों की प्रशंसा की और इस प्रकार अतुलनीय शांति प्राप्त की। (296)

12. चावल, पलंग, वस्त्र, मक्खन और तेल माँगकर और उन्हें विधिपूर्वक एकत्रित करके, उन्होंने उनसे यज्ञ किया, और यज्ञ का समय आने पर उन्होंने गायों की हत्या नहीं की। (297)

13. माता, पिता, भाई और अन्य सगे-संबंधियों के समान गायें हमारी सबसे अच्छी मित्र होती हैं, जिनमें औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। (298)

14. वे भोजन देती हैं, शक्ति देती हैं, साथ ही रंगत और सुख भी प्रदान करती हैं; इस वास्तविकता को जानते हुए भी उन्होंने गायों की हत्या नहीं की। (299)

15. वे सुशोभित, विशाल, आकर्षक, प्रसिद्ध, स्वभाव से ब्राह्मण और अपने-अपने कार्यों के प्रति उत्साही थे; जब तक वे संसार में रहे, यह वंश समृद्ध हुआ। (300)

16. परन्तु उनमें परिवर्तन आया: राजा की समृद्धि और सुशोभित स्त्रियों को धीरे-धीरे देखकर, (301)

17. उत्तम घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले सुगठित रथ, रंग-बिरंगे कालीन, कमरों में विभाजित और नापे हुए महल और घर, (302)

18. असंख्य गायों से सुसज्जित विशाल मानव संपदा और सुंदर स्त्रियों के समूह को देखकर ब्राह्मण लोभी हो गए। (303)

19. तब उन्होंने इस विषय पर भजन रचकर ओक्काका के पास जाकर कहा: 'आपके पास बहुत धन और अनाज है, अपनी अपार संपत्ति का त्याग कीजिए, अपने अपार धन का त्याग कीजिए।' (304)

20. फिर रथों के स्वामी राजा ने ब्राह्मणों के निर्देशानुसार असमेध, पुरिसमेध, सम्मपासा और वाकापेय्य यज्ञ बिना किसी बाधा के संपन्न किए, और इन यज्ञों का अर्पण करने के बाद ब्राह्मणों को धन दिया: (305)

21. गायें, पलंग, वस्त्र, सुशोभित स्त्रियाँ, उत्तम घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले सुगठित रथ, रंग-बिरंगे कालीन, (306)

22. सुंदर महल, जो अच्छी तरह से विभाजित थे; और इन्हें विभिन्न प्रकार के अनाज से भरकर, उन्होंने यह धन ब्राह्मणों को दिया। (307)

23. इस प्रकार धन प्राप्त करने पर उन्होंने भंडार की इच्छा की, और अपनी इच्छाओं के आगे झुकने वालों की लालसा और भी बढ़ गई; तब उन्होंने इस विषय पर भजन रचकर ओक्काका के पास जाकर कहा: (308)

24. 'जैसे जल, पृथ्वी, सोना, धन और अनाज आवश्यक हैं, वैसे ही मनुष्यों के लिए गायें आवश्यक हैं, क्योंकि यह जीवित प्राणियों के लिए आवश्यक है; अपनी बड़ी संपत्ति का त्याग करो, अपने धन का त्याग करो।' (309)

25. तब रथों के स्वामी राजा ने ब्राह्मणों के निर्देशानुसार लाखों गायों का बलिदान करवाया। (310)

26. गायें बकरियों के समान होती हैं, वे अपने पैरों या सींगों से किसी को चोट नहीं पहुँचातीं, वे कोमल होती हैं और दूध देती हैं, राजा ने उन्हें सींगों से पकड़कर हथियार से मरवा दिया। (311)

27. तब देवताओं, पूर्वजों, इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा), असुरों और राक्षसों ने चिल्लाकर कहा, 'यह अन्याय है,' क्योंकि हथियार गायों पर गिरा था। (312)

28. पहले तीन रोग थे: इच्छा, भूख और क्षय, परन्तु पशुओं की हत्या से अट्ठानवे रोग उत्पन्न हो गए। (313)

29. हिंसा का यह अन्याय जो हम तक पहुँचा है, पुराना है; निर्दोष गायों की हत्या की जाती है, यज्ञ करने वाले पुरोहित धर्म से विमुख हो गए हैं। (314)

30. अतः इस पुराने और नीच धर्म की बुद्धिजीवियों द्वारा निंदा की जाती है; जहाँ लोग ऐसे व्यक्ति को देखते हैं, वे यज्ञ करने वाले पुरोहित की निंदा करते हैं। (315)

31. अतः धर्म के लुप्त होने से सुद्दा (निम्न जाति) और वेस्सिका (व्यापारी वर्ग) में मतभेद हो गया, क्षत्रिय (योद्धा, शासक) अनेक प्रकार से असहमत हो गए, पत्नी अपने पति से घृणा करने लगी। (316)

32. क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य वे लोग जो अपनी जाति के संरक्षण में थे, वंश संबंधी विवादों को समाप्त करने के बाद, इंद्रिय सुखों के वश में आ गए। (317)

यह सुनकर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान (भगवान बुद्ध) से इस प्रकार कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध! यह उत्तम है! हे पूज्य गौतम बुद्ध! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; हम पूज्य

गौतम बुद्ध, धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेते हैं; हे पूज्य गौतम (बुद्ध) हमें अपने अनुयायियों (उपासक) के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए उनकी शरण ली है।

ब्रह्मनाधम्मिकसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. ब्राह्मणधम्मिकसुत्तम्
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथा खो सम्भुला कोसलका ब्राह्मणमहाशाला जिन्ना वुधा महल्लका अद्धगाता वयोनुप्पट्टा येन भगव तेनुपसांकमिंसु; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसिदिंसु। एकमंतं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवंतं एतदावोकुम् - "संदिस्सांति नु खो, भो गोतम, एतराहि ब्राह्मणा पोराणाणं ब्राह्मणां।" ब्राह्मणधम्मेति? "न खो, ब्राह्मणा, संदिस्सांति एतरहि ब्राह्मणा पोराणां ब्राह्मणां ब्राह्मणादम्मेति।" "साधु नो भावं गोतमो पोराणाणं ब्राह्मणानं ब्राह्मणं धम्मं भासतु, ससे भोतो गोतमस्सा अगरु"ति। "तेन हि, ब्राह्मण, सुनथ, साधुकं मनसि करोथा, भसिस्सामि"ति। "एवं, भो'ति खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवतो पचसोसुम्।' भगव एतादावोका -
286.
"इसायो पुब्बका आसुं, सन्नत्तत्ता तपस्सिनो;
Pañca kāmaguṇe hitvā, attadatthamacārisuṃ.
287.
"न पसु ब्राह्मणानासुं, न हिरण्यं न धनियाम्;
सज्जायधनधन्नासुं, ब्रह्मं निधिमापलयुं।
288.
"यं नेसं पकातं असि, द्वारभट्टं उपथितः;
सद्धापकातमेसानां, दातवे तदमनिसुं।
289.
"नाणारत्तेहि वत्थेहि, सयानेहावसथेहि च;
फ़िता जनपद रथा, ते नमस्सिंसु ब्राह्मणे।
290.
"अवज्झा ब्राह्मण आसुं, अजेय धम्मरक्खिता;
न ने कोचि निवारेसि, कुलद्वारेसु सब्बासो।
291.
"अट्ठाचट्टालिसं वस्सनि, (कोमरा) ब्रह्मकार्यं कैरिसु ते;
विज्जाचरणपर्येतिथिं, अकारुं ब्राह्मण शुद्ध।
292.
"न ब्राह्मणा अण्नामगमुम्, नापि भारियं किणिन्सु ते;
संपियेनेव संवासं, संगन्त्वा समारोचयुम्।
293.
"अन्नत्र तमहा समया, उत्तुवेरामनिं पति;
अंतरा मेथुनं धम्मं, नस्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा।
294.
"ब्रह्मचर्यञ्च सिलञ्च, अज्जवं मद्दवं तपं;
सोराक्कं अविहिंसाचा, खंतीन्चापि अवननायुं।
295.
"यो नेसं परमो असि, ब्रह्मा दहपरक्कमो;
स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेपि नागमा।
296.
"तस्सा वत्तमनुसिक्खंता, इधेके विन्नुजातिका;
ब्रह्मचर्यञ्च सिलञ्च, खन्तिञ्चपि अवन्नयुम्।

297.
"तंदुलं सयानं वत्थं, सप्पितेलञ्च याचिया;
धम्मेन समोधनेत्व, ततो यान्नमकप्पायुं।
298.
" उपपतिहस्मिं यान्नस्मिं, नस्सु गावो हनिसु ते;
यथा माता पिता भता, अण्णे वापि च नातक;
गावो नो परम मित्ता, यासु जयंती ओसाधा।
299.
"अन्नदा बलदा सीता, वनदा सुखदा तथा [सुखदा च ता (का.)];
एतमत्तवसं नात्वा, नस्सु गावो हनिसु ते।
300.
"सुखुमला महाकाया, वनवंतो यसस्सिनो;
ब्राह्मण सेहि धम्मेहि, किक्काकिचेसु उस्सुका;
याव लोके अवत्तिन्सु, सुखमेधिट्ठयं पजा।
301.
"तेसं असि विपल्लसो, दिस्वाना अनुतो अनुं;
राजिनो च व्याकरणं, नारियो समालंकता।
302.
"रथे चजन्नसायुते, सुकते चित्तसिब्बन;
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भगसो मिते।
303.
"गोमंडलपरिब्युधं, नारिवरगणायुतम्;
उदारं मानुषं भोगं, अभिज्जयिन्सु ब्राह्मण।
304.
"ते तत्थ मन्ते गन्तेत्वा, ओक्ककं तदुपगमुम्;
पहुताधनाधनोसि , यजस्सु बाहु ते वित्तं ;
Yajassu bahu te dhanaṃ.
305.
"ततो च राजा सन्नत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो;
असमेधं पुरीसमेधं, सम्मापासं वाजपेयं निरग्गाडं;
एते यगे यजित्वान, ब्राह्मणानमदा धनम्।
306.
"गावो सयानांच वत्थानचा, नारियो समालंकटा;
रथे चजन्नसयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बन।
307.
"निवेशनानि रम्मानि, सुविभट्टानि भगसो;
नानाधान्नस्स पुरेत्वा, ब्राह्मणानमदा धनं।
308.
"ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समारोचयुं;
तेसं इच्छावतिन्नानं, भय्यो तन्हा पवधथा;
ते तत्थ मन्ते गन्तेत्वा, ओक्ककं पुनमुपगमुम्।
309.
"यथा आपो च पथवि च, हिरण्यं धनधनीयं;
एवं गावो मनुस्साणं, परिक्खरो सो हि पणिनं;
यजस्सु बाहु ते वित्तं, यजस्सु बाहु ते धनं।
310.
"ततो च राजा सन्नत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो;
नेका सतासाहस्सियो, गावो यान्ने अघातयि।

311.
"न पदा न विसानेन, नस्सु हिंसान्ति केनसि;
गावो ईकासमाना, सोरता कुंभदुहना;
ता विसाणे गहेत्वाना, राजा सत्थेन घटयि।
312.
"ततो देव पितरो च [ततो च देव पितरो (सि. स्या.)], इंदो असुररक्खसा;
अधम्मो इति पक्कंडुं, यं सत्थं निपति दे।
313.
"तयो रोगा शुद्ध आसुं, इच्छा अनासनं जरा;
पशुनाञ्च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागामुम्।
314.
"एसो अधम्मो दण्डनं, ओक्कन्तो पुराणो अहु;
अदुसिकायो हन्नन्ति, धम्म धंसन्ति [धंसेन्ति (सि. पि.)] याजका।
315.
"एवमेसो अनुधम्मो, पोराणो विणुगाराहितो;
यत्था एडिसकं पस्सति, यजकं गरहति [गरहि (का.)] जानो।
316.
"एवं धम्मे वियापन्ने, विभिन्ना सुद्दवेसिका;
पुथु विभिन्ना खट्टिय, पतिं भारियावमन्नथा।
317.
" खट्टिय ब्रह्मबंधु च, ये चने गोत्तरक्खिता;
जातिवादं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) यथा अनिरक्तज्झानोति], कामनां वसमनवगु'न्ति।
एवं वुट्टे, ते ब्राह्मणमहाशाला भगवन्तं एतदावोकुम् - "अभिकान्तं, भो गोतम...पे।" ... उपासके नो भावं गोतमो धारेतु अजजतग्गे पाणुपेटे शरणं गते'ति।
ब्राह्मणधम्मिकासुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो संभुला कोसलका ब्राह्मणमहाशाला जिन्ना वुद्धा महल दल्लका अद्धगाता वयोअनुप्पत्ता येन भगवा तेनुपसङकमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदिन्सु। एकमंतं निशिनंदना खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवन्तं एतदवोचुं - "संदिसंन्ति नु खो, भो गोतम, एतहि ब्राह्मणा पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे"ति? "न खो, ब्राह्मणा, सन्दिसंन्ति एतारि ब्राह्मणा पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे"ति। साधु नो भवनं गोतमो पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मं भासतु, सचे भोतो गोतमस्स अरुति। "तेन हि, ब्राह्मणा, सुनथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामि"ति। "एवं, भो"ति खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवतो पच्चस्सोसं। भगवा एतदवोच -
2.
"इसयो पुब्बका आसुं, संञ्ञत्ता तपस्सिनो।"
पञ्च कामगुणे हित्वा, अत्तदत्थमचारिसुं॥
2.
"न पसु ब्राह्मणानासुं, न हिरण्यं न धानियं।
सज्जायधनधन्नासुं, ब्रह्मं निधिमपाल्युं॥
2.
"यं नेसं पक्तं असि, द्वारभट्टं उपत्थितं।
साधपक्तमेसानं, दातवे तदमन्निसुं॥
2.
"नानारत्तेहि वत्थेहि, सयनेहावसथेहि च।
फ़िफ़िया जिला रत्था, ते नमस्सिंसु ब्राह्मणे॥
2.

" अवज्झा ब्राह्मणा आसूं, अजेय धम्मरखिता।"
न ने कोचि निवारेसी, कुलद्वारेसु सब्बसो॥
291.
"अत्थचत्तालिसं वस्सानि, (कोमार) ब्रह्मचर्यं चरिंसु ते।"
विज्जाचरणपरियेट्ठिं, अचरुं ब्राह्मणा पूरे॥
292.
"न ब्राह्मणा अञ्जनगममुं, नपि भारियं किंन्सु ते।"
संपियेनेव संवासन, सङ्गन्त्वा समारोच्युं॥
2र्वी.
"अञञ्ञ तमहा समया, उतुवेर्मनिं पति।"
अंतरा मेथुनं धम्मं, नास्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा॥
2.
"ब्रह्मचर्यञ्च सीलञ्च, अजज्वं मद्दवं तपं।
सोरचं च अविहिंसंदच, खन्तिञ्चपि अवन्न्युं॥
2.
"यो नेसं परमो असि, ब्रह्मा दळ्हप्रकामो।
स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेपि नागमा॥
2.
"तस्स वत्तमनुसिक्खन्ता, इधेके विञ्जुजातिका।
ब्रह्मचर्यञ्च सीलञ्च, खन्तिञ्चपि अवन्न्युं॥
2.
"तंडुलं सयनं वत्थं, सप्पितेलनदच यचय।'
धम्मेन समोधनेत्वा, ततो यञ्जमकप्प्युं॥
2.
" उपत्थितस्मिं यञ्जस्मिं, नास्सु गावो हनिंसु ते।
यथा माता पिता भाता, अञ्जने वापि च नाटक।
गावो नो परमा मित्ता, यासु जयंती ओषाधा॥
2.
"अ संज्ञा बलदा चेता, वंदा सुखदा तथा [सुखदा च ता (क०)]।
एतमथवसं ञत्वा, नास्सु गावो हनिंसु ते॥
.
"सुखुमाला महाकाया, वन्वन्तो यसस्सिनो।"
ब्राह्मणा सेहि धम्मेहि, किच्चाकिच्चेसु उससुका।
याव लोके अवत्तिनसु, सुखमेधिथयं पजा॥
301.
"तेसं असि विपलडालासो, दिस्वां अत्यतो अत्यं।
राजिनो च व्याकरणं, नारियो समलक्ता॥
302.
"रथे चाजञ्चसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने।
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भागसो मिते॥
303.
"गोमंडलपरिब्युळहं, नारीवरगणयुतं।
उळारणं मनुसं भोगं, अभिज्जयिंसु ब्राह्मणा॥
3
"ते तत्थ मन्ते गंथेत्वा, ओ फ्रकाकं तदुपगमुं।
पहुतधनधन्नोसि , यजस्सु बहु ते वित्तं।
यजस्सु बहु ते धनं॥
305.

"ततो च राजा संञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेशेभो।
अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेयं निर्ग्गळं।
एते यागे यजित्वान्, ब्राह्मणानमदा धनं॥
3
"गावो सयन्नदच वत्थनच, नारियो समलकता।
रथे चाजञ्चसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने॥
तीन सप्ताह
"निवासनानि रम्मानि, सुविभत्तानि भागसो।
नैनाधन्नसस पूरेत्वा, ब्राह्मणानमदा धनं॥
3.
"ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समारोच्युं।
तेसं इच्छावतिन्नं, भय्यो तन्हा पवन्नथ।
ते तथा मन्ते गंथेत्वा, ओ क्रकाकं पुनमुपागमुन्॥
3 सप्ताह.
"यथा आपो च पथ्वी च, हिरण्यं धनधान्यं।
एव गावो मनुस्सानं, परिक्खरो सो हि पाणिनं।
यजस्सु बहु ते वित्तं, यजस्सु बहु ते धनं॥
3 1.
"ततो च राजा संञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेशेभो।
नेका सत्सहस्सियो, गावो यांजे अघातयि॥
3 10.
"न पदा न विसानेन, नस्सु हिंसान्ति केन्चि।"
गावो एळकस्माना, सोरता कुंभदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान्, राजा साथेन घातयि॥
311.
"ततो देवा पितरो च [ततो च देवा पितरो (सी० स्या०)], इंदो असुररक्षसा।
अधम्मो इति पकन्दुं, यं सत्थं निपति गवे॥
35.
"तयो रोगा पूरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।"
पसूनञ्च समारम्भा, अत्थानवुतिमागमुन॥
3.
" एसो अधम्मो दंडनं, ओकांतो पुराणो आहु।"
अदुसिकायो हञ्जन्ति, धम्म धंसन्ति [धंसेन्ति (सी० पी०)] याजका॥
35.
"एवेमेसो अनीधम्मो, पोराणो विञ्जुगृहितो।
यथा एडिसकं पस्सति, याजकं गरहति [गरही (क०)] जानो॥
31.
"एवं धम्मे वपन्ने, विभी सत्यावेससिका।"
पुत्थु विभि संञ्ञा खट्टिया, पतिं भारियावमन्थः।
31.
"खत्तिया बंध ब्रह्मु च, ये चञ्चे गोत्तरखिता।
जातिवादं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) यथा अनिराकतज्झानोति], कामानं वसमनवगु"न्ति॥
एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणमहाशाला भगवंतं एतदवोचुं - "अभिकांतं, भो गोतम...पे.... उपासके नो भवन गोतमो धारेतु अजदतग्गे पाणुपेते शरणं गते"ति।
ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.8 नवसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

अच्छे और विद्वान शिक्षक का चयन करना।

अंतर्वस्तु
12.8 नवसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.8 नवसुत्त
अनुवाद
1. मनुष्य को उसी की उपासना करनी चाहिए जिससे वह धम्म सीखता है, जैसे देवता इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा) की उपासना करते हैं; विद्वान व्यक्ति, जिसकी उपासना की जाती है और जो उससे प्रसन्न होता है, वह (सर्वोच्च) धम्म को प्रकट करता है। (318)

2. उस (धम्म) को सुनकर और उस पर विचार करके, जो बुद्धिमान व्यक्ति (सर्वोच्च) धम्म के अनुरूप धम्म का अभ्यास करता है, वह ऐसे (विद्वान शिक्षक) के साथ लगन से रहकर विद्वान, कुशल और निपुण हो जाता है। (319)

3. जो व्यक्ति किसी नीच (शिक्षक), मूर्ख (जिसने अर्थ नहीं समझा है) और ईर्ष्यालु (ईर्ष्यालु) की सेवा करता है, वह संदेह पर विजय प्राप्त किए बिना और धम्म को समझे बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। (320)

4. जैसे कोई व्यक्ति नदी में उतरने के बाद, जो तीव्र धारा वाली मैली नदी है, धारा के साथ बहता चला जाता है, तो वह दूसरों को कैसे पार करा पाएगा? (321)

5. फिर भी, जो व्यक्ति धम्म को नहीं समझता, विद्वानों की व्याख्या पर ध्यान नहीं देता, स्वयं उसे नहीं जानता, और संदेह को दूर नहीं कर पाता, वह दूसरों को कैसे समझा सकता है? (322)

6. जैसे कोई व्यक्ति पतवार और चप्पू से सुसज्जित एक मजबूत जहाज पर सवार होकर, मार्ग जानकर और कुशल एवं विचारशील होकर, कई अन्य लोगों को पार कराता है, (323)

7. उसी प्रकार, जो सिद्ध, सुसंस्कृत, विद्वान और निडर है, वह स्वयं धम्म को जानकर, ध्यान और परिश्रम से संपन्न अन्य लोगों को धम्म समझाता है। (324)

8. अतः वास्तव में, व्यक्ति को एक अच्छे, बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति की संगति करनी चाहिए; जो व्यक्ति नियमित जीवन व्यतीत करता है, जिसने अच्छाई को समझा है और धम्म में पारंगत हुआ है, उसे सुख प्राप्त होगा। (325)

नवसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. नवासुत्तं
318.
यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजन्या, इंदव नं देवता पूज्येय;
तो पूजितो तस्मि पसन्नचित्तो, बहुसुतो पाटुकरोति धम्मं।
319.
तदतिथिकत्वन निसम्मा धीरो, धम्मनुधम्मं पतिपज्जमानो;

विण्णु विभावि निपुणो च होति, यो तदिसं भजति अप्पमत्तो।
320.
ख़ुदादंच बलं उपसेवामानो, अनागतत्थान्च उसुयंकाच;
इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिन्नकंखो मरणं उपेति।
321.
यथा नरो अपागमोत्रित्वा, महोदकं सलिलं सिंहसोतम्;
सो वुयहमानो अनुसोतागामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुम्।
322.
तथेव धम्मं अविभावयित्वा, बहुसुतानं अनिसामयत्थम्;
सयं अजानं अवितीनकंखो, किं सो परे सक्खति निज्जपेतुं।
323.
यथापि नवं दहमारुहित्वा, फियेना [पियेना (सि. स्या.)] रित्तेन समांगिभूतो;
तो तारये तथा बहुपि अण्णे, तत्रूपायनु कुसालो मुतिमा [मतिमा (स्या. का.)]।
324.
एवमपि यो वेदागु भावितत्तो, बहुसुतो होति अवेधाधम्मो;
सो खो पारे निज्झपाये पजानं, सोतावधनुपनीसुपापन्ने।
325.
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथा, मेधाविनान्सेवा बहुसुतान्चा;
अन्नया अत्थं पतिपज्जमानो, विनाताधम्मो स सुखं [सो सुखं (सि.)] लभेथति।
नवासुत्तं अठहमं नियतं।

पाली-देवनागरी
8. नावसुत्तं
318.
यस्मा हि धम्मं पुरिसो विज्ञान, इंदव नं देवता पूजयेय।
सो पूजितो तस्मि पस संज्ञाचित्तो, बहुसुतो पटुकरोति धम्मं॥
311.
तदट्ठिकत्वं निसम्म धीरो, धम्मनुधम्मं पतिपजदजमानो।
विञ्जु विभावी नक्षत्रो च होति, यो तदिसं भजति अप्पमत्तो॥
32.
कुद्दञ्च बलं उपसेवमानो, अनागतत्थञ्च उसुयक्ञ्च।
इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिन्नको मरणं उपेति॥
320.
यथा नरो आपगमोतरित्वा, महोदकं सलिलं सीघसोतं।
सो वुयहमानो अनुसोतगामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुं॥
3.
तथेव धम्मं अविभावयित्वा, बहुसुतानं अनिसामयथं।
सयं अजानं अवितिन्नकङ्खो, किं सो परे सक्खति निज्झपेतुं॥
3
यथापि नावं दळ्हामारुहित्वा, फियेन [पियेन (सी० स्या०)] ऋत्तेन समङ्गीभूतो।
सो तारये तथा बहुपि अञ्चे, तत्रूपयञ्जु कुसलो मुतीमा [मतिमा (स्या० क०)]॥
3/4.
एवमपि यो वेदगु भावितत्तो, बहुसुतो होति अवेधधम्मो।
सो खो परे निजझपये पजानं, सोतावधनुपनीसुपपनदने॥
322.
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ, मेधाविञ्चेव बहुसुसुतञ्च।
अञ्जन्या अत्थं पतीपज्जमानो, विञ्जनात्धम्मो स सुखं [सो सुखं (सी०)] लभेथाति॥
नावसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

सर्वोच्च कल्याण कैसे प्राप्त करें।

अंतर्वस्तु
12.9 किम्सिलासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.9 किम्सिलासुट्टा
अनुवाद
1. किस सद्‌गुण, किस आचरण और किन कर्मों से मनुष्य (आदेशों में) पूर्णतः स्थापित होगा और सर्वोच्च लाभ प्राप्त करेगा? (326)

2. उसे बड़ों का आदर करना चाहिए, ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, उसे अपने गुरुओं से मिलने का (उचित) समय जानना चाहिए, उसे उनके धर्म प्रवचनों को सुनने का (उचित) क्षण जानना चाहिए, उसे उनके सुविचारित वचनों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। (327)

3. उसे उचित समय पर अपने गुरुओं के समक्ष जाना चाहिए, उसे हठधर्मिता का त्याग करके विनम्र होना चाहिए, उसे अच्छे गुणों, धर्म, आत्मसंयम और ब्रह्मचर्य का स्मरण और अभ्यास करना चाहिए। (328)

4. उसका आनंद धर्म में होना चाहिए, उसे धर्म में प्रसन्न होना चाहिए, उसे धर्म में दृढ़ रहना चाहिए, उसे धर्म की खोज कैसे करनी है यह जानना चाहिए, उसे धर्म को दूषित करने वाला कोई विवाद नहीं उठाना चाहिए, और उसे अपना समय सुविचारित सत्यों का उच्चारण करने में व्यतीत करना चाहिए। (329)

5. हास्यास्पद बातों, विलाप, भ्रष्टाचार, छल, पाखंड, लोभ और अहंकार, शोर-शराबा और कठोरता, दुराचार और मूर्खता का त्याग करके, उसे मोह से मुक्त होकर स्थिर मन से जीवन व्यतीत करना चाहिए। (330)

6. जिन शब्दों का सार समझा जाता है, वे सुगठित होते हैं, और जो सुना जाता है, यदि समझा जाए, तो उसमें ध्यानमग्नता का सार होता है, परन्तु जो व्यक्ति उतावला और आलसी है, उसका पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक बोध) और ज्ञान नहीं बढ़ता। (331)

7. जो अरहतों (प्रबुद्धों) द्वारा घोषित धम्म में आनंदित होते हैं, वे वाणी, मन और कर्म में अतुलनीय होते हैं, वे शांति, कोमलता और ध्यान में स्थापित होते हैं, और उन्होंने ज्ञान और पन्ना (प्रत्यक्ष बोध) का सार प्राप्त कर लिया होता है। (332)

किमसिलसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
9. किंसीलासुत्तं
326.
"किंसिलो किंसमाचारो, कानि कम्मनि ब्रुहयं;
नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थान्च पापुने"।
327.
"वुधापकाय अनुसूयाको सिया, कालान्नु [कालान्नु (सि. स्या.)] कसा गरुणं [गरुणं (सि.)] दस्सनाय;

धम्मिं कथं एरायितं खनान्नु, सुनेय्य सक्कच्च शुभसितानि।
328.
"कालेन गच्छे गरुणं सकासं, थंभं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) नि + आ + कारा + त्वा] निवातवुति;
अत्थं धम्मं संयमं ब्रह्मचर्यं, अनुस्सरे सेवा समाचरे च।
329.
"धम्मरामो धम्मरतो, धम्मे ठितो धम्मविनिच्चयान्नु;
नेवाकेरे धम्मसंदोसवादं, तच्चेहि नियथा शुभसिते।
330.
"हस्सां जपं परिदेवं पदोसं, मायाकटं कुहनं गिद्धि मननं;
सरंभं कक्कसं कसावञ्च मुच्चं [सरंभा कक्कस कसाव मुच्चं (स्या. पि.)], हित्वा केयर वितमदो थित्तत्तो।
331.
"विन्यात्सारणि सुभाषितानि, सुताञ्च विनात्सामधिसारं;
न तस्स पन्ना च सुताञ्च वन्धति, यो सहसो होति नरो पमत्तो।
332.
"धम्मे च ये अरियापवेदिते रता,
अनुत्तारा ते वाचसा मनसा कम्मुना च;
ते शांतिसोरक्कासमाधिसंहिता,
सुतस्सा पनन्या च सरमज्जगु'ति।
किंसिलसुत्तं नवमं नियतं।

पाली-देवनागरी
9. किन्सिलसुत्तं
3.
"किन्सिलो किंसमाचारो, कानि कम्मनि ब्रूह्यं।
नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थान्च पापुने"॥
3
"वुन्नापचायि अनुसूयको सिया, कालञ्जु [कालञ्जु (सी० स्या०)] च्स गरुणं [गरुणं (सी०)] दस्सनाय।
धम्मिं कथं एरयितं खंड्नु, सुनेय स स्ट्रोकचच सुभासितानि॥
3
"कालेन गच्छे गुरुणं सकासं, थंभं निरंकत्वा [निरक्त्वा (?) नि + आ + कर + त्वा] निवात्वुति।
अथं धम्मं संयमं ब्रह्मचर्यं, अनुस्रे चैव समाचरे च॥
3
"धम्मरामो धम्मर्तो, धम्मे ठितो धम्मविनिचयञ्चु।
नेवाचेरे धम्मसनदोस्वदं, तच्छेहि नियेत् सुभासितेहि॥
350.
"हसं जप्पं परिदेवं पडोसं, मायाकटं कुहनं गिद्धि मनं।
सारंभं कक्रोकस कसाव मुच्छं (स्या० पी०)], हित्वा चरे वीतमदो थितत्तो॥
3
"विज्ञात्सराणि शुभसितानि, सुतञ्च विज्ञात्ससमाधिसारं।
न तस्स पञ्चा च सुतञ्च वन्नति, यो साहसिको होति नरो पमत्तो॥
3 पूर्व।
"धम्मे च ये आर्यपवेदिते रता,
अनुत्तरा ते वाचसा मनसा कम्मुना च।
ते शांतिसोरचदचसमाधिसंथिता,
सुतस्स पञ्चयाय च सारमज्ज्गु"ति॥
किंसिलसुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.10 उत्थानसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

उदासीन और आलसी नहीं होना चाहिए।

अंतर्वस्तु

12.10 उत्थानसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.10 उत्थानसूत्र

अनुवाद

1. उठो, बैठो, सोने का क्या लाभ? जो बीमार हैं, पीड़ा के तीर से ग्रस्त हैं और कष्ट भोग रहे हैं, उनके लिए नींद का क्या अर्थ? (333)

2. उठो, बैठो, शांति के लिए दृढ़ता से सीखो, मृत्यु के राजा को तुम्हें आलसी (पमत्त) जानकर मूर्ख न बनाने दो और तुम्हें अपने वश में न करने दो। (334)

3. उस इच्छा पर विजय प्राप्त करो जिसके लिए देवता और मनुष्य तरसते हैं और जिस पर निर्भर हैं, (उचित) क्षण को अपने हाथ से न जाने दो; क्योंकि जिन्होंने (उचित) क्षण को जाने दिया है, वे नरक में जाने पर पछताएंगे। (335)

4. आलस्य (पमद) अपवित्रता है, निरंतर आलस्य अपवित्रता है; गंभीरता (पप्पमद) और ज्ञान से अपने तीर को निकाल लो। (336)

उत्थानसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

10. उत्थानासुत्तं

333.

उठहत्था निसीदथ, को अत्थो सुपीतेन वो;
अतुरानान्हि का निद्दा, सल्लविद्धाना रुप्पतम्।

334.

उत्थहत्था निसिदथ, दधं सिक्खथा संतिया;
मा वो पमत्ते विन्याय, मक्कुराजा अमोहयित्था वसनुगे।

335.

याया देवा मनुस्सा च, सीता तिष्ठन्ति अथिका;
ताराथेतम विसात्तिकं, खानो वो [खाणो वे (पी. का.)] मा उपाकागा;
खनातिता हि सोकन्ति, निरायमहि संप्पिता।

336.

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो;
अप्पामादेन विजया, अब्बाहे [अब्बुहे (स्या. पि.), अब्बुहे (का. अट्ठा.)] सल्लमट्टनोति।
उत्थानसुत्तं दशमं निहितम्।

पाली-देवनागरी

दस. उट्ठानसुत्तं

3

उट्ठहत्थ निसीदथ, को अत्थो सुपितेन वो।
आतुरनन्हि का निदा, सल्लविद्धान रुप्पतं॥
3
उट्ठहत्थ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ संतिया।
मा वो पमत्ते विञ्जाय, मच्छचुराजा अमोहयित्थ वसानुगे॥
3.
याय देवा मनुषा च, सीता तिट्ठन्ति अथिका।
तर्थेतं विशत्तिकं, खणो वो [खणो वे (पी० क०)] मा उपचचगा।
खनतिता हि सोचन्ति, निरयम्हि संप्पिता॥
36.
पमादो रजो पमादो, पमादनुपतितो रजो।
अप्पमादेन विजजाय, अब्भे [अ उबौल्हे (स्या० पी०), अब्बुहे (क० अट्ठ०)] सल्लमत्तनोति॥
उत्थानसुत्तं दसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.11 राहुलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

बुद्ध ने राहुल को संन्यासी का जीवन जीने की सलाह दी और उन्हें संसार से अपना मन हटाने और संयमी रहने का उपदेश दिया।

अंतर्वस्तु
12.11 राहुलसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.11 राहुलसूत्र
अनुवाद
1. भगवान बुद्ध ने कहा: 'क्या तुम ज्ञानी पुरुष के साथ निरंतर रहने से उसका तिरस्कार नहीं करते? क्या तुम उसे सम्मान देते हो जो मानव जाति के लिए प्रकाशमान है?' (337)

2. राहुल ने कहा: 'मैं ज्ञानी पुरुष के साथ निरंतर रहने से उसका तिरस्कार नहीं करता; जो मानव जाति के लिए प्रकाशमान है, मैं उसे सदा सम्मान देता हूँ।' (338)

वत्थुगत ने कहा: 3. भगवान बुद्ध ने कहा: 'पाँच इंद्रियों के विषयों, सुंदर और आकर्षक वस्तुओं का त्याग करके, श्रद्धापूर्वक अपने घर से निकलकर, तुम दुखों का अंत करते हो।' (339)

4. 'गुणी मित्रों की संगति करो और एकांत और शांत, दूर निवास स्थान में रहो; भोजन में संयम बरतो।' (340)

5. 'वस्त्र, भिक्षा, बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएँ, निवास स्थान—इन चीजों के लिए लोभ मत करो, ताकि तुम फिर से संसार में न लौटो।' (341)

6. 'पतिमोक्का (विनय उपदेशों) के अनुसार वश में रहो, और पाँचों इंद्रियों के संबंध में, अपने शरीर के प्रति सजग रहो, और संसार से घृणा रखो। (342)

7. 'कारणों (जो परिणाम उत्पन्न करते हैं) से बचो, जो सुखदायक हो और वासना से युक्त हो, अपने मन को शांत और एकाग्र रखो। (343)

8. 'अकारण का प्रेम करो, अभिमान की प्रवृत्तियों को त्याग दो; तब अभिमान का नाश करके तुम शांत रहोगे।' (344)

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल को इन श्लोकों से बार-बार उपदेश दिया।

राहुलसूत्र समाप्त होता है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. राहुलसुत्तं
337.
"काच्चि अभिनहासनवास, नवजानासि पण्डितम्;
उक्काधारो [ओक्काधारो (स्या. का.)] मनुस्नानं, कच्चि अपासिटो तया" [तव (सि. अट्ठा.)]।
338.
"नाहं अभिन्हांसवास, अवजानामि पण्डितम्;
उक्काधारो मनुस्नानं, निक्कं अपासिटो मया"।
339.
"पञ्च कामगुणे हित्वा, पियारूपे मनोरमे;
सद्ध्या घरा निक्खम्मा, दुक्खस्सन्तकारो भव।
340.
"मित्ते भजस्सु कल्याणेन, पन्तञ्च सयानासनं;
विवित्तं अप्पनिघ्घोषं, मत्तान्नु होहि भोजने।
341.
"Cīvare piṇḍapāte ca, paccaye sayanāsane;
एतेसु तंहं मकासि, मा लोकं पुनरागामी।
342.
"संवुतो पतिमोक्खस्मिं, इंद्रियेसु च पंचासु;
सति कायगतात्यत्थु, निब्बिदबाहुलो भव।
343.
"निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रघुपासंहितां;
असुभय चित्तं भवेहि, एकग्गं सुसमाहितं।
344.
"अनिमित्तञ्च भवेहि, मननुस्यामुज्जहा;
ततो मनाभिसमय, उपसंतो कैरिसति'ति।
इत्थं सुदां भगव अयस्मान्तं रहुलं इमाही गाथाहि अभिन्हां ओवदति।
राहुलसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. राहुलसुत्तं
3
"कच्चि अभिनहसंवासा, नावजानासि पण्डितं।
उक्राकाधारो [ओ अत्रकाधारो (स्या० क०)] मनुस्साणं, कचच्चि अपचितो तया" [तव (सी० अट्ठ०)]॥
3 सौ
"नहं अभिनःवाससा, अवजानामि पण्डितं।
उक्रकाधारो मनुस्सानं, निच्चचं अपचितो मया"॥
3
"पञ्च कामगुणे हित्वा, प्रियरूपे मनोरमे।"

साधय घर निखम्म, दुक्खससंतकरो भव॥
3 40.
"मित्ते भजस्सु कल्याणे, पन्तञ्च सयनासनं।"
विवित्तं अप्पनिगघोसं, मत्तञ्चु होहि भोजने॥
3.
"चिवरे पिण्डपते च, पंचचये सयनासने।
एतेसु तंहं मकासि, मा लोकं पुनरागि्म॥
3.
"संवुतो पतिमोखस्मिं, इंद्रयेसु च पञ्चसु।
सति कायगतात्यथु, निब्बिदबुलो भव॥
3
"निमित्तं परिवजदजेहि, सुभं रागूपसंघितं।
असुभय चित्तं भवेहि, एकग्गं सुसमाहितं॥
3 40.
"अनिमित्तञ्च भवेहि, मानानुस्यामुज्ज़ः।
ततो मानाभिसमया, उपसंतो चरिस्सति"ति।
इत्थं सुदं भगव इस्मन्तं राहुलं इमाहि गाथाहि अभिनहं ओवदतीति।
राहुलसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.12 वंगिससुत्त (निग्रोधकप्पसुत्त)
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

वांगिसा निग्रोधकप्पा के भाग्य के बारे में जानना चाहता है, कि क्या वह पूरी तरह से नष्ट हो गया है, या क्या उसका कुछ अंश अभी भी शेष है। बुद्ध उसे उत्तर देते हैं।

अंतर्वस्तु

12.12 वंगीससुत्त (निग्रोधकप्पसुत्त)
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.12 वंगीससुत्त (निग्रोधकप्पसुत्त)
अनुवाद
मुझे यह बात सुनाई दी:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) अलावी में अग्गलावा मंदिर में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वंगीसा के गुरु, थेरा (वरिष्ठ भिक्षु), निग्रोधकप्पा ने ध्यान करते हुए अमर निर्वाण (अचिरपरिनिभूत) प्राप्त कर लिया था। तब ध्यान करते हुए पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया:

क्या मेरे गुरु ने निर्वाण (परिनिभूत) प्राप्त किया या नहीं? तब शाम के समय, वंगीसा अपने विश्राम से उठकर भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और उन्हें प्रणाम करने के बाद अलग बैठ गए। अलग बैठकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'हे प्रभु, ध्यान करते हुए मेरे मन में यह विचार आया: क्या मेरे गुरु ने निर्वाण प्राप्त किया या नहीं?'

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठकर, अपना वस्त्र एक कंधे पर डालकर और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर, उन्हें श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हम उत्कृष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) के स्वामी से प्रार्थना करते हैं: जिन्होंने इस संसार में संदेह को दूर किया, अग्गलावा में एक भिक्षु (भिक्षु) के रूप में प्राण त्यागे, जो सुप्रसिद्ध, प्रसिद्ध और शांत मन के थे। (345)

2. 'हे भगवान (बुद्ध) आपने ही उस ब्राह्मण को "निग्रोधकप्पा" नाम दिया था; वह मोक्ष की कामना करते हुए, बलवान होकर और निर्वाण (अमरता) को प्राप्त करते हुए आपकी उपासना करते हुए विचरण करते थे। (346)

3. 'हे शाक्यमुनि (बुद्ध), सर्वदर्शी, हम सभी इस शिष्य के बारे में (कुछ) जानना चाहते हैं; हमारे कान सुनने के लिए तत्पर हैं, आप हमारे गुरु हैं, आप अतुलनीय हैं। (347)

4. 'हमारे संदेह को दूर करो, मुझे उनके बारे में बताओ, हमें निर्वाण (मुक्ति) का ज्ञान दो, हे महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले; हमारे बीच बोलो, हे सर्वदर्शी, जैसे हजार नेत्रों वाले सक्का देवताओं के बीच बोलते हैं। (348)

5. 'इस संसार में जो भी बंधन हैं जो अज्ञान के साथ मिलकर मूर्खता का मार्ग बनाते हैं और संदेह का स्थान लेते हैं, वे तथागत (बुद्ध) के सामने अस्तित्वहीन हैं, क्योंकि वे मनुष्यों की सर्वश्रेष्ठ आँख हैं। (349)

6. 'यदि कोई व्यक्ति पाप को हवा की तरह (बादलों के समूह को) हमेशा के लिए दूर नहीं करता है, तो सारा संसार अंधकार में डूब जाएगा, यहाँ तक कि प्रख्यात पुरुष भी प्रकाशमान नहीं होंगे। (350)

7. 'बुद्धिमान पुरुष प्रकाश लाने वाले होते हैं, इसलिए, हे बुद्धिमान, मैं तुम्हें ऐसा ही मानता हूँ; हम उनके पास आए हैं जो विपस्सना (स्व-मग्न विपस्सना ध्यान) का अभ्यास करते हैं, सभा में हमें कल्प प्रकट कीजिए। (351)

8. 'हे सुंदर, जल्दी उठो, हंसों की तरह अपनी सुंदर आवाज को ऊपर उठाओ, मधुर और सुरीली आवाज में गाओ; हम सब तुम्हें ध्यान से सुनेंगे। (352)

9. 'मैंने उस व्यक्ति से पूर्णतः प्रार्थना की है जिसने जन्म-मृत्यु का पूर्णतः त्याग कर पाप से मुक्ति पा ली है, और मैं उससे धर्म का प्रचार करवाऊँगा, क्योंकि साधारण लोग अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते, परन्तु तथागत (बुद्ध) उद्देश्यपूर्ण कर्म करते हैं। (353)

10. 'हे पूर्णतः ज्ञानी, आपके द्वारा दी गई यह पूर्ण व्याख्या स्वीकार्य है; हे परम बुद्धि वाले, (कप्पा के पुनर्जन्म को जानने वाले), हाथों का यह अंतिम आलिंगन उचित है; हमें भ्रमित न करें। (354)

11. 'आर्यों (प्रबुद्धों) के धर्म को पूर्णतः समझ लेने वाले, हे अतुलनीय शक्ति वाले, (सब कुछ जानने वाले), हमें भ्रमित न करें; जैसे तपती गर्मी में जल की तृप्ति से व्याकुल व्यक्ति को जल की लालसा होती है, वैसे ही मुझे आपके वचनों की लालसा है; ज्ञान की वर्षा करें।' (355)

12. 'कप्पयान ने जो पूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया, क्या वह व्यर्थ नहीं गया? क्या उनका अस्तित्व (पूर्णतः) समाप्त हो गया? या क्या उनमें अभी भी अस्तित्व के कुछ अंश शेष हैं? वे कैसे मुक्त हुए, यह हम जानना चाहते हैं।' (356)

13. भगवान (भगवान बुद्ध): 'उन्होंने इस संसार में नाम और रूप की इच्छा का त्याग कर दिया,' - ऐसा भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'कान्हा (अर्थात् मारा) की धारा का लंबे समय तक अनुसरण करके, उन्होंने जन्म और मृत्यु को पूर्णतः पार कर लिया,' ऐसा भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, जो पांचों (ब्राह्मणों, पंचवग्गीय) में श्रेष्ठ हैं।' (357)

14. वंगीसा: 'हे इसिस में श्रेष्ठ, आपका वचन सुनकर मैं प्रसन्न हूँ; मैंने व्यर्थ नहीं पूछा, ब्राह्मण ने मुझे धोखा नहीं दिया।' (358)

15. 'जैसा उन्होंने कहा, वैसा ही उन्होंने किया; वे बुद्ध के सच्चे शिष्य थे; उन्होंने छलपूर्ण मृत्यु के फैले हुए मजबूत जाल को काट डाला। (359)

16. 'हे भगवान (बुद्ध) कप्पिया (कप्पयान) ने आसक्ति का आरंभ देखा; कप्पयान ने वास्तव में मृत्यु के क्षेत्र को पार कर लिया, जिसे पार करना बहुत कठिन है।' (360)

वंगीससुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. निग्रोधकप्पसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव आडवियां विहारति अग्गाडवे चेतिये। तेना खो पना समयेन अयस्मातो वांगीसस्सा उपज्झायो निग्रोधकप्पो नामा थेरो अग्गावे सेतिये असिरपरिनिब्बुतो होति। अथा खो अयस्मातो वांगीसस्सा रहोगेत्स्सा पतिसलिनस्स एवम् चेतासो परिवितक्को उदापदी - "परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति? अथ खो अयस्मा वांगिसो सयानहसामयं पतिसल्लाना वुथितो येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो अयस्मा वांगिसो भगवन्तं एतदावोका - "इधा मयहं, भंते, रहोगात्स्सा पतिसलिनस्स एवं चेतासो परिवितक्को उदापदी - 'परिनिब्बुतो नु खो मी उपज्झायो, उदाहु नो परिनाबुतो'"ति. अथ खो अयस्मा वंगिसो उत्थयासन एकांश शिवरं कत्वा येन भगव तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
345.
"पुच्चामा [पुच्चामि (का.)] सत्थारमणोमपन्नं, दिट्ठेवा धम्मे यो विकिच्चानं चेत्ता;
अग्गावे कालमकसि भिक्खु, नातो यस्सि अभिनिब्बुत्तो।
346.
"निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तयं कटं भगव ब्राह्मणस्स;
तो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, अरद्धवीरियो दधधम्मदस्सी।
347.
"तं सवाकं शाक्य [सक्का (सि. स्या. पि.)] मायामपि सब्बे, अनानातुमिच्चामा समंतचक्कु;
समावथिता नो सावनाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि।
348.
"चिन्देव नो विचिकीच्चं ब्रूहि मेतं, परिणिब्बुतं वेदया भूरिपन;
मज्झेवा [मज्ज्हे च (स्या. का.)] नो भासा सामंतचक्खु, सक्कोवा देवाना सहस्सनेत्तो।
349.
"ये केचि गंथा इधा मोहमग्गा, अण्णानपक्खा विचिकिचचाना;
तथागतं पट्वा न ते भवन्ति, चक्खुनि एतं परमं नाराणं।
350.
"नहीं सीई हि जातु पुरिसो किलिसे, वातो यथा अब्भधनं विहने;
तमोवस्सा निवुतो सब्बलोको, न जोतिमन्तोपि नारा तपेयुं।
351.
"धीरा च पज्जोत्कारा भवन्ति, तं तं अहं वीरा [धीरा (सि. स्या.)] तथेव मन्ने;
विपश्यिनं जनमुपगमुम्हा [जनमुपगम्हा (सि. स्या.)], परिसासु नो अविकारोहि कप्पं।
352.
"हिप्पां गिरं एराया वग्गु वग्गुं, हंसोवा पग्गयहा सैनिकं [सैणि (स्या. पि.)] निकुजा;
बिंदुस्सेरेण सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगत सुनोमा।
353.
"पहिनाजतिमरणं असेसं, निग-गय धोनं [धोतं (सि.)] वदेस्सामि धम्मं;
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, संखेय्यकारो च [संखय्यकारोवा (का.)] तथागतानं।
354.
"सम्पन्नवेय्याकारणं तवेदं, समुज्जुपन्नस्स [समुज्जपन्नस्स (स्या. का.)] समुग्गहितं;
अयमंजलि पच्चिमो सुप्पनामितो, मा मोहयि जन्मनोमपन्न।
355.
"परोवरं [वरवरं (कत्थचि)] अरियाधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जन्मनोमावीरा;
वारिं यथा घम्मानि घम्मतत्तो, वाचभिकंखामि सुतं पवस्सा [सुतस्स वस्सा (स्या.)]।

356.
" यदत्तिकं [यदत्तियं (पी.), यदत्तिथं (का.)] ब्रह्मचर्यं अचरि, कप्पायनो कसीसीसा तं अमोघं;
निब्बयि सो अदु सौपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुनोमा"।
357.
"अच्चेच्चि [अचेज्जि (का.)] तन्हां इधा नामरूपे, (इति भगव)
कान्हास्सा [तन्हाय (का.)] सोतं दीघरत्तनुसायितम्;
अतरि जातिं मरणं असेसं,"
इक्काब्रवी भगव पञ्कासेठो।
358.
"एसा सुत्वा पसीदामि, वाको ते इसिसत्तमा;
अमोघं किरा मे पुथं, न मम वांसेसि ब्राह्मणो।
359.
"यथावादी तथाकारी, अहु बुद्धस्स सावको;
अच्चिदा मैकुनो जालं, ततं मायाविनो दहहं।
360.
"अद्दासा भगव आदिम, उपादानस्सा कप्पियो;
अच्चगा वात कप्पायनो, मक्कुधेयं सुदत्तरा'न्ति।
निग्रोधकप्पसुत्तं द्वादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
12. निग्रोधकप्पसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव आळवियां विहारति अग्गाळवे चेतये। तेन खो पन समयेन इस्मतो वङ्गीसस्स उपज्झायो निग्रोधकप्पो नाम थेरो अग्गाळवे चेतये अचिरपरिनिब्बुतो होति। अथ खो इस्मतो वङ्गिस्सस्स रोकगतस्स पैटिसलीनस्स एवं चेतसो परिविती उदपदी - "परिनिब्बुतो नू खो मे बिज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति? अथ खो इस्मा वाङ्गिसो सायन्हसाम्यं पतिसलदलाना वुत्थितो येन भगवा तेनुपसङ्कमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसि साइनो खो इस्मा वङ्गीसो भगवन्तं एतदवोच - "इध म्यहं, भंते, रहोगतस्स पेटिसलडलेनस्स एवं चेतसो परिवित ट्रैक्टको उदपादि - 'परिनिब्बुतो नू खो मे विजझायो, उदाहु नो परिण्बुतो'"ति। अथ खो इस्मा वङ्गिसो उत्थयासना एकंसां चीवरं कत्वा येन भगव तेनदजलिं पनामेत्वा भगवन्तं पुराणाय अज्झासि -
3 44.
"पुच्च्म् [पुच्चामि (क०)] सत्थर्मनोमपञ्चं, दित्थेव धम्मे यो विचिकिच्छानं चेत्ता।
अग्गाळवे कालमकासि भिक्खु, नातो यस्सी अभिनिब्बुतत्तो॥
3
"निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तयं कतं भगव ब्राह्मणस्स।
सो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, अर्धविरियो दळ्हम्मदस्सी॥
3
"तं सावकं सक्य [सक्रक (सी० स्या० पी०)] मयमपि सब्बे, अञ्चतुमिच्छम समन्तचक्खु।
समवट्ठिता नो सवनाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि॥
3.
"छिन्देव नो विचिचिचं ब्रूहि मेतं, परिणिब्बुतं वेद्य भूरिपञ्च।
मझेव [मज्झे च (स्या० क०)] नो भास समन्तचक्खु, सकोव देवन सहस्सनेत्तो॥
3.
"ये केचि गंथा इध मोहमग्गा, अंजानपक्खा विचिकिच्छठाना।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुञ्हि एतं परमं नाराणं॥
3.
"नो चे हि जातु पुरिसो फोर्टसे, वातो यथा अभिधानं विहाणे।
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, न ज्योतिमन्तोपि नरा तपेयुं॥
3.
"धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं वीर [धीर (सी० स्या०)] तथेव मञ्चे।
विपस्सिनं जनमुपागमुम्हा [जन्मुपगम्म्हा (सी० स्या०)], परिसासु नो अविक्रोहि कप्पं॥

3.
"हिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गयह सैनिकं [सानं (स्या० पी०)] निकुज।
बिन्दुसरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्दजुगता सुनोम॥
3.
" पहिने जातिमरणं असेसं, निग्गयः धोणं [धोतं (सी०)] वदेस्सामि धम्मं।
न कामकारो हि पुथुजजनानं, सङ्खेय्यकारो च [सङ्खय्यकारोव (क०)] तथागतानं॥
3 44.
"सम्प संज्ञावेयकरणं तवेदं, समुज्जुपञ्चस्स [समुजदजपञ्चस्स (स्या० क०)] समुग्हितं।
अयमञ्जलि पछिमो सुप्पनमितो, मा मोहि जन्मनोमपञ्च।
35.
"परोवरं [वरवरं (कत्थचि)] अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जन्मनोमवीर।
वारिं यथा घम्मनि घम्मत्तत्तो, वाचाभिकङखामि सुतं पवस्स [सुतस्स वस्स (स्या०)]॥
3 डॉलर
"यदथिकं [यदथ्यं (पी०), यदत्थितं (क०)] ब्रह्मचर्यं आचार्य, कप्पयणो कच्छचिस्स तं अमोघं।
निब्बायि सो अदु सुउपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुनोम॥
3.
"अच्छेच्छि [अच्छेज्जी (क०)] तंहं इध नामरूपे, (इति भगवान)
कन्हस्स [तन्हाय (क०)] सोतं दीर्घर्तानुसयितं।
अतरि जातिं मरणं असेसं,"
इचदचब्रवी भगवा पञ्चसेत्थो॥
3वीं.
"अस सुत्वा पसीदामि, वाचो ते इसिसत्तम।
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो॥
3 इश्यू.
"यथावादी तथाकारी, आहु बुद्धस्स सावको।
अच्छिदा मचचुनो जलं, ततं मायाविनो दळहं॥
3-.
"अद्दसा भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो।"
अचदचगा वत कप्पयणो, मच्छुधेयं सुदुत्तर"न्ति॥
निग्रोधकप्पसुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 2.13 सम्मपरिब्बाजनियासुत्त,
वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला

____

भिक्षु के लिए सही मार्ग।

____

अंतर्वस्तु
12.13 सम्मपरिब्बाजनीयसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
2.13 सम्मपरिब्बाजनीयसूत्र
अनुवाद

1. 'हम महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले मुनि (संत) से पूछेंगे, जो पार कर चुके हैं, दूसरे तट पर जा चुके हैं, निर्वाण (परिनिभूत, निर्वाण, मोक्ष, अमरता) प्राप्त कर चुके हैं और दृढ़ मन वाले हैं: एक भिक्षु अपने घर से निकलकर और कामवासनाओं को त्यागकर संसार में सही ढंग से कैसे विचरण करता है?' (361)

2. 'जिसके शकुन, उल्कापिंड, स्वप्न और संकेतों के विश्वास नष्ट हो जाते हैं,' - भगवान बुद्ध ने कहा - - 'ऐसा भिक्षु जिसने पापी शकुनों का त्याग कर दिया है, संसार में सही ढंग से विचरण करता है।' (362)

3. 'भिक्षु को मानवीय और दिव्य सुखों के प्रति अपनी आसक्ति को वश में करना चाहिए, फिर भौतिक अस्तित्व से ऊपर उठकर और धम्म (सत्य) को समझकर, ऐसा व्यक्ति संसार में सही ढंग से विचरण करेगा।' (363)

4. 'भिक्षु निंदा और क्रोध को त्यागकर, लोभ का त्याग कर और आज्ञाकारिता और विरोध से मुक्त होकर संसार में सही मार्ग पर चले, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (364)

5. 'जो व्यक्ति सुख और दुख दोनों को त्यागकर, किसी भी चीज का आलिंगन न करके, हर तरह से स्वतंत्र और बंधनों से मुक्त हो, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (365)

6. 'जो उपाधियों में कोई सार नहीं देखता, आसक्ति की इच्छा और जुनून को वश में करके, स्वतंत्र होकर और दूसरों के द्वारा निर्देशित न होकर, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (366)

7. 'जो व्यक्ति वचन, विचार या कर्म से किसी का विरोध नहीं करता, जो धम्म को पूर्णतः समझकर निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अवस्था की कामना करता है, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (367)

8. जो यह सोचकर कि "वह मुझे प्रणाम करता है" अभिमानी नहीं होता, जो भिक्षु अपमान सहकर भी उस पर चिंतन नहीं करता, और दूसरों से भोजन ग्रहण करके भी अभिमानी नहीं होता, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (368)

9. जो भिक्षु लोभ और अस्तित्व को त्यागकर दूसरों को काटने-बांधने से विरक्त होता है, जिसने संशय पर विजय प्राप्त कर ली है और पीड़ा रहित है, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (369)

10. और अपने लिए उचित आचरण को जानकर, जो भिक्षु धम्म (सत्य) को भली-भांति समझकर संसार में किसी को हानि नहीं पहुंचाता, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (370)

11. 'जिसके मन में कोई भी भावना न हो, जिसके पाप जड़ से उखड़ गए हों, जो इच्छा से मुक्त हो और किसी भी चीज़ की लालसा न रखता हो, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (371)

12. 'जिसकी वासनाएं नष्ट हो गई हों, जो अहंकार से मुक्त हो, जिसने वासना के सभी मार्गों पर विजय प्राप्त कर ली हो, जो वश में हो, पूर्णतः सुखी (परिनिब्भुत) हो और दृढ़ मन का हो, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (372)

13. 'ज्ञान से परिपूर्ण, निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को देखने वाला, बासठ दार्शनिक मतों के पक्षधरों में से किसी का पक्षधर न होने वाला, लोभ और क्रोध पर विजय प्राप्त कर बुद्धिमान व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (373)

14. 'जो शुद्ध और विजयी है, जिसने संसार के पर्दे को हटा दिया है, जो धम्मों में लीन है, जो दूसरे तट पर पहुँच गया है, जो इच्छा रहित है, और जो संस्कारों के निवारण के ज्ञान में निपुण है, वह संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (374)

15. 'जिसने भूतकाल और भविष्यकाल में कप्पतीत पर विजय प्राप्त कर ली है, जो अत्यंत शुद्ध पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है, जो मन के सभी निवास स्थानों से मुक्त है, वह संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (375)

16. 'चार सत्यों के चरण को जानकर, धम्म को समझकर, वासनाओं के त्याग को स्पष्ट रूप से देखकर, अस्तित्व के सभी तत्वों (उपाधि) को नष्ट करके, ऐसा व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा।' (376)

17. 'निश्चित रूप से, हे भगवान (भगवान बुद्ध), ऐसा ही है: जो भी भिक्षु इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वश में रहकर और सभी बंधनों से मुक्त होकर, ऐसा व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा।' (377)

सम्मपरिबजनीयसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
13. सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तम्
361.
" पुच्चामि मुनिं पहुतापन्नं,
तिन्नं पारंगतं परिनिब्बुतं थित्तत्तं;
निक्खम्मा घरा पनुज्ज कामे, कथं भिक्खु
सम्मा सो लोके परिब्बजेय"।
362.
"यस्सा मंगला समुहता, (इति भगवान)
उप्पता सुपिना च लक्षणा च;
So maṅgaladosavippahīno,
Sammā so loke paribbajeyya.
363.
"रागं विनयेथा मानुसेसु, दिब्बेसु कामेसु कपि भिक्खु;
अतिक्कम्मा भावं समेच्च धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
364.
"विपितिथिकत्वन पेसुनानि, कोधं कादरियां जहेय भिक्खु;
अनुरोधविरोधविप्पाहिनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
365.
"हित्वाना पियाञ्च अप्पियाञ्च, अनुपादया अनिसिटो कुहिञ्च;
संयोगनीयै विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
366.
"न सो उपधिसु सरमेति, अदनेसु विनय्य चंद्रागम;
तो अनिसिटो अनान्ननेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
367.
"वाचसा मनसा च कम्मुना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मम्;
निब्बानपादाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
368.
"यो वंदति मन्ति नूनमेय्या [नुन्नामेय्या (?)], अक्कुठोपि न संधियेथा भिक्खु;
लद्धा परभोजनं न मज्जे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
369.
"लोभञ्च भवन्च विप्पहाया, विराटो छेदनबंधना च [छेदानबंधनतो (सि. स्या.)] भिक्खु;
तो तिन्नकथंकाथो विसल्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
370.
"सरूपपं अतनो विदित्वा, नो च भिक्खु हिंसाय कांची लोके;
यथा तथ्यं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
371.
"यस्सानुसया न शांति केचि, मूल च [मूल (सि. स्या.)] अकुसाला समुहतासे;
तो निरासो [निरासयो (सि.), निरासासो (स्या.)] अनासिसानो [अनासयानो (सि. पि.), अनासासानो (स्या.)], सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
372.

"असावखिणो पहिनामाणो, सब्बं रागपथं उपतिवत्तो;
दन्तो परिणिब्बुतो थित्तत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
373.
"साधो सुतवा नियमादस्सी, वाग्गागत्सु न वाग्गसारि धीरो;
लोभं दोसं विनेया पतिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
374.
"संशुद्धजिनो विवत्तच्चदो, धम्मेसु वासी परागु अनेजो;
संखरानिरोधनकुसलो, सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
375.
"अतीतेसु अनागात्सु कपि, कप्पातितो अतिच्चसुद्धिपन्नो;
सब्बायतानेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
376.
"अन्याय पदं समेच्च धम्मं, विवंतं दिस्वान पहानमासवनं;
सब्बुपधिनां परिक्खयानो [परिक्खया (पु.)], सम्मा सो लोके परिक्खय्या"।
377.
"अद्धा हि भगव तथेव एतम्, यो सो एवमविहारी दन्तो भिक्खु;
सब्बासंयोजनयोगावित्वत्तो [सब्बासंयोजनिये च विटिवत्तो (सि. स्या. पि.)], सम्मा सो लोके परिब्बाजेय"ति।
सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तं तेरसामं निहितम्।

पाली-देवनागरी
13. सम्मापरिबाबाजनीयसुत्तं
3.
"पुष्चामि मुनिं पहुतपञ्चं,
तिन्नं पारङ्गतं परिनिब्बुतं थितत्तं।
निखम्म घरा पनुज्ज कामे, कथं भिक्खु
सम्मा सो लोके परिब्बजेय"॥
3.
"यस्स मंगला ग्रुपता, (इति भगवान)
उप्पाता सुपिना च लक्षणा च।
सो मङ्गलडोसविप्पहेनो,
सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"रागं विनेथ मनुसेसु, दिब्बेसु कासु चापि भिक्खु।
अति त्रैकम्म भवं समेचच धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्जेय॥
3 सप्ताह।
"विपिट्ठिकत्वान् पेसुनानि, कोधं कादारियं जहेय भिक्खु।
फोर्कविरोधविप्पहेनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"हित्वान् पियञ्च अप्पियञ्च, अनुपादाय अनिसिस्तो कुहिञ्चचि।
संयोजनयेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"न सो उपधिसु सरमेति, सजनेसु विनेय चंद्रगां।
सो अनिसिस्तो आनंदनेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"वचसा मनसा च कम्मुना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मं।
निब्बानपादाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
36
"यो वन्दति मन्ति नुन्नमेय्य [नु संज्ञामेय (?)], अकुत्थोपि न सन्धियेथ भिक्खु।

लद्धा प्रयोजनं न मजाजे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"लोभञ्च भवनदच विप्पय, विरतो छेदेनबन्धना च [छेदानबन्धनतो (सी० स्या०)] भिक्खु।
सो तिन्नकथंकथो विस्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3 सप्ताह।
"सरूपं अट्टनो विदित्वा, नो च भिक्खु हिंसेय्य कांचि लोके।"
यथा तथ्यं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
346.
"यस्सानुसाया न सन्ति केचि, मूला च [मूला (सी० स्या०)] अकुसला समूहतासे।
सो निरासो [निरासयो (सी०), निरासो (स्या०)] अनासस्यानो [अनासयानो (सी० पी०), अनाससानो (स्या०)], सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"असवक्खिनो पहिणमानो, सब्बं रागपथं उपतिवत्तो।
दन्तो परिनिब्बुतो थित्ततो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
" साधो सुतवा नियामदस्सी, वग्गगतेसु न वग्गसारि धीरो।
लोभं दोसं विनेय पतिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"संसुद्धजिनो वित्तच्छदो, धम्मेसु वसी पारगु अनेजो।
सङ्खारनिरोधनकुस्लो , सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
35.
"अतीतेसु अनागतेसु चापि, कप्पातीतो अतिचच्चसुद्धिपञ्चो।
सब्बयत्नेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
36.
" अञ्जन्या पदं समेच्छ धम्मं, विवत्तं दिस्वां पहनमासवनं।
सब्बुपधिनं परिक्खयानो [परिक्खया (पी०)], सम्मा सो लोके परिक्खया"॥
3 7.
"अद्धा हि भगवान तथेव एतं, यो सो एवं विहारी दन्तो भिक्खु।
सब्बसंयोजनयोगवीतिवत्तो [सब्बसंयोजनये च वीतिवत्तो (सी० स्या० पी०)], सम्मा सो लोके परिब्बजेया"ति॥
सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तं तेरसं निंश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.14 धम्मिकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

बुद्ध धम्मिका को यह दिखाते हैं कि एक भिक्षु (साधु) का जीवन कैसा होना चाहिए और एक गृहस्थ का जीवन कैसा होना चाहिए।

अंतर्वस्तु
12.14 धम्मिकासुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

2.14 धम्मिकासुत्त
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब उनके अनुयायी (उपासक) धम्मिका, पाँच सौ अनुयायियों के साथ, भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे अलग बैठ गए; अलग बैठकर अनुयायी धम्मिका ने भगवान (भगवान बुद्ध) को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हे महान ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) वाले गौतम (बुद्ध), मैं आपसे पूछता हूँ, एक सवक (शिष्य) को अच्छा कैसे व्यवहार करना चाहिए? क्या वह जो अपने घर से जंगल में जाता है, या वह अनुयायी जिसके पास घर है? (378)

2. 'क्योंकि आप इस संसार और देवताओं के कर्मों और अंत के बारे में जानते हैं; सूक्ष्म अर्थों को समझने वाला आपके समान कोई नहीं है; लोग आपको श्रेष्ठ बुद्ध कहते हैं। (379)

3. 'सर्वज्ञानी होकर आपने धम्म का ज्ञान प्रकट किया है, प्राणियों पर दया करते हुए; आपने संसार का पर्दा हटा दिया है, आप सर्वदर्शी हैं, आप समस्त संसार में निष्कलंक प्रकाशमान हैं। (380)

4. 'हाथियों के राजा, एरवन नाम के व्यक्ति ने यह सुनकर कि आप जिन (विजेता) हैं, आपके समक्ष आए, और आपसे वार्तालाप करने के बाद प्रसन्न होकर चले गए, आपकी बातें सुनकर और यह कहकर, "बहुत अच्छा!" (381)

5. 'राजा वेसवना कुबेर भी आपसे धम्म के विषय में पूछने आए; हे ज्ञानी पुरुष, आपने उन्हें भी उत्तर दिया, और वे भी सुनकर प्रसन्न हुए। (382)

6. 'ये सभी विवाद करने वाले तित्तिय, आजीविक और निगंथ (जैन) आपको प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं हरा सकते, जैसे खड़ा हुआ व्यक्ति तेजी से चलने वाले को नहीं हरा सकता। (383)

7. 'ये सभी विवाद करने वाले ब्राह्मण, और यहाँ तक कि कुछ प्राचीन ब्राह्मण भी, सभी आपके मत से बंधे हुए हैं, और अन्य भी जो विवाद करने वाले माने जाते हैं। (384)

8. 'हे भगवान (बुद्ध), आपने इस सूक्ष्म और सुखद धर्म का जो भली-भांति प्रचार किया है, और जिसे हम सभी सुनने के लिए तरसते हैं, हे श्रेष्ठ बुद्ध, पूछे जाने पर हमें बताइए। (385)

9. 'ये सभी भिक्षु और उपासक जो सुनने के लिए बैठे हैं, निष्कलंक (बुद्ध) द्वारा सीखे गए (अनुबुद्ध) धर्म को सुनें, जैसे देवता वासव के सुविचारित (वचन) सुनते हैं।' (386)

10. भगवान (बुद्ध): 'हे भिक्षुओं, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें पाप नाश करने वाला धर्म सिखाऊंगा, तुम सब इसका पालन करो; जो कल्याणकारी बातों की खोज करता है, जो विचारशील है, वह पब्बजितों के लिए उपयुक्त जीवन शैली का पालन करे। (387)

11. 'भिक्षु को अनुचित समय पर भ्रमण नहीं करना चाहिए, उसे उचित समय पर भिक्षा मांगने के लिए गांव जाना चाहिए; क्योंकि जो अनुचित समय पर जाता है, उसे बंधन जकड़ लेते हैं, इसलिए बुद्ध अनुचित समय पर नहीं जाते। (388)

12. 'रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श जो प्राणियों को मदहोश करते हैं, इन सभी चीजों (धर्मों) की इच्छा को वश में करके,उसे उचित समय पर नाश्ता करने जाने दो। (389)

13. 'भिक्षु समय पर भोजन प्राप्त करके लौट आए तो एकांत में बैठकर मनन करे; बाहरी बातों पर ध्यान न दे, बल्कि आत्म-चिंतन करे। (390) 14. '

यदि वह किसी सवक (शिष्य) या किसी अन्य व्यक्ति से, या किसी भिक्षु से बात करे, तो उत्तम धम्म के विषय में बात करे, परन्तु निंदा या निंदा न करे। (391) 15. '

कुछ लोग दूसरों का विरोध करते हैं; ऐसे संकीर्ण मन वालों की हम प्रशंसा नहीं करते। इधर-उधर के बंधन उन्हें जकड़ लेते हैं, और वे अपना ध्यान उस (विवाद) में भटकाते हैं। (392)

16. 'उत्कृष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त उनके शिष्य (सावक) को सुगत (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को सुनने के बाद, विवेकपूर्वक भोजन, मठ, पलंग, कुर्सी और वस्त्रों से मैल हटाने के लिए जल की खोज करनी चाहिए। (393)

17. 'परन्तु इन वस्तुओं, भोजन, पलंग और कुर्सी, वस्त्रों से मैल हटाने के लिए जल से आसक्त हुए बिना, भिक्षु (भिक्षु) को कमल पर जल की बूंद के समान होना चाहिए। (394)

18. 'मैं तुम्हें गृहस्थ जीवन के कार्य भी बताऊंगा, कि कैसे एक शिष्य (सावक) को अच्छा व्यवहार करना चाहिए; क्योंकि सांसारिक कार्यों में लीन रहने वाला व्यक्ति पूर्ण भिक्षु-धम्म का पालन नहीं कर सकता। (395)

19. 'वह किसी भी जीवित प्राणी की हत्या न करे, न ही किसी की हत्या करवाए, और न ही दूसरों की हत्या का समर्थन करे, जबकि उसने स्वयं संसार में बलवान और कांपते हुए सभी प्राणियों को हानि पहुँचाने से परहेज किया है। (396)

20. 'फिर सवक (शिष्य) किसी भी स्थान से ऐसी कोई वस्तु न ले जो उसे न दी गई हो, यह जानते हुए कि वह किसी और की है, वह किसी को भी लेने के लिए प्रेरित न करे, न ही लेने वालों का समर्थन करे, वह हर प्रकार की चोरी से बचे। (397)

21. 'बुद्धिमान व्यक्ति जलते हुए अंगारों के ढेर के समान ब्रह्मचर्य जीवन से बचे; ब्रह्मचर्य का जीवन जीने में असमर्थ होने के कारण, वह किसी दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन संबंध न बनाए। (398)

22. न्यायलय या सभालय में कोई भी दूसरे से झूठ न बोले, किसी को झूठ बोलने के लिए प्रेरित न करे, न ही झूठ बोलने वालों का समर्थन करे, हर प्रकार के असत्य से दूर रहे। (399)

23. जो गृहस्थ इस धर्म का पालन करता है, वह मादक पेय पदार्थों का सेवन न करे; दूसरों को भी न पिलाए, न ही पीने वालों का समर्थन करे, क्योंकि वह जानता है कि इसका परिणाम पागलपन होता है। (400) 24.

क्योंकि नशे के कारण मूर्ख पाप करते हैं और दूसरों को भी नशे में धुत कर देते हैं; उसे पाप के इस स्थान, इस पागलपन, इस मूर्खता से दूर रहना चाहिए, जो मूर्खों को भाता है। (401)

25. किसी भी जीव की हत्या न करे, जो उसे नहीं दिया गया है उसे न ले, झूठ न बोले, मादक पेय न पिए, और अनैतिक यौन संबंध से परहेज करे।और उसे रात में असमय भोजन न करने दो। (402)

26. 'उसे न तो पुष्पमाला पहननी चाहिए और न ही इत्र लगाना चाहिए, उसे ज़मीन पर बिछे पलंग पर लेटना चाहिए:--इसे बुद्ध द्वारा घोषित अष्टांगिक संयम (उपोसथा) कहते हैं, जिन्होंने पीड़ा पर विजय प्राप्त की है। (403)

27. 'फिर विश्वासपूर्ण मन से अर्धमाह के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन संयम (उपोसथा) रखते हुए, और आठ भागों वाले पूर्ण पतिहरकपक्खा का पालन करते हुए, (404)

28. 'और फिर सुबह, संयम रखने के बाद, एक बुद्धिमान व्यक्ति विश्वासपूर्ण मन से भिक्षुओं की सभा को भोजन और पेय से प्रसन्न करते हुए, अपनी सामर्थ्य के अनुसार वितरण करे। (405)

29. 'उसे कर्तव्यनिष्ठा से अपने माता-पिता का भरण-पोषण करना चाहिए और एक सम्मानजनक व्यापार करना चाहिए; जो गृहस्थ इसका दृढ़तापूर्वक पालन करता है, वह नाम से देवताओं के पास जाता है, सायम्पाभास।' (406)

धम्मिकासुत्त समाप्त।

चुलवग्गा समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
14. धम्मिकासुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासकसतेहि सद्धिं येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं गाथाहि अज्जभासि -
378.
"पुच्चामि तं गोतम भूरिपन्न, कथंकारो सावको साधु होति;
यो वा अग्र अनगरमेति, अग्रिनो वा पनुपासाकसे।
379.
"तुवंहि लोकस्सा सदेवकस्सा, गतिं पजानासि परायणच;
न चह्नि तुल्यो निपुणत्थदस्सी, तुवंहि बुद्धं पवरं वदन्ति।
380.
"सब्बां तुवं णाणामवेक्का धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकंपमानो;
विवत्तच्चदोसि समन्तचक्खु, विरोकासि विमलो सब्बलोके।
381.
"अगांचि ते संतिके नागराजा, एरावणो नाम जिनोति सुत्वा;
सोपि तया मंतयित्वाज्झागमा, साधौति सुत्वान् पतितरूपो।
382.
"राजापि तं वेस्सावणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्चमानो;
तस्सपि त्वं पुच्चितो ब्रुसि धीरा, सो कपि सुत्वन पतितरूपो।
383.
"ये केसीमे तिथिया वदासिला, आजीवका वा यदि वा निगन्था;
पनन्या तं नातितरन्ति सब्बे, थितो वजन्तं विया सिघगामि।
384.
"ये केचिमे ब्राह्मण वदसीला, वुद्धा कपि ब्राह्मण शांति केचि;
सब्बे ताई अट्ठबद्धा भवन्ति, ये कपि अण्णे वादिनो मन्नमाना।
385.
"अयंहि धम्मो निपुणो सुखो च, योयं तय भगव सुप्पवुत्तो;
तमेव सब्बेपि [सब्बे मायां (स्या.)] सुसुसमाना, तां नो वडा पुच्चिटो बुद्धसेठ।
386.
"Sabbepi me bhikkhavo sannisinnā, upāsakā cāpi tatheva sotuṃ;
सुनन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभाषितं वासवस्सेव देवा"।
387.
"सुनथ मे भिक्खवो सवयामि वो, धम्मं धुतं तन्च चरथ सब्बे;
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेत्था नं अत्थदसो मुतिमा।
388.
"नो वे विकले विचारेया भिक्खु, गामे च पिंडाय कैरेया काले;
अकालाचारिणि सजंति संगा, तस्मा विकाले न कैरन्ति बुद्धा।
389.
"रूपा च सद्दा च रस च गंधा, फस्सा च ये सम्मदयन्ति सत्ते;
एतेसु धम्मेसु विनेया चंदं, कालेन सो पविसे पतरसां।
390.
"पिंडांच भिक्खु समयेन लद्धा, एको पतिक्कम्मा रहो निसिदे;
अज्झत्तसिंति न मनो बहिद्धा, निच्चराय संघहितत्तभावो।
391.

"ससेपि सो सल्लापे सवकेना, अननेना वा केनासी भिक्खुना वा;
धम्मं पणितं तमुदाहारेया, न पेसुनां नोपि परुपवादं।
392.
"वदानहि एके पतिसेनियन्ति, न ते पसंसामा परित्तपन्ने;
ततो ततो न पसजंति संगा, चित्तंहि ते तथा गमेन्ति दूरे।
393.
"पिंडं विहारं सयानासनच, अपानच संघातिराजुपवहनम्;
सुत्वन धम्मं सुगतेन देसिटं, संखया सेव वरपन्नसावको।
394.
"तस्मा हि पिंडे सयानासने च, आपे च संघातिराजुपवाहने;
एतेसु धम्मेसु अनुपालितो, भिक्खु यथा पोक्खरे वारिबिन्दु।
395.
"गहत्थवत्तं पण वो वदामि, यथाकारो सावको साधु होति;
न हेसा [ना हेसो (सि.)] लब्भा सपरिग्गहेना, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो।
396.
"पानं न हणे [न हणे (सि.)] न च घटयेया, न चानुजन्ना हनतं परेसं;
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तस संति [तसंती (सि. पि.)] लोके।
397.
"ततो अदिन्नं परिवज्जायेय, किंचि क्वचि सावको बुज्झामानो;
न हरये हरतं नानुजन्न, सब्बं अदिन्नं परिवज्जायेय।
398.
"अब्रह्मचर्यं परिवज्जायेय, अंगारकासुं जलितंव विन्नु;
असम्भुअनन्तो पना ब्रह्मचर्यं, परस्सा दरं न अतिक्कमेय।
399.
"सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्सा वेको [सीतो (सि. स्या.)] न मुसा भाणेया;
न भाणये भाणातं नानुजन्या, सब्बं अभूतं परिवज्जयै।
400.
"मज्जनचा पणं न समाचरेया, धम्मं इमं रोकाये यो गहत्थो;
न पययेे पिवतं नानुजनना, उम्मादनंतं इति नं विदित्वा।
401.
"मदा ही पापनि करोंति बाला, करेन्ति कैनेपि जने पमत्ते;
एतं अपुन्नायतनं विवज्जाये, उम्मादानं मोहनं बालकान्तं।
402.
"पानं न हने न चदिन्नमदिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया;
अब्रह्मचर्य विरामेय मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय विकलभोजनं।
403.
"मलं न धारे न च गंधमाचरे, मन्से चामयं वा सयेथा संथते;
एतंहि अठहंगिकामाहुपोसाथं, बुद्धेन दुक्खन्तागुण पाकसीताम्।
404.
"ततो च पक्खस्सुपवसुपोसथं, चतुद्दसिं पञ्चदसिञ्च अठहमि;
पातिहरियापक्खाञ्च पसनन्नामनासो, अठहंगुपेटं सुसमत्तरूपं।
405.
"ततो च पतो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पनेण च भिक्खुसंघहं;
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथा विष्णु।
406.
"धम्मेण मातापितो भारेया, पयोजये धम्मिकं सो वनिज्जं;
एतं गिहि वट्टयमप्पमत्तो, सयमंभे नाम उपेति देवे'ति।
धम्मिकासुत्तं कुद्दसमं निहितं।

चुडवग्गो दुतियो निथितो।
Tassuddānaṃ –
रतनमगन्धो हिरि च, मंगलं सुसिलोमेना;
धम्मकारिञ्च ब्राह्मणो [कपिलो ब्राह्मणोपि च (स्या. का.)], नवा किशिलामुत्थानं।
राहुलो पुन कप्पो च, परिब्बाजनीयं तथा;
धम्मिकांच विदुनो आहु, चुडवग्गन्ति कुद्दसति।

पाली-देवनागरी
14. धम्मिकसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासस्कतेहि साधं येन भगव तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि सनायो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं पुराणहि अज्भासि -
3.
"पुच्चामि तं गोतम भूरिपञ्ज, कथंकरो सावको साधु होति।"
यो वा अगार अंगारमेति, अगारिनो वा पनुपासासे॥
3.
"तुवंहि लोकस्स सदेवकस, गतिं पजानासि परायञ्च।
न चट्ठि तुल्यलो कृतकत्तदस्सी, तुवंहि बुद्धं पवरं वदन्ति॥
3.
"सब्बं तुवं नानमवेच धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकममानो।
विवत्तच्छदोसि समन्तचक्खु, विरोचसि विमलो सब्बलोके॥
3.
"अग्ञ्ची ते शांतिके नागराजा, एरावणो नाम जिनोति सुतवा।
सोपि तया मन्तयित्वाज्झगमा, साधुति सुत्वान पतितरूपो॥
3.
"राजापि तं वेस्स्वणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो।
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्वान् पतितरूपो॥
3
"ये केचिमे तिथिया वादसीला, आजीवका वा इफ वा निगन्था।
पञ्जनय तं नैतितरन्ति सब्बे, थितो वजनतं विय सीघगामिन्॥
3 वसात.
"ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, वुद्धा चापि ब्राह्मणा शांति केचि।
सब्बे ताई अत्थबद्धा भवन्ति, ये चापि अंजने वादिनो मन्न्तिमाना॥
3 विविध।
"अयंहि धम्मो शैतानो सुखो च, योयं तया भगव सुप्पवुत्तो।
तमेव सब्बेपि [सब्बे मयं (स्या०)] सुसुसमाना, तं नो वद पुच्छितो बुद्धसेट्ठ॥
3.
"सब्बेपि मे भिक्खवो स संज्ञासत्यं, उपासका चापि तथेव सोतुं।
सुनन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभासितं वासवस्सेव देवा"॥
3.
"सुनथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तञ्च चरथ सब्बे।
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेथ नं अत्थदसो मुतीमा॥
3.
"नो वे विकले विचारेया भिक्खु, गामे च पिंडाय चेरेय काले।
अकल्पचारिञ्चि सजन्ति सङ्गा, तस्मा विकले न चरन्ति बुद्धा॥
3 सप्ताह.
"रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये सम्मदयन्ति सत्ते।

एतेसु धम्मेसु विनेय छंदं, कालेन सो पविसे पात्रसं॥
3.
"पिंडञ्च भिक्खु समयेन लद्धा, एको पतिक्कम्म रहो निसीदे।
अज्झत्तचिन्ति न मनो बधिधा, निश्चराय सङ्घहितत्तभावो॥
3
"सचेपि सो सलदलपे सावकेन, अञ्जने वा केन्चि भिखुना वा।
धम्मं पणितं तमुदाहरेय, न पेसुं नोपि परूपवदं॥
3.
"वधांहि एके पतिसेनियन्ति, न ते पंसाम परित्पञ्चे।
ततो ततो ने पसजन्ति सङ्गा, चित्तञ्हि ते तथा गमेन्ति दूरे॥
3.
"पिण्डं विहारं सयानसञ्च, आपञ्च सङ्घाटिरजूपवाहनं।
सुत्वं धम्मं सुगतेन देसीतं, सङ्खाय सेवे वरपञ्चनसावको॥
3.
"तस्मा हि पिंडे सयनासने च, आपे च सङ्घाटिर्जुपवाहने।
एतेसु धम्मेसु एनोप्लिट्टो, भिक्खु यथा पोखरे वारिबिंदु॥
3.
"गहत्थवत्तं पण वो वदामि, यथाकरो सावको साधु होति।
न हेस [न हेसो (सी०)] लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो॥
3
"पानं न हने [न हने (सी०)] न च घटयेय, न चानुजञ्च हनतं परेसं।
सब्बेसु भूतेषु निधाय दंडं, ये थावरा ये च तसा शांति [त्सन्ति (सी० पी०)] लोके॥
3.
"ततो आदि संज्ञां परिवज्जयैय, किंचि त्रवचि सावको बुज्झमानो।
न हरये हरतं नानुजञ्जन, सब्बं आदि निषेधं परिवज्जयैय॥
3.
"अब्रह्मचर्यं परिवज्जायेय, अङ्गारकासुं जलित्व विञ्जु।
असंभुन्नतो पन् ब्रह्मचर्यं, परस्स दरं न अतिचक्रमेय॥
3.
"सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको [चेतो (सी० स्या०)] न मुसा भनेय।
न भाणये भन्तं नानुजञ्च, सब्बं अभूतं परिवज्जयैय॥
.
"मज्जन्च पानं न समाचरेय, धम्मं इमं रोचये यो गहत्थो।
नये पय पिवतं नानुजञ्चा, उम्मादन्नन्तं इति नं विदित्वा॥
400.
"मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारणन्ति चञ्जेपि जने पमत्ते।"
एतं अपुञ्जन्यातनं विवजदजये, उमामादानं मोहनं बालकन्तं॥
400.
"पाणं न हने न चादि संज्ञामाद्ये, मूसा न भासे न च मजाजपो सिया।"
अब्रह्मचर्य विरमेय मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय विकलभोजनं॥
400.
"मलां न धारे न च गंधमाचरे, मन्नचे चमायं वा सयेत् सन्तते।"
एतंहि अत्थत्ङ्गिकमाहुपोस्थं, बुद्धेन दुःखान्तगुण पकासीतं॥
4.
"ततो च पक्खस्सुपवसुपोस्थं, चातुद्दसिं पञ्चादसिंच अट्ठमिं।
पटिहारियपकञ्च पस संज्ञामानसो, अत्थङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं॥
4
"ततो च पतो उपुथुपोसस्थो, अ प्रयोगेन प्राप्तेन च भिक्खुसङ्घं।

पस साइनचित्तो अनुमोदमनो, यथारहं संविभजेत् विञ्चु॥
4
"धम्मेन मातापित्रो अंतिमय, पयोजये धम्मिकं सो वाणीजं।'
एतं गहि वत्तयमप्पमत्तो, सयंभे नाम उपेति देवे"ति॥
धम्मिकसुत्तं चुद्दसमं निश्चितं।
चुळवग्गो दुतियो नित्थितो।
तस्सुद्दनं -
रतनामगंधो हिरि च, मङ्गलं सुचिलोमेन।
धम्मचेरियनच ब्राह्मणो [कपिलो ब्राह्मणोपि च (स्या० क०)], नवा किंसिलमुट्ठानं॥
राहुलो पुन कप्पो च, परिब्बजनियं तथा।
धम्मिकञ्च विदुनो आहु, चूळवग्गन्ति चुद्दसति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.1 पब्बजजसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

बुद्ध में रुचि रखने वाले राजा बिम्बिसार उन्हें धन का लालच देने का प्रयास करते हैं, लेकिन बुद्ध उन्हें हल्के से फटकार लगाते हैं।

अंतर्वस्तु
13.1 पब्ब्ज़सुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.1 पब्बज्जसुत्त
अनुवाद
1. मैं उस तपस्वी जीवन की प्रशंसा करूँगा जैसा कि स्पष्ट दृष्टि वाले (बुद्ध) ने व्यतीत किया, जैसा कि उन्होंने विचार करके तपस्वी जीवन के रूप में स्वीकार किया। (407)

2. 'यह गृहस्थ जीवन दुखदायी है, अपवित्रता का स्थान है,' और 'तपस्वी जीवन खुले आकाश में व्यतीत जीवन है,' इसलिए उन्होंने तपस्वी जीवन को अपनाया। (408)

3. तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए, उन्होंने अपने शरीर से पाप कर्मों से परहेज किया, और शब्दों में भी पाप का त्याग करके, उन्होंने अपने जीवन को शुद्ध किया। (409)

4. बुद्ध राजगृह गए, वे उत्कृष्ट शिष्टाचार (संकेतों) की प्रचुरता के साथ भिक्षा मांगने के लिए मगध के गिरिबाग में प्रवेश किया। (410)

5. बिम्बिसार अपने महल में खड़े होकर उसे देखा, और उसे इन गुणों (आचरण) से युक्त देखकर उसने ये शब्द कहे: (411)

6. 'इस व्यक्ति पर ध्यान दो, यह सुंदर, महान, स्वच्छ है, यह अच्छे आचरण से युक्त है, और यह अपने सामने एक युग (हल की दूरी) से आगे नहीं देखता। (412)

7. 'नीची आँखों वाला, विचारशील, यह नीच जाति के लोगों जैसा नहीं है; राजा के दूतों को भेजो, (और पूछो): "भिक्षु कहाँ जा रहा है?"' (413)

8. राजा के दूत उसके पीछे गए (और बोले): 'भिक्षु कहाँ जा रहा है, वह कहाँ निवास करेगा? (414)

9. 'घर-घर जाकर भिक्षा माँगते हुए, (इंद्रियों के द्वार पर) सचेत, संयमित, वह जल्दी से अपना पात्र भर लेता है, सचेत, विचारशील। (415)

10. 'भिक्षा की तलाश में भटकते हुए, नगर से बाहर जाकर, मुनि (संत) पांडव पर्वत पर गए; अवश्य ही वे वहीं निवास करते होंगे।' (416)

11. यह देखकर कि वे अपने निवास में प्रवेश कर चुके हैं, दूत बैठ गए, और एक दूत के लौटकर उसने राजा को इसकी सूचना दी। (417)

12. 'हे महाराज, यह भिक्षु पांडव पर्वत के पूर्व की ओर, पर्वत की गुफा में बाघ, बैल और सिंह के समान बैठा है।' (418)

13. दूत की बात सुनकर, क्षत्रिय (योद्धा) एक सुंदर रथ में शीघ्रता से पांडव पर्वत की ओर चल पड़ा। (419)

14. रथ के लिए जितनी दूर तक जाना संभव था, वहाँ तक पहुँचने के बाद, क्षत्रिय (योद्धा) रथ से उतरकर पैदल चलकर उसके पास पहुँच गया और बैठ गया। (420)

15. राजा के बैठने के बाद उन्होंने उनसे औपचारिक अभिवादन किया और प्रशंसात्मक बातचीत के बाद ये शब्द कहे: (421)

16. 'तुम युवा और कोमल हो, अपनी युवावस्था में हो, तुम्हारा रंग उत्तम है, किसी उच्च कुल के क्षत्रिय के समान। (422)

17. 'मैं सेनागृह को सुशोभित करूँगा और नाग सरदारों की सभा के प्रमुख के रूप में तुम्हें धन दूँगा; इसका आनंद लो और पूछे जाने पर मुझे अपनी जाति बताओ।' (423)

18. बुद्ध: 'हे राजा, हिमवंत (हिमालय) के ठीक बगल में धन की शक्ति से संपन्न एक जाति रहती है, कोसल के निवासी। (424)

19. 'वे कुल से अदिच्छा और जन्म से सक्य हैं; मैं उसी कुल से तपस्वी बना हूँ, इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करता। (425)

20. 'इंद्रिय सुखों में दुख देखकर और संसार का त्याग करना सुख समझकर मैं जाकर परिश्रम करूँगा; इसी में मेरा मन प्रसन्न होता है।' (426)

पब्बज्जसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. महावग्गो
1. पब्बज्जासुत्तं
407.
पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बाजी चक्खुमा;
यथा विमान्समानो सो, पब्बज्जं समारोचयि।
408.
सम्बधोयं घरावासो, राजसस्यातनं इति;
अब्भोकसोवा पब्बज्जा, इति दिस्वाण पब्बाजी।
409.
पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि;
वसीदुच्चरितां हित्वा, आजीवं परिशोधयि।
410.
अगम राजगहं बुद्धो, मगधानं गिरिबजं;

पिंडाय अभिहारेसि, अकिन्नवरलक्खनो।
411.
तमद्दसा बिंबिसारो, पसादस्मिं पतिथितो;
दिस्वा लक्खनसम्पन्नं, इमामत्थं अभासथ।
412.
"इमां भोंतो निसामेथा, अभिरूपो ब्रहा सुचि;
चरणेन च सम्पन्नो, युगमत्तञ्च पेक्खति।
413.
"ओक्खित्तचक्कु सतीमा, नायं निककुलमिव;
राजदुताभिधावन्तु, कुहिं भिक्खु गमिस्सति"।
414.
ते पेसिता राजदुता, पिठ्ठितो अनुबन्धिसुम्;
कुहिं गमिस्सति भिक्खु, कत्थ वसो भविस्सति।
415.
सपादानां कारमाणो, गुट्टाद्वारो सुसानवुतो;
खिप्पं पत्तं अपुरेसि, संपजाणो पतिस्सतो।
416.
पिंडाचरण चरित्रवान, निखम्म नागरा मुनि;
पांडवं अभिहारेसि, एत्थ वसो भविष्यति।
417.
दिस्वाना वसुपगतं, तयो [ततो (सि. पि.)] द्युता उपाविसुं;
तेसु एकोवा [एको च दुतो (सि. स्या. पि.)] आगन्त्वा, राजिनो पतिवेदयी।
418.
"एसा भिक्खु महाराज, पांडवस्स पुरत्थतो [पुरक्खतो (स्या. का.)];
निसिन्नो ब्याग्घुसाभोवा, सिहोवा गिरिगबभारे"।
419.
सुत्वान दुतवचनं, भद्दयानेन खट्टियो;
तरामनारूपो निय्यसि, येन पाण्डवपब्बतो ।
420.
स यानाभूमिं ययित्वा, याना ओरुयहा खत्तियो;
पत्तिको उपसंकम्मा, असज्ज नं उपाविसि।
421.
निसज्ज राजा सम्मोदि, कथं सरण्यं ततो;
कथं सो वीतिसरेत्व, इमामत्थं अभिसथ।
422.
"युवा च दाहरो कासि, पठमुप्पत्तिको [पठमुप्पत्तिया (सि.), पठमुप्पत्तितो (स्या.)] सुसु;
वनारोहेण संपन्नो, जातिमा विया खट्टियो।
423.
"सोभयन्तो अनिकाग्गं, नागसंघपुरक्खतो;
ददामि भोगे भूंजस्सु, जातिं अक्खाहि पुच्चितो"।
424.
"उजुं जनपददो राजा, हिमवन्तस्स पस्सतो;
धनविरियेण संपन्नो, कोसलेसु [कोसलसा (स्या. का.)] निकेटिनो।
425.
"अदिक्का [अदिस्को (का.)] नामा गोटेना, साकिया [साकियो (का.)] नामा जातिया;
तम्हा कुल पब्बजितोमहि, न कामे अभिपत्थयं।
426.
"कामेसवादिनवं दिस्व, नेक्खम्मं दांथु खेमतो;

पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रंजति मनो'ति।
पब्बज्जसुत्तं पथमं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. महावग्गो
1. पब्बज्जासुत्तं
4
पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बजी चखुमा।
यथा विमंसमानो सो, पब्बज्जं समारोचयि॥
4
संभाधोयं गृहासो, रजस्सायतनं इति।
अब्भोकसो पब्बज्जा, इति दिस्वां पब्बजि॥
444.
पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि।
वचिदुच्चचरितं हित्वा, अजिवं परिशोधयि॥
410
अगम राजघं बुद्धो, मगधानं गिरिब्बजं।
पिंडाय अभिहारेसि, अकिन्नवरलक्खनो॥
411.
तमद्दसा बिम्बिसारो, पसादस्मिं पतिट्ठितो।
दिस्वा लक्षणसंप जपं, इमामथं आभासथ॥
410.
"इमं भोन्तो निसामेथे, अभिरूपो ब्रहा शुचि।
चरणेन च संप संज्ञाओ, युगमत्तनदच पेक्खति॥
4. ...
"ओक्खित्तचक्खु सतिमा, नयं नीचकुलमिव।
अम्बामाभिधावन्तु, कुहिं भिक्खु गमिस्सित"॥
4
ते पेसिता अम्बाम्बा, पिट्ठितो अनुबन्धिसुं।
कुहिं गमिस्सित भिक्खु, कत्थ वासो भविस्सित॥
41.
सपादानं चरमाणो, गुत्तद्वारो सुसंवुतो।
खिप्पं पत्तं अपुरेसि, संपजानो पतिस्स्तो॥
40.66
पिण्डचारं चरित्वान, निखम्म नगरा मुनि।
पाण्डवं अभिहारेसि, एत्थ वासो भविष्यसति॥
41.
दिस्वां वासुपगतं, तयो [ततो (सी॰ पी॰)] दूता उपाविसं।
तेसु एकोव [एको च दूतो (सी॰ स्या॰ पी॰)] आगन्त्वा, राजिनो पतिवेदयि॥
411.
"अस भिक्खु महाराज, पांडवस्स पुरत्थो [पुरखतो (स्या॰ क॰)]।
निसिस साइनो ब्यघुसभोव, सीहोव गिरिगभरे"॥
411.
सुत्वान दूतवचनं, भद्दयानेन खत्तियो।
तर्मत्रूपो नियासि, येन पाण्डवपब्बतो॥
420.
स यानाभूमिं यायित्वा, याना ओरुयः खत्तियो।
पत्तिको उपसङकम्म, असजज नं उपावसी॥

420.
निस्साज्ज राजा सम्मोदि, कथं सारणीयं ततो।
कथं सो वीतिसरेत्वा, इमामथं आभासथ॥
422.
"युवा च दहरो चासि, पठमुप्पत्तको [पठमुप्पत्तिया (सी०), पठमुप्पत्ततो (स्या०)] सुसु।
वणरोहेन संप संज्ञाओ, जातिमा वि खत्तियो॥
4.25.
"सोभयन्तो अनीकग्गं, नागासङ्घुरक्खतो।
ददामि भोगे भुञ्जज्ज्सु, जातिं अक्खाहि पुच्छितो"॥
4.
"उजं जिलाओ राज, हिमवंतस्स पस्सतो।"
धनवीरियेन संप संज्ञाओ, कोसलसु [कोसलसस (स्या० क०)] निकेतिनो॥
425.
"आदिच्चा [आदिच्चो (क०)] नाम गोट्टेन, साकिया [साकियो (क०)] नाम जातिया।
तम्हा कुला पब्बजितोम्हि, न कामे अभिपथयं॥
4.
"कामेसवंदनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दत्तु खमतो।"
पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रंजति मनो"ति॥
पब्बज्जासुत्तं पतमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.2 पधानसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

मारा (मृत्यु का देवता) बुद्ध को लुभाने का प्रयास करता है, लेकिन निराश होकर उसे पीछे हटना पड़ता है। तुलना करें: सेंट मैथ्यू का सुसमाचार, अध्याय 4।

अंतर्वस्तु
13.2 पधानसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.2 पधानसुत्त
अनुवाद
1. मेरा मन नेरंगारा नदी के निकट परिश्रम में लगा हुआ था, मैंने परिश्रम किया और निर्वाण (योगक्खेमा) प्राप्त करने के लिए आत्म-मग्न ध्यान में लीन हो गया। (427)

2. तभी नामुची (मरा, मृत्यु के देवता) करुणा भरे शब्दों में मेरे पास आए और बोले: 'तुम दुबले-पतले हो, तुम्हारा रूप-रंग खराब है, मृत्यु तुम्हारे निकट है। (428)

3. 'तुम्हारा हजारवां भाग मृत्यु का है, केवल एक भाग जीवन का है; हे पूजनीय, जीवन जीना श्रेष्ठ है; जीने से तुम्हें पुण्य प्राप्त होगा। (429)

4. 'जब तुम ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हो और यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित करते हो, तो अनेक पुण्य कर्म तुम्हारे फल स्वरूप प्राप्त होते हैं; परिश्रम से तुम्हें क्या चाहिए? (430)

5. 'प्रयास का मार्ग कठिन है, पार करना कठिन है, उस पर प्रवेश करना कठिन है;' ये श्लोक कहते हुए मरा बुद्ध के निकट खड़े हो गए। (431)

6. मारा के इस प्रकार बोलने पर भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा: 'हे आलसी के मित्र, हे दुष्ट, तुम यहाँ किसलिए आए हो? (432)

7. 'यद्यपि छोटा सा भी अच्छा कर्म मेरे लिए व्यर्थ है; और मुझे कौन से अच्छे कर्म करने चाहिए, मारा, यह बताओ। (433)

8. 'मुझमें आस्था और दृढ़ इच्छाशक्ति है, और मुझमें पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) है; इस प्रकार परिश्रम करते हुए तुम मुझसे जीने के लिए क्यों कहते हो? (434)

9. 'यह (जलती हुई) हवा नदियों की धाराओं को भी सुखा देती है; क्या परिश्रम करते हुए यह धीरे-धीरे मेरा रक्त नहीं सुखा देगी? (435)

10. 'जब रक्त सूखता है, तो पित्त और कफ भी सूख जाते हैं; जैसे-जैसे शरीर क्षीण होता जाता है, मन अधिक शांत होता जाता है, और मेरा ध्यान, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ), और ध्यान (स्व-मग्न) समाधि अधिक स्थिर होती जाती है। (436)

11. 'जब मैं इस प्रकार जी रहा हूँ, चरम संवेदनाओं का अनुभव करने के बाद, मेरा मन इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करता; देखो, एक प्राणी की पवित्रता। (437)

12. 'तुम्हारी पहली सेना कामवासना कहलाती है, दूसरी असंतोष, तीसरी भूख और प्यास, चौथी इच्छा। (438)

13. 'तुम्हारी पाँचवीं आलस्य और उन्मत्तता कहलाती है, छठी कायरता, सातवीं संशय, आठवीं पाखंड और सुस्ती। (439)

14. 'लाभ, यश, सम्मान, और वह प्रसिद्धि जो झूठे तरीके से प्राप्त की गई है; और वह जो स्वयं को ऊँचा उठाता है और दूसरों को तुच्छ समझता है। (440)

15. 'हे नमुचि (मारा), यह तुम्हारी, अंधकार के देवता की, युद्ध करने वाली सेना है; केवल एक महान व्यक्ति ही इसे जीत सकता है, और इसे जीतने के बाद आनंद प्राप्त करता है। (441)

16. 'इस संसार में जीवन पर धिक्कार है! युद्ध में मरना मेरे लिए पराजित होकर जीने से बेहतर है। (442)

17. 'इस संसार में डूबे हुए कुछ समन (भिक्षु) और ब्राह्मण दिखाई नहीं देते, और वे उस मार्ग को नहीं जानते जिस पर गुणी चलते हैं। (443)

18. 'चारों ओर सेना को सजी हुई और मार को उसके हाथी पर देखकर, मैं युद्ध करने जा रहा हूँ, ताकि वह मुझे मेरे स्थान से न भगा दे। (444)

19. 'तुम्हारी यह सेना, जिसे मनुष्य और देवता का संसार जीत नहीं सकता, मैं इसे पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) से ऐसे कुचल दूँगा जैसे पत्थर से कच्चा मिट्टी का बर्तन तोड़ा जाता है। (445)

20. 'अपने विचारों को अपने अधीन और ध्यान को स्थिर करके, मैं राज्य-राज्य घूमूँगा और शिष्यों को व्यापक प्रशिक्षण दूँगा। (446)

21. 'वे उत्साही और ऊर्जावान होंगे, मेरे आदेशों का पालन करेंगे, कामवासना से मुक्त व्यक्ति के आदेशों का, और वे उस स्थान पर जाएँगे जहाँ जाकर वे शोक नहीं करेंगे।' (447)

22. मारा (मृत्युदेव): 'सात वर्षों तक मैंने भगवान (बुद्ध) का कदम-दर-कदम अनुसरण किया; मुझे पूर्णतः प्रबुद्ध, विचारशील (बुद्ध) में कोई दोष नहीं मिला। (448)

23. 'कौआ उस चट्टान के चारों ओर मंडरा रहा था जो चर्बी के ढेर जैसी दिखती थी: "क्या हमें यहाँ कुछ नरम, कुछ मीठा मिलता है?" (449)

24. 'वहाँ कुछ भी मीठा न पाकर कौआ उस स्थान से चला गया। इस प्रकार, जैसे कौआ चट्टान के पास आकर निराश हो गया, हम भी गौतम (बुद्ध) से विमुख हो जाएँगे।' (450)

25. दुःख से व्याकुल होकर उसके वीणा का तार नीचे गिर गया; तब वह दुष्ट यक्ष वहाँ से विलीन हो गया। (451)

पदानसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. पधानसुत्तं
427.
"तं मां पधानपहितत्तं, नदीं नेरंजरं पति;
विपरक्कम्मा झायन्तं, योगक्खेमास्सा पत्तिया।
428.
"नमुचि करुणां वाचं, भस्मानो उपगामी;
'किसो त्वमसि दुब्बाणो, संतिके मरणं तव।
429.
"'सहस्सभागो मरणस्स, एकांशो तव जीवितम्;
जीव भो जीवितं सेय्यो, जीवं पुन्ननि कहासी।
430.
" कैरतो च ते ब्रह्मचर्यं, अग्गिहुत्तनच जुहतो;
पहुतां चीयते पुन्नं, किं पधानेन कहासी।
431.
"दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्कारो दुरभिसंभवो";
इमा गाथा भाणं मारो, अट्ठ बुद्धस्स संतिके।
432.
तं तथवादिनं मरं, भगव एतदब्रवी;
"पमत्तबंधु पपीमा, येनत्थेना [सेनात्थेना (?), अत्तानो अत्थेना (अट्ठा. सावनाना)] इधागातो।
433.
"अनुमत्तोपि [अनुमत्तेनपि (सि. स्या.)] पुनेन, अत्थो मयहं न विज्जति;
यसंचा अत्थो पुन्नेन, ते मारो वट्टुमरहति।
434.
"अत्थि सधा तथा [ततो (सि. पि.), तपो (स्या. का.)] वीर्यं, पन्ना च मम विज्जति;
एवं मां पहितत्तमपि, किं जीवमनुपुच्छसि.
435.
"नादीनमपि सोतानि, अयं वतो विसोसाय;
किंच मे पहितत्तस्सा, लोहितं नुपसुस्से।
436.
"लोहिते सुस्मानमहि, पित्तं सेमहांचा सुस्सति;
मानसेसु खियामानेसु, भय्यो चित्तं पसीदति;
भय्यो सति च पन्ना च, समाधि मम तिथति।
437.
"तस्सा मेवं विहारतो, पत्तसुत्तमवेदनं;
कामेसु [कामे (सि. स्या.)] नापेक्खते चित्तं, पस्सा सत्तास्स सुद्धताम्।

438.
"काम ते पथमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति;
ततिया खुप्पिपसा ते, चतुत्थि तन्हा पवुक्कति।
439.
"पंचमं [पंचामी (सी. पी.)] थिनमिद्धं ते, चैथा भीरू पवुक्कति;
सत्तामि विचिकीच्चा ते, मक्खो थम्भो ते अत्थमो।
440.
"लाभो सिलोको सक्करो, मिच्छलाधो च यो यशो;
यो चत्तनं समुक्कंसे, परे च अवजानाति।
441.
"एसा नमुचि ते सेना, कान्हास्साभिप्पाहारिणी;
न नं असुरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं।
442.
"एसा मुंजं परिहारे, धीरत्थु मम [इडा (का.)] जीवितं;
संगमे मे मतं सेय्यो, यं सी जीवे परजितो।
443.
"पगाथेत्था न डिस्संति, एके समानब्राह्मण;
तन्च मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता।
444.
"सामंता धजिनिं दिस्व, युत्तं मरं सवहनां;
युद्धाय पच्चुग्गच्छामि, मां मां ठाना अचावयि।
445.
"यं ते तं नप्पासहति, सेनं लोको सदेवको;
तं ते पन्नया भेच्छामि [गच्छामि (सि.), वेच्छामि (स्या.), वज्झामि (का.)], आमं पत्तव अस्माना [पक्कंवा अमुना (का.)]।
446.
"वसीकरित्वा [वसीं करित्वा (बहुसु)] संकप्पां, सात्यंका सुपतिथितां;
रथ रथं विकारिसं, सावके विनयं पुथु।
447.
"ते अप्पमत्ता पहितत्ता, मम ससंकारका;
अकामास्सा [अकामा (का.)] ते गमिस्संति, यत्थ गन्त्वा न सोकेरे"।
448.
"सत्त वस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धिं पदपदं;
ओटारं नाधिगच्छिस्सं, संबुद्धस्स सतीमतो।
449.
"मेदवन्नव पसानं, वायसो अनुपरिगा;
आपेत्था मुदुं [मुदु (सि.)] विन्देमा, अपि असदाना सिया।
450.
"अलाद्धा तत्थ असदं, वायसेत्तो अपक्कमि;
काकोवा सेलमसज्जा, निब्बिजपेमा गोतमम"।
451.
Tassa sokaparetassa, vīṇā kacchā abhassatha;
ततो सो दुम्मणो यक्खो, तत्थेवंतराधायथाति।
पधानसुत्तं दुतियाम् निहितम्।

पाली-देवनागरी
2. पधानसुत्तं
4.

"तं मन पधानपहित्तं, नादिं नेरञ्जरं पति।
विप्र रेखकम झायन्तं, योगखेमस्स पत्तिया॥
4
"नमुचि करुणं वाचं, भास्मानो उपागमि।
'किसो त्वमसि दुब्बन्नो, शांतिके मरणं तव॥
4
"'सहससभागो मरणस्स, एकंसो तव जीवितं।'
जीव भो जीवितं सेय्यो, जीवं पुञ्जनि काहसि॥
430.
"चरतो च ते ब्रह्मचर्यं, अग्गिहुत्तनच जुहतो।
पहुतं चीयते पुंजं, किं पधानेन कहसि॥
4
"'दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्रक्रो दुरभिसंभवो"।
इमा गाथा भानं मारो, अत्था बुद्धस्स शांतिके॥
44वीं.
तं तत्वादिनं मारं, भगव एतदब्रवि।
"पमत्तबन्धु पापिम, येनत्थेन [सेन्थेन (?), अत्तनो अत्थेन (अट्ठ० संवन्नना)] इधागतो॥
4
"अनुमत्तोपि [अनुमत्तेनपि (सी० स्या०)] पुञ्जेन, अत्थो म्यहं न विज्जजति।
येसञ्च अत्थो पुञ्जेन, ते मारो वत्तुमरहति॥
4
"अथि साध तथा [ततो (सी० पी०), तपो (स्या० क०)] वीरियां, पञ्चा च मम विज्दजति।
एव मन पहितत्तमपि, किं जीवमनुपुच्छसि॥
4.
"नदिनमपि सोतानि, अयं वातो विसोसये।
किञ्च मे पहितत्तस्स, लोहितं नुपासुस्सये॥
4 .
"लोहिते सुस्समान्महि, पितं सेमहञ्च सुस्स्ति।"
मनसेसु खीयमानेसु, भय्यो चित्तं पसीदति।
भय्यो सति च पञ्चा च, समाधि मम तिट्ठति॥
4
"तस्स मेवं विहारतो, पत्त्ससुत्तमवेदनं।
कामेसु [कामे (सी० स्या०)] नापेक्खते चित्तं, पास सत्तस्स सुद्धतं॥
40
"कामा ते पथम सेना, दुतिया आरती वुच्चचति।"
ततिया ख़ुप्पिपासा ते, चतुर्थी तन्हा पवुचदचति॥
4.
"पंचचमं [पंचमी (सी० पी०)] थिनमिद्धं ते, छट्ठा भीरू पवुचचति।
सत्तमी विचिकिच्चा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो॥
440.
"लाभो सिलोको स त्रकारो, मिछलद्धो च यो यसो।
यो चट्टानं समुकंसे, परे च अवजान्ति॥
4
"ऐसा नमुचि ते सेना, कन्हस्साभिप्पहारिणी।"
न नं असुरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं॥
4
"अस मुनजं परिहारे, धीरथु मम [इद (क०)] जीवितं।
सङ्गामे मे मतं सेय्यो, यं चे जीवे पराजितो॥

4
"पगाळ्हेत्थ न दिसंन्ति, एके समन्ब्राह्मण।"
तंदच मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता॥
444.
" समंता धजिनं दिस्वा, युत्तं मारं स्वाहनं।
वाराय पच्चुग्गच्छामि, मां मां ठाना अचावायि॥
4
"यं ते तं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको।
तं ते पञ्चनाय भेच्छामि [गच्छामि (सी०), वेच्छामि (स्या०), वज्झामि (क०)], अमं पत्तव असम्ना [पक्काव अमुना (क०)]॥
444.
"वसीकरित्वा [वसिन कारित्वा (बहौसु)] सङ्कप्पं, सतिञ्च सुपतित्थितं।
रट्ठा रट्ठं विचारसं, सावके विनयं पुथु॥
44.
"ते अप्पमत्ता पहित्ता, मम ससंकारका।
अकामस्स [अकामा (क०)] ते गमिस्संति, यत् गन्त्वा न सोचरे"॥
4.
"सत्त वस्सनि भगवन्तं, अनुबन्धिं पदपदं।
ओटारं नाधिगच्छिस्सं, संबुद्धस्स सतीमतो॥
4
"मेदवन्नव पासां, वैसो अनुपरियोग।"
अपेत्थ मुदुं [मुदु (सी०)] विंडेम, अपि असदाना सिया॥
4
"अलद्धा तथा अस्सदं, वायसेत्तो अप्ट्रैक्टमी।"
काकोवा सेलमासज्ज, निब्बिजजापेम गोतमं"॥
4.
तस्स सोकपरेतस्स, विना कच्च अभस्सथ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथाति॥
पधानसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.3 सुभाषितसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

अच्छी तरह से बोलने वाला।

अंतर्वस्तु
13.3 सुभाषित सूत्र (अच्छी वाणी)
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.3 सुभाषित सूत्र (अच्छी वाणी)
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:
एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। भगवान (भगवान बुद्ध) ने यह कहा:

'हे भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त वाणी सुसंस्कृत होती है, न कि असभ्य; और बुद्धिमानों के लिए निर्दोष और दोषरहित होती है।'

'कौन से चार गुण?'

हे भिक्षुओं, भिक्षु सुसंस्कृत (सुंदर वाणी) बोलता है , न कि असभ्य; वह धर्म की बात करता है , न कि अधर्म की; वह मनभावन बात बोलता है , न कि अप्रिय; वह सत्य बोलता है , न कि असत्य। हे भिक्षुओं, इन चार गुणों से युक्त वाणी सुसंस्कृत होती है, न कि असभ्य; और बुद्धिमानों के लिए दोषरहित और दोषरहित होती है।' यह भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा। जब सुगत (बुद्ध) ने यह कहा, तब गुरु ने निम्नलिखित कहा:

452.
1. 'सुंदर (सुंदर) भाषा को संत श्रेष्ठ (प्राथमिक) कहते हैं;
जो सही (धम्म) है, वह बोलो, अधार्मिक (अधम्म) नहीं;
जो मनभावन है, वह बोलो, अप्रिय नहीं;
जो सत्य है, असत्य नहीं, वह चौथा है।'

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठकर, अपना वस्त्र एक कंधे पर डालकर और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर बोले: 'हे सुगत (बुद्ध), मुझे यह बात सूझी!' 'हे वंगीसा, तुम्हें यह बात सूझी!' भगवान (बुद्ध) ने कहा। तब पूज्य वांगिसा ने भगवान (बुद्ध) के समक्ष खड़े होकर उचित श्लोकों में उनकी स्तुति की:

453.
2. 'ऐसा शब्द बोलो जिससे न तो स्वयं को कष्ट हो और न ही दूसरों को दुख पहुंचे ; ऐसे शब्द ही वास्तव में उत्तम हैं।

454.
3. 'मनभावन शब्द बोलो जो सभी को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण हों , और जो (कहते हुए) पाप न करते हुए दूसरों को प्रसन्न करें। (454)

455.
4. 'सत्य वास्तव में अमर वाणी है, यह एक सत्य कथन है; जो सत्य है , जो अच्छा है, और जो सही (धम्म) है , उसमें धर्मी दृढ़ रहते हैं, ऐसा कहा जाता है।

456.
5. 'बुद्ध के वे शब्द जो निश्चित रूप से निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) लाते हैं और कष्टों का अंत करते हैं, ऐसे (शब्द) वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं।'

सुभाषितसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. सुभासितसुत्तं
एवम् मे सुतम् — एक समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। तत्र खो भगव भिक्खु अमांतेसि - "भिक्खवो"ति। "भदंते'ति ते भिक्खु भगवतो पच्चसोसुम्।' भगव एतादावोका -
"चतुहि, भिक्खवे, अन्गेहि समन्नागता वाचा सुभाषित होति, न दुब्भासिता, अनवज्जा च अनुनुवज्जा च विष्णुनाम्। कटमेही कैटुही? इधा, भिक्खवे, भिक्खु सुभाषित्येव भासति नो दुब्भासीतम्, धम्मयेव भासति नो अधम्मम, पियान्येव भासति नो अप्पियं, सच्चायेव भासति नो अलीकम्। इमेहि खो, भिक्खवे, कैटुहि अंगेहि समानागत वाचा सुभाषित होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विन्निनु'न्ति। इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
452.
"सुभाषितं उत्तममहु संतो, धम्मं भाणे नाधम्मं तं दुतियाम्;
पियं भने नाप्पियं तं ततियां, सच्चं भने नालिकं तं चतुत्थ'अन्ति।

अथ खो अयस्मा वंगिसो उत्थयासन एकांशम कत्वा येन भगव तेनांजलिं पनामेत्वा भगवन्तं एतदावोका - "पतिभाति माम्" भगव, पतिभाति मम् सुगत'ति। "पतिभातु तं वांगीसा'ति भगव अवोका। अथ खो अयस्मा वांगिसो भगवन्तं संमुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -

453.
"तमेव वाचं भासेय, ययत्तनं न तपये;
पारे च न विहिंसेय, सा वे वाचा सुभाषिता।
454.
"पियवाचमेव भसेय, या वाचा पतिनंदिता;
यं अनादया पापानि, परेसं भासते पियं।
455.
"सच्चं वे अमाता वाचा, एसा धम्मो सनंतनो;
सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु संतो पतितिता।
456.
"यं बुद्धो भासति वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया;
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वचनामुत्तमा'ति।
सुभासितसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. शुभसितासुत्तं
एवं मे सुतं – एक समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खु अम्नतेसी - "भिक्खवो"ति। "भदन्ते"ति ते भिक्खु भगवतो पच्चश्चसोसुं। भगवा एतदवोच -
"चतुहि, भिक्खवे, अङ्गेहि सम ज्ञानगाता वाचा सुभासिता होति, न दुब्बसिता, अनवजदजा च अन्नुवजदजा च विष्णुनं। कतमेहि चतुहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुभासितन्येव भासति नो दुब्बासीतं, धम्मन्येव भासति नो अधम्मं, पियांयेव भासति नो अप्पियं, सचचान्येव भासति नो अलिकं। इमेहि खो, भिक्खवे, चतुहि अङ्गेहि समासज्ञानगाता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्बसिता, अनवज्जा च अन्नुवज्जा च विञ्जुन"न्ति। इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -
4
"सुभासीतं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भने नाधम्मं तं दुतियां।
पियं भने नप्पियं तं ततियां, सचदचं भने नालिकं तं चतुत्थ"न्ति॥
अथ खो इस्मा वाङ्गिसो उत्थयासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगव तेनदजलिं पनामेत्वा भगवन्तं एतदवोच - "पतिभाति मं भगव, पतिभाति मं सुगता"ति। "पतिभातु तं वाङ्गीसा"ति भगव अवोच। अथ खो इस्मा वाडिंसो भगवन्तं सम्मुख सारुप्पाहि गाथाहि अभिथवि -
4
"तमेव वाचं भासेय, यायत्तानं न तपये।
परे च न विहिंसेय, सा वे वाचा सुभासिता॥
444.
"पियवाचमेव भासेय, या वाचा पतिन्नदिता।"
यं अनादय पापानि, परेसं भासते पियं॥
45.
"सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।"
सचचे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतित्थिता॥
40
"यं बुद्धो भासति वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया।
दुक्खससंतकिरियाय, सा वे वचनमुत्तमा"ति॥
सुभासितसुत्तं ततीयं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.4 सुंदरिकाभारद्वजसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

बुद्ध ने सुंदरिकाभारद्वाज को बताया कि किसे आहुति देनी है, और अंततः ब्राह्मण का धर्म परिवर्तन हो गया।

अंतर्वस्तु
13.4 सुन्दरिकाभरद्वाजसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.4 सुंदरिकाभारद्वाजसुत्त
अनुवाद
मुझे ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सुंदरिका नदी के किनारे कोसल में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने अग्नि को आहुति दी और उसकी पूजा की। फिर ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने अग्नि को आहुति देकर और उसकी पूजा करने के बाद अपने आसन से उठकर पृथ्वी के चारों ओर देखा और कहा, 'इस आहुति का शेष भाग किसे प्राप्त होगा?' ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) को पास ही एक वृक्ष की जड़ में सिर और शरीर को लपेटे हुए बैठे देखा; उन्हें देखकर उन्होंने अपने बाएं हाथ से आहुति का शेष भाग और अपने दाहिने हाथ से जलपात्र लेकर भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज के पदचिन्हों की आवाज सुनकर अपना सिर खोल दिया। तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने सोचा, 'यह आदमी मुंडा हुआ है, यह तो मुंडा हुआ है,' और वह वहाँ से वापस लौटना चाहता था। तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज के मन में यह विचार आया: 'यहाँ कुछ ब्राह्मण भी मुंडे हुए हैं, मुझे लगता है कि मुझे ऊपर जाकर उनसे उनके वंश के बारे में पूछना चाहिए।' तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और ऊपर जाकर उन्होंने यह कहा: 'आप किस वंश के हैं?'

तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज को श्लोकों में उत्तर दिया:

1. 'मैं न तो ब्राह्मण (पुजारी) हूँ, न राजपूत, न ही कोई वेस (व्यापारी); मैंने आम लोगों के वर्गों का गहन अध्ययन किया है, मैं चिंतन करते हुए संसार में विचरण करता हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। (457)

2. 'संघति वस्त्र पहने और घरविहीन, मैं अपने बाल कटवाए हुए, शांत, इस संसार के लोगों से मेलजोल न रखते हुए विचरण करता हूँ।' हे ब्राह्मण! तुमने मुझसे मेरे कुल के बारे में एक अनुचित प्रश्न पूछा है। (458)

3. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे प्रभु, ब्राह्मण आपस में मिलकर सत्य पूछते हैं, क्या तुम ब्राह्मण हो?' (459)

भगवान (बुद्ध): 'यदि तुम कहो कि मैं ब्राह्मण हूँ, और मुझे ब्राह्मण न कहो, तो मैं तुमसे उस सविति के बारे में पूछता हूँ जो तीन पदों और चौबीस अक्षरों से बनी है।' (460)

4. सुंदरिकभरद्वाज: 'इस संसार में ईसा, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं को इतनी अधिक भेंट क्यों चढ़ाई?' (461)

भगवान (बुद्ध): 'जो भेंट चढ़ाते समय पूर्ण और सिद्ध हो, और किसी न किसी देवता का सान्निध्य प्राप्त कर ले, वह सफल होगा, ऐसा मैं कहता हूँ।' (462)

5. 'निश्चित रूप से उनकी भेंट फलदायी होगी,'—ब्राह्मण ने कहा—'क्योंकि हमने ऐसे सिद्ध पुरुष को देखा; क्योंकि आपके जैसे व्यक्ति को न देखकर कोई और इस भेंट का आनंद उठाएगा।' (463)

6. भगवान (बुद्ध): 'अतः, हे ब्राह्मण, क्योंकि तुम यहाँ कुछ माँगने आए हो, माँग लो; शायद तुम्हें यहाँ कोई शांत, क्रोध रहित, पीड़ा रहित, इच्छा रहित, और अच्छी समझ वाला व्यक्ति मिल जाए।' (464)

7. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे गौतम (बुद्ध), मुझे अर्पण करने में आनंद आता है, मैं अर्पण करना चाहता हूँ, परन्तु मुझे समझ नहीं आ रहा; क्या आप मुझे निर्देश देंगे, मुझे बताएँगे कि किस स्थिति में अर्पण सफल होता है।' (465)

8. भगवान (बुद्ध): 'अतः, हे ब्राह्मण, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें धर्म सिखाऊँगा।' 9. 'वंश के बारे में मत पूछो, बल्कि आचरण के बारे में पूछो; यह सत्य है कि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है; (इसी प्रकार) एक दृढ़ मुनि (संत), यद्यपि निम्न कुल का हो, नम्रता से संयमित रहने पर (पापों से) श्रेष्ठ हो सकता है।' (466)

10. 'जो सत्य से वश में हो, संयम से युक्त हो, सिद्ध हो, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता हो, ऐसे व्यक्ति को समय आने पर लोगों को अर्पण करना चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण अर्पण करे।' (467)

11. जो लोग इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घर छोड़कर, संयमित होकर, सीधे शटल के समान विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (468)

12. जिनके जुनून समाप्त हो गए हैं, जिनकी इंद्रियां शांत हैं, जो राहु के चंगुल से चंद्रमा के समान मुक्त हो गए हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (469)

13. जो लोग किसी भी चीज से आसक्त हुए बिना, सदा चिंतनशील होकर, स्वार्थ का त्याग करके संसार में विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (470)

14. 'जो इंद्रिय सुखों का त्याग करके विजयी होकर विचरण करता है, जो पुनर्जन्म और मृत्यु के अंत को जानता है, जिसने निर्वाण (परिनिभूत) का दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो गहरे जल के समान शांत है, तथागत (बुद्ध) आहुति के पात्र हैं। (471)

15. 'धर्मियों के साथ न्याय करने वाला और अधर्मियों से दूर रहने वाला तथागत (बुद्ध) अनंत पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है; इस लोक और परलोक दोनों में निष्कलंक, तथागत आहुति के पात्र हैं। (472)

16. 'जिसमें छल, अहंकार नहीं रहता, जो लोभ, स्वार्थ, इच्छा से मुक्त है, जिसने क्रोध को त्याग दिया है, जो शांत है, वह ब्राह्मण जिसने दुःख के दाग को दूर कर दिया है, तथागत (बुद्ध) आहुति के पात्र हैं। (473)

17. 'जिसने मन के सभी विश्राम स्थलों को त्याग दिया है, जिसके लिए कोई आसक्ति नहीं है, जो इस लोक या परलोक में किसी भी चीज़ की लालसा नहीं रखता, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (474)

18. 'जो शांत हैं, जिन्होंने (अस्तित्व की) धारा को पार कर लिया है और धम्म को सर्वोच्च दृष्टि से जानते हैं, जिनके जुनून नष्ट हो गए हैं, जो अंतिम शरीर धारण किए हुए हैं, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (475)

19. 'जिसके अस्तित्व के प्रति जुनून और कठोर वाणी नष्ट हो गए हैं, (और इसलिए) विद्यमान नहीं हैं, वह सिद्ध और हर तरह से मुक्त तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (476)

20. 'जिसने सभी बंधनों को त्याग दिया है, जिसके लिए कोई बंधन नहीं है, जो अहंकारी प्राणियों में अहंकार से मुक्त है, जिसने दुख और उसके क्षेत्र और विषय को भेद दिया है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (477)

21. 'जो स्वयं को इच्छाओं के अधीन किए बिना एकांत (अर्थात निर्वाण) को देखता है, जिसने दूसरों द्वारा सिखाए जाने वाले दृष्टिकोण पर विजय प्राप्त कर ली है, जिसके लिए इंद्रियों के कोई विषय नहीं हैं, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (478)

22. 'जिसके लिए सभी प्रकार के धर्म, उन्हें भेदने के बाद, नष्ट हो जाते हैं, (और इसलिए) अस्तित्व में नहीं रहते, जो शांत है, आसक्ति के नाश (अर्थात निर्वाण) में मुक्त है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (479)

23. 'जो बंधन और पुनर्जन्म के विनाश को देखता है, जिसने कामवासना के मार्ग से पूर्णतः परहेज किया है, जो शुद्ध, निर्दोष, निष्कलंक, निर्मल है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य है। (480)

24. 'जो स्वयं को स्वयं से नहीं मापता, जो शांत, ईमानदार, दृढ़, इच्छा रहित, अखिल (कठोरता) से मुक्त, संशय से मुक्त है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य है। (481)

25. 'जिसके लिए मूर्खता का कोई कारण नहीं है, जिसे सभी धर्मों में अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त है, जो अंतिम शरीर धारण करता है, और जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है, जो सर्वोच्च, धन्य है, (उसके लिए) इस प्रकार यक्ष का शुद्धिकरण होता है।' (482)

26. सुंदरिकभारद्वाज: 'मेरी आहुति सच्ची आहुति हो, क्योंकि मुझे सिद्ध पुरुषों में से ऐसा ही एक मिला; ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) मेरे साक्षी हैं, भगवान (बुद्ध) मुझे स्वीकार करें, भगवान (बुद्ध) मेरी आहुति का आनंद लें। (483)

27. भगवान (बुद्ध): 'श्लोकों से जो प्राप्त होता है, उसका मैं आनंद नहीं ले सकता, हे ब्राह्मण; बुद्ध श्लोकों से प्राप्त होने वाली चीजों को अस्वीकार करते हैं। हे ब्राह्मण, जब तक धम्म विद्यमान है, यही बुद्धों का अभ्यास है। (484)

28. 'अन्य भोजन और पेय के साथ तुम्हें उस परिपूर्ण, महान ऋषि (संत) की सेवा करनी चाहिए, जिसकी वासनाएं नष्ट हो गई हों और जिसका दुराचार समाप्त हो गया हो, क्योंकि यह अच्छे कर्मों की तलाश करने वाले के लिए एक क्षेत्र है।' (485)

29. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), तो मैं जानना चाहता हूँ कि मुझ जैसे व्यक्ति से दान का आनंद कौन उठाएगा, और आपके उपदेश को स्वीकार करने के बाद यज्ञ के समय मैं किसे (अर्पण के योग्य मानकर) प्रार्थना करूँ।' (486)

30. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जिसके मन में कोई कलह नहीं है, जिसका मन शांत है, जिसने कामवासनाओं से मुक्ति पा ली है, (487)

31. 'जिसने अपने पापों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पुनर्जन्म और मृत्यु को जानता है, जो ज्ञान से परिपूर्ण मुनि (संत) है, जिसने अर्पण का सहारा लिया है, (488)

32. 'उसे भोजन और पेय से पूजें और आदर दें; इससे दान सफल होगा।' (489)

33. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे बुद्ध, आप अर्पण के योग्य हैं, आप सद्गुणों के रोपण के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र हैं, समस्त जगत को अर्पित किए जाने के पात्र हैं; आपको जो दिया जाएगा वह महान फल देगा।' (490)

तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध) यह उत्तम है! हे पूज्य गौतम (बुद्ध) यह उत्तम है! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाता है, या अंधकार में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) से वस्त्र और आदेश प्राप्त करना चाहता/चाहती हूँ।

ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने भगवान बुद्ध से दीक्षा (पब्बज्जा) प्राप्त की और उपसंपदा (दीक्षा) भी प्राप्त की; उपसंपदा प्राप्त करने के बाद, पूज्य भरद्वाज ने एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमी, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत किया और थोड़े ही समय में अपने ज्ञान से धर्म जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घर को त्यागकर घरहीन हो जाते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, धर्मपरायण जीवन व्यतीत किया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जीवन में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य सुंदरिकभरद्वाज ब्राह्मण अरहतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए।

सुंदरिकभरद्वाजसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. सुंदरिकाभारद्वाजसुत्तम्
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव कोसलेसु विहारति सुंदरिकाया नादिया तीरे। तेन खो पाना समयेन सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो सुंदरिकाया नादिया तीरे अग्गि जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गि जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा उत्थयासना

समंता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि - "को नु खो इमं हब्यसेसं भुञ्जेय"ति? अद्दसा खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदुरे अनंतरस्मि रुक्खमुले ससीसं परुतं निसिन्नम्; दिस्वाना वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिनेन हत्थेन कमंडलुम गहेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि। अथ खो भगव सुंदरिकाभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स पदसद्देन सीसं विवारी। अथ खो सुन्दरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो - "मुण्डो अयं भवाम्, मुण्डको अयं भव"न्ति ततोवा पुना निवत्तीतुकामो अहोसि। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "मुंडापि हि इधेकच्चे ब्राह्मण भवन्ति, यन्नुनाहं उपसंकमित्वा जातिं पुचेय्य"न्ति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं एतदावोचा - " किञ्चको भव'न्ति?

अथ खो भगव सुन्दरिकाभारद्वाजं ब्राह्मणं गाथाहि अज्जभासि -

457.

"न ब्राह्मणो नोमहि न राजपुत्टो, न वेस्सयणो उदा कोचि नोमहि;
गोत्तं परिणय पुथुज्जनानं, अकिंचनो मंता कैरामि लोके।

458.

"संघातिवासी अगाहो कारामि [अगिहो (का. सी. पि.) अगेहो (कत्थचि)], निवुत्तकेसो अभिनिब्बुत्तो;
अलिप्पामानो इधा मनवेहि, अकालं मां ब्राह्मण पुच्चसि गोत्तपन्हं"।

459.

"पुच्चन्ति वे भो ब्राह्मणा, ब्राह्मणेभि सह ब्राह्मणो नो भवन्ति।

460.

"ब्राह्मणो हि सी त्वं ब्रूसी, मंचा ब्रूसी ब्राह्मणम्;
तं तं सवित्तिं पुच्छमि, तिपादं चतुविसातक्खरं।

461.

"किं निसिता इसयो मनुजा, खटिया ब्राह्मणा [पाथमपादन्तो] देवतानं;
यान्नमकप्पयिन्सु पुथु इधा लोके [दुतियापादन्तो (सि.)]।

462.

"यदन्तगु वेदगु यान्नकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्जेति ब्रूमि"।

463.

"अद्धा हि तस्स हुतामिज्जे, (इति ब्राह्मणो)
यं तदिसं वेदगुमद्दसाम;
तुम्हादिसाणहि अडस्सनेण, अन्नो जनो भुञ्जति पुरासां"।

464.

"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण अत्थेन, अत्तिको उपसंकम्मा पुच्च;
संतं विधुमं अनिघं निरासं, अप्पेविध अभिविन्दे सुमेधं"।

465.

"यान्ने रतोहं भो गोतम, यान्नं यिथुकामो नाहं पजानामि;
अनुसासतु मम् भावं, यत्थ हुतं इज्जते ब्रुहि मे तं"।
"तेन हि त्वं, ब्राह्मण, ओदाहस्सु सोतं; धम्मं ते देसेस्सामि –

466.

"मा जातिं पुच्चि चरणाञ्च पुच्च, कत्था हवे जयति जातवेदो;
निकाकुलिनोपि मुनि धीतिमा, अंजनियो होति हिरणीसेधो।

467.

"सच्चेना दंतो दमासा उपेतो, वेदांतगु वुसितब्रह्मचारियो;
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो [पुन्नपेखो (सि. पि.)] यजेथा।

468.

"ये कामे हित्वा अगाहा कैरन्ति, सुसन्नत्तत्ता तसरनव उज्जुम्;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।

469.

"ये वीतराग सुसमाहितिन्द्रिय, कैंडोवा रहुग्गहाणा पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।

470.

"असज्जमाना विकारन्ति लोके, सदा सता हित्वा ममयितानि;

कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
471.
"यो कामे हित्वा अभिभूयचारि, यो वेदि जातिमरणस्सा अन्तम्;
परिणिब्बुतो उदकरहदोवा सितो, तथागतो अरहति पुरासां।
472.
"समो समेहि विसामेहि दूरे, तथागतो होति अनन्तपन्नो;
अनुपालितो इधा वा हुरं वा, तथागतो अर्हति पुरासासं।
473.
"यमहि न माया वसति न मानो, यो वितालोभो अमो निरासो;
पनुन्नकोधो अभिनिब्बुतत्तो, यो ब्राह्मणो सोकमलाम् अहसि;
तथागतो अरहति पुरासाम्।
474.
"निवेसनं यो मनसो अहसि, परिग्गहा यस्सा न शांति केचि;
अनुपादियानो इधा वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरासासं।
475.
"समाहितो यो उदतारि ओघं, धम्मं कैननासि परमया दितिथिय;
खिन्नसावो अन्तिमदेधाधारी, तथागतो अर्हति पुरासासं।
476.
"भवस्व यस्सा वाचि खरा च, विधूपिता अथगता न शांति;
स वेदागु सब्बाधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासां।
477.
"संगतिगो यस्सा न शांति संगा, यो मनसत्तेसु अमानसत्तो;
दुक्खं परिणय सखेत्तवत्थुम्, तथागतो अरहति पुरासाम्।
478.
"आसं अनिस्साया विवेकादस्सी, परवेद्यं दिथिमुपतिवत्तो;
अरम्मना यस्सा न संति केचि, तथागतो अरहति पुरासासं।
479.
"परोपारा [परोवरा (सी.पी.)] यस्सा समेच्च धम्म, विधूपिता अथगता न शांति;
सन्तो उपादानखाये विमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासाम्।
480.
"संयोजनं जातिखयंतदस्सी, योपानुदि रागपथं असेसं;
सुद्धो निदोसो विमलो अकाको [अकामो (सि. स्या.)], तथागतो अरहति पुरासां।
481.
"यो अत्तनो अत्तनं [अत्तनत्तनं (सि. स्या.)] नानुपासति, समाहितो उज्जुगतो थित्तत्तो;
सा वे अनेजो अखिलो अकांखो, तथागतो अरहति पुरासां।
482.
"मोहंतरा यस्सा न शांति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च नानादस्सी;
शरीरान्च अन्तिमं धारेति, पत्तो च संबोधिमनुत्तरं शिवं;
एत्तावता यक्खस्सा शुद्धि, तथागतो अरहति पुरासां"।
483.
"हुतांका [हुत्तांका (सि. का.)] मयहं हुतमत्तु सच्चं, यम तदिसं वेदगुणं अलत्थं;
ब्रह्मा हि सक्खि पतिगणहतु मे भगव, भुञ्जतु मे भगव पुरदासम्"।
484.
"गाथाभिगीतां मे भोजनेयं, संपासतं ब्राह्मण नेसा धम्मो;
गाथाभिगीतां पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा।
485.
"अन्नेन च केवलिनं महेसिं, खिनासावं कुक्कुक्कवुपसंतम्;
अन्नेन पनेण उपाथहस्सु, खेतान्हि तं पुन्नपेक्खस्सा होति"।

486.
"साधाहं भगव तथा विज्ञानं, यो दक्खिनं भुञ्जेय मदिस्सा;
यं यान्नकाले परियेसामानो, पप्पुय्य तव शासनं।"
487.
"सारम्भा यस्सा विगत, चित्तं यस्सा अनाविलम्;
विप्पमुत्तो च कामेहि, थिनं यस्सा पनुदितम्।
488.
"सीमंतानां विनीतारं, जातिमरणकोविदं;
मुनिं धन्यसम्पन्नं, तदिसं यन्नमगतम्।
489.
"भकुटिं [भुकुटिं (का. सी.), भकुटिं (का. सी., मा. नि. 1.226)] विनयित्वना, पंजालिका नमस्सथ;
पूजेथा अन्नपानेन, एवं इज्जन्ति दक्खिना।
490.
"बुद्धो भावं अरहति पुरदासं, पुन्नखेत्तमनुत्तरम्;
अयागो सब्बलोकस्सा, भोतो दिनं महप्फला"न्ति।
अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदावोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम, अभिकान्तम्, भो गोतम! सेय्याथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्या, पतिच्चन्नं वा विवरेया, मुधास्सा वा मग्गं आचिक्खेया, अंधकारे वा तेलापज्जोतम धारेया - चक्खुमंतो रूपाणी दक्खन्तीति; एवमेवं भोता गोतमेना अनेकापरियायेन धम्मो पकासितो। एषाहं भवंतं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघाञ्च। लभेयाहं भोतो गोतमस्सा संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति। अलत्थ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो...पे... अरहतं अहोसिति।
सुंदरिकाभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी
4. सुन्दरिकभरद्वाजसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव कोसलेसु विहारति सुंदरिकाय नादिया तीरे। तेन खो पन समयेन सुंदरिकाभरद्वाजो ब्राह्मणो सुंदरिकाय नादिया तीरे अग्गिं जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गिन जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा उत्थयासना समंता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि - "को नु खो इमं हब्यसेसं भुंजदजेय"ति? अद्दसा सुंदरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदूरे अञ्जन्तरस्मिं रुखमूले ससीसं पारुतं निसि सिनजं; दिस्वां वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिनेन हत्थेन कमंडलुं गहेत्वा येन भगवा तेनुपसङकमि। अथ खो भगवा सुंदरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस पदसद्देन सीसं विवारी। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो - "मुंडो अयं भवं, मुंडको अयं भव"न्ति ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "मुंडपि हि इधेकच्छे ब्राह्मणा भवन्ति, यन्नुनाहं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय"न्ति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच - "किञ्जच्चो भव"न्ति?
अथ खो भगवत् सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं रामायणहि अज्भासि -
4
"न ब्राह्मणो नोम्हि न राजपुत्तो, न वेस्सायनो उद कोचि नोम्हि।
गोत्तं परिञ्चयाय पुथुज्जनानं, अकिञ्चनो मन्त चरामि लोके॥
4वीं.
"सङ्घाटीवासी अघो चरामि [अगिहो (क॰ सी॰ पी॰) अगेहो (कत्थचि)], निवुत्तकेसो अभिनिब्बुत्ततो।
अलिप्पमानो इध मनवेहि, अक्लदलं मन ब्राह्मण पुच्छसि गोत्तपञ्च॥"
4 50.
"पुच्छन्ति वे भो ब्राह्मणा, ब्राह्मणेभि सह ब्राह्मणो नो भव"न्ति॥
4.
"ब्राह्मणो हि चे त्वं ब्रूसि, मञ्च ब्रूसि अब्राहमणं।
तं तं सवित्तिं पुच्छमि, तिपादं चतुविसतखरं॥
4
"किं निस्सीता इसयो मनुजा, खत्तिया ब्राह्मणा [पथमपदंतो] देवतानं।
यञ्जमकप्पयिन्सु पुथु इध लोके [दुतियपादन्तो (सी॰)]॥
4

"यदन्तगु वेदगू यञ्चकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्जेति ब्रूमि"॥
466.
"अद्धा हि तस्स हुतमिज्झे, (इति ब्राह्मणो)
यं तदिसं वेदगुमद्दसाम्।
तुम्हादीसांनहि अदस्सनेन, अञ्जनो जनो भुञ्जति पुरळासन्"॥
4
"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण एथेन, अथिको उपसङकम पुच्छ।
सन्तं विधुमं अनीघं निरासं, अप्पेविध अभिविंदे सुमेधं॥
4.
"यञ्जने रतोहं भो गोतम, यञ्जन्न यित्थुकामो नहं पजानामि।
अनुसास्तु मन भवन, यथा हुतं इज्ज़ते ब्रूहि मे तं"॥
"तेन हि त्वं, ब्राह्मण, ओदहस्सु सोतं; धम्मं ते देसेस्सामि -
4.
"मा जातिं पुच्छि चरणाञ्च पुच्छ, कत्था हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलिनोपि मुनि धीतिमा, अजाणियो होति हिरिनिसेधो॥
4
"सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदांतगू वुसीतब्रह्मचारियो।"
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो [पुंजपेखो (सी० पी०)] यजेथ॥
चार सौ
"ये कामे हित्वा अघा चरन्ति, सुसंज्ञत्ता तस्रव उज्जुं।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
46.
"ये वीतरागा सुसहितिन्द्रिय, चंदोव राहुघाना पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
400
असज्जमाना विचरन्ति लोके, सदा सत् हित्वा ममयितानि।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
450.
"यो कामे हित्वा अभिभूयचारी, यो वेदि तेमरानसस अंतं।
परिनिब्बुतो उदकरहदोव सीतो, तथागतो अरहति पुरळासन॥
4.
"समो समेहि मेविहि दूरे, तथागतो होति अनंतपञ्चो।
अनोपलित्तो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"यम्हि न मया वसति न मानो, यो वीतलोभो अम्मो निरासो।
पनुन्नकोधो अभिनिब्बुत्ततो, यो ब्राह्मणो सोकमलं अहासि।
तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4
"निवेसनं यो मनसो अहासि, परिग्गहा यस न शांति केचि।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरासं॥
450.
"समाहितो यो उद्तारि ओघं, धम्मं चञ्चसि परमाय दिट्ठिया।
खिनासावो अन्तिमदेहधारी, तथागतो अरहति पुरळासं॥
46.
"भवस्व यस् वाचि खरा च, विधूपिता अथगता न शांति।"
स वेदगु सब्बधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासं॥
477.
"सङ्गातिगो यस न सन्ति सङ्गा, यो मनसत्तसु अमानसत्तो।

दुक्खं परिञ्ञानाय सखेत्तवथुं, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"असं अनिस्साय विवेकादस्सी, परवेदियं दिट्ठिमुपतिवत्तो।
अरमना यस् न सन्ति केचि, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"परोपरा [परोवरा (सी० पी०)] यस समेचच धम्मा, विधूपिता अथगता न सन्ति।
सन्तो उपादानखाये विमुत्तो, तथागतो अरहति पुरळासं॥
4.
"संयोजनं जातिखयंतदस्सी, योपानुदि रागपथं असेसं।
सुद्धो निदोसो विल्मो अकाचो [अकामो (सी० स्या०)], तथागतो अरहति पुरळासन॥
4
"यो अत्तनो अत्तानं [अत्तनात्तनं (सी० स्या०)] नानुपस्स्ति, समाविष्टो उज्दजुगतो थितत्तो।
स वे अनेजो अखिलो अकङ्खो, तथागतो अरहति पुरासं॥
4.
"महत्र यस् न सन्ति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च नन्ददस्सी।"
शरीरं च अन्तिमं धारेति, पत्तो च सम्बोधिमनुत्तरं शिवं।
एत्तावता यक्षस्स सुद्धि, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"हुत्तञ्च [हुत्तञ्च (सी० क०)] म्यहं हुतमथु सच्दचं, यं तदिसं वेदगुणं अलथं।
ब्रह्मा हि सक्खि पतिग्नहातु मे भगवा, भुञ्जतु मे भगवा पुरळासं॥
4 सप्ताह.
"गाथाभिगीतं मे अभोजनेयं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा॥
4.
"अञ्जेन च केवलिनं महेसिं, खिनास्वं कुकुचदचवुपसन्तं।
अ खोजेन प्राप्तेन उपट्ठहस्सु, खत्तञ्हि तं पुंजपेखस्स होति"॥
466
"साधाहं भगवान तथा विज्ञानं, यो दक्खिनं भुञ्जेय मादिसस्स।
यं यञ्चकाले प्रियेसमानो, पप्पुय तव ससनं"॥
4.
" सारंभ यस अतीता, चित्तं यस अनाविलं।
विप्पमुत्तो च कामेहि, थिनं यस् पनुदितं॥
4.
"सीमान्तानां विनेतरं, जातिमरणकोविदं।
मुनिं मोनेय्यसंप जपं, तदिसं यज्ञमगतं॥
4 सप्ताह
"भुकुटिन [भुकुटिन (क० सी०), भकुटिन (क० सी०, म० नि० 1.226)] विज्ञित्वान, पञ्जलिका नमस्सथ।
पूजेथ अपायनपानेन, एवं इज्जन्ति दक्षिणा॥
4
"बुद्धो भवनं अरहति पुरासं, पुञ्चेत्तमनुत्तरं।
अयागो सब्बलोकस्स, भोतो दीन नारायणं महपफल"न्ति॥
अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच – "अभिक्रोकान्तं, भो गोतम, अभिक्रोकान्तं, भो गोतम! सेयथापि, भो गोतम, त्र निकुज्जजितं वा उक्राकुज्जेय, पतिच्छ संज्ञां वा विवेरेय, मूळहस्स वा मग्गं अचिक्खेय, अंधकारे वा तैलपजजोतं धारेयय - चक्खुमंतो रूपाणि दक्खनतिति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकप्रिययेन धम्मो पाकसितो। एसहं भवन्तं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मनदच भिक्खुसङ्घघ्नदच। लभेयहं भोतो गोतमस्स संतिके पब्बजं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति। अलत्थ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो...पे०...अर्हतं अहोसिति।
सुंदरिकाभरद्वाजसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.5 माघसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

पूछे जाने पर बुद्ध ने माघा को उन लोगों के बारे में बताया जो भेंट चढ़ाने के योग्य हैं और भेंट चढ़ाने के आशीर्वाद के बारे में भी बताया।

अंतर्वस्तु
13.5 मगत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.5 मगसूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में, गिज्जकूट नामक पर्वत पर निवास कर रहे थे।

तब युवक माघ भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गया, और उनसे मधुर वार्तालाप करने के बाद, एकांत में बैठ गया; एकांत में बैठकर युवक माघ ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), मैं उदार दाता हूँ, दानशील हूँ, भीख मांगने योग्य हूँ; मैं न्यायपूर्वक धन की खोज करता हूँ, और न्यायपूर्वक धन की खोज करने के बाद, मैं न्यायपूर्वक प्राप्त धन में से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ और उससे भी अधिक लोगों को देता हूँ।' (मैं जानना चाहता हूँ), हे पूज्य गौतम (बुद्ध), क्या मैं इस प्रकार दान करते हुए, इस प्रकार भेंट करते हुए, बहुत पुण्य उत्पन्न करता हूँ?'

'निश्चित रूप से, हे युवक, क्या तुम इस प्रकार भेंट करते हुए बहुत पुण्य उत्पन्न करते हो? हे युवक, जो उदार दाता है, दानशील है, भीख मांगने योग्य है, और जो न्यायपूर्वक धन की खोज करता है, और न्यायपूर्वक धन की खोज करने के बाद, अपने न्यायपूर्वक अर्जित धन में से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ और इससे भी अधिक दान करता है, वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।'

तब युवक माघा ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'मैं आदरणीय गौतम बुद्ध से, जो उदार हैं,' - युवक माघा ने कहा, - 'पीले वस्त्र धारण किए हुए, घरविहीन विचरण करते हैं:' 'जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दानदाता है, जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है, - ऐसे दानदाता का दान कहाँ (अर्थात किसे दिया जाए) सफल होगा?' (491)

2. 'हे माघा, जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दानदाता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है, ऐसा दान उन लोगों के साथ सफल होगा जो दान के योग्य हैं।' (492)

3. 'जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दान देने योग्य है,'—उस युवक ने कहा—'जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है,—हे भगवान (बुद्ध), मुझे (मैं ऐसा ही हूँ) दान के योग्य व्यक्तियों के बारे में बताइए।' (493)

4. भगवान (बुद्ध): 'वास्तव में जो लोग संसार में बिना किसी आसक्ति के और बिना किसी वस्तु के विचरण करते हैं, पूर्ण, आत्मसंयमित, ऐसे लोगों को उचित समय पर दान देना चाहिए; जो ब्राह्मण अच्छे कर्मों को ध्यान में रखते हैं, वे दान करें।' (494)

5. 'जो सभी बंधनों और बेड़ियों को तोड़कर वश में हो गए हैं, जो वश में हैं, मुक्त हैं, पीड़ा से मुक्त हैं और इच्छा से मुक्त हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (495)

6. 'जो सभी बंधनों से मुक्त हो गए हैं, जो वश में हैं, मुक्त हैं, पीड़ा से मुक्त हैं और इच्छा से मुक्त हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (496)

7. 'जो लोग वासना, घृणा और मूर्खता दोनों का त्याग करके अपनी इच्छाओं का नाश कर चुके हैं और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (497)

8. 'जिनमें छल, अहंकार न हो, जो भोग-विलास से मुक्त हों, स्वार्थ से मुक्त हों, कामुक इच्छाओं से मुक्त हों, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (498)

9. 'जो लोग लोभ में लीन हुए बिना, जीवन की धारा पार करके, स्वार्थ से मुक्त होकर, कामुक इच्छाओं से मुक्त होकर विचरण करते हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (499)

10. 'जिनमें संसार में किसी भी चीज की इच्छा न हो, न ही इस लोक या परलोक में किसी भी जन्म की, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (500-501)

11. 'जो लोग इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घर छोड़कर, संयमित और सीधे शटल के समान विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (502)

12. 'जिनके मनोभाव शांत हो गए हैं, जिनकी इंद्रियां शांत हैं, जो राहु के चंगुल से चंद्रमा के समान मुक्त हो गए हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (503)

13. 'जो शांत हैं, जिनके मनोभाव शांत हो गए हैं, जो क्रोध रहित हैं, और जिनका इसलोक से प्रस्थान करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (504)

14. 'जो लोग पुनर्जन्म और मृत्यु को पूरी तरह से त्यागकर सभी संदेहों पर विजय प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (505)

15. 'जो लोग स्वयं को प्रकाश की खोज में संसार में विचरण करते हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है, जो हर तरह से मुक्त हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (506)

16. 'जो लोग इस संसार में यह सही ढंग से समझते हैं कि "यह अंतिम (जीवन) है, अब कोई पुनर्जन्म नहीं है," उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे।(507)

17. 'जो सिद्ध पुरुष हो, आत्म-मग्न ध्यान में प्रसन्न रहता हो, विचारशील हो, पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण हो, अनेकों का आश्रयदाता हो, ऐसे पुरुष को समय आने पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे।' (508)

18. 'निःसंदेह मेरा प्रश्न व्यर्थ नहीं था, भगवान (बुद्ध) ने मुझे आहुति के योग्य व्यक्तियों के विषय में बताया है; क्योंकि तुम इस संसार में इसे सत्यतः जानते हो, जैसे तुम्हें यह धर्म ज्ञात है।' (509)

19. 'जो गृहस्थ हो, भिक्षा मांगने योग्य हो, दान देने वाला हो,'—मघा नामक युवक ने कहा—'जो कल्याण की इच्छा रखता हो, कल्याण को ध्यान में रखते हुए आहुति देता हो, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता हो,—हे भगवान (बुद्ध), मुझे (मैं ऐसा ही व्यक्ति हूँ) आहुति देने के आशीर्वाद के बारे में बताइए।' (510)

20. 'हे माघ, अर्पण करो,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'और अर्पण करते समय अपने मन को सभी चीजों में शांत रखो; अर्पण करने वाले का उद्देश्य अर्पण है, इसमें दृढ़ रहकर वह द्वेष (दोष, द्वेष) को त्याग देता है।' (511)

21. 'जिसका राग (वासना) समाप्त हो गया है, वह द्वेष (दोष, द्वेष) को दबाकर असीम मित्रता का भाव विकसित करेगा; निरंतर परिश्रम से दिन-रात वह समस्त लोकों में अनंत अच्छाई फैलाएगा।' (512)

22. माघ: 'कौन समृद्ध होता है? कौन मुक्त है और कौन बंधा हुआ है? कौन स्वयं ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) जा सकता है? हे मुनि (संत), जब मुझसे पूछा जाए, तो मुझे, जो नहीं जानता, यह बताओ।' भगवान (बुद्ध) मेरे साक्षी हैं कि आज मुझे ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के दर्शन हुए हैं, क्योंकि आप हमारे लिए ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के समान हैं, यही सत्य है; हे महिमावान, ब्रह्मलोक कैसे प्राप्त किया जा सकता है?' (513)

23. 'हे माघ, जो तीन प्रकार का आहुति देता है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'ऐसा व्यक्ति आहुति के योग्य लोगों के साथ समृद्ध होगा; अतः, उचित आहुति देने पर, जो भी भिक्षा मांगने योग्य है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, ऐसा मैं कहता हूँ।' (514)

यह सुनकर, युवक माघ ने भगवान (बुद्ध) से इस प्रकार कहा: 'उत्कृष्ट, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! उत्कृष्ट, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) की, धम्म की और भिक्षुओं की सभा की शरण लेता हूँ। पूज्य गौतम (बुद्ध) मुझे उपासक (अनुयायी) के रूप में स्वीकार करें, जिसने अब से अपने पूरे जीवन भर उनकी शरण ली है।'

मघसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
5. माघसुत्तं
एवं मे सुतं - एक समयं भगव राजगहे विहारति गिज्जकुते पब्बते। अथ खो माघो मानवो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो माघो मानवो भगवन्तं एतदावोचा -
"अहांहि, भो गौतम, दयाको दानपति वदान्नि याकायोगो; धम्मेन भोगे परियेसामि; धम्मेना भोगे परियेसित्व धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददामि दविन्नमपि तिन्नमपि कटुन्नमपि पञ्चन्नमपि चन्नमपि सत्तनमपि अथथन्नमपि नवन्नमपि दशन्नमपि ददामि, विसायपि तिनस्यापि कत्तलिस्यापि पन्नस्यापि ददामि, सतस्सपि ददामि, भय्योपि ददामि। कच्चहं, भो गोतम, एवं ददंतो एवं यजन्तो बहुं पुन्नं पसावमि'ति?
"तग्ग त्वं, मानवव, एवं ददंतो एवं यजंतो बहुं पुन्नं पसवसि। यो खो, मानव, दयाको दानपति वदन्निउ याकायोगो; धम्मेना भोगे परियेसति; धम्मेन भोगे परियेसीत्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्मधिगतेही एकस्सपि ददाति...पे...सतस्सपि ददाति, भयोपि ददाति, बहुं सो पुन्नं पसवति"ति। अथ खो माघो मानवो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
491.
"पुच्चमहं गोतमं वदन्नुं, (इति माघो मनावो)
कसायवासीं अगहं [अगिहं (सि.), अगेहं (पि.)] कैरंतम;
यो याकायोगो दानपति [दानपति (सि. स्या. पि.)] गहठो, पुनात्थिको [पुन्नपेखो (सि. पि. का.)] यजति पुनापेक्खो;
ददं परेसं इधा अन्नपानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्जे"।
492.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (माघाटी भगवान)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं, अराधाये दक्खिनेयभि तदि"।
493.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (इति माघो मनावो)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं, अक्खाहि मे भगव दक्खिनये"।

494.
"ये वे असत्ता [अलाग्गा (स्या.)] विकारन्ति लोके, अकिंचना केवलिनो यत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
495.
"ये सब्बासंयोजनबंधनच्चिदा, दन्त विमुत्त अनिघ निरासा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
496.
"ये सब्बासंयोजानाविप्पमुत्ता, दन्त विमुत्ता अनिघा निरासा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
497.
"रागाञ्च दोसाञ्च पहाय मोहं, खिनासाव व्युसितब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
498.
"येसु न माया वसति न मानो, खिनासाव वसुसितब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
499.
"ये वितालोभ अमा निरासा, खिनासावा वुसीतब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
500.
"ये वे न तन्हासु उपतिपन्ना, वितरेय ओघं अमामा कैरन्ति;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
501.
"येसं तन्हा नत्थि कुहिनसी लोके, भावभवाय इधा वा हुरं वा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
502.
"ये कामे हित्वा अगाहा कैरन्ति, सुसन्नत्तत्ता तसरनव उज्जुम्;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
503.
"ये वीतराग सुसमाहितिन्द्रिय, कैंडोवा रहुग्गहाणा पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
504.
"समितविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थिधा विप्पहया;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
505.
"जहित्वा जातिमरणं असेसं, कथंकथिं सब्बमुपतिवत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
506.
"ये अट्टदीपा विकारन्ति लोके, अकिंचन सब्बाधि विप्पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
507.
"ये हेत्थ जानन्ति यथा तथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनब्भवोति;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
508.
"यो वेदागु झनरतो सतीमा, संबोधिपट्टो सरणं बहुनां;
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनपेक्खो यजेथा"।
509.
"अद्धा अमोघा मम पुच्चना आहु, अक्खासि मे भगव दक्खिनये;
त्वन्हेत्था जनसि यथा तथा इदं, तथा हि ते विदितो एसा धम्मो।

510.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (इति माघो मनावो)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं,
अक्खाहि मे भगवा यन्नसम्पदं"।
511.
"यजस्सु यजमानो माघाति भगवान, सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं;
अराम्मनं यजमानस्स यान्नो, एत्थप्पतिथया जहाति दोसं।
512.
"तो वीतरागो पविनेय दोसं, मेत्तं चित्तं भवायमप्पमणं;
रत्तिंदिवं सतातमप्पमत्तो, सब्बा दिसा फरति अप्पमन्नं।"
513.
"को सुज्जति मुक्कति बज्जति च, केनत्तना गच्छति [केनत्थेना गच्छति (का.)] ब्रह्मलोकम्;
अजानतो मे मुनि ब्रूहि पुत्थो, भगव हि मे सक्खि ब्रह्मज्जदिथो;
तुवंहि नो ब्रह्मसमोसि सच्चं, कथं उपपज्जति ब्रह्मलोकं जुटिमा"।
514.
"यो यजति तिविधं यान्नसम्पदं, (माघाती भगवान)
अराधये दक्खिनेयभि तदि;
एवं यजित्वा सम्मा याकायोगो,
उपपज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रुमि'ति।
एवं वुट्टे, माघो मनवो भगवन्तं एतदावोचा - "अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे...अज्जतग्गे पाणुपेतं शरणं गता"न्ति।
माघसुत्तं पंचमं नियतं।

____

पाली-देवनागरी
5. माघसुत्तं
एवं मे सुतं – एक समयं भगवा राजघे विहारी गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो माघो मन्वो येन भगवान तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि सत्यो खो माघो मानवो भगवन्तं एतदवोच -
"अहंहि, भो गोतम, दायको दानपति वदंञ्ञू याचयोगो; धम्मेन भोगे प्रियेसामि; धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलधेहि भगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददामि द्वि असापि तिन्नमपि चतु सिनापि चतु सिनापि पञ्च सिनापि छ सिनापि सत्त सिनापि अट्ठमपि अट्ठमपि नव ददामि दश सान्यापि तिनसायपि चत्तालिसयपि पञ्चस्यापि ददामि, सत्सपि ददामि, भय्योपि ददामि। कच्छचाहं, भो गोतम, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्जन पसवामि"ति?
"तग्घ त्वं, मानव, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्जन पसवसि। यो खो, मानव, दायको दानपति वदंञ्ञू याचयोगो; धम्मेन भोगे परियेसति; धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलधेहि भोगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददाति...पे०...सत्स्सपि ददाति, भय्योपि ददाति, बहुं सो पुन्नं पसवती"ति। अथ खो माघो मानवो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
4
पुच्छमहं गोतमं वदञ्चुन, (इति माघो मानवो)
कासायवासिं अघं [अगिहं (सी०), अगेहं (पी०)] चरंतं।
यो याचयोगो दानपति [दानपति (सी० स्या० पी०)] गहत्थो, पुञ्जथिको [पुञ्जपेखो (सी० पी० क०)] यजति पुञ्जपेखो।
ददं परेसं इध अ अज्ञानानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्झे"॥
4
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (माहति भगवान)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ अज्ञानपानं, आराध्ये दक्खिनेयैभि तादि"॥
4.
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (इति माघो मानवो)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ अज्ञानानं, अक्खाहि मे भगवा दक्षिणये"॥

4.
"ये वे असत्ता [अलग्गा (स्या०)] विचरन्ति लोके, अकिञ्चना केवलिनो यत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
44 वीडियो.
"ये सबसंयोजनबंधनचिदा, दंता विमुत्ता अनीघा निरासा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4
"ये सब्बसंयोजनविप्पमुत्ता, दंता विमुत्ता अनीघा निरासा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"राघ्नच दोसञ्च पहाय मोहं, खिनासावा वुसीतब्रह्मचरिया।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"येसु न माया वसति न मानो, खिनासावा वूसितब्रह्मचरिया।"
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"ये विटलोभा अम्मा निरसा, खिनासावा वुसीतब्रह्मचारिया।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
.
"ये वे न तन्हासु उपातिप संज्ञा, वितरेय ओघं अम्मा चरन्ति।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
50.
"येसं तंहा नत्थि कुहिञ्चि लोके, भवाभवाय इध वा हुरं वा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
52.
"ये कामे हित्वा अघा चरन्ति, सुसंज्ञत्ता तस्रव उज्जुं।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
500.
"ये वीतरागा सुसहितिन्द्रिय, चंदोव राहुघाना पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
" समिताविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थिध विप्पय।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
पांच-पांच.
"जहित्वा जातिमरणं असेसं, कथंकथिं सब्बमुनपतिवत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
"ये अत्तदीपा विचरन्ति लोके, अकिञ्चना सब्बधि विप्पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
57.
"ये हेत्थ जानन्ति यथा तथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनभवोति।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
"यो वेदगू झानर्तो सतीमा, सम्बोधिप्ततो शरणं बहुअनं।
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेत्॥
50वीं.
"अद्धा अमोघा मम पुच्छना आहु, अक्खासि मे भगवा दक्खिनये।
त्वन्हेत्थ जानासि यथा तथा इदं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो॥

51.
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (इति माघो मानवो)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ संज्ञापानं,
अक्खाहि मे भगवान यज्ञसम्पदं"
511.
"यजस्सु यजमानो माघाति भगवान, सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं।
अरम्मानं यजमानस्स यञ्चो, एत्थप्पतिट्ठाय जहाति दोसं॥
511.
"सो वीतरागो पविनेय दोसं, मेत्तं चित्तं भावमप्पमनं।
रत्तिन्दिवं सततमप्पमत्तो, सब्बा दिसा भारती अप्पमञ्च॥
5.25.
"को सुज्झति मुच्छदति बज्जति च, केनत्तना गच्छति [केन्त्थेना गच्छति (क०)] ब्रह्मलोक।
अजानतो मे मुनि ब्रुहि पुत्थो, भगवा हि मे सक्खि ब्रह्मजददित्थो।
तुवंहि नो ब्रह्मसमोसि सच्दचं, कथं उपपज्जति ब्रह्मलोकं जुटिम"॥
544.
"यो यजति तिविधं यज्ञसम्पदं, (माघाति भगवान)
आराध्ये दक्षिणेयेभि तादि।
एवं यजित्वा सम्मा याचयोगो,
उपपज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमी"ति॥
एवं वुत्ते, माघो वोमां भगवन्तं एतदवोच - "अभिक्रोकान्तं, भो गोतम...पे०...अजदत्गे पाणुपेतं शरणं गत"न्ति।
माघसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.6 सभियासुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

परिब्जाक (तपस्वी) सबिया अपने समय के छह प्रसिद्ध गुरुओं के पास अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए जाते हैं, लेकिन जब उनके संदेह दूर नहीं होते, तो वे गौतम (बुद्ध) के पास जाते हैं और उनसे पूछते हैं कि ब्राह्मण, समन, नाहतक, खेत्तागिन, कुशल, पंडित, मुनि, वेदगु, अनुविदित, धीर, अग्नि, सोत्तिया, आर्य, करणवत और परिब्जाक बनने के लिए क्या आचरण करना चाहिए। भगवान बुद्ध उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं, और अंततः सबिया को बुद्ध से वस्त्र और आदेश प्राप्त होते हैं।

अंतर्वस्तु
13.6 सबियासूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.6 सबियासूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) वेलुवन के राजगृह में, कलांदकनिवापा में निवास करते थे। उस समय परिब्बाजक (घूमने वाले भिक्षु, तपस्वी) सबिया से एक वृद्ध दयालु देवता ने प्रश्न पूछे: 'हे सबिया, चाहे वह समन (भिक्षु) हो या ब्राह्मण, जो भी इन प्रश्नों का उत्तर तुम्हें पूछे जाने पर दे, तुम्हें उसके निकट पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए।'

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने उस देवता से प्रश्न सीखकर, उन सभी भिक्षुओं और ब्राह्मणों के पास गए, जिनके भिक्षुओं की सभाएँ और अनुयायियों की भीड़ थी, और जो प्रसिद्ध शिक्षक और नेता थे, और जिन्हें जनमानस में श्रेष्ठ माना जाता था, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसाला, अजित-केसकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त (जैन गुरु)। उनके पास जाकर उन्होंने प्रश्न पूछे। परिब्जाक (तपस्वी) सबिया द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने में वे सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष प्रकट किया, और उन्होंने भी परिब्जाक (तपस्वी) सबिया से प्रश्न पूछे।

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'जितने भी समन और ब्राह्मण हैं जिनके पास भिक्षुओं की सभा, अनुयायियों की भीड़ है और जो प्रसिद्ध शिक्षक, विख्यात नेता हैं, जिन्हें जनता उत्कृष्ट मानती है, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसला, अजित-केशकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त (जैन शिक्षक), जब मैंने उनसे प्रश्न पूछे तो वे उत्तर देने में सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष दिखाया, और उन्होंने बदले में मुझसे भी इस विषय पर प्रश्न पूछे; निश्चय ही मुझे लगता है कि मैं अपने छोड़े हुए मार्ग पर लौट जाऊंगा और इंद्रिय सुखों का आनंद लूंगा।'

तब परिब्बजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'इस समना गौतम (बुद्ध) के पास भिक्षुओं की सभा और अनुयायियों की भीड़ दोनों हैं, और वे एक प्रसिद्ध शिक्षक, एक विख्यात नेता हैं, जिन्हें जनमानस उत्कृष्ट मानता है, मुझे लगता है कि मुझे समना गौतम (बुद्ध) के पास जाकर ये प्रश्न अवश्य पूछने चाहिए।' तब परिब्बजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'जितने भी भिक्षु और ब्राह्मण (पुजारी) पतित, वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था में पहुँच चुके, अनुभवी, लंबे समय से दीक्षित, भिक्षुओं की सभाओं और अनुयायियों की भीड़ वाले, प्रसिद्ध शिक्षक, विख्यात नेता, जनमानस द्वारा उत्कृष्ट माने जाने वाले, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसला, अजित-केसकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त, जब मैंने उनसे प्रश्न पूछे तो वे उत्तर देने में सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष दिखाया, और उन्होंने भी बदले में मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछे; (मैं जानना चाहूँगा) कि क्या समना गौतम (बुद्ध) इन प्रश्नों का उत्तर दे पाएँगे, क्योंकि समना गौतम (बुद्ध) जन्म से युवा हैं और तपस्वी जीवन में नए हैं।'

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'समना गौतम (बुद्ध) को उनकी युवावस्था के कारण कम नहीं आँका जाना चाहिए; भले ही समना (भिक्षु) युवा हों, फिर भी वे पराक्रमी और शक्तिशाली हैं; मुझे लगता है कि मुझे समना गौतम (बुद्ध) के पास जाकर ये प्रश्न पूछने चाहिए।' तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया राजगृह की यात्रा पर निकल पड़े, और अपनी यात्रा में नियमित क्रम से घूमते हुए वे राजगृह, वेलुवन, कलंदकनिवापा और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, और भगवान (बुद्ध) के पास आकर उन्होंने उनसे सुखद वार्तालाप किया, और उनसे कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप करने के बाद वे अलग बैठ गए; अलग बैठे हुए परिब्बजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) से श्लोकों में बात की:

1. 'मैं चिंतित और संशय में आया हूँ,'—सबिया ने कहा,—'प्रश्न पूछने की इच्छा से। क्या आप मेरे द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों को क्रमबद्ध रूप से दूर करेंगे और मुझे सही ढंग से समझाएँगे?' (515)

2. 'हे सबिया, तुम दूर से आए हो,'—भगवान (बुद्ध) ने कहा,—'प्रश्न पूछने की इच्छा से; मैं तुम्हारे द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों को क्रमबद्ध रूप से दूर करूँगा और तुम्हें सही ढंग से समझाऊँगा।' (516)

3. 'हे सबिया, मुझसे एक प्रश्न पूछो; तुम्हारे मन में जो भी प्रश्न हो, मैं उसका उत्तर दूँगा और तुम्हारे संशय को दूर करूँगा।' (517)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'यह अद्‌भुत है, यह सचमुच आश्चर्यजनक है, जो स्वागत मुझे अन्य समनों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों) से नहीं मिला, वह मुझे गौतम (बुद्ध) से मिला है।' ऐसा कहते हुए, प्रसन्न, आनंदित और अत्यंत उत्साहित होकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 'मनुष्य को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे भिक्षु (भिक्षु) कहें?' - सबिया ने कहा - 'लोग उसे दयालु कैसे कह सकते हैं, और वह कितना विनम्र है? उसे प्रबुद्ध (बुद्ध) कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (भगवान बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (518)

5. 'हे सभिय, जिसने स्वयं अपने द्वारा निर्मित मार्ग से पूर्ण सुख प्राप्त किया है,' - भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा - 'जिसने संशय पर विजय प्राप्त की है, जिसने लाभ और संपत्ति दोनों को त्यागकर जीवन व्यतीत किया है, जिसने पुनर्जन्म का नाश किया है, वह भिक्षु है। (519)

6. 'सदा शांत और एकाग्र रहने वाला, वह समस्त संसार में किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, वह समन (भिक्षु) जिसने (जीवन की) धारा को पार कर लिया है और अविचलित है; जिसके लिए कोई इच्छाएँ (उस्साद) नहीं हैं, वह करुणामय है। (520)

7. 'सृष्टि में जिसकी इंद्रियाँ आंतरिक और बाह्य रूप से प्रशिक्षित हैं, वह जो इस और परलोक में प्रवेश करने के बाद मृत्यु की कामना करता है, प्रशिक्षित होकर वह वश में हो जाता है। (521)

8. 'जो कोई भी समस्त कालों (कप्पा), संसार चक्र (संसार), प्राणियों के लुप्त होने और पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) पर विचार करने के बाद, दोषमुक्त, पापमुक्त, शुद्ध और पुनर्जन्म से मुक्त हो, उसे ही प्रबुद्ध (बुद्ध) कहते हैं।' (522)

तब परिब्जाक (तपस्वी) शाभिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा: 9. 'मनुष्य को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे ब्राह्मण कहें?' - शाभिया ने कहा - 'और उसे (भिक्षु) कैसे कहा जा सकता है? और नाहतक कैसे? उसे नाग कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे (इस विषय में) समझा सकते हैं?' (523)

10. हे सभ्य, जो सभी पापों को दूर करके, भगवान बुद्ध ने कहा, निष्कलंक, शांत, दृढ़चित्त और संसार (पुनर्जन्म का चक्र) पार करने के बाद परिपूर्ण हो जाता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं। (524)

11. जो शांत, अच्छे और बुरे को त्यागकर, दोषमुक्त होकर, इस और परलोक को समझकर, और पुनर्जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसे समन कहते हैं। (525) 12. जो

भी, संसार में आंतरिक और बाह्य रूप से सभी पापों को धोकर, समय के अधीन देवताओं और मनुष्यों के बीच समय (कप्प) में प्रवेश नहीं करता, उसे नहतक कहते हैं। (526)

13. 'जो संसार में कोई अपराध नहीं करता, जो सभी बंधनों और बेड़ियों को त्यागकर किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता, मुक्त होकर, ऐसा व्यक्ति नाग (पापरहित) कहलाता है।' (527)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर, भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 14. 'बुद्ध किसे खेत्गिना कहते हैं?' - सबिया ने कहा - 'वे किसी को कुशल कैसे कह सकते हैं? और पंडित कैसे? उसे मुनि कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (528)

15. हे सभ्य, भगवान बुद्ध ने कहा, 'जो सभी लोकों का अध्ययन करने के बाद, दिव्य और मानवीय, तथा ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के लोक का अध्ययन करके, सभी लोकों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, वह अपने आप में खेट्टागिन (लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला) कहलाता है।' (529)

16. 'जो सभी खजानों, दिव्य और मानवीय, तथा ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के खजाने का अध्ययन करने के बाद, सभी खजानों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, वह अपने आप में कुशल (सुखद) कहलाता है।' (530) 17. '

जो आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की इंद्रियों का अध्ययन करने के बाद, स्पष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) से संपन्न हो जाता है और बुराई और अच्छाई (कन्हसुक्क) पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह अपने आप में पंडित (बुद्धिमान) कहलाता है।' (531)

18. 'जो धर्मी और अधर्मी के धर्म को आंतरिक और बाह्य रूप से समस्त संसार में समझ लेता है, वह देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय होता है, वह बंधनों के जाल को तोड़कर मुनि कहलाता है।' (532)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 19. 'किसी व्यक्ति को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे वेदगु कहें?' - सबिया ने कहा - 'और कैसे (वे उसे) अनुविदित कहें? और कैसे वीर्यवत? कोई व्यक्ति अग्निया कैसे बनता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे (इस विषय में) समझा सकते हैं?' (533)

20. हे सभ्य, जिसने समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है,'—भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा—'जो इंद्रियों के प्रति आसक्ति से मुक्त है, वह समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद वेदगु (इंद्रियों से मुक्त) कहलाता है। (534)

21. जिसने नाम और रूप के भ्रम को आंतरिक और बाह्य रूप से, जो रोग का मूल है, देखकर समस्त रोगों के मूल बंधन से मुक्त हो गया है, वह ऐसा होने के कारण अनुविदित (सुज्ञ) कहलाता है। (535)

22. जिसने इस संसार में समस्त पापों से घृणा करते हुए, नरक के कष्टों पर विजय प्राप्त कर बलवान और शक्तिशाली हो गया है, वह ऐसा होने के कारण धीर (= वीरयवत, दृढ़) कहलाता है। (536)

23. 'जिसके आंतरिक और बाह्य बंधन टूट जाते हैं, जो सभी बंधनों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, उसे ही अगनिय (उच्च कुल का) कहा जाता है।' (537)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 24. 'मनुष्य को क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे सोत्तिय कहें?' - सबिया ने कहा - 'वे उसे आर्य कैसे कह सकते हैं? और करणवत कैसे? वह परिब्जाक (तपस्वी) कैसे बन सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (538)

25. हे सभ्य, जिसने संसार के सभी धर्मों को सुनकर और समझकर, भगवान बुद्ध ने कहा, 'जो कोई भी कुकर्म और जो कुछ भी निष्कर्मित है, उस पर विजय प्राप्त करता है, संशय से मुक्त होता है, मुक्त होता है, हर तरह से पीड़ा से मुक्त होता है, उसे ज्ञानी (विद्यावान) कहते हैं।' (539)

26. 'जिसने वासनाओं और इच्छाओं का त्याग करके, ज्ञानवान होकर, फिर से गर्भ में प्रवेश नहीं करता, त्रिगुण चिन्ह, कामवासना के कीचड़ को दूर भगाकर, और फिर से कप्प में प्रवेश नहीं करता, उसे आर्य (महान) कहते हैं।' (540)

27. 'जो इस संसार में, करणों में सर्वोच्च लाभ प्राप्त करके, कुशल है, जिसने हमेशा धर्म को समझा है, किसी चीज से आसक्त नहीं है, मुक्त है, और जिसके लिए कोई वासना नहीं है, वह करणवत (साक्ष्यों से युक्त) है।' (541)

28. 'जो कोई भी ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में कष्टदायी कर्मों से परहेज करता है, जो दिव्य समझ के साथ विचरण करता है, जिसने छल, अहंकार, लोभ और क्रोध, नाम और रूप, का अंत कर दिया है, उसे परिब्बजक (एक विचरण करने वाला भिक्षु, तपस्वी) कहते हैं जिसने (सर्वोच्च) लाभ प्राप्त किया है।' (542)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर, अपने आसन से उठकर, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर रखकर, अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर, उचित श्लोकों में भगवान (बुद्ध) की स्तुति की: 29. 'सामनों (भिक्षुओं) के वाद-विवादों से संबंधित 36 (दार्शनिक) विचारों पर विजय प्राप्त करके, आपने धारा के अंधकार को पार कर लिया है। (?) (543)

30. 'आप पीड़ा के अंत और उससे परे पहुँच गए हैं, आप एक संत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, मैं आपको अपनी वासनाओं का नाश करने वाला मानता हूँ, आप गौरवशाली, विचारशील, महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) वाले हैं, हे पीड़ा का अंत करने वाले, आपने मुझे पार कराया है। (544)

31. 'क्योंकि आपने मेरी तड़प देखी और मुझे मेरे संदेह से पार कराया, हे मुनि (संत), जिन्होंने ज्ञान के मार्ग में सर्वोच्च लाभ प्राप्त किया है; हे अदिच्छों के सच्चे सगे सगे सगी, आपको प्रणाम।आप दयालु हैं। (545)

32. 'हे प्रत्यक्षदर्शी, आपके समक्ष मेरे मन में जो संदेह था, वह दूर हो गया है; निश्चय ही आप पूर्णतः प्रबुद्ध मुनि हैं, आपके लिए कोई बाधा नहीं है। (546)

33. 'और आपके सभी कष्ट दूर हो गए हैं, आप शांत, संयमित, दृढ़ और सत्यवादी हैं। (547)

34. 'हे निष्पापों के श्रेष्ठ, महान, जब आप बोलते हैं, तो सभी देवता और नारद एवं पब्बत भी आप पर प्रसन्न होते हैं। (548)

35. 'हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम, हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम; मनुष्य और देवताओं के संसार में आपके समान कोई नहीं है। (549)

36. 'आप बुद्ध हैं, आप गुरु हैं, आप मृत्यु के देवता को जीतने वाले मुनि हैं; इच्छा का नाश करके आपने इस पीढ़ी को पार किया है और इस पीढ़ी को आगे बढ़ाया है। (550)

37. 'आपने अस्तित्व के तत्वों (उपाधि) पर विजय प्राप्त कर ली है, आपने वासनाओं का नाश कर दिया है, आप सिंह हैं, इच्छा से मुक्त हैं, आपने भय और आतंक को पीछे छोड़ दिया है। (551)

38. 'जैसे सुंदर कमल जल से नहीं चिपकता, वैसे ही आप अच्छे और बुरे, किसी से भी आसक्त नहीं हैं; हे महानुभाव, अपने चरण फैलाइए, सबिया गुरु के चरणों की पूजा करता है।' (552)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (भगवान बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'यह उत्तम है, हे पूज्य! यह उत्तम है, हे पूज्य!' जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ; मैं पूज्य भगवान (भगवान बुद्ध) से वस्त्र और दीक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ। '

हे सभ्य, जो पहले किसी अन्य पंथ (अन्नतित्थियपुब्बा) का अनुयायी था, इस धर्म (धम्मविनय) में दीक्षित होना चाहता है, और वस्त्र और दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह चार महीने तक सेवा करता है; चार महीने बीत जाने के बाद, जिन भिक्षुओं के मन शांत हो गए हैं, वे उसे वस्त्र और दीक्षा देकर भिक्षु बनने का आदेश देंगे, (क्योंकि) मैं भी इस मामले में व्यक्तियों के भेद को स्वीकार करता हूँ।'

हे पूज्यवर, यदि वे जो पहले किसी अन्य धर्म के अनुयायी थे और इस धर्म में दीक्षित होना चाहते हैं तथा वस्त्र एवं दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, चार माह तक सेवा करें और चार माह बीत जाने के बाद उनके मन को शांत करने वाले भिक्षु उन्हें वस्त्र एवं दीक्षा दें ताकि वे भिक्षु बन सकें, तो मैं भी चार माह तक सेवा करूंगा और चार माह बीत जाने के बाद उनके मन को शांत करने वाले भिक्षु मुझे वस्त्र एवं दीक्षा देंगे ताकि मैं भिक्षु बन सकूं।

परिबजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान बुद्ध से वस्त्र और दीक्षा प्राप्त की। उपसम्पदा प्राप्त कर पूज्य सबिया ने एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, इस जन्म में अल्पकाल में ही अपने ज्ञान से धर्ममय जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घर त्यागकर निर्धन हो जाते हैं। उन्होंने अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, धर्ममय जीवन व्यतीत कर लिया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जन्म में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य सबिया अर्हत (पूर्णतः प्रबुद्ध) हो गए।

सबियासूत्र समाप्त होता है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

6. सब्हियसुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगव राजगहे विहारति वेशुवने कलंदकनिवापे। तेन खो पना समयेन सभियास्सा परिब्बाजकस्सा पुराणसालोहिताय देवताय पन्हा उददिष्ठ होन्ति - "यो ते, सभिया, समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पन्हे पुथो' ब्याकारोति तस्स संतिके ब्रह्मचर्यं कैरेयसि'ति।

अथा खो सभियो परिब्बाजको तस्स देवताय संतिके ते पन्हे उग्गहेत्वा ये ते समानब्राह्मणा संघिनो गणिणो गणचरिया नाता यस्सिसनो तित्थकारा साधुसम्मत बहुजनास्सा, सेयथिदं - पुरणो कसापो मक्खलिगोसालो अजितो केसाकंबलो पाकुधो [काकुधो (सि.) पाकुद्धो (स्या. कां.)] कक्कानो सांचायो [संजयो (सि. स्या. कं. पि.)] बेलाठपुट्टो [बेलाथिपुत्तो (सि. पि.), वे॒अ॒॒हपुत्तो (सि.)] निगंथो नातपुट्टो [नातपुत्तो (सि. पि.)], ते उपासंकमित्वा ते पन्हे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बाजकेन पन्हे पुत्था न संपयन्ति; असम्पायंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पाकायाञ्च पतुकरोंति। अपि च सभ्यं येव परिब्जकं पतिपुच्छन्ति।

अथा खो सभियास्सा परिब्बाजाकस्सा एतदहोसी - "ये खो ते भोंतो समानब्राह्मण संघिनो गणिनो गणचरिया नाता यसासिनो तित्थकारा साधुसम्मत बहुजनस्सा, सेयथिदम - पुरणो कस्सपो...पे... निगंथो नात्पुट्टो, ते मया पन्हे पुट्ठा न संपयन्ति, असंपयंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पाकायाञ्च पातुकरोंति; अपि च मन्नेवेत्था पतिपुच्छन्ति। यन्नून्नहं हिनायावत्तित्व कामे परिभुञ्जेय'न्ति।

अथ खो सभियस्सा परिब्बाजकस्सा एतदहोसि - " अयम्पि खो समानो गोतमो संघि सेवा गनि च गणनचरियो च नातो यस्सासि तित्थकारो साधुसमातो बहुजनस्सा; यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसंकमित्वा इमे पन्हे पुचेय्या'न्ति।
अथा खो सभियास्सा परिब्बाजकस्सा एतादहोसि - "येपि खो ते [ये खो ते (स्या.), यां खो ते (का.)] भोंतो समानब्राह्मणा जिन्ना वुधा महल्लका अद्धगाता वयोनुप्पट्टा थेरा रत्तान्नु सिरापबजिता संघिनो गणिनो गणचरिया नाताता यसस्सिनो तित्थकारा साधुसम्मता बहुजनस्सा, सेयथिदं - पुराणो कस्सपो...पे। ... निगंठो नातपुत्तो, तेपि मया पन्हे पुत्था न संपायन्ति, असंपयंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पक्कायञ्च पातुकरोंति, अपि च मन्नेवेत्था पतिपुच्छन्ति; किं पना मे समणो गोतमो इमे पन्हे पुथो ब्याकारिस्सति! समानो हि गोतमो दहारो सेवा जाति, नवो च पब्बज्जयति।
अथा खो सभियास्सा परिब्बाजाकस्सा एतादाहोसी - " समानो खो [सामानो खो गोतामो (स्या. का.)] दहरोती न उन्नाताब्बो न परिभोत्बो। दहरोपि सेसा समानो गोतमो महिद्धिको होति महानुभावो, यन्नुन्नहं समानं गोतमं उपसंकमित्वा इमे पन्हे पुचेय'अन्ति।
अथ खो सभियो परिब्बाको येन राजगहं तेन कारिकां पक्कमि। अनुपुब्बेन कारिकां कारमाणो येन राजगहं वेशुवनं कलंदकनिवापो, येन भगवान तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
515.
"कांखि वेचिकचि आगमम्, (इति सभियो)
पन्हे पुच्छितुं अभिकंखमानो;
तेसन्तकारो भवहि [भवहि मे (पी. का.)] पन्हे मे पुठो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकारोहि मे"।
516.
"दुरतो अगतोसि सभिया, (इति भगवान)
पन्हे पुच्छितुं अभिकंखमानो;
तेसंतकारो भवामि [तेसामंतकारोमी ते (का.)] पन्हे ते पुथो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकारोमि ते।
517.
"पुच्च मां सभिया पन्हां, यं किंचि मनसिच्चसि;
तस्स तस्सेव पन्हास्सा, अहं अंतं करोमि ते"ति।
अथ खो सभियस्सा परिब्बाजकस्सा एतदाहोसि - "अच्चरियं वात, भो, अब्भूतं वात, भो!" यं वताहं अणनेसु समानेब्राह्मनेसु ओकासकममट्टमपि [ओकासमट्टमपि (सि. पि.)] नालत्थं तं मे इदं समानेण गोतमेना ओकासकमं काटा"न्ति। अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं पन्हां अपुच्चि -
518.
" किं पत्तिनमहु भिक्खुनं, (इति सभियो)
सोरतं केन कथाञ्च दन्तमाहु;
बुद्धितो कथां पावुच्चति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
519.
"पज्जेना कटेन अत्तना, (सभ्यति भगवान)
परिनिब्बानागतो वितीनकंखो;
विभावञ्च भवन्च विप्पाहाय,
वुसितावा खिन्नपुनाभवो स भिक्खु।
520.
"सब्बत्था उपेक्खको सतीमा, न सो हिंसाति कांची सब्बालोके;
तिन्नो समानो अनाविलो, उस्सदा यस्सा न शांति सोरतो सो।
521.
"Yassindriyāni bhāvitāni, ajjhattaṃ bahiddhā ca sabbaloke;
निब्बिज्झा इमं पराञ्च लोकं, कालं कनखति भावितो स दन्तो।
522.
"कप्पानि विसेय केवलानि, संसारं दुभयं कटुपपातम्;
विगतराजमनांगनां विशुद्धं, पत्तं जातिखायं तमहु बुद्ध'न्ति।

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासीतं अभिनंदित्वा अनुमोदित्वा अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरम् [उत्तरी (का.)] पण्हं अपुच्चि -
523.
" किं पत्तिनमहु ब्राह्मणं, (इति सभियो)
समानं केन कथांच नहतकोटि;
Nāgoti kathaṃ pavuccati,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
524.
"बहित्वा सब्बपापाकानि, (सभ्यति भगवान)
विमलो साधुसमाहितो चितत्तो;
Saṃsāramaticca kevalī so,
असितो तदि पवुचते स ब्रह्मा।
525.
"समितवि पहाय पुन्नपापं, विराजो नात्वा इमं पराञ्च लोकं;
जातिमरणं उपतिवत्तो, समानो तदि पवुक्कते तथात्ता।
526.
"निन्हाया [निन्हाया (स्या.)] सब्बापापकनि, अज्झट्टं बहिद्धा च सब्बलोके;
देवमानुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पां नेति तमाहु नहतको'ति।
527.
"अगुं न करोति किञ्ची लोके, सब्बासंयोगे [सब्बायोगे (का.)] विसज्जा बंधनानी;
सब्बत्था न सज्जाति विमुत्तो, नागो तदि पवुक्कते तथात्ता'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
528.
कं खेत्जिनं वदन्ति बुद्ध, (इति सभियो)
कुसलं केन कथाञ्च पण्डितोति;
मुनि नाम कथं पवुच्चति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
529.
"खेत्तानि विसेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
Dibbaṃ mānusakañca brahmakhettaṃ;
सब्बाखेट्टामूलबंधना पमुट्टो,
खेत्ताजीनो तदि पावुकते तथात्ता।
530.
"कोसानि विसेय केवलानि, दिब्बं मानुसकंचा ब्रह्मकोसां;
सब्बकोसामूलबंधना पमुत्तो, कुसालो तदि पावुक्कते तथात्ता।
531.
" दुभयानि विसेया पण्डाराणि, अज्झट्टं बहिद्ध च सुद्धिपन्नो;
कान्हां सुक्कं उपतिवत्तो, पण्डितो तदि पावुक्कते तथात्ता।
532.
"असतांच सतांच नात्वा धम्मं, अज्झट्टं बहिद्ध च सब्बलोके;
देवमनुस्सेहि पूजनीयो, सङ्गं जलमात्च्च सो मुनि'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
533.
"किं पत्तिनमहु वेदगुं, (इति सभियो)
अनुविदितं केन कथाञ्च वीर्यवती;
Ājāniyo kinti nāma hoti,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
534.

वेदनि विसेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
समानानं यानीधत्ति [यानीपत्थि (सि. स्या. पि.)] ब्राह्मणानां;
Sabbavedanāsu vītarāgo,
सब्बं वेदामेटिका वेदागु सो।
535.
"Anuvicca papañcanāmarūpaṃ, ajjhattaṃ bahiddhā ca rogamūlaṃ;
सब्बरोगमूलबंधना पमुत्तो, अनुविदितो तदि पावुक्कते तथात्ता।
536.
"विरातो इधा सब्बापाकेहि, निरयदुक्खं अतिच्च वीर्यवा सो;
तो वीर्यवा पधानावा, धीरो तदि पवुक्कते तथात्ता।
537.
"यस्सासु लुनानि बंधनानि, अज्झट्टं बहिद्ध च संगमुलाम्;
सब्बसंगमूलबंधना पमुत्तो, अजानियो तदि पावुक्कते तथात्ता'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
538.
"किं पत्तिनमहु सोत्तियं, (इति सभियो)
अरियं केन कथाञ्च चारणावती;
परिब्बाजाको किन्ति नाम होति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
539.
"सुत्वा सब्बधम्मं अभिनयाय लोके, (सभ्यति भगव)
सवज्जनवज्जं यदत्ति किञ्चि;
अभिभूं अकथाकथिं विमुत्तं,
अनिघं सब्बाधिमहु सोत्तियोति।
540.
"चेत्वा आसवनि आलयनि, विद्वा सो न उपेति गभसेयम्;
सान्नं तिविधं पनुज्ज पंकं, कप्पं नेति तमाहु अरिओति।
541.
"यो इधा कारनेसु पत्तिपत्तो, कुसालो सबबदा अजानाति [अजानि (स्या.)] धम्मम;
सब्बत्था न सजजति विमुत्तचित्तो [विमुत्तो (सि.)], पतिघा यस्सा न शांति कारनव सो।
542.
"दुक्खवेपक्कं यदत्ति कम्मं, उद्धमाधो तिरियं वापि [तिरियान्चापि (स्या.)] मज्झे;
परिब्बाजयित्वा परिण्णचारि, मयां मनमथोपि लोभकोधं;
परियंतमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमहु पत्तिपत्त'न्ति।
अथ खो सभियो परिब्जको भगवतो भासितं अभिनंदित्वा अनुमोदित्वा अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो उत्थायसना एकांशं उत्तरसंगं करित्वा येन भगव तेनंजलिं पनामेत्वा भगवंतं संमुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -
543.
"यानि च तिनि यानि च सत्थि, समनप्पवदसितानि [समानप्पावदानिसितानि (स्या. का.)] भूरिपन;
संनक्खरासन्ननिस्सीतानि, ओसरनानि विनेया ओघतमगा।
544.
"अंटागुसी परागु [परागुसी (स्या. पी. का.)] दुक्खस्सा, अरहसी सम्मासंबुद्धो खिनासावं तं मन्ने;
जुतिमा मुतिमा पहुतापन्नो, दुक्खससंतकारं अतरेसि मां।
545.
"यं मे कण्खिटामन्नसि, विचिकीच्च मां तारयि नमो ते;
मुनि मोनपथेसु पत्तिपट्ट, अखिल आदिच्चबंधु सोरतोसि।
546.
"या मे कंखा शुद्ध असि, तम मे बयाकासि चक्खुमा;
अद्धा मुनिसि सम्बुद्धो, नत्थि निवारण तव।

547.
"उपायसा च ते सब्बे, विददस्ता विनादिकता;
सतीभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिकमो।
548.
"तस्सा ते नागानागस्सा, महावीरस्सा भासतो;
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता।
549.
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
सदेवकास्मि लोकस्मि, नत्थि ते पतिपुग्गलो।
550.
"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि;
तुवं अनुसये चेत्वा, तिणो तारेसि मं पजं।
551.
"उपधि ते समतिक्कंता, आसव ते पदलिता;
सिहोसि अनुपादनो, पहिनाभयभेरवो।
552.
"पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिम्पति [तोयेना न उपलिप्पति (सि.), तोये न उपलिप्पति (पि.), तोयेना न उपलिम्पति (का.)];
एवं पुन्ने च पापे च, उभये त्वं न लिम्पसि;
पदे वीर पसारेहि, सभियो वंदति सत्थुनो'ति।
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पदेसु सिरसा निपतित्व भगवन्तं एतदावोचा - "अभिकांतं, भन्ते...पे... एषाहं भगवन्तं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघान्च; लभेयाहं, भंते, भगवतो संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा'न्ति।
"यो खो, सभिया, अन्नतित्तियापुब्बो इमास्मिं धम्मविनये आकांखति पब्बजं, आकांखति उपसम्पदां, सो कत्तारो मासे परिवासति; चतुन्नं मसानं अक्येन अराद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेंती, उपसम्पादेंति भिक्खुभवाय। अपि च मेत्था पुग्गलवेमत्तता विदितै'ति।
"ससे, भंते, अन्नतित्तियापुब्बा इमस्मिं धम्मविनय आकांखंता पब्बज्जं, आकांखंता उपसम्पदां चत्तारो मासे परिवासन्ति, चतुन्नं मसानं अक्येना अरद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेन्ति, उपसंपादेन्ति भिक्खुभवाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवासिसामि; चतुन्नं वस्सणं अक्येन अराद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेंटु उपसम्पादेंतु भिक्खुभावयति। अलत्थ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो संतिके पब्बजं अलत्थ उपसम्पदां...पे... अनंतरो खो पन्यास्मा सभियो अरहतं अहोसिति।
सभियसुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. सभैसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगवा राजघे विहारी वेळुवने कलंदकनिवापे। तेन खो पन समयेन सभियस परिब्बाजकस पुराणसलोहिताय देवताय पञ्हा उद्दित्था होन्ति - "यो ते, सभि, समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पंघे पुत्थो बयाक्रोति तस्स संतिके ब्रह्मचर्यं चरेयसी"ति।
अथ खो सभियो परिब्बाजको तस्सा देवताय संतिके ते पंघे उग्गेत्वा ये ते समनब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणचारिया नता यस्स्सिनो तिथकरा साधुसम्मता बिजनेसस, सेयथिदं - पुरनो कास्पो मखलिगोसालो राजितो केसकम्बलो पकुधो [ककुधो (सी) पकुद्धो (स्याह्यदि) कं०)] कच्छचानो सञ्चयो [सञ्जज्यो (सी० स्या० कं० पी०)] बेलट्ठपुत्तो [बेळदल्लट्ठिपुत्तो (सी० पी०), वेळट्ठपुटट्टो (स्या०)] निगंठो नटपुत्तो [नात्पुत्तो (सी० पी०)], ते उपसङकमित्वा ते पंघे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बजकेन पंघे पुत्था न संपायन्ति; अस्पाम्यन्ता कोपञ्च दोसञ्च अप्पचन्द्चयञ्च पातुक्रोन्ति। अपि च सब्बं येव परिब्बाजकं पतिपुच्छन्ति।
अथ खो सभियसस परिब्बाजकस एतदहोसि - "ये खो ते भोन्तो समन्ब्राह्मण साङ्घिनो गाणिनो गणाचार्य ञताता यसस्सिनो तिथकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं - पुरणो कस्सपो...पे.... निगन्थो नात्पुत्तो, ते मया पंघे पुत्था न संपायन्ति, अस्पायन्ता कोपञ्च दोसञ्च अप्पचचन्दच पतुक्रोन्ति; अपि च मन्नेवेत्थ पतिपुच्छन्ति। य सत्यनाहु सत्यनाहं हिनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जेय"न्ति।
अथ खो सभियस परिब्बज्कस एतदहोसि - " अयम्पि खो समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणचारियो च नहतो यस्सी तिथकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स; यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पंघे पुच्छेय"न्ति।
अथ खो सभियस परिब्बाजकस एतदहोसि - "येपि खो ते [ये खो ते (स्या०), यां खो ते (क०)] भोन्तो समन्ब्राह्मण जिन्ना वुद्धा महादलका अद्धगाता वयोअनुप्पत्ता थेरा रत्तनडु चिरपब्जिता सङ्घिनो गणिनो गणचरिया नता यसस्सिनो तिथकरा मधुसमता भानसस, सेय्यथिदं — पूर्णो कास्पो...पे० ... निगंठो नात्पुत्ततो, तेपि मया पञ्चे पुत्था न संपायन्ति, अस्पयंता कोपञ्च दोसञ्च अप्पच्चयञ्च पतुक्रोन्ति, अपि च मन्देवेत्थ पतिपुच्छन्ति; किं पन मे समानो गोतमो इमे पंघे पुत्थो ब्याकरिस्सति! समानो हि गोतमो दहरो चेव जातिया, नवो च पब्बज्जाया'ति।

अथ खो सभियसस परिब्बजकस एतदहोसि - "समानो खो [समानो खो गोतमो (स्या० क०)] दहरोति न उञ्जातब्बो न परिभोतब्बो। दहरोपि चेस समणो गोतमो महिद्धिको होति महानुभावो, यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पंघे पुच्छेय"न्ति।
अथ खो सभियो परिब्बजको येन राजघं तेन चारिकं पककामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमाणो येन राजघं वेळुवनं कलंदकनिवापो, येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि नारायणो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं पुराणाय अज्झासि -
51.
"काङ्खी वेचिचिचि आगमं, (इति सभियो)
पंघे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो।
तेसन्तकरो भवही [भवही मे (पी० क०)] पंघे मे पुत्थो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोहि मे"॥
5
दूरतो आगतोसि सभि, (इति भगवान)
पंघे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो।
तेसन्तकरो भवामि [तेसमन्तकरोमि ते (क०)] पञ्हे ते पुत्थो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याक्रोमि ते॥
51.
" पुच्छ मन सभिय पञ्चं, यं किञ्चचि मनसिच्छसि।
तस्स तस्सेव पञ्चस्स, अहं अन्तं करोमि ते"ति॥
अथ खो सभियस परिब्बाजकस एतदहोसि - "अच्छ्रियां वत, भो, अब्भुतं वत, भो! यं वातहं अञ्जनेसु समन्ब्राह्मनेसु ओकासकम्मत्तमपि [ओकासमत्तमपि (सी० पी०)] नालथं तं मे इदं समानेन गोतमेन ओकासकम्मं कत"न्ति। अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं पञ्चं अपुच्छि -
511.
"किं पत्तनमहु भिक्खुनं, (इति सभियो)
सोरतं केन कथं च दन्तमाहु।
बिधोति कथं पवुच्चति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
511.
"पज़्जेन कटेन अत्तना, (सभियाति भगवान)
परिणिब्बानागतो वितिन्नकङखो।
विभवाञ्च भवनाच विप्पय,
वुसित्व खिणपुनब्भवो स भिक्खु॥
520.
"सब्बत्थ उपेक्खको सतिमा, न सो हिंसति कंचि सब्बलोके।
तिन्नो समानो अनाविलो, उस्सदा यस न शांति सोरतो सो॥
520.
"यसिन्द्रियानि भवितानि, अज्झत्तं बधिधा च सब्लोके।"
निब्बिज्झ इमं पञ्च लोकं, कालं कङ्खति भावितो स दन्तो॥
522.
"कप्पानि विचेय केवलानि, संसारं दुभयं चतुर्पापातं।
अतीतरजमनङ्गानं विशुद्धं, पत्तं जातिखयं तमहु बुद्ध"न्ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा शिष्ट्वा अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरिं [उत्तरी (क०)] पञ्हं अपुच्छि -
5.25.
"किं पत्तनमहु ब्राह्मणं, (इति सभियो)
समानं केन कथंडच हतकोटोति।
नागोति कथं पवुच्चति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5.

" बहित्वा सब्बपापकनि, (सभियाति भगवान)
विमलो साधुसमाहितो ठितत्तो।
दुनियामतिचाच केवली सो,
असितो तदि पवुच्चते स ब्रह्मा॥
522.
"समिताविं पहाय पुञ्जपापं, विरजो नत्वा इमं पञ्च लोकं।
जातिमरणं उपतिवततो, समणो तदि पवुच्चते तथात्ता॥
5 2000.
"निन्हाय [निन्हा (स्या०)] सब्बपापकनि, अज्झत्तं बधिधा च सब्लोके।
देवमनुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पं नेति तमाहु हन्तको"ति॥
5
"अगुं न करोति किञ्चचि लोके, सब्बसंयोगे [सब्बयोगे (क०)] विजज बंधनानि।
सब्बत्थ न सजजति विमुत्तो, नागो तदि पवुच्चते तथात्ता"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको...पे०... भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि –
5
कं खेतत्जिनं वदन्ति बुद्धा, (इति सभियो)
कुसलं केन कथनश्च पण्डितोति।
मुनि नाम कथं पवुच्छति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5
खेतानि विचेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
दिब्बं मनुस्कंदच ब्रह्मखेत्तं।
सब्बेखेत्तमूलबन्धना पमुत्तो,
खत्तजिनो तदि पवुचचते तथात्ता॥
530.
"कोसानि विचेय केवलानि, दिब्बं मनुस्कंदच ब्रह्मकोसं।
सब्बकोसमूलबंधना पमुत्तो, कुसलो ताड़ी पवुचदमचते तथात्ता॥
5 सप्ताह
"दुभयानि विचेय पण्डराणि, अज्झत्तं बधिधा च सुद्धिपञ्चो।
कण्हं सुकं उपतिवततो, पण्डितो तादि पवुच्चते तथात्ता॥
5वीं शताब्दी.
"असत्ञ्च शतञ्च ञ्त्वा धम्मं, अज्झत्तं बधिधा च सब्बलोके।
देवमनुस्सेहि पूजनीयो, सङ्गं जलमतिचद्च सो मुनि"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको...पे०... भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि –
5.
"किं पत्तनमहु वेदगुणं, (इति सभियो)
अनुविदितं केन कथाञ्च वीरियवती।
आजानियो किन्ति नाम होति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5
वेदनि विचेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
समानानं अर्थात्धाति [यानीपथी (सी० स्या० पी०)] ब्राह्मणानं।
सब्बवेदनासु वीतरागो,
सब्बं वेदमतिचदच वेदगु सो॥
5.
"अनुविचदच पपञ्चनामरूपं, अज्झत्तं बधिधा च रोगमूलं।
सब्बरोगमूलबन्धना पमुत्तो, अनुविदितो तादि पवुचदचते तथात्ता॥
5

"विरतो इध सब्बपापकेहि, निरादुक्खं अतिचच वीरियवा सो।
सो वीरियवा पधानवा, धीरो तादि पवुच्चते तथात्ता॥
5
"यस्सु लुनानि बंधनानि, अज्झत्तं बधिधा च सङ्गमूलं।
सब्बसङ्गमूलबन्धना पमुत्तो, अजाणियो ताड़ी पवुचदचते तत्थ"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको…पे०… भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि —
5वीं.
"किं पत्तनमहु सोत्त्यं, (इति सभियो)
अरियां केन कथं च चरणवति।
परिबब्बाजको किन्ति नाम होति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5.
"सुत्वा सब्बधम्मं अभिन्याय लोके, (सभ्यति भगवान)
सवज्जनवजजं यदत्थि किञ्च।
अभिभुं अकथंकथिं विमुत्तं,
अनिघं सब्बधिमहु सोत्तियोति॥
5-4.
"चेत्वा आसवानि अलयानि, विद्वा सो न उपेति गभसेयं।
सञ्जनं तिविधं पनुज्जज पकं, कप्पं नेति तमाहु अरियोति॥
5
"यो इध चरणेसु पत्तिपट्टो, कुसलो सब्बदा अजानति [अजानि (स्या०)] धम्मं।
सब्बत्थ न सज्जाति विमुत्तचित्तो [विमुत्तो (सी०)], पतिघा यस्स न शांति चरणवा सो॥
5
"दुक्खवेपकं कृतं यदत्थि कम्मं, उद्धमधो तिरियं वापि [तिरियाञ्चपि (स्या०)] मज्झे।
परिब्बाजायित्वा परिञ्चचारि, मम मनमथोपि लोभकोधं।
पर्यन्तमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमाहु पत्तप्त"न्ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनंदित्वा शिष्ट्वा अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पीतिसोमनस्सजातो उत्थयासना एकंसं उत्तरासङगं कारित्वा येन भगव तेनञ्जालिं पनामेत्वा भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि ग्राधिहि अभिथवि -
5
"यानि च तीनि अर्थात् च सत्थि, समनप्पवदसितानि [समनप्पवदंसितानि (स्या० क०)] भूरिपञ्च।
सञ्खक्रासञ्चदन्निस्सितानि, ओसरानानि विनेय्य ओघतमगा॥
5.
"अंतगुसि पारगु [पारगुसि (स्या० पी० क०)] दुक्खस्स, अरहसि सम्मासम्बुद्धो खिनास्वं तं मञ्चे।
जुतिमा मुतिमा पहुतपञ्चो, दुक्खासान्तकरं अतरेसि मं॥
544.
"यं मे कङ्खितमञ्चसि, विचिकिच्चा मन तारयि नमो ते।"
मुनि मोनपथेसु पत्तिपट्ट, अखिल आदिचदबंधु सोरतोसि॥
5
"या मे कङ्खा पूरे आसि, तं मे ब्याकासि चक्खुमा।
अद्धा मुनिसि संबुद्धो, नत्थि निवर्ण तव॥
5.
"उपायसा च ते सब्बे, विद्धास्ता विनळिकता।
सीटिभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिकदमको॥
5
"तस्स ते नागनागस्स, महावीरस्स भासतो।
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता॥
5
"नमो ते पुरिसाञ्जन्, नमो ते पुरिसुत्तम।

सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि ते पतिपुग्गलो॥
5
"तुवं बुद्धो तुवं सथा, तुवं मराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये चेत्वा, तिन्नो तारेसि मं पजं॥
5.55.
" उपधि ते समति त्रैकान्ता, असवा ते पदलिता।
सीहोसि अनुपादनो, पहिणभयभेरवो॥
5
"पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिम्पति [तोयेन न उपलिप्पति (सी०), तोयेन न उपलिम्पति (पी०), तोयेन न उपलिम्पति (क०)]।
एवं पुञ्जे च पापे च, उभये त्वं न लिम्पसि।
पदे वीर पसरेहि, सभियो वन्दति सथुनो"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पदेसु दृश्य निपतित्व भगवन्तं एतदवोच - "अभि निषेधं, भन्ते...पे.... असहं भगवन्तं शरणं गच्छामि धम्मन्दच भिक्खुसङ्घञ्च; लभेयहं, भन्ते, भगवतो शांतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति।
"यो खो, सभि, अञ्जनतिथियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आक्खति पब्बज्जं, आक्खति उपसम्पदं, सोत्ता चारो मासे परिवसति; चतु दर्शनं मसानं आच्छच्येन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेन्ति, उपसम्पादन्ति भिक्खुभवाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता"ति।
"सच्चे, भंते, अञ्जनतिथियपुब्बा इमस्मिं धम्विनये एकङखंता पब्बज्जं, एकंखंता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवासन्ति, चतु दर्शनं मसानं अच्चचयेन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेन्ति, उपसम्पादन्ति भिक्खुभवाय, अहं चत्तारि वस्सनि परिवसिअमि; चतु दर्शनं वस्सानं अच्चचयेन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेंटु उपसम्पदेंतु भिक्खुभावया"ति। अलत्थ खो सभियो परिब्बजको भगवतो शांतिके पबजजं अलत्थ उपसम्पदं...पे०... अञ्जन्तरो खो पणयस्मा सबहियो अरहतं अहोसिति।
सभैसुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.7 सेलासुट्टा
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

जटिल वंश केनिया ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन उनके साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण वंश सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ वहाँ पहुँचा; तैयारियों को देखकर उसने पूछा कि क्या हो रहा है, और उसे बताया गया कि बुद्ध अगले दिन आने वाले हैं। 'बुद्ध' शब्द सुनते ही सेला ने पूछा कि बुद्ध कहाँ रहते हैं, उनके पास गया, उनसे बातचीत की और उनका मन बदल गया; उनके अनुयायियों का भी मन बदल गया।

अंतर्वस्तु
13.7 सेलासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.7 सेलासुट्टा
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) अंगुत्तरापा में घूमते हुए, 1250 भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ, अंगुत्तरापा के एक शहर अपाना गए।

और जटाधारी तपस्वी केनिया ने यह सुना: 'शाक्य वंश के पुत्र, आदरणीय गौतम बुद्ध, समना (तपस्वी), शाक्य कुल से निकलकर अंगुत्तरापा में 1250 भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ विचरण करते हुए अपाना पहुँचे हैं, और आदरणीय गौतम बुद्ध का स्वागत इन प्रशंसात्मक शब्दों ने किया: "यह भगवान हैं, आदरणीय, पूर्णतः प्रबुद्ध, दिव्य ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण, आनंदमय, संसार के ज्ञाता,

अतुलनीय, मनुष्यों को वश में करने वाले सारथी, स्वामी, देवताओं और मनुष्यों में पूर्णतः प्रबुद्ध (बुद्ध) और ईश्वर के रूप में; वे इस संसार और देवताओं के संसार, मारों, ब्राह्मणों और समनाओं और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों सहित सभी प्राणियों का उपदेश देते हैं, स्वयं भी उन्हें जानता और आमने-सामने देखा है; वे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, अर्थपूर्ण और शब्दों से समृद्ध है, पूर्ण है; वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन सिखाते हैं, और ऐसे अर्हतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) का दर्शन सुखद होता है।'

तब जटिला केनिया उस स्थान पर गए जहाँ भगवान (बुद्ध) थे, और वहाँ जाकर उन्होंने उनसे मधुर वार्तालाप किया, और कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद वे अलग बैठ गए; और जब जटिला केनिया अलग बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने धम्म प्रवचन द्वारा उन्हें उपदेश दिया, सलाह दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। तब जटिला केनिया, भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म प्रवचन के माध्यम से उपदेश, सलाह, प्रेरणा और प्रसन्नता प्राप्त करने के बाद, भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'आदरणीय गौतम (बुद्ध) कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरा भोजन ग्रहण करें।'

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने जटिला केनिया को उत्तर दिया: 'हे केनिया, भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और तुम ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हो।'

दूसरी बार जटिला केनिया ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध, यद्यपि भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हूँ, फिर भी पूज्य गौतम बुद्ध कल भिक्षुओं की सभा सहित मेरा भोजन ग्रहण करें।'

दूसरी बार भगवान बुद्ध ने जटिला केनिया को कहा: 'हे केनिया, भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और तुम ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हो।'

तीसरी बार जटिला केनिया ने भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध, यद्यपि भिक्षुओं की सभा बड़ी है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणों से घनिष्ठ रूप से परिचित हूँ, फिर भी पूज्य गौतम बुद्ध कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरा भोजन ग्रहण करें।' भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

तब जटिला केनिया ने भगवान (बुद्ध) की सहमति जानकर, अपने आसन से उठकर अपने आश्रम में गए, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों को संबोधित करते हुए कहा: 'हे मेरे पूज्य मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों, मेरी बात सुनो; मैंने समना गौतम बुद्ध को कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरे साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया है; जहाँ आपको मेरी शारीरिक सेवा करनी होगी।'

'हे पूज्यवर,' ऐसा कहते हुए केनिया, जटिला के मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने उनकी विनती का पालन करते हुए चूल्हे खोदे, कुछ ने लकड़ियाँ काटीं, कुछ ने बर्तन धोए, कुछ ने पानी के बर्तन रखे और कुछ ने आसन तैयार किए। दूसरी ओर, केनिया, जटिला ने स्वयं एक गोलाकार मंडप बनवाया।

उस समय ब्राह्मण सेला अपाना में निवास करते थे, जो तीनों वेदों, शब्दकोश, केतुभ, व्युत्पत्ति, इतिहास (पाँचवाँ वेद) के ज्ञाता, छंदों में पारंगत, व्याकरणविद्, लोकप्रिय विवादों में निपुण और एक महान व्यक्ति के लक्षण रखने वाले थे। उन्होंने तीन सौ युवकों को भजन सिखाए। उस समय केनिया, जटिला, ब्राह्मण सेला के घनिष्ठ मित्र थे। फिर ब्राह्मण सेला तीन सौ युवकों से घिरे हुए पैदल चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ केनिया, जटिला का आश्रम था। ब्राह्मण सेला ने केनिया के आश्रम में जटिलों को देखा, उनमें से कुछ चूल्हे खोद रहे थे, कुछ लकड़ियाँ काट रहे थे, कुछ बर्तन धो रहे थे, कुछ जलपात्र रख रहे थे, कुछ आसन तैयार कर रहे थे, और दूसरी ओर जटिल केनिया स्वयं एक गोलाकार मंडप बना रहे थे; जटिल केनिया को देखकर उन्होंने कहा: 'क्या पूज्य केनिया अपने पुत्र या पुत्री का विवाह समारोह मना रहे हैं, या कोई बड़ा यज्ञ होने वाला है, या मगध के राजा बिम्बिसार, जिनके पास विशाल सेना है, को कल के लिए आमंत्रित किया गया है?'

'मुझे न तो पुत्र का विवाह मनाना है और न ही पुत्री का विवाह, और न ही मगध के राजा बिम्बिसार को, जिनके पास बड़ी सेना है, कल के लिए आमंत्रित किया गया है, फिर भी मेरा एक महान यज्ञ निकट है।' शाक्य वंश के पुत्र समना गौतम (बुद्ध), शाक्य कुल से निकलकर, अंगुत्तरापा में एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ विचरण करते हुए अपाना पहुँचे, और वहाँ पूज्य गौतम (बुद्ध) का स्वागत इन प्रशंसात्मक शब्दों से हुआ: "यह हैं भगवान (बुद्ध), पूज्य, पूर्णतः प्रबुद्ध, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण (विज्याचरण), सुखी, संसार के ज्ञाता, अतुलनीय, मनुष्यों को वश में करने वाले सारथी, स्वामी, देवताओं और मनुष्यों के प्रबुद्ध (बुद्ध), महिमामय। मैंने इन्हें कल भिक्षुओं के समूह सहित आमंत्रित किया है।" '

क्या आपने कहा कि वे बुद्ध हैं, हे पूज्य केनिया?'

'जी हाँ, मैं कहता हूँ, हे पूज्य सेला, कि वे बुद्ध हैं।'

'क्या आपने कहा कि वे बुद्ध हैं, हे पूज्य केनिया?' '

जी हां, मैं कहता हूं, हे पूज्य सेला, कि वह बुद्ध हैं।'

तब ब्राह्मण सेला के मन में यह विचार आया: 'यह ध्वनि "बुद्ध" (वास्तव में) दुर्लभ है, लेकिन हमारे भजनों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण पाए जाते हैं, और इन लक्षणों से संपन्न महान पुरुष के लिए केवल दो ही शर्तें हैं: यदि वह गृहस्थी में रहता है तो वह राजा है, सर्वव्यापी (राजा), न्यायप्रिय राजा, चौगुनी (पृथ्वी) का स्वामी, विजेता, जिसने अपनी प्रजा की सुरक्षा प्राप्त की है और सात रत्नों से युक्त है। ये उसके सात रत्न हैं, अर्थात्, चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, मोती रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न प्रधान है। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं, वीर, महान शारीरिक शक्ति से युक्त और विदेशी सेनाओं को कुचलने वाले; उसने इस सागर से घिरी पृथ्वी को बिना लाठी और बिना हथियार के, केवल न्याय के बल पर जीता है और (गृहस्थी में) रहता है।' परन्तु दूसरी ओर, यदि वह अपने घर से निकलकर बेघर हो जाए, तो वह संत बन जाता है, पूर्णतः प्रबुद्ध हो जाता है, संसार के परदे को हटा देता है। और हे पूज्य केनिया, अब वह पूज्य गौतम (बुद्ध), संत और पूर्णतः प्रबुद्ध कहाँ निवास करते हैं?'

यह कहकर, जटिला केनिया ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर ब्राह्मण सेला से कहा: 'हे पूज्य सेला, वहाँ जहाँ वह नीली वन रेखा है।'

तब ब्राह्मण सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ भगवान (भगवान बुद्ध) विराजमान थे। तब ब्राह्मण सेला ने उन युवकों को संबोधित करते हुए कहा: 'आओ, पूज्यजनों, चुपचाप, कदम-कदम बढ़ाते हुए, क्योंकि भगवान (भगवान बुद्ध) तक पहुँचना कठिन है, वे सिंहों की तरह अकेले चलते हैं, और जब मैं पूज्य समना गौतम (बुद्ध) से बात करूँ, तो तुम बीच में टोकना मत, बल्कि प्रतीक्षा करना, पूज्यजनों।'मेरे भाषण के अंत के लिए।'

तब ब्राह्मण सेला उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से सुखद वार्तालाप किया। उनसे कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप करने के बाद वे एकांत में बैठ गए। एकांत में बैठे हुए ब्राह्मण सेला ने भगवान बुद्ध के शरीर पर एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखे। ब्राह्मण सेला ने भगवान बुद्ध के शरीर पर एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखे, सिवाय दो लक्षणों के; दो लक्षणों के संबंध में उन्हें संदेह था, वे संशय में थे, वे संतुष्ट नहीं थे, वे इस बात से आश्वस्त नहीं थे कि उनका गुप्तांग झिल्ली में लिपटा हुआ है और उनकी जीभ बड़ी है।

तब भगवान (भगवान बुद्ध) के मन में यह विचार आया: 'यह ब्राह्मण सेला मुझमें एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखता है, सिवाय दो के। महान पुरुष के दो लक्षणों के संबंध में उसे संदेह है, वह संकोच करता है, वह संतुष्ट नहीं है, वह आश्वस्त नहीं है कि मेरा जननांग झिल्ली से ढका हुआ है और मेरी जीभ बड़ी है।' तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने एक ऐसा चमत्कारी प्राणी बनाया जिससे ब्राह्मण सेला भगवान (भगवान बुद्ध) के जननांग को झिल्ली से ढका हुआ देख सके। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने अपनी जीभ बाहर निकालकर अपने दोनों कानों को छुआ और सहलाया, दोनों नथुनों को छुआ और सहलाया, और अपने पूरे माथे को अपनी जीभ से ढक लिया।

तब ब्राह्मण सेला के मन में यह विचार आया: 'समना गौतम (बुद्ध) एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों से संपन्न हैं, उन सभी से, न कि (केवल) उनमें से कुछ से, और फिर भी मैं नहीं जानता कि वे बुद्ध हैं या नहीं; मैंने वृद्ध ब्राह्मणों, शिक्षकों और उनके पूर्व शिक्षकों को यह कहते सुना है कि जो संत और पूर्णतः प्रबुद्ध होते हैं, उनकी स्तुति करने पर वे स्वयं प्रकट होते हैं। मेरा विचार है कि मैं समना गौतम (बुद्ध) की स्तुति उपयुक्त श्लोकों में आमने-सामने करूँ। तब ब्राह्मण सेला ने भगवान (भगवान बुद्ध) की स्तुति उपयुक्त श्लोकों में आमने-सामने की:

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), आपका शरीर परिपूर्ण है, आप तेजस्वी हैं, उच्च कुल के हैं, आपका रूप सुंदर है, आपका रंग स्वर्ण है, आपके दाँत अत्यंत श्वेत हैं, आप बलवान हैं। (553)

2. 'उच्च कुल के पुरुष के सभी लक्षण आपके शरीर पर हैं, एक महान पुरुष के लक्षण। (554)

3. 'आपकी आँखें उज्ज्वल हैं, आपका मुखमंडल सुंदर है, आप महान, सीधे, राजसी हैं, आप समनाओं (भिक्षुओं) की सभा के बीच सूर्य के समान चमकते हैं।' (555)

4. 'आप सुंदर रूप वाले भिक्षु हैं, आपकी त्वचा सोने जैसी है; आप जैसे सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण होने पर भी, भिक्षु होने का क्या लाभ? (556)

5. 'आप राजा बनने के योग्य हैं, सार्वभौमिक राजाओं के राजा, चौकोणीय (पृथ्वी) के शासक, विजेता, जंबू वन (अर्थात भारत) के स्वामी। (557)

6. 'खत्तीय और धनी राजा आपके प्रति समर्पित हैं; हे गौतम (बुद्ध), राजाओं के राजा, मनुष्यों के नेता के रूप में शासन करें।' (558)

7. 'हे सेला, मैं राजा हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'एक अतुलनीय, धर्म राजा (धम्मराजन), मैं न्याय (धम्मेना) से धर्मचक्र चलाता हूँ, एक ऐसा धर्मचक्र जो अजेय है।' (559)

8. 'आप स्वयं को पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) मानते हैं,' - ब्राह्मण सेला ने कहा, - 'एक अतुलनीय, धर्म राजा; "मैं न्याय से धर्मचक्र चलाता हूँ," हे गौतम (बुद्ध) आप ऐसा कहते हैं।' (560)

9. 'आपका सेनापति कौन है, आपका शिष्य कौन है, गुरु का उत्तराधिकारी कौन है, आपके द्वारा चलाए गए धर्मचक्र को आपके बाद कौन चलाएगा?' (561)

10. 'हे सेला, मेरे द्वारा घुमाया गया चक्र,' - भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा, - 'धर्म का अतुलनीय चक्र, सारिपुत्त को मेरे पीछे घुमाना है, वह तथागत (बुद्ध) का अनुसरण करेगा। (562)

11. 'जो जानना है वह (मेरे द्वारा) ज्ञात है, जो साधना करनी है वह (मेरे द्वारा) साधना है, जो छोड़ना है वह (मेरे द्वारा) छोड़ दिया गया है, इसलिए मैं बुद्ध हूँ, हे ब्राह्मण। (563)

12. 'मेरे बारे में अपने संदेह को दूर करो, मुझ पर विश्वास रखो, हे ब्राह्मण, बुद्धों के दर्शन बार-बार प्राप्त करना कठिन है। (564)

13. 'जिनका दर्शन संसार में बार-बार आपके लिए कठिन है, उनमें से मैं, हे ब्राह्मण, पूर्णतः प्रबुद्ध, अतुलनीय चिकित्सक हूँ। (565)

14. 'मैं सबसे श्रेष्ठ, अद्वितीय, मार (मृत्युदेव) की सेना का नाश करने वाला हूँ; सभी शत्रुओं को पराजित करके मैं चारों ओर से सुरक्षित होकर आनंदित होता हूँ।' (566)

15. सेला: 'हे पूज्यजनों, इस पर ध्यान दें: जैसा कि स्पष्ट दृष्टि वाले (बुद्ध) कहते हैं, (वैसा ही है): वह चिकित्सक, महान विजेता और वन में सिंह के समान गर्जना करने वाला है। (567) 16.

'जो उसे, जो सबसे श्रेष्ठ, अद्वितीय, मार की सेना का नाश करने वाला है, देखकर भी तृप्त नहीं होता, चाहे वह कुन्हभिजातिका (काष्ठ वंश) का ही क्यों न हो।' (568)

17. 'जो मुझे पसंद करता है, वह मेरा अनुसरण करे; जो मुझे पसंद नहीं करता, वह चला जाए; मैं तुरंत ही उस व्यक्ति (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान) की उपस्थिति में दीक्षा लूंगा जिसे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है (अर्थात बुद्ध)।' (569)

18. सेला के अनुयायी: 'यदि पूर्णतः प्रबुद्ध का यह सिद्धांत आपको प्रसन्न करता है, तो हम भी उस व्यक्ति (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान) की उपस्थिति में दीक्षा लेंगे जिसे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है।' (570)

19. इन तीन सौ ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर (सभा में प्रवेश के लिए) निवेदन किया: 'हे भगवान (बुद्ध), हम आपकी उपस्थिति में एक पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।' (571)

20. 'हे सेला, धर्म का जीवन (मेरे द्वारा) अच्छी तरह सिखाया जाता है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'एक तात्कालिक, तत्काल (जीवन), जिसमें गंभीरता से सीखने वाले के लिए तपस्वी बनना व्यर्थ नहीं है।' (572)

तब ब्राह्मण सेला ने अपने अनुयायियों के साथ भगवान (बुद्ध) के समक्ष वस्त्र धारण किए और आदेश ग्रहण किए। फिर उस रात के अंत में, जटिला केनिया ने अपने आश्रम में उत्तम पौष्टिक और नरम भोजन की व्यवस्था करके भगवान (बुद्ध) को भोजन का समय बताया: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), भोजन तैयार है।' तब भगवान (बुद्ध) ने सुबह अपने वस्त्र धारण किए, कुंड और वस्त्र धारण किए, जटिला केनिया के आश्रम गए और वहाँ पहुँचकर भिक्षुओं के समूह के साथ तैयार आसन पर बैठ गए। तब जटिला केनिया ने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को अपने हाथों से उत्तम पौष्टिक और नरम भोजन परोसा। तब जटिला केनिया, भोजन समाप्त कर चुके और कटोरे से हाथ निकाल चुके भगवान (बुद्ध) के पास जाकर, एक नीची चौकी पर अलग बैठ गए। जब जटिला अलग बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें इन श्लोकों से प्रसन्न किया: 21. 'यज्ञ में प्रमुख अग्नि है, भजनों में प्रमुख सविति है, पुरुषों में राजा प्रमुख है, और जल में सागर प्रमुख है (नादिनम)। (573)

22. 'तारों में चंद्रमा प्रमुख है, ज्वलनशील वस्तुओं में सूर्य प्रमुख है, और अच्छे कर्म करने और भेंट चढ़ाने वालों में संघ प्रमुख है।' (574)

तब भगवान (बुद्ध) ने जटिला केनिया को इन श्लोकों से प्रसन्न करके, अपनी चौकी से उठकर चले गए। फिर पूज्य सेला ने अपने अनुयायियों के साथ एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, इस जीवन में थोड़े ही समय में अपने ज्ञान से धर्म (धार्मिक) जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घरों को छोड़कर बेघर हो जाते हैं; उन्होंने यह अनुभव किया कि 'पुनर्जन्म का चक्र टूट गया है, धर्ममय जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस जीवन के लिए और कुछ नहीं करना बाकी है', और पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ अर्हतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए। तब पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (भगवान बुद्ध) की ओर झुकाकर उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 23. 'हे प्रत्यक्षदर्शी, क्योंकि हमने इससे पहले आठवें दिन आपकी शरण ली थी, हे भगवान (भगवान बुद्ध), सात रातों में हमने आपके उपदेशों का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। (575)

24. 'आप बुद्ध हैं, आप गुरु हैं, आप वह मुनि (संत) हैं जिन्होंने मृत्यु के देवता (मरा) पर विजय प्राप्त की है, आपने आसक्तियों को काटकर (अस्तित्व की धारा को) पार किया है और इन प्राणियों को अपने अधीन कर लिया है। (576)

25. 'आपने अस्तित्व के तत्वों (उपाधि) पर विजय प्राप्त कर ली है, आपने वासनाओं का नाश कर लिया है, आप एक ऐसे सिंह हैं जो किसी भी चीज को नहीं पकड़ते, आपने भय और खतरे को पीछे छोड़ दिया है। (577)

26. 'ये तीन सौ भिक्षु यहाँ हाथ जोड़कर खड़े हैं; हे महानुभाव, अपने चरण फैलाइए, नाग गुरु के चरणों की पूजा करें।' (578)

सेलासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

7. सेलासुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगवान अंगुत्तरापेसु कारिकां कारमाणो महता भिक्खुसंघेन सद्धिंः अद्धहतेसासेहि भिक्खुसतेहि येना आपानं नाम अंगुत्तरापणं निगमो तदवसारि। अस्सोसि खो केनियो जतिलो "समानो खलू, भो, गोतमो शाक्यपुत्टो शाक्यकुला पब्बाजितो अंगुत्तरापसु कारिकां कारमानो महता भिक्खुसांगेन सद्धिंः अद्धहतेदसेहि भिक्खुसतेहि अपानं अनुप्पट्टो. तं खो पण भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि सो भगव अरहं सम्मासंबुद्धो विज्जाचरणसंपन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरीसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सनम् बुद्धो भगवति [भगव (स्या. पि.)]. तो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्सामणब्राह्मणि पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिन्न सच्चिकत्व पवेदेति। तो धम्मं देसति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसनकल्याणं सत्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुन्नं परिशुद्धं ब्रह्मकार्यं पकासेति। साधु खो पण तथरूपाणं अर्हतं दस्सानं होति'ति।

अथ खो केनियो जतिलो येन भगव तेनुपसांकमि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नं खो केनीयं जटिल भगव धम्मिया कथया संदस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहांसेसि। अथ खो केनियो जतिलो भगवता धम्मिया कथया संदस्सीतो समादापिटो समुत्तेजितो संपहंसितो भगवन्तं एतदावोचा - "अधिवसेतु मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं

सद्धिमं" भिक्खुसंघेनाति। एवं वुट्टे, भगव केनियां जतिलं एतदावोका - "महा खो, केनिया, भिक्खुसांघो अद्धतेदासानि भिक्खुसतानि; त्वञ्च ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो'ति।

दुतियामपि खो केनियो जतिलो भगवन्तं एतदावोचा - "किंचपि, भो गोतम, महा भिक्खुसांघो अद्धतेदसानि भिक्खुसतानि, अहंका ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो; अधिवसेतु मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगने'ति। दुतियामपि खो भगव केनीयं जतिलं एतदावोचा - "महा खो, केनिया, भिक्खुसंगघो अद्धतेसानि भिक्खुसतानि; त्वञ्च ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो'ति।
ततियामपि खो केनियो जतिलो भगवन्तं एतदावोचा - " किञ्चपि, भो गोतम, महा भिक्खुसांघो अद्धतेदसानि भिक्खुसतानि, अहंका ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो, अधिवासतु [अधिवसेत्वेव (सि.)] मे भावं गोतमो स्वतानाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंघेना'ति। अधिवासीसि भगव तुन्हिभावेन। अथ खो केनियो जतिलो भगवतो अधिवासन विदित्वा उत्थान येन सको अस्समो तेनुपशंकामि; उपसंकमित्व मित्तमच्चे नातिसालोहिते अमांतेसि - "सुनन्तु मे भवन्तो मित्तमच्चा नातिसालोहिता, समानो मे गोतमो निमन्तितो स्वतनया भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगघेन, येन मे कायवेय्यावतिकं करेयथा'ति। "एवं, भो'ति खो केनियास्सा जतिलास्सा मित्तमक्का न्यातिसालोहिता केनियास्सा जातिलासा पतीसुत्वा अप्पेकैसे उधनानि खानंती, अप्पेकैसे कांथानि फलेंटी, अप्पेकैसे भजनानि धोवंती, अप्पेकैसे उदकामाणिकं पतिथपेंती, अप्पेकैसे आसननि पणनापेंती। केनियो पना जतिलो सामन्येव मंडलमडं पतियदेति।
तेन खो पना समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पतिवासति, तिन्नं वेदानां परागु सनिघंदुकेतुभानं सक्खराप्पभेदानां इतिहसापञ्चमानं पढ़ाको वेय्याकारणो लोकायतमहापुरीसलक्खनेसु अनावयो, तिनि च मानववकसतानि मन्ते वचेती।
तेना खो पना समयेन केनियो जतिलो सेले ब्राह्मणे अभीप्पसन्नो होति। अथा खो सेलो ब्राह्मणो तीहि मनवकसतेहि परिवुतो जंघाविहारं अनुचंकमामानो अनुविक्रमणो येन केनियास्सा जतिलास्सा अस्सामो तेनुपसांकमि। अड्डासा खो सेलो ब्राह्मणो केनियासा जतिलासा अस्समे [केइसासामी जतिले (सी. पी.)] अप्पेकैसे उधनानि खानंते...पे... अप्पेकैसे आसननि पणनापेंटे, केनियाम पना जतिलां साम्येव मंडलमण्डन पतियदन्तम्। दिसवना केनियाम जतिलं एतादावोका - "किं नू खो भोटो केनियास्सा आवाहो वा भविष्यसति, विवाहो वा भविष्यसति, महायान्नो वा पक्कुपाथितो, राजा वा मागधो सेनियो" बिम्बिसार निमन्तितो स्वतःया सद्धिः बालकायेनति?
"न मे, भो सेला, आवाहो वा भविष्यसति विवाहो वा, नापि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसार निमन्तितो स्वतःनाय सधिं बलकायेन; अपि च खो मे महायान्नो पक्कुपत्थितो। अत्थि समणो गोतमो शाक्यपुतो शाक्यकुल पब्बजितो अंगुत्तरापसु कारिकां कारमाणो महता भिक्खुसंघेन सद्धिः अद्धहतेदसेहि भिक्खुसतेहि आपानं अनुप्पत्तो। तं खो पण भवन्तां गोतमं...पे... बुद्धो भगवती। तो मे निमन्तितो स्वतःनाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगने'ति। "बुद्धोती, भो केनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेला, वदामि"। "बुद्धोती, भो केनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेला, वदामि"ति।
अथ खो सेलास्सा ब्राह्मणस्सा एतदाहोसि - "घोसोपि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं यदिदं बुद्धिति।" अगातानि खो पनमहकं मंतेसु द्वत्तींसमहापुरिसलक्खानानि, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्सा दवेव गतियो भवन्ति अनन्या। ससे अग्रं अज्झावसति राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराज चतुरंतो विजिताविं जनपदत्थावरियाप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सीमनि सत्त रतनानि भवन्ति, सेयथिदं - चक्करतनं, हट्ठिरतनं, अस्सरतनं, मनिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरत्नं, परिणयकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सां खो पनास्सा पुत्ता भवन्ति सुरा वीरांगरूपा परसेनप्पमद्दना। तो इमं पथविं सागरपरियंतं अदंडेन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति। ससे खो पण अग्रस्मा अंगरियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासंबुद्धो लोके विवत्तच्चदो [विवत्तच्चद्दो (सि. पि.)]। कहं पना, भो केनिया, एतराहि सो भावं गोतमो विहारति अरहं सम्मासंबुद्धोऽति?
एवं वुट्टे, केनियो जतिलो दक्खिनं बहुं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदावोका - "येनेसा, भो सेला, निलावनराजि"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानववकसतेहि सद्धिं येन भगव तेनुपशंकामि। अथा खो सेलो ब्राह्मणो ते मनावके अमांतेसि - "अप्पसद्दा भोंतो आगच्छंतु, पदे पदं निक्खिपंता।" दुरासदा हि ते भगवन्तो [भवन्तो (स्या. का.)] सिहाव एककारा। यदा चाहं, भो, समानेन गोतमेना सद्धिं मन्तेयुं, मा मे भोन्तो अंतरान्तरा कथां ओपतेथा; कथापरियोसनं मे भवन्तो अगामेंटु'ति।
अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तींसमहापुरिसलक्खानानि समन्नेसि [सम्मन्नेसि (सि. स्या.)]। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिनसमाहापुरिसलक्खनानि येभुय्येन थपेत्वा द्वे। द्विसु महापुरिसलक्खनेसु कांखति विकिसिच्छति नाधिमुच्चति न संपसीदति - कोसोहिते च वत्थगुये, पहुताजीवहतया चति।
अथ खो भगवतो एतदहोसि - "पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिन्समहापुरिसलक्खानानि येभुय्येन थपेत्वा द्वे। द्विसु महापुरिसलक्खनेसु कांखति विकिसिच्छति नाधिमुच्चति न संपसीदति - कोसोहिते च वत्थगुये, पहुताजीवहतया चा"ति। अथ खो भगव तथारूपं इद्धभिसंखारं अभिसंखसि [अभिसंखरेसि (स्या. का.)], यथा अडससा सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुयहं। अथ खो भगव जीवहं निन्नमेत्वा उभोपि कणसोतानि अनुमसि पतिमसि, उभोपि नासिकासोटानि अनुमसि पतिमासि, केवलमपि नालतामंडलं जीव्या चदेसी।
अथ खो सेलास्सा ब्राह्मणस्सा एतदाहोसि - "समन्नागतो खो समानो गोतमो द्वत्तिन्समहापुरीसलक्खनेहि परिपुणेहि, नो अपुरिपुणेहि। नो च खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पण मेटं ब्राह्मणां वुद्धानं महल्लकाणं अचरियपचारियानं भस्मानां - 'ये ते भवन्ति अरहंतो

सम्मासम्बुद्ध, ते साके वन्ने भन्नमने अत्तनं पाटुकरोन्ति। यन्नुनाहं समानं गोतमं सम्मुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्तवेय'न्ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुख सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -
553.
"परिपुणकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सानो;
सुवाणावणोसि भगवान, सुसुक्कदाथोसि वीर्यवा।
554.
"नरस्सा हि सुजातस्सा, ये भवन्ति वियञ्जना;
सब्बे ते तव कायास्मिं, महापुरिसलक्खना।
555.
"पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पतापवा;
मज्जे समानसंगहस्सा, एडिककोवा विरोकासी।
556.
"कल्याणादस्सणो भिक्खु, कांचानसन्निभट्टको;
किं ते समनभावेन, एवं उत्तमवनिनो।
557.
"राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो;
चतुरंतो विजितावी, जंबुसंदस्सा [जंबुमंदस्स (का.)] इस्सारो।
558.
"खट्टिया भोगीराजानो [भोजराजानो (सि. स्या.)], अनुयंता [अनुयुत्ता (सि.)] भवन्तु ते;
राजभिराजा मनुजिंदो, रज्जं करेहि गौतम।"
559.
"राजहामास्मि सेलति, (भगव) धम्मराज अनुत्तरो;
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पटिवत्तियं"।
560.
"संबुद्धो पतिजानासि, (इति सेलो ब्राह्मणो) धम्मराज अनुत्तरो;
'धम्मेण चक्कं वत्तेमि', इति भाससि गोतम।
561.
"को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुरनवयो;
को ते तमनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं।"
562.
"माया पवत्तितं चक्कं, (सेलति भगव) धम्मचक्कं अनुत्तरम्;
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतम्।
563.
"अभिन्यायं अभिनीतं, भवेतब्बाञ्च भविताम्;
पहतब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण।
564.
"विनयसु मयि कंखं, अधिमुक्कसु ब्राह्मण;
दुल्लाभं दस्सानं होति, संबुद्धानं अभिनहासो।
565.
"येसं वे [येसं वो (पि.), यस्सा वे (स्या.)] दुलाभो लोके, पतुभावो अभिनहसो;
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकट्टो अनुत्तरो।
566.
"ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो;
सब्बामित्ते वसीकत्वा, मोदामि अकुतोभ्यो"।
567.
"इमं भवन्तो निसामेथा, यथा भासति चक्खुमा;
सल्लकत्तो महावीरो, सिहोवा नदति वने।
568.

"ब्रह्मभूतं अतितुलं, मरसेनप्पमद्दनं;
को दिस्वा नप्पसीडेय, अपि कान्हाभिजातिको।
569.
"यो मां इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्चति गच्छतु;
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपन्नस्सा संतिके"।
570.
"इवान्से [एतान्से (सि. पि.)] रुक्काति भोटो, सम्मासंबुद्धसासने [सम्मासंबुद्धसासनं (सि. स्या. कां. पि.)];
मयामपि पब्बाजीस्सामा, वरपन्नस्सा संतिके"।
571.
"ब्राह्मण तिसाता इमे, याकन्ति पंजलिकता;
ब्रह्मचर्यं करिश्मा, भगव तव संतिके"।
572.
"स्वक्खातम ब्रह्मचर्यं, (सेलति भगव) संदिथिकमकालिकम्;
यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्सा सिक्खतो'ति।
अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो संतिके पब्बजं, अलत्थ उपसम्पदाम्। अथा खो केनियो जतिलो तस्स रत्तिया अचयेना साके असमे पणितं खादनीय भोजन्यं पतियादापेत्वा भगवतो कलां अरोकापेसि - " कालो, भो गोतम, नियतं भट्टं'न्ति। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व पत्तशिवरामदाय येन केनियस्सा जतिलास्सा अस्समो तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा पन्नते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसंघेन।
अथा खो केनियो जतिलो बुद्धप्पामुखं भिक्खुसंघं पणितेन खादनीयेन भोजन्येन सहत्था संतप्पेसि संपवारेसि। अथ खो केनियो जतिलो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपट्टपनिं अनंतारं निकं आसनं गहेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमंतं निसिन्नं खो केनीयं जटिलं भगव इमाही गाथाहि अनुमोदी -
573.
"अग्गिहुत्तमुखा यन्न, सविति छंदसो मुखं;
राज मुखं मनुस्नानं, नदीं सागरो मुखं।
574.
"नक्खत्तनं मुखं कैंडो, आदिको तपतं मुखं;
पुन्नं आकंखमनानं, संगो वे यजतां मुखं'न्ति।
अथ खो भगव केनीयं जटिलं इमाही गाथाहि अनुमोदित्वा उत्थान पक्कमि। अथा खो अयस्मा सेलो सपरिसो एको वुपकाठो अप्पामत्तो अतापी पहितत्तो विहारन्तो नसीरासे...पे... अन्नतरो खो पनापस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि।
अथ खो अयस्मा सेलो सपरिसो येन भगव तेनुपासकमि, उपसंकमित्वा एकंसं सिवाराम कत्वा येन भगवान तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
575.
"यं तं शरणमगम्हा [मगम्मा (सि. स्या. का.)], इतो अठहामि चक्खुमा;
सत्तारत्तेन भगवान, दंतमह तव सासने।
576.
"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि;
तुवं अनुसये चेत्वा, तिणो तारेसिमं पजं।
577.
"उपधि ते समतिक्कंता, आसव ते पदलिता;
सिहोसि [सिहोवा (मा. नि. 2.401)] अनुपादनो, पहिनाभयभेरवो।
578.
"भिक्खवो तिसता इमे, तिथंथन्ति पंजलिकता;
पदे वीर पसारेहि, नागा वंदन्तु सत्थुनोऽति।
सेलासुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. सेलसुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगवान अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमाणो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि येन अपनं नाम अङ्गुत्तरापानां निगमो तदवसारि। अस्सोसि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो " समानो खलु, भो, गोतमो साक्यपुत्तो साक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि अपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं कल्याण एवंवो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि सो भगव अरहं सम्मासम्बुद्धो विजजाचरणसम्प संज्ञाओ सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदमसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवति [भगवा (स्या० पी०)]। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्सामन्ब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिज्ञान सच्चिकत्व पवेदेति। सो धम्मं देसति आदि कल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसं कल्याणं साथं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुन्नं परिशुद्धं ब्रह्मचर्यं पकसेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं अस्तित्वति।

अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो येन भगवा तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमंतं निसि नामं खो केनियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय सन्दपेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संफानसेसि। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवता धम्मिया न्याय सन्दस्सितो समादपिटो समुत्तेजितो सम्हंसिटो भगवन्तं एतदवोच - "अधिवासेतु मे भवन गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। एवं वुत्ते, भगवा केनियं कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "महा खो, केनिय, भिक्खुसङघो अन्ननतेळसानि भिक्खुस्तानी; त्वञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पस नागानो"ति।

दुतीयम्पि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवन्तं एतदवोच - " किञ्चदचापि, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्ताननि, अहन्नदच ब्राह्मणेसु अभिप्पस सत्यो; अधिवासेतु मे भवन गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। दुतियम्पि खो भगव केणियं कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्तानी; त्वञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पस नागानो"ति।

ततियामपि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवंतं एतदवोच - " किञ्चदचापि, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्ताननि, अहंदच ब्राह्मणेषु अभिप्पस साइनो, अधिवासेतु [अधिवसेत्वेव (सी०)] मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। अधिवाससि भगवान तुन्हिभावेन। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवतो अधिवेशनं विदित्वा उत्थयासना येन सको अस्समो तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा मित्तमच्छे नतिसालोहिते अम्नतेसि - " सुनन्तु मे भवन्तो मित्तमचदचा नतिसालोहिता, समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन, येन मे कायवैवैटिकं करैयथा"। "एवं, भो"ति खो केनियस कॉम्प्लेक्सस मित्तमचाचे नतिसालोहिता केनियस कॉम्प्लेक्सस पेटिससुट्वा अप्पेकचाचे उधन्नानि खन्नति, अप्पेकचाचे कत्थानि फलेन्ति, अप्पेकचाचे भजनानि धोवन्ति, अप्पेकचाचे उदकमणिकं पतिथपेंती, अप्पेकचाचे असनानि पञ्चापेन्ति। केनियो पन कॉम्प्लेक्सो सामन्येव मंडलमाळं पटियादेति।

तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपने पतिकसति, तिन्नं वेदानं परागु सनिघंडुकेतुभं सखारप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वैय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खनेसु अनवयो, तेनि च मनवकस्तानी मन्ते वाचेति।

तेन खो पन समयेन केनियो कॉम्प्लेक्सो सेले ब्राह्मणे अभिप्पस सान्याओ होति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानवकस्तेहि परिवुतो जङ्घविहारं अनुचङकममानो अनुविचरमणो येन केनियस कॉम्प्लेक्सस्स अस्समो तेनुपसङकमी। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केनियस कॉम्प्लेक्स अस्समे [केनिसमये कॉम्प्लेक्स (सी० पी०)] अप्पेकचदचे उधनानि खानन्ते…पे०… अप्पेकचचे आसननि पंडनपेंटे, केनियं पन कॉम्प्लेक्सं सामंयेव मंडलमाळं पटियादेंतां। दिस्वां केन्यां कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "किं नू खो भोतो केनियस आवाहो वा भविष्यस्ति, विवाहो वा भविष्यस्ति, महायज्ञनो वा पच्चुपत्थितो, राजा वा माग्धो सेनियो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनय सद्धिं बलकायेना"ति? "न मे, भो सेल, आवाहो वा भविष्यस्ति विवाहो वा, नापि राजा माधधो सेनियो बिम्बिसारों निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन; अपि च खो मे महायञ्चो पच्चुपत्थितो। अथि समानो गोतमो साक्यपुत्तो साक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमाणो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि अपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं…पे०… बुद्धो भगवती। सो मे निमन्तितो स्वातनाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। "बुद्धोति, भो कैनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेल, वदामि"। "बुद्धोति, भो कैनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेल, वदामि"ति।

अथ खो सेलस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "घोसोपि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं इदिदं बिधोति। आगतानि खो पनम्हाकं मंतेसु दत्तिन्समहापुरिसलक्खानानि, येहि सम ज्ञानगतस्स महापुरिस्स्स द्वेव गतियो भवन्ति आनंद। सचे राजं अज्जवसति राजा होति चकवति धम्मिको धम्म चातुरंतो विजितावि जिलाथावरियप्पत्तो सत्तरतनसम संज्ञागतो। तस्सिमानि सत्त रत्नानि भवन्ति, सेयथिदं - च त्रैकर्तनं, हत्थिरतनं, अस्सरत्नं, मणिरत्नं, इत्थिरतनं, गहपतिरत्नं, परिणयकरतनमेव सत्तमं। कंसहस्सं खो पंसस पुत्ता भवन्ति सुरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदन्देन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति। सचे खो पन अग्रस्मा अंगरियं पब्बजति, अरहं होती सम्मासम्बुद्धो लोके विवत्तच्छदो [विवत्तच्छद्दो (सी० पी०)]। कहं पन, भो केनिय, अतरि सो भवन गोतमो विहारति अरहं सम्मासम्बुद्धो"ति?

एवं वुत्ते, केनियो कॉम्प्लेक्सो दक्खिनं बाहुं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच - "येनेसा, भो सेल, नीलराजवनि"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानवकस्तेहि सद्धिं येन भगव तेनुपसङ्कमि। अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते मानवके अम्नतेसि — "अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु, पदे पदं निक्खिपन्ता। दुरसदा हि ते भगवन्तो [भवन्तो (स्या० क०)] सीहाव एकचरा। यदा चाहं, भो, समानेन गोतमेन सद्धिं मंतेयुं, मा मे भोंतो अंतरकांतरा कथं ओपेटेथ; कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तु"ति।

अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि सत्यो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये दत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि सम सत्येसि [सम्म् सत्येसि (सी० स्या०)]।

अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि येभुयेन योगेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खनेसु कङ्खति विचिचिच्छति नाधिमुच्छति न सम्पासिदति - कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहुतजिव्हताय चाति।
अथ खो भगवतो एतदहोसि - "पस्सित्त खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो दत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि येभुय्येन योगेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खनेसु कङ्खति विचिचिच्छति नाधिमुच्छति न सम्पासिदति - कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहुतजिव्हताय चा"ति। अथ खो भगवत् तथारूपं इधाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि [अभिसङ्खारेसि (स्या० क०)], यथा अददस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुयहं। अथ खो भगव जिव्हं नि सत्यमेत्वा उभोपि कणसोतानि अनुमसि पतिमसि, उभोपि नासिकसोतानि अनुमसि पतिमसि, केवलमपि नलाटमंडलं जिव्हाय छदेसि।
अथ खो सेलस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - " सम नयनगातो खो समणो गोतमो दत्तिंसमहापुरिसलक्खनेहि परिपुन्नेहि, नो अपुरिपुन्नेहेहि। नो च खो नं जाना बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुजानं महादलकानं आचार्यपचारिअनं भास्मानानं - 'ये ते भवन्ति अरहंतो सम्मासंबुद्धा, ते सके वन्नने भंडनामे अत्तानं पातुक्रोण्ति'। यन्नुनाहं समानं गोतमं सम्मुखा सरुप्पाहि गाथाहि अभिथवेय"न्ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुख सारुप्पाहि गाथाहि अभिथवि -

5

"परिपुन्नकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो।
सुवन्न्वन्नोसि भगवा, सुसुक्रोकदाथोसि वीरियवा॥

554.

"नरस् हि सुजातस्स, ये भवन्ति विञ्ञजना।"
सब्बे ते तव कायस्मिं, महापुरीसलखना॥

54.

"पस साइननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पातापवा।"
मज्झे समानसङ्घसस, आदिचचोव विरोचसि॥

5.

"कल्याणदास्सनो भिक्खु, कंचनस्सनोभिभत्तचो।
किं ते समन्भावेन, एवं उत्तमवन्निनो॥

5

"राजा अरहसि भवितुं, च्रकवत्ती रथेशभो।"
चतुरंतो विजितावी, जंबूसंडस्स [जंबुमंडस्स (क०)] इसरो॥

55.

"खट्टिया भोगिराजानो [भोजराजानो (सी० स्या०)], अनुयंता [अनुयुत्ता (सी०)] भवन्तु ते।
राजाभिराजा मनुजिंदो, रजं करेहि गोतम॥

559.

"राजाहस्मि सेलति, (भगवा) धम्मराजा अनुत्तरो।"
धम्मेन चकं वत्तेमि, चकं अप्पतिवत्तियं"॥

5- ...

"संबुद्धो पतिजानासि, (इति सेलो ब्राह्मणो) धम्मराजा अनुत्तरो।
'धम्मेन चकं वत्तेमि', इति भासि गोतम॥

5 सप्ताह.

"को नो सेनापति भोतो, सावको सथुर्न्वयो।
को ते तमनुवत्तेति, धम्मचकं पवत्तितं"॥

5

"माया पवत्तितं चक्रकं, (सेलति भगवान) धम्मच चक्रकं अनुत्तरं।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अंजातो तथागतं॥

5वीं शताब्दी.

" अभिञ्ञेयं अभिञ्ञातं, भवेत्ब्ब्च भवैतं।
पहतब्बं पहिणं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥

5

"विन्यासु मयि कङ्खं, अधिमुच्छस्सु ब्राह्मण।
दुल्लभं दशसनं होति, संबुद्धानं अभिनहसो॥

5.

"येसं वे [येसं वो (पी०), यस्स वे (स्या०)] दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिनहसो।
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकत्तो अनुत्तरो॥
5.
"ब्रह्मभूतो अतितुलो, मार्सेनप्पमद्दनो।"
सब्बामित्ते वसीकत्वा, मोदामि अकुतोभ्यो"॥
5
"इमं भवन्तो निसामेथे, यथा भासति चखुमा।
सल्लल्कत्तो महावीरो, सीहोव नदति वने॥
5.
"ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमद्दनं।
को दिस्वा नप्पसीदेय, अपि कन्हाभिजातिको॥
56.
"यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु।
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपञ्चस्स शांतिके॥
500
"एवञ्चे [एतञ्चे (सी० पी०)] रुच्चाचति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासने [सम्मासम्बुद्धसासनं (सी० स्या० कं० पी०)]।
मयम्पि पब्जिस्साम, वरपञ्चस्स सन्तिके॥
5.
"ब्राह्मण तिस्ता इमे, याचन्ति पञ्जलिकता।"
ब्रह्मचर्यं चारिसाम, भगव तव शांतिके॥
5.
"स्वक्खातं ब्रह्मचर्यं, (सेलति भगवान) संदित्थिकमकालिकां।
यत्थ अमोघ पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो"ति॥

अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो शांतिके पब्बजं, अलत्थ उपसम्पदं। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो तस्सा रत्तिया आचदच्येन साके अस्स्मे पणितं भोजनीयं भोजन्यं पटियादापेत्वा भगवतो कालं अरोचापेसि - "कालो, भो गोतम, निथ्यितं भत्त"न्ति। अथ खो भगवा पुब्बनहस्यामं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय येन केनियस कॉम्प्लेक्सस अस्समो तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा पञ्जन्ते असने निसिदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन।

अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पनीतेन खादनीयेन भोजनियेन सहत्था सन्तप्पेसि संपवारेसि। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्जन्तरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि नासिकं खो केनियं जटिलं भगवा इमहि गाथाहि अनुमोदि -

5.
"अग्गिहुत्तमुखा यज्ञा, सवित्ती छंदसो मुखं।
राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं॥
5.
"नक्खत्तानं मुखं चंदो, आदिचदमचो तपतं मुखं।
पुञ्जनं अक्ङखमानानं, सङ्घो वे यजत् मुख"न्ति॥

अथ खो भगव केनियं जटिलं इमाहि गाथाहि मधुर्वा उत्थयासना पकामि। अथ खो इस्मा सेलो सपरिसो एको वुपकट्टो अप्पमत्तो अबपि पहितत्तो विहारन्तो नचिरस्से ...पे०... अञ्जन्तरो खो पनापस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि।

अथ खो इस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवान तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झासि -

550.
"यं तं सरणमगम्ह [मगम्म (सी० स्या० क०)], इतो अट्ठमि चक्खुम।
सत्तरत्तेन भगवान, दन्तमह तव सस्ने॥
56.
"तुवं बुद्धो तुवं सथा, तुवं मराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये चेत्वा, तिन्नो तारेसिमं पजं॥
577.
" उपधि ते समति त्रैकान्ता, असवा ते पदलिता।

सीहोसी [सीहोव (म० नि० 2.401)] अनुपादनो, पहिनेभयेरवो॥
500
"भिक्खवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलिकता।"
पदे वीर पसरेहि, नागा वन्दन्तु सथुनो"ति॥
सेलसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.8 सल्लसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

___

पिछला <<<<-->>>> अगला

___

जीवन छोटा है, सभी मनुष्य मृत्यु के अधीन हैं, परन्तु संसार के नियमों को जानने वाले बुद्धिमान शोक नहीं करते, और जो शोक से मुक्त हो जाते हैं उन्हें आशीर्वाद प्राप्त होता है। --दशरथ जातक का पाठ।

___

अंतर्वस्तु

13.8 सलालसुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.8 सल्लसुट्टा

अनुवाद

1. इस संसार में मनुष्यों का जीवन बिना किसी कारण के और अज्ञात है, कष्टों से भरा, क्षणभंगुर और पीड़ा से युक्त। (579)

2. क्योंकि जन्म लेने वालों के लिए मृत्यु से बचने का कोई साधन नहीं है; वृद्धावस्था के बाद मृत्यु होती है, जीवित प्राणियों का स्वभाव ऐसा ही होता है। (580)

3. जैसे पके फल जल्दी गिरने के खतरे में होते हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले मनुष्य हमेशा मृत्यु के खतरे में रहते हैं। (581)

4. जैसे कुम्हार द्वारा बनाए गए सभी मिट्टी के बर्तन अंततः टूट जाते हैं, वैसे ही मनुष्यों का जीवन होता है। (582)

5. युवा और वयस्क, मूर्ख और बुद्धिमान, सभी मृत्यु के वश में आ जाते हैं, सभी मृत्यु के अधीन हैं। (583)

6. जो मृत्यु से पराजित होकर परलोक जाते हैं, उनमें से पिता अपने पुत्र को नहीं बचा पाता, न ही रिश्तेदार अपने रिश्तेदारों को। (584)

7. ध्यान दें! जब रिश्तेदार देख रहे होते हैं और बहुत विलाप कर रहे होते हैं, तब एक-एक करके मनुष्य को ले जाया जाता है, जैसे किसी बैल को वध के लिए ले जाया जा रहा हो। (585)

8. अतः संसार मृत्यु और क्षय से ग्रस्त है, इसलिए बुद्धिमान शोक नहीं करते, क्योंकि वे संसार के नियम जानते हैं। (586)

9. जिसके मार्ग को तुम नहीं जानते, न उसके आने का समय और न ही उसके जाने का समय, क्योंकि तुम दोनों छोर नहीं देख पाते, इसलिए तुम्हारा शोक व्यर्थ है। (587)

10. यदि शोक करने वाले को कुछ लाभ होता है, (यद्यपि वह केवल) स्वयं को हानि पहुँचाने वाला मूर्ख है, तो बुद्धिमान भी ऐसा ही करे। (588)

11. न तो रोने से और न ही शोक करने से किसी को मन की शांति प्राप्त होगी; (इसके विपरीत), उसका दर्द और बढ़ेगा और उसका शरीर कष्ट भोगेगा। (589)

12. वह दुबला-पतला और पीला पड़ जाएगा, स्वयं को हानि पहुँचाएगा, (और फिर भी) मरे हुओं का उद्धार नहीं होता, इसलिए विलाप करना व्यर्थ है। (590)

13. जो शोक नहीं छोड़ता, वह केवल पीड़ा में और भी गहरा डूबता जाता है; मृतकों का विलाप करते हुए वह शोक के वश में हो जाता है। (591)

14. दूसरों को मरते हुए देखो, वे लोग जो अपने कर्मों के अनुसार अपने कर्मों का फल पाते हैं, वे प्राणी जो मृत्यु के वश में होकर यहीं कांप रहे हैं। (592)

15. लोग जिस तरह से सोचते हैं कि ऐसा होगा, वैसा ही होता है, इस संसार में निराशा उतनी ही अधिक होती है; देखो, संसार की यही शर्तें हैं। (593)

16. चाहे कोई व्यक्ति सौ वर्ष या उससे भी अधिक जीवित रहे, अंततः वह अपने सगे-संबंधियों से बिछड़ जाता है और इस संसार में जीवन त्याग देता है। (594)

17. इसलिए जो पूर्णतः प्रबुद्ध अरहतों के वचन सुनकर विलाप को वश में करे, वह मरे हुए व्यक्ति को देखकर कहे: 'वह मुझे अब नहीं मिलेगा।' (595)

18. जैसे जलती हुई आग को पानी से बुझाया जा सकता है, वैसे ही बुद्धिमान, समझदार, विद्वान और चतुर व्यक्ति उत्पन्न हुए दुःख को शीघ्रता से दूर भगा देता है, जैसे हवा रुई के गुच्छे को उड़ा ले जाती है। (596)

19. जो व्यक्ति अपनी ही खुशी चाहता है, उसे अपना विलाप, शिकायत और दुःख रूपी तीर निकाल लेना चाहिए। (597)

20. जिसने (पाप के) तीर को निकाल दिया है और किसी भी चीज़ पर निर्भर नहीं है, उसे मन की शांति प्राप्त होगी और वह जागृत हो जाएगा; जिसने सभी दुःखों पर विजय प्राप्त कर ली है, वह दुःख से मुक्त हो जाएगा और निर्वाण प्राप्त करेगा। (598)

सल्लसुत समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. सल्लसुत्तं
579.
अनिमित्तमनञ्ञतः , मच्चानं इधा जीवितम्;
काशीरञ्च परित्तञ्च, तञ्च दुक्खेन संयुताम्।
580.
न हि सो उपक्कमो अत्ति, येन जाता न मियारे;
जरामपि पट्वा मरणं, एण्डधम्म हि पणिनो।
581.
फलानामिव पक्कणं, पतो पतनतो [पापतातो (सि. पि. अट्ठा.)] भयं;
एवं जटां मक्कणं, निक्कं मरणतो भयं।
582.
यथापि कुम्भकारस्स, काटा मत्तिभाजना;
सब्बे भेदनपरियंता [भेदापरियंता (स्या.)], एवं मक्कन जीवितं।
583.
दहरा च महंता च, ये बाला ये च पंडिता;
सब्बे मक्कुवासं यंति, सब्बे मक्कुपरायणा।

584.
तेसं ं मक्कुपरेताणं, गच्छतं परलोकतो;
न पिता तायते पुत्तं, नाति वा पना नाताके।
585.
पेक्खतं येव नातिनां, पस्सा लालपतं पुथु;
एकमेकोवा मक्कनं, गोवज्जो विया नियति [नियति (बहुसु)]।
586.
एवमबभाहतो लोको, मक्कुना च जराया च;
तस्मा धीरा न सोकन्ति, विदित्वा लोकपरियम्।
587.
यस्सा मग्गं न जाणसी, अगतस्सा गतस्सा वा;
उभो अन्ते असम्पासं, निरत्थं परिदेवसि।
588.
परिदेवयमनो सी, किञ्चिदत्थं उदाब्बहे;
सम्मूढो हिंसामत्तनं, कयिरा सी नं विकक्खणो।
589.
ना ही रुणेन सोकेना, शांतिं पप्पोति चेतासो;
भय्यासुप्पज्जते दुक्खं, शरीरं कपाहन्नति।
590.
किसो विवाणो भवति, हिंसामत्तनमत्तना;
न तेन पेटा पलेन्ति, निरत्था परिदेवना।
591.
सोकमप्पाजहं जंतु, भय्यो दुक्खं निगच्छति;
अनुत्थुणन्तो कालङ्कतम् [कालकतम् (सि. स्या.)], सोकस्सा वसमन्वागु।
592.
अण्णेपि पस गामिने, यथाकम्मुपगे नारे;
मैककुनो वासमागम्मा, फंदंतेविधा पणिनो।
593.
येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अनंता;
एतादिसो विनाभावो, पस्सा लोकस्स परियायम्।
594.
अपि वससातं जीवे, भय्यो वा पण मनावो;
सतिसंघ विना होति, जहाँति इधा जीवितम्।
595.
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय परिदेवितम्;
पेतं कलंकतं दिस्व, नेसो लब्भा मया इति।
596.
यथा शरणमादित्तं, वारिणा परिनिब्बये [परिनिब्बुतो (सि. का.)];
एवमपि धीरो सपनानो, पण्डितो कुसालो नरो;
खिप्पमुप्पतितं सोकं, वातो तुलनव धंसये।
597.
Paridevṃ pajappañca, domanassañca attano;
अत्तानो सुखामेसानो, अब्बाहे सल्लामत्तनो।
598.
अब्बूहसल्लो असितो, शांतिं पप्पुय्य सीतासो;
सब्बासोकं अतिक्कन्तो, असोको होति निब्बुतोति।
सल्लसुत्तं अठहमं निट्ठितं।

पाली-देवनागरी
8. सलदलसुत्तं
5.
अनिमित्तमञ्ञातं, मच्छदानं इध जीवितं।
कसीरञ्च परित्तनच, तञ्च दुक्खेन संयुतम्॥
5.
न हि सो त्राटक उपकमो अथि, येन जात न मियारे।
जर्मपि पत्वा मरणं, एवंधम्मा हि पाणिनो॥
5
फलानमिव पटुकानं, पतो पतनतो [पपत्तो (सी॰ पी॰ अट्ठ॰)] भयं।
एवं जतन मचदचनं, निच्चचं मरन्तो भयं॥
5.
यथापि कुंभकारस्स, कता मत्तिकभाजना।
सब्बे भेदनपरियंता [भेदपरियंता (स्या॰)], मच एवमचान जीवितं॥
5वीं वर्षगांठ।
धरा च महंता च, ये बाला ये च पण्डिता।
सब्बे मचचुवसं यन्ति, सब्बे मचचुपरायणा॥
5 प्रतिशत.
तेसं मच्छुपरेतनं, गच्छतं परलोकतो।
न पिता तायते पुत्तं, ञाति वा पण नाटके॥
5वीं सदी.
पेक्खतं येव नातिनं, पास्स लालपतं पुथु।
एकमेकोव मच्द्चानं, गोवज्ज़ो विय नियति [नियति (बहुसु)]॥
5वीं शताब्दी.
एवेम्बभाहतो लोको, मच्छचूना च जराय च।
तस्मा धीरा न सोचन्ति, विदित्वा लोकप्रियं॥
5
यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
उभो अन्ते असम्पासं, निरथं परिदेवसि॥
5.
परिदेवयमानो चे, किञ्चिदत्थं उद्ब्बहे।
सम्मूळधो हिंसमतानां, कयिरा चे नं विचखणो॥
5 प्रतिशत
न हि रुन्नेन सोकेन, सन्तिं पप्पोति चेतसो।
भय्यसुप्पजदजते दुक्खं, शरीरं चुपहञ्जति॥
5
किसो विवन्नो भवति, हिंसमत्तनमत्तना।
न तेन पेटा पलेन्ति, निरथा परिदेवना॥
5
सोकमप्पजहं जन्तु, भय्यो दुक्खं निगच्छति।
अनुत्थुनन्तो कालङ्कतं [कालकतं (सी॰ स्या॰)], सोकस्स वासमन्वगु॥
5
अञ्जेपि पास गामिने, यथाकममुपगे नरे।
मच्छचुनो वस्मागम्म, फंदन्तेविध पाणिनो॥
5
येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अञ्जन्था।
एतादिसो विनाभावो, पस्स लोकस्स परियायं॥
5.

अपि वस्सत्सं जीवे, भय्यो वा पण मानवो।
नतिसङ्घा विना होति, जहाँति इध जीवितं॥
5वां संस्करण.
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय्य परिदेवितं।
पेटं कालङ्कतं दिस्वा, नेसो लब्भा माया इति॥
5.
यथा सरणमादित्तं, वारिना परिनिब्बये [परिनिब्बुतो (सी॰ क॰)]।
एवमपि धीरो सपञ्चो, पण्डितो कुसलो नरो।
खिप्पमुप्पितं सोकं, वातो तुलव धंसये॥
5.
परिदेवं पजप्पनच, दोमनसंसदच अत्तनो।
अत्तनो सुखमेसानो, अब्बे सल्लमत्तनो॥
5.
अब्बुळहसललो असितो, सन्तिं पप्पुय्य चेतसो।
सब्बसोकं अतिरक्तकांतो, असोको होति निब्बुतोति॥
सल्ललसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 3.9 वासेत्थसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

जातिवाद और नस्लभेद के विषय में। भारद्वाज और वसेत्था नामक दो युवकों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। भारद्वाज का तर्क था कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण होता है, जबकि वसेत्था का कि कर्मों से। वे समना गौतम (बुद्ध) से पूछने के लिए सहमत हुए, और उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य अपने कर्मों से ही ब्राह्मण होता है। दोनों युवकों का धर्म परिवर्तन हो गया। (मज्झिमानिकय से)

अंतर्वस्तु
13.9 वसेत्थसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.9 वसेत्थसुत्त
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) इच्छानंगल वन में इच्छानंगल में निवास करते थे। उस समय इच्छानंगल में कई प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण रहते थे, जैसे ब्राह्मण चांकी, ब्राह्मण तारुक्खा, ब्राह्मण पोक्खरसती, ब्राह्मण जनुस्सोनी, ब्राह्मण तोडेय्या और अन्य प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण।

तब वसेत्था और भारद्वाज नामक दो युवकों के बीच टहलते हुए यह संवाद हुआ:

'ब्राह्मण कैसे बनता है?'

भारद्वाज ने कहा: 'जब कोई माता और पिता दोनों की ओर से उच्च (ब्राह्मण) वंश का हो, सातवीं पीढ़ी तक शुद्ध वंश का हो, जन्म से न तो अपवित्र हो और न ही निंदित, इस प्रकार वह ब्राह्मण होता है।'

युवक वसेत्था ने कहा, "जब कोई व्यक्ति गुणी और पवित्र कर्मों से संपन्न होता है, तो वह ब्राह्मण कहलाता है।"

न तो युवक भारद्वाज वसेत्था को समझा सका और न ही युवक वसेत्था भारद्वाज को समझा सका। तब वसेत्था नाम के युवक ने भारद्वाज नाम के युवक से कहा, "हे भारद्वाज, शाक्य वंश के इस समना गौतम (बुद्ध) ने इच्छनांगल वन में निवास किया है। आदरणीय गौतम (बुद्ध) का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा, "यह भगवान बुद्ध हैं, जो आदरणीय, प्रबुद्ध और महिमामय हैं। हे आदरणीय भारद्वाज, आइए हम समना गौतम (बुद्ध) के पास चलें और वहाँ जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। समना गौतम (बुद्ध) के उत्तर से ही हम समझ जाएँगे।" "

अच्छी बात है, हे आदरणीय," भारद्वाज नाम के युवक ने वसेत्था को उत्तर दिया। फिर वसेत्थ और भारद्वाज नाम के दो युवक भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे सुखद वार्तालाप किया। कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद वे अलग बैठ गए। अलग बैठकर वसेत्थ ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हम तीनों वेदों के सर्वमान्य और मान्यता प्राप्त गुरु हैं, मैं पोक्खरसती का शिष्य हूँ और यह युवक तारुक्खा का शिष्य है। (599)

2. 'हम तीनों वेदों के ज्ञाताओं से परिपूर्ण हैं, हम पदक (छंदों में पारंगत), व्याकरणविद् और अपने गुरुओं के समान पाठ करने में निपुण हैं। (600)

3. 'हे गौतम बुद्ध, जाति भेद को लेकर हमारा एक विवाद है!' भारद्वाज कहते हैं, एक व्यक्ति जन्म (जाति) से ब्राह्मण है, और मैं कहता हूँ, कर्मों से; हे प्रत्यक्षदर्शी, इसे जान लो! (601)

4. 'हम दोनों एक दूसरे को समझाने में असमर्थ हैं, (इसलिए) हम आपसे पूछने आए हैं (जो) पूर्णतः प्रबुद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं। (602)

5. 'जैसे पूर्णिमा के चंद्रमा की आराधना करने वाले लोग हाथ जोड़कर उसकी पूजा करते हैं, वैसे ही संसार में गौतम (बुद्ध) की पूजा की जाती है। (603)

6. 'हम गौतम (बुद्ध) से, जो संसार को देखने वाली सर्वदृष्टि रखते हैं, पूछते हैं: क्या मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है, या कर्मों से? हमें, जो नहीं जानते, बताइए, ताकि हम ब्राह्मण को जान सकें।' (604)

7. 'हे वसेत्था, मैं तुम्हें उचित क्रम में जीवों के प्रजाति-वार सटीक भेद समझाऊंगा, क्योंकि उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं।' (605)

8. 'जान लो, घास और वृक्ष, यद्यपि वे इसे प्रदर्शित नहीं करते, फिर भी प्रजाति-कारक लक्षण उनमें मौजूद हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं।' (606)

9. 'तो (जान लो कि) कीड़े, पतंगे और विभिन्न प्रकार की चींटियाँ, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (607)

10. 'चार पैरों वाले (जानवरों), छोटे और बड़े, उनके लिए भी प्रजाति निर्धारण के चिह्न हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (608)

11. 'साँपों, लंबी पीठ वाले साँपों को भी जान लो, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (609)

12. 'फिर पानी में तैरने वाली मछलियों को भी जान लो, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (610)

13. 'तो तुम उन पक्षियों को भी जान लो जो पंखों पर उड़ते हुए हवा में विचरण करते हैं, उनमें प्रजाति निर्धारण के चिह्न होते हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। (611)

14. 'जैसे इन प्रजातियों में प्रजाति निर्धारण के चिह्न प्रचुर मात्रा में होते हैं, वैसे ही मनुष्यों में प्रजाति निर्धारण के चिह्न प्रचुर मात्रा में नहीं होते। (612)

15. 'उनके बाल, सिर, कान, आँखें, मुँह, नाक, होंठ या भौंहों के संबंध में नहीं, (613)

16. 'न ही उनकी गर्दन, कंधे, पेट, पीठ, कूल्हे, स्तन, स्त्री अंग, यौन संबंध के संबंध में, (614)

17. 'न ही उनके हाथ, पैर, हथेलियाँ, नाखून, पिंडली, जांघें, रंग या आवाज के संबंध में अन्य प्रजातियों की तरह प्रजाति निर्धारण के चिह्न होते हैं। (615)

18. 'शरीरधारी प्राणियों में अंतर होता है, परन्तु मनुष्यों में ऐसा नहीं होता; मनुष्यों में अंतर केवल नाममात्र का होता है।' (616)

19. 'हे वसेत्थ, जो कोई गौपालन करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह किसान है, ब्राह्मण नहीं।' (617)

20. 'और हे वसेत्थ, जो कोई विभिन्न यांत्रिक कलाओं से जीवन यापन करता है, जान लो कि वह कारीगर है, ब्राह्मण नहीं।' (618)

21. 'हे वसेत्थ, जो कोई व्यापार करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह व्यापारी है, ब्राह्मण नहीं।' (619)

22. 'हे वसेत्थ, जो कोई दूसरों की सेवा करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह सेवक है, ब्राह्मण नहीं।' (620)

23. 'और मनुष्यों में से जो कोई चोरी करके जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह चोर है, ब्राह्मण नहीं। (621)

24. और जो कोई मनुष्य धनुर्विद्या से जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह सैनिक है, ब्राह्मण नहीं। (622)

25. और जो कोई मनुष्य गृहस्थी अनुष्ठान करके जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह यज्ञकर्ता है, ब्राह्मण नहीं। (623)

26. और जो कोई मनुष्य गाँव और देश का स्वामी है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह राजा है, ब्राह्मण नहीं। (624)

27. और मैं किसी को उसके जन्म या किसी विशेष माता से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; वह भोवादी कहला सकता है, और वह धनी हो सकता है, (परन्तु) जो कुछ भी नहीं रखता और कुछ भी नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (625)

28. जो कोई भी सभी बंधनों को तोड़कर विचलित नहीं होता, सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (626)

29. जो व्यक्ति शत्रुता, आसक्ति और संशय सहित सभी बाधाओं को नष्ट करके बुद्ध बन जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (627) 30.

जो कोई भी निर्दोष रहते हुए निंदा, मार और बंधनों को सहता है, जो अपनी सहनशक्ति में बलवान है और इस शक्ति को अपनी सेना मानता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (628)

31. जो व्यक्ति क्रोध से मुक्त है, पवित्र कर्मों से संपन्न है, गुणी है, इच्छा रहित है, वश में है और अंतिम शरीर धारण किए हुए है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (629)

32. जो व्यक्ति कमल के पत्ते पर जल की तरह या सुई की नोक पर सरसों के दाने की तरह इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (630)

33. जो व्यक्ति इस संसार में अपने दुखों के नाश को जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है और मुक्त हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (631)

34. जो व्यक्ति गहन ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) रखता है, जो बुद्धिमान है, जो सही और गलत मार्ग को जानता है, जिसने सर्वोच्च सुख प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (632)

35. जो व्यक्ति गृहस्थों और बेघरों के साथ मेलजोल नहीं रखता, जो बिना घर के घूमता है और जिसकी आवश्यकताएँ कम हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (633)

36. जो कोई भी कांपते और बलवान प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने से परहेज करते हुए, न तो हत्या करता है और न ही हत्या का कारण बनता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (634)

37. जो शत्रुओं के बीच शत्रुता नहीं करता, जो हिंसकों के बीच शांतिप्रिय रहता है, जो सब कुछ छीनने वालों के बीच किसी भी चीज को नहीं छीनता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (635)

38. जिस व्यक्ति का राग, द्वेष, दोष, अहंकार और पाखंड सुई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (636)

39. जो व्यक्ति सत्य, शिक्षाप्रद और कठोर शब्दों से रहित वाणी बोलता है, जिससे वह किसी को ठेस नहीं पहुँचाता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (637)

40. संसार में जो कोई भी वह वस्तु नहीं लेता जो उसे दी नहीं गई हो, चाहे वह लंबी हो या छोटी, छोटी हो या बड़ी, अच्छी हो या बुरी, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (638)

41. जो व्यक्ति इस लोक या परलोक की इच्छा नहीं रखता, जो इच्छाहीन और मुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (639)

42. जो व्यक्ति इच्छाहीन है, जो जानबूझकर संदेह से मुक्त है; और जिसने अमरता की गहराई प्राप्त कर ली है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (640)

43. इस संसार में जिसने भी अच्छे और बुरे, दोनों बंधनों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो दुःख और अपवित्रता से मुक्त है, और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (641)

44. जो व्यक्ति चंद्रमा के समान निर्मल है, शुद्ध, शांत और अविचलित है, जिसने आनंद का नाश कर दिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (642)

45. 'जो कोई भी इस कठिन दलदल को पार कर चुका है, (जो) पुनर्जन्मों (संसार) और मूर्खता के संसार चक्र को पार कर चुका है, जो पार कर चुका है, जो दूसरे तट पर पहुँच चुका है, जो ध्यानमग्न है, इच्छा और संदेह से मुक्त है, बिना किसी चीज को पकड़े शांत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (643)

46. 'जो कोई भी इस संसार में, इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घरविहीन घूमता है, और इंद्रिय सुखों के अस्तित्व (कामभाव) को नष्ट कर देता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (644)

47. 'जो कोई भी इस संसार में, इच्छा का त्याग करके, घरविहीन घूमता है, और इच्छा के अस्तित्व (तन्हाभाव) को नष्ट कर देता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (645) 48. '

जो कोई भी मानवीय आसक्ति (योग) को छोड़कर, दिव्य आसक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है, और सभी आसक्ति से मुक्त हो जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (646)

49. 'जो व्यक्ति सुख और विरह को त्यागकर शांत और अस्तित्व के तत्वों से मुक्त (निरुपाधि) हो, जो महान हो और समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर चुका हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (647)

50. 'जो व्यक्ति प्राणियों के लुप्त होने और पुनरागमन को पूर्णतः जानता हो, किसी भी चीज़ से आसक्त न हो; सुखी (सुगत) और प्रबुद्ध हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (648) 51. '

जिस व्यक्ति का मार्ग न तो देवता, न गंधर्व, न मनुष्य जानते हों, और जिसकी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हों, जो संत हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (649)

52. 'जिस व्यक्ति के लिए न आगे, न पीछे, न मध्य में कुछ है, जो कुछ भी धारण नहीं करता और किसी भी चीज़ को नहीं पकड़ता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (650)

53. 'जो पुरुष बैल के समान निर्भीक हो, जो प्रख्यात हो, महान हो, महान ऋषि (महेसी) हो, विजयी हो, इच्छा से मुक्त हो, शुद्ध हो, प्रबुद्ध हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (651)

54. 'जो पुरुष अपने पूर्व जन्मों को जानता हो, जो स्वर्ग और नरक दोनों को देखता हो, और जन्म-जन्म के नाश को प्राप्त कर चुका हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (652)

55. 'क्योंकि संसार में जिसे "नाम" और "वंश" कहा गया है, वह केवल एक शब्द है; जिसे यहाँ-वहाँ कहा गया है, वह आम सहमति से समझा जाता है। (653)

56. 'अज्ञानियों के विचार लंबे समय से चले आ रहे हैं।अज्ञानी लोग हमें बताते हैं कि व्यक्ति जन्म (जाति) से ब्राह्मण होता है। (654)

57. 'जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता, न ही जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता; कर्मों से ही कोई ब्राह्मण होता है, कर्मों से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता। (655)

58. 'कर्म से ही कोई किसान बनता है, कर्म से ही कोई कारीगर बनता है, कर्म से ही कोई व्यापारी बनता है, कर्म से ही कोई सेवक बनता है। (656)

59. 'कर्म से ही कोई चोर बनता है, कर्म से ही कोई सैनिक बनता है, कर्म से ही कोई यज्ञकर्ता बनता है, कर्म से ही कोई राजा बनता है। (657)

60. 'इस प्रकार ज्ञानी, जो चीजों के कारण को देखते हैं और कर्म के परिणाम को समझते हैं, वे इस कर्म को उसके वास्तविक स्वरूप में जानते हैं। (658)

61. 'कर्म से ही संसार का अस्तित्व है, कर्म से ही मनुष्य जाति का अस्तित्व है, प्राणी कर्म से उसी प्रकार बंधे हैं जैसे गाड़ी का मुख्य कांटा पहिए को घुमाता रहता है।' (659)

62. 'ध्यान (तपस्या), पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, आत्मसंयम और संयम द्वारा, एक ब्राह्मण होता है, ऐसा व्यक्ति (वे कहते हैं) सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण। (660)

63. 'जो त्रिविध ज्ञान से संपन्न है, शांत है और पुनर्जन्म को नष्ट कर चुका है, हे वसेत्थ, यह जान लो, वह बुद्धिमान ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) और सक्का (देवताओं के राजा) का प्रिय है।' (661)

यह कहकर, युवक वसेत्थ और भारद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) से इस प्रकार कहा:

'यह उत्कृष्ट है, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! यह उत्कृष्ट है, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)!' जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; हम पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेते हैं; पूज्य गौतम (बुद्ध) हमें अपने अनुयायी (उपासक) के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए उनकी शरण ली है।'

वसेत्थसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

9. Vāseṭṭhasuttaṃ

एवं मे सुतम् - एकं समयं भगव इच्छानंगले विहारति इच्छानंगलवनसंडे। तेन खो पना समयेन सम्भुला अभिनाता अभिनाता ब्राह्मणमहाशाला इच्छानंगले पतिवासन्ति, सेयथिदं - चंकि ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसति ब्राह्मणो, जानुसोनि [जानुसोनि (का.)] ब्राह्मणो, तोडेय्यो ब्राह्मणो, अन्ये च अभिन्नता अभिनाता ब्राह्मणमहाशाला। अथ खो वासेठभारद्वाजनां मनावनं जघविहारं अनुचंकमंतानां अनुविक्रमणं। पी.)] अयमन्तरकथा उदापादि - "कथं, भो, ब्राह्मणो होति"ति?

भारद्वाजो मनावो एवमहा - "यतो खो, भो, उभतो सुजातो होति मतितो च पितितो च संशुद्धगहानिको याव सत्तम पितामहयुग अक्खित्टो अनुपक्कुठो जातिवादेन, एतत्वता खो भो ब्राह्मणो होति'ति।

वासेठो मनावो एवमाहा - "यतो खो, भो, सिलावा च होति वत्सम्पन्नो [वत्सम्पन्नो (सि. स्या. मा. नि. 2.454)] च, एततावता खो, भो, ब्राह्मणो होति"ति। नेवा खो असक्खि भारद्वाजो मनवो वसेट्ठं मनावं सन्नापेटुं, न पना असक्खी वसेठो मनावो भारद्वाजं मनावं सन्नापेटुम्. अथ खो वासेठो मनवो भारद्वाजं मनवं अमांतेसि - " अयं खो, भो [अयं भो (सि. स्या. का.), अयं खो (पि.)] भारद्वाज, समणो गोतमो शाक्यपुत्तो शाक्यकुला पब्बजीतो इच्छानंगले विहारति इच्छानंगलवनसंडे; तं खो पण भवंतं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि...पे...बुद्धो भगवति। अयामा, भो भारद्वाज, येन समानो गोतमो तेनुपसांकमिस्सामा; उपसंकमित्वा समानं गोतमं एतमत्थं पुच्चिस्सम्। यथा नो समणो गोतमो ब्याकारिस्सति तथा नं धरेस्सामति। "एवं, भो'ति खो भारद्वाजो मनावो वसेट्ठस्सा मनावस्सा पकासोसि।'

अथ खो वासेठभारद्वाज मानवा येन भगव तेनुपससंकमिंसु; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसिदिंसु। एकमंतं निसिन्नो खो वासेठो मनावो भगवन्तं गाथाहि अज्जभासि -

599.
"अनुन्नतापटिन्नाता, तेविज्जा मायामस्मुभो;
अहं पोक्खरासतिस्सा, तारुक्खस्सायं मनावो।

600.
"तेविज्जनं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे;
पादकास्मा वेय्यकरण, जप्पे आचार्यसादिसा।

601.
"तेसं नो जातिवादस्मि, विवाडो अत्थि गोतम;
जातिय ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति;
अहंका कम्मुना [कम्मना (सी. पी.) इवमुपरिपि] ब्रुमि, एवं जनाहि चक्खुमा।

602.
"ते न सक्कोमा सन्नापेटुं, अण्णामन्नं मयां उभो;
भवंतं [भगवंतं (का.)] पुथुमागम्हा, संबुद्धं इति विस्सुतां।

603.
"चंदं यथा खयतितं, पेक्का पंजालिका जना;
वंदमाना नमसन्ति, एवम् लोकस्मि गोतमम्।

604.
"चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्चम गोतमं;
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मुना;
अजानतं न पब्रुहि, यथा जनेसु ब्राह्मणम्।'

605.
"तेसं वो अहं बयक्खिस्सं, (वसेट्ठति भगव) अनुपुब्बं यथातथाम्;
जातिविभंगं पणनां, अनामन्ना हि जातियो।

606.
"तिनारुक्खेपि जानथ, न कपि पतिजानारे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।

607.
"ततो किते पतंगे च, याव कुंथकिपिल्लिके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।

608.

"चतुप्पदेपि जानथ, खुद्दके च महल्लके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
609.
"पादुदारेपि जानथ, उरगे दीघपीठिके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
610.
"ततो मच्छेपि जानथ, ओडके वेरिगोकेरे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
611.
"ततो पक्खीपि जानथ, पत्तयाने विहंगमे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
612.
"यथा एतासु जातिसु, लिंगं जातिमयं पुथु;
एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिंगं जातिमयं पुथु।
613.
"न केसेहि न सीसेना, न कानेहि न अक्खिभि;
न मुखेन न नासाय, न ओत्थेहि भमुहि वा।
614.
"न गिवय न अणसेहि, न उदारेण न पिठिया;
न सोणिया न उरसा, न सम्बद्ध न मेथुने [न सम्बद्ध न मेथुना (स्या. का.)]।
615.
"न हत्थेहि न पदेहि, नांगुलीहि नखेहि वा;
न जंघहि न उरुहि, न वनेण सरेण वा;
लिंगं जातिमयं नेव, यथा अनानासु जातिसु।
616.
"पक्कट्टां साररिसु [पक्कट्टं ससाररिसु (सि. पि.)], मनुस्सेस्वेतां न विज्जति;
वोकरनचा मनुस्सेसु, समानन्या पावुक्कति।
617.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो।
618.
"यो हि कोसि मानुस्सेसु, पुथुसिप्पेना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो।
619.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, वाणीजो सो न ब्राह्मणो।
620.
"यो हि कोसि मानुस्सेसु, पैरापेसेना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, पेसिको [पेसको (का.)] सो न ब्राह्मणो।
621.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, कोरो एसो न ब्राह्मणो।
622.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो।
623.
"यो हि कोसि मानुस्सु, पोरोहिस्केना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, याजको एसो न ब्राह्मणो।

624.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गमं रथान्च भुञ्जति;
एवं वसेठ जनाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो।
625.
"न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मतिसंभवं;
भोवादी नाम सो होति, सासे [सा वे (सि. स्या.)] होति साकिंकानो;
अकिंचनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
626.
"सब्बासंयोजनं चेत्वा, सो वे न परितासस्ति;
संगतिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
627.
"चेत्वा नद्धिं वर्त्तञ्च, संदानं सहनुक्कमम्;
उक्खित्तपालिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
628.
"अक्कोसं वधबन्धञ्च, अदुत्थो यो तितिक्खति;
खांतिबलं बालनिकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
629.
"अक्कोधनं वातवन्तं, सिलवन्तं अनुस्सदं;
दन्तं अन्तिमशरीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
630.
"वारी पोक्खरापत्तेव, अरगेरिवा ससापो;
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
631.
"यो दुक्खस्सा पजानाति, इधेव खयमत्तनो;
पन्नभरं विषयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
632.
"गम्भीरपन्नं मेधाविं, मग्गमग्गस्स कोविदं;
उत्तमत्तमनुप्पट्टं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
633.
"असंसठहं गहथेहि, अनागारेहि कुभयं;
अनोकसारीमपिच्चं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
634.
"Nidhāya daṇḍaṃ bhūtesu, tasesu thāvaresu ca;
यो न हन्ति न घटेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
635.
"अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तादंडेसु निब्बुतं;
सदानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
636.
"यस्सा रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पतितो;
ससापोरिव अरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
637.
"अक्ककसं विनापाणि, गिरं सच्चमुदिरये;
याया नाभिसजे कांची, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
638.
"योधा दीघं वा रस्सं वा, अनुं थूलं सुभासुभं;
लोके अदिन्नं नादियाति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
639.
"आसा यस्सा न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परमहि च;

निरसासं [निरासयं (सि. स्या. पि.), निरासाकं (?)] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
640.
"यस्सालय न विज्जन्ति, अनन्याय अकथाकथि;
अमतोगधामनुप्पट्टं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
641.
"योधा पुनान्च पापञ्च, उभो संगमुपच्चगा;
अशोकं विराजं शुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
642.
" चंदव विमलं शुद्धं, विप्पसन्नमनविलं;
नन्दीभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
643.
"योमं पालिपथं दुग्गं, संसारं मोहमक्कगा;
तिणो पारंगतो झायि, अनेजो अकथानकथि;
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
644.
"योधा कामे पहंत्वाण, अनागारो परिब्बाजे;
कामभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
645.
"योधा तंहं पहंत्वाण, अनागारो परिब्बाजे;
तन्हाभावपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
646.
"हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपचगा;
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
647.
"हित्वा रतिञ्च अरतिं, सतीभूतं निरूपधिं;
सब्बलोकाभिभूं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
648.
"क्यूतिं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अष्टकथासावन पासितब्बा] ततनं, उपपत्तिनका सब्बासो;
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
649.
"यस्सा गतिं न जानन्ति, देवा गंधब्बमनुसा;
खिन्नसवं अरहंतां, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
650.
"यस्सा शुद्ध च पच्च च, मज्झे च नत्थि किंचनं;
अकिंचनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
651.
"उषभं पवरं वीरं, महेसिं विजितविनं;
अनेजां नहतकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
652.
"पुब्बेनिवासं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अष्टकथासंवना पासितब्बा], सग्गापायंका पाससति;
अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
653.
"समन्ना हेसा लोकस्मि, नमगोट्टं पकप्पितं;
सम्मुच्च समुदगतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं।
654.
"दीघ्रत्तमनुसायितं, दिथिगतमजनातं;
अजनंता नहीं [अजंनता ते (अथ.) मा. नि. 2.460] पब्रुवन्ति, जाति होति ब्राह्मणो।
655.

"न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो;
कम्मुना ब्राह्मणो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।
656.
"कस्सको कम्मुना होति, सिप्पिको होति कम्मुना;
वनिजो कम्मुना होति, पेसिको होति कम्मुना।
657.
"कोरोपि कम्मुना होति, योधाजीवोपि कम्मुना;
याजको कम्मुना होति, राजपि होति कम्मुना।
658.
"एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पासन्ति पंडिता;
पाटिकसमुप्पादस्सा, कम्मविपाककोविदा।
659.
" कम्मुना वट्टति लोको, कम्मुना वट्टति पजा;
कम्मनिबंधना सत्ता, रथस्सनिव ययातो।
660.
"तपेण ब्रह्मचर्येण, संयमेन दमेण च;
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमम्।
661.
"तिहि विज्जहि सम्पन्नो, सन्तो खिन्नपुनाभवो;
एवं वसेट्ठ जनाहि, ब्रह्मा सको विजानता'न्ति।
एवं वुट्टे, वसेठभारद्वाज मनव भगवन्तं एतदावोकुम् - "अभिकांतं, भो गोतम...पे... उपासके नो भावं गोतमो धरेतु अजतग्गे पाणुपेटे" [पाणुपेतम् (का.)] शरणं गते'ति।
वसेत्थसुत्तं नवमं निहितं।

पाली-देवनागरी
9. वासेट्ठसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवंसंदे। तेन खो पन समयेन सम्भुला अभिज्ञाता अभिज्ञाता ब्राह्मणमहाशाला इच्छानङ्गले पित्वासन्ति, सेयथिदं - चङकी ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोखरसति ब्राह्मणो, जानुसोनि [जानूसोनि (क०)] ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्जनजे च अभिनन्दना अभिज्ञाता ब्राह्मणमहाशाला। अथ खो वासेट्ठभारद्वाजं मन्वानं जङ्घविहारं अनुचङकमन्तानां अनुविचरण्तानं [अनुचङकममानानां अनुविचरमानणं (सी० पी०)] अयमंत्रकथा उद्पादि - "कथं, भो, ब्राह्मणो होता"ति?
ऋद्धो मानवो एवमः - "यतो खो, भो, उभतो सुजातो होती मतितो च पितितो च संसुद्धघहनिको याव सत्तमा पितामहयुगा अखित्टो अनुपक्राकुत्थो जातिवादेन, एत्तावता खो भो ब्राह्मणो'"ति।
वासेट्ठो मन्वो एवमाः - "यतो खो, भो, सीलवा च होति वत्सम्प संज्ञाओ [वत्ससम्प संज्ञाओ (सी० स्या० म० नि० 2.454)] च,त्ता एवता खो, भो, ब्राह्मणो होता है"ति। नेव खो असक्खि भारद्वाजो मन्वो वासेट्ठं मानवं सञ्जापेतुं, न पन असक्खि वासेट्ठो मानवो मानवो वासेट्ठं मानवं सञ्जापेतुं।
अथ खो वासेट्ठो मान वो ऋद्धं मानवं अम्नतेसि — "अयं खो, भो [अयं भो (सी० स्या० क०), अयं खो (पि०)] अथ खो वासेत्थो मां, सखापुत्तो साक्यकुला पब्जितो इच्छानङ्गले विहरति इच्छाङगलवनसंदे; तं खो पन भवन्तं गोतमं कल्याण एववो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि...पे०...बुद्धो भगव'ति। आयाम, भो भार्घ, येन समानो गोतमो तेनुपसङकमिश्स्साम; उपसङ्कमित्वा समानं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्सम्। यथा नो समानो गोतमो ब्याकरिस्सित तथा नं धारेस्सामा"ति। "एवं, भो"ति खो भारद्वाजो मन्वो वासेट्ठस्स मानवस्स पचदचसोसि।
अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा मनवा येन भगवान तेनुपसङकमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदिन्सु। एकमन्तं निसि सत्यो खो वासेत्थो मानवो भगवन्तंहि गाथाअजभासि -
5.
"अनुञ्जनात्पतिञ्जनता, तेविज्जा मयमसमुभो।
अहं पोखरासतिस्स, तारुक्खास्सायं मानवो॥

.

"तेविज्जनं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे।
मेडलस्म वैय्याकरण, जप्पे आचरीसादिसा॥
600.
"तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अथि गोतम।
जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति।
अहंदच कम्मुना [कम्मना (सी० पी०) एवमुपरिपि] ब्रूमि, जनहि चखुम॥
2002.
"ते न सचित्रकोम संज्ञपेतुं, अञ्जनमञ्चं मयं उभो।
भवन्तं [भगवंतं (क०)] पुत्थुमागम्हा, संबुद्धं इति विस्सुतं॥
.
"चंदं यथा ख्यातितं, पेचदच पञ्जलिका जना।
वन्दमाना नमस्संन्ति, एवं लोकस्मि गोतमं॥
6.
"चक्खुं लोके समुप्प गायनं, मयं पुच्छम गोतमं।
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मुना।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेसु ब्राह्मणं॥
66.
"तेसं वो अहं बक्खिससं, (वसेट्ठति भगवान) अनुपुब्बं यथात्थं।
जातिविभङ्गं पनानं, अञ्जमञ्चा हि जातियो॥
.
" तिनरुक्खेपि जानथ, न चापि पतिजनारे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"ततो कीते पतंगे च, याव कुंठकिपिल्लिके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"चटुप्पदेपि जानथ, कुद्दके च महल दलके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"पादुदरेपि जानथ, उर्गे दीघपिट्ठिके।"
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"ततो मच्छेपि जानथ, ओडके वारिगोचरे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
11.
"ततो पक्खीपि जानथ, पत्तयाने विहङ्गमे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
11.
"यथा एतासु जातिसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु।
एव नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु॥
.
"न केसेहि न सीसेन, न कन्नेहि न अखिभि।
न मुखेन न नासाय, न ओट्ठेहि भमुहि वा॥
6.
"न गिवै न अनसेहि, न उड्रेण न पिट्ठिया।"
न सोणिया न उर्सा, न सम्बद्ध न मेथुने [न सम्बद्ध न मेथुना (स्या० क०)]॥
65.
"न हत्थेहि न पादेही, नङ्गुलिहि नखेहि वा।

न जङ्घहि न उरूहि, न वन्नेन सरेन वा।
लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्जनसु जातिसु॥

.
"पच्चत्तनदच सरिरेसु [पचदचत्तं सरिरेसु (सी० पी०)], मनुस्सेस्वेतं न विज्दजति।
वोकारञ्च मनुस्सेसु, समञ्चया पवुच्चति॥
611.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरखं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो॥
611.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथुसिप्पेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो॥
1.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणीजो सो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेप्पसेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सिको [पेस्सको (क०)] सो न ब्राह्मणो॥
12.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, आदि नारायणं उपजीवति।"
एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो॥
. 2010.
"यो हि कोच्चि मनुस्सेसु, इसत्थं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको एसो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गमं रत्थञ्च भुञ्जति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो॥
652.
न इच्छां ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसंभवं।
भोवादी नाम सो होति, सचे [स वे (सी० स्या०)] होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"सब्बसंयोजनं चेत्वा, सो वे न परित्स्स्ति।"
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"चेत्वा नद्धिं वर्त्तञ्च, सन्दानं सहनुत्रकमं।
उक्खित्तपालिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"अत्रकोसं वधबंधनच, अदुत्थो यो तितिखति।
खांतिबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"अत्रकोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
30.
"वारी पोखरपत्तेव, अर्गेरिव सस्पो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

631.
"यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
प सत्याभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
6 छु.
"गंभीरपञ्चं मेधाविं, मग्गमग्गस्स कोकिडं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"असंसत्थं गहत्थेहि, अनागारेहि दुभयं।
अणोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
634.
"निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घटेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सदानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"य्स्स रागो च दोसो च, मनो मक्खो च पतितो।
सस्पोरिव अरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"अक त्राटकसं विज्ञपनिं, गिरं सचचमुदिरये।
याय नाभिसजे काञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
66.
"योध दीघं व रस्सं वा, अत्यां तूलं शुभाशुभं।
लोके आदि सनातनं नादयति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"आसा यस न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परमहि च।
निरासासं [निरासयं (सी० स्या० पी०), निरासकं (?)] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
40.
"यस्सालय न विज्जन्ति, अञ्जनया अकथंकथि।"
अमतोघमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
6
"योध पुञ्जनदच पपञ्च, उभो सङ्गमुपचचगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"चंदव विक्रमं सुद्धं, विप्पस नारायणमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"योमं पालिपथं दुग्गं, संसारं मोहमचदचगा।
तिन्नो पारङ्गतो झायि, अनेजो अकथंकथि।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
644.
"योद्ध कामे वस्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
644.
"योध तंहं वल्त्त्वान, अनागारो परिब्बजे।"
तन्हाभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"हित्वा मनुस्कं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा।"

सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"हित्वा रतिञ्च आरतीं, सीटिभूतं निरूपधिं।
सब्ब्लोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"चूतिं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अट्ठकथासंवन्ना पसिटतब्बा] तातानं, उपपत्तिनदच सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गंधब्बमनुसा।
खिनास्वं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"यस्स पूरे च पच्च च, मज्जे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"उषाभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं हंतकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"पुब्बेनिवासन यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अट्ठकथासंवन्ना पसिटतब्बा], सग्गापयञ्च पसस्ति।
अथो जातीयखयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"संज्ञा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पक्प्पितं।
सम्मुच्चचा समुदगतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं॥
44.
" दीघर्तत्तमनुसायितं, दिट्ठिगतमजानतं।
अजानंता नो [अजानंता ते (अट्ठ्०) मा० नि० 2.604] पब्रुवन्ति, जातिया होती ब्राह्मणो॥
65.
न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा ब्राह्मणो होति।
कम्मुना ब्राह्मणो होति, कम्मुना होति अब्राह्मणो॥

.
"कस्सको कम्मुना होति, सिप्पिको होति कम्मुना।
वाणीजो कम्मुना होति, पेस्सिको होति कम्मुना॥

.
"चोरोपि कम्मुना होति, योधाजीवोपि कम्मुना।
याजको कम्मुना होति, राजापि होति कम्मुना॥
666.
"एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पसंन्ति पण्डिता।
पतीचदचसमुप्पाददस्सा, कम्मविपाककोविडा॥
50.
" कम्मुना वट्टति लोको, कम्मुना वट्टति पजा।
कम्मनिबंधना सत्य, रथस्सणिव यायतो॥
66.
"तपेण ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेण च।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं॥

.
" तेहि विजजाहि संप नारायणो, सन्तो खिनपुनबभवो।"
एवं वासेत्थ जानाहि, ब्रह्मा सद्दशको विजानत"न्ति॥
एवं वुत्ते, वासेट्ठभारद्वाजा मनवा भगवन्तं एतदवोचुं - "अभि निषेधं, भो गोतम...पे०... उपासके नो भवन गोतमो धारेतु अजदतग्गे पाणुपेते [पाणुपेतं (क०)] शरणं गते"ति।

वासेट्ठसुत्तं नवमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.10 कोकालिकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

कोकालिका बुद्ध के समक्ष सारिपुत्त और मोग्गलाना की निंदा करता है; इसलिए बुद्ध से विदा होते ही उसे फोड़े हो जाते हैं, उसकी मृत्यु हो जाती है और वह पद्मा नरक में चला जाता है, जिसके बाद बुद्ध भिक्षुओं को नरक में चुगली करने वालों के दंड के बारे में बताते हैं।

अंतर्वस्तु

13.10 कोकलिकासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.10 कोकलिकासुट्टा

अनुवाद

मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भिक्षु कोकालिका भगवान (भगवान बुद्ध) के पास आए, और प्रणाम करने के बाद वे अलग बैठ गए; अलग बैठकर भिक्षु कोकालिका ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: "हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, वे बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।"

यह सुनकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से इस प्रकार कहा: "ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के विषय में अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।" दूसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य भगवान बुद्ध, यद्यपि आप मुझे निष्ठावान और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं, फिर भी सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, वे बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।' दूसरी बार भगवान बुद्ध ने

भिक्षु कोकालिका से कहा: 'ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।'

तीसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य भगवान बुद्ध, यद्यपि आप मुझे निष्ठावान और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं, फिर भी सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, सारिपुत्त और मोग्गलाना बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।' तीसरी

बार भगवान बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका से कहा: 'ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।'

फिर भिक्षु कोकालिका अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए चले गए; और उनके जाने के कुछ ही समय बाद, उनके पूरे शरीर पर सरसों के दाने जितने बड़े फोड़े निकल आए; पहले वे सरसों के दाने जितने बड़े थे, फिर राजमा जितने बड़े हो गए; फिर वे चने जितने बड़े हो गए; फिर वे कोलात्थी के अंडे जितने बड़े हो गए (?); फिर वे कोलात्थी के अंडे जितने बड़े हो गए, फिर वे बेर जितने बड़े हो गए; फिर वे आंवला के फल जितने बड़े हो गए; फिर वे कच्चे बेलुवा के फल जितने बड़े हो गए; फिर वे बिल्ली के फल जितने बड़े हो गए। बिल्ली फल के आकार के बराबर बड़े होने के बाद, वे टूट गए और उनमें से मवाद और रक्त बह निकला। तब भिक्षु कोकालिका उस रोग से मर गए, और मरने के बाद वे सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए पद्मा नरक में चले गए। फिर जब रात्रि बीत गई, तो सुंदर रूप वाले महादूत ब्रह्मा सहमपति ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, और भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद वे एकांत में खड़े हो गए, और एकांत में खड़े होकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध से यह कहा: 'हे प्रभु, भिक्षु कोकालिका मर गए हैं और मृत्यु के बाद, हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए भिक्षु कोकालिका पद्मा नरक में चले गए हैं।'

यह कहकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

उस रात्रि के अंत में भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, कल रात जब रात लगभग बीत चुकी थी, तब सुंदर रूप वाले ब्रह्मा सहमपति ने सारे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध से कहा: "हे प्रभु, भिक्षु कोकालिका की मृत्यु हो गई है; और मृत्यु के बाद, हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव रखने वाले भिक्षु कोकालिका पद्म नरक में चले गए हैं।" यह कहकर ब्रह्मा सहमपति ने कहा, "हे भिक्षुओं," और मुझे प्रणाम करके, मेरे चारों ओर दाहिनी ओर चलकर वे वहाँ अंतर्धान हो गए।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से पूछा, "हे प्रभु, पद्म नरक में जीवन कितना लंबा है?" "

हे भिक्षु, पद्म नरक में जीवन बहुत लंबा है।"इतने वर्षों, इतने सौ वर्षों, इतने हजार वर्षों या इतने लाख वर्षों की गणना करना आसान नहीं है।

'परन्तु, हे प्रभु, क्या तुलना करना संभव है?'

'हाँ, संभव है, हे भिक्षु'; ऐसा कहकर भगवान बुद्ध ने (इस प्रकार) कहा:

'हे भिक्षु, यदि बीस खरी तिल से भरा एक कोसल भार हो, और कोई व्यक्ति सौ वर्ष बाद उसमें से एक-एक तिल निकालकर खाए, तो हे भिक्षु, इस प्रकार से बीस खरी तिल से भरा वह कोसल भार एक अब्बुद नरक से भी जल्दी समाप्त हो जाएगा; और हे भिक्षु, जैसे बीस अब्बुद नरक हैं, वैसे ही एक निरब्बुद नरक है; और हे भिक्षु, जैसे बीस निरब्बुद नरक हैं, वैसे ही एक अब्बाह नरक है; और हे भिक्षु, जैसे बीस अब्बाह नरक हैं, वैसे ही एक अहाह नरक है;' हे भिक्षु, जैसे बीस अहहा नरक हैं, वैसे ही एक अतता नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस अतता नरक हैं, वैसे ही एक कुमुद नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस कुमुद नरक हैं, वैसे ही एक सोगंधिका नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस सोगंधिका नरक हैं, वैसे ही एक उप्पलाक नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस उप्पलाक नरक हैं, वैसे ही एक पुंडरीका नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस पुंडरीका नरक हैं, वैसे ही एक पद्म नरक है; और हे भिक्षु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए भिक्षु कोकालिक पद्म नरक में चले गए हैं। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और यह कहने के बाद सुगत गुरु ने आगे इस प्रकार कहा:

1. 'प्रत्येक मनुष्य के जन्म के साथ उसके मुँह में कुल्हाड़ी जन्म लेती है, जिससे मूर्ख व्यक्ति अपशब्द बोलने पर स्वयं को ही काट लेता है। (662)

2. 'जो व्यक्ति निंदनीय की प्रशंसा करता है या प्रशंसनीय की निंदा करता है, वह अपने मुँह में पाप एकत्रित करता है, और उस पाप के कारण उसे कोई आनंद नहीं मिलेगा। (663)

3. 'जुए में धन खोने का पाप तुच्छ है; यह एक बड़ा पाप है जो सुगतों के विरुद्ध मन को भ्रष्ट करता है। (664)

4. 'एक लाख निरब्बुदों में से वह छत्तीस और पाँच अब्बुदों के पास जाता है; क्योंकि वह आर्य (प्रबुद्ध) की निंदा करता है, इसलिए वह अपने वाणी और मन का कुकर्म करने के कारण नरक में जाता है। (665)

5. 'झूठ बोलने वाला नरक में जाता है, या जो कुछ करके कहता है, "मैंने यह नहीं किया है;" मृत्यु के बाद ये दोनों बराबर हो जाते हैं, दूसरे लोक में (वे दोनों) नीच कर्म के दोषी होते हैं। (666)

6. 'जो किसी निर्दोष, पवित्र, पापरहित व्यक्ति को ठेस पहुँचाता है, ऐसे मूर्ख पर बुरा कर्म हवा में फेंकी गई धूल की तरह पलट जाता है। (667)

7. 'जो लोभ के गुण से ग्रस्त होता है, ऐसा व्यक्ति अपनी वाणी में दूसरों की निंदा करता है, (स्वयं) अविश्वासी, कंजूस, विनम्र, कृपण और चुगली करने वाला होता है। (668)

8. 'हे अपशब्द बोलने वाले, झूठे, नीच, निंदा करने वाले, दुष्ट, बुराई करने वाले, नीच, पापी, घटिया जन्म वाले मनुष्य, इस संसार में बकवास मत करो।(अन्यथा) तुम नरक के निवासी बनोगे। (669)

9. 'तुम दूसरों के दुर्भाग्य के लिए अपवित्रता फैलाते हो, तुम धर्मियों की निंदा करते हो, स्वयं पाप करते हो, और बहुत से बुरे कर्म करके तुम लंबे समय तक नरक के कुंड में जाओगे। (670)

10. 'क्योंकि कर्म व्यर्थ नहीं जाते, वे निश्चय ही तुम्हारे पास लौटेंगे, उनका स्वामी उनसे मिलेगा, पाप करने वाला मूर्ख परलोक में अपने आप को पीड़ा देगा। (671)

11. 'जहाँ लोहे की छड़ों से प्रहार किया जाता है, वहाँ वह नुकीले किनारों वाले लोहे के खंभे पर जाता है; फिर वहाँ उसके लिए उपयुक्त भोजन होता है, जो लोहे के लाल-गरम गोले के समान होता है। (672)

12. 'जो लोग वहाँ कुछ कहना चाहते हैं, वे मीठी बातें नहीं कहते, वे प्रसन्न चेहरों के साथ पास नहीं आते; उन्हें अपने कष्टों से शरण नहीं मिलती, वे सुलगते अंगारों पर लेटते हैं, वे धधकती चिता में प्रवेश करते हैं। (673)

13. 'उन्हें जाल से ढककर लोहे के हथौड़ों से मार डालते हैं; वे घने अंधकार में चले जाते हैं, क्योंकि वह पृथ्वी के शरीर के समान फैला हुआ है। (674)

14. 'फिर वे लोहे के बर्तन में प्रवेश करते हैं, वे धधकती चिता में प्रवेश करते हैं, क्योंकि उन्हें उन (लोहे के बर्तनों में) लंबे समय तक उबाला जाता है, चिता में ऊपर-नीचे कूदते हुए। (675)

15. 'फिर जो पाप करता है, वह निश्चित रूप से पदार्थ और रक्त के मिश्रण में उबलता है; वह जिस भी स्थान पर निवास करता है, पदार्थ और रक्त के संपर्क में आने से वह वहाँ सड़ जाता है। (676)

16. 'जो पाप करता है, वह निश्चित रूप से पानी में उबलता है, जो कीड़ों का निवास स्थान है; वहाँ किनारे तक पहुँचना (संभव) नहीं है, क्योंकि बर्तन बिल्कुल एक जैसे हैं। (?) (677)

17. 'फिर वे क्षत-विक्षत अंगों के साथ तीखे असिपत्तवन में प्रवेश करते हैं; जीभ को हुक से पकड़कर, नरक के विभिन्न पहरेदार उन्हें मार डालते हैं। (678)

18. 'फिर वे वेतरानी में प्रवेश करते हैं, जिसे पार करना कठिन है और जिसमें तेज धार वाले उस्तरों की धाराएँ हैं; वहाँ मूर्ख, दुष्ट कर्म करने वाले, बुराई करने के बाद गिर पड़ते हैं। (679)

19. 'वहाँ काले, चित्तीदार कौवों के झुंड रोने वालों को खा जाते हैं, और कुत्ते, सियार, बड़े गिद्ध, बाज़, कौवे उन्हें नोंच डालते हैं। (680)

20. 'यद्यपि यहाँ (नरक में) जीवन दयनीय है जिसे पाप करने वाला मनुष्य देखता है। इसलिए मनुष्य को इस संसार में अपने शेष जीवन में परिश्रमी होना चाहिए, आलसी नहीं। (681)

21. 'बुद्धिमानों द्वारा गिने गए तिल के बीज के वे भार जो पद्म नरक में ले जाए जाते हैं, वे (कई) नहुत और पाँच कोटि, और इसके अतिरिक्त बारह सौ कोटि हैं। (682)

22. 'जब तक इस संसार में नरक को कष्टदायी कहा जाता रहेगा, तब तक लोगों को वहाँ लंबे समय तक रहना पड़ेगा; इसलिए शुद्ध, सौम्य और अच्छे गुणों वाले लोगों को हमेशा वाणी और मन पर नियंत्रण रखना चाहिए।' (683)

कोकालिकासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
10. कोकालिकासुत्तं

एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "पापिच्चा, भंते, सारिपुत्तमोग्गलाना, पापिकाणं इच्छां वसां गता"ति।
एवं वुट्टे, भगव कोकालिकं भिक्खुं एतादावोका - "मा हेवं, कोकालिका, मा हेवं, कोकालिका!" पसादेही, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गलाना'ति।
दुतियाम्पि खो...पे... ततियाम्पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "किंकापि मे, भन्ते, भगव सद्धायिको पकायिको, अथा खो पपिच्छव सारिपुत्तमोग्गलाना, पापिकाणं इच्छां वसं गता'ति. तत्यामपि खो भगव कोकालिकं भिक्खुं एतदावोचा - "मा हेवं, कोकालिका, मा हेवं, कोकालिका!" पसादेही, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गलाना'ति।
अथ खो कोकालिको भिक्खु उत्थायसना भगवन्तं अभिवदेत्व पदक्खिनं कत्वा पक्कमि। असिरप्पाक्कनतस्सा च कोकालिकास्सा भिक्खुनो ससपामत्तीहि पिडकाहि सब्बो कायो फूटो [फुठहो (स्या.)] अहोसी; ससपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुम; मुग्गमत्तियो हुत्वा कषायमत्तियो अहेसुम; कषायामत्तियो हुत्वा कोलाथिमतिमतियो अहेसुम्; कोलाथिमट्टियो हुत्वा कोलमट्टियो एहेसुं; कोलमत्तियो हुत्वा अमलकमत्तियो अहेसुम; अमलकमट्टियो हुत्वा बेजुवासलातुकमत्तियो अहेसुम; बेउवसलानुकमट्टियो हुत्वा बिलमट्टियो एहेसुं; बिल्मत्तियो हुत्वा पभिज्जिण्सु; पुब्बांका लोहितांका पग्गरिंसु। अथा खो कोकालिको भिक्खु तेनेवाबाधेन कालमाकासि। कालंकतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्वा।
अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवनो केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्व येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतम, थितो खो ब्रह्मा सहमपति भगवन्तं एतदावोका - "कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालान्कतो; कालंकतो च, भंते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपापन्नो सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्व'ति। इदमावोचा ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराध्यायि।
अथ खो भगव तस्स रत्तिया अच्चयेन भिक्खु अमांतेसि - "इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहंपति अभिकांतया रत्तिया...पे... इदामावोका, भिक्खवे, ब्रह्मा सहंपति, इदं वट्वा माम् पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराध्यायति।
एवं वुट्टे, अन्नतरो भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "किवदिघं नु खो, भंते, पदुमे निराये अयुप्पमण'न्ति? "दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निराये अयुप्पमानं; तं न सुकारं संखातुं एत्तकानि वस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससतानि इति व एत्तकानि वस्ससहसानि इति व एत्तकानि वस्ससतसाहस्सनि इति वा'ति। "सक्का पाना, भंते, उपमा [उपमाम् (सि. स्या. का.)] कातु"न्ति? "सक्का, भिक्खु'ति भगव अवोका - "सेयथापि, भिक्खु, विशतिखारिको कोसलको तिलवाहो; ततो पुरिसो वस्सासतस्स्स्स्स्स्स्स्स्सा अचयेना एकमेकं तिलं उधरेय्य। खिप्पतरं खो सो भिक्खु विसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेने परिक्खयं परियादानं गच्चेया, नटवेव एको अब्बुदो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अब्बुदा निराया एवमेको निरब्बुदो निरायो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति निरब्बुदा निराया एवमेको अबाबो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अबाबा निराया एवमेको अहाहो निरायो। सेय्यथापि, भिक्खु, विसाति अहा निराया एवमेको अततो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अताता निराया एवमेको कुमुदो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति कुमुदा निराया एवमेको सोगंधिको निरयो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति सौगंधिका निराया एवमेको उप्पलको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति उप्पलका निराया एवमेको पुण्डरीको निरायो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति पुण्डरीका निराया एवमेको पदुमो निरायो। पदुमं खो पाना भिक्खु निरायं कोकालिको भिक्खु उपापन्नो सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्व'ति। इदमावोच भगव, इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
662.
"पुरिसस्सा हि जातस्सा, कुठारी [कुधारी (का.)] जायते मुखे;
याया छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासीतं भानां।
663.
"यो निंदियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो;
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विंदति।
664.
"अप्पमत्तो अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो;
सब्बासापि सहापि अत्तना, अयमेव महत्तारो [महंतकारो (सि.)] कलि;
यो सुगतसु मनं पदोसये।
665.
"सतं सहस्नानं निरब्बुदानं, छत्तीसति पंच च अब्बुदानी [अब्बूदानं (का.)];
यमरियागार्हि निरायं उपेति, वाचं मनञ्च पणिधाय पापकं।
666.
"अभूतवादी निरायं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमिचा;
उभोपि ते पेक्का समा भवन्ति, निहिनकम्मा मनुजा परत्था।
667.

"यो अप्पादुथस्स नरस्सा दुस्सति, सुद्धस्स पोस्सस अनंगनस्स;
तमेव बालं पचेति पापं, सुखुमो रजो पतिवतव खित्तो।
668.
"यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वाचसा परिभासति अन्ने;
असद्दो कादारियो अवदान्नु, मच्छरी पेसुनियां [पेसुनियास्मिं (बहुसु)] अनुयुत्तो।
669.
"मुखादुग्गा विभूत अनारिया, भूनाहु [भुनहत (स्या. का.)] पापक दुक्कटकारी;
पुरिसंत काली अवजाता, मा बहुभानिधा नेरायिकोसि।
670.
"राजमाकिरसि अहिताय, संते ग्रहसि किब्बिसकारी;
बहुनि दुष्चरितानि चरित्वा, गच्छसि खो पापतं सिरत्तं।
671.
"न हि नास्सति कस्सासि कम्मं, एति हतं् लभतेव सुवामि;
दुक्खं मंडो परलोके, अत्तानि पस्सति किब्बिसकारी।
672.
"अयोशंकुसमाहत्थानं, तिंढाधर्मयसुलमुपेति;
अथ तत्तायोगुस्सन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं।
673.
"न हि वग्गु वदंति वदंता, नाभिजवंति न तनमुपेंती;
अंगारे संथते सयान्ति [सेन्ति (सि. स्या. पि.)], गिनिसम्पज्जलितं पविसन्ति।
674.
"जालेना च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकुतेभि [अयोमयकुतेहि (सि. स्या. पि.)];
अन्धैव तिमिसामयन्ति, तं वितानहि यथा महिकायो।
675.
"अथ लोहमयं पण कुम्भीम्, गिनिसम्पज्जलितं पविसन्ति;
पचन्ति हि तासु सिरारट्टं, अग्निसमासु [गिनिसामसु (का.)] समुप्पिलवते।
676.
"अथ पुब्बलोहितामिस्से, तत्थ किं पच्चति किब्बिसाकरि;
यं यं दिसकं [दिसातम (सि. स्या. पि.)] अधिसेति, तत्थ किलिससति सम्फुसमानो।
677.
"पूववसथे सलिलास्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी;
गंतुं न हि तिरुमपत्ति, सब्बासामा हि समंतकपल्ला।
678.
"असिपत्तवनं पण तिन्हं, तं पविसन्ति समुच्चिदगत्ता;
जीवहं बलिसेन गहेत्वा, अराजयाराजया विहनन्ति।
679.
"अथ वेतरनिं पण दुग्गं, तिंहधारखुरधारामुपेंती;
तथा मन्दा पापतन्ति, पापकार पापनि करित्वा।
680.
"खदन्ति हि तथा रुदन्ते, समां सबला काकोलगना च;
सोना सिगला [सिगला (सि. पि.)] पतिगिद्धा [पतिगिज्जा (स्या. पि.)], कुलाला व्यास च [कुलाला च व्यास (?)] वितुदन्ति।
681.
"किच्चा वातायं इधा वुट्टी, यं जानो फुसति [पस्सति (सि. स्या. पि.)] किब्बिसकारी;
तस्मा इधा जीवितसे, किक्काकारो सिया नरो न कप्पमज्जे।
682.
"ते गणित विदुहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनिता;
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादसा कोटिशतानि पुनाणा [पनये (का.)]।
683.

"याव दुक्खा [दुक्खा (सि. स्या.), दुक्खा (पि. का.)] निराया इधा वुत्ता, तत्थपि तव सिरं वसिताबं;
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुनेसु, वाकं मनं सततं [पकाटं (स्या.)] परिरक्खे"ति।
कोकालिकासुत्तं दशमं निहितं।

पाली-देवनागरी
दस. कोलिकासुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि साइनो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच - "पापिच्च, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गललाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति।
एवं वुत्ते, भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच - "मा हेवं, कोकली, मा हेवं, कोकली! पसादेहि, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गललाना"ति।
दुतियामपि खो...पे०... तत्यामपि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच – "किञ्चादपि मे, भन्ते, भगवा साधयिको पच्चचयिको, अथ खो पापिच्छव सारिपुत्तमोग्गललाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति। ततियाम्पि खो भगव कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच - "मा हेवं, कोकाली, मा हेवं, कोकाली! पसादेहि, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गललाना"ति।
अथ खो कोकालिको भिक्खु उत्थयासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पादखिनं कत्वा पककामि। अचिरप्पकान्तस्स च कोकलीसस भिक्खुनो सस्पमत्तीहि पिळकाहि सब्बो कायो फुटको [फुत्थो (स्या०)] अहोसि; सस्पामत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं; मुग्मतत्तियो हुत्वा कळायमतयो अहेसुं; कळायमतत्तियो हुत्वा कोल्थतिमत्तियो अहेसुं; कोलथिमट्टियो हुतवा कोलमट्टियो एहेसुं; कोलमट्टियो हुत्वा अमलकमेटियो एहेसुं; अमलकमट्टियो हुत्वा बेळुवसलाटुकमत्तियो अहेसुं; बेळुवसलाटुकमत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं; बिल्लमट्टयो हुत्वा पभिज्जिंसु; पब्बनच लोहितनच पग्घ्रसिंसु। अथ खो कोकालिको भिक्खु तेनेवाबाधेन कालमाकासि। कालङ्कतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं आघातेत्वा।
अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्रियाकांताय रत्तिया अभिक्रियाकांतवन्नो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङ्मिक; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमंतं, थितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच - "कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो; कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपप संज्ञाओ सारिपुत्तमोग्गलनेसु चित्तं आघातेत्व"ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवदेत्व पद्दक्खिनं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।
अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अचचयेन भिक्खु अम्नतेसि – "इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभित्रकन्ताय रत्तिया...पे०... इदमवोच, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं पादखिनं कत्वा तत्थेवन्तरधायि"ति।
एवं वुत्ते, अञ्जन्तरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच - "कीवदिघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये अयप्पमन्"न्ति? "दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निरये आयुप्पमनं; तं न सुकरं सङ्खातुं एत्तकानि वस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससस्सतानि इति वा एत्तकानि वस्ससहस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससतसहस्सनि इति वा"ति। "सांतरका पन, भंते, उपमा [उपमं (सी० स्या० क०)] कातु"न्ति? "सड़कका, भिक्खु"ति भगवान अवोच - "सेयथापि, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो; ततो पुरिसो वससत्सस वससत्सस अच्चचयेन एकमेकं तिलं उद्धरेय। खिप्पतरं खो सो भिक्खु विसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्राकमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय, नत्वेव एको अब्बुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया एवमेको निरबुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति निरबुदा निरया एवमेको अब्बो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसति अब्बा निरया एवमेको अहहो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसति अहा निरया एवमेको अत्तो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति अत्ता निरया एवमेको कुमुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति कुमुदा निरया एवमेको सोगंधिको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति सोगंधिका निरया एवमेको उप्पलको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति उप्पलका निरया एवमेको पुंडरीको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति पुंडरिका निरया एवमेको पदुमो निरयो। पदुमं खो पन भिक्खु निरयं कोकालिको भिक्खु उपप संज्ञाओ सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं आघातेत्व"ति। इदमवोच भगवान, इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -

.

"पुरिस्स्स हि जात्स्स, कुठारी [कुदारी (क०)] जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्बसितं भानं॥

6.

"यो निंदियं पसंसति, तं वा निंदति यो पसंसियो।
विचिनति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥

6

"अप्पमत्तो अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सापि सहापि अत्तना, अयमेव महत्तरो [महंतकरो (सी०)] कलि।
यो सुगतेसु मनं पदोसये॥

.

"सतं सहस्सानं निर्बुदानं, छत्तींसति पञ्च च अब्बुदानी [अब्बुदानं (क०)]।
यमरियगृहहि निरयं उपेति, वाचं मन्नदच पणिधाय पापकं॥

.
"अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमिचः।
उभोपि ते पेचच समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा पार्थ॥

.
"यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्स्ति, सुधस्स पोस्स अनङ्गनस्स।
तमेव बालं पच्चचेतति पापं, सुखुमो रजो पतिवतव हितता॥
60.
"यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा प्रतिभासति अञ्चे।
असद्धो काराडियो अवदान्नु, मखसि पेसुनिअन [पेसुनिउस्मिं (बहुसु)] अनुयुत्तो॥

.
"मुखदुग्ग विभूत अनारिय, भुनहु [भुनहत (स्या० क०)] पापक दुत्कारकारी।
पुरिसन्त काली अवजात, मा बहुभानिध नेरायिकोसि॥
6000.
"रजमाकिरसी अहिताय, संते गरसी किब्बिसकारी।"
बहुनि दुच्चचरितानि चरित्वा, गच्छसि खो पापतं चिररतं॥

.
"न हि नस्सति कश्चि कम्मं, एति हतं लभतेव सुवामि।
दुक्खं मनदो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी॥

.
"अयोसङ्कुशसमाहतत्थानं, तिंहधारमयसुलमुपेति।
अथ तत्तअयोग्युळस नारायणं, भोजनमथि तथा पतिरूपं॥

.
"न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न तनमुपेन्ति।"
अङ्गारे सन्थते सयन्ति [सेन्ति (सी० स्या० पी०)], गिनिसम्पजदलितं पविसन्ति॥
66.
"जालेन च ओन्हियान, तत् हनन्ति अयोमयकुतेभि [अयोमय कुतेहि (सी० स्या० पी०)]।
अन्धव तिमिसमायन्ति, तं वित्तञ्हि यथा महिकायो॥
650.
"अथ लोहमयं पण कुंभिं, गिनिसम्पजदजलितां पविसन्ति।
पच्च्चन्ति हि तासु चिररतं, अग्गिनिस्मसु [गिनिस्समासु (क०)] समुप्पिलवते॥
6.
"अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पच्चचति किब्बिसकारी।
यं यं दिसकं [दिसतं (सी० स्या० पी०)] अधिसेति, तत्थ किलिस्स्ति सम्फुसमानो॥
677.
"पुळवावस्थे सलिलस्मिं, तथा किं पचदचति किब्बिसकारी।
गन्तुं न हि तीरमपति, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला॥
678.
"असीप्तवनं पण तिन्हं, तं पविसंति समुच्छिदगत्ता।"
जिह्वं बलिसेन गहेत्वा, अर्जयराजाय विहन्ति॥

.
"अथ वेतरनिं पण दुग्गं, तिंहधारखुरधारमुपेन्ति।
तथा मन्दा पापान्ति, पापकरा पापनि कृत्वा॥

.
"खंडन्ति हि तत् रुदन्ते, समां सबला कालकोगना च।"
सोना सिंगाला [सिगला (सी० पी०)] पतिगिधा [पतिगीज्जा (स्या० पी०)], कुल्ल वैसा च [कुल्ला च वैसा (?)] वितुदन्ति॥
6

"किच्चा वत्यं इध वुति, यं जनो फुसति [पस्सति (सी० स्या० पी०)] किब्बिसकारी।
तस्मा इध जीवितसेसे, किच्चाचक्रो सिया नरो न चप्पमज़्ज़े॥
.
"ते गणित विदुहि तिलवहा, ये पदुमे निरये उपनीता।
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिस्तानिनि पञ्चना [पन्याये (क०)]॥
.
"याव दुखा [दुक्खा (सी० स्या०), दुक्ख (पी० क०)] निरया इध वुत्ता, तत्थपि तव चिरं वसीतब्बं।
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेसु, वाचं मनं सततं [पक्तं (स्या०)] परिरक्खे"ति॥
कोलिकासुत्तं दशमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.11 नलकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

इसी (ऋषि, संत) असिता, जिन्हें कन्हासिरी भी कहा जाता है, ने देवताओं को प्रसन्न देखकर इसका कारण पूछा। बुद्ध के जन्म की खबर सुनकर वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित हुए। जब शाक्यों ने उन्हें बालक दिखाया, तो उन्होंने सहर्ष उसे ग्रहण किया और उसके बारे में भविष्यवाणी की। बुद्ध ने असिता की बहन के पुत्र नलका को ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था का ज्ञान कराया।

अंतर्वस्तु
13.11 नलकासुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
3.11 नलकासुत्त
अनुवाद
वत्थुगथा।
1. दिन के समय, ईशी (ऋषि, संत) असिता ने तिदास देवताओं के आनंदित, प्रसन्न झुंडों और चमकीले वस्त्र पहने देवताओं को देखा, जो अपने वस्त्र उतारकर लहराते हुए हमेशा इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा) की स्तुति करते थे। (684)

2. देवताओं को प्रसन्न और प्रसन्न देखकर, और अपना आदर प्रकट करते हुए, उन्होंने उस अवसर पर यह कहा: 'देवताओं की सभा इतनी प्रसन्न क्यों है, वे अपने वस्त्र उतारकर क्यों लहरा रहे हैं? (685)

3. 'जब असुरों से मुठभेड़ हुई, देवताओं की विजय हुई और असुर पराजित हुए, तब ऐसा उल्लास नहीं हुआ था। देवताओं ने ऐसा कौन सा अद्भुत दृश्य देखा है कि वे इतने प्रसन्न हैं? (686)

4. 'वे जयजयकार करते हैं, गाते हैं और संगीत बजाते हैं, वे अपने हथियार लहराते हैं और नाचते हैं; हे मेरु पर्वत के शिखरों पर रहने वालों, मैं आपसे विनती करता हूँ, हे पूजनीय! मेरी शंका को शीघ्र दूर करें! (687)

5. बोधिसत्व, जो उत्कृष्ट मोती हैं, अतुलनीय हैं, मनुष्य जगत में, शाक्यों नगर में, लुम्बिनी देश में, कल्याण और आशीर्वाद के लिए जन्म लेते हैं। इसलिए हम प्रसन्न और अत्यंत प्रसन्न हैं। (688)

6. वे, जो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, वे इसिस नदी के नाम पर रखे गए वन में (धम्म का) चक्र चलाएंगे, (वे) गर्जना करते सिंह के समान हैं, पशुओं के बलवान स्वामी हैं।' (689)

7. यह ध्वनि सुनकर वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित हुए। फिर वे सुद्धोदन के महल में गए और वहाँ बैठकर शाक्यों से यह कहा: 'राजकुमार कहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' (690)

8. तब शाक्यों ने असिता नामक बालक (ऋषि, संत) को राजकुमार का दर्शन कराया, जो चमकते सोने के समान था, जिसे किसी कुशल लोहार ने भट्टी के मुख पर गढ़ा हो, और जो तेज से दमकता हुआ और सुंदर रूप धारण किए हुए था। (691)

9. राजकुमार को अग्नि के समान चमकता हुआ, आकाश में विचरण करते तारों के बैल के समान उज्ज्वल, शरद ऋतु के जलते सूर्य के समान, बादलों से मुक्त देखकर, उन्होंने अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त की। (692)

10. देवताओं ने आकाश में हजार वृत्तों और असंख्य शाखाओं वाला एक छत्र धारण किया हुआ था, सोने की छड़ियों से यक्षों की पूंछों को हवा दी जा रही थी, परन्तु यक्षों की पूंछों और छत्र को धारण करने वाले दिखाई नहीं दिए। (693)

11. जटाधारी ऋषि, कन्हासिरी नाम के, ने सोने के सिक्के के समान चमकते पीले कंबल और अपने सिर पर रखे सफेद छत्र को देखकर प्रसन्न और प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया। (694)

12. और शाक्यों के बैल को पाकर, जो उसे प्राप्त करना चाहता था और चिन्हों और मंत्रों को जानता था, प्रसन्न मन से उसने ऊँची आवाज़ में कहा: 'यह श्रेष्ठ है, पुरुषों में सबसे उत्तम है।' (695)

13. फिर अपने हिजरत को याद करके वे दुखी हुए और रोने लगे; यह देखकर शाक्यों ने रोते हुए ऋषि से पूछा कि क्या राजकुमार के मार्ग में कोई बाधा होगी? (696)

14. शाक्यों को दुखी देखकर ऋषि ने कहा: 'मुझे राजकुमार के लिए कुछ भी अशुभ याद नहीं है, उनके लिए कोई बाधा नहीं होगी, क्योंकि वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। चिंता न करें। (697)

15. 'यह राजकुमार पूर्ण ज्ञान के शिखर पर पहुंचेगा, वह धम्म का चक्र चलाएगा, वह जो अत्यंत शुद्ध (अर्थात निर्वाण) को देखता है, यह (राजकुमार) जनसमूह के कल्याण के लिए तरसता है, और पवित्र ब्रह्मचर्य पर आधारित उसका मार्ग व्यापक रूप से फैलेगा। (698)

16. 'मेरा जीवन यहाँ शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, मेरे जीवन के मध्य में ही मेरी मृत्यु हो जाएगी; मैं उस अतुलनीय व्यक्ति के धम्म को नहीं सुनूंगा; इसलिए मैं दुखी, दुर्भाग्यशाली और पीड़ित हूं।' (699)

17. शाक्यों को अत्यधिक आनंद देने के बाद वह नगर के भीतरी भाग से धर्मपरायण जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ा; परन्तु अपनी बहन के पुत्र पर दया करके उसने उसे उस अतुलनीय व्यक्ति के धम्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। (700)

18. 'जब तुम दूसरों से "बुद्ध" (या) "पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाला धम्म के मार्ग पर चलता है" का नाम सुनो, तो वहां जाकर विवरण प्राप्त करो और उस भगवान (भगवान बुद्ध) के साथ पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करो।' (701)

19. उनके द्वारा निर्देशित, मित्रवत मन वाले, जिन्होंने भविष्य में अत्यंत शुद्ध (अर्थात निर्वाण) देखा, नलका, संचित पुण्य कर्मों के ढेर के साथ, और सचेतन इंद्रियों से उनके साथ, जिन (अर्थात बुद्ध) की प्रतीक्षा करते हुए निवास करते रहे। (702)

20. उत्कृष्ट जिन द्वारा धम्म का चक्र घुमाने की ध्वनि सुनकर, और जाकर इसिस नदी के बैल को देखकर, वे परिवर्तित होकर, आशित के आदेश का समय आने पर, प्रख्यात मुनि (संत) से सर्वोत्तम ज्ञान के बारे में पूछने लगे। (703) वत्थुगत

समाप्त।

---

21. 'मैं असिता के इन वचनों को सत्य मानता हूँ, इसलिए हे गौतम (बुद्ध), जो सभी विषयों (धर्म) में परिपूर्ण हैं, हम आपसे पूछते हैं। (704)

22. 'हे मुनि (संत), मैं जो गृहस्थ हूँ और भिक्षु जीवन अपनाना चाहता हूँ, पूछे जाने पर सर्वोच्च अवस्था, ज्ञान (मन्नेय) की अवस्था का अर्थ समझाएँ।' (705)

23. 'मैं तुम्हें ज्ञान की अवस्था के बारे में बताता हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'इसे प्राप्त करना और पालन करना कठिन है; आओ, मैं तुम्हें समझाता हूँ, दृढ़ रहो, स्थिर रहो।' (706)

24. 'मनुष्य को समभाव का अभ्यास करना चाहिए: जिसकी गाँव में निंदा और प्रशंसा दोनों होती है, उसे अपने मन को भ्रष्ट न करने का ध्यान रखना चाहिए, उसे शांत और अहंकार रहित जीवन जीना चाहिए।' (707)

25. 'विभिन्न वस्तुएँ जंगल में आग की लपट की तरह गायब हो जाती हैं; स्त्रियाँ मुनि (संत) को प्रलोभित करती हैं, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। (708)

26. 'उन्हें सभी प्रकार के कामुक सुखों को त्यागकर, यौन संबंध से विरक्त होना चाहिए, जीवित प्राणियों के प्रति, चाहे वे कमजोर हों या बलवान, उदासीन और उदासीन रहना चाहिए। (709)

27. 'जैसा मैं हूँ वैसा ही ये हैं, जैसा ये हैं वैसा ही मैं हूँ, दूसरों के साथ स्वयं को जोड़कर, उन्हें न तो हत्या करनी चाहिए और न ही किसी को हत्या करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। (710)

28. 'इच्छा और लोभ का त्याग करके, उन्हें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसे वे स्पष्ट रूप से जानते हों कि एक आम आदमी कहाँ फँस जाता है, उन्हें इस नरक को पार करना चाहिए। (711) 29.

'उन्हें खाली पेट रहना चाहिए, कम भोजन करना चाहिए, उनकी आवश्यकताएँ कम होनी चाहिए और उन्हें लोभी नहीं होना चाहिए; इच्छा से ग्रस्त न होकर वे इच्छाहीन होकर सुखी होंगे। (712)

30. 'भिक्षा मांगने के बाद मुनि (संत) वन के बाहरी इलाके में जाकर किसी वृक्ष की जड़ के पास बैठ जाएं। (713)

31. 'ध्यान में लीन होकर और बुद्धिमान होकर वन के बाहरी इलाके में ही आनंद लें, किसी वृक्ष की जड़ के पास बैठकर ध्यान करें। (714)

32. 'फिर जब रात ढलने लगे तो गांव के बाहरी इलाके में चले जाएं, किसी के निमंत्रण पर प्रसन्न न हों और न ही गांव से लाई गई किसी चीज में रुचि लें। (715) 33.

'गांव जाकर मुनि (संत) जल्दबाजी में घरों की ओर न भटकें; भोजन की तलाश करते समय बातचीत बंद कर दें, कोई भी सार्थक बात न करें। (716)

34. '"मुझे जो अच्छा मिला है," "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं मिला," दोनों ही स्थितियों में ऐसा सोचते हुए वे अपरिवर्तित होकर वृक्ष के पास लौट आते हैं। (717)

35. "अपने भिक्षापात्र को हाथ में लिए घूमते हुए, मूक होते हुए भी मूक समझे जाने वाले, उसे छोटे से दान पर लज्जित नहीं होना चाहिए, उसे दाता का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। (718)

36. 'समना (भिक्षु) द्वारा दर्शाए गए अभ्यास अनेक हैं, वे दो बार दूसरे किनारे पर नहीं जाते, यह एक बार भी नहीं सोचा गया है। (?) (719)

37. 'जिसके लिए कोई इच्छा नहीं है,जिस भिक्षु ने जीवन के प्रवाह को काट दिया है और सभी प्रकार के कर्मों का त्याग कर दिया है, उसे कोई पीड़ा नहीं होती। (720)

38. 'मैं तुम्हें ज्ञान की अवस्था का वर्णन करता हूँ,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'मनुष्य को उस्तरे की धार के समान होना चाहिए, अपनी जीभ से तालू पर प्रहार करके, अपने पेट के प्रति संयमी होना चाहिए। (721)

39. 'मन को आसक्ति से मुक्त रखना चाहिए, सांसारिक मामलों के बारे में अधिक नहीं सोचना चाहिए, निर्मल, स्वतंत्र और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन के प्रति समर्पित होना चाहिए। (722)

40. 'एकांत जीवन के लिए और संन्यासियों द्वारा किए जाने वाले सेवा कार्य के लिए, उसे यह सीखना चाहिए कि एकांत ही ज्ञान है; वास्तव में उसे अकेले ही आनंद मिलेगा। (723)

41. 'तब वह दस लोकों में प्रकाशमान होगा, बुद्धिमानों, ध्यान करने वालों और इंद्रिय सुखों का त्याग करने वालों की वाणी सुनकर, मेरे अनुयायी को तब और भी अधिक नम्रता और विश्वास के प्रति समर्पित होना चाहिए।' (724)

42. दरारों और खाइयों में बहते पानी से यह समझो: छोटा पानी शोर मचाता है, विशाल सागर शांत रहता है। (725)

43. जो अपूर्ण है वह शोर मचाता है, जो परिपूर्ण है वह शांत रहता है; मूर्ख आधे भरे घड़े के समान है, बुद्धिमान भरे हुए तालाब के समान है। (726)

44. जब समझदार समना (भिक्षु) बहुत बोलता है, तो वह धर्म का ज्ञान रखते हुए उसका उपदेश देता है, और धर्म का ज्ञान रखते हुए वह बहुत बोलता है। (727)

45. परन्तु जो धर्म का ज्ञान रखते हुए संयमी रहता है, और धर्म का ज्ञान रखते हुए अधिक नहीं बोलता, ऐसा मुनि ज्ञान (मोन) का पात्र होता है, ऐसा मुनि ज्ञान (मोन) प्राप्त कर लेता है। (728)

नलकासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. नालकसुत्तं
684.
आनंदजाते तिदसगाने पतिते, सक्कञ्च इंदं सुसिवसने च देवे;
दुस्सां गहेत्वा अतिरिवा थोमयंते, असितो इसि अडसा दिवाविहारे।
685.
दिसवना देवे मुदितामाने उडग्गे, चित्तिम करित्वान इदमवोका [करित्वा इदमवोकासि (सि.)] तत्थ;
"किं देवासंघो अतिरिवा कल्यारूपो, दुस्सां गहेत्वा रामयथा [भामयथा (सि.)] किं पटिक्का।
686.
"यदापि असि आसुरेहि संगमो, जयो सुरानां असुर परजिता।
तदापि नेतादिसो लोमहंसनो, किमब्भूतं दातु मारु पमोदिता।
687.
"सेएंति गायंति च वदयन्ति च, भुजानि फोएंति [पोएंति (सी. पी.), पोथेंती (का.)] च नक्कयंती च;
पुच्छमि वोहं मेरुमुद्धवासिने, धुनाथ मे संशयं खिप्पा मारिसा"।
688.
"तो बोधिसत्तो रत्नावरो अतुल्यो, मनुस्सालोके हितसुखत्थाय [हितसुखत्या (सि. स्या. पि.)] जातो;
शाक्याना गामे जनपदे लुम्बिन्ये, तेनम्हा तुत्था अतिरिवा कल्यारूपा।
689.
"तो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरसाभो सब्बपजानामुत्तमो;
वट्टेसति चक्कमिसिव्हये वने, नादानव सिहो बलव मिगाभिभू"।
690.
तं सद्दां सुत्वा तुरितमवसारि सो, शुद्धोदनस्सा तदा भवनं उपविसि [उपगामी (सि. पि.)];
निसज्ज तत्थ इदमवोकासि सक्ये, "कुहिं कुमारो अहमपि दथुकामो"।
691.

ततो कुमारं जलितमिव सुवन्नं, उक्कामुखेव सुकुसलसंपहः [सुकुसलेना संपहंठ (का.)];
दद्दल्लमणं [दददहमानं (का.)] सिरिया अनोमवनं, दस्सेसु पुत्तं असितवहयस्सा शाक्य।
692.
दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारसभनव नभसिगमं विशुद्धम्;
सूर्यं तपंतं सारदारिवब्भमुत्तं, आनंदजातो विपुलमलत्था पीतिम्।
693.
अनेकसखांच सहस्समंडलं, चट्टं मारु धारयुमंतलिक्खे;
सुवन्नदंदा विटिपतन्ति चामरा, न डिसरे चामरचट्टगाहका।
694.
दिस्वा जाति कान्हासिरिवहयो इसि, सुवन्नानिक्खं विया पाण्डुकम्बाले;
सेतनच चट्टं धारियंता [धारियंता (स्या.), धारयंतं (सि. का.)] मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पतिग्गहे।
695.
पतिग्गहेत्वा पण शाक्यपुंगवं, जिगिसातो [जिगिसाको (सि. स्या. पि.)] लक्खाणमंतपरागु;
पसन्नचित्तो गिरामब्भुदिरयी, "अनुत्तरायं द्विपादनमुत्तमो" [दीपदानमुत्तमो (सि. स्या. पि.)]।
696.
अत्थत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकाल्यरूपो गययति अस्सुकानि;
दिस्वाना शाक्य इसिमावोकुं रुदंतम्,
"नो सी कुमारे भविष्यसति अंतरायो"।
697.
दिस्वाना साके इसिमावोका अकाल्ये, " नाहं कुमारे अहितामनुस्सरमि;
न कपिमस्सा भविष्यति अंतरायो, न ओरकायं अधिमानसा [अधिमानसा (सि. स्या.)] भवथ।
698.
"सम्बोधियग्गं फुस्सीसत्यं कुमारो, सो धम्मचक्कं परमविशुद्धदस्सी;
वत्तेसत्सयं बहुजनहितानुकम्पि, विट्ठरिकास्सा भविष्यसति ब्रह्मचर्यम्।
699.
"ममञ्च आयु न सिरमिधावसेसो, अथन्तरा मे भविष्यसति कालकिरिया;
सोहं न सोस्सां [सुस्सां (सि. स्या.)] असमधुरस्सा धम्मं, तेनमहि अत्तो ब्यासनंगतो अघावि"।
700.
तो सकियानं विपुलं जनेत्वा पीतिम्, अंतेपुर्मा निग-गमा [निरागम (सि. स्या.), निगमा (का. सि.), निरागामा (पि.)] ब्रह्मचारी;
तो भगिनेयं सयं अनुकंपमानो, समदपेसि असमधुरस्सा धम्मे।
701.
"बुद्धोति घोषं यदा [यादि (स्या. का.)] परतो सुनासी, संबोधिपट्टो विवरति धम्ममग्गं;
गन्त्वाना तत्थ समयं परिपुच्छमानो [सयं परिपुच्छियानो (सि. स्या.)], कैरसु तस्मिं भगवती ब्रह्मचर्यम्"।
702.
तेनानुसीठो हितमानेन तदिना, अनागते परमविशुद्धदस्सीना;
तो नालको उपसिटपुन्नसञ्चयो, जिनं पतिक्खं [पति + इक्खां = पतिक्खं] परिवासी रक्खितिन्द्रियो।
703.
सुत्वन घोषं जिनवरचक्कवत्तन, गन्त्वान दिस्वा इसिनिसभं पसन्नो;
मन्यसेठं मुनिपवरं अपुच्चि, समागते असितवहायस्स ससानेति।
Vatthugāthā niṭṭhitā.
704.
"अनन्यातामेतं वचनं, असितस्स यथातथं;
तं तं गोतम पुच्छामि, सब्बधम्मना परागुम्।
705.
"अनागरीयुपेतस्स, भिक्खाचारियं जिगिसातो;
मुनि पब्रुहि मे पुत्थो, मनीयां उत्तमं पदं"।
706.
"मनीयं ते उपानिस्सां, (इति भगव) दुक्करं दुरभिसंभवं;

हांदा ते नं पवक्खामि, संतंभस्सु दाहो भव।
707.
"समानभागं कुब्बेथा, गेमे अक्कुथवंदितम्;
मनोपादोसं रक्खेय्य, संतो अनुणतो ध्यान।
708.
"उच्चावचा निच्चरन्ति, दये अग्गिसीखुपमा;
नारियो मुनिं पलोभेंति, तासु तं मा पलोभयुं।
709.
"विरातो मेथुना धम्म, हित्वा कामे परोपरे [परोवरे (सि. पि.), वरवरे (सि.)];
अविरुद्धो असरत्तो, पनेसु तसथवारे।
710.
"यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं;
अत्तनं उपमं कत्वा, न हनेया न घटये।
711.
"हित्वा इच्छांच लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो;
चक्खुमा पतिपज्जेय, तारेया नरकं इमामं।
712.
"स्नुदारो मिताहारो, अप्पिचस्सा अलोलूपो;
सदा [सा वे (पी.)] इच्छा निच्चतो, अनिच्चो होती निब्बुतो।
713.
"स पिंडाचरण चरित्वा, वनंतमभिहारये;
उपाथितो रुक्खमूलस्मिं, असानुपगतो मुनि।
714.
"सा झाणपसुतो धीरो, वनंते रमितो सिया;
झायेत् रुक्खमूलस्मिं, अत्तनमभितोसयम्।
715.
"ततो रत्या विवसाने [विवसने (सि. स्या. पि.)], गमंतमभिहारये;
आह्वानं नाभिनन्देय, अभिहारञ्च गमातो।
716.
"न मुनि गमामागम्मा, कुलेसु सहसा ध्यान;
घासेसानां छिन्नकथो, न वाचं प्युतं भने।
717.
"अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति;
उभयेनेव सो ताड़ी, रुक्खावुपनिवात्तति [रुक्खावु'पतिवत्तति (का.), रुक्खाउउपातिवात्तति (स्या.)]।
718.
"सा पत्तपाणि विकान्तो, अमुगो मुगसम्मतो;
अप्पं दानं न हिदेय्य, दातरं नवाजनिया।
719.
"उच्चवाचा हि पतिपदा, समानेण पाकसिता;
न परं दिगुणं यंति, नायिदं एकगुणं मुतं।
720.
"यस्सा च विसाता नत्थि, छिन्नसोतस्सा भिक्खुनो;
किच्चाकिच्चप्पहिनास्सा, परिषाहो न विज्जति।
721.
"मनीयं ते उपनिस्सां, खुराधारुपमो भवे;
जीवहाय तालुमहच्च, उदारे सननतो सिया।
722.
"अलिनचित्तो च सिया, न कपि बहु चिंताये;

निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचर्यपरायणो।
723.
"एकासनस्स सिक्खेथा, समनुपासनस्स च;
एकत्तं मोनमक्खातं, एको सी अभिरामिस्ससि;
अथ भासि [भासिहि (सि. स्या. पि.)] दसादिसा।
724.
"सुत्वा धिरानं निग-घोषं, झायिनं कामचागिनं;
ततो हिरिञ्च साधञ्च, भय्यो कुब्बेथ ममको।
725.
"तं नादिहि विजानाथ, सोब्बेसु पदारेसु च;
सनंता यंति कुसोब्भा [कुसुब्भा (सि.)], तुन्हियंति महोदधि।
726.
" यदुनकं तं सनाति, यं पूर्णं संतमेव तं;
अद्धकुंभोपमो बालो, रहदो पुरोवा पण्डितो।
727.
"यं समणो बहुं भासति, उपेतं अट्ठसंहितां;
जनं सो धम्मं देसेटि, जनं सो बहु भासति।
728.
"यो च जनं संयत्ततो, जनं न बहु भासति;
सा मुनि मोनमरहति, सा मुनि मोनमज्झागा'ति।
नालकसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. नालकसुत्तं
वसात.
आनंदजाते तिदसगणे पतिते, सखंडच इंदं सुचिवसने च देवे।
दुसं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि एडदस दिवविहारे॥
.
दिस्वां देवे मुदितमने उद्‌ग्गे, चित्तं कारित्वान इदमवोच [कारित्वा इदमवोचासि (सी०)] तथा।
"किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो, दुस्सं गहेत्वा रामयथ [भमयथ (सी०)] किं पतिचत्॥
686.
"यदापि असि असुरेहि सङ्‌गमो, जयो सुरानं असुर हारा॥
तदापि नेतादिसो लोमहंसनो, किम्बभुतं दत्थु मेरु पमोदिता॥
.
"सेळेन्ति गायन्ति च वद्यन्ति च, भुजानि फोतेन्ति [पोथेन्ति (सी० पी०), पोथेन्ति (क०)] च नचचयन्ति च।
पुच्छमि वोहं मेरुमुद्धवासिने, धुनाथ मे संसयां खिप्प मारिसा"॥
688.
"सोबोधिसत्तो रत्नावरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखथाय [हितसुखताय (सी० स्या० पी०)] जातो।
सक्यां गामे जिलाए लुम्बिनेयये, तेनमह तुत्था अतिरिव कल्यरूपा॥
.
"सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरसाभो सब्बसत्तुत्तमो।
वट्टेस्सति च त्रकमसिव्हये वने, नन्दव सीहो बलवा मगाभिभू"॥
6.
तं सद्दं सुत्वा तुरितमव्सि सो, शुद्धोधनस्स तद भवनं उपावसि [उपगामी (सी० पी०)]।
निस्साज्ज तत्थ इदमवोचासि सकये, "कुहिं कुमारो अहमपि दत्थुकामो"॥
.
ततो कुमारं जलितमिव सुवन्नं, उक्राकामुखेव सुकुसलसंपहट्ठं [सुकुसलेन संपहत्थं (क०)]।
दद्दलल्लमानं [दद्दळहमानं (क०)] सिरिया अनोमवन्नं, दस्सेसु पुत्तं असितव्हयस सक्या॥

.
दिसवा कुमारं सखिमिव पज्जलन्तं, तारासभं नभसिगमं विशुद्धं।
सूर्यं तपन्तं सरदारिवभमुत्तं, आनंदजातो विपुलमलत्थ पीतिं॥
6.
अनेकसाखं च सहस्समण्डलं, छत्तं मरु धार्युमन्तलिखे।
सुवन्नदं वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरचत्तगाहका॥
.
दिस्वा जाति कन्हसिरिवह्यो इसि, सुवन्निक्खं विय पाण्डुकम्बले।
सेतञ्च छत्तं धारियन्त [धारियन्त (स्या०), धारयन्तं (सी० क०)] मुद्धनि, उद्‌गचित्तो सुमनो पतिग्गहे॥
60% वीडियो.
पतिग्गहेत्वा पन्य सकपुङ्गवं, जिगिसतो [जिगिंसको (सी० स्या० पी०)] लक्खणमंतपरागू।
पस संज्ञाचित्तो गिरम्बुधिरयि, "अनुत्तरायं द्विपदानमुत्तमो" [दीपदानमुत्तमो (सी० स्या० पी०)]॥
.
अथत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गळयति अस्सुकानि।
दिस्वां साक्या इसिम्वोचुं रुदन्तं,
``नो चे कुमारे भविसस्ति अन्तरायो"॥
.
दिस्वां साक्ये इसिमवोच अक्लये, "नहं कुमारे अहितमनुस्सरमि।"
न चापिमस्स भविष्यसति अंतरायो, न ओर्कायं अधिमानसा [अधिमानसा (सी० स्या०)] भवथ॥
.
"संबोधियग्गं फुसिस्तायं कुमारो, सो धम्मचत्रकं परमविसुद्धदासि।
वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पि, विठारिकस्स भविष्यस्ति ब्रह्मचर्यं॥
6.
"ममञ्च आयु न चिरमिधवसेसो, अथन्तरा मे भविस्स्ति कालकिरिया।
सोहं न सोस्सं [सुसं (सी० स्या०)] असमधुरस्स धम्मं, तेनमहि अत्तो बिसनंगतो अघवी"॥
700.
सो साकियानं विपुलं जनेत्वा पीतिं, अन्तेपुर्म्हा निग्मा [निर्गमा (सी० स्या०), निगमा (सी० सी०), निर (पी०)] ब्रह्मचारीगम।
सो भगिनेयं सयं अनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस धम्मे॥
700.
"बुद्धोति घोसं यद [यद्य (स्या० क०)] परतो सुनासि, सम्बोधिप्ततो विवर्ति धम्ममग्गं।
गन्त्वान तथा समयं परिपुच्छमानो [सयं परिपुच्छियानो (सी० स्या०)], चरस्सु तस्मिन भगवती ब्रह्मचर्यं॥
7.
तेनानुसिट्ठो हितमनेन तादिना, अनागते परमविशुद्धस्सिना।
सो नालको उपचितपुञ्जनसञ्चयो, जिनं पतिक्खं [पति + इखं = पतिक्खं] परिवसि रक्खितिन्द्रियो॥
70.50.
सुत्वान् घोसं जिनवरच त्रकवत्तने, गन्त्वान् दिस्वा इसिनिसभं पस संज्ञाओ।
मोनेयसेत्थं मुनिपवरं अपुच्छि, समागते असिताव्हयस सस्नेति॥
वथुगाथा निश्चितिता।
7 सप्ताह
"अज्ञातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं।
तं तं गोतम पुच्छमि, सब्बधम्मन पारगुं॥
7
"अंगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगीसतो।
मुनि पब्रुहि मे पुत्थो, मोनेयं उत्तमं पदं॥
7
"मोनेयं ते उपज्ञिस्सं, (इति भगवान) दु:क्रं दुर्लभसंभवं।"
हन्द ते नं पवक्खामि, सन्तम्भस्सु दाळचो भव॥
700

"समानभागं कुब्बेथ, गमे अकुत्थवंदितं।
मनोपदोसं राखेयय, सन्तो अनुन्नतो चरे॥
7
"उच्चाचावचा निच्छरन्ति, दायये अग्गिसीकूपमा।"
नारियो मुनिं पलोभेन्ति, तासु तं मा पलोभ्युं॥
7
"विरतो मेथुना धम्मा, हित्वा कामे परोपरे [परोवरे (सी॰ पी॰), वरावरे (स्या॰)]।
अविरुद्धो असरत्तो, पनेसु तस्थवरे॥
7 100.
"यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तनं उपमं कत्वा, न हनेयै न घटये॥
711.
"हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यथा सत्तो पुथुज्जनो।
चखुमा पटिपजजेय, तरेय नरकं इमं॥
711.
"ऊनुदारो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो।
सदा [स वे (पी॰)] इच्छाय निच्चतो, अनिच्छो होति निब्बुतो॥
7.15.
"स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये।"
उपत्थितो रुक्खमूलस्मिं, असंरूपपगतो मुनि॥
7
" स झानपसुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया।"
झायेत् रुक्खमूलस्मिं, अत्तनमभितोस्यां॥
71.
"ततो रत्या विवसने [विवसने (सी॰ स्या॰ पी॰)], गमन्तमभिहारये।
आह्वानं नाभिनन्देय, अभिहारञ्च गमतो॥
7.
"न मुनि गम्मागम्म, कुलेसु सहसा चरे।
घासेसनं छी संज्ञाकथो, न वाचं पयुतं भने॥
71.
"अल्लथं यदिदं साधु, नलथं कुसलं इति।
उभयेनेव सो ताड़ी, रुक्खंवुपनिवत्ति [रुक्खंवु'पतिवत्तति (क॰), रुक्खण्व उपतिवत्ति (स्या॰)]॥
711.
"स पत्तपाणि विचारन्तो, अमुगो मुगसम्मतो।
अप्पं दानं न हीळेयय, दातारं नावजानिया॥
711.
"उचछावचा हि पतिपदा, समानेन पकासिता।"
न पारं दिगुणं यंति, नयिदं एक्गुणं मुतं॥
725.
"यस्स च विसाता नत्थि, छि नयनसोतस्स भिक्खुनो।
किचाचाकिचचप्पिनस्स, परिळाहो न विज्जति॥
722.
"मोनेयं ते उपञ्जिस्सं, कुर्धारूपमो भवे।"
जिव्हाय तालुमहच, उदेरे संज्ञतो सिया॥
722.
"अलेनचित्तो च सिया, न चापि बहुचिंतये।
निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचर्यपरायणो॥
7.25.

"एकासनस्ससिक्खेथ, समनुपासनसस च।'
एकत्तं मोनमकख्तं, एको चे अभिरमिस्सी।
अथ भासीस [भासिहि (सी० स्या० पी०)] दसदिसा॥
7.
"सुत्वा धीराणं निघोसं, झायिनं कामचागिनं।
ततो हिरिञ्च साधनच, भय्यो कुब्बेथ मामको॥
7
"तं नदीहि विजयनाथ, सोब्बेसु पदरेसु च।
सन्नता यन्ति कुसोब्भा [कुसुब्भा (सी०)], तुन्हियान्ति महोदधि॥
7 2000.
" यदुनकं तं शांति, यं पूर्णं संतमेव तं।
अन्नकुंभोपमो बालो, रहदो पुरोव पण्डितो॥
7
"यं समानो बहुं भासति, उपेतं अथसंघितं।
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति॥
7
"यो च जानं संयत्तो, जानं न बहु भासति।
स मुनि मोनमरहति, स मुनि मोनमज्झगा"ति॥
नालकसुतं एकादसमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.12 द्वयतानुपासनासुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दुनिया में सभी दर्द उपाधि, अविज्जा, संखरा विन्नान, चरण, वेदना, तन्हा, उपादान, आरंभ, आहार, इंगिता, निस्साय, रूप, मोसाधम्म, सुखा से उत्पन्न होते हैं।

अंतर्वस्तु
13.12 द्वयतनुपस्सनसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

3.12 द्वयतनुपस्सनसूत्र
अनुवाद
मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) श्रावस्ती में पुब्बाराम में, मिगारमाता के निवास स्थान पर थे। उस समय उपोसथ तिथि के पंद्रहवें दिन, पूर्णिमा की शाम को, भगवान (भगवान बुद्ध) भिक्षुओं की सभा से घिरे खुले में बैठे थे। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने भिक्षुओं की मौन सभा का अवलोकन करते हुए उन्हें संबोधित किया (इस प्रकार):

'हे भिक्षुओं, जो भी धर्म (सत्य) अच्छे, श्रेष्ठ, मुक्तिदायक और पूर्ण ज्ञान की ओर ले जाने वाले हैं, उन्हें सुनने से आपको क्या लाभ है? हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछे, तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जाएगा: "हाँ, दो धर्मों की सही समझ के लिए।" "आप किन दो धर्मों की बात कर रहे हैं?" "

(मेरा मतलब है), यह पीड़ा है, यह पीड़ा का मूल है," यह एक विचार है, "यह पीड़ा का नाश है, यह पीड़ा के नाश की ओर ले जाने वाला मार्ग है," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होता

है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा:

1. 'जो लोग पीड़ा और पीड़ा के कारण को नहीं समझते, और जहाँ पीड़ा पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, और जो पीड़ा के निवारण का मार्ग नहीं जानते, (729)

2. 'वे, विचार की मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति से वंचित, संसार (पुनर्जन्म के चक्र) का अंत करने में असमर्थ हैं, वे निश्चित रूप से पुनर्जन्म और क्षय के चक्र में लीन रहेंगे। (730)

3. 'और जो लोग पीड़ा और पीड़ा के कारण को समझते हैं, और जहाँ पीड़ा पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, और जो पीड़ा के निवारण का मार्ग जानते हैं, (731)

4. 'वे, विचार की मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति से संपन्न, संसार का अंत करने में सक्षम हैं, वे पुनर्जन्म और क्षय के चक्र में लीन नहीं होंगे। (732)

(ख) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब उपाधियों (अस्तित्व के तत्वों) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु उपाधियों के पूर्ण विनाश से, यानी वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत बुद्ध ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 5. 'संसार में अनेक प्रकार के जितने भी दुख हैं, वे उपाधियों के कारण उत्पन्न होते हैं; जो अज्ञानी उपाधि उत्पन्न करता है, वह मूर्ख फिर से दुख भोगता है; इसलिए बुद्धिमान होकर उपाधि उत्पन्न न करो, क्योंकि दुख का जन्म और उत्पत्ति 733 है।

(सी)' "यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब अविज (अज्ञान) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में अविज के पूर्ण विनाश से दुख का कोई उद्‌गम नहीं है," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनः जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 6. 'जो बार-बार जन्म-मृत्यु के संसार में जाते हैं, इस तरह या उस तरह अस्तित्व में आते हैं, वह अविज्या (अज्ञान) की अवस्था है। (734)

7. 'क्योंकि यह अविज्या (अज्ञान) वह महान मूर्खता है जिसके कारण यह (अस्तित्व) दीर्घकाल से गुजरा है, परन्तु जो प्राणी ज्ञान का सहारा लेते हैं वे पुनर्जन्म नहीं लेते। (735)

(घ) "यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न करे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा विचार है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब संस्कारों (पापों) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु कर्मों के अभाव से संस्कारों के पूर्ण नाश से पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत विचार करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' यह भगवान (बुद्ध) ने कहा। (और) जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 8. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब संस्कारों के फलस्वरूप होती है; संस्कारों के नाश होने से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रहेगा। (736)

9. 'संस्कारों से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुःख समझकर, समस्त संस्कारों के निवारण और चेतना के नाश होने से पीड़ा का नाश होगा; इसे पूर्णतः समझ लेने पर, (737)

10. 'सच्चे दृष्टिकोण वाले और सिद्ध ज्ञानी, जो (सभी बातों को) पूर्णतः समझ चुके हैं और मृत्यु के देवता (मरा) से सभी संबंध समाप्त कर चुके हैं, वे पुनर्जन्म नहीं लेते। (738)

(ई) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब विन्नान (चेतना) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु विन्नान के पूर्ण विनाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 11. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब विन्नन्न के फलस्वरूप होती है; विन्नन्न के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (739)

12. 'विन्नन्न से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, विन्नन्न के नाश होने से इच्छा से मुक्त भिक्षु पूर्णतः सुखी (परिनिभूत) हो जाता है। (740)

(F) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब स्पर्श के कारण होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 13. 'जो लोग फस से ग्रस्त हैं, जो जीवन की धारा का अनुसरण करते हैं, जो बुरे मार्ग पर चल पड़े हैं, उनके लिए बंधनों का नाश बहुत दूर है। (741)

14. 'परन्तु जो लोग फस को पूर्णतः समझकर, जानबूझकर निश्चिंतता में आनंद लेते हैं, वे फस की समझ से और इच्छा से मुक्त होकर पूर्णतः सुखी होते हैं। (742)

(G)'"यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है वह सब वेदनों (संवेदनाओं) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में वेदनों के पूर्ण नाश से पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 15. 'सुख या दुख, सुख और दुख की कमी सहित, जो कुछ भी आंतरिक और बाह्य रूप से अनुभव किया जाता है, (743)

16. 'इसे दुख समझकर, नाशवान और भंगुर को स्पर्श करके, (हर चीज के) क्षय को देखकर, भिक्षु विरक्त हो जाता है, वेदों के क्षय से विवश होकर, और पूर्णतः सुखी हो जाता है। (744)

(एच) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब तन्हा (लालसा) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु तन्हा के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 17. 'तन्हा (लालसा) से ग्रस्त मनुष्य, लंबे समय तक इस या उस प्रकार से जन्म-मृत्यु के चक्र में जन्म लेता रहता है, वह पुनर्जन्म (संसार, पुनर्जन्म चक्र) से मुक्ति नहीं पाता। (745)

18. 'तन्हा के इस दर्द के मूल कारण को दुख मानकर, भिक्षु तन्हा (लालसा) से मुक्त होकर, किसी भी चीज को पकड़े बिना, चिंतनशील होकर विचरण करे। (746)

(I) 'यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए,' हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछता है, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब उपदानों (लालसाओं) का परिणाम है,' यह एक विचार है, 'परन्तु उपदानों के पूर्ण विनाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई मूल नहीं है,' यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन

करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनः जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 19. 'अस्तित्व उपदानों का परिणाम है; जो अस्तित्व में आया है वह भोगता है, जो जन्म लेता है वह मरता है, यही भोग का कारण है। (747)

20. 'अत: उपदानों के नाश होने पर, पूर्ण ज्ञान से युक्त ज्ञानी भिक्षु, पुनर्जन्म के नाश को देखकर, पुनः जन्म लेने के लिए नहीं जाते। (748)

(जे) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आरंभों (प्रयासों) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु आरंभों के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव में, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 21. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आरंभों (पापों, इच्छाओं) का परिणाम है; आरंभों के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (749)

22, 23. 'आरम्भों से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, सभी आरंभों का त्याग करके, जो भिक्षु अनायास ही मुक्त हो गया है, जिसने जीवन की इच्छा को त्याग दिया है, और जिसका मन शांत है, वह पुनर्जन्म और जन्म-जन्म के चक्र से मुक्त हो गया है; उसके लिए कोई पुनर्जन्म नहीं है। (750, 751)

(के) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आहारों (भोजन?) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में आहारों के पूर्ण विनाश से पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 24. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आहारों का परिणाम है; आहारों के नाश से पीड़ा का कोई कारण नहीं रह जाता। (752)

25. 'इस पीड़ा को, जो आहारों से उत्पन्न होती है, दुःख समझकर, सभी आहारों का परिणाम देखकर, सभी आहारों का सहारा न लेकर, (753)

26. 'यह देखकर कि स्वास्थ्य इच्छाओं के नाश से प्राप्त होता है, जो विवेकपूर्ण सेवा करता है और धर्म में दृढ़ रहता है, उसे विद्यमान, सिद्ध नहीं माना जा सकता। (754)

(एल) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आवेग (उत्तेजना) के कारण होती है," यह एक विचार है, "परन्तु आवेग के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई स्रोत नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 27. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब अंतर्मन के कारण होती है; अंतर्मन के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (755)

28. 'अंतरमन से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, अंतर्मन का त्याग करके और संस्कारों (पापों, कर्मों, आदतों) को रोककर, भिक्षु (भिक्षु) इच्छा से मुक्त होकर और किसी भी चीज को न पकड़कर, चिंतनशील होकर विचरण करे। (756)

(एम)'"यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछता है, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "निश्चय (आश्रित) के लिए दुविधा होती है," यह एक विचार है, "स्वतंत्र (मनुष्य) दुविधा में नहीं रहता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक

फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनर्जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 29. 'स्वतंत्र (मनुष्य) विचलित नहीं होता, और आश्रित (मनुष्य) किसी न किसी रूप में अस्तित्व को थामे रखकर संसार (पुनर्जन्म के चक्र) को पार नहीं कर पाता। (757)

30. 'इसे दु:ख समझकर और जिन चीजों पर तुम निर्भर हो उनमें बड़ा खतरा देखकर, भिक्षु को स्वतंत्र रूप से, किसी भी चीज को थामे बिना, विचारशील होकर विचरण करना चाहिए। (758)

(एन) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "हे भिक्षुओं, निराकार (प्राणी) रूप (अर्थात रूप धारण करने वाले) से अधिक शांत हैं," यह एक चिंतन है, "निरस्त निराकार से अधिक शांत है," यह दूसरा चिंतन है, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रहता है, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 31. 'जो प्राणी सजीव हैं, और जो निराकार (जगत) में निवास करते हैं, वे मृत्यु के रहस्य को न जानते हुए पुनर्जन्म के लिए विवश हैं। (759)

32. 'परन्तु जो सभी रूपों को पूर्णतः समझकर निराकार (जगत) में स्थिर रहते हैं, जो मृत्यु के रहस्य में मुक्त हो जाते हैं, वे मृत्यु को त्याग देते हैं। (760)

(हे) 'यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए,' हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: 'मनुष्य जगत, देवताओं (देवदूतों), मार (राक्षस), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), और समन (भिक्षुओं), ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे सत्य माना गया है, वह श्रेष्ठ लोगों द्वारा अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में असत्य सिद्ध हो गया है,' यह है एक विचारणीय बिंदु यह है कि, "हे भिक्षुओं, मनुष्यों के संसार, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामनों (भिक्षुओं), ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे असत्य माना गया है, वही सत्य श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा अपने पूर्ण ज्ञान के माध्यम से सिद्ध हुआ है।" यह एक अन्य विचारणीय बिंदु है। अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 33. 'असत्य में सत्य को देखकर, नाम और रूप में निवास करने वाले मनुष्यों और देवताओं के संसार को देखकर, वह सोचता है: "यह सत्य है।" (761)

34. 'वे चाहे जिस तरह से भी सोचें, वह उनके लिए असत्य हो जाता है, और जो असत्य है वह नाशवान है। (762)

35. 'जो असत्य नहीं है, निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता), जिसे श्रेष्ठ लोग सत्य मानते हैं, वे सत्य की समझ से इच्छा से मुक्त होकर पूर्णतः सुखी हो जाते हैं। (763)

(P) “यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए,” हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा विचार है और कैसे है: “हे भिक्षुओं, मनुष्यों, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामन, ब्राह्मण, देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे सुख माना गया है, वही श्रेष्ठ भिक्षुओं ने अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में कष्ट सिद्ध किया है,” यह एक विचार है; “हे भिक्षुओं, मनुष्यों, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामन, ब्राह्मण, देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे कष्ट माना गया है, वही श्रेष्ठ भिक्षुओं ने अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में सुख सिद्ध किया है,” यह दूसरा विचार है।” अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने ऐसा कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 36. 'रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श सभी वांछनीय हैं, जब तक वे बने रहते हैं तब तक सुखद और आकर्षक होते हैं, ऐसा कहा जाता है। (764)

37. 'तुम्हारे द्वारा, मनुष्य और देवता के संसार द्वारा ये (चीजें) सुख मानी जाती हैं, परन्तु जब वे समाप्त हो जाती हैं तो वे इसे दु:ख मानते हैं। (765)

38. 'कुलीनों द्वारा विद्यमान शरीर का अंत सुख माना जाता है; यह सांसारिक (मान्यता) के विपरीत है। (766)

39. 'जो वे (सांसारिक) सुख कहते हैं, उसे श्रेष्ठ (आर्य, अरहत, प्रबुद्ध) पीड़ा कहते हैं, जो वे पीड़ा कहते हैं, उसे श्रेष्ठ (आर्य) आनंद के रूप में जानते हैं। (767)

देखो, यहाँ एक ऐसा धर्म है जिसे समझना कठिन है, यहाँ अज्ञानी भ्रमित हैं, वे केवल अंधकार देखते हैं। (768)

40. 'जो (सांसारिक) रूप से घिरे हैं, उनके लिए उदासी है, जो नहीं देखते, उनके लिए अंधकार है, और अच्छे लोगों के लिए यह प्रकट प्रकाश है, जो देखते हैं, उनके लिए प्रकाश है; (निकट होने पर भी), जो मार्ग और धर्म से अनभिज्ञ हैं, वे (कुछ भी) नहीं समझ पाते। (769)

41. 'जो लोग जीवन के जुनून से अभिभूत हैं, जो जीवन की धारा का अनुसरण करते हैं, जो मृत्यु के लोक में प्रवेश कर चुके हैं, वे इस धर्म को पूरी तरह से नहीं समझ पाते। (770)

42. 'अरुद्ध (पूर्णतः प्रबुद्ध) अरहत की पूर्णतः जागृत अवस्था को केवल कौन प्राप्त कर सकता है? इस अवस्था को पूर्णतः समझ लेने पर, वासना से मुक्त लोग पूर्णतः निर्वाण (अमरता) प्राप्त कर लेते हैं।' (771)

ये शब्द भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहे। भगवान (भगवान बुद्ध) के वचन सुनकर वे भिक्षु प्रसन्न हुए। जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब साठ भिक्षुओं के मन किसी भी बात को पकड़े बिना मुक्त हो गए।

द्वयतनुपस्सनासुत्त समाप्त हुआ।

महावग्ग समाप्त हुआ।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. द्वयतानुपासनासुत्तम्
एवं मे सुतम् - एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति पुब्बारामे मिगारामतुपासदे। तेन खो पना समयेन भगवान तदाहुपोषथे पन्नरासे पुन्नया पुनमाया रत्तिया भिक्खुसंघपरिवुतो अब्भोकसे निस्न्नो होति। अथ खो भगव तुन्हिभूतं तुन्हिभूतं भिक्खुसंघं अनुविलोकेत्वा भिक्खु अमांतेसि -

"ये ते, भिक्खवे, कुसाला धम्म अरिया निय्यनिक संबोधगामिनो, तेसां वो, भिक्खवे, कुसलानां धम्मनां अरियाणं निय्यानिकं संबोधगामिनं का उपनिसा सवानायति इति सी, भिक्खवे, पुच्छितरो अस्सु, ते एवमसु वचन्या - 'यावदेव द्वयतानां धम्मनां यथाभूतं नाणायति। किञ्च द्वयत् वदेतः?
(1) "इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयोति अयमेकनुपासना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुःखनिरोधगामिनी पतिपदाति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा द्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्सा अतापिनो पहितत्तस्सा विहारतो द्विन्नं फलानां अनंतारं फलं पटिकंखां - दिट्ठेव्ह धम्मे अनाना, सति वा उपादिसे अनागमिता'ति।
इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
729.
"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्सा संभवं;
यत्थ च सब्बासो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति;
तन्च मग्गं न जानन्ति, दुक्खुपासमगामिनं।
730.
"सीतोविमुत्तहिना ते, अथो पन्नविमुत्तिया;
अभब्बा ते अंतकिरियाया, ते वे जातिजरूपगा।
731.
"ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्सा संभवं;
यत्थ च सब्बासो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति;

तन्च मग्गं पजानन्ति, दुक्खुपासमगामिनं।
732.
"सीतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पन्नविमुत्तिया;
भब्बा ते अंतकिरियाया, न ते जातिजरूपगा'ति।
(2) "सिया अण्णेनपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपासनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपाधिपच्चयति, अयमेकनुपासना। उपाधीनं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
733.
"उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरुपा;
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुणं दुक्खमुपेति मंदो;
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्सा जातिप्पभवानुपासि'ति।
(3)"'सिय अन्ननेपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं अविज्जपच्चयति, अयमेकनुपासना। अविज्जाया त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
734.
" जातिमरणसंसारं, ये वजंति पुनप्पुनं;
इत्थभावान्नथाभावं, अविज्जायेव स गति।
735.
"अविज्जा हयं महामोहो, येनिदं संसितं सिरं;
विज्जगता च ये सत्ता, न ते गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सि. पि.)] पुनाभव"न्ति।
(4) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं संखारापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। संखारणं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
736.
"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं संखारापच्चया;
संखारणं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
737.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं संखारापच्चया;
सब्बासंखरसमथा, संनानं उपरोधन;
एवं दुक्खक्खयो होति, एतं नात्वा यथातथम्।
738.
"सम्मद्दसा वेदागुणो, सम्मदन्याय पंडिता;
अभिभुयं मरसंयोगं, न गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सि. पि.)] पुनाभव"न्ति।
(5) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं विन्नपच्चयति, अयमेकनुपासना। विनाशस त्वेव असेसाविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
739.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बां विणनापच्चया;
विनन्नास्सा निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
740.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं विनाणपच्चया;
विन्ननुपसमा भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो'ति।
(6) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं संभोति सब्बं फस्सापच्चयति, अयमेकनुपासना। फस्स्सा त्वेव असेसाविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
741.
"तेसं फस्सपरेताणं, भवसोतानुसारिनां;
कुम्मग्गपतिपन्नानं, अरा संयोगनक्खयो।
742.
"ये च फस्सां परिणया, अनन्यायुपासमे [पन्या उपसमे (स्या.)] रता;
ते वे फस्साभिसमय, निच्चता परिणिबुता'ति।

(7) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदानापच्चयति, अयमेकनुपासना। वेदानां त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
743.
"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह;
अज्झत्तञ्च बहिद्ध च, यं किञ्च अत्थि वेदितम्।
744.
"एतं दुक्खंति नात्वाना, मोसाधम्मं पलोकिनं [पलोकितं (सि.)];
फुस्सा फुस्सा वयं पासं, एवं तत्थ विजानति [विरज्जति (का. सी.)];
वेदानां खय भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो'ति।
(8) "सीय अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सय? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं तन्हापच्चयति, अयमेकनुपासना। तन्हाय त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
745.
"तन्हादुतियो पुरिसो, दीघमधना संसारम्;
इत्थभावान्नथाभावं, संसारं नातिवत्तति।
746.
"एतमादीनवं नत्वा, तन्हां [तंहा (बहुसु) इतिवुत्तके 15 पासितब्बां] दुक्खस्सा संभवं;
वितातन्हो अनादानो, सातो भिक्खु परिब्बजे'ति।
(9) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चयति, अयमेकनुपासना। उपादाननम् [उपादानस्सा (स्या. का.)] त्वेव असेसाविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
747.
"उपादानपच्चया भावो, भूतो दुक्खं निगच्छति;
जतस्सा मरणं होति, एसो दुक्खस्सा संभवो।
748.
"तस्मा उपादानक्खया, सम्मादानन्या पंडिता;
जातिक्खयं अभिनयाय, न गच्छन्ति पुनाभवाऽन्ति।
(10) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरंभपच्चयति, अयमेकनुपासना। अरामभानं त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
749.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरंभपच्चया;
अरामभानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
750.
"एतमादिनवं नात्वा, दुक्खं आरंभपच्चया;
सब्बारंभं पतिनिस्साज्ज, अनारंभे विमुत्तिनो।
751.
"उच्चिन्नभवतानहस्स, संतचित्तस्स भिक्खुनो;
विक्खिनो [वितिणो (सि.)] जतिसंसारो, नत्थि तस्स पुणब्भवो'ति।
(11) "सीय अण्णेनपि...पे...कथञ्च सिया?" यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं अहारपच्चयति, अयमेकनुपासना। आहारं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
752.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया;
आहारं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
753.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं आहारपच्चया;
सब्बाहारं परिणय, सब्बाहारमनिस्सितो।
754.
"आरोग्यं सम्मादानाय, आसवनं परिक्खया;
सांखया सेवी धम्मथो, सांख्यं [संखं (सि. पि.)] नोपेटि वेदगु"ति।

(12) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं इंजितापच्चयति, अयमेकनुपासना। इंजितानं त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
755.
"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इन्जितापच्चया;
इन्जितानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
756.
"एतमादीनवं नात्वा, दुक्खं इंजितापच्चया;
तस्मा हि एजं वोसज्जा, संखारे उपरुंधिया;
अनेजो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बाजे'ति।
(13) "सीय अण्णेनपि...पे... कथाञ्च सय? निस्सीतस्सा कलितं होतिति, अयमेकनुपासना। अनिस्सितो न कैलाति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
757.
"अनिस्सिटो न कैलति, निस्सिटो च उपादीयम्;
इत्थभावान्नथाभावं, संसारं नातिवत्तति।
758.
"एतमदीनवं नात्वा, निस्सायेसु महभभयं;
अनिस्सिटो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बजे'ति।
(14) "सीय अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सय? रुपेहि, भिक्खवे, अरूपा [अरुप्पा (सि. पि.)] संततारति, अयमेकनुपासना। अरूपेहि निरोधो संततरोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
759.
"ये च रूपपगा सट्टा, ये च अरुपत्थायिनो [अरुपवासिनो (सी. पी.)];
निरोधं अप्पजनंता, आगन्तरो पुनब्भवं।
760.
"ये च रूपे परिणय, अरूपेसु असंहिता [सुसंहिता (सि. स्या. पि.)];
निरोधे ये विमुच्चन्ति, ते जना मक्कुहायिनो'ति।
(15) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा लोकससा समरकस्सा सब्रह्मकस्सा सस्सामणब्राह्मणीय पजया सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्जयितं तदमरियाणं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पन्याय सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं , भिक्खवे, सदेवकस्सा...पे... सदेवमनुस्साय इदं मुसति उपनिज्जयितं, तदमरियाणं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मप्पन्याय सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
761.
"अनत्तनि अत्तमनिः [अत्तमनि (स्या.), अत्तमानं (पि. का.)], पस्सा लोकं सदेवकम्;
निवित्थं नामरूपस्मि, इदं सच्चन्ति मन्नति।
762.
"येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अनंता;
तांहि तस्स मुसा होति, मोसाधम्मनि इत्तरं।
763.
"अमोसधम्मं निब्बाणं, तदरिया सकातो विदु;
ते वे सच्चभिसमय, निच्चता परिणिबुता'ति।
(16) "सिया अन्ननेपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा लोकससा समरकस्सा सब्रह्मकस्सा सस्सामणब्राह्मणिय पजया सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्जयितं, तदमरियाणं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पन्नया सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा...पे... सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्जहयितं तदमरियाणं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मप्पनया सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्सा अतापिनो पहितत्तस्सा विहारतो द्विन्नं फलानं अनंतारं फलं पटिकंखां - दिट्ठेव्ह धम्मे अनाना, सति वा उपादिसे अनागमितति। इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
764.
"रूपा सद्दा रस गंधा, फस्सा धम्म च केवला;
इत्था कांता मनापा च, यावतत्थिति वुच्चति।
765.

"सदेवकस्सा लोकस्सा, एते वो सुखसम्मता;
यत्था सीते निरुज्जन्ति, तं नेसं दुक्खसम्मतम्।
766.
"सुखंति दीठमार्येहि, सक्कयासुपरोधनं;
पच्चनिकमिदं होति, सब्बलोकेन पसाताम्।
767.
"यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो;
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदु।
768.
"पस्सा धम्मं दुराजनं, संपमुढेत्थाविद्दासु [संपमुढेत्था अविद्दसु (सि. पि.), सम्मुढेत्था अविद्दसु (?)];
निवुतानं तमो होति, अंधकारो अपस्सतम्।
769.
"सतञ्च विवत्तं होति, आलोको पस्सतमिव;
संतिके न विजानन्ति, मग्गा धम्मस्सा कोविदा।
770.
"भवरागपरतेहि, भवसोतानुसारिभि;
मरधेय्यानुपन्नेहि, नायं धम्मो सुसंबुद्धो।
771.
"को नु अनंतरामरियहि, पदं संबुद्धुमरहति;
यं पदं सम्मादानन्या, परिनिब्बन्ति अनासाव'ति।
इदमवोका भगव। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिनंदनंति। इमस्मिं च [इमास्मिं खो (सि.)] पण वेय्यकरनस्मिं भन्नमने सत्थिमत्तनं भिक्खुनं अनुपादया असावेहि चित्तानि विमुच्चिसुति।
द्वयतानुपासनासुत्तं द्वादसमं नियतम्।
Tassuddānaṃ —
सच्चं उपधि अविज्जा च, संखरे विनाशनपञ्चमम्;
फस्वेदनीय तन्हा, उपादानारम्भाहारा;
इन्जितं कलितं रूपं, सच्चं दुक्खेन सोससति।
महावग्गो ततियो निठ्ठितो।
Tassuddānaṃ —
पब्बज्जा च पधानञ्च, सुभाषितञ्च सुंदरी;
माघसुत्तं सभियो च, सेलो सल्लंका वुक्कति।
वासेठो कपि कोकालि, नालको द्वयतानुपासना;
द्वादसेतानि सुत्तानि, महावग्गोति वुच्चति।

पाली-देवनागरी
12. द्वैतानुपस्सनासुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव सावथ्यं विहारति पुब्बारामे मिगारमातुपसदे। तेन खो पन समयेन भगव तदहुपोस्थे प नयनरसे पुन्नय पुन्नमय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकसे निसि साइनो होति। अथ खो भगव तुन्हिभूतं तुन्हिभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खु अम्नतेसि -
"ये ते, भिक्खवे, कुसला धम्म अरिया नियानिका सम्बोधगामिनो, तेसं वो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं अरियनं निय्यनिकानं सम्बोधगमीनं का उपनिसा सवनया'ति इति चे, भिखवे, पुच्छितरो अस्सु, ते एवमस्सु वचनिया - 'यावदेव देवयतानां धम्मनं यथाभूतं ज्ञानाय'ति। किञ्च द्वैतं वदेत्?
(1) "इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयोति अयमेकानुपस्सना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुःखनिरोधगामिनी पतिपदाति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वैतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स एतपिनो पहित्तस्स विहारतो द्वि सत्यं फलानं अञ्जन्तरं फलं पतिकखं - दित्थेव धम्मे अंडना, सति वा उपादिसेसे अनागमिता"ति।
इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -
7

"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्स संभाव्यं।
यथा च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति।
तंदच मग्गं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥
730.
"चेतोविमुत्तहिना ते, अथो पञ्चविमुत्तिया।
अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा॥
7 सप्ताह
"ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्स संभाव्यं।
यथा च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति।
तंदच मग्गं पजानन्ति, दुक्खुपसमगामिनं॥
744.
"चेतोविमुत्तिसम्प संज्ञा, अथो पञ्चविमुत्तिया।
भब्बू ते अंतकिरियाय, न ते जातिजरूपगा"ति॥
(2) "सिया अञ्जेनपि परियायेन सम्मा द्वयतनुपासना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपधिपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। उपधीनं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरूपा।
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्डो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खास जातिप्पभवनुपासि"ति॥
(3)"'सिया अञ्चेनपि परियायेन सम्मा द्वैतानुपासना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं अविज्जपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। अविज्जाजाय त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खससंभवोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनप्पुनं।
इत्थभावञ्जथाभावं, अविज्जायेव सा गति॥
7.
"अविज्जा हयं महामोहो, येनिदं संसितं चिरं।
विज्जगता च ये सत्ता, न ते गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सी० पी०)] पुनब्भव"न्ति॥
(4) "सिया अञ्जेनपि...पे०...कथञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं सङ्खारपचचयति, अयमेकनुपस्सना। सङ्खारणं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खसस संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारणं निरोधेन, नत्थि दुःखस्सम्भवीओ॥
7
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया।
सब्बसङ्खारसमथा, संज्ञानं उपरोधना।
एवं दुक्खक्खयो होति, एतं ञत्वा यथात्थं॥
7.
"सम्मद्दसा वेदगुणो, सम्मदन्याय पण्डिता।
अभिभुय मारसंयोगं, न गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सी० पी०)] पुनब्भव"न्ति॥
(5) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं विघ्नपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। विज्ञानं स्स त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"यं किञ्चचि दुक्खं संभोति, सब्बं विघ्नपच्चया।
विज्ञानंसस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खसस्संभवो॥
740.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं विज्ञानपच्चया।

विञ्चानुपस्मा भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो"ति॥
(6) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं फस्सपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। फस्सस त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"तेसं फस्सपेरेतानं, भवसोताएप्रिनं।
कुम्मगपटिपनयनं, अरा संयोजनखयो॥
7
"ये च फ़स्सं परिञ्चय, अञ्चयायुपासमे [पञ्चन्या उपसमे (स्या०)] रता।
ते वे फस्साभिषामा, निचता परिनिब्बुता"ति॥
(7) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। वेदनानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तञ्च बधिधा च, यं किञ्चि अथि वेदितं॥
744.
"एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोषधम्मं पलोकिनं [पलोकितं (सी०)]।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत् विजानति [विरज्जति (क० सी०)]।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो"ति॥
(8) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं तन्हापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। तन्हाय त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"तण्हादुतियो पुरिसो, दीघमधां संसारं।"
इत्थभावञ्जथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥
7
"एत्मादीनवं नत्वा, तंहं [तन्हा (बहूसु) इतिवुत्तके 15 पास्सित्बं] दुक्खस्स संभावनां।
वितानधो अनादानो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(9) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। उपादाननं [उपादानस (स्या० क०)] त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"उपादानपच्चया भावो, भूतो दुःखं निगच्छति।"
जातस्स मरणं होति, एसो दुक्ख्सस संभावनाओ॥
7.
"तस्मा उपादन्क्खाय, सम्मदञ्चया पण्डिता।
जातिख्यं अभिज्ञानाय, न गच्छन्ति पुनभभव"न्ति॥
(10) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चचि दुक्खं संभोति सब्बं दीक्षापचयति, अयमेकनुपस्सना। अभिषेकानं त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं दीक्षापच्चया।
आरंभानं निरोधेन, नत्थि दुक्खसस संभावो॥
7
"एत्मादिन्वं ञत्वा, दुक्खं अरापच्चया।"
सब्बारामभं पतिनिस्सज्म, अनारंभे विमुत्तिनो॥
7.
"उच्छि नारायणभवतनहस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
विक्खिणो [वितिन्नो (सी०)] जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवो"ति॥
(11) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति सब्बं आहारपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। आहारां त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.

"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया।
आहारां निरोधेन, नत्थि दुक्खस्ससंभवो॥
7.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं आहारपच्चया।
सब्बाहारं परिञ्चय, सब्बाहारमनिस्सितो॥
744.
"आरोग्यं सम्मदन्या, आस्वानं परिक्खया।
सङ्खाय सेवी धम्मत्तो, सङ्ख्यं [सङ्खं (सी० पी०)] नोपेति वेदगु"ति॥
(12) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं इञ्जितपच्चयति, अयमेकानुपस्सना। इञ्जितानं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्ख्सस संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
74.55.
"यं किञ्चचि दुक्खं संभोति, सब्बं इंज्जितपच्चया।
इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दु:खससम्भवो॥
7.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया।
तस्मा हि एजें वोस्सज्ज़, सङ्खारे उपरुन्धिय।
अनेजो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(13) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? निस्सीत्स्स चलितं निस्तिति, अयमेकनुपस्सना। अनिसिस्तो न चलतीति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"अनिसितो न चलति, निस्सीतो च उपादेयं।"
इत्थभावञ्जथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥
7.
"एत्मादिन्वं ञत्वा, निस्सायेसु महब्बयं।
अनिसिस्तो अनुपदनो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(14) "सिया अञ्जेनपि...पे०... कथाञ्च सै? रूपेहि, भिक्खवे, अरूपा [अरुप्पा (सी० पी०)] सन्ततराति, अयमेकानुपासना। अरूपेहि निरोधो सन्तरोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
75.
"ये च रूपुपगा सत्ता, ये च अरूपत्थायिनो [अरूपवासिनो (सी० पी०)]।
निरोधं अप्पजानंता, आगन्तरो पुनब्भवं॥
7-
"ये च रूपे परिञ्जन्या, अरूपेसु असंथिता [सुसंथिता (सी० स्या० पी०)]।
निरोधे ये विमुच्छन्ति, ते जना मच्छछुयिनो"ति॥
(15) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समरकस सब्रह्मकस सस्सामन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्जयितं तदमरियनं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पनदन्याय सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं , भिक्खवे, सदेवकस्स...पे०...सदेवमनुस्साय इदं मुसाति उपनिज्जयितं, तदमरियनं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मपञ्चाय सुदिट्ठं, अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"अनत्तनि अत्तमाननिं [अट्टतानि (स्या०), अत्तमानं (पी० क०)], पास्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नामरूपस्मिं, इदं सच्चन्ति मन्न्ति॥
7.
"येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अञ्जथा।
तञ्हि तस्स मुसा होति, मोषधम्मन्हि इत्तरं॥
764.
"अमोषधम्मं निब्बानं, तदरिया सचदचतो विदु।"
ते वे सच्चाभिषामा, निच्चता परिनिब्बुता"ति॥
(16) "सिया अञ्जेनपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समरकस सब्रह्मकस सस्सामन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्जयितं, तदमरियानं एतं

दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्जाय सुदिट्ठं, अयमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स...पे०... सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्जयितं तदमरियनं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मपन्नाय सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वैतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स एतपिनो पहित्तस्स विहारतो द्वि सत्यं फलानं अञ्जन्तरं फलं पतिकखं - दित्थेव धम्मे अंडना, सति वा उपादिसेसे अनागमितााति। इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -

7

"रूपा सादा रसा गंधा, फस्सा धम्मा च केवला।"
इत्था कन्ता मनापा च, यावत्तथिति वुचचति॥

7.

"सदेवकस लोकस्स, एते वो सुखसम्मता।
यथा चेते निरुज्जन्ति, तं नेसं दुक्खसम्मतं॥

7.

" सुखन्ति दित्थमर्येहि, सकायासुप्ररोधनं।
पंचचनिकमिदं होति, सब्ब्लोकेन पससटं॥

7.

"यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुःखतो आहु, तदरिया सुखतो विदु॥

7.

"पास धम्मं दुराजनं, सम्मुळहेत्थ अविद्दसु [सम्पमुळहेत्थ अविद्दसु (सी० पी०), सम्मुळहेत्थ अविद्दसु (?)]।
निवुतानं तमो होति, अंधकारो अपस्सतं॥

766.

"सत्ञ्च विवेतं होति, आलोको पस्सतमिव।
शांतिके न विजानन्ति, मग्गा धम्म्स कोकिदा॥

700

"भवरागपरेतेहि, भवसोतापरिभि।
मराधेयानुपन्नेहि, नयं धम्मो सुसम्बुद्धो॥

7.

"को नु अञ्जन्त्रामरियेहि, पदं संबुद्धुमर्हति।"
यं पदं सम्मदन्याय, परिनिब्बन्ति अनासव"ति॥

इदमवोच भगवान। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिनन्दुन्ति। इमस्मिं च [इम्मस्मिं खो (सी०)] पन वेय्याकरणस्मिं भंजनमाने सत्थिमत्तनं भिक्खूनं अनुपादाय आस्वेहि चित्तानि विमुच्छचिंसुति।

द्वैतानुपस्सनासुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

तस्सुद्दनं -

सचचं उपधि अविजज्जा च, सच्चरे विज्ञानपञ्चमं।
फ़स्सवेदनिया तन्हा, उपादानर्मभाहारा।
इञ्जितं चलितं रूपं, सच्दचं दुक्खेन सोळसति॥

महावग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दनं -

पब्बज्जा च पधानच, सुभासितञ्च सुन्दरी।
माघसुत्तं सभियो च, सेलो सल्लंदलच वुचदचति॥
वासेट्ठो चापि कोकालि, नालको द्वैतानुपस्सना।
द्वादसेतानि सुत्तानि, महावग्गोति वुच्चदचतीति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.1 कामसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

कामुक सुखों से बचना चाहिए।

अंतर्वस्तु

14.1 कामसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.1 कामसुत्त

अनुवाद

1. यदि इंद्रिय सुखों की इच्छा रखने वाला व्यक्ति सफल हो जाता है, तो वह निश्चय ही प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि उसे वह सब प्राप्त हो जाता है जो मनुष्य चाहता है। (772)

2. परन्तु यदि वे इंद्रिय सुख उस व्यक्ति को प्राप्त न हों जो उनकी इच्छा रखता है, तो वह पीड़ा भोगेगा, मानो उसे पीड़ा का तीर लग गया हो। (773)

3. जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों से इस प्रकार विवश रहता है जैसे कोई अपने पैर से साँप के सिर को कुचलने से बचता है, वह सत्वमय होकर इस इच्छा पर विजय प्राप्त कर लेगा। (774)

4. जो व्यक्ति इन सुखों, खेतों, वस्तुओं, सोने, गायों और घोड़ों, नौकरों, स्त्रियों, रिश्तेदारों आदि की अत्यधिक लालसा रखता है, (775)

5. पाप उस पर हावी हो जाएँगे, खतरे उसे कुचल देंगे, और पीड़ा उसका पीछा उसी प्रकार करेगी जैसे टूटे हुए जहाज में पानी भर जाता है। (776)

6. अतः व्यक्ति को सदा सत्वमय रहना चाहिए और सुखों से विवश रहना चाहिए; उन्हें त्यागकर, जहाज से पानी निकालकर नदी पार कर दूसरे किनारे पर चले जाना चाहिए। (777)

कामसुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

4. अट्ठकवग्गो

1. कामसुत्तं

772.
कामं कामयमानस्स, तस्स सी तं समिज्जति;
अद्धा पीतिमानो होति, लद्धा मको यदिच्छति।

773.
तस्स सी कामयानस्सा [कामायमानस्सा (का.)], चंदजतास्सा जंतुनो;
ते काम परिहयन्ति, सल्लविद्धोवा रुप्पति।

774.
यो कामे परिवज्जेति, सप्पसेवा पदा सिरो;
सोमं [सो इमं (सि. पि.)] विसात्तिकां लोके, सातो समतिवत्तति।

775.
खेतं वत्थुं हिरणं वा, गवस्सं [गवस्सं (सि. स्या. पि.)] दासपोरिसं;
थियो बंधु पुथु कामे, यो नरो अनुगिज्जति।

776.
अबला नं बल्यन्ति, मददन्तेनं परिस्सया;

ततो नं दुक्खमन्वेति, नवं भिन्नमिवोदकम्।
777.
तस्मा जंतु सदा सातो, कामानि परिवज्जाये;
ते पहाया तारे ओघं, नवं सितवव [सिंचित्वा (सि.)] परगुति।
कामसुत्तं पथमं नियतं।

पाली-देवनागरी
4. अट्ठकवग्गो
1. कामसुत्तं
7.
कामं कामयमानस्स, तस्स चे तं समिज्झति।
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मचचो यदिच्छति॥
7.
तस्स चे कामयानस्स [कामायमानस्स (क०)], छन्दजातस्स जन्तुनो।
ते कामा परिहन्ति, सल्लविद्धोव रूपपति॥
7.
यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्पेव पदा सिरो।
सोमं [सो इमं (सी० पी०)] विशत्तिकं लोके, सातो समतिवत्तति॥
750.
खत्तं वथुं हिरणं वा, गवसं [गवसं (सी० स्या० पी०)] डेस्पोरिसं।
थियो बन्धु पुथु कामे, यो नरो अनुगिज्जति॥
76.
अबला नं बलियान्ति, मद्दन्तेनं परिस्या।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नवं भि सत्यमिवोदकं॥
777.
तस्मा जंतु सदा सातो, कामानि परिवज्जये।
ते पहाय तरे ओघं, नावं सित्वाव [सिंचित्वा (सी०)] परगुति॥
कामसुत्तं पथमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.2 गुहत्थकसुत्त
वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

किसी को भी जीवन और इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होना चाहिए।

अंतर्वस्तु
14.2 गुलात्तकसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.2 गुहात्तकसुत्त
अनुवाद
1. जो मनुष्य गुफा (अर्थात शरीर) से चिपका रहता है, जो बहुत पाप से लदा हुआ है और भ्रम में डूबा हुआ है, ऐसा मनुष्य एकांत से बहुत दूर है, क्योंकि संसार के इंद्रिय सुखों को छोड़ना आसान नहीं है। (778)

2. जिनकी इच्छाएँ ही उनके प्रेरक हैं, जो संसार के सुखों से जुड़े हुए हैं, उन्हें मुक्त करना कठिन है, क्योंकि वे दूसरों द्वारा मुक्त नहीं हो सकते, जो आने वाले और जाने वाले सुखों की खोज में लगे रहते हैं, इन और पूर्व के इंद्रिय सुखों की लालसा करते हैं। (779)

3. जो इंद्रिय सुखों के लालची, भोगी और मोहित हैं, जो कंजूस हैं, वे दुष्ट मार्ग पर चलकर पीड़ा सहने पर विलाप करते हैं, कहते हैं: 'जब हम यहाँ से मर जाएँगे तो हमारा क्या होगा?' (780)

4. अतः मनुष्य को यहाँ यह सीख लेना चाहिए कि संसार में जो कुछ भी वह दुष्ट जानता है, उसके कारण वह दुष्टता का अभ्यास न करे; क्योंकि यह जीवन क्षणभंगुर है, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं। (781)

5. मैं संसार में इस कांपती हुई जाति को देखता हूँ जो जन्म-मृत्यु की लालसा में डूबी रहती है; वे दुखी मनुष्य हैं जो मृत्यु के मुख पर विलाप करते हैं, पुनर्जन्म की लालसा से मुक्त नहीं होते। (782)

6. उन मनुष्यों को देखो जो स्वार्थ में कांप रहे हैं, जैसे सूखे हुए नाले में कम पानी में मछली; यह देखकर मनुष्य निस्वार्थ भाव से, जन्म-मृत्यु से आसक्ति रखे बिना, विचरण करे। (783)

7. दोनों पक्षों की लालसा को वश में करके, लोभ रहित होकर स्पर्श को पूर्णतः समझकर, स्वयं को दोषी ठहराए गए कर्मों का फल न देकर, बुद्धिमान मनुष्य देखी और सुनी हुई बातों से आसक्त नहीं रहता। (784)

8. नाम को जानकर, मुनि (संत) किसी भी मोह से अछूते हुए नदी पार करें; (कामवासना के बाण को) निकालकर, परिश्रमपूर्वक विचरण करते हुए, वे इस लोक या परलोक की कामना नहीं करते। (785)

गुहात्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. गुहत्थकसुत्तम्
778.
सत्तो गुहायं बहुनाभिचन्नो, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाधो;
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, काम हि लोके न हि सुपहाया।
779.
इच्छनिदाना भवसताबधा, ते दुप्पमुन्चा न हि अन्नमोक्खा;
पच्चा शुद्ध वापि अपेक्खमना, इमेव कामे पुरीमेव जपं।
780.
कामेसु गिद्ध पसुता पमुढ़ा, अवदानिया ते विसामे निविथा;
दुक्खुपनिता परिदेवयन्ति, किन्सु भविस्सामा इतो कटासे।
781.
तस्मा हि सिक्खेथा इधेव जंतु, यं किञ्चि ज्ञाना विसमंति लोके;
न तस्स हेतु विषमं कैरेया, अप्पनहिदं जीवितमाहु धीरा।
782.
पसामि लोके परिफंदमानं, पजं इमं तंहगतं भवेसु;
हिना नारा मक्कुमुखे लपंती, अवितानहसे भवभवेसु।
783.
ममयिते पासथ फंदमाने, मच्छेवा अप्पोदके खिनसोते;
एताम्पि दिश्वा अमामो कैरेया, भवेसु असत्तिमकुब्बमानो।
784.
उभोसु अंतेसु विनयाय चंदं, फस्सं परिणय अनानुगिद्धो;
यदत्तागराहि तदाकुब्बमानो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या. का.)] दिट्ठसुतेसु धीरो।

785.
सन्नं परिण्णा वितरेय ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो;
अब्बुहसल्लो करमप्पमत्तो, नासीसति [नासीसति (सि. स्या. पि.)] लोकमिमं पराञ्चति।
गुहत्थकसुत्तं कर्तव्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
2. गुहत्थकसुत्तं
724.
सत्तो गुलायं बहुनाभिच्छ संज्ञाओ, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाळचो।
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, काम हि लोके न हि सुप्पाया॥
7.
इच्छानिदाना भवसत्बद्धदा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अञ्जनमोक्खा।
पच्चा पूरे वापि अपेखमाना, इमेव कामे पुरीमेव जप्पं॥
7.
कामेसु गिद्धा पसुता पमुळहा, अवदानिया ते विसामे निवित्था।
दुक्खुपनिता परिदेवयन्ति, किंसु भविस्साम इतो चुतासे॥
7.
तस्मा हि सिखेथ इधेव जंतु, यं किञ्चि ज्ञान विसमंति लोके।
न तस्स हेतु विषमं चरेय, अप्पनहिदं जीवितमहु धीरा॥
7.
पस्सामि लोके परिफंदमानं, पजं इमं तंहगतं भवेसु।
हीना नरा मचचुमुखे लपन्ति, अवीतन्हासे भवभवेसु॥
7.
ममयिते पस्सथ फन्दमाने, मच्छेव अप्पोडके खिनसोते।
एतमपि दिस्वा अम्मो चेरेय, भवेसु असत्तिमकुब्बमानो॥
7 सप्ताह.
उभोसु अन्तेसु विनेय छन्दं, फस्सं परिञ्चय अनानुगिद्धो।
यदत्तगरहि तदकुब्बमानो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या० क०)] दिट्ठसुतेसु धीरो॥
7 सप्ताह
सञ्जन परिञ्जन वितरेय ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो।
अ उउक्सळहसललो चरमप्पमत्तो, नासीसति [नासिंस्ती (सी० स्या० पी०)] लोकमिमं परञ्चदाति॥
गुहत्थकसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.3 दुत्तत्थकसुत्त,

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

मुनि (संत) किसी भी निंदा के पात्र नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने दर्शनशास्त्र की सभी प्रणालियों को त्याग दिया है और इसलिए वे स्वतंत्र हैं।

अंतर्वस्तु
14.3 दुत्थकासुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.3 दुत्थाकासुत्त

अनुवाद
1. निश्चय ही, कुछ दुष्ट मन वाले निंदा करते हैं, और न्यायप्रिय मन वाले भी निंदा करते हैं, परन्तु मुनि (संत) पर उत्पन्न निंदा नहीं होती; अतः कहीं भी कोई असंतुष्ट (खिला) मुनि (संत) नहीं है। (786)

2. जो अपनी इच्छाओं से प्रेरित और अपनी प्रवृत्तियों से ग्रस्त है, वह अपने (गलत) दृष्टिकोण पर कैसे विजय प्राप्त कर सकता है? अपने कर्मों को करते हुए, वह अपनी समझ के अनुसार बात करे। (787)

3. जो व्यक्ति बिना पूछे अपने सद्‌गुणों और (पवित्र) कार्यों की दूसरों के सामने प्रशंसा करता है, उसे अच्छे लोग नीच कहते हैं, वह स्वयं की प्रशंसा करने वाला है। (788)

4. परन्तु जो भिक्षु शांत और प्रसन्न मन का है, इस प्रकार अपने सद्‌गुणों की स्वयं प्रशंसा नहीं करता, उसे अच्छे लोग श्रेष्ठ कहते हैं, वह संसार में कहीं भी इच्छाओं से रहित है। (789)

5. जिसके धर्म मनमाने ढंग से गढ़े और सामने रखे गए हों और भ्रमित हों, क्योंकि वह अपने आप में अच्छा परिणाम देखता है, वह कुप्प-पतिक्क-सन्ती (दृष्टिकोण) में लीन रहता है। (?) (790)

6. क्योंकि दर्शन के सिद्धांतों पर विजय पाना आसान नहीं है, इसलिए धर्मों में से (कभी यह, कभी वह) विचार-विमर्श के बाद अपनाया जाता है; अतः मनुष्य धर्म सिद्धांतों में से (कभी यह, कभी वह) धर्म को त्यागता और अपनाता है। (791)

7. जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, उसके लिए संसार में कहीं भी विभिन्न अस्तित्वों के प्रति कोई पूर्वाग्रही दृष्टिकोण नहीं है; जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, छल और अहंकार को त्यागकर, उसे किस (मार्ग) पर जाना चाहिए, वह स्वतंत्र है। (792)

8. परन्तु जो आश्रित है, धर्मों में उसकी निंदा होती है; स्वतंत्र को किस (नाम) से और कैसे नाम दिया जाए? क्योंकि उनके द्वारा न तो कुछ ग्रहण किया जाता है और न ही अस्वीकार किया जाता है, उन्होंने इस संसार में हर (दार्शनिक) दृष्टिकोण को त्याग दिया है। (793)

दुत्थत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. दुट्ठहठकसुत्तम्
786.
वदन्ति वे दुथ्मनापि एके, अथोपि वे सच्चमना वदन्ति;
वदान्च जातं मुनि नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिञ्चि।
787.
सकान्हि दितिथिं कथमैककैय्या, चंदनुणितो रुचिया निविथो;
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जनेय तथा वदेय।
788.
यो अत्तानो सिलावतानि जंतु, अन्नुपुठहोवा परेसा [परसा (का.)] पावा [पावा (सि. स्या. पि.)];
अनारियधम्मं कुसल तमाहु, यो अतुमानं सयमेव पाव।
789.
सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बुतत्तो, इतिहन्ति सिलेसु अकत्थमानो;
तमरियाधम्मं कुसल वदन्ति, यसुस्सादा नत्थि कुहिनचि लोके।
790.
पाकप्पिता संखता यस्सा धम्म, पुरक्खता [पुरेक्खता (सि.)] शांति अविवादता;
यदत्तानि पस्सति अनिसांसं, तं निस्सिटो कुप्पपटिक्का शांतिम्।
791.
दिथिनिवेसा न हि स्वतिवत्ता, धम्मेसु निच्चेय्य समुग्गहितम्;

तस्मा नरो तेसु निवेशेसु, निरस्सति अद्यति च धम्मम्।
792.
धोंससा हि नत्थि कुहिनसि लोके, पकप्पिता दिति भावभवेसु;
मायञ्च मनञ्च पहाय धोनो, सा केन गच्छेया अनुपायो सो।
793.
उपायो हि धम्मेसु उपेति वदं, अनुपयं केन कथं वदेय;
अट्टा निरत्ता [अट्टं निरत्तं (बहुसु)] न हि तस्स अट्ठि, अधोसि सो दिथिमिधेव सब्बन्ति।
दुतथथकसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. दुट्ठट्ठकसुत्तं
766.
वदन्ति वे दुत्थमनापि एके, अथोपि वे सचचमना वदन्ति।
वादञ्च जातं मुनि नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिनचि॥
7.
सञ्चहि दिट्ठिं कथमचचयेय, छन्दनुनीतो रुचिया निवित्थो।
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जानेय तथा वदेय॥
7.
यो अत्तनो सीलवतनि जंतु, अन्नुपुत्थोव परेस [पारस (क०)] पाव [पावा (सी० स्या० पी०)]।
अनार्यधम्मं कुसला तमाहु, यो अतुमानं सयमेव पाव॥
7 सप्ताह।
सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बत्तो, इतिहन्ति सीलेसु अकथमानो।
तमरियधम्मं कुसला वदन्ति, यसुस्सादा नत्थि कुहिनचि लोके॥
7
पकप्पिता सङ्खता यस धम्मा, पुरखता [पुरेखता (सी०)] सन्ति अविवदाता।
यदत्तनि पस्सति अनिसं, तं निस्सितो कुप्पपत्तिच सन्तिं॥
7.
दिट्ठिनिवेसा न हि स्वातिवत्ता, धम्मेसु निच्छेय समुघहितं।
तस्मा नरो तेसु निवेसनेसु, निरस्सति आदियति च धम्मं॥
7
धोनस्स हि नत्थि कुहिञ्चि लोके, पकप्पिता दिट्ठि भवाभेसु।
मञ्च मञ्च मञ्च पहाय धोनो, स केन गच्छेया उपयो सो॥
7.
उपयो हि धम्मेसु उपेति वदं, ओपयं केन कथं वदेय।
अत्ता निरत्ता [अत्तं निरत्तं (बहुसु)] न हि तस्स अट्ठि, अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बन्ति॥
दुट्ठत्थकसुत्तं ततीयं नित्थितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.4 सुद्धत्थकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दर्शनशास्त्र से कोई भी पवित्र नहीं होता; दर्शनशास्त्र के प्रति समर्पित लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान लोग वासना से प्रेरित नहीं होते और संसार में किसी भी चीज को सर्वोच्च नहीं मानते।

अंतर्वस्तु
14.4 शुद्धकासुत्त

1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.4 शुद्धतकासुत्त
अनुवाद
1. मैं एक शुद्ध, परम श्रेष्ठ, स्वस्थ व्यक्ति को देखता हूँ; उसके विचारों से मनुष्य का शुद्धिकरण होता है; इस मत को धारण करके, और इस मत को सर्वोच्च मानकर वह शुद्ध को देखने के लिए ज्ञान की ओर लौटता है। (794)

2. यदि मनुष्य का शुद्धिकरण (उसके दार्शनिक) विचारों से होता है, या वह ज्ञान से दुख को त्याग देता है, तो वह अपने उपाधियों के साथ (आर्यमग्ग, अर्थात् श्रेष्ठ मार्ग से भिन्न) किसी अन्य मार्ग से शुद्ध होता है; उसके विचारों के कारण वह उसे ऐसा कहने के लिए कहता है। (795)

3. परन्तु जो ब्राह्मण देखे या सुने हुए, सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों, या सोचे हुए, अच्छे और बुरे से आसक्त नहीं रहता, और इस संसार में कुछ भी न करके, जो कुछ ग्रहण किया है उसे त्याग देता है, वह यह स्वीकार नहीं करता कि शुद्धिकरण किसी अन्य से होता है। (796)

4. अपने पूर्व (गुरु) को त्यागकर वे दूसरे के पास जाते हैं; अपनी इच्छाओं का अनुसरण करते हुए वे अपने बंधन नहीं तोड़ते; वे पकड़ते हैं, वे बंदर की तरह शाखा को पकड़ने के तुरंत बाद छोड़ देते हैं। (797)

5. स्वयं कुछ (पवित्र) कार्य करने के बाद वे अपनी इंद्रियों द्वारा निर्देशित होकर विभिन्न (वस्तुओं) की ओर जाते हैं, परन्तु महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाला व्यक्ति, एक बुद्धिमान व्यक्ति जिसने अपनी बुद्धि से धम्म को समझा है, विभिन्न (व्यवसायों) की ओर नहीं जाता। (798)

6. वह सभी धम्मों के बीच एकांत में रहकर, जो कुछ भी देखा, सुना या सोचा है—इस संसार में कोई भी उसे, जो खुलेआम विचरण करता है, कैसे बदल सकता है? (799)

7. वे (कोई मत) नहीं बनाते, वे (किसी चीज को) प्राथमिकता नहीं देते, वे यह नहीं कहते, 'मैं असीम रूप से शुद्ध हूँ;' आसक्ति की गाँठ काटकर, वे संसार में कहीं भी (किसी चीज) की लालसा नहीं करते। (800)

8. वह एक ब्राह्मण है जिसने (पाप पर) विजय प्राप्त की है; उसके द्वारा जानने और देखने के बाद किसी भी चीज को अपनाया नहीं जाता; वह किसी भी प्रकार के जुनून से प्रभावित नहीं है; इस संसार में उसके द्वारा सर्वोच्च कुछ भी नहीं माना जाता है। (801)

सुद्धत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. सुद्धाट्ठकसुत्तं
794.
पसामि शुद्धं परमं अरोगं, दित्थेन संशुद्धि नरस्सा होति;
एवाभिजानं [एताभिजानं (सी. पी.)] परमंति नात्वा, सुद्धानुपसिति पैक्सेति नाणं।
795.
दित्थेन सी शुद्धि नरस्सा होति, नाणेन वा सो पजहति दुक्खं;
अननेना सो सुज्जति सोपधिको, दीथि हि नं पाव तथा वदानं।
796.
न ब्राह्मणो अनानतो सुद्धिमहा, दिट्ठे सुते सिलवते मुते वा;
Puññe ca pāpe ca anūpalitto, attañjaho nayidha pakubbamāno.
797.
पुरिमं पहाय अपरं सीतासे, एजानुगा ते न तरन्ति संगं;

ते उग्गहयन्ति निरसज्जन्ति, कपिव सखां पमुञ्च गहयं [पमुखं गहया (स्या.), पमुञ्च गहया (का.)]।
798.
सयं समादाय वतानि जंतु, उचवाचं गच्छति संनसत्तो;
विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मं, न उच्चवाकं गच्छति भूरिपन्नो।
799.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किंचि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
Tameva dassiṃ vivaṭaṃ carantaṃ, kenīdha lokasmi vikappayeyya.
800.
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, अचन्तशुद्धिति न ते वदन्ति;
अदानगंथं गतितं विसज्जा, असां न कुब्बन्ति कुहिनसि लोके।
801.
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, नात्वा वा दिसवा वा [अनत्वा च दिसवा च (का. सि. का.)] समुग्गहितम्;
न रागरागी न विरागरत्तो, तसीधा नत्थि परमुग्गहितन्ति।
शुद्धाथकसुत्तं चतुत्थं नियतं।

पाली-देवनागरी
4. सुद्धट्ठकसुत्तं
7
पस्सामि सुद्धं परमं अरोगं, दिट्ठेन संशुद्धि नरस्स होति।
एवाभिजानं [एताभिजानं (सी० पी०)] परमंति ञत्वा, सुद्धानुपस्सति पच्चचेतति ज्ञानं॥
7.7.
दित्थेन चे सुद्धि नरस होति, न्यानेन वा सो पजहति दुक्खं।
अञ्जेन सो सुज्झति सोपधिको, दिट्ठि हि नं पाव तथा वदानं॥
7.
न ब्राह्मणो अञ्जन्तो सुद्धिमः, दित्थे सुते सीलवते मुते वा।
पुञ्जने च पापे चानोप्लित्टो, अत्तनदजहो नयिध पकुब्बमानो॥
7.
पुरीमं पहाय अपरं सीतासे, एजानुगा ते न तरन्ति सङ्गं।
ते उग्गहन्ति निरस्सजन्ति, कपिव साखं पमुञ्चं गहायं [पमुखं गहाय (स्या०), पमुञ्च गहाय (क०)]॥
7.
सयं समदाय वतनि जंतु, उच्छदावचं गच्छति संज्ञसत्तो।
विद्वा च वेदेहि समेच्छ धम्मं, न उच्छवाचं गच्छति भूरिपञ्चनो॥
7.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्च दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
तमेव दस्सिं विवतं चरन्तं, केनिध लोकस्मि विकप्पयेय॥
.
न कप्पयन्ति न पूर्णोक्रोन्ति, अच्चन्तशुद्धिति न ते वदन्ति।
सहयोगीगण्थं गथितं विसज्ज, असां न कुब्बन्ति कुहिञ्चि लोके॥
100
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, ञत्वा व दिस्वा व [ञत्वा च दिस्वा च (क० सी० क०)] समुघहितं।
न रागरागी न विरागरत्तो, तसिध नत्थि परमुग्गहितन्ति॥
सुद्धत्थ्कसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.5 परमत्थकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दार्शनिक वाद-विवाद में स्वयं को नहीं लगाना चाहिए; जो ब्राह्मण किसी भी दर्शनशास्त्र को नहीं अपनाता, वह अपरिवर्तनीय होता है, उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया होता है।

अंतर्वस्तु
14.5 परमथकसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.5 परमत्थकसुत्त
अनुवाद
1. जो व्यक्ति दार्शनिक मतों का पालन करते हुए, 'यह सबसे उत्तम है' कहकर संसार में सर्वोच्च मानता है, उससे भिन्न प्रत्येक वस्तु को वह नीच कहता है, अतः वह विवाद पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता। (802)

2. क्योंकि वह अपने आप में देखे-सुने, सद्‌गुणों और कर्मों, या विचारों के संबंध में अच्छा परिणाम देखता है, अतः उसे अपनाकर वह अन्य सभी वस्तुओं को बुरा मानता है। (803)

3. विद्वान इसे एक ऐसा बंधन कहते हैं जिस पर निर्भर होकर व्यक्ति किसी अन्य वस्तु को बुरा मानता है। अतः भिक्षु को देखे, सुने या सोचे गए तथ्यों, सद्‌गुणों और कर्मों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। (804)

4. उसे इस संसार में ज्ञान या सद्‌गुणों और कर्मों द्वारा कोई दार्शनिक मत नहीं बनाना चाहिए, न ही स्वयं को दूसरों के बराबर समझना चाहिए, न ही स्वयं को नीचा या विशिष्ट समझना चाहिए। (805)

5. जो कुछ उन्होंने ग्रहण किया है, उसे त्यागकर, किसी भी चीज़ को न पकड़ते हुए, वे ज्ञान पर भी निर्भर नहीं रहते। वे अन्य चीजों में लीन रहने वालों के साथ संगति नहीं करते, वे किसी भी (दार्शनिक) दृष्टिकोण की ओर नहीं लौटते। (806)

6. जिनके मन में इस लोक में पुनर्जन्म या परलोक में पुनर्जन्म की इच्छा नहीं है, उनके लिए धर्मों (धम्मेसु) के बीच अन्वेषण के बाद कोई विश्राम स्थान नहीं है। (807)

7. उनके मन में देखी, सुनी या सोची गई किसी भी बात के प्रति जरा भी पूर्वाग्रह नहीं है; इस संसार में कोई भी ऐसे ब्राह्मण को कैसे बदल सकता है जो कोई दृष्टिकोण नहीं अपनाता? (808)

8. वे (कोई दृष्टिकोण) नहीं बनाते, वे (किसी भी चीज़ को) प्राथमिकता नहीं देते, वे धर्मों का चयन नहीं करते, ब्राह्मण सद्‌गुण और (पवित्र) कर्मों पर निर्भर नहीं होता; परलोक जाकर, ऐसा व्यक्ति वापस नहीं लौटता। (809)

परमत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
5. परमट्ठकसुत्तं
802.
परमन्ति दितिषु परिब्बसानो, यदुत्तरी कुरुते जंतु लोके;
हिनाति अन्ने ततो सब्बमहा, तस्मा विवादानि अवित्तो।
803.
यदत्तनि पस्सति अनिसांसं, दिट्ठे सुते सिलावते [सिलब्बते (स्या.)] म्यूट वा;
तदेव सो तत्थ समुग्गहाय, निहिनातो पस्सति सब्बमन्नं।
804.

तं वापि गंथं कुसल वदन्ति, यं निस्सितो पस्सति हिनमनन्नाम्;
तस्मा हि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा, सिल्बत्तं भिक्खु न निस्साय्य।
805.
दिथिम्पि लोकस्मि न कप्पाय्य, न्यानेन वा सिलावतेन वापि;
समोति अत्तनमनुपनेय्य, हिनो न मन्नेथा विसेसि वापि।
806.
अत्तं पहाय अनुपदियानो, नाणेपि सो निस्सायं नो करोति;
सा वे वियात्तेसु [वियुत्तेसु (सि. अट्ठा.), द्वियत्तेसु (का.)] न वाग्गसारि, दिथिम्पि [दिथिमापि (का.)] सो ना पैक्सेति किञ्ची।
807.
यस्सुभ्यन्ते पणिधिधा नत्थि, भावभवाय इधा वा हुरं वा;
निवेशा तस्स न संति केचि, धम्मेसु निच्च्येय समुग्गहितं।
808.
तस्सिधा दिट्ठे वा सुते म्यूटे वा, पाकप्पिता नत्थि अनुपि सन्ना;
तं ब्राह्मणं दितिथिमानदियानं, केनिधा लोकस्मिं विकप्पाय्य।
809.
न कप्पयंति न पूरेक्खरोंति, धम्मपि तेसं न पतिचितासे;
न ब्राह्मणो सिलवतेन नेय्यो, पारंगतो न पचेति तदिति।
परमाथकसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी
5. परमत्थकसुत्तं
प्रणु.
परमन्ति दिट्ठिसु परिब्बसानो, यदुत्तरति कुरुते जन्तु लोके।
हीनाति अञ्जने ततो सब्बमः, तस्मा विवादानि अवितिवत्तो॥
.
यदत्तनि पस्सति अनिसं, दित्थे सुते सीलवते [सिलब्बते (स्या०)] म्यूट वा।
तदेव सो तथा समुघ्घय, निहिणतो पस्सति सब्बमञ्च।
.
तं वापि गुंथं कुसला वदन्ति, यं निस्सीतो पस्सति हीनमञ्च।
तस्मा हि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा, सीलब्बतं भिक्खु न निस्सयेय॥
40.
दिट्ठिमपि लोकस्मिं न कप्पयेय्य, नानेन वा सीलवतेन वापि।
समोति अत्तनमनुपनेयय, हिनो न मन्देथ विसेसि वापि॥
.
अत्तं पहाय अनुपादियानो, ञनेपि सो निस्सायं नो करोति।
स वे वियत्तेसु [वियुत्तेसु (सी० अट्ठ०), द्वियत्तेसु (क०)] न वाग्गसारि, दिट्ठिमपि [दिट्ठिमपि (क०)] सो न पच्चचेतति किञ्चचि॥
1.55
यस्सुभयन्ते पनिधीध नथि, भावाभवाय इध वा हुरं वा।
निवेसना तस्स न शांति केचि, धम्मेसु निच्छेय समुघहितं॥
252444
तस्सीध दिट्ठे वा सुते मुते वा, पक्प्पिता नत्थि अनुपि संज्ञ।
तं ब्राह्मणं दित्तिमनादियानं, केनिध लोकस्मिं विकप्पयेय्य॥
।
न कप्पयन्ति न पूर्णोक्रोन्ति, धम्मपि तेसं न पतिचितासे।
न ब्राह्मणो सीलवतेन नेय्यो, पारंगतो न पच्चेति तदिति॥
परमत्थकसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

स्वार्थ से दु:ख और लोभ उत्पन्न होते हैं; वह भिक्षु जो संसार से विमुख होकर घर-बार भटकता है, स्वतंत्र होता है और किसी दूसरे के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं रखता।

अंतर्वस्तु

14.6 जरासुट्टा
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.6 जरासुट्टा

अनुवाद

1. यह जीवन सचमुच छोटा है, सौ वर्षों के भीतर ही मृत्यु हो जाती है, और यदि कोई इससे अधिक जीता है, तो वह वृद्धावस्था से मरता है। (810)

2. लोग स्वार्थ से दुखी होते हैं, निरंतर चिंताएँ उन्हें मार डालती हैं, यह (संसार) निराशा से भरा है; यह देखकर, किसी को घर में नहीं रहना चाहिए। (811)

3. यहाँ तक कि जिस वस्तु को मनुष्य अपना समझता है, वह भी मृत्यु के साथ छूट जाती है: यह जानते हुए, बुद्धिमान (मनुष्य) मेरे अनुयायी होते हुए सांसारिकता की ओर न मुड़े। (812)

4. जैसे जागने पर मनुष्य वह नहीं देख पाता जो उसे नींद में मिला था, वैसे ही वह अपने प्रिय व्यक्ति को भी नहीं देख पाता जो गुजर गया है और मर चुका है। (813)

5. जिन व्यक्तियों का नाम लिया जाता है, वे देखे और सुने दोनों जाते हैं, परन्तु केवल गुजरे हुए व्यक्ति का नाम ही अविचलित रहता है। (814)

6. लालची लोग अपने स्वार्थ में शोक, विलाप और लोभ नहीं छोड़ते; इसलिए मुनियों (संतों) ने लोभ का त्याग कर नितांत सुरक्षा (अर्थात निर्वाण) की प्राप्ति के लिए विचरण किया। (815)

7. जो भिक्षु अनासक्त होकर विचरण करता है और संन्यासी का मन लगाता है, उसके लिए यह उचित है कि वह स्वयं को (पुनः) प्रकट न करे। (816)

8. किसी भी परिस्थिति में स्वतंत्र मुनि (संत) किसी को प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं करता; दु:ख और लोभ उस पर उतना ही अछूता रहता है जितना जल पत्ते पर। (817)

9. जैसे जल की एक बूँद कमल पर नहीं चिपकती, वैसे ही मुनि (संत) किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता, अर्थात् जो देखा, सुना या सोचा गया हो। (818)

10. जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, वह इसलिए किसी भी चीज के बारे में ज्यादा नहीं सोचता क्योंकि उसे देखा, सुना या सोचा गया है; वह किसी दूसरे के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं करता, क्योंकि वह (किसी भी चीज से) प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होता। (819)

जरासुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. जरासुत्तं
810.
अप्पं वात जीवितं इदं, ओरं वससतापि मियाति [मियाति (सि. अट्ठा.)];
यो सेपि अतिच्च जीवति, अथा खो सो जरासापि मियाति।
811.
सोकन्ति जना ममयिते, न हि संति [ना हि संता (सि.), न हि संति (कत्थचि)] निच्च परिग्गहा;
विनाभावसंतमेविदं, इति दिस्वा नगरमवसे।
812.
मरणेणपि तं पहियति [पहियति (सि. स्या. का.)], यं पुरिसो मामिदंती [ममयिदंती (सि. स्या. का.), ममयंती (का.)] मन्नति;
एताम्पि विदित्वा [एतं दिस्वना (निद्देसे), एताम्पि विदित्वा (?)] पण्डितो, न ममत्तया नामेथा मामको।
813.
सुपिनेन यथापि संगतं, पतिबुद्धो पुरिसो न पस्सति;
एवमपि पियायितं जनं, पेटं कालकटं न पस्सति।
814.
दिट्ठापि सुतापि ते जना, येसं नमामिदं पवुक्कति [नाममेव वसिस्सति (सि. स्या. पि.)];
नाम्ययेववसिस्सति, अक्खेय्यं पेतस्सा जंतुनो।
815.
सोकपरिदेवमच्चरं [सोकपरिदेवमच्चरं (सि. स्या. पि.), सोकं परिदेवमच्छरं (?)], न जहांति गिद्धा ममयिते;
तस्मा मुनयो परिग्गहं, हित्वा अकारिन्सु खेमादस्सिनो।
816.
पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमासानां;
समग्गियामहु तस्स तं, यो अत्तनं भवने न दासये।
817.
सब्बत्थ मुनि अनिसिटो, न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं;
तस्मिं परिदेवमच्चरं, पन्ने वारि यथा न लिम्पति [लिप्पति (सि. पि.)]।
818.
उदबिन्दु यथापि पोक्खरे, पदुमे वारि यथा न लिम्पति;
एवं मुनि नोपलिम्पति, यदिदं दितहसुतं मुतेसु वा।
819.
धोनो न हि तेन मन्नति, यदिदं दितहसुतं मुतेसु वा;
नाण्णेन विशुद्धमिच्छति, न हि सो रजजति नो विराजजति।
जरासुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. जरासुत्तं
.
अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्सस्तपि मियाति [मियति (सी० अट्ठ०)]।
यो चेपि अतिलच्छ जीवति, अथ खो सो जरसापि मियाति॥
2011.
सोचन्ति जना ममयिते, न हि सन्ति [न हि सन्ता (सी०), न हि सन्ति (कत्थचि)] निच्चचा परिग्गहा।
विनाभावसन्तमेविदं, इति दिस्वा नगरमवसे॥
1.
मरणेनपि तं पहियति [पहियति (सी० स्या० क०)], यं पुरिसो ममिदन्ति [ममयिदन्ति (सी० स्या० क०), ममयन्ती (क०)] मन्ति।
एतमपि विदित्वा [एतं दिस्वान (निद्देसे), एतमपि विदित्व (?)] पण्डितो, न ममत्तय नामे मामको॥
100.

सुपिनेन यथापि सङ्गतं, पतिबुद्धो पुरिसो न पस्सति।
एवमपि पययितं जनं, पेतं कालकतं न पस्सति॥
80.
दिट्ठपि सुतापि ते जना, येसं नम्मिदं पवुच्चति [नाममेव वसिस्स्ति (सी० स्या० पी०)]।
नामंयेवावसिस्स्ति, अक्खेयं पेटस्स जन्तुनो॥
पीएनल.
सोकपरिदेवमच्छरं [सोकपरिदेवमच्छरं (सी० स्या० पी०), सोकं परिदेवमच्छरं (?)], न जहन्ति गिद्धा ममायिते।
तस्मा मुन्यो परिग्गहं, हित्वा आचरिंसु खेमदासिनो॥
.
पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमासनं।
समग्गियमहु तस्स तं, यो अत्तानं भवने न दस्सये॥
तीन पंद्रह.
सब्बथ मुनि अनिसिस्तो, न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं।
तस्मिं परिदेवमच्छरं, पन्ने वारि यथा न लिम्पति [लिप्पति (सी० पी०)]॥
118.
उदबिंदु यथापि पोखरे, पदुमे वारि यथा न लिम्पति।
एवं मुनि नोपलिम्पति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा॥
19.
धोनो न हि तेन मन्नति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा।
नाञ्जेन विशुद्धमिच्छति, न हि सो रजदजति नो विरजदजति॥
जरासुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तानिपात >> 4.7 तिस्सामेट्टेय्यसुत्त,

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

यौन संबंध से बचना चाहिए।

अंतर्वस्तु
14.7 तिस्सामेतेयसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.7 तिस्सामेटेय्यासुत्त
अनुवाद
1. 'हे पूज्यवर, मुझे बताइए,' - पूज्य तिस्सा मेत्तैया ने कहा, - 'जो व्यभिचार में लिप्त रहता है, उसकी पराजय क्या है; हम आपके उपदेश सुनकर एकांत में अध्ययन करेंगे।' (820)

2. 'हे मेत्तैया, जो व्यभिचार में लिप्त रहता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'उसके उपदेश व्यर्थ हो जाते हैं, और वह अपने आप को गलत कामों में लगाता है, यही उसमें नीचता है।' (821)

3. 'जो पहले एकांत में विचरण करता था, अब व्यभिचार में लिप्त हो जाता है, उसे संसार में नीच, साधारण, लुढ़कते रथ के समान कहते हैं।' (822)

4. 'उसने पहले जो मान-सम्मान और यश प्राप्त किया था, वह अब खो गया है; यह देखकर उसे व्यभिचार त्यागना सीखना चाहिए।' (823)

5. जो अपने विचारों से अभिभूत होकर कंजूस की तरह ध्यान करता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों की (निंदा करने वाली) बातें सुनकर असंतुष्ट हो जाता है। (824)

6. फिर वह दूसरों के उपदेशों से प्रेरित होकर हथियार बनाता है (अर्थात कर्म करता है), वह बहुत लालची होता है और झूठ में डूब जाता है। (825)

7. "बुद्धिमान" कहलाकर वह एकांतवास में प्रवेश करता है, फिर यौन संबंध में लिप्त होकर वह मूर्खता के कारण पीड़ा भोगता है। (826)

8. इसे दुख समझकर मुनि (संत) को संसार में प्रारंभ से अंत तक दृढ़तापूर्वक एकांतवास का पालन करना चाहिए, उसे यौन संबंध में लिप्त नहीं होना चाहिए। (827)

9. उसे एकांतवास सीखना चाहिए, यह श्रेष्ठ पुरुषों के लिए सर्वोच्च है, परन्तु इसलिए उसे अपने आप को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए, यद्यपि वह वास्तव में निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) के निकट है। (828)

10. 'वह मुनि (संत) जो (इच्छाओं से रहित) विचरण करता है, इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करता, और जिसने नदी पार कर ली है, उससे इंद्रिय सुखों में बंधे प्राणी ईर्ष्या करते हैं।' (829)

तिस्सामेत्तेयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. तिस्सामेत्तेयसुत्तं
820.
"मेथुनमनुयुत्तस्सा, (इक्कायस्मा तिस्सो मेट्टेय्यो) विघातं ब्रूहि मारिसा;
सुत्वान तव शासनं, विवेके सिक्खिस्समसे।
821.
"मेथुनमनुयुत्तस्सा, (मेत्तेयति भगवान) मुस्सते वापी सासनं;
मिच्च च पतिपज्जति, एतं तस्मिं अनार्यं।
822.
"एको पुब्बे कारित्वाना, मेथुनं यो निसेवति;
यानं भंतं वा तं लोके, हिनामाहु पुथुज्जनं।
823.
"यसो किति च या पुब्बे, हयते वापि तस्स स;
एतामपि दिस्व सिक्खेथा, मेथुनं विप्पाहतवे।
824.
"संकप्पेहि परेतो सो, कपाणो विया झायति;
सुत्वा परेसं निग्घोसं, मंकु होति तथाविधो।
825.
"अथ सत्तानि कुरुते, परवदेहि कोदितो;
एसा ख्वास्सा महागेधो, मोसावज्जं पगाहति।
826.
"पण्डितोति समानातो, एककारियं अधिथितो;
अथापि [सा कैपि (निद्देस)] मेथ्यून युत्तो, मंडोवा परिकिसाति [परिकिलिसाति (सि.)]।
827.

"एतमदीनवं नात्वा, मुनि पुब्बापरे इधा;
एककारियं दहं कयिरा, न निसेवेथा मेथुनं।
828.
"विवेकन्याव सिक्खेथा, एतदरियाणामुत्तमम्;
न तेन सेठो मन्नेथा, सा वे निब्बानसांतिके।
829.
"रित्तासा मुनिनो कैराटो, कामेसु अनापेखिनो;
ओघतिनस्सा पिहायन्ति, कामेसु गधीता [गतिता (सि.)] पजा'ति।
तिस्सामेत्तेयसुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. तिस्समेत्तेय्यसुत्तं
820.
" मेथुनमनुयुत्तस्स, (इच्चदायस्मा तिस्सो मेत्तेय्यो) विघातं ब्रूहि मारिस।
सुत्वं तव ससनं, विवेके सिक्खिस्सामसे॥
200.
"मेथुनमनुयुत्तस्स, (मेत्तेयति भगवान) मुस्सते वापि ससनं।
मिच्छा च पत्पज्जजति, एतं तस्मिं अनार्यं॥
.
"एको पुब्बे चरित्वान, मेथुनं यो निसेवति।
यानं भन्तं वा तं लोके, हीनमहु पुथुज्जनं॥
.
"यसो कित्ति च या पुब्बे, हयते वापि तस्स सा।
एतम्पि दिस्वा सिक्खेथ, मेथुनं विप्पहातवे॥
.
"सङ्कप्पेहि परेतो सो, कपाणो विय झायति।"
सुत्वा परेसं निघोसं, मङ्कु होति तथाविधो॥
25.
"अथ सथानि कुरुते, परवदेहि चोदितो।
एस ख्वस्स महागेधो, मोसवजं पघाटी॥
200.
"पण्डितोति संज्ञतो, आचार्यं अधित्थितो।"
अथापि [स चापि (निद्देसे)] मेथुने युत्तो, मांडोव परिकिस्स्ति [परिकिलिस्स्ति (सी०)]॥
11
"एत्मादीनवं ञत्वा, मुनि पुब्बापेरे इध।
एकचरियं दळहं क्यिरा, न निसेवेथ मेथुनं॥
→
"विवेकञ्जनेव सिखेथ, एतदारियानमुत्तमं।
न तेन सेट्ठो मञ्जेथ, स वे निब्बानसान्तिके॥
829.
"रित्तस्स मुनिनो चरतो, कामेसु अनपेखिनो।
ओघतिन्नस्स पिहयन्ति, कामेसु गधिता [गति (सी०)] पजा"ति॥
तिस्समेतेय्यसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.8 पासुरसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

विवाद करने वाले एक-दूसरे को मूर्ख करार देते हैं, वे प्रशंसा की कामना करते हैं, लेकिन ठुकराए जाने पर असंतुष्ट हो जाते हैं; विवाद से शुद्धि नहीं होती, बल्कि बुद्ध का अनुसरण करने से होती है, जिन्होंने सभी पापों से मुक्ति पा ली है।

अंतर्वस्तु

14.8 पशुसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.8 पशुसुत्त

अनुवाद

1. यहाँ वे 'पवित्रता' बनाए रखते हैं, अन्य धर्मों (धम्म) में वे पवित्रता की अनुमति नहीं देते; जिस चीज़ के लिए उन्होंने स्वयं को समर्पित किया है, उसे वे अच्छा कहते हैं, और वे एकल सत्यों का व्यापक अध्ययन करते हैं। (830)

2. विवाद की इच्छा रखने वाले, सभा में उतरकर एक-दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं, फिर दूसरों के पास जाकर झगड़ा करते हैं, प्रशंसा की इच्छा रखते हैं और स्वयं को (एकमात्र) विशेषज्ञ कहते हैं। (831)

3. सभा के बीच में विवाद में लगे रहकर, प्रशंसा की इच्छा से वे चारों ओर प्रहार करते हैं; परन्तु जब उनका विवाद विफल हो जाता है तो वे असंतुष्ट हो जाते हैं, दूसरों की कमियाँ ढूँढ़ने वाले निंदा से क्रोधित हो जाते हैं। (832)

4. क्योंकि उनके प्रश्नों की परीक्षा लेने वाले कहते हैं कि उनका विवाद हार गया है, वे अपने विवाद हारने पर विलाप और शोक करते हैं; 'उसने मुझे हरा दिया है,' ऐसा कहते हुए वे विलाप करते हैं। (833)

5. ये विवाद समनों (भिक्षुओं) के बीच उत्पन्न हुए हैं, इन विवादों में एक-दूसरे पर प्रहार और प्रहार किया जाता है; यह देखकर उसे विवाद छोड़ देना चाहिए, क्योंकि प्रशंसा पाने की कोशिश में कोई अन्य लाभ नहीं है। (834)

6. या फिर सभा के बीच में विवाद का निपटारा करके उसकी प्रशंसा की जाती है; इसलिए वह हँसेगा और प्रसन्न होगा, मानो उसने वह मामला जीत लिया हो जैसा उसने चाहा था। (835)

7. जो उसकी महानता है, वही उसकी हार का कारण भी बनेगी, फिर भी वह घमंड और अहंकार से बातें करता है; यह देखकर किसी को विवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि विद्वान यह नहीं कहते कि इससे शुद्धि होती है। (836)

8. जैसे कोई महान व्यक्ति राजसी भोजन से पोषित होकर गरजता हुआ किसी शत्रु की तलाश में घूमता है—हे महान, जहाँ वह (अर्थात दार्शनिक दित्थिगतिका) है, वहाँ जाओ; पहले ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे लड़ना पड़े। (837)

9. जो लोग किसी (विशेष दार्शनिक) मत को अपनाकर विवाद करते हैं और कहते हैं कि 'केवल यही सत्य है', विवाद उत्पन्न होने पर उनसे कहो, 'यहाँ तुम्हारा कोई विरोधी नहीं है।' (838)

10. जो लोग एकांतवास में भटकते हैं, बिना किसी मत का विरोध किए—हे पसुर, तुम उनके बीच किस प्रकार का विरोध पाओगे, जिनके द्वारा इस संसार में किसी भी वस्तु को श्रेष्ठ नहीं माना जाता? (839)

11. फिर तुम (विभिन्न दार्शनिक) मतों पर मनन करने लगे; तुम उस व्यक्ति के साथ जुड़ गए हो जिसने (सभी पापों से) छुटकारा पा लिया है, परन्तु तुम उसके साथ आगे नहीं बढ़ पाओगे। (840)

पसुरसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. पसूरसुत्तं
830.
इधेव शुद्धि इति वादयन्ति [विदियंती (सि. पि.)], नान्नेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु;
Yaṃ nissitā tattha subhaṃ vadānā, paccekasaccesu puthū niviṭṭhā.
831.
ते वडकामा परिसं विगयः, बालं दहन्ति मिथु अण्णामन्नं;
वदन्ति ते अन्नसिता कथोज्जां, पसंसाकामा कुसल वदना।
832.
युत्तो कथ्यं परिषय माज्जे, पसंस्मिच्चं विनिघति होति;
अपहतस्मिं पना मंकु होति, निंदाय सो कुप्पति रंधमेसि।
833.
यमस्सा वदं परिहीनमाहु, अपाहत् पन्हविमंसकासे;
परिदेवति सोचति हिनावादो, उपचगा मन्ति अनुत्थुनाति।
834.
एते विवाद समनेसु जाता, एतेसु उग्गति निघति होति;
एताम्पि दिस्वा विरामे कथोज्जां, न हन्नदत्तथिपसंसलभा।
835.
पसंसितो वा पण तत्थ होति, अक्खाय वदं परिसाय माज्जे;
तो हस्सति उन्नामति [उन्नमति (?)] च तेन, पप्पुय्य तमत्थं यथा मनो आहु।
836.
या उन्नति [उन्नति (?)] सस्सा विघातभूमि, मनातिमानं वदते पनेसो;
एताम्पि दिस्वा न विवद्येत्, न हि तेन शुद्धिं कुसल वदन्ति।
837.
सुरो यथा राजखादाय पुत्थो, अभिगज्जमेति पतिशुरामिच्चं;
येनेव सो तेन पलेहि सुरा, पुब्बेव नत्थि यदिदं युद्धाय।
838.
ये दिथिमुग्गयः विवादयन्ति [विवादियन्ति (सि. पि.)], इदामेव सच्चन्ति च वादयन्ति;
ते त्वं वदस्सु न हि तेधा अह्नि, वदमहि जाते पतिसेनिकत्ता।
839.
विसेनिकत्व पना ये कैरन्ति, दिठ्ठिहि दितिथि अविरुज्जमाना;
तेसु त्वं किं लभेथो पसूरा, येसिधा नत्थि परमुग्गहितं।
840.
अथ त्वं पवित्रकमगमा, मनसा दिथिगतनि चिंतान्तो;
धोनेन युगं समागम, न हि त्वं सक्खसि संपयतावेति।
पसूरसुत्तं अठहमं निहितं।

पाली-देवनागरी
8. पसूरसुत्तं
-30.
इधेव सुद्धि इति वद्यन्ति [विदियन्ति (सी० पी०)], नाञ्जेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु।
यं निस्सीता तथा सुभं वदाना, पच्चचेकसच्चेसु पुथु निवित्था॥

.
ते वादकामा परिसं विगयः, बालं दहन्ति मिथु अञ्जनमञ्च।
वदन्ति ते अञ्चसिता कठोजजं, पसंस्कामा कुसल वदाना॥

युत्तो कथायं परिसाय मज्झे, पसंमिच्छं विनिघाति होति।
अपहतस्मिं पण मङ्कु होति, निन्दाय सो कुप्पति रन्धमेसि॥

.
यमस्स वादं परिहीनमहु, अपाहतं् पञ्चविमांस्कसे।
परिदेवति सोचति हीनवादो, उपचगा मन्ति अनुथुनाति॥

.
एते विवादा समानेसु जात, एतेसु उगति निघाति होति।
एतमपि दिस्वा विरमे कठोजजं, न हञ्डत्तथिपसंसलभा॥
★★।
पसंसितो वा पण तत्थ होति, अक्खाय वादं परिसाय मज्झे।
सो हस्सति उन्मति [उ सत्यं (?)] च तेन, पप्पुय तमथं यथा मनो आहु॥

.
या उन्नति [उ संज्ञाति (?)] स्स्स विघाटभूमि, मानातिमानं वदते पनेसो।
एतमपि दिस्वा न विवादयेत्, न हि तेन सुद्धिं कुसल वदन्ति॥

.
सुरो यथा राजखादाय पुत्थो, अभिगज्जमेति पतिसूरमिच्छं।
येनेव सो तेन पलेहि सूर, पुब्बेव नत्थि यदिदं युधाय॥
□।
ये दिट्ठिमुग्गयः विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी० पी०)], इदमेव सच्चान्ति च वादयन्ति।
ते त्वं वदस्सु न हि तेध अट्ठि, वद्महि जाते पतिसेनिकत्ता॥
44.
विसेनिकत्व पण ये चरन्ति, दिट्ठिहि दिट्ठिं अविरुज्जमाना।
तेसु त्वं किं लभेथो पसूर, येसीध नत्थि परमुग्गहितं॥
40.
अथ त्वं पवित्रकर्मगमा, मनसा दिट्ठिगतानि चिन्तयन्तो।
धोनें युगं समागम, न हि त्वं सक्खसि संपयातवेति॥
पसूरसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.9 मगंडियासुत्त

वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

मगंदिया और बुद्ध के बीच संवाद। मगंदिया बुद्ध को अपनी पुत्री विवाह के लिए अर्पित करते हैं, लेकिन बुद्ध उसे अस्वीकार कर देते हैं। मगंदिया कहते हैं कि पवित्रता दर्शन से आती है, जबकि बुद्ध 'आंतरिक शांति' से। मुनि (संत) शांति के उपदेशक हैं, वे विवाद नहीं करते, वे दोषरहित हैं।

अंतर्वस्तु
14.9 मगन्दियासुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.9 मगंदियासुत्त
अनुवाद
1. बुद्धः 'तन्हा, आरती और रागा (मृत्यु के देवता मारा की पुत्रियों) को देखकर भी मेरे मन में यौन संबंध बनाने की ज़रा भी इच्छा नहीं हुई। यह (तुम्हारी पुत्री का शरीर) जल और मल से भरा हुआ है, यह क्या है? मैं इसे अपने पैर से छूना भी नहीं चाहता।' (841)

2. मगंदिया: 'यदि तुम ऐसी अनमोल स्त्री, जिसे अनेक राजाओं ने चाहा है, को नहीं चाहते, तो तुम किस प्रकार का दृष्टिकोण, सद्‌गुण, कर्म, जीवन शैली और पुनर्जन्म का उपदेश देते हो?' (842)

3. "मैं यही कहता हूँ," (मैं अब यही घोषणा करता हूँ), जाँच-पड़ताल के बाद, हे मगंदीय, मेरे जैसे किसी भी व्यक्ति के लिए कोई भी ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे वह अपनाए," - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - "और दार्शनिक विचारों में (दुःख) देखकर, उनमें से किसी को भी अपनाए बिना, सत्य की खोज करते हुए मैंने "आंतरिक शांति" पाई।" (843)

4. "सभी दार्शनिक संकल्प जो बनाए गए हैं," - मगंदीय ने कहा, - "आप वास्तव में उन्हें बिना अपनाए ही समझाते हैं; जिस "आंतरिक शांति" की धारणा का आप उल्लेख करते हैं, उसे बुद्धिमान कैसे समझाते हैं?" (844)

5. "किसी भी दार्शनिक मत से नहीं, परंपरा से नहीं, ज्ञान से नहीं, हे मगंदीय," - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - "पुण्य और (पवित्र) कर्मों से कोई यह नहीं कह सकता कि पवित्रता विद्यमान है;" न तो दार्शनिक मत के अभाव से, न परंपरा के अभाव से, न ज्ञान के अभाव से, न सद्‌गुणों के अभाव से और न ही (पवित्र) कर्मों के अभाव से; इन सब का त्याग करके और (कुछ और) अपनाए बिना, उसे शांत और स्वतंत्र होकर अस्तित्व की इच्छा नहीं करनी चाहिए। (845)

6. 'यदि कोई (किसी दार्शनिक मत से), न परंपरा से, न ज्ञान से,' - मगंदिया ने कहा - 'या सद्‌गुणों और (पवित्र) कर्मों से यह नहीं कह सकता कि पवित्रता विद्यमान है, न ही (दार्शनिक) मत के अभाव से, न परंपरा के अभाव से, न ज्ञान के अभाव से, न सद्‌गुणों और (पवित्र) कर्मों के अभाव से, तो मैं इस सिद्धांत को मूर्खतापूर्ण मानता हूँ, क्योंकि (दार्शनिक) मतों से कुछ लोग पवित्रता की ओर लौटते हैं।' (846)

7. 'और (अपने दार्शनिक) मत के कारण पूछते हुए, हे मगंदिया,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'तुमने जिस चीज को अपनाया है, उसमें तुम आसक्ति में चले गए हो, और तुम्हें इस (आंतरिक शांति) का जरा भी ज्ञान नहीं है, इसलिए तुम इसे मूर्खतापूर्ण मानते हो।' (847)

8. जो अपने आप को (दूसरों के बराबर), या विशिष्ट, या नीच समझता है, वह इसी कारण विवाद करता है; परन्तु जो इन तीनों स्थितियों में अविचलित रहता है, उसके लिए (समानता) और "विशिष्टता" का कोई अर्थ नहीं होता। (848)

9. जिस ब्राह्मण के लिए (समानता) और "असमानता" का कोई अर्थ नहीं है, क्या वह कहेगा, "यह सत्य है?" या वह किससे विवाद करेगा, यह कहते हुए, "यह असत्य है?" वह किससे विवाद करेगा? (849)

10. अपना घर छोड़कर, बेघर होकर, गाँव में किसी से जान-पहचान न करके, कामवासना से मुक्त होकर, (किसी भविष्य के अस्तित्व की) इच्छा न करके,मुनि (संत) को लोगों से कलहपूर्ण चर्चा में नहीं पड़ना चाहिए। (850)

11. 'एक प्रख्यात पुरुष (नाग) को उन विचारों को अपनाकर विवाद नहीं करना चाहिए जिनसे वह (पूर्व में) संसार में भटकता रहा था; जैसे काँटेदार कमल (इलंबुगा) जल और कीचड़ से अछूता रहता है, वैसे ही शांति का संदेशवाहक मुनि (संत), लोभ से मुक्त, इंद्रिय सुखों और संसार से आसक्त नहीं रहता। (851)

12. 'एक सिद्ध पुरुष (दार्शनिक) दृष्टिकोण या चिंतन से अहंकारी नहीं होता, क्योंकि वह उस प्रकार का नहीं होता; न तो (पवित्र) कर्मों से, न ही परंपरा से वह निर्देशित होता है, वह (मन के) किसी भी विश्राम स्थल में नहीं जाता। (852)

13. 'जो लक्षणों से मुक्त है, उसके लिए कोई बंधन नहीं हैं, जिसे पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) द्वारा मुक्ति मिली है, उसके लिए कोई मूर्खता नहीं है; (परन्तु) जो लक्षणों और (दार्शनिक) विचारों के पीछे भागते हैं, वे संसार में भटकते हुए (लोगों को) परेशान करते हैं।' (853)

मगंदीयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
9. मागण्डीयसुत्तम्
841.
"दिस्वना तन्हां अरतिं रागं च [अरतिंच रागं (स्या. का.)], नहोसि चंदो अपि मेथुनस्मिः;
किमेविदं मुत्तकारिसपुन्नं, पदापि नं सम्फुसितुं न इच्छे"।
842.
"एतादिसं सी रतनं न इच्छासि, नारिं नारिन्देहि बहुहि पत्तितम्;
दिथिगतं सिलवतं नु जीवितं [सिलावतानुजीवितं (सि. पि. का.)], भावुपपत्तिनचा वदेसी किदिसां"।
843.
"इदं वदामिति न तस्स होति, (मगंडीयति [मगंडीयति (सि. स्या. पि.)] भगव)
धम्मेसु निच्चेय्य समुग्गहितं;
Passañca diṭṭhīsu anuggahāya,
अज्झत्तसंतिं पचिनं अडस्सं"।
844.
"विनिच्चया यानि पकप्पितनि, (इति मगंडियो [मगंडियो (सि. स्या. पि.)])
ते वे मुनि ब्रूसी अनुग्गहाया;
अज्झत्तसंतिति यमेतमत्थं,
कथं नु धीरेहि पवेदितं तां"।
845.
"न दिट्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (मगंडियाति भगव)
सिलब्बतेनापि न सुद्धिमहा;
अदितिया असुतिया अनाना,
Asīlatā abbatā nopi tena;
Ete ca nissajja anuggahāya,
सन्तो अनिस्साय भावं न जप्पे"।
846.
"नहीं सीई किरा दिठिया न सुतिया न नाणेन, (इति मगंदियो)
सिलब्बतेनापि न सुद्धिमहा;
अदितिया असुतिया अनाना,
Asīlatā abbatā nopi tena;
मन्नमहं मोमुहमेव धम्मं,
दिठिया एके पॅसेंटी सुधिम्।"
847.
"दिठहांचा निस्साय अनुपुच्चमानो, (मगंडियाति भगवान)
समुग्गहितेसु पमोहमागा [समोहमागा (स्या. का.)];
इतो च नद्दक्खि अणुमपि सन्नं,
तस्मा तुवं मोमुहतो दहासि।
848.
"समो विसेसि उदा वा निहिनो, यो मननति सो विवदेथा तेन;
तिसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसिति न तस्स होति।
849.
"सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय, मुसति वा सो विवदेथ केन;
यस्मिं समं विसमं वापि नत्थि, स केन वदं पतिसंयुजेय।
850.
"ओकं पाहाय अनिकेतासारि, गेमे अकुब्बं मुनि संथावनि [संधवनि (का.)];
कामेहि ऋत्तो अपुरेक्खराणो, कथं न विग्गयहा जनेन कयिरा।
851.
"येहि विवित्तो विचारेया लोके, न तानि उग्गैहा वडेय नागो;

जलंबुजं [एलंबुजं (सि. स्या.)] कंडकं वारिजं यथा, जलेना पंकेना कैनुपालित्टं;
एवं मुनि संतिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च अनुपालितो।
852.
"न वेदगु दिट्ठियाको [न वेदागु दिठिया (का. सी. स्या. पि.)] न मुतिया, सा मनमेति न हि तम्मयो सो;
न कम्मुना नोपि सुतेन नेय्यो, अनुपानितो स निवेशेसु।
853.
"संनाविरत्तस्स न शांति गंथा, पन्नविमुत्तस्स न शांति मोहा;
सान्यान्चा दिथिन्चा ये अग्गहेसुं, ते घटयंता [घातमना (स्या. का.)] विकारन्ति लोके"ति।
मागण्डीयसुत्तं नवमं निहितम्।

पाली-देवनागरी
9. मागण्डीयसुत्तं
.
" दिस्वां तंहं अरतिं रागं च [अर्तिं च रागं (स्या० क०)], नाहोसि छंदो अपि मेथुनस्मिं।
किमेविदं मुत्तकरिसपुन्नं, पादपि नं सम्फुसितुं न इच्छे॥
842.
"एतादिसं चे रत्नं न इच्छसि, नारिं नारिन्देहि बहुहि पत्थितं।
दिट्ठिगतं सीलवतं नु जीवितं [सीलवतानुजीवितं (सी० पी० क०)], भवुपपत्तिनच वदेसि किदिसं"॥
.
"इदं वदामिति न तस्स होति, (मगन्दीयति [मगन्दीयति (सी० स्या० पी०)] भगवा)
धम्मेसु निच्छेया समुग्हितं।
पसन्नच दिट्ठीसु अनुग्गहाय,
अज्जत्तसन्तिं पचिनं अदस्सं"॥
एफ़्यू.
"विनिच्छया अर्थात पक्कपिटानि, (इति मागंडियो [मगंडियो (सी० स्या० पी०)])
ते वे मुनि ब्रूसि अनुग्गहाय।
अज्झत्तसंतितिमे यतमथं,
कथं नु धीरेहि पवेदितं तं"॥
44.
"न दिट्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (मगन्दियाति भगवान)
सीलब्बतेनापि न सुधिमः।
आदिथिया अस्सुटिया अंजाना,
असीलता अब्बता नोपि तेन।
एते च निस्साजदज अनुग्गहाय,
सन्तो अनिस्साय भवं न जप्पे॥
4.
"नो चे किर दिट्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (इति मगंदियो)
सीलब्बतेनापि न सुधिमः।
आदिथिया अस्सुटिया अंजाना,
असीलता अब्बता नोपि तेन।
मञ्जनमहं मोमुहमेव धम्मं,
दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुधिं"॥
4.
"दिट्ठञ्च निश्चयाय अनुपुच्छमानो, (मगन्दीयति भगवान)
समुघहितेसु पमोहमागा [समोहमागा (स्या० क०)]।
इतो च नाद्दक्खि अथोम्पि संज्ञं,
तस्मा तुवं मोमुहतो दहसि॥
2000

"समो विसेसि उद वा निहिनो, यो मन्नति सो विवदेथ तेन।"
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसिति न तस्स होति॥

.

"सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय, मुसाति वा सो विवदेथ केन।
यस्मिं समं विषमं वापि नत्थि, स केन वादं पतिसंयुजेय॥
850.
"ओकं पहाय अनिकेतसारि, गामे अकुब्बं मुनि संथवाणि [संधवाणी (क०)]।
कामेहि ऋत्तो अपुरेखराणो, कथं न विग्गयः जनेन कयिरा॥

.

"येहि विवित्तो विचारेय लोके, न तानि उग्गयः वदेय नागो।
जलम्बुजं [एलम्बुजं (सी० स्या०)] कंदकं वारिजं यथा, जलेन पक्केन चनुपालित्तं।
एवं मुनि शांतिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च आनंदलित्तो॥

.

"न वेदगु दिट्ठियाको [न वेदगू दिट्ठिया (क० सी० स्या० पी०)] न मुतिया, स मनमेति न हि तम्मयो सो।
न कम्मुना नोपि सुतेन नेय्यो, निरीक्षणितो स निवेसनेसु॥

.

"संज्ञाविरत्तस्स न शांति गंथा, पञ्चाविमुत्तस्स न शांति मोहा।
सञ्जनदच दिट्ठिञ्च ये अग्गहेसुं, ते घट्टयंता [घट्टमना (स्या० क०)] विचारन्ति लोके"ति॥
मागण्डीयसुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.10 पुराभेदसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

शांत मुनि (संत) की परिभाषा।

अंतर्वस्तु

14.10 पुरभेदसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.10 पुरभेदसूत्र

अनुवाद

1. 'हे गौतम (बुद्ध) जब मुझसे श्रेष्ठ पुरुष के बारे में पूछा जाए, तो मुझे बताइए कि किस दृष्टि और किस गुण से शांत व्यक्ति कहलाता है?' (854)

2. 'जिसकी इच्छा शरीर के नष्ट होने से पहले ही विलीन हो जाती है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'जो आदि और अंत पर निर्भर नहीं रहता, न मध्य को महत्व देता है, उसे कोई श्रेष्ठ नहीं मानता।' (855)

3. 'जो क्रोध से मुक्त है, कांपने से मुक्त है, घमंड से मुक्त है, दुर्व्यवहार से मुक्त है, जो बुद्धिमानी से बोलता है, जो उत्साहित नहीं होता, वही वास्तव में संयमित मुनि है।' (856)

4. 'भविष्य की इच्छा न होने के कारण वह अतीत के लिए शोक नहीं करता, वह स्पर्श में एकांत देखता है, और वह किसी दार्शनिक विचार से प्रेरित नहीं होता।' (857)

5. वह अनासक्त, कपटी, लोभी, ईर्ष्यालु, उद्दंड, तिरस्कारपूर्ण और निंदा करने वाला नहीं है। (858)

6. सुखदायक वस्तुओं की इच्छा से रहित और अहंकार से मुक्त, वह विनम्र, बुद्धिमान और भोला नहीं है, इसलिए वह किसी भी बात से अप्रसन्न नहीं होता। (859)

7. वह लाभ के लोभ से नहीं सीखता, हानि से क्रोधित नहीं होता, और इच्छा से विचलित न होकर मीठी चीजों का लोभ नहीं करता। (860)

8. समभावी (उपेखक), सदा विचारशील, वह संसार में स्वयं को (दूसरों के) बराबर, विशिष्ट या नीचा नहीं समझता: उसके लिए कोई इच्छा (उस्सादा) नहीं है। (861)

9. 'जिस व्यक्ति के लिए कुछ भी निर्भर नहीं है, जो स्वतंत्र है, जिसने धम्म को समझ लिया है, जिसके लिए न तो जन्म लेने की इच्छा है और न ही जन्म छोड़ने की, (862)

10. 'उसे मैं शांत कहता हूँ, जो इंद्रिय सुखों की तलाश नहीं करता; उसके लिए कोई बंधन नहीं है, उसने इच्छा पर विजय प्राप्त कर ली है। (863)

11. 'उसके लिए न पुत्र हैं, न पशु, न खेत, न धन, उसमें न तो कुछ ग्रहण किया हुआ है और न ही त्यागा हुआ है। (864)

12. 'जिस दोष के बारे में आम लोग, समन (भिक्षु) और ब्राह्मण (पुजारी) कहते हैं कि वह उसमें है, वह दोष उसमें नहीं है, इसलिए वह उनकी बातों से विचलित नहीं होता। (865)

13. 'लोभ से मुक्त, लालच रहित, मुनि (संत) स्वयं को विशिष्ट, साधारण या निम्न वर्ग में नहीं गिनता, वह काल में प्रवेश नहीं करता, क्योंकि वह काल से मुक्त है। (866)

14. 'जिसके लिए संसार में कुछ भी अपना नहीं है, जो अब नहीं रहा, उस पर शोक नहीं करता, और अपनी इच्छा के अनुसार धर्मों पर नहीं चलता, उसे शांत कहा जाता है।' (867)

पुरभेदसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
10. Purābhedasuttaṃ
854.
"कथादस्सी कथासीलो, उपसंतोति वुक्काति;
तं मे गोतम पब्रुहि, पुच्चितो उत्तमं नारां"।
855.
"विततन्हो पुरा भेदा, (इति भगव) पुब्बमंतमनिसितो;
वेमज्जे नुपासंखेय्यो, तस्स नत्थि पुरक्खतं।
856.
"अक्कोधनो असन्तसि, अविकत्थि अकुक्कुको;
मन्ताभानि [मन्तभानि (स्या. पि.)] अनुद्धतो, स वे वाचायतो मुनि।
857.
" निरासति अनागते, अतीतं नानुसोचति;
विवेकादस्सी फस्सेसु, दिथिसु च न नियति [नियति (बहुसु)]।
858.
"पतिलिनो अकुहाको, अपिहालु अमाचारि;

अप्पागब्बो अजेगुच्चो, पेसुनेये सीए नो युतो।
859.
"सतियेसु अनसावि, अतिमाने च नो युतो;
संहो च पतिभानव [पतिभानव (स्या. पि.)], न साधो न विराजजति।
860.
"लाभकाम्य न सिक्खति, अलाभे च न कुप्पति;
Aviruddho ca taṇhāya, rasesu nānugijjhati.
861.
"उपेक्खको सदा सातो, न लोके मन्नते समां;
न विसेसि न अच्छेय्यो, तस्स नो सन्ति उस्सदा।
862.
"यस्सा निस्सायना [निस्सायता (सि. स्या. पि.)] नत्थि, नत्वा धम्मं अनिसिटो;
भावया विभावया वा, तन्हा यस्सा न विज्जति।
863.
"तां ब्रूमि उपसंतोति, कामेसु अनापक्खिनं;
गंथा तस्स न विज्जन्ति, अतरि सो विशत्तिकाम्।
864.
"न तस्स पुत्त पसावो, खेतं वत्थुञ्च विज्जति;
अत्ता वापि निरत्त वा [अत्तं वापि निरत्तं वा (बहुसु)], न तस्मि उपलब्भाति।
865.
"येन नं वज्जुं पुथुज्जना, अथो समानब्राह्मण;
तं तस्स अपुरक्खातं, तस्मा वदेसु नेजति।
866.
"वितागेधो अमाचरि, न उसेसु वदते मुनि;
ना समेसु ना ओमेसु, कप्पां नेति अकाप्पियो।
867.
"यस्सा लोके सकां नत्थि, असता च न सोचति;
धम्मेसु च न गच्छति, सा वे संतोति वुच्चति'ति।
पूरभेदसुत्तं दशमं निहितं।

पाली-देवनागरी
दस. पुराभेदसुत्तं
वल.
" कथंदस्सि कथंसिलो, उपसंतोति वुचदचति।
तं मे गोतम पब्रुहि, पुच्छितो उत्तमं नरं॥
65.
"वितातन्हो पुरा भेदा, (इति भगवा) पुब्बमन्तमनिसितो।
वेमझे नुपासङखेय्यो, तस्स नत्थि पुरखतं॥
।
"अत्रकोधनो असांतसी, अविकत्थी अकुक्रोकुचो।
मन्ताभानि [मन्ताभानि (स्या० पी०)] अनुद्धतो, स वे वाचयतो मुनि॥
.
"निरासति अनागते, अतीतं नानासोचति।
विवेकदस्सी फस्सेसु, दिट्ठिसु च न नियति [नियति (बहुसु)]॥
36
"पतिलिनो अकुहाको, अपिहालु अमाचरी।
अप्पगब्बो अजेगुच्छो, पेसुनेये च नो युतो॥
85

"सतिएसु अनस्सवी, अतिमाने च नो युतो।
संधो च पतिभवनवा [पतिभानवा (स्या० पी०)], न साधो न विरज्जति॥
दो.
"लाभकाम्या न सिक्खति, लाभे च न कुप्पति।"
अविरुद्धो च तन्हाय, रसेसु नानुगिज्जति॥
→
"उपेक्खको सदा सातो, न लोके मन्नते समं।
न विसेसि न नीचेय्यो, तस्स नो सन्ति उस्सदा॥

.
"यस्स निस्सायना [निस्सयता (सी० स्या० पी०)] नत्थि, नत्वा धम्मं अनिस्सितो।
भवाय विभवय वा, तन्हा यस न विज्दजति॥
4.
"तं ब्रूमि उपसंतोति, कामेसु अनपेखिनं।
गंथा तस्स न विज्जन्ति, अतरि सो विशत्तिकं॥
।
"न तस्स पुत्ता पस्वो, खत्तं वथुनदच विज्जति।
अत्ता वापि निर्त्तं वा [अत्तं वापि निर्त्तं वा (बहूसु)], न तस्मिन उपलब्भति॥

.
"येन नं वजदजुं पुथुजजना, अथो समन्ब्राह्मण।
तं तस्स अपुरुख्तं, तस्मा वादेसु नेजति॥

.
"वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि।"
न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो॥
867.
"य्स्स लोके सकं नत्थि, असता च न सोचति।"
धम्मेसु च न गच्छति, स वे सन्तोति वुच्चति"ति॥
पुराभेदसुत्तं दसमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.11 कालहविवादसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला

____

विवादों और मतभेदों का मूल कारण।

____

अंतर्वस्तु
14.11 कलाहविवादसूत्र
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.11 कलाहविवादसूत्र
अनुवाद
1. 'जब भी विवाद और झगड़े, विलाप और शोक के साथ ईर्ष्या, और अहंकार और अभिमान के साथ निंदा उत्पन्न होती है, तो ये सब कब उत्पन्न होते हैं? कृपया मुझे इसका कारण बताइए।' (868)

2. 'प्रिय वस्तुओं से विवाद और झगड़े, विलाप और शोक के साथ ईर्ष्या, अहंकार और अभिमान के साथ निंदा उत्पन्न होती है; विवाद और झगड़े ईर्ष्या से जुड़े होते हैं, और उत्पन्न विवादों में निंदा होती है।' (869)

3. 'संसार में प्रिय वस्तुएं कहां से उत्पन्न होती हैं, और संसार में व्याप्त लोभ, इच्छा और तृप्ति कैसे उत्पन्न होती हैं, जो मनुष्य के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं?' (870)

4. 'इच्छा से ही संसार में प्रिय वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, संसार में व्याप्त लोभ, और इच्छा एवं पूर्ति, जो मनुष्य के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।' (871)

5. 'संसार में इच्छा का उद्गम कहाँ से होता है, और संकल्प, क्रोध, असत्य, संदेह, और वे धर्म जिनका ज्ञान समना (गौतम (बुद्ध)) ने दिया है, कहाँ से उत्पन्न होते हैं?' (872) 6. 'संसार में जिसे

सुख और दुःख कहते हैं, वह उसी इच्छा से उत्पन्न होता है; सभी शरीरों में क्षय और उत्पत्ति को देखकर, मनुष्य संसार में अपने संकल्प बनाता है।' (873)

7. 'क्रोध, असत्य और संदेह, ये धर्म एक दूसरे के पूरक हैं; संदेह करने वालों को ज्ञान के मार्ग में सीखना चाहिए, क्योंकि वे जानते हैं कि समना ने धर्मों का प्रचार किया है।' (874)

8. 'सुख और दुःख, इनका उद्गम कहाँ से होता है? ये किसके अभाव में उत्पन्न नहीं होते? यह धारणा (जिसका आपने उल्लेख किया है), अर्थात् "क्षय और उत्पत्ति", मुझे बताइए कि यह कहाँ से उत्पन्न होती है?' (875)

9. 'सुख और दुःख का उद्गम स्पर्श से होता है; स्पर्श न होने पर इनका उद्गम नहीं होता। यह धारणा (जिसका आपने उल्लेख किया है), अर्थात् "क्षय और उत्पत्ति", मैं आपको बताता हूँ कि इसका उद्गम इसी से होता है।' (876)

10. 'संसार में स्पर्श का उद्गम कहाँ से होता है और आसक्ति कहाँ से उत्पन्न होती है? किसके अभाव में अहंकार नहीं होता? किसके न रहने पर स्पर्श स्पर्श करना बंद कर देते हैं?' (877)

11. 'नाम और रूप के कारण स्पर्श (अस्तित्व में) होते हैं; आसक्ति इच्छा से उत्पन्न होती है; इच्छाओं के न रहने पर अहंकार नहीं होता; रूप के न रहने पर स्पर्श स्पर्श करना बंद कर देते हैं।' (878)

12. 'मनुष्य की संरचना ऐसी कैसे हो सकती है कि उसका रूप अस्तित्वहीन हो जाए, और सुख-दुख का अस्तित्व कैसे समाप्त हो जाए? मुझे यह बताओ कि यह कैसे समाप्त होता है, जिसे हम जानना चाहते हैं, ऐसा मेरा मन था?' (879)

13. 'मनुष्य को न तो स्वाभाविक चेतना के साथ रहना चाहिए, न ही पागल चेतना के साथ, न ही चेतनाहीन, न ही चेतना खोई हुई; क्योंकि जो इस प्रकार निर्मित होता है उसका रूप अस्तित्वहीन हो जाता है, क्योंकि जिसे भ्रम कहा जाता है उसकी उत्पत्ति चेतना में होती है।' (?) (880)

14. 'जो हमने आपसे पूछा है, आपने हमें समझाया है; हम आपसे एक और प्रश्न पूछेंगे, उसका उत्तर दीजिए: क्या इस संसार में कुछ (जो बुद्धिमान माने जाते हैं) हमें यह नहीं बताते कि मुख्य (बात) यक्ष का शुद्धिकरण है, या वे इससे भिन्न कुछ कहते हैं?' (881)

15. 'इस प्रकार इस संसार में कुछ (जो बुद्धिमान माने जाते हैं) कहते हैं कि मुख्य (बात) यक्ष का शुद्धिकरण है; परन्तु उनमें से कुछ समाया (विनाश) कहते हैं, जबकि विद्वान कहते हैं (कि सर्वोच्च शुद्धता) अनुपदिशेष (पाँच गुणों में से कोई भी शेष न रहना) में निहित है।' (882)

16. 'और इन्हें आश्रित जानकर, शोध करने वाला मुनि (संत), जिन चीजों पर हम निर्भर हैं उन्हें जानकर, और उन्हें जानने के बाद मुक्त होकर, विवाद में नहीं पड़ता, बुद्धिमान (मनुष्य) पुनर्जन्म नहीं लेता।' (883)

कलहविवादसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. Kalahavivādasuttaṃ
868.
"कुतोपहुता कलहा विवाद, परिदेवसोका सहमच्चरा च;
मनातिमना सहपेसुना च, कुटोपहुता ते तदिघ् ब्रुहि"।
869.
"पियप्पाहुता कलहा विवाडा,
परिदेवसोका सहमच्चरा च;
मनातिमना सहपेसुना च,
मच्छेरायुत्ता कलहा विवाडा;
विवदजतेसु च पेसुनानि"।
870.
"पिया सु [पियानु (स्या.), पियास्सु (का.)] लोकस्मिं कुतोनिदाना, ये कपि [ये वापि (सि. स्या. पि.)] लोभा विकारन्ति लोके;
आसा च निष्ठा च कुतोनिदाना, ये सम्पराया नरस्सा होन्ति"।
871.
"चंदानीदानि पियानि लोके, ये कपि लोभ विकारन्ति लोके;
आसा च निष्ठा च इतोनिदाना, ये सम्पारयाया नरस्सा होन्ति"।
872.
"चंदो नु लोकस्मिं कुतोनिदानो, विनिच्चया कपि [वापि (सि. स्या. पि.)] कुटोपहुता;
कोधो मोसवज्जञ्च कथान्कथा च, ये वापी धम्म समानेन वुत्ता"।
873.
"सतं असतन्ति यामाहु लोके, तमुपनिस्सया पहोति चंडो;
रूपेसु दिस्व विभवं भवन्च, विनिच्चयं कुब्बति [कुरुते (बहुसु)] जंतु लोके।
874.
"कोधो मोसावज्जञ्च कथान्कथा च, एतेपि धम्म द्वयमेव संते;
कथाकथि नाणपथाय सिखे, नात्वा पावुत्ता समानेन धम्म"।
875.
"सतं असातञ्च कुतोनिदाना, किस्मत असान्ते न भवन्ति हेते;
विभवं भवन्चापि यममेतमत्थं, एतं मे पब्रुहि यतोनिदानं।'
876.
"फस्सनिदानं सततं असतं, फस्से असांते न भवन्ति हेते;
विभावं भवन्चापि यमेतमत्थं, एतं ते पब्रुमी इतोनिदानं।'
877.
"फसो नु लोकस्मि कुतोनिदानो, परिग्गहा कपि कुटोपाहुत;
किस्मतं असांते न ममत्तमत्थि, किस्मतं विभूते न फुसन्ति फसा"।
878.
"नमञ्च रूपञ्च पतिच्च फास्सो, इच्छानिदाननि परिग्गहनि;
इच्छासन्त्य न ममत्तमत्थि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा।"
879.
"कथं समेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुखं चापि [दुखं वापि (सि. स्या.)] कथं विभोति;
एतं मे पब्रुहि यथा विभोति, तं जानिअमति [जानिस्सामति (सि. का.)] मे मनो आहु"।
880.
"न सन्न्यासनि न विभूतसानि, नोपि असानि न विभूतसानि;
एवंसमेतस्स विभोति रूपं, सन्न्यानिदाना हि पापञ्चासन्खा"।
881.
"यं तं अपुच्चिम्हा अकित्तायि नं,
अन्नणं तं पुच्चम तदिंघ ब्रुहि;
एत्तावतग्गं नु [सं (सि. स्या.)] वदन्ति हेके,

यक्खस्सा सुधिं इधा पंडितासे;
उदाहु अननमपि वदन्ति एत्तो।
882.
"एत्तावतग्गमपि वदन्ति हेके, यक्खस्सा शुद्धि इधा पण्डितसे;
तेसं पनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसे कुसल वदना।
883.
"एते च नात्वा उपनिस्सीति, नात्वा मुनि निस्साये सो विमांसि;
सातत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भावभवाय न समेति धीरोऽ ति।
कलहविवादसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. कलहविवादसुत्तं
4.
"कुतोपहुता कलहा विवादा, परिदेवसोका सहमच्छरा च।
मनतिमाना सहपेसुना च, कुतोपहुता ते तदिङ्घ ब्रूहि"॥
6.
"पियप्पहुता कलहा विवाद,
परिदेवसोका सहमच्छरा च।
मनतिमान सहपेसुना च,
मच्छेर्युत्ता कलहा विवादा।
विवादजातेसु च पेसुनानि"॥
67
"पिया सु [पियानु (स्या०), पियासु (क०)] लोकस्मिं कुतोनिदाना, ये चापि [ये वापि (सी० स्या० पी०)] लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च नित्था च कुतोनिदाना, ये सम्पराय नरसस होन्ति"॥
..
"छंदनिदानानि पियानि लोके, ये चापि लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च नित्था च इतोनिदाना, ये सम्पराय नरसस होन्ति"॥
872.
"छन्दो नु लोकस्मिं कुतोनिदानो, विनिचया चापि [वापि (सी० स्या० पी०)] कुतोपहुता।
कोधो मोसवजदञ्च कथान्कथा च, ये वापि धम्म समानेन वुत्ता"॥
.
"सातं असतन्ति यमाहु लोके, तमुपनिस्सय पहोति छन्दो।
रूपेसु दिस्वा विभवं भवन्च, विनिचयं कुब्बति [कुरुते (बहूसु)] जंतु लोके॥
244.
"कोधो मोसवजदञ्च कथान्कथा च, एतेपि धम्म द्वयमेव सन्ते।"
कथन्कथी नानपथाय सिखे, नत्वा पवुत्ता समानेन धम्मा"॥
45.
"सातं असत्ञ्च कुतोनिदाना, प्रकृतिं असन्ते न भवन्ति हेते।"
विभवं भवनचापि यमेतमथं, एतं मे पब्रुहि यतोनिदानं"॥
66.
"फस्सनिदानं सातं असातं, फस्से असन्ते न भवन्ति हेते।"
विभवं भवनचापि यमेतमथं, एतं ते पब्रूमि इतोनिदानं"॥
•77.
"फस्सो नु लोकस्मि कुतोनिदानो, परिग्गहा चापि कुतोपहुता।
नारीं असन्ते न ममत्तमथि, नारीं विभूते न फुसन्ति फस्सा॥"
★।
"नमञ्च रूपञ्च पतीचच फस्सो, इच्छानिदानानि परिग्गहनि।
इच्छासन्त्या न ममत्तमथि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा"॥

6.
"कथंसमेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुःखदचापि [दुखं वापि (सी० स्या०)] कथं विभोति।
एतं मे पब्रुहि यथा विभोति, तं जानियामाति [जानिस्सामाति (सी० क०)] मे मनो आहु"॥
.
"न संज्ञसञ्ञि न विभूतसंज्ञी, नोपि असञ्जी न विभूतसंज्ञी।
एवंसमेतस्स विभोति रूपं, संज्ञनिदाना हि पपञ्चसङ्खा॥
6.
"यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयि नो,
अञ्जनं तं पुच्छम तदिघ ब्रूहि।
एत्तावतग्गं नु [नो (सी० स्या०)] वदन्ति हेके,
यक्षस्स सुद्धिं इध पण्डितासे।
उदाहु अञ्जमपि वदन्ति एत्तो॥
.
"एत्तावतग्गमपि वदन्ति हेके, यक्षस सुद्धिं इध पण्डितासे।"
तेसं पनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसेसे कुसल वदना॥
.
"एते च नत्वा उपनिस्सीति, नत्वा मुनि निस्सये सो विमांसि।"
नत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भवाभवाय न सहिति धीरो"ति॥
कलहविवादसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.12 चुलवियुहसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला
____

दार्शनिकों के बीच वाद-विवाद का वर्णन। दर्शनशास्त्र के विभिन्न संप्रदाय एक-दूसरे का खंडन करते हैं, वे अलग-अलग सत्य घोषित करते हैं, लेकिन सत्य तो एक ही है। जब तक वाद-विवाद चलता रहेगा, तब तक संसार में कलह बनी रहेगी।

____

अंतर्वस्तु

14.12 चुलवियुहसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.12 चुलवियुहसुत्त

अनुवाद

1. अपने-अपने मतों पर अड़े रहकर, कुछ लोग विवाद में पड़कर स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ घोषित करते हुए कहते हैं, 'जो इसे समझता है, वही धम्म को जानता है; जो इसकी निंदा करता है, वह सिद्ध नहीं है।' (884)

2. इस प्रकार विवाद में पड़कर वे कहते हैं, 'विरोधी मूर्ख है, अज्ञानी है।' तो इनमें से कौन सा सच्चा सिद्धांत (वाद) है? क्योंकि ये सभी स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ घोषित करते हैं। (885)

3. जो विरोधी के सिद्धांत (धम्म) को नहीं मानता, वह मूर्ख है, पशु है, अल्पबुद्धि है; सभी अल्पबुद्धि वाले मूर्ख हैं; ये सभी अपने-अपने मतों पर अड़े रहते हैं। (886)

4. वे निश्चय ही अपने मत से शुद्ध हो जाते हैं; वे शुद्ध ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) वाले, विशेषज्ञ, विचारशील होते हैं; उनमें अल्पबुद्धि वाला कोई नहीं होता; उनका मत पूर्ण होता है! (887)

5. मैं यह नहीं कहता, 'यही वास्तविकता है,' जो मूर्ख आपस में कहते हैं; उन्होंने अपने विचारों को सत्य मान लिया है, इसलिए वे दूसरों को मूर्ख समझते हैं। (888)

6. जिसे कुछ लोग सत्य, वास्तविकता कहते हैं, उसे दूसरे लोग व्यर्थ, असत्य कहते हैं, इसलिए असहमति होने पर वे विवाद करते हैं। समन (भिक्षु) एक ही बात क्यों नहीं कहते? (889)

7. क्योंकि सत्य एक है, दूसरा नहीं है, जिसके बारे में एक बुद्धिमान व्यक्ति दूसरे बुद्धिमान व्यक्ति से विवाद करे; (लेकिन) वे स्वयं विभिन्न सत्यों की प्रशंसा करते हैं, इसलिए समन (भिक्षु) एक ही बात नहीं कहते। (890)

8. स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताने वाले विवादकर्ता विभिन्न सत्यों का प्रचार क्यों करते हैं? क्या अनेक भिन्न सत्य सुने गए हैं, या वे (केवल) अपने तर्क का अनुसरण करते हैं? (891)

9. संसार में अनेक भिन्न सत्य नहीं हैं, चेतना के सिवा कोई शाश्वत सत्य नहीं है; लेकिन दार्शनिक विचारों पर तर्क करने के बाद वे दोहरे धम्म, सत्य और असत्य, का प्रचार करते हैं। (892)

10. जो कुछ देखा या सुना है, सद्गुण और (पवित्र) कर्म, या जो कुछ सोचा है, उसके संबंध में, और इन (विचारों) के कारण दूसरों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए, अपने संकल्पों में प्रसन्न रहते हुए, वे कहते हैं कि विरोधी मूर्ख और अज्ञानी है। (893)

11. क्योंकि वह दूसरे को मूर्ख समझता है, इसलिए वह स्वयं को विशेषज्ञ कहता है, अपनी राय में वह शुभ बात बताने वाला है, दूसरों की निंदा करता है, ऐसा उसने कहा। (894)

12. वह अपने अहंकारी (दार्शनिक) विचार से भरा हुआ है, अभिमान से पागल है, स्वयं को परिपूर्ण समझता है, अपनी राय में वह प्रतिभा से परिपूर्ण है, क्योंकि उसका (दार्शनिक) विचार पूर्ण है। (895)

13. यदि वह दूसरे की राय में नीच है, तो (वह कहता है) दूसरा भी नीच बुद्धि का है, और यदि वह स्वयं सिद्ध और बुद्धिमान है, तो समनाओं (भिक्षुओं) में कोई मूर्ख नहीं है। (896)

14. 'जो लोग इससे भिन्न धर्म का प्रचार करते हैं, वे पवित्रता से वंचित और अपूर्ण हैं,' ऐसा तित्तिय बार-बार कहते हैं, क्योंकि वे अपने दार्शनिक विचारों के प्रति आवेश से प्रेरित होते हैं। (897)

15. यहाँ वे पवित्रता बनाए रखते हैं, जबकि अन्य धर्मों में वे पवित्रता की अनुमति नहीं देते; इसलिए तित्तिय, विस्तार से वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके अपने मार्ग में कुछ दृढ़ता है। (898)

16. और अपने मार्ग में दृढ़ता का दावा करते हुए वे अपने विरोधी को मूर्ख कहते हैं; इस प्रकार वे स्वयं अपने विरोधी को मूर्ख और अशुद्ध धर्म कहकर कलह उत्पन्न करते हैं। (899)

17. अपने संकल्प पर अडिग रहते हुए, स्वयं (शिक्षकों आदि का) मूल्यांकन करके, वे संसार में और अधिक विवाद में पड़ते हैं; परन्तु सभी संकल्पों को त्यागकर संसार में कोई कलह उत्पन्न नहीं करेगा। (900)

चुलवियुहसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. चुडब्युहसुत्तम् [कुडवियुहसुत्तम् (सि. स्या. निद्देसा)]
884.
साकसकंदितिपरिब्बासना, विग्गयः नाना कुसल वदन्ति;

यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पतिकोसमकेवली सो।
885.
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, बालो पारो अक्कुसालोति [अकुसालोती (सि. स्या. पि.)] चाहु;
साको नु वदो कटमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसल वदना।
886.
परस्सा सी धम्ममनुजनं, बालोमाको [बालो मागो (सि. स्या. का.)] होति निहिनापन्नो;
सब्बेव बाला सुनिहिनापन्न, सब्बेविमे दितिपरिब्बासाना।
887.
संदिठिया सेवा न विवदता, संशुद्धपन्न कुसल मुतिमा;
न तेसां कोसि परिहिनापनिनो [कोसिपि निहिनापन्नो (सि. स्या. का.)], दीथि ही तेसाम्पि तथा समत्ता।
888.
न वहमेतं तथियंति [तथिवंती (स्या. का.)] ब्रूमि, यामाहु बाला मिथु अण्णामन्नं;
सकांसकंदिथिमकांशु सच्चं, तस्मा हि बलोति परं दहन्ति।
889.
यामाहु सच्चं तथियान्ति एके, तमहु अण्णे [अण्णेपि (स्या.), अण्णे च (?)] तुच्चं मुसाति;
एवमपि विगयः विवादयन्ति, कस्मा न एकं समाना वदन्ति।
890.
एकान्हि सच्चं न दुतियामत्थि, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं;
नाना ते [नानातो (का.)] सच्चनि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समाना वदन्ति।
891.
कस्मा नु सच्चानि वदन्ति नाना, पावडियासे कुसल वदाना;
सच्चनि सुतानि बहुनि नाना, उदाहु ते तक्कमनुस्सरन्ति।
892.
न हेव सच्चनि बहुनि नाना, अन्नत्र संन्या निच्चनि लोके;
तक्कञ्च दिथिसु पकाप्पयित्वा, सच्चं मुसति द्वयधम्ममाहु।
893.
दित्थे सुते सिलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी;
विनिच्चये यथात्व पहस्सामानो, बालो परो अक्कुसलोति चाह।
894.
येनेव बलोति परं दहति, तेनातुमानं कुसलौति चाह;
संयमं सो कुसालो वदानो, अन्नं विमानेति तदेव पाव।
895.
अतिसारादिथियाव सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुन्नमणि;
सयमेव समं मनसाभिसित्तो, दिट्ठि हि सा तस्स तथा समत्त।
896.
परस्सा सी हि वाचसा निहिनो, तुमो सहा होति निहिनापन्नो;
अथ सी सयं वेदागु होति धीरो, न कोचि बालो समनेसु अत्थि।
897.
अन्नं इतो याभिवदंति धम्मं, अपराद्ध शुद्धिमकेवली ते [शुद्धिमकेवलिनो (सि.)];
एवमपि तिथ्या पुथुसो वदन्ति, संदिथिरागेना हि तेभिरत्ता [त्याभिरत्ता (स्या. का.)]।
898.
इधेव शुद्धि इति वादयन्ति, नान्नेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु;
Evampi titthyā puthuso niviṭṭhā, sakāyane tattha daḷhaṃ vadānā.
899.
सकायने वापि दहं वदानो, कामेत्थ बलोति परं दहेय;
सयमेव सो मेधगमावहेय [मेधकं आवहेय (सि. पि.)], परं वदं बलमसुद्धिधम्मं।
900.
विनिच्चये तत्त्व सयं पमाया, उद्धं सा [उद्दं सो (सि. स्या. पि.)] लोकस्मिं विवादमेति;

हित्वान सब्बानि विनिच्चयानि, न मेधगं कुब्बति जंतु लोकेति।
चुडब्युहसुत्तं द्वादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
12. चुळवियुहसुत्तं [चूळवियुहसुत्तं (सी० स्या० निद्देस)]
गेहूं.
संस्कन्दित्तिपरिब्बसाना, विग्गयः नाना कुसला वदन्ति।
यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पतिकोसमकेलि सो॥
200
एम्पि विग्गयः विवाद्यन्ति, बालो परो अकुसलोति [अकुसलोति (सी० स्या० पी०)] चाहु।
सचो नूचो वादो कतमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसला वदाना॥
★.
परस्स चे धम्मानुजानं, बालोमको [बालो मगो (सी० स्या० क०)] होति निहिनपञ्चो।
सब्बेव बाला सुनिहीनपञ्चा, सब्बेविमे दिट्ठिपरिब्बसाना॥
66.
सन्दिट्ठिया चेव न वीवदाता, संसुद्धपञ्च कुसला मुतीमा।
न तेसं कोचि परिहीनपञ्चो [कोचिपि निहिनपञ्चो (सी० स्या० क०)], दिट्ठी हि तेसम्पि तथा समत्ता॥

.
न वहमेतं तथियन्ति [तथिवन्ति (स्या० क०)] ब्रूमि, यमाहु बाला मिथु अञ्जमञ्च।
संस्कन्दित्तिमकंसु सच्दचं, तस्मा हि बलोति परं दहन्ति॥
प्रति.
यमाहु सचं तथियन्ति एके, तमहु अञ्चे [अञ्जेपि (स्या०), अञ्जे च (?)] तुष्टं मुसाति।
एवमपि विघ्यः विवाद्यन्ति, कस्मा न एकं समाना वदन्ति॥
सप्ताह.
एकंहि सच्चं न दुतीयमति, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं।
नाना ते [नानातो (क०)] सच्दचानि सयं तुनन्ति, तस्मा न एकं समाना वदन्ति॥

.
कस्मा नु सचचानि वदन्ति नाना, पवडियासे कुसला वदाना।
सचदाचानि सुतानि बहुनि नाना, उदाहु ते तकदमनुस्सरन्ति॥
40.
न हेव सचचानि बहुनि नाना, अञ्चत्र संज्ञय निच्चचानि लोके।
तक्षकञ्च दिट्ठिसु पकप्पयित्वा, सचदचं मुसाति द्वयधम्ममाहु॥
₹1.
दित्थे सुते सीलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी।
विनिचये तत्वा पहस्मानो, बालो परो अक्सुसोलोति चाह॥

.
येनेव बालोति परं दहाति, तेनातुमानं कुसलोति चाह।
सयमत्तना सो कुसलो वदानो, अञ्जन विमानतेति तदेव पाव॥
बीआर.
अतिसारदिट्ठियाव सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुन्नमनि।
सयमेव समं मनसाभिसित्तो, दिट्ठि हि सा तस्स तथा समत्ता॥

.
परस्स चे हि वचसा निहिनो, तुमो सहा होति निहिनपञ्चो।
अथ चे सयं वेदगु होति धीरो, न कोचि बालो समानसु अथि॥
लेडी.
अञ्जनं इतो याभिवदन्ति धम्मं, अपरद्धा सुद्धिमकेवली ते [सुद्धिमकेवलिनो (सी०)]।
एम्पि तिथ्या पुथुसो वदन्ति, संदिथिरागेन हि तेभिरत्ता [त्याभिरत्ता (स्या० क०)]॥

.

इधेव सुद्धि इति वादयन्ति, नाञ्ञेसु धम्मेसु विसुद्धिमाहु।
एवमपि तिथ्या पुथुसो निविट्था, सकायने तथा दळहं वदाना॥
60.
सकायने वापि दळहं वदानो, कामेत्थ बालोति परं दहेय।
सयमेव सो मेधगमावहेय [मेधकं आवहेय (सी० पी०)], परं वदं बालमसुद्धिधम्मं॥
600.
विनिचये तत्व सयं पमाय, उद्धं स [उददं सो (सी० स्या० पी०)] लोकस्मिं विवादमेति।
हित्वान सब्बानि विनिचयानि, न मेधगं कुब्बति जन्तु लोकेति॥
चुळब्यूहसुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.13 महावियुहसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दार्शनिक पवित्रता की ओर नहीं ले जा सकते, वे केवल अपनी प्रशंसा करते हैं और दूसरों को कलंकित करते हैं। परन्तु ब्राह्मण सभी विवादों से पार पा लेता है, वह विद्या के प्रति उदासीन होता है, वह संतुष्ट रहता है।

अंतर्वस्तु

14.13 महावियुहसूत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.13 महावियुहसूत्त

अनुवाद

1. जो लोग दार्शनिक मतों में स्थिर रहकर यह कहते हुए विवाद करते हैं कि 'यही सत्य है', वे सभी निंदा के पात्र होते हैं और इस मामले में प्रशंसा भी पाते हैं। (901)

2. यह थोड़ा है, शांति लाने के लिए पर्याप्त नहीं है; मैं कहता हूँ कि विवाद के दो फल हैं; यह देखकर किसी को विवाद नहीं करना चाहिए, यह समझते हुए कि खेमा (योग खेमा) वह स्थान है जहाँ विवाद नहीं होता। (902)

3. लोगों के बीच जो मत उत्पन्न हुए हैं, उन सभी को ज्ञानी व्यक्ति नहीं अपनाता; वह स्वतंत्र है। क्या जो देखी और सुनी हुई बातों से प्रसन्न नहीं है, उसे निर्भरता का सहारा लेना चाहिए? (903)

4. जो लोग सद्गुण को सर्वोपरि मानते हैं, वे कहते हैं कि पवित्रता संयम से जुड़ी है; एक पवित्र कार्य को अपने ऊपर लेकर वे सेवा करते हैं। तो आइए हम इस (दृष्टिकोण) में उनकी (गुरु की) पवित्रता सीखें; अस्तित्व की इच्छा रखते हुए वे स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताते हैं। (904)

5. यदि वह सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों से विमुख हो जाता है, तो वह अपने कर्मों से विमुख होकर कांपता है; वह विलाप करता है, वह इस संसार में पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है, मानो वह अपने काफिले से बिछड़ गया हो या अपने घर से भटक गया हो। (905)

6. सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को पूरी तरह से त्यागकर, और चाहे वह कुकर्म हो या निष्कलंक, पवित्रता या अपवित्रता के लिए प्रार्थना न करके, वह शांति को ग्रहण किए बिना (पवित्रता और अपवित्रता दोनों से) विमुख होकर भटकता है। (906)

7. तपस्या के द्वारा, या किसी अप्रिय वस्तु द्वारा, या जो कुछ देखा, सुना या सोचा गया हो, ऊपर की ओर जाते हुए वे पवित्रता के लिए विलाप करते हैं, पुनर्जन्म की इच्छा से मुक्त हुए बिना। (907)

8. जो (किसी ऐसी चीज की) इच्छा करता है जो हमेशा मौजूद रहती है, वह इच्छा करता है, और (अपनी) योजनाओं के बीच में कांपते हुए (भटक जाता है); जिसके लिए न मृत्यु है और न पुनर्जन्म, वह भला कैसे विचलित हो सकता है या किसी चीज़ की इच्छा कर सकता है? (908)

9. जिसे कुछ लोग सर्वोच्च धर्म कहते हैं, वही दूसरे नीच कहते हैं; इनमें से कौन सा सच्चा सिद्धांत (वाद) है? क्योंकि ये सभी स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताते हैं। (909)

10. वे अपने धर्म को परिपूर्ण कहते हैं, दूसरे के धर्म को नीच कहते हैं; इस प्रकार असहमति होने पर वे वाद-विवाद करते हैं और अपने-अपने मत को सत्य बताते हैं। (910)

11. यदि कोई दूसरे की निंदा से नीच हो जाता है, तो धर्मों में कोई विशिष्ट नहीं रह जाएगा; क्योंकि वे सभी दूसरे के धर्म को नीच कहते हैं, अपने धर्म में दृढ़ता मानते हैं। (911)

12. अपने धर्म की पूजा करना उतना ही महान है जितना अपने मार्ग की प्रशंसा करना; सभी संप्रदाय इसी स्थिति में होंगे, क्योंकि उनकी पवित्रता व्यक्तिगत है। (912)

13. ब्राह्मण में दूसरों पर निर्भर होने का कोई गुण नहीं है, न ही धर्मों में ऐसा कुछ है जिसे वह जांच-पड़ताल के बाद अपनाए; अतः उसने विवादों पर विजय प्राप्त कर ली है, क्योंकि वह किसी अन्य धर्म को सर्वश्रेष्ठ नहीं मानता। (913)

14. 'मैं समझता हूँ, मैं भी यही देखता हूँ,' ऐसा कहकर कुछ लोग (अपने दार्शनिक विचारों से) शुद्धता की ओर लौट जाते हैं। यदि उसने शुद्धता देखी, तो दूसरे के विचार से क्या (प्रभावित) हुआ? विजय प्राप्त करने के बाद वे कहते हैं कि शुद्धता दूसरे के द्वारा विद्यमान है। (?) (914)

15. एक प्रत्यक्षदर्शी नाम और रूप देखेगा, और देखकर वह उन (चीजों) को समझेगा; वह अपनी इच्छा से कम या ज्यादा देखे, क्योंकि विद्वान यह नहीं कहते कि शुद्धता उससे विद्यमान है। (915)

16. एक हठधर्मी शुद्धता का मार्गदर्शक नहीं होता, क्योंकि वह पूर्वाग्रही विचारों से निर्देशित होता है, यह कहते हुए कि अच्छाई उसी में निहित है जिसमें वह लीन है, और यह कहते हुए कि शुद्धता वहीं है, उसने उस वस्तु को ऐसा देखा। (916)

17. एक ब्राह्मण समय में, (या) (जीवों की) संख्या में प्रवेश नहीं करता, (वह) (दार्शनिक) विचारों का अनुयायी नहीं है, न ही ज्ञान का मित्र है; और लोगों के बीच उत्पन्न हुए मतों में प्रवेश करने के बाद, वह विद्या के प्रति उदासीन रहता है, जबकि अन्य लोग इसे प्राप्त करते हैं। (917)

18. मुनि (संत), संसार के बंधनों से मुक्त होकर, उत्पन्न विवादों में किसी का पक्ष नहीं लेते; असंतुष्टों के बीच शांत रहकर वे उदासीन रहते हैं, ज्ञान को ग्रहण नहीं करते जबकि अन्य उसे प्राप्त करते हैं। (918)

19. अपने पूर्व के आलस्यों का त्याग करके, नए आलस्यों को ग्रहण न करके, अपनी इच्छाओं के अनुसार न भटककर, हठधर्मी न होकर, वे दार्शनिक विचारों से मुक्त होकर, ज्ञानवान होकर, संसार से आसक्त नहीं रहते और न ही स्वयं को दोष देते हैं। (919)

20. समस्त धर्मों (धम्म) के बीच एकांत में रहकर, जो कुछ भी देखा, सुना या सोचा गया है, वे अपने बोझ को उतारकर मुक्त मुनि हैं, काल के बंधन में नहीं हैं (न कप्पियो), मृत नहीं हैं, और किसी चीज की इच्छा नहीं रखते। ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा। (920)

महावियुहसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

13. महाब्युहसुत्तं
901.
ये केसीमे दिथिपरिब्बासाना, इदामेव सच्चन्ति विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी. पी.)];
सब्बेव ते निन्दामन्वनयन्ति, अथो पसंसाम्पि लभन्ति तथा।
902.
अप्पनहि एतं न अलं समाया, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि;
एतामपि दिस्व न विवादयेथ, खेमाभिपस्सां अविवादभूमिम्।
903.
या कासीमा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बव एता न उपेति विद्वा;
अनुपयो सो उपायं किमेय, दिट्ठे सुते खंतीमकुब्बमानो।
904.
सिलुत्तमा सन्नमेनाहु सुद्धिम, वातं समादाय उपथितासे;
इधेव सिखेमा अथस्सा शुद्धिं, भावुपनिता कुसल वदना।
905.
ससे कटो सिलवत्तो होति, पवेधति [सा वेधति (सि. पि.)] कम्म विराधयित्वा;
पजप्पति पथयति च शुद्धिं, सत्थव हीनो पवसं गृहम्हा।
906.
सिल्बत्तं वापि पहाय सब्बं, कम्मञ्च सवज्जनवज्जमेतम्;
शुद्धिं अशुद्धिन्ति अपत्थयानो, विराटो केयर शांतिमनुग्गहाय।
907.
तमुपनिस्साय जिगुच्छितं वा, अथवापि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
उद्धंसरा सुद्धिमनुत्थुनन्ति, अवित्तनहसे भवभवेसु।
908.
पत्थयमानस्स हि जप्पीतानि, पवेधीतं वापि पकप्पित्सु;
कटुप्पातो इधा यस्सा नत्थि, सा केना वेधेया कुहिंवा जप्पे [कुहिंसि जप्पे (सि. स्या. का.), कुहिं पजप्पे (पि.) निद्देसो पासितब्बो]।
909.
यामाहु धम्मं परमंति एके, तमेव हीनंति पनाहु अण्णे;
साको नु वदो कटमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसल वदना।
910.
साकन्हि धम्मं परिपुन्नमाहु, अन्नस्स धम्मं पण हिनमाहु;
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, सकां सकां सम्मुतिमाहु सकाम्।
911.
परस्सा सी वंभयितेन हीनो, न कोसि धम्मेसु विसेसि अस्सा;
पुथु हि अन्नस्स वदन्ति धम्मं, निहिनातो समहि दहं वदना।
912.
सद्धम्मपूजापि नेसं तथेव, यथा पसंसन्ति सकायानानि;
सब्बेव वड़ा [सब्बे पावड़ा (स्या.)] तथिया [तथिवा (सब्बत्था)] भवेय्युं, शुद्धि हि नेसं पकत्तमेव।
913.
न ब्राह्मणस्स पारेण्यमत्थि, धम्मेसु निच्चेय समुग्गहितं;
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो, न हि सेठतो पस्सति धम्ममन्नम्।
914.
जानामि पसामि तथैव एतम्, दिट्ठिया एके पॅसेन्ति शुद्धिः;
अद्दक्खी सी किन्हि तुमस्सा तेन, अतिसिट्वा अननेन वदन्ति शुद्धिम्।
915.
पस्सं नरो दक्खति [दक्खिति (सि.)] नमारूपं, दिसवना वा नस्सति तनिमेव;
कामं बहुं पस्सतु अप्पकं वा, न हि तेन शुद्धिं कुसल वदन्ति।
916.
निविस्सावदि न हि सुब्बिनयो, पकप्पितं दिति पुरेक्खराणो;

यं निस्सिटो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिंवदो तथा तथद्दसा सो।
917.
न ब्राह्मणो कप्पमुपेति संखा [शंखां (सि. स्या. पि.)], न दिथिसारि नापि नानाबंधु;
सातत्व च सो सम्मुतियो [सम्मतियो (स्या.)] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहन्ति मन्ने।
918.
विसज्जा गन्थानि मुनीधा लोके, विवदजतेसु न वग्गसारि;
संतो असांतेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहन्ति मन्ने।
919.
पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बं, न चंदागु नोपि निविसवदि;
स विप्पमुत्तो दिथिगतेहि धीरो, न लिम्पति [न लिप्पति (सि. पि.)] लोके अनत्तागरहि।
920.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किंचि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
स पन्नभरो मुनि विप्पमुत्तो, न कप्पियो नुपरतो न पत्तियोति।
महाब्यूहसुत्तं तेरसामं निहितं।

पाली-देवनागरी
13. महाब्यूहसुत्तं
200.
ये केचिमे दित्थिपरिब्बासाना, इदमेव सच्चन्ति विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी० पी०)]।
सब्बेव ते निन्दमन्वन्ति, अथो पसंसम्पि लभन्ति तथाः।
3.
अप्पनहि एतं न अलं समाय, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि।
एतमपि दिस्वा न विवादयेत्, खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं॥
.
या काचिमा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बाव एता न उपेति विद्वा।
उपयो सो उपयं किमेय, दित्थे सुते खंतीमकुब्बमानो॥
6.
सीलुत्तमा संज्ञमेनाहु सुधिं, वतं समादाय उपत्थितासे।
इधेव सिखेम अथस्स सुधिं, भवुपनीता कुसला वदाना॥
60
सचे छुतो सीलवततो होति, पवेधति [स वेधति (सी० पी०)] कम्म विराधयित्वा।
पज्पपति पथयति च सुद्धिं, सथैव हीनो पवसं घर्म्हा॥
60
सीलब्बतं वापि पहाय सब्बं, कम्मनदच सवज्जनवजदजमेतं।
सुद्धिं अशुद्धिन्ति अपथ्यानो, विरतो चरे शांतिमनुग्गहाय॥
1.50
तमुपनिस्सय जिगुच्छितं वा, यापि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा।
उधंसरा सुधिमनुथुनन्ति, अवितान्हासे भवाभवेसु॥
6.
पथ्यमानस्स हि जप्पितानि, पवेधीतं वापि पक्प्पितेसु।
चतुप्पनतो इध यस नत्थि, स केन वेधेय कुहिनव जप्पे [कुहिंचि जप्पे (सी० स्या० क०), कुहिन पजप्पे (पी०) निद्देसो पास्सितब्बो]॥
100.
यमाहु धम्मं परमंति एके, तमेव हीन्ति पनाहु अञ्चे।
सचो नूचो वादो कतमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसला वदाना॥
901.
सञ्चहि धम्मं परिपुन्नमाहु, अञ्जस्स धम्मं पण हिनमाहु।
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, सकं सकं सम्मुतिमाहु सच्दचं॥
11.

परस्स चे वंभयितेन हीनो, न कोचि धम्मेसु विसेसि अस्स।
पुथु हि अञ्जनस्स वदन्ति धम्मं, निहिणतो समहि दळहं वदाना॥
611.
सद्धम्मपूजापि नेसं तथेव, यथा पसंसन्ति सकयानानि।
सब्बे पवादा (स्या०)] तथिया [तथिवा (सब्बत्थ)] भवेयुं, सुद्धि हि नेसं पच्चत्तमेव॥
60, 1 ...
न ब्राह्मणस्स पर्णेय्यमथि, धम्मेसु निच्छेय्य समुघहितं।
तस्मा विवादानि उपतिवततो, न हि सेत्थतो पस्सति धम्ममञ्च।
600.
जानामि पस्सामि तथेव एतं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुधिं।
अद्दक्खि चे किंहि तुमस्स तेन, अतिसित्वा अञ्चेन वदन्ति सुधिं॥
11.
पसं नरो दक्खति [दखिति (सी०)] नामरूपं, दिस्वां वा नस्सति तनिमेव।
कामं बहुं पसस्तु अप्पकं वा, न हि तेन सुधिं कुसल वदन्ति॥
1960.
निविस्स्वादि न हि सुब्बिनायो, पकप्पितं दिट्ठि पूराखराणो।
यं निस्सीतो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिन्वदो तत्थ तथद्दसा सो॥
2017.
न ब्राह्मणो कप्पमुपेति सङ्खा [सङ्खं (सी० स्या० पी०)], न दिट्ठिसरि नपि ज्ञानबंधु।
नत्वा च सो सम्मुतियो [सम्मतियो (स्या०)] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहन्ति मन्गे॥
1918.
विस्ससज गंठनि मुनीध लोके, विवादजातेसु न वाग्गसारि।
सन्तो असान्तेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहनन्ति मञ्चे॥
11.
पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बन, न छंदगू नोपि निविस्सवादी।
स विप्पमुत्तो दिट्ठिगतेहि धीरो, न लिम्पति [न लिप्पति (सी० पी०)] लोके अनत्तगरही॥
200.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्च दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
स प सञ्भारो मुनि विप्पमुत्तो, न कप्पियो नुपरतो न पथियोति॥
महाब्यूहसुत्तं तेरसं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.14 तुवताकासुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

एक भिक्षु (सन्यासी) आनंद कैसे प्राप्त करता है, उसके कर्तव्य क्या हैं और उसे किन चीजों से बचना चाहिए।

अंतर्वस्तु
14.14 तुवतकसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.14 तुवतकसुत्त
अनुवाद

1. 'मैं आपसे, जो आदिच्छों के संबंधी और एक महान ऋषि हैं, विवेक और शांति की अवस्था के बारे में पूछता हूँ। इसे देखकर भिक्षु कैसे शांत हो जाता है और संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता?' (921)

2. 'उसे पापंका (भ्रम) की जड़ को पूरी तरह से काट देना चाहिए, यह सोचकर कि "मैं ही ज्ञान हूँ;" - भगवान बुद्ध ने कहा - 'अंतर्निहित सभी इच्छाओं को वश में करना सीखो, सदा विचारशील रहो।' (922)

3. 'उसे प्रत्येक धर्म को आंतरिक या बाह्य रूप से सीखना चाहिए; इसलिए उसे अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि अच्छे लोगों के लिए इसे आनंद नहीं कहा जाता।' (923)

4. 'इसलिए उसे स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ या नीचा या उनके बराबर नहीं समझना चाहिए; विभिन्न लोगों द्वारा प्रश्न किए जाने पर उसे स्वयं को अलंकृत नहीं करना चाहिए।' (924)

5. 'भिक्षु को आंतरिक रूप से शांत रहना चाहिए, उसे किसी अन्य स्रोत से शांति नहीं खोजनी चाहिए; क्योंकि जो आंतरिक रूप से शांत है, उसके लिए कुछ भी ग्रहण करने योग्य या अस्वीकृत करने योग्य नहीं है। (925)

6. 'जैसे समुद्र के मध्य (अर्थात गहराई) में कोई लहर उत्पन्न नहीं होती, बल्कि स्थिर रहती है, वैसे ही भिक्षु को शांत रहना चाहिए, इच्छा रहित रहना चाहिए, उसे किसी भी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (926)

7. उन्होंने खुली आँखों से उस धम्म का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया जो सभी खतरों को दूर करता है; अब धम्म प्रथाओं, उपदेशों या समाधि (स्व-मग्न समाधि) के बारे में बताइए। (927) 8.

भगवान (भगवान बुद्ध): 'उसे अपनी आँखों से लालची नहीं होना चाहिए, उसे अपने कानों को नगर की बातों से दूर रखना चाहिए, उसे मीठी चीजों के प्रति लालची नहीं होना चाहिए, और उसे संसार में किसी भी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (928)

9. जब भिक्षु (रोग से) प्रभावित हो, तो वह शोक न करे, कहीं और रहने की इच्छा न करे, और किसी भी खतरे से भयभीत न हो। (929)

10. उबले हुए चावल, पेय, ठोस भोजन और वस्त्र प्राप्त कर लेने पर, वह इनका संचय न करे, और यदि ये उसे न मिलें तो चिंतित न हो। (930)

11. वह ध्यानमग्न रहे, ताक-झांक न करे, दुराचार से दूर रहे, आलसी न हो, भिक्षु अपने शांत निवास में रहे। (931)

12. वह अधिक न सोए, वह पूरी लगन से ध्यान लगाए, वह आलस्य, छल, हंसी, खेलकूद, यौन संबंध और अलंकरण का त्याग करे। (932)

13. 'वह अथब्बनवेद के भजनों का अभ्यास करने, स्वप्नों और संकेतों की व्याख्या करने, या ज्योतिष में संलग्न न हो; वह पक्षियों की आवाज की व्याख्या करने, गर्भाधान कराने, या चिकित्सा के क्षेत्र में संलग्न न हो। (933)

14. 'भिक्षु निंदा से भयभीत न हो, न ही प्रशंसा से अभिमान करे; वह लोभ, क्रोध और निंदा के साथ-साथ लालच को भी दूर भगाए। (934)

15. 'भिक्षु खरीद-फरोख्त में संलग्न न हो, वह किसी बात में दूसरों की निंदा न करे, वह गांव में किसी को डांट-फटकार न करे।उसे लाभ के लालच में लोगों से बात नहीं करनी चाहिए। (935)

16. भिक्षु को घमंड नहीं करना चाहिए, और न ही उसे सुसंगत भाषा बोलनी चाहिए; उसे अहंकार नहीं सीखना चाहिए, उसे झगड़ालू भाषा नहीं बोलनी चाहिए। (936)

17. उसे झूठ के मार्ग पर नहीं चलना चाहिए, उसे जानबूझकर बुरे काम नहीं करने चाहिए; और जीविका, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान), सद्गुण और (पवित्र) कार्यों के संबंध में उसे दूसरों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। (937)

18. बहुत बोलने वाले भिक्षुओं से बहुत कुछ सुनकर उसे चिढ़कर कठोर भाषा में उत्तर नहीं देना चाहिए; क्योंकि अच्छे लोग दूसरों को नहीं रोकते। (938)

19. इस धम्म को समझकर, जिज्ञासु और सदा विचारशील भिक्षु को सीखना चाहिए; आनंद को शांति में निहित मानकर, उसे गौतम (बुद्ध) के आदेशों में आलसी नहीं होना चाहिए। (939)

20. 'क्योंकि अजेय विजेता ने बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के धम्म को प्रत्यक्ष रूप से देखा; इसलिए उसे भगवान (बुद्ध) की आज्ञाओं का पालन करते हुए सीखना चाहिए और सदा उनकी पूजा करनी चाहिए।' (940)

तुवतकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
14. तुवतकसुत्तं
921.
"पुच्चामि तं आदिच्चबंधु [अदिच्चबंधुं (सि. स्या.)], विवेकं शांतिपादान्च महेसि;
कथं दिस्व निब्बति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किन्चि।"
922.
"मूलं पापञ्चसंखाय, (इति भगवान)
मंता अस्मिति सब्बामुपरुन्धे [सब्बामुपरुद्धे (स्या. पि. का.)];
या काचि तन्हा अज्झत्तं,
तस्सं विनय [विनय (?)] सदा सातो सिक्खे।
923.
"यं किंचि धम्ममभिजान्न, अज्जत्तं अथवापि बहिद्धा;
न तेन थमं [मनं (सी. का.)] कुब्बेथा, न ही सा निब्बुति सातं वुत्ता।
924.
"सेय्यो न तेन मन्नेया, नीसयो अथवापि सरिक्खो;
फ़ुठो [पुठ्हो (सि. स्या. का.)] अनेकरूपेहि, नतुमनं विकप्पायं तिट्ठे।
925.
"अज्जत्तमेवुपासमे, न अन्नानतो भिक्खु सन्तिमेसेय;
अज्झट्टं उपसंतस्स, नत्थि अत्ता कुतो निरत्त वा।
926.
"मज्जे यथा समुद्दस्स, उमि नो जयति थितो होति;
एवं ठितो अनेजास्सा, उससादं भिक्खु न करेया कुहिनसि"।
927.
"अकित्तायि विवाचक्कु, सक्खिधम्मं परिस्यावनियम्;
पतिपदं वदेहि भद्दन्ते, पतिमोक्खं अथवापि समाधिम्।"
928.
"चक्खुहि नेवा लोलास्सा, गमकथया आवरये सोतम्;
रसे च नानुगिज्जेय, न च ममयेत् किञ्चि लोकस्मिः।
929.
"फस्सेन यदा फुथस्स, परिदेवं भिक्खु न करेया कुहिन्चि;
भावाञ्च नाभिजप्पेय, भेरवेसु च न संपवेधेय।
930.
"अन्नानमथो पानानं, खदानियानं अथोपि वत्थानं;
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो।

931.
"झायि न पडलोलास्सा, विरामे कुक्कुक्का नप्पमज्जेया;
अथासनेसु सयानेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहारेया।
932.
"निद्दं न बाहुलिकरेया, जागरियां भजेय अतापि;
तंदिं मयं हस्सां खिदं, मेथुनं विप्पजहे सविभूषां।
933.
"अथब्बाणं सुपिनं लक्खानं, नो विदाहे अथोपि नक्खट्टं;
विरुताञ्च गब्भकारणं, तिकिच्चं मामको न सेवैया।
934.
"निंदया नप्पवेधेय, न उन्नमेय पसंसिटो भिक्खु;
लोभां सहा मछरियेना, कोधं पेसुनियाञ्च पनुडेय्य।
935.
"कायविक्कये न तिट्ठेया, उपवदं भिक्खु न करेय कुहिञ्चि;
गामे च नाभिसज्जेय, लाभकाम्य जनं न लापयेय।
936.
"न च कत्थिता सिया भिक्खु, न च वाचं पयुत्तं भसेय;
पगभियं न सिखेया, कथं विग्गहिकं न कथयेय।
937.
"मोसावज्जे न नियथा, संपजाणो साथनि न कयिरा;
अथ जीवितेन पनन्या, सिलब्बतेन नाण्णामतिमन्ने।
938.
"सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समानं वा पुथुजनानं [पुथुवचनां (सि. स्या. पि.)];
फरुसेना ने न पतिवज्जा, न ही संतो पतिसेनिकरोंति।
939.
"एतञ्च धम्ममनन्या, विचिनं भिक्खु सदा सातो सिक्खे;
शांतिति निब्बुतिं नात्वा, ससाने गोतमस्स न पमज्जेया।
940.
"अभिभू हि सो अनाभिभूतो, सक्खिधम्ममनितिहमदस्सी;
तस्मा हि तस्स भगवतो ससाने, अप्पमत्तो सदा नमस्सामनुसिक्खे'ति।
तुवड्कसुत्तं कुद्दसमं निहितं।

पाली-देवनागरी
14. तुवत्कसुतं
2000.
"पुच्चामि तं आदिचबंधुं [आदिचदचबंधुं (सी० स्या०)], विवेकं शांतिपदञ्च महेसि।
कथं दिस्वा निब्बति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किञ्चचि"॥
.
"मूलं पपञ्चसङ्खाय, (इति भगवान)
मन्ता अस्मिति सब्बमुपरुन्धे [सब्बमुपरुद्धे (स्या० पी० क०)]।
या काचि तन्हा अज्झत्तं,
तासं विनया [विन्याय (?)] सदा सातो सीखे॥
.
"यं किञ्चि धम्मभिज्ञा, अज्झत्तं अरापि बहिद्धा।"
न तेन थमं [मानं (सी० क०)] कुब्बेथ, न हि सा निब्बुति सतं वुत्ता॥
।
"सेय्यो न तेन मञ्ञेय, नीचेय्यो अपि सरिक्खो।
थत्थ फु [पुत्थो (सी० स्या० क०)] अनेकरूपेहि, नातुमनं विकप्पयं तिट्ठे॥

522.
"अज्जत्तमेवुपसमे, न अञ्जन्तो भिक्खु शान्तिमेसेय।
अज्झत्तं उपसंतस्स, नत्थि अत्ता कुतो निरत्ता वा॥
.
"मझे यथा समुद्दस्स, उमि नो जायति थितो होति।
एवं थितो अनेजस्स, उससदं भिक्खु न करेय कुहिनचि"॥
छठी.
"अकित्तयै विवत्चक्खु, सक्खिधम्मं परिस्स्यविनयं।
पतिपदं वदेहि भद्दन्ते, पतिमोक्खं अरापि समाधिं"॥
एफ़बी.
"चक्खुहि नेव लोलस, गम्कथाय आवर्ये सोतं।
रसे च नानुगिज्जेय, न च ममयेत् किञ्चि लोकस्मिं॥
.
"फस्सेन यदा फुथ्सत्स, परिदेवं भिक्खु न करेय कुहिनचि।
भवाञ्च नाभिजप्पेय, भेरवेसु च न संपवेधेय॥
तीस.
"अ संज्ञानमथो पानानं, भोजनियानं अथोपि वाथानं।
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो॥
.
"झायि न पदलोलस, विरमे कुकुचदचा नप्पमज्जेय।
अथासनेसु सयनेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहारय॥
26.
"निद्दं न बहुदिकार्येय, जाग्रियां भजेय्य अतपि।
तंदिं मयं हसन खिड्डं, मेथुनं विप्पजे सविभूसं॥
252.
"अथब्बनं सुपिनं लक्षणं, नो विधहे अथोपि नक्खत्तं।
विरुत्ञ्च गब्भकरणं, तिकिच्छं मामको न सेवय्य॥
934.
"निन्दय नप्पवेधेय, न उन्नमेय पसंसिटो भिक्खु।
लोभं सहमस्तयेन, कोधं पेसुनीयन्च पनुदेय्य॥
.
"कायविक चित्रकये न तिट्ठेय, उपवादं भिक्खु न करेय कुहिनचि।
गामे च नाभिसज्जेय, लाभकम्या जनं न लापयेय॥
60वीं.
"न च कथिता सिया भिक्खु, न च वाचं प्युत्तं भासेय।
पग्ब्भ्यं न सिक्खेय, कथं विग्गहिकं न कथयेय॥
.
"मोसवज्जे न नीयेथ, संपजानो सथानि न कयिरा।
अथ सजीवेन पञ्चाय, सीलब्बतेन नञ्जनमतिमञ्चे॥
→
"सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समानां वा पुथुजनानं [पुथुवचनां (सी० स्या० पी०)]।
फ़रुसेन ने न पतिखजज्जा, न हि सन्तो पतिसेनिक्रोन्ति॥
.
"एतञ्च धम्ममञ्चाय, विचिनं भिक्खु सदा सातो सिखे।"
शांतिति निब्बुतिं ञत्वा, सस्ने गोतमस्स न पमज्जेय॥
2004.
"अभिभू हि सो अनभिभूतो, सखिधम्ममनीतिहमदस्सी।"
तस्मा हि तस्स भगवतो सस्ने, अप्पमत्तो सदा नमस्मनुसिक्खे"ति॥

तुवत्कससुत्तं चुद्दसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.16 सारिपुत्तसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

जब सारिपुत्त ने पूछा कि एक भिक्षु को अपने आप को किस चीज के प्रति समर्पित करना चाहिए, तो बुद्ध ने दिखाया कि उसे किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए।

अंतर्वस्तु

14.16 सारिपुत्तसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी

4.16 सारिपुत्तसुत्त

अनुवाद

1. 'मैंने पहले कभी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा,' - पूज्य सारिपुत्त ने कहा, - 'और न ही किसी ने तुषिता स्वर्ग से आए ऐसे सुंदर वाणी वाले गुरु के बारे में सुना है। (961)

2. 'जैसे वे, स्पष्ट दृष्टि वाले, सभी अंधकार को दूर करके मनुष्य और देवता जगत में प्रकट होते हैं, वैसे ही वे लोगों के बीच अकेले विचरण करते हैं। (962)

3. 'इस बुद्ध से, जो स्वतंत्र, अपरिवर्तित, निष्कपट शिक्षक हैं, जो (संसार में) आए हैं, मैं इस संसार में बंधे हुए अनेकों की ओर से एक प्रश्न लेकर विनती करता हूँ। (963)

4. 'उस भिक्षु (सांसारिक) के लिए जो संसार से विमुख है और एकांत स्थान, वृक्ष की जड़ या श्मशान में निवास करता है, या पहाड़ों की गुफाओं में रहता है, (964)

5. 'इन विभिन्न निवास स्थानों में कितने ही खतरे हैं जिनसे भिक्षु अपने शांत निवास में भयभीत नहीं होता! (965)

6. 'जो अमरलोक जाता है उसके लिए संसार में कितने ही खतरे हैं, जिन्हें भिक्षु अपने एकांत निवास में पार कर लेता है! (966)

7. 'ऊर्जावान भिक्षु के वचन क्या हैं, इस संसार में उसके उद्देश्य क्या हैं, उसके सद्‌गुण और (पवित्र) कार्य क्या हैं?' (967)

8. 'जो व्यक्ति एक ही उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करके, बुद्धिमान और विचारशील होकर अध्ययन में लगा रहता है, क्या वह अपनी ही गंदगी को वैसे ही झाड़ सकता है जैसे लोहार चांदी की गंदगी झाड़ता है?' (968)

9. 'हे सारिपुत्त, जो पुनर्जन्म आदि से विरक्त है, उसके लिए क्या सुखदायक है?' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'यदि वह एकांतवास में रहता है और धम्म के अनुसार पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, तो मैं तुम्हें अपनी समझ के अनुसार यही बताऊंगा।' (969)

10. 'सीमाओं पर विचरण करने वाले बुद्धिमान और विचारशील भिक्षु को पांच प्रकार के खतरों से नहीं डरना चाहिए: मक्खियां और अन्य सभी मक्खियां, सांप, दुष्ट मनुष्यों से संपर्क और चौपाये।' (970)

11. 'उसे शत्रुओं से नहीं डरना चाहिए, भले ही उसने उनसे अनेक खतरे देखे हों; इसके अलावा, वह अच्छे की खोज करते हुए अन्य खतरों पर विजय प्राप्त कर लेगा।' (971)

12. 'रोग और भूख से पीड़ित होकर, वह सर्दी और अत्यधिक गर्मी सहन करे; अनेक प्रकार से इनसे प्रभावित होकर, और बेघर होकर, वह कड़ी मेहनत करे। (972)

13. 'वह चोरी न करे, वह झूठ न बोले; वह कमजोर या मजबूत किसी भी चीज को मित्रतापूर्वक छुए; वह मन की बेचैनी को अंधकार के पक्षधर (अर्थात् मारा, मृत्यु के देवता) के रूप में स्वीकार करे, उसे दूर भगाए। (973)

14. 'वह क्रोध और अहंकार के वश में न आए; इनकी जड़ उखाड़कर, वह जीवन व्यतीत करे, और जो सुखद है और जो अप्रिय है, दोनों पर विजय प्राप्त करे। (974)

15. 'बुद्धि से निर्देशित होकर, जो अच्छा है उसमें आनंद लेते हुए, वह उन खतरों को दूर भगाए; वह अपने दूर निवास में असंतोष पर विजय प्राप्त करे; वह विलाप के चारों कारणों पर विजय प्राप्त करे। (975)

16. 'मैं क्या खाऊँ, या कहाँ खाऊँ?' वह सचमुच (पिछली रात) बेचैनी से लेटा रहा - 'आज रात कहाँ सोऊँ?' बेघर भटकने वाले सेख (शिष्य) को इन दयनीय शंकाओं को दूर करना चाहिए। (976)

17. 'उचित समय पर भोजन और वस्त्र प्राप्त करके, उसे सुख के लिए इस संसार में संयम बरतना चाहिए; इन बातों में सावधान रहकर और गाँव में संयमित भटकते हुए, यदि वह चिढ़ भी जाए, तो कठोर शब्द न बोले। (977)

18. 'उसे दृष्टि झुकाए रखना चाहिए, और ताक-झाँक न करनी चाहिए, ध्यान में लीन रहना चाहिए, अत्यंत सतर्क रहना चाहिए; समभाव प्राप्त करके, उसे शांत मन से शंका और दुराचार के स्थान को काट देना चाहिए।' (978)

19. 'अपने गुरुओं के वचनों से प्रेरित होकर, वह चिंतनशील हो और इस प्रेरणा से प्रसन्न हो, अपने सहपाठियों के हठ को भंग करे, शुभ और असमय न आने वाले वचन बोले, और दूसरों के बारे में नकारात्मक विचार न रखे। (979)

20. 'और फिर संसार की पाँच अशुद्धियों के वश में होना, जिनका वशीकरण वह चिंतनशील होकर सीखे,—रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श के प्रति आसक्ति पर विजय प्राप्त करे। (980)

21. 'भिक्षु इन धर्मों के प्रति अपनी इच्छा को वश में रखे और चिंतनशील हो, और अपने मन को पूर्णतः मुक्त करके, समय आने पर धर्म पर चिंतन करते हुए और एक ही लक्ष्य पर एकाग्र होकर अंधकार का नाश करेगा।' ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा। (981)

सारिपुत्तसूत्र समाप्त।

अट्ठकवग्ग समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
16. सारिपुत्तसुत्तं
961.
''ना मे दिथो इतो पुब्बे, (इक्कायस्मा सारिपुत्तो)
Na suto uda kassaci;
Evaṃ vagguvado satthā,
Tusitā gaṇimāgato.
962.
''सदेवकस्सा लोकस्सा, यथा दिसाति चक्खुमा;
सब्बं तमं विनोदेत्वा, एकोवा रतिमाज्जगा।
963.

"तं बुद्धं असितं तदिं, अकुहं गणिमागतम्;
बहुनामिधा बधानां, अत्थि पन्हेन अगमम्।
964.
"भिक्खुनो विजिगुच्छतो, भजतो ऋत्तमासनम्;
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बताणं गुहासु वा।
965.
"उच्चावसेसु सयानेसु, किवंतो तत्थ भेरवा;
येहि भिक्खु न वेधेया, निघोसे सयानासने।
966.
"कति परिस्सया लोके, गच्चतो अगतं दिसं;
ये भिक्खु अभिसम्भवे, पन्तमहि सयानासने।
967.
"क्यास्सा ब्याप्पथयो अस्सु, क्यास्सासु इधा गोकारा;
कानि सिलब्बतानासु, पहितत्तस्सा भिक्खुनो।
968.
"कं सो सिक्खं समादाय, एकोदी निपको सातो;
कम्मरो राजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो"।
969.
"विजिगुच्चमानस्स यदिदं फासु, (सारिपुत्तति भगवान)
ऋत्तासनं सयानं सेवातो सी;
सम्बोधिकमस्सा यथानुधम्मं,
तं ते पवक्खामि यथा पजाननं।
970.
"पंचन्नं धीरो भयानं न भये, भिक्खु सातो सपरियंतचारी;
षांसाधिपतानां सरिसापणं, मनुस्साफस्साणं चतुप्पदानं।
971.
"परधम्मिकानमपि न संतसेय, दिस्वापि तेसं बहुभेरवाणि;
अथापराणि अभिसंभावेया, परिस्सयानि कुसलानुसेसि।
972.
"आतंकफस्सेन खुदाय फुठो, सीतां अतुंहं [अकुण्हं (सि. स्या.)] अधिवासय्य;
तो तेहि फूटथो बहुधा अनेको, वीर्यं परक्कम्मदहं करेय।
973.
"थेय्यं न करे [न करेया (सि. स्या. का.)] न मुसा भाणेया, मेत्तया फस्से तसथवराणि;
यदाविल्लत्तं मनसो विजानना, कण्हस्सा पक्खोति विनोदेय्य।
974.
"कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलमपि तेसं पलिखान्न तिट्ठे;
अथप्पियं वा पण अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसम्भवेय।
975.
"पन्नं पुरक्खत्व कल्याणापिति, विक्खंभये तानि परिस्सयानि;
अरतिं सहेथा सयानमहि पैंते, चतुरो सहेथा परिदेवधम्मे।
976.
" किसु असिसामि कुवं वा [कुधा वा (का.), कुथा वा (निद्देसा)] असिसं, दुक्खं वात सेत्था क्वाज्जा सेसां;
एते विटक्के परिदेवनेये, विनयेथा सीखो अनिकेताचारी।
977.
"अन्नञ्च लद्धा वसनञ्च काले, मत्तं सो ज्ञाना इधा तोसनत्थम्;
तो तेसु गुट्टो याताचारी गेमे, रुसितोपि वाकं फरुसं न वज्जा।
978.
"ओक्खित्तचक्कु न च पदालोलो, झनानुयुत्तो बहुजागरस्स;

उपेक्खमारभ समाहितत्तो, तक्कसयं कुक्कुच्चियुपचिन्दे।
979.
"कुदितो वैसीभि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारिषु खिलं पभिन्दे;
वाचं पमुन्से कुसलं नैटिवेलं, जनवदाधम्मया न चेतयैय।
980.
"अथापरं पञ्च रजनि लोके, येसं सतीमा विनयाय सिक्खे;
रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु, गंधेसु फस्सेसु सहेथा रागं।
981.
"एतेसु धम्मेसु विनेया चंदं, भिक्खु सतिमा सुविमुत्तचित्तो;
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो"ति।
सारिपुत्तसुत्तं सोषासमं निहितं। अट्ठाकवाग्गो कैटुथो
निथिहितो.
Tassuddānaṃ –
कामं गुहञ्च दुत्थ च, शुद्धञ्च परम जरा;
Metteyyo ca pasūro ca, māgaṇḍi purābhedanaṃ.
कलाहं दवे च ब्युहानी [ब्युहनि (सि.)], पुनादेवा तुवतंकं;
अट्टादांडवरं सुत्तं, थेरापुथेना [थेरापन्हेना (सि.), सारिपुत्तेन (स्या.)] सोसासा;
इति एतानि सुत्तानि, सब्बनत्थकवाग्गिकति।

पाली-देवनागरी
16. सारिपुत्तसुत्तं
→
"न मे दित्थो इतो पुब्बे, (इच्चादयस्मा सारिपुत्तो)
न सुतो उद कस्स्चि।
एवं वग्गुवदो सथा,
तुसिता गणिमागतो॥
201.
"सदेवकस लोकस्स, यथा दिस्सति चक्खुमा।
सब्बं तमं विनोदेत्वा, एकोव रतिमज्झगा॥
6.
"तं बुद्धं असितं तादिं, अकुहं गणिमागतं।
बहुनामिद बधानां, अथि पञ्चेन आगमं॥
।
" भिक्खुनो विजिगुच्छतो, भजतो ऋत्तमासनं।
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बतनं गुलासु वा॥
.
"उच्चचावचेसु सयनेसु, कीवन्तो तथा भेरवा।
येहि भिक्खु न वेधेय, निग्घोसे सयनासने॥
यी.
"कति परिस्या लोके, गच्छतो अगतं दिसं।
ये भिक्खु अभिसम्भवे, पन्तमहि सयनासने॥
.
"क्यास्स बिप्पथयो अस्सु, क्यास्स्सु इध असार।
कानि सिलब्बतनस्सु, पहित्तत्स्स भिक्खुनो॥
901
"कं सो सिखं समादाय, एकोदि निपको सातो।
कम्मारो रजत अस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो"॥

666.
"विजिगुच्छमानस्स यिददं फासु, (सारिपुत्तति भगवान)
ऋत्तासनं सयानं सेवतो चे।
सम्बोधिकामास्स यथानुधम्मं,
तं ते पवखामि यथा पजानं॥
600.
"पञ्च नारायणं धीरो भयानं न भये, भिक्खु सातो सपरियन्तचारी।"
दंसधिपातानां सरिस्पनं, मनुसस्फस्सानं चतुप्पदानं॥
→.
"परधम्मिकानमपि न सन्तसेय, दिसवापि तेसं बहुभेरवाणि।
अथापराणि अभिसंभवेय, परिस्यानि कुसलनुसि॥
वीपी.
"अतङ्कफस्सेन खुदाय फुत्थो, सीतं अतुन्हं [अच्चचुंहं (सी० स्या०)] अधिवासयेय्य।
सो तेहि फुत्थो बहुधा अनोको, वीरियं पर्कमदळहं करेय॥
.
"थेयं न करे [न करेय (सी० स्या० क०)] न मुसा भाणेय, मेत्ताय फस्से तस्थवराणि।
यदाविलत्तं मनसो विज्ञानं कन्हस्स पखोति विनोदयेय॥
944.
"कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलमपि तेसं पलिखञ्चन तिट्ठे।
अथप्पियं वा पण अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसंभेयः।
95.
"पञ्चं पुरखत्व कल्याणपीति, विखंभये तानि परिसस्यानि।
तिं सहेथ सयनमहि पन्ते, चतुरो सहेथ परिदेवधम्मे॥
666.
"किन्सु असिस्सामि कुवं वा [कुध वा (क०), कुथ वा (निद्देस)] असिस्सं, दुक्खं वत सेठ त्रवज़्ज सेसन।
एते विटके परिदेवनेये, विनेयथ सेखो अनिकेताचारी॥
677.
"अ संज्ञाच लद्धा वसनंदच काले, मत्तं सो ज्ञान इध तोसनथं।
सो तेसु गुत्तो यतचारि गमे, रुसिटोपि वाचं फ़रुसं न वजज्जा॥
96.
"ओक्खित्तचक्खु न च पदलोलो, झनानुयुत्तो बहुजागरस्स।
उपेखमाराभ सम्मिलितत्तो, तक्षकसायं कुकुच्छचियुपच्छिन्दे॥
.
"चुदितो वचिभि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारीसु खिलं पभिन्दे।
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं, जनवधम्मै न चेतयेय॥
.
"अथापरं पञ्च रजनि लोके, येसं सतिमा विनाय सिखे।"
रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु, गंधेसु फस्सेसु सहेथ रागं॥
.
"एतेसु धम्मेसु विनेय छंदं, भिक्खु सतिमा सुविमुत्तचित्तो।
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो"ति॥
सारिपुत्तसुत्तं सोळसमं निश्चितं। अट्ठकवग्गो चतुत्थो
निट्ठितो।
तस्सुद्दनं -
कामं गुहञ्च दुत्थ च, सुद्धञ्च परमा जरा।
मेत्तेय्यो च पसूरो च, मागण्डि पुराभेदनं॥
कलहं द्वे च ब्यूहानि [ब्यूहानी (सी०)], पुनदेव तुवत्तकं।

अट्टदण्डवरं सुत्तं, थेरपुट्ठेन [थेरपञ्हेन (सी०), सारिपुत्तेन (स्या०)] सोळस।
इति एतानि सुत्तानि, सब्बनत्थकवग्गिकाति॥
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> वी. परायणवग्गा,

वी. फौस्बोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>>समाप्त

अस्सक के राज्य में गोदावरी नदी के किनारे रहने वाले ब्राह्मण (पुजारी) बावरी के पास एक अन्य ब्राह्मण आता है और पाँच सौ सिक्के माँगता है। सिक्के न मिलने पर वह बावरी को श्राप देता है और कहता है, 'आज से सातवें दिन तेरा सिर चार टुकड़ों में फट जाए।' एक देवता बावरी को बुद्ध के पास भेजकर सांत्वना देते हैं। तब बावरी अपने सोलह शिष्यों को बुद्ध के पास भेजते हैं और उनमें से प्रत्येक बुद्ध से एक प्रश्न पूछता है।

अंतर्वस्तु

15.0. वथुगाथा
25.1 अजितमनवापुच्चा
35.2 तिस्सामेतेयमानवपुच्च
45.3 पुन्नकामनावपुच्च
55.4 मेट्टागुमनवापुच्चा
65.5 धोतकामनावपूच्चा
75.6 उपासिवमनवापुच्च
85.7 नन्दमानवपुच्छ
95.8 हेमकामनावपूच्चा
105.9 तोदैयमानवपुच्च
115.10 कप्पमनवापुच्चा
125.11 जटुकन्निमनवपुच्च
135.12 भद्रवुधमनवापुच्छ
145.13 उदयमानवपुच्छ
155.14 पोस्टलमनवपुच्चा
165.15 मोगारामनवपुच्चा
175.16 पिघियामनवापुच्चा
18परायणथुतिगाथा
19परायन्नुगीतिगाथा

5.0. वत्थुगाथा

1. कोसलों के सुंदर नगर (सावत्थी) से एक ब्राह्मण, जो भजनों में पारंगत था, दक्षिण (दक्षिणपथ) की ओर निर्धनता की कामना करते हुए चला गया। (982)
2. अस्सक के राज्य में, अलका के पड़ोस में, वह गोदावरी नदी के किनारे पर, बचे हुए अनाज और फलों से अपना जीवन यापन करता था। (983)
3. नदी के किनारे ही एक बड़ा गाँव था, जिसकी आय से उसने एक महान यज्ञ किया। (984)
4. महान यज्ञ करने के बाद, वह फिर से आश्रम में प्रवेश कर गया। उसके पुनः प्रवेश करने पर, एक अन्य ब्राह्मण वहाँ पहुँचा, (985)
5. सूजे हुए पैरों वाला, काँपता हुआ, कीचड़ से सना हुआ, सिर पर धूल लिए हुए। और वह उसके पास (अर्थात पहले ब्राह्मण के पास) जाकर पाँच सौ (सिक्के) माँगने लगा। (986)
6. बावरी ने उसे देखकर बैठने को कहा, उससे पूछा कि क्या वह खुश और ठीक है, और इस प्रकार कहा: (987)

7. 'मेरे पास जो भी उपहार थे, वे सब मैंने दे दिए हैं; हे ब्राह्मण, मुझे क्षमा करें, मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं।' (988)

8. 'यदि तू मुझे, जो माँग रहा है, नहीं देगा, तो तेरा सिर सातवीं मिट्टी पर सात टुकड़ों में फट जाए।' (989)

9. इस प्रकार सामान्य अनुष्ठानों के बाद इस पाखंडी ने अपना भयानक (श्राप) सुनाया। उसके ये शब्द सुनकर बावरी दुखी हो गया। (990)
10. वह भोजन न करके क्षीण हो गया, दुःख के बाण से ग्रस्त हो गया, फिर भी उसका मन ध्यान में लीन रहा। (991)
11. बावरी को भयभीत और दुखी देखकर, उस स्थान के दयालु देवता उसके पास आए और इस प्रकार कहा: (992)

12. 'वह सिर के बारे में कुछ नहीं जानता; वह धन का लालची पाखंडी है; उसमें सिर और सिर विच्छेदन का ज्ञान नहीं है।' (993)

13. 'यदि पूज्य (देवता) इसे जानते हैं, तो पूछे जाने पर मुझे सिर और सिर विच्छेदन के बारे में सब कुछ बताएँ; हमें आपके शब्द सुनने दें।' (994)

14. 'मैं इसे नहीं जानता; मुझमें इसका ज्ञान नहीं है; जहाँ तक सिर और सिर विच्छेदन का सवाल है, यह केवल बुद्धों को ही दिखाई देता है।' (995)

15. 'तो फिर, हे देवता, पृथ्वी की परिधि में कौन सिर और सिर विच्छेदन को जानता है, मुझे वह बताएँ?' (996)

16. 'पूर्व में कपिलवस्तु से जगत का एक शासक निकला, ओक्काका राजा का वंशज, शाक्य पुत्र, प्रकाशदाता; (997)

17. 'हे ब्राह्मण, वह पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) है; सभी चीजों में परिपूर्ण, उन्होंने समस्त ज्ञान की शक्ति प्राप्त कर ली है, वे सब कुछ स्पष्ट रूप से देखते हैं; वे समस्त चीजों के नाश तक पहुँच चुके हैं और उपाधियों के नाश में मुक्त हो चुके हैं। (998)

18. 'वे बुद्ध हैं, वे संसार में भगवान (भगवान बुद्ध) हैं, वे स्पष्ट रूप से देखने वाले हैं, वे धम्म का उपदेश देते हैं; आप उनके पास जाइए और पूछिए, वे आपको समझा देंगे।' (999)

19. 'संबुद्ध' शब्द सुनकर बावरी प्रसन्न हुए, उनका दुःख कम हो गया और वे परम आनंद से भर गए। (1000)
20. बावरी प्रसन्न, आनंदित और उत्सुक होकर देवता से पूछा: 'किस गाँव में, किस नगर में, या किस प्रांत में जगत का मुखिया निवास करता है, जहाँ जाकर हम पूर्णतः प्रबुद्ध, मनुष्यों में प्रथम, की आराधना कर सकें?' (1001)

21. 'कोसलों के नगर श्रावस्ती में जिन (विजयी बुद्ध) निवास करते हैं, जो महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) और उत्कृष्ट व्यापक ज्ञान वाले, शाक्य पुत्र, बंधनमुक्त, वासना से मुक्त, सिर विच्छेदन में निपुण, मनुष्यों में बैल हैं।' (1002)

22. तब (बावरी) ने अपने शिष्यों, ब्राह्मणों, जो भजनों में निपुण थे, को संबोधित किया: 'आओ, युवकों, मैं तुम्हें कुछ बताऊंगा, मेरी बात सुनो: (1003)

23. 'जिनका संसार में बार-बार प्रकट होना कठिन है, वे वर्तमान समय में संसार में जन्म लेकर संबुद्ध (पूर्णतः प्रबुद्ध) के रूप में विख्यात हैं; 'जल्दी से सावत्थी जाओ और श्रेष्ठ पुरुष के दर्शन करो।' (1004)

24. 'हे ब्राह्मण, हम उन्हें देखकर कैसे जान सकते हैं कि वे बुद्ध हैं? हमें बताओ, जो उन्हें नहीं जानते, हम उन्हें किस प्रकार पहचानें?' (1005)

25. 'क्योंकि भजनों में एक महान पुरुष के लक्षण पाए जाते हैं, और बत्तीस लक्षण एक-एक करके प्रकट किए गए हैं।' (1006)

26. 'जिनके अंगों पर एक महान पुरुष के ये लक्षण पाए जाते हैं, उनके लिए दो ही मार्ग शेष हैं, तीसरा संभव नहीं है।' (1007)

27. 'यदि वे किसी निवास में निवास करते हैं, तो वे बिना हिंसा (या तलवार) के इस पृथ्वी को वश में कर लेंगे, वे न्यायपूर्वक शासन करेंगे।' (1008)

28. 'और यदि वे अपने निवास से वनवास के लिए प्रस्थान करते हैं, तो वे संत, अतुलनीय संबुद्ध बन जाते हैं, जिन्होंने (संसार से) पर्दा हटा दिया है।' (1009)

29. 'अपने मन में मेरी जाति और परिवार, मेरे चिह्नों, भजनों और मेरे अन्य शिष्यों, सिर और सिर विच्छेदन के बारे में पूछो। (1010)

30. 'यदि वह बुद्ध हैं, जो स्पष्ट दृष्टि वाले हैं, तो वे आपके मन में पूछे गए प्रश्नों का मौखिक उत्तर देंगे।' (1011)

31, 32, 33. बावरी के वचन सुनकर उनके शिष्य, सोलह ब्राह्मण, अजित, तिस्सामेत्तेय, पुन्नक, मेट्टागु, धोतका और उपासिव, नंदा, हेमक, दो तोदेय्या और कप्पा, और बुद्धिमान जटुकन्नी, भद्रवुधा और उदय, और ब्राह्मण पोसला, और बुद्धिमान मोगराजन, और महान ऋषि पिंगिया, (1012-1014)
34. वे सभी, अपने-अपने शिष्यों के साथ, और स्वयं विश्व भर में विख्यात, ध्यान में लीन रहने वाले विचारक, बुद्धिमान, पूर्व (अच्छे कर्मों) की सुगंध से युक्त, (1015) 35.
बावरी को प्रणाम करके और उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए, सभी जटाधारी और खाल धारण किए हुए, उत्तर की ओर मुख करके प्रस्थान किया। (1016)
36. सर्वप्रथम अलका के पतित्थाना, फिर महिसाती, एवं उज्जेनी, गोनाद्ध, वेदिश, वनसव्य्या, (1017)
37. एवं कोसंबी, सकेत और सावत्थी, जो कि सबसे उत्तम नगर हैं, सेतव्य, कपिलवस्तु और कुसिनारा नगर,(1018)
38. और धन के नगर पावा, मगध नगर वैशाली, और सुंदर, मनमोहक पसानका चेतिया (शिला मंदिर) की ओर। (1019)
39. जैसे प्यासा ठंडे पानी के लिए तरसता है, जैसे व्यापारी लाभ के लिए तरसता है, जैसे गर्मी से पीड़ित छाया के लिए तरसता है, वैसे ही वे शीघ्रता से पर्वत पर चढ़े। (1020)
40. और उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं की सभा के साथ भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हुए जंगल में सिंह के समान गर्जना करते हुए दिखाई दिए। (1021)
41. अजित ने संबुद्ध को बिना जलती किरणों वाले चमकते सूर्य के समान, पंद्रहवें दिन पूर्ण रूप से विकसित चंद्रमा के समान देखा। (1022)
42. तब उनके अंगों और सभी चिह्नों को पूर्ण रूप से देखकर, अलग खड़े होकर, प्रसन्न होकर उन्होंने अपने मन के प्रश्न पूछे:-- (1023)

43. 'मुझे (मेरे स्वामी के) जन्म के बारे में बताइए, मुझे उनके कुल और चिह्नों के बारे में बताइए, मुझे भजनों में उनकी पूर्णता के बारे में बताइए, ब्राह्मण कितने भजन गाते हैं?' (1024)

44. भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा: 'उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष है, और वे कुल से बावरी हैं; उनके अंगों पर तीन चिह्न हैं, और वे तीनों वेदों में पूर्ण हैं। (1025)

45. 'चिह्नों में और निघंडु और केतुभ सहित इतिहास में वे पाँच सौ का पाठ करते हैं—और अपने स्वयं के धम्म में वे पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं।' (1026)

46. अजित ने सोचा: 'हे श्रेष्ठ पुरुष, जो इच्छाओं का नाश करते हैं, बावरी के चिह्नों का पूर्ण वर्णन कीजिए; हमारे मन में कोई संदेह न रह जाए।' (1027)

47. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'वह अपने चेहरे को अपनी जीभ से ढकता है, उसकी भौहों के बीच बालों का घेरा है, उसका गुप्तांग आवरण में छिपा है, हे युवक, यह जान लो।' (1028)

48. उन्हें कुछ पूछते हुए न सुनकर, प्रश्नों के उत्तर सुनकर, भीड़ अत्यंत प्रसन्न होकर और हाथ जोड़कर सोचने लगी:-- (1029)

49. 'वह कौन है, चाहे वह देवता हो, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हो, या इंद्र (देवताओं/देवदूतों का राजा), सुगा का पति, जिसने अपने मन में ये प्रश्न पूछे, और उस (वाणी) ने किसे उत्तर दिया?' (1030)

50. अजित ने कहा: 'सिर और सिर फोड़ने वाले बावरी के बारे में पूछा गया था; हे भगवान (बुद्ध) इसकी व्याख्या कीजिए, हे इसि (ऋषि) हमारे संदेह को दूर कीजिए।' (1031)

51. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'अज्ञान सिर है, यह जान लो; ज्ञान, विश्वास, चिंतन, ध्यान, दृढ़ संकल्प और बल के साथ मिलकर सिर को चीर देता है।' (1032)

52. तब बड़े हर्ष से शांत होकर उस युवक ने अपनी खाल एक कंधे पर रखी और भगवान (बुद्ध) के चरणों में गिरकर सिर झुकाकर प्रणाम किया: (1033)

53. 'हे आदरणीय, ब्राह्मण बावरी अपने शिष्यों के साथ प्रसन्न और प्रसन्न होकर आपके चरणों को प्रणाम करते हैं, हे प्रत्यक्षदर्शी।' (1034)

54. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'ब्राह्मण बावरी अपने शिष्यों के साथ प्रसन्न हों! आप भी प्रसन्न हों, दीर्घायु हों।'हे युवक! (1035)

55. 'बावरी और तुम्हारे लिए, सबके लिए हर तरह के संदेह हैं; अवसर मिलने पर, जो चाहो पूछ लो।' (1036)

56. संबुद्ध से अनुमति मिलने के बाद, अजित वहाँ हाथ जोड़कर बैठे हुए तथागत (बुद्ध) से पहला प्रश्न पूछा। (1037)

वत्थुगत समाप्त।

5.1 अजितमनवापुच्चा
1. 'यह संसार किस आवरण से ढका है?' - आदरणीय अजिता ने कहा, 'यह किस कारण से प्रकाशित नहीं होता? आप इसकी अशुद्धि किसे कहते हैं, इसका सबसे बड़ा खतरा क्या है?' (1038)

2. 'हे अजिता, यह संसार अज्ञान से ढका है।' - भगवान बुद्ध ने कहा, 'लोभ के कारण यह प्रकाशित नहीं होता; मैं इसकी अशुद्धि को इच्छा कहता हूँ, इसका सबसे बड़ा खतरा पीड़ा है।' (1039)

3. 'इच्छाओं की धाराएँ हर दिशा में बहती हैं।' - आदरणीय अजिता ने कहा, 'इन धाराओं को कौन रोकता है? बताइए, कौन इन्हें नियंत्रित करता है? इन्हें किस कारण से रोका जा सकता है?' (1040)

4. 'हे अजित, संसार में जो भी धाराएँ हैं,' - ऐसा भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'सती ध्यान ही उनका बांध है, सती ध्यान ही धाराओं का अवरोध है, प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान से वे रुक जाती हैं।' (1041)

5. 'प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान और सती ध्यान से,' - ऐसा आदरणीय अजित ने कहा, 'हे आदरणीय, मैंने मन और शरीर के बारे में जो पूछा है, बताइए कि यह किससे रुकता है?' (1042)

6. बुद्ध: 'हे अजित, तुमने जो प्रश्न पूछा है, मैं उसका उत्तर तुम्हें दूंगा; (मैं तुम्हें समझाऊंगा) कि मन और शरीर की चेतना किससे पूर्णतः रुकती है; चेतना के रुकने से यह यहाँ रुकता है।' (1043)

7. अजित: 'जिन्होंने सभी धम्मों (सत्यों) का अध्ययन किया है, जो शिष्य हैं, और जो यहाँ आम लोग हैं, जब आपसे उनके जीवन शैली के बारे में पूछा जाए, तो मुझे बताएँ, हे आदरणीय बुद्धिमान व्यक्ति।' (1044)

8. बुद्ध: 'भिक्षु को इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करनी चाहिए, उसे मन को शांत रखना चाहिए, उसे सभी लाभकारी धम्मों में निपुण होकर विचरण करना चाहिए और ध्यानपूर्वक ध्यान करना चाहिए।' (1045) अजितमनवपुच्छ

समाप्त होता है।

5.2 तिस्सामेटेय्यामनवपुच्चा
1. 'संसार में संतुष्ट कौन है,' - पूज्य तिस्सामेत्तेय ने कहा - 'वह कौन है जो मनोभ्रंश से मुक्त है? जो दोनों छोरों को जानकर भी मध्य में नहीं अटकता, जहाँ तक उसकी समझ का संबंध है? आप किसे महान पुरुष कहते हैं? किसने इस संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त की है?' (1046)

2. 'हे मेत्तेय, जो भिक्षु इंद्रिय सुखों से दूर रहता है और ब्रह्मचर्य का पालन करता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'जो इच्छा से मुक्त है, सदा ध्यानमग्न रहता है, चिंतन से प्रसन्न रहता है, वह मनोभ्रंश से मुक्त है (1047)।

वह दोनों छोरों को जानकर भी मध्य में नहीं अटकता, जहाँ तक उसकी समझ का संबंध है; मैं उसे महान पुरुष कहता हूँ; उसने इस संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त की है।' (1048)

तिस्सामेत्तेय्यमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.3 पुन्नकामनावपुच्छा

1. 'जो इच्छा रहित है, जिसने (पाप के) मूल को देख लिया है,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'मैं आपसे विनती करते हुए एक प्रश्न लेकर आया हूँ: इस संसार में ईसियों और मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं को इतनी अधिक बलि क्यों चढ़ाई? (इस विषय में) हे भगवान (भगवान बुद्ध), मुझे इसका उत्तर दीजिए।' (1049)

2. 'हे पुन्नक, ये सभी ईसियाँ और मनुष्य, क्षत्रियाँ और ब्राह्मण,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जिन्होंने इस संसार में देवताओं को इतनी अधिक बलि चढ़ाई, उन्होंने वृद्धावस्था में पहुँचकर अपनी वर्तमान स्थिति की कामना करते हुए बलि चढ़ाई।' (1050)

3. 'इस संसार में देवताओं को प्रचुर मात्रा में यज्ञ अर्पित करने वाले ये सभी संत और पुरुष, क्षत्रिय और ब्राह्मण,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'हे भगवान बुद्ध, जो यज्ञ के मार्ग में अथक हैं, क्या वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था दोनों को पार कर पाए? हे भगवान बुद्ध, मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे इसका उत्तर दीजिए।' (1051)

4. 'हे पुन्नक, उन्होंने इंद्रिय सुखों की कामना की, उनकी स्तुति की, उनकी इच्छा की और उनका त्याग किया,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'उन्होंने इंद्रिय सुखों की कामना की, क्योंकि वे उनसे प्राप्त हुए थे; वे यज्ञ में लीन होकर, जीवन के जुनूनों में रंगे हुए, पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं कर पाए, ऐसा मैं कहता हूँ।' (1052)

5. 'यदि वे, अर्पण में समर्पित होकर,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'अर्पण द्वारा पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं कर पाए, तो हे पूज्य पुरुष, देवताओं और मनुष्यों के संसार में पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को किसने पार किया, हे पूज्य पुरुष, मैं आपसे पूछता हूँ, हे भगवान (भगवान बुद्ध), मुझे इसका उत्तर दीजिए?' (1053)

6. 'संसार में सब कुछ विचार करने के बाद, हे पुन्नक,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जो संसार में कहीं पराजित नहीं होता, जो कामवासनाओं के धुएँ से मुक्त शांत होता है, दुःख से मुक्त होता है, इच्छा से मुक्त होता है, वह पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर जाता है, ऐसा मैं कहता हूँ।' (1054)

पुन्नकामनावपुच्छ समाप्त होता है।

5.4 मेट्टागुमनवापुच्छा

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे यह पूछता हूँ,' - आदरणीय मेट्टागु ने कहा, - 'मैं आपको सिद्ध और प्रबुद्ध मानता हूँ, ये (प्राणी), चाहे वे संसार में कितने ही प्रकार के हों, सदा पीड़ा के अधीन क्यों रहते हैं? (1055)

2. 'हे मेट्टागु, आप मुझसे पीड़ा के उद्गम के बारे में पूछ सकते हैं,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'मैं आपको इसे उस तरीके से समझाऊँगा जिस तरह से मैं स्वयं जानता हूँ: उपाधियों से पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं, चाहे वे संसार में कितने ही प्रकार की हों। (1056)

3. 'जो अज्ञानी उपाधि का सृजन करता है, वह मूर्ख फिर से पीड़ा भोगता है; इसलिए ज्ञानी व्यक्ति उपाधि का सृजन न करे, यह जानते हुए कि यह पुनर्जन्म और पीड़ा का उद्गम है।' (1057)

4. मेट्टागु: 'हमने आपसे जो पूछा है, आपने हमें उसका उत्तर दे दिया है; मैं आपसे एक और प्रश्न पूछता हूँ, कृपया उसका उत्तर दीजिए: ज्ञानी लोग पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और विलाप के चक्र को कैसे पार करते हैं? हे मुनि (संत) मुझे इसका पूर्णतया वर्णन कीजिए, क्योंकि यह विषय (धम्म) आपको भलीभांति ज्ञात है। (1058)

5. 'हे मेट्टागु, मैं आपको धम्म की व्याख्या करूँगा,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष जगत में, बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के, इसे समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1059)

6. मेट्टागु: 'और मैं उस परम उत्कृष्ट धम्म में आनंदित होता हूँ, हे महान ऋषि (संत), जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1060)

7. 'हे मेट्टागु, तुम जो कुछ भी जानते हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में जो कुछ भी है, उसमें न तो आनंद लो और न ही विश्राम करो, अपने मन को अस्तित्व पर केंद्रित मत करो।' (1061)

8. 'इस प्रकार विचारशील, परिश्रमी जीवन जीते हुए, भिक्षु (भिक्षु) स्वार्थ, पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और विलाप का त्याग करके, इस संसार में दुःख छोड़ दे।' (1062)

9. मेट्टागु: 'मैं महान ऋषि (ऋषि, संत) के इन शब्दों से प्रसन्न होता हूँ; हे गौतम (बुद्ध) ने अच्छी तरह से समझाया है कि (तुम्हारे द्वारा) उपाधि (अर्थात निर्वाण) से मुक्ति मिलती है। भगवान (बुद्ध) ने वास्तव में दुःख को त्याग दिया है, क्योंकि यह धर्म तुम्हें भली-भांति ज्ञात है।' (1063)

10. 'और वे भी निश्चय ही पीड़ा से मुक्त होंगे जिन्हें आप, हे मुनि (संत), निरंतर उपदेश देते रहें; अतः मैं यहाँ आकर आपको प्रणाम करता हूँ, हे नाग प्रधान, भगवान बुद्ध भी मुझे निरंतर उपदेश देते रहें।' (1064)

11. बुद्ध: 'जिस ब्राह्मण को मैं सिद्ध मानता हूँ, जो कुछ भी नहीं रखता, कामवासना से दूर रहता है, वह निश्चय ही इस धारा को पार कर चुका है और दूसरे तट पर पहुँच गया है, कठोरता (अखिल) से मुक्त और संशय से मुक्त।' (1065)

12. 'और वह इस संसार में एक बुद्धिमान और सिद्ध पुरुष है; पुनर्जन्मों के इस बंधन को त्यागकर वह इच्छा रहित और दुःख से मुक्त है।'लालसा से मुक्त होकर, उसने पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर लिया है, इसलिए मैं कहता हूँ।' (1066)

मेट्टागुमानवपुच्छा समाप्त हो गया है।

5.5 धोतकामनावपुच्छा

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे यह पूछता हूँ,' - पूज्य धोतक ने कहा, 'हे महान ऋषि (ऋषि), मैं आपके उपदेशों के लिए तरसता हूँ; आपके प्रवचन सुनकर शिष्य को अपना निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) प्राप्त हो।' (1067)

2. 'हे धोतक, हे भगवान (भगवान बुद्ध), इस संसार में बुद्धिमान और विचारशील होकर, मेरे उपदेश सुनकर शिष्य को अपना निर्वाण प्राप्त हो।' (1068)

3. धोतक: 'मैं देवताओं और मनुष्यों के संसार में एक ब्राह्मण को कुछ भी प्राप्त किए बिना भटकते हुए देखता हूँ; इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे सर्वदर्शी, मुझे संदेहों से मुक्त करें, हे शाक्यमुनि (बुद्ध)।' (1069)

4. बुद्ध: 'हे धोतक, मैं संसार में किसी भी संशयी व्यक्ति को मुक्त करने नहीं जाऊंगा; जब तुम सर्वश्रेष्ठ धम्म सीख लोगे, तब तुम इस धारा को पार करोगे।' (1070)

5. धोतक: 'हे ब्राह्मण, मुझ पर दया करके मुझे एकांतवास (अर्थात निर्वाण) का धम्म सिखाओ, ताकि मैं इसे समझ सकूं और वायु के समान अनेक रूपों में विलीन हुए बिना इस संसार में शांत और स्वतंत्र रूप से विचरण कर सकूं।' (?) (1071)

6. 'हे धोतक, मैं तुम्हें शांति का अर्थ समझाऊंगा,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा; - 'यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष जगत में, बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के, इसे समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1072)

7. धोतका: 'और मैं उस परम शांति में आनंदित होता हूँ, हे महान ऋषि (संत), जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार की इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1073)

8. 'हे धोतका, तुम जो कुछ भी जानते हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में जो कुछ भी है, उसे संसार में एक बंधन मानकर, तुम्हें बार-बार जन्म लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (1074)

धोतकामनावपुच्छ समाप्त होता है।

5.6 उपासिवमनवापुच्च

1. 'हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध), मैं अकेला और बिना सहायता के इस महान नदी को पार नहीं कर पाऊंगा,' - आदरणीय उपासिव ने कहा; 'हे सर्वदर्शी, मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे इस नदी को पार किया जा सके।' (1075)

2. 'हे उपासिव, शून्यता को ध्यान में रखते हुए, चिंतनशील होकर,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा; 'अस्तित्वहीनता के प्रतिबिंब से ही तुम नदी पार करोगे; इंद्रिय सुखों का त्याग करके, संदेहों से विमुख होकर, तुम दिन-रात तृष्णा के निवारण (अर्थात निर्वाण) का ध्यान रखोगे।' (1076)

3. उपासिव: 'जिस व्यक्ति की सभी इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति समाप्त हो गई है, जिसने सब कुछ त्यागकर शून्यता का सहारा लिया है, और ज्ञान द्वारा सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त कर ली है, क्या वह आगे बढ़े बिना वहीं रहेगा?' (1077)

4. 'हे उपासिव, जिसकी सभी इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति दूर हो गई हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'सब कुछ त्यागकर शून्यता की शरण में आकर, ज्ञान द्वारा सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त करके, वह वहीं बिना आगे बढ़े रहेगा।' (1078)

5. उपासिव: 'हे सर्वदर्शी, यदि वह अनेक वर्षों तक वहीं बिना आगे बढ़े रहे, (और यदि) वह वहाँ शांत और मुक्त हो जाए, तो क्या ऐसे व्यक्ति के लिए चेतना बनी रहेगी?' (1079)

6. 'हे उपासिव, जैसे हवा के प्रचंड झोंके से उड़ती हुई ज्वाला बुझ जाती है, उसका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता, वैसे ही नाम और शरीर से मुक्त मुनि (संत) विलीन हो जाता है, और उसका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता।' (1080)

7. उपासिव: 'क्या वह (केवल) विलीन हो गए हैं, या उनका अस्तित्व (अब) नहीं रहा, या वे हमेशा के लिए रोगमुक्त हो गए हैं? हे मुनि (संत), मुझे इसका पूर्णतया स्पष्टीकरण दीजिए, क्योंकि यह धर्म आपको भलीभांति ज्ञात है।' (1081)

8. 'हे उपासिव, जिनका विलीन हो गया है, उनका कोई रूप नहीं है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'जिससे वे कहते हैं कि वे हैं, उनका अस्तित्व उनके लिए नहीं रह जाता, जब सभी चीजें (धर्म) समाप्त हो जाती हैं, तो सभी प्रकार के विवाद भी समाप्त हो जाते हैं।' (1082)

उपासिवमनवपुच्छ समाप्त हुआ।

5.7 नंदमानवपुच्छ

1. 'संसार में मुनि (संत) हैं,' - आदरणीय नंदा ने कहा, - 'लोग ऐसा कहते हैं। आप इसे कैसे समझते हैं? क्या वे ज्ञान से परिपूर्ण मुनि कहते हैं या जीवन से परिपूर्ण मुनि?' (1083)

2. बुद्ध: 'हे नंदा, विद्वान किसी को मुनि (संत) किसी दार्शनिक मत, परंपरा या ज्ञान के कारण नहीं कहते; बल्कि जो दुःख और इच्छा से मुक्त होकर एकांतवास करते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ।' (1084)

3. 'ये सभी समन (भिक्षु) और ब्राह्मण (पुजारी),' - आदरणीय नंदा ने कहा, - 'कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक मतों, परंपरा, सद्गुण और पवित्र कर्मों से और अनेक अन्य तरीकों से आती है।' हे पूज्यवर, क्या उन्होंने संसार में अपने जीवन के माध्यम से पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार किया? हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे यह बताइए। (1085)

4. हे नंदा, ये सभी समन और ब्राह्मण कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक विचारों, परंपरा, सद्गुण और (पवित्र) कर्मों और अनेक अन्य तरीकों से आती है; फिर भी उन्होंने संसार में अपने जीवन के माध्यम से पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं किया, ऐसा मैं कहता हूँ। (1086)

5. पूज्य नंदा ने कहा, ये सभी समन और ब्राह्मण कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक विचारों, परंपरा, सद्गुण और (पवित्र) कर्मों और अनेक अन्य तरीकों से आती है; हे मुनि (संत), यदि आप कहते हैं कि ऐसे लोग धारा पार नहीं कर पाए हैं, तो हे पूज्यवर, देवताओं और मनुष्यों के संसार में पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को किसने पार किया है? हे भगवान (बुद्ध) मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे इसका उत्तर दीजिए। (1087)

6. हे नंदा, मैं यह नहीं कहता कि सभी समन और ब्राह्मण, भगवान (बुद्ध) ने कहा, पुनर्जन्म और वृद्धावस्था से घिरे हुए हैं; जो इस संसार में देखी, सुनी या सोची गई बातों और सभी सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को त्यागकर, विभिन्न प्रकार की सभी चीजों को त्यागकर, इच्छा में प्रवेश करके, वासना से मुक्त हो जाते हैं, वास्तव में मैं उन्हें ही धारा पार करने वाले पुरुष कहता हूँ। (1088)

7. नंदा: मैं महान ऋषि (संत) के इन शब्दों से प्रसन्न हूँ; हे गौतम (बुद्ध) आपने अच्छी तरह से समझाया है कि उपाधि (अर्थात निर्वाण) से मुक्ति है; जो लोग इस संसार में देखी, सुनी या सोची गई हर चीज, और सभी सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को त्यागकर, विभिन्न प्रकार की हर चीज को त्यागकर, इच्छा में पारंगत होकर, वासना से मुक्त हो जाते हैं, ऐसे लोगों को मैं धारा पार कर चुके पुरुष कहता हूँ।' (1089)

नंदमनवपुच्छ समाप्त।

5.8 हेमकामनावपुच्छा

1. 'जो लोग पहले दूसरे लोक में,' - आदरणीय हेमक ने कहा, - 'मुझे गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहते थे, "ऐसा था, ऐसा ही होगा," वह सब केवल मौखिक परंपरा थी, वह सब केवल मेरे संदेहों को बढ़ाने वाली बात थी। (1090)

2. 'मुझे उसमें कोई आनंद नहीं आया, परन्तु हे मुनि (संत), मुझे वह धम्म बताओ जो इच्छा का नाश करता है, जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतन में विचरण करे, तो वह संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1091)

3. बुद्ध: 'इस संसार में बहुत कुछ देखा, सुना और सोचा गया है; हे हेमक, जो प्रिय वस्तुओं का अनुभव किया गया है, उनके प्रति वासना और इच्छा का नाश ही निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अविनाशी अवस्था है।' (1092)

4. 'जिन्होंने इसे समझ लिया है, वे विचारशील, शांत हैं, क्योंकि उन्होंने धम्म को देखा है, शांत और दिव्य हैं, ऐसे लोगों ने इस संसार में इच्छा को पार कर लिया है।' (1093)

हेमकमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.9 तोदेय्यामनवपुच्छा

1. 'जिसमें कामवासनाएँ नहीं रहतीं,' - पूज्य तोदेय्या ने कहा, - 'जिसमें कोई इच्छा नहीं होती, और जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली होती है, उसके लिए किस प्रकार की मुक्ति है?' (1094)

2. 'हे तोदेय्या, जिसमें कामवासनाएँ नहीं रहतीं,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'जिसमें कोई इच्छा नहीं होती, और जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली होती है, उसके लिए कोई अन्य मुक्ति नहीं है।' (1095)

3. तोदेय्या: 'क्या वह श्वासहीन है या श्वास ले रहा है, क्या वह प्रख्यात (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है या स्वयं ज्ञान का निर्माण कर रहा है? हे सर्वदर्शी, मुझे यह समझाइए, ताकि मैं एक मुनि (संत) को जान सकूँ, हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध)।' (1096)

4. बुद्ध: 'वह श्वासहीन है, वह साँस नहीं ले रहा है, वह पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक बोध) से युक्त है, और वह स्वयं कोई बोध नहीं बना रहा है; हे तोदेय्या, जान लो कि ऐसा ही मुनि (संत) है, जो किसी भी चीज़ से रहित है, कामवासना और अस्तित्व से आसक्त नहीं है।' (1097)

तोदेय्यामनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.10 कप्पमनवापुच्छा

1. 'जो लोग जल के बीच में खड़े हैं,' - आदरणीय कप्पा ने कहा, - 'उस भयंकर धारा में जो उमड़ पड़ी है, जो क्षय और मृत्यु से त्रस्त हैं, हे आदरणीय पुरुष, मुझे एक द्वीप के बारे में बताओ, और मुझे एक ऐसे द्वीप का वर्णन करो जहाँ यह (पीड़ा) फिर कभी न आए।' (1098)

2. 'जो लोग जल के बीच में खड़े हैं, हे कप्पा,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'उस भयंकर धारा में जो उमड़ पड़ी है, जो क्षय और मृत्यु से त्रस्त हैं, मैं तुम्हें एक द्वीप के बारे में बताऊंगा, हे कप्पा।' (1099)

3. 'इस अद्वितीय द्वीप को, जो कुछ भी नहीं रखता (और) किसी भी चीज की लालसा नहीं रखता, मैं निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) कहता हूँ, जो क्षय और मृत्यु का नाश है।' (1100)

4. 'जिन्होंने इसे समझ लिया है, वे विचारशील (और) शांत हैं, क्योंकि उन्होंने धम्म को देखा है, वे मार (मृत्यु के देवता) के वश में नहीं आते, और न ही मार के साथी होते हैं।' (1101)

कप्पमनवपुच्छ समाप्त।

5.11 जटुकन्निमनवापुच्छा

1. 'कामवासना से मुक्त एक महान व्यक्ति के बारे में सुनकर,' - आदरणीय जटुकन्निन ने कहा, - 'जो नदी पार कर चुके हैं, मैं उनसे यह पूछने आया हूँ जो कामवासना से मुक्त हैं; मुझे शांति का स्थान बताइए, हे जन्मजात ज्ञान की दृष्टि वाले, मुझे यह सत्य बताइए, हे भगवान (भगवान बुद्ध)। (1102)

2. 'क्योंकि भगवान (भगवान बुद्ध) कामवासना पर विजय प्राप्त करने के बाद उसी प्रकार विचरण करते हैं जैसे गर्म सूर्य अपनी गर्मी से पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है; मुझे धम्म बताइए, हे महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले, जिसका (केवल) ज्ञान कम है, ताकि मैं पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ।' (1103)

3. 'इंद्रिय सुखों के प्रति अपने लोभ को वश में करो,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'संसार के त्याग को सुख मानकर, किसी भी चीज को न तो पकड़ो और न ही त्यागो।' (1104)

4. 'जो कुछ तुम्हारे सामने है, उसे त्याग दो; तुम्हारे पीछे कुछ भी न रहे; यदि तुम मध्य में जो कुछ है, उसके पीछे नहीं भागोगे, तो तुम शांत होकर विचरण करोगे। (1105)

5. 'हे ब्राह्मण, जिसका नाम और रूप का लोभ पूरी तरह से समाप्त हो गया है, उसके लिए ऐसी कोई वासना नहीं है जिससे वह मृत्यु के वश में आ जाए।' (1106)

जटुकन्निमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.12 भद्रवुधमनवापुच्छ

1. 'मैं ज्ञानी (बुद्ध), गृहस्थ, इच्छाओं का त्याग करने वाले से विनती करता हूँ,' - आदरणीय भद्रवुधा ने कहा, - 'जो हलचल से मुक्त हैं, सुख का त्याग कर चुके हैं, नदी पार कर चुके हैं, मुक्त हो चुके हैं, और समय को पीछे छोड़ चुके हैं; प्रधान का वचन सुनकर वे यहाँ से चले जाएँगे।' (1107)

2. 'हे महानुभाव, प्रांतों से अनेक लोग आपके वचन सुनने की लालसा से एकत्रित हुए हैं; आप उन्हें इसका पूर्णतया उपदेश दीजिए, क्योंकि यह धम्म आपको भलीभांति ज्ञात है।' (1108)

3. 'हे भद्रवुधा, सब कुछ पाने की लालसा को पूर्णतः वश में कर लो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में; क्योंकि संसार में जिस भी वस्तु को पाने की लालसा की जाती है, उसी के कारण मृत्यु का देवता मनुष्य का पीछा करता है।' (1109)

4. 'अतः, यह जानकर, विचारशील भिक्षु (भिक्षु) संसार में किसी भी वस्तु के पीछे न भागे, इस पीढ़ी को इच्छा के प्राणी समझकर, मृत्यु के लोक में स्थिर न रहे।' (1110)

भद्रवुधमनवपुच्छ समाप्त।

5.13 उदयमनवपुच्छ

1. 'ध्यान में बैठे बुद्ध, जो अशुद्धियों से मुक्त हैं,' - आदरणीय उदय ने कहा, - 'अपने कर्तव्य का पालन कर चुके, वासना रहित, सभी विषयों (धर्म) में सिद्ध हो चुके, मैं एक प्रश्न लेकर आया हूँ; मुझे ज्ञान द्वारा मुक्ति, अज्ञान का विखंडन बताइए।' (1111)

2. 'हे उदय, कामवासना और इच्छा का त्याग करना,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'और दोनों प्रकार के दुःखों का त्याग करना, आलस्य को दूर भगाना और दुराचार से बचना इसमें निहित है।' (1112)

3. 'मैं आपको समभाव और चिंतन से शुद्ध किए गए और धर्म पर तर्क-वितर्क से प्रेरित ज्ञान द्वारा मुक्ति, अज्ञान का विखंडन, बताऊंगा।' (1113)

4. उदय: 'संसार का बंधन क्या है, इसका अभ्यास क्या है?' 'निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) किसके त्याग से प्राप्त होता है?' (1114)

5. बुद्ध: 'संसार सुख से बंधा है, तर्क करना इसका अभ्यास है; इच्छा के त्याग से निर्वाण प्राप्त होता है।' (1115)

6. उदय: 'चिंतनशील व्यक्ति में चेतना कैसे समाप्त होती है? आपसे पूछने आए हैं, तो कृपया अपने शब्द सुनें।' (1116)

7. बुद्ध: 'जो व्यक्ति आंतरिक और बाह्य रूप से संवेदना में आनंद नहीं लेता, जो इस प्रकार चिंतनशील रहता है, उसकी चेतना समाप्त हो जाती है।' (1117)

उदयमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.14 पोसलमनवपुच्छा

1. 'जो अतीत (जन्म आदि) को जानते हैं,' - पूज्य पोसाला ने कहा - 'जो इच्छा रहित हैं और जिन्होंने संदेह को दूर कर दिया है, जो सभी विषयों (धर्म) में सिद्ध हैं, मैं उनसे प्रश्न पूछने आया हूँ। (1118)

2. 'हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध), मैं उनके ज्ञान के बारे में पूछता हूँ जो अतीत के स्वरूपों से अवगत हैं, जो हर शारीरिक रूप का त्याग करते हैं, और जो देखते हैं कि आंतरिक या बाह्य रूप से कुछ भी विद्यमान नहीं है; ऐसे व्यक्ति को कोई कैसे बहका सकता है? (1119)

3. 'तथागत (बुद्ध), चेतना के सभी रूपों को जानते हुए, हे पोसाला,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'उसे भी जानते हैं जो मुक्त होकर उस (विषय) के प्रति समर्पित है।' (1120)

4. 'यह समझकर कि सुख के बंधन शून्यता से उत्पन्न नहीं होते (?), वह इस (पदार्थ) में स्पष्ट रूप से देखता है, यही एक पूर्ण, सिद्ध ब्राह्मण का ज्ञान है।' (1121)

पोसलमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.15 मोगराजमनवपुच्छा

1. 'मैंने दो बार सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध) से पूछा है,' - आदरणीय मोगराजन ने कहा, - 'परन्तु स्पष्ट दृष्टि वाले ने भी मुझे इसका उत्तर नहीं दिया; यदि तीसरी बार दिव्य ऋषि (संत) से पूछा जाए, तो वे इसका उत्तर देंगे, ऐसा मैंने सुना है। (1122)

2. 'यह संसार है, परलोक है, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का संसार है और देवताओं का संसार है; मैं आपका, प्रसिद्ध गौतम (बुद्ध) का दृष्टिकोण नहीं जानता। (1123)

3. 'जो अच्छाई को देखता है, उसके समक्ष मैं एक प्रश्न लेकर आया हूँ: कोई व्यक्ति संसार को कैसे देखे कि मृत्यु का राजा उसे न देख पाए?' (1124)

4. 'हे मोगराजन, संसार को शून्य समझकर, सदा चिंतनशील होकर, अपने आप को (वास्तव में विद्यमान) न देखकर, मृत्यु पर विजय प्राप्त करो;' मृत्यु का राजा उसे नहीं देखेगा जो इस प्रकार संसार को देखता है।' (1125)

मोगराजमनवपुच्छ समाप्त हो गया है।

5.16 पिंगियामनवापुच्चा

1. 'मैं बूढ़ा, दुर्बल और रंगहीन हूँ,' - पूज्य पिंगिया ने कहा, - 'मेरी आँखें कमजोर हैं, मेरी सुनने की शक्ति कम है; कहीं मैं मूर्ख बनकर रास्ते में ही न मर जाऊँ, इसलिए मुझे धम्म बताइए, ताकि मैं इस संसार में पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ।' (1126)

2. 'हे पिंगिया, दूसरों को शरीर से पीड़ित देखकर,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - '(देखकर) लापरवाह लोग अपने शरीर में कष्ट भोगते हैं; - इसलिए, हे पिंगिया, क्या तुम सावधान रहोगे, और शरीर को त्याग दोगे, ताकि तुम फिर कभी जन्म न लो।' (1127)

3. पिंगिया: 'चार क्षेत्र, चार मध्यवर्ती क्षेत्र, ऊपर और नीचे, ये दस क्षेत्र हैं; ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे तुमने देखा, सुना या सोचा न हो, और क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसे तुमने समझा न हो?' मुझे धम्म का उपदेश दो, ताकि मैं इस संसार में पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ। (1128)

4. 'हे पिंगिया, मनुष्यों को कामवासना से ग्रस्त देखकर,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'पीड़ित और क्षय से ग्रस्त देखकर, हे पिंगिया, सावधान रहो और कामवासना को त्याग दो, ताकि तुम फिर कभी जन्म न लो।' (1129)

पिंगियामनवपुच्छ समाप्त होता है।

परायनत्थुतिगाथा

भगवान बुद्ध मगध में पसानका चेतिया (शिला मंदिर) में निवास करते हुए कहते हैं, "बावरी के सोलह अनुयायियों ने उनसे संपर्क किया और बारी-बारी से उनसे प्रश्न पूछे, तो उन्होंने प्रश्नों के उत्तर दिए। यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक प्रश्न का अर्थ और भाव समझकर धम्म के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, तो वह मृत्यु और क्षय के उस पार के तट पर जाएगा, क्योंकि ये धम्म उस पार के तट की ओर ले जाते हैं, और इसीलिए इस धम्म को 'उस पार के तट का मार्ग' कहा गया है।" 1, 2. अजित, तिस्सामेत्तेय, पुन्नक और मेट्टागु, धोतक और उपासिव, नंदा और हेमक, दो तोदेय्या और कप्पा, और ज्ञानी जटुकन्निन, भद्रवुधा और उदय, और ब्राह्मण पोसला, और ज्ञानी मोगराजन, और महान ऋषि (पिंगिया) (1130, 1131)

3. ये सभी अनुकरणीय आचरण वाले ऋषि बुद्ध के पास गए; सूक्ष्म प्रश्न पूछते हुए वे सर्वोच्च बुद्ध के पास गए। (1132)

4. पूछे जाने पर बुद्ध ने उनके प्रश्नों का सत्यपूर्वक उत्तर दिया, और प्रश्नों का उत्तर देते हुए मुनि (संत) ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। (1133)

5. प्रत्यक्षदर्शी बुद्ध, जो आदिच्छों के सगोत्र थे, से प्रसन्न होकर उन्होंने उस उत्कृष्ट ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) वाले व्यक्ति के निकट पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया। (1134)

6. प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में बुद्ध द्वारा दी गई शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति इस तट से दूसरे तट पर गया। (1135)

7. इस तट से वह दूसरे तट पर सबसे उत्तम मार्ग पर चलकर गया; यह मार्ग दूसरे तट की ओर जाता है, इसलिए इसे 'दूसरे तट का मार्ग' कहा जाता है। (1136)

परायननुगितिगाथा

8. 'मैं तदनुसार दूसरे तट का मार्ग बताऊँगा,' - आदरणीय पिंगिया ने कहा; - 'जैसा उसने देखा, वैसा ही उसने बताया; निष्कलंक, अत्यंत बुद्धिमान, भावहीन, इच्छा रहित स्वामी, भला वह झूठ क्यों बोलेगा? (1137)

9. 'अच्छा! मैं (बुद्ध) की सुंदर वाणी की प्रशंसा करूँगा, जो निष्कलंक और मूर्खता से रहित हैं, और जिन्होंने अहंकार और पाखंड को त्याग दिया है। (1138)

10. 'अंधकार को दूर करने वाले बुद्ध, सर्वदर्शी, जो संसार को भली-भांति समझते हैं, जिन्होंने समस्त अस्तित्वों पर विजय प्राप्त की है, जो वासना से मुक्त हैं, जिन्होंने समस्त पीड़ाओं को त्याग दिया है, उन्हें ही (बुद्ध) कहना उचित है, हे ब्राह्मण, वे मेरे पास आए हैं। (1139)

11. 'जैसे पक्षी झाड़ी छोड़कर फलदायी वन में अपना निवास स्थान बना लेता है, वैसे ही मैं संकीर्ण विचारों वाले मनुष्यों को छोड़कर हंस के समान विशाल सागर तक पहुँच गया हूँ।' (1140)

12. 'जो लोग पहले दूसरे लोक में गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहते थे, "ऐसा था, ऐसा ही होगा," वह सब केवल मौखिक परंपरा थी, वह सब केवल मेरे संदेह को बढ़ाने वाली बात थी। (1141)

13. 'केवल एक ही शाश्वत अंधकार को दूर करने वाला है, वह है उच्च कुल का, प्रकाशमान, महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाला गौतम (बुद्ध), महान ज्ञान वाला गौतम (बुद्ध)। (1142)

14. 'जिसने मुझे धम्म सिखाया, जो तात्कालिक है, जो तत्काल है, जो इच्छाओं का नाश करता है, जो कष्टों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है।' (1143)

15. बावरी: 'हे पिंगिया, क्या तुम महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले गौतम (बुद्ध) से, महान ज्ञान वाले गौतम (बुद्ध) से एक पल के लिए भी दूर रह सकते हो? (1144)

16. 'तुम्हें धम्म किसने सिखाया, जो तात्कालिक है, तत्काल है, इच्छाओं का नाश करता है, दुखों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है?' (1145)

17. पिंगिया: 'हे ब्राह्मण, मैं महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले गौतम (बुद्ध) से, महान ज्ञान वाले गौतम (बुद्ध) से एक पल के लिए भी दूर नहीं रहता। (1146)

18. 'मुझे धम्म किसने सिखाया, जो तात्कालिक है, तत्काल है, इच्छाओं का नाश करता है, दुखों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है। (1147)

19. 'हे ब्राह्मण, मैं उन्हें अपने मन में और अपनी आँखों से, दिन-रात, सजग होकर देखता हूँ; मैं उपासना करते हुए रात बिताता हूँ, इसलिए मुझे लगता है कि मैं उससे दूर नहीं रहता। (1148)

20. 'विश्वास और आनंद, मन और विचार मुझे गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की ओर झुकाते हैं; जिस मार्ग पर वह ज्ञानी पुरुष जाता है, मैं भी उसी मार्ग की ओर झुकता हूँ। (?) (1149)

21. 'इसलिए, क्योंकि मैं थका हुआ और दुर्बल हूँ, मेरा शरीर वहाँ नहीं जाता, परन्तु मेरे विचार सदा वहाँ जाते हैं, क्योंकि हे ब्राह्मण, मेरा मन उससे जुड़ा हुआ है। (1150)

22. 'कामवासनाओं के कीचड़ में लोटते हुए, मैं एक द्वीप से दूसरे द्वीप पर कूदता रहा; तब मैंने पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा, जिसने नदी पार कर ली है और कामवासनाओं से मुक्त है।' (1151)

23. भगवान (बुद्ध): 'जैसे वक्कली को विश्वास से मुक्ति मिली, (साथ ही) भद्रवुधा और अलावी-गौतम को, वैसे ही तुम भी विश्वास से मुक्ति पाओ, और हे पिंगिया, मृत्युलोक के दूसरे छोर तक जाओ।' (1152)

24. पिंगिया: 'मुनि के वचन सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ; संबुद्ध ने पर्दा हटा दिया है, वे कठोरता से मुक्त और बुद्धिमान हैं।' (1153)

25. 'देवताओं से संबंधित सभी चीजों का ज्ञान होने के कारण, वे हर प्रकार की हर बात जानते हैं; गुरु उन सभी संशयियों के प्रश्नों का उत्तर देंगे जो उन्हें स्वीकार करेंगे।' (1154)

26. 'अभेद्य, अपरिवर्तनीय (निर्वाण, अमरता) की ओर, जिसकी कोई समानता नहीं है, मैं निश्चित रूप से जाऊँगा;' इस (निर्वाण) में मेरे लिए कोई संदेह नहीं रहेगा, इसलिए मुझे निर्धन मन वाला समझो। (1155)

परायणवग्ग समाप्त हुआ।

सुत्तनिपात समाप्त हुआ।

विमानवत्थु

विमानवत्थु: पूर्ण संस्करण
1.1I. इति-विमानम - पहला खंड: महिलाओं का निवास स्थान
1.1.11. प्रथम डिवीजन: सीट मेंशन्स
1.1.22. द्वितीय डिवीजन: सिट्टालाटा (ईडन)-वैगो
1.1.33. तीसरा भाग: परिच्छत्तक-वग्गो (कोरल ट्री)
1.1.44. चौथा भाग: मंजिथाका-वाग्गो (क्रिमसन)
1.2द्वितीय. पुरुष-विमानम - दूसरा भाग: पुरुषों का निवास
1.2.15. पांचवां भाग: महा-रथ-वग्गो (महान रथ)
1.2.26. छठा भाग: पायसी-वाग्गो
1.2.37. सातवाँ भाग: सुनिखित्त-वग्गो
2अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड/देखना
3विमानवत्थु : एती संस्करण
4मूल पाली संस्करण
4.1पाली-अंग्रेज़ी संस्करण
4.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिंदी लिपि)
4.2Pali-Devnagri Version(Sanskrit/Hindi Script)

I. इत्थी-विमानम - पहला खंड: महिलाओं के निवास स्थान
विमानवत्थु में बुद्ध और उनके पूर्णतः प्रबुद्ध शिष्यों (अरहंतों) के दिव्य स्वरूप का वर्णन है। इसमें स्वर्ग और उनके महलों (या उड़ने वाले महलों) का वर्णन है।

वर्णन के अनुसार, स्वर्ग अनेक प्रकार के हो सकते हैं। मृत्यु के बाद, यदि किसी व्यक्ति (या पशु) ने अच्छे कर्म किए हों, तो वह स्वर्ग में पुनर्जन्म ले सकता है। बुद्ध और अरहंतों जैसे पूर्णतः प्रबुद्ध पवित्र प्राणियों को अनंत ब्रह्मांड का एक अंग माना जाता है, जिनमें अपार सामर्थ्य और गुण होते हैं, क्योंकि उन्होंने सभी दोषों को दूर कर दिया है, इसलिए वे केवल अंतिम शरीर धारण करते हैं, जिसके बाद वे निर्वाण की सर्वोच्च अवस्था, शाश्वतता की अवस्था में प्रवेश करते हैं। दैवीय नियम के अनुसार, उन्हें दी गई कोई भी सहायता (दान/भोजन) अपार पुण्य का कारण बनती है, जिससे स्वर्ग में (देवदूत के रूप में) पुनर्जन्म का लाभ मिलता है, जहाँ व्यक्ति के लिए स्वतः ही एक विशाल महल प्रकट होता है, जिसमें अनेक सेवक और उसकी पसंद के अनुसार सुख-सुविधाएँ होती हैं।

स्वर्ग के प्राणी, उनके शरीर, निवास स्थान और अन्य वस्तुएँ दिव्य प्रकाश से निर्मित और प्रकाशमान मानी जाती हैं, जिनकी चमक मानव रूप में किए गए कर्मों के गुणों पर निर्भर करती है। सबसे प्रकाशमान प्राणी वे हैं जिन्होंने नैतिकता (शील) और ध्यान (समाधि) का पालन करते हुए, ध्यान में या बुद्ध या समकक्ष अरिहंत भिक्षुओं की संगति में, जिन्होंने आशीर्वाद प्रदान किया हो, निर्वाण अवस्था (सम्मोहन) का कम से कम एक अंश प्राप्त किया हो, जिसके परिणामस्वरूप दिव्य निर्वाण अवस्था का आनंदमय अनुभव प्राप्त होता है। प्रथम जागरण को सोतापना कहा जाता है। विमानवत्थु में सोतापना प्राप्त करने वाले कई व्यक्तियों को अत्यधिक प्रकाशमान और तेज चमकते हुए प्राणियों के रूप में दिखाया गया है। स्वर्ग के निवास स्थान भी विचार की गति के अनुसार गतिमान होते हैं। स्वर्ग के प्राणी के सेवक, जीव और वस्तुएँ उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं। लेकिन स्वर्ग में जीवन शाश्वत नहीं है। उनका जीवनकाल सैकड़ों या हजारों वर्षों का हो सकता है, जो उनके अच्छे कर्मों के फल के अनुसार भिन्न होता है, और उनके जीवनकाल के बाद उन्हें कहीं न कहीं पुनर्जन्म लेना होता है।

कुछ उल्लेखनीय मनोगतियाँ हैं: 1.8 तृतीय नौका मनोगत (बुद्ध चमत्कार दिखाकर अभिमानी उच्च जाति के लोगों का दिल जीत लेते हैं, एक महिला से जल ग्रहण करते हैं जिससे उन्हें स्वर्ग का पुण्य प्राप्त होता है), 1.10 तिल दान मनोगत (बुद्ध तिल का दान स्वीकार करके

एक महिला को नरक जाने से बचाते हैं), 1.15 उत्तरा की मनोगत (वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्त के आशीर्वाद से उत्तरा के पिता को अपार सोना प्राप्त होता है, उत्तरा बुद्ध को भोजन कराती है और स्वर्ग जाती है), 1.16 सिरिमा की मनोगत (बुद्ध के आशीर्वाद से दरबारी महिला सिरिमा को स्वर्ग प्राप्त होता है), 2.3 चावल की भूसी देने वाले की मनोगत (अरिहंत भिक्षु महा-कसप्पा अपने पूर्व जन्म की माता से चावल की भूसी ग्रहण करते हैं जिससे उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है), 2.4 चंडाली की मनोगत (बुद्ध एक निम्न जाति की महिला को नरक जाने से बचाते हैं), 3.7 पेशावती की मनोगत (प्रमुख शिष्य सारिपुत्त निर्वाण प्राप्त करते हैं) 4.12 राज्जुमाला का महल (बुद्ध एक नौकरानी को आत्महत्या से बचाते हैं, जिसे दिव्य अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है), 5.1 मेंढक का महल (एक मेंढक स्वर्ग प्राप्त करता है), 5.8 सुई का महल (ज्ञान प्राप्त भिक्षु को दी गई सुई भी स्वर्ग का कारण बनती है), 7.7 कंथक का महल (राजकुमार सिद्धार्थ, जो बाद में बुद्ध बने, उनका घोड़ा कंथक मर जाता है और स्वर्ग प्राप्त करके देवदूत बन जाता है)।

1. प्रथम डिवीजन: सीट मेंशन्स
2. द्वितीय डिवीजन: सिट्टालाटा (ईडन)-वाग्गो
1.1 प्रथम सीट हवेली (1)
1.2 द्वितीय सीट हवेली (2)
1.3 तृतीय सीट हवेली (3)
1.4 चतुर्थ सीट हवेली (4)
1.5 हाथी हवेली (5)
1.6 प्रथम नाव हवेली (6)
1.7 द्वितीय नाव हवेली (7)
1.8 तृतीय नाव हवेली (8)
1.9 दीपक हवेली (9)
1.10 तिल-उपहार हवेली (10)
1.11 प्रथम पवित्र पत्नी हवेली (11) 1.12
द्वितीय पवित्र पत्नी हवेली (12)
1.13 प्रथम बहू हवेली (13)
1.14 द्वितीय बहू हवेली (14)
1.15 उत्तरा की हवेली (15)
1.16 सिरिमा की हवेली (16)
1.17 केशकारी की हवेली (17)
3. तीसरा भाग: परिच्छत्तक-वग्गो (कोरल ट्री)
2.1 दासी का महल (18)
2.2 लखुमा का महल (19)
2.3 चावल की रोटी देने वाले का महल (20)
2.4 चंडाली का महल (21)
2.5 सुंदर महिला का महल (22)
2.6 सोनादिन्ना का महल (23)
2.7 उपोसाथा का महल (24)
2.8, 2.9 निद्दा और सुनीद्दा के महल (25,26)
2.10 पहले भिक्षादाता का महल (27)
2.11 दूसरे भिक्षादाता का महल (28)

4. चौथा प्रभाग: मंजित्थाका-वाग्गो (क्रिमसन)

3.1 शानदार हवेली (29)
3.2 गन्ने की हवेली (30)
3.3 देवन हवेली (31)
3.4 लता की हवेली (32)
3.5 गुत्तिला की हवेली (33)
3.6 चमकदार हवेली (34)
3.7 पेसावती की हवेली (35) - सारिपुत्त निब्बाना प्राप्त करता है
3.8 मल्लिका की हवेली (36)
3.9 विशालाक्खी की हवेली (37)
3.10 मूंगा वृक्ष हवेली (38)
II. पुरुष-विमानम - दूसरा भाग: पुरुषों के निवास
4.1 क्रिमसन मेंशन (39)
4.2 शाइनिंग मेंशन (40)
4.3 एलिफेंट मेंशन (41)
4.4 अलोमा का मेंशन (42)
4.5 राइस-ग्रूल-गिवर का मेंशन (43)
4.6 मॉनेस्ट्री मेंशन (44)
4.7 फोर वुमन मेंशन (45)
4.8 मैंगो मेंशन (46)
4.9 येलो मेंशन (47)
4.10 शुगरकेन मेंशन (48)
4.11 ऑनरिंग मेंशन (49)
4.12 राज्जुमाला का मेंशन (50)
5. पांचवां प्रभाग: महा-रथ-वग्गो (महान रथ)
6. छठा भाग: पायसी-वाग्गो
5.1. पहला: मेंढक-देव का महल (51)
5.2 रेवती का महल (52)
5.3 ब्राह्मण युवक चट्टा का महल (53)
5.4 केकड़े का सूप देने वाले का महल (54)
5.5 द्वारपाल का महल (55)
5.6 पहला किया जाने वाला महल (56)
5.7 दूसरा किया जाने वाला महल (57) 5.8
पहला सुई महल (58)
5.9 दूसरा सुई महल (59)
5.10 पहला हाथी महल (60)
5.11 दूसरा हाथी महल (61)
5.12 तीसरा हाथी महल (62)
5.13 छोटा रथ हवेली (63)
5.14 महान रथ हवेली (64)

7. सातवाँ भाग: सुनिक्खित्त-वाग्गो
6.1 पहला घर (65)

6.2 दूसरा घर (66)
6.3 फलदाता का घर (67)
6.4 पहले शरणदाता का घर (68)
6.5 दूसरे शरणदाता का घर (69)
6.6 भिक्षादाता का घर (70)
6.7 जौ की रखवाली करने वाले का घर (71)
6.8 पहले झुमके पहनने वाले का घर (72)
6.9 दूसरे झुमके पहनने वाले का घर (73)
6.10 उत्तरा का घर (74)
अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड/देखें
7.1 चित्तलता (ईडन) हवेली (75)
7.2 नंदना हवेली (76)
7.3 रत्नजड़ित शाफ्ट हवेली (77)
7.4 स्वर्ण हवेली (78)
7.5 आम हवेली (79)
7.6 चरवाहे की हवेली (80)
7.7 कंठक की हवेली (81) - बुद्ध का घोड़ा देवदूत बन जाता है
7.8 विविध रंगों की हवेली (82)
7.9 पॉलिश की हुई बालियां पहने हवेली (83)
7.10 सेरिसाका की हवेली (84)
7.11 सुनीक्खित्त की हवेली (85)

विमानवत्थु : एटीआई संस्करण
निम्नलिखित .pdf फ़ाइल में ऊपर दी गई सभी कहानियाँ हैं, इसे खोलें और फिर .pdf फ़ाइल सहेजें
: फ़ाइल:Vimanavatthu Final.pdf

मूल पाली संस्करण
खुद्दक निकाय का विमानवत्थु, विमान (एक प्रकार का निजी स्वर्गीय निवास) का वर्णन करने वाली छंदबद्ध कहानियों का संग्रह है। इस निवास में वे प्राणी निवास करते हैं जो मनुष्य के रूप में किए गए पुण्य कर्मों के फल के रूप में देवी-देवताओं के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं। सभी कहानियाँ एक समान शैली का अनुसरण करती हैं। इनकी शुरुआत एक परिचयात्मक श्लोक (या श्लोकों) से होती है जिसमें देवता या देवी से उस विशेष निवास में उनके पुनर्जन्म का कारण पूछा जाता है। इसके बाद देवता अपने पूर्व के अच्छे कर्मों का वर्णन करते हैं।
— जॉन डी. आयरलैंड, वांगिसा: एक प्रारंभिक बौद्ध कवि में
1.16: सिरिमा — सिरिमा का महल
(श्लोक 136-148) देव सिरिमा, जो अपने पिछले मानव जन्म में मनोरंजनकर्ता थीं, पूज्य वंगीसा को समझाती हैं कि उन्होंने धम्म कैसे सीखा और धारा-प्रवेशकर्ता (प्रथम पथ की) कैसे बनीं।
3.7: शेषवती — शेषवती का महल
(श्लोक 647-658) देवी शेषवती पूज्य वांगिसा को बताती हैं कि अपने पिछले जन्म में पूज्य सारिपुत्त को प्रणाम करना ही उनके लिए एक गौरवशाली देवलोक में पुनर्जन्म सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त था। यह विशुद्ध भक्तिमय संदेश वाली प्रारंभिक बौद्ध कविता का एक उदाहरण है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
प्रारंभ <<<<----------------------- I.1.1 -------------------------->>>> अगला

1.1 प्रथम पीठ भवन (1)
(पथम-पीठ-विमान)

जब भगवान (भगवान बुद्ध) सावती में, जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे, तब कोसल के राजा पसेनादि ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ के लिए सात दिनों तक अद्वितीय दान दिया, और महान धनदाता अनाथपिंडिका ने राजा के दान के अनुरूप तीन दिनों तक दान दिया, और महान गृहस्थ अनुयायी विशाखा ने भी इसी प्रकार महान दान दिया, तो अद्वितीय दान की खबर जंबूद्वीप (भारत) में फैल गई। तब हर जगह लोगों ने यह प्रश्न उठाया, "क्या दान केवल इस प्रकार की भव्य उदारता से ही विशेष रूप से फलदायी होता है, या यह तब होता है जब यह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उदारता हो?"

जब भिक्षुओं ने इस चर्चा के बारे में सुना तो उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) को बताया। भगवान बुद्ध ने कहा, "केवल उचित दान देने से ही महान फल प्राप्त नहीं होते, बल्कि दानदाता के मन की प्रसन्नता और दानग्राही की योग्यता (उन्नति) के कारण भी ऐसा होता है। इसलिए, मुट्ठी भर धान, एक चिथड़ा, घास या पत्तों का एक टुकड़ा, या सड़ते हुए (पशु-मूत्र में मिला हुआ एक पित्त का दान भी, यदि श्रद्धापूर्वक किसी योग्य व्यक्ति को दिया जाए, तो वह महान फलदायी, महान वैभवशाली और महान विस्तार वाला होगा।"

इसी प्रकार, सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने कहा,

"यदि मन प्रसन्न हो, तो

तथागत (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध, या किसी शिष्य को दिया गया कोई भी भक्ति दान महत्वहीन नहीं है।"

अब यह कथा जंबूद्वीप (भारत) में व्यापक रूप से प्रसिद्ध हो गई। लोगों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भिक्षु और ब्राह्मण, घुमंतू, राहगीर और दरिद्रों को दान दिया। उन्होंने अपने आंगनों में पीने का पानी उपलब्ध कराया, उन्होंने प्रवेश द्वारों पर आसन लगाए।

उसी समय एक उत्तम आचरण वाले वरिष्ठ भिक्षु भिक्षाटन के लिए समय पर एक घर पहुंचे। वहां एक धर्मपरायण गृहस्थ महिला ने उनका स्वागत किया, आदरपूर्वक अभिवादन किया और अपने आसन पर इस्त्री किया हुआ पीला वस्त्र बिछाकर उन्हें अर्पित किया। अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें भोजन परोसते हुए और पंखा झलते हुए, प्रसन्न मन से उसने सोचा, "मेरे लिए सर्वोच्च पुण्य का क्षेत्र उत्पन्न हुआ है।" जब भिक्षु ने भोजन कर लिया, तो उन्होंने आसन और भोजन दान आदि के विषय में धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन दिया और चले गए। जैसे ही महिला ने अपने भिक्षाटन और धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन दिया, वह अत्यंत प्रसन्न हुई और उसने भी भिक्षु को अपना आसन दे दिया।

कुछ समय बाद एक स्त्री की रोग से मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में बारह योजन वाले स्वर्णमय महल में हुआ। उनके साथ एक हजार अप्सराओं का दल था। उनके द्वारा दिए गए आसन के कारण उनके लिए एक योजन का स्वर्णमय दीवान प्रकट हुआ, जो आकाश में तीव्र गति से विचरण करता था और शिखर पर स्थित किसी ऊंचे घर के समान दिखता था। अतः इसे आसन महल कहा जाता है। क्योंकि आसन पर स्वर्ण रंग का वस्त्र बिछा हुआ था, इसलिए महल स्वर्णमय था, जो कर्म और उसके परिणाम के बीच समानता को दर्शाता है: क्योंकि कुर्सी आनंद की प्रबल प्रेरणा से दी गई थी, इसलिए महल अत्यंत गतिमान था; उपहार योग्य व्यक्ति की संतुष्टि के लिए दिया गया था, इसलिए महल इच्छा अनुसार गतिमान हो सकता था; स्त्री की आनंदमय आस्था की फलदायीता के कारण महल तेजस्वी और प्रकाशमान था।

एक पर्व के दिन जब देव (देवदूत) अपने-अपने स्वरूप या देव-समान शक्ति से नंदनवन (स्वर्ग) में आनंद के लिए जा रहे थे, तभी एक देवी (देवदूत) देव-वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित होकर, एक हजार अप्सराओं के साथ, परम शक्ति से सिंहासन भवन में प्रवेश कर गईं।

उसी समय, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जो देव-दर्शन यात्रा पर थे, तैंतीस लोकों में पहुँचे और देवी (देवदूत) के पास दर्शन दिए। उन्हें देखकर देवी (देवदूत) अत्यंत प्रसन्नता और श्रद्धा से सोफे से उतरीं, वरिष्ठ भिक्षु के पास गईं, पंचमुखी प्रणाम किया और दस उंगलियों को जोड़कर हाथ जोड़कर उन्हें नमन किया। यद्यपि वरिष्ठ भिक्षु ने अपनी बुद्धि की शक्ति की विविधता के बल पर, मानो अपने हाथ की हथेली पर रखे हुए मायरोबलन फल को स्पष्ट रूप से देख लिया था, जिसमें उनके द्वारा और अन्य प्राणियों द्वारा संचित अच्छे और बुरे कर्मों का वर्णन था, फिर भी अपने पुनर्जन्म के तुरंत बाद देवता कहते हैं, "मैं कहाँ से मरा और इस संसार में पुनर्जन्म लिया?" "मैंने ऐसा कौन सा अच्छा कर्म किया जिससे मुझे यह सफलता मिली?" और चूंकि सामान्यतः वे सही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, इसलिए बड़े ने, देवताओं (देवदूतों) के साथ संसार को कर्म का परिणाम स्पष्ट करने के लिए, इस देवी (देवदूत) से उसके द्वारा किए गए कर्म के बारे में बताने को कहा और निम्नलिखित शब्द कहे:

1 "आपका स्वर्णमय, तेजस्वी आसन, आपकी इच्छा से विचार की गति से चलता है। आप फूलों की मालाओं से सुशोभित हैं, सुंदर वस्त्रों में, आप बादलों पर बिजली की तरह चमक रही हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप यहाँ किस कारण समृद्ध होती हैं, और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सभी सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?"

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित क्यों करता है?

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवी ने

बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "मनुष्यों के बीच मनुष्य के रूप में जन्म लेकर मैंने एक आगंतुक को एक छोटी कुर्सी दी, आदरपूर्वक उसे प्रणाम किया, हाथ जोड़कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दिया।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध हूँ और वहाँ मेरे हृदय को प्रिय सुखों की प्राप्ति होती है।

7 हे महान महिमावान भिक्षु, मैं आपको बताता हूँ कि मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर क्या पुण्य कर्म किया था। इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.2 ------------------------->>>> अगला

1.2 द्वितीय आसन भवन (2)
(दुतिया-पीठ-विमान)

इस आसन की व्याख्या और टीका दोनों को प्रथम आसन के संदर्भ में ही समझना चाहिए। लेकिन अंतर यह है:

कहा जाता है कि श्रावस्ती में रहने वाली एक स्त्री ने एक वरिष्ठ भिक्षु को अपने घर भिक्षा मांगने आते देखा और प्रसन्नता से उन्हें आसन देते हुए अपने आसन पर नीला वस्त्र बिछाकर उन्हें दे दिया। अतः जब उनका देवलोक में पुनर्जन्म हुआ, तो उनके लिए बेरिल से निर्मित एक दीवान भवन प्रकट हुआ। इसलिए, "बेरिल से निर्मित आपका आसन..." कहा गया है।

1 "आपका बेरिल से बना भव्य आसन, आपकी इच्छा से विचार की गति से चलता है। आप पुष्पमालाओं से सुशोभित हैं, सुंदर वस्त्रों में आप बादलों पर बिजली की तरह चमक रही हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप किस कारण से समृद्धि प्रदान करती हैं और आपके हृदय को प्रिय आनंद किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवी ने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम है।

5 "जब मैं मनुष्य के रूप में जन्मा, तो मैंने एक आगंतुक को छोटी कुर्सी दी, आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया, अपने हाथ जोड़कर उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दिया।

6 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होता हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

7 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने उस पुण्य कर्म के बारे में बताता हूँ जो मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लेते समय किया था। इसी कारण मेरा तेजस्वी तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.3 -------------------------->>>> अगला

1.3 तीसरा आसन (3)
(तथ्य-पीठ-विमान)

... राजगृह में ... (जैसा कि क्रमांक 1 में है) ... स्त्री अपना आसन अर्पित करते हुए यह कामना करती है: हे मेरे इस कर्म से भविष्य में मुझे स्वर्ण का आसन प्राप्त हो! तदनुसार कहा गया:

1 "आपका स्वर्ण निर्मित, तेजस्वी आसन, आपकी इच्छा से विचार की गति से चलता है। आप पुष्पों की मालाओं से सुशोभित हैं, सुंदर वस्त्रों में आप बादलों पर बिजली की तरह चमक रही हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप यहाँ किस कारण समृद्ध हैं, और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह देवता प्रसन्न हुए और प्रश्नकर्ता द्वारा बताए गए कर्म का फल बताया।

5 “मेरे एक छोटे से कर्म का यह फल है, जिसके कारण मेरा तेज ऐसा है। पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य जगत में मनुष्य के रूप में जन्मा,

6 तब मैंने एक निर्मल भिक्षु को देखा, जिसे मैंने प्रसन्न मन से अपने हाथों से आसन दिया।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध हूँ और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 हे महान भिक्षु, मैं आपको बताता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेते समय मैंने क्या पुण्य कर्म किया था। इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।”
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.4 -------------------------->>>> अगला

1.4 चौथा आसन भवन (4)
(चतुत्थ-पीठ-विमान)

इसका स्थान भी राजगृह में था। इसे दूसरे आसन के वर्णन के समान ही समझना चाहिए, क्योंकि जब स्त्री ने नीले वस्त्र को बिछाकर आसन दिया, तो उसके लिए भी बेरिल से बना एक आसन प्रकट हुआ। शेष वही है जो पहले आसन के संबंध में कहा गया था। तदनुसार कहा गया:

1 "आपका बेरिल से बना भव्य आसन, आपकी इच्छा से विचार की गति से चलता है। आप फूलों की मालाओं से सुशोभित हैं, सुंदर वस्त्रों में आप बादलों पर बिजली की तरह चमक रही हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप यहाँ किस कारण समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने प्रश्न के उत्तर में बताया कि यह किस कर्म का परिणाम था।

5 "मेरे एक छोटे से कर्म का यह फल है, जिसके कारण मेरी तेजस्वी महिमा इस प्रकार है। पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य जगत में मनुष्य के रूप में जन्मा,

6 तब मैंने एक निर्मल भिक्षु को देखा, जिसे मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से आसन दिया।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 हे महान भिक्षु, मैं आपको अपने उस पुण्य कर्म के बारे में बताता हूँ जो मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर किया था। इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा इस प्रकार है और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"

1.5 हाथी महल (5)
(कुंजर-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के जंगल में गिलहरियों के भोजन स्थल पर निवास कर रहे थे। एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव की घोषणा की गई। सभी लोग अपने सर्वोत्तम वस्त्र धारण करके उत्सव में शामिल हुए।

महान राजा बिम्बिसार, जनता की प्रसन्नता के लिए, उस स्थान से निकले और बड़े धूमधाम और वैभव के साथ नगर का भ्रमण किया। उसी समय राजगृह की एक सुकुलित स्त्री ने राजा का वैभव देखा और आश्चर्यचकित होकर उसने विद्वानों से पूछा, "यह दिव्य वैभव और धन का प्रदर्शन आपने किस पुण्य कर्म से प्राप्त किया है?" उन्होंने उससे कहा, "हे प्रिय, पुण्य कर्म उस रत्न के समान है जो इच्छा पूरी करता है, उस वृक्ष के समान है जो मनोकामना पूरी करता है।" यह सुनकर उसने मन ही मन कहा, “मैं समझती हूँ कि दैवीय पुण्य (अनेक दान-पुण्यों से मिलने वाले प्रतिफल) से कहीं अधिक है,” और वह पुण्य कर्म करने में अत्यंत तत्पर हो उठी।

उसके माता-पिता ने उसके लिए नए वस्त्र, नई आसन, कमलों का गुच्छा, घी, शहद, चीनी, चावल और दूध भेजा। जब उसने ये सब देखा तो बोली, “मैं दान देना चाहती हूँ, और अब यह दान योग्य वस्तु मेरी हो गई है,” और प्रसन्न मन से उसने अगले दिन अपना दान-पुण्य, अपना घर और स्वयं को तैयार किया।

उसी समय, राजगृह में भिक्षा माँगते हुए आदरणीय भिक्षु सारिपुत्त एक गली में ऐसे आसीन हुए जैसे वे हजार सिक्कों से भरा थैला रख रहे हों। दासी ने भिक्षु को देखकर कहा, “आदरणीय महोदय, मुझे अपना भिक्षापात्र दीजिए,” और आगे कहा, “एक गृहस्थ अनुयायी होने के नाते, कृपया इधर आइए।” भिक्षु ने उसे अपना भिक्षापात्र दे दिया। वह उन्हें घर ले गई। फिर उस स्त्री ने वृद्ध भिक्षु का स्वागत किया और उनकी सेवा की। सेवा करते हुए उसने यह प्रार्थना की, “मेरे इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप यहाँ देवदूतों के समान वैभव हो, देवदूतों के समान हाथी हों, शिखर वाले घर हों और दीवान हों, और यहाँ कभी कमल न खिलें।” जब वृद्ध भिक्षु ने भोजन कर लिया, तो उसने कटोरा धोकर उसमें घी, शहद, चीनी आदि भरकर आसन पर बिछे कपड़े की गठरी बनाई और उसे वृद्ध भिक्षु के हाथ में रख दिया। वृद्ध भिक्षु के विदा होने के बाद उसने दो पुरुषों को आदेश दिया, “यह पलंग और कटोरा मठ में ले जाओ, वृद्ध भिक्षु को दे दो और लौट आओ।” उन्होंने ऐसा ही किया। इसके बाद उसका निधन हो गया और वह तैंतीसवें लोक में सौ योजन ऊँचे स्वर्ण महल में पुनर्जन्म लेकर एक हजार अप्सराओं के दल के साथ रहने लगी। और उसकी आकांक्षा के कारण, उसके लिए पाँच योजन ऊँचा एक महान हाथी प्रकट हुआ। वह हाथी कमलों की मालाओं से सुशोभित था और सुनहरे अलंकृत वस्त्रों से लिपटा हुआ था।

अब एक उत्सव के दिन जब देव (देवदूत) अपनी-अपनी देव-समान शक्ति से नंदनवन (स्वर्ग) में आनंद लेने जा रहे थे... इसके आगे की कहानी प्रथम सिंहासन पर दिए गए विवरण के समान है। तो इसे उस कहानी के अनुसार ही समझा जाना चाहिए, लेकिन यहाँ इस बुजुर्ग (मोग्गलाना) ने निम्नलिखित पंक्तियाँ कही हैं:

1 "आपका हाथी, एक शानदार सवारी, विभिन्न रत्नों से सुशोभित, मनभावन, शक्तिशाली, तेज गति वाला, आकाश में सहजता से चलता है।

2 हे कमल की पंखुड़ियों जैसी आँखों वाले, नीले और लाल कमलों की चमक सुनने वाले, कमल के चूर्ण से ढके अंगों वाले, सुनहरे कमलों की मालाओं से सुशोभित, वह कमल के समान है।

3 कमलों से सजी, कमल की पंखुड़ियों से सुशोभित, दृढ़, मनमोहक, कष्टरहित सड़क पर, वह राजसी हाथी संयमित कदमों से चलता है।

4 जैसे ही वह आगे बढ़ता है, मधुर स्वर वाली सुनहरी घंटियाँ सुनाई देती हैं, उनकी ध्वनि पंचांग संगीत के समान है।

5 जब आप उस विशाल हाथी की पीठ पर बैठे हैं, तो आपका श्वेत वस्त्र, सुशोभित, अप्सराओं के विशाल समूह को भी सुंदरता में पार कर जाता है।

6 क्या यह आपके दान देने का परिणाम है, या फिर अभ्यास का?" क्या यह नैतिकता (शील) का परिणाम है, या हाथ जोड़कर खड़े होने का? जब आपसे यह प्रश्न पूछा जाए तो मुझे यह बता देना।

7 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम है।

8 "विशेष गुणों से युक्त, सदा ध्यान में मग्न रहने वाले, सचेत ध्यानी को देखकर, मैंने उन्हें फूलों से ढकी और कपड़े की चटाई से आच्छादित कुर्सी भेंट की।

9 मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से कुर्सी के चारों ओर आधे कटे कमल के फूल और उनकी टूटी पंखुड़ियाँ बिखेर दीं।

10 मेरे इस परोपकार का यही फल है। मुझे देवताओं की सेवा और सम्मान प्राप्त हुआ है और मैं देवताओं द्वारा सम्मानित हूँ।

11 निश्चय ही जो प्रसन्नतापूर्वक समभाव से पूर्णतः प्रबुद्ध, संत और ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को कुर्सी भेंट करे, वह मेरी ही तरह प्रसन्न होगा।

12 अतः अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले, महानता की कामना करने वाले को अपने अंतिम शरीर धारण करने वालों को आसन देना चाहिए।" (अरिहंत, पूर्ण आध्यात्मिक जागृति और पुनर्जन्म रहित) कर्म/कारक)

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.6 -------------------------->>>> अगला

1.6 प्रथम नौका भवन (6)
(पथम-नव-विमान)

जब भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब सोलह भिक्षु, जिन्होंने वर्षा ऋतु एक गाँव में बिताई थी, ग्रीष्म ऋतु में सावत्थी की ओर राजमार्ग पर यह कहते हुए चल पड़े, "हम भगवान (भगवान बुद्ध) के दर्शन करेंगे और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनेंगे।" मार्ग में एक जलहीन रेगिस्तान था। और क्योंकि वे वहाँ गर्मी से बेहाल हो गए और उन्हें पानी नहीं मिला, इसलिए वे एक गाँव के आसपास के क्षेत्र में चले गए। वहाँ एक स्त्री पानी का घड़ा लिए कुएँ की ओर जा रही थी। भिक्षुओं ने उसे देखा और यह कहते हुए, "यदि हम वहाँ जाएँ जहाँ यह स्त्री जा रही है तो हमें पानी मिल जाएगा," वे उसके पीछे गए, कुआँ देखा और उसके पास रुक गए। उसने वहाँ से पानी निकाला और भिक्षुओं को देखा। "ये योग्य लोग प्यासे हैं," उसने मन ही मन कहा और अत्यंत आदरपूर्वक उन्हें पानी पीने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अपने थैले से छलनी निकाली, पानी छाना और जितना चाहें उतना पिया, अपने हाथ-पैर ठंडे किए, पानी पिलाने

वाली स्त्री को धन्यवाद दिया और आगे बढ़ गए। उस स्त्री ने उस पुण्य कर्म को अपने हृदय में संजोए रखा और समय-समय पर उसका स्मरण करती रही।

बाद में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में हुआ। उसके पुण्य कर्म के फलस्वरूप उसके लिए एक भव्य महल का निर्माण हुआ, जो मनोकामना पूरी करने वाले वृक्ष से सुशोभित था। उसके चारों ओर रत्नों के समान शुद्ध जल से भरी एक धारा बह रही थी, जिसके किनारे मोतियों और चांदी की माला के समान चमकते हुए सफेद रेत से ढके थे। उसके दोनों किनारों पर और महल के उद्यान के द्वार पर एक विशाल कमल का तालाब था, जो पांच रंगों के कमलों के समूह और एक सुनहरी नाव से सुशोभित था। देवी (देवदूत) वहां देव-आनंद का आनंद लेते हुए, नाव में क्रीड़ा और विश्राम कर रही थीं। फिर एक दिन पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जब देवियों के दर्शन के लिए यात्रा कर रहे थे, तब उन्होंने देवियों को इस प्रकार आनंदित होते देखा और कहा:

1 "हे देवी, आप एक सुनहरी छतरी वाली नाव में विराजमान हैं; आप कमल के तालाब में डुबकी लगाती हैं, अपने हाथ से एक कमल तोड़ती हैं।

2 आपके निवास शिखर वाले, विभाजित और सुनियोजित हैं। वे चारों दिशाओं में प्रकाशमान हैं।

3 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ कैसे समृद्ध होती हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख कैसे प्राप्त होते हैं?

4 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेते समय आपने कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा और सुंदरता सभी दिशाओं को कैसे प्रकाशित करती है?"

5 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर वह देवता प्रसन्न हुआ और जब उससे यह प्रश्न पूछा गया तो उसने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम था।

6 "पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य के रूप में मनुष्यों के बीच जन्मा, तो मैंने कुछ भिक्षुओं को प्यासा और थका हुआ देखा। मैंने उठकर उन्हें पानी पिलाया।"

7 निश्चय ही, जो व्यक्ति उठकर प्यासे और थके हुए लोगों को पानी पिलाता है, उसके लिए शीतल जल की धाराएँ बहुतायत से बहती हैं, फूलों से लदी रहती हैं और अनेक सफेद कमल खिलते हैं।

8 उसके पास सदा रेत से घिरी शीतल जल की धाराएँ बहती रहती हैं, वहाँ आम और साल के वृक्ष, तिलक और गुलाब के पेड़, कैसिया और तुरही के फूल पूर्ण रूप से खिले रहते हैं।

9 उसके लिए ऐसे परिवेश से उसकी सुंदरता और भी बढ़ जाती है, वह अपने उत्तम भवन में अत्यंत चमकता है। यह उसी कर्म का फल है। पुण्य कर्म करने वालों को ऐसा ही फल प्राप्त होता है।

10 मेरे निवास शिखर वाले, विभाजित और सुनियोजित हैं। वे चारों दिशाओं में चमकते हैं।

11 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होता हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

12 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताता हूँ। इसी कारण मेरा तेज और तेजस्वी रूप सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.7 -------------------------->>>> अगला

1.7 दूसरा नौका भवन (7)
(दुतिया-नव-विमान)

जब भगवान (बुद्ध) सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब एक वृद्ध भिक्षु, जिनके सांसारिक विकार (इच्छाएँ) नष्ट हो गए थे, वर्षा ऋतु के आरंभ में किसी गाँव में निवास करना चाहते थे। दोपहर के भोजन के बाद वे सावत्थी से गाँव के लिए राजमार्ग पर निकल पड़े। यात्रा की थकान से थककर और प्यासे होकर वे एक गाँव में पहुँचे और एक मुखिया के द्वार पर रुके। वहाँ एक स्त्री ने उन्हें देखा और पूछा, "आप कहाँ से आए हैं, महोदय?" यह देखकर कि वे थके और प्यासे हैं, उन्होंने उनका घर में स्वागत किया और उन्हें बैठने के लिए कहा। उन्होंने उनके पैरों के लिए पानी और तेल दिया और उन्हें पंखा किया। जब उनकी गर्मी शांत हो गई, तो उन्होंने उनके लिए एक मीठा, ठंडा और सुगंधित पेय तैयार किया। वृद्ध भिक्षु ने उसे पिया और उनकी प्यास बुझ गई, उन्होंने स्त्री को धन्यवाद दिया और अपने रास्ते चले गए। बाद में उस स्त्री की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में हुआ। सब कुछ उसी प्रकार समझें जैसा कि पिछले लोक में बताया गया है। श्लोकों में भी कुछ नया नहीं है।

1 "हे देवी, आप सुनहरे चंदवा वाली नाव में विराजमान हैं; आप कमल के तालाब में डुबकी लगाती हैं, आप अपने हाथ से एक कमल तोड़ती हैं।

2 आपके निवास शिखर वाले, विभाजित, सुनियोजित अनुपात वाले हैं। वे चारों दिशाओं में चमकते हैं।

3 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ कैसे समृद्ध होती हैं, और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख कैसे प्राप्त होते हैं?

4 हे देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी तेजस्वी महिमा ऐसी क्यों है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

5 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह देवता प्रसन्न हुआ और जब उससे यह प्रश्न पूछा गया तो उसने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम था।

6 पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य के रूप में मनुष्यों के बीच जन्मा, तो मैंने एक भिक्षु को प्यासा और थका हुआ देखा। मैंने उठकर उसे पानी पिलाया।

7 निश्चय ही, जो उठकर प्यासे और थके हुए लोगों को पानी पिलाता है, उसके लिए फूलों से लदी ठंडी जलधाराएँ और अनेक सफेद कमल बहते

हैं। 8 उसके पास सदा बहती हुई जलधाराएँ, रेत से घिरी ठंडी जलधाराएँ, आम और साल के वृक्ष, तिलक और गुलाब, कैसिया और तुरही के फूल खिले रहते हैं। 9

ऐसे परिवेश से सुशोभित, उसके लिए वह सबसे सुंदर और चमकीला महल है। यह उसी कर्म का फल है। पुण्य कर्म करने वालों को ऐसा ही प्राप्त होता है।

10 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होता हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

11 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताता हूँ। इसी कारण मेरा तेज और तेजस्वी रूप सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.8

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.8 ------------------------->>>> अगला

1.8 तीसरा नौका भवन (8)
(तथ्य-नव-विमान)

जब भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ प्रांत में यात्रा कर रहे थे, तब वे कोसल देश के थुना नामक एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे। थुना के ब्राह्मण (उच्च जाति के पुरोहित) गृहस्थों ने सुना, "वे कहते हैं कि संन्यासी गौतम (बुद्ध) हमारे गाँव के खेत में आए हैं।" अब ब्राह्मण गृहस्थ, जो अविश्वासी, भ्रामक मतों वाले और स्वभाव से लालची थे, कहने लगे, "यदि संन्यासी गौतम (बुद्ध) इस गाँव में प्रवेश करें और दो-तीन दिन ठहरें, तो वे इन सभी लोगों को अपने मार्ग पर स्थापित कर देंगे, तब ब्राह्मण धर्म का कोई आधार नहीं रह जाएगा।" और भगवान (बुद्ध) को वहाँ ठहरने से रोकने के प्रयास में उन्होंने नौकाओं को घाटों से हटा दिया और पुलों और मार्गों को अनुपयोगी बना दिया। उन्होंने एक को छोड़कर बाकी सभी कुओं को खरपतवारों आदि से भर दिया और पानी पीने के स्थानों, विश्राम गृहों और झोपड़ियों को छिपा दिया। उदाना में ऐसा ही बताया गया है।

भगवान बुद्ध को उनके कुकर्म का ज्ञान हुआ और उन पर दया करके वे भिक्षुओं के साथ वायु में उड़ते हुए नदी पार कर गए और कुछ समय बाद थुना नामक ब्राह्मण गाँव पहुँचे। उन्होंने मार्ग छोड़कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। उसी समय कई स्त्रियाँ पानी लेकर भगवान बुद्ध के पास से गुजर रही थीं। उस गाँव में एक नियम बना हुआ था, "यदि गौतम बुद्ध यहाँ आएँ, तो उनका कोई स्वागत या सत्कार नहीं किया जाएगा, और जब वे किसी घर में आएँ, तो न तो उन्हें और न ही उनके शिष्यों को भोजन दिया जाएगा।" तभी एक ब्राह्मण की दासी पानी का घड़ा लेकर जा रही थी, उसने देखा कि भगवान बुद्ध भिक्षुओं से घिरे हुए हैं। उसने देखा कि वे थके हुए और प्यासे हैं, और प्रसन्न मन से उन्हें पानी पिलाना चाहती थी। "यद्यपि इस गाँव के लोगों ने निश्चय किया है कि वे संन्यासी गौतम (बुद्ध) को कुछ भी नहीं देंगे और न ही उनका सम्मान करेंगे," उसने मन ही मन कहा, "परन्तु, यदि इन सर्वोच्च पुण्य क्षेत्रों और पुण्य दान के योग्य प्राप्तकर्ताओं को पाकर भी मैं मात्र जल दान करके अपना भरण-पोषण न करूँ, तो अंततः कब इस दुःखमय जीवन से मुक्ति पाऊँगी? चाहे मेरे स्वामी और गाँव के सभी निवासी मुझे पीटें या बाँध दें, मैं फिर भी इस पुण्य क्षेत्र को जल दान करूँगी।" यह निश्चय करने के बाद, यद्यपि जल ढोने वाली अन्य स्त्रियों ने उसे रोकने का प्रयास किया, उसने अपने जीवन की परवाह किए बिना अपने सिर से जल का घड़ा नीचे उतारा, उसे एक तरफ रखा और प्रसन्नता से भगवान (बुद्ध) के पास पहुँची, पंचांग प्रणाम किया और उन्हें जल अर्पित किया। भगवान (बुद्ध) ने उसके मन की प्रसन्नता को पहचान लिया और उस पर कृपा करते हुए अपने हाथ-पैर धोए और जल ग्रहण किया। घड़े में पानी कम नहीं हुआ था। यह देखकर लड़की प्रसन्न हुई और उसने एक-एक करके सभी भिक्षुओं को पानी पिलाया। फिर भी पानी कम नहीं हुआ। प्रसन्न और उत्साहित होकर, और अपने घड़े को पहले की तरह भरा हुआ लिए वह घर चली गई।

उसके गुरु, ब्राह्मण (उच्च जाति के पुजारी), ने उसे पानी पिलाते हुए सुना। उन्होंने कहा, "इसने गाँव का नियम तोड़ा है और मेरा उपहास हुआ है।" क्रोध से आग बबूला होकर उन्होंने उसे ज़मीन पर पटक दिया और हाथों-पैरों से पीटा। उस पिटाई के कारण उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर आई, और उसके लिए प्रथम नौका भवन में वर्णित भवन के समान एक भवन का निर्माण हुआ।

अब भगवान बुद्ध ने आदरणीय भिक्षु आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, आओ, मेरे लिए कुएँ से पानी लाओ।" आनंद ने कहा, "हे पूज्यवर, यह कुआँ थून के लोगों द्वारा प्रदूषित हो गया है। मैं पानी नहीं ला सकता।" लेकिन भगवान बुद्ध ने उन्हें दूसरी और

तीसरी बार आज्ञा दी। तीसरी बार आनंद ने भगवान बुद्ध का कटोरा लिया और कुएँ की ओर चल पड़े। जैसे ही वे गए, कुएँ का पानी ऊपर तक भर गया, छलक कर चारों ओर बहने लगा।

सारा कूड़ा ऊपर तैरने लगा और बह गया। बढ़ते पानी से अन्य जलस्रोत भी भर गए, गाँव चारों ओर से घिर गया और गाँव के आसपास का क्षेत्र जलमग्न हो गया। ब्राह्मणों ने यह चमत्कार देखा और आश्चर्य और विस्मय से भर कर भगवान बुद्ध से क्षमा प्राप्त की। तुरंत ही बाढ़ का पानी गायब हो गया। उन्होंने भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ के लिए ठहरने की व्यवस्था की, उन्हें अगले दिन के लिए आमंत्रित किया, और अगले दिन, बड़ी मात्रा में भिक्षा तैयार करके, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को उत्तम पौष्टिक और कोमल भोजन भेंट किया; और जब भगवान बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और कटोरे से अपना हाथ हटा लिया, तो थून के सभी लोग उनके चारों ओर श्रद्धापूर्वक बैठ गए।

उसी क्षण देवी ने अपनी उपलब्धि पर विचार किया और महसूस किया कि इसका कारण उनका पीने का पानी दान करना था। प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर उसने कहा, “अच्छा, अब मैं भगवान बुद्ध को प्रणाम करूंगी। मैं मनुष्यों के बीच यह बात प्रकट करूंगी कि सही मार्ग पर चलने वालों के लिए तुच्छ कर्म भी कितने फलदायी होते हैं।” और उत्साह से भरी हुई, अपने हजार अप्सराओं के दल, अपने उद्यान आदि और अपने महल के साथ, वह महान देवदूत-समान भव्यता से जनसमूह के समक्ष पहुंची। वह महल से उतरी, भगवान बुद्ध के पास पहुंची, उन्हें प्रणाम किया और श्रद्धापूर्वक खड़ी हो गई। तब भगवान बुद्ध ने अपने सामने उपस्थित जनसमूह को पुण्य का फल स्पष्ट करने की इच्छा से उनसे पूछा:

1 "हे देवी, आप स्वर्णिम चंदवा वाली नौका में विराजमान हैं; आप कमल-कुंड में डुबकी लगाती हैं और अपने हाथों से कमल तोड़ती हैं।

2 आपके घर शिखर वाले हैं, विभाजित हैं, अनुपात के अनुसार सुनियोजित हैं, और चारों दिशाओं में प्रकाश फैलाते हैं।

3 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ कैसे समृद्ध होती हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख कैसे प्राप्त होते हैं?

4 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा और सुंदरता सभी दिशाओं को कैसे प्रकाशित करती है?"

5 स्वयं आत्मज्ञानी (बुद्ध) द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह देवता (देवदूत) प्रसन्न हुआ और जब उससे प्रश्न पूछा गया तो उसने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम था।

6 "पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य के रूप में मनुष्यों के बीच, मनुष्यों के संसार में जन्मा, तो मैंने प्यासे और थके हुए भिक्षुओं को देखा। मैंने उठकर उन्हें पानी पिलाया।

7 निश्चय ही, जो उठकर प्यासे और थके हुए लोगों को पानी पिलाता है, उसके लिए फूलों से लदे ठंडे जल के झरने और अनेक सफेद कमल बहेंगे।

8 उसके पास बहते जल, रेत से घिरे ठंडे जल के झरने सदा बहते रहेंगे; वहाँ आम के वृक्ष, साल के वृक्ष, तलक के वृक्ष, गुलाब के वृक्ष, कैसिया और तुरही के फूल पूरी तरह खिले रहेंगे। 9

उसके लिए, ऐसे परिवेश से उसकी सुंदरता और भी बढ़ जाती है, वह सबसे उत्तम, अत्यंत चमकीला महल है। यह उसी कर्म का फल है। पुण्य कर्म करने वालों को ऐसा ही प्राप्त होता है।

10 मेरे निवास शिखर वाले, विभाजित, सुनियोजित अनुपात वाले घर हैं। वे चारों दिशाओं में चमकते हैं।

11 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है।" इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होता हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

12 इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है। यह मेरे उस कर्म का फल है जब जागृत बुद्ध ने मेरे द्वारा दिए गए जल को पिया।

फिर भगवान बुद्ध ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सत्यों की व्याख्या की। उपदेश के अंत में, सोतपान (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) के फलस्वरूप उस देवता की स्थापना हुई।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.9 ------------------------->>>> अगला

1.9 दीप भवन (9)
(दीप-विमान)

जब भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, एक व्रत दिवस (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) पर, अनेक गृहस्थ अनुयायियों, पुरुष और स्त्री दोनों ने, उस दिन के पालन में, सुबह के समय अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान किया, समय पर भोजन किया और स्वच्छ वस्त्र और चादर ओढ़कर, हाथों में इत्र और फूल लेकर दोपहर में मठ गए, मन को प्रेरित करने वाले भिक्षुओं की सेवा की और शाम को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना। जब वे अभी भी सुन ही रहे थे और मठ में रात बिताना चाहते थे, तभी अंधेरा हो गया। तब एक स्त्री ने सोचा, "यहाँ एक दीपक जलाना चाहिए" और वह अपने घर से एक दीपक और उसे जलाने की सामग्री लाई, दीपक जलाया, उसे धम्म आसन के सामने रखा और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना। दीपक के उपहार से प्रसन्न होकर वह आनंद और प्रसन्नता से भर उठी और प्रणाम करने के बाद अपने घर चली गई। बाद में उसका निधन हो गया और वह तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में रत्नजड़ित एक महल में पुनर्जन्म हुई। लेकिन उसके शरीर की चमक इतनी अधिक थी कि वह अन्य देवों (देवदूतों) को भी मात दे गई और दस दिशाओं में प्रकाश फैलाया। एक दिन पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा मोग्गलाना एक दावा यात्रा पर निकले... (जैसा कि पहले के वृत्तांतों में है)। लेकिन यहाँ उन्होंने तीन श्लोकों के साथ अपना प्रश्न पूछा;

1 "हे देवता, आप अतुलनीय सौंदर्य से परिपूर्ण हैं और समस्त दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं, जैसे कोई दिव्य तारा।

2 आपका सौंदर्य ऐसा क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख क्यों प्राप्त होते हैं?

3 हे पवित्रता के तेज से परिपूर्ण, समस्त दिशाओं से परे चमकने वाली आप किस कारण से हैं? आपके सभी अंगों के कारण समस्त दिशाएँ किस कारण से प्रकाशमान हैं?

4 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपका तेजस्वी तेज ऐसा क्यों है और आपका सौंदर्य समस्त दिशाओं को प्रकाशित क्यों करता है?"

5 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

6 "पिछले जन्म में, मैं मनुष्यों के बीच, मनुष्यों के संसार में एक मनुष्य के रूप में जन्मा। जब घोर अंधकार छाई हुई थी, एक काली रात में, मैंने उस समय एक दीपक जलाया जब उसे प्रकाश देने की आवश्यकता थी।

7 जो घोर अंधकार में, एक काली रात में, उस समय एक दीपक जलाता है जब उसे प्रकाश देने की आवश्यकता होती है, वह पुष्पों से परिपूर्ण, अनेक सफेद कमलों से युक्त, तेजस्वी रत्नों के महल में विराजमान होता है।

8 क्योंकि मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ-वहाँ समृद्ध होता हूँ और जो भी सुख मेरे हृदय को प्रिय हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।"

9 इसी कारण मैं पवित्रता के प्रकाश से परिपूर्ण, सभी देवताओं से अधिक तेजस्वी देवता हूँ। इसी कारण मेरे सभी अंगों से समस्त दिशाएँ प्रकाशित होती हैं।

10 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताता हूँ। इसी कारण मेरा तेजस्वी तेज और मेरा सौंदर्य समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.10 -------------------------->>>> अगला

1.10 तिलदान गृह (10)
(तिल-दक्षिणा-विमान)

भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में अनाथपिंडिका के उद्यान में ठहरे हुए थे। उसी समय राजगृह में एक गर्भवती स्त्री तिल धोकर धूप में सुखा रही थी क्योंकि वह थोड़ा सा तिल का तेल पीना चाहती थी। उसका जीवनकाल अब समाप्त हो चुका था और उसी दिन उसकी मृत्यु निश्चित थी, और उसके संचित कर्म नरक में पुनर्जन्म का कारण बन रहे थे। भोर के समय पृथ्वी का अवलोकन करते हुए भगवान बुद्ध ने उसे दिव्य दृष्टि से देखा और सोचा, "आज मरने वाली यह स्त्री नरक में पुनर्जन्म ले सकती है; इसलिए, मैं तिल भिक्षा ग्रहण करके उसे स्वर्ग पहुंचा दूं।" कुछ ही क्षणों में वे सावत्थी से राजगृह गए और राजगृह में भिक्षा मांगते हुए उसके घर के द्वार पर पहुंचे। उस स्त्री ने भगवान बुद्ध को देखा और आनंद से भर उठी, अचानक उठ खड़ी हुई, हाथ जोड़कर, और कुछ और देने के लिए उचित न देखकर, उसने अपने हाथ-पैर धोए और कुछ तिल इकट्ठा करके, दोनों हाथों को हथेली में भरकर, मुट्ठी भर तिल भगवान बुद्ध के कटोरे में डाल दिए। भगवान बुद्ध ने उस पर दया करते हुए कहा, "खुश रहो," और अपने मार्ग पर चले गए। उसी रात भोर के समय, उस स्त्री की मृत्यु हो गई और तैंतीसवें लोक में बारह योजन वाले स्वर्ण महल में उसका पुनर्जन्म हुआ। जैसा कि ऊपर वर्णित है, आदरणीय भिक्षु महा मोग्गलाना देव-यात्रा पर निकले हुए उस स्त्री से मिले और उससे पूछा:

1 हे देव-देवता, तुम अत्यंत सुंदर हो, तुम सभी दिशाओं को उपचार करने वाले तारे के समान प्रकाशमान कर रही हो।

2 तुम्हारी सुंदरता का कारण क्या है? आप यहाँ-वहाँ क्यों समृद्ध होती हैं और जब भी आपके मन को प्रिय सुख प्राप्त होते हैं, तो आप वहाँ प्रकट होती हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने मनुष्य रूप में रहते हुए क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित क्यों करता है?

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य जगत में मनुष्य के रूप में जन्मा, तो मैंने निर्मल, शांत और विक्षिप्त बुद्ध को देखा।

6 उनसे मिलकर प्रसन्न होकर मैंने निःसंकोच अपने हाथों से तिल का दान दिया, जो बुद्ध के लिए सम्माननीय था।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ-वहाँ समृद्ध होती हूँ और मेरे मन को प्रिय सुख प्राप्त होते हैं।

8 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताता हूँ। इसी कारण मेरा तेज और तेज है, और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.11

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.11 -------------------------->>>> अगला

1.11 प्रथम पवित्र पत्नी का निवास (11)
(पथम-पतिब्बत-विमान)

भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। उस नगर में एक पवित्र पत्नी रहती थी। वह अपने पति के साथ सद्भावपूर्वक रहती थी, धैर्यवान और बुद्धिमान थी; क्रोध करने पर भी वह कठोर नहीं होती थी; उसकी वाणी मधुर थी, वह सत्यनिष्ठा से परिपूर्ण और आनंदित मन वाली थी, और वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देती थी। किसी रोग से पीड़ित होकर उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर लौटी। शेष वर्णन पहले जैसा ही है।

1 "दिव्य बगुले, मोर, (सुनहरे) हंस और मधुर स्वर वाली कोयल इस रमणीय, रंग-बिरंगे फूलों से सजे महल के चारों ओर उड़ते हैं, जहाँ पुरुष और स्त्रियाँ आते-जाते रहते हैं।

2 हे महान महिमा की देवी, आप वहाँ अपनी मानसिक शक्ति से अनेक रूप धारण करके विराजमान हैं। और आपकी अप्सराएँ चारों ओर नाचती, गाती और आनंदित होती हैं।

3 हे महान महिमा की देवी, आपने देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर ली है। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी किस तेजस्वी महिमा के कारण आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम है।

5 "जब मैं मनुष्य के बीच जन्मी, तो मैं एक पवित्र पत्नी थी, जो किसी और (पुरुष) के बारे में नहीं सोचती थी। एक माँ की तरह जो अपने बच्चे की रक्षा करती है, मैं क्रोधित होने पर भी कठोर शब्द नहीं बोलती थी।

6 सत्य में दृढ़ रहकर, झूठ से दूर रहकर, दान देने में आनंदित होकर, दयालु स्वभाव की होकर, आनंदित मन से मैंने आदरपूर्वक भोजन और पेय दिया, और भरपूर दान दिया।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ, और वहाँ वे सभी चीजें उत्पन्न होती हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने उस पुण्य कर्म के बारे में बताती हूँ जो मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लेते समय किए थे। इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.12

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<---------------------- I.1.12 ------------------------->>>> अगला

1.12 दूसरी पवित्र पत्नी का निवास (12)
(दुतिया-पतिब्बत-विमान)

श्रावस्ती में कहा गया है कि वह एक और गृहस्थ महिला थीं, जो बुद्ध की अनुयायी थीं और पवित्र पत्नी थीं, जिनमें आस्था और आनंद था। उन्होंने पांच नियमों (शील, नैतिकता) का पालन किया, अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दिया और मृत्यु के बाद तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। शेष का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

1 "हे महान महिमावान देवी (देवदूत), आप बेरिल के स्तंभों से सजे, चमकते, तेजस्वी और विभिन्न रंगों वाले महल में विराजमान हैं। वहाँ आप निवास करती हैं।

2 और आपकी अप्सराएँ चारों ओर नृत्य, गायन और आनंद मनाती हैं। आप देवों की समान शक्ति से संपन्न हैं, महान महिमावान देवी। मनुष्य के रूप में जन्म लेने पर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी तेजस्वी महिमा और सुंदरता किस कारण से सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

3 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता (देवदूत) ने उस कर्म का उत्तर दिया जिसके फलस्वरूप यह हुआ।

4 "जब मैं मनुष्य के बीच एक मनुष्य के रूप में जन्मी, तो मैं दिव्यदर्शी की अनुयायी एक गृहस्थ स्त्री थी। मैं प्राणियों की हत्या से परहेज करती थी, इस संसार में जो कुछ मुझे नहीं दिया गया था, उसका त्याग करती थी।

5 मैं शराब नहीं पीती थी, न ही झूठ बोलती थी, मैं अपने पति से संतुष्ट थी। प्रसन्न मन से मैं आदरपूर्वक भोजन और पेय देती थी, उदारतापूर्वक दान करती थी।

6 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ, और वहाँ वे सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

7 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको बताती हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेने पर मैंने क्या पुण्य कर्म किए? इसी कारण मेरा तेजस्वी तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.13

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.13 ------------------------->>>> अगला

1.13 प्रथम बहू का निवास (13)
(पथम-सुनीसा-विमान)

श्रावस्ती में एक घर में, एक अच्छे परिवार की बहू ने एक वृद्ध भिक्षु को, जिन्होंने सांसारिक इच्छाओं का नाश कर लिया था, भिक्षा मांगने घर आते देखा। प्रसन्नता और आनंद से भर कर, यह सोचकर कि "मेरे लिए सर्वोच्च पुण्य का क्षेत्र उत्पन्न हुआ है", उसने अपने लिए प्राप्त धान की रोटी का हिस्सा आदरपूर्वक उस वृद्ध भिक्षु को दे दिया। वृद्ध भिक्षु ने उसे स्वीकार किया, धन्यवाद दिया और आगे बढ़ गए। बाद में बहू की मृत्यु हो गई और वह तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। शेष सभी विवरण ऊपर बताए गए अनुसार ही है।

1 “हे देवता, आप अतुलनीय सौंदर्य से परिपूर्ण हैं और समस्त दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं, जैसे कोई दिव्य तारा।

2 आपका सौंदर्य ऐसा क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख क्यों प्राप्त होते हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपका यह तेजस्वी स्वरूप ऐसा क्यों है और आपका सौंदर्य समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है?”

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "जब मेरा जन्म मनुष्य के रूप में हुआ, तब मैं अपने ससुर के घर में बहू थी। मैंने एक निर्मल, शांत और शांत मन वाले साधु को देखा।

6 मैंने प्रसन्न मन से उन्हें अपने हाथों से चावल की रोटी दी। उन्हें अपने भाग का आधा हिस्सा देकर मैं नंदनवन में आनंदित हुई।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 इसी कारण मेरा तेज और तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.14

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.14 -------------------------->>>> अगला

1.14 दूसरी बहू का महल (14)
(दुतिया-सुनीसा-विमान)

पिछले महल के समान, सिवाय इसके कि यहाँ दान कुम्मस था।

1 "हे देवता (परी), आप अत्यंत सुंदर हैं और समस्त दिशाओं को उपचारक तारे के समान प्रकाशित कर रही हैं।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख क्यों उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी (परी), मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी तेजस्वी महिमा ऐसी क्यों है और आपकी सुंदरता समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता (परी) ने प्रश्न पूछे जाने पर बताया कि यह किस कर्म का परिणाम था।

5 "जब मेरा जन्म मनुष्य के रूप में हुआ, तो मैं अपने ससुर के घर में बहू थी। मैंने एक निर्मल, शांत और विक्षिप्त भिक्षु को देखा।

6 मैंने प्रसन्न मन से उन्हें अपने हाथों से कुम्मस का एक टुकड़ा दिया। कुम्मस का एक टुकड़ा देकर मैं नंदनवन में आनंदित होती हूँ।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु1.15

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.1.15 ------------------------>>>> अगला

1.15 उत्तरा का महल (15)
(उत्तरा-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में बांस के जंगल में गिलहरियों के चरने की जगह पर निवास कर रहे थे। उस समय पुन्ना नाम का एक गरीब आदमी राजगृह के एक साहूकार पर आश्रित था। उसकी पत्नी उत्तरा और बेटी उत्तरा ही उसके घर में दो ही लोग थे। एक दिन राजगृह में सात दिन का त्योहार था। साहूकार को इसकी सूचना मिली और जब पुन्ना सुबह जल्दी आया तो उसने कहा, "मेरे प्रिय, हमारे नौकर त्योहार मनाना चाहते हैं, क्या तुम त्योहार मनाओगे या मजदूरी के लिए काम करोगे?" पुन्ना ने कहा, "मालिक, त्योहार जैसी चीजें तो अमीरों के लिए होती हैं, और मेरे घर में तो कल के लिए दलिया बनाने के लिए चावल भी नहीं हैं। मेरे लिए त्योहार क्या मायने रखता है? अगर मुझे बैल मिल जाएं तो मैं हल चलाऊंगा।" मालिक ने कहा, "ठीक है, तो बैल ले लो।" पुन्ना ने बलवान बैल और एक उत्तम हल लिया और अपनी पत्नी से कहा, “मेरी प्रिय, नगरवासी एक त्योहार मना रहे हैं। हम गरीब हैं, इसलिए मैं मजदूरी करने जा रहा हूँ, लेकिन आज मेरे लिए दुगुना भोजन पकाकर ले आओ।” फिर वह खेत में चला गया।

अब बड़े सारिपुत्त, जो सात दिनों से निरोध समाधि में थे , वहाँ से निकले और संसार का अवलोकन करते हुए सोचने लगे, “आज मुझे किस पर कृपा करने का अवसर मिलेगा?” उन्होंने देखा कि पुन्ना उनकी दृष्टि में आ गया है, और आगे अवलोकन करते हुए उन्होंने सोचा, “क्या यह व्यक्ति विश्वासी है? क्या वह मुझ पर कृपा करेगा?” यह जानकर कि पुन्ना विश्वासी है और कृपा करने में सक्षम है, और इस कारण उसे महान प्राप्ति हुई, उन्होंने कुंड और वस्त्र लिया, उस खेत में गए जहाँ वे हल चला रहे थे, और खेत के किनारे एक झाड़ी को देखते हुए वहाँ खड़े हो गए।

पुन्ना ने जैसे ही बुजुर्ग को देखा, उसने हल चलाना रोक दिया, पांचों प्रकार से उनका अभिवादन किया और मन ही मन कहा, "इन्हें दाँत साफ करने के लिए लकड़ी चाहिए," और उन्हें एक लकड़ी दे दी, जिसका उपयोग वे कर सकते थे। तब बुजुर्ग ने अपने थैले से कटोरा और पानी छानने वाली छलनी निकाली और उन्हें देते हुए मन ही मन कहा, "इन्हें पीने का पानी चाहिए।" पुन्ना ने उसे लिया, पानी छानकर पुन्ना को दे दिया। बुजुर्ग ने सोचा, "यह आदमी सबसे आखिरी घर में रहता है। अगर मैं घर के दरवाजे पर जाऊँगा, तो उसकी पत्नी मुझे देख नहीं पाएगी। मैं यहीं रुकूँगा जब तक उसकी पत्नी भोजन लेकर मुख्य मार्ग पर नहीं निकल जाती।" वह थोड़ी देर वहीं रुका रहा, और जब उसे पता चला कि उसकी पत्नी रास्ते में है, तो वह शहर की ओर चल पड़ा। जब उस स्त्री ने सड़क पर उस बुजुर्ग को देखा, तो उसने सोचा, "कभी-कभी जब मेरे पास कुछ देने लायक होता है, तो मुझे कोई योग्य व्यक्ति नहीं मिलता; कभी-कभी जब मुझे कोई योग्य व्यक्ति दिखता है, तो देने लायक कुछ नहीं होता, लेकिन आज मुझे एक योग्य व्यक्ति दिख रहा है और साथ ही मेरे पास देने लायक एक उपहार भी है। ज़रूर वे मुझ पर कृपा करेंगे।" उसने भोजन से भरी थाली नीचे रख दी, पांच प्रकार के आदर के साथ बुजुर्ग का अभिवादन किया और कहा, "हे प्रभु, यह साधारण भोजन है या उत्तम, इस बात की परवाह किए बिना, अपनी सेविका पर कृपा कीजिए।" तब बुजुर्ग ने अपना कटोरा आगे बढ़ाया, और जब वह एक हाथ से थाली पकड़े हुए दूसरे हाथ से उन्हें चावल दे रही थी, तो ठीक आधी थाली परोसी जाने पर उन्होंने "बस करो" कहा और अपने कटोरे को हाथ से ढक लिया। उसने कहा, “महोदय, एक भाग को दो भागों में नहीं बाँटा जा सकता। यदि आप इस लोक में अपने सेवक पर कोई कृपा नहीं करेंगे, तो परलोक के लिए एक कृपा कीजिए। मैं सब कुछ देना चाहती हूँ, बिना कुछ भी शेष रखे।” ऐसा कहते हुए और सारा भोजन उनके कटोरे में डालते हुए उसने प्रार्थना की, “मुझे उस धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) में भागीदार बनने दीजिए जिसे आपने प्राप्त किया है।” बड़े ने कहा, “ऐसा ही हो।” खड़े-खड़े ही उन्होंने उसका धन्यवाद किया और जब वे पानी के पास एक सुविधाजनक स्थान पर बैठ गए, तो उन्होंने अपना भोजन किया। स्त्री घर गई, कुछ चावल ढूँढे और भोजन पकाया। इस बीच पुन्ना ने आधा करिसा भूमि जोत ली थी और भूख सहन न कर पाने के कारण बैलों को जोतकर एक पेड़ की छाया में जाकर सड़क को देखने के लिए बैठ गया। अब जब उनकी पत्नी भोजन लेकर जा रही थीं और उन्होंने उन्हें देखा तो उन्होंने सोचा, "वह भूख से व्याकुल होकर मेरा इंतजार कर रहे हैं। अगर वह मुझे कोसते हुए कहें, 'वह बहुत देर से आई है', और मुझे अंकुश से मारें, तो मेरा

किया हुआ कर्म व्यर्थ हो जाएगा। मैं पहले उनसे बात कर लूँगी ताकि ऐसा न हो।" इसी विचार से उन्होंने कहा, "गुरुजी, आज केवल एक दिन के लिए हृदय में उत्साह जगाइए, मेरे किए हुए कर्म को व्यर्थ न होने दीजिए। मैं आपका भोजन सुबह-सुबह ला रही थी, रास्ते में मुझे धर्म के सरदार मिले। मैंने उन्हें आपका भोजन दिया, फिर मैं घर जाकर भोजन पकाया।"और आ गए हैं। हे स्वामी, उत्साह बढ़ाओ।" उसने पूछा, "पत्नी, तुम क्या कह रही हो?" और जब उसने कहानी दोबारा सुनी तो उसने कहा, "पत्नी, तुमने बिल्कुल सही किया कि मेरा भोजन इस योग्य व्यक्ति को दिया। मैंने भी आज सुबह-सुबह उसे दाँत साफ करने के लिए एक स्टिक और मुँह के लिए पानी दिया।" और प्रसन्न मन से वह उसकी कहानी सुनकर संतुष्ट हो गया और दिन में देर से भोजन करने के कारण थका हुआ होने के कारण उसने अपना सिर उसकी गोद में रख दिया और सो गया।

सुबह-सुबह जोती गई सारी ज़मीन, यहाँ तक कि कुटी हुई मिट्टी भी, सुनहरी चमक उठी और कनिकारा फूलों के ढेर की तरह दमक उठी। जब पुन्ना जागा तो उसने देखा और अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, ये सारी जोती हुई ज़मीन मुझे सोने जैसी लग रही है। अब बताओ, क्या मेरी आँखें इसलिए धुंधली हो रही हैं क्योंकि मैंने दोपहर में देर से खाना खाया?" "स्वामी," उसने कहा, "मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।" वह उठा, वहाँ गया, एक मिट्टी का ढेला उठाया, उसे हल के सिर पर मारा, देखा कि वह सोने का है, और चिल्लाया, "आहा, धर्म के पूजनीय सरदार को दिए गए दान का फल आज ही प्रकट हो गया है। लेकिन इतनी दौलत का छुपकर आनंद लेना मुमकिन नहीं है।" उसने अपनी पत्नी द्वारा लाए गए थाले को सोने से भर दिया, राजा के महल में गया और राजा (बिम्बिसार) से अनुमति लेकर अंदर प्रवेश किया और प्रणाम किया। जब राजा ने पूछा, "क्या बात है मेरे जन?" तो उसने कहा, "महाराज, आज मैंने जिस भूमि को जोता था, वह पूरी तरह से सोने के ढेर से भर गई है और वैसी ही पड़ी है। सोना मंगवाना चाहिए।" "तुम कौन हो?" राजा ने पूछा। पुन्ना ने कहा, "मेरा नाम पुन्ना है।" राजा ने पूछा, "लेकिन आज तुमने क्या किया है?" पुन्ना ने कहा, "आज सुबह बहुत जल्दी मैंने धम्म के सेनापति को दाँत साफ करने के लिए टॉफी और मुँह के लिए पानी दिया, और मेरी पत्नी ने भी उन्हें वह भोजन दिया जो मेरे लिए लाया गया था।" यह सुनकर राजा ने कहा, "आज ही दिए गए दान का फल मिलेगा," और उन्होंने पूछा, "हे मेरे जन, हम क्या करें?" पुन्ना ने कहा, "हजारों गाड़ियाँ भेजो और सोना मंगवाओ।" राजा ने गाड़ियाँ भेज दीं। जब राजा के सैनिक सोना उठाते हुए कह रहे थे, "यह राजा का है," तो हर टुकड़ा उठाते ही मिट्टी बन गया। जब वे राजा के पास गए और उन्हें बताया तो राजा ने पूछा, "हे मेरे जन, तुमने इसे उठाते समय क्या कहा था?" और उन्होंने उत्तर दिया, "कि यह आपका है।" राजा ने कहा, "तो फिर, हे मेरे जन, फिर जाओ और इसे उठाते समय कहो, यह पुन्ना का है।" उन्होंने ऐसा ही किया। उठाया गया हर टुकड़ा सोना ही रहा। वे सब कुछ लाकर राजमहल के प्रांगण में ढेर लगा दिया। ढेर 80 हाथ ऊंचा था। राजा ने नगरवासियों को बुलाया। उन्होंने उनसे पूछा, "क्या इस नगर में किसी के पास इतना सोना है?" उत्तरदाताओं ने कहा, "कोई नहीं, महाराज।" "लेकिन इस आदमी को क्या दिया जाना चाहिए?" उत्तरदाता ने कहा, "एक सेठी (धनी व्यक्ति) का छाता, महाराज।" राजा ने कहा, "उसे महान धनवान सेठी होने दो," और उसे एक सेठी का छाता और बहुत सारा धन दे दिया। तब पुन्ना ने राजा से कहा, "महाराज, हम इतने समय से किसी और के घर में रह रहे हैं। हमें रहने के लिए जगह दीजिए।" राजा ने कहा, "तो फिर, देखिए। यह जंगल जैसा दिखता है। इसे साफ कीजिए और एक घर बनाइए," और उन्होंने उसे एक पूर्व सेठी के घर की जगह दिखाई।कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने उस स्थान पर एक घर बनवा लिया, और घर में प्रवेश करने की रस्म और अपने पद की दीक्षा समारोह, दोनों को एक साथ संपन्न करते हुए, उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को सात दिनों तक दान दिया।

इसके बाद राजगाह के धनाधिपति ने अपने पुत्र के लिए पुन्ना की पुत्री का विवाह मांगा। पुन्ना ने कहा, "मैं उसे नहीं दूंगा।" धनाधिपति ने कहा, "ऐसा मत करो, तुम्हें अपना सौभाग्य उसी समय मिला जब तुम हमारे साथ रह रहे थे। अपनी पुत्री को मेरे पुत्र को दे दो। मेरी पुत्री तीन रत्नों (बुद्ध में आस्था, धम्म/मार्ग और संघ) के बिना नहीं रह सकती। इसलिए मैं अपनी पुत्री उसे नहीं दूंगा।" तब कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उनसे विनती की, "इस व्यक्ति से अपनी मित्रता मत तोड़ो। उसे अपनी पुत्री दे दो।" उन्होंने उनकी विनती मान ली और आषाढ़ माह की पूर्णिमा के दिन अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। वह अपने पति के घर चली गई।

उसके जाने के बाद से उसे भिक्षु या भिक्षुणी के पास जाने, भिक्षा देने या धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनने की अनुमति नहीं थी। जब ढाई महीने बीत गए, तो उसने अपने सेवकों से पूछा, "अब बरसात का मौसम कितना बचा है?" उन्होंने कहा, "आधा महीना, महोदया।" उसने अपने पिता को संदेश भेजा, "उन्होंने मुझे ऐसी कैद में क्यों डाल दिया है? मुझे इस तरह के अविश्वासी परिवार में सौंपने से बेहतर होता कि आप मुझे दाग लगाकर दूसरों की दासी घोषित कर देते। जब से मैं यहाँ आई हूँ, मुझे एक भी पुण्य कर्म करने की अनुमति नहीं दी गई है, यहाँ तक कि किसी भिक्षु को देखने तक की भी नहीं।" अब उसके पिता ने अपना दुख व्यक्त करते हुए कहा, "हाय, मेरी बेटी

कितनी अभागी है!” फिर उन्होंने उसे पंद्रह हजार कहपना (कांस्य के सिक्के) भिजवाए और संदेश भेजा: “इस शहर में एक वेश्या है, जिसका नाम सिरीमा है। वह प्रतिदिन एक हजार (कांस्य के सिक्के) लेती है। इस धन से उसे अपने पास बुलाओ, उसे अपने पति को सौंप दो, और तुम अपने पुण्य कर्म अपनी इच्छानुसार करो।” उत्तरा ने ऐसा ही किया, और जब उसके पति ने सिरीमा को देखा तो उसने कहा, “यह क्या है?” उसने उत्तर दिया, "पतिदेव, इस आधे महीने के लिए मेरी यह सहेली आपकी देखभाल करे, लेकिन इस आधे महीने के लिए मैं केवल भिक्षा देना और धर्म का पाठ करना चाहती हूँ।" उसने उस सुंदर स्त्री को अभिमानी दृष्टि से देखा और सहमति जताते हुए कहा, "ठीक है।" उत्तरा ने बुद्ध के नेतृत्व में संघ को निमंत्रण भेजा, "आदरणीय महोदय, इस आधे महीने के लिए कहीं और न जाइए, केवल यहीं भिक्षा ग्रहण कीजिए।" और जब उसे गुरु (बुद्ध) की सहमति मिल गई, तो उसने कहा, "अब से लेकर पवार्ना (वर्षा ऋतु के बाद होने वाला महान निमंत्रण समारोह) तक, मैं गुरु (बुद्ध) की सेवा कर सकूँगी और धर्म का पाठ कर सकूँगी।" और इससे तृप्त होकर वह रसोई में सभी आवश्यक कार्य व्यवस्थित करने लगी, और बोली, "दलिया इस तरह पकाएँ, केक इस तरह पकाएँ।"

अब उसके पति ने सोचा, "कल पवार्ना (वर्षा के बाद का महान निमंत्रण समारोह) है," और रसोई की खिड़की से झांकते हुए सोचने लगे, "यह मूर्ख स्त्री क्या कर रही है?" उन्होंने देखा कि वह पसीने से भीगी हुई, राख से सनी हुई, और अपनी तैयारियों के कोयले और कालिख से लिपटी हुई इधर-उधर घूम रही थी। उन्होंने कहा, "इस मूर्ख स्त्री को इस जगह पर विलासिता और आराम नहीं मिलता। वह केवल मुंडे हुए भिक्षुओं की सेवा करने की इच्छा से प्रसन्न होकर घूम रही है।" यह कहकर वह हँसे और चले गए।

उनके जाते ही सिरिमा उनके पास खड़ी थीं और मन ही मन सोचने लगीं, "उन्होंने ऐसा क्या देखा कि उन्हें हंसी आ गई?" और उसी खिड़की से बाहर देखते हुए उन्होंने उत्तरा को देखा और सोचा, "उन्होंने उसे देखा और हँसे। उनके बीच ज़रूर कोई घनिष्ठता है।" अब कहानी यह है कि यद्यपि यह स्त्री आधे महीने से इस घर में परदेसी थी, फिर भी, घर के सुख-सुविधाओं का आनंद लेते हुए, वह अपनी परदेसी होने की स्थिति से अनभिज्ञ थी और सोचती थी, "मैं ही इस घर की मालकिन हूँ।" उसने उत्तरा पर अपना द्वेष ठान लिया और मन ही मन सोचने लगी, "मैं उसे मुसीबत में डालूँगी," और छत से नीचे उतरकर रसोई में गई, जहाँ केक पक रहे थे, वहाँ से एक करछी में उबलता हुआ घी लेकर उत्तरा की ओर बढ़ी। उत्तरा ने उसे आते देखा और सोचा, "मेरी सहेली ने मुझ पर उपकार किया है, पृथ्वी का दायरा बहुत छोटा है, ब्रह्मा (देवदूतों) का लोक बहुत छोटा है, परन्तु मेरी सहेली का पुण्य महान है क्योंकि उसकी सहायता से मैं दान देने और धर्म (मार्ग) सुनने में सक्षम हुई हूँ। यदि मैं उससे क्रोधित हूँ, तो यह घी मुझे जला दे, यदि नहीं, तो न जलाए।" घी (शुद्ध मक्खन), हालांकि उसके सिर पर डाला गया था, प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होने के कारण ठंडे पानी के समान था। फिर जब उत्तरा की दासियों ने देखा कि सिरिमा एक और करछुल भरकर उनकी ओर आ रही है और मन ही मन सोच रही है, "क्या यह भी ठंडा होगा?" तो उन्होंने उसे धमकाते हुए कहा, "अरे, दुष्ट स्त्री! हमारी स्वामिनी के सिर पर उबलता तेल डालने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?" और रसोई में जहाँ भी वे थीं, वहाँ से उस पर हमला करते हुए, उन्होंने उसे हाथों और पैरों से मारा और जमीन पर पटक दिया। उत्तरा ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं सकी। फिर वह सिरिमा के ऊपर खड़ी हो गई, सभी दासियों को दूर रखा और सिरिमा को फटकारते हुए कहा, "तुमने ऐसा घिनौना काम क्यों किया?" फिर उसने उसे गर्म पानी से नहलाया और उसके सिर पर सौ गुना शुद्ध तेल से लेप किया।

उस क्षण सिरिमा को एहसास हुआ कि वह एक पराया व्यक्ति है, और उसने सोचा, "मैंने उसके पति की एक मुस्कान मात्र पर उसके सिर पर उबलता पानी छिड़क कर बहुत बड़ा पाप किया है। उसने अपनी नौकरानियों को 'उसे पकड़ो' तक का आदेश दिए बिना, यहाँ तक कि जब वे मुझे चोट पहुँचा रही थीं, तब भी उन्हें रोका और मेरे लिए वही किया जो किया जाना चाहिए था। अगर मैं उससे क्षमा नहीं माँगूँगी, तो मेरा सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा।" वह उत्तरा के चरणों में गिर पड़ी और बोली, "देवी, मुझे क्षमा कर दीजिए।" "मैं एक ऐसी पुत्री हूँ जिसके पिता जीवित हैं। अगर मेरे पिता मुझे क्षमा कर देंगे, तो मैं भी आपको क्षमा कर दूँगी," उत्तरा ने कहा। सिरिमा ने कहा, "ठीक है, देवी, मैं आपके पिता पुन्ना, जो एक धनाढ्य हैं, से भी क्षमा माँगूँगी।" उत्तरा ने कहा, "पुन्ना मेरे पिता हैं जिन्होंने मुझे जन्म के चक्र में जन्म दिया है, लेकिन अगर मेरे पिता, जिन्होंने मुझे उस चक्र में जन्म दिया है जो घूमता नहीं है, आपको क्षमा कर देंगे, तो मैं आपको क्षमा कर दूँगी।" सिरिमा ने कहा, "तो फिर उस चक्र में आपके पिता कौन हैं जो घूमता नहीं है?" उत्तरा ने कहा, "पूर्णतः प्रबुद्ध (बुद्ध)।" सिरिमा ने कहा, "मैं उनसे परिचित नहीं हूँ। मैं क्या करूँ?" उत्तरा ने कहा, "गुरु (बुद्ध) कल अपने भिक्षु संघ के साथ यहाँ आएँगे। तुम जो भी भेंट ला सको, ले आओ और यहाँ आकर उनसे क्षमा माँग लो।" "ठीक है, महोदया," सिरिमा ने कहा और वह उठकर अपने घर चली गई। उसने पाँच सौ महिला परिचारिकाओं को कई प्रकार के कठोर और नरम भोजन तैयार करने का आदेश दिया और अगले दिन, आतिथ्य भेंट लेकर उत्तरा के घर गई और प्रतीक्षा करने लगी। वह बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ के कटोरे में कुछ भी डालने का साहस नहीं कर रही

थी। उत्तरा ने स्वयं सब कुछ संभाला और व्यवस्था की। लेकिन भोजन समाप्त होने पर सिरिमा अपने परिचारिकाओं के साथ गुरु (बुद्ध) के चरणों में गिर पड़ी। तब गुरु (बुद्ध) ने उससे पूछा, "तुम्हारा क्या दोष है?" सिरीमा, "महाराज, कल मैंने ऐसा किया, लेकिन मेरी सहेली ने अपनी उन दासियों को रोक लिया जो मुझे चोट पहुँचा रही थीं। उसने मुझ पर दया की। मैंने उसके सद्‌गुण को पहचाना, मैंने उससे क्षमा माँगी, लेकिन उसने मुझसे कहा कि जब मुझे तुम्हारी क्षमा मिल जाएगी, तब मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगी।" बुद्ध, "क्या उसने ऐसा कहा, उत्तरा?" "जी हाँ, पूज्यवर। सहेली ने मेरे सिर पर खौलता तेल डाल दिया।" बुद्ध, "फिर तुमने क्या सोचा?" उत्तरा, "मैंने सोचा, 'पृथ्वी का दायरा बहुत छोटा है, ब्रह्मा (प्रधान देवदूतों) का लोक बहुत नीचा है, लेकिन सहेली का सद्‌गुण महान है, क्योंकि उसकी सहायता से मैं दान दे पा रही हूँ और धर्म सुन पा रही हूँ। अगर मैं उससे क्रोधित हूँ, तो यह घी मुझे जला दे; अगर नहीं, तो न जलाए।' ऐसा सोचकर मैंने उस पर प्रेम बरसाया।" गुरु (बुद्ध) ने कहा, "शाबाश, शाबाश, उत्तरा, इस प्रकार क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।" और इस अर्थ को समझाते हुए उन्होंने कहा, "क्रोधहीनता से क्रोधित व्यक्ति पर विजय प्राप्त की जा सकती है, अपशब्द बोलने वाले को अनुशासित करके, और अपशब्द बोलने वाले को अनुशासित करके।"अपने पास जो कुछ है उसे देकर, जो अत्यंत लालची है, उसे बचाया जा सकता है, और झूठ बोलने वाले को सच्चाई से भी नहीं बचाया जा सकता," उन्होंने यह श्लोक कहा:

"क्रोधहीनता से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है,

अच्छाई से बुराई पर विजय प्राप्त की जा सकती है।"

उदारता से लोभियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है,

और सत्य से असत्य के वक्ता को हराया जा सकता है।"

इस श्लोक को कहने के बाद, उन्होंने अंत में चार सत्यों (चार मूलभूत सिद्धांतों) के बारे में बात की। सत्यों के समापन पर उत्तरा को एक बार लौटकर आने वाले (सकदागामी) का फल प्राप्त हुआ। और उनके पति, ससुर और सास ने सोतपण (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) का फल प्राप्त किया। सिरिमा, अपने साथ पाँच सौ वेश्याओं का दल लेकर, सोतपण (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) प्राप्त कर चुकी थीं। उत्तरा की मृत्यु के बाद, वे तैंतीसवें (स्वर्ग) में विराजमान हुईं।

और पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मग्गलाना, जैसा कि ऊपर वर्णित है, देव-यात्रा पर निकले हुए, उन्होंने देव-निर्मित उत्तरा को देखा और उनसे उन श्लोकों के साथ प्रश्न पूछा जो इस प्रकार शुरू होते हैं, हे अतुलनीय सौंदर्य से परिपूर्ण देवी:

1 हे अतुलनीय सौंदर्य से परिपूर्ण देवी, आप समस्त दिशाओं को उपचारक तारे के समान प्रकाशित कर रही हैं।

2 आपका सौंदर्य ऐसा क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख क्यों प्राप्त होते हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी तेजस्वी महिमा किस कारण है, और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का परिणाम है।

5 "जब मैं क्रोध रहित घर में रहती थी, अपने पति की आज्ञा मानती थी, और पाक्षिक व्रतों का पालन करती थी, तब मुझमें कभी ईर्ष्या, कंजूसी और लालच नहीं था।

6 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन, और पाक्षिक व्रतों से संबंधित एक विशेष दिन, मैं पाक्षिक व्रतों का

पालन करती थी। 7 मैं सदा नैतिकता के अभ्यास द्वारा संयमित रहकर पाक्षिक व्रतों का पालन करती थी। और इस प्रकार संयमित और उदार होकर मैं अपने घर में निवास करती हूँ।"

8 प्राणियों की हत्या से परहेज करते हुए, झूठ बोलने, चोरी करने, ब्रह्मचर्य का उल्लंघन करने और शराब पीने से दूर रहकर,

9 पाँच नैतिक नियमों (शील) में आनंद लेते हुए, आर्य सत्यों में निपुण होकर, मैं गौतम (बुद्ध) का गृहस्थ अनुयायी था, जो दूरदर्शी और विख्यात थे।

10 मैं अपनी नैतिकता और प्रसिद्धि के कारण प्रसिद्ध हूँ, अपने पुण्य का अनुभव करता हूँ; मैं सुखी और स्वस्थ हूँ।

11 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं उसे समृद्ध करता हूँ, और मेरे हृदय को प्रिय सभी सुख उत्पन्न होते हैं।

12 हे परम पूज्य भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए कार्यों के बारे में बताती हूँ। इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।

हे पूज्यवर, क्या आप मेरी ओर से भगवान के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करेंगे और कहेंगे, "उत्तरा नामक गृहस्थ अनुयायी भगवान के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती है? वास्तव में, हे पूज्यवर, यदि भगवान मेरे लिए भिक्षु जीवन के फलों में से एक की घोषणा करें तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी।" भगवान ने उनके लिए एक ही जन्म का लाभ घोषित किया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.16

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.16 -------------------------->>>> अगला

1.16 सिरीमा का महल (16)
(सिरीमा-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बाँस के जंगल में गिलहरियों के भोजन स्थल पर निवास कर रहे थे। उस समय, पिछली कथा में वर्णित वेश्या सिरीमा ने आध्यात्मिक जागृति के प्रथम चरण, सोतपान (स्वर्गीय ज्ञानोदय का फल) की प्राप्ति के कारण अपने अपवित्र पेशे को त्याग दिया था और टिकट द्वारा चुने गए भिक्षुओं के आठ सदस्यों को प्रतिदिन भिक्षा देने लगी थी। आरंभ से ही, आठ भिक्षु प्रतिदिन उसके घर आते थे और "थोड़ा घी लो, थोड़ा दूध लो" कहकर वह उनके कटोरे भर देती थी। एक व्यक्ति को मिलने वाला भोजन तीन या चार लोगों के लिए पर्याप्त होता था। प्रतिदिन सोलह कहपना (कांस्य के सिक्के) मूल्य का भोजन भिक्षा के रूप में दिया जाता था। एक दिन एक भिक्षु ने उसके घर पर आठ लोगों के भोजन का आनंद लिया और तीन योजन दूर स्थित एक मठ में चला गया। उस शाम जब वह भिक्षुओं की सेवा में बैठे थे, तो उन्होंने उनसे पूछा, "मित्र, यहाँ आने से ठीक पहले आपको भोजन कहाँ से मिला?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "मैंने सिरीमा के आठ लोगों के भोजन में भाग लिया।" भिक्षुओं ने पूछा, "क्या सिरीमा ने स्वादिष्ट भोजन दिया था?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "मैं उनके भोजन का वर्णन नहीं कर सकता। उन्होंने बहुत ही भव्य भोजन दिया था। एक व्यक्ति को जो मिला, वह तीन-चार लोगों के लिए पर्याप्त था। लेकिन उनके दिए गए दान से भी अधिक उत्तम उनका रूप था, क्योंकि वे अमुक प्रकार की सुंदरता रखती थीं..." और उन्होंने उनके आकर्षण का वर्णन किया।

अब जब भिक्षुओं में से एक ने उनके आकर्षण का वर्णन सुना, यद्यपि उसने उन्हें देखा नहीं था, केवल उनके बारे में सुनकर ही वह उनसे प्रेम करने लगा, और मन ही मन सोचने लगा, "मैं जाकर उन्हें देखना चाहता हूँ," तो उसने अपने द्वारा बिताए वर्षावासों की संख्या का उल्लेख किया, और एक भिक्षु से भिक्षु संघ में उसकी स्थिति के बारे में पूछा। जब उसने उसे यह कहते सुना, "कल, मित्र, क्योंकि तुम

सबसे वरिष्ठ बुजुर्ग हो, तुम्हें आठ लोगों का भोजन मिलेगा," तो उसने उसी क्षण कटोरा और वस्त्र उठाया और भोर में निकल पड़ा, और उस टिकट-कक्ष में प्रवेश किया, और सबसे वरिष्ठ बुजुर्ग होने के नाते उसने सिरिमा के घर में आठ लोगों का भोजन प्राप्त किया।

लेकिन जिस क्षण परसों भोजन करने वाला भिक्षु चला गया, ठीक उसी समय सिरिमा के शरीर में एक रोग उत्पन्न हो गया। इसलिए उसने अपने गहने उतार दिए और लेट गई। तब उसकी सेविकाओं ने देखा कि भिक्षु आठों के लिए भोजन ग्रहण करने आए हैं, और उन्होंने उसे बताया। अपने हाथों से कटोरे उठाने या भिक्षुओं को बैठने के लिए आमंत्रित करने में असमर्थ होने के कारण, उन्होंने अपनी सेविकाओं को आदेश दिया, "स्त्रियों, कटोरे ले आओ, आदरणीय भिक्षुओं को बैठने के लिए आमंत्रित करो, उन्हें दलिया पिलाओ, उन्हें ठोस भोजन परोसो और जब मुख्य भोजन का समय हो जाए, तो उनके कटोरे भरकर उन्हें दे दो।" उन्होंने वैसा ही किया। उन्होंने कहा, "मुझे अपनी बाहों में भर लो और मुझे अंदर ले चलो। मैं आदरणीय भिक्षुओं का अभिवादन करूंगी।" और उनके सहारे से वह भिक्षुओं के समक्ष गईं और कांपते शरीर के साथ उनका अभिवादन किया। जब भिक्षु (जो उनसे प्रेम करने लगा था) ने उन्हें देखा तो उसने सोचा, "बीमार होने पर भी इस स्त्री में कितनी चमक है, तो जब वह स्वस्थ होगी, अपने सभी आभूषणों से सजी होगी, तो उसकी सुंदरता कैसी होगी?" और कई करोड़ों वर्षों से संचित अपवित्रता ने उसे घेर लिया। वह व्याकुल हो गया, और चावल खाने में असमर्थ होकर, अपना कटोरा उठाया और मठ में चला गया, कटोरे को ढक दिया। एक तरफ लेटकर, उसने अपने वस्त्र का एक कोना फैलाया और लेट गया। फिर भले ही एक साथी भिक्षु ने उससे विनती की, वह खा नहीं सका, वह बिना भोजन के ही रहा।

उसी दिन शाम को सिरीमा का निधन हो गया। राजा (बिम्बिसार) ने गुरु (बुद्ध) को संदेश भेजा, “आदरणीय महोदय, जीवक की सबसे छोटी बहन सिरीमा का निधन हो गया है।” गुरु (बुद्ध) ने यह सुनकर राजा को संदेश भेजा, “सिरीमा के शरीर का दाह संस्कार न किया जाए। उसे बिना दहे हुए शरीरों के स्थान पर रख दें और पहरा दें ताकि कौवे आदि उसे न खा जाएं।” राजा ने वैसा ही किया। लगातार तीन दिन बीत गए और चौथे दिन शरीर फूल गया। नौ छिद्रों से कीड़े निकलने लगे। पूरा शरीर टूटे हुए चावल के बर्तन जैसा हो गया था। राजा ने नगर में ढोल बजवाकर घोषणा करवाई, “जो भी सिरीमा के दर्शन करने नहीं जाएगा, सिवाय उन बच्चों के जिन्हें घर के अंदर सुरक्षित रखा जाना चाहिए, उस पर आठ कहपना (कांस्य के सिक्के) का जुर्माना लगाया जाएगा।” और उन्होंने गुरु (बुद्ध) को संदेश भेजा, “बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ सिरीमा के दर्शन करने आए।” गुरु (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा, "हम श्रीमा के दर्शन करने जा रहे हैं।" युवा भिक्षु चार दिनों से किसी की बात सुने बिना और बिना कुछ खाए-पिए लेटा हुआ था। उसके कटोरे में रखा भोजन सड़ गया था, फिर भी वह नहीं उठा। तभी एक साथी भिक्षु उसके पास गया और बोला, "मित्र, गुरु (बुद्ध) श्रीमा के दर्शन करने जा रहे हैं।" श्रीमा शब्द सुनते ही, भूख से बेहाल युवा भिक्षु तुरंत उठ खड़ा हुआ। उसके साथी भिक्षु ने पूछा, "गुरु (बुद्ध) श्रीमा के दर्शन करने जा रहे हैं, क्या तुम भी चलोगे?" उसने कहा, "मैं चलूँगा," और चावल फेंककर उसने कटोरा धोया और भिक्षुओं के साथ चल दिया। गुरु (बुद्ध) भिक्षुओं से घिरे एक समूह में खड़े थे। भिक्षुणियों का संघ, राजा का दरबार और गृहस्थ भक्तों की भीड़, सभी अलग-अलग समूहों में खड़े थे। गुरु (बुद्ध) ने राजा से पूछा, "महाराज, वह कौन हैं?" राजा ने कहा, "महाराज, ये जीवक की बहन हैं, इनका नाम सिरीमा है।" बुद्ध ने पूछा, "क्या ये सिरीमा हैं?" राजा ने कहा, "जी हां, महाराज।" बुद्ध ने आगे कहा, "तो फिर पूरे नगर में ढोल बजवाकर यह घोषणा करवा दीजिए कि कोई भी एक हजार काहपना (कांस्य के सिक्के) देकर सिरीमा को ले जा सकता है।" राजा ने ऐसा ही करवाया। लेकिन किसी ने भी 'हां' या 'ना' तक नहीं कहा। राजा ने गुरु (बुद्ध) से कहा, "आदरणीय महाराज, कोई भी इसे स्वीकार नहीं कर रहा है।" बुद्ध ने कहा, "तो फिर, महाराज, कीमत कम कर दीजिए।" राजा ने ढोल बजवाकर घोषणा करवाई, "पांच सौ में ले जाइए!" जब उसे कोई खरीदार नहीं मिला, तो उसने ढोल बजवाकर घोषणा करवाई, "सिरिमा को ढाई सौ में ले लो," "दो सौ में," "एक सौ में," "पचास में," "पच्चीस कहपना (कांस्य के सिक्के) में," "दस में," "एक में," "आधे में," "एक चौथाई में," "एक मसाका में," "एक ककनिका में," और अंत में उसने ढोल बजवाकर घोषणा करवाई, "उसे मुफ्त में ले लो।"तब भी इस प्रस्ताव पर किसी ने "हाँ" या "ना" तक नहीं कहा। राजा ने कहा, "आदरणीय महोदय, कोई भी उसे मुफ्त में भी नहीं लेगा।" गुरु (बुद्ध) ने कहा, "देखो, हे भिक्षुओं, यह स्त्री संसार की प्रिय है। इसी नगर में पहले लोग उसके साथ एक दिन बिताने के लिए एक हजार कहपना (कांस्य के सिक्के) देते थे, अब कोई भी उसे मुफ्त में भी नहीं लेना चाहता। ऐसी है सुंदरता, जो भ्रष्टाचार और क्षय से भरी है, केवल आभूषणों से ही आकर्षक लगती है, नौ मवाद भरे छिद्रों के कारण घावों का ढेर है, तीन सौ हड्डियों से बंधी है, सदा पीड़ित है, मूर्ख संसार के चिंतन के कारण अनेक विचारों का विषय है, एक नश्वर शरीर है।" और इसे समझाने के लिए उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"इस चित्रित कठपुतली (मानव शरीर) को देखो, घावों का ढेर, एक जटिल वस्तु, बीमार, अनेक विचारों का विषय। इसमें कोई स्थायी स्थिरता नहीं है।"

उपदेश के अंत में, जो भिक्षु सिरीमा से प्रेम करता था, उसका प्रेम-प्रसंग समाप्त हो गया। उसने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अर्हतत्व (बुद्ध के समान अंतिम ज्ञान) प्राप्त किया। चौरासी हजार मनुष्यों ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का ज्ञान प्राप्त किया।

(सिरीमा स्वर्ग चली गईं)। उस समय सिरीमा, देवदूत कन्या बनकर, अपनी सफलता और समृद्धि पर विचार कर रही थीं, और जिस स्थान से वे आई थीं, उस पर विचार करते हुए उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) को भिक्षुओं के संघ और अपने शरीर के पास एकत्रित लोगों की भीड़ से घिरा हुआ देखा। पांच सौ देवियों और पांच सौ रथों से घिरी हुई, वह प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुईं, अपने रथ से उतरीं, अपने अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और भक्ति भाव से खड़ी हो गईं। उस समय पूज्य भिक्षु वनगीसा भगवान बुद्ध के पास खड़े थे। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान बुद्ध, मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।" भगवान बुद्ध ने कहा, "पूछो, वनगीसा।" आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु वंगीसा ने देव-कन्या सिरीमा से निम्नलिखित प्रश्न पूछा:

1 "आपके उत्तम रूप से सुसज्जित घोड़े आकाश से नीचे की ओर शक्तिशाली और तीव्र गति से जा रहे हैं, और आपके कर्मों से निर्मित पाँच सौ रथ सारथियों द्वारा प्रेरित होकर आपके साथ चल रहे हैं।

2 आप एक तेजस्वी, चमकते हुए, दोषरहित और तेजस्वी रथ में विराजमान हैं, आप किस श्रेणी के प्राणियों में से हैं जो अतुलनीय (बुद्ध) के पास आ रही हैं?"

इस प्रकार, गुरुजी द्वारा पूछे जाने पर, देवी ने अपने बारे में बताया:

3 "वे कहते हैं कि जो लोग इच्छा की ऊँचाइयों तक पहुँच चुके हैं, उनमें सर्वोच्च (श्रेणी) के देवता कहाँ हैं जो सदा सृजन में आनंद लेते हैं, उसी श्रेणी से, मैं एक अप्सरा जो इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकती है, यहाँ अतुलनीय (बुद्ध) का आदर करने आई हूँ।"

जब देवी ने सृजन में आनंद लेने वाले देवताओं के बीच अपने प्रकट होने

का इस प्रकार वर्णन कर दिया, तब गुरुजी ने उनसे उनके पूर्व जीवन, उनके द्वारा किए गए पुण्य कर्म और उनके धार्मिक विश्वास के बारे में बताने को कहा। 4 "आपने पूर्व में यहाँ कौन सा अच्छा आचरण किया था? आप असीम महिमावान, सुख में विराजमान और वायु में विचरण करने की अतुलनीय मानसिक शक्ति से संपन्न क्यों हैं और आपकी सुंदरता दस दिशाओं में कैसे चमकती है?

5 आप देवताओं से घिरी हुई और उनके द्वारा सम्मानित हैं।" हे देवदूत, आप कहाँ से आए हैं कि आपको एक अच्छा गंतव्य मिला? या आप किसके निर्देशों का पालन करते थे? मुझे बताइए कि क्या आप बुद्ध के शिष्य थे।

बड़े ने जिस विषय के बारे में पूछा है, उसी के संदर्भ में... देवता ने ये श्लोक कहे:

6 एक भव्य, सुनियोजित नगर (राजगृह) में, जो एक पर्वत पर स्थित था, मैं एक तेजस्वी और विख्यात राजा (बिम्बिसार) की परिचारिका थी। मुझे नृत्य और गीत का उच्च प्रशिक्षण प्राप्त था। राजगृह में लोग मुझे सिरिमा के नाम से जानते थे।

7 और बुद्ध, जो ऋषियों में श्रेष्ठ और मार्गदर्शक हैं, ने मुझे दुख के कारण के बारे में सिखाया, जो क्षणिक हैं; अप्रतिबंधित और अपरिवर्तनीय, दुखों के निवारण के बारे में, जो शाश्वत हैं, और इस मार्ग के बारे में, जो कुटिल नहीं, सीधा और शुभ है।

8 जब मैंने अमर अवस्था (निर्वाण की शाश्वत अवस्था), अप्रतिबंधित और अपरिवर्तनीय, और अतुलनीय तथागत (बुद्ध) के उपदेशों के बारे में सुना, तो मैं नैतिकता (शील) के अभ्यास में अत्यंत संयमित हो गई, और बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म (शाश्वत सत्य/धर्म के मार्ग) में स्थापित हो गई।

9 जब मैंने उस निर्मल अवस्था (निर्वाण की) के बारे में जाना, जो अप्रतिबंधित और अपरिवर्तनीय है, और बुद्ध द्वारा सिखाई गई है, जब मैंने अतुलनीय तथागत (बुद्ध) का दर्शन किया, तब मैं स्वयं समभाव समाधि की अवस्था में पहुँच गया। मुझे सर्वोच्च विश्वास प्राप्त हुआ।

10 जब मैंने निर्वाण की शाश्वत अवस्था प्राप्त कर ली, जो स्पष्ट, आश्वस्त, गहन ज्ञान से परिपूर्ण और भ्रम रहित थी, तब मुझे अनेकों द्वारा सम्मानित किया गया, और मुझे स्वर्ग में अनेक आनंद और सुख प्राप्त हुए।

11 इस प्रकार मैं निर्वाण को देखने वाला देवता हूँ, अतुलनीय तथागत (बुद्ध) का शिष्य हूँ, जो धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का दर्शन करता है, प्रथम फल (लाभ) में स्थापित हूँ, (जो कि आध्यात्मिक जागृति का प्रथम चरण, सोतपान है), और मेरे लिए फिर कभी कोई बुरा गंतव्य नहीं है।

12 धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के अंतर्गत प्रख्यात राजा के प्रति आदर के साथ, मैं अतुलनीय को सम्मान देने और धार्मिक कार्यों में आनंदित होने वाले कृपालु भिक्षुओं का आदर करने के लिए एक शुभ सभा में उपस्थित हुआ। भिक्षुओं के।

13 जब मैंने ऋषि तथागत (बुद्ध) को देखा, जो तेजस्वी पुरुष, वश में करने योग्य सारथी, व्यथा का नाश करने वाले, धर्म में प्रसन्न होने वाले और मार्गदर्शक हैं, तो मेरा हृदय आनंदित और प्रसन्न हुआ। मैं परम दयालु, करुणामय (बुद्ध) का आदर करता हूँ।

इस प्रकार, देव कन्या सिरीमा ने अपने द्वारा स्वीकार किए गए विश्वास की औपचारिक घोषणा करते हुए, तीन रत्नों (त्रिमूर्ति, बुद्ध, धम्म (मार्ग), भिक्षु संघ) में अपनी आस्था प्रकट की; उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) और भिक्षु संघ को प्रणाम किया और उनके चारों ओर विधिपूर्वक परिक्रमा करने के बाद, देवलोक में लौट गईं। भगवान (भगवान बुद्ध) ने उनके (देवलोक से) अवतरण को प्रवचन का अवसर बनाया और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में, सिरीमा के लिए तरस रहे भिक्षु ने अरहंतत्व (अंतिम ज्ञान) प्राप्त किया। (बुद्ध को संबोधित करते हुए), और यह प्रवचन वहां उपस्थित सभी लोगों के लिए भी लाभदायक था।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 1.17

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.1.17 -------------------------->>>> अगला

1.17 केशकारी का महल (17)
(केशकारी-विमान)

भगवान बुद्ध इसिपताना के हिरण उद्यान में स्थित बरनासी में निवास कर रहे थे। सुबह भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिए और बरनासी में प्रवेश किया। वे एक ब्राह्मण के घर के द्वार के पास पहुँचे। उस घर में ब्राह्मण की पुत्री, केशकारी, जो द्वार के पास अपनी माता के सिर से जुएँ निकाल रही थी, ने भिक्षुओं को जाते हुए देखा और अपनी माता से कहा, "माँ, सांसारिक जीवन का त्याग करने वाले ये पुरुष मुझे अपनी युवावस्था में ही कोमल, अत्यंत सुंदर और देखने में आकर्षक प्रतीत होते हैं। अब वे इस उम्र में संसार का त्याग क्यों कर रहे हैं?"

उनकी माता ने उनसे कहा, “पुत्री, शाक्य वंश में एक पुत्र है; वह शाक्य वंश से भिक्षु बन गया है और बुद्ध नामक गुरु के रूप में संसार में प्रकट हुआ है। वह धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देता है, जो आरंभ, मध्य और अंत में अर्थ और अक्षर दोनों से परिपूर्ण है;

वह ब्रह्मचर्य के ऐसे अभ्यास का प्रचार करता है जो पूर्णतः शुद्ध और पवित्र है। इन पुरुषों ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, इसलिए वे भिक्षु बन गए हैं।"

उसी समय एक गृहस्थ अनुयायी, जिसने फल प्राप्त कर लिया था और उपदेश को समझ लिया था, उस गली से गुजरते हुए यह बातचीत सुन रहा था और उन दोनों स्त्रियों के पास आया। तब ब्राह्मण स्त्री ने उससे कहा, "देखो, गृहस्थ अनुयायी, शाक्य वंश में अनेक अच्छे कुल के पुरुष अपार धन और रिश्तेदारों के समूह का त्याग कर भिक्षु बन जाते हैं। वे किस कारण से भिक्षु बनते हैं?" उस गृहस्थ अनुयायी ने उसकी बात सुनी और कहा, "इंद्रिय सुखों में निहित खतरे और त्याग में निहित लाभ के कारण," और उसने अपनी समझ के अनुसार इस कारण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया, तीन रत्नों (त्रिमूर्ति, बुद्ध, धम्म (मार्ग), भिक्षु संघ) के गुणों को समझाया और इस संसार और परलोक के संबंध में पांच उपदेशों (शील, नैतिकता) के लाभ और फायदे को स्पष्ट किया।

तब ब्राह्मण की पुत्री ने उनसे पूछा, "क्या हमारे लिए भी उन लाभों और सुखों को प्राप्त करना संभव है जिनके बारे में आपने बताया है, शरणों (बुद्ध; धम्म-मार्ग; संघ-सम्पत्ति) और उपदेशों (शील, नैतिकता) पर निर्भर रहने के द्वारा?" उन्होंने कहा, "क्यों नहीं? ये वे चीजें हैं जो भगवान (बुद्ध) ने कही हैं, और उन्होंने उसे शरण और उपदेश दिए। जब उसने शरण स्वीकार कर ली और उपदेशों का पालन करने का वचन दिया, तो उसने पूछा, "इसके अलावा और क्या करना है?" उसकी बुद्धिमत्ता को देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "वह उन लोगों में से एक होगी जिनमें योग्यताएं हैं," और शरीर की प्रकृति को समझाते हुए, उन्होंने ध्यान के विषयों के बारे में बताया जो इसके बत्तीस घटक हैं; उन्होंने उसके मन में शरीर के प्रति अरुचि उत्पन्न की, और इसके अलावा, अनित्यता आदि से संबंधित धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन देकर उसे प्रभावित किया, और फिर उन्होंने अंतर्दृष्टि का मार्ग बताया और उसे छोड़कर चले गए। उसने उसकी कही हर बात को दिल से ग्रहण किया और शरीर की अशुद्धता के अहसास से शांत होकर उसने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और शीघ्र ही आध्यात्मिक जागृति के प्रथम चरण, सोतपना का फल प्राप्त किया। बाद में

उसकी मृत्यु हो गई और वह सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की सेविका के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उसके साथ एक लाख अप्सराएँ थीं। जब सक्का ने उसे देखा, तो वह आश्चर्यचकित और प्रशंसनीय होकर उससे पूछने लगा कि उसने कौन सा पुण्य कर्म किया है:

1 "यह महल, मेरा निवास, चमकीला, प्रकाशमान, बेरिल के स्तंभों से सुगठित, सदा के लिए बना हुआ, चारों ओर सुनहरे वृक्षों से छायादार, मेरे कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है।

2 जो यहाँ पहले उत्पन्न हुई थीं, वे एक लाख अप्सराएँ थीं; तुम्हारे कर्म के कारण तुमने यह पद प्राप्त किया है, तुम गौरवशाली हो। तुम प्रकाशमान खड़ी हो, एक श्रेष्ठ देवता।

3 जिस प्रकार नक्षत्रों का राजा चंद्रमा सभी तारों से बढ़कर चमकता है, उसी प्रकार तुम अप्सराओं के इस समूह में चकाचौंध कर चमक रही हो।

4 अब तुम कहाँ से आई हो, हे निर्दोष रूप वाली, मेरे इस निवास में उत्पन्न हुई? जिस प्रकार इंद्र के साथ तैंतीस देवदूत ब्रह्मा को देखकर तृप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार कोई भी तुम्हारे दर्शन से नहीं थकेगा। प्रकट होना।

इस प्रकार सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर, देवता (देवदूत) ने ये दो श्लोक कहे:

5 "चूंकि आपने कृपापूर्वक मुझसे पूछा है, सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा); 'आप कहाँ से आकर यहाँ आए हैं?' - वहाँ काशी लोगों का नगर था, जिसका नाम बनारसी था। वहाँ, उस नगर में, मैं पूर्व में केश-कारिका था।

6 मैं परमानंद की अवस्था में था, बुद्ध और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और भिक्षु संघ के प्रति पूर्णतः समर्पित था, बिना किसी दुविधा के, प्रशिक्षण के नियमों का पालन करते हुए, ज्ञानोदय के फल प्राप्त कर चुका था, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में आश्वस्त था, स्वस्थ था।"

तब सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा), उनके पुण्य प्राप्ति और देव-समान गुणों से प्रसन्न होकर उनसे बोले:

7 "इस कारण हम अत्यंत प्रसन्न हैं और आपका स्वागत करते हैं; आप धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के माध्यम से महिमा से प्रकाशित हो रही हैं। आप विश्वासयोग्य हृदय की हैं, बुद्ध, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और भिक्षु संघ के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं, विवशता रहित हैं, प्रशिक्षण के नियमों का पालन करती हैं, फल प्राप्त कर चुकी हैं, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) या ज्ञान में आश्वस्त हैं, स्वस्थ हैं।"

और सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने इस घटना के बारे में आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना को बताया; वरिष्ठ भिक्षु ने इसे भगवान (भगवान बुद्ध) को बताया। भगवान (भगवान बुद्ध) ने इस विषय को प्रवचन का अवसर बनाया और एकत्रित जनसमूह को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। वह उपदेश देव-लोक सहित पूरे संसार के लिए लाभकारी था।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.1 ------------------------->>>> अगला

2.1 दासी का महल (18)
(दासी-विमान)

जब भगवान (भगवान बुद्ध) जेतवन में निवास कर रहे थे, तब श्रावस्ती में रहने वाला एक गृहस्थ अनुयायी कई अन्य अनुयायियों के साथ संध्याकाल में मठ गया, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना, और जब सभा समाप्त हुई, तो वह भगवान (भगवान बुद्ध) के पास जाकर बोला, "आदरणीय महोदय, अब से मैं चार निरंतर भोजन दूंगा।" तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने उस अवसर के अनुरूप उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन दिया और उन्हें विदा कर दिया। उन्होंने भोजन अधीक्षक से कहा, "आदरणीय महोदय, मैंने भिक्षु संघ के लिए चार निरंतर भोजन निर्धारित किए हैं। कल से सभी आदरणीय सज्जन मेरे घर आएं," और घर चले गए। उन्होंने उस दासी को यह बात समझाई और कहा, "इस मामले में तुम्हें निरंतर लगन रखनी होगी।" "ठीक है," उसने उत्तर दिया। स्वभाव से वह आस्थावान, पुण्य की इच्छुक और गुणी थीं, इसलिए वह प्रतिदिन सुबह बहुत जल्दी उठतीं, उत्तम भोजन और पेय तैयार करतीं, बैठने की जगह को अच्छी तरह साफ करतीं और इत्र लगातीं; वह आसन तैयार करतीं और भिक्षुओं के आने पर उन्हें वहाँ बैठातीं, आदरपूर्वक प्रणाम करतीं, उन्हें इत्र, फूल, धूप और दीपक भेंट करतीं और आदरपूर्वक उनकी सेवा करतीं। एक दिन जब भिक्षुओं ने भोजन कर लिया, तो वह उनके पास गईं, प्रणाम किया और बोलीं, "हे आदरणीय महोदय, जन्म-मृत्यु आदि के इन कष्टों से पूर्ण मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है?" भिक्षुओं ने उन्हें शरण (बुद्ध, धम्म-मार्ग, संघ-सम्ध्यापन) और पाँच उपदेश (शील, नैतिकता) दिए, शरीर की (दुष्प्रचार) प्रकृति समझाई और उन्हें नश्वरता पर विचार करने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद उन्होंने उन्हें अनित्यता के बारे में सिखाया। सोलह वर्षों तक उपदेशों का पालन करते हुए, समय-समय पर ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए, एक दिन उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपनी परिपक्व समझ के कारण उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और सोतपान (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) के फल (लाभ) को जाना। इसके तुरंत बाद उनका निधन हो गया और वे सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की प्रिय परिचारिका के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटीं। वे साठ हजार वाद्ययंत्रों की संगति में उद्यानों आदि में विचरण करती रहीं, देवदूतों के परमानंद का आनंद लेती रहीं और अपने दल के साथ समय व्यतीत करती रहीं। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उन्हें ऊपर वर्णित रूप में देखा और उनसे पूछा:

1 "सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की तरह, रमणीय चित्तलता वन में, आप चारों ओर स्त्रियों के समूह से घिरी हुई विचरण करती हैं, जिससे सभी दिशाएँ उपचार करने वाले तारे की तरह चमक उठती हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता का कारण क्या है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध होती हैं, और वहाँ आपके हृदय को प्रिय आनंद किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 मैं आपसे पूछता हूँ, हे महान महिमा की देवी,आपने मनुष्य के रूप में जन्म लेते समय कौन सा गुण दिखाया? आपकी इस तेजस्वी महिमा के कारण ही आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

4 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल है:

5 "जब मैं मनुष्य के रूप में जन्मा, तो मैं एक दासी थी, एक गृहस्थी थी, दूरदर्शी, गौतम (बुद्ध) की अनुयायी थी, जो सर्वप्रसिद्ध हैं।

6 परिश्रम से मैं उस स्थिर गुरु के मार्गदर्शन में आई। चाहे यह शरीर कितना भी टूट जाए, मैं इसमें (प्रयास में) कोई शिथिलता नहीं रखती।

7 पांच नियमों का मार्ग, सुरक्षित, शुभ, बुद्धिमानों द्वारा कांटों रहित, उलझन रहित, सीधा बताया गया है।

8 एक नन्ही स्त्री द्वारा प्राप्त परिश्रम के फल को देखो। मैं सर्वोच्च शक्ति वाले राजा, सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की सहेली हूँ।

9 साठ हजार वाद्ययंत्र मुझे मेरी नींद से जगाते हैं: आलमबा, गग्गरा, भीम, साधुवादिन और संशय,

10 पोक्खरा और सुफस्सा; विनमोक्खा और अन्य (स्त्रियाँ): नंदा, सुनंदा, सोनादिना, सुचिंहिता,

11 अलम्बुसा, मिसाकेसी, और निर्दयी पुंडारिका, एनीफस्सा, सुफस्सा, और सुभद्दा, मुदुवादिनी-

12 ये और अन्य अधिक सुंदर (देवता (देवदूत)) अप्सराओं को (नींद से) जगाते हैं। सुबह वे मेरे पास आती हैं और कहती हैं, आओ, हम नाचेंगे, हम गाएँगे, आओ, हम तुम्हें आनंदित करेंगे।

13 यह नंदन (स्वर्ग), शोक रहित, आनंदमय, तैंतीस (स्वर्ग) का महान उपवन, उन लोगों के लिए नहीं है जिन्होंने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, बल्कि केवल उन लोगों के लिए है जिन्होंने पुण्य कर्म किए हैं।

14 न तो यहाँ और न ही परे उन लोगों के लिए कोई आनंद है जिन्होंने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, परन्तु जिन लोगों ने पुण्य कर्म किए हैं, उनके लिए यहाँ और परे आनंद है।

15 जो संगति की लालसा रखते हैं, उन्हें इनके द्वारा बहुत अधिक धार्मिकता का पालन करना चाहिए, क्योंकि वे जिन्होंने पुण्य कर्म किए हैं, वे स्वर्ग में आनंदित होते हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<----------------------- I.2.2 -------------------------->>>> अगला

2.2 लखुम का महल (19)

(लखुम-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) बनारस में निवास कर रहे थे। बनारस नगर में एक द्वार था जिसे मछुआरा द्वार कहा जाता था। इसके पास ही एक गाँव भी था जिसका नाम भी मछुआरा द्वार था। वहाँ लखुमा नाम की एक स्त्री, जो आस्थावान, आनंदित और बुद्धिमान थी, उस द्वार से प्रवेश करने वाले भिक्षुओं का अभिवादन करती, उन्हें अपने घर ले जाती, उन्हें भोजन कराती और उनकी आस्था एवं आनंद में वृद्धि होते ही, उन्होंने एक मंडप बनवाया और वहाँ भिक्षुओं का आतिथ्य सत्कार किया, उनके साथ धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना और शरण (बुद्ध; धम्म-मार्ग; संघ-सम्बद्धता) तथा उपदेश (शील, नैतिकता) में दृढ़ होकर, उन्होंने गहन ध्यान से अंतर्दृष्टि-ध्यान के उन विषयों का गहन अध्ययन किया जो उन्होंने सीखे थे और अपनी योग्यताओं के कारण, आध्यात्मिक जागृति के प्रथम चरण (सोतापना) के फल (लाभ) को प्राप्त किया।

बाद में उनका निधन हो गया और उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में एक विशाल महल में हुआ। और उनके साथ एक हजार अप्सराएँ थीं। देवीय आनंद में डूबी हुई वे वहाँ प्रसन्नतापूर्वक निवास कर रही थीं। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जो देवीय दर्शन के भ्रमण पर थे, ने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:

1 "हे देवीय, आप अत्यंत सुंदर हैं और सभी दिशाओं को प्रकाशमान तारे के समान चमका रही हैं।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ-वहाँ किस कारण से विराजमान हैं और आपके हृदय को जो भी आनंद प्रिय है, वह किस कारण से उत्पन्न होता है?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण से है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवीय ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 मछुआरे के द्वार से निकलते हुए, मेरा निवास स्थान था। वहाँ से गुजरते हुए शिष्यों, महान ऋषियों को,

6 मैं श्रद्धापूर्वक चावल, कुम्मस, साग और नमकीन खट्टी दलिया देता था।

7 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन, और पखवाड़े के एक विशेष दिन, जो अष्टांगिक नियमों से भलीभांति जुड़ा हुआ था,

8 मैं सदा नैतिकता के अभ्यास द्वारा आत्मसंयमित रहते हुए उपोसथा (पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन करता था। और (इस प्रकार) संयमित और उदार होकर मैं उस निवास स्थान में रहता था।

9 प्राणियों की हत्या से परहेज करते हुए, झूठ बोलने, चोरी करने और शराब पीने से दूर रहते हुए,

10 प्रशिक्षण के पाँच नियमों में आनंद लेते हुए, आर्य सत्यों में निपुण होकर, मैं गौतम (बुद्ध) का गृहस्थ अनुयायी था, जो दूरदर्शी और व्यापक ज्ञान रखने वाले थे। प्रसिद्ध।

11 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।

और, पूज्यवर, मेरी ओर से, क्या आप भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करेंगे? यह कहते हुए: "लखुमा नाम की गृहस्थ अनुयायी भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती है। वास्तव में, पूज्यवर, यह आश्चर्य की बात नहीं होगी कि भगवान बुद्ध उसके लिए पुन: जन्म के फल की घोषणा करें।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.2.3 ------------------------->>>> अगला

2.3 चावल की भूसी देने वाले का घर (20)
(आचमदयिक-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में गिलहरियों के चरने की जगह पर निवास कर रहे थे। उस समय राजगृह के एक परिवार में हैजा की महामारी फैल गई। एक स्त्री को छोड़कर सभी लोग मर गए। मृत्यु के भय से भयभीत होकर उसने घर और उसमें रखा सारा धन-अनाज छोड़ दिया और दीवार में बने एक छेद से भाग गई (महामारी के समय ऐसा करना एक प्रथा थी)। उसकी सहायता करने वाला कोई नहीं था, इसलिए वह एक दूसरे परिवार के घर गई और उसके पीछे रहने लगी। उस घर के लोगों ने उस पर दया करके उसे चावल का दलिया, उबले हुए चावल, चावल की भूसी आदि दी जो चावल के बर्तन और अन्य खाना पकाने के बर्तनों में बची हुई थी। उनकी उदारता के कारण वह वहाँ रह सकी।

उस समय पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-कस्सपा सात दिनों तक ध्यान की अवस्था में लीन रहे, उससे बाहर निकले और सोच रहे थे, "आज मैं किसका भोजन ग्रहण करके उपकार करूँ? किसे कष्ट और दुख से मुक्त करूँ?" तभी उन्होंने देखा कि यह स्त्री मृत्यु के निकट है और उसके कर्म नरक की ओर ले जाने वाले प्रतीत हो रहे हैं। उन्होंने सोचा, "जब मैं उसके पास जाऊँगा, तो वह मुझे अपने लिए प्राप्त चावल का छिलका दे देगी: इसी कर्म के कारण वह सृजन में आनंदित होने वाले देवों के लोक में पुनर्जन्म लेगी। इस प्रकार उसे नरक में पुनर्जन्म से मुक्त करके, मैं निश्चय ही उसके लिए देव-आनंद का सृजन करूँगा।" और सुबह जल्दी उठकर, उन्होंने कुंड और वस्त्र लेकर उस स्थान की ओर प्रस्थान किया जहाँ वह स्त्री निवास कर रही थी।

अब सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने भेष बदलकर उन्हें अनेक स्वादों और अनेक प्रकार के सूपों और करी से युक्त देव-भोजन भेंट किया। वृद्ध ने उन्हें पहचान लिया और यह कहते हुए मना कर दिया, "कोसिया, तुम, जिसके अच्छे कर्म सिद्ध हो चुके हैं, ऐसा क्यों कर रहे हो? दुखी प्राणियों का भाग्य मत बिगाड़ो," और आकर उस स्त्री के सामने खड़े हो गए। स्त्री ने उन्हें कुछ भेंट करने की इच्छा से सोचा: इस महान देवदूत को देने के लिए यहाँ कुछ भी उपयुक्त नहीं है, और उसने कहा, "कृपया आगे बढ़िए!" वृद्ध एक कदम पीछे हट गए और दूसरों द्वारा दी गई किसी भी भेंट को स्वीकार नहीं किया। स्त्री ने यह समझकर कि वे उसकी सहायता करना चाहते हैं, उन्हें अपनी चावल की रोटी दे दी, जिसे उन्होंने वहीं खा लिया और कहा: "इस जन्म से पहले अपने तीसरे जन्म में तुम माता थीं," और चले गए। उसी रात उनका निधन हो गया और वे सृजन में आनंदित होने वाले देवों के बीच पुनर्जन्म लेकर पुनर्जन्म लिया। तब सक्का को उसकी मृत्यु का ज्ञान हुआ और जब उसने उसे तैंतीस (स्वर्ग) में नहीं देखा, तो वह रात के मध्य पहर में आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-कस्सपा के पास गया और उनसे पूछा:

1 "जब आप भिक्षा मांगने के लिए टहल रहे थे, तब आप वहाँ चुपचाप खड़े थे, वहाँ एक दुखी भिखारी स्त्री दूसरे के घर के पीछे रहती थी।

2 जिसने प्रसन्नता से अपने हाथों से आपको चावल की रोटी दी और अपना शरीर त्याग दिया, वह किस अवस्था में गई है?"

तब बड़े ने उसे उत्तर देते हुए पुनर्जन्म के स्थान के बारे में बताया:

3 "जब मैं भिक्षा मांगने जा रहा था, तब चुपचाप खड़ा था, तभी एक दीन-हीन स्त्री दूसरे के घर के पीछे रहने लगी।

4 उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से मुझे चावल की रोटी दी, और मानव शरीर को त्यागकर, यहाँ से पूर्णतः मुक्त हो गई।

5 वहाँ महान मानसिक शक्ति वाले देव (देवदूत) हैं, जो सृजन में आनंदित होते हैं। वह आनंदित स्त्री, जो प्रसन्नतापूर्वक चावल की रोटी देती है, वहाँ विराजमान है।"

और जब सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने उसके दान के महान परिणाम, महान लाभों के बारे में सुना, तो उन्होंने कहा:

6 “अरे, कश्यप को निर्धन का दान, उत्तम स्थान पर दिया गया। दूसरे से भीख माँगकर दिए गए भोजन के साथ दिया गया दान वास्तव में फलदायी रहा।

7 जो स्त्री चक्र चलाने वाले राजा (विश्व के शासक) की संगिनी बनेगी, जो अपने स्वामी की दृष्टि में हर अंग से सुंदर और आकर्षक है—(वह भी) इस चावल की रोटी के दान के सोलहवें भाग के बराबर नहीं है।

8 सौ निक्खाएँ, सौ घोड़े, सौ खच्चरों द्वारा खींचे जाने वाले रथ, रत्नजड़ित झुमके पहने एक लाख कन्याएँ—(वे भी) इस चावल की रोटी के दान के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हैं।

9 रथ के खंभों के समान दाँतों वाले सौ हिमालयी हाथी, सोने के कवच और अलंकरणों से सुसज्जित भारी और राजसी हाथी—(वे भी) इस चावल की रोटी के दान के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हैं।

10 नहीं "चारों महाद्वीपों पर प्रभुत्व रखने वाला भी इस चावल के छिलके के उपहार के सोलहवें भाग के बराबर ही मूल्यवान है।"

वृहत्तर महा-कस्सपा ने भगवान बुद्ध को वह सब बताया जो उन्हें यहाँ सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने कहा था। इसे विषय बनाकर भगवान ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.4 -------------------------->>>> अगला

2.4 चांडाली का महल (21)
(चांडाली-विमान)

जब भगवान (बुद्ध) राजगृह में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने बुद्धों द्वारा अभ्यास की जाने वाली महान करुणा की प्राप्ति की। वे उठे और संसार का अवलोकन करते हुए देखा कि उसी नगर में, चांडाल (निम्न जाति) बस्ती में, एक वृद्ध स्त्री रहती थी जिसका जीवन समाप्त होने वाला था, और उसके कर्मों के कारण उसे नरक में जाना पड़ रहा था। बड़ी करुणा से उन्होंने उसे स्वर्ग के लिए अनुकूल कर्म करने को प्रेरित किया और यह सोचकर कि "मैं उसे स्वर्ग में स्थापित करूँगा", भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। उसी क्षण चांडाल (निम्न जाति) स्त्री छड़ी के सहारे नगर से बाहर आ रही थी; उसने भगवान (बुद्ध) को आते देखा और जब वह उनके सामने पहुँची तो रुक गई। भगवान (बुद्ध) भी रुक गए और उसके सामने इस प्रकार खड़े हो गए मानो उसे आगे बढ़ने से रोक रहे हों। तब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-गोग्गलाना, क्योंकि वे गुरु (बुद्ध) के मन को जानते थे और जानते थे कि स्त्री का जीवनकाल समाप्त हो चुका है, ने उन्हें भगवान (बुद्ध) के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए कहा:

1 "चंडाली, सर्वप्रसिद्ध गौतम (बुद्ध) के चरणों का आदर करो। तुम पर दया करके परम द्रष्टा तुम्हारे सामने खड़े हुए थे।

2 उनके समान योग्य और स्थिर बुद्ध की ओर अपना मन लगाओ। शीघ्र करो, हाथ जोड़कर उनका आदर करो, क्योंकि तुम्हारा जीवन क्षणभंगुर है।"

और उसने उनकी बात सुनी, और भाव से प्रेरित होकर उसने गुरु (बुद्ध) में आस्था रखी, पंच प्रकार से आदर किया, और बुद्ध में आनंदित होकर एकाग्र मन से सिर झुकाकर खड़ी रही। भगवान (बुद्ध) ने कहा, "यह उसके स्वर्ग प्राप्ति के लिए पर्याप्त है," और भिक्षु संघ के साथ नगर में प्रवेश किया। इसके तुरंत बाद, एक बछड़े सहित एक भागती हुई गाय, उस स्त्री की ओर दौड़ी और अपने सींगों से उस पर हमला करके उसे मार डाला। इस सब की व्याख्या करने के लिए, संशोधनकारों ने दो श्लोक कहे:

3 स्वयंभू सिद्ध पुरुष द्वारा प्रेरित होकर, अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए, चांडाली ने सर्वप्रसिद्ध गौतम (बुद्ध) के चरणों का आदर किया।

4 उस गाय ने उस चांडाली को मार गिराया, जब वह हाथ जोड़कर स्वयंभू बुद्ध, अंधकार में प्रकाश लाने वाले, का आदर कर रही थी।

और उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ। और उसके साथ एक लाख अप्सराओं का दल था। और उसी दिन जब वह आई, एक देवदूत अपने महल के साथ उतरी, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना के पास गई और उन्हें प्रणाम किया। इसे समझाने के लिए उसने कहा:

5 "हे महान स्वामी, मैं जिसने देवों (देवदूतों) की मानसिक शक्ति प्राप्त कर ली है, आपके पास आती हूँ और आपको प्रणाम करती हूँ, जिनके सांसारिक विकार (इच्छाएँ) नष्ट हो गए हैं, जो निष्कलंक, अविचलित हैं और वन में एकांत में बैठे हैं।"

बड़े ने उससे पूछा:

6 "हे स्वर्ण रंग की, तेजस्वी, महान ख्याति प्राप्त, अनेक आभूषणों से सुशोभित, एक महल से उतरी हुई, अप्सराओं के समूह से घिरी हुई, हे सुंदर देवी, आप कौन हैं जो मुझे सम्मान दे रही हैं?"

बड़े ऋषि द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने चार श्लोक कहे:

7 "हे पूज्यवर, मैं एक चांडाली हूँ: आपके द्वारा, उस वीर के द्वारा प्रेरित होकर, मैंने गौतम (बुद्ध) के चरणों को प्रणाम किया, जो सर्वप्रसिद्ध और योग्य हैं।

8 उनके चरणों को प्रणाम करने के बाद, चांडाली के रूप में जन्म लेकर, मैं नंदन (स्वर्ग) में एक सर्वगुणपूर्ण, सुंदर महल में अवतरित हुई।

9 एक लाख अप्सराएँ मेरी सेवा में खड़ी हैं। उन सब में मैं सौंदर्य, यश और दीर्घायु में सर्वोपरि और श्रेष्ठ हूँ।

10 सचेत और संयमी, बहुत से अच्छे कर्म करके, मैं हे पूज्यवर, संसार के प्रति दयालु ऋषि को सम्मान देने आई हूँ।"

पुन: संशोधकों द्वारा एक श्लोक जोड़ा गया:

11 यह सुनकर, चंडाली ने कृतज्ञतापूर्वक, किए गए कार्य को स्वीकार करते हुए, उस योग्य व्यक्ति के चरणों का आदर करके, वहीं अंतर्धान हो गई।

और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने इस घटना का वर्णन भगवान बुद्ध को किया। इसे विषय बनाकर भगवान ने अपने अनुयायियों को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया, जिससे उन्हें अत्यंत लाभ हुआ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.5 ------------------------->>>> अगला

2.5 सुंदर स्त्री का निवास (22)
(भद्धिति-विमान)

भगवान बुद्ध जेतवन के श्रावस्ती में अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय किंबिला नगर में रोहका नाम का एक गृहस्थ पुत्र था, जो श्रद्धा और आनंद से परिपूर्ण, नैतिक आचरण में निपुण था। उसी प्रकार के परिवार में भद्दा नाम की एक युवती रहती थी, जो श्रद्धा और आनंद से परिपूर्ण थी, क्योंकि उसका स्वभाव अच्छा था। रोहका के माता-पिता ने अपने पुत्र के लिए भद्दा का विवाह मांगा और उचित समय पर उसे लाकर विवाह संपन्न कराया। दोनों ने सौहार्दपूर्ण जीवन व्यतीत किया। अपने उत्तम आचरण के कारण भद्दा सुंदर स्त्री के नाम से प्रसिद्ध हो उठी। उस समय दो प्रमुख शिष्य और पांच सौ भिक्षुओं का एक दल देश का भ्रमण कर रहा था और किंबिला पहुंचा। रोहका को उनके आगमन की सूचना मिली और वह प्रसन्नतापूर्वक वृहदों और उनके दल के पास गया। रोहका ने अपनी पत्नी और बच्चों के साथ उनकी शिक्षाएँ सुनीं, शरण लीं (बुद्ध, धम्म-मार्ग, संघ-सम्पत्ति) और पाँच नियमों (शील, नैतिकता) का पालन करने का संकल्प लिया। उसकी पत्नी ने उपोसथ (पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया और नैतिकता के अभ्यास में पूर्णतः परिपूर्ण थी। उसे देवों का अनुग्रह प्राप्त था। उसी अनुग्रह से उसने अपने ऊपर लगे एक झूठे आरोप को व्यर्थ कर दिया और उसकी महान पवित्रता और नैतिकता की ख्याति पृथ्वी के कोने-कोने तक फैल गई। क्योंकि वह किंबिला नगर में अकेली रह रही थी जबकि उसका पति व्यापारिक उद्देश्यों से तकशिला में ठहरा हुआ था, एक अवकाश के दिन जब मनोरंजन का मन हुआ, तो अपने साथियों के प्रोत्साहन से वह अपने पति से (तकशिला में) मिल गई, जब गृहस्थ देव (देवदूत) उसे अपनी शक्ति से वहाँ ले गया था। उसी मुलाकात के बाद वह गर्भवती हो गई और उसे किंबिला नगर वापस ले जाया गया। समय बीतने पर जब उसकी गर्भावस्था का पता चला, तो उसकी सास और अन्य लोगों को उस पर व्यभिचारिणी होने का संदेह हुआ। लेकिन स्वयं उस देवता की कृपा से, जब किंबिला नगर गंगा की बाढ़ में डूबा हुआ प्रतीत हुआ, तब उसने अपने दृढ़ निश्चय और सत्य के प्रति दृढ़ संकल्प से, जो उसकी पवित्रता का प्रतीक था, अपने ऊपर लगे कलंक को गंगा की प्रचंड बाढ़ की तरह दूर कर दिया। अपने पति से विवाह करने पर और उसके द्वारा दिए गए चिन्ह और प्रतीक को प्रदर्शित करने पर, उसने सभी के संदेह को दूर कर दिया और अपने पति, रिश्तेदारों और समस्त संसार में सम्मानित हो गई। इसलिए कहा जाता है कि उसकी महान पवित्रता और नैतिकता की ख्याति पृथ्वी के कोने-कोने तक फैल गई।

इसके बाद उनकी मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में हुआ। जब भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती से वहाँ (स्वर्ग) गए और मूंगा वृक्ष के चरणों में स्थित पांडुकम्बाला चट्टान पर विराजमान हुए, और जब देवों का समूह भगवान (बुद्ध) के पास आया और आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया, तो सुंदर स्त्री भी उनके पास आकर एक तरफ खड़ी हो गईं। तब भगवान बुद्ध ने उनसे उनके कर्मों के बारे में पूछा:

1 "नीले, पीले, काले, गहरे लाल और लाल रंग के, अनेक रंगों के तंतुओं से ढके हुए (ये मंदारवा वृक्ष हैं)।

2 आपने अपने सिर पर मंदारवा के फूलों की माला धारण की है। हे परम ज्ञानी देवी, ये वृक्ष किसी अन्य लोक में नहीं पाए जाते।

3 हे सर्वप्रसिद्ध, आप तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में क्यों अवतरित हुई हैं? हे देवदूत, पूछे जाने पर बताइए कि यह किस कर्म का फल है।"

भगवान बुद्ध द्वारा इस प्रकार प्रश्न पूछे जाने पर उस देवता (देवदूत) ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

4 "किम्बिला में वे मुझे 'सुंदर स्त्री' के नाम से जानते थे, मैं एक गृहस्थ अनुयायी थी। मेरा विश्वास था, मैं नैतिकता (शील) का अभ्यास करती थी, और हमेशा उदारता में प्रसन्न रहती थी।

5 मैंने धर्मपरायण लोगों को वस्त्र, भोजन, आवास और प्रकाश दिया।

6 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को तथा पखवाड़े के एक विशेष दिन, जो अष्टांग (उपदेशों) से भलीभांति जुड़ा था,

7 मैंने उपोसथ (पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया, हमेशा नैतिकता (शील) के अभ्यास द्वारा आत्मसंयमित रही, प्राणियों की हत्या से परहेज किया और झूठ बोलने से परहेज किया।

8 मैंने चोरी, व्यभिचार और मादक पदार्थों के सेवन से पूरी तरह परहेज किया, पाँच नियमों में प्रसन्न रही, आर्य सत्यों में निपुण रही,

9 एक गृहस्थ महिला। दिव्य दृष्टि वाले बुद्ध के अनुयायी के रूप में, मेरा जीवन परिश्रममय रहा। अवसर प्राप्त करके और अच्छे कर्म करके मैं अपने प्रकाश से नंदनवन (स्वर्ग) में विचरण करता रहा।

10 मैंने अत्यंत दयालु और करुणामय भिक्षुओं को भोजन दिया और तपस्वियों और महान ऋषि को भी, अवसर प्राप्त करके और अच्छे कर्म करके मैं अपने प्रकाश से नंदनवन (स्वर्ग) में विचरण करता रहा।

11 मैंने सदा अष्टांग तपस्या का पालन किया जिससे असीम आनंद प्राप्त हुआ। अवसर प्राप्त करके और अच्छे कर्म करके मैं अपने प्रकाश से नंदनवन (स्वर्ग) में विचरण करता रहा।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.6 -------------------------->>>> अगला

2.6 सोनादिन्ना का निवास (23)
(सोनादिन्ना-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती, जेतवन में निवास कर रहे थे। उस समय नालंदा में सोनादिन्ना नाम की एक गृहस्थ अनुयायी, श्रद्धा और आनंद से भरी, आतिथ्य सत्कारपूर्वक और नैतिकता (शील) के निरंतर अभ्यास और महान पवित्रता के साथ, चार आवश्यक तत्वों के साथ भिक्षुओं की सेवा करती थी और अष्टांगिक (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन करती थी। उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और यद्यपि उनमें चार सत्यों को ध्यान का विषय बनाकर विकसित करने की योग्यता थी, इसलिए वे आध्यात्मिक जागृति की प्रथम अवस्था (सोतपना) की प्रवेशिका बनीं। फिर, एक विशेष रोग से पीड़ित होकर, उनका निधन हो गया और वे तैंतीस (स्वर्ग) में पुनरागमन हुईं। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे इन श्लोकों में प्रश्न किया:

1 "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर हैं और सभी दिशाओं को उपचार करने वाले तारे के समान प्रकाशित कर रही हैं।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख क्यों उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवी ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "नालंदा में लोग मुझे सोनदिन्ना के नाम से जानते थे, मैं एक गृहस्थ अनुयायी थी। मुझे आस्था थी, मैं सदाचारी थी और उदारता से प्रेम करती थी।"

6 मैंने धर्मपरायण लोगों को वस्त्र, भोजन, आवास और प्रकाश दिया।

7 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम तिथि को तथा पखवाड़े के एक विशेष दिन, जो अष्टांगिक नियमों से भलीभांति जुड़ा हुआ था,

8 मैंने उपोसथ (पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया, सदा शील के अभ्यास द्वारा आत्मसंयमित रहते हुए, प्राणियों की हत्या से परहेज करते हुए और झूठ बोलने से बचते हुए।

9 चोरी, व्यभिचार और मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहकर, पाँच नियमों में प्रसन्नता का अनुभव करते हुए, आर्य सत्यों में निपुण होकर, मैं गौतम बुद्ध की एक गृहस्थ अनुयायी थी, जो दूरदर्शी और विख्यात थे।

10 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ, और वहाँ जो भी सुख मुझे भाते हैं, वे सब मुझे प्राप्त होते हैं।

11 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताता हूँ। इसी कारण मेरा तेज और तेजस्वी रूप सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.7 -------------------------->>>> अगला

2.7 उपोसथा का निवास (24)
(उपोसथा-विमान)

यह पिछले निवास के समान है, अंतर यह है कि यहाँ उपोसथा साकेत में एक गृहस्थ महिला अनुयायी थीं, और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना को यह समझाने के बाद कि उनकी सुंदरता अब सभी दिशाओं को कैसे प्रकाशित करती है, उन्होंने अपने एक दोष के बारे में बताया:

12 "मैंने अक्सर नंदन (स्वर्ग) के बारे में सुना और मेरे मन में लालसा उत्पन्न हुई; मेरा मन उस पर तड़पते हुए नंदन (स्वर्ग) में उठा।

13 मैंने गुरु, प्रबुद्ध (बुद्ध), सूर्य के सगे संबंधियों से प्रार्थना नहीं की; मेरा मन निम्न (स्वर्ग, निर्वाण के बजाय) पर लगा हुआ था जिसके लिए मैं बाद में पश्चाताप करती हूँ।"

वृहद ने कहा:

14 “हे उपोसथ, तुम इस महल में कितने समय तक रहोगे? हे देवदूत, यदि तुम जानते हो, तो बताओ तुम्हारा जीवनकाल कितना होगा?”

15 “हे महान ऋषि, मैं यहाँ साठ हजार वर्ष और तीन करोड़ वर्ष तक रहूँगा; यहाँ से मृत्यु के बाद मैं मनुष्यों के साथ संगति में रहूँगा।”

वृहद ने कहा:

16 “हे उपोसथ, भयभीत मत हो; स्वयंजागृत (बुद्ध) ने तुम्हें एक प्रख्यात षट्पन्न (सोटापना, आध्यात्मिक जागृति का प्रथम चरण) घोषित किया है; तुम्हारे लिए बुरे जन्मों का भय समाप्त हो गया है।”
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.8,2.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.2.8 और I.2.9 ------------------------->>>> अगला

2.8, 2.9 निद्दा और सुनीद्दा के निवास (25, 26)
(निद्दा-सुनीद्दा-विमान)

आठवें और नौवें निवास की उत्पत्ति राजगृह में हुई है। और यह समझना आवश्यक है (कि वहाँ ये श्लोक हैं):

"गौतम (बुद्ध) की एक गृहस्थ अनुयायी निद्दा... जो बहुत प्रसिद्ध है। इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है।" और सुनीद्दा के लिए भी यही बात है, जैसा कि कहा गया है। श्लोक में भी कुछ नया नहीं है। इसलिए कुछ पुस्तकों से इन्हें पंक्तियों की पुनरावृत्ति के कारण हटा दिया गया है: जैसा कि कहा गया है: "(आप जो खड़ी हैं) असाधारण सुंदरता के साथ... और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है। वह देवता प्रसन्न हुए... यही फल (लाभ) था। राजगृह में, वे मुझे निद्दा, एक गृहस्थ अनुयायी (संख्या 8), सुनीद्दा (संख्या 9) के रूप में जानते थे... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.2.10 ------------------------->>>> अगला

2.10 प्रथम भिक्षादाता का निवास (27)
(पथम-भिक्खदायिक-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। उस समय उत्तरमधुरा में एक स्त्री थी जिसका जीवनकाल समाप्त हो चुका था और वह दुखद जन्म (पशु, प्रेत या नरक) के लिए जन्म लेने वाली थी। भोर होते समय जब भगवान (भगवान बुद्ध) महान करुणा की प्राप्ति से उभर रहे थे और संसार का अवलोकन कर रहे थे, तब उन्होंने उस स्त्री को देखा। उसे अच्छे पुनर्जन्म में स्थापित करने की इच्छा से, वे अकेले मथुरा गए और भिक्षा की तलाश में शहर के बाहरी इलाके में प्रवेश किया। उस समय स्त्री ने अपने घर में भोजन तैयार कर लिया था, उसे एक तरफ रख दिया था, एक घड़ा लेकर जलस्रोत पर गई थी और स्नान किया था। वह घड़ा भरकर घर लौट रही थी जब उसने भगवान (भगवान बुद्ध) को देखा और कहा, "शायद पूज्यवर ने पहले ही भिक्षा ग्रहण कर ली है?" जब भगवान बुद्ध ने कहा, "हम ग्रहण करेंगे", तो वह जान गई कि उन्होंने अभी तक भिक्षा ग्रहण नहीं की है। इसलिए उसने अपना घड़ा नीचे रखा, भगवान बुद्ध के पास गई, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय महोदय, मैं भिक्षा देना चाहती हूँ। कृपया मुझे अनुमति दें।" भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दे दी। उनकी सहमति जानकर वह आगे बढ़ी, एक साफ-सुथरी जगह पर आसन तैयार किया और उनके आने की प्रतीक्षा करने लगी। वे अंदर आए और बैठ गए। उसने उन्हें भोजन दिया और स्वयं बैठ गई। जब उनका भोजन समाप्त हो गया और उन्होंने कटोरे से हाथ हटा लिया, तो भगवान बुद्ध ने उसे धन्यवाद दिया और अपने मार्ग पर चल दिए। उसने उनका आशीर्वाद सुना और अपार आनंद और प्रसन्नता का अनुभव करते हुए, बुद्ध के कारण प्राप्त आनंद को न खोते हुए, उनके ओझल होने तक प्रणाम करती रही। कुछ ही दिनों के बाद, उसका निधन हो गया और वह तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म ले लिया। अब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जब देवताओं के बीच भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने एक ऐसी देवदूत को देखा जो देवताओं की महान मानसिक शक्ति और महान महिमा से परिपूर्ण थी

और देवदूतों के समान ही अपार वैभव का आनंद ले रही थी, जिसकी सीमा बुद्ध के ज्ञान से भी निर्धारित नहीं की जा सकती। उन्होंने इन श्लोकों में उस देवदूत द्वारा किए गए पुण्य कर्म के बारे में पूछा। श्लोक पिछले श्लोकों के समान हैं:

1 "हे देवता, आप अत्यंत सुंदर हैं और समस्त दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं, जैसे कोई चमत्कारी तारा।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ कैसे समृद्ध होती हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख कैसे प्राप्त होते हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "पिछले जन्म में, मनुष्य जगत में मनुष्य के रूप में मेरा जन्म हुआ था।"

6 मैंने निर्मल, शांत और भ्रममुक्त बुद्ध को देखा, जिन्हें मैंने प्रसन्न मन से अपने हाथों से दान दिया।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, और इसी कारण मेरे हृदय को प्रिय सभी सुख यहाँ-वहाँ उत्पन्न होते हैं।

8 इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु2.11

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.2.11 -------------------------->>>> अगला

2.11 द्वितीय भिक्षादाता का महल (28)
(दुतिया-भिक्खदायिका-विमान)

पिछले महल के समान, सिवाय इसके कि यहाँ भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में थे, और स्त्री ने एक निर्मल, शांत मन वाले, भ्रम रहित भिक्षु को भिक्षा दी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.1.

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.3.1 -------------------------->>>> अगला

3.1. भव्य महल (29)
(उलर-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बाँस के वन में निवास कर रहे थे। उस समय राजगृह में, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना की सेवा करने वाले एक परिवार में एक युवती रहती थी, जो दान देने में लीन और प्रेम रखती थी। उस घर में मुख्य भोजन से पहले कठोर और नरम भोजन आदि तैयार किया जाता था। फिर वह युवती अपने हिस्से का आधा भाग दान कर देती थी। दान दिए बिना वह भोजन नहीं करती थी। यहाँ तक कि जब उसे कोई दान ग्रहण करने योग्य नहीं दिखता था, तब भी वह कुछ भोजन अलग रख देती थी, जब तक कि उसे

कोई योग्य व्यक्ति न मिल जाए। वह भिखारियों को भी दान देती थी। अब उसकी माता प्रसन्न और प्रसन्न हुई और उसने मन ही मन कहा, "मेरी बेटी दान देने में लीन और प्रेम रखती है," और उसने उसे दुगुना भाग दिया। जब उसका एक भाग बाँट दिया गया, तो माता ने उसे एक और भाग दिया। उसने उसमें से भी बाँटना शुरू कर दिया। समय बीतने पर, जब वह बालिग हुई, तो उसके माता-पिता ने उसे उसी शहर के एक दूसरे परिवार के बेटे को दे दिया। परन्तु वह परिवार पाखंडी और अविश्वासी था। तभी आदरणीय भिक्षु महा-मोग्गलाना भिक्षा मांगते हुए घर-घर गए और उस युवती के ससुर के घर के द्वार पर रुके। उन्हें देखकर युवती प्रसन्न होकर बोली, "प्रभुत्वपूर्वक अंदर आइए," और उन्हें अंदर ले जाकर आदरपूर्वक प्रणाम किया। उसने अपनी सास द्वारा अलग रखी हुई रोटी ले ली। अपनी सास को देख न पाने के कारण उसने मन ही मन कहा, "मैं उन्हें इसके बारे में (बाद में) बताऊंगी और उन्हें (अपने इस नेक काम से) प्रसन्न करूंगी।" और उसने रोटी भिक्षु को दे दी। भिक्षु ने उसका धन्यवाद किया और अपने मार्ग पर चल दिए। युवती ने अपनी सास से कहा, "मैंने वह रोटी जो आपने अलग रखी थी, भिक्षु महा-मोग्गलाना को दे दी है।" यह सुनकर सास रो पड़ी, "यह कैसी गुस्ताखी है! तुमने बिना पूछे ही एक भिक्षु को मेरी कोई चीज़ दे दी!" और क्रोध से आग बबूला होकर, सही-गलत का ध्यान रखे बिना, उसने मूसल का एक टूटा हुआ टुकड़ा उठाया और लड़की के कंधे पर मार दिया। क्योंकि लड़की का पालन-पोषण बहुत कोमल तरीके से हुआ था और उसकी उम्र समाप्त हो चुकी थी, उसे असहनीय पीड़ा हुई और कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर लौटी। यद्यपि उसने अन्य अच्छे कर्म भी किए थे, परन्तु उस विशेष दान को करना सर्वोपरि था। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने ऊपर वर्णित अनुसार जाकर उनसे प्रश्न किया:

1 "आपका दल (परिचारकों का समूह) भव्य है, आपकी सुंदरता सभी दिशाओं में चमक रही है। स्त्रियाँ नाच-गा रही हैं, देव-युवतों की पूजा की जा रही है।

2 हे देव-देवता, वे आपको आनंदित करते हैं, वे आदरपूर्वक आपकी सेवा करते हैं; ये आपके स्वर्णिम महल हैं, आप जो देखने में सुंदर हैं।"

3 और आप उन पर स्वामिनी हैं, हर तरह के सुख से परिपूर्ण हैं, कुलीन कुल की हैं, शक्तिशाली हैं; देवों की सभा में आप आनंदित होती हैं। हे देवदूत, जब पूछा जाए, तो बताइए कि यह किस कर्म का फल है?

इस प्रकार बड़े ने पूछे जाने पर देवदूत ने समझाया:

4 "जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं एक ऐसे परिवार में बहू थी जो नैतिकता (शील) के पालन में गरीब था।

5 अविश्वासियों और कंजूस लोगों के बीच, मैं विश्वासी होते हुए भी नैतिकता (शील) का पालन करती थी। जब आप भिक्षा मांगने जा रही थीं, तो मैंने आपको एक रोटी दी।

6 मैंने अपनी सास से कहा, 'क्या यहाँ कोई साधु आया था, जिसे मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से रोटी दी?'

7 इस पर सास ने ताना मारते हुए कहा, 'बहू, तुम्हारी परवरिश ठीक से नहीं हुई है। तुमने मुझसे यह कहकर पूछना भी नहीं चाहा कि तुम किसी साधु को देना चाहती हो।'

8 तब मेरी सास क्रोधित होकर मुझ पर मूसल से प्रहार करने लगीं। वह मेरे कंधे पर लगा और मुझे चोट लगी। मैं अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकी।

9 और शरीर के चूर्ण होने पर, मैं पूर्णतः मुक्त होकर वहाँ से विदा होकर तैंतीसवें स्वर्ग के देवदूतों के साथ अवतरित हुई।

10 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ-वहाँ समृद्धि प्राप्त करती हूँ और जो भी सुख मुझे प्रिय हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।

11 इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.2 ------------------------->>>> अगला

3.2 गन्ना महल (30)
(उच्चुदैका-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में निवास कर रहे थे... इत्यादि, जैसा कि पहले बताया गया है। परन्तु इसमें अंतर यह है: उन्होंने गन्ना दान किया, उन पर एक गोबर गिरा, वे उसी क्षण मर गईं और तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। उसी रात वे वृद्ध के समक्ष आईं और चंद्रमा और सूर्य के समान, गिद्ध शिखर को प्रकाशमान करते हुए, उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और भक्ति भाव से एक तरफ खड़ी रहीं। तब वृद्ध ने उनसे प्रश्न किया:

1 "देवताओं के साथ पृथ्वी को प्रकाशमान करके, आप चंद्रमा और सूर्य के समान अपनी चमक और सौंदर्य से प्रकाशमान हैं, आपकी महिमा ब्रह्मा के समान है, जो इंद्र सहित तैंतीस स्वर्गों के देवदूतों को भी क्षीण कर देती है।

2 मैं आपसे पूछता हूँ, जो नीले कमलों की माला धारण करती हैं, माथे पर मालाएँ पहनती हैं, जिनकी त्वचा स्वर्णमय है, जो सुशोभित हैं, उत्तम वस्त्र धारण करती हैं: हे सुंदर देवदूत, आप कौन हैं जो मुझे आदर दे रही हैं?

3 आपने अपने पूर्व जन्म में मनुष्य के रूप में कौन सा कर्म किया था? क्या आपने पुण्य कर्मों का दान किया था, या शील का अभ्यास किया था? हे महान ख्यातिप्राप्त, आप किस कर्म के फल से पुनर्जन्म प्राप्त कर रही हैं? हे देवदूत, पूछे जाने पर, समझाएँ कि यह किस कर्म का फल है।"

इस प्रकार बड़े बुजुर्ग द्वारा पूछे जाने पर, देवता (देवदूत) ने समझाया:

4 "हे पूज्यवर, अभी इसी गाँव में आप भिक्षा मांगने हमारे घर आए थे। इसलिए मैंने आपको अत्यंत प्रसन्नता और असीम आनंद के साथ गन्ने का एक छोटा टुकड़ा दिया।

5 और उसके बाद मेरा गन्ना, बहू?' 'मैंने न तो उसे फेंका और न ही खाया। मैंने उसे स्वयं एक संत भिक्षु को दे दिया।'

6 'अब यहाँ अधिकार आपका है या मेरा?' इस प्रकार मेरी सास ने मुझे धिक्कारते हुए कहा। कुर्सी उठाकर उसने मुझे एक प्रहार किया। वहीं से मेरा प्राण समाप्त हो गया और मैं एक देवता (देवदूत) बन गया।

7 यही वह पुण्य कर्म है जो मैंने किया, और मैं स्वयं उस कर्म का सुखद फल भोगता हूँ। मैं देवताओं (देवदूतों) के साथ आनंद लेता हूँ: मुझे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों में आनंद मिलता है।

8 यही वह पुण्य कर्म है जो मैंने किया, और मैं उस कर्म का सुखद फल भोगता हूँ, देवताओं (देवदूतों) के मुखिया द्वारा संरक्षित, तैंतीस (स्वर्ग) द्वारा सुरक्षित, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से सुसज्जित।

9 यही पुण्य का फल है, छोटा नहीं। गन्ने का मेरा दान महान फलदायी है। मैं देवताओं (देवदूतों) के साथ आनंद लेता हूँ; मुझे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों में आनंद मिलता है।

10 यही पुण्य का फल है। पुण्य का, छोटा नहीं। गन्ने के प्रति मेरी आस्था का उपहार महिमा में महान है; देवताओं के मुखिया (देवदूतों) द्वारा संरक्षित, तैंतीस (स्वर्ग) द्वारा संरक्षित, मैं नंदनवन (स्वर्ग) में हजार नेत्रों वाले के समान निवास करता हूँ।

11 हे पूज्यवर, दयालु और बुद्धिमान, मैंने आपके पास आकर आपके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। फिर मैंने आपको प्रसन्नता और असीम आनंद के साथ गन्ने का छोटा टुकड़ा भेंट किया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.3 -------------------------->>>> अगला

3.3 देवमहल (31)
(पल्लंक-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती, जेतवन में निवास कर रहे थे। उसी समय श्रावस्ती में एक गृहस्थ अनुयायी की पुत्री का विवाह उसी नगर के एक अन्य परिवार के पुत्र से हुआ, जो समान वंश और परिस्थितियों का था। वह सौम्य स्वभाव की, नैतिकता में परिपूर्ण, अपने पति का आदर करने वाली, पाँचों नियमों (शील, नैतिकता) का पालन करने वाली और विधिपूर्वक पालन करने वाली (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) पुत्रियों का भी पालन करती थी। बाद में उनकी मृत्यु हो गई और वे तैंतीस (स्वर्ग) में अवतरित हुईं। जैसा कि ऊपर वर्णित है, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना वहाँ गए और उनसे प्रश्न किया:

1 "हे महान महिमा की देवी, आप अनेक रूप धारण करके, रत्नों और सोने से सजे, पुष्पों से अलंकृत, उत्तम दीवान पर विराजमान हैं।

2 और आपकी अप्सराएँ चारों ओर नृत्य करती हैं, गाती हैं और आनंद मनाती हैं। आप देवों की समान मानसिक शक्ति से परिपूर्ण हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेने पर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी इस तेजस्वी महिमा और सुंदरता से सभी दिशाएँ प्रकाशित क्यों होती हैं?"

उसने इन श्लोकों में उसे समझाया:

3 "जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं एक धनी परिवार में बहू थी। मैं क्रोध रहित, अपने पति की आज्ञाकारी, और पाक्षिक व्रत एवं पश्चात्ताप के दिन (उपोसथा, पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) में सजग थी।

4 जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं युवा और निर्दोष थी, और मेरा मन आनंद से परिपूर्ण था। मैंने अपने पति को प्रसन्न किया। दिन-रात मैंने उन्हें प्रसन्न करने के लिए कार्य किया। मैं प्राचीन काल से ही नैतिकता का पालन करने वाली थी।

5 प्राणियों की हत्या न करने वाली, चोर न होने वाली, ब्रह्मचर्य का पालन करने में पूर्णतः पवित्र; शराब न पीने वाली और झूठ न बोलने वाली, मैं प्रशिक्षण के नियमों का पालन करने

वाली थी। 6 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन तथा पाक्षिक व्रतों से सुसंगत एक विशेष दिन, मैंने परमानंदित मन से पाक्षिक व्रत एवं पश्चात्ताप के दिन (उपोसथा, पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया, और मैं नियमों के अनुसार चलने वाली थी।" मैंने अपने हृदय में उत्साह के साथ धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का अनुसरण किया।

7 और इस आर्य (महान) परोपकार का कार्य करते हुए, जो कि गौरवशाली अष्टलोक (उपदेशों) से जुड़ा हुआ है, मैं, जो पूर्व में शुभचिंतक (बुद्ध) की शिष्या थी, फलस्वरूप प्रसन्न, मनमोहक और अपने स्वामी (पति) की आज्ञाकारी थी।

8 क्योंकि मैंने सजीव जगत में ऐसे धार्मिक कर्म किए, इसलिए मुझे विशिष्टता प्राप्त हुई। शरीर के टूटने पर, देवों (देवदूतों) की मानसिक शक्ति (शक्ति) से अगली अवस्था प्राप्त करके, मैंने एक शुभ पुनर्जन्म लिया।

9 एक भव्य, आनंदमय महल में, अप्सराओं के समूह से घिरी हुई, तेजस्वी देवों (देवदूतों) का एक समूह मुझे प्रसन्न करता है, जो दीर्घायु होकर देव-महल में आए हैं।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.4 ------------------------->>>> अगला

3.4 लता का निवास (32)
(लता-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती, जेतवन में निवास कर रहे थे। उस समय श्रावस्ती में रहने वाली एक गृहस्थ अनुयायी की पुत्री, लता, जो एक विद्वान, निपुण और बुद्धिमान कन्या थी, अपने पति के घर गई। वह अपने पति, अपने सास-ससुर को प्रिय थी, उसकी वाणी मधुर थी, वह नौकरों के प्रति दयालु और भली थी, घर के कामकाज को संभालने में सक्षम थी, उसका स्वभाव सौम्य था, वह नैतिकता के पूर्ण अभ्यास में निपुण थी और उदारता में आनंदित रहती थी; वह पांच नियमों (शील, नैतिकता) का पालन करने और व्रत के दिनों (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) के अनुष्ठानों का पालन करने में तत्पर थी। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई और वह महान राजा वेसवना की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लिया (स्वर्ग में)। लेकिन उसका नाम फिर भी लता ही रहा। उसके अलावा उसकी चार अन्य बहनें भी थीं; सज्जा, पवारा, अच्चिमति और सूत। इन पाँचों को देवों के राजा सक्का ने लाया था और उन्हें नर्तकियों के रूप में अपने परिचारिकाओं के पद पर नियुक्त किया था। लेकिन लता अपनी गायन, नृत्य आदि कलाओं में निपुणता के कारण सबकी प्रिय थीं। जब वे सब एकत्रित हुईं तो संगीत में निपुणता को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। वे सब महान राजा वेसवना के पास गईं और उनसे पूछा, "पिताजी, हम में से नृत्य आदि में सर्वश्रेष्ठ कौन है?" उन्होंने कहा, "पुत्रियों, अनोटत्ता झील के किनारे देवों की सभा में जाकर अपना संगीत प्रदर्शन करो। वहाँ तुम्हारी प्रतिभा प्रकट होगी।" उन्होंने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा। वहाँ लता के नृत्य को देखकर देव-युवक अपनी हंसी नहीं रोक पाए। हँसी से लोटपोट, विस्मय से भरे हुए, लगातार तालियाँ बजाते और वस्त्र लहराते हुए उन्होंने ऐसा शोर मचाया कि मानो हेमवंत (हिमालय) कांप उठा। लेकिन जब बाकी लोग नाचने लगे तो वे सर्दी के मौसम में कोयल की तरह चुपचाप बैठे रहे। इस प्रकार सभा में लता की विशेषता स्पष्ट हो गई। तब देव-देवी सूता के मन में यह विचार आया; “अब किस कर्म के कारण इस लता ने हम सब को यश और वैभव में पीछे छोड़ दिया है? आइए, मैं लता के कर्म के बारे में पूछती हूँ।” उसने पूछा। दूसरी ने उसे समझाया कि महान राजा वेसवना ने वही कहानी आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना को तब सुनाई थी जब वे देव-देवी यात्रा पर आए थे। प्रश्न के मूल कारण से भगवान बुद्ध को यह बात बताते हुए, वरिष्ठ ने कहा:

1 "लता, सज्जा, पवारा, अच्चिमति और सूता, हे देवता, हे राजा वेसवना की पुत्रियाँ, हे महान राजा, हे गुणधर्मों से परिपूर्ण।

2 यहाँ पाँचों स्त्रियाँ ठंडे जल में, कमलों से भरी पवित्र नदी में स्नान करने आईं। जब इन देवताओं ने वहाँ स्नान किया, खेला, नृत्य किया और गीत गाए, तो सूता ने लता से कहा:

3 हे नीले कमलों की माला धारण करने वाली, माथे पर माला धारण करने वाली, सुनहरे रंग की त्वचा वाली, गहरे तांबे जैसी आँखों वाली, आकाश के समान चमकने वाली, दीर्घायु, आपकी प्रसिद्धि किस कारण से है?"

4 हे प्रियतम, तुम अपने स्वामी की सबसे प्रिय क्यों हो, सचमुच अत्यंत सुंदर और मनमोहक, नृत्य, गायन और वाद्य संगीत में निपुण क्यों हो? हे पुरुष और स्त्रियों द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर हमें बताओ।

सुता द्वारा पूछे जाने पर लता ने कहा:

5 "जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं एक बहुत ही समृद्ध परिवार में बहू थी। मैं क्रोध रहित, अपने पति की आज्ञाकारी और पाक्षिक व्रतों (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन करने वाली थी।

6 जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं युवा और भोली थी, मेरा मन आनंद से भरा हुआ था, मैंने अपने पति, देवर, सास-ससुर और नौकरों को प्रसन्न किया। इसी से मेरी प्रतिष्ठा बनी।

7 मैंने स्वयं उन धार्मिक कर्मों से चार रूपों में विशिष्टता प्राप्त की है: (दीर्घ) आयु, सौंदर्य, सुख और बल। मैं खूब खेलकूद और आनंद का अनुभव करती हूँ।

8 क्या तुमने सुना है कि यह लता क्या कहती है? हमने जो पूछा, उसने उसका उत्तर दिया। 'पति हम स्त्रियों के लिए सर्वोपरि गंतव्य हैं, वे हमारे लिए महिमामय देवता हैं।

9 हम सभी धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) पर चलकर अपने पति की सेवा करें, जहाँ भी स्त्रियाँ पवित्र पत्नियाँ हों। धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) पर चलने वाली सभी महिलाएं अपने पति की सेवा करती हैं, उन्हें वह सब प्राप्त होगा जिसके विषय में लता ने कहा था।

10 ठीक इसी प्रकार, श्रेष्ठ जनों की एक स्त्री शिष्या, जो विश्वास रखती है, अपने पति पर निर्भर रहती है, अपने स्वामी (पति) के प्रति पवित्र है, क्रोध का नाश करती है, लोभ पर विजय प्राप्त करती है, वह जो धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) पर चलती है, स्वर्ग में आनंदित होती है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.3.5 --------------------------->>>> अगला

3.5 गुट्टिला का महल (33)
(गुट्टिला-विमान)

जब भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में निवास कर रहे थे, तब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जैसा कि ऊपर वर्णित है, देव-यात्रा पर तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में गए। वहाँ उन्होंने क्रमानुसार छत्तीस महलों में छत्तीस देव-कन्याओं को देखा, जिनमें से प्रत्येक एक हजार अप्सराओं के दल के साथ महान देव-आनंद का आनंद ले रही थी। उन्होंने क्रमानुसार ("आप जो असाधारण सुंदरता से सुसज्जित हैं") श्लोकों से उनके द्वारा पहले किए गए (अच्छे) कर्म के बारे में पूछा। उनके प्रश्न के उत्तर में उन्होंने श्लोकों से उत्तर दिया, जिनमें से पहला है: "मैं वह थी जिसने सबसे सुंदर वस्त्र दिए।" तब वरिष्ठ भिक्षु वहाँ से मनुष्यलोक में आए और भगवान (भगवान बुद्ध) को यह कथा सुनाई। यह सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा, "मोग्गलाना, न केवल तुम्हारे द्वारा देवताओं से प्रश्न पूछे गए हैं और उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिए हैं, बल्कि वास्तव में अतीत में मैंने भी उनसे प्रश्न पूछे थे और उन्होंने इसी प्रकार उत्तर दिए थे।" बड़े गुरु के आग्रह पर उन्होंने गुट्टिला का जीवन वृत्तांत सुनाया, जो उनके अपने अतीत की कहानी थी।

1 "मैंने सात तारों वाला वीणा, मधुर और सुरीली ध्वनि उत्पन्न की। कोई मुझे नृत्य मंच पर बुलाता है। कोसिया, मेरी शरण बनो।"

2 "मैं तुम्हारी शरण हूँ। मैं गुरुओं का आदर करने वाला हूँ। शिष्य तुम्हें पराजित नहीं कर सकता; गुरु, तुम शिष्य को पराजित करोगे।"

ऐसा कहा जाता है कि कश्यप (पूर्व बुद्ध) के समय में मनुष्य रूप में विद्यमान छत्तीस स्त्रियों ने अमुक कर्म किए थे। उनमें से एक ने वस्त्र दिए; एक ने चमेली की माला; एक ने इत्र; एक ने उत्तम फल; एक ने गन्ने का रस दिया। एक ने पूर्व बुद्ध के चैत्य (ध्यान कक्ष वाले मंदिर) पर पाँच उंगलियों का इत्र का निशान लगाया; एक ने उपोसथ (पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया; एक ने भोजन के समय भिक्षु को पानी पिलाया; एक ने क्रोधहीन होकर चिड़चिड़े सास-ससुर की सेवा की; एक ने दास की तरह परिश्रम किया; एक ने भिक्षा मांगने वाले भिक्षु को दूध-चावल दिया; एक ने गुड़ दिया; एक ने गन्ने का एक टुकड़ा; एक ने तिम्बारू फल; एक ने मीठा खीरा; एक ने लता का फल; एक ने फरुसक (फूल); एक ने मिट्टी का कोयला दिया; एक ने कमल की जड़ों का एक मुट्ठी भर हिस्सा; एक ने मुट्ठी भर फूल; एक ने कमल की जड़ों का एक गुच्छा; एक ने निम के पत्तों का एक मुट्ठी भर हिस्सा दिया; एक ने खट्टी दलिया दी; एक ने तिल का केक दिया; एक ने कमरबंद दिया; एक ने कंधे का पट्टा दिया; एक ने बैज दिया; एक ने पंखा दिया। एक ताड़ के पत्ते का पंखा; एक मोर पंख का चंवर; एक छाता; एक चप्पल; एक केक; एक मिठाई; एक मीठा केक। वे प्रत्येक हजार अप्सराओं के दल के साथ तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की सेविकाओं के रूप में पुनर्जन्म लेकर आईं। गुरु गुट्टिला द्वारा पूछे जाने पर, उन्होंने बारी-बारी से अपने-अपने अच्छे कर्मों का वर्णन किया।"एक महिला जिसने बेहद खूबसूरत पोशाकें दीं..." से शुरू होकर आगे भी।

3 हे देवदूत, आप अतुलनीय सौंदर्य से परिपूर्ण हैं और समस्त दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं, जैसे कोई दिव्य तारा।

4 आपका सौंदर्य ऐसा क्यों है? आप किस कारण से समस्त दिशाओं को समृद्ध कर रही हैं और आपके द्वारा प्रज्वलित सभी सुखों का उद्‌भव हो रहा है?

5 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपका यह तेजस्वी सौंदर्य ऐसा क्यों है और आपका सौंदर्य समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रहा है?

6 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवदूत ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

7 “जिस स्त्री ने सबसे उत्तम वस्त्र दिए, वह पुरुषों और स्त्रियों में यशस्वी थी। इस प्रकार, जिसने इतनी मनभावन वस्तुएँ दीं, वह एक आकर्षक देवलोक में पहुँची और उसे प्राप्त हुई।

8 मुझ जैसी स्त्री के निवास को देखो। मैं एक अप्सरा हूँ जो इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकती है। मैं हजार अप्सराओं में सबसे यशस्वी हूँ। पुण्य के फल को देखो।

9,10 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है... और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।”

वस्त्र देने वाली स्त्री के इस निवास की तरह, अगले चार निवासों का भी विस्तार किया जाना चाहिए। श्लोक 3-10 को चार बार दोहराया जाना है, जिसमें निम्नलिखित परिवर्तन होंगे: (1) सबसे उत्तम फूल देने वाली स्त्री (2) सबसे उत्तम इत्र देने वाली स्त्री (3) सबसे उत्तम फल देने वाली स्त्री (4) सबसे उत्तम व्यंजन देने वाली स्त्री (सबसे उत्तम वस्त्र देने वाली स्त्री के स्थान पर)।

18 "मैंने भगवान कश्यप (पूर्व बुद्ध) के स्तूप (पवित्र स्मारक) पर पंच उंगलियों का इत्र चिह्न लगाया।"

पंच उंगलियों के इत्र चिह्न के इस भाग का वर्णन करते हुए, अगले चार भागों का भी वर्णन करते हुए श्लोकों को दोहराया जाना चाहिए, लेकिन श्लोक 18 के स्थान पर निम्नलिखित परिवर्तन के साथ:

19 "मैंने भिक्षुओं और भिक्षुणियों को मार्ग पर यात्रा करते देखा। जब मैंने उनसे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना, तो मैंने एक दिन (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) किया..."

20 "जल में खड़े होकर, श्रद्धापूर्वक मैंने एक भिक्षु को जल पिलाया..."

21 एक सास और ससुर, जो चिड़चिड़े, गुस्सैल और कठोर थे, उनकी मैंने निर्दयता से, अपने नैतिक आचरण में सचेत रहते हुए सेवा की..." 22

मैं दूसरों के लिए काम करने वाली, कर्तव्यनिष्ठ दासी, क्रोध रहित, अभिमान रहित, और अपनी कमाई दूसरों के साथ बाँटने वाली थी।

23 इस प्रकार कर्म करके, अच्छे पुनर्जन्म में मुझे आनंद मिलता है।

24 मैंने भिक्षा माँग रहे एक भिक्षु को दूध-चावल दिए, मेरे महल को देखो...

जिस प्रकार दूध-चावल देने वाले के इस महल का विस्तार किया जाना चाहिए, 25 ऐसे महल हैं;

25 मैंने गुड़ दिया... 26

मैंने गन्ने का एक छोटा टुकड़ा दिया...

27 मैंने तिम्बारू फल दिया...

28 मैंने एक मीठा खीरा (कक्करिका) दिया...

29 मैंने एक खीरा (एललुका) दिया...

30 मैंने लता का फल दिया...

31 मैंने फरुसक (फूल) दिया...

32 मैंने हाथों के लिए अग्नि पात्र दिया...

33 मैंने मुट्ठी भर हरी सब्जियां दीं...

34 मैंने मुट्ठी भर छोटे फूल दिए...

35 मैंने कमल की कलियों का एक गुच्छा दिया...

36 मैंने मुट्ठी भर नीम दिया...

37 मैंने आम का दलिया दिया...

38 मैंने खली दी... 39

मैंने कमरबंद दिया...

40 मैंने कंधे का पट्टा दिया... 41

मैंने पट्टी दी ... 42

मैंने पंखा दिया...

43 मैंने ताड़ के पत्ते का पंखा दिया...

44 मैंने मोर पंख का चिराग दिया...

45 मैंने एक छाता दिया...

46 मैंने चप्पलें दीं...

47 मैंने एक केक दिया...

48 मैंने एक मिठाई दी...

49 मैंने भिक्षा मांगने जा रहे एक भिक्षु को एक मीठा केक दिया।

50 मेरे जैसे इस महल को देखो। मैं एक अप्सरा हूँ जो इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकती है, हजार अप्सराओं में सबसे तेजस्वी। पुण्य के फल को देखो।

51 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।

52 "यह मेरा आज का दिन होना सौभाग्य की बात है। शुभ सूर्योदय हुआ, शुभ उदय हुआ, क्योंकि मैंने देवताओं, इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण करने वाली अप्सराओं को देखा है।

53 उनके धर्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के बारे में सुनकर मैं भरपूर धार्मिक कार्य करूंगी। दान देकर, समभाव का अभ्यास करके, आत्म-संयम और मन को वश में करके मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाने वाले शोक नहीं करते।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.3.6 -------------------------->>>> अगला

3.6 तेजस्वी महल (34)
(दद्दलगा-विमान)

भगवान बुद्ध जेतवन के श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। उस समय नालका नामक छोटे से गाँव में, आदरणीय भिक्षु रेवता के एक धनी व्यक्ति की दो पुत्रियाँ थीं। उनमें से एक का नाम भद्दा और दूसरी का नाम सुभद्दा था। भद्दा, जो दोनों में बड़ी थी, अपने पति के घर गई। वह आस्था, सुख और ज्ञान से परिपूर्ण थी, परन्तु बांझ थी। उसने अपने पति से कहा, "मेरी एक छोटी बहन है जिसका नाम सुभद्दा है। उसे ले लो। यदि वह पुत्र को जन्म दे, तो वह मेरा भी पुत्र होगा और हमारी वंश-परंपरा समाप्त नहीं होगी।" उसके पति ने "ठीक है" कहकर सहमति दी और उसकी बात मान ली। भद्दा ने सुभद्दा को सलाह दी, "सुभद्दा, दान देने में आनंद लो और सही मार्ग पर चलने में तत्पर रहो, इससे तुम्हें इस संसार में और आने वाले संसार में भी लाभ होगा।"

एक दिन सुभद्दा ने अपनी बहन की सलाह पर और उसके कहे अनुसार कार्य करते हुए, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु रेवता को अपने साथ सात अन्य लोगों को भोजन पर आमंत्रित किया। वे सब उसके घर गए। प्रसन्न मन से, अपने हाथों से सेवा करते हुए, उसने आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु रेवता और अन्य भिक्षुओं को स्वादिष्ट भोजन, कठोर और नरम, से तृप्त किया। वरिष्ठ भिक्षु ने धन्यवाद दिया और चले गए। इसके बाद सुभद्दा की मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म सृजन में आनंदित होने वाले देवों (देवदूतों) के साथ हुआ। लेकिन भद्दा ने व्यक्तियों में दान देने के कारण, सक्का (देवदूतों के राजा इंद्र) की सेविका के रूप में पुनर्जन्म लिया। अब सुभद्दा अपनी सफलता पर विचार करते हुए आश्चर्यचकित हुई, "अब मैं किस पुण्य कर्म के फल से यहाँ जन्मी हूँ?" उसे अहसास हुआ कि उसने भद्दा की सलाह पर भिक्षु संघ को दान देकर यह उपलब्धि प्राप्त की है, और जब वह सोच रही थी, "अब भद्दा कहाँ है?" तो उसने देखा कि उसका पुनर्जन्म सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की परिचारिका के रूप में हुआ है, और उस पर दया करके वह उसके महल में प्रवेश कर गई। तब भद्दा ने उससे पूछा:

1 "हे तेजस्वी, तुम सौंदर्य और तेज से भरपूर हो, तुम तैंतीस स्वर्गों के सभी देवों (देवदूतों) को भी अपनी सुंदरता से मात देती हो।

2 मुझे तुम्हारा दर्शन याद नहीं है, यह तुम्हारा पहला दर्शन है। तुम किस देवों (देवदूतों) के समूह से यहाँ आई हो और मुझे नाम से पुकार रही हो?"

दो श्लोकों में उत्तर देते हुए उसने समझाया:

3 "मैं भद्दा, पिछले जन्म में सुभद्दा थी। मैं तुम्हारी सहपत्नी और तुम्हारी छोटी बहन थी।

4 शरीर के विखंडन के समय, मैं स्वयं मुक्त होकर वहाँ से सृष्टि में आनंदित होने वाले देवों (देवदूतों) के साथ उत्पन्न हुई।"

भद्दा ने फिर उससे प्रश्न किया:

5 "हे सुंदर प्राणियों, जिन्होंने बहुत से अच्छे कर्म किए हैं, इन देवों (देवदूतों) के पास जाओ, जिनके बीच तुम्हारा जन्म हुआ है, सुभद्दा, तुम इसका बखान करती हो।

6 परन्तु तुम कैसे, किस साधन से, किसके द्वारा प्रेरित होकर, किस प्रकार के दान से, किस उत्तम कर्म से तेजस्वी हो?"

7 हे देवदूत, इतनी प्रसिद्धि और अपार विशिष्टता प्राप्त करके, जब मुझसे पूछा गया, तो बताइए कि यह किस कर्म का फल है?

तब सुभद्दा ने कहा:

8 "प्राचीन काल में मैंने प्रसन्न मन से अपने हाथों से आठ दान दिए थे, जो योग्य संघ को प्राप्त हुए थे।

9 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ-वहाँ समृद्ध होती हूँ और जो भी सुख मुझे प्रिय हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।

10 हे महान महिमावान देवी, मैं आपको बताती हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर मैंने क्या किया था? इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"

तब भद्दा ने पूछा:

11 "मैंने अपने हाथों से, प्रसन्न मन से, आपसे अधिक संयमी और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले भिक्षुओं को भोजन और पेय से संतुष्ट किया।

12 आपसे अधिक देने के बावजूद मैं निम्न वर्ग में आ गया। यह कैसे संभव है कि आपने कम देकर भी इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली? हे देवदूत, जब पूछा जाए तो समझाइए कि यह किस कर्म का फल है। "

तब सुभद्दा ने कहा:

13 "पुराने समय में मैंने एक भिक्षु को देखा, जो मन को प्रेरित करने वाला था। मैंने उसे, रेवता को, और सात अन्य लोगों को भोजन पर आमंत्रित किया।

14 रेवता ने, मेरे कल्याण की चिंता करते हुए और करुणावश मुझसे कहा, 'भिक्षुओं के संघ को दान दें।' मैंने उनकी बात मान ली।

15 भिक्षुओं के संघ को दिया गया वह दान अतुलनीय फलदायी सिद्ध हुआ। व्यक्तियों को दिया गया आपका दान आपके लिए उतना फलदायी नहीं रहा।"

जब सुभद्दा ने ऐसा कहा, तो भद्दा ने अर्थ समझकर और भविष्य में उनका अनुकरण करने की इच्छा रखते हुए यह श्लोक कहा:

16 "अब मैं जान गया हूँ कि संन्यासियों के संघ को दान देना बहुत फलदायी होता है। जब मैं फिर से मनुष्य के रूप में निःसंकोच और उदार बन जाऊँगा, तो मैं संन्यासियों के संघ को बार-बार लगन से दान दूँगा।"

और सुभद्दा अपने देवलोक में चली गईं। तब जब सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने तैंतीस लोकों के सभी देवों से भी अधिक तेजस्वी देव-कन्या को देखा और उन दोनों के बीच की बातचीत सुनी, तो सुभद्दा तुरंत गायब हो गईं। चूंकि उन्हें पता नहीं था कि यह कौन हो सकता है, इसलिए उन्होंने भद्दा से पूछा।

17 "भद्दा, यह कौन सी देवी हैं जिन्होंने आपसे इतनी गंभीरता से बात की? वे तैंतीस स्वर्गों के सभी देवों से अधिक सुंदर हैं।"

तब उन्होंने उनसे कहा:

18 "देवताओं के स्वामी, जब वे पिछले जन्म में मनुष्य के रूप में जन्मी थीं, तब वे मेरी सहपत्नी और मेरी छोटी बहन थीं। भिक्षु संघ को दान देकर वे पुण्य कर्मों से चमक रही हैं।"

तब सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) ने धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन दिया और भिक्षु संघ को दिए गए उनके योग्य दान के महान फल का वर्णन किया।

19 “जो पूर्व में तुम्हारी बहन भद्दा थीं, वे धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के माध्यम से प्रकाशमान हैं, क्योंकि उन्होंने भिक्षु संघ को असीम दान दिया।

20 क्योंकि गिद्ध पर्वत शिखर (गिज्जाकूट) पर मैंने बुद्ध से उदारता के फल के बारे में पूछा, जहाँ दान का बड़ा फल (लाभ) होता है;

21 “मनुष्यों, प्राणियों के लिए, जो पुण्य की आशा में दान देते हैं, जिनके लिए पुण्य पुनर्जन्मों में उपयोगी होता है जहाँ दान का बड़ा फल (लाभ) होता है।

22 तब बुद्ध, जो स्वयं कर्मों के फल (लाभ) और उदारता के फल (लाभ) को जानते थे, जहाँ दान का बड़ा फल (लाभ) होता है, ने मुझे समझाया:

23 'और वे चार हैं जो मार्ग पर हैं और चार इसके फलों में स्थापित हैं। यह भिक्षु संघ धर्मी है और शील (नैतिकता), समाधि (ध्यानमग्न अवस्था) और पन्ना (दिव्य ज्ञान) से युक्त है।

24 हे मनुष्यों, जो पुण्य कमाने की आशा में दान देते हैं, उनके लिए भिक्षु संघ को दिया गया दान पुण्यदायी होता है और जन्म-जन्मों में उपयोगी होता है; यह दान अत्यंत फलदायी होता है।

25 यह भिक्षु संघ व्यापक और विशाल है, सागर के समान असीम है। महान गुरु के शिष्य मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जो धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पाठ करके प्रकाश फैलाते हैं।

26 जो भिक्षु संघ को समर्पित दान देते हैं, उनका दान उचित रूप से दिया गया, उचित रूप से अर्पित किया गया और उचित रूप से बलिदान किया गया होता है। भिक्षु संघ को दिया गया वह दान अत्यंत फलदायी होता है और संसार के ज्ञेयियों द्वारा उसकी प्रशंसा की जाती है।

27 इस प्रकार के पुण्य का स्मरण करते हुए, संसार में आनंदित रहने वाले लोग कंजूसी के कलंक को जड़ से नष्ट करके निर्दोष रूप से स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं। "

सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने यह सारी घटना आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना को बताई और भगवान (बुद्ध) को इसके बारे में बताया। उन्होंने इसे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाने का अवसर बनाया।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.3.7 -------------------------->>>> अगला

3.7 पेशावती का निवास (35) - सारिपुत्त का निर्वाण प्राप्ति
(पेशावती-विमान)

भगवान (बुद्ध) जेतवन के सावत्थी में निवास कर रहे थे। उस समय मगध देश के नालक गाँव में एक धनी गृहस्थ परिवार में पेशावती नाम की एक बहू रहती थी। कथा के अनुसार, जब भगवान कश्यप के लिए एक योजन विशाल स्वर्ण स्तूप (पवित्र स्मारक) बनाया जा रहा था, तब वह छोटी बच्ची अपनी माँ के साथ स्मारक स्थल पर गई और अपनी माँ से पूछा, "माँ, मेरे गले में यह छोटा सा स्वर्ण आभूषण है। मैं इसे चैत्य (मंदिर) को देना चाहती हूँ।" उसकी माँ ने कहा, "ठीक है, दे दो," और बेटी के गले से अंगूठी उतारकर एक सुनार के हाथ में देते हुए कहा, "यह इस लड़की की भेंट है। इसे ईंट बनाते समय उसमें शामिल कर लेना।" सुनार ने वैसा ही किया। बाद

में लड़की की मृत्यु हो गई और उस पुण्य कर्म के कारण, देवलोक में उसका पुनर्जन्म हुआ, और एक के बाद एक अच्छे जन्म लेते हुए, हमारे भगवान (भगवान बुद्ध) के समय में नलका में उसका पुनर्जन्म हुआ। समय बीतने पर वह बारह वर्ष की हो गई।

एक दिन उसकी माँ ने उसे एक काम से भेजा, और वह कुछ पैसे लेकर तेल खरीदने एक दुकान पर गई। दुकान में एक गृहस्थ अपने पिता द्वारा दफनाए गए सिक्कों, सोने, मोतियों, रत्नों और आभूषणों की बड़ी मात्रा को खोदकर निकाल रहा था। दुकानदार ने देखा कि उसके कर्मों के फल के कारण वे कंकड़, चट्टान के छोटे टुकड़े और बजरी के रूप में दिखाई दे रहे थे। फिर उसने उन्हें एक जगह इकट्ठा करके जांचने के लिए रख दिया और मन ही मन कहने लगा, "योग्य लोगों की शक्ति से ये सिक्के, सोना आदि बन जाएंगे।"

लड़की ने यह देखा और कहा, "ये कांसे के सिक्के और रत्न इस तरह ढेर क्यों लगे हैं? इन्हें तो ठीक से रखना चाहिए।" दुकानदार ने यह सुना और सोचा, "यह लड़की सचमुच गुणी है। इसी की वजह से ये सब सोना आदि बन गए हैं और हमारे लिए मूल्यवान होंगे। मैं इसके साथ अच्छा व्यवहार करूंगा।" वह उसकी मां के पास गया और उससे विवाह का प्रस्ताव रखते हुए कहा, "इस लड़की को मेरे बेटे के लिए दे दो।" उसने बहुत धन दिया, विवाह भोज मनाया और लड़की को अपने घर ले आया।

फिर उसके नेक आचरण को देखकर उसने अपना भंडारगृह खोला और पूछा, "यहाँ क्या है?" और जब उसने कहा, "मुझे यहाँ सिक्कों, सोने और रत्नों के सिवा कुछ नहीं दिख रहा है," और जब उसने कहा, "ये हमारे बुरे कर्मों के फल के कारण नष्ट हो रहे थे, लेकिन तुम्हारे उत्तम कर्मों के कारण इनका मूल्य बढ़ गया है, इसलिए अब से इस घर में सब कुछ तुम ही संभालोगी। हम केवल वही उपयोग करेंगे जो तुम हमें दोगी" -

तब से लोग उसे पेशावती के नाम से जानने लगे।

और उस समय आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु, धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के सरदार (सारिपुत्त) को पता चला कि उनके जीवनकाल के सभी कर्म समाप्त हो गए हैं। यह सोचकर कि "मैं अपनी माता, ब्राह्मण स्त्री रूपासरी को उनके भरण-पोषण के लिए धन दूंगा और अंतिम निर्वाण प्राप्त करूंगा," वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें अपने (निकटतम) अंतिम निर्वाण के बारे में बताया, और गुरु (बुद्ध) के आदेश पर एक अद्भुत चमत्कार दिखाया; उन्होंने हजारों स्तुतियों के साथ भगवान (बुद्ध) की प्रशंसा की, और भगवान (बुद्ध) की ओर सीधे मुख करके अपने मार्ग पर चल पड़े, जब तक कि वे उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गए; दृष्टि से ओझल होने पर उन्होंने एक बार फिर प्रणाम किया, और भिक्षुओं के संघ से घिरे हुए मठ से निकल पड़े; उन्होंने भिक्षु संघ को उपदेश दिया, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु आनंद को सांत्वना दी, चारों वर्गों के लोगों को अपने साथ आने से रोका, और उचित समय पर नालक पहुंचे, जहां उन्होंने अपनी माता को सोतपान (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) का फल प्राप्त कराया और भोर में उसी भीतरी कक्ष में अंतिम निर्वाण प्राप्त किया जहां उनका जन्म हुआ था। तब देवदूतों और मनुष्यों ने सात दिन उनके पार्थिव शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने अगरबत्ती, चंदन और इसी प्रकार की सामग्री से सौ हाथ ऊंची चिता बनाई।

पेशावती ने भी वरिष्ठ भिक्षु के अंतिम निर्वाण के बारे में सुनकर कहा, "मैं उनका सम्मान करूंगी।" उन्होंने सोने के फूलों और सुगंधित वस्तुओं से भरे ताबूत मंगवाए और जाने की इच्छा से अपने ससुर से अनुमति मांगी। यद्यपि उन्होंने उससे कहा, “तुम गर्भवती हो और वहाँ लोगों की भीड़ है, अपने फूल और इत्र भेजो और यहीं रहो,” फिर भी आस्था से परिपूर्ण होकर उसने सोचा, “यद्यपि वहाँ मेरे जीवन को खतरा हो, मैं जाऊंगी और सम्मान समारोह संपन्न करूंगी।” और उनकी सलाह न मानते हुए वह अपनी सेविकाओं के साथ वहाँ गई, इत्र और फूलों से सम्मान अर्पित किया और भक्ति भाव से हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

उसी समय, बुजुर्ग को सम्मान देने आए राजकवि का एक मदमस्त हाथी वहाँ आ गया। जैसे ही लोगों ने उसे देखा और मृत्यु के भय से भागने लगे, भीड़ ने पेसावती को कुचल दिया, जो लोगों की भीड़ में गिर गई थी। उसने सम्मान समारोह संपन्न किया था, और बुजुर्ग में आस्था और आनंदित मन से मृत्यु को प्राप्त हुई, और तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। अपनी सफलता का आकलन करते हुए और उसके कारण का अनुमान लगाते हुए, उन्होंने पाया कि यह गुरु को दिया जाने वाला सम्मान समारोह था, और तीन रत्नों (बौद्ध त्रिमूर्ति,

बुद्ध, धम्म और भिक्षुओं का संघ) में आनंदित मन से वे अपने निवास स्थान से गुरु (बुद्ध) का आदर करने आईं, वहां से उतरीं और भक्ति भाव से हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं।

उस समय भगवान बुद्ध के निकट बैठे आदरणीय भिक्षु वंगीसा ने कहा, "हे भगवान बुद्ध, मैं इस देवदूत से उसके पुण्य कर्म के बारे में प्रश्न करना चाहता हूँ।" "ऐसा ही करो वंगीसा," भगवान बुद्ध ने कहा। तब आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु वंगीसा ने सर्वप्रथम उनके महल की प्रशंसा करते हुए कहा:

1 "क्रिस्टल चांदी और सोने की चमक से परिपूर्ण, अनेक रंगों से सुशोभित, यह सुंदर महल मुझे दिखाई देता है, एक रमणीय, सुगठित निवास, मेहराबों से सुसज्जित, सुनहरी रेत से सजा हुआ।

2 और जैसे शरद ऋतु में हजार किरणों वाला सूर्य अंधकार को दूर करते हुए दस दिशाओं में आकाश में चमकता है, वैसे ही आपका यह महल रात में धधकती हुई आग की तरह उच्चतम स्वर्ग में जगमगाता है।

3 यह आकाश में स्थापित बिजली की तरह आंखों को चकाचौंध कर देता है, मानो मोहक हो। वीणा, ढोल और झांझ की ध्वनि से गूंजता हुआ, इंद्र के नगर के समान भव्य है आपका यह महल। 4

यहां लाल, सफेद और नीले कमल हैं, योधिका, गंडिका और अनोजका, खिलते हुए साल के वृक्ष और फूलदार अशोक के वृक्ष हैं। यह अनेक उत्कृष्ट वृक्षों की मनमोहक सुगंध से भरा हुआ है।

5 सलाला, लबुजा और भुजका से, खजूर के पेड़ों पर लटकती लताओं से, रत्नों जैसे कमलों से लदे फूलों से, हे तेजस्वी, आपके लिए एक रमणीय कमल-कुंड प्रकट होता है।

6 जल में उगने वाले सभी फूल, भूमि पर उगने वाले सभी प्रकार के वृक्ष, चाहे वे मनुष्य के हों, प्राणी के हों या देवदूत के, सभी आपके निवास में उगते हैं।

7 यह किस आत्मसंयम और मन के वशीकरण का परिणाम है? आप किस कर्म के फल से यहाँ अवतरित हुई हैं? आपने यह महल कैसे प्राप्त किया? पूरी कहानी बताइए, घनी पलकों वाली देवी।

8 "और मैंने यह महल कैसे प्राप्त किया, जो बगुले, मोर और तीतरों के झुंडों से आबाद है, देवदूतों जैसे बत्तखों और लाल हंसों के राजाओं से भरा है, धूसर हंसों और कोयल की चहचहाहट से गूंजता है,

9 अनेक खिले हुए वृक्षों से भरा है जिनकी शाखाएँ फैली हुई हैं, तुरही के फूल, गुलाब-सेब और अशोक के वृक्ष बहुतायत में हैं—मैंने यह महल कैसे प्राप्त किया, यह मैं आपको बताऊँगी। सुनिए, आदरणीय महोदय।

10 आदरणीय महोदय, गौरवशाली पूर्वी मगध में नलका नामक एक गाँव था। पूर्व में मैं वहाँ बहू थी। वहाँ लोग मुझे पेशावती के नाम से जानते थे।

11 मैंने स्वयं प्रसन्न होकर वहाँ उस महान व्यक्ति पर फूल बिखेरे, जिसे देवदूतों और मनुष्यों ने उसके धार्मिक धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के लिए सम्मानित किया था, उस असीम उपतिस्सा (सारिपुत्त) पर, जो गुजर चुका था।

12 और मैंने उस महान द्रष्टा का सम्मान किया जो सर्वोच्च स्थान (निर्वाण) पर चला गया था, हे महान द्रष्टा, अपना अंतिम शरीर धारण करके, अपने मानव शरीर को त्यागकर, तैंतीसवें (स्वर्ग) में आकर, मैं यहाँ इस स्थान पर निवास करता हूँ ।

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.8 ------------------------->>>> अगला

3.8 मल्लिका का महल (36)
(मल्लिका-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध), जगत के शरणस्थल, ने धम्म के चक्र (शाश्वत सत्य का मार्ग) को गतिमान करने से लेकर धार्मिक यात्री सुभद्दा को उपदेश देने तक अपने बुद्ध कर्तव्य को पूरा किया; विशाखा माह की पूर्णिमा की रात को भोर होते हुए, कुसिनारा में मल्ल राजाओं के उपवत्तना स्थित साल के उपवन में दो साल के वृक्षों के बीच, निर्वाण की अवस्था में पूर्णतः विलीन हो गए, जिसका कोई आधार नहीं होता। जब देव और मनुष्य उनके शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे, कुसिनारा की एक गृहस्थ अनुयायी, मल्ल राजाओं के वंश की बंधुल की पत्नी मल्लिका ने श्रद्धापूर्वक और प्रसन्नता से अपने लता आभूषणों के समूह को, जो महान गृहस्थ अनुयायी विशाखा के आभूषणों के समान था, सुगंधित जल से धोया, उसे एक महीन कपड़े से चमकाया और अन्य कई वस्तुएँ, जैसे इत्र, मालाएँ आदि लेकर भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर को श्रद्धांजलि अर्पित की।

यह यहाँ एक संक्षिप्त विवरण है, लेकिन मल्लिका की कहानी धम्मपद की टीका में विस्तार से वर्णित है।

इसके बाद मल्लिका की मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ। क्योंकि उन्होंने इतनी श्रद्धा अर्पित की थी, इसलिए उन्हें अतुलनीय देवीय आनंद प्राप्त हुआ। उनके वस्त्र, आभूषण और महल, सात रत्नों से जगमगाते हुए, शुद्धतम सोने की चमक से परिपूर्ण थे, जिससे सभी दिशाएँ स्वर्ण रंग की हो गईं, मानो उन पर स्वर्णमय आभा की बौछार हो रही हो।

अब पूज्य वृहत्तर भिक्षु नारद, जो देवों के बीच विचरण कर रहे थे, ने उन्हें देखा और उनके पास गए। उन्होंने आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और भक्ति भाव से हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं। उसने उससे प्रश्न किया:

1 "सुनहरे पीले वस्त्र और ध्वज वाली, सुनहरे पीले आभूषणों से सजी, सुनहरे पीले रंग के सुंदर ऊपरी वस्त्रों से सुशोभित, तुम इन आभूषणों के बिना भी चमकती हो।

2 तुम कौन हो जो चूड़ियाँ और कंगन पहनती हो और सोने के मुकुटों से सुशोभित हो, सुनहरे जाल से ढकी हो, अनेक रत्नों की मालाओं से सजी हो?

3 सोने और माणिक, मोतियों और बेरी से बनी वस्तुएँ, बिल्ली की आँख जैसे रत्न और माणिक, कबूतर की आँख के समान स्पष्ट रत्नों से जगमगाती हुई?

4 यहाँ मोर की प्यारी आवाज है, यहाँ लाल हंसों के राजा की, और यहाँ कोयल की मीठी आवाज—उनका मधुर गीत ऐसा सुनाई देता है मानो पाँचों वाद्ययंत्रों का संगीत बज रहा हो।

5 और तुम्हारा सुंदर रथ चमकता है, सुंदर, अनेक रत्नों से जड़ा हुआ, अपने विभिन्न रूपों के भागों में सुगठित।

6 तुम जिसका रूप एक हे स्वर्ण प्रतिमा, जो इस रथ में विराजमान होकर इस स्थान पर अपनी चमक बिखेरती हो, हे देवता (देवदूत), जब तुमसे पूछा जाए, तो बताओ कि यह किस कर्म का फल है?

और उसने उत्तर दिया:

7 “रत्नों और सोने से जगमगाता, मोतियों से भरा, सोने के जाल से ढका हुआ एक सुनहरा जाल, मैंने परमानंद की अवस्था में गौतम (बुद्ध), असीम दिव्यलोक (निब्बान) के पूर्णतः निर्वाण (मृत्यु) होने पर भेंट किया।

8 बुद्ध द्वारा सराहे गए उस धर्म कर्म को करने के बाद, मैं दु:खरहित, सुखी और स्वस्थ होकर प्रसन्न हूँ।”

और सभा के समय, पूज्य नारद भिक्षु ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का संकलन करने वालों को यह बात ठीक उसी प्रकार सुनाई, जैसे उन्होंने और देवदूत ने कही थी, और संकलनकर्ताओं ने इसे उसी रूप में संग्रहों में जोड़ दिया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु3.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.9 ------------------------->>>> अगला

3.9 विशालाक्खी का महल (37)
(विसालक्खी-विमान)

भगवान बुद्ध के अंतिम निर्वाण के बाद, जब राजा अजातसत्तु ने राजगृह में अपने हिस्से के अवशेषों पर एक विशाल स्तूप बनवाया और सम्मान समारोह आयोजित किया, तो माला चढ़ाने वाले की पुत्री सुनंदा, एक गृहस्थ अनुयायी, एक आर्य (कुलीन) शिष्या और एक जलप्रवेश करने वाली, तीनों ने चैत्य (मंदिर) पर सुगंधित मालाएँ भेजीं और उपोसथ (पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) के दिनों में स्वयं श्रद्धांजलि अर्पित करने गईं। बाद में उनकी मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म सक्का (देवदूतों के राजा इंद्र) की परिचारिका के रूप में हुआ। एक दिन जब इंद्र चित्तलता वन (स्वर्ग) में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने उन्हें वहाँ चारों ओर की चमक से अप्रभावित खड़े देखा। और उसने उससे कारण पूछा:

1 "हे विशाल नेत्रों वाली, तुम इस रमणीय चित्तलता वन में कौन हो, जो अपने चारों ओर स्त्रियों के समूह का नेतृत्व करते हुए इधर-उधर विचरण करती हो?

2 जब तैंतीस लोकों के देव (देवदूत) अपने घोड़ों और रथों के साथ इस वन में प्रवेश करते हैं, तो उनका सारा तेज फैल जाता है।

3 परन्तु तुम जो यहाँ आनंद में विचरण करते हुए आई हो, तुम्हारे शरीर पर कोई चमक नहीं दिखाई देती। तुम्हारा रूप ऐसा क्यों है? हे देवदूत, जब पूछा जाए, तो बताओ कि यह किस कर्म का फल है?"

सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) द्वारा पूछे जाने पर, इस देवता ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

4 "हे देवदूतों के स्वामी, जिस कर्म से मुझे ये रूप, ये गंतव्य, ये समृद्धि और ये महिमा प्राप्त हुई है—हे उदार दाता, इसे सुनिए।

5 रमणीय राजगृह में मैं सुनंदा नाम की एक गृहस्थ अनुयायी थी। मैं विश्वास रखती थी, नैतिकता का पालन करती थी और सदा उदारता में प्रसन्न रहती थी।

6 मैंने धर्मात्मा लोगों को वस्त्र, भोजन, आवास और प्रकाश दिया।

7 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन और पखवाड़े के एक विशेष दिन, जो अष्टांगिक नियमों से भलीभांति जुड़ा हुआ था, मैंने उपोसथ (उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया, सदा नैतिकता का पालन करते हुए।

8 प्राणियों की हत्या से परहेज करते हुए, झूठ बोलने, चोरी करने, व्यभिचार करने और शराब पीने से परहेज किया। शराब से दूर रहकर,

9 पाँच नियमों का पालन करते हुए, आर्य सत्यों में निपुण होकर, मैं गौतम (बुद्ध) की एक गृहस्थ अनुयायी थी, दूरदर्शी और विख्यात।

10 मेरे एक रिश्तेदार का घर था, जहाँ से वे हमेशा मेरे लिए मालाएँ लाते थे। मैं उन सभी को भगवान के स्तूप पर अर्पित करती थी।

11 व्रत के दिनों में (उपोसथ, उपवास और पश्चात्ताप करते हुए), मैं खुशी-खुशी अपने हाथों से स्तूप पर मालाएँ, इत्र और मलहम अर्पित करती थी।

12 हे देवों के स्वामी, मेरे इस कर्म के कारण ही मेरा स्वरूप, मेरा भाग्य, मेरी समृद्धि और मेरी महिमा है।

13 उस (कर्म) के लिए, जब मैं नैतिकता (शील) का अभ्यास कर रहा था, उसका फल अभी आना बाकी है। और हे देवों (देवदूतों) के स्वामी, मेरी आशा है कि मैं एक बार लौटकर आऊं।

और सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) ने यह बात आदरणीय भिक्षु वंगीसा को बताई। और वंगीसा ने सभा के समय यह बात उन महान भिक्षुओं को बताई जो धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का संकलन कर रहे थे, और उन्होंने इसे बिना किसी बदलाव के संग्रह में जोड़ दिया।
त्रिपिटक >> सूत्र पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 3.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.3.10 ------------------------->>>> अगला

3.10 मूंगा वृक्ष का महल (38)
(परिच्छत्तक-विमान)

भगवान (बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। एक धर्मनिष्ठ गृहस्थ अनुयायी ने अपने घर में भगवान (बुद्ध) का बड़े आदर के साथ स्वागत किया। तभी घने जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठा कर रही एक स्त्री ने एक अशोक वृक्ष को फूलों से लदा देखा। उसने फूलों की टहनियाँ इकट्ठा कीं और उन्हें भगवान (बुद्ध) के चारों ओर बिखेर दिया, उन्हें प्रणाम किया और चली गई। बाद में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ, जहाँ उसने अपनी नृत्य करती अप्सराओं के साथ नंदनवन (स्वर्ग) में मूंगा वृक्ष का उत्सव मनाया। उन्हें भी आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने देखा और उनसे इस प्रकार पूछा:

1 "मूंगा और आबनूस के वृक्षों के फूलों से, मनमोहक और आनंददायक, देवदूतों के समान मालाएँ धारण करके और गाते हुए, आप आनंदित होती हैं।

2 जब आप अपने सभी अंगों से हर तरह से नृत्य करती हैं, तो देवदूतों के समान मधुर ध्वनियाँ प्रवाहित होती हैं, जो सुनने में आनंददायक होती हैं।

3 जब आप अपने सभी अंगों से हर तरह से नृत्य करती हैं, तो देवदूतों के समान मधुर सुगंध चारों ओर फैलती है, जो आनंददायक होती है।

4 जब आप अपने शरीर को झुलाती हैं, तो आपकी गुंथी हुई बालों में लगी आभूषणों की ध्वनि पंच वाद्ययंत्रों के संगीत की तरह सुनाई देती है।

5 हवा में लहराते हुए, कांपते हुए कान के झुमके - इनकी ध्वनि पंच वाद्ययंत्रों के संगीत की तरह सुनाई देती है।

6 और आपके सिर पर उन मधुर सुगंध वाली, आनंददायक मालाओं की सुगंध मंजुसाका वृक्ष की तरह सभी दिशाओं में फैलती है।

7 जब आप उस मधुर सुगंध को साँस लेती हैं, तो आपको अलौकिक अनुभव होता है।" सौंदर्य। हे देवता (देवदूत), जब पूछा जाए तो बताइए कि यह किस कर्म का फल है?

तब देवता (देवदूत) ने समझाया:

8 "मैंने बुद्ध को अशोक के फूलों की माला अर्पित की, जो अग्निमय, तेजस्वी और सुंदर सुगंध वाली थीं।

9 बुद्ध द्वारा सराहे गए इस धार्मिक कर्म को करने के बाद, मैं दु:ख रहित, सुखी और स्वस्थ होकर आनंदित हूं।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.4.1 ------------------------->>>> अगला

4.1 लाल रंग का महल (39)
(मंजित्थक-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में निवास कर रहे थे। जब पिछले महल में वर्णित तरीके से उनका सत्कार किया जा रहा था, तब एक घर की एक सेविका ने घने जंगल में खिले हुए साल के पेड़ से फूल तोड़े, उन्हें छाल के टुकड़ों पर पिरोकर गुलदस्ते बनाए, और फिर गिरे हुए चुनिंदा फूलों की एक बड़ी मात्रा एकत्र करके नगर में प्रवेश किया। उसने भगवान बुद्ध को मंडप में बैठे देखा और आनंदित मन से, फूलों से उनका सम्मान करते हुए, गुलदस्तों को उनकी सीट के चारों ओर रखा, अन्य फूलों को बिखेरा, उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया, उनके चारों ओर तीन बार परिक्रमा की और अपने मार्ग पर चली गई। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ। वहाँ उसके लिए लाल क्रिस्टल से बना एक महल था और उसके सामने एक विशाल साल का वन था, जिसकी भूमि सुनहरी रेत से ढकी हुई थी। जब देवी (परी) बाहर निकली और साल के वन में प्रवेश किया, तो डालियाँ झुक गईं और उस पर फूल बिखेर दिए। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने ऊपर वर्णित अनुसार उनके पास आकर उनसे प्रश्न किया:

1 "सुनहरी रेत से सजे लाल रंग के महल में, आप मधुर ध्वनि वाले पंचांग संगीत का आनंद ले रही हैं।

2 रत्नों से निर्मित उस भव्य महल से उतरकर, आप एक सदा खिले रहने वाले साल के उपवन में प्रवेश करती हैं।

3 हे देवता, जहाँ आप खड़ी हैं, प्रत्येक साल के वृक्ष की जड़ में, वह भव्य वृक्ष झुककर अपने फूल गिराता है।

4 पक्षियों से आच्छादित, हवा से लहराते और फैलते साल के उपवन की सुगंध मंजुसाक वृक्ष की तरह सभी दिशाओं में बहती है।

5 आप उस शुद्ध सुगंध को ग्रहण करती हैं, आपको अलौकिक सौंदर्य दिखाई देता है। हे देवता, पूछे जाने पर, बताइए कि यह किस कर्म का फल है।"

जब बड़े ने मुझसे प्रश्न किया तो देवदूत ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

6 "जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुई, तो मैं अपने पति के घर में एक दासी थी। बुद्ध को बैठे हुए देखकर मैंने उनके चारों ओर साल के फूल बरसाए।

7 और मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से बुद्ध को साल के फूलों से बनी एक सुंदर माला भेंट की।

8 बुद्ध द्वारा सराहे गए इस पुण्य कर्म को करने के बाद, मैं बिना किसी दुःख के प्रसन्न और स्वस्थ हूँ।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.2 -------------------------->>>> अगला

4.2 प्रकाशमान भवन (40)
(पभासार-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय राजगृह में एक गृहस्थ अनुयायी रहता था, जो महामोग्गलाना में श्रद्धा रखता था। उसकी एक पुत्री भी श्रद्धा और आनंद से महामोग्गलाना का आदर करती थी। एक दिन आदरणीय महामोग्गलाना राजगृह में भिक्षा माँगते हुए उस घर में आए। उन्हें देखकर पुत्री प्रसन्न हुई, उसने एक आसन तैयार करवाया और जब महामोग्गलाना वहाँ बैठे तो उसने उन्हें चमेली की माला पहनाई और उनके कटोरे में गुड़ भर दिया। धन्यवाद देते हुए महामोग्गलाना बैठे रहे। पुत्री ने कहा कि गृहकार्य के कारण उसके पास सुनने का समय नहीं है, इसलिए उसने कहा, "मैं धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) किसी और दिन सुनूँगी," उसने महामोग्गलाना को प्रणाम किया और उनसे विदा ली। और उसी दिन उनका निधन हो गया और वे तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर लौटीं। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना उनके पास आए और उनसे इन श्लोकों में प्रश्न किया:

1 "हे तेजस्वी सौंदर्य की देवी, उत्कृष्ट, चमकीले वस्त्रों से सजी, जिनकी मानसिक शक्ति महान है, जिनके अंग चंदन से मढ़े हुए प्रतीत होते हैं - हे सुंदर देवता, आप कौन हैं जो मुझे आदर देती हैं?

2 और आपका बहुमूल्य दीवान अनेक रत्नों से जड़ा हुआ है, चमकता हुआ, जिस पर आप विराजमान होकर नंदनवन में देवों के राजा के समान प्रकाशमान होती हैं।

3 हे सुंदर, आपने पूर्व में कौन सा अच्छा आचरण किया था? आप किस कर्म का फल देवलोक में भोग रही हैं? हे देवता, पूछे जाने पर बताइए कि यह किस कर्म का फल है।"

जब बड़े ने इस प्रकार प्रश्न किया, तो देवता (देवदूत) ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

4 "जब आप भिक्षा मांगने जा रहे थे, तब मैंने आपको एक माला और गुड़ दिया था, आदरणीय महोदय। यह उस कर्म का फल है जिसका आनंद मैं देवलोक में ले रहा हूँ।

5 परन्तु मुझे पश्चाताप है, क्योंकि मैंने एक अपराध किया है, आदरणीय महोदय। मैंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पालन नहीं किया, जिसका उपदेश धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) ने भली-भांति दिया है।

6 इसलिए मैं कहता हूँ, 'आप पर कृपा हो। जो कोई मुझ पर दया करे, वह मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के उपदेशों में प्रेरित करे।

7 जो कोई बुद्ध और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और भिक्षु संघ के रत्न में विश्वास रखता है, वह दीर्घकाल, यश और तेज में मुझसे कहीं अधिक तेजस्वी है; ये अन्य देवता (देवदूत) वैभव और सौंदर्य में मुझसे श्रेष्ठ हैं, और उनकी मानसिक शक्ति मुझसे कहीं अधिक है। मुझसे अधिक सामर्थ्य (शक्ति) रखने वाला व्यक्ति।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.3 -------------------------->>>> अगला

4.3 हाथी का महल (41)
(नाग-विमान)

भगवान (बुद्ध) बरनासी के पास इसिपताना में हिरण अभयारण्य में निवास कर रहे थे। उस समय बरनासी में रहने वाली एक गृहस्थ अनुयायी, जो परमानंद से परिपूर्ण आस्था रखती थी और शील (नैतिकता) का पालन करती थी, ने भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्रों का एक जोड़ा बुनवाया और उसे अच्छी तरह से धुलाया। पास आकर उसने उन्हें भगवान (बुद्ध) के चरणों में रखा और इस प्रकार कहा, "हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) दयापूर्वक इन वस्त्रों को स्वीकार करें, ताकि ये उनके कल्याण और सुख के लिए बने रहें।" भगवान (बुद्ध) ने उन्हें स्वीकार किया और उनकी योग्यताओं को समझते हुए उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया। अंत में, उन्होंने सोतपान (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) का फल प्राप्त किया, श्रद्धापूर्वक भगवान बुद्ध का अभिवादन किया, उनके चारों ओर विधिपूर्वक परिक्रमा की और घर लौट गईं। इसके तुरंत बाद उनका निधन हो गया, और वे तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) की प्रिय बन गईं, जिनका नाम यसुत्तरा था। उनके पुण्य कर्म के फल से एक भव्य हाथी प्रकट हुआ, जो सोने के जाल से ढका हुआ था; उसकी पीठ पर रत्नों का एक मंडप बना, और उसके भीतर एक सुंदर रत्नमय पलंग था; और उसके दो दांतों में कमल और कमलों से जगमगाते दो सुंदर कमल कुंड प्रकट हुए। वहाँ, कमल की पंखुड़ी पर खड़ी देवियाँ पाँच प्रकार के वाद्ययंत्रों को धारण किए नृत्य और गायन कर रही थीं।

भगवान बुद्ध ने अपनी इच्छा अनुसार बरसी में निवास किया और फिर सावती की यात्रा पर निकल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जेतवन में निवास किया। अब वह देवी (परी) अपने आनंद और उसके कारण का चिंतन करते हुए यह बोध कर बैठीं कि "इसका कारण गुरु (बुद्ध) को दिया गया वह वरदान है", और प्रसन्नता, आस्था और श्रद्धा से परिपूर्ण होकर वे अपने तेजस्वी हाथी पर सवार होकर आकाश से आईं, जब रात काफी ढल चुकी थी, वहाँ से उतरीं, अपने हाथ जोड़कर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उनके निकट खड़ी हो गईं। आदरणीय भिक्षु वांगिसा ने भगवान बुद्ध की स्वीकृति से उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:

1 "रत्नों और सोने से सजे एक भव्य हाथी पर सवार, सुंदर ढंग से सुसज्जित, सोने के जाल से ढकी हुई, आप आकाश में मध्य में प्रकट हुई हैं।

2 हाथी के दो दांतों पर पूर्ण रूप से खिले हुए निर्मल कमल के तालाब बने हैं; कमलों के बीच संगीत की धुनें फूट रही हैं, और ये मनमोहक नृत्य कर रही हैं।

3 हे महान महिमावान, आपने देवदूतों जैसी मानसिक शक्ति प्राप्त कर ली है। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

इस प्रकार पूछे जाने पर, देवदूत ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

4 "बरानासी जाकर मैंने बुद्ध को वस्त्र भेंट किए; उनके चरणों को प्रणाम करके मैं जमीन पर बैठ गया। प्रसन्न होकर मैंने अपने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

5 और स्वर्णमय त्वचा वाले बुद्ध ने मुझे उत्पत्ति, दुख (जो क्षणिक हैं), शाश्वत, अपरिवर्तनशील और दुखों के निवारण का ज्ञान दिया; उन्होंने मुझे वह मार्ग सिखाया जिससे मैं जान सकूँ।

6 मेरा जीवनकाल अल्प था, मैं मर गया; वहाँ से मृत्यु को प्राप्त करके, तैंतीस (स्वर्ग) के साथ प्रसिद्ध होकर, मैं सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) का संगिनी हूँ, मेरा नाम यसुत्तरा है, और मैं सभी दिशाओं में प्रसिद्ध हूँ।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.4.4 ------------------------->>>> अगला

4.4 अलोमा का निवास (42)
(अलोमा-विमान)

जब भगवान बुद्ध बरनासी के पास इसिपताना में हिरण अभयारण्य में निवास कर रहे थे, तब वे भिक्षा मांगने के लिए बरनासी में प्रवेश कर गए। वहाँ अलोमा नामक एक निर्धन स्त्री ने उन्हें देखा और श्रद्धा और आनंद से भरी हुई, तथा दान करने के लिए कुछ और न देखकर, उसने सोचा, "भगवान बुद्ध को यह दान देना मेरे लिए भी बहुत फलदायी होगा", और उसने कुटी हुई, बिना नमक वाली, सूखी कुम्मासा भेंट की। भगवान बुद्ध ने उसे स्वीकार कर लिया। उस दान के कारण उस स्त्री को आनंद का अनुभव हुआ। बाद में उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म हुई। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे पूछा:

1 "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर हैं और सभी दिशाओं को उपचार करने वाले तारे के समान प्रकाशित कर रही हैं।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप किस कारण से सभी को समृद्ध कर रही हैं और आपके हृदय को प्रिय आनंद किस कारण उत्पन्न हो रहे हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रही है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्नों से प्रसन्न होकर उस देवी ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "बरानासी में, श्रद्धा और आनंद के साथ, मैंने सूर्य के सगे बुद्ध को अपने हाथों से सूखा कुम्मासा दान किया।

6 कुम्मासा के सूखे, बिना नमक वाले दान का फल देखो। अलोमा को प्रसन्न देखकर कौन पुण्य नहीं करेगा?

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध हूँ, और वहाँ वे सभी आनंद उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

8 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको बताता हूँ कि मैंने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर क्या पुण्य कर्म किए। इसी कारण मेरा तेज ऐसा है और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- I.4.5 ------------------------->>>> अगला

4.5 चावल की दलिया देने वाले का महल (43)
(कनजिकदायिका-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) अंधकविन्द में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (भगवान बुद्ध) के पेट में वात रोग उत्पन्न हो गया। भगवान (भगवान बुद्ध) ने आदरणीय भिक्षु आनंद से कहा, "आनंद, जब तुम भिक्षा लेकर लौट आओ, तो मेरे लिए थोड़ी खट्टी चावल की दलिया औषधि के रूप में ले आना।" "मैं ऐसा ही करूँगा, आदरणीय," उन्होंने प्रतिज्ञा की और महान राजाओं द्वारा दिए गए कटोरे को लेकर अपने सेवक चिकित्सक के घर के द्वार पर खड़े हो गए। चिकित्सक की पत्नी ने उन्हें देखा, उनसे मिलने बाहर आईं, उनका अभिवादन किया, कटोरा लिया और भिक्षु से पूछा, "आपको किस प्रकार की औषधि चाहिए, आदरणीय?" आप देखिए, वह एक बुद्धिमान स्त्री थीं और उन्होंने यह जान लिया, "बुद्ध यहाँ दवा लेने आते हैं, भोजन के लिए नहीं।" जब उन्होंने "चावल की दलिया" माँगी, तो उन्होंने सोचा, "यह दवा मेरे स्वामी के लिए नहीं है; वास्तव में यह कटोरा भगवान बुद्ध का ही है। चलिए, मैं जगत के रक्षक के लिए उपयुक्त दलिया लाती हूँ।" प्रसन्नता और श्रद्धा से भरकर उन्होंने बेर के रस से दलिया तैयार की, कटोरा भरा और साथ में अन्य भोजन भी तैयार करके उन्हें भेजा। उस भोजन के सेवन से भगवान बुद्ध का रोग ठीक हो गया। बाद में उस स्त्री का निधन हो गया, वे तैंतीस (स्वर्ग) में जा पहुँचीं और परम देव-आनंद का आनंद लेते हुए प्रसन्न रहीं। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:

1 "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर हैं और सभी दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं, जैसे कोई दिव्य तारा।

2 आपकी सुंदरता का ऐसा कारण क्या है? आप किस कारण से सभी को समृद्ध कर रही हैं और आपके हृदय को प्रिय कौन-से आनंद उत्पन्न हो रहे हैं?

3 हे महान महिमावान देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा का ऐसा कारण क्या है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रही है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवी ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "अंधकविन्द में मैंने सूर्य के सगे बुद्ध को जुज्बे से पका हुआ, तेल से सुगंधित दलिया दिया,

6 जिसमें काली मिर्च, लहसुन और लामज्जक मिलाया गया था— मैंने इसे धर्मात्मा से सीधे (धर्मी) को दिया।

7 जो स्त्री चक्र चलाने वाले राजा की संगिनी बनेगी, जो हर अंग से सुंदर और अपने स्वामी की दृष्टि में आकर्षक होगी—(वह भी) इस दलिया के सोलहवें भाग के बराबर नहीं है।

8 सौ निक्खाएँ, सौ घोड़े, सौ खच्चरों द्वारा खींचे जाने वाले रथ, एक लाख कन्याएँ जो रत्नजड़ित झुमके पहने हों—(वे भी) इस दलिया के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हैं।"

9. सौ हिमालयी हाथी जिनके दांत रथ के खंभों के समान हों, भारी-भरकम और राजसी हाथी जो सोने के कवच और अलंकरणों से सजे हों—(वे भी) इस चावल के दलिया के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

10. हो सकता है कि जो यहाँ चारों महाद्वीपों पर शासन करे, वह भी इस चावल के दलिया के सोलहवें भाग के बराबर न हो।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.6 --------------------------->>>> अगला

4.6 मठ हवेली (44)
(विहार-विमान)

भगवान बुद्ध जेतवन के श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। उस समय विशाखा, जो एक महान गृहस्थ अनुयायी थीं, को उनके मित्रों और परिचारिकाओं ने एक विशेष पर्व के दिन उद्यान की सैर करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने स्नान और अभिषेक करके अच्छा भोजन किया, अपने आभूषणों का पूरा सेट पहना और पाँच सौ सहेलियों के साथ भव्य समारोह में अपने घर से प्रस्थान किया। उद्यान की ओर जाते हुए उन्होंने सोचा, "एक युवती की तरह व्यर्थ के मनोरंजन में मेरे लिए क्या है? चलो, मैं मठ जाऊँगी, भगवान बुद्ध और मन को प्रेरित करने वाले आदरणीय सज्जनों को प्रणाम करूँगी और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनूँगी।" वह मठ में गई, एक तरफ रुकी, "महान लता" का आभूषण उतारा, उसे एक सेविका के हाथ में दिया, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गई। उसने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना, भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया, उनके चारों ओर विधिपूर्वक परिक्रमा की, मठ से बाहर निकली, थोड़ी दूर जाकर सेविका से कहा, "चलो, मैं आभूषण पहन लेती हूँ।" सेविका ने आभूषण को एक गठरी में बाँधकर मठ में रख दिया था, इधर-उधर घूमती रही और जब जाने का समय हुआ तो वह उसे भूल गई थी। उसने स्वीकार किया, "मैं भूल गई। मुझे वहाँ होना चाहिए था। मैं उसे ले आती हूँ," और वह वापस जाना चाहती थी। विशाखा ने कहा, "अगर यह मठ में पड़ा हुआ भुला दिया गया था, तो मठ के हित में मैं इसे त्याग दूंगी," और वह मठ गईं, भगवान बुद्ध के पास पहुंचीं, उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा, "हे पूज्य, मैं एक मठ का निर्माण करना चाहती हूं, कृपया भगवान बुद्ध मुझ पर दया करें।" भगवान बुद्ध ने मौन रहकर सहमति दी। जब विशाखा ने 90,100,000 करोड़ रुपये मूल्य का आभूषण दान किया, तो आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने नए निर्माण कार्य का निरीक्षण किया। मठ नौ महीनों में बनकर तैयार हो गया, जो बुद्ध, भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के लिए उनके निवास के अनुकूल एक स्थान था। इसमें एक हजार कमरे थे - निचली मंजिल पर पांच सौ कमरे और ऊपरी मंजिल पर पांच सौ कमरे। कहा जाता है कि यह एक देव-महल जैसा था, जिसका फर्श रत्नों की मोज़ेक की तरह बनाया गया था, और सुंदर डिज़ाइन वाली मालाओं से जड़ा हुआ था। सफेद प्लास्टर से बनी मनमोहक नक्काशी, सुंदर पॉलिश की हुई लकड़ी की कारीगरी, दीवारों, स्तंभों, छत की कड़ियों, बीमों, कंगनियों, दरवाजों, खिड़कियों, सीढ़ियों आदि जैसे सुव्यवस्थित और आकर्षक भवन के हिस्से, जैसे कि कक्ष, मंडप, गलियारे आदि, जब मठ का निर्माण पूरा हुआ, तब उसने समर्पण समारोह में 90,000 खर्च किए।जब वह अपने पाँच सौ साथियों के साथ महल में प्रवेश कर रही थी, तब उसने (भवन की) भव्यता देखी और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा, "इस प्रकार का महल बनवाने में मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ है, उसमें आप सब प्रसन्न हों; मैं आप सबको इसमें सहभागिता के लिए पुण्य प्रदान करती हूँ।" "हाँ, ऐसा ही हो, ऐसा ही हो, हाँ," उन्होंने श्रद्धापूर्वक कहा और वे सब प्रसन्न हुए।

उस अवसर पर एक गृहस्थ भक्त ने विशेष ध्यानपूर्वक पुण्य बाँटने में भाग लिया। इसके शीघ्र ही उनका निधन हो गया और वे तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म हुईं। उनके पुण्य के फलस्वरूप उन्हें एक विशाल महल प्रकट हुआ जो आकाश में विचरण कर सकता था, जिसमें कई शिखर वाले घर, उद्यान, कमल-कुंड आदि थे, जिसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई सोलह योजन थी और जो अपने प्रकाश से सौ योजन तक प्रकाश फैलाता था। और जब देवी (परी) कहीं जाती थीं, तो वे अपने महल और एक हजार अप्सराओं के दल के साथ जाती थीं।

लेकिन विशाखा, अपनी उदारता और आस्था की विजय के कारण, सृजन में आनंद लेने वाले देवों के बीच पुनर्जन्म हुईं और उस लोक के देव-राजा सुनीमिता की प्रधान संगिनी का पद प्राप्त किया। अब आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु अनुराधा, देवों के बीच भ्रमण करते हुए, विशाखा की सहेली से मिले, जिनका तैंतीसवें लोक में पुनर्जन्म हुआ था, और उन्होंने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:

1 "हे देवदेवता, आप अत्यंत सुंदर हैं, आप सभी दिशाओं को उपचार करने वाले तारे के समान चमका रही हैं।

2 जब आप अपने सभी अंगों से हर तरह से नृत्य कर रही हैं, तो देवदूतों जैसी मधुर ध्वनियाँ प्रवाहित हो रही हैं, जो सुनने में आनंददायक हैं।

3 जब आप अपने सभी अंगों से हर तरह से नृत्य कर रही हैं, तो देवदूतों जैसी सुगंध चारों ओर फैल रही है, मीठी सुगंध, मनमोहक।

4 जब आप अपने शरीर को झुला रही हैं, तो आपके गुंथे हुए हरों में लगे आभूषणों की ध्वनि पंचांगों के संगीत के समान सुनाई देती है।

5 हवा में लहराते, कांपते हुए झुमकों की ध्वनि पंचांगों के संगीत के समान सुनाई देती है।

6 और आपके शरीर पर उन मीठी सुगंध वाली, मनमोहक मालाओं की खुशबू भी गूंज रही है।" सिर मंजुसक वृक्ष की तरह सभी दिशाओं में लहराता है।

7. तुम उस मधुर सुगंध को महसूस करते हो, तुम अलौकिक सौंदर्य देखते हो, हे देवता (देवदूत), जब पूछा जाए तो बताओ कि यह किस कर्म का फल (लाभ) है।

उसने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:

8 "हे पूज्यवर, सावत्थी में मेरे एक मित्र ने भिक्षु संघ के लिए एक विशाल मठ बनवाया। मैं आस्थावान होकर उस निवास को देखकर प्रसन्न हुई, जो मुझे बहुत भाया।

9 मेरी इसी शुद्ध प्रसन्नता से मुझे एक अद्भुत, देखने में सुंदर, सोलह योजन का भवन प्राप्त हुआ। मेरी मानसिक शक्ति से यह वायु में विचरण करता है।

10 मेरे निवास शिखर वाले विभाजित घर हैं, जिनके अनुपात सुनियोजित हैं। वे चारों ओर सौ योजन तक चमकते हैं।

11 यहाँ मेरे पास कमल-कुंड हैं, जिनमें पुथुलोमा मछलियाँ निवास करती हैं, जिनका स्वच्छ, चमकीला जल सुनहरी रेत से घिरा है।

12 विभिन्न कमलों से आच्छादित, सफेद कमलों से ढके हुए, मनमोहक, हवा से लहराते हुए वे एक प्यारी सुगंध बिखेरते हैं।"

13 उस निवास के भीतर गुलाब-सेब, कटहल, खजूर, नारियल और अनेक प्रकार के जंगली वृक्ष उगते हैं।

14 अनेक वाद्ययंत्रों की ध्वनि से गूंजता हुआ, अनेक अप्सराओं के स्वरों से प्रतिध्वनित होता हुआ, जिसने मुझे स्वप्न में भी देखा होगा, वह सुखी होगा।

15 मेरे कर्मों से ऐसा अद्भुत, सुंदर, हर प्रकार से तेजस्वी महल बना है। यह पुण्य कर्म करने की प्रेरणा देता है।

तब वृद्ध ने यह इच्छा करते हुए कि वह विशाखा के पुनर्जन्म स्थान के बारे में बता रही है, यह श्लोक कहा:

16 "तुम्हारे उस शुद्ध आनंद से ही तुम्हें एक अद्भुत, सुंदर महल प्राप्त हुआ है। और वह स्त्री, जिसने यह दान दिया, मुझे उसके पुनर्जन्म के बारे में बताओ। वह कहाँ से आई है?"

तब वृद्ध द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा;

17 "हे आदरणीय महोदय, मेरी मित्र ने भिक्षुओं के संघ के लिए एक बड़ा मठ बनवाया।" जिसने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को समझा और वरदान दिया, वह सृजन में आनंद लेने वाले देवों (देवदूतों) में विराजमान हुई है।

18 "वह सुनीमिमिता की प्रधान रानी हैं। इस कर्म का परिणाम अकल्पनीय है। हे पूज्यवर, आपने मुझसे जो पूछा था: वह कहाँ से उत्पन्न हुई हैं? मैंने उसका यथावत उत्तर दे दिया है।

19 इसी कारण दूसरों को भी प्रेरित करें कि वे प्रसन्नतापूर्वक भिक्षु संघ को दान दें और श्रद्धा और आनंद से धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनें। मनुष्यों में जन्म, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन है, आपको प्राप्त हुआ है।

20 उस मार्ग-गुरु (बुद्ध) ने उस मार्ग का उपदेश दिया, उनका स्वर ब्रह्म-स्वर (प्रधान देवदूत) था और उनकी त्वचा स्वर्णमय थी। प्रसन्नतापूर्वक भिक्षु संघ को दान दें, जिसमें श्रद्धा के दान का बड़ा फल (लाभ) होगा।

21 बुद्धिमानों द्वारा सराहे गए वे आठ प्रकार के पुरुष, चार जोड़े हैं। वे दान प्राप्त करने योग्य हैं, वे शुभचिंतक (बुद्ध) के शिष्य हैं। इन्हें दिए गए दान का बड़ा फल (लाभ) होता है।

22 और उनमें से चार मार्ग पर हैं और चार उसमें स्थापित हैं। फल। यह भिक्षु संघ धर्मी, शील, समाधि और दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण है।

23 हे मनुष्यों, जो पुण्य कमाने की आशा में दान देते हैं, उनके लिए इस भिक्षु संघ को दिया गया दान पुनर्जन्मों में उपयोगी पुण्य लाता है; यह दान अत्यंत फलदायी है।

24 क्योंकि यह भिक्षु संघ व्यापक और विशाल है। यह सागर के समान असीम है। मनुष्यों में वीर के शिष्य इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जो धम्म का पाठ करके प्रकाश फैलाते हैं।

25 जो इस भिक्षु संघ को दान देते हैं, उनका दान उचित, उचित और उचित रूप से दिया गया होता है। इस भिक्षु संघ को दिया गया वह दान अत्यंत फलदायी होता है और संसार के ज्ञेयियों द्वारा उसकी प्रशंसा की जाती है।

26 इस प्रकार के पुण्य का स्मरण करते हुए, जो संसार में प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं, वे कंजूसी के कलंक को जड़ से नष्ट करके, निष्कलंक होकर स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं।

और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु अनुराधा, मनुष्यलोक में लौटकर, भगवान बुद्ध को यह बात उसी प्रकार बताई जो उन्होंने उस देवता से सुनी थी। भगवान बुद्ध ने इसे धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देने का अवसर बनाया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.7 -------------------------->>>> अगला

4.7 चार स्त्रियों का महल (45)
(चतुरित्थि-विमान)

जब भगवान (भगवान बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, तब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जैसा कि ऊपर वर्णित है, देव (देवदूत) यात्रा पर तैंतीस (स्वर्ग) के लोक में गए। वहाँ उन्होंने क्रमानुसार चार महलों में चार देव (देवदूत) कन्याओं को देखा, जिनमें से प्रत्येक एक

हजार अप्सराओं के दल (परिचारकों के समूह) के साथ देव (देवदूत) आनंद का अनुभव कर रही थीं, और उन्होंने क्रमानुसार उनसे उनके द्वारा पहले किए गए (अच्छे) कर्म के बारे में पूछा:

1 "हे देवता, आप अत्यंत सुंदर हैं और समस्त दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं।

2 आपकी सुंदरता का ऐसा कारण क्या है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा का ऐसा कारण क्या है और आपकी सुंदरता समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

और उन्होंने पूछे जाने पर तुरंत एक-एक करके उत्तर दिया। इसे व्यक्त करने के लिए यह श्लोक कहा गया:

4 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देवता ने बताया कि यह किस कर्म का फल था:

कहा जाता है कि भगवान कश्यप (पूर्व बुद्ध) के समय में, ये स्त्रियाँ एसिका नामक राज्य के पन्नाकाटा नामक नगर में एक अच्छे परिवार में पुनर्जन्म लेकर जन्मी थीं। वयस्क होने पर वे उसी शहर में अपने पति के घर गईं। वे सद्भाव से रहने लगीं। उनमें से एक ने एक भिक्षु को भिक्षा मांगते हुए देखा और श्रद्धा और आनंद से उन्हें नीले कमलों का एक गुच्छा दिया, एक ने दूसरे भिक्षु को नीले कमलों का एक गुच्छा दिया, एक ने लाल कमलों का एक गुच्छा दिया और एक ने चमेली की कलियाँ दीं। बाद में वे मर गईं और तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। उनके साथ एक हजार अप्सराओं का दल था। अपने जीवनकाल में वहाँ देव-आनंद का आनंद लेने के बाद, वे वहाँ से चली गईं और उसी पुण्य कर्म के फल के कारण इस बुद्ध के समय में उसी स्थान पर पुनर्जन्म लिया, और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे वर्णित तरीके से प्रश्न पूछे। उनमें से एक ने अपने पुराने कर्मों के बारे में बड़े भिक्षु को बताते हुए कहा:

5 मैंने एस्का लोगों के ऊँचे और भव्य नगर, सुंदर पन्नाकाटा में भिक्षा माँग रहे एक भिक्षु को मुट्ठी भर नीले कमल दिए।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

7 हे महान भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताती हूँ। इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।

दूसरे भिक्षु से उसने कहा:

8-11 जैसा कि ऊपर 1-4 में वर्णित है

12 "मैंने एस्का लोगों के ऊँचे और भव्य नगर, सुंदर पन्नाकाटा में भिक्षा माँग रहे एक भिक्षु को मुट्ठी भर नीले कमल दिए।"

13-14 जैसा कि ऊपर 6, 7 में है।

दूसरे से उन्होंने कहा;

15-18 जैसा कि ऊपर 1-4 में है।

19 "इसकी जड़ सफेद थी, इसकी (बाहरी) पंखुड़ियाँ हरी थीं। यह झील के पानी में उगा था। मैंने इसे एस्का लोगों के ऊँचे और भव्य नगर, सुंदर पन्नाकाटा में भिक्षा माँग रहे एक भिक्षु को दिया।"

20-21 जैसा कि ऊपर 6, 7 में है।

दूसरे से उन्होंने कहा:

22-25 जैसा कि ऊपर 1-4 में है।

26 "मैंने, सुमना ने, हाथीदांत रंग की चमेली की कलियाँ एक आनंदित हृदय वाले भिक्षु को दीं, जो एस्का लोगों के ऊँचे और भव्य नगर, सुंदर पन्नाकाटा में भिक्षा माँग रहे थे।"

27,28 जैसा कि ऊपर 6, 7 में है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.8

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.8 -------------------------->>>> अगला

4.8 आमों का महल (46)
(अंबा-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। उस समय वहाँ की एक गृहस्थ अनुयायी ने निवास स्थान दान करने के महान फलदायी और बड़े लाभ के बारे में सुना और उत्साह से भरकर भगवान (भगवान बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और कहा, "हे पूज्य, मैं एक निवास स्थान बनवाना चाहती हूँ। मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि आप मुझे उपयुक्त स्थान बताएँ।" भगवान (भगवान बुद्ध) ने भिक्षुओं को निर्देश दिया। भिक्षुओं ने उसे एक उपयुक्त स्थान बताया। तब उसने एक सुंदर निवास स्थान बनवाया और उसके चारों ओर आमों के वृक्ष लगाए। चारों ओर आमों के वृक्षों की कतारों से घिरा, छाया और पानी से भरपूर, और मोतियों के जाल की तरह बिखरी सफेद रेत से युक्त वह निवास स्थान अत्यंत मनमोहक था। उस स्त्री ने रंग-बिरंगे पर्दों और फूलों व सुगंधित मालाओं से मठ को देवों के महल की तरह सजाया, तेल का दीपक जलाया, आम के पेड़ों को नए कपड़े से लपेटा और उसे भिक्षुओं के संघ को समर्पित कर दिया। बाद में उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीसवें लोक में पुनर्जन्म लेकर लौटी। वहाँ उसके लिए आमों के बाग से घिरा एक विशाल महल प्रकट हुआ। वहाँ अप्सराओं से घिरी हुई उसने देव-आनंद का अनुभव किया। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना उनके पास आए और पूछा:

1 "देवी के समान आपका आमों का बाग मनमोहक है। यह स्थान भव्य है, अनेक वाद्ययंत्रों की ध्वनि से गूंजता है, और अप्सराओं के स्वरों से ओतप्रोत है।

2 और यहाँ एक विशाल स्वर्ण दीपक सदा जलता रहता है, जो चारों ओर फलों से लदे वृक्षों से घिरा हुआ है।

3 आपका यह आमों का बाग इतना मनमोहक और भव्य क्यों है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध हैं, और यहाँ वे सभी आनंद उत्पन्न होते हैं जो आपके हृदय को प्रिय हैं?

4 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

5 मोग्गलाना के प्रश्न से प्रसन्न होकर उस देवी ने प्रश्न पूछे जाने पर बताया कि यह किस कर्म का फल है।

6 "पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य के रूप में मनुष्यों के बीच, भिक्षुओं के संघ के लिए आम के पेड़ों से घिरे एक मठ का निर्माण करवाया था।

7 जब मठ बनकर तैयार हो गया और मैं समर्पण समारोह की तैयारी करवा रहा था, आम के पेड़ों को कपड़े से ढक रहा था और कपड़े के फल बना रहा था, तब

मैंने वहाँ एक दीपक जलाकर अपने हाथों से अतुलनीय भोजन भिक्षुओं के संघ को सहर्ष अर्पित किया। 8

इसी कारण मेरा आम का बाग मनमोहक है, यह स्थान भव्य है, अनेक वाद्ययंत्रों की ध्वनि से गूंजता है और अप्सराओं के स्वरों से ओतप्रोत है।"

10 और यहाँ एक महान स्वर्ण दीपक सदा जलता रहता है, जो चारों ओर से फलदार वृक्षों से घिरा हुआ है।

11 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ समृद्ध होती हूँ, और वहाँ वे सभी सुख उत्पन्न होते हैं जो मेरे हृदय को प्रिय हैं।

12 हे महानुभाव भिक्षु, मैं आपको अपने जन्म के समय किए गए पुण्य कर्मों के बारे में बताती हूँ। इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.9 -------------------------->>>> अगला

4.9 पीला महल (47)
(पिता-विमान)

भगवान बुद्ध के अंतिम निर्वाण (शाश्वतता में देहांत) के बाद, जब राजा अजातसत्तु ने राजगृह में भगवान बुद्ध के अवशेषों के अपने हिस्से के लिए एक विशाल स्तूप (पवित्र स्मारक) का निर्माण किया और समर्पण समारोह संपन्न किया, तो कोसातकी लता के चार फूल लिए एक गृहस्थ अनुयायी ने मार्ग में आने वाले खतरों की परवाह किए बिना भेंट करने के लिए आगे बढ़ी। तभी एक बछड़े वाली गाय तेजी से आगे बढ़ी और अपने सींगों से उस पर हमला कर दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। वह तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर प्रकट हुई। सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) अपने रथ में आनंद भोगने जा रहे थे, और उन्होंने उनसे इन श्लोकों में प्रश्न किया:

1 "सुनहरे पीले वस्त्र और ध्वज वाली, सुनहरे पीले आभूषणों से सजी, सुनहरे पीले चंदन से अभिषेक की हुई, सुनहरे पीले कमलों की माला धारण करने वाली,

2 सुनहरे पीले महल और पलंग, आसन और कटोरे वाली, सुनहरे पीले छाते, रथ, घोड़े और पंखे वाली,

3 हे सुंदरी, तुमने पिछले मानव जन्म में क्या कर्म किया था? देवता (देवदूत), जब पूछा जाए, तो बताओ कि यह किस कर्म का फल है।"

उन्होंने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

4 "हे आदरणीय, एक लता है, जिसे कोसातकी कहते हैं, जो कड़वी और अनमोल है।" मैंने उससे चार फूल तोड़कर स्तूप (पवित्र स्मारक) पर चढ़ाए।

5 गुरु (बुद्ध) के अवशेषों के प्रति श्रद्धा से ग्रस्त होकर और उस पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैंने उसके मार्ग पर ध्यान नहीं दिया।

6 इसलिए गाय ने मुझे मार डाला, स्तूप (स्तूप) के लिए मेरी तड़प अधूरी रह गई। यदि मैंने तब (जो मुझे करना चाहिए था) संचित किया होता, तो निश्चित रूप से इससे कहीं अधिक बड़ा परिणाम होता।

7 हे देव-प्रमुख, मघव, देवों के हाथी, उस कर्म के कारण, मैंने मानव शरीर त्याग कर आपकी संगति में आया हूँ।

8 यह सुनकर मघव, जो तैंतीस (10 करोड़ देवदूतों) के अधिपति और देवों के हाथी समान, तैंतीस (स्वर्ग) को प्रसन्न करने वाले थे, ने मताली (सारथी) से कहा:

9 "देखो मताली, यह एक पुण्य कर्म का कितना अद्भुत और विविध फल है। यहां तक कि दान के योग्य व्यक्ति के लिए किया गया एक छोटा सा कार्य भी पुण्य कर्म है, जिसका बड़ा फल है।

10 जब मन में श्रद्धा और आनंद होता है, तो तथागत (बुद्ध) या आत्मज्ञानी (बुद्ध) या उनके शिष्यों को दिया गया कोई भी दान तुच्छ नहीं होता।

11 आओ मताली, हम भी बार-बार आदर कर सकते हैं। तथागत (बुद्ध) के अवशेषों से प्राप्त पुण्य संचय कितना सुखद है।

12 चाहे वे जीवित हों या उनका निधन हो गया हो, फल उस मन के लिए भी है जो निर्धन है। क्योंकि मानसिक संकल्प के फलस्वरूप ही प्राणी अच्छे पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

13 निश्चय ही तथागत (बुद्ध) अनेकों के कल्याण के लिए जन्म लेते हैं, ताकि सेवा करने के बाद दानदाता स्वर्ग को प्राप्त हों।

यह सुनकर सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) उस आनंद उद्यान को छोड़कर सात दिनों तक चुलमानी मंदिर में दर्शन करने गए। कुछ समय बाद जब पूज्य नारद देवों की यात्रा पर थे, तब इंद्र ने उन्हें श्लोकों में उस घटना का वर्णन किया। नारद ने यह वर्णन संकलकों को सुनाया। उन्होंने इसे संग्रह में शामिल किया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.10 -------------------------->>>> अगला

4.10 गन्ने का महल (48)
(उच्चु-विमान)

यह पाठ (पाली) में पूर्व गन्ने के महल के समान है। लेकिन यहाँ सास ने बहू की हत्या करते समय मिट्टी के ढेले का प्रयोग किया था। इसी कारण ये कथाएँ अलग-अलग पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं।

1 "देवताओं के साथ पृथ्वी को प्रकाशमान करके, आप अपनी महिमा, सौंदर्य, वैभव और तेज से चंद्रमा और सूर्य के समान चमकते हैं, जैसे ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) इंद्र सहित तैंतीस स्वर्गों के देवदूतों को भी क्षीण कर देते हैं।

2 मैं आपसे पूछता हूँ, हे नीले कमलों की माला धारण करने वाले, माथे पर माला धारण करने वाले, स्वर्णमय त्वचा वाले, उत्तम वस्त्र धारण करने वाले, आप कौन हैं, हे प्यारे देवता, जो मुझे आदर दे रहे हैं?

3 आपने अपने पूर्व जन्म में मनुष्य के रूप में कौन सा कर्म किया था? क्या आपने पुण्य कर्मों का दान किया था, या नैतिकता का पालन किया था? हे महान ख्यातिप्राप्त, आप किस कर्म के फल स्वरूप पुनर्जन्म प्राप्त कर रहे हैं? हे देवता, पूछे जाने पर, समझाएँ कि यह किस कर्म का फल है।"

तब देवता (देवदूत) ने समझाया:

4-11 कहानी संख्या 30 के श्लोक 4-11 के समान, सिवाय श्लोक 6 में 'कुर्सी' के स्थान पर 'मिट्टी का ढेला' के प्रतिस्थापन के।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.11

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.11 -------------------------->>>> अगला

4.11 निवास स्थान का सम्मान (49)
(वंदना-विमान)

भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। उस समय कई भिक्षु वर्षा ऋतु एक गाँव में बिताकर, अंत में "आमंत्रित" होकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के लिए श्रावस्ती जा रहे थे। वहाँ एक स्त्री उनसे मिलीं और श्रद्धा, आनंद और आदर से भरे भाव से उनका अभिवादन किया। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ, और महा-मोग्गलाना ने उनसे प्रश्न किया:

1 "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर हैं और सभी दिशाओं को प्रकाशमान कर रही हैं।

2 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है? आप यहाँ कैसे समृद्ध होती हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख कैसे प्राप्त होते हैं?

3 हे महान महिमा की देवी, मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने क्या पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 मोग्गलाना द्वारा पूछे गए प्रश्नों से प्रसन्न होकर, उस देवी ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "जब मैं मनुष्यों के बीच मनुष्य के रूप में जन्मा, तो उच्च नैतिकता (ब्रह्मचर्य) वाले भिक्षुओं को देखकर, जिनके चरणों को मैंने श्रद्धापूर्वक और प्रसन्नता से आदर दिया, मैंने अपने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।" (जैसा कि अध्याय 1, 6, 7 आदि में है)
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु4.12

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- I.4.12 -------------------------->>>> अगला

4.12 राज्जुमाला का महल (50)
(राज्जुमाला-विमान)

भगवान बुद्ध सावती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। गया नामक छोटे से गाँव में एक ब्राह्मण (पुजारी) रहता था, जिसने अपनी पुत्री का विवाह एक ब्राह्मण के पुत्र से कर दिया। उस घर में राजसी प्रभुत्व था और वह एक दासी की पुत्री से शुरू से ही घृणा करती थी, उसे डांटती, गाली देती और मारती थी। जैसे-जैसे लड़की बड़ी होती गई, राज्जुमाला उसके साथ और भी बुरा बर्ताव करने लगी। (कहा जाता है कि कश्यप बुद्ध के समय में उनके संबंध उलट गए थे)। अपनी मालकिन को पीटते समय उसके बाल खींचने से रोकने के लिए, वह नाई की दुकान पर गई और अपने बाल मुंडवा लिए। तब मालकिन ने क्रोधित होकर कहा कि सिर मुंडवाकर वह उससे बच नहीं सकती, इसलिए उसने उसके सिर में रस्सी बांध दी, उसे उससे नीचे खींच लिया और उसे रस्सी हटाने नहीं दी; इसीलिए उसका नाम राज्जुमाला पड़ा। एक दिन, महान करुणा की प्राप्ति से प्रेरित होकर, गुरु (बुद्ध) ने संसार का अवलोकन किया और राज्जुमाला में आध्यात्मिक जागृति के प्रथम चरण, सोतपान (स्वर्गीय प्रवेश) के फल के लिए योग्यता देखी और अपनी किरणों से युक्त एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। व्यथित राज्जुमाला, मृत्यु की कामना करते हुए, एक घड़ा लेकर पानी लाने का बहाना करके आई और स्वयं को फांसी लगाने के लिए एक वृक्ष की खोज करने लगी। बुद्ध को देखकर, उनका हृदय उनकी ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने सोचा, "क्या होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझ जैसे लोगों को भी धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाएं? शायद मैं अपने इस दुखमय जीवन से मुक्त हो जाऊं।" तब उन्होंने विवेक से उनसे कहा, "राज्जुमाला!" और वह मानो अमृत से अभिषेकित होकर उनके पास आईं और प्रणाम किया। उन्होंने राज्जुमाला को चार सत्यों का उपदेश दिया और उन्होंने आध्यात्मिक प्रवेश का फल प्राप्त किया। इसके बाद वे गांव गए और एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। अब स्वयं को नष्ट करने में असमर्थ होकर उसने धैर्य, मित्रता और दया भाव से सोचा, "ब्राह्मण स्त्री मुझे जो चाहे चोट पहुँचाए, चोट पहुँचाए या जो चाहे करे," और घड़े में पानी लेकर वापस चली गई। घर का मुखिया द्वार पर खड़ा था और बोला, "तुम्हें पानी लाने में बहुत समय लग गया और तुम्हारा चेहरा दमक रहा है; तुम मुझे बिल्कुल अलग लग रही हो; क्या बात है?" उसने उसे बताया; और ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और अंदर जाकर बोला, "राज्जुमाला के साथ और कुछ मत करो।" फिर वह जल्दी से गुरु (बुद्ध) के पास गया और आदरपूर्वक उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। उसके बाद वह, बहू और घर में आए ब्राह्मण गुरु (बुद्ध) के पास बैठ गए, जिन्होंने उन्हें बताया कि उनके और राज्जुमाला के साथ पिछले जन्म में क्या हुआ था, साथ ही धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर उपयुक्त प्रवचन भी दिया। फिर वह श्रावस्ती लौट आया और ब्राह्मण ने राज्जुमाला को अपनी दत्तक पुत्री बना लिया, जबकि बहू ने उसके साथ कोमल व्यवहार किया। तैंतीस (स्वर्ग) में मृत्यु के बाद पुनर्जन्म लेकर, राज्जुमाला से भी आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने प्रश्न किया:

1 "हे देवता (परी), आप जो असाधारण सुंदरता के साथ खड़ी हैं, संगीत की संगत में नृत्य भी कर रही हैं, आपका..."हाथ और पैर विभिन्न प्रकार के हावभाव बना रहे हैं।

2 जब तुम अपने सभी अंगों से हर तरह नृत्य करती हो, तो देवदूतों जैसी मधुर ध्वनियाँ निकलती हैं, जो सुनने में आनंददायक होती हैं।

3 जब तुम अपने सभी अंगों से हर तरह नृत्य करती हो, तो देवदूतों जैसी सुगंध चारों ओर फैलती है, मीठी सुगंध चारों ओर फैलती है, मनमोहक।

4 जब तुम अपने शरीर को झुलाती हो, तो तुम्हारी गुंथी हुई बालों की आभूषणों की ध्वनि पंच वाद्ययंत्रों के संगीत की तरह सुनाई देती है।

5 हवा में लहराते, कांपते हुए कान के झुमके - इनकी ध्वनि पंच वाद्ययंत्रों के संगीत की तरह सुनाई देती है।

6 और तुम्हारे सिर पर उन मीठी सुगंध वाली, मनमोहक मालाओं की सुगंध मंजुसक वृक्ष की तरह चारों दिशाओं में फैलती है।

7 तुम उस मीठी सुगंध को महसूस करती हो, तुम अलौकिक सौंदर्य देखती हो। हे देवदूत, जब पूछा जाए तो बताओ कि यह किस कर्म का फल है।

इस प्रकार पूछे जाने पर, देवदूत ने अपने पूर्व जन्म से शुरू करते हुए, इन श्लोकों में समझाया:

8 "पहले मैं गया में एक ब्राह्मण की दासी थी; कम पुण्य वाली, बदकिस्मत, मुझे राज्जुमाला के नाम से जाना जाता था।

9 गाली-गलौज, मार-पीट और धमकियों से तंग आकर, मैंने एक घड़ा उठाया और पानी लाने चली गई।

10 घड़ा सड़क से दूर फेंककर, मैं एक घने जंगल में घुस गई, यह सोचते हुए: यहीं मेरी मृत्यु होगी, मेरे लिए जीवन का क्या उपयोग है?

11 एक मजबूत फंदा बनाकर उसे एक पेड़ पर लटकाकर, मैंने चारों ओर देखा: अब इस जंगल में कौन रहता है?

12 मैंने वहाँ स्वयं-जागृत (बुद्ध) को देखा, जो समस्त जगत के प्रति मित्रवत ऋषि थे, एक पेड़ की जड़ में बैठे हुए, बिना किसी भय के ध्यान कर रहे थे।

13 तब मुझे एक अद्भुत, विस्मयकारी रोमांच हुआ: अब इस जंगल में कौन रहता है: मनुष्य या देवता?"

14 शांत और आस्था जगाने वाले, जंगल से खुले में आए, और जो मैंने देखा उससे मन को शांति मिली: ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं।

15 इंद्रियों को संजोए हुए, ध्यान में लीन, मन भटका हुआ नहीं, ये अवश्य ही प्रबुद्ध (बुद्ध) हैं, समस्त संसार के प्रति मित्रवत।

16 अपनी गुफा में निवास करने वाले सिंह के समान, भय और विस्मय उत्पन्न करने वाले, अजेय, इन्हें देखना उदुमबारा फूल के समान दुर्लभ अवसर था।

17 तथागत (बुद्ध) ने कोमल शब्दों में मुझसे कहा: राज्जुमाला ने मुझसे कहा, तथागत (बुद्ध) की शरण लो।

18 जब मैंने उनकी कोमल, अर्थपूर्ण, मधुर, सौम्य, कोमल और प्यारी आवाज सुनी, जो समस्त दुःखों को दूर करती थी,

19 समस्त संसार के प्रति मित्रवत तथागत (बुद्ध) ने यह जानते हुए कि मेरा मन कोमल, आस्थावान और शुद्ध है, मुझे उपदेश दिया।

20 उसने मुझसे कहा, "दुख यही है। यही दुख का मूल है, यही दुख का निवारण है, और अमरत्व में प्रवेश करना ही सीधा मार्ग है।"

21 दयालु (बुद्ध), धर्मात्मा के उपदेश में दृढ़ रहकर, मैं अमरत्व, शांति, निर्वाण, अपरिवर्तनीय अवस्था को प्राप्त कर लिया।

22 और मैं, मूलभूत विश्वास से प्रेरित प्रेम में दृढ़ खड़ी, अविचलित दृष्टि वाली, प्रबुद्ध (बुद्ध) की अपनी पुत्री हूँ।

23 और (अब) मैं आनंदित हूँ। मैं खेलती हूँ, मैं बिना किसी भय के प्रसन्न होती हूँ। मैं देवदूतों के समान माला पहनती हूँ, मैं कोमलता प्रदान करने वाला मधुर रस पीती हूँ।

24 साठ हजार वाद्ययंत्र मुझे मेरी नींद से जगाते हैं: अलम्बा, गग्गरा, भीमा, साधुवादिन और संशय,

25 पोक्खरा और सुफस्सा; विनमोक्खा और अन्य (स्त्रियाँ): नंदा, सुनंदा, सोनादिन्ना, सुचिंहिता,

26 अलम्बुसा, मिसकेसी और निर्दयी पुंडारिका, एनीफस्सा, सुफस्सा और सुभद्दा, मुदुकादिनी-

27 ये और अन्य सुंदर (देवता) अप्सराओं को (नींद से) जगाते हैं। सुबह वे मेरे पास आकर कहते हैं, "आओ, हम नाचेंगे, हम गाएंगे, आओ, हम तुम्हें आनंदित करेंगे।"

28 यह नंदनवन (स्वर्ग), दुःख रहित, आनंदमय, तैंतीस (स्वर्गों) का महान उपवन, उन लोगों के लिए नहीं है जिन्होंने कोई पुण्य कर्म नहीं किए हैं, बल्कि केवल उन्हीं लोगों के लिए है जिन्होंने पुण्य कर्म किए हैं। 29 न

तो यहाँ और न ही परे उन लोगों के लिए कोई आनंद है जिन्होंने कोई पुण्य कर्म नहीं किए हैं, परन्तु जिन लोगों ने पुण्य कर्म किए हैं, उनके लिए यहाँ और परे आनंद है।

30 जो संगति की लालसा रखते हैं, उन्हें इनके द्वारा बहुत से पुण्य कर्म करने चाहिए, क्योंकि जिन्होंने पुण्य कर्म किए हैं वे स्वर्ग में आनंदित होते हैं।

31 तथागत (बुद्ध) वास्तव में बहुतों के कल्याण के लिए उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों के दान के योग्य होते हैं, पुण्य के क्षेत्रों के स्रोत होते हैं जिनमें, नमन करने पर, दानकर्ता स्वर्ग में आनंदित होते हैं।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.1.

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.5.1 -------------------------->>>> अगला

5.1. पहला: मेंढक-देव का महल (51)
(मंडुकदेवपुत्त-विमान)

भगवान (बुद्ध) चंपा में, गग्गर कमल के तालाब के किनारे ठहरे हुए थे। भोर होते समय, करुणा की गहरी अनुभूति से जागृत होकर उन्होंने देखा, "आज शाम जब मैं धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दे रहा हूँ, तो एक मेंढक मेरी वाणी सुनकर और उससे आकर्षित होकर, किसी के हाथों हिंसा का शिकार होकर मारा जाएगा; वह देवलोक में पुनर्जन्म लेगा और जनसमूह के सामने प्रकट होगा; इस प्रकार धम्म (शाश्वत सत्य) का गहन प्रसार होगा।" दिन का कार्य पूरा करने के बाद, उन्होंने तालाब के किनारे एक चार-स्तरीय सभा को उपदेश देना शुरू किया। तभी एक मेंढक, यह सोचकर कि "यही तो धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) कहलाता है," तालाब से बाहर आया और श्रोताओं के पीछे दुबक गया। एक चरवाहे ने गुरु (बुद्ध) को बोलते और सभा को चुपचाप सुनते हुए देखकर, अपनी लाठी पर झुककर मेंढक को कुचल दिया। मेंढक का पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक में बारह योजन वाले स्वर्ण महल में अप्सराओं के साथ हुआ। यह सोचते हुए कि उसने ऐसा क्या कर्म किया था कि उसे वहाँ जन्म मिला, उसे भगवान (बुद्ध) की वाणी के प्रति अपने आकर्षण के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। वह तुरंत अपने महल के साथ आया, उससे नीचे उतरा, और भगवान (बुद्ध) को देखकर उनके पास गया और उनका सम्मान किया। भगवान ने बुद्धत्व प्रकट करते हुए उससे पूछा:

1 "कौन है, जो आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से तेजस्वी है, और जिसकी असाधारण सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है, मेरे चरणों का सम्मान कर रहा है?"

उस देव-युवक ने अपने पूर्व जन्म के बारे में बताते हुए इन श्लोकों में समझाया:

2 "मैं पहले एक मेंढक था, जल में रहने वाला जीव। परन्तु जब मैं आपका धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुन रहा था, तब एक (युवक) ग्वाले ने मुझे मार डाला।

3 क्षण भर के लिए मन की शांति पाकर, मेरी मानसिक शक्ति और मेरे साथ के लोगों को देखो, और मेरी महिमा, सुंदरता और मेरे प्रकाश को देखो।

4 हे गौतम (बुद्ध), जिन्होंने लंबे समय तक आपका धम्म (शाश्वत

सत्य का मार्ग) सुना है, वे ही उस स्थिर स्थान को प्राप्त करते हैं जहाँ जाने वाले शोक नहीं करते।" तब भगवान (बुद्ध) ने सभा के सभी अनुयायियों की योग्यताओं को देखकर पूर्ण रूप से धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। उपदेश के अंत में उस देव-युवक को सोतपान (आध्यात्मिक जागृति का पहला चरण) का फल प्राप्त हुआ। भगवान बुद्ध का आदर करने के बाद वे देवलोक लौट गए।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.5.2 ------------------------->>>> अगला

5.2 रेवती का महल (52)
(रेवती-विमान)

भगवान (बुद्ध) बनारस के पास, इसिपताना में हिरण अभयारण्य में ठहरे हुए थे। वहाँ नंदिया नाम का एक विश्वासी गृहस्थ अनुयायी, जो भिक्षु संघ का एक उदार दाता और सेवक था, रहता था। उसके माता-पिता चाहते थे कि वह अपनी चचेरी बहन रेवती से विवाह करे, लेकिन वह विश्वासी नहीं थी और दानशील भी नहीं थी। नंदिया को रेवती से कोई प्रेम नहीं था। उसकी माता ने रेवती से कहा कि वह उनके घर आए और भिक्षु संघ के आतिथ्य सत्कार की तैयारी करे, और उसने ऐसा ही किया। माता ने अपने पुत्र से कहा, "अब वह हमारी सलाह मान लेगी," इसलिए वह मान गया और उनका विवाह हो गया, और रेवती ने उसे दो पुत्र दिए। इसके बाद नंदिया ने व्यापक रूप से दान-पुण्य का कार्य शुरू किया और इसिपताना के मठ में एक हॉल बनवाया, जिसे उसने तथागत (बुद्ध) को भेंट किया और उनके हाथों पर अर्पण जल डाला। उसी समय तैंतीसवें लोक में बारह योजनों का एक देव-सदृश महल अप्सराओं के साथ प्रकट हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने यात्रा के दौरान इसे देखा और भगवान बुद्ध से पूछा कि यह किसके लिए है। भगवान बुद्ध ने ये श्लोक कहे:

1. "दूर से विदा हुए मनुष्य के सुरक्षित घर लौटने पर उसके सगे-संबंधी, मित्र और सहयोगी प्रसन्न होते हैं।

2. इसी प्रकार पुण्य कर्म करने वाले मनुष्य के इस लोक से परलोक जाने पर, उसके पुण्य कर्मों का सत्कार सगे-संबंधियों द्वारा प्रियजन के लौटने के समान होता है।"

यह सुनकर नंदीय प्रसन्न हुए, उन्होंने दान दिया और पुण्य कर्म किए। फिर कार्य के लिए घर से निकलते हुए उन्होंने रेवती को लगन से अपना कार्य जारी रखने का आदेश दिया। उसने सहमति दे दी, लेकिन जहाँ एक ओर वह अनुपस्थित रहते हुए भिक्षु संघ और दरिद्रों को दान देता रहा, वहीं रेवती ने कुछ दिनों बाद दरिद्रों को दान देना बंद कर दिया, भिक्षुओं को घटिया भोजन दिया और भिक्षुओं पर दोष मढ़ने के लिए मछली और मांस के टुकड़े बिखेर दिए। तब नंदीय लौट आया और घटना की सूचना सुनकर रेवती को उसके घर भेज दिया, परन्तु उसे अधिक भोजन दिया। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई और वह अपने लिए बने तैंतीसवें लोक में पुनर्जन्म लेकर आया। परन्तु रेवती ने सभी दान देना बंद कर दिया और भिक्षुओं को कोसती रही, यह कहते हुए कि "इन्हीं के कारण मेरी सारी समृद्धि और लाभ कम हो गया।"

तब वेसवना ने अपने दो यक्षों को बरनासी जाकर यह घोषणा करने को कहा कि रेवती को उस दिन से सातवें दिन नरक में फेंक दिया जाएगा। यह सुनकर लोग भयभीत हो गए; परन्तु रेवती ऊपरी मंजिल पर गई, दरवाजा बंद किया और बैठ गई। एक सप्ताह बाद,

चमकीले भूरे बालों और दाढ़ी वाले, टेढ़े-मेढ़े दाँतों और लाल आँखों वाले दो भयानक यक्ष आए और बोले, "उठो, रेवती, हे दुष्ट चरित्र वाली!" और उन्होंने उसका गला और कोड़ा पकड़कर उसे सबके सामने गलियों में घुमाया, फिर उसे हवा में उड़ाकर तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में ले गए और उसे विलाप करते हुए भीड़भाड़ वाले नरक में ले आए। यम के दूतों ने उसे भीड़भाड़ वाले नरक में डाल दिया। जैसा कि कहा जाता है:

3 “हे घोर दुष्ट रेवती, उठो! हे कंजूस स्त्री, नरक का द्वार खुल गया है। हम तुम्हें वहाँ ले चलेंगे जहाँ बुरे जन्मों से पीड़ित लोग शोक मनाते हैं, नरकवासी दुख भोगते हैं।”

यह बात संशोधनवादियों ने कही:

4 जब उन्होंने ऐसा कहा, तो लाल आँखों वाले वे दो विशालकाय यक्ष, यम के दूत, रेवती को एक-एक भुजा से पकड़कर देवों (देवदूतों) के समूह की ओर चल पड़े।

इन यक्षों द्वारा तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में ले जाए जाने पर, रेवती नंदीय के महल के पास बैठी और उसकी सूर्य के समान चमक देखकर, इन यक्षों से पूछा:

5 “यह महल किसका है जो लोगों से भरा हुआ है, सूर्य के समान चमकीला और सुंदर है, सोने के जाल से ढका हुआ है और सूर्य की किरणों के समान दमकता है?

6 उत्तम चंदन से अभिषेक की हुई कई स्त्रियाँ इस महल को अंदर और बाहर से सुशोभित करती हैं, जिससे यह सुंदरता में सूर्य के समान प्रतीत होता है। स्वर्ग प्राप्त करके कौन इस महल में आनंदित हो रहा है?”

उन्होंने उससे कहा:

7 “बरानासी में नंदीय नाम का एक गृहस्थ अनुयायी था, जो कंजूस नहीं, उदार और दानशील था। यह उसका महल है, जो सूर्य की किरणों के समान चमकते हुए लोगों से भरा हुआ है।

8 उत्तम चंदन से अभिषेक की हुई कई स्त्रियाँ महल को अंदर और बाहर से सुशोभित करती हैं, जिससे वह सूर्य के समान सुंदर प्रतीत होता है। वह स्वर्ग प्राप्त कर चुका है और महल में आनंद मना रहा है।”

तब रेवती ने कहा:

9 “मैं नंदीय की पत्नी थी, घर की मुखिया और पूरे परिवार पर अधिकार रखने वाली। अब मैं अपने पति के महल में आनंद मनाऊँगी। मैं नरक देखना भी नहीं चाहती।”

लेकिन यह कहते हुए, “चाहे तुम चाहो या न चाहो, इच्छाओं का हमसे क्या लेना-देना?” उसे नरक में ले जाकर उन्होंने यह श्लोक कहा:

10 “यह नरक तुम्हारे लिए है, जो बहुत दुष्ट स्वभाव के हो। मनुष्यों के संसार में तुमने कोई पुण्य कर्म नहीं किया।” "जो कंजूस, क्रोधी और दुष्ट स्वभाव का होता है, उसे स्वर्ग जाने वालों का साथ नहीं मिलता।"

ऐसा कहकर दोनों यक्ष वहीं लुप्त हो गए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि दो समान नरक रक्षक उन्हें घसीटकर संसवका नामक मलिन नरक में फेंकने ही वाले हैं, तो उन्होंने पूछा:

11 "यह मलिनता और मल क्या है जो प्रकट हो रहा है, यह दुर्गंध क्या है, यह मल क्या है जो यहाँ फैल रहा है?"

12 "यह संसवका है, सौ पाद गहरा, जहाँ हे रेवती, तुम हजारों वर्षों तक जलोगी।"

उन्होंने पूछा:

13 "ऐसा कौन सा कर्म है जो शरीर, वाणी और मन से इतना बुरा किया गया है कि सौ पाद गहरे संसवका में जाना पड़ता है?"

उन्होंने कहा:

14 "तुमने भिक्षुओं, ब्राह्मणों और अन्य यात्रियों को भी झूठे वचनों से धोखा दिया; यही तुम्हारा पाप था।"

15 इसलिए, रेवती, सौ फैदम गहरे संसार को आपने प्राप्त किया है, जहाँ आप हैं,"हजारों वर्षों तक उबलता रहेगा।"

फिर उन्होंने उसे और भी यातनाओं के बारे में बताया:

16 "उन्होंने पहले हाथ काटे, फिर पैर; फिर कान काटे, फिर नाक; और फिर कौवों का एक झुंड इकट्ठा होकर तड़पती हुई को खा गया।"

उसने फिर विलाप करते हुए उनसे विनती की कि उसे मनुष्यों के संसार में वापस ले जाएं:

17 "अच्छा होगा यदि आप मुझे वापस ले जाएं। मैं दान देकर, समभाव का अभ्यास करके, आत्म-संयम और मन को वश में करके बहुत परोपकार करूंगी। जो ऐसा करते हैं वे सुखी होते हैं और बाद में पश्चाताप नहीं करते।"

फिर नरक के पहरेदारों ने कहा:

18 "पहले तुम लापरवाह थीं, अब विलाप करती हो। तुम्हें अपने कर्मों का फल भोगना ही होगा।"

और उसने कहा:

19 "देवलोक से मनुष्यलोक में आकर, जब मुझसे पूछा जाए तो मुझसे यह कहो: 'हिंसा त्यागने वालों को दान दो, वस्त्र, आवास, भोजन और पेय दो,

20 क्योंकि जो कंजूस, क्रोधी और दुष्ट स्वभाव का है, उसे स्वर्ग जाने वालों का साथ नहीं मिलता।'

21 मान लो कि मैं यहाँ से मनुष्यलोक में जन्म लेकर, उदार और नैतिक आचरण का अभ्यास करने वाली बनकर, दान देकर, समभाव का अभ्यास करके, आत्म-संयम और मन को वश में करके बहुत से धार्मिक कार्य करूँगी। 22

और भक्ति भाव से मैं उबड़-खाबड़ इलाकों में उद्यान और सड़कें, तालाब और कुएँ बनवाऊँगी।"

23 शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन तथा पखवाड़े के किसी विशेष दिन, जो अष्टांगिक (उपदेशों) से भलीभांति जुड़ा हो,

24 मैं सदा नैतिकता (शील) के अभ्यास द्वारा आत्मसंयमित रहते हुए उपोसथ (पखवाड़े का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन करूंगी, और दान देने में लापरवाही नहीं करूंगी: यह मैं स्वयं सत्यतः देखती हूं।

यह व्याख्याकारों द्वारा कहा गया है:

25 इस प्रकार, वह पीड़ा से विलाप और तड़पती हुई, पैर ऊपर और सिर नीचे करके भयानक नरक में गिर पड़ी।

उसने अंतिम श्लोक कहा:

26 "पहले मैं कंजूस थी, साधुओं और ब्राह्मणों का अपमान करती थी और अपने पति को झूठ बोलकर धोखा देती थी, मैं अत्यंत भयानक नरक में जल रही हूं।"

टीका यह कहकर समाप्त होती है:

अब, चूंकि रेवती के महल में कोई देवता (देवदूत) नहीं है, लेकिन चूंकि यह कथा नंदीय के महल की प्राप्ति से जुड़ी है, देव (देवदूत)-युवक, इसलिए इसे पुरुषों के महलों में शामिल किया गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.3 -------------------------->>>> अगला

5.3 चट्टा का निवास, एक ब्राह्मण युवक (53)
(चट्टामानव-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। उस समय, एक ब्राह्मण का पुत्र चट्टा, जिसने सेतव्य के एक ब्राह्मण के अधीन अपनी शिक्षा पूरी कर ली थी, अपने माता-पिता से अपने गुरु का शुल्क एक हजार कहपना (कांस्य के सिक्के) लेकर घर लौटा और उसे देने के लिए सेतव्य की ओर चल पड़ा। चोरों को इसकी सूचना मिली और उन्होंने रास्ते में युवक को मारने और लूटने की योजना बनाई। भगवान बुद्ध ने महान करुणा की प्राप्ति से प्रेरित होकर सुबह जल्दी निकलकर उस रास्ते पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए, जिस पर युवक जाने वाला था। युवक के पास से गुजरते हुए, उन्होंने उससे उसका उद्देश्य पूछा और पूछा कि क्या वह तीन शरण (बुद्ध; धम्म-मार्ग; संघ-आदेश) और पांच उपदेश (शील, नैतिकता) जानता है? युवक ने इनकार किया, तो भगवान बुद्ध ने उसे ये उपदेश दिए।

1. "मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ वक्ता, शाक्य ऋषि, भगवान (प्रभु), जिन्होंने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है, जो स्वर्ग सिधार चुके हैं, शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण होकर, इस शुभचिंतक की शरण में आओ।

2. इस धर्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) की शरण में आओ, जो वासना रहित, इच्छा रहित, दुःख रहित, सरल, अप्रिय नहीं, मधुर, सुस्पष्ट और विवेचित है।

3. और जिसके विषय में उन्होंने कहा है: दो-चार और आठ पवित्र पुरुषों को दान देने का महान फल है, ये पुरुष धर्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के द्रष्टा हैं। इस भिक्षु संघ की शरण में आओ।"

चोरों ने उन्हें घेर लिया और उनकी हत्या कर दी, और वे चलते-चलते धन लूटते चले गए, जिसे वे अपने हृदय में संजो कर रखते थे। परन्तु उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक में हुआ, जहाँ उन्हें तीस योजन का एक महल मिला, जो बीस योजन तक प्रकाश फैलाता था।

सेतावया के लोगों ने शव मिलने पर माता-पिता को सूचना दी और उक्कत्था के लोगों ने गुरु को सूचना दी, और अंत्येष्टि संपन्न हुई। भगवान बुद्ध गए ताकि चट्टा को स्वयं प्रकट होने और अपने कर्मों का खुलासा करने का अवसर मिले। चट्टा ने भी ऐसा ही सोचा और अपने महल के साथ आया। जब लोगों ने आश्चर्य किया: क्या यह कोई देव (देवदूत) है या ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)? भगवान बुद्ध ने उस देव-युवक के पुण्य कर्म को स्पष्ट करने के लिए उससे पूछा:

4 "आकाश में सूर्य इस प्रकार नहीं चमकता, न ही चंद्रमा और न ही फुस्स नक्षत्र इस अतुलनीय तेज के समान उज्ज्वल हैं। तुम कौन हो जो देवलोक से पृथ्वी पर आए हो?

5 और बीस योजनों तक फैला हुआ प्रकाश प्रकाशदाता की किरणों को काट देता है। वह सुंदर भवन, जो पूर्णतः शुद्ध, निष्कलंक और पवित्र है, रात को भी दिन के समान प्रकट करता है।

6 अनेक रंगों के कमलों और कमलों से सुशोभित, विभिन्न प्रकार से अलंकृत, धूल रहित, बेदाग सोने के जाल से ढका हुआ, वह आकाश में सूर्य के समान चमकता है।

7 लाल और पीले वस्त्रों में लिपटे, अगरबत्ती, पियांगु और चंदन की सुगंध से महकते, सुनहरे रंग से दमकते हुए, वे आकाश के तारों की तरह इस महल को भर देते हैं।

8 यहाँ विभिन्न रूपों वाले पुरुष और स्त्रियाँ हैं, यहाँ आनंदित लोग फूलों और आभूषणों से सजे हुए हैं, हवा से निकलती सुगंध बिखेरते हुए, विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित और सोने से ढके हुए हैं।

9 यह किस संयम का परिणाम है? किस कर्म के फल से तुम यहाँ आए हो, और इस महल में कैसे पहुँचे? पूछे जाने पर, कृपया चरण-दर-चरण बताएँ कि यह कैसे हुआ।

देव (देवदूत)-युवक ने इन श्लोकों में समझाया:

10 "चूंकि गुरु (बुद्ध) ने मार्ग में इस ब्राह्मण युवक को देखा और करुणापूर्वक उसे उपदेश दिया, और चूंकि चट्टा ने आपसे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना, इसलिए परम रत्न ने कहा 'मैं यह करूँगा,'

11 मैंने महिमावान विजेता की शरण ली, और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के लिए भी, उसी प्रकार भिक्षु संघ में शरण ली। पहले मैंने कहा 'नहीं,' पूज्यवर: उसके बाद मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया-

12 किसी भी प्रकार से अपवित्र होकर किसी भी सजीव प्राणी को पीड़ा न पहुँचाएँ, क्योंकि बुद्धिमान लोग सजीव प्राणियों के प्रति संयम की कमी की प्रशंसा नहीं करते। पहले मैंने कहा 'नहीं,' पूज्यवर; उसके बाद मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया।

13 और जो दूसरे व्यक्ति की रक्षा करता है उसे न लें; यह न सोचें कि जो नहीं दिया गया है उसे ले लिया जाना चाहिए। पहले मैंने कहा 'नहीं,' पूज्यवर; उसके बाद मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया।

14 और दूसरे की पत्नियों के पास जाना, दूसरे पुरुष द्वारा संरक्षित महिलाओं के पास जाना—यह उनारिय्य (नीच) है। पहले मैंने कहा, "नहीं," आदरणीय महोदय; बाद में मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया।

15 और झूठ मत बोलो, क्योंकि बुद्धिमान लोग झूठ की प्रशंसा नहीं करते। पहले मैंने कहा, "नहीं," आदरणीय महोदय; बाद में मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया।

16 और उस मादक पेय से पूरी तरह दूर रहो जिससे मनुष्य की चेतना क्षीण हो जाती है। पहले मैंने कहा, "नहीं," आदरणीय महोदय; बाद में मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया।

17 वास्तव में, मैं यहाँ पाँचों शिक्षाओं का पालन करते हुए, तथागत (बुद्ध) के धर्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) पर चलते हुए, दो गाँवों की सीमाओं के बीच एक रास्ते में चोरों के बीच आ गया। उन्होंने मेरी संपत्ति के लिए मुझे वहाँ मार डाला।

18 इस हद तक ही मुझे धर्म याद है; इससे आगे मेरे लिए कोई अन्य (धर्म) नहीं है। अच्छे आचरण के कारण, कर्मों के फलस्वरूप मैं तैंतीस (स्वर्गों) में अपनी इच्छा से आनंदित हुआ।

19 देखो, धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के अनुसार चलने और क्षण भर के लिए संयम बरतने का क्या परिणाम होता है, जबकि कम सुखों की लालसा रखने वाले अनेक लोग मुझे महिमा में चमकते हुए देख सकते हैं।

20 देखो, कैसे इस संक्षिप्त उपदेश के माध्यम से मैं एक अच्छे गंतव्य तक पहुँच गया और सुख प्राप्त कर लिया; इसलिए मेरा मानना है कि जो लोग निरंतर धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनते हैं, वे अवश्य ही अमरता, यानी सुरक्षित जीवन को प्राप्त करेंगे।

21 तथागत (बुद्ध) के धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) में थोड़ा सा भी किया गया कार्य महान फलदायी, व्यापक लाभ देने वाला होता है। देखो, कैसे चत्त, पुण्य कर्मों के फल से पृथ्वी को सूर्य के समान प्रकाशित करता है।

22 यह कौन सा धर्म है जिसे हम कर सकते हैं? - इसलिए कुछ लोग आपस में परामर्श करते हैं, यदि हमें फिर से मनुष्य का दर्जा प्राप्त हो जाए तो हमें जीवन भर नैतिकता (शील) का अभ्यास करते हुए जीना चाहिए।

23 और महान सेवा और करुणा के स्वामी गुरु (बुद्ध) सुबह-सुबह मेरे पास आए जब मैं इस विकट स्थिति में था। तब मैंने उनसे प्रार्थना की जो अपने नाम के प्रति सच्चे हैं, कि वे मुझ पर फिर से दया करें ताकि मैं धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) को सुन सकूँ।

24 जो लोग यहाँ इंद्रिय सुखों से आसक्ति और अस्तित्व के प्रति अंतर्निहित आसक्ति तथा भ्रम से मुक्त हो जाते हैं, वे फिर कभी गर्भ-शय्या (पुनर्जन्म) पर नहीं आते, क्योंकि शीतल होकर वे अंतिम निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

अतः जब गुरु (बुद्ध) ने सभा को संबोधित किया, तो देव-युवक ने आर्य (महान) धारा में अपनी स्थापना की घोषणा करते हुए भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अपने माता-पिता से विदा लेकर उस देव-लोक में लौट गया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.4 -------------------------->>>> अगला

5.4 केकड़े का सूप देने वाले का महल (54)
(कक्कटकरसदयाक-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बांस के जंगल में ठहरे हुए थे। उस समय एक भिक्षु जो अंतर्मन का अभ्यास कर रहा था, कान में तेज दर्द के कारण उससे विमुख हो गया। उसने भगवान (बुद्ध) को बताया कि चिकित्सक की दवा से उसे कोई लाभ नहीं हुआ। भगवान (बुद्ध) यह जानते हुए कि केकड़े का सूप रोगनाशक है, ने उसे मगध के मैदान में भिक्षा मांगने के लिए कहा। वह वहाँ गया और एक खेत के रखवाले की झोपड़ी के द्वार पर भिक्षा मांगने लगा। उस व्यक्ति ने केकड़े का सूप पकाकर उसे अपने पास बैठाया और थोड़ा सा सूप दिया। भिक्षु ने

सूप का स्वाद चखते ही ऐसा महसूस किया मानो सौ घड़े पानी से स्नान कर लिया हो। उचित भोजन से शांत होकर उसने अपना ध्यान (पुनः) अंतर्मन की ओर लगाया और भोजन समाप्त होने से पहले ही अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गया। खेत के रखवाले से यह कहते हुए, "हे अनुयायी, इस पुण्य के फल से तुम शरीर और मन से अस्वस्थ हो जाओगे," उन्होंने आशीर्वाद दिया और चले गए। बाद में जब खेत के रखवाले की मृत्यु हुई, तो उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक में हुआ, जहाँ वे बारह योजन वाले रत्नजड़ित और सात सौ शिखर वाले कक्षों से सजे एक स्वर्ण महल में, बेरिल से बने एक कमरे में हुए। द्वार पर मोतियों की माला से एक स्वर्ण केकड़ा लटका हुआ था। और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने वहाँ जाकर यह देखा और पूछा:

1 "यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, चारों ओर बारह योजन हैं, सात सौ शानदार शिखर वाले कक्ष हैं और सुंदर बेरिल के खंभे चमकते धातु से ढके हुए हैं।

2 आप वहाँ निवास करते हैं, खाते-पीते हैं और देवदूतों के समान वीणा मधुर संगीत बजाते हैं। यहाँ देवदूतों के समान सुगंध, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख हैं और सोने से सजी स्त्रियाँ नृत्य करती हैं।

3 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप यहाँ किस कारण समृद्ध हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सभी सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?

4 हे महान महिमावान देवदूत, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

5 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह देव-युवक प्रसन्न हुआ और पूछे जाने पर उसने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

6 "द्वार पर सोने से बना एक केकड़ा स्मृति चिन्ह के रूप में स्थापित है, और वह अपने दस पंजों से चमकता है।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता चारों ओर प्रकाशमान करती है।" (जैसा कि अध्याय 16, 7 आदि में है)।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.5 -------------------------->>>> अगला

5.5 द्वारपाल का महल (55)
(द्वारपाल-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। उस समय एक गृहस्थ अनुयायी ने भिक्षु संघ के लिए चार निरंतर भोजों की शुरुआत की। लेकिन चोरों के डर से वह आमतौर पर अपने घर का दरवाजा बंद रखता था क्योंकि उसका घर शहर की सबसे बाहरी सीमा पर स्थित था। इसलिए भोज के लिए आने वाले भिक्षुओं को कभी-कभी भूखे ही लौटना पड़ता था। अपनी पत्नी से यह जानकर उसने आने वाले भिक्षुओं का स्वागत करने और उनकी सेवा करने के लिए एक द्वारपाल नियुक्त किया। जब दाता की मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म यमों के बीच हुआ, लेकिन जब द्वारपाल की मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्गों) के बीच बारह योजन वाले स्वर्ण महल में हुआ, जैसा कि पिछली कथा में बताया गया है। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना के इसी प्रकार के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा:

1-5 (जैसा कि 54. 1-5 में है)

6 "मेरा जीवनकाल एक हजार देव-जैसे वर्षों का है; (मेरा पुण्य कर्म) उच्चारित वचन और चिंतन द्वारा अर्पित प्रणाम में निहित है। इतने ही समय तक पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति देव-जैसे इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण रहेगा।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है... और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।" (जैसा कि 1.6,7 आदि में है)
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.6 -------------------------->>>> अगला

5.6 पहला आवश्यक भवन (56)
(पथम-करणीय-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। अचिरवती नदी में स्नान करके लौट रहे एक गृहस्थ अनुयायी ने भगवान (भगवान बुद्ध) से मुलाकात की और उन्हें अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया तथा उनका आदरपूर्वक स्वागत किया। शेष भाग पहले के समान है। देव (देवदूत) का उत्तर इस प्रकार है:

1-5 (जैसा कि 54. 1-5 में है)

6 "पुण्य कर्म विवेकशील बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा किए जाने चाहिए, जिनमें सही मार्ग पर चलने वाले प्रबुद्धों को दिया गया वरदान बहुत फलदायी होता है।

7 वास्तव में बुद्ध मेरे कल्याण के लिए वन से ग्राम में आए। इसी कारण, भक्त मन से, मैं तैंतीसवें स्वर्ग में पहुंचा।

8 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।" (जैसा कि 1, 6, 7 आदि में है)

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.7 -------------------------->>>> अगला

5.7 द्वितीय विधि-युक्त भवन (57)
(दुतिया-करणीय-विमान)

यह छठे के समान है, केवल इतना ही कि वहाँ भोजन भगवान (भगवान बुद्ध) को दिया गया था, यहाँ एक वृद्ध को।

1-5 (जैसा कि 54. 1-5 में है)

6 "पुण्य कर्म विवेकशील बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा किए जाने चाहिए, जिसमें उचित मार्ग पर चलने वाले भिक्षुओं को दिया गया दान बड़ा फलदायी (लाभदायी) होता है।

7 वास्तव में एक भिक्षु मेरे कल्याण के लिए वन से गाँव आया। उसमें, भक्त मन से, मैं तैंतीसवें (स्वर्ग) में आ गया।

8 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।" (जैसा कि 1.6,7, आदि में है)
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.8

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.8 -------------------------->>>> अगला

5.8 प्रथम सुई भवन (58)
(पथम-सुचि-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में बांस के वन में ठहरे हुए थे। उस समय आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्त के लिए वस्त्र बनवाने का कार्य था और सुई की आवश्यकता थी। भिक्षा मांगने के लिए एक लोहार के घर जाकर उन्होंने पूछा कि उन्हें क्या चाहिए, और अपनी आवश्यकता बताई। लोहार ने श्रद्धा भाव से उन्हें दो सुइयाँ भेंट कीं और कहा कि यदि और आवश्यकता हो तो बताएँ। लोहार की मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ और आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने इस देव-युवक से प्रश्न किया:

1-5 (जैसा कि 54. 1-5 में है)

6 "जो कुछ दिया जाता है, (केवल उसका फल/परिणाम) उसके समान नहीं होता। जो दिया जाना चाहिए, वही श्रेष्ठ है। एक सुई दी गई, मेरे लिए सुई ही श्रेष्ठ थी।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।" (जैसा कि 1.6,7, आदि में है)
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.9 -------------------------->>>> अगला

5.9 दूसरा सुई-भवन (59)
(दुतिया-सुचि-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। एक दर्जी उस वन को देखने गया, वहाँ उसने एक भिक्षु को बाँस के वन में बनी सुई से वस्त्र सिलते देखा और उसे अपनी सुई-पेटी में से कुछ सुइयाँ दे दीं। तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेने के बाद दर्जी से पूछा गया प्रश्न पहले जैसा ही था।

1-5 (जैसा कि 54. 1-5 में है)

6 "पिछले जन्म में जब मैं मनुष्य जगत में मनुष्यों के बीच मनुष्य के रूप में जन्मा, तो मैंने एक निर्मल, शांत और विक्षिप्त भिक्षु को देखा, जिसे मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से एक सुई दी।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।" (जैसा कि 1.6,7 आदि में है)
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.10 -------------------------->>>> अगला

5.10 प्रथम हाथी महल (60)
(पथम-नाग-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। तभी आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, जो तैंतीसवें लोक में देव-यात्रा पर थे, ने एक विशाल श्वेत हाथी पर सवार देव-युवक को अपने विशाल दल के साथ हवा में जाते हुए देखा और उनकी ओर बढ़े। देव-युवक अवतरित हुए और उन्होंने मोग्गलाना को प्रणाम किया। वृद्ध ने उनसे उनके कर्म के बारे में पूछा:

1 "आप एक ऐसे हाथी पर सवार हैं जिसका शरीर चमकीला सफेद है, जो शुद्ध नस्ल का, बलवान और तेज है, और जो सुंदर ढंग से सुसज्जित है। आप आकाश में मध्य में से होकर यहाँ आए हैं।

2 हाथी के दोनों दांतों पर क्रिस्टल जैसे साफ, खिले हुए कमल के तालाब बने हैं; कमलों के बीच संगीत की धुनें फूट रही हैं और ये मनमोहक नृत्य कर रहे हैं।

3 आप महान महिमावान हैं और आपने देव-देववक जैसी मानसिक शक्ति प्राप्त की है। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

4 देव-युवक, मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न हुए और जब उनसे प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने बताया कि यह किस कर्म का फल है।"

5 "मैंने अपने हाथों से प्रसन्नतापूर्वक आठ गिरे हुए फूल महान ऋषि कश्यप (पूर्व बुद्ध) के स्तूप (पवित्र स्मारक) पर अर्पित किए।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.11

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.11 -------------------------->>>> अगला

5.11 दूसरा हाथी-महल (61)
(दुतिया-नाग-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। उस समय एक विश्वासी गृहस्थ अनुयायी, जो नियमों (शील, नैतिकता) के अनुसार जीवन व्यतीत करता था, उपोसथ (पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) करता था, भिक्षुओं के संघ को दान देता था और मठ में धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुनने के लिए दान लेकर उपस्थित रहता था, वहाँ से देह त्याग कर तैंतीस (स्वर्ग) में आसीन हुआ। एक विशाल श्वेत हाथी उसकी सेवा में था, और अपने अनेक सेवकों के साथ वह समय-समय पर एक उद्यान में क्रीड़ा करने जाता था। एक दिन कृतज्ञता प्रकट करने के लिए प्रेरित होकर, वह आधी रात को अपने हाथी पर सवार होकर देवलोक से बाँस के वन में आया और वहाँ भगवान (बुद्ध) के समक्ष भक्ति भाव से खड़ा हो गया। भगवान बुद्ध के पास खड़े आदरणीय भिक्षु वंगीसा ने, भगवान बुद्ध की अनुमति से, उनसे प्रश्न किया:

1 "आप एक विशाल श्वेत हाथी पर सवार हैं, जो हाथी की श्रेष्ठता का प्रतीक है, और आप स्त्री-मंडली के साथ वनों में विचरण करते हैं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान तारे के समान चमक उठती हैं।

2 आपकी ऐसी सुंदरता का कारण क्या है? आप यहाँ किस कारण से समृद्ध होते हैं, और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सुख किस कारण उत्पन्न होते हैं?

3 हे महान महिमावान देव, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने मनुष्य के रूप में जन्म लेकर कौन सा पुण्य कर्म किया था? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा का कारण क्या है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को कैसे प्रकाशित करती है?"

4 वंगीसा द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देव-युवक ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

5 "जब मैं मनुष्यों के बीच एक मनुष्य के रूप में पैदा हुआ, तो मैं उस दिव्यदर्शी का साधारण अनुयायी था। मैंने सजीव प्राणियों पर आक्रमण करने से परहेज किया, मैंने संसार में निषिद्ध वस्तुओं का त्याग किया।

6 मैं मादक पेय नहीं पीता था, न ही झूठ बोलता था, और अपनी पत्नी से संतुष्ट था। आस्था से परिपूर्ण मन से, मैंने आदरपूर्वक भोजन और पेय दिया, दान में उदारतापूर्वक योगदान दिया।

7 इसी कारण मैं ऐसा हूँ... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.12

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.5.12 ------------------------->>>> अगला

5.12 तीसरा हाथी महल (62)
(तथ्य-नाग-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में, बांस के जंगल में ठहरे हुए थे। तभी तीन अरिहंत (पूर्णतः प्रबुद्ध) वर्षा ऋतु के लिए एक गाँव में आए, फिर भगवान (भगवान बुद्ध) को प्रणाम करने के लिए राजगृह गए। एक भ्रामक विचार वाले ब्राह्मण के गन्ने के बागान से गुजरते हुए उन्होंने बागान के रखवाले से पूछा, "क्या हम आज राजगृह पहुँच सकते हैं?" "नहीं महोदय, यह आधा योजन और आगे है; आप यहीं ठहरिए और कल जाइए।" "क्या यहाँ कोई जगह है जहाँ हम ठहर सकें?" "नहीं, लेकिन मैं तुम्हें एक जगह के बारे में बताऊंगा।" उसने गन्ने, लकड़ियों आदि से झोपड़ियाँ बनाईं, उन्हें चावल और गन्ने का रस दिया, और भोजन के बाद उन्हें एक-एक गन्ना देकर विदा किया, यह सोचकर कि यह उपज में से उसका हिस्सा है, और अपने कल्याण की आशा और प्रसन्नता के साथ लौट आया। लेकिन उसके गुरु ने भिक्षुओं से मुलाकात की और उनसे पूछा कि उन्हें गन्ने कहाँ से मिले, और यह सुनकर वह क्रोधित हो गया और क्रोध से उबलता हुआ वापस भागा और अपने रखवाले को लाठी से मारा, जिससे उसकी एक ही वार में मृत्यु हो गई। उसके इस कर्म के फल स्वरूप, वह सुधम्मदेवों के हॉल में पुनर्जन्म लेकर एक विशाल सफेद हाथी का स्वामी बना। उनके माता-पिता और रिश्तेदार उनके अंतिम संस्कार में शोक मना रहे थे, लेकिन वे उनके बीच भव्य रूप से सवार होकर आए, और एक सहज बुद्धि वाले व्यक्ति ने उनसे उनके द्वारा किए गए पुण्य कर्म के बारे में पूछा:

1 "अब कौन देवदूत के समान वाहन, पूर्णतः सफेद हाथी पर, मधुर वाद्य संगीत की ध्वनि के साथ आकाश में सम्मानित है?

2 अब, क्या आप देवता हैं, स्वर्ग के संगीतकार हैं या सक्क (इंद्र, देवदूतों के राजा), उदार दाता हैं? अब आपको जानकर, हम आपसे पूछते हैं कि हम आपको कैसे जानें?" उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया:

3 "मैं न तो देव हूँ, न ही स्वर्ग का संगीतकार, और न ही मैं सक्क (इंद्र, देवदूतों के राजा), उदार दाता हूँ। मैं सुधम्म-देवों में से एक हूँ।"

फिर उस व्यक्ति ने पूछा:

4 "हम सुधम्म-देव (देवदूत), आदरपूर्वक हाथ जोड़कर आपसे पूछते हैं, आपने मनुष्यों के बीच ऐसा कौन सा कर्म किया है कि आप सुधम्म में प्रकट हुए हैं?"

उन्होंने यह श्लोक कहा:

5 "जो गन्ने की झोपड़ी, घास की झोपड़ी, वस्त्रों की झोपड़ी देता है, वह इन तीनों में से एक देता है, वह सुधम्म में उठता है।"

इस प्रकार अपने माता-पिता को सांत्वना देकर वह देवलोक लौट गया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.13

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.13 -------------------------->>>> अगला

5.13 लघु रथ महल (63)
(कुलरथ-विमान)

भगवान बुद्ध के अंतिम निर्वाण के बाद उनके अवशेषों को वितरित किया गया, और महान महा-कस्सपा भिक्षुओं के मार्गदर्शन में धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पाठ करने के लिए भिक्षुओं का चयन किया गया; वर्षा ऋतु में आने वाले शिष्य, अपने-अपने साथियों के साथ, अनुकूल जनमानस का ध्यान रखते हुए विभिन्न स्थानों पर निवास कर रहे थे। और आदरणीय महा-कच्चना एक सीमावर्ती क्षेत्र के वन क्षेत्र में रह रहे थे। उस समय अस्सका, पोटा नगर में अस्सका राज्य पर शासन कर रहा था। अब सुजाता, जो उसकी प्रधान रानी से पुत्र था, अपने पिता द्वारा सबसे छोटी रानी के आग्रह पर वनवास में चला गया था। कस्सपा बुद्ध के समय में, यद्यपि वह एक भिक्षु था, तब उसका सांसारिक रूप से निधन हो गया था और अब उसका पुनर्जन्म हुआ और उसका नाम सुजाता रखा गया। जब उनकी माता का अल्पकाल में निधन हो गया, तो उनके पिता की नई प्रधान रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। प्रसन्न राजा ने अपनी पत्नी को वरदान देने का प्रस्ताव रखा; जब सुजाता सोलह वर्ष की थीं, तब उन्होंने उनसे वरदान मांगते हुए अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का अनुरोध किया। राजा ने इनकार कर दिया, क्योंकि उनका सबसे बड़ा पुत्र ही उत्तराधिकारी था। सुजाता उन्हें अपना वचन निभाने के लिए लगातार आग्रह करती रहीं, अंततः राजा ने मजबूरी में आँसुओं के साथ सुजाता को यह बात बता दी। अपने पिता के दुःख से व्याकुल होकर युवक ने वनवास जाने की अनुमति मांगी। राजा ने उनके लिए एक नया नगर बनवाने का प्रस्ताव रखा, परन्तु उन्होंने न तो पड़ोसी राजकुमारों के पास भेजे जाने पर सहमति दी। राजा ने उन्हें गले लगाया और इस शर्त पर चले गए कि जब वे अनाथ हो जाएंगे तो राज्य का कार्यभार संभालने के लिए लौट आएंगे। जंगल में वनपालों के साथ रहते हुए, वह एक दिन हिरण का शिकार करने निकला और एक हिरण का पीछा तब तक करता रहा जब तक कि वह वरिष्ठ भिक्षु महा-कच्चना की पत्तों की झोपड़ी के पास गायब नहीं हो गया। महा-कच्चना ने उससे पूछा:

1 "तुम मजबूत लकड़ी से बने एक दृढ़ धनुष पर झुके हुए हो। अब तुम योद्धा-कुलीन हो, राजा के पुत्र हो या जंगल में भटकने वाले शिकारी?"

तब उसने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा:

2 "मैं, आदरणीय महोदय, अस्सका के अधिपति का पुत्र, जंगल में भटक रहा हूँ। मेरा नाम, भिक्षु, सुआजता है, इसी नाम से मैं जाना जाता हूँ। "

वरिष्ठ भिक्षु ने मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए कहा:

4 "आपका स्वागत है, महान पुण्यात्मा, आपका स्वागत है। यहाँ पानी लो ताकि तुम अपने पैर धो सको।

5 यह पीने का पानी भी ठंडा है, पहाड़ों की गुफाओं से लाया गया है।" "इसे पीकर, राजकुमार, बिछी हुई घास पर बैठ जाइए।"

तब राजकुमार ने वृहत्तर के मैत्रीपूर्ण अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा:

6 "हे महान ऋषि, आपके वचन सचमुच मधुर हैं। आप सुविचारित उद्देश्य से मधुर और सार्थक बातें कहते हैं।

7 वन में निवास करने वाले आपको क्या प्रसन्न करता है? हे ऋषियों के श्रेष्ठ, पूछे जाने पर बोलिए। आपकी वाणी सुनकर मैं धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के उद्देश्य का अभ्यास करूंगा।"

अब वृहत्तर ने अपने लिए भी उपयुक्त उचित अभ्यास बताते हुए कहा:

8 "हे राजकुमार, सभी सजीव प्राणियों को हानि न पहुँचाना और चोरी से बचना हमें प्रसन्न करता है।"व्यभिचार (असंयम) और शराब का सेवन।

9. संयम और समभाव का अभ्यास, ज्ञान, कृतज्ञता, यहाँ प्रशंसा के योग्य, ये सब बातें प्रशंसा के योग्य हैं।

10. हे राजकुमार, जान लो कि पाँच महीने बाद तुम मृत्यु के समक्ष होगे - अपने आप को पूरी तरह मुक्त कर लो।

तब युवक ने अपनी मुक्ति के साधन के बारे में पूछते हुए कहा:

11. "मुझे किस देश में जाना चाहिए, और मुझे मनुष्य का कौन सा कार्य करना चाहिए, या किस ज्ञान से मैं अमर हो सकता हूँ?"

तब वृषभ ने उसे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाने के लिए ये श्लोक कहे:

12. "हे राजकुमार, ऐसा कोई क्षेत्र, ऐसा कोई कार्य या ज्ञान नहीं है, जिसके द्वारा मनुष्य अमर हो सके।

13. बहुत धनवान, बहुत संपत्ति वाले, यहाँ तक कि राज्य के स्वामी योद्धा भी - धन और फसलों से भरपूर ये भी अमर नहीं होते।"

14 शायद आपने अंधकवेनु के उन पुत्रों के बारे में सुना होगा जो शक्तिशाली, बलवान और आक्रमण में प्रखर थे—यद्यपि ये भी, जीवन-काल के विनाश को प्राप्त करके, विलीन होकर, सदा-सर्वदा अमर हो जाते हैं।

15 योद्धा-कुलीन, ब्राह्मण, ग्रामीण, दास, नीच जाति के सफाईकर्मी—यहाँ तक कि ये और अन्य भी जन्म से अमर नहीं होते।

16 ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) द्वारा सृजित छह विद्याओं के मंत्रों का जाप करने वाले भी अपने ज्ञान से अमर नहीं होते।

17 और यहाँ तक कि वे ऋषि-मुनि, शांत और संयमी तपस्वी भी उचित समय पर अपने शरीर का त्याग कर देते हैं।

18 यहां तक कि अरिहंत (पूर्ण आध्यात्मिक जागृति प्राप्त भिक्षु), जिनका मन विकसित हो चुका हो, जिन्होंने अपने कर्तव्यों का पालन किया हो, और जो सांसारिक इच्छाओं से मुक्त हों, वे भी अपने अच्छे और बुरे कर्मों के पूर्ण नाश पर इस शरीर को त्याग देते हैं।

अब युवक ने अपने लिए क्या करना चाहिए, इस विषय पर बोलते हुए कहा:

19 "हे महान ऋषि, आपके वचन उत्तम हैं, उद्देश्यपूर्ण हैं। आपके अच्छे वचन से मुझे शांति मिली है। आप ही मेरी शरण बनें।"

तब वृहत्तर ने उसे उपदेश देते हुए यह वचन कहा:

20 "मेरी शरण में मत आओ; केवल शाक्यों के पुत्र, हे महान, जिनकी शरण में मैं गया हूँ, उनकी शरण में आओ।"

तब युवक ने कहा:

21 "हे गुरु, आपके गुरु किस देश में हैं?" मैं भी उस विजेता, उस अद्वितीय व्यक्ति से मिलने जाऊँगा।"

वृहत्तर ने कहा:

22 "पूर्वी देश में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) वंश का जो व्यक्ति वहाँ श्रेष्ठ पुरुष था, वह पूर्णतः इसलोक में चला गया था।"

जब राजकुमार ने वृहत्तर से धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश सुना, तो वह शरण (बुद्ध; धम्म-मार्ग; संघ-व्यवस्था) और नैतिकता (शील) के अभ्यास में स्थापित हो गया। इस प्रकार कहा गया:

23 "हे महोदय, यदि आपके गुरु (बुद्ध) जीवित होते, तो मैं उनकी सेवा करने के लिए हजारों योजन की यात्रा करता।

24 परन्तु हे महोदय, आपके गुरु (बुद्ध) पूर्णतः इसलोक में चले गए हैं,मैं उस महान व्यक्ति की शरण में जाता हूँ जो पूरी तरह से बेहोश हो गया था।

25 मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, और सर्वोच्च धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की ओर भी, और मनुष्यों के देव (देवदूत) के भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ।

26 मैं तुरंत प्राणियों की हत्या से परहेज़ करता हूँ, संसार में जो कुछ भी नहीं दिया गया है, उसका त्याग करता हूँ, मादक पेय नहीं पीता, झूठ नहीं बोलता और अपनी पत्नी से संतुष्ट हूँ।

वृहत्तर ने इस प्रकार कहा, "अब अपने पिता के पास जाओ, तुम्हारा जीवनकाल अल्प है, तुम केवल पाँच महीनों में मर जाओगे, पुण्य कर्म करो।" राजकुमार ने ऐसा ही किया और चार महीने बाद उसकी मृत्यु हो गई और वह तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। उसके पुण्य के फलस्वरूप सात प्रकार के रत्नों से सुशोभित, सात योजन लंबा एक रथ प्रकट हुआ। उसने मृतक का अंतिम संस्कार किया और भिक्षुओं के संघ को एक बड़ा दान दिया, उसने चैत्य (मंदिर) को प्रणाम किया। वृहत्तर यहाँ पहुँचे। देव-युवक अपने देव-समान रथ में आया, वृहत्तर को प्रणाम किया और उनके पिता से अभिवादन का आदान-प्रदान किया। वृहत्तर ने उससे इन श्लोकों में पूछा:

27 "हजार किरणों वाले तेजस्वी सूर्य के समान, अपने मार्ग में यह आकाश के क्षेत्रों को प्रकाशित करता है, ठीक उसी प्रकार आपका यह शक्तिशाली रथ सात योजन तक चारों ओर फैला हुआ है।

28 यह स्वर्ण प्लेटों से ढका हुआ है, इसका शरीर रत्नों और मोतियों से जड़ा हुआ है, इस पर सोने और चांदी की नक्काशी है, और बेरिल से सुंदर नक्काशी की गई है, जो इसे और भी आकर्षक बनाती है।

29 बेरिल की नक्काशी से सजा हुआ इसका अग्रभाग और माणिक से जड़ा हुआ इसका जुआ, और सोने और चांदी के अलंकरणों से सजे ये घोड़े, जो कल्पना के समान तीव्र हैं, इसे और भी सुंदर बनाते हैं।

30 आप इस स्वर्ण रथ में सभी से श्रेष्ठ विराजमान हैं, जैसे हजार घोड़ों से जुते रथ में विराजमान देवदूत। हे यश और निपुणता के स्वामी, मैं आपसे पूछता हूँ, आपने यह वैभव किस प्रकार प्राप्त किया है?

इस प्रकार बड़े गुरु द्वारा पूछे जाने पर, देवदूत-युवक ने इन श्लोकों में उत्तर दिया:

31 "जब मैं आदरणीय महोदय, एक राजा का पुत्र था, तब मेरा नाम सुजाता था। और आपने मुझ पर दया करके मुझे आत्मसंयम में स्थापित किया।"

32 और यह जानकर कि मेरा जीवनकाल समाप्त हो रहा है, आपने मुझे गुरु (बुद्ध) का एक अवशेष देते हुए कहा: "सुजाता, इसका आदर करना, यह तुम्हारे कल्याण के लिए होगा।"

33 जब मैंने उचित कर्म करते हुए, इत्र और मालाओं से आदर किया और अपने मानव शरीर को त्यागकर नंदनवन (स्वर्ग) में अवतरित हुआ।

34 और उस रमणीय नंदनवन (स्वर्ग) में, जो अनेक पक्षियों का निवास स्थान है, मैं अप्सराओं के नृत्य और गीत के साथ आनंदित होता हूँ।

इस प्रकार देव-युवक ने वृहद को प्रणाम करके और अपने पिता से विदा लेकर रथ पर सवार होकर देवलोक लौट गया। वृहद ने सभा के समय धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के प्रचारकों को उनके बीच हुई पूरी बातचीत सुनाई।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु5.14

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.5.14 -------------------------->>>> अगला

5.14 महान रथ महल (64)
(महारथ-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) की यात्रा करते हुए एक देव-युवक, गोपाल को अपने महल से निकलकर भव्य रथ पर सवार होकर आनंद उद्यान (उद्यान) में क्रीड़ा करने जाते हुए देखा। देव-युवक ने वरिष्ठ भिक्षु को देखकर रथ से उतरकर उनके सामने अपने हाथ जोड़कर सिर तक उठा लिए। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे पूछा:

1 "इस विविध रंगों से रंगे सुंदर रथ में, जिसमें हजार घोड़े जुते हुए हैं, आनंद के लोकों की ओर जाते हुए, आप उदार दाता, प्राणियों के स्वामी वासव की तरह चमकते हैं।

2 आपके रथ की रेलिंग सोने की बनी हैं, सहायक तख्तों और कंधों से सुसज्जित हैं, कुशल कारीगरों द्वारा तैयार किए गए खंभों से सुसज्जित हैं, यह पंद्रहवें दिन चंद्रमा की तरह चमकता है।

3 यह रथ, सोने के जाल से ढका हुआ, अनेक रत्नों से जड़ा हुआ, मधुर ध्वनि उत्पन्न करता हुआ और जगमगाता हुआ, कई हाथ से चलने वाले चक्कों से जगमगाता है।

4 वे धुरी भी कल्पना से गढ़ी गई हैं, रथ के पहिए जिनके केंद्र और ये धुरी भी सौ धारियों से रंगे हुए हैं, सौ गुना चमकती बिजली की तरह चमकते हैं।

5 यह रथ अनेक चित्रों से ढका हुआ है, और इसका चौड़ा किनारा हजार गुना तेज से जगमगाता है। इनसे एक मधुर ध्वनि सुनाई देती है जैसे पंचांग संगीत बज रहा हो।

6 इसके अग्र भाग को अलंकृत किया गया है। चंद्रमा के आकार के रत्नों से सुसज्जित, सदा शुद्ध और चमकीला; प्रचुर मात्रा में सुनहरी किरणों से युक्त, यह बेरिल की किरणों के साथ बारी-बारी से चमकता है।

7 और ये घोड़े, चंद्रमा के आकार के रत्नों से सजे हुए, ऊँची गर्दन वाले, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के समान तीव्र, ऊँचे और विशाल, बलवान और तेज, आपकी इच्छा जानकर गति करते हैं।

8 और ये, अपने चारों अंगों में सामंजस्य के साथ, आपकी इच्छा जानकर गति करते हैं। वे उत्तम साज-सामान को खड़खड़ाते हुए छलांग लगाते हैं। इनसे एक मधुर ध्वनि सुनाई देती है जैसे पंचांग संगीत बज रहा हो।

9 आकाश में एक साथ उछलते और गति करते हुए वे उत्तम साज-सामान को खड़खड़ाते हुए छलांग लगाते हैं। इनसे एक मधुर ध्वनि सुनाई देती है जैसे पंचांग संगीत बज रहा हो।

10 रथ और साज-सामान की ध्वनि, खुरों की गड़गड़ाहट और घोड़ों की हिनहिनाहट, इनसे एक मधुर ध्वनि सुनाई देती है जैसे किसी रमणीय उपवन में गंधर्व संगीत बज रहा हो।

11 रथ में हिरण जैसी शर्मीली आँखों वाले वे (सेवक) घनी पलकों के साथ मुस्कुराते हुए खड़े हैं, रथ में खड़े होकर हाथ जोड़कर सेवा कर रहे हैं।

12 लाल वस्त्र पहने, लाल और पीले रंग से रंगे हुए वस्त्रों में, बड़ी और गहरे लाल रंग की आँखों वाले, कुलीन, सुंदर रूप और मनमोहक मुस्कान वाले वे रथ में खड़े होकर हाथ जोड़कर सेवा कर रहे हैं।

13 वे, अपने स्वर्ण कंगनों से सुशोभित, सुंदर वस्त्रों में लिपटी हुई, सुडौल कमर, जांघों और छाती वाली, गोल उंगलियों वाली, सुंदर मुखों वाली, देखने में आकर्षक, रथ में खड़ी होकर हाथ जोड़कर सेवा करती हैं।

14 कुछ युवा, विभिन्न प्रकार से सजे हुए, समान रूप से गुंथे हुए और चमकते बालों वाली, आपकी आज्ञा का पालन करते हुए और प्रसन्नता से आपकी सेवा में लगी हुई, रथ में खड़ी होकर हाथ जोड़कर सेवा करती हैं।

15 वे, लाल और नीले कमलों से सजी हुई मालाओं से सजी हुई, उत्तम चंदन से सुगंधित, आपकी आज्ञा का पालन करते हुए और प्रसन्नता से आपकी सेवा में लगी हुई, रथ में खड़ी होकर हाथ जोड़कर सेवा करती हैं।

16 वे, लाल और नीले कमलों से सजी हुई मालाओं से सजी हुई, उत्तम चंदन से सुगंधित, आपकी आज्ञा का पालन करते हुए और प्रसन्नता से आपकी सेवा में लगी हुई, रथ में खड़ी होकर हाथ जोड़कर सेवा करती हैं।

17 गर्दन, हाथों, पैरों और सिर पर सजे हुए वे आभूषण दसों दिशाओं को शरद ऋतु के सूर्योदय के समान चमकाते हैं।

18 हवा के झोंके में कंपन करते हुए, बाहों में सजी मालाएँ और आभूषण एक मनमोहक ध्वनि उत्पन्न करते हैं, जो सभी ज्ञानी पुरुषों के लिए सबसे मधुर है।

19 और आनंदभूमि में दोनों ओर रथ, हाथी और वाद्ययंत्र विराजमान हैं, जो हे देवों के मुखिया, आपको अपनी ध्वनि से प्रसन्न करते हैं, जैसे कि वीणा अपने पुल, तख़्ते और धनुष से प्रसन्न करती है।

20 जब ये अनेक सुंदर और मनमोहक वीणाएँ बजती हैं, जो हृदय में आनंद भर देती हैं, तो प्रशिक्षित अप्सराएँ कमलों पर स्वतंत्र रूप से घूमती हैं।

21 और जब नृत्य, वादन और गायन सब एक समान प्रतीत होते हैं, तब यहाँ वे (आपके रथ में) नृत्य करती हैं, तब वहाँ अप्सराएँ, तेजस्वी स्त्रियाँ, दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, दोनों ओर नृत्य करती हैं।

22 आप संगीत की धुन से आनंदित होते हैं, मानो आप देवताओं के स्वामी इंद्र हों, वज्र धारण करने वाले हों, जबकि ये अनेक वीणाएँ बजती हैं और हृदय में आनंद भर देती हैं।

23 आपने पूर्व जन्म में मनुष्य के रूप में क्या कर्म किया था? क्या आपने उपोसथ (उपवास और पश्चात्ताप) का पालन किया था या धर्म (सदाब के मार्ग) पर चलकर और अच्छे आचरण से तृप्ति पाई थी?

24 आपके इस व्यापक वैभव और महिमा का कारण कोई तुच्छ कर्म या सुचारु पालन नहीं है, जिसमें आप देवों से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।

25 या यह आपके दान देने, नैतिकता के अभ्यास या श्रद्धा अर्पित करने का फल है? अब, पूछे जाने पर बताइए।

इस प्रकार पूछे जाने पर उस देव-युवक ने, जो उस महान बुजुर्ग द्वारा पूछा गया था, यह विषय बताया:

26 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर वह देव-युवक प्रसन्न हुआ और उसने बताया कि यह किस कर्म का फल है:

27 "वह, जो सभी शक्तियों में पराजित है, बुद्ध, जो सामर्थ्य में परिपूर्ण है, मनुष्यों में श्रेष्ठ है, कस्सपा (पूर्व बुद्ध), सर्वोच्च पुरुष, जिसने अमरता का द्वार खोला, देवों में श्रेष्ठ देव, सौ पुण्य चिह्नों से युक्त।

28 मैंने उसे देखा, शक्तिशाली हाथी, बाढ़ पार किया हुआ, चमकीले सोने के गोले के समान। शुद्ध मन से, मैंने शीघ्र ही पहचान लिया कि वह वही है, कि वह वास्तव में सुगठित वचन का ध्वजवाहक है।

29 मैंने, अनासक्त मन से, अपने पुष्पों से सजे निवास में उसे भोजन, पेय और शुद्ध एवं उत्तम गुणवत्ता वाले वस्त्र प्रदान किए।

30 मनुष्यों में श्रेष्ठ को भोजन, पेय, वस्त्र, कठोर और नरम भोजन और आवास से विश्राम कराने के बाद, मैं आनंदित हो रहा हूँ... देव नगर, स्वर्ग से स्वर्ग तक जाने वाला।

31 इस प्रकार, इस निर्बाध यज्ञ को करके, मैं शुद्ध होकर, इस नश्वर शरीर से मुक्त होकर, इंद्र के समान देव नगर में आनंदित हो रहा हूँ।

32 हे ऋषि, जो ऐसे उत्तम वरदान की कामना करता है, उसे भरपूर भोजन और पेय पदार्थ, अच्छी तरह से तैयार करके, एकांतप्रिय व्यक्ति को अर्पित करना चाहिए।

33 न तो इस लोक में और न ही परलोक में कोई ऐसा है जो बुद्ध या उनके समतुल्य से श्रेष्ठ हो। पुण्य के भरपूर फल की तलाश करने वालों के लिए, वह आह्वान के योग्य लोगों में सर्वोच्च वरदान का लक्ष्य बन जाते हैं।

जब वह इस प्रकार बोल रहे थे, तब गुरुजी ने यह जानते हुए कि उनका मन तैयार है, बाधाओं आदि से मुक्त है, सत्यों का प्रतिपादन किया और अंत में उन्हें आध्यात्मिक जागृति के प्रथम चरण, सोतपना के फल से सुसज्जित किया। तब गुरुजी मनुष्य जगत में लौटकर भगवान को उस युवा देवदूत के साथ हुई बातचीत को दोहराया। गुरु (बुद्ध) ने इस विषय को प्रवचन का अवसर बनाकर उपस्थित सभा को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.6.1 -------------------------->>>> अगला

6.1 प्रथम निवास भवन (65)
(पथम-अगरिया-विमान)

भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन में निवास कर रहे थे। उस समय राजगृह में एक धनी और गुणी परिवार रहता था, जो भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए लाभों का स्रोत था। माता-पिता ने अपने पूरे जीवन में तीन रत्नों (बुद्ध, धम्म और संघ/आदेश) के नाम पर पुण्य कर्म किए और वहाँ से उनका निधन हो गया और वे तैंतीस (स्वर्ग) में पुनर्जन्म हुए। उनके लिए दस योजन का एक स्वर्ण निवास भवन था। तब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने पूछा:

1 "जिस प्रकार चित्तलता वन, तैंतीस स्वर्गों का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च आनंद (उद्यान) चमकता है, उसी प्रकार आपका यह महल आकाश में प्रकाशमान है।

2 आप देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं और महान महिमा के स्वामी हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? किस कारण आपकी महिमा इतनी तीव्र है और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

3 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देव-युवक ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

4 "मैं और मेरी पत्नी मनुष्यों के संसार में एक घर में रहते थे और लाभ के स्रोत के समान थे। विश्वास से भरे मन से, हम आदरपूर्वक भोजन और पेय देते थे, और उदारतापूर्वक दान करते थे।

5 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.6.2 -------------------------->>>> अगला

6.2 द्वितीय गृह हवेली (66)
(दुतिया-अगरिया-विमान)

पूर्ववर्ती के साथ सभी मामलों में समान।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.6.3 -------------------------->>>> अगला

6.3 फलदाता का महल (67)
(फलदयाक-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में बांस के जंगल में ठहरे हुए थे। उस समय राजा बिम्बिसार को असमय आम खाने की इच्छा हुई। माली ने तमाम कठिनाइयों के बावजूद अपना पूरा प्रयास किया और कुछ आम जबरदस्ती उगाए। जब चार आम पक गए, तो उसने राजा के लिए उन्हें तोड़ लिया। लेकिन जब उसने आदरणीय भिक्षु महा-मोग्गलाना को भिक्षा मांगते देखा, तो उसने सोचा, "मैं ये आम इस आदरणीय भिक्षु को खुशी-खुशी दे दूंगा, चाहे राजा मुझे मार डाले या देश निकाला दे दे, क्योंकि राजा को दान देने का पुण्य इस समय नगण्य है, परन्तु इस आदरणीय भिक्षु को दान देने का पुण्य इस समय और भविष्य में अतुलनीय होगा।" अतः उसने ये आम भिक्षु को दे दिए और फिर राजा को बताया। राजा ने अपने आदमियों को बुलवाया और कहा, "देखो, क्या उसने मुझे सही बताया है।" बड़े माली ने भगवान बुद्ध को आम दिए। उन्होंने उन्हें सारिपुत्त, महामोग्गलाना और महाकस्सपा जैसे अन्य बड़े माली के साथ बाँटा। यह सुनकर राजा माली के साहस से प्रसन्न हुए और उसे एक गाँव, वस्त्र और आभूषण देकर उससे अपने इस कर्म का पुण्य उन्हें देने को कहा। माली ने उत्तर दिया, "हे महाराज, मैं देता हूँ; आप अपनी इच्छा अनुसार लाभ चुन लीजिए।" और जब माली की मृत्यु हुई, तो वह सोलह योजन वाले स्वर्ण महल में तैंतीस देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेकर आया। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मग्गलाना ने उनसे पूछा:

1 "यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, चारों ओर सोलह योजन हैं, इसमें सात सौ शानदार शिखर वाले कक्ष और सुंदर बेरिल के खंभे हैं जो चमकते धातु से ढके हुए हैं।

2 आप यहाँ निवास करते हैं, खाते-पीते हैं, जबकि देव-देवदूतों के समान वीणा मधुर संगीत बजाती हैं, और आठ गुना आठ देव-देवदूत कन्याएँ प्रशिक्षित और सुंदर, तैंतीस (स्वर्ग) की गौरवशाली निवासी, नृत्य करती हैं, गाती हैं और आनंदित होती हैं।

3 आप, देव-देवदूतों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं, महान महिमा के हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? किस कारण आपकी महिमा इतनी तीव्र है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 वरिष्ठ भिक्षु मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देव-देवदूत युवक ने प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर दिया। यह किस कर्म का फल (लाभ) था?

5 "फलदाता को भरपूर फल (लाभ) प्राप्त होता है। श्रद्धा भाव से दान देने पर, जो धर्मी मार्ग पर चल रहे हैं, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दान देने पर वह तैंतीस (स्वर्ग) में आनंदित होता है। स्वर्ग प्राप्त करने पर उसे पुण्य का भरपूर फल (लाभ) मिलता है। इसलिए, हे महान ऋषि, मैंने चार फल दिए।

6 अतः फल (लाभ) देना निरंतर सुख और कल्याण की खोज में लगे व्यक्ति को प्रेरित करता है, चाहे वह देवदूत के समान सुख की कामना करे या मनुष्यों के बीच सुख की।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.6.4 ------------------------->>>> अगला

6.4 प्रथम आश्रयदाता का महल (68)
(पथम-उपास्यादयक-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। उस समय, वर्षा के बाद भगवान (भगवान बुद्ध) को प्रणाम करने जा रहे एक भिक्षु एक गाँव में पहुँचे और रात बिताने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश करने लगे। उन्होंने जिस गृहस्थ अनुयायी से पूछा, उसने अपनी पत्नी से परामर्श करने के बाद भिक्षु को अपने यहाँ अतिथि के रूप में आमंत्रित किया, और अगली सुबह जब आगंतुक फिर से रवाना हुए, तो उन्होंने उन्हें गुड़ का एक टुकड़ा दिया। उनकी मृत्यु के बाद, गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में बारह योजन वाले स्वर्ण महल में पुनर्जन्म लिया। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गसलाना ने उनसे पूछा:

1 "जैसे बादल छंटने पर चंद्रमा आकाश में प्रकाश बिखेरता हुआ निकलता है, वैसे ही आपका यह महल आकाश में प्रकाश बिखेरता हुआ खड़ा है।

2 आप देवों के समान आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर चुके हैं और महान महिमा के स्वामी हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित क्यों करता है?

3 वह देव-युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल है?

4 "मैंने और मेरी पत्नी ने मनुष्य जगत में एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) को शरण दी; श्रद्धा भाव से हमने आदरपूर्वक भोजन और पेय पदार्थ दिए, प्रचुर मात्रा में दान दिया।

5,6 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है... और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.6.5 ------------------------->>>> अगला

6.5 द्वितीय शरणदाता का महल। (69)
(दुतिया-उपास्यादयक-विमान)

यह पिछले वाले के समान है, सिवाय इसके कि यहाँ कई भिक्षु हैं और महा-मोग्गलाना महल की तुलना सूर्य से करते हैं
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<---------------------- II.6.6 -------------------------->>>> अगला

6.6 भिक्षादाता का महल (70)
(भिक्कदयाक-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। उसी समय एक भिक्षु राजमार्ग से जा रहा था और भिक्षा माँगने के लिए एक गाँव में पहुँचा तथा एक घर के द्वार पर रुका। घर के निवासी ने अभी-अभी अपने हाथ-पैर धोए थे और भोजन करने बैठा था, उसने अपना सारा भाग भिक्षु के कटोरे में डाल दिया; धन्यवाद देकर वह चला गया। भिक्षु प्रसन्न होकर सोचने लगा, "मैंने एक भूखे भिक्षु को भिक्षा दी और स्वयं उपवास रखा।" बाद में मृत्यु होने पर, उसका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्गों) में बारह योजन वाले स्वर्ण महल में हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे पूछा:

1 "यह भव्य भवन चारों ओर बारह योजन तक रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, इसमें सात सौ शानदार शिखर वाले कक्ष और चमकते धातु से ढके सुंदर बेरिल के खंभे हैं।

2 आप, देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं, महान महिमा के हैं... और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

3 उस देव-युवक को प्रसन्नता हुई... यह किस कर्म का फल है?

4 "जब मैं मनुष्यों के बीच मनुष्य के रूप में जन्मा, तो एक भूखे और थके हुए भिक्षु को देखकर, मैंने उसे अपने पास मौजूद एकमात्र भोजन दिया।

5 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.6.7 -------------------------->>>> अगला

6.7 जौ की रखवाली करने वाले का महल (71)
(यवपालक-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में बांस के वन में ठहरे हुए थे। उस समय एक गरीब लड़का जौ के खेत में रखवाली कर रहा था और वह नाश्ते के लिए कुम्मस लाया था। जब वह खाने बैठा, तभी वहाँ एक वृद्ध भिक्षु आए जिनके सांसारिक विकार नष्ट हो चुके थे। लड़के ने पूछा, "क्या आपके पास भोजन है, श्रीमान?" वृद्ध भिक्षु चुप रहे। लड़के ने यह देखकर कि इसका अर्थ "नहीं" है, कहा, "श्रीमान, भोजन के समय के इतने करीब भिक्षा माँगना संभव नहीं है; मुझ पर दया करके यह कुम्मस खा लीजिए।" वृद्ध भिक्षु ने दया करके उसे देखते हुए स्वयं कुम्मस खाया, धन्यवाद दिया और चले गए। लड़के ने मन में यह विचार किया कि उसने ऐसे व्यक्ति को दान देकर अच्छा कार्य किया है। कुछ समय बाद जब उनकी मृत्यु हुई, तो उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में उसी प्रकार के महल में हुआ जैसा कि अभी वर्णित है। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे पूछा:

1,2 "यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है... और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"

3 उस देव-युवक को प्रसन्नता हुई... यह किस कर्म का फल है?

4 "जब मैं मनुष्य के रूप में जन्मा, तो मैं जौ के खेत में पहरा दे रहा था। मैं निर्मल, शांत और विक्षिप्त भिक्षु था।

5 मैंने श्रद्धापूर्वक अपने हाथों से उन्हें कुम्मस का एक अंश दिया। कुम्मस का अंश देकर मैं नंदनवन में आनंदित हुआ।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.8

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.6.8 -------------------------->>>> अगला

6.8 प्रथम बाली धारण करने वाले का निवास (72)
(पथम-कुंडली-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में ठहरे हुए थे। उस समय उनके दो प्रमुख शिष्य अपने अनुयायियों के साथ काशी पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे और सूर्यास्त के समय एक विहार (मठ) में पहुँचे। तभी एक अनुयायी आया और उसने उनके चरणों को स्नान कराकर मालिश की तथा अगले दिन के लिए आमंत्रित करते हुए एक अच्छा दान तैयार किया। उनका धन्यवाद करने के बाद, वरिष्ठ अनुयायी अपने मार्ग पर चले गए। उनकी मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में बारह योजन वाले स्वर्णमय निवास में हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे पूछा:

1 "आप पुष्पों की मालाओं से सुशोभित हैं, सुंदर वस्त्र पहने हैं, चमकीले झुमके लगाए हैं, बाल और दाढ़ी संवारे हैं, चंद्रमा के समान तेजस्वी कंगन पहने हैं, देवदूतों के समान महल में विराजमान हैं।

2 देवदूतों के समान वीणा मधुर संगीत बजा रही हैं और तैंतीस देवदूतों में से आठ सुसंस्कृत और सुंदर देवदूत कन्याएं नृत्य, गायन और आनंद ले रही हैं।

3 आप देवदूतों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं, महान महिमा के हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 वह देवदूत युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल है?

5 "जब मैं मनुष्य के बीच जन्मा, तो ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, प्रसिद्ध और विद्वान भिक्षुओं को देखकर, जिन्होंने भोग-विलास का नाश कर लिया था,

6 मैंने श्रद्धा भाव से उन्हें आदरपूर्वक भोजन और पेय पदार्थ दिए और भरपूर दान दिया।

7 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है... और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.6.9 -------------------------->>>> अगला

6.9 द्वितीय कान की बाली पहनने वाला महल (73)

(दुतिया-कुंडली-विमान)

यह पिछले महल की तरह ही हुआ, श्लोक भी वही हैं सिवाय इसके कि श्लोक 5 में समने साधुरुपे, अच्छे आचरण वाले भिक्षु, समने सिलवन्ते, गुणी भिक्षुओं के स्थान पर है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु6.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<---------------------- II.6.10 -------------------------->>>> अगला

6.10 उत्तरा का महल (74)

(उत्तरपायसी-विमान)

भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण (शाश्वतता) प्राप्त करने और सभा होने के बाद, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु कुमारकस्प कई भिक्षुओं के साथ सेतावया नगर गए और सिम्सपा वन में ठहरे। तब शासक पायसी ने यह सुनकर उनसे मुलाकात की और उनका स्वागत किया। फिर, उनके विचारों पर चर्चा करते हुए, वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें परलोक की वास्तविकता के बारे में समझाया, जैसा कि पायसी सूत्र में वर्णित है। विदा होते समय, पायसी ने दान दिया, लेकिन चूंकि उन्होंने कम भोजन और मुश्किल से पर्याप्त वस्त्र दिए, क्योंकि वे (पहले) इसके अभ्यस्त नहीं थे, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद वे चार महान राजाओं के साथ एक निम्न समूह में उठे। और उत्तरा नामक एक ब्राह्मण युवक ने उनके कार्यों में उनकी सहायता की; स्वयं उदारतापूर्वक और आदरपूर्वक दान देने के बाद, वे बारह योजन वाले महल के साथ तैंतीस (स्वर्ग) के समूह में उठे। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वे अपने महल के साथ वरिष्ठ कुमार-कस्सपा के समक्ष प्रकट हुए और उन्हें प्रणाम किया। वरिष्ठ कुमार-कस्सपा ने उनसे पूछा:

1 "जैसे देव-राजा का सुधम्म महल, जहाँ देवों का समूह निवास करता है, वैसे ही आपका यह महल आकाश में प्रकाशमान है।

2 आप देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं, आप महान महिमावान हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? किस कारण आपकी महिमा इतनी तीव्र है और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

3 वह देव-युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल है?

4 "जब मेरा जन्म मनुष्य के रूप में हुआ, तब मैं राजा पयसी के अधीन एक ब्राह्मण युवक था। मैंने जो धन कमाया, उसे बाँट दिया, क्योंकि मुझे गुणी लोग प्रिय थे।

5 श्रद्धा भाव से मैंने आदरपूर्वक भोजन और पेय पदार्थ दान किए, उदारतापूर्वक दान दिया।

6 इसी कारण मेरा सौंदर्य ऐसा है... और मेरा सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<---------------------- II.7.1 -------------------------->>>> अगला

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.1

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<----------------------- II.7.1 -------------------------->>>> अगला

7.1 चित्तलता (स्वर्ग) का महल (75)
(चित्तलता-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में ठहरे हुए थे। वहाँ एक गरीब गृहस्थ अनुयायी था जो दूसरों के लिए काम करके अपना जीवन यापन करता था। वह आस्थावान था और अपने वृद्ध माता-पिता का सहारा था, क्योंकि उसका मानना था, "घर में रहने वाली स्त्रियाँ ही घर की मुखिया होती हैं। वे अपने ससुराल वालों का सम्मान नहीं करतीं।" इसलिए वह नैतिक नियमों और पालन के दिनों (उपोसथ, पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) का पालन करता रहा। मरने के बाद उसका पुनर्जन्म बारह योजन वाले महल में तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना, पहले की तरह आकर, उनसे पूछते हैं:

1 "जिस प्रकार चित्तलता वन, तैंतीस स्वर्गों का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च आनंद, चमकता है, उसी प्रकार आपका यह महल आकाश में प्रकाशमान है।

2 आप देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके हैं, आप महान महिमा के स्वामी हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है?"

3 मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देव-युवक ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

4 "जब मैं मनुष्य के बीच पैदा हुआ, तो मैं एक गरीब, निर्धन, दयनीय मजदूर था और अपने बूढ़े माता-पिता का सहारा था, और मुझे गुणी लोग प्रिय थे।

5 विश्वास की भावना से, मैं आदरपूर्वक भोजन और पेय देता था, और उदारतापूर्वक दान भी करता था।

6 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.2

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.2 -------------------------->>>> अगला

7.2 नंदना हवेली (76)
(नंदन-विमान)

पिछली हवेली के समान, सिवाय इसके कि यहाँ गरीब मजदूर ने एक पत्नी ले ली थी, और पहला श्लोक "जैसे नंदना (स्वर्ग) उपवन चमकता है..." से शुरू होता है, फिर क्रमांक 75 के अनुसार जारी रहता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.3

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.3 -------------------------->>>> अगला

7.3 रत्नजड़ित भवन (77)
(मणितुना-विमान)

भगवान बुद्ध सावत्थिम जेतवन में निवास कर रहे थे। उस समय कई बुजुर्ग वनवास में रहते थे। गाँव में भिक्षा मांगने जा रहे इन बुजुर्गों के लिए एक अनुयायी ने मार्ग सुगम बनाए, झाड़ियाँ साफ कीं, जलमार्गों पर पुल बनाए, जल को सुखाकर गहरे कुंडों में जमा किया, इत्यादि। उसने दान दिया और नैतिक नियमों का पालन किया। कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई और बारह योजन वाले स्वर्णमय भवन में उनका पुनर्जन्म हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे प्रश्न किया:

1 "यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, चारों ओर बारह योजन हैं, सात सौ शानदार शिखर वाले कक्ष हैं और सुंदर बेरिल के खंभे चमकते धातु से ढके हुए हैं।

2 आप यहाँ निवास करते हैं, खाते-पीते हैं और देवदूतों के समान वीणाओं की मधुर ध्वनि का आनंद लेते हैं। यहाँ देवदूतों के समान सुगंध, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख हैं और सोने से सजी स्त्रियाँ नृत्य करती हैं।

3 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है... और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

4 वह देवदूत युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल था?

5 "जब मैं मनुष्य के रूप में पैदा हुआ, तो मैंने जंगल के रास्ते पर सैर की और एक मठ में पेड़ लगाए, और मुझे गुणी लोग प्रिय थे।

6 आस्था से भरे मन से, मैंने आदरपूर्वक भोजन और पेय पदार्थ दिए, उदारतापूर्वक दान किया। इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है... और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.4

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.7.4 ------------------------->>>> अगला

7.4 स्वर्ण महल (78)
(सुवन्ना-विमान)

भगवान (बुद्ध) अंधकविन्द में ठहरे हुए थे। तब एक विश्वासी और धनी गृहस्थ अनुयायी ने एक बंजर पहाड़ी पर उनके लिए एक "सुगंधित कुटिया" बनवाई, उन्हें वहाँ ठहराया और उनकी सेवा की। शील के उत्तम अभ्यास द्वारा आत्मसंयमित होकर, मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक में रत्नजड़ित सौंदर्य और स्वर्ण छत वाले महल में हुआ। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा मोग्गलाना ने उनसे प्रश्न किया:

1 "एक सुनहरे पर्वत पर एक महल है जो चारों ओर से जगमगाता है, सुनहरे जाल से ढका हुआ है, झनझनाती घंटियों से जड़ा हुआ है,

2 आठ-पहलू वाले सुगठित स्तंभ सभी बेरिल से बने हैं, उनकी प्रत्येक भुजा सात प्रकार के रत्नों से सजी है।

3 बेरिल, सोने, क्रिस्टल और चांदी से, रत्नों से जड़ा हुआ, मोतियों और माणिकों से,

4 रंग-बिरंगा फर्श, मनमोहक; उस पर धूल भी नहीं उड़ती; छत को सहारा देने वाले कई पीले शहतीर बने हैं,

5 और चारों दिशाओं के लिए चार सीढ़ियाँ बनी हैं। कई रत्नों से सजे कमरों के साथ यह सूर्य के समान चमकता है।

6 वहाँ चार रेलिंग विभाजित हैं, सुनियोजित अनुपात में, चकाचौंध भरी, चारों दिशाओं को रोशन करती हैं।

7 इस शानदार महल में, महान तेज वाले देव-युवक, आप उगते सूरज की तरह सुंदरता से चमकते हैं।

8 क्या यह वही महल है?" क्या यह आपके दान देने का फल है, या फिर नैतिकता (शील) के अभ्यास का, या हाथ जोड़कर प्रणाम करने का? पूछे जाने पर मुझे यह बताइए।

9 वह देव-युवक, मोग्गलाना द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न हुआ और जब उससे प्रश्न पूछा गया तो उसने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

10 "जब मैं अंधकविन्द में श्रद्धापूर्वक था, तो मैंने अपने हाथों से सूर्य के सगे गुरु बुद्ध के लिए एक विहार बनाया।

11 वहाँ, श्रद्धापूर्वक, मैंने गुरु (बुद्ध) को सुगंध, मालाएँ, आवश्यक वस्तुएँ, मलहम और विहार भेंट किया।

12 इसी से मुझे यह लाभ हुआ कि मैं नंदन (स्वर्ग) में स्वामी के रूप में निवास करता हूँ और रमणीय नंदन वन में अनेक पक्षियों के झुंडों के शिकार का आनंद लेता हूँ, जहाँ अप्सराएँ नृत्य और गीत गाती हैं।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.5

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.5 -------------------------->>>> अगला

7.5 आमों का महल (79)
(अंबा-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में ठहरे हुए थे। वहाँ एक गरीब आदमी आमों के बाग की रखवाली के लिए रखा गया था। एक दिन भीषण गर्मी में उसने आदरणीय भिक्षु सारिपुत्त को गर्मी और थकान से बेहाल होकर आते देखा और कहा, "महोदय, आप गर्मी से बहुत परेशान लग रहे हैं। अगर आप दया करके आमों के बाग में आकर विश्राम करें तो अच्छा होगा।" भिक्षु मान गए, एक आम के पेड़ के नीचे बैठ गए, और उस आदमी ने उन्हें पीने के लिए पानी दिया और हाथ-पैर धोने के लिए पानी दिया, और बाद में अपने पुण्य कर्मों पर प्रसन्न हुआ। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तैंतीस (स्वर्ग) में हुआ, और उनसे भी आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने पूछा:

1 यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, चारों ओर बारह योजन हैं, सात सौ शानदार शिखर वाले हॉल हैं और सुंदर बेरिल के खंभे चमकते धातु से ढके हुए हैं।

2 आप यहाँ निवास करते हैं, खाते-पीते हैं और देवदूतों के समान वीणाओं की मधुर ध्वनि का आनंद लेते हैं। यहाँ देवदूतों के समान सुगंध, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख और सोने से सजी स्त्रियाँ नृत्य करती हैं।

3 आपकी सुंदरता ऐसी क्यों है... और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

4 वह देवदूत युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल था?

5 "गर्मी के मौसम के अंतिम महीने में जब सूरज बहुत तेज था, मैं, एक मजदूर, दूसरों के आम के बाग में पानी दे रहा था।

6 फिर वहाँ ख्यातिप्राप्त भिक्षु सारिपुत्त आए, शरीर से थके हुए, पर मन से नहीं।

7 मैं आमों को पानी दे रहा था, तभी मैंने उन्हें आते देखा और कहा, 'हे पूज्यवर, आपका स्नान कराना अच्छा होगा; इससे मुझे सुख मिलेगा।'

8 मुझ पर दया करके उन्होंने अपना कुंड और वस्त्र एक तरफ रख दिया और उसी वस्त्र में एक वृक्ष की जड़ के नीचे छाया में बैठ गए।

9 और श्रद्धा भाव से मैंने उस वृषभ को उसी वस्त्र में बैठे हुए, वृक्ष की जड़ के नीचे छाया में, निर्मल जल से स्नान कराया।

10 आमों को पानी दिया गया, भिक्षु स्नान कर चुके थे, और इस प्रकार मैंने उनका पुण्य कर्म संपन्न किया, जिससे उनका पूरा शरीर आनंद से भर गया।

11 यही वह कर्म था जो मैंने उस जन्म में किया। मानव शरीर त्यागकर मैं नंदनवन (स्वर्ग) में अवतरित हुआ हूँ।

12 अनेक पक्षियों के झुंडों के निवास स्थान, रमणीय नंदनवन (स्वर्ग) में, मैं अप्सराओं के नृत्य और गीत के साथ आनंदित होता हूँ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.6

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.6 --------------------------->>>> अगला

7.6 ग्वाले का घर (80)
(गोपाल-विमान)

भगवान बुद्ध राजगृह में, बाँस के वन में ठहरे हुए थे। एक ग्वाला राजगृह छोड़कर चरागाह में अपने पशुओं को चराने गया था, तभी उसने आदरणीय भिक्षु महा-मोग्गलाना को आते देखा। महा-मोग्गलाना ने उस व्यक्ति की मृत्यु को भांपते हुए उसके पास जाने का निश्चय किया। वह दुविधा में था कि क्या वह अपने साथ लाया हुआ कुम्मस का भोजन भिक्षु को दे या पशुओं को सेम के खेतों से दूर रखे। उसने निश्चय किया कि चाहे खेतों के मालिक उसके साथ कुछ भी करें, वह यह अवसर नहीं खो सकता, इसलिए उसने अपना भोजन उसे दे दिया और भिक्षु ने करुणावश उसे स्वीकार कर लिया। तभी गायों को दूर रखने की जल्दी में ग्वाला ने अनजाने में एक साँप को छू लिया और साँप ने उसके पैर में काट लिया। बुजुर्ग को भोजन करते देख प्रसन्न और आनंदित होकर, वह विष से ग्रसित हो गया और उसकी मृत्यु हो गई, और बारह योजन वाले स्वर्ण महल में तैंतीस (स्वर्ग) के बीच उसका पुनर्जन्म हुआ। वहाँ उन्हें देखकर आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने पूछा:

1 भिक्षु ने कंगनों से सजे, प्रसिद्ध देव (देवदूत) को चंद्रमा के समान ऊँचे और चिरस्थायी महल में विराजमान देखकर उनसे पूछा:

2 "हे देवदूत, पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, सुंदर वस्त्रों में, उज्ज्वल वस्त्रों से युक्त, सुसज्जित बाल और दाढ़ी वाले, कंगनों से सजे, प्रसिद्ध, चंद्रमा के समान देव (देवदूत) महल में विराजमान, 3

जब देव (देवदूत) के समान वीणाएँ मधुर संगीत बजाती हैं और तैंतीस देवियों में प्रशिक्षित और सुंदर आठ देव-युवतियाँ नृत्य करती हैं, गाती हैं और आनंदित होती हैं,

4 हे देव (देवदूतों) की मानसिक शक्ति प्राप्त कर चुके, आप महान महिमा के हैं। मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह चमक किस कारण है? इस प्रकार आपकी महिमा और सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?

5 वह देव-युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल था?

6 "जब मैं मनुष्यों के बीच एक मनुष्य के रूप में पैदा हुआ, तो मैंने दूसरों के स्वामित्व वाले पशुओं की बड़ी सावधानी से रखवाली की। तभी एक भिक्षु मेरे पास आया और गायें फलियाँ चरने चली गईं।

7 'आज मेरे दो कर्तव्य हैं, दोनों का मुझे पालन करना चाहिए' - मैंने ऐसा सोचा, हे पूज्यवर; फिर ध्यानपूर्वक विचार करके और (धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का ज्ञान प्राप्त करके), मैंने उन्हें गठरी सौंपते हुए कहा, हे पूज्यवर।

8 फिर मैं तुरंत फलियों के खेत की ओर चल पड़ा, इससे पहले कि पशुओं का झुंड किसी और की संपत्ति को रौंद डाले। लेकिन वहाँ एक बड़े काले विषैले साँप ने मेरे पैर में काट लिया, जब मैं जल्दी में था।

9 मैं व्याकुल था, दर्द से तड़प रहा था; भिक्षु ने स्वयं गठरी खोली और मुझ पर दया करके कुम्मासा ग्रहण किया। वहाँ से मृत्यु के बाद, मैं एक देवता (देवदूत) हूँ।

10 मैंने वही धर्म कर्म किया था, और मैं अपने ही शुभ कर्म का फल भोग रहा हूँ। हे पूज्यवर, आप ही थे जो अत्यंत दयालु थे; कृतज्ञता व्यक्त करते हुए मैं आपको नमन करता हूँ।

11 देवों और मारों के बीच इस संसार में आप जैसे करुणामय संत कोई और नहीं हैं, हे पूज्यवर। आप अत्यंत करुणामय थे; मैं कृतज्ञतापूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।

12 इस संसार में या परलोक में भी आप जैसे करुणामय संत कोई और नहीं हैं। हे पूज्यवरवर, आप ही अत्यंत करुणामय थे; मैं कृतज्ञतापूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.7

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.7 -------------------------->>>> अगला

7.7 कंथक का महल (81) - बुद्ध का घोड़ा देवदूत बन जाता है
(कंथक-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। उस समय जब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना देवयात्रा पर थे, कंथक नामक एक देव-युवक अपने निवास से निकलकर, अपने विशाल दल और अपार देव-शक्ति के साथ उद्यान की ओर जा रहा था। पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना को देखकर वह शीघ्रता से अपने वाहन से उतरा और उन्हें प्रणाम किया। और बड़े ने उससे पूछा:

1 "जैसे पूर्णिमा का चंद्रमा, तारों का स्वामी, खरगोश के निशान वाला, नक्षत्रों से घिरा हुआ, चारों ओर घूमता है,

2 वैसे ही यह देव-स्वरूप निवास, देव-नगर में उगते सूरज की तरह सुंदरता से जगमगाता है।

3 बेरिल, सोने, क्रिस्टल और चांदी से जड़ा हुआ, बिल्ली की आंखों जैसे रत्नों, मोतियों और माणिकों से सजा हुआ,

4 रंगीन फर्श, मनमोहक, बेरिल से पक्का, सुंदर और आकर्षक शिखर वाले हॉल, आपका महल खूबसूरती से बना हुआ है।

5 और आपके पास मनमोहक कमल-कुंड हैं जिनमें पुथुलोमा मछली आती हैं, साफ चमकीला पानी सुनहरी रेत से घिरा हुआ है,

6 विभिन्न कमलों से ढका हुआ, सफेद जल-लिली से फैला हुआ, मोहक, हवाओं से लहराता हुआ वे एक प्यारी सुगंध बिखेरते हैं।

7 इसके दोनों ओर अच्छी तरह से निर्मित वन क्षेत्र हैं जिनमें फूल वाले और फलदार दोनों प्रकार के पेड़ हैं।

8 (जब आप स्वर्णमय चरणों वाले दीवान पर देवराज की तरह विराजमान हैं, कोमल वस्त्र की चटाई पर अप्सराएँ आपकी सेवा करती हैं।

9 सभी आभूषणों से सुशोभित, विभिन्न मालाओं से अलंकृत, वे आपको प्रसन्न करती हैं, जो महान मानसिक शक्ति वाले हैं; जैसे वासवत्तिन (देवराज) आप आनंदित होते हैं।

10 जब नृत्य, गीत और मधुर संगीत का प्रचलन होता है, तो आप ढोल, शंख, मृदंग, वीणा और तंबू से आनंदित होते हैं।

11 अनेक प्रकार के ये देव-समान रूप, देव-समान ध्वनियाँ, और सुगंध भी सुखद हैं, और स्पर्श के विषय सुखद और आनंददायक हैं।

12 इस वैभवशाली महल में, महान तेज वाले देव-युवक, आप उगते सूरज की तरह सुंदरता से चमकते हैं।

13 क्या यह आपके दान देने का फल है, या नैतिकता के अभ्यास का, या श्रद्धा अर्पित करने का। हाथ जोड़कर? पूछे जाने पर मुझे यह बता देना।"

14 वह देव-युवक प्रसन्न हुआ... यह किस कर्म का फल था?

15 "शाक्यों के शानदार नगर कपिलवस्तु (बुद्ध का नगर) में मैं कंठक (राजकुमार सिद्धार्थ का अश्व, जो अब बुद्ध हैं) था, और शुद्धोदन के पुत्र (बुद्ध) से गर्भ धारण किया था।

16 जब आधी रात को वे (बुद्ध) ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रस्थान कर गए, तो कोमल जालीदार हाथों और तांबे के रंग के नाखूनों से,

17 उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई और कहा, 'मित्र, मुझे ले चलो। जब मैं परम आत्मज्ञान प्राप्त कर लूंगा, तो मैं संसार को पार कराऊंगा।'

18 जब मैंने उनकी वाणी सुनी तो मुझे अत्यंत आनंद हुआ; मेरा मन प्रसन्न और प्रसन्न था, और मैंने आज्ञा का पालन करते हुए हिनहिनाया।

19 यह जानकर कि महान यशस्वी शाक्यों के पुत्र मुझ पर सवार हुए हैं, मेरा मन प्रसन्न और प्रसन्न था, और मैंने उस परम पुरुष को अपने प्राणों में धारण किया।

20 अन्य क्षेत्रों से होकर, सूर्योदय होते ही, वे बिना किसी लालसा के आगे बढ़ गए, मुझे (बुद्ध के घोड़े को) और चन्ना (सेवक) को पीछे छोड़ते हुए।

21 मैंने अपनी जीभ से उनके तांबे के रंग के नाखूनों वाले पैरों को चाटा और रोते हुए उस महान पुरुष को जाते हुए देखा।

22 क्योंकि मैंने उस तेजस्वी शाक्यों पुत्र को फिर कभी नहीं देखा, मैं अत्यंत बीमार पड़ गई और शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो गई।

23 और उनकी महिमा के कारण ही मैं इस देव-सम्मोहनालय में निवास करती हूँ, जो सभी प्रकार के इंद्रिय सुखों से सुसज्जित है।

24 और उनके ज्ञानोदय के बारे में सुनकर मेरे मन में जो आनंद उत्पन्न हुआ, उसी धर्म के मूल से मैं सांसारिक इच्छाओं का नाश करूँगा।

25 हे पूज्यवर, यदि आप गुरु बुद्ध के समक्ष जाएँ, तो क्या आप भी मेरे शब्दों के साथ उनके चरणों में आदरपूर्वक प्रणाम करेंगे?

26 मैं भी उस विजेता, अद्वितीय पुरुष के दर्शन करने जाऊँगा; उनके समान संसार के रक्षक को देखना कठिन है।

27 और वह कृतज्ञ होकर, लाभों का ध्यान रखते हुए, गुरु (बुद्ध) के पास पहुँचे; जब उन्होंने दूरदर्शी की वाणी सुनी, तो उन्होंने धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के दर्शन को शुद्ध किया।

28 अविश्वास, संदेह और प्रतिज्ञाओं से मुक्त होकर, गुरु के चरणों का आदर करते हुए, वे वहीं अंतर्धान हो गए।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.8

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.8 -------------------------->>>> अगला

7.8 विविध रंगों का महल (82)
(अनेकवन्न-विमान)

भगवान (बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना तैंतीसवें (स्वर्ग) लोक में देव-यात्रा पर थे और एक विविध रंगों के देव-युवक ने उनका अभिवादन किया, जो उनके पास आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

बड़े ने पूछा:

1 "विभिन्न रंगों वाले, दुःख और थकान दूर करने वाले, विविध सौंदर्य से परिपूर्ण, अप्सराओं के समूह से घिरे हुए, आप सृष्टि के स्वामी, सुनीमिता के समान आनंदित हैं।

2 आपका कोई सानी नहीं, फिर यश, गुण और मानसिक शक्ति में आपसे श्रेष्ठ कौन है? तैंतीस देव-समूह आपको प्रणाम करने के लिए एकत्रित हैं, जैसे मनुष्य में देव चंद्रमा को प्रणाम करते हैं। 3 और

ये, आपकी अप्सराएँ, चारों ओर नाचती, गाती और आनंदित होती हैं। आप, देवों की मानसिक शक्ति प्राप्त करके, महान महिमावान हैं।

4 मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी यह तेजस्वी महिमा और आपका सौंदर्य सभी दिशाओं को प्रकाशित क्यों करता है?"

5 हे देव-युवक, आनंदित होइए... यह किस कर्म का फल था?

6 "हे पूज्यवर, मैं पूर्व में सुमेधा (पूर्व बुद्ध) नामक विजेता का शिष्य था। मैं एक सांसारिक व्यक्ति था, अज्ञानी, जो सात वर्षों तक भिक्षु बनकर बुद्ध के मार्ग पर चला।

7 जब विजय प्राप्त करने वाले सुमेधा, गुरु, दृढ़ निश्चयी, जिन्होंने बाढ़ पार की थी, का अंत हुआ, तब मैंने उनके रत्नजड़ित स्तूप (पवित्र स्मारक) पर प्रणाम किया, जो सोने के जाल से ढका हुआ था, जिससे मेरे मन को शांति मिली।

8 मेरा कोई दान नहीं था, क्योंकि मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं था। लेकिन मैंने वहाँ मौजूद अन्य लोगों को प्रेरित किया: 'उस पवित्र अवशेष को प्रणाम करो जो प्रणाम के योग्य है; ऐसा कहा जाता है, तुम यहाँ से स्वर्ग जाओगे।'

9 ऐसा परोपकारी कार्य मैंने किया, जिसके फलस्वरूप मुझे देवदूतों जैसा आनंद प्राप्त हुआ। मैं तैंतीस (स्वर्ग) के समूह में प्रसन्न हूं क्योंकि उस पुण्य का फल अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।
त्रिपिटक >> सूत्र पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु 7.9

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<---------------------- II.7.9 ------------------------->>>> अगला

7.9 पॉलिश किए हुए झुमके पहने हुए महल (83)
(मत्तकुंडली-विमान)

भगवान (भगवान बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में ठहरे हुए थे। वहाँ एक बहुत धनी लेकिन नास्तिक ब्राह्मण रहता था जो कभी किसी को कुछ नहीं देता था और उसे 'निःधन' के नाम से जाना जाता था। उसने अपने पुत्र मत्तकुंडली को कहा था कि वह भगवान (भगवान बुद्ध) या उनके शिष्यों के पास न जाए। उसने आज्ञा का पालन किया। जब वह बीमार पड़ा तो उसके पिता ने उसे दवा तक नहीं दी, यहाँ तक कि उसकी हालत बिगड़ती गई और जब चिकित्सकों को बुलाया गया तो उन्होंने कहा कि यह लाइलाज है। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने घोर करुणा की अनुभूति से प्रेरित होकर देखा कि वे पुत्र और पिता को बचा सकते हैं, और उनके घर के पास खड़े होकर उन्होंने अपनी किरणें भेजीं। पुत्र रोमांचित और प्रसन्न होकर प्रणाम किया और लेट गया। भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद उनका निधन हो गया और वे तैंतीस स्वर्गों में स्थित बारह योजन वाले एक महल में जन्म लिए। अंतिम संस्कार के अगले दिन पिता अपने पुत्र का नाम पुकारते हुए रोते हुए श्मशान गए। पुत्र, जो एक देव-युवक थे, ने उन्हें देखकर पिता को मत्तकुंडलिन के रूप में दर्शन दिए और शोक में हाथ जोड़कर रोते हुए कहा, "आह, चंद्रमा! आह, सूर्य!" तब ब्राह्मण ने कहा:

1 "सज्जित, चमकीले कान की बालियाँ पहने, मालाएँ धारण किए, त्वचा पर पीले चंदन का लेप लगाए, हाथ जोड़कर विलाप कर रहे हो। इस वन में तुम्हें कौन सा (दुःख) सँभाल रहा है?"

2 "स्वर्ण से निर्मित और तेजस्वी मेरा रथ बना है। मुझे इसके लिए पहिए नहीं मिल रहे हैं। इस दुःख के कारण मैं प्राण त्याग दूँगा।"

3 "हे ब्राह्मण युवक, आप बताइए, सोने का, रत्नों का, माणिक का या चाँदी का, मैं आपके लिए पहियों का एक जोड़ा लाऊँगा।"

अपने पुत्र के लिए औषधि न ला पाने के कारण ब्राह्मण युवक ने विनम्रतापूर्वक कहा, "वे चंद्रमा और सूर्य के समान विशाल होने चाहिए," और उसने उनसे इस प्रकार निवेदन किया:

4 उस ब्राह्मण युवक ने उनसे कहा, "यहाँ चंद्रमा और सूर्य दोनों दिखाई देते हैं। मेरा सोने का रथ ऐसे पहियों के साथ चमक उठेगा।"

तब ब्राह्मण ने कहा:

5 “हे ब्राह्मण युवक, तुम सचमुच मूर्ख हो, जो उस चीज़ की तलाश करते हो जो प्राप्त नहीं हो सकती। मुझे लगता है कि तुम मर जाओगे क्योंकि तुम चंद्रमा और सूर्य को प्राप्त नहीं कर सकते।”

ब्राह्मण युवक ने उनसे कहा, “कौन (अधिक) मूर्ख है, वह जो दिखाई देने वाली चीज़ के लिए रोता है या वह जो दिखाई न देने वाली चीज़ के लिए रोता है?”

6 “उनका आना-जाना तो देखा जा सकता है, उनके स्वाभाविक गुण और सुंदरता उनके मार्ग में ही झलकती है। परन्तु जो मर गया है और जिसका समय पूरा हो गया है, वह दिखाई नहीं देता। हम में से कौन यहाँ विलाप करने वाला सबसे बड़ा मूर्ख नहीं है?”

7 “हे ब्राह्मण युवक, तुम्हारी बात सही है। हम में से जो इस प्रकार विलाप कर रहा है, मैं निश्चय ही सबसे बड़ा मूर्ख हूँ। जैसे कोई बच्चा चाँद के लिए रोता है, मैं उसी की खोज कर रहा था जो मर गया है और जिसका समय पूरा हो गया है।”

और वह ब्राह्मण, उस श्लोक से दुःख रहित होकर,उन्होंने ब्राह्मण युवक की प्रशंसा करते हुए ये श्लोक कहे:

8 “सचमुच मैं आग की लपटों में जल रहा था, मानो उस पर घी डाला गया हो, परन्तु अब मानो मुझ पर पानी छिड़का गया हो, मेरा सारा दुःख दूर हो गया।

9 निश्चय ही आपने मेरे हृदय में स्थित दुःख, उस बाण को मुझसे निकाल लिया, और दुःख से व्याकुल होकर, पुत्र के लिए पिता के दुःख को दूर कर दिया।

10 अतः मैं, उस बाण की तरह, जो निकल गया था, शांत हो गया हूँ, मुक्त हो गया हूँ। हे ब्राह्मण युवक, आपकी वाणी सुनकर मैं न तो दुःख करता हूँ, न रोता हूँ।”

11 “अब, क्या आप कोई देवता हैं, कोई दिव्य संगीतकार हैं, या सक्का (देवदूतों के राजा) हैं, उदार दाता हैं? या आप कौन हैं? या किसके पुत्र हैं? हम आपको कैसे पहचानें?”

और उसने अपने बारे में उससे कहा:

12 "मैं वही पुत्र हूँ जिसका आपने श्मशान में अंतिम संस्कार किया था, जिसके लिए आप शोक मनाते हैं और दुखी होते हैं, जिसने एक नेक कर्म करके (तृतीय) स्वर्ग की संगति प्राप्त की है।"

13 ब्राह्मण ने कहा, "हमने अपने घर में थोड़ा-बहुत दान देना या उपोसथ (पखवाड़े भर का उपवास और पश्चात्ताप) जैसे धार्मिक अनुष्ठान करना नहीं देखा है। किस कर्म से आप देवलोक में गए हैं?"

तब ब्राह्मण युवक ने कहा:

14 “मैं अपने घर में बीमार, दुखी और विक्षिप्त था, शरीर से अत्यंत कष्ट में था। मैंने निर्मल, संशयमुक्त, कल्याणकारी और पूर्ण दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण बुद्ध को देखा।

15 मेरा हृदय प्रसन्न हुआ और श्रद्धा भाव से मैंने हाथ जोड़कर तथागत (बुद्ध) को प्रणाम किया। इस पुण्य कर्म के फल से मुझे तैंतीस (स्वर्ग के) देवदूतों का साथ प्राप्त हुआ।”

जब वह ऐसा कह रहा था, ब्राह्मण का संपूर्ण शरीर आनंद से भर गया और उसने कहा:

16 "यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि हाथ जोड़कर प्रणाम करने का यही फल है। मैं भी आज ही प्रसन्न हृदय से बुद्ध की शरण में आया हूँ।"

फिर देव (देवदूत) युवक ने शरण लेने और नैतिक उपदेशों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए दो श्लोक कहे:

17 " आज ही श्रद्धापूर्वक बुद्ध की शरण लो, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का अनुसरण करो और भिक्षु संघ में प्रवेश करो। इसी प्रकार, प्रशिक्षण के पाँचों चरणों का पूर्णतः पालन करो।

18 अब से प्राणियों की हत्या न करो, संसार में जो कुछ भी निषिद्ध है उसका त्याग करो, मादक पेय न पियो, झूठ न बोलो और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहो।"

जब देव-युवक ने इस प्रकार शरण लेने और नैतिक उपदेशों का पालन करने का आग्रह किया, तो ब्राह्मण ने उसकी बात मानकर कहा:

19 "हे यक्ष, आप मेरा भला चाहते हैं, हे देवता, आप मेरा कल्याण चाहते हैं। मैं आपकी बात मानूंगा, आप मेरे गुरु हैं।

20 मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं और परम धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और मनुष्यों में देव (देवदूत) की शरण में जाता हूं।"

21 मैं तुरंत ही प्राणियों की हत्या करने से परहेज करता हूँ, मैं संसार में निषिद्ध वस्तुओं का त्याग नहीं करता, मैं मादक पेय नहीं पीता, झूठ नहीं बोलता और अपनी पत्नी से संतुष्ट हूँ।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.10

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.10 -------------------------->>>> अगला

7.10 सेरिसाका का महल (84)
(सेरिसाका-विमान)

भगवान बुद्ध के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु कुमार-कस्प पाँच सौ भिक्षुओं के साथ सेतव्य नगर पहुँचे। वहाँ उन्होंने शासक पयसी को उसके विकृत विचारों से विमुख किया। इसके बाद से, जैसा कि उन्हें पुण्य पसंद था, वे भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान देते रहे, लेकिन पहले की तरह नियमित रूप से दान न देने के कारण लापरवाही से देते रहे। उनकी मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म सिरिसा के उपवन में स्थित चार महान राजाओं के निवास स्थान, एक खाली महल में हुआ। यह दुखद है कि अतीत में, अरिगा-मगध के कुछ व्यापारी सिंधु और सोविरा जाते समय, दिन की गर्मी के डर से रात में यात्रा करते हुए, रास्ता भटक गए। उनके साथ एक विश्वासी गृहस्थ अनुयायी भी था, जिसमें अरहंतत्व (बुद्ध के समान अंतिम ज्ञान) प्राप्त करने की योग्यता थी और वह अपने माता-पिता का सहारा देने के लिए व्यापारियों के साथ शामिल हो गया था। उनकी सहायता के लिए देव-युवक सेरिसाका अपने महल के साथ प्रकट हुए और व्यापारियों से पूछा कि वे इस छायाहीन, जलहीन और रेतीले रेगिस्तान में कैसे आ गए। व्यापारियों ने उन्हें बताया। उनके संबंध को समझाने के लिए, पुनरावलोकनकर्ताओं ने पहले दो श्लोक जोड़े।

1 सुनो कि यक्ष और व्यापारियों के बीच कहाँ मुलाकात हुई और कैसे दोनों ने आपस में अच्छी तरह से बातचीत की, और आप सभी इसे ध्यान से सुनें।

2 राजा पायसी नाम के उस व्यक्ति ने, जो पृथ्वी के देवों (देवदूतों) का साथी और प्रसिद्ध था, अपने महल में आनंदित होकर, एक अमानवीय प्राणी, मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहा:

3 “एक घने जंगल में, जहाँ कोई मनुष्य नहीं जाता, एक जलहीन रेगिस्तान में, जहाँ खाने के लिए बहुत कम है, जहाँ रेतीले मैदान के बीच यात्रा करना बहुत कठिन है, और जहाँ अनिश्चितता के भय से मनुष्य अपना होश खो सकते हैं,

4 यहाँ न तो फल हैं, न ही जड़ें। यहाँ कोई भोजन नहीं है, तो फिर यहाँ भोजन कैसे मिलेगा? यहाँ निर्मम झुलसा देने वाली गर्मी की धूल और रेत के सिवा कुछ नहीं है,

5 एक झुलसे हुए लोहे के बर्तन की तरह बंजर भूमि, परलोक की तरह लाभहीन, कभी डाकुओं का शिविर रहा, एक शापित क्षेत्र।

6 और तुम, किस कारण से विवश होकर, किस इच्छा से, इतनी जल्दी में इस स्थान पर आए हो—लालच से, भय से या क्या तुम रास्ता भटक गए हो?"

तब व्यापारियों ने कहा:

7 "मगध और अरिगा के कारवां वालों, हम सिंधु और सोविरा देशों में धन की आवश्यकता और लाभ की तलाश में जाने के लिए प्रचुर मात्रा में माल लाद रहे थे।

8 दिन की प्यास सहन न कर पाने और अपने बैलों पर दया आने के कारण, हम सब इस गति से गलत समय पर, रात में, रास्ते पर चल पड़े हैं।

9 हम बुरी तरह भटक गए और रास्ता भूल गए, हम जंगल में खोए हुए अंधों की तरह भ्रमित हो गए। एक अत्यंत कठिन रेतीले इलाके में, हमारा मन व्याकुल हो गया, हमें दिशा का ज्ञान नहीं था।

10 अब, जो पहले कभी नहीं देखा गया था - एक सुंदर महल और आपको, यक्ष - देखकर, अब जीवन के लिए फिर से आशा के साथ उठ खड़े हुए हैं; क्योंकि हमने (आपको) देखा है, हम प्रसन्न, आनंदित और प्रसन्न हैं।"

फिर देव (देवदूत)-युवक ने पूछा:

11 "और यह रेतीला रेगिस्तान समुद्र के पार तक फैला हुआ है, सड़क खंभों से बनी एक ऊबड़-खाबड़ पगडंडी है जिस पर लता की रस्सी से सावधानीपूर्वक चलना पड़ता है; फिर नदियाँ और चट्टानों के बीच दुर्गम स्थान हैं—धन की लालसा में तुम अनेक क्षेत्रों से होकर गुज़रते हो।

12 दूसरे राजाओं के राज्यों में प्रवेश करते हुए, दूसरे देशों के लोगों को देखते हुए, जो कुछ तुमने सुना है या जो कुछ तुमने देखा है, इस आश्चर्य के विषय में, हे प्रिय मित्रों, हम तुमसे सुनेंगे।"

देव-युवक द्वारा पूछे जाने पर व्यापारियों ने कहा:

13 “हे राजकुमार, इससे अधिक अद्‌भुत हमने न तो सुना है और न ही देखा है; समस्त सांसारिक वस्तुओं से परे, हम आपकी परिपूर्ण सुंदरता को देखकर कभी नहीं थकते।

14 आकाश में कमल के सरोवर निरंतर बहते रहते हैं, जिनमें अनेक सफेद कमल खिले रहते हैं, और ये सदा फल देने वाले वृक्ष अत्यंत सुगंधित महक बिखेरते हैं।

15 ऊँचे सौ बेरिल के स्तंभ और लंबे चबूतरे रॉक-क्रिस्टल और मूंगे, कैट्स-आई और माणिक्य से बने हैं, ये स्तंभ चमकीले रत्नों से जड़े हैं।

16 हजार स्तंभ अद्वितीय वैभव के साथ, यह भव्य महल उनके ऊपर स्थित है, जिसके भीतर विभिन्न रत्न जड़े हैं, रेलिंग सोने की हैं; यह चमकीली प्लेटों से खूबसूरती से ढका हुआ है।

17 यह, जंबोना नदी के पिघले हुए सोने के समान तेजस्वी, अच्छी तरह से पॉलिश किए गए छतों, सीढ़ियों और चबूतरों के साथ, मजबूत और सुंदर तथा बहुत अच्छी तरह से सुसज्जित है, अत्यंत आनंदमय और प्रसन्नता से भरपूर,

18 रत्नजड़ित (महल) में प्रचुर मात्रा में भोजन और पेय उपलब्ध हैं। अप्सराओं के समूह से घिरे, ढोल-नगाड़ों की गूंज से गूंजते हुए, आपका अभिवादन और प्रशंसा की जाती है।

19 महल के रमणीय भव्य चबूतरे पर स्त्रियों के समूह से सजे हुए, आप असीम वैभव वाले, हर सुख-सुविधा से परिपूर्ण, नलिनी में राजा वेसवना की तरह आनंदित होते हैं।

20 अब, क्या आप देव हैं, या यक्ष हैं, या मानव रूप में देवों के स्वामी हैं? व्यापारी, कारवां वाले आपसे पूछ रहे हैं। हमें अपना नाम बताइए। क्या आप यक्ष हैं?

उस देव-युवक ने स्वयं को प्रकट किया और कहा:

21 "मैं सेरिसाका नामक यक्ष हूँ, मैं रेगिस्तान में रेतीले रास्तों का रक्षक हूँ, मैं राजा वेसवना के आदेशों का पालन करते हुए इस क्षेत्र और उस क्षेत्र की निगरानी करता हूँ।"

अब व्यापारियों ने उसके कर्मों के बारे में पूछते हुए कहा:

22 "क्या यह आपको सौभाग्य से प्राप्त हुआ है, या कर्मफल से, या परिश्रम से, या देवों द्वारा प्रदत्त? व्यापारी, कारवां वाले, आपसे पूछ रहे हैं: यह आनंद आपको कैसे प्राप्त हुआ?"

उस देव-युवक ने इन चारों विकल्पों को अस्वीकार करते हुए एक श्लोक कहा जिससे स्पष्ट होता है कि यह स्वयं पुण्य का परिणाम था:

23 "न तो मुझे सौभाग्य से प्राप्त हुआ है, न ही कर्मफल से, न ही परिश्रम से, और न ही देवों द्वारा प्रदत्त। यह आनंद मुझे मेरे निष्कलंक कर्मों या पुण्य से प्राप्त हुआ है।"

व्यापारियों ने योग्यता की प्रकृति के बारे में पूछा:

24 "तुम्हारी प्रतिज्ञा क्या थी या तुम्हारा ब्रह्मचर्य का अभ्यास क्या था? या यह किस प्रकार का अच्छा अभ्यास है जिसका यह परिणाम है? व्यापारी, कारवां वाले तुमसे पूछ रहे हैं: तुमने यह हवेली कैसे प्राप्त की?"

देव (देवदूत) युवक ने इन विकल्पों को फिर से अस्वीकार करते हुए, अपने संचित पुण्य का प्रमाण देते हुए कहा:

25 "मेरा नाम पयसी था। जब मैं कोसलों पर शासन कर रहा था, तब मैं नैतिकता और पारंपरिक मान्यताओं में विश्वास नहीं करता था, कंजूस था, बुरी आदतों वाला था, और मेरा मानना था कि मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं है।

26 और वहाँ एक भिक्षु, कुमार कस्सपा, थे, जो बहुत कुछ सुन चुके थे, एक वाक्पटु और प्रतिभाशाली वक्ता थे। उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन दिया, और मेरे कुटिल विचारों को दूर किया।

27 जब मैंने उनका धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर प्रवचन सुना, तो मैंने गृहस्थ अनुयायी होने की घोषणा की: मैंने प्राणियों की हत्या से परहेज किया, मैंने संसार में जो कुछ भी नहीं दिया गया था, उसका त्याग किया, शराब का सेवन नहीं किया, झूठ नहीं बोला, और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहा।

28 यही मेरी प्रतिज्ञा थी और यही मेरा ब्रह्मचर्य का अभ्यास था। इसी अच्छे अभ्यास का यह अंश है।" परिणाम स्वरूप, इन्हीं कर्मों या पुण्य कर्मों से, न कि बुरे कर्मों से, यह महल मुझे प्राप्त हुआ है।"

तब व्यापारियों ने देव-युवक और उनके महल को देखकर, कर्मों के फल में विश्वास रखते हुए, कर्मों के फल के संबंध में अपने विश्वास को प्रकट करते हुए दो श्लोक कहे:

29 "निःसंदेह, बुद्धिमानों ने सत्य कहा। ऋषियों का संसार अन्यथा नहीं है। जहाँ कहीं भी पुण्य कर्म करने वाला जाता है, वहाँ वह अपने हृदय की इच्छा पूरी होने का आनंद लेता है।

30 जहाँ कहीं भी दुःख और विलाप, मृत्यु और बंधन और कष्ट हैं, वहाँ एक पापी जाता है, और वह कभी भी बुरे पुनर्जन्म से मुक्त नहीं होता।"

जब वे बोल रहे थे, महल के द्वार पर लगे वृक्ष से पकी हुई सिरिसा फली गिरी और देव-युवक दुखी प्रतीत हुए। व्यापारियों ने उसे देखकर एक श्लोक कहा:

31 "देवों का समूह स्तब्ध है और इस क्षण कीचड़ में फंसे विचार की तरह विचलित है। हे राजकुमार, तुममें और इस समूह में असंतोष कहाँ से आया?"

जब उसने उनकी बात सुनी तो देव-युवक ने कहा:

32 "हे सज्जनों, ये सिरिसा के उपवन देव-स्वरूप सुगंध बिखेरते हैं; ये सुगंध दिन-रात इस महल में आती हैं और अंधकार को दूर करती हैं।

33 इनमें से हर सौ वर्ष बाद एक फली खुलती है। इस देव-समूह में मेरे जन्म के बाद से सौ मानव वर्ष बीत चुके हैं।"

तब व्यापारियों ने उसे सांत्वना देते हुए कहा:

35 "तुम्हारे जैसे व्यक्ति को कैसे शोक करना चाहिए जिसने इतने लंबे समय तक ऐसे अद्वितीय महल का अधिकार प्राप्त किया है?" "निःसंदेह, केवल वे ही लोग शोक करें जो पुण्य में कमज़ोर होकर निम्न (स्थिति) में आसीन हुए हैं?"

देव (देवदूत) युवक ने उनकी बातों को सुनकर सांत्वना पाई और एक श्लोक बोला:

36 “यह उपदेश मेरे लिए उचित है और आपने जो शब्द कहे हैं, वे मेरे प्रति आदर के हैं। लेकिन अब, हे सज्जनों, मेरी शरण में आकर, आप अपनी इच्छित सुरक्षा के लिए प्रस्थान करें।”

व्यापारियों ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए यह श्लोक कहा:

37 “जब हम सिंधु और सोविरा भूमि में पहुँचेंगे, धन की आवश्यकता होगी, लाभ की तलाश में होंगे, और उचित भेंटों से सेरिसा का आदर करेंगे।”

लेकिन देव-युवक ने बड़ी भेंट को अस्वीकार करते हुए, उन्हें क्या करना चाहिए, यह बताते हुए एक श्लोक कहा:

38 “सेरिसा का आदर न करें, और सब कुछ आपके लिए वैसा ही होगा जैसा आपने कहा था; (लेकिन) आपको बुरे कर्मों से बचना चाहिए और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के अभ्यास का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।”

उन्हें उदाहरण देते हुए और उस गृहस्थ अनुयायी के गुणों की प्रशंसा करते हुए, जिसे वे अपना हिस्सा और सुरक्षा प्रदान करने के लिए उत्सुक थे, उन्होंने यह श्लोक कहा:

39 “इस समूह में एक गृहस्थ अनुयायी है, जो विद्वान, नैतिक उपदेशों और प्रतिज्ञाओं का पालन करने वाला, विश्वासी, उदार, प्रेममय, समझदार, संतुष्ट और बुद्धिमान है।

40 वह जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा, न ही किसी दूसरे को हानि पहुँचाने की सोचेगा, न ही फूट डालने वाला या निंदात्मक भाषण देगा, बल्कि वह कोमल और दयालु वाणी का होगा। 41

वह आदरणीय, सम्मानशील, प्रशिक्षित, दुष्ट नहीं और उच्च नैतिकता में शुद्ध होगा। और यह नेक जीवन जीने वाला व्यक्ति धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के माध्यम से अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता है।

42 मुझे लगता है कि वह अपने माता-पिता के लिए धन की खोज करता है, स्वयं के लिए नहीं, और यह कि अपने माता-पिता के न रहने पर वह त्याग की ओर अग्रसर होकर ब्रह्मचर्य का पालन करेगा। 43 वह

सीधा है, कुटिल नहीं, धूर्त नहीं, कपटी नहीं, वह किसी भी चीज का निपटारा धन के माध्यम से नहीं करेगा। किसी बहाने से। ऐसा व्यक्ति, जो अच्छे कर्म करता है, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में दृढ़ है, उसे दुख कैसे मिल सकता है?

44 इसी कारण मैंने स्वयं को प्रकट किया है। इसलिए, व्यापारियों, आपको धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का अनुसरण करना चाहिए। उसके बिना आप यहाँ राख हो सकते थे, जंगल में खोए हुए अंधों की तरह भ्रमित हो सकते थे - किसी और के लिए उस पर हमला करना आसान है; वास्तव में एक अच्छे व्यक्ति से मिलना सुखद होता है।

व्यापारियों ने, सामान्य शब्दों में वर्णित व्यक्ति का पूरा विवरण जानने के लिए उत्सुक होकर कहा:

45 "यह कौन है और यह क्या काम करता है, इसका नाम क्या है और यह किस कुल का है? हम भी, यक्ष, उसे देखने के लिए उत्सुक हैं जिसके लिए करुणावश आप यहाँ आए हैं; वास्तव में यह उसके लिए लाभ है जिसे आप प्रिय मानते हैं।"

अब देव (देवदूत)-युवक ने उसका नाम और कुल बताते हुए कहा:

46 "वह नाई, जिसका नाम संभव है, एक गृहस्थ अनुयायी, जो ब्रश और ब्लेड से अपना जीवन यापन करता है, क्या आप इस व्यक्ति, अपने सेवक को जानते हैं?" तुम मेरा उपहास मत करो क्योंकि वह एक अच्छा आदमी है।"

तब व्यापारियों ने उसे पहचानकर कहा:

47 “हे यक्ष, हम उन्हें जानते तो हैं, पर उन्हें उस रूप में नहीं जानते थे। हे यक्ष, आपके उच्च वचन सुनकर हम भी अब उन्हें प्रणाम करेंगे।”

अब, उन्हें अपने महल में प्रवेश कराने के बाद, उन्होंने उन्हें प्रेरित करते हुए एक श्लोक कहा:

48 “इस कारवां में जितने भी पुरुष हों—युवक, वृद्ध और मध्यम आयु वर्ग के, वे सब महल में चढ़ें, कंजूस भी पुण्य का फल देखें।”

49 वहाँ जितने भी लोग थे, “मैं पहले हूँ” कहते हुए, (पर) नाई को आगे करके, वे सब वासव के मसक्कसर (इंद्र का निवास) के समान महल में चढ़ गए।

50 वहाँ जितने भी लोग थे, “मैं पहले हूँ” कहते हुए, उन्होंने गृहस्थ शिष्य होने की घोषणा की; वे प्राणियों की हत्या करने से विवश थे, उन्होंने संसार की वर्जित वस्तुओं का त्याग किया, वे शराब नहीं पीते थे और झूठ नहीं बोलते थे, वे अपनी-अपनी पत्नियों से संतुष्ट थे।

51 वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने "मैं प्रथम हूँ" कहकर गृहस्थ शिष्य होने की घोषणा की: यक्ष की मानसिक शक्ति और उसकी स्वीकृति से कारवां बार-बार हर्षोल्लास करते हुए आगे बढ़ा।

52 ये लोग सिंधु और सोविरा देशों में धन की आवश्यकता और लाभ की तलाश में गए, और जब उनका काम भरपूर लाभ के साथ पूरा हो गया, तो वे बिना किसी हानि के पाटलिपुत्त (पटना) लौट आए।

53 अपने-अपने घरों में सुरक्षित पहुँचकर, जहाँ उनके बच्चे और पत्नियाँ उनसे फिर से मिल गईं, वे प्रसन्न, प्रसन्न और आनंदित थे, उन्होंने सेरिसा के सम्मान में भव्य उत्सव मनाया, उन्होंने सेरिसाका निवास का निर्माण किया।

54 अच्छे लोगों के साथ संगति का यही स्वभाव है। धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में गुण रखने वालों के साथ संगति करना अत्यंत लाभकारी है। एक गृहस्थ अनुयायी के कारण समस्त प्राणी सुखी हो गए।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> विमानवत्थु7.11

www.tipitaka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<----------------------- II.7.11 -------------------------->>>>समाप्त

7.11 सुनीक्खित्त का महल (85)
(सुनीक्खित्त-विमान)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, जेतवन में ठहरे हुए थे। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस समय पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना देवयात्रा पर तैंतीसवें लोक में आए। एक देव-युवक, जो उनके महल के द्वार पर खड़ा था, अत्यंत श्रद्धापूर्वक वरिष्ठ भिक्षु के पास पहुँचा। अतीत में जब बुद्ध कश्यप के अवशेषों पर एक योजन आकार का स्वर्ण स्तूप स्थापित किया गया था, तब चार देवमंडल समय-समय पर भेंट

लेकर जाया करते थे। एक गृहस्थ शिष्य ने वहाँ फूल चढ़ाने के बाद, कुछ अन्य अव्यवस्थित फूलों को भी ठीक किया और उन्हें नए सिरे से अर्पित किया। उन्हें ध्यान का विषय बनाकर और गुरु के गुणों का स्मरण करते हुए, उन्होंने उनके पुण्य को अपने हृदय में स्थापित किया। बाद में जब उनकी मृत्यु हुई, तो इसी कर्म की शक्ति से उनका पुनर्जन्म तैंतीसवें लोक (स्वर्ग) में बारह योजन वाले स्वर्ण महल में हुआ, और उनके साथ बहुत सारे सेवक (परिचारक) थे। तब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना ने उनसे इन श्लोकों में पूछा:

1 "यह भव्य महल रत्नजड़ित स्तंभों से सुशोभित है, चारों ओर बारह योजन हैं, सात सौ शानदार शिखर वाले कक्ष हैं और सुंदर बेरिल के स्तंभ चमकते धातु से ढके हुए हैं।

2 आप यहाँ निवास करते हैं, खाते-पीते हैं और देवदूतों के समान वीणाओं की मधुर ध्वनि सुनते हैं। यहाँ देवदूतों के समान सुगंध हैं, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख हैं और सोने से सजी स्त्रियाँ नृत्य करती हैं।

3 आपकी ऐसी सुंदरता किस कारण है? आप यहाँ किस कारण समृद्ध होते हैं और वहाँ आपके हृदय को प्रिय सभी सुख कैसे उत्पन्न होते हैं?

4 हे महान महिमावान देव, मैं आपसे पूछता हूँ, मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आपने कौन सा पुण्य कर्म किया? आपकी ऐसी तेजस्वी महिमा किस कारण है और आपकी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है?"

उस देव-युवक ने अपने कर्म का वर्णन छंदों में किया। व्याख्या करते हुए विद्वानों ने कहा:

5 मोग्गलाना द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर प्रसन्न होकर उस देव-युवक ने बताया कि यह किस कर्म का फल है।

6 "मैंने एक बेढंगी माला को सुशोभित करके, उसे कुएँ के स्तूप पर स्थापित किया है, और अब मैं महान मानसिक शक्ति और महान महिमा से परिपूर्ण हूँ, देव-देवदूत जैसे इंद्रिय सुखों से युक्त हूँ।

7 इसी कारण मेरी सुंदरता ऐसी है, इसी कारण मैं यहाँ-वहाँ समृद्ध होता हूँ और जो भी सुख मेरे हृदय के निकट हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।

8 इसी कारण मेरी तेजस्वी महिमा ऐसी है और मेरी सुंदरता सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> विमानवत्थु >> सिरिमा - सिरिमा की हवेली
पाली भाषा से जॉन डी. आयरलैंड द्वारा अनुवादित
[वांगिसा:] आपके जुते हुए और खूबसूरती से सजाए गए घोड़े, बलवान और तेज, आकाश से नीचे की ओर जा रहे हैं। और ये पाँच सौ रथ, जादुई रूप से निर्मित, उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं, घोड़ों को सारथी द्वारा प्रेरित किया जा रहा है।

आप इस उत्तम रथ पर सजी-धजी, तेजस्वी और दमकती हुई, एक चमकते तारे के समान खड़ी हैं। हे सुंदर, कोमल काया और असीम सौंदर्य वाली, मैं आपसे पूछता हूँ कि आप किस देवदूत मंडली से उस अद्वितीय व्यक्ति से मिलने आई हैं?

[सिरिमा:] उन देवताओं (देवदूतों) में से, जो दिव्य इंद्रिय सुखों की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं और जिन्हें अतुलनीय माना जाता है, वे अद्वितीय रूपान्तरण और सृजन में आनंदित होते हैं। उसी समूह की एक अप्सरा, जो किसी भी वांछित रूप को धारण करने में सक्षम है, अद्वितीय देवदूत की पूजा करने यहाँ आई है।

[वांगिसा:] तुमने पहले यहाँ कौन से अच्छे आचरण किए थे? तुम असीम वैभव में कैसे रहती हो और तुम्हें ऐसे सुख कैसे प्राप्त हुए? आकाश में विचरण करने की अद्वितीय शक्ति तुम्हें किस कारण प्राप्त हुई? तुम्हारी सुंदरता दसों दिशाओं में क्यों फैलती है?

आप देवताओं (देवदूतों) से घिरे और सम्मानित हैं। स्वर्ग में जन्मी देवी (देवदूत) के पास आने से पहले आपका क्या हाल था? या आपने किस शिक्षा का पालन किया? मुझे बताइए कि क्या आप ज्ञानी पुरुष के शिष्य थे।

[सिरिमा:] पहाड़ियों के बीच बसे एक सुंदर और सुव्यवस्थित नगर में, सौभाग्यशाली राजा की परिचारिका के रूप में, मैं नृत्य और गायन में अत्यंत निपुण थी। राजगृह में मुझे सिरिमा के नाम से जाना जाता था। परन्तु फिर ज्ञानी पुरुष, ऋषियों के गुरु, मार्गदर्शक ने मुझे उत्पत्ति, दुख और अनित्यता का ज्ञान दिया; असीम सत्य का, शाश्वत दुख निवारण का; और इस मार्ग का, जो टेढ़ा नहीं, सीधा और शुभ है।

जब मैंने तथागत (बुद्ध), अद्वितीय व्यक्ति के उपदेश से अमर अवस्था (निर्वाण), असीम अवस्था का ज्ञान प्राप्त किया, तो मैं उपदेशों में अत्यधिक संयमित और धर्म (बुद्ध का मार्ग) में स्थापित हो गया, जो कि सर्वश्रेष्ठ पुरुष, प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाया गया था।

जब मुझे तथागत (बुद्ध), अद्वितीय बुद्ध द्वारा सिखाए गए उस पवित्र, असीम स्थान का ज्ञान हुआ, तब मैंने उसी क्षण (महान मार्ग की) शांत एकाग्रता का अनुभव किया। मुक्ति की वह परम निश्चितता मेरी हो गई।

जब मुझे वह विशिष्ट, अमर, आश्वस्त और गहन अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई, जिसमें कोई संदेह नहीं था, तो कई लोगों ने मेरा सम्मान किया और मुझे बहुत सुख और आनंद प्राप्त हुआ।

अत: मैं अमरता को जानने वाली देवी हूँ, तथागत (बुद्ध) की शिष्या हूँ, जो अद्वितीय हैं; प्रथम फल (सम्मोहन) में स्थापित धम्म की ज्ञाता हूँ, प्रथम मार्ग की साधिका हूँ। अब से मेरे लिए कोई कुजन्म नहीं है।

मैं अद्वितीय बुद्ध और कुशल विद्या में आनंदित रहने वाले गुणी भिक्षुओं का आदर करने आया हूँ; तपस्वियों की शुभ सभा और आदरणीय धर्म के स्वामी, धर्म के राजा, बुद्ध की आराधना करने आया हूँ। मैं ऋषि तथागत (बुद्ध) को देखकर आनंदित और प्रसन्न हूँ, जो योग्य मनुष्यों के उत्कृष्ट प्रशिक्षक हैं, जिन्होंने व्यथा का नाश किया है, जो कुशल विद्या में आनंदित रहते हैं, जो मार्गदर्शक हैं। मैं परम दयालु, करुणामय बुद्ध की आराधना करता हूँ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> विमानवत्थु >> सेसवती - सेसवती की हवेली
पाली भाषा से जॉन डी. आयरलैंड द्वारा अनुवादित
[वांगिसा:] मैं इस रमणीय और सुंदर महल को देखता हूँ, जिसकी सतह अनेक रंगों से रंगी है, क्रिस्टल से जगमगा रही है और छत चाँदी और सोने से बनी है। एक सुगठित महल, जिसमें द्वार हैं और सुनहरी रेत बिछी है।

जैसे शरद ऋतु में हजार किरणों वाला सूर्य दस दिशाओं में आकाश में चमकता है और अंधकार को दूर करता है, वैसे ही आपका यह महल रात के अंधेरे में धधकती हुई, धुएं से लथपथ आग की तरह जगमगाता है।

यह बिजली की तरह आंखों को चकाचौंध कर देता है, सुंदर, मानो आकाश में ठहर गया हो। वीणा, ढोल और झांझ की मधुर ध्वनि से गूंजता हुआ, तुम्हारा यह महल वैभव में इंद्र के नगर को भी टक्कर देता है।

वहाँ सफेद, लाल और नीले कमल, चमेली और अन्य फूल हैं; खिलते हुए साल के पेड़ और फूलदार अशोक के पेड़ हैं, और हवा में तरह-तरह की सुगंध फैली हुई है।

मीठी सुगंध वाले वृक्ष, ब्रेडफ्रूट, आपस में गुंथी हुई शाखाएँ, पूरी तरह खिले हुए ताड़ के पेड़ और लटकती लताएँ, रत्नों से जड़े जालों की तरह शानदार; साथ ही आपके लिए एक रमणीय कमल का तालाब भी मौजूद है।

पानी में उगने वाले सभी फूलदार पौधे और जमीन पर उगने वाले सभी पेड़, जो मानव जगत और स्वर्ग में ज्ञात हैं, वे सभी आपके निवास स्थान में विद्यमान हैं।

यह किस प्रकार की शांति और आत्मसंयम का परिणाम है? आप किस कर्म के फल स्वरूप यहाँ आई हैं? यह महल आपको कैसे प्राप्त हुआ? हे घनी पलकों वाली महिला, विस्तार से बताइए।

[सेसवती:] यह महल, जिसमें बगुले, मोर और तीतरों के झुंड रहते हैं; और जहाँ दिव्य जलपक्षी और राजसी हंस आते-जाते रहते हैं; और जो पक्षियों, बत्तखों और कोयल की आवाज़ों से गूंजता रहता है, मुझे कैसे प्राप्त हुआ?

अनेक प्रकार की लताओं, फूलों और वृक्षों से युक्त; तुरही के फूल, गुलाब-सेब और अशोक के वृक्षों से युक्त — अब मैं आपको बताता हूँ कि यह महल मुझे कैसे प्राप्त हुआ। सुनिए, आदरणीय महोदय।

आदरणीय महोदय, मगध देश के पूर्वी भाग में नलका नामक एक गाँव है। मैं पूर्व में वहाँ बहू के रूप में रहती थी और वहाँ लोग मुझे शेषवती के नाम से जानते थे।

मैंने आनंदपूर्वक पुष्प बिखेरते हुए कर्मों में निपुण और देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजित महान उपतिस्सा (*1) का सम्मान किया, जिसने अपार तृप्ति प्राप्त की है।

परम जन्म लेने वाले, अपने अंतिम शरीर को धारण करने वाले प्रख्यात ऋषि की पूजा करने के बाद, मैंने अपना मानव रूप त्यागकर तैंतीस (स्वर्ग) में प्रवेश किया और इस स्थान पर निवास किया।

टिप्पणियाँ:

1. सारिपुत्त का व्यक्तिगत नाम, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे मूल रूप से नलका से आए थे।

पेटवत्थु

पेटवत्थु (भूत कहानियाँ)
1.1खंड-1: उरगवग्गो
1.2खंड-2: उब्बारिवाग्गो
1.3खंड-3: चुलवाग्गो
1.4खंड-4: महावग्गो
1.5अंग्रेज़ी अनुवाद / व्यू
1.6मूल पाली संस्करण
1.6.1पाली-अंग्रेज़ी संस्करण
1.6.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपी)
(दिवंगत/रिश्तेदारों/पूर्वजों की कहानियों के रूप में भी जाना जाता है)बुद्ध का मार्ग सभी मठों के प्रति करुणा और संगति का मार्ग है। यह ऑनलाइन मानव को पीडीएफ़ स्तर पर ले जाने का प्रयास करता है, लेकिन साथ ही उन राक्षसों को भी नहीं भूलना चाहिए जो अंत में बुरा हुआ है, जिसका अर्थ है प्रेत (पेटा/पेटी)। बुद्ध प्रेतों के लोक के साथ सामंजस्य स्थापित करने का एक मार्गदर्शक हैं, क्योंकि सभी जीव एक दूसरे से संबंधित हैं, जो पिछले जन्मों में हमारे पूर्वज/रिश्तेदार रहे हैं। बुद्ध प्रेतों/पूर्वजों के नाम पर दान करने की शिक्षा दी जाती है, जिससे उन्हें निश्चित रूप से लाभ होगा, साथ ही दुनिया के अनुयायियों की मदद मिलेगी, सभी के लिए संगति उत्पन्न होगी और दानकर्ता को भी पुण्य प्राप्त होगा, मूल रूप से यह तीन प्रकार से है।
पेटवत्थु में 51 कहानियां हैं, जिनमें से प्रत्येक यह बताती है कि कैसे बुरे कर्मों के कारण एक प्राणी का पुनर्जन्म "भूखे प्रेतों" (पेटा/पेटी) के दुखद लोक में हुआ और कैसे उनकी मदद की गई।

खंड-1 : उरागवाग्गो

1.1 खेत्टुपम-पेटावत्थु-वन्नाना: खेती वाले खेत से मिलता जुलता(1)
1.2 सुकरमुख-पेटावत्थु-वन्नाना: सुअर के सिर वाला भूत(2)
1.3 पूतिमुख-पेटावत्थु-वन्नाना: सड़े हुए मुंह वाला भूत(3)
1.4 पित्तधितालिक-पेटावत्थु-वन्नाना: बिस्किट गुड़िया(4)
1.5 तिरोकुट्टा-पेटवत्थु-वन्नाना: पेटस (भूत) दीवारों के बाहर(5)
1.6 पंच-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्थु-वन्नाना: पांच बच्चों को भक्षक(6)
1.7 सत्त-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्थु-वन्नाना: सात बच्चों को भक्षक(7)
1.8 गौर-पेतवत्थु-वन्नाना: द बैल(8)
1.9 महा-पेसाकर-पेटिवत्थु-वन्नाना: मास्टर बुनकर(9)
1.10 खल्लाटिया-पेटिवत्थु-वन्नाना: गंजे सिर वाली महिला(10)
1.11 नाग-पेटवत्थु-वन्नाना: हाथी(11)
1.12 उरग-पेटावत्थु-वन्नाना: सांप(12)

खंड-3: चुलवाग्गो

2.1 संसार-मोचक-पेटिवत्थु-वन्नाना: संसार में पुनर्जन्म से मुक्ति(13)
2.2 सारिपुत्त-थेरा-मातु-पेटिवत्थु-वन्नाना: बुजुर्ग भिक्षु सारिपुत्त की माँ(14)
2.3 मट्टा-पेटी-वत्थु-वन्नाना: मट्टा की कहानी(15)
2.4 नंदा-पेटी-वत्थु-वन्नाना: नंदा की कहानी(16)
2.5 मत्थाकुंडली-पेटा-वत्थु-वन्नाना: मत्थाकुंडली की कहानी(17)
2.6 कान्हा-पेटा-वत्थु-वन्नाना: कान्हा(कृष्ण) की कहानी(18)
2.7 धनपाल-सेट्ठी-पेटा-वत्थु-वन्नाना: धनपाल, द रिच व्यापारी(19)
2.8 चुला-सेट्ठी-पेटा-वत्थु-वन्नाना: एक अमीर कंजूस आदमी की कहानी चुलसेट्ठी(20)
2.9 अंकुरा-पेटावत्थु-वन्नाना: कृष्ण के भाई अंकुरा की कहानी(21)
2.10 उत्तरा की माँ की कहानी(22)
2.11 धागे की कहानी(23)
2.12 कन्नमुंडा की कहानी पेटी(24)
2.13 उब्बारी की कहानी(25)

खंड-4: महावग्गो

3.1 पानी में न डूबने की कहानी (26)
3.2 सानुवासिन की कहानी (27)
3.3 रथकारा की कहानी (28)
3.4 भूसे की कहानी (29)

3.5 लड़के की कहानी (30)
3.6 सेरिनी की कहानी (31)
3.7 हिरण शिकारी की कहानी (32)
3.8 एक शिकारी की दूसरी कहानी (33)
3.9 कपटपूर्ण निर्णयों की कहानी (34)
3.10 अवशेषों के प्रति अवमानना की कहानी (35)
अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड/देखें
4.1 अम्बासक्खरा की कहानी (36)
4.2 सेरिसाका की कहानी (37)
4.3 नंदका की कहानी (38)
4.4 रेवती की कहानी (39)
4.5 गन्ने की कहानी (40)
4.6 राजा के पुत्रों की कहानी (41)
4.7 राजा के पुत्र की कहानी (42)
4.8 गोबर खाने वालों की कहानी (43)
4.9 गोबर खाने वालों की दूसरी कहानी (44)
4.10 पेटों के समूह की कहानी (45)
4.11 पाटलिपुत्त (पटना) की कहानी (46)
4.12 आमों की कहानी (47)
4.13 धुरी और पेड़ की कहानी (48)
4.14 धन के गलत तरीके से संग्रह की कहानी (49)
4.15 की कहानी गिल्ड लीडर के बेटे (50)
4.16 साठ हजार हथौड़ों की कहानी (51)

त्रिपिटक में अन्यत्र पाई जाने वाली भूत-प्रेतों की कहानियों के लिंक यहाँ दिए गए हैं:
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेत त्व - मानव सिर वाला सर्प रूपी भूत;
धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुतपेत त्व - लाल गर्म हथौड़ों से पीटे जा रहे बड़े सिर वाला भूत;
धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेत त्व - लंबे जलते शरीर वाला अजगर रूपी भूत;
धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेत त्व - मानव शरीर वाला सूअर के सिर का भूत;
SN2-संस्करण 2 : संयुत्त निकाय पुस्तक 2 के सूत्र 202-222 में और अधिक जानकारी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> खेत्टुपम-पेटवत्थु-वन्नना

प्रारंभ <<<<----------------------- 1.1 ------------------------->>>> अगला

1.1 खेती योग्य खेत से समानता

जब भगवान बुद्ध राजगृह (वर्तमान में बिहार, भारत में राजगीर) के पास वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरी का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। राजगृह में महाधनसेठी नाम का एक अत्यंत धनी व्यक्ति रहता था। उसका एक ही पुत्र था, जो मिलनसार और आकर्षक था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने सोचा, "यदि हमारा पुत्र प्रतिदिन एक हजार खर्च करे, तो सौ वर्षों में भी यह धन समाप्त नहीं होगा।" उन्होंने उसे कोई कौशल नहीं सिखाया, यह सोचकर कि "चूंकि कौशल सीखना एक थका देने वाला परिश्रम होगा, इसलिए उसे तन-मन से अपने धन का आनंद लेने दो।" इसके बजाय, जब वह वयस्क हुआ, तो उन्होंने उसके लिए एक आकर्षक दुल्हन का चयन किया, लेकिन उसमें धर्म का कोई ज्ञान नहीं था। वह उसके साथ समय बिताता था, भोग-विलास में लिप्त रहता था, सुख-सुविधाओं की लालसा करता था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उसने नर्तकियों, गायकों और अन्य लोगों को दिल खोलकर दान दिया, इस प्रकार अपना धन बर्बाद कर दिया और गरीब हो गया। वह उधार लेकर किसी तरह अपना गुजारा करता था। लेकिन जब वह कर्ज नहीं ले सका और उसके लेनदार उस पर दबाव डालने लगे, तो उसने उन्हें अपना खेत, घर और अन्य संपत्ति दे दी और भिखारी बन गया, और उसी शहर में गरीबों और अनाथों के लिए बने आश्रय स्थल में रहने लगा।

एक दिन कुछ लुटेरे उससे मिले और उससे बोले, “देखो, इस कठिन जीवन से तुम्हें क्या मिलता है? तुम जवान और फुर्तीले हो। हमारे साथ चलो और चोरी करके आराम से जीवन यापन करो।” चोरों ने उसे एक बड़ा डंडा दिया; और जिस घर में उन्होंने सेंध लगाई थी, उसमें घुसते ही उन्होंने उसे प्रवेश द्वार पर खड़ा कर दिया और कहा, “अगर कोई और यहाँ आए, तो उसे मार डालो।” वह मानसिक रूप से मंदबुद्धि था और मित्र-शत्रु का भेद नहीं कर पाता था, इसलिए वह वहीं खड़ा रहा और दूसरों के आने का इंतजार करता रहा।

घर के लोग दौड़ते हुए उठे और इधर-उधर देखते हुए उन्होंने उस आदमी को दीवार के पास खड़ा देखा। "देखो, ये बदमाश और चोर आ गए हैं!" कहते हुए उन्होंने उसे पकड़ लिया और राजा के सामने लाकर कहा, "हे प्रभु, यह चोर घर में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया है।" राजा ने नगर के पहरेदारों को आदेश दिया, "इसका सिर काट दो।" वे उसे हिरासत में लेकर फांसी के स्थान पर ले गए और फांसी के ढोल के पीछे-पीछे कोड़ों से पीटते हुए ले गए। उसी समय जनता चिल्लाई, "इस लुटेरे को इस शहर में पकड़ लिया गया है।"

उसी समय उसी शहर में, सुलासा नाम की एक नर्तकी अपने बहुमंजिला घर की खिड़की पर खड़ी थी। उसने उसे ले जाते हुए देखा, और चूंकि वह उससे पहले से परिचित थी, इसलिए उसे उस पर दया आई, जिसने इसी शहर में बहुत समृद्धि प्राप्त की थी। उसने मोदक और पानी भेजा और शहर के चौकीदार को यह संदेश भेजा, "महोदय, कृपया तब तक प्रतीक्षा करें जब तक यह व्यक्ति मोदक खाकर पानी न पी ले।"

अब इसी नगर में पूज्य मोग्गलाना (बुद्ध के प्रमुख वरिष्ठ भिक्षुओं में से एक) ने अपनी दिव्य ध्यान साधना से प्राप्त ज्ञान की सहायता से इस व्यक्ति की दुर्दशा देखी। उनका मन करुणा से भर गया और उन्होंने सोचा, “चूंकि इस व्यक्ति ने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, बल्कि पाप किया है, इसलिए यह नरक में जन्म लेगा; अब, यदि मैं जाकर इसे मिठाई और पेय दे दूं, तो यह पृथ्वी के देवों के बीच जन्म लेगा। मुझे इस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।” तदनुसार, जब उसके लिए पेय और मिठाई लाई जा रही थी, तब वह अपराधी के सामने प्रकट हुए। वरिष्ठ भिक्षु को देखकर उनका मन शांत हो गया और उन्होंने सोचा, “यदि मुझे मृत्युदंड दिया जाना है, तो इन मिठाइयों को खाने से मुझे क्या लाभ होगा? अब ये मेरे परलोक की यात्रा के लिए भोजन बन जाएंगी।” अतः उन्होंने मिठाई (मोदक) और जल वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया। जब मोग्गलाना ने देखा कि उसका दुख आनंद में बदल गया है, तो वह बैठ गया, खाया-पिया और फिर उठा और अपने रास्ते चला गया।

हालांकि, मुखिया उस व्यक्ति को फांसी के स्थान पर ले गया और उसका सिर काट दिया गया। बड़े मोग्गलाना के प्रति किए गए पुण्य कर्म के कारण, उन्हें अतुलनीय पुण्य प्राप्त हुआ और वे देवलोक में पुनर्जन्म के योग्य हो गए। लेकिन उस समय उनका प्रेम नर्तकी सुलासा की ओर आकर्षित हो गया, क्योंकि उन्होंने सोचा, "मुझे यह वरदान उसी की कृपा से प्राप्त हुआ है।" और इसलिए मृत्यु के समय उनका मन अपवित्र हो गया और उनका पुनर्जन्म एक निम्न (परन्तु सुखी) अवस्था में हुआ और वे जंगल में घने छायादार बरगद के पेड़ की लटकती जड़ों में वृक्ष-देव बन गए।

फिर ऐसा हुआ कि उसने नर्तकी सुलासा को उसके बगीचे में देखा और उसे अपने घर ले आया। सुलासा वहाँ एक सप्ताह तक प्रसन्नतापूर्वक रही। उसकी माता विलाप कर रही थी, इसलिए उसने उससे सुलासा को वापस ले जाने का अनुरोध किया। लौटने पर, जब लोगों ने उससे पूछा, तो उसने बताया कि वरिष्ठ भिक्षु मोग्गलाना को दान देने के कारण उस व्यक्ति को सुखद परलोक प्राप्त हुआ है। लोग आश्चर्यचकित रह गए और कहने लगे, "अरिहंत वास्तव में पुण्य कमाने का अतुलनीय क्षेत्र हैं; उनके प्रति किया गया एक छोटा सा पुण्य कर्म भी मनुष्य को देवों के बीच पुनर्जन्म दिलाता है।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को पूरी घटना सुनाई, जिन्होंने इसके स्पष्टीकरण में ये श्लोक कहे:

1. "कृषि योग्य खेतों के समान अरिहंत (मुक्त/प्रबुद्ध व्यक्ति) हैं; दानदाता किसानों के समान हैं; दान बीज के समान है; और इससे प्राप्त होने वाला फल महान है।"

2. "यह बीज और खेती की गई भूमि प्रेतों (भूतों) और दाता दोनों के लाभ के लिए है। इससे प्रेत प्रसन्न होते हैं और दाता भी इस कार्य से पुण्य में वृद्धि प्राप्त करते हैं।"

3. "इस धरती पर दान का पुण्य कर्म करके और इस प्रकार पादों का सम्मान करके, वह स्वर्ग में ही जाता है, क्योंकि उसने एक अच्छा कर्म किया है।"

प्रवचन के अंत में, मनुष्य (अब देव), सुलासा सहित चौरासी हजार प्राणी धम्म (बुद्ध द्वारा दिखाए गए धार्मिक मार्ग) में परिवर्तित हो गए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> खेत्टुपम-पेटवत्थु-वन्नन्ना

प्रारंभ <<<<---------------------- 1.1 ------------------------->>>> अगला

1.1 खेती योग्य खेत से समानता

जब भगवान बुद्ध राजगृह (वर्तमान में बिहार, भारत में राजगीर) के पास वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरी का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। राजगृह में महाधनसेठी नाम का एक अत्यंत धनी व्यक्ति रहता था। उसका एक ही पुत्र था, जो मिलनसार और आकर्षक था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने सोचा, "यदि हमारा पुत्र प्रतिदिन एक हजार खर्च करे, तो सौ वर्षों में भी यह धन समाप्त नहीं होगा।" उन्होंने उसे कोई कौशल नहीं सिखाया, यह सोचकर कि "चूंकि कौशल सीखना एक थका देने वाला परिश्रम होगा, इसलिए उसे तन-मन से अपने धन का आनंद लेने दो।" इसके बजाय, जब वह वयस्क हुआ, तो उन्होंने उसके लिए एक आकर्षक दुल्हन का चयन किया, लेकिन उसमें धर्म का कोई ज्ञान नहीं था। वह उसके साथ समय बिताता था, भोग-विलास में लिप्त रहता था, सुख-सुविधाओं की लालसा करता था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उसने नर्तकियों, गायकों और अन्य लोगों को दिल खोलकर दान दिया, इस प्रकार अपना धन बर्बाद कर दिया और गरीब हो गया। वह उधार लेकर किसी तरह अपना गुजारा करता था। लेकिन जब वह कर्ज नहीं ले सका और उसके लेनदार उस पर दबाव डालने लगे, तो उसने उन्हें अपना खेत, घर और अन्य संपत्ति दे दी और भिखारी बन गया, और उसी शहर में गरीबों और अनाथों के लिए बने आश्रय स्थल में रहने लगा।

एक दिन कुछ लुटेरे उससे मिले और उससे बोले, “देखो, इस कठिन जीवन से तुम्हें क्या मिलता है? तुम जवान और फुर्तीले हो। हमारे साथ चलो और चोरी करके आराम से जीवन यापन करो।” चोरों ने उसे एक बड़ा डंडा दिया; और जिस घर में उन्होंने सेंध लगाई थी, उसमें घुसते ही उन्होंने उसे प्रवेश द्वार पर खड़ा कर दिया और कहा, “अगर कोई और यहाँ आए, तो उसे मार डालो।” वह मानसिक रूप से मंदबुद्धि था और मित्र-शत्रु का भेद नहीं कर पाता था, इसलिए वह वहीं खड़ा रहा और दूसरों के आने का इंतजार करता रहा।

घर के लोग दौड़ते हुए उठे और इधर-उधर देखते हुए उन्होंने उस आदमी को दीवार के पास खड़ा देखा। "देखो, ये बदमाश और चोर आ गए हैं!" कहते हुए उन्होंने उसे पकड़ लिया और राजा के सामने लाकर कहा, "हे प्रभु, यह चोर घर में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया है।" राजा ने नगर के पहरेदारों को आदेश दिया, "इसका सिर काट दो।" वे उसे हिरासत में लेकर फांसी के स्थान पर ले गए और फांसी के ढोल के पीछे-पीछे कोड़ों से पीटते हुए ले गए। उसी समय जनता चिल्लाई, "इस लुटेरे को इस शहर में पकड़ लिया गया है।"

उसी समय उसी शहर में, सुलासा नाम की एक नर्तकी अपने बहुमंजिला घर की खिड़की पर खड़ी थी। उसने उसे ले जाते हुए देखा, और चूंकि वह उससे पहले से परिचित थी, इसलिए उसे उस पर दया आई, जिसने इसी शहर में बहुत समृद्धि प्राप्त की थी। उसने मोदक और पानी भेजा और शहर के चौकीदार को यह संदेश भेजा, "महोदय, कृपया तब तक प्रतीक्षा करें जब तक यह व्यक्ति मोदक खाकर पानी न पी ले।"

अब इसी नगर में पूज्य मोग्गलाना (बुद्ध के प्रमुख वरिष्ठ भिक्षुओं में से एक) ने अपनी दिव्य ध्यान साधना से प्राप्त ज्ञान की सहायता से इस व्यक्ति की दुर्दशा देखी। उनका मन करुणा से भर गया और उन्होंने सोचा, “चूंकि इस व्यक्ति ने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, बल्कि पाप किया है, इसलिए यह नरक में जन्म लेगा; अब, यदि मैं जाकर इसे मिठाई और पेय दे दूं, तो यह पृथ्वी के देवों के बीच जन्म लेगा। मुझे इस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।” तदनुसार, जब उसके लिए पेय और मिठाई लाई जा रही थी, तब वह अपराधी के सामने प्रकट हुए। वरिष्ठ भिक्षु को देखकर उनका मन शांत हो गया और उन्होंने सोचा, “यदि मुझे मृत्युदंड दिया जाना है, तो इन मिठाइयों को खाने से मुझे क्या लाभ होगा? अब ये मेरे परलोक की यात्रा के लिए भोजन बन जाएंगी।” अतः उन्होंने मिठाई (मोदक) और जल वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया। जब मोग्गलाना ने देखा कि उसका दुख आनंद में बदल गया है, तो वह बैठ गया, खाया-पिया और फिर उठा और अपने रास्ते चला गया।

हालांकि, मुखिया उस व्यक्ति को फांसी के स्थान पर ले गया और उसका सिर काट दिया गया। बड़े मोग्गलाना के प्रति किए गए पुण्य कर्म के कारण, उन्हें अतुलनीय पुण्य प्राप्त हुआ और वे देवलोक में पुनर्जन्म के योग्य हो गए। लेकिन उस समय उनका प्रेम नर्तकी सुलासा की ओर आकर्षित हो गया, क्योंकि उन्होंने सोचा, "मुझे यह वरदान उसी की कृपा से प्राप्त हुआ है।" और इसलिए मृत्यु के समय उनका मन अपवित्र हो गया और उनका पुनर्जन्म एक निम्न (परन्तु सुखी) अवस्था में हुआ और वे जंगल में घने छायादार बरगद के पेड़ की लटकती जड़ों में वृक्ष-देव बन गए।

फिर ऐसा हुआ कि उसने नर्तकी सुलासा को उसके बगीचे में देखा और उसे अपने घर ले आया। सुलासा वहाँ एक सप्ताह तक प्रसन्नतापूर्वक रही। उसकी माता विलाप कर रही थी, इसलिए उसने उससे सुलासा को वापस ले जाने का अनुरोध किया। लौटने पर, जब लोगों ने उससे पूछा, तो उसने बताया कि वरिष्ठ भिक्षु मोग्गलाना को दान देने के कारण उस व्यक्ति को सुखद परलोक प्राप्त हुआ है। लोग आश्चर्यचकित रह गए और कहने लगे, "अरिहंत वास्तव में पुण्य कमाने का अतुलनीय क्षेत्र हैं; उनके प्रति किया गया एक छोटा सा पुण्य कर्म भी मनुष्य को देवों के बीच पुनर्जन्म दिलाता है।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को पूरी घटना सुनाई, जिन्होंने इसके स्पष्टीकरण में ये श्लोक कहे:

1. "कृषि योग्य खेतों के समान अरिहंत (मुक्त/प्रबुद्ध व्यक्ति) हैं; दानदाता किसानों के समान हैं; दान बीज के समान है; और इससे प्राप्त होने वाला फल महान है।"

2. "यह बीज और खेती की गई भूमि प्रेतों (भूतों) और दाता दोनों के लाभ के लिए है। इससे प्रेत प्रसन्न होते हैं और दाता भी इस कार्य से पुण्य में वृद्धि प्राप्त करते हैं।"

3. "इस धरती पर दान का पुण्य कर्म करके और इस प्रकार पादों का सम्मान करके, वह स्वर्ग में ही जाता है, क्योंकि उसने एक अच्छा कर्म किया है।"

प्रवचन के अंत में, मनुष्य (अब देव), सुलासा सहित चौरासी हजार प्राणी धम्म (बुद्ध द्वारा दिखाए गए धार्मिक मार्ग) में परिवर्तित हो गए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सुकर्मुख-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.2 -------------------------->>>> अगला

1.1 सूअर के सिर वाला भूत

जब गुरु (भगवान बुद्ध) राजगृह (राजगीर) के वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरियों का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने सूअर के सिर वाले भूत की यह कहानी सुनाई। एक समय की बात है, पूर्व बुद्ध भगवान कश्यप के समय में, एक भिक्षु ने अपने शरीर को पापों से वश में कर लिया, लेकिन वाणी पर संयम न होने के कारण उसने अन्य भिक्षुओं का अपमान किया। मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म नरक में हुआ। एक बुद्ध काल तक वहाँ जलने के बाद, वह वहाँ से निकलकर वर्तमान बुद्ध काल में राजगृह के पास, गिद्ध पर्वत (गिझकुटा पर्वत) की तलहटी में पुनर्जन्म लिया। उसी अपराध के फलस्वरूप, वह भूख और प्यास से ग्रस्त हो गया। उसका शरीर स्वर्ण रंग का था, परन्तु उसका मुँह सूअर के समान था।

उस समय पूज्य वृद्ध भिक्षु नारद गिद्ध शिखर पर ठहरे हुए थे। वे भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सुबह बहुत जल्दी भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े। राजगृह नगर जाते समय उन्होंने रास्ते में एक प्रेत (भूत) को देखा। उससे उसके कर्म के बारे में पूछने पर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:

1. "तुम्हारा शरीर पूरी तरह से सुनहरा है, जिससे हर अंग प्रकाशित होता है; परन्तु तुम्हारा मुख तो सूअर जैसा है। तुमने पिछले जन्मों में क्या कर्म किए हैं?"

2. "मेरा शरीर तो वश में था, पर मेरी वाणी पर कोई नियंत्रण नहीं था। इसीलिए, हे नारद, मेरा रूप ऐसा है जैसा आप देख रहे हैं।"

पेटा ने बुजुर्ग को यह सलाह भी दी:

3. "तो नारद, मैं स्वयं तुम्हें यह बताता हूँ जो तुम स्वयं देख रहे हो। अपने मुख से बुराई मत करो, अन्यथा तुम सूअर के मुख के समान हो जाओगे।"

तब पूज्य नारद, राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद, भिक्षा एकत्र करके लौटे और उन्होंने यह घटना गुरु (बुद्ध) को सुनाई। बुद्ध ने उनसे कहा कि उन्होंने भी पहले उस पेटा को देखा था और इस कहानी का उपयोग धम्म की शिक्षा देने के लिए किया था।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पूतिमुख-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.3 -------------------------->>>> अगला

1.3 सड़े हुए मुंह वाला भूत

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवाना मठ में स्थित गिलहरी अभयारण्य (कलंदकनिवापा) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई:

बहुत समय पहले, भगवान कश्यप (पूर्वज बुद्ध) के समय में, दो अच्छे परिवार के पुरुषों ने उनके मार्गदर्शन में सांसारिक जीवन त्याग दिया। नैतिकता का पालन करते हुए और कठोर तपस्या करते हुए, वे एक गाँव में एक बस्ती में सौहार्दपूर्वक रहने लगे।

फिर एक दुष्ट स्वभाव का भिक्षु, जिसे निंदा करने में आनंद आता था, उनके आश्रम में आया। भिक्षुओं ने उसका सत्कार किया और दूसरे दिन उसके साथ भिक्षा मांगने गए। वहाँ के लोग भिक्षुओं की पूरी आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें चावल का दलिया, उबले चावल और अन्य भोजन परोस रहे थे। भिक्षु ने सोचा, "यह गाँव कितना अच्छा है, भिक्षा मांगने के लिए एक बढ़िया स्थान है, और यहाँ के लोग आस्थावान होकर स्वादिष्ट भोजन देते हैं।

यहाँ छाया और पानी भी है। यहाँ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है; लेकिन तब तक नहीं जब तक ये भिक्षु यहाँ निवास करते रहेंगे। अच्छा, तो मैं ऐसा कुछ करूँगा जिससे वे फिर कभी यहाँ न आएँ।" और उसने उन दोनों की आपस में निंदा कर दी। वे दोनों धीरे-धीरे संदेह करने लगे और सोचने लगे, "शायद ऐसा ही हो," और उनका विश्वास टूट गया। उन्होंने एक-दूसरे से दूरी बना ली और जल्द ही, बिना एक-दूसरे को बताए, दोनों किसी बेहतर स्थान पर चले गए।

लोगों ने निंदा करने वाले भिक्षु से पूछा, "आदरणीय महोदय, बड़े भिक्षु कहाँ गए हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "वे सारी रात आपस में झगड़ते रहे; मेरी बात अनसुनी करते हुए वे चले गए, जबकि मैंने कहा था, 'झगड़ा मत करो, मिलजुल कर रहो'; और मैंने यह भी कहा था, 'ऐसे लोग केवल बड़े झगड़ों से ही प्रसन्न होते हैं'।" तब लोगों ने कहा, "बड़ों को जाने दो; लेकिन हमारे भले के लिए, तुम यहीं रहो और कोई पछतावा मत करो।" उन्होंने यह कहते हुए सहमति जताई, "ठीक है।" वहाँ रहते हुए कुछ दिनों बाद उन्होंने सोचा, "आवास के लालच में मैंने इन भिक्षुओं को भगा दिया। हाय! मैंने बुरा किया है।" गहरे पश्चाताप से व्याकुल होकर और बीमार पड़कर, थोड़े ही समय में उनकी मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। बाद में, बुद्ध काल में उनका पुनर्जन्म राजगृह से कुछ ही दूरी पर एक सड़े हुए मुँह वाले प्रेत के रूप में हुआ। उनका शरीर सुनहरे रंग का था, लेकिन उनके मुँह से जगह-जगह से कीड़े निकल रहे थे, जो उसे खा रहे थे और उससे दुर्गंध आ रही थी। तब गिद्धों के पर्वत (गिज्जकूट) से आदरणीय नारद ने उसे देखा और इस श्लोक में उससे उसके कर्मों के बारे में पूछा:

1. "तुम्हारा रंग-रूप सुंदर और दिव्य है; तुम हवा में तैरते हुए खड़े हो। फिर भी तुम्हारे मुंह में कीड़े हैं जिससे दुर्गंध आ रही है; तुमने अतीत में क्या कर्म किए थे?"

पेटा (भूत) ने उत्तर दिया

2. "मैं एक भिक्षु था, लेकिन दुष्ट और चुभने वाली वाणी का भक्त था; यद्यपि मैं तपस्या में रहता था, फिर भी मैंने अपनी वाणी पर नियंत्रण नहीं रखा; अतः तपस्या से मुझे अपना रंग तो प्राप्त हुआ, परन्तु चुभने वाली वाणी के कारण मेरी वाणी सड़ गई।"

3. "अब यह बात आपने स्वयं देख ली है, नारद। जो दयालु और गुणी होते हैं, वे कहते हैं: 'चुगली मत करो और झूठ मत बोलो। तब तुम यक्ष (परमेश्वर, लेकिन निम्न श्रेणी का) बन सकते हो और अपनी इच्छानुसार आनंद ले सकते हो।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> पित्थाधितलिक-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.4 -------------------------->>>> अगला

1.4 बिस्किट गुड़िया

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन वन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह घटना सुनाई:

एक नर्स ने अनाथपिंडिका (एक धनी व्यक्ति और बुद्ध के एक गृहस्थ अनुयायी) की पोती को खेलने के लिए बिस्कुट से बनी गुड़िया दी थी। एक दिन बच्ची से वह गुड़िया गिर गई और टूट गई। वह रोते हुए चिल्लाई, "मेरी बेटी मर गई!" और कोई भी नौकर उसे शांत नहीं कर सका।

उस समय भगवान बुद्ध गृहस्थ अनाथपिंडिका के घर में थे, जो उनके पास ही बैठे थे। दाई बच्ची को लेकर धनी व्यक्ति के पास गई, जिसने पूछा, "बच्ची क्यों रो रही है?" उसने बच्ची को अपनी गोद में लिया और यह कहकर उसे प्रसन्न किया, "मैं तुम्हें एक और उपहार दूंगा।" तब अनाथपिंडिका ने भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, मेरी पोती के लिए, केवल उस बिस्किट की गुड़िया के कारण, मैं उसे उपहार देना चाहता हूँ। इसलिए कृपया कल पाँच सौ भिक्षुओं के साथ मेरे घर आइए।" भगवान बुद्ध मान गए।

तदनुसार भगवान बुद्ध आए, और भोजन के बाद उन्होंने धन्यवाद दिया और ये शब्द कहे:

1. "उदार व्यक्ति को अपने पूर्वजों और दिवंगत आत्माओं या देवी-देवताओं को जितनी चिंता हो, उतनी चिंता के साथ दान देना चाहिए।"

2. "और विश्व के चार महान संरक्षक, दिव्य राजा कुबेर, धतरत्थ, विरुपाक्खा और विरुलक को; इसी से उनकी पूजा की जाती है और दान देने वालों को प्रतिफल अवश्य मिलता है।"

3. "केवल रोना-धोना, शोक करना या किसी भी प्रकार का विलाप करना व्यर्थ है; यह सब पेटों के लिए किसी काम का नहीं है। उनके रिश्तेदार ऐसी प्रथा का पालन करते हैं।"

4. "लेकिन वास्तव में संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) को दिया गया यह उपहार अच्छी तरह से स्वीकार किया जाता है, तत्काल प्रभाव से दिवंगत आत्माओं और पादों के लाभ के लिए लंबे समय तक काम आता है और बहुत फलदायी होता है।"

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने पादों को प्रसन्न करने का उपदेश दिया और दान लेकर विदा हुए। धनी व्यक्ति की पत्नी और उसके रिश्तेदारों ने भी उनका अनुसरण किया। उन्होंने एक महीने तक बड़े-बड़े दान दिए। यह सुनकर कोसल के राजा पसेन्दि (प्रसेनजीत) ने भी सभा को उदारतापूर्वक दान दिया। जब नागरिकों ने यह देखा, तो उन्होंने भी राजा की तरह पूरे एक महीने तक दान दिया। यह उदारता एक साधारण बिस्किट की गुड़िया से उत्पन्न हुई थी।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> तिरोकुट्टा- पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 1.5 -------------------------->>>> अगला

1.5 पेटा (भूत) दीवारों के बाहर

जब गुरु (बुद्ध) राजगृह में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई:

बानवे कल्प (काल) पूर्व काशी नामक एक नगर था। वहाँ राजा जयसेना शासन करते थे; उनकी रानी का नाम सिरिमा था। उनके पुत्र फुस्सा (दीपांकर के बाद 18वें बुद्ध) ने परम ज्ञान प्राप्त किया। अब राजा जयसेना को घमंड होने लगा, वे सोचने लगे, "चूँकि मेरे पुत्र, जो बुद्ध के रूप में जन्मे हैं, ने महान त्याग किया है, इसलिए बुद्ध केवल मेरे हैं, धम्म केवल मेरे हैं, संघ केवल मेरे हैं।" वे हर समय अकेले ही फुस्सा बुद्ध की सेवा में रहते थे और दूसरों को कोई अवसर नहीं देते थे।

फुस्सा बुद्ध के तीन छोटे भाई, जो अलग-अलग माता से जन्मे थे, सोचने लगे, "बुद्ध वास्तव में समस्त विश्व के कल्याण के लिए जन्म लेते हैं, न कि केवल एक व्यक्ति के हित में। अब हमारे पिता दूसरों को कोई अवसर नहीं देते। हम भगवान (फुस्सा) बुद्ध और उनके संघ की सेवा कैसे कर सकते हैं? चलो, कुछ रणनीति बनाते हैं।" इसलिए उन्होंने सीमावर्ती क्षेत्र में एक प्रकार का उपद्रव किया। जब राजा को इस उपद्रव के बारे में पता चला, तो उन्होंने इन तीनों पुत्रों को सीमा पर शांति स्थापित करने के लिए भेजा। उन्होंने ऐसा किया, और उनके लौटने पर, राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वरदान देते हुए कहा, "जो चाहो ले लो।" उन्होंने कहा, "हम भगवान (फुस्सा) बुद्ध की सेवा करना चाहते हैं।" राजा ने यह कहते हुए मना कर दिया, "कुछ और ले लो।" उन्होंने उत्तर दिया, "हमें किसी और चीज की परवाह नहीं है, कृपया हमें कम से कम सात वर्षों तक उनकी सेवा करने दें।" राजा ने कहा, "नहीं।" तब उन्होंने छह वर्ष, फिर पांच, फिर चार, फिर तीन, फिर दो वर्ष, फिर एक वर्ष का वरदान मांगा, फिर भी राजा ने मना कर दिया। फिर उन्होंने सात महीने, फिर छह महीने, पांच महीने, चार महीने मांगे। अंत में राजा तीन महीने के लिए सहमत हो गया और बोला, "ठीक है, आप अपनी मर्जी से चुन सकते हैं।"

वे भगवान (फुस्सा) बुद्ध के पास गए और बोले, "हे पूज्यवर, हम तीन महीने भगवान की सेवा करना चाहते हैं। कृपया हमें वर्षा ऋतु के तीन महीने (अवस्सा) हमारे साथ बिताने की अनुमति दें।" भगवान बुद्ध (फुस्सा) सहमत हो गए। तीनों पुत्रों ने स्वयं प्रांत के नियुक्त अधिकारी को लिखित संदेश भेजा, जिसमें लिखा था, "इन तीन महीनों के दौरान हमें भगवान की सेवा करनी है; शुरुआत एक मठ से करनी है; सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है।" फिर उन्होंने भगवान बुद्ध (फुस्सा) और भिक्षु संघ की पूरी श्रद्धा से सेवा की। जब उन्होंने प्रांत के शासक के रूप में मठ का समर्पण कर दिया, तो उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने (अवस्सा) का पालन किया।

उनमें से एक राजकोषाध्यक्ष, गृहस्थ का पुत्र, एक अनुयायी, अपनी पत्नी सहित आस्थावान हो गया। उसने विधिवत रूप से भिक्षु संघ को दान दिया, जिसके प्रमुख (फुस्सा) बुद्ध थे। उस व्यक्ति को प्रांत का प्रमुख नियुक्त किया गया और उसने उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए ग्यारह हजार लोगों के साथ पूरे आदर के साथ दान दिया। उस अवसर पर कुछ लोग मन में आहत हुए और दान देने में बाधा उत्पन्न करते हुए, उन्होंने स्वयं दान खा लिया और भोजन कक्ष को आग लगा दी। राजा के पुत्रों ने अपने सेवकों के साथ भगवान बुद्ध (फुस्सा) को आदर देकर विदाई दी और सीधे अपने पिता के पास चले गए। उनके लौटने पर भगवान बुद्ध (फुस्सा) निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त कर चुके थे; राजा के पुत्र, राजकोषाध्यक्ष और उनके सेवक समय आने पर स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर मर गए, परन्तु मन में आहत हुए लोग नरक में पुनर्जन्म लेकर मरे। इस प्रकार 91 कल्प (काल/चक्र) बीत गए, क्योंकि ये दोनों अवस्थाएँ क्रमशः स्वर्ग से स्वर्ग और नरक से नरक में पुनर्जन्म लेती रहीं। फिर उसी शुभ चक्र में, भगवान कश्यप (एक अन्य बुद्ध) के समय, अपराध करने वाले लोग प्रेतों के बीच पुनर्जन्म लेते रहे। उस समय, लोग स्वयं अपने प्रेत पूर्वजों के लाभ के लिए दान देते थे और कहते थे, "यह हमारे रिश्तेदारों के लिए है।" उन प्रेतों को सुख प्राप्त हुआ। तब इन प्रेतों ने भी यह देखा और कश्यप (पूर्व बुद्ध) के पास जाकर उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, अब हम भी ऐसा सुख कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" भगवान (बुद्ध कस्सपा) ने उत्तर दिया, "इस समय तुम इसे प्राप्त नहीं कर सकते, परन्तु आने वाले समय में गौतम (वर्तमान बुद्ध) नामक एक सर्वव्यापी बुद्ध होंगे; उस भगवान बुद्ध के समय में बिम्बिसार नामक एक राजा होगा, जो एक

चक्र पूरा होने के बाद तुम्हारा रिश्तेदार होगा। वह बुद्ध को दान देगा और उसका श्रेय तुम्हें देगा; तब तुम (सुख) प्राप्त करोगे।" अब जब यह कहा गया, तो पादों ने सोचा मानो कहा गया हो, "कल तुम्हें यह प्राप्त होगा।"

फिर इस बुद्ध-काल के बाद, (वर्तमान गौतम) भगवान बुद्ध का जन्म हुआ; तीनों राजकुमार भी एक हजार पुरुषों के साथ देवलोक से निकलकर मगध राज्य में ब्राह्मण (पुजारी) परिवारों में पुनर्जन्म लेकर आए। समय बीतने के साथ, सांसारिक जीवन का त्याग करके, तीनों जटाधारी तपस्वी बन गए और गयासिसा में रहने लगे; प्रांत के शासक बिम्बिसार राजा बने; गृहस्थ के पुत्र, राजकोषीय कोषाध्यक्ष, विशाखा नामक एक धनी व्यक्ति बने, उनकी पत्नी एक धनी व्यक्ति की पुत्री बनीं और धम्मदिन्ना के नाम से जानी गईं; लेकिन शेष लोग राजा के सेवक बन गए। अब बुद्ध (गौतम) संसार में आए और ज्ञान प्राप्त किया। फिर सात सप्ताह बाद, वे बनारस आए और वहाँ धर्म (मार्ग) का प्रचार शुरू किया। उन्होंने पाँच के समूह से शुरुआत करते हुए तीनों तपस्वियों को उपदेश दिया और अंततः एक हजार अनुयायी प्राप्त किए। फिर वह राजगृह गया और अंग (बंगाल) और मगध (बिहार) में रहने वाले ग्यारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों के साथ प्रथम ज्ञानोदय (सोतापत्ति) के फलों में राजा बिम्बिसार की स्थापना की।

फिर अगले दिन राजा ने बुद्ध और उनके अनेक अनुयायियों को दान के रूप में भोजन के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध और उनके अनुयायियों को स्वर्ग के स्वामी (देवदूतों) सक्का (इंद्र) द्वारा राजा के महल में ले जाया गया, जिन्होंने मनुष्य का रूप धारण किया और भगवान बुद्ध की स्तुति गाई।

प्रेतों (भूतों) ने घर को घेर लिया, यह सोचकर कि "अब राजा हमारे लिए दान देंगे"। राजा ने जब दान दिया, तो उनके मन में केवल यही विचार आया, "पता नहीं भगवान बुद्ध कहाँ ठहरे होंगे?" इसलिए उन्होंने दान का श्रेय किसी को नहीं दिया। इस प्रकार, दान न मिलने के कारण प्रेतों में निराशा छा गई और उन्होंने रात में राजा के निवास पर भयानक चीख-पुकार मचाई। व्याकुल राजा ने भोर होते ही भगवान बुद्ध को सारी घटना बताई और पूछा, "क्या आपने ऐसी कोई आवाज सुनी? हे पूज्यवर, अब मुझे डर है कि मेरा क्या होगा।" भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "महान महाराज, भयभीत न हों; आपको कोई विपत्ति नहीं आएगी, बल्कि समृद्धि ही आपका मार्ग प्रशस्त करेगी। ये आपके ही लोग हैं जो प्रेतों (भूतों) के बीच पुनर्जन्म लेकर आए हैं। एक बुद्ध काल से ये भटक रहे हैं, केवल इसी आशा में कि 'भगवान बुद्ध को दान देंगे और पुण्य के रूप में इसका श्रेय हमें देंगे'।" कल जब आपने दान दिया, तो आपने उसका श्रेय हस्तांतरित नहीं किया। परिणामस्वरूप, वे निराश हो गए और रोना रोए। राजा ने कहा, "हे पूज्यवर, अब वे दान के रूप में दी गई वस्तु को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" बुद्ध ने कहा, "जी हाँ, महाराज।" राजा ने कहा, "तो हे पूज्यवर, कल के लिए भगवान बुद्ध का निमंत्रण स्वीकार कीजिए; मैं उन्हें दान का पुण्य हस्तांतरित कर दूंगा।" भगवान बुद्ध सहमत हो गए।

तब राजा ने उदारतापूर्वक दान की व्यवस्था की और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी, जो राजमहल में आए। पेटा लोग यह सोचकर आए कि "आज हमें कुछ मिलेगा", और महल की दीवारों के बाहर खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने ऐसा किया कि वे सभी राजा को दिखाई देने लगे। जब राजा ने उन्हें स्नान करने के लिए जल दिया, तो उन्होंने "यह मेरे सगे-संबंधियों (पेटाओं) के लिए हो" कहकर उन्हें पुण्य प्रदान किया। तुरंत ही पेटाओं के लिए कमलों और जल लिली से भरा एक कमल-कुंड प्रकट हुआ। उन्होंने वहाँ स्नान किया और जल पिया, और कष्ट, थकान और प्यास से मुक्त होकर वे स्वर्ण रंग के हो गए। राजा ने चावल, दलिया और ठोस एवं नरम भोजन वितरित किया और दान का पुण्य फिर से पेटाओं को दिया। तुरंत ही पेटाओं को दिव्य भोजन प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने आनंदपूर्वक खाया। राजा ने वस्त्र और आवास दान किए और दान का पुण्य फिर से पेटाओं को दिया। उनके लिए देव वस्त्र, देव भवन, पलंग, आवरण और आभूषण अस्तित्व में आए। भगवान बुद्ध ने निश्चय किया कि उनका यह सारा आनंद राजा को प्रकट हो, जिसे देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर भगवान बुद्ध ने भोजन करने के बाद, आमंत्रित किए जाने पर, राजा बिम्बिसार को धन्यवाद देने के लिए, दीवारों के बाहर रहने वाले प्रेतों (भूतों) की कहानी सुनाई।

1. "वे दीवारों के बाहर, खुले स्थानों पर और चौराहों पर खड़े हैं; वे अपने घर जाकर दरवाज़े के चौखटों पर खड़े हैं।"

2. "यद्यपि भरपूर मात्रा में भोजन और पेय पदार्थ, कठोर और नरम, परोसे जाते हैं, फिर भी इन प्राणियों के कार्यों के कारण किसी को इनकी आवश्यकता नहीं होती।"

3. "दयालु लोग उचित समय पर अपने सगे-संबंधियों को शुद्ध, उत्तम और उपयुक्त भोजन और पेय देते हैं (इन शब्दों के साथ) 'यह हमारे सगे-संबंधियों के लिए हो; हमारे पूर्वज धन्य हों!' "

4. "और वहाँ एकत्रित होकर, एकत्रित हुए परिजनों की दिवंगत आत्माएँ प्रचुर भोजन और पेय देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं:"

5. "हमारे उन सगे-संबंधियों की जय हो जिनके माध्यम से हमें प्राप्त होता है। हमें भक्ति दिखाई गई है, और दान देने वालों को पुरस्कार अवश्य मिलता है।"

6. "वहाँ (परलोक में) न तो खेती होती है, न ही गाय चराई; न ही यहाँ की तरह व्यापार होता है, न ही सोने का लेन-देन होता है।"

7. "यहाँ से प्राप्त उपहारों से परलोक में रहने वाले मृत आत्माएँ अपना जीवन यापन करती हैं। जैसे ऊँचाई से बरसा जल नीचे भूमि पर बहता है, वैसे ही यहाँ से प्राप्त उपहारों से परलोक में रहने वाले मृत आत्माएँ अपना जीवन यापन करती हैं।"

8. " 'जैसे पानी की भरी धाराएँ सागर को भर देती हैं, वैसे ही यह उपहार पेटा पक्षियों का सहारा बनता है' "

9. "मेरे सगे-संबंधियों और साथियों ने मुझे दिया, मेरे लिए काम किया। इसलिए, अतीत में किए गए कार्यों को याद करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति पेटा को दान दे।"

10. "केवल रोना, शोक करना या विलाप करना व्यर्थ है; यह सब दिवंगत व्यक्ति के लिए कोई सहायता नहीं करता। इस तरह की प्रथाएँ तो परिजनों द्वारा ही अपनाई जाती हैं।"

11. "लेकिन वास्तव में यह दान, जो संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) में दिया जाता है और सुस्थापित है, दिवंगत आत्मा के लाभ के लिए तत्काल प्रभाव से, दीर्घकालिक रूप से कार्य करता है।"

12 " 'अब यह सगे-संबंधियों के लिए निर्धारित कर्तव्य है; इसके अलावा, पादों के प्रति उच्च श्रद्धा अर्पित की गई है, और भिक्षुओं को शक्ति प्रदान की गई है। आपने कम अच्छा कार्य नहीं किया है।' "

प्रवचन के अंत में, चौरासी हजार लोगों को धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ, जिनकी समझ मानो प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म की घटना से शुरू हुई थी। उनके हृदय श्रद्धा से भर गए और उन्होंने सच्चे मन से प्रयास किए। अगले दिन, भगवान बुद्ध ने देवताओं और मनुष्यों को "दीवारों के बाहर" का यही प्रवचन दिया। इस प्रकार सात दिनों तक इस धम्म के प्रति आस्था का ऐसा ही प्रसार हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पंच-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<------------------------ 1.6 -------------------------->>>> अगला

1.6 पाँच बच्चों को भक्षक

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। सावत्थी से कुछ ही दूरी पर एक गाँव में एक जमींदार की पत्नी बांझ थी। उसके रिश्तेदारों ने कहा, "हम तुम्हारे लिए दूसरी लड़की ला देते हैं।" पत्नी के प्रति प्रेम के कारण वह ऐसा करने को तैयार नहीं था। जब उसकी पत्नी को इस बात का पता चला, तो उसने अपने पति से दोबारा शादी करने और वंश को न तोड़ने का आग्रह किया। लेकिन जब नई पत्नी गर्भवती हुई, तो ईर्ष्या से भरी बांझ पत्नी ने एक व्यक्ति को भोजन और पेय पदार्थ देकर उसका गर्भपात करवा दिया। दूसरी पत्नी ने अपनी माँ को यह बात बताई, जिसने अपने रिश्तेदारों को बुलाया और उन्होंने बांझ पत्नी से कहा, "तुमने उसके अजन्मे बच्चे की मृत्यु का कारण बनी हो।" उसने उत्तर दिया, "मैं दोषी नहीं हूँ।" रिश्तेदारों ने कहा, "यदि तुम दोषी नहीं हो, तो शपथ लो।" उसने शपथ ली कि यदि वह दोषी है, तो वह नग्न और बदसूरत रूप वाली, दुर्गंधयुक्त और सड़ी हुई साँसों वाली एक प्रेतात्मा बन जाएगी। मक्खियों से ढकी हुई, वह सुबह होते ही पांच बेटों को जन्म देती थी लेकिन उन सभी को खा जाती थी, और शाम को भी ऐसा ही होता था।

कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई और उसी कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक बदसूरत पेटी के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। उसी समय, आठ वृद्ध भिक्षु जो वर्षा ऋतु (वस्सा) प्रांत में बिता रहे थे और गुरु (बुद्ध) के दर्शन के लिए श्रावस्ती जा रहे थे, उसी गाँव से कुछ ही दूरी पर स्थित एक छायादार और जलयुक्त वन में पहुँचे। तब पेटी उन वृद्ध भिक्षुओं के सामने प्रकट हुई, जिनमें से एक ने उससे पूछा:

1. "तुम नग्न और बदसूरत हो; तुम्हारे मुंह से दुर्गंध और सड़ी हुई बदबू निकलती है; तुम मक्खियों से ढके हुए हो। अब तुम कौन हो जो यहाँ खड़े हो?"

पेटी:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी। क्योंकि मैंने एक दुष्ट कर्म किया था, इसलिए मैं पेटा (भूत) लोक में चला गया

3. "भोर होते ही मैं पाँच पुत्रों को जन्म देती हूँ, शाम को फिर पाँच और पुत्रों को, जिन्हें मैं खा जाती हूँ; फिर भी ये मेरे लिए पर्याप्त नहीं हैं।"

4. "मेरा हृदय भूख से झुलस रहा है और धुआँ उगल रहा है; मुझे पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा है। देखो, मुझ पर विपत्ति आ पड़ी है।"

जब बुजुर्ग ने यह सुना, तो उसने उससे पूछा:

5. "अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस अपराध के प्रतिशोध में तुम अपने पुत्रों का मांस खाते हो?"

तब उस लड़की ने बुजुर्ग को बताया कि उसने क्या किया था:

6. "मेरे पति की दूसरी पत्नी गर्भवती थी, और मैंने उसके विरुद्ध दुष्टता की योजना बनाई; मैंने स्वयं कुटिल इरादे से उसके अजन्मे बच्चे का गर्भपात करवा दिया।"

7. "जब वह (भ्रूण) दो महीने का था, तब उसमें से रक्तस्राव हुआ। तब उसकी माँ क्रोधित होकर अपने रिश्तेदारों को मेरे पास लाई। और उसने मुझे अपशब्द कहे और मेरी निंदा भी करवाई।"

8. "मैंने, हाँ मैंने, वह भयानक शपथ झूठी खाई थी: 'यदि मेरे द्वारा किया गया हो तो क्या मैं बच्चों का मांस खा सकता हूँ?'"

9. "गर्भपात के कृत्य और झूठ दोनों के परिणामस्वरूप, मैं अतीत के रक्त से सने बच्चों का मांस खाता हूँ।"

वृद्धजनों को उस पर दया आ गई और वे उस जमींदार के घर गए। उन्होंने जमींदार से विनती की कि वह उन्हें दिए गए दान का पुण्य उस बेटी को दे दे। देखते ही देखते, बेटी अपने कष्टों से मुक्त हो गई और उसे अपार सुख प्राप्त हुआ। रात में उसने अपने पति को दर्शन दिए। तब वृद्धजन समय आने पर श्रावस्ती आए और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई, जिन्होंने उन्हें इस विषय में धर्म का उपदेश दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सत्त-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्तु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.7 -------------------------->>>> अगला

1.7 सात बच्चों को भक्षक

जब गुरु सावत्थी में ठहरे थे, तब उन्होंने एक कुरूप, नग्न और सात बच्चों को खाने वाली स्त्री की यह कहानी सुनाई। सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में, एक गृहस्थ शिष्य के दो पुत्र थे, जो सुंदर, प्रतिभाशाली और अच्छे स्वभाव के थे। उनके कारण उनकी माता अपने पति से घृणा करती थी। पत्नी द्वारा अपमानित किए जाने से क्रोधित होकर, वह एक और स्त्री को घर ले आया, जो गर्भवती हो गई। ईर्ष्या से ग्रस्त होकर, बड़ी पत्नी ने एक चिकित्सक को शुल्क लेकर अपनी प्रतिद्वंदी का गर्भपात कराने के लिए राजी किया। जब उसके परिवार और पति दोनों ने उससे पूछताछ की, तो उसने इससे इनकार किया और झूठी कसम खाई कि यदि यह सच हुआ, तो वह कुरूप और नग्न हो जाएगी और सात पुत्रों को खा जाएगी। इस प्रकार उसने उस अभिशाप को आमंत्रित किया जो वास्तव में उस पर आया। उसकी मृत्यु के बाद, वह कुरूप और नग्न स्त्री बन गई, वह प्रतिदिन सात पुत्रों को जन्म देती और फिर उन्हें खा जाती थी।

उस समय कई वरिष्ठ भिक्षु, जिन्होंने वर्षा ऋतु (वस्सा) के दौरान गाँव के एक निवास में विश्राम किया था, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी जा रहे थे। उस अवसर पर उन्होंने उस गाँव के पास ही रात्रि व्यतीत की। तभी एक स्त्री इन वरिष्ठ भिक्षुओं के दर्शन में प्रकट हुई। उनमें से प्रमुख ने उससे एक श्लोक में पूछा:

1. "तुम नग्न और बदसूरत हो; तुम्हारे मुंह से दुर्गंध और सड़ी हुई बदबू निकलती है। तुम मक्खियों से ढके हुए हो। अब तुम कौन हो जो यहाँ खड़े हो?"

पेटी ने कहा:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी। क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया है, इसलिए मैं यहाँ से पेटों (भूतों) के लोक में चला गया हूँ।"

3. "भोर होते ही मैं सात बच्चों को जन्म देती हूँ, शाम को फिर सात और बच्चों को, और मैं उन सभी को खा जाती हूँ; यहाँ तक कि ये भी मेरे लिए पर्याप्त नहीं हैं।"

4. "मेरा हृदय भूख से झुलस रहा है और धुआँ छोड़ रहा है; मुझे मन की शांति नहीं मिल रही है। मानो आग से जल गया हो। मैं पीड़ा भोग रहा हूँ।"

तब प्रधान भिक्षु ने उससे पूछा:

5. "अब तुमने शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कार्य किया? किस अपराध के कारण तुम बच्चों का मांस खाते हो?"

याचिका में कहा गया:

6. "मेरे दो बेटे थे; दोनों किशोरावस्था में पहुँच चुके थे। लेकिन बेटों की ताकत देखकर, मैं अपने पति से घृणा करती थी।"

7. "तब मेरे पति को गुस्सा आया और उसने दूसरी पत्नी से विवाह कर लिया। और जब वह गर्भवती हुई, तो मैंने उसके विरुद्ध बुराई करने की योजना बनाई।"

8. "और मैंने भ्रष्ट मन से उसके अजन्मे बच्चे को गिरा दिया। यह तीसरे महीने में, घिनौना और खून से लथपथ होकर गिरा।"

9. "तब उसकी माँ क्रोधित होकर अपने रिश्तेदारों को मेरे पास लाई। और उसने मुझसे शपथ दिलवाई और मुझे अपमानित करवाया। मैंने, हाँ मैंने, वह भयानक शपथ झूठी खाई: 'यदि मेरे द्वारा किया गया हो तो मैं अपने बच्चों का मांस खाऊँ।' "

10. "अपने कर्म और झूठ दोनों के फलस्वरूप, मैं अपने बच्चों का मांस खाता हूँ, क्योंकि मैं अपने अतीत के खून से सना हुआ हूँ।"

(बाकी की कहानी पिछली कहानी, क्रमांक 6 पंच-पुत्त-खडक-पेटवत्थु-वन्नना जैसी ही है।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गौर-पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 1.8 -------------------------->>>> अगला

1.8 बैल

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। श्रावस्ती में, एक गृहस्थ के पिता का निधन हो गया। पुत्र शोक से व्याकुल था और विलाप कर रहा था। वह पागलों की तरह इधर-उधर घूमता हुआ, जिसे भी देखता, पूछता: "क्या आपने मेरे पिता को देखा है कि वे कहाँ गए हैं?" कोई भी उसके शोक को दूर नहीं कर सका। परन्तु, उसके हृदय में, जैसे किसी कलश में दीपक जल रहा हो, वैसे ही ज्ञानोदय के प्रथम मार्ग (सोतापत्ति, धारा प्रवेश) की तात्कालिक अवस्था जल रही थी

जब गुरु (बुद्ध) सुबह-सुबह अपनी दिव्य अंतर्दृष्टि से संसार का अवलोकन कर रहे थे, तब उन्होंने यह देखा और सोचा: "इस व्यक्ति के अपने अतीत के अनुभव बताने और अपने दु:ख को दबाने के बाद, इसे प्रथम मार्ग (सोतापत्ति) का फल देने का यही सही अवसर है।" अतः अगले दिन, भिक्षा मांगने के बाद, वे एक कनिष्ठ भिक्षु के साथ उस व्यक्ति के घर गए। भगवान बुद्ध के आने की सूचना पाकर, वे उनका स्वागत करने के लिए बाहर गए। जब भगवान बुद्ध बैठे, तो मेज़बान ने कहा: "प्रभु, आप जानते हैं कि मेरे पिता कहाँ गए हैं।" तब गुरु (बुद्ध) ने उससे पूछा: "शिष्य, क्या तुम अपने पिता के बारे में इस अवस्था में पूछ रहे हो या अतीत में?" ये शब्द सुनकर और अपना दु:ख शांत होने पर उसने कहा: "मेरे अनेक पिता थे," और थोड़ा संभल गया। तब गुरु (बुद्ध) ने उसे संक्षिप्त धर्म शिक्षा दी, जिससे उसने तुरंत प्रथम मार्ग (सोतापत्ति) प्राप्त कर लिया। फिर भगवान बुद्ध अपने स्थान पर लौट गए। फिर उनके भिक्षुओं ने इस विषय पर बातचीत शुरू की।

उनके आने पर गुरु ने पूछा, "तो भिक्षुओं, आप यहाँ समूह में किस चर्चा के लिए बैठे हैं?" उन्होंने गुरु को सारी बात बताई। गुरु ने उनके अनुरोध पर बताया कि क्या हुआ था, "मैंने न केवल इस समय उस व्यक्ति के दु:ख को दूर किया, बल्कि पिछले जन्म में भी उसे दूर किया था।"

बनारस में एक समय की बात है, एक गृहस्थ के पिता का निधन हो गया। शोक और विलाप से व्याकुल होकर वे अपनी छाती पीटते हुए आदरपूर्वक चिता के चारों ओर घूमने लगे। उनका पुत्र, सुजाता, जो एक बुद्धिमान और चतुर बालक था, अपने पिता के शोक को दूर करने का उपाय सोच रहा था। तभी उसने शहर के बाहर एक मृत बैल देखा, जिसके सामने उसने घास और पानी रखा। उसने बैल को एक निवाला खिलाया और जीवित बैल की तरह आदेश देते हुए वहाँ खड़ा रहा और बोला, "खाओ, खाओ, पियो, पियो।" राहगीरों ने उसे देखकर कहा, "अरे सुजाता, क्या तुम पागल हो गए

हो कि मृत बैल को घास और पानी चढ़ा रहे हो?" लेकिन उसने एक शब्द भी नहीं कहा। तब लोग उसके पिता के पास गए और उनसे कहा, "आपका बेटा पागल हो गया है और मृत बैल को घास और पानी चढ़ा रहा है।" यह सुनकर गृहस्थ का अपने पिता के लिए शोक दूर हो गया। व्याकुल होकर वह तुरंत गया और लड़के को डांटा: "सुजाता, क्या तुम बुद्धिमान, चतुर और समझदार नहीं हो? तुम मरे हुए बैल को घास और पानी क्यों चढ़ा रहे हो?" इस संदर्भ में उसने दो श्लोक कहे:

1. "अब तुम पागल की तरह क्यों दिख रहे हो, हरी घास काट रहे हो और उस बूढ़े बैल से बुदबुदा रहे हो जिसकी जिंदगी खत्म हो चुकी है, 'खाओ, खाओ'?"

2. "मरा हुआ बैल खाने-पीने से जीवित नहीं हो सकता। तुम भी दूसरों की तरह ही बचकाने और भोले हो।"

इसके जवाब में सुजाता ने निम्नलिखित बातें कहीं:

3. "ये पैर, ये सिर, ये शरीर पूंछ समेत, आंखें भी यहीं हैं। इस बैल को उठने दो।"

4. "पर दादाजी के हाथ-पैर, शरीर और सिर दिखाई नहीं दे रहे हैं। मिट्टी के ढेर पर रोने वाले तुम ही मूर्ख नहीं हो?"

पिता:

5. "सचमुच मैं दमक रहा था, उस आग की तरह जिस पर घी डाला गया हो। अब पानी की तरह छिड़के जाने पर, मैं अपने सारे दर्द का अंत करता हूँ।"

6. "सचमुच, आपने मेरे हृदय में गहराई से बैठी पीड़ा, मेरे दुख को मुझसे दूर कर दिया, आपने ही मुझे, जो शोक से अभिभूत था, मेरे पिता के शोक से मुक्त किया।"

7. "सचमुच मैंने अब यहाँ अपना शोक त्याग दिया है, और मैं शांत हूँ और मैंने इसे समाप्त कर दिया है। अब मैं शोक नहीं करता, मैं रोता नहीं हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हारी बात सुन ली है, मेरे बेटे।"

8. "इसी प्रकार दयालु और बुद्धिमान लोग भी हमारा ध्यान दुख से हटाते हैं, जैसे सुजाता ने अपने पिता के साथ किया था।"

पिता ने अपना सिर धोया, भोजन किया और अपने काम में जुट गए। मृत्यु के बाद वे स्वर्ग चले गए।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को धम्म, सत्य का उपदेश दिया, जिसे जानकर कई भिक्षु सोतापत्ति अवस्था (प्रथम मार्ग) में स्थापित हो गए।

इस प्रकार सुजाता जगत के स्वामी (बुद्ध) की रक्षक बन गईं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> महा-पेसाकर-पेटिवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.9 ------------------------->>>> अगला

1.9 मास्टर बुनकर

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। गुरु से साधना का विषय प्राप्त करने के बाद, लगभग एक दर्जन भिक्षु रहने के लिए स्थान की खोज कर रहे थे। वर्षा ऋतु का विश्राम निकट था, तभी उन्हें छायादार और जलयुक्त एक रमणीय वन-आश्रय दिखाई दिया, और उससे कुछ ही दूरी पर भोजन के लिए एक गाँव भी था। उन्होंने रात वहीं बिताई और अगले दिन भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। गाँव वालों ने भिक्षुओं का स्वागत किया और उनसे वर्षा ऋतु के विश्राम (वस्सा) के लिए अपने यहाँ निवास करने का अनुरोध किया। तब बुनकर संघ के प्रमुख ने आदरपूर्वक दो माह तक अपनी चार आवश्यक वस्तुओं के साथ उनकी सेवा की, जबकि संघ के शेष सदस्यों ने प्रत्येक भिक्षु की देखभाल की।

मुख्य बुनकर की पत्नी अविश्वासी, धर्महीन, रूढ़िवादी और लालची थी, और उसने भिक्षुओं की सहायता नहीं की। तब मुख्य बुनकर ने उसकी छोटी बहन से विवाह कर लिया और उसे अपने घर में रखैल बना लिया। वह आस्थावान थी और भिक्षुओं की पूरी लगन से देखभाल करती थी। इन सभी बुनकरों ने भी वर्षा ऋतु के दौरान तपस्या कर रहे प्रत्येक भिक्षु को एक-एक वस्त्र दिया। तब बुनकर संघ के मुखिया की स्वार्थी पत्नी ने दुष्ट मन से

अपने पति को धिक्कारते हुए कहा, "जो भी भोजन और पेय तुम शाक्य संन्यासियों को दान में देते हो, वह परलोक में गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद में परिवर्तित हो जाए और वस्त्र जलते हुए लोहे की थालियाँ बन जाएँ।"

उनकी मृत्यु के बाद, कुशल बुनकर विंध्य वन में एक तेजस्वी रुक्खा-देव (लघु देवदूत) के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनकी कंजूस पत्नी उनके निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर एक प्रेत (भूत) के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी। वह नग्न, कुरूप और भूख-प्यास से व्याकुल थीं, और जब वह पृथ्वीदेव के पास पहुँचीं, तो उन्होंने कहा, "हे प्रभु, मैं नग्न हूँ और भूख-प्यास से अत्यधिक व्याकुल होकर भटक रही हूँ; मुझे वस्त्र, भोजन और जल दीजिए।" उन्होंने उन्हें अपना उत्तम देव भोजन और जल दिया; लेकिन जैसे ही उन्होंने उसे ग्रहण किया, वह तुरंत गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद में परिवर्तित हो गया, और जिस लबादे से वह ढकी हुई थीं, वह जलती हुई लोहे की थाली बन गई। उल्टी करती और विलाप करती हुई वह अत्यंत पीड़ा में इधर-उधर भटकती रहीं।

उस समय, एक भिक्षु, जो गुरु (बुद्ध) को प्रणाम करने जा रहा था, अपने बड़े काफिले के साथ विंध्य वन में प्रवेश किया। रात्रि यात्रा के बाद, काफिले को दिन में एक ऐसा स्थान दिखाई दिया जहाँ भरपूर छाया और पानी था। वहाँ उन्होंने बैलों को खोलकर विश्राम किया। तब वह भिक्षु, जो एकांत की इच्छा से थोड़ी दूर चला गया था, एक वृक्ष के नीचे घनी घास पर अपना लबादा बिछाकर लेट गया। रात्रि यात्रा से थका हुआ होने के कारण वह सो गया। जब काफिले के लोग विश्राम कर चुके, तो वे अपने मार्ग पर चल पड़े, लेकिन वह भिक्षु नहीं जागा। फिर शाम को उठकर, अपने साथियों को न पाकर, वह एक पगडंडी पर चला और अंततः उस देव (देवदूत) के निवास पर पहुँचा जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। जब उस देव ने उसे देखा, तो वह मनुष्य रूप में प्रकट हुआ और उसका स्वागत किया; वह उसे अपने महल में ले गया, और उसके चरणों के लिए मरहम और अन्य उपहार देने के बाद, उसने उसे प्रणाम किया और बैठ गया। इसी समय, एक भक्त भी आई और बोली: "हे स्वामी, मुझे भोजन, पेय और एक वस्त्र दीजिए।" उन्होंने उसे ये वस्तुएँ दीं, जो उसके हाथ लगते ही तुरंत गोबर, मूत्र, रक्त, मवाद और जलती हुई लोहे की थालियों में बदल गईं। यह देखकर वह व्यक्ति बहुत व्याकुल हो गया और उसने देवता से इन दो श्लोकों में प्रार्थना की:

1. "उसे गोबर, पेशाब, खून और मवाद मिलता है; यह किसका परिणाम है?
अब इस स्त्री ने क्या कर्म किया है, जो हमेशा खून और मवाद खाती रहती है?"

2. "उसे जो वस्त्र दिए गए थे वे नए, चमकदार, आकर्षक, कोमल, सफेद और चमकीले थे,
लेकिन वे विभिन्न धातु की प्लेटों में बदल गए। अब इस स्त्री ने क्या कर्म किया है?"

तब देवी ने भिक्षु को अपने पिछले जन्म का रहस्य समझाया:

3. "यह मेरी पत्नी थी, हे पूज्यवर; वह दान देने को इच्छुक नहीं थी, वह अत्यंत कंजूस और कृपण थी।
जब मैंने भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दिया, तो उसने मुझे अपशब्द कहे और मेरी निंदा करते हुए कहा:"

4. "तुम्हें सदा के लिए गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद, यहाँ तक कि गंदगी भी खानी पड़े।
परलोक में तुम्हारा यही भाग्य हो, और तुम्हारे वस्त्र धातु की थालियों के समान हों।
क्योंकि उसने ऐसा दुष्ट कर्म किया है, इसलिए यहाँ आने के बाद वह लंबे समय तक उस गंदगी को खाएगी।"

"अब, क्या उसे प्रेतों के संसार से मुक्त करने का कोई उपाय है?"
उन्होंने कहा: "यदि कोई भगवान बुद्ध और आर्य संघ (प्रबुद्ध भिक्षुओं) को, या यहाँ तक कि किसी एक भिक्षु को भी दान दे और उसका श्रेय उसे दे दे, और वह इसकी सराहना करे, तो इस प्रकार उसे दुखों से मुक्ति मिल जाएगी।"

जब देवता ने यह सुना, तो उन्होंने उस भिक्षु को भोजन और पेय दिया और दान का पुण्य उस साध्वी को प्रदान कर दिया। तुरंत ही उसे पर्याप्त भोजन मिल गया; उसका हृदय प्रसन्न हुआ और वह दिव्य भोजन से तृप्त हो गई। फिर उन्होंने उसी भिक्षु के हाथ में भगवान बुद्ध के लिए दिव्य वस्त्रों का एक जोड़ा दिया और दान का पुण्य साध्वी को दे दिया। इसके तुरंत बाद, वह दिव्य वस्त्रों से सुसज्जित हो गई, उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो गईं और वह एक अप्सरा के समान हो गई।

इसके अलावा, उस देवता की शक्ति से वह भिक्षु उसी दिन श्रावस्ती के जेतवन मठ में पहुंचा और उसने बुद्ध को सारी घटना बताई। बुद्ध ने उसकी प्रशंसा की और फिर उन्होंने धम्म प्रवचन दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> खल्लातिया-पेटिवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<------------------------ 1.10 -------------------------->>>> अगला

1.10 गंजी महिला

जब गुरुजी सावत्थी में ठहरे थे, तब उन्होंने एक गंजी स्त्री की यह कहानी सुनाई। एक समय की बात है, बनारस में एक स्त्री रहती थी जो अपनी सुंदरता के सहारे जीती थी। उसके लंबे, काले, मुलायम और चमकदार बाल बहुत सुंदर घुंघराले थे; उसकी लटें दो मुट्ठी भर होती थीं और जब खुली होती थीं तो उसकी कमर तक लटकती थीं। कुछ ईर्ष्यालु स्त्रियों ने आपस में सलाह की और दासी को रिश्वत देकर उसे एक ऐसी औषधि भेजी जिससे उसके बाल नष्ट हो जाएं। दासी ने स्नान पाउडर में वह औषधि मिलाकर अपनी मालकिन को गंगा में स्नान करते समय दे दी। उसने अपने बालों को जड़ों तक उस मिश्रण से अच्छी तरह गीला किया और पानी में डुबकी लगाई। जैसे ही वह नदी में डूबी, उसके सारे बाल जड़ समेत झड़ गए और उसका सिर करेले जैसा हो गया। फिर, पंख नोचे हुए कबूतर की तरह बदसूरत होकर, शर्म के मारे शहर में प्रवेश करने में असमर्थ, उसने अपना सिर शॉल से ढक लिया और शहर के बाहर रहने लगी। उसका संकोच दूर हो गया, और तिल पीसकर वह तेल और मादक पेय का व्यापार करके अपना जीवन यापन करने लगी। एक दिन, जब दो-तीन नशे में धुत आदमी गहरी नींद में सो गए, तो उसने उनके सारे कपड़े चुरा लिए जो खुले में लटके हुए थे।

फिर एक दिन, उसने भिक्षा माँगते हुए एक संत बुजुर्ग को देखा और उन्हें अंदर आने के लिए आमंत्रित करके तिल के तेल में मिला हुआ एक केक दिया। उस पर दया करके उन्होंने केक स्वीकार किया और खा लिया। वह प्रसन्न मन से उनके ऊपर छाता लिए खड़ी रही। बुजुर्ग ने भावुक होकर उसे धन्यवाद दिया और विदा ली। फिर उसने एक इच्छा माँगी: "काश मेरे बाल लंबे, सुंदर, चमकदार और कोमल हों और उनमें एक सुंदर घुंघरालेपन का वरदान हो।"

कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई, और उनके पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म समुद्र के बीचोंबीच एक स्वर्णमय महल में हुआ; उनके बाल उनकी इच्छा के अनुसार फिर से उग आए थे, परन्तु पुरुषों के वस्त्र चुराने के कारण वे नग्न थीं। उनका उस स्वर्णमय महल में बार-बार पुनर्जन्म हुआ और उन्होंने वहाँ बिना वस्त्रों के एक बुद्ध-काल व्यतीत किया। फिर भगवान गौतम बुद्ध का संसार में पुनर्जन्म हुआ और जब वे श्रावस्ती में धर्म का उपदेश दे रहे थे, तब वहाँ स्थित सौ व्यापारी सुवर्णभूमि के लिए एक जहाज में सवार हुए। तूफान से जूझता हुआ जहाज उस तट पर पहुँचा। तब उन्हें वह पेटी (महिला) उस महल के साथ दिखाई दी। जब सबसे बड़े व्यापारी ने उसे देखा, तो उसने पूछा:

1. "तुम कौन हो, हवेली में रह रहे हो? बाहर नहीं आ रहे हो।"
बाहर आओ, महिला; हमें तुम्हें और तुम्हारी शक्ति को देखने दो।"
याचिका:
2. "मैं दुखी हूँ; मुझे नग्न बाहर आने में शर्म आती है,
अपने बालों से ढका हुआ। मेरे द्वारा थोड़ा सा भी भला नहीं हुआ।"
व्यापारी:
3. "आओ। मैं तुम्हें एक पोशाक देता हूँ; इसे पहन लो;
इसे पहनो और बाहर आओ, सुंदरी
बाहर आओ, महिला। हमें तुम्हें और तुम्हारी शक्ति को देखने दो।"
यह कहते हुए उसने अपना लबादा उसकी ओर बढ़ा दिया।

याचिका:
4. "जो कुछ आपके हाथ से मेरे हाथ में दिया जाता है, वह मेरी मदद नहीं करता।
लेकिन यह शिष्य यहाँ सच्चे प्रबुद्ध बुद्ध का एक निष्ठावान शिष्य है।"
5. "इस आदमी को कपड़े पहनाकर, मुझे इसका श्रेय प्रदान करें।"
तब मुझे आशीर्वाद प्राप्त होगा और मैं सभी सुखों में समृद्ध होऊंगा।
उसकी बात सुनने के बाद, व्यापारियों ने उस शिष्य को स्नान कराया, तेल लगाया और उसे वस्त्र पहनाए। इस विषय को प्रकट करते हुए, संपादकों ने तीन छंद कहे:

6. व्यापारियों द्वारा स्नान कराकर और तेल लगाकर अभिषेक करने के बाद,
उन्होंने उसे वे वस्त्र पहनाए और उस महिला को उस उपहार का गुण प्रदान किया।
7. उपहार से यह परिणाम निकला:
भोजन, कपड़े और पेय पदार्थ
8. तब वह शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र पहने हुए, सर्वश्रेष्ठ बनारस वस्त्र धारण किए हुए था।
मुस्कुराते हुए वह हवेली से बाहर निकली और बोली: "यह आपके उपहार का फल है।"

व्यापारी:
9. "विभिन्न शैलियों का यह महल, सुखद रूप से चमकता है,
हे देवी (देवदूत), हमें बताइए कि यह किस कर्म का परिणाम है।"
देवी:
10. "एक यात्रा करने वाले भिक्षु, एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को,
मैंने पवित्र मन से तिल के तेल के साथ बीजों की एक रोटी दी।"
11. "इस अच्छे कर्म के फल के रूप में मुझे लंबे समय तक आनंद मिलता है।"
महल में; अब बस थोड़ा ही समय बचा है।"
12. "चार महीने बाद मेरी मृत्यु हो जाएगी;"
मैं अत्यंत भीषण और भयानक नरक में गिरूंगा।
13. "यह चार कोनों वाला है और इसमें चार दरवाजे हैं; इसे माप के अनुसार भागों में विभाजित किया गया है;
यह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है, और ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।"
14. "इसका लोहे का फर्श गर्मी से चमक रहा है। चारों ओर से रोशनी की लपटें उठ रही हैं।"
यह सौ योजन तक भी अडिग रहता है।"
15. "वहाँ मुझे लंबे समय तक असहनीय पीड़ा सहनी पड़ेगी।"
और बुरे कर्मों का फल। इसलिए मैं इस सत्य पर शोक व्यक्त करता हूँ।"
उस शिष्य के मन में दया भाव जागा और उसने कहा:

"हे देवी, आपने मुझे जो वरदान दिया है, उसकी शक्ति से आपकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हुई हैं। अब, इन गृहस्थ शिष्यों को वरदान देकर और गुरु (बुद्ध) के गुणों को ध्यान में रखते हुए, आप नरक में पुनर्जन्म से मुक्त हो जाएँगी।" बेटी बहुत प्रसन्न हुई और उसने उन्हें देव-भोजन, वस्त्र और आभूषण देकर तृप्त किया तथा भगवान बुद्ध के लिए वस्त्रों का एक समूह उनके हाथों में सौंप दिया। उसने प्रणाम करते हुए कहा: "सावत्थी जाओ और मेरी ओर से गुरु (बुद्ध) को प्रणाम करो: 'आदरणीय महोदय, एक बेटी भगवान बुद्ध के चरणों को प्रणाम करती है'।" फिर अपनी शक्ति से उसने उसी दिन जहाज को उसके उचित स्थान पर पहुँचा दिया।

समय आने पर व्यापारियों ने वह उपहार गुरु को सौंप दिया और सारी बात बताई। तब बुद्ध ने धम्म पर विस्तृत प्रवचन दिया। इन शिष्यों ने बुद्ध और उनके संघ को बड़ी राशि दान की और उस उपहार का श्रेय उस पेटी को दिया, जिसके फलस्वरूप वह कई लोगों के साथ उच्च तावतिंसा स्वर्ग में एक स्वर्ण महल में पुनर्जन्म लेकर लौटीं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> नाग-पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 1.11 ------------------------->>>> अगला

1.11 हाथी

जब गुरुजी जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। पूज्य संकिच्छ ने सात वर्ष की आयु में ही मुंडन कक्ष में अर्हतत्व (अंतिम ज्ञान) प्राप्त कर लिया था, और अभी भी एक नौसिखिया होते हुए, वे तीस भिक्षुओं के साथ एक जंगल में रह रहे थे, जिनसे उन्होंने पाँच सौ लुटेरों के हाथों मृत्यु को बचाया था। लुटेरों को परिवर्तित करने और उन्हें पवित्र भिक्षु जीवन अपनाने के लिए प्रेरित करने के बाद, वे इन भिक्षुओं के साथ बनारस में गुरुजी के पास गए, और वहाँ इसिपताना में रहने लगे

उस समय बनारस में एक ब्राह्मण (पुजारी) रहता था जिसके विचार भ्रामक थे। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। बड़े पुत्र का एक मित्र था जो बुद्ध का गृहस्थ शिष्य था। एक बार वे दोनों पूज्य संकिच्छा के वनवास में गए। पूज्य संकिच्छा ने उन्हें धम्म (मार्ग) का उपदेश दिया। इससे उनमें दयालुता का भाव उत्पन्न हुआ और फिर वे भिक्षुओं को भोजन अर्पित करने लगे।

भिक्षुओं की बातें सुनकर, छोटा बेटा और बेटी भी धम्म का अनुसरण करने लगे। तीनों ने भिक्षुओं और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार करके पुण्य अर्जित किया, यद्यपि उनके माता-पिता को कोई धर्म नहीं था और वे ऐसा कोई आदर नहीं दिखाते थे, बल्कि उन्हें 'अगले महीने आना' या 'अगले सप्ताह आना' कहकर वापस भेज देते थे। अब एक तूफान में, उनका कमजोर पुराना घर गिरने से वे पाँचों दबकर मर गए। इसके बाद ब्राह्मण और उनकी पत्नी का पुनर्जन्म पादों के रूप में हुआ, और दोनों बेटे और बेटी पृथ्वी पर देव (देवदूत) बन गए। अब उस ब्राह्मण का एक भतीजा, जो संकिच्छा का शिष्य था, उनके कहने पर उनसे मिलने गया, और जब वह खड़ा था, तो उसने अपने गुरु की शक्ति से देखा कि दोनों देव और उनकी बहन यक्षों (पृथ्वी पर देवदूतों) की सभा में जा रहे हैं, उसने दो पादों (भूतों) को भी उनके पीछे आते देखा, और उनसे बात की:

1. "सबसे आगे एक सफेद हाथी पर सवार होकर कोई चलता है;
बीच में एक खच्चरों द्वारा खींची जाने वाली रथ में कोई होता है;
और बिल्कुल अंत में एक युवती,
जो दसों लोकों को पूर्णतः प्रकाशित करती है, को पालकी में ले जाया जाता है।"
2. "परन्तु तुम लोग जिनके हाथों में हथौड़े हैं;
जिनके चेहरे उदास हैं और शरीर फटे-पुराने हैं;
जो मनुष्य जैसे दिखते हैं, तुमने क्या पाप किया है;
किसलिए तुम एक दूसरे का खून पीते हो?"
पेटास:
3. "जो सफेद हाथी पर सबसे आगे चलता है;
चार पैरों वाले जानवर पर, हाथी पर;
वह हमारा पुत्र था, वह सबसे बड़ा बच्चा था;
क्योंकि उसने दान दिया, अब वह खुशी से आनंदित होता है।"
4. "बीच में, खच्चरों द्वारा खींचे गए रथ पर;
चार घोड़ों से जुती हुई तेज गति वाली गाड़ी में;
हमारा दूसरा बच्चा था;
वह एक निस्वार्थ और महान दाता के रूप में चमकता है।"
5. "वह जो पालकी में पीछे-पीछे ले जाई जाती है;
एक बुद्धिमान महिला, जिसकी आंखें कबूतर जैसी कोमल हैं;
वह हमारी सबसे छोटी बेटी थी;
अपने हिस्से से खुश होकर वह आनंदित होती है।"
6. "ये लोग अपने पिछले जन्म में प्रसन्न मन से
भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान देते थे;
परन्तु हम कंजूस थे
और भिक्षुओं और ब्राह्मणों का अपमान करते थे;
दान देने के कारण वे भटकते रहते हैं;
और हम कटे हुए सरकंडे की तरह सूख गए हैं।"
अपनी दुष्टता का बखान करते हुए उन्होंने इस प्रकार समझाया: "हम तुम्हारी माँ के भाई और उसकी पत्नी हैं।" यह सुनकर भतीजा दुखी हुआ और उसने पूछा:

7. "तुम्हारा भोजन कैसा है? तुम्हारा बिस्तर कैसा है?
तुम अपना भरण-पोषण कैसे करते हो, हे महापापियों,
जो भोजन की प्रचुरता होते हुए भी
सुख खो बैठे और आज दुःख प्राप्त कर चुके हो?"
पेटास:
8. "हम एक दूसरे को मारते हैं
और मवाद और खून पीते हैं।
हालाँकि हमने बहुत कुछ पिया है, फिर भी
हमें पोषण नहीं मिलता, हम संतुष्ट नहीं होते।"
9. "जिस प्रकार दान न करने वाले मनुष्य विलाप करते हैं;
जो मृत्यु के बाद यमलोक में होते हैं;
भोजन को जानकर भी
वे न तो उसका आनंद लेते हैं और न ही उससे कोई लाभ करते हैं।"
10. "दूसरे लोक में भूख और प्यास से पीड़ित होकर,
पेटा लोग लंबे समय तक विलाप करते हैं, क्योंकि वे पीड़ा में हैं।
क्योंकि उन्होंने गंभीर परिणाम वाले कर्म किए हैं,
इसलिए उन्हें कड़वे फल के रूप में पीड़ा मिलती है;
11. "धन और संपत्ति क्षणभंगुर हैं;
पृथ्वी पर जीवन क्षणिक है;

क्षणभंगुरता को जानते हुए,
बुद्धिमान व्यक्ति को शरण का एक द्वीप तैयार करना चाहिए।"
12. "धम्म को जानने वाले और इस ज्ञान को प्राप्त करने वाले सभी लोग
अर्हंतों के वचन सुनने के बाद दान देने में लापरवाही नहीं करते।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उरग-पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 1.12 -------------------------->>>> अगला

1.12 सर्प

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई

कहा जाता है कि सावत्थी में एक गृहस्थ शिष्य के पुत्र का निधन हो गया। पिता गहरे शोक में डूब गए और घर से बाहर नहीं निकले; वे कुछ भी करने में असमर्थ थे और घर में ही बीमार पड़े रहे। तब गुरु, परम करुणा की प्राप्ति के बाद, भोर में उठकर बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन कर रहे थे; उन्होंने शिष्य को देखा, तो वे कुंड और वस्त्र लेकर उसके घर के द्वार पर खड़े हो गए। शिष्य शीघ्र ही उनसे मिलने बाहर गया, उनका कुंड लिया और उनका स्वागत किया। भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, तुम शोक से इतने व्याकुल क्यों प्रतीत हो रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, प्रभु, मेरे प्रिय पुत्र का निधन हो गया है; इसलिए मैं शोक से व्याकुल हूँ।" तब भगवान बुद्ध, जो शोक को दूर करते हैं, ने उन्हें सर्प जातक कथा (पिछले जन्म की कथा) सुनाई।

बहुत समय पहले, काशी देश के बनारस में धम्मपाल नाम का एक ब्राह्मण परिवार रहता था। इस परिवार में ब्राह्मण, उनकी पत्नी, पुत्र, पुत्री, बहू और दासी, सभी मृत्यु के ध्यान में लीन रहते थे। उनमें से जो भी घर से बाहर जाता, वह घर के बाकी सदस्यों को बताकर बेपरवाह होकर चला जाता। एक दिन ब्राह्मण अपने पुत्र के साथ एक खेत में हल चलाने गया। पुत्र ने सूखी घास और लकड़ियों में आग लगा दी। तभी एक काला सांप पेड़ के एक छेद से डरकर निकला और ब्राह्मण के पुत्र को काट लिया। पुत्र की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म देवों के राजा सक्का (इंद्र) के रूप में हुआ। तब ब्राह्मण ने स्नान करके, शुद्धिकरण करके और तेल लगाकर, अपने सेवकों से घिरे हुए, शव को चिता पर रखा और इस प्रकार अग्नि दी जैसे वह लकड़ियों का ढेर जला रहा हो। वह वहां शोक से मुक्त, आत्म-यातना के बिना खड़ा था, और उसका मन अनित्यता के विचार पर केंद्रित था।

अब ब्राह्मण के पुत्र, सक्का बनकर, हमारे बोधिसत्व बने। अपने पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्म का स्मरण करते हुए और अपने पिता और रिश्तेदारों के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, वे ब्राह्मण का वेश धारण करके उनके घर गए। जब उन्होंने देखा कि वे शोक नहीं मना रहे हैं, तो उन्होंने कहा: "अरे! आप एक जानवर भून रहे हैं; मुझे मांस दीजिए; मुझे भूख लगी है।" पिता ने उत्तर दिया: "यह जानवर नहीं है; ब्राह्मण, यह एक मनुष्य है।" बोधिसत्व ने पूछा: "क्या वह आपका शत्रु था?" पिता ने उत्तर दिया: "वह शत्रु नहीं था, बल्कि हमारी ही गोद में पला-बढ़ा, हमारा अपना कोमल, उत्तम गुणों वाला पुत्र था।" बोधिसत्व ने पूछा: "आप उसके लिए शोक क्यों नहीं मना रहे हैं?" तब ब्राह्मण ने कहा:

1. "जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुली उतारकर अपना शरीर प्राप्त करता है,
ठीक उसी प्रकार शरीर के भोग-विलास से वंचित होने और मृतक के जीवन का समय पूरा हो जाने पर होता है।"
2. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
तब सक्का ने ब्राह्मण की पत्नी से पूछा, "हे स्त्री, वह मृत पुरुष तुम्हारे लिए क्या था?" उसने उत्तर दिया, "मैंने उसे दस महीने तक अपने गर्भ में रखा, उसे दूध पिलाया, उसके हाथ-पैर सुलगाए; वह बड़ा हुआ, मेरा पुत्र, श्रीमान।" उसने पूछा, "यदि पिता मनुष्य के रूप में रोता भी नहीं है, तो भी माँ का हृदय कोमल होता है। तुम क्यों नहीं रो रही हो?" यह सुनकर उसने कहा:

3. "बिना बुलाए वह आया, बिना कहे चला गया।
जैसा आया वैसा चला गया। यहाँ क्यों रोना?"
4. "जो जल रहा है, उसे नहीं पता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने बहन से पूछा: "हे महिला, वह तुम्हारे लिए क्या था?" उसने कहा, "श्रीमान, वह मेरा भाई था।" उसने कहा, "हे महिला, बहनों का अपने भाइयों के प्रति स्नेह होता है। तुम क्यों नहीं रो रही हो?" उसने समझाया:

5. "अगर मैं रोऊँ तो मैं कमजोर हो जाऊँगी। मुझे इससे क्या इनाम मिलेगा?

हमारे रिश्तेदारों, साथियों और दोस्तों को और भी अधिक असुविधाएँ होंगी।"
6. "जो जल रहा है, उसे नहीं पता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने विधवा से पूछा: "वह तुम्हारे लिए क्या मायने रखती थी?"

उसने कहा, "महोदय, वह मेरे पति थे।" उन्होंने पूछा, "महिम, पत्नियों को अपने पतियों से स्नेह होता है। तो फिर आप क्यों नहीं रोतीं?" उसने समझाया:

7. "जिस प्रकार एक शिशु चंद्रमा के जाने पर रोता है,
ठीक वही व्यक्ति जो किसी दिवंगत व्यक्ति के लिए शोक मनाता है।"
8. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने नौकरानी से पूछा: "स्त्री, वह आदमी तुम्हारे लिए क्या था?" उसने कहा, "महोदय, वह मेरा स्वामी था।" उसने पूछा, "अगर ऐसा है, तो शायद उसने तुम्हें पीटा होगा, और तुम घर की नौकरानी रही होगी; इसलिए तुम यह सोचकर क्यों नहीं रो रही हो कि 'मैं उस मरे हुए आदमी से छुटकारा पाकर खुश हूँ?' " उसने उत्तर दिया, "महोदय, मुझसे ऐसा मत कहिए। यह उचित नहीं है। वह सज्जन मेरे प्रति बहुत धैर्यवान, मित्रवत और दयालु थे, एक सजे-धजे बड़े बेटे की तरह उचित व्यवहार करते थे।" उसने पूछा, "तो फिर तुम क्यों नहीं रो रही हो?" उसने कहा:

9. "जिस प्रकार ब्राह्मण के मामले में टूटा हुआ पानी का घड़ा वापस नहीं रखा जा सकता,
उसी प्रकार दिवंगत आत्मा के लिए शोक करने वाले का प्रयास व्यर्थ ही होता है।"
10. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
जब सक्का ने उनकी बातें सुनीं, तो वे प्रसन्न हुए और बोले: “तुमने मृत्यु के प्रति सही ध्यान विकसित किया है। अब से तुम हल चलाना और अन्य श्रम न करना।” उन्होंने उनके घर को सात राजसी खजानों से भर दिया और उन्हें सलाह दी: “लगन से दान करो, नैतिक नियमों का पालन करो और पर्व मनाओ।” फिर उन्होंने स्वयं को उनके सामने प्रकट किया और अपने धाम चले गए। तब ब्राह्मण और उनके परिवार ने दान दिया और अन्य पुण्य कर्म किए, और अच्छी आयु प्राप्त करके देवलोक में पुनर्जन्म लिया।

जब बुद्ध ने यह कहानी शोकग्रस्त शिष्य को सुनाई, तो वह शांत हो गया और उसी क्षण उसने मुक्ति का सोतापत्ति (प्रथम मार्ग) प्राप्त कर लिया।

पुस्तक का अंत – 1
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> संसार-मोचक-पेटिवत्तु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 2.1 -------------------------->>>> अगला

खंड II: उब्बरीवाग्गो

2.1 संसार में पुनर्जन्मों से मुक्ति

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवाना में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई

मगध के इत्थकवती नामक गाँव और दिघारजी गाँव में कई ऐसे लोग रहते थे, जिन्होंने पुनर्जन्मों से मुक्ति पाकर भी गलत मत रखे थे। बहुत समय पहले, एक स्त्री का पुनर्जन्म ऐसे ही एक परिवार में हुआ। अनेक भृंग और टिड्डे मारकर, मरने के बाद वह एक पेटी के रूप में पुनर्जन्म लेकर पाँच सौ वर्षों तक भूख और प्यास की पीड़ा सहन करती रही। उस समय भगवान बुद्ध राजगृह में थे, जब उसका उसी परिवार में इत्थकवती में पुनः जन्म हुआ। एक दिन जब वह गाँव के द्वार के पास मुख्य सड़क पर अन्य स्त्रियों के साथ खेल रही थी, तो आदरणीय थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) सारिपुत्त अपने बारह अन्य भिक्षुओं के साथ वहाँ से गुज़रे और स्त्रियाँ उन्हें प्रणाम करने के लिए दौड़ीं। लेकिन वह वहाँ अनादरपूर्वक खड़ी रही। तब थेरा ने उसके अतीत और भविष्य को जानकर, सहानुभूति से द्रवित होकर, स्त्रियों के प्रति उसके इस व्यवहार पर टिप्पणी की। स्त्रियों ने उसका हाथ पकड़कर उसे प्रणाम करने के लिए घसीटा। बाद में प्रसव के दौरान उसकी मृत्यु हो गई और वह फिर से पेटियों के बीच जन्मी। और वह रात में सारिपुत्त के दर्शन हुए, जिन्होंने उसे देखकर कहा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप वाले हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले, पतले-दुबले, तुम्हारी पसलियां बाहर निकली हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहां हो?"

पेटी:
2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी; क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया था। मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।"

सारिपुत्त:
3. "अब तुमने अपने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया? किस कर्म के कारण तुम पेटों के लोक में चले गए?"

याचिका:
4. "हे पूज्यवर, मेरे पास कोई दयालु रिश्तेदार, माता-पिता या यहाँ तक कि अन्य सगे-संबंधी भी नहीं थे जो मुझे यह कहकर प्रेरित करते, 'अपने हृदय में श्रद्धापूर्वक भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दो।'"
5. "उस समय से पाँच सौ वर्षों तक मैं इसी रूप में नग्न, भूख और प्यास से त्रस्त होकर भटकता रहा हूँ; यह मेरे बुरे कर्मों का फल है।"
6. "हे प्रभु, मैं श्रद्धापूर्वक आपकी आराधना करता हूँ। हे ज्ञानी, शक्तिशाली, मुझ पर दया कीजिए! जाइए, मेरे नाम पर कुछ दान दीजिए; हे पूज्यवर, मुझे मेरे कष्टों से मुक्त कीजिए।"
संपादकों ने वर्णन जारी रखा:
7. "बहुत अच्छा" कहते हुए, दयालु सारिपुत्त ने भिक्षुओं को भोजन का एक टुकड़ा, मुट्ठी भर कपड़ा और एक कटोरा पानी दिया और दान का श्रेय उसे दिया।
8. जैसे ही यह उसे दिया गया, परिणाम सामने आया। दान का फल यह था:
भोजन, वस्त्र और पेय।
9. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, बनारस के उत्तम वस्त्र धारण किए, विभिन्न वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह सारिपुत्त के पास गई।

सारिपुत्त:
10. "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर रूप धारण किए हुए हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"
11. "ऐसा रूप किस कारण है? आपको यह सौभाग्य क्यों प्राप्त हुआ है, और मन को प्रिय सुख-सुविधाएँ आपके भाग में क्यों आती हैं?"
12. "हे देवी, मैं आपसे यही पूछता हूँ। हे अत्यंत शक्तिशाली, मनुष्य रूप धारण करने वाली आप, आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आपको यह तेजस्वी महिमा कहाँ से प्राप्त हुई है, और आपका प्रकाश समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करता है?"

प्रार्थना
13. "हे दयालु द्रष्टा, मेरी सारी हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं, मैं दुबला-पतला, भूखा, नंगा और झुर्रीदार त्वचा वाला हूँ, आपने मेरी इस दयनीय स्थिति में मुझे देखा है।"
14. "जब आपने भिक्षुओं को भोजन का एक टुकड़ा, मुट्ठी भर कपड़ा और एक कटोरा पानी दिया, तो आपने मुझे उस दान का पुण्य प्रदान किया।"
15. "देखो उस टुकड़े का फल: सुख की इच्छा से, मैं दस सौ वर्षों तक अनेक स्वादों वाले भोजन का आनंद लेता हूँ।
" 16. "देखो मुट्ठी भर कपड़े से कैसा परिणाम निकला: उतने ही कपड़े जितने नंदराज के राज्य में थे।" 17.
"आदरणीय, मेरे पास उससे भी अधिक वस्त्र और आवरण हैं, रेशमी और ऊनी, लिनेन और सूती।" 18.
"वे अनेक और अनमोल हैं; और वे आकाश में लटके हुए हैं; और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनमें से जो भी मुझे अच्छा लगता है, उसे पहन लेता हूँ।"
19. "देखो, जल के कटोरे से कैसा परिणाम निकला है: चार गहरे, सुव्यवस्थित कमल-कुंड।
20. "उनका जल स्वच्छ है और किनारे सुंदर हैं; वे शीतल हैं और उनमें मनमोहक सुगंध है; वे गुलाबी कमल और नीले कमल से ढके हुए हैं और कमल के रेशों से भरे हुए हैं। 21. "
मैं स्वयं आनंदित होता हूँ, खेलता हूँ और प्रसन्न होता हूँ, मुझे किसी भी ओर से कोई भय नहीं है। आदरणीय महोदय, मैं इस संसार में दयालु द्रष्टा की आराधना करने आया हूँ।"
बुद्ध ने राजा नंदराज की कथा भी सुनाई। हजारों वर्ष पूर्व, बनारस नगर में एक गृहस्थ रहता था जिसने जंगल में एक पाचेक बुद्ध (एक प्रबुद्ध व्यक्ति) को देखा। पाचेक बुद्ध अपने वस्त्रों के लिए कपड़े ढूंढ रहे थे। गृहस्थ ने उनसे पूछा, 'आप क्या कर रहे हैं?' और जब उन्हें बताया गया, तो वे द्रवित हो गए और उन्होंने अपने वस्त्र उन्हें दान कर दिए। उनके दान के फलस्वरूप, मृत्यु के बाद उनका जन्म तावंती स्वर्ग में हुआ, जहाँ उन्हें अनेक दिव्य धन-संपत्ति और एक आलीशान महल प्राप्त हुआ। स्वर्ग में उनका समय समाप्त होने के बाद, उनका पुनः जन्म बनारस नगर के निकट एक गाँव में मनुष्य के रूप में हुआ। काम की तलाश में वे बनारस गए। बनारस के राजा की केवल एक पुत्री थी, कोई पुत्र नहीं था। समय बीतने के साथ, इस व्यक्ति का विवाह राजकुमारी से हुआ और वे राजा नंदराज बन गए। उन्होंने न्यायपूर्वक शासन किया और उनका राज्य समृद्ध था। वे और उनकी पत्नी अपने पाँचों पुत्रों के साथ, जरूरतमंदों, धर्मात्माओं और प्रबुद्ध व्यक्तियों को, जो उनकी सहायता के लिए इधर-उधर भटक रहे थे, भरपूर दान देते थे। एक

बार खोजते-खोजते रानी को हिमालय क्षेत्र में एक अरिहंत, एक प्रबुद्ध व्यक्ति, पाचेक बुद्ध मिले। उन्होंने राजा की ओर से उन्हें महल में आमंत्रित किया और उन्होंने एक निश्चित दिन आने का वादा किया। नियत दिन पाचेक बुद्ध आकाश से उतरकर शहर के उत्तरी द्वार पर आ पहुँचे। सभी ने उनके चरणों में नतमस्तक होकर उन्हें दान दिया, दीक्षा ली और उन्हें महल में रहने का स्थान दिया। उनकी और उनके शिष्यों की अच्छी देखभाल की गई। पाचेक बुद्ध की मृत्यु के बाद उनका अंतिम संस्कार किया गया और उनके अवशेषों को उनके लिए बनाए गए एक मंदिर में रखा गया। शरीर क्षय और मृत्यु के अधीन है, यह जानकर उनका बड़ा पुत्र इतना प्रभावित हुआ कि वह भी भिक्षु बन गया।

इस मार्ग का अनुसरण करते हुए, पूरे परिवार ने ध्यान के आनंद का अनुभव किया। उनकी मृत्यु के बाद, दोनों का जन्म सर्वोच्च ब्रह्मलोक (देवदूतों का निवास स्थान) में हुआ। बाद में, जब उनका समय वहाँ समाप्त हो गया, तो राजा का जन्म बुद्ध के प्रमुख शिष्य, वरिष्ठ भिक्षु महाकस्सपा के रूप में हुआ। उनकी पत्नी प्रमुख भिक्षुणी, भद्दा कपिलाणी बनीं।

इस प्रकार बुद्ध ने कथा का विस्तार से वर्णन किया, फिर धर्म प्रवचन द्वारा सभा को प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

(चूंकि महाकस्सपा और भद्दा कपिलानी ने बुद्ध के मार्गदर्शन में अर्हतत्व/ज्ञान प्राप्त कर लिया था, इसलिए उनके लिए पुनर्जन्म का कोई विकल्प नहीं था, अर्थात् उन्होंने पुनर्जन्मों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> सारिपुत्त-थेरा-मातु-पेटिवत्तु-वन्नन्ना

पिछला <<<<------------------------ 2.2 -------------------------->>>> अगला

2.2 वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्त की माता

जब गुरु वेलुवाना में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक दिन पूज्य सारिपुत्त, महामोग्गलाना, अनुराधा और कप्पिना राजगृह से कुछ ही दूरी पर जंगल में एक स्थान पर ठहरे हुए थे। उस समय बनारस में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण (पुजारी) भिक्षुओं, ब्राह्मणों, निर्धनों, यात्रियों, राहगीरों और भिखारियों की सहायता करने में उदार थे। वे उन्हें भोजन, पेय, वस्त्र, आवास और अन्य लाभ प्रदान करते थे। उन्होंने अपने जीवन को सुव्यवस्थित रखा और अवसर के अनुसार और उचित समझे जाने पर आने-जाने वालों को यात्रा के लिए आवश्यक सभी चीजें दान करते थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा,
"श्रीमती, दान के इस कार्य में लापरवाही न करें, बल्कि इसे विधिवत बनाए रखें।" उनकी पत्नी ने सहमति दी, लेकिन उनके जाने के बाद उन्होंने भिक्षुओं के प्रति दान के नियम को संक्षिप्त कर दिया। इसके अलावा, आश्रय लेने आए यात्रियों को उन्होंने घर के पीछे एक परित्यक्त, जर्जर झोपड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा, "यहीं ठहरें।" जब यात्री भोजन, पेय और अन्य चीजों के लिए वहाँ आते थे, तो वह शाप देती थी, प्रत्येक को अशुद्ध और घृणित चीजों की सूची देती हुई कहती थी: "गोबर खाओ! मूत्र पियो! रक्त पियो! अपनी माता का मस्तिष्क खाओ!" कर्म के बल पर मृत्यु के समय उसे उठा लिया गया और उसका पुनर्जन्म एक छोटी कुतिया के रूप में हुआ, जिसने अपने कुकर्म के अनुसार दुख भोगा। अपने पिछले जन्म के रिश्ते को याद करते हुए और सारिपुत्त के पास जाने की इच्छा से वह उनके निवास पर आई। वहाँ उनके घर के देवों ने उसे प्रवेश देने से इनकार कर दिया। इसलिए उसने इस प्रकार कहा: "पाँचवें पिछले जन्म में मैं आदरणीय सारिपुत्त की माता थी; मुझे उनसे मिलने के लिए अंदर जाने की अनुमति दें।" यह सुनकर उन्होंने उसे प्रवेश दे दिया। अंदर जाकर वह कुटिया के दूसरे छोर पर खड़ी हो गई और उन्हें देखा। जैसे ही उन्होंने उसे देखा, उनके मन में करुणा जागी और उन्होंने उससे पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप से विकृत हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले। हे पतले, उभरी हुई पसलियों वाले, तुम कौन हो, जो यहाँ हो?"

पेटी:
2. "पिछले जन्मों में मैं तुम्हारी माँ थी। पेटा-लोक में मेरा पुनर्जन्म हुआ है, मैं भूख और प्यास से पीड़ित हूँ।"
3. "त्यागा हुआ, बाहर निकाला हुआ, लार, नाक का बलगम, कफ, जलते हुए शरीर की चर्बी और प्रसवित स्त्रियों का रक्त;"
4. "और घायलों का रक्त, और जिनके नाक और सिर कटे हुए हैं, संक्षेप में, पुरुषों और स्त्रियों से जुड़ी हर (घृणित) चीज, मैं भूख से अधमरी हूँ, खाती हूँ।"
5. "मैं जानवरों और मनुष्यों का मवाद और रक्त खाती हूँ; मैं बिना आश्रय और बिना घर के, काले पलंग पर पड़ी हूँ।"
6. "प्रिय पुत्र, मेरे लिए एक उपहार दो, और जब तुम इसे दे दो, तो इसका श्रेय मुझे दे देना; इस प्रकार मैं मवाद और रक्त खाने से मुक्त हो जाऊँगी।"
अगले दिन, सारिपुत्त अन्य तीन शिष्यों के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने राजा बिम्बिसार के निवास पर पहुंचे। जब राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय, आप यहाँ क्यों आए हैं?" तो आदरणीय महामोग्गलाना ने राजा को सारी घटना बताई। राजा ने कहा, "आदरणीय महोदय, अनुमति है," और उन्हें विदा कर दिया। उन्होंने अपने मंत्री को बुलाया और आदेश दिया, "नगर के उपवन में छाया और पानी से सुसज्जित चार कुटियाएँ बनवाओ।" जब

कुटियाएँ बनकर तैयार हो गईं, तो उन्होंने उन्हें जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओं सहित बड़े सारिपुत्त को दे दिया। तब सारिपुत्त ने उन्हें भिक्षुओं के सर्वव्यापी संघ में प्रस्तुत किया, जिसके प्रमुख बुद्ध थे, और इसका श्रेय भिक्षापात्र को दिया। भिक्षापात्र का लाभ उठाकर उनका देवलोक में पुनर्जन्म हुआ। अपनी सभी इच्छाओं से संपन्न होकर, एक दिन वह आदरणीय महामोग्गलाना के पास गईं और उन्हें अपने भिक्षापात्र और देवलोक पुनर्जन्म की विस्तृत कहानी सुनाई।

इस प्रकार कहा गया है:
7. अपनी माता का वचन सुनने के बाद, दयालु उपतिस्सा (सारिपुत्त) ने मोग्गलाना, अनुराधा और कप्पिना को बुलाया।
8. चार कुँवें बनवाकर उन्होंने उन्हें चारों लोकों के संघ को दे दिया; उन्होंने कुँवों, भोजन और पेय को अपनी माता की ओर से भेंट बताया।
9. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उन्हें दिया गया, तो भेंट का फल प्राप्त हुआ, जो फल, भोजन, पेय और वस्त्र थे।
10. तब, पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, सर्वश्रेष्ठ बनारसी वस्त्र और आभूषणों से सजी, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित होकर, वह कोलिता (महामोग्गलाना का मूल नाम) के पास पहुँचीं।

महा-मोग्गलाना ने पूछा:
11. "देवी (देवी/परी), आप अत्यंत सुंदर रूप धारण किए हुए हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"
12. "आपको ऐसा रूप किस कारण प्राप्त हुआ है? यहाँ आपको सुख क्यों प्राप्त होता है, और हृदय को प्रिय सभी सुख आपको क्यों प्राप्त होते हैं?"
13. "हे देवी, मैं आपसे यही पूछता हूँ। मनुष्य रूप धारण करने वाली आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आपको यह तेजस्वी महिमा कहाँ से प्राप्त हुई, और आपकी चमक समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करती है?"

याचिका:
14. "सारिपुत्त के वरदान से मैं प्रसन्न हूँ, मुझे किसी भी ओर से कोई भय नहीं है। आदरणीय महोदय, संसार में आप ही दयालु संत हैं, जिनकी आराधना करने मैं यहाँ आया हूँ।"

वरिष्ठ महामोगल्लाना ने यह घटना बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने तब धर्म प्रवचन दिया और सभा को प्रसन्न किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> मट्टा-पेटी-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.3 ------------------------->>>> अगला

2.3 मट्टा की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ रहता था, जो आस्थावान और धर्मपरायण था। उसकी पत्नी, मत्ता, नास्तिक, क्रोधी स्वभाव की और बांझ थी। अपने वंश के समाप्त होने के भय से, उस व्यक्ति ने तिस्सा नाम की एक युवती से विवाह किया। वह आस्थावान, धर्मपरायण और अपने पति को प्रसन्न करने वाली थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम भूता रखा गया। गृहस्थी के रूप में, वह आदरपूर्वक चार भिक्षुओं की सेवा करती थी। अपनी प्रतिद्वंदी को सहन न कर पाने के कारण, मत्ता ने घर की सफाई करते समय सारा कूड़ा तिस्सा के सिर पर डाल दिया। कुछ समय बाद मत्ता की मृत्यु हो गई और वह एक प्रेत (भूत) के रूप में पुनर्जन्म लेकर अपने कर्मों के फलस्वरूप पांच प्रकार के कष्ट भोगने लगी। फिर एक दिन अतीत की स्मृति के साथ वह प्रेत तिस्सा के सामने प्रकट हुई, जो घर के पीछे उपासना कर रही थी। तिस्सा ने उसे देखकर पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप से विकृत हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले। तुम पतले हो, तुम्हारी पसलियां उभरी हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहां हो?"

मत्ता :

2. "मैं मत्ता हूँ, तुम तिस्सा हो; पहले मैं तुम्हारी सहपत्नी थी। एक बुरे कर्म के कारण, मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चली गई।"

तिस्सा:

3. "अब तुम्हारे शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया गया था? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पेटों के लोक में चले गए?"

माता:

4. "मैं क्रोधित और निर्दयी था। ईर्ष्यालु, कंजूस और कपटी। क्योंकि मैंने तुम्हारे साथ अपशब्दों का प्रयोग किया, इसलिए मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चला गया हूँ।"

तिस्सा:

5. "मैं भी सब जानती हूँ, तुम कितने हिंसक थे; लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूँगी। तुम गंदगी से क्यों ढके हुए हो?"

माता:

6. "तुमने अपना सिर धो लिया था और साफ कपड़े पहने हुए थे; और मैंने सोचा, मैं तुमसे भी ज्यादा साफ-सुथरा था; मैं तुमसे ज्यादा सजे-धजे हुए था।"

7. "जब मैं इस ओर झुकी हुई थी और देख रही थी, तब तुम हमारे पति से बात कर रही थी। इसी कारण मेरे मन में बहुत ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न हुआ।"

8. "फिर मैंने कुछ धूल ली और उसे तुम पर बिखेर दिया। उस कर्म के फलस्वरूप मैं धूल से ढक गया हूँ।"

तिस्सा:

9. "मैं सचमुच सब कुछ जानता हूँ; आपने मुझ पर धूल छिड़की है। लेकिन अब मैं आपसे एक और बात पूछूंगा। आपको इतनी खुजली क्यों हो रही है?"

मत्ता :

10. "हम दोनों औषधीय जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करने के लिए जंगल में गए। तुमने औषधियाँ लीं और मैंने कपिकच्छु के फल।"

11. "फिर मैंने तुम्हारी जानकारी के बिना उन्हें तुम्हारे बिस्तर पर बिखेर दिया। इस कृत्य के परिणामस्वरूप मुझे खुजली सता रही है।"

तिस्सा:

12. "मैं यह सब जानती हूँ; तुमने मेरा बिस्तर बिछाया। लेकिन अब एक और बात है जो मैं तुमसे पूछूँगी। तुम नग्न क्यों हो; "

मत्ता :

13. "दोस्तों की एक सभा थी; रिश्तेदारों का एक जमावड़ा हुआ; और आपको हमारे पति के साथ आमंत्रित किया गया था, जबकि मुझे नहीं।"

14. "फिर मैंने तुम्हारी जानकारी के बिना तुम्हारा वस्त्र उतार लिया। इस कर्म के फलस्वरूप मैं नंगा हो गया हूँ।"

तिस्सा:

15. "सचमुच, मैं सब जानती हूँ। तुमने मेरे कपड़े ले लिए। लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूँगी। तुम्हारे शरीर से मल की गंध क्यों आ रही है?"

मत्ता :

16. "मैंने तुम्हारा इत्र, माला और नया मरहम तालाब में फेंक दिया। यह बुरा कर्म मैंने किया है। इस आचरण के फलस्वरूप, मेरे शरीर से मल की दुर्गंध आ रही है।"

तिस्सा:

17. "मैं यह सब जानता हूँ; कि बुराई तुम्हारे द्वारा की गई है। लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूंगा। तुम क्यों दुखी हो?"

मत्ता :

18. "हमारे घर में जो भी संपत्ति थी, वह हम दोनों की बराबर-बराबर थी। यद्यपि दान करना हमारा कर्तव्य है, फिर भी मैंने अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया। उस पाप के फलस्वरूप मैं दुःख में हूँ।"

19. "तुमने मुझसे यही शब्द कहे थे: 'तुम बुरे कर्म कर रहे हो, क्योंकि बुरे कामों से तुम्हें आसानी से सुख प्राप्त नहीं होगा।' "

तिस्सा:

20. "तुम शत्रुतापूर्ण भाव से मेरे पास आए; और तुमने मुझसे ईर्ष्या भी की। देखो, बुरे कर्मों का दंड कैसा होता है।"

21. "तुम्हारे घर में नौकरानियाँ थीं; निश्चय ही तुम्हारे वे अनेक आभूषण भी अब दूसरों द्वारा भोगे जा रहे हैं। सुख शाश्वत नहीं होते।"

22. "अब भूता के पिता बाजार से घर लौटेंगे। शायद वे तुम्हें कुछ देंगे। तब तक तुम यहाँ से मत जाना।"

मत्ता :

23. "मैं नग्न और बदसूरत दिखता हूँ, दुबला-पतला हूँ और मेरी नसें उभरी हुई हैं। ये रही मेरी धोती; भूता के पिता मुझे न देखें।"

तिस्सा:

24. "आओ, मैं तुम्हें क्या दूं, या तुम्हारे लिए क्या करूं जिससे तुम खुश रहो और तुम्हारी सारी इच्छाएं पूरी हों?"

मत्ता:

25. "यहाँ संघ के चार भिक्षु और चार अन्य पुरुष हैं। इन आठों को भोजन कराएँ और दान का श्रेय मुझे हस्तांतरित करें। तब मैं प्रसन्न हो जाऊँगा, मेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति में धन्य हो जाऊँगा।"

26. तिस्सा ने "ठीक है" कहते हुए सहमति दी और आठ भिक्षुओं को भोजन कराया। उसने उन्हें वस्त्र पहनाए और दान का श्रेय स्वयं को दिया।

27. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उसे हस्तांतरित किया गया, तो परिणाम सामने आया। दान का फल यह था: भोजन, वस्त्र और पेय।

28. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, सर्वश्रेष्ठ बनारस वस्त्र धारण किए, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह अपनी सहपत्नी के पास पहुँची।

तिस्सा:

29. "हे देवी (देवी/परी), आप अत्यंत सुंदर रूप वाली हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"

30. "किस कारण से तुम्हारा ऐसा रूप है? यहाँ सुख तुम्हारा हिस्सा क्यों है, और जो भी सुख तुम्हें प्रिय हैं, वे तुम्हें क्यों प्राप्त होते हैं?"

31. हे देवी, हे अत्यंत शक्तिशाली, मनुष्य रूप धारण करने वाली, मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ: आपने क्या अच्छा कार्य किया है? कब से आपमें यह तेजस्वी महिमा है, और क्यों आपका प्रकाश समस्त लोकों को प्रकाशित करता है?

मत्ता :

32. "मैं मत्ता हूँ, तुम तिस्सा हो। पहले मैं तुम्हारी सहपत्नी थी। एक बुरे कर्म के कारण, मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चली गई। तुम्हारे द्वारा दिए गए उपहार से मैं प्रसन्न हूँ, क्योंकि मुझे किसी भी तरफ से डरने की कोई बात नहीं है।"

33. "हे बहन, तुम अपने सभी सगे-संबंधियों के साथ दीर्घायु हो! तुम्हें दुःख और वासना से मुक्त, अपने आप को मुक्त करने वाले लोगों का निवास स्थान (स्वर्ग) प्राप्त हो।"

34. "यहाँ धर्मपरायण जीवन जीकर और दान देकर, हे सुंदर, स्वार्थ के दाग को जड़ से मिटाकर स्वर्ग में निर्दोष प्रवेश करो।"

तिस्सा ने यह कहानी अपने पति को सुनाई, उन्होंने इसे भिक्षुओं को सुनाया और भिक्षुओं ने इसे बुद्ध को सुनाया। बुद्ध ने इसे प्रवचन का विषय बनाया, जिसे सुनकर अनेक गृहस्थ उदारता से भर गए और उन्होंने कंजूसी छोड़कर दान करना शुरू कर दिया और पुण्य अर्जित करने लगे।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> नंदा-पेटी-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.4 ------------------------->>>> अगला

2.4 नंदा की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने पेटी नंदा की यह कहानी सुनाई।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में नंदसेना नाम का एक धर्मनिष्ठ और धार्मिक शिष्य रहता था। उसकी पत्नी, जिसका नाम नंदा था, धर्महीन, लालची, गुस्सैल, कठोर वाणी वाली और अपने पति की अवज्ञाकारी थी; वह ढोल की तरह बेबाक बोलती थी और अपशब्दों का प्रयोग करती थी। मृत्यु के बाद, वह एक प्रेत (पेटी) के रूप में पुनर्जन्म लेकर उसी गाँव के पास रहने लगी। एक दिन, जब नंदसेना गाँव से बाहर आ रहा था, तब वह उसके सामने प्रकट हुई। उसे देखकर उसने उससे इस श्लोक में बात की:

1. "तुम काले और बदसूरत दिखते हो; तुम्हारा शरीर खुरदरा है और तुम भयानक दिखते हो। तुम्हारी आँखें लाल हैं, तुम्हारे दाँत पीले हैं। मुझे लगता है कि तुम इंसान नहीं हो।"

पेटी :

2. मैं नंदा, नंदसेना हूँ; पहले मैं तुम्हारी पत्नी थी। दुर्व्यवहार करने के कारण, मैं पेटा-लोक में चली गई

नंदसेना:

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादलोक में गए हो?"

पेटी:

4. "मैं गुस्से में था और मेरी वाणी कठोर थी, और मैंने आपके प्रति कोई आदर भी नहीं दिखाया। इसलिए, अपशब्दों का प्रयोग करने के कारण, मैं यहाँ से पेटा-लोक चला गया।"

नंदसेना:

5. "आओ, मैं तुम्हें एक लबादा देता हूँ; इसे पहन लो। जब तुम इसे पहन लो, तो आओ, मैं तुम्हें घर ले चलूँगा

6. "घर लौटने पर तुम्हें कपड़े, भोजन और पेय पदार्थ मिलेंगे। तुम अपने बेटों को देखोगे, और अपनी शरारती बेटी को भी देखोगे।"

पेटी:

7. "जो कुछ तुम्हारे हाथ से मुझे दिया जाता है, उससे मुझे कोई लाभ नहीं होता। परन्तु जो भिक्षु नैतिक नियमों का पालन करते हैं, वासना से मुक्त हैं और सत्य के ज्ञाता हैं,

8. "उन्हें भोजन और पेय पदार्थ खिलाओ और दान का पुण्य मुझे प्रदान करो। तब मेरी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी और मैं प्रसन्न और धन्य हो जाऊँगा।"

9. फिर "बहुत अच्छा" कहते हुए उन्होंने भरपूर दान दिया: भोजन, पेय पदार्थ, ठोस भोजन, वस्त्र, आवास, छतरियाँ, इत्र, पुष्पमालाएँ और विभिन्न प्रकार की चप्पलें। भोजन और पेय से विश्राम करने के बाद, उन्होंने नैतिक उपदेशों में निपुण, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षुओं को दान का पुण्य प्रदान किया।

10. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उसे हस्तांतरित किया गया, तो परिणाम सामने आया। दान का फल यह था: भोजन, वस्त्र और पेय।

11. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम बनारस का कपड़ा पहने, विभिन्न वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह अपने पति के पास पहुँची।

नंदसेना ने उससे पूछा:

12. "हे देवी (देवदूत), आप तेजस्वी स्वरूप की हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"

13. "किस गुण के कारण तुम्हारा ऐसा रूप है? यहाँ सुख तुम्हारा हिस्सा क्यों है, और जो भी सुख तुम्हें प्रिय हैं, वे तुम्हें क्यों प्राप्त होते हैं?"

14. "हे देवी, हे महानुभाव, आप मनुष्य के समान रूप धारण कर चुकी हैं, मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आप इतनी तेजस्वी क्यों हैं, और आपका प्रकाश समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करता है?"

पेटी:

15. "मैं नंदा, नंदसेना हूँ; पहले मैं तुम्हारी पत्नी थी। एक बुरा कर्म करने के कारण, मैं यहाँ से पेट-लोक में चली गई। तुम्हारे द्वारा दिए गए उपहार से, मैं हर तरफ से भय से मुक्त होकर आनंदित हूँ

16. "हे गृहस्थ, आप अपने सभी सगे-संबंधियों के साथ दीर्घायु हों; आप दुःख और वासना से मुक्त उस निवास को प्राप्त करें, जो स्वतंत्र इच्छाशक्ति वाले लोगों (अर्थात् स्वर्गदूतों) का निवास स्थान है।"

17. "यहाँ (मनुष्य जीवन में) धर्म/धार्मिक जीवन जीते हुए और दान देते हुए, गृहस्थ बनकर, नैतिकता का पालन करते हुए, आप हृदय के दागों को जड़ से मिटा दें और दोषरहित होकर स्वर्ग में प्रवेश करें।"

इस प्रकार नंदा ने नंदसेना की सहायता से दिव्य धन और दिव्य निवास प्राप्त किया। इस कहानी को उनके शिष्य ने भिक्षुओं को सुनाया, भिक्षुओं ने इसे भगवान बुद्ध को बताया। बुद्ध ने इसे धन संबंधी अपने प्रवचन का विषय बनाया। यह लोगों के कल्याण के लिए एक शिक्षा बन गई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> मत्थाकुंडली-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.5 -------------------------->>>> अगला

2.5 मत्थाकुंडली की कहानी

यह बात विमानवत्थु 7.9 में पहले ही बताई जा चुकी है ।
अतः इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> कान्हा-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.6 -------------------------->>>> अगला

2.6 कान्हा (कृष्ण) की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ शिष्य के पुत्र का निधन हो गया। दुखी पिता न तो स्नान कर पा रहे थे, न भोजन कर पा रहे थे, न अपना काम कर पा रहे थे और न ही बुद्ध की सेवा कर पा रहे थे। वे व्याकुल होकर कहते थे, "मेरा प्रिय पुत्र कहाँ है, जो मुझे छोड़कर चला गया? वह हमसे पहले क्यों चला गया?" जब गुरु (बुद्ध) भोर में (दिव्य दृष्टि से) संसार का अवलोकन कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति सोतापत्ति (प्रथम स्तर का ज्ञानोदय) के फल के लिए नियत था; अगले दिन, भिक्षुओं के एक समूह से घिरे हुए, वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए घूमने लगे। भोजन के बाद, वे अपने सेवक आनंद के साथ उस व्यक्ति के घर के द्वार पर गए। तब उसके परिवार ने गृहस्थ शिष्य को यह बात बताई और उसे गुरु (बुद्ध) के समक्ष प्रस्तुत किया। जब गुरु ने उसे एक तरफ बैठे देखा, तो उन्होंने कहा, "गृहस्थ शिष्य, क्या तुम शोक में हो?" उसने उत्तर दिया, "जी, पूज्यवर।" बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, पुराने समय के ज्ञानी पुरुष किसी मृत पुत्र के लिए शोक नहीं करते थे, जब वे ऋषियों की कहानी सुन लेते थे।" फिर घर के मुखिया के आग्रह पर उन्होंने यह कहानी सुनाई।

द्वारवती नगर में एक समय की बात है, दस राजभाई रहते थे: वासुदेव (कृष्ण), बलदेव, चंददेव, सूर्यदेव, अग्गीदेव, वरुणदेव, अज्जुन, पज्जुन, घटपांडित (अब बुद्ध) और अंकुर। इनमें से महान राजा वासुदेव के पुत्र का निधन हो गया। राजा (कृष्ण) शोक से व्याकुल होकर अपने सभी कर्तव्यों का उपकार कर, शय्या को अंजलि प्रणाम करके लेट गए और निरर्थक बातें करने लगे। तब घटपांडित ने सोचा, "मेरे भाई के शोक को दूर करने वाला मेरे सिवा कोई नहीं है। मैं चतुराई से उसका शोक दूर करूँगा।" अतः उन्होंने पागल का वेश धारण कर लिया और आकाश की ओर देखते हुए पूरे नगर में घूमने लगे और कहने लगे, "मुझे एक खरगोश दो, मुझे एक खरगोश दो।" तब पूरे नगर ने सोचा, "घटपांडित पागल हो गया है।" उस समय राजा के सलाहकार, रोहिनेय्या नाम के व्यक्ति, राजा वासुदेव (कृष्ण) के पास गए और उनसे इस श्लोक से बातचीत शुरू की:

1. "उठो, कान्हा (कृष्ण)। तुम क्यों लेटे हो? नींद के सपने तुम्हें क्या लाभ पहुंचाते हैं? जो तुम्हारा अपना भाई है, तुम्हारा हृदय और दाहिनी आंख है, वह हवाओं से व्याकुल है। घट व्यर्थ की बातें कर रहा है, केशव (कृष्ण)!"

शिक्षक ने आगे कहा:

2. जब केशव (कृष्ण) ने रोहिणी का यह कथन सुना, तो वे अपने भाई के शोक से व्याकुल होकर घबराए हुए चेहरे के साथ उठ खड़े हुए।

तब राजा चबूतरे से नीचे उतरे और घटपांडित से मिलने गए। उन्होंने घटपांडित को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया और उनसे बातचीत करते हुए कहा:

3. "अब तुम पागलों की तरह द्वारवती नगर में क्यों घूम रहे हो और 'एक खरगोश, एक खरगोश' बुदबुदा रहे हो? तुम्हें किस तरह का खरगोश चाहिए?"

4. मैं तुम्हारे लिए सोने, रत्नों, तांबे, चांदी, बहुमूल्य पत्थरों और मूंगे से बना एक खरगोश बनवाऊंगा।

5. जंगल में और भी छोटे खरगोश दौड़ रहे हैं; मैं उन्हें भी तुम्हारे पास भेजूंगा। तुम्हें किस तरह का खरगोश चाहिए?

घटपंडित:

6. "मुझे ये खरगोश नहीं चाहिए, ये पृथ्वी पर रहने वाले खरगोश; मुझे चंद्रमा का खरगोश चाहिए: उसे मेरे पास लाओ, केशव!"

तब राजा ने उसकी बात सुनी, वह इस विचार से व्याकुल हो गया, 'निस्संदेह, मेरा भाई पागल हो गया है,' और बोला:

7. "अब मेरे रिश्तेदार, तुम अपना प्यारा जीवन अवश्य ही बर्बाद कर दोगे। तुम ऐसी चीज की लालसा कर रहे हो जो वांछनीय नहीं है, क्योंकि तुम चाँद के खरगोश की कामना कर रहे हो।"

जब घटपांडित ने राजा के शब्द सुने, तो वह वहीं खड़े होकर बोले:

8. "यदि हे कान्हा (कृष्ण), आप इतने बुद्धिमान हैं कि आप दूसरों को भी ज्ञान देते हैं, तो आप आज भी अपने उस पुत्र के लिए शोक क्यों मनाते हैं जो अतीत में मर गया था?"

जब वह सड़क के बीचोंबीच खड़ा था, तब उसने इस प्रकार कहा:

"मैं तो वास्तव में उस चीज़ की इच्छा रखता हूँ जो समझ में आती है, परन्तु तुम उस चीज़ के लिए शोक मनाते हो जो समझ में नहीं आती।"

फिर उन्हें धम्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा:

9. "यह न तो मनुष्य के लिए संभव है और न ही आत्मा के लिए, लेकिन यह तो बिल्कुल असंभव है कि जन्म लेने वाला पुत्र न मरे?"

10. "हे कान्हा, मंत्रों से, जड़ों से बनी औषधियों से, जड़ी-बूटियों से, या धन से भी उस दिवंगत आत्मा को यहाँ लाना संभव नहीं है, जिसके लिए तुम शोक मना रहे हो।"

11. "अत्यंत धनी, अनेक संपत्तियों के स्वामी, राज्यधारी और योद्धा, जो प्रचुर धन से संपन्न हैं, वे भी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हैं।"

12. "क्षत्रिय (योद्धा), ब्राह्मण (पुजारी), वैश्य (व्यापारी), शूद्र (सेवक), चांडाल, पुक्कुश, ये और इनके वंश सहित अन्य सभी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हैं।"

13. "जो लोग ब्राह्मणों द्वारा सोचे गए छह भागों वाले मंत्र का जाप करते हैं, वे और उनके ज्ञान से युक्त अन्य लोग भी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते।"

14. "निःसंदेह, जो ऋषि वास्तव में संत हैं, वे तपस्वी जिन्होंने स्वयं को वश में कर लिया है, वे भी उचित समय पर शरीर त्याग देते हैं।"

15. "सत्य को जानने वाले, अरिहंत (बुद्ध की तरह पूर्णतः प्रबुद्ध), और मानवीय भावनाओं से मुक्त लोग अपने अच्छे और बुरे कर्मों के अंत में इस शरीर को त्याग देते हैं।"

इस प्रकार घटपांडित (अब बुद्ध) ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। जब राजा (कृष्ण) ने उन्हें सुना, तो उनके दुःख का देहांत दूर हो गया और उनका मन शांत हो गया। घटपांडित की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा:

16. "निःसंदेह, मैं जल रहा था, मानो आग पर घी डाला गया हो, और आपने उस पर पानी छिड़का हो; अब मैं अपने सभी कष्टों का अंत करता हूँ।"

17. "निश्चित रूप से, आपने मुझसे वह पीड़ा, वह दुख जो मेरे हृदय में गहराई से बैठा हुआ था, दूर कर दिया, आपने मुझसे शोक, मेरे बेटे के लिए शोक को दूर कर दिया।"

18. "अब मैंने अपना शोक त्याग दिया है; मैं शांत और स्थिर हूँ। जब से मैंने आपके वचन सुने हैं, मैं न तो शोक करता हूँ और न ही रोता हूँ।"

19. "इसी प्रकार दयालु बुद्धिमान लोग भी करते हैं; वे हमें दुःख से दूर करते हैं, जैसे घटा ने अपने बड़े भाई के साथ किया था।"

20. "जिनके पास ऐसे साथी और सेवक होते हैं, वे उत्साहवर्धक शब्दों के साथ उनका अनुसरण करते हैं, जैसा कि घटा ने अपने बड़े भाई के साथ किया था।"

गुरु ने इस उपदेश को दोहराते हुए कहा: “हे शिष्य, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने पुत्र की मृत्यु के शोक को ऋषियों की कथा सुनकर दूर किया।” फिर सत्य को समझाते हुए उन्होंने उस घटना का जातक कथा (जन्म कथा) सुनाई। प्रवचन के अंत में शिष्य को सोतापत्ति (दिव्य ज्ञान का प्रथम स्तर) का फल प्राप्त हुआ।

नोट : जातक क्रमांक 454 (घटा-जातक 2) देखें । घटपांडित का पुनर्जन्म गौतम बुद्ध के रूप में हुआ, और उनके बड़े भाई कृष्ण का पुनर्जन्म सारिपुत्र (या सारिपुत्त) के रूप में हुआ। सारिपुत्र बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक बने, उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, अरिहंत (या अर्हत/बुद्ध के समतुल्य) बने और निर्वाण (अवतरण/मोक्ष) प्राप्त किया। बुद्ध ने सारिपुत्र को धर्म का सेनापति (धम्म सेनापति) नियुक्त किया।

लिंक:
घट पंडित (कृष्ण के भाई) की कहानी: घट-जातक2
अंकुर (कृष्ण के भाई) की कहानी: पेटवत्थु (भूत_कहानियाँ)1.21

पिछला <<<<----------------------- 2.7 ------------------------->>>> अगला

2.7 धनपाला, धनी व्यापारी

जब गुरु जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।
बुद्ध के जन्म से पहले, दासन्ना राज्य के एराकच्छ नगर में धनपालका नामक एक धनी व्यापारी रहता था, जो अविश्वासी, धर्महीन, नीच और विधर्मी था। उसके कार्यों को निम्नलिखित ग्रंथ से समझा जा सकता है। उसकी मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म एक प्रेत (भूत) के रूप में रेगिस्तान में हुआ। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटकता रहा।
जब बुद्ध का जन्म हुआ और उन्होंने धम्म (मार्ग) का प्रचार शुरू किया, उस समय श्रावस्ती में रहने वाले कुछ व्यापारियों ने पाँच सौ गाड़ियाँ माल से भर लीं और उत्तरपथ (उत्तर भारत) जाकर अपना माल बेच दिया। वहाँ उन्होंने वापसी यात्रा के लिए अपनी गाड़ियों पर माल लादा। वे घर की ओर चल पड़े और शाम को एक वृक्ष के नीचे पहुँचे। तब उन्होंने अपने बैलों को खोल दिया और रात वहीं बिताई। तभी प्यास से व्याकुल वह व्यक्ति कुछ पीने के लिए वहाँ आया, और एक बूँद भी पानी न मिलने पर उसने पुकार लगाई। जब व्यापारियों ने उसे देखा, तो उन्होंने उससे पूछा:
1. "आप नग्न और भद्दे दिखते हैं, पतले और
आपकी नसें साफ दिखाई दे रही हैं। आपकी पसलियां उभरी हुई हैं, और आप
बहुत कमजोर हैं। अब आप कौन हैं, महोदय?"
पेटा:
2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटा हूँ,
यमलोक का एक दुर्भाग्यशाली निवासी। मैंने बुराई की थी इसलिए मैं इस लोक से
पेटाओं के लोक में चला गया।"
व्यापारी:
3• "अब तुम्हारे शरीर, वाणी या
मन से क्या बुराई की गई थी? किस कर्म के कारण तुम यहाँ से
पेटों की दुनिया में चले गए?"
पेटा:
4• "दसन्नाओं का एक प्रसिद्ध नगर है, जो
एराकच्छा के नाम से जाना जाता है। वहाँ मैं पहले एक धनी व्यापारी था;
वे मुझे धनपाला के नाम से जानते थे।"
5. "मेरे पास अस्सी गाड़ी भर सोना था; मेरे पास
प्रचुर मात्रा में सोना और बहुत सारे मोती और बिल्ली की आंख जैसे रत्न थे।"
6. "मैं इतना धनवान था,
परन्तु दान देना मुझे अच्छा नहीं लगता था। भोजन करते समय मैं
अपना दरवाजा बंद कर लेता था ताकि भिखारी मुझे न देख सकें।"
7. "मैं अविश्वासी और कंजूस था, लालची और गाली देने वाला था; मैं बहुत से दानशील और सक्रिय
लोगों को रोकता था ।"

8. "यह कहना कि 'दान करने का कोई प्रतिफल नहीं है।
आत्मसंयम का फल कहाँ है?'"
"मैंने कमल के तालाब, कुएँ, लगाए गए मनोरंजक उद्यान, रास्ते के किनारे बने जल स्रोत और दुर्गम स्थानों
पर स्थित मार्ग नष्ट कर दिए हैं।"

9. "इसलिए मैं, अपने कर्मों में निर्गुण होने के कारण, एक दुष्ट के रूप में संसार से विदा हुआ
। मेरा पुनर्जन्म पेटा क्षेत्र में हुआ और मैं
भूख और प्यास से पीड़ित हूँ। मेरी मृत्यु को पचपन वर्ष हो गए हैं।"
10. "मैं न तो भोजन को पहचानता हूँ और न ही पीने के पानी को।
जैसा अवरोध है, वैसा ही नुकसान है।
पेटा के लिए, वे कहते हैं, इसे जान लो: 'जैसा अवरोध है,
वैसा ही नुकसान है'"

11. "मैंने अतीत में संयम बरता; मैंने बहुत से
खजाने दान नहीं किए। यद्यपि दान करना कर्तव्य है, मैंने
अपने लिए कोई शरणस्थल नहीं बनाया।"
12. "अब मुझे घोर पश्चाताप हो रहा है, और मैं
अपने कर्मों के फल से बोझिल हूँ। चार महीने बाद मेरी मृत्यु हो जाएगी।"
13. मैं अत्यंत कठोर और भयानक नरक में
गिरूँगा; वह चार कोनों वाला है और उसके चार द्वार हैं; वह
माप के अनुसार भागों में विभाजित है; वह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है और
ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।
14. "इसका लोहे का फर्श गर्मी से दमक रहा है।
सौ योजन (x8 किमी) तक चारों ओर चमकता हुआ, यह शाश्वत काल के लिए खड़ा है।"
15. "वहाँ मुझे लंबे समय तक घोर
पीड़ा और अपने बुरे कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। इसलिए, मैं
इस वास्तविकता पर शोक व्यक्त करता हूँ।"
16. "इसीलिए मैं तुम सबको एक उत्तम बात बताता हूँ,
तुम सब जो यहाँ एकत्रित हो; न
तो खुलेआम और न ही छुपकर कोई पापपूर्ण कार्य करो।"
17. "यदि तुम यह बुरा कर्म करोगे या करोगे, तो दुःख
तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा, चाहे तुम इससे बचने के लिए हवा में उड़ जाओ।"
18. "माता-पिता का आदर करो; परिवार में
बड़ों का आदर करो; भिक्षुओं और ब्राह्मणों (ज्ञानी) का सम्मान करो। इस प्रकार
तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे।"
19. "न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, और न
ही पहाड़ों की गुफाओं में प्रवेश करने पर,
पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता जहाँ कोई खड़ा होकर
अपने बुरे कर्मों से मुक्त हो सके।"

व्यापारियों को उस पर दया आई और उन्होंने उसके मुँह में पानी छिड़का। परन्तु उस प्रेत (भूत) के बुरे कर्मों के कारण वह पानी निगल नहीं सका। उन्होंने उससे पूछा, "क्या अब तुम्हें थोड़ी भी राहत नहीं मिलेगी?" उसने उत्तर दिया, "हाँ, जब यह बुरा कर्म नष्ट हो जाएगा। यदि तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्यों को दान दिया जाए और दान का पुण्य मुझमें समा जाए, तो मैं इस प्रेत जीवन से मुक्त हो जाऊँगा।" जब व्यापारियों ने यह सुना, तो वे सावत्थी गए और बुद्ध को बताया, वहाँ के भिक्षुओं के संघ को सात दिनों तक बड़ा दान दिया, जिसके प्रमुख बुद्ध थे, और दान का श्रेय उस प्रेत को दिया। तब बुद्ध ने उन व्यापारियों को धर्म प्रवचन दिया और लोभ और कंजूसी की बुराई से दूर रहने और दान और अच्छे कर्मों के मार्ग पर चलने की ज्ञानवर्धक सलाह दी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> चुला-सेट्ठी-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.8 -------------------------->>>> अगला

2.8 एक धनी कंजूस आदमी चुलसेठी की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने चुलसेठी की यह कहानी सुनाई। बनारस में चुलसेठी एक गृहस्थ (आम आदमी) थे, जो नास्तिक, धर्महीन, कंजूस, नीच और पुण्य कर्मों के प्रति अनादरी रखते थे। मृत्यु के समय उनका जन्म पादों (भूखे प्रेतों) के बीच हुआ, जिनका शरीर कुरूप था, सड़ता और लहूलुहान मांस था और सिर सिकुड़ा हुआ और दुबला-पतला था। उनकी पुत्री अनुला अपने पति के घर अंधकविन्द में रहती थी। अपने पिता के नाम पर ब्राह्मणों (पुजारियों) का सत्कार करने की इच्छा से उसने चावल और अन्य भोजन भेंट के रूप में तैयार किया। जब पाद को यह पता चला, तो वह आशा से हवा में उड़कर उस स्थान की ओर चल पड़ा और राजगृह पहुँच गया। उस समय, राजा अजातसत्तु ने देवदत्त (बुद्ध के विरोधी) के उकसावे पर अपने पिता की हत्या कर दी थी। पश्चाताप और बुरे सपने के कारण वह सो नहीं पा रहा था। जब वह ऊपरी छत पर टहल रहा था, तो उसने पेटा को हवा में आते देखा, जिससे उसने पूछा:

1. "हे महाराज, आप जैसे नग्न, दुबले-पतले, तपस्वी हैं। आप रात में कहाँ जा रहे हैं और किस उद्देश्य से? कम से कम इतना तो बता दीजिए; शायद हम आपको धन और सब कुछ दे सकें।"

पेटा (भूत):

2. "बनारस नाम का एक शहर है, जो बहुत प्रसिद्ध है; वहाँ मैं एक गृहस्थ था, धनी तो था, लेकिन कंजूस और लालची था। मैं दान नहीं देता था और भोग-विलास में लिप्त रहता था। अपने बुरे आचरण के कारण मैं यमलोक में आ गया।"

3. "उन पापों के कारण मैं मानो सुई चुभने से व्याकुल हो गया हूँ; इसी कारण मैं भोजन के लिए अपने सगे-संबंधियों के पास जाता हूँ। परन्तु अधर्मी स्वभाव के लोग यह विश्वास नहीं करते कि दान का फल परलोक में मिलता है।"
4. "मेरी बेटी ने मुझसे कहा: 'मैं पिताओं और दादाओं को दान दूंगी।' ब्राह्मण (पुजारी/पवित्र पुरुष) आपस में (तैयार भोजन के बारे में) बात करते हुए कहते हैं, 'मैं अंधकविन्द में भोजन करने जा रहा हूँ।'
5. राजा ने उससे कहा, "इसे प्राप्त करने के बाद, तुम शीघ्र ही यहाँ फिर आना। मैं भी तुम्हारा सम्मान करूंगा। यदि तुम्हारी कोई इच्छा हो, तो मुझे बताना; हम तुम्हारी बात सुनेंगे और जो संभव होगा वह करेंगे।"
6. "ऐसा ही हो" कहकर वह (अंधकविन्द) चला गया। वहाँ बहुतों ने भोजन किया, परन्तु वे दान के योग्य नहीं थे। बाद में वह दूसरी बार राजगृह आया और राजा के समक्ष उपस्थित हुआ।
7. जब राजा ने पेटा को दूसरी बार अपनी ओर आते देखा, तो उसने कहा: "अब मैं क्या दूँ? मुझे यह बताइए, क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे आप कुछ समय के लिए संतुष्ट हो सकें?"
पेटा:
8. "हे राजा, बुद्ध और उनके संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) की सेवा करो, उन्हें भोजन, पेय और वस्त्र प्रदान करो। इस दान को मेरे लाभ के लिए मानो। इस प्रकार मैं काफी समय तक संतुष्ट रहूंगा।"
9. इसके बाद राजा नीचे उतरे और तुरंत अपने हाथों से संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) को असीम दान दिया; उन्होंने तथागत (बुद्ध) को इस बात की जानकारी दी और इस दान का श्रेय उन्होंने इस पेटा को दिया।
10. आदरणीय होकर, अत्यंत तेजस्वी होकर, पेटा राजा के समक्ष प्रकट हुआ और बोला: "मैं अब सर्वोच्च शक्ति से युक्त प्राणी हूँ; मनुष्य शक्ति में मेरे समान नहीं हैं।"
11. "मेरी इस अतुलनीय महिमा को देखिए, जो आपने संघ को असीम दान देकर उत्पन्न की है। हे मनुष्यों के स्वामी, मैं अनेक उपहारों से सदा और निरंतर संतुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक विचरण करता हूँ।"
जब वह व्यक्ति चला गया, तो राजा ने यह बात भिक्षुओं को बताई, और भिक्षुओं ने यह बात भगवान (बुद्ध) को बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धन दान के महत्व के बारे में उपदेश दिया। यह सुनकर, बहुत से लोगों ने अपनी कंजूसी की प्रवृत्ति को त्याग दिया और दान से पुण्य कमाने का निश्चय किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> अंकुरा-पेटवत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.9 ------------------------>>>> अगला

2.9 कृष्ण के भाई अंकुरा की कहानी
जब गुरु (बुद्ध) श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।
इस कथा में अंकुरा कोई भूत नहीं है, लेकिन भूत से उसके संबंध के कारण ही इस कथा को अंकुरपेट कथा कहा जाता है। उत्तरी भारत के उत्तरपथ प्रांत के कामसभोग क्षेत्र में स्थित असितांजना नगर में, मथुरा के राजा महासागर के पुत्र उपसागर और महाकामसका की पुत्री देवगब्भा के पुत्र अंजनादेवी, वासुदेव (कृष्ण), बलदेव, चंददेव, सूर्यदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, अज्जुन, पज्जुन, घटपांडित और अंकुरा - ये ग्यारह क्षत्रिय योद्धा संतानें थीं। वासुदेव (कृष्ण) और उनके भाई असितंजन नगर से प्रस्थान करते हुए, जंबूद्वीप (भारत का प्राचीन नाम जामुन का देश) के 63 हजार नगरों के सभी राजाओं को मृत्यु के घाट उतारने के बाद द्वारवती (द्वारका) में आकर रुके और वहीं अपना निवास स्थान बनाया। फिर उन्होंने राज्य को दस भागों में बाँटा, परन्तु वे अपनी बहन अंजनादेवी को भूल गए थे। जब उन्हें अंजनादेवी की याद आई, तो उनमें से एक ने कहा, "चलो हम ग्यारह भाग बाँटते हैं।" तब उनमें सबसे छोटे अंकुर ने कहा, "मेरा हिस्सा अंजनादेवी को दे दीजिए; मैं व्यापार करके अपना जीवन यापन करूँगा। आप मेरे कर माफ कर दीजिए, प्रत्येक अपने-अपने राज्य में।" वे सहमत हो गए और अपनी बहन को उसका हिस्सा देने के बाद, नौ राजा द्वारवती (द्वारका) में रहने लगे।
अंकुरा व्यापार में लगे रहते थे और नियमित रूप से बड़े दान देते थे। उनके पास एक दास था, जो उनके भंडार का रखवाला था और उनकी भलाई में रुचि रखता था। अंकुरा ने एक अच्छे परिवार की स्त्री से उसका विवाह कर दिया। लेकिन दास की कम उम्र में ही मृत्यु हो गई, तब अंकुरा ने दास के पुत्र को भी उतनी ही मजदूरी दी। जब लड़का वयस्क हुआ, तो राजा के दरबार में यह धारणा बन गई कि वह दास वास्तव में दास नहीं है। जब अंजनादेवी को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने एक दूध देने वाली गाय का उदाहरण देते हुए उसे दासता से मुक्त कर दिया और कहा: "एक स्वतंत्र माता का पुत्र भी स्वतंत्र ही होता है।" लेकिन शर्मिंदगी के कारण वह युवक भेरुवा नगर चला गया, जहाँ उसने एक दर्जी की पुत्री से विवाह किया और दर्जी का काम करके अपना जीवन यापन करने लगा।
उस समय भेरुवा नगर में असायह नाम का एक महान संघ प्रमुख रहता था, जो संन्यासियों, ब्राह्मणों, घुमंतूओं, यात्रियों, भिखारियों और भिक्षुओं को बड़ी मात्रा में दान देता था। उस दर्जी ने प्रसन्नता और संतोष के साथ असायह के निवास स्थान को अपरिचित लोगों को बताते हुए कहा, "वे वहाँ जाएँ और जो कुछ प्राप्त करना है, उसे प्राप्त करें।" पाली ग्रंथ में उनके इस कार्य का उल्लेख मिलता है। उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म एक रेगिस्तानी क्षेत्र में एक बरगद के वृक्ष पर पृथ्वी-देव के रूप में हुआ, जहाँ उनका दाहिना हाथ सुख और आनंद की वस्तुएँ प्रदान करता था।
उसी भेरुवा नगर में एक व्यक्ति था जो असायह की उदारता का आनंद लेता था। परन्तु वह अविश्वासी, अधार्मिक, विधर्मी और पुण्य कर्मों के प्रति अनादरी भाव रखता था, इसलिए मृत्यु के समय उसका पुनर्जन्म उपरोक्त देवता के निवास स्थान के निकट पेटा के रूप में हुआ। उसके कर्मों का वर्णन पाली भाषा में मिलता है।

अब असायह की भी मृत्यु हो गई और वह तैंतीस करोड़ देवदूतों के स्वर्ग में देवों के राजा सक्का के साथ संगति में आ गया। फिर अंकुर ने अपना सामान पाँच सौ गाड़ियों पर लादा, और एक ब्राह्मण (पुजारी) ने भी ऐसा ही किया। हज़ार गाड़ियों वाले वे दोनों व्यक्ति एक कठिन रेगिस्तानी रास्ते पर चल पड़े और रास्ता भटक गए। एक ही जगह पर भटकते-भटकते घास, पानी और भोजन समाप्त हो गया। अंकुर ने पानी की तलाश में अपने दूतों को बुलवाया। तब उस यक्ष ने, जिसका हाथ सुख और आनंद की वस्तुएँ प्रदान करता था, उनकी दुर्दशा देखी और अंकुर द्वारा पिछले जन्म में किए गए उपकार को याद करते हुए, उन्हें वह बरगद का पेड़ दिखाया जिसमें वह रहता था, और सोचा: "अब मुझे इस आदमी की मदद करनी चाहिए।" यह बरगद का पेड़ शाखाओं और घने पत्तों से भरा हुआ था, घनी छाया देता था और इसमें हज़ारों शाखाएँ थीं। यह लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई में एक योजन के बराबर था। अंकुरा ने उसे देखकर प्रसन्नता और प्रसन्नता से उसके नीचे अपना शिविर स्थापित करवाया। यक्ष ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया और तुरंत सभी को पानी पिलाया; फिर उसने उनमें से प्रत्येक को उनकी इच्छा अनुसार वस्तुएँ दीं। इन सभी लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने और यात्रा से विश्राम करने के बाद, ब्राह्मण व्यापारी ने नासमझी से यह विचार किया: "धन की खोज में यहाँ से कंबोज आकर हम क्या करेंगे? चलो किसी तरह इस यक्ष को पकड़कर एक रथ पर बिठाते हैं। फिर हम उसके साथ सीधे अपने नगर चलेंगे।" इस विचार को मन में रखते हुए, उसने अंकुरा को अपनी योजना बताई।

1. "जिस उद्देश्य से हम अपने सामान के साथ कंबोजा जा रहे हैं, वह इस यक्ष से मिलने में पूरा हो गया है जिसने हमें वह सब कुछ दिया जो हम चाहते थे; चलो इस यक्ष को अपने साथ ले चलते हैं।"

2. "इस यक्ष को उसकी सहमति से या बलपूर्वक, हम उसे गाड़ी पर उठाकर जल्दी से द्वारका शहर चलें।"

3. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसकी एक भी शाखा नहीं टूटनी चाहिए; क्योंकि ऐसा करने वाला अपने मित्र का विश्वासघात करेगा, हाँ, एक दुष्ट होगा।"

इसके जवाब में ब्राह्मण ने सामान्य ज्ञान के आधार पर कहा कि समस्या की जड़ पाखंड को दूर करना है:

4. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसके एक पत्ते को भी नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने वाला अपने मित्र के साथ विश्वासघात करेगा, हाँ, एक दुष्ट होगा।"

ब्राह्मण:

6. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसे उसकी जड़ों सहित उखाड़ देना चाहिए, यदि ऐसा करना हमारे लिए लाभकारी हो।"

अंकुरा:

7. "जिसके घर में एक रात के लिए भी कोई ठहरता है, जिससे भोजन और पेय प्राप्त करता है, उसके विरुद्ध मन में भी बुराई का विचार नहीं करना चाहिए। कृतज्ञता अच्छे लोगों द्वारा सराही जाती है।"

8. "जिसके घर में एक रात के लिए भी ठहरना पड़े और भोजन-पान करना पड़े, उसके विरुद्ध मन में भी दुष्टता का विचार न करना चाहिए। जो हाथ किसी को हानि नहीं पहुँचाता, वह मित्रों के प्रति विश्वासघात से बच जाता है।"

9. "जो कोई अतीत में अपने कर्मों में अच्छा था और बाद में पाप करके किसी को हानि पहुँचाता है, तो निर्मल हाथों वाला वह मनुष्य सौभाग्य प्राप्त नहीं करेगा।"

तब वह ब्राह्मण चुप हो गया। यक्ष ने उन दोनों की बातें सुनीं और ब्राह्मण पर क्रोधित होकर बोला, "इस दुष्ट ब्राह्मण को उसका फल मिले; बाद में मैं समझ जाऊंगा।" फिर यह दर्शाते हुए कि उसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता, उसने कहा:

10 "मैं किसी देव (देवदूत) या मनुष्य या राजा द्वारा आसानी से वश में नहीं किया जा सकता। मैं एक यक्ष हूं, सर्वोच्च शक्ति से संपन्न; मैं बहुत दूर तक (पलक झपकते ही) जा सकता हूं और सौंदर्य एवं बल से धन्य हूं।"

अंकुरा:

11. "आपका हाथ पूरी तरह से सुनहरा है, शहद टपक रहा है, और इसकी पाँचों उंगलियों से उपहारों की धाराएँ निकल रही हैं: इससे विभिन्न मीठे रस टपक रहे हैं। मेरा मानना है कि आप पुरिंददा (इंद्र) हैं।

यक्खा:

यक्खा:

12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"

अंकुरा:

Yakkha:

13. "आपका चरित्र कैसा था, भेरुवा में आपके पिछले जन्म में आपका आचरण कैसा था? आपके किस पवित्र जीवन के कारण आपके हाथों से अच्छे कार्य पूरे हो रहे हैं?"

14 "पहले मैं भेरुवा में एक दर्जी था, और बहुत दयनीय जीवन व्यतीत करता था। मेरे पास दान देने की सामर्थ्य नहीं थी।"

15. "अब मेरी कार्यशाला असायहा के पड़ोस में थी, जो धम्म का अनुयायी था, दान-पुण्य, अच्छे कर्म करने और विनम्र स्वभाव का स्वामी था।"

16. "फिर वहाँ भिखारी थे, विभिन्न परिवारों के गरीब लोग; और उन्होंने मुझसे वहाँ असायहा के निवास के बारे में पूछा, और कहा; 'हम कहाँ जाएँ? आपको शुभकामनाएँ! दान कहाँ दिया जाता है?'"

18. "इसलिए मेरा हाथ तुम्हें तुम्हारी इच्छा पूरी करता है; इसी कारण मेरा हाथ शहद से लथपथ है; मेरे पवित्र जीवन के कारण मेरे हाथों से अच्छे कर्म पूरे होते हैं।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
19. "इस प्रकार हम देखते हैं कि आपने अपने हाथों से किसी को कोई दान नहीं दिया, बल्कि दूसरे के दान में आनंदित होकर और अपना हाथ बढ़ाकर, आपने उसे प्रकट किया
20. "इसलिए तुम्हारा हाथ चाहा हुआ काम देता है; इसी कारण तुम्हारा हाथ शहद से लथपथ है; तुम्हारे पवित्र जीवन के कारण तुम्हारे हाथों से अच्छे काम पूरे होते हैं।"
21. "हे प्रभु, वह धर्मनिष्ठ पुरुष, जिसने अपने हाथों से दान दिया, अपने नश्वर शरीर को त्यागने के बाद, मुझे अब बताइए, वह किस क्षेत्र में गया?"
22. "मैं असंभव को संभव करने वाले अंगिरसा (आसायह) की मृत्यु और पुनर्जन्म के बारे में नहीं जानता, लेकिन मैंने वेसवना (देवता कुबेर) से सुना है कि आसायह को सक्का (स्वर्ग में देवदूतों/देवताओं के राजा इंद्र) का साथ मिला था।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
23 "इतना ही काफी है कि हम भलाई करें और अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दें। जब कोई व्यक्ति अपने हाथ से दान देता हुआ देखे, तो वह पुण्य कर्म क्यों न करे?"
24. "निश्चित रूप से अब, जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा और द्वारका पहुँचूँगा, तो मैं ऐसे दान दूँगा जो मुझे खुशी देंगे।"
25. "मैं भोजन और पेय, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्रोत और कुआँ, और दुर्गम स्थान पर मार्ग प्रदान करूँगा।"
फिर पेटा प्रकट हुआ, जिससे अंकुआ ने पूछा:
26. "तुम्हारी उंगलियां टेढ़ी क्यों हैं, तुम्हारा मुंह विकृत क्यों है, और तुम्हारी आंखें क्यों टपक रही हैं? तुमने कौन सा बुरा काम किया है?"
पेटा:
27. "धर्मात्मा गृहस्थ अंगिरसा (असयहा) के लिए, जो घर पर ही रहे, मैं उनके दान से जुड़ा हुआ था; मैं उनकी उदारता का निरीक्षक था
28. "वहाँ, जब मैंने देखा कि भोजन की इच्छा रखने वाले भिखारी आ गए हैं, तो मैं एक तरफ हट गया और मुँह बना लिया।"
29. "इसीलिए मेरी उंगलियां विकृत हो गई हैं, मेरा मुंह बेढंगा हो गया है और मेरी आंखों से पानी बह रहा है। मैंने ऐसा दुष्ट कर्म किया है।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
30. "हे दुष्ट, यह उचित ही है कि दूसरों के उपहारों पर मुँह बनाने के कारण तेरा मुँह विकृत हो गया है।"
31. "भला कोई व्यक्ति भोजन, पेय पदार्थ, कपड़े और रहने की जगह जैसी उपहार वस्तुएँ बाँटते समय दूसरे की सेवाओं पर निर्भर हुए बिना कैसे रह सकता है?"
32. "यद्यपि अब जब मैं यहाँ से निकलकर द्वारका पहुँचूँगा, तो मैं ऐसे उपहार बाँटूँगा जो मुझे प्रसन्नता प्रदान करेंगे।"
33. "मैं भोजन और पेय, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्रोत और कुआँ, और दुर्गम स्थानों पर मार्ग प्रदान करूँगा।"
34. फिर वह वापस मुड़ा और द्वारका नगर पहुँचा। अंकुरा ने ऐसा दान-पुण्य स्थापित किया जिससे उसे सुख प्राप्त हो।
35. उसने शांत मन से भोजन और पेय पदार्थ, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्थान और एक कुआँ दिया।
36. "कौन भूखा है, कौन प्यासा है, किसे कपड़े और रहने की जगह चाहिए? किसके जानवर थके हुए हैं? यहीं से उन्हें गाड़ी में जोत दिया जाएगा। किसे छाता और इत्र चाहिए? किसे फूलों की माला चाहिए? किसे चप्पल चाहिए?"
37. इस प्रकार वह अंकुरा के निवास स्थान पर शाम और सुबह लगातार नाइयों, रसोइयों और सुगंध विक्रेताओं को पुकारता रहा।
इसके बाद अंकुरा और सिंधाका नामक एक युवक के बीच बातचीत होती है, जिसे उसके दान-पुण्य संगठन का प्रमुख नियुक्त किया गया था।
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
38. लोग मेरे बारे में सोचते हैं 'अंकुरा अच्छी नींद सोता है'। सिंधका, मुझे नींद नहीं आती, क्योंकि मुझे कोई भिखारी नहीं दिखता।'
39. . "लोग मेरे बारे में सोचते हैं कि 'अंकुरा अच्छी नींद सोती है'। सिंधका, मैं ठीक से सो नहीं पाती, क्योंकि राहगीरों की संख्या बहुत कम है।"
सिंधका:
40. "यदि तैंतीस (करोड़ देवताओं) के स्वामी सक्का आपको एक इच्छा पूरी करने का वरदान दें, तो आप अपनी पसंद के समय, पूरी दुनिया में किस चीज के लिए अपनी इच्छा व्यक्त करेंगे?"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
41. "यदि सक्का, तैंतीस (स्वर्ग में करोड़ों देवताओं के स्वामी) मुझे एक वरदान दें, तो मैं यह माँगूँगा कि जब मैं सुबह उठूँ, सूर्योदय के समय, स्वर्गदूतों के योग्य मिठाइयाँ और धर्मनिष्ठ भिखारी उपस्थित हों;

42. "कि जब मैं दान दूं, तो मेरे दान का पुण्य व्यर्थ न हो जाए, और दान देने के बाद मुझे पछतावा न हो। दान देते समय मेरा हृदय आनंदित हो। इस प्रकार मैं सक्का से एक इच्छा चुनूंगा।"
इस प्रकार अंकुरा ने अपनी इच्छा प्रकट की। उस स्थान पर सोनाका नाम का एक नेक चरित्रवान व्यक्ति बैठा था। अंकुरा ने उसे अत्यधिक दान देने से रोकने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा:
43. अपनी सारी संपत्ति दूसरों को मत दो; बल्कि दान और धन की रक्षा करो। इसीलिए धन देना निःसंदेह श्रेष्ठ है। अत्यधिक दान देने से परिवार अधिक योग्य नहीं रह जाते।

44. "बुद्धिमान लोग न तो दान न देने को और न ही अधिक दान देने को उचित मानते हैं। इसलिए, ध्यान रखो, धन दान से बेहतर है। दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को मध्य मार्ग अपनाना चाहिए।"
45. अंकुरा: "अच्छा, आप जो भी कहें, मैं अपनी ओर से दान दूंगा, और भले, धर्मनिष्ठ लोग मेरी शरण में आएं। जैसे बादल नाले को भर देता है, मैं सभी भिखारियों को तृप्त करना चाहता हूं।"
46. "यदि कोई व्यक्ति संतों (सन्यासियों) के दर्शन से प्रसन्न होता है और दान देने में आनंदित होता है, तो घर में रहने वाले के लिए यही सुख है।"

47. "यदि कोई संत (सन्यासियों) के दर्शन से शांत भाव रखता है और दान देने में प्रसन्न होता है, तो यही पुण्य प्राप्ति है।"
48. "दान देने से ठीक पहले प्रसन्न होना चाहिए; दान देते समय अपने हृदय को आनंदित करना चाहिए; दान देने के बाद प्रसन्न होना चाहिए। यही पुण्य प्राप्ति है।"
49. अंकुरा के घर में, जो भलाई करने की इच्छा रखता है, प्रतिदिन साठ हजार गाड़ी भर भोजन वितरित किया जाता है।
50. अंकुरा के साथ तीन हजार रसोइये रहते हैं जो गहनों और बालियों से सजे हुए हैं और दान देने के लिए पूरी तरह समर्पित हैं।
51. साठ हजार युवकों ने, गहने और बालियां पहने हुए, अंकुरा के उपहारों के व्यापक प्रस्तुतीकरण में लकड़ियां काटीं।
52. सोलह हजार महिलाएं, उत्तम वस्त्रों से सजी हुई, हाथों में चम्मच लिए, अंकुरा के महान दान में शामिल हो रही हैं।
53. उसने बहुतों को बहुत कुछ दिया; लंबे समय तक, इस रईस ने अपने हाथों से बहुत कुछ देना जारी रखा, बार-बार अपनी देखभाल का प्रदर्शन किया।

55. कई महीनों, पखवाड़े, ऋतुओं और वर्षों तक, हाँ, लंबे समय तक, अंकुरा ने अपना महान दान जारी रखा।
56. इसलिए अंकुरा ने लंबे समय तक दान दिया और भेंट की; फिर जब उसने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया, तो वह तैंतीस (करोड़ देवताओं/देवदूतों) के स्वर्ग में प्रवेश कर गया।
जब इस प्रकार उनका वहाँ पुनर्जन्म हुआ और वे देवदूतों के आनंद का अनुभव कर रहे थे, तब बुद्ध के समय में, इंदका नामक एक युवक ने भक्ति भाव से पूज्य वरिष्ठ भिक्षु अनुराधा को भोजन का एक भाग भेजा, क्योंकि अनुराधा भिक्षा मांगने के लिए भ्रमण पर थे। जब इंदका की मृत्यु हुई और उनके पुण्य कर्मों के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म तैंतीस करोड़ देवदूतों के स्वर्ग में हुआ। इसीलिए कहा जाता है:
57. "अनुराद्ध को इंदक ने चम्मच भर-भरकर भोजन दिया। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया, तो उन्हें तैंतीस करोड़ स्वर्गदूतों के स्वर्ग में प्रवेश मिला।"
58. "दस बिंदुओं में इंद्राका अंकुरा से श्रेष्ठ है, अर्थात् रूप, वाणी, स्वाद, गंध और सुखद स्पर्श में।"
59. "कहा जाता है कि जीवन की लंबाई, प्रसिद्धि, रंग-रूप, सौभाग्य और प्रभुत्व में इंदका, अंकुरा से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"
आगे:
60. "एक बार जब बुद्ध मूंगा वृक्ष के चरणों में स्थित पांडुकंबल पत्थर (वह सजावटी पत्थर जिससे सक्का/इंद्र का सिंहासन बना है) पर तैंतीस (करोड़ देवदूतों) के स्वर्ग में एक दिव्य यात्रा पर उपस्थित थे,
61. जब दस लोकों के देव/देवदूत वहाँ एकत्रित हुए, तो उन्होंने उस पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (बुद्ध) को प्रणाम किया, जो पर्वत के शिखर पर निवास कर रहे थे।
62. कोई भी देव/देवदूत दिखने में प्रबुद्ध (बुद्ध) से अधिक तेजस्वी नहीं है; सभी देवों/देवदूतों से श्रेष्ठ, केवल वही तेजस्वी हैं।
63. उसी समय अंकुरा वहाँ था, उससे बारह योजन दूर; लेकिन इंदका बुद्ध से दूर नहीं था, इंदका अंकुरा से कहीं अधिक तेजस्वी था।
64. जब बुद्ध ने अंकुरा और इंदका को दान योग्य बनाते हुए देखा, तो उन्होंने ये शब्द कहे:
65. "अंकुरा, तुमने बहुत दान दिया है; तुम मुझसे बहुत दूर बैठे हो; मेरे पास आओ।"
66. "विकसित आत्मा वाले उस व्यक्ति द्वारा प्रेरित होकर, अंकुरा ने इस प्रकार कहा: "मेरे उस उपहार का मुझे क्या लाभ है? वह पुरस्कार के योग्य व्यक्ति से रहित था।"
67. "यद्यपि, इंदका ने यहाँ केवल एक तुच्छ उपहार दिया, फिर भी वह हमें उसी प्रकार मंद कर देता है जैसे चंद्रमा अनेक तारों को मंद कर देता है।"

बुद्ध ने ऐसा कहा:
68. "जैसे बंजर/अनुत्पादक खेत में, बीज, चाहे कितना भी बोया जाए, भरपूर फल नहीं देता और न ही उसके मालिक/किसान को प्रसन्न करता है।"
69. "इसी प्रकार, दुष्टों को उदारतापूर्वक दान देने से प्रचुर फल/परिणाम प्राप्त नहीं होता, न ही दानकर्ता प्रसन्न होता है।"
70. "और ठीक उसी तरह जब अच्छी जमीन में कम बीज बोए जाते हैं, तो भरपूर बारिश होने पर फसल किसान को प्रसन्न करती है।"
71. "इसी प्रकार, जब दान धर्मात्माओं को दिया जाता है, तो चाहे वह कर्म कितना भी छोटा क्यों न हो, पुण्य का बड़ा प्रतिफल प्राप्त होता है।"
72. विवेकपूर्वक दान देना चाहिए, जब दान से महान प्रतिफल प्राप्त हो। जो लोग उचित विचारपूर्वक दान देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।
73. जीवित प्राणियों के बीच जो कृपा के पात्र हैं, उनके लिए शुभ और उत्कृष्ट उपहार की तलाश करनी चाहिए। इन्हें दिए गए उपहार भरपूर फलदायी होते हैं, जैसे उपजाऊ खेत में बोए गए बीज।
लिंक:
घट पंडित (कृष्ण के भाई) की कहानी: घट-जातक2

कान्हा (कृष्ण) की कहानी: पेटवत्थु (भूत_कहानियाँ)2.6

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उत्तरा की माँ

पिछला <<<<----------------------- 2.10 -------------------------->>>> अगला

22. उत्तरा की माता की कहानी (2.10)
गुरु (बुद्ध) के देहांत के बाद, जब प्रथम महान सभा चल रही थी, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-कच्चयन अपने बारह साथियों के साथ कोसंबी के निकट एक वन आश्रम में थे। उनके पास राजा उदेना के निजी सलाहकार के पुत्र और उत्तराधिकारी उत्तरा, बढ़ईयों के साथ मरम्मत के लिए लकड़ी लेने आए। तब वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें धम्म (बुद्ध का मार्ग) सिखाया। इसके बाद उत्तरा अक्सर उनका आतिथ्य सत्कार करते थे और उनके लिए एक विहार/मठ बनवाया।

लेकिन उत्तरा की माता को उसके उपहार पसंद नहीं आए। उन्होंने कहा, "मेरी अनुमति के बिना तुम जो भी भोजन और पेय इस प्रकार संन्यासियों को दोगे, वह तुम्हारे परलोक में रक्त बन जाए।" फिर भी, मठ के समर्पण के दिन उन्होंने मोर के पंखों का एक गुच्छा दान करने की अनुमति दे दी। अपनी मृत्यु के समय, उनका पुनर्जन्म एक पेटी के रूप में हुआ, और मोर के पंखों के गुच्छे के दान के बदले में उनके बाल काले, चमकदार, घुंघराले, महीन और लंबे थे। जब भी वह यह सोचकर नीचे जातीं कि "मैं गंगा नदी का जल पीऊँगी", तो नदी रक्त से भर जाती थी। पचपन वर्षों तक भूख और प्यास से व्याकुल भटकने के बाद, एक दिन उन्होंने गंगा नदी के किनारे दोपहर के विश्राम के लिए बैठे हुए बड़े कंखारेवत को देखा। और संपादक के दो श्लोकों (1, 2) के बाद यह संवाद हुआ:

1. जब एक भिक्षु दोपहर के विश्राम के लिए गंगा नदी के किनारे बैठा था, तभी एक भयानक रूप और डरपोक चेहरे वाली एक छोटी सी परी उसके पास आई।

2. उसके बाल बहुत लंबे थे और ज़मीन तक लटके हुए थे; केवल अपने बालों से ढकी हुई, उसने तपस्वी को इस प्रकार संबोधित किया:

याचिका :

3. "मेरी मृत्यु को पचपन वर्ष हो गए हैं। मुझे न तो भोजन का ज्ञान है और न ही पीने के पानी का। कृपया मुझे थोड़ा पानी दीजिए, आदरणीय महोदय; मुझे प्यास लगी है।"

भिक्षु:

4. "यह रही गंगा नदी, जिसका पानी ठंडा है; यह हिमालय से बहती है, इसमें से थोड़ा पानी लेकर पी लो। तुम मुझसे पानी क्यों मांग रहे हो?"

याचिका:

5. "आदरणीय महोदय, यदि मैं स्वयं गंगा नदी से जल लेता हूँ, तो वह रक्त में बदल जाता है। इसलिए मैं आपसे जल की विनती करता हूँ।"

भिक्षु:

6. अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा अपराध किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप गंगा नदी तुम्हारे स्पर्श से रक्तमय हो जाती है?

याचिका:

7. "आदरणीय महोदय, मेरा पुत्र उत्तरा एक विश्वासी गृहस्थ (बुद्ध का अनुयायी) था, और उसने मेरी इच्छा के विरुद्ध संन्यासियों (भिक्षुओं) को वस्त्र, भोजन, औषधि और आवास प्रदान किए।"

8. "लालच से प्रेरित होकर मैंने उसे धिक्कारा और कहा: जो कुछ भी तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध संन्यासियों (भिक्षुओं) को दोगे, चाहे वह वस्त्र हों, भोजन हो, औषधि हो या आवास हो।"

9. "हे उत्तरा, परलोक में वह तुम्हारे लिए रक्त बन जाए।' उस कर्म के फलस्वरूप, मेरे स्पर्श से गंगा नदी रक्त बन जाती है।"

तब पूज्य रेवता ने उस साध्वी के नाम पर भिक्षु संघ को जल दिया; वे भिक्षा मांगने गए और भोजन ग्रहण करके भिक्षुओं को दे दिया। फिर उन्होंने कूड़े के ढेर से कुछ चिथड़े उठाए, उन्हें साफ करके उन पर पानी छिड़का और छाल के वस्त्र बनाकर भिक्षुओं को दे दिए। इसके फलस्वरूप साध्वी को देवप्रसन्नता प्राप्त हुई (स्वर्ग प्राप्त हुआ और देवदूत बन गईं) और उन्होंने यह बात बड़े भिक्षु को बताई और उन्हें अपनी देवप्रसन्नता दिखाई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> धागे की कहानी

पिछला <<<<------------------------ 2.11 --------------------------->>>> अगला

23. धागे की कहानी (2.11)
हमारे गुरु के उदय से सात सौ वर्ष पूर्व, सावत्थी के निकट एक गाँव में, एक अकेले बुद्ध की सेवा में लगे एक युवक की विवाह के दिन साँप के काटने से मृत्यु हो गई। अपने जीवन में उसने अनेक पुण्य कर्म नहीं किए थे, फिर भी अपनी दुल्हन के प्रति प्रेम के कारण उसका पुनर्जन्म एक शक्तिशाली और वैभवशाली देवदूत के रूप में हुआ। अपनी प्रेमिका को अपने महल में रखने की इच्छा रखते हुए, और एक अकेले बुद्ध को वस्त्र सिलते हुए देखकर, उन्होंने मानव रूप धारण करके उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, क्या आपको धागे की आवश्यकता है?" उत्तर मिला, "गृहस्थ शिष्य, हम वस्त्र बनाने में व्यस्त हैं।" शोक संतप्त दुल्हन के घर की ओर इशारा करते हुए, देव ने कहा, "आप उस घर में धागा मांग सकते हैं।" उन्होंने ऐसा ही किया और युवती ने उन्हें धागे का एक गोला दिया। देव, अभी भी पृथ्वी-मनुष्य के रूप में, लड़की की माँ से कुछ दिनों के लिए अपने घर में रहने की अनुमति प्राप्त की और घर के सभी पात्रों को धन से भर दिया। फिर वे लड़की के साथ अपने महल के लिए प्रस्थान कर गए। माँ ने अधिकांश धन अपने रिश्तेदारों और गरीब यात्रियों को दे दिया। मरते समय उन्होंने कहा, "अगर मेरी बेटी वापस आती है, तो उसे यह धन दिखाना।" 700 वर्षों के बाद हमारे भगवान बुद्ध का जन्म हुआ और वे श्रावस्ती आए। तब वह स्त्री, जो अभी भी देव के साथ रह रही थी, ने उनसे उसे वापस ले जाने की विनती करते हुए कहा:

1. "मैंने अतीत में एक ऐसे भिक्षु को, जिसने संसार का त्याग कर दिया था, कुछ धागा दिया था। फलस्वरूप, मुझे प्रचुर आशीर्वाद प्राप्त हुआ और मेरे लिए असंख्य वस्त्र उत्पन्न हुए।"

2. "वह महल फूलों से ढका हुआ है और बहुत सुंदर है; वह तरह-तरह से सजा हुआ है, और नौकर-चाकर उसकी सेवा में लगे रहते हैं। इसलिए मैं उसका आनंद लेता हूँ, और कपड़े पहनता हूँ, और यह प्रचुर धन कभी खत्म नहीं होता।"

3. मात्र एक कर्म के फल स्वरूप यहाँ आनंद और सुख प्राप्त होता है। और जब मैं एक बार फिर मनुष्यों के संसार में जाऊँगा, तो अच्छे कर्म करूँगा। हे मेरे स्वामी, मुझे वहाँ ले चलो।

जब आत्मा ने उसकी यह बात सुनी, तो अपनी प्रियतमा पर दया करते हुए वह जाने को तैयार नहीं हुआ; इसलिए उसने कहा:

4. "तुम यहाँ सात सौ साल पहले आए थे।"

वहाँ जाकर तुम कमजोर और बूढ़े हो जाओगे, और जहाँ तक मुझे पता है तुम्हारे सारे रिश्तेदार मर चुके हैं। अगर तुम यहाँ से उस जगह चले गए तो क्या करोगे?

उसे विश्वास न हुआ और उसने फिर कहा:

5. "सात साल पहले ही मैं यहाँ आया था और मैंने स्वर्गिक आनंद का अनुभव किया है। और जब मैं एक बार फिर मनुष्यों के संसार में जाऊँगा, तो अच्छे कर्म करूँगा, हे मेरे प्रभु, मुझे वहाँ ले चलो।"

6. फिर, बिना किसी देरी के, उसने उसका हाथ पकड़ा और उसे लड़खड़ाती हुई और बूढ़ी महिला के रूप में वापस लाते हुए कहा:

"वहाँ आए हुए अन्य लोगों से भी कहो, 'अच्छे काम करो, तो सुख अवश्य प्राप्त होगा'।"

जब वह स्त्री अपने रिश्तेदारों के घर आई, तो उसने अपना परिचय उन्हें दिया। उसने उनसे प्राप्त धन को वापस ले लिया और संन्यासियों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों को दान देकर, आने-जाने वालों को सलाह दी।

7. मैंने देखा है कि पाद, अच्छे कर्म न करने के कारण दुःख में पड़ जाते हैं, ठीक वैसे ही मनुष्य भी। दान का ऐसा कर्म करने से जिससे सुख प्राप्त हो, देवता और मनुष्य दोनों ही सुखमय वंश के सदस्य बन जाते हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> कन्नमुंडा

पिछला <<<<------------------------ 2.12 -------------------------->>>> अगला

24. कन्नमुंडा पेटी की कहानी(2.12)

जब गुरुजी सावत्थी में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। कहा जाता है कि एक समय की बात है, बुद्ध कश्यप के समय में, किंबिला में एक गृहस्थ शिष्य रहते थे, जो बुद्ध के मार्ग पर परिवर्तित हुए थे। वे पाँच सौ गृहस्थ शिष्यों के समान धर्म के थे और पुण्य कर्मों में लगे रहते थे, जैसे कि उद्यान लगाना, पुल बनाना, रास्ते बनाना और अन्य उपयोगी कार्य। उन्होंने भिक्षुओं के लिए एक मठ बनवाया था और समय-समय पर उनके साथ वहाँ जाया करते थे। उनकी पत्नियाँ, जो आपस में सौहार्दपूर्ण थीं, मालाएँ, इत्र और मलहम लेकर मठ जाती थीं और रास्ते में उद्यानों और छात्रावासों में विश्राम करती थीं। फिर एक दिन, कुछ बदमाश एक महिला के छात्रावास में बैठे थे, जब वे महिलाएँ वहाँ विश्राम कर रही थीं, तो उन्होंने उनकी अपार सुंदरता देखी और उन पर मोहित हो गए। उन्हें अच्छा जानते हुए, उन्होंने बातचीत शुरू की: "इनमें से किसी एक के साथ भी कौन अनैतिकता कर सकता है?" इस पर एक ने कहा, "मैं।" उन्होंने कहा, "चलो उससे एक हज़ार सिक्कों की शर्त लगाते हैं," और शर्त लगा ली, साथ ही यह भी कहा: "अगर तुम जीतते हो, तो हम तुम्हें हज़ार दे देंगे; अगर नहीं, तो तुम्हें हमें दे देने होंगे।" जीतने की लालसा और हारने के डर से, वह कई तरह की चालें चल रहा था जबकि औरतें सराय में थीं, सात तारों वाला मधुर वीणा बजा रही थीं और प्रेम गीत गा रही थीं। उसने एक औरत को उनके बीच लाकर नैतिक नियम तोड़ा, जिससे उन बदमाशों को हज़ार का नुकसान हुआ। उससे पिटने के बाद, उन्होंने यह बात उसके पति को बताई, जिसने विश्वास नहीं किया और उससे पूछा: "क्या तुम वैसी ही हो जैसा उन आदमियों ने कहा है?" उसने इनकार करते हुए कहा: "मैं ऐसा कुछ नहीं जानती।" चूंकि उसे उस पर भरोसा नहीं था, उसने पास खड़े एक कुत्ते की ओर इशारा किया और कसम खाई: "अगर मैंने ऐसा कोई बुरा काम किया है, तो जब मैं यहाँ या वहाँ पुनर्जन्म लूँगी, तो यह कान कटे काले कुत्ते मुझे खा जाए!" इसके अलावा, जब अन्य महिलाओं से, जो जानती थीं कि उसने पाप किया है, पूछा गया: "क्या इस महिला ने ऐसा दुष्ट कार्य किया है या नहीं किया है?" तो उन्होंने झूठी शपथ ली: "यदि हम जानते हैं, तो हम इस या उस पुनर्जन्म में उसके दास बन जाएं।"

फिर वह व्यभिचारिणी अपने पाप के पश्चाताप से व्याकुल होकर मर गई। उसका पुनर्जन्म हिमालय के सात महान झीलों में से एक, कन्नामुंडा झील के किनारे एक पेटी (लाल रंग की कुटिया) के रूप में हुआ। इसके अलावा, कुटिया के चारों ओर आनंद के लिए उपयुक्त कमल-कुंड बन गए। जब अन्य स्त्रियाँ अपनी ली गई शपथ के फलस्वरूप मर गईं, तो वे उसकी दास बन गईं। उस स्थान पर, अपने पिछले जन्म के अच्छे कर्मों के कारण, वह दिन के समय स्वर्गिक आनंद का अनुभव करती थी, लेकिन आधी रात को, अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप, वह अपने पलंग से उठकर कमल-कुंड के किनारे चली जाती थी, जहाँ एक बड़े कुत्ते द्वारा उसे नोंच डाला जाता था। इसके बाद वह तुरंत अपनी पूर्व सुंदरता के साथ पुनः प्रकट हुई और अपनी कुटिया में चढ़कर अपने पलंग पर लेट गई। हालाँकि, अन्य स्त्रियों ने बड़ी कठिनाई से उसकी निरंतर दासता सहन की। इस प्रकार पांच सौ पचास वर्ष बीत गए, और चूंकि वे अपने पतियों के बिना देव-आनंद का आनंद ले रही थीं, इसलिए उन्हें अपने पतियों की याद सताने लगी।

उस स्थान पर कन्नामुंडा झील से एक नदी निकलती थी जो पर्वत की एक दरार से होकर गंगा नदी में मिल जाती थी। उसके पास ही एक उद्यान था जिसमें आम के पेड़ थे, जिनमें से कुछ पर देवफल लगते थे, कुछ पर ब्रेडफ्रूट के पेड़ थे और कुछ अन्य पेड़ थे। उन्होंने सोचा, "चलो, अब हम इन आमों को नदी में बहा देते हैं; इस तरह बहते हुए आमों को देखकर कोई न कोई यहाँ आकर इन्हें ले जाएगा। फिर हम इनका आनंद लेंगे।" उन्होंने ऐसा ही किया। बहाए गए आमों में से कुछ तपस्वियों को मिले; कुछ वनवासियों को; और कुछ नदी के किनारे ही अटके रहे। एक आम गंगा नदी की धारा तक पहुँच गया और कुछ समय बाद बनारस तक चला गया।

उस समय बनारस के राजा गंगा नदी में तांबे के जाल से घिरे जल में स्नान कर रहे थे। तभी एक आम बहकर आया और उस जाल में फंस गया। राजा के अंगरक्षकों ने जब उस विशाल, दिव्य आम को रंग, सुगंध और स्वाद में उत्कृष्ट पाया, तो वे उसे राजा के पास ले आए। प्रयोग के तौर पर राजा ने उसका एक टुकड़ा लिया और उसे एक कुख्यात डाकू को दिया जो जेल में बंद था। जब उसने उसे खाया, तो उसने कहा: "महाराज, मैंने पहले कभी ऐसा आम नहीं खाया; मुझे लगता है कि यह दिव्य आम है।" राजा ने उसे एक और टुकड़ा दिया। उसे खाने के बाद, उसकी झुर्रीदार त्वचा और सफेद बाल गायब हो गए; वह बहुत सुंदर हो गया और मानो यौवन लौट आया हो। यह देखकर राजा आश्चर्यचकित रह गए, उन्होंने भी आम खाया और उनके शरीर में भी तेज आ गया। उन्होंने पूछा:

“ऐसे आम कहाँ मिलते हैं?” उनके आदमियों ने उत्तर दिया: “महाराज, कहते हैं कि ये हिमालय में मिलते हैं, जो पर्वतों के राजा हैं।” “क्या इन्हें लाना संभव है?” महाराज, वनपाल जानते हैं।” राजा ने वनपालों को बुलवाया, एक गरीब वनपाल को एक हजार सिक्के दिए और उसे यह कहकर भेज

दिया: “जाओ, जल्दी से मेरे लिए आम ले आओ।” वह वनपाल गंगा नदी के ऊपर कन्नामुंडा झील की ओर गया। जब वह मनुष्य मार्ग से आगे निकल गया, तो उसे एक के बाद एक तीन तपस्वी मिले जिन्होंने उसका मार्गदर्शन किया। तीसरे तपस्वी ने उसे सलाह दी: “इस बड़ी गंगा नदी को छोड़ दो; उस छोटी नदी का अनुसरण करो, धारा के विपरीत दिशा में तब तक जाओ जब तक तुम्हें पर्वत में एक दरार न दिखाई दे। फिर तुम्हें रात में जलती हुई मशाल लेकर उसमें प्रवेश करना होगा।” "चूंकि यह नदी रात में नहीं बहती, इसलिए आप उस रास्ते से जा सकते हैं।" उसने वैसा ही किया और सूर्योदय के समय वह एक ऐसे क्षेत्र में पहुँचा जहाँ आमों का एक बहुत ही सुंदर बाग था। फिर जब उन अविवाहित स्त्रियों ने उसे दूर से आते देखा, तो वे दौड़कर उसके पास आईं और बोलीं, "वह पुरुष मेरा है, वह पुरुष मेरा है।" अब उसने वे पुण्य कर्म नहीं किए थे जो उस स्थान पर उनके साथ देव-आनंद का अनुभव करने के लिए उपयुक्त थे। इसलिए उन्हें देखते ही वह भयभीत हो गया और चिल्लाते हुए भाग गया। बनारस पहुँचकर उसने राजा को सारी घटना बताई।

जब राजा ने यह सुना, तो उसके मन में उन स्त्रियों को देखने और आमों का आनंद लेने की तीव्र इच्छा जागृत हुई। अतः उसने राज्य अपने निजी सलाहकारों को सौंप दिया और शिकार पर जाने के बहाने, उसने अपना धनुष, तरकश और तलवार ली और कुछ आदमियों के साथ वनपाल के निर्देशानुसार चल पड़ा। कुछ योजन दूर जाकर उसने उन आदमियों को वहीं छोड़ दिया और केवल वनपाल के साथ आगे बढ़ गया। कुछ देर बाद उसने उसे भी वापस भेज दिया; सूर्योदय के समय वह आमों के बाग में पहुँच गया।

फिर, जब उन स्त्रियों ने उसे एक देव के पुनर्जन्मित युवा पुत्र के रूप में देखा और उससे मिलने बाहर गईं, तो वे जान गईं कि वह एक राजा है, और उसे महल में ले गईं। उन्होंने उसे देवों का भोजन दिया और उसकी इच्छा अनुसार उसकी सेवा की।

फिर डेढ़ सौ वर्ष बीत जाने के बाद, राजा आधी रात को उठे और उन्होंने देखा कि पाप करने वाली स्त्री कमल-कुंड के किनारे जा रही है। उत्सुकतावश वे उसके पीछे गए। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि एक कुत्ते ने उसे नोंच डाला है। तीन दिन तक वे इस बात पर विचार करते रहे कि क्या करें, फिर उन्होंने एक तीखे तीर से कुत्ते को मार गिराया; इस प्रकार कुत्ते को मार डालने और स्त्री को कमल-कुंड में डुबो देने के बाद, उन्होंने उसे उसकी पूर्ववत सुंदरता में पुनर्जीवित देखा।

फिर उसने उससे पूछा कि उसके साथ क्या हुआ था:

1. "यहाँ सुनहरी रेत पर टिकी हुई सोने की सीढ़ियाँ हैं; यहाँ सुंदर, मीठी सुगंध वाली लिली हैं, जो हृदय को आनंदित करती हैं।"

2. "विभिन्न प्रकार के वृक्ष जल के ऊपर एक छत्र बनाते हैं, विभिन्न सुगंधों से महकती हवाएँ उन पर बहती हैं; तालाब कई गुलाबी कमलों से ढके हुए हैं और सफेद कमलों से सजे हुए हैं।"

3. हवा से हिलते हुए, रमणीय तालाब एक सुखद सुगंध उत्सर्जित करते हैं; वे हंसों और बगुले के शोर से गूंजते हैं; वे लाल हंसों की आवाज़ से प्रतिध्वनित होते हैं।

4- "विभिन्न प्रकार के पक्षियों के झुंडों से भरे और अनेक प्रकार के गीतों से गूंजते हुए, वृक्ष विविध प्रकार के फल देते हैं, वन अनेक प्रकार के फूल उत्पन्न करते हैं।"

5. "ऐसा नगर मनुष्यों में नहीं पाया जाता। तुम्हारे पास सोने और चांदी से बने कई महल हैं।"

6. "चारों लोक अत्यंत उज्ज्वल हैं। आपके पास ये पाँच सौ सेविकाएँ हैं जो आपकी सेवा करती हैं।"

7. "उन्होंने सीपियों के बाजूबंद पहन रखे हैं और सोने के वस्त्रों से सजे हुए हैं। तुम्हारे पास सोने और चांदी के बने कई पलंग हैं।"

8. "वे कदली मृगों की खालों से ढके हुए हैं; वे पूरी तरह से तैयार हैं और ऊनी कंबलों से ढके हुए हैं। जब आप उन पर लेटते हैं, तो आपको सभी प्रकार के आनंद से भरपूर अनुभव प्राप्त होता है।"

9. "फिर भी जब आधी रात हो जाती है, तो तुम उठकर बाहर जाते हो; जब तुम कमल-तालाब के चारों ओर आनंद उद्यान में पहुँच जाते हो।"

10. "हे सुंदरी, तुम इसके किनारे हरी घास पर खड़ी हो; तभी कटे हुए कानों वाला एक कुत्ता तुम्हें एक-एक अंग करके खा जाता है।"

11. जब तुम्हारा भक्षण हो जाता है और तुम हड्डियों की एक श्रृंखला बन जाते हो, तो तुम कमल-कुंड में गिर जाते हो, जहाँ तुम्हारा शरीर पहले जैसा हो जाता है।

12. "फिर पूरे शरीर के साथ, बहुत सुंदर, देखने में आकर्षक, अपने वस्त्रों में सजे हुए, तुम मेरी उपस्थिति में आते हो।"

13. "अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस पाप के दंड के रूप में कटे कान वाला कुत्ता तुम्हारे शरीर के एक-एक अंग को कुतर कर खा रहा है?"

जब राजा ने उससे इस प्रकार पूछा, तो उस लड़की ने उसे अपनी कहानी सुनाई:

14. "किम्बिला में एक गृहस्थ रहता था, जो एक धर्मनिष्ठ गृहस्थ था; उसकी पत्नी मैं थी, एक दुष्ट व्यभिचारिणी।"

15. "चूंकि मैं व्यभिचारी थी, इसलिए मेरे पति ने मुझसे इस प्रकार कहा: 'यह उचित या सही नहीं है कि तुम मेरे प्रति बेवफा हो।'

16. "तब मैंने झूठी और भयानक शपथ खाई: 'मैं तुम्हें अपने शरीर या विचारों से धोखा नहीं देता।

17. "परन्तु यदि मैं अपने शरीर या मन से अपराध करूँ, तो वह कान कटे हुए कुत्ते मुझे अंग-अंग करके खा जाए।"

18. "उस कर्म और झूठ दोनों के लिए मुझे सात सौ वर्षों से दंड भुगतना पड़ रहा है: तब से ही कटे कान वाला कुत्ता मुझे अंग-अंग करके कुतर रहा है।"

इस प्रकार उसने कहा; फिर दो छंदों में उसने उसके द्वारा किए गए उपकार की प्रशंसा की:

19. "हे प्रभु, आप बहुत शक्तिशाली हैं: आप मेरे लिए यहाँ आए हैं। कटी हुई बालियों वाले से मुक्त होकर, मैं दुःख से मुक्त हूँ और किसी भी प्रकार के भय से मुक्त हूँ।"

20. "हे प्रभु, मैं आपका आदर करता हूँ और आपको प्रणाम करते हुए विनती करता हूँ: अलौकिक सुखों का लाभ उठाएँ; हे प्रभु, मेरे साथ आनंद लें।"

तब राजा, वहाँ रहते-रहते थककर, वहाँ से जाने की अपनी मंशा ज़ाहिर कर दी और अंतिम छंद बोला:

21. "मैंने देव-आनंद का अनुभव किया है और तुम्हारे साथ आनंद लिया है, अब, हे सुंदरी, मैं तुमसे विनती करता हूँ, मुझे जल्दी वापस ले लो।"

तब उस युवती ने राजा की बातें सुनकर विरह सहन नहीं किया। उसका हृदय शोक और दुःख से व्याकुल हो गया और उसका शरीर कांपने लगा। उसने अनेक प्रकार से राजा से विनती की, पर भी वह उसे वहाँ रुकने के लिए राजी नहीं कर सकी। वह राजा को बहुमूल्य रत्नों के साथ उसके नगर ले गई और उसे उसके महल में ले गई। फिर रोते-बिलखते हुए वह तुरंत अपने घर लौट गई। जब राजा ने यह देखा, तो वह अत्यंत व्याकुल हुआ और दान-पुण्य और अन्य कर्म करके स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त किया।

फिर, जब भगवान बुद्ध का जन्म हुआ और समय बीतने के साथ वे श्रावस्ती में निवास करने आए, तो एक दिन आदरणीय महामोगल्लन पर्वतों में भ्रमण करते हुए उस स्त्री को उसके दल के साथ देखकर उससे पूछा कि उसने क्या किया है। उसने उन्हें सब कुछ बता दिया और उन्होंने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उब्बारि

पिछला <<<<----------------------- 2.13 ------------------------->>>> अगला

25. उब्बारी की कहानी (2.13)
जब गुरु जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

श्रावस्ती में एक गृहस्थ शिष्या के पति का निधन हो गया। वह शोक में डूबी हुई श्मशान में रोने लगी। जब भगवान बुद्ध ने देखा कि उसने मार्ग के फल की प्राप्ति कर ली है, तो दया से द्रवित होकर वे उसके घर गए और पूछा कि वह क्यों शोक मना रही है? "हे भगवान बुद्ध, मैं अपने प्रियतम के वियोग के कारण शोक मना रही हूँ।" तब भगवान बुद्ध ने एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, पंचाल देश में, कपिला नगर में, चुआनी ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था, जो अपनी प्रजा के हित में दस राजनियमों का उल्लंघन किए बिना, उनके कल्याण के लिए काम करता था। एक बार, अपने राज्य में लोगों की बातें जानने की इच्छा से, उसने एक दर्जी का वेश धारण किया और बिना किसी सेवक के नगर छोड़ दिया। जब वह गाँव-गाँव और जिले-जिले घूमता रहा, तो उसने पाया कि पूरा देश चोरों और अत्याचारों से मुक्त था, लोग सौहार्दपूर्ण थे और अपने घरों के दरवाजे खुले रखे हुए थे। नए उत्साह के साथ वह वापस लौटने के लिए निकला और एक नगर में एक गरीब विधवा के घर में प्रवेश किया। जब उसने उसे देखा, तो उसने कहा, "महोदय, आप कौन हैं? आप कहाँ से आए हैं?" उसने उत्तर दिया, "महोदय, मैं एक दर्जी हूँ; मैं मजदूरी के लिए सिलाई का काम करता हूँ। यदि आपके पास कोई सिलाई का काम हो, तो मुझे कपड़े और सिर के वस्त्र दोनों दे दीजिए, मैं आपके लिए बना दूँगा।" तब उसने कहा, "हमारे पास न तो कपड़ों का काम है और न ही सिर के वस्त्रों का। कृपया दूसरों के लिए कर दीजिए, महाराज।" वहाँ कुछ दिनों तक रहने के दौरान, उन्होंने उस गाँव की बेटी को देखा, जो भविष्य में सौभाग्य और पुण्य के लक्षणों से परिपूर्ण थी। उन्होंने माँ से कहा, "यदि उसका विवाह नहीं हुआ है, तो उसे मुझे दे दीजिए। मैं आपके लिए सुख-सुविधाओं से जीवन यापन कर सकता हूँ।" माँ ने उन्हें वह लड़की दे दी। कुछ दिनों तक उसके साथ रहने के बाद, उन्होंने उसे एक हजार कहपना (सिक्के) दिए और कहा, "मैं कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा। मेरी प्रिय, चिंता मत करो।" इसके बाद वे अपने शहर चले गए। शहर और उस गाँव के बीच एक समतल सड़क बनवाकर उसे सजाया-संवारा और बड़े धूमधाम से वहाँ गए। लड़की को बड़ी रकम भेंट करने और सोने-चाँदी के बर्तनों में स्नान करवाने के बाद, उन्होंने उसका नाम उब्बारी रखा और उसे रानी बना दिया। उन्होंने गाँव उसके रिश्तेदारों को दे दिया और फिर बड़े धूमधाम से उसे शहर ले गए। उसके साथ सुखपूर्वक रहते हुए, उन्होंने एक सफल शासनकाल व्यतीत किया और उनका निधन हो गया।

इसके बाद उब्बारी के शोक का वर्णन संपादकों द्वारा इस प्रकार किया गया है:

1. पंचाल वंश के सारथियों के स्वामी ब्रह्मदत्त नामक एक राजा था; कुछ दिन और रात बीतने के बाद, राजा का समय पूरा हो गया।

2. उसकी पत्नी उब्बारी उसकी अंतिम संस्कार की चिता पर गई और विलाप करने लगी।

हालांकि उसने ब्रह्मदत्त को नहीं देखा, फिर भी उसने विलाप करते हुए कहा, "हे ब्रह्मदत्त!"

3. वहाँ एक ऋषि आए, जो धार्मिक आचरण में निपुण एक पवित्र व्यक्ति थे, और उस अवसर पर उन्होंने वहाँ विधिवत एकत्रित लोगों से पूछा:

4- "यह किसकी चिता है जिस पर तरह-तरह की सुगंध फैल रही है? यह किसकी पत्नी है जो अपने पति के लिए शोक मना रही है जो यहाँ से दूर चला गया है? यद्यपि वह ब्रह्मदत्त को नहीं देख पा रही है, फिर भी विलाप कर रही है, 'हे ब्रह्मदत्त!'"

5. और वहाँ उपस्थित लोगों ने इस पर समझाया: "हे पूज्यवर, वह ब्रह्मदत्त की पत्नी हैं: आपको और ब्रह्मदत्त को सौभाग्य प्राप्त हो।"

6. यह उनकी अंतिम संस्कार की चिता है जिस पर तरह-तरह की सुगंध फैली हुई है; यह उनकी पत्नी हैं जो अपने पति के बिछड़ने पर शोक मना रही हैं। यद्यपि वह ब्रह्मदत्त को देख नहीं पा रही हैं, फिर भी विलाप करते हुए कहती हैं, 'हे ब्रह्मदत्त।'

तपस्वी ने उब्बारी से कहा:

7. "इस श्मशान में ब्रह्मदत्त नाम के छियासी हजार पुरुषों को जलाया गया है; इनमें से किसके लिए आप शोक मना रहे हैं?"

उब्बारी:

8. "आदरणीय महोदय, मैं उनके लिए शोक मना रही हूँ जो राजा थे, कुलानी के पुत्र, पंचालों के रथ चालकों के स्वामी, मेरे पति जिन्होंने मेरी हर इच्छा पूरी की।"

तपस्वी:

9. "निश्चित रूप से ब्रह्मदत्त नाम के सभी लोग राजा थे; सभी चुलानी के पुत्र थे, जो पंचालों के सारथियों के प्रमुख थे

10. "क्रमशः आप सभी की रानी थीं। आप अपने पूर्व पतियों की उपेक्षा क्यों करती हैं और केवल अंतिम पति के लिए ही शोक क्यों मनाती हैं?"

उब्बारी:

11. "मैं इतने लंबे समय से स्त्री हूँ, महोदय, क्या यह मेरे स्त्रीत्व के कारण है कि आप इतना कुछ कहते हैं?"

तपस्वी:

12. "तुम एक स्त्री थी, तुम एक पुरुष भी रही हो, एक पशु के रूप में भी तुम्हारा जन्म हुआ था। इस प्रकार यह उस चीज़ की सीमा के रूप में प्रकट नहीं होता जो हो चुका है।"

उब्बारी:

13. "सचमुच, मैं, जो घी से भरी आग की तरह चमक रहा था, मानो मैंने उस पर पानी छिड़का हो। अब मैं अपने सभी दुखों का अंत करता हूँ।"

14. "निश्चित रूप से आपने मुझसे वह तीर निकाल दिया जो शोक ने मेरे हृदय में जड़ जमा रखा था, आपने ही शोक से व्याकुल होकर मेरे पति के शोक को मुझसे दूर किया।"

15. "अब मैं भाला खींचे जाने से शांत हो गया हूँ। मैं शोक नहीं करता, मैं रोता नहीं, क्योंकि मैंने आपकी बात सुन ली है, हे महान द्रष्टा।"

उब्बारी की उपलब्धि का वर्णन करते हुए, गुरु ने चार श्लोक कहे:

16. "जब उसने संन्यासी के ये शब्द सुने, तो उसने कटोरा और वस्त्र लेकर बेघर अवस्था में प्रवेश किया।"

17. "और उसने घर-बार छोड़कर घर-बार त्याग कर निर्जन राज्य में प्रवेश किया और ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेने के लिए प्रेम भाव का अभ्यास किया।"

18. "वह गाँव-गाँव, कस्बों और राजसी शहरों में भटकती रही; उरुवेला उस गाँव का नाम है जहाँ उसने अपने अंतिम दिन बिताए।"

19. "ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेने के लिए जब उसने प्रेम भाव विकसित किया और स्त्रीत्व के विचारों को त्याग दिया, तब वह ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के लोक की निवासी बन गई।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> पानी में नहीं डूबना

पिछला <<<<----------------------- 3.1 -------------------------->>>> अगला

भाग III - चुलवाग्गो
26. पानी में न डूबने की कहानी (3.1)
जब गुरु वेलुवाना मठ में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

बनारस के पश्चिम में, गंगा नदी के उस पार, वासभागमा से आगे, कुंडथिला नामक गाँव में एक शिकारी रहता था। वह जंगल में हिरणों का शिकार करता, सबसे अच्छा मांस अंगारों पर पकाकर खाता और जो बच जाता उसे पत्तों की टोकरी में बाँधकर डंडे पर लादकर गाँव ले जाता। जब बच्चे उसे गाँव के द्वार पर देखते, तो वे हाथ फैलाकर उसके पास दौड़ते हुए कहते, "मुझे मांस दो, मुझे मांस दो।" तो वह उनमें से प्रत्येक को मांस का एक छोटा टुकड़ा देता। एक दिन वह केवल फूल लेकर गया और प्रत्येक बच्चे को फूलों का एक गुच्छा दिया। मरते समय, उसका पुनर्जन्म एक पेटा के रूप में हुआ। भूखा-प्यासा, वह अपने गाँव और रिश्तेदारों की तलाश में गंगा नदी में बिना डूबे चलता रहा। राजा बिम्बिसार का मुख्य मंत्री, एक विद्रोह को दबाने के बाद, नाव से नदी के रास्ते वापस जा रहा था, और उसने पेटा को जाते हुए देखा और उससे पूछा:

1. "जल में डूबे बिना, तुम गंगा नदी पर यहाँ चल रहे हो; तुम नग्न हो; फिर भी, मानो अपने पूर्व भाग्य से मुक्त होकर, तुम मालाओं से सुशोभित हो। हे पेटा, तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा निवास कहाँ होगा?"

अब पेटा और कोलिया द्वारा कही गई बातों का वर्णन संपादकों द्वारा निम्नलिखित छंदों में किया गया है:

2. पेटा ने कहा: "मैं बनारस के पास वासभागमा और यहाँ के बीच स्थित चुंडत्थिला जाऊँगा।"

3. और जब कोलिया नाम से प्रसिद्ध मंत्री ने उसे देखा, तो उसने पेटा को जौ के आटे, उबले हुए चावल और एक सूट का गुण देने का निश्चय किया।

4. फिर उसने अपनी नाव रोकी और ये सब एक नाई को दे दिए; जब नाई को खिलाया गया, तो पेटा में इसका परिणाम दिखाई दिया।

5. तब पेटा, मालाओं से सजे वस्त्रों में लिपटा हुआ, वहाँ खड़ा था, उस पर तुरंत (दिव्य) उपहार बरसाए गए; इसी कारण पेटाओं के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए बार-बार उपहार देने चाहिए।

तो मंत्री कोलिया को पेटा पर दया आई और उन्होंने उसे निर्धारित तरीके से उपहार दिया। वे नदी के साथ-साथ आगे बढ़े और सूर्योदय के समय बनारस पहुँचे। भगवान बुद्ध, जो उनका स्वागत करने के लिए वायु से प्रकट हुए थे, नदी के किनारे खड़े थे। प्रसन्न और आनंदित कोलिया ने भगवान बुद्ध को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। भगवान बुद्ध ने मौनपूर्वक निमंत्रण स्वीकार कर लिया। शांत मन से कोलिया ने बुद्ध और भिक्षुओं का सत्कार किया। फिर जब भीड़ एकत्रित हुई, तो भगवान बुद्ध ने करुणावश कुछ पेटाओं को उनके सामने प्रकट किया और उनसे पूछा कि वे इस प्रकार कैसे प्रकट हुए। संपादकों ने इसे इस प्रकार वर्णित किया है:

6. कुछ चिथड़े-चिथड़े कपड़ों में लिपटे हुए, कुछ अपने बालों से ढके हुए, पेटा भोजन की तलाश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भटकते हैं।

7. कुछ लोग दूर देश के लिए निकल पड़ते हैं और कुछ न पाकर भूखे-प्यासे, बेहोश, लड़खड़ाते और ज़मीन पर गिर पड़ते हैं।

8. उनमें से कुछ वहीं ज़मीन पर औंधे मुंह गिर पड़े। उन्होंने अपने पूर्व जीवन में कोई पुण्य कर्म नहीं किए थे; वे मानो गर्मी में आग से झुलस रहे थे, और कहने लगे:

9. "पहले हम दुष्ट पत्नियाँ और गृहस्थ माताएँ थीं। हमने दी गई वस्तुओं के दान में अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।"

10. "हाँ, बहुत सारा भोजन और पेय पदार्थ भी फेंक दिए गए, और हमने एकत्रित संसार-त्यागियों (तपस्वियों/सन्यासियों) को कुछ भी नहीं दिया।"

11. "हम, जानबूझकर बुरे कर्म करते हुए, आलसी, मनमानी करते हुए और बहुत खाते हुए, केवल थोड़ा-थोड़ा दान देते हुए, भिक्षा लेने वालों का अपमान करते थे।"

12. "हमारे वे घर, वे दासियाँ, यहाँ तक कि हमारे वे आभूषण भी अब दूसरों की सेवा में हैं, हमारे हिस्से में केवल कष्ट ही है।"

13. टोकरी बनाने वालों के कबीले कलंकित हैं, और रथ बनाने वाले विश्वासघाती हैं; चांडाल महिलाएं; भिखारी और स्नान करने वाले भी बार-बार ऐसा ही करते हैं।

14- "ऐसे ही नीच और दुखी परिवारों में ये जन्म लेते हैं। कंजूसों का यही हश्र होता है।"

15. "जिन्होंने पूर्व जन्मों में अच्छे कर्म किए, दान दिए, उदार हृदय वाले थे, वे इस उज्ज्वल संसार को भर देंगे और नंदनवन (स्वर्ग) को प्रकाशित करेंगे।"

16. "वे सुख-सुविधाओं में आनंदित और प्रसन्न होकर महलों के स्वामी बनेंगे; इससे आगे बढ़कर, वे उच्च और धनी परिवारों में जन्म लेंगे।"

17. "शिखर वाले भवन में, यहाँ तक कि महल में भी, ऊनी चादर से ढके पलंग पर, जिन्होंने अपने शरीर को वश में कर लिया है, वे अच्छे परिवार में जीवन के सभी सुख-सुविधाओं के साथ जन्म लेते हैं; प्रत्येक के हाथ में एक मोर पंखा होता है।"

18. वे स्थान-स्थान पर मालाएँ धारण करके और सजे-धजे जाते हैं; सेवक सुबह-शाम उनकी प्रसन्नता के लिए खड़े रहते हैं।

19. "शोक रहित और मनमोहक नंदन वन (स्वर्ग का), यह दस देवदूतों का महान वन उन लोगों का नहीं है जिन्होंने पुण्य नहीं कमाया; बल्कि केवल उन्हीं का है जिन्होंने पुण्य कमाया है।"

20. "जिन लोगों ने पुण्य नहीं कमाया है, उन्हें न तो इस दुनिया में सुख मिलेगा और न ही इस दुनिया से परे; परन्तु जिन्होंने पुण्य कमाया है, उन्हें इस दुनिया में और इस दुनिया से परे दोनों जगह सुख मिलेगा।"

21 "देवताओं की संगति चाहने वालों को बहुत भलाई करनी चाहिए; क्योंकि पुण्य कमाने वाले स्वर्ग में धन-संपत्ति से भरपूर होकर आनंदित होते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> सनुवासिन

पिछला <<<<---------------------- 3.2 ------------------------->>>> अगला

27. सानुवासी की कहानी (3.2)
जब शिक्षक बांस के जंगल में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में राजा कितवा के पुत्र, उद्यान में आनंद लेकर लौटते समय, अकेले बुद्ध सुनेत्ता को भिक्षा मांगने आते हुए देखकर, उनका अपमान किया। उनके आगे बढ़ते ही उन्हें नरक की आग जैसी तीव्र जलन का अनुभव हुआ। इसी कारण उनकी मृत्यु हो गई और वे अविची नामक महान नरक में पुनर्जन्म लिए। इसके बाद उनका पुनर्जन्म पेटा के रूप में हुआ, और फिर इस बुद्ध-काल में, कुंडी नगर के निकट मछुआरों के गाँव में उनका पुनर्जन्म हुआ। पिछले जन्मों को याद करते हुए, वे दूसरों के साथ मछली पकड़ने नहीं जाते थे और उनके द्वारा पकड़ी गई मछलियों को वापस पानी में फेंक देते थे। उनके परिजनों ने उन्हें घर से निकाल दिया, लेकिन एक भाई ने उनसे स्नेह रखा। बड़े भाई आनंद ने उन्हें भिक्षु बनने के लिए प्रेरित किया; बाद में अरहंत के रूप में वे बारह भिक्षुओं के साथ सानुवासिन पर्वत पर निवास करते थे। लेकिन उनके सभी संबंधी पेटा के रूप में पुनर्जन्म लेते रहे। अब उसके माता-पिता को यह सोचकर शर्म आ रही थी कि "पिछले जन्म में हमने उसे घर से निकाल दिया था", इसलिए वे उसके पास नहीं गए, बल्कि उसके भाई को भेजा, जो उससे स्नेह रखता था। जब वह भाई भिक्षा मांगने के लिए बड़े के गाँव में पहुँचा, तो उसने अपना दाहिना घुटना ज़मीन पर रखा, आदरपूर्वक अभिवादन किया और ये पंक्तियाँ बोलीं, "आदरणीय महोदय, आपके माता-पिता, इत्यादि।" लेकिन संपादकों ने पहले पाँच पंक्तियों को इस प्रकार रखा ताकि संबंध स्पष्ट हो सके:

1. कुंडीनगर में सानुवसिन पर रहने वाला एक बुजुर्ग व्यक्ति था; वह एक विकसित बुद्धि वाला संन्यासी (भिक्षु) था, जिसका नाम पोत्थपाद था।

2. उसके माता-पिता और भाई यमलोक के दुखी निवासी बन गए। बुरे कर्मों के कारण वे पतरसलोक चले गए।

3. वे बुरे जन्म के थे, उनकी हड्डियाँ सुई जैसी थीं, वे थके हुए, नंगे और दुबले-पतले थे, चिंतित और बहुत भयभीत थे—वे निर्दयी नहीं दिखते थे।

4. उसका भाई जल्दी से, नग्न अवस्था में, अकेले एक सुनसान रास्ते पर आया, और पानी के घड़े की तरह चारों हाथों-पैरों के बल रेंगते हुए उसने खुद को बड़े भाई को दिखाया।

5. अब आदरणीय व्यक्ति अनसुना करते हुए चुपचाप चले गए; लेकिन दूसरे ने उन्हें यह बात बता दी और बड़े से कहा: "मैं तुम्हारा भाई हूँ जो पेटस लोक में चला गया हूँ।"

6. आदरणीय महोदय, आपके माता-पिता यमलोक के दुखी निवासी हैं। बुरे कर्म करने के कारण वे पतरसलोक चले गए।

वे दुर्भाग्यवश जन्म से हैं.... (जैसा कि 3 में है)

दयालु और करुणामय बनो; हमें दान दो और इसका श्रेय हमें दो। तुम्हारे दिए गए दान से निर्दयी लोग अपना भरण-पोषण करेंगे।

9. जब बड़े भिक्षु और बारह अन्य भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए अपने चक्कर लगा चुके थे, तो वे भोजन करने के लिए एक ही स्थान पर एकत्रित हुए।

10. बुजुर्ग ने उन सभी को संबोधित करते हुए कहा, "तुम्हारे पास जो कुछ भी है, मुझे दे दो। मैं अपने (दिवंगत) रिश्तेदारों के प्रति करुणावश संघ के लिए भोज का आयोजन करूंगा।"

11. उन्होंने इसे उसकी देखरेख में सौंप दिया: बड़े भिक्षु ने भिक्षुओं के समूह को आमंत्रित किया; भोजन परोसते समय, बड़े भिक्षु ने दान का श्रेय अपनी माता, पिता और भाई को देते हुए कहा:

यह मेरे परिजनों के लिए हो; मेरे सगे-संबंधियों को आशीर्वाद मिले।"

12. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, (दिव्य) भोजन (पेटों के लिए) तैयार किया गया, जो स्वच्छ, स्वादिष्ट, अच्छी तरह से तैयार किया गया और स्वादों और मसालों से भरपूर था। फिर उसके भाई ने घोषणा की, जो सुंदर, बलवान और सुखी हो गया था:

13. "हे महोदय, यहाँ भोजन प्रचुर मात्रा में है, परन्तु देखिए, हम नंगे हैं। महोदय, कृपया हमें वस्त्र दिलाने की इच्छा कीजिए।"

14. बड़े भिक्षु ने कूड़े के ढेर से कपड़े के कुछ टुकड़े उठाकर, उन चिथड़ों को वस्त्रों में परिवर्तित किया और चारों लोकों के भिक्षुओं के नाम पर उन्हें दे दिया।

15. जब उन्होंने अपना दान दिया, तो आदरणीय भिक्षु ने दान का पुण्य अपनी माता, पिता और भाई को देते हुए कहा: "यह मेरे सगे-संबंधियों के लिए हो; मेरे सगे-संबंधियों को आशीर्वाद मिले।"

16. पुण्य के इस हस्तांतरण के तुरंत बाद, (दिव्य) वस्त्र (पेटों के लिए) प्रस्तुत किए गए: फिर उत्तम वस्त्रों में सज-धज कर, उन्होंने बड़े व्यक्ति के सामने प्रकट होकर ये शब्द कहे:

17. "हे पूज्यवर, नंदराज के राज्य में जितने आवरण हैं, उससे कहीं अधिक वस्त्र और लबादे हमारे पास हैं।"

18. "वे रेशम और ऊन, सन और कपास के बने हैं; वे बहुत सारे और कीमती हैं; और वे आकाश में लटके हुए हैं।"

19. "अब हम वही पहनते हैं जो हमें प्रिय लगता है। हे प्रभु, हमें घर प्राप्त करने की इच्छा प्रदान करें।"

20. बड़े भिक्षु ने पत्तों की एक झोपड़ी बनाई और उसे चारों क्षेत्रों के भिक्षुओं को भेंट कर दिया। जैसे ही उसने अपनी भेंटें दीं... (14, 15 के समान)।

21. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही (दिव्य) घर (पेटों के लिए) निर्मित किए गए। ऊपरी मंजिलों वाली इमारतें और सुव्यवस्थित रूप से विभाजित घर थे।

पेटा :

22. "मनुष्यों में हमारे जैसे निवास स्थान नहीं हैं। देवताओं में भी जैसे निवास स्थान पाए जाते हैं, वैसे ही हमारे यहाँ हैं

23. "चारों लोक चारों ओर से तेज रोशनी से जगमगा रहे हैं; हे प्रभु, हमें पानी का एक घूंट प्राप्त करने की इच्छा प्रदान करें।"

24. तब ऋषि ने एक घड़ा पानी से भरकर चारों लोकों के भिक्षुओं को दे दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना दान दिया... (जैसा कि 20 में है)

25. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, पीने का पानी उपलब्ध हो गया; वहाँ चार गहरे, सुव्यवस्थित कमल-तालाब थे।

26. उनमें साफ पानी था, किनारे अच्छी तरह से घिरे हुए थे; ठंडा और कम सुगंधित: वे लाल और नीले कमल से ढके हुए थे और जल लिली के तंतुओं से भरे हुए थे।

27. फिर स्नान करने और पानी पीने के बाद, वे बड़े के पास फिर से प्रकट हुए और बोले: "आदरणीय महोदय, हमारे पास पानी तो भरपूर है, लेकिन हमारे पैर बुरी तरह से फट गए हैं।"

28. "हम इधर-उधर भटकते हुए कंकड़-पत्थर और कांटेदार झाड़ियों पर लंगड़ाते हैं। हे प्रभु, हमें वाहन प्राप्त करने की इच्छा शक्ति प्रदान करें।"

29. बड़े ने एक जूता लिया और उसे चारों क्षेत्रों के चर्च को भेंट किया। जैसे ही उसने इसे दिया ... (जैसा कि 24 में है)।

30. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, पेटा रथ में सवार होकर आए और बोले: "महामहिम, दयावश हमें भोजन और वस्त्र प्रदान किए गए।"

31. "एक घर, पीने का पानी और एक वाहन उपहार स्वरूप दिए गए हैं। हे प्रभु, हम संसार के द्रष्टाओं में सबसे दयालु, आपको नमन करने आए हैं।"

बुजुर्ग व्यक्ति ने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने अपने शिक्षण में इस कहानी को विषय बनाया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> रथकारा

पिछला <<<<------------------------ 3.3 --------------------------->>>> अगला

28. रथकारा की कहानी (3.3)
जब गुरु सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने एक पेटा नामक व्यक्ति के बारे में यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, पूज्य कस्सपा के समय में, एक स्त्री, जो धार्मिक कर्मों में निपुण थी और जिसने एक सुंदर निवास को भिक्षुओं के समूह को सौंप दिया था, की मृत्यु हो गई। एक अन्य दुष्ट कर्म के कारण, वह पर्वतों के राजा हिमवंत (हिमालय) में, रथकारा झील के निकट, एक महल-पेटी के रूप में पुनर्जन्म हुई। उसके अच्छे कर्म के फलस्वरूप, उसके लिए एक भव्य महल का निर्माण हुआ, जो पूरी तरह से रत्नों से बना था, चारों ओर से अत्यंत मनमोहक, आकर्षक और आनंददायक था, जिसमें स्वर्ग के नंदनवन के समान एक कमल-कुंड था, और वह स्वयं स्वर्ण रंग की, सुंदर, आकर्षक और सौम्य थी। वहाँ वह पुरुषों के बिना रहती थी, परन्तु उसके मन में पुरुषों की संगति की इच्छा उत्पन्न हुई। और उसने यह सोचकर कुछ आम नदी में फेंक दिए, "यह एक चाल है।" यह सब कन्नामुंडा (2.12) की कहानी के अनुसार समझा जाना चाहिए। इस मामले में, बनारस में रहने वाले एक युवक ने गंगा नदी के किनारे एक आम देखा और उसकी उत्पत्ति के बारे में जानने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए, उचित समय पर वह अपने उद्देश्य की खोज में उस युवती के घर पहुंचा। युवती ने उसका अपने घर में स्वागत किया, और जब उसने घर की भव्यता देखी, तो उसने उससे प्रश्न पूछे:

1. "आप एक शानदार और तेजस्वी महल में विराजमान हैं, जिसमें बिल्ली की आंख जैसे रत्न जड़े स्तंभ हैं और जो अनेक रूपों से अलंकृत है। हे अत्यंत शक्तिशाली देवी, आप वहां पूर्णिमा के चंद्रमा की तरह विराजमान हैं।"

2. "तुम्हारा रंग सोने के समान है; तुम्हारा रूप-रंग अत्यंत सुंदर और अद्भुत है। तुम अद्वितीय पलंग पर अकेली बैठी हो, तुम्हारा कोई पति नहीं है।"

3. "तुम्हारे चारों ओर कमल के तालाब हैं जिनमें प्रचुर मात्रा में फूल और कई सफेद कलियाँ हैं, तल और किनारे सुनहरी रेत से ढके हुए हैं, जहाँ न तो कीचड़ है और न ही दलदल।"

4. "सुंदर हंस भी, जो मेरे हृदय को आनंदित करते हैं, पानी पर सदा घूमते रहते हैं। जब वे झुंड में होते हैं तो मधुर ध्वनियाँ निकालते हैं; उनकी आवाज़ ढोल की ध्वनि के समान मधुर होती है।"

5. "नाव में लेटी हुई, सौंदर्य में तेजस्वी और शानदार, आपकी घुमावदार पलकों में चमक, आपकी हंसी में, आपकी मधुर वाणी में और आपके प्रत्येक अंग की सुंदरता में आप दमकती हैं।"

6. "यह महल, धूल रहित, रमणीय उद्यानों से युक्त, और सुख-आनंद की वृद्धि का प्रतीक, समतल भूमि पर स्थित है। हे अद्वितीय श्रेष्ठता की देवी, मैं यहाँ आपके साथ आनंदपूर्वक रहना चाहता हूँ।"

उसने उत्तर में यह छंद कहा:

7. "ऐसा कर्म करो जिसका फल यहीं मिले, और अपना मन इसी स्थान पर केंद्रित रखो। ऐसे कर्म करके जिनके परिणाम यहीं महसूस हों, तुम मुझे, जो आनंद प्रेमी हूँ, प्राप्त करोगे।"

जब उस युवा रोन ने पेटी के वचन सुने, तो वह मनुष्यों की दुनिया में लौट आया। वहाँ उसने चिंतन किया और फलस्वरूप पुण्य कर्म किए। उचित समय पर उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म वहीं (उसके पास) हुआ।

पेटी के साथ अपने सहजीवन का वर्णन करते हुए, संपादकों ने अंतिम छंद लिखा:

8. "ऐसा ही हो!" कहते हुए उसने ऐसे कार्य किए जिनका फल वहाँ प्रकट होना था। उस स्थान पर फलदायी कार्य करने के बाद, युवक का उसके साथ पुनर्जन्म हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> भूसी की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 3.4 -------------------------->>>> अगला

29. भूसे की कहानी (3.4)
जब गुरु सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने चार पेटों से संबंधित यह कहानी सुनाई।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में, एक कपटी व्यापारी चावल में मिलावट करके और गलत नाप-तोल करके अपना जीवन यापन करता था। श्लोकों के अनुसार, उसका पुत्र, पुत्र की पत्नी और उसकी अपनी पत्नी भी दुष्ट थे। विंध्य वन में पेटा के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनके कष्टों का वर्णन यहाँ किया गया है।

अब, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महामोग्गलाना एक दिन पर्वत की यात्रा करते हुए उस स्थान पर पहुँचे, उन्हें देखा और उनसे पूछा कि उन्होंने क्या अपराध किया है:

1. "एक व्यक्ति चावल का भूसा खाता है, और यह स्त्री अपने ही शरीर का खून खाती है, जबकि तुम गंदा, घिनौना गोबर खाते हो। इसका परिणाम क्या है?"

बुजुर्ग के प्रश्न के उत्तर में, धोखेबाज व्यापारी की पत्नी ने उन सभी द्वारा किए गए कृत्यों का इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

2. "इस व्यक्ति ने अतीत में अपनी माँ को चोट पहुँचाई थी, लेकिन वह व्यक्ति बेईमान व्यापारी था। इस महिला ने मांस खाया और झूठे शब्दों से धोखा दिया।"

3. जब मैं मनुष्य रूप में मनुष्यों के बीच थी, तब मैं एक गृहिणी थी, पूरे परिवार की मुखिया थी। मैंने धर्मी पुरुषों से (अपनी) चीजें छिपाकर रखीं और कभी भी उनमें से कुछ भी नहीं दिया। मैंने झूठ बोलकर यह बात छुपाई, 'मेरे घर में यह कुछ भी नहीं है; अगर मैं इसे छुपाऊँगी, तो मुझे गोबर खाना पड़ेगा।'

4. इस कृत्य और मेरे झूठे वचन के फलस्वरूप, मेरे सुगंधित चावल का भोजन गोबर में बदल जाता है।

5. "कर्म निष्फल नहीं होते; क्योंकि कर्म कभी नष्ट नहीं होता। मैं कीड़े लगे सड़े हुए मल को खाता और पीता हूँ।"

जब बुजुर्ग ने इस भक्त का भाषण सुना, तो उसने यह खबर भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने इस विषय को अपने अध्ययन का मुख्य विषय बना लिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> लड़के की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 3.5 -------------------------->>>> अगला

30. लड़के की कहानी (3.5)
श्रावस्ती में कई गृहस्थ अनुयायी धम्म सदस्य (बुद्ध के मार्ग-धम्म के अनुयायी) बनकर शहर में एक विशाल मंडप बनवाया और वहाँ गुरु (बुद्ध) और भिक्षुओं का स्वागत किया। एक व्यक्ति ने "मुंडे हुए" (मुँहे हुए सिर वाले भिक्षुओं) को दिए जाने वाले सभी दान का विरोध किया। उसकी माता ने

भगवान बुद्ध से क्षमा मांगी और एक सप्ताह तक चावल का दलिया दिया। उसके पुत्र की कुछ समय बाद मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म एक वेश्या के पुत्र के रूप में हुआ। जब उसे पता चला कि वह एक लड़का है, तो उसने उसे त्याग दिया और उसे एक कब्रिस्तान में छोड़ दिया। वहाँ वह, केवल अपने पुण्य के बल पर सुरक्षित और अक्षुण्ण, अपनी माँ की गोद में सुखपूर्वक सो रहा था। कहते हैं कि देव-प्राणियों ने उसकी देखभाल की। फिर जब भगवान बुद्ध, अत्यधिक दया से भरकर, भोर में उठे और अपनी (दिव्य) बुद्ध-दृष्टि से संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने उस लड़के को देखा और कब्रिस्तान गए। कई लोग एकत्रित होकर कहने लगे: गुरु यहाँ आए हैं; "यह किसी कारण से ही इस स्थान पर है।" और उन्होंने उनसे पूछा: "आदरणीय महोदय, इस बालक ने पिछले जन्म में कौन सा कर्म किया था?" बुद्ध ने उन्हें बताया।

तब एक अत्यंत धनी गृहस्थ ने उस बालक को गोद लेते हुए कहा, "भगवान बुद्ध की उपस्थिति में ही यह मेरा पुत्र है!" भगवान बुद्ध यह कहते हुए मठ गए, "इस बालक को एक धनी व्यक्ति ने अपने संरक्षण में ले लिया है और यह अनेक लोगों की सहायता करता है।"

उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद, लड़के को उसकी संपत्ति विरासत में मिली और उसने धार्मिक दान और अन्य अच्छे कार्यों में आनंद लिया।

संपादकों ने इस विषय को निम्नलिखित छह छंदों में दर्शाया है:

1. बुद्ध का ज्ञान अद्भुत प्रकृति का है, जैसा कि हम देखते हैं कि गुरु ने एक व्यक्ति के बारे में भविष्यवाणी कैसे की; यद्यपि कुछ लोगों के पास व्यापक पुण्य है, दूसरों के पास वास्तव में सीमित पुण्य है।

2. कब्रिस्तान में छोड़े गए इस लड़के ने रात अंगूठा चूसते हुए बिताई; न तो आत्माओं और न ही सरीसृपों ने अतीत के इस पुण्य लड़के को नुकसान पहुँचाया: कुत्ते उसके पैर चाटते रहे: कौवे और सियार उसके चारों ओर चक्कर लगाते रहे।

3. पक्षियों के झुंड ने प्रसव की अशुद्धियों को दूर किया, परन्तु कौवों ने उसकी आँखों को शुद्ध किया। किसी ने भी उसकी देखभाल नहीं की, न ही उसे दवा दी और न ही सरसों का धुआँ।

4. उन्होंने चंद्रमा के चंद्र नक्षत्र के साथ संयोजन के बारे में भी नहीं जाना; और न ही (सौभाग्य लाने के लिए) उन्होंने उस व्यक्ति पर सारे अनाज बिखेरे जो घोर दुख में डूबा हुआ था, जिसे रात में लाया गया और श्मशान में डाल दिया गया।

5. जो देवता और मनुष्य दोनों पूजते हैं, उन्होंने उसे ताज़े मक्खन के टुकड़े की तरह कांपते हुए, दयनीय अवस्था में, कुछ जीवन शेष रहते हुए देखा। और जब महान ज्ञान वाले ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा: "यह बालक धन के कारण इस नगर के एक प्रतिष्ठित परिवार का मुखिया बनेगा।"

धर्मनिष्ठ गृहस्थ:

6. उसकी प्रतिज्ञा क्या है? अब धार्मिक जीवन क्या है?

इस अच्छे कर्म का यह परिणाम क्यों होता है कि उस पर ऐसी विपत्ति आने के कारण उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो?

अब संपादकों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भगवान बुद्ध ने अपने उन शिष्यों द्वारा पूछे जाने पर किस प्रकार उत्तर दिया था:

7. लोगों ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह का बहुत सम्मान किया। उस अवसर पर इस भिक्षु की राय भिन्न थी: उसने कठोर और असभ्य टिप्पणी की।

8. तब से उसने इस विचार को त्याग दिया और बाद में आनंद और मन की शांति प्राप्त की, एक सप्ताह तक उसने जेतवन में निवास कर रहे तथागत (बुद्ध) को चावल का दलिया खिलाकर उनकी सहायता की।

9. प्रतिज्ञा उनकी थी; इसके अलावा, यह धार्मिक जीवन भी उनका ही है।

उस अच्छे कर्म का यह परिणाम होता है कि जब उस पर ऐसी विपत्ति आती है, तो उसे ऐसी शक्ति प्राप्त होती है।

10. वह इस दुनिया में एक शताब्दी तक रहकर सभी सुखों से परिपूर्ण होकर, अपने शरीर के नष्ट होने पर, पुनर्जन्म लेकर वासव (सक्का/इंद्र, अर्थात् स्वर्ग में) के साथ संगति में जाता है।

पिछला <<<<----------------------- 3.6 ------------------------->>>> अगला

31. सेरिनी की कहानी (3.6)
जब गुरु जेतवन मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि कुरु वंश के हत्थिनीपुरा (हस्तिनापुरा/वर्तमान मेरठ) में सेरिनी नाम की एक वेश्या रहती थी। जब नगरवासियों ने मिशन पर आए भिक्षुओं का स्वागत किया और उससे आग्रह किया, "आओ, उन्हें उपहार देकर धन्यवाद दो," तो उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "मैं मुंडे हुए भिक्षुओं को यह उपहार क्यों दूं? मैं उस व्यक्ति के लिए कुछ क्यों त्यागूं जिसका कोई महत्व नहीं है?"

जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म एक सीमावर्ती किले की खाई के पीछे एक छोटी सी कुटिया के रूप में हुआ। फिर हत्थिनीपुरा का एक शिष्य व्यापार करने के लिए इस सीमावर्ती शहर में गया और भोर में अपना काम निपटाने के लिए खाई पार करते समय उसने उसे देखा और उससे एक श्लोक में पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप वाले हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले, तुम पतले हो, तुम्हारी पसलियाँ उभरी हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहाँ हो?" (2.1 पैराग्राफ 1 के समान)।

उसने बदले में कहा:

2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी; क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया था। मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।" (जैसा कि 2.1 पैराग्राफ 2 में है)।

फिर उन्होंने एक श्लोक में पूछा:

3. "अब तुमने अपने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया? किस कर्म के कारण तुम परलोक में गए हो?" (जैसा कि 2.1 अनुच्छेद 3 में है)

उसने छह छंदों में उत्तर दिया:

4. मैं आधे महीने तक सार्वजनिक स्नानागारों के आसपास घूमता रहा। हालाँकि दान देना एक कर्तव्य है, फिर भी मैंने अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।

5. "प्यास लगने पर मैं नदी के पास जाता हूँ; वह सूखी होती है। गर्मी के दिनों में मैं छाया में जाता हूँ; वहाँ भी गर्मी हो जाती है।"

6. और एक भयंकर, प्रचंड हवा मुझ पर बह रही है। हे पूज्यवर, मैं इससे भी अधिक कष्ट सहने का पात्र हूँ।

7. "हत्थिनीपुरा जाओ और मेरी माँ को बताओ: 'मैंने तुम्हारी बेटी को देखा, जो यमलोक की एक अभागी निवासी है। उसने एक बुरा कर्म किया था, इसलिए वह यहाँ से पेटालोक चली गई।'

8. "अब मेरे पास चार लाख की संपत्ति है, जिसे मैंने बिना किसी को बताए अपने सोफे के नीचे छिपा दिया है।"

9. "तो वह मेरे नाम से दान दे, और उसकी आयु दीर्घायु हो; और जब मेरी माता मेरे लिए दान दे, तो वह दान का पुण्य मुझे ही अर्पित करे, तब मैं प्रसन्न होऊंगा, और मेरी सभी मनोकामनाएं पूरी होंगी।"

जब याचिकाकर्ता यह कहानी सुना रही थी, तब उसने उसकी बातों पर ध्यान दिया, और अपना काम समाप्त करने के बाद, जाकर उसने यह बात उसकी माँ को बताई। संपादकों ने इसे इन छंदों में दर्ज किया है:

10. उसने "ऐसा ही हो" कहकर सहमति दी और हत्थिनीपुरा जाकर बोला: "मैंने तुम्हारी पुत्री को देखा है, जो यमलोक की एक दुष्ट निवासी है। उसने एक पाप किया था, इसलिए वह यहाँ से पतरसलोक चली गई।"

11. "उस अवसर पर उसने मुझे सलाह दी- 'कृपापूर्वक मेरी माँ को बताएँ: मैंने आपकी पुत्री को यमलोक की एक अभागी निवासी के रूप में देखा है। उसने एक बुरा कर्म किया, इसलिए वह यहाँ से पेटों के लोक में चली गई।'"

12. "अब मेरे पास संपत्ति है ... (जैसा कि 8 में है)।

13. "तो उसे देने दो..." (जैसा कि 9)

14. तदनुसार उसने उपहार प्रस्तुत किया और उसे दान का श्रेय दिया; और पेटी प्रसन्न और सुंदर शारीरिक रूप से प्रकट हुई।

जब उसकी माँ ने यह सुना, तो उसने इच्छानुसार भिक्षुओं के समूह को उपहार दिया और उसे अपनी ओर से दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> हिरण शिकारी

पिछला <<<<------------------------ 3.7 -------------------------->>>> अगला

32. हिरण शिकारी की कहानी (3.7)
भगवान बुद्ध जब बांस के जंगल वाले मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई थी।

राजगाह नगर में एक शिकारी दिन-रात हिरणों का शिकार करके अपना जीवन यापन करता था। उसका एक गृहस्थ शिष्य मित्र था, जिसकी सलाह वह आंशिक रूप से मानता था, और इसी कारण उसका पुनर्जन्म मृदुवंश के रूप में हुआ। आदरणीय वृद्ध भिक्षु नारद ने उसे देखा और उससे इस श्लोक में पूछा:

1. "तुम एक युवक हो जिसकी सेवा पुरुष और महिलाएं करते हैं; रात में तुम कामुक सुखों में मग्न हो जाते हो; दिन में किसी कारणवश कष्ट भोगते हो। तुमने पिछले जन्म में क्या किया था?"

पेटा ने बताया कि उसने क्या किया था:

2. "पिछले जन्म में, सुंदर राजगृह नगर में, रमणीय गिरिब्बाजा में, मैं एक हिरण शिकारी था, खूनी हाथों वाला एक निर्दयी व्यक्ति था।"

3. "मैं दुष्ट मन से निर्दोष प्राणियों के बीच घूमता था, अत्यंत निर्दयी, हमेशा दूसरों को बेरहमी से मारने में आनंद पाता था।"

4. "यद्यपि मेरा स्वभाव ऐसा था, फिर भी मेरा एक मित्रवत साथी था, जो धर्मनिष्ठ गृहस्थ था; और उसने मुझ पर दया करते हुए मुझे बार-बार रोकते हुए कहा:

5. "बुरा कर्म मत करो, अन्यथा, मेरे मित्र, तुम्हारा बुरा हाल होगा। यदि तुम मृत्यु के बाद सुख चाहते हो, तो अंधाधुंध जीवन लेने में आनंद मत लो।"

6. "यद्यपि मैंने उस व्यक्ति की सलाह सुनी जो सुख चाहता था और मुझ पर दया करता था, फिर भी मैंने उसकी शिक्षा का पूरी तरह पालन नहीं किया, क्योंकि लंबे समय से मुझे दुष्टता में आनंद मिलता रहा था और मुझमें कोई अंतर्दृष्टि नहीं थी।"

7. "फिर इस बुद्धिमान व्यक्ति ने करुणावश मुझे आत्मसंयम की भावना से प्रेरित करते हुए कहा: 'यदि तुम दिन में पशुओं का वध करते हो, तो रात में अपने भीतर संयम उत्पन्न करो।'"

8. "इसलिए मैं दिन में जानवरों को मारता था और रात में संयम बरतता था। अब मैं रात में घूमता हूँ; लेकिन दिन में मैं दुख में डूबा रहता हूँ।"

9. "उस अच्छे कार्य के लिए मुझे एक निर्जन रात्रि का आनंद मिलता है, लेकिन दिन के समय, जिन कुत्तों को अभी-अभी भगाया गया था, वे मुझे खाने के लिए चारों ओर से दौड़ पड़ते हैं।"

10. "जो लोग तथागत (बुद्ध) की शिक्षाओं के प्रति सदा समर्पित और उनसे जुड़े रहते हैं, वे, मेरा मानना है, पूर्ण अमरता, परम अवस्था को भी प्राप्त कर लेंगे।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> एक व्याध-II

पिछला <<<<----------------------- 3.8 -------------------------->>>> अगला

33. एक शिकारी की दूसरी कहानी (3.8)
जब भगवान बुद्ध वेलुवन में रह रहे थे, तब उन्होंने यह दूसरी कहानी भी सुनाई थी।

राजगाह में, ऐसा कहा जाता है कि एक धनी युवक ने धन-दौलत के सुखों का त्याग कर दिन-रात हिरणों का शिकार किया। एक बुजुर्ग भिक्षु की सलाह पर और एक गृहस्थ मित्र के आग्रह पर उसने रात्रि शिकार भी छोड़ दिया, जिसका परिणाम उसे परलोक में भी वैसा ही मिला।

निम्नलिखित श्लोकों में नारद नामक बड़े गुरु ने उनसे पूछा:

1. एक सीढ़ीदार इमारत में, एक हवेली में, ऊनी चादर से ढके हुए सोफे पर, पाँच प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों के साथ, आप उस चीज़ में आनंद पाते हैं जो अच्छा संगीत देती है।

2. "फिर भोर होते ही, सूर्योदय के समय, तुम्हें कब्रिस्तान में निर्वासित कर दिया जाता है और तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ता है।"

3. "अब तुमने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया है? किस कर्म के कारण तुम यह कष्ट भोग रहे हो?" तब पेता ने उसे निम्नलिखित कहानी सुनाई:

4. "सुंदर राजगाह नगर में, रमणीय गिरिब्बा में, मैं पहले एक शिकारी था; मैं एक खिलाड़ी था, एक अनियंत्रित।"

5. "मैंने इस प्रकार सोचा, मेरा एक मित्रवत साथी था, जो धर्मनिष्ठ गृहस्थ था: उसके परिवार में अक्सर एक भिक्षु आता-जाता था, जो गौतम (बुद्ध) का शिष्य था। और उसने मुझ पर दया करके मुझे बार-बार रोकते हुए कहा:

6. "बुरा कर्म मत करो... (श्लोक 5-10 जैसा कि पिछली कहानी 3.7 में है)।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> कपटपूर्ण निर्णय

पिछला <<<<----------------------- 3.9 -------------------------->>>> अगला

34. धोखाधड़ीपूर्ण निर्णयों की कहानी (3.9)
जब शिक्षक वेलुवाना मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने धोखाधड़ी वाले निर्णयों की यह पेटा कहानी सुनाई।

उस समय राजा बिम्बिसार महीने के छह दिन पर्व मनाते थे। बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण किया और पर्व में भाग लिया। राजा समय-समय पर अपने समक्ष आने वाले लोगों से पूछते थे, "तो अब, क्या तुम लोग पर्व मनाते हो या नहीं?" तब एक व्यक्ति, जिसे मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया था, जो निंदक और बेईमान था, रिश्वत लेता था और क्रूर था, लेकिन जो यह कहने से डरता था कि "मैं पर्व नहीं मनाता," ने कहा, "महाराज, मैं पर्व मनाता हूँ।" तब राजा के समक्ष से जाने के बाद उसके एक साथी ने उससे पूछा, "मित्र, आज तुमने क्या मनाया?" उसने उत्तर दिया, "मित्र, राजा के सामने डर के मारे मैंने यही कहा था कि मैं पर्व मनाता हूँ।" तब उसके साथी ने उससे कहा, "यदि यह केवल आधा पर्व है, तो आज ऐसा ही मान लो; पर्व की प्रतिज्ञा ले लो।" वह मान गया, घर गया, अपना चेहरा धोया और आधे पर्व में भाग लिया। रात के समय जब वह अपने घर पहुंचा, तो तेज हवा के कारण उसके गरीब से घर से एक खूंटा गिर जाने से उसकी जिंदगी अचानक समाप्त हो गई।

फिर मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म एक पर्वत की खोखली घाटी में एक देव-पति के रूप में हुआ, क्योंकि उन्होंने केवल एक रात के लिए आधा भोज किया और अपना प्रतिफल प्राप्त कर लिया, उन्हें दस हजार कन्याओं का समूह प्राप्त हुआ और उन्होंने देव प्राप्ति का आनंद लिया; लेकिन कपटपूर्ण निर्णयों और अपने झूठ के परिणामस्वरूप, उन्होंने स्वयं अपने हाथों से अपनी पीठ का मांस काटकर खा लिया।

आदरणीय नारद ने गिद्ध शिखर से उतरते समय उन्हें देखा और इन चार श्लोकों में उनसे बात की:

1. "तुम माला, मुकुट और चूड़ियाँ धारण करती हो, और तुम्हारे अंगों पर चंदन का लेप लगा हुआ है। तुम्हारा चेहरा शांत है, और तुम सूर्य के समान तेजस्वी और चमकीली हो।"

2. "यह अमानवीय दल मुझे आपके परिचारकों के रूप में दिखाई देता है; ये दस हजार युवतियाँ आपकी सेविकाएँ हैं।"

3. "वे सीपियों के कंगन पहनते हैं और सोने की पट्टियों से सजे होते हैं; आप शक्तिशाली हैं, और आपका रूप रोमांचकारी है।"

4. "तुमने अपने ही हाथों से अपनी पीठ का मांस काटकर खाया। अब तुमने शरीर, वाणी या मन से कौन सा दुष्ट कार्य किया? तुम अपनी पीठ का मांस क्यों खा रहे हो?"

पेटा ने अपनी कहानी इन चार छंदों में सुनाई:

5. "जीवितों की दुनिया में मैंने निंदा और झूठ, धोखाधड़ी और छल से अपने ही नुकसान के लिए कार्य किया।"

6. "मैं वहां सभा में गया और जब सत्य बोलने का समय आया, तो मैंने अच्छाई और सही बात का विरोध किया और अधर्म के कामों की ओर मुड़ गया।"

7. "इसी प्रकार चुगली करने वाला स्वयं को ही खा जाता है, जैसे मैं आज अपनी ही पीठ से निकले मांस को खा रहा हूँ।"

8. "नारद, आपने स्वयं यह तथ्य देखा है: दयालु वे हैं जो उचित शब्द बोलते हैं। निंदा न करो, झूठ न बोलो, अन्यथा तुम वास्तव में चुगलखोर कहलाओगे।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> अवशेषों की अवमानना

पिछला <<<<------------------------ 3.10 -------------------------->>>> अगला

35. अवशेषों के प्रति अवमानना की कहानी (3.10)

जब भगवान बुद्ध कुसिनारा में उपवत्तना वन में, मल्ल वंश के साल के जंगल में, दो साल के पेड़ों के बीच परास्त हुए, और अवशेषों का वितरण हो जाने के बाद, राजा अजातसत्तु ने अपना हिस्सा ग्रहण किया और सात वर्ष, सात महीने और सात दिन तक उनकी पूजा की। परन्तु छियासी हजार लोग, जो लंबे समय से नास्तिकता और विधर्म के कारण भटक गए थे और जिनके विचार भ्रष्ट हो गए थे, यहाँ तक कि अच्छे वातावरण में भी, पेटों में पुनर्जन्म लेकर मर गए। इसी राजगृह नगर में, एक धनी गृहस्थ की पत्नी, पुत्री और बहू ने श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में सुगंध, फूल और अन्य भेंट लेकर अवशेषों के स्थान पर जाना शुरू किया और कहा, "हम अवशेषों की पूजा करेंगे।" परिवार के मुखिया ने निंदा भरे शब्दों से इस पूजा को हतोत्साहित किया और कहा, "हड्डियों की पूजा करने का क्या अर्थ है?" परन्तु उन्होंने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और चली गईं। उनकी मृत्यु के बाद उनका जन्म देवलोक में हुआ, लेकिन उनका पुनर्जन्म पेटों के बीच हुआ।

फिर एक दिन आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महाकस्सपा करुणावश मंदिर के प्रांगण में खड़े हुए और तीन श्लोकों में उस व्यक्ति से प्रश्न किया जिसने अवशेषों का अपमान किया था:

1. "जब तुम हवा में खड़े होते हो, तो तुम एक दुर्गंधयुक्त, सड़ी हुई गंध छोड़ते हो, और कीड़े तुम्हारे सड़े हुए चेहरे को कुतर रहे हैं।"

2. "तुमने अतीत में ऐसा कौन सा कर्म किया है जिसके लिए वे तलवार लेकर तुम्हें बार-बार काटते हैं? क्या वे इसी कारण तुम पर कास्टिक तेल छिड़ककर तुम्हें बार-बार काटते हैं?"

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया गया? किस कर्म के कारण तुम यह कष्ट भोग रहे हो?" (जैसा कि III. 8, 3 में है)।

पेटा ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:

4. "सुंदर राजगाह नगर में, रमणीय गिरिब्बा में, महोदय, मैं अत्यंत धन और अनाज का स्वामी था।"

5. "मेरी पत्नी, पुत्री और बहू तमाला वृक्ष और नीले कमल के फूल और नया इत्र लेकर मंदिर जा रही थीं; मैंने उन्हें रोक दिया। वह दुष्ट कर्म मैंने किया था।"

6. "हम छियासी हजार हैं; हममें से प्रत्येक को अपना-अपना दुख भोगना पड़ता है। क्योंकि मैंने मंदिर में पूजा को तुच्छ समझा, इसलिए मैं नरक में भीषण पीड़ा भोग रहा हूँ।"

7. "निश्चित रूप से जो लोग बुद्ध के पर्व के दौरान पूजा-अर्चना करते समय दुष्टता प्रकट करते हैं, आपने उन्हें ऐसा करने से हतोत्साहित किया।"

8. "और देखो, ये स्त्रियाँ सजी-धजी और मालाएँ पहने आ रही हैं। वे अपने पुष्प अर्पण का फल भोग रही हैं। वे भाग्यशाली और सुंदर हैं।"

9. "जब बुद्धिमान लोग इस अद्‌भुत और रोमांचकारी चमत्कार को देखेंगे, तो वे आपकी पूजा और आराधना करेंगे, हे महान ऋषि।"

10. "अब जब मैं, जो इस दुख में हूँ, इस अवस्था से निकलकर फिर से मनुष्य बन गया हूँ, तो मैं बार-बार लगन से मंदिर की पूजा करूँगा।"

महाकस्सपा ने इस घटना को अपना आधार बनाया और वहां उपस्थित लोगों को उपदेश दिया।

पुस्तक III का अंत
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> अंबासक्खरा

पिछला <<<<----------------------- 4.1 ------------------------->>>> अगला

पुस्तक IV: महावग्गो

36. अंबसक्खरा की कहानी (4.1)
जब भगवान बुद्ध जेतवन मठ में रह रहे थे, तब वैशाली में अंबसक्खरा नाम का एक लिच्छवी राजा, जो विधर्मी और अविश्वासी था, शासन कर रहा था। वहाँ एक ईमानदार व्यापारी भी रहता था जिसने चंदन के तख्तों से एक दलदल पर पुल बनाया था। दूसरी ओर, उसके भतीजे को अपने चाचा के बाज़ार में चोरी का सामान लाने के लिए लकड़ी के खंभों पर लटकाकर दंडित किया गया था। इन श्लोकों में इसी की कहानी बताई गई है। पहला श्लोक संपादकों द्वारा जोड़ा गया है

1. वज्जियों का एक नगर था जिसका नाम वैशाली था; वहाँ लिच्छवी राजा अंबसक्खरा रहते थे। जब उन्होंने नगर के बाहर एक पेटा देखा तो वे जानना चाहते थे कि ऐसा क्यों है, और उन्होंने तुरंत उससे पूछा:

2. "इस आदमी के पास न बिस्तर है, न पलंग, न आगे-पीछे चलता है; न भोजन है, न पेय, न वस्त्र; न ही उसकी कोई महिला परिचारिका है।"

3. "अतीत में उसके जिन रिश्तेदारों और मित्रों ने उस पर दया दिखाई थी, वे अब उसे देख नहीं पा रहे हैं। इसलिए वे उसे त्याग चुके हैं।"

4. जो नीचे है उसके कोई मित्र नहीं होते; मित्र दुख देखकर साथ छोड़ देते हैं, जबकि समृद्धि देखकर हमारा साथ देते हैं। जो ऊपर है उसके बहुत मित्र होते हैं।

5. "अपनी सारी संपत्ति का आनंद लेने से उसकी संपत्ति नष्ट हो जाएगी। उसका शरीर रक्त से लथपथ और पूरी तरह से टूटा हुआ, ओस की बूंद की तरह, उसके जीवन का अंत हो जाएगा।"

6. "उससे, जो अंत तक कष्ट सहता रहा, और प्रभामंडल की लकड़ी के खंभे से भयभीत था (राजा ने कहा: 'हे यक्ष, तुम किस प्रकार जीना चाहते हो! क्या जीवित रहना बेहतर है?'"

पेटा :

7. "यह आदमी (सूली पर) मेरा रिश्तेदार था; मुझे उसका पिछला जीवन याद है। उसे देखकर मुझे उस पर दया आई, नहीं तो उसकी दुष्टता के कारण वह नरक में गिर जाता

8. "हे लिच्छवी, यहाँ से जाने पर यह पापी व्यक्ति भीड़भाड़ वाले, भयानक, अत्यधिक गर्म, कठोर और डरावने नरक में पुनर्जन्म लेगा।"

9. "यहाँ तक कि वह सूली, अपने विभिन्न भागों सहित, उस नरक से बेहतर है। ईश्वर करे वह उस कठोर और भयानक, अत्यंत दुखद और पूर्णतः पीड़ादायक नरक में न गिरे।"

10. "यदि यह व्यक्ति मेरी बातें सुन ले, तो वह दु:ख से व्याकुल होकर अपनी प्राण त्याग देगा। अतः मैं उसके सामने ये बातें नहीं कहता, कहीं ऐसा न हो कि मेरे कारण ही उसका प्राण समाप्त हो जाए।"

राजा:

11. "मैंने इस आदमी के मामले के बारे में सुना है, लेकिन मैं आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ। यदि आप हमें अनुमति देते हैं तो हम आपसे पूछेंगे; लेकिन हमारे प्रति कोई क्रोध न हो

पेटा:

12. "इस बात का मैं आपको वचन देता हूँ। अविश्वासी को यह कहानी नहीं सुनाई जाएगी। भले ही मैं अनिच्छुक रहूँ, आप मेरी बातों पर विश्वास कर सकते हैं। आप जो चाहें पूछें, मैं अपनी क्षमता के अनुसार उत्तर दूंगा।"

राजा:

13. "जो कुछ मैं अपनी आँखों से देखूंगा, उस सब में मुझे पूरा विश्वास हो। यदि देखने के बाद भी मुझे विश्वास न हो, तो हे यक्ष, तुम इसे मेरा ही कर्म बना देना।"

पेटा:

14. "मुझे अपना निष्ठापूर्ण वादा दीजिए। जब आप धर्म सुन लें, तो आप विश्वास प्राप्त करें, जबकि आप निर्मल मन से उच्च ज्ञान की खोज करें। आपने जो भी धर्म सुना हो या न सुना हो, मैं उन सभी को ज्ञात बताऊँगा।"

राजा:

15. "तुम एक सजे-धजे सफेद घोड़े पर सवार होकर यहाँ उस व्यक्ति के पास आए हो जिसे सूली पर चढ़ाया गया है। यह जाने का एक अद्भुत और देखने योग्य तरीका है। यह किस कर्म का परिणाम है?"

पेटा:

16. "वैसाली शहर के बीचोंबीच दलदल से होकर जाने वाले रास्ते में एक भयानक जगह थी। एक दिन धार्मिक भाव में मैंने सफेद चंदन लिया और उसे उस जगह पर रख दिया

17. "उस पर पैर रखकर हम और अन्य लोग पार चले गए। यह एक अद्भुत और देखने योग्य वाहन है। यह उसी कार्य का परिणाम है।"

राजा:

18 "आपका चेहरा सभी क्षेत्रों को प्रकाशित करता है, और आपकी सुगंध सभी दिशाओं में फैलती है। आप यक्ष के समान शक्ति और सामर्थ्य रखते हैं, लेकिन आप नग्न हैं। इसका क्या परिणाम है?"

पेटा :

19. क्रोध से मुक्त और सदा विश्वासपूर्ण मन से, मैं कोमल शब्दों के साथ लोगों के पास पहुँचा। उसी कर्म का यह परिणाम है; मेरा देव-स्वरूप सदा उज्ज्वल है

20. "जब मैंने धर्म में दृढ़ रहने वालों की प्रसिद्धि और ख्याति देखी, तो मैंने हृदय में श्रद्धापूर्वक उसका प्रचार किया। उसी कर्म का यह फल है; मेरी देव सुगंध निरंतर फैलती रहती है।"

21. "जब मेरे साथी नदी पार करते समय स्नान कर रहे थे, तो मैंने उनके वस्त्र लेकर किनारे पर छिपा दिए। मेरा इरादा मज़ाक करने का था और मेरे मन में कोई बुरी भावना नहीं थी। इसलिए मैं नंगा हूँ और मेरा जीवन दयनीय है।"

राजा:

22. "यदि कोई खेल-खेल में बुराई करता है, तो वे कहते हैं कि यही उसके कर्मों का फल है; परन्तु यदि वह खेल-खेल में ऐसा नहीं करता, तो वे उसके कर्मों का क्या परिणाम बताते हैं?"

पेटा :

23. “जिन मनुष्यों के मन में दुष्ट इरादे हों और जिनके वचन और कर्म भ्रष्ट हों, निःसंदेह शरीर के विखंडन के समय वे नरक में प्रवेश करेंगे।”

24. "परन्तु दूसरे, जो उज्ज्वल संसार की लालसा रखते हैं, दान में आनंद पाते हैं और स्वयं को संयम में रखते हैं; ये लोग जब शरीर का विघटन करते हैं तो निःसंदेह उज्ज्वल संसार में प्रवेश करते हैं।"

जब राजा ने कर्मों के फल का संक्षिप्त विश्लेषण कर लिया, तो अविश्वासी राजा ने यह आयत कही:

25. "मैं पूछता हूँ, मुझे वास्तव में यह क्यों मानना चाहिए कि यह सद्गुण और पाप का परिणाम है? या मैंने ऐसा क्या देखा है जिस पर मुझे ईमानदारी से विश्वास करना चाहिए? या कौन मुझे इस पर विश्वास दिला सकता है?"

पेटा:

26. "जब तुम देख और सुन लो, तो विश्वास करो: 'यह पुण्य और पाप का परिणाम है।' यदि पुण्य और पाप दोनों का अस्तित्व ही न हो, तो क्या मनुष्य धन्य होंगे या दुखी?"

27. "और यदि मनुष्य इस संसार में पुण्य और पाप कर्म न करते, तो क्या ऊँच-नीच के लोग इस संसार में सुखी या दुखी नहीं होते?"

28. "परन्तु मनुष्य संसार में पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्म करते हैं, इसी कारण ऊँच-नीच के लोग संसार में सुखी या दुखी होते हैं।"

29. "कहते हैं कि कर्मों का फल दो प्रकार का होता है; एक वह जो धन्य है और दूसरा वह जो संकट में है। देवता आनंदित होते हैं, परन्तु मूर्ख इस दोहरे परिणाम को देखकर पीड़ा भोगते हैं।"

उनसे यह प्रश्न पूछा गया: "परन्तु जो कर्म के फल में विश्वास रखते हो, फिर तुम इतना कष्ट क्यों सहते हो?"

30. "दूसरों द्वारा किए गए कोई भी कार्य मेरे लिए नहीं हैं: कोई भी ऐसा नहीं है जो उपहार देते समय उन्हें मेरे नाम से दे: भोजन और पेय के अलावा वस्त्र और पलंग भी नहीं। इसलिए मैं नंगा हूँ, और मेरा जीवन दयनीय है।"

जब राजा ने सुना कि वह वस्त्र और अन्य वस्तुएँ प्राप्त करना चाहता है, तो उसने कहा:

31. "हे यक्ष, निश्चय ही कोई न कोई साधन अवश्य होगा जिससे तुम वस्त्र प्राप्त कर सको। मुझे किसी स्रोत का उल्लेख करो; हम इस विषय पर विश्वसनीय जानकारी सुनेंगे।"

पेटा :

32. "यहाँ कप्पिटक नाम का एक भिक्षु है: वह विचारशील और नैतिक, योग्य और मुक्त, इंद्रिय-नियंत्रित, नियम से संयमित जीवन जीने वाला, शांत है, और उसने उच्चतम दृष्टिकोण प्राप्त कर लिए हैं

33. "वह वाणी में दयालु, सौम्य, नम्र और प्रसन्नतापूर्ण है, और उसका अभिवादन सच्चे भाव से व्यक्त होता है। वह शांतिपूर्वक सद्‌गुणों के क्षेत्र में निवास करता है और देवताओं और मनुष्यों से उपहारों का पात्र है।"

34. "वह शांत है और उसने बुरे विचारों के धुंध को दूर कर दिया है; वह मुक्त है, कामवासना से मुक्त है, निस्वार्थ है, ईमानदार है; उसका कोई जीवन-आधार नहीं है और न ही उसे इसकी या उसकी कोई इच्छा है। उसने तीन प्रकार के ज्ञान को उत्कृष्ट रूप से प्राप्त कर लिया है।"

35. "यद्यपि उन्होंने उसे देखा है, फिर भी वह कम ही जाना जाता है, उसके बहुत कम परिचित हैं; वज्जियों में वे उसे ऋषि कहते हैं। यक्ष उसे पूर्वाग्रहों से मुक्त, धर्मपरायण व्यक्ति के रूप में जानते हैं, जो संसार में विचरण करता है।"

36. "यदि तुम उसे एक-दो सूट दो और वह उन्हें स्वीकार कर ले, तो तुम मुझे भी वस्त्रों से सुसज्जित देखोगे।"

राजा:

37. "वह संन्यासी किस स्थान पर रहता है कि हम जाकर उसे अभी देख सकें? वही है जो आज मुझमें संदेह और अनिश्चितता, विधर्म के कठपुतली तमाशे को दूर कर सकता है।"

पेटा :

38. वे कप्पिनच्चना में बैठे हैं, कई देवों (देवदूतों) से घिरे हुए हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप, क्रोध से खुले तौर पर परहेज करते हुए, एक पवित्र प्रवचन दे रहे हैं

राजा:

39. "अब मैं जाकर ऐसा करूँगा। मैं संन्यासी को वस्त्र पहनाऊँगा। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए, तो तुम्हें भी वस्त्र उपलब्ध करा दिए जाएँगे।"

वे दोनों वहां गए और पेटा ने कहा:

40. "मैं संसार-त्यागी के पास असमय नहीं जाता। हे लिच्छविन, तुम्हारे लिए यह उचित समय नहीं है। समय रहते उससे मिलो, तब तुम उसे वहाँ अकेले बैठे देखोगे।"

निम्नलिखित छंद संपादकों द्वारा बोले गए थे:

41. जब उसने ऐसा कहा, तो लिच्छवी अपने सेवकों के साथ उस नगर में, अपने घर, अपने निवास स्थान पर चला गया।

42. उस समय से वह अपने गृहस्थ कर्तव्यों का पालन करने लगा: उसने स्नान किया और एक टोकरी में से आठ वस्त्र चुनकर अपने नौकरों के साथ उन्हें देने चला गया।

43. जब वह उस स्थान पर पहुँचा, तो उसने एक एकांतप्रिय व्यक्ति को देखा जो अपने भोजन से लौटकर एक वृक्ष की जड़ में शांत बैठा था।

44. जब वह उसके पास आया, तो उसने उससे उसके स्वास्थ्य और कुशलक्षेम के बारे में पूछते हुए कहा, "मैं वैशाली का एक लिच्छवी हूँ, और मुझे लिच्छवी अंबसक्खरा के नाम से जाना जाता है।"

45. "हे आदरणीय महोदय, कृपया मुझसे ये आठ उत्तम वस्त्र स्वीकार कीजिए; मैं इन्हें आपको भेंट करता हूँ। मैं यहाँ केवल इसी उद्देश्य से आया हूँ ताकि मैं प्रसन्न हो सकूँ।"

संन्यासी (भिक्षु):

46. "दूर से भी संन्यासी (भिक्षु) और ब्राह्मण आपके निवास से बचते हैं। आपके घर में कटोरे टूट जाते हैं और भिक्षुओं के लबादे भी फट जाते हैं

47· "अब दूसरे लोग कुल्हाड़ी जैसी लातों से संन्यासियों को सिर के बल गिरा देते हैं; संसार त्यागने वालों और संन्यासियों को ऐसी चोटें पहुंचाई जाती हैं।"

48. "तुमने उन्हें घास के साथ तिल का तेल भी नहीं दिया, और न ही तुम भटके हुए व्यक्ति को रास्ता बताते हो। अंधे से तुम स्वयं लाठी छीन लेते हो। तुम तो बड़े ही कंजूस और बेलगाम हो।"

49. "अब आप हमें दान किस कारण से और किस रूप में वितरित करेंगे?"

राजा:

"आदरणीय महोदय, मैं आपकी बात की सच्चाई स्वीकार करता हूँ। मैंने संन्यासियों और ब्राह्मणों को चोट पहुँचाई है।"

50. "मैंने मजाक करने की इच्छा रखी थी और मेरा कोई बुरा इरादा नहीं था; वास्तव में, महाराज, मेरा वह अपराध वास्तव में पाप था। उसने मजाक में ही दुष्टता की। उसका सुख अपूर्ण है, और वह पीड़ा का अनुभव करता है।"

51. "वह जवान और युवा है, लेकिन उसका नश्वर भाग्य नंगापन है। अब उसके लिए इससे भी बुरी बात क्या हो सकती है?"

52, "हे पूज्यवर, मैंने उसे बेचैनी और पाप में देखा; इसलिए मैं एक भेंट देता हूँ। हे प्रभु, आठों निवेदनों को स्वीकार करें और इन भेंटों को यक्ष को सौंप दें।"

संन्यासी (भिक्षु):

53. "निश्चित रूप से यह उपहार अनेक प्रकार से स्वीकार्य है, और यह दाता के लिए अनंत पुण्य प्रदान करे। मैं आपसे आठ वस्त्र स्वीकार करता/करती हूँ; ये उपहार यक्ष को सौंपे जाएँ।"

54. तब लिच्छवी ने शुद्धिकरण के लिए (अपनी हथेली से) जल पिया और बड़े को आठ वस्त्र दिए। "मैं यक्ष को वस्त्र पहने हुए देखता हूँ, ये वस्त्र मुझे स्वीकार्य हों।"

55. फिर उसने चंदन के तेल से अभिषेक किए हुए, सुकुल और सुंदर मुख वाले, उत्तम नस्ल के घोड़े पर सवार, उत्तम वस्त्रों से सजे हुए व्यक्ति को देखा। वह (सेवकों से) घिरा हुआ था और यक्ष के समान शक्ति प्राप्त कर चुका था।

56. राजा ने उसे हर्ष और प्रसन्नता से, सुखद विचारों और चमकते चेहरे के साथ देखा; क्योंकि उसने उसका कर्म और उसका महान परिणाम देखा था; उसने इसे अपनी आँखों से देखा था।

57. वह उसके पास गया और बोला, "मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों को दान दूंगा; वास्तव में मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे दान न दिया जा सके। हे यक्ष, आप मेरे लिए एक महान सहायक रहे हैं।"

पेटा:

58. "और हे लिच्छवी, तुमने मुझे ऐसे उपहार दिए हैं जो व्यर्थ नहीं गए। मैं भी तुमसे मित्रता प्राप्त करता हूँ, मैं जो अमानव हूँ, तुमसे जो मानव हूँ।"

राजा:

59. "रास्ता, सगे-संबंधी, शरण, मित्र, तुम मेरे लिए रहे हो, हाँ, देव भी। मैं तुम्हें अंजलि प्रणाम करता हूँ, यक्ष। मैं तुम्हें फिर से देखना चाहता हूँ।"

पेटा :

60. "यदि तुम अविश्वासी, कंजूस हो जाओ, या गलत राय रखो, और उसी अवस्था में यदि तुम मुझे देखने की कोशिश करो, तो भले ही मैं तुम्हें देखूँ, फिर भी मैं तुमसे बात नहीं करूँगा

61. "यदि आप धम्म का आदर करते हैं, दान देने में आनंद पाते हैं, अपने आप को (इंद्रियों में) संयमित रखते हैं, और संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए आपूर्ति का स्रोत हैं, और यदि आपको इस प्रकार मुझे देखने का अवसर मिलता है और मैं आपको देखता हूँ, तो मैं आपका सहृदयतापूर्वक अभिवादन करूँगा।"

62. "जल्दी से इस आदमी को सूली से उतार दो, क्योंकि इस घटना के माध्यम से हमारे बीच घनिष्ठ संबंध बन गए हैं, मैं उसकी पीड़ा के बारे में सोच रहा हूँ, अब जबकि हमने यहाँ आपसी मित्रता स्थापित कर ली है।"

63. "और यदि इस व्यक्ति को शीघ्र ही सूली से उतार दिया जाए, तो वह उत्साहपूर्वक पुण्य कर्म करेगा और इस वास्तविक नरक से मुक्त हो जाएगा। अन्यथा, कर्म का फल भोगना ही होगा।"

64. "कप्पिटक के पास जाओ और उचित समय पर उसके साथ धन का बंटवारा करो। उसके सामने बैठकर उससे अपने विचार पूछो। वह तुम्हें इस मामले का उत्तर देगा।"

65. "इसी भिक्षु के पास जाओ और उससे पूछो - तुम पुण्य चाहते हो और तुम्हारा मन दूषित नहीं है - वह अपने ज्ञान के अनुसार तुम्हें वह सब समझाएगा जो लोगों ने नहीं सुना है, हाँ, वह समस्त धम्म का प्रचार करेगा। (और उसने विचारपूर्वक स्वर्ग में सुखद पुनर्जन्मों के धम्म [मार्ग] की घोषणा की।)

66. जब उसने वहाँ गुप्त रूप से बातचीत की और उस अमानवीय प्राणी से मित्रता स्थापित कर ली, तो वह लिच्छवियों के पास चला गया; फिर उसने सभा को संबोधित किया जो उस समय सत्र में थी:

राजा:

67. "महोदय, मेरी बात सुनिए; बेहतर मार्ग चुनकर मैं अपनी खोज पूरी करूँगा। क्रूर कर्मों वाला व्यक्ति, जिसे सूली पर चढ़ाया गया है, उसे अच्छी तरह से दंडित किया गया है, वह असफल रहा है,

68. बीस रातों से, जब से उसे बांधकर रखा गया है, वह न तो जीवित है और न ही मृत। अब मैं उसे मुक्त करूँगा। सभा इसकी अनुमति दे!

सभा:

69. "इसे और दूसरे को जल्दी से छोड़ दें। कौन कह सकता है, आप ऐसा कर रहे हैं? आप जो जानते हैं, उसके अनुसार करें। कंपनी आपके इरादों की अनुमति देती है।"

70. वह उस स्थान पर गया और जल्दी से खंभे से बंधे हुए व्यक्ति को खोल दिया। फिर उससे कहा: "मित्र, डरो मत!" और उसे चिकित्सकों के हवाले कर दिया।

71. लिच्छवी कप्पितक के समक्ष गया और उचित समय पर उसके साथ धन का आदान-प्रदान किया। उसके समक्ष बैठकर, कारण पूछते हुए उसने उससे इस प्रकार पूछा:

राजा:

72. "क्रूर कर्मों के दोषी व्यक्ति को सूली पर लटकाकर उचित दंड दिया गया है, वह असफल रहा है। बीस रातों से, जब से उसे बांधा गया है, वह न तो जीवित है और न ही मृत है।"

73. "अब मैंने इस यक्ष के कहने पर उसे रिहा कर दिया, आदरणीय महोदय। अब मुझे बताइए, क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है जिससे वह नरक से बच सके?"

74. "आदरणीय महोदय, कृपया बताएं कि क्या कोई उपाय है; हम विश्वासपूर्वक आपकी बात सुनेंगे। क्या उन कृत्यों को मिटाना संभव नहीं है, भले ही हम उन्हें यहां न समझ पाएं?"

संन्यासी (भिक्षु):

75, यदि वह दिन-रात, पूरी लगन और उत्साह से अच्छे कर्म करे, तो वह उस नरक से मुक्त हो जाएगा; कर्म का अनुभव कहीं और करना होगा

राजा:

76. "यह मामला उस आदमी के लिए विद्वतापूर्ण है। अब, आदरणीय महोदय, मुझ पर भी दया कीजिए। मुझे सिखाइए, मुझे सलाह दीजिए, हे बुद्धिमान, ताकि मैं नरक में न जाऊँ।"

संन्यासी:

77. "आज भी पवित्र मन से बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं का संघ) की शरण लो, और इसी प्रकार पाँच नैतिक उपदेशों को पूर्ण और अक्षुण्ण रूप से ग्रहण करो

78. "अब से किसी की जान लेने से परहेज करो; इस संसार में जो तुम्हें नहीं दिया गया है, उसे त्याग दो; शराब का सेवन न करो, झूठ न बोलो; और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहो;

79. "और पूरी निष्ठा से इस उत्तम अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करो जो सुखद परिणामों की ओर ले जाता है।"

80. "शांत मन से धर्मी व्यक्ति को आवश्यक वस्तुएँ, वस्त्र, भिक्षापात्र में दान, विश्राम स्थान, भोजन और पेय, ठोस भोजन, वस्त्र और सोने का स्थान प्रदान करो।"

81. "नैतिक रूप से श्रेष्ठ, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षु भोजन और पेय से तरोताजा होते हैं। पुण्य हमेशा बढ़ता रहता है।"

82. "इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन और परिश्रम से धार्मिक कार्यों का अभ्यास करके आप उस नरक से भी मुक्त हो सकते हैं। कर्म का फल कहीं और भुगतना ही पड़ता है।"

राजा:

83. "आज भी मैं पवित्र मन से बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं का संघ) की शरण लेता हूँ; इसी प्रकार मैं पाँच नैतिक उपदेशों को पूर्ण और अक्षुण्ण रूप से ग्रहण करता हूँ।"

84. "मैं अब से किसी की जान लेने से परहेज करूंगा; मैं इस दुनिया में जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है उसे अस्वीकार करूंगा; मैं शराब का सेवन नहीं करूंगा और न ही झूठ बोलूंगा; और मैं अपनी पत्नी से संतुष्ट रहूंगा।"

85. "और मैं पूरी गंभीरता से इस उत्तम अष्टांगिक भलाई का संकल्प लेता हूँ, जो सुखद परिणामों की ओर ले जाती है।"

86. "नैतिक रूप से श्रेष्ठ, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षुओं को मैं आवश्यक वस्तुएँ, वस्त्र, भिक्षापात्र में दान, विश्राम स्थल, भोजन और पेय, ठोस भोजन, वस्त्र और विश्राम कक्ष प्रदान करूँगा। बुद्धों के उपदेशों में आनंद पाते हुए, मैं अविचलित रहूँगा।"

87. ऐसा ही एक व्यक्ति अम्बासक्खरा, लिच्छवी, वैशाली का गृहस्थ बन गया; वह विनम्र और विश्वासी था, सेवाएँ करते हुए उसने भिक्षुओं और उनके संघ का उत्साहपूर्वक समर्थन किया।

88. जब खूंटे से बांधे गए व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक हो गया, तो उसने स्वेच्छा से खुशी-खुशी संसार का त्याग कर भिक्षु कप्पितकुट्टमा के पास आया। तब उन दोनों ने संन्यास के फल प्राप्त किए।

89. योग्य पुरुषों की सेवा करना ऐसा ही होता है। अच्छे और बुद्धिमान लोगों के लिए यह भरपूर प्रतिफल देता है। सूली पर लटकाए गए व्यक्ति को सर्वोच्च प्रतिफल प्राप्त हुआ, जबकि अर्नबसक्खरा को कम फल मिला।

आदरणीय महाकप्पिटक, जो गुरु (बुद्ध) को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी गए थे, ने उन्हें वह बात बताई जो पेटा ने राजा को बताई थी। गुरु (बुद्ध) ने इस विषय पर उपस्थित अनेक लोगों के सामने प्रवचन दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सेर्लसका की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.2 -------------------------->>>> अगला

37. सेरलिसाका की कहानी (4.2)
(यह विमानवत्थु में VII-10 के समान है।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> नंदक की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.3 -------------------------->>>> अगला

38. नंदका की कहानी (4.3)
गुरु (बुद्ध) के निधन के दो सौ वर्ष बाद, सूरत्थ (संभवतः सौराष्ट्र, गुजरात) में राजा पिंगला शासन कर रहे थे। उनके सेनापति नंदक थे, जिनके विचार विधर्मी (गलत) थे। संपादकों ने उनके बारे में यह कहानी बताई है।

1. ऐसा कहा जाता है कि राजा पिंगलाका सूरत नगर के जनसमुदाय के स्वामी थे। वे मौर्यों (मगध/बिहार के मौर्यों) की सेवा करने गए थे और सूरत लौट रहे थे।

2. दोपहर की भीषण गर्मी में राजा एक दलदल में पहुँचा; उसने एक रमणीय मार्ग देखा, जो पेटा पक्षियों का निवास स्थान था।

3. राजा ने अपने सारथी से कहा: "यह एक रमणीय मार्ग है; शांत, सुरक्षित, भाग्यशाली, सारथी, इसी मार्ग पर चलो।"

4. इस बिंदु से सूरत का राजा अपनी चार प्रकार की सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक) के साथ सूरत से आए सैनिकों का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ा।

5. घबराए हुए चेहरे के साथ एक व्यक्ति ने सूरत के शासक से इस प्रकार कहा: "हम गलत रास्ते पर जा रहे हैं; यह भयानक, रोंगटे खड़े कर देने वाला है।"

6. "आगे तो रास्ता दिख रहा है, लेकिन पीछे कुछ नहीं दिख रहा। हम यमराज के आदमियों के पास गलत रास्ते पर चल रहे हैं।"

7. "एक अमानवीय गंध बह रही है; एक भयानक शोर सुनाई दे रहा है।" सूरत के राजा ने घबराकर सारथी से ऐसा कहा।

8. "हम गलत रास्ते पर जा रहे हैं; यह भयानक और रोंगटे खड़े कर देने वाला है। आगे तो रास्ता दिख रहा है, लेकिन पीछे कुछ नहीं दिख रहा।"

9. "हम यमराजों के पास गलत रास्ते पर चल रहे हैं। एक अमानवीय गंध आ रही है; एक भयानक शोर सुनाई दे रहा है।"

10. वह हाथी की पीठ पर सवार हुआ; और चारों दिशाओं में देखते हुए, उसने घनी छाया वाला एक बरगद का पेड़ देखा।

11. वह वृक्ष गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसा दिखता था, और उसका ऊपरी भाग धुंध जैसा था। राजा ने अपने सारथी से पूछा: "वह बड़ी वस्तु क्या है जो हमें दिखाई दे रही है, जो गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसी है और जिसका ऊपरी भाग धुंध जैसा है?"

सारथी :

12. "महाराज, वह एक बरगद है जिसमें भरपूर छाया है; यह एक ऐसा वृक्ष है जो रंग में गहरे नीले गरजते बादल जैसा दिखता है, और इसके शीर्ष का रंग धुंध जैसा है।"

13. सूरत का राजा उस दिशा में चल पड़ा जहाँ वह विशाल वृक्ष दिखाई दे रहा था, जिसका रंग गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसा था और जिसका ऊपरी भाग धुंध के रंग का था।

14. हाथी की पीठ से उतरकर राजा वृक्ष के पास पहुँचा और अपने मंत्रियों और सेवकों के साथ बरगद की जड़ों में बैठ गया।

15. उसने पानी से भरा एक घड़ा और केक देखे। फिर एक पुरुष, जो देव के समान दिखता था और सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित था, आया और उसने राजा को इस प्रकार संबोधित किया:

16. "स्वागत है महाराज; आप ज्यादा दूर नहीं आए हैं, पानी पीजिए, केक खाइए, हे विजेता!"

17. राजा ने अपने मंत्रियों और सेवकों के साथ पानी पिया और केक खाए, फिर राजा ने इस प्रकार कहा:

18. "अब मैं पूछूं, हे पुरिन्ददा, क्या आप देव (देवदूत), गंधर्व (देव के सेवक), या सक्का (स्वर्ग के राजा इंद्र) हैं? हम आपको नहीं जानते, इसलिए हम आपको कैसे जान सकते हैं?"

पेटा:

19. "मैं न तो देव हूँ, न ही गंधर्व, और न ही सक्का पुरिंददा, मैं एक पेटा हूँ, हे प्रभु, जो सूरत से यहाँ आया हूँ

राजा:

20. "आप कैसे गुणी थे, आपने अतीत में सूरत में कैसा व्यवहार किया? आपके किस पवित्र जीवन के माध्यम से आपने यह वैभव प्राप्त किया है?"

पेटा:

21. "हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, इसे सुनो, और तुम भी, राजा के मंत्रियों और सेवकों, और ब्राह्मण पुरोहित भी सुनो,

22. "हे प्रभु, मैं सूरत का रहने वाला हूँ; मैं बुरे इरादों वाला और झूठे सिद्धांतों का पालन करने वाला व्यक्ति था। मेरा चरित्र खराब था; मैं कंजूस और गाली-गलौज करने वाला था।"

23. मैंने बहुत से दानशील और अच्छे काम करने वालों को रोका, और दान देने के इच्छुक अन्य लोगों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

24. (कहते हुए) 'दान देने से कोई प्रतिफल नहीं मिलता। संयम का फल कहाँ से आता है? कोई शिक्षक ही नहीं है। जो दान नहीं देता, उसे कौन दंडित करेगा?'

25. "जीव-जंतुओं में एक का भार दूसरे के भार के बराबर होता है। वे सबसे बड़े (वृद्ध) का सम्मान क्यों करते हैं? न तो बल है और न ही ऊर्जा। मनुष्य के परिश्रम (कर्मों में) की बात क्यों करें?"

26. "दान देने से कोई लाभ नहीं होता; यह शत्रु को दूर नहीं करता। मनुष्य वही प्राप्त करता है जो उसे प्राप्त करना होता है और वही ग्रहण करता है जो उसे मिलना तय होता है।"

27. "न तो माता है, न पिता, न भाई: वर्तमान से परे कोई संसार नहीं है। न कोई उपहार है; न कोई बलिदान है: कुछ भी सुस्थापित अस्तित्व में नहीं है।"

28. जो कोई किसी मनुष्य को चोट पहुँचाता है या किसी दूसरे का सिर काट देता है, वह जीवित प्राणियों के प्रति कोई अन्याय नहीं करता।

29. "एक जीव अविनाशी और अविभाज्य है; वह (या तो) अष्टकोणीय है या गेंद के समान गोलाकार; वह पाँच सौ योजन ऊँचा है। उसे कौन नष्ट कर सकता है?"

30. जिस प्रकार फेंकी गई डोरी का गोला खोलने वाले से दूर लुढ़क जाता है, ठीक उसी प्रकार जीवित मनुष्य उसे खोलने वालों से दूर लुढ़क जाता है।

31. "जैसे कोई एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव पहुँच जाता है, वैसे ही सजीव प्राणी दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।"

32. "जैसे कोई व्यक्ति एक घर से निकलकर दूसरे घर में जाता है, वैसे ही जीवित प्राणी दूसरे पात्र में प्रवेश करता है।"

33. "चौरासी लाख महाकल्पों के पुनर्जन्म के चक्र से गुजरने के बाद, मूर्ख और बुद्धिमान दोनों ही अपने बुरे कर्मों का अंत कर देते हैं। सुख और दुख दोनों को टोकरी-टोकरी में मापा जाता है। जो विजयी होता है, वही सब कुछ समझता है। बाकी सब मूर्ख हैं! मैं ऐसे ही विचार रखता था।"

34. "यदि मैं भटक रहा था, अज्ञान से भरा हुआ था, तो मैं विधर्मी था, गुणी नहीं। मैं कंजूस और दुर्व्यवहार करने वाला था। छह महीने से भी कम समय में मेरी मृत्यु हो जाएगी (अब से, पेटा की अवस्था से)।"

35. मैं उस अत्यंत कठोर और भयानक नरक में गिरूँगा। वह चार कोनों वाला और चार द्वारों वाला नरक है।

36. "इसे भागों में विभाजित किया गया है, यह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है और ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।"

37. इसका लोहे का फर्श गर्मी से दमक रहा है। सौ योजन तक चारों ओर चमकता हुआ, यह अनंत काल तक विद्यमान है। एक लाख इकाइयाँ गुजरती हैं और तुरंत एक ध्वनि सुनाई देती है। एक लाख (10 लाख वर्ष) बीत चुके हैं, महाराज, जिसका सौवां भाग एक करोड़ (10 लाख करोड़ वर्ष) होता है; जो लोग विधर्मी और बुरे चरित्र के थे और धर्मियों का अपमान करते थे, वे एक लाख करोड़ वर्षों तक नरक में यातना भोगेंगे। उस स्थान पर मैं दीर्घ पीड़ा सहूँगा।

38. "अतः मैं बुरे कर्मों के फल पर अत्यंत शोक व्यक्त करता/करती हूँ। हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, मेरी बात सुनिए: आपको शुभकामनाएँ। मेरी एक पुत्री है, उत्तरा!"

39. वह अच्छे काम करती है और नैतिक उपदेशों और पर्वों (भोजन दान) में आनंद पाती है। वह संयमी, उदार, बुद्धिमान और निस्वार्थ है।

40. "वह अपने निर्देश (शिक्षा) के प्रति पूर्णतः आज्ञाकारी है और दूसरों के परिवार में बहू है; वह महिमावान बुद्ध, शाक्य ऋषि की गृहस्थ शिष्या है।"

41. "नैतिकता में प्रख्यात एक रनोंक भीख मांगने के लिए गाँव में आया। उसकी आँखें झुकी हुई थीं: वह सचेत (सतर्क), सतर्क (संवेदी), और संयमित था। नियमित रूप से घर-घर भीख मांगते हुए वह उसके घर आया।"

42. "उत्तरा ने उसे देखकर कहा, 'तुम्हें शुभकामनाएँ!' उसने उसे एक पानी का घड़ा और कई तरह की रोटियाँ दीं। यह कहते हुए:

43. "मेरे पिता का निधन हो गया है, आदरणीय महोदय: क्या इससे उन्हें सहायता मिलेगी?" ऐसा करते ही परिणाम सामने आ गया।

44. "मैं राजा वेसवना की तरह भोजन कर रहा हूँ और सुखों का आनंद ले रहा हूँ। हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, यह सुनिए:

45. "बुद्ध को संसार में और देवों (देवदूतों) में सर्वोच्च कहा जाता है। हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ बुद्ध की शरण में जाओ।"

46. "आठ गुना मार्ग से वे अमर धाम पहुँचते हैं। हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ धम्म (बुद्ध के मार्ग) की शरण में जाओ।"

47. "चारों मार्गों पर चलते हुए, चारों फलों में खड़े होकर, यह (बुद्ध के भिक्षुओं का) संघ सीधा और ज्ञान और नैतिकता के प्रति समर्पित है।"

48. "हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बुद्ध के भिक्षुओं के आश्रम में शरण लो। हत्या से शीघ्र दूर रहो; संसार में जो कुछ तुम्हें नहीं दिया गया है, उसका त्याग करो; शराब का अधिक सेवन न करो; झूठ न बोलो; और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहो।"

राजा:

49. "हे यक्ष, आप मेरे कल्याण के बारे में सोचते हैं; हे देव, आप मेरी भलाई के बारे में सोचते हैं! मैं आपका वचन मानूंगा; आप मेरे गुरु हैं।"

50. मैं बुद्ध और सर्वोच्च धम्म (उनके मार्ग और नियम) की शरण लेता हूँ, और मैं मनुष्यों और देवताओं के (भिक्षुओं के) संघ की शरण लेता हूँ।

51. मैं शीघ्र ही जीवन से परहेज करता हूँ; मैं संसार में जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है, उसे अस्वीकार करता हूँ; मैं शराब का सेवन नहीं करता; मैं झूठ नहीं बोलता; और मैं अपनी पत्नी से संतुष्ट हूँ।

52. "मैंने अपनी बड़बड़ाहट को नदी की धारा में शीघ्रता से बहा दिया। मैंने बुद्ध की शिक्षाओं में आनंद लेते हुए दुष्ट सिद्धांतों को त्याग दिया।"

53. इस प्रकार सूरत के राजा ने अपने पापमय दृष्टिकोण का त्याग करते हुए कहा, भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, वह पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने रथ पर सवार हो गए!
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> रेवती की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.4 -------------------------->>>> अगला

39. रेवती की कहानी (4.4)
(यह विमानवत्थु के श्लोक 2 के समान है)

लिंक: Vimanavatthu5.2
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गन्ने की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.5 -------------------------->>>> अगला

40. गन्ने की कहानी (4.5)
जब भगवान बुद्ध बांस के जंगल वाले मठ में थे, तब गन्ने का एक डंठल ले जा रहा एक व्यक्ति उसे चबाता हुआ चला गया। श्लोकों में इसका वर्णन है।

एक दिन पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना राजगृह नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई, जिसने उनसे कहा:

1. "यहाँ मुझे गन्ने का एक विशाल, चौड़ा और भरपूर फसल वाला बाग दिखाई देता है। फिर भी यह मुझे खाने के लिए कुछ नहीं देता। हे पूज्यवर, कृपया मुझे बताइए कि इसका क्या परिणाम है?"

2. "मैं पीड़ित (बीमार) हूँ और भूख से मर रहा हूँ; मैं संघर्ष कर रहा हूँ, कुछ खाने की कोशिश कर रहा हूँ, मैं लगभग मर चुका हूँ; मैं विलाप कर रहा हूँ। यह किस कर्म का परिणाम है?"

3. "मैं व्याकुल हूँ, और धरती पर गिर रहा हूँ। मैं गर्मी में मछली की तरह लोट रहा हूँ, और रोते-रोते मेरे शरीर से आँसू टपक रहे हैं। हे पूज्यवर, मुझे बताइए, यह किस बात का परिणाम है?"

4. "मैं भूखा, प्यासा और थका हुआ हूँ, मैं भयभीत हूँ और मुझे कोई सुख या आनंद नहीं मिलता। आपको शुभकामनाएँ! इस मामले के बारे में पूछने के लिए। अब मुझे भोजन के रूप में कुछ गन्ना कैसे मिल सकता है?"

महामोग्गलाना:

5. "पिछले समय में, जब आप पिछले जन्म में मनुष्य थे, तो आपने स्वयं से एक कर्म किया था। अब मैं आपको इस विषय के बारे में बताता हूँ, और जब आप सुनें, तो इसे इसी रूप में जान लें

6. "आप चलते-चलते गन्ने खा रहे थे, और एक आदमी आपके पीछे आ रहा था। उसने आपसे कहा कि उसे भी कुछ चाहिए, और आपने उसे एक शब्द भी नहीं कहा।"

7. "यद्यपि आपने बोलने से इनकार कर दिया, फिर भी उसने आपसे विनती की और कहा, 'महोदय, मुझे गन्ना दीजिए।' तब आपने उसे पीछे से (बिना देखे/अनादर करते हुए) कुछ गन्ना दे दिया। उस कृत्य का यह दुष्परिणाम आपके सामने आया।"

8. "यहाँ देखो! तुम अपने पीछे से कुछ गन्ने (बिना देखे) उठा सकते हो; उसे उठाओ और जी भर कर खाओ। इस कार्य से ही तुम प्रसन्न, आनंदित और खुश हो जाओगे।"

9. "वह पीछे से (बिना देखे) गया और उसे ले आया। जब वह उसके हाथों में आ गया, तो उसने जी भर कर खाया। इसी से वह प्रसन्न, आनंदित और खुश हुआ।"

पेटा ने गन्ने का एक गट्ठा इकट्ठा किया और उसे एक बड़े भिक्षु को दे दिया, जो उसे वेलुवन मठ में बुद्ध के पास ले गया। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के साथ मिलकर उसे खाया और धन्यवाद दिया। उस समय से पेटा आराम से गन्ना खा सकता था। समय बीतने के साथ, उसका पुनर्जन्म त्रिविध देवदूतों (स्वर्ग में देवदूतों के बीच) में हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> राजा के पुत्रों की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.6 -------------------------->>>> अगला

41. राजा के पुत्रों की कहानी (4.6)
जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि श्रावस्ती में रहने वाले कोसल के राजा के दो प्यारे बेटे थे, जो उस समय युवावस्था में थे। अपनी अनियंत्रित युवावस्था के आवेश में उन्होंने व्यभिचार किया; और मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पेटों के रूप में हुआ, जिन्हें एक खाई में कुचला जा रहा था। रात में वे भयानक शोर मचाते थे; जब लोगों ने इसे सुना, तो वे भयभीत हो गए। यह देखकर, लोगों ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को बड़ी राशि दान की और कहा, "यह अपशगुन रुकना चाहिए।" फिर उन्होंने भगवान बुद्ध को सब कुछ बताया। उन्होंने कहा: "शिष्यों, तुम इस शोर को सुनते-सुनते थकोगे नहीं।" उन्होंने उन्हें इसका कारण बताया और निम्नलिखित श्लोक कहे:

1. "हिमालय की ढलान पर सावत्थी नाम का एक शहर है। मैंने सुना है कि उस स्थान पर एक राजा के दो पुत्र राजकुमार रहते थे।"

2. वे वासनाओं में लिप्त होकर इच्छाओं के भोग में आनंद पाते थे। वे वर्तमान सुखों के लालची थे; उन्होंने भविष्य के बारे में नहीं सोचा।

3. "उन्होंने अपनी मानवीय अवस्था त्याग दी और इस लोक से अगले लोक में चले गए। यद्यपि वे अदृश्य हैं, फिर भी वे अपने अतीत में किए गए दुष्ट कर्मों का पुरजोर अभिनंदन करते हैं;

4. "कहते हुए: 'बहुत से लोगों को उपहारों से नवाजा जाता है, हम अपने लिए ऐसा आशीर्वाद प्रदान करने में सक्षम नहीं हो पाए हैं जो स्थायी सुख लाता है।'"

5. "तो फिर वह कौन सा दुष्ट कर्म रहा होगा जिसके कारण हमें अपने राजपरिवार से अलग होना पड़ा और भूख-प्यास से पीड़ित होकर पेटों के राज्य में पुनर्जन्म लेना पड़ा?"

6. "जो लोग यहाँ स्वामी रहे हैं, वे वहाँ स्वामी नहीं रहेंगे; ऊँचे और नीचे, दोनों प्रकार के लोग भूख और प्यास से पीड़ित होकर भटकेंगे।"

7. "यह जानकर कि इस कष्ट का मूल शासकों की मनमानी में निहित है, मनुष्य प्रभुत्व के अहंकार का त्याग कर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। शरीर के नष्ट होने के बाद ज्ञानी व्यक्ति का पुनर्जन्म प्रकाशमय संसार में होता है।"

इस प्रकार गुरु ने इन पेटों के भाग्य का वर्णन किया और अपनी इच्छा के अनुसार धम्म का उपदेश देने वाले इन लोगों द्वारा दी गई भेंट उन्हें सौंप दी।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> राजा के पुत्र की कहानी

पिछला <<<<------------------------ 4.7 -------------------------->>>> अगला

42. राजा के पुत्र की कहानी (4.7)
जब गुरु जेतवन में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

इसमें, एक बार कितावा नामक राजा के पुत्र ने एक अकेले बुद्ध (पेचेकबुद्ध) को चोट पहुँचाई थी। उन्होंने हजारों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा, और इसी अपराध के कारण उनका पुनर्जन्म पादों के बीच हुआ। उनकी कहानी का विस्तृत वर्णन सानुवसिन के पाद वृत्तांतों में पहले ही किया जा चुका है।

लिंक :

अब गुरु ने एक वृद्ध भिक्षु को पेटा के मृत रिश्तेदारों के भाग्य के बारे में बताते हुए कहा: "न केवल आपके रिश्तेदार, बल्कि आप भी, पेटा बनने पर, इस दुनिया को छोड़ने के बाद अपने अगले जन्म में, बहुत कष्ट भोगेंगे।" वृद्ध के अनुरोध पर उन्होंने यह कहानी सुनाई

1. अतीत में किए गए कर्मों के परिणाम दृष्टि, ध्वनि, स्वाद, गंध और सुखद स्पर्श के संबंध में मन को विचलित कर सकते हैं।

2. उन्होंने नृत्य, गायन, प्रेम और खेल का भरपूर आनंद लिया था, और शाही उद्यान में घूमने के बाद वे गिरिब्बाजा में प्रवेश कर गए।

3. वहाँ उन्होंने ऋषि सुनेट्टा को देखा जो संयमी और शांत थे; उनकी आवश्यकताएँ कम थीं, वे विनम्र थे और अपने भिक्षापात्र में आने वाले थोड़े से भोजन से ही संतुष्ट रहते थे।

4. राजा अपने हाथी की पीठ से उतरे और उनके पास आकर बोले, "आदरणीय महोदय।" तब राजकुमार ने अपना कटोरा पकड़कर उसे ऊपर उठाया।

5. उसने भिक्षापात्र को जमीन पर तोड़ दिया और हंसते हुए यह कहते हुए चला गया: "मैं राजा कितावा का पुत्र हूँ। हे भिक्षु, तुम मेरा क्या करोगे?"

6. इस निर्मम कृत्य का दंड बहुत कठोर था, क्योंकि कहा जाता है कि राजकुमार को नरक में भेज दिया गया था।

7. और उसने अपने पाप के कारण छह गुना चौरासी हजार वर्षों तक नरक में भीषण पीड़ा सही।

8. उसे इस प्रकार दंडित किया गया कि वह पेट के बल लेटा हुआ था, कभी मुंह नीचे की ओर, कभी बाईं ओर तो कभी दाईं ओर करवट लेकर। कभी उसके पैर ऊपर उठाकर, कभी खड़े होकर, उस मूर्ख को लंबे समय तक यातना दी गई।

9. उसने अपने किए गए पाप के कारण हजारों-लाखों वर्षों तक नरक में भीषण पीड़ा सही।

10. निःसंदेह, जो लोग पाप रहित किसी धर्मनिष्ठ ऋषि पर हाथ रखकर बुराई करते हैं, उन्हें ऐसा कठोर दंड भुगतना पड़ता है।

11. उस स्थान पर कई वर्षों तक भीषण कष्ट सहने के बाद वह भूख और प्यास से मर गया, और वहाँ से मरकर वह बाद में एक पेटा बन गया।

12. इस प्रकार, किसी शासक की मनमानी से उत्पन्न कष्ट को देखकर, व्यक्ति को स्वयं मनमानी करने वाला शासक नहीं होना चाहिए, बल्कि विनम्रता की ओर मुड़ना चाहिए।

13. वर्तमान जीवन में भी, जो प्रबुद्धों का आदर करता है, वह प्रशंसा का पात्र है; वह ज्ञान से संपन्न होता है, और शरीर के नष्ट होने के बाद वह प्रकाशमय लोक (स्वर्ग) में जन्म लेता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गोबर खाने वालों की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.8 ------------------------->>>> अगला

43. गोबर खाने वालों की कहानी (4.8)
जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहते हैं कि सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक नगर में एक गृहस्थ ने अपने एक मित्र भिक्षु के लिए एक मठ बनवाया। फिर विभिन्न स्थानों से भिक्षु वहाँ आकर बस गए। उन्हें देखकर लोगों ने उनकी ज़रूरत की चीज़ें उन्हें भेंट कीं। अब अपने संरक्षक के विश्वासपात्र भिक्षु को यह बात सहन नहीं हुई और वह ईर्ष्या से भर गया (जैसा कि श्लोकों में वर्णित है): तब महा-मोग्गल्लाना ने उसे देखा और पूछा:

1. "तुम कौन हो, बेचारे, जो गटर से आकर वहाँ खड़े हो? मैं तुमसे पूछता हूँ, तुमने ऐसा कौन सा बुरा काम किया है कि तुम शोर मचा रहे हो?"

पेटा:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटा हूँ, यमलोक का एक दयनीय निवासी। जब से मैंने एक बेंत का काम किया है, मैं इस दुनिया से पेटों की दुनिया में चला गया हूँ।"

बड़े:

3. "अब शरीर, वाणी या मन द्वारा कौन सा बुरा कर्म किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप आप इस कष्ट को भोग रहे हैं?"

पेटा :

4. "मेरे यहाँ एक निवासी भिक्षु था जो घर के प्रति ईर्ष्यालु और द्वेषी था। मेरे घर में वह इच्छाओं से जुड़ा हुआ था, वह कंजूस और गाली देने वाला था

5. "मैंने उसकी बात मान ली और दूसरे भिक्षुओं को दोषी ठहराया। उस कर्म के कारण मैं यहाँ से पेटाओं के क्षेत्र में चला गया हूँ।"

बड़े:

6. "तुम्हारा जिगरी दोस्त, मित्र के वेश में शत्रु था। अब मैं तुमसे पूछता हूँ, मूर्ख मनुष्य, तुम्हारे शरीर के विखंडन और परलोक में जाने के बाद तुम्हारा क्या भाग्य लिखा था?"

पेटा :

7. "मैं शीर्ष पर खड़ा हूँ, हाँ, इसी अपराधी के सिर पर: वह पेटा क्षेत्र में पहुँच गया है और केवल मेरी ही सेवा करता है।"

8. "जो दूसरे लोग त्यागते हैं, वही मेरा भोजन बनता है, और बदले में वह मेरे द्वारा त्यागे गए पदार्थ से अपना जीवन यापन करता है।"

आदरणीय महामोग्गलाना ने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने इसका अर्थ समझाया और दोष ढूंढने के खतरे की ओर इशारा किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गोबर खाने वालों की दूसरी कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.9 ------------------------->>>> अगला

44. गोबर खाने वालों की दूसरी कहानी (4.9)
जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे थे, तब उन्होंने पिछली कहानी के समान यह कहानी सुनाई। यहाँ एक गृहस्थ महिला ने एक मठ का निर्माण किया और पुनर्जन्म लेकर पेटा बनी। श्लोक पिछले (#43) के समान हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> पेटास का सेट

पिछला <<<<----------------------- 4.10 -------------------------->>>> अगला

45. पेटा सेट की कहानी (4.10)

जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। कहा जाता है कि सावत्थी में कुछ अधार्मिक लोग रहते थे, जिनका कोई विश्वास नहीं था और वे लोभ के पाप से ग्रस्त थे। वे अपने जीवन में विचारों और अन्य बातों के प्रति उदासीन थे। काफी समय तक जीवित रहने के बाद उनकी मृत्यु हो गई और वे शहर के पास पेटाओं के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए। फिर एक दिन जब पूज्य महामोगल्लन भोजन के लिए सावत्थी जा रहे थे, तो उन्होंने रास्ते में पेटाओं को देखा और उनसे पूछा:

1. "आप नग्न और बदसूरत हैं; आप दुबले-पतले हैं और आपकी नसें उभरी हुई हैं, आपकी पसलियां उभरी हुई हैं और आप पतले हैं। मैं आपसे पूछता हूँ, आप कौन हैं, महोदय?"

पेटस:

2. "हम, आदरणीय महोदय, पेटस हैं, यमलोक के दुखी निवासी। क्योंकि हम बुरे कर्मों के दोषी थे, इसलिए हम यहाँ से पेटस के क्षेत्र में चले गए।"

महामोगल्लाना:

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा पाप किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादों के लोक में गए हो?"

पेटास :

4. "हम एक पखवाड़े से सार्वजनिक घाटों पर भटक रहे हैं; हमने अच्छे उपहारों (दानों) के माध्यम से अपने लिए कोई शरणस्थल नहीं बनाया है

5. "हम भय से नदी के पास जाते हैं; वह निर्जलित हो जाती है। हम गर्मी के दिनों में छाया के पास जाते हैं; वह गर्मी में परिवर्तित हो जाती है।"

6. "हम पर एक प्रचंड और झुलसा देने वाली हवा चल रही है। आदरणीय महोदय, हम इस पीड़ा के और इससे भी अधिक के पात्र हैं।"

7. "भूखे और भोजन की लालसा में हम योजनों की यात्रा करते हैं। अक्सर हम बिना कुछ लिए ही लौट आते हैं; अफसोस! हमारा पुण्य नगण्य है।"

8. "हे पूज्यवर, हम भूख से व्याकुल और बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े हैं। हम फैले हुए हैं और बेसुध पड़े हैं; हम सिर के बल गिर पड़े हैं।"

9. "और इसलिए हम दर्द से कराहते हुए धरती पर गिर पड़ते हैं, हम अपनी छाती और सिर पीटते हैं। हाय! हममें कोई गुण नहीं है।"

10. "आदरणीय महोदय, हम इस पीड़ा और इससे भी अधिक कष्ट के पात्र हैं। हमने अच्छे दान (दान) के माध्यम से अपने परजीवियों के लिए कोई आश्रय नहीं बनाया है।"

11. "निस्संदेह जब हम यहाँ से चले जाएँगे और मनुष्य रूप में पुनर्जन्म लेंगे, तो हम उदार होंगे; हम सद्गुणों के प्रति समर्पित होंगे और बहुत से अच्छे कार्य करेंगे।"

उस बुजुर्ग ने यह घटना भगवान बुद्ध को बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पाटलिपुत्त की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.11 -------------------------->>>> अगला

46. पाटलिपुत्त की कहानी (पटना) (4.11)

जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि सावत्थ और पाटलिपुत्र के कई व्यापारी सुवर्णभूमि (थाईलैंड) के लिए रवाना हुए। वहाँ उनके एक साथी, एक बीमार गृहस्थ शिष्य, जो एक स्त्री से प्रेम करता था, की मृत्यु हो गई। यद्यपि उसने अच्छे कर्म किए थे, फिर भी वह देवलोक में जन्म नहीं ले सका, बल्कि अपनी प्रेमिका के प्रति प्रेम के कारण समुद्र के बीचोंबीच एक रण-पेटा के रूप में पुनर्जन्म लिया। वहाँ भी उसका प्रेम स्त्री के प्रति बना रहा; स्त्री ने भी एक नौका ली और सुवर्णभूमि की यात्रा पर निकल पड़ी। अब यह पेटा, स्त्री को पाने की इच्छा से, नौका का मार्ग रोक दिया। तब व्यापारियों के मन में विचार आया, "अरे, ये क्या हो रहा है? यह नौका तो हिल ही नहीं रही है।" इसलिए उन्होंने पर्ची निकाली। अलौकिक शक्ति से पर्ची तीन बार उसी स्त्री पर पड़ी, जिसके लिए पेटा तड़प रहा था। यह देखकर व्यापारियों ने समुद्र में एक बाँस का बेड़ा उतारा और उस पर स्त्री को रख दिया। जैसे ही उसे जहाज से उतारा गया, जहाज तेजी से सुवन्नाभूमि की ओर चल पड़ा। फिर उस अमानव ने उस स्त्री को अपने महल में ले जाकर उसके साथ सुख का अनुभव किया।

एक वर्ष बीत जाने के बाद वह असंतुष्ट हो गई और पेटा से विनती करते हुए बोली, "जब तक मैं यहाँ रहती हूँ, मैं अन्य लोकों की खोज नहीं कर सकती। कृपया, हे प्रभु, मुझे पाटलिपुत्त ले चलें।"

इस अनुरोध के जवाब में उन्होंने कहा;

1. "तुमने नरक, पशुलोक, पितरों और असुरों का लोक देखा है, मनुष्य और देवों का भी। तुमने स्वयं अपने कर्मों का फल देखा है। मैं तुम्हें सुरक्षित रूप से पाटलिपुत्त ले जाऊंगा। वहां पहुंचकर अच्छे कर्म करना।"

वह प्रसन्न हुई और उसने उत्तर दिया:

2. "हे याह्खा, आप मेरे शुभचिंतक हैं; हे देव, आप मेरा भला चाहते हैं। मैं आपका वचन मानूंगा; आप मेरे गुरु हैं। मैंने नरक, पशुलोक, पेट और असुरों, मनुष्यों और देवताओं को देखा है। आपने स्वयं कर्मों के फल देखे हैं। मैं अनेक पुण्य कर्म करूंगा।"

पेटा थिएल उस स्त्री को लेकर वायु में यात्रा करने लगा; उसने उसे पाटलिपुत्त के केंद्र में स्थापित किया और अपने मार्ग चला गया। उसके बाद जब उसके रिश्तेदारों, मित्रों और अन्य लोगों ने उसे देखा, तो वे प्रसन्न हुए और बोले, "हमने सुना था कि कुछ समय पहले तुम्हें समुद्र में फेंक दिया गया था और तुम मर गई थीं। देखो, तुम सब सुरक्षित लौट आई हो!" तो उन्होंने उससे उसके साहसिक कारनामों के बारे में पूछा, उसने सबको सब कुछ बता दिया।

सावत्थी लौटकर उन व्यापारियों ने गुरु (बुद्ध) को यह बात बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> आम की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.12 -------------------------->>>> अगला

47. आमों की कहानी (4.12)
जब शिक्षक सावत्थी में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ रहता था जिसकी सारी संपत्ति विलीन हो गई थी। उसकी पत्नी का निधन हो गया और उसने अपनी इकलौती बेटी को एक मित्र के पास छोड़कर कुछ पैसे उधार लिए, सौ कहपना (पीतल के सिक्के) का सामान खरीदा और व्यापार करने के लिए एक कारवां लेकर निकल पड़ा। थोड़े ही समय में उसने अपनी पूंजी वापस पा ली और साथ ही पाँच सौ कहपना का लाभ भी अर्जित कर लिया। इसके बाद वह घर लौट रहा था, तभी रास्ते में लुटेरों ने उसे घेर लिया। व्यापारी इधर-उधर भागने लगे; परन्तु इस गृहस्थ ने अपने सिक्के एक झाड़ी में फेंककर खुद को छिपा लिया। लुटेरों ने उसे ढूंढ लिया और मार डाला। धन के लालच के कारण उसका पुनर्जन्म उसी स्थान पर एक पेटा के रूप में हुआ।

पुत्री ने उनकी स्मृति में पीतल की थाली में चावल का दलिया और आम भगवान बुद्ध को अर्पित किए और प्रार्थना की कि वे इसे उनके पिता की ओर से स्वीकार करें। उस दान के पुण्य से, पेटा को एक सुंदर हवेली प्राप्त हुई।

बाद में व्यापारियों ने उसी यात्रा को दोहराया और उसी स्थान पर रात बिताने के लिए रुके, तब उन्हें पेटा दिखाई दिया और उन्होंने उससे पूछताछ की।

1. "यहाँ आपके सामने एक बेहद खूबसूरत कमल का तालाब है, जिसके किनारे एक आकर्षक घाट है। इसके किनारे समतल हैं और इसमें भरपूर पानी है: यह फूलों से भरा हुआ है, जिन पर मधुमक्खियों का झुंड मंडरा रहा है। आपको यह मनमोहक तालाब कैसे मिला?"

2. "यहाँ आपके सामने आमों का एक बहुत ही सुंदर बाग है जो हर मौसम में फल देता है: यह फूलों से भरा हुआ है जिन पर मधुमक्खियों का झुंड मंडराता रहता है। आपने यह हवेली कैसे प्राप्त की?"

पेटा :

3. "मेरी बेटी ने पके आम, पानी और चावल का दलिया उपहार में दिया: इसी कारण मुझे यहाँ सुखद ठंडी छाया में रहने की अनुमति है।"

तब व्यापारी ने उन्हें पाँच सौ कहपना दिए और कहा: "यहाँ से आधा ले लो और मेरे लाभ के इस हिस्से का हिसाब-किताब करने के बाद, इसे मेरी बेटी को यह कहते हुए सौंप दो, 'आराम से जीवन व्यतीत करो'।" व्यापारी कुछ समय बाद सावत्थी पहुँचे, बेटी को इस बात की जानकारी दी और उसके हाथों में वह पूरी राशि रख दी जो उसके पिता ने उसे दी थी। उसने वह राशि अपने पालक पिता को सौंप दी। लेकिन उसने यह कहते हुए राशि उसे लौटा दी: "यह राशि तुम्हारे सिवा किसी और की नहीं होगी," और उसने उसे अपने सबसे बड़े बेटे की पत्नी बना लिया। कुछ समय बाद, उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसे उसने इस श्लोक से प्रेरित किया:

4. "देखो, इस जीवन में ही, आत्मसंयम और संयम के वरदान का प्रतिफल मिलता है। मैं प्रतिष्ठित परिवारों में सेविका थी: अब मैं बहू और घर की मालकिन हूँ।"

फिर एक दिन गुरु (बुद्ध), जिन्होंने उनकी परिपक्व समझ को देखा, ने अपना एक प्रकाशमान (दिव्य) स्वरूप प्रकट किया और मानो उनके सामने खड़े होकर स्वयं को प्रकट किया। इस अवसर पर उन्होंने यह श्लोक कहा:

5. "धर्मी व्यक्ति अप्रिय को सुखद से, अवांछित को प्रिय से, और दुष्ट को सुखद से जीत लेता है।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> धुरी और वृक्ष

पिछला <<<<----------------------- 4.13 -------------------------->>>> अगला

48. धुरी और पेड़ की कहानी (4.13)

जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, तब वहाँ के एक गृहस्थ शिष्य ने कुछ बैलगाड़ियाँ माल से भरकर व्यापार करने के लिए विदेह चले गए। वहाँ उन्होंने अपना माल बेचकर वापसी का सामान अपनी गाड़ियों में लादा और श्रावस्ती के लिए निकल पड़े। जंगल में यात्रा करते समय उनकी एक गाड़ी का धुरा टूट गया। तभी एक व्यक्ति पेड़ लेने की इच्छा से अपने गाँव से निकला और कुल्हाड़ी लेकर जंगल में घूमने लगा। जंगल में घूमते हुए वह इस स्थान पर पहुँचा और उसने देखा कि धुरा टूटने के कारण वह गृहस्थ शिष्य उदास बैठा है। उसे उस पर दया आई और उसने एक पेड़ काटकर एक मजबूत धुरा बनाया और बिना कोई शुल्क लिए उसे गाड़ी में लगा दिया।

लेकिन बाद में उनकी मृत्यु हो गई और जंगल में इसी स्थान पर उनका पुनर्जन्म पृथ्वीदेव के रूप में हुआ। अपने कर्मों पर विचार करते हुए, वे रात में उस गृहस्थ शिष्य के घर गए और द्वार पर खड़े होकर यह श्लोक बोला:

"जो वह देता है, वह केवल वही नहीं रह जाता। बस दान दो। दान देने से वह दोनों (लोकों) को पार कर जाता है; इसके द्वारा वह दोनों तक पहुँचता है। आलसी मत बनो।"

जब व्यापारी सावत्थी वापस लौटा तो उसने यह बात गुरु (बुद्ध) को बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> गलत तरीके से धन संग्रह करना

पिछला <<<<----------------------- 4.14 -------------------------->>>> अगला

49. धन के अवैध संग्रह की कहानी (4.14)

जब भगवान बुद्ध राजगृह के बाँस के जंगल में ठहरे हुए थे, तब चार स्त्रियाँ गलत तरीकों से घी, शहद, तिल का तेल, अनाज और अन्य खाद्य पदार्थों का व्यापार करती थीं। अपने जीवनकाल में उन्होंने नासमझी से धन-संग्रह कर लिया; इसलिए मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म शहर के बाहर एक खाई में पेटियों के रूप में हुआ। रात में वे दुःख से व्याकुल हो गईं और भयानक शोर मचाते हुए विलाप करती हुई इधर-उधर भटकने लगीं।

"हमने न्यायसंगत और अन्यायपूर्ण तरीके से धन अर्जित किया; दूसरे इसका आनंद लेते हैं; दुख हमारा हिस्सा है।"

जब लोगों ने यह सुना, तो वे बहुत भयभीत हो गए और सुबह एक बड़ा उपहार लेकर भगवान बुद्ध के पास बैठ गए और उन्हें चीख-पुकार के बारे में बताया। उन्होंने पेटिस का श्लोक दोहराया और बताया कि वे लोग कैसे रहते थे।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> गिल्ड लीडर के बेटे

पिछला <<<<----------------------- 4.15 -------------------------->>>> अगला

50. गिल्ड-लीडर के बेटों की कहानी (4.15)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन मठ में निवास कर रहे थे।

उस समय कोसल के राजा पसेनादि भव्य वस्त्रों में अपने हाथी पर सवार होकर शहर में शक्ति और वैभव के साथ भ्रमण कर रहे थे, तभी उन्होंने एक भवन की ऊपरी मंजिल से एक अप्सरा को नीचे देखते हुए देखा। उनका हृदय मोहित हो गया क्योंकि उनका मन स्वभाव से चंचल और कठोर था। इसलिए उन्होंने अपने बगल में बैठे एक व्यक्ति को संकेत दिया। (लोहकुंभी जातक 314 का लिंक भी देखें)

लिंक: लोहाकुंभी-जातक

लेकिन इस अंतर के साथ।

वह व्यक्ति वास्तव में सूर्यास्त से पहले ही यहाँ पहुँच गया था, लेकिन नगर द्वार बंद था। इसलिए उसने नगर द्वार के खंभे पर लाल मिट्टी और नीले कमल बाँध दिए जो वह लाया था और जेतवन चला गया। अब जब राजा विश्राम कर रहे थे, तो उन्होंने मध्य पहरे में ये चार अक्षर सुने: "सा, ना, दु और सो" ज़ोर से और पीड़ादायक ढंग से उच्चारित

राजा अत्यंत भयभीत हो गया और भोर होते ही उसने अपने पुरोहित को सारी घटना बताई। पुरोहित लाभ की आशा में बोला, “महाराज, हाय! एक बड़ी विपत्ति आ पड़ी है; चार प्रकार के पशुओं/पक्षियों का पूर्ण यज्ञ कीजिए।” राजा ने ऐसा ही करने का आदेश दिया।

जब रानी मल्लिका ने यह सुना, तो उसने राजा से कहा, “हे महाराज, एक ब्राह्मण की बात सुनकर आप इतने प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने और उनका वध करने का ऐसा कार्य क्यों करना चाहते हैं? अब आपको ज्ञान और आचरण में अतुलनीय भगवान बुद्ध से परामर्श लेना चाहिए; और जैसा वे समझाएँगे, वैसा ही आपको करना चाहिए।” तब राजा गुरु (बुद्ध) के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। भगवान बुद्ध ने कहा, “हे महाराज, आपको इस कारण कोई खतरा नहीं है,” और उन्होंने शुरू से ही सारी बात लोहकुंभी नरक में पुनर्जन्म लेने वाले मनुष्यों की पुकार के रूप में सुनाई। फिर उन्होंने उन्हें वे श्लोक पूरे-पूरे सुनाए जो उन्होंने बोलना शुरू किए थे।

1. साठ हजार वर्षों तक नरक में यातना भोगने वालों का अंत कब होगा?

2. ना (नत्थी - कोई अंत नहीं है) "कोई अंत नहीं है। अंत कब आएगा? कोई अंत दिखाई नहीं देता। इसलिए, महोदय, आपने और मैंने वास्तव में गलती की है।"

3. दुजीवितम (दुजीवन-दुखद जीवन) "हमने एक दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत किया, क्योंकि हमने अपने पास मौजूद वस्तुओं का दान नहीं किया। हमारे पास जो कुछ देने को था, हमने उसका दान तो किया, लेकिन अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।"

4. सोहम (मैं वास्तव में) "निस्संदेह, जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा और एक मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लूँगा, तो मैं उदार, नैतिक रूप से श्रेष्ठ और बहुत अच्छे काम करने वाला होऊँगा।"

पिछला <<<<----------------------- 4.16(समाप्त)

51. साठ हजार हथौड़ों की कहानी (4.16)

जब गुरु वेलुवाना मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस नगर में एक लंगड़ा रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। (यह कहानी जातक 107: सालित्थिका-जातक में वर्णित है। इसका सार श्लोकों में दिया गया है।) एक दिन जब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महामोग्गलाना गिद्ध शिखर से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने उस लंगड़े को देखा और उससे पूछा:

1. "अब मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम पागलों की तरह इधर-उधर क्यों भाग रहे हो, जैसे कोई भटका हुआ हिरण? निःसंदेह यह एक बुरा काम था। तुम इसके बारे में क्या सोचते हो?"

पेटा ने जवाब दिया:

2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटा हूँ, यमलोक का एक नीच निवासी। मैंने पाप किया, इसलिए मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।"

3. "साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर मेरे सिर पर प्रहार करें और मेरी खोपड़ी को चीर दें।"

बुजुर्ग ने आगे कहा:

4. "अब शरीर, वचन या मन से क्या अन्याय हुआ? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादों के लोक में चले गए?"

5. "ताकि साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर तुम्हारे सिर पर प्रहार करें और तुम्हारी खोपड़ी को चीर दें।"

पेटा :

6. "अब मैंने सुनेत्ता को देखा, एक बुद्ध, जो सभी शक्तियों में परिपूर्ण थे, वे एक पेड़ की जड़ में बैठे थे, आत्ममग्न और किसी चीज से नहीं डरते थे

7. "मैंने उसे गुलेल से मारा और उसका सिर फोड़ दिया। उस कृत्य के कारण मुझे यह कष्ट भोगना पड़ेगा।"

8. "साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर मेरे सिर पर प्रहार करें और मेरी खोपड़ी को चीर दें।"

यह सुनकर बुजुर्ग ने समझाते हुए कहा:

9. "दुष्ट मनुष्य, धम्म के कारण ही साठ हजार हथौड़े तेरे सिर पर प्रहार करते हैं और तेरा सिर फोड़ देते हैं।"
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वत्थु
विषय-सूची

1

1.1
डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 71 - अहिपेता वथु
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1उदाहरण
ना ही पापम कटम कम्ममसज्जु खीरमवा मुच्चति
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दहन्तम बलर्नन्वेति
भस्मच्छन्नोव पावको।
श्लोक 71 : एक बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे नया निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है, उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है
अहिपेटा (मानव सिर वाला सर्प जैसा भूत) की कहानी (1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

एक बार प्रधान शिष्य महा मोग्गलाना, थेरा लक्खाना के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने गए थे। वहाँ उन्होंने कुछ देखा और मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। जब वे मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना को बताया कि वे इसलिए मुस्कुराए क्योंकि उन्होंने एक पेटा-भूत देखा था जिसका सिर मनुष्य का और शरीर साँप का था। बुद्ध ने तब कहा कि उन्होंने स्वयं उसी पेटा-भूत को बुद्धत्व प्राप्ति के दिन देखा था। बुद्ध ने यह भी बताया कि बहुत समय पहले एक पच्चेकबुद्ध थे, जिनका बहुत सम्मान होता था। उनके मठ जाने वाले लोगों को एक खेत से होकर गुजरना पड़ता था। खेत के मालिक को डर था कि मठ आने-जाने वाले लोगों की अधिकता से उसका खेत क्षतिग्रस्त हो जाएगा, इसलिए उसने खेत में आग लगा दी। परिणामस्वरूप, पच्चेकबुद्ध को कहीं और जाना पड़ा। पच्चेकबुद्ध के शिष्य, ज़मींदार से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने पच्चेकबुद्ध को पीट-पीटकर मार डाला। अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। वर्तमान जीवन में वे कर्मों के शेष फल (पेत-भूत) भोग रहे थे।
अंत में, बुद्ध ने कहा, "बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, लेकिन वह हमेशा बुरे कर्म करने वाले का पीछा करता है। बुरे कर्म के परिणामों से कोई बच नहीं सकता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
1. अहिपेटा = अहि + पेटा; अहि = सर्प + पेटा = पेटा-भूत, एक सदा भूखा रहने वाला प्रेत। इस उदाहरण में, एक ऐसा भूत जिसका सिर मनुष्य का और शरीर सर्प का है (संस्कृत/हिंदी में पेटा = प्रेत)।
नाग-भूत की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उदाहरण
नाग-भूत की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नाग-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
नाग-भूत की कहानी
जेतवन मठ में निवास कराते समय, बुद्ध ने नाग-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।एक दिन, जटाधारी हज़ार तपस्वियों के बीच, पूज्य लक्खना और पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के इरादे से गिद्ध शिखर से उतरे। पूज्य मोग्गलाना ने एक नाग-भूत को देखकर मुस्कुराया। तब पूज्य लक्खना ने उनसे उनकी मुस्कान का कारण पूछते हुए कहा, “भाई, अभी यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होने पर ही मुझसे पूछिएगा।” राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद जब वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर बैठ गए, तब पूज्य लक्खाना ने पूज्य मोग्गलाना से पूछा, “भाई मोग्गलाना, जब आप गिद्ध शिखर से उतर रहे थे, तब आप मुस्कुराए थे; और जब मैंने आपसे आपकी मुस्कान का कारण पूछा, तो आपने कहा, 'बुद्ध के समक्ष आने तक प्रतीक्षा करें, फिर मुझसे पूछें।' अब मुझे इसका कारण बताइए।”
भिक्षु ने कहा, “भाई, मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा। वह कुछ इस तरह दिखता था: उसका सिर मनुष्य के सिर जैसा था और बाकी शरीर नाग जैसा। वह नाग-भूत कहलाता था। उसकी लंबाई पच्चीस मील थी। उसके सिर से ज्वालाएँ निकलकर उसकी पूंछ तक जाती थीं; उसकी पूंछ से भी ज्वालाएँ निकलकर उसके सिर तक जाती थीं। उसके सिर से निकलती आग की लपटें उसके शरीर के दोनों ओर फैलती थीं; उसके किनारों से निकलती आग की लपटें उसके शरीर पर उतरती थीं। कहते हैं कि दो भूत होते हैं जिनकी लंबाई पच्चीस मील होती है, बाकी की लंबाई तीन-चौथाई मील होती है। लेकिन इस नाग-भूत और इस कौवे-भूत की लंबाई पच्चीस मील थी।”

मोग्गलाना ने एक कौवे के भूत को देखा और उससे उसके पूर्व कर्मों के बारे में पूछा। भूत ने कहा, “अपने पिछले जन्म में मैंने पूजनीय लोगों के लिए रखे भोजन के तीन निवाले खा लिए थे। उस कुकर्म के फलस्वरूप, जब मेरी मृत्यु हुई, तो मुझे अविची नरक में कष्ट भोगना पड़ा और उसके बाद, क्योंकि मेरे बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए मेरा पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर कौवे के भूत के रूप में हुआ। अब, अपने कर्मों के कारण, मैं यह कष्ट भोग रहा हूँ।”

नाग-भूत की कहानी भी सुनाई जाती थी। बनारस का एक निवासी सड़क के किनारे खेत जोत रहा था। जो लोग एकाकी बुद्ध के दर्शन करने उसके खेत से गुजरते थे, वे उसके खेत को रौंद देते थे। किसान ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं पाया। अंत में, जब एकाकी बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश कर गए, तो किसान ने अपने खाने-पीने के सारे बर्तन तोड़ दिए और घास-फूस से बने अपने आश्रय में आग लगा दी। तब लोगों ने चिल्लाकर कहा, “इसे पकड़ो!” उन्होंने उसे मार डाला। उसका जन्म अविची नरक में हुआ और बाद में, गिद्ध शिखर पर नाग-भूत के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ।

इस पर भिक्षु ने कहा, “मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा।” तुरंत बुद्ध उठे और मोग्गलाना के कथन की सत्यता की गवाही देते हुए कहा, “भिक्षुओं, मोग्गलाना जो कहते हैं वह सत्य है। मैंने स्वयं इस भूत को उस दिन देखा था जिस दिन मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था। परन्तु दूसरों पर दया करते हुए मैंने यह नहीं कहा, ‘जो मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे, उनका यही हश्र होगा।’”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 71)

खिरं इव कटं पापं कम्मं सज्जु न हि मुक्कति

भस्माच्चन्नो पावको इव दहं तं बलं अन्वेति

khīraṃ iva : दूध की तरह; kataṃ pāpaṃ kammaṃ [kamma]: किए गए बुरे कर्म; sajju : निकालते ही तुरंत; na hi muccati : निश्चित रूप से नहीं फटता; bhasmacchanno pāvako iva : राख से ढकी आग की चिंगारियों की तरह; ḍahaṃ [ḍaha]: जलता हुआ; taṃ bālaṃ [bāla]: वह बुरा करने वाला; anveti : पीछा करता है

जब कोई अज्ञानी व्यक्ति पाप करता है, तो उसका बुरा परिणाम तुरंत नहीं निकलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाय के थन से निकाला गया ताजा दूध तुरंत नहीं फटता। किया गया पाप राख से ढकी चिंगारियों की तरह छिपा रहता है और पापी का पीछा करता रहता है और उसे जलाता रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 71)

दूध निकालते ही तुरंत नहीं फटता । फटने से पहले उसे कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पाप कर्म के साथ भी ऐसा ही होता है। इसके बुरे परिणाम बाद में ही दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि यह प्रक्रिया लंबी होती है, इसलिए पापी को अपने कर्म का बुरा प्रभाव तुरंत दिखाई नहीं देता। इसी कारण वह भविष्य में होने वाले हानिकारक परिणामों को देखे बिना ही पाप करता है।

धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

यवदेव अनत्थयानट्टम बलास्सा जायति

धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

हंति बलास्सा सुक्कमसम(1)

मुद्धमस्सा(2) विपतायम।

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके पुण्य और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

1. सुक्कमसा: सुक्क + अंश: सुक्क का अर्थ है सफेद, उज्ज्वल, शुद्ध या अच्छा; अंश का अर्थ है अंश। टीका के अनुसार, सुक्कमसा का अर्थ है गुण।

---

2. मुद्ध: सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सत्तिकुतापेटा नामक एक पेटा-भूत के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (72) का उच्चारण किया।

मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना के साथ भिक्षा मांगने के दौरान इस विशाल पेटा-भूत को देखा। इस संदर्भ में बुद्ध ने समझाया कि सत्तिकुतापेट अपने पिछले जन्मों में से एक में वस्तुओं पर पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था। एक दिन उसने अपने गुरु से अपनी इस कुशलता को

आजमाने की अनुमति मांगी। उसके गुरु ने उसे गाय या मनुष्य पर पत्थर न फेंकने के लिए कहा, क्योंकि ऐसा करने पर उसे मालिक या रिश्तेदार को हर्जाना देना पड़ेगा, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति को निशाना बनाने के लिए कहा जिसका कोई मालिक या संरक्षक न हो।

पच्चेकबुद्ध को देखकर, बुद्धिहीन मूर्खों ने सोचा कि पच्चेकबुद्ध का कोई रिश्तेदार या संरक्षक न होने के कारण वे एक आदर्श निशाना होंगे। इसलिए उन्होंने भिक्षा मांगने निकले पच्चेकबुद्ध पर पत्थर फेंका। पत्थर एक कान से अंदर गया और दूसरे से निकल गया। पच्चेकबुद्ध मठ पहुँचते ही दम तोड़ गए। पत्थर फेंकने वाले को पच्चेकबुद्ध के शिष्यों ने मार डाला और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। बाद में, उसका पुनर्जन्म एक पाद-भूत के रूप में हुआ और तब से वह अपने बुरे कर्मों के बुरे परिणामों (कर्म) की शेष अवधि भोग रहा है। पाद-भूत के रूप में उसके विशाल सिर पर लगातार गर्म हथौड़ों की चोट हो रही है।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "मूर्ख के लिए उसका कौशल या ज्ञान किसी काम का नहीं है; यह केवल उसे नुकसान ही पहुंचा सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

सठिकूत-पेटा की कहानी

Then the Buddha spoke in verse as follows:

---

2. मुद्ध: सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

चित्रण

The Story of Saṭṭhikūṭa-Peta

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सठिकूत नामक एक सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, बनारस में एक अपाहिज रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। वह शहर के द्वार पर एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर पत्थर फेंकता और पेड़ के पत्ते तोड़ता था। शहर के लड़के उससे कहते, "हमारे लिए हाथी बना दो, हमारे लिए घोड़ा बना दो;" और वह उनके कहने पर हर जानवर बना देता। बदले में उन्हें उसे कठोर और नरम दोनों तरह का भोजन मिलता था। एक दिन, जब राजा मनोरंजन उद्यान जा रहे थे, तो वे इस स्थान पर आए। लड़के अपाहिज को बरगद की शाखाओं के बीच छोड़कर भाग गए। दोपहर हो चुकी थी जब राजा रुके और पेड़ की जड़ों के बीच चले गए, और उनका शरीर बरगद की छाया में लिपट गया।

"इसका क्या मतलब है?" उसने ऊपर देखते हुए कहा। हाथियों और घोड़ों की आकृतियों में तराशे हुए पत्तों को देखकर उसने पूछा, "यह किसका काम है?" जब उसे पता चला कि यह लंगड़े का काम है, तो उसने उसे बुलवाया। लंगड़े की सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे आठ गुना उपहार और शहर के उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में स्थित चार बड़े और सुंदर गाँव भेंट किए।

अब एक व्यक्ति ने उस अपंग व्यक्ति की सांसारिक समृद्धि को देखकर मन ही मन सोचा, "जन्मजात अपंग इस व्यक्ति ने इस कला के माध्यम से अपार समृद्धि प्राप्त कर ली है। मुझे भी यह कला सीखनी चाहिए।" और उसने सीख ली।

उस समय सुनेत्ता नामक एक एकांत बुद्ध नगर के निकट पत्तों और घास से बने एक आश्रम में निवास करते थे। जब उस व्यक्ति ने उन्हें भिक्षा मांगने के उद्देश्य से नगर के द्वार से प्रवेश करते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "इस व्यक्ति का न तो माता है और न ही पिता। यदि मैं इसे मारूँ, तो मुझे कोई दंड नहीं भुगतना पड़ेगा; मैं अपनी कुशलता का परीक्षण करने के लिए इसे ही मारूँगा।" अतः उसने एकांत बुद्ध के दाहिने कान पर पत्थर का निशाना साधा और उसे फेंक दिया। पत्थर एकांत बुद्ध के दाहिने कान में प्रवेश कर बाएँ कान से निकल गया। एकांत बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई, वे भिक्षा मांगने में असमर्थ रहे और वायु में उड़ते हुए अपने पत्तों के आश्रम में लौटकर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

लोगों ने कहा, "यह दुष्ट व्यक्ति कहता है कि उसने निजी बुद्ध को मारा है। इसे पकड़ो!" और तुरंत ही उन्होंने उसे पीट-पीटकर वहीं मार डाला। उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। जब तक यह विशाल पृथ्वी एक मील ऊपर नहीं उठी, तब तक वह यातना भोगता रहा। इसके बाद, क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, उसका पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर एक हथौड़े के भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 72)

बलास्सा नात्तं अनत्थया यव एव जयति ,
बलास्सा मुद्धं विपातयं अस्सा सुक्कंसं हन्ति

बलास्सा : अज्ञानी द्वारा; नत्तं [नत्त]: क्या सीखा जाता है; अनत्थय याव एव : केवल उसकी हानि के लिए; जयति : (है) अनुकूल; बलास्सा : अज्ञानी व्यक्ति का; मुद्धं [मुद्धा]: सिर; विपतयं [विपतय]: कट जाता है; अस्सा सुक्कनसं [सुक्कांसा]: उसमें जो भी अच्छा है; हन्ति : नष्ट कर देता है

अज्ञानी व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, वह हानिदायक होता है। यह उसके स्वयं के पतन का कारण बनता है। गलत ज्ञान से सीखने वाले की क्षमता नष्ट हो जाती है और वह वास्तविक ज्ञान के मामले में निष्कलंक हो जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 72)

ñattaṃ : ज्ञान। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि मूर्ख व्यक्ति का ज्ञान भी उसके विनाश का कारण बनता है। ज्ञान के लिए अन्य गुणों की आवश्यकता होती है, जैसे कि उसका उपयोग करने की क्षमता ताकि स्वयं को और दूसरों को कोई हानि न हो। मूर्ख लोग भले ही कुछ कौशल प्राप्त कर लें, लेकिन उनमें उसका सही उपयोग करने की बुद्धि नहीं होती।

धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु

1.1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
अथा पापनी कम्मनीकरम बलो ना बुझती
धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सेही कम्मेही दुम्मेधो
अग्गिदड्ढोव तपपति।
श्लोक 136 : मूर्ख बुरे कर्म करते समय उन्हें बुरा नहीं जानता; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों के फल से उसी प्रकार भोगता है जैसे आग से जलने वाला
पायथन पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते शरीर वाला पायथन जैसा भूत)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

एक बार, जब थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक अजगर पेटा देखा और मुस्कुराए, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब वे जेतवन मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में लखना को उस अजगर पेटा के बारे में बताया, जिसका लंबा शरीर आग की लपटों में जल रहा था। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं भी बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस अजगर पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करके वे बुद्ध के साथ घोर अन्याय करेंगे। अतः इन प्राणियों के प्रति करुणावश बुद्ध मौन रहे। फिर उन्होंने आगे कहा, "अब जब मोग्गलाना गवाह हैं, तो मैं आपको इस अजगर पेटा के बारे में बताता हूँ। यह पेटा कश्यप बुद्ध (पूर्व युग के बुद्ध) के समय का चोर था। एक चोर और क्रूर हृदय वाले व्यक्ति के रूप में, उसने एक धनी व्यक्ति के घर में सात बार आग लगाई थी। और इतने से संतुष्ट न होकर, उसने उसी धनी व्यक्ति द्वारा कश्यप बुद्ध को दान किए गए सुगंधित हॉल में भी आग लगा दी, जब कश्यप बुद्ध भिक्षा मांगने गए हुए थे। इन बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसने निरय (नरक) में लंबे समय तक कष्ट भोगा। अब, पेटा के रूप में अपने कष्टों को भोगते हुए, उसके शरीर पर ऊपर-नीचे उठती हुई लपटों की चिंगारियों से उसे जलाया जा रहा है। भिक्षुओं, मूर्ख लोग बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानते कि वे बुरे हैं; परन्तु वे बुरे परिणामों से बच नहीं सकते।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
(1) पेटा: हमेशा भूखी रहने वाली आत्मा या भूत (संस्कृत/हिन्दी में प्रीटा)।
बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-घोस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

---

(1) peta: an always hungry spirit or ghost(Preta in Sanskrit/Hindi).

चित्रण
The Story of the Boa Constrictor Peta-Ghost
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, पूज्य मोग्गलाना, पूज्य लक्खना के साथ गिद्ध शिखर से नीचे उतर रहे थे, तभी उन्हें अलौकिक दृष्टि से एक पच्चीस मील लंबा, नाग के रूप में एक प्रेत दिखाई दिया। उसके सिर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके अंगों पर गिर रही थीं; उसके दोनों ओर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके मध्य भाग पर गिर रही थीं। पूज्य मोग्गलाना ने उस प्रेत को देखकर मुस्कुरा दिया। जब पूज्य लक्खना ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "भाई, अभी इस प्रश्न का उत्तर देने का उचित समय नहीं है; जब हम बुद्ध के समक्ष उपस्थित हों, तब मुझसे पूछिएगा।"
इसलिए, जब पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद बुद्ध के समक्ष आए, तो पूज्य लखन ने अपना प्रश्न दोहराया। पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया, "भाई, मैंने उस स्थान पर एक भूत देखा, जिसका रूप ऐसा था। उसे देखकर मैंने मन ही मन सोचा, 'ऐसा भूत मैंने पहले कभी नहीं देखा।' इसीलिए मैं मुस्कुराया।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे शिष्यों के पास आंखें हैं और वे उनका उपयोग करते हैं।" उन्होंने पूज्य मोग्गलाना के कथन की पुष्टि करते हुए आगे कहा, "मैंने उस भूत को ज्ञान के सिंहासन पर बैठे हुए देखा था। लेकिन मेरे मन में यह विचार आया कि 'यदि कोई मेरी बात पर विश्वास न करे, तो यह उनके लिए हानिकारक हो सकता है।' इसलिए मैंने इस बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन अब जब मोग्गलाना साक्षी हैं, तो मैं

यह बात कहता हूँ।" जब उन्होंने भिक्षुओं के अनुरोध के जवाब में इस प्रकार बात की, तो उन्होंने बताया कि भूत ने अपने पिछले जन्म में क्या किया था।

कथा के अनुसार, बुद्ध कश्यप के युग में, सुमंगला नामक एक कोषाध्यक्ष ने बीस उसभा (फ़दम) की दूरी तक सोने की ईंटें बिछाईं, उतनी ही राशि का खजाना एक मठ के निर्माण में खर्च किया और उतनी ही राशि का खजाना मठ के उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक उत्सव के आयोजन में लगाया। एक दिन, सुबह-सुबह, जब वह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था, तो उसने नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में एक चोर को छिपा हुआ देखा, जिसके पैर कीचड़ से सने थे और उसने अपना वस्त्र सिर पर ओढ़ा हुआ था। कोषाध्यक्ष ने मन ही मन सोचा, "कीचड़ से सने पैरों वाला यह आदमी अवश्य ही कोई रात में छुपकर घूमने वाला चोर होगा।" चोर ने सोचा, "कोई बात नहीं, मुझे तुमसे बदला लेने का तरीका पता है।" कोषाध्यक्ष से द्वेष रखते हुए, उसने उसके खेत को सात बार जलाया, उसके गौशाला में सात बार पशुओं के पैर काटे और उसके घर को सात बार जलाया।

लेकिन इन सब के बावजूद, वह कोषाध्यक्ष के प्रति अपनी दुश्मनी शांत नहीं कर सका। इसलिए उसने कोषाध्यक्ष के सेवक से मित्रता की और उससे पूछा, "तुम्हारे स्वामी, कोषाध्यक्ष को सबसे अधिक क्या प्रिय है?" सेवक ने उत्तर दिया, "उन्हें सुगंधित कक्ष से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं है।" चोर ने सोचा, "ठीक है, मैं सुगंधित कक्ष को जला दूंगा और इस प्रकार अपनी दुश्मनी शांत कर लूंगा।" तदनुसार, जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में आए, तो उसने खाने-पीने के सभी बर्तन तोड़ दिए और सुगंधित कक्ष में आग लगा दी। जब कोषाध्यक्ष ने "सुगंधित कक्ष में आग लग गई है!" की आवाज सुनी, तो वह तुरंत वहां पहुंचा, लेकिन उसके पहुंचने से पहले ही वह कक्ष जलकर राख हो चुका था। कोषाध्यक्ष ने मठ का पुनर्निर्माण किया और चोर को उसके अपराधों के लिए क्षमा कर दिया। चोर का पुनर्जन्म पेटा-भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 136)

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुझति

दुम्मेधो सेहि कम्मेहि अग्गिदोदो इव तप्पति

अथा : इसके अलावा; पापानि कम्मानि : बुरे कर्म; करं [करा]: करना; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; नो बुझति : अनभिज्ञ; दुम्मेधो [दुम्मेधा]: नासमझ व्यक्ति; सेहि कम्मेहि : अपने बुरे कर्मों के कारण; अग्गिदद्दो इव : मानो आग से जल गया हो; तपपति : जलता है (पीड़ित होता है)

मूर्ख, जो बुराई के प्रतिफल से अनभिज्ञ होते हैं, बुरे कर्मों से स्वयं को ही हानि पहुँचाते हैं। जैसे मक्खियाँ आग में कूदकर जल जाती हैं, वैसे ही वे स्वयं अपने जल्लाद बन जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 136)

दुम्मेधो : वह व्यक्ति जिसमें बुद्धि का अभाव हो। यहाँ बुद्धि से तात्पर्य सही और गलत का विवेक करने की क्षमता से है।

धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वत्थु

1.1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वथु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1उदाहरण

Vacanurakkhi manasa susamvutokayena ca nakusalam kayira

धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

इस तेओन कम्मपथे विसाधये में

आराधाये मग्गा' मिसिप्पवेदितम्।

श्लोक 281 : वाणी में सावधान रहना चाहिए, मन में संयमित रहना चाहिए, और शारीरिक रूप से भी कोई बुराई नहीं करनी चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टांगिक पथ का अभ्यास करना चाहिए

एक सूअर-पेटा (मानव शरीर वाला सूअर का सिर वाला भूत) की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।

एक बार थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोग्गलाना मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस सूअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस सूअर-पेटा की कहानी सुनाई।

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें एक सूअर-पेटा का उल्लेख है।
एक बार थेरा महा मोगलाना, थेरा लाखन के साथ गिज्जुकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, उसी समय उन्होंने एक बार कहा, सदा साबला पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोगलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोला। मठ में वापस ज्ञान, थेरा महा मोगलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में, उस सुअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े लगे हुए थे। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने सूअर-पेटा की कहानी सुनी।
वेलुवन गणित में निवास कराटे समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (281) का उच्चारन किया, जिसमें एक सूरज-पीटा का उल्लेख है।
एक बार तेरा महा मोगलाना, तेरा लाखन के साथ गिज्जाकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्हें एक दयानी, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूरज का और शरीर इंसान का था। पेटा को देखकर तेरा महा मोगलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। गणित में वापस आकर, तेरा महा मोगलाना ने बुद्ध की उपस्थति में, हमें सूरज-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद हमें पेटा को देखा था, लेकिन उन्हें इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्य होगा। फिर बुद्ध ने सूरज-पीटा की कहानियाँ सुनीं।

कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम अच्छा चल रहा है क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को मठ छोड़कर चला जाए और पूरा मठ अपने लिए खाली कर ले तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक भिक्षु को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को एक सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को विचार, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।

उदाहरण
एक सूअर की आत्मा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सूअर की आत्मा के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे रहने वाले जीव (पेटा) को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस पेटा के बारे में बताया , जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस पेटा की कहानी सुनाई ।
कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम बहुत अच्छा चल रहा था क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को वहाँ से भगा दे और मठ पर उसका पूरा अधिकार हो जाए तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था, जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, “भिक्षु को मन, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 281)
वचनुरक्खी मनसा सुसानवुतो , कायेना च
अकुसलं न कयिरा एते तयो कम्मपथे
विशोधये इशिप्पवेदितं मग्गं अराध्ये

वाचनुरक्खी : वाणी में सजग; मनसा : मन में; सुसंवुतो [सुसंवुत]: संयमित; कायेन च : शरीर से भी; अकुसल [अकुसल]: बुरे कर्म; न कायिरा : नहीं किए जाते; एते तयो कम्मपथे : कर्म के इन तीन द्वारों का पालन करता है; विसोधये : शुद्ध; इसिप्पवेदित [इसिप्पवेदित]: ऋषियों द्वारा प्राप्त; मग्गा [मग्ग]: श्रेष्ठ अष्टमार्ग; आराधये : (वह) प्राप्त करेगा

यदि कोई व्यक्ति वाणी में सजग रहे, मन में संयम रखे और शारीरिक रूप से पाप करने से परहेज करे, तो वह निश्चित रूप से ऋषियों द्वारा प्राप्त किए गए श्रेष्ठ अष्टमार्ग को प्राप्त कर लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 281)

तायो कम्मपथे : कर्म के तीन द्वार — वाणी, मन और शरीर। कर्म के संबंध में विचार अक्सर विवादास्पद होते हैं। यद्यपि हम अपने कर्म के पूर्णतः स्वामी या दास नहीं हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि कर्म के फल पर बाहरी परिस्थितियों, परिवेश, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत प्रयास आदि का कुछ हद तक प्रभाव पड़ता है। कर्म का यही सिद्धांत बौद्ध को सांत्वना, आशा, भरोसा और नैतिक साहस प्रदान करता है। जब अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, कठिनाइयाँ, असफलताएँ और दुर्भाग्य उसके सामने आते हैं, तो बौद्ध को यह अहसास होता है कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है और अतीत के ऋण को चुका रहा है। कर्म पर सब कुछ छोड़ देने के बजाय, वह खरपतवारों को उखाड़ने और उनके स्थान पर उपयोगी बीज बोने का भरसक प्रयास करता है, क्योंकि भविष्य उसके हाथों में है। कर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सबसे भ्रष्ट व्यक्ति की भी निंदा नहीं करता, क्योंकि उनके पास किसी भी क्षण स्वयं को सुधारने का अवसर होता है। दुखदायी अवस्थाओं में कष्ट भोगने के लिए बाध्य होते हुए भी, उन्हें शाश्वत शांति की आशा रहती है। अपने कर्मों से वे स्वयं अपना नरक बनाते हैं, और अपने कर्मों से ही अपना स्वर्ग भी बना सकते हैं। कर्म के नियम में पूर्णतः विश्वास रखने वाला बौद्ध मुक्ति के लिए किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं करता, बल्कि अपने आप पर ही विश्वास रखता है। किसी भी प्रकार का आत्मसमर्पण करने या किसी अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के बजाय, वह अपनी इच्छाशक्ति पर भरोसा करता है और सभी के कल्याण और सुख के लिए निरंतर कार्य करता है।

कर्म में विश्वास, "उसके प्रयासों को सार्थकता प्रदान करता है और उसके उत्साह को बढ़ाता है" क्योंकि यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी सिखाता है। एक साधारण बौद्ध के लिए कर्म एक निवारक का काम करता है, जबकि एक बुद्धिजीवी के लिए यह अच्छे कर्म करने के लिए एक प्रेरणा का काम करता है। कर्म का यह नियम दुख की समस्या, कुछ धर्मों में वर्णित भाग्य और नियति के रहस्य और सबसे बढ़कर मानव जाति की असमानता की व्याख्या करता है। हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। हम अपने सृजनकर्ता स्वयं हैं। हम अपने विनाशक स्वयं हैं। हम अपने स्वर्ग स्वयं बनाते हैं। हम अपने नरक स्वयं बनाते हैं। हम जो सोचते हैं, बोलते हैं और करते हैं, वह हमारा अपना हो जाता है। ये विचार, शब्द और कर्म ही कर्म का नाम धारण करते हैं और जन्म-जन्मांतर तक हमारे संसार के भ्रमण में हमारा उत्थान और पतन करते रहते हैं ।

बुद्ध ने कहा:

मनुष्य के गुण और उसके द्वारा यहाँ किए गए पाप:
यही वह चीज़ है जिसे वह स्वीकार करता है, जो उसे यहाँ से ले जाती है
वह परछाई की तरह उसका पीछा करता है।
इसलिए उसे भविष्य में जीवनयापन के लिए अच्छी बचत कर लेनी चाहिए।
किसी अन्य भविष्य की दुनिया में अवश्य ही एक मंच होगा।
अच्छे प्राणियों को उनके सद्गुणों का फल अवश्य मिलेगा।

SN2-संस्करण 2

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन2-निदानवग्गा-वेर2

SN2-The Book of Causation

(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का दूसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)

इस खंड में भगवान बुद्ध जन्म से मृत्यु और फिर पुनर्जन्म के जीवन चक्र के कारण-कार्य का वर्णन करते हैं। वे यहाँ पहले दो सूत्रों में कारण-कार्य को प्रतीत्यसमुत्पाद (आश्रित उत्पत्ति) के रूप में वर्णित करते हैं और फिर शेष सूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन करते हैं। आश्रित उत्पत्ति का विचार यह है कि कैसे एक चीज दूसरी चीज को जन्म देती है, जिससे पुनर्जन्म का अंतहीन चक्र चलता रहता है। लेकिन ध्यान विधि का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति समाधि/ध्यान/ध्यान/ज़ेन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है और फिर आश्रित उत्पत्ति का अंत अनुभव कर सकता है, जो मोक्ष/मुक्ति/निर्वाण/मोक्ष का मार्ग है।

महत्वपूर्ण सूत्र:

37: कुछ भी तुम्हारा नहीं है, शरीर भी नहीं; यह केवल पुराना कर्म है।

41: नरक और पुनर्जन्म के अन्य बुरे गंतव्यों से कैसे बचें और ज्ञानोदय की ओर सहज मार्ग कैसे सुनिश्चित करें।

63, 64: खाद्य पदार्थ, स्पर्श, चेतना और विज्ञान जैसे सांसारिक खतरे, अपने पुत्र का मांस खाने, खुले घाव, कोयले की खान और भाले से दंडित डाकू के समान हैं।

65: बुद्ध का मार्ग प्राचीन मुक्ति का मार्ग है। 66: बुद्ध का मार्ग आंतरिक अन्वेषण का मार्ग है। 67: मन, शरीर और चेतना एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, जैसे सरकंडों के दो ढेर एक दूसरे के सहारे खड़े हों।

95: बुद्ध द्वारा समाधि/ध्यान अवस्थाओं के संदर्भ में सात दिव्य तत्वों की व्याख्या की गई है।

100: सफलता के लिए ऊर्जा को जागृत रखें।

124-127: ब्रह्मांड का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है और यह युगों-युगों तक फैलता और सिकुड़ता रहता है।
128-131: एक युग अत्यंत लंबा होता है (विस्तार और फिर सिकुड़न का चक्र) और ऐसे अनेक युग घटित हो चुके हैं।
133: एक युग में किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म होते हैं कि उसकी हड्डियों से पर्वत बन सकता है।
137-142: पुनर्जन्म सत्य है; किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म हुए हैं कि सभी प्राणी एक दूसरे के माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री रहे हैं।
152: महत्वपूर्ण - 9 समाधि/ध्यान/सम्मोहन अवस्थाओं और 6 दिव्य शक्तियों के ज्ञान (अभिन) का वर्णन।
157-187: खतरे लाभ, सम्मान और प्रशंसा हैं
188-201: पुत्र राहुल को प्रवचन
202-222: अध्याय 8 से उन लोगों का वर्णन है जो अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण व्यथा भोगते हुए प्रेतों या भूतों (संस्कृत प्रेत) के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< Previous(SN1) Next(SN3) >>>>

विषय-सूची

1संयुत्त निकाय: द्वितीय. निदानावग्ग (कारण-कार्य का ग्रंथ)
1.1अध्याय 1: कारण-कार्य पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
1.1.1(i) बुद्ध
1.1.1.11. आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद संस्कृत: प्रतीत्य-समुत्पाद)
1.1.1.22. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण
1.1.1.33. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
1.1.1.44. विपस्सी (एक पूर्व बुद्ध)
1.1.1.55. सिख धर्म (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.66 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.77 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.88 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.99 (9) कस्सपा (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
1.1.1.1010 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)
1.1.2(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
1.1.2.111. पोषण (आहार)
1.1.2.212. मोलियफाग्गुण
1.1.2.313. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
1.1.2.414. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
1.1.2.515. कच्चनगोट्टा
1.1.2.616. धर्म/मार्ग पर एक वक्ता (धम्मकथिका)
1.1.2.717. नग्न तपस्वी कस्सपा (अचेलकस्सपा)
1.1.2.818 (8) तिम्बारुका
1.1.2.919. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)
1.1.2.1020. कारण (पच्चय सं. प्रत्यय)
1.1.3(iii) दस शक्तियों का खंड (दशबलवग्गो)
1.1.3.121. दस शक्तियाँ (1) (दशबाला 1)
1.1.3.222. दस शक्तियाँ (2) (दशबाला 2)
1.1.3.323. निकटवर्ती कारण (उपनिष)
1.1.3.424. अन्य संप्रदायों के तपस्वी (अन्नतित्तीय संप्रदाय)
1.1.3.525.भूमिजा
1.1.3.626. उपवन
1.1.3.727. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
1.1.3.828. भिक्षु (संस्कृत: भिक्षु, साधु)
1.1.3.929. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)

1.1.3.1030. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.1.4(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
1.1.4.131. जो कुछ हुआ है (भूत)
1.1.4.232. कालरा
1.1.4.333. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु संस्कृत ज्ञान-वस्तु)
1.1.4.434. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
1.1.4.535. अज्ञान को कारण मानकर (1) (अविज्जपच्चय 1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.636. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.737. तुम्हारा नहीं (नटुम्ह)
1.1.4.838. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
1.1.4.939. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
1.1.4.1040. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
1.1.5(v) गृहस्थ वर्ग (गृहपति वर्ग)
1.1.5.141. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
1.1.5.242. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
1.1.5.343. दुःख
1.1.5.444. लोक
1.1.5.545. नाटिका में
1.1.5.646. A Certain Brahmin (Annatarabrahmana)
1.1.5.747. जानूसोनी
1.1.5.848. एक लोक-अस्तित्ववादी (लोकायटिका)
1.1.5.949. महान शिष्य (1) (आर्यसवक संस्कृत आर्य-श्रवक)
1.1.5.1050 महान शिष्य (2)
1.1.6(vi) धारा 133 (दुक्खावग्गो संस्कृत दुःख-वर्ग) के तहत पीड़ित होना
1.1.6.151. गहन जांच (परिविमांसा)
1.1.6.252. आसक्ति (उपादान)
1.1.6.353. बंधन (1) (संयोजन1)
1.1.6.454. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
1.1.6.555. महान वृक्ष (1) (महारुक्खा1 संस्कृत महावृक्ष)
1.1.6.656. महान वृक्ष (2) (महारुक्खा2 संस्कृत महा-वृक्ष)
1.1.6.757. वृक्ष का पौधा (तरुणरुक्खा सं. तरूण-वृक्ष)
1.1.6.858. मन-और-शरीर रूप (नामरूप)
1.1.6.959. चेतना (विन्नान सं. विज्ञान)
1.1.6.1060. कारण (निदान)
1.1.7(vii) महावर्ग उप-अध्याय (महावर्ग)
1.1.7.161. अशिक्षित (1) (अश्रुताव्य संस्कृत)
1.1.7.262. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
1.1.7.363. पुत्र का मांस रूपक (पुत्तममसुपमा सं. पुत्र-मान्स-उपमा)
1.1.7.464. यदि कामवासना विद्यमान हो (अथिराग संस्कृत अस्थि-राग)
1.1.7.565. नगर (नागरा)
1.1.7.666. अन्वेषण (सम्मसा)
1.1.7.767. नरकट के गट्ठे (नालाकलापी)
1.1.7.868. कोसंबी
1.1.7.969. द सर्ज (उपायंती)
1.1.7.1070. सुसीमा
1.1.8(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनब्रह्मण)
1.1.8.171. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)
1.1.8.272. जन्म, आदि (जाति आदि)
1.1.9(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
1.1.9.173. एक शिक्षक (सत्थु)
1.2अध्याय 2: सफलता पर संबंधित प्रवचन (अभिसामयसाम्युत्त) {साम्युत्त-13}
1.2.174. नाखून (नखसिखा)

1.2.275. तालाब (पोक्खरानी)
1.2.376. संगम पर जल (1) (संभेज्जौदक1)
1.2.477. संगम पर जल (2) (संभेज्जौदक2)
1.2.578. पृथ्वी (1) (पथवी 1)
1.2.679. पृथ्वी (2) (पथवी 2)
1.2.780. सागर (1) (समुद्र संस्कृत)
1.2.881. सागर (2) (समुद्र संस्कृत)
1.2.982. पर्वत (1) (पब्बता1 संस्कृत पर्वत)
1.2.1083. पर्वत (2) (पब्बता2 संस्कृत पर्वत)
1.2.1184. पर्वत (3) (पब्बत3 सं. पर्वत)
1.3अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसम्यूत्त) {सम्यूत्त-14}
1.3.1(i) विविधता अनुभाग (नानत्तवग्गो संस्कृत: नानत्व-वर्ग)
1.3.1.185. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
1.3.1.286. संपर्कों की विविधता (फस्सानन्ता संस्कृत. स्पर्श-नानत्व)
1.3.1.387. संपर्कों की विविधता नहीं
1.3.1.488. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (1) (वेदनानात्त1 सान वेदनानात्व)
1.3.1.589. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनानात्त2 संस वेदना-नानात्व)
1.3.1.690. बाह्य तत्वों की विविधता (बहिरधातुनानत्ता संस्कृत: बहिरा-धातु-नानत्व)
1.3.1.791. धारणाओं की विविधता (सन्नाननत्ता संस. संज्ञा-नानात्व)
1.3.1.892. खोजों की विविधता नहीं
1.3.1.993. Diversity of External Contacts (1) (Bahiraphassananatta1 sans. Bahir-sparsh-nanatv)
1.3.1.1094. बाह्य संपर्कों की विविधता (2) (बहिरफस्सानन्ता2 संस्कृत बहिरा-स्पर्श-ननतव)
1.3.2(ii) दूसरा उप-अध्याय
1.3.2.195. Seven Elements
1.3.2.296. स्रोत के साथ (सा-निदान)
1.3.2.397. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
1.3.2.498. हीन प्रवृत्ति (हीनधिमुक्तिका)
1.3.2.599. आगे-पीछे चलना (चंकमा संस्कृत: चंकरामन)
1.3.2.6100. श्लोकों सहित सूत्र
1.3.2.7101. आस्था का अभाव (असद्ध-संसंदन)
1.3.2.8102. आस्थाहीन लोगों में निहित (अश्द्ध-मूलक संस्कृत: अश्रद्ध-मूलक)
1.3.2.9103. निर्लज्ज में निहित (अहिरिका-मूलक)
1.3.2.10104. जो लोग गलत काम करने से नहीं डरते (अनोत्तप्पा-मूलक) उनमें निहित।
1.3.2.11105. अनपढ़ों में निहित (अप्पस्सुत-मूलक)
1.3.2.12106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
1.3.3(iii) कम्मा अनुभाग के पाठ्यक्रम (कम्मपथवग्गो संस्कृत कर्म-पथ-वर्ग)
1.3.3.1107. समाधि में नहीं (असमहिता)
1.3.3.2108. अनैतिक (दुस्शील)
1.3.3.3109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपद संस्कृत: पंच-शिक्षा-पद)
1.3.3.4110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
1.3.3.5111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
1.3.3.6112. अष्टांगिक मार्ग (अष्टांगिक संस्कृत)
1.3.3.7113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
1.3.4(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (चतुर्थवग्गो संस्कृत: चतुर्थ-वर्ग)
1.3.4.1114. चार तत्व (चतुधातु)
1.3.4.2115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध संस्कृत: पूर्व-संबोधि)
1.3.4.3116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
1.3.4.4117. यदि कोई नहीं होता (नोसेडम)
1.3.4.5118. केवल एकांतदुक्खा (एक्सक्लूसिवली पसरिंग)
1.3.4.6119. आनंद (अभिनंदन)
1.3.4.7120. उत्पत्ति (उप्पद संस्कृत. उत्पत्ति)
1.3.4.8121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)

1.3.4.9122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.3.4.10123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.4अध्याय 4: बिना खोजे जा सकने वाले आरंभ के (अनामत्तग्गसम्युत) {सम्युत-15}
1.4.1(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
1.4.1.1124. घास और लकड़ी (तिनकत्थ संस्कृत: तृण-कष्ठ)
1.4.1.2125. पृथ्वी (पथवी संस्कृत: पृथ्वी)
1.4.1.3126. आँसू (आशु संस्कृत: अश्रु)
1.4.1.4127. माँ का दूध (खीरा संस क्षीरा)
1.4.1.5128. पर्वत (पब्बत संस पर्वत)
1.4.1.6129. सरसों का बीज (सासपा)
1.4.1.7130. शिष्य (सावक संस्कृत श्रावक)
1.4.1.8131. गंगा नदी
1.4.1.9132. डंडा
1.4.1.10133. व्यक्ति (पुग्गला)
1.4.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुर्भाग्यशाली)
1.4.2.1134. दुर्भाग्यशाली (दुग्गता संस्कृत: दुर्गति)
1.4.2.2135. सुखी (सुखी संस्कृत: सुखी)
1.4.2.3136. तीस भिक्षु (तिम्समत्ता)
1.4.2.4137-142. माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री (मातु, पितु, भतु, भगिनी, पुत्त, धितु)
1.4.2.5143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापब्बत संस्कृत: वेपुल्ला-पर्वत)
1.5अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
1.5.1144. संतोष (संतुष्ट संस्कृत: संतुष्ट)
1.5.2145. गलत काम से बेखौफ (अनोत्ताप्पी)
1.5.3146. चंद्रमा के समान (चंडुपमा, संस्कृत: चंद्र-उपमा)
1.5.4147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
1.5.5148. पुराना (जिन्ना सं. जीर्ण)
1.5.6149. निर्देश (1) (ओवादा1)
1.5.7150. निर्देश (2) (ओवाडा2)
1.5.8151. निर्देश (3) (ओवाडा3)
1.5.9152. ध्यान (स्वयं-अवशोषक समाधि) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (ध्यान-अभि-ज्ञान)
1.5.10153. भिक्षुणियों का निवास (उपासया)
1.5.11154. वस्त्र (सीवारा)
1.5.12155. मृत्यु के बाद (परमरण)
1.5.13156. सच्चे धम्म का प्रतिरूप (सद्धम्मप्पतिरूपक संस्कृत: सत्-धर्मप्य-अतिरूप)
1.6अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासाम्यत्त संस्कृत: लाभ-सत्कार-साम्यत्त) {साम्यत्त-17}
1.6.1(i) पहला उप-अध्याय (डरावना)
1.6.1.1157. भयानक (दारुना)
1.6.1.2158. हुक (बालिसा)
1.6.1.3159. कछुआ (कुम्मा)
1.6.1.4160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
1.6.1.5161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
1.6.1.6162. वज्र (असानी)
1.6.1.7163. विषैला बाण (दिद्धा)
1.6.1.8164. सियार (सिंगला)
1.6.1.9165. आंधी (वेरम्भा)
1.6.1.10166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
1.6.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
1.6.2.1167. स्वर्ण कटोरा (सुवन्नापति)
1.6.2.2168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
1.6.2.3169 (10) सुवन्नानिक्खा, आदि।
1.6.3(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)

1.6.3.1170. एक महिला (मातुगामा)
1.6.3.2171. सबसे सुंदर लड़की (कल्याणी)
1.6.3.3172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकस संस्कृत: एक-पुत्र)
1.6.3.4173. इकलौती पुत्री (एकधितु)
1.6.3.5174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.6.3.6175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.6.3.7176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.6.3.8177. चमड़ी (चावी)
1.6.3.9178. रस्सी (राज्जू)
1.6.3.10179. भिक्खु (सं. भिक्षु, भिक्षु)
1.6.4(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
1.6.4.1180. विच्छेद (भिंडी)
1.6.4.2181. लाभकारी (कुसल) जड़ (कुसलमूल)
1.6.4.3182. लाभकारी (कुशल) प्रकृति (कुशलधम्म)
1.6.4.4183. उज्ज्वल प्रकृति (शुक्कधम्म संस्कृत: शुक्र-धर्म)
1.6.4.5184. Not Long After He Left (Acirapakkanta)
1.6.4.6185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचरथसत)
1.6.4.7186. माता सूत्र (मातु सं. मातृ)
1.6.4.8187. पिता सूत्र, इत्यादि (पितु इत्यादि)
1.7अध्याय 7: राहुल से संबंधित प्रवचन (राहुलसम्युत्त) {सम्युत्त-18}
1.7.1(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
1.7.1.1188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
1.7.1.2189. रूप आदि (रूप)
1.7.1.3190. चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)
1.7.1.4191. संपर्क (संपहसा संस्कृत स्पर्श)
1.7.1.5192. संवेदना (वेदना) (वेदना)
1.7.1.6193. बोध (संज्ञा)
1.7.1.7194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
1.7.1.8195. लालसा (तन्हा संस. तृष्णा)
1.7.1.9196. तत्व (धातु)
1.7.1.10197. समुच्चय (खंड संस्कृत)
1.7.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
1.7.2.1198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
1.7.2.2199. रूप आदि
1.7.2.3200. अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुशय सं. अनुशय)
1.7.2.4201. अपगत से छुटकारा
1.8अध्याय 8. लक्खना से संबंधित प्रवचन (लक्खनासाम्युत्त) {साम्युत्त-19}
1.8.1(i) पहला उप-अध्याय (पथमवग्गो संस. प्रथम-वर्ग)
1.8.1.1202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
1.8.1.2203. मांस का टुकड़ा (पेसी, पेशी नहीं)
1.8.1.3204. मांस का पिंड (पिंडा)
1.8.1.4205. घावों वाला आदमी (निच्छवी)
1.8.1.5206. तलवार जैसे बाल (असिलोमा)
1.8.1.6207. भाले के बाल (सत्ती)
1.8.1.7208. तीर के बाल (उसुलोमा)
1.8.1.8209. सुईनुमा बाल (l) 350 (सुसिलोमा)
1.8.1.9210. सुईनुमा बाल (2) (सुसिलोमा2)
1.8.1.10211 कुम्हार वृषण (कुंभंडा)
1.8.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
1.8.2.1212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)
1.8.2.2213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)

1.8.2.3214. घावों वाली महिला (निच्छवित्थी)
1.8.2.4215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
1.8.2.5216. उमस भरी औरत (ओकिलिनी, अकुलिनी)
1.8.2.6217. सिरविहीन सूंड (आसिसाका संस. आशीसाका)
1.8.2.7218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
1.8.2.8219. दुष्ट भिक्षुणी (पापभिक्खुनी, पापभिक्षुनी का संक्षिप्त रूप)
1.8.2.9220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)
1.8.2.10221. दुष्ट नौसिखिया भिक्षु (पापसमनेरा, संस्कृत: पाप-श्रमनेरा)
1.8.2.11222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
1.9अध्याय 9: उपमाओं सहित संबंधित प्रवचन (उपम-सम्युत्त संस्कृत उपम-सम्युत्त) {सम्युत्त-20}
1.9.1223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
1.9.2224. नाखून (नखसिखा)
1.9.3225. परिवार (कुल)
1.9.4226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
1.9.5227. भाला (सत्ती)
1.9.6228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
1.9.7229. ढोल की खूंटी (अनी)
1.9.8230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
1.9.9231. नर हाथी (नाग)
1.9.10232. बिल्ली (बिलारा)
1.9.11233. सियार (1) (सिंगाला1)
1.9.12234. सियार (2) (सिंगला2)
1.10अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्षुसाम्युत्त) {साम्युत्त-21}
1.10.1235. कोलिता (महामोग्गलाना)
1.10.2236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
1.10.3237. बैरल
1.10.4238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)
1.10.5239. सुजाता
1.10.6240. लकुंदक भद्दिया
1.10.7241. विशाखा
1.10.8242. नंदा
1.10.9243. तिस्सा
1.10.10244. एक भिक्षु जिसका नाम एल्डर (थेरानामाका) है
1.10.11245. महाकप्पिना
1.10.12246. सहायक
संयुत्त निकाय: द्वितीय. निदानावग्ग (कारण-कार्य का ग्रंथ)

नमो तस्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही (सम्मा) और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: कारण-कार्य पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}

(i) बुद्ध

1. आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद संस्कृत: प्रतीत्य-समुत्पाद)
(पतीच्चसमुत्पाद का संक्षिप्त रूप)

मैंने (भगवान बुद्ध से) ऐसा सुना है, आनंद कहते हैं। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश दूंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं आगे बोलता हूँ।" - "जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
आश्रित उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है;

स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है;
वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है;
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है;
पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है। हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है;
वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है;
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है;
पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही समस्त दुःख का मूल है। वह भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
निरोध
"परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और उसके समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है;
संस्कार (व्यवहार-आदत) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है;
चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर का (नामरूप) अंत हो जाता है;
मन-शरीर के (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (संपर्क) का अंत हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) के समाप्त होने से वेदना का (संवेदना) अंत हो जाती है;
वेदना के समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का अंत हो जाता है;
तृष्णा (तन्हा संस्कृत) के समाप्त होने से आसक्ति (उपादान संस्कृत) का अंत हो जाता है;
के समाप्त होने से आसक्ति का अंत (भावो);
भावो के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत;
पुनर्जन्म के अंत के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत होता है।
निरोध
"परंतु अज्ञान के पूर्ण लुप्त होने और उसके समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है;
संस्कार (व्यवहार-आदत) के साथ चेतना का अंत हो जाता है;
चेतना के समापत होने से मन-शरीर का (नामरूप) अंत हो जाता है;
आदमी-शरीर के (नामरूप) समापत होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है;
छह इंद्रियों के संपर्क होने से स्पर्श (संपर्क) का अंत हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) के संपर्क होने से वेदना का (संवेदना) अंत हो जाता है;
वेदना के समापत होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का अंत हो जाता है;
तृष्णा (तन्हा संस्कृत) के समापत होने से (उपादान संस्कृत) का अंत हो जाता है;
के समापत होने से आसक्ति का अंत (भावो);

भावो के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत;
पुनर्जन्म के अंत के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु, दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत। इस प्रकार संपूर्ण दुख का अंत होता है।
भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

नोट: (क) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को समझने के लिए, इसे कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों के निर्धारण के रूप में समझा जा सकता है। साथ ही, प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इसका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है।

(ग) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में समझा जा सकता है।
(घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नत अति-अवस्था में रूपांतरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है।

(e) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है, जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है, जब कुछ विशेष परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है, जिसमें लेजर माध्यम के रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होने पर पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकते हैं।
(f) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात् गैर-निरंतरता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(g) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।
भगवान (बौद्ध) ने यही कहा। भिक्षु भगवान (बौद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए।

नहीं: (का) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारण को समझने के झूठ, इसे कम्प्युटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तांत्रिक नेतावार्क आधार कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभ्यास में भारों के निर्धारण के रूप में समझा जा सकता है. साथ ही, प्रत्यक्ष भार अनुभव/स्वायच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वार समर्थ होता है, जो कृत्रिम् बुद्धिमत्ता तांत्रिक नेटवर्क के प्रशिक्षण के झूठ देता है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इसका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहां अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 सितारों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के करण संबंध ज्ञान दूर हो जाता है, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है।

(जीए) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरन घटित होती है, जैसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरन सामान्य गतिविधि के नीलांबन के रूप में समझ जा सकता है।
(जीएच) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान व्यक्ति सामान्य अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नति अति-अवस्था में रूपान्तरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित समान अवस्था को समझ सकाता है.

(एआई) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसाकी तुलाना (आई) बॉस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है, जब कुछ पदारथों को अत्याधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचलकटा से की जा सकती है, जब कुछ विशेष परिस्थितियों में और काम तपमान पर ठंडा की जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है, जिसमें लेजर मध्यम के रूपान्तरण (जनसंख्य व्युत्क्रमण) होने पर पूर्ण और अतियंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ-साथ मनुष्य भी चेतना की तरह अति-अवस्थाओं में रूपान्तरित हो सकता है।
(च) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात गैर-निरंतरता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे सामान्य माना जाता है।

(जी) सूत्र 65 में (सामानय) चेतना और मनुष्य-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्री अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।

2. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण
(पटिच्चसमुत्पाद का विस्तृत विवरण; SN3-79 में और भी विस्तृत जानकारी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत सिखाऊंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और मनसिकारो, मैं बोलूंगा।" "
जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) उत्पन्न होते हैं।" तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था और मृत्यु, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है । हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों की वृद्धावस्था, उनका बूढ़ा होना, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, शक्ति का क्षय होना, इंद्रियों का क्षय होना: यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों का एकाकी होना, उनका नाश होना, विखंडन होना, लुप्त हो जाना, नश्वरता, मृत्यु, काल की समाप्ति, स्कंधों का विखंडन, शव का देह त्यागना: यही मृत्यु कहलाता है। 2 अतः इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था-मृत्यु कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, जन्म क्या है? विभिन्न प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में उतरना, उत्पत्ति, स्कंधों का प्रकटीकरण, इंद्रियों का प्राप्त होना। यही जन्म कहलाता है। 3

"और हे भिक्षुओं, अस्तित्व (भावो) क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व (भावो) हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व, निराकार-क्षेत्र का अस्तित्व। यही अस्तित्व (भावो) कहलाता है। 4 "और हे भिक्षुओं

, आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या है? चार प्रकार की आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। यही आसक्ति कहलाता है। 5

"और हे भिक्षुओं, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्या है?" भोग की ये छह श्रेणियाँ हैं: रूपों के प्रति भोग, ध्वनियों के प्रति भोग, गंधों के प्रति भोग, स्वादों के प्रति भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति भोग और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति भोग। इसे भोग (तन्हा संश्लेष) कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क (कान संपर्क) से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क (नाक संपर्क) से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क (जीभ संपर्क) से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क (शरीर संपर्क) से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क (मन संपर्क) से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, संपर्क क्या है? संपर्क की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। इसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। इन्हें छह इंद्रिय शक्तियाँ कहते हैं। और भिक्षुओं,

मनरूप क्या है? वेदना, अनुभूति, चेतना, संपर्क, मानसिक जागरूकता: इसे मन कहते हैं। चार महातत्व (पृथ्वी, वायु, जल और ऊष्मा) और इन चार महातत्वों से उत्पन्न रूप (धातु): इसे रूप कहते हैं। इस प्रकार, इस मन और इस रूप को एक साथ मनरूप कहते हैं।" 6.

भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना और मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं।

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? संस्कार (व्यवहार) तीन प्रकार के होते हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार) , मौखिक संस्कार (व्यवहार) और मानसिक संस्कार (व्यवहार) । इन्हें संस्कार कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अज्ञान क्या है? दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है। 8 आश्रित

उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के
कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-स्थिति) उत्पन्न होते हैं ; संस्कार (व्यवहार-स्थिति) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; (घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/झान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से एक नई उन्नत परम अवस्था में परिवर्तित हो सकता है और जब वह परम अवस्था में होता है, तो वह इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है। (e) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) से गुजरता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकते हैं। (f) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात् गैर-निरस्तता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है। (g) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख किया गया है।

व्यथा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसथा के कारण भाव उत्पन्न होता है;

भाव के कारण पुनर्जन्म होता है;

पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है। हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
व्यथा के कारण असक्ति उत्पन्न होती है;

आस्था के कारण भाव उत्पन्न होता है;

भाव के कारण पुनर्जन्म होता है;

पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही समस्त दुःख का मूल है। वह भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
निरोध
परन्तु शेषफल के क्षीण होने और
अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं;

संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है;

चेतना समाप्त होने से मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रियों का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (संपर्क) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) समाप्त होने से वेदना (संवेदना) समाप्त हो जाती है;

वेदना (संवेदना) समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है;

तृष्णा समाप्त होने से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) समाप्त हो जाती है;

आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भाव) समाप्त हो जाता है;
अस्तित्व के समाप्त होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है;
पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है। 9

नोट: (क) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को समझने के लिए, इसे कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में समझा जा सकता है। साथ ही, प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण, जो कि सच्चा सुख है, संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) अंत एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है। ज़ेन अवस्था, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में माना जा सकता है।
निरोध
परन्तु शेषफल के क्षीण होने और
Agyaan ke samaapt hone se sanskaar (व्यवहार-आदत) samaapt ho jaate hain;

संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के संपर्क होने से चेतना समाप्त हो जाती है;

चेतना समाप्त होने से मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

आदमी-शरीर का रूप (नामरूप) samaapt hone se chah indriyon ka roop (नामरूप) samaapt ho jaata hai;

chah indriyon ke samaapt hone se sparsh (sampark) samaapt ho jaata hai;
स्पर्श (संपर्क) samaapt hone se vadana (संवेदना) samaapt ho jaatee hai;

वेदना (संवेदना) समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है;

तृष्णा समाप्त होने से असक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) समाप्त हो जाती है;

Asakti ke samaapt hone se astitv (bhaav) samaapt ho jaata hai;
Astitv ke samaapt hone se punarjanm samaapt ho jaata hai;
पुनर्जन्म के समापत होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है, और दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार संपूर्ण दुख का अंत होता है। 9

नहीं: (का) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारण को समझने के झूठ, इसे कम्प्युटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तांत्रिक नेतावार्क आधार कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभ्यास में भारों को मान प्रदान करने के रूप में समझ जा सकाता है. साथ ही, प्रत्यक्ष भार अनुभव/स्वायच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वार समर्थ होता है, जो कृत्रिम् बुद्धिमत्ता तांत्रिक नेटवर्क के प्रशिक्षण के झूठ देता है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहां अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 सितारों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण, जो सच्चा सुख है, संबंध ज्ञान दूर हो जाता है।
(गा) अंत एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान की दिव्य या अति-अवस्था के दौरन घटित होती है। ज़ेन अवस्था, जैसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरन सामान्य गतिविधियों के नीलांबन के रूप में मन जा सकता है।

---

3. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है?
अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं;
संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है;
चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं;
मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं;
छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है ;
स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है ;
वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।" [उत्पन्न होता है];
आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) [उत्पन्न होता है];
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म [होता है];
पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है।

भिक्षुओं, इसे ही कुमार्ग कहते हैं।

"और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? अज्ञान के पूर्णतः क्षीण होने और
निरोध के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार

(अनिच्छुक-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है;
चेतना के अंत के साथ मन-शरीर-रूप (नामरूप) का अंत होता है;
मन-शरीर-रूप (नामरूप) के अंत के साथ छह इंद्रियों का अंत होता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने पर स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है;
तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है।
यही समस्त दुःख का निरोध है। हे

भिक्षुओं, यही सही मार्ग कहलाता है।

---

4. विपस्सी (एक पूर्व बुद्ध)
सावत्थी में। [बुद्ध:]
(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, विपस्सी बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब वे अभी भी एक बोधिसत्व थे और पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुए थे, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब प्राप्त होगी?'

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है (पच्चय सं. प्रत्यय)।' 14

"तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किसके कारण होता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब अस्तित्व का कारक होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व है।'

"फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका अस्तित्व (भावो) कैसे उत्पन्न होता है? अस्तित्व (भावो) किसके कारण होता है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' फिर, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका आसक्ति कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण होती है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब तृष्णा होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब वेदना होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा का कारण वेदना है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना (संवेदना) कैसे उत्पन्न होती है? वेदना (संवेदना) किस कारण उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है, तो वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) का कारण संपर्क (फस्सा/स्पर्श) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कैसे उत्पन्न होता है (पच्चया)? संपर्क (फस्सा/स्पर्श) किस कारण उत्पन्न होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक गहन अंतर्दृष्टि (मंसिकारा) प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब छह इंद्रियां अस्तित्व में आती हैं? छह इंद्रियों का कारण (पच्चया) क्या है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; इन छह इंद्रिय शक्तियों का कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब चेतना होती है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' फिर, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-स्थिति) होते हैं, तो चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-स्थिति) है।' 15

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संस्कार (व्यवहार-स्थिति) कैसे उत्पन्न होते हैं? संस्कार (व्यवहार-स्थिति) किसके कारण उत्पन्न होते हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त की: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का कारण अज्ञान है।

इस प्रकार अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) को कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है) "

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व में पहले कभी न सुने गए धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निवारण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; पुनर्जन्म के रुकने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व ही नहीं है तो पुनर्जन्म क्यों नहीं होता? किसके रुकने से पुनर्जन्म रुकता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ:
'जब अस्तित्व का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व के कारण (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व के कारण (भावो) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब आसक्ति नहीं होती (उपदान संस. आसक्ति), तो अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या आसक्ति उत्पन्न नहीं होती?' किस चीज के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है? तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब तृष्णा नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से तृष्णा का निरोध होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वेदना कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से वेदना का निरोध होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी निरोध हो जाता है।"

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में ही नहीं है, उससे संपर्क कैसे नहीं होता? किसके समाप्त होने से संपर्क समाप्त होता है?" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी समाप्त हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो छह इंद्रियां कैसे अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके निष्क्रिय होने से छह इंद्रियों का निष्क्रिय होना संभव होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तब छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।

" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कैसे अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?" तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व उपलब्धि प्राप्त की:
... 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने के साथ ही मन-शरीर रूप (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या (साधारण) चेतना उत्पन्न नहीं होती? किसके निरासण से चेतना का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना उत्पन्न नहीं होती; संस्कार (व्यवहार-आदत) के निरासण से (साधारण) चेतना का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? किसके निरासण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि (पन्ना) उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है।'

"इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के निवारण से चेतना का निवारण होता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।
" "'निराशा, निराशा' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

---

5. सिख धर्म (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
सिख धर्म में बुद्ध के ज्ञानोदय और अरहत के प्रति सही जागृति से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

6 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
वेस्साभू बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

7 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)

काकुसंध बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

8 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कोनागमना बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के रूप में सही ढंग से जागृत होने से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

9 (9) कस्सपा (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कश्यप बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के सही ज्ञानोदय से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

10 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)

(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, मुझे, अपने ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब मैं अभी भी एक बोधिसत्व था और पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट हो जाता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?'

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त हुई: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' 14

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व (भावो) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो अस्तित्व (भावो) कैसे होता है? अस्तित्व (भावो) किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब आसक्ति (उपदान संस. आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब वेदना (संवेदना) होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; " लालसा का कारण वेदना है।

" तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना कैसे उत्पन्न होती है? वेदना किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क होता है, तब वेदना उत्पन्न होती है; वेदना का कारण संपर्क है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क कैसे उत्पन्न होता है? संपर्क किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो छह इंद्रियां कैसे उत्पन्न होती हैं? छह इंद्रियां किसके द्वारा उत्पन्न होती हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं; छहों इंद्रियों का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो मन और शरीर (नामरूप) कैसे उत्पन्न होता है? मन और शरीर (नामरूप) का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब चेतना होती है, तो मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) है।' 15

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब कुछ विद्यमान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं? संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) का कारण अज्ञान ही है।'

"इस प्रकार अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) के कारण चेतना... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है)

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है? किसके निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है; पुनर्जन्म के निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या होता है? किसके निरासण से पुनर्जन्म का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व (भावो) के कारण के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब आसक्ति नहीं होती, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से तृष्णा का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के समाप्त होने से तृष्णा का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो वेदना क्यों नहीं उत्पन्न होती? किसके समाप्त होने से वेदना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या संपर्क स्थापित नहीं होता? किसके विलुप्त होने से संपर्क का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) की चेतना (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के विलुप्त होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का विलुप्त होना संभव हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके विलुप्त होने से छह इंद्रियों का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तो छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) नहीं होती, तो मन-शरीर (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या (साधारण) चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना अस्तित्व में नहीं आती; संस्कार (व्यवहार-आधार) के समाप्त होने से (सामान्य) चेतना का भी अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो संस्कार (व्यवहार-आधार) कैसे उत्पन्न नहीं होते? किसके समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) द्वारा मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत हो जाता है।'

इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने के साथ ही चेतना का अंत हो जाता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।
'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के विषय में, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
11. पोषण (आहार)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। 17 वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए हैं। 18

"भिक्षुओं, इन चार प्रकार के पोषणों का स्रोत क्या है, इनका उद्‌गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं?" इन चारों प्रकार के पोषक तत्वों का स्रोत तृष्णा है; इनका जन्म और उत्पत्ति तृष्णा से ही होती है। 19

"और इस तृष्णा का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति किससे होती है? इस तृष्णा का स्रोत वेदना है; इसकी उत्पत्ति वेदना से ही होती है।

और इस वेदना का स्रोत क्या है...? वेदना का स्रोत स्पर्श है... और इस स्पर्श का स्रोत क्या है...? स्पर्श का स्रोत छह इंद्रियां हैं... और इन छह इंद्रियों का स्रोत क्या है...? छह इंद्रियों का स्रोत नामरूप है... और इस नामरूप का स्रोत क्या है...? मन और शरीर (नामरूप) का स्रोत चेतना है... और इस चेतना का स्रोत क्या है...? चेतना का स्रोत संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है... और इन संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं? संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत अज्ञान है, इनकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है; ये अज्ञान से ही उत्पन्न और निर्मित होते हैं।

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का भी अंत हो जाता है... यही इस समस्त दुख का अंत है। (1 और 2 के समान)

---

12. मोलियफाग्गुण

सावत्थी में। [बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तरह के पोषक तत्व हैं जो पहले से मौजूद प्राणियों के रखरखाव और होने वाले प्राणियों की मदद के लिए हैं। कौन से चार? पोषक तत्व खाने लायक खाना, मोटा या हल्का; दूसरा, संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से; स्पर्श); तीसरा, मानसिक ज्ञान-जागरूकता; चौथा, चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)। ये चार तरह के पोषक तत्व हैं जो पहले से मौजूद प्राणियों के रखरखाव और होने वाले प्राणियों की मदद के लिए हैं।" 20

जब यह कहा गया, तो आदरणीय मोलियाफग्गुण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, पोषक तत्व चेतना का सेवन कौन करता है?" 21
"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई खाता है।' 22 अगर मैं कहूँ, 'कोई खाता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन खाता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस [एक कारण] किस लिए है?' 23 तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) के बनने का एक कारण है 24 जब जो अस्तित्व में आया है, वह मौजूद होता है, तो छह इंद्रियाँ [होती हैं]; 25 छह इंद्रियों के कारण के रूप में, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, संपर्क कौन करता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई कॉन्टैक्ट करता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई कॉन्टैक्ट करता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन कॉन्टैक्ट (फस्सा/स्पर्श) करता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से कॉन्टैक्ट [होता है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'छह इंद्रियों के कारण होने पर, कॉन्टैक्ट [होता है]; कॉन्टैक्ट के कारण होने पर, सेंसेशन (वेदना)।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन महसूस करता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई महसूस करता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई महसूस करता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन महसूस करता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से सेंसेशन (वेदना) [होती है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'जब कॉन्टैक्ट (स्पर्श) वजह हो, तो सेंसेशन (वेदना) [होती है]; जब सेंसेशन (वेदना) वजह हो, तो क्रेविंग (तन्हा बिना तृष्णा) होती है।'"
[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन चाहता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई चाहता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई चाहता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन चाहता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से चाहत [होती है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है:

'जब सेंसेशन (वेदना) वजह हो, तो चाहत [होती है]; जब चाहत वजह हो, तो चिपकना (उपादान बिना आसक्ति)।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन चिपकता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई चिपकता है।' यदि मैं कहूं, 'व्यक्ति चिपकता है,' तो उस स्थिति में यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन चिपकता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। चूँकि मैं ऐसा नहीं बोलता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस कारण से चिपकना [होता है]?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर है:
'लालसा (तन्हा बिना तृष्णा) को कारण मानकर चिपकना [होता है];
लगने के कारण से अस्तित्व (भावो)।'......
इस समस्त दुखों की उत्पत्ति ऐसी है।'

"लेकिन, फग्गुना, संपर्क की छह इंद्रियों के शेषहीन क्षीण होने और समाप्ति (निरोध) के साथ संपर्क का अंत हो जाता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के अंत के साथ, संवेदना (वेदना) का अंत हो जाता है; संवेदना (वेदना) के अंत के साथ, लालसा का अंत हो जाता है; "तृष्णा के खत्म होने पर, आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के खत्म होने पर, अस्तित्व का अंत होता है; अस्तित्व के खत्म होने पर, पुनर्जन्म का अंत होता है; पुनर्जन्म के खत्म होने पर, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। इस तरह इस सारे दुख का अंत होता है।" (1 और 2 जैसा)

---

13. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
सावत्थी में। भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते; 27 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (वेदना)... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर रूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। ब्राह्मणत्व। 28

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

14. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के बारे में जो इन धम्मों (धर्म, मार्ग), इनके उद्गम, इनके निरोध और इनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: वे कौन से धम्म (मार्ग, नियम) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निरोध को वे नहीं समझते और जिनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को वे नहीं समझते?

वे वृद्धावस्था और मृत्यु को नहीं समझते, न ही इसके उद्गम को, न इसके निरोध को और न इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को।" वे पुनर्जन्म, अस्तित्व (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर (नामरूप), चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते। ये वे धर्म (नियम, मार्ग) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निवारण को वे नहीं समझते और जिनके निवारण के मार्ग को वे नहीं समझते।

"मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी या ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों, इनके उद्गम, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं; वे कौन से धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्गम को वे समझते हैं, जिनके निवारण को वे समझते हैं और जिनके निवारण के मार्ग को वे समझते हैं?"

वे वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को वे समझते हैं।

मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिनय) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

15. कच्चनगोट्टा
सावत्थी में, पूज्य कच्चनगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहते हैं, 'सही दृष्टि, सही दृष्टि।' पूज्यवर, सही दृष्टि किस प्रकार है?"

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर द्वैत पर निर्भर है - अस्तित्व (भावो) और गैर-अस्तित्व की धारणा पर। 29 परन्तु जो ध्यान में संसार की उत्पत्ति को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में गैर-अस्तित्व की कोई धारणा नहीं होती। और जो ध्यान में निरोध को सही अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में अस्तित्व (भावो) की कोई धारणा नहीं होती। 30

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर आसक्ति, व्यथा (उपादान सं. आसक्ति) और निष्ठा से जकड़ा हुआ है। 31 परन्तु यह (सही दृष्टि वाला) व्यक्ति उस आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठा और अंतर्निहित प्रवृत्ति के कारण न तो संलग्न होता है और न ही उससे आसक्त होता है; वह 'मैं स्वयं' के बारे में कोई रुख नहीं अपनाता।" 32 उसे इस बात में कोई दुविधा या संदेह नहीं है कि जो कुछ उत्पन्न होता है वह केवल दुख का उत्पन्न होना है, और जो कुछ समाप्त होता है वह केवल दुख का समाप्त होना है। इस विषय में उसका ज्ञान दूसरों से स्वतंत्र है। कच्चना, सही दृष्टिकोण इसी प्रकार है। 33

"'सब कुछ विद्यमान है': कच्चाना, यह एक चरम सीमा है। 'सब कुछ विद्यमान नहीं है': यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं:
'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

---

16. धर्म/मार्ग पर एक वक्ता (धम्मकथिका)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:
"हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) का वक्ता, धर्म का वक्ता।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म का वक्ता होता है?"

"भिक्षु, यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निबिद्दा) और उसके निवारण (निरोध) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो वह धम्म का वक्ता भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 34 यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त हो जाती है, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 35

"भिक्षु, यदि कोई पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निबिद्दा) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है... अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के निवारण और समाप्ति के लिए अभ्यास करने वाला भिक्षु धम्म का वक्ता कहलाने योग्य है। यदि कोई अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त कर ली जाए, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है।

---

17. नग्न तपस्वी कस्सपा (अचेलकस्सपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। नग्न तपस्वी कश्यप ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्या वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे?"

[बुद्ध:] "यह प्रश्न पूछने का सही समय नहीं है, कश्यप। हम घरों के बीच प्रवेश कर चुके हैं।" 36
नग्न तपस्वी कस्सपा ने दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।”
[बुद्ध:] “कस्सापा, यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। हम घरों में प्रवेश कर चुके हैं।”

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से अधिक प्रश्न नहीं पूछना चाहते।”
[बुद्ध:] “तो कस्सपा, जो चाहो पूछो।”
[अचेलकस्सापा:] “गुरु गौतम, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकस्सापा:] “तो, गुरु गौतम, क्या दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख स्वयं और परावर्तित दोनों होते हैं?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर, गुरु गौतम, क्या दुख संयोगवश उत्पन्न होता है, न तो स्वयं और न ही परावर्तित?" 37
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सप; दुख है।"
[अचेलकसप:] "तो क्या गुरु गौतम दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, कस्सप। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।"

[अचेलकस्सापा:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'हे गौतम गुरु, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी और द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह दोनों द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी के द्वारा भी उत्पन्न नहीं होता?' प्रत्येक स्थिति में आप यही कहेंगे:
'ऐसा नहीं है, कस्सपा।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सपा; दुख है।' जब पूछा जाए: 'तो क्या गुरु गौतम दुख को जानते और देखते नहीं हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, कस्सपा। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे दुख का अर्थ समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के विषय में सिखाएँ। 38 तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उपसंपदा प्राप्त की। और शीघ्र ही, अपनी उपसंपदा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, सजग (अपमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा अरहंतों में से एक बन गए। 44
[बुद्ध:] "कस्सप, [अगर कोई सोचता है,] 'जो काम करता है, वही [नतीजा] भोगता है' [तो वह शुरू से मौजूद किसी के बारे में कहता है: 'दुख खुद ही पैदा करता है।' जब कोई ऐसा कहता है, तो यह हमेशा रहने वाला होता है। 39 लेकिन, कस्सप, [अगर कोई सोचता है,] जो काम करता है वह एक है, जो [नतीजा] भोगता है वह दूसरा है' [तो वह] वेदना से परेशान किसी के बारे में कहता है: 'दुख दूसरे के द्वारा पैदा किया जाता है।' जब कोई ऐसा कहता है, तो यह विनाशवाद के बराबर होता है। 40 इन दोनों में से किसी भी एक्सट्रीम की ओर जाए बिना, तथागत धम्म (रास्ता, कानून) को बीच का रास्ता (रास्ता, एक्सट्रीम नहीं) सिखाते हैं: 41 'अज्ञान (अविज्जा बिना. अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) [होता है]; संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना (विन्नाना बिना. विज्ञान).... यही इस पूरे दुख के ढेर की शुरुआत है। लेकिन अज्ञान के बिना बचे रहने के खत्म होने और खत्म होने (निरोध) के साथ संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) का भी अंत होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) के खत्म होने के साथ, चेतना का भी अंत होता है.... यही इस पूरे दुख के ढेर का अंत है।'" (जैसा कि 1 और 2 में है)

जब यह कहा गया, तो नंगे तपस्वी कश्यप ने कहा भगवान (बुद्ध): "महान्, आदरणीय महोदय! महान्, आदरणीय महोदय! भगवान (बुद्ध) ने धम्म को कई तरीकों से साफ़ किया है, जैसे कि वे उलटी हुई चीज़ों को सीधा कर रहे हों, जो छिपा हुआ था उसे दिखा रहे हों, जो खो गया था उसे रास्ता दिखा रहे हों, या जिनकी आँखें हैं उन्हें रूप देखने के लिए अंधेरे में दीपक दिखा रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), और धम्म, और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अंडर आगे बढ़ने (दीक्षा, पबज्जा) की इजाज़त मिले, क्या मुझे उपसम्पदा मिले?" 42
[बुद्ध:] "कस्सप, जो पहले दूसरे पंथ से थे और इस धम्म और अनुशासन में आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और ऊंची दीक्षा चाहते हैं, चार महीने तक प्रोबेशन पर रहते हैं। चार महीने के आखिर में, अगर भिक्षु उनसे खुश हैं, तो वे चाहें तो उन्हें आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं। लेकिन मैं व्यक्तिगत अंतरों को पहचानता हूं।" 43

[अचेलकस्साप्पा:] "आदरणीय महोदय, अगर कोई पहले किसी दूसरे पंथ का हो और इस धम्म (पथ, कानून) और अनुशासन में आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और ऊंची दीक्षा चाहता हो, और चार महीने तक प्रोबेशन पर रहता है, और अगर चार महीने के आखिर में भिक्षु उससे खुश होकर, अगर वे चाहें तो उसे आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं, तो मैं चार साल तक प्रोबेशन पर रहूंगा। चार साल के आखिर में, अगर भिक्षु मुझसे खुश हैं, तो वे चाहें तो मुझे आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं।"

18 (8) तिम्बारुका
श्रावस्ती में, तपस्वी तिंबरुक भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले:

[तिंबरुक:] "हे गौतम जी, क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?" 45
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [
तिंबरुक:] "तो हे गौतम जी, क्या सुख और दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होते हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिंबरुक:] "तो फिर, हे गौतम जी, क्या सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिम्बारुका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिम्बारुका:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि सुख और दुख नहीं हैं, तिम्बारुका; सुख और दुख हैं।" [तिम्बारुका:] "तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, तिम्बारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।"

[टिम्बरुका:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'यह कैसे है। मास्टर गोतम: क्या सुख और दुःख स्वयं के द्वारा निर्मित होते हैं?' या 'क्या वे किसी और के द्वारा बनाए जाते हैं?' [23] या 'क्या वे दोनों के द्वारा बनाए जाते हैं?' या 'क्या वे किसी के द्वारा नहीं बनाए जाते हैं?' प्रत्येक मामले में आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, टिम्बरुका।' जब आपसे पूछा जाता है: 'तो फिर यह कैसे है। मास्टर गोतम: क्या सुख और दुःख नहीं हैं?' आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि सुख और दुःख नहीं हैं, टिम्बरुका; सुख और दुःख हैं।' जब पूछा जाता है: 'तो क्या ऐसा है कि मास्टर गोतम सुख और दुःख को नहीं जानते और देखते नहीं हैं?' आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुःख को नहीं जानता और देखता नहीं हूँ, टिम्बरुका। मैं सुख और दुःख को जानता हूँ, मैं सुख और दुःख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुःख के बारे में समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुःख के बारे में सिखाएँ। [बुद्ध:] "टिम्बरुक, [अगर कोई सोचता है,] 'वेदना और उसे महसूस करने वाला एक ही हैं,' [तो वह कहता है] शुरू से मौजूद एक के बारे में: 'खुशी और दुख खुद ही बनाए जाते हैं।' मैं ऐसा नहीं कहता। 46 लेकिन, टिम्बरुक, [अगर कोई सोचता है,] 'वेदना एक है, उसे महसूस करने वाला दूसरा है,' [तो वह कहता है] वेदना से परेशान एक के बारे में: 'खुशी और दुख दूसरे के बनाए जाते हैं।' मैं भी ऐसा नहीं कहता। 47 इन दोनों में से किसी भी एक्सट्रीम की ओर जाए बिना, तथागत धम्म (रास्ता, कानून) को बीच का रास्ता (रास्ता, एक्सट्रीम नहीं) बताते हैं: 'अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) [होता है]; संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान).... यही इस पूरे दुख के ढेर की शुरुआत है। लेकिन अज्ञान के बिना बचे रहने के खत्म होने और खत्म होने (निरोध) के साथ संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) का भी अंत होता है; संस्कार (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) के खत्म होने के साथ, चेतना का भी अंत होता है.... यही इस पूरे दुख के ढेर का अंत है।'" (जैसा कि 1 और 2 में है)
जब यह कहा गया, तो नंगे तपस्वी टिम्बरुका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान्, मास्टर गौतम!... मैं मास्टर गौतम, धम्म और भिक्खु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से मास्टर गौतम मुझे एक ऐसे आम अनुयायी के रूप में याद रखें जो जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

19. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए अपरिष्कृत लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है। केवल छह इंद्रियां हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - अपरिष्कृत व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। 48

"भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए बुद्धिमान लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है।" केवल छह इंद्रियाँ हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, यहाँ क्या अंतर है, क्या भेद है, ज्ञानी व्यक्ति और अपरिष्कृत (नासमझ) व्यक्ति में क्या अंतर है? "

हे पूज्यवर, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। 49 उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

[बुद्ध:] "तो सुनो और ध्यान रखो, हे भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"
"जी हे पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अज्ञान से अवरुद्ध और तृष्णा से जकड़े अपरिष्कृत (नासमझ) लोगों के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए अज्ञान का त्याग नहीं हुआ है और उसकी व्यथा पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति ने दुखों के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है। इसलिए, शरीर के टूटने पर अज्ञानी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है। नया शरीर धारण करने पर भी वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होता; दुखों से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।

भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए ज्ञानी पुरुष के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। ज्ञानी पुरुष ने उस अज्ञान का त्याग कर दिया है और उस तृष्णा का पूर्णतः नाश कर दिया है। इसका कारण क्या है? क्योंकि ज्ञानी पुरुष ने दुख के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है। इसलिए, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञानी पुरुष नया शरीर धारण नहीं करता। नया शरीर धारण न करने के कारण वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।
"हे भिक्षुओं, यही ज्ञानी और अपरिष्कृत व्यक्ति के बीच का भेद, यही अंतर, यही अंतर है, अर्थात् ब्रह्मचर्य का जीवन जीना।" 50

---

20. कारण (पच्चय सं. प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) और उससे उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धम्म) का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, यह प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व (धातु) फिर भी विद्यमान रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। 51 तथागत इसे जागृत करते हैं और इसे पार कर लेते हैं। 52 ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसे प्रकट करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! हे भिक्षुओं, पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'" 53 "जब, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति और इन आश्रित उत्पन्न घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से देख लेता है, तो यह असंभव है कि वह अतीत में वापस जाकर सोचे: 'क्या मैं अतीत में विद्यमान था? क्या मैं अतीत में विद्यमान नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? अतीत में मैं क्या था, और फिर क्या बन गया?' या यह कि वह भविष्य में आगे बढ़कर सोचे: 'क्या मैं भविष्य में विद्यमान रहूंगा? क्या मैं भविष्य में विद्यमान नहीं रहूंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? मैं क्या था, और फिर क्या बन जाऊंगा?' या यह कि वह वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से भ्रमित हो जाए: 'क्या मैं विद्यमान हूं? क्या मैं विद्यमान नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह अस्तित्व - कहां से आया है, और कहां जाएगा?' 56 "इसका क्या कारण है कि यह असंभव है? क्योंकि, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य ने सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद) और इन आश्रित उत्पत्ति की घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से देखा है।"

"'भावो' को कारण मानकर, पुनर्जन्म' ... 'उपादान संस. आसक्ति' को कारण मानकर, अस्तित्व' ... 'तृष्णा' को कारण मानकर, आसक्ति' ... 'वेदना' को कारण मानकर, तृष्णा' . . . 'संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)' ... 'छह ज्ञानेंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क' ... 'मन-और-शरीररूप' को कारण मानकर, छह ज्ञानेंद्रियां' ... 'चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) को कारण मानकर, मन-और-शरीररूप' ... 'संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना' ... 'अज्ञानता (अविद्या) को कारण मानकर, संखारा (व्यवहार-कंडीशनिंग)': चाहे तथागतों का उदय हो या तथागत का कोई उदय नहीं, वह तत्व अभी भी बना रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित पाठ्यक्रम, विशिष्ट कारण। एक तथागत इसके प्रति जागृत होता है और [26] इसमें प्रवेश करता है। ऐसा करने के बाद, वह इसे समझाता है, इसे सिखाता है, इसे घोषित करता है, इसे स्थापित करता है, इसे प्रकट करता है, इसका विश्लेषण करता है, इसे स्पष्ट करता है। और वह कहता है: 'देखो! अज्ञान को कारण मानकर, भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) (होते हैं)।' (जैसा कि 1 और 2 में है)
"इस प्रकार, भिक्षुओं, इसमें वास्तविकता, अचूकता, अन्यथा-नहीं-पन, विशिष्ट कारण: इसे आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) कहा जाता है। 54

"और, भिक्षुओं, निर्भर रूप से उत्पन्न होने वाली घटनाएँ (धम्म) क्या हैं? भिक्षुओं, बुढ़ापा और मृत्यु, अस्थायी है, शर्तबद्ध (संखतो), निर्भर रूप से उत्पन्न, विनाश (खाय\क्षय), गिरावट, मिटना, और समाप्ति (निरोध) के अधीन है। जन्म अस्थायी है ... अस्तित्व (भावो) अस्थायी है ... चिपकना अस्थायी है ... लालसा (तन्हा बिना तृष्णा) अस्थायी है ... संवेदना (वेदना) अस्थायी है ... संपर्क (फस्सा/स्पर्श) अस्थायी है ... छह इंद्रियाँ अस्थायी हैं...

मन और शरीर का रूप (नामरूप) अस्थायी है ... चेतना अस्थायी है ... संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) अस्थायी हैं ... अज्ञान अस्थायी है, शर्तबद्ध (संखत), निर्भर रूप से उत्पन्न, के अधीन है विनाश (खाया/क्षय), गिरावट, लुप्त होना और समाप्ति। भिक्षुओं, इन्हें आश्रित रूप से उत्पन्न घटना (धम्म) कहा जाता है।

(iii) दस शक्तियों का खंड (दशबलवग्गो)

21. दस शक्तियाँ (1) (दशबाला 1)

सावत्थी में। [बुद्ध:] "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 57 'ऐसा है रूप, ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है संवेदना (वेदना), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है अनुभूति (संज्ञा), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसे हैं संस्कार (आक्रामक व्यवहार), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय। 58 अत: जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान हो जाता है। 59 अर्थात्, इसके विद्यमान होने पर अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आधारभूतता) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। इसी प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 में है)।

---

22. दस शक्तियाँ (2) (दशबाला 2)

सावत्थी में, "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान ग्रहण करते हुए सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 'ऐसा है रूप... (जैसा कि 21 में है)... इस समस्त दुख का यही निवारण (निरोध) है।' भिक्षुओं

, इस प्रकार मैंने धर्म (मार्ग, नियम) की अच्छी तरह व्याख्या की है, उसे स्पष्ट किया है, प्रकट किया है, प्रकट किया है, और उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं।" 60 हे भिक्षुओं, जब मैंने इस प्रकार धम्म की अच्छी तरह व्याख्या कर दी है, उसे स्पष्ट कर दिया है, प्रकट कर दिया है, उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं, तो यह उस कुल के अनुयायी के लिए पर्याप्त है जिसने विश्वास से दीक्षा ली है, ताकि वह अपनी ऊर्जा (वीर्य) को इस प्रकार जागृत कर सके: 'इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति से, पुरुष ऊर्जा शक्ति से, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' 61

भिक्षुओं, आलसी व्यक्ति दुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से दूषित रहता है, और वह बड़े पुण्य का उपेक्षित रहता है। 62 परन्तु ऊर्जावान व्यक्ति सुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से विरक्त रहता है, और वह बड़े पुण्य को प्राप्त करता है। निम्नतर के द्वारा परम को प्राप्त नहीं किया जाता, बल्कि परम के द्वारा ही परम को प्राप्त किया जाता है। 63 भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन मलाई के पेय के समान है; गुरु उपस्थित हैं। 64 अतः, भिक्षुओं, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक असिद्ध को सिद्ध करने के लिए अपनी ऊर्जा को जागृत करो, [इस विचार के साथ]: 'इस प्रकार हमारा यह दीक्षा संस्कार निष्फल नहीं, बल्कि फलदायी और उपजाऊ होगा; और जब हम दूसरों द्वारा दिए गए वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री का उपयोग करते हैं, तो उनके द्वारा हमारे लिए की गई ये सेवाएँ उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होंगी। 65 इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:

"हे भिक्षुओं, अपने हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; दूसरों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; और दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है।" 66

---

23. निकटवर्ती कारण (उपनिष)

सावत्थी, 67 पर: "भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खया/क्षय) उसे होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, विपश्यना ध्यान का संदर्भ), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (सन्ना, संज्ञा) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान, संस्कृत विज्ञान), ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसके लिए विकारों का नाश होता है।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि नाश के संबंध में नाश (खया/क्षय) के ज्ञान का एक निकटवर्ती कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और विनाश के ज्ञान का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। 68

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस मुक्ति का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और मुक्ति का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वैराग्य।

मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस वैराग्य का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और वैराग्य का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: घृणा (निब्बिदा)।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि घृणा का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और घृणा का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: धम्मों (नियम, मार्ग और अनुभव) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि धम्मों का वास्तविक ज्ञान और दर्शन का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और धम्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि समाधि (सम्मोहन) अवस्था का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और समाधि (सम्मोहन) अवस्था का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: सुख।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि सुख का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और सुख का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: शांति।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और शांति का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: परमानंद (पीति/प्रीति)।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि परमानंद (पीति/प्रीति) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और परमानंद का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: प्रसन्नता।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि प्रसन्नता का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और प्रसन्नता का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विश्वास।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आस्था का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और आस्था का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: दुख। 69

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दुख का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और दुख का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पुनर्जन्म।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पुनर्जन्म का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और पुनर्जन्म का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अस्तित्व का कारक (भाव)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व के कारक (भाव) का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और अस्तित्व के कारक (भाव) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आसक्ति का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और आसक्ति का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा) का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और तृष्णा का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वेदना (संवेदना)।

"वेदना के लिए, यह कहना चाहिए: इंद्रियों का विषय से संपर्क। संपर्क के लिए: छह इंद्रिय शक्तियाँ। छह इंद्रिय शक्तियों के लिए: मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)। मन और शरीर के स्वरूप के लिए: चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। चेतना के लिए: संस्कार (आक्रामक व्यवहार)।

" "मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि संस्कार (व्यवहार) का भी एक निकटवर्ती कारण है; उनमें निकटवर्ती कारण का अभाव नहीं है। और संस्कार (व्यवहार) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहना चाहिए: अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है; चेतना को मुख्य कारण मानकर मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) को मुख्य कारण मानकर छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों को मुख्य कारण मानकर स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) को मुख्य कारण मानकर संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) को मुख्य कारण मानकर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; तृष्णा को मुख्य कारण मानकर आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति को मुख्य कारण मानकर अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) को मुख्य कारण मानकर पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म को मुख्य कारण मानकर दुख उत्पन्न होता है; दुख को मुख्य कारण मानकर विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास को मुख्य कारण मानकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है; प्रसन्नता को मुख्य कारण मानकर निकटवर्ती कारण, आनंद (पीति/प्रीति); आनंद को निकटवर्ती कारण मानकर, शांति (पसद्धि/प्रशब्धि); शांति को निकटवर्ती कारण मानकर, सुख (सुख); सुख को निकटवर्ती कारण मानकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था; समाधि (सम्मोहन) अवस्था को निकटवर्ती कारण मानकर, धर्मो (नियम, मार्ग) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन; धर्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन को निकटवर्ती कारण मानकर, घृणा (निब्बिद); घृणा को निकटवर्ती कारण मानकर, वैराग्य; वैराग्य को निकटवर्ती कारण मानकर, मुक्ति (विमुक्ति/विमुक्ति); मुक्ति को निकटवर्ती कारण मानकर, विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय)।

"जैसे, भिक्षुओं, जब पर्वत की चोटी पर भारी मात्रा में वर्षा होती है, तो पानी ढलान के साथ बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भर जाने से तालाब भर जाते हैं; ये सब भर जाने पर झीलें भर जाती हैं; ये सब भर जाने पर नदियाँ भर जाती हैं; और ये सब भर जाने पर विशाल सागर भर जाता है; 70

इसी प्रकार, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... मुक्ति को मुख्य कारण मानकर विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय) उत्पन्न होता है।

---

24. अन्य संप्रदायों के तपस्वी (अन्नतित्तीय संप्रदाय)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन) में।
(i)

फिर, सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उससे कहा:

"मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 71 अब, मित्र सारिपुत्त, तपस्वी गौतम इस विषय में क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें तपस्वी गौतम द्वारा कही गई बात को ही बताना है और तथ्यों के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं करनी है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?" 72

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (विषय से स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। 73 इसी प्रकार, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी

संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण होता है। [34] इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं और न ही दूसरे के द्वारा, वह भी संपर्क (पच्चाय) के कारण होता है।

"मित्रों, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा, उनके लिए संपर्क (फस/स्पर्श) के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है।"

(ii)

पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों के बीच हुई पूरी बातचीत बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि दुख आश्रितता से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा, वह भी स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा, उनके लिए बिना संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करना असंभव है।"

"एक बार, आनंद, मैं यहीं राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहा था। फिर सुबह, मैंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तभी मेरे मन में विचार आया: 'राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।' तब मैं दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गया। मैंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर मैं एक तरफ बैठ गया। तब तपस्वियों ने मुझसे कहा, जब मैं एक तरफ बैठा था: ... (तपस्वियों ने वही प्रश्न पूछा जो उन्होंने सारिपुत्त से पूछा था और उन्हें वही उत्तर मिला) ... बिना स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उनका अनुभव करना असंभव है।"

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! कैसे संपूर्ण अर्थ एक ही वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है! क्या इसी अर्थ को विस्तार से, गहन और निहितार्थों से भरपूर तरीके से व्यक्त किया जा सकता है?" 74

"तो फिर, आनंद, आप स्वयं ही इस विषय को स्पष्ट करें।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत पुनर्जन्म है, पुनर्जन्म ही इसकी उत्पत्ति है; यह पुनर्जन्म से जन्म लेता है और उत्पन्न होता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। [37]

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत और मूल तत्व अस्तित्व का कारक (भावो) है; यह अस्तित्व के कारक

(भावो) से ही उत्पन्न होता है... अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है... आसक्ति का स्रोत तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) है... तृष्णा का स्रोत वेदना (संवेदना) है... वेदना का स्रोत स्पर्श (संपर्क) है... संपर्क का स्रोत और मूल तत्व छह इंद्रिय शक्तियां हैं; यह छह इंद्रिय शक्तियों से ही उत्पन्न होता है। लेकिन छह इंद्रिय शक्तियों के अंत (निरोध) से संपर्क का भी अंत हो जाता है; स्पर्श के समाप्त होने पर, वेदना समाप्त हो जाती है; वेदना समाप्त होने पर, तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर, आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने पर, भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर, पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने पर, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुःख का अंत हो जाता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। (प्रश्न 1 और 2 के समान)

25.भूमिजा
सावत्थी में।
(i)

फिर, शाम को, पूज्य भूमिजा एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे 75 उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 76 हे मित्र सारिपुत्त, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या शिक्षा देते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए?” और हमें धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन के किसी भी तर्कसंगत परिणाम से आलोचना का कोई आधार न मिले?

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (फस/स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्र, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह संपर्क के कारण (पच्चय) होता है।"

"इसमें, हे मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो यह मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

(ii)

आदरणीय आनंद ने आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच यह बातचीत सुनी। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए वचन को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे बिना संपर्क (फस/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।

(iii)

"आनंद, जब शरीर होता है, तो शारीरिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब वाणी होती है, तो वाणी संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब मन होता है, तो मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं - और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) इसका कारण है।" 77

"आनंद, या तो स्वयं की पहल पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के उकसावे पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। 78

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं।

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"अज्ञान इन अवस्थाओं में समाहित है। 80 परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, वह शरीर (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है; वह वाणी (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करती है, अस्तित्वहीन हो जाती है; वह मन (मन) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है। 81 वह क्षेत्र (क्षेत्र) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान (स्थान) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह इंद्रिय (इंद्रिय) अस्तित्वहीन हो जाती है, वह आधार (आधार) अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।" 82

---

26. उपवन
सावत्थी में, पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 83

"पूज्यवर, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख दूसरे के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न होता है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा। अब, पूज्यवर, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे व्याख्या करनी चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

[बुद्ध:] "उपवन, मैंने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"उपवन, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"उपवन में, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

---

27. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... (जैसा कि 1 में है)। यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न प्राणियों की वृद्धावस्था... (जैसा कि 2 में है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। पुनर्जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; पुनर्जन्म के निवारण (निरोध) के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... संवेदना (वेदना)?... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)?... चेतना?... संस्कार (व्यवहार-आधार)? ये तीन प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार)। अज्ञान के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग मोक्ष की ओर ले जाता है। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निवारण; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सत्त्व) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार कारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के उद्‌गम को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, 84 तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को (ध्यान, पस्सति में, विपश्यना ध्यान में) देखने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, जो अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा है, कहलाता है।" 85

---

28. भिक्षु (संस्कृत: भिक्षु, साधु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "यहाँ, भिक्षु (भिक्षु) वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्‌भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (जैसा कि पिछले सूत्र 27 में) ... केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) की समाप्ति की ओर ले जाता है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें एसएन 5.8)।

जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है; जब वह पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति... तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर के स्वरूप (नामरूप)... चेतना... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार)... इनके उद्‌भव, इनके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध भिक्षु कहलाता है, जो इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान में) इस सच्चे धम्म को देखता है, जो प्रशिक्षु का ज्ञान, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखता है, जो ज्ञान की धारा में प्रवेश कर चुका है। धम्म, एक महान व्यक्ति है जो गहन प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, जो अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा है।

---

29. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते; 86 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना

(वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रिय शक्तियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते: ये मैं इन पूजनीय भिक्षुओं को तपस्वियों में श्रेष्ठ या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ नहीं मानता, और न ही ये पूज्य भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उसके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मानता हूँ, और न ही ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

---

30. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं (सन्यासियों), उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... नामरूप... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है।" संस्कार (व्यवहार-आधार)।

"परन्तु, भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करेंगे। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... संस्कार (व्यवहार-आधार), उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) से परे जाकर निवास करेंगे।"

(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
31. जो कुछ हुआ है (भूत)
एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे...
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,
"सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: '87

जिन्होंने धम्म (मार्ग, नियम) को समझ लिया है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से
उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर मुझे बताइए, हे महोदय।' 88

संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: 'जिन्होंने... मुझे बताइए, हे महोदय; ... संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?" दूसरी और तीसरी बार पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। 89

"सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'? सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'?"

[सारिपुत्त:] "आदरणीय महोदय, ध्यान में (पस्साति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है: 'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा देखकर; 'यह अस्तित्व में आया है', व्यक्ति अस्तित्व में आई चीज़ के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए अभ्यास कर रहा है। 90 ध्यान में सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' 91 सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से होती है,' व्यक्ति इसके पोषण से उत्पन्न होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। व्यक्ति (ध्यान में) सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है,' व्यक्ति समाप्त होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक प्रशिक्षु होता है।

"और हे पूज्यवर, आपने धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा है? हे पूज्यवर, व्यक्ति (ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है:
'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'यह अस्तित्व में आया है', जो अस्तित्व में आया है उसके प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है,' पोषण से इसकी उत्पत्ति के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण की समाप्ति के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्ति के अधीन है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा ही देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने से, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाएगा', जो समाप्त होने वाला है उसके प्रति घृणा के द्वारा, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के द्वारा, व्यक्ति अनासक्ति से मुक्त हो जाता है। 92 इसी प्रकार से धम्म को समझा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब परायण के 'अजिता के प्रश्न' में कहा गया है:
'जिन्होंने धम्म को समझ लिया है; और यहां मौजूद कई ट्रेनी, उनसे उनके व्यवहार के बारे में पूछा गया है; समझदार बनकर, मुझे बताओ, सर।'

इस तरह से मैं इस बात का मतलब डिटेल में समझ पाया जो शॉर्ट में कहा गया था।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त!... (बुद्ध यहां पहले की तरह आदरणीय सारिपुत्त की पूरी बात दोहराते हैं)
इस तरह से इस बात का मतलब, जो शॉर्ट में कहा गया है, डिटेल में समझा जाना चाहिए।"
32. कालरा
सावत्थी में।

(i)

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु मोलियाफग्गुण ने साधना त्याग दी है और निम्न लोक में लौट गए हैं।" 93
"तो निश्चय ही उस पूज्य भिक्षु को इस धर्म और अनुशासन में शांति नहीं मिली।"
"तो क्या पूज्य सारिपुत्त को इस धर्म और अनुशासन में शांति मिली है?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई दुविधा नहीं है, मित्र।"

[कालरा:] "परन्तु भविष्य के बारे में, मित्र?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई संदेह नहीं है, मित्र।"

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, अस्तित्व का मूल (भावो) आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है...'" " परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, आसक्ति का स्रोत क्या है...? तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न होती है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?" "हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत (वेदना) है, इसकी उत्पत्ति (वेदना) है; यह संवेदना (वेदना) से उत्पन्न होती है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, हे पूज्यवर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" "परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे तुमसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, तुम्हें कैसे पता चला, तुमने कैसे देखा कि वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) अब तुममें नहीं रहता?' - इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?" 97 "यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। मित्रों, ये तीनों वेदनाएँ क्षणभंगुर हैं; जो क्षणभंगुर है वही दुख है। जब यह समझ में आया, तो वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) मुझमें नहीं रहा।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" "अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह उसी बात को संक्षेप में समझाने का एक और तरीका है: 'जो कुछ भी अनुभव किया जाता है वह दुख में समाहित है।'" 98 परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, आपने किस प्रकार के उद्धार (विमोक्ष/विमोक्ष) के द्वारा इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया गया है, जो करना था वो हो चुका है, अब इस स्थिति में रहने के लिए और कुछ नहीं बचा है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?

"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने आखिरी ज्ञान इस तरह बताया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म खत्म हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो गया है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं बचा है।'" 94

फिर भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से इस तरह कहा: "आओ, भिक्षु, सारिपुत्त को मेरे नाम से बताओ कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"हाँ, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने जवाब दिया, और वह आदरणीय सारिपुत्त के पास गया और उनसे कहा: "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, दोस्त सारिपुत्त।"

"हाँ, दोस्त," आदरणीय सारिपुत्त ने जवाब दिया, और वह भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया, और एक तरफ बैठ गया। फिर भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या यह सच है, सारिपुत्त, कि तुमने आखिरी ज्ञान इस तरह बताया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म खत्म हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया, जो करना था वह हो गया, इस हालत के लिए और कुछ नहीं बचा'?"

"आदरणीय महोदय, मैंने बात उन शब्दों और बातों में नहीं कही।"

"सारिपुत्त, एक कुल का आदमी जिस भी तरह आखिरी ज्ञान बताता है, उसने जो बताया है उसे वैसा ही समझना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, क्या मैंने भी ऐसा नहीं कहा था: 'आदरणीय महोदय, मैंने बात उन शब्दों और बातों में नहीं कही'?"

"यदि, सारिपुत्त, वे आपसे पूछें: 95 'मित्र सारिपुत्त, आपने कैसे जाना, आपने कैसे देखा, कि आपने अंतिम ज्ञान इस प्रकार घोषित किया है: 'मैं समझता हूं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह किया जा चुका है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप कैसे उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, [52] तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'जिस स्रोत से पुनर्जन्म उत्पन्न होता है, उसके खाय\क्षय के साथ, मैंने समझा है: "जब [कारण] नष्ट हो जाता है, [प्रभाव] नष्ट हो जाता है।" यह समझने के बाद, मैं समझता हूं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह किया जा चुका है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस तरह उत्तर दूंगा।" 96

"लेकिन, सारिपुत्त, अगर वे आपसे पूछें: 'लेकिन, दोस्त सारिपुत्त, पुनर्जन्म का सोर्स क्या है, इसकी शुरुआत क्या है, यह किससे पैदा होता है और बनता है?' - ऐसा पूछे जाने पर, आप क्या जवाब देंगे?"

"अगर वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय सर, तो मैं इस तरह जवाब दूंगा: 'दोस्तों, पुनर्जन्म का सोर्स, फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) ही है; यह फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) से पैदा होता है और बनता है।' ऐसा पूछे जाने पर, आदरणीय सर, मैं इस तरह जवाब दूंगा।"

"लेकिन, सारिपुत्त, अगर वे आपसे पूछें: 'लेकिन, दोस्त सारिपुत्त, फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) का सोर्स क्या है...?' - ऐसा पूछे जाने पर, आप क्या जवाब देंगे?"
"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: [54] 'मित्रों, आंतरिक मुक्ति के द्वारा, समस्त आसक्ति (उपादान संस. आसक्ति) के नाश (खया/क्षय) द्वारा, मैं इस प्रकार ध्यान (सतो) में लीन रहता हूँ कि मेरे भीतर दोष प्रवाहित नहीं होते और मैं स्वयं को तुच्छ नहीं समझता।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" 99

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! उसी बात को संक्षेप में समझाने का यह एक और तरीका है: 'मुझे तपस्वी द्वारा बताए गए दोषों के संबंध में कोई दुविधा नहीं है; मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैंने उनका त्याग कर दिया है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, परम पूज्य अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए।

(ii)

फिर, भगवान (बुद्ध) के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था: 100 इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरे दिन प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें पूरे दिन विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा। यदि वे मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरी रात, एक दिन और रात, [55] दो दिन और रात, तीन, चार, पाँच, छह या सात दिन और रात - सात दिन और रात प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

तब भिक्षु कालरा (खत्तिया) अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने सिंह की गर्जना करते हुए कहा है: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था, इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'

"भिक्षु, आदरणीय सारिपुत्त ने धर्म (मार्ग, नियम) के उस तत्व (धातु) में पूर्णतः प्रवेश किया है, जिसके पूर्णतः प्रवेश से, यदि मैं उनसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से प्रश्न पूछूँ, तो वे मुझे विभिन्न शब्दों और विधियों से उत्तर दे सकेंगे। विभिन्न शर्तों और विधियों के साथ।" 101

---

33. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु संस्कृत ज्ञान-वस्तु)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान के चौवालीस मामलों का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और एकाग्र रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, ज्ञान के चौवालीस प्रकार क्या हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान, इसके उद्भव का ज्ञान, इसके निवारण का ज्ञान, इसके निवारण के मार्ग का ज्ञान। पुनर्जन्म का ज्ञान... अस्तित्व के कारक (भावो) का ज्ञान... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का ज्ञान... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का ज्ञान... वेदना (संवेदना) का ज्ञान... स्पर्श (फस/स्पर्श) का ज्ञान... छह इंद्रियों का ज्ञान... नामरूप (मन-शरीर) का ज्ञान... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का ज्ञान... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का ज्ञान, इनके उद्भव का ज्ञान, इनके निवारण का ज्ञान, इनके निवारण के मार्ग का ज्ञान। हे भिक्षुओं, ये चौवालीस प्रकार हैं।" ज्ञान का।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (परिभाषा 2 में दी गई है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। 102 इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, तत्काल प्राप्त और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, 103 वह अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि का प्रयोग करता है: 'अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ। भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों को वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ।' यह उसका निहितार्थ का ज्ञान है। 104

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और निहितार्थ का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि मंत्र सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को जानने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है।"

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... संस्कार (व्यवहार-आदत) क्या हैं?... (परिभाषाएँ 2 में दी गई हैं)... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत), उनके उद्‌गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, प्राप्त और गूढ़ सिद्धांत के माध्यम से वह भूतकाल और भविष्यकाल पर विधि का प्रयोग करता है... यही उसका परिणाम का ज्ञान है।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और परिणाम का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है... वह जो अमरता के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा होता है।"

---

34. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्तरह ज्ञान के विषय सिखाऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, वे सत्तरह ज्ञान के विषय क्या हैं? ज्ञान: 'वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' ज्ञान: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म था।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी, यदि पुनर्जन्म न होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होती।' ज्ञान: 'भविष्य में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि पुनर्जन्म न हो, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होगी।'" यह ज्ञान: 'धर्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन है।' 105

"यह ज्ञान: 'पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व का कारक (भावो) है।' ... यह ज्ञान: 'संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का कारण अज्ञान (अविज्ज सं. अविद्या) है।' यह ज्ञान: 'जब अज्ञान नहीं होता, तब संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान था।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी, यदि अज्ञान न होता, तो संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'भविष्य में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि अज्ञान न हो, तो संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) न होंगे।' ज्ञान: 'धम्म की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), क्षय, लुप्त होने और समाप्ति के अधीन है।'

"भिक्षुओं, इन्हें ज्ञान के सतहत्तर कारक कहा जाता है।"

नोट: यह एक अत्यंत गहन अर्थ वाला सूत्र है। सारतः इसका अर्थ यह है कि पिछले सूत्र 33 के अतिरिक्त, यदि सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त भी हो जाए, तो यह 'ज्ञान' स्वयं क्षय और विनाश (खया/क्षय) के अधीन है। इसलिए व्यक्ति को इस प्राप्त ज्ञान का 'उपयोग' करके बंधनों और बेड़ियों को तोड़ना चाहिए और अस्तित्व के कारक (भावो) से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह पुनः जन्म न ले, दूसरे शब्दों में, शाश्वत आनंद की निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सके।

---

35. अज्ञान को कारण मानकर (1) (अविज्जपच्चय 1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

जब उन्होंने यह कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। 106
"भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु एक ही बात है, और जिसके लिए यह वृषण और मृत्यु है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; केवल शब्दों में अंतर है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है। 107 इन दोनों अतिवादों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में धम्म (मार्ग, नियम) की शिक्षा देते हैं: 'पुनर्जन्म को कारण मानते हुए, वृषण और मृत्यु।' "आदरणीय महोदय

, पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' या चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म एक बात है, जिसके लिए यह जन्म है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें केवल शब्दों का अंतर है... इन दोनों चरम

सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर जन्म होता है।'

"आदरणीय महोदय, अब अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?"

"यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई यह कहे कि 'अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'अस्तित्व का कारक (भावो) एक चीज है, जिसके लिए यह अस्तित्व का कारक (भावो) है वह दूसरी चीज है' - ये दोनों कथन अर्थ में समान हैं; इनमें केवल शब्दों के प्रयोग में अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व का कारक (भावो)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को कारण मानकर, आसक्ति... वेदना (संवेदना) को कारण मानकर, तृष्णा... इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रिय का स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)... छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (संवेदना)... मन और शरीर के रूप (नामरूप) को कारण मानकर, छह इंद्रियां... [62] चेतना को कारण मानकर, मन-शरीर रूप (नामरूप)... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को कारण मानकर चेतना।"

आदरणीय महोदय, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?" "

यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई पूछे, 'संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?'" चाहे कोई कहे, 'संस्कार (व्यवहार-आधार) एक चीज है, जिसके लिए ये संस्कार (व्यवहार-आधार) मौजूद हैं वह दूसरी चीज है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें अंतर केवल शब्दों के प्रयोग में है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक हैं', तो ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक चीज है, शरीर दूसरी चीज है', तो भी ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है। इन दोनों अतिवादी विचारों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) का पालन किया जाता है।'

लेकिन अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, चाहे कितने ही प्रकार के दुष्प्रचार, चालबाज़ी और दुविधाएँ क्यों न हों - 'वृषण-मृत्यु क्या है, और किसके लिए है?' या 'वृषण-मृत्यु एक बात है, जिसके लिए यह है वह दूसरी बात है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी बात है' - ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

"अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और उसके समाप्त हो जाने के साथ ही, चाहे कितने भी प्रकार के दुष्प्रचार, युक्ति और दुविधाएँ हों - 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' ... 'संस्कार क्या हैं, और ये संस्कार किसके लिए हैं?' या 'संस्कार एक ही बात है, जिसके लिए ये संस्कार हैं वह दूसरा है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है' - ये सभी त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें।"

---

36. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
(यह सूत्र पिछले 35 सूत्रों के समान ही है, केवल इतना अंतर है कि इसमें भिक्षुओं को सामूहिक रूप से संबोधित किया गया है, और कोई भी ऐसा वार्ताकार नहीं है जो अनुचित प्रश्न पूछता हो। बुद्ध ने स्वयं ही अमान्य कथनों के प्रकारों का उल्लेख किया है।)

---

37. तुम्हारा नहीं (नटुम्ह)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह शरीर न तो तुम्हारा है और न ही दूसरों का। 110 यह पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और निर्मित माना जाता है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। 111 इसमें, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य ध्यानपूर्वक और निकटता से प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके निरोध के साथ वह समाप्त हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। लेकिन शेषफल के साथ यह लुप्त हो जाता है।" और अज्ञान के अंत से संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के अंत से चेतना का अंत होता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

38. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, और जो कोई प्लान बनाता है, और जिस चीज़ की ओर उसका झुकाव होता है: यह चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) को बनाए रखने का आधार बन जाता है। जब कोई आधार होता है तो चेतना को स्थापित करने के लिए एक सहारा होता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और बढ़ जाती है, तो भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का निर्माण होता है। जब भविष्य में नए अस्तित्व का निर्माण होता है, तो भविष्य में पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा होती है। यही इस सारे दुख की शुरुआत है। 112

"अगर, भिक्षुओं, कोई इरादा नहीं रखता है, और कोई प्लान नहीं बनाता है, लेकिन फिर भी उसका किसी चीज़ की ओर झुकाव है, तो यह चेतना को बनाए रखने का आधार बन जाता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना को स्थापित करने के लिए एक सहारा होता है.... यही इस सारे दुख की शुरुआत है। 113

"लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं रखता, और कोई प्लान नहीं बनाता, और किसी चीज़ के प्रति उसका झुकाव नहीं होता, तो चेतना को बनाए रखने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना को स्थापित करने के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है, तो भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का कोई प्रोडक्शन नहीं होता। जब भविष्य में नए अस्तित्व का कोई प्रोडक्शन नहीं होता, तो भविष्य में पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। इस तरह इस पूरे दुख का अंत (निरोध) होता है।" 114

---

39. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, अपनी योजनाओं और अपनी प्रवृत्तियों के साथ, यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। 115 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना ... तृष्णा ... आसक्ति ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"हे भिक्षुओं, यदि कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, परन्तु किसी ओर झुकाव रखे, तो यह चेतना के बने रहने का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन-शरीर रूप (नामरूप) के निरोधन के साथ ही छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

40. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो भी व्यक्ति इरादा करता है, जो भी योजना बनाता है, और जिस भी ओर उसका झुकाव होता है, वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो झुकाव उत्पन्न होता है। जब झुकाव होता है, तो आना-जाना होता है। जब आना-जाना होता है, तो मृत्यु और पुनर्जन्म होता है। 116 मृत्यु और पुनर्जन्म होने पर, भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज़ की ओर झुकाव हो, तो वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो कोई झुकाव नहीं होता। जब कोई झुकाव नहीं होता, तो आना-जाना नहीं होता। जब आना-जाना नहीं होता, तो मरना-मरना नहीं होता। जब मरना-मरना नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दुःख का निरोध है।

(v) Householder Section (Gahapativaggo sans. Grihapati-varg)
41. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
सावत्थी में। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्न के चार गुण आ जाते हैं, और उसने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख लिया है और उसमें पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।' 118

"वे पाँच भयानक शत्रुताएँ कौन सी हैं जो शांत हो गई हैं?" गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, ऐसे आचरण के कारण वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयंकर द्वेष उत्पन्न करता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। 119 इस प्रकार, जो जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, उसके लिए यह भयंकर द्वेष शांत हो जाता है।

जो व्यक्ति बिना दिए वस्तुएँ ग्रहण करता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है... जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं, ऐसे आचरण के कारण उसे वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयानक शत्रुता का सामना करना पड़ता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। अतः जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है जो आलस्य का आधार हैं, उसके लिए यह भयानक शत्रुता शांत हो जाती है।

ये पाँच भयानक शत्रुताएँ हैं जो शांत हो जाती हैं।

"उसमें सोतापन्ना (धारा-प्रवेश) के चार कारक कौन से हैं? 120 हे गृहस्थ, इस प्रकार श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

"वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"संघ (भाईचारे) में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सीधे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सच्चे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, विश्व के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।" '

"उसमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं - अटूट, अक्षुण्ण, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 121

"ये वे चार कारक हैं जो उसमें सोतापन्ना (प्रवाह-प्रवेश) के रूप में मौजूद हैं।"

और वह श्रेष्ठ विधि क्या है जिसे उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूरी तरह से समझ लिया है? 122 हे गृहस्थ, श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर इस प्रकार विचार करते हैं: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके निरोध के साथ वह विद्यमान हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को कारण मानकर चेतना (विन्नान विज्ञान) विद्यमान होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और विद्यमान होने से संस्कार (आक्रामक व्यवहार) विद्यमान हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के विद्यमान होने से चेतना विद्यमान हो जाती है। ... यही है। "इस संपूर्ण दुख के अंत का हल।"
"यह वह श्रेष्ठ विधि है जिसे उसने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है।

" "हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्ना के ये चार गुण आ जाते हैं, और उसने इस श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ, पशु जगत से मुक्त हो चुका हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूँ। मैं सोतापन्ना हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।"

---

42. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि यह "कई भिक्षुओं" को संबोधित है।)

---

43. दुःख
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख की उत्पत्ति और उसके निवारण के बारे में बताऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 123

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, दुख की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण, तृष्णा उत्पन्न होती है। यही दुख की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... नाक और गंधों पर निर्भरता से... जीभ और स्वादों पर निर्भरता से... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है।" स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... यही दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर रहने से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क (फस/स्पर्श) होता है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और निरोध से आसक्ति समाप्त होती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का निवारण होता है; भाव के निवारण से पुनर्जन्म समाप्त होता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का निवारण होता है। यही इस समस्त दुख का निवारण है। यही दुख का निवारण है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर रहने से... मन और मानसिक चेतना पर निर्भर रहने से... जब धम्म (प्रघटनाएं) उत्पन्न होती हैं, तो मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और मिट जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। यही दुःख का देहांत है।

---

44. लोक
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें संसार की उत्पत्ति और उसके अंत के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 124

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, संसार की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर, नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा; तृष्णा के कारण आसक्ति; आसक्ति के कारण भाव; भाव के कारण पुनर्जन्म; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर... नाक और गंधों पर निर्भर होकर... जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भर होकर... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति... अस्तित्व का कारक (भाव)... पुनर्जन्म उत्पन्न होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

और भिक्षुओं, संसार का नश्वर होना क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध होने से आसक्ति

समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का अंत हो जाता है; भाव का अंत होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही समस्त दुःख का अंत है। भिक्षुओं, यही संसार का नश्वर होना है। दुनिया का अंत।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और समाप्त हो जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भाव) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। हे भिक्षुओं, यही संसार का क्षय है।"

---

45. नाटिका में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उन्होंने यह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या दी: 125

"आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) के कारण, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा); तृष्णा के कारण, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

"दृष्टि और रूपों पर निर्भरता से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध (निरोध) से आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उस तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और तृप्त होने से आसक्ति का भी अंत हो जाता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का भी अंत हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"
उस समय एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) की बातें सुन रहा था। भगवान (बुद्ध) ने उसे वहाँ सुनते हुए देखा और उससे कहा, "क्या तुमने धम्म प्रवचन सुना, भिक्षु?"

"जी, पूज्यवर।"

"उस धम्म प्रवचन को सीखो, उसमें पारंगत हो जाओ और उसे याद रखो। वह धम्म प्रवचन ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों के लिए लाभकारी और प्रासंगिक है।"

---

46. एक ब्राह्मण (अन्नतरब्रह्मण)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला,

"हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं?" 126

"'कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं': हे ब्राह्मण, यह एक चरम है।" [76]

"तो, हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला एक है और फल भोगने वाला दूसरा?"

“'कर्म करने वाला एक है, और परिणाम भोगने वाला दूसरा': हे ब्राह्मण, यही दूसरा चरम है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविद्या संस्कृत) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विज्ञान संस्कृत) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।'

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान गुरु गौतम!... मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

47. जानूसोनी
सावत्थी में, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले: 127

“हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?”

“'सब कुछ विद्यमान है': हे ब्राह्मण, यह एक चरम सीमा है।”

“तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?”

“'सब कुछ विद्यमान नहीं है': हे ब्राह्मण, यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं...(जैसा कि 46 में है)।”

यह सुनकर ब्राह्मण जनुस्सोनी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“महान, हे गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

48. एक लोक-अस्तित्ववादी (लोकायटिका)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण, जो विश्व-अस्तित्ववादी था, 128 भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?"

"सब कुछ विद्यमान है: हे ब्राह्मण, यही सबसे प्राचीन ब्रह्मांड विज्ञान है।" 129
"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?"

"सब कुछ विद्यमान नहीं है: हे ब्राह्मण, यही दूसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ एक है?" 130

"सब कुछ एक है: हे ब्राह्मण, यही तीसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ अनेकता है?" 131

"सब कुछ अनेकता है: हे ब्राह्मण, यही चौथा ब्रह्मांड विज्ञान है।" इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य (मार्ग, चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं..."

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा;
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

49. महान शिष्य (1) (आर्यसवक संस्कृत आर्य-श्रवक)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक ज्ञानवान शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो वह कैसे अस्तित्व में आती है? जिसके उत्पन्न होने से वह कैसे उत्पन्न होती है? [जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या चेतना (विन्नन संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है?] 132 जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं?... जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है?'

"बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानवान शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। [जब अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होते हैं। जब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना होती है, तब मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है... जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।' वे इस प्रकार समझते हैं: 'इस प्रकार संसार की उत्पत्ति होती है।'

भिक्षुओं, एक ज्ञानी शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वह अस्तित्व में नहीं आता? जिसके निरोध के समाप्त होने से क्या समाप्त हो जाता है? [जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या चेतना उत्पन्न नहीं होती?] जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न नहीं होते?... जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'

बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह अस्तित्व में नहीं है, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने से वह समाप्त हो जाता है। [जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते। जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो (सामान्य) चेतना उत्पन्न नहीं होती।] जब कोई चेतना, मन-शरीर (नामरूप) का अस्तित्व नहीं होता... जब जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती। वह इस प्रकार समझता है: 'इस प्रकार संसार का अंत हो जाता है।'

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संसार की उत्पत्ति और उसके अंत को यथावत समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म का ज्ञाता, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, और अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ निश्चय पर खड़ा शिष्य कहलाता है।

---

50 महान शिष्य (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि कोष्ठकों में दिए गए वे अंश जो कुछ संस्करणों में अनुपस्थित हैं, यहाँ सभी संस्करणों में स्पष्ट रूप से शामिल हैं।)

(vi) धारा 133 (दुक्खावग्गो संस्कृत दुःख-वर्ग) के तहत पीड़ित होना
51. गहन जांच (परिविमांसा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति अज्ञान में डूबा हुआ पुण्य संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना पुण्य संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अपराधार संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना अपराधार संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अविचलित संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना अविचलित संस्कार की ओर अग्रसर होती है। 136 परन्तु जब कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग कर सच्चे ज्ञान को जागृत कर लेता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय होने पर वह न तो पुण्य संस्कार उत्पन्न करता है, न अपराधार संस्कार, न अविचलित संस्कार, न ही अविचलित संस्कार। क्योंकि वह संस्कार उत्पन्न या गढ़ता नहीं है, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज़ से आसक्ति न रखो। आसक्ति न रखने पर वह विचलित नहीं होता। 137 विचलित न होने पर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।' यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, 138 तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना है।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना है।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जाता।' "यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे

महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे महसूस करता है। "जब उसे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब उसे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' 139 वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी महसूस किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 140

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु पूरी तरह से जांच कर रहा हो, तो उसे दुख के पूरी तरह से खत्म होने (खाय\क्षय) के लिए किस तरह से पूरी तरह से जांच करनी चाहिए?" 134

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में हैं, भगवान (बुद्ध) से गाइड होकर, भगवान (बुद्ध) का सहारा लेती हैं। अच्छा होगा अगर भगवान (बुद्ध) इस बात का मतलब साफ कर दें। उनसे यह सुनकर, भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान से रहो, भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"हां, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"यहाँ, भिक्षुओं, जब वह पूरी तरह से जाँच करता है, तो एक भिक्षु इस तरह अच्छी तरह से जाँच करता है: 'दुनिया में जो कई तरह के दुख पैदा होते हैं [जिनमें] बुढ़ापा और मौत शामिल है: इस दुख का सोर्स क्या है, इसकी शुरुआत क्या है, यह किससे पैदा होता है और बनता है? जब जो मौजूद है, क्या बुढ़ापा और मौत होती है? जब जो मौजूद नहीं है, क्या बुढ़ापा और मौत नहीं होती?'

"जब वह अच्छी तरह से जाँच करता है तो वह इस तरह समझता है: दुनिया में जो कई तरह के दुख पैदा होते हैं [जिनमें] बुढ़ापा और मौत शामिल है: इस दुख का सोर्स पुनर्जन्म है, इसकी शुरुआत पुनर्जन्म से है; यह पुनर्जन्म से पैदा होता है और बनता है। जब पुनर्जन्म होता है, तो बुढ़ापा और मौत होती है; जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो बुढ़ापा और मौत नहीं होती।'

"वह बुढ़ापा और मौत को, उसकी शुरुआत को, उसके खत्म होने को (निरोध) समझता है, और उस पर जाने वाला रास्ता उसके खत्म होने के हिसाब से है। 135 वह उसी तरह प्रैक्टिस करता है और उसी के हिसाब से खुद को चलाता है। इसे भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूरी तरह खत्म होने (खाय\क्षय) के लिए, बुढ़ापा और मौत के खत्म होने के लिए प्रैक्टिस कर रहा है।

"फिर, आगे जांच करते हुए, वह इस तरह अच्छी तरह से जांच करता है:

'इस दोबारा जन्म का सोर्स क्या है, इसका ओरिजिन क्या है, यह किससे पैदा और प्रोड्यूस होता है?... इस भावो का सोर्स क्या है?... यह चिपकना (उपादान बिना आसक्ति)?... यह चाहत?... यह सेंसेशन (वेदना)?... यह कॉन्टैक्ट (फस्सा/स्पर्श)?... ये छह सेंस फैकल्टीज़?... यह मन और शरीर का रूप (नामरूप)?... यह कॉन्शसनेस (विन्नान बिना विज्ञान)? ... इन संखारों (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) का सोर्स क्या है, उनकी शुरुआत क्या है, वे किससे पैदा होते हैं और बनते हैं? जब जो मौजूद होता है, तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) बनते हैं? जब जो मौजूद नहीं होता, तो क्या संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) नहीं बनते?'

"जब वह अच्छी तरह से जांच करता है, तो वह इस तरह समझता है:
'संखारों (व्यवहार-कंडीशनिंग) का सोर्स अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) है, अज्ञान उनका मूल है; वे अज्ञान से पैदा होते हैं और बनते हैं। जब अज्ञान होता है, तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) बनते हैं; जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ज्ञान में), तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) नहीं बनते।'

"वह संखारों (व्यवहार-कंडीशनिंग), उनके मूल, उनके खत्म होने (निरोध), और उस पर जाने वाले रास्ते को उनके खत्म होने के हिसाब से समझता है। वह उसी तरह प्रैक्टिस करता है और उसी के हिसाब से खुद को चलाता है। इसे भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूरी तरह खत्म होने (खाय/क्षय) के लिए, संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) को खत्म करने के लिए प्रैक्टिस कर रहा है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति कुम्हार की भट्टी से एक गर्म मिट्टी का बर्तन निकालकर उसे समतल जमीन पर रख दे: उसकी ऊष्मा वहीं समाप्त हो जाएगी और मिट्टी के टुकड़े बच जाएंगे। ठीक उसी प्रकार, जब उसे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है... जीवन से जुड़ी हुई... तो वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन की समाप्ति के बाद, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न मिलने के कारण, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 141

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, पुण्य कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) उत्पन्न कर सकता है, या दोषपूर्ण कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) या अविचलित कर्म (अनिच्छुक व्यवहार)?" "

नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) न हों, तो क्या कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) के निरोध से चेतना (विन्नान विज्ञान) का अनुभव किया जा सकता है?" 142

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी चेतना न हो, तो क्या चेतना के निरोध से मन और शरीर (नामरूप) का अनुभव किया जा सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी मन और शरीर (नामरूप) न हों... तो छह इंद्रियां भी नहीं होतीं।" ..... कोई संपर्क नहीं (फस्सा/स्पर्श) ... कोई संवेदना नहीं (वेदना) ... कोई लालसा नहीं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ... कोई आसक्ति नहीं (उपादान संस्कृत: आसक्ति) ... कोई अस्तित्व का कारक नहीं (भावो) ... कोई जन्म नहीं, पुनर्जन्म के समाप्त होने पर क्या वृद्धावस्था और मृत्यु का बोध होगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षुओं! यह बिल्कुल ऐसा ही है, अन्यथा नहीं! मुझ पर विश्वास रखो, भिक्षुओं, इस पर दृढ़ संकल्प करो। इस विषय में भ्रम और संदेह से मुक्त रहो। यही दुख का अंत है।" 143

---

52. आसक्ति (उपादान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे चिपका जा सकता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जिसमें दस, बीस, तीस या चालीस लट्ठे लकड़ी जल रही है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डालता है। इस प्रकार, उस पदार्थ से पोषित होकर, उससे प्रेरित होकर, वह विशाल अग्नि बहुत लंबे समय तक जलती रहेगी। ठीक उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे लगाव रखा जा सकता है, तो उसकी तृप्ति बढ़ती जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत हो जाता है। 145

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जो दस, बीस, तीस या चालीस भार लकड़ी को भस्म कर रही है, और कोई व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर या सूखी लकड़ी नहीं डालता है। इस प्रकार, जब ईंधन की पूर्व आपूर्ति समाप्त हो जाती है, तो वह बड़ी अग्नि, और अधिक ईंधन न मिलने के कारण, पोषण से रहित होकर बुझ जाएगी। इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, जिनसे जुड़ाव रखा जा सकता है, तो व्यथा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।" 146

---

53. बंधन (1) (संयोजन1)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों (नियम, मार्ग) में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए रहता है, जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।"
"मान लो, भिक्षुओं, एक तेल का दीया तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा था, और एक आदमी उसमें तेल डालता और समय-समय पर बाती को ठीक करता। इस तरह, उस तेल से, उससे ईंधन पाकर, वह तेल का दीया बहुत लंबे समय तक जलता रहेगा। इसी तरह, जब कोई बांधने वाले धम्मों में आनंद (अस्सदो संस. अस्वाद) देखते हुए जीता है, तो लालसा बढ़ती है.... यही इस सारे दुख की जड़ है।

"भिक्षुओं, जब कोई बांधने वाले धम्मों में खतरा (आदिनव) देखते हुए जीता है, तो लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) खत्म हो जाती है। लालसा के खत्म (निरोध) के साथ आसक्ति खत्म हो जाती है; आसक्ति के खत्म होने के साथ, भावो का खत्म होना... पुनर्जन्म का खत्म होना... बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। यही इस सारे दुख का खत्म होना है।

"मान लो, भिक्षुओं, एक तेल का दीया तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा है, और वह आदमी उसमें तेल नहीं डाल रहा है या समय-समय पर बाती को ठीक नहीं कर रहा है। इस तरह, जब पहले का फ्यूल खत्म हो जाता है, तो वह तेल का दीया, और फ्यूल न मिलने पर, बिना पोषण के, बुझ जाएगा। इसी तरह, जब कोई धर्म में खतरा (आदनव) देखकर जीता है जो बांध सकता है, तो लालसा खत्म हो जाती है.... इस तरह इस सारे दुख का अंत हो जाता है।"

---

54. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

55. महान वृक्ष (1) (महारुक्खा1 संस्कृत महावृक्ष)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।" 148

"हे भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भय (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति भी समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता, उसे खोदकर निकाल लेता और उसकी जड़ों को, यहाँ तक कि उसकी छोटी जड़ों और रेशों को भी, उखाड़ लेता। वह वृक्ष को टुकड़ों में काटता, टुकड़ों को फाड़ता और उन्हें पतले-पतले टुकड़ों में बदल देता। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाता, आग में जलाता और राख इकट्ठा करता। ऐसा करने के बाद, वह राख को तेज हवा में छानता या नदी की तेज धारा में बहा देता।" इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से काट दिया जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया जाएगा, मिटा दिया जाएगा ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृप्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 149

---

56. महान वृक्ष (2) (महारुक्खा2 संस्कृत महा-वृक्ष)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

57. The Tree Sapling (Tarunarukkha sans. Tarun-vriksh)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पौधा है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसकी जड़ों के आसपास की जगह साफ करता है, समय-समय पर उसे अच्छी मिट्टी देता है, समय-समय पर उसे पानी देता है। उस देखभाल और पोषण से पोषित होकर, वह पौधा बढ़ता और फैलता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक पौधा था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह पौधे को जड़ से काट देता... (जैसा कि 55 में है)... वह राख को तेज हवा में उड़ा देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह पौधा जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"

---

58. मन-और-शरीर रूप (नामरूप)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है। 150 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो मन और शरीर (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन और शरीर (नामरूप) के निरोधन से छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो मन और शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।"

---

59. चेतना (विन्नान सं. विज्ञान)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है। 151 चेतना के कारण मन और शरीर का रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, और उसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाकर रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता। चेतना के निरोध (निरोध) के साथ ही मन और शरीर (नामरूप) का भी निरोध हो जाता है... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को उसके आधार से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

---

60. कारण (निदान)

एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है! यह प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) इतना गहरा और इतने अर्थपूर्ण है, फिर भी मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है।"

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गहरा और अर्थपूर्ण है। आनंद, इस धर्म (मार्ग, नियम) को न समझने और उसमें प्रवेश न करने के कारण ही यह पीढ़ी उलझे हुए धागे के गुच्छे, उलझी हुई घास-फूस के समान हो गई है और दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, संसार के अधोलोक से परे नहीं जा पाती।

आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भोग (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

हे आनंद, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हुई रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उसी से जीवन यापन करते हुए, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा बढ़ती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

हे आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरा (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"मान लीजिए, आनंद, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)। वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है।" इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

(vii) महावर्ग उप-अध्याय (महावर्ग)

61. अशिक्षित (1) (अश्रुताव्य संस्कृत)

मैंने ऐसा ही सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' (विन्नान संस्कृत विज्ञान) कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक मनुष्य घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इसके प्रति वैराग्यवान नहीं हो सकता।" इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त हो जाना। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना प्राण मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। 156 परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। जैसे कोई बंदर जंगल में घूमते हुए एक शाखा को पकड़ता है, उसे छोड़ता है और दूसरी को पकड़ता है, फिर उसे छोड़ता है और तीसरी को पकड़ता है, उसी प्रकार जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। 157

"हे भिक्षुओं, इसमें ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक (योनिसो) चिंतन करता है।" आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के लिए स्वयं इस प्रकार: 158 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से, वह उत्पन्न होता है।

जब इसका अस्तित्व नहीं रहता, तो उसका भी अस्तित्व नहीं होता; इसके निरोध के साथ उसका भी निरोध हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निरोध हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निरोध के साथ चेतना का निरोध हो जाता है। इसी प्रकार इस समस्त दुख का निरोध हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (व्यवहार-आदत) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान है, आरंभ से लेकर बंदर की उपमा तक। इसके बाद बंदर की उपमा को छोड़ दिया गया है और आगे इस प्रकार जारी है:)

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। "भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के संपर्क और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और अग्नि उत्पन्न होती है, परन्तु लकड़ियों को अलग करने और त्याग देने से परिणामी ऊष्मा थम जाती है और शांत हो जाती है; इसी प्रकार, सुखद अनुभव होने वाले संपर्क, पीड़ादायक अनुभव होने वाले संपर्क, न पीड़ादायक न सुखद अनुभव होने वाले संपर्क के आधार पर, एक पीड़ादायक न सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। उस पीड़ादायक न सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, संबंधित अनुभूति (वेदना) भी समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है। इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्पर्श के प्रति घृणा (निब्बिदा), वेदना के प्रति घृणा, संज्ञा के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य का अनुभव करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह

समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

"लेकिन, भिक्षुओं, जिसे 'मन' और 'मानसिकता' और 'चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान)' कहते हैं, 154 - बिना सीखे दुनियावी उसके प्रति नफ़रत महसूस नहीं कर पाते, उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाते और उससे आज़ाद नहीं हो पाते। किस वजह से? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस तरह माना है, अपनाया है, और समझा है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' 155 इसलिए बिना सीखे दुनियावी उसके प्रति नफ़रत महसूस नहीं कर पाते, उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाते और उससे आज़ाद नहीं हो पाते।

"भिक्षुओं, यह बेहतर होगा कि बिना सीखे दुनियावी मन के बजाय चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना ले। किस वजह से? क्योंकि चार महाभूतों से बना यह शरीर एक साल, दो साल, तीन, चार, पाँच या दस साल, बीस, तीस, चालीस या पचास साल, सौ साल या उससे भी ज़्यादा समय तक खड़ा रहता है। लेकिन जिसे 'मन' और 'मानसिकता' और 'चेतना' कहते हैं, वह दिन-रात एक चीज़ के रूप में पैदा होता है और दूसरी चीज़ के रूप में खत्म हो जाता है।"

[बुद्ध:] "इसमें, भिक्षुओं, सिखाया हुआ महान शिष्य योनियोनि और मनसिकर होता है, खुद आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के प्रति इस तरह: 'जब यह होता है, तो वह होता है; इसके होने के साथ, वह होता है। जब यह नहीं होता है, तो वह नहीं होता है; इसके खत्म होने के साथ, वह खत्म हो जाता है।' भिक्षुओं, किसी सुखद अनुभव के लिए इंद्रिय और वस्तु के स्पर्श पर निर्भर होकर, एक सुखद अनुभूति (वेदना) होती है। सुखद अनुभव होने वाले उस संपर्क के समाप्त होने पर, तत्सम अनुभूति (वेदना) - वह सुखद अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क के सुखद होने पर निर्भर करती थी - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है। दर्दनाक अनुभव होने वाले संपर्क के आधार पर, एक दर्दनाक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। दर्दनाक अनुभव होने वाले उस संपर्क के समाप्त होने पर, तत्सम अनुभूति (वेदना) - वह दर्दनाक अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क के दर्दनाक होने पर निर्भर करती थी - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है। न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव किए जाने वाले संपर्क के निर्भरता में, न-दर्दनाक-न-सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव किए जाने वाले उस संपर्क के समाप्त होने के साथ, तत्सम अनुभूति (वेदना) - न-दर्दनाक-न-सुखद अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई थी, न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव की जाने वाली - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है।

---

63. बेटे के मांस का रूपक (पुत्तमसुपमा बिना पुत्र-मांस-उपमा)
(यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है जहाँ बुद्ध ने इस रूपक के माध्यम से अनेक घटनाओं की व्याख्या की है।)

श्रावस्ती, 160 में भगवान बुद्ध कहते हैं: "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; दूसरा, स्पर्श; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, विज्ञान। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।

(1) भोजन

"और हे भिक्षुओं, भोजन को किस प्रकार देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक पति-पत्नी सीमित भोजन लेकर रेगिस्तान से गुजर रहे हैं। उनके साथ उनका इकलौता पुत्र है, जो उन्हें प्रिय और प्यारा है। रेगिस्तान के बीच में ही उनका सीमित भोजन समाप्त हो जाएगा, जबकि रेगिस्तान का शेष भाग पार करना बाकी रहेगा। पति-पत्नी सोचते: 'हमारा सीमित राशन खत्म हो चुका है, और इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा अभी पार करना बाकी है। चलो अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ा दें और उसका सूखा और मसालेदार मांस तैयार करें। अपने बेटे का मांस खाकर हम इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेंगे। हम तीनों न मरें!'

"तब, भिक्षुओं, पति-पत्नी अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ाते, सूखा और भुना हुआ मांस तैयार करते, और अपने बेटे का मांस खाकर वे रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेते। अपने बेटे का मांस खाते हुए वे अपनी छाती पीटते और रोते: 'हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो? हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो?'

"हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं?" क्या वे उस भोजन को मनोरंजन, आनंद या शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए खाएंगे? "

नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वे उस भोजन को केवल रेगिस्तान पार करने के लिए नहीं खाएंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।" "

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पौष्टिक भोजन को देखना चाहिए। 161 जब पौष्टिक भोजन को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना (राग) को पूरी तरह समझ लिया जाता है। 162 जब पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो कोई बंधन नहीं रहता जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य इस संसार में वापस आ सके। 163

(टिप्पणी 1: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि भोजन की कमी इच्छाओं को शांत करने के लिए है, [मुझे अच्छा भोजन चाहिए], परन्तु बुद्ध के मार्ग में यह भोग के लिए नहीं है, बल्कि इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और केवल शरीर को जीवित रखने के लिए पोषण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए, जबकि शरीर दुखों से भरे संसार, रेगिस्तान को पार करने का साधन है। इसमें एक छुपा हुआ अर्थ भी प्रतीत होता है। जीवन देने वाला भोजन भी किसी जीव से ही आता है। अतः जब कोई ध्यानमग्न व्यक्ति ज्ञानोदय की अवस्था में समस्त जीवन के स्रोत के साथ एकात्मता का अनुभव करता है, तो वह जो भोजन ग्रहण करता है, वह भी उसी जीवन स्रोत से आता हुआ प्रतीत होता है, जो पुत्र के मांस के रूप में एक रूपक के रूप में प्रकट होता है।)

(2) संपर्क (फस्सो संस्कृत स्पर्श)

"और हे भिक्षुओं, पोषण संपर्क को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक छिलका उतरी हुई गाय (घावों वाली) है। यदि वह किसी दीवार के सामने खड़ी हो, तो दीवार में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह किसी पेड़ के सामने खड़ी हो, तो पेड़ में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।" उस पर। यदि वह पानी में खड़ी रहती है, तो पानी में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह खुली हवा में खड़ी रहती है, तो खुली हवा में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। वह छिलका उतरी हुई गाय (जिसके शरीर पर घाव हैं) जिस भी स्थिति में खड़ी रहती है, वहाँ रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण संपर्क को इसी प्रकार देखना चाहिए। 164 जब पोषण संपर्क पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं। जब तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती है। 165

(टिप्पणी 2: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि इंद्रियों का संसार की वस्तुओं से संपर्क तीन प्रकार की संवेदनाओं को जन्म देता है: 1. सुखद, 2. अप्रिय और 3. न सुखद न अप्रिय, जिससे 'मैं अनुभव' होता है, लेकिन ये आनंद के लिए नहीं हैं; यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का कारण है, इसलिए संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और परिणामी संवेदनाओं को वैराग्य/समभाव से समझना चाहिए। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि संसार का इंद्रियों से संपर्क तंत्रिकाओं में संवेदनाओं या धाराओं को जन्म देता है जो बाहर से भीतर की ओर प्रवाहित होती हैं और ध्यान की जागृत अति-अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करती हैं।)

(3) मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता (मनोसंचेतना)

भिक्षुओं, पोषक तत्व मानसिक चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है। एक व्यक्ति वहाँ आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख की कामना करता है और दुख से विमुख है। तब दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। उस व्यक्ति की चेतना दूर जाने की होती है, उसकी लालसा दूर जाने की होती है, उसकी इच्छा दूर जाने की होती है [कोयले के गड्ढे से]। क्यों? क्योंकि वह जानता है: 'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इसी कारण मेरी मृत्यु होगी या मुझे घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' (टिप्पणी 4: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक (साधारण) चेतना 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ, मैं विद्यमान हूँ] को जन्म देती है। यह साधारण 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ] पुनर्जन्म से शुरू होती है और मृत्यु की ओर बढ़ती है जहाँ इसका अंत होता है। इसलिए इसे ऐसा ही समझना चाहिए, ताकि इससे आसक्ति न हो, बल्कि बुद्ध के धम्म [मार्ग] का अनुसरण करते हुए, सद्गुण [शील], ध्यान/समाधि का उपयोग करते हुए दिव्य चेतना प्राप्त करने का प्रयास करें, जिससे दिव्य प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, जो भीतर निर्वाण/मुक्ति/मोक्ष की अवस्था की ओर ले जाती है, जो अविनाशी, सदा विद्यमान और शुद्ध आनंद है। इस सूत्र की विस्तृत व्याख्या अगले सूत्र 64 में की गई है। अत्तिरागा)

"इस तरह से, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषक मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस को देखा जाना चाहिए। 166 जब पोषक मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो तीन तरह की लालसा (तन्हा रहित तृष्णा) (सुखद, अप्रिय और न सुखद न अप्रिय) पूरी तरह से समझ में आ जाती है। जब तीन तरह की लालसा पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो मैं कहता हूँ, एक अच्छे शिष्य को और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। 167

(नोट 3: यहाँ यह समझना है कि दुनियावी मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस की प्रवृत्ति 'लालसा' पैदा करती है, यानी 'मैं यह करना चाहता हूँ', यह लालसा शांति के लिए नहीं है, यह तबाही का कारण है, इसलिए इससे बचना/हटाना है क्योंकि यह भी क्षय और ध्यान की उपलब्धि के नुकसान का कारण है, जो समाधि/ट्रांस अवस्था से दूर है। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस के दौरान नसों में करंट का बहाव अंदर से बाहर की ओर होता है। (4) चेतना (विन्नानम संस. विज्ञान)

"और भिक्षुओं, पोषण चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए कि वे एक डाकू, एक अपराधी को पकड़कर राजा के सामने लाते हैं, और कहते हैं: 'भगवान, यह आदमी एक डाकू है, एक अपराधी है। इसे जो भी सज़ा चाहिए, दीजिए।' राजा उनसे कहते हैं: 'जाओ, लोगों, सुबह इस आदमी को सौ भाले मारो।' सुबह वे उसे सौ भाले मारते हैं। फिर दोपहर में राजा पूछता है: 'लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी ज़िंदा है, भगवान।' - 'तो जाओ, और दोपहर में उसे सौ भाले मारो।' दोपहर में वे उसे सौ भाले मारते हैं। फिर शाम को राजा पूछता है: 'लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी ज़िंदा है, भगवान।' - 'तो जाओ, और शाम को उसे सौ भाले मारो।' शाम को वे उस पर सौ भाले मारते हैं।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उस आदमी को तीन सौ भाले लगने पर भी दर्द और नाराज़गी महसूस होगी?"

"आदरणीय महोदय, अगर उसे एक भाला भी लगे तो भी उसे दर्द और नाराज़गी महसूस होगी, तीन सौ भालों की तो बात ही छोड़िए।"

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि इसी तरह से न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस को देखा जाना चाहिए। 168 जब न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो मन और शरीर पूरी तरह से समझ में आ जाते हैं। जब मन और शरीर पूरी तरह से समझ में आ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ, एक अच्छे शिष्य को और कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती।" 169

---

64. यदि कामवासना विद्यमान हो (अथिराग संस्कृत अस्थि-राग)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 63 की आगे की व्याख्या है। इसे व्यक्ति की दो प्रकार की अवस्थाओं से समझा जाना चाहिए, अर्थात् सांसारिक या ध्यानमग्न समाधि/समाधि)

एट सावत्थी।
[बुद्ध:] “भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से ही अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, सांसारिक चेतना (विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से ही अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और पुनर्जन्म की तलाश करने वालों की सहायता के लिए हैं।

“हे भिक्षुओं, यदि भोजन के प्रति राग (कामना) हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। 170 जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है, वहाँ मन और शरीर का अवतरण होता है (नामरूप)। 171 जहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का रूप (नामरूप) अवतरित होता है, वहाँ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का विकास होता है। 172 जहाँ संस्कार (व्यवहार) का विकास होता है, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म का कारण बनता है। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म होता है, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरी होती है।

भिक्षुओं, यदि पोषण संबंधी स्पर्श, या पोषण संबंधी मानसिक चेतना, या पोषण संबंधी चेतना की लालसा हो, यदि आनंद (नंदी/आनंद) हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होकर विकसित होती है, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का नामरूप उतरता है। 171 जहाँ मन और शरीर का नामरूप उतरता है, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है, वहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है। जहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है, वहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरा होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है... मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से युक्त होती है। 173

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा न हो, यदि आनंद न हो, यदि तृष्णा न हो, तो चेतना स्थापित नहीं होती। वहाँ चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म का कारण) नहीं होता। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, मैं कहता हूँ कि वह स्थान दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक घर या हॉल है जिसकी छत नुकीली है और उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में खिड़कियाँ हैं। जब सूर्योदय होता है और प्रकाश की किरण किसी खिड़की से प्रवेश करती है, तो वह कहाँ स्थापित होगी?" "

पश्चिमी दीवार पर, आदरणीय।"

"यदि पश्चिमी दीवार न हो, तो वह कहाँ स्थापित होगी?"

"पृथ्वी पर, आदरणीय।"

"यदि पृथ्वी न होती, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"जल पर, आदरणीय महोदय।"

"यदि जल न होता, तो यह कहाँ स्थापित होता?"
"यह कहीं भी स्थापित नहीं होगा, आदरणीय महोदय।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, अगर पौष्टिक खाने के लिए, या पौष्टिक संपर्क के लिए, या पौष्टिक मानसिक ज्ञान-जागरूकता के लिए, या पौष्टिक चेतना के लिए कोई राग नहीं है, अगर दुनियावी चीज़ों के लिए कोई आनंद (नंदी\आनंद) नहीं है, अगर कोई तृष्णा रहित तन्हाई नहीं है, तो (सांसारिक) चेतना वहाँ स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है। जहाँ (सांसारिक) चेतना स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है, वहाँ मन-और-शरीर रूप (नामरूप) का (समाधि की ऊँची अवस्था से) कोई अवतरण नहीं होता। जहाँ मन-और-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) का कोई विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) का कोई विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य के नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का कोई निर्माण नहीं होता। जहाँ भविष्य के नए अस्तित्व का कोई निर्माण नहीं होता, वहाँ भविष्य का कोई पुनर्जन्म नहीं होता, बुढ़ापा और मौत। जहाँ भविष्य में कोई पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मौत नहीं है, मैं कहता हूँ कि वह दुख, तकलीफ और निराशा से रहित है। 174

(नोट: यहाँ भगवान बुद्ध ने सूरज और उसकी किरणों की एक उपमा दी है जो एक घर में फैलती हैं। इसी तरह चेतना की सुपर स्टेट का अनुभव तब होता है जब किसी व्यक्ति का ध्यान दुनियावी चीज़ों जैसे कि सेंसुअल-कॉन्टैक्ट (स्पर्श), मेंटल कॉग्निशन, आम चेतना, पसंद और इच्छाओं में नहीं फँसा होता है। तब वह समाधि अवस्था में खुद में समाया रहता है और बिना किसी दाग के खुद से प्रकाशित होता है और इस तरह मुक्ति/निर्वाण के लिए फिट होता है)।

---

65. नगर (नागरा)
(बुद्ध का मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाला प्राचीन मार्ग है (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)।) सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया:
'अफ़सोस, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?' 175

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?'" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब पुनर्जन्म होता है? ... अस्तित्व का कारक (भावो)? ... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)? ... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)? ... संवेदना (वेदना)? ... स्पर्श (फस/स्पर्श)? ... छह इंद्रियां? ... मन और शरीर का स्वरूप

(नामरूप)? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) होती है, तब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना का अस्तित्व कैसे होता है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है, तब चेतना का अस्तित्व होता है; चेतना का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।' 176

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'यह चेतना पीछे मुड़ जाती है; यह मन-शरीर रूप (नामरूप) से आगे नहीं बढ़ती। 177 इसी सीमा तक कोई जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, मर जाता है और पुनर्जन्म लेता है, अर्थात् जब चेतना का कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) होता है, और मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना होती है। 178 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।"

"'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है? किसके निरोध के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है।'

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या अर्थ है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... वेदना (संवेदना)?'" संपर्क (फस्सा/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर रूप (नामरूप)? किसके समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है? तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है।'

मुझे यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता, तब चेतना का अस्तित्व नहीं होता; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'मैंने ज्ञानोदय का यह मार्ग खोज लिया है, अर्थात् मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' 179

"'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, उन चीजों के संबंध में जो पहले कभी नहीं सुनी गई थीं, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति जंगल में घूमते हुए एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखता है जिस पर अतीत में लोग चलते थे। वह उस मार्ग का अनुसरण करता है और उसे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई देती है जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। तब वह व्यक्ति राजा या किसी राजमंत्री को सूचित करता है: 'हे प्रभु, जान लीजिए कि जंगल में घूमते हुए मैंने एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखी जिस पर अतीत में लोग चलते थे। मैंने उसका अनुसरण किया और मुझे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई दी जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। हे प्रभु, उस नगर का जीर्णोद्धार कीजिए!' फिर राजा या राजमंत्री नगर का जीर्णोद्धार करते, और कुछ समय बाद वह नगर सफल और समृद्ध हो जाता, घनी आबादी वाला, लोगों से भरा हुआ, विकास और विस्तार प्राप्त कर लेता।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने अतीत के पूर्णतः प्रबुद्धों द्वारा अपनाए गए प्राचीन मार्ग, प्राचीन राह को देखा। 180 और वह प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन राह क्या है? वह केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। मैंने उस मार्ग का अनुसरण किया और ऐसा करने से मुझे वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने जन्म, अस्तित्व का कारक (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना है। 181 इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जानकर, मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इनकी व्याख्या की है। हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल और समृद्ध हुआ है, विस्तारित हुआ है, लोकप्रिय हुआ है, व्यापक हुआ है और देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हुआ है। 182

---

66. Exploration (Sammasa)

(बुद्ध का मार्ग अंतर्मुखी अन्वेषण का मार्ग है, जो चेतना की सर्वोच्च अवस्था (विन्नान संस्कृत विज्ञान) की खोज है।) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 183

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"क्या तुम अंतर्मुखी अन्वेषण में लगे हो, भिक्षुओं?" 184

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, मैं अंतर्मुखी अन्वेषण में लगा हुआ हूँ।"

"तुम अंतर्मुखी अन्वेषण कैसे करते हो, भिक्षु?"

तब भिक्षु ने व्याख्या की, परन्तु उसकी व्याख्या से भगवान (बुद्ध) संतुष्ट नहीं हुए। 185 तब पूज्य आनंद ने कहा:
"अब यही समय है, हे भगवान! अब यही समय है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) अंतर्मुखी अन्वेषण का उपदेश दें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान करो (मानसिकरो), आनंद, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अंतर्मुखी अन्वेषण में लीन रहते हुए भिक्षु इस प्रकार अन्वेषण करते हैं: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब विद्यमान होता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है? जब विद्यमान नहीं होता तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'" 186

"जैसे-जैसे वह अन्वेषण करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत (उपधि) है, इसका उद्गम है; यह अधिग्रहण से उत्पन्न होता है। 187 जब अधिग्रहण होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; जब अधिग्रहण नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती।'

"वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 188 वह इसी प्रकार अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

"फिर, अंतर्मुखी अन्वेषण में संलग्न होकर, वह इस प्रकार खोज करता है: 'इस प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत क्या है, इसका उद्भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होती है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो क्या प्राप्ति होती है? जब कोई चीज अनुपस्थित होती है तो क्या प्राप्ति नहीं होती?'

"जैसे-जैसे वह खोज करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत (तन्हा सं. तृष्णा) है, इसका उद्भव है; यह लालसा से उत्पन्न और निर्मित होती है। जब लालसा होती है, जब लालसा नहीं होती, तब प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती है।

वह प्राप्ति, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उसी मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुखों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और प्राप्ति के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

फिर, अंतर्मुखी होकर वह यह खोज करता है: 'जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो कहाँ से उत्पन्न होती है? जब यह स्थिर होती है, तो किस पर स्थिर होती है?'

खोज करते हुए वह यह समझता है: 'संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, यहीं से यह लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है।' 189 और संसार में कौन सी वस्तु सुखद और मनभावन है? संसार में आँख सुखद और मनभावन है: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है। इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, शरीर और मन सुखद और मनभावन हैं: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है।

"भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखद और मनभावन प्रकृति वाली वस्तुओं को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित माना, उन्होंने लालसा का पोषण किया। लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का पोषण करने में उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का पोषण किया। प्राप्ति (उपाधि) का पोषण करने में उन्होंने दुख का पोषण किया। दुख का पोषण करने में वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं हुए; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं हुए।

भविष्य में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित करेंगे। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित करेंगे। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित करेंगे। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होंगे; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होंगे; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं होंगे।

वर्तमान में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित कर रहे हैं। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित कर रहे हैं। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी लें। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' अचानक, बिना सोचे-समझे, वह पेय पी लेता है - वह उसे अस्वीकार नहीं करता - और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घातक कष्ट सहना पड़ता है। 190

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हैं... भविष्य में... वर्तमान में जो भी संसार में सुखद और मनभावन है, उसे स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानते हैं: वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं। तृप्ति को पोषित करने से... वे कष्टों से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।" 191

“भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, उन्होंने तृष्णा का त्याग किया। तृष्णा का त्याग करके उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का त्याग किया। प्राप्ति का त्याग करके उन्होंने दुख का त्याग किया। दुख का त्याग करके वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हुए; वे दुख से मुक्त हुए,” मैं कहता हूँ।

“भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का त्याग करेंगे। तृष्णा का त्याग करके वे दुख से मुक्त होंगे,” मैं कहता हूँ।

"संन्यासी और ब्राह्मण वर्तमान में संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग या भययोग्य मानते हैं: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से पीड़ित, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं:
'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी सकते हैं। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'" तब वह व्यक्ति सोचेगा: 'मैं पानी, मट्ठा, दलिया या सूप से अपनी प्यास बुझा सकता हूँ, लेकिन मुझे वह पेय नहीं पीना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मुझे हानि होगी और लंबे समय तक कष्ट सहना पड़ेगा।' ऐसा सोचने के बाद, वह पेय नहीं पिएगा बल्कि उसे अस्वीकार कर देगा, और इस प्रकार वह मृत्यु या जानलेवा पीड़ा से बच जाएगा।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रहे हों... भविष्य में... वर्तमान में संसार में जो भी सुखदायक और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्मदायी, रोगदायी, भयभीत करने वाला मानते हों: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से... वे दुख से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।" 192

---

67. नरकट के गट्ठे (नालाकलापी)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 193 फिर, शाम को, पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, क्या ऐसा है: क्या वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न होती है, या किसी और द्वारा, या स्वयं और किसी और दोनों द्वारा, या यह संयोगवश उत्पन्न हुई है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" 194

"मित्र कोत्थिता, वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न नहीं होती, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती। बल्कि, जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है।"

"मित्र सारिपुत्त, यह कैसे होता है: क्या जन्म स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... क्या अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... मन और शरीर (नामरूप) स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, या किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या संयोगवश उत्पन्न होते हैं, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती?"

"हे मित्र कोत्थिता, मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) न तो स्वयं द्वारा सृजित होता है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होता है; बल्कि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है।" "हे

मित्र सारिपुत्त, यह कैसे संभव है: क्या चेतना स्वयं द्वारा सृजित होती है, या किसी अन्य द्वारा, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा, या संयोगवश उत्पन्न होती है, न स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा?"

"हे मित्र कोत्थिता, चेतना न तो स्वयं द्वारा सृजित होती है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है; बल्कि मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है।" 195

"अब हम पूज्य सारिपुत्त के कथन को इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, मन-शरीर रूप (नामरूप) स्वयं द्वारा सृजित नहीं होता... बल्कि चेतना के कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है।' अब हम पूज्य सारिपुत्त के [दूसरे] कथन को भी इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, चेतना स्वयं द्वारा सृजित नहीं होती... बल्कि मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण चेतना अस्तित्व में आती है।' परन्तु हे मित्र सारिपुत्त, इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हारे लिए एक उपमा बनाता हूँ, क्योंकि यहाँ कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं। जैसे दो सरकंडों के गट्ठे एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, वैसे ही, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर के रूप (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) उत्पन्न होते हैं। ... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"मित्र, यदि कोई सरकंडों के उन गट्ठों में से एक को हटा दे, तो दूसरा गिर जाएगा, और यदि कोई दूसरे गट्ठे को हटा दे, तो पहला गिर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के समाप्त होने (निरोध) से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर (नामरूप) का अंत हो जाता है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है। "

यह अद्‌भुत है, मित्र सारिपुत्त! यह आश्चर्यजनक है, मित्र सारिपुत्त! पूज्य सारिपुत्त ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है। हम पूज्य सारिपुत्त के इन छत्तीस आधारों पर दिए गए कथन से प्रसन्न हैं; 196 यदि, मित्र, कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के उद्देश्य से धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से साधना कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा, कोई भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"अगर, दोस्त, कोई भिक्षु पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निब्बिदा) के मकसद से धम्म सिखाता है ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... आसक्ति (उपादान बिना. आसक्ति) ... तरस (तन्हा बिना. तृष्णा) ... संवेदना (वेदना) ... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) ... छह इंद्रियां ... मन और शरीर का रूप (नामरूप) ... चेतना ... संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) ... अज्ञान (अविज्जा बिना. अविद्या), इसके खत्म होने और समाप्ति के लिए, उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। अगर कोई भिक्षु अज्ञान के प्रति घृणा, इसके खत्म होने और समाप्ति के मकसद से अभ्यास कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। अगर अज्ञान के प्रति घृणा, इसके खत्म होने और समाप्ति के ज़रिए, जो भिक्षु आसक्ति न रखने से मुक्त हो जाता है, उसे भिक्षु कहा जा सकता है जिसने इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

---

68. कोसंबी
एक बार पूज्य मुसिला, पूज्य पवित्रा, पूज्य नारद और पूज्य आनंद, घोसीता उद्यान के कोसंबी में रह रहे थे। 197

तब पूज्य पवित्रा ने पूज्य मुसिला से कहा:
“मित्र मुसिला, आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने के अलावा, 198 क्या पूज्य मुसिला को यह व्यक्तिगत ज्ञान है कि ‘जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है’?”

"मित्र पवित्रा, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'जन्म को कारण मानकर, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'

"मित्र मुसिला, आस्था से परे... किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, क्या पूज्य मुसिला को इस प्रकार व्यक्तिगत ज्ञान है: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर, जन्म होता है'?... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) होता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) उत्पन्न होते हैं।' "

मित्र मुसिला, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को यह प्रत्यक्ष ज्ञान है: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) का भी अंत हो जाता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'... 'अज्ञान के अंत के साथ ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है।' "

"मित्र मुसिला, आस्था के अलावा, व्यक्तिगत पसंद के अलावा, मौखिक परंपरा के अलावा, तर्कपूर्ण विचार के अलावा, किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञान है कि: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है'?" 199

“मित्र पवित्र, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है।'” “

तब पूज्य मुसिला एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो गए हैं।"

यह सुनकर पूज्य मुसिला चुप रहे। 200

तब पूज्य नारद ने पूज्य पवित्र से कहा:
"मित्र पवित्र, अच्छा होगा यदि मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछी जाए। मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछिए और मैं आपको उत्तर दूंगा। 201

"तो फिर पूज्य नारद को उन प्रश्नों की श्रृंखला का उत्तर देने दीजिए। मैं पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछूंगा, और वे मुझे उत्तर देंगे।"

(यहाँ पूज्य पवित्र, पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछते हैं जो पूज्य मुसिला से पूछे गए थे, और वे ठीक उसी तरह उत्तर देते हैं।)

"तो पूज्य नारद एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

"मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, पुनर्जन्म के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है,' फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं। 202 मान लीजिए, मित्र, किसी रेगिस्तानी सड़क पर एक कुआँ है, लेकिन उसमें न तो रस्सी है और न ही बाल्टी। फिर एक आदमी आता है, जो गर्मी से परेशान, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वह कुएँ में देखता है और उसे यह ज्ञान होता है कि 'पानी है,' लेकिन वह उससे शारीरिक संपर्क (फस/स्पर्श) नहीं कर पाता। 203 इसी प्रकार, मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (भावो) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, भावो के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है, फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं।" 204

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य पवित्र से पूछा: "हे मित्र पवित्र, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप पूज्य नारद के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे मित्र आनंद, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं पूज्य नारद के बारे में केवल अच्छी और अनुकूल बातें ही कहूंगा।" 205

---

69. द सर्ज (उपायंती)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, सागर के उफान से नदियाँ उफान पर आती हैं; नदियों के उफान से धाराएँ उफान पर आती हैं; धाराओं के उफान से झीलें उफान पर आती हैं; झीलों के उफान से तालाब उफान पर आते हैं। उसी प्रकार, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के उफान से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उफान पर आता है; संस्कार (व्यवहार) के उफान से चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उफान पर आती है; चेतना के उफान से मन और शरीर (नामरूप) उफान पर आता है; मन और शरीर (नामरूप) के उफान से छह इंद्रियाँ उफान पर आती हैं; छह इंद्रियाँ उफान पर आने से संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) उफान पर आता है; संपर्क (स्पर्श) उफान पर आने से संवेदना (वेदना) उफान पर आती है; संवेदना (वेदना) उफान पर आने से लालसा (तन्हा) उत्पन्न होती है। संस्कृत: तृष्णा का बढ़ना; तृष्णा का बढ़ना आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) को बढ़ाता है; आसक्ति का बढ़ना अस्तित्व के कारक (भावो) को बढ़ाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) का बढ़ना जन्म को बढ़ाता है; जन्म का बढ़ना वृद्धावस्था और मृत्यु को बढ़ाता है।

"भिक्षुओं, सागर के पीछे हटने से नदियाँ पीछे हटती हैं; नदियों के पीछे हटने से धाराएँ पीछे हटती हैं; धाराओं के पीछे हटने से झीलें पीछे हटती हैं; झीलों के पीछे हटने से तालाब पीछे हटते हैं। उसी प्रकार, समाधि की अवस्था के अनुभव से अज्ञान का पीछे हटना संस्कार (व्यवहार-आदत) को पीछे हटाता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के पीछे हटने से चेतना पीछे हटती है... पुनर्जन्म के पीछे हटने से वृद्धावस्था और मृत्यु पीछे हटती है।"

---

70. सुसीमा
मैंने भगवान बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे।

(i)
उस समय भगवान (बुद्ध) का आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। भिक्षु संघ का भी आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और भिक्षुओं को भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। परन्तु अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का आदर, सम्मान, आदर, श्रद्धा और श्रद्धा नहीं की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं हुईं।

उस समय तपस्वी सुसीमा राजगृह में कई तपस्वियों के साथ निवास कर रहे थे। उनके साथियों ने सुसीमा से कहा, “हे मित्र सुसीमा, आओ और तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करो। उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और हमें सिखाओ। हम भी उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करेंगे और उसका प्रचार करेंगे। इस प्रकार हम भी आदरणीय, सम्मानित और पूजनीय होंगे, और हमें भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त होंगी।”

“ठीक है मित्रों,” तपस्वी सुसीमा ने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “मित्र आनंद, मैं इस धर्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।”

तब पूज्य आनंद ने तपस्वी सुसीमा को अपने साथ लिया और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यह तपस्वी सुसीमा कहते हैं कि वे इस धम्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।"

"तो फिर, आनंद, उन्हें दीक्षा दीजिए।" तब तपस्वी सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा और उपसंपदा प्राप्त की। 206

(ii)
उस अवसर पर कई भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा, "हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" पूज्य सुसीमा ने यह सुनकर उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे अभिवादन किया और फिर एक तरफ बैठकर उनसे कहा: "क्या यह सच है कि आप पूज्य भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा है: 'हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है'?" 207

"हाँ, मित्र।"

तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि: एक होकर आप अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर आप एक हो जाते हैं; आप प्रकट होते हैं और विलीन हो जाते हैं; आप बिना किसी अवरोध के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चले जाते हैं मानो अंतरिक्ष में; आप पृथ्वी में ऐसे समा जाते हैं मानो वह जल हो; आप जल पर ऐसे चलते हैं मानो वह पृथ्वी हो, बिना डूबे; पालथी मारकर आप पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; आप अपने हाथों से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; आप ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक तक शरीर पर महारत हासिल कर लेते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप, शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकते हैं?"

"नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप आदरणीय लोग अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से घेरकर, समझ पाते हैं? क्या आप कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में समझते हैं; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझते हैं; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझते हैं; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अतुलनीय मन को अतुलनीय समझते हैं; समाधि अवस्था में स्थित मन को समाधि अवस्था में और एक समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले मन को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाला मन; मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त? "

नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, हे पूजनीय, क्या आप अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन,

अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के क्रम में: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म हुआ। क्या तुम यहाँ पुनर्जन्म लेकर आए हो? क्या तुम्हें अपने अनेक अतीत के निवास स्थान, उनके तौर-तरीके और विवरण याद हैं? "

नहीं, मित्र।"

तो फिर, हे पूजनीय, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, इस प्रकार देखते और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं: 'वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से अच्छा आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं? इस प्रकार, हे पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को देखते हैं? पुनर्जन्म, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझना कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे चलते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप पूज्यवर उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करते हैं जो रूपों से परे हैं, निराकार उपलब्धियों में, जिन्हें आपने शरीर से स्पर्श किया है?" 208 "किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या श्रेष्ठ, दूर हो या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वैसे ही देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'" "इस प्रकार देखकर, हे सुसीमा, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निबिद्धा), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और समय नहीं है।' "क्या तुम समझते हो, सुसीमा: 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है'?" "जी, पूज्यवर।" "सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण जन्म होता है'?... 'आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) होता है'?... 'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति होती है'?... 'वेदना (वेदना) के कारण लालसा होती है'?..."
"नहीं, दोस्त।"

"अब, आदरणीय लोगों: यह जवाब और उन अवस्थाओं का न मिलना, यह कैसे हो सकता है, दोस्तों?" 209

"हम ज्ञान की समझ (पन्ना) से मुक्त (विमुत्त बिना विमुक्त) हो जाते हैं, दोस्त सुसीमा।" 210

"दोस्तों, मुझे विस्तार से समझ नहीं आ रहा है कि आदरणीय लोगों ने जो संक्षेप में कहा है, उसका मतलब क्या है। अच्छा होगा अगर आदरणीय लोग मुझे इस तरह समझाएँ कि मैं विस्तार से समझ सकूँ कि संक्षेप में क्या कहा गया है।"

"चाहे आप समझें या नहीं, दोस्त सुसीमा, हम ज्ञान की समझ (पन्ना) से मुक्त (विमुत्त) हो जाते हैं।"

(iii)

फिर आदरणीय सुसीमा अपनी सीट से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास जाकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) को उन भिक्षुओं के साथ हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"सुसीमा, पहले धम्म (पथ, कानून) की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निब्बान का ज्ञान।" 211

"आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का मतलब विस्तार से नहीं समझ पाया। अच्छा होगा अगर भगवान (बुद्ध) मुझे इस तरह समझाएं कि मैं संक्षेप में कही गई बातों को विस्तार से समझ सकूं।"

"सुसीमा, तुम समझो या न समझो, पहले धम्म की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निब्बान का ज्ञान। 212

"सुसीमा, तुम्हें क्या लगता है, रूप परमानेंट है या कुछ समय के लिए?" - "कुछ समय के लिए, आदरणीय महोदय।" 213 - "जो कुछ समय के लिए है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।"

"जो कुछ भी समय के लिए है, दुख है, और बदलने वाला है, उसे इस तरह माना जाना चाहिए: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या सेंसेशन (वेदना) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या परसेप्शन (सन्ना संस. संज्ञा) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या संखारा (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या कॉन्शसनेस (विन्ना संस. विज्ञान) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?" ; - "कुछ समय के लिए, आदरणीय सर।" - "जो कुछ समय का है, वह दुख है या खुशी?" - "दुख, आदरणीय सर।" - "क्या जो कुछ समय का नहीं है, दुख है, और बदलने वाला है, उसे इस तरह देखना चाहिए: 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा खुद है'?" - "नहीं, आदरणीय सर।"

"इसलिए, सुसीमा, किसी भी तरह का रूप, चाहे वह भूतकाल का हो, भविष्य का हो, या वर्तमान का, अंदरूनी हो या बाहरी, स्थूल हो या सूक्ष्म, छोटा हो या बड़ा, दूर हो या पास, सभी रूपों को सही रोशनी वाली समझ (पन्ना) के साथ वैसा ही देखना चाहिए जैसा वह असल में है, इस तरह: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा खुद नहीं है।"

'क्या इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रियों का स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है?'... 'क्या छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या चेतना नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण होती है?'... 'क्या व्यवहार (आचरण-निर्धारण) के कारण चेतना उत्पन्न होती है?' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं'? "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत हो जाता है'?... 'आसक्ति के अंत के साथ भाव का अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है'?" "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या तुम विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग करती हो, इस प्रकार कि: एक होकर तुम अनेक बन जाती हो ... और उसका अभ्यास करती हो क्या आप ब्रह्म जगत तक शारीरिक प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं? 214

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो हे सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अपने दिव्य श्रवण तत्व से, जो शुद्ध और मानवीय श्रवण से परे है, दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियाँ, दूर और निकट दोनों, सुन सकते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो हे सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से समाहित करके, समझ सकते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम अपने कई पिछले घरों को उनके तरीकों और डिटेल्स के साथ याद करते हो?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम उस दिव्य आँख से, जो शुद्ध है और इंसान से भी बेहतर है, जीवों को गुज़रते और दोबारा जन्म लेते हुए देखते हो और समझते हो कि जीव अपने कर्म के अनुसार कैसे चलते हैं?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में रहते हो जो रूपों से परे हैं, निराकार उपलब्धियों को, शरीर से छूकर?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"अब यहाँ, सुसीमा: यह जवाब और उन अवस्थाओं का न मिलना, यह कैसे हो सकता है, सुसीमा?"

(iv)

फिर आदरणीय सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के पैरों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने एक गलती की है कि मैं इतना बचकाना (नासमझ), इतना कन्फ्यूज्ड, इतना नाकाबिल था कि मैं इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और अनुशासन के धम्म (पथ, कानून) का चोर बनकर आगे बढ़ा। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरी इस गलती के लिए मुझे माफ करें, जिसे भविष्य में संयम के लिए गलती माना गया है।"

"ज़रूर, सुसीमा, तुमने एक गुनाह किया है कि तुम इतने बचकाने (नासमझ), इतने कन्फ्यूज्ड, इतने नाकाबिल थे कि तुम इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और डिसिप्लिन में धम्म के चोर की तरह आगे बढ़े। 215 मान लो, सुसीमा, वे एक डाकू, एक क्रिमिनल को पकड़कर राजा के सामने लाते और कहते: 'हे प्रभु, यह आदमी एक डाकू है, एक क्रिमिनल है। इसे जो सज़ा चाहिए वो दो।' राजा उनसे कहता: 'आओ, आदमियों, इस आदमी के हाथ उसकी पीठ के पीछे एक मज़बूत रस्सी से कसकर बांध दो, उसका सिर मुंडवा दो, और उसे ढोल बजाते हुए एक गली से दूसरी गली और एक चौक से दूसरे चौक तक घुमाओ। फिर उसे दक्षिणी गेट से बाहर ले जाओ और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दो।' तुम्हें क्या लगता है, सुसीमा, उस आदमी को इस वजह से क्या दर्द और नाराज़गी होगी?"

"हाँ, आदरणीय सर।"

"हालांकि उस आदमी को इस वजह से दर्द और नाराज़गी होगी, लेकिन इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और अनुशासन में धम्म के चोर की तरह आगे बढ़ने (दीक्षा, पबज्जा) के नतीजे कहीं ज़्यादा दर्दनाक, कहीं ज़्यादा कड़वे होते हैं, और आगे चलकर यह पाताल लोक की ओर ले जाता है। लेकिन क्योंकि आप अपने गुनाह को गुनाह समझते हैं और धम्म के हिसाब से उसे सुधारते हैं, इसलिए हम आपको इसके लिए माफ़ करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने गुनाह को गुनाह समझता है, धम्म के हिसाब से उसे सुधारता है, और भविष्य में संयम बरतता है, तो यह महात्मा के अनुशासन में बढ़ोतरी है।"

(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनब्रह्मण)

71. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

“भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्‌भव, उसके निवारण (निरोध) और उसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर सकते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्‌भव, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश कर सकते हैं और उसमें निवास कर सकते हैं।” और ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

72. जन्म, आदि (जाति आदि)

"भिक्षु, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो नहीं समझते (पहले की तरह 71 में, हर एक के लिए और 1 और 2 के समान)

जन्म ...

भावो ...

चिपकना (उपादान संस. आसक्ति) ...

लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ...

वेदना ...

संपर्क (पहसा/स्पर्श) ...

छह इंद्रियां ...

मन-और-शरीर का रूप (नामरूप) ...

चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) ...

संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग), उनका मूल, उनका अंत (निरोध), और उनके अंत तक ले जाने वाला रास्ता: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये आदरणीय लोग, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद इसे महसूस करके, इसी में नहीं करते। जीवन में तप या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करें और उसमें रहें।

"लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये आदरणीय लोग, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से इसे स्वयं महसूस करके, इसी जीवन में तप और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।"

(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ

73. एक शिक्षक (सत्थु)

सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को यथावत नहीं जानते और नहीं देखते, उन्हें इसे यथावत जानने के लिए एक गुरु की खोज करनी चाहिए। 217

"भिक्षुओं, जो

जन्म...

अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)...

तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...

संवेदना (वेदना)

...

स्पर्श (फस/स्पर्श)...

छह इंद्रियां...

नामरूप...

चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...

संशय (बाध्यकारी व्यवहार),

इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को यथावत जानने और देखने वाले नहीं
हैं, उन्हें एक गुरु की खोज करनी चाहिए।" इसे
यथार्थ रूप में जानने के लिए।

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें इसे यथार्थ रूप में जानने के लिए प्रशिक्षण का अभ्यास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें प्रयास करना चाहिए... इच्छा जागृत करनी चाहिए... उत्साह जगाना चाहिए... निरंतर प्रयास करना चाहिए... जोश जगाना चाहिए... ऊर्जा (वीर्य) का प्रयोग करना चाहिए... दृढ़ता का अभ्यास करना चाहिए... ध्यान (सती) का अभ्यास करना चाहिए... पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास करना चाहिए... जागरूकता (अप्पमदा) का अभ्यास करना चाहिए ताकि इसे यथार्थ रूप में जान सकें।"

अध्याय 2 : सफलता पर जुड़े हुए प्रवचन (अभिसमयसंयुत्त) {संयुत्त-13}74. नाखून (नखसिखा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन अधिक है: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है। यह विशाल पृथ्वी का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, जो दुख नष्ट और समाप्त हो गया है वह कहीं अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। 218 बाद वाला दुख नष्ट और समाप्त हुए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। हे भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।" 219

---

75. तालाब (पोक्खरानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब है जो पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, पानी से भरा हुआ है, इतना कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है, और एक आदमी कुश घास की नोक पर उसमें से थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी?" 220

"आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। यह तालाब के पानी का सौवां हिस्सा, हजारवां हिस्सा या एक लाखवां हिस्सा भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, एक सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है (जैसा कि 74 में है)। भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

76. संगम पर जल (1) (संभेज्जौदक1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे संगम के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

77. संगम पर जल (2) (संभेज्जौदक2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लो कि जिस जगह ये बड़ी नदियाँ मिलती हैं और मिलती हैं - यानी गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभू और माही - उनका पानी खत्म हो जाएगा और दो या तीन बूँदें ही बचेंगी। तुम क्या सोचते हो, भिक्षुओं, क्या ज़्यादा है: संगम का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है या जो दो या तीन बूँदें बची हैं?"

"आदरणीय महोदय, संगम का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है, वह ज़्यादा है। जो दो या तीन बूँदें बची हैं, वे मामूली हैं। वे उस पानी का सौवाँ हिस्सा, हज़ारवाँ हिस्सा, या लाखवाँ हिस्सा भी नहीं हैं जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, एक महान शिष्य के लिए ..(जैसा कि 74 में है).. धम्म (पथ, कानून) का दर्शन पाना बहुत बड़ा फ़ायदा है।"

---

78. पृथ्वी (1) (पथवी 1)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें या विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें तुच्छ हैं। वे विशाल पृथ्वी के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

79. पृथ्वी (2) (पथवी 2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी का सौवां, हजारवां या एक लाखवां भाग भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

80. सागर (1) (समुद्र संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। आप क्या सोचते हैं, भिक्षुओं, कौन अधिक है: निकाली गई दो या तीन बूँदें या विशाल सागर का जल?"
"आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे विशाल सागर के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

81. सागर (2) (समुद्र संस्कृत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लो कि समुद्र दो या तीन बूंद पानी के अलावा खत्म हो जाएगा। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, क्या ज़्यादा है: समुद्र का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है या पानी की दो या तीन बूंदें जो बची हैं?"

"आदरणीय महोदय, समुद्र का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है, वह ज़्यादा है। बची हुई दो या तीन बूंदें बहुत कम हैं। वे समुद्र के पानी के सौवें हिस्से, हज़ारवें हिस्से, या लाखवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं जो खत्म हो गया है।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, एक अच्छे शिष्य के लिए ..(जैसा कि 74 में है).. धम्म (पथ, कानून) का दर्शन पाना बहुत बड़ा फ़ायदा है।"

---

82. पर्वत (1) (पब्बता1 संस्कृत पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक है: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है?"

"आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, अधिक है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।"

---

83. पर्वत (2) (पब्बता2 संस्कृत पर्वत)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग के सौवें, हजारवें या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। बाद वाला दुख, नाश और निवारण किए गए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं होता, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म होते हैं। हे भिक्षुओं, धर्म के मार्ग में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

84. पर्वत (3) (पब्बत3 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे पर्वतों के राजा सिनेरु के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों की उपलब्धियाँ एक श्रेष्ठ शिष्य, एक सिद्ध दृष्टि वाले और पारलौकिक व्यक्ति की उपलब्धियों के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। भिक्षुओं, सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी उपलब्धियों में इतना महान है, दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में इतना महान है।"

अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसम्यूत्त) {सम्यूत्त-14}
(i) विविधता अनुभाग (नानत्तवग्गो संस्कृत: नानत्व-वर्ग)
(Internal Pentad)
85. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
(18 धातु/तत्व)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आंतरिक) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। 223 इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है?
आँख तत्व (धातु), रूप तत्व, आँख-चेतना तत्व;
कान तत्व, ध्वनि तत्व, कान-चेतना तत्व;
नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व;
जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व;
शरीर तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, शरीर-चेतना तत्व;
मन तत्व, मानसिक-घटना तत्व, मन-चेतना तत्व।
हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।" 224

---

86. संपर्कों की विविधता (फस्सानानत्ता संस्कृत. स्पर्श-नानत्व)
(6 प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श; इंद्रियों का वस्तु से संपर्क))

श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है। और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख (धातु), कान (नाक), जीभ (जीभ), शरीर (शरीर), मन (मन)। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता कैसे उत्पन्न होती है? आँख के कारण आँख का संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; कान के कारण कान का संपर्क होता है; नाक के कारण नाक का संपर्क होता है; जीभ के कारण जीभ का संपर्क होता है; शरीर के कारण शरीर का संपर्क होता है; मन के कारण मन का संपर्क होता है। 225 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

87. संपर्कों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है। तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती।

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, यह कैसे होता है कि तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; कि तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती?

आँख तत्व के कारण आँख संपर्क (स्पर्श) उत्पन्न होता है; आँख तत्व आँख संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के कारण मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन तत्व मन संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता।" 226 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती।

---

88. Diversity of Sensations(vedana) (1) (Vedanananatta1 sans Vedana-nanatv)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदना की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि अनुच्छेद 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदनाओं) की विविधता उत्पन्न होती है? नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। कान तत्व के आधार पर कान संपर्क उत्पन्न होता है; कान संपर्क के आधार पर कान संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नाक तत्व के आधार पर नाक संपर्क उत्पन्न होता है; नाक संपर्क के आधार पर नाक संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। जीभ तत्व के आधार पर जीभ संपर्क उत्पन्न होता है; जीभ संपर्क के आधार पर जीभ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। शरीर तत्व के आधार पर शरीर संपर्क उत्पन्न होता है; शरीर संपर्क के आधार पर शरीर संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व पर निर्भरता से मन-संपर्क उत्पन्न होता है; मन-संपर्क पर निर्भरता से मन-संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भरता से संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता पर निर्भरता से संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

89. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनानात्त2 संस वेदना-नानात्व)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है। संपर्क की विविधता वेदनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता संपर्क की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है? क्या संपर्कों की विविधता संवेदनाओं (वेदना) की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; क्या तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र संपर्क नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; नेत्र तत्व नेत्र संपर्क के आधार पर उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के आधार पर मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन संपर्क के आधार पर मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन संपर्क मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; मन का तत्व मन के संपर्क पर निर्भर नहीं होता।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है... तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(बाह्य पंचक)

---

90. बाह्य तत्वों की विविधता (बहिरधातुनानत्ता संस्कृत: बहिरा-धातु-नानत्व)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (बाह्य) तत्वों की विविधता सिखाऊँगा। इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूँगा....

"और, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु), ध्वनि तत्व, गंध तत्व, स्वाद तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, मानसिक-घटना (धम्म) तत्व। भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

---

91. धारणाओं की विविधता (सन्नाननत्ता संस. संज्ञा-नानात्व)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है; अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के इरादे पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के इरादों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की इच्छाएँ पैदा होती हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के जुनून पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के जुनून पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है।

"और, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह क्या है? रूप एलिमेंट (धातु) ..(जैसा कि 90 में है).. मानसिक-घटना (धम्म) एलिमेंट। इसे, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह कहा जाता है।

"और यह कैसे है, भिक्षुओं, कि एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ पैदा होती है ... कि अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है?

"रूप एलिमेंट पर निर्भर करता है कि रूप की समझ पैदा होती है; रूप की समझ पर निर्भर करते हुए, रूप के बारे में इरादा पैदा होता है; रूप के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए, रूप की इच्छा पैदा होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए, रूप के लिए जुनून पैदा होता है; रूप के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए, रूप की खोज पैदा होती है.... 227

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादा पैदा होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून पैदा होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पैदा होती है।

"इस तरह, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए, समझ की विविधता पैदा होती है ... कि जुनून की विविधता पर निर्भर करते हुए, खोज की विविधता पैदा होती है।"

---

92. खोजों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इच्छाओं की विविधता भावनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इरादों की विविधता इच्छाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; धारणाओं की विविधता इरादों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती। 228

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि तत्वों की विविधता पर निर्भरता से धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि 91 में है)... कि भावनाओं की विविधता पर निर्भरता से खोजों की विविधता उत्पन्न होती है? क्या भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती... क्या तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व पर निर्भरता से रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है; [...रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से रूप की खोज उत्पन्न होती है। रूप के प्रति जुनून रूप की खोज पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की इच्छा रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप के संबंध में इरादा रूप की इच्छा पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की धारणा रूप के संबंध में इरादे पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप तत्व रूप की धारणा पर निर्भर नहीं होता।] ...229

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है। मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... मानसिक-घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होता।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर होकर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... आसक्ति की विविधता पर निर्भर होकर खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। आसक्ति की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती।"

---

93. बाह्य संपर्कों की विविधता (1) (बहिरफस्साननत्ता1 संस्कृत बहिर-स्पर्श-ननतव)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है; अलग-अलग तरह की समझ पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के इरादे पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के इरादों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के कॉन्टैक्ट्स (सेंस ऑब्जेक्ट्स के साथ; स्पर्श) पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के कॉन्टैक्ट्स (वेदना) पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह की समझ (वेदना) पैदा होती है, अलग-अलग तरह की इच्छाएँ पैदा होती हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के जुनून पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है; अलग-अलग तरह की खोजों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के फ़ायदे पैदा होते हैं। 230

"और, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह क्या है? रूप एलिमेंट (धातु) ..(जैसा कि 90 में है).. मानसिक-घटना (धम्म) एलिमेंट। भिक्षुओं, इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

"और भिक्षुओं, यह कैसे है कि तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए अनुभूतियों की विविधता (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है ... कि खोजों की विविधता पर निर्भर करते हुए लाभ की विविधता पैदा होती है?

"रूप तत्व पर निर्भर करते हुए रूप की अनुभूति होती है; रूप की अनुभूति पर निर्भर करते हुए रूप के बारे में इरादा पैदा होता है; रूप के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए रूप के साथ संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से स्पर्श) पैदा होता है; रूप के संपर्क पर निर्भर करते हुए रूप के संपर्क से पैदा होने वाली संवेदना (वेदना) पैदा होती है; रूप के संपर्क से पैदा होने वाली संवेदना (वेदना) पर निर्भर करते हुए रूप की इच्छा पैदा होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए रूप के लिए जुनून पैदा होता है; रूप के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए रूप की खोज पैदा होती है; रूप की खोज पर निर्भर करते हुए रूप का लाभ होता है....

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादा पैदा होता है ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श) ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से पैदा होने वाली अनुभूति (वेदना) . . . मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून ... मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज; मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ होता है।

"इस तरह, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए धारणाओं की विविधता पैदा होती है . . . कि खोज की विविधता पर निर्भर करते हुए, लाभ की विविधता भी उत्पन्न होती है।"

---

94. बाहरी संपर्कों की विविधता (2) (बहिरापहसनानट्टा2 बिना बहिरा-स्पर्श-नानत्व)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों (धातु) की विविधता के कारण ही धारणाओं (सन्न संस. संज्ञा) की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; मनोभावों की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि अनुच्छेद 91 में है)... कि खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है? कि खोजों की विविधता लाभों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती... कि तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है... धम्म तत्व के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है... धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ उत्पन्न होता है। धम्म की खोज मानसिक घटनाओं (धम्म) के लाभ के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; धम्म की इच्छा मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से उत्पन्न वेदना (संवेदना) पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क पर निर्भर नहीं होता; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर नहीं होता।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के आधार पर अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं होती... तत्वों की विविधता अनुभूतियों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(ii) The Second Subchapter
95. सात तत्व
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये सात तत्व (धातु) हैं। कौन से सात? आभा तत्व (धातु), पवित्र तत्व (शुभ तत्व), अनंत आकाश का बोध, चेतना का बोध (विन्नान संस्कृत विज्ञान) तत्व, शून्यता का बोध, न-बोध-न-बोध का बोध, और बोध-संवेदना का अंत। ये सात तत्व हैं।" 231

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"हे आदरणीय महोदय, आभा तत्व और बोध-संवेदना के अंत (वेदना) के बारे में: ये तत्व किसके आधार पर ज्ञात किए जाते हैं?"

"भिक्षु, अंधकार पर निर्भर होकर आभा तत्व (धातु) का ज्ञान होता है। अपवित्रता पर निर्भर होकर पवित्र तत्व का ज्ञान होता है। रूप पर निर्भर होकर अनंत आकाश तत्व का ज्ञान होता है। अनंत चेतना तत्व का ज्ञान अनंत आकाश तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। शून्यता तत्व का ज्ञान अनंत चेतना तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। न-बोध-न-बोध तत्व का ज्ञान शून्यता के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। वेदना और बोध के निरोध का ज्ञान निरोध पर निर्भर होकर होता है।" 232

"परन्तु, आभा तत्व... बोध (संज्ञा) और वेदना के निरोध के विषय में: इन तत्वों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?"

"आभा तत्व, पवित्र तत्व, अनंत अंतरिक्ष का बोध, अनंत चेतना का बोध और शून्यता का बोध: इन तत्वों को बोध सहित प्राप्त करना है। न बोध और न अबोध का बोध: इस तत्व को संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के अवशेष सहित प्राप्त करना है। 233 बोध और संवेदना का अंत: इस तत्व को अंत की प्राप्ति के रूप में प्राप्त करना है।"

---

96. स्रोत के साथ (सा-निदान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, कामुक विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; दुर्भावना के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; हानि पहुँचाने के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं। और ऐसा क्यों है?

"धातु (इंद्रिय तत्व) पर निर्भर होकर कामुक बोध (सन्ना संस. संज्ञा) उत्पन्न होता है; 234 कामुक बोध पर निर्भर होकर कामुक अभिलाषा उत्पन्न होती है; कामुक अभिलाषा पर निर्भर होकर कामुक वासना उत्पन्न होती है; कामुक वासना पर निर्भर होकर कामुक खोज उत्पन्न होती है। कामुक खोज में लगे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति तीन प्रकार से गलत आचरण करता है - शरीर, वाणी और मन से।"

द्वेष तत्व के आधार पर द्वेष की अनुभूति उत्पन्न होती है; द्वेष की अनुभूति के आधार पर द्वेष का इरादा उत्पन्न होता है; द्वेष के इरादे के आधार पर द्वेष से प्रेरित इच्छा उत्पन्न होती है; द्वेष से प्रेरित इच्छा के आधार पर द्वेष से प्रेरित जुनून उत्पन्न होता है; द्वेष से प्रेरित जुनून के आधार पर द्वेष से प्रेरित खोज उत्पन्न होती है। द्वेष से प्रेरित खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है। हानि

पहुँचाने के तत्व के आधार पर हानि पहुँचाने की अनुभूति उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की अनुभूति के आधार पर हानि पहुँचाने का इरादा उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के इरादे के आधार पर हानि पहुँचाने की इच्छा उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की इच्छा के आधार पर हानि पहुँचाने का जुनून उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के जुनून के आधार पर हानि पहुँचाने की खोज उत्पन्न होती है। हानि पहुँचाने की खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के घने जंगल में गिरा दे। यदि वह उसे तुरंत अपने हाथों और पैरों से न बुझाए, तो घास और जंगल में रहने वाले जीव विपत्ति और आपदा का शिकार हो जाएँगे। ठीक इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न अधार्मिक धारणाओं को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, मिटाकर और नष्ट न कर दे, तो वह इसी जीवन में कष्ट, व्यथा, निराशा और बुखार में लीन रहता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसका बुरा अंजाम निश्चित है।

भिक्षुओं, त्याग का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; द्वेष न करने का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; अहिंसा का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं। और ऐसा क्यों है?

"त्याग तत्व (धातु) पर निर्भर होकर त्याग की अनुभूति (सन्ना संस. संग्य) उत्पन्न होती है; 237 त्याग की अनुभूति पर निर्भर होकर त्याग का इरादा उत्पन्न होता है; त्याग के इरादे पर निर्भर होकर त्याग की इच्छा उत्पन्न होती है; त्याग की इच्छा पर निर्भर होकर त्याग की अभिलाषा उत्पन्न होती है; त्याग की अभिलाषा पर निर्भर होकर त्याग की खोज उत्पन्न होती है। त्याग की खोज में लगे हुए, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; 238 अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित

अभिलाषा उत्पन्न होती है; अहित की भावना से प्रेरित होकर, अहित की भावना से प्रेरित होकर एक खोज उत्पन्न होती है। अहित की भावना से प्रेरित होकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा के तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा की इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा की इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा की भावना उत्पन्न होती है; अहिंसा की भावना पर निर्भर होकर अहिंसा की खोज उत्पन्न होती है। अहिंसा की खोज में लगे रहकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के झुरमुट में गिरा दे। यदि वह उसे अपने हाथों और पैरों से तुरंत बुझा दे, तो घास और लकड़ी में रहने वाले प्राणियों पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आएगी। इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न हुई अधार्मिक धारणाओं को शीघ्र ही त्याग दे, उनका निवारण कर, उन्हें मिटा दे और उनका नाश कर दे, तो वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा और व्याकुलता के निवास करता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक शुभ गंतव्य (सुगति) की अपेक्षा की जा सकती है।

---

97. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा;

"भिक्षुओं, किसी तत्व (धातु) पर निर्भर होने पर एक समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है, एक नज़रिया पैदा होता है, एक विचार पैदा होता है।" 240

जब यह कहा गया, तो आदरणीय सद्दा काचयान ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, जब, उन लोगों के संबंध में जो पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हैं, नज़रिया पैदा होता है। ये पूरी तरह से प्रबुद्ध लोग हैं, यह नज़रिया किस पर निर्भर करता है?" 241

"महान है, काच्चायन, यह तत्व, अज्ञान का तत्व (अविज्जा बिना अविद्या)। एक घटिया तत्व, काच्चायन पर निर्भर होने पर, एक घटिया समझ, एक घटिया नज़रिया, घटिया सोच, घटिया कॉग्निटिव-अवेयरनेस, घटिया चाहत, घटिया इच्छा, एक घटिया इंसान, घटिया बोली पैदा होती है। वह समझाता है, सिखाता है, घोषणा करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और घटिया को समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म घटिया है।

"एक मध्यम तत्व, काच्चायन पर निर्भर होने पर, एक मध्यम समझ, एक मध्यम नज़रिया, मध्यम सोच, मध्यम कॉग्निटिव-अवेयरनेस, मध्यम चाहत, मध्यम इच्छा, एक मध्यम इंसान, मध्यम बोली पैदा होती है। वह समझाता है, सिखाता है, घोषणा करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और मध्यम को समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म मध्यम है।

"एक बेहतर तत्व पर निर्भर होकर, काकयान, एक बेहतर समझ, एक बेहतर नज़रिया, बेहतर विचार, बेहतर कॉग्निटिव-अवेयरनेस, बेहतर चाहत, एक बेहतर इच्छा, एक बेहतर इंसान, बेहतर वाणी पैदा होती है। वह बेहतर को समझाता है, सिखाता है, घोषित करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म बेहतर है।"

---

98. हीन प्रवृत्ति (हीनधिमुक्तिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। 242 अतीत में, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते थे और एक होते थे... भविष्य में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं... वर्तमान में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं।"

---

99. आगे-पीछे चलना (चंकमा संस्कृत: चंकरामन)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय, भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, पूज्य सारिपुत्त कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे; पूज्य महामोग्गलाना, पूज्य महाकस्सपा, पूज्य अनुरुद्ध, पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त, पूज्य उपली और पूज्य आनंद भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे। और भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, देवदत्त भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा,
"भिक्षुओं, क्या आप सारिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ टहलते हुए देख रहे हैं?" 243

"जी, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं। क्या आप मोग्गलाना को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं में महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) है। क्या आप कस्सपा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु तपस्वी प्रथाओं के समर्थक हैं। क्या आप अनुराधा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के पास दिव्य दृष्टि है। क्या आप पूर्ण मंतानिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु धर्म (मार्ग, नियम) के वक्ता हैं। क्या आप उपली को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अनुशासन के पालनकर्ता हैं। क्या आप आनंद को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अत्यंत विद्वान हैं। क्या आप देवदत्त को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के मन में बुरी इच्छाएं हैं।

" "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। निम्न स्वभाव वाले निम्न स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं; अच्छे स्वभाव वाले अच्छे स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

---

100. Suttas With Verses
सावत्थी, 244 में लिखा है, "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जिस प्रकार मल मल से, मूत्र मूत्र से, थूक थूक से, मवाद मवाद से और रक्त रक्त से जुड़ता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, यह तत्वों के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जैसे दूध दूध से, तेल तेल से, घी घी से, शहद शहद से और गुड़ गुड़ से मिलता है, वैसे ही, भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"संगति से कामवासना का जंगल (राग) उत्पन्न होता है, 245 अनासक्ति से जंगल कट जाता है।"

जैसे कोई लकड़ी के तख्ते पर चढ़कर
विशाल समुद्र में डूब जाता है, वैसे

ही सद्गुणी व्यक्ति
आलसी व्यक्ति की संगति में रहने से डूब जाता है।

इसलिए ऐसे व्यक्ति से बचना चाहिए -

जो आलसी हो, ऊर्जाहीन हो (वीर्य से रहित हो)।

बुद्धिमानों की संगति में रहो।

दृढ़ ध्यानियों के साथ रहो,

एकांत में रहने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहो।

उनकी ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है।

---

101. आस्था का अभाव (असद्ध-संसंदन)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्व (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीनों के साथ एकत्रित होते हैं, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, जो कर्म से नहीं डरते, वे कर्म से नहीं डरते, अज्ञानी अज्ञानीों के साथ, आलसी आलसीओं के साथ, भ्रमित मन भ्रमितों के साथ, अज्ञानी अज्ञानियों के साथ, नासमझ आलसीओं के साथ, अज्ञानी आलसीओं के साथ, अज्ञानी भ्रमित मन के साथ, और अज्ञानी अज्ञानी के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

"भिक्षुओं, तत्व (धार्मिक) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। आस्थावान आस्थावानों के साथ एकत्रित होते हैं, लज्जावान लज्जावानों के साथ, कर्म से डरने वाले कर्म से डरने वालों के साथ, विद्वान विद्वानों के साथ, ऊर्जावान ऊर्जावानों के साथ, ध्यानमग्न सतिमा ध्यानमग्नों के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी यही स्थिति है।"

---

102. आस्थाहीन लोगों में निहित (अश्द्ध-मूलक संस्कृत: अश्रद्ध-मूलक)
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीन लोगों के साथ, निर्लज्ज लोगों के साथ, मूर्ख लोगों के साथ। जिनमें आस्था होती है, वे आस्थावान लोगों के साथ, लज्जावान लोगों के साथ, और बुद्धिमान लोगों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले चार भागों में "निर्लज्ज" और "लज्जावान" के स्थान पर दूसरे स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं:)

(ii) कुकर्म से भयभीत न होने वाले, कुकर्म से भयभीत होने वाले;...

(iii) अनपढ़, विद्वान; ...

(iv) आलसी, ऊर्जावान;...

(v) the muddle-minded, the meditative(satima)...

---

103. निर्लज्ज में निहित (अहिरिका-मूलक)
(i)
भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, कुकर्म से निर्भय कुकर्म से, मूर्ख मूर्खों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग कुकर्म से भयभीत लोगों के साथ, बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। [अतीत में ऐसा था; भविष्य में ऐसा होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।]

(इस सूत्र के अगले तीन भागों में, दूसरे स्थान पर "कुकर्म से निर्भय" और "कुकर्म से भयभीत" के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) अनपढ़, विद्वान;...

(iii) आलसी, ऊर्जावान;...

(iv) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

104. जो लोग गलत काम करने से नहीं डरते (अनोत्तप्पा-मूलक) उनमें निहित।
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत नहीं होते, वे कुकर्म से भयभीत न होने वालों के साथ, अज्ञानी अज्ञानी के साथ, और मूर्ख मूर्ख के साथ एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत होते हैं, वे कुकर्म से भयभीत होने वालों के साथ, विद्वान विद्वान के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमान के साथ एकजुट होते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले दो भागों में "अज्ञानी" और "विद्वान" के स्थान पर निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) आलसी, ऊर्जावान;

(iii) भ्रमित, ध्यानमग्न (सतिमा)।

---

105. अनपढ़ों में निहित (अप्पस्सुत-मूलक)
(i)

भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अज्ञानी अज्ञानी से, आलसी आलसी से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ऊर्जावान ऊर्जावान से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(ii)

अज्ञानी अज्ञानी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ध्यानमग्न ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

---

106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
भिक्षुओं, हे तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। आलसी आलसी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। ऊर्जावान ऊर्जावान से, ध्यानमग्न सतीम ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(iii) कम्मा अनुभाग के पाठ्यक्रम (कम्मपथवग्गो संस्कृत कर्म-पथ-वर्ग)
107. समाधि में नहीं (असमहिता)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती वे आस्थाहीन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, निर्लज्ज लोग निर्लज्ज लोगों के साथ, जो कुकर्म से नहीं डरते वे कुकर्म से नहीं डरते, जो समाधि अवस्था में नहीं होते वे समाधि अवस्था में नहीं होते, और जो अज्ञानी होते हैं वे अज्ञानी लोगों के साथ

एकत्रित और एकजुट होते हैं। आस्थावान लोग आस्थावान लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, लज्जा का भाव रखने वाले लोग लज्जा का भाव रखने वालों के साथ, कुकर्म से डरने वाले लोग कुकर्म से डरने वालों के साथ, समाधि अवस्था में रहने वाले समाधि अवस्था में रहने वालों के साथ, और बुद्धिमान लोग बुद्धिमानों के साथ।"

---

108. अनैतिक (दुस्शील)
(ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, सिवाय इसके कि "समाधि अवस्था में न होने वाली अवस्था" और "समाधि अवस्था में होने वाली अवस्था" को क्रमशः "अनैतिक" और "सद्गुणी" से प्रतिस्थापित किया गया है।)

---

109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपद संस्कृत: पंच-शिक्षा-पद)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का नाश करने वाले जीवन का नाश करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दी हुई वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करते हैं,

वे उन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं जो ऐसा करते हैं। जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल) से दूर रहने वाले जीवन ...

---

110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दिए वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो फूट डालने वाली बातें करते हैं... जो कठोर बातें करते हैं... जो व्यर्थ की बातों में लिप्त होते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं... बिना दिए वस्तुएँ लेने से... यौन दुराचार से... झूठे वाणी से... फूट डालने वाली वाणी से... कठोर वाणी से... व्यर्थ की बातों से दूर रहते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; वे ... (जैसा कि ऊपर 110 में जारी है:) ... जो लोभी हैं ... जो द्वेष रखते हैं ... गलत दृष्टिकोण वाले हैं, वे गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं ... (जैसा कि ऊपर है) जो लोभी नहीं हैं ... द्वेष रहित हैं ... सही दृष्टिकोण वाले हैं, वे सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

112. अष्टांगिक मार्ग (अष्टांगिक संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; गलत इरादे वाले... गलत वाणी वाले... गलत कर्म करने वाले... गलत आजीविका वाले... गलत प्रयास करने वाले... गलत ध्यान (सती) वाले... गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; सही इरादे वाले... सही वाणी वाले... सही कर्म करने वाले... सही आजीविका वाले... सही प्रयास करने वाले... सही ध्यान (सती) वाले... सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।"

---

113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए 8 + 2) गलत समाधि अवस्था ... गलत ज्ञान ... गलत मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) गलत मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए अनुसार) सही समाधि अवस्था ... सही ज्ञान ... सही मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) सही मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।" 246

(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (चतुर्थवग्गो संस्कृत: चतुर्थ-वर्ग)
114. चार तत्व (चतुधातु)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु)। ये चार तत्व हैं।" 247

---

115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध संस्कृत: पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'पृथ्वी तत्व (धातु) के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है? जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व के संदर्भ में सांसारिक सुख

(असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?' "तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: पृथ्वी तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख (सुख) और सोमनस्सा: यही पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख है। पृथ्वी तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही पृथ्वी तत्व में खतरा है। पृथ्वी तत्व के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही पृथ्वी तत्व से मुक्ति है।" 248

"जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद: यही वायु तत्व में सांसारिक सुख है। वायु तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वायु तत्व में खतरा है। वायु तत्व के प्रति इच्छा और कामवासना का त्याग करना ही वायु तत्व से मुक्ति है।" 249

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं

किया।" लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'"

---

116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में खतरे की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में खतरा कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व से मुक्ति की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख की खोज में निकला..." जल तत्व से मुक्ति, ऊष्मा तत्व से मुक्ति, वायु तत्व से मुक्ति का खतरा। वायु तत्व से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"अब तक, भिक्षुओं, क्योंकि मैं इन चार तत्वों (जैसा कि ऊपर बताया गया है) के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था... देवों और मनुष्यों के मामले में।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

117. यदि कोई नहीं होता (नोसेडम)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व में सांसारिक भोग होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि पृथ्वी तत्व में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा (निब्बिद) न करते; परन्तु पृथ्वी तत्व में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि पृथ्वी तत्व से कोई मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि जल तत्व में सांसारिक भोग न होता... ऊष्मा तत्व में... वायु तत्व में, तो प्राणी उससे मोहित न होते... परन्तु वायु तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, संकट को संकट के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं।" 251

---

118. केवल एकांतदुक्खा (एक्सक्लूसिवली पसरिंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व (धातु) केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह वायु तत्व केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि वायु तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा (निब्बिद) नहीं होती। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह वायु तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा नहीं होती। परन्तु क्योंकि वायु तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

---

119. आनंद (अभिनंदन)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो पृथ्वी तत्व (धातु) में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो पृथ्वी तत्व... वायु तत्व में आनंद नहीं लेता, वह दुख में आनंद नहीं लेता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं लेता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

120. उत्पत्ति (उप्पद संस्कृत. उत्पत्ति)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। 253 जल तत्व (धातु) ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है।

पृथ्वी तत्व ... वायु तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व।

जो तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

"लेकिन, भिक्षुओ, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन चार चीज़ों के मामले में दुनियावी सुख, खतरे और बचने को असल में समझते हैं, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये आदरणीय काबिल लोग, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से इसे खुद महसूस करके, इसी जीवन में तप और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।"

---

122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन चार तत्वों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख, संकट और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी नहीं मानता...

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के उद्भव और अपव्यय, सांसारिक भोग, भय और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी और ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।

---

123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो पृथ्वी तत्व (धातु), उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

अध्याय 4: बिना खोजे जा सकने वाले आरंभ के (अनामत्तग्गसम्युत) {सम्युत-15}
(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
124. घास और लकड़ी (तिनकत्थ संस्कृत: तृण-कष्ठ)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। 254 अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति इस जंबूद्वीप में जो भी घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्ते हैं, उन्हें काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें नीचे रखते हुए (प्रत्येक के लिए) कहे: 'यह मेरी माता है, यह मेरी माता की माता है।' उस व्यक्ति की माता-पिता और दादी-नानी का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी इस जंबूद्वीप की घास, लकड़ी, शाखाएँ और पत्तियाँ सब समाप्त हो जाएँगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, इतने लंबे समय से आपने दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना, उनके प्रति वैराग्य होना और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

125. पृथ्वी (पथवी संस्कृत: पृथ्वी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई मनुष्य इस विशाल पृथ्वी को बेर के बीज के आकार की मिट्टी की गेंदों में तोड़कर नीचे रख दे और प्रत्येक गेंद के लिए कहे: 'यह मेरे पिता हैं, यह मेरे दादा हैं।' उस व्यक्ति के पूर्वजों और दादाओं का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी यह विशाल पृथ्वी समाप्त हो जाएगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा का भाव रखना, उनके प्रति वैराग्य का भाव रखना और उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

126. आँसू (आशु संस्कृत: अश्रु)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन सा अधिक है: इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - यह या चारों महामहासागरों का जल?" 255

"हे पूज्यवर, जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझते हैं, इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - केवल यही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबे मार्ग पर विचरण करते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक माता की मृत्यु का अनुभव किया है; अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक पिता की मृत्यु... भाई की मृत्यु... बहन की मृत्यु... पुत्र की मृत्यु... पुत्री की मृत्यु... रिश्तेदारों की हानि... धन की हानि... बीमारी से हानि का अनुभव किया है; जैसा कि आपने अनुभव किया है, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोने-धोने से, आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं की धारा चारों महामहासागरों के जल से भी अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है) है... सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।

---

127. माँ का दूध (खीरा संस क्षीरा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में क्या श्रेष्ठ है: वह माता का दूध जो आपने इस दीर्घकालीन यात्रा में पान किया है - यह या चारों महामहासागरों का जल?"

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार, इस दीर्घकालीन यात्रा में हमने जो माता का दूध पान किया है - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में आपने जो माता का दूध पिया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से कहीं अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि 124 में है)... इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

128. पर्वत (पब्बत संस पर्वत)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय गुरुदेव, एक युग (कप्प/कल्प) कितना लंबा होता है?" 256

"एक युग (कप्प/कल्प) लंबा होता है, भिक्षु। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, आदरणीय गुरुदेव?"

"हाँ, भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक विशाल पत्थर का पर्वत है जो एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंचा है, जिसमें कोई छेद या दरार नहीं है, वह चट्टान का एक ठोस पिंड है। हर सौ वर्ष के अंत में एक मनुष्य उसे कशम के कपड़े से एक बार रगड़ता है। 257 इस प्रयास से वह विशाल पत्थर का पर्वत घिसकर नष्ट हो सकता है, परन्तु युग का अंत नहीं होगा। हे भिक्षु, युग इतना लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सैकड़ों युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाखों युगों में भटक चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

129. सरसों का बीज (सासपा)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, एक युग (कप्प कल्प) कितना लंबा होता है?"

"भिक्षु, एक युग लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष हैं, या इतने सौ वर्ष हैं, या इतने हजार वर्ष हैं, या इतने लाख वर्ष हैं।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, संभव है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक नगर है जिसकी लोहे की दीवारें एक योजन लंबी, एक योजन चौड़ी और एक योजन ऊंची हैं, और वह सरसों के दानों से भरा हुआ है जो चोटी के समान घने हैं। हर सौ वर्ष के अंत में एक व्यक्ति वहां से एक सरसों का दाना निकालता

है। इस प्रयास से सरसों के दानों का विशाल ढेर भले ही समाप्त हो जाए, परन्तु युग का अंत न हो। हे भिक्षु, युग इतना ही लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सौ युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाख युगों तक विचरण कर चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

130. शिष्य (सावक संस्कृत श्रावक)
सावत्थी में। [183] तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कितने युग (कल्प/कल्प) बीत चुके हैं?"

"भिक्षुओं, कई युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।" "

परन्तु क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, भिक्षुओं," भगवान (बुद्ध) ने कहा। भिक्षुओं, मान लीजिए कि यहाँ चार शिष्य हैं, जिनमें से प्रत्येक का जीवनकाल सौ वर्ष है, और वे सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, और प्रत्येक दिन उन्हें एक लाख युगों का स्मरण करना है। सौ वर्ष पूरे होने पर जब वे चारों शिष्य, जिनका जीवनकाल सौ वर्ष है, इस जीवन के अंत में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे, तब भी उनके द्वारा स्मरण न किए गए युग शेष रहेंगे। 258 उनका गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

131. गंगा नदी
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तभी एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला, “गुरु गौतम, कितने युग बीत चुके हैं?”

“ब्राह्मण, अनेक युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।” “

परन्तु क्या इसकी कोई उपमा दी जा सकती है, गुरु गौतम?”

“हाँ, संभव है,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। "मान लीजिए, ब्राह्मण, गंगा नदी के उद्गम स्थल और सागर में उसके प्रवेश स्थल के बीच रेत के कण हैं: इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने कण हैं, या इतने सौ कण हैं, या इतने हज़ार कण हैं, या इतने लाख कण हैं। ब्राह्मण, बीते हुए युग तो इससे भी कहीं अधिक हैं। इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, ब्राह्मण, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

जब यह कहा गया, तो उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे भगवान गौतम! हे भगवान गौतम!... आज से भगवान गौतम मुझे एक ऐसे आम अनुयायी के रूप में याद रखें जो जीवन के लिए शरण में गया है।"

---

132. डंडा
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी अपने तल पर, कभी अपने किनारे पर और कभी अपने शीर्ष पर गिरती है, वैसे ही प्राणी अज्ञान (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों की तरह ही इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 259 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

133. व्यक्ति (पुग्गला)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"
260

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। यदि कोई उन्हें एकत्रित करे, तो एक व्यक्ति जो अज्ञान (संज्ञान) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकता रहे, वह अपने पीछे वेपुल्ला पर्वत के समान अस्थि-ढेर छोड़ जाएगा, और एकत्रित अस्थि-ढेर नष्ट नहीं होगा। 261 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"एक व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई हड्डियों का ढेर; एक युग (कप्प/कल्प) बीतने पर
पर्वत के समान ऊँचा ढेर बन जाएगा; ऐसा महान ऋषि ने कहा है।

यह इतना विशाल है; जितना
मगध पर्वत श्रृंखला में गिद्ध शिखर के उत्तर में स्थित ऊँचा वेपुल्ला पर्वत।

परन्तु जब कोई सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से (ध्यान में, पस्सति) देखता है; तो वह व्यक्ति, अधिक से अधिक सात बार और विचरण करके; सभी बंधनों को तोड़कर
दुख का अंत करता है।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुर्भाग्यशाली)
134. दुर्भाग्यशाली (दुग्गता संस्कृत: दुर्गति)
एक बार, जब वे सावत्थी में निवास कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यह संसार अनादि है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। जब भी आप किसी को दुर्भाग्य या कष्ट में देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

135. सुखी (सुखी संस्कृत: सुखी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... जब भी आप किसी को सुखी और भाग्यशाली देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

136. तीस भिक्षु (तिम्समत्ता)
राजगृह में बांस के बाग (वेलुवन) में। फिर पावा से तीस भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए - सभी जंगल में रहने वाले, भिक्षाटन करने वाले, चीथड़े पहनने वाले, तीन वस्त्र पहनने वाले, फिर भी सभी बेड़ियों में जकड़े हुए थे। 262 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। फिर भगवान (बुद्ध) के मन में आया:

"पावा से आए ये तीस भिक्षु सभी जंगल में रहने वाले, भिक्षाटन करने वाले, चीथड़े पहनने वाले, तीन वस्त्र पहनने वाले हैं, फिर भी सभी बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। मैं उन्हें धम्म (पथ, कानून) इस तरह सिखाऊँ कि जब वे इन्हीं आसनों पर बैठे रहेंगे तो उनके मन आसक्ति न रखने से गंदगी से मुक्त (विमुत्त रहित विमुक्त) हो जाएँगे।"

फिर भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं से इस तरह कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, इस संसार की कोई शुरुआत नहीं है। पहली बात तो यह समझ में नहीं आती कि जीव अज्ञान (अविद्या रहित) और लालसा (तृष्णा रहित) से बंधे हुए भटकते और भटकते रहते हैं। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, क्या ज़्यादा है: जब तुम्हारा सिर काटा गया था और तुम इस लंबे रास्ते पर घूमते और भटकते रहे, तो तुम्हारे खून की जो धार बही - यह या चार महासागरों का पानी?"

"जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) के सिखाए धम्म को समझते हैं, आदरणीय महोदय, जब हमारे सिर काटे गए थे और हम इस लंबे रास्ते पर घूमते और भटकते रहे, तो हमारे खून की जो धार बही - यह अकेली चार महासागरों के पानी से ज़्यादा है।"

"बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि तुम मेरे सिखाए धम्म को इस तरह समझते हो। इस लंबे रास्ते पर घूमते-फिरते तुमने जो खून की धार बहाई है - वह अकेले ही चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। भिक्षुओं, बहुत समय तक तुम गाय रहे हो, और जब गाय के रूप में तुम्हारा सिर काटा गया, तो तुमने जो खून की धार बहाई वह चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। बहुत समय तक तुम भैंस, भेड़, बकरी, हिरण, मुर्गियाँ और सूअर रहे हो.... बहुत समय तक तुम्हें चोर, लुटेरे और व्यभिचारी के तौर पर पकड़ा गया है, और जब तुम्हारा सिर काटा गया, तो तुमने जो खून की धार बहाई वह चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। किस वजह से? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार बिना खोजे शुरू होने वाला है..(जैसा कि 124 में है).. इनसे आज़ाद होने के लिए यह काफ़ी है।"

यही भगवान (बुद्ध) ने कहा था। भगवान (बुद्ध) की बात सुनकर वे भिक्षु बहुत खुश हुए। और जब यह बात कही जा रही थी, तो पावा के तीस भिक्षुओं के मन अनासक्ति से सारी बुराइयों से आज़ाद हो गए।

137-142. माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री (मातु, पितु, भतु, भगिनी, पुत्त, धितु)
मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में जेतवन (जेतवन) में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में रह रहे थे।

वहीं से भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, संसार (पुनर्जन्म का चक्र) का कोई अंत नहीं है, अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) में डूबे और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से बंधे प्राणियों का कोई आरंभ नहीं बताया जा सकता, जो एक जन्म से दूसरे जन्म तक दौड़ते रहते हैं।

भिक्षुओं, इस लंबे पुनर्जन्म के चक्र में आपको ऐसा कोई प्राणी नहीं मिलेगा जो पहले आपकी माता...आपके पिता...आपके भाई...आपकी बहन...आपका पुत्र...आपकी पुत्री न रहा हो।"

इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, पुनर्जन्मों का यह चक्र अंतहीन है, इसका कोई आरंभिक बिंदु नहीं बताया जा सकता। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु नहीं देखा जा सकता। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी
संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापब्बत संस्कृत: वेपुल्ला-पर्वत)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, अतीत में इस वेपुल्ला पर्वत को पचिनवंश कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को तिवर कहा जाता था। तिवरों का जीवनकाल 40,000 वर्ष था। वे चार दिनों में पचिनवंश पर्वत पर चढ़ सकते थे और चार दिनों में उतर सकते थे। उस समय पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत भगवान (बुद्ध) ककुसंध संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य विदुर और संजीव थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (पूर्व बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। भिक्षुओं, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर होते हैं, वे इतने अस्थिर और अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

"[एक अन्य समय में] अतीत में, भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को वंकाका कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को रोहितास कहा जाता था। रोहितासों का जीवनकाल 30,000 वर्ष था। 264 वे तीन दिनों में वंकाका पर्वत पर चढ़ सकते थे और तीन दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कोनागमना, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्यों के नाम भिय्योसा और उत्तरा थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार संबंधी आदतें) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

"[एक और समय पहले], हे भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को सुपस्सा कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को सुप्पिया कहा जाता था। सुप्पियों का जीवनकाल 20,000 वर्ष था। वे दो दिनों में सुपस्सा पर्वत पर चढ़ सकते थे और दो दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कस्सपा, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य तिस्सा और भारद्वाज थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, हे भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार-आदतों) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भिक्षुओं, वर्तमान में इस वेपुल्ला पर्वत को वेपुल्ला कहा जाता है, और वर्तमान में इन लोगों को मगधवासी कहा जाता है। मगधवासियों का जीवनकाल अल्प, सीमित और क्षणभंगुर होता है; जो दीर्घ जीवन जीता है वह सौ वर्ष या उससे थोड़ा अधिक जीता है। मगधवासी एक घंटे में वेपुल्ला पर्वत पर चढ़ते हैं और एक घंटे में उतर जाते हैं। वर्तमान में मैं संसार में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के रूप में अवतरित हुआ हूँ।
मेरे दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलाना हैं, जो एक उत्तम जोड़ी हैं। भिक्षुओं, एक समय आएगा जब इस पर्वत का नाम लुप्त हो जाएगा, जब ये लोग मर जाएंगे, और मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लूंगा। भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आदतें) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार-आदतों) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्यवान होना ही पर्याप्त है, और उनके प्रति उदासीन रहना ही पर्याप्त है। उनसे मुक्त हो जाओ।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"तिवारों ने इसे पचिनवंस कहा; रोहितासों ने वंकाका,
सुप्पिया लोगों ने सुपस्सा और मगध के लोगों ने वेपुल्ला कहा।

"अफ़सोस, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अनित्य हैं; वे उत्पन्न और नष्ट होते हैं।
एक बार उत्पन्न होने पर वे समाप्त हो जाते हैं; उनका निवारण आनंददायक है।" 265

अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
144. संतोष (संतुष्ट संस्कृत: संतुष्ट)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह वस्त्र के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। 266 यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे वस्त्र मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है। 267

"भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहता है... और यदि उसे ये सब मिल जाएं तो वह उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनका उपयोग करता है, उनमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है।"

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहेंगे, और किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करेंगे, और वस्त्र की प्राप्ति के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होंगे। यदि हमें वस्त्र न मिले तो हम विचलित नहीं होंगे, और यदि हमें वस्त्र मिल जाए तो हम उसका उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।

' 'हम किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहेंगे... और यदि हमें वे प्राप्त हों तो हम उनका उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से शिक्षा दूंगा। 268 शिक्षा प्राप्त करके, तुम तदनुसार अभ्यास करो।" 269

---

145. गलत काम से बेखौफ (अनोत्ताप्पी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा को प्रणाम किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

“मित्र, ऐसा कहा जाता है कि जो उत्साही नहीं है और जो कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है; परन्तु जो उत्साही है और कुकर्म से भयभीत है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य है, निर्वाण के योग्य है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य है। 270 यह किस प्रकार सच है, मित्र?”

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न नहीं करता:
'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए बुरे और हानिकारक भावों का त्याग न किया जाए, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत) भाव उत्पन्न न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही नहीं होता। 271

"और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत नहीं होता? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर भयभीत नहीं होता: 'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है' ... न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इस प्रकार वह कुकर्म से भयभीत नहीं होता।

"मित्र, इसी प्रकार जो उत्साही नहीं है और कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है।

" "और मित्र, उत्साही कैसे होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न करता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक बुरे भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'... और यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही होता है।

" "और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु इस विचार से भयभीत हो जाता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; और इस विचार से: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इसलिए वह कुकर्म से डरता है।

"हे मित्र, इसी प्रकार जो व्यक्ति कुकर्म से डरता है और उसके प्रति सजग रहता है, वह ज्ञान प्राप्त करने, निर्वाण प्राप्त करने और बंधन से अद्वितीय मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

146. चंद्रमा के समान (चंडुपमा, संस्कृत: चंद्र-उपमा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाना चाहिए - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। 272 जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी पुराने कुएँ, खाई या नदी के किनारे को देखते समय अपने शरीर और मन को समेट लेता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास जाना चाहिए।

" "भिक्षुओं, कस्सपा परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाते हैं - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। भिक्षुओं, आपके विचार में किस प्रकार का भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा।" उससे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

फिर भगवान (बुद्ध) ने अंतरिक्ष में अपना हाथ हिलाया और कहा:
"भिक्षुओं, जिस प्रकार यह हाथ अंतरिक्ष में नहीं फंसता, न ही उससे बंधा रहता है, न ही उससे बंधता है, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' 274 वह दूसरों के लाभों पर उतना ही प्रसन्न और आनंदित होता है जितना अपने लाभों पर। ऐसा भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है।

"भिक्षुओं, जब कस्सपा परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि
'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' वह दूसरों की उपलब्धियों पर उतना ही प्रसन्न और प्रसन्न होता है जितना अपनी उपलब्धियों पर।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देना अशुद्ध कैसे है और धम्म का उपदेश देना शुद्ध कैसे है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है:
'हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर, वे धम्म में विश्वास प्राप्त करें! विश्वास प्राप्त करके, वे अपना विश्वास मुझ पर प्रकट करें!' 275 ऐसे भिक्षु द्वारा धम्म का उपदेश देना अशुद्ध है।"

लेकिन एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है। हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' इस प्रकार वह धम्म की अंतर्निहित उत्कृष्टता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देता है; वह करुणा और सहानुभूति से, कोमल चिंता से दूसरों को धम्म का उपदेश देता है। 276 ऐसे भिक्षु का धम्म का उपदेश शुद्ध है।

भिक्षुओं, कस्सपा दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) की अच्छी व्याख्या की गई है... हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' वह धम्म की अंतर्निहित श्रेष्ठता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं; वे करुणा और सहानुभूति से, कोमल प्रेम से दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं।

"भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।"

---

147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य है, और किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य नहीं है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक भिक्षु को परिवारों के पास इस विचार के साथ जाना चाहिए: 'वे मुझे दान दें, संकोच न करें! वे मुझे भरपूर दान दें, थोड़ा नहीं! वे मुझे उत्तम वस्तुएँ दान करें, घटिया वस्तुएँ नहीं! वे मुझे शीघ्र दान दें, विलंब न करें! वे मुझे विचारपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। यदि वे अधिक के बजाय थोड़ा दान देते हैं... यदि वे उत्तम वस्तुओं के बजाय पुरानी वस्तुओं का दान देते हैं... यदि वे शीघ्रता के बजाय विलंब से दान देते हैं... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं, एक भिक्षु परिवारों के पास इस विचार से जा सकता है:
'जब मैं दूसरों के परिवारों के बीच होता हूँ, तो मैं यह कैसे सोच सकता हूँ: "वे मुझे दान दें, संकोच न करें! ... वे मुझे आदरपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!"?' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख नहीं होता; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव नहीं होता। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य है।

भिक्षुओं, कश्यप परिवारों के पास इसी विचार के साथ जाते हैं... इसलिए यदि वे दान न दें... यदि वे विचारपूर्वक नहीं बल्कि लापरवाही से दान दें, तो उन्हें इससे कोई हानि नहीं होती; उन्हें इससे कोई पीड़ा या अप्रसन्नता नहीं होती।

भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।

---

148. पुराना (जिन्ना सं. जीर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, अब तुम बूढ़े हो गए हो, और तुम्हारे ये पुराने चमड़े के वस्त्र तुम्हारे लिए बोझिल होंगे। इसलिए, हे कस्सपा, गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनो, निमंत्रण पर भोजन ग्रहण करो और मेरे निकट निवास करो।" 278

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से वनवासी रहा हूँ और वनवास की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं भिक्षाभोजन करता रहा हूँ और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं चिथड़े वस्त्र पहनता रहा हूँ और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं तीन वस्त्र धारण करता रहा हूँ और तीन वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मेरी इच्छाएँ कम रही हैं और इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं संतुष्ट रहा हूँ और संतोष की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं एकांत में रहा हूँ और एकांत की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं समाज से विरक्त रहा हूँ और समाज से विरक्त रहने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं ऊर्जावान रहा हूँ और ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।" 279

"हे कस्सपा, आप किस लाभ को ध्यान में रखते हुए इतने समय से वनवासी रहे हैं... (जैसा ऊपर वर्णित है)... और ऊर्जा उत्पन्न करने की प्रशंसा करते रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, दो लाभों पर विचार करते हुए। मैं अपने लिए इसी जीवन में एक सुखमय निवास देखता हूँ, और आने वाली पीढ़ियों के लिए करुणा रखता हूँ, यह सोचते हुए कि 'आने वाली पीढ़ियाँ मेरे उदाहरण का अनुसरण करें!' 280 क्योंकि जब वे सुनेंगे, 'बुद्ध के प्रबुद्ध शिष्य लंबे समय तक वनवासी रहे और वनवास की प्रशंसा करते रहे... वे ऊर्जावान थे और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा करते रहे,' तो वे तदनुसार अभ्यास करेंगे, और इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। हे पूज्यवर, इन दो लाभों पर विचार करते हुए, मैं लंबे समय से वनवासी रहा हूँ... और ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।"

"शाबाश, शाबाश, कस्सपा! तुम संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहे हो। इसलिए, कस्सपा, पुराने चमड़े के वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए वन में निवास करो।"

---

149. निर्देश (1) (ओवादा1)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।" 281

“हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। 28 वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। हे पूज्यवर, मैंने यहाँ आनंद के शिष्य भंडा नामक भिक्षु और अनुराधा के शिष्य अभिंजिका नामक भिक्षु को अपने ज्ञान के विषय में आपस में प्रतिस्पर्धा करते हुए देखा, वे कह रहे थे:
'आओ, भिक्षु, कौन अधिक बोल सकता है? कौन बेहतर बोल सकता है? कौन अधिक देर तक बोल सकता है?'”

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा:
“आओ, भिक्षु, भंडा और अभिंजिका को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।”

“जी, हे पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया, और वह उन भिक्षुओं के पास गया और उनसे कहा: “गुरु पूज्य भिक्षुओं को बुला रहे हैं।”

“जी, मित्र,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा कर रहे हो, कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है?”

“जी, पूज्यवर।”

“क्या तुमने मुझे कभी धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हुए देखा है: ‘आओ, भिक्षुओं, अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा करो और देखो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है’?”

“नहीं, पूज्यवर।”

“यदि तुमने मुझे इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हुए कभी नहीं देखा, तो तुम जैसे नासमझों को क्या पता है कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर तुम आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन कर रहे हो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है?”

तब उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: “आदरणीय गुरुदेव, हमने पाप किया है - हम इतने नासमझ, इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर हमने आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन किया कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है। आदरणीय गुरुदेव, भविष्य में संयम के लिए हमारे इस पाप को क्षमा करें।”

"निःसंदेह, भिक्षुओं, आपने एक अपराध किया है - आप कितने बचकाने (नासमझ), कितने भ्रमित और कितने अयोग्य) थे - कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा प्राप्त करने के बाद भी आप अपने ज्ञान के मामले में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे... लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानते हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध मानता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तो यही गुरु के अनुशासन में वृद्धि है।"

---

150. निर्देश (2) (ओवाडा2)

राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ, या तुम दो।"

आदरणीय महोदय, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। आदरणीय महोदय, 283 जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है, वृद्धि नहीं। जैसे कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि घटती जाती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न रखता हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है। अवस्थाएँ, विकास नहीं।

"हे आदरणीय महोदय, आस्थाहीन व्यक्ति के लिए हानि का मामला है। लज्जाहीन व्यक्ति... जो कुकर्म से भयभीत नहीं होता... जो आलसी... नासमझ... क्रोधित... द्वेषपूर्ण होता है: उसके लिए हानि का मामला है। जब कोई भिक्षु प्रशिक्षक नहीं होते, तब भी हानि का मामला है।"

आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि बढ़ती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं।

आदरणीय महोदय, विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए यह हानि का मामला नहीं है। लज्जा रखने वाले व्यक्ति के लिए... जो पाप से भयभीत है... ऊर्जावान है... बुद्धिमान है... क्रोध रहित है... द्वेष रहित है: यह हानि का मामला नहीं है। जब भिक्षुओं में से कुछ गुरु भी हों, तो उसे कोई हानि नहीं होगी। "

बहुत खूब, कस्सपा!"

(बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के पूरे कथन को दोहराया।)

---

151. निर्देश (3) (ओवाडा3)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।"

"हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देना कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और उपदेश को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते।"

"ठीक इसी प्रकार, कस्सपा, अतीत में वरिष्ठ भिक्षु वनवासी थे और वनवास की प्रशंसा करते थे; वे भिक्षाभोजन करते थे और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करते थे; वे चिथड़े वस्त्र पहनते थे और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करते थे; वे त्रिव वस्त्र धारण करते थे और त्रिव वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करते थे; उनकी इच्छाएँ कम थीं और वे इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करते थे; वे संतुष्ट थे और वे संतोष की प्रशंसा करते थे; वे एकांतवासी थे और वे एकांत की प्रशंसा करते थे; वे समाज से विरक्त थे और वे समाज से विरक्तता की प्रशंसा करते थे; वे ऊर्जावान थे और वे ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करते थे।

फिर, जब कोई भिक्षु वनवासी होता था और वनवास की प्रशंसा करता था..." जब वे ऊर्जावान होते और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलते, तो वरिष्ठ भिक्षु उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु साधना में तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ एक आसन है, बैठ जाओ।' तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु वनवासी होता है और वनवास की प्रशंसा में बोलता है... जब वह ऊर्जावान होता है और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलता है, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे तदनुसार अभ्यास करते, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होता।

"परन्तु अब, कस्सपा, वरिष्ठ भिक्षु वनवासी नहीं रहे और वनवास की प्रशंसा नहीं करते... वे ऊर्जावान नहीं रहे और वीर शक्ति (वीर्य) जगाने की प्रशंसा नहीं करते। अब वरिष्ठ भिक्षु उस भिक्षु को अपने आसन पर आमंत्रित करते हैं जो सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है, जो वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता है, और कहते हैं: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों की संगति के लिए तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ आसन है, बैठो।'" तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु प्रसिद्ध और विख्यात हो जाता है, जिसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे अपने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे इसी प्रकार अभ्यास करते हैं, और यही उनके लिए लंबे समय तक हानि और कष्ट का कारण बनता है।

"यदि, कस्सपा, सही ढंग से बोलते हुए यह कह सकता है: 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है; पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है,' 284 तो ठीक इसी प्रकार यह कहना उचित है।"

---

152. ध्यान (स्वयं-अवशोषक समाधि) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (ध्यान-अभि-ज्ञान)
(महत्वपूर्ण: नौ झाना [ध्यानसमाधि] अवस्थाएं और छह दिव्य-ज्ञान(अभिन्न)\जादुई शक्तियां)

(1) पहला झाना (सांस ध्यान समाधि 1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(2) द्वितीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 2)

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) से युक्त है, चिंतन और परीक्षण से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(3) तृतीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 3)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते हुए भी, समभाव में, ध्यान (सतिमा) करते हुए और पूर्णतः संबोध (संपजनो) करते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता हूँ; मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, ध्यानमग्न और सुखी है।' कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, तृतीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(4) चतुर्थ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 4)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख का त्याग करते हुए, और पहले से ही सुख और दुःख के लुप्त होते हुए, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) की शुद्धि को समाहित करता है।" कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चौथे ध्यान में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(5) पाँचवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 5)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, रूप की पूर्ण अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की अनुभूति को त्यागकर, विभिन्न अनुभूतियों में विलीन हुए बिना, यह जानकर कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैं अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(6) छठा ज्ञान (सं. ध्यान समाधि 6)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, अंतरिक्ष की अनंतता को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) अनंत है,' मैं चेतना की अनंतता में प्रवेश करता हूँ और उसमें रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक चाहें, चेतना की अनंतता में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।

(7) सातवाँ ज्ञान (सं. ध्यान समाधि 7)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, चेतना की अनंतता को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि 'कुछ भी नहीं है,' मैं शून्यता में प्रवेश करता हूँ और उसमें रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक चाहें, शून्यता में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।

(8) आठवीं झाना (सं. ध्यान समाधि 8)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, शून्यता की क्षमता को पूरी तरह से पार करके, मैं न-बोध-न-अबोध की क्षमता में प्रवेश करता हूँ और रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक वह चाहता है, न-बोध-न-अबोध की क्षमता में प्रवेश करता है और रहता है।

(9) नौवीं झाना (सं. ध्यान समाधि 9)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, न-बोध-न-अबोध की क्षमता को पूरी तरह से पार करके, मैं बोध (सं. सं. संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निरोध (प्रवेश) में प्रवेश करता हूँ और रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक वह चाहता है, बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (प्रवेश) में प्रवेश करता है और रहता है।
छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियाँ

1. जादू का दिव्य ज्ञान (इद्धि और रिद्धि)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ; मैं प्रकट और लुप्त हो जाता हूँ; मैं दीवार, प्राचीर, पर्वत को अंतरिक्ष की तरह पार कर जाता हूँ; मैं पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता और बाहर निकलता हूँ जैसे वह जल हो; मैं जल पर बिना डूबे ऐसे चलता हूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर मैं पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता हूँ; मैं अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहलाता हूँ; मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

2. दिव्य श्रवण
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार मेरी इच्छा है कि मैं शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकूँ, चाहे वो दिव्य हों या मानवीय, दूर की हों या पास की। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकते हैं।

3. दूसरों के मन को जानना:

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझता हूँ। मैं राग से ग्रस्त मन को राग से ग्रस्त मन के रूप में, राग रहित मन को राग रहित मन के रूप में, दोष से ग्रस्त मन को दोष रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह रहित मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, पार करने योग्य मन को पार करने योग्य और पार न करने योग्य मन को पार न करने योग्य मन के रूप में, और समाधि अवस्था में स्थित मन को भी उसी रूप में समझता हूँ।" समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर ही माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त ही माना जाता है। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझते हैं।

4. पूर्व जन्मों का ज्ञान

भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के दौरान: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मैंने कहीं और पुनर्जन्म लिया, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से दूर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करते हैं।

5. दिव्य दृष्टि

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि के आधार पर कर्म किए, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से एक अच्छे स्थान (सुगति) पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, (ध्यान में, पस्सतो) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

6. विमुक्ति को जानना

"भिक्षुओं, विकारों के विनाश (खाय/क्षय) से, मैं इसी जीवन में मन की विमुक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, इसे दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद महसूस करता हूँ। 285 कश्यप भी, विकारों के विनाश से, इसी जीवन में मन की विमुक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, इसे दिव्य-ज्ञान से खुद महसूस करता हूँ।"

---

153. भिक्षुणियों का निवास (उपासया)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य महाकस्सपा के पास गए और कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।" 286

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

दूसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।"

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "आओ, पूज्य कस्सपा, हम भिक्षुणियों के आश्रम चलें।"

तब, सुबह पूज्य महाकस्सपा ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ भिक्षुणियों के आश्रम गए। वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियाँ पूज्य महाकस्सपा के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। जब वे वहाँ बैठी थीं, पूज्य महाकस्सपा ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुणियों को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

तब भिक्षुणी थुल्लतिस्सा नाराज़ होकर इस प्रकार अपनी नाराज़गी व्यक्त करने लगीं: "महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात कैसे कर सकते हैं? महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात करना तो ऐसा ही है जैसे कोई सुई बेचने वाला सुई बनाने वाले को सुई बेच दे!" पूज्य

महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"हे मित्र आनंद, क्या मैं सुई बेचने वाला हूँ और आप सुई बनाने वाले, या मैं सुई बनाने वाला हूँ और आप सुई बेचने वाले?"

"धैर्य रखिए, पूज्य कस्सपा, स्त्रियाँ बचकानी (नासमझ) होती हैं।" 289

"रुको, मित्र आनंद! संघ को तुम्हारे बारे में और पूछताछ करने का अवसर मत दो। 290 हे मित्र आनंद, क्या तुम यह सोचते हो कि क्या भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष तुम्हें आगे लाकर कहा था: 'भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। आनंद भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे मित्र, मैं ही वह व्यक्ति था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, मैं जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... कस्सपा भी, जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।'

(यही आदान-प्रदान शेष ध्यान संबंधी उपलब्धियों और छह दिव्य ज्ञान (अभिन)/जादुई शक्तियों के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि पिछले सूत्र [2.152] में है।)

"हे मित्र, मैं ही वह था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से अनुभव किया है। कस्सपा भी विकारों के नाश (करश) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे उसने स्वयं दिव्य ज्ञान से अनुभव किया है।'

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 291

परन्तु भिक्षुणी थुलतस्सा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं। 292

---

154. वस्त्र (सीवारा)
एक बार पूज्य महाकस्सपा राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ दक्षिणागिरि में भ्रमण कर रहे थे। 293 उस समय पूज्य आनंद के तीस शिष्य, जिनमें से अधिकतर युवा थे, ने प्रशिक्षण त्याग दिया था और सांसारिक जीवन में लौट गए थे।

जब पूज्य आनंद ने दक्षिणागिरि में अपने इच्छित समय तक भ्रमण कर लिया, तो वे राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) लौट आए। वह पूज्य महाकस्सपा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य महाकस्सपा ने उनसे कहा, "मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम किन कारणों से बनाया कि भिक्षुओं को परिवारों के साथ तीन से अधिक के समूह में भोजन नहीं करना चाहिए?" 294

“हे पूज्य महाकस्सपा, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम तीन कारणों से बनाया: दुराचारी व्यक्तियों को रोकने और सुचारु भिक्षुओं की सुविधा के लिए, [इस उद्देश्य से कि] 'बुरे इरादों वाले लोग गुट बनाकर संघ में फूट न डालें!'; और परिवारों के प्रति सहानुभूति के कारण। 295 हे पूज्य महाकस्सपा, इन्हीं तीन कारणों से भगवान (बुद्ध) ने यह नियम बनाया।”

"तो फिर, हे मित्र आनंद, तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ क्यों भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं, अत्यधिक भोजन करते हैं और जागृति के प्रति समर्पित नहीं हैं? ऐसा लगता है मानो तुम फसलों को रौंदते हुए भटक रहे हो; ऐसा लगता है मानो तुम परिवारों को नष्ट करते हुए भटक रहे हो। हे मित्र आनंद, तुम्हारा दल बिखर रहा है, तुम्हारे युवा अनुयायी तुमसे दूर होते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

"मेरे सिर पर सफेद बाल उग रहे हैं। आदरणीय कस्सपा। क्या हम आदरणीय महाकस्सपा द्वारा युवक कहे जाने से बच नहीं सकते?" 296 [219]

"हे मित्र आनंद, यह केवल इसलिए है क्योंकि तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं... लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

भिक्षुणी थुलनंदा ने सुना: 297 "महाकस्सपा ने विदेह ऋषि, महाकस्सापा, को युवक कहकर उनका अपमान किया है।" तब, इससे नाराज़ होकर, उसने अपनी नाराज़गी इस प्रकार व्यक्त की: "महाकस्सपा, जो पहले एक अन्य संप्रदाय के सदस्य थे, वे विदेहन ऋषि आनंद को एक युवक कहकर उनका अपमान कैसे कर सकते हैं?"

पूज्य महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुलनंदा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"निश्चित रूप से, मित्र आनंद, भिक्षुणी थुलानंद ने वह कथन जल्दबाजी में, बिना सोचे-समझे कहा था। क्योंकि जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से मुझे भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु को स्वीकार करने का स्मरण नहीं है।

"मित्र, अतीत में, जब मैं गृहस्थ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है, दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन जीने वाले के लिए पूर्णतः शुद्ध, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जीना आसान नहीं है, जो पॉलिश किए हुए शंख के समान है। इसलिए मुझे अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करना चाहिए।' कुछ समय बाद मैंने कपड़े के टुकड़ों से एक बाहरी वस्त्र बनवाया; 299 तब, संसार में जो अरहंत थे, उन्हें आदर्श मानकर, मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, भगवा वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया।

"जब मैंने इस प्रकार संन्यास लिया (दीक्षित हुआ), तो मैं एक सड़क पर यात्रा कर रहा था, तभी मैंने भगवान (बुद्ध) को राजगृह और नालंदा के बीच बहुपुत्त मंदिर के पास बैठे हुए देखा। 300 उन्हें देखकर मैंने सोचा:
'यदि मुझे कभी गुरु के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी सौभाग्यशाली (सुगतो) के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी पूर्णतः प्रबुद्ध के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा।' तब मैंने वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।' 301

"जब मैंने यह कहा, तो भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'कस्सपा, यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो न जानता हो और न देखता हो, तुम्हारे जैसे एकाग्रचित्त शिष्य से कहे: "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ," तो उसका सिर फट जाएगा। परन्तु कस्सपा, मैं जानता हूँ, "मैं जानता हूँ"; देखता हूँ, मैं कहता हूँ, "मैं देखता हूँ।" 302

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं बड़ों, नवदीक्षितों और मध्यम वर्ग के लोगों के प्रति लज्जा और कुकर्म के भय की तीव्र भावना उत्पन्न करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए:
"जब भी मैं लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) से संबंधित किसी धर्म (मार्ग, नियम) को सुनूँ, तो मैं उसे उत्सुकतापूर्वक सुनूँगा, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगाऊँगा।" 303 तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं आनंद से संबंधित शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का कभी त्याग नहीं करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। 304

"तब, मुझे यह निर्देश देकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और चले गए। [221] हे मित्र, मैंने सात दिनों तक देश का भिक्षाभोजन ऋणी के रूप में खाया, परन्तु आठवें दिन मुझे अंतिम ज्ञान प्राप्त हुआ। 305

"तब, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) सड़क से नीचे उतरे और एक वृक्ष के चरणों में गए। मैंने अपने चिथड़ों के बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) यहाँ बैठें। इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।' भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और मुझसे कहा: 'हे कस्सपा, तुम्हारा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र कोमल है।' - 'आदरणीय महोदय, कृपया दयावश मेरा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र स्वीकार करें।' - 'तो क्या तुम मेरे पुराने चमड़े के वस्त्र पहनोगे?' - 'हाँ, आदरणीय महोदय।' इस प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) को अपना चिथड़े-चिथड़े का बाहरी वस्त्र अर्पित किया और उनसे उनका पुराना, फटा हुआ चमड़ा का वस्त्र ग्रहण किया। 307

"हे मित्र, यदि कोई सही ढंग से किसी के विषय में कह सकता है: 'वह भगवान (बुद्ध) का पुत्र है, उनकी छाती से जन्मा है, उनके मुख से जन्मा है, धम्म से जन्मा है, धम्म द्वारा सृजित है, धम्म का उत्तराधिकारी है, फटे-पुराने चमड़े के वस्त्र धारण करने वाला है,' तो यह बात मेरे विषय में ही सही ढंग से कही जा सकती है। 308

"मित्र, मैं जहाँ तक चाहूँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, [222] एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से युक्त.... (जैसा कि 9 में है)

"मित्र, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हुए।"

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि मेरे छह दिव्य ज्ञानों (अभिन्न) को छिपाना।" 309

परन्तु भिक्षुणी थुलनंदा ब्रह्मचर्य का मार्ग भटक गईं।

---

155. मृत्यु के बाद (परमरण)

एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र कस्सपा, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?” 310

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’।” “

तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?”

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ ।” [223]

“तो फिर, मित्र, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते?”

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते हैं।'"

"तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद

न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं?" "हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।'"

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह क्यों नहीं कहा है?"

"क्योंकि यह लाभहीन है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है।"

"और फिर, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने क्या कहा है?"

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: ‘यह दुख है,’ ‘यह दुख का कारण है,’ ‘यह दुख का निवारण है,’ और ‘यह दुख निवारण का मार्ग है।’” “

और हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा क्यों कहा है?”

“क्योंकि हे मित्र, यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे वैराग्य, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण प्राप्त होता है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा है।”

---

156. सच्चे धम्म का प्रतिरूप (सद्धम्मप्पतिरूपक संस्कृत: सत्-धर्मप्य-अतिरूप)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, इसका क्या कारण है कि पहले प्रशिक्षण के नियम कम थे और अधिक भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते थे, जबकि अब प्रशिक्षण के नियम अधिक हैं और कम भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते हैं?" 311
“यही बात है, कस्सपा। जब प्राणी पतित हो रहे होते हैं और सच्चा धम्म (मार्ग, नियम) लुप्त हो रहा होता है, तब प्रशिक्षण नियम तो अधिक होते हैं, लेकिन अंतिम ज्ञान में स्थापित भिक्षुओं की संख्या कम होती है। कस्सपा, सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए। परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। 312

“जैसे, कस्सपा, सोना तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में नकली सोना उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब नकली सोना उत्पन्न हो जाता है, तब सच्चा सोना लुप्त हो जाता है, वैसे ही सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है।”

"हे कस्सपा, सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), या वायु तत्व (धातु) नहीं है। यहाँ उत्पन्न होने वाले मूर्ख लोग ही सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण हैं।

सच्चा धम्म एक जहाज के डूबने की तरह अचानक लुप्त नहीं हो जाता। 313 हे कस्सपा, पाँच हानिकारक बातें हैं 314 जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे संघ (भाईचारे) के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धाहीन भाव से निवास करते हैं। 315 हे कस्सपा, ये पाँच हानिकारक बातें हैं जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

“हे कस्सपा, पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे संघ के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं। हे कस्सपा, ये पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं।”

अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासाम्यत्त संस्कृत: लाभ-सत्कार-साम्यत्त) {साम्यत्त-17}
(i) पहला उप-अध्याय (डरावना)
157. भयानक (दारुना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। 316 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

158. हुक (बालिसा)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। मान लीजिए एक मछुआरा गहरे तालाब में चारा लगा हुआ कांटा डालता है, और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। मछुआरे का कांटा निगलने के कारण उस मछली पर विपत्ति और विपत्ति आएगी, और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

'मछुआरा,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान का नाम है। 'चारा लगा हुआ कांटा': यह लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे चारा लगा हुआ कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है, जिस पर विपत्ति और विपत्ति आई है, और दुष्ट उसके साथ जो चाहे कर सकता है।" हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा अत्यंत घृणित, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

---

159. कछुआ (कुम्मा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक समय की बात है, एक झील में कछुओं का एक बड़ा परिवार लंबे समय से रहता था। 317 तब एक कछुए ने दूसरे से कहा: 'प्रिय कछुए, फलाँ-फलाँ क्षेत्र में मत जाना।' लेकिन वह कछुआ उस क्षेत्र में चला गया, और एक शिकारी ने उसे रस्सी वाले भाले से मारा। 318 तब वह कछुआ पहले वाले के पास पहुँचा। जब पहले कछुए ने उसे दूर से आते देखा, तो उसने उससे कहा: 'प्रिय कछुए, मुझे आशा है कि तुम उस क्षेत्र में नहीं गए।' - 'मैं उस क्षेत्र में गया था, प्रिय।' - 'मुझे आशा है कि तुम्हें चोट नहीं लगी होगी, प्रिय।' - 'मुझे चोट नहीं लगी है; लेकिन यह रस्सी लगातार मेरे पीछे-पीछे चल रही है।' - 'हे प्यारे कछुए, सचमुच तुम पर चोट लगी है, सचमुच तुम पर चोट लगी है! तुम्हारे पिता और दादा को भी इसी तरह की रस्सी के कारण विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ा था। अब जाओ, हे प्यारे कछुए, तुम अब हमारे बीच नहीं हो।'

"'शिकारी,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान (मारा) का नाम है। 'रस्सी वाला भाला': यह लाभ, सम्मान और प्रशंसा का नाम है। 'रस्सी': यह आनंद और कामवासना (राग) का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे रस्सी वाले भाले से घायल भिक्षु कहा जाता है, 319 जो विपत्ति और विपत्ति का शिकार हुआ है, और दुष्ट उसके साथ जैसा चाहे कर सकता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक हैं.... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, फ़ायदा, इज़्ज़त और तारीफ़ बहुत बुरे हैं..(जैसा कि 157 में है).. मान लीजिए एक लंबे बालों वाली बकरी झाड़ियों के बीच में चली जाए। वह इधर-उधर फंस जाएगी, इधर-उधर पकड़ी जाएगी, इधर-उधर बंधी जाएगी, और इधर-उधर उसे मुसीबत और मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। इसी तरह, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु (भिक्षु) जिसका मन फ़ायदे, इज़्ज़त और तारीफ़ से भरा हुआ है, वह सुबह कपड़े पहनता है और कटोरा और चोगा लेकर भीख मांगने के लिए किसी गाँव या शहर में जाता है। वह इधर-उधर पकड़ा जाता है, इधर-उधर पकड़ा जाता है, इधर-उधर बंधी जाती है, और इधर-उधर उसे मुसीबत और मुसीबत का सामना करना पड़ता है। भिक्षुओं, फ़ायदा, इज़्ज़त और तारीफ़ बहुत बुरे हैं.... इसी तरह तुम्हें खुद को ट्रेन करना चाहिए।"

---

161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक भृंग है, जो गोबर खाता है, गोबर से भरा हुआ है, और उसके सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है। इस कारण वह अन्य भृंगों को तुच्छ समझेगी, यह सोचकर: 'मैं गोबर खाने वाली हूं, गोबर से भरी हुई हूं, और मेरे सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है।' इसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या कस्बे में जाता है। वहाँ वह जितना चाहे उतना भोजन करता है, उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है, और उसका भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में होता है। जब वह मठ लौटता है, तो वह भिक्षुओं के एक समूह के सामने अभिमान करता है: 'मैंने जितना चाहा उतना भोजन किया है, मुझे कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया गया है, और मेरा भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में है। मैं वह हूँ जो वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता हूँ, परन्तु इन अन्य भिक्षुओं का पुण्य

और प्रभाव कम है, और वे वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं करते।' अत: लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के लालच में डूबे रहने के कारण, वह अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं का तिरस्कार करता है। इससे इस मूर्ख व्यक्ति को लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक चीजें हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

162. वज्र (असानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, वज्र किसे गिरेगा? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 320

'वज्र' हे भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं.... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

163. विषैला बाण (दिद्धा)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, विष से सने बाण से किसे भेदना चाहिए? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 3 ? 1

"'बाण,' भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

164. सियार (सिंगला)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्या आपने रात ढलते समय किसी बूढ़े सियार के रोने की आवाज़ सुनी?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"

वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। 322 वह चाहे गुफा में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, वह चाहे खाली कुटिया में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

165. आंधी (वेरम्भा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, आकाश में आंधी के रूप में तेज हवाएं चल रही हैं। 323 यदि कोई पक्षी वहां जाता है, तो आंधी उसे इधर-उधर फेंकती है, और जैसे ही वह आंधी से इधर-उधर फेंका जाता है, उसके पैर एक तरफ, पंख दूसरी तरफ, सिर एक तरफ और शरीर एक तरफ हो जाता है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहां एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और आसक्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित किए बिना, अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित होकर भिक्षा मांगने के लिए किसी गांव या शहर में प्रवेश करता है। वह वहां कम वस्त्रों में सजी महिलाओं को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। कुछ अपना किसी को उसका वस्त्र, किसी को उसका कुंड, किसी को उसका आसन, और किसी को उसकी सुई-पेटी, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी आंधी में उड़ जाता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। भिक्षुओं, मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान के वश में है और शरीर के टूटने से ग्रस्त है, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मानहीनता से ग्रस्त है और दुख की अवस्था में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका

मन मान और मानहीनता दोनों से ग्रस्त है और शरीर के टूटने से, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"चाहे उसे सम्मान से नवाजा जाए; अपमानित किया जाए, या दोनों ही दिए जाएं,
उसकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था अविचलित रहती है; क्योंकि वह असीम अवस्था में निवास करता है। 324

जब वह दृढ़ता से ध्यान करता है; सूक्ष्म दृष्टि वाला अंतर्दृष्टि-द्रष्टा (विपस्सकम),
आसक्ति के नाश में आनंदित होता है; उसे वास्तव में श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।" 325

(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
167. स्वर्ण कटोरा (सुवन्नापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के कटोरे में पिसी हुई चांदी के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के चूर्ण से भरे चांदी के कटोरे के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

169 (10) Suvannanikkha, Etc.
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: यह पूजनीय व्यक्ति एक सुवन्ननिक्ख के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... सौ सुवन्ननिक्खों के लिए भी नहीं... एक सिंगिनीक्ख के लिए भी नहीं... सौ सिंगिनीक्खों के लिए भी नहीं 326... सोने से भरी पृथ्वी के लिए भी नहीं... किसी भी भौतिक पुरस्कार के लिए भी नहीं... अपने जीवन के लिए भी नहीं... इस देश की सबसे सुंदर कन्या के लिए भी नहीं। 327 फिर भी कुछ समय बाद मैं उसे देखता हूँ, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त होकर जानबूझकर झूठ बोल रहा है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)
170. एक महिला (मातुगामा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही एकांत में स्त्री मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

171. सबसे सुंदर लड़की (कल्याणी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही देश की सबसे सुंदर कन्या, जब कोई उसके साथ एकांत में हो, तो मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकस संस्कृत: एक-पुत्र)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपने प्रियतम पुत्र से उचित विनती करते हुए, उससे इस प्रकार विनती कर सकती है: 'प्रिय, तुम्हें चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक के समान बनना चाहिए' क्योंकि यही मेरे गृहस्थ पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक। 328 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरे भिक्षु पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना। 'प्रिय, जब तक तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तक तुम्हें लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त न हो!'

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु (साधु) को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा हो, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... इसलिए आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

173. इकलौती पुत्री (एकधितु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपनी इकलौती प्रिय पुत्री से उचित विनती करते हुए इस प्रकार कह सकती है: 'प्रिय, तुम्हें गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी गृहस्थ महिला शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया। 329 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें भिक्षुणियों खेमा और उप्पलावन्ना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी भिक्षुणियों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् खेमा और उप्पलावन्ना। 'प्रिय, जब तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तुम लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त कर सकती हो और " तुम पर प्रशंसा न आए!"

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षुणी को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंची है, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद्), खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते: 330 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो सांसारिक सुख, खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करो और लीन रहो।

175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो उत्पत्ति और अपतटीयता, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के मामले में बचाव को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)।

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा, इसके उद्गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)। 331

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

177. चमड़ी (चावी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए सीधे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

178. रस्सी (राज्जू)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं। हड्डी को चीरकर वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बलवान व्यक्ति किसी के पैर को घोड़े के बालों की तनी हुई रस्सी से लपेटकर कसकर खींचे। यह पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ जाएगी। हड्डी को चीरकर वह मज्जा तक पहुँच जाएगी। उसी प्रकार, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा बाहरी त्वचा को चीरते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 177 में है)। वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

179. The Bhikkhu (Sans. Bhikshu, Monk)
श्रावस्ती पर्व पर भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा तो उस अर्हंत भिक्षु के लिए भी बाधा हैं, जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा,
"हे पूज्यवर, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा उस भिक्षु के लिए भी बाधा क्यों हैं जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं?"

हे आनंद, मैं यह नहीं कहता कि लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन की अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में बाधा हैं। बल्कि मैं यह कहता हूँ कि वे इस जीवन में उन सुखद निवासों की प्राप्ति में बाधा हैं जो सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। 332 हे आनंद, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक, इतने कड़वे, इतने नीच और बंधन से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, हे आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
180. विच्छेद (भिंडी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था, इसलिए उसने संघ में फूट डाल दी। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

181. लाभकारी (कुसल) जड़ (कुसलमूल)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और ग्रस्त हो गया था कि उसकी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) जड़ कट गई...(जैसा कि 157 में है)।" 333

---

182. लाभकारी (कुशल) प्रकृति (कुशलधम्म)

(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) स्वभाव कट गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

183. उज्ज्वल प्रकृति (शुक्कधम्म संस्कृत: शुक्र-धर्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का उज्ज्वल स्वभाव नष्ट हो गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

184. उसके जाने के कुछ ही समय बाद (अचिरापक्कन्त)
एक बार, देवदत्त के जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ, देवदत्त के संदर्भ में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 334

"भिक्षुओं, देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे केले का वृक्ष, बांस या सरकंडा अपने ही पतन और विनाश के लिए फल देता है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे खच्चर अपने ही पतन और विनाश के लिए गर्भवती होती है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे केले, बांस और नरकट का फल ही विनाश लाता है;
जैसे खच्चर का भ्रूण नष्ट हो जाता है; वैसे ही सम्मान दुष्ट का नाश कर देता है।"

---

185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचरथसत)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास करते समय, राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा करने जा रहे थे, और उनके लिए पांच सौ बर्तनों में भोजन का प्रसाद भेजा गया था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, देवदत्त की उन्नति, मान-सम्मान और प्रशंसा से ईर्ष्या मत करो। जब तक राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा और पांच सौ घड़ों में भोजन का अर्पण होता रहेगा, तब तक देवदत्त को लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी।

जैसे जंगली कुत्ते की नाक पर पित्त छिड़कने से वह और भी जंगली हो जाता है, 335 वैसे ही, भिक्षुओं, जब तक राजकुमार अजातसत्तु देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा... देवदत्त को लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

186. माता सूत्र (मातु सं. मातृ)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपनी माता के खातिर भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' 336 फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और अभिमानी था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक हैं; इतने कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा को अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

187. पिता सूत्र, इत्यादि (पितु इत्यादि)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है, जिसके मन को मैंने अपने मन से ग्रहण किया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपने पिता के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... अपने पिता के लिए भी नहीं... अपने भाई के लिए भी नहीं... अपनी बहन के लिए भी नहीं... अपने बेटे के लिए भी नहीं... अपनी बेटी के लिए भी नहीं... अपनी पत्नी के लिए भी नहीं।' 336 कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था और वह

जानबूझकर झूठ बोल रहा था। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक, कितनी कड़वी, कितनी नीच और बंधन से मुक्ति पाने में कितनी बाधक हैं! इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 7: राहुल (राहुलसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-18}
(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 337

“पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।”

“राहुल, आपके विचार से आँख क्या है या क्षणिक?” - “क्षणिक, पूज्यवर।” - “क्षणिक क्या है, दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान... नाक... जीभ... शरीर... मन स्थायी हैं या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर है, वह दुखदायी है या सुखदायी?" - "दुखदायी, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"यह देखकर, हे राहुल, ज्ञानी शिष्य को आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। 338 जब वह मुक्त हो जाता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

189. रूप आदि (रूप)
... "राहुल, आपके विचार से रूप... (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) स्थायी हैं या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूपों (जैसा कि 188 में है) के प्रति... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

190. चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)
... "राहुल, आपके विचार से नेत्र-चेतना (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानवान शिष्य को नेत्र-चेतना के प्रति घृणा (निब्बिदा) और मन-चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

191. संपर्क (संपहसा संस्कृत स्पर्श)
... "राहुल, तुम्हारा क्या विचार है? नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) ... कान संपर्क ... नाक संपर्क ... जीभ संपर्क ... शरीर संपर्क ... मन संपर्क स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) और मन संपर्क के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

192. संवेदना (वेदना) (वेदना)

... "हे राहुल, आपका क्या विचार है? क्या नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) ... कान संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... नाक संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... जीभ संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... शरीर संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... "हे

राहुल, इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) और मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

193. बोध (संज्ञा)
... "राहुल, आपका क्या विचार है कि रूपों की अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों की अनुभूति (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
... "राहुला, आपके विचार से रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता के प्रति घृणा का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

195. लालसा (तन्हा संस. तृष्णा)
... "राहुल, आपके विचार से, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा, स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

196. तत्व (धातु)
... "राहुल, आपके विचार से पृथ्वी तत्व (धातु) (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना तत्व (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" 339 - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को पृथ्वी तत्व के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव होता है ... (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व के प्रति घृणा ... ऊष्मा तत्व के प्रति घृणा ... वायु तत्व के प्रति घृणा ... आकाश तत्व के प्रति घृणा ... चेतना तत्व के प्रति घृणा। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है ... वह समझता है:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

197. समुच्चय (खंड संस्कृत)
... "राहुल, आपके विचार से रूप (जैसा कि 188 में है) ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूप (जैसा कि 188 में है) के प्रति घृणा (निबिद्धा) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था (स्वयं) के लिए और कुछ नहीं है'।"

(ii) The Second Subchapter (Dutiyavaggo)
198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
(यह सूत्र 188 से सभी मामलों में समान है, सिवाय इसके कि इस सूत्र में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा मांगे।)

---

199. रूप आदि
(ये नौ सूत्र 189-197 के समान ही हैं, सिवाय इसके कि इन सूत्रों में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा माँगे।)

---

200. अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुशय सं. अनुशय)
सावत्थी में। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?" 340

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' 341

"किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"जब व्यक्ति ध्यान में (पासतो) इस प्रकार जानता और देखता है, राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।" [253]

---

201. अपगत से छुटकारा
सावत्थी में, पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?" 342

"हे राहुल, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।

(इसी प्रकार) "किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार की अनुभूति ... किसी भी प्रकार का संस्कार ... किसी भी प्रकार की चेतना , चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।"

इस प्रकार, राहुल, जब कोई व्यक्ति ध्यान में रहकर जानता और देखता है (पासातो), तब चेतना के साथ इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

अध्याय 8. लक्खना से संबंधित प्रवचन (लक्खनासाम्युत्त) {साम्युत्त-19}
(i) पहला उप-अध्याय (पथमवग्गो संस. प्रथम-वर्ग)
202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे। 343 फिर, सुबह, पूज्य महामोग्गलाना ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर पूज्य लक्खना के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र लक्खना, हम राजगृह में भिक्षा मांगने चलें।"

"ठीक है, मित्र," पूज्य लक्खना ने उत्तर दिया। फिर, जब वे गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो पूज्य महामोग्गलाना ने एक स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। 344 पूज्य लक्खना ने उनसे कहा: "मित्र मोग्गलाना, आपने किस कारण से मुस्कुराहट दिखाई?"

"यह प्रश्न पूछने का समय नहीं है, मित्र लक्खना। यह प्रश्न मुझसे तब पूछना जब हम भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में हों।
"

फिर, जब पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके लौटे, तो वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य लक्खना ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा: "यहाँ, जब पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक विशेष स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। मित्र मोग्गलाना, आपने ऐसा क्यों मुस्कुराया?"

"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक कंकाल को हवा में उड़ते हुए देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उसकी पसलियों पर चोंच मार रहे थे, उसे घायल कर रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। 345 तब मेरे मन में यह विचार आया: 'यह सचमुच अद्भुत है! यह सचमुच आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'" 346

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करके निवास करते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस प्राणी को देखा था, लेकिन मैंने उसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं उसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें हानि और पीड़ा होती।" बहुत समय से।

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में पशु कसाई हुआ करता था। उस कर्म के फलस्वरूप, वह कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगता रहा, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रहा है।" 347

(इस उप-अध्याय के शेष सूत्र पहले उप-अध्याय के समान ही हैं। पाली पाठ की तरह, इसलिए अनुवाद में यहाँ केवल वही वाक्यांश दिए गए हैं जो भिन्न हैं।)

---

203. मांस का टुकड़ा (पेसी, पेशी नहीं)
... "यहाँ, मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने हवा में मांस का एक टुकड़ा हिलता हुआ देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था।"...(जैसा कि 202 में है)

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में एक पशु कसाई था...(जैसा कि 202 में है)..." 348

---

204. मांस का पिंड (पिंडा)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने मांस का एक टुकड़ा देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक मुर्गी काटने वाला था...."

---

205. घावों वाला आदमी (निच्छवी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को घावों के साथ देखा...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक भेड़ कसाई था...."

---

206. तलवार जैसे बाल (असिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तलवारों के बाल हवा में लहरा रहे थे। वे तलवारें लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक सुअर काटने वाला था...."

---

207. भाले के बाल (सत्ती)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर भाले जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे भाले लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रहे थे और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हिरण का शिकारी था...."

---

208. तीर के बाल (उसुलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तीरों के बाल हवा में उड़ रहे थे। वे तीर लगातार ऊपर उठते और उसके शरीर पर लगते रहे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में यातना देने वाला था...." 349

---

209. सुईनुमा बाल (l) 350 (सुसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर लग रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में घोड़ों का प्रशिक्षक था...."

---

210. Needle Hairs (2) (Suciloma2)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ उसके सिर में घुसकर उसके मुँह से बाहर निकलीं; वे उसके मुँह में घुसकर उसकी छाती से बाहर निकलीं; वे उसकी छाती में घुसकर उसके पेट से बाहर निकलीं; वे उसके पेट में घुसकर उसकी जांघों से बाहर निकलीं; वे उसकी जांघों में घुसकर उसकी पिंडलियों से बाहर निकलीं; वे उसकी पिंडलियों में घुसकर उसके पैरों से बाहर निकलीं, और वह दर्द से चीख रहा था। ...

"वह प्राणी इसी राजगृह में निंदा करने वाला था...." 351

---

211 कुम्हार वृषण (कुंभंडा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके अंडकोष हवा में तैरते हुए घड़ों की तरह थे। जब वह चलता था, तो उसे अपने अंडकोष कंधों पर उठाने पड़ते थे, और जब वह बैठता था तो अपने अंडकोषों के ऊपर बैठता था। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह का एक भ्रष्ट मजिस्ट्रेट था...." 352

(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को देखा जिसका सिर गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में व्यभिचारी था...." 353

---

213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ, दोनों हाथों से गोबर खाते हुए देखा..."

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह का एक शत्रु ब्राह्मण था। बुद्ध कश्यप के समय में, उसने भिक्षु संघ को भोजन के लिए आमंत्रित किया। चावल के बर्तनों में गोबर भरकर, उसने भिक्षुओं से कहा: 'महोदय, इसमें से जितना चाहो उतना खाओ और बाकी अपने साथ ले जाओ।'..." 354

---

214. घावों वाली महिला (निच्छवित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक छिल चुकी स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में व्यभिचारिणी थी...." 355

---

215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक दुर्गंधयुक्त और बदसूरत स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में एक ज्योतिषी थी...."

---

216. उमस भरी औरत (ओकिलिनी, अकुलिनी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक स्त्री को देखा, जिसका शरीर झुलस रहा था, झुलस रहा था, कालिख से सना हुआ था, हवा में हिल रहा था, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...." 357

"वह स्त्री कलिहगा के राजा की मुख्य रानी थी, ईर्ष्यालु स्वभाव की, उसने राजा की एक पत्नी पर अंगीठी में भरे कोयले उड़ेल दिए...."

---

217. सिरविहीन सूंड (आसिसाका संस. आशीसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक बिना सिर का धड़ हवा में उड़ता हुआ देखा; उसकी आँखें और मुँह उसकी छाती पर थे। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर उसे नोंच रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हरिका नाम का एक जल्लाद था..."

---

218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह भिक्षु बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षु था...." 358

---

219. दुष्ट भिक्षुणी (पापभिक्खुनी, पापभिक्षुनी का संक्षिप्त रूप)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षुणी को हवा में विचरण करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह सुलग रहा था, जबकि वह पीड़ा से चीख रही थी। ..."

"वह भिक्षुणी बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षुणी थी...."

---

220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक प्रशिक्षु भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। ..."

"वह प्रशिक्षु भिक्षु [पिछले जन्म में] एक दुष्ट प्रशिक्षु भिक्षु था...."

---

221. दुष्ट नौसिखिया भिक्षु (पापसमनेरा, संस्कृत: पाप-श्रमनेरा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक नवोदित भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कुंड, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह नवोदित भिक्षु एक दुष्ट नवोदित भिक्षु था..."

---

222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक ननद को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह भड़क रहा था, और वह पीड़ा से चीख रही थी। मुझे यह विचार आया: 'यह वास्तव में अद्‌भुत है! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो दृष्टि और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस ननद को देखा था, लेकिन मैंने इसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं इसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और पीड़ा उठानी पड़ती।

वह ननद बुद्ध के समय में एक दुष्ट ननद थी।" कश्यप का उपदेश: उस कर्म के फलस्वरूप कई वर्षों, सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगने के कारण, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रही है।

अध्याय 9: उपमाओं सहित संबंधित प्रवचन (उपम-सम्युत्त संस्कृत उपम-सम्युत्त) {सम्युत्त-20}
223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जैसे किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियां छत की चोटी तक जाती हैं और जड़ पर आकर मिलती हैं, और छत के हट जाने पर सभी हट जाती हैं, उसी प्रकार सभी हानिकारक अवस्थाएं अज्ञान में निहित होती हैं और अज्ञान पर आकर मिलती हैं, और अज्ञान के उखड़ जाने पर सभी उखड़ जाती हैं। 359 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सचेत रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

224. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी लेकर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन बड़ा है: मेरे नाखून में ली गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?" "

आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी ली है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, यह नगण्य है, इसकी तुलना नहीं की जा सकती, यह अंश के बराबर भी नहीं है।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो प्राणी मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, वे अल्प हैं। परन्तु जो प्राणी मनुष्यों के बीच जन्म नहीं लेते, वे अधिक संख्या में हैं। 360 अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

225. परिवार (कुल)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना आसान होता है जिनमें स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना आसान होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) का विकास और अभ्यास नहीं किया है। 36 !

"जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना कठिन होता है जिनमें स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना कठिन होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है।

इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
सावत्थी में

[बुद्धः] "भिक्षुओं, यदि कोई सुबह सौ बर्तन भोजन दान करे, दोपहर में सौ बर्तन भोजन दान करे और शाम को सौ बर्तन भोजन दान करे, और यदि कोई दूसरा व्यक्ति गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के बराबर भी प्रेम और करुणा का भाव विकसित करे, चाहे सुबह हो, दोपहर हो या शाम, तो यह पहले वाले से अधिक फलदायी होगा।

" "इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और संवर्धन करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

227. भाला (सत्ती)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक नुकीला भाला है, और एक आदमी यह सोचकर आता है: 'मैं इस नुकीले भाले को अपने हाथ या मुट्ठी से मोड़कर, इसका आकार बिगाड़कर, इसे घुमाऊंगा।' 364 भिक्षुओं, क्या आपके विचार से उस आदमी के लिए ऐसा करना संभव होगा?"

नहीं, पूज्यवर। इसका क्या कारण है? क्योंकि उस नुकीले भाले को हाथ या मुट्ठी से मोड़ना, उसका आकार बिगाड़ना या उसे घुमाना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और कष्ट ही होगा।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और अभ्यास करता है, उसे अपना वाहन बनाता है, उसे अपना आधार बनाता है, उसे स्थिर करता है, उसमें अभ्यास करता है और उसे पूर्णतः सिद्ध करता है, तो यदि कोई अमानव यह सोचता है कि वह उसके मन को पराजित कर सकता है, तो उसे केवल थकान और कष्ट ही होगा।

अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, उसे अपना वाहन बनाएंगे, उसे अपना आधार बनाएंगे, उसे स्थिर करेंगे, उसमें अभ्यास करेंगे और उसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
श्रावस्ती में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चारों दिशाओं में चार दृढ़ धनुषधारी, प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धारी खड़े हैं। 365 फिर एक व्यक्ति यह सोचते हुए आता है: 'मैं इन चारों दिशाओं में इन चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों को जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लूंगा और फिर उन्हें वापस ले आऊंगा।' भिक्षुओं, क्या यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है'?"

"आदरणीय महोदय, यदि वह एक धनुर्धारी द्वारा चलाए गए बाण को भी जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ ले और उसे वापस ले आए, तो यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है।' चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों के बारे में तो बात करने की आवश्यकता ही नहीं है!"

भिक्षुओं, वह मनुष्य जिस गति से चलता है, उससे भी अधिक तीव्र सूर्य और चंद्रमा हैं। वह मनुष्य जिस गति से चलता है, सूर्य और चंद्रमा जिस गति से चलते हैं, और सूर्य और चंद्रमा के आगे दौड़ने वाले देवता जिस गति से चलते हैं, जीवन उससे भी अधिक तीव्र गति से नष्ट हो जाता है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

---

229. ढोल की खूंटी (अनी)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, एक समय पहले दशरहों के पास एक ढोल था जिसे सम्मनर कहते थे। 367 जब सम्मनर में दरार आ गई, तो दशरहों ने उसमें एक और कील ठोक दी। अंततः वह समय आया जब सम्मनर का मूल ढोल गायब हो गया और केवल कुछ कीलें ही बची रहीं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, भविष्य में भिक्षुओं के साथ भी यही होगा। जब तथागत द्वारा दिए गए वे प्रवचन, जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित हैं, पढ़े जा रहे होंगे, 368 तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक नहीं होंगे, न ही उन पर ध्यान देंगे, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे यह नहीं सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल की जानी चाहिए।" लेकिन जब वे प्रवचन, जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा निर्मित हैं, उनके शिष्यों द्वारा बोले जाते हैं, 369 का पाठ किया जाता है, तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें

महारत हासिल करनी चाहिए। इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, लुप्त हो जाएंगे।

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'जब तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, का पाठ किया जाता है, तो हम उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और हम सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अब लिच्छवी लकड़ी के गट्ठों को तकिये बनाकर रहते हैं; वे सचेत (अपमादा) और लगन से साधना करते हैं। मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह के पुत्र हैं, उन तक नहीं पहुँच पाते; वे उन पर अधिकार नहीं कर पाते। परन्तु भविष्य में लिच्छवी कोमल और कोमल हाथों-पैरों वाले हो जाएँगे; वे रुई के तकियों वाले नरम पलंगों पर सूर्योदय तक सोएँगे। तब मगध के राजा

अजातसत्तु उन तक पहुँच पाएंगे; तब वे उन पर अधिकार कर लेंगे।" तब दुष्ट मारा उन तक पहुँच प्राप्त कर लेगा; वह उन पर अधिकार कर लेगा।

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'लकड़ी के गट्ठों को तकिये के रूप में उपयोग करके, हम सचेत और लगन से साधना में लगे रहेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।" 370

---

231. नर हाथी (नाग)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक नवदीक्षित भिक्षु परिवारों से अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों से अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन जब उन्हें फटकारा गया, तो उसने कहा, "ये वरिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि वे परिवारों से मेलजोल कर सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं कर सकता?"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक जंगल में एक बड़ी झील थी, जिसके आसपास बड़े-बड़े हाथी रहते थे। 371 वे हाथी झील में डुबकी लगाते, अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, उन्हें अच्छी तरह धोकर मिट्टी समेत चबाते और निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

उनके बच्चे भी उन बड़े-बड़े हाथियों की तरह झील में डुबकी लगाते और अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, लेकिन उन्हें अच्छी तरह धोए बिना, चबाए बिना, मिट्टी समेत निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति नहीं बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ वरिष्ठ भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। 372 वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि होती है, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।

नवदीक्षित भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुकरण करते हुए, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे हुए, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखे बिना और उससे बचने का मार्ग समझे बिना करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि नहीं होती, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।" 373

"अतः, भिक्षुओं, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनसे आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करेंगे, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

232. बिल्ली (बिलारा)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक भिक्षु परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन चेतावनी मिलने के बावजूद उसने ऐसा करना नहीं छोड़ा।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक बार एक बिल्ली किसी गली, नाले या कूड़ेदान के पास खड़ी होकर एक छोटे चूहे की प्रतीक्षा कर रही थी, और सोच रही थी: 'जब यह छोटा चूहा भोजन के लिए बाहर आएगा, तो मैं उसे वहीं पकड़कर खा जाऊंगी।'" फिर वह चूहा भोजन की तलाश में निकला, और बिल्ली ने उसे पकड़ लिया और बिना चबाए जल्दी से निगल लिया। फिर उस छोटे चूहे ने बिल्ली की आंतें और पित्ताशय खा लिए, और इसी कारण बिल्ली की मृत्यु हो गई और उसे भीषण पीड़ा सहनी पड़ी।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान लगाए बिना, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे बिना, भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करता है। वह वहाँ कम वस्त्रों में सजी स्त्रियों को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह मृत्यु या भीषण पीड़ा को प्राप्त होता है। हे भिक्षुओं, यही श्रेष्ठ साधना में मृत्यु है: कि व्यक्ति साधना त्याग कर निम्न लोक में लौट जाता है। यही भीषण पीड़ा है: कि व्यक्ति एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है जिसका पुनर्वास संभव है।" 375

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'हम शरीर, वाणी और मन को संजोकर, सती ध्यान लगाकर और अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हुए भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।"

---

233. सियार (1) (सिंगाला1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही एक बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। फिर भी वह जहाँ चाहे जाता है, जहाँ चाहे खड़ा होता है, जहाँ चाहे बैठता है, जहाँ चाहे लेटता है, और उस पर ठंडी हवा भी चलती है। यहाँ शाक्य पुत्र के अनुयायी होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए भी यदि वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर सके तो यह अच्छा होगा। 376

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

234. सियार (2) (सिंगला2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही किसी बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"उस बूढ़े सियार में शायद कुछ कृतज्ञता और धन्यवाद हो, लेकिन यहाँ मौजूद उस व्यक्ति में कोई कृतज्ञता और धन्यवाद नहीं है जो शाक्य पुत्र का अनुयायी होने का दावा करता है। 377

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कृतज्ञ और आभारी रहेंगे, और हम पर किए गए छोटे से छोटे उपकार को भी नहीं भूलेंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्षुसाम्युत्त) {साम्युत्त-21}
235. कोलिता (महामोग्गलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "महान मौन, महान मौन।" तो महान मौन क्या है?'" 379

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होती है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होती है। इसे ही श्रेष्ठ मौन कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब विचार सहित चेतना (सन्ना संस्कृत संज्ञा) और मन ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, पवित्र मौन के प्रति आलसी (पमादा) न हो। पवित्र मौन में अपने मन को स्थिर करो, पवित्र मौन में अपने मन को एकाग्र करो, पवित्र मौन में अपने मन को समाधि बना लो।' फिर, मित्रों, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।" 380

---

236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
सावत्थी में, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है?' तब मुझे यह विचार आया:
'संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है।'

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, यदि स्वयं गुरु भी रूपांतरित हो जाएँ, तो क्या आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?"

"मित्र, 382 यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु मेरे मन में यह विचार अवश्य आऊँगा:
'परम प्रभावशाली, परम शक्तिशाली और महान गुरु का देहांत हो गया है। यदि भगवान (बुद्ध) दीर्घकाल तक जीवित रहते, तो वे समस्त जन के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए जीवित रहते।' "

यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) दीर्घकाल से पूर्णतः उखड़ी हुई है 383 कि यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी उनमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो।"

---

237. बैरल

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में वेलुवन (गिलहरी अभयारण्य), एक ही घर में रह रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को नमस्कार किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र मोग्गलाना, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या पूज्य महामोग्गलाना ने आज का दिन शांतिपूर्ण निवास में बिताया है?"

"मैंने पूरा दिन एक साधारण से घर में बिताया, मित्र, लेकिन मैंने कुछ धम्म (मार्ग, नियम) पर चर्चा की।" 384

"पूजनीय महामोग्गलाना ने किसके साथ धम्म पर चर्चा की?"

"मैंने भगवान (बुद्ध) के साथ धम्म पर चर्चा की, मित्र।"

"परन्तु भगवान (बुद्ध) बहुत दूर हैं, मित्र। वे अब सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं। क्या पूजनीय महामोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) से संपर्क किया, या क्या भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से पूज्य महामोग्गलाना से संपर्क किया?"

"हे मित्र, मैंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया, न ही भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से मेरे पास आए। बल्कि, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया, और मैंने भगवान (बुद्ध) से संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया।" 385

"आदरणीय महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) के साथ किस प्रकार की धम्म चर्चा की?"

"यहाँ, मित्र, मैंने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, ऐसा कहा जाता है, "जिसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो, उसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो।" आदरणीय महोदय, ऊर्जा (वीर्य) किस प्रकार जागृत होती है?' तब भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'देखो, मोग्गलाना, एक भिक्षु (भिक्षु) अपनी ऊर्जावान शक्ति को जागृत करके इस प्रकार निवास करता है: "इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रहें, और मेरे शरीर में मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जावान शक्ति को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, पुरुष ऊर्जावान शक्ति, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।" 386 मोग्गलाना, इसी प्रकार ऊर्जावान शक्ति जागृत होती है।' मित्र, यही वह धम्म प्रवचन है जो मैंने भगवान (बुद्ध) से किया था। "

मित्र, पूज्य महामोग्गलाना की तुलना में हम हिमालय, पर्वतों के राजा, की तुलना में कुछ कंकड़ के समान हैं।" पूज्य महामोग्गलाना की आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य इतनी अधिक है कि यदि वे चाहें तो एक युग (कल्प/कल्प) तक जीवित रह सकते हैं। 387

"मित्र, पूज्य सारिपुत्त की तुलना में हम नमक के एक बड़े बर्तन के सामने नमक के कुछ दानों के समान हैं। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा, स्तुति और गुणगान किया है:

'जैसे सारिपुत्त सर्वोच्च हैं; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न), सद्‌गुण (शील) और शांति में।
वैसे ही एक भिक्षु जो उनसे परे चला गया है; अधिक से अधिक केवल उनके समर्थ हो सकता है।'
इस प्रकार दोनों महान नागों ने एक-दूसरे के इस उत्तम कथन और अभिव्यक्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की। 388

---

238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक नवदीक्षित भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके अपने निवास में प्रवेश करता और विश्राम करते हुए मौन बैठा रहता। वह वस्त्र बनाते समय अन्य भिक्षुओं की सेवा नहीं करता था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, उस भिक्षु को मेरे नाम से कहो कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह उस भिक्षु के पास जाकर उससे कहा, "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र।"

"जी, मित्र," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।
तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे भिक्षु, क्या यह सच है कि भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके आप अपने निवास स्थान में प्रवेश करते हैं और विश्राम करते हुए मौन रहते हैं, और वस्त्र बनाते समय भिक्षुओं की सेवा नहीं करते?"

"हे पूज्यवर, मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, इस भिक्षु में दोष न निकालो। यह भिक्षु वह है जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, उन चार ध्यानों को प्राप्त करता है जो उच्चतर मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास प्रदान करते हैं। और वह वह है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा था। यह कहने के बाद, सौभाग्यशाली (सुगतो), शिक्षक (सत्ता) ने आगे यह कहा:

"आलस भरी कोशिश से नहीं; कमज़ोर कोशिश से नहीं,
यह निब्बान हासिल किया जा सकता है; सभी दुखों से मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष)।

"यह युवा भिक्षु (भिक्षु) [मेरे बगल में]; वास्तव में एक सर्वोच्च पुरुष है:
वह अपने अंतिम शरीर को लेकर घूमता है; उसने मार (शैतान) और उसके वाहन को जीत लिया है।"

---

239. सुजाता
सावत्थी में, पूज्य सुजाता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को यों कहा, "भिक्षुओं, यह कुलवासी दोनों दृष्टियों से सुंदर है। वह आकर्षक, सुंदर, मनमोहक और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया है और निवास किया है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... उन्होंने आगे कहा:

"यह भिक्षु परम सौंदर्य से परिपूर्ण है; उनका मन पूर्णतः एकाग्र है।
अनासक्ति से उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; वे विरक्त हैं, समस्त दुःखों से मुक्त हैं;

वे अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए हैं; उन्होंने मार (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त कर ली है।"

---

240. लकुंदक भद्दिया
सावत्थी में, पूज्य लकुंदक भद्दिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम उस भिक्षु को आते देख रहे हो, जो बदसूरत, कुरूप, विकृत और भिक्षुओं में तिरस्कृत है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... और आगे कहा:

"हंस, बगुले और मोर; हाथी और चित्तीदार हिरण;
ये सभी शेर से डरते हैं; चाहे उनका शरीर कितना भी बड़ा क्यों न हो।

इसी प्रकार मनुष्यों में; जो छोटा है और जिसे ज्ञान प्राप्त है (पन्ना),
वही वास्तव में महान है; न कि वह बचकाना (नासमझ) जिसका शरीर सुगठित है।"

---

241. विशाखा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त था। 391

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा कक्ष में पहुँचे। वे नियत आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कौन दे रहा है, उन्हें प्रेरित कर रहा है और प्रसन्न कर रहा है, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त है?"

"यह आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त थे, आदरणीय महोदय।"

तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा: "शाबाश, शाबाश, विशाखा! यह अच्छा है कि आप भिक्षुओं को इस प्रकार धम्म प्रवचन से उपदेश देते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"जब ज्ञानी व्यक्ति नासमझों के बीच होता है, तो
वे उसे नहीं पहचानते यदि वह बोलता नहीं, 392
परन्तु वे उसे तब पहचानते हैं जब वह बोलता है।

अमरता (निर्वाण) की ओर इशारा करते हुए,

उसे धम्म का प्रवचन और व्याख्या करनी चाहिए; उसे संतों का ध्वज ऊंचा उठाना चाहिए।
सुविचारित शब्द संतों का ध्वज हैं; क्योंकि धम्म संतों का ध्वज है।"

---

242. नंदा
सावत्थी में, तब पूज्य नंदा, जो भगवान (बुद्ध) के मामा के बेटे थे, ने अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहने, अपनी आँखों में काजल लगाया, एक चमकीला कटोरा लिया और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 393 भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"नंदा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, कि तुम अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहनो, अपनी आँखों में काजल लगाओ और एक चमकीला कटोरा धारण करो। हे नंदा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, यह उचित है कि तुम वनवासी बनो, भिक्षा ग्रहण करो, चिथड़े के वस्त्र पहनो और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहो।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... [उन्होंने] आगे यह भी कहा:

"मैं नंदा को वनवासी के रूप में कब देखूंगा; चिथड़ों से सिले हुए वस्त्र पहने हुए;
अजनबियों के जूठे टुकड़ों पर जीवन यापन करते हुए; इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन?"

फिर, कुछ समय बाद, पूज्य नंदा वनवासी बन गए, भिक्षाभोजन करने लगे, चिथड़ों के वस्त्र पहनने लगे और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहने लगे।

---

243. तिस्सा

सावत्थी में। तब पूज्य तिस्सा, जो भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई थे, 395 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए - दुखी, शोकाकुल, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"तिस्सा, तुम यहाँ दुखी, शोकाकुल, आँसू बहाते हुए क्यों बैठे हो?"

"क्योंकि, पूज्यवर, भिक्षुओं ने मुझे चारों ओर से तीखे शब्दों से घेर लिया है।" 396

"हे तिस्सा, ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम दूसरों को उपदेश देते हो, परन्तु स्वयं उपदेश सहन नहीं कर सकते। तिस्सा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार न करो। हे तिस्सा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जो विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, यह उचित है कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार करो।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"तुम क्रोधित क्यों हो? क्रोधित मत हो! हे तिस्सा, क्रोधहीनता तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। क्रोध, अहंकार और तिरस्कार को दूर करना ही ब्रह्मचर्य जीवन है, हे तिस्सा।"

---

244. एक भिक्षु जिसका नाम एल्डर (थेरानामाका) है
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय, 397वें वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास में रहते थे और एकांतवास की प्रशंसा करते थे। वे अकेले ही भिक्षा मांगने गाँव जाते, अकेले ही लौटते, अकेले ही एकांत में बैठते और अकेले ही ध्यान करते थे।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय, यहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु हैं जो एकांतवास में रहते हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा,
"आओ, भिक्षु वरिष्ठ को मेरी ओर से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

"जी, पूज्यवर," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्यवर के पास जाकर उनसे कहा: "गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र पूज्यवर।"

"जी, मित्र," पूज्यवरवर ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या यह सच है, पूज्यवरवर, कि आप एकांतवासी हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं?"

"जी, पूज्यवर।"

"परन्तु कैसे, पूज्यवरवरवर, आप एकांतवासी कैसे हैं और एकांतवास की प्रशंसा कैसे करते हैं?"

"जी, पूज्यवरवर, मैं भिक्षा मांगने के लिए अकेले ही गाँव जाता हूँ, अकेले ही लौटता हूँ, अकेले ही एकांत में बैठता हूँ और अकेले ही ध्यान करता हूँ। इसी प्रकार मैं एकांतवासी हूँ और एकांतवास की प्रशंसा करता हूँ।"

"यह एकांतवास का एक तरीका है। हे गुरुदेव, मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण आप ध्यानपूर्वक सुनिए और मनन कीजिए (मानसिकरो), मैं इस पर चर्चा करूँगा।"

"जी हे गुरुदेव।"

"और कैसे? हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण क्या है? यहाँ, हे गुरुदेव, अतीत का त्याग कर दिया गया है, भविष्य का त्याग कर दिया गया है, और वर्तमान स्वरूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को पूरी तरह से दूर कर दिया गया है। 398 इसी प्रकार, हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ज्ञानी, सर्वविजयी, सर्वज्ञ;
सभी धर्मों (मार्ग, विधि) में निष्कलंक, सभी भोगों से मुक्त,
तृष्णा के नाश (खयाल/क्षय) में मुक्त;
मैं उस व्यक्ति को 'एकाकी निवास करने वाला' कहता हूँ।" 399

---

245. महाकप्पिना
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 400 भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, क्या आप उस भिक्षु को आते हुए देख रहे हैं, जो गोरे रंग का, दुबला-पतला और उभरी हुई नाक वाला है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: " जिनका चिन्ह कुल है, उनमें क्षत्रिय

श्रेष्ठ है । परन्तु ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है। सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। क्षत्रिय कवचधारी होकर चमकता है, ध्यानमग्न ब्राह्मण चमकता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात, हर समय महिमा से प्रकाशित होते हैं।"

---

246. सहायक
सावत्थी में। फिर दो भिक्षु जो आदरणीय महाकप्पिन के शिष्य थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं से इस तरह कहा: "भिक्षुओं, क्या तुम उन दो भिक्षुओं को देख रहे हो जो साथी हैं, कप्पिन के शिष्य हैं?"

"हाँ, आदरणीय महोदय।"

"वे भिक्षु बहुत आध्यात्मिक-शक्ति (इद्धि\ऋद्धि) और ताकत वाले हैं। ऐसी कोई उपलब्धि पाना आसान नहीं है जो उन भिक्षुओं ने पहले ही हासिल न कर ली हो। और वे वे हैं जो, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद इसे महसूस करके, इसी जीवन में पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) के उस नायाब लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और रहते हैं जिसके लिए कुल के लोग सही मायने में गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में चले जाते हैं।"

यही भगवान (बुद्ध) ने कहा था। यह कहने के बाद, गुरु (सत्ता) ने आगे कहा:

"ये [दो] साथी भिक्षु; बहुत लंबे समय से एक हैं। 401
सच्चे धम्म (पथ, कानून) ने उन्हें एक किया है; बुद्ध द्वारा बताए गए धम्म में।

"उन्हें कप्पिन द्वारा अच्छी तरह से अनुशासित किया गया है; महान व्यक्ति द्वारा बताए गए धम्म में।
वे अपने अंतिम शरीर को लेकर चलते हैं; मार (शैतान) और उसके घोड़े को जीतकर।"

संयुत्त निकाय की कारणता की किताब (निदानवग्ग) पूरी हो गई है।

<<<< पिछला (SN1) अगला (SN3) >>>>

थेरागाथा

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा

अंतर्वस्तु

1थेरागाथा: वरिष्ठ भिक्षुओं के श्लोक (परिचय)
2थेरागाथा-विस्तृत: वरिष्ठ भिक्षुओं के विस्तृत जीवन और शिक्षाएँ
2.1अध्याय 1: एकल श्लोक 1-120
2.2अध्याय 2: दो श्लोक 121-169
2.3अध्याय 3: तीन श्लोक 170-185
2.4अध्याय 4: चार श्लोक 186-197
2.5अध्याय 5: पाँच श्लोक 198-209
2.6अध्याय 6: छह श्लोक 210-223
2.7अध्याय 7: सात श्लोक 224-228
2.8अध्याय 8: आठ श्लोक
2.9अध्याय 9: नौ श्लोक 232
2.10अध्याय 10: दस श्लोक 233-239
2.11अध्याय 11: ग्यारह श्लोक 240
2.12अध्याय 12 : बारह श्लोक 241-242
2.13अध्याय 13: तेरह श्लोक 243
2.14अध्याय 14 : चौदह श्लोक 244-245
2.15अध्याय 15 : सोलह श्लोक 246-247
2.16अध्याय 16 : बीस श्लोक 248-257
2.17अध्याय 17 : तीस श्लोक 258-260
2.18अध्याय 18: चालीस श्लोक 261
2.19अध्याय 19: पचास श्लोक 262
2.20अध्याय 20: साठ श्लोक 263
2.21अध्याय 21: इकहत्तर श्लोक 264
3थेरागाथा-कथन: केवल श्लोक (अपूर्ण पूर्व संस्करण)
4अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
5मूल पाली संस्करण
5.1पाली-अंग्रेज़ी संस्करण
5.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

थेरागाथा: वरिष्ठ भिक्षुओं के श्लोक (परिचय)

थेरागाथा (थेरा+गाथा) में 264 थेरों यानी वरिष्ठ भिक्षुओं (जिन्हें भिक्षु भी कहा जाता है) द्वारा रचित कविताएँ (गाथाएँ) शामिल हैं, जो बुद्ध के समय के सर्वोत्कृष्ट और पूर्णतः प्रबुद्ध (अरहत) थे। ये असीम रूप से आत्मप्रबुद्ध वरिष्ठ भिक्षु निर्वाण/निब्बान (दिव्य आयाम) के उस पार पहुँच चुके थे जहाँ शाश्वत आनंद और जीवन है। ये वृत्तांत उनके पदचिन्हों पर चलने की प्रेरणा देते हैं।

नोट: शिष्यों के बारे में अधिक जानकारी अपदाना में दी गई है , कुल 559 संख्याएँ।

थेरागाथा-विस्तृत : वरिष्ठ भिक्षुओं के विस्तृत जीवन और शिक्षाएँ

अध्याय 1: एकल श्लोक 1-120

थेरा 1.1: सुभूति (1)

थेरा 1.2: महान कोट्टिता (2)

थेरा 1.3: कंखा-रेवत (संदेही व्यक्ति)(3)

थेरा 1.4: पुन्ण (मन्तानियों का पुत्र)(4)
थेरा 1.5: डब्बा(5) (मल्लों का)(5)
थेरा 1.6: सीता-वानिया(6)
थेरा 1.7: भल्लिया(7)
थेरा 1.8: वीरा(8)
थेरा 1.9: पिलिंडा-वच्छा(9)
थेरा 1.10: पुन्नमसा(10)
थेरा 1.11: गवच्छा द यंगर(11)
थेरा 1.12: गवच्चा एल्डर(12)
थेरा 1.13: वनवच्छ(13)
थेरा 1.14: सिवाका (भिक्षु वनवाचा की सेवा में एक नौसिखिया)(14)
थेरा 1.15: कुंडा-धन(15)
थेरा 1.16: बेलात्थासिसा(16)
थेरा 1.17: दशाका(17)
थेरा 1.18: सिंगला-पितर(18)
थेरा 1.19: कुला(19)
थेरा 1.20: अजिता(20)
थेरा 1.21: निग्रोधा(21)
थेरा 1.22: चित्तक(22)
थेरा 1.23: गोसाला(23)
थेरा 1.24: सुगंधा(24)
थेरा 1.25: नंदिया(25)
थेरा 1.26: अभया(26)
थेरा 1.27: लोमासकंगिया(27)
थेरा 1.28: जंबुगामिका का पुत्र(28)
थेरा 1.29: हरिता(29)
थेरा 1.30: उत्तिया(30)
थेरा 1.31: गह्वरातिरिया(31)
थेरा 1.32: सुप्पिया(32)
थेरा 1.33: सोपाका (एक बालक-भिक्षु)(33)
थेरा 1.34: पोसिया(34)
थेरा 1.35: समन्नाकानी(35)
थेरा 1.36: कुमा का पुत्र(36)
थेरा 1.37: कुमा के पुत्र का मित्र(37)
थेरा 1.38: गवमपति(38)
थेरा 1.39: तिस्सा(39)
थेरा 1.40: वद्धमान(40)
थेरा 1.41: सिरिवद्धा(41)
थेरा 1.42: खदिरा-वनिया (रेवता)(42)
थेरा 1.43: सुमंगला(43)
थेरा 1.44: सानु(44)
थेरा 1.45: रमणियाविहारिन(45)
थेरा 1.46: समिद्धि(46)
थेरा 1.47: उज्जया(47)
थेरा 1.48: संजय(48)
थेरा 1.49: रामनेय्यक(49)
थेरा 1.50: विमला(50)
थेरा 1.51: गोधिका, सुबाहु, वल्लिया, उत्तिया(51)

थेरा 1.55: अंजना-वानिया(55)
थेरा 1.56: कुतिविहारिन(56)
थेरा 1.57: कुतिविहारिन2(57)
थेरा 1.58: रमणीयकुटिका(58)
थेरा 1.59: कोसलाविहारिन(59)
थेरा 1.60: सिवली(60)
थेरा 1.61: वप्पा(61)
थेरा 1.62: वज्जी-पुत्त(62)
थेरा 1.63: पक्खा (विकलांग)(63)
थेरा 1.64: विमला-कोंडन्ना(64)
थेरा 1.65: उक्खेपकटा-वच्चा(65)
थेरा 1.66: मेघिया(66)
थेरा 1.67: एकधम्म सवानिया(67)
थेरा 1.68: एकुदानिया(68)
थेरा 1.69: चन्ना(69)
थेरा 1.70: पुन्ना(70)
थेरा 1.71: वच्छपाला(71)
थेरा 1.72: अतुमा(72)
थेरा 1.73: मानव(73)
थेरा 1.74: सुयमना(74)
थेरा 1.75: सुसारदा(75)
थेरा 1.76: पियानजहा(76)
थेरा 1.77: हत्थारोहा-पुट्टा (हाथी-सवार का बेटा)(77)
थेरा 1.78: मेंडासिरा(78)
थेरा 1.79: रक्खिता(79)
थेरा 1.80: उगा(80)
थेरा 1.81: समितिगुट्टा(81)
थेरा 1.82: कस्सपा(82)
थेरा 1.83: सिहा(83)
थेरा 1.84: नीता(84)
थेरा 1.85: सुनागा(85)
थेरा 1.86: नागिता(86)
थेरा 1.87: पवित्रा(87)
थेरा 1.88: अजजुना(88)
थेरा 1.89: देवसभा(89)
थेरा 1.90: समिदत्ता(90)
थेरा 1.91: परिपुन्नक(91)
थेरा 1.92: विजया(92)
थेरा 1.93: एराका(93)
थेरा 1.94: मेट्टाजी(94)
थेरा 1.95: चक्खुपाला(95)
थेरा 1.96: खंडासुमाना(96)
थेरा 1.97: टिस्सा(97)
थेरा 1.98: अभया2 (98)
थेरा 1.99: उत्तिया(99)
थेरा 1.100: देवसभा2(100)
थेरा 1.101: बेलाथकानि(101)
थेरा 1.102: सेतुच्चा(102)

थेरा 1.103: बंधुरा(103)
थेरा 1.104: खितका(104)
थेरा 1.105: मालितावम्भा(105)
थेरा 1.106: सुहेमंता(106)
थेरा 1.107: धम्मसव(107)
थेरा 1.108: धम्मसव के पिता (108)
थेरा 1.109: संघ-रक्खिता(109)
थेरा 1.110: उषाभा(110)
थेरा 1.111: जेंटा(111)
थेरा 1.112: वच्छगोत्ता(112)
थेरा 1.113: वनवच्छ2(113)
थेरा 1.114: अधिमुत्त(114)
थेरा 1.115: महानामा(115)
थेरा 1.116: पापपरिया(116)
थेरा 1.117: यासा(117)
थेरा 1.118: किम्बिला(118)
थेरा 1.119: वज्जी-पुत्त2 (वज्जीयन)(119)
थेरा 1.120: इसिदत्ता(120)

अध्याय 2: दो श्लोक 121-169
थेरा 2.1: उत्तरा(121)
थेरा 2.2: पिंडोला-भारद्वाज(122)
थेरा 2.3: वल्लिया(123)
थेरा 2.4: गंगातिरिया(124)
थेरा 2.5: अजिना(125)
थेरा 2.6: मेलाजिना(126)
थेरा 2.7: राधा(127)
थेरा 2.8: सुराधा(128)
थेरा 2.9: गौतम(129)
थेरा 2.10: वासभा(130)
थेरा 2.11: कुंडा द एल्डर (131)
थेरा 2.12: जोतिदास(132)
थेरा 2.13: हेरान्नाकानी(133)
थेरा 2.14: सोमामित्त(134)
थेरा 2.15: सब्बामित्ता(135)
थेरा 2.16: महाकाल(136)
थेरा 2.17: तिस्सा(137)
थेरा 2.18: किम्बिला(138)
थेरा 2.19: नंदा(139)
थेरा 2.20: सिरीमत(140)
थेरा 2.21: उत्तरा(141)
थेरा 2.22: भद्दाजी(142)
थेरा 2.23: शोभिता(143)
थेरा 2.24: वल्लिया(144)
थेरा 2.25: वितासोका(145)
थेरा 2.26: पुन्नमसा(146)
थेरा 2.27: नंदका(147)
थेरा 2.28: भरत(148)

थेरा 2.29: भारद्वाज (149)
थेरा 2.30: कन्हादिन्ना(150)
थेरा 2.31: मिगासिरा(151)
थेरा 2.32: शिवका(152)
थेरा 2.33: उपवन(153)
थेरा 2.34: इसिदिन्ना(154)
थेरा 2.35: संबुला-कक्काना(155)
थेरा 2.36: खितका(156)
थेरा 2.37: सोना-पोटिरियापुट्टा(157)
थेरा 2.38: निसाभा(158)
थेरा 2.39: उषाभा(159)
थेरा 2.40: कप्पता-कुरा(160)
थेरा 2.41: कुमार-कस्पा (161)
थेरा 2.42: धम्मपाल (162)
थेरा 2.43: ब्रह्माली(163)
थेरा 2.44: मोगराजन(164)
थेरा 2.45: पंचाली का पुत्र विशाखा (165)
थेरा 2.46: कुलका(166)
थेरा 2.47: अनुपमा(167)
थेरा 2.48: वज्जिता(168)
थेरा 2.49: संधिता(169)

अध्याय 3: तीन श्लोक 170-185
थेरा 3.1: अंगनिका-भारद्वाज(170)
थेरा 3.2: पकाया(171)
थेरा 3.3: बकुला(172)
थेरा 3.4: धानिया(173)
थेरा 3.5: मतंगा का पुत्र (174)
थेरा 3.6: खुज्जा-सोभिता(175)
थेरा 3.7: वराना(176)
थेरा 3.8: पासिका(177)
थेरा 3.9: यासोजा(178)
थेरा 3.10: सतिमत्तिया(179)
थेरा 3.11: उपली(180)
थेरा 3.12: उत्तरपाला(181)
थेरा 3.13: अभिभूत(182)
थेरा 3.14: गौतम(183)
थेरा 3.15: हरिता(184)
थेरा 3.16: विमला2(185)
अध्याय 4: चार श्लोक 186-197
थेरा 4.1: नागासामला(186)
थेरा 4.2: भागु(187)
थेरा 4.3: सबिया(188)
थेरा 4.4: नंदका(189)
थेरा 4.5: जंबुका(190)
थेरा 4.6: सेनका(191)
थेरा 4.7: संभूत(192)
थेरा 4.8: राहुला(193)

थेरा 4.8: कैंडाना(194)
थेरा 4.9: धम्मिका(195)
थेरा 4.10: सब्बाका(196)
थेरा 4.11: मुदिता(197)

अध्याय 5: पाँच श्लोक 198-209
थेरा 5.1: राजादत्ता (198)
थेरा 5.2: सुभूत(199)
थेरा 5.3: गिरिमानंद (200)
थेरा 5.4: सुमना1(201)
थेरा 5.5: वड्डा(202)
थेरा 5.6: नदी का कस्सपा (203)
थेरा 5.7: गया का कस्पा (204)
थेरा 5.8: वक्कली(205)
थेरा 5.9: विजितसेना(206)
थेरा 5.10: यशदत्ता(207)
थेरा 5.11: सोना-कुटिकन्ना(208)
थेरा 5.12: कोसिया(209)
अध्याय 6: छह श्लोक 210-223
थेरा 6.1: उरुवेला का कसापा (210)
थेरा 6.2: टेकिचकारी(211)
थेरा 6.3: महा-नाग(212)
थेरा 6.4: कुल्ला(213)
थेरा 6.5: मालुंक्य का पुत्र (214)
थेरा 6.6: सप्पदासा(215)
थेरा 6.7: कटियाना(216)
थेरा 6.8: मिगाजाला(217)
थेरा 6.8: जेंटा द प्रीस्ट का बेटा(218)
थेरा 6.9: सुमना2(219)
थेरा 6.10: न्हाटाका-मुनि(220)
थेरा 6.11: ब्रह्मदत्त(221)
थेरा 6.12: सिरिमंडा(222)
थेरा 6.13: सब्बकामा(223)

अध्याय 7: सात श्लोक 224-228
थेरा 7.1: सुंदर-समुद्दा(224)
थेरा 7.2: लकुंतका-भद्दिया(225)
थेरा 7.3: भद्दा(226)
थेरा 7.4: सोपाका2(227)
थेरा 7.5: सरभंगा(228)
अध्याय 8: आठ श्लोक
थेरा 8.1: कक्का[या]ना द एल्डर(229)
थेरा 8.2: सिरिमित्ता(230)
थेरा 8.3: पंथाका एल्डर(231)
अध्याय 9: नौ श्लोक 232
थेरा 9.1: भूता(232)
अध्याय 10: दस श्लोक 233-239
थेरा 10.1: कलुदयिन(233)

थेरा 10.2: एकविहारिया (तिस्सा-कुमारा)(234)
थेरा 10.3: कप्पा1(235)
थेरा 10.4: कुला-पंथाका(236)
थेरा 10.5: कप्पा2(237)
थेरा 10.6: उपासना, वंगंता का पुत्र(238)
थेरा 10.7: कप्पा3(239)
अध्याय 11: ग्यारह श्लोक 240
थेरा 11.1: संकिच्चा(240)

अध्याय 12 : बारह श्लोक 241-242
थेरा 12.1: सिलावत(241)
थेरा 12.2: सुनीता(242)
अध्याय 13: तेरह श्लोक 243
थेरा 13.1: सोना-कोलिविसा(243)
अध्याय 14 : चौदह श्लोक 244-245
थेरा 14.1: रेवता(244)
थेरा 14.2: गोडत्ता(245)
अध्याय 15 : सोलह श्लोक 246-247
थेरा 15.1: अन्ना-कोंडन्ना(246)
थेरा 15.2: उदयिन(247)
अध्याय 16 : बीस श्लोक 248-257
थेरा 16.1: अधिमुत्त(248)
थेरा 16.2: परपरिया(249)
थेरा 16.3: तेलकानी(250)
थेरा 16.4: रत्थपाला(251)
थेरा 16.5: मालुंक्य का पुत्र (252)
थेरा 16.6: सेला(253)
थेरा 16.7: भद्दिया, गोधाओं के काली का पुत्र (254)
थेरा 16.8: अंगुलिमाला(255)
थेरा 16.9: अनुरुद्ध (256)
थेरा 16.10: परपरिया(257)

अध्याय 17 : तीस श्लोक 258-260
थेरा 17.1: फुस्सा(258)
थेरा 17.2: सारिपुत्त(259)
थेरा 17.3: आनंद (260)
अध्याय 18: चालीस श्लोक 261
थेरा 18.1: कस्सपा द एल्डर (261)
अध्याय 19: पचास श्लोक 262
थेरा 19.1: तलपुटा(262)
अध्याय 20: साठ श्लोक 263
थेरा 20.1: महा मोग्गल्लाना(263)
अध्याय 21: इकहत्तर श्लोक 264
थेरा 21.1: वंगीसा(264)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(1):सुभूति

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।

आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

थेरागाथा <<<<------ (1) ------>>>> अगला

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. सुभूति
हमारे बुद्ध के समय में, सावत्थी में, सलाहकार सुमना के परिवार में, जो अनाथपिंडिका के छोटे भाई थे, उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम सुभूति रखा गया। [1] जिस दिन उनके चाचा द्वारा खरीदा गया जेतवन भगवान बुद्ध को भेंट किया गया, उस दिन सुभूति वहाँ उपस्थित थे, और जब उन्होंने धम्म के बारे में सुना, तो उन्हें आस्था प्राप्त हुई और उन्होंने संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यास की दीक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने विनय नियमों की दोनों श्रेणियों में महारत हासिल की। [2] इसके बाद, उन्हें ध्यान के अभ्यास के लिए एक विषय दिया गया, और वे वन में जाकर उसका अभ्यास करने लगे। आनंद-झान के आधार पर अंतर्दृष्टि विकसित करते हुए , [3] उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और उन्होंने बिना किसी भेद या सीमा के धम्म का उपदेश देते हुए, सार्वभौमिक करुणा का विकास करने वाले भिक्षुओं में अग्रणी बन गए। और क्योंकि भिक्षा मांगते हुए वे घर-घर जाकर [5] समाधि की अवस्था में लीन हो जाते थे , और समाधि से बाहर आकर भिक्षा ग्रहण करते थे, इसलिए यह उनके दाताओं के लिए बड़ा प्रतिफल माना गया, और वे दान के योग्य लोगों में श्रेष्ठ हो गए। इसी कारण भगवान बुद्ध ने कहा: 'सुभूति, भिक्षुओं, मेरे भिक्षु-शिष्यों में सर्वव्यापी [4] करुणा में श्रेष्ठ हैं, और दान के योग्य लोगों में भी श्रेष्ठ हैं। [5] ...

तो यह महान भिक्षु, जो अनेकों के कल्याण के लिए देश-विदेश में यात्रा कर रहे थे, उचित समय पर राजगृह पहुँचे। राजा बिम्बिसार ने उनके आने की सूचना सुनी और उन्हें प्रणाम करने के लिए गए, तथा उनसे निवेदन किया, 'हे पूज्य, कृपया यहाँ निवास करें, मैं आपके लिए एक आवास बना दूँगा।' परन्तु जाते-जाते वे भूल गए। भिक्षु को कोई आश्रय न मिलने पर, वे खुले में ध्यान करने लगे। भिक्षु के इस आदर के कारण, देवता ने वर्षा नहीं की, जिससे लोग सूखे से पीड़ित हो गए और राजा के महल के द्वार पर हंगामा करने लगे। राजा ने अपने आप से प्रश्न किया कि देवता ने वर्षा क्यों नहीं की, और उन्होंने अनुमान लगाया कि इसका कारण भिक्षु का खुले में होना ही होगा। अतः उन्होंने उनके लिए एक पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया बनवाई और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, 'हे प्रभु, कृपया इस पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया में निवास करें,' और फिर वे चले गए। भिक्षु ने प्रवेश किया और घास-फूस के पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए। फिर बारिश बूंद-बूंद करके टपकने लगी, मूसलाधार नहीं। लेकिन भिक्षु ने लोगों के मन से सूखे का डर दूर करने के लिए, यह घोषणा की कि उन्हें बाहर से या भीतर से कोई खतरा नहीं है, और इसके लिए उन्होंने यह श्लोक बोला:

[1] चन्ना मे कुतिका सुख निवाता वस्सा देव यथासुखः॥
चित्तं मे सुसामहितां विमुत्तं अतापि विहारामि वस्सा देवा' ति.॥ ॥

Itthaŋ sudaŋ āyasmā subhūtitthero gāthaŋ abhāsitthā' ti.॥ ॥

[1] मेरी छोटी सी झोपड़ी अच्छी छत वाली और सुखद है,
और हवाओं से सुरक्षित है - हे भगवान, अपनी इच्छा से बारिश करो!
मेरा दिल शांत है, मेरा दिल मुक्त है,
और मेरा मन उमंग भरा है। अब बारिश करो, भगवान! बारिश करो। [6]

इस प्रकार पूज्य वरिष्ठ भिक्षु सुभूति ने अपना कथन (गाथा) कहा। [7]

और वह श्लोक उनकी अञ्ञा (प्राप्ति) की अभिव्यक्ति थी।

[1] सदियों पहले, पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में, जब इस थेरा ने वह संकल्प लिया था जिसने उनके शेष जीवन को निर्धारित किया, तब उनका नाम नंदा था। यहाँ क्रॉनिकल में उनके चाचा द्वारा जेतवन में निर्मित विहार (मठ), महान महाविद्यालय, के निर्माण का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, जैसा कि जातक कथाओं की प्रस्तावना में अधिक विस्तार से बताया गया है। देखें राइस डेविड्स, बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृष्ठ 130।

[2] विनय ग्रंथ देखें , i. '273 ; iii. 2, n. 'मानदंड' 'धम्म' है।

[3] किसी निर्दिष्ट 'स्वयं सम्मोहन के तरीके' द्वारा प्रेरित मंत्रमुग्ध लेकिन व्यवस्थित मानसिकता, और यहाँ अपनी वस्तुओं को सार्वभौमिक सद्भावना से भरने पर केंद्रित है (बुद्ध. साइ., 65 एफ.एफ.; विभंगा, 277)।

[4] एनोडिसाका। डॉ. ए.सी. टेलर के पैटिएम्बिडामग्गा, जेआरएएस, जनवरी, 1905 के संस्करण की मेरी समीक्षा देखें।

[5] अंगुत्तरा निकैया, i. 24 देखें , जहाँ कई भिक्षुओं, बहनों और गृहस्थों को औपचारिक रूप से एक विशिष्ट उपलब्धि में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए मान्यता दी गई है।

[6] धम्मपाल कहते हैं कि यहाँ देव का तात्पर्य गर्जन-बादल, पज्जुन्न या पर्जुन्य के देवता या आत्मा से है - इधापि मेघे पज्जुन्ने वा दत्तबब्बो। सुत्त-निपात, श्लोक 18; राइस डेविड्स, अमेरिकन लेक्चर्स, 167 ff.; बुद्धिस्ट इंडिया, 336. [?] तुलना करें LI.-LIV., CLV.
टीका में 'कुटिया' को शरीर के रूपक के रूप में देखने का विकल्प दिया गया है। अनुशासन के माध्यम से अच्छे प्रशिक्षण में होने के कारण, 'हृदय' ध्यान के माध्यम से और अंतर्दृष्टि ज्ञान के माध्यम से भी उतनी ही अच्छी तरह से प्रशिक्षित होता है, श्लोक तीन प्रकार के सिक्खा (प्रशिक्षण) के अंत को संक्षेप में प्रस्तुत करता है । मेरी बौद्ध धर्म पुस्तक, अध्याय viii देखें; तुलना करें नीचे, LVII., आदि।

[7] यह कथन प्रामाणिक है, निस्संदेह संपादकों द्वारा। निम्नलिखित वाक्य टीकाकार का है। अञ्ञ का अर्थ है ज्ञान या सहज ज्ञान, जो अरहंतत्व (ज्ञानोदय) की गारंटी है। मज्झिमा, i. 479; संयुत्त, ii. 22.
थेरा सुभूति का उल्लेख हमें केवल उदाना, vi. 7 में मिलता है, जहाँ बुद्ध उनकी ध्यान साधना में निपुणता की प्रशंसा करते हैं, और राजा मिलिंदा के प्रश्न, ii, 315,323 में, जहाँ उनके श्लोक (जो कहीं और नहीं मिलते) उद्धृत किए गए हैं। परिशिष्ट (नीचे) देखें।

1. एकल खंड

1.1 पहला अध्याय

1.1-1[1] के श्लोकों पर टिप्पणी

सुभूति थेरा.
अब थेरस की उन छंदों के अर्थ पर व्याख्या उपलब्ध है जो व्यवस्थित रूप से 'चन्ना मे कुटिका' से शुरू होती हैं। हालांकि, उन छंदों की व्याख्या उनके प्रसंगों को स्पष्ट करने के बाद की गई है, इसलिए यह स्पष्ट और आसानी से समझ में आने वाली है; इसी कारण हम यहाँ-वहाँ प्रसंगों को स्पष्ट करने के बाद अर्थ की व्याख्या संकलित करेंगे।

वहाँ, "चन्ना मे कुटिका" से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है:— ऐसा कहा जाता है कि एक लाख युग (कप्पा) पहले, जब जगत के रक्षक, भगवान पद्ममुत्तर का जन्म नहीं हुआ था, तब हंसवता नामक नगर में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण के पुत्र का जन्म हुआ। उनका नाम "नंद" रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया, जहाँ उन्हें कोई सार नहीं मिला, तो उन्होंने संसार का त्याग कर अपने साथ चौवालीस हजार युवकों के दल के साथ एक पर्वत की तलहटी में तपस्वी बन गए और उन्होंने ध्यान की आठ आत्म-प्राप्तियों (समापत्ति) के साथ-साथ पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) को भी प्राप्त किया। उन्होंने अपने निवासी शिष्यों को मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) के बारे में बताया (या निर्देश दिया), जो शीघ्र ही ध्यान के लाभार्थी बन गए।

उस अवसर पर, भगवान पद्ममुत्तरा संसार में अवतरित हुए और हंसवती नगर के निकट आश्रित निवास करते हुए, जब भी उन्होंने संसार को देखा, तो उन्हें ऋषि नंदा के जटाधारी शिष्यों के अरहंत पद प्राप्त करने के लिए पर्याप्त योग्यता का पता चला, साथ ही ऋषि नंदा की उस आकांक्षा का भी पता चला कि उन्हें दो प्रकार के गुणों से युक्त शिष्य का दर्जा प्राप्त हो। उन्होंने सुबह-सुबह ही स्नान किया, सूर्योदय के समय (या भोर से पहले) अपना भिक्षापात्र और वस्त्र ग्रहण किया, किसी अन्य भिक्षु को नहीं पुकारा, सिंह के समान अकेले विचरण किया, और जब ऋषि नंदा के शिष्य छोटे-बड़े फल लाने गए थे, तब वे आकाश से अवतरित हुए, जब ऋषि नंदा अभी भी उन्हें देख रहे थे, और मन ही मन कहा: "उसे मेरे बुद्ध होने का ज्ञान हो जाए" और पृथ्वी पर स्थापित हो गए। ऋषि नंदा बुद्ध की शक्ति और उनके

सर्वांगीण विशिष्ट लक्षणों की परिपूर्णता का पता लगाने आए थे। उन्होंने लक्षणों के विज्ञान (लक्खणमंत) का ध्यान (सम्मसित्व) किया और इस प्रकार आश्वस्त हुए: “जो इन लक्षणों (लक्खण) से संपन्न है, यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे, तो वह विश्वराज बन जाएगा; यदि वह संसार का त्याग करके भिक्षु बन जाए, तो वह सर्वज्ञ बुद्ध बन जाता है, जो संसार में (ब्रह्मांड का) प्रकटीकरण करता है; यह एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व है; निःसंदेह वह बुद्ध हैं।” वे उनसे मिलने गए, पाँच प्रकार से जमीन पर बैठकर (पंचपतितित्त) उन्हें प्रणाम किया, एक आसन तैयार किया और उन्हें अर्पित किया। ऋषि नंदा ने अपने लिए भी एक उपयुक्त आसन लिया और एक तरफ बैठ गए।

उस समय, चौवालीस हजार चोटीदार संन्यासी, छोटे-बड़े सभी स्वादिष्ट फल एकत्र करके अपने गुरु के पास पहुँच गए थे। बुद्ध और गुरु दोनों को अपने-अपने आसनों पर बैठे देखकर उन्होंने कहा, “हे गुरु! हम इस धारणा के साथ भटकते हैं कि इस संसार में आपसे बड़ा कोई नहीं है; अब हम समझते हैं कि यह व्यक्ति आपसे भी बड़ा है।” संन्यासी नंदा ने उत्तर दिया, “हे मेरे प्रियो! तुम सब क्या कह रहे हो? क्या तुम सरसों के दाने की तुलना 68 लाख योजन ऊँचे सिनरू पर्वत से करना चाहते हो? मेरी तुलना सर्वज्ञ बुद्ध से मत करो।” तब वे संन्यासी बुद्ध के चरणों में सिर के बल गिर पड़े और उन्हें प्रणाम करते हुए बोले, “यदि यह व्यक्ति छोटा होता, तो हमारे गुरु कभी इस प्रकार की तुलना नहीं करते; वास्तव में, यह व्यक्ति कितना महान है!” तब उनके गुरु ने उनसे कहा, “मेरे प्रियो! हमारे पास बुद्धों के लिए उपयुक्त कोई दान (देय्यधम्म) नहीं है; भगवान बुद्ध भी भिक्षा मांगने के समय यहाँ आए थे; इसलिए, हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान (देय्यधम्म) करें; आप सभी जो उत्तम फल, छोटे-बड़े, लाए हैं, उन्हें भी लाएँ।” ऐसा कहकर गुरु ने फल मंगवाए, अपने हाथ धोए और उन्हें तथागत के पात्र में डाल दिया। जैसे ही गुरु ने छोटे-बड़े फल ग्रहण किए, दिव्य सुगंध उनमें समा गई। साधु ने पीने का पानी भी स्वयं छानकर बुद्ध को अर्पित किया। इसके बाद, जब गुरु ने भोजन करने के बाद बैठना जारी रखा, तो गुरु ने अपने सभी शिष्यों को अपने पास बुलाया और गुरु के समक्ष बैठकर स्मरणीय वचन कहे। गुरु ने कहा, “भिक्षुओं के सभी स्वामी मेरे पास आएं।” गुरु के मन को जानने के बाद, लगभग एक लाख दोषरहित अरहंत आए, उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

ऋषि नंदा ने अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा: “मेरे प्रियो! बुद्ध का आसन भी नीचा है; एक लाख भिक्षुओं के लिए भी आसन नहीं है; अब तुम्हारे लिए यह उचित है कि तुम भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के समूह को स्वयं द्वारा बनाया गया एक बड़ा भेंट (सक्कारा) अर्पित करो; तुम सब पहाड़ियों की तलहटी से सुंदर रंग और मीठी सुगंध वाले फूल लाओ।” उच्च जादुई शक्तियों (इद्धि) के प्रभाव की अकल्पनीयता के कारण, वे पल भर में ही सुंदर और मीठी सुगंध से भरे फूल ले आए और बुद्ध के लिए एक मील (योजन) के आकार का, मुख्य शिष्यों के लिए तीन-चौथाई मील (तिगावुता) के आकार का, शेष भिक्षुओं के लिए आधे मील (योजन) के आकार का और भिक्षुओं के नए सदस्यों के लिए एक उषभ (बैल की पुकार) के आकार का पुष्प आसन तैयार किया। जब आसन तैयार हो गए, तो ऋषि नंदा तथागत के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए और बोले, “आदरणीय गुरुदेव! कृपया मेरी दीर्घकालीन भलाई और सुख के लिए इस पुष्प-आसन पर आसीन हों।” भगवान बुद्ध पुष्प-आसन पर बैठ गए। जब गुरुदेव इस प्रकार बैठ गए, तो गुरुदेव का संकेत पाकर आए भिक्षु भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। ऋषि नंदा ने एक बड़ा पुष्प-छतरी उठाया और उसे तथागत के सिर के ऊपर थामे खड़े हो गए। गुरुदेव ने ऐसी प्रभावी ध्यान साधना (समापत्ति) में लीन हो गए, जिसे निरोध (दुःख का निवारण) कहा जाता है, और मन ही मन कहने लगे, “ऋषियों द्वारा स्वयं बनाई गई यह श्रद्धापूर्ण भेंट (सक्कारा) महान फलदायी हो।” गुरु की प्रभावी ध्यान अवस्था को जानकर भिक्षुओं ने भी उसी प्रकार ध्यान किया। तथागत ने निरोध (प्रभावी अमर ध्यान) में प्रवेश करने के बाद सात दिनों तक बैठे रहे। उनके शिष्य भोजन के समय सर्वथा सर्वांगीण फल और जड़ें खाते थे और शेष समय बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर बैठे रहते थे। परन्तु नंदा ऋषि भोजन के लिए नहीं गए, बल्कि सात दिनों तक पुष्प-छाता धारण करके उत्साह और प्रसन्नता से समय व्यतीत किया।

निरोध ध्यान से उठने के बाद, गुरु ने एक शिष्य को आदेश दिया, जो दो गुणों से संपन्न था: शांत जीवन (अरण) और दान देने योग्य गुण। वह शिष्य महान योद्धा के समान आनंदमय हो गया, विश्वराज की उपस्थिति से महान लाभ प्राप्त करने वाला बन गया, अपने प्रभाव क्षेत्र में स्थिर रहा, तीन पिटक में निहित बुद्ध के वचनों का गहन अध्ययन किया और कृतज्ञता का उपदेश दिया। अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने स्वयं सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उपदेश के पूर्ण समापन पर, सभी चौवालीस हजार संन्यासियों ने अरहंतत्व प्राप्त किया। गुरु ने हाथ फैलाकर कहा, “आओ, हे भिक्षुओं!” उसी क्षण, उनके सिर के बाल और दाढ़ी गायब हो गए। आठ आवश्यक वस्त्र उनके शरीर से जुड़े रह गए। वे साठ वर्ष के वरिष्ठ भिक्षुओं के समान होकर गुरु के चारों ओर आ गए। हालांकि, नंदा ऋषि अपने अस्थिर मन के कारण विशिष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। कहा जाता है कि जब उन्होंने एकांतवास में रहने वाले थेरा की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुनना शुरू किया, तब उनके मन में यह विचार आया: "यह कितना अद्भुत होगा कि भविष्य में, यदि कोई बुद्ध प्रकट हों, तो मुझे भी इस थेरा द्वारा प्राप्त किए गए समान उत्तरदायित्व प्राप्त हो।" उस सर्वव्यापी चिंतन के कारण, वे मार्ग (मार्ग) और उसके फल (फल) को ठीक से नहीं समझ पाए। उन्होंने तथागत बुद्ध को प्रणाम किया, उनके सामने खड़े होकर पूछा, “आदरणीय गुरुदेव! आपके शासनकाल में संन्यासियों द्वारा अर्पित पुष्प-आसनों के प्रति कृतज्ञता का उपदेश देने वाले इस भिक्षु का नाम क्या है?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “यह भिक्षु शांत जीवन जीने के गुण और दान देने के गुण में सर्वोपरि है।” उन्होंने अपनी प्रार्थना इस प्रकार व्यक्त की, “आदरणीय गुरुदेव! मैंने स्वयं सात दिनों तक आपके ऊपर पुष्प-छाता धारण करके जो श्रद्धापूर्वक सेवा की, उससे मुझे किसी अन्य उचित प्राप्ति (संपत्ति) की आकांक्षा नहीं है; परन्तु भविष्य में, बुद्ध के शासनकाल में इस थेरा के समान दो गुणों से संपन्न शिष्य बन सकूँ।”

भविष्य के ज्ञान का उपयोग करके यह जानने के बाद कि क्या उस ऋषि की आकांक्षा वास्तव में पूरी होगी, गुरु ने एक लाख युगों (कप्पा) के बाद प्राप्त सिद्धि की अवस्था का पता लगाया और ऋषि नंदा से कहा: "तेरी यह आकांक्षा व्यर्थ नहीं जाएगी; भविष्य में, एक लाख युगों (कप्पा) के बाद, गौतम बुद्ध प्रकट होंगे; उनकी उपस्थिति में ही तेरी सिद्धि होगी।" ऐसा कहकर, बुद्ध ने सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और भिक्षुओं से घिरे हुए आकाश में चले गए। ऋषि नंदा गुरु और भिक्षुओं की ओर हाथ जोड़कर तब तक खड़े रहे जब तक वे उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। इसके बाद वे बार-बार गुरु के पास जाकर सत्य (धम्म) सुनते रहे। पूर्णतया अविचलित ध्यान में रहते हुए, उन्होंने प्राण त्याग दिए और ब्रह्मालोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से मृत्यु के बाद उन्होंने पाँच सौ जन्मों तक संसार का त्याग किया और वनवासी बन गए। आत्मज्ञानी बुद्ध कस्सपा के समय भी उन्होंने संसार का त्याग किया और वनवासी बनकर आने-जाने के इस कर्तव्य का पालन किया। कहा जाता है कि अपने कर्तव्य का पूर्ण पालन किए बिना कोई भी महान शिष्य की अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। आने-जाने के कर्तव्य को आगमों (या सूत्रों) की टीकाओं में वर्णित विधि से ही समझा जाना चाहिए। बीस हजार वर्षों तक आने-जाने के कर्तव्य का पालन करने के बाद उनका निधन हुआ और वे इंद्रिय जगत के दिव्य लोक में तावतिंसा भवन में पुनर्जन्म हुए। वास्तव में, अपदान में इसका इस प्रकार वर्णन किया गया है:

"हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर, वहाँ

निसाभा नाम की एक पहाड़ी थी। वहाँ,

मेरा आश्रम अच्छी तरह से बना हुआ था, एक पत्ता-

झोपड़ी अच्छी तरह से बनाई गई है।

कोसिया नाम से मैं

गुंथे बालों वाला एक तपस्वी, एक उग्र आत्म-

अपमान करने वाला; उस समय मैं अकेला रहता था

बिना किसी दूसरे (या साथी) के

निसाभा।

उन दिनों मैं फल नहीं खाता था।

जड़ों और पत्तियों को (तोड़कर);

लेकिन मैंने अपना गुजारा किया लेकिन क्या

वहाँ आसानी से गिर गया।

और तब।

मैंने अपने जीवन को अस्त-व्यस्त नहीं किया, त्याग किया

मैंने अपने जीवन को भी प्रसन्न किया।

और मैंने अनुचित व्यवहार से परहेज किया।

जब भी मेरे मन में कोई विचार आता था

कामवासना (राग) से जुड़ा हुआ, मैं स्वयं

मैंने इस पर विचार भी किया और इसे दबा दिया।

शांतिपूर्वक (या संयम से);

“तुम अपवित्र करने योग्य चीजों से आसक्त हो गए

मामले; आप नाराज हो गए

गुस्सा दिलाने वाली बातें; और तुम बन गए

भ्रामक बातों से भ्रमित; आप

बेहतर होगा कि हम जंगल से बाहर निकल जाएं।

यह पवित्र लोगों का निवास स्थान है

पवित्रजनों में से, उन संन्यासियों में से जो

अशुद्धियों (या गंदगी) से मुक्त; करें

वास्तव में, इससे पवित्रता को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए;

बेहतर होगा कि आप जंगल से बाहर निकल जाएं।

“गृहस्थ बन जाने के बाद, जैसे और

जब तुम्हें पुत्र हो, तो पाप मत करना।

(या दोनों को छोड़ दें); आपके लिए बेहतर होगा

जंगल से बाहर निकलो।

“जैसे लकड़ी का एक टुकड़ा

अंत्येष्टि की चिता में ऐसा कुछ भी नहीं है जो होना चाहिए

यह कहीं भी किया जा सकता है, यहाँ तक कि यहाँ तक कि

गाँव जंगल में नहीं है; वास्तव में, यह

अब इसे जलाऊ लकड़ी के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है

आम सहमति।

तुम अंत्येष्टि की चिता से निकलती मशाल के समान हो;

आप न तो आम आदमी हैं और न ही संन्यासी;

अब आप दोनों से अलग-थलग हैं; आपके पास

जंगल से बाहर निकल जाना ही बेहतर है।

"क्या सचमुच यह आपके लिए होगा? कौन?"

क्या तुम्हें इस बात का पता चल जाएगा?

मैंने अपने धर्मपरायण विश्वास का बोझ उठाया, साथ

बहुत आलस्य भी।

बुद्धिमान लोग इसे उसी प्रकार तुच्छ समझेंगे जैसे कि

एक नागरिक की अशुद्धता; संन्यासी

इसे खींचने पर हमेशा फटकार लगेगी

यह।

बुद्धिमान लोग खुलकर बोलेंगे (या दोषारोपण करेंगे)

तुम जो पार कर गए (या बच निकले)

मार्ग (या व्यवस्था, शासन);

वास्तव में, सह-निवास नहीं मिल रहा है, कैसे

क्या तुम जीवित रहोगे?

एक शक्तिशाली हाथी मातंग की ओर बढ़ता है

हाथी की वह प्रजाति जो प्रजनन के लिए तैयार हो सकती है

इसके तीन प्रकार के रिसाव के साथ-

विषैला शक्तिवर्धक द्रव (पभिन्न)

साठ वर्ष की आयु में घटते हुए (saṭṭhi-

(हायाना) और उस हाथी को भगा देता है

अपने झुंड से।

"चूंकि इसे इसके स्थान से बाहर निकाल दिया गया है

झुंड में रहने से उसे सुखद सुख नहीं मिलता;

इससे मन व्याकुल और निराश हो जाता है;

दुःख से व्याकुल होकर यह कांपने लगता है।

इसी प्रकार, चोटीदार बालों वाले तपस्वी भी ऐसा ही करेंगे

आपको मूर्खता करके बाहर निकाल देना; आपके पास होने पर

अगर आपको उनके द्वारा बाहर निकाल दिया गया है, तो आप नहीं

सुखद खुशी प्राप्त करें।

चाहे दिन हो या रात, चुभन होना

चिंता के कांटे से (या छेदा हुआ)

दुःख, साका) तुम चारों ओर से जल गए हो

हाथी जैसी गर्मी जो

अपने झुंड से बाहर निकाल दिया गया।

"जिस प्रकार प्राकृतिक सोने की चोटी नहीं होती

लेकिन तुम भी हर जगह चमकते रहो।

जिनके नैतिक सिद्धांत स्पष्ट रूप से निम्न स्तर के हैं

हर दिन तेज रोशनी से जगमगाता नहीं रहेगा-

कहाँ।

गृहस्थ जीवन जीने में कैसे मदद मिलेगी?

क्या तुम जीवित हो? तुम्हारे लिए तो अस्तित्व ही नहीं है।

माता और पिता दोनों की ओर से दफनाए गए खजाने-

ज़रूर।

खुद काम करना, व्यक्तिगत तनाव मुक्त करना-

अपने शरीर पर प्रेरणा से आप जीवित रहेंगे

अपने घर में ऐसा करना एक अच्छे आदमी का काम है।

मुझे आपका यह प्रस्ताव मंजूर नहीं है।

इस प्रकार मैं वहाँ अपने आप को रोकता हूँ

वह मन जो आत्म-विनाश की ओर अग्रसर हो गया था,

(किलेसा); कई प्रकार के बनाकर

मैं सत्य (धम्म) की शिक्षा का निषेध करता हूँ।

मेरे मन को बुराई से दूर रखो।

जब मैं इस प्रकार जीवन जी रहा था

लगन से तीस हजार साल बीत गए

मेरे लिए जंगल में बीता हुआ समय।

मुझे प्रसन्न देखकर

लगन से सर्वश्रेष्ठ की तलाश करना

कल्याण (या पदार्थ), आत्मजागृत

बुद्ध पद्ममुत्तरा मेरे समक्ष प्रकट हुए।

उस समय, अद्वितीय बुद्ध

उनकी शारीरिक सुंदरता, उनके रंग-रूप के साथ

अंजीर के फल का, अतुलनीय और

अतुलनीय व्यक्ति इधर-उधर चलता रहा

आकाश।

जैसे कि खूब खिलने वाला विशालकाय साल-

पेड़, बीच में बिजली की तरह दिखता है

बादलों का समूह, अद्वितीय बुद्ध

ज्ञान में, फिर सैर की

आकाश।

सिंहराज के समान निर्भीक, अभिमानी

जैसे राजा हाथी, खेलकूद (या

(चमकदार) राजा-बाघ की तरह, बुद्ध

फिर आकाश में एकांतवास में चले गए।

उनका रंग सोने की तरह चमक रहा था

निकहा के वजन का, अंगारों के समान

बबूल की लकड़ी, चमकते रत्न के समान

स्वाद, बुद्ध आकाश में विचरण करते थे।

एक शुद्ध सफेद पहाड़ की तरह, जो मिलता-जुलता है

यहां तक कि पूर्णिमा और इसी तरह

दोपहर के समय सूर्य के समय, बुद्ध टहलने निकले।

आकाश।

उन्हें टहलते हुए देखकर

आकाश, तब मैंने इस प्रकार सोचा:— "क्या यह

वास्तव में, प्राणी एक दिव्य प्राणी है, या

क्या यह एक इंसान है?

मैंने न तो कभी ऐसा सुना था और न ही कभी ऐसा देखा था।

मनुष्य पृथ्वी पर इसी रूप में है; शायद यही

गुरु को ज्ञान का मार्ग अवश्य जानना चाहिए।

मंडप (छतरीका)।

इस प्रकार विचार करने के बाद, मेरा स्वयं का मन

मैं अत्यंत धार्मिक हो गया; फिर मैंने संग्रह किया-

टेड डाइवर्स फूल और साथ ही मिठाई

सुगंध।

फूलों से बनी वेदी तैयार करने के बाद, अच्छा

मैंने कहा, "बहुमुखी और मनमोहक।"

यह शब्द मनुष्यों के सर्वोत्कृष्ट सारथी के लिए है।

हे वीर! यह मेरी आसन है, जो आपके लिए उपयुक्त है।

तैयार हो चुका है; कृपया बैठ जाइए।

कुसुमा फूल की सीट पर बैठकर मुझे आनंद हो रहा है

दिल।

भगवान बुद्ध वहाँ बैठ गए, मानो

एक निर्भीक शेर के लिए; बुद्ध ने सात दिन बिताए

बेहतरीन फूलों पर दिन और रातें-

सीट।

मैं सात दिनों तक श्रद्धापूर्वक खड़ा रहा।

और रातें; गुरु, जिनका कोई श्रेष्ठ नहीं है

दुनिया, उनके अस्तित्व से उत्पन्न हुई है-

केंद्रीकरण (समाधि), ने यह शब्द बोला

अपने काम की घोषणा करने के लिए। विकसित करें

बुद्ध पर उचित ध्यान देना,

मानसिक विकास का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण

(भावना); अपने विकास के बाद

इस पर ध्यान केंद्रित करने से आपका मन शांत हो जाएगा-

पूरी तरह से आ जाओ।

तीस हजार युगों तक, तुम

दिव्य संसार में आनंद लें;

अस्सी बार तुम दिव्य बनोगे

राजा दैवीय संप्रभुता का प्रयोग करता है;

आप हजार बार विश्व बनेंगे-

राज्य में राजा।

असंख्य संख्या में प्रचुर मात्रा में होंगे-

आपकी क्षेत्रीय संप्रभुता का नृत्य; सभी

जिसका अनुभव आप करेंगे,

उचित ध्यान का फल

(अनुसति) बुद्ध को।

जैसे ही आप अपने चक्कर लगाते हुए आगे बढ़ते हैं

प्रमुख और गौण में बार-बार पुनर्जन्म

आप कई जन्म लेंगे और बहुत धन अर्जित करेंगे;

आपके धन में कोई कमी नहीं आएगी।

आपकी बुद्ध-दिमाग की चेतना की फलस्वरूप।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

गुरु ओक्काका के परिवार में जन्मा,

गौतम गोत्र के नाम से जाना जाने वाला व्यक्ति

दुनिया में अस्तित्व में आना।

अस्सी करोड़ की संपत्ति त्यागने के बाद

और बहुत से दास और नौकर, तुम

भिक्षु बनो

भगवान गौतम।

स्वयं का दिल जीतने के बाद-

जागृत बुद्ध गौतम बैल

शाक्यनों, तुम शिष्य बनोगे

गुरु, जिनका नाम है,

सुभूति.

भिक्षुओं के बीच बैठे हुए, वह

इससे आपको दो स्थितियों में सबसे आगे स्थान मिलेगा:—

समर्पण के योग्य होने के गुण में-

टेड दान और इसी तरह गुणवत्ता में

शांति में रहने का।

यह कहने के बाद, आत्मजागृत व्यक्ति

बुद्ध, जिन्हें सबसे उत्कृष्ट नायक कहा जाता है

जलीय फूल, पदुमत्तरा, विशेष रूप से

हंस सम्राट की तरह आकाश में उड़ गया

आकाश में।

जगत के रक्षक (बुद्ध) के निर्देशानुसार,

मैंने तथागत को प्रणाम किया; प्रसन्नतापूर्वक

क्या मैंने हमेशा सर्वश्रेष्ठ विकास किया?

बुद्ध पर ध्यान लगाना।

उस उत्तम कार्य के कारण,

क्योंकि इच्छाशक्ति और आत्मनिर्णय के कारण,

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और चला गया

तावतिंसा स्वर्ग।

मैं अस्सी बार दिव्य राजा बना

और उन्होंने दिव्य संप्रभुता का प्रयोग किया।

हजार बार भी मैं बन गया

बार-बार विश्व राजा बनने का गौरव प्राप्त करने वाला।

कई बार बहुतायत में, इतनी अधिक संख्या में कि

बताइए, क्या मुझे अच्छे फायदे पसंद आए?

क्षेत्रीय संप्रभुता की विविधता एक फल के रूप में

बुद्ध पर मेरे ध्यान का।

बार-बार किए जाने वाले अपने चक्करों में भटकते हुए

प्रमुख और गौण अस्तित्वों में पुनर्जन्म,

मैंने बहुत धन अर्जित किया; कोई

मेरे धन में कमी मेरे कर्मों के फल के रूप में

बुद्ध पर ध्यान लगाना।

पिछले एक लाख युगों के दौरान,

मैंने जो भी काम किया, मुझे याद नहीं है।

दुष्ट अस्तित्व में जाना पड़ा (या

(शुद्धिकरण)। यही मेरे कर्मों का फल है।

बुद्ध पर ध्यान लगाना।

मेरे द्वारा कल्पना की गई चार प्रकार की

विश्लेषणात्मक ज्ञान, आठ चरण

मुक्ति और छह प्रकार के सुपर-

ज्ञान; मेरे द्वारा निष्पादित किया गया था

बुद्ध का उपदेश (शासन)।

इस प्रकार, पूज्य थेरा सुभूति ने इन श्लोकों का उच्चारण किया।

इस प्रकार, उन्होंने तावतिंसा के दिव्य महल में समय-समय पर जन्म लेकर दिव्य आनंद का अनुभव किया, और वहाँ से मृत्यु के बाद, वे मानव जगत में कई सौ बार विश्वराज और क्षेत्रीय शासक बने, मानव जीवन के प्रचुर आनंद का अनुभव किया, और फिर, हमारे भगवान बुद्ध के समय में, सावत्थी में धनाढ्य सुमना के घर में अनाथपिंडिका के सबसे छोटे भाई के रूप में पुनर्जन्म लिया; उनका नाम "सुभूति" था।

उस समय तक, हमारे भगवान बुद्ध संसार में अवतरित हो चुके थे और धर्म के उत्कृष्ट चक्र को निरंतर घुमाते हुए धीरे-धीरे राजगृह चले गए थे, जहाँ वे संसार के उत्थानकारी कार्यों जैसे कि वेलुवन (बांस का वन) को स्वीकार करके राजगृह के निकटवर्ती शीतवन (सीतवन)

में निवास कर रहे थे। उस समय, धनाढ्य अनाथपिंडिका ने लाभवर्धक (उठानक) माल (भण्ड) धारण किया और अपने सहयोगी राजगृह के धनाढ्य के घर गए; बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुनकर, वे शीतवन (सीतवन) में निवास कर रहे गुरु के पास पहुँचे और प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) की सिद्धि प्राप्त कर ली। बुद्ध के दर्शन मात्र से ही उन्होंने गुरु से श्रावस्ती आने का अनुरोध किया। इसके बाद, उन्होंने पैंतालीस मील (या मार्ग) की भूमि यात्रा (या मार्ग) पर प्रत्येक मील (या मार्ग) पर एक लाख (या मार्ग) के लिए एक लाख (या मार्ग) के बलिदान पर मठ स्थापित करवाए; सावत्थी में, उन्होंने करोड़ों (या) का दान देकर एक जेत राजकुमार की आठ एकड़ (या राजमान) भूमि खरीदी, जहाँ उन्होंने भगवान बुद्ध के लिए एक मठ बनवाया और उसे उन्हें अर्पित कर दिया। मठ स्वीकार किए जाने के दिन, इस गृहस्थ (या जागीरदार) सुभूति ने धनी अनाथपिंडिका के साथ जाकर धर्म का प्रवचन सुना, विधिवत श्रद्धा प्राप्त की और भिक्षु बन गए। दीक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने दो शास्त्रों (द्वेमातिका) का अभ्यास (कम्मट्ठान) किया, वन में भिक्षु के कर्तव्यों (धम्म) का पालन किया, प्रेममयी ध्यान पर आधारित आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। गुरु द्वारा सिखाए गए तरीके से ही सत्य (धम्म) का उपदेश देने और उसे सार्वभौमिक बनाने के कारण, वे एकांतवास में रहने वालों (या एकांत में रहने वालों) में अग्रणी माने गए। भिक्षा मांगने के लिए भटकते हुए, वे प्रत्येक घर में प्रेममयी ध्यान में लीन हो जाते, उस ध्यान से उठते और उसके बाद ही भिक्षा ग्रहण करते हुए मन में कहते, "इस प्रकार दानदाताओं को बड़ा फल मिलेगा।" अतः वे समर्पित दान के योग्य लोगों में अग्रणी माने गए। इसलिए भगवान ने कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों, जो एकांतवास में रहते हैं, उनमें श्रेष्ठ भिक्षु सुभूति हैं; दान के योग्य भिक्षुओं में भी श्रेष्ठ सुभूति हैं।" इस प्रकार अरहंतशिप में स्थापित होकर और स्वयं सिद्ध सिद्धियों के शिखर को प्राप्त करके, इस महान थेरेप ने संसार में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की और अनेक लोगों के कल्याण के लिए विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए अंततः राजगृह पहुंचे।

राजा बिम्बिसार ने थेरा के आगमन के बारे में सुना, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय महाराज! आप यहीं निवास करें," और यह कहते हुए विदा हुए कि "मैं थेरा के लिए एक निवास स्थान बनवाऊंगा" और इस बात को भूल गए। बैठने और सोने के लिए कोई जगह न मिलने पर उन्होंने खुले में समय बिताया। थेरा की शक्ति के कारण वर्षा नहीं हुई। वर्षा न होने से व्याकुल होकर लोगों ने राजमहल के द्वार पर जयजयकार की। राजा ने यह जानने के लिए छानबीन की कि वास्तव में वर्षा क्यों नहीं हुई, और उन्हें लगा कि यह थेरा के खुले में निवास करने के कारण ही होगा। थेरा के लिए एक पत्तियाँ-पत्ता बनवाकर राजा ने कहा, "आदरणीय महाराज! आप इस पत्तियाँ-पत्ता में निवास करें," और थेरा को प्रणाम करके विदा हुए। थेरा कुटिया में प्रवेश करके घास पर पालथी मारकर बैठ गए। तभी बूंद-बूंद करके बारिश होने लगी। बारिश एक समान (या उचित) बौछार नहीं थी। तब थेरा ने संसार में बारिश की कमी के खतरे को दूर करने की इच्छा से एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने आंतरिक और बाह्य आधार (वत्थुक) के खतरे से मुक्त होने की बात स्वीकार की।

1. "मेरी झोपड़ी की छत है; मैं खुश हूँ, सुरक्षित हूँ।"

हवा से; हे वर्षा! अपनी इच्छा अनुसार वर्षा करो। मेरा मन शांत और पूर्णतः मुक्त है: मैं अपनी बुराइयों को जलाते हुए रहता हूँ। हे वर्षा! अपनी वर्षा बरसाओ।

वहाँ 'चन्ना' शब्द के संदर्भ में, यह व्याकरणिक शब्द 'पतिरूप' (उचित) के अर्थ में ऐसे संदर्भों में प्रयोग होता है जैसे "चन्ना सा कुमारीका इमस्सा कुमारदस्सा (इस युवक के लिए वह कन्या उचित है);" "नच्चन्नं नप्पतिरूपं (उचित नहीं)," इत्यादि। यह क्रिया विशेषण और संख्या भेद के अर्थ में ऐसे संदर्भों में प्रयोग होता है जैसे: "चन्नं त्वेव फाग्गुणा फस्सायतननं (वसंत ऋतु में संपर्क के छह अंग);" इत्यादि। यह पकड़ (या घनी झाड़ियों) के अर्थ में ऐसे संदर्भों में प्रयोग होता है जैसे: "चन्नमतिवस्सति, विवतं नातिवस्सति (यह वनस्पतियों के पत्तों पर वर्षा करता है, लेकिन खुली या नंगी भूमि पर नहीं)," इत्यादि। इसका अर्थ है ऊपरी और निचले वस्त्र, जैसे कि "क्याहं तेनच्चन्नो पि करिसामि (मैं इससे अपने आप को सजाऊँगा)", इत्यादि। इसका अर्थ है पदनाम (पञ्ञत्ति), जैसे कि "आयस्मा चन्नो अनाचारं आचरति (आदरणीय चन्ना बुरी आदत में लिप्त है)", इत्यादि। इसका अर्थ है घास या सरकंडे जैसी सामग्री से छत होना, जैसे कि "सब्बच्चन्नं सब्बपरिच्चन्नं (पूरी तरह से छत वाला, चारों ओर से पूरी तरह से छत वाला)", और "चन्ना कुटि, आहितो गिनी (मेरा) घर छत से ढका हुआ है और आग जलाई गई है", इत्यादि। यहाँ भी, ध्यान देने योग्य है कि छत घास आदि से ढकी हुई है; इसलिए, छत से ढकी हुई है। घास या पत्तों से इस प्रकार छत बनाई गई हो कि बारिश होने पर पानी का रिसाव न हो और बारिश का पानी घर के अंदर न गिरे; इस प्रकार छत को ठीक से बनाया गया है; यही अर्थ है।

व्याकरणिक शब्द: 'me' का प्रयोग कर्ता कारक के रूप में ऐसे संदर्भों में हुआ है जैसे "kicchena me adhikataṃ, halaṃdānipakāsituṃ (मेरे द्वारा कठिनाई से प्राप्त किया गया है; मुझे क्यों सिखाना चाहिए?) इत्यादि; मेरे द्वारा; इस प्रकार, इसका अर्थ है।" यह संबंध कारक (संपदान) के अर्थ में ऐसे संदर्भों में आया है जैसे: "tassa me bhante Bhagavā saṃkhittena dhammaṃ desetu (आदरणीय महोदय! भगवान बुद्ध सत्य (धम्म) का उपदेश दें), संक्षेप में मुझे;" इत्यादि; मुझे; इस प्रकार, इसका अर्थ है। यह

अधिकार कारक (सामि) के अर्थ में ऐसे संदर्भों में आया है जैसे: “Pubbe va me bhikkhave samnbodhā anabhisambuddhassa bodhisattasseva sato (हे भिक्षुओं! लेकिन मेरे आत्म-जागृत बुद्धत्व के समक्ष, जब मैं तो केवल बोधिसत्व था, अभी आत्म-जागृत बुद्ध नहीं बना था)," इत्यादि। यहाँ भी इसे स्वामित्व (या स्वामी) के संदर्भ में देखा जाना चाहिए; मेरा; इस प्रकार, इसका अर्थ है। क्योंकि जीवन के उतार-चढ़ावों (लोकधम्म) से दूषित होने जैसी कोई चीज नहीं है, यद्यपि दोषमुक्त (अरहंतों) के लिए कुछ भी संजोने योग्य नहीं है, फिर भी, सांसारिक परंपरा के अनुसार, उनके लिए भी "अहं मम (मैं, मेरा)" जैसा प्रयोग होता है। इसलिए भगवान ने ऐसा कहा: "किंति मे सावका धम्मदायादा भयय्युं, ***पृष्ठ 53 आमिसदायादा (तो फिर मेरे शिष्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी (धम्मदायादा) कैसे बनेंगे, भौतिक उत्तराधिकारी (आमिसदायादा) नहीं?

हालांकि, कुटिका शब्द का अर्थ इस प्रकार समझा जाना चाहिए: - इसे माता का गर्भ, नीच शरीर, छत की घास आदि के साथ-साथ उचित आश्रय (पटिसया) भी कहा जाता है। इसी प्रकार, वास्तव में:—

“तुम कहते हो कि माँ कुटिका है;

आप कहते हैं कि पत्नी घोंसला (कुलावक) है;

आप कहते हैं कि पुत्र उत्तराधिकार होंगे

पीढ़ी (संतानका) और आप कहते हैं

मेरे लिए वह लालसा (तण्हा) है

बंधन (बंधन)।"

इन ग्रंथों में और इसी तरह अन्य ग्रंथों में मां के गर्भ को “कुटिका (आश्रय या झोपड़ी)” के रूप में वर्णित किया गया है।

“कंकाल और शरीर (कुटिका) में

हड्डियों को, ऊपर से सिला (या ऊपर से जोड़ा) गया

शरीर में मौजूद मांस और नसें, जिन्हें आप संजोते हैं

दूसरों का; तुम पर धिक्कार हो क्योंकि यह

बदबू से भरा हुआ।

और इसी प्रकार, कुटिका शब्द का अर्थ है वह घृणित शरीर जो सिर के बालों आदि का संग्रह बन गया है। यह उचित आश्रय (पतिसय) है, जो घास से ढका होता है, जैसे कि: “कस्सपस्सा भगवतो भगिनीकुटि ओवस्सति (भगवान कस्सप की बहन की कुटिया या घर बारिश से भीगता है) (ओवस्सति);” “कुटिनामा उल्लित्ता वा होति अवलित्ता वा (घर या कुटिया, अर्थात्, या तो ऊपर से काँच से ढकी है या नीचे से काँच से ढकी है)।” यहाँ भी, क्योंकि यहाँ पत्तों की कुटिया का उल्लेख है, उस घर (या कुटिया) को भी समझना चाहिए। वास्तव में कुटिया (कुटि) भी कुटिका (आश्रय) है; एक कम ज्ञात कुटिया को भी “कुटिका (कुटिया-आश्रय)” कहा गया है।

व्याकरणिक शब्द सुखा का प्रयोग सुखद भाव से जुड़े संदर्भों में इस प्रकार किया गया है: “विपित्थिकत्वान सुखं दुःखं च, पुब्बेवा च सोमनस्सा डोमनस्सं (सुख और दुःख को पीछे छोड़ते हुए, यहां तक कि प्रसन्नता और उदासी से पहले भी),” इत्यादि। सुख के मूल भाव में इसका प्रयोग इस प्रकार किया गया है: “सुखो बुद्धानामुप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना (बुद्ध का प्रकट होना सुखद है, अच्छे धर्म का उपदेश सुखद है),” इत्यादि। सुख के कारण भाव में इसका प्रयोग इस प्रकार किया गया है: “सुखस्सेतं भिक्खवे अधिवचनं यदिदं पुण्यानि (हे भिक्षुओं! यही सुख का नाम है, ये पुण्य कर्म),” इत्यादि। यह आनंद के अर्थ में है, जैसे कि:- "यस्मा च महली! क्योंकि वास्तव में, भौतिक रूप आनंद से प्रभावित और आनंद से अभिभूत आनंद है," इत्यादि। यह इस तरह की प्रतियोगिताओं में पीड़ा (अव्यापज्झा) से मुक्ति के अर्थ में है: "दिठधम्म सुखविहार एते कुंडा अरियासा विनाय (हे कुंडा! ये भिक्षु (भिक्षु) वर्तमान में इस तत्काल अस्तित्व (दिठधम्म) में,

कुलीनों (अरिया) के अनुशासन (विनय) में आराम से रह रहे हैं," और इसी तरह। यह अमर आनंद की भावना में है निब्बाण, ऐसे संदर्भों में: "निब्बाणं परमं सुखं (निब्बाण पूर्ण या सर्वोत्तम सुख है)," और इसी तरह यह (पक्काया) खुशी पर निर्भर स्थान के अर्थ में है, जैसे: "यावांचिदं भिक्खवे न सुकारं अक्खानेन पापुणितुं।" यावा सुखा सग्गा (हे भिक्षुओं! जब तक कथावाचन (अक्खाना) द्वारा स्वर्गिक आनंद की प्राप्ति आसान न हो जाए), तब तक ऐसा ही रहेगा," इत्यादि। ऐसे संदर्भों में इसका अर्थ वांछनीय (इत्त) है, जैसे "सोवग्गिकं सुखम्पाकं सग्गसंवत्तनिकं (स्वर्ग से जुड़ा सुखद परिणाम, स्वर्ग के लिए सहायक) प्रिय (पिया) और हृदय को प्रिय (मनाप); यही अर्थ है। यहाँ भी, इसे वांछनीय या सुख पर निर्भर होने के अर्थ में देखा जाना चाहिए। वास्तव में, वह कुटिया अच्छी तरह से निर्मित थी, इसलिए वह निवासी के हृदय को आंतरिक रूप से प्रिय हो गई, और निवास के लिए आरामदायक होने के कारण इसे "सुख (सुख)" कहा गया है। इसी प्रकार, न अधिक ठंड और न अधिक गर्मी होने के कारण, मौसमी सुख (उत्सुख) की समृद्धि से जुड़े होने के कारण, यह सुख का स्रोत (पच्चय) है। शारीरिक और मानसिक सुख।

निवारा का अर्थ है हवा रहित; हवा से कोई खतरा नहीं, क्योंकि खिड़कियों को कुंडी लगे दरवाजों से बंद रखा जा सकता है; यही इसका अर्थ है। यह कुटिया की सुखमय स्थिति का स्पष्टीकरण है। वास्तव में, हवा वाले मठ में मौसम के अनुकूल वातावरण नहीं मिल सकता; यह अनुकूल जलवायु हवा रहित मठ में ही प्राप्त होती है। वस्सा का अर्थ है: बारिश करो; कृपया उचित वर्षा प्रदान करो। देव: व्याकरणिक रूप से यह शब्द देव, राजसी योद्धा वंश के पारंपरिक (सम्मुति) देवता (देव) के अर्थ में आया है, जैसे कि: “इमानि ते देव चतुरासीति नगरसहस्सानि कुसवती राजधानिपमुखानि एत्थ देव चंदं जनेहि जीविते अपेक्खा (महाराज! कुसवती राजनगर के नेतृत्व में ये चौरासी हजार नगर आपके हैं; महाराज! कृपया लोगों की इच्छा और उनके जीवन पर विचार करें),” इत्यादि। यह उन दिव्य प्राणियों के अर्थ में भी आया है जो दिव्य लोक (उपपत्ति) में पुनर्जन्म लेते हैं, जैसे कि: “चारुमहाफजिका देवा वण्णवन्तो सुखबहुला (चार महान दिव्य राजा सुंदर रंग और प्रचुर सुख से युक्त हैं), इत्यादि। आगे। यह शुद्धतम दिव्य सत्ता के अर्थ में है, जैसे: “तस्स देवतिदेवस्स, सासनं सब्बदास्सिनो (उस परम दिव्य सत्ता का विधान, जो सब कुछ देखता है);” इत्यादि। वास्तव में, जब भगवान बुद्ध की स्थिति को परम दिव्यता, शुद्धतम दिव्य सत्ता के रूप में बताया गया है, तो इसका अर्थ है कि यह बात दूसरों के बारे में भी कही गई है। यह आकाश के अर्थ में है, जैसे “विद्धे विगत वलहके देवे (बादल रहित निर्मल आकाश)”, इत्यादि। यह वर्षा-बादल या वर्षा-बहुलता के अर्थ में है, जैसे: “देवो च कालेना कालं न सम्मा धारं अनुप्पवेच्छति (ऋतु के उचित समय पर भी वर्षा पर्याप्त बौछार नहीं देती)”, इत्यादि। यहाँ भी, यह होना चाहिए। इसे वर्षा-बादल या वर्षा-फुहार के रूप में देखा जाता है। वास्तव में, वर्षा के रूप में, थेरा उन्हें अपने आदेश देने के लिए संबोधित करते हैं। यथा सुखं का अर्थ है इच्छा और प्रसन्नता (रुचि) के अनुसार। थेरा कहते हैं: "तुम्हारी वर्षा से मुझे कोई बाहरी खतरा नहीं है; इसलिए, तुम अपनी इच्छा अनुसार जितनी चाहो उतनी वर्षा करो," इस प्रकार, वे उन प्राणियों का उत्थान करते हैं जिनकी आजीविका वर्षा पर निर्भर है।

अब, आंतरिक खतरे की अनुपस्थिति को दर्शाने के लिए उन्होंने चित्तं (मन) से शुरू करते हुए कहा। वहाँ, चित्तं मे सुसमाहितं का अर्थ है कि मेरा मन एकाग्रचित्त होकर मानसिक चिंतन (अरम्मण) में प्रसन्न हुआ है, लेकिन उचित रूप से, अत्यंत सही ढंग से और अच्छी तरह से; वह भी वास्तव में, बाधाओं (निवरण) आदि के ध्यान (विक्खम्भन) द्वारा बचने की हद तक नहीं; फिर भी, वास्तव में, इधर-उधर के विभिन्न कर्मों के संग्रह जैसे सभी बंधनों (संयोजन) से मुक्ति और सभी भ्रष्ट कर्मों (किलेसा) से भेद के साथ मुक्ति है; मैंने उन्हें जड़ से उखाड़ फेंककर (समुच्छेदपथाना) और पूर्ण शांति प्राप्त करके (पणिपसद्धि) उन्हें त्याग दिया; यही अर्थ है। आतापी का अर्थ परिश्रम से युक्त होना है; मैं अपने परिश्रम से भली-भांति आरंभ करते हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का प्रयास करके फल प्राप्ति के उद्देश्य से वर्तमान सुख का जीवन (दित्तधम्मसुधा) जीता हूँ; मैं अपने शरीर को स्वर्गिक जीवन के समान सुख से युक्त करता हूँ, परन्तु दुराचार (किलेसा) को दूर करने के उद्देश्य से नहीं, क्योंकि ऐसा कोई पदार्थ है ही नहीं जिसे त्यागा जा सके; यही अभिप्राय है। इस प्रकार दर्शाने के लिए: “जिस प्रकार, हे वर्षा! बाह्य खतरे के अभाव में मैंने तुम्हें वर्षा करने के लिए प्रेरित किया, उसी प्रकार आंतरिक खतरे के अभाव में भी ऐसा करो, उसने फिर से कहा: “वस्सा देवा (हे वर्षा, वर्षा करो)।”

एक अन्य विधि:— चन्ना का अर्थ है छत से ढका हुआ, बंद किया हुआ। कुटिका का अर्थ है शरीर (अत्तभाव)। वास्तव में, यह शब्द शरीर (काया) के रूप में ऐसे संदर्भों में आया है जैसे:— “अनेकावयवस्सा समुदाय अविज्जानीवरणस्सा भिक्खवे पुग्गलस्सा तन्हासंयुत्तस्स अयंचेव कायो समुदागतो बहिद्धा च नामरूपं (हे भिक्षुओं! यह शरीर (काया) तब उत्पन्न हुआ है जब किसी व्यक्ति के अज्ञान (अविज्जा) की अनेक बाधाओं का सूक्ष्म अंश तृष्णा (तन्हा) से भली-भांति जुड़ जाता है, बाहर भी नाम और रूप (नामरूप) है,” इत्यादि। इसका प्रयोग नाव (नावा) के रूप में ऐसे संदर्भों में हुआ है जैसे “Siñce bhikkhu(monk) imaṃ nāvaṃ, sittā te lahumessati (हे भिक्षु! इस नाव से पानी निकाल दो, जब तुम पानी निकालोगे तो यह हल्की हो जाएगी), इत्यादि। इसका प्रयोग घर या मकान (गहा) के रूप में ऐसे संदर्भों में हुआ है जैसे “Gahakāraka! Diṭṭhosi; "गहकूतं विसंखतं (हे गृह निर्माता! तुम मिल गए; गृह का मुख्य स्तंभ नष्ट हो गया (विसंखत)," इत्यादि। यह गुफा (गुहा) के रूप में ऐसे संदर्भों में आया है जैसे: "सत्तो गुहायं बहुनाभिचन्नो, तित्तं नरो मोहनास्मिं पवाळ्हो

(एक प्राणी, जो विशेष रूप से गुफा में बहुत ढका हुआ हो, जहाँ खड़ा होकर मनुष्य कामुक सुखों के आकर्षण में बह जाता है)" इत्यादि। यह रथ (रथ) के रूप में ऐसे संदर्भों में आया है जैसे "नेलांको सेतापच्छादो, एकारो वत्तति रथो (दोषरहित भागों से बना, सफेद आवरण वाला, एक तीली वाला रथ)" इत्यादि। यह घर (गेह) के रूप में ऐसे संदर्भों में आया है। जैसे "पुना गेहं न काहसी (तुम फिर कभी घर नहीं बनाओगे)" इत्यादि। यह "लेकिन (कुटी)" के रूप में भी आया है, जैसे "विवटा कुटी निब्बुतो गिनि (मेरी झोपड़ी छतविहीन है, मेरी आग बुझ गई है)", इत्यादि। इसलिए, यहाँ भी इसे "कुटीका (झोपड़ी)" कहा गया है। वास्तव में, लकड़ी आदि जैसी सामग्री पर निर्भर झोपड़ी (कुटीका) के समान शरीर (अत्तभाव) को घर का नाम मिला है, और इसे "कुटीका (झोपड़ी)" कहा गया है। यह नाम पृथ्वी (पथवी) आदि के तत्वों (धातु), स्पर्श (फस्स) आदि, संघीत (हड्डियाँ) आदि के कारण मिला है, क्योंकि यह लकड़ी (अट्ठी) आदि से बना है। चित्तमक्कट (बंदरनुमा मन) का निवास स्थान। जैसा कि बुद्ध ने कहा है:—

"यह तो केवल कंकाल का शरीर (कुटी) है।"

हड्डियाँ; इस प्रकार, बंदर के दिमाग का निवास स्थान।

बंदर जैसी मानसिकता शरीर से बाहर निकल गई है

(कुटिका) पाँच दरवाजों के माध्यम से; बंदर-

मन दरवाजे के आर-पार या उसके ऊपर से होकर हर जगह भटकता है।

जिस पर वह बार-बार प्रहार करता है।

थेरा की इस शरीर-शौचालय के बारे में कहा गया है कि यह "छत से ढकी" है, क्योंकि यह तीन, छह और आठ खुले दरवाजों के माध्यम से ज्ञान (पञ्ञा) द्वारा अच्छी तरह से नियंत्रित है, जिससे कामवासना (राग) आदि के रिसाव को रोका जा सकता है। इसलिए, भगवान बुद्ध ने कहा: "मैं कानों के संयम की बात करता हूँ: इन्हें ज्ञान (पञ्ञा) द्वारा बंद (या ढका) जाना चाहिए।" इस प्रकार ढके रहने से, दुःख (दुक्खा) और दुराचार (किलेसा) का अभाव होता है और निराकार (निरामिसा) सुख प्राप्त होता है, इसलिए यह सुख (सुख) है, क्योंकि सुख प्राप्त हो चुका है। परिणामस्वरूप, यहाँ तक कि हवा (निवात) भी नहीं चलती, क्योंकि विनम्रतापूर्वक व्यवहार करने से अहंकार (निहत), नशा (मद), हठ (ताम्भ) और उग्रता (या झगड़ा, सारम्भ) को अपमानित (निहत) कर दिया गया है। यह भी विधि है: यह दिखाने के लिए कि: "केवल अवरोधक आवरण (संवरण) से सभी भ्रष्ट कर्मों (धर्म) का अंत (सिद्ध) नहीं होता; तो वास्तव में, प्रमुख श्रेष्ठ मार्ग (मार्ग) की एकाग्रता (समाधि) से, और उचित रूप से शांत मन से तथा सभी प्रकार के बंधनों (संयोजन) से स्पष्ट रूप से मुक्त मन से, प्रमुख श्रेष्ठ मार्ग (मार्ग) के ज्ञान (पञ्ञा) के माध्यम से," उन्होंने इस प्रकार कहा: "चित्तं मे सुसमाहितं विमुत्तं (मेरा मन शांत और स्पष्ट रूप से मुक्त है)। इस प्रकार भी, "इदानाहं कटकरणीययो (अब, मैं वह हूँ जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए;) इस प्रकार, मैं निष्क्रिय या आराम से (अपोसुक्क) नहीं जी रहा हूँ; तो वास्तव में, मैं जी रहा हूँ मैं उत्साहपूर्वक, आतापी विहारमि (मैं ब्रह्मविहार में एक घर से दूसरे घर जाकर, भिक्षा मांगते हुए भी, जगत और दिव्य जगत के कल्याण और सुख को उचित रूप से बढ़ावा देने में ऊर्जावान होकर अपना पुण्यमय जीवन व्यतीत करता हूँ। इसलिए, हे वर्षा देवता, मुझे अपना प्रिय बनाने की इच्छा से और वर्षाजल पर निर्भर प्राणियों के प्रति सहानुभूति से, आप भी पर्याप्त वर्षा करें; अतः, यहाँ अर्थ को इसी प्रकार समझना चाहिए।)

यहां भी थेरा अपने स्वयं के परम नैतिक-उपदेश-अनुशासन (अधिसीलसिक्खा) को लौकिक और पारलौकिक (लोकिय-लोकोत्तर) प्रकारों के रूप में प्रदर्शित करते हैं, इस प्रकार: "चन्ना मे कुटिका सुखा निवाता (मेरी देह-कुटिया अच्छी तरह से ढकी हुई, सुखी और हवा रहित है)।" "चित्तं मे सुसमाहितं (मेरा मन शांत है)" जैसे कथन से वे अपनी अतिमानसिक अनुशासन (अधिचित्तसिक्खा) प्रदर्शित करते हैं। "विमुत्तं (स्पष्ट रूप से मुक्त)" अभिव्यक्ति से वे अपनी अतिमानसिक अनुशासन (अधिपञ्ञा) प्रदर्शित करते हैं। "आतापी विहारमि (मैं सक्रिय रूप से जीता हूँ)" अभिव्यक्ति से वे अपने वर्तमान सुखी जीवन (दित्तधम्म) को प्रदर्शित करते हैं। दूसरे शब्दों में, "चन्ना मे कुटिका सुखनिवाता (मेरा शरीर ढका हुआ, सुखी और वायुहीन है)" से वे लक्षणहीन जीवन (अनिमित्त) प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि यह क्षय (किलेसा) की वर्षा से बचाव के लिए बंद द्वार (पिधान मुख) के माध्यम से स्थायित्व आदि जैसे लक्षणों को दूर करने का प्रकाश उत्पन्न करता है। इस प्रकार, अर्थात्: "चित्तं मे सुसमाहितं (मेरा मन शांत है)," से वे सभी इच्छाओं से मुक्त (अपणिहित) जीवन को दर्शाते हैं। इस प्रकार, अर्थात्, "विमुत्तं (स्पष्ट रूप से मुक्त)" से वे शून्य (सुञ्ञत) जीवन को दर्शाते हैं। इस प्रकार, अर्थात्: "आतापी विहारमि (मैं उत्साही होकर जीता हूँ)," से वे उन तीन जन्मों की प्राप्ति के साधन को दर्शाते हैं। वैकल्पिक रूप से, पहले द्वारा वे घृणा (दोष) का त्याग दर्शाते हैं; दूसरे द्वारा काम (राग) का त्याग; तीसरे द्वारा भ्रम का त्याग। इसी प्रकार, दूसरे द्वारा या पहले और दूसरे दोनों द्वारा वे धर्मविहार (धार्मिक जीवन) की समृद्धि दर्शाते हैं; तीसरे द्वारा स्पष्ट मुक्ति की समृद्धि। इस प्रकार, अर्थात्: "ātāpī viharāmi (मैं उत्साहपूर्वक जीता

हूँ)” वह दूसरों के कल्याण के लिए उचित अभ्यास (paṭipatti) में आलसी न होने की स्थिति को दर्शाता है; इसलिए, इसे देखा जाना चाहिए।

अत:, जैसा कि इस श्लोक के माध्यम से धर्मी जीवन (धम्मविहार) आदि को दर्शाया गया है, जैसा कि “यथा नाम (जैसा नाम दिया गया है)” से शुरू होने वाले श्लोक में कहा गया है, नाम और वंश में उन नामों को दर्शाने के लिए जिन्हें नहीं दर्शाया गया है, इस प्रकार कहा गया है: -“इत्थं सुदं” इत्यादि। वास्तव में, मैं उन थेरों को नाम से दर्शाऊंगा जो केवल नामों से ही सुप्रसिद्ध हैं; उन थेरों को वंश से दर्शाऊंगा जो केवल वंश से ही स्पष्ट हैं; उन थेरों को जो दोनों रूपों में सुप्रसिद्ध हैं, मैं दोनों रूपों से दर्शाऊंगा। यद्यपि, यह थेरा विशेष रूप से नाम से चिह्नित है, वंश से नहीं; अत:, इसे इस प्रकार कहा गया है: “इट्ठंसुदं आयस्मा सुभूति (इस स्वरूप में, यह पूजनीय सुभूति)। यहाँ, इट्ठं अभिव्यक्ति का अर्थ है यह विशेषता; इस प्रकार; यही अर्थ है। सुदं अभिव्यक्ति में सु और इदं शामिल हैं; संधि के कारण स्वर 'इ' का लोप हो गया है। सु, अर्थात्, एक अविभक्ति कण (निपात) है; यह श्लोक; यही व्याकरणिक संरचना है। आयस्मा अभिव्यक्ति का अर्थ है मधुरता से बोला गया शब्द; यह आदरपूर्ण सम्मान का शब्द है। सुभूति अभिव्यक्ति नाम की घोषणा है। वास्तव में, वह न केवल अपनी शारीरिक समृद्धि के कारण बल्कि अपने गुणों की समृद्धि के कारण भी सुंदर और मनमोहक हैं। इस प्रकार, राजसी वैभव से संपन्न होने के कारण। उत्कृष्ट शारीरिक बनावट और नैतिक उपदेशों जैसी समृद्धि की भव्यता से परिपूर्ण होने के कारण उन्हें सुभूति के नाम से जाना जाता है। वे थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) हैं क्योंकि वे नैतिक उपदेशों के सार जैसे स्थिर गुणों से जुड़े हैं। 'अभासित्त' शब्द का अर्थ है: उन्होंने बोला। लेकिन ये महान थेरा अपने गुणों को क्यों प्रकट करते हैं? इस लंबी साधना के माध्यम से उन्होंने अत्यंत उत्कृष्ट, पूर्णतः गहन शांति प्राप्त की है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुई थी। प्राप्त पारलौकिक सत्य (धम्म) पर चिंतन करने के बाद, जिन श्रेष्ठों की आवश्यकताएँ बहुत कम हैं, वे गंभीर उच्चारण के माध्यम से, उत्साह की शक्ति (या गति) को उचित रूप से उत्तेजित करते हुए, और संसार से बाहर निकलने का साधन बनने वाली व्यवस्था (शासन) की स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपने गुणों को प्रकट करते हैं। जगत के रक्षक अपने गुणों को इस प्रकार प्रकट करते हैं: “हे भिक्षुओं! तथागत दस प्रकार की शक्तियों से संपन्न हैं और चार प्रकार के विश्वासों से आत्मविश्वासी हैं,” इत्यादि, ज्ञानोदय या जागृति (बोधनेय्या) को प्रेरित करने (या सुगम बनाने) की उनकी प्रवृत्ति (या झुकाव) के माध्यम से; इस प्रकार, इस थेरा के अरहंत पद (अञ्ञा) की भविष्यवाणी पर श्लोक है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सुभूति का

थेरागाथा पर टीका

परमत्थदीपनी के नाम से जाना जाता है

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(2):कोथिता द एल्डर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (2) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
2. कोट्ठिता (वृद्ध)
बुद्ध युग [1] में सावत्थी में ब्राह्मणों (पुजारियों) के एक अत्यंत समृद्ध कुल में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम कोट्ठित रखा गया। [2] वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और ब्राह्मण (पुजारी) के सभी गुणों में निपुण हो गए थे। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को धम्म के मार्ग का उपदेश देते हुए सुना, आस्था प्राप्त की और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। भिक्षु दीक्षा के दिन से ही उन्होंने अंतर्दृष्टि का अभ्यास करते हुए अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया और धम्म के रूप और अर्थ पर पूर्ण महारत हासिल की। [3] इस विषय में निपुण होने के कारण [7] वे महान थेरों और दस शक्तियों वाले [4] से इनके बारे में प्रश्न किया करते थे। इसी कारण उन्हें इस प्रकार निपुण

लोगों में श्रेष्ठ माना जाता था। तब भगवान (बुद्ध) ने वेदल्ल-सूत्र में अपनी उपलब्धियों को प्रदर्शित करते हुए उन्हें अंतर्दृष्टि में निपुण लोगों में प्रमुख स्थान दिया। [5]

बाद में एक अवसर पर, उन्होंने निर्वाण के आनंद को महसूस करते हुए, इस श्लोक में कहा:

[2] उपसंतो उपरतो मंतभानि अनुद्धतो॥
धुनाति पापे धम्मे दुमपत्तन वा मालुतो' ति.॥ ॥

इत्थं सुदां अयस्मा महाकोष्ठितो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.॥ ॥

[2] जो कोई भी, शांत और स्थिर, संसार से विरक्त,
बुद्धिमान वाक्य बोल सकता है, [6] बिना अहंकार के ज्ञान के साथ।
शांत - उसने शरारती चीजों को ऐसे झटक दिया जैसे वे हवा के देवता द्वारा उड़ाई गई
जंगल की पत्तियां हों [7] ।

इस प्रकार पूज्य भिक्षु महन-कोत्थिता ने अपना वचन (गाथा) कहा।

[1] इमास्मिं बुद्धुप्पादे। शाब्दिक अर्थ है, 'युग' नहीं, बल्कि उदय, आगमन। हालाँकि, इस अवधि में महान ताचेर का संपूर्ण जीवन, अर्थात् अंतिम जीवन शामिल है; इसलिए केवल 'युग' ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। यह वाक्यांश कालो, समायो, 'समय' के साथ वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जाता है।

[2] उच्चारण कोट्टहिता। यह नाम कोठिका और कोठिका के रूप में भी दर्ज है। थेरा स्पष्ट रूप से विनय और सुत्तंता में 'महान बुजुर्गों' में शामिल है, जो कई सुत्तों में वार्ताकार है - उदाहरण के लिए, मज्झिमा निकाय, i। 292; सयुत्ता निक., ii. 112; आंग. निक., मैं. 24, आदि। विनय ग्रंथ देखें, 2। 112, 317; iii. 359.

[3] इस तकनीकी वाक्यांश पर, सिस्टर्स, पृष्ठ 17, नोट 1 देखें।

[4] बुद्ध की एक उपाधि, जो विद्वतापूर्ण रचनाओं में अक्सर पाई जाती है। यह पहले अरहंतों (प्रबुद्ध लोगों) पर समान रूप से लागू होती थी। तुलना करें अंग., ii. 63; सांघ , ii. 28. शक्तियों का वर्णन मज्झ., i. 69-71 में किया गया है।

[5] अंग., i. 23; मज्झ., मैं. 232.

[6] मंत या मंत्र, उनके ब्राह्मण (पुजारी) या वैदिक प्रशिक्षण का संकेत। अगले दो वाक्यांश अनुद्धतो शब्द का अनुवाद हैं , जिसे टीका उद्दच्च, उत्तेजना से जोड़ती है।

[7] मालुतो, हवा, संभवतः इस तिथि पर वैदिक मारुतों, उर पवन-देवताओं का सुझाव देना बंद कर दिया होगा। तुलना करें सिस्टर्स, पृ. 150.

1.1-2[2] श्लोक पर टिप्पणी

महाकोट्ठिका थेरा
उपसन्तो से शुरू होने वाले श्लोक महाकोट्ठिका के श्लोक हैं। उस थेरा का उद्गम क्या है? यह थेरा भी, भगवान पद्ममुत्तरा के समय, हंसवती नगर में एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए थे। अपने माता-पिता के देहांत के बाद, जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने अपनी जागीर स्थापित की और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, एक दिन देखा कि जब भगवान पद्ममुत्तरा धर्म का उपदेश दे रहे थे, तो हंसवती नगर के निवासी सुगंधित इत्र और फूलों की माला लिए हुए, बुद्ध, धर्म और संघ के स्थान की ओर नीचे उतरते, अभिसरित होते और ढलान बनाते हुए जा रहे थे। वे भी लोगों की विशाल भीड़ के साथ उसी ओर चल पड़े। गुरु को विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों (पटिसंभिदा) में एक भिक्षु को सबसे आगे बिठाते देख, उन्होंने मन ही मन सोचा: "कहा जाता है कि यह विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों में सबसे आगे है; यह कितना अद्भुत होगा यदि मैं भी बुद्ध के युग में इस भिक्षु की तरह विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों में

सबसे आगे हो जाऊं।" गुरु द्वारा धर्म की शिक्षा पूरी होने पर जब सभी श्रोता उठ खड़े हुए, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें इस प्रकार आमंत्रित किया: "आदरणीय महोदय! कृपया कल मेरा भिक्षापात्र स्वीकार कीजिए।" गुरु ने स्वीकृति दे दी। उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की, अपने निवास स्थान पर लौट आए, बुद्ध और उनके भिक्षुओं के लिए बैठने की व्यवस्था करवाई, उसे सुगंधित मालाओं, पुष्पमालाओं आदि से सजाया, रात भर पौष्टिक और पौष्टिक भोजन तैयार करवाया, और उस रात के बीतने के साथ ही उन्होंने भगवान बुद्ध और उनके एक लाख भिक्षुओं के दल को अपने निवास स्थान पर सुगंधित जौ (साली-चावल का भोजन) और विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट सूप और करी से भोजन कराया, और भोजन समाप्त होने पर मन ही मन सोचा: "जिस पद की मैंने कामना की है, वह वास्तव में महान है; लेकिन केवल एक दिन दान करने के बाद उस पद के लिए प्रार्थना करना मुझे उचित नहीं लगता; मैं लगातार सात दिनों तक दान करने के बाद ही उस पद के लिए अपनी इच्छा प्रकट करूँगा।" उसी प्रकार, उन्होंने सात दिनों तक व्यापक दान दिया और भोजन वितरण के पूर्ण होने पर, उन्होंने अपने वस्त्रों का भंडार (दुस्सा) खुलवाया, और तीन वस्त्रों के उत्तम समुच्चय के लिए पर्याप्त महीन वस्त्र का टुकड़ा बुद्ध के चरणों में रखा, एक लाख भिक्षुओं को तीन-तीन वस्त्रों का एक-एक समुच्चय भेंट किया, तथागत के पास जाकर इस प्रकार कहा: "आदरणीय महोदय! सात दिन पहले आपने जिस भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया था, मैं भी भविष्य में प्रकट होने वाले बुद्ध के युग में भिक्षु बनकर विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वाले उस भिक्षु के समान बनना चाहता/चाहती हूँ।"उन्होंने गुरु के चरणों में लेटकर अपनी मनोकामना व्यक्त की। उनकी मनोकामना की पूर्ति की शर्त जानने पर गुरु ने भविष्यवाणी की: "आने वाले समय में, एक लाख युगों (कप्पा) के अंतिम छोर पर, गौतम बुद्ध प्रकट होंगे; उनके विधान में आपकी मनोकामना पूरी होगी। यह बात अपदान में भी इस प्रकार कही गई है:

"पदुमुत्तरा नाम के विजेता,

ऋषि, अंतर्दृष्टि के स्वामी (चक्खु)

दुनिया में एक लाख का उदय हुआ

आज से युगों (कप्पा) पहले।

सलाहकार, निर्देश देने में चतुर,

(सभी जीवित प्राणियों का मार्गदर्शक तारा);

बुद्ध अपनी शिक्षा में निपुण थे, जिससे कई लोगों को लाभ हुआ।

एक आदमी (संसार के सागर को) पार करता है।

वे सहानुभूति रखने वाले, दयालु और

सभी प्राणियों के कल्याण का साधक;

उन्होंने सभी विधर्मियों को उचित स्थान पर रखा, जो

वह पाँच नैतिक उपदेशों के माध्यम से उन तक पहुँच चुके थे।

इस प्रकार, वह अशांति से मुक्त थे।

पूरी तरह से अनुपस्थित (या खाली) होना

विधर्मी; उसने अरहंतों के साथ विविधतापूर्ण व्यवहार किया।

जो अपनी शक्ति के स्वामी थे और

इस प्रकार का जो अविचलित रहेगा

जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ावों (ताड़ी) द्वारा।

महान ऋषि की लंबाई अट्ठावन क्यूबिट है।

ऊंचाई में; वह कीमती सोने जैसा दिखता है और

बत्तीस उत्कृष्ट गुणों से युक्त है-

tics (lakkhaṇa).

जीवन की एक निश्चित अवधि अवश्य होती है।

एक लाख वर्षों तक चलने वाला, जीवित रहने वाला

उस जीवनकाल के अंत तक, उन्होंने ऐसा होने दिया-

कई लोगों को धोखा दिया।

उस समय मैं हंसवती में था;

ब्राह्मण वेदों का ज्ञाता;

उसने पूरे विश्व के मुखिया से संपर्क किया,

मैंने धम्म की शिक्षा सुनी।

उस अवसर पर, उस नायक ने एक स्थान रखा

शिष्य, जिसका चरागाह (गोकारा) था

बढ़ता हुआ (पभिन) प्रेम (मति), जो था

इस प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान में चतुर

अर्थ (अत्था) पाठ (धम्म) व्युत्पत्ति

(निरुत्ति), और तत्पर उत्तर (पटिभाण) में

सबसे आगे की स्थिति (etadagga); होने पर

इसके बारे में सुनकर, मुझे बहुत अच्छा अनुभव हुआ।

विजेता ने अपने शिष्यों के साथ भोजन किया

सात दिनों के भोजन के साथ।

जागृति के सागर को प्राप्त करने के बाद

ज्ञान, शिष्यों के साथ ढका हुआ

कपड़ों के साथ मैं खुद ही नीचे गिर गया।

मैंने उनके चरणों के तलवे पर बैठकर उस स्थान के लिए प्रार्थना की।

इसके बाद विश्व के मुखिया ने कहा:—

इस उत्कृष्ट व्यक्ति को देखिए, जो झुक रहा है।

मेरे पैरों के तलवों पर, किरणें किसके पास हैं?

कमल के फूल का सार, जल का सार।

यह व्यक्ति एक पद की आकांक्षा रखता है।

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के भिक्षु के माध्यम से

वह पवित्र आस्था, त्याग और

अच्छे धर्म को सुनना; होना-

हर जगह खुश रहो, और भटकते हुए

उनके बार-बार पुनर्जन्म के चक्रों के बारे में

प्रमुख और गौण अस्तित्वों में, यह एक

समय आने पर उसकी दिली इच्छा पूरी हो जाएगी।

आना।

अतः, एक लाख युग (कप्पा)

दुनिया में एक गुरु प्रकट होगा।

ओक्काका परिवार में जन्मा, कुल के अनुसार

जिसका नाम गौतम है। वह शिष्य बनेगा।

गुरु कोट्टिता के नाम से जाना जाता है,

उनके सभी धन्ना का उत्तराधिकारी, प्रिय पुत्र

सत्य (धम्म) द्वारा सृजित।

यह सुनकर मुझे खुशी हुई;

सचेत, बुद्धिमान और संयमित भी।

दयालु हृदय से, मैंने हर तरह से सेवा की।

विजेता तब तक जब तक मेरा जीवनकाल

चला।

उस कृत्य के परिणामस्वरूप, और स्वैच्छिक रूप से

मैंने आत्मनिर्णय (चेतना पणिधि) दिया

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और तावतिंसा चला गया।

मैंने तीन सौ बार दिव्य अभ्यास किया

संप्रभुता; मैं पाँच वर्षों तक विश्व-राजा भी रहा।

सौ बार।

क्षेत्रीय शासन की भव्यता

संख्यात्मक रूप से गणना नहीं की जा सकती।

उस दस्तावेज़ के हस्तांतरण से मैं खुश था।

हर जगह।

मैं अपने नियमित चक्करों में इधर-उधर भटकता रहा।

ऐसे दो अस्तित्वों में पुनर्जन्म, जैसे कि

पहले एक दिव्य प्राणी और बाद में एक मनुष्य।

मैं कोई दूसरा कोर्स नहीं करता; यही मेरा एकमात्र कोर्स है।

संगति के अच्छे प्रदर्शन का पहला (फल)

उपलब्धि (सुचिण्ण)।

मैं दो परिवारों में पैदा हुआ हूँ; एक परिवार में...

पहले योद्धा राजकुमार का और फिर ब्राह्मण का।

मैं किसी निम्न परिवार में पैदा नहीं हुआ था; यह

अच्छे प्रदर्शन या उपलब्धि का फल

(सुचिण्ण)। जब मेरा पिछला जन्म सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

मैं ब्राह्मणों का वंशज था; मेरा पुनर्जन्म हुआ था।

एक धनी ब्राह्मण (विप्पा) परिवार में

सावत्थी.

मेरी माता का नाम चंदवती था; मेरे पिता

वह अस्सलायन था। जब बुद्ध ने मुझे अनुशासित किया, तब मैंने उसे अनुशासित किया।

संपूर्ण पवित्रता के लिए पिता, फिर, मैं बन गया

सुगाता के प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर मैं भिक्षु बन गया।

बेघर जीवन व्यतीत करो, मोग्गलाना मेरा था

शिक्षक, और सारी का पुत्र मेरा गुरु था।

या आध्यात्मिक प्रमुख (उपज्जा)।

जब मेरे बाल काटे जा रहे थे (या मुंडवाए जा रहे थे), विधर्मी

दृश्य उसके साथ ही कट गया था

जड़; जब भी मैं पीला वस्त्र धारण करता हूँ, मैं

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। क्योंकि मैंने अपना विकास किया।

अर्थ का ज्ञान (अत्था), परीक्षा (धम्म)

व्युत्पत्ति (निरुत्ती) और त्वरित उत्तर (पटीभाण),

इसलिए, दुनिया के मुखिया ने मुझे इस पद पर बिठाया।

यह सर्वोच्च स्थान (etadagga)।

उपतिस्सा द्वारा पूछे जाने पर मैंने उत्तर दिया

जिसके बारे में एक साथ नहीं देखा गया है या

अदृश्य (asandiṭṭha) nibbāna. उस कारण

मैं विश्लेषणात्मक क्षमता रखने वालों में अग्रणी बन गया।

व्यवस्था में कालिक ज्ञान (पटिसमभिदा)

आत्मजागृत बुद्ध का। मेरा दुराचार (किलेसा)

जलकर राख हो गया था, सभी अस्तित्व अच्छी स्थिति में थे

नष्ट (समुहता); एक हाथी की तरह जो

मैंने इसके बंधन तोड़ दिए थे, मैं मुक्त जीवन जीता हूँ।

कैंकर (आसवा)।

वास्तव में, मेरी उपस्थिति में जाना मेरे लिए अच्छा रहा।

बुद्ध का; त्रिविध ज्ञान (विज्जा) था

तदनुसार प्राप्त किया गया; बुद्ध का निर्देश

(शासन) संपन्न हो चुका था।

मेरे द्वारा कल्पना की गई चार प्रकार की चीजें हैं

विश्लेषणात्मक ज्ञान के ये आठ-

विमोक्खा मुक्ति भी, और

छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा)

साथ ही; बुद्ध का उपदेश (शासन)

कार्य संपन्न हो चुका था।

इस प्रकार इस और उस जन्म में पुण्य और ज्ञान का पर्याप्त संचय करके, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। उन्होंने उन्हें कोट्टित नाम दिया। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया, ब्राह्मणों के ज्ञान में निपुणता प्राप्त की, एक दिन गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) को सुना, श्रद्धावान आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और दीक्षा लेने के समय से ही विपश्यना का अभ्यास करते रहे, अरहंतत्व तथा विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटीसंबिदा) प्राप्त किया, चारों प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान में पारंगत हो गए, प्रसिद्ध और प्रख्यात महान थेरों के पास गए, उनसे प्रश्न पूछे और दशाबल से भी, जिनसे वे स्वयं गए थे, हमेशा चारों प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान के विषय में ही प्रश्न पूछे। इस प्रकार, इस थेरे ने इस विषय में अपनी निष्ठापूर्वक साधना और अपने ज्ञान और निपुणता (चिन्नवासी) के कारण विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटीसंबिदा) प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया। इसके बाद, गुरु ने महावेदल्ला सूत्र की एक कहानी सुनाते हुए, विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने वालों में उन्हें सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा:— "हे भिक्षुओं! यह मेरे शिष्य भिक्षुओं में प्रमुख हैं, जिन्होंने विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त किया है, ये हैं महा-कोठ्तिका। एक बार, जब वे स्वयं मोक्ष के आनंद का पूर्णतः अनुभव कर रहे थे, तब उस पूजनीय थेरा महाकोठ्तिका ने गंभीर उच्चारण के रूप में यह वांछनीय श्लोक कहा:—

2. "शांत, आनंदित, स्थिर वक्ता"

ज्ञान भरी बातें बुरे कर्मों को दूर भगाती हैं।

हवा के झोंके से एक पत्ते को उड़ा ले जाते हुए

पेड़।"

वहाँ, उपसन्त का अर्थ है — मन सहित छह स्थानों पर नियंत्रण रखने वाली शक्तियों की शांति से घनिष्ठ और स्पष्ट रूप से जुड़े होने के कारण शांत और स्थिर रहना। उपरातो का अर्थ है सभी प्रकार के बुरे कर्मों से दूर रहना और स्पष्ट रूप से आनंदित रहना। मंतबाण का अर्थ है — मंत को ज्ञान (पञ्ञा) कहा जाता है; यद्यपि उस ज्ञान के माध्यम से उसे प्राप्त करने के बाद वह बोलता है; अतः, मंतभाणी (ज्ञान का वक्ता, बुद्धिमान वक्ता); वह बोलता तो है, लेकिन उचित समय पर बोलने जैसी शर्त का पालन नहीं करता; यही अर्थ है। वैकल्पिक रूप से, वह मंत (ज्ञान) का पाठ करते हुए बोलता है; अतः, मंतभाणी (बुद्धिमान शब्दों का पुनरावर्तक); वह अपने वाणी में चार गुणों से युक्त सुविचारित कथन बोलता है, जिसमें कोई अपशब्द नहीं होता; यही अर्थ है। वह असंतुलित नहीं है, क्योंकि वह अच्छे जन्म आदि गुणों के कारण स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता; अतः, वह अनुद्धतो, सुसंतुलित है। दूसरे शब्दों में, तीन प्रकार के बुरे शारीरिक आचरणों के निवारण के कारण, उचित संयम के कारण शांत हो जाने से; तीन प्रकार के बुरे मानसिक आचरणों में असंतोष और उनके त्याग के कारण, वह संयमी (उपरता) है। सर्वांगीण संतुलित वक्ता होने के कारण, चार प्रकार के बुरे कर्मों के न होने के कारण, वह बुद्धिमान वक्ता (मन्तभाणी) हैं; तीन प्रकार के बुरे कर्मों के लक्षणों को उत्पन्न करने के कारण अहंकारी न होने के कारण, वह संतुलित (अनुद्धत) हैं। इसी प्रकार, तीन प्रकार के बुरे कर्मों का त्याग करके शुद्ध नैतिक उपदेशों में सुस्थापित होकर, अहंकार का त्याग करके शांत होकर, उसी एकाग्रता (समाधि) को मुख्य कारण बनाकर, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करके, वह अच्छे मार्ग (मग्ग) के क्रमिक चरणों के माध्यम से बुरे कर्मों से छुटकारा पाते हैं (धुनाति पापके धम्मे): पापी अर्थ में, वह सभी बुरे और आत्म-भ्रष्ट कर्मों (धम्म) से भी छुटकारा पाते हैं, और पूर्ण रूप से त्याग (समुच्छेद) के माध्यम से उनका त्याग करते हैं। किस प्रकार? दुमपट्टं व मालुतो (जैसे हवा किसी बढ़ते हुए पेड़ के पीले सूखे पत्ते को झटक देती है); यह उसे उसकी टहनी से अलग कर देती है; इसी प्रकार, वह अपने स्वयं के सन्तान (सन्ताना) से बुरे कर्मों (धम्म) को निकाल देता है, क्योंकि उसने उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) में स्वयं को स्थापित कर लिया है, जैसा कि कहा गया है। इस प्रकार, थेरा का यह श्लोक भी अरहंत पद (अञ्ञा) की भविष्यवाणी (या व्याख्या) है, जिसमें अरहंत पद (अञ्ञा) का संकेत दिया गया है; इस प्रकार, इसे समझा जाना चाहिए।

यहां भी, यह बुरे शारीरिक और मौखिक आचरण के त्याग के कथन से व्यावहारिक साधनों (पयोग) की शुद्धता को दर्शाता है; बुरे मानसिक आचरण के त्याग के कथन से (या इसके द्वारा) झुकाव (या इरादे) की शुद्धता को दर्शाता है। इस प्रकार, यह "अनुद्धतो (अपार)" के इस कथन के माध्यम से उस उद्देश्य की स्थिति के लिए व्यावहारिक साधनों और इरादे में शुद्ध व्यक्ति की बाधाओं के त्याग को दर्शाता है। इनमें से, व्यावहारिक साधनों की शुद्धता द्वारा नैतिक उपदेशों की समृद्धि प्रकट हुई है; शुद्ध इरादे के माध्यम से, विकास (भावना) के सहायक (या लाभकारी) कर्मों (धम्म) की प्राप्ति होती है, हृदय की शांति (समथा) प्राप्त होती है; इसके माध्यम से एकाग्रता (समाधि) का विकास (भावना) होता है, अर्थात्: — "धुनाति पापके धम्मे (वह बुरे कर्मों को त्याग देता है)," ज्ञान (पञ्ञा) का विकास (भावना) प्रकट हुआ है। इस प्रकार, तीन प्रकार के अनुशासनात्मक प्रशिक्षण (सिक्खा) हैं जिनमें अति-नैतिक उपदेश प्रशिक्षण (अधिशीलसिक्खा) आदि शामिल हैं, जो तीन पहलुओं में उत्कृष्ट निर्देश (या व्यवस्था) हैं; तीन प्रकार के त्याग हैं जिनमें क्षणिक (तदंग) त्याग आदि शामिल हैं; उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) मध्य को प्राप्त करना, साथ ही दोनों चरम सीमाओं से पूरी तरह बचना शामिल है; नरक की अवस्था से परे जाने के साधन भी हैं, इत्यादि; उचित अर्थ निकालने के बाद ही व्याख्या की जानी चाहिए। इसी विधि से, शेष श्लोकों में भी, उचित भावों के अनुसार अर्थ की व्याख्या की जानी चाहिए। यद्यपि, कहीं-कहीं हम उन विषयों पर भी टिप्पणी करेंगे जिन पर पहले टिप्पणी नहीं की गई है, लेकिन केवल अर्थ के संदर्भ में। यह अभिव्यक्ति, अर्थात्, "इत्तं सुदं आयस्मा महाकोत्तिको (आदरणीय महाकोत्तिक की कामना है"), आदर का कथन है, ठीक उसी प्रकार जैसे महामोग्गलान के प्रति है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा महाकोट्ठिका का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(3): कनखा-रेवता (रेवता द डाउटर)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (3) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
3. कंखा-रेवत (संदेह करने वाला रेवत)
उनका पुनर्जन्म हमारे परम पूज्य बुद्ध के समय में, सावत्थी के एक समृद्ध परिवार में हुआ। जब वे भोजन के बाद दस शक्तियों के स्वामी बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए आए लोगों के सबसे बाहरी घेरे में खड़े थे, तब उन्होंने विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। उन्होंने ध्यान साधना के माध्यम से अर्हत्व (ज्ञान) प्राप्त किया ; और वे ध्यान में इतने निपुण हो गए कि भगवान (बुद्ध) ने उन्हें ध्यान साधना करने वाले भिक्षुओं का प्रमुख घोषित किया।

[1] [8] इस प्रकार अपना कार्य पूरा करने के बाद, इस महान भिक्षु ने अपने मन की संशय की प्रवृत्ति पर विचार किया, जो अब पूरी तरह से दूर हो चुकी थी, [2] और उसने भगवान (बुद्ध) की शक्ति और ज्ञान की प्रशंसा की, जिससे उसका मन अब शांत और दृढ़ हो गया था, और कहा:

[3] पणनाṃ [2] इमाṃ पासा तथागतानाṃ॥
अग्गि यथा पज्जलितो निशिथे॥
अलोकदा चक्खुदादा भवन्ति॥
ये अगतानां विनयन्ति कांखं ति.॥ ॥

इत्थं सुदां अयस्मा कंखरेवतो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.॥ ॥

[3]
देखो , तथागत (जो बुद्ध के समान आगे बढ़ते हैं) की बुद्धि कितनी महान है ! [3] वे मध्यरात्रि की अग्नि
के समान प्रकाश और दृष्टि प्रदान करने वाले हैं,
जो राहगीरों के सभी संदेहों को दूर करते हैं।

इस प्रकार पूज्य भिक्षु कंखा-रेवत ने अपना वचन (गाथा) कहा।

[1] एंग. निक. , आई. 24.

[2] इस प्रवृत्ति का उल्लेख अपादान में किया गया है। इसे जो उपनाम मिला है, वह रेवता को अधिक प्रतिष्ठित महा-थेरा रेवता, वैशाली परिषद के सह-निदेशक (विनय ग्रंथ, ii. 317; cf. 67) से अलग करने के लिए अनुचित रूप से बनाए रखा गया होगा।

[3] तथाइगता। इस प्रसिद्ध शब्द की पूर्ण व्याख्या के लिए, कॉमी उदाना और इति-वुत्तक टीकाओं का संदर्भ देता है। देखें जे.एच. मूर, बुद्ध के वचन, पृष्ठ 131; सर आर. चाल्मर्स, जे.आर.ए.एस., 1898, 108।

1.1-3[3] श्लोक पर टिप्पणी

कंखा रेवता थेरा
“पञ्ञं इमं पस्सा” से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कंखारेवत का श्लोक है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ये थेरा भी, भगवान पद्ममुत्तरा के समय में, हंसवती नगर में एक धनी ब्राह्मण के परिवार में पुनर्जन्म लिए थे। एक दिन बुद्ध द्वारा सत्य (धम्म) के उपदेश के अवसर पर, वे पूर्वोक्त (हेट्ठावुत्त) लोगों की बड़ी भीड़ के साथ मठ गए, श्रोताओं के चारों ओर एक छोर पर खड़े हो गए, और सत्य (धम्म) सुनते हुए उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को ध्यान में विशेष आनंद लेने वालों में सबसे आगे बैठा रहे हैं, और उन्होंने मन ही मन सोचा: - “मेरे लिए भी भविष्य में ऐसा ही भिक्षु बनना उचित है।” प्रवचन के अंत में, उन्होंने गुरु को आमंत्रित किया, जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्वयं ने श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की और भगवान से कहा: “आदरणीय गुरुदेव! इस भक्तिमय कर्म के फलस्वरूप, मैं किसी अन्य समृद्धि की कामना नहीं करता; परन्तु जिस प्रकार सात दिन पहले वह भिक्षु ध्यान प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि हुआ था, उसी प्रकार भविष्य में किसी

बुद्ध के युग में मैं भी ध्यान प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि हो सकूँ।" इस प्रकार उन्होंने अपनी यह कामना व्यक्त की। गुरु ने भविष्य की दृष्टि से उनकी कामना की पूर्ति देखकर भविष्यवाणी की और प्रस्थान किया: "भविष्य में एक लाख युगों के अंत में गौतम बुद्ध प्रकट होंगे; उनके युग में तुम ध्यान प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि होगे।"

अपने जीवनकाल में अच्छे कर्म करते हुए, उन्होंने एक लाख युगों (कप्पा) तक देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा किया और हमारे प्रतापी बुद्ध के समय में सावती नगर के एक अत्यंत समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। भोजन के बाद, वे बड़ी संख्या में लोगों के साथ धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से मठ गए, श्रोताओं के अंतिम छोर पर विराजमान हुए, दशाबल के धर्म उपदेश सुने, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बने, उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की, मानसिक अभ्यास (कम्मट्टाना) किया, ध्यान का सर्वांगीण अभ्यास किया, ध्यान में निपुण हुए, ध्यान को अपना आधार बनाया और अरहंत पद प्राप्त किया। दसबल द्वारा दिन-रात की जाने वाली उचित ध्यान साधना (समापत्ति) में स्वयं प्रवेश करने से, वे ध्यान में सर्वथा शक्तिशाली (चिन्नवासी) हो गए। तब गुरु ने उन्हें ध्यान साधना में सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा: - "हे भिक्षुओं! यह मेरे ध्यान साधक शिष्य भिक्षुओं में श्रेष्ठ है, यह है कंखा रेवता। अपदान में भी यही कहा गया है:—

तब विजेता नामक नेता का उदय हुआ।

पदुमुत्तारे, सभी विषयों में अंतर्दृष्टि के स्वामी

धम्म, एक लाख युग (कप्पा)

कुछ समय पहले।

वह सिंह के जबड़े वाला, ब्रह्मा की वाणी वाला, हंस के समान था।

ढोल की आवाज़ आई (निस्सानो), जो साथ चलता था

हाथी की मनमोहक चाल, किरणों के साथ

वह प्रकाश जो चंद्रमा और सूर्य को भी मात देता है।

रक्षक अत्यंत बुद्धिमान, अत्यंत वीर।

ध्यान की महान शक्ति से युक्त, सर्वोच्च

वह शक्तिशाली था और घोर अंधकार को दूर करने वाला था।

तीनों लोकों के उस प्रमुख ने नेतृत्व किया

संसार (विनयं) अनेक नेतृत्व योग्य लोग,

कभी-कभी; स्वयंजागृत ऋषि जो जानते थे

प्राणियों की इच्छा ने सत्य सिखाया

(धम्म)।

विजेता ने जनसमूह को प्रसन्न कर दिया।

उस सर्वांगीण ध्यानमग्न भिक्षु की प्रशंसा करते हुए,

ध्यानमग्न था (झायिं) आनंद ले रहा था

झाना, वीर, शांत और अविचलित।

उस समय मैं हंसवती में एक ब्राह्मण था।

जो समुद्र के दूसरे किनारे तक पहुँच चुके थे

वेदों का; सत्य (धम्म) को सुनकर

मुझे खुशी हुई और मैंने विशेष रूप से इसके लिए प्रार्थना की।

फिर विजेता, स्पष्ट नेता।

उन्होंने पुरोहितों के बीच अपनी भविष्यवाणी करते हुए कहा:

"हे ब्राह्मण! प्रसन्न हो जाओ; तुम्हें लाभ होगा।"

आपकी मनचाही वस्तु, जो आपको प्रसन्न करेगी

दिमाग।

"एक लाख युगों (कप्पा) के बाद, वहाँ

वह संसार में एक गुरु बन जाएगा, जिसका नाम होगा

गोतमा, कुल से उच्च कुल का, परिवार में जन्मा।

ओक्काका.

"तुम गुरु के शिष्य बनोगे,

रेवता के नाम से जाना जाने वाला, उसका प्रिय पुत्र

धर्म द्वारा आध्यात्मिक रूप से सृजित, उत्तराधिकारी

उनकी शिक्षाएँ (धम्मेसु)।"

उस अच्छे कार्य के कारण,

स्वैच्छिक आत्मनिर्णय भी (ceta-

(नापणिधि) मैं स्वयं तावतिंसा गया था

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया। अब जब मेरे पास था

अपने अंतिम जन्म में, मेरा जन्म हुआ था

कोलिया शहर में, योद्धाओं के एक परिवार में

समृद्धि, धन और सामर्थ्य से संपन्न राजकुमार

प्रचुर धन। जब बुद्ध ने शिक्षा दी

कपिलवस्तु में सत्य (धम्म) को जानकर, मैं बन गया

सुगाता से अत्यंत प्रसन्न होकर मैं एक

भिक्षु को बेघर जीवन व्यतीत करना होगा।

मुझे इस बारे में कई संदेह थे।

और युगों-युगों तक (कप्पा)। वे सभी

बुद्ध ने मुझे शिक्षा देने के बाद मेरे सभी संदेह दूर कर दिए।

सबसे उत्तम सत्य (धम्म)

इसलिए, मैं पार करने वालों में से एक बन गया।

संसार के सागर के ऊपर, और मैं जीवन यापन करता रहा।

तब ध्यान के आनंद में मग्न हो जाओ;

मुझे देखकर बुद्ध ने मुझसे यह कहा।

मुझे।

चाहे जो भी संदेह हो, चाहे इधर हो या उधर,

अपने स्वयं के ज्ञान के संबंध में या

दूसरों का ज्ञान, वे जो समर्पित हैं

झाना और उत्साही, उन सभी को हटा दो

क्योंकि वे अपने पवित्र आचरण में स्वयं को ढालते हैं

जीवन (ब्रह्मचर्य)।

एक लाख युगों में किया गया कार्य,

मुझे यहाँ इसका फल दिखाई देता है। मैंने सब कुछ जला दिया।

मेरी भ्रष्टता (किलेसा) गति के समान है

सही ढंग से छोड़े गए तीर का।

इसके बाद, मुझे प्रसन्न होते देख

ध्यान में, बुद्ध, अत्यंत बुद्धिमान, ऋषि

जो दुनिया के छोर तक गए थे, उन्होंने पहचान लिया

मैं ध्यान साधना करने वाले भिक्षुओं का प्रमुख था।

मेरे अनेक दुराचार जलकर राख हो गए थे, मेरा सारा अस्तित्व।

इसे पूरी तरह से खत्म कर दिया गया था। मैं मुंहासों से मुक्त जीवन जी रहा हूँ।

जैसे कोई हाथी अपनी बेड़ियाँ तोड़कर भाग गया हो।

वास्तव में, यह मेरी उपस्थिति में सद्भावना का भाव था।

मेरे बुद्ध। त्रिविध ज्ञान (विज्जा) प्राप्त हुआ था।

तदनुसार मुझे प्राप्त हुआ है; बुद्ध का

निर्देश का पालन किया जा चुका था।

मेरे द्वारा परिकल्पित चार गुना विश्लेषणात्मक

ज्ञान (पटिसमभिदा) अष्टांग मुक्ति-

विमोक्खा (शन) और छह प्रकार के उच्च ज्ञान;

बुद्ध के उपदेश (शासन) का प्रसार हो चुका था।

बाहर।

लेकिन महान थेरा ने अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के बाद, अब इस बात पर विचार किया कि वे सर्वथा संशयमुक्त हैं, जबकि पूर्व में उनका मन लंबे समय तक संदेह से घिरा हुआ था। उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरे गुरु की शिक्षा की शक्ति अद्भुत है, जिसके कारण मैं वर्तमान में संशयमुक्त हूँ और आंतरिक रूप से शांत हो गया हूँ।" उनके मन में बुद्ध के प्रति बहुत आदर उत्पन्न हुआ और थेरा ने "पञ्ञं इमं पस्सा (इस ज्ञान को देखो)" श्लोक का पाठ किया, जिसमें उन्होंने भगवान बुद्ध के ज्ञान (पञ्ञा) की प्रशंसा की।

3. वहाँ, 'पञ्ञा' शब्द का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: वह विशेषताओं को जानता है; वह विशेषताओं के माध्यम से बताता है; इस प्रकार, यह भी 'पञ्ञा' (ज्ञान) है। वह शिष्टाचार (या विशेषताओं) को जानता है कि कैसे उसे अच्छे कर्मों से लेकर सत्यों (धम्म) के समूह (खन्ध) से शुरू करके, प्रवृत्ति, पूर्वाग्रह, आचरण, मुक्ति आदि जैसी विशेषताओं में, नेतृत्व योग्य प्राणियों को शिक्षा देनी चाहिए; वह स्वाभाविक रूप से उचित रूप से प्रवेश करता है; वह उन विशेषताओं के माध्यम से भी बताता है; इस प्रकार, अर्थ है। यहाँ वास्तव में, गुरु के शिक्षण के ज्ञान (ज्ञान) का तात्पर्य है; इसलिए, उन्होंने इस प्रकार कहा: "इमं (यह)" - अपने भीतर शिक्षण की सिद्ध शक्ति से विधि को समझने के दृष्टिकोण से, जो आमने-सामने था, उसे लेने के बाद। गुरु की शिक्षाओं का जो भी ज्ञान अग्रणी शिष्यों द्वारा विधि के

रूप में ग्रहण किया जाता है, उचित अंतर्दृष्टि वाला वह ज्ञान विधि के दृष्टिकोण से अपने क्षेत्र में अग्रणी शिष्यों द्वारा ही ग्रहण किया जाता है। इसलिए, धर्म के पूज्य सेनापति ने ऐसा कहा:– “पूज्यवर! शायद धर्म का सामान्य निष्कर्ष भी मुझे समझ आ गया है।”
अभिव्यक्ति:– “पस्सा (देखो),” का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए:– विस्मय की अवस्था में वह अनिश्चित रूप से (या वह ऐसा करता है), यहाँ तक कि अपने मन को भी संबोधित करता है; जैसे गंभीर उच्चारण करते हुए भगवान ने कहा: “इस संसार को देखो, जो अनेक प्रकार से अज्ञान से पराजित होकर, जो कुछ हो गया है उसमें प्रसन्न होकर, सर्वत्र अस्तित्व से विमुख न हो गया होता।”
अभिव्यक्ति तथागतनं का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए:– इसी प्रकार आने वाले (तथागत) लोगों के आने के अर्थ के कारण, (वह) भी इसी प्रकार आया था; अत: वास्तव में तथागत हैं; इसी प्रकार गए थे; अत: तथागत हैं; सत्य के प्रतीक के पास आए थे; अत: तथागत हैं; यथार्थ के दृष्टिकोण से सत्य (तथा) के स्वरूप (धम्म) में विशेष रूप से आत्मप्रबुद्ध हैं; अत: तथागत हैं; इसी प्रकार किए जाने के कारण वे तथागत हैं; अत्यधिक अर्थ के कारण वे तथागत हैं; अत: आठ परिस्थितियों में इस प्रकार, भगवान तथागत हैं। वे उस तरीके से आए थे, वे तथागत हैं; वे उस तरीके से गए थे; अत: तथागत हैं; वे सत्य के प्रतीक के पास गए थे; अत: तथागत हैं; वे वास्तविकताओं के पास आए थे; अत: तथागत हैं; इस प्रकार के; अत: तथागत हैं; इसी प्रकार घटित हुए थे; अतः वे तथागत हैं; वास्तविकताओं के साथ आए थे; अतः वे तथागत हैं; इसी प्रकार जाने की अवस्था से वे तथागत हैं; अतः वे तथागत हैं; इस प्रकार, आठ परिस्थितियों में भी, भगवान तथागत हैं; यहाँ यह संक्षेपण है। हालाँकि, इसका अर्थ उदाना की टीका और परमत्थदीपनी के इतिवुत्तक की टीका में वर्णित विधि से ही समझा जाना चाहिए।

अब, उनकी विशिष्ट और अद्वितीय बुद्धि को दर्शाने के लिए, इसे “अग्गियथा (अग्नि के समान)” कहा गया है। यथा अभिव्यक्ति उस दृष्टांत की अवस्था को इंगित करती है; पज्जलितो अभिव्यक्ति तुलना के लिए उपयुक्त वस्तु (उपमेय्य) के साथ संयोजन का संकेत है; निसिथे (मध्यरात्रि में) अभिव्यक्ति क्रिया के क्रियान्वयन को दर्शाती है। नीचे इसका अर्थ दिया गया है: – जैसे, जब मध्यरात्रि में चार टुकड़ियों वाली सेना अंधकार में उपस्थित होती है, तो किसी ऊँचे स्थान पर प्रज्वलित अग्नि उस स्थान के अंधकार को दूर कर देती है, ठीक उसी प्रकार, तथागतों की इस बुद्धि को शिक्षा की बुद्धि के रूप में देखा जा सकता है, जो अनुशासन के योग्य प्राणियों के संशय के अंधकार को पूरी तरह से दूर करती है और उन्हें पूर्णतः अनुशासित (वेनेय्य) करती है। चूंकि तथागत अपने उपदेशों की सुंदरता से प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हैं; इस प्रकार, आलोकदा (प्रकाशदाता)। वे बुद्धि से निर्मित आँख (पञ्ञा) भी प्रदान करते हैं; इस प्रकार, चक्खुदादा, आँख देने वाला। संदेह दूर करने के निकटतम कारण को बताने के बाद, इन दोनों को भी इंगित करने के लिए उन्होंने इस प्रकार कहा:– “ये आगतानं विनयंति कंखं, जो आए हुए लोगों के संदेह को दूर करते हैं।” ये का अर्थ है तथागत; आगतानं का अर्थ है अनुशासन के अधीन और बाहर ले जाए जाने योग्य प्राणी (वनेय्य) जो उनकी उपस्थिति में आए थे; कंखं का अर्थ है (सोलह आधारों पर संदेह, जैसे कि "क्या मैं वास्तव में अतीत में ऐसा हुआ था?" से शुरू होने वाली विधि का घटित होना, और आठ आधारों पर संदेह, जैसे कि "वह बुद्ध में संदेह करता है, वह धर्म में संदेह करता है।" विनयंति का अर्थ है कि वे शिक्षा की शक्ति से पूर्णतः दूर और नष्ट हो जाते हैं। अनुशासनात्मक नियमों (विनय) से संबंधित गंभीर पश्चाताप के रूप में माने जाने वाले संदेह भी उसी विनय द्वारा दूर हो जाते हैं।

दूसरी विधि: - जिस प्रकार मध्य रात्रि में प्रज्वलित तीव्र ज्वाला अपनी तेज रोशनी से ऊँचे स्थान पर विराजमान लोगों को प्रकाश देकर अंधकार को दूर करती है और समतल एवं असमान (या सम और विषम) भूमि को प्रकट करते हुए प्रकाश दाता बन जाती है; वहीं पास में खड़े लोगों को भी भूमि का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, और क्योंकि प्रकाश की ज्वाला आँखों द्वारा किए जाने वाले कार्यों को प्रकट करती है, इसलिए वह आँखों की दाता है; ठीक उसी प्रकार तथागतों ने अपने सत्य (धर्म) के शरीर से दूर स्थित और सर्मर्पित कर्तव्यों का पालन न करने वालों के भ्रम के अंधकार को अपनी प्रखर ज्ञान की ज्योति से दूर करके, समता और विषमता को शरीर की विषमता आदि के समान प्रकट करते हुए प्रकाश दाता बन जाते हैं; जो लोग निष्क्रिय अवस्था में रहे और जिन्होंने अपने भक्तिमय कर्तव्यों का पालन किया, उनमें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (धम्मचक्खु) उत्पन्न करके, वे दृष्टि दाता बन जाते हैं। इन तथागतों के ज्ञान (ज्ञान) और बुद्धि (पञ्ञा) की श्रेष्ठता को देखो, जो उचित रूप से श्रेष्ठ मार्ग (अरीयमग्ग) को प्रेरित करके, मेरे समान उदार संदेहियों के संदेह को दूर करते हैं, जो अपने भाष्य क्षेत्र में आ चुके हैं और उसी स्वरूप में ढल चुके हैं; यही व्याख्या है। इस प्रकार, यह श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) की भविष्यवाणी या व्याख्या (ब्याकरण) भी है, जो उनके संदेह के सागर को पार करने को प्रकट करता है। वास्तव में, जब ये थेरा एक साधारण भिक्षु (पुथुज्जन) थे, तब वे अपने प्रति उचित रूप से स्वीकार्य भेंटों (कप्पिया) के प्रति भी अत्यंत संशयपूर्ण थे, और संदेह में उदार होने के कारण, उन्हें स्पष्ट रूप से "कंखारेवत" (संदेही रेवत) के नाम से जाना जाता था; बाद में जब वे दोषमुक्त अरहंत बन गए, तब भी उन्हें इसी नाम से पुकारा जाता रहा। इसलिए, बुद्ध ने कहा: "आदरणीय कंखारेवत ने इच्छानुसार श्लोक का उच्चारण किया।" यही अर्थ कहा गया है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कंखा रेवता का

तैयार है।

******

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(4): पुन्ना, मंटानिस का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (4) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
4. पुन्ण, मंतानियों का पुत्र
उनका पुनर्जन्म हमारे परम पूज्य बुद्ध के समय में, कपिलवस्तु (बुद्ध का जन्मस्थान) से कुछ ही दूरी पर स्थित दोनावत्थु नामक ब्राह्मण ग्राम में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में हुआ था। वे बड़े कोंडञ्ञ के पुत्र थे, [1] और उनका नाम पुन्ञ रखा गया था। दीक्षा के सभी कर्तव्यों का पालन करने के बाद, उन्होंने भिक्षु के सर्वोच्च कर्तव्यों को प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास किया। इसके बाद वे अपने चाचा के साथ कपिलवस्तु के आसपास के क्षेत्र को छोड़कर भगवान (बुद्ध) के निकट रहने चले गए। और साधना में पूर्णतः लीन होकर, वे कुछ ही समय बाद अरहंत (ज्ञानी) बन गए।

अब पुन्ण के 500 अनुयायी हो गए थे जिन्होंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया था)। और क्योंकि उन्होंने स्वयं [9] प्रवचन के दस आधार [2] प्राप्त कर लिए थे, इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को तब तक उनका उपदेश दिया जब तक वे भी निपुण और अरहंत (प्रबुद्ध) नहीं हो गए। इस पर उन्होंने उनसे भगवान (बुद्ध) के पास ले जाने का अनुरोध किया। लेकिन उन्होंने उनके साथ जाना उचित नहीं समझा, इसलिए उन्होंने उनसे आगे जाने को कहा और उनके पीछे आने का वादा किया। वे सभी दस शक्तियों वाले भगवान के देशवासी थे, इसलिए वे राजगृह तक साठ योजन की दूरी तय करके गए और बांस के जंगल के महान विहार [3] में उन्हें पाया और उन्हें प्रणाम किया। अब, जब भिक्षु (भिक्षु) बुद्धों, परम पूज्यों के पास आते हैं, तो मैत्रीपूर्ण अभिवादन का आदान-प्रदान करना प्रथागत है। इसलिए परम पूज्य बुद्ध ने उनसे पूछा, 'हे भिक्षुओं, आशा है आप कुशल मंगल होंगे और सुखपूर्वक विश्राम किया होगा; आप कहाँ से आए हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हे प्रभु, आपके अपने देश से।' तब उन्होंने पूछा कि क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो दस विषयों का ज्ञाता हो, और कहा, 'हे भिक्षुओं, मेरे ऐसे देशवासियों में से कौन है जो स्वयं सरल जीवनयापन करने वाला है, और सरल जीवन पर प्रवचन दे सकता है?' 'हे प्रभु, मंतानी के पूजनीय पुत्र, पुन्ण।'

और जब भगवान (बुद्ध) राजगृह से सावत्थी गए, तो पुन्ण भी वहाँ गए और सुगंधित कक्ष में [4] उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया गया। सारिपुत्त उनसे मिलने की इच्छा से उनके पीछे-पीछे वन में गए, जहाँ वे भगवान (बुद्ध) के वचनों का ध्यान करने गए थे, और उन्हें एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए पाया। उन्होंने उन वचनों पर चर्चा की और एक-दूसरे से प्रसन्न हुए, पुन्ण ने रथ यात्रा के दृष्टांत से उनका हृदय जीत लिया।

अब भगवान (बुद्ध) ने पुण्ण को धम्म के उपदेश में भिक्षुओं का प्रमुख घोषित किया। [5] और एक दिन, भगवान (बुद्ध) के पास बैठकर, उन्होंने अपने द्वारा प्राप्त निर्वाण पर चिंतन करते हुए [10] सोचा: 'सचमुच मेरे और कई अन्य लोगों के लिए, जो दुःख के चक्र से मुक्त हैं, अच्छे लोगों के साथ संगति कितनी बड़ी सहायता है!' और उन्होंने आनंद और उत्साह के साथ यह श्लोक कहा:

[4] सब्भिरेव समासेत्थ पण्डितहत्थदस्सीभि॥
अट्ठौं महन्तं गम्भीरां दुद्दसां निपुणाअ अणुm॥
धीरा समाधिगच्छन्ति अप्पमत्ता विकक्खना' ति.॥॥

[4] निश्चित रूप से अच्छे साथी के साथ, उनके साथ

जो जानते हैं, जो समझते हैं, जो अच्छाई को देखते हैं। [6] अच्छाई महान है, गहरी है और देखना कठिन है,
सूक्ष्म और नाजुक रूप से सुंदर है, जिसमें
बुद्धिमान और बहादुर प्रवेश करते हैं, यहाँ तक कि वे
भी जो कठिन जीवन जीते हैं और उच्च दृष्टि प्राप्त करते हैं।

भिक्षु ने समझाया कि इस कथन (गथा) में उनकी सिद्धि की पुष्टि निहित है।

[1] भजन संहिता CCXLVI देखें। उनका पूरा नाम उन्हें LXX के पुन्ण से अलग करता है।

[2] अभिदानप्पदीपिका के अनुसार दस कथावत्थु हैं: सरल जीवन, संतोष, वैराग्य, पृथक्करण, प्रयास, नैतिकता, एकाग्रता, समझ, मुक्ति (निर्वाण), अंतर्दृष्टि सहित ज्ञान।

[3] सिस्टर्स देखें , पृष्ठ 81.

[4] जेतवन में बुद्ध की अपनी कुटिया। सिस्टर्स, पृष्ठ 11 देखें; जे.आर.ए.एस., 19.

[5] अंग., i. 23. भिक्षुओं (भिक्षुओं) की गवाही के बाद सारिपुत्त के साथ साक्षात्कार का वर्णन मज्झिमा ('रथविनीत सूत्र'), i. 146 ff. में किया गया है। उनके शिक्षण और प्रभाव की आगे की गवाही सांग्यी., ii. 156; iii. 105 f. में मिलती है।

[6] अत्था, सारिपुत्त के साथ चर्चा किया गया विषय।

1.1-4[4] श्लोक पर टिप्पणी

पुन्ण थेरा
सब्भिरेवा समासेथा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पुन्ण का श्लोक है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि दसबल पद्ममुत्तरा के प्रकट होने से भी पहले, इनका जन्म हंसवती नगर के एक अत्यंत धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब गुरु बुद्ध द्वारा सत्य (धम्म) का उपदेश दिए जा रहा था, तब धीरे-धीरे बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन वे बड़ी संख्या में लोगों के साथ मठ गए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और श्रोताओं के बीच में एक छोर पर बैठ गए। जब वे धम्म का उपदेश सुन रहे थे, तब उन्होंने देखा कि गुरु सत्य (धम्म) का उपदेश देने वालों में एक भिक्षु को सबसे आगे बैठा रहे हैं, और उन्होंने इस पर विचार किया: “भविष्य में मुझे भी ऐसा ही बनना चाहिए।” प्रवचन समाप्त होने पर, जब श्रोता उठ खड़े हुए, तो उन्होंने गुरु के पास जाकर उन्हें आमंत्रित किया, जैसा कि पहले बताया गया है, स्वयं एक बड़ा अर्पण (सक्कारा) किया और भगवान से कहा, “आदरणीय गुरुदेव! इस भक्तिमय कर्तव्य के पालन से मुझे किसी अन्य समृद्धि की इच्छा नहीं है; जिस प्रकार सात दिन पहले उस भिक्षु को धर्म के शिक्षकों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ, उसी प्रकार भविष्य में किसी बुद्ध के युग में मुझे भी धर्म के शिक्षकों में प्रमुख बनने की कामना है।” इस प्रकार उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की। गुरु ने भविष्य की दृष्टि से उनकी इच्छा की पूर्ति की स्थिति का पता लगाया और भविष्यवाणी की, “आने वाले समय में, एक लाख युगों (कप्पा) के बाद, गौतम नाम के बुद्ध प्रकट होंगे; उनके युग में, आप भिक्षु बनेंगे और धर्म के शिक्षकों में प्रमुख बनेंगे।”

अपने जीवनकाल में वहाँ अच्छे कर्म करने के बाद, उनका निधन हो गया। वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और एक लाख युगों (कप्पा) तक पुण्य और ज्ञान का संचय करते रहे। हमारे भगवान बुद्ध के समय में, उनका पुनर्जन्म थेरा अञ्ञासिकोण्डञ् के भतीजे के रूप में, एक अत्यंत धनी ब्राह्मण परिवार में, डोनावत्थु नामक ब्राह्मण गाँव में हुआ। उनके नामकरण के दिन, उनका नाम "पुण्" रखा गया। जब गुरु बुद्ध ने पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद, धर्म के उत्कृष्ट चक्र का निरंतर संचालन करते हुए, धीरे-धीरे राजगृह पहुँचे और उस नगर में निवास करने लगे, तो उन्होंने, पुन्ज, भिक्षु का रूप धारण किया और थेरा अञ्ञासिकोण्डञ् की उपस्थिति में उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की। सभी प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा करने के बाद, उन्होंने कठोर परिश्रम (पधान) में स्वयं को समर्पित कर दिया और मन ही मन कहा, “मैं बुद्ध के समक्ष तभी जाऊँगा जब मैं भिक्षु के कर्तव्यों की सर्वोच्च ऊँचाई प्राप्त कर लूँगा।” वे अपने चाचा-थेरा के साथ गुरु के समक्ष नहीं गए, बल्कि कपिलवस्तु के आसपास भी वहीं रुके रहे। उन्होंने ऐसे कर्म किए जिससे वे ज्ञानपूर्वक सचेत हो गए, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में लीन होकर शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अपदान में भी यही कहा गया है:

मैं एक शिक्षण पाठकर्ता और प्रतिबद्ध व्यक्ति हूँ

ज्ञान की स्मृति में (मन्त)

समुद्र के उस पार वाले किनारे पर चला गया

तीन वेद। मेरे शिष्यों द्वारा अनुसरण किया गया।

वह सबसे उत्कृष्ट पुरुषों के पास पहुंचा,

पद्ममुत्तरा, जगत के ज्ञाता,

बलिदान का उचित प्राप्तकर्ता

दान के बारे में, महान ऋषि ने मेरी घोषणा की।

संक्षेप में कार्य करें।

मैंने सत्य (धम्म) को सुनकर

मैंने गुरु को नमन किया, विदा ली-

दक्षिण (या दाईं ओर) की ओर मुख किए हुए, ऊपर उठाया हुआ

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को ऊपर उठाया। सुनने के बाद

संक्षेप में, मैंने दोहराया और बोला

जब मैंने ऐसा कहा, तो मेरे सभी विद्यार्थियों ने,

मेरी बात सुनकर, वे उनके साथ आ गए।

अपने स्वयं के तत्वों को दूर करने के बाद।

ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण से मेरा मन श्रद्धापूर्वक भर गया।

बुद्ध से प्रसन्न होकर मैंने संक्षेप में उपदेश दिया।

इसके अलावा और लेकिन इसी तरह विस्तार से।

मैं उन लोगों में से एक था जो सुपर- की विधि जानता था।

शुद्धतम का सत्य (अभिधम्म)

कथावत्थु (प्रवचनों का आधार);

सभी को स्पष्ट रूप से बता देने के बाद,

मैं मुंहासों से मुक्त जीवन जीता हूं।

आज से पांच सौ युग (कप्पा) पहले,

चार अच्छे भक्त, सात गुणों से संपन्न

चारों में विभिन्न प्रकार के रत्न पाए जाते थे।

द्वीप।

विश्लेषणात्मक ज्ञान के चार प्रकार,...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया है।

बाहर।

अच्छे कुल के वे पुत्र, जिन्होंने थेरा पुन्ण की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली थी, उनकी संख्या पाँच सौ थी। क्योंकि स्वयं थेरा ने शिक्षा के दस आधारभूत सिद्धांतों (कथावत्थु) को प्राप्त कर लिया था, इसलिए उन्होंने उन्हें भी दस आधारभूत सिद्धांतों (कथावत्थु) का उपदेश दिया। उनके मार्गदर्शन में स्थापित होकर, उन सभी ने अरहंत पद भी प्राप्त कर लिया। जब उन्हें पता चला कि उन्होंने स्वयं भिक्षु के रूप में किए जाने वाले सर्वोच्च कार्य को प्राप्त कर लिया है, तो वे अपने आध्यात्मिक गुरु के पास गए और इस प्रकार कहा: "आदरणीय गुरुदेव! हमने भिक्षु के रूप में किए जाने वाले सर्वोच्च कार्य को प्राप्त कर लिया है; हमने दस आधारभूत सिद्धांतों (कथावत्थु) को भी प्राप्त कर लिया है; अब समय आ गया है कि हम दशबल से मिलें।" उनकी बातें सुनकर थेरा ने मन ही मन सोचा: "गुरुजी जानते हैं कि मैंने दस शिक्षा सिद्धांतों (कथावत्थु) को प्राप्त कर लिया है; मैं सत्य (धम्म) का उपदेश तो देता हूँ, लेकिन स्वयं को इन दस शिक्षा सिद्धांतों से मुक्त नहीं कर पाता; जब मैं जाऊँगा, तो ये सभी भिक्षु मेरे साथ चलेंगे; परन्तु इस प्रकार भीड़-भाड़ वाली सभा में एक-दूसरे से मिलने के लिए दशबाला से मिलना मेरे लिए उचित नहीं है; अब इन्हें जाकर देखने दो।" फिर उन्होंने उन भिक्षुओं से कहा: "मित्रों! आप आगे जाकर तथागत के दर्शन कीजिए; मेरे संदेश के साथ उनके चरणों में प्रणाम कीजिए; मैं भी उसी मार्ग से आ रहा हूँ जिससे आप आए थे।" वे सभी थेरा, जो दशबाला के जन्मस्थान के निवासी थे, जो सभी रोगमुक्त थे, जिन्होंने दस शिक्षा सिद्धांतों (कहतावथु) को प्राप्त किया था, उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु (उपज्जाया) की सलाह को विधिवत स्वीकार किया, थेरा को प्रणाम किया, अपनी क्रमिक यात्रा पर आगे बढ़े, साठ मील (योजना) की दूरी तय की और राजगृह में स्थित महान वेलुवन (बांस के उपवन) मठ में पहुँचे, दशबाला के चरणों में प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

यह वास्तव में बुद्धों की प्रथा है कि वे अपने अतिथि भिक्षुओं का हार्दिक अभिवादन करते हैं। इस प्रकार, वे मधुर वार्तालाप करते हुए पूछते हैं, "हे भिक्षुओं! आप कैसे हैं?" और फिर आगे पूछते हैं, "हे भिक्षुओं! आप कहाँ से आए हैं?" जब भिक्षुओं ने बताया कि वे अपने जन्मस्थान से आए हैं, तो बुद्ध ने दस सिद्धांतों (कथावत्थु) के ज्ञाता भिक्षु के बारे में पूछा, "हे भिक्षुओं! वास्तव में, अपने ही जन्मस्थान के ब्रह्मचारी साथी भिक्षुओं में से कौन इस प्रकार निपुण है? अर्थात्, 'स्वयं अल्प इच्छाओं वाले होकर वे भिक्षुओं को अल्प इच्छाओं का उपदेश देते हैं'?" उन्होंने उन्हें यह सूचना भी दी: "आदरणीय गुरुदेव! ये मंतानी के पुत्र, आदरणीय पुन्ण हैं।" यह सूचना सुनकर आदरणीय सारिपुत्त थेरा के दर्शन के लिए उत्सुक हो गए। तब गुरुराजगृह से सावत्थी चले गए। दशबल के वहाँ पहुँचने की सूचना पाकर थेरा पुन्ण भी वहाँ यह कहते हुए गए, "मैं गुरुदेव के दर्शन करूँगा।" वे तथागत के पास पहुँच गए और उनके सुगंधित कक्ष में प्रवेश कर गए। गुरुदेव ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। थेरा ने धर्म को सुना, दशबल को प्रणाम किया और एकांत ध्यान करने के लिए घने वन (अंधवन) में चले गए तथा एक वृक्ष के चरणों में दिनभर विश्राम किया।

थेरा सारिपुत्त ने भी उनके आगमन की सूचना पाकर ध्यानपूर्वक आगे देखा, अवसर का सदुपयोग किया, वृक्ष के चरणों में बैठे हुए व्यक्ति के पास पहुँचे, थेरा से हार्दिक अभिवादन किया और उनसे सात प्रकार की पवित्रता के बारे में पूछा। थेरा ने भी पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुए रथ-सवारी के उदाहरण से प्रश्नकर्ता को प्रसन्न किया; दोनों ने एक-दूसरे की कही हुई बातों की सराहना की। इसके बाद, भिक्षुओं के बीच में बैठे गुरु ने थेरा को धर्म के शिक्षकों में सर्वोपरि स्थान देते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! यह मेरे धर्म के शिक्षकों में श्रेष्ठ शिष्य हैं, अर्थात् पुण्ण।" एक दिन अपनी मुक्ति (विमुक्ति) की समृद्धि पर विचार करने के बाद, वे अत्यंत प्रसन्न और आनंदित हो उठे और मन ही मन कहने लगे: "गुरु पर निर्भर रहने से, मैं और अनेक अन्य प्राणी जन्म-जन्म के चक्रों के दुख (दुक्खा) से स्पष्ट रूप से मुक्त हो गए हैं; भले लोगों की सेवा करना वास्तव में बहुत लाभकारी है।" उन्होंने "सभिरेव समासेथा" (भले लोगों के साथ रहो) से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया, उत्साह या उमंग (पीति) की गति को कम करते हुए गंभीर स्वर में कहा।

4. यहाँ 'सब्भिरेव' शब्द का अर्थ है 'अच्छे लोगों के साथ भी'। यद्यपि यहाँ अच्छे लोगों से तात्पर्य बुद्ध आदि जैसे श्रेष्ठ (आर्य) लोगों से है। वास्तव में, उन्हें 'सन्तो सप्पुरिसा' (अच्छे लोग) कहा जाता है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि उन्होंने असत्यता का पूर्णतः त्याग करके अच्छे धर्म में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था और इसलिए भी क्योंकि उनकी उत्कृष्टता के साथ-साथ उनकी प्रशंसा भी की जाती है। 'समासेथा' का अर्थ है 'साथ रहना', 'साथ रहना': व्यक्ति उनकी सेवा करते हुए, उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हुए, और उनके चिंतन के चिन्ह (दिट्ठानुगति) का अनुसरण करते हुए सह-निवासी बन जाता है; यही अर्थ है। 'पण्डिते हत्थादस्सिभि' उनकी प्रशंसा को दर्शाता है। 'पण्डा' को 'ज्ञान' (पञ्ञा) कहा जाता है; यह ज्ञान इन लोगों में भली-भांति विकसित हुआ है; अतः, 'पण्डित', बुद्धिमान लोग। इसी कारण वे लाभ को अपने स्वयं के लाभ के रूप में दृढ़तापूर्वक देखते हैं; अतः, वे अत्थादस्सिनो (लाभ के द्रष्टा) हैं। आपको उन बुद्धिमान लोगों के साथ रहना चाहिए जो लाभ के द्रष्टा हैं। यदि पूछा जाए क्यों? क्योंकि वे बुद्धिमान और अच्छे लोग हैं, इसलिए वे या उनकी सेवा करने वाले, कल्याण के निश्चित संवर्धक होने के कारण और उनके शांत स्वभाव के कारण, तथा श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के ज्ञान के कारण, अत्थ (लाभ) हैं; महान गुणों और शांति (या अच्छाई) के कारण वे महान (महान) हैं; अथाह होने के कारण और उनके चरागाह गहन ज्ञान होने के कारण वे गंभीर (गहन) हैं; क्योंकि वे नीच इच्छाओं वाले लोगों द्वारा देखे नहीं जा सकते और क्योंकि उन्हें दूसरों द्वारा भी देखना मुश्किल है, इसलिए वे दुद्दसं (देखने में कठिन) हैं। क्योंकि उनका चरागाह सूक्ष्म ज्ञान है, क्योंकि उन्हें देखना कठिन है, और क्योंकि उनका स्वभाव कोमल और सूक्ष्म है, इसलिए वे निपुण हैं; सूक्ष्मता के कारण भी, वे सूक्ष्म (सुखम) हैं, इसलिए वे परमाणु (अणु) हैं; वैकल्पिक रूप से, परम अर्थ के स्वभाव के कारण, स्थिर महत्व के कारण यह कल्याणकारी है; महानता के गुण के कारण, श्रेष्ठ (आर्य) अवस्था के निर्माण के कारण यह महान है; अस्पष्ट स्वभाव के कारण यह गंभीर है; इसे देखना कठिन है, आसानी से नहीं देखा जा सकता; इसलिए, दुद्दसम् (देखने में कठिन); गहराई के कारण इसे देखना कठिन है, देखने में कठिन होने के कारण यह गहनर है; इस प्रकार, यह चार प्रकार का आर्य सत्य है। विशिष्ट रूप से, निपुणं अणुं (सूक्ष्म और परमाणु) दुखों के निवारण (निरोध) का सत्य है; इस प्रकार, इस तरह से, धीरा समाधिगच्छन्ति (बुद्धिमान लोग चार प्रकार के आर्य सत्य को प्राप्त करते हैं); दृढ़ता (धीति) से युक्त होने के कारण वे धीरा (दृढ़ता से बुद्धिमान लोग) हैं; चार प्रकार के आर्य सत्य पर मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) में स्वयं को लीन करने के बाद, वे उचित रूप से अपनी प्राप्ति करते हैं। अप्पमत्ता अभिव्यक्ति का अर्थ है:—हर जगह उत्सुकतापूर्वक सचेत रहते हुए, परिश्रम की उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) को पूरा करते हुए। विचक्खण अभिव्यक्ति का अर्थ है: — वे चतुर और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में पारंगत हैं। इसलिए आपको अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; यही व्याख्या है। वैकल्पिक रूप से, यह अभिव्यक्ति: पंडितेहत्थादस्सीभि; यही अपादान कारक (निस्साक्क) है। क्योंकि कल्याणकारी बुद्धिमान द्रष्टाओं के प्रवर्तक (समुदायभूत) बनने के कारण, दृढ़ बुद्धिमान, परिश्रमी और विवेकशील (विचक्खण) लोग स्वयं ही महान आदि गुणों का लाभ प्राप्त करते हैं; इसलिए आपको उपर्युक्त अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; यही संबंध है। इस प्रकार, यह वह श्लोक भी था जो थेरा की उचित अंतर्दृष्टि (पटिवेध) को स्पष्ट करके थेरा के अरहंतत्व की व्याख्या करता है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा पुन्ण का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(5): डब्बा (मल्लों का)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (5) ------>>>> अगला

5. डब्बा [1] (मल्लों का)
उनका जन्म अनुपिया में मल्ल वंश के एक व्यक्ति के परिवार में हुआ था । [2] सात वर्ष की आयु में उन्होंने भगवान (बुद्ध) के दर्शन किए, जब वे उनके देश और घर आए थे। वे इतने मोहित हुए कि उन्होंने अपनी दादी से, जिनकी माता का उनके जन्म के समय ही निधन हो गया था, [3] पूछा कि क्या वे भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में संसार त्याग कर संन्यास ले सकते हैं। उनकी दादी उन्हें भगवान (बुद्ध)

के पास ले गईं, जिन्होंने एक भिक्षु को उन्हें संन्यास की दीक्षा देने के लिए कहा। और उस बालक ने, जिसके भीतर अतीत के कर्मों और आकांक्षाओं का फल भोग रहा था, अपने बाल कटवाने के दौरान ही चारों मार्ग एक-एक करके प्राप्त कर लिए।

[11] और जब भगवान (बुद्ध) मल्लाओं के देश से राजगृह के लिए रवाना हुए, तो दब्बा, एकांत ध्यान करते हुए और भिक्षु संघ की सेवा में अपना शरीर समर्पित करने की इच्छा रखते हुए, यह विचार किया कि वह रात्रि आवास और भोजन दोनों की व्यवस्था कर सकते हैं। भगवान (बुद्ध) ने उनके ऐसा करने की स्वीकृति दी, और इसमें उनकी सफलता, और इसमें उनकी अलौकिक शक्ति, अपनी चमकती उंगली से भिक्षुओं को उनके आवासों तक प्रकाश पहुँचाने का वर्णन पाली कथा में किया गया है। [4]

लेकिन मेत्तिया और भूममजक का अनुसरण करने वाले भिक्षुओं द्वारा उन्हें बर्बाद करने के उद्देश्य से किए गए निराधार मानहानि [5] के बाद, भिक्षु के संघ द्वारा निंदा किए जाने पर, भिक्षु ने दूसरों के प्रति अपनी सद्गुणी करुणा के प्रति सचेत होकर यह श्लोक कहा:

[5] यो दुद्दामियो दामेना दंतो दब्बो संतुसिटो वितिणकाकोन्खो॥
विजिताविं आपेताभेरवो हि दब्बो सो परिणिब्बुतो चितत्तो' ति.॥ ॥

इत्थं सुदां अयस्मा दब्बो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.॥ ॥

[5] कभी वश में करना कठिन था, वश में करने से अब
डब्बा वश में हो गया है, संदेह से मुक्त, संतुष्ट, शांत।
अब डब्बा विजेता है, और भय से रहित है; वह
परिपूर्ण [6] है और दृढ़ता में अडिग है।

इस प्रकार पूज्य भिक्षु डब्बा ने अपना वचन (गाथा) कहा।

[1] सी.एफ. नीचे, श्लोक 1218। इस प्रतिष्ठित भिक्षु पर, विनय ग्रंथ भी देखें, iii। 4-18; जातक, 1.21; उदान, viii. 9; आंग. निक., 23.

[2] शाब्दिक रूप से, मल्ल वंश के एक (राजा) राजा, स्वतंत्र कुलों का एक संघ, जिसे दो महान चीनी तीर्थयात्री इतिहासकारों ने बुद्ध के अपने कुल के पूर्व में पर्वतीय ढलानों पर स्थित किया था।

[3] टीका परंपरा के अनुसार, उनके जन्म से पहले।

[4] वत्थु-पलियान - अर्थात, खंडका चतुर्थ में। विनय ग्रंथ देखें , iii. 4 एफएफ.

[5] आयरलैंड, पृ. 10-18.

[6] परिनिर्वाण। इस पर धम्मपाल टिप्पणी करते हैं: 'दो परिनिर्वाण हैं - दुर्गुणों का परिनिर्वाण (किलेसा, "दस दुख" या "भ्रष्टाचार के आधार"; मेरी बौद्ध मनोवैज्ञानिक नैतिकता, पृष्ठ 327 आदि देखें), जो निर्वाण का तत्व है, जिसमें जीवन का शेष सार मौजूद है; और खन्धों (व्यक्तित्व के कारक) का परिनिर्वाण , जो उस शेष के बिना निर्वाण का तत्व है। यहाँ पूर्व प्रकार का तात्पर्य है, क्योंकि मार्ग द्वारा उन सभी चीजों का पूर्णतः निवारण किया गया है जिन्हें निवारण किया जाना चाहिए।' तुलना करें दर्शन का संकलन, पृष्ठ 108: मेरा बौद्ध धर्म, पृष्ठ 191।

1.1-5[5] श्लोक पर टिप्पणी

डब्बा थेरा
यो दुद्दामियो से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा दब्बा का श्लोक है। इसका उद्गम क्या है? इनका भी जन्म बुद्ध पद्ममुत्तरे के समय हंसावती नगर के एक पारिवारिक घर में हुआ था। वयस्क होने पर, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वे सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनते रहे, उन्होंने देखा कि गुरु भिक्षुओं के सोने-बैठने की व्यवस्था करने वालों में एक भिक्षु को सबसे आगे रखते हैं। उन्होंने भक्तिपूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन किया, उस पद की आकांक्षा की, गुरु द्वारा भविष्यवाणी की गई, अपने जीवनकाल तक अच्छे कर्म किए, देवताओं

और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और उस समय भिक्षु बने जब दशबल कस्सपा का युग समाप्त हो रहा था (ओसक्कना)। उस समय, उनके साथ छह अन्य लोग भी थे; इस प्रकार, सात भिक्षुओं ने एकमत होकर, दूसरों को शासन के नियमों का अनादर करते देखकर आपस में कहा: "अब हम क्या करें? एक कोने में भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करने के बाद दुख का अंत करें।" उन्होंने एक सीढ़ी लगाई, एक ऊँची पहाड़ी की चोटी पर चढ़े और आपस में कहा: "अपनी मानसिक शक्ति का निश्चय करने के बाद सीढ़ी को नीचे गिरा दें; जीवन के प्रति आसक्ति को त्याग दें; बाद में पश्चाताप न करें।" वे सब एकमत होकर सीढ़ी को नीचे गिरा दिया, आपस में सलाह करते हुए कहा: "हे मित्रों! तुम्हें परिश्रम करना चाहिए," अपने मनपसंद स्थानों पर बैठ गए और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करने में जुट गए।

वहाँ, पाँचवें दिन एक थेरा ने अरहंत पद प्राप्त किया और मन ही मन कहा, "मेरा कर्तव्य पूरा हो गया, अब मैं इस स्थान पर क्या करूँ?", फिर वे उत्तरकुरु (उत्तरी द्वीप) से भिक्षा लेकर आए और बोले, "हे मित्रों! कृपया यह भिक्षा ग्रहण करें; भिक्षा जुटाने का कर्तव्य मेरा है; आप सब अपना-अपना कर्म करें।" उन्होंने कहा, "मित्र! यह कैसे संभव है? सीढ़ी गिराने पर क्या हम ऐसा कहते हैं: 'जो भी सबसे पहले धम्म का दर्शन करे, वही भिक्षा लाए, बाकी सब उसके द्वारा लाई गई भिक्षा ग्रहण करने के बाद भिक्षु का कर्तव्य पूरा करेंगे?'" उनके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक था। उन्होंने थेरा के प्रस्ताव को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया, "तुमने अपने पूर्व कर्म से लाभ उठाया है, हम भी जन्म-जन्म के चक्र को समाप्त करने में सक्षम होंगे। तुम यहाँ से चले जाओ।" थेरा उन्हें समझाने में असमर्थ रहे, इसलिए उन्होंने एक सुविधाजनक स्थान पर अपना भिक्षा भोजन किया और चले गए। एक अन्य थेरा ने सातवें दिन अनागामी (अनगामी) का फल प्राप्त किया और वहाँ से देह त्यागने के बाद, उनका पुनर्जन्म ब्रह्मलोक (शुद्धवास) में हुआ। अन्य थेराओं ने वहाँ से देह त्यागने के बाद, बुद्ध काल (बुद्धंतरं) के लिए देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए विभिन्न परिवारों में पुनर्जन्म लिया। उनमें से एक का पुनर्जन्म गांधार राज्य के तक्कशिला नगर में राजपरिवार में हुआ; दूसरे का पुनर्जन्म मझंतिका राज्य की एक विचरणशील तपस्वी महिला के गर्भ में हुआ; तीसरे का पुनर्जन्म बाहिया राज्य के एक जमींदार के घर में हुआ; चौथे का पुनर्जन्म एक नन आश्रम में हुआ।

इस थेरा डब्बा का जन्म मल्ल राज्य के अनुपिया नगर में एक मल्ल राजा के घर हुआ था। उनकी माता प्रसव पीड़ा से पहले ही मर गईं। उनके लोग उनके शव को श्मशान ले गए, लकड़ियों के ढेर पर रखा और उसमें आग लगा दी। आग की लपटों से उनके पेट की श्लेष्म झिल्ली दो बार गर्म हुई। अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप शिशु उछल पड़ा और एक मजबूत लकड़ी के खंभे (डब्बाथम्भ) पर गिर पड़ा। उन्होंने शिशु को उठाया और उसकी नानी को सौंप दिया। नानी ने उसका नाम "डब्बा (मजबूत लकड़ी)" रखा, क्योंकि मजबूत लकड़ी के खंभे (डब्बाथम्भ) पर गिरने के बाद ही उसे जीवन प्राप्त हुआ था। जब वह सात वर्ष के थे, तब गुरु, भिक्षुओं के एक दल से घिरे हुए, मल्ल राज्य में अपने भ्रमण पर निकले और अनुपिया के आम के बाग में रहने लगे। छोटे बालक डब्बा ने गुरु को देखा और उन्हें देखकर अत्यंत प्रसन्न होकर भिक्षु बनने की इच्छा उत्पन्न की और अपनी दादी से अनुमति मांगते हुए कहा, "मैं दशबाला के समक्ष भिक्षु बनना चाहता/चाहती हूँ।" "बहुत खूब, मेरे प्यारे!" कहते हुए उसकी दादी डब्बा को साथ लेकर गुरु के पास गईं और बोलीं, "आदरणीय गुरुजी! कृपया इस बालक को भिक्षु दीक्षा दें।" गुरु ने एक भिक्षु को निर्देश देते हुए कहा, "हे भिक्षु! इस बालक को सामणेर बनने की दीक्षा दो।" उस थेरा ने गुरु का वचन सुनकर, युवा दब्बा को दीक्षा देते हुए, शरीर के उन भागों पर मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) के बारे में बताया, जिनमें से पाँचवाँ भाग मदिरा है। पूर्व कर्म (पुबहेतु) से संपन्न और विशेष समर्पित दान करने वाले उस बालक (सत्ता) ने अपने बालों की लटें मुंडवाते समय ही पवित्रता (सोतापत्ति) के प्रथम चरण की सिद्धि प्राप्त कर ली। बालों की दूसरी लटें मुंडवाते ही उसने एक बार लौटने वाले (सकदागामी) के द्वितीय चरण की सिद्धि प्राप्त कर ली; तीसरी लटें मुंडवाते ही उसने मानव जगत में न लौटने (अनगामी) की सिद्धि प्राप्त कर ली; हालाँकि, उसके सभी बाल मुंडवाने के बाद न तो उसने अरहंतत्व की सिद्धि की कल्पना की और न ही उससे पहले। गुरु ने मल्ल राज्य में अपनी इच्छानुसार निवास करने के बाद, वहाँ से चले गए। राजगृह में जाकर वे बांस के वन (वेलुवन) में निवास करने लगे।

वहाँ, मल्ला के पुत्र पूज्य दब्बा, जो अपने कर्तव्यों के निर्वाह के बाद एकांतवास में चले गए थे, पुरोहितों की सेवा में अपना शरीर समर्पित करने की इच्छा से प्रेरित होकर इस प्रकार सोचने लगे: "यदि मैं पुरोहितों के लिए सोने-बैठने की व्यवस्था करूँ और विशेष रूप से उनके लिए भोजन का प्रबंध करूँ तो कैसा रहेगा?" वे गुरु के समक्ष गए और अपने इस सर्वांगीण इरादे के बारे में उन्हें बताया। गुरु ने उनका आभार व्यक्त किया और उनके द्वारा पुरोहितों के लिए सोने-बैठने की व्यवस्था करने और विशेष रूप से भोजन का प्रबंध करने की स्वीकृति दी। तब गुरु ने सात वर्ष की आयु में ही उन्हें पूर्ण भिक्षु बना दिया और दीक्षा देते हुए कहा: "यह दब्बा, यद्यपि अभी छोटा है, फिर भी उसने उच्च पद प्राप्त कर लिया है। पूर्ण भिक्षु बनने के समय से ही, थेरा ने राजगृह पर निर्भर रहने वाले सभी भिक्षुओं के लिए सोने और बैठने की व्यवस्था की; उन्होंने उनके लिए विशेष भोजन की व्यवस्था भी की। उनके द्वारा सोने और बैठने की व्यवस्था करने की बात सभी दिशाओं में इस प्रकार प्रसिद्ध हो गई: "कहा जाता है कि मल्ला के पुत्र दब्बा ने एक ही स्थान पर सभी प्रकार के भिक्षुओं के लिए सोने और बैठने की व्यवस्था की; उन्होंने पास और दूर दोनों जगह के लिए उपयुक्त व्यवस्था की; वे अपनी जादुई शक्तियों से उन लोगों का मार्गदर्शन करते थे जो चल नहीं सकते थे।"

फिर, उचित या अनुचित किसी भी समय, भिक्षु उनसे विशेष रूप से सोने और बैठने की व्यवस्था करने के लिए कहते थे: "हे मित्र! कृपया जीवकम्म (जीवन-कार्य) उपवन में हमारे लिए आवास तैयार करें; मद्दकुच्ची में हमारे लिए; मिगदया हिरण उद्यान में हमारे लिए।" और वे उनकी जादुई शक्ति को देखते हुए चले जाते थे। वह थेरा भी अपनी जादुई शक्तियों से अपने मन से निर्मित शरीर को विशेष रूप से तैयार करने के बाद, प्रत्येक वरिष्ठ भिक्षु को अपने समान एक-एक भिक्षु देते थे, अपनी जलती हुई उंगली के प्रकाश में आगे जाते थे और कहते थे: "यह पलंग है, यह गद्दी है" इत्यादि, सोने और बैठने की व्यवस्था करते थे और वापस अपने निवास स्थान पर लौट आते थे। यह संक्षेप में है; हालाँकि, विस्तृत रूप से यह कथा पाली ग्रंथों में मिलती है। गुरु ने इस बात को एक उपाख्यान बनाकर, बाद में आर्यों की भीड़ के बीच बैठकर, थेरा को सोने-बैठने की व्यवस्था करने वालों में सबसे आगे रखते हुए कहा:— "हे भिक्षुओं! यह मेरे शिष्य भिक्षुओं में सोने-बैठने की व्यवस्था करने वाला प्रमुख है, यह मल्ला का पुत्र दब्बा है। यह बात अपदान में भी कही गई है:—

"पदुमुत्तरा नाम के विजेता ने,

वह ऋषि जो समस्त संसार को जानता था,

दृष्टि का स्वामी (चक्खुमा) उत्पन्न हुआ

एक लाख युग (कप्पा) पहले।

वह सलाहकार थे, सूचना प्रसारक थे।

और समस्त प्राणियों का मार्गदर्शक तारा;

बुद्ध, जो शिक्षा देने में कुशल थे, ने संदेश भेजा।

संसार का सागर, अनेक पुरुष। दयालु-

पूर्ण सहानुभूति रखने वाला, कल्याण चाहने वाला

सभी जीवित प्राणियों में वही था जिसने उन्हें बनाया।

सभी विधर्मी उसके पास पहुँच गए, वे ठीक थे।

पांचों में ठीक से स्थापित हो जाएं

नैतिक उपदेश।

इस प्रकार वह विक्षिप्तता से मुक्त हो गया।

विधर्मियों से उत्पन्न अशांति समाप्त कर दी गई;

अरहंतों से भरा हुआ जो इस प्रकार के थे

क्योंकि वह अपने प्रभाव से शक्तिशाली हो गया था।

वह महान ऋषि अट्ठावन हाथ लंबा था।

कद में; उसका रूप अनमोल था

सोना और उसके शरीर में बत्तीस उत्कृष्ट अंग थे

विशेषताएँ।

उस समय जीवनकाल सौ वर्ष था।

हजार वर्ष; उस दौरान जीवन व्यतीत करना

उसने अपने जीवनकाल में कई लोगों को भेजा।

उस समय मैं एक बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति था।

हंसवती में बैंकर का पुत्र;

वह जलती हुई रोशनी की ओर बढ़ा।

मैंने उनकी शिक्षाओं को सुना।

धम्म।

यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई।

घोषणा के शब्द के संबंध में

उनका अपना शिष्य जिसने तैयारी की

सोने और बैठने की व्यवस्था

भिक्षुओं के लिए।

समर्पित सेवा करने के बाद

वह महान ऋषि अपने पुरोहितों के साथ,

मैं उनके चरणों में सिर रखकर गिर पड़ा और

विशेष रूप से उस पद के लिए इच्छुक थे।

उस महान नायक ने तब मेरे बारे में घोषणा करते हुए कहा

ऐसा कार्य जैसे किसी ने भोजन परोसा हो

विश्व के नेता के साथ

सात दिनों के लिए पादरी:—

यह वही है जो कमल की पंखुड़ियों के समान चमकता है।

शेर जैसी भुजाओं और सोने जैसी चमड़ी के साथ,

वे मेरे चरणों में गिर पड़े और सबसे बड़ी प्रार्थना करने लगे।

बहुत बढ़िया पद।

एक लाख युगों (कप्पा) के बाद,

दुनिया में एक गुरु का जन्म होगा।

उनके कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, उच्च कुल में जन्मे

ओक्काका का परिवार।

फिर यह व्यक्ति शिष्य बन जाएगा

वह बुद्ध, जो इस नाम से प्रसिद्ध हैं

डब्बा, नींद की तैयारी कराने वाला सर्वोपरि व्यक्ति-

भोजन और बैठने की व्यवस्था। खाते के अनुसार

उस सुनियोजित कार्य के साथ-साथ उसकी इच्छाशक्ति का भी।

और आत्मनिर्णय, त्याग करने पर

मैं अपने मानव शरीर में तावतिंसा गया।

स्वर्ग।

मैंने तीन सौ बार दिव्य अभ्यास भी किया।

संप्रभुता, और उससे भी पाँच सौ गुना अधिक

मैं विश्वराज बन गया।

ऐसे अवसरों की संख्या का अनुमान लगाना असंभव था।

मेरी क्षेत्रीय संप्रभुता की समृद्धि के लिए।

उस कार्य के फलस्वरूप मैं हर पल खुश रहता था।

कहाँ।

इक्यावन युग पहले, एक ऐसी घटना का उदय हुआ जो

नेता विपस्सी (बुद्ध), देखने में आकर्षक और

जिन्हें समस्त धर्मों का स्पष्ट ज्ञान था।

आक्रामक स्वभाव के कारण मैंने शिष्य का अपमान किया।

उस प्रकार के बुद्ध, जिनके पास सर्वांगीण गुण थे

उसके सारे घाव भर गए, हालाँकि बाद में

मुझे यह स्पष्ट रूप से पता था कि वह पवित्र था।

जब मैंने उन सबको पकड़ लिया, (सलाका)

मैंने शिष्यों को दूध-चावल भेंट किए।

वही बुद्ध, जो मनुष्यों के नायक हैं, जिन्होंने

वे महानता के साधक थे (महेसी)।

इस उत्कृष्ट युग में, भद्दकप्पा,

तब एक अत्यंत प्रसिद्ध रिश्तेदार का उदय हुआ।

ब्रह्मा के वंश से, कस्सपा नाम से जाने जाने वाले,

वक्ताओं में उत्कृष्ट।

अपनी व्यवस्था को चमकाने के बाद

दुष्ट विधर्मियों पर विजय प्राप्त करते हुए, उसने, साथ मिलकर

उनके शिष्य निर्वाण को प्राप्त हुए।

लेकिन नेतृत्व योग्य लोगों का स्पष्ट रूप से नेतृत्व करने के बाद

(उसी गंतव्य तक)।

जब प्रभु अपने शिष्यों के साथ

जब उनके सूर्य ने उन्हें निर्वाण में प्रवेश कराया,

व्यवस्था स्थापित हो गई थी, दिव्य प्राणी बन गए

पश्चाताप से भरे हुए और बिखरे बालों के साथ रोते हुए

बाल और आंसू से भीगे चेहरे।

धम्म (अक्खा) के पहिये का धुरा

हम काम करना बंद कर देंगे (निब्बायति)

अब हमें अच्छे भक्त देखने को नहीं मिलेंगे।

अब उन्हें अच्छी सच्चाई सुनने को नहीं मिलेगी

(धम्म); हाय! हममें कमी है

योग्यता।

तब यह पूरी अविचल पृथ्वी

कांप उठा और थरथरा गया; मानो दुख से

सागर से शोकपूर्ण सहानुभूति की ध्वनि निकली।

चारों ओर से अलौकिक ढोल की गूंज सुनाई दी।

चेहरे; बिजली अलग-अलग हो जाती है असाइन-

चारों ओर से खतरा मंडरा रहा है। आसमान से भी।

आग की मशालें नीचे गिरीं; वहाँ था

धुआं उगलती बत्तियाँ; जंगली जानवर

(मिगा) ने दयनीय ढंग से रोया।

गंभीर स्थिति को देखते हुए

(अस्त होते सूरज का) विधान का

(शासन) हम सात भिक्षु जो थे

तब पश्चाताप से भरा विचार इस प्रकार आया:— बिना

हमारे लिए व्यवस्था (शासन) थी, हम थे

अपने जीवन से तंग आ चुके हैं (अलं):

घने जंगल में प्रवेश कर चुके हैं, आइए प्रयास करें

स्वयं को शासन व्यवस्था (सासन) में

विजेता का।

फिर हमने जंगल में सबसे

ठोस पत्थर से बनी उत्कृष्ट ऊँची पहाड़ी; साथ

हमने सीढ़ी चढ़ी, और हम (बाद में)

सीढ़ी को गिरने दो।

उस समय हमारे वरिष्ठ भिक्षु ने निर्देश दिया

इस प्रकार:— इसे प्राप्त करना बहुत कठिन है

बुद्ध का प्रकट होना; प्राप्त करना

धार्मिक आस्था अत्यधिक कठिन है

बनना; व्यवस्था का जो शेष भाग बचा था

यह भी बहुत कम है।

जो लोग पलों को यूं ही बीतने देते हैं, वे गिर जाते हैं।

दु:ख के अंतहीन सागर में;

इसलिए यथासंभव प्रयास किया जाना चाहिए

जैसे कोई मृत्यु के नीचे कुचलकर खड़ा हो (मुने)

(मतां).

वह थेरा अरहंत बन गया; उसका अनुयायी

अनागामी (अनागामी) बन गया

उन्होंने अच्छे नैतिक मूल्यों का पालन किया और

हम (पांच) दिव्य लोक में गए।

अरहंत, जो समुद्र पार कर चुके थे

संसार से निर्वाण में परिवर्तित;

हम सुधावास (ब्रह्म संसार) में हैं; खुद,

पक्कुसाति, सभिया और इसी तरह बहिया

साथ ही कुमारकस्सपा, हम (पांच)

इस और उस अस्तित्व के करीब पहुंचे।

हमें बंधनों से मुक्ति मिली

पुनर्जन्मों का चक्र (संसार)

गौतम द्वारा, हमारे प्रति सहानुभूति के साथ।

जब मैं कुसिनारा में गर्भ में ही उत्पन्न हुआ

मल्ला समुदाय में, मेरी मृत माँ को घुड़सवार बनाया गया था।

जिस चिता से मैं गिरा था, उसी पर।

ढेर पर गिरने के परिणामस्वरूप

लकड़ी के डिब्बे से मैं अच्छी तरह से प्रशिक्षित हो गया।

डब्बा के नाम से जाना जाता है; पवित्रता की शक्ति पर-

ब्रह्मचारी जीवन में, मैं मुक्त हो गया।

सात साल की उम्र में।

दूध-चावल (अर्पण) की शक्ति से ऊपर

मुझे पाँच गुण प्राप्त हुए; आग्रह किया गया

अनेक बुराइयों के कारण, मैं एक अपराध में शामिल था।

किसी रोगमुक्त (खीणासव) का अपमान करना।

मैं अब उस स्तर से परे एक अवस्था में हूँ।

गुण और दोष दोनों से युक्त; प्राप्त कर लिया

पूर्ण शांति, मैं मुक्त जीवन जीता हूँ

कैंकर (आसवा)।

मैंने सोने और बैठने की व्यवस्था तैयार कर ली।

सदाचारी को प्रसन्न करने वाला दान; संतुष्ट

उस गुण के साथ, विजेता ने रखा

मुझे सबसे अग्रणी स्थान पर।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी।

सभी अस्तित्वों का नाश हो चुका था।

जैसे कोई हाथी जिसने काट डाला हो

इसके बंधन से मुक्त होकर, मैं रोगों से मुक्त जीवन जीता हूँ।

मेरा प्रदर्शन वाकई बहुत अच्छा रहा।

परम श्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति;

तदनुसार त्रिगुणात्मक ज्ञान प्राप्त हुआ था

प्राप्त किया; बुद्ध का उपदेश (शासन)

कार्य संपन्न हो चुका था।

विश्लेषणात्मक ज्ञान के चार प्रकार...

बुद्ध का उपदेश (शासन) यह था:

किया गया।

यद्यपि एक दोषरहित थेरा को अपमानित करने के बुरे कर्म के कारण, पहले उन्हें कई लाख वर्षों तक नरक में भोगना पड़ा था; उसी कर्म से प्रेरित होकर, मेत्तियाभूमजक नामक भिक्षुओं ने, जो हर उस चीज़ के लिए प्रयासरत थे जिसे प्राप्त करना कठिन है, उन पर निराधार आरोप लगाकर उन्हें अपमानित किया कि उन्होंने एक गंभीर अपराध किया है जिसके लिए उन्हें निष्कासित (पाराजिका) किया जाना चाहिए, और कहा, "इस एक व्यक्ति ने हमारे और हमारे अच्छे भोजनदाता, एक धनी गृहस्थ के बीच दरार पैदा कर दी।" फिर, जब पुरोहितों द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के माध्यम से, आरोपी भिक्षु के अंतरात्मा (सतिविनय) से अपील करके, उस विवाद का समाधान हो गया, तो इस थेरा ने संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, अपने गुणों को प्रकट करने के लिए, इस श्लोक का उच्चारण किया, जो इस प्रकार शुरू होता है: - "यो दुद्दामियो (जो भी वश में करना कठिन है),"

5. वहाँ, शब्द 'यो' का अर्थ है: एक अनिश्चित विशेषण; इस शब्द "सो" से इसकी निश्चित स्थिति देखी जानी चाहिए। उन्होंने अपने बारे में ऐसा कहा मानो वे किसी दूसरे के बारे में 'यो' और 'सो' दोनों शब्दों के माध्यम से ऐसा कह रहे हों। 'दुद्दामियो' का अर्थ है वश में करना कठिन; वश में न किया जा सकने वाला। उन्होंने यह बात अपनी सामान्य भिक्षु अवस्था (पुथुज्जन) के दौरान इंद्रियों के नियंत्रण की असमर्थता, अपने मन की संशयपूर्ण बेचैनी, इंद्रिय सुख की अधिकता से ग्रसित सभी प्रकार के दुराचार और झूठे विचारों के सहारा लेने पर विचार करते हुए कही। 'दामेना' अभिव्यक्ति का अर्थ है सबसे उत्तम और अग्रणी श्रेष्ठ मार्ग द्वारा वश में किया जाना; वास्तव में, उससे वश में हो जाने के कारण, क्योंकि वश में करने की प्रक्रिया पुनः करनी होगी, इसलिए यह उचित कथन के योग्य है: "दन्तो (वश में किया हुआ);" किसी अन्य (शब्द) द्वारा नहीं। दूसरे शब्दों में, दमेना का अर्थ है उस बुद्ध द्वारा वश में किया जाना, जो मनुष्यों को वश में करने वाले सारथी (पुरिसदम्मसारथी) के रूप में जाने जाते हैं। दब्बा शब्द का अर्थ है: वृक्ष-लकड़ी (द्रब्य); संभव; इस प्रकार, यही अर्थ है। अतः, इसी थेरा के संदर्भ में, भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा,

“हे डब्बा! वास्तव में, सामग्री (डब्बा) इस प्रकार स्पष्ट नहीं करती।” संतुष्टि शब्द का अर्थ है, प्राप्त आवश्यकताओं की संतुष्टि, ध्यान और उचित प्राप्ति (समापत्ति) की संतुष्टि, श्रेष्ठ मार्ग (मार्ग) और फल (फल) की संतुष्टि। वितिण्णकम्भा शब्द का अर्थ है — संदेह से मुक्त, क्योंकि आठ और सोलह आधारों पर टिकी अनिश्चितता पूरी तरह से दूर हो गई है। विजयतावी शब्द का अर्थ है स्पष्ट रूप से विजय प्राप्त करना, क्योंकि एक सिद्ध पुरुष द्वारा स्पष्ट रूप से जीती जाने वाली सभी विकृतियों को स्पष्ट रूप से जीत कर नष्ट कर दिया गया है। अपेताभेरव शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जिसका खतरा दूर हो गया है और खतरे की अनुपस्थिति में प्रसन्न हो गया है, क्योंकि सभी प्रकार के पच्चीस खतरे दूर हो गए हैं। फिर से, डब्बा शब्द नाम की घोषणा है। परिनिर्वाण शब्द का अर्थ है दो प्रकार से सर्वांगीण निर्वाण की प्राप्ति: पहला, निर्वाण के तत्व (सौपादिसेष) के साथ पूर्णतः दुराचार (किलेसा) का निवारण, और दूसरा, निर्वाण के तत्व (सौपादिसेष) के बिना पूर्णतः स्कंधों (खंध) का निवारण। इन दोनों में से यहाँ दुराचार (किलेसा) के परिनिर्वाण का तात्पर्य है; अतः, उन्होंने श्रेष्ठ मार्ग (मार्ग) के माध्यम से सभी पहलुओं में त्यागे जाने योग्य कर्मों (पहातब्बधम्म) का त्याग करके अपने पूर्ण दुराचार

निवारण के द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त किया; यही अर्थ है। 'ठितत्तो' शब्द का अर्थ है जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ावों (लोकधम्म) से अविचलित, अविचलित रहने की अवस्था, जो वांछनीय वस्तुओं आदि में ऐसी अवस्था की प्राप्ति के कारण होती है। वह कारण के अर्थ में एक अविघटनीय कण (निपाता) मात्र है; इसी कारण, जो पहले वश में करना कठिन था, गुरु द्वारा सबसे उत्तम वशीकरण विधियों से दब्बा (दब्बत्ता) के मन को वश में करने के कारण वह संतुष्ट, संशयमुक्त, स्पष्ट विजेता और भयमुक्त हो गया; अतः दब्बा ने परिनिर्वाण प्राप्त किया क्योंकि उसका मन उसी के फलस्वरूप स्थिर रहा; इस प्रकार होने पर, थेरा ने अन्य प्रशिक्षु बुद्धिमान प्राणियों के प्रति सहानुभूति जताते हुए अपने अरहंतत्व की व्याख्या इस प्रकार की:— व्यक्ति को अपना पवित्र मन केवल उसी में लगाना चाहिए, कहीं और नहीं।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा डब्बा का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(6):सीता-वनिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (6) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
6. सीता-वानिया
यह आदरणीय भिक्षु सम्भूत का कथन (गाथा) है। उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक प्रख्यात ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम सम्भूत रखा गया। [1] अपने तीन मित्रों, भूमिजा, जय्यसेन और अभिरादन के साथ, उन्होंने भगवान बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और संसार त्यागकर भिक्षु संघ में प्रवेश किया। 'शरीर के प्रति सजगता' की व्यवस्थित ध्यान साधना करते हुए, वे निरंतर सीतावन (शीतकालीन वन) में रहे और इस प्रकार सीतावनीय (शीतकालीन वनवासी) के नाम से जाने गए।

और जब उसने भिक्षुओं को भगवान (बुद्ध) के दर्शन के लिए जाते हुए देखा, तो उसने कहा: 'मित्रों, मेरी वाणी से भगवान की आराधना करो और उनसे इस प्रकार कहो' (भगवान (बुद्ध) को धर्म के मार्ग के प्रति अपनी निरंतर चिंता दर्शाते हुए)।

[6] यो सीतावनं उपागा भिक्खु एको सन्तुसिटो समाहितत्तो॥
विजितावि एपेटलोमहंसो रक्खं कायगतासतिं धितिमा' ति.॥॥

इत्थं सुदां अयस्मा सीतावणियो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.॥॥

[6] एक भिक्षु है जो ठंडे जंगल में जाकर
एकांत में, संतुष्ट, ध्यानमग्न परमानंद में रहता था,
विजयी, अब रेंगते हुए भय से विचलित नहीं,
वह उच्च साहस के साथ सचेत रूप से इंद्रियों की रक्षा करता है।

इस प्रकार पूज्य भिक्षु सीता-वानीया ने अपना वचन (गथा) कहा।

[1] यह CXCII, श्लोक 9 का सम्भूता नहीं हो सकता। मित्रों में, हम (संभवतः) केवल भूमिजा के साथ सांग्यी, ii. 39 में मिलते हैं।

1.1-6[6] श्लोक पर टिप्पणी

सीतावनिया थेरा

यो सीतावनं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा संब्लूत का है। उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि आज से एक सौ अठारह युग (कप्पा) पहले, संसार में स्वयंजागृत बुद्ध अत्थादस्सी का जन्म हुआ। वे संसार को, जिसमें दिव्य जगत भी शामिल था, संसार की महाबाढ़ से पार कराते हुए एक दिन कई भिक्षुओं के साथ गंगा नदी के किनारे पहुँचे। उस समय, उनका पुनर्जन्म एक धनी गृहस्थ परिवार में हुआ था और वहाँ भगवान बुद्ध के दर्शन करके वे श्रद्धा से भर गए, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूछा: “हे पूज्यवर! क्या आप उस पार जाना चाहते हैं?” भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया कि वे जाना चाहते हैं। उसी समय उन्होंने नौकाओं का एक समूह बनाया और उन्हें उन्हें भेंट किया। उन पर दया करते हुए गुरुजी भिक्षुओं के साथ नौका पर सवार हुए। वे स्वयं भी नौका पर सवार हुए और भगवान बुद्ध तथा भिक्षुओं के साथ आसानी से दूसरे तट पर पहुँच गए। उन्होंने दूसरे दिन होने वाली एक बड़ी भेंट की, उनका अनुसरण किया, गर्व से भर गए, उन्हें प्रणाम किया और विदा हो गए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए, एक सौ तेरह युग (कप्पा) पहले एक योद्धा राजकुमार (खत्तीय) के परिवार में पुनर्जन्म लिया और धर्मात्मा धम्मिका नामक विश्वराज बने। उन्होंने अपनी प्रजा को स्वर्ग के मार्ग पर स्थापित किया और वहाँ से देहान्त होने पर, उन्होंने भगवान बुद्ध के विपस्सी संप्रदाय में भिक्षु का रूप धारण किया, एक इक्यावन युग (कप्पा) पहले कठोर साधना (धूत धम्म) का पालन किया और श्मशान में निवास करते हुए भिक्षु के कर्तव्यों का निर्वाह किया। फिर, भगवान कश्यप के समय में भी, वे अपने तीन साथियों के साथ भिक्षु बने, बीस हजार वर्षों तक भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, बुद्ध काल के दौरान बार-बार पुनर्जन्म लेते रहे और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब राजगृह में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ। उन्होंने उन्हें “संभूत” नाम दिया। वयस्क होने पर, उन्होंने संपूर्ण ब्राह्मण विद्या में सिद्धि प्राप्त की। भूनिजा, जय्यसेन और अभिराधन जैसे तीन साथियों के साथ, वे भगवान के दर्शन करने पहुँचे, धर्म की शिक्षाएँ सुनीं, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए। उनके संबंध में इस प्रकार कहा गया है:

“भूमिजा, जय्यसेन, सम्भूता और

अभिराधना, ये विशेष रूप से-

औषधालय में धम्म को पहले से स्थापित किया-

ऐसे उत्कृष्ट बुद्ध का चित्रण।

तब सम्भूता ने भगवान थेरा के दर्शन से शरीर की गति (कायगत) पर ध्यान केंद्रित करने का मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) लिया और शीतवन में स्थायी रूप से निवास करने लगे। इसी कारण वे "सीतवनीय (शीतवनवासी)" के नाम से जाने गए। उसी समय, महान देवराज वेसवण जंबूद्वीप में किसी कार्य से दक्षिण दिशा की ओर आकाश में जा रहे थे, जब उन्होंने थेरा को खुले आकाश में बैठे हुए, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) में लीन देखा। वे अपने महल से नीचे उतरे, थेरा को प्रणाम किया और दो राक्षसों को यह आदेश देकर प्रस्थान किया: "जब भी थेरा अपनी समाधि से उठें, तो उन्हें मेरे आने की सूचना देना; और उनका ध्यान रखना।" वे थेरा के पास खड़े हो गए, जिन्हें उन्होंने (आदेशानुसार) सूचित किया, जब वे अपनी ध्यान साधना पूरी करने के बाद फिर से बैठ गए थे। दोनों राक्षसों की बात सुनकर, थेरा ने उन्हें यह कहते हुए जाने दिया: “तुम्हें अपने राजा वेसवण को मेरे नाम से यह बताना चाहिए कि भगवान ने अपने शिष्यों के लिए चेतना की रक्षा की व्यवस्था की है; वही रक्षा (चेतना की) मेरे जैसे उनके शिष्यों की भी रक्षा करे; तुम्हें वहाँ निश्चिंत रहना चाहिए; भगवान के शिष्यों के लिए ऐसी कोई रक्षा नहीं है।” उसी क्षण, उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त हुई और उन्होंने त्रिविध ज्ञान का दर्शन किया। इसके बाद वेसवण पीछे हटते हुए थेरा के पास पहुँचे, उन्हें पता चला कि थेरा ने अपना कार्य पूरा कर लिया है, लेकिन अपने चेहरे के भावों से उन्होंने सावत्थी के पास जाकर थेरा को इसकी सूचना दी और गुरु की उपस्थिति में विशेष रूप से थेरा की प्रशंसा करते हुए इस श्लोक के माध्यम से थेरा के गुणों का गुणगान किया:

मानसिक सुरक्षा से संपन्न

जागरूकता, दृढ़ता से युक्त

प्रयास से अच्छी तरह संयमित, अच्छी तरह-

मास्टर द्वारा निर्मित, उन्होंने देखभाल की

उसे; तीन गुना ज्ञान के साथ वह

मृत्यु के दूसरे छोर तक पहुँच गया था।

इसी कारण अपदाना में इस प्रकार कहा गया है:—

परम पूज्य अत्थादस्सी, शासक

दो पैरों वाले प्राणियों में से, मनुष्यों में बैल के समान,

उनके शिष्य उनके पीछे-पीछे पास आए

गंगा का किनारा। पानी से लबालब भरा हुआ।

उतरने की जगह, उसके पानी के गिलास के साथ-

गंगा नदी के किनारे स्थित था या बहता था

पार करना कठिन था; मैंने भेजा

भिक्षुओं (भिक्षुओं) का धर्मगुरु वर्ग, जैसे

साथ ही बुद्ध, जो सबसे उत्कृष्ट हैं

दो पैरों पर चलने वाला।

उस समय मैंने जो काम किया था, उसके कारण

एक सौ अठारह युग (कप्पा)

मुझे याद नहीं कि कुछ समय पहले कोई बुराई मौजूद थी।

मेरा तनाव; यही इसका फल है

मेरे द्वारा भेजे जाने का।

तेरह सौ युग (कप्पा) पहले,

मैं पाँच वर्षों तक सार्वभौमिक सम्राट था

(अवसरों)। वे विश्व-राजा थे

सात 'जेन्स' से संपन्न और महान

हो सकता है।

इस अंतिम जन्म में मेरा पुनर्जन्म हुआ।

एक ब्राह्मण परिवार में; (मेरे साथ)

तीन साथियों के साथ, मैं भिक्षु बन गया।

गुरु का विधान।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी;

बुद्ध का उपदेश यही था।

किया गया।

तब पूज्य संभूत भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए जाते समय भिक्षुओं से मिले और उनसे कहा, "हे मित्रों! मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम कीजिए; उनसे इस प्रकार भी कहिए।" उन्होंने "यो सीतावनं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे अपने विशेष धर्म अभ्यास में गुरु के प्रति शत्रुतापूर्ण नहीं बल्कि सौहार्दपूर्ण हैं। वे भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और थेरा संभूत के संदेश को उचित रूप से बताते हुए, उस श्लोक का पाठ करते हुए कहा, "आदरणीय महोदय! पूज्य संभूत भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं; उन्होंने इस प्रकार भी कहा।" यह सुनकर, परम पूज्य ने यों कहा: "हे भिक्षुओं! भिक्षु संभूत बुद्धिमान हैं, जिन्होंने धर्म के अनुसार कर्म करते हुए अपना जीवन (पच्चपादि) व्यवस्थित किया; न ही उनके विशेष कर्म (धर्म) मेरे विरुद्ध रहे हैं; यह बात मुझे वेसवण ने बताई है।"

6. उन भिक्षुओं ने थेरा सम्भूता द्वारा बोले गए श्लोक की रचना की, जो "यो सीतावनं, गुरु को ज्ञात" से शुरू होता है। यहाँ सीतावन शब्द का अर्थ राजगृह के निकट स्थित एक विशाल, भयानक वन-कब्रिस्तान है। उपगा का अर्थ है कि वह वहाँ निवास करने के लिए आया; इसके द्वारा वह भगवान बुद्ध द्वारा अनुमत भिक्षुओं के लिए उपयुक्त अपने निवास स्थान को दर्शाता है। भिक्षु का अर्थ है: वह भिक्षु है क्योंकि वह संसार के खतरे को देखता है और साथ ही उसने अपने क्लेश को तोड़ दिया है। एको का अर्थ है कि उसका कोई साथी नहीं है (अर्थात अकेला); इसके द्वारा वह अपने शरीर के एकांत को दर्शाता है। संतुष्टुस्सितो का अर्थ है संतुष्ट; इसके द्वारा वह अपने चार धार्मिक मूल तत्वों में अपनी संतुष्टि से चिह्नित अपने श्रेष्ठ (आर्य) वंश को दर्शाता है। (पच्चया)। समाहितत्त, एकाग्रचित्त मन वाला, समाधि में रहने वाला, जिसमें उपचार और अप्पना जैसे गुण होते हैं; इसके द्वारा वह अपने श्रेष्ठ वंश को दर्शाता है, विकास में प्रसन्न रहता है और मानसिक एकांत में प्रवेश करता है। विजयतावी का अर्थ है: धर्म के अनुसार उचित और उपयुक्त अभ्यास द्वारा पराजित होने वाले दुराचार (किलेसा) के समूह पर विजय प्राप्त करना; इसके द्वारा वह आधारभूत एकांत (उपाधि) को दर्शाता है। अपेतलोमहंसो, रोंगटे खड़े न होने वाला, क्योंकि सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) जो खतरे का कारण बनते हैं, लुप्त हो गए हैं; इसके द्वारा वह धार्मिक उचित अभ्यास (पटिपत्ति) का फल दर्शाता है। रक्खं का अर्थ है रक्षा करना। कायगतस्ति का अर्थ है शरीर को ध्यान का विषय बनाकर जागरूकता; शारीरिक गतिविधियों में जागरूकता के रूप में ज्ञात मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को सर्वांगीण प्रदर्शन (परिब्रुहन) के माध्यम से त्यागे बिना। धितिमा का अर्थ है दृढ़ निश्चयी बुद्धिमान व्यक्ति; यह उचित आचरण (पटिपत्ति) को इंगित करता है, चाहे वह समभाव (समाहित) की अवस्था हो या विजय प्राप्त करने की अवस्था। वास्तव में, यहाँ इसका संक्षिप्त अर्थ यह है: वह भिक्षु एकांत के आनंद पर ध्यान केंद्रित करने के लिए शीतल वन (सीतवन) की ओर अकेला गया; वहाँ पहुँचने पर भी, विकर्षणों (लोला) के अभाव के कारण, वह संतुष्ट, दृढ़ और ध्यान से परिपूर्ण हुआ, और उसने अपने शारीरिक गतिविधियों की जागरूकता से युक्त मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) विकसित करने के अनुसार ध्यान प्राप्त किया। (कायगत) को अपना आधार बनाकर, उसने अपने भीतर उत्पन्न हो रही स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में उत्सुकतापूर्वक लीन होकर, सर्वोत्कृष्ट मार्ग (मार्ग) की प्राप्ति के कारण शांत (समाहित) हो गया, अपने कर्तव्य का पालन करने के कारण विजय प्राप्त कर ली, और सभी प्रकार के खतरे के कारणों के समाप्त हो जाने के कारण उत्तेजना (लोमहंस) से मुक्त हो गया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सीतावनिया का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(7):भल्लिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (7) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
7. भल्लिया
वे अपने बड़े भिक्षु तपस्सा [1] के साथ, हमारे पूज्य (बुद्ध) के समय में, पोक्खरवती नगर में एक कारवां चालक के पुत्र के रूप में पैदा हुए थे। जब वे एक रमणीय मैदान में रथों का काफिला ले जा रहे थे, तभी एक कीचड़ भरे स्थान ने उनकी प्रगति रोक दी। तब उनके ही वंश का एक वृक्ष-परी प्रकट हुआ और बोला: 'महोदय, पूज्य (बुद्ध) ने अभी-अभी ज्ञान प्राप्त किया है, और राजा के [13] वृक्ष [2] की जड़ में बैठकर सात सप्ताह तक निर्वाण के आनंद में उपवास कर रहे हैं । उन्हें भोजन कराएँ; इससे आपको दीर्घायु सुख और प्रसन्नता प्राप्त होगी।' वे हर्षपूर्वक उत्सुकता से भोजन तैयार करने की प्रतीक्षा नहीं कर सके, बल्कि चावल के केक और शहद लेकर मुख्य मार्ग छोड़कर पूज्य (बुद्ध) की सेवा करने चले गए।

अब जब भगवान (बुद्ध) ने बनारस में धम्म के मार्ग का पहिया घुमाना शुरू किया, [3] तो वे उचित समय पर राजगृह में ठहरे। वहाँ तपस्सा और भल्लिया उनकी सेवा में आए और उन्हें उपदेश देते हुए सुना। तपस्सा गृहस्थ अनुयायी बन गए, जबकि भल्लिया ने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) के छह रूपों में महारत हासिल की। [4]

एक दिन जब मारा [5] भिक्षु के सामने भयानक रूप में प्रकट हुआ, तो भल्लिया ने, यह प्रकट करते हुए कि वह सभी भय से परे हो चुका है, मारा को विचलित करने के लिए एक कहावत (गाथा) कही:

[7] योपानुडी मैक्कुराजस्सा सेनm||
नाससेतुं वा सुदुब्बलं महोघो||
विजिताविं आपेताभेरवो हि||
दंतो सो परिनिब्बुतो थिताात्तो' ति.|| ||

इत्थै सुदां अयस्मा भल्लियो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.|| ||

[7] जिसने भी मृत्यु-राजा और उसकी सेना को भगा दिया,
जैसे प्रचंड बाढ़ कमजोर सरकंडों के मार्ग को बहा ले जाती है,
वही विजयी है, आत्म-संयमी। भय फिर कभी नहीं आता।
उसका लक्ष्य सर्वोच्च है, और उसमें पूर्ण दृढ़ता है।

इस प्रकार पूज्य भल्लिया ने अपना कथन (गाथा) कहा। [6]

[1] टीका परंपरा में, वे कस्सपा बुद्ध के समय समान परिस्थितियों में भिक्षु थे, और उन्होंने कस्सपा को वैसी ही सेवा दी थी, यह विनती करते हुए कि वे भविष्य के जीवन में इसे दोहरा सकें।

[2] सी.एफ. बहनें, पी. 5. यह कहानी विनय ग्रंथों में आती है, iii. 81, और 'निदान-कथा' में, बड। जन्म कथाएँ, पृ. 110, भल्लिया वहाँ भल्लुका और भल्लुका है। इका और इया विनिमेय विशेषण समाप्ति हैं।

[3] उनका पहला उपदेश, आदि।

[4] अतिसामान्य विचार। तुलना करें पृष्ठ 82, नोट 1.

[5] प्रोफेसर विंडिश का मानना है कि इस तरह के मारा या शैतान किंवदंतियों का एक संग्रह हो सकता है (मारा और बुद्ध, 134)।

ओबिटर तानाशाही. पारित टिप्पणी.

[6] अब से यह ओबिटर डिक्टम समाप्त होता है।

1.1-7[7] श्लोक पर टिप्पणी

भल्लिया थेरा
यो'पनुदी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा भल्लिया का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, जब कोई बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे, तब वे मौन बुद्ध सुमन के प्रति श्रद्धा से भर आए और उन्हें छोटे-बड़े फल अर्पित किए; फलस्वरूप, उन्होंने अपने पुनर्जन्मों के चक्र में उत्कृष्ट जन्म (सुगति) लिए और अंत में आत्मजागृत बुद्ध सिख धर्म के समय अरुणावती नगर के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। यह सुनकर कि "एक कारवां सरदार के दो पुत्र, उजिता और ओजिता ने नवप्रवर्तित भगवान सिखि को प्रथम भोज अर्पित किया," वे अपने एक साथी के साथ भगवान सिखि के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, अगले दिन के भोज में आमंत्रित किया, एक महान दान किया और यह कामना व्यक्त की: "हे पूज्यवर! भविष्य में हम दोनों आपके समान किसी बुद्ध को प्रथम भोज अर्पित करने वाले बनें।" उन्होंने इस और उस जन्म में पुण्य कर्म किए और पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहे तथा भगवान कश्यप के समय में साहूकार गोपालक के पुत्रों के रूप में भाई-भाई के रूप में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने अनेक वर्षों तक भिक्षुओं की सेवा में दुग्धपान किया। परन्तु भगवान सिखि के समय में वे पोक्खरवती नगर में एक कारवां सरदार के पुत्रों के रूप में भाई-भाई के रूप में जन्म लिए। उन दोनों में से बड़े का नाम तफुस्सा था; छोटे को भल्लिया के नाम से जाना जाता था। उन्होंने पाँच सौ गाड़ियों में माल भरकर व्यापार यात्रा शुरू की और मुख्य सड़क से गुजरे, जो राजयतन वृक्ष से कुछ ही दूरी पर थी। उस समय भगवान बुद्ध, मोक्ष के आनंद (विमुक्ति) के कर्म (धम्म) पर सात सप्ताह चिंतन करने के बाद, आठवें सप्ताह में राजयतन वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। उस समय, ज़मीन समतल और कीचड़ रहित होने के बावजूद, उनकी गाड़ियाँ आगे नहीं बढ़ पा रही थीं। जो लोग इस बात को लेकर असमंजस में थे कि वास्तव में इसका कारण क्या है, उन्हें वह देवी, जो पहले उनकी रक्त संबंधी थीं, एक वृक्ष की शाखाओं के बीच प्रकट हुईं और बोलीं: "प्रिय मित्रों! यह भगवान हाल ही में आत्मज्ञानी बुद्ध बने हैं; वे सात दिनों तक बिना भोजन के रहे हैं; वे अब राजयतन वृक्ष की चरणों में विमुक्ति के आनंद का पूर्णतः अनुभव कर रहे हैं: आप उन्हें भोजन अर्पित करें; इससे आपका कल्याण और सुख दीर्घकाल तक बना रहेगा।" यह सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न और आनंदित हुए, और यह सोचकर कि भोजन तैयार करने में विलंब होगा, उन्होंने भगवान को चावल का केक और सादा भोजन अर्पित किया, द्वेवाचिक मंत्र का पाठ करके शरण ली, केश-शैल प्राप्त किए और अपने मार्ग पर चल दिए। वास्तव में, वे अग्रणी भक्त बन गए। (उपासक).फिर जब भगवान बनारस में धम्म-चक्क घुमाने के बाद राजगृह में निवास कर रहे थे, तब तपुस्स और भल्लिया राजगृह गए, भगवान के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया। दोनों में से तपुस्स ने प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) की सिद्धि प्राप्त करने के बाद केवल एक भक्त बनकर रह गए। भल्लिया भिक्षु बन गए और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) प्राप्त किए। इसी कारण अपदान में कहा गया है:—

उस समय, स्वयंजागृत मौन

बुद्ध ने ही इस महारत को सिद्ध किया था।

(वसी); वन के फल एकत्रित करने के बाद

(वल्लिकारा फला) मैंने वही भेंट की

स्वयं निर्मित (सयम्भू)।

आज से तीस युग (कप्पा) पहले,

(यह तब हुआ था), जब मैंने फल अर्पित किए थे;

इस फल भेंट का फल प्राप्त हुआ था

क्योंकि मुझे (अपनी मुलाकात) याद नहीं है।

कोई भी विपत्ति (दुग्गती)।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी;

बुद्ध के उपदेश (शासन) में यह बात थी कि...

संपन्न हो चुका है।

फिर एक दिन, मारा ने थेरा भल्लिया को डराने के लिए भय उत्पन्न करने वाली एक दृश्य वस्तु (रूप) दिखाई। उन्होंने "योऽपनुदी" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वे सभी खतरों से परे जा चुके हैं।

7. वहाँ यो'पनुदि अभिव्यक्ति का अर्थ है: — जिसने निकाला, फेंका, त्यागा और स्पष्ट रूप से कुचल दिया। मच्चुराजस्स अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: — मच्चु को मृत्यु, स्कंधों के विखंडन के रूप में जाना जाता है; वही मृत्यु राजा है क्योंकि यह संप्रभुता का प्रतीक है, क्योंकि यह जीवित प्राणियों को अपनी इच्छा (वस) का पालन करने के लिए बाध्य करती है; इस प्रकार, मृत्यु का राजा; उसका। सेनां अभिव्यक्ति का अर्थ है वृद्धावस्था, रोग, इत्यादि; वास्तव में (वृद्धावस्था इत्यादि) को सेना के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे इसकी शक्ति (वसवत्तन) के संचालन में सदस्य हैं; वास्तव में, इसी कारण से इसे "महासेनो, एक विशाल सेना वाला" कहा जाता है, क्योंकि यह शक्तिशाली (महा), विभिन्न प्रकार और प्रचुरता (विपुल) से युक्त है। तदनुसार (बुद्ध) ने कहा:— "न हि नो संगरं तेन, महासेनेन मच्चुना (निःसंदेह, हमारे लिए उस मृत्यु से लड़ना संभव नहीं है जिसकी सेना बहुत बड़ी हो)। दूसरे शब्दों में, गुणों (गुण) को नष्ट करने के महत्व के कारण, यह "मच्चु (मृत्यु)" है; इस प्रकार, यहाँ युवा देवता मार का तात्पर्य है; काम (इंद्रिय सुख), आदि; उनकी सेना का निर्माण करते हैं क्योंकि वे उनके सहचर (सहायक) होने की अवस्था की ओर ले जाते हैं। इसी प्रकार, (बुद्ध) ने कहा:—

"Kāmā te paṭhamā senā

(इंद्रिय सुख/यौन सुख आपकी पहली सेना हैं);

dutiyā arati vuccati

(ध्यान के प्रति अरुचि को आपका दूसरा दोष कहा जाता है);

tatiyā khuppipāsā te

(आपकी तीसरी सेना भूख और प्यास से बनी है);

catutthī taṇhā pavuccati

(आपका चौथा चरण लालसा से भरा हुआ बताया जाता है);

pañcamī thinamiddhaṃte

(आपका पांचवा आलस्य और सुस्ती है);

चैथा भीरू पवुक्कति

(कायदगी को छठी श्रेणी कहा जाता है);

sattamī vicikicchā te

(अनिश्चितता/अनिर्णय आपका सातवां प्रश्न है),

mānomakkho ca aṭṭhamī

(और तुम्हारा आठवां अंश अभिमान और पाखंड से बना है।)

"नलासेतुं व सुदुब्बलं महोगो" इस अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: — जिसने नौ दिव्य धम्मों की प्रबल शक्ति के कारण एक महान बाढ़ के समान अत्यंत भंगुर सरकंडे के समान सार के समान कमजोर आत्म-दुराचार (संकिलेसा) के कवच को अपने सर्वथा श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के माध्यम से दूर किया; जो इस प्रकार भयमुक्त और वश में होकर सर्वांगीण शांति (परिनिब्बुतो) प्राप्त कर स्पष्ट विजेता (विजितावी) बन गया; यही व्याख्या है। यह सुनकर, मारा ने मन ही मन कहा, "भिक्षु मुझे पहचान गया है," और वहीं से विलीन हो गया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा भल्लिया का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(8):वीरा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (8) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
8. वीरा
बुद्ध युग में सावत्थी में, राजा पासेनादि के एक मंत्री के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम वीर रखा गया। [1] और जब, अपने नाम के अनुरूप, उन्होंने खेल-कूद में निपुणता प्राप्त कर ली, तो वे एक योद्धा बन गए। अपने माता-पिता की सहमति से विवाह करने पर उन्हें एक पुत्र हुआ। इसके बाद, [14] जीवन के निरंतर निर्वाह में कठिनाई देखकर, [2] उन्होंने व्यथित होकर संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया), और सभी प्रयास करके शीघ्र ही छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली। अब जब वे अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में फल के आनंद में लीन थे, तो उनकी पूर्व पत्नी ने उन्हें विभिन्न तरीकों से वापस लाने का प्रयास किया। लेकिन पूज्य वीर ने कहा:

'यह स्त्री, जो मुझे बहकाने की इच्छा रखती है, वह उस स्त्री के समान है जो मच्छर के पंख से सिनेरू पर्वत [3] को हिलाने की इच्छा रखती है ।' और उसने अपने इस कथन (गथा) से उसे दिखाया कि यह कितना व्यर्थ था:

[8] यो दुद्दामियो दामेना दांतो वीरो संतुसिटो वितिनकाकखो॥
विजितावि एपेटलोमहंसो वीरो सो परिनिब्बुतो थित्तत्तो'ति॥ ॥

[8] एक समय जिसे वश में करना कठिन था, अब वश में कर लिया गया है
वीरा, संदेह से मुक्त, संतुष्ट, शांत;
विजेता है वीरा, रेंगते हुए भय से मुक्त;
उसका लक्ष्य सर्वोच्च है, और दृढ़ शक्ति है।

उसकी बात सुनकर वह महिला अत्यंत भावुक हो गई और सोचने लगी:

'मेरे पति ने यह जीत हासिल कर ली है - मेरे लिए गृहस्थ जीवन का क्या लाभ?' और वह ननों के बीच (भिक्षुता में) चली गई, और जल्द ही त्रिविध ज्ञान प्राप्त कर लिया। [4]

[1] वीर, बलवान। पासेनादि कोसल के राजा थे, बुद्ध के समान आयु के (मज्झ. निक., ii. 124)।

[2] शाब्दिक रूप से, सांसार में, 'निरंतर जारी रहना।' तुलना करें XCIX.

[3] सिस्टर्स, श्लोक 384 देखें । उच्चारण सिनेरू।

[4] देखें पृ. 29, नोट 1. यह त्रिविध अधिग्रहण अभिञ्ञा, या अलौकिक क्षमता के छह रूपों में से तीन का निर्माण करता है, पृ. 32, नोट 1.

1.1-8[8] श्लोक पर टिप्पणी

वीरा थेरा
यो दुद्दामियो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वीर का श्लोक है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने भगवान विपस्सी के निवास स्थान की देखभाल की। एक दिन उन्होंने सिंधुवारा पुष्पों के समान निग्गुंठ पुष्प एकत्र किए और श्रद्धापूर्वक उन्हें भगवान को अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और पैंतीस युग (कप्पा) पहले एक योद्धा राजकुमार (खत्तीय) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर महापतापा के नाम से विश्वराज बने। उन्होंने धर्म और न्याय के साथ अपने शासन का प्रयोग करते हुए अपनी प्रजा को स्वर्ग के मार्ग पर स्थापित किया। फिर इसी युग (कप्पा) में, भगवान कस्सपा के समय, वे अपार धन के धनी बन गए और निर्धनों, यात्रियों आदि को दान देकर संघ के पुरोहितों को दूध का भोजन कराते थे। इस जन्म और उस जन्म में दान से पुण्य का भंडार जमा करते हुए और निर्वाण की प्राप्ति के लिए अन्य प्रकार के पुण्य भी संचित करते हुए, वे बार-बार जन्म लेते रहे और सावित्थी नगर में राजा पसेनदी के एक मंत्री के परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने उनका नाम "वीर" रखा। वयस्क होने पर, अपने नाम के अनुरूप (नामानुगत) बलवान, तेज और इसी प्रकार के गुणों से संपन्न होकर, वह एक वीर योद्धा (संगमासूर) बन गया। उसे केवल एक पुत्र प्राप्त हुआ। माता-पिता द्वारा उसे बंधन में बांधने के लिए विवाह करना पड़ा, लेकिन अपने पूर्व उद्देश्य से प्रेरित होकर, उसने संसार और सांसारिक सुखों में हानि पाई, पश्चाताप किया, भिक्षु बन गया और परिश्रम करते हुए उसने छह प्रकार के ज्ञान प्राप्त किए, लेकिन शीघ्र ही। इसलिए, अपदान में इस प्रकार कहा गया है:—

मैं गौरवशाली मठ का रक्षक था

एक विपस्सी; निग्गुंठी का संग्रह करके

मैंने श्रद्धापूर्वक पुष्प अर्पित किए (अभिरोपयिं),

उन्हें बुद्ध के पास ले जाओ।

क्योंकि मैंने विशेष रूप से फूल भेंट किए थे

श्रद्धा, आज से इक्यावन युग पहले,

मुझे विशेष रूप से याद नहीं है कि मैं

उन्हें पीड़ादायक जीवन (दुग्गती) जीना पड़ा।

यह मेरी श्रद्धा का फल है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

आज से पच्चीस युग पहले, मैं एक बन गया था

मनुष्यों के संप्रभु; महापतापना के नाम से

मैं अपार शक्ति का विश्व राजा बन गया।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी।

बुद्ध के उपदेश (शासन) में यह बात थी कि...

संपन्न हो चुका है।

इस प्रकार अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उनकी पूर्व पत्नी, थेरा को, जो अपने फल प्राप्ति के आनंद में लीन थे, विचलित करने की इच्छा से, समय-समय पर अनेक प्रकार के प्रलोभन देने लगी। एक दिन वह उनके विश्राम स्थल पर गई और अपना स्त्री-सुलभ आकर्षण दिखाने लगी। तब पूज्य वीर ने उसके कार्यों की निरर्थकता को उजागर करते हुए एक श्लोक कहा, "यह स्त्री कितनी मूर्ख है! मुझे लुभाने की इच्छा से वह मच्छर के पंखों की हवा से मुझे हिलाने की इच्छा रखती प्रतीत होती है।"

8. वहाँ यो दुद्दामियो से शुरू होने वाले शब्दों का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। हालाँकि, यहाँ केवल यही व्याख्या है: यो का अर्थ इस प्रकार समझा जाना चाहिए: - पहले अनियंत्रित दुराचार (किलेसा) के कारण या शत्रुओं द्वारा स्थापित युद्ध मोर्चों (संगामसीसा) को वश में करने और जीतने में असमर्थ होने के कारण, वह दुद्दामियो स्वयं को वश में करने में कठिनाई का सामना कर रहा था; अब, हालाँकि, सर्वश्रेष्ठ वश में करने वाले द्वारा वश में किए जाने के कारण, मैं चार प्रकार के धार्मिक प्रयास (सम्मप्पधान) से संपन्न होने के कारण वीर (वीर) हूँ; परन्तु उक्त विधि से संतुष्ट होकर, अनिश्चितताओं से मुक्त होकर (वितिण्णकण्खो), स्पष्ट विजेता बनकर और उत्तेजना को दूर करके (लोमहंस) वे वीर बन गए, और उन्होंने सभी प्रकार की बुराइयों (किलेसा) को पूर्णतः बुझाकर परिनिब्बुतो (पूर्णतः शांत) हो गए, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने स्थिर (ठितसभावो) स्वभाव प्राप्त कर लिया और सैकड़ों-हजारों शत्रुओं से भी विचलित नहीं हुए। यह श्लोक सुनकर वह स्त्री पश्चाताप से व्याकुल हो उठी और बोली, “जब मेरे पति ने इस प्रकार विधिवत अभ्यास (पटिपन्न) किया है तो मेरे गृहस्थ जीवन से क्या लाभ है?”, उन्होंने संसार त्याग दिया, भिक्षुणी बन गईं और शीघ्र ही त्रिविध ज्ञान (तेविज्जा) प्राप्त कर लिया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वीरा का

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(9):पिलिंडा-वाचा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (9) ------>>>> अगला
अध्याय I.

एकल श्लोक
9. पिलिंडा-वच्छ
भगवान बुद्ध बनने से पहले, सावत्थी में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने उनका नाम पिलिंडा रखा, क्योंकि उनके कुल का नाम वच्छ था। वे संन्यासी बन गए और उन्होंने लघु गांधार नामक मंत्र (जादू) को प्राप्त किया, जो उनकी महान प्रसिद्धि का परिणाम था। [1] लेकिन जब भगवान बुद्ध बने, तो यह मंत्र (जादू) काम करना बंद कर दिया। जब उन्हें पता चला कि वृहत्तर गांधार मंत्र ने लघु गांधार मंत्र को रोक दिया है, [15] तो उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि संन्यासी गौतम (बुद्ध) को पहले वाले मंत्र का ज्ञान था, और वे इसे प्राप्त करने की आशा में उनकी सेवा में लग गए, और उनसे यह अवसर देने का अनुरोध किया। भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया: 'तुम्हें संसार त्यागकर संन्यासी बनना होगा।' उन्होंने यह सोचकर कि यह मंत्र (जादू) प्राप्त करने की तैयारी है, [2] वैसा ही किया। भगवान ने उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया और ध्यान का अभ्यास कराया, जिससे परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अब, जो व्यक्ति पिछले जन्म में पिलिंडा के मार्गदर्शन के फलस्वरूप स्वर्ग में देव बन गया था, वह कृतज्ञतावश सुबह-शाम उनकी सेवा करता था। अतः वह भिक्षु देवताओं का प्रिय माना जाता था और परमेश्वर (बुद्ध) द्वारा उसे ऐसे भिक्षुओं में श्रेष्ठ स्थान दिया गया था। [3]

और एक दिन पिलिंडा भिक्षुओं के बीच बैठे हुए अपनी सफलता पर विचार कर रहे थे, और उन्होंने उनसे कहा कि कैसे जादू (मंत्र) ने उन्हें बुद्ध के पास पहुँचाया, और उन्होंने यह गाथा कही:

[9] स्वगतौ न दुरागतौ नयिदौ दुमन्तिताऽ मम॥
संविभत्तेसु धम्मेसु यं सेठंहां तदुपगामिन्ति॥॥

[9] हे स्वागत है यह जो आया, और न ही व्यर्थ आया!
हे मुझे दी गई सलाह कितनी अच्छी थी!
मनुष्यों के बीच प्रचलित अनेक सिद्धांतों में से
यह निश्चित रूप से सबसे अच्छा था जिसे मैंने खोजा और पाया।

[1] गंधार विजय, या मंत्र के बारे में—जैसा कि यहाँ दो भागों में विभाजित नहीं किया गया है—देखें संवाद, i. 278. तुलना करें जाट, iv. 498 f. यहाँ कहा गया है कि यह मंत्र वायु में विचरण करने और विचार-पठन करने दोनों की शक्ति प्रदान करता है। इस थेरा की पहचान राजगृह के पिलिंडा-वच्छ (विन. ग्रंथ, ii. 61) के साथ संदिग्ध है; फिर भी अगले पृष्ठ, नोट 2 की तुलना करें ।

[2] यह नया त्याग (पब्बज्जा) संघ में प्रवेश करना ही रहा होगा, हालाँकि यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है। पिलिन्द के भ्रामक मत से तुलना करें, संवाद, i. 278, और iii., XXIV., Ī 4. तुलना करें वंगीसा, CCLXIV.

[3] अंग., i. 24, जिस पर उदानांग, iii. 6 उद्धृत है।

1.1-9[9] श्लोक पर टिप्पणी

पिलिंडावच्चा थेरा
स्वागतं से शुरू होने वाला श्लोक थेरा पिलिन्दवच्छ का श्लोक है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म हंसवती नगर में एक अत्यंत धनी परिवार में बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय हुआ था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, जब वे गुरु की उपस्थिति में धर्म का प्रवचन सुन रहे थे, तब उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को देवताओं द्वारा प्रिय (पिया) और ध्यान में रखे जाने के कारण सर्वोच्च स्थान पर बिठा रहे हैं। उस पद की आकांक्षा रखते हुए, उन्होंने अपने जीवनकाल में अच्छे कर्म किए और मृत्यु के बाद, वे बार-बार जन्म लेते रहे और सुमेध के समय मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लिया। जब भगवान बुद्ध परिनिर्वाण हुए, तो उन्होंने गुरु के मंदिर (थूप) में श्रद्धापूर्वक पूजा की, संघ (पुजारी) में भी व्यापक दान-पुण्य किया और वहाँ से देह त्यागने के बाद, उन्होंने बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, बुद्ध के प्रकट होने से पहले ही विश्वराज बन गए, अपने असंख्य अनुयायियों को पंच नैतिक उपदेशों में विधिवत स्थापित किया और उन्हें स्वर्ग (सग्ग) से बांध दिया (परायण)। हमारे प्रतापी बुद्ध के प्रकट होने से पहले ही उनका जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण के घर में हुआ। उन्हें "पिलिंदा" नाम दिया गया। हालाँकि, उनका कुल वच्छ था। इसी कारण बाद में उन्हें स्पष्ट रूप से "पिलिंदवच्छा" कहा जाने लगा (पहनायित्थ)। बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) के कारण अत्यधिक पश्चाताप से प्रेरित होकर, उन्होंने संसार का त्याग कर एक घुमंतू तपस्वी (परिब्बाजक) बन गए, चूल अंधार नामक व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) में स्वयं को सिद्ध

कर लिया, आकाश में विचरण करने वाले (आकाशचारी) और दूसरों के विचारों के ज्ञाता (परचित्तविदू) बन गए, सर्वोपरि लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त की और राजगृह में अपना उचित निवास स्थान बना लिया।

इसके बाद जब हमारे भगवान बुद्ध विशेष रूप से स्वयं-जागृत बुद्ध बने और धीरे-धीरे राजगज पहुंचे, तब से बुद्ध की शक्ति के कारण, उनका व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) ठीक से काम नहीं कर रहा था; वे अपने कार्यों (किच्चा) को पूरा नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने इस प्रकार चिंतन किया: "मैंने इस विषय में शिक्षकों की परंपरा से यह सुना है: "जहां महान गंधार का व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) प्रचलित होता है, वहां लघु गंधार का व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) निष्फल हो जाता है (न सम्पज्जति); जब से भिक्षु गौतम (यहां) आए हैं, तब से मेरा यह व्यावहारिक ज्ञान ठीक से काम नहीं कर रहा है (संपज्जति); निःसंदेह भिक्षु गौतम महान गंधार के व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) को जानते हैं; "यह बेहतर होगा कि मैं उनकी सर्वांगीण सेवा करूं और उनकी उपस्थिति में व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) सीखूं।" वह भगवान बुद्ध के पास गए और इस प्रकार बोले: "हे महान भिक्षु! मैं आपकी उपस्थिति में व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) सीखना चाहता हूं; कृपया मुझे एक अवसर प्रदान करें।" भगवान बुद्ध ने कहा: "तो फिर, तुम्हें भिक्षु बन जाना चाहिए।" उन्होंने यह सोचकर भिक्षु बन गए: "भिक्षुता व्यावहारिक ज्ञान (विज्जा) के लिए आवश्यक प्रारंभिक चरण (परिकम्मा) है।" भगवान बुद्ध ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया और उनके आचरण (चरित) के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्टाना) प्रदान किया। उपनिस्य बनने के लिए पर्याप्त योग्यता प्राप्त होने के कारण उन्होंने विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) विकसित की और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। जिन दिव्य प्राणियों ने अपने पिछले जन्म में उनके उपदेशों का पालन किया था, वे स्वर्ग (सग्ग) में पुनर्जन्म लेकर, उनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञता से भरे (बहुमान) होकर, सुबह-शाम थेरा की सेवा करते हुए अपने मार्ग पर चले गए। यही कारण है कि थेरा को दिव्य प्राणियों द्वारा सबसे अधिक प्रेम और स्मरण प्राप्त हुआ। अतः अपदान में कहा गया है:—

"जब विश्व रक्षक सुमेधा,

सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति ने निर्वाण प्राप्त किया, यानी धार्मिक बन गया।

मैंने नेक और दयालु मन से श्रद्धापूर्वक व्यवहार किया।

मंदिर में चढ़ाया गया प्रसाद।

जो लोग थेरा चिकित्सा से मुक्त थे,

छह प्रकार के अतिज्ञान और उच्च

मैंने जादुई शक्तियों को एक साथ लाया।

मैं वहां गया और मैंने पादरियों के लिए भोजन बनाया।

गौरवशाली का सेवक

उस समय सुमेधा नाम से एक व्यक्ति जाना जाता था।

सुमेधा के। उस अवसर पर, उन्होंने

धन्यवाद दिवस।

मेरी उस मनभावन धार्मिकता के कारण

ध्यान रहे, मैं (स्वर्गिक) महल में पहुँच गया।

छियासी हजार अप्सराओं ने मुझे चकित कर दिया।

लेकिन मेरे लिए वे हमेशा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, हर समय मेरे इशारे पर चलते थे।

(अनुवत्तंति), वे मुझे हमेशा प्रदान करते हैं

सभी इंद्रिय सुखों के साथ। मैं अति-

अन्य दिव्य प्राणियों को शक्ति प्रदान करता था; यही वह शक्ति थी।

मेरे पुण्य कर्म का फल।

पच्चीस युग (कप्पा) पहले, मैं एक था

योद्धा राजकुमार (खटिया) जिसका नाम वरुण था।

मैं उन लोगों में से था जिन्हें साफ-सुथरा खाना पसंद था;

मैं उस समय विश्वराज था। उन्होंने बीज नहीं बोए।

बीजों का भी उन्होंने उपयोग नहीं किया।

हल चलाना; लोगों ने ऐसी जौ (साली) का सेवन किया।

वह लकड़ी की आग पर नहीं पकाया गया था।

वहाँ अपनी संप्रभुता का प्रयोग करने के बाद

मैं फिर से एक दिव्य प्राणी बनने के लिए गया।

तब भी मैं इसी प्रकार का था,

धन-दौलत से समृद्ध होकर उभरे।

चाहे मित्र हो या शत्रु, सभी प्राणी

उन्होंने मुझे कभी परेशान नहीं किया। मैं सभी का प्रिय था।

उनमें से भी; यही इसका फल है

मेरा पुण्य कर्म।

तीस हजार युग पहले, जो भी हो

मैंने तब दान दिया था; मुझे याद नहीं है

कोई भी विपत्ति (दुग्गति); यही है

मीठी सुगंध के लेप का फल।

इस पांच बुद्धों के युग में (भद्दा

(कप्पा) मैं पुरुषों का सम्राट बन गया; मैं

वह एक महान शक्ति वाला राजा था, विश्व-

अत्यंत शक्तिवान राजा।

मैंने बहुत से लोगों को स्थापित किया

पाँच नैतिक उपदेश; मैंने उन्हें लोगों तक पहुँचाया

लेकिन स्वर्ग (सगति) में; मैं प्रिय बन गया

देवताओं (देवों) का।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी, ... बुद्ध की

निर्देश का पालन किया जा चुका था।

इसी प्रकार, वास्तव में, क्योंकि उनके थेरा देवताओं के अत्यंत प्रिय थे, भगवान ने उन्हें देवताओं द्वारा प्रिय और आदरपूर्वक याद किए जाने की स्थिति में सर्वोपरि स्थान दिया और कहा: “हे भिक्षुओं! यह मेरे शिष्य भिक्षुओं में देवताओं द्वारा प्रिय और आदरपूर्वक याद किए जाने वाले प्रमुख हैं, अर्थात् यह पिलिंडा वच्छ। एक दिन भिक्षुओं के बीच बैठे हुए, उन्होंने अपने गुणों पर चिंतन किया और “स्वागाहपगतं” से शुरू होने वाले एक श्लोक का पाठ किया, जिसमें ज्ञान के संकेतों (विज्जानिमित्त) के आगमन की प्रशंसा की गई थी, जो उन गुणों का कारण (कारण) बन गए थे, भगवान की उपस्थिति में।

9. वहाँ 'स्वागतं' अभिव्यक्ति का अर्थ है उत्तम आगमन; यह मेरा है; इस प्रकार, संबंध है। दूसरे शब्दों में, 'स्वागतं' का अर्थ है मेरे द्वारा सुचारु आगमन; अत:, विभत्ती (विभाति) को परिवर्तित किया जाना चाहिए। 'नापगतं' अभिव्यक्ति का अर्थ है बाहर न जाना, कल्याण के विशेष विकास से विमुख न होना। 'नयिदं दुमन्तितं नाना' अभिव्यक्ति का अर्थ है: मेरे लिए, यह न तो गलत कहा गया था और न ही गलत ढंग से जाँचा गया था। यह कहा गया है: भगवान बुद्ध की उपस्थिति में मेरा आगमन, या मेरा वहाँ आना, शुभ आगमन था; सुचारु आगमन की स्थिति के कारण, यह भी अशुभ आगमन नहीं था। मेरे लिए, जैसा कि कहा गया था, "मैं भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धर्म सुनूंगा और भिक्षु बनूंगा" या मेरे मन द्वारा जाँचा गया था, यह भी गलत नहीं कहा गया था। अब, वहाँ कारण बताने के लिए, उन्होंने कहा: “संविभत्तेसु” इत्यादि। “संविभत्तेसु” का अर्थ है: विशेषता (पकार) के दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया। “धम्मेषु” का अर्थ है बोधगम्य सत्य (धम्म); या शमन के सत्य (समथधम्म); उक्त सत्यों (धम्म) का भली-भांति विश्लेषण, विधर्म (तित्तिया) के विभिन्न विवरणों और पीड़ा (दुक्खा) इत्यादि के माध्यम से आत्म-जागृत बुद्धों द्वारा किया गया। “यंसेट्ठं तदुपागमं” का अर्थ इस प्रकार है: जो कुछ भी सर्वोत्तम है, वही चार प्रकार के श्रेष्ठ ऋतु (चतुश्च) का उपदेश (धम्म) है। मैंने या तो शासन (सासन) के उपदेश (धम्म) को जानने के लिए या यह कहते हुए कि: "यह धम्म है और यह विनय है" के लिए प्रयास किया; या जो कुछ भी सर्वोत्तम, उत्कृष्ट, स्पष्ट रूप से फलदायी है, जो अच्छे कर्मों (कुसल) आदि के माध्यम से और स्कंध आदि के माध्यम से, उनके स्वरूप के अनुसार अच्छी तरह से विश्लेषित प्राकृतिक सत्यों (धम्म) में है, लेकिन आत्म-जागृत बुद्धों द्वारा, उस मार्ग (मार्ग), उस श्रेष्ठ फल (फल) और उस निर्वाण सत्य (धम्म) तक मैं पहुंचा; अपने व्यक्तिगत अनुभव से मैं उस ओर बढ़ा और मैंने कल्पना की; इसलिए, मेरे लिए, यह अच्छा मार्ग (स्वागतं) था, लेकिन अपगत नहीं, अच्छी तरह से घोषित था, लेकिन गलत तरीके से घोषित नहीं था; इस प्रकार, यह व्याख्या है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा पिलिंडावच्चा का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(10):पुन्नमसा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (10) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
10. पुन्णमास
इस बुद्ध युग में समिद्धि के रूप में पुनर्जन्म लेकर, सावत्थी के एक ब्राह्मण (पुजारी) ने पुत्र के जन्म पर संसार त्याग दिया और परम पूज्य (बुद्ध) के अधीन भिक्षु संघ में प्रवेश करके, चार सत्यों को अपने ध्यान का अभ्यास बनाया और अरहंत बन गए। उनकी पूर्व पत्नी ने उन्हें उनके धर्म से विमुख करने का प्रयास किया, सजे-धजे रूप में और अपने बच्चे के साथ उनसे मिलने आई । [16] परन्तु भिक्षु ने पूर्ण वैराग्य का प्रदर्शन करते हुए यह कथन (गाथा) कहा:

[10] विहारी अपेक्खा इधा वा हुराअ वा॥
यो वेदागु समितो यत्ततो॥
सब्बेसु धम्मेसु अनुपालितो॥
लोकास्सा धन्ना उदयबबयान्या' ति.॥ ॥

[10] इस या दूसरे जीवन के लिए
मैंने सभी लालसाओं को अपने से दूर रखा है, जैसे कि मैंने
स्वयं को सत्य देखा है, जिसका हृदय शांत है,
जो स्वयं को वश में रखते हुए, सभी चीजों में निष्कलंक है,
जो संसार के निरंतर उतार-चढ़ाव को समझता है।

तब स्त्री ने सोचा, 'यह पवित्र व्यक्ति न तो मेरी परवाह करता है और न ही बच्चे की; मैं उसे मना नहीं सकती,' और चली गई। [1]

[1] इस कहानी की एक विचित्र विशेषता यह है कि अध्याय II में इसे पुन्णमास की कहानी के रूप में दोहराया गया है, टीकाकार ने किंवदंती और लेखकत्व में पर्याप्त समानता पर ध्यान नहीं दिया है। देखें भजन संहिता CXLVI.

1.1-10[10] श्लोक पर टिप्पणी

पुन्णमास थेरा
विहारीपेक्खं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पुण्णमास का श्लोक है। क्या यही इसकी उत्पत्ति है? ऐसा कहा जाता है कि भगवान विपस्सी के समय में उनका जन्म एक लाल हंस (चक्कवाक) के गर्भ में हुआ था। भगवान को जाते हुए देखकर, पक्षी का मन श्रद्धा से भर गया, उसने अपनी चोंच से साल का फूल इकट्ठा किया और उसे श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के कारण वह देव-देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेता रहा और आज से आठ सत्रह युग पहले विश्वराज बना। इस युग (कप्पा) में, जब प्रतापी कस्सपा का युग समाप्त हो रहा था, तब उनका पुनर्जन्म एक कुटुंबी परिवार में हुआ। उन्होंने संसार त्याग दिया, भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया और वहाँ से देह त्यागने के बाद, उन्होंने बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा किया और सावत्थी नगर में समिद्धि नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, उसी समय बुद्ध का जन्म हुआ। जिस दिन उनका जन्म हुआ, उस घर के सभी खाली पात्र (कुंभी) सोने के सिक्कों से भर गए। इसी कारण उनका नाम पुण्णमासा रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने सभी प्रकार के ब्राह्मण विज्ञान (विज्जा) में निपुणता प्राप्त की, विवाह किया, पुत्र प्राप्त किया, अरहंत पद के लिए पर्याप्त योग्यता (उपनिषय) प्राप्त होने के कारण गृहस्थ जीवन से विमुख हो गए, भगवान के पास गए, उनकी शिक्षा (धम्म) सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, संसार का त्याग किया, भिक्षु दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त की, प्रारंभिक कर्तव्यों से परिपूर्ण हो गए, चार प्रकार के आर्य सत्यों (चतुश्च) के मानसिक अभ्यास

(कम्मट्ठान) में पूरी निष्ठा से लगे रहे, स्पष्ट आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में तत्परता से लगे रहे और अरहंत पद प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

सिंधु नदी के किनारे, मैं

तब वह एक लाल हंस (चक्कवाका) था।

मैं साफ काई खाता था और मैं

बुराई से बचने में उसने अच्छा संयम बरता।

काम।

मुझे स्टेनलेस स्टील की बुद्ध प्रतिमा दिखाई दी।

आकाश के माध्यम से। साल को तोड़ना (पग्गेहा)।

मैंने अपनी चोंच के माध्यम से विशेष रूप से फूल भेंट किया।

(अभिरोपयिं) इसे बुद्ध विपस्सी को सौंप दें।

जिसकी तथागत में अटूट आस्था थी

और सुस्थापित लोग नरक में नहीं गए

(दुग्गति) क्योंकि पवित्र मन के कारण।

आपकी उपस्थिति में आना मेरे लिए निश्चित रूप से सुखद था।

परम उत्कृष्ट बुद्ध का; शांत

मैंने आकाश में यात्रा करने वालों के लिए एक अच्छा बीज बोया था।

यह आज से 91 आरोन (कप्पा) साल पहले की बात है।

मैंने श्रद्धापूर्वक फूल अर्पित किए। मैं नहीं।

किसी भी विपत्ति (दुग्गति) को याद रखें; यही वह स्थिति है

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट का फल।

सुचारुदस्सन नाम से, ये आठ एक ही हैं

एक ही नाम ने महान शक्ति के विश्व राजा का दर्जा हासिल कर लिया

सत्रह युगों में (कप्पा)। मेरे विभिन्न प्रकार

दुराचार (किलेसा) के कारण जला दिया गया था; ... बुद्ध का

निर्देश (शासन) का पालन किया जा चुका था।

फिर, उनकी पूर्व पत्नी उन्हें लुभाने की इच्छा से, अपने सजे-धजे बेटे के साथ उनके पास आई और मधुर वादन आदि के माध्यम से अपनी अवस्था (भावविवरण) को प्रकट करने का प्रदर्शन (कम्म) करने लगी। उनका यह प्रदर्शन देखकर, थेरा ने "विहारी अपेक्खं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे उन्होंने अपने अनासक्ति भाव को प्रकट किया।

10. वहाँ, विहारी शब्द का अर्थ है 'उठाकर ले जाया गया', 'दूर ले जाया गया'। अपेक्खं शब्द का अर्थ है 'लालसा' (तन्हा)। इध शब्द का अर्थ है 'या तो इस संसार में या अपने स्वयं के अस्तित्व में'। हुरं शब्द का अर्थ है 'या तो आने वाले समय में या भविष्य के अस्तित्व में'। दूसरे शब्दों में: इध इंद्रियों के आंतरिक निवासों को संदर्भित करता है। हुरं इंद्रियों के बाह्य निवासों को संदर्भित करता है। व्याकरणिक शब्द 'वा' एक कण है जो संचय को दर्शाता है, जैसे कि "अपदा वा द्विपदा वा, बिना पैरों वाला और दो पैरों वाला", इत्यादि। यो शब्द स्वयं को इंगित करता है मानो किसी दूसरे को। वेदगू शब्द का अर्थ है: ज्ञान (वेद) के माध्यम से जाना, ज्ञान (ज्ञान) के माध्यम से निग्गान प्राप्त करना, सही मार्ग (मार्ग) का ज्ञान प्राप्त करना; वैकल्पिक रूप से, पूर्ण ज्ञान (अभिसामय) के माध्यम से चारों आर्य सत्यों (सच्च) को जानकर (अभिसामेच्च) खड़े हुए, अर्थात्; सर्वांगीण बोध (परिञ्ञा) और दुःख से बचाव (पाहन), निर्वाण का दर्शन (सच्चिकिरिया) और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग का विकास (भावना)। अभिव्यक्ति यतत्तो का अर्थ है आर्य मार्ग (मेग्गा) के आत्म-नियंत्रण के माध्यम से आत्म-नियंत्रण की अवस्था; वैकल्पिक रूप से सही प्रयास के माध्यम से आत्म-नियंत्रण की अवस्था। अभिव्यक्ति: सब्बेसु धम्मेसु अनुपालित्तो का अर्थ है: सभी इंद्रिय विषयों (आरम्मण धम्म) में लालसा (तन्हा) और विधर्मी दृष्टिकोण (दिट्ठी) से दूषित न होना। इससे वह यह दर्शाता है कि वह जीवन के उतार-चढ़ावों (लोकधम्म) जैसे लाभ (लाभ) आदि से परे (समतिक्कम) हो चुका है। लोकस्स का अर्थ है आसक्ति (उपादान) के पाँच समूहों (खंड) में से, वास्तव में यही संसार (लोक) है, जो विघटन (लुज्जन) और विनाश (पलुज्जन) के कारण है। जाञ्ञा का अर्थ है जानना। उदयब्बयंच का अर्थ है उत्पन्न होना और नष्ट होना; इससे वह उचित अभ्यास (पटिपदा) को दर्शाता है, जो बताए गए गुणों का पूर्व भाग (पुब्बभाग) है। लेकिन यहाँ इसका अर्थ यह है: — जो कहीं से भी अछूता (उपलित्त) है, जो आत्मसंयमित (यतत्त) है, जिसने संपूर्ण जगत के प्रकट होने और लुप्त होने (उदयब्बय) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, साथ ही पचास प्रकार के गुणों का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वह सर्वत्र व्यथा का नाश करेगा और संतुष्ट होकर तुम्हारे द्वारा किए गए इतने सारे परिवर्तनों को सार्थक नहीं समझेगा; इसलिए, हे अंधे मूर्ख! तुम्हें उसी मार्ग से वापस जाना चाहिए जिससे तुम आए हो।" इस पर वह स्त्री यह कहते हुए विदा हुई: "इस भिक्षु के मन में न तो मेरे लिए और न ही मेरे पुत्र के लिए कोई व्यथा थी; उसे लुभाना संभव नहीं है।"

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा पुण्णमास का पूर्ण हो चुका है।

**********oOo*********

प्रथम अध्याय पर टीका

परमत्थदीपनी की टीका

थेरागाथा पर

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(11): गवाचा द यंगर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (11) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग II
11. गवच्छा छोटा
कोसंबी में ब्राह्मण (पुजारी) के रूप में पुनर्जन्म लेकर और भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। उस समय कोसंबी के भिक्षु आपस में झगड़ रहे थे। [1] तब गवच्छ ने किसी भी पक्ष का साथ न देते हुए, भगवान बुद्ध के अनुशासन (शिक्षा) में दृढ़ रहते हुए, अंतर्दृष्टि विकसित की और अर्हंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। भिक्षुओं के झगड़ालू स्वभाव में अपने स्वयं के कल्याण के पतन का कारण देखकर, उन्होंने अपनी विपरीत स्थिति पर प्रसन्नता और उत्साह के साथ विचार किया और कहा:

[11] पमोज्जाबहुलो भिक्खु धम्मे बुद्धप्पावेदिते॥
अधिगच्छे पादौ संतं संखरूपसामां सुखन्ति॥ ॥

[11] यह भिक्षु अत्यंत प्रसन्न हुआ,
क्योंकि बुद्ध द्वारा प्रकट किए गए आनंदमय सत्य
उसके हैं, और उसने शांति का मार्ग प्राप्त कर लिया है,
और वह आनंद उसका है जहाँ सांसारिक चिंताएँ शांत हो जाती हैं।

[1] ऐसा प्रतीत होता है कि वे बुद्ध की गंभीर और बार-बार की शिक्षाओं के बावजूद भी असाध्य रूप से ऐसे ही थे (मज्झ., i. 320 ff., 513)।

1.2 दूसरा अध्याय

1.2-1[11] श्लोक पर टिप्पणी

Cūḷavaccha Thera
पामोज्जबहुलो से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा चूलवच्छ का श्लोक है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय में उनका पुनर्जन्म एक दरिद्र परिवार में हुआ था और वे दूसरों की सेवा करके मजदूरी (भाति) कमाते थे। जब उन्होंने भगवान पद्ममुत्तरा के शिष्य सुजाता नामक एक थेरा को कूड़ा-कढ़ाई (पंसुकूल) की तलाश में देखा, तो वे धर्मपरायण हो गए, थेरा के पास गए, उन्हें वस्त्र (वत्था) भेंट किए और पांच प्रकार की उचित मुद्राओं (पंचपतिठित) से उन्हें प्रणाम किया। इस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने तैंतीस बार दैवीय प्रभुत्व का प्रयोग किया। वे सतहत्तर बार विश्वराज बने; अनेक अवसरों पर वे क्षेत्रीय शासक भी रहे। इस प्रकार बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते हुए, जब परम पूज्य बुद्ध कस्सपा का युग समाप्त होने लगा, तब वे भिक्षु बन गए। उन्होंने भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, बुद्ध के काल (बुद्धंतर) में समय-समय पर देवताओं और मनुष्यों के बीच रहे, और अंत में भगवान बुद्ध के समय कोसंबी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम चूलवच्छ था। वयस्क होने पर उन्होंने ब्राह्मणों के सभी प्रकार के विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की, बुद्ध के गुणों के बारे में सुना, धर्मपरायण हो गए और भगवान बुद्ध के पास गए, जिन्होंने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। जब वे सच्चे धर्म के योग्य सिद्ध पुरुष बन गए, तो उन्होंने संसार का त्याग कर भिक्षु बन गए, उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा किया, अपने आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) एकत्रित किया और उसी के अनुसार जीवन व्यतीत किया। उस विशेष अवसर पर, कोसंबी के भिक्षुओं में कलह (झगड़ा) हो गया था। उस समय, थेरा चूलवच्छ ने दोनों वर्गों के भिक्षुओं का पक्ष नहीं लिया, बल्कि परमेश्वर द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करते हुए, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

महान बुद्ध के शिष्य

पदुमुत्तरा, सुजाता नाम से, भटकता था

लगभग उसी समय कूड़े-कचरे के बीच में,

वस्त्र बनाने के लिए चिथड़ों की खोज (पंसुकूल)।

हंसवती नगर में मैं एक दिहाड़ी मजदूर था।

दूसरों के लिए कमाने वाला; भेंट करने के बाद

मेरे लगभग आधे कपड़े

मैंने अपने सिर पर श्रद्धा अर्पित की।

उस कार्य के सफल निष्पादन के कारण

साथ ही मेरा स्व (चेतना) भी

दृढ़ संकल्प (पणिधि) के साथ मैं तावतिंसा पहुँच गया

मेरे द्वारा अपने मानव शरीर को त्याग देने पर मुझे स्वर्ग प्राप्त हुआ।

मैं इकत्तीस बार दिव्य-राजा था

और मैंने दैवीय संप्रभुता का प्रयोग किया; क्योंकि

मैं सतहत्तर बार विश्व बन गया-

राजा।

कई अवसरों पर (विपुल) था

मेरे लिए क्षेत्रीय शासन, संख्यात्मक रूप से

अकल्पनीय।

अपने आधे कपड़े दान करने के कारण, मैं

किसी भी खतरे से मुक्त होकर मुझे खुशी महसूस हुई।

कहाँ।

अगर अब मेरी इच्छा हो तो मैं ढक लूँगा

पहाड़ी पर्वतों सहित पूरा क्षेत्र

आकाश तक पहुँचना (काननम्); यही है

मेरे आधे कपड़े (अर्पित करने) का फल।

यह एक लाख युग पहले की बात है।

मैंने तब अपनी दान राशि की पेशकश की थी, मैं करता हूँ।

किसी आपदा को याद नहीं (दुग्गती)

तब से; यह इसका फल है

(अपने) आधे कपड़े (प्रस्तावित करते हुए)।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जल गई थी

पूरी तरह से; ... बुद्ध का निर्देश

कार्य संपन्न हो चुका था।

फिर, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा चूलवच्छ उन भिक्षुओं (भिक्षुओं) के कल्याण को नष्ट होते देखकर आध्यात्मिक रूप से पश्चाताप (धम्मसंवेग) करने लगे, जो झगड़ने में विशेष आनंद लेते थे, और अपनी विशिष्ट उपलब्धि पर विचार करते हुए, उन्होंने उत्साह और आनंद के साथ "पामोज्जबहुलो" से शुरू होने वाला एक श्लोक पढ़ा।

11. वहाँ, अभिव्यक्ति पामोज्जभुलो का अर्थ इस प्रकार समझा जाना चाहिए: उत्कृष्ट सर्वांगीण शुद्ध उपदेशों (शील) और दुर्भावना की अनुपस्थिति (विप्पतिसार) पर धम्म के पारलौकिक अच्छे कर्मों में विशेष रूप से प्रसन्न होने के कारण प्रचुर आनंद प्राप्त करना। इसलिए, इसे इस प्रकार कहा गया है:— “धम्मे बुद्धप्पवेदिता। यहाँ धम्म शब्द का अर्थ है: बोधि में योगदान देने वाली सैंतीस वस्तुएँ (बोधिपक्खिया धम्म) या नौ प्रकार के पारलौकिक सत्य (लोकउत्तरा धम्म)। वास्तव में, इसे बुद्ध द्वारा उत्कृष्ट रूप से (सातिसयं) समझाया गया है, क्योंकि यह सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा स्वयं उन्नत और मानकीकृत शिक्षा (देसन) के माध्यम से प्रकट किया गया था। यहाँ शिक्षाप्रद सत्य (देसन धम्म) भी प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि इसकी प्राप्ति के साधन उपलब्ध हैं। पदंसंतं शब्द का अर्थ इस प्रकार है:— उन्होंने निर्वाण के संदर्भ में कहा। वास्तव में, ऐसा भिक्षु (भिक्षु) परम सुख और निर्वाण आनंद को प्राप्त करता है, क्योंकि वह पूर्ण सुख और निर्वाण को प्राप्त करता है। कर्मों की शांति (संखारुपस्सम्म्) संपूर्ण कर्म-सम्करण (संखार) की शांति की स्थिति के कारण होती है, जो शांत मार्ग और शांतिपूर्ण अंश (कोट्ठास) है। वास्तव में, एक भिक्षु, जिसके नैतिक उपदेश सर्वांगीण शुद्ध हैं, असंगतता (विप्पतिसार) के अभाव के कारण, आनंद से भरपूर और अच्छे धर्म में भक्तिपूर्वक लगे रहने के कारण, साथ ही स्पष्ट मुक्ति (विमुक्ति) की ओर अग्रसर होने के कारण, सभी प्रकार की समृद्धि प्राप्त करता है। (ऐसी स्थिति) बुद्ध के कथनानुसार है: “हे आनंद! नैतिक उपदेश अच्छे कर्म हैं जिनमें असंगतता (विप्पतिसार) न होने का लाभ है; असंगतियों से मुक्ति आनंदमय होने के लाभ की ओर सहायक है” इत्यादि। दूसरे शब्दों में, पामोज्जबहुलो का अर्थ है: तीन 'रत्नों' के संबंध में प्रचुर आनंदित होना, जैसे: भगवान बुद्ध उचित रूप से आत्मजागृत बुद्ध हैं, सत्य (धम्म) का उचित उपदेश दिया जाता है, संघ उचित अभ्यास (सुप्पटिप्पन्न) के प्रति समर्पित है। लेकिन फिर, जो आनंद से भरपूर है वह क्या करता है? उन्होंने कहा: “धम्मे*****पृष्ठ 125 (बुद्ध द्वारा ज्ञात सत्य, धम्म है)” इत्यादि। वास्तव में, जो व्यक्ति पवित्र आस्था से संपन्न है, उसके लिए प्रत्येक समृद्धि सहज (हत्थागत) हो जाती है, क्योंकि उचित उपलब्धियों (पटिपेट्टी) का उचित रूप से घटित होना, जैसे अच्छे लोगों के साथ रहना (सप्पुरिससंसेवन), अच्छे सत्य को सुनना (सद्धम्म), बुद्धिमान सचेतनता (योनिसो मनसीकार) आदि। सत्य के अनुसार धर्म (धम्मानुधम्म)। तदनुसार (बुद्ध) ने ऐसा कहा:— जिसमें श्रद्धा (सद्धा) उत्पन्न हुई हो (जातो), वह आगे बढ़ता है; जैसे ही वह आगे बढ़ता है, वह सेवा में तल्लीन हो जाता है (पयिरुपासति) इत्यादि।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा चूलावच्चा का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(12):गवाचा द एल्डर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (12) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
12. गवच्चा एल्डर
उनका पुनर्जन्म बुद्ध के समय में मगध के नालक गाँव के ब्राह्मण (पुजारी) समिद्धि के पुत्र के रूप में हुआ। उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया क्योंकि सारिपुत्त [1] ने ऐसा किया था, और वे जानते थे कि सारिपुत्त बहुत बुद्धिमान थे। अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त करने के बाद, और निर्वाण के आनंद का अनुभव करते हुए, उन्होंने अपने साथी शिष्यों को प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु अपना वचन (गाथा) कहा:

[12] पणनाबली सिलावतुप्पन्नो॥
समाहितो झानरतो सतीमा॥
यदत्तियं भोजनं भुञ्जमानो॥
कण्खेथा कलां इधा वीतरागोऽति.॥

[12] बुद्धि में दृढ़, सद्‌गुण के नियम द्वारा निर्देशित, एकाग्र,
एकाग्रता के आनंद में लीन, फिर भी सतर्क;
ऐसा व्यवहार करो जो तुम्हें केवल लाभ पहुँचाए:
इसलिए विश्वास में, [2] भावनाओं को शांत करके, उस घड़ी की प्रतीक्षा करो।

[1] उसका साथी नगरवासी। देखें CCLIX.; सिस्टर्स, पृ. 98.

[2] इधा; शाब्दिक रूप से 'यहाँ,' 'यहाँ नीचे,' तकनीकी रूप से ऊपर प्रयोग किया जाता है, और इसी प्रकार व्याख्या की जाती है।

1.2-2[12] श्लोक पर टिप्पणी

महावच्चा थेरा
पञ्ञाबल्ली से शुरू होने वाला श्लोक थेरा महावच्छ का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इन्होंने परम पूज्य बुद्ध पद्ममुत्तरा और भिक्षुओं को पेयजल दान किया था। फिर, वे भगवान सिख धर्म के समय उपासक बने और उन्होंने कई पुण्य कर्म किए जो पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। इन पुण्य कर्मों के कारण वे पुनर्जन्म के चक्र से भटकते रहे, लेकिन इस सुखमय जीवन में उनका पुनर्जन्म हुआ और वे बुद्ध के प्रकट होने के समय मगध राज्य के नालक गाँव में समिद्धि नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पैदा हुए। उनका नाम महावच्छ था। वयस्क होने पर, उन्होंने पूज्य सारिपुत्त के बुद्ध के शिष्य बनने के बारे में सुना और मन ही मन कहा: “यद्यपि वह महान ज्ञानी व्यक्ति भी ऐसे व्यक्ति का शिष्य बनने के लिए आगे आया है, जो मेरे विचार से इस संसार में सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति हैं।” उन्होंने भगवान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा को और मजबूत किया, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, तदनुसार मानसिक साधना (कम्मट्ठन) में संलग्न हुए और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः, इसमें कहा गया है कि

अपदाना:—

“पवित्र मन और अच्छे हृदय वाला होना

बुद्ध पदुमुत्तरा की ओर और उनके

भिक्षुओं (भिक्षुओं) का वह पुरोहित वर्ग जिसका कोई वरिष्ठ अधिकारी नहीं था

मैंने पीने के पानी के जार भर दिए।

चाहे पहाड़ी की चोटी पर हो, पेड़ की चोटी पर हो या कहीं और।

आकाश में हो या फिर धरती पर, जब भी

मुझे पीने का पानी चाहिए, यह अचानक से निकल आता है

मुझे जल्दी से।

एक लाख युग (कप्पा) पहले

अब से, मैंने ऐसा चढ़ावा चढ़ाया

तब; मुझे किसी विपत्ति की याद नहीं है

(दुग्गति) यह इसका फल है

पीने का पानी उपलब्ध कराना।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी;...

सभी अस्तित्व समाप्त हो गए थे; छह

उच्च ज्ञान के प्रकारों की कल्पना की गई थी;

बुद्ध का उपदेश (शासन) यह था:

किया गया।

इस प्रकार अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, मुक्ति (विमुक्ति) के आनंद का अनुभव करते हुए, उन्होंने साथी पवित्र जीवन के नेता (सब्रह्मचारी) को प्रेरित करने के उद्देश्य से "पञ्ञाबली" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने संसार से मुक्ति (निय्यानिक) की अवस्था को प्रकट किया, जिसे शासन व्यवस्था सुगम बनाती है।

12. यहाँ 'पञ्ञाबली' शब्द का अर्थ है: — ज्ञान (पञ्ञा) की अत्यधिक शक्ति से निरंतर परिपूर्ण होना, जो ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (परिहार्य) के माध्यम से प्राप्त होता है। 'सीलवतुपपन्नो' शब्द का अर्थ है: — ऐसे नैतिक उपदेशों से सुसज्जित और संपन्न होना जो सर्वांगीण शुद्ध उपदेशों (चतुपारिसुद्धि शील) के समान श्रेष्ठता की अवस्था तक पहुँच चुके हों और ऐसे पालन (वात) से युक्त होना, जिसे कठोर कर्म (धुत धम्म) माना जाता है। समाहितो का अर्थ है, उपचार और अप्पना जैसी विभिन्न प्रकार की एकाग्रता (समाधि) के माध्यम से शांत रहना। झानरतो का अर्थ है, विचार के विषय (अरम्मण) और गुणों (लक्खण) के चिंतन (उपनिज्जान) में आनंदित रहना और सदा विशेष रूप से उसमें लीन रहना। सतिमा का अर्थ है, हर समय सचेत रहकर (अविप्पवास) सचेत रहना। यदत्तियं का अर्थ है, जिस उद्देश्य (अत्तिय) से, लाभ (अथ) से वंचित न रहकर, जो व्यक्ति अपनी इच्छानुसार भोजन करता है, उसे भोजन का सर्वांगीण आनंद प्राप्त होता है (यथा पच्चय); इसी प्रकार, भिजनं भुंजमानो है। वास्तव में, स्वामी (सामी) के उपभोग से या विरासत (दायज्जा) के उपभोग से इसका लाभ होता है; यह ध्यान रखना चाहिए कि यह किसी अन्य रूप में भोजन नहीं है। या तो इसे खाया जाता है या सर्वव्यापी रूप से ग्रहण किया जाता है; इस प्रकार, यह भोजन (भोजन) है; चारों आवश्यक वस्तुएँ (पच्चय)। इसका एक वैकल्पिक पाठ "यदत्तिकं" है; स्वामी ने आवश्यक वस्तुओं की अनुमति किसी भी उद्देश्य से, जिसके भी लाभ के लिए दी है, वह उद्देश्य शरीर की स्थिरता (ठिति) आदि के लिए है; और यह ऐसे निर्वाण के उद्देश्य से भी है जो अस्तित्व का कोई आधार न छोड़े (अनुपादिसेष)। अतः, अनुपादपरिनिर्वाण के लिए आवश्यक भोजन ग्रहण करने के बाद, कंखेत काल (प्रतीक्षा समय) तक, अस्तित्व के किसी भी आधार को छोड़े बिना पूर्णतः निर्वाण में विलीन होने के समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इधा का अर्थ है इस अवस्था (शासन) में। वीतरागो का अर्थ है, परन्तु बाहरी व्यक्ति के लिए, जो कामवासना (राग) से रहित हो चुका है, यह अस्तित्व में नहीं है; इस प्रकार, यही अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा महावच्चा का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(13):वनवाच्चा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (13) ------>>>> अगला
अध्याय I.
एकल श्लोक
13. वनवच्छ
इस बुद्ध युग में उन्होंने कपिलवस्तु में वच्छ ब्राह्मण (पुजारी) वंश में पुनर्जन्म लिया। उनका जन्म वन में हुआ था, उनकी माता को उस वन में टहलते समय प्रसव पीड़ा होने लगी थी जिसे देखने की उन्हें बहुत लालसा थी। वे भविष्य के बुद्ध के साथ रेत में खेलने वाले साथियों में से एक बन गए। और क्योंकि उन्हें वन से प्रेम था, इसलिए उन्हें वन-वच्छ के नाम से जाना जाता था। [1] बाद में, जब उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, [18] तो उन्होंने वन में ही अर्हत्व (ज्ञान) प्राप्त करने के लिए प्रयास किया और उसे प्राप्त किया। और वन जीवन की प्रशंसा में ही उन्होंने अपना कथन (गाथा) कहा, जब भिक्षुओं ने उनसे पूछा: 'वन में आपको क्या विश्राम मिल सकता है?' तो उन्होंने उत्तर दिया: 'मेरे मित्रों, वन और पर्वत कितने आनंदमय हैं!'

[13] नीलाभवाना रुचिरा सीतावारी सुचिंधरा॥
इंदगोपकासञ्चन्ना ते सेला रामयंति मन' ती॥ ॥

[13] आकाश के नीले बादलों के रंग वाली चट्टानें, जहाँ क्रिस्टल-स्पष्ट, ठंडे पानी के
कई चमकते हुए तालाब घिरे हैं , और जिनकी ढलानों को 'इंद्र के झुंड' [2] ढकते और सजाते हैं: वे पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरा मन प्रसन्न होता है।

[1] मानो किंवदंती उन्हें प्रकृति से और अधिक जोड़ने का प्रयास करती हो, उनके पिछले जन्मों में से केवल दो का ही विस्तार से वर्णन किया गया है, जिनमें उन्हें एक कछुआ और एक कबूतर के रूप में दर्शाया गया है। यह छंद, इसी तरह के अन्य छंदों के साथ, कस्सपा की कविता (CCXLIV) में दोहराया गया है। फिर से, दो पुन्ना-मलसा कथनों (गाथाओं) की तरह, टीकाकार नाम की समानता पर, न ही कहानी और छंद में सार की समानता पर ध्यान देता है। यह छंद लंबी कविता (CCLXI) में शामिल किया गया है।

[2] इन्दगोपका-संचन्ना 'इंद्र के ग्वालों से आच्छादित।' टीका के अनुसार (चाइल्डर्स देखें , 'बारिश के बाद दिखाई देने वाला एक लाल भृंग'), ये मूंगा-लाल रंग के कीड़े (किमी) हैं, जिनका उल्लेख हाल की बारिश के संदर्भ में किया गया है, लेकिन कुछ लोग इन्हें लाल घास कहते हैं, तो कुछ लोग इन्हें कणिकारा वृक्ष (टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम) कहते हैं। किसी पहाड़ी या ऊंचे इलाके के चित्र में दिखने के लिए, इन लाल कीड़ों का झुंड होना आवश्यक है। इंद्र की गायें - यानी बादल - पृष्ठभूमि को कहीं अधिक आसानी से भर देते। हालाँकि, सर चार्ल्स एलियट ने मुझे बताया है कि रूसी लोग लेडीबर्ड को 'भगवान की छोटी गायें' (बोझ्या कोरोविका) कहते हैं; और गर्मियों के अंत में ऊपरी अल्पाइन चरागाहों पर मैंने लाल (? बर्नेट) पतंगों को झाड़ियों पर झुंड में देखा है। रंग के बारे में; देखें विन., iii. 42.

1.2-3[13] श्लोक पर टिप्पणी

वनवच्छा थेरा
नीलाब्भवण्णा से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा वनवच्छ का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि भगवान अत्थदस्सी के समय में उनका जन्म एक कछुए के गर्भ में हुआ था और वे वीणाता नामक नदी में रहते थे। उनका शरीर एक छोटी नाव के आकार का था। कहा जाता है कि एक दिन उस कछुए ने भगवान को नदी के किनारे खड़े देखा और मन ही मन कहा, "मुझे लगता है कि भगवान दूसरे किनारे जाना चाहते हैं," और उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर ले जाने की इच्छा से उनके चरणों में लेट गया। भगवान ने उसकी इच्छा जान ली और उस पर दया करके उस पर सवार हो गए। कछुआ उत्साह और प्रसन्नता से भर गया और नदी को पार कर गया और उन्हें तुरंत दूसरे किनारे पर ऐसे भेज दिया जैसे कोई तीर धनुष की डोरी से तेज़ी से चलाया गया हो। भगवान बुद्ध ने उस पुण्य कर्म के फल की भविष्यवाणी उसी क्षण की, साथ ही भविष्य में उत्पन्न होने वाली समृद्धि की भी भविष्यवाणी की और वे प्रस्थान कर गए। उस पुण्य कर्म के फल के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए, संसार का त्याग किया और कई सौ बार तपस्वी जीवन व्यतीत किया और वनवासी बन गए। फिर बुद्ध कश्यप के समय में, उनका एक कबूतर के गर्भ में पुनर्जन्म हुआ और वन में प्रेममयी भिक्षु को देखकर कबूतर का मन प्रसन्नतापूर्वक भक्तिमय हो गया।

वहाँ से मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म बनारस के एक परिवार में हुआ और वयस्क होने पर वे पश्चाताप से ग्रस्त हो गए, संसार का त्याग कर उन्होंने अनेक पुण्य कर्म किए, जो पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। इस प्रकार, वे इस और उस लोक में, देवताओं और मनुष्यों के बीच, अपने पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका गर्भ कपिलवस्तु नगर के वच्छगोत्त नामक एक ब्राह्मण के घर में हुआ। उनकी माता, जो गर्भावस्था में पूर्णतः परिपक्व हो चुकी थीं, वन देखने की तीव्र इच्छा से वन में प्रवेश कर गईं और वहाँ विचरण करने लगीं। तभी उन्हें प्रसव पीड़ा (कम्मजावत) हुई; तब उन्हें चारों ओर से पर्दा (तिरेकरणी) लगा दिया गया। उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया जिसमें भविष्य में सौभाग्य और पुण्य के लक्षण दिखाई दिए (धञ्ञपुञ्ञलक्खण)। वह बोधिसत्व के साथ कोमल रेत में खेलने का साथी बन गया (पम्सुकीलान)। उसकी गर्दन के बाल भी "वच्छा" थे। जंगल में विशेष आनंद होने के कारण वह वनवच्छ के नाम से जाना जाता था। इसके बाद जब भगवान ने महात्याग का त्याग किया और महापधान कर रहे थे, तब उन्होंने संसार का भी त्याग कर स्वयं से कहा: “मैं भी राजकुमार सिद्धार्थ के साथ वन में निवास करूँगा।” और एक संन्यासी बनकर वे वन में रहने लगे। उन्हें पता चला कि राजकुमार विशेष रूप से आत्म-जागृत बुद्ध बन गए हैं, वे भगवान के पास गए, भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मट्टाना) में लग गए, वन में ही रहे, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में लीन रहे और अरहंतत्व का दर्शन किया, लेकिन कुछ ही समय बाद। इसलिए, अपदान में कहा गया है:

“हे भगवान अत्थादस्सी, स्वयं-

तथागत को विश्व का नेता बनाया गया

विनाटा नदी के किनारे की ओर अग्रसर हुआ।

मैं, कछुआ, जिसका चारागाह पानी में है

विशेष रूप से पानी से बाहर निकला और पास पहुंचा

मैं दुनिया का नेता बनने की इच्छा रखता था।

बुद्ध को नदी के पार भेजने के बारे में।

महान ऋषि बुद्ध अत्थादस्सी को

मुझ पर सवार हो जाओ, मैं तुम्हें पार पहुंचा दूंगा;

हे दुखों के अंत के निर्माता!

(दुख)।

क्योंकि वह मेरा इरादा जानता था, इसलिए

प्रसिद्ध अत्थादस्सी मेरी पीठ पर सवार हो गया और

विश्व का नेता उस पर खड़ा था।

जहां तक मुझे याद है, जब से मैंने

बुद्धि के युग में, सुख का युग था।

मेरे लिए, ठीक वैसे ही जैसे मुझे उनके पैरों के तलवे का स्पर्श मिला था।

स्वयंजागृत बुद्ध अत्थादस्सी, जो महान ख्यातिप्राप्त हैं,

पार करने के बाद, किनारे पर खड़ा हो गया

नदी के किनारे खड़े होकर उन्होंने ये छंद कहे:—

'जब भी मेरे मन में यह विचार आता कि मैं ऐसा करूंगा'

बहती नदी को पार करो, कछुओं का यह राजा।

ज्ञान के स्वामी ने मुझे भेजा' इस कारण

बुद्ध को पार भेजने और कर्तव्यनिष्ठ

प्रेम और दयालुता से भरा हृदय, कछुए को आनंद आएगा

स्वयं को दिव्य जगत में अठारह सौ वर्षों तक बनाए रखा।

युग (कप्पा)।

दिव्य लोक से यहाँ आने के कारण,

उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) से उत्तेजित होने के कारण वह

वह एक सीट पर बैठ जाता और पार कर जाता।

अनिश्चितता की धारा (kaṇkhāsotaṃ) के ऊपर।

ठीक वैसे ही जैसे उपजाऊ खेत में, इसके बावजूद लेकिन

जब सही मात्रा में बीज बोए गए थे, तब कुछ ही बीज बोए गए थे।

बारिश से पानी मिलता है, फसल की कटाई होती है।

यह किसान को ठीक उसी तरह संतुष्ट करता है।

इस प्रकार, बुद्ध का यह उपजाऊ क्षेत्र, जिसके द्वारा शिक्षा दी गई है

स्वयंजागृत उत्कृष्ट बुद्ध, जब उचित स्नान

बारिश से मुझे पानी मिलता रहे, इससे मुझे संतुष्टि मिलेगी।

मुझे।

मैं उन लोगों में से हूं जिनका मन कठिन परिश्रम की ओर उन्मुख है।

प्रयास, शांत और नियंत्रित (निरुपाधि);

सभी को समझ लिया सभी रोग (आसव) मैं रहता हूँ

बिना किसी रोग (आसव) के।

मैंने वह काम तब किया था, इसलिए मुझे कुछ याद नहीं है।

अठारह सौ युगों (कप्पा) के लिए विपत्ति; यह

यह भेजने का फलस्वरूप प्राप्त हुआ है।

मेरे पाप (किलेसा) जलकर भस्म हो गए थे... बुद्ध के

निर्देश (शासन) का पालन किया जा चुका था।

लेकिन अरहंत बनने के बाद, जब भगवान कपिलवस्तु में निवास कर रहे थे, तब वे वहाँ गए, गुरु को प्रणाम किया और जब वहाँ उपस्थित भिक्षुओं ने उनसे बातचीत के दौरान पूछा, “मित्र! आपने वन में सुखमय जीवन कैसे प्राप्त किया?” तो उन्होंने उत्तर दिया, “मित्रों! वन की पहाड़ियाँ बहुत रमणीय हैं” और उन्होंने “नीलब्भवण्णा” से शुरू होने वाला एक श्लोक सुनाया, जिसमें उन्होंने उस पहाड़ी की प्रशंसा की जहाँ वे स्वयं निवास करते थे।

13. वहाँ, 'नीलब्बवण्णा' का अर्थ है नीले आकाश के समान, नीले आकाश के स्वभाव वाला। 'रुचिरा' का अर्थ है: तेज से चमकीला और तेजस्वी। 'सीतवारी' का अर्थ है ठंडा पानी। 'सुचिन्धरा' का अर्थ है कि भूमि का यह भाग स्वच्छ और शुद्ध होने के कारण शुद्ध मन वालों या कुलीनों (आर्य) के निवास के लिए एक पवित्र स्थान है। वास्तव में, काव्य की सरलता के लिए व्याख्या शब्द को उसके संबंधित अनुनासिक के साथ मिलाकर की गई है। एक पाठ इस प्रकार भी है: "सीतवारीसुचिन्धरा; इसमें ठंडे स्वच्छ जल और ठंडे शुद्ध जल की आपूर्ति होती है; यही इसका अर्थ है। अभिव्यक्ति: indagopakasañ-channā का अर्थ इस प्रकार है:— वर्षा के समय मूंगे के रंग के लाल कीड़ों से पूरी तरह ढका हुआ होना, जिन्हें indagopaka कहा जाता है, इस प्रकार कहा जाता है। हालाँकि, कुछ लोग इसे इस प्रकार कहते हैं: “Indagopakanāmāni, लाल सरकंडे जिन्हें “indagopaka” कहा जाता है।” कुछ लोग कहते हैं: “कणिकाररुक्खा (कणिकार पीले फूलों के वृक्ष)। सेला का अर्थ है मिट्टी के ढेर से बनी पहाड़ियाँ; यही इसका अर्थ है। इसीलिए बुद्ध ने कहा: “यथा पि पब्बतो सेलो (जैसे पत्थर की पहाड़ी भी)। रामयंति मम् का अर्थ है: उन्होंने मुझे विस्मित किया; उन्होंने एकांत में विशेष आनंद से मुझे बल दिया। इस प्रकार, थेरा ने अपने उस विशेष एकांत आनंद को प्रकट करते हुए, जो लंबे समय से विकसित हो रहा था, एकांत में विशेष आनंद के केवल तीन रूपों को उजागर किया। वहाँ, अस्तित्व के आधार (उपधिविवेक) के एकांत के माध्यम से ही उनके अरहंतत्व (अञ्ञा) की अभिव्यक्ति हुई है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वनवच्छा का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (14): शिवका (भिक्षु वनवाचा में भाग लेने वाला एक नौसिखिया)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (14) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
14. सिवक (भिक्षु वनवच्छ के शिष्य)।
बुद्ध युग में उनका जन्म वनवच्छ की बहन के पुत्र के रूप में हुआ था। जब उनकी माता ने सुना कि उनके बड़े भाई वनवच्छ ने संसार त्याग दिया है (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया है), भिक्षु संघ में दीक्षा प्राप्त कर ली है और वन में रह रहे हैं, तो उन्होंने अपने पुत्र से कहा: 'प्रिय शिवक, तुम्हें बड़े भाई के अधीन संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करके) उनकी सेवा करनी चाहिए; बड़े भाई अब बूढ़े हो रहे हैं।' माता के इस मात्र आग्रह और अपनी पूर्व इच्छाओं के कारण उन्होंने ऐसा ही किया और अपने मामा की सेवा करते हुए वन में रहने लगे। एक दिन, जब वे किसी [19] कार्य से गाँव के बाहरी इलाके में गए थे, तो वे बहुत बीमार पड़ गए। जब दवा से भी वे ठीक नहीं हुए और वापस नहीं आए, तो बड़े भाई को कारण समझ नहीं आया और वे उनके पास गए और उन्हें बीमार पाया। भोर होने से पहले, बड़े भाई ने उनका इलाज किया और उनकी देखभाल की और कहा: 'शिवक, जब से मैंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया है) गाँव में नहीं रुका हूँ। चलो अब हम यहाँ से वन चलते हैं।' शिवका ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, भले ही मेरा शरीर अभी गाँव में रहे, मेरा मन जंगल में है, यहाँ लेटे रहने के बावजूद मैं वहाँ क्यों जाऊँगा?" तब गुरुजी ने उसका हाथ पकड़कर उसे जंगल में ले गए और उसे शिक्षा दी। उस शिक्षा से दृढ़ निश्चय प्राप्त करके उसने अरहंतस्बिप प्राप्त किया।

इसके बाद उन्होंने अपने प्रभु (बुद्ध) के शब्दों और अपने स्वयं के शब्दों को मिलाकर अपनी बात (गाथा) कही, जिसमें उन्होंने एकांत के प्रति अपने प्रेम और अपनी उपलब्धि, अपने प्रभु (बुद्ध) के प्रति अपनी आज्ञाकारिता और ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की विजय को व्यक्त किया।

[14] उपज्झायो माऽ अवचा इतो गच्छाम शिवका॥
गेमे मे वसति कायो अरण्यं मे गतो मानो॥
सेमनाको पि गच्छामि नत्थि सङ्गो विजानतन' ती॥ ॥

[14] शिक्षक ने मुझसे इस प्रकार कहा: 'सीवक, चलो
चलें!' [1] यहाँ नगर में मेरा शरीर रहता है;
मेरे विचार वन में चले गए हैं। इसलिए,
चाहे मैं दंडवत प्रणाम करूँ, फिर भी मैं जाता हूँ।
जो समझते हैं, उनके लिए कोई बंधन नहीं है।

[1] टीका में ' गच्छामी ' (मैं जाता हूँ) का अर्थ है ' गच्छामा ' (चलो चलें)। यह पाठ कथा के अनुरूप है, और वनवच्छ द्वारा अपने शिष्य की सक्रिय देखभाल और उसकी भक्ति को भी दर्शाता है। टीका में युवक की त्वरित प्रतिक्रिया की तुलना चाबुक से घायल हुए एक जोशीले घोड़े से की गई है। जोशीले घोड़े को भद्रो कहा जाता है, जिसका अर्थ शुभ या भाग्यशाली भी होता है (सीवक। शिव से तुलना करें)।

1.2-4.[14] श्लोक पर टिप्पणी

शिवकासामणेर
14. उपज्झायो से शुरू होने वाला श्लोक नवोदित शिवक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान वेसभु के समय में एक पारिवारिक घर में हुआ था, जो आज से इकत्तीस युग (कप्पा) पहले हुआ था। एक दिन, वे किसी काम से जंगल में गए और वहाँ उन्होंने पहाड़ियों के बीच बैठे हुए प्रतापी वेसभु को देखा, वे श्रद्धा से भर गए, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। फिर सुंदर (मनोहर) कासुमारिका फल देखकर, उन्होंने उन्हें इकट्ठा किया और प्रतापी को अर्पित किया। उन पर दया करके, भगवान ने उनकी भेंट स्वीकार कर ली उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और भगवान कस्सपा के शासनकाल में, जब उनके मामा ने संसार त्याग दिया, तो वे भी उनके साथ भिक्षु बन गए। उन्होंने ऐसे अनेक पुण्य कर्म किए जो जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे और जब थेरा वनवच्छ बुद्ध प्रकट हुए, तो वे उनके भतीजे के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम सावक था। उनकी माता ने जब यह सुना कि उनके बड़े भाई वनवच्छ ने शासनकाल में भिक्षु बनकर भिक्षु जीवन के सर्वोच्च पद को प्राप्त किया है और वन में निवास कर रहे हैं, तो उन्होंने अपने पुत्र से कहा, “मेरे प्रिय पुत्र सावक! तुम्हें थेरा के समक्ष संसार त्याग कर उनकी सेवा करनी चाहिए; थेरा अब वृद्ध हो गए हैं।” अपनी मां के एक ही शब्द पर, उनके द्वारा पहले की गई समर्पित सेवा के कारण, वह अपने चाचा थेरा के पास गए, संसार का त्याग किया और जंगल में उनकी सेवा में रहने लगे।

एक दिन जब वह किसी काम से गाँव के आखिरी छोर पर गए, तो उन्हें अचानक तीव्र कष्ट हुआ। लोगों ने उनका इलाज किया, फिर भी उनकी पीड़ा कम नहीं हुई। जब वह बहुत दूर चले गए, तो थेरा ने मन ही मन कहा, “नवदीक्षित तो बहुत पहले ही चले गए; आखिर उन्हें क्या हुआ है?” वे वहाँ गए, उन्हें बीमार देखा, दिनभर अपने बीमार भतीजे की देखभाल की, जो भी उचित था वह किया, और रात को, सुबह बहुत जल्दी, उन्होंने कहा, “हे शिवक! जब से मैंने भिक्षु का संस्कार ग्रहण किया है, मैं कभी गाँव में नहीं रहा; चलो हम यहाँ से ही जंगल चलें।” अपने चाचा की बात सुनकर शिवक ने उत्तर दिया, “आदरणीय महोदय! यद्यपि मेरा शरीर अब गाँव में है, मेरा मन जंगल में है; इसलिए लेटे हुए भी, मैं जंगल ही जाऊँगा।” अपने भतीजे की बात सुनकर थेरा ने उन्हें अपनी बाहों में उठाया, जंगल ले गए और उन्हें उपदेश दिया। थेरा की सलाह का पालन करते हुए, उन्होंने स्पष्ट अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

मैंने पहाड़ियों के बीच में देखा,

निर्मल बुद्ध, बैल के बीच

पुरुष, दुनिया में सबसे बुजुर्ग, चमकते हुए

कणिकारा फूल की तरह।

मैं धर्मनिष्ठ और नेक हृदय वाला व्यक्ति हूँ।

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को अपने सिर पर रख लिया।

कासुमारिका फल एकत्र किए और अर्पित किए

उन्हें परम श्रेष्ठ बुद्ध को समर्पित कर दो।

तब से मैंने वह फल भेंट किया है

मुझे किसी विपत्ति की याद नहीं है

(दुग्गती) इकत्तीस युगों में

(कप्पा) अब से; यह फलदायी है

फल चढ़ाने का परिणाम।

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी।

बुद्ध के उपदेश (शासन) में यह बात थी कि...

किया गया है।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु (उपज्जया) और स्वयं द्वारा कही गई बातों को संकलित किया और एकांत में विशेष रूप से प्रसन्न होने और अपने कर्तव्य (किच्चा) को पूरा करने की अपनी स्थिति को प्रकट करने के लिए उपज्जायो मन अवच से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला

14. यहाँ 'उपज्जायो' अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है:— वह पाप और निर्दोषता पर चिंतन करता है, और अपनी चिंता को दूर करने के बाद वह अपनी ज्ञान की दृष्टि (ज्ञानचक्खु) से देखता है; इस प्रकार, 'उपज्जायो' (आध्यात्मिक गुरु)। मम् का अर्थ है कि उसने अपने बारे में कहा। अवच का अर्थ है कि उसने कहा। अभिव्यक्ति: 'इतो गच्छामा सीवक' कहने के तरीके का संकेत देती है: “हे सीवक! आओ! हम इस गाँव से अपने वनवास चलें; वही हमारा उपयुक्त निवास है;” इस प्रकार, इसका अर्थ है। हालाँकि, अपने आध्यात्मिक गुरु द्वारा ऐसा कहे जाने पर, सीवक, एक अच्छे नस्ल के घोड़े की तरह जिसे विशेष रूप से कोड़े मारे गए हों, पश्चाताप से भर गया और वनवास जाने की अपनी इच्छा को प्रकट करने के लिए इस श्लोक का उच्चारण किया:—

मेरा शरीर गाँव में रहता है, मेरा

मेरा मन जंगल में चला गया है। मैं जाता हूँ।

हालांकि बीमार होने के बावजूद; कोई नहीं है

ज्ञानियों के प्रति आसक्ति।

इसका अर्थ है:— यद्यपि अब मेरा यह शरीर गाँव में स्थिर है, फिर भी मेरे विचार वन की ओर ही भटक रहे हैं; अतः मैं निर्धन होते हुए भी जा रहा हूँ; क्योंकि रोग के कारण मैं खड़े होने, बैठने और चलने में असमर्थ हूँ, और इस प्रकार रेंगते हुए निर्धन की तरह लेट रहा हूँ; आदरणीय महोदय! आइए! हम वन चलें। क्यों? क्योंकि जो व्यक्ति सत्य (धम्म) के स्वरूप के अनुसार इंद्रिय सुखों (काम) और जन्म-जन्मों (संसार) के हानि और त्याग एवं निर्वाण के लाभ को जानता है, उसका किसी भी स्थान से कोई लगाव नहीं है; इसलिए उसने केवल एक शब्द में अपने गुरु के आदेश का पालन किया; उसने उस संकेत (पदेसा) से अपने अरहंतत्व को प्रकट किया।

श्लोक पर टिप्पणी

नवोदित सिवक का

पूरा हो गया है।

*********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(15):कुंड-धन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (15) ------>>>> अगला

अध्याय I.

एकल श्लोक

15. कुण्ड-धान [1]

हमारे पूज्य बुद्ध के युग में, उनका जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम धाना रखा गया। [2] तीनों वेदों को कंठस्थ जानते हुए , जब वे वृद्ध हो गए, तो उन्होंने भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुना और संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। अब कोसल के राजा प्रसेनदी (प्रसेनजित) को उनमें रुचि हुई और उन्होंने उन्हें आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं, ताकि उन्हें भिक्षा मांगने की आवश्यकता न पड़े। लेकिन जब महान सुभद्दा ने भगवान (बुद्ध) और उनके साथियों को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया, तब कुण्ड-धाना ने अपनी शक्तियों और उपलब्धियों को प्रकट किया, जैसा कि अंगुत्तरा-निकाय की टीका में लिखा है। [3] और उन्होंने भिक्षुओं को यह श्लोक सुनाया:

[15] पञ्च चिन्दे पञ्च जहे पञ्च कटर भावये॥
पञ्कासंगतिगो भिक्खु ओघातिनो' ति वुकाति' ति.॥ ॥

[15] पाँच तुम्हें काट देते हैं; पाँच पीछे छोड़ देते हैं, और पाँच सभी से परे खेती करते हैं!
जो पंचांग बंधन [4]
को पार करता है - उसे बाढ़ पार करने वाला भिक्षु कहा जाता है।

[1] कॉमी में। कोंड- कोंड- कुंड- कुंद-धन। मज्झ में उनका जिक्र है . मैं। 462; उड्डन , ii. 8; धम्मपद कॉम., iii. 52-58.

[2] कॉमी. इस भिक्षु के पूर्वजों की कथा का विस्तार से वर्णन करता है, जिसका तात्कालिक उद्देश्य यह समझाना है कि धाना को कुण्ड या कोण्ड की उपनाम कैसे प्राप्त हुई, जो संदर्भ के अनुसार 'वीर' का अर्थ प्रतीत होता है। पिछले जन्म में वे एक परी के मज़ाक का शिकार हुए थे, और इसके परिणामस्वरूप उन्होंने एक निर्दोष साथी भिक्षु पर जो दोष लगाया, वह एक कर्म था, जो इस जीवन में उनका पीछा करता है और उन्हें कष्ट देता है। चूंकि कथा इस श्लोक पर कोई प्रकाश नहीं डालती, इसलिए इसे यहां नहीं दिया गया है, न ही भोजन-पात्र प्राप्त करने में उनकी पूर्व स्थिति का विवरण (देखें अंग., i. 24) दिया गया है, और इसी कारण से। वास्तव में, यह श्लोक किसी भी विद्वान थेरा द्वारा बोला गया हो सकता है (तुलना करें CCXLII., श्लोक 633)। सुभद्दा संभवतः साकेत में रहने वाले अनाथपिंडिका की पुत्री हैं (मिलिंदा, द्वितीय. 308)। उनके पास जाने का मार्ग (सावत्थी से) दूर बताया गया है: मज्झ., प्रथम. 149 में, सात स्पष्ट सवारी चरणों के रूप में वर्णित है।

[3] यानी, एताड-अग्गा-वाग्गा (अंग., i. 28 एफ.) पर , जिसमें थेरा की सफलता दर्ज है। यह ध्यान देने योग्य है कि, इस टिप्पणी का हवाला देते हुए, धम्मपाल ने इसे बुद्धघोष की मनोरथपुराणि के रूप में उद्धृत नहीं किया है ।

[4] टीका के अनुसार, इन चार पंचक में से पहला पंचक पाँच निम्न बंधनों का समूह है (बुद्ध मनोविज्ञान, 1113-1134; राइस डेविड्स, अमेरिकन लेक्चर्स, पृष्ठ 141 आदि)। दूसरा पंचक शेष पाँच बंधनों का है, जो पुनर्जन्म से मुक्ति सहित दस बंधनों से छुटकारा दिलाता है। तीसरा पंचक पाँच नैतिक शक्तियों या क्षमताओं को संदर्भित करता है (बुद्ध मनोविज्ञान, 305-311), और चौथा जुनून, घृणा, मूर्खता, अहंकार और राय के बंधनों को संदर्भित करता है (विभंग, पृष्ठ 877)। यह श्लोक धम्मपद, श्लोक 370, और सायुत्त निक., अध्याय 8, और नीचे, 633 में मिलता है, जहाँ यह टिप्पणी दोहराई गई है। यह श्लोक उस प्रकार की पवित्र पहेली का एक अच्छा उदाहरण है जिसमें इन वरिष्ठ विद्वानों (अपने आस-पास के अन्य विद्वानों की तरह) को विशेष आनंद आता था। (तुलना कीजिए LXIV.)

1.2-5[15] श्लोक पर टिप्पणी

कुण्डधाना थेरा

पंच चिंदे पंच जहे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुण्डधान का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उनका जन्म हंसवती नगर में एक पारिवारिक घर में, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय हुआ था और वयस्क होने पर (वयपत्तो) वे भगवान बुद्ध के पास गए। जब वे सत्य (धम्म) का उपदेश सुनते रहे, तो उन्होंने देखा कि गुरु द्वारा पहले भिक्षा (सलाका) प्राप्त करने वालों में एक भिक्षु को सबसे आगे स्थान दिया जा रहा है। उन्होंने भी उस पद की आकांक्षा की (ठाणंतर) और अपनी उस आकांक्षा के अनुरूप पुण्य कर्म किए। एक दिन उन्होंने बैठे हुए भगवान पद्ममुत्तरा को, जो निरोधसमापत्ति की समाधि से उठे थे, भूरे लाल रंग के आर्सेनिक पाउडर (मनोसिलाचुणपिंजरा) के समान रंग का केले का एक बड़ा गुच्छा भेंट किया। भगवान ने उसे स्वीकार किया और उसका आनंद लिया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने ग्यारह बार देवताओं के बीच दैवीय प्रभुत्व धारण किया। चौबीस बार वे विश्वराज बने। इस प्रकार बार-बार पुण्य

कर्म करने के कारण, वे समय-समय पर देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और बुद्ध कस्सपा के समय में एक पार्थिव देवता के रूप में पुनर्जन्म लिया। दीर्घायु बुद्धों के लिए, प्रत्येक पखवाड़े में उपोसथ का पालन करना आवश्यक नहीं था, ठीक उसी प्रकार, भगवान विपस्सी के लिए प्रत्येक छह वर्ष में एक बार उपोसथ का पालन करना आवश्यक था। दशाबला कस्सपा ने हर छह महीने में एक बार अनुशासन के नियम (पातिमोक्खा) प्रतिपादित किए। उनके द्वारा पातिमोक्खा प्रतिपादित किए जाने के समय, दो साथी भिक्षु (भिक्षु), जो एक विदेशी देश (दिसा) में रहते थे, उनके पास यह कहते हुए गए: "हम सब्त के कर्तव्यों (उपोसथा) का पालन करेंगे।"

इस सांसारिक देवता ने ऐसा सोचा: “इन दोनों भिक्षुओं के बीच प्रेम अत्यंत दृढ़ है; वास्तव में ऐसा क्यों है? क्या कोई वियोग होने पर भी इनमें फूट पड़ेगी या नहीं?” ऐसा सोचकर, वह देवता उनसे कुछ ही दूरी पर जाकर, उनके बीच वियोग उत्पन्न करने का अवसर तलाशने लगे। तब उनमें से एक ने अपना कुंड और वस्त्र अपने साथी को सौंप दिया और शरीर को आराम देने के लिए जल उपलब्ध स्थान पर जाकर, हाथ-पैर धोकर झाड़ी के पास से निकल गए। उस सांसारिक देवता ने उस थेरा के पीछे एक अत्यंत सुंदर स्त्री का रूप धारण किया और ऐसा दिखावा किया जैसे उन्होंने अपने सिर के बालों को संवारकर संवारा हो, अपनी पीठ से कोमल मिट्टी पोंछी हो, अपने वस्त्र को ठीक से पहना हो, और थेरा के पदचिन्हों पर चलते हुए झाड़ी से बाहर आ गए हों। एक कोने में खड़े साथी थेरा ने जैसे ही यह बात देखी, वे अप्रसन्न हो गए और मन ही मन सोचने लगे, “मैं अब व्यर्थ हो गया हूँ कि इतने लंबे समय तक इस भिक्षु का इतना स्नेहपूर्ण अनुसरण किया; काश मुझे पता होता कि वह ऐसा है, तो मैं इतने लंबे समय तक उसके साथ घनिष्ठ संबंध नहीं रखता।” उन्होंने अपने मित्र से, जो अभी भी उनकी ओर आ रहा था, कहा, “मित्र! आओ! यह रहा तुम्हारा कुंड और वस्त्र; मैं तुम्हारे जैसे दुष्ट व्यक्ति के साथ यात्रा नहीं करूँगा।” यह सुनकर उस विवेकशील भिक्षु का हृदय मानो किसी तीखे भाले से छलनी हो गया हो। इसके बाद, (आरोपी) ने (शिकायतकर्ता से) कहा, “मित्र! तुम ऐसा क्यों कह रहे हो? मुझे याद नहीं कि मैंने इतने लंबे समय तक दुक्काता जैसी मामूली अनुशासनिक श्रेणी का कोई अपराध किया हो; लेकिन अब तुम मुझ पर पाप का आरोप लगा रहे हो; तुमने क्या देखा है?” उत्तर था: “अन्य बातें देखने का क्या लाभ? तुम इतनी सजी-धजी स्त्री के साथ एक ही स्थान पर रहकर क्यों बाहर आ गए?” (आरोपित) थेरा ने उत्तर दिया: “मित्र! यह मेरी नहीं है; मैंने ऐसी कोई स्त्री नहीं देखी।” यद्यपि तीसरी बार कहने पर भी दूसरे थेरा ने अपने मित्र की बात पर विश्वास नहीं किया, बल्कि अपने द्वारा देखी गई बात को भी सत्य मानकर उस थेरा के साथ उसी यात्रा पर नहीं गए और गुरु के पास दूसरे मार्ग से चले गए। दूसरा भिक्षु भी गुरु के पास दूसरे मार्ग से गया।

इसके बाद, भिक्षुओं की सभा के उपोसथ हॉल में प्रवेश करते समय, उस भिक्षु ने पातिमोक्खा पाठ के हॉल में अपने पुराने मित्र उस भिक्षु को पहचान लिया और मन ही मन कहा, “इस उपोसथ हॉल में ऐसा दुष्ट भिक्षु उपस्थित है; मैं उस भिक्षु के साथ उपोसथ नहीं करूँगा।” यह कहकर वह हॉल छोड़कर बाहर खड़ा हो गया। तब उस दिव्य देवता ने मन ही मन कहा, “मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई है।” वह एक वृद्ध भक्त का वेश धारण करके बाहर खड़े भिक्षु के पास गया और उससे पूछा, “आदरणीय महोदय! मेरे स्वामी यहाँ क्यों खड़े हैं?” थेरा ने उत्तर दिया कि वह वहाँ खड़े रहे और उनसे कहा, “हे भक्त! एक दुष्ट भिक्षु इस उपोसथ हॉल में प्रवेश कर गया था, मैं उसके साथ व्रत नहीं करूँगा।” भक्त ने कहा, “आदरणीय महोदय! कृपया ऐसा न समझें; यह भिक्षु सर्वांगीण शुद्ध नैतिक आचरण वाला है; जिसे आपने देखा है, वह मैं ही हूँ; वह कार्य मैंने आपको देखने के दौरान किया था ताकि आपके विखंडन की संभावना का पता लगा सकूँ और मन ही मन सोच सकूँ: “क्या इन दोनों थेरों का प्रेम वास्तव में दृढ़ है या नहीं?” थेर ने पूछा, “हे भले मनुष्य, तुम कौन हो?” भक्त ने उत्तर दिया, “आदरणीय महोदय! मैं एक पार्थिव देवता हूँ।” ऐसा कहकर युवा देवता अपनी दिव्य शक्ति को त्यागकर थेर के चरणों में गिर पड़े और उनसे क्षमा मांगते हुए कहा, “आदरणीय महोदय! कृपया मुझे क्षमा करें; दूसरे थेर को मेरे इस पाप (दोष) की जानकारी नहीं है; कृपया उपोसथ करें।” ऐसा कहकर देवता ने थेरा को उपोसथ हॉल में प्रवेश कराया। उस थेरा ने फिर उसी स्थान पर उपोसथ अनुष्ठान किए; हालाँकि, मैत्रीपूर्ण संबंध के चलते वे दोनों थेरा फिर कभी एक ही स्थान पर साथ नहीं मिले। इस थेरा के इस कार्य का उल्लेख नहीं किया गया; हालाँकि, प्रश्न में उल्लिखित थेरा ने समय-समय पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का विकास करते हुए अरहंतत्व प्राप्त किया।

उस कर्म के फलस्वरूप, पृथ्वी के देवता बुद्ध के शासनकाल के अंतराल (एकं बुद्धांतरं) तक नरक के खतरे (अपाय) से मुक्त नहीं हुए। यद्यपि, यदि वे कभी मनुष्य रूप में प्रकट हुए, तो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी दोष केवल उन्हीं पर पड़ा। उनका पुनर्जन्म हमारे प्रतापी बुद्ध के समय में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उन्होंने उनका नाम "धानमाणव" (युवक धान) रखा। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया और वृद्धावस्था में उन्होंने गुरु से धर्म की शिक्षाएँ सुनीं, श्रद्धा (सद्धा) प्राप्त की और भिक्षु बन गए। उनके दीक्षा संस्कार (उपसंपदा) के दिन से ही, जब भी वे गाँव में प्रवेश करते, एक सुसज्तृश और अलंकृत महिला उनके साथ जाती; जब वे बाहर जाते, तब भी वह ऐसा ही करती। यहाँ तक कि जब वे मठ में प्रवेश करते, तब भी वह उनके साथ जाती। खड़े होने पर भी वह खड़ी रही; इस प्रकार, वह निरंतर उसका पीछा करती हुई प्रतीत हुई। थेरा ने उसे नहीं देखा। हालाँकि, उनके पूर्व कर्म के फलस्वरूप, वह दृश्यमान (उपट्ठति) हो गई। जब गाँव में चावल का दलिया और भिक्षादान किया जा रहा था, तो महिलाओं ने थेरा का उपहास करते हुए कहा: — “आदरणीय महोदय! चावल के दलिया का यह एक करछुल आपके लिए है; दूसरा हमारी इस महिला साथी

के लिए है।" थेरा को बहुत कष्ट हुआ। मठ पहुँचने पर भी, नौसिखिए और युवा भिक्षुओं ने उन्हें घेर लिया और उनका उपहास किया: "धन कुंठित (कोण्ड) हो गया है।" इसके बाद, इसी कारण से उनका नाम कुण्डधान थेरा के रूप में प्रचलित हो गया। वे उठे और स्वयं खड़े हो गए और उनके उपहास को सहन न कर पाने के कारण वे पागल हो गए और इस प्रकार बोले; "तुम कुटिल हो; तुम्हारे गुरु कुटिल हैं; तुम्हारे शिक्षक कुटिल हैं।" तब उन्होंने गुरु को उसके बारे में इस प्रकार सूचित किया:— "आदरणीय गुरु! कुटिल भिक्षुओं के साथ कुटिल शब्द बोले।" गुरु ने उसे बुलवाया और पूछा:— "हे धान! क्या यह सच है, जैसा आरोप है, कि तुमने भिक्षुओं के साथ अपशब्द बोले?" जब उसने हाँ में उत्तर दिया, तो गुरु ने उससे इसका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया:— "आदरणीय गुरु! मैंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि मैं निरंतर उत्पीड़न सहन नहीं कर पा रहा था।" बुद्ध ने उसे फटकारते हुए कहा: "तुमने अभी तक अपने पहले किए गए कर्म को पचाया नहीं है; हे भिक्षु! फिर कभी ऐसे अपशब्द मत बोलना" और निम्नलिखित (दो) श्लोक कहे:—

किसी से भी अपशब्द न बोलें;

जिनसे बात की जाएगी वे यही कहेंगे।

वापस आपके पास। सचमुच बहुत दुख है।

ये क्रोधपूर्ण भाषण हैं; प्रतिशोधात्मक कृत्य हैं।

आप पर व्याप्त हो जाएगा।

यदि आप स्वयं को नहीं हिलाते हैं, तो

एक नष्ट (उपहत) कांसे के बर्तन के समान

(कंस), इस प्रकार आपने शांति प्राप्त कर ली है।

(निब्बान); झगड़ा नहीं होता

आप।"

लोगों ने राजा कोसल से भी थेरा के इस व्यवहार के बारे में बात की, जिसमें वह एक स्त्री के साथ भटकते थे। राजा ने अपने सैनिकों को यह आदेश देते हुए भेजा, "मेरे सैनिकों! जाओ और जाँच करो।" वह स्वयं अपने सीमित शाही दल के साथ थेरा के निवास स्थान पर गए और एक कोने में खड़े होकर निगरानी करने लगे। उस समय थेरा सुई-धागे का काम कर रहे थे; वह स्त्री भी प्रकट हुई, मानो वह थेरा से कुछ ही दूरी पर खड़ी हो। राजा ने उसे देखकर यह जानने के लिए उस स्थान पर गए जहाँ वह खड़ी थी: "क्या यही कारण है?" जब राजा उसके पास पहुँचे, तो वह स्त्री मानो थेरा की पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया में प्रवेश कर गई। राजा भी उसके साथ उसी पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया में प्रवेश कर गए और चारों ओर देखने पर उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया, उन्होंने अपनी धारणा बना ली। "यह स्त्री नहीं है; यह थेरा के कर्म का फल है," सबसे पहले तो उसने थेरा को प्रणाम नहीं किया, यद्यपि उसका मार्ग थेरा के निकट ही था। जब उसे पता चला कि थेरा पर लगाया गया आरोप असत्य है, तो वह वापस आया, थेरा को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और इस प्रकार पूछा: "आदरणीय महाराज! क्या आपको भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं है?" थेरा ने उत्तर दिया: "हे महान महाराज! यह उचित ही है।" राजा ने थेरा को भिक्षा-भोजन की निरंतर व्यवस्था करते हुए कहा: "आदरणीय महाराज! मैं समझ गया कि मेरे स्वामी ने मुझसे क्या कहा; भला कौन प्रसन्न होगा जब आप इस प्रकार के सर्वांगीण दुराचार (किलेसा) के साथ इधर-उधर भटकते रहेंगे? अब से आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है; मैं आपको चारों धार्मिक आवश्यक वस्तुएँ (पच्चाय) उपलब्ध कराऊँगा; कृपया अपनी विवेकपूर्ण (योनिसो) ध्यान-साधना (मानसिकारा) में लापरवाही न करें।" राजा का समर्थन प्राप्त करके थेरा भिक्षा-भोजन से एकाग्र हो गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। उस समय से वह स्त्री लुप्त हो गई।

उस समय, उगा नगर में विधर्मियों के परिवार में रहने वाली रानी महासुभद्दा ने स्वयं द्वारा निर्धारित शुद्ध नैतिक नियमों (उपोसतं अधिष्ठाय) का पालन करते हुए शाकाहारी (आमगंध) बन गईं। उनका विचार था, "गुरुजी मुझ पर दया करें।" उन्होंने अपने महल की ऊपरी मंजिल पर खड़े होकर सत्य की घोषणा (सच्चकिरिया) इस प्रकार की: "ये फूल दशबल के ऊपर छत्र बनाकर रहें, न कि इस महल के अंदर। इस संकेत से, दशबल और पाँच सौ भिक्षु कल मेरा भिक्षा ग्रहण करें।" उन्होंने अपने हाथ से चमेली के आठ मुट्ठी फूल छोड़े।

फूल उड़ गए और धर्मोपदेश देते समय गुरुजी के ऊपर छत्र बनकर खड़े हो गए। चमेली के फूलों की उस छतरी को देखकर गुरुजी ने मन ही मन सुभद्रा के भिक्षा भोज के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और अगले दिन सूर्योदय के समय आनंद से कहा, "हे आनंद! आज हम भिक्षा मांगने के लिए दूर जा रहे हैं; सामान्य शिष्यों को शामिल मत करना; केवल आर्यों को ही भिक्षा देना।" थेरा ने भिक्षुओं को सूचित किया, "मित्रों! आज गुरुजी भिक्षा मांगने के लिए दूर जा रहे हैं; सामान्य शिष्यों को शामिल मत करना; केवल आर्यों को ही भिक्षा प्राप्त करनी है।" थेरा कुण्डधान ने अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन पहले कहा, "मित्र! सलाका लाओ।" आनंद ने मन में यह विचार उत्पन्न किया, "गुरुजी ने मुझे उनके जैसे भिक्षुओं को सलाका देने की अनुमति नहीं दी, उन्होंने मुझे केवल आर्यों को ही देने की अनुमति दी।" आनंद जाकर गुरुजी को इस बारे में सूचित किया। गुरुजी ने कहा, "तुम इसे उसी को दो जिसने इसे लाने के लिए कहा है।" थेरा ने इस पर विचार किया, "यदि कुण्डधान को सलाका देना उचित न होता, तो गुरुजी ने ऐसा क्यों मना किया होता; इस मामले में अवश्य ही कोई कारण होगा।" उन्होंने अभिहरि से कहा, "मैं कुण्डधान को सलाका दूंगा।" उनके आने से पहले ही, कुण्डधान ने अपने असाधारण ज्ञान (अभिज्ञा) के आधार पर चौथे ध्यान में प्रवेश किया और अपनी जादुई शक्तियों से आकाश में लीन होकर हाथ फैलाते हुए कहा, "मित्र आनंद! कृपया इसे लाओ; गुरुजी मुझे जानते हैं; गुरुजी मेरे जैसे भिक्षु को पहली बार सलाका लेने से मना नहीं करते," और उन्होंने सलाका पकड़ ली। गुरुजी ने इसका एक किस्सा बनाया और इस युग में उस थेरा को सलाका लेने वालों में सर्वोपरि स्थान दिया। इस थेरा ने राजसत्ता प्राप्त कर ली और लाभकारी पोषण तथा आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के अभ्यास से मानसिक रूप से शांत होकर छह प्रकार के उच्च ज्ञान प्राप्त कर लिए, क्योंकि उन्हें अरहंत के योग्य पर्याप्त योग्यता (उपनिषय) प्राप्त हुई थी। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैंने सबसे उत्कृष्ट लोगों की सेवा की।

बुद्ध, स्व-निर्मित (स्याम्भू) शीर्ष-

अपने सात दिनों के प्रवास में अधिकांश प्रमुख हस्तियों से मुलाकात की।

एकांत में (पटीसल्लीना), धर्मपरायण-

मन से और अच्छे दिल से।

समय का पता चलने पर जब

महान ऋषि पद्ममुत्तरा उठे थे

मैंने ऊपर से केलों का एक बड़ा गुच्छा इकट्ठा किया।

और उनके पास पहुँचे।

सर्वज्ञ भगवान, जगत के नेता

ने (मेरी भेंट) स्वीकार की और

महान ऋषि ने इसका भरपूर आनंद लिया।

ताकि मेरा मन प्रसन्न हो सके-

पवित्र।

स्वयंजागृत बुद्ध, अतुलनीय

कारवां-नेता, भोजन के बाद बैठ गए

वह अपनी सीट पर बैठ गया और उसने ये छंद कहे।

उन संतुष्ट (समितरो) राक्षसों को जो

इस पहाड़ी में कौन हैं और कौन थे और कौन

वन में होंगे (araññe bhūtabhayāni)

मेरी बात सुनो।

जो भी बुद्ध की सेवा करता था, वह उनसे मिलता-जुलता था।

शेर की गर्दन, पशुओं का राजा, उसके बारे में

मैं घोषणा करूंगा; जब मैं बोल रहा हूँ,

मेरी बात सुनो।

वह ग्यारह बार दिव्य राजा बनेगा;

चौबीस बार वह विश्व-

राजा।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

वह संसार में स्वामी बन जाएगा,

अपने गोत्र नाम गौतम से जाने जाते हैं, जिनका जन्म हुआ था

ओक्काका परिवार।

अच्छे नैतिक और

घावों (आसव) से मुक्त भिक्षुओं का अपमान करने के कारण उसे मिलेगा

उसके बुरे कर्म के परिणामस्वरूप उसे बदनामी मिली।

वह एक शिष्य बन जाएगा, जिसे इस नाम से जाना जाएगा।

कुण्डधान का नाम, उत्तराधिकारी

उनका धर्म, उनका प्रिय पुत्र, द्वारा सृजित

धम्म।

मैं हमेशा एकांत में लीन रहता था

ध्यान (झायी) का व्यक्ति था और मैंने लिया

ध्यान में आनंदित होना। संतुष्ट होकर

मेरे गुरु के साथ रहते हुए मैं रोग से मुक्त रहा।

शिष्यों से घिरे हुए और उनके पीछे-पीछे चले गए

भिक्षुओं के समूह द्वारा,

विजेता बीच में बैठ गया

भिक्षुओं के पुरोहितों का और बनाया (उनका)

शिष्य लॉट (सलाका) एकत्र करते हैं।

मैंने अपना चोला एक कंधे पर टिका लिया।

(एकंसं), मैंने नेता को अपना सम्मान अर्पित किया।

दुनिया में से, मैंने इसे सबसे पहले इसमें एकत्र किया था

सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं के सामने।

मेरे उस कृत्य के कारण

हे ईश्वर, दस हजार कांपने वालों में से एक!

(पृथ्वी का ढेर), पादरियों के बीच बैठा हुआ

भिक्षुओं (भिक्षुओं) के बीच, मुझे सबसे आगे स्थान दिया गया।

स्थिति।

मेरे प्रयास की तुलना जुते हुए

बैलों से की जा सकती है जो मुझे विशेष रूप से सुरक्षित स्थान पर ले जा रहे हैं

बंधनों से दूर निवास (योगक्खेमा);

मैं (अब) अपने अंतिम शरीर को विखंडन में धारण करता हूँ-

आत्मजागृत बुद्ध का प्रतिफल।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी; ...

बुद्ध के उपदेश (शासन) में

किया गया है।

इस प्रकार घटित होने के बावजूद, सामान्य श्रेणी (पुथुज्जन) के भिक्षु (भिक्षु), इस थेरा के गुणों को न जानते हुए, जब उन्होंने सबसे पहले लॉटरी ली, तो उन्होंने हमेशा यही सोचा: — "यह वास्तव में कैसे है?" उनके संदेह को दूर करने के उद्देश्य से, थेरा आकाश में गए, अपनी अद्भुत जादुई शक्तियों का प्रदर्शन किया और "पंच चिंदे" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, और अपनी अरहंतता को उसी की उपलब्धि के संकेत के माध्यम से प्रकट किया

15. वहाँ, पंच छिन्दे का अर्थ है कि मनुष्य को तीन निम्न मार्गों (मग्ग) की तलवार से उन पाँच बंधनों (संयोजन) को काट कर त्याग देना चाहिए जो मनुष्य को जन्म लेने और नरक में जाने के लिए प्रेरित करते हैं, मानो वह अपने पैरों को बाँधने वाली रस्सियों को काट रहा हो। पंच जहे का अर्थ है: मनुष्य को अरहंतत्व के मार्ग से उन पाँच बंधनों (संयोजन) को त्याग देना चाहिए जो दिव्य लोक में जन्म लेने के लिए सहायक होते हैं, मानो वह अपने गले में बंधी रस्सियों को काट रहा हो; यही अर्थ है। पंचकुत्तरी भावये का अर्थ है:- उन बंधनों का त्याग करके, मनुष्य को सर्वोच्च मार्ग की प्राप्ति करते हुए, अनागामी (अनगामि) के मार्ग से आगे बढ़कर, श्रद्धा आदि पाँच इंद्रियों का विकास करना चाहिए। पंचसंगतिगो का अर्थ इस प्रकार है:- इस प्रकार होकर, वह पाँच आसक्तियों (संग) पर विजय प्राप्त करने वाला (अतिगो) बन जाता है, क्योंकि वह पाँच प्रकार की आसक्तियों, जैसे राग, दोष, मोह, मान और विधर्म का त्याग कर उनसे परे चला जाता है। bhikkhu(monk) oghatiṇṇo ti vuccati का अर्थ है:— वह भिक्षु हर तरह से विघटित भ्रष्टता (किलेसा) की अवस्था में है, साथ ही वह निर्वाण में भी खड़ा है जो काम, भव, विधर्म और अज्ञान जैसे बाढ़ों के सागर के दूसरे किनारे पर स्थित है; यही इसका अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कुण्डधान का

पूरा हो गया है।

oOo

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरगाथा >> थेर (16): बेलट्ठसीस

प्राचीन अनुवाद (श्रीमती सी. ए. एफ. रीस डेविड्स) से रूपांतरित
टिप्पणी (अट्ठकथा) आचार्य धम्मपाल द्वारा
नोट: पालि में 'C' का उच्चारण 'च' (जैसे 'चाइना') की तरह होता है।

अध्याय 1 — एकल गाथाएँ
16. बेलट्ठसीस

इस बुद्ध-युग में उनका पुनर्जन्म श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। भगवान के बुद्ध बनने से पहले ही उन्होंने संसार का त्याग कर उरुवेला कश्यप के तपस्वी संघ में प्रवेश किया और अग्नि-पूजा का पालन किया। जब कश्यप को बुद्ध द्वारा वश में किया गया, तब वे उन हजार तपस्वियों में से एक थे जिन्होंने "आदित्तपरियाय" (अग्नि उपदेश) सुनकर अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया।

इसके बाद वे 'धम्म के कोषाध्यक्ष' (आनंद) के शिक्षक बने। एक दिन फल-समापत्ति के निर्मल आनंद और अपने पूर्व साधना का चिंतन करते हुए, उन्होंने हर्षपूर्वक यह गाथा कही:

[16]
"जिस प्रकार उत्तम कुल का सशक्त बैल, शिखायुक्त (कूबड़ या सींग वाला),
हल को बिना कष्ट के खेत की मेड़ों पर फेरता है,
उसी प्रकार मेरे लिए दिन और रात सहज ही बीत जाते हैं,
अब जब यह निर्मल, निष्कलुष आनंद प्राप्त हो गया है।"

गाथा पर टिप्पणी

यह गाथा आदरणीय थेर बेलट्ठसीस की है।

कहा जाता है कि उनका जन्म पूर्व बुद्ध पदुमुत्तर के समय एक श्रेष्ठ कुल में हुआ था। उन्होंने बुद्ध के पास जाकर धर्म श्रवण किया, श्रद्धा उत्पन्न हुई, और भिक्षु बने। यद्यपि उन्होंने भिक्षु धर्म का पालन किया, किन्तु अरहंतत्व के लिए आवश्यक पूर्ण योग्यता के अभाव में वे उस समय अंतिम लक्ष्य प्राप्त न कर सके। फिर भी उन्होंने अपार पुण्य संचय किया जो भवचक्र से मुक्ति के लिए सहायक बना।

इकतीस कल्प पूर्व उन्होंने बुद्ध वेस्सभु को देखकर श्रद्धा से एक मातुलुंग (बीजौरा) फल अर्पित किया। उस पुण्य के फलस्वरूप वे देव लोक में उत्पन्न हुए और अनेक शुभ जन्मों में विचरण करते रहे। वर्तमान बुद्ध के समय उनका जन्म श्रावस्ती में ब्राह्मण कुल में हुआ।

उन्होंने संसार त्यागकर उरुवेला कश्यप के साथ तपस्या की। जब भगवान ने “आदित्तपरियाय” (अग्नि दृष्टांत) का उपदेश दिया और कश्यप सहित उनके सहस्र जटाधारी तपस्वी शिष्य प्रभावित हुए, तब वे भी अरहंत हो गए।

गाथा का भावार्थ

“यथा पि” — जैसे कि (उदाहरण देने हेतु अव्यय)।
“भद्दो” — श्रेष्ठ, बल, सामर्थ्य, वेग और प्रयास से युक्त।
“आजञ्ञो” — उत्तम वंश का, प्रशिक्षित। यहाँ इसका अर्थ उत्तम बैल है (घोड़ा या हाथी नहीं)।
“नंगळावत्तनी” — जो हल को इधर-उधर सहजता से घुमाता है।
“सिखी” — शिखायुक्त, अर्थात सींग या कूबड़ वाला।
“अप्पकसिरेन” — बिना अधिक कष्ट के।
“रत्तिंदिवा” — रात और दिन।

अर्थ यह है: जैसे एक उत्तम बैल, जो हल चलाते समय मार्ग में आने वाली घास, जड़ों आदि की बाधाओं की चिंता नहीं करता और बिना अधिक परिश्रम के खेत को समतल कर देता है, उसी प्रकार मेरे लिए दिन और रात बिना कष्ट के बीत जाते हैं।

क्यों? — क्योंकि “सुखे लद्धे निरामिसे” — मैंने वह निर्मल, लौकिक विषयों से रहित, निर्विकार आनंद प्राप्त कर लिया है जो फल-समापत्ति का सुख है। जब से यह अलौकिक सुख प्राप्त हुआ है, तब से दिन और रात सहज ही बीतते हैं।

इस प्रकार थेर बेलट्ठसीस की गाथा पर अट्ठकथा (व्याख्या) पूर्ण होती है।

******* समाप्त *******
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(17):दसाका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (17) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
17. दशक
अपने कर्मों के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म हमारे पूज्य (बुद्ध) युग में सावत्थी में अनाथपिंडिका के दास के पुत्र के रूप में हुआ, [22] और उन्हें उनके द्वारा विहार (मठ) का द्वारपाल नियुक्त किया गया। [1] उनके सदाचारी आचरण और उनकी इच्छाओं को सुनकर, उनके स्वामी (बुद्ध) ने उन्हें मुक्त कर दिया और कहा, संसार के जीवन को छोड़ना कितना सुखद है। तदनुसार उन्हें भिक्षुत्व में दीक्षा दी गई; परन्तु उस समय से वे आलसी और परिश्रमहीन हो गए, पुनर्जन्म के चक्र को पलटने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और भोजन के बाद बहुत सोते थे। प्रवचन के समय वे सभा के बाहरी कोने में जाकर खर्राटे लेते हुए बैठ जाते थे। अब पूज्य (बुद्ध), उनके पूर्ववृत्तों को जानकर, उनमें तत्परता जगाने के लिए उनसे निम्नलिखित श्लोक कहा:

[17] मिद्धि यदा होति महघघसो च॥
निद्दयिता समपरिवत्सयि॥
महावाराहोऽव निवापापुत्थो॥
पुनप्पुनाऽ गभ्भमुपेति मांदोऽ ति.॥॥

[17] जो आलसी और आहार में स्थूल हो जाता है,
जो सोते हुए करवटें बदलता रहता है,
जैसे बहुत सारा खाना खाने वाला एक बड़ा सूअर -
वह मंदबुद्धि फिर से गर्भ (पुनर्जन्म) में लौट आता है।

यह सुनकर दासक व्याकुल हो गए और अंतर्दृष्टि प्राप्त करके कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) को प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने सोचा, 'परमेश्वर (बुद्ध) का यह श्लोक मेरे लिए प्रेरणा बन गया है,' और उन्होंने उस श्लोक को दोहराया। इस प्रकार, यद्यपि यह भोजन के संबंध में विरोध के रूप में कहा गया था, यह उनकी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया।

[1] जेतवन का। अनाथपिंडिका द्वारा निर्मित इस प्रसिद्ध संस्थान के खंडहरों के उदाहरण के लिए सिस्टर्स देखें । दसका = डेसीमस।

1.2-7[17] श्लोक पर टिप्पणी

दासका थेरा
मिद्धि यदा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा दासक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि 91 युग (कप्पा) पहले, तथागत के प्रकट होने से पहले, जब अजित नामक एक मौन बुद्ध गंधमादन पर्वत से मनुष्य मार्ग (मनुस्सपथ) पर उतरने के बाद एक गाँव में भिक्षा मांग रहे थे, तब उन्होंने स्वादिष्ट आम दान किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और तेजस्वी बुद्ध कस्सपा के समय, वे उस युग में भिक्षु बन गए और विकास (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अनेक पुण्य कर्म किए। इस प्रकार वे अच्छे कर्मों की खोज में लगे रहे और एक अच्छे जन्म से दूसरे अच्छे जन्म (सुगति) की ओर बढ़ते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका जन्म सावत्थी में एक पारिवारिक घर में हुआ। उनका नाम दासक था। उन्हें गृहस्थ अनाथपिंडिका द्वारा मठ की उचित देखभाल करने के कर्तव्य के लिए नियुक्त (ठपित) किया गया था और चूंकि वे नियमित रूप से व्यक्तिगत रूप से आदरपूर्वक मठ की सेवा करते रहे, इसलिए उन्होंने बुद्ध के निरंतर दर्शन और धम्म की शिक्षाओं को सुनने के कारण उचित रूप से धार्मिक आस्था (सद्धा) प्राप्त की और भिक्षु बन गए। कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं:— "इसका पुनर्जन्म भगवान कस्सपा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था और वयस्क होने पर इसने एक रोगमुक्त (खीणासव) थेरा की सेवा की। थेरा से कोई विशेष कार्य करवाने की इच्छा से इसने थेरा को आदेश दिया। इस कार्य के कारण, इसका पुनर्जन्म भगवान के समय सावत्थी में अनाथपिंडिका की एक दासी के गर्भ में हुआ; वयस्क होने पर, इसे धनाढ्य व्यक्ति द्वारा मठ की सेवा के लिए उपयुक्त रूप से नियुक्त किया गया और इसने पूर्वोक्त तरीके से धार्मिक आस्था प्राप्त की। महान धनाढ्य व्यक्ति ने जब उसके नैतिक आचरण और झुकाव को जाना, तो उसे दासता से मुक्त (भुजिसा) कर दिया और कहा:— 'तुम्हें अपनी इच्छा के अनुसार भिक्षु बनना चाहिए।' भिक्षुओं ने उन्हें भिक्षु बना दिया। भिक्षु बनने के बाद से ही वे आलसी और ऊर्जाहीन हो गए, और उन्होंने कोई भी कर्तव्य या प्रतिफल (वत्तपटीवत्त) नहीं निभाया, जो भिक्षुओं के कर्तव्य (समणधम्म) हो सकते थे; वे भरपेट खाकर भी बहुत सोते थे। यहाँ तक कि धर्म की शिक्षा सुनते समय भी वे एक कोने में जाकर श्रोताओं के सबसे दूर वाले छोर पर बैठ जाते और खर्राटे लेते हुए सो जाते। तब भगवान ने उनकी पूर्व की अर्हता (उपनिषय) को देखकर, उनके पश्चाताप को प्रेरित करने के उद्देश्य से "मिद्धि यदा होति-महाग्घसो च" से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा।

17. यहाँ मिद्धि का अर्थ है: आलस्य और उन्मत्त; जिसे उन्मत्तता वश में कर लेती है, उसे आलस्य भी वश में कर लेता है। यदा का अर्थ है किसी भी समय। महाग्घसो का अर्थ है अधिक खाने वाला, ऐसे कुख्यात पेटू लोगों के समान जो मुट्ठी भर भोजन (आहारहत्तक), पर्याप्त वस्त्र (अलंसाटक), भोजन (तत्थ) (वट्टक), कौवे (काक) जितना भोजन (आमासक), खाए हुए भोजन (भूत्त) को उल्टी करने वाला (वामितक) के रूप में जाने जाते हैं। निद्दायिता, वह व्यक्ति जिसे सोने (सुपना) की आदत (सीला) हो। सम्परिवत्तसाई (लेटते हुए करवटें बदलना) तदनुसार लेटने के आनंद, करवट के आनंद (पासा) और उनींदापन के आनंद का अनुभव करने में संलग्न हो गया; इस प्रकार, वह बताते हैं। नुवापपुट्ठो का अर्थ इस प्रकार है: — चावल के छिलकों के लाल पाउडर (कुंडक) आदि से युक्त सूअर के भोजन से पोषित और बड़ा हुआ; वास्तव में, एक घरेलू सूअर, अपने बचपन से ही पोषित होने के बाद, जब उसका शरीर मोटा हो गया, तो उसे घर से

बाहर निकलने की अनुमति नहीं दी गई, बल्कि वह पलंग के नीचे करवटें बदलते हुए सोता रहा। यही कहा गया है: — जब कोई व्यक्ति उनींदा भी होता है और अधिक खाने वाला (महाग्घस) भी होता है, तो चारे से पोषित एक बड़े सूअर की तरह, किसी अन्य मुद्रा (इरियापथ) में रहने में असमर्थ होने के कारण, सोने का आदी हो जाता है, करवटें बदलता रहता है; तब वह तीन लक्षणों के प्रति सचेत रहने में असमर्थ हो जाता है, अर्थात्: "अनित्यता, दुःख और अनात्म; अल्पज्ञानी (मंदपञ्ञो) इनके प्रति सचेत न रहने के कारण बार-बार गर्भ (गम्भा) की ओर जाता है; वह माता के गर्भ में रहने से पूर्णतः बच निकलता है। उस श्लोक को सुनकर थेरा दासक पश्चात्तापित हुए और उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की तथा अरहंतत्व का दर्शन किया, परन्तु कुछ ही समय बाद। अतः अपदान में कहा गया है;

"अजिता नामक स्वयंजागृत मौन बुद्ध"

फिर वे हिमवंत (हिमालय) में निवास करने लगे; ऋषि चतुर थे।

एकाग्रता (समाधि) में और साथ ही संपन्न

अच्छे आचरण (चरणा) के साथ; मैंने आम भेंट किया

जब आत्मजागृत मौन बुद्ध को फल प्राप्त होता है

सुनहरे रंग की वह स्त्री जो स्वीकार किए जाने योग्य थी।

जैसे ही उन्होंने प्रवेश किया, उन्होंने समर्पित दान दिया।

रथ मार्ग।

इसके परिणामस्वरूप नब्बे

एक युग (कप्पा) पहले, मुझे याद नहीं है

किसी भी विपत्ति का यही परिणाम है।

फल का अर्पण। मेरी दुराचारिता थी

जला दिया गया; ... बुद्ध का उपदेश रहा है

पूरा किया गया।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने स्वयं से कहा: "इस श्लोक के माध्यम से भगवान ने मुझे निर्देश दिया; यह श्लोक मेरे लिए एक प्रेरक शक्ति (अंकुसा) बन गया है," उन्होंने उत्तर में (पच्चुदाहासी) उसी श्लोक का पाठ किया। यही थेरा द्वारा सर्वांगीण कथन (परिवत्ताहार) को लाने की विधि से अपने अरहंत पद को प्रकट करने का माध्यम बन गया है

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा दासका का

पूरा हो गया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(17):दसाका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।

आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (17) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
17. दशक
अपने कर्मों के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म हमारे पूज्य बुद्ध के युग में सावत्थी में अनाथपिंडिका के दास के पुत्र के रूप में हुआ, [22] और उन्हें विहार (मठ) का द्वारपाल नियुक्त किया गया। [1] उनके सदाचारी आचरण और इच्छाओं को सुनकर, उनके स्वामी (बुद्ध) ने उन्हें मुक्त कर दिया और कहा, संसारिक जीवन को छोड़ना कितना सुखद है। तदनुसार, उन्हें भिक्षु दीक्षा दी गई; परन्तु उस समय से वे आलसी और परिश्रमहीन हो गए, पुनर्जन्म के चक्र को पलटने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और भोजन के बाद बहुत सोते थे। प्रवचन के समय वे सभा के बाहरी कोने में जाकर खर्राटे लेते हुए बैठ जाते थे। अब पूज्य बुद्ध ने उनके पूर्ववृत्त को जानकर, उनमें तत्परता जगाने के लिए उनसे निम्नलिखित श्लोक कहा:

[17] मिद्धि यदा होति महघघसो च॥
निद्दयिता समपरिवत्सयि॥
महावाराहोऽव निवापापुत्थो॥
पुनप्पुनाऽ गभ्भमुपेति मांदोऽ ति.॥ ॥

[17] जो आलसी और आहार में स्थूल हो जाता है,
जो सोते हुए करवटें बदलता रहता है,
जैसे बहुत सारा खाना खाने वाला एक बड़ा सूअर -
वह मंदबुद्धि फिर से गर्भ (पुनर्जन्म) में लौट आता है।

यह सुनकर दासक व्याकुल हो गए और अंतर्दृष्टि प्राप्त करके कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) को प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने सोचा, 'परमेश्वर (बुद्ध) का यह श्लोक मेरे लिए प्रेरणा बन गया है,' और उन्होंने उस श्लोक को दोहराया। इस प्रकार, यद्यपि यह भोजन के संबंध में विरोध के रूप में कहा गया था, यह उनकी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया।

[1] जेतवन का। अनाथपिंडिका द्वारा निर्मित इस प्रसिद्ध संस्थान के खंडहरों के उदाहरण के लिए सिस्टर्स देखें । दसका = डेसीमस।

1.2-7[17] श्लोक पर टिप्पणी

दासका थेरा
मिद्धि यदा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा दासक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि 91 युग (कप्पा) पहले, तथागत के प्रकट होने से पहले, जब अजित नामक एक मौन बुद्ध गंधमादन पर्वत से मनुष्य मार्ग (मनुस्सपथ) पर उतरने के बाद एक गाँव में भिक्षा मांग रहे थे, तब उन्होंने स्वादिष्ट आम दान किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और तेजस्वी बुद्ध कस्सपा के समय, वे उस युग में भिक्षु बन गए और विकास (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अनेक पुण्य कर्म किए। इस प्रकार वे अच्छे कर्मों की खोज में लगे रहे और एक अच्छे जन्म से दूसरे अच्छे जन्म (सुगति) की ओर बढ़ते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका जन्म सावत्थी में एक पारिवारिक घर में हुआ। उनका नाम दासक था। उन्हें गृहस्थ अनाथपिंडिका द्वारा मठ की उचित देखभाल करने के कर्तव्य के लिए नियुक्त (ठपित) किया गया था और चूंकि वे नियमित रूप से व्यक्तिगत रूप से आदरपूर्वक मठ की सेवा करते रहे, इसलिए उन्होंने बुद्ध के निरंतर दर्शन और धम्म की शिक्षाओं को सुनने के कारण उचित रूप से धार्मिक आस्था (सद्धा) प्राप्त की और भिक्षु बन गए। कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं:— "इसका पुनर्जन्म भगवान कस्सपा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था और वयस्क होने पर इसने एक रोगमुक्त (खीणासव) थेरा की सेवा की। थेरा से कोई विशेष कार्य करवाने की इच्छा से इसने थेरा को आदेश दिया। इस कार्य के कारण, इसका पुनर्जन्म भगवान के समय सावत्थी में अनाथपिंडिका की एक दासी के गर्भ में हुआ; वयस्क होने पर, इसे धनाढ्य व्यक्ति द्वारा मठ की सेवा के लिए उपयुक्त रूप से नियुक्त किया गया और इसने पूर्वोक्त तरीके से धार्मिक

आस्था प्राप्त की। महान धनाढ्य व्यक्ति ने जब उसके नैतिक आचरण और झुकाव को जाना, तो उसे दासता से मुक्त (भुजिसा) कर दिया और कहा:— 'तुम्हें अपनी इच्छा के अनुसार भिक्षु बनना चाहिए।' भिक्षुओं ने उन्हें भिक्षु बना दिया। भिक्षु बनने के बाद से ही वे आलसी और ऊर्जाहीन हो गए, और उन्होंने कोई भी कर्तव्य या प्रतिफल (वत्तपटीवत्त) नहीं निभाया, जो भिक्षुओं के कर्तव्य (समणधम्म) हो सकते थे; वे भरपेट खाकर भी बहुत सोते थे। यहाँ तक कि धर्म की शिक्षा सुनते समय भी वे एक कोने में जाकर श्रोताओं के सबसे दूर वाले छोर पर बैठ जाते और खर्राटे लेते हुए सो जाते। तब भगवान ने उनकी पूर्व की अर्हता (उपनिषय) को देखकर, उनके पश्चाताप को प्रेरित करने के उद्देश्य से "मिद्धि यदा होति-महाग्घसो च" से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा।

17. यहाँ मिद्धि का अर्थ है: आलस्य और उन्मत्त; जिसे उन्मत्तता वश में कर लेती है, उसे आलस्य भी वश में कर लेता है। यदा का अर्थ है किसी भी समय। महाग्घसो का अर्थ है अधिक खाने वाला, ऐसे कुख्यात पेटू लोगों के समान जो मुट्ठी भर भोजन (आहारहत्तक), पर्याप्त वस्त्र (अलंसाटक), भोजन (तत्थ) (वट्टक), कौवे (काक) जितना भोजन (आमासक), खाए हुए भोजन (भूत्त) को उल्टी करने वाला (वामितक) के रूप में जाने जाते हैं। निद्रायिता, वह व्यक्ति जिसे सोने (सुपना) की आदत (सीला) हो। सम्परिवत्तसाई (लेटते हुए करवटें बदलना) तदनुसार लेटने के आनंद, करवट के आनंद (पासा) और उनींदापन के आनंद का अनुभव करने में संलग्न हो गया; इस प्रकार, वह बताते हैं। नुवापपुट्ठो का अर्थ इस प्रकार है: — चावल के छिलकों के लाल पाउडर (कुंडक) आदि से युक्त सूअर के भोजन से पोषित और बड़ा हुआ; वास्तव में, एक घरेलू सूअर, अपने बचपन से ही पोषित होने के बाद, जब उसका शरीर मोटा हो गया, तो उसे घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं दी गई, बल्कि वह पलंग के नीचे करवटें बदलते हुए सोता रहा। यही कहा गया है: — जब कोई व्यक्ति उनींदा भी होता है और अधिक खाने वाला (महाग्घस) भी होता है, तो चारे से पोषित एक बड़े सूअर की तरह, किसी अन्य मुद्रा (इरियापथ) में रहने में असमर्थ होने के कारण, सोने का आदी हो जाता है, करवटें बदलता रहता है; तब वह तीन लक्षणों के प्रति सचेत रहने में असमर्थ हो जाता है, अर्थात् "अनित्यता, दुःख और अनात्म; अल्पज्ञानी (मंदपञ्ञो) इनके प्रति सचेत न रहने के कारण बार-बार गर्भ (गम्भा) की ओर जाता है; वह माता के गर्भ में रहने से पूर्णतः बच निकलता है। उस श्लोक को सुनकर थेरा दासक पश्चात्तापित हुए और उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की तथा अरहंतत्व का दर्शन किया, परन्तु कुछ ही समय बाद। अतः अपदान में कहा गया है;

"अजिता नामक स्वयंजागृत मौन बुद्ध"

फिर वे हिमवंत (हिमालय) में निवास करने लगे; ऋषि चतुर थे।

एकाग्रता (समाधि) में और साथ ही संपन्न

अच्छे आचरण (चरणा) के साथ; मैंने आम भेंट किया

जब आत्मजागृत मौन बुद्ध को फल प्राप्त होता है

सुनहरे रंग की वह स्त्री जो स्वीकार किए जाने योग्य थी।

जैसे ही उन्होंने प्रवेश किया, उन्होंने समर्पित दान दिया।

रथ मार्ग।

इसके परिणामस्वरूप नब्बे की पेशकश की गई

एक युग (कप्पा) पहले, मुझे याद नहीं है

किसी भी विपत्ति का यही परिणाम है।

फल का अर्पण। मेरी दुराचारिता थी

जला दिया गया; ... बुद्ध का उपदेश रहा है

किया गया।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने मन ही मन कहा, “इस श्लोक के माध्यम से भगवान बुद्ध ने मुझे शिक्षा दी; यह श्लोक मेरे लिए प्रेरणा (अंकुसा) बन गया है,” और उत्तर में उन्होंने उसी श्लोक का पाठ किया। यही वह तरीका है जिससे थेरा ने सर्वांगीण कथन (परिवत्ताहार) के माध्यम से अपने अरहंत पद को प्रकट किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा दासका का

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(18):सिंगाला-पितर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (18) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
18. सिंगाला-पिटर [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में धनी माता-पिता के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने विवाह किया और अपने पुत्र का नाम सिंगाला (का) रखा, और स्वयं सिंगाला के पिता के रूप में जाने गए। बाद में उन्होंने गृहस्थी बंधनों को त्याग दिया और भिक्षु बनने के लिए संसार त्याग दिया। भगवान (बुद्ध) ने उनकी प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए उन्हें कंकाल के विचार का ध्यान अभ्यास कराया। इसे अपनाकर वे सुंसुमारगिरा में शाकियों के बीच भेषकला वन में रहने लगे। [23] अब उस वन में एक वनदेवदूत ने यह जानते हुए कि थेरा को शीघ्र ही वह फल प्राप्त हो जाएगा जिसके लिए वे परिश्रम कर रहे थे, यह श्लोक कहा:

[18] अहो बुद्धस्स दयादो भिक्खु भेसाकलावने॥
केवलाऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ केवलाऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ केवलाऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ
मन्नेऽहं कामरागां सो खिप्पमेव पहिस्साति.॥ ॥

[18] देखो! भेषकला के वन में एक भिक्षु रहता है, जो बुद्ध की कृपा का उत्तराधिकारी है,
और इस पार्थिव शरीर में गहन
, गंभीर, कंकालनुमा विचार व्याप्त है। [3]
मुझे धिक्कार है, यदि वह सभी इंद्रियों के जुनून को शीघ्रता से दूर न करे !

उस श्लोक को सुनकर भिक्षु ने सोचा, 'परी ने मुझसे ये इसलिए कहा ताकि मैं प्रयास करूं।' और अटूट प्रयास करते हुए उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने परी के शब्दों को याद किया और उसी श्लोक को अपने अन्न (प्राप्ति) की घोषणा के रूप में दोहराया।

[1] टीका सिंगालक-पिता में। नाम का अर्थ है 'सियार'।

[2] यह शहर (विंडिश, मारा उ. बुद्ध, पृ. 150 देखें) और यह वन अब तक शाकियों के साथ नहीं, बल्कि भगों के साथ जुड़े पाए गए हैं (जेपीटीएस, 1888, पृ. 63, 98)। अतः या तो इस नाम के एक से अधिक वन थे, या भग, जिनका स्थान संदिग्ध प्रतीत होता है, शाकियाओं का एक उपसमूह थे। तुलना करें , पद 1208।

[3] केवलाण अथिसनन्या अपहरि पथवीउ इमं। डॉ. न्यूमैन इस पंक्ति में साओय के एक अंश का संकेत देखते हैं । निक., ii. 178 एफएफ., और सुमेधा द्वारा संदर्भित (बहनें, पृष्ठ 173):

और उस अस्थि-कक्ष को याद रखो,
जो संसार में भटकने वाले प्राणियों द्वारा ढेर किया गया है। उस विशाल अस्थि-कक्ष को याद रखो , जो एक ही स्थान से
एक मनुष्य की हड्डियों से बना है, जो विपुल के समान है।

दूसरी ओर, धमिनपाला इस तरह के किसी भी संकेत को अनदेखा करते हुए इस पंक्ति की व्याख्या असुभ-संज्ञा या ' अत्थिका-भावना ' नामक कसिणा के संदर्भ में करते हैं। पथवी, जिसे आमतौर पर विस्तारित जगत पर लागू किया जाता है, को वे अत्त-भाव-पथवी के रूप में समझाते हैं, जो व्यक्ति का वह विस्तारित या पार्थिव गुण है जिसे निकायों में अज्जत्तिका-पथवीधातु (व्यक्तिगत विस्तारित तत्व) कहा जाता है। इसे कभी भी केवल पथवी (विस्तारित या पृथ्वी) नहीं कहा जाता है, यह आलोचक को उपसंहार परंपरा से असहमत होने के लिए प्रेरित कर सकता है। फिर भी, यदि वास्तव में हड्डियों के पहाड़ का संकेत दिया गया होता, तो बाद वाले ने इस अच्छे व्याख्यात्मक अवसर को क्यों गंवा दिया होता? 'हड्डियों की धारणा से अपने या सभी प्राणियों के शरीर को पूरी तरह से इस विचार से भर देने के बाद कि "यह हड्डी है!" और उसे ध्यान का आधार बनाकर , वह अनावर्ती (मुक्तिदाता) के मार्ग से सभी कामुक भावनाओं को त्याग देगा...' टीका में यही कहा गया है।

1.2-8[18] श्लोक पर टिप्पणी

सिंगालापितु थेरा
अहु बुद्धस्स दयादो से शुरू होने वाला श्लोक थेरा सिंहलकपितु का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि चौरानवे युग (कप्पा) पहले उन्होंने सतुरंसी नामक एक मौन बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे धर्मपरायण हो गए, उन्हें प्रणाम किया और अपने हाथ में आए ताड़ के फल को अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ, उन्होंने समय-समय पर पुण्य कर्म किए, बार-बार जन्म लेकर सुखी जन्मों में विचरण किया, भगवान कस्सपा के समय मनुष्य के गर्भ में उनका पुनर्जन्म हुआ, वे शासन में धर्मपरायण आस्था के अच्छे लाभार्थी बने, भिक्षु बने और अस्थि-बोध (अट्ठिकसंज्ञा) में अपना मन विकसित किया। बाद में, जब ये बुद्ध प्रकट हुए, तो उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक पारिवारिक घर में हुआ और वयस्क होने पर उन्होंने गृहस्थ जीवन स्थापित किया, एक पुत्र प्राप्त किया और उसका नाम "सिंगालक" रखा। इसी कारण लोग उन्हें सिंगालकपिता कहने लगे। इसके बाद उन्होंने गृहस्थी त्याग कर भिक्षु बन गए। उनकी प्रवृत्ति को देखते हुए, भगवान बुद्ध ने उन्हें अस्थि-बोध (अट्ठिकसंज्ञा) का मानसिक अभ्यास (कम्मठना) दिया। उन्होंने इसे ग्रहण किया और भेषकला वन में सुसुमारगिरि नामक मगरमच्छ पर्वत पर भगों के बीच निवास किया। फिर, उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने "अहु बुद्धसदायादो" से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया, जो उनके अरहंतत्व को इंगित करने के उद्देश्य से प्रकट करता है, अर्थात्, 'यह मानसिक विकास (भावना) के फल को उनके हाथों (हत्थगतं) में लाएगा, लेकिन जल्द ही, भिक्षु के प्रयास (उस्साह) को प्रेरित करने के उद्देश्य से।

18. यहाँ, अहु का अर्थ है (होति)। वास्तव में यह भूतकाल का शब्द वर्तमान काल में है। बुद्धस्स का अर्थ है सर्वज्ञ बुद्ध का। दायदो का अर्थ है आध्यात्मिक उत्तराधिकारी, नौ प्रकार के दिव्य धर्मों की विरासत को ग्रहण करने वाला और संग्राहक, जो अपने धार्मिक लाभ (सम्मापतिपत्ति) के लिए इसका उपयोग करता है। दूसरे शब्दों में, अहु का अर्थ है (अहोसि); इस प्रकार के नाम वाले बुद्ध का उत्तराधिकारी बनने पर, कोई भी व्यक्ति अभी भी विबंधित हो जाएगा; यही इसका महत्व है। इसलिए बुद्ध ने कहा: "मञ्ञेहं कामरागं सो, खिप्पमेव वहिस्साति, मेरा मानना है कि वह कामराग के बंधन को शीघ्र ही त्याग देगा।" भेषक ... पथविं का अर्थ है अपने शरीर की धरती (अत्तभाव)। वास्तव में, शरीर (अत्तभाव) को यहाँ "पथवी (धरती)" कहा गया है, जैसे कि "सो इमं पथविं विच्चेसति" आदि संदर्भों में। मन्ञेहं का अर्थ है मैं सोचता हूँ। इसका एक पाठ "मञ्ञाहं" भी है। सो का अर्थ है वह भिक्षु। खीप्पमेव का अर्थ है, लेकिन शीघ्र ही वह कामुक वासना के बंधन को त्याग देगा; इसलिए मैं सोचता हूँ। क्यों? क्योंकि अस्थि की अनुभूति कामुक वासना के ठीक विपरीत होती है। यह कहा गया है:— जो कोई भी किसी विशेष स्थान पर अस्थि के विचार से प्रेरित होकर, अपने शरीर या सभी के शरीरों में अस्थि के दृष्टिकोण से व्याप्त होकर खड़ा होता है, वह भिक्षु अस्थि ध्यान को आधार बनाकर, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सन्तो) विकसित करते हुए, शीघ्र ही अनागामी मार्ग (अनगामीमग्ग) के माध्यम से अपनी कामुक वासना (कामराग) या संपूर्ण तृष्णा (तन्हा) का त्याग कर देगा, और इस प्रकार उसे "काम (कामुक इच्छा)" नाम प्राप्त होगा, क्योंकि इसका अर्थ तृष्णा है और "राग (वासना)" क्योंकि इसका अर्थ तृष्णा और "राग (वासना)" है, क्योंकि इसका अर्थ कलंकित उत्तेजना (रांझना) है, सर्वोत्कृष्ट मार्ग (अग्गमग्ग) के माध्यम से। इस श्लोक को सुनकर, उस थेरा ने मन ही मन कहा: "इस देवता ने मेरे प्रयास को प्रेरित करने के उद्देश्य से ऐसा कहा," जिससे उनका आत्म-संकल्प (अधित्थाय) अटूट हो गया, उन्हें स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त हुई और उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः, अपदान में कहा गया है:

“महान मौन बुद्ध, नाम

सतुरंसी, स्वयं उत्पन्न होने वाला,

अपराजित, अपने एकांत से उठ खड़ा हुआ

और विशेष रूप से भीख मांगने पर सामने आया-

दौर।

मेरे हाथ में फल थे, मैंने देखा कि

वह पुरुषों के बीच एक सांड की तरह खड़ा था और उसके पास पहुंचा।

धार्मिक और नेक बनना

मैंने बड़े मन से ताड़ का फल भेंट किया।

यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने फल भेंट किए। मैं करता हूँ।

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह मेरे द्वारा किए गए प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

फल का। मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी;

बुद्ध का उपदेश यही था।

किया गया।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने आनंदमय और गंभीर उच्चारण (उदान) के माध्यम से उस देवता द्वारा कहे गए वचन का सम्मान करते हुए उसी श्लोक का पाठ किया। यही उस थेरा के अरहंत पद का प्रकटीकरण (अञ्ञा) था।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सिंहलापितु का

तैयार है।

**
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(19):कुला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (19) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
19. कुला
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, लेकिन मानसिक संतुलन के अभाव में वे किसी एक विचार पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सके। [1] एक दिन भिक्षा मांगने के लिए नगर जाते समय, उन्होंने देखा कि लोग नहरें खोदकर बहते पानी को अपनी इच्छानुसार कहीं भी ले जा रहे थे। नगर के भीतर उन्होंने अपनी दृष्टि के कोने से देखा [2] कि कैसे धनुष बनाने वाला अपने खराद में बाण का शाफ्ट लगा रहा था, और कटोरा भरकर निकलते समय उन्होंने रथ बनाने वालों को धुरी, टायर और हब को समतल करते देखा। अतः विहार (मठ) में प्रवेश करके उन्होंने भोजन किया; फिर दोपहर के आराम के दौरान उन्होंने चीजों को वश में करने के इन तीन तरीकों पर चिंतन किया, उन्हें अपना मार्गदर्शक बनाया और उन्हें आत्म-नियंत्रण की अपनी आवश्यकता पर लागू किया। इस प्रकार प्रयास करते हुए उन्होंने कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। और उन उदाहरणों को अपने हृदय के वशीकरण से जोड़ते हुए, उन्होंने इस श्लोक में अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[19] उदकाऽ हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारो नमयन्ति तेजनाऽ॥
दारुं नमयन्ति तच्चका अत्तानां दमयंति सुब्बता' ति.॥ ॥

[19] नहर बनाने वाले धारा का नेतृत्व करते हैं,
धनुष बनाने वाले तीर के शाफ्ट को सीधा करते हैं,
बढ़ई लकड़ी के तख्ते को आकार देते हैं;
स्वयं-यह है कि धर्मी, शांत। [3]

[1] विसेसाṃ निब्बटेतुṃ। सी एफ चाइल्डर्स, एसवी विसेसो।

[2] देखें विन. टेक्स्ट्स, i. 59: 'नीचे झुकी हुई आँखों से।' व्यावहारिक रूप से उसके सामने हल की लंबाई के बराबर जमीन पर निर्देशित (टिप्पणी)।

[3] यह श्लोक सीसीएलवी में पुनः आता है, और धम्मपद में दो बार आता है, जिसे उस ग्रंथ की टीका में श्लोक 80 में पंडित-सामनेर और श्लोक 145 में सुखा-सामनेर को सौंपा गया है। दोनों ही सावत्थी के हैं, और दोनों को ही संदर्भित शिल्पों में पदार्थ पर मानव कौशल के उदाहरण के रूप में वर्णित किया गया है। लेकिन पहले उदाहरण में कहानी का बहुत विस्तार किया गया है।

1.2-9[19] श्लोक पर टिप्पणी

कुला थेरा
"उदकं हि नयन्ति" से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुल का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इस थेरा ने भी पहले अनेक पुण्य कर्म किए थे, जो उन्हें जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाते थे। वे भक्तिमय कर्तव्यों (अधिकार) से परिपूर्ण थे। उन्होंने भगवान विपस्सी को आकाश में विचरण करते देखा, वे श्रद्धा से भर गए और नारियल अर्पित करने की इच्छा से खड़े हो गए। गुरु को जब उनकी इच्छा का ज्ञान हुआ, तो वे अवतरित हुए और उनका अर्पण स्वीकार किया। वे अत्यंत श्रद्धामय हो गए और इसी पुण्य भाव के फल के कारण गुरु के पास जाकर भिक्षु बनने का निवेदन किया। गुरु ने एक भिक्षु को इस प्रकार आदेश दिया: "इस व्यक्ति को भिक्षु बना दो।" इसने दीक्षा ली, उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की, भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, वहाँ से देहांत हो गया, छह बुद्ध काल (बुद्धंतर) तक दिव्य और मानव प्राणियों के बीच बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहा और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में इसका पुनर्जन्म हुआ। इसका नाम कुला था। वयस्क होने पर, इसने धर्म में श्रद्धा प्राप्त की, भगवान बुद्ध की उपस्थिति में भिक्षु बन गया, लेकिन विक्खेप (विषेप) की अधिकता के कारण विशेषण (विशेषा) प्राप्त करने में असमर्थ रहा। फिर, एक दिन भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश करते समय, उसने देखा कि लोग मिट्टी खोदकर जल पात्र बनाकर जहाँ-जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ जल पहुँचा रहे हैं। रास्ते में उसने ध्यान से देखा और गाँव में प्रवेश किया। वहाँ उसने एक बाणकार को अपनी आँख के एक छोर से बाण को सीधा करते हुए देखा। उन्होंने बाण यंत्र में बाण की छड़ डाली, उसे भी ध्यान से देखा और आगे बढ़ते हुए उन्होंने बढ़ईयों को रथ के पहिये के विभिन्न भाग, जैसे कि तीली, रिम, केंद्र आदि बनाते हुए देखा। आगे जाकर उन्होंने उसे भी ध्यान से देखा और अपने मठ में प्रवेश किया, भोजन किया, अपना कटोरा और वस्त्र व्यवस्थित किया, अपने विश्राम कक्ष में बैठे, स्वयं द्वारा देखे गए उदाहरण के गुणों को एकत्रित किया,

अपने मन को वश में करने के करीब पहुंचे और इस प्रकार विचार किया: — “लोग जल जैसी निर्जीव वस्तु (अचेतनम्) को भी आवश्यकतानुसार स्थान पर ले जाते हैं; उसी प्रकार बाण बनाने वाले टेढ़ी-मेढ़ी निर्जीव छड़ को भी व्यवस्थित रूप से मोड़कर सीधा कर देते हैं; उसी प्रकार बढ़ई लकड़ी के टेढ़े-मेढ़े टुकड़ों को पहिये के रिम के रूप में बनाते हैं, तो मैं अपने मन को सीधा क्यों न करूँ?” उन्होंने विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) विकसित की, परिश्रम किया, प्रयास किया और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है: —

मैं उस समय एक आराम का सेवक था।

बंधुमती शहर में। मैंने देखा

निर्मल (विरज) बुद्ध आकाश में विचरण कर रहे हैं।

एक नारियल का फल इकट्ठा करने के बाद मैंने

इसे परम श्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया गया;

अत्यंत प्रतिष्ठित बुद्ध, खड़े हुए

आकाश ने (मेरी भेंट) स्वीकार कर ली।

समृद्धि को अच्छी तरह से बढ़ावा दिया गया था, यह था

तत्काल सुख लाने वाला,

फल अर्पित करने के बाद

मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हुआ।

तब मुझे अत्यधिक उत्साह और उमंग का अनुभव हुआ।

अत्यंत सुख भी प्रचुर मात्रा में।

रत्न लेकिन (मेरे लिए) अचानक प्रकट हुआ जो पैदा हुआ था

इधर - उधर।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने फल भेंट किए। मैं करता हूँ।

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

फल अर्पण का फलदायी (1) परिणाम है।

मेरी दिव्य दृष्टि पूरी तरह से शुद्ध हो चुकी थी;

मैं एकाग्रता में निपुण हो गया हूँ।

(समाधि)। मैंने पूर्णता प्राप्त कर ली है।

उच्च ज्ञान (अभिञ्ञा) में; इस प्रकार है

फल (1) भेंट का फलदायी (1) परिणाम।

मेरी दुष्टता जलकर भस्म हो गई है;...

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया गया है।

इस प्रकार निमित्त गुणों को मार्गदर्शक (अंकुसा) बनाकर उन्होंने शुद्ध अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अपने मन को वश में करने को इन गुणों से जोड़कर उन्होंने "उदकं हि नयन्ति नेत्तिका" से शुरू होने वाला श्लोक बोला, जिससे उनका अरहंतत्व प्रकट हुआ।

(1) शब्दों का खेल व्यंग्य प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है

पाली शब्द "फला" में उल्लिखित

दोनों छंदों में दो-दो बार।

मेरा अनुवाद ही इसकी पुष्टि कर देगा।

19. यहाँ उदकं हि का अर्थ इस प्रकार है:— व्याकरणिक शब्द हि एक अविभक्ति कण (निपात) है। नयन्ति का अर्थ है:— पृथ्वी पर यह या वह ऊँचा स्तर खोदकर, निचले स्तर को भरकर, या जलमार्ग (माटिका) बनाकर, या वृक्ष से बना (लकड़ी का) कुंड रखकर, वे जल को अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान पर ले जाते हैं। इसी प्रकार वे जलमार्ग ले जाते हैं; इस प्रकार, नेत्तिका (जलमार्ग निर्माता)। तेजा नं का अर्थ है तीर (कण्डं)। यही कहा गया है:— जलमार्ग निर्माता नयन्ति (जल के प्रवाह को) अपनी इच्छा (रुचि) के अनुसार जहाँ भी चाहें, ले जाते हैं; तीर निर्माता भी (उसुकारापि) तीर को गर्म करके (नमयंति) उसे सीधा करते हैं। लकड़ी का काम करते समय, जैसे कि गाड़ी के पहिये का किनारा आदि बनाने के लिए लकड़ी को मोड़कर, tacchakā (लकड़ी का काम करने वाले), dāruṃ namayanti अपनी इच्छा (ruci) के अनुसार सीधी या घुमावदार (vaṇka) बनाते हैं, जो चेतना (ārammaṇa) के संचालन का मूल उद्देश्य है। subbatā दृढ़ निश्चयी बुद्धिमान लोग (dhīrā) जो नैतिक उपदेश आदि गुणों से युक्त उत्कृष्ट अभ्यास (vata) करते हैं, और सही मार्ग (magga) के पहले चरण (sotāpatti) के रूप में गंतव्य को प्रेरित करते हैं, attānaṃ damenti अरहंत पद प्राप्त करने पर निश्चित रूप से वश में हो जाते हैं।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कुला का

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(20):अजिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (20) ------>>>> अगला

अध्याय I.

एकल श्लोक

20. अजिता

जब हमारे भगवान (बुद्ध) जीवित थे, तब उनका पुनर्जन्म सावत्थी में हुआ, वे कोसल के राजा के यहाँ मूल्य निर्धारण करने वाले ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र थे । [1] वे गोदावरी नदी के किनारे कपिट्ठ उद्यान में रहने वाले विद्वान ब्राह्मण (पुजारी) बावरी के अनुयायी बनकर तपस्वी बन गए। बावरी [2] ने उन्हें तिस्सा और मेत्तेय के साथ भगवान (बुद्ध) के पास भेजा। अजित भगवान (बुद्ध) द्वारा अपने प्रश्नों के उत्तरों से इतने संतुष्ट हुए कि उन्होंने भिक्षु दीक्षा ले ली। मानसिक अभ्यास का एक रूप चुनकर उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इस पर उन्होंने इस श्लोक में अपना विजय गीत [3] गाया:

[20] मरने में भयो नत्थि निकंती नत्थि जीविते॥
सन्देहान् निक्खिपिस्सामि संपाजानो पतिस्सातो' ति.॥ ॥

[20] मृत्यु से बिल्कुल भी भयभीत नहीं, न ही जीने में प्रसन्न,
मैं शीघ्र ही इस सांसारिक शरीर को त्याग दूँगा, [4] सचेत मन से, नियंत्रित चेतना से।

[1] जातक ग्रंथों में यह प्रतीत होता है कि राजा द्वारा या राजा के लिए माल की खरीद आधिकारिक रूप से निर्धारित मूल्य पर की जाती थी। यह मूल्य न्यायालय के मूल्यांकक द्वारा तय किया जाता था, जिस पर कोई अपील नहीं की जा सकती थी। मूल्यांकक दोहरी दुविधा में रहता था: यदि वह प्रस्तुत माल का मूल्य बहुत अधिक लगाता तो राजा नाराज हो जाता, और यदि वह रिश्वत लेने से इनकार करता और माल की कीमत कम कर देता तो व्यापारी भाग जाते। मेरी पुस्तक 'उत्तरी भारत की प्रारंभिक आर्थिक स्थितियाँ', जेआरएएस, अक्टूबर, 1901 देखें।

[2] यह प्रकरण सुत्त-निपाता, श्लोक 976-1089 (एसबीई, x. 184 ff.) का हिस्सा है ।

[3] उसकी 'शेर की दहाड़' (सीहनादा)।

[4] तुलना करें. साम्युत्त, iii. 25.

1.2-10[20] श्लोक पर टिप्पणी

अजुता थेरा

'मरणे मे भयं नत्थि' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अजुत का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि 91 युग (कप्पा) पहले उन्होंने भगवान विपस्सी के दर्शन किए, पुण्य भाव से प्रेरित हुए और उन्हें बेल (कपित्थ) भेंट की। इसके बाद भी उन्होंने कई पुण्य कर्म किए, देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जो हमारे गुरु के इस युग (कप्पा) में जन्म लेने से पहले ही सावत्थी में राजा महाकोसल की सेवा में प्रमुख पद पर आसीन थे। उनका नाम अजिका था। उस समय भी, सावत्थी के एक नागरिक, बावरी नामक एक ब्राह्मण, जो एक महान व्यक्ति के तीन गुणों से संपन्न था, तीन वेदों का पारगू (चिकित्सक), सावत्थी से बाहर चला गया, संसार का त्याग कर एक संन्यासी बन गया और गोदावरी नदी के किनारे स्थित बेल के मठ (कपित्थराम) में निवास करने लगा। तब अजित ने उनकी उपस्थिति में संसार का त्याग कर दिया और एक शुभचिंतक (अत्थकामा) देवता द्वारा प्रेरित (कोदिता) होकर, बावरी द्वारा उन्हें गुरु के समक्ष भेजा गया। उन्होंने तिस्सामेत्तेय आदि के साथ मन ही मन भगवान के पास जाकर प्रश्न पूछे और जब उनके उत्तर मिल गए, तो वे धर्मपरायण हो गए, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) किया, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतशिप प्राप्त की। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

मैंने जंगली सेब का फल अर्पित किया

स्वयंजागृत बुद्ध, ग्रहणकर्ता

पवित्र चढ़ावों का, स्वर्णिम वस्तुओं का-

रथ यात्रा पर प्रवेश करते हुए, चेहरे पर भाव-भंगिमा।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है

फिर मैंने फल पेश किया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति (दुग्गती) को याद रखें।

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश.(1)

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत "मरणे मे भयं नत्थि" से हुई, जिसका अर्थ है सिंह की दहाड़।

(1) फला में शब्दों का खेल है।

यह शब्द-खेल इसके दो अलग-अलग रूपों में देखा जा सकता है।

अर्थ: (1) फलदायी परिणाम

और (2) वृक्ष का फल।

20. वहाँ, 'मरणे' का अर्थ है: मृत्यु का चिन्ह (निमित्त), मृत्यु का कारण (हेतु)। 'मे' का अर्थ है मुझे (मयः), कोई खतरा नहीं है क्योंकि अस्तित्व का मूल कट चुका है और जन्म की अवस्था सर्वत्र समाप्त हो चुकी है। वास्तव में, जिनके अस्तित्व का मूल कटा नहीं है, उन्हें मृत्यु का खतरा होगा, वे स्वयं से ऐसा कहेंगे: "मेरा भविष्य कैसा है जो (उपत्ती) उभर रहा है? निकांति का अर्थ है (अपेक्खा) लालसा (तण्हा); वह (लालसा, तण्हा) मेरे जीवन में नहीं है, क्योंकि मेरे कर्मों का समूह (संखार) चारों ओर से अच्छी तरह से कुचला (मद्दिता) गया है; क्योंकि मैंने आसक्ति (उपादान) के समूह (खंड) की अच्छी देखभाल की है, उनकी ऐसी अवस्था के कारण जो दुखदायी (दुक्खा), सारहीन (असरका) आदि है। ऐसा होने पर भी, मैं निक्खिपिसामि (फेंक दूंगा), अपने दुख (दुक्खाभर) के बोझ को, जिसे शरीर संदेह (मेरा अपना शरीर), शारीरिक अवशेष माना जाता है, फेंक दूंगा; फेंकते समय भी, मैं उसे फेंक दूंगा। ज्ञान के भंडार (पञ्ञावपुल्ला) की प्राप्ति के लिए संपजनो (सचेत) होकर उन्होंने कहा: "इस शरीर द्वारा जो कुछ भी पूरा होना था, वह पूरा हो चुका है; अब इस शरीर को निश्चित रूप से त्याग देना चाहिए।" और अनेक प्रकार की चेतना (सति-पुल्ला) की प्राप्ति के लिए पटिसातो (सचेत) होकर उन्होंने यह श्लोक पढ़कर ध्यान में प्रवेश किया और उसके तुरंत बाद परिनिर्वाण हो गए।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा अजिता का

तैयार है।

******* oOo *******

द्वितीय अध्याय पर टीका

तैयार है।

********* oOo **********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(21):निग्रोधा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (21) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग III
21. निग्रोधा
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ। जिस दिन जेतवन प्रस्तुत किया गया, उन्होंने बुद्ध की महिमा देखी और तृप्त होकर भिक्षु संघ में प्रवेश किया। अंतर्दृष्टि जागृत होने पर वे शीघ्र ही छह प्रकार के अलौकिक चिंतन में निपुण हो गए। फल प्राप्ति के आनंद में लीन होकर, पुनर्जन्म से मुक्ति दिलाने वाले सिद्धांत के लाभों पर विचार करते हुए, उन्होंने आज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की अभिव्यक्ति के रूप में यह श्लोक कहा:

[21] नहं भयस्सा भयामि सत्थ नो अमातस्सा कोविदो॥
यत्थ भयं नावतिथति तेन मग्गेन वजंति भिक्खवो' ति.॥ ॥

[21] मुझे भयानक चीजों का कोई भय नहीं है, क्योंकि हे
हमारे प्रभु (बुद्ध) को अमृतमय ज्ञान भली-भांति ज्ञात है। [1] जिस मार्ग पर भय का कोई स्थान नहीं है,
उस मार्ग पर भिक्षु अपना मार्ग स्वयं ही तय करते हैं।

[1] शाब्दिक रूप से, 'अमृत में कुशल, विद्वान', अमाता, निर्वाण का सबसे प्रचलित पर्यायवाची। यह मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग (टीका) है।

1.3 तीसरा अध्याय

1.3-1[21] श्लोक पर टिप्पणी

निग्रोधा थेरा
नाहं भयस्स भयामि से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा निग्रोध का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि अठारह सौ युग पहले इनका पुनर्जन्म एक अत्यंत समृद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वयस्क होने पर उन्होंने सांसारिक सुखों में हानि और त्याग में लाभ देखा, गृहस्थी त्याग दी, वन क्षेत्र में प्रवेश किया, एक साल के वन में पत्तों की कुटिया बनाई, संसार का त्याग किया, संन्यासी बन गए और वन की जड़ों और फलों से अपना जीवन यापन करने लगे। उस अवसर पर स्वयंजागृत बुद्ध पियादस्सी संसार में अवतरित हुए और धर्म की अमर वर्षा से संसार और दिव्य जगत की भ्रष्टता (किलेसा संताप) को शांत कर रहे थे। एक दिन, उस तपस्वी पर दया करते हुए, बुद्ध थाट साल वन में प्रवेश कर निरोध समाधि में लीन हो गए। वन की जड़ें और फल लाने के उद्देश्य से जाते समय, तपस्वी की मुलाकात भगवान बुद्ध से हुई, वे श्रद्धा से भर गए, खिले हुए साल के पेड़ की टहनियाँ और शाखाएँ एकत्र कीं, साल का मंडप बनाया और उसे साल के फूलों से सजाया, और हर तरह से भगवान बुद्ध को प्रणाम किया। वे भोजन के लिए भी नहीं गए, बल्कि परमानंद और मानसिक सुख से प्रेरित होकर उनके सामने झुक गए। गुरुजी अपनी निरोध समाधि से उठे और उस पर दया करते हुए उन्होंने सोचा, "भिक्षुओं का समूह आए।" उन्होंने मन ही मन कहा, "वह भिक्षुओं के समूह के प्रति भी प्रसन्न हो जाए।" तभी भिक्षुओं का समूह वहाँ आ गया। भिक्षुओं के समूह को देखकर वह भी श्रद्धा से भर गया, उसने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। अपनी प्रसन्नता (सीता) प्रकट करते हुए, उन्होंने उसे धर्म का उपदेश दिया ताकि उसकी भावी समृद्धि (संपत्ति) स्पष्ट हो सके और भिक्षुओं के समूह के साथ प्रस्थान किया। उस

पुण्य कर्म के कारण, वह जन्म-जन्म के चक्रों में केवल देवताओं और मनुष्यों के बीच ही विचरण करता रहा और जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले अनेक पुण्य कर्मों का संचय करके, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका जन्म सावत्थी में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका नाम था निग्रोधा। जेतवन मठ में प्रवेश ग्रहण करने के दिन, वे बुद्ध की शक्ति पर विजय प्राप्त कर (संजातपसदो), भिक्षु बन गए, विपश्यना विकसित करने लगे और छह प्रकार के उच्च ज्ञान के स्वामी बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

साल के पेड़ों के झुरमुट में प्रवेश करने के बाद

मेरे लिए एक आश्रम अच्छी तरह से बनाया गया था।

फिर मैं सैल के साथ अच्छी तरह से सुरक्षित होकर रहने लगा।

जंगल में फूल।

हे भगवान पियादस्सी, स्वयं-

सबसे प्रमुख व्यक्ति बनाया गया, स्वयं-

जागृत बुद्ध, एकांत के इच्छुक,

साल के पेड़ों के झुरमुट के पास पहुंचा।

अपने आश्रम से बाहर आने के बाद,

मैं जंगल में गया; फिर मैं इधर-उधर भटकने लगा।

जड़ों की तलाश में जंगल में घूमना

और फल।

वहाँ मैंने आत्मजागृत बुद्ध के दर्शन किए।

पियादास्सी, जो अपनी महान प्रसिद्धि के साथ चमक रहे थे

घने जंगल के कुएं में वैभव

ध्यान में लीन बैठे हुए (समापन्न)।

चार (सहायक) छड़ें लगाने के बाद

बुद्ध के अलावा, मैंने एक अच्छी तरह से निर्मित मूर्ति बनाई।

पंडाल बनाया और उसकी छत को साल के फूलों से सजाया।

मैंने सात दिनों तक साल की छत वाले को थामे रखा।

पंडाल; वहाँ मेरा मन प्रसन्न हो गया,

मैंने परम उत्कृष्ट को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

बुद्ध।

उस समय भगवान उठ खड़े हुए।

उनकी एकाग्रता (समाधि) से।

वह एक खंभे की ओर देखते हुए आगे बढ़ रहा था।

लंबाई, सबसे उत्कृष्ट व्यक्ति बैठा था

खुद को नीचे गिरा दिया।

गुरु के शिष्य वरुण का नाम था।

पियादस्सी, अपने एक लाख सैनिकों के साथ

(उसकी इंद्रियों पर) शक्तियां उसके करीब आ रही थीं

विशिष्ट नेता (विनायक)।

महानुभाव पियादस्सी, सबसे बड़े

दुनिया का, पुरुषों में बैल जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति

वह सभा के बीच में बैठ गया।

भिक्षुओं, विजेता ने मुस्कुराते हुए कहा

प्रकट।

अनुरुद्ध, सेवक

मास्टर पियादस्सी ने अपना वस्त्र बनाया

एक कंधे पर आराम करना (एकंसं) पूछा

महान ऋषि।

हे भगवान! वास्तव में, यह क्या है?

गुरु के चेहरे पर मुस्कान लाने का कारण?

जब कारण मौजूद होता है, तब स्वामी निर्माण करता है।

उनकी मुस्कान स्पष्ट थी।

जिस युवक ने मेरे लिए साल को थामे रखा था-

सात दिनों के लिए कवर; याद रखना

उसके इस कृत्य को देखकर मेरे चेहरे पर मुस्कान आ गई।

मुझे अवसरों की कोई कमी नहीं दिखती।

(ओकासा) जिसमें पुण्य परिपक्व होता है।

या तो दिव्य जगत में या

वहाँ पुरुषों की संख्या कम नहीं होती बल्कि

अवसर।

जब गुणवान व्यक्ति

कर्म ही दिव्य जगत में जीवन जीना है।

जितने लोगों के लिए सैल-कवर उपलब्ध होगा

उनकी सभा में जितने सदस्य शामिल हैं, उतनी ही संख्या में सदस्य होंगे।

गुणपरक गुणों से संपन्न

वहाँ कर्म हमेशा ही विस्मित रहेंगे

दिव्य नृत्य, गायन और

संगीत।

वहाँ मीठी खुशबू वाला इत्र होगा।

उसके जैसे दल के लिए; वहाँ और

फिर बारिश होगी

साल के फूल का।

वहाँ से चले जाने के बाद, यह व्यक्ति

मनुष्य बन जाएगा। यहाँ

साथ ही, हर समय एक सैल-कवर भी उपलब्ध रहेगा।

उसके ऊपर रखा हुआ था।

यहाँ, पर्याप्त संसाधनों से युक्त (समाहिता), वह

नाच-गायन और प्रहार के साथ रहें

झांझों का, जो इसे घेर लेंगे

एक। यह इसका फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

जब सूरज उगेगा तब भी बारिश होगी

नीचे सैल-शावर। वहाँ हर समय शावर चलता रहता है।

मेधावी लोगों से अच्छे संबंध होंगे।

काम।

अठारह सौ युगों (कप्पा) बाद,

ओक्काका के परिवार की संतान,

गुरु, जिन्हें गौतम के नाम से जाना जाता है,

दुनिया में प्रकट होगा।

अपने धर्म में, वह एक अच्छा व्यक्ति बनेगा।

धर्म द्वारा उत्पन्न पुत्र, उत्तराधिकारी;

सभी क्षेत्रों के सर्वांगीण ज्ञान के साथ-

kers (āsava), वह मुक्त होकर

कैंकर, निब्बाना में प्रवेश करें।

जब भी उसे अहसास होगा (अभिसामेति)

धम्म, वहाँ साल-आश्रय होगा

(उसके लिए), जो भी घटित होगा

वह अंतिम संस्कार की चिता जहाँ और जब उसका

शव को जलाया जाएगा।

सफल परिणाम की घोषणा करते हुए

(मेरे अच्छे कर्म के बारे में), महान ऋषि

पियादस्सी ने अपने शिष्यों को धर्म का उपदेश दिया।

सभा को संतुष्ट करने वाले श्रोता

धम्म की वर्षा।

मैंने दिव्य संप्रभुता का प्रयोग किया

तीस वर्षों तक दिव्य प्राणियों के बीच

युग (कप्पा)। साठ और सात के लिए

एक समय था जब मैं विश्वराज था।

मैं दिव्य लोक से यहाँ आया हूँ और

मुझे अपार आनंद प्राप्त हुआ। यहाँ भी,

वहाँ सैल-आश्रय है। यह है

पंडाल का सफल परिणाम।

यह मेरा अंतिम चरण है; पता चला कि

यही मेरा अंतिम अस्तित्व होगा। यहाँ भी।

वहाँ साल का आश्रय है; ऐसा ही होगा।

हमेशा के लिए।

महान ऋषि गौतम को संतुष्ट करने के बाद,

मैंने शाक्यों का बैल प्राप्त कर लिया है।

अविचलित स्थान ने त्याग दिया-

खोज और हार।

अठारह युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई

बुद्ध। मुझे कोई बुरा पूर्व याद नहीं है।

अस्तित्व (दुगगेट)। यह फलदायी है

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट का परिणाम।

मेरी सारी विक्षिप्तता जलकर राख हो गई थी, समस्त अस्तित्व।

जड़ से उखड़ गया था। हाथी के समान

जिसने अपनी जंजीरें तोड़ दी थीं,

कैंसर से मुक्त जीवन जियो। मेरा जाना...

परम श्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति थी,

सचमुच, अच्छा चल रहा है। त्रिगुणात्मक ज्ञान

तदनुसार (विज्जा) प्राप्त हो गई थी;

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

चार प्रकार का विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटीसंभिदा),

ये आठ प्रकार की मुक्ति (विमोक्खा)

और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा)

कल्पना की जा चुकी थी। बुद्ध का निर्देश

इसे अंजाम दिया जा चुका था।

हालाँकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान में से एक प्राप्त करने के बाद, फल प्राप्ति के सुख में अपना समय व्यतीत करते हुए, उन्होंने "नाहं भयस्स भयामि" से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा, जो उनके अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के उद्देश्य से था, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि शासन (सासन) निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।

21. वहाँ लोग भयभीत हैं, क्योंकि यह भयं (खतरा) है, अर्थात् जन्म, वृद्धावस्था आदि जैसे खतरे। भयस का अर्थ इस प्रकार है:— यह अपादान कारक के अर्थ में एक संबंधवाचक शब्द है; खतरे के दृष्टिकोण से मैं जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि जैसे कारणों से भयभीत नहीं हूँ, जो भय के संकेत हैं; यही इसका अर्थ है। उन्होंने वहाँ कारण के बारे में इस प्रकार कहा: "सत्था नो अमतस्स कोविदो।" हमारे स्वामी, अमरता में निपुण (अमत), जो नेतृत्व योग्य प्राणियों (वेनेय्या) को अमरता का वरदान देने में निपुण (चेक) हैं। यत्थ भयं नावतित्तति, जिस स्थान पर, निब्बान, ऐसा कोई खतरा नहीं है (तित्तति); उसे कोई अवसर (ओकास) प्राप्त नहीं होता। तेना का अर्थ है उस निर्वाण के कारण। वजंति का अर्थ है वे केवल भयरहित (अभय) क्षेत्र में जाते हैं। वास्तव में, निर्वाण को भयरहित (अभय) स्थान के रूप में जाना जाता है। उन्होंने इस प्रकार कहा: "इस प्रश्न के उत्तर में कि वे किस मार्ग से जाते हैं, मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे अष्टांगिक मार्ग (अरीयमग्ग) के माध्यम से संसार में आने वाले खतरे के प्रति अचूक दृष्टि (इक्खना) रखते हैं। यही इसका अर्थ है। वैकल्पिक रूप से, यथा का अर्थ यह है कि अष्टांगिक मार्ग (अरीयमग्ग) की सिद्धि के कारण, स्वयं को दोष देने (अत्तनुवाद) आदि से शुरू होने वाले पच्चीस प्रकार के खतरे का संकेत स्थिर नहीं रहता, वह जड़ नहीं जमाता; उस मार्ग से भिक्षु, गुरु के मार्गदर्शन (शासन) में खतरे से मुक्त स्थान पर जाते हैं; मैं भी उसी मार्ग से गया हूँ; इसलिए मुझे खतरे का भय नहीं है।" इस प्रकार, थेरा ने अपने अरहंतत्व को प्रकट किया। (अन्ना).

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा निग्रोधा का

तैयार है।

******
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(22):चित्तका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (22) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
22. चित्तका
उनका जन्म बुद्ध युग में राजगृह में एक विपुल ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ था। जब भगवान (बुद्ध) बाँस के वन में निवास कर रहे थे, तब चित्तक [1] उन्हें सुनने गए और उन्हें श्रद्धा प्राप्त हुई और उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। नैतिक आचरण को अपना अभ्यास चुनकर, वे एक वन क्षेत्र में गए और वहाँ भक्ति अभ्यास में ध्यान लगाया। उस विकसित अंतर्दृष्टि से उन्होंने शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने गए। भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर, [27] 'क्या आपने वनवास में परिश्रम किया है, मित्र?' उन्होंने यह दिखाने के लिए अपनी बात (गाथा) कही कि उन्होंने परिश्रम किया था और अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[22] निला सुगिवा सिखिनो मोरा करासिअ अभिनदंती॥
ते सीतावतकद्दितकलिता सुत्तं झायं निबोधेन्ति' ति.॥॥

[22] नीलमणि गर्दन और सुंदर कलगी वाले मोर
करांगविया के जंगलों में पुकारते हैं; [2] ठंडी और नम हवाओं से संगीतमय होकर: [3] वे विचारक को उसकी दोपहर की नींद से जगाते हैं।

[1] उच्चारण चित्तका। बहन चित्ता भी राजगृह की थीं (बहनें, पृ. 27)।

[2] टीका, करम्भिया पढ़ते हुए, बताती है कि यह शब्द वृक्ष की एक प्रजाति का नाम है, और संभवतः लकड़ी का नाम भी है।

[3] सीतावत-कलिता शब्द में , टीका के ब्र. एम8. में इसे किलिता और एस. एम. में कद्दिता पढ़ा जाता है। दोनों में यह शब्द मोर की मधुर पुकार (मधुरवस्सिता) को दर्शाता है (मोरा-मयूर)। अभिधानप्पदीपिकु (137) के अनुसार, कलसद्दो शब्द का प्रयोग किसी भी अस्पष्ट, सुखद ध्वनि को दर्शाने के लिए किया जाता है। पक्षियों को बारिश की सूचना देने वाले बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर के-का की पुकार लगाते हुए वर्णित किया गया है। मोरा, एक अनावश्यक शब्द, शायद टीका से आया है। टीका में मेघवातेन, 'वर्षा-बादल-हवा' से अनुवादक की व्याख्या 'नम' है ।

1.3-2[22] श्लोक पर टिप्पणी

चित्तका थेरा
नीला सुगीवा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा चित्तक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय से ही उन्होंने पुनर्जन्मों के चक्र (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, आज से 91 युग पहले एक मानव माता के गर्भ में पुनर्जन्म लिया और बुद्धि प्राप्त कर ली। संयोगवश उन्होंने भगवान विपस्सी के दर्शन किए, वे श्रद्धावान हो गए, आदरपूर्वक फूल चढ़ाए, उन्हें प्रणाम किया और गुरु एवं निर्वाण के बारे में स्पष्ट हो गए, उन्होंने मन ही मन कहा: "यहाँ, अर्थात्, शांत सत्य (धम्म) है।" उस पुण्य कर्म के कारण वे वहाँ से चले गए और तावतिंसा स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया। समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक धनी

ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। वे चित्तक नाम से जाने जाते थे। जब भगवान राजगृह गए और बाँस के वन में निवास कर रहे थे, तब वे गुरु के पास गए, धर्म का प्रवचन सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) किया, वन क्षेत्र में प्रवेश किया, निरंतर अपने मानसिक विकास (भावना) में लगे रहे, ध्यान की साधना की, ध्यान पर आधारित स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

मैंने निर्मल (विरज) बुद्ध को देखा,

विश्व नेता विपस्सी, अंदर बैठे हुए

वह पर्वत कणिकारा के समान प्रकाशमान था।

पीले रंग का फूल।

मैंने तीन छोटे घंटी के आकार के फल तोड़े

(किंकणी) फूलों से मैंने अपना विशेष बनाया

विशेष रूप से अर्पित (अभिरोपयिं)।

आत्मजागृत व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया गया

बुद्ध, मैं दक्षिण की ओर (दक्खुणामुख) मुख करके गया।

उस सुचारु कार्य के कारण

इच्छाशक्ति (चेतना) और आत्मनिर्णय

(पणिधि), मैं तावतिंसा पहुंचा, उसके बाद मैं

उसने मेरे मानव शरीर को त्याग दिया था।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, जिसे मैंने विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक बनाया है

मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व; यही फल प्राप्ति का परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए राजगृह गए। वहाँ भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर, "हे मित्र! आप कैसे हैं? क्या आपने वन में लगन से निवास किया?" उन्होंने "नीला सुगीवा" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया और अपने स्वयं के लगन से वनवास के बारे में बताया।

22. यहाँ नीलासुगीवा वास्तव में नीलासुगीवा है; श्लोक की रचना में सुगमता के लिए स्वर को लंबा किया गया है; सुंदर गर्दन वाली (राजी); यही अर्थ है। क्योंकि वे सामान्यतः नीले रंग के होते हैं, नीला (नीलम जैसा नीला)। सुंदर (शोभन) गर्दन के कारण, सुगीवा (सुंदर गर्दन वाला)। सिखिनो का अर्थ सिर पर उगी कलगी से है और अपने सिर के साथ होने के कारण यह सिखिमो (कलगी वाला) है। मोर का अर्थ मोर है। कारंभीयं का अर्थ कारंभ वृक्ष पर है; वैकल्पिक रूप से, आरंभीय उस वन का नाम है। इसलिए, कारंभीयं का अर्थ कारंभ नामक वन में है; यही अर्थ है। अभिनादंति का अर्थ इस प्रकार है:— वर्षा के समय, वर्षा की गर्जना (मेघगज्जिता) सुनकर, हंस (हंस) आदि का रोना (नादंति) मानो वे ऋतु की सफलता (संपदा) की ध्वनि (सर) से अभिभूत होकर 'के का' जैसी ध्वनि निकालते हैं। ते का अर्थ है वे मोर। सीतावतकीलिता का अर्थ इस प्रकार है:— ठंडी हवा के साथ आनंद उत्पन्न करने वाली मधुर वर्षा। सुत्तं का अर्थ है भोजन के समय उनींदापन दूर करने के लिए सोना (भट्टसम्मद); या फिर, शारीरिक थकान (कायकिलमथ) को ठीक से दूर करने के लिए अनुमत अवधि (अनुञ्ञातवेला) के दौरान सोना (पटिपसम्भना)। झायं उचित रूप से मानसिक विकास (भावना) में लगे रहते हैं, शांति (समाथा), स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) और ज्ञान में प्रवेश करने की आदत विकसित करते हैं। निबोधन्ति का अर्थ है जागृत होना। "ये (पक्षी) भी, बिना सोए, जागृत अवस्था में ही अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं; तो मैं क्यों?" ऐसा कहकर, सावधानी बरतकर स्वयं को नींद से जगाना; यही इसका अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा चित्तका का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(23):गोसाला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (23) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
23. गोसाला
उनका जन्म बुद्ध युग में एक धनी मगध परिवार में हुआ था। वे सोन-कुटिकाण से परिचित हुए; [1] और जब उन्होंने सुना कि सोन-कुटिकाण ने संसार त्याग दिया है (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया है), तो वे व्याकुल हो गए और सोचने लगे: 'यदि इतना धनवान व्यक्ति संसार त्याग सकता है (भिक्षुत्व ग्रहण कर सकता है), तो मैं क्यों न करूँ?' और भिक्षु संघ में प्रवेश करके, उन्होंने नैतिक आचरण का अध्ययन किया, [2] और एक उपयुक्त स्थान की तलाश में, अपने पैतृक गाँव से कुछ दूर पहाड़ी पर रहने लगे। एक दिन उनकी माता, जो प्रतिदिन दान करती थीं, ने उन्हें उनके दैनिक विश्राम के समय शहद और चीनी से बना चावल का दलिया दिया। उन्होंने इसे लिया और उस पहाड़ी की छाया में बांस के झुरमुट के नीचे बैठकर खाया। कटोरा और हाथ धोकर, और उचित उपचार से तरोताज़ा होकर, उन्होंने बिना किसी परिश्रम के अंतर्दृष्टि का प्रदर्शन किया और सभी चीजों के उतार-चढ़ाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए , मार्गों की सर्वोच्च ध्यान अवस्था को प्राप्त किया, और अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही सिद्धांत के रूप और अर्थ पर महारत हासिल की। पर्वतीय क्षेत्र में जाकर आनंदमय जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते हुए, उन्होंने इस श्लोक में अपने अनुभव का वर्णन किया:

[23] अहाṃ [5] खो वेगुंबस्मिṃ भुत्वान् मधुपायसाऽ॥
पदक्खिनं सम्मसंतो खंडाणं उदयबयं॥
सानुं पतिगामिस्सामि विवेकमनुब्रुहयन्ति॥ ॥

[23] देखो! मैं, जिसने बाँस के घने जंगल में
चावल और शहद खाया, जो अब समझता हूँ,
उसकी उपासना करते हुए, [3]
मेरे जीवन के इन सभी कारकों के उतार-चढ़ाव को , मैं वापस अपनी पहाड़ी पर जाऊँगा, वहाँ हृदय के वैराग्य, एकाकी और पृथक विकास को पोषित करने के लिए । [4]

[1] भजन संहिता CCVIII देखें। सोन अवंती से पूर्व की ओर बहुत दूर था।

[2] करियानुकुलाṃ कम्मनथनाṃ।

[3] पदक्खिण सम्मतन्तो। टीका पूर्व शब्द की व्याख्या 'भगवान (बुद्ध) के अनुशासन (शिक्षा) को पूर्णतः स्वीकार करना' के रूप में करती है। क्रॉनिकल उनके आध्यात्मिक विकास पर भोजन के टॉनिक प्रभाव पर जोर देता है, जो एक विशिष्ट रूप से तपस्वी विरोधी टिप्पणी है।

[4] विवेकं अनुबृहयां ति. सी एफ बाद वाले शब्द के अंतर्गत बालक। टीका में पतिपास8अधि-विवेकं फलसमापत्तिं काया-विवेकं च परिब्रुहनतो। सी एफ ver. 1246, एन.

1.3-3[23] श्लोक पर टिप्पणी

गोसाला थेरा
अहं खो वेलुगुम्बस्मिं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गोसाला का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए, बार-बार जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और आज से 91 युग (कप्पा) पहले एक पहाड़ी पर एक वृक्ष की शाखा पर लटके हुए एक मौन बुद्ध के वस्त्र (पंसुकूल) को देखकर वे श्रद्धापूर्वक मन ही मन कहने लगे, “यह वास्तव में एक अरहंत का प्रतीक (धज) है” और पुष्प अर्पित करके उसका आदर किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका जन्म तावतिंस स्वर्ग में हुआ। उस समय से वे केवल देवताओं और मनुष्यों के बीच ही अपने बार-बार जन्म लेने के चक्र में विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का पुनर्जन्म हुआ, तो उनका जन्म मगध राज्य में एक साधारण परिवार में हुआ और वे गोसाला नाम से जाने गए। उनका सोन से बहुत निकट परिचय हुआ और जब सोन ने उनके भिक्षु बनने के बारे में सुना, तो उन्हें बहुत खेद हुआ और उन्होंने मन ही मन कहा, “वह तो धनवान है और फिर भी भिक्षु बन गया, तो मैं क्यों?” उन्होंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में भिक्षु का दीक्षा संस्कार ग्रहण किया, अपने आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) किया, एक उपयुक्त निवास स्थान (सप्पाय) की खोज की और अपने पैतृक गाँव से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पहाड़ी वन में निवास किया। उनकी माता उन्हें प्रतिदिन भिक्षा भोजन कराती थीं। फिर एक दिन जब वह भिक्षा मांगने के लिए गांव में दाखिल हुआ, तो उसकी मां ने उसे शहद और चीनी से विशेष रूप से तैयार किया हुआ दूध-चावल दिया। उसने उसे ग्रहण किया, उस पहाड़ी की छाया में एक विशेष बांस की झाड़ी के नीचे बैठ गया, उसका भरपूर आनंद लिया, अपने हाथ और भिक्षापात्र को धोया, और उसे विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) प्राप्त होने लगी। भिक्षा भोजन (भोजन) की अनुकूल व्यवस्था प्राप्त करने के कारण उनके शरीर और मन की तत्परता (कल्ला) के कारण, वे शांत (समाहितो) हो गए और उदय और अस्त (उदयब्बय) आदि जैसे दिव्य ज्ञान को चतुराई और साहसपूर्वक धारण करते हुए, उन्होंने थोड़ी सी भी असुविधा (कसिर) के साथ स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में स्वयं को संलग्न किया, और क्रमिक (पटिपाटि) धार्मिक मार्ग (मग्ग) के विकास (भावना) की सर्वोच्च ऊँचाई (मत्तकम्) तक पहुँचे तथा (चार प्रकार के) विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटिसंभिदा) के साथ अरहंत पद की कल्पना (सच्चाकासि) की। अतः, अपदान में कहा गया है:—

“उदंगण नाम की एक पहाड़ी थी

हिमावंता से ज्यादा दूर नहीं; वहाँ मैं

एक फटा हुआ वस्त्र देखा (पंसुकूल)

पेड़ की चोटी पर लटका हुआ।

तीन किंकणी तोड़कर

फिर फूल खिले, मैं प्रसन्न हो गया और

फटेहाल (पंसुकूल) को सम्मान दिया

आनंदित मन से वस्त्र धारण करें।

उस कार्य के लिए बधाई हो!

मेरी इच्छाशक्ति और आत्मनिर्णय, मैं

तावतिंस (स्वर्ग) पहुँच गया

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया।

इक्यावन युग (कप्पा) पहले, से

अब, मैंने तब वह काम कर दिया था;

मुझे दुष्ट अस्तित्व याद नहीं है

(दुग्गती) मेरे द्वारा सम्मान किए जाने के बाद

अरहंत का प्रतीक चिन्ह (धजा)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालाँकि अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे वर्तमान (दिट्ठधम्म) सुख का आनंद लेने के उद्देश्य से वन पर्वत पर जाने के लिए इच्छुक थे और उन्होंने अपनी उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) के बारे में सूचित करने के लिए "अहं खो वेलुगुम्बस्मिं" से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा।

23. वहाँ, veḷugumbasmiṃ का अर्थ है बांस की झाड़ी के पास; उस जंगल की छाया में। Bhutvāna madhupāyāsaṃ, शहद से छिड़के हुए दूध-चावल का भोग लगाकर। Padakkhinaṃ का अर्थ है अच्छी समझ के साथ; गुरु की शिक्षा को विधिवत ग्रहण करके; यही अर्थ है। Sammasanto khandhānaṃ udayabbayaṃ का अर्थ है आसक्ति (upādāna) के पाँचों स्कंधों (khandha) के उदय और अस्त होने को स्पष्ट रूप से देखना; यदि अब भी कर्तव्य का पालन किया गया हो (katakicco), तो फल (phala) की उचित प्राप्ति (samāpatti) के लिए स्पष्ट अंतर्दृष्टि (vipassanā) स्थापित करना; यही अर्थ है। Sānuṃ paṭigamissāmi मैं उस वन पर्वत की दिशा में जाऊँगा (uddissa) जिसका उल्लेख मैंने पहले किया है। विवेदमनुब्रुहयं का अर्थ है – शारीरिक एकांतवास के उचित फल प्राप्ति (फलसमापत्ति) के लिए सर्वांगीण पोषण; या फिर, मैं इसके सर्वांगीण संवर्धन के कारण जाऊँगा (तस्सहेतु)। इस प्रकार कहने के बाद, थेरा वहीं चले गए; यही वह श्लोक है जो इस थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा गोसाला का

तैयार है।

*********oOo********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(24):सुगंधा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (24) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
24. सुगंधा
उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में, धनी माता-पिता के परिवार में, सावत्थी में हुआ। अतीत में उनकी यही इच्छा थी कि जब उन्होंने कश्यप बुद्ध को चंदन का सुगंधित कक्ष भेंट किया, ताकि वे एक ही जन्म में सुगंधित शरीर के साथ पुनर्जन्म लें, तो उन्होंने अपने जन्म के दिन और उससे पहले उनकी माता ने पूरे घर को सुगंध से भर दिया। तब उनके माता-पिता ने कहा, 'हमारा पुत्र अपने नाम के साथ आया है!' और उन्होंने उनका नाम सुगंधा रखा। बड़े होकर, थेरा महा-सेला के उपदेश से प्रेरित होकर उन्होंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करने के लिए) संन्यास ले लिया। [1] और सात [29] दिनों के भीतर ही उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:

[24] अनुवस्सिको पब्बाजिटो पासा धम्मसुधम्मतm॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[24] मेरे संन्यासी बनने के बाद से वर्षा अभी मुश्किल से ही समाप्त हुई है, फिर
भी देखो धम्म मार्ग का उचित क्रम! मैंने अब
त्रिविध ज्ञान प्राप्त कर लिया है और बुद्ध द्वारा बताए गए सभी कार्य किए हैं। [3]

[1] यह थेरा ('महान चट्टान') संभवत: सुत्त-निपात में सेला-सुत्त के ब्राह्मण (पुजारी) शिक्षक हैं, जो बुद्ध द्वारा परिवर्तित होकर अरहंत (प्रबुद्ध) बन गए और स्वाभाविक रूप से अपनी वाक्पटुता का अभ्यास जारी रखते थे। मिलिंद, i. 253; सुम. वी., i. 276 देखें।

[2] तेविज्जो, शाब्दिक अर्थ, 'तीन बार बुद्धिमान'। यह ब्राह्मणवादी वाक्यांश, जो तीन वेदों का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को संदर्भित करता है, बुद्ध द्वारा अपनाया गया था और इसे तीन प्रकार के प्रज्ञा, विज्जा या आभिज्ञा (अंतर्ज्ञान, अंतर्दृष्टि) रखने वाले व्यक्ति पर लागू किया गया था, जिसे पूर्व जन्मों की स्मृति, दिव्य दृष्टि और आसवों या मादक पदार्थों (विकारों/इच्छाओं) - कामुकता, जीवन की वासना, मत, अज्ञान का नाश कहा जाता है (अंग. निक., i. 163-165)। तुलना करें पृष्ठ 14, नोट 3।

उत्पत्ति 8:22: "जब तक पृथ्वी रहेगी, तब तक बीज बोने का समय और कटाई का समय, सर्दी और गर्मी, ग्रीष्म और शीत ऋतु, दिन और रात निरंतर चलते रहेंगे।" - केजेवी

[3] टीका के अनुसार, अनुवस्सिका-पब्बजितो वाक्यांश की एक से अधिक व्याख्याएँ संभव हैं। यदि इसका अर्थ 'एक वर्ष पहले संसार का त्याग किया' (न्यूमैन देखें) है, तो यह विचित्र है कि धम्मपाल इसे संवच्छरा शब्द से व्याख्यायित नहीं करते । क्या धम्म के मार्ग (शाब्दिक रूप से, 'नियमितता') पर दिए गए बल को देखते हुए, ब्रह्मांड के पंचमार्ग (नियम) के दो पहलुओं - ऋतुओं और धम्म (उतु-नियम, धम्म-नियम) - के बीच समानता देखना अनुमेय नहीं है ? (बुद्ध के संवाद, ii 8, n. 3, और मेरा बौद्ध धर्म, 118 f. देखें ।) फल प्राप्ति - अर्थात्, उनके नैतिक और आध्यात्मिक विकास की - उतनी ही निश्चित और अपरिहार्य थी जितनी कि 'बीज बोने का समय और कटाई का समय, ... ग्रीष्म और शीत ऋतु का अंत नहीं होगा' (उत्पत्ति 82:22)। हालांकि, यह वाक्यांश बिना किसी विशेष उद्देश्य के बार-बार दोहराया जाता है।

1.3.4[24] श्लोक पर टिप्पणी

सुगंधा थेरा

अनुवस्सिको पब्बजितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुगंधा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बानवे युग (कप्पा) पहले, स्वयंजागृत बुद्ध तिस्सा के समय, उनका पुनर्जन्म एक मानव माता के गर्भ में हुआ और बुद्धि प्राप्त करने पर वे वन में हिरणों का शिकार करते हुए विचरण करने लगे। गुरु ने उन पर दया करते हुए अपने पदचिह्न प्रकट किए। उनके चरण-शिलाओं (पादचेतिया) को देखकर वे पूर्व बुद्धों के प्रति अपनी समर्पित सेवा के कारण उत्साह और आनंद से भर गए और मन ही मन कहने लगे: "ये पदचिह्न (पदानि) इस संसार और दिव्य जगत के सर्वोच्च व्यक्ति के हैं।" उन्होंने कोरण्डक झाड़ी के फूल एकत्र किए, श्रद्धापूर्वक अर्पण किया और अपने मन को प्रसन्न किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ और वहाँ से देहान्त होकर उन्होंने समय-समय पर पुण्य कर्म किए, अपने जन्म-जन्म चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, भगवान कस्सपा के समय में एक कुटुम्बिका (जागीरदार) बने, गुरु और भिक्षुओं के समुदाय को दान दिया, बहुमूल्य चंदन (गोसितचंदन) को कूटकर सुगंधित कक्ष (गंधकुटी) को चारों ओर से उससे लेप किया और यह मनोकामना स्थापित की: "जहाँ भी मेरा पुनर्जन्म हो, मेरा शरीर इसी प्रकार सुगंधित रहे।" अपने जन्म-जन्म चक्रों में विचरण करते हुए उन्होंने इस और उस जन्म में अन्य अनेक पुण्य कर्म किए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक धनी ब्राह्मण के घर में पुनर्जन्म लिए। जब से वह अपनी माता के गर्भ में आया और जन्म लिया, तब से ही माता के शरीर और पूरे घर में मधुर सुगंध से भरी हवा चल रही थी। जिस दिन उसका जन्म हुआ, उस दिन तो पूरे घर में असाधारण रूप से मीठी सुगंध वाली हवा बह रही थी। उसके माता-पिता ने उसका नाम सुगंधा रखा और मन ही मन कहा, "हमारा पुत्र अपने नाम को स्वयं ही लेकर आया है।" धीरे-धीरे वयस्क होने पर, उसकी मुलाकात थेरा महासेल से हुई, उसने उनकी उपस्थिति में धर्म का ज्ञान प्राप्त किया, भिक्षु बन गया और विपश्यना का अभ्यास करके सात दिनों के भीतर अर्हत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:

मैं पूर्व में एक वनकर्मी का पुत्र था;

मेरे माता-पिता की मृत्यु के साथ, मैं

मैं जीवों को मारकर (पसु) अपना जीवन यापन करता था;

मैंने कोई अच्छा काम नहीं किया था।

मेरे निवास स्थान (आसय) के पड़ोस में, दुनिया-

नेता तिस्सा, दृष्टि (चक्खु) के स्वामी,

मुझ पर दया करके, उसने मुझे तीन चीजें दिखाईं-

पदचिह्न (pada).

किसी के पदचिह्न (अक्कंता) को देखकर

गुरु तिस्सा के साथ मुझे आनंद हुआ

आनंदित मन; मैंने अपने मन को प्रसन्न किया

पदचिह्न (pada).

कोरंडा झाड़ी को खिलते हुए देखकर,

जमीन पर उगने वाली झाड़ी को मैंने इकट्ठा किया

मेरे अपने पात्र (सकोसाकम्) में लगे फूल

और मैंने परम पूज्य ईश्वर को अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

उत्कृष्ट पदचिह्न (pada).

उस कार्य के कारण, मैंने अच्छा किया।

मानसिक इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प से मैं वहाँ पहुँचा।

तावतिंसा ने अपना मानव शरीर त्याग दिया।

जिस भी निवास स्थान पर मैं पुनर्जन्म लेने के लिए पहुंचा

चाहे दिव्य हो या मानवीय, मेरी त्वचा करेण्डा थी।

रंग बदलने पर, मैं अत्यंत तेजस्वी हो गया।

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, मैंने तब अपना काम कर दिया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें। यही है।

सम्मान करने का फलदायी परिणाम

पदचिह्न (padapūjā)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए "अनुवस्सिको पब्बजितो" से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया।

24. वहाँ, अनुवस्सिको का अर्थ है पीछे जाना; वर्षावास के निकट जाना (वस्सं) वर्षावास के अनुसार है (अनुवस्सो); वर्षावास के अनुसार वही अनुवस्सिका है। पब्बजितो का अर्थ है भिक्षुत्व की ओर जाना; भिक्षु बनकर वह वर्षावास के निकट जाना चाहता है; वह एक वर्षावास कर चुका है (एकवस्सिको); यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, वह एक वर्ष (अनुवस्सं) के लिए वर्षाकाल में समान रूप से गया (अनुगत), बाद में गया (पच्छगत) और बाहर गया (अपगत); उसके पास वह एक वर्ष है; इस प्रकार, वह एक वर्ष का है (अनुवस्सिका)। वह भिक्षु जिसका वर्षाकाल (वस्सं) सर्वांगीण पूर्ण न होने के कारण गणना में नहीं आया; उसे इस प्रकार बताया गया; उपवास न करने के कारण। पास धम्म सुधम्मतं का अर्थ है; अपने गुरु की शिक्षाओं के अच्छे धर्म का पालन करने की अवस्था, उसका सुगठित होना, और निर्वाण की ओर अग्रसर होने की निश्चितता (निय्यानिका) की अवस्था; जहाँ आप भिक्षु बन चुके हैं और एक वर्ष का उपवास (अनुवस्सिको) व्यतीत कर चुके हैं। पूर्व निवासों का ज्ञान, दिव्य दृष्टि का ज्ञान, दोषों के नाश का ज्ञान; इस प्रकार तीस्सोविज्जा, त्रिविध ज्ञान, अनुपत्ता (आपने तदनुसार प्राप्त किया था), जिसका आपने अवलोकन किया था। फलस्वरूप, कतं बुद्धस्स शासनं का अर्थ है कि आत्म-जागृत बुद्ध के उपदेशों का तदनुसार पालन किया गया था और सलाह का अनुसरण एवं अभ्यास किया गया था; इस प्रकार, थेरा ने अपने बारे में इस प्रकार बात की मानो वह किसी अन्य व्यक्ति के बारे में बात कर रहे हों क्योंकि अपने कर्तव्य का पालन करने के कारण वे उत्साह और आनंद से भर गए थे।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सुगंधा की

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(25):नंदिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (25) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
25. नंदिया
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के घर जन्मे, उनके माता-पिता ने कहा: यह हमारे लिए आनंद लेकर पैदा हुआ है; और उन्होंने उसका नाम नंदीय (आनंद) रखा। बड़े होकर, जब अनुरुद्ध और अन्य सभी ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में संसार त्याग दिया, तो वह भी भिक्षु बन गए। अपने अध्ययन और अतीत में किए गए संकल्प के कारण, उन्होंने शीघ्र ही अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे अनुरुद्ध थेरा [1] और उनके [30] मित्रों के साथ पूर्वी बाँस के जंगल में रहने लगे। वहाँ, दुष्ट मारा (मृत्यु का देवता/राक्षस), उन्हें डराने के लिए एक भयानक रूप में प्रकट हुआ। लेकिन थेरा ने उसे इन शब्दों से भगा दिया, 'हे दुष्ट! जो तुम्हारे लोक से ऊपर उठ गए हैं, उनका तुम क्या कर सकते हो? तुम ही इसके द्वारा पराजित और नष्ट हो जाओगे।'

[25] ओभासजाताṃ फलगाṃ चित्ताṃ यस्सा अभिनहसो॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसि' ति.॥ ॥

[25]
जिसका विचार मार्ग की भव्यता से सदा नवजन्मित होता है , और जिसने कठिन परिश्रम
से फल को स्पर्श किया है - यदि तुम ऐसे भिक्षु पर आक्रमण करोगे,
हे काले हृदय वाले प्रेत, तो तुम्हें दुख में जाना होगा। [2]

[1] अनुरुद्ध और उसके दोस्तों पर, पीएस देखें। CXXXVIII. - CXXXIX., CCLVI. (सीएफ. पी.एस. CXXXVIII). एकमात्र मार्ग जहां नंदिया का स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया गया है, वह सैय्य, वी. 403 है। धम्मपद कॉम, छंद 219, 220 पर, बनारस के एक बिल्कुल अलग नंदिया (श्लोक 11, नंदिका, नंदा) को संदर्भित करता है, जो एक सामान्य अनुयायी है।

[2] श्लोक 1189 देखें।

1.3-5[25] श्लोक पर टिप्पणी

नंदिया थेरा
ओभासजातं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नंदीय का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय, जब गुरु का परिनिर्वाण हो गया था, तब उन्होंने उनके मंदिर में चंदन की लकड़ी से बनी एक बाड़ (चंदनसार) बनवाई और स्वयं द्वारा एक विशाल आदर भेंट (सक्कारा) अर्पित की। तब से वे उत्तम प्रवृत्ति (अज्जासय) से संपन्न हो गए, उन्होंने इस और उस (जन्म) में बार-बार जन्म लेने के चक्रों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले प्रचुर पुण्य कर्मों का संचय किया, देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्म के चक्रों में विचरण किया और कपिलवस्तु में शाक्यन वंश में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनके माता-पिता ने उनका नाम नंदीय रखा, यह कहते हुए कि वे आनंद उत्पन्न करने वाले के रूप में पैदा हुए थे। जब वे वयस्क हुए, और अनुरुद्ध और अन्य लोग गुरु की

उपस्थिति में भिक्षु बन गए, तो उन्होंने भी वैसा ही किया, उन्होंने विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) विकसित करने का कर्म किया, और अपने द्वारा की गई समर्पित सेवा (अधिकार) के कारण शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“पदुमुत्तरा नाम के विजेता ने,

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, पुरुषों का बैल,

स्वयंजागृत बुद्ध ने प्रकाशमान होकर

आग के एक विशाल पिंड के समान, उनका निधन हो गया

परिनिब्बान को।

जब महान वीर निर्वाण को प्राप्त हुए,

वहाँ एक विशाल तीर्थस्थल बन गया। लेकिन

दूर-दराज के लोगों ने इसकी देखभाल करवाई (उपट्ठेंटी),

सबसे उत्कृष्ट और सुव्यवस्थित अवशेष कक्ष में।

पवित्र मन और नेक हृदय होने के कारण, मैंने

चंदन की रेलिंग; फिर ठोस मंदिर

यह किसी तीर्थस्थल के लिए उपयुक्त रूप से दिखने योग्य लग रहा था।

मैं जिस भी जन्म में पुनर्जन्म लेता, चाहे

चाहे दैवीय हो या मानवीय, मैंने कभी अपनी हीनता नहीं देखी।

(ओमाट्टा), यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

पूर्व (अच्छा) कर्म।

आज से पंद्रह सौ युग (कप्पा) पहले,

आठ लोग महान विश्व राजा बने

शक्ति; उन सभी का नाम एक ही था।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, जब यह थेरा, थेरा अनुरुद्ध और अन्य लोगों के साथ पूर्व (पाचीन) विंसा में स्थित हिरण उद्यान (मिगदया) में रह रहे थे, तब दुष्ट मारा ने उन्हें भयभीत करने के उद्देश्य से अपना भयानक रूप (भेरवरूप) दिखाया। थेरा ने उन्हें इस प्रकार पहचानते हुए कहा, "यह मारा है," और "ओभासजातंफलंवा" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि उन्हें यह दिखाया जा

सके: "हे दुष्ट! तुम्हारा कर्म उन लोगों पर क्या प्रभाव डालेगा जिन्होंने मारा के राज्य पर विजय प्राप्त की थी; इसके फलस्वरूप तुम स्वयं भी विनाश और दुर्भाग्य का शिकार होगे।"

25. यहाँ ओभासजातं का अर्थ है: सर्वोत्कृष्ट मार्ग (मग्ग) का ज्ञान प्राप्त करने के कारण, ज्ञान के प्रकाश से उत्पन्न प्रकाश; अतः वह अत्यंत तेजस्वी (पभासर) था, क्योंकि उसने पाप के अंधकार को पूर्णतः नष्ट कर दिया था; यही अर्थ है। फलागं का अर्थ है फल प्राप्ति के निकट पहुँच जाना; सर्वोत्कृष्ट फल के ज्ञान से युक्त (सहिता); यही अर्थ है। चित्तं का अर्थ है कि उसने सामान्यतः दोषरहित (खीणासव) अरहंत के मन के बारे में कहा था। अतः उसने कहा: “अभिनहसो।” वास्तव में, "फलन सहित (फल प्राप्ति के साथ)" कहना उचित है क्योंकि दोष रहित अरहंतों द्वारा निरंतर (निच्चकप्पम) अरहंतत्व के फल की उचित प्राप्ति (समापत्ति) में प्रवेश करने से दुःख (निरोध) का निवारण होता है। तादिसं का अर्थ है, उस प्रकार, उसी रूप में; इस प्रकार, अरहंतों का यही अर्थ है। आसज्जा का अर्थ है स्पष्ट रूप से शुद्ध किया हुआ और तिरस्कार (परिभुय्या) किया हुआ। काण्ह का अर्थ है, मार को पुकारना और संबोधित करना; वास्तव में, उन्हें “कण्हो” कहा जाता है, विशेष रूप से काला जन्म। दुक्खं निगच्छसि का अर्थ है कि इस जन्म में गर्भ में प्रवेश आदि जैसे कर्मों से आप अलाभकारी शारीरिक थकान की ओर अग्रसर होंगे और भविष्य में भी बिना किसी प्रतिफल के नरक की पीड़ा भोगेंगे। यह सुनकर, मारा ने मन ही मन कहा, “भिक्षु मुझे पहचान गया है” और वहीं से गायब हो गया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा नंदिया का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(26):अभय

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (26) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
26. अभया
उनका पुनर्जन्म इस बुद्ध युग में राजा बिम्बिसार के पुत्र के रूप में हुआ। उनके पुनर्जन्म की परिस्थितियों का वर्णन आगे किया जाएगा। [1] जैन नेता नाटपुत्त ने उन्हें 'समना गौतम (बुद्ध)' के समक्ष एक दुविधा प्रस्तुत की, परन्तु भगवान (बुद्ध) के उत्तर में उन्होंने जैन की पराजय और परम पूज्य बुद्ध के सर्वोच्च ज्ञान को स्वीकार किया। इसके बाद, जब राजा का निधन हुआ, अभय चिंतित हो गए और संसार छोड़कर संन्यासी संघ में चले गए। जुए में छेद की दृष्टांत कथा पर आधारित सूत्र के उपदेश से वे प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) तक पहुँचे; फिर से अंतर्दृष्टि जागृत करके उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। [2] इस पर, अपनी विजय का गुणगान करते हुए उन्होंने अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा करते हुए कहा:

[26] सुत्वा सुभासितां वाकें बुद्धस्सदिक्कबन्धुणो॥
पच्चव्याधिं हि निपुणं वलग्गं उसुना यथा' ति.॥ ॥

[26] सूर्य वंश के बुद्ध के विषय में, मैंने
सबसे वाक्पटु शब्द सुना, और सुनकर
सूक्ष्म सत्य भेद गया, जैसे
किसी कुशल धनुर्धर के बाल की नोक भेदी जाती है। [3]

[1] सिस्टर्स, पृष्ठ 80 देखें (जहाँ प्रिंटर ने नाम बदलकर अभया कर दिया)। दुविधा प्रकरण मज्झ. निक. के अभयराजकुमार सुत्त (58) में है।

[2] अर्थात्, चौथे या सर्वोच्च मार्ग की सफलता। यह सूत्र संभवतः कछुए और तैरते जाल का है (स., खंड 455; मज्ज. iii. 169)।

[3] धनुष के साथ कौशल का विशिष्ट परीक्षण (डीएचपी. कॉम., आई., पृ. 288)।

1.3-6[26] श्लोक पर टिप्पणी

अभया थेरा
सुत्वसुभासितं वाचं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अभय का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि वे भगवान पद्ममुत्तरा के युग में भिक्षु बने और धर्म के शिक्षक थे। धर्म का अध्यापन करते समय उन्होंने सर्वप्रथम भगवान की स्तुति में चार श्लोक पढ़े और उसके बाद धर्म का अध्यापन किया। उनके इस पुण्य कर्म के बल पर, एक लाख युगों (कप्पा) तक नरक में उनका कोई आभास नहीं हुआ। वास्तव में, ऐसा कहा गया है:

विजेता की विशेष रूप से प्रशंसा करते हुए

पद्ममुत्तरा, जो स्वयं ही बुद्ध बन गए,

मैं खतरे से मुक्त और धार्मिक विचारों वाला बन गया और

मेरी धर्मनिष्ठ आस्था प्रबल होने के कारण, मैंने ऐसा नहीं किया।

सौ वर्षों के लिए नरक की भूमि पर जाओ

हजार युग (कप्पा)।

उपजाऊ खेत जैसी समृद्धि से परिपूर्ण, वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने जन्म से पहले और बाद में अत्यंत दृढ़ संकल्प (सन्नित्थाना चेतना) के कारण अपार पुण्य और अच्छे कर्मों (कुसला) का फल (अभिषन्द) अर्जित किया। वास्तव में, यह कहा गया है: "अकल्पनीय पुण्य से अकल्पनीय फल प्राप्त होता है।" निश्चय ही, इस और उस जन्म में संचित पुण्य उनका सहारा (उपत्तम्भक) बना। इसी प्रकार, उन्होंने भगवान विपस्सी को केतका पुष्प का आदरपूर्वक अर्पण किया। इस प्रकार किए गए अत्यंत विशिष्ट पुण्य कर्म के कारण, वे अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में उत्तम जन्मों (सुगति) में विचरण करते रहे और इस बुद्ध के जन्म के समय राजा बिम्बिसार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम अभय था। उनके मूल के बारे में आगे (परतो) बताया जाएगा। नाट के पुत्र द्वारा भेजे जाने पर, जैन (निगंठ) ने उन्हें एक दोधारी (उभतोकोटि) समस्या (पंहं) समझाते हुए निर्देश दिया: “भिक्षु गौतम से यह प्रश्न पूछने के बाद, आपको यह दृष्टिकोण (वाद) स्थापित करना चाहिए।” इसके बाद वे भगवान बुद्ध के पास गए, उनके समक्ष वह समस्या रखी और जब भगवान बुद्ध ने उस समस्या के अनेक उत्तरों की स्थिति बताई, तो उन्हें निगंठों की पराजय और गुरु की आत्म-जागृत अवस्था का पता चला और उन्होंने स्वयं को उनका भक्त घोषित किया। इसलिए, जब राजा बिम्बिसार की मृत्यु हुई, तो उन्हें पश्चाताप हुआ, उन्होंने उनके मार्गदर्शन में भिक्षुओं के संघ में प्रवेश किया, तालच्छिलूपमा (कुंजी के छेद की उपमा) पर आधारित सूत्र की शिक्षा के माध्यम से सोतापन्न (धारा-प्रदर्शक) बन गए, बाद में उन्हें विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) प्राप्त हुई और उन्होंने अरहंतत्व का दर्शन किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

“सर्वोत्तम पुरुष जीवित रहे

विनता नदी का किनारा। मैंने देखा

निर्मल बुद्ध जो एकमुखी थे

और सुव्यवस्थित (समाहिता)। फिर मैं

सबसे उत्तम बुद्ध को सुगंधित भेंट की

केतका फूल, श्रद्धापूर्वक और अच्छे भाव से।

पूरे दिल से।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, मैंने श्रद्धापूर्वक फूल चढ़ाए थे-

वास्तव में; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "सुत्वा सुभाषितं वाचं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञं) को प्रकट किया और साथ ही अपने स्वयं के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) की घोषणा की।

26. वहाँ, सुत्व का अर्थ है कान को नीचे करना (ओदहित्वा); कान के द्वार के अनुरूप (सोतद्वारानुसारण) ध्यान से सुनना (उपधारे त्वा)। सुभासुतं का अर्थ है सुस्पष्ट; उचित ढंग से बोला गया; धम्म की शिक्षा, जो सर्वथा स्पष्ट (विभावनी) करती है, जिसमें सर्वथा स्पष्ट (साधना) अर्थ (अत्थ) को अर्थ के अनुसार स्पष्ट (एकन्ततो) किया जाता है, और आत्म-जागृत बुद्ध होने के कारण उनकी अपार कृपा से कोई अप्रिय (अविसं) बात नहीं कही जाती; वास्तव में, भगवान बुद्ध की कोई भी धम्म शिक्षा ऐसी नहीं है जो सर्वथा सत्य (सच्च) से स्पष्ट रूप से मुक्त (विनिमुत्त) हो। बुद्धस्स का अर्थ है सर्वज्ञ बुद्ध। आदिच्चबंधुनो का अर्थ है: वे आदिच्च (सूर्य) हैं क्योंकि उनका जन्म सूर्य वंश में हुआ था; वे इस वंश के संबंधी हैं; अतः वे सूर्य के संबंधी, भगवान बुद्ध हैं; सूर्य के उस संबंधी के। वैकल्पिक रूप से, वे सूर्य के संबंधी हैं; अतः वे आदिच्चबंधु, भगवान बुद्ध हैं। मैं उस भगवान बुद्ध का सगा पुत्र शिष्य था। अतः, मैं भगवान बुद्ध हूँ। अतः, महिमावान बुद्ध ने कहा:—

“शनि (राहु) इसे निगल न ले”

सूर्य, जो अंधों में प्रकाश उत्पन्न करता है-

अंधकार (तमासी), चमक

ओर्ब (मंडली) बढ़ती गर्मी (उग्गा)।

(तेगो) जैसे ही यह आकाश में विचरण करता है।

शनि (राहु), तुम्हें मुझे जाने देना चाहिए

जीवित प्राणियों।"

पच्चब्यधिं का अर्थ है मैंने विधिवत प्रवेश किया (पटिविज्झिं)। यहाँ 'ही' एक अविघटनीय कण (निपात) है। निपुणं का अर्थ सूक्ष्म (सन्ह) यानी अत्यंत कोमल; निरोध का आर्य सत्य; या वैकल्पिक रूप से चार आर्य सत्य (सच्च) है। वैकल्पिक रूप से 'ही' एक क्रियाविशेषण (निपात) है, जो कारण (हेतु) के अर्थ में है, क्योंकि मैंने सूक्ष्म चार आर्य सत्यों में प्रवेश कर लिया है, इसलिए अब कुछ भी ऐसा नहीं है जिसमें विधिवत प्रवेश (पटिविज्झितब्बा) किया जाना चाहिए; इस प्रकार, यही अर्थ है। विधिवत प्रवेश किस प्रकार है? उन्होंने कहा: "वालग्गंसुना यथा;" इसका अर्थ इस प्रकार है: — जिस प्रकार एक कुशल और चतुर धनुर्धर (इस्सासा) अपने बाण से सात भागों में विभाजित बाल (वाल) के सिरे (कोटि) को बिना चूके (अविराज्झंता) भेद देता है (विज्झय्या), उसी प्रकार मैंने सूक्ष्म आर्य सत्यों में प्रवेश किया; यही व्याख्या (योजना) है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा अभया का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(27): लोमसाकांगिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (27) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
27. लोमासाकंगिया
जब कस्सपा बुद्ध थे, तब इस भिक्षु ने संसार त्याग दिया और उनका अनुसरण किया। अब जब भगवान (बुद्ध) ने सुखी-अकेले सूत्र का उपदेश दिया, तो एक भिक्षु ने लोमसकंगिया से इस विषय पर चर्चा की। हमारे थेरा, इसे समझाने में असमर्थ होकर, यह इच्छा व्यक्त की: 'काश मैं भविष्य में आपको सुखी-अकेले का उपदेश दे सकूँ!' दूसरे ने उत्तर दिया: 'क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ!' इन दोनों में से पहले, जब हमारे बुद्ध जीवित थे, कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के घर में पुनर्जन्म हुआ। वे बहुत कोमल और घने बालों से ढके हुए थे, इसलिए उन्हें लोमसकंगिया कहा गया। [1] दूसरे का उसी समय देवताओं के बीच पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम चंदन रखा गया। [2]

जब अनुराद्ध और अन्य शाक्य युवकों ने संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण किया, तो लोमसकंगिया ने ऐसा नहीं किया। तब चंदन ने उन्हें प्रेरित करने के लिए उनके पास आकर सुखी-अकेले के विषय में पूछा। लोमसकंगिया को समझ नहीं आया कि उनका क्या तात्पर्य है। तब चंदन ने उन्हें याद दिलाया। तब लोमसकंगिया भगवान बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि क्या यह सच है कि उन्होंने अतीत में ऐसा संकल्प लिया था। 'जी, हे युवक,' भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया; 'और इसका अर्थ पचास से अधिक बिंदुओं में विस्तार से समझा जा सकता है।' तब लोमसकंगिया ने कहा: 'अतः, हे प्रभु, मुझे संन्यास दीक्षा दें।' और भगवान बुद्ध ने उन्हें अपने माता-पिता से अनुमति लेने के लिए भेजा। उन्होंने अपनी माता से पूछा, लेकिन माता ने उनके स्वास्थ्य को लेकर चिंता व्यक्त करते हुए कहा: 'मेरे प्रिय, तुम नाजुक हो। तुम संसार कैसे त्यागकर संन्यास ग्रहण कर सकते हो?' तब लोमसकंगिया ने यह श्लोक कहा:

[27] डब्बाṃ कुसाṃ पोआकिलाṃ उसिराṃ मुन्जाबब्बाजाṃ॥
उरसा पनुदिस्सामि विवेकमनुब्रूहयन् ति.॥॥

[32] [27] डब्बा और कुसा घास और चुभने वाले तने
और झाड़ियों और अंडरवुड में जो कुछ भी चुभता है,
मैं उसे अपने सीने से धकेल कर दूर कर दूँगा, और वहाँ जाऊँगा जहाँ मैं हृदय के वैराग्य, अकेले और पृथक
विकास को पोषित कर सकूँ । [3]

इस पर उनकी माता ने कहा, 'अच्छा, मेरे प्रिय, जाओ।' और उन्होंने भगवान (बुद्ध) से भिक्षु दीक्षा लेने की अनुमति प्राप्त कर ली। प्रारंभिक अभ्यास करने के बाद वे वन में प्रवेश करने चले गए। वहाँ भिक्षुओं ने उनसे कहा, 'मित्र, तुम नाजुक हो। यहाँ क्या करोगे? वन

में ठंड है।' परन्तु उन्होंने अपना श्लोक दोहराया और वन में प्रवेश करके ध्यान में लीन हो गए, और शीघ्र ही उन्होंने छह प्रकार के अलौकिक चिंतन को प्राप्त कर लिया। [4] जब उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, तो उन्होंने उसी श्लोक में अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] यानी, नीचे वाले अंग। उच्चारण लोमसा कांगिया।

[2] उच्चारण चंदना.

[3] तुलना करें XXIII, और भजन CLXXIV देखें। टीका हमें कथा का पूर्व भाग देती है, जिसका उत्तरार्ध मज्झ (iii. 199) के लोमसा-कांगिया-सूत्र में वर्णित है। यहाँ चंदन को थेरा को संबंधित सूत्र का उपदेश देते हुए दर्शाया गया है। इस निकाय के कम से कम चार सूत्र 'भद्देकरत्ता' या 'सुखद-अकेला' नामक लघु कविता से संबंधित हैं, जिनमें बुद्ध, आनंद, कच्चन महान और चंदन द्वारा क्रमशः व्याख्याएँ दी गई हैं।

[4]

इन शक्तियों को इद्धि, दिव्य कान,
दूसरों के विचारों को समझने की शक्ति;
पूर्व जन्मों की स्मृति, और पांचवीं, दिव्य नेत्र नाम दिया गया है।

दर्शनशास्त्र का संकलन, पृष्ठ 209।

छठा, आसवों का उन्मूलन, अरहंतत्व (ज्ञानोदय) के समतुल्य है। ये छह 'अभिज्ञा' शब्द में समाहित हैं और निम्नलिखित गाथाओं में इनका अनुवाद 'अभिज्ञा' के रूप में नहीं किया गया है।

1.3-7[27] श्लोक पर टिप्पणी

लोमासकंगिया थेरा
दब्बंकुसं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा लोमसकंगिया का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि आज से 91 युग (कप्पा) पहले उन्होंने भगवान विपस्सी के दर्शन किए, पुण्य भाव से उन्हें अनेक प्रकार के पुष्प अर्पित किए, और इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया। बाद में उन्होंने समय-समय पर अनेक पुण्य कर्म किए, उत्तम जन्मों (सुगति) में विचरण किया, भगवान कस्सपा के मार्गदर्शन में भिक्षु बने और भिक्षुओं के कर्तव्यों (धम्म) का पालन किया। उसी अवसर पर एक भिक्षु ने उनसे भद्देकरत्त (साधारण रात्रि) के उपदेश (सुत्त) के माध्यम से चर्चा की, जो गुरु द्वारा भद्देकरत्त (साधारण रात्रि) के उचित अभ्यास (पटीपदा) के लिए सिखाया गया था। वह इसका स्पष्टीकरण नहीं दे सका। स्पष्टीकरण न दे पाने पर उसने यह संकल्प लिया: “काश भविष्य में मैं किसी सुखद रात्रि में आपसे संवाद कर सकूँ।” दूसरे ने कहा: “काश मैं भी आपसे प्रश्न पूछ सकूँ।” इन दोनों में से, पहला (अर्थात पहले वाला) बुद्ध काल के दौरान देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेता रहा और भगवान बुद्ध के समय कपिलवस्तु में शाक्यन परिवार में पुनर्जन्म लिया। इस अवस्था के कारण उसके पैरों के तलवों पर सोन के समान कोमल बाल उग आए। इसी कारण उसका नाम लोमसकंगिया पड़ा। दूसरा (अर्थात बाद वाला) स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेकर चंदन के नाम से जाना गया। जब अनुरुद्ध आदि शाक्यन राजकुमार भिक्षु बन गए, तो लोमसकंगिया भिक्षु बनने के इच्छुक नहीं थे। तब, उन्हें पश्चाताप कराने के लिए, युवा देवता चंदन उनके पास गए और उनसे एक सुखद रात्रि (भद्देकरत्ती) के बारे में पूछा। चंदन ने कहा: "मुझे नहीं पता।" बाद में (पुन), युवा देवता ने उनसे आग्रह किया: "तो फिर आपने ऐसा समझौता क्यों किया: 'क्या मैं एक सुखद रात्रि (भद्देकरत्ती) के बारे में बात कर सकता हूँ?' अब, आप तो नाम तक नहीं जानते।" चंदन उनके साथ भगवान के पास गए और इस प्रकार पूछा: "आदरणीय महोदय! ऐसा कहा जाता है कि मैंने पहले इस प्रकार एक समझौता किया था: 'मैं इस व्यक्ति से एक सुखद रात्रि (भद्देकरत्ती) के बारे में बात करूँगा'।" भगवान ने उत्तर दिया: "हे अच्छे कुल के पुत्र! हाँ, इस प्रकार का समझौता आपने ही प्रतापी कस्सपा के समय में किया था।” इस अर्थ को उपरिपण्णास (मज्झिमानिकाय के तीसरे पचास सूत्र) में वर्णित तरीके से विस्तार से समझा जाना चाहिए। तब लोमसकंगिया ने कहा, “तो फिर, हे पूज्यवर! कृपया मुझे भिक्षु बना दीजिए।” भगवान बुद्ध ने यह कहते हुए उन्हें अस्वीकार कर दिया, “तथागत ऐसे पुत्र को भिक्षु नहीं बनाते जिसे उसके माता-पिता ने अनुमति न दी हो।” वह अपनी माता के पास गए और उनसे कहा, “हे माता! कृपया मुझे भिक्षु बनने की अनुमति दीजिए; मैं भिक्षु बनूँगा।” उनकी माता ने उनसे कहा, “मेरे प्यारे पुत्र!तुम तो नाजुक हो; तुम भिक्षु कैसे बनोगे?” उन्होंने “दब्बं

कुसं पोटकिलं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे स्वयं किसी भी कष्ट को सहन करने की अपनी क्षमता को प्रकट कर सकें।

वहाँ 'डब्बा' का अर्थ है: — उन्होंने कहा डब्बा घास; इसे तेंदुआ (सद्दुलो) भी कहा जाता है। कुसं का अर्थ है कुसा घास; इसे कासो (कासा सरकंडा) कहा जाता है। पोटकिलं का अर्थ है काँटेदार या काँटे रहित यात्रा (गच्छं); हालाँकि, यहाँ केवल काँटेदार यात्रा का ही अर्थ है। सुगंधित उसीरा जड़ आदि को भली-भांति समझ लेना चाहिए। डब्बा आदि घास, बीराणा जैसी घासें दुख (दुक्खा) को बढ़ाती हैं और उन पर पैर रखने वालों के लिए खतरनाक यात्रा का कारण बनती हैं; मैं उन्हें भी अपने हृदय (उरा) से उरासा पानुदिस्सामि द्वारा हटा दूँगा। इस प्रकार उस विशिष्ट (निमित्त) दुख (दुक्खा) को सहन करते हुए, मैं वन क्षेत्र में झाड़ियों के भीतर प्रवेश करूँगा और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन कर सकूँगा। वह इस प्रकार बताते हैं: 'मेरे पैरों से कुचले जाने की बात कौन करेगा?' विवेकमनुबृहयं का अर्थ है शारीरिक एकांतवास, मानसिक एकांतवास और बुनियादी (उपाधि) एकांतवास में लिप्त होना; वास्तव में, भीड़-भाड़ वाले समाज का त्याग करने के बाद, केवल शारीरिक एकांतवास ही रह जाता है; जो व्यक्ति ध्यान के लिए अपने मन को अड़तीस प्रकार के इंद्रिय-विषयों (आरम्मण) में से किसी एक में उचित रूप से लगाता है, उसे मन का एकांतवास प्राप्त होता है; समाज में आनंद लेने वाले को नहीं। जो व्यक्ति शांत और संयमित है, जो स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कार्य करता है, सभी प्रकार की बुराइयों को त्यागकर, दो प्रकार के मानसिक अभ्यासों, शमन (समाथ) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास को एक साथ जोड़ता है, उसे बुनियादी एकांतवास (उपाधिविवेक) प्राप्त होता है; लेकिन जो शांत और संयमित नहीं है, उसे नहीं। इसलिए, यह इस प्रकार कहा गया है: — "विवेकबृहयं, तदनुसार शारीरिक एकांतवास, मानसिक एकांतवास और बुनियादी एकांतवास में लिप्त रहना।" जब पुत्र ने माता को इस प्रकार बताया, तो उन्होंने इस प्रकार अपनी स्वीकृति दी: "तो फिर, प्रिय पुत्र! तुम्हें भिक्षु बन जाना चाहिए।" वह भगवान बुद्ध के पास गए और भिक्षुत्व की प्रार्थना की। गुरु ने उन्हें भिक्षु बना दिया। जो भिक्षु बन गए थे और अपने प्रारंभिक कर्तव्यों (पुब्बकिच्चा) को पूरा करने और मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) करने के बाद वन में प्रवेश कर रहे थे, उनसे भिक्षुओं ने कहा: "मित्र! तुम नाजुक हो; तुम्हारे लिए वन में रहना कैसे संभव होगा?" उन्होंने उनसे भी वही श्लोक कहा, वन में प्रवेश किया, स्वयं को मानसिक विकास (भावना) में समर्पित किया और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:

मैंने श्रद्धापूर्वक अलग-अलग प्रस्ताव रखे।

स्वयं उगने वाले फूलों की किस्में

सुनहरे रंग वाले जागृत बुद्ध,

पवित्र बलिदान स्वीकार करने योग्य

रथ मार्ग में प्रवेश करने की पेशकश।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई

विशेष रूप से फूल; मैं इससे असहमत नहीं हूँ-

किसी भी बुरी घटना को स्पष्ट रूप से याद रखना;

यह श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली विशेष भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए उसी श्लोक का पाठ किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा लोमस्सकंगिया के

तैयार है।

**
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(28): जंबुगामिका का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (28) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
28. जंबुगामिका का पुत्र
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म चंपा में जंबुगामिका नामक एक गृहस्थ अनुयायी के पुत्र के रूप में हुआ, [1] और उनका नाम [33] उनके पिता के नाम पर रखा गया। भिक्षु संघ में एक नौसिखिया के रूप में अध्ययन करते हुए, वे अंजना वन में साकेता में रहते थे। [2] तब उनके पिता ने यह सोचकर कि 'मुझे आश्चर्य है कि मेरा पुत्र भिक्षु संघ में अपने जीवन के प्रति समर्पित रहता है या नहीं?' उनकी परीक्षा लेने के लिए निम्नलिखित श्लोक लिखा और उन्हें भेजा:

[28] कच्चि नो वत्थपसुतो कच्चि नो भूषणारतो॥
कच्चि सिलामयं गंधं किं त्वं वयसि नेतर पजा' ति.॥ ॥

[28] तो क्या तुम वस्त्रों से प्रसन्न नहीं होते?
और क्या तुम फैशन से मोहित नहीं होते?
और क्या यह सुगंधित, सद्‌गुणों से भरी खुशबू
तुम्हारे द्वारा फैलाई जाती है, न कि अन्य लोगों द्वारा?

जब उन्होंने यह पढ़ा, तो उनके मन में विचार आया: 'मेरे पिता को संदेह है कि मैं सांसारिक भोग-विलास में लिप्त हूँ। आज तक तो मैं सामान्य मनुष्य के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाया हूँ!' चिंता से व्याकुल होकर उन्होंने परिश्रम और संघर्ष किया, जिससे शीघ्र ही उन्होंने छह अभिन्न प्राप्त कर लिए। अपने पिता द्वारा भेजे गए श्लोक को प्रेरणा मानकर उन्होंने अंततः अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। और अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करने और अपने पिता का सम्मान करने के लिए उन्होंने उस श्लोक का पाठ किया।

[1] जंबुगामिया की टीका में। नाम एक कार्यालय को संदर्भित करता है, और इसका अर्थ है कोसे-सेब-वृक्षों के गाँव का संघ, एक स्थान जिसे बुद्ध ने अपने अंतिम उपदेश दौरे में शामिल किया था (संवाद, ii. 138), और जो संभवतः गंगा पर चंपा (उच्चारण चंपा) का एक उपनगर था, जो बुद्ध की सेवाओं का सबसे पूर्वी बिंदु था।

[2] देखें सिस्टर्स, पृ. 84, 158; बुड. इंडिया, पृ. 39, 40; न्यूमैन, मज्झ. अनुवाद, iii. 801, n.

1.3-8[28] श्लोक पर टिप्पणी

जंबुगामियापुत्त थेरा
कच्चु नो वत्थापसुतो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा जंबुगामियापुत्त का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, तेजस्वी वेसभु (बुद्ध) के समय में, एक दिन रेशम-कपास के कपोक (किंसुका) फूल प्राप्त किए, उन फूलों को एकत्र किया और श्रद्धापूर्वक आकाश में प्रक्षेपित करते हुए, बुद्ध के गुणों का उचित चिंतन करते हुए उन्हें भगवान बुद्ध को समर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म तावतिंसा स्वर्ग में तैंतीस देवताओं के बीच हुआ। इसके बाद, उन्होंने पुण्य कर्म किए और बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते हुए चंपा में जंबुपामुया नामक एक भक्त के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध प्रकट हुए। इसलिए उनका नाम जंबुगामियापुत्त पड़ा। वयस्क होने पर उन्होंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धर्म का अध्ययन किया, पश्चाताप किया, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों (पुब्बकिच्चा) को पूरा किया, मानसिक साधना (कम्मट्ठाना) की और साकेत के घने वन (अंजना) में निवास किया। तब उनके पिता ने यह जानने के लिए (विमंसना) कहा: "क्या मेरा पुत्र बुद्ध के उपदेशों (शासन) में विशेष रूप से प्रसन्न होकर जीवन व्यतीत कर रहा है या नहीं," और "कच्चि नो वत्थ-पसुतो" से शुरू होने वाला एक श्लोक लिखकर भेजा। उस श्लोक को पढ़कर (वाचेति) उन्हें पश्चाताप हुआ और उन्होंने कहा: "मेरे पिता मेरे लापरवाह जीवन को लेकर चिंतित (आसंकति) हैं; मैं आज भी साधारण भिक्षु (पुथुज्जनभूमि) के दायरे से आगे नहीं बढ़ पाया हूँ," और एकाग्र होकर (घटेंतो) और प्रयास करके (वायामेंटो) वे कुछ ही समय में अरहंत बन गए। अतः अपदान में कहा गया है:—

रेशम-कपास (किंसुका) को देखकर

पेड़ खिल रहा था, मैंने अपनी मुट्ठी ऊपर उठाई

हाथों ने सबसे उत्कृष्ट को याद किया

बुद्ध और विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक बनाया गया

आकाश में भेंट।

उस अच्छे कार्य के कारण

इच्छाशक्ति (चेतना) और स्वयं के साथ-

दृढ़ संकल्प (पणिधि), मैं पहुँच गया

तावतिंस ने मेरा त्याग कर दिया था

मानव शरीर।

आज से इकत्तीस युग पहले, यह था

मैंने तब वह काम किया था। मैं नहीं करता।

किसी भी बुरी घटना को स्पष्ट रूप से याद रखना;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया है।

बाहर।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे अपने रिश्तेदारों के निवास नगर गए और अपनी जादुई शक्तियों से चमत्कार प्रदर्शित किया ताकि संसार (शासन) के निय्यानिक मार्ग से मुक्ति की अवस्था को प्रकट कर सकें। उस चमत्कार को देखकर उनके रिश्तेदार धर्मपरायण हो गए और पुरोहितों (संघ) के लिए अनेक मठ बनवाए। थेरा ने अपने पिता द्वारा भेजे गए श्लोक को क्रियान्वित करते हुए (घटेंतो) और प्रयास करते हुए (वायमंतो) अरहंत पद का दर्शन किया। अरहंत पद की प्राप्ति को प्रकट करते हुए (अञ्ञा), उन्होंने अपने पिता को आदर देने के उद्देश्य से "कच्चिनो वत्थापसुतो" से शुरू होने वाले उसी श्लोक का पाठ किया।

28. यहाँ, कच्चि प्रश्नवाचक शब्द (निपात) है। न नकारात्मक शब्द है। वत्थपसुतो का अर्थ है वस्त्रों के प्रति प्रेम, वस्त्रों का लालच; विशेष रूप से वस्त्रों के अलंकरण में प्रसन्न होना; हालाँकि, यह केवल एक उदाहरण है, क्योंकि यह भिक्षापात्र के अलंकरण आदि जैसी चंचलता (चापल्ल) और निषेध (पटिक्खेप) को भी दर्शाता है। इसका एक भिन्न पाठ (पाठ) है "कच्चि न वत्थपसुतो; यही इसका अर्थ है। भूसनारतो का अर्थ है अपने शरीर को अलंकृत करने में प्रसन्न और विशेष रूप से आनंदित होना; कुछ लोगों के समान, जो भिक्षु बनने के बावजूद शारीरिक रूप से चंचल और फुर्तीले (दल्ही बहुला) होते हैं, वे न केवल वस्त्र आदि जैसे धार्मिक आवश्यक वस्तुओं को सजाने-संवारने में लगे रहते हैं, बल्कि अपने शरीर को भी संवारते हैं। "यह संन्यासी की आवश्यकताओं की पूर्ति और श्रृंगार में आनंद लेने के अलावा और क्या हो सकता है?" श्लोक के दो चरणों (पदद्वय) का यही अर्थ है, सीलमयं गंधं का अर्थ है नैतिक उपदेशों से उत्पन्न मधुर सुगंध; इसे इस प्रकार कहा गया है: — "उत्तम नैतिक उपदेशों से युक्त लोगों की यह मधुर सुगंध देवताओं के बीच अपनी मीठी हवा बहाती है," सर्वांगीण शुद्ध चार प्रकार के नैतिक उपदेशों के माध्यम से अखंडता आदि की स्थिति उत्पन्न करके; त्वं वायसि का अर्थ है वह हवा जो आप बहाते हैं; नैतिक उपदेशों में अत्यंत समृद्ध होकर (सीलसम्पति), अच्छी प्रतिष्ठा की ध्वनि से आप चारों दिशाओं में क्या फैलाते हैं? यही अर्थ है। नेतरा पजा का अर्थ है बुरे आचरण वाले अन्य लोग नहीं; बल्कि बुरे नैतिक उपदेशों के कारण बुरी गंध हवा में फैलती है; क्या आप किसी बुरी गंध की हवा को इस प्रकार फैलाए बिना नैतिक उपदेशों की मीठी सुगंध फैलाते हैं? यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, नेतरा पजा का अर्थ है बुरे नैतिक उपदेशों वाले अन्य लोग नहीं; नैतिक उपदेशों की मीठी सुगंध फैलाने से ऐसा किसी भी प्रकार से नहीं होता (कच्ची)। इस प्रकार, अधिकता से यह केवल नैतिक उपदेशों की मीठी सुगंध को ही प्रकट करता है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा जंबुगामिय का

पुट्टा पूर्ण है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(29): हरिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (29) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
29. हारिता
बुद्ध युग में सावत्थी में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] उनके माता-पिता ने उनका विवाह एक ब्राह्मण की पुत्री से किया जो जन्म, सौंदर्य और हर तरह से उपयुक्त थी। और वह उसके साथ अपने भाग्य का आनंद लेते हुए, एक दिन, जब वह उसकी सुंदरता की पूर्णता का चिंतन कर रहे थे, तो उन्हें सृष्टि के नियम से यह बात समझ में आई, [2] कि ऐसी सुंदरता शीघ्र ही क्षय और मृत्यु से नष्ट हो जाएगी। नहीं, कुछ ही दिन बीते थे कि उनकी पत्नी को एक काले साँप ने काट लिया और उनकी मृत्यु हो गई। व्यथा से व्याकुल होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) की शरण ली और धम्म का मार्ग सुनकर अपने गृहस्थी बंधन तोड़ दिए और संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। अब जब वह स्वयं को नैतिक रूप से प्रशिक्षित कर रहे थे, तब भी वे अपने हृदय को शुद्ध नहीं कर सके। [3] और गाँव में भिक्षा माँगते हुए, [4] उन्होंने एक धनुष निर्माता को अपने औजारों का प्रयोग करते हुए और बाण के शाफ्ट को सीधा करते हुए देखा। तब उन्होंने सोचा: 'ये लोग तो एक निराकार वस्तु को भी सीधा कर देते हैं; मैं अपने हृदय को क्यों न सीधा करूँ?' इसलिए वह

वापस मुड़ा और दोपहर की नींद के लिए बैठ गया, और उसने अंतर्दृष्टि का अनुभव किया। और देखो! उसके ऊपर आकाश में विराजमान परम पूज्य (बुद्ध) ने उसे इस श्लोक से संबोधित किया:

[29] समुन्नमयमत्तनं उसुकारोऽव तेजानां॥
चित्तं उजुं करित्वाना अविज्जां भिंदा हरिता' ती॥ ॥

[29] अब अपने आप को ऊपर की ओर झुकाओ; जैसे
धनुष बनाने वाला अपना वज्र बनाता है, वैसे ही तुम भी, हे हरित, अपने हृदय को सीधा करो और अज्ञान को दूर करो।

उनकी बात सुनकर थेरा को अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और वे शीघ्र ही अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। इसके बाद उन्होंने इसी श्लोक से ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] तुलना करें CLXXXIV. हरित, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)-स्वर्ग के देवताओं में से एक (संवाद, ii 292), जातक में एक भटके हुए भिक्षु का नाम था , जिसके कारण बुद्ध ने बोधिसत्व के रूप में अपनी स्वयं की त्रुटि की जन्म-कथा सुनाई (जातक, iii. 295)।

[2] शाब्दिक रूप से, धम्मता, देखें पृष्ठ 89, और मेरा बौद्ध धर्म, पृष्ठ 119, 241.

[3] Cittaŋ को हृदय या मन से अनुवादित किया जा सकता है, जिसे हमारे नए नियम में समानार्थी समझा जाता है।

[4] गामो, चाहे वह सावत्थी हो, जिसे कहीं और नागरो कहा जाता है, 'नगर', या उपनगर, या अन्य स्थान, यह नहीं बताया गया है। तुलना करें भजन संहिता XIX.

1.3-9[29] के श्लोक पर टिप्पणी

हरिता थेरा
समुन्नमयमत्तनं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा हारित का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए पर्याप्त पुण्य कर्म संचित किए, और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले सुदस्सन नामक एक मौन बुद्ध को देखा। वे धर्मपरायण हो गए, उन्होंने कुटज (औषधीय) पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया और उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उत्तम जन्मों (सुगति) में बार-बार जन्म लिया और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका जन्म सावत्थी नगर के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका नाम हारित था। जब वे वयस्क हो गए, तो उनके माता-पिता ने उनके लिए एक ब्राह्मण परिवार की युवती को जन्म दिया, जो परिवार, रूप, सौंदर्य आदि गुणों से परिपूर्ण थी। वह अपनी पत्नी के साथ धन के सुख का आनंद ले रहा था, तभी एक दिन उसने अपनी और उसकी पत्नी की समृद्धि (संपत्ति) को सुंदर और परिपूर्ण रूप में देखा और अपने स्वभाव (धम्मता) के अनुसार स्वाभाविक पश्चाताप से भर गया: "इतना सुंदर रूप शीघ्र ही वृद्धावस्था और मृत्यु के अधीन हो जाएगा।" परन्तु कुछ ही दिनों में एक काले साँप ने उसकी पत्नी को काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। इस कारण वह और भी अधिक पश्चाताप से भर गया, गुरु के पास गया, धर्म का पाठ किया, गृहस्थी के बंधनों को तोड़कर भिक्षु बन गया। परन्तु जब उसने अपने आचरण के अनुरूप मानसिक साधना (कम्मट्ठान) का अभ्यास किया, तो उसकी साधना सफल नहीं हुई; उसका मन एकाग्र नहीं हुआ। वह भिक्षा मांगने के लिए गांव में दाखिल हुआ, वहां उसने एक तीर बनाने वाले को यंत्र में तीर की छड़ी डालकर उसे सीधा करते देखा। उसने सोचा, "ये तीर बनाने वाले तो निर्जीव वस्तुओं को भी सीधा कर देते हैं; तो मैं अपना मन सीधा क्यों न करूँ?" वह तुरंत वहां से चला गया, लेकिन फिर अपने दैनिक जीवन में लौट आया और विपश्यना विकसित करने लगा। तब भगवान बुद्ध उसके ऊपर आकाश में बैठ गए और "समुन्नमयमत्तानं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोलकर उसे उपदेश दिया। यह भी कहा जाता है कि स्वयं भगवान बुद्ध ने स्वयं को उपदेश देते हुए कहा, मानो वे किसी दूसरे व्यक्ति को उपदेश दे रहे हों।

29. वहाँ, समुन्नमयं का अर्थ है अच्छी तरह ऊपर की ओर झुकना: उचित ध्यान (समापत्ति) की प्राप्ति के प्रभाव से आलस्य के पंख की ओर गिरने न देना, वहाँ से ऊपर उठना (उद्धरन्तो), स्वयं को समान परिश्रम (वीर्यसमतं) में लगाना; यही अर्थ है। अत्तानं का अर्थ है मन; दूसरे शब्दों में, समुन्नमयं का अर्थ है आलस्य के आधे भाग से स्वयं को ऊपर की ओर झुकाना। 'म' अक्षर शब्दों के संयोजन (संधि) का सूत्र है; यदि कम परिश्रम के कारण आपका मन मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) के मार्ग पर उचित रूप से प्रवेश नहीं कर पाया, तो बेहतर है कि आप उसे सही ढंग से प्रयास (वीर्यरम्भ) द्वारा ऊपर की ओर झुकाएँ; नीचे की ओर झुकना या नीचे की ओर झुकना न करें; यही अर्थ है। इस प्रकार करने से, हालांकि, उसुकारो व ते जनं; चित्तं उजं करित्वाना, अविज्जं भिंदा हरिता।" इस अभिव्यक्ति का अर्थ इस

प्रकार है: — जैसे एक तीर बनाने वाला अपने तीर को, जो थोड़ा सा भी टेढ़ा या मुड़ा हुआ हो, सीधा कर देता है ताकि तीर चलाते समय वह लक्ष्य (लक्खं) पर सही से लगे (भिंडन) — उसी प्रकार अपने मन को, जो आलस्य में गिरने के कारण टेढ़ा हो गया है और ध्यान न देने के कारण विचलित हो गया है, सीधा करके एकाग्रता (अप्पना) प्राप्त करने के लिए, आपको मन को शांत (समाहित) करके, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में तत्पर (उसुक्कापेति) लगन से लीन होकर, सर्वोत्कृष्ट सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान से अज्ञान (अविज्जा) को शीघ्र ही कुचल कर नष्ट कर देना चाहिए। यह उपदेश सुनकर, थेरा को स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त हुई और वे शीघ्र ही अरहंत बन गए। अतः यह कहा गया है। अपदान में:—

हिमावंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर, एक स्थान था।

वासला नाम की एक पहाड़ी। बुद्ध ने नाम दिया

सुदस्सन पहाड़ी के भीतर निवास करता था।

हिमावंता के फूल एकत्रित करने के बाद

मैं आकाश से होकर गुजरा जहाँ से मैं आया था

आत्मजागृत बुद्ध के पार मुक्त

उन घावों (आसव) से जो पार कर गए थे

संसार की बाढ़ के ऊपर।

मैं अपने साथ औषधीय कुटजा ले जा रहा हूँ

वे फूल जिन्हें मैं तब अपने सिर पर लेकर चलती थी,

मैंने इन्हें बुद्ध दिवस पर विशेष रूप से भेंट करवाया था।

स्वयंभू महान ऋषि।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने विशेष रूप से श्रद्धा व्यक्त की है-

फूलों की भेंट, मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति (दुग्गती) को याद रखें;

यह श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

पारंपरिक पुष्प अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए उसी श्लोक का पाठ किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा हारिता का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(30):उत्तिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (30) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
30. उत्तिया
उनका जन्म बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ था, और अमृत की खोज में संसार छोड़कर वे एक घुमंतू बन गए। [1] एक दिन अपनी यात्रा के दौरान [35] वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध उपदेश दे रहे थे, और उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। अपने नैतिक सिद्धांतों की अशुद्धता के कारण वे लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके। अन्य भिक्षुओं को देखकर, जिन्होंने ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) को स्वीकार करते हुए सफलता प्राप्त की थी, उन्होंने भगवान (बुद्ध) से संक्षेप में एक पाठ का अनुरोध किया। भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया, 'इसलिए, हे उत्तिया, तुम्हें मूल तत्वों को शुद्ध करना होगा,' [3] और उन्होंने उन्हें संक्षेप में सिखाया। उत्तिया ने पाठ को ग्रहण करते हुए अंतर्दृष्टि प्राप्त की, लेकिन इस प्रक्रिया में वे बीमार पड़ गए। अपनी चिंता में उन्होंने हर संभव प्रयास किया, और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। चूंकि उन्होंने ऐसी परिस्थिति के बावजूद पूर्णता प्राप्त कर ली, इसलिए उन्होंने अपनी बीमारी के संदर्भ में 'अञ्ञा' (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[30] आबधे मे समुप्पन्ने सति मे उपपज्जथा॥
आबादो मे समुप्पन्नो कालो मे नप्पमज्जितुन्ति॥ ॥

[30] चूंकि मुझे बीमारी हो गई है, हे अब
मुझमें सच्ची जागरूकता उत्पन्न हो।
मुझे बीमारी हो गई है - अब समय आ गया है
कि मैं और आराम न करूं या देरी न करूं। [4]

[1] अमाता, जो अमर है, यह शब्द निर्वाण या उसके मार्ग पर लागू होता है; अधिक सामान्यतः, परम कल्याण के लिए।

[2] परिब्बाजक - यानी, अनासक्त धर्मी। यह बहुत संभव है कि अंगी., श्लोक 193 का उत्तिया परिब्बाजक और सांयी., श्लोक 166 का उत्तिया भिक्षु (भिक्षु), जो संक्षेप में पाठ मांगता है, इस उत्तिया के समान ही हैं।

[3] त्वं आदिम एव विशोधेहिति।

[4] पाई भाषा में 'me' शब्द का अद्वितीय पुनरावर्तन, दो बार स्थानवाचक और दो बार कर्मवाचक रूप में (दोनों भाषाओं में यह शब्द समान है), किसी सुंदर काव्य का निर्माण नहीं करता; परन्तु, निष्ठापूर्वक अनुवाद करना आवश्यक था। यह संभव है कि इसमें बुखार से पीड़ित और बीमार, परन्तु अडिग, अदम्य मस्तिष्क की पीड़ादायक परिश्रम का संकेत निहित हो। इस दृष्टि से यह काव्य एक जीवंत दस्तावेज बन जाता है।

1.3-10[30] श्लोक पर टिप्पणी

उत्तिया थेरा
आबाधे मे समुप्पन्ने से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उत्तिया का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा करके, पुण्य संचय करते हुए, जिससे उन्हें इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति मिली, वे आज से 91 युग पहले भगवान सिद्धार्थ के समय चंदभागा नदी में एक विशाल मगरमच्छ के रूप में पुनर्जन्म लिए। जब उन्होंने भगवान को नदी के किनारे आते देखा, तो वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें नदी पार ले जाने की इच्छा से नदी के किनारे लेट गए। भगवान ने उन पर दया करके अपने पैर उनकी पीठ पर रख दिए। वे प्रसन्न और उत्साहित हो गए, उनकी ऊर्जा दोगुनी हो गई और परिणामस्वरूप उन्होंने नदी के मार्ग (सोटा) को तेजी से पार किया और भगवान को दूसरे किनारे पर ले गए। भगवान बुद्ध ने अपनी मानसिक प्रसन्नता का अवलोकन किया और यह भविष्यवाणी करने के बाद प्रस्थान किया: "यह प्राणी जब इस दुनिया से विदा हो जाएगा, तब से यह श्रेष्ठ प्राणियों (सुगति) के बीच अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करेगा और चौरानवे युगों (कप्पा) बाद अमर (अमता) निर्वाण प्राप्त करेगा।"

इस प्रकार उत्तम जन्मों में विचरण करते हुए, उनका पुनर्जन्म श्रावस्ती में उत्तिया नामक एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ, जब बुद्ध का जन्म हुआ। वयस्क होने पर वे परिब्बाजक (घूमने वाले तपस्वी) बन गए, और मन ही मन कहते रहे, "मैं अमर मार्ग (अमता) की खोज करूंगा।" एक दिन वे भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, धर्म का प्रवचन सुना, और यद्यपि वे शासन (सासन) में भिक्षु बन गए, फिर भी नैतिक उपदेशों आदि गुणों के शुद्धिकरण के कारण वे विशिष्टता (विशेष) प्राप्त नहीं कर सके। परन्तु अन्य भिक्षुओं को विशिष्टता (विशेष) प्राप्त करने के बाद अपने अर्हंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करते देखकर, वे गुरु के पास गए और उनसे संक्षेप में उपदेश मांगा। गुरु ने भी उन्हें संक्षेप में उपदेश देते हुए कहा, "हे उत्तिया! अतः, यहाँ से ही तुम्हारा आरंभ शुद्ध होकर होना चाहिए।" उन्होंने ईश्वर की सलाह का पालन किया और विपश्यना का अभ्यास शुरू किया। जब उन्होंने विपश्यना का अभ्यास शुरू किया, तो उन्हें रोग हो गया। लेकिन रोग होने पर उनके मन में पश्चाताप जागा, जिसे उन्होंने अपने परिश्रम का आधार बनाया, और विपश्यना का अभ्यास किया, जिसमें वे लीन हो गए और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:

"मैं उस समय नदी पर एक मगरमच्छ था।"

चंदभात का किनारा; मेरी खोज में

मैं अपने चरागाह में गया, और घाट पर पहुँच गया।

नदी का स्थान।

उस समय, सिद्धार्थ, वह आत्म-

प्रमुख व्यक्ति निकट आया

नदी के किनारे उतरने की जगह इच्छुक होने के कारण

नदी पार करने का।

जब आत्मजागृत बुद्ध पास आए

मैं भी वहाँ पास गया; पास पहुँचने पर

आत्मजागृत बुद्ध, मैंने ये बातें कही थीं

शब्द।

हे महान वीर, कृपया मुझे अपने साथ ले चलो! मैं

मैं तुम्हें पार भेज रहा हूँ; यह मेरा पैतृक कर्तव्य है।

मारो; हे महान, मुझ पर दया करो।

समझदार!

मेरी प्रार्थना (uggajjana) सुनकर

महान ऋषि मुझ पर सवार हुए; आनंदित

मैंने प्रसन्न हृदय से नेता को भेजा

पूरी दुनिया में।

विश्व नेता सिद्धार्थ ने सांत्वना दी

(assāseti) me there on the other bank

उस नदी का जो (यह वाली) होगी

अमर अवस्था (अमता) प्राप्त करें।

उस शरीर से विमुख होकर,

मैं दिव्य लोक में पहुँच गया; मैंने आनंद लिया

दिव्य आनंद से घिरा हुआ (पुरक्खतो)

अप्सराओं द्वारा।

मैं सात बार दिव्य राजा था

स्वर्गीय संप्रभुता का प्रयोग करते हुए; क्योंकि

मैं तीन बार विश्व राजा के रूप में शासन कर चुका हूँ।

पृथ्वी पर।

मैंने एकांतवास का आनंद लिया; परिपक्व होने के कारण

बुद्धि और अच्छे आत्मसंयम में, मैं

मेरे अंतिम शरीर को ले जाओ, डिस्पेन्सा में-

स्वयंजागृत बुद्ध की रचना।

यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जब मैंने बैल को भेज दिया है

सभी पुरुष। मुझे कोई याद नहीं है।

दुष्ट अस्तित्व (दुग्गति); यही है

भेजने का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई है।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालाँकि, अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने आबाधामे समुप्पन्ने से शुरू होने वाले एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया, और अपने स्वयं के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) की सर्वांगीण पूर्णता (परिपुण) के तरीके को स्पष्ट (विभावनमुध) किया।

30. वहाँ, ābādhe me samuppanne का अर्थ इस प्रकार है:— जब असामान्य द्रव्यों के विक्षोभ (धातुक्खोभ) से उत्पन्न रोग, जिसे शारीरिक रोग होने के कारण ābādha (रोग) का नाम दिया गया, स्वयं मुझमें उत्पन्न हुआ। Sati me udapajjada का अर्थ इस प्रकार है:— "मुझे वास्तव में रोग हुआ है; वास्तव में, यह स्थिति (ठाण) बनी हुई है; यदि यह रोग बिगड़ता है (वाड्ढेय्या); जब तक, यह रोग बिगड़ता रहता है (वाड्ढेय्या); जब तक यह रोग और अधिक गंभीर न हो जाए (वाड्ढति), तब मैं स्वयं से यह कहते हुए प्रयास करना शुरू कर देता हूँ: "जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसे प्राप्त करने के लिए, जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसे प्राप्त करने के लिए, जो देखा नहीं गया है, उसे देखने के लिए।" इस प्रकार, उस पीड़ादायक अनुभूति से पीड़ित मुझमें चेतना का जन्म हुआ, जो प्रयास का आधार (वत्थु) बन गई थी। इसलिए कहा गया है: "आबाधो मे समुप्पन्नो, कालो मे नप्पमज्जितुं (रोग स्वयं मुझमें उत्पन्न हुआ है; अब समय आ गया है कि मैं लापरवाही न करूँ)।" इस प्रकार, उत्पन्न चेतना को प्रेरणा बनाकर, इस थेरा ने अरहंतत्व प्राप्त किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा उत्तिया का

तैयार है।

तीसरे अध्याय पर टीका

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(31):गह्वरतिरिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (31) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग IV

31. गह्वरातीरिया
उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उनका नाम अग्गिदत्त रखा गया। [1] बड़े होकर [36] उन्होंने भगवान बुद्ध को दो चमत्कार करते देखा, [2] और आश्वस्त होकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। ध्यान के लिए एक विषय चुनकर वे रतीरा वन गए और गह्वा-रतीरिया के नाम से प्रसिद्ध हुए। अंतर्दृष्टि में वृद्धि करते हुए, उन्होंने थोड़े ही समय में अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे सावत्थी में भगवान बुद्ध की पूजा करने गए। उनके परिवार ने उनके आने की खबर सुनकर उन्हें उदारतापूर्वक उपहार दिए। और जब उन्होंने वन में वापस जाने की इच्छा व्यक्त की, तो उन्होंने कहा: 'महोदय, वन मक्खियों और मच्छरों से भरा हुआ है। यहीं ठहरिए!' लेकिन वैराग्य में लीन थेरा ने उत्तर दिया, 'वन में जीवन मुझे भाता है,' और ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) को स्वीकार करते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:

[31] फुṭṭहो [6] ḍaṃsehi makasehi araññasmiṃ ब्रहावणे॥
नागो संगमसीसेवा सतो तत्राधिवासये' ति.॥ ॥

[31] विशाल जंगल में, विशाल वनों में,
भले ही मैं मक्खी और मच्छर से प्रभावित हो जाऊं,
फिर भी मैं योद्धा-हाथी की तरह घूमूंगा,
युद्ध के बीच में, सचेत, सतर्क। [3]

[1] यानी, अग्नि-प्रदत्त। भले ही रतीरिया का अर्थ रतीरा वनवासी हो (अगला पृष्ठ देखें), यह स्पष्ट नहीं है कि गह्वा की व्याख्या कैसे की जाए। यह नाम और थेरा कहीं और नहीं मिलते। भिक्षु का स्वभाव और उनकी उपमा एक सूत्र में मिलती है जो हाथियों और भिक्षुओं में उत्कृष्टता के लिए सामान्य पाँच गुणों की तुलना करता है (अंग., iii. 161 ff.)।

[2] शरीर के किन्हीं दो विपरीत भागों से क्रमशः और एक साथ अग्नि और जल उत्सर्जित करने की शक्ति, साथ ही स्वयं से भिन्न गतिमान आकृति को प्रकट करने की शक्ति (पटिसंभिदा, i. 125)। बुद्ध ने (उत्तर-प्रामाणिक ग्रंथों में) सावत्थी में ऐसा किया था (मिलिंदा, ii. 247; सुमंगल-विल., i. 57; धाम. कॉमी., iii. 213 ff.)।

[3] पुनरावर्ती CLXXVIII, श्लोक 244।

1.4 चौथा अध्याय

1.4-1[31] श्लोक पर टिप्पणी

गह्वरातीरिया थेरा
'फुट्ठो दम्सेहि' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गह्वरातीरिया का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने के बाद, उन्होंने भगवान सिख धर्म के समय, इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, हिरण का शिकार करना शुरू किया। जंगल में घूमते हुए, उन्होंने एक वृक्ष के नीचे भगवान सिख धर्म के अनुयायियों, नागों और दैत्यों को धर्म का उपदेश देते हुए देखा। यह देखकर वे श्रद्धा से भर गए और उन्होंने उस वाणी (सार) में संकेत (निमित्त) ग्रहण किया और मन ही मन कहा, "यह धर्म है।" इसी श्रद्धा के कारण वे दिव्य लोक में अवतरित हुए और समय-समय पर अपने पुनर्जन्मों के चक्र में घूमते रहे, परन्तु उत्तम देहों (सुगति) में, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। उन्हें “अग्गिदत्त” नाम प्राप्त हुआ और जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने भगवान बुद्ध के दोहरे चमत्कार देखे। उनके भीतर भक्ति भाव जागृत हुआ, वे शासन के मार्ग पर चलकर भिक्षु बन गए, मानसिक साधना में लीन हो गए और गहवर नदी के तट पर स्थित वन क्षेत्र में रहने लगे। इसी कारण वे गहवरतारिया कहलाए। उन्होंने विपश्यना का ज्ञान प्राप्त किया और कुछ ही समय में अरहंत बन गए। अतः अपदान में कहा गया है:

"पहले मैं हिरण का शिकारी था,

एक वन उपवन (विपिना)। मैंने देखा

स्टेनलेस स्टील से बनी बुद्ध प्रतिमा, चारों ओर से घिरी हुई।

दिव्य प्राणियों की भीड़।

वह चारों को प्रकट कर रहा था-

महान सत्य को प्रकट करना मृत्यु को दर्शाता है-

कम रास्ता। मैंने मधुर संगीत सुना।

सिख धर्म का धम्म, के रिश्तेदार

दुनिया।

मैंने उनके प्रति अपनी रुचि को संतुष्ट किया।

आवाज, अद्वितीय व्यक्तित्व में

अद्वितीय। मैंने अपना मन बना लिया है।

मुझे खुशी हुई और मैंने नदी पार कर ली।

ऐसा अस्तित्व जो कठिन है

पार करना।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जब मुझे वह धारणा प्राप्त हो गई है-

मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व (दुग्गति); यही है

आवाज को समझने का सार्थक परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और सावत्थी चले गए। उनके आगमन की सूचना पाकर उनके रिश्तेदार उनके पास आए और उन्होंने बड़ा दान किया। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद, उन्हें वन जाने की तीव्र इच्छा हुई। उनके रिश्तेदारों ने उनसे कहा, “आदरणीय महोदय! वन में मक्खियों, मच्छरों आदि के कारण बहुत खतरे (परिश्य) हैं; कृपया यहीं निवास करें।” रिश्तेदारों की बात सुनकर, थेरा ने “फुट्थोदंसेहि” से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया, और एकांत में अपने विशेष आनंद की घोषणा करते हुए कहा, “वन निवास ही मुझे प्रसन्न (रुच्चति) करता है।”

31. यहाँ phuṭṭhoḍaṃsehi makasehi का अर्थ है — ऐसे सुईनुमा मुख वाले जीवों द्वारा स्पर्श और काटा जाना, जैसे कि अंधी मक्खियाँ, जिन्हें “ḍaṃsa (गड-मक्खियाँ)” नाम दिया गया है क्योंकि वे काटने की आदत रखती हैं और स्पष्ट रूप से मच्छर के रूप में जानी जाती हैं; इस प्रकार, इसका अर्थ है। Araññasmiṃ का अर्थ है जंगल में (arañña) क्योंकि यह जंगल की विशेषता (lakkhaṇa) से जुड़ा है, जैसा कि कहा गया है: “pañcadhanusatikaṃ pacchimaṃ (अंत में पाँच सौ धनुष की लंबाई)।” ब्रह्मवाने का अर्थ है स्थायी (नियं)

वनभूमि, विशाल वृक्षों के घने जंगल के कारण बड़ा वन। नागो संगामसीसे व का अर्थ है युद्ध में अपने घर में विशाल हाथी के समान, जो स्वयं युद्ध मोर्चे के अग्रभाग (मुद्धनि) पर शत्रु सेना पर प्रहार करता है। वह ऊर्जावान (उस्साहा) होकर इस प्रकार बोला: "वनवासी, अर्थात्, बुद्ध आदि द्वारा प्रशंसित और सराहे गए हैं;" सतो का अर्थ है सचेतन। तत्र का अर्थ है उस वन में; या वैकल्पिक रूप से, काटने वाली मक्खियों, मच्छरों आदि के हमले के स्थान पर। अधिवासये का अर्थ है वह सहमति से सहन करेगा और कहेगा: "काटने वाली मक्खियाँ आदि मुझे कष्ट दें," मैं वन में अपना निवास नहीं छोड़ूंगा; यही अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा गह्वरातीरिया का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(32): सुप्पिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (32) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
32. सुप्पिया
बुद्ध युग में, अपने कर्मों के फलस्वरूप, [1] उनका पुनर्जन्म एक तिरस्कृत वर्ग में हुआ, सावत्थी के एक कब्रिस्तान में पहरेदारों के एक कुल में। अपने मित्र थेरा सोपाका [2] के उपदेश से प्रेरित होकर , उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और सर्वोच्च पद प्राप्त किया, और अरहंत पद के लिए प्रयास करते हुए अपने कथन (गाथा) में इसकी घोषणा की।

[32] अजराण जीरामनेन तप्पमनेना निब्बुतिm̥॥
निम्मिसाm̥ परमं शांतिं योगाक्खेमं अनुत्तरं' ति.॥ ॥

[37] [32] हे, काश मैं, जो पल भर बर्बाद करता हूँ, बदल जाऊँ [3] क्योंकि जो कभी नष्ट नहीं होता - जो हमेशा जलता रहता है,
वह उस शांतिपूर्ण आनंद के लिए बदल जाए - उस शांति के लिए
जो सब कुछ पार कर जाती है, अतुलनीय सुरक्षा! [4]

[1] कस्सपा बुद्ध के संघ में भिक्षु (भिक्षु) होने पर अभिमान और घमंड के कारण। स्पष्ट रूप से संवादों का आलोचक नहीं , i. 1.

[2] तुलना करें. XXXIII., CCXXVII.

[3] टीका में निमियाम् लिखा है, और परिवत्तेय्यम् चेतापेय्यम् (देखें विन., iii. 219) द्वारा व्याख्या की गई है, और निष्कर्ष निकाला गया है: 'जैसे मनुष्य, उन वस्तुओं का आदान-प्रदान करते हैं जिनकी उन्हें परवाह नहीं होती, फिर भी जो उन्हें मिलता है उससे बहुत प्रसन्न होते हैं, वैसे ही यह भिक्षु, शरीर या जीवन (जीवितम्) की परवाह न करते हुए, निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहा जब तक कि उसे वह प्राप्त नहीं हो गया।' 'शांतिपूर्ण आनंद' निब्बुत है, जिस पर और अंतिम खंड पर, सिस्टर्स, पृष्ठ 19, नोट 4, पृष्ठ 13, नोट 2 और पृष्ठ 14, नोट 2 क्रमशः देखें। यह उन कुछ कथनों (गाथाओं) में से एक है जो अभी तक प्राप्त न हुई खोज के भार को धारण करने के मामले में हमारे अपने संकलनों से मिलते-जुलते हैं।

[4] परम, परिपूर्ण (anuttaro).

1.4-2[32] के श्लोक पर टिप्पणी

सुप्पिया थेरा

अजरं जारमानेन से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुप्पिया का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ, उन्होंने संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए और वन क्षेत्र में रहने लगे, जहाँ और जब उन्होंने भगवान को देखा, तो वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें छोटे-बड़े फल अर्पित किए; इसी प्रकार उन्होंने भिक्षु संघ के लोगों को भी फल अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और आत्मज्ञानी बुद्ध कस्सपा के समय एक योद्धा-राजकुमार (खत्तीय) के परिवार में पुनर्जन्म लिया। समय आने पर, ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर, अच्छे मित्रों के साथ अपने संबंध (सन्निस्सय) के कारण, उन्हें पश्चाताप हुआ, वे भिक्षु बन गए और बहुत ज्ञानी हो गए। जन्म से क्रोधित और ज्ञान के नशे में चूर होकर वह स्वयं को महान समझते हुए और दूसरों को नीचा दिखाते हुए जीवन व्यतीत करता था। उसके इस कृत्य के फलस्वरूप, जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब उसका पुनर्जन्म एक श्मशान परिरक्षक के परिवार में एक घृणित रूप (परिभूतरूप) में हुआ। उसका नाम सुप्पिया था। फिर बुद्धि प्राप्त करने पर, वह अपने सहोदर थेरा सोपाका के पास गया, उनकी उपस्थिति में धर्म का प्रवचन सुना, पश्चाताप किया, भिक्षु बन गया, धार्मिक आचार संहिता का पालन किया और “अजरं जिरामनेन” से शुरू होने वाला श्लोक बोला।

32. वहाँ, अजरं (वृद्धावस्था से मुक्त) - उन्होंने (संध्याय) निर्वाण के संदर्भ में कहा। वास्तव में, अजन्मे (अजत) होने के कारण यहाँ वृद्धावस्था नहीं है; या फिर, जब यह प्राप्त हो जाता है तो उस व्यक्ति के लिए वृद्धावस्था का अस्तित्व नहीं रहता; इस प्रकार, वृद्धावस्था के कारण के दृष्टिकोण से इसे वृद्धावस्था का अभाव कहा जाता है। जीरामनेन का अर्थ है वृद्ध होना; पल-पल वृद्धावस्था की प्राप्ति। तप्पमानेन का अर्थ है अच्छी तरह से जल जाना; कामवासना (राग) आदि ग्यारह प्रकार की अग्नि से जल जाना। निब्बुतिं का अर्थ है निर्वाण जिसका स्वरूप (सभाव) है, जो ऊपर बताए गए अनुसार जलने से बुझ गया है। निमिअं (चलना) शुरू हो जाएगा और लेन-देन (चेतापेय्यं) करेगा। परमं शांतिं का अर्थ है सर्वव्यापी ऊष्मा (परिलाह) को शांत करने की प्रकृति (धम्मता) के कारण प्राप्त परम शांति, जो विशेष कर्मों (अभिसंखार) और पूर्ण (अनवसेसा) भ्रष्टता (किलेसा) से उत्पन्न होती है। योगक्खेमं का अर्थ है चार बंधनों (योग) से मुक्त होने की अवस्था। अनुत्तरम का अर्थ है स्वयं से श्रेष्ठ किसी भी शरीर का अस्तित्व न होना। वास्तव में, यहाँ इसका संक्षिप्त अर्थ यही है: पल-पल वृद्धावस्था से ग्रस्त होकर वृद्ध होना, और इसी प्रकार काम (राग) आदि जैसी अग्नि से जलकर मर जाना। हर तरह से शांत न रहने (उपसन्त) की स्वाभाविक स्थिति के कारण अपने ही खतरे (सौपद्दव) से, और अनित्यता, दुःख (दुक्खा), सार की कमी (सार) के कारण, यह वृद्धावस्था (अजरं) से मुक्त है क्योंकि यह उसके विपरीत (तप्पतिपक्खा) है: यह परम उत्कृष्ट शांति (उपसम) बन गया है, किसी से भी पीड़ित (उपद्दुत) नहीं है, यहाँ अदला-बदली (निमियं) और अतुलनीय (अनुत्तरं) निर्वाण की शुरुआत हो रही है, इस प्रकार कहते हुए: — “वास्तव में, मेरा लाभ महान है; महान वृद्धि (उदय) मेरे हाथों में आ गई है (हत्थगतो)।” जिस प्रकार मनुष्य किसी भी प्रकार के खजाने (भण्ड) को ध्यान दिए बिना ही संभालते (परिवत्तेन्ता) वह प्रचुर मात्रा में (साम्भाहुमाना) एकत्रित (गयहमानेन) हो जाता है, उसी प्रकार, इस थेरा ने निर्वाण (पहितत्तो) की ओर मन लगाकर, अपने शरीर और जीवन के प्रति अनासक्त भाव प्रकट करते हुए, यह दर्शाया कि उनका मन (अत्ता) निर्वाण की ओर उचित रूप से लगा हुआ (पटिपेसिट) है, और उन्होंने कहा: “प्रतिदान में पूर्ण शांति प्राप्त हुई है (निमियं), बंधनों (योग) से मुक्ति अतुलनीय (अनुत्तरा) है;” उसी उचित अभ्यास (पटिपत्ति) में स्वयं को लीन करते हुए (परिब्रूहयन्तो), और भक्तिपूर्वक (उस्सुक्कापेति) स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करते हुए उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

मैं एक ब्राह्मण था और ज्ञान में निपुण था।

(मन्तपारागू) वरुण नाम से जाना जाता है;

मैंने अपने दस पुत्रों को त्याग दिया था, उस समय

समय जंगल में प्रवेश कर गया।

एक सुव्यवस्थित आश्रम बनाकर,

एक अच्छी तरह से विभाजित (सुविभट्टं) और

हृदय को आनंदित करने वाला (मनोरमं) और

पत्तों की झोपड़ी बनाकर, मैं उसमें रहने लगा।

जंगल।

वह विश्व-बुद्धिमान (लिकाविदु) पदुमुत्तारा,

पवित्र बलिदान का उचित प्राप्तकर्ता-

विशेष भेंट (आहुति) इच्छुक होना

मुझे प्रेरित करने के लिए, वह मेरे आश्रम में आया।

वह अत्यंत प्रतिभाशाली हो गया

घने जंगल में हर तरफ रोशनी।

उस समय जंगल बहुत चमक रहा था।

बुद्ध की शक्ति के कारण।

उस चमत्कार को देखकर,

मुझे जो मिला वह सबसे उत्कृष्ट बुद्ध थे।

पत्ती-कंटेनर को पकड़ना (पत्तापुटा)

और मैंने श्रद्धापूर्वक फल अर्पित किए।

आत्मजागृत व्यक्ति के पास पहुँचने पर

मैंने टोकरी के साथ बुद्ध को भेंट चढ़ाई।

(खारी)। मुझ पर दया करके

ये शब्द बुद्ध ने कहे थे।

टोकरी का भार अपने हाथ में लेने के बाद

(खारी) आपको पीछे-पीछे आना चाहिए

मुझे; जब भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग आनंद लेता है

(तुम्हारे कर्मों का फल) वही तुम्हारा पुण्य होगा।

उस डिब्बे को हासिल करने के बाद,

मैंने इसे भिक्षुओं के पुरोहितों को अर्पित किया।

वहाँ मेरा मन प्रसन्न हो गया था,

मैं तुसीता के स्वर्ग में प्रकट हुआ।

वहाँ मुझे निरंतर आनंद का अनुभव हुआ।

मेरे पुण्य कार्य से जुड़ा हुआ

दिव्य नृत्य, गायन और वादन

का संगीत।

जब भी मैं दिव्य बन गया

कोई प्राणी या मनुष्य नहीं था

मेरी समृद्धि में कमी आई है, यही कारण है।

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फलों का फलदायी परिणाम।

बुद्ध को फल अर्पित करने के बाद,

मैंने ऐसे मामलों में संप्रभुता का प्रयोग किया।

गोले के साथ-साथ चार द्वीप भी शामिल हैं।

उनके महासागर और उनके पहाड़।

जितने पक्षियों के झुंड थे

जो आकाश में उड़ना चाहिए, वे भी

मैंने अपनी इच्छा (वस्सा) का पालन किया; यही है

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फलों का फलदायी परिणाम।

जितने भी छोटे देवता (यक्ष) थे,

शक्तिशाली प्राणी (भूत) और राक्षस

(रक्खासा), स्वर्ग के रक्षक (कुंभण्ड)

और गरुड़ पक्षी भी मेरे पास आने लगे।

मेरी सेवा करने के लिए (पारीकारिया)।

कछुए, कुत्ते (सोना), मधुमक्खियाँ (मधुकरा),

काटने वाली मक्खियाँ (ḍaṃsā) और मच्छर दोनों

(मकसा); उन्होंने भी मेरी इच्छा का पालन किया।

(वास); यह फलदायी परिणाम है

फल का प्रसाद।

सुपण्ण नामक पक्षी, जिन्हें उत्तम पंखों वाला पक्षी कहा जाता है।

अत्यंत शक्तिवान पंखयुक्त प्राणी; वे

उन्होंने मुझसे शरण भी मांगी; यह है

फल अर्पण का फलदायी परिणाम।

ऐसे हाथी (नाग) जो लंबे होते हैं-

जीवित, शक्तियों से युक्त और

उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी; उन्होंने इसका पालन भी किया।

मेरी इच्छा; यही फलदायी पुनरावृति है-

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फल का परिणाम।

शेर, बाघ और तेंदुआ (दीपी),

भालू (अचा) भेड़िये (कोका), लकड़बग्घे

(तराच्चका); उन्होंने भी मेरी आज्ञा का पालन किया

इच्छा; यही फलदायी परिणाम है

मेरे फल-अर्पण का।

उपचार का तारा (ओसाधी), घास-

निवासी (तणवासी) और वे लोग जो

आकाश में रहते हैं; वे सभी पास आते हैं

मुझे शरण दें; यही फलदायी है

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फल का परिणाम।

मैं धर्म से परिपूर्ण होकर जीवन व्यतीत करता हूँ।

जिसे देखना बेहद मुश्किल है

अत्यंत सूक्ष्म, गहन और सुव्यवस्थित

स्पष्ट किया गया; यह एक सार्थक परिणाम है।

फल प्रसाद का।

मैं अनासव रोगों से मुक्त रहता हूँ।

इसके द्वारा व्याप्त होने के बाद

मुक्ति के आठ रूप (विमोक्खा);

मैं एक परिपक्व (निपाका) जलाने वाला हूँ

आतापी (अनैतिकता) भी; यही है

मेरे द्वारा किए गए फल अर्पण का फलदायी परिणाम।

मैं बुद्ध के उन पुत्रों में से एक हूँ।

जो इसमें स्थापित हो चुके हैं

सही रास्तों की सफलता, जिनके

दोष (दोसा) समाप्त हो गए थे

और जो बहुत प्रतिष्ठित हैं।

फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

उच्चतर स्तर की पूर्णता प्राप्त करने के बाद

ज्ञान (अभिञ्ञा), जिसे प्रेरित किया गया है

उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) द्वारा और

सभी को जानने के बाद (परिञ्ञाय)

मैं जिन रोगों (आसव) से मुक्त रहता हूँ

कैंकर (आसवा)।

मैं बुद्ध के उन पुत्रों में से एक हूँ, जो

तीन प्रकार का ज्ञान (तेविज्जा) प्राप्त था।

उसने जादुई शक्तियां (इद्धि) प्राप्त कर ली थीं।

बहुत ख्यातिप्राप्त रहे हैं, और जिन्होंने

अच्छी तरह से प्राप्त (समापन्ना) दिव्य श्रवण शक्ति।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

मैंने कुछ समय पहले फल चढ़ाए थे; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति (दुग्गती) को याद रखें;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

फल-अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद भी, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए उसी श्लोक का पाठ किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सप्पिया का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(33): सोपका (एक लड़का-भिक्खु)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (33) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
33. सोपाका
(एक बालक-भिक्षु)
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक अत्यंत निर्धन स्त्री के पुत्र के रूप में हुआ। प्रसव पीड़ा के कारण उनकी माता बेहोश हो गईं, जिससे उनके परिवारवालों ने कहा, 'वह मर गई!' और वे उन्हें श्मशान ले गए और शव का दाह संस्कार करने की तैयारी करने लगे। लेकिन एक आत्मा ने तेज हवा और बारिश से अग्नि को जलने से रोक दिया, इसलिए वे चले गए। तभी स्वस्थ शिशु का जन्म हुआ जबकि माता की मृत्यु हो गई। उस आत्मा ने मानव रूप धारण करके शिशु को पहरेदार के घर में रख दिया और कुछ समय तक उसे उचित भोजन देकर पाला-पोसा। उसके बाद पहरेदार ने उसे गोद ले लिया और वह शिशु उसके पुत्र सुप्पिया के साथ पला-बढ़ा (भजन 32)। श्मशान में जन्म लेने के कारण वे सोपाका, यानी अनाथ शिशु के नाम से प्रसिद्ध हुए। [1] जब वह सात वर्ष का था, तब ऐसा हुआ कि भगवान (बुद्ध) ने सुबह सवेरे ध्यान में अपनी दिव्य अंतर्दृष्टि का जाल फैलाया कि किन लोगों को उसमें लाया जा सकता है। जाल में

जो कुछ भी समाहित हुआ, उसे देखकर [38] वे श्मशान गए। अपने पूर्ववृत्तों से प्रेरित होकर, बालक प्रसन्न मन से भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम किया। भगवान (बुद्ध) ने उसे शिक्षा दी, जिससे उसने संसार त्यागकर संन्यास लेने का अनुरोध किया, और जब उससे अपने पिता की सहमति मांगी गई, तो वह उन्हें भगवान (बुद्ध) के पास ले आया। पिता ने प्रणाम किया और भगवान (बुद्ध) से बालक को प्रवेश देने का अनुरोध किया। भगवान (बुद्ध) ने उसे प्रवेश दिया और उसे भाईचारे के प्रेम का अध्ययन करने का कार्य सौंपा। [2] इस अभ्यास को करते हुए और श्मशान में रहते हुए, उसने शीघ्र ही संबंधित ध्यान प्राप्त कर लिया। और उसे अपना आधार बनाकर, [3] उसने अंतर्दृष्टि का विकास किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। एक अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में उन्होंने अपने श्लोक में वहाँ रहने वाले अन्य भिक्षुओं को प्रेम अभ्यासों का सिद्धांत समझाया और उनसे कहा कि वे अपने मित्रवत, उदासीन या शत्रुतापूर्ण लोगों में कोई भेद न करें। सभी के लिए उनका प्रेम एक समान होना चाहिए और उसमें सभी लोकों, सभी प्राणियों और सभी युगों के लोगों को शामिल किया जाना चाहिए।

[33] यथापि एकपुत्तस्मिṃ पियास्मिṃ कुसलि सिया॥
एवं सब्बेसु पनेसु सब्बत्था कुसालो सिया' ती॥ ॥

[33] जिस प्रकार वह
अपने इकलौते बच्चे, अपने प्रिय पुत्र के प्रति बहुत अच्छी होती है,
उसी प्रकार तुम्हें भी
सभी प्राणियों के प्रति, हर जगह और हर किसी के प्रति बहुत अच्छा व्यवहार करना चाहिए। [4]

[1] सी.एफ. सुत्त-निपात, श्लोक 137.

[2] देखें संवाद, ii. 219. यह एक सुंदर स्पर्श है कि उस लड़के को, जो एक अनाथ के रूप में भाईचारे के प्यार और दया का ऋणी था, यह अध्ययन सौंपा गया था। देखें भजन 1.

[3] संकलन, पृ. 62.

[4] यह उपमा सुत्त-निपात (श्लोक 149) और खुद्दक-पाठ में दिए गए रूप में अधिक प्रसिद्ध है , जिसमें प्रेममयी माँ का अधिक स्पष्ट उल्लेख है। यहाँ भाषा इतनी सरल है कि यह टीकाकार द्वारा वर्णित बालक-भिक्षु की कहानी को और भी विश्वसनीय बनाती है, जिसने एक अनाथ होने के कारण कभी माँ को नहीं जाना था। इसलिए मैंने इसे एक बच्चे के प्रयास के रूप में प्रस्तुत किया है। 'ये' का शाब्दिक अर्थ है 'एक'।

1.4-3[33] श्लोक पर टिप्पणी

सोपाका थेरा
यथा पि एकपुत्तस्मिं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सोपाका का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे कर्मों का संचय किया और भगवान ककुसंध के समय में एक जमींदार (कुटुम्बिका) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, गुरु को देखकर वे धर्मपरायण हो गए और गुरु को बीज से भरपूर फल (बीज) अर्पित किए। भगवान ने उन पर दया करके (उनका) अर्पण स्वीकार किया। भिक्षुओं के धर्मप्रबंध से विशेष रूप से प्रसन्न होकर उन्होंने सलाकभट्ट द्वारा भोजदान की व्यवस्था की और अपने जीवनकाल में तीन भिक्षुओं को संपूर्ण भिक्षु समुदाय के प्रति अपनी निष्ठा के प्रतीक के रूप में दूध का भोज अर्पित किया। इन पुण्य कर्मों के फलस्वरूप, देवताओं और मनुष्यों के बीच समृद्धि का आनंद लेते हुए, उन्होंने एक बार मनुष्य के गर्भ में पुनर्जन्म लिया और एक मौन बुद्ध को दान के रूप में दूध का भोज दिया। इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, वे सुगति नामक उत्तम जन्मों में घूमते रहे और अपने पूर्व कर्म के फलस्वरूप सावत्ती में एक दरिद्र स्त्री (दुग्गतिति) के गर्भ में गर्भ धारण किया, जिसके फलस्वरूप इस बुद्ध का जन्म हुआ। माता ने दस माह तक गर्भ धारण करके गर्भ को पूर्णतः अपने गर्भ में रखा, लेकिन जब गर्भावस्था पूर्णतः विकसित हो गई, तो प्रसव के समय वह प्रसव करने में असमर्थ हो गईं। वे बेहोश हो गईं और काफी देर तक मृत समान पड़ी रहीं। उनके रिश्तेदारों ने उन्हें मृत समझकर श्मशान ले जाकर चिता पर बिठाया, लेकिन जब दैवीय शक्ति से हवा और बारिश चलने लगी, तो चिता में आग नहीं लगी और वे चले गए। दैवीय शक्ति से शिशु स्वस्थ अवस्था में माता के गर्भ से बाहर आया, क्योंकि यह उसका अंतिम जन्म था। माता की मृत्यु हो गई। दैवीय प्राणियों ने मनुष्य का रूप धारण करके शिशु को अपने साथ ले लिया और श्मशान के संरक्षक के घर में रख दिया, और कुछ समय तक उसे उचित पोषण प्रदान किया। इसके बाद, कब्रिस्तान के रखवाले ने उस बच्चे को अपना बेटा मान लिया और उसका पालन-पोषण किया। इस तरह बड़े

होते हुए, वह लड़का कब्रिस्तान के रखवाले के बेटे सुपिया के साथ खेल-कूद करता हुआ घूमता था। कब्रिस्तान में जन्म और परवरिश होने के कारण उसका नाम सोपाका पड़ गया।

फिर एक दिन भगवान बुद्ध की नज़र सात वर्षीय बालक पर पड़ी और वे अंतर्देशीय जल में प्रवेश कर गए। उन्होंने सुबह-सुबह ज्ञान का जाल फैलाकर संसार में अपने लिए उपयुक्त बंधुओं की खोज की और श्मशान की ओर चल पड़े। अपने पूर्व उद्देश्य से प्रेरित होकर बालक ने धर्मपरायणता का भाव धारण किया और गुरुदेव के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। गुरुदेव ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने धर्म को ध्यान से सुना और भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। जब उनसे पूछा गया कि क्या उनके पिता ने उन्हें दीक्षा दी है, तो वे अपने पिता को गुरुदेव के पास ले गए। उनके पिता ने गुरुदेव के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और अपनी सहमति देते हुए कहा, "हे पूज्यवर, कृपया इस बालक को भिक्षु बना दीजिए।" गुरु ने उन्हें अपने भिक्षु संघ में दीक्षा दी और उन्हें प्रेम और करुणा (मेट्टा) विकसित करने का कर्तव्य सौंपा। उन्होंने प्रेम और करुणा का मानसिक अभ्यास किया और श्मशान में निवास करते हुए प्रेम और करुणा का ध्यान स्थापित किया, ध्यान को अपना आधार बनाया, विपस्सना विकसित की और कुछ ही समय में अरहंतत्व की कल्पना की। अतः अपदान में कहा गया है:—

"वह महान नायक काकुसंध, निपुण

(पारागू) समस्त धर्मों में स्वयं को विभाजक बना लिया

उन्होंने अपने संगठन (गण) से निकलकर चले गए।

जंगल के बीचोंबीच।

मैंने बीजों का गूदा (बीजामिंजम) एकत्र किया।

और उन पर एक लता लपेट दी

(latāya āvuṇiṃ). उस समय

भगवान ध्यान में प्रवेश कर चुके थे।

पहाड़ियों के बीच।

दिव्य के दिव्य को देखकर

(देवदेव), मैंने बीज-मज्जा अर्पित की

समर्पित दान के योग्य नायक (वारा)

मैं अपने पवित्र मन से इस बात को स्वीकार करता हूँ।

इसी युग (कप्पा) में ऐसा हुआ कि

मैंने तब मज्जा (मिंजा) अर्पित की।

किसी भी बुरी घटना को याद न करो;

यह बीज का फलदायी परिणाम है।

मज्जा (अर्पण)।

मेरी विकृतियाँ नष्ट हो चुकी थीं।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "यथा पि एकपुत्तस्मिं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि श्मशान-तपस्या (सोसानिका) का अभ्यास करने वाले अन्य भिक्षुओं को प्रेम और करुणा (मेट्टावहना) विकसित करने की विधि (विधि) की ओर इशारा किया जा सके।

33. यहाँ यथा एक अविकारी कण (निपात) है, जो उदाहरण के रूप में प्रयुक्त होता है। एकपुत्तस्मि का अर्थ इस प्रकार है: वह कुलवंश का शुद्धिकरण (पुनाति) करता है और उसकी देखभाल भी करता है; इस प्रकार वह पुत्र है; पुत्र अपने ही वंशजों आदि का गुणधर्म होता है। एक पुत्र इकलौता पुत्र होता है; उस इकलौते पुत्र में भी यह स्थानवाचक शब्द है। पियास्मिं का अर्थ है: — क्योंकि उसे प्रेम किया जाना चाहिए, और इसलिए भी कि वह इकलौता पुत्र है, ऐसा पुत्र जो सौंदर्य (रूप), नैतिक उपदेश, अच्छे आचरण (आचार) आदि गुणों से युक्त स्नेहपूर्ण प्रेम (पेमा) उत्पन्न करने का केंद्र बन गया है। कुसली का अर्थ इस प्रकार है: — कुसल को सुरक्षा (खेमा), सुख की अवस्था (सोत्थी) कहा जाता है; इसमें वह सुरक्षित सुख है जिसे प्राप्त किया जाना चाहिए; इस प्रकार, सुरक्षित रूप से सुखी (कुसली); जीवित प्राणियों के कल्याण का साधक, जिसका हृदय केवल प्रेममय (मेत्तज्जासयो) है। सब्बेसु पाणेसु का अर्थ है सभी जीवित प्राणियों के प्रति। सब्बत्था का अर्थ है: — सभी दिशाओं में (दिसा); वैकल्पिक रूप से, सभी अस्तित्वों में इत्यादि; या सभी असीमित अंतरिक्ष में (अवत्थासु)। यह कहा गया है: — जिस प्रकार माता-पिता सुरक्षित रूप से सुखी लोग (कुसली) होंगे और अपने इकलौते प्यारे (पिया) और प्रिय (मनप) पुत्र के प्रति सच्चे कल्याणकारी (एकान्तहितेसी) होने पर, उन्हें उसी प्रकार निश्चिंत होकर प्रसन्न (कुसली) रहना चाहिए; उसी प्रकार, पूर्व दिशा से लेकर सभी दिशाओं तक, इंद्रिय-संबंधी विविधताओं से लेकर सभी रूपों तक, और युवाओं से लेकर सभी रूपों तक, सभी प्राणियों के प्रति, जो असीम विवरणों (अवत्थासु) में विद्यमान हैं, उन्हें निश्चिंत होकर प्रसन्न (कुसली) रहना चाहिए, क्योंकि वे निश्चिंत होकर कल्याणकारी हैं। एक ही प्रकार का (एकरसं) प्रेम और करुणा बिना किसी सीमा-विभाजन (सीमासंभेद) के, हर जगह विकसित की जानी चाहिए, और ऐसी कोई सीमा नहीं बनानी चाहिए जैसे: “मित्र, उदासीन और शत्रु।” इस श्लोक को कहने के बाद, उन्होंने इस प्रकार निर्देश दिया: “यदि आप सभी पूजनीय स्वयं को भोग-विलास में लगा लें, तो (अनुयुन्जेय्याथा) इस प्रकार प्रेम और करुणा के विकास में, आप सभी निश्चित रूप से (भवथा) प्रेम और करुणा से प्राप्त होने वाले ग्यारह प्रकार के लाभों के प्राप्तकर्ता बनेंगे, जैसा कि “आनंदपूर्वक नींद आती है” से शुरू होता है, और इसी प्रकार जिनका उल्लेख भगवान ने किया था।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सोपाका का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(34):पोसिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (34) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
34. पोसिया
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक अत्यंत धनी पार्षद के पुत्र के रूप में हुआ, [1] और वे थेरा संगमजी के छोटे भाई थे। [2]
बड़े होने पर उनका विवाह हुआ; परन्तु पुत्र के जन्म के बाद, जीवन के अंतिम चरण से संबंधित नियमों के कारण वे जन्म और उससे

संबंधित बातों को लेकर चिंतित हो गए। अतः उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुता के लिए) और वन में एकांतवास में रहकर चार सत्यों का अभ्यास किया। और शीघ्र ही उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया।

फिर वह बुद्ध की पूजा करने के लिए सावत्थी गए और अपने घर लौट आए। वहाँ उनकी पूर्व पत्नी ने उनका सत्कार किया और उनके स्वभाव से अनभिज्ञ होकर, अपने आकर्षण से उन्हें वापस अपनी ओर खींचने की इच्छा रखी। थेरा ने सोचा, 'अरे! इच्छा की मूर्खता मुझ जैसे व्यक्ति पर भी बुरी नज़र रखती है,' और कुछ नहीं कहा, बल्कि उठकर जंगल में चले गए। वहाँ के भिक्षुओं ने उनसे कहा, 'हे मित्र, आप इतनी जल्दी वापस क्यों आ गए; क्या आपने अपने लोगों को नहीं देखा?' थेरा ने उन्हें सारी घटना बताई और एक श्लोक सुनाया:

[34] अनासन्नवारा एटा निक्कमेव विजानाता॥
गमा अरण्यमगम्मा ततो गेहं उपविसिण॥
ततो उथया पक्कमिं अनमन्तीय1 पोसियो' ति.॥॥

इत्थै सुदां अयस्मा पोसियो थेरो गाथां अभिसित्था' ति.॥॥

[34] सबसे अच्छा तब होता है जब पास न हों, अभी और हमेशा के लिए,
ऐसे लोग समझने वाले के लिए होते हैं।
मैं बस्ती से जंगल में गया,
वहाँ से मैं फिर अपने घर आया; लेकिन वहाँ से उठकर मैं फिर से खड़ा हो गया, और इस पोसिया ने
कभी एक शब्द भी नहीं कहा।

[1] सेट्ठी शब्द पर , सिस्टर्स, पृष्ठ 192, नोट 1 देखें । मैंने इस काम में 'काउंसिलर' का उपयोग करने का निर्णय लिया है, जो हमारे लिए किसी आधिकारिक महत्व के बर्गेस, प्रमुख (सेट्ठी) - जैसे, किसी गिल्ड आदि को व्यक्त करता है।

[2] उडाना देखें , i. 8; नेति, पी. 150.

1.4-4[34] श्लोक पर टिप्पणी

पोसियाथेरा
4.1. अनासन्न वरा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पोसिया का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, प्रचुर मात्रा में पुण्य कर्म संचित किए, जो उन्हें इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। वे अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में उत्तम जीवन (सुगति) व्यतीत करते हुए, भगवान तिस्सा के समय, बानवे युग (कप्पा) पहले, हिरण शिकारी बन गए और वन में विचरण करने लगे। उस समय, उनकी उन्नति के लिए, भगवान वन में गए और उनके दर्शन किए। भगवान को देखकर वे श्रद्धा से भर गए, अपना शस्त्र त्याग दिया और हाथ जोड़कर आदरपूर्वक खड़े हो गए। भगवान ने बैठने की इच्छा प्रकट की। वहीं उन्होंने मुट्ठी भर घास (तिनमुट्ठी) ली, उसे स्वयं आदरपूर्वक समतल भूमि पर फैलाया और भगवान बुद्ध को वह स्थान अर्पित किया। उन पर दया करते हुए भगवान बुद्ध ने वहीं अपना आसन ग्रहण किया। जब भगवान बुद्ध बैठ गए, तो उन्हें अपार आनंद और प्रसन्नता का अनुभव हुआ, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और स्वयं एक उपयुक्त स्थान (एकमंतं) पर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने मन ही मन कहा, "इस मनुष्य के लिए इतना पुण्य बीज (कुसल) उचित है।" वे अपने आसन से उठकर चले गए। भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, पशुओं के राजा (मिगराज) सिंह ने उन्हें मार डाला। मृत्यु के बाद वे स्वर्गलोक में अवतरित हुए। कहा जाता है कि यदि भगवान बुद्ध उनके पास न जाते, तो वे सिंह द्वारा मारे जाते और नरकलोक में पुनर्जन्म लेते। अतः, उन्हें देखकर भगवान बुद्ध उनके पास गए ताकि वे उत्तम अस्तित्व (सुगति) प्राप्त करें और उन पर पुण्य बीज बोएं।

4.2. वह अपने जीवनकाल तक वहीं रहे, फिर दिव्य लोक से विदा हुए, उत्तम अस्तित्वों (सुगति) में अपने पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक अत्यंत धनी बैंकर के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए, जो थेरा संघामजिता के सबसे छोटे भाई थे। उनका नाम पोसिया था। वयस्क होने पर उन्होंने विवाह किया (दारपरिग्गहं कत्वा), पुत्र प्राप्त किया, और अपने अंतिम अस्तित्व (पच्छिमभव) की प्रकृति (धम्मता) से प्रेरित होकर (चोदियमानो), उनमें पश्चाताप उत्पन्न हुआ, जो जन्म (जाति) आदि जैसी घटनाओं पर निर्भर (पटिच्च) था, वे भिक्षु बन गए, वन में प्रवेश किया, एकांतवास किया (वुपकट्ठो), चार आर्य सत्यों पर निरंतर मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) में लगे रहे, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में लीन रहे और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

हिमावंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर, एक स्थान था।

लंबका नाम की एक पहाड़ी। स्वयं-

जागृत बुद्ध तिस्सा चलकर आगे बढ़े और

लेकिन वहां खुली हवा में।

मैं उस समय हिरण का शिकारी था।

लकड़ी का जंगल। यह देखकर

परमात्मा का दिव्य (देवदेवं)

मैंने उन्हें मुट्ठी भर घास भेंट की।

इसे इस उद्देश्य के लिए पेश करने के बाद

मैंने बुद्ध के आसन के बारे में अपना मन बना लिया था।

प्रसन्न। श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

मैंने आत्मजागृत बुद्ध को अपने साथ ले लिया

विशेष रूप से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करना।

मेरे जाने के कुछ ही समय बाद, एक राजा

जानवरों ने मुझ पर हमला किया। मुझ पर हमला हुआ।

शेर के हमले में मेरी वहीं मौत हो गई।

क्योंकि इसके तुरंत बाद (आसन्ने) यह कार्य हुआ था

मैंने इसे बिना किसी संक्रमण वाले सबसे अधिक के लिए किया है।

हे उत्कृष्ट बुद्ध, मैं दिव्य अवस्था तक पहुँच गया।

दुनिया तीर की गति के समान है

बहुत बढ़िया शॉट (सुमुत्तो)।

वहाँ मेरा दिव्य महल सुखद था।

मेरे द्वारा विशेष रूप से निर्मित किया गया

पुण्य कर्म। इसमें एक हजार थे

खंडीय विवरण (कण्ड) के साथ

सौ गेंद बुर्ज (भेण्ड), पूर्ण

सोने (हरिता) से बने झंडों (धजालु) का।

इसकी दीप्तिमान किरणें (पभा) आश्चर्यजनक रूप से

विकिरणित हुआ (निद्धावते) और ऊपर उठा (उग्गतो)

सौ किरणों वाले सूर्य के समान

(सतरंसी)। यह दिव्य लोगों से भरा हुआ था।

युवतियों, मैंने खूब आनंद लिया (āmodiṃ)

मेरी सभी इच्छाओं (कामकामी) की पूर्ति हो रही है।

दिव्य शक्ति से विदा होने के बाद

दुनिया, और प्रेरित (codito) द्वारा

उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) मैं बन गया

मैं एक मनुष्य हूँ और मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।

(आसवक्खया).

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने जो भेंट चढ़ाई है

सीट; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व (दुग्गति); यही फल है-

मुट्ठी भर घास का पूरा परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

4.3. अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के लिए सावत्थी आए और अपने सगे-संबंधियों के प्रति दया भाव से उनके घर गए। वहाँ उनकी पूर्व पत्नी (पोराणदुतीयिका) ने उन्हें प्रणाम किया, सबसे पहले उन्होंने एक भक्त की तरह आसन अर्पित करने जैसे कर्तव्य निभाए, और थेरा के स्वभाव (अज्जासय) को न जानते हुए, बाद में कुत्त (कुत्ता) आदि स्त्री-सुलभ चालों से थेरा को

लुभाने की इच्छा करने लगीं। थेरा ने इस प्रकार सोचा: "यह कितना आश्चर्य की बात है (अहो)! एक अंधा मूर्ख इस प्रकार व्यवहार करता है (पटिपज्जति), अर्थात् मुझ जैसे मनुष्य (मादिसा) के साथ," उन्होंने कुछ नहीं कहा, अपने आसन से उठे और जंगल की ओर चले गए। वनवासी भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "कैसी बात है, मित्र? आप अत्यंत शीघ्र (अटिलहुं) लौट आए हैं; क्या आपके सगे-संबंधियों ने आपको नहीं देखा?" थेरा ने "अनासन्नवरा एता" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वहाँ घटी घटना (पवत्ति) का वर्णन कर सकें।

34. वहाँ, अनासन्नवरा का अर्थ इस प्रकार है:— एता का अर्थ है ये स्त्रियाँ: अनासन्न ना आसन्न (निकट नहीं), पहुँच से परे; वैकल्पिक रूप से, दूर स्थित होकर भी वे उत्कृष्ट (वरा) हैं, वे मनुष्य के कल्याण की सर्वोत्तम संवर्धक हैं; वह भी निच्चमेव (स्थायी रूप से), हर समय; न केवल रात में, न दिन में, न ही अकेलेपन (रहवेलाय) के अवसर पर। विजयानाता का अर्थ है जो स्पष्ट रूप से जानता हो। "अनासन्नपरा" जैसा एक पाठ भी है; उसका अर्थ यही है। यहाँ, वास्तव में, यही अर्थ (अधिप्पाय) है ----- भयंकर हाथी, गौशाला, भैंस, शेर, बाघ, राक्षस, दानव और पिशाच भी जो लोगों के पास नहीं जाते, उत्कृष्ट, सर्वोत्तम और कल्याण के संवर्धक हैं; वे (लोगों के) पास जाकर (लोगों के) लिए वर्तमान समय में भी (दित्तधम्मिका) हानि ही करेंगी। दूसरी ओर, स्त्रियाँ (पुरुषों के) पास जाकर वर्तमान जीवन (दित्तधम्मिका) और भविष्य के पुनर्जन्म (संपरायिक) से संबंधित मुक्ति (विमोक्खनिस्सिता) के लिए सहायक कल्याण को नष्ट कर देती हैं और (आपादेन्ति) भारी हानि (अनत्तं) उत्पन्न करती हैं; इसलिए, इन स्त्रियों का पास न रहना ही बेहतर है और इन्हें हर समय स्पष्ट रूप से (विजानता) समझा जाना चाहिए। अब, स्वयं (उपनायिका) के संदर्भ में उस बात को स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने गामा शब्द से प्रारंभ किया। यहाँ गामा का अर्थ गामं (गाँव के लिए) समझा जाना चाहिए; वास्तव में, यह शब्द अपादान कारक रूप (निस्साक्का) में कर्म कारक अर्थ (उपयोगत्थ) में कहा गया है। अरञ्ञमागम्म का अर्थ है अरञ्ञतो आगन्त्वा, यानी जंगल से आया हुआ; व्यंजन म शब्दों के संयोजन (संधि) का सूत्र है; यह कर्म कारक शब्द (उपयोगवचनं) अपादान कारक (निस्साक्का) के अर्थ में है। ततो का अर्थ है पलंग (मंचक) से। अनामन्तेत्वा का अर्थ है; अपनी पूर्व पत्नी (दुतीयिका) को संबोधित करते हुए (आलपति) पुकारे बिना, यहाँ तक कि इतना भी नहीं कहा, अर्थात्:— अपनी पूर्व पत्नी से "मेहनती रहो"। पोसियो का अर्थ है:— उसने अपने बारे में ही कहा, मानो किसी और का जिक्र कर रहा हो। हालाँकि, जो कोई भी उनके बारे में पढ़े (पाठन्ति), मैं, पोसिया, विदा लेता हूँ; अतः, यही व्याख्या (योजना) है। परन्तु जो कोई इस प्रकार कहे: "उस स्त्री ने अपने घर आए थेरा को भोजन कराया, तो वह उन्हें लुभाने की इच्छा करने लगी: यह देखकर थेरा तुरंत घर से निकलकर मठ चले गए और अपने निवास स्थान पर पलंग पर बैठ गए; वह स्त्री भी भोजन के बाद सज-धज कर मठ में थेरा के निवास स्थान पर गई; उसे देखकर थेरा ने कुछ नहीं कहा, उठकर अपने दिन के विश्राम स्थल पर चले गए;" उनके लिए श्लोक के चरणों का अर्थ इस प्रकार है: "गाँव से वन में लौटकर;" यह निर्देशित (निय्याति) है, परन्तु तदनुसार (यथा) गाए जाने (ऋत) के माध्यम से। यहाँ वास्तव में विहार (मठ) का तात्पर्य (अधिप्पेतो) "अरञ्ञं (वन)" है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा पोसिया का

तैयार है
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(35):समन्नाकानि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (35) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
35. समाञ्जकनी
वह इस बुद्ध युग में एक घुमक्कड़ के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर [1] परमेश्वर (बुद्ध) को दो चमत्कार करते हुए देखकर धार्मिक जीवन (मार्ग/धम्म) में परिवर्तित हो गया। [2] और ध्यान के माध्यम से उसने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अब कातियाना नाम का एक घुमक्कड़, जिसे वे गृहस्थ के रूप में जानते थे, बुद्ध के उदय के बाद से गृहस्थों से मिलने वाला सारा समर्थन खो बैठा था और निर्धन हो गया था। वह थेरा के पास आया और बोला, 'आप शाक्य वंश के लोग, जिन्होंने बहुत प्रसिद्धि और समर्थन

प्राप्त किया है, सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु हम दुखी और निर्धन हैं। इस जीवन और परलोक दोनों में सुख प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?' थेरा ने कहा, 'सांसारिक सुख से इतर सुख: - जो व्यक्ति इसे प्राप्त करने के लिए उचित प्रक्रिया का पालन करता है और इसे प्राप्त करता है, वही पूर्ण सुख कहलाता है।' और अपनी स्वयं की उपलब्धि से इसे स्पष्ट करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[35] सुखाऽ सुखत्थो लभते तदाचाराऽ॥
कित्तिओ च पप्पोति यस्सा वदहति॥
यो अरियामंथागोंगिकमंजसां उजुm॥
भवेति मग्गं अमतस्सा पत्तिया' ति.॥ ॥

[35] सुख की खोज करने वाला व्यक्ति निरंतर प्रयास करने पर सुख प्राप्त कर सकता है।
उसे सम्मान भी प्राप्त होगा और यश भी उसकी प्राप्ति होगी।
बशर्ते वह सीधे मार्ग का अनुसरण करे, [3] अर्थात् आर्य मार्ग,
वह अष्टमार्ग जिससे मोक्ष प्राप्त होता है। [4]

[1] परिब्बाजक - यानी, अनासक्त धर्मी। क्या उसका जन्म पिता के संसार छोड़ने (भिक्षुता के लिए) से पहले हुआ था, या उसके फिर से उसमें विलीन होने के बाद (देखें सिस्टर्स, भजन संहिता lxviii.), यह नहीं बताया गया है।

[2] देखें पृष्ठ 36, नोट 1.

[3] टीका में व्याख्या की गई है, 'क्योंकि व्यक्ति ने सभी शारीरिक और अन्य कुटिलताओं को त्याग दिया है।' मुझे निकाय के इस श्लोक की प्रतिध्वनि सुनाई देती है: उजुको नाम सो मग्गो (संध्या, अध्याय 14; सिस्टर्स, श्लोक 361) - 'मार्ग को सीधा नाम दिया गया है।' पाली गायत्री छंद (वैदिक) में है।

[4] अमाता. तुलना करें. XXI.

1.4-5[35] श्लोक पर टिप्पणी

Sāmaññakāni Thera
5.1. सुखमसुखत्थो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सामञ्चकानी का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में अच्छे कर्म संचित किए, और आज से 91 युग (कप्पा) पहले, भगवान विपस्सी के समय में मनुष्य की योनि में पुनर्जन्म लिया। भगवान विपस्सी को देखकर वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें अपना पलंग (मंच) अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे।

दिव्य और मानवीय प्राणियों के बीच अंतरात्माओं के दर्शन करने वाले इस बुद्ध का पुनर्जन्म एक परिब्बाजक (घूमते-फिरते तपस्वी) के पुत्र के रूप में हुआ। उनका नाम सामञ्चकानी था। बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने गुरु के दोहरे चमत्कार को देखा, वे धर्मपरायण हो गए, भिक्षु के रूप में दीक्षा ली, अपने आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) किया, ध्यान साधना की शुरुआत की, ध्यान को अपना आधार (पादक) बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“अपनी हथेलियों और मनभावन भक्ति से,

मैंने एक सोफे की पेशकश की थी, ऐसे व्यक्ति को

भगवान विपस्सी के रूप में, सबसे बड़े

दुनिया।

मुझे (समाज्झगं) एले- प्राप्त हुआ था।

पक्षी परिवहन, घोड़ा परिवहन और

दैवीय परिवहन; इसी कारण

मुझे सोफे का प्रस्ताव मिला था।

अरहंत पद से मुक्त हो जाने के बाद

कैंकर (आसवा)।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने तब सोफे की पेशकश की;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह सोफे पर बैठने का फलदायी परिणाम है-

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

5,2. थेरा के एक गृहस्थ सहयोगी, कातियान नामक एक घुमंतू दार्शनिक (परिब्बाजक), बुद्ध के प्रकट होने (उप्पाद) के बाद से विधर्मियों के लाभ और मान-सम्मान (सक्कारा) पर भारी चोट पहुँचने के कारण, उन्हें भोजन और वस्त्र तक नहीं मिल पा रहे थे, इसलिए वे आजीवक तपस्वियों के समूह से अलग हो गए (अपकतो), थेरा के पास गए और उनसे पूछा: "आप सभी, अर्थात् शाक्यवंशी पुत्र, अत्यधिक लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; हम तो दरिद्र हैं और कठिन जीवन (किच्छ जीविका) व्यतीत करते हैं; वास्तव में, जो व्यक्ति उचित अभ्यास (पटिपज्जमान) करता है, उसे वर्तमान (दित्तधम्मिका) और भविष्य (संपरायिकञ्च) दोनों प्रकार के सुख कैसे प्राप्त होते हैं?" इस पर, थेरा ने "सुखं सुखत्थो लभते तदाचारं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। उन्होंने उस सुख की प्राप्ति की अवस्था को प्रकट करते हुए उनसे कहा: "स्पष्टीकरण के अभाव में (निप्परियायतो) सुख, अर्थात्, केवल दिव्य सुख (लोकउत्तरासुख) है; वह भी उस व्यक्ति का है जो उस सुख के अनुरूप उचित अभ्यास (पटिपत्ति) का उचित अभ्यास (पटिपज्जन्ता) करता है," उपदेश (परियायेन) के माध्यम से।

35. यहाँ सुखम् का अर्थ है; यहाँ इसका अर्थ है इंद्रिय सुखों से मुक्त सुख। इस सुख में श्रेष्ठ फल (फलसमापत्ति) और निर्वाण की उचित प्राप्ति भी शामिल है। इसी प्रकार, वास्तव में, यह कहा गया है: — "यह एकाग्रता (समाधि) ही सुख (सुखविपाको) है;" "निर्वाण सर्वोच्च (परमम्) सुख है।" सुखथो का अर्थ है: सुख का उद्देश्य (पयोजन); वह व्यक्ति जो उपर्युक्त सुख की इच्छा रखता है (अत्थिको)। लभते का अर्थ है वह प्राप्त करता है: यह सुख इच्छा रखने वाले का है; किसी और का नहीं। उन्होंने कहा: — "लेकिन इच्छा रखने वाला कौन है?" "तदाचारम्" का अर्थ है उस उद्देश्य के लिए स्वयं को संचालित करना; उस उचित प्राप्ति के लिए सहायक उचित अभ्यास (पटिपत्तिम्) का उचित अभ्यास (पटिपज्जन्तो) करना; यही अर्थ है। वह आचरण (आचार) केवल सुख ही नहीं देता; वास्तव में, कित्तिंच पप्पति का अर्थ है कि वह दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त करता है, जिसकी घोषणा उसके सामने (परममुखा) इस प्रकार की जाती है: — "इस प्रकार भी वह नैतिक उपदेशों से युक्त है; उसके शारीरिक और मौखिक कर्म सर्वथा अत्यंत शुद्ध हैं; उसकी आजीविका सर्वथा अत्यंत शुद्ध है; वह ध्यान का स्वामी है और ध्यान में लीन है (झानयुत्तो)।" यस'स वड्धते का अर्थ है: उसकी प्रसिद्धि, जिसे परिवार (परिचारक) के सौभाग्य (संपदा) के रूप में गिना जाता है। अब, सामान्य रूप से कहे जाने वाले अर्थ (सामञ्ञातो) को "तदाचारं (वह आचरण)" के रूप में स्पष्ट रूप से दर्शाने (सरूपतो) के लिए, उन्होंने इस प्रकार कहा:— "यो अरिवमत्थंगिकमञ्जसं उजुं, भावेति मग्गां अमतस्स पट्टिया।" इसका

अर्थ है:— यो का अर्थ है वह व्यक्ति जो सभी प्रकार की बुराइयों (किलेसा) से दूर (आरकत्ता) है, अपनी सर्वांगीण पवित्रता की भावना के कारण और उचित अभ्यास करने वालों (पटिपज्जन्त) की श्रेष्ठ अवस्था (अरियभाव) को बनाने की भावना के कारण, वह अरियम् है, एक श्रेष्ठ व्यक्ति; क्योंकि यह आठ ऐसे घटक भागों (अंग) की मात्रा (समुदय) है जो सही दृष्टिकोण (सम्मादिट्ठी) से शुरू होती है, इसलिए यह आठ गुना है: — अट्ठंगिकं; मध्य मार्ग (मज्झिमा) के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के कारण टेढ़ा न होने के अर्थ में, दो चरम सीमाओं (अंतद्वय) से बचकर (रहित) वह सीधा है; अंजसं, क्योंकि वह झुके हुए शरीर (कायवंक) से रहित है, और इसी प्रकार वह उजुं (सीधा) है; अपने स्वयं के (निया) सही मार्ग (मग्ग) के अर्थ में, जो लोग निर्वाण (निब्बानत्थिका) की इच्छा रखते हैं, और सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) का नाश करते हुए आगे बढ़ने के अर्थ में, "मग्ग" नाम प्राप्त होता है, जो दुख (दुक्खा) के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाला उचित मार्ग (पटिपदा) है; अमतस का अर्थ है; अजन्मे (असंखत) तत्व (धातु) का; पटिया का अर्थ है (अधिगम) की प्राप्ति के लिए; भावेति का अर्थ है वह अपने स्वयं के (सन्ताना) तंत्र में उत्तेजित (उप्पादेति) और विकसित (वड्ढेति) करता है; बिना किसी स्पष्टीकरण (निप्परियायेन) के उन्होंने कहा, "सुखत्थो तदा चरं (जो सुख की इच्छा रखता है, वह अभ्यास करे);" इसलिए, जैसा कहा गया है, उसे सुख प्राप्त होता है।यह सुनकर, परिब्जाक नामक भ्रमणशील दार्शनिक, जो धर्मपरायण था, भिक्षु बन गया, उचित विधि से साधना की, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। यह बात थेरा के अरहंत पद की व्याख्या (या भविष्यवाणी) भी बन गई।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा समाञ्चकानी का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(36): कुमा का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (36) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
36. कुमा का पुत्र
अवंती देश में, [1] वेलुकाण्ड नगर में एक गृहस्थ के परिवार में, बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम नंदा रखा गया। उनकी माता का नाम कुमा था, इसलिए वे कुमा के पुत्र के नाम से जाने जाते थे। आदरणीय सारिपुत्त का उपदेश सुनकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और सीमावर्ती पहाड़ियों की ढलानों पर अध्ययन किया; लेकिन बुद्ध का प्रवचन सुनने के बाद ही वे अपने अभ्यासों को इस प्रकार सुधार सके कि उन्हें अर्हतत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। अर्हत (ज्ञान प्राप्त) के रूप में उन्होंने देखा कि अन्य भिक्षु (भिक्षु) शारीरिक आवश्यकताओं में अतिभोग कर रहे थे, और उन्होंने उन्हें उपदेश देते हुए कहा:

[36] साधु सुतm साधु कारितकाm॥
साधु सदा अनिकेतविहारो॥
अत्थपुच्छनं पदक्खिनकम्माm॥
एतां समन्नमाकिंचनस्सा' ति.॥ ॥

[36] हे कितनी अच्छी बातें हैं जो अब हमारे कान सुनते हैं!
हे कितना अच्छा जीवन है जो हम यहाँ जी सकते हैं!
हे कितना अच्छा है कि हमारे पास घर नहीं है! [2] अब उच्च महत्व की बातों पर प्रश्न करते हुए,
अब सभी उचित धन्यवाद और श्रद्धा दिखाते हुए:

यही सच्चे भिक्षु का आह्वान है,
उसका जो किसी भी चीज का मालिक नहीं है।

[1] राइस डेविड्स द्वारा लिखित 'बुद्धिस्ट इंडिया' , पृष्ठ 8 एफ देखें । यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध के प्रमुख गृहस्थ अनुयायियों में से एक महिला थीं जिन्हें वेलुकांडियन या -कंटिकन कहा जाता था, जो नंदा की माता थीं। हालाँकि, यह संभवतः उत्तरा थीं; वह हमारी कुमा नहीं हो सकतीं, क्योंकि उन्हें प्रमुख थेरों को यह बताते हुए दर्शाया गया है कि उनके इकलौते बेटे नंदा को बचपन में ही राजाओं (राजानो) या कुलीन वर्ग द्वारा मार डाला गया था। नंदा एक सामान्य नाम था, और यह संभव है, यदि हम ऐसे सभी संदर्भों को विशुद्ध रूप से काल्पनिक मानकर जल्दबाजी न करें, कि पड़ोसियों के बीच एक सुविधाजनक भेद करने के लिए नंदा कुमापुत्त कहना उचित था। इसका संबंध बीना-विवाह वंश से हो सकता है (सांग्य., ii. 236; अंग., i. 26, 88, 164; iii. 336; iv. 63; और तुलना करें संवाद, i. 193, Ī 5)।

[2] सुत्त-निपाता, श्लोक 844 का संकेत। इस पर सांग्यी, iii. 9 ff. में चर्चा की गई है ; 'घर का अभाव' 'इंद्रिय सुखों और वस्तुओं में लीन न होने' का प्रतीक है।

1.4-6[36] श्लोक पर टिप्पणी

कुमापुत्त थेरा

साधुसुतं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुमापुत्त का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने के बाद, उन्होंने 91 युग पहले एक हिरण की खाल धारण करने वाले संन्यासी बन गए और बंधुमती नगर के राज उद्यान में निवास कर रहे थे, जब उन्होंने भगवान विपस्सी (बुद्ध) के दर्शन किए, वे पुण्यभाव से भर गए और उनके चरणों की मालिश के लिए तेल अर्पित किया (पादाभंजन)। इस पुण्य कर्म के कारण, उनका पुनर्जन्म देवलोक में हुआ। वहाँ से, उन्होंने कई जन्मों का चक्र पूरा किया और सुगति येव में, अवंती राज्य के वेलुकन्तक नगर में एक धनी गृहस्थ परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ, जब इस बुद्ध का उदय हुआ। उन्होंने उन्हें "नंदा" के नाम से जाना। उनकी माता का नाम कुमा था, इसलिए उन्हें कुमापुत्त कहा जाने लगा। पूज्य सारिपुत्त की उपस्थिति में धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, उन्होंने सुखद धार्मिकता प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन करने के बाद, भिक्षु के कर्तव्यों (समणधम्म) का पालन किया, और भेद प्राप्त करने में असमर्थ होने पर, भगवान बुद्ध के पास गए, सत्य (धम्म) सुना, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को शुद्ध किया, एक उपयुक्त स्थान (सप्पयट्ठान) पर निवास किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व की कल्पना (सच्चाकासि) की। अतः, अपदान में कहा गया है:—-

मैं शाही बगीचे में रहता था

बंधुमती नगर; मैं तब एक

चमड़ी (कम्मा) धारण करने वाला और वाहक

पानी के प्याले (कमण्डलु) का।

मैंने उस निर्मल (विमल) बुद्ध को देखा,

स्वयं निर्मित (सयम्भु) असंबद्ध-

विवादनीय (अपराजिता), जिसने निर्देशित किया था

उनका मन परिश्रमपूर्ण प्रयास (पधाना) की ओर लगा हुआ था।

ध्यान में प्रवेश किया, और जो निवास कर रहा था-

ध्यान में प्रसन्नता के साथ (वसिं)

रोगमुक्त (अनासव) को देखकर जो

जो बाढ़ (ओघा) पार कर चुके थे और जो

सभी मामलों में पूर्ण सिद्ध (समिद्धा)

आवश्यकताओं (काम) के कारण, मैं धार्मिक हो गया।

(पसंद) और प्रसन्न (सुमना) और

उन्होंने (उन्हें) मरहम (अब्बंजन) अर्पित किया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने मरहम चढ़ाया था; मुझे याद नहीं है

किसी भी प्रकार का बुरा अस्तित्व; यही उसका फल है।

मेरे द्वारा अर्पित मरहम का पूरा परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

6,2. हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, जब उनका सामना शारीरिक शक्ति (दाल्ह) की परिपूर्णता (बहुले) में भिक्षुओं (भिक्षुओं) से हुआ, तो उन्होंने “साधु सुतं साधु चरितकं” से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, उन्हें उपदेश देते हुए, व्यवस्था (शासन) के दुःख (निय्यानिका) से मुक्ति की सुगमता की स्थिति को प्रकट किया।

36. यहाँ, सादु (अच्छा) का अर्थ उत्कृष्ट (सुंदरं) है। सुतं (सुना) का अर्थ श्रवण (सवनं) है। यहाँ जिस श्रवण का तात्पर्य (अधिप्पेतं) है, वह है जो वास्तव में पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक है; यह उन दस मूलभूत शिक्षाओं (कथावत्थु) को सुनना है जो कम इच्छाओं (अप्पिच्छता) आदि से उचित रूप से संबंधित हैं। सादु चरितकं का अर्थ इस प्रकार है: — कम इच्छाओं आदि के उस अभ्यास का अभ्यास करना; वास्तव में, उसी अच्छे अभ्यास (चरित) को ही “चरितक (अभ्यास)” कहा गया है। दो शब्दों के माध्यम से, वे “सुंदरं (अच्छा)” के रूप में बहुत अधिक ज्ञान और उससे संबंधित उचित अभ्यास (पटिपत्ति) को भी इंगित करते हैं। सदा का अर्थ है हर समय, नवका अवस्था में, मध्यकालीन अवस्था में और वरिष्ठ अवस्था में; या फिर, सभी शारीरिक गतिविधियों के दौरान। अनिकेतविहार का अर्थ है: यह पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का निवास स्थान है क्योंकि यह विकृतियों (किलेसा) का निवास क्षेत्र है; या फिर, यह चिंतन के छह सांसारिक विषय (धम्म) हैं। तदनुसार (बुद्ध) ने ऐसा कहा:— “हे धनी गृहस्थ! वास्तव में, रूप (रूप) के चिन्ह (निमित्त) वाले निवास (निकेत) के व्यापक बंधन (विसाराविनीबंध) को 'निकेतसारी (गृह-भटकने वाला)' कहा जाता है, इत्यादि। उन घरों (निकेत) को त्यागने के लिए उचित अभ्यास (पटिपदा) गृहस्थ जीवन (अनिकेतविहारो) है। अत्थपुच्चनं का अर्थ है: किसी मित्र (कल्याणमित्त) के पास जाने के बाद, जो अच्छे कर्म (कुशल) इत्यादि या स्वाभाविक (सभाव) सत्य के लाभकारी अर्थ (अत्थ) के बारे में पूछना चाहता है, वर्तमान (दित्तधम्मिका) कल्याण (अत्थ), भविष्य (संपरायिक) कल्याण और परम (परम) कल्याण जैसे विभिन्न विषयों के बारे में पूछना। (धम्म) कहते हुए: “आदरणीय महोदय! अच्छा कर्म (कुसला) क्या है? निष्पाप (अनावज्जा) क्या है?” इत्यादि। पदक्खिण कम्मं का अर्थ यह है: यद्यपि यह प्रश्न पूछने के बाद, अपने उपदेश (ओवादा) पर आत्मनिर्णय (आशिष्ठान) और धार्मिक रूप से (सम्मा) उचित अभ्यास

(पटिपत्ति) किया जाता है। यहाँ भी, “साधु (अच्छा)” शब्द (पद) द्वारा व्याख्या की जानी चाहिए (योजेतब्बं)। एतं सामञ्ञं का अर्थ इस प्रकार है:— यही भिक्षुत्व (सामञ्ञं) है, यही भिक्षु होने की अवस्था (समणभावो) है, जो श्रवण (यंसुतं) है, जो अभ्यास (चरितं) भी है, जो फिर से गृहस्थ जीवन (अनिकेतविहारो) है, जो लाभकारी अर्थ (अत्थ) का प्रश्न पूछना (अत्थ) है, और जो कहे गए (वुत्तं) का सही ढंग से पालन करना (यञ्च पदक्खिण कम्म) भी है, जैसे “साधु सुतं (सुनना अच्छा है)” इत्यादि। क्योंकि इस उचित मार्ग या अभ्यास (पटिपदा) के माध्यम से ही भिक्षु होने की अवस्था (समणभाव) प्राप्त होती है, किसी अन्य तरीके से नहीं, इसलिए, “सामन्नं (भिक्षुत्व);” इस प्रकार,सही मार्ग (मग्गफल) के फल की प्राप्ति का विशेष शब्द (अधिवचन) स्पष्ट रूप से (निप्परियायतो) है। वैकल्पिक रूप से, यह उचित मार्ग (पटिपदा) है जो निश्चित रूप से सत्य (अपण्णक) है; ऐसे व्यक्ति को यह भिक्षुत्व (सामञ्ञ) उचित रूप से प्राप्त होता है (संभवति)। इसे दर्शाने के लिए कहा गया है: "स्किआचनस, एक चिंतामुक्त अरहंत का।" जो संचय नहीं करता (अपरिग्गहक), जिसका खेतों, हिरण्य और सुवण्य गुणों के सोने, पुरुष और स्त्री दासों आदि को हर तरफ से हड़पने (परिग्गह) और स्वीकार करने (पटिग्गह) से कोई संबंध नहीं है (रिहित); यही अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कुमापुत्त का

तैयार है।

*********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(37): कुमा के बेटे का मित्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (37) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
37. कुमा के पुत्र का मित्र
बुद्ध युग में वेलुकाण्ड नगर में एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर सुदंत नाम से जन्मे (कुछ लोग उन्हें वासुलोकी भी कहते हैं), वे कुमा के पुत्र के प्रिय मित्र बन गए। जब कुमा ने संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण किया, तो उन्होंने सोचा, 'कुमा के पुत्र ने जिस धर्म को अपनाया है, वह कोई साधारण धर्म नहीं है।' इसलिए वे भगवान (बुद्ध) का प्रवचन सुनने गए। इससे उनके मन में और भी तीव्र इच्छा जागृत हुई और उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश कर लिया। वे कुमा के पुत्र के साथ सीमावर्ती पहाड़ियों पर धार्मिक अनुष्ठानों में लीन होकर रहने लगे।

उस समय विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण कर रहे कई भिक्षु (साधु) आते-जाते उस स्थान पर ठहर गए, जिससे काफी शोरगुल हो गया। सुदंत की एकाग्रता भंग हो गई और उन्होंने अपनी इस विपत्ति को अपने विचारों को शांत करने का साधन बनाकर यह श्लोक कहा:

[37] नानाजनापदं यंति विकारान्तो असंन्याता॥
समाधिओ च विरोधेन्ति किसु रथचरीया करिस्सति॥
तस्मा विनेय्य सरंभं झायेय्य अपुरक्खतोऽ ति.॥॥

[37] वे अनेक क्षेत्रों में इधर-उधर भटकते रहते हैं, अपने
चक्करों पर मन की परवाह किए बिना, और
मन की उचित एकाग्रता में बाधक होते हैं। वास्तव में,
इस सारी आवारागर्दी से क्या होगा? इसलिए यह उचित है कि शोरगुल को शांत किया जाए, और जो प्रसन्नतापूर्वक ध्यान करना चाहता है उसे परेशान न किया जाए।

[1] रट्ठंचारिया, शाब्दिक अर्थ, राज्य-भ्रमण; हमारे 'विश्व भ्रमण' का एक बुरा पूर्ववर्ती नहीं है। यह एक भिक्षु के कर्तव्यों का हिस्सा था, हालाँकि इसका दुरुपयोग या - कम से कम, जैसा कि यहाँ है - कुप्रबंधन होने की संभावना थी। रट्ठं शब्द छंद की दृष्टि से अनावश्यक है, लेकिन लय में गड़बड़ी जानबूझकर हो सकती है।

1.3-7[37] श्लोक पर टिप्पणी

कुमापुत्तसहायत्तरा
7.1. 'नाना जनपदं यंति' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुमापुत्तसहाय का है। इसका उद्‌गम क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए अच्छे कर्म संचित किए, जिससे उन्हें इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। आज से चौरानवे युग पहले, प्रतापी सिद्धार्थ के समय में, उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ। ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर, वे वन में गए, पेड़ों की कई डालियाँ और शाखाएँ काटीं, उनसे चलने की छड़ें (कत्तरयट्ठी) बनाईं और उन्हें भिक्षुओं के संगठन को भेंट कर दिया। अपनी संपत्ति के अनुसार अन्य पुण्य कर्म करने के कारण (यथा विभव), उनका पुनर्जन्म देवताओं के बीच हुआ और तब से वे उत्तम स्वरूप में (परिबत्तन्तो) चारों ओर विचरण करते रहे और वेलुकन्तक नगर में एक समृद्ध (इद्ध) परिवार में पुनर्जन्म लेकर इस बुद्ध के जन्म के समय प्रकट हुए। उनका नाम सुदंत था। कुछ लोग कहते हैं कि उनका नाम "वासुला" था। वे कुमापुत्त के साथी हिरण थे और जब वे घूम रहे थे तो उन्हें पता चला कि कुमापुत्त भिक्षु बन गए हैं और उन्होंने मन ही मन कहा, "निःसंदेह, वह आध्यात्मिक साधना (धम्मविनय), जिसमें कुमापुत्त भिक्षु बने हैं, किसी से कम नहीं है।" अपने साथी का अनुसरण करते हुए, वे स्वयं भी भिक्षु बनने की इच्छा रखने लगे और गुरु के समक्ष उपस्थित हुए। गुरु ने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उनकी भिक्षु बनने की इच्छा और भी प्रबल हो गई, वे भिक्षु बन गए और कुमापुत्त के साथ एक पहाड़ी के चारों ओर स्थित परियंत पब्बत में ध्यान (भावना) के विकास में लीन होकर रहने लगे। उस समय भी, कई भिक्षु विभिन्न क्षेत्रों (जनपद) में भ्रमण करते हुए उस स्थान के पास से गुजरे, जब वे यात्रा पर निकले और जब वे यात्रा से लौटे। इसी कारण वहाँ कोलाहल (अप्रलय) मच गया। यह देखकर थेरा सुदंता को पश्चाताप हुआ और उन्होंने मन ही मन कहा: "ये भिक्षु, बार-बार जन्म लेने से मुक्ति दिलाने वाली व्यवस्था (शासन) में भिक्षु बनकर, अपने क्षेत्रीय चिंतन (जनपद वितक्क) में लिप्त होकर, अपनी एकाग्रता (चित्तसमाधि) से वंचित रह जाते हैं।" उसी पश्चाताप को अपने मन को वश में करने के लिए मार्गदर्शक (अंकुसा) बनाकर, उन्होंने "नानाजनपदं यंति" श्लोक का उच्चारण किया।

31. वहाँ, नाना जनपदं का अर्थ है: विभिन्न संप्रदायों के जिले अलग-अलग और व्यक्तिगत रूप से (विसुं विसुं); काशी, कोसल आदि से मिलकर बने अनेक राज्य; यही अर्थ है। यन्ति का अर्थ है वे जाते हैं। विकारन्ता का अर्थ है: जिलों के भ्रमण पर भटकना, इस प्रकार के चिंतित विचारों (वितक्का) में लीन रहना: "क्या अमुक जिले में भोजन की पर्याप्त व्यवस्था है?; क्या वहाँ भिक्षा आसानी से उपलब्ध है? क्या अमुक जिला सुरक्षित और रोगमुक्त है?" इत्यादि। असञ्ञता का अर्थ है मानसिक रूप से अनियंत्रित होना, क्योंकि जिलों के बारे में मन की उसी व्यस्तता (वितक्का) को त्याग नहीं पाया है। समाधिं च विराधेन्ति का अर्थ है; वे दीक्षा (उपचार) और समाप्ति (अपना) दोनों प्रकार की समाधि (समाधि) से वंचित रह जाते हैं, जो सभी पारलौकिक सत्यों (उत्तरिमनुस्सधम्म) का मूल आधार है। व्याकरणिक अक्षर 'च' का अर्थ है धारणा या अनुमान (संभावना)। वे ध्यान (झायितु) करने के अवसर न मिलने के कारण उस समाधि (समाधि) से वंचित रह जाते हैं, क्योंकि वे विभिन्न क्षेत्रों में भटकते रहते हैं। इस कारण वे अधिगत (अधिगत) पर महारत (वसीभावनापदानेन) प्राप्त किए बिना ही बूढ़े होने लगते हैं। 'किं सु रट्ठचरिया करिस्सति' का अर्थ है: सु का अर्थ है एक अविकारी कण (निपात)। वह निंदा करते हुए कहते हैं: "ये विभिन्न क्षेत्रों में घूमने वाले, राज्य के आचरण (रट्ठचरिया) करने वाले भिक्षु क्या करेंगे? उन्हें इससे क्या लाभ होगा? यह तो सरासर लाभहीन है।" तस्मा का अर्थ है: क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में घूमना (देसंतरचरिया) भिक्षु के कल्याण (अत्थवहा) के लिए अनुकूल नहीं है; दूसरी ओर, वास्तव में (अपि च खो), क्योंकि वह सभी प्रकार की समृद्धि (संपत्तिनं विराधनतो) से वंचित है, यह उसके हित (अनत्थवहा) के लिए हानिकारक है; इसलिए। विनेय्य सारम्भं का अर्थ है: निवास स्थान में उत्पन्न मानसिक विकृति (चित्तसमकिलेसं) के क्रोध (सारम्भं) को, जो कि अप्रसन्नता (आरति) के रूप में प्रकट होता है, उचित (तदनुरूप) सावधानीपूर्वक विचार (पटिसंखाना) द्वारा दूर (विनत्वा) और शांत (वूपसमेत्वा) करना। झाय्य का अर्थ है: दो प्रकार के ध्यान से ध्यान करना चाहिए: (1) इंद्रिय-विषय (आरम्मण) पर चिंतन (उपनिज्जान) और (2) गुणों (लक्खण) पर चिंतन। अपुरक्खतो का अर्थ इस प्रकार है:— न तो बुरे विचारों (मिच्छावितक्क) और न ही तृष्णा (तन्हा) आदि से प्रेरित होकर (पुरक्खतो); अतः, उनके निर्देशों का पालन किए बिना (वसं) व्यक्ति को केवल अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए; यही इसका अर्थ है। यद्यपि, इस प्रकार कहने के बाद, थेरा ने उसी पश्चाताप (संवेग) को अपना मार्गदर्शक (अंकुसा) बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

जंगल में प्रवेश करने के बाद और

मैंने बांस काटा, फिर कई सहारे बनाए।

(आलंबन) और उन्हें अर्पित किया

भिक्षुओं का संगठन।

सदाचारी लोगों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

(सुब्बाटा) और समर्थन की पेशकश करने के बाद

मैं उत्तर दिशा की ओर मुख करके उनके पास से चला गया।

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जबकि मैंने उन्हें छड़ें भेंट कीं: मैं करता हूँ

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

दंडदान (डंडदान) का फल।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

31,7. इस थेरा ने अपने हृदय में उस परिस्थिति (अत्थ) को संजोकर रखा, जिसने उन्हें अरहंतत्व प्राप्त करने में लाभकारी मार्गदर्शक शक्ति प्रदान की, और अरहंतत्व प्राप्त करने के बावजूद, उन्होंने "नाना जनपदं यन्ति" से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। अत:, वही श्लोक उनके अरहंतत्व (अञ्ञा) का स्पष्टीकरण (व्याकरणं) बन गया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कुमापुत्तशय का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(38):गवमपति

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (38) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
38. गवमपति

उनका पुनर्जन्म इस बुद्ध युग में थेरा यासा के चार गृहस्थ साथियों में से एक के रूप में हुआ, जिन्होंने यासा के त्याग के बारे में सुनकर उनका अनुकरण किया और अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। [1] इसके बाद वे साकेता के अंजन वन में रहने लगे और [43] निर्वाण के आनंद का अनुभव किया। उस समय भगवान बुद्ध भी भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ अंजन वन में आए, और आवास अपर्याप्त था, इसलिए कई भिक्षु सरभू नदी के रेतीले किनारों पर विहार के आसपास सो गए। [2] फिर आधी रात को नदी में बाढ़ आ गई और युवा भिक्षुओं में से एक बड़ा विलाप सुनाई दिया। यह सुनकर परम पूज्य बुद्ध ने आदरणीय गवमपति को बुलवाया और कहा: 'हे गवमपति, उफनती धारा को रोकिए और भिक्षुओं को शांति प्रदान कीजिए।' थेरा ने अपनी रहस्यमयी शक्ति से ऐसा ही किया और धारा को दूर रोक दिया, जिससे वह पर्वत शिखर की तरह खड़ी हो गई। तब से थेरा की शक्ति प्रसिद्ध हो गई। एक दिन जब भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा के बीच उपदेश दे रहे थे, तब उन्होंने गवमपति को देखा और संसार पर दया करते हुए उनके गुणों की प्रशंसा इस श्लोक में की:

[38] यो इद्धिया सरभूm1 अथपेसी॥
सो गवमपति असितो अनेजो॥
तं सब्बासंगतिगतं महामुनि॥
देवा नमस्सांति भावस्स परागुं ति.॥ ॥

[38] जिसने अपनी शक्ति से [3] सरभू को उठाया, जो आत्मनिर्भर और अविचल है,
जिसने हर बंधन को पार कर लिया है, गवमपति,
हे महान द्रष्टा, स्वयं देवता उसकी स्तुति करते हैं,
पुनर्जन्म से परे। [4]

[1] विनय ग्रंथ देखें, i. 110, और नीचे, CXXXII। गवाम्पति पर. संवाद भी देखें , ii. 373; साओय., वी. 436 ; कथावत्थु, पृ. 220.

[2] अयोध्या का वर्तमान शहर उस स्थान के एक कोने पर स्थित है जहाँ कभी बनारस से लगभग 100 मील उत्तर-उत्तर-पूर्व में स्थित साकेत का महान शहर हुआ करता था, जिसकी परिधि 24 मील थी। सरभू या सरयू नदी इससे होकर गंगा की सहायक नदी घरघरा में बहती है। देखें XXVIII.

[3] टीका में इद्दिया के बजाय वदन्ति (वे कहते हैं) लिखा है।

[4] भवास्स पारगुंग। गाथा का पूर्व आधा भाग त्रिष्टुभ का है, पश्चात भाग जगती छंद का है।

1.3-8[38] श्लोक पर टिप्पणी

गवमपतिथेरा
8.1. यो इद्धिया सरभुं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गवमपति का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, भगवान सिखि के दर्शन किए, वे श्रद्धावान हो गए और उन्हें पुष्प अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे दिव्य लोक में अवतरित हुए और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए उन्होंने कोणागमना मंदिर में एक छत्र और एक रेलिंग (वेदिका) बनवाई। उनका पुनर्जन्म तेजस्वी कस्सपा के समय एक परिवार में हुआ। उस परिवार में भी कई बैल-पालक (गोमंडल) थे। ग्वाले उनकी देखभाल करते थे। वे समय-समय पर वहाँ भ्रमण करते हुए खोजबीन (विचारेंतो) में लीन (युत्तपयुत्तं) रहते थे। एक रोगमुक्त अरहंत को गाँव में भिक्षा मांगने के बाद गाँव के बाहर एक निश्चित स्थान पर प्रतिदिन भोजन कराते देखकर, उन्होंने मन ही मन सोचा, "भगवान सूर्य की गर्मी से थक गए होंगे," और चार बबूल के वृक्ष स्थापित करवाए, उनके ऊपर बबूल की शाखाएँ रखीं, शाखाओं का एक मंडप बनाया और उसे अर्पित किया। कुछ लोग यह भी कहते हैं: "उन्होंने मंडप के पास एक बबूल का वृक्ष लगाया।" उन पर दया करके, थेरा प्रतिदिन वहाँ बैठ जाते थे। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे वहाँ से चले गए और चार महान दिव्य राजाओं के बीच स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। उनके स्वर्गलोक के द्वार पर एक विशाल बबूल का वृक्ष उग आया, जो उनके पूर्व कर्म का प्रतीक था, और सुंदर रंग और मीठी सुगंध से परिपूर्ण था, जो हमेशा अन्य फूलों को भी मात देता था। इसी कारण उस महल को "सेरिसाका" (बबूल) के नाम से जाना जाने लगा। वह दिव्य युवक दो बुद्धों के अंतराल (एकं बुद्धन्तरं) तक देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार जन्मों का भ्रमण करता रहा, और जब थेरा यासा, जिन्हें गवम्पति के नाम से जाना जाता था, प्रकट हुए, तो वह उनके चार गृहस्थ साथियों (गिहिसहाय) में से एक बन गया। जब उसे पता चला कि पूज्य थेरा यासा भिक्षु बन गए हैं, तो वह अपने साथियों के

साथ भगवान बुद्ध के पास गया। गुरु ने उसे सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उपदेश के अंत में, वह अपने साथियों के साथ अरहंत बन गया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:

मैं पहले एक शिकारी था।

जो जंगल में इधर-उधर भटकता रहता था।

वहाँ मैंने निर्रचित बुद्ध प्रतिमा देखी।

अत्यंत कुशल व्यक्ति-

समस्त धर्मों की संतान।

हृदय से पवित्र और मन से प्रसन्न,

मैंने श्रद्धापूर्वक त्रुटिहीन पेशकश की

उस अत्यंत दयालु को फूल।

जो लोगों के कल्याण में आनंद लेते थे

सभी जीवित प्राणी।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने विशेष श्रद्धा प्रकट की है-

फूलों की विशेष भेंट।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

8.2. अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, थेरा ने मुक्ति के आनंद का पूर्णतः अनुभव करते हुए, साकेता में अंजना वन (घने काले रंग का वन) में निवास किया। उस अवसर पर, भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ साकेता गए और घने वन (अंजनावन) में रहने लगे। वहाँ बैठने और सोने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। कई भिक्षु (भिक्षु) अपने मठ के किनारे बहने वाली सरभु नदी के रेतीले किनारे पर सोए। फिर, आधी रात को, जब नदी में बाढ़ आई, तो नौसिखिए और अन्य लोग बहुत शोर मचाने लगे। यह जानकर भगवान बुद्ध ने पूज्य गवम्पति को आदेश दिया: "हे गवम्पति! जलप्रलय (जलोघं) को नष्ट करके भिक्षुओं का जीवन सुखमय (फासु) बनाइए।" थेरा ने उत्तर दिया: "बहुत अच्छा, पूज्यवर!" और अपनी जादुई शक्तियों के बल पर उन्होंने नदी के प्रवाह को रोक दिया (नदीसोतं विक्खम्भी); वह नदी-धारा दूर से किसी पर्वत शिखर के समान प्रतीत होने लगी। तब से थेरा की शक्ति संसार में प्रकट हो उठी (पाकट)। बाद में, एक

दिन, गुरु ने थेरा को दिव्य प्राणियों की एक विशाल सभा में बैठकर सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए देखकर, संसार के प्रति करुणावश उनके गुणों को स्पष्ट करने के लिए उनकी स्तुति में "यो इद्धिया सरभूं" से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा।

38. वहाँ, इद्धिया का अर्थ है दृढ़ संकल्प के साथ जादुई शक्तियों द्वारा। सरभूम का अर्थ है: उस प्रकार से नामित नदी; वह नदी जिसे संसार में "सरभू" कहते हैं। अट्ठपेसी का अर्थ है: (थेरा) पर्वत शिखर के समान ऊँचा जल का ढेर बनाकर, धारा को पीछे हटाकर, उसे आगे बढ़ने से रोककर रखा गया है। असितो का अर्थ है: अनासक्त, आसक्ति रहित (नासितो); लालसा (तन्हा) और गलत दृष्टिकोण (दिट्ठी) पर निर्भरता से रहित; या किसी भी बंधन (बंधन) से बंधा हुआ नहीं (अबाद्धो), क्योंकि उसने सभी बंधनों (संयोजन) को पूरी तरह से काट दिया है (समुच्चिन्न)। इसके बाद भी, विचलित करने वाले (एजा) दुराचार (किलेसा) के अभाव के कारण, अनेजो सो गवमपति, कि थेरा गवमपति भावहीन और शांत हैं; तं सब्बासंगतिगतं का अर्थ है: वह जो सभी आसक्तियों (संग) से मुक्त (अतिगत) हो गया है, क्योंकि वह स्थापित (ठित) हो गया है, कामवासना (राग), घृणा (दोष), मोह (मोह), अभिमान (मान), विधर्म (दिट्ठी) जैसी सभी आसक्तियों से परे (अतिक्कमित्वा) चला गया है; जो महामुनि (महान ऋषि) है, क्योंकि वह शिक्षार्थी के बाद का (असेक्खा) ऋषि (मुनि) है; इसके अलावा, जो व्यक्ति भावस पारगुं (अस्तित्व के पराक्रम को पार कर चुका) है, वह भी निर्वाण को प्राप्त कर चुका है, जो संपूर्ण अस्तित्व का पराक्रम है, जिसे इंद्रियजन्य, कर्मजन्य (कर्म) अस्तित्व आदि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। देव नमस्सन्ती (दिव्य प्राणी) उनकी आराधना करते हैं; यहां तक कि दिव्य प्राणी भी उनकी पूजा करते हैं; और अन्य जीव भी।

38,1. श्लोक के अंतिम छोर पर जनसमूह के लिए सत्य (धम्म) की स्पष्ट समझ (अभिसामय) थी। थेरा ने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए "सत्थारं पूजस्सामि" से शुरू होने वाले इसी श्लोक का उच्चारण किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा गवमपति के

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(39):तिस्सा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (39) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
39. टिस्सा
उनका जन्म इसी बुद्ध युग में कपिलवस्तु में बुद्ध की मौसी के पुत्र के रूप में हुआ था और उनका नाम तिस्सा रखा गया था। [1] उन्होंने परम पूज्य (बुद्ध) का अनुसरण करने के लिए संसार त्याग दिया और एक वन बस्ती में रहते हुए, अपने पद के कारण अभिमानी हो गए, [44] चिड़चिड़े और आलोचनात्मक स्वभाव के कारण वे अपने कर्तव्यों का उत्साहपूर्वक पालन नहीं करते थे। तब एक दिन दोपहर में जब वे खुले मुँह सो रहे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने दूर से दिव्य दृष्टि से उन्हें देखते हुए, एक तेजस्वी दिव्य स्वरूप के रूप में उनके ऊपर प्रकट होकर उन पर कृपा बरसाई और उन्हें इन शब्दों से जगाया:

[39] सत्तिया विया ओमाथो दयहामानोऽव मत्थके॥
कामरागप्पाहनाय सातो भिक्खु परिब्बजे' ति.॥॥

[39] जैसे कोई आसन्न तलवार से घायल होकर गिर जाता है,
जैसे किसी के बाल और पगड़ी जल उठते हैं, [2] वैसे ही भिक्षु, सचेत और सतर्क होकर,

सभी सांसारिक भावनाओं को पीछे छोड़कर आगे बढ़े।

जब थेरा ने यह सुना, तो उनका हृदय व्यथा से भर गया और वे अंतर्दृष्टि में लीन हो गए। यह देखकर, भगवान (बुद्ध) ने उन्हें 'थेरा तिस्सा का सूत्र' सिखाया, जो संयुत्त संग्रह में है। [3] इसके अंत में तिस्सा ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। और ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करने और भगवान (बुद्ध) का सम्मान करने के लिए, उन्होंने उसी श्लोक का उच्चारण किया।

[1] अर्थात, अमाता (अमृता) का पुत्र, शुद्धोदन की बहन।

[2] इस रूपक पर, सिस्टर्स, पृष्ठ 172, श्लोक 7 देखें। टीका में विभिन्न तलवार के घावों पर एक टिप्पणी है, लेकिन नैतिक शिक्षा बस तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है, चाहे वह उपचार के लिए हो या बुझाने के लिए। श्लोक 1, 162 f देखें।

[3] संग्य., iii. 106. तिस्सा भिक्षुओं के समक्ष अपनी मानसिक सुस्ती और धर्म के प्रति अरुचि स्वीकार करता है। वे उसे भगवान (बुद्ध) के पास ले जाते हैं। प्रवचन, उपदेश सहित, उपरोक्त के अनुरूप है। धम्मपद कॉमी (i. 37) में उसे थुल्ला-तिस्सा (फत तिस्सा) कहा गया है। तुलना करें संग्य., i. 13.

1.4-9[39] श्लोक पर टिप्पणी

टिस्सा थेरा
9.1. 'सत्तिया विय ओमत्तो' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा तिस्सा का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों को संचित करने के बाद, उन्होंने भगवान तिस्सा के बोधि वृक्ष की पुरानी पत्तियों को हटाकर उसकी जड़ साफ की। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कपिलवस्तु नगर में भगवान तिस्सा की बुआ (पितुच्छा) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उन्होंने भगवान बुद्ध से दीक्षा लेकर भिक्षु बनने का निश्चय किया, पूर्णतः दीक्षा ग्रहण की (उपसम्पन्नो), वन क्षेत्र में निवास किया, अपने उच्च जन्म पर अहंकारी (पटिच्च) हो गए और क्रोध, अशांति और अत्यधिक अपराधबोध से ग्रस्त होकर इधर-उधर भटकते रहे; उन्होंने भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करने का कोई प्रयास नहीं किया (समणधम्म)। फिर एक दिन, गुरु ने अपनी दिव्य दृष्टि से उन्हें उस स्थान पर मुख खुले हुए सोते हुए देखा (ओलोकेन्टो), जहाँ वे दिन में निवास करते थे (दिवाठान), श्रावस्ती से आकाश में आए, उनके ऊपर खड़े हुए, आकाश में अपनी प्रकाश किरण से उसे व्याप्त किया, उस प्रकाश किरण के माध्यम से उनकी बुद्ध की ओर जागरूकता जगाई (पटिबुद्धस्स) और उन्हें उपदेश देते हुए "सत्तिया विय ओमत्थो" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला।

39. वहाँ सात्तिया का अर्थ इस प्रकार है:— यह शब्द निर्देश (देसन) का शीर्षक है; धार (धार) को एक साथ (एकतो) आदि, चाकू जैसे हथियार से धारण करने के साथ; यही इसका अर्थ है। ओमाठो का अर्थ है प्रहार (पहटो)। वास्तव में, प्रहार या चोट (पहड़ा) के चार रूप हैं: - ओमाठो (नीचे से मारना), उम्मठो (ऊपर की ओर प्रहार), मठठो (चोट) और विमठो (विभिन्न प्रकार की चोटें)। वहाँ, ऊपर खड़े होकर, चेहरा नीचे की ओर करके दी गई चोट को नीचे की ओर मुख करके दी गई चोट (ओमाठ) कहा जाता है; नीचे खड़े होकर, ऊपर की ओर मुख करके दी गई चोट को ऊपर की ओर मुख करके दी गई चोट (उम्मठ) कहा जाता है; वह प्रहार जो आर-पार छेद कर गया (विनिविज्झित्वा), जैसे सुई (अग्गल-सूचि) उसे प्रहार (मठ) कहा जाता है; बाकी सभी प्रहारों को भी विभिन्न प्रकार के प्रहार (विमठो) कहा जाता है। इस संदर्भ में (ठाण), नीचे की ओर दिया गया प्रहार (ओमठो) ही प्रभावी माना गया है। वास्तव में, वह पूरी तरह से गंभीर (दारुणो) था, उसके शरीर में एक तीर लगा था जिसे निकालना मुश्किल था (दुरुद्धरणसल्लो), उसका इलाज करना मुश्किल था (दुत्तिकिच्को), वह आंतरिक रूप से दोषपूर्ण (अन्तोदोसो) था और उसके अंदर केवल मवाद और (खराब) रक्त भरा हुआ था (अन्तोपुब्बलोहितो); मवाद से बना रक्त बाहर नहीं निकला बल्कि घाव को घेरे रहा (वनमुख)। जो लोग मवाद से भरा रक्त निकालना चाहते हैं (निहारितुकाम), उन्हें रोगी को पलंग के साथ बांधकर सिर नीचे की ओर (अधोसितो) लिटा देना चाहिए। रोगी या तो मृत्यु के रूप में या उस हद तक कष्ट भोगते हैं। दैहमाने का अर्थ है आग से जल जाना। मत्थके का अर्थ है सिर पर। यही कहा गया है:— जिस प्रकार चाकू से घायल व्यक्ति (सत्ति) नीचे की ओर मुंह करके (ओमत्तो) तीर निकालने (सल्लुब्बाहन) और अपने घाव को भरने (गणतिकिच्चन) के लिए प्रयास करता है, वैसी तैयारी (पयोग) करता है, अपना प्रयास (परक्कमति) लगाता है; जिस प्रकार सिर जलने से पीड़ित व्यक्ति उस आग को बुझाने के लिए प्रयास करता है, उसी प्रकार का उपक्रम (पयोग) करता है (तादिसं), ठीक उसी प्रकार एक भिक्षु को सजग (सतो), परिश्रमपूर्वक (अप्पमत्तो) और कामुक वासना (कामराग) से मुक्ति पाने के लिए अत्यधिक ऊर्जावान होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए।

39.1. इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने उस थेरा को उनके क्रोध और अशांति (उपायसा) को शांत करने के लिए उपदेश देते हुए, उनके एकांत में रहने के दौरान कामवासनाओं के त्याग (सीसेन) के विषय पर अपना उपदेश (देशनं) पूरा किया। इस श्लोक को सुनकर, थेरा हृदय से दुखी हुए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विप्पसन) विकसित करने में तल्लीन (युत्तपयुत्तो) हो गए। उनकी प्रवृत्ति (अज्जासय) को समझकर, गुरु ने संयुक्तक में तिसत्थेरासुत्त का उपदेश (देसेसि) दिया। अतः, अपदान में कहा गया है:—

दोनों प्रकार के आनंद (यसा) का अनुभव करने के बाद

दिव्य जगत में और साथ ही मानवीय जगत में, मैं

उन्होंने अतुलनीय, शीतल निर्वाण प्राप्त किया।

अंत में भी।

वास्तव में, क्या हासिल करना मुश्किल है?

एक ऐसा व्यक्ति जिसने योग्यता और सम्मान उत्पन्न किया (पासवी)।

उस गुरु के बोधि वृक्ष की पूजा करने के बाद

इसे विशेष रूप से आवंटित करके (उद्दिसित्वाना)

स्वयंजागृत बुद्ध (स्वयं) को।

मैं आसव दोषों से मुक्त हूँ।

श्रेष्ठता प्राप्त कर निर्वाण में प्रवेश करना

(अधिको) दूसरों को अधिकार प्राप्त करने में सहायता करना

महान मार्ग (मग्गा), इसकी सफलता,

पिटकों को याद करने की क्षमता (आगमे)

साथ ही ध्यान और जैसे गुणों में भी।

उच्चतर ज्ञान (अभिञ्ञा)।

पहले मेरा मन आनंद से भरा रहता था।

(साफ़ किए हुए) सूखे पत्तों को फेंक दिया।

बोधि वृक्ष। (परिणामस्वरूप) मैं बन गया

हर तरह से इन गुणों से संपन्न

बीस गुण (अंग)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

39,2. हालाँकि अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने गुरु का आदर करने के लिए उसी श्लोक का उच्चारण किया, जिससे उनका अरहंत पद (अञ्ञा) प्रकट हुआ।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा टिस्सा का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(40):वद्धमना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (40) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
40. वड्ढमना
बुद्ध युग में वैशाली में एक लिच्छवी राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, वे एक धर्मनिष्ठ बालक के रूप में भिक्षु संघ के सेवक बन गए। बाद में, भिक्षु दीक्षा प्राप्त करने के बाद, वे भी आलस्य और सुस्ती के शिकार हो गए, और भगवान (बुद्ध) ने उन्हें इस श्लोक से जागृत किया:

[40] सत्तिया विया ओमाथो दैहमानोऽव मत्थके॥
भवरागप्पाहनाय सातो भिक्खु परिब्बजे' ति.॥॥

[40] जैसे कोई आसन्न तलवार से ग्रस्त हो,
जैसे किसी के बाल और पगड़ी जल रहे हों,
वैसे ही भिक्षु सचेत और सतर्क होकर
आगे बढ़े, जीवन की सभी वासनाओं को पीछे छोड़ते हुए। [1]

[1] शाब्दिक रूप से, बनने का। satto के लिए sato पढ़ें ।

1.4-10[40] श्लोक पर टिप्पणी

वड्ढमना थेरा
10.1. 'सत्तिया विय ओमत्तो' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वद्धमान का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने के बाद, उन्होंने बानवे युग (कप्पा) पहले भगवान तिस्सा के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया और बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने भगवान तिस्सा को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे पुण्यभाव से भर गए और उन्हें टहनियों से तोड़े गए अच्छे पके आम (वण्णतो) भेंट किए। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया और समय-समय पर पुण्य कर्मों को संचित करते हुए, वैशाली के लिच्छवी के राजपरिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का उदय हुआ। उनका नाम वद्धमान था। वयस्क होने पर, वे परम

श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण दाता बन गए, दान देने में आनंद लेते थे और कर्म करने वाले के रूप में पुरोहितों की सेवा करते थे। जब गुरु द्वारा भिक्षापात्र को उलट देने जैसा अपराध किया गया, तो उन्होंने विनम्रतापूर्वक पुरोहितों से क्षमा मांगी, मानो वे आग पर चल रहे हों, अपने किए पर क्षमा प्राप्त की, पश्चाताप किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। हालांकि, भिक्षु बनने के बाद वे आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त रहने लगे। उन्हें पश्चाताप कराने के लिए गुरु ने "सत्तिया विय ओमत्तो" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला।

40. वहाँ, भवरागप्पहानाय का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: — अस्तित्व (भव) से आसक्ति (राग), भौतिक रूप (रूप) से आसक्ति (रूप) और निराकार (अरूप) से आसक्ति का त्याग करने के उद्देश्य से। बाह्य बंधनों (बहिद्ध संयोजन) को त्यागे बिना आंतरिक बंधनों (अज्जत्त संयोजन) का त्याग (पहान) संभव नहीं है, यदि ऐसा ही हो (यदि पि); हालाँकि, किसी भी मध्यस्थ (नानंतरिका) के अभाव में, ऊपरी भाग (उद्धम्भागीय) से संबंधित बंधनों को त्यागने का अर्थ निचले भाग से संबंधित बंधनों को भी त्यागने के समान है। वैकल्पिक रूप से, चूंकि यह संभव हो सकता है कि उच्चतर भाग के बंधनों को तोड़ना उन श्रेष्ठ आत्माओं के लिए कठिन हो जो निम्नतर भाग के सभी बंधनों को स्वयं काट चुकी हों। इसलिए, सहज त्याग के दृष्टिकोण से त्याग की उसी कठिनाई को दर्शाने के लिए, भगवान बुद्ध ने अस्तित्व से आसक्ति (भवराग) को त्यागने के शीर्षक (सीस) के साथ उच्चतर भाग के सभी बंधनों को भी त्यागने के बारे में बात की। वैकल्पिक रूप से (वा), यह बात थेरा की प्रवृत्ति (अज्जासय) के अनुसार इस प्रकार कही गई है। शेष उसी प्रकार है जैसा कहा गया है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वड्डमना का

तैयार है।

चौथे पर टिप्पणी

अध्याय आ गया है

एक समाप्ति के लिए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(41):सिरीवड्ढ

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (41) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
41. सिरिवाढ
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक समृद्ध ब्राह्मण (पुजारी) के घर हुआ। पूर्व कारणों से प्रेरित होकर, जब राजा बिम्बिसार की मुलाकात भगवान (बुद्ध) से हुई, तो उन्होंने भिक्षु बनने का निश्चय किया और वे वेभार और पांडव पहाड़ियों के निकट एक वन में जाकर धार्मिक साधना में लीन हो गए। एक बार भयंकर तूफान आया और बिजली गुफा में घुस गई। लेकिन घने बादलों से आती हवा ने थेरा को परेशान कर रही गर्मी और बुखार को शांत कर दिया, जिससे अनुकूल तापमान के कारण उनका मन एकाग्र हो गया और वे ऐसी अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में सक्षम हुए कि उन्हें अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हो गया। अतः उन्होंने ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) का बहाना बनाकर अपने विषय में यह वाणी कही:

[41] विवरमनुपतन्ति विज्जुता वेभारस्सा च पाण्डवस्सा च॥
नागविवारागतो च झायति पुत्तो अप्पतिमस्सा ताडिनो' ति.॥ ॥

[41] चट्टानी गुफा में भी बिजली चमकती है,
वेभारा की चोटी और पांडव पर प्रहार करती है, [1] और, पर्वत की गोद में छिपा हुआ,
उस अतुलनीय भगवान (बुद्ध) का एक बच्चा
ध्यानमग्न परमानंद (समाधि/समाधि) में बैठा है।

[1] राजगृह (राजगीर) के ऊपर उठने वाली पर्वत श्रृंखलाओं में से दो शिखर। पूर्व में स्थित बैभारा या वैभारा (चित्र देखें) [संपादक?] के रूप में इसका पुराना नाम प्रचलित है। अंतिम पंक्ति में एक शब्द ' झायति' का विस्तार किया गया है, जिसका पाली भाषा में अर्थ 'जलना' और 'ध्यान में लीन होना' दोनों है । श्लोक 1, 167 देखें ।

1.5 पांचवां अध्याय

1.5-1[41] श्लोक पर टिप्पणी

सिरिवाड्ड थेरा
1.1. विवरणमनुपतन्ति विज्जुत से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सिरिवड्ढ का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, इनका जन्म भगवान विपस्सी के समय, आज से 91 युग (कप्पा) पहले एक परिवार में हुआ था। जब उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, तो उन्होंने देखा कि भगवान विपस्सी ने किंकणिका पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ और पुण्य कर्म करते हुए, वे समय-समय पर अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में भटकते रहे, परन्तु उत्तम देहों (सुगति) में, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका जन्म राजगृह में एक धनी ब्राह्मण के घर में हुआ। उनका नाम सिरिवड्ढा था। वयस्क होने पर, बिम्बिसार की राजसभा और गुरु तथा उनके उत्तम धर्म के प्रति उनके मन में प्रेम जागा और वे भिक्षु बन गए क्योंकि उनमें विवेक उत्पन्न हुआ था। भिक्षु बनने के बाद, उन्होंने अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन किया और वेभारा और पांडव पहाड़ियों से कुछ ही दूरी पर स्थित एक वन क्षेत्र की पहाड़ी गुफा में मानसिक साधना (कम्मट्ठाना) में लीन हो गए। उसी समय, असमय वर्षा हुई। बिजली की लताएँ मानो पहाड़ी के द्वार से प्रवेश कर रही हों, इधर-उधर भटक रही थीं। ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से व्याकुल (घम्मपरिलाह) थेरा के लिए वर्षा की हवा (मेघवात) के भंडार (सारगब्भ) से शीतलता प्राप्त हुई। अनुकूल मौसम मिलने पर उनका मन एकाग्र हो गया। मन शांत होने पर उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में स्वयं को लीन कर लिया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

सर्वज्ञ बुद्ध, नेता

दुनिया का, जिसका स्वरूप था

कीमती सोने का, सबसे प्रमुख प्रति-

सोनाज पानी में नीचे चला गया

उन्होंने झील में स्नान किया।

मैंने किंकानी के फूल तोड़े और

उन्हें विशेष रूप से विपस्सी पर रखा गया था;

मैं प्रसन्न मन और प्रसन्न हृदय से भरा हुआ था।

ऐसे बुद्ध के लिए जो सम्राट थे

दो पैरों पर चलने वाले मनुष्यों के बारे में।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने फूल भेंट किए हैं

दान; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी पुनरावलोकन है।

श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने का परिणाम

बुद्ध को।

मैं राजा था, भीमराथ, संसार का स्वामी-

परम शक्ति का राजा, संपन्न

सत्ताईस युगों में सात रत्न

(कप्पा)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

1,2. हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "विवरमनुपतन्ति विज्जुता" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) की ओर इशारा करते हुए (पदेसा) अपने संबंध में आनंदमयी वाणी (अत्तसन्निस्सया) कही।

41. यहाँ vivaraṃ का अर्थ है बीच में (अंतरा), मध्य, केंद्र (वेमज्ज)। Anupatanti का अर्थ है प्रत्येक अक्षर में पतन (पता), वे चमकते हैं (पवत्तन्ति), वे तेज चमकते हैं (विज्जोतन्ति); यही अर्थ है। वास्तव में, उसी तेज चमक (विज्जोतना) को बिजली की चमक (विज्जुलता) कहा जाता है। यहाँ Anu का अर्थ व्याकरणिक रूप से जुड़े होने के कारण लोप भी है (सद्दओगेने): उदाहरण के लिए:— "रुक्खमनुविज्जोतं (वृक्ष समान रूप से चमक रहा है)।" विज्जुता का अर्थ है बिजली (सतेरता)। Vebhārassa ca paṇḍavassa ca का अर्थ है: वे वेभार पर्वत और पाण्डव पर्वत के खुलने (vivaramanupatanti) के अनुरूप गिरते हैं; अतः, यह व्याख्या है। नागविवरगतो का अर्थ है: पर्वत-गुफा, पर्वत (नाग) की दरार (विवर) के पास पहुँचा; झायति का अर्थ है: वह ध्यान के विषय (आरम्मणूपनिज्जान) पर चिंतन करते हुए और विशिष्ट चिन्ह (लक्कणूपनिज्जान) पर चिंतन करते हुए ध्यान करता है; वह स्वयं को शांत अवस्था (समथा) में लिप्त करके और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करता है। पुत्तो अप्पतिमस्स तादिनो का अर्थ इस प्रकार है: भगवान बुद्ध के सगोत्र पुत्र, ऐसे बुद्ध जो धर्म के सार से परिपूर्ण, नैतिक उपदेशों के समूह से युक्त, शारीरिक रूप से परिपूर्ण, अद्वितीय, उपमारहित, और वांछनीय एवं अवांछनीय मामलों में उत्कृष्ट गुणों से युक्त। यहाँ भी पुत्त शब्द से अरहंत पद का ही अर्थ है, और थेरा ने गुरु के अरहंत पद तक पहुँचने वाले पुत्र के रूप में उनकी स्थिति को प्रकाश में लाकर इसकी व्याख्या की है; इस प्रकार इसका अर्थ समझा जाना चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सुरिवाद्ढ का

समाप्त हो गया है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(42): खदिरा-वनिया (रेवता)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (42) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
42. खदिरा-वानिया
(रेवत)
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म मगध राज्य के नालक गाँव में ब्राह्मणी रूपसारी के पुत्र के रूप में हुआ। जब वे बड़े हुए तो उनकी माता ने [46] उनका विवाह करने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु उन्होंने सारिपुत्त [1] के त्याग के बारे में सुना और कहा: 'यदि मेरे बड़े भाई उपतिस्सा ने यह धन त्याग दिया है, तो मैं भी उसका त्याग कर दूंगा,' और वे भिक्षुओं के पास गए और स्वयं को 'धर्म के सेनापति' [2] का छोटा भाई बताकर भिक्षु दीक्षा का अनुरोध किया। बबूल के वन में अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त करने के बाद, [3] वे बुद्ध और उनके भाई को प्रणाम करने के लिए सावत्थी गए और कुछ दिन जेतवन में रहे। तब भगवान (बुद्ध), आर्यों की सभा में बैठे हुए, ने 'रेवत बबूल-वनवासी को वन भिक्षुओं (भिक्षुओं) में पहला स्थान दिया।' [4]

एक बार वह अपने पैतृक गाँव गए और अपने तीन भतीजों, अपने तीन शिष्यों, काला, उपकला और सिसूपकला के पुत्रों को ले आए। [5] जिनका नाम क्रमशः काला, उपकला और सिसूपकला था, और उन्हें भिक्षुत्व में दीक्षित किया। एक दिन थेरा बीमार पड़ गए, और सारिपुत्त ने यह सुना, और कहा: 'मैं रेवता की स्थिति और उपचार के बारे में पता लगाऊंगा।' और उन्हें दूर से आते देख, रेवता ने तीनों नौसिखियों को सावधान रहने के लिए कहा:

[42] काले उपाकाले शिशुपकाले॥
पतिसता नु खो विहारथा॥
अगतो वो वलान् विया वेधि' ति.॥ ॥

[42] आओ, काला, और तुम भी, उपकला, और शिशुकला, सावधान
रहो, क्योंकि जो तुम्हारे पास आता है वह
बाल-बाल बाँटने वाले अद्भुत धनुर्धर के समान है।

जब उन्होंने यह सुना तो नौसिखिए धम्म पथ के सेनापति से मिलने (भिक्षु बनने के लिए) चले गए, और जब वे उनके चाचा से बातचीत कर रहे थे, तो वे शांत और एकाग्र होकर पास बैठे रहे। जब वे उनके पास पहुँचे, तो वे उठ खड़े हुए, प्रणाम किया और खड़े रहे। थेरा ने उनसे पूछा कि वे किस विहार (मठ) में रह रहे हैं, और उन्होंने उत्तर दिया: 'ऐसे विहार में।' तब, लड़कों को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा: 'मेरे छोटे भाई ने वास्तव में धम्म पथ के छोटे कर्तव्यों को सिखाया है,' और रेवता की प्रशंसा करते हुए वे चले गए।

[1] उपतिस्सा सारिपुत्त (अर्थात, सारी के पुत्र) से रूपसारी का संबंध , जो मुख्य थेरा थे, ध्य. कॉम., i. 88, और नीचे CCLIX में दिया गया है।

[2] सारिपुत्त की सामान्य उपाधि।

[3] खदिरा; चाइल्डर्स के अनुसार बबूल कत्था।

[4] एंग., i. 24. रेवता की लंबी कविता के लिए CCXLIV देखें।

[5] सिस्टर्स, भजन संहिता lix, lx, lxi देखें । टीका के अभाव में, डॉ. न्यूमैन ने मान लिया है कि पाठ में तीन पुल्लिंग संबोधन स्त्रीलिंग हैं, और रेवता अपनी बहनों को संबोधित कर रहे हैं। इन सभी नामों में Cāl- का उच्चारण Chāl- की तरह करें।

1.5-2[42] श्लोक पर टिप्पणी

खदिरावनिया थेरा

2.1. Cāleupacāle से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा खदिरवनीय रेवेता का है। इसका उद्‌गम क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म हंसवती नगर में एक नदी पार कराने वाले नाविक के परिवार में, भगवान पद्ममुत्तरा के समय में हुआ था। गंगा नदी के पायागा घाट पर नाविक का काम करते हुए, एक दिन उन्होंने देखा कि भगवान बुद्ध अपने शिष्यों के साथ नदी के किनारे आ रहे हैं। वे श्रद्धा से भर गए, अनेक नौकाओं को संयोजित किया और उन्हें अत्यंत श्रद्धापूर्वक नदी के किनारे तक पहुँचाया। उन्होंने देखा कि गुरु ने एक भिक्षु को वनवासियों में सबसे आगे स्थान दिया है, और उन्होंने इस संबंध में एक मनोकामना की स्थापना की और भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के समूह को एक बड़ा दान दिया। भगवान बुद्ध ने उनकी मनोकामना की सफलता की भविष्यवाणी भी की। इसके बाद, उन्होंने इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए अच्छे कर्म किए, अपने पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण किया और मगध राज्य के नालद गाँव में ब्राह्मण स्त्री रूपसारी के गर्भ में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनके माता-पिता उन्हें वयस्क होने पर गृहस्थी में बांधना चाहते थे। थेरा सारिपुत्त के भिक्षुत्व के बारे में सुनकर उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरे बड़े भाई, भगवान उपतिस्सा ने इस धन का त्याग करके भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया है; मैं बाद में उनके द्वारा उगली गई लार के ढेर को कैसे निगल पाऊँगा?" उसे पश्चाताप हुआ, उसने अपने रिश्तेदारों को हिरण की तरह धोखा दिया, और अपने कर्मों की सफलता से प्रेरित होकर भिक्षुओं के समक्ष गया। उसने उन्हें बताया कि वह धम्म के सेनापति का सबसे छोटा भाई है और भिक्षु बनने की अपनी इच्छा से भी अवगत कराया। भिक्षुओं ने उसे दीक्षा दी और जब उसकी आयु बीस वर्ष पूरी हो गई, तो उसे पूर्ण दीक्षा दी और उसे मानसिक अभ्यास करने का कार्य सौंपा। उन्होंने मानसिक अभ्यास का अपना कार्य एकत्रित किया, बबूल (खदिरा) के वन में प्रवेश किया और मन ही मन यह कहते हुए कि – "अरहंत बनने पर मैं भगवान बुद्ध और धर्म के सेनापति दोनों के दर्शन करूँगा," निरंतर प्रयास किया (घटेंतो वायामंतो)। कुछ ही समय में वे छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए, क्योंकि उनकी बुद्धि (ज्ञान) सर्वांगीण परिपक्वता तक पहुँच गई थी। अतः अपदान में कहा गया है:

भागीरती नामक नदी ने अपना उद्‌गम स्थल बनाया।

हिमावंता (हिमालय) से प्राप्त स्रोत; मैं एक नाव था-

एक आदमी खतरनाक नदी पार करने की जगह पर था; मैंने बनाया

मेरा निकटवर्ती तट (ओरिमे) पर पारगमन।

नेता पदुमत्तरा, स्वयं-

जागृत बुद्ध, सबसे उत्कृष्ट

दो पैरों पर चलने वाले मनुष्य, पास आए

नदी के किनारे, साथ ही साथ

एक लाख शक्तिशाली शिष्य

(वसी).

कई नावें एकत्र करने के बाद, अच्छी तरह से-

बढ़ई द्वारा बनाया गया, मैंने सेवा की

पुरुषों में श्रेष्ठ (नरासभ)

नाव के लिए छत बनाकर।

स्वयंजागृत बुद्ध भी आए।

और उस नाव पर सवार;

मास्टर बीच पानी में खड़ा था

उन्होंने ये छंद कहे;

जिसने स्वयंजागृत को भेजा

बुद्ध और साथ ही दोषमुक्त पुरोहित

ईश्वरीय वचन में आनंद लेंगे

उस धार्मिक भावना का विवरण।

एक दिव्य उत्पत्ति होगी

आपके लिए एक आलीशान हवेली, अच्छी तरह से निर्मित

जहाज की आकृति; आकाश में एक फूल

क्या कभी आपके ऊपर छाता रखा जाएगा?

इसके बाद अट्ठावन युग (कप्पा) बीत चुके हैं, एक

योद्धा-राजकुमार (खटिया) नामित

तारका, तुम एक विश्व बन जाओगे

वह राजा जिसने (भूमि पर) विजय प्राप्त की थी

चार दूरस्थ सीमाओं (चतुरंता) के साथ।

सत्तावन युगों (कप्पा) के बाद, एक

कैम्मका नाम का खटिया, महान का

जोश (महाबलो) चमकेगा

उगते सूरज की तरह।

एक लाख युगों बाद,

ओक्काका परिवार के बाहरी घेरे से, जिसे इस नाम से जाना जाता है

गौतम का कुलनाम बन जाएगा

विश्व का गुरु।

मृत्यु के बाद

तैंतीस का स्वर्गीय निवास

वह एक इंसान बनने जा रहा है; जिसे जाना जाएगा

रेवेटा नाम से, वह बन जाएगा

एक ब्राह्मण, ब्रह्मा का संबंधी।

घर से बाहर आने के बाद-

रुको, वह भिक्षु बन जाएगा

भगवान की व्यवस्था

गौतम, उज्ज्वल आधार द्वारा प्रेरित होकर

(सुक्कमूला).

बाद में, भिक्षु बनने के बाद,

प्रयास में गंभीर (युत्तयोगो) और

वह आत्मनिरीक्षण में निपुण (विपस्सको) है।

रोगग्रस्त (आसव) होने के कारण

सर्वांगीण सफलता के बाद निर्वाण में प्रवेश करें

कैंकर के बारे में ज्ञान (परिञा)।

मेरी मेहनत जुते हुए बैल के समान है।

(धूराधोरैहा) ले जाना (अधिवाहन)

सर्वोच्च सुरक्षा की ओर

पूर्ण शांति (योगक्खेमा); मैं सहन करता हूँ

मेरे अंतिम शरीर (एंटीमा देहा) में-

आत्मजागृत बुद्ध का प्रतिफल।

मेरे द्वारा किया गया कार्य एक लाख-

रेत ने (युगों पहले) अपनी फलदायी क्षमता दिखाई।

मुझे यहाँ परिणाम मिला; जो अच्छी तरह से मिलता-जुलता है-

तीर की गति से छोड़ा गया; मेरी दुराचार

(किलेसा) जल गया था।

इसके बाद, जो ऋषि गए थे...

दुनिया का अंत (लोकंतगू)

मुझे जंगल का शौकीन देखकर,

बुद्धिमान (महामति) ने मुझे प्रमुख घोषित किया

वन में रहने वाले भिक्षु।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

2.2. छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, थेरा ने अपने पलंग को छोड़ा (सेनासनं संसामेत्वा), अपना कुंड और वस्त्र धारण किया ताकि वे गुरु और धर्म के सेनापति को प्रणाम कर सकें, समय रहते सावत्थी पहुँचे, जेतवन में प्रवेश किया, गुरु और धर्म के सेनापति को प्रणाम किया और कुछ दिनों तक जेतवन में रहे। तब, गुरु ने श्रेष्ठ (आर्य) समूह (गण) के बीच बैठकर उन्हें वनवासी भिक्षुओं (अरञ्चक भिक्षु) में सबसे आगे बिठाते हुए कहा: — "हे भिक्षुओं! यह मेरे वनवासी शिष्य भिक्षुओं में प्रमुख है, अर्थात् यह रेवत बबूल वनवासी (खदिरवणीय) है।" इसके बाद, वे अपने पैतृक गाँव गए और अपने तीन भतीजों - काला, उपाकाला और सीसूपच्चाला - को साथ लाए, उन्हें भिक्षु बनाया और उन्हें मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) सौंपा। वे वहाँ रहने लगे, मानसिक साधना में लीन हो गए। उसी समय, थेरा को एक विशेष रोग हो गया। इसके बारे में सुनकर थेरा सारिपुत्त रेवता के पास गए और मन ही मन कहने लगे, "मैं रोग के बारे में भी प्रश्न पूछूंगा और अधिगम (प्राप्ति) के बारे में भी।" थेरा रेवता ने धर्म के सेनापति को पीछे से आते हुए देखा और नौसिखियों (सतुप्पा-दान) को सचेतनता (सतुप्पा-दान) उत्पन्न करने के उद्देश्य से "काले उपाकाले" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला।

42. वहाँ, Cāle Upacāle Sīsūpacāle का अर्थ है उन्हें पुकारना या संबोधित करना। वास्तव में, वे तीनों बालक, जिन्हें स्त्रीलिंग नाम "Cālā, Upacālā और Sīsūpacālā" दिए गए थे, यद्यपि उन्होंने संसार त्याग दिया था और संन्यासी बन गए थे, फिर भी उन्हें इसी नाम से पुकारा जाता रहा। विद्वान यह भी कहते हैं: "उनके नाम 'Cālī, Upacālī और Sīsūpacalī' थे।" लाभप्रद (अत्थ) दर्शाने के लिए, "Cāle" से शुरू होने वाला ऐसा संबोधन किया जाता था। यह दर्शाने के लिए उन्होंने कहा:— "Patisstā nu kho viharathā (क्या तुम उचित रूप से सचेत होकर निवास करते हो?)" और वहाँ की परिस्थिति (कारणं) के बारे में कहा:— "Āgato vo vālaṃ viya vechi (तुम्हारे लिए बाल-फाड़ करने वाले के समान कोई आया)।" Patissatā का अर्थ है जो उचित रूप से सचेत (patissatikā) हैं। Kho का अर्थ है ध्यान आकर्षित करना, ज़ोर देना। Āgato का अर्थ है वह आया। Vo का अर्थ है तुम्हारा, तुम्हारे लिए। Vālaṃ viya vedhī का अर्थ है बाल-फाड़ करने वाले के समान; वास्तव में, यहाँ इसका संक्षिप्त अर्थ यह है:— वहाँ और यहाँ थेरा, तुम्हारे (बड़े) चाचा, गुरु के समान, बाल-फाड़ करने वाले के समान, अपने तीक्ष्ण, तीव्र और मर्मस्पर्शी ज्ञान के कारण आए; इसलिए, आपको नवदीक्षित भिक्षु होने की अपनी अनुभूति को जगाते हुए, सजगता और सावधानी (संपजाञ्ञा) में लीन रहना चाहिए। "आपको अपनी सिद्धि के अनुरूप निवास करने में तत्पर रहना चाहिए।"

42.1. उस श्लोक को सुनकर, उन नौसिखियों ने धर्म के सेनापति का स्वागत आदि किया और अपने दोनों चाचा थेरों के बीच चल रही बातचीत के दौरान एकाग्रचित्त (समाधि) में लीन होकर उनसे कुछ दूरी पर बैठ गए। धर्म के सेनापति ने थेरा रेवता से बातचीत करने के बाद अपने आसन से उठकर उन नौसिखियों के पास गए। चूंकि उन्होंने भी समय सीमा के भीतर ही अपना कार्य पूरा कर लिया था, इसलिए जब थेरा उनके पास आए, तो वे उठ खड़े हुए, उन्हें प्रणाम किया और खड़े रहे। थेरा ने पूछा, "तुम सब किस प्रकार का जीवन जीते हो?" जब तीनों ने एक ही बात कही, तो उन्होंने थेरा की प्रशंसा करते हुए विदा ली, "यहाँ तक कि बालकों ने भी, जब मेरे छोटे भाई ने उन्हें इस प्रकार अनुशासित किया, तो उन्होंने वास्तव में सत्य के अनुसार अपने धर्ममय जीवन को व्यवस्थित किया।"

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा खदिरावनिया का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(43):सुमंगला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (43) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
43. सुमांगला
उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में सावत्थी के निकट एक छोटे से गाँव में एक गरीब परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने खेतों में काम करके अपना जीवन यापन किया, उनके पास एक छोटी सी हंसिया, हल और कुदाल थी। एक दिन जब कोसल के राजा पसेनुदी भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ को एक बड़ा दान दे रहे थे, तो वे लकड़ी का काम करने वाले पुरुषों के साथ दूध और मक्खन लेकर गए। भिक्षुओं और भिक्षुणियों को दिए जा रहे सम्मान और आदर को देखकर उन्होंने सोचा, 'ये शाक्य भिक्षु सुरक्षित आवासों और सुंदर वस्त्रों में रहते हैं - अगर मैं भी अब संसार छोड़कर भिक्षु बन जाऊं तो क्या होगा?' और वे एक महान थेर के पास गए और उन्हें अपनी इच्छा बताई। थेर ने करुणावश उन्हें स्वीकार किया और उन्हें एक अभ्यास देकर जंगल में भेज दिया। लेकिन एकांत में वे व्याकुल और दुविधा में पड़ गए और अपने पैतृक गाँव लौट गए। फिर आगे बढ़ते हुए उन्होंने देखा कि किसान गर्म हवाओं से उड़ती धूल से सने गंदे वस्त्रों में खेतों की जुताई कर रहे हैं। और उन्होंने सोचा: 'सचमुच ये लोग बड़ी तकलीफों में अपना जीवन यापन करते हैं!' और चिंतित होकर, उनकी अंतर्दृष्टि परिपक्व होने लगी, तो उन्होंने अपने दिए गए अभ्यासों को करने का निश्चय किया, एक पेड़ की जड़ों में गए और एकांतवास में रहे। इस प्रकार अंततः उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, जीवन के दुखों से अपनी मुक्ति (निर्वाण) का जश्न मनाने के लिए, उन्होंने यह गाथा सुनाई:

[43] सुमुत्तिको सुमुत्तिको साहू सुमुत्तिकोम्ही तीहि खुज्जाकेहि॥
असितासु मया नंगलसु मया कुद्दालसु1 मया॥
यदिपि इधमेव इधमेव अथवा पि आलमेव आलमेव॥
झाया सुमंगला झाया सुमंगला अप्पमत्तो विहार सुमंगला' ति.॥ ॥

[43]
मैं इन तीन टेढ़े-मेढ़े कामों और औजारों से पूरी तरह छुटकारा पा चुका हूँ, पूरी तरह छुटकारा पा चुका हूँ, हे उत्तम रूप से छुटकारा पा चुका हूँ,
तुम्हारी हंसियाओं से कटाई से छुटकारा पा चुका हूँ,
हलों से काम करने से छुटकारा पा चुका हूँ, और
इन तुच्छ छोटे फावड़ों पर झुकने से अपनी पीठ से छुटकारा पा चुका हूँ।

यद्यपि वे हमेशा यहाँ रहें, हाँ, हमेशा यहाँ रहें,
बस बहुत हो गया, मैं कहता हूँ, मेरे लिए, बस!
जाओ ध्यान करो, सुमंगल, हाँ, जाओ
और ध्यान करो, सुमंगल, और
गंभीर और मेहनती बने रहो, सुमंगल! [1]

[1] यह विचित्र और जोशीला छंद चार पंक्तियों में फैला है, इसमें कोई निश्चित लय या समरूपता नहीं है, और ऐसा प्रतीत होता है कि यह वाल्ट-व्हिटमैन की शैली में एक किसान भिक्षु (साधु) द्वारा अपनी भावनाओं की खुरदरी अभिव्यक्ति को दर्शाने का प्रयास है। इस प्रकार, यह अत्यंत रोचक है, और सादगी और जीवंतता में मुत्ता (बहनें , भजन 11) के छंदों से मेल खाता है, जो स्वयं साधारण परिस्थितियों से थीं और अपने तीन विशेष कुटिल चीजों - पति, चक्की और मथनी - से छुटकारा पाकर प्रसन्न थीं।

1.5-3[43] श्लोकों पर टिप्पणी

सुमंगला थेरा
3.1. सुमुत्तिको से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुमंगला का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए पुण्य अर्जित किया और भगवान सुद्धत्थ के समय वृक्ष-देवता के रूप में प्रकट हुए। एक दिन, उन्होंने स्नान के बाद एक ही वस्त्र धारण किए खड़े गुरु को देखा, प्रसन्न हुए और अपनी कोहनियों को ताली बजाई। इस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे, और इसी कर्म के फलस्वरूप एक निर्धन परिवार में पुनर्जन्म लिया, जो उस समय सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में हुआ था जब इस बुद्ध का जन्म हुआ था। उनका नाम सुमंगला था। वयस्क होने पर उन्होंने एक किसान के रूप में अपना जीवन व्यतीत किया, उनके औजारों में हल का एक साधारण फाल और एक कुदाल था। एक दिन, जब राजा पसेनदी कोसल द्वारा भगवान बुद्ध और भिक्षुओं को एक बड़ा दान दिया जा रहा था, तब उन्होंने दान देने के लिए सामग्री एकत्र की और दूध से भरा एक बर्तन लेकर उन लोगों के साथ आ गए जो उस महान राजदान में जा रहे थे। भिक्षुओं को दिए जाने वाले सम्मान और श्रद्धा को देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, “ये भिक्षु, शाक्य वंश के पुत्र, उत्तम वस्त्र धारण किए हुए, अच्छे भोजन का आनंद लेते हुए, वायु रहित मठों में निवास करते हैं; क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं भी भिक्षु बन जाऊं?” यह कहकर वे एक महान थेर के पास गए और उन्हें भिक्षु बनने के अपने इरादे के बारे में बताया। उस थेरा ने उस पर दया करके उसे भिक्षु बना दिया और उसे मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) का ज्ञान दिया। वन में निवास करते हुए वह अकेलेपन से ऊब गया, असंतुष्ट (उक्कण्ठिता) हो गया और संघ को त्यागने की इच्छा से अपने रिश्तेदारों के गाँव चला गया। रास्ते में उसकी मुलाकात दलदली भूमि (कच्छं) को तैयार (बंधित्वा) कर रहे किसानों से हुई, जो खेत जोत रहे थे, गंदे वस्त्र पहने हुए थे, उनके शरीर चारों ओर की धूल से सने हुए थे, हवा और गर्मी से पीड़ित थे। उसे उचित पश्चाताप हुआ और उसने मन ही मन कहा: “वास्तव में, इन प्राणियों को अपने जीवन के अनुरूप दुख भोगना ही पड़ता है (जीवक निमित्तं)। उसके निकट (उपत्थासि) ऐसा मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) था जो उसने अपने ज्ञान (ज्ञान) के कारण एकत्रित किया था। वह एक वृक्ष की जड़ की ओर गया, उचित एकांत प्राप्त किया और बुद्धिमानी से एकाग्र हो गया। (योनिसो), ने शुद्ध अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और श्रेष्ठ सही मार्ग (मग्गपटिपातिया) के क्रम में अरहंत पद प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“उत्कृष्ट विजेता अत्थादस्सी,

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, बैल

पुरुषों के बीच, विशेष रूप से बाहर आने के बाद

मठ से निकलकर झील की ओर बढ़े।

स्नान करने और पानी पीने के बाद

जल का, स्वयंजागृत बुद्ध

झील से एक ही बार में ऊपर आया

वस्त्र। भगवान स्वयं खड़े थे।

वे अलग-अलग दिशाओं में देख रहे हैं।

मैं अपने महल के पास पहुँचा और मैंने देखा कि

दुनिया का नेता। मुझे खुशी हुई और

उस समय मेरे प्रसन्न मन के साथ,

मैंने अपनी कोहनियों से ताली बजाई।

मैं नृत्य में व्यस्त था (पयुट्टो)।

और गायन, साथ ही पांच रूपों

संगीत वाद्ययंत्रों का, शानदार ढंग से

सूर्य के समान चमकने वाला (सतरंसी),

चमकीला, सोने जैसा भी।

मैं जिस भी अस्तित्व में पुनर्जन्म लेता,

चाहे वह दिव्य हो या मानवीय, मैंने उसमें भाग लिया।

सभी प्राणियों पर विजय प्राप्त करना; मेरी प्रसिद्धि थी

प्रचुर।

हे सुसंस्कृत पुरुष! मैं आपकी बहुत प्रशंसा करती हूँ।

हे परम पूज्य, मेरी श्रद्धा आपके प्रति है।

बहुत बढ़िया व्यक्ति!

हे ऋषि, आप स्वयं संतुष्ट हैं।

दूसरों को संतुष्ट किया।

अपनी चीजों पर बैठने के बाद

(परिगाहे), नेक बनाया

आनंदमय (हासा) और सेवा प्राप्त

मैं स्वयंजागृत बुद्ध था

तुसिता स्वर्ग में पुनर्जन्म।

सोलह सौ युग (कप्पा) पहले

अब से मैं दो, नौ और एक हो गया

विचार-विमर्श (द्विनावा एक सिंटिटा)

विश्व के राजाओं के पास शक्तिशाली सेनाएँ थीं

और सात रत्नों से सुसज्जित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

3,2. हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "सुमुत्तिको" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपनी समृद्धि और दुख (दुक्खा) से उत्कृष्ट मुक्ति (विमुक्ति) की घोषणा करते हुए आनंदमयी वाणी का उच्चारण किया।

43. वहाँ, सुमुत्तिको का अर्थ इस प्रकार है:— वह व्यक्ति जिसे स्वतंत्रता (मुक्ति) प्राप्त है, जो अस्तित्वहीनता की स्थिति है, वह उत्कृष्ट (संदारा) और पूर्णतः (अच्चंतिकताय) है; अतः, सुमुत्तिको (एक भली-भांति मुक्त व्यक्ति)। उसने अपनी उंगलियाँ चटकाते हुए कहा, "सुमुत्तिको, क्योंकि वह स्पष्ट स्वतंत्रता (विमुक्ति) प्रशंसनीय और अद्भुत (अच्चरिया) थी।" फिर वहाँ अपनी उत्कृष्ट मुक्ति (विमुक्ति) में, अपनी सुखद धार्मिकता (पसादा) की दृढ़ता (दलभाव) को दर्शाने के लिए, उसने इस प्रकार कहा: "साहु सौमुत्तिकोऽम्हि (शाबाश! मैं उत्कृष्ट रूप से मुक्त हूँ)।" सचमुच अच्छा! मैं पूर्णतः मुक्त हो गया हूँ; यही अर्थ है। परन्तु यह व्यक्ति कहाँ से इतना उत्कृष्ट रूप से मुक्त हुआ? इच्छा करते हुए (कामंच), यह थेरा सभी प्रकार के दुःखों (दुक्खा) से पूर्णतः मुक्त हो गया था, जिनमें बार-बार जन्म-जन्म लेना (वट्ट) शामिल है; परन्तु अब अपने दुःख (दुक्खा) को दिखाने के लिए, जो उसके निकट (उपट्ठहितं) था और जो अत्यंत अवांछनीय (अनित्थभूतं) था, उसने इस प्रकार कहा: — "तिहि खुज्जकेहि," इत्यादि। यहाँ, खुज्जकेहि का अर्थ है छोटा या हीन स्वभाव वाला; या फिर हीन विशेषताओं वाला। यह शब्द (वचनं) व्याकरणिक शब्द मुत्त (मुत्तसद्दापेक्खाय) के संदर्भ में अपादान कारक (निसक्क) में है। वास्तव में एक किसान, यद्यपि हीन नहीं है, इसका तात्पर्य (दाससेटी) स्वयं को तीन स्थानों पर हीन बनाना है: कटाई, हल चलाने और फावड़ा चलाने में। वास्तव में, उस किसान ने कटाई आदि की।

43.1. अब, उन्हें उनके व्यक्तिगत रूपों में सारगर्भित रूप से दर्शाने के लिए (सरूपतो), उन्होंने इस प्रकार कहा:— "असितासु मया, नांगलसु मया, खुद्दकुद्दालसु मया।" यहाँ असितासु मया का अर्थ इस प्रकार है:— मैं हंसिया, कटाई के औजारों (लवित्त) से बच गया हूँ। अपादान कारक में, यह शब्द स्थानवाचक अर्थ में है। शेष मामलों में भी विधि (नय) यही है (एसेवा)। हालाँकि, अन्य लोग ऐसा कहते हैं:— "मेरे द्वारा हंसिया से काम करने की स्थिति से विचलित (खुज्जिता) हो गया था।" उनके मत (मतेन) में, यह शब्द (वचन) या तो स्थानवाचक (भूम्म) अर्थ में है या परिस्थितिजन्य कारण (हेतु) को इंगित करने वाला साधन है। "नंगलासु" का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: — लिंग भेद करते हुए ऐसा कहा गया है: हल (नंगलेहि) और हल चलाने के औजारों (कसिरेहि) से; यही अर्थ है। ऐसा भी कहा गया है: — "खुद्दककुद्दालासु, निम्न कुदालों में," क्योंकि वह या तो स्वभाव से (अप्पाकटत्ता) उस व्यवहार (वलंजन) के अनुरूप नहीं था या फिर उसके द्वारा इस्तेमाल किए गए कुदाल की प्रकृति (वलंजित) के कारण। "कुंठकुद्दालासु, कुंद कुदालों में" जैसा एक उदाहरण भी है। लेकिन व्यवहार या खुदाई (खिणखणित्त) में इधमेव का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: — अक्षर 'म' शब्दों को जोड़ने वाला है। 'वा' शब्द एक अविघटनीय कण (निपात) है। गाँव में स्थित होने के कारण, वे हंसियाएँ और अन्य वस्तुएँ, चाहे वे कुछ भी हों, यहाँ भी मेरे निकट ही हैं; इसके बावजूद वही मेरे लिए पर्याप्त है; यही अर्थ है। जल्दबाजी (तुरित) के कारण, यह सहानुभूति (आमेदित) की अभिव्यक्ति (वचन) है। झाया का अर्थ इस प्रकार है: — यह फल प्राप्ति (फलसमापत्ति) और दिव्य निवास के उचित ध्यान के माध्यम से है, न कि वर्तमान सुख के उद्देश्य से; इस प्रकार झाया (ध्यान करो)। सुमंगल का अर्थ है: — वह स्वयं को संबोधित करता है। हालाँकि, ध्यान में, आदर (आदर) दिखाने के उद्देश्य से सहानुभूति (आमेदित) व्यक्त की जाती है। अप्पमत्तो विहार का अर्थ इस प्रकार है: हे सुमंगल! प्रचुर (वेपुल्ला) ध्यान और (पञ्ञा) की प्राप्ति के लिए आपको सर्वत्र लगन से रहना चाहिए; अतः अब आप

सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कुछ विद्वान कहते हैं: “अरहंतत्व प्राप्त न करते हुए भी, गृहस्थ जीवन के कष्टों को तुच्छ जानते हुए, अपने विशेष आनंद के लिए, जो उन्हें विपश्यना के मार्ग पर उचित रूप से प्रवेश करने हेतु प्राप्त हुआ, थेरा ने इस श्लोक का पाठ किया, बाद में आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया।” उनके विचार के अनुसार, “झाया अप्पमत्तो विहार (ध्यान करो, लगन से जीवन व्यतीत करो)” शब्दों का अर्थ आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के उचित मार्ग में ही समाहित होता है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सुमंगला का समापन हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(44): सानु

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (44) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
44. सानु
पिता के घर छोड़कर चले जाने के बाद, सावत्थी में एक गृहस्थ अनुयायी के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। माता ने उनका नाम सानु रखा और सात वर्ष की आयु में उन्हें भिक्षुओं के पास दीक्षा के लिए ले गईं, यह सोचकर कि इससे उन्हें परम सुख प्राप्त होगा। सानु, जो नौसिखिया थे, बहुत विद्वान, धर्म के शिक्षक और आनंदमय ध्यान में लीन हो गए, और देवताओं और मनुष्यों के प्रिय बन गए। जैसा कि हम सानु-सूत्र (सयुत्त निकाय, 1:208) से जानते हैं, उनके पिछले जन्म में उनकी माता यक्ष थीं। [1] समय बीतने के साथ-साथ सानु ने अपनी बौद्धिक क्षमता खो दी और असंतुष्ट हो गए, और घूमने-फिरने की इच्छा करने लगे। तब उनकी पूर्व माता ने यह देखा और उनकी मानव माता को चेतावनी देते हुए कहा: 'तुम्हारे पुत्र को घूमने का मन कर रहा है, इसलिए मैंने उसे चलने-फिरने के लिए प्रेरित किया।' उसे बताओ कि यक्खा क्या कहते हैं:

बुराई न करो, चाहे वह खुली हो या छिपी हुई।
यदि तुम अभी बुराई करोगे या बाद में करोगे,
तो तुम दुख से नहीं बच पाओगे, चाहे तुम भाग जाओ। [2]

ऐसा कहकर यक्ष माता अंतर्धान हो गईं। परन्तु जब मनुष्य माता ने यह सुना तो वह दुःख से व्याकुल हो उठीं। तब नौसिखिए सानु ने अपना वस्त्र और कुंड लेकर सुबह जल्दी निकलकर अपनी माता के पास आए। उनका दुःख देखकर उन्होंने कहा, ‘माँ, आप क्यों रो रही हैं?’ जब माता ने कारण बताया तो उन्होंने यह श्लोक कहा:

[44] मातां वा अम्मा रोदन्ति यो वा जीवं न डिस्सति॥
जीवनान्तं माṃ अम्मा पासन्ती कस्मा माṃ अम्मा रोदासी' ती॥ ॥

[44] हे माँ, वे मृतकों के लिए रोते हैं, या जीवितों को वे देख नहीं पाते।
परन्तु हे माँ, जो जीवित है, जो यहाँ है, उसके लिए तुम मेरे लिए क्यों शोक मनाती हो?

उनकी माता ने उन्हें सूत्रों से उत्तर दिया, "हे भिक्षुओं, यही मृत्यु है कि कोई प्रशिक्षण को त्यागकर फिर से निम्नतर चीजों की ओर मुड़ जाए," [3] और इस श्लोक के साथ:

वे अपने मृत पुत्र के लिए शोक मनाते हैं, या उसके लिए
जो जीवित तो है लेकिन जिसे वे अब देख नहीं सकते।
और वे उसके लिए भी शोक मनाते हैं, जिसने
संसार का त्याग कर दिया था, मेरे पुत्र, फिर भी वह यहाँ पुनः आ गया है,
क्योंकि यद्यपि वह पुनः जीवित है, फिर भी वह मृत है।
जलते अंगारों से निकलकर, हे मेरे प्रिय,
क्या तुम अंगारों पर पुनः गिरना चाहते हो?

जब उसने उसे सुना, तो नौसिखिए सानु को पीड़ा हुई, और अपनी अंतर्दृष्टि को दृढ़ करते हुए, उसने शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया। और यह सोचकर कि 'मेरी विजय उस श्लोक के कारण है,' उसने उसे अपने कथन (गाथा) के रूप में दोहराया। [4]

[1] यक्खा, उत्तरी क्षेत्र के अदृश्य छोटे देवता।

[2] साम., इ. 209; उदाना, खंड 4; बहनें, आयतें 246, 247.

[3] सय्य., ii. 271; बहनें, आयतें 246, 247; आयत सय्य. i. 209 से है।

[4] धम्मपद टीका, श्लोक 826 की चर्चा करते हुए, सानु और उनकी माता को अपने विषय के रूप में प्रस्तुत करती है। उनका स्वयं का प्रश्न उनकी विजय का अंतिम कारण था, यद्यपि प्रत्यक्ष कारण नहीं था।

1.5-4 [44] श्लोक पर टिप्पणी

सानु थेरा

4.1. "मतं वा अम्मा रोदन्ति" से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सानु का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति पाने के लिए पुण्य अर्जित किया और आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले भगवान सिद्धार्थ को उनके मुख धोने के लिए जल अर्पित किया। वास्तव में, गुरु भोजन करते समय अपने हाथ-पैर धोना चाहते थे। उन्होंने गुरु की आवश्यकता (आकारा) को भली-भांति समझा और जल प्रदान किया। अपने हाथ-पैर धोने और भोजन करने के बाद, गुरु अपने मुख को कुल्ला (विक्खालेतुं) और मुख को धोने की इच्छा रखते थे। यह भी वे जानते थे और मुख और मुख के लिए जल अर्पित किया। गुरु ने अपने मुख को कुल्ला किया और मुख धोया और इस प्रकार उनके मुख और मुख की सफाई पूरी हुई। इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने उन पर दया करके उनकी सेवा करने की स्वीकृति दी। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका जन्म दिव्यलोक में हुआ, और पुण्य कर्म करते हुए वे समय-समय पर देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण करते रहे, और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक भक्त के घर में गर्भ धारण किया। जब वे अपनी माता के गर्भ में प्रवेश कर चुके थे, तभी उनके पिता घर से चले गए; दस माह की अवधि में उस भक्त ने पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम सानु रखा। जब वह समय के साथ वयस्क हुआ, तो माता ने सात वर्षीय पुत्र को भिक्षुओं की उपस्थिति में भिक्षु संघ में शामिल कर लिया और मन ही मन कहा: "इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से (अनंतराय) बड़ा होगा और सुख का निश्चित (अच्छन्त) भागीदार (भागी) बनेगा।" वह सत्य (धम्म) के शिक्षक, कर्तव्यनिष्ठा से परिपूर्ण और ज्ञानवान "सानुसामणेर" के रूप में प्रसिद्ध हुआ। प्राणियों के प्रति प्रेम और दया की भावना के कारण वह देवताओं और मनुष्यों का प्रिय और प्रियतम बन गया; अतः उसके बारे में सब कुछ सानु सूत्र में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए।

4.2. उनके पिछले जन्म में उनकी माता का पुनर्जन्म एक राक्षसी के गर्भ से हुआ था। राक्षसी को उनसे स्नेह हो गया (मानेंति), और वे बहुत आदर भाव से मन ही मन कहने लगीं, "यह थेरा सानु की माता हैं।" इस प्रकार समय बीतने के साथ, साधारण जन वर्ग (पुथुज्जन) की स्थिति के नुकसान को प्रकट करते हुए, एक दिन सानु के मन में गृहस्थ जीवन में लौटने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई (विभमितुकामताचित्तं), जो कि उनकी बुद्धिमानी से सचेत अवस्था (योनिसो मनसिकाराभावतो) से नासमझी से उभरी (उम्मुज्जंतस्स)। यह जानकर उनकी राक्षसी माता ने उनकी मनुष्य माता को इस प्रकार बताया:— "आपके पुत्र सानु ने गृहस्थ जीवन में लौटने की इच्छा को प्रज्वलित किया है।" इसलिए, आप उनसे इस प्रकार कहें:—

'वहाँ (असि) निंदनीय दोष है (वज्जा)

जागृत सामु के लिए; यही निर्णय (वचन) है।

राक्षसी का। चाहे सार्वजनिक रूप से (āvi) या

एकांत में (रहते हुए), कोई भी बुरा काम न करें।

क्या आपको ऐसा करना चाहिए था, या यदि आप ऐसा करेंगे,

बुरे कर्मों के कष्टों से तुम बच नहीं पाओगे।

भागने पर भी दुख (दुक्खा) सहना पड़ेगा

(palāyato) ऊपर उड़ना (uppacca).

4,3. इस प्रकार कहने के बाद राक्षसी माता वहाँ से विमुख हो गई। दूसरी ओर, मनुष्य माता ने यह सुनकर चिंता और व्याकुलता से भर गई और मानसिक विक्षिप्तता (चेतोदुक्खा) से ग्रस्त हो गई। तब नौसिखिए सानु ने भोर होते ही वस्त्र धारण किए, कुंड और वस्त्र धारण किए, अपनी माता के पास गए, जिन्हें उन्होंने रोते हुए देखा और उनसे पूछा: "माता! आप किसलिए रो रही हैं?" जब माता ने उत्तर दिया: "उसके कारण," तो उन्होंने अपनी माता के लिए "मतं वा अम्मा रोदन्ति, यो वा जीवं नदिस्साति" से शुरू होने वाला श्लोक बोला।

44. श्लोक का अर्थ है: अन्ना का अर्थ इस प्रकार समझा जाना चाहिए:— रिश्तेदार या मित्र रोते हैं, अर्थात् किसी रिश्तेदार या मित्र के लिए; मतं, मृत को गति देता है; मृत्यु के कारण; रोदन्ति का अर्थ है कि वे रोते हैं, क्योंकि (वह मित्र या रिश्तेदार) दूसरे लोक में चला गया है; यो वा का अर्थ है या जो कोई भी, रिश्तेदार या मित्र; जीवं का अर्थ है जीवित; न दिस्साति का अर्थ है दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह दूसरे लोक में चला गया है (देसंतत); यह उस व्यक्ति के संदर्भ में हो सकता है (तं वा उद्दिस्सा) लोग रोते हैं (रोदन्ति); ये दोनों (परिस्थितियाँ) मुझमें विद्यमान नहीं हैं; ऐसा होने पर, जीवतं का अर्थ है जीवित, सजीव (धरमानं), मं का अर्थ है मैं, मैं जो तुम्हारे सामने खड़ा हूँ (पुरतो ठितं); passantī kasamā amma rodasi, का अर्थ है: मुझे देखकर, माँ! तुम क्यों रो रही हो? मेरे कारण रोने का कोई कारण नहीं है।

44,1. अपने बेटे की बात सुनकर उसकी माँ ने दो श्लोक कहे, जिसमें बताया गया कि भिक्षुत्व का त्याग करना, बुद्ध के सुत्त पिटक (सुत्तपाद) में प्रामाणिक शब्दों के अनुरूप (अनुसारेना) पवित्र कुलीन (आरिया) के अनुशासन में मृत्यु के समान है।

"हे पुत्र! लोग मृतकों पर विलाप करते हैं,

या फिर ऐसे व्यक्ति के ऊपर जिसका जीवन दिखाई न दे।

फिर से, हे पुत्र! लोग बारी-बारी से रोते हैं (वा)

उस पर भी विलाप करो, जिसने, हालांकि,

त्याग दिया (cajitvāna) यहाँ वापस आता है

फिर से; इसके अलावा, वह व्यक्ति वास्तव में है,

हे प्रिय!

पुत्र! राख से उठकर, तुम

अंगारों की ओर गिरना चाहता हूँ।

44.2. वहाँ, कामे चजित्वाना का अर्थ इस प्रकार है: — त्याग की प्रवृत्ति (अज्जासय) द्वारा मूलभूत इंद्रिय सुखों (वत्थुकाम) का त्याग करके; इसे भी अनैतिकता (किलेसा काम) में इंद्रिय इच्छाओं (काम) के अस्थायी निवारण के रूप में समझा जाना चाहिए। वास्तव में,

यहाँ भिक्षुत्व का अर्थ (अधिप्पेतो) इंद्रिय इच्छाओं (काम) का सर्वांगीण त्याग है। पुनरागच्छते इधा का अर्थ है कि वह फिर से अपने घर लौट आता है; वह अपने पुत्र की संसार में लौटने की इच्छा (हीनायावत्तनं) के संदर्भ में कहती है। तं वा पि का अर्थ है: जो भिक्षु बनकर संघ का त्याग (विभमति) करता है; ऐसे व्यक्ति पर भी, मेरे जैसे लोग ऐसे रोते हैं मानो वह मर गया हो। यदि पूछा जाए: क्यों? पुना जीवं मतो हि सो का अर्थ है: जो व्यक्ति भिक्षु संघ त्यागने के बाद जीवित रहता है, वह अपने गुणों के मृत होने (गुणमरण) की स्थिति में मृत ही होता है। अब, अपने पुत्र (तस्स) में विशिष्ट पश्चाताप (सविसेससंवेगं) उत्पन्न करने के लिए, "कुक्कुळा (अंगारों से)" से शुरू होने वाला ऐसा कथन किया गया। इसका अर्थ है: — दिन-रात जलते रहने के कारण, और जलते रहने (ठहनत्तेन) के कारण गृहस्थ (गिहिभावा) की स्थिति अंगारों के नरक (कुक्कुळा) के समान है। कुक्कुळा का अर्थ है अंगारों के समान गृहस्थ जीवन। अपने पुत्र के प्रति करुणावश (अनुकम्पन्तिया), उभतो का अर्थ है मैंने अपने पुत्र का पालन-पोषण किया, मैंने उसे गृहस्थ जीवन की अवस्था से बाहर निकाला; ताता का अर्थ है हे सानु! कुक्कुलं पतितुं इच्छासि का अर्थ है कि तुम अंगारों में गिरने की इच्छा रखते हो।

44.3. अपनी माता की बात सुनकर, नवोदित सानु पश्चाताप से भर गया, उसे विपश्यना का ज्ञान हुआ और उसने कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"भोजन करते भिक्षु को देखकर

शुद्ध (विप्पेसन्ना) और स्वच्छ (अनविला),

मैं एक घड़े में पानी लेकर आया और उसे पेश किया

इसे सिद्धार्थ को दे दो।

आज मैं अशुद्धता से मुक्त हूँ, अशुद्ध हूँ

संदेह दूर होने के साथ गंदगी। सुखद

मेरे लिए यह साकार हो जाएगा

जो किसी भी अस्तित्व में पुनर्जन्म लेता है।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जब मैंने अपनी भेंट चढ़ा दी है

पानी। मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व (दुग्गति)। यही है

जल दान का फलदायी परिणाम।

आज से इकसठ युग (कप्पा) पहले,

मैं तो केवल एक विश्व-राजा विमला थी।

शुद्ध, सात संप्रभु शक्तियों से संपन्न

रत्न और अपार शक्ति।

मेरे सारे दुराचार जलकर राख हो गए थे।

बुद्ध का उपदेश यही था।

किया गया।

44,5. हालाँकि अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने उसी श्लोक का आनंदमय उच्चारण करते हुए पुनः पाठ किया और इन श्लोकों के प्रभाव में स्वयं से कहा: — "स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त करने का मेरा प्रयास और अरहंत पद की मेरी प्राप्ति हुई।"

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा सानु का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(45):रमानियाविहारिन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (45) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
45. रमणीयविहारिन
बुद्ध युग में राजगृह में एक प्रमुख नागरिक के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने युवावस्था में व्यभिचार का जीवन व्यतीत किया। एक दिन उन्होंने राजा के अधिकारियों को एक व्यभिचारी को गिरफ्तार करते देखा और व्याकुल होकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुने और संसार त्याग कर भिक्षु बन गए। भिक्षु के रूप में, यद्यपि वे अभी भी शारीरिक वासनाओं के वश में थे, उन्होंने अपने लिए एक सुसज्जित कक्ष बनवाया, जिसमें भोजन, पेय, आसन और पलंग जैसी सभी व्यवस्थाएँ थीं ; और वे इसी प्रकार जीवन व्यतीत करते रहे। इसी कारण वे रमणीय-विहारिन (सुखद-आश्रय भिक्षु) के नाम से जाने गए। परन्तु अपने पूर्व भोग-विलास के कारण भिक्षु का जीवन उनके लिए बहुत कठिन हो गया था, इसलिए उन्होंने भक्तों की भेंट स्वीकार करने में स्वयं को अयोग्य समझा और कहा: 'मैं भ्रमण करूँगा।' रास्ते में वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। और जब मार्ग पर गाड़ियाँ गुजर रही थीं, तो एक थका हुआ बैल एक ऊबड़-खाबड़ स्थान पर ठोकर खाकर गिर गया। गाड़ीवान ने बैल का जुआ ढीला किया, उसे घास और पानी दिया और इस प्रकार उसकी थकान दूर की; फिर उसने उसे दोबारा जोता और वे आगे बढ़ गए। तब थेरा ने सोचा: 'जिस प्रकार यह बैल ठोकर खाकर उठा है और अपना बोझ स्वयं खींच रहा है, उसी प्रकार मेरा भी कर्तव्य है, जो एक बार बुराई के जंगल में ठोकर खा चुका हूँ, कि मैं उठूँ और एक भिक्षु के कर्तव्य का पालन करूँ।' और विचारपूर्वक पीछे मुड़कर, उन्होंने थेरा उपाली को अपने किए और देखे हुए के बारे में बताया, [2] जिन्होंने उन्हें उनके दोष से मुक्त किया और सही मार्ग पर वापस लाने में सहायता की। और कुछ ही समय बाद उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद स्वतंत्रता के आनंद का अनुभव करते हुए, उन्होंने इस श्लोक में अपने पतन और वापसी का वर्णन किया:

[45] यथापि भद्दो अजञ्ञो खलित्वा पतितिथति॥
एवं दस्सानसम्पन्नानां सम्मासंबुद्धसावकांति॥॥

[45] चाहे वह ठोकर खाकर गिर भी जाए,
श्रेष्ठ वंश का वह साहसी प्राणी एक बार फिर दृढ़ता से खड़ा हो जाएगा।
इसलिए मुझे उस व्यक्ति के रूप में देखो जिसने
सर्व-प्रबुद्ध ईश्वर से ज्ञान प्राप्त किया है,
सच्ची अंतर्दृष्टि प्राप्त की है, श्रेष्ठ वंश का हो गया है,

और स्वयं बुद्ध का ही बालक बन गया है। [3]

[1] या अच्छी तरह से पॉलिश किया हुआ, सुसामाṭṭहाṃ।

[2] भजन संहिता CLXXX देखें। विनय या संघ के अनुशासन में सबसे बड़े विशेषज्ञ के रूप में, उपाली (यदि यह वही उपाली है जिसका अर्थ है) उसकी चूक के संबंध में निर्णय लेने और उसे सलाह देने के लिए अत्यंत योग्य थे।

[3] 'जैसा कि यह श्लोक पीटीएस संस्करण में है, यह अधूरा है। टीका से हमें यह अनुमान लगाने की प्रेरणा मिलती है कि इसे पूरा किया जाना चाहिए, जैसा कि श्लोक 174 में है, देखें

1.5-5[45] श्लोक पर टिप्पणी

रमणीयविहारी थेरा
5.1. यथा पि भद्दो आजाञ्ञो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा रामणियविहारी का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के प्रति भक्तिपूर्ण कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और संयोगवश उन्हें 91 ईओम (कप्पा) पूर्व विपस्सी बुद्ध के दर्शन हुए। वे श्रद्धापूर्वक पांच रूपों में पृथ्वी पर आसीन होकर (पंचपतिठित) उन्हें प्रणाम किया और कोरण्ड के पुष्प अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म देवताओं के बीच हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे राजगृह में एक धनाढ्य के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। कामुक सुखों में मदहोश (मुच्चं आपनो) होकर, एक दिन उन्होंने राजपुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में व्यभिचार करते देखा। उन्हें पश्चाताप हुआ, गुरु के समक्ष उन्होंने सत्य (धम्म) सुना और भिक्षु बन गए। भिक्षु बनने के बाद भी, अपने कामुक आचरण (रागचरित) के कारण, वे हर समय सुसम्मत्त में रहते थे, उनका भोजन और पेय पदार्थ उनके पास ही परोसा जाता था और उनका पलंग एवं सिंहासन भी सुव्यवस्थित रहता था। इसी कारण वे रमणीयविहारी के नाम से भी प्रसिद्ध हुए।

5.2. कामवासना (राग) के संचय (उस्सान्नता) के कारण, उसने अपनी जागरूकता को नासमझी (अयोनिसो) में बदल दिया, और वीर्यपात (सुक्का) का ऐसा धार्मिक अपराध (आपात्ती) किया जो जानबूझकर (संचेतनिक) था, और पश्चाताप (विप्पतिसारी) करते हुए अपने मन में कहा: — "यह मेरे लिए शर्मनाक है कि मैं इस प्रकार दानदाताओं द्वारा उनके श्रद्धापूर्ण विश्वास (सद्धा) के साथ अर्पित भोजन का आनंद लेने लगा।" संघ को त्यागने के इरादे से जाते समय, वह रास्ते में एक पेड़ के नीचे बैठ गया; जब उसी रास्ते से बैलगाड़ियाँ चलती रहीं, तो एक बैल, जो गाड़ी से जुता हुआ था, थकान (परिस्सामंतो) से भरा होने के कारण, एक ऊबड़-खाबड़ जगह पर ठोकर खाकर गिर गया; गाड़ीवालों ने उस बैल को जुए से मुक्त किया, उसे घास और पानी खिलाया, उसकी थकान दूर की, फिर से उसे जुए में जोतकर बोझ ढोने के लिए तैयार किया और चले गए। यह देखकर थेरा ने मन ही मन कहा: "जिस प्रकार यह बैल एक बार ठोकर खाने के बावजूद उठ खड़ा हुआ और फिर से अपना बोझ ढोने लगा, उसी प्रकार मेरे द्वारा भी, जो एक बार ठोकर खाकर गिरा था, यह उचित है कि भिक्षु के कर्तव्य उठकर ही पूरे किए जाएं।" इस प्रकार, बुद्धिमानी से (योनिसो), वे वापस लौटे, थेरा उपाली को अपने साथ घटी घटना की सूचना दी, थेरा के निर्देशानुसार विधिपूर्वक (वत्त) धार्मिक अपराध से मुक्त हुए (वुट्ठहित्वा), अपने नैतिक उपदेश को सामान्य बनाया, स्पष्ट अंतर्दृष्टि को बढ़ावा दिया (पट्ठपेत्वा) और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:

कुचले हुए लोगों को देखकर

पहियों से सजे पदचिह्न-

आभूषण, मैं उसका बारीकी से पीछा करता रहा।

महान ऋषि के पदचिह्न

विपस्सी (बुद्ध)।

कोरण्ड को देखते ही

झाड़ी का फूल जो खिल रहा था,

मैंने इसे श्रद्धापूर्वक अर्पित किया-

अपनी जड़ के साथ इकट्ठा; बन गया

मुझे खुशी है कि मैंने सबसे महान व्यक्ति को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मेरे खुश पैरों के साथ उत्कृष्ट पैर (पाड़ा)

हृदय (haṭṭhena cittena).

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जबकि मैंने विशेष रूप से पेशकश की है

आदरपूर्वक फूल चढ़ाएं। मैं पुनः नहीं करता-

किसी भी बुरी शक्ति का सदस्य; यही है

मेरे श्रद्धापूर्वक करने का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

सत्तावन युग (कप्पा) पहले, मैं एक था

एकमात्र विश्व-राजा जो अशुद्धियों से रहित हो (वीतमालो)

शक्तिशाली और बलवान, सात शक्तियों से संपन्न

रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

5,3. हालाँकि, अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने मुक्ति के आनंद का अनुभव किया और एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत "यथा पि भद्दो आजञ्ञो खालित्वा पतितित्तति" से होती है, जो उनके पवित्र कर्म (अरियाधम्म) की उपलब्धि और उनके उचित अभ्यास (पतिपत्ति) पर प्रकाश डालता है: उनके अपने अतीत (पुब्बभाग) का।

45. यहाँ 'खलित्वा' का अर्थ है ठोकर खाना, लड़खड़ाना (पक्खलित्वा)। 'पतितित्तति' का अर्थ है फिर से खड़ा होना, वह फिर से खड़ा हो जाता है, जैसे वह खड़ा हुआ था (यथाठाने)। 'एवम्' का अर्थ इस प्रकार है:— जैसे एक उत्तम नस्ल का बैल, अपना बोझ ढोते हुए, थककर एक ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर आ गिरा, एक बार ठोकर खाई और गिरने के बावजूद उस दुर्घटना (तत्तकेना) के कारण अपना बोझ नहीं छोड़ा (धुरा): इसके विपरीत, शारीरिक शक्ति (थामा), चपलता (जावा) और प्रयास (परक्कमा) से संपन्न होने के कारण, ठोकर खाने के बावजूद, वह फिर से खड़ा हो गया, और अपने स्वभाव से ही खड़े होने के बाद अपना बोझ ढोता है; इसी प्रकार, दुराचार (किलेसा) के कारण थकावट से ग्रस्त होकर और पाप करने के कारण ठोकर खाकर, उसने अपनी शारीरिक शक्ति और परिश्रम की समृद्धि के कारण, सही दृष्टिकोण (मग्गसम्मादिट्ठी) के पवित्र मार्ग के माध्यम से उस ठोकर को उचित रूप से सामान्य (पटिपाकटिकं)

बना दिया; दस्सनसम्पन्नं का अर्थ है अंतर्दृष्टि, सही दृष्टिकोण से संपन्न होना; इसके फलस्वरूप, सम्मासंबुफ्हस्स सावकं का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: — सुनने के अंत में (सवनन्ते), क्योंकि मैं पवित्र (आरिया) का (जातता) फल (जाति) हूँ और उनके हृदय (तस्सौरे) में परिश्रम (वायामजनित) से उत्पन्न (अभिजाति) होने के कारण, आपको मेरा ध्यान (धारेत) रखना चाहिए और मुझे ध्यानपूर्वक (उपधारेत) याद रखना चाहिए कि मैं उनका प्रिय पुत्र हूँ और उत्तम (आजनीय) हूँ क्योंकि मैंने उत्तम शुद्ध पुरुष के समान कर्म किए हैं; यही अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा रमणीयविहारी का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(46):समिद्धि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (46) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
46. समिद्धि
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक कुलवासी परिवार में हुआ। [1] जन्म से ही उनके परिवार की संपत्ति बढ़ती गई और वे स्वयं, सुंदर और गुणी होने के कारण, समिद्धि (प्रोस्पेरो) के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने बुद्ध की शक्ति को तब देखा जब बिम्बिसार उनसे मिले थे, [2] उन्होंने बुद्ध में आस्था प्राप्त की और संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करके) ध्यान में लीन हो गए। जब भगवान (बुद्ध) तपोद उद्यान में ठहरे हुए थे, [3] एक दिन समिद्धि भिक्षु के रूप में अपने सौभाग्य पर अत्यंत प्रसन्नता से ध्यान कर रहे थे। तभी दुष्ट मारा (मृत्यु का देवता/राक्षस) इसे सहन न कर पाने के कारण उनके पास एक भयानक ध्वनि उत्पन्न की, मानो पृथ्वी फट रही हो। थेरा ने यह बात भगवान (बुद्ध) को बताई। बुद्ध ने उनसे कहा कि वे जहाँ हैं वहीं बने रहें और इसके बारे में और न सोचें। उन्होंने आज्ञा का पालन किया और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। मारा, इससे अनभिज्ञ होकर, एक बार फिर भयानक शोर मचाने लगा। परन्तु थेरा को कोई भय नहीं हुआ: 'ऐसे सभी मारों से भयभीत न होकर, मैं जरा भी विचलित नहीं हुआ!' और ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) का स्वीकार करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[46] सद्ध्यायहाऽ पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ॥
सति पणना च मे वुद्धा चित्तौ च सुसामहितां॥
कामां करासु रूपाणि नेवा माऽ बधायिस्सि' ति.॥ ॥

[46] विश्वास और आशा के साथ मैं अपने घर से निकलकर
बेघर जीवन में आया। और वहाँ मुझमें
सजगता और अंतर्दृष्टि विकसित हुई, और
मेरा हृदय और मन शांत और स्थिर हो गया। तुम
चाहे जो भी बहाने बना लो, तुम मुझे हानि नहीं पहुँचा सकते।

और मारा (मृत्यु का देवता/राक्षस), इस प्रकार फटकार खाकर, बोला, 'भिक्षु मुझे जानता है,' और उस स्थान से गायब हो गया।

[1] कुलायेहे. तुलना करें. राइस डेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ. 17-22.

[2] विनय ग्रंथ , इ. 130.

[3] यह प्रसंग लगभग उन्हीं शब्दों में और उसी गाथा के साथ मारा-संयुत्त (संयुत्त, i. 119 f., पृ. 91) में वर्णित है, लेकिन भूगोल थोड़ा अस्पष्ट है। निकाय में यह स्थान शाक्यों का सिलावती है; तपौदा उद्यान राजगृह में उसी नाम की नदी पर स्थित था। समिद्धि, एडोनिस और गलाहद की दोहरी भूमिका में, 'समिद्धि-जातक' (जातक ii., संख्या 167) का विषय है।

1.5-6 [46] श्लोक पर टिप्पणी

समिद्धि थेरा
6.1. सद्धायाहं पब्बजितो से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा समिद्धि का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले भगवान सुद्धत्था के दर्शन किए, तो वे श्रद्धापूर्वक फूल और उनकी टहनियों को एक गठरी में बाँधकर (कणिक-बद्ध) उन्हें आदरपूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, अपने बार-बार के जन्मों में उत्तम जन्मों में भी, उनका जन्म राजगृह के एक पारिवारिक घर में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनके जन्म के समय से ही वह परिवार धन और अनाज की संपत्ति से उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया; उनका शरीर भी विशेष रूप से सुंदर, आकर्षक और अच्छे गुणों से युक्त था; इसलिए धन की समृद्धि और गुणों की महिमा के कारण उन्हें समिद्धि के नाम से भी जाना जाता था। बिम्बिसार की राजसभा में बुद्ध की शक्ति को देखकर, उन्होंने उचित श्रद्धा (सद्धा) धारण की, भिक्षु बन गए और भावना में लीन होकर जीवन व्यतीत किया। एक दिन, जब भगवान बुद्ध तपौदा मठ में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने मन ही मन सोचा, “हे गुरु, हे योग्य, स्वयं-जागृत बुद्ध, मुझे तो लाभ ही है; मैं धर्म के सुगठित अनुशासन में भिक्षु बन गया हूँ; मेरे साथी धर्मनिष्ठ (सब्रह्मचारी) नैतिक उपदेशों से युक्त और स्वभाव से अच्छे हैं।” ऐसा सोचते हुए उन्हें अपार उत्साह और आनंद प्राप्त हुआ। इसे सहन न कर पाने के कारण, दुष्ट मारा ने थेरा से कुछ ही दूरी पर एक भयानक ध्वनि उत्पन्न की; ऐसा लगा मानो पृथ्वी का प्रलय आ गया हो; थेरा ने इस विषय की सूचना भगवान बुद्ध को दी। भगवान बुद्ध ने कहा:— “यह मारा की योजना थी तुम्हें भ्रमित करने की; हे भिक्षु! वहाँ जाओ और इसके बारे में सोचे बिना जीवन व्यतीत करो।” थेरा वहाँ गए, जहाँ उन्होंने जीवन व्यतीत किया, विपश्यना में लीन रहे और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

सिद्धार्थ को देखकर सारथी

पहाड़ी के अंदर बैठे पुरुषों में से, चमकते हुए-

कनिकारा फूल की ओर बढ़ते हुए, सभी दिशाओं को रोशन करते हुए-

तब मैंने पूरी निश्चितता के साथ प्रणाम किया।

मैंने तीर से खुद को लैस किया और एक फूल तोड़ा।

इसकी टहनी के साथ और विशेष रूप से पेश किया गया

इसे बुद्ध को अर्पित करें।

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, मैंने विशेष रूप से फूल भेंट किया है;

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का फलदायी परिणाम यही है।

बुद्ध को।

आज से इक्यावन युग (कप्पा) पहले मैं बना था

एक अकेला विश्व-राजा, प्रतिभा का वाहक,

शक्तिशाली, बलवान और सात रत्नों से सुशोभित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

6.2. हालांकि, जब थेरा अभी भी वहीं रह रहे थे और अरहंतत्व प्राप्त कर चुके थे, तब मारा, इस तथ्य से अनभिज्ञ होकर कि थेरा रोगमुक्त हो चुके हैं, पहले की ही तरह एक भयानक ध्वनि उत्पन्न की। यह सुनकर, थेरा, जो भयभीत और अविचलित थे, ने "सद्धायाहं पब्बजितो" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए मारा से कहा: "तुम्हारे जैसे सौ-हजारों मारा भी मेरे शरीर के एक-एक बाल को भी नहीं हिला सकते।"

46. वहाँ, सद्धाय का अर्थ है: कर्म और उसके फल (कम्मफल) में पवित्र आस्था के माध्यम से, साथ ही धर्म के प्रति इच्छा जागृत करने के उद्देश्य से तीन रत्नों में आस्था के माध्यम से। अहं का अर्थ है: वह स्वयं को इंगित करता है। पब्बजितो का अर्थ है भिक्षुत्व के निकट जाना। अगरस्मा का अर्थ है या तो घर से या गृहस्थ जीवन से। अनागारियं का अर्थ है त्याग, भिक्षुत्व। वास्तव में, खेती, व्यापार आदि का जो भी कार्य 'गृहस्थ का कल्याण' (अगारस्स हितं) है; अर्थात्, गृहस्थ जीवन है; इसके अभाव के कारण इसे "अनागारिय (गृहस्थ जीवन)" कहा जाता है। सति पन्ना च मे वुद्धा का अर्थ इस प्रकार है: स्मरण (सरण) सति की विशेषता (लक्खण) है; तार्किक ज्ञान (पजानन) सती सजगता का प्रतीक (लक्खण) है; तार्किक ज्ञान (पजानन) ज्ञान (या बुद्धि) का प्रतीक (लक्खण) है; इस प्रकार, इन घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से देखने (विपस्सनाखण) के क्षण से ही, अरहंतत्व की प्राप्ति तक, पवित्र मार्गों (मग्ग) का क्रमिक विकास (पटिपाटि) होता रहा; अब ऐसा कुछ भी नहीं बचा है जिसे और अधिक विकसित किया जाना चाहिए; सती सजगता और बुद्धि (पक्खण) की प्रचुरता प्राप्त हो चुकी है; इस प्रकार, वे दर्शाते हैं। चित्तंच सुसमाहितं का अर्थ इस प्रकार है: — आठ प्रकार की उत्कृष्ट ध्यान संबंधी उपलब्धियों (समापत्ति) और दिव्य एकाग्रता (लोकउत्तर समाधि) के द्वारा मेरा मन अच्छी तरह से स्थिर हो गया है; अब उस मन के लिए एकाग्रता की कोई आवश्यकता नहीं है; एकाग्रता की प्रचुरता (समाधि) प्राप्त हो गई है; इस प्रकार, वे बताते हैं। अतः कामं करस्सु रूपानि का अर्थ इस प्रकार है: — हे दुष्ट! तुम मुझे अपना निशाना बनाकर हर प्रकार का परिवर्तन करते हो; न'एव मन ब्याधयिस्ससि का अर्थ इस प्रकार है: — यद्यपि तुम उनके द्वारा मेरे शरीर को हिला भी नहीं पाओगे; तो मेरे मन में परिवर्तन (चित्तञ्ञथत्त) कहाँ से आया? अत: तुम्हारे कर्मों से कोई लाभ नहीं होगा, ठीक वैसे ही जैसे कोई उपहार अस्वीकृत कर दिया जाए (अप्पतिच्छित पाहेनक); तुम्हारे कर्मों का फल केवल तुम्हारे मन को और अधिक विचलित करेगा; इस प्रकार, थेरा ने मारा को धमकी दी। थेरा की बात सुनकर मारा वहाँ से विदा हो गया, परन्तु मन ही मन बोला, "भिक्षु मुझे पहचान गया।"

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा समिद्धि का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(47):उज्जय

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (47) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
47. उज्जया
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) स्नातक के पुत्र के रूप में हुआ। [1] परिपक्व होकर और तीनों वेदों में निपुण होकर, उन्होंने उनमें कोई सार नहीं देखा, और परिस्थितियों की परिपक्वता से प्रेरित होकर, वे बाँस के वन में गए, और जब उन्होंने

भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुना, तो उन्होंने संसार त्याग दिया (सन्यास के लिए)। वन में नैतिक आचरण पर ध्यान करते हुए, उन्हें अर्हत्व (ज्ञान) प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। इसके बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) की स्तुति करते हुए, इस श्लोक में अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[47] नमो [8] ते बुद्धविरत्थु विप्पमुत्तोसि सब्बाधि॥
तुयहापादाने विहारं विहारामि अनासवोऽ ति.॥ ॥

[47] बुद्ध, प्रबुद्ध, महान! जय हो! सभी को! [2] आप जो हर बंधन से पूर्णतः मुक्त हैं!
आपसे प्राप्त ज्ञान में बलवान होकर मैं जीता हूँ [3] चौगुने विष से शुद्ध, समझदार, प्रतिरक्षित। [4]

[1] सोत्थिया ब्राह्मण (संस्कृत श्रोत्रिय), 'वह जिसने पवित्र परंपरा में स्नातक की उपाधि प्राप्त की हो।'

[2] सिस्टर्स, श्लोक 157 देखें ।

[3] अधिक शाब्दिक रूप से, 'आपकी बुद्धिमत्ता में मैं एक जिगर के रूप में जीवित रहता हूँ।'

[4] अर्थात्, चार आसवों, या विषों या मादक पदार्थों (अपराध/इच्छाओं) में से - कामुकता, पुनर्जन्म का प्रेम, राय या अटकल, अज्ञान (संकलन पृ. 227)।

1.5-7 [47] श्लोक पर टिप्पणी

उज्जयत्थेरा
7.1. 'नमो ते बुद्ध विरत्थु' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उज्जैन का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म किए, और आज से बानवे युग (कप्पा) पहले भगवान तिस्सा के दर्शन किए, वे श्रद्धावान हुए और उन्हें कणिकार पुष्प अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्म चक्र में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में सोत्तिया नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम उज्जैन था। जब वे वयस्क हुए तो तीनों वेदों में पारंगत (तिण्णं वेदनं पारगू) थे, तथा उनमें कोई सार न देखकर, और अरहंत पद (उपनिषय) प्राप्त करने के लिए पर्याप्त योग्यता की समृद्धि (संपत्ति) से प्रेरित होकर, वे वेलुवन वन में गए, गुरु की उपस्थिति में धर्म का प्रवचन सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था (पटिलद्ध सद्धो) प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) किया, वन में निवास करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, और कुछ ही समय में अरहंत पद प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"कणिकारा फूल को खिलते हुए देखकर,

मैंने तब इसे तोड़ा और विशेष रूप से भेंट किया।

तिस्सा जैसे बुद्ध के लिए भी यही बात लागू होती है।

संसार की बाढ़ को पार कर लिया था।

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जब मैंने पुष्प अर्पित कर दिए हैं।

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो; यह

श्रद्धा भाव रखने का यही फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली विशेष भेंट।

आज से पैंतीस युग पहले, मैं एक था

विश्वराज, पराक्रमी और बलवान, वरदान प्राप्त

सात रत्नों से सुप्रसिद्ध, अरुणपाणी

(सूर्य ताड़)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

7,2. हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वह गुरु के समक्ष उपस्थित हुए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और "नमोते बुद्ध विरत्थु" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे उन्होंने भगवान की स्तुति करने के तरीके से अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया।

47. यहाँ नमो का अर्थ है आराधना की घोषणा। ते का अर्थ है आराधना करने के लिए संपदान (संपदान) की घोषणा; इसका अर्थ है: आपको (तुयहं)। बुद्धवीर भगवान को संबोधित शब्द है। वास्तव में, भगवान को "बुद्ध, प्रबुद्ध, ज्ञाता" कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने आत्म-ज्ञान (सयम्भुणा) के माध्यम से उचित रूप से समझे जाने वाले सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान (अत्थस) प्राप्त कर लिया है, जिसे विशेष बोध (अभिञ्ञेय्यदि) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार, उन्हें "वीर" कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने मार के पाँच रूपों को विशेष रूप से कुचलकर अपने परिश्रम (पदाहन्त) में अपार परिश्रम किया है। अत्थु का अर्थ है हो (होतु): उनका “नमो (आराधना)” हो; यही संबंध है। विप्पमुत्तोसि सब्बधि का अर्थ इस प्रकार है: — जब सब कुछ भौतिक समुच्चय (संस्कार) बन गया है, तब आप सभी प्रकार की बुराइयों (किलेसा) से स्पष्ट रूप से मुक्त (विप्पमुत्तो) और स्पष्ट रूप से विखंडित (विसंयुत्तो) हो गए हैं; अर्थात्, ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे आप स्पष्ट रूप से मुक्त न हुए हों; तुयहपादाने विहारं, विहारमि अनासवो का अर्थ इस प्रकार है: — चूंकि मैं आपकी शिक्षा और सलाह के अनुसार पवित्र मार्ग (मार्ग) पर उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) के आचरण (चरिया) का पालन करते हुए, अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ, इसलिए मैं चारों प्रकार के दोषों (आसव) से मुक्त हूँ, जिनमें कामासव दोष भी शामिल है; हे वीर बुद्ध! आप जैसे व्यक्ति को मेरी श्रद्धा हो!

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा उज्जैन का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(48):संजय

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (48) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
48. संजय

बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर उन्होंने ब्रह्मायु, पोक्खरसाती और अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मणों (पुजारियों) का अनुसरण किया, जिन्होंने भगवान (बुद्ध) में आस्था पाई और प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) को प्राप्त किया। बाद में उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और छह अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त किए । [53] फिर, अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[48] यतो अहं पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ॥
नाभीजानामि संकप्पां अनारियं दोषसंहितं' ति.॥ ॥

[48] जब से मैं घर छोड़कर (भिक्षुता के लिए) बेघर जीवन में गया हूँ,
मैंने कभी भी सचेत इच्छा या योजना नहीं रखी है
जो अन-आर्यन हो, या शत्रुता से जुड़ी हो। [1]

[1] श्लोक 603, 645 देखें। पोक्खरसाती और अन्य ब्राह्मणों (पुजारियों) का नाम वासेठ सूत्र (सूत्र-निपात, iii. 9) में अनुयायियों के रूप में लिया गया है, लेकिन संजय का उल्लेख नहीं है। यह सारिपुत्त का गुरु नहीं है (CCLIX)।

1.5-8[48] श्लोक पर टिप्पणी

संजय थेरा

8.1. यतो अहं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा संजय का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, एक बड़े व्यापारिक संघों के समूह में प्रचार करके सामग्री एकत्र की, तीन रत्नों को समर्पित पुण्य कर्म किए। हालांकि, भगवान विपस्सी के समय वे स्वयं दरिद्र थे, और उन्होंने उस समूह के लिए पुण्य कर्म करने में स्वयं को व्यस्त रखा। बार-बार वे भगवान बुद्ध के पास जाते, उन्हें प्रणाम करते और अपने पुण्य भाव से वे न केवल बुद्ध बल्कि भिक्षुओं की भी सेवा करते। इसी पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका जन्म हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे कई जन्मों तक उत्तम देह धारण करते रहे। अंत में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ, जब संजय नाम से बुद्ध का जन्म हुआ। वयस्क होने पर उन्होंने ब्रह्मायु, पोक्खरसाती आदि जैसे प्रसिद्ध ब्राह्मणों को शासन के प्रति विशेष श्रद्धा रखते देखा। इससे उनके मन में भी श्रद्धा का भाव जागा और वे गुरु के पास गए। गुरु ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने धर्म को ध्यान से सुना और एक संत बन गए। बाद में वे भिक्षु बन गए। भिक्षु बनने पर उन्हें अपने मुंडन कक्ष में भी छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) प्राप्त हुए। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

"वहाँ एक बहुत बड़ा निगम था

भगवान विपस्सी के लिए संघ;

मैंने भी अपनी सेवा प्रदान की।

(veyyāvaccakaro); मैंने खुद को रखा

उन सभी चीजों में व्यस्त जो

किया जाना चाहिए (सब्बाकिसेसु ववातो)।

मेरे पास दान करने के लिए कुछ भी नहीं था।

सुगाता को अर्पण (देय्यधम्म)।

महान ऋषि। गुरु के चरणों में।

मैंने मन ही मन प्रसन्नतापूर्वक अपना सम्मान व्यक्त किया।

पवित्र (विप्पसन्नेन)

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने अपने सेवा कर्तव्यों का पालन किया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही वह बात है

सेवा प्रदान करने का फलदायी परिणाम।

आज से आठ युग (कप्पा) पहले भी,

मैं एक महान और शक्तिशाली विश्व राजा बन गया।

सुविचारशील (सुसिंटिटा) से संपन्न

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

8,2. हालाँकि, छह प्रकार के अतिज्ञान से परिपूर्ण होकर, उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए “यतो अहं पब्बजितो” से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला।

48. यतो अहं पब्बजितो का अर्थ है: मेरे भिक्षु बनने के समय से उत्पन्न, आरंभ से। नाभिजानामि संकप्पं अनरियं दोससंहितं का अर्थ इस प्रकार है:– मेरे भिक्षु बनने के समय से, मुझे ऐसे बुरे विचारों जैसे कामुक विचारों आदि के उत्पन्न होने का स्मरण नहीं है, जिन्हें अवास्तविक गुणों आदि के कारण “संकप्पो (इरादा)” का नाम दिया गया था, इंद्रियों के नीच बुरे विषयों पर चिंतन (आरम्मणे) करने में, जो कामवासना आदि जैसे दोषों से जुड़े हैं, जो नीच और निम्न स्तर (निहीन) हैं, क्योंकि पवित्र (अरीय) लोग या तो उनसे बचते हैं (अनरणीयता) या अपवित्र (अनरिय) लोग उन्हें संजोते हैं (अरणीयता); उन्होंने इन शब्दों से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया; “खुरग्गेयेव मया अरहन्तं पट्टां (मुझे अरहंतत्व उसी प्रकार प्राप्त हुआ जैसे मेरे बाल खुरा से मुंडवाए गए थे)।”

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा संजय का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(49):रामनेय्यका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (49) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
49. रामणेय्यक
बुद्ध युग में सावत्थी में एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेने पर, जेतवन भेंट किए जाने पर उनका हृदय द्रवित हो गया, [1] और उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए)। वन में रहते हुए उन्होंने नैतिक आचरण पर ध्यान किया, और अपनी उपलब्धियों और आकर्षण के कारण वे रामाणेय्यक (ग्रेटस, ग्रेटुलस) कहलाने लगे ।

एक दिन, दुष्ट मारा (मृत्यु का देवता/राक्षस) ने उसे परेशान करने के इरादे से एक भयानक शोर मचाया। थेरा ने उसे सुनकर, अपने स्वभाविक साहस के साथ, निडर होकर, यह जान लिया कि यह मारा ही है। और अपना तिरस्कार दिखाने के लिए उसने यह श्लोक कहा:

[49] विहाविहाभिनादिते सिप्पिकाभिरुते च॥
न मे तं फंदति चित्ताm̥ एकत्तनिरताm̥ ही मे' ती॥ ॥

[49] तुम्हारे शोर का सारा खड़खड़ाहट नहीं,
जंगल की आवाज़ों की चहचहाहट और चीख से ज़्यादा नहीं, [2] नाड़ी को धड़कने या मन को व्याकुल करने के लिए पर्याप्त है,
क्योंकि एक ही लक्ष्य है जिसके लिए मेरा दिल समर्पित है।

यह श्लोक थेरा द्वारा अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया।

[1] देखें पृष्ठ 4; सिस्टेन, पृष्ठ 60.

[2] पाली शब्दकोश की सीमित सीमा के कारण, टीका में सिप्पिका की व्याख्या को समझना कठिन है । लेकिन यह स्पष्ट है कि थेरा ने मारा के 'भयानक शोर' की तुलना बंदरों और गिलहरियों द्वारा उत्सर्जित छोटी-छोटी वन ध्वनियों से तिरस्कारपूर्वक की है। गाथा, संक्षेप में, इस प्रकार है: जहाँ तक xy शोर और z ध्वनियों का संबंध है, वे मेरे हृदय को नहीं धड़कातीं, क्योंकि एकता के प्रति मेरी भक्ति है।

1.5-9 [49] श्लोक पर टिप्पणी

रामाणेय्यक थेरा
'चिहाविबाभिनादी ते' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा रामणेय्यक का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करने के कारण, वे भगवान सिख धर्म के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो उन्होंने भगवान बुद्ध के दर्शन किए, श्रद्धा से भर गए और उन्हें पुष्प अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण, वे दिव्य लोक में पुनर्जन्म लेकर आए और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, लेकिन उत्तम जन्मों में, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत में एक समृद्ध (इब्भा) परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए। वयस्क होने पर, जेतवन मठ के प्रवेश समारोह में उनमें मनभावन श्रद्धा उत्पन्न हुई; वे भिक्षु बन गए और मानसिक साधना में लीन हो गए। (कम्मट्ठाना) उनके आचरण के अनुरूप, और वे वन में रहते थे। उनकी समृद्धि और भिक्षु के लिए उपयुक्त उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के कारण, तथा उनके सुखद स्वभाव (पासादिकभाव) के कारण, उनका नाम रामणेय्यक पड़ गया। फिर एक दिन, मारा ने थेरा को भयभीत करने की इच्छा से एक भयानक ध्वनि उत्पन्न की। थेरा ने अपनी स्वाभाविक दृढ़ता के कारण निर्भयता से यह ध्वनि सुनकर जान लिया कि यह मारा है और वहाँ अपनी अवहेलना (अनादरं) प्रदर्शित करने के लिए “चिहाचिहाभिनादिते” से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला।

49. वहाँ, cihacihābhinadite का अर्थ इस प्रकार है:— cihaciha जैसी ध्वनि के निरंतर प्रचलन के कारण, रथों (vaṭṭaka) का शोरगुल वाला स्वभाव, जिसे “cihaciha” नाम दिया गया है; गर्जना का कारण; यही इसका अर्थ है। Sippikābhirutehi ca का अर्थ इस प्रकार है:— Sippikā को दूसरे नाम से देवका कहा जाता है। ये बंदर (sākhāmigā) हैं जिनमें बीमारी के कारण भूखे (chāta) और दुबले (kisa) लड़कों का स्वभाव होता है। कुछ लोग इन्हें “mahādalandakā (एक बड़ी गिलहरी)” कहते हैं। Sippika (बंदरों और गिलहरियों) की तेज आवाज़ों और चीखों के कारण। इस वाद्य अभिव्यक्ति का प्रयोग कारण (hetu) के संदर्भ में किया जाता है। इसी कारण; यही इसका

अर्थ है। Na me taṃ phandati cittaṃ का अर्थ है कि ध्वनि यह भटक जाता है (चवति)। ऐसा कहा गया है:— हे दुष्ट! इस वन में, पशुओं के रोने और गिलहरियों और बंदरों के चिल्लाने के कारण के समान, तुम्हारा चीखना मेरे मन को मानसिक अभ्यास से विचलित नहीं कर सकता (कम्मट्ठान)। उन्होंने वहाँ इसका कारण इस प्रकार बताया: "एकत्तनिरतं हि मे", जिसका अर्थ है:— व्याकरणिक शब्द 'हि' का अर्थ कारण (हेतु) है; क्योंकि मेरे मन ने समाज से संबंध त्याग दिया है (गणसंगणिक) और एकांत और एकांत की अवस्था में रहा है; दूसरे शब्दों में, बाह्य रूप से अशांति को त्याग दिया है और चिह्नहीन और एकाग्र (एकग्गता) की अवस्था में रहा है; दूसरे शब्दों में, एकांत की अवस्था में, स्वभाव से बिल्कुल अकेला (एकसभाव) मेरे मन को आनंद मिला है। और निर्वाण में आनंद; इसलिए, (मेरा मन) विचलित (फंदति) नहीं होता और मेरे मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) से विमुख (चवति) नहीं होता: ऐसा कहा जाता है कि इस श्लोक का उच्चारण करके, थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"स्वर्ण रंग वाले धन्य पुरुष,

धधकती सौ किरणों का स्वामी,

पुरुषों के बीच बैल की कलगी (सिखीसभो),

उन्होंने अपने मन में प्रेम और दया का भाव भर लिया था

मठ के गलियारे में अच्छी तरह से स्थापित।

धार्मिक और नेक दिल होने के कारण, मैंने भुगतान किया।

मैं उस उत्कृष्ट व्यक्ति को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

ज्ञान; मिनेला को ऊपर उठाकर

मैंने यह फूल बुद्ध को अर्पित किया।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने अपना आदरपूर्वक

फूल का अर्पण। मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

उन्नीस युग (कप्पा) पहले, मैं बन गया

सुमेघाघना नामक एक विश्व-राजा,

अत्यधिक शक्ति से परिपूर्ण, सात रत्नों से सुसज्जित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यही वह श्लोक था जिसके द्वारा थेरा ने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया था।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा रामणेय्यक का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(50):विमला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (50) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
50. विमला
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक धनी परिवार में हुआ, और (कसेपा बुद्ध रहते हुए एक पुण्य कर्म पर की गई अपनी मनोकामना के कारण) उनका शरीर कमल के पत्ते पर ओस की बूंद के समान, या उनके पिछले जन्म के बोधिसत्व के समान शुद्ध था। इसी कारण उनका नाम विमला (इम-मैकुलेटस) रखा गया। बड़े होकर राजगृह में बुद्ध के दर्शन से वे श्रद्धा से भर गए, [1] और संसार त्याग कर अध्ययन का मार्ग अपनाया तथा कोसल पर्वत की एक गुफा में रहने चले गए।

एक दिन आकाश में एक विशाल तूफानी बादल छा गया और बारिश हुई, जिससे गर्मी और बुखार कम हो गया, और इस प्रकार थेरा एकाग्रता से काम करते हुए अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त करने में सक्षम हुए। अपने इस कार्य की पूर्ति पर प्रसन्न होकर उन्होंने यह गीत गाया:

[50] धरणि च सिञ्चति1 वती मालुतो विज्जुता चरति नाभे॥
उपासमन्ति वितक्क चित्तं सुसमाहितं मम' ति.॥॥

[50] बोझ से दबी धरती पर बारिश की बूँदें पड़ रही हैं,
ठंडी हवाएँ बह रही हैं, बिजली आसमान में चमक रही है।
मन की चिंताओं को शांत किया
और मेरे हृदय में आत्मा की महारत स्थापित की। [2]

यह श्लोक थेरा द्वारा ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थी।

[1] तुलना करें . पृष्ठ XLI., XLVI.

[2] शाब्दिक रूप से, 'मेरा हृदय (चेतना!) अच्छी तरह से व्यवस्थित है।'

1.5-10 [50] श्लोक पर टिप्पणी

विमला थेरा

10.1. 'धरणी च सिंचति' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा विमला का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे कर्मों का संचय किया और तेजस्वी विपस्सी के समय में एक शंख वादक के परिवार में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने उस विद्या में निपुणता प्राप्त की और एक दिन भगवान विपस्सी से मिलने पर वे श्रद्धापूर्वक उनके समक्ष शंख वादन का अर्पण किया और तब से वे हर उपलब्ध समय में गुरु की सेवा करते रहे (कालें कालं)। उस पुण्य कर्म के कारण, उनका दिव्य लोक में पुनर्जन्म हुआ, वे समय-समय पर पुण्य कर्म करते रहे (अपरापरं) और अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते हुए, उन्होंने बोधि वृक्ष को सुगंधित जल से स्नान कराया, मंदिरों और बोधि वृक्षों के परिसर में सभी आसन धुलवाए और भिक्षुओं की सभी मैली धार्मिक वस्तुओं को भी साफ करवाया, उस समय भगवान कस्सपा ने मन ही मन कहा: “आने वाले समय में मेरा शरीर अशुद्धता से मुक्त और शुद्ध हो।”

10.2. वहां से विदा होकर, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्म के चक्रों में विचरण किया और राजगृह में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। जब वे अपनी माता के गर्भ में थे और जब वे अपनी माता के गर्भ से बाहर आए, तब भी उनका शरीर (उनकी माता के) पित्त और कफ आदि से दूषित नहीं हुआ, और न ही वह हरे कमल के पत्ते पर पानी की बूंद की तरह उलझा (अलग) हुआ; उनका शरीर बोधिसत्व के अंतिम पुनर्जन्म के समान शुद्ध और पवित्र था। इसी कारण उनका नाम विमला रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने राजगृह के प्रवेश द्वार पर बुद्ध की शक्ति देखी, जिससे उन्हें उचित श्रद्धा प्राप्त हुई, वे भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मट्ठान) में लग गए और कोसल राज्य की एक पर्वत-गुफा में निवास करने लगे। फिर एक दिन, चारों महाद्वीपों (चतुदीपिका) को ढकते हुए मूसलाधार वर्षा हुई, जो संपूर्ण ब्रह्मांड (चक्कवाल) की गुफा (गब्ब) में फैल गई। कहा जाता है कि इस प्रकार की वर्षा बुद्धों और विश्व-राजाओं के जीवनकाल (धर्मानाकाल) में उस विश्व-चक्र में होती थी जो गतिमान (विवत्तत्थायि) था। थेरा का मन शांत हो गया। और ग्रीष्म ऋतु की चिलचिलाती गर्मी से मुक्ति पाने के बाद अनुकूल मौसम प्राप्त करने पर एकाग्रचित्त होकर, उन्होंने वहीं पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में स्वयं को लीन कर लिया और क्रमिक रूप से सही मार्ग (मग्गपटीपाटिया) पर चलकर अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैं शंख बजाने वाला था

भगवान विपस्सी। स्थायी रूप से

मैं सेवा कार्य में व्यस्त था।

अच्छे शब्दों का वक्ता (सुगाता),

महान ऋषि (महेसी)।

भाग लेने के लाभकारी परिणाम देखें

ऐसे ही एक पर, रक्षक

विश्व! साठ हजार संगीतकार

हर समय मुझे घेरे रहो।

यह 91 युग पहले की बात है जब मैंने

मैंने महान तपस्वी की सेवा की।

किसी भी बुरी घटना को याद न करो;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

सेवा।

आज से चौबीस युग (कप्पा) पहले,

वहाँ सोलह विश्व-

महान शक्ति वाले राजा जिन्हें इस नाम से जाना जाता है

महानिघोष का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

10,3. अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "धरणी चे सिंचति वात्ति, मलुतो" से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। अपने कर्तव्य को पूरा करने के बाद अपनी मानसिक संतुष्टि पर आनंदित होकर उन्होंने यह उच्चारण किया।

50. वहाँ, धारणी का अर्थ पृथ्वी (पथवी) है; वास्तव में उस पृथ्वी को "धारणी (वाहक)" कहा गया है, क्योंकि वह सभी सहनीय या असहनीय (धरधरं) को वहन करती है। सिंचिति का अर्थ इस प्रकार है:— चारों ओर फैले आकाश में विशेष वर्षा होने के कारण, यह बड़े वर्षा-बादल की वर्षा से भर जाती है। वात मालुतो का अर्थ है कि जल से व्याकुल और अच्छी तरह मिश्रित होने के कारण ठंडी हवा चलती है। विजयता चरति नभे का अर्थ इस प्रकार है:— गर्जना और गर्जना के कारण, भारी वर्षा-बादल से बिजली की चमक निकली और आकाश में इधर-उधर विचरण करती रही। उपासमेंटि वितक्का का अर्थ इस प्रकार है: अनुकूल मौसम से लाभान्वित होकर, प्रारंभिक चरण (पुब्बभागे) में शांति (समथा) और संयम (विपस्सना) की प्राप्ति से, क्षणिक (तगंग) होने के कारण शांत होकर, इंद्रिय सुख आदि से संबंधित सभी नौ उग्र विचार (वितक्का) पवित्र श्रेष्ठ मार्ग (अरियमग्ग) की प्राप्ति से शांत हो गए; वे पूर्णतः समाप्त (अनवसेसतो) हो गए। उन्होंने पवित्र मार्ग (अरियमग्गक्खण) के निकट होने के कारण उसे वर्तमान में उपस्थित (वत्तमान) बनाकर उसके क्षण का वर्णन किया। दूसरे शब्दों में, यह वर्तमान काल की अभिव्यक्ति भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त की गई है। Cittaṃ susamāhitaṃ mama का अर्थ इस प्रकार है:— उसके बाद भी, मेरी मन दिव्य एकाग्रता (लोकउत्तरासमाधि) के माध्यम से अच्छी तरह से स्थिर हो गई थी; अब उस मानसिक स्थिरता (समाधाने) में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है; इस प्रकार, थेरा ने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा विमला का

तैयार है।

पांचवें अध्याय पर टीका

(pañcamavagga)

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(51): गोधिका, सुबाहु, वल्लिया, उत्तिया
श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (51,52,53,54) ------>>>> अगला

अंतर्वस्तु

1अध्याय I. एकल श्लोक भाग IV
251. गोधिका, सुबाहु, वल्लिय, उत्तिया
3Godhikādicatu Thera
4सुबाहु थेरा
5वल्लिया थेरा
6उत्तिया थेरा

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग IV
51. गोधिका, सुबाहु, वल्लिय, उत्तिया

हमारे बुद्ध के समय में, ये चारों, जो पूर्व जन्म में कश्यप बुद्ध के पृथ्वी पर रहने के दौरान सहपाठी थे, पावा [1] में चार मल्ल (राजा) राजाओं [2] के पुत्रों के रूप में पुनर्जन्म लेकर [55] वहाँ उनके बीच पूर्ण मित्रता थी। वे कपिलवस्तु के राजा के पास किसी कार्य के लिए गए। उस समय भगवान (बुद्ध) भी वहाँ गए थे और बरगद के उद्यान में ठहरे हुए थे, जहाँ उन्होंने अपने जुड़वां चमत्कार [3] से शाक्य राजाओं को आश्वस्त किया । तब चारों ने वही चमत्कार देखा और विश्वास किया। उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और कुछ ही समय बाद धर्म (धम्म) के अक्षर और भाव में पूर्ण निपुणता प्राप्त करके अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। अब राजा और उनके मंत्रियों से बहुत सम्मान और समर्थन प्राप्त करने के बाद, वे वन में रहने लगे। फिर राजा बिम्बिसार, जब वे राजगृह गए, तो उन्होंने थेरों को अपने यहाँ बुलाया और वर्षा ऋतु में उनके साथ समय बिताने का निमंत्रण दिया। उन्होंने प्रत्येक थेरे के लिए एक कुटिया बनवाई, लेकिन लापरवाही से उन पर छत नहीं बनवाई। इसलिए थेरों को उन कुटियाओं में बिना छत के रहना पड़ा। लेकिन वर्षा ऋतु में देवता ने वर्षा नहीं की। [4] राजा को यह देखकर आश्चर्य हुआ, उन्हें अपनी लापरवाही याद आई, और उन्होंने कुटिया पर प्लास्टर और रंग करवाया, और एक उद्घाटन समारोह आयोजित किया, साथ ही भिक्षु संघ को उपहार भी दिए। थेरों ने राजा पर कृपा करते हुए कुटिया में प्रवेश किया, और तुरंत ही उन्हें सर्वव्यापी प्रेम का अनुभव हुआ। फिर उत्तर और पूर्व से एक बड़ा तूफानी बादल उठा, और जैसे ही थेरे अपनी समाधि से बाहर आए, वर्षा होने लगी। तब गोधिका, तूफान की गर्जना से जागृत होकर, इस श्लोक का उच्चारण किया:

---

[51] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता॥
चित्तं सुसामहितां च मयहा॥
अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा' ति.॥॥
[51] हे ईश्वर, मधुर संगीत की तरह वर्षा करो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक, सुरक्षित और अच्छी छत वाली है।
मेरा हृदय दृढ़ और शांत है।
अब हे ईश्वर, जैसा आपको प्रसन्न करे, वर्षा करो!

और सुबाहु:
[52] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता॥
चित्तौ सुसमाहिता च कायो॥
अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा' ति.॥॥
[52] ईश्वर ऐसी वर्षा करता है मानो कोई मधुर धुन हो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक है, आश्रययुक्त, अच्छी छत वाली,
मेरे मन ने शरीर की प्रकृति को अच्छी तरह समझ लिया है। [5]
हे ईश्वर, अब जब आपको वर्षा करने की इच्छा हो, वर्षा कीजिए!

और वल्लिया:
[53] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता॥
तस्सं विहारमि अप्पमत्तो॥
अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा' ति.॥ ॥
[53] हे ईश्वर, बारिश करो मानो कोई मधुर धुन हो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक, सुरक्षित और अच्छी छत वाली है।
मैं इस लगन और मेहनत में जीता हूँ।
हे ईश्वर, अब यदि आप चाहें तो बारिश करो!

और उत्तिया:
[54] वस्सति [9] देवो यथा सुगीताm॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता॥
तस्सं विहारामि अदुतियो॥
अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा' ति.॥ ॥
[54] हे भगवान, बारिश करो मानो कोई मधुर धुन हो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक है, सुरक्षित, अच्छी छत वाली।
इसमें मैं अकेला और बिना साथी के रहता हूँ। [6] हे भगवान, अब अगर आपको बारिश करना पसंद हो, तो बारिश करो!

---

[1] संवाद देखें , ii. 186 ff.
[2] मल्लों, कोलियानों, लिच्छवियों, शाकियों में, प्रत्येक कुल के व्यक्ति को (राजा)राजा कहा जाता था।
[3] पृष्ठ 36, नोट 1 देखें।
[4] 'बारिश हुई' के लिए सामान्य मुहावरा (cf. I.)। टीका में फिर से 'देव' को वर्षा-बादल (मेघ) के रूप में वर्णित किया गया है, बिना पज्जुन्ना के। इन वर्षा-संबंधी छंदों की लय एक विचित्र लहरदार लय है। मैं इसे निर्धारित नहीं कर सकता।
[5] शाब्दिक अर्थ: 'इंद्रियों के संबंध में मन अच्छी तरह से संतुलित है।'
[6] अदुतियो का अर्थ यह हो सकता है, या फिर 'लालसा से मुक्त।' देखें श्लोक 896, n.

1.6 अध्याय VI
1.6-1[51] श्लोक पर टिप्पणी
Godhikādicatu Thera
1.1. 'वस्सति देवो' से शुरू होने वाले चार श्लोक इन चार थेरों - गोमिका, सुबाहु, वल्लिया और उत्तिया - के हैं। इनका उद्गम क्या है? इन सभी ने पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले भगवान सिद्धार्थ के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर, वे सहचर बन गए और साथ-साथ विचरण करने लगे। उनमें से एक ने भगवान सिद्धार्थ को भिक्षा मांगते हुए देखा और एक चम्मच भोजन अर्पित किया। दूसरे ने श्रद्धापूर्वक पृथ्वी को स्पर्श करते हुए (पंचपतित्तित) पांच रूपों में प्रणाम किया और अपने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तीसरे ने प्रसन्न मन से भगवान को मुट्ठी भर फूल अर्पित किए। चौथे ने चमेली के फूल आदरपूर्वक अर्पित किए। इस प्रकार, उनका मन गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धामय था, और पुण्य कर्म में लीन होकर वे दिव्यलोक में पुनर्जन्म लेते रहे। बार-बार पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण करते रहे और अंत में भगवान कस्सपा के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लेकर उनके साथी और भिक्षु बने। उन्होंने भिक्षुओं के कर्तव्य निभाए और हमारे प्रतापी भगवान के समय पावा में चार मल्ल राजाओं के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने उन्हें गोमिका, सुबाहु, वल्लिया और उत्तिया नाम दिए। वे आपस में प्रिय साथी बन गए। किसी कार्य से वे कपिलवस्तु गए। उस अवसर पर भी गुरु कपिलवस्तु गए, निग्रोध मठ में निवास किया, दो चमत्कार दिखाए और राजा सुद्धोदन के नेतृत्व वाले शाक्य राजाओं को पराजित किया। तब मल्लमोनार्च के उन चारों पुत्रों ने भी चमत्कार देखा, प्रसन्नतापूर्ण भक्ति प्राप्त की, भिक्षु बन गए, विपश्यना के कर्म किए और विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ-साथ अर्हंत पद भी प्राप्त कर लिया, लेकिन शीघ्र ही। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—
"(सुनहरे रंग वाले को देखकर)
आत्मजागृत बुद्ध, सही प्राप्तकर्ता
समर्पित दान के माध्यम से उत्कृष्ट रूप से उभरना
(अभिनिक्खन्तं) उत्कृष्टता से (पवारा)

लकड़ी से लकड़ीहीन अवस्था में आने के बाद
(अर्थात् तन्हा के जंगल से नंगा क्षेत्र तक)
(तण्खाय) क्षेत्र में, मैंने एक चम्मच चढ़ाया
ऐसे महान नायक, महान व्यक्ति को भिक्षा-भोजन
ऋषि सिद्धार्थ, जिन्होंने स्वयं को शांत कर लिया था
उनकी बुद्धि (पञ्ञा) के माध्यम से।
मेरे सगे संबंधियों, बुद्ध में मेरा आनंद (विट्टी)
सूर्य का, जिसका मैंने बारीकी से अनुसरण किया
उनके पीछे कदम-दर-कदम, जैसे-जैसे वह शांति प्रदान करते गए (निब्बापेंटे)
पुरुषों की भीड़ (महाजनम) बहुत बढ़ गई।
(उलराजता).
यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है,
अब, मैंने तब अपनी भेंट दी।
मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;
यह दान-भोजन का फलदायी परिणाम है।
पेशकश।
आज से सत्तासी युग (कप्पा) पहले,
(मैं) ये सात विश्व-राजा बन गया,
सात रत्नों से सुशोभित, जिसे इस नाम से जाना जाता है
महारेणु का।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।"
थेरा गोधिका ने कहा
****

सुबाहु थेरा
मैंने सुनहरे रंग वाले व्यक्ति को देखा
आत्मजागृत बुद्ध, जो पूर्णतः आत्मजागृत बुद्ध के समान हैं-
नस्लबद्ध बैल निसाभा, तीन बार उल्लंघन के समान
मातंग के रट (तिधाभिन्न) हाथी के साथ
प्रजाति, महानता का साधक (मदेसी),
दुनिया के सबसे बड़े, अच्छी तरह से प्रवेश कर रहे हैं
रथ मार्ग सभी दिशाओं को रोशन कर रहा है
पूर्णिमा के चंद्रमा (उलराजा) के समान, जहाँ-
मैंने अपने मन को सुखद रूप से धार्मिक बना लिया था
अपने ज्ञान (ज्ञान) को ऊपर उठाकर
मेरे जुड़े हुए हाथ। धर्मपरायण और नेक-
मैंने पूरे मन से बुद्ध को नमन किया।
सिद्धार्थ।
यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।
अब से, मैंने अपना कर्म कर दिया है;
मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;
यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।
बुद्ध के ज्ञान का ग्रहण (सन्ना)
(ज्ञान).
तिहत्तर युग (कप्पा) पहले, से
अब, मैं सोलह विश्व-राजा बन गया

महान शक्ति से परिपूर्ण, सात रत्नों से युक्त,
उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में से एक के रूप में जाना जाता है।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।"
थेरा सुबाहू ने कहा
****
वल्लिया थेरा

मैं तिवारा में रहता था, जो एक फूलवाला था।
मैं तब था। मैं स्टेनलेस स्टील से मिला।
(विराजा) बुद्ध सिद्धार्थ को सम्मानित किया गया
(पूजिता) दुनिया द्वारा।
मैं धर्मनिष्ठ और नेक हृदय वाला व्यक्ति हूँ।
उन्होंने उन्हें मुट्ठी भर फूल भेंट किए।
मैं जहाँ कहीं भी पैदा हुआ, वह इसी के कारण हुआ।
उस कर्म का वाहन (वाहा)।
मुझे अपने प्रयासों का मनचाहा फल मिला।
अपना काम अच्छी तरह से किया गया, पहले, होना
चारों ओर सुंदर चमेली के फूल खिले हुए थे;
यह फूल का फलदायी परिणाम है
पेशकश।
यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।
मैंने विशेष रूप से फूलों की भेंट चढ़ाई।
मुझे अपने किसी भी बुरे अस्तित्व की याद नहीं है;
यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।
फूलों का आदरपूर्वक अर्पण।
वर्तमान को छोड़ दें तो,
चौरानवे युगों के लिए, वहाँ, (मैं
पाँच सौ राजा बन गए जिन्हें इस नाम से जाना जाता है
नज्जसमा का नाम।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।"
थेरा वल्लिया।
****
उत्तिया थेरा
मैंने प्राकृतिक फूल (जातिपुप्पा) अर्पित किए।
भगवान सिद्धार्थ को।
आनंदमय मुस्कान (हसा) के साथ सात फूल
मैंने उन्हें बड़ी संख्या में नीचे बिखेर दिया।
उसके पैर। उस कृत्य के कारण अब,
मुझे मानव अमरता (नारामर) का आनंद मिलता है।
स्वयंजागृत लोगों के युग में
बुद्ध, मैं अपना परम शरीर धारण करता हूँ।
यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।
अब से, मैंने एक विशेष भेंट अर्पित की है।
फूलों का; मुझे कोई याद नहीं है

बुरा अस्तित्व; यही फलदायी है
श्रद्धापूर्वक फूल अर्पित करने का परिणाम।
तेरह विश्व-राजा थे, जिन्हें जाना जाता था।
समंतगंधा (मीठा-
चारों ओर सुगंधित), पाँच युग (कप्पा)
बहुत समय पहले; वे मनुष्यों के शासक थे।
पूरी दुनिया पर (चतुरंता)।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।
उत्तिया थेरा ने कहा।
****

1.2. अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, ये चारों थेरा, जो विश्व में विख्यात और प्रसिद्ध थे, राजाओं और मुख्य मंत्रियों द्वारा विधिवत सम्मानित और पूजनीय हो गए और वन में एक साथ रहने लगे। फिर एक बार, राजा बिम्बिसार ने राजगृह के पास आए इन चारों थेराओं से संपर्क किया, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें इस प्रकार आमंत्रित किया कि वे वर्षा ऋतु के तीन महीने उपवास के दौरान वहीं बिताएँ। राजा ने उनके लिए एक-एक करके आवासीय संरचनाएँ बनवाईं, लेकिन ध्यान की गड़बड़ी (सम्मोसा) के कारण राजा ने उन पर छत नहीं बनवाई। थेरा बिना छत वाले घरों में ही रहने लगे। जब वर्षा का समय आया, तो वर्षा नहीं हुई। राजा ने यह सोचकर कि “अत्यंत किस परिस्थिति में वर्षा नहीं हुई?” इसका कारण जानकर, उन्होंने उन कुटियाओं की छतें बनवाईं, मिट्टी का काम और अलंकरण करवाया और कुटिकममहा विधि संपन्न कर भिक्षुओं के एक विशाल समूह को दान दिया। राजा पर दया करके, थेरों ने कुटियाओं में प्रवेश किया और प्रेममयी ध्यान में लीन हो गए। तभी उत्तर-पूर्व दिशा से एक विशाल वर्षा-बादल उठा और ठीक उसी क्षण वर्षा होने लगी जब थेर अपनी समाधि से उठे। उन चारों में से, थेर गोधिका अपनी समाधि से उठे और वर्षा-बादल की गर्जना के साथ इस श्लोक का उच्चारण किया।

51. "बारिश अपनी बौछार को समान बनाती है"
मधुर गायन के लिए; मेरा आवासीय
संरचना की छत बन चुकी है और मेरा
मेरा निवास सुखदायक है;
मन शांत है (susamāhita)
इसके अलावा, यदि आप चाहें तो,
हे वर्षा!

वहाँ, वस्सति का अर्थ है: यह फुहारें बरसाता है, यह वर्षा लाता है। देवो का अर्थ है वर्षा-बादल (मेगाह)। यथा सुगीतं का अर्थ है मधुर गीत के समान गर्जना (सुंदर गीत), इस प्रकार इसका महत्व है। वास्तव में, वर्षा के समय वर्षा का बादल सौ ढेरों (पाटल) और हजार छतों (पाटल) में उठता है, गर्जना करता है और बिजली चमकाता है, जो देखने में भी सुंदर लगता है; केवल इतना ही नहीं। इसलिए, मनमोहक (सिनिद्ध), मधुर, गहरी ध्वनि वाली वर्षा बरसती है; इस प्रकार वह दर्शाता है। उसने उस ध्वनि से विचलित न होने के बारे में इस प्रकार कहा: — “चन्ना मे कुटिका सुखा निवाता,” मेरे घर की यह छत सरकंडों आदि से इस प्रकार ढकी है कि वर्षा अंदर नहीं आती; उसने उस वर्षा से विचलित न होने की बात कही। स्वाभाविक रूप से (सब्भावतो) आवास की सुविधा (परिभोगसुख) और अनुकूल जलवायु में मौसम की सुविधा (उत्सप्पाय) जैसी खुशियाँ थीं। (मेरा निवास स्थान) अपनी दृढ़ता से बंद, व्यापक (फुसितद्दलहपिहित) खिड़कियों (वातपान) के कारण हवा के खतरे से मुक्त (रहिता) है। उन्होंने दोनों प्रकार की आवासीय सुविधाओं (सप्पाय) के कारण अपने पीड़ित न होने के बारे में बताया। चित्तं सुसमाहितं च मयः का अर्थ इस प्रकार है: — मेरा मन भी अद्वितीय एकाग्रता (अनुत्तरसमाधि) के कारण शांत है, जो निब्बान को विचार के विषय (अरम्मण) के रूप में मानकर पूर्णतया एकाग्र है। उन्होंने इस गहरे आंतरिक खतरे (परिसय) की अनुपस्थिति के कारण चिंता मुक्त (अपोसुक्क) होने की अपनी स्थिति को दर्शाया। अथा चे पत्थयासी का अर्थ है: यदि आप चाहें तो अब ऐसा कर सकते हैं; यदि आप चाहें। पवस्स का अर्थ है: आप अपना जल छिड़क सकते हैं, बिखेर सकते हैं; अपनी वर्षा बरसा सकते हैं। देवा का अर्थ है वर्षा के बादल को पुकारना।

श्लोक पर टिप्पणी
थेरा गोधिका का
तैयार है।
*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(55): अंजना-वनिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (55) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
55. अंजना-वानिया [1]
उनका पुनर्जन्म इसी बुद्ध युग में वैशाली में हुआ, वे वज्जियन वंश के एक राजा [2] के परिवार में हुए थे। जब वे बड़े हुए, तो वज्जियन क्षेत्र में तीन प्रकार का भय फैल गया था—सूखा, बीमारी और अमानवीय शत्रुओं का भय। यह सब रत्न-सूत्र की टीका में वर्णित है। [3] जब भगवान बुद्ध ने वैशाली में भय को शांत किया और एक विशाल जनसमूह ने उनका उपदेश सुना, तो इस राजा के पुत्र ने भी उन्हें सुना और विश्वास प्राप्त करके संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया)।
प्रारंभिक प्रशिक्षण पूर्ण करने के बाद, वे साकेत के अंजन वन में रहने लगे। जब वर्षा ऋतु निकट आई, तो उन्होंने एक पुराना, परित्यक्त पलंग प्राप्त किया और उसे चार पत्थरों पर रखकर, ऊपर और चारों ओर घास से घेरकर, उसमें एक द्वार बनाया, और इस प्रकार वर्षा ऋतु के लिए एक आश्रयस्थल [57] प्राप्त किया । केवल एक माह के बाद ही उनके गहन अध्ययन ने उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त करा दिया। इसके बाद, निर्वाण के आनंद को अनुभव करते हुए, उन्होंने स्वयं को जागृत किया और अपनी विजय का ध्यान करते हुए परमानंद से यह श्लोक कहा:

---

[55] आसंदी कुटिकै कत्वा ओगयहा अंजनाṃ वनाṃ॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

---

[55] अंजना के घने पत्तों वाले घाटियों में मैंने अपने पलंग को एक छोटी सी झोपड़ी में बदल दिया।
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है। [4]

---

[1] टीका में अंजनवनिरा है।
[2] (राजा)राजों पर, ऊपर देखें, एल.आई.
[3] या ज्वेल डिस्कोर्स, सुत्त-निपाता और खुद्दक-पाठ; एक दिलचस्प टिप्पणी, अगर वह जिस टीका का जिक्र कर रहे हैं वह परमत्था-ज्योतिका है। मुझे इस दहशत का कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिला है।
[4] श्लोक 24, n. 3.

1.6-5 [55] श्लोक पर टिप्पणी
अंजनवनिया थेरा
आसंदिं कुटिकं कट्वा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अंजन वणीय का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि वे सुदस्सन नामक एक मालाकार थे, जो भगवान पद्ममुत्तरा के समय में थे। उन्होंने भगवान को चमेली के फूल अर्पित किए, जगह-जगह अनेक पुण्य कर्म किए, देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार जन्मों का चक्र पूरा किया, भगवान कस्सपा के मार्गदर्शन में भिक्षु बने और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया। फिर, जब ये बुद्ध प्रकट हुए, तो उनका पुनर्जन्म वैशाली में वज्जी के राजपरिवार में हुआ और जब वे वयस्क हुए, तो वज्जी राज्य में तीन प्रकार की विपत्तियाँ आईं, अर्थात्: वर्षा न होने का खतरा, रोग का खतरा और अमानवीय प्राणियों से खतरा। इन सभी बातों को रतनसुत्त की व्याख्या में बताए गए तरीके से ही समझना चाहिए। जब भगवान बुद्ध वैशाली में प्रवेश कर गए और जब सारे खतरे टल गए, और जब गुरु द्वारा सत्य (धम्म) की शिक्षा दिए जाने के परिणामस्वरूप असंख्य मनुष्यों और देवताओं में सत्य (धम्म) का ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब इस राजकुमार ने बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित श्रद्धा धारण की और भिक्षु बन गए। इसी प्रकार, बिना किसी अंतराल के, चार और पुरुष भी भिक्षु बन गए। वे भी, क्योंकि वे लिच्छवी राजकुमार थे और इस राजकुमार के सहयोगी बन गए थे, इसी प्रकार भिक्षु बन गए। आत्मज्ञानी बुद्ध कस्सपा के समय भी, वे उनके सहयोगी थे, इस राजकुमार के साथ भिक्षु बन गए और अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन किया; भगवान पद्ममुत्तरा के चरणों में भी, उन्होंने अच्छे कर्मों के बीज का संवर्धन किया, इत्यादि। वहाँ एक व्यक्ति ने अपने प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा करने के बाद, साकेत के अंजन वन में स्थित कब्रिस्तान क्षेत्र में निवास किया और लोगों द्वारा त्यागी गई एक पुरानी, अतिरिक्त लंबी कुर्सी (आसंडी) प्राप्त करके, जब भी उपवास का समय निकट आता, उसे चार पत्थरों पर

स्थापित किया, उसे सरकंडों, घास और अन्य सामग्री से ढक दिया, एक दरवाजा लगवाया और उपवास का पालन किया। परिश्रम और प्रयास से उसने प्रथम माह में ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

"मैं उस समय माला बनाने वाला था जिसका नाम था
सुदासना। मैंने स्टेनलेस स्टील देखा।
बुद्ध, पुरुषों के सांड, सबसे वृद्ध
दुनिया के।
प्राकृतिक फूलों को एकत्रित करने के बाद,
मैंने श्रद्धापूर्वक उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
पदुमुत्तरा। दृष्टि में शुद्ध, कुशल
मैंने स्वयं ही दिव्य दृष्टि प्राप्त कर ली।
इस श्रद्धापूर्ण भेंट के कारण,
फूल के साथ-साथ मानसिक कारणों से भी
संकल्प, मैं कभी किसी भी तरह से अचानक सामने नहीं आया।
दुष्ट अस्तित्व, एक लाख के लिए
युग (कप्पा)।
वहाँ सोलह शासक हो गए।
देवोत्तरा (परमदेवता) जैसा नाम,
महान शक्ति के विश्व-राजा छत्तीस
आज से कई युग (कप्पा) पहले।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P
बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे मुक्ति के सुख का उचित आनंद ले रहे थे, अपनी ध्यानमग्न अवस्था (समापेट्टी) से उठे, अपने द्वारा प्राप्त समृद्धि पर चिंतन किया, और "आसंदिं कुटिकं कत्वा" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने उत्साह की गति से अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति दी।

55. यहाँ āsandiṃ kuṭikaṃ katvā का अर्थ इस प्रकार है: — āsandi, अर्थात्, चार भुजाओं वाला एक लंबा आसन; जिसकी लंबाई केवल चारों भुजाओं तक ही सीमित है; जहाँ केवल बैठना ही संभव है, लेटना नहीं; उस लंबे आसन को आवासीय संरचना बनाकर; पहले बताए गए तरीके से (हेट्ठा) एक झोपड़ी बनाकर; इस प्रकार कि जो व्यक्ति मौसम संबंधी खतरों के अभाव में प्रसन्नतापूर्वक वहाँ बैठा हो, उसे भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करने की सुगमता हो; इस प्रकार एक आवासीय संरचना बनाकर। इसके द्वारा वह बैठने और सोने की व्यवस्था (सनासना) में अपनी सर्वोच्च ऊँचाई, अपनी इच्छाओं की कमी और संतोष को दर्शाता है। यह बात धम्म के सेनापति ने भी कही है।

"जो व्यक्ति क्रॉस-फोकस बैठा था, उसके लिए-
वहाँ पैरों से विशेष बारिश हुई
घुटनों तक पानी में स्नान करना; एक भिक्षु (भिक्षु) के लिए जिसका
अपना मन निर्वाण की ओर उन्मुख है।
यह आराम से रहने के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।

कुछ विद्वानों ने पाठ (पाठ) को "आसंदिकुटिकं" कहा है और इसके अर्थ का वर्णन इस प्रकार किया है: "आसंदिप्पमाणं कुटिकं कट्वा, यानी एक लंबी कुर्सी के आकार की झोपड़ी बनाना।" हालांकि, अन्य विद्वान इसके अर्थ का वर्णन इस प्रकार करते हैं: "पुरुषों के बैठने और सोने के लिए बने पलंग के ऊपर निर्मित आवासीय संरचना को आसंदि (लंबी चौकी) कहा जाता है; उस लंबी चौकी (आसंदि) को आवासीय संरचना (कुटिका) बनाकर। ओग्गयाहा का अर्थ है नीचे गोता लगाना, तदनुसार प्रवेश करना। अंजनवनं का अर्थ है इस नाम का वन; वास्तव में, काजल रंग के फूलों की उपस्थिति के कारण चढ़ने वाली लताओं को अंजन (काजल की लताएँ) कहा जाता है; उन लताओं की प्रचुरता के कारण उस वन का नाम "अंजनवन (काजल की लता वन)" पड़ा।" लेकिन कुछ अन्य लोग इस प्रकार कहते हैं: "अंजन नाम महागच्छ (अंजन नामक एक बड़ा झाड़ीदार वन); उस अंजन वन में प्रवेश करके और एक लंबी कुर्सी सहित एक आवासीय संरचना का निर्माण करके; तिस्सो विज्जा अनुपत्ता, कतं बुद्धस्स शासनं, इस अभिव्यक्ति की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए, लेकिन कुछ शब्दों को छोड़कर: विहारता मया (मेरे द्वारा जो उस वन में रह रहा था) ने तदनुसार तीन प्रकार के महाविज्ञान (विज्जा) प्राप्त किए थे; बुद्ध के उपदेश का पालन किया गया था। यही श्लोक थेरा के अरहंत पद (अञ्ञा) की घोषणा (ब्याकरण) भी था।

श्लोक पर टिप्पणी
थेरा अंजना का
तैयार है।

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (56) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
56. कुटिविहारिन [1]
इस जीवन में उनकी कहानी अंजन-वानिय की कहानी जैसी ही है, बस एक अंतर है: ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में वे खेतों के किनारे टहल रहे थे और बारिश से बचने के लिए खेत के रखवाले की छोटी सी खाली झोपड़ी में शरण ली, और वहीं उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ। इस पर रखवाला आया और बोला, 'झोपड़ी में कौन है?' उत्तर था, 'झोपड़ी में एक भिक्षु है,' और श्लोक का शेष भाग इस प्रकार है:

[56] को कुतिकायं भिक्खु कितिकायं॥
वीतरागो सुसमाहिता चित्तो॥
एवं जनाहि आवुसो॥
अमोघा ते कुतिका काटा' ती॥ ॥

[56] मेरी छोटी सी कुटिया में कौन है? एक भिक्षु है,
जिसने अपनी छोटी सी कुटिया में, सभी भावनाओं को वश में करके,
अपना मन पूरी तरह से एकाग्र कर लिया है। हे मित्र, यह जान लो कि
तुमने अपनी छोटी सी कुटिया व्यर्थ नहीं बनाई!

तब चौकीदार ने कहा: 'मेरे लिए तो वाकई सौभाग्य की बात है, कि आप मेरी छोटी सी झोपड़ी में आए हैं और यहाँ बैठे हैं!'

और परम पूज्य (बुद्ध) ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से उनकी बातचीत सुनी और पहरेदार की इच्छा को समझा। और उन्होंने उससे ये श्लोक कहे:

कुटिया में एक भिक्षु रहता है, उसके हृदय में शांति है, वह सभी पापों से मुक्त है।
इस कर्म का फल तुम्हें यह मिलेगा: तुम देवताओं के स्वामी बनोगे,
छह बार, हाँ, सात बार, देवताओं के स्वामी, स्वर्गीय लोकों के शासक,
उसके बाद तुम्हारी सभी वासनाएँ शांत हो जाएँगी, तुम एक मौन बुद्ध [2] बन जाओगे।

उस समय से थेरा को कुटिविहारिन कहा जाने लगा।

[1] अर्थात्, झोपड़ी में रहने वाला; टीका कुटिविहारिया में।

[2] पच्चेक-बुद्ध। सिस्टर्स देखें, पृ. 11, नोट 4.

1.6-6[56] श्लोक पर टिप्पणी

कुटिविहारी थेरा
6.1. 'को कुटिकावं' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुटिविहारी का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि जब भगवान पद्ममुत्तरा आकाश में विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने ठंडे पानी को इकट्ठा करते हुए मन ही मन कहा, "मैं जल दान करूंगा।" वे अत्यंत प्रसन्न हुए, ऊपर की ओर मुख करके जल को ऊपर उछाल दिया। गुरु को उनके इस इरादे का पता चल गया और उन्होंने आकाश में खड़े

रहते हुए ही उनकी भेंट स्वीकार कर ली, ताकि उनकी पुण्यता और बढ़ जाए। इस कारण उन्हें अपार प्रसन्नता का अनुभव हुआ। शेष भाग थेरा अंजनवणीय की कथा में वर्णित बातों के समान ही है। हालांकि, अंतर यह है। ऐसा कहा जाता है कि इस व्यक्ति ने पूर्वोक्त विधि से भिक्षु दीक्षा ली और अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन करते हुए, स्वयं को आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के विकास में समर्पित कर दिया। शाम को जब वे एक खेत के पास से गुजर रहे थे, तो बारिश होने पर उनकी नज़र एक सरकंडे की कुटिया पर पड़ी, जो खेत के रखवाले के पुण्य कर्म का फल था। वे उसमें प्रवेश कर गए और घास पर बैठ गए। बैठते ही थेरा को अनुकूल मौसम प्राप्त हुआ, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के विकास में स्वयं को लीन कर लिया और अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में इसका उल्लेख किया गया है।

"(सुनहरे रंग वाले को देखकर)

स्वयंजागृत बुद्ध, सीधे ऊपर की ओर जा रहे हैं

हवा में (anilañjasa), चमकता हुआ

जैसे बलि में घी छिड़की हुई अग्नि

(घटासनं), मानो वेदी पर जल रहा हो

भेंट चढ़ाने के लिए, मैंने अपने पास पानी इकट्ठा किया

हथेलियों से पकड़कर उसे आकाश में फेंक दिया।

बुद्ध, दयालु ऋषि, महान

हीरो ने मेरी भेंट स्वीकार कर ली।

पदुमुत्तरा नामक गुरु वहाँ खड़े थे।

आकाश की ओर देखकर उसने यह छंद कहा, क्योंकि

वह मेरी मंशा जानता था।

इस जल अर्पण के द्वारा और

उसके अंदर जोश का संचार हो रहा था

कभी भी किसी बुरी सत्ता में पुनर्जन्म न हो

एक लाख युगों (कप्पा) तक भी।

हे मनुष्यों के स्वामी (द्विपदिन्द)!

हे जगत के सबसे बड़े और सर्वोत्कृष्ट पुरुष,

पुरुषों! उस कृत्य के कारण, मुझे

निर्वाण के अविचल स्थल को प्राप्त किया।

जिसका विजय से कोई लेना-देना नहीं है और

हराना।

उन तीन विश्व-राजाओं का नाम एक हजार था

सामंत (सहस्रजा) (मैं साठ हो गया)

पांच सौ युग (कप्पा) पहले; वे थे

सभी क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के शासक-

पृथ्वी की परिक्रमा (चतुरंता)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

6.2. हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, जब थेरा वहां बैठे थे, तो क्षेत्र-निरीक्षक आकर इस प्रकार पूछा: "कुटिया में कौन है?" यह सुनकर थेरा ने इस प्रकार उत्तर दिया: "कुटिया में एक भिक्षु है।" क्षेत्र-निरीक्षक और थेरा दोनों के इस शब्द को एक साथ मिलाकर (एकज्जा) उसी रूप में (तथारूप) संगीतमय गायन की स्थापना की गई।

56. "कुटिया में कौन है? एक भिक्षु"

कामवासना से मुक्त (वीतराग), अच्छी तरह से-

मन की शांति के साथ वह कुटिया में है।

मित्र! इसे जान लो; यह व्यर्थ नहीं है।

क्या आपने अपनी कुटिया बनाई थी?

56,1. वहाँ, को कुटिकायं का अर्थ है:— क्षेत्र-निरीक्षक का प्रश्नवाचक शब्द इस प्रकार है:— इस कुटिया में कौन बैठा है? भिक्षु (भिक्षु) कुटिकायं का अर्थ है: उस थेरा का उत्तर इस प्रकार है:— "कुटिया में एक भिक्षु (भिक्षु) है।" फिर, उस प्रश्नकर्ता को उस कुटिया में रहने से प्रसन्न (अनुमोदापेत्वा) करते हुए, क्योंकि वह दान के लिए अतुलनीय (अनुत्तरा) योग्य प्राप्तकर्ता (दक्खिणेय्य) हो गया था, "वीतरागो" से शुरू होने वाला कथन उस पुण्य कर्म को अत्यधिक स्थापित (उलारमपटिट्ठापेतुं) करने के लिए किया गया है। उस कथन का अर्थ यह है:— "एक भिक्षु जिसने अपने दुराचार को त्याग दिया है, आपकी कुटिकायां में बैठा है; इसके परिणामस्वरूप, वह भिक्षु अब निर्मल है क्योंकि उसने सर्वोच्च मार्ग (मार्ग) की प्राप्ति से अपनी कामवासना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है; उस भिक्षु का मन सुसमाहितचित्तो (संतुलित) हो गया है क्योंकि उसने अद्वितीय एकाग्रता (समाधि) के माध्यम से निर्वाण को अपना ध्यान (आरम्मण) बनाकर अपने मन को उत्कृष्ट रूप से शांत कर लिया है; आवुसो (हे मित्र, क्षेत्र रक्षक!) जैसा कि मैं आपको यह अर्थ बताता हूं, एवं जानाहि (जिस प्रकार आप जान सकें) वैसा ही विश्वास करें और इसे स्पष्ट करें (अधिमुच्चस्सु)। अमोघा ते कुटिका का अर्थ है:- आपके द्वारा निर्मित कुटिया व्यर्थ नहीं है, बंजर नहीं है, बल्कि फलदायी और अनुकूल परिणाम (सौद्रया) देती है, क्योंकि इसका पूर्ण उपयोग एक दोषरहित अरहंत द्वारा किया गया है। यदि आप प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार करते हैं, तो आपकी यह प्रसन्न स्वीकृति आपके कल्याण और सुख के लिए दीर्घकालिक रूप से सहायक होगी।

56.2. थेरा की बातें सुनकर, क्षेत्र-रक्षक श्रद्धा से भर गया और मन ही मन कहने लगा, “सचमुच, यही तो मेरा लाभ है; निश्चय ही मेरा लाभ उत्तम है कि थेरा जैसे स्वामी ने मेरी कुटिया में प्रवेश किया और उसमें विराजमान हुए” और प्रसन्नतापूर्वक खड़े रहे। भगवान बुद्ध ने उनकी यह बातचीत अपने दिव्य श्रवण से सुन ली और उनकी प्रसन्नता (अनुमोदन) का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया, इसलिए उन्होंने क्षेत्र-रक्षक को इन श्लोकों से संबोधित किया ताकि उन्हें इससे प्राप्त होने वाली समृद्धि का ज्ञान हो सके।

“एक शांत मन वाला, दोषरहित भिक्षु

झोपड़ी में निवास किया; परिणामस्वरूप

उस कार्य से तुम संप्रभु बन जाओगे

दिव्य प्राणियों का।

छत्तीस बार तुम दिव्य बनोगे-

राजा बनें और दिव्य संप्रभुता का प्रयोग करें।

चौंतीस बार, तुम दुनिया बनोगे-

राजा बनकर किसी राज्य का संप्रभु शासक बनना।

(अंत में) आप अपनी वासना से छुटकारा पा लेंगे

और रतनकुटी नामक मौन बुद्ध बन जाएं।

56,3. यद्यपि कुटिया (कुटिका) में थेरा की विशिष्ट स्थिति प्राप्त हो जाने के कारण, सर्वप्रथम, उसी घटना से, उनके लिए कुटिविहारी की उपाधि उत्पन्न हुई। संयोगवश, वही श्लोक उनके अरहंतत्व (अञ्ञा) को स्पष्ट रूप से दर्शाता है (ब्याकरण)।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कुटिविहारी का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(57):कुटिविहारिन2

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (57) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
57. कुटिविहारिन (2)

उनकी कहानी अंजना वन थेरा की कहानी से मिलती-जुलती है, बस एक अंतर है: जब उन्होंने समान परिस्थितियों में संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया), तो उन्होंने एक बहुत पुरानी कुटिया में धार्मिक अध्ययन किया। और उन्होंने सोचा: 'यह पुरानी कुटिया अब सड़ चुकी है; मुझे दूसरी बनानी चाहिए।' इसलिए उन्होंने नए कार्य की ओर ध्यान दिया। [1] तब मोक्ष की तलाश में एक आत्मा ने उन्हें यह श्लोक बोलकर विचलित करने का प्रयास किया, जो शब्दों में सरल है लेकिन अर्थ में गहरा है:

[57] अयामाहु पुराणिय कुटि अण्णाm पत्थयसे नवाऽ कुटिm॥
आसां कुटिया विराजया दुक्ख भिक्खु पुना नवा कुटि' ती.॥ ॥

[57] आप कहते हैं कि यह एक प्राचीन झोपड़ी थी? एक और झोपड़ी, एक नई झोपड़ी बनाना
आपकी इच्छा है?
हे झोपड़ी की लालसा को त्याग दो!
नई झोपड़ी तुम्हारे लिए नया दर्द लाएगी, भिक्षु। [2]

ये शब्द सुनकर थेरा चिंतित हो गए और अथक परिश्रम से अंतर्दृष्टि प्राप्त करके शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने उस श्लोक को दोहराया जिसने उन्हें विजय की ओर प्रेरित किया था और अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा के रूप में प्रस्तुत किया। क्योंकि उन्होंने कुटिया में रहते हुए ही ज्ञान प्राप्त कर लिया था, इसलिए वे भी कुटिविहारिन के नाम से जाने जाने लगे।

[1] कम्मा, कर्म.

[2] सी.एफ. सरभंगा, CCXXVIII। 'नई झोपड़ी' पुनर्जन्म का प्रतीक है।

1.6-7[57] श्लोक पर टिप्पणी

Dutiyakuṭivihārī Thera
अयमाहु पुराणिया से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुटिविहारी का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि परम पूज्य पद्ममुत्तरा के प्रति श्रद्धा से भरे हुए उन्होंने भीषण गर्मी के समय उन्हें सरकंडे की पत्तियों से बना पंखा भेंट किया। गुरु ने धन्यवाद के श्लोक से उन्हें प्रसन्न किया। इसके आगे जो भी कहा जाना है, वह थेरा अंजनवनिया की कथा में कही गई बातों के समान ही है। हालांकि, अंतर यह है: कहा जाता है कि उन्होंने उक्त तरीके से भिक्षु का जीवन व्यतीत किया और एक पुरानी कुटिया (कुटिका) में निवास करते हुए अपने भिक्षु कर्तव्यों की परवाह नहीं की, बल्कि नवकम्मा (सुधार) की ओर अपना ध्यान लगाया और कहा: "यह कुटिया (कुटिका) तो पुरानी हो चुकी है; दूसरी कुटिया बनाना उचित होगा।" एक देवता ने, उनके कल्याण की कामना करते हुए, उनमें पश्चाताप की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से, "अयमाहु" से शुरू होने वाले इस स्पष्ट रूप से ज्ञानवर्धक और अत्यंत महत्वपूर्ण श्लोक का उच्चारण किया।

57. यहाँ 'अयं' का अर्थ है निकट वर्तमान को दर्शाने वाला शब्द, जो स्पष्ट रूप से दिखाई देता है (आसन्नपच्चक्ख)। 'आहू' का अर्थ है 'यह था'; इस प्रकार, यही अर्थ है। यहाँ श्लोक की रचना में सुगमता के लिए स्वर को लंबा करके कहा गया है। 'पुराणीय' का अर्थ है पुराना और अपनी जीवन अवधि पूरी कर चुका (अद्धगत)। 'अञ्ञं पत्थयते नेवं कुटिं' का अर्थ है: इस कुटिया की पुरानी अवस्था और वृद्धावस्था के कारण, अब इससे अलग एक नई कुटिया के निर्माण की आपने आकांक्षा, इच्छा और माँग की। 'आसं कुटिय्या विराजय' (आपको अपनी इच्छा से विरक्त होना चाहिए), पुरानी कुटिया के समान ही नई कुटिया की लालसा और लालसा करते हुए, फिर भी; वहाँ आप सभी प्रकार से विरक्त रहें। क्यों? दुक्खा भिक्खु (भिक्षु) पुना नवा कुटी का अर्थ इस प्रकार है:— हे भिक्षु! नया नाम दिया गया एक कुटिया, अब फिर से बनाई जा रही है, दुखदायी (दुक्खा) है क्योंकि यह पीड़ा लाएगी; इसलिए, एक और नई पीड़ा को उत्पन्न किए बिना, आपको उसी पुरानी कुटिया में रहना चाहिए जो आपके लिए बनाई गई थी और जो कुछ भी आपको करना चाहिए वह स्वयं करें। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है:— हे भिक्षु! आपने मन ही मन कहा: "यह पुराना सरकंडा निवास तो है, पर भिक्षु के कर्तव्य नहीं; परन्तु ऐसा चाहने से, सही एकाग्रता (भावना) के विकास के प्रति समर्पित न होकर, क्योंकि आपने दूसरे जन्म में पुन: जन्म लेने की घटना पर विशेष रूप से विजय प्राप्त नहीं की है, यह तो भविष्य में अपने शरीर-निर्माण (अत्तभावकुटी) के लिए भी आकांक्षा करने के समान है। परन्तु नया शरीर तो वृद्धावस्था, मृत्यु, चिंता, विलाप (परिदेव) आदि जैसे कष्टों से ग्रस्त होने का दुख है; इसलिए, सरकंडे निवास के समान अपने शरीर-निर्माण (अत्तभावकुटी) से अनासक्त होकर, उसकी खोज न करके और उसमें कोई आशा न रखकर, वहाँ सर्वथा अनासक्त मन से विरक्त हो जाओ; इस प्रकार, तुम्हें बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) के दुख (दुक्खा) का सामना नहीं करना पड़ेगा। इस प्रकार, यह सुनकर हे दैवीयता, थेरा पश्चाताप से भर गए, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास को प्रेरित किया, परिश्रम किया, प्रयास किया और कुछ ही समय में अरहंत पद पर आसीन हो गए। अतः अपदान में कहा गया है:—

“बुद्ध पद्ममुत्तरा के लिए, ऐसा व्यक्ति

जैसा कि दुनिया में सबसे बड़ा था, जो था

फैली हुई घास पर बैठे हुए, इस तरह

मैंने उस व्यक्ति को शांत स्वभाव का मानते हुए जानकारी एकत्र की।

घास-नरकट की माला और बांधकर

उसी को एक परिवार में शामिल किया और बुद्ध को अर्पित किया।

ऐसा व्यक्ति जो मनुष्यों का सम्राट हो।

(द्विपदिन्दा)। मेरी भेंट स्वीकार करके,

वह पंखा, दुनिया का सर्वज्ञानी नेता

मेरे इरादे का पता चलने पर

यह श्लोक।

जैसे मेरा शरीर ठंडा है और वहाँ मौजूद है

गर्मी पर, इसी प्रकार, आपका मन भी ऐसा ही हो।

स्पष्ट रूप से आग की तीन श्रेणियों से मुक्त।

सभी दिव्य प्राणी, जो सभी आश्रित थे

जंगल में सब एक साथ आए, (कहते हुए)

स्वयं:) “आइए सुनें कि बुद्ध क्या कहते हैं

दानदाता को प्रसन्न करना सिखाने जा रहा हूँ

(हासयन्तं).

वहाँ दिव्य के शीर्ष पर विराजमान

देवसंघ (भीड़), भगवान

इन छंदों का उच्चारण करते हुए दाता

बहुत आनंदित। इस दान के कारण

पंखे की पेशकश के साथ-साथ इसके कारण भी

मानसिक संकल्प से, दाता बन जाएगा

सुब्बत नाम से प्रसिद्ध एक विश्वराज।

उस अधिनियम के अवशेष के कारण,

उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) से प्रेरित होकर वह

विश्व-राजा बनो, जिसे इस नाम से जाना जाता है

मालुता.

इस पंखे की पेशकश के साथ-साथ

उसने अत्यधिक सम्मान नहीं किया।

किसी भी दुष्ट अस्तित्व में उत्पन्न होना पड़ता है

(दुग्गति) एक लाख युगों के लिए

(कप्पा)।

तीस हजार युगों (कप्पा) में वे

(विश्व-राजा) सुब्बता तीस वर्ष का होगा-

संख्या में आठ; उनतीस हजार में,

मालुता नाम के आठ (विश्व राजा) थे।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी; :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद पर आसीन होने के बाद, उन्होंने उसी श्लोक का पुनः पाठ करते हुए मन ही मन कहा; 'यह (श्लोक) मेरे अरहंत पद की प्राप्ति का प्रेरक था।' कुटिया से संबंधित सलाह के माध्यम से प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण उनका नाम (समाञ्ञा) कुटिविहारी पड़ गया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा दुतियाकुतिविहारी का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(58):रमानियाकुटिका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (58) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
58. रमणीयकुटिका
उनकी कहानी अंजना -वनवासी की कहानी से मिलती-जुलती है, बस एक अंतर है: वे वज्जियान क्षेत्र के एक छोटे से गाँव के पास एक झोपड़ी में रहते थे। वह एक सुंदर, मनमोहक छोटी सी झोपड़ी थी, जिसकी फर्श और दीवारें अच्छी तरह से बनी हुई थीं, चारों ओर एक पार्क और तालाब था, और उसके चारों ओर चिकनी, मोती जैसी रेत बिछी हुई थी। थेरा के उत्कृष्ट गुणों ने उसकी सुंदरता को और भी बढ़ा दिया था। उन्होंने वहीं अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया और वहीं रहने लगे। अब जब लोग बस्ती देखने आते थे, तो उन्हें वह झोपड़ी भी दिखाई देती थी। एक दिन कुछ व्यभिचारी स्त्रियाँ पास से गुजरीं और झोपड़ी की सुंदरता देखकर बोलीं:

'वहाँ रहने वाला भिक्षु एक ऐसा युवक हो सकता है जिसे हम मोहित कर सकें।' इसलिए वे उसके पास गए और बोले: 'महोदय, आपका निवास स्थान बहुत सुंदर है। हम भी अपनी जवानी के चरम पर हैं, और हमें देखना भी बहुत अच्छा लगता है।' और फिर वे अपने वस्त्र आदि दिखाने लगे। लेकिन थेरा ने अपनी भावहीन अवस्था को इस श्लोक में व्यक्त किया:

[58] रामणियो मे कुतिका सद्धादेया मनोरमा॥
न मे अत्थो कुमारीहि यसां अत्थो ताहिं गच्छथ नारियो' ती॥ ॥

[58]
मेरी छोटी सी झोपड़ी कितनी प्यारी है, जो सच्चे और धर्मनिष्ठ लोगों का सबसे सुंदर उपहार है ।
तो मुझे स्त्रियों की क्या आवश्यकता है? नहीं, जाओ
वहाँ उनके पास, हे स्त्रियों, जिन्हें तुम्हारी आवश्यकता है।

इस 'आवश्यकता न होने' वाले कथन से, थेरा के अरहंतत्व (ज्ञानोदय) की घोषणा निहित है।

1.6-8[58] श्लोक पर टिप्पणी

रमणीयकुटिका थेरा
रामाणीय मे कुटिका से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा रामाणीय कुटिका का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उन्होंने भी भगवान पद्ममुत्तरा के समय में अच्छे कर्मों का बीज बोया, अपने जन्म-जन्म चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और आज से अठारह सौ युग (कप्पा) पहले भगवान अत्थादस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने भगवान को बुद्ध के योग्य आसन अर्पित किया। भगवान को श्रद्धापूर्वक पुष्प अर्पित करने के बाद, उन्होंने पांच पृथ्वी-स्पर्शी मुद्राओं (पंचपतिठित) से उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। शेष कथा थेरा अंजनवनिया की कथा में वर्णित कथा के समान है। लेकिन यही अंतर है। --- ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पहले बताए गए तरीके से भिक्षु दीक्षा ली और अपने प्रारंभिक कर्तव्य पूरे करने के बाद, वज्जी राज्य के एक गाँव में स्थित एक कुटिया में निवास किया। वह कुटिया अत्यंत सुंदर, आकर्षक और सुखदायक थी, जिसकी दीवारें और फर्श अच्छी तरह से निर्मित थे, और उसके चारों ओर सुंदर उद्यान और तालाब आदि थे। वह एक ऐसे स्थान पर स्थित थी जहाँ रेत मोतियों की तरह बिखरी हुई थी और उसके आसपास का क्षेत्र पॉलिश किया हुआ, साफ-सुथरा आदि होने के कारण और थेरा के संन्यासी कर्तव्यों के पूर्ण पालन के कारण वह और भी अधिक मनमोहक प्रतीत होती थी। वहाँ रहते हुए, थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का विकास किया और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:

“अंदर प्रवेश करने के बाद

घना जंगल, जो शांत था

(अप्पसद्दा) और अशांति से मुक्त

(निराकुला), एक सिंह-आसन की पेशकश की गई थी

मुझे अत्थादस्सी जैसे बुद्ध के पास ले जाओ।

फूलों की माला एकत्र करने के बाद

मैंने हाथ में लेकर उनकी परिक्रमा की।

गुरु की सेवा करने के बाद,

मैंने उत्तर दिशा की ओर मुख करके प्रस्थान किया।

दिशा।

हे मनुष्यों के सम्राट (द्विपदिन्द),

दुनिया का सबसे बुज़ुर्ग, बैल

पुरुषों! मैंने स्वयं को (आग से) बनाया है।

पूरी तरह से बुझ गया; सभी अस्तित्व

पूरी तरह से समाप्त हो गया था।

यह अठारह सौ युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले मैंने अपनी दानशीलता का प्रस्ताव रखा था।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह (अर्पण करने का) फलदायी परिणाम है।

सिंह-सिंहासन।

सात सौ युग पहले, मैं एक बन गया

महान शक्ति का विश्व-राजा, संपन्न

सात पीढ़ियों के साथ, एक योद्धा राजकुमार

(खट्टिया) सन्निब्बापक के नाम से जाना जाता है।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, थेरा के वहां रहते हुए अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, कुटिया की सुंदरता (कुटिका) के कारण, मठवासी प्रवृत्ति के लोग इधर-उधर से आकर कुटिया को देखने आए। फिर एक दिन, कुछ जन्मजात दुष्ट स्त्रियाँ, जो वहाँ गई थीं, ने कुटिया की सुखद स्थिति को देखकर कहा: "आदरणीय महोदय! आपका निवास स्थान रमणीय है; हम भी अत्यंत सुंदर हैं और अभी भी अपनी युवावस्था में हैं," इस इरादे (अधिप्पाय) से कि "यहाँ रहने वाले इस भिक्षु का हृदय हमारे प्रति आकर्षित हो जाए।" ऐसा कहकर, वे अपने स्त्रीत्वपूर्ण इश्कबाज़ी आदि का प्रदर्शन करने लगीं। थेरा ने "रामणीय मे कुटिका, सद्धादेय्या मनोरमा" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे स्वयं के कामवासना से रहित (राग) होने की स्थिति को प्रकट कर सकें।

58. वहाँ, ramaṇīyā me kuṭikā का अर्थ इस प्रकार है:— आपने जो कहा है, अर्थात्: "आदरणीय महोदय! आपकी कुटिया रमणीय है," वह सत्य है; मेरी यह आवासीय कुटिया रमणीय और देखने में सुंदर है (manuññarūpā)। सद्धा दय्या का अर्थ इस प्रकार है:— वास्तव में, वह कुटिया भी धार्मिक आस्था के साथ दान की गई थी, क्योंकि इसे धार्मिक इच्छा और धार्मिक आस्था के साथ, कर्म के फल में विश्वास रखते हुए अर्पित किया जाना चाहिए था। "इस प्रकार प्रेमपूर्वक बनाकर भिक्षुओं को अर्पित करने से, दान का यह फल प्राप्त हुआ; मेरी कुटिया धन से नहीं बनी थी।" मनोरमा का अर्थ इस प्रकार है:— इसने दान को देखने और उसका आनंद लेने वालों के मन को भी आनंदित किया; इस प्रकार, मनोरमा (मन को आनंदित करने वाली)। वास्तव में, धार्मिक आस्था के साथ दान करने के कारण यह मन को भी आनंदित करती है; धार्मिक आस्था आदि के साथ, लोगों ने आदरपूर्वक स्वयं दान (दय्याधम्म) तैयार करने के बाद अपना दान दिया; अच्छे लोग दान का आनंद लेते हुए, उसका पालन-पोषण करने का दायित्व ग्रहण करते हैं। (पयोगासय) दाता की सत्यनिष्ठा (अविसंवादनत्थ) भी; उन्होंने आप सभी द्वारा परिकल्पित तरीके (आकार) से सहायता प्रदान करने में कोई चूक नहीं की; यही इसका महत्व है। न मे अत्थो कुमारीहि का अर्थ है: क्योंकि मेरा मन सभी पहलुओं में इंद्रिय सुखों से विचलित नहीं होता, इसलिए मुझे कन्याओं की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, विधिवत उचित कर्म करने के द्वारा भी, अर्थात्, मेरे जैसे भिक्षुओं के लिए स्त्रियों द्वारा कोई वचन नहीं लिया जाता; और न ही (पगेव) कामवासना (राग) के कारण; इसलिए मुझे युवतियों की आवश्यकता नहीं है। यहाँ, युवतियों को लेने को विवेक (उपलक्खण) के प्रकाश में देखा जाना चाहिए। "आपको अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए (पटिपज्जा), अर्थात्, मेरे जैसे भिक्षु की उपस्थिति में: पाप तक अनुचित कर्मों के साथ भी, आपके द्वारा यह प्रदर्शन आप जैसे समान प्रवृत्ति (अज्जासय) वाले लोगों की उपस्थिति शानदार हो सकती है; उन्हें इंगित करते हुए उन्होंने कहा: "येसंथो ताहिं गच्छथा नारियो।" यहाँ, येसं का अर्थ है: उन लोगों का जो कामुक सुखों (काम) के प्रति आसक्त हैं। अत्थो का अर्थ है उद्देश्य (पयोजन)। ताहिं का अर्थ है वहाँ, उनकी उपस्थिति में। नारियो स्त्रियों को संबोधित करने का एक शब्द है। यह सुनकर स्त्रियाँ भ्रमित (मंकु) और निराश (पट्टक्खन्ध) हो गईं और उसी रास्ते से चली गईं जिससे वे आई थीं। यहाँ भी, "न मे अत्थो कुमारीहि (मुझे युवतियों की आवश्यकता नहीं है);" इस प्रकार, कामुक सुखों की आवश्यकता न होने की स्थिति के बारे में उनके शब्दों के माध्यम से भी, थेरा ने उनके अरहंतत्व को प्रकट किया है; अतः, इसे देखा जाना चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा रमणीयकुटिका का

तैयार है।

*********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(59):कोसलाविहारिन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (59) ------>>>> अगला

अध्याय I.

एकल श्लोक

59. कोसलाविहारिन

उनकी कहानी अंजना-वनवासी की कहानी से मिलती-जुलती है, बस एक अंतर है: दीक्षा लेने के बाद, वे कोसल राज्य के एक गाँव के पास जंगल में, एक गृहस्थ अनुयायी के निवास के निकट रहने लगे। अनुयायी ने उन्हें एक पेड़ के नीचे डेरा डाले हुए देखा , तो एक छोटी सी झोपड़ी बनाकर उन्हें दे दी। वहाँ थेरा ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। फिर अपनी मुक्ति (निर्वाण) से परिपूर्ण होकर उन्होंने यह गाथा कही:

[59] सद्ध्याहाऽ पब्बजितो अरण्ये मे कुतिका काटा॥
अप्पमत्तो च अतापि संपाजानो पतिस्सातो' ति.॥॥

[59] अपने विश्वास में दृढ़ [1] मैंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए)। अब यहाँ
जंगल में मेरे लिए एक कुटिया बनाई गई है;
और मैं उत्साह और उमंग से ध्यान करता हूँ,
सतर्क बुद्धि और मन की स्पष्टता के साथ।

यह उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थी, और चूंकि वे कोसला में इतने लंबे समय तक रहे, इसलिए वे कोसला निवासी के रूप में जाने जाने लगे।

[1] 'जब मैंने वैशाली में परम पूज्य (बुद्ध) की शक्ति देखी, तो मैंने सोचा: "यह सिद्धांत और नियम पूर्णतः मार्गदर्शन करने में सक्षम है; इसलिए मैं निश्चित रूप से इस प्राप्ति के द्वारा वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाऊँगा।" और इस प्रकार उत्पन्न विश्वास के कारण, मैं (भिक्षुत्व के लिए) प्रस्थान कर गया' (टीका)। श्लोक की अंतिम दो पंक्तियाँ चार विशेषणों का विस्तार हैं, वाक्य में कर्ता और विधेय का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

1.6-9 [59] श्लोक पर टिप्पणी

कोसलाविहारी थेरा

सद्धायाहं पब्बजितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कोसलविहारी का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहते हैं कि इन्होंने भी भगवान पद्ममुत्तरा के समय में पुण्य का बीज बोया और यह-वह पुण्य कर्म किए। शेष कथा थेरा अंजनवणीय की कथा से मिलती-जुलती है। परन्तु अंतर यह है: कहा जाता है कि इन्होंने उक्त प्रकार से संन्यासी बनकर अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन किया और कोसल राज्य के एक गाँव में एक भक्त के परिवार के साथ वन में निवास किया। उस भक्त ने उन्हें एक वृक्ष की तलहटी में रहते देखा, एक कुटिया बनवाई और उसे थेरा को भेंट कर दिया। कुटिया में रहते हुए, अनुकूल वातावरण के कारण थेरा ने मानसिक एकाग्रता (समाधान) प्राप्त की, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में लगे रहे और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदाना में कहा गया है:—

“हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर, मैं रहता था।

एक पत्ती-फैलाव। मैंने अपनी प्रदर्शनी लगाई है।

मैं अपने भोजन (घासा) में लालची था, तब

लेटने की भी आदत थी।

छोटी (लैम्बा) कंदयुक्त जड़ों को खोदकर निकालना,

कंद और कंद (तक्कला), जिनमें

बेर (कोला) फल लाया, निशान-

भल्लाटक और क्विंस फल

(बिल्ला) मैंने तब (भोजन के लिए) तैयार रखा था।

पदुमुत्तरा, संसार के ज्ञानी, प्राप्तकर्ता

बलि चढ़ाने के बाद, आने पर

मेरी मंशा जानने के लिए, वे मेरे समक्ष आए।

पास पहुँचने पर, विशाल हाथी,

देवताओं के देवता, मनुष्यों में श्रेष्ठ बैल,

मैंने एक कंद को जलाया और उसे बिखेर दिया।

उनके कटोरे में।

मुझे खुशी हो रही है (तोसायांतो),

महान नायक ने (मेरी भेंट) को भोजन के रूप में ग्रहण किया।

(परिभुञ्जि). खाना ख़त्म करके,

सर्वज्ञ बुद्ध ने यह कहा था

श्लोक।

अपने मन को सुखद रूप से धार्मिक बनाने के बाद

आपने मुझे एक कंद की पेशकश की थी; आप ऐसा नहीं करेंगे

सौ वर्षों तक किसी भी दुष्ट अस्तित्व में पुनर्जन्म लेना।

हजारों युगों का भय।

बाद में (carimaṃ) ऐसा हुआ (vattate)

मेरे लिए; सभी अस्तित्व सुधर गए थे

समाप्त; मैं अपना अंतिम शरीर धारण करता हूँ

स्वयंजागृत बुद्ध का उपदेश।

आज से चौवन युग (कप्पा) पहले,

मैं महान शक्ति वाला विश्व-राजा बन गया।

सात वंशों से संपन्न, सुमेखालिया के नाम से जाने जाते हैं।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "सद्धायाहंपब्बजितो" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने मुक्ति के आनंद के अनुभव के कारण उत्पन्न उत्साह की गति से आनंदमय उच्चारण (उदान) किया।

59. वहाँ, सद्धाय का अर्थ इस प्रकार है:— जब भगवान वेसाली के पास पहुँचे और उन्होंने अपने भीतर उत्पन्न हुई श्रद्धा (सद्धा) के फलस्वरूप उनकी शक्ति को देखा, तो उन्होंने कहा:— "यह व्यवस्था निश्चय ही संसार (निय्यानिक) से मुक्ति दिलाने में सहायक है; अतः, इस उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के द्वारा मैं वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाऊँगा; पब्बजितो का अर्थ है भिक्षुत्व की ओर अग्रसर होना। अरञ्ञे मे कुटिका कटा का अर्थ है; उस भिक्षुत्व के अनुकूल होने के कारण, मेरे लिए वन में एक कुटिया बनाई गई थी; भिक्षुत्व के अनुरूप वनवासी बनकर, मैं एकांतवास में रहने लगा; इस प्रकार उन्होंने बताया। अतः उन्होंने कहा: "अप्पमत्तो च आतापी, "संपजानो पतिसत्तो," जिसका अर्थ इस प्रकार है:— वनवास के लाभ से, शारीरिक एकांतवास के माध्यम से, वहाँ सचेतनता में लगे रहकर और विचारहीनता से बचकर, वह अप्पमत्तो हो गया, जिसका अर्थ है परिश्रमी, न कि लापरवाह; आतापी का अर्थ है सुनियोजित परिश्रम की अवस्था; संपजानो पतिसत्तो का अर्थ है:— मैं निरंतर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करता रहा, ताकि सचेतनता और सावधानी (संपजाञ्ञा) की सर्वांगीण पूर्ति हो सके, जो प्रारंभिक भाग (पुब्बभागीय) है, और प्रचुर ज्ञान (पञ्ञा) और जागरूकता (सती) की प्राप्ति हो सके, साथ ही अरहंतत्व की प्राप्ति हो सके; यही इसका अर्थ है। उनकी परिश्रम की अवस्था आदि की घोषणा में, यह उनके अरहंतत्व (अञ्ञा) की प्राप्ति का प्रकटीकरण मात्र था; उनके लंबे समय तक वनवास की अवस्था के कारण। हालांकि, कोसल राज्य में ही उनका पदनाम कोसलविहारी (Kosalavihārī) अस्तित्व में आया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा कोसलविहारी का

तैयार है।

**********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(60):सिवली
श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (60) ------>>>> अगला

अंतर्वस्तु

1अध्याय I. एकल श्लोक
260. सीवली
3भंते शिवली शाक्यपुत्र
4सिवली थेरा

अध्याय I.
एकल श्लोक

60. सीवली
भंते शिवली शाक्यपुत्र
उनका पुनर्जन्म इस बुद्ध युग में राजा की पुत्री सुप्पवासा के पुत्र के रूप में हुआ। [1] जब उनकी माता संतानाभ्रंश से पीड़ित थीं और सात दिन तक घोर पीड़ा में रहीं, तो उन्होंने अपने पति से कहा: 'मरने से पहले मैं एक भेंट दूंगी।' और उन्होंने उन्हें भगवान (बुद्ध) के पास यह कहते हुए भेजा: 'जाओ और मेरी दशा के बारे में भगवान (बुद्ध) को बताओ, और उन्हें आमंत्रित करो; और वे जो कहें, उसे ध्यान से सुनो और आकर मुझे बताओ।' उन्होंने सुप्पवासा की इच्छा का पालन किया, और भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'कोलियों की पुत्री सुप्पवासा प्रसन्न हों। वे सुखी और स्वस्थ होकर एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दें।' राजा ने यह सुना, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और गाँव के लिए निकल पड़े। उनके आने से पहले ही सुप्पवासा ने एक पुत्र को जन्म दिया। [61] जो लोग आँसू भरी आँखों से उनके चारों ओर खड़े थे, वे प्रसन्न होकर राजा को यह बताने के लिए चले गए। उन्होंने उन्हें आते देखा और सोचा, 'दस शक्तियों वाले (दशबल यानी बुद्ध) ने जो कहा था, वह पूरा हो गया है।' और वे राजकुमारी के पास गए और उन्हें बताया कि भगवान (बुद्ध) ने क्या कहा था। तब राजकुमारी ने उनसे बुद्ध और भिक्षु संघ का सात दिनों तक आतिथ्य सत्कार करने का अनुरोध किया। और यह कहते हुए कि, 'बच्चे का जन्म हुआ है, जिससे हमारे सभी सगे-संबंधियों के हृदय में प्रसन्नता आई है,' उन्होंने उसका नाम सिवाली (शुभ) रखा।
जन्म के सातवें दिन ही वह सब कुछ करने में सक्षम हो गया था। उस दिन धम्म के सेनापति सारिपुत्त ने उससे बातचीत की, [2] और कहा: 'क्या तुम्हारे जैसे कष्टों पर विजय प्राप्त करने वाले के लिए संसार त्यागकर संन्यास लेना आवश्यक नहीं है?' शिशु ने तुतलाते हुए कहा, 'महोदय, मैं संसार त्यागकर संन्यास लूँगा।' सुप्पवासा ने उन्हें बात करते देखा और थेरा से पूछा कि उन्होंने क्या कहा। 'हमने उसके द्वारा प्राप्त किए गए दीर्घ कष्टों के बारे में बात की। आपकी अनुमति से मैं उसे संन्यास की दीक्षा दूँगा।' उसने उत्तर दिया: 'ठीक है, महाराज; उसे दीक्षा दीजिए।' और सारिपुत्त ने उसे दीक्षा देते हुए कहा: 'सीवली, तुम्हें अपने द्वारा प्राप्त किए गए दीर्घ कष्टों के कारण के अलावा और कोई शिक्षा नहीं चाहिए। इस पर विचार करो।' बच्चे ने उत्तर दिया, 'महोदय, मुझे दीक्षा देने का भार आपका था; लेकिन मैं अपनी क्षमता का पता लगा लूँगा।' जिस क्षण उसके बालों की पहली लट काटी गई, वह प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया, दूसरी लट काटे जाने पर द्वितीय मार्ग की सिद्धि में, और इसी प्रकार तीसरी और चौथी लटों के लिए भी। ... [3]
अन्य शिक्षकों का कहना है कि सारिपुत्त द्वारा उन्हें भिक्षु दीक्षा दिए जाने के बाद, वे उसी दिन चले गए और एक एकांत कुटिया में निवास करते हुए, अपने दुखद विलंबित जन्म पर ध्यान किया, और इस प्रकार, उनका ज्ञान परिपक्व होकर अंतर्दृष्टि के मार्ग में उतर गया, मन के सभी मादक पदार्थों (विकारों/इच्छाओं) को त्यागकर [4] और इस प्रकार अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। उस पर [62] निर्वाण के आनंद का अनुभव करते हुए, उन्होंने भावुक होकर यह कहा (गाथा):

---

[60] ते मे इज्झसु संकप्पा यदत्तो पविसिṃ कुतिइṃ॥
विज्जविमुत्तिं पचेसां मनानुसयामुज्जहिं' ति.॥ ॥

---

[60] अब वे सफल हो गए हैं, मेरे सभी सर्वोच्च उद्देश्य,
जिनकी पूर्ति के लिए मैंने यह शांत शरणस्थल चुना।
पवित्र ज्ञान और स्वतंत्रता, मेरी खोज,
सभी छिपे हुए व्यर्थ अभिमानों को मैं त्याग देता हूँ।

---

[1] कोलिया का राजा। यह कहानी 100वें जातक (i. 242) की प्रस्तावना में, उदाना (II. 8) में, और ध्प. टिप्पणी में श्लोक 414 पर (cf. अंग., ii. 62) बताई गई है। किंवदंती के अनुसार, माँ सात साल और सात दिन तक अपने बच्चे को जन्म देने में असमर्थ रही।
[2] धम्मपद (414) में श्लोक यहाँ उद्धृत किया गया है, और टीका (पीटीएस संस्करण, खंड iii) में वर्णित प्रकरण।
[3] यहाँ अंग पर टिप्पणी , i. 24. द्वारा निपटाए गए प्रकरण का अनुसरण किया गया है, जहाँ भेंट प्राप्तकर्ता के रूप में सिवली की श्रेष्ठता का उल्लेख किया गया है।
[4] पृष्ठ 52, नोट 4 देखें।

1.6-10 [60] श्लोक पर टिप्पणी
सिवली थेरा
10.1. 'ते मे इज्जिंसु संकप्पा' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सीवली का है। क्या यही इसका मूल है? यह भी, भगवान बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में, पहले बताए गए तरीके (हेट्ठा) से मठ गए, श्रोताओं के सबसे दूर खड़े हुए, और जब वे सत्य (धम्म) सुन रहे थे, तो उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को दान प्राप्त करने वालों (लाभी) में सर्वोच्च स्थान पर बिठा रहे हैं। मन ही मन यह कहते हुए कि “भविष्य में मेरे लिए भी ऐसा ही बनना उचित है,” उन्होंने दशबाला (बुद्ध पदुमुत्तरा) को आमंत्रित किया, गुरु और भिक्षुओं के समूह को बड़ी मात्रा में दान दिया और अपनी यह इच्छा व्यक्त की: “हे भगवान! इस भक्तिमय कर्म के फलस्वरूप, मैं किसी अन्य समृद्धि की कामना नहीं करता; परन्तु भविष्य में, बुद्ध के आगमन पर, मैं भी उस भिक्षु के समान दान प्राप्त करने वालों में सर्वोच्च बनना चाहता हूँ, जिसे आपने

इस सर्वोच्च पद (एतदग्ग) पर आसीन किया है।" गुरु ने अनंतार्य की अनुपस्थिति देखकर उनसे भविष्यवाणी की: "तुम्हारी यह इच्छा भविष्य में बुद्ध गौतम के समक्ष पूर्ण होगी," और वे प्रस्थान कर गए। एक सुकुल के पुत्र ने अपने जीवन भर अच्छे कर्म किए और जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए, बुद्ध विपस्सी काल में बंधुमती नगर से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में जन्म लिया। उस समय बंधुमती नगर के नागरिकों ने अपने राजा से विचार-विमर्श करने के बाद दस प्रकार की शक्ति वाले दशबल को दान दिया। एक दिन जब वे सब मिलकर दान दे रहे थे, तो उन्होंने आपस में कहा, "हमारे दान (दानमुख) में ऐसी क्या बात है जो प्रकट नहीं होती?" और उन्हें शहद और दही के गोले का भी पता नहीं चला। उन्होंने जिले से शहर में प्रवेश करने वाली सड़क पर लोगों को तैनात कर दिया और कहा, "हम इन्हें हर जगह से लाएंगे।" उसी समय, एक अच्छे परिवार का यह पुत्र अपने गाँव से दही के गोलों से भरा एक बर्तन लेकर शहर की ओर जा रहा था, इस इरादे से कि जो भी उपलब्ध होगा, उसे वापस ले आएगा। उसने मन ही मन कहा, "मैं अपना चेहरा, हाथ और पैर धोकर प्रवेश करूँगा।" उसने आराम करने के लिए उपयुक्त स्थान (फासु) की तलाश की और उसे हल के सिर के बराबर एक मधुमक्खी रहित छत्ता (निम्मक्खिका दण्डमधु) मिला। उसने उसे इकट्ठा करते हुए मन ही मन कहा, "यह मेरे पुण्य फल स्वरूप उगा है।" और शहर में प्रवेश कर गया। नागरिकों द्वारा तैनात व्यक्ति ने उसे देखा और पूछा, "हे व्यक्ति! तुम इसे किसके लिए लाए हो?" उत्तर था, "भगवान के लिए। किसी के लिए नहीं; लेकिन इसे बेचने के लिए लाया हूँ।" (पहले वाले ने दूसरे से इस प्रकार निवेदन किया):— "हे मनुष्य! उस स्थिति में, कृपया यह सोने का सिक्का (कहापना) ले लीजिए और अपना शहद तथा दही का गोला भी दे दीजिए।" उस ग्रामीण ने मन ही मन सोचा: "यह वस्तु तो अधिक महंगी नहीं है; फिर भी इस व्यक्ति ने एक ही बार में इतना कुछ देने की पेशकश की (एकप्पाहारेनेवा); मुझे इसकी जांच करनी चाहिए (यीमंसितुं)।" इसके बाद,उसने उत्तर दिया: "मैं अपना माल (डेमी) एक सोने के सिक्के की कीमत पर नहीं दूंगा।" (खरीददार ने कहा): "यदि ऐसा है, तो कृपया मुझे दो (सोने के सिक्के) स्वीकार करके बेच दें।" उत्तर था, "मैं दो की कीमत पर भी नहीं बेचूंगा।" इस प्रकार प्रस्ताव बढ़ाते हुए सौदा एक हजार तक पहुंच गया।

10.2. उस (ग्रामीण) ने ऐसा सोचा:— "और बढ़ाना उचित नहीं है; इसे यहीं रहने दो; मैं पता लगाऊंगा कि इस (वस्तु) का क्या किया जा सकता है।" फिर उसने उस खरीदार से पूछा:— "यह वस्तु अधिक महंगी नहीं है; दूसरी ओर, आपने बहुत अधिक कीमत लगाई है; किसलिए आप इसे ले रहे हैं?" उत्तर था: "हे मित्र! यहाँ, राजा के साथ प्रतिद्वंद्विता (पटिविरुज्जित्वा) में लगे नागरिक, दान करते समय, अपने दान (दानमुध) के सामने इन दोनों वस्तुओं को अनदेखा करते हुए, इनकी खोज में लगे हैं; यदि वे इन दोनों को प्राप्त नहीं कर सके, तो नागरिकों की हार होगी; इसलिए, मैंने एक हजार की भेंट दी है और मैं इन्हें ले रहा हूँ।" (ग्रामीण ने पूछा:—) "लेकिन यह कैसे? क्या यह नागरिकों के लिए भी उचित है? क्या इसे दूसरों को देना उचित नहीं है?" (उत्तर था:) "इसे किसी को भी देने में कोई बाधा नहीं है।" (ग्रामीण ने पूछा:—) "क्या नागरिकों के दान में कोई ऐसा दाता है जिसने एक ही दिन में हज़ार का दान दिया हो?" (उत्तर था:) "कोई नहीं, हे मित्र!" ग्रामीण ने फिर पूछा: "क्या तुम निश्चित रूप से जानते हो कि ये दोनों वस्तुएँ हज़ार के बराबर हैं?" (उत्तर था:—) "हाँ, मैं जानता हूँ।" (तब ग्रामीण ने कहा:—) "तो फिर तुम जाकर नागरिकों को इस प्रकार सूचित कर दो:— 'एक व्यक्ति इन दोनों वस्तुओं को किसी भी कीमत पर नहीं देता; वह इन्हें अपने हाथों से दान के रूप में देना चाहता है; तुम्हें इन दोनों वस्तुओं के कारण चिंता नहीं करनी चाहिए; तुम इस दान के मामले में मेरे सबसे बड़े होने के साक्षी बनो।" खर्च के लिए लाए गए एक छोटे सिक्के (मासका) से उसने पाँच दाने मसाले (कटुका) लिए, उन्हें पीसकर पाउडर बनाया, दूध के दही से खट्टी तलछट (कंजिया) निकाली, उसमें शहद को दबाकर, पाँच दाने मसाले के पाउडर के साथ सब कुछ मिलाया, मिश्रण को कमल के पत्ते में लपेटकर अच्छी तरह सजाया, उसे लेकर दशबाला से कुछ दूर एक स्थान पर बैठ गया, जहाँ बहुत से लोग अपनी श्रद्धा के लिए भेंट लेकर आए थे; जब उसे पता चला कि उसका अवसर आ गया है, तो वह गुरु के पास गया और इस प्रकार कहा: "हे भगवान! यह दान (मेरा) बड़ी मुश्किल से (दुग्गता) प्राप्त हुआ है; मुझ पर दया करके, कृपया इसे स्वीकार करें।" गुरु ने उस भिक्षु पर दया करते हुए, चार महान देवताओं द्वारा अर्पित पत्थर के पात्र में रखी उस भेंट को स्वीकार किया और इस प्रकार संकल्प लिया: "यह 68 लाख भिक्षुओं को अर्पित करते समय कभी समाप्त न हो।" उस भले परिवार के पुत्र ने भोजन की व्यवस्था समाप्त होने पर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े होकर कहा: "आज मैंने भगवान बुद्ध को बंधुमती के नागरिकों के साथ अपनी सादर भेंट (सक्कारा) अर्पित करते हुए देखा है; इस (अच्छे) कर्म के फलस्वरूप,"हे युवक! ऐसा ही हो," यह कहकर गुरु ने उसे और नागरिकों को उनके द्वारा दिए गए भोजन-अर्पण के लिए धन्यवाद दिया और विदा हो गए।

10.3. उस पुण्य कुल के पुत्र ने भी जीवन भर अच्छे कर्म किए और देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करने के बाद, राजा की पुत्री सुप्पवासा के गर्भ में गर्भ धारण किया, जब यह बुद्ध (गौतम) प्रकट हुए। गर्भ धारण करने के समय से ही, सुबह और शाम दोनों समय, सैकड़ों उपहार गाड़ियों में भरकर सुप्पवासा को सौंपे जाते थे। फिर, उनके पुण्य की परीक्षा लेने के लिए, उन्हें अपने बीज-पात्र को हाथ से छूने के लिए कहा गया। प्रत्येक बीज से सौ नहीं, बल्कि हज़ार तक अंकुर निकले। खेती योग्य खेत (खेत्त) के प्रत्येक एकड़ (करिसा) में पचास नहीं, बल्कि साठ गाड़ी भर फसलें उगीं। अन्न भंडार भरते समय, उन्हें अन्न भंडार का द्वार छूने के लिए कहा गया। राजा की पुत्री के पुण्य के कारण, जहाँ-जहाँ अनाज ले जाया जाता था, वह स्थान फिर से उन लोगों के लिए भर दिया जाता था जो उसे लेते थे। यहाँ तक कि पूरी तरह से भरे हुए आटे के पात्र से भी, हर किसी को "राजा की पुत्री का पुण्य" कहकर अनाज देते समय, जब तक वह पात्र खाली नहीं हो जाता, तब तक अनाज समाप्त नहीं होता था: शिशु के गर्भ में आने के बाद सात वर्ष बीत चुके थे। लेकिन जब उनका गर्भ पूर्ण हो गया, तो उन्हें सात दिनों तक असहनीय पीड़ा हुई। उन्होंने मन ही मन कहा, "मरने से पहले, जब मैं जीवित हूँ, मैं दान करूँगी," और अपने पति को बुलाया और उन्हें गुरु के समक्ष यह निर्देश देकर भेजा: "जाओ, गुरु को इस बात की सूचना दो; और उन्हें आमंत्रित करो; गुरु जो कुछ भी कहें, उसे ध्यान से सुनो, वापस आकर मुझे बताओ।" उनके पति ने जाकर उनका संदेश

भगवान बुद्ध को दिया। गुरु बुद्ध ने कहा, "कोलिय (राजा) की पुत्री सुप्पवासा सुखी और रोगमुक्त हो; वह एक स्वस्थ पुत्र को जन्म दे।" यह सुनकर राजा ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अपने गाँव की ओर चल दिए। उनके घर पहुँचने से पहले ही सुप्पवासा के गर्भ से एक शिशु (गब्बह) निकला, जो छलनी से छनने वाले पानी के समान था: उनके चारों ओर बैठे लोगों की भीड़, जिनके चेहरे नम थे, मुस्कुराने लगी; प्रसन्न और प्रसन्न होकर, लोगों की भीड़ राजा को खुशखबरी सुनाने के लिए गई।
जैसे ही राजा ने उन्हें अपनी ओर आते देखा, उसने सोचा: "मुझे लगता है, दशाबल के कहे शब्द साकार हो गए होंगे।" वह आया और उसने गुरु का संदेश राजा की पुत्री को दिया। राजा की पुत्री ने कहा: "मेरा वही प्राण-भोजन, जिसमें आपने बुद्ध को आमंत्रित किया था, शुभ भोज बनेगा; जाइए; दशाबल को सात दिनों के लिए आमंत्रित कीजिए।" राजा ने वैसा ही किया। उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में सात दिनों तक पुरोहितों के बीच महान दान-पुण्य किया। बालक का जन्म हुआ और उसने सभी रिश्तेदारों के गर्म हृदय को शांत कर दिया; इसलिए उन्होंने उसका नाम सीवली दारक रखा। सात वर्ष तक गर्भ में रहने के कारण, वह जन्म से ही सभी प्रकार के कर्मों के प्रति उदार (खम) हो गया। सातवें दिन धर्म के सेनापति सारिपुत्त ने उससे वार्तालाप किया। गुरु ने धम्मपद का एक श्लोक भी सुनाया:
जिसने भी इस खतरनाक स्थिति पर काबू पा लिया है
पुनर्जन्मों का चक्र (संसार)
जो कठिन और भ्रामक है।
पार करके आगे चला गया है
निब्बान के तट पर, ज्ञान धारण किया हुआ था
(झायी), तृष्णा से मुक्त हो जाओ (ईजा)
और संदेह (कथंकथी) दूर हो जाए, शांत हो जाओ
(दुराचार से) विरक्त होना; उसे,
मैं ब्राह्मण को (ब्राह्मण) कहता हूँ।
10.6. तब थेरा ने उससे कहा, "फिर भी क्या बात है? इस प्रकार के कष्टों को सहने के बाद क्या तुम्हारे लिए भिक्षु संघ में शामिल होना उचित नहीं है?" बालक ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय! यदि मुझे यह अनुमति मिल जाए तो मैं भिक्षु बन जाऊंगा।" सुप्पावासा ने अपने पुत्र को थेरा से बात करते हुए देखकर मन ही मन कहा, "यह कैसे हो सकता है? मेरा पुत्र धर्म के सेनापति से बात कर रहा है?" सुप्पावासा थेरा के पास गईं और उनसे पूछा, "आदरणीय महोदय! मेरे पुत्र ने आपसे क्या कहा?" उत्तर मिला, "गर्भ में रहने के कष्टों के बारे में बताने के बाद, जो उसने स्वयं सहे थे, उसने कहा कि आपके द्वारा स्वीकृत (अनुज्ञात) होने पर वह भिक्षु संघ में शामिल हो जाएगा।" (माता ने उत्तर दिया,) "आदरणीय महोदय! अच्छा; उसे भिक्षु संघ में शामिल होने दीजिए।" थेरा उन्हें मठ ले गए, उन्हें मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) कराया जिसमें त्वचा को पाँचवें अंग (मानव शरीर के बत्तीस भागों में से) के रूप में शामिल किया गया था, और उन्हें भिक्षु संघ में शामिल होने की अनुमति देते हुए, थेरा ने उनसे कहा:— "हे सिवली! आपके लिए किसी अन्य सलाह का कोई कार्य (कम्म) नहीं है; आपको अपने द्वारा सात वर्षों तक सहे गए दुख (दुक्खा) पर चिंतन करना चाहिए।" (सिवली ने इस प्रकार कहा:—) "आदरणीय महोदय! आपका दायित्व केवल मुझे भिक्षु बनाना है; मेरे लिए जो कुछ भी संभव हो, मैं वह समझूंगा।" हालांकि, वे बाल की पहली चोटी (वट्टी) मुंडवाते ही पवित्रता (सोतापत्ति) के प्रथम चरण की सिद्धि में स्थापित हो गए; दूसरी चोटी (वट्टी) को हटाते ही, वे एक बार लौटने वाले (सकदागानी) की सिद्धि में स्थापित हो गए; तीसरे चरण में, अनागामी (अनानामी) के फल की प्राप्ति पर; उनके सिर के सारे बाल मुंडवाने के बाद और अरहंतत्व की कल्पना करने के बाद न तो कोई और चरण था और न ही कोई और चरण। जिस दिन से वे भिक्षु बने, उसी दिन से भिक्षुओं के लिए आवश्यक चारों चीजें आवश्यकतानुसार प्राप्त की जाने लगीं। इस प्रकार यहाँ से यह कहानी उत्पन्न हुई।
10,7. इसके बाद, गुरु सावत्थी गए। थेरा ने गुरु को प्रणाम किया और कहा:— "आदरणीय गुरुदेव! मैं अपने पुण्य की परीक्षा लेने जा रहा हूँ; कृपया मुझे पाँच सौ भिक्षु दें।" (बुद्ध का उत्तर था:—) "हे सीवाली! आप ले सकते हैं।" उन्होंने पाँच सौ भिक्षुओं को लिया और हिमवंत की दिशा में वन मार्ग से चले; उन्हें सबसे पहले दिखाई देने वाले बरगद (निग्रोध) वृक्ष में निवास करने वाले देवता ने सात दिनों का दान दिया। इस प्रकार, उन्होंने

"सबसे पहले निग्रोध का पेड़ देखा,
दूसरा पांडव पर्वत, तीसरा
असिरावती नदी, चौथा वरा
महासागर; पाँचवीं बार उसने हिमा को देखा-
वांटा पर्वत, छठा वह पास गया
चद्दंता झील; सातवाँ गंधा-
मदाना और फिर, आठवां रेवता।"
सभी स्थानों पर, उन्होंने सात दिनों तक लगातार दान दिया। लेकिन गंधमादन पर्वत पर, नागदत्त नामक दिव्य राजा ने सात दिनों में से एक दिन दूध का भिक्षादान किया; दूसरे दिन घी का भिक्षादान किया। भिक्षुओं ने कहा, "इस दिव्य राजा के न तो दूध दुहा जा रहा है और न ही

दही मथा जा रहा है; हे दिव्य राजा! यह आपको कहाँ से प्राप्त हुआ?" दिव्य राजा ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय! यह दशाबल कस्सपा के समय मेरे द्वारा लॉटरी द्वारा भिक्षादान (सलाका) करने का फल है।" इसके बाद, गुरु ने बबूल के वन में रहने वाले रेवता से मिलने (पच्चुग्गमन) की घटना को एक कथा के रूप में वर्णित करते हुए, थेरा को सर्वोच्च लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त करने वालों में अग्रणी स्थान दिया।

10,8. कुछ शिक्षक इस थेरा के अरहंत पद प्राप्ति के विषय में इस प्रकार कहते हैं, जिन्होंने इस प्रकार सर्वोच्च लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त की: "जब धर्म के सेनापति ने उन्हें पहले से ही वर्णित (हेट्ठा) तरीके से सलाह दी, तो उन्होंने यह कहते हुए भिक्षुत्व ग्रहण किया; 'जो कुछ मेरे लिए संभव है, वही मैं समझूंगा', उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के लिए मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) किया, उसी दिन एक एकांत कुटिया देखी, उसमें प्रवेश किया, अपनी माता के गर्भ में सात वर्षों तक अपने द्वारा सहे गए दुःख (दुक्खा) पर चिंतन (अनुस्सरित्वा) किया और जब उन्होंने अतीत और भविष्य को देखा, तो उसके अनुरूप तीनों अस्तित्व (भव) उन्हें धधकते हुए प्रतीत हुए (उपट्ठहिंसु)। अपने ज्ञान के सर्वांगीण परिपक्व हो जाने के कारण, उन्होंने स्वयं को (ओतरी) आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के मार्ग पर चलते हुए, वहीं और उसी क्षण, क्रमिक श्रेष्ठ मार्गों (मग्ग) के माध्यम से, उनके सभी दोष दूर हो गए और उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त किया। दोनों ही तरीकों से थेरा की अरहंतत्व प्राप्ति स्पष्ट हो गई थी। हालांकि, थेरा विश्लेषणात्मक ज्ञान और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (पभिन्न) से संपन्न हो गए थे। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

"मैं उस समय एक दिव्य राजा के रूप में जाना जाता था
वरुणा नाम से। मैंने भाग लिया
स्वयंजागृत बुद्ध पर,
उन्हें अपनी मजबूत बाहों में लिए हुए
परिवहन (sayoggabalavāhano).
जब अत्थादस्सी, सबसे उत्कृष्ट
पुरुषों में से, दुनिया का रक्षक
निर्वाण में प्रवेश करने के बाद, मैं चला गया
सबसे उत्कृष्ट बोधि वृक्ष, लेते हुए
मेरे साथ, सभी संगीतकार
वाद्ययंत्र। जब बजाना
संगीत और नृत्य के साथ,
झांझों की थाप से (समाहितो)
(सममाताला), मैंने सेवा की
सबसे उत्कृष्ट बोधि वृक्ष, मानो मैं
स्वयं (जीवित) की सेवा कर रहा था।
उनकी उपस्थिति में जागृत बुद्ध
(सम्मुख)।
उस कार्यक्रम में भाग लेने के बाद
बोधि वृक्ष, वह वृक्ष जो उगता है
मैं जमीन पर पेट के बल बैठ गया।
वहीं उसकी मौत हो गई।
मैं अपने आप से संतुष्ट हूँ (अभिराद्ध)।
कार्य करते ही मैं अत्यंत प्रसन्न हो गया
सबसे उत्तम बोधि वृक्ष; हो-
उस पवित्र मन के कारण ही मैं उछल पड़ा।
निम्मानारति के दिव्य लोक में।
साठ हजार संगीतकारों ने घेर लिया
मुझे लगातार। छोटे अस्तित्वों में
और प्रमुख (भवभवे) मैं निकला
दिव्य और
मनुष्य।
मेरी तीन प्रकार की आग थी
सभी अस्तित्व समाप्त हो गए थे;
समाप्त। अब मैं अपना अंतिम लक्ष्य साथ रखता हूँ।

अच्छी व्यवस्था में शरीर-
स्वयंजागृत बुद्ध।
पांच सौ युग (कप्पा) पहले, से
अब, चौंतीस विश्व राज्य हो गए-
योद्धा वंश (खत्तिया) के राजाओं को वरदान प्राप्त था
सात रत्नों के साथ और इस नाम से जाना जाता है
सुबाहू। मेरी दुष्टता जलकर भस्म हो गई थी।
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।"

10,9. हालाँकि अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "ते मे इज्जिंसु संकप्पा" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने उत्साह की गति से आनंदमय उच्चारण (उदानेंतो) किया और मुक्ति के आनंद का उचित अनुभव किया।

60. There te me ijjhiṃsu saṅkappā, yadattho pāvisiṃ kuṭiṃ, vijjā vimuttiṃ paccesaṃ का अर्थ इस प्रकार है:— जो कुछ भी मैंने पहले विशेष रूप से चाहा था, अर्थात् त्याग आदि, जो आत्म-विभाजन (समुच्चेदकर) का कारण बनते हैं, इंद्रिय सुख (काम) पर अभिमान आदि, अपने मन में यह कहते हुए: "मैं कब उस निवास (आयतन) को प्राप्त (उपसम्पज्जा) कर पाऊंगा, जिसे पवित्र श्रेष्ठों (आरिया) ने प्राप्त किया है और अब उसमें रहते हैं?" (इन पवित्र श्रेष्ठों) की धारणाएँ मुक्ति (विमुत्तधिप्पायसञ्जिता) के लिए थीं, उनके इरादे मुक्ति की ओर प्रवृत्त (उद्दिस्सा) थे; इसी प्रकार उनका वांछित लक्ष्य (मनोरथ) भी था; वे निरंतर परिश्रमी थे; जो भी इच्छा, जो भी प्रयास (पयोजनो) मैंने पूरा करने के उद्देश्य से एक कुटिया, एक खाली, शांत घर (सुञ्आगार) में प्रवेश किया, तीनों प्रकार के परम विज्ञान (विज्जा) और फलदायी मुक्ति (फलविमुक्ति) की खोज में; यहाँ तक कि उन सभी ने भी मेरे लिए समृद्धि प्राप्त की; अब, (मेरे सभी प्रयास) सफल और समृद्ध हो गए थे; मेरे अच्छे कर्मों का इरादा पूर्ण हो गया था, सर्वांगीण रूप से परिपूर्ण हो गया था, मेरा इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो गया था: यही अर्थ है। उनकी उत्कृष्ट समृद्धि (समिद्धभाव) की स्थिति को दर्शाने के लिए, यह कहा गया है: — "मननुसयमुज्जहं" जिसका अर्थ यह है: — क्योंकि मैंने अहंकार के पूर्वाग्रह (मानानुसय) को त्यागकर (उज्जहं) उसे अच्छी तरह से काट दिया था, इसलिए मेरे वे इरादे साकार हुए (इज्जिंसु); अतः, यही व्याख्या (योजना) है: वास्तव में, जब अहंकार का पूर्वाग्रह त्याग दिया गया, तो कोई अन्य पूर्वाग्रह नहीं रह गया जिसे त्यागा न जा सके; यह केवल अरहंतत्व की प्राप्ति ही बन गई; अतः, जैसा कि कहा गया है, अहंकार के पूर्वाग्रह का त्याग ही इरादे की अच्छी सिद्धि का परिस्थितिजन्य कारण है।

श्लोक पर टिप्पणी
थेरा सिवली का
तैयार है।
**********oOo*********
छठे अध्याय पर टीका
तैयार है।
*********oOo*********

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी
शिवली थेरा

बुद्ध गौतम के समय में कोलिया और सुप्पवासा नामक एक धर्मात्मा राजा और रानी का शासन था। कुछ समय बाद रानी सुप्पवासा गर्भवती हुईं। इस गर्भस्थ संतान ने राज्य में अपार समृद्धि लाई। रानी को न केवल मित्रों और रिश्तेदारों से अनेक उपहार प्राप्त हुए, बल्कि पूरा राज्य समृद्ध हो गया। फसलें भरपूर हुईं और सभी लोग स्वस्थ और सुखी थे।

रानी गर्भवती हो गईं, लेकिन प्रसव का स्वाभाविक समय आने पर भी उन्होंने बच्चे को जन्म नहीं दिया। समय बीतने के साथ प्रसव के कोई संकेत न मिलने पर रानी बेचैन हो गईं और उन्होंने राजा से बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भोजन पर आमंत्रित करने का अनुरोध किया। भोजन के बाद बुद्ध ने रानी को आशीर्वाद देते हुए कहा:

"कोलिया वंश की पुत्री सुप्पावासा,
खुश और स्वस्थ रहो और एक स्वस्थ बेटे को जन्म दो।"

बुद्ध के जाने के बाद, रानी ने एक सुंदर और स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। बुद्ध के प्रति सम्मान के प्रतीक के रूप में, जिन्होंने अपने आशीर्वाद से रानी के भारी बोझ को हल्का किया था, उन्हें और उनके अनुयायियों को सात दिनों के लिए महल में भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया गया। राजकुमार का नाम सिवली रखा गया, क्योंकि उनके जन्म के समय से ही भरपूर फसल के माध्यम से लोगों की कठिनाइयाँ कम होने लगीं।

एक दिन जब सारिपुत्त भिक्षा मांगने निकले थे, तब वे राजकुमार के पास गए और उन्हें बताया कि गर्भावस्था में देरी के कारण उन्हें और उनकी माता को कितना कष्ट सहना पड़ा था। सारिपुत्त ने राजकुमार को अपने और अपनी माता के द्वारा किए गए अनुचित कार्य और उसके परिणामों के बारे में विस्तार से बताया।

पिछले जन्म में सिवली बनारस के राजा के रूप में पैदा हुए थे और उन्होंने पड़ोसी राज्य पर युद्ध छेड़ दिया था। उन्होंने राज्य को घेर लिया और नागरिकों को आत्मसमर्पण करने या पलटवार करने के लिए कहा। जब उन्होंने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया, तो उन्होंने अपनी पत्नी, अपनी वर्तमान माता के साथ मिलकर, शहर को घेरने और नागरिकों को तब तक बंधक बनाकर रखने का फैसला किया जब तक वे आत्मसमर्पण न कर दें। नागरिक, जो न तो पलटवार करना चाहते थे और न ही ऐसे राजा के शासन के अधीन रहना चाहते थे, उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। परिणामस्वरूप, उन्हें बहुत लंबे समय तक भोजन के बिना भारी कष्ट सहना पड़ा। कई बीमार और बुजुर्ग मर गए, लेकिन अहंकारी राजा और उसकी रानी ने हार नहीं मानी। कई महीनों बाद राजा ने अपनी सेना वापस बुला ली और अपने बंधकों को रिहा कर दिया, लेकिन उन्हें अपने द्वारा किए गए कष्टों की भारी कीमत चुकानी पड़ी। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। विलंबित गर्भावस्था और उस विलंब के परिणामस्वरूप उन्हें और उनकी माता को जो कष्ट सहना पड़ा, वह इस कर्म का परिणाम था।

दुख के आर्य सत्य का वर्णन करने के बाद, सारिपुत्त ने राजकुमार से पूछा कि क्या वह आर्य संघ में शामिल होना चाहेंगे ताकि वे सभी दुखों के अंत का मार्ग खोज सकें। राजकुमार इस निमंत्रण से अत्यंत प्रसन्न हुए और अपनी माता की अनुमति से संघ में शामिल होने के लिए सहमत हो गए।

बुद्ध की परम भक्त रानी मान गईं। उन्होंने राजकुमार सिवली को दीक्षा समारोह के लिए मठ तक जुलूस के साथ ले गईं। दीक्षा के दिन जब उनके बाल मुंडवाए गए, तो सारिपुत्त ने सिवली को शरीर की अशुद्धियों पर ध्यान करने की सलाह दी। सिवली, जो अपने पूर्व पुण्य कर्मों के कारण आध्यात्मिक रूप से उन्नत थे, ने निर्देशानुसार अपना ध्यान केंद्रित किया। बाल मुंडवाने की प्रक्रिया पूरी होने से पहले ही सिवली ने निर्वाण का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सिवली के साथ रहने पर भिक्षुओं ने जल्द ही एक विचित्र घटना देखी। सिवली के पास हमेशा भरपूर मात्रा में स्वादिष्ट और सुगंधित भोजन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ (वस्त्र, आश्रय और औषधियाँ) उपलब्ध रहती थीं। उनके साथ रहने वाले भिक्षुओं को भी इस प्रचुरता का लाभ उठाने का अवसर मिलता था। सिवली जहाँ भी जाते, लोग उनके लिए भोजन तैयार करने के लिए उमड़ पड़ते थे। सिवली वास्तव में एक भिक्षु के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं से संपन्न थे।

और इस प्रकार, सिवली जहाँ भी गए, उनकी अच्छी तरह से देखभाल की गई। वे और उनके 500 भिक्षुओं का दल सात दिनों तक एक निर्जन जंगल में रहे, लेकिन उन्हें भोजन की कमी नहीं हुई। देवताओं ने यह सुनिश्चित किया कि उनकी सभी आवश्यकताएँ पूरी हों। इसी प्रकार, जब सिवली रेगिस्तान से यात्रा कर रहे थे, तब भी उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की गई। बुद्ध ने देखा कि सिवली उनके शासनकाल में की गई एक पूर्व इच्छा को पूरा कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने घोषणा की कि वे आवश्यकताओं की प्राप्ति में भिक्षुओं में सबसे आगे हैं। उन्होंने निर्जन भूभाग से होकर लंबी और कठिन यात्राएँ करने वाले भिक्षुओं को भी सिवली को अपने साथ ले जाने का निर्देश दिया, क्योंकि उनके साथ रहने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित होगी। वास्तव में, एक बार जब बुद्ध और उनके 30,000 भिक्षुओं का दल भिक्षु खदिरावनीय रेवता (सारिपुत्त के छोटे भाई) से मिलने जा रहे थे, तब उन्हें एक निर्जन जंगल पार करना पड़ा। आनंद को डर था कि जंगल में इतने सारे भिक्षुओं के लिए भोजन का इंतजाम नहीं हो पाएगा, इसलिए उन्होंने बुद्ध से यात्रा की व्यवस्था के बारे में पूछा। बुद्ध ने आनंद को आश्वासन दिया कि उन्हें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि सिवली उनके साथ हैं। सिवली के साथ होने से भोजन की कोई कमी नहीं होगी क्योंकि देवता भी उनकी जरूरतों का ख्याल रखने में आनंद लेते हैं।

सामान्यतः, किसी व्यक्ति के सद्गुणों (अच्छे और बुरे) के फल केवल कर्मकर्ता को ही प्राप्त होते हैं। यद्यपि, शिवली के उदाहरण से मिलते-जुलते ऐसे उदाहरण भी हैं, जिनमें दूसरों को भी किसी अन्य व्यक्ति के असाधारण रूप से प्रबल कर्मों से लाभ होता है। किसी व्यक्ति के प्रबल कर्मों के फल का दूसरों पर पड़ने वाला यह अतिप्रवाह निसंध पाला (कर्मों का अतिप्रवाह) कहलाता है। जबकि कर्मों के विपाक पाला (फल) केवल कर्मकर्ता को ही प्राप्त होते हैं, निसंध पाला उन लोगों को भी अनुभव होता है जो उस समय आपके साथ होते हैं। निसंध पाला कर्म के अनुसार अच्छे और बुरे दोनों प्रकार का हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक बार सारिपुत्त को लोषक के प्रबल बुरे कर्मों के निसंध पाला के परिणामस्वरूप भिक्षा प्राप्त नहीं हुई।

इस विचित्र घटना के कारण का पता लगाने के लिए हमें कई युगों पहले बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में जाना होगा। सिवली, जो एक गरीब परिवार में पैदा हुए थे, को बुद्ध पद्ममुत्तरा द्वारा एक अन्य भिक्षु को आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने वाले भिक्षुओं में श्रेष्ठ होने का सम्मान प्रदान करते हुए देखने का अवसर मिला। इस भिक्षु को भिक्षा और वस्त्र देने की सभी की इच्छा देखकर सिवली मोहित हो गए और उन्होंने भी भविष्य में ऐसा ही पद प्राप्त करने का निश्चय किया। तब उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा और उनके अनुयायियों के प्रति अनेक उदारतापूर्ण कार्य किए और एक मनोकामना की।

बुद्ध पद्ममुत्तरा ने सिवली की मनोकामना पूरी होने का पूर्वाभास करते हुए भविष्यवाणी की थी कि गौतम बुद्ध के समय में वे उन भिक्षुओं में अग्रणी होंगे जिन्होंने आवश्यक योग्यताएँ प्राप्त कीं। इसी क्षण से सिवली ने अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए पूरी लगन से प्रयास करना शुरू कर दिया। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में हुआ जहाँ उन्होंने अनेक वर्षों तक दिव्य आनंद का अनुभव किया।

अगली प्रलेखित जन्म कथा गौतम बुद्ध से 91 विश्व चक्र पूर्व, बुद्ध विपस्सी के समय की है। सिवली का जन्म बंधुमती नगर में एक व्यापारी के रूप में हुआ था। नगर में बुद्ध विपस्सी और उनके भिक्षुओं के लिए एक बड़े दान-पुण्य की तैयारी चल रही थी, तभी उन्हें पता चला कि उनके पास दही और शहद की कमी है, जो दोपहर के भोजन के बाद अक्सर परोसा जाने वाला एक विशेष व्यंजन था। आवश्यक व्यंजन प्राप्त करने के लिए पूरे नगर में संदेश भेजे गए। आवश्यक मात्रा प्राप्त न होने पर, राजा के आदमियों ने दही और शहद की कीमत एक सोने के सिक्के से बढ़ाकर 100 सिक्के कर दी।
इसी बीच, दही और शहद बेचने वाले व्यापारी सिवली के पास एक व्यापारी आया और उसके माल के बदले 100 सोने के सिक्के देने की पेशकश की। सिवली को यह असामान्य रूप से अधिक कीमत देखकर आश्चर्य हुआ और उसने पूछा कि वे किसके लिए दही खरीद रहे हैं। यह जानकर कि यह विपस्सी बुद्ध और उनके भिक्षुओं के लिए है, सिवली ने बुद्ध को अपना माल दान करने की अनुमति मांगी। फिर उसने भिक्षुओं में सबसे आगे रहने की अपनी इच्छा को दोहराया। विपस्सी बुद्ध ने सिवली की इच्छा पूरी होते देख उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, "तेरी इच्छा पूरी हो।" इसके बाद सिवली विपस्सी बुद्ध का भक्त बन गया और उनके धर्म का पालन करने लगा।
इस प्रबल आकांक्षा और पिछले जन्मों में किए गए पुण्य कर्मों और प्रयासों के फलस्वरूप, सिवली ने गौतम बुद्ध के समय में आवश्यक योग्यताएँ प्राप्त करने वाले भिक्षुओं में अग्रणी बनने की अपनी आकांक्षा को पूर्ण किया। आज भी, बौद्ध अरहंत सिवली का आदर करते हैं और अक्सर भोजन और समृद्धि की प्रचुरता के प्रतीक के रूप में सिवली परित्त नामक चित्र या प्रवचन को अपने घर में रखते हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(61):वप्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (61) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
61. वप्पा
उनका पुनर्जन्म इसी बुद्ध युग में कपिलवस्तु में ब्राह्मण (पुजारी) वासेत्थ के पुत्र के रूप में हुआ। जब द्रष्टा असिता [1] ने भविष्यवाणी की थी कि युवा श्रेष्ठ सिद्धार्थ (राजकुमार जो बुद्ध बने) सर्वज्ञ होंगे, तब वप्पा अपने चार अन्य ब्राह्मण पुत्रों, जिनमें कोंडञ्ञ प्रमुख थे, [2] के साथ भिक्षु बन गए। जब असिता की भविष्यवाणी पूरी हुई, तो वप्पा ने बुद्ध का उपदेश सुना और सोचा: 'मैं मोक्ष प्राप्त करूंगा।' वे उन छह वर्षों के दौरान उपस्थित रहे जब बुद्ध ने तपस्या की; जब बुद्ध ने पुनः ठोस भोजन ग्रहण किया तो वे निराश होकर इसिपताना गए और वहाँ उनकी मुलाकात भगवान (बुद्ध) से हुई, जिन्होंने धम्म का चक्र चलाना शुरू किया और सोतापाण (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त की। पाँचवें दिन उन्होंने और उनके चार साथियों ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। भगवान (बुद्ध) की शक्ति और संसार के अंधापन पर विचार करते हुए, और आर्य राज्य द्वारा प्रदान की गई दृष्टि पर विचार करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[61] पस्सति पास्सो पस्संताṃ अपासंता सीए पस्सति॥
अप्सान्तो अप्सन्तो पशन्तṃ च न पसाति' ति.॥ ॥

[61] जिसने देखा है, वह दूसरे द्रष्टा को भी देख सकता है,
वह भी जिसके पास देखने के लिए आंखें नहीं हैं,
वह स्वयं नहीं देखता, वह
न तो उस आंख को पहचान सकता है जो नहीं देखती, न ही द्रष्टा को। [3]

[1] सुत्त निपाता, श्लोक 128 एफ.एफ.; विनय ग्रंथ, i. 90, एन. 1; कली. जन्म कथाएँ, पृ. 118.

[2] सीसीएक्सएलवीआई देखें।

[3] यहाँ बुद्ध के आध्यात्मिक विकास के प्रति पाँच भिक्षुओं के अविवेकी रवैये का संकेत है, जैसा कि संदर्भित पुस्तकों में दर्ज है। तुलना करें ए. ii. 179 f.

1.7 सातवाँ अध्याय

1.7-1[61] श्लोक पर टिप्पणी

वप्पा थेरा
पसती पस्सो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वप्पा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म हंसवती नगर के एक पारिवारिक घर में भगवान पद्ममुत्तरा के समय हुआ था; जब वे ज्ञानोदय की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने प्रशंसा के ऐसे शब्द सुने: "अमुक थेरा सत्य (धम्म) के प्रथम प्राप्तकर्ता (पटिग्गाहक) बन गए हैं।" वे भगवान के पास गए और अपनी इस प्रकार प्रार्थना की: "हे भगवान! मैं भी भविष्य में आपके समान एक उत्कृष्ट आत्म-जागृत बुद्ध से सत्य (धम्म) के प्रथम प्राप्तकर्ता बनना चाहता हूँ।" उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वे गुरु की उपस्थिति में उनकी शरण में आए हैं। अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करने के बाद, वे वहाँ से चले गए, देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और कपिलवस्तु में वासेठ नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का उदय हुआ। उनका नाम वप्पा था। तपस्वी असित (अनासक्त) द्वारा यह भविष्यवाणी किए जाने पर कि राजकुमार सिद्धार्थ सर्वज्ञ (बुद्ध) होंगे, उन्होंने कोंडञ्ञ के नेतृत्व में ब्राह्मणों के पुत्रों के साथ गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए और उरुवेला (वन) में निवास करने वाले महासत्त की छह वर्षों तक सेवा करते रहे, जो मन ही मन कहते थे: "जब वह राजकुमार सर्वज्ञता प्राप्त कर लेंगे, तो मैं उनकी उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुनूंगा और अमरत्व (अमता) प्राप्त करूंगा।" उन्हें भरपूर भोजन से घृणा होने लगी और वे इसिपताना चले गए। जब गुरु ने पूर्ण बुद्ध (अभिसंबुज्जित्वा) होने के बाद धर्मचक्र घुमाया, सात दिन सात बार व्यतीत किए और इसिपताना गए, तो चंद्र माह के प्रथम दिन (पतिपाददिवसे) वे मोक्ष की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) के फल में स्थापित हो गए, और अर्धपक्खा के पाँचवें दिन (पक्खा) वे अञ्ञासिकोण्डञ्ञ के साथ अरहंत पद प्राप्त कर चुके, इत्यादि। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"दोनों दिव्य राजाओं का युद्ध

आसन्न था (समुपट्टितो)।

(लड़ाई) पूरी तरह से तेज हो गई।

(समुपब्युल्हो); वहाँ हुआ

एक ज़ोरदार चीख (घोसा)।

पदुमुत्तारा, विश्व-ज्ञानी (लोकविदु),

बलिदान का उपयुक्त प्राप्तकर्ता

भेंट चढ़ाते हुए, गुरु वहाँ खड़े थे

आकाश और पुरुषों की भीड़ बनाई

पश्चातापी।

सभी दिव्य प्राणी बन गए

मंत्रमुग्ध होकर, उन्होंने अपने

कवच और हथियार

उन्होंने स्वयं को श्रद्धांजलि अर्पित की।

जागृत बुद्ध और शांत हो गए

हमेशा के लिए संग्रहित।

मेरी मंशा का पता चलने पर,

लोकविद्या ने कहा

प्रभुत्वपूर्ण (आसभिं) शब्द (वाचा)।

दयालु स्वामी ने बुझा दिया

क्रोध की आग (निब्बापेसी)

पुरुषों की भीड़।

आक्रामक मानसिकता वाला (padaṭṭhacitto)

मनुष्य होने के नाते, किसी प्राणी को चोट पहुँचाना

उस कारण नरक में कष्ट भोगना

मन में क्रोध।

कई जीवों को नुकसान पहुंचाना जो समान हैं

सेना के आगे हाथी

अपने मन को शुद्ध करो (निब्बापेथ);

बार-बार हत्या मत करो।

उन दो दिव्य सेनाओं की

(यक्खा) शासक हताश हो गए

(विम्हिता)। वे उस ओर चले गए

इस तरह के उत्कृष्ट लोगों की दुनिया में सबसे बड़े

सुतादिनम् (Sutādinaṃ) गुण ही उनका आश्रय हैं

भी।

भीड़ को शांत करने के बाद,

दृष्टि का स्वामी (चक्खुमा) उठाया

उसका पैर। उसने अपना प्रस्थान किया।

उत्तर की ओर, अभी भी देखा जा रहा है

दिव्य प्राणियों द्वारा। मैं पहले गया था

ऐसे व्यक्ति की शरण की ओर

मनुष्यों के संप्रभु (द्विपदिन्द) के रूप में;

मुझे किसी बुराई में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं थी।

एक लाख युगों तक अस्तित्व

(कप्पा)।

मैं सोलह विश्व-राजा, सोलह स्वामी बन गया।

रथ चालकों (रथेसभा) के नाम पर

महादुंदुभी, तीस हजार में

युग (कप्पा)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने स्वयं द्वारा अर्जित समृद्धि पर विचार करते हुए गुरु के गुणों की महानता पर चिंतन किया और "पस्सति पस्सो" से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा, ताकि यह दिखाया जा सके: "हम गुरु को इस प्रकार विलासी (बाहुलीका) भाषा (वाद) से संबोधित करते हैं; साधारण विश्वराज होना निश्चित रूप से अंधकार (अंधकरण) का कार्य है, अंधता (अचक्खु) का निर्माण (करण) है; केवल पवित्र श्रेष्ठ अवस्था (अरियभव) ही नेत्र (चक्खुकरण) का निर्माण (अचक्खुकरण) है।"

61. वहाँ, पस्सति पस्सो का अर्थ इस प्रकार है:— वह घटनाओं (धम्म) को अपनी सही दृष्टि (सम्मादित्ति) से देखता है, वह घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से जानता है और उनके प्रति जागृत होता है (अविपरीतं); इस प्रकार, पस्सो, देखने वाला; दृष्टि से संपन्न एक पवित्र कुलीन (आरिया); पस्सन्तं का अर्थ है; वह स्पष्ट द्रष्टा (दस्सावी) को यह कहते हुए देखता है: "यह व्यक्ति सभी चीजों को निश्चित रूप से जानता है (अविपरीत दस्सावी); वह अपने ज्ञान के नेत्र (पञ्ञाचक्खु) से उनके स्वरूप (सभाव) के अनुसार धर्म (धम्म) और अधर्म (अधम्म) को जानता है। अपसन्तञ्च का अर्थ यह है: वह पूरी तरह से (केवलं) नहीं देख रहा है; बल्कि वह वह भी देख रहा है जो कोई नहीं देख पाता; जो भी ज्ञान के नेत्र से रहित है, वह घटनाओं (धम्म) को उनके स्वरूप के अनुसार नहीं देख पाता; वह अपने ही ज्ञान के नेत्र से उस दृष्टिहीन सामान्य सांसारिक (पुथुज्जन) को भी देखता है और मन ही मन कहता है; "यह दृष्टिहीन प्राणी (अचक्खुको) वास्तव में अंधा है।" Apassanto apassantaṃ, passantañ ca na passati का अर्थ इस प्रकार है: — अंधा मूर्ख (अंधबाल) जो ज्ञान की दृष्टि से रहित है (paññā cakkhu), वह अपने जैसे अंधे को देखकर यह नहीं समझ पाता कि: "यह व्यक्ति सही (धम्म) और गलत (अधम्म) को उनके स्वरूप (सभाव) के अनुसार नहीं देख पाता"; इस प्रकार, जिस प्रकार वह अदृष्टिहीन को न तो देख पाता है और न ही जान पाता है, उसी प्रकार वह ज्ञानी व्यक्ति को भी न तो देख पाता है और न ही जान पाता है, और अपने मन में कहता है: "यह व्यक्ति इस प्रकार का है" और साथ ही अपने ज्ञान की दृष्टि से सही और गलत को उनके स्वरूप के अनुसार नहीं समझ पाता; अत: मैं भी, पहले

अंतर्दृष्टि (दस्सना) से रहित होने के कारण, उस भगवान को नहीं देख पाता था जो अपने हाथ की हथेली पर लगे हेरोबलन फल के समान ज्ञानी (नेय्या) को देखते हैं और प्रकृति के अनुसार पूर्णा (पूरण) आदि को भी नहीं देखते; परन्तु अब, बुद्ध की शक्ति से संपन्न होने के कारण, मैं दोनों को प्रकृति के अनुसार देख पाता हूँ; इस प्रकार, उन्होंने जो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, उसमें अपनी स्पष्ट उचित प्राप्ति (पतिपत्ति) को प्रकट किया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वप्पा का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(62):वज्जि-पुट्टा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (62) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
62. वज्जी-पुत्त [1]
उनका जन्म बुद्ध युग में वैशाली में एक पार्षद के परिवार में हुआ था, [2] और उनका नाम वज्जी-पुत्र रखा गया था। उन्होंने परमेश्वर (बुद्ध) की महिमा को तब देखा जब वे वैशाली आए, विश्वास किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और दीक्षा के बाद वैशाली के पास एक जंगल में रहने लगे। वैशाली में एक उत्सव चल रहा था, जिसमें नाच-गाना और पाठ हो रहा था, सभी लोग खुशी-खुशी उत्सव का आनंद ले रहे थे। उस शोर ने भिक्षु का ध्यान भंग कर दिया, जिससे उन्होंने अपना एकांत त्याग दिया, अभ्यास छोड़ दिया, और इस श्लोक में अपनी घृणा व्यक्त की:

हम सब जंगल में अकेले रहते हैं,
जैसे लकड़हारे के हाथों ठुकराए हुए लट्ठे।
दिन एक के बाद एक ऐसे ही बीतते जाते हैं,
हमसे ज्यादा बदनसीब कौन है?

अब एक वनदेवदूत ने उसकी बात सुनी और भिक्षु पर दया करके उसे फटकारा, 'हे भिक्षु, भले ही तुम वन जीवन की निंदा करते हो, एकांत चाहने वाले ज्ञानी लोग इसे बहुत महत्व देते हैं,' और उसे इसके लाभ बताने के लिए यह श्लोक कहा:

[62] एकाका [10] मयाṃ अरण्ये विहारा॥
अपविद्धां वा वनस्मिं दारुकां॥
तस्स मे बाहुका पिहयन्ति॥
तेरयिका विया सग्गामिनन्ति॥ ॥

[62] हममें से प्रत्येक जंगल में अकेले रहते हैं,
जैसे लकड़हारे के शिल्प द्वारा ठुकराए गए लट्ठे।
और कई लोगों ने मेरी किस्मत से ईर्ष्या की,
जैसे नरक में जाने वाला भी स्वर्ग की ओर बढ़ता है।

तब भिक्षु, जैसे किसी तेज घोड़े को चाबुक से धक्का लगता है, वैसे ही ज्ञान के मार्ग पर चल पड़ा और शीघ्र ही परिश्रम से अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। तब उसने सोचा, 'परी का श्लोक ही तो मेरा प्रेरणास्रोत था!' और उसने स्वयं उसका पाठ किया।

[1] वज्जिअनों का पुत्र, या बस, वज्जिअन। देखें CXIX.

[2] वज्जियन एक गणतंत्र थे।

1.7-2 [62] श्लोक पर टिप्पणी

वज्जिपुत्त थेरा
एककामयं अरञ्ञे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वज्जिपुत्त का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और आज से 91 युग (कप्पा) पहले, भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञान प्राप्त करने पर, उन्होंने एक दिन भगवान विपस्सी को देखा, श्रद्धा से भर गए और उन्हें केसर जैसे पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया। इस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब एक मंत्री के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम वज्जिपुत्त था। भगवान बुद्ध के वैशाली आगमन पर उनकी शक्ति देखकर, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन किया, मानसिक साधना (कम्मट्ठान) में लग गए और वैशाली से कुछ ही दूरी पर स्थित एक घने जंगल में निवास करने लगे। उस समय वैशाली में एक उत्सव चल रहा था। चारों ओर नृत्य, गायन और संगीत की धूम थी। प्रसन्न और आनंदित होकर, असंख्य लोग उत्सव के आनंद का भरपूर लुत्फ़ उठा रहे थे; यह सुनकर, उस भिक्षु ने अविवेकी रूप से स्वयं को उत्सव से बाहर निकाला, अपने एकांतवास से विमुख हो गए, अपनी मानसिक साधना (कम्मट्ठान) को त्याग दिया और अपनी नाराजगी व्यक्त करने के लिए एक श्लोक कहा:

हम जंगल में अकेले रहते हैं,

अस्वीकृत लकड़ी के लट्ठे जैसा दिखता है।

रात में केवल एक ही रात का जिक्र किया जा सकता है

(आदिसिका) जो, अर्थात्, इससे भी बदतर है

हम?"

उस श्लोक को सुनकर, घने जंगल में निवास करने वाले देवता ने उस भिक्षु के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए, इस परिस्थिति को दर्शाने के लिए एक श्लोक कहा: — "हे भिक्षु! यदि तुम भी वनवास को तुच्छ समझते हो, तो भी एकांतवास की इच्छा रखने वाले ज्ञानी उस जीवन के बारे में बहुत आश्वस्त होते हैं।"

तुम जंगल में अकेले रहते हो,

अस्वीकृत लकड़ी के लट्ठे जैसा दिखता है।

आपमें से बहुत से लोग रुचि रखते हैं।

नरक-जनता के समान

जो लोग जा रहे हैं, उनसे प्रेम करना

स्वर्ग।

श्लोक का पाठ करने के बाद, देवता ने उन्हें विचलित और भयभीत करते हुए कहा:— "हे भिक्षु! सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध के मार्ग में भिक्षु बनकर, जो तुम्हें संसार से मुक्ति (निय्यानिक) दिलाएगा, तुम ऐसे निरर्थक विचार क्यों रखते हो?" उस देवता द्वारा इस प्रकार विचलित होकर, वह भिक्षु, एक उत्कृष्ट नस्ल के घोड़े के समान, जिसे विशेष रूप से कोड़े मारे गए हों, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित करने के लिए ध्यान के मार्ग पर चल पड़ा, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के विकास में लीन हो गया और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"लोहे के फूलों को इकट्ठा करने के बाद-

लकड़ी के पेड़ अपने परागों के साथ

मैंने इन्हें विशेष रूप से विपस्सी को अर्पित किया।

स्वर्ण रंगत वाला आत्मजागृत

बुद्ध जो सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे-

सौ वर्षों के सूर्य के समान क्रियाएँ

किरणों के समान और पूर्णिमा के चंद्रमा जैसा दिखता है,

सितारों का संप्रभु, घिरा हुआ

उनके शिष्यों द्वारा पृथ्वी के समान

महासागरों से घिरा हुआ।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने भेंट चढ़ाई है

पराग कणों का। मुझे कुछ याद नहीं है।

बुरा अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने का परिणाम

बुद्ध को।

आज से पैंतालीस युग पहले, मैं था

एक महान शक्ति संपन्न विश्व-राजा

सात रत्नों से युक्त, रेणु नाम से प्रसिद्ध।

खत्तिया वर्ग के शाही योद्धा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने स्वयं के कथन के साथ-साथ उस देवत्व के कथन को भी समाहित किया और मन ही मन कहा: "यह श्लोक मेरे अरहंत पद की प्राप्ति के लिए प्रेरक शक्ति बन गया है," और श्लोक का पाठ किया:

62. हम जंगल में अकेले निवास करते हैं,

जंगल में पड़े लट्ठे की तरह ठुकरा दिया गया।

मुझे लेकर कई लोग स्नेही हैं, समान

नरक में जाने वाले लोग शौकीन होते हैं

जो स्वर्ग की ओर अग्रसर हैं।

उस श्लोक का अर्थ है:— जंगल में उपेक्षित टूटे हुए लट्ठे के समान, जिसकी कोई आवश्यकता नहीं है, मयं एकका का अर्थ है: बिल्कुल अकेला, बिना किसी साथी के, अरञ्ञे विहारम (हम इस जंगल में रहते हैं); इस प्रकार रहते हुए भी, तस्स मे बहुका पिहयन्ति (मुझसे बहुत प्रेम करते हैं): अच्छे कुल के अनेक पुत्र, जो मेरे कल्याण की कामना करते हैं, विशेष रूप से यह कामना करते हैं:— "यदि हम भी थेरा वज्जिपुत्त के समान गृहस्थी बंधनों का त्याग करके जंगल में रहते, तो यह वास्तव में अद्भुत होता।" ठीक कैसे? नेरायिका यिया सग्गगामिनं का अर्थ है: जिस प्रकार, अर्थात् नरक में जन्म लेने वाले लोग, अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में जन्म लेने वाले प्राणी, स्वर्ग की ओर जाने वाले और स्वर्ग को प्राप्त करने वाले लोगों से ईर्ष्या करते हुए कहते हैं: "यदि हम भी नरक के कष्टों को त्यागकर स्वर्ग के आनंद का अनुभव करें तो यह कितना अद्भुत होगा।" इस प्रकार की सफलता यही है; यही अर्थ है। यहाँ फिर से अपने भीतर महत्वपूर्ण बहुल अभ्यास (पयोग) की वांछनीयता के कारण उन्होंने कहा: "एकका मयं विहारम (हम एकाकी रूप से निवास करते हैं);" अपने स्वयं के कल्याण की एकता का उल्लेख करते हुए उन्होंने एकवचन (एकवचन) साधन (पयोग) को इस प्रकार बनाया: "तस्स मे (उस मे का)।" दोनों अभिव्यक्तियाँ: 'तस्समे' और 'सग्गगामिनं (स्वर्ग जाने वालों के)' 'पिहयन्ती' (प्रेमी) शब्द की कामना (अपेक्खति) करती हैं और कर्म कारक (संपदान) के गुण (निद्देसा) को कर्म कारक (उपयोग) के अर्थ में देखा जाना चाहिए। 'तं अभिपत्तिन्ति (उन्होंने विशेष रूप से इसकी आकांक्षा की); इसी प्रकार 'वे बन जाते हैं, अर्थात्, वे जो विशेष रूप से वन में निवास आदि गुणों की कामना करते हैं;' ऐसा कहकर यह कहा गया है। 'तस्समे' का अर्थ है: दूसरे शब्दों में, मेरी उपस्थिति में मौजूद गुण; यही इसका अर्थ है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वज्जीपुत्त का

तैयार है।

**********oOo*********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(63):पक्खा (द क्रिप्पल)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (63) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक

63. पक्खा (विकलांग)
बुद्ध युग में शाक्य वंश के देवदहा नगर में एक शाक्य राजा के परिवार में जन्मे, उनका नाम युवा सन्मोदा रखा गया। [1] चूंकि बचपन में उन्हें गठिया हो गया था, [2] और कभी-कभी वे लंगड़े की तरह चलते थे, इसलिए उन्हें पक्खा (= लंगड़ा) कहा जाने लगा और ठीक होने के बाद भी यह नाम उनके साथ बना रहा। जब भगवान बुद्ध उनके परिवार से मिलने आए, [3] तो वे वहां उपस्थित थे , जिससे बुद्धों का विश्वास उन पर कायम हुआ, उन्होंने भिक्षु दीक्षा ली और वन में रहने लगे। एक दिन भिक्षा मांगने के लिए गांव जाते समय वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए। तभी एक चील ने कुछ मांस उठाकर आकाश में उड़ गई। कई चीलों ने उन पर हमला किया और मांस को उनसे छीन लिया। एक अन्य चील ने गिरे हुए मांस को उठा लिया और दूसरी चील ने उसे नोच डाला। और भिक्षु ने सोचा: 'जिस प्रकार मांस होता है, उसी प्रकार सांसारिक इच्छाएँ सभी के लिए समान हैं, दुख और पीड़ा से भरी हुई हैं।' इस पर विचार करते हुए, और यह समझते हुए कि वे क्षणभंगुर हैं, इत्यादि, उन्होंने अपना कार्य पूरा किया, दोपहर के विश्राम के लिए बैठ गए, और गहन अंतर्दृष्टि से अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, अपनी भावनाओं को आधार बनाकर, उन्होंने इस श्लोक में ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की:

[63] कटा पतन्ति पतिता गिद्धा च पुनर्गता॥
कतौं किच्चै रतौ रम्मां सुखेननवगतं सुखन्ति॥ ॥

[63] वे गिरे हुए पर टूट पड़ते हैं, और जब वह पड़ा होता है, तो
लालच में झपट्टा मारते हुए बार-बार आते हैं। ...
लेकिन जो करना उचित था, वही मैंने किया है,
और जो वास्तव में आनंददायक है,
उसी में मेरा आनंद है: इस प्रकार खुशी से
सुख की खोज की गई और उसे प्राप्त किया गया। [4]

[1] कुमार, जिसका सीधा अर्थ है 'युवक', एक युवा कुलीन व्यक्ति की विशिष्ट उपाधि है, जैसे मानव एक युवा ब्राह्मण (पुजारी) की होती है। हमारे पास कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। ग्रीक शब्द कौरोस से तुलना करें ।

[2] वातरोगो, शाब्दिक रूप से, 'वाष्प-रोग।' पर्यायवाची वातबाधो पर, मिलिंदा, i. 191, और नीचे, CLIII देखें ।

[3] देखें बड. जन्म कहानियां, पृ. 121 आगे.

[4] अर्थात्, टीका कहती है: 'फल प्राप्ति के सुख से निर्वाण प्राप्त हुआ है, जो सुख से परे है (या अत्यंत महान सुख है, अच्छन्त-सुखं) , और उस अंतर्दृष्टि के सुख से, जो एक सुखद कार्यप्रणाली बन गई है , फल प्राप्ति का आनंद, निर्वाण का आनंद प्राप्त हुआ है।' डॉ. न्यूमैन ने बताया है कि बाद की व्याख्या - सुख से सुख प्राप्त करना - मज्झिमा निकाय (i. 93 f.) में जैन दृष्टिकोण के विपरीत है: 'नहीं, मित्र गौतम (बुद्ध), सुख सुख से नहीं, बल्कि कष्ट से प्राप्त होता है' - तपस्वी दृष्टिकोण। तुलना करें CLXXI.

1.7-3[63] श्लोक पर टिप्पणी

पक्खा थेरा
कुतापतन्ति से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पक्ष का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी इस और उस जन्म में भक्तिपूर्ण सेवा कर्म करते हुए पुण्य कर्म किए और 91 युग (कप्पा) पहले एक राक्षस सेनापति बने। उन्होंने भगवान विपस्सी के दर्शन किए, श्रद्धावान हुए और उन्हें दिव्य वस्त्र भेंट किए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म देवदहा जिले (निगम) में शाक्य वंश के शाही परिवार में हुआ। उनका नाम "राजकुमार सम्मोदा" था। फिर जब वे युवा थे, तब वात रोग के कारण उनके पैर उनका भार नहीं उठा पाते थे। कुछ समय तक वे अपंग (पीठसप्पी) की तरह भटकते रहे। इसी कारण उनका नाम पक्ष पड़ा। बाद में, जब वे रोगमुक्त हो गए, तब भी लोग उन्हें पहचानते रहे। भगवान बुद्ध के परिजनों की सभा में चमत्कार देखकर, उन्होंने उचित श्रद्धा से दीक्षा ली, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन किया, मानसिक साधना में लीन हो गए और वन में निवास करने लगे। फिर एक दिन, जब वे भिक्षा मांगने के लिए एक गाँव में जा रहे थे, तो रास्ते में वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। उसी समय एक गिद्ध (कुलाला) आकाश में मांस का एक टुकड़ा लेकर जा रहा था; कई गिद्ध उस पर टूट पड़े और उस टुकड़े को नीचे गिरा दिया। एक अन्य गिद्ध ने गिरे हुए मांस के टुकड़े को उठा लिया। एक तीसरे गिद्ध ने उस मांस को काटकर अलग कर दिया और उसे अपने साथ ले गया। इसे देखकर थेरा ने मन ही मन कहा: "जिस प्रकार यह मांस का टुकड़ा है, उसी प्रकार इंद्रिय सुख जैसी वस्तुएँ भी सामान्य संपत्ति (साधारण) हैं, अत्यंत दुखद और अत्यंत कष्टदायी (उपायस) हैं।" इस प्रकार,

उन्होंने इंद्रिय सुखों की हानि और त्याग के लाभ पर विचार किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) के विकास की ओर अग्रसर हुए, भिक्षा-भंडारण के लिए विचरण किया, "अनित्य (अस्थायी)" आदि का चिंतन करते हुए भोजन किया, अपने दिन के विश्राम स्थल (दिवठान) पर बैठ गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"विपस्सिका नामक भगवान,

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, बैल

उस समय पुरुषों में से प्रवेश किया

बंधुमा के साथ अड़सठ

हज़ार।

विशेष रूप से बाहर जाने के बाद

मैं जिस शहर में गया था, वहाँ के मंदिर में गया था।

द्वीप (dīpacetiya): मैंने देखा

स्टेनलेस बुद्ध, उपयुक्त प्राप्तकर्ता

बलि की भेंटों का।

मेरे चौरासी हजार राक्षस

उपस्थिति का आदरपूर्वक ध्यान रखा गया।

मुझे तीस लोगों की भीड़ के समान

इंदा, दिव्य राजा का।

अपने महल से बाहर निकलने के बाद, मैं

फिर उसने दिव्य वस्त्र को ऊपर उठाया,

और वही वस्त्र पेश किया।

महान संत को मेरा नमन।

उसके सामने मैं खुद को नीचे गिरा रहा था

सिर (सिरसा)।

वास्तव में बुद्ध, धर्म और

हमारे स्वामी की संपदा (संपदा)।

बुद्ध की शक्ति के कारण ही ऐसा हुआ था।

भूकंप। यह देखने के बाद

आश्चर्य भी, विचित्र और रोंगटे खड़े कर देने वाला।

मेरा मन श्रद्धापूर्वक प्रसन्न हो गया

ऐसा मनुष्य का संप्रभु (द्विपदिन्द)

बुद्ध के रूप में।

मेरे मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न करके

और स्वामी को वस्त्र भेंट किया, कि

मैं अपने मंत्री और अपने दल के साथ

मैंने (गुरु को) अपना आश्रय भी बनाया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, कि मैंने तब वह काम किया था।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह श्रद्धापूर्वक किए गए प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

पंद्रह युग (कप्पा) पहले, आज से,

सोलह महान शक्ति वाले विश्व-राजा

वहाँ सुवाहन (अच्छे) के नाम से जाने जाते थे

परिवहन), सात रत्नों से सुसज्जित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "कुटा पटन्ति" से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया, ताकि वे अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट कर सकें, उस बात की अच्छी तरह से घोषणा करके जो पश्चाताप (संवेग) का आधार (वत्थु) थी, जिसके अच्छे कार्य को करने के बाद उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व (अञ्ञा) प्राप्त किया।

63. यहाँ, 'चुटा' का अर्थ है नीचे गिरना (भट्ट)। 'पतन्ति' का अर्थ है अनुपतन्ति के बाद गिरना। 'पतिता' का अर्थ है मृत्यु के मार्ग से जमीन पर गिरना; या स्वतः ही आकाश में गिर जाना (संपटन)। 'गिद्धा' का अर्थ है लालची हो जाना (गधं आपन्ना)। 'पुनर्गता' का अर्थ है फिर से पास आना। व्याकरणिक 'च' को हर जगह संयोजित किया जाना चाहिए। यही कहा गया है:— यहाँ, गिद्ध गिरते भी हैं और पीछे भी गिरते हैं; मांस का टुकड़ा दूसरे के मुँह से भी गिर गया है; गिरने के बाद, वह जमीन पर भी गिर गया है; लालची होने के कारण, वे लोभ में गिर गए हैं; यहाँ तक कि सभी गिद्ध फिर से आ गए हैं। जिस प्रकार ये गिद्ध भी गिरते हैं, उसी प्रकार अच्छे कर्मों से विमुख हुए जीव पुनर्जन्मों के चक्र में घूमते रहते हैं; वे नरक में गिर जाते हैं इत्यादि; जो लोग इस प्रकार पतित हो गए हैं, और जो लोग समृद्ध अस्तित्व में रहे हैं, वहाँ इंद्रिय सुखों के आनंद में लीन होकर (अनुयोग करके) और ब्रह्मा के जगतों में, सजीव और निराकार (रूपारूप) दोनों में, अस्तित्व की लालसा के कारण, वे लोभी हो जाते हैं और पुनः उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि वे अस्तित्व से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए थे; आगे के अस्तित्व के लिए सहायक इस और उस कर्म के कारण, वे केवल व्यथित इस और उस अस्तित्व तक ही पहुँच गए हैं; ये जीव इस प्रकार हो गए हैं। कतं किच्चं का अर्थ है: मेरे द्वारा सोलह प्रकार (विध) में जो किया जाना चाहिए (किच्चा), जिसे समझ (परिज्ञा) आदि के रूप में वर्गीकृत (भेद) किया गया है; अब वह एक नहीं रह गया है (या, अब वह नहीं है जो किया जाना चाहिए)। रतंरम्मं का अर्थ है: निर्वाण, जो स्पष्ट रूप से मुक्त (विनिस्सट) है, वह सब कुछ जो अनेक कारणों के संयोजन (संखट) से उत्पन्न होता है, जिसका आनंद संतों को उठाना चाहिए (आरिया), जो आनंददायक (रम्मं) है, जिसके प्रति संत सर्मपित (रतं) हैं और जिसमें संत विशेष रूप से प्रसन्न (अभिरतं) होते हैं। सुखेनवागतं का अर्थ है: इसी कारण निर्वाण शाश्वत सुख है, जिसका अनुसरण (अन्वागत) और प्राप्ति (उपगत) फल प्राप्ति के आनंद (फलसमापत्ति) के माध्यम से होती है; यह फल प्राप्ति का आनंद (फलसुख) होने के साथ-साथ निर्वाण का सुख भी है, जिसका अनुसरण सही मार्ग (मग्ग) के आनंद द्वारा किया जाता है, चाहे वह सुख के कारण हो या सुख का उचित अभ्यास (पटिपदा) बन जाने के कारण।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा पक्ष का

तैयार है।

*********oOo*********

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(64):विमला-कोंडन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (64) ------>>>> अगला
अध्याय I.
एकल श्लोक
64. विमला-कोंडाञ्ञा
उनका पुनर्जन्म इस बुद्ध युग में अंबपाली के पुत्र के रूप में हुआ, उनके पिता राजा बिंबिसार थे। [1] उन्होंने बच्चे का नाम विमला रखा, लेकिन बाद में वे विमला-कोंडञ्ञ के नाम से जाने गए। [2] वे वैशाली में परम पूज्य बुद्ध के दर्शन से प्रभावित होकर संसार छोड़कर भिक्षु संघ में शामिल हो गए और अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। उन्होंने इस श्लोक में अपनी अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[64] दुमवहाय उप्पन्नो जातो पण्डराकेतुना॥
केतुहा केतुनैव महाकेतुऽपधाऽसयिति ॥ ॥

[64] चमकीले ध्वज द्वारा मैं यहाँ जन्म लेने आया,
उसकी (माँ) में जिसे वृक्ष (अंबा/आम) कहा जाता है। और केतु द्वारा [3]

इससे केतु का वध होता है, महान केतु का पराजय होता है। [4]

[1] तुलना करें बहनें, भजन संहिता lxvi., जहाँ कहा जाता है कि उन्होंने अपनी माँ को परिवर्तित किया था।

[2] विमला = निष्कलंक। कोंडन्ना के ब्राह्मण (पुजारी) वंश-नाम को प्राप्त करने का कोई स्पष्ट सुराग नहीं है। तुलना करें सीसीएक्सएलवीआई।

[3] केतु शब्द का अर्थ बुराई हो सकता है, क्योंकि उसकी माँ (अंबापाली/अम्रपाली) राजा बिम्बिसार की रखैल (उपपत्नी/वेश्या) थी। इसलिए श्लोक का अर्थ यह हो सकता है कि वह बुराई से पैदा हुआ था, लेकिन अब ज्ञान प्राप्त करके उसने जन्म की उस बुराई पर विजय प्राप्त कर ली है।

[4] यह श्लोक प्राचीन कवियों को प्रिय संकेत-पहेलियों में से एक है। एक शब्द केतु (झंडा, ध्वज) प्रतीकात्मक है (1) बिम्बिसार के राजत्व का; (2) धम्म का: 'क्योंकि पथ (धम्म) द्रष्टाओं का ध्वज है,' टीका उद्धृत करती है (अंग. ii. 51; iii. 150); (3) अहंकार के दोष का (मान : 'झंडा फहराना... आत्म-प्रचार के लिए हृदय की इच्छा') (धस्., 1116; बुड. साइम्, पृ. 298, n. 3); (4) बुराई की सेनाओं का। अतः केतु के चार गुना पुनरावर्तन को इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है: 'मेरे द्वारा, राजा के पुत्र (1), धम्म (2) की सहायता से, बुराई (4) का नाश करके, अहंकार (3), उसमें निहित सभी आत्म-भ्रमों के साथ, पराजित होता है।' वृक्ष आम (अंबा) है, जिसके नीचे, उनकी कथा के अनुसार, अंबपाली शिशु अवस्था में पाई गई थीं।

1.7-4 [64] श्लोक पर टिप्पणी

विमलकोण्डञ्ञा थेरा
दुमवहयाया उप्पन्नो से शुरू होने वाला श्लोक थेरा विमल कोण्डञ्ञ का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की और इस-उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और आज से 91 युग (कप्पा) पहले, प्रतापी वुपस्सी के समय में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने भगवान विपस्सी को एक विशाल सभा से घिरे हुए सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए देखा और श्रद्धापूर्वक उन्होंने उन्हें चार स्वर्ण पुष्प अर्पित किए। उनकी श्रद्धा को और बढ़ाने के लिए, प्रतापी ने अपनी मानसिक शक्ति का ऐसा प्रयोग किया कि स्वर्ण पुष्प उस पूरे क्षेत्र में फैल गए। इसे देखकर वे और भी अधिक धर्मपरायण हो गए, उन्होंने प्रतापी बुद्ध को प्रणाम किया, उस चिन्ह (निमित्तं) को धारण किया, अपने घर लौट आए, किसी रोग के कारण उनकी मृत्यु हो गई, लेकिन बुद्ध के प्रति उनका उत्साह (आरम्मण) बना रहा और वे तुषित देवताओं के बीच प्रकट हुए। समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजा बिम्बिसार की आश्रित (पटिच्च) अंबपाली के गर्भ में गर्भ धारण किए। वास्तव में, जब वे युवा थे, तब राजा बिम्बिसार ने अंबपाली की सुंदरता (रूपसम्पत्ती) के बारे में सुनकर, उनके प्रति उनकी लालसा प्रबल हो गई, और वे कुछ पुरुषों के साथ वेसाली के पास वेसाली गए और एक रात के लिए उनके साथ सहवास किया। उसी अवसर पर उन्होंने अंबपाली के गर्भ में गर्भ धारण किया। उसने राजा को अपनी गर्भावस्था की स्थिति भी बताई। राजा ने भी अपनी पहचान प्रकट की, उसे जो कुछ देना था वह दिया और विदा हो गया। गर्भावस्था के पूर्ण रूप से परिपक्व होने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम "विमला (पवित्र)" रखा गया। बाद में वह विमला कोण्डाञ्च के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वयस्क होने पर उसने बुद्ध की अलौकिक शक्ति देखी जब वे वैसाई गए थे, वे धर्मपरायण हो गए, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में स्वयं को लगा दिया और कुछ ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“विपस्सी नाम के भगवान,

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, बैल

पुरुषों के बीच, भीड़ के बीच बैठे हुए

पुरुषों ने अमरता का मार्ग सिखाया

(अमाता)।

उनके धर्म को सुनकर, जिसने

वह ऐसा था मानो मनुष्यों का सम्राट हो।

(द्विपदिन्दा), मैंने विशेष भेंट चढ़ाई

बुद्ध को अर्पित किए गए चार सोने के फूल।

यह एक विस्तृत स्वर्ण चंदवा बन गया

उस समय सभा के रूप में। बुद्ध की किरणें

और सोना चमकने लगा और प्रचुर मात्रा में हो गया

प्रतिभा।

उत्साह से भरा और नेक दिल वाला,

मैं रोमांचित (वेदजाता) हो गया और

मैंने श्रद्धापूर्वक अपने हाथ जोड़ लिए!

उनकी समृद्ध खुशी की कल्पना

(वित्ती); वे प्रत्यक्ष आनंद धारण करते हैं।

चीजों का क्रम (diṭṭhadhammasukhāvaho).

स्वयं से विदा लेने के बाद-

मैंने जागृत बुद्ध को नमन अर्पित किया।

उसे अच्छे अभ्यास (वात) का।

यदि मेरी खुशी जागृत हो जाती, तो मैं अपने स्वयं के पास पहुँच जाता।

हवेली।

जब मैं अपने महल के अंदर प्रवेश कर चुका था,

मैंने खुद को सबसे पूर्व के बारे में जागरूक किया-

उत्कृष्ट बुद्ध। उस पवित्रता के कारण-

मानसिकता, मुझे (उपपज्जी) तुसिता मिल गया

स्वर्ग।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने अपना विशेष बनाया है

फूल चढ़ाना। मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

बुद्ध।

उस समय तक सोलह संप्रभु शासक थे।

नेमी का सुप्रसिद्ध नाम, जो थे

महान शक्ति वाले विश्व-राजा, चालीस

आज से तीन युग (कप्पा) पहले।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "दुमव्ययाय" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अरहंत पद के संकेत (पदेसा) के साथ अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया।

64. वहाँ दुमवयाया का अर्थ है जिसे आम का वृक्ष कहा जाना चाहिए; अंबपाली में; इस प्रकार इसका अर्थ है। यह स्थानवाचक शब्द है, जिसका अर्थ है आधार। उप्पन्नो का अर्थ है उत्पन्न होना और उसके गर्भ में उत्पन्न होना। जातो पाण्डरकेतुना का अर्थ है (वह) बिम्बिसार के कारण उत्पन्न हुआ, जिसे स्पष्ट रूप से "पाण्डरके तु (सफेद ध्वज)" के रूप में जाना जाता है, क्योंकि चमकदार सफेद (धवल) वस्त्र का ध्वज था; वह उस पर (राजा पर) आश्रित होकर उत्पन्न हुआ; इस प्रकार इसका अर्थ है। उप्पन्नो का अर्थ है प्रथम जन्म का प्रदर्शन (अभिमिब्बत्ति)। इसके बाद, वास्तव में, जातो का अर्थ है जन्म का प्रदर्शन। वास्तव में संसार में, जन्म देने (विजयना) के समय से ही जन्म (जात) की प्रथा (वोहर) शुरू होती है। यहाँ फिर से इस अभिव्यक्ति द्वारा: "दुमवयाया उप्पन्नो (तथाकथित वृक्ष से उत्पन्न होकर)," आत्म-प्रशंसा की अवस्था को दूर करता है (अपनेति); वह अनेक स्वामियों के पुत्रों के विशिष्ट जन्म (सब्भव) की अपनी उपलब्धि पर प्रकाश डालता है (दीपेति)। "जातो पाण्डरकेतुना (श्वेत ध्वज के कारण जन्म)" जैसी अभिव्यक्ति द्वारा वह यह दर्शाकर दूसरों की निंदा (परवम्भना) को दूर करता है कि उसके पिता सुप्रसिद्ध (विञ्ञात) हैं। केतुहा का अर्थ है अभिमान का त्याग। वास्तव में, अभिमान अपने अहंकार के कारण ध्वज के समान है; इस प्रकार, केतु (झंडे के समान) अभिमान। इसी प्रकार, वास्तव में, उस अभिमान को "केतुकम्यतापच्चुपट्ठानो (झंडे के लिए प्रयास करने की घटना)" कहा जाता है। केतुनायेव का अर्थ है ज्ञान (पञ्ञा) के माध्यम से भी। वास्तव में, ज्ञान (पञ्ञा) को पवित्र कुलीनों (आर्य) का ध्वज कहा जाता है, क्योंकि इसकी उच्च स्थिति (अच्चग्गतत्थ) है, क्योंकि इसने मारा की सेना को पराजित किया था और इसकी पूर्ववर्ती स्थिति है। इसी कारण बुद्ध ने कहा: "वास्तव में, सत्य (धम्म) संन्यासियों (इसि) का ध्वज है। महाकेतुं पदांशयि का अर्थ इस प्रकार है: — वे विशाल हैं क्योंकि वे क्षेत्र में अत्यंत विस्तृत हैं; उनमें कई प्रकार के अभिमान भी हैं, जैसे श्रेष्ठता का अभिमान, जन्मजात अभिमान आदि; और अन्य दुराचार (किलेसा) के कर्म (धम्म): क्योंकि वे ऊंचे (समुस्सितत्थ) स्थान पर हैं, इसलिए वे ध्वज का निर्माण करते हैं; इसका ध्वज; तुस महाकेतु (बड़ा ध्वज): दुष्ट मारा को उन्होंने परास्त किया और उसकी सेना को नष्ट करके और उसके क्षेत्र को पार करके उसे विनम्र बनाया। "महाकेतुं पदांशयी (उन्होंने बड़ा ध्वज नष्ट कर दिया)," इस प्रकार, उन्होंने अपनी अञ्ञा (प्राप्ति) के संकेत द्वारा अपने अरहंतत्व को प्रकट किया, स्वयं को इस प्रकार इंगित किया मानो वह कोई और हो।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा विमला कोंडान्या की

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(65):उक्खेपकाटा-वाचा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (65) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
65. उक्खेपकटा-वच्च
उनका जन्म बुद्ध युग में सावत्थी में हुआ था, वे वच्छ परिवार के एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र थे। उन्होंने भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुना, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और कोसल के एक गाँव में रहने चले गए। समय-समय पर वहाँ आने वाले भिक्षुओं के माध्यम से उन्होंने धर्मशास्त्र में महारत हासिल की, यद्यपि वे विनय, सुत्तंत और अभिधम्म में अंतर नहीं कर पाते थे। फिर भी, उन्होंने सारिपुत्त से प्रश्न पूछकर यह ज्ञान प्राप्त किया, जिससे जहाँ अन्य भिक्षु विनय या धर्मशास्त्र के किसी अन्य भाग में पारंगत थे, वहीं उन्होंने पिटकों को सभा के पाठ से पहले ही कंठस्थ कर लिया था। [1] और इस दक्षता को प्राप्त करने के शीघ्र ही उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे एक शिक्षक बन गए, और एक दिन, किसी अन्य व्यक्ति के रूप में स्वयं को संबोधित करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[65] उक्खेपकाṭवच्चस्सा संकलिताṃ बहुहिव ससेही॥
तां भासति गहत्थानां सुनिसिंनो उदरापामोज्जोऽति ॥॥ ॥

[65] वह धन जो वाच्चा के परिश्रम से उत्पन्न हुआ [2] इन वर्षों में निरंतर वृद्धि से,
उसने आम लोगों को घोषित किया,
सम्मान में बैठे हुए, शानदार आनंद से परिपूर्ण।

[1] विनय ग्रंथ, iii. 373 आगे देखें । धम्मपाल (अन्य टीकाकारों के अनुसार) का यह एक निश्चित मत है कि उनके धर्म के सिद्धांत और अनुशासन अनंत काल से तीन पिटकों के रूप में विद्यमान थे, जिन्हें प्रत्येक बुद्ध के समय पुनर्जीवित किया गया था। परिषदों को केवल उस रूप में शामिल किए जाने वाले विषय-वस्तु पर निर्णय लेना होता था और उसके शब्दों का पाठ करना होता था। तुलना करें महावंस, गीगर का अनुवाद; पीटीएस, 1912, अध्याय iii.-v.

[2] उन्हें जिस उपनाम से पुकारा जाता है, उसका अर्थ है "उगाने वाला वच्छ", "ढेर बनाने वाला वच्छ", जो मौखिक रूप से सीखे गए उनके उत्कृष्ट ज्ञान पर ज़ोर देता है। वच्छ परिवार ने कई थेराओं का योगदान दिया; इसलिए, निस्संदेह, भेद करने की आवश्यकता है। तुलना करें: 9, XIII, LXXI, CXII, CXIII।

1.7-5 [65] श्लोक पर टिप्पणी

Ukkhepakatavacchattera
उक्खेपकतावच्छस से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उक्खेपकतावच्छ का है। इसका उद्गम क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए और आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले, प्रतापी सुद्धत्थ के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने उस स्तंभ का दान किया जो निगम के पास उपलब्ध नहीं था, जब वह गुरु को समर्पित एक मंडप का निर्माण कर रहा था, और एक सहयोगी के रूप में कर्तव्य निभाया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका दिव्य लोक में पुनर्जन्म हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे

सावत्थी में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम वच्छा उनके कुल से आया था। उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का श्रवण किया, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और कोसल राज्य के एक गाँव के मठ में निवास करते हुए, उन्होंने भिक्षुओं की उपस्थिति में धम्म का अध्ययन करके उसमें महारत हासिल की। हालाँकि, वे "यह विनय है; यह सुत्तंत है; यह अविधान्म है" जैसे विभाजन (परिच्छेद) को नहीं समझते थे। तब एक दिन उन्होंने आदरणीय धम्म के सेनापति से पूछा और विभाजनों के अनुसार उचित रूप से चिह्नित किया। धम्मसंगीति से पहले भी, पिटक आदि जैसे पदनाम शास्त्रों (परियत्ति) की उत्कृष्ट सामग्री में अलग से निर्धारित थे, क्योंकि अनुशासन की पुस्तक के स्मरणकर्ता (विनयधर) जैसा एक शब्द था। बुद्ध की तीन पिटक शिक्षाओं का अध्ययन और विवेचना करते हुए, उन्होंने वहां वर्णित भौतिक और मानसिक घटनाओं (रूपारूपधम्म) को भली-भांति समझा, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने और उस पर ध्यान करने के मार्ग पर चले, और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"कॉर्पोरेशन में भारी भीड़ थी।"

भगवान सिद्धार्थ के लिए।

बुद्ध की शरण में भी गए थे और

वे तथागत में विश्वास रखते थे।

वे सब एक साथ आए और उन्होंने मिलकर

परामर्श के बाद, एक मंडप का निर्माण किया गया।

मास्टर। उन्हें खंभा नहीं मिल रहा है।

विशाल क्षेत्र में इसकी तलाश की (vicinanti)

जंगल।

मैं उनसे जंगल में मिला, और

फिर वह उपयुक्त रूप से भीड़ (गण) के पास पहुंचा।

भीड़ ने मेरी मुट्ठी ऊपर उठाते हुए पूछा।

हाथ।

उन गुणी भक्तों ने अपना

मेरे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है:— “हम हैं

एक मंडप बनाने की इच्छा रखते हुए, लेकिन

स्तंभ उपलब्ध नहीं है।

(उनके जवाब के जवाब में, मैंने)

उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा:—) मुझे (वह) दे दो

उस एक स्तंभ की खरीद; मैं

मैं इसे स्वामी को अर्पित करूँगा। मैं करूँगा।

वह स्तंभ लाओ; तुम सब सफल हो जाओ

बेपरवाह (appossukka).

प्रसन्न और प्रसन्न (tuṭṭhamānasā)

उन्होंने मेरे (मेरे) पर (पवेच्चिंसु) प्रदान किया

स्तंभ को प्रस्तुत करने का अवसर।

वहाँ से उचित रूप से पीछे हटकर वापस चला गया

उनके (संबंधित) घर।

भीड़ के चले जाने के तुरंत बाद

फिर मैंने निगम से स्तंभ प्राप्त किया।

मैंने खुशी-खुशी और प्रसन्न हृदय से झंडा फहराया (ussāpesi)

पहले इसे।

उस धार्मिक भावना के कारण, मैं

(दिव्य) महल में पुनर्जन्म (उपपज्जिं)।

मेरा महल बहुत ऊंचा था जो ऊपर की ओर जाता था

सात मंजिलों तक।

जब ढोल बज रहे थे तब मेरे पास

मैं हमेशा घिरा रहता था और मेरी सेवा की जाती थी।

पचपन युग (कप्पा) पहले, मैं था

यशोधरा नामक एक राजा।

वहाँ भी मेरे महल का कुआँ ऊँचा हो गया।

सात मंजिलों तक, देखने में मनभावन

मन, एक ही स्तंभ पर टिका हुआ-

उत्कृष्ट शिखरयुक्त ऊपरी भाग से परिपूर्ण-

storey (kūṭāgāra).

इक्कीस युग (कप्पा) पहले मैं था

एक योद्धा-राजकुमार (खत्तिया) जिसका नाम है

उडेना। वहाँ भी मेरा महल था।

सात मंजिला तक ऊँचा।

मैं जिस भी रूप में पुनर्जन्म लेता, चाहे

चाहे दैवीय हो या मानवीय, मैंने हर प्रकार के आनंद का अनुभव किया;

यह (अर्पण करने का) फलदायी परिणाम है।

एक स्तंभ।

यह 94 युग (कप्पा) से था

अब, मैंने तब स्तंभ की पेशकश की।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह भेंट चढ़ाने का फलदायी परिणाम है।

एक स्तंभ।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, अपने कर्तव्यों को पूरा करने की स्थिति में वे सक्रिय हो गए और अपने समक्ष आने वाले भिक्षुओं और गृहस्थों के प्रति करुणावश उन्होंने बुद्ध की तीन पिटक शिक्षाओं का अध्ययन करते हुए सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उपदेश देते समय, एक दिन उन्होंने स्वयं को एक अन्य व्यक्ति के रूप में प्रकट करने के लिए एक श्लोक कहा:

65. कई वर्षों से, ऐसा ही होता रहा था

स्मृति में समाहित (संकलित)

एक बछड़े द्वारा (वच्चा) जिसे फेंकने के लिए बनाया गया हो

ऊपर (उक्खेपा)। अच्छी तरह से बैठा हुआ और ऊपर-

आनंदित (uḷārapāmojjo) वह सिखाता है (bhāsati)

इसे आम लोगों (गहट्ठा) को दें।

वहाँ, उक्खेपकतवच्छ का अर्थ इस प्रकार है: बछड़े को ऊपर उछालने (कतौक्खेप) के द्वारा; उसी विनय, सूत्र और अभिधम्म को उनके विभाजनों के अनुसार ऊपर उछालने (खिपित्वा) के द्वारा, भिक्षुओं की उपस्थिति में अलग-अलग अध्ययन किए गए अनुशासन के क्षेत्र (विनय), सूत्र क्षेत्र और अभिधम्म क्षेत्र को ऊपर उछालने (खिपित्वा) के द्वारा, बछड़े द्वारा इधर-उधर पाठ करने (सज्जायन) के द्वारा, जो स्थिर हो गया था: यही अर्थ है। वास्तव में, यह शब्द संबंध कारक में अर्थ के लिए सहायक है। संकलितं बहुहिवस्सेहि का अर्थ है: कई वर्षों से हृदय में संयोजन (संपिण्डन) के द्वारा संचित। इसका एक अर्थ "संखलिता" भी है, जिसका अर्थ है: एक श्रृंखला की तरह बना हुआ; एक होकर बंधे होने के कारण सुस्पष्ट वाणी में परिवर्तित होना। बुद्ध द्वारा जो कुछ भी सिखाया जाता है (यं बुद्ध वचनं), वह यहाँ छूटा हुआ और कहा जाना बाकी है। तं का अर्थ है शास्त्र का सत्य (धम्म); भासति का अर्थ है वह बोलता है, वह सिखाता है। गहत्थानं का अर्थ है: उन्हें सामान्य रूप से कहकर। सुनिसिनो का अर्थ है; उस सत्य (धम्म) में सही ढंग से स्थिर होकर; वह स्वयं को पूर्णतः मुक्ति के क्षेत्र (विमुत्तायतन) के शीर्ष (सीस) पर स्थापित करके, लाभ और आतिथ्य (सक्कारा) की अपेक्षा किए बिना (अपच्चासीसंतो) सिखाता है; यही अर्थ है। इसी कारण उन्होंने कहा: “उलारापामोज्जो”, जिसका अर्थ है: फल प्राप्ति (फलसमापत्ति) के उचित आनंद से उत्पन्न अपार प्रसन्नता, साथ ही सत्य (धम्म) के उपदेश से भी। वास्तव में, यही कहा गया है:—

“हे मित्र भिक्षु! चाहे जिस भी तरीके से

एक व्यक्ति दूसरों को व्यापक रूप से सिखाता है।

जिस सत्य (धम्म) के अनुसार है

सुना और याद किया गया (परियत्ता),

इस प्रकार, वह भी लाभ प्राप्त करता है।

उस क्षेत्र में कल्याण का ज्ञान

धम्म के माध्यम से, वह सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है।

(धम्म), उसे आनंद प्राप्त होता है।

सत्य (धम्म) द्वारा; इस प्रकार, इत्यादि।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा उक्खेपकटावच्चा का

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(66):मेघिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (66) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
66. मेघिया
इस बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम मेघिया रखा गया। [1] बड़े होकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और किमिकाला नदी के किनारे स्थित कालिका में निवास करते हुए भगवान (बुद्ध) की सेवा की। एक सुंदर आम के जंगल को देखकर उन्होंने वहाँ रहने की इच्छा व्यक्त की। भगवान (बुद्ध) ने दो बार मना किया, लेकिन उनके तीसरे अनुरोध पर उन्हें जाने दिया। लेकिन वहाँ वे मक्खियों की तरह बुरे विचारों से घिरे रहे और उनका ध्यान एकाग्र नहीं हो सका, इसलिए वे लौट आए और भगवान (बुद्ध) को बताया। भगवान ने कहा, 'जब मेघिया, हृदय निर्वाण के लिए परिपक्व नहीं होता है, तो पाँच चीजें निर्वाण में सहायक होती हैं,' और उन्हें संबोधित किया। [ed1] इस पर मेघिया ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया और इस श्लोक में अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[66] अनुसासि महावीरो सब्बधम्मनापरागु॥
तस्सहं धम्मं सुत्वान् विहासिऽ संतिके सातो॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[66] महान साहसी भगवान (बुद्ध) ने मुझे अनुशासित किया, जो

उन्होंने सभी धम्मों को पार कर लिया है।
और मैंने, मार्ग (धम्म) को सुनकर,
प्रेमपूर्वक शिष्यत्व और श्रद्धा से उनका निकट अनुसरण किया। [2] मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है।

[1] अर्थ 'बादलदार', 'बादल जैसा', भारत में अधिक आर्द्र जलवायु की तुलना में अधिक शुभ शगुन वाला नाम। उदाना, चतुर्थ, i में अधिक विस्तार से बताया गया है।

[2] अधिक शाब्दिक रूप से, 'उसके पास रहते हुए, उससे प्यार करते हुए, या उसके प्रति समर्पित होते हुए।' लेकिन मुहावरे, किसी शिक्षक के 'निकट' रहकर दुनिया छोड़ देना, शिष्यत्व के संबंध को दर्शाता है।

[ed1] एएन 9.3 1. धम्म मित्र; 2. नैतिक आचरण में निपुणता; 3. कम चाहत, संतोष, एकांत, प्रयास, नैतिक आचरण, शांति, ज्ञान, मुक्ति, विद्या और स्वतंत्रता पर चर्चा; 4. पूरे मन से एकाग्रचित्त होकर जागृति की प्राप्ति के लिए लीन रहना; 5. घटनाओं की उत्पत्ति और क्षय तथा अष्टांग मार्ग के ज्ञान में मर्मस्पर्शी होना।

1.7-6[66] श्लोक पर टिप्पणी

मेघियाथेरा
अनुसासी महावीर से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मेघिया का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए और इस-उस जन्म में अच्छे कर्मों के बीज बोते हुए, वे आज से 91 युग (कप्पा) पहले भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लेकर बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुके थे। उस समय भी, भगवान विपस्सी ने बुद्ध जीवन के चरम (किच्च) पर पहुंचकर अपने जीवन तत्व (आयुसंखारं ओसज्जी) का उत्सर्जन किया। इसी कारण जब भूकंप आदि जैसी घटनाएँ घटीं, तो जनसमूह भय से कांप उठा। तब महान राजा वेसवन्न ने उस जनसमूह को यह बात स्पष्ट रूप से समझाई और उन्हें सांत्वना दी। उस (दुखद समाचार) को सुनकर अनेक लोग शोकग्रस्त हो गए। वहाँ, इस युवक (कुलपुत्तो) ने बुद्ध की शक्ति (अनुभव) के बारे में सुना, उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव जागा और उन्हें अपार उत्साह और प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और कपिलवस्तु में शाक्य वंश में उनका पुनर्जन्म हुआ, जब बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम मेघिया था। वयस्क होने पर वे गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए और जब भगवान जालिका में निवास कर रहे थे, तब उनकी सेवा की;

किमिकाला नदी के किनारे एक रमणीय आमों का बाग देखकर वे वहाँ रहने के लिए विवश हो गए; परन्तु भगवान ने उन्हें दो बार ऐसा करने से मना किया। तीसरी बार, मुक्ति (विस्साज्जितो) प्राप्त करने के बाद वे वहाँ गए, परन्तु मन की गलत धारणाओं (वितक्का) से ग्रस्त होने के कारण उन्हें एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं हुई; वे गुरु के समक्ष गए और उन्हें इस विषय में सूचित किया। तब भगवान ने उन्हें उपदेश दिया, जो इस प्रकार शुरू हुआ: "हे मेघीय! पाँच प्रकार की बातें (धम्म) उस व्यक्ति को पूर्ण रूप से प्राप्त होती हैं (परिपाक) जिसका मन पूर्णतः मुक्त नहीं हुआ है।" उन्होंने इस उपदेश का पालन किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

जब विश्व विपस्सी के प्रमुख

उसने अपने जीवन के घटक (आयु-) का उत्सर्जन किया।

वहाँ (संखारा) धरती कांप उठी,

समुद्र (जला) की कमरबंद (मेखला)।

जब बुद्ध ने अपना जीवनकाल समाप्त किया

जीवन (आयुषङ्खाये), वहाँ मेरा मन कांप उठा-

यह भी नीचे की ओर फैला और खिंचा हुआ था।

विभिन्न रंगों के मुकुट से सुसज्जित।

मेरी चिंता (तासो) अत्यधिक बढ़ गई जब

मेरा महल बुरी तरह हिल गया था। किसलिए?

इसका उद्देश्य क्या था?

प्रचुर मात्रा में प्रकाश हो। वेसवण आए।

यहां आकर भीड़ को शांत किया।

पुरुषों के लिए: कोई खतरा मौजूद नहीं है

जीवित प्राणी; आपको भी एक जीवित प्राणी होना चाहिए।

सटीक और आत्म-नियंत्रित।

मैं कहता हूँ! बिल्कुल! बुद्ध भी

धम्म! समृद्धि अद्भुत है!

हमारे स्वामी की (संपदा)। जब वह

अचानक हलचल मच जाती है, धरती स्वतः कांपने लगती है।

बुद्ध की शक्ति का ज्ञान कराते हुए,

मैंने युगों तक स्वर्ग में आनंद लिया।

(कप्पा)। शेष युगों में (कप्पा)

मेरे द्वारा एक अच्छा कर्म (कारिता) किया गया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मुझे यह धारणा प्राप्त हुई है

तब, मुझे किसी बुराई के अस्तित्व की याद नहीं आती।

तनाव; यह इसका फलदायी परिणाम है

बुद्ध के प्रति मेरी धारणा (साञ्ञा)।

चौदह युग पहले, आज से, मैं था

एक संप्रभु, शक्ति का स्वामी,

समिता नाम से जानी जाने वाली, एक विश्व-

अत्यंत शक्तिशाली राजा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी अज्ञा (प्राप्ति) को प्रकट करते हुए एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने कहा: "गुरु की उपस्थिति में शिक्षा प्राप्त करने के बाद मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।"

66. महान भगवान, कुशल (पारागू)

मुझे सभी धर्मों का उपदेश दिया गया।

उनकी सत्य की शिक्षा सुनकर

(धम्म), मैं उनके निकट सचेत रूप से रहता था।

महाविज्ञान (विज्जा) के तीन रूप

तदनुसार, मुझे वह प्राप्त हो गया था;

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

वहाँ, अनुसासी का अर्थ इस प्रकार है:— उन्होंने सलाह और निर्देश दिए, जिनकी शुरुआत इस प्रकार हुई: "हे मेघीय! पाँच बातें पूर्णतः सिद्ध हो जाती हैं, उस व्यक्ति को जिसकी मुक्ति पूर्णतः परिपक्व नहीं होती।" महावीर का अर्थ है अत्यंत वीर (महाविक्कन्तो); परिश्रम की पूर्णता की पूर्ण प्राप्ति के लिए महान परिश्रम, और चार प्रकार के परिश्रम (पधान) की समृद्धि (संपत्ति) के लिए, जो दूसरों के समान नहीं है, ऐसे परिश्रम पर आत्म-संकल्प के माध्यम से, जो चार भागों (अंग) से युक्त है; यही अर्थ है। सब्बधम्मनपारागू का अर्थ है ज्ञान (ज्ञान) के माध्यम से दूसरे तट, सभी ज्ञात सत्यों (नीय्यधम्म) के चरम छोर तक पहुँच चुके हैं; इस प्रकार, सब्बधम्मनपारागू (सभी सत्यों (धम्म) में निपुण); सर्वज्ञ; यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में: उसने स्वयं निर्मित (सयम्भु) ज्ञान (ज्ञान) के माध्यम से निर्वाण प्राप्त कर लिया है, जो कारणों के संयोजन से उत्पन्न समस्त धर्म का अंतिम किनारा बन गया था; इस प्रकार, सब्बधम्मनपारागू (सभी धम्मों में निपुण)। तस्साहं धम्मं सुत्वन का अर्थ है: स्वयं बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों की शिक्षाओं को सुनकर, मैं बुद्ध के निकट ही रहा। विहासिं सन्तिके का अर्थ है आम के बाग में गलत चिंतन (वितक्का) से व्याकुल होकर, मैं कालिका मठ गया और बुद्ध के निकट ही रहा। सतो का अर्थ है सचेतनता से युक्त होना; शांत भाव (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में परिश्रमी होना; यही अर्थ है। अहं का अर्थ है: यह, "अनुसासि (निर्देशित)" के अनुसार; इस प्रकार, यहाँ "मं (मैं)" है; इस प्रकार "विज्जा अनुपत्ता, कतं बुद्धान शासनं (अतिज्ञान (विज्जा) प्राप्त हुआ था) तदनुसार प्राप्त किया गया; बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था; इस प्रकार, यहाँ "मया (मेरे द्वारा)" है, इसलिए इसे अपनाना चाहिए (परिणामेटब्बं)। "कतां बुद्धस्स शासनं" का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: — इसके द्वारा, उन्होंने गुरु की सलाह का उचित पालन करते हुए, परियाय के अनुरूप, तीन प्रकार के महाविज्ञान (विज्जा) की उपयुक्त प्राप्ति को प्रकट किया। वास्तव में, नैतिक उपदेशों आदि का सर्वांगीण पालन भी गुरु के उपदेशों का पालन करना ही है।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा मेघिया की

तैयार है।

******** oOo ********
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(67): एकधम्म सवनिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (67) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
67. एकधम्म सवनीया
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सेताव्या में हुआ, [1] एक पार्षद के परिवार में। जब भगवान (बुद्ध) सेताव्या आए और सिंगसपा वन में ठहरे, तो वे उन्हें सुनने के लिए [68] प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनके भावों का चिंतन किया और उन्हें इस श्लोक में धर्म का मार्ग सिखाया:

वास्तव में सभी सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं [2]

और उन्होंने अपने पिछले संकल्प (धर्म के पुनरुद्धार के समय संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण करने के) से प्रेरित होकर सत्य को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा, संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण किया, और दु:ख तथा आत्महीनता की अवधारणाओं का अध्ययन करके अंतर्दृष्टि प्राप्त की तथा अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और क्योंकि केवल एक बार धर्म का पाठ करने मात्र से ही उनका भाग्य पूर्ण हो गया, इसलिए उन्हें एक बार धर्म का पाठ सुनने वाला (एकधम्मसवणीय) नाम प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी सर्वोच्च उपलब्धि की घोषणा इस श्लोक में की है:

[67] किलेसा झपिता मयहाऽ भव सब्बे समुहता॥
विक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भावो' ति.॥ ॥

[67] मुझमें वह सब जलकर राख हो गया जिसने अपवित्र किया,
और जीवन की निरंतरता को जड़ से उखाड़ फेंका;
पुनर्जन्म के चक्र को पूरी तरह से नष्ट कर दिया:
अब फिर से जन्म लेने का कोई रास्ता नहीं है। [3]

[1] कोशल में। सी एफ संवाद, ii. 349; सुत्त निपैता, श्लोक 1012; अंग., ii. 37.

[2] संवाद देखें , ii. 175: 'वे सभी क्षणभंगुर हैं,' आदि।

[3] पाली भाषा में यह वाक्यांश और 'जीवन की निरंतरता' दोनों ही भाव हैं, पहले बहुवचन, फिर एकवचन, जिसमें पुना उपसर्ग लगा है, 'पुनः'; शाब्दिक रूप से, 'जन्म लेना' और 'पुनः जन्म लेना'। बहुवचन रूप से पुनर्जन्म के तीन प्रमुख तरीके समझे जाते हैं - काम , रूप और अरूप भाव - साथ ही कर्म भाव, या क्रिया या चरित्र की वह निरंतरता जो भविष्य के भाव को निर्धारित करती है, और उपपत्ति भाव, या परिणामी पुनर्जन्म (जैसा कि टीका में कहा गया है)। इस सिद्धांत की व्याख्या दर्शन के संकलन में, विशेष रूप से पृष्ठ 262-264 पर की गई है।

1.7-7[67] श्लोक पर टिप्पणी

एकधम्मसवानीयत्थेरा
किलेसा झपिता मयं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा एकधम्मसवनीया का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि वे परम पूज्य पद्ममुत्तरा के समय में वृक्ष देवता के रूप में पुनर्जन्म लिए और कुछ भिक्षुओं को विशाल वन में भटकते हुए और रास्ता भटकते हुए देखकर, अपने निवास से नीचे आए, उन पर दया करके, उन्हें सांत्वना दी, भोजन कराया और उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें उनके स्थान तक पहुँचाया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और उस समय बनारस के राजा किकी बने जब भगवान कस्सपा ने संसार में अवतार लिया, अपने बुद्ध के कर्तव्यों को पूरा किया और पूर्णतः निर्वाण प्राप्त किया। उस राजा की मृत्यु के बाद, उनके पुत्र पुथुविन्द राजा बने। उनके पुत्र का नाम सुसामा था, जिनके पुत्र किकी ब्रह्मदत्त के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने अपनी संप्रभुता का प्रयोग करते हुए, जब से शासन (सासेन) समाप्त हो गया था, सत्य (धम्म) सुनने का अवसर न प्राप्त किया, तो उन्होंने यह घोषणा करवाई: — "जो सत्य (धम्म) का उपदेश दे, उसे मैं एक हजार का पुरस्कार देता हूँ।" सत्य (धम्म) का एक भी शिक्षक न मिलने पर, उन्होंने मन ही मन कहा: — "मेरे पिता, दादा आदि के समय में सत्य (धम्म) का व्यापक प्रसार था; सत्य (धम्म) के शिक्षक आसानी से उपलब्ध थे; परन्तु अब तो चार चरणों (चतुप्पदिका) के एक श्लोक का उपदेश भी प्राप्त करना कठिन है।" जब तक सत्य (धम्म) की अनुभूति (संज्ञा) नष्ट नहीं होती, तब तक मैं भिक्षु बनूँगा," और अपना प्रभुत्व त्यागकर वे हिमवंत की ओर चल पड़े, तभी दिव्य राजा सक्का आए, उन्होंने "अनित्: वत संखारा (सभी सजीव और निर्जीव वस्तुएँ, जो कारणों से बद्ध हैं, वास्तव में अनित्य हैं)" श्लोक के माध्यम से सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और वापस चले गए। वे लौटे, अनेक पुण्य कर्म किए, दिव्य और मानव प्राणियों के बीच अपने जन्म-जन्म चक्र में विचरण किया, और सेताब्य नगर में एक धनाढ्य परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। वयस्क होने पर, जब भगवान बुद्ध सेताब्य नगर के सिम्सपा वन में निवास कर रहे थे, वे गुरु के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। गुरु ने उनकी रुचि (अज्जासय) को देखकर उन्हें सत्य का उपदेश दिया। "अनिच्चा वत संखारा (सभी सजीव और अन्य कारण से बद्ध वस्तुएँ स्थिर नहीं हैं)" से शुरू होने वाले इस श्लोक के माध्यम से (धम्म) की व्याख्या की गई है। वहाँ भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए, उन्हें अनित्यता का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ और बुद्ध की सेवा करते हुए, उन्होंने उचित पश्चाताप प्राप्त किया, भिक्षु बन गए, सत्य (धम्म) को ग्रहण करने में स्वयं को समर्पित कर दिया, दुःख (दुक्खा) और अनात्म (अनात्म) दोनों के प्रति सचेत हो गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में संलग्न हो गए और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"बुद्ध पदुमुत्तारा के शिष्य,

जो वन में भटकते हुए भटक गए थे

विशाल जंगल में थे और

तदनुसार सुना (अनुसुइयारे)

अंधे के समान। पुनः प्राप्त करने के बाद-

स्वयंजागृत बुद्ध का संग्रह किया।

नेता पदुमत्तरा, वे पुत्र

ऋषि जंगल में भटक गए थे।

मेरे महल से नीचे उतरने के बाद

मैं भिक्षुओं के समक्ष गया;

मैंने उन्हें न केवल यह बताया कि कैसे

लेकिन क्या मैंने उन्हें भोजन भी उपलब्ध कराया था?

उस कृत्य के कारण, हे सम्राट!

पुरुष! दुनिया के सबसे बुजुर्ग! बैल

पुरुषों के बीच! मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।

मेरे जन्म के सातवें वर्ष में।

पांच सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब, बारह विश्व-राजाओं को इस प्रकार जाना जाता है:

सच्चु नाम से संपन्न थे

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

एक भी धम्म श्लोक सुनने मात्र से ही उनका व्यवसाय (किच्चा) सिद्ध हो गया, जिसके कारण उनका नाम एकधम्मसवनीया पड़ गया। अरहंत बनकर उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया जिससे उनकी अज्ञा (प्राप्ति) प्रकट हुई।

67. मेरी दुष्टता जलकर भस्म हो गई थी;

सभी अस्तित्वों का नाश हो चुका था।

बार-बार पुनर्जन्म के चक्रों ने

स्पष्ट रूप से समाप्त हो गया है; ऐसा है

अब किसी भी नए अस्तित्व का कोई अस्तित्व नहीं है।"

वहाँ, 'किलेसा' का अर्थ है: जिस भी निरंतरता (सन्ताना) में वे उत्पन्न हुए हैं, उसी निरंतरता को वे या तो भ्रष्ट (किलेसेन्ती), हानि (विबाधेन्ती) या पीड़ा (उपतापेन्ती) पहुँचाते हैं, इस प्रकार, विकृति (किलेसा); रोग आदि। 'झापिता' का अर्थ है: दिव्य राजा (इन्द) की अग्नि के समान, वृक्ष, झाड़ियाँ, पौधे आदि अपनी जड़ों सहित पवित्र मार्ग (मग्ग) के ज्ञान की अग्नि से जल गए: 'मयः' का अर्थ है मेरे द्वारा (मया), दूसरे शब्दों में: मेरी निरंतरता (सन्ताना) की प्रणाली में। 'भव सब्बे समूहा' का अर्थ इस प्रकार है: — इंद्रियजन्य और कर्मजन्य अस्तित्वों से प्रारंभ होकर सभी अस्तित्व विकृत (किलेसा) के जल जाने के कारण समाप्त (समुग्घाति) हो गए। वास्तव में, यदि किसी प्रकार के दुराचार (किलेसा) के कारण पुनर्जन्मों (वट्ट) का चक्र चलता है, तो वह कर्म (कम्म) के पुनर्जन्मों (वट्ट) के चक्र के कारण ही होता है। कर्म (कम्म) से उत्पन्न अस्तित्वों के निष्फल होने के कारण, यहाँ तक कि उपपत्ति (उपपत्ति) से उत्पन्न होने वाले सहज अस्तित्व भी लुप्त हो जाते हैं। vikkhīṇo jātisaṃsāro का अर्थ इस प्रकार है:—

"संवेदी का क्रमिक क्रम

जीवन के समुच्चय (खंड), के

तत्व (धातु) और इंद्रियों के निवास स्थान

(आयतन), अस्तित्व में होना (वत्तामन)

निरंतर (अब्बोच्चिन्नम) कहा जाता है

पुनर्जन्मों का बार-बार होने वाला चक्र (संसार);

जन्म (जाति) से शुरू होने वाला और उक्त विशेषता (लक्खण) वाला बार-बार जन्म लेने का चक्र (संसार) स्पष्ट रूप से नष्ट (खीण) हो चुका है; अतः अब कोई नया अस्तित्व नहीं है। क्योंकि भविष्य में कोई नया अस्तित्व नहीं है, इसलिए बार-बार जन्म लेने का चक्र (जारिससंसारो) स्पष्ट रूप से नष्ट (विक्खीण) हो चुका है। अतः अब कोई नया अस्तित्व नहीं है, क्योंकि यह चक्र पूरा होने के बाद कहा जाना चाहिए, और क्योंकि सभी अस्तित्व समाप्त हो चुके हैं (समुहता)। दूसरे शब्दों में, बार-बार जन्म लेने का चक्र (जातिसंसार) स्पष्ट रूप से नष्ट हो चुका है; इसके बाद, अब कोई नया अस्तित्व नहीं है; इस प्रकार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा एकधम्मसवनीवा

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(68):एकुदानिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (68) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
68. एकुदानिया [1]

बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक धनी सलाहकार के पुत्र के रूप में हुआ। विवेक की आयु में आकर, वे जेतवन के प्रस्तुतीकरण के समय बुद्ध की महिमा से प्रभावित हुए और संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। दीक्षा पूरी करके और वन में रहते हुए, वे भगवान (बुद्ध) के पास सीखने आए। उस समय भगवान (बुद्ध) ने सारिपुत्त को अपने पास ध्यान में लीन देखकर (69) यह कहा:

जो उच्चतम स्तर के विचार आदि पर निवास करता था। [2]

और भिक्षु ने उसे सुनकर, एक बार फिर दूर जाकर और लंबे समय तक जंगल में रहकर भी, उस कथन (गथा) को बार-बार दोहराया, जिससे उन्हें 'एकुदानिया', यानी 'एक ही कथन (गथा) दोहराने वाला' कहा जाने लगा।

एक दिन उन्हें मन की एकता और एकाग्रता प्राप्त हुई, और इस प्रकार, अंतर्दृष्टि का विस्तार करते हुए, उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और निर्वाण के आनंद में रहते हुए, उन्हें एक बार धम्म के कोषाध्यक्ष [3] द्वारा व्याख्या में परीक्षा लेने के लिए आमंत्रित किया गया, और उन्होंने कहा: 'मित्र, मुझे सिद्धांत समझाओ।' और उस श्लोक पर लंबे समय तक मनन करने के बाद, उन्होंने उसे फिर से कहा:

[68] अधिचेतसो अप्पमज्जतो मुनिनो मोनपथेसु सिक्खतो॥
सोका न भवन्ति ताडिनो उपसंतस्सा सदा सतीमतोऽ ति.॥ ॥

[68] जो उच्चतम स्तर के विचार में निवास करता है,
अटूट उत्साह के साथ, ऋषि, अरहंत (प्रबुद्ध),
ज्ञान की शाखाओं में प्रशिक्षित : - जैसा वह है,
कोई भी दुख उसे विचलित नहीं कर सकता, जो मन से
शांत, निर्मल और स्पष्ट रहता है।

यह उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गई ।

[1] इसलिए टीका; पाठ एकुद्दानिया में।

[2] उडाना में वर्णित , iv. 7. धम्मपद, श्लोक 259, है; टिप्पणीकार द्वारा, जिसका श्रेय बुद्ध को दिया जाता है, जो 'एकुद्दन' के एक श्लोक के सार्थक प्रयोग की सराहना कर रहे थे।

[3] आनाउदा को दी गई उपाधि। भजन संहिता CCLX देखें।

[4] टीका मुनि (ऋषि) और अरह की परस्पर समतुल्यता पर बल देती है। यह सैंतीस 'ज्ञान के पंख' (संकलन, पृष्ठ 179 देखें) और तीन शिक्षाओं, अर्थात् नैतिकता, ध्यान या मानसिक नियंत्रण, और अंतर्दृष्टि या सिद्धांत (अंग. i. 235) का भी उल्लेख करती है। विनय-पिटक के सुत्त-विभंग में यह कथन (गाथा) पंथक लघु के मुख से कहा गया है, जिन्हें वर्तमान ग्रंथ में भजन CCXXX6 समर्पित है। सावत्थी महाविद्यालय की साध्वियों को पंथक के शिक्षण के समय कोई प्रभावी पाठ की अपेक्षा न करते हुए दर्शाया गया है, क्योंकि वे हमेशा एक ही श्लोक दोहराते थे - अर्थात्, वह श्लोक जो यहाँ एकुदानीय को समर्पित है। थेरा को उनकी बातों का पता चलता है, और वह तुरंत अपनी जादुई शक्ति और बुद्ध-शब्द के अपने व्यापक ज्ञान का प्रदर्शन करता है। इसके फलस्वरूप, वह ननों की प्रशंसा प्राप्त करता है।

1.7-8 [68] श्लोक पर टिप्पणी

एकुदानियत्थेरा
'अधिचेतसो अप्पमज्जतो' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा एकुदानीय का है। इसका उद्गम क्या है? इस शिष्य ने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और राक्षस सेना के सेनापति के रूप में पुनर्जन्म लिया। जब गुरु जी पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर गए, तो वे शोक और विलाप में लीन हो गए और कहने लगे, "सचमुच मेरा बहुत बड़ा नुकसान हुआ है; ऐसा लाभ पाना कितना कठिन है! मुझे गुरु जी के जीवनकाल में दान आदि जैसे पुण्य कर्म करने का अवसर नहीं मिला।" तब गुरु जी के शिष्य सागर ने उनकी चिंता दूर की और उन्हें गुरु जी के स्तूप में श्रद्धापूर्वक अर्पण करने के लिए प्रेरित

किया। उन्होंने पाँच वर्षों तक स्तूप में श्रद्धापूर्वक अर्पण किया, वहाँ से उनका देहांत हो गया और उस पुण्य कर्म के कारण वे जन्म-जन्म के चक्रों में भटकते रहे, अंत में भगवान बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में उनका पुनर्जन्म हुआ। कस्सपा ने जब ज्ञान की आयु प्राप्त की, तो वे बार-बार गुरु के समक्ष उपस्थित हुए (कालेना कालं)। उस समय भी गुरु ने अपने शिष्यों को "अधिचेतसो (या उच्च-विचार)" से शुरू होने वाले श्लोक के माध्यम से उपदेश दिया। उस शिक्षा को सुनकर वे पूर्ण श्रद्धा से भर गए और भिक्षु बन गए। भिक्षु बनने के बाद उन्होंने उसी श्लोक का बार-बार पाठ किया। बीस हजार वर्षों तक भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करते हुए भी वे अपने ज्ञान के पूर्ण परिपक्व न होने के कारण कोई विशिष्ट पद प्राप्त नहीं कर सके। वहाँ से देह त्यागने के बाद उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और आगे चलकर, बार-बार पुनर्जन्मों के चक्रों में भटकते हुए, उत्तम देह धारण करते हुए, वे श्रावस्ती में एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने जेतवन (मठ) ग्रहण करते समय बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित श्रद्धा से भर गए, भिक्षु बन गए और अपने प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन करते हुए वन में निवास किया और गुरु के समक्ष उपस्थित हुए। उस विशेष अवसर पर, गुरु ने आनंदमयी वाणी इस प्रकार कही: “उच्च मनोभाव वाले अधिचित्तो ने अपने निकट ही पूज्य सारिपुत्त को ‘उच्च विचार’ (अधिचित्त) में लीन देखकर यह बात सुनी। जंगल में रहते हुए भी, जहाँ वे लंबे समय से मन की साधना कर रहे थे, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बार-बार उसी श्लोक का पाठ किया; इसी कारण उनका नाम एकुदानीय पड़ा। फिर एक दिन उन्होंने एकाग्रचित्तता प्राप्त की, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का विकास किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“सुगत अत्थदस्सी के निधन (निब्बुत) के तुरंत बाद, मेरा पुनर्जन्म एक राक्षस (यक्ष) के गर्भ में हुआ; तब मुझे प्रसिद्धि भी प्राप्त हुई। वास्तव में यह मेरा दुर्भाग्य (दुल्लद्धं) था, चमकना (दुप्पभातं) और सक्रिय रहना (दुरुत्तितं) कठिन था; जब भी मेरी समृद्धि आई, चक्खुमा (आँखों का स्वामी) पूर्णतः परिनिब्बायी हो गया।”

मेरी मानसिक स्थिति (संकप्पा) जानकर सागर नामक शिष्य, मुझे ऊपर उठाने (उद्धरितुं) की इच्छा से मेरे पास आया। हे ज्ञानी! तुम दुखी (सोचति) क्यों हो? भयभीत (भायि) मत हो। धार्मिक (धम्मं) आचरण करो (चरा)। बुद्ध ने सभी के लिए सफलता (बीजसंपदा) का बीज (अनुपदिन्न) सौंपा है।

जो कोई भी स्वयंजागृत बुद्ध, जीवित (तिट्ठन्तं) मनुष्यों के नेता (लोक) के प्रति (अपने कर्तव्य) का पालन करना चाहे, उसे मृतक (निब्बुत) के अवशेष (धातु) को भी श्रद्धापूर्वक अर्पित करना चाहिए, भले ही वह सरसों के दाने (सासप) के आकार का ही क्यों न हो।

समान रूप से (समम्) पुण्य मन की भक्ति (चित्तपसाद) के अनुपात में बढ़ता है; इसलिए, एक ठोस मंदिर (थूप) बनाकर आपको विजेता के अवशेषों को श्रद्धापूर्वक भेंट (पूजेहि) अर्पित करनी चाहिए।

सागर का वचन (वाको) सुनकर मैंने बुद्ध का एक ठोस मंदिर (बुद्धथूप) बनवाया। पाँच वर्षों तक मैंने ऋषि के उस उत्कृष्ट ठोस मंदिर की देखभाल की। हे द्विपदिन्द, जगत के सबसे वरिष्ठ और मनुष्यों में श्रेष्ठ!

उस कर्म के फलस्वरूप मैंने समृद्धि प्राप्त की और अरहंत पद प्राप्त किया। सात सौ युगों (कप्पा) पूर्व, भूरिपञ्ञा (प्रचुर ज्ञान) नामक सात रत्नों से परिपूर्ण, महान शक्ति वाले चार विश्व-राजों ने मुझे अपने क्षुद्रता का नाश किया। बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे मुक्ति के आनंद में लीन थे, तभी एक दिन, जब उनसे (अज्जित्तो) यह अनुरोध किया गया: “मित्र! मुझे सत्य (धम्म) के आदरणीय कोषाध्यक्ष द्वारा सुनाओ, ताकि उनकी तत्परता (पटीभाण) की परीक्षा ली जा सके,” तो उन्होंने यही श्लोक सुनाया, क्योंकि वे लंबे समय से इससे परिचित (परिचित) थे:—

68. उच्च विचारों वाले, असावधान, ज्ञान के मार्ग में सुशासित (मोन) ऋषि को कभी भी शीतलता से शांत (उपसन्त) और निरंतर सजग (भवन्ती) रहने वाले व्यक्ति का दुख (शोक) नहीं होता।

68,1. वहाँ, अधिचेतसो का अर्थ है: उच्च मन (अधिचित्त) धारण करने वाला; समस्त मनोन्दों से श्रेष्ठ और अरहंतत्व की प्राप्ति के मनोन्द से संपन्न; यही अर्थ है। अप्पमज्जतो का अर्थ है जो असावधान नहीं है; परिश्रम और निष्पाप कर्मों (धम्म) के निरंतर निर्वाह से संपन्न; यही कथन है। मुनिनो का अर्थ इस प्रकार है:— “यो मुनति उभोलोके, मुनि तेन पावुच्चति जो दोनों लोकों का मापन (मुनाति) करता है, इसी कारण वह ऋषि कहलाता है;” इस प्रकार दोनों लोकों के मापन द्वारा; वैकल्पिक रूप से, मोना को ज्ञान (ज्ञान) कहा जाता है; क्योंकि वह अरहंतत्व की सिद्धि के समान ज्ञान (पञ्ञा) से संपन्न है; दूसरे शब्दों में, दोष रहित (खीणासव) को ऋषि (मुनि) कहा जाता है; उस ऋषि (मुनिनो) का। मोना पथेसु सिक्खतो का अर्थ इस प्रकार है: अरहंतत्व के ज्ञान (ज्ञान) के समान ज्ञान (मोन) के मार्ग में

प्रशिक्षित, और ज्ञानोदय (बोधि) के विभाजन के सैंतीस घटनाओं (धम्म) में, या प्रशिक्षण के तीन पाठ्यक्रमों (सिक्खा) में प्रशिक्षित। यह भी कहा गया है कि उसने प्रारंभिक (पुब्बा) भाग (भाग) की प्रगति (पटिपदा) का मार्ग अपनाया है। वास्तव में, जिसका अनुशासनात्मक प्रशिक्षण (सिक्खा) सर्वांगीण रूप से पूर्ण हो चुका है, वह अरहंत है; अत: इस प्रकार से प्रशिक्षित होने से, उस ऋषि (मुनि) का अर्थ, जिसने इस अनुशासनात्मक प्रशिक्षण द्वारा ऋषि की अवस्था प्राप्त की थी; इस प्रकार, यहाँ अर्थ को इस प्रकार देखा जाना चाहिए। चूँकि यह भी इसी प्रकार है, अतः उच्च विचारों वाले ऋषि (मुनि) का, जो निम्न सही मार्गों और फलों (हेट्ठिममग्ग-फलचित्त) के मन से, जो चार आर्य सत्यों के उत्तम ज्ञान की उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) में परिश्रमपूर्वक, सर्वोत्कृष्ट सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान से संपन्न होकर, लापरवाही न करने वाले हैं; अत: इस प्रकार, इन शब्दों का अर्थ पूर्णत: (युज्जति) होता है। दूसरे शब्दों में, मन की एकाग्रता (पधानहेतु) के कारणों को (अक्खात) इस प्रकार दिखाया गया है: "अप्पमज्जतो सिक्खतो, लापरवाही न करने के प्रशिक्षण से;" इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए। अत: उच्च मन (अधिचेतसो) का अर्थ है लापरवाही न करने के कारण और प्रशिक्षण (सिक्खाना) के कारण।

68.2. सोका न भवन्ति तादिनो का अर्थ है: ऐसे दोष रहित ऋषि के भीतर (अभन्तरे) कोई चिंता नहीं होती जो सुखद चीजों से अलगाव (वियोग) आदि के कारण उत्पन्न हृदय-जलन (संतपा) का कारण बनती हो। दूसरे शब्दों में, ऐसे (तादि) गुणों (लक्खण) को प्राप्त कर चुके (असेक्खा) ऋषि को चिंता नहीं होती। उपसन्तस का अर्थ है: कामवासना (राग) आदि को निरंतर शांत करके शांत रहने वाले व्यक्ति का। सदा सतिमतो का अर्थ है: हर समय सचेतन रहने वाले व्यक्ति का; जागरूकता की प्रचुरता की प्राप्ति के लिए।

68.3. यहाँ फिर से, "अधिचित्तसो, उदात्त मन का;" इस प्रकार, इसके द्वारा उदात्त मन (अधिचित्त) का प्रशिक्षित अनुशासन (सिक्खा); "अप्पमज्जतो, (लापरवाह न होने का);" इस प्रकार, इसके द्वारा उदात्त नैतिक उपदेशों का प्रशिक्षित अनुशासन है: "मुनिनो नोमापथेसु सिक्खतो, उदात्त नैतिक उपदेशों का; "मुनिनो मोनपथेसु सिक्खतो, ज्ञान के मार्ग में प्रशिक्षित ऋषि का;" इस प्रकार, इनके द्वारा उदात्त ज्ञान (पञ्ञा) का प्रशिक्षित अनुशासन है। दूसरे शब्दों में, "मुनिनो (ऋषि का);" इस प्रकार, इसके द्वारा उदात्त ज्ञान (अधिपञ्ञा) का प्रशिक्षित अनुशासन है; "मोनपथेसु सिक्खतो (ज्ञान के मार्ग में प्रशिक्षित होने का);" इस प्रकार, प्रगति का उचित मार्ग (पटिपदा) निर्धारित होता है, जो उस दिव्य (लोकउत्तर) अनुशासित प्रशिक्षण का प्रारंभिक भाग (पुब्बभाग) है। "शोक न भवन्ति (चिंताएँ) उत्पन्न नहीं होतीं;" इस प्रकार आरंभ किए गए इस कथन से अनुशासित प्रशिक्षण को पूरा करने के लाभ प्रकट होते हैं; इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) की व्याख्या करता है।

थेरा एकुदानिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(69):चन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (69) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
69. चन्ना
जब हमारे परम पूज्य बुद्ध जीवित थे, तब राजा सुद्धोदन के घर में उनका पुनर्जन्म हुआ। यह व्यक्ति चन्ना नामक एक दास था। भावी बुद्ध के समकालीन, उन्होंने भगवान (बुद्ध) में आस्था प्राप्त की जब वे अपने परिवार से मिलने लौटे। इसके बाद उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। उनके प्रति स्नेह के कारण, 'हमारे बुद्ध, हमारा सिद्धांत' के प्रति अहंकारी अभिमान उत्पन्न हुआ, और वे इस लगाव को दूर नहीं कर सके, न ही एक नौसिखिया के रूप में अपने कर्तव्य का पालन कर सके। जब भगवान (बुद्ध) का देहांत हो गया, और चन्ना पर उच्चतर दंड लगाने का उनका आदेश पूरा किया गया, [1] तो चन्ना को पीड़ा हुई, उन्होंने अपने लगाव को त्याग दिया, और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, अपने निर्वाण (मुक्ति) में आनंदित होकर, उन्होंने इस कथन (गाथा) में अपनी प्रसन्नता व्यक्त की:

[69] सुत्वना धम्मौ महतो महरासः॥
सब्बननुतान्ननवरेण देसिताṃ॥
मग्गाṃ पपज्जीअ अमतस्सा पत्तिया॥

सो योगक्खेमास्सा पथस्सा कोविदो' ति.॥ ॥

[69] मैंने उस महान व्यक्ति द्वारा सिखाए गए सत्य को सुना,
और उसके महान गुणों को महसूस किया,
जो उस परम ज्ञान से सर्वव्यापी रूप से ज्ञात थे। [2] मैंने अमृतमय वस्तुओं को प्राप्त करने का मार्ग
पाया। हे पूर्व-भगवान (बुद्ध) ने सत्यतः मुझे
आनंदमय सुरक्षा के मार्ग पर मार्गदर्शन किया।

[1] संवाद, ii. 171; विनय ग्रंथ, iii. 381-384.

[2] शाब्दिक रूप से, 'सर्वोच्च ज्ञान द्वारा जिसने सब कुछ समझ लिया है।'

1.7-9 [69] श्लोक पर टिप्पणी

चन्नाथेरा
सुत्वान धम्मं महातो महरसं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा चन्ना का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और भगवान सिद्धार्थ के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने भगवान सिद्धार्थ को एक वृक्ष की जड़ के पास जाते देखा। वे श्रद्धा से भर गए और एक कोमल पत्ती को फैलाकर उन्हें अर्पित किया। उन्होंने चारों ओर फूल भी बिखेर दिए और उन्हें भी श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहे, परन्तु उत्तम अवस्थाओं (सुगति) में, भगवान बुद्ध के समय में महान राजा सुद्धोदन के राजमहल में एक दासी के गर्भ से उनका पुनर्जन्म हुआ। उनकी जघन्य शंख थी; उनका जन्म बोधिसत्व के साथ ही हुआ (सहजता)। गुरु के सगे-संबंधियों के समागम में उचित श्रद्धा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने भिक्षु का पद ग्रहण किया और भगवान बुद्ध के प्रति अपने प्रेम के कारण उन्होंने "हमारे बुद्ध, हमारे बुद्ध" कहकर अहंकार का भाव उत्पन्न किया और भिक्षु के कर्तव्य का पालन नहीं किया। जब गुरु बुद्ध पूर्णतः निर्वाण (परिनिभूत) हो गए, तो गुरु द्वारा विधिवत रूप से जारी किए गए आणत्त के अनुसार 'सर्वोच्च दंड' (ब्रह्मदण्ड) से भयभीत होकर वे पश्चाताप से ग्रस्त हो गए, उन्होंने अपना प्रेम त्याग दिया और जैसे ही उनमें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित होने लगी, उन्होंने अर्हंतत्व प्राप्त कर लिया, लेकिन कुछ ही समय में। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैंने भगवान सुद्धत्थ को पत्तों का आवरण अर्पित किया; चारों ओर फूल बिखेरते हुए (उपहारंच) मैंने कुसुम भी बिखेरे। मैं अत्यंत उत्तम दिव्य महल में आनंदित हूँ; बहुमूल्य फूल मेरे पलंग पर बरसते हैं। मैं फूलों से सुशोभित इस बहुरंगी पलंग को साझा करता हूँ; सदा मेरे पलंग पर फूलों की वर्षा होती रहती है। आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले मैंने पत्तों का आवरण अर्पित किया था। मुझे किसी भी बुरे जन्म का स्मरण नहीं है; यह आवरण (आवेदन) का फल है। मनुष्य के शासक, तिनसंथारका नामक ये सात विश्वराज आज से पाँच युग (कप्पा) पहले उत्पन्न हुए थे। मेरे पाप जलकर भस्म हो गए थे। ... बुद्ध के उपदेशों का पालन हो चुका था।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति के रूप में एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने मुक्ति के सुख से पूर्णतः संतुष्ट होकर अपने उत्साह की गति को व्यक्त किया।

69. "सर्वज्ञ ज्ञान से परिपूर्ण, महान से अत्यंत आनंदमय सत्य (धम्म) सुनकर, मैंने अमरत्व (अमता) की प्राप्ति के लिए सही मार्ग (मार्ग) पर चलना शुरू किया; वे बंधनों (योगक्खेम) से मुक्ति दिलाने वाले मार्ग में निपुण हैं। वहाँ, कान से सुनकर, ध्यानपूर्वक और कान के द्वार के अनुरूप अनुभव करके। धम्म का अर्थ है चार आर्य सत्यों का उपदेश (धम्म)। महातो का अर्थ है भगवान का। वास्तव में, भगवान को "महा (महान)" कहा जाता है क्योंकि वे नैतिक उपदेशों आदि जैसे महान, सर्वोच्च (उलारा) गुणों से संपन्न हैं, और साथ ही दिव्य जगत के साथ-साथ संसार द्वारा भी विशिष्ट रूप से स्तुति के योग्य हैं। महासमणो का अर्थ इस प्रकार है: उनके लिए जो भी पदनाम (समञ्ञा) उत्पन्न हुआ हो, यह उसी का एक शब्द है। अपादान कारक (निस्सक्का) "महातोधम्मं सुत्वान, महान से शिक्षा (धम्म) सुनकर।" महारसं का अर्थ है: मुक्ति का स्वाद प्रदान करने के कारण उच्च स्वाद। सब्बाञ्नुताञावरेण देसितां का अर्थ इस प्रकार है:— वह सब कुछ जानता है; अतः वह सब्बाञ्नु, सर्वज्ञ है; उस अवस्था को सब्बाञ्नुता (सर्वज्ञ होने की अवस्था) कहते हैं। ज्ञान स्वयं उत्कृष्ट (वर) है; दूसरे शब्दों में: ज्ञान के प्रकारों में उत्कृष्ट (ज्ञानसु): अतः, ज्ञानवरं (उत्कृष्ट ज्ञान): उसे सर्वज्ञ होने का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है; अतः, सब्बाञ्नुताञाण वरो (वह जिसे सर्वज्ञता का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है); भगवान। सर्वज्ञ ज्ञान के रूप में गिने जाने वाले उस सर्वोत्कृष्ट ज्ञान द्वारा या कर्म कारक (करण) बनकर, सत्य (धम्म) को सुनकर और इंगित करके। अतः, यही व्याख्या है। यहाँ जो कुछ भी कहा जाए, उसे इतिवुत्तक

(परमत्थदी-पानी) की टीका में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए। मग्गां का अर्थ है अष्टांगिक मार्ग (अरिया मग्गा)। पापज्जिं का अर्थ है मैंने प्रवेश किया। अमतस्स पट्टिया का अर्थ है: मैंने उस मार्ग पर प्रवेश किया जो निर्वाण प्राप्ति का मार्ग (उपाय) बन गया था; अतः, यही व्याख्या है। सो का अर्थ है: वह भगवान। योगक्खेमस्सपथस्स कोविदो का अर्थ इस प्रकार है: निर्वाण का जो भी मार्ग है जहाँ व्यक्ति चार बंधनों (लालसा, अस्तित्व, भ्रामक विचार और अज्ञान) से ग्रस्त नहीं होता, वहाँ वह कुशल और प्रभावी है। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है: चार आर्य सत्यों की शिक्षा सुनकर, मैंने अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर प्रवेश किया; प्रवेश का मार्ग मेरे द्वारा बनाया गया था; वह भगवान एक व्यक्ति तो हर तरह से बंधनों से मुक्ति (योग) के मार्ग में निपुण था; वह या तो दूसरों की निरंतरता (परसंतान) में या दूसरों के मन में निपुण था; जिसकी व्यवस्था (संविधान) के कारण ही मैं भी सही मार्ग (मार्ग) पर चला। यही श्लोक थेरा द्वारा अपनी अज्ञा (प्राप्ति) की व्याख्या का सार था।

थेरा चन्ना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(70):पुन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (70) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
70. पुन्ण
बुद्ध युग में, सुनापरंत देश में, सुप्पारका बंदरगाह पर, [1] एक कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम पुन्ण रखा गया। परिपक्व होने पर, वे माल के एक बड़े कारवां के साथ सावत्थी गए, जहाँ [71] भगवान (बुद्ध) भी मौजूद थे। वे स्थानीय अनुयायियों के साथ विहार (मठ) में भगवान (बुद्ध) का प्रवचन सुनने गए। वहाँ उन्होंने विश्वास किया और संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया)। कुछ समय तक उन्होंने अपने तर्क-वितर्क कौशल से शिक्षकों और गुरुओं का अनुग्रह प्राप्त किया। फिर एक दिन वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे एक पाठ मांगा, ताकि वे दो-दो प्रस्ताव सुनकर, उसके बाद सुनापरंत में रहने चले जाएं। उन्हें भगवान (बुद्ध) ने एक 'सिंह गर्जना' के समान उपदेश दिया, अर्थात्: 'अब, पुन्ण, आँख से ज्ञात वस्तुएँ हैं, इत्यादि।' [2] इसलिए पुन्ण प्रस्थान कर गया, और एकाग्रता और अंतर्दृष्टि का अध्ययन करके उच्च ज्ञान के तीन रूपों को प्राप्त किया।

जब उन्होंने अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, तो उन्होंने कई लोगों को धर्म की ओर आकर्षित किया, जिनमें 500 गृहस्थ भिक्षु और उतनी ही गृहस्थ ननें शामिल थीं।

और जब वे अंतिम मृत्यु के निकट थे, तब उन्होंने इस श्लोक में अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[70] सिलमेव [11] इधा अग्गाṃ पन्नवा पण उत्तमो॥
मनुस्सेसु च देवे सु सिलापन्ननातो जयं' ति.॥ ॥

[70] यहाँ केवल सद्गुण ही सर्वोच्च है; परन्तु ज्ञानी पुरुष ही सर्वोच्च है।
जिसके पास ज्ञान और सद्गुण है,
वही मनुष्यों और देवताओं में विजयी है। [3]

[1] तुलना करें महावंश (गीगर का अनुवाद), 54, एन 8.

[2] यह पुन्ण के उपदेश पर सुत्त में बताया गया है (मज्झ., iii. 267 ff.; सांग., iv. 60; दिव्यावदान, 37-39 भी देखें)। पाठ में 'जोड़ी-वार' यमक है। 'उपदेश' के संदर्भ को देखते हुए, यमकों (अभिधम्म-पिटक) की पूरी पुस्तक में प्रयुक्त विधि की तुलना में, इसका अर्थ है कि पहले मुख्य विचार प्रस्तुत किया जाता है, और फिर उसका विलोम या कोई अन्य तार्किक रूप से विपरीत रूप प्रस्तुत किया जाता है।

[3] यह शीलवा की कविता (CCXLI., श्लोक 619) में एक श्लोक है। इस श्लोक में भाषा और विचारों में अधिक सरलता है, मानो किसी ऐसे व्यक्ति की हो जिसने अपना जीवन कठोर ग्रामीण श्रोताओं को नैतिकता की सरल शिक्षा देने में व्यतीत किया हो, जैसा कि अनुमान लगाया जा सकता है कि वह सुनापरंत में ऐसे लोगों से मिलता था। भगवान (बुद्ध) ने उसे उनके हाथों कठोर व्यवहार की अपेक्षा करने के लिए प्रेरित किया (मज्ज., loc. cit.)। ऊपर की लय लगभग पाली के समान है: Sīlam eva idha aggan, paññavā pana uttamo, etc.

1.7-10 [70] पुन्णत्थेरा के श्लोक पर टीका
शिलामेव से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पुन्ण का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे कर्मों का संचय किया और आज से 91 युग (कप्पा) पहले एक ऐसे संसार में ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया जहाँ कोई बुद्ध नहीं थे (बुद्धसुञ्ञ)। वयस्क होने पर उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की, इंद्रिय सुखों में हानि देखी, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संसार का त्याग कर तपस्वी बन गए, हिमवंत क्षेत्र में पत्तों की कुटिया बनाई और वहाँ निवास करने लगे। जिस स्थान पर वे रह रहे थे, उससे कुछ ही दूरी पर एक पर्वतीय ढलान पर एक मौन बुद्ध रोगग्रस्त हो गए और पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर गए; उनके परिनिर्वाण के समय, एक तीव्र प्रकाश प्रकट हुआ। उसे देखकर वे इधर-उधर छानबीन करने लगे और मन ही मन कहने लगे, “यह प्रकाश वास्तव में कैसे प्रकट हुआ?” तभी उन्होंने पर्वत की ढलान पर परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके आत्म-जागृत मौन बुद्ध को देखा, जिन्होंने सुगंधित लकड़ियाँ एकत्रित कीं, उनके मृत शरीर का दाह संस्कार किया और राख पर सुगंधित जल छिड़का। वहाँ आकाश में एक युवा देवता खड़े होकर बोले: “हे भले मनुष्य! शाबाश, शाबाश; आपने श्रेष्ठ अस्तित्व की प्राप्ति के लिए बहुत पुण्य कर्म किया है और उसी का फल (पसवंता) दिया है; इसी कारण आप श्रेष्ठ जन्मों (सुगति) में ही जन्म लेंगे; आपका नाम भी “पुण्ण” होगा।” उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सुनापरना जिले के सुप्पारक बंदरगाह (पट्टाना) में एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम पुण्ण था। वयस्क होने पर, उन्होंने एक व्यापारी का वेश धारण किया और एक बड़े कारवां (सत्था) के साथ सावत्थी गए। उस समय भी भगवान बुद्ध सावत्थी में ही निवास कर रहे थे। फिर, वे आगे बढ़े। सावत्थी के नागरिकों सहित भक्तों के साथ मठ में जाकर, उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और अपने शिक्षकों और गुरुओं का दिल जीतकर (आराधेन्तो) अपना जीवन व्यतीत किया, उन्हें सौंपे गए कर्तव्यों का उचित रूप से पालन किया। एक दिन वे गुरु के पास आए और बोले: “आदरणीय गुरुजी! मेरे लिए अच्छा होगा; भगवान मुझे संक्षिप्त उपदेश दें, जिसे सुनकर मैं सुनापरंत जिले में निवास करूंगा।” भगवान ने उन्हें ऐसा उपदेश दिया जो इस प्रकार शुरू होता है: “हे पुण्ण! “हाँ, वास्तव में, भौतिक रूप हैं, जिन्हें आँखों से पहचाना जा सकता है,” यह सुनकर वह शेर की दहाड़ की तरह दहाड़ा और उसे छोड़ दिया। उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, सुनापरंत जिले में गया, और सुप्पारका बंदरगाह में रहते हुए,उन्होंने स्वयं को शांति (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में लीन कर लिया और तीन प्रकार के महाविज्ञान (वुज्जा) की कल्पना की। अतः अपदान में कहा गया है:—

शिखर की ढलान के आधार पर,

पहाड़ी के अंदर एक स्व-निवासी रहता था।

अजेय मौन बुद्ध बनाया; कि

बुद्ध एक बीमारी से पीड़ित हो गए।

वहाँ एक चीख सुनाई दी (पनाडा)

मेरे आस-पास के सभी समयों में

आश्रम। जब मौन बुद्ध

निर्वाण को प्राप्त हुआ, वहाँ उत्पन्न हुआ

एक चमकता हुआ प्रकाश (आलोक)।

घने जंगल में हर जगह भालू (अच्छा)

भेड़िये (कोका), लकड़बग्घा (ताराचका), द

बालों वाला (वळा) अयाल वाला शेर (केसरी) सभी

वे हर समय दहाड़ते रहते थे।

खतरे के उस अपशगुन को देखकर

(उप्पाता), मैं पहाड़ पर गया

ढलान, जहाँ मैंने आत्मजागृत व्यक्ति को देखा

मौन बुद्ध, अजेय, जो

निर्वाण प्राप्त कर लिया था।

दिवंगत अजेय व्यक्ति का रूप-रंग कुछ इस प्रकार था:

संप्रभु साल का पेड़ पूरी तरह से भरा हुआ है

फूल, उगते सूरज के समान

(सतरंसी), ज्वाला-मुक्त के समान

अंगारे।

पूरी मात्रा में शुष्क सामग्री एकत्र करने के बाद-

मैंने घास और लकड़ियों से चिता बनाई

वहाँ। अच्छी तरह से अंतिम संस्कार की चिता बनाकर,

मैंने शव का अंतिम संस्कार कर दिया।

शव का अंतिम संस्कार करने के बाद, मैंने उस पर छिड़काव किया।

मीठी सुगंध वाला पानी, कुआँ।

दिव्य प्राणी (यक्ष) वहाँ खड़ा था।

आकाश ने हमेशा इस नाम पर अपना अधिकार जमाए रखा।

स्वयं निर्मित महान व्यक्ति के प्रति जो भी कर्तव्य हो

ऋषि की पूर्ति आपने की थी, आपने।

हे ऋषि! हमेशा पहचाने जाने चाहिए

पुण्णक का नाम।

उस शरीर से विमुख होकर,

मैं दिव्य लोक में गया।

ईश्वर द्वारा निर्मित मीठी सुगंध की वर्षा हुई

आकाश से।

वहाँ भी मेरा नाम पुण्णक था।

चाहे वह दिव्य बन गया हो या मनुष्य,

मेरी इच्छाएं पूरी हो गईं।

यह मेरा आखिरी जन्म है; आखिरी पुनर्जन्म हो चुका है।

ऐसा हुआ। यहाँ भी मेरा नाम पुण्णक है;

नाम स्वयं ही प्रकट हो जाता है।

आत्मजागृत बुद्ध को प्राप्त करने के बाद,

साकियों में श्रेष्ठ माने जाने वाले गौतम

मुझे मुंहासों की कोई समस्या नहीं है क्योंकि मैंने सभी उपचार करवा लिए हैं।

कैंकर के बारे में संपूर्ण ज्ञान।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने वह काम कर दिया है,

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह उस निविदा का फलदायी परिणाम है।

शरीर के प्रति कर्तव्य (तनुकिक्का)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने कई पुरुषों (मनुष्यों) को विशेष रूप से अपने शासन (शासन) में धार्मिक बनाया। फलस्वरूप, पाँच सौ पुरुषों और पाँच सौ महिलाओं ने स्वयं को पुरुष और महिला भक्त के रूप में स्वीकार किया। वहाँ उन्होंने चंदनमाला नामक एक सुगंधित कक्ष (गंधकुटी) बनवाया, जो लाल चंदन की लकड़ी से निर्मित था, और पुष्प दूत (पुप्पदूत) के माध्यम से भगवान को इस प्रकार आमंत्रित किया: "हे गुरु, पाँच सौ भिक्षुओं के साथ इस कक्ष (माला) को स्वीकार करें।" भगवान ने अपनी जादुई शक्तियों से उतने ही भिक्षुओं के साथ वहाँ जाकर चंदन के कक्ष को स्वीकार किया और सूर्योदय से पहले ही लौट आए। इसके बाद, उनके पूर्ण निधन (परिनिब्बान) के समय उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए एक श्लोक का उच्चारण किया।

70. "यहाँ, नैतिक उपदेश भी हैं,

सबसे आगे (अग्गा); का स्वामी

हालांकि, ज्ञान सबसे महत्वपूर्ण है।

उत्कृष्ट। मनुष्यों और

दिव्य प्राणियों की बदौलत ही विजय प्राप्त होती है।

नैतिक उपदेशों और स्पष्ट ज्ञान के लिए

(पञ्ञाण).

वहाँ, शीलम् का अर्थ इस प्रकार है: — नैतिकता में दृढ़ रहने से (शीला) नैतिक उपदेश (शीला) प्राप्त होता है; स्थापना की भावना और एकाग्रता की भावना (समाधान) से; यही अर्थ है। वास्तव में, नैतिक उपदेश (शीला) सभी गुणों (गुण) का आधार (पतिठा) है; इसी कारण बुद्ध ने कहा: — "शीले पतिठाया नरो सपञ्ञो (ज्ञान से सुसज्जित मनुष्य नैतिक उपदेश (शीला) पर आधारित होता है)।" वे समाधाति को भी जोड़ते हैं; वे उसे शरीर और वाणी से मुक्त (अविप्पकिण्ण) बनाते हैं; यही अर्थ है। अग्गम का अर्थ है: यह वही शील (नैतिक उपदेश) सभी गुणों में सर्वोपरि है, क्योंकि यह मूल (मूल) है और सर्वोपरि (पामुख) है।

तदनुसार (बुद्ध) ने कहा: "तस्मातिहा त्वं भिक्खु (भिक्षु) आदिमेव विसोधेहि कुसलेसु धम्मेसु। को कादि कुसलानं धम्मनं सीलां च सुविसुद्धन" ति, "पातिमोक्खन्ति मुखं एतं पामुखमेतं" ति आदि। "हे भिक्षु! अतः, यहाँ, आपको केवल अच्छे कर्मों के आरंभ को शुद्ध करना चाहिए। अच्छे कर्मों का आरंभ क्या है? यह सीला है, जो पूर्णतः शुद्ध है।" पातिमोक्ख, भिक्षुओं के नैतिक नियमों की संहिता (विनय पिटक में निहित अनुशासनात्मक नियमों का एक संक्षिप्त संग्रह); इस प्रकार, यह मुख (मुख) है, यह सर्वोपरि (पामुख) है, और साथ ही आरंभ (आदि) भी है। इधा का अर्थ है एक अविभाज्य व्यवहार (निपात)। पञ्ञवा का अर्थ है: ज्ञान से परिपूर्ण (ज्ञान)। उत्तमो का अर्थ है: वह सर्वश्रेष्ठ, उत्कृष्ट है; वह व्यक्तिगत (पुग्गला) निर्णय (अधिष्ठान) द्वारा भी सर्वोत्तम ज्ञान (पञ्ञा) की स्थिति प्रदर्शित करता है। वास्तव में, ज्ञान (पञ्ञा) अच्छे कर्मों से श्रेष्ठ है। अब वह परिस्थितिजन्य कारण (कारण) से प्राप्त नैतिकता (सीला) और ज्ञान (पञ्ञा) की सर्वोपरि और श्रेष्ठ अवस्था को इस प्रकार दर्शाता है: "मनुस्सेषु च देवेषु सीलापञ्ञाणतो जयं", जिसका अर्थ है: नैतिक उपदेश और स्पष्ट ज्ञान के कारण विपरीत पर विजय और कामिक विकृति (कामकिलेसा) पर विजय प्राप्त होती है; यही अर्थ है।

थेरा पुन्ण के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

सातवें अध्याय की टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(71):वच्चपाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (71) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग 8
71. वच्छपाला
उनका जन्म बुद्ध युग में राजगृह में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ था और उनका नाम वच्छपाल (बछड़ा चराने वाला) रखा गया था। उन्होंने देखा कि जब भगवान (बुद्ध) बिम्बिसार से मिले, तो उन्होंने उरुवेला-कस्सपा को भगवान (बुद्ध) के प्रति समर्पित कर दिया, [1] और विश्वास करते हुए, भिक्षु संघ में प्रवेश किया। एक सप्ताह में ही उन्होंने इतनी अंतर्दृष्टि विकसित कर ली कि उन्हें छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्तियां) प्राप्त हो गईं।

अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में उन्होंने निर्वाण की प्राप्ति पर अपार प्रसन्नता व्यक्त करते हुए इस श्लोक में कहा:

[71] सुसुखमनिपुणत्तदस्सीना मतिकुसलेना निवातवुत्तिना॥
संसेविता वुद्धसिलिना निब्बाना न हि तेन दुल्लभन' ती॥॥

[71] क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो सत्य को पहचान सकता है,
चाहे वह कितना भी सूक्ष्म और परिष्कृत क्यों न हो?
जो आध्यात्मिक विकास को मापने में कुशल होते हुए
भी विनम्र और कोमल मन का हो,
जो जागृत लोगों के नियमों के अनुसार अपना जीवन ढालता हो? [2] उसके लिए निर्वाण पाना कठिन नहीं है।

और यह भिक्षु द्वारा अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थी।

[1] देखें सीसीएक्स.; विनय ग्रंथ, i. 136 ff.; बुद्ध. जन्म कथाएँ, पृ. 114 ff.

[2] संसेवित-बुद्ध-सीलिना। 'आध्यात्मिक विकास' टीका से है। 'सत्य' या सच्चा अर्थ = अत्था।

1.8 अध्याय आठ

1.8-1[71] वाचापालथेरा के छंद पर टिप्पणी
सुसुखुमानिपनत्तदस्सिना से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वच्छपाला का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, और आज से इक्यावन युग (कप्पा) पहले एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। ब्राह्मण विद्या के समस्त ज्ञान में सिद्धिप्राप्त होकर, वे यज्ञ की अग्नि की सेवा में लगे रहे और एक दिन बड़े ताम्रपाती पात्र में पायासा लेकर दान-दक्खिन्य के योग्य व्यक्ति की खोज में निकले। आकाश में विपस्सी बुद्ध को विचरण करते देख वे अत्यंत विचलित हो गए, उन्हें प्रणाम किया और दान देने की इच्छा प्रकट की। बुद्ध ने करुणावश उनका दान स्वीकार कर लिया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम वच्छेपाला था। बिम्बिसार के समागम में, थेरा उरुवेला कस्सपा द्वारा अपने गुरु के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता का पालन करते हुए जादुई शक्ति (इद्धि) द्वारा चमत्कार का प्रदर्शन देखने के बाद, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्थाएँ ग्रहण कीं, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अपने भिक्षुत्व के सात दिनों के भीतर ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा/आध्यात्मिक शक्तियों) से परिपूर्ण (अरहंत) हो गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

“स्वर्ण रंग के आत्मजागृत बुद्ध”

बत्तीस उत्कृष्ट चरित्रों से संपन्न-

विशेषताएँ जंगल से ही निकलीं।

भिक्षुओं के पुरोहित वर्ग से घिरा हुआ।

मैंने दूध-चावल को लगातार बढ़ाते हुए

(vaḍḍhetvā pāyāsaṃ) तांबे के एक बड़े कटोरे में,

अपनी पवित्र बलि देने की इच्छा रखते हुए

मैंने दान के भोजन के लिए भेंट लाई।

(बाली)। धन्य पुरुष, सबसे बड़े

उस समय दुनिया में सबसे ताकतवर व्यक्ति वही था,

मठ के रास्ते पर अच्छी तरह से स्थापित

हवादार वातावरण के आकाश में (अनिला-

याना)।

उस अद्भुत दृश्य को देखकर, विचित्र

और रोंगटे खड़े हो गए, मैंने (अपना) एक तरफ रख दिया।

मैंने तांबे के पात्र में अपना सम्मान व्यक्त किया।

विपस्सी (बुद्ध) को।

हे सर्वज्ञ बुद्ध! आप ही हैं

दिव्य और मानवीय दोनों के स्वर्गीय स्वामी

प्राणियों; मुझ पर दया करके

हे महान ऋषि! कृपया मेरी भेंट स्वीकार कीजिए।

परम पूज्य, सर्वज्ञानी नेता

विश्व के महान ऋषि, गुरु

दुनिया में मेरे इरादे को जानने के बाद-

tion, स्वीकार किया (मेरी पेशकश)।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, मैंने तब दान देने की पेशकश की।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह दूध-चावल की सफल उपज है।

आज से इकतालीस युगों बाद, एक शाही

योद्धा (खट्टिया), जिसका नाम बुद्ध था, एक था

महान शक्ति से संपन्न विश्व-राजा

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने स्वयं ही सहजता से निर्वाण प्राप्त करने की अवस्था को प्रकट करने के लिए इस श्लोक का उच्चारण किया।

71. वास्तव में निर्वाण प्राप्त करना कठिन नहीं है।

उसे लाभ होगा, जो पूर्व को देखता है-

अत्यंत नाजुक और सूक्ष्म अर्थ,

जो विचार में चतुर (मती) है और

आचरण में आज्ञाकारी (निवातवुत्ति)।"

वहाँ, सुसुखुमानिपुनत्थादस्सिना का अर्थ इस प्रकार है:— वह सत्य (सच्च), आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पाद) आदि जैसे उपदेशों के अर्थों को समझने के बाद देखता है, जो सूक्ष्म हैं, क्योंकि वे देखने में अत्यंत कठिन प्रतीत होते हैं, और सूक्ष्म हैं, क्योंकि वे अनित्य (अनिच्च) अवस्था के प्रति सौम्य (सन्हा) प्रतीत होते हैं, इत्यादि; इस प्रकार, वह अत्यंत सूक्ष्म और नाज़ुक अर्थों का द्रष्टा है; उसके द्वारा। मतिकुसलेना का अर्थ है; विचार और बुद्धि से चतुर और निपुण व्यक्ति द्वारा; सत्य (धम्म) की खोज जैसे ज्ञान के तत्व के ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न (उप्पादने) में चतुर व्यक्ति द्वारा, इस प्रकार:— "इस प्रकार विद्यमान (पवत्तमान) ज्ञान बढ़ता है; इस प्रकार, यह नहीं बढ़ता।" निवातवुत्तिना का अर्थ है: जो विनम्रता का अभ्यास करता हो और ब्रह्मचारी जीवन के साथी नेताओं के बीच विनम्रतापूर्वक चलता हो; जो वरिष्ठों और कनिष्ठों के प्रति उचित व्यवहार करता हो। संसेवितवुद्धसीलिना का अर्थ है आदरणीय नैतिक उपदेश जिसका पालन किया जाता है और जिसमें लिप्त रहा जाता है। अतः: संसेवितवुद्धसीलं (वह नैतिक उपदेश जो आदरणीय, नियमित और पालन-पोषण योग्य है; जो भी इसका अस्तित्व रखता है; उस व्यक्ति द्वारा जिसने आदरणीय नैतिक उपदेश का नियमित पालन और अनुपालन किया। दूसरे शब्दों में, आदरणीय नैतिक उपदेशों का अनुपालन और सेवा इस व्यक्ति द्वारा की गई है; अतः, संसेवितवुद्धसीली (वह जिसने आदरणीय नैतिक उपदेशों की सेवा की है) उसके द्वारा। व्याकरणिक शब्द 'हि' का अर्थ है कारण (हेतु)। चूंकि जो भी (वुत्ति) विनम्र (निवात) होता है, आदरणीय नैतिक उपदेशों की अच्छी सेवा करता है, विचार में चतुर होता है, और अत्यंत सूक्ष्म और सूक्ष्म अर्थों का द्रष्टा होता है; इसलिए, उसके लिए निर्वाण प्राप्त करना कठिन नहीं है (दुल्लब्बा); यही अर्थ है। वास्तव में, विनम्र (निवारवुत्तिता) होने की स्थिति से और नैतिक उपदेशों की अच्छी सेवा करने के साधनों से भी निर्वाण प्राप्त होता है। नैतिक ज्ञान के पूजनीय व्यक्तियों और बुद्धिमान लोगों ने इसे सलाह और मार्गदर्शन के लिए उपयुक्त समझा (मञ्ञति); स्वयं भी उनकी सलाह का पालन करते हुए, और अपने चिंतनशील स्वभाव (मति) तथा अत्यंत सूक्ष्म और सूक्ष्म अर्थों को समझने की क्षमता के कारण, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना)

विकसित करने का कर्म करके, उन्होंने शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लिया। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने वाला श्लोक बन गया।

थेरा वच्छपाला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(72):अतुमा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (72) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
72. आतुमा
अब उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में सावत्थी में एक पार्षद के पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम आतुमा रखा गया। जब वे किशोर थे, उनकी माता ने उनके लिए एक पत्नी खोजने का प्रस्ताव रखा और परिवार से परामर्श किया। लेकिन अनुकूल परिस्थितियों से प्रेरित होकर उन्होंने कहा: 'गृहस्थी के कामों से मेरा क्या लेना-देना? अब मैं संसार छोड़कर (भिक्षुत्व के लिए) जाऊंगा।' यद्यपि वे भिक्षुओं के पास गए और भिक्षुत्व में दीक्षित हुए, फिर भी उनकी माता ने उनकी इस पवित्र इच्छा को भ्रष्ट करने का प्रयास किया। तब उन्होंने इस श्लोक में अपनी इच्छा व्यक्त की:

[72] यथा कादिरो सुसु वदहताग्गो॥
दुनिक्खमो होति पसाखाजातो॥
एवं अहं भार्यायनिताय॥
अनुमाण्णा माऽ पब्बजीतोम्ही दानी' ती.॥ ॥

[72] जैसे नया बांस का तना,
अपनी पूरी गांठदार ऊंचाई तक बढ़ने पर भी, मुश्किल से ही निकल पाता है,
वैसे ही मैं भी इन सभी दुल्हनों को घर लाने के कारण -
मुझे अपनी अनुमति दीजिए! मैं अभी (भिक्षुत्व में) चला गया हूँ।

और जब वह अपनी माँ से बात कर रहा था, तब उसमें अंतर्दृष्टि विकसित हुई, और विकारों को त्यागकर, [1] वह एक अरहंत (प्रबुद्ध) बन गया।

[1] किलेसा। यह उतना ही सामान्य शब्द है, विशेष रूप से टीकाओं में, जितना कि ईसाई लेखन में 'पाप' शब्द है। देखें बुड. साइ., पृ. 327, एन.

1.8-2[72] आतुमत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यथा कलिरो सुसु वड्ढितग्गो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा आतुमा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करके, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए और आज से 91 युग (कप्पा) पहले एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर उन्होंने भगवान विपस्सी को अंतरावती मार्ग पर चलते हुए देखा, वे श्रद्धावान हो गए और उन्हें सुगंधित जल और सुगंधित पाउडर का आदरपूर्वक अर्पण किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म हुआ और बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए, उन्होंने उत्तम जन्म प्राप्त किए और भगवान कस्सपा के मार्गदर्शन में भिक्षु बन गए तथा भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया। उनके ज्ञान की अवस्था सर्वांगीण न होने के कारण वे कोई विशिष्ट पद प्राप्त नहीं कर सके। इसके बाद, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म एक धनाढ्य के पुत्र के रूप में सावत्थी में हुआ। उनका नाम आतुमा था। जब वे वयस्क हुए, तो उनकी माता ने अपने रिश्तेदारों से परामर्श किया और कहा, “अपने पुत्र के लिए एक पत्नी लाएँ।” उन्होंने इस विषय पर विचार किया और कारण (हेतु) की समृद्धि (संपत्ति) से प्रेरित होकर मन ही मन कहा, “विवाहित गृहस्थ जीवन से मुझे क्या लाभ? अभी तो मैं भिक्षु बन जाऊँगा,” और भिक्षुओं के समक्ष जाकर भिक्षु बन गए। उनके भिक्षु

बनने के बाद भी, माता ने उन्हें भिक्षु संघ छोड़ने के लिए प्रेरित करने की इच्छा से अनेक प्रकार से प्रलोभन दिया। उन्होंने उनकी इच्छा के आगे घुटने नहीं टेके, बल्कि अपने अंतर्मन की इच्छा को प्रकट करते हुए एक श्लोक का उच्चारण किया।

72. ठीक उसी प्रकार जैसे छोटा (सुसु) अंकुर

(कल्लीरा) जिसे विकसित किया गया है

ऊपर की शाखाओं तक पहुंचना मुश्किल हो जाता है

इससे बाहर निकलने के लिए लेकिन लाता है

(जातो) कहीं अधिक शाखाएँ (पसाखा),

उसी प्रकार, मैं भी (बन जाऊंगा)

पत्नी को लाए जाने से;

मुझे इसके बारे में (स्वयं ही) पता चल गया।

मैं अब भिक्षु बन चुका हूँ।

वहाँ, kaḷīro का अर्थ अंकुर (aṅkura) है; लेकिन यहाँ, इसका अर्थ बांस का अंकुर (vaṃsaṅkura) है। Susu का अर्थ युवा (taruno) है। Vaḍḍhitaggo का अर्थ शाखाओं से भरा हुआ (pavaḍhitasākho) है। दूसरे शब्दों में, susuvaḍḍhitaggo का अर्थ है शाखाओं से अच्छी तरह विकसित, पत्तियों और शाखाओं से भरा हुआ। Dunnikkhamo का अर्थ है: कोई व्यक्ति बांस की झाड़ी से बाहर नहीं निकल पाएगा। Pasākhajāto विभिन्न शाखाओं के साथ एक हो गया है; शाखाओं के प्रत्येक जोड़ पर भी एक छोटी शाखा (anusākha) निकली है। एवं अहं भारियायनीताय का अर्थ है: जिस प्रकार अधिक शाखाओं से युक्त बांस, जिसमें शाखाएँ और छोटी शाखाएँ आपस में मिल जाती हैं, उसे बांस के झाड़ से निकालना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार, पत्नी के आने से, पुत्रों, पुत्रियों आदि के कारण आसक्ति (आसत्ति) से मेरा आभास बढ़ जाने पर, मुझे भी गृहस्थ जीवन से अलग होना कठिन हो सकता है। दूसरी ओर, जिस प्रकार शाखाओं से बंधा न होने पर बांस का अंकुर (वंशलीर) आसानी से झाड़ से अलग हो जाता है, उसी प्रकार पुत्रों, पुत्रियों आदि से बंधा न होने के कारण मैं भी आसानी से अलग हो जाता हूँ; अतः, पत्नी के न आने पर भी, अनुमाना मम् का अर्थ है: मुझे स्वयं ही इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ; पब्बजितोऽम्हिऽदानि का अर्थ है; उन्होंने त्याग में अपनी विशेष प्रसन्नता को इस प्रकार प्रकट किया: "अब मैं भिक्षु बन गया हूँ; शाबाश! उत्कृष्ट!" दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपनी माता से इस प्रकार कहा: "मुझे अनुमति दीजिए (अनुमञ्ञमम्), मैं अब भिक्षु बन गया हूँ।" वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है: "यदि पहले भी आपने इसे स्वीकार नहीं किया (अमिनाता), तो अब मैं भिक्षु बन गया हूँ; इसलिए, कृपया स्वीकृति दीजिए और मुझे भिक्षु अवस्था में बने रहने की अनुमति दीजिए; मुझे आपसे विमुख नहीं होना चाहिए।" इस प्रकार बोलते हुए, उन्होंने स्वयं को स्थिर रखते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, सही श्रेष्ठ मार्गों (मार्ग) का अभ्यास करके अपने दुराचार (किलेसा) का निवारण किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिञ्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है।

"शानदार महल में बैठे हुए मैंने देखा

विजेता विपस्सी, सर्वज्ञ,

अंधकार का नाश करने वाला, मानो अन-

राजसी वस्त्रों की भव्यता को समेटना (ककुधं)

विलासन्तं)।

महल से कुछ ही दूरी पर नेता भी मौजूद थे।

लोक से होकर गया। उसकी किरणें फैल गईं (निद्धावते)।

सूर्य की चमक के समान (सतरंसी)।

मैंने सुगंधित पानी भी ऊपर उठाया, और

इसे अच्छी तरह से छिड़क दिया

उत्कृष्ट बुद्ध। बस, इसी के साथ मेरी मृत्यु हुई।

धार्मिक भावना।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने मीठी सुगंध छिड़की है

पानी; मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है;

यह श्रद्धापूर्वक किए गए प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

आज से इकत्तीस युग पहले, एक शाही परिवार

सुगंधा नामक योद्धा विश्वराज बन गया।

अत्यधिक शक्ति से युक्त, सात

रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यद्यपि छह प्रकार के उच्च ज्ञान (चलाभिञ्ञ) से अर्हंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी माता से विदा ली, और जब वह देख ही रही थीं, तब वे आकाश से विदा हो गए। अर्हंतत्व प्राप्त करने के बाद भी, वे बार-बार (अंतरंतरा) उसी श्लोक का उत्तर देते रहे (पच्चुदाहासी)।

वहाँ, "पब्बजितो'म्ही, मैं भिक्षु बन गया हूँ;" इस प्रकार, इस संकेत (पदेसा) के माध्यम से, यह श्लोक भी थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है, क्योंकि यह उनके स्वयं के निरंतर अस्तित्व (सन्ताना) में कामवासना (राग) आदि अशुद्धियों को दूर करने (पब्बजित) की स्थिति को उजागर करता है। इसी कारण भगवान बुद्ध ने कहा: "इसलिए, अपनी अशुद्धियों को दूर करने के कारण, उन्हें 'पब्बजितो (भिक्षु)' कहा जाता है।"

थेरा आतुमा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(73):मानव

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (73) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
73. मानव
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण (पुजारी) के घर हुआ। सात वर्ष तक उनका पालन-पोषण घर के परिसर में ही हुआ, और जब सात वर्ष की आयु में उन्हें जागीर में ले जाया गया, तो उन्होंने पहली बार एक वृद्ध व्यक्ति, एक बीमार व्यक्ति और एक शव को देखा। जब उन्हें इन बातों के बारे में बताया गया, तो वे भयभीत हो गए, विहार (मठ) गए, उपदेश सुने और अपने माता-पिता की सहमति से भिक्षु बन गए। इसके बाद उन्होंने अंतर्दृष्टि और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

उसके आने पर भिक्षुओं ने पूछा:

'इतनी कम उम्र में आप यहाँ आने के लिए कैसे प्रेरित हुए?' इस पर उन्होंने अपनी असीम उपलब्धि (अज्ञात योग्यता) को स्वीकार करते हुए, इस श्लोक में अपने आगमन का संकेत दिया:

[73] जिनाṃ च दिस्व दुखिताṃ च ब्याधिताṃ॥
मतौ च दिस्व गतामायुसंखय:॥
ततो अहं निक्खमितुना पब्बाजिṃ॥
पाहाय कामानि मनोरमानि ती.॥ ॥

[73] मैंने एक वृद्ध को देखा, और एक को रोगग्रस्त देखा,
और फिर मैंने एक मृत व्यक्ति को देखा, जिसका सारा जीवन समाप्त हो चुका था।
वहाँ से मैं संसार छोड़कर दूसरे जीवन (भिक्षु का जीवन) जीने चला गया,
और मैंने इंद्रिय-इच्छाओं के लुभावने सुखों को त्याग दिया।

अब, क्योंकि उन्होंने इतनी कम उम्र में संसार (भिक्षुत्व के लिए) छोड़ दिया था, इसलिए थेरा को हमेशा बालक (माणव) कहा जाता था। [1]

[1] यहाँ बुद्ध के अनुभवों को साझा करने वाले किसी व्यक्ति को नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविकताओं से जकड़े हुए एक गंभीर युवा धार्मिक मन के प्रकार को देखने का प्रलोभन होता है।

1.8-3[73] मानवत्थेरा के छंद पर टिप्पणी
जिन्नं च दिस्वा दु:खितं ब्याधितं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मानव का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और आज से इक्यावन युग (कप्पा) पहले एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, शारीरिक लक्षणों के व्याख्याकार (लक्खनाधर) बने, तेजस्वी विपस्सी के शारीरिक लक्षणों का विशेष उच्च कुल (अभिजाति) के लक्षण के रूप में परीक्षण (परिग्घेत्वा) किया, अशुभ संकेतों की घोषणा (पुब्बानिमित्तनि सावेत्वा) की और इस प्रकार भविष्यवाणी की: — "निश्चित रूप से, यह पुत्र बुद्ध बनेगा," अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की, उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने जन्मों के चक्र में घूमते हुए उत्तम जन्म प्राप्त किए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक धनी और समृद्ध ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। सात वर्ष की आयु तक वे अपने घर में ही पले-बढ़े और सातवें वर्ष में उन्हें उपनयन के लिए उद्यान में ले जाया गया। रास्ते में उन्होंने एक वृद्ध, एक बीमार और एक मृत व्यक्ति को देखा और क्योंकि उन्होंने उन्हें पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए उन्होंने अपने आस-पास के लोगों

से (परिजन) पूछा, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के बारे में जाना, पश्चाताप किया (संजातसंवेगो), वहाँ से वापस नहीं लौटे, बल्कि मठ की ओर चल पड़े, गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, अपने माता-पिता से अनुमति ली, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"विपस्सी के जन्म के समय मैंने भविष्यवाणी की थी।"

संकेत (निमित्त बयाकारिं)।

वह दुनिया में बुद्ध बनेंगे

असंख्य प्राणियों को भेजना

निब्बाना को।

वह परम पूज्य, वह गुरु, जिनके प्रति

दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवाल) की उत्पत्ति

आँख (चक्कुमा) के स्वामी को हिला दिया

यह अब सत्य (धम्म) की शिक्षा देता है।

वह धन्य, स्वामी और

जिसकी दृष्टि (चक्खुमा) हो

जन्म के समय भरपूर प्रकाश था,

अब वह सत्य (धम्म) का उपदेश दे रहा है।

वह परम पूज्य, स्वामी और स्वामी

जिस अंतर्दृष्टि (चक्खुमा) के जन्म के समय,

नदियाँ (सरिता) नहीं बहती थीं (संदयुं)।

अब वह सत्य (धम्म) का उपदेश दे रहा है।

वह धन्य, स्वामी और

दृष्टि का स्वामी (चक्खुमा), पर

जिसका जन्म, नरक की अग्नि (avīci)

जो आग की लपटों में नहीं था (पज्जली) अब पढ़ा रहा है

सत्य (धम्म)।

हे भगवान, हे स्वामी और

जिस पर आँख (चक्खुमा) हो

पक्षी झुंड (पंखित प्राणियों का झुंड-)

खीसंघ (khiSaṅgha) उड़ता नहीं था, अब

सत्य (धम्म) का उपदेश देना।

हे परम पूज्य, स्वामी और स्वामी

चक्खुमा (आंख) की, जिसके जन्म पर जनसमूह

हवा नहीं चली, अब पढ़ा रहा है

सत्य (धम्म)।

वह परम पूज्य, स्वामी, और

जिस पर आँख (चक्खुमा) हो

जन्म से ही सभी रत्न चमक रहे थे, अब शिक्षा दे रहे हैं।

सत्य (धम्म)।

वह परम पूज्य, स्वामी और स्वामी

आँख (चक्खुमा) का, जिसके जन्म के समय, जीवित

प्राणी बलवान पैरों वाले (पडविक्कम) बन गए।

अब वे धम्म का शिक्षण कर रहे हैं।

जन्म के तुरंत बाद आत्मजागृत बुद्ध

वह चारों दिशाओं में देखता है। वह बोलता है।

(उदीरेति) प्रभुत्वपूर्ण (आसभिं) शब्द (वाचा)।

यही बुद्धों का स्वभाव है।

बहुत से पुरुषों को बनाने के बाद

पश्चाताप करते हुए, और विशेष रूप से प्रशंसा करते हुए

मैंने स्वयं को बुद्ध के प्रति श्रद्धा अर्पित की।

जागृत बुद्ध को प्राप्त किया और प्रस्थान किया।

पूर्व दिशा।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने बुद्ध की विशेष प्रशंसा की।

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो; यह

यह मेरी प्रशंसा का फलदायी परिणाम है।

नब्बे युग (कप्पा) पहले, एक विश्व-राजा

अत्यंत बलवान, जिसे सम्मुखाथविका कहा जाता है।

उसे सात रत्नों से सुशोभित किया गया था।

अस्सी नौ युग (कप्पा) पहले, एक विश्व-राजा

पथवदुन्दुभि नाम की महान शक्ति वाली

उसे सात रत्नों से सुशोभित किया गया था।

अस्सी आठ युग (कप्पा) पहले, एक राजकुमार

ओभास नाम का योद्धा (खट्टिया) बना

एक अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा, सात शक्तियों से संपन्न

रत्न।

अस्सी सात युग (कप्पा) पहले, एक बहुत शक्तिशाली

सरितच्छ नामक विश्वराज को यह वरदान प्राप्त था।

सात रत्नों के साथ।

छियासी युग (कप्पा) पहले, एक बहुत शक्तिशाली

विश्व राजा अग्गिनीब्बापना को दान दिया गया था

सात रत्नों के साथ।

पचासी युग (कप्पा) पहले, एक बहुत शक्तिशाली

गतिपच्छेदन नामक विश्वराज का जन्म हुआ था।

सात रत्नों से जड़ा हुआ।

चौरासी युग (कप्पा) पहले, एक बहुत

वातसमा नामक शक्तिशाली विश्व-राजा था।

सात रत्नों से सुशोभित।

तिरासी युग पहले, एक बहुत शक्तिशाली

रतनपज्जल नामक विश्वराज था।

सात रत्नों से सुशोभित।

बयासी युग पहले, एक बहुत शक्तिशाली

पदाविक्कमना नामक विश्वराज था।

सात रत्नों से सुशोभित।

इक्यासी युग (कप्पा) पहले, एक बहुत

विलोकाना नामक शक्तिशाली विश्वराज था

सात रत्नों से सुशोभित।

अस्सी युग (कप्पा) पहले, एक बहुत

खत्तिया वंश का शक्तिशाली विश्व-राजा,

गिरस्सारा नामक व्यक्ति को इन गुणों से संपन्न किया गया था।

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने अरहंत पद को प्रकट करते हुए, अपने भिक्षुत्व के निमित्त (चिह्न) की घोषणा की: "मित्र! किस प्रकार के पश्चाताप के कारण तुम अत्यंत कम आयु में ही भिक्षु बन गए हो?"

73. "वृद्धों को देखकर, बीमारी-

पीड़ित (दुखीता) और

मृतकों को भी देखने के बाद,

जीवनकाल पूरी तरह समाप्त हो गया

(आयुसंखय), मैंने अपना पुनः-

इसके परिणामस्वरूप घोषणा

और भिक्षु बन गए,

परित्यक्त रमणीय कामुक

सुख।

वहाँ, जुन्नम का अर्थ है वृद्धावस्था से ग्रस्त हो जाना; टूटे दांत, बालों का सफेद होना, झुर्रीदार त्वचा आदि जैसी अवस्थाओं से ग्रस्त हो जाना। दुखितम का अर्थ है पीड़ा (दुक्खा) से पीड़ित होना। ब्याधितम का अर्थ है रोग (गिलाना)। यहाँ, यद्यपि इसे "ब्याधितम (रोग से पीड़ित)" कहा गया है, पीड़ा की अवस्था (दुक्खपट्टभावो) ही इसका अंत (सिद्धो) है; "दुखीतम्" (पीड़ा से ग्रस्त होना) शब्द का प्रयोग गंभीर बीमारी की स्थिति को पूरी तरह से उजागर करने (दीपन) के लिए किया गया है। "मटम्" का अर्थ है मृत्यु (कालांकत); चूंकि मृत्यु को जीवन (आयु) के समाप्त, नष्ट और विलीन होने की अवस्था के रूप में जाना जाता है, इसलिए इसे "गतमायुसंखयम्" कहा गया है, जिसका अर्थ इस प्रकार है: — इसलिए, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु को देखकर, मुझे पश्चाताप हुआ: — "वृद्धावस्था आदि जैसी अवस्थाएँ तो इन लोगों के लिए भी नहीं हैं, बल्कि ये सभी के लिए सामान्य हैं; इसलिए, मैं भी वृद्धावस्था आदि पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।" निक्खमितुना का अर्थ है: त्याग करना; वैकल्पिक रूप से यह निक्खमित्व केवल पाठ है; भिक्षु बनने के अर्थ में घर से बाहर निकलना। पब्बजिं का अर्थ है गुरु के मार्गदर्शन में भिक्षुत्व के निकट आना। पहाय कामानी मनोरमानि का अर्थ है: — मनभावन, सुंदर आदि अवस्था के कारण, जो लोग कामवासना (राग) से रहित नहीं हैं, उनका मन इस प्रकार प्रसन्न होता है, मन को प्रसन्न करने वाले भौतिक इंद्रिय सुखों (वत्थुकाम) का त्याग करके, बिना किसी खोज की इच्छा के, पवित्र श्रेष्ठ मार्ग (अरियमग्ग) के माध्यम से उस उपयुक्त रूप से बंधी हुई कामवासना (चंदराग) को अच्छी तरह से काट कर; यही अर्थ है। इंद्रिय सुखों के त्याग की घोषणा के साथ-साथ, यह थेरा के उपदेशों का प्रकटीकरण (ब्याकरणं) भी बन गया। अरहंत पद (अञ्ञा)। क्योंकि वे युवावस्था में ही भिक्षु बन गए थे, इसलिए इस थेरा की उपाधि मात्र मानव हो गई।

थेरा मानव के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(74): सुयामना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (74) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
74. सुयामन
बुद्ध युग में साली में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वे तीनों वेदों में निपुण हुए। [1] गृहस्थ जीवन से विमुख होकर और ध्यान की ओर उन्मुख होकर, वे साली में भगवान (बुद्ध) से मिले, विश्वास किया, भिक्षुत्व में दीक्षा ली और जैसे ही उन्होंने अपना सिर मुंडवाया, उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हो गया।

इस पर उन्होंने बाधाओं को दूर करने का संकेत दिया और इस श्लोक में अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[74] कामच्छन्दो च ब्यापदो थिनमिद्धौ च भिक्खुनो॥
उद्धाच्चै विचिकीच्चा च सब्बसोऽव न विज्जति' ति.॥ ॥

[74] कामुक (यौन आदि) इच्छाओं, शत्रुता,
मन की सुस्ती और शरीर की आलस्य से
भिक्षु का कोई संबंध नहीं होता, और उसके हृदय में
किसी भी प्रकार की हलचल और संदेह मर जाते हैं।

[1] यह उल्लेखनीय है कि जहाँ धम्मपाल के समय में चार वेद (बाद के अथर्ववेद सहित) थे, वहीं पूर्वी भारत के बौद्ध संप्रदायों - जैसे कि कोंजेवराम - को या तो ब्राह्मण (पुजारी) साहित्य में इस वृद्धि की जानकारी नहीं थी, या उन्होंने इन मूल थेरों को केवल तीन वेदों से जोड़ने के लिए पर्याप्त ऐतिहासिक सटीकता का पालन किया (संवाद, i. 109, n. 2 देखें)। साला, या सालाम्, कोसल में एक ब्राह्मण (पुजारी) गाँव, का उल्लेख मज्झिमा में बुद्ध द्वारा दो बार किया गया है (सूत्र 41, 62; तुलना करें सय्य., v. 144); लेकिन साली का उल्लेख अभी तक कहीं और नहीं मिला है।

1.8-4[74] सुयामनथेरा के श्लोक पर टीका
कामाच्छन्दो च ब्यापादो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुयामन का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, इनका पुनर्जन्म धन्नवटी नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ, जो आज से इक्यावन युग (कप्पा) पहले भगवान विपस्सी के समय हुआ था। वयस्क होने पर, उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की और ब्राह्मण मंत्रों का उपदेश दिया। उसी अवसर पर भगवान विपस्सी, भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ भिक्षा मांगने के लिए धन्नवटी नगर में आए थे। उन्हें देखकर ब्राह्मण धर्मपरायण हो गया और उन्हें अपने घर ले गया, आसन तैयार करवाया, उस पर फूल बिछाया और उसे अर्पित किया; जब गुरुजी वहाँ विराजमान हुए, तो उन्होंने उन्हें उत्तम भोजन से तृप्त किया; भोजन करने के बाद, उन्होंने आदरपूर्वक उन्हें सुगंधित पुष्प अर्पित किए। गुरुजी ने धन्यवाद किया और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म दिव्यलोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे वैशाली में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम सूर्यमान था। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों में पारंगत (प्रशिक्षित) हो गए और परम साधना में लगे रहकर गृहस्थों द्वारा भोगे जाने वाले इंद्रिय सुखों का तिरस्कार करते हुए ध्यान में लीन हो गए, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भगवान बुद्ध के वैशाली पहुँचकर भिक्षु बन गए और जब उनके बाल खुरग्ग से मुंडवाने शुरू हुए, तब उन्होंने अतहतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"धन्यवती नगर में, मैं उस समय था

एक ब्राह्मण। संकेतों को पढ़ने में।

इतिहासा में भी (लक्खना) साथ ही

निघंडु के साथ-साथ केतुभा।

मुझे शब्दों और स्पष्टीकरणों का ज्ञान था।

(वेय्याकरण), और संकेतों में चतुर

(निमित्त)। मैंने अपने छात्रों को यह सिखाया

मंत्रों में भी निपुणता प्राप्त करना।

(पारागू) तीनों वेदों में।

पांच मुट्ठी कमल के फूल थे

मुझे मेरी पीठ के बल लिटाया गया है, क्योंकि मैं

पवित्र भेंट चढ़ाने की इच्छा रखता था

यज्ञ वेदी पर (आहुतिं)

yitthukāmo) एक साथ इकट्ठा होने में

मेरे पिता और माता के।

उस मोड़ पर, महिमावान व्यक्ति

विपस्सी, अपने पुरोहितों से घिरे हुए

भिक्षु, पुरुषों में श्रेष्ठ, आए

सभी दिशाओं में प्रकाश फैलाते हुए।

एक सीट तैयार करने के बाद, मैंने आमंत्रित किया

महान ऋषि ने उन बातों का प्रसार किया।

फूलों के साथ, मैं उन्हें अपने घर ले गया।

मेरे घर में जो कुछ भी था

आनंद के लिए भोजन (आमिसा) मैंने रखा

उसके अधिकार में (पच्चुपठित) और

मैंने बुद्ध को जो कुछ भी अर्पित किया, वह सब कुछ था।

उनके हाथों से प्रसन्न (सेही पानीभी)।

समय का पता चलने पर

जब उसने खाना खत्म कर लिया, तो मैंने उसे एक और चीज़ दी।

मुट्ठी भर फूल। प्रदर्शन करने के बाद

सर्वज्ञानी बुद्ध को उनका धन्यवाद

उन्होंने उत्तर दिशा की ओर मुख करके प्रस्थान किया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने तब फूल भेंट किए।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फूल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

अनंत काल (कप्पा)

आज से कुछ समय पहले, मैं वारा नाम का एक राजा था।

दस्साना (उत्कृष्ट द्रष्टा), एक बहुत मजबूत

विश्वराज, सात रत्नों से सुशोभित।

मेरी सारी बुराइयाँ जलकर राख हो चुकी थीं...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी बाधाओं (निवाजेना) को दूर करने के लिए अपनी अरहंतता को प्रकट करने वाला एक श्लोक कहा (ब्याकरोंतो):

74. इंद्रिय सुखों की इच्छा,

दुर्भावना (ब्यापाद), आलस्य और

भिक्षु की उनींदापन; हलचल

(उद्धाच्च) साथ ही संदेह (विसी-

किच्चा); हर लिहाज से ऐसा होता है

अस्तित्व में नहीं हैं।

वहाँ कामच्छंदो का अर्थ है इंद्रिय सुख की इच्छा; इंद्रिय सुख और वह इच्छा दोनों मिलकर कामच्छंद, यानी इंद्रिय सुख की इच्छा, यानी कामरागो (कामुक वासना) का निर्माण करते हैं। हालाँकि, यहाँ समस्त वासना भी कामच्छंद, यानी इंद्रिय सुख की इच्छा है, क्योंकि यह अत्यंत उत्कृष्ट (अग्गनाग्ग) हत्या (वज्जा) के योग्य होने का भी संकेत देती है: इसलिए उन्होंने कहा: "सब्बासोवना विज्जति।" वास्तव में, तीनों प्रकार के लोकों (काम रूप, अरूप भूमि) से संबंधित सभी वस्तुएँ (धम्म) काम (इंद्रिय सुख) का निर्माण करती हैं, क्योंकि वहाँ उत्पन्न होने वाली इच्छा (कामानीयत्त) के कारण। इसी कारण बुद्ध ने कहा: "Āruppe kāmacchandanīvaranaṃ paṭicca thina middha nīvaranaṃ uddhacca nīvaranaṃ avijjā nīvaranaṃ uppajjati (निराकार (अरूप) में, इंद्रिय सुख की इच्छा के अवरोध से ग्रस्त होकर, आलस्य और उन्मत्तता का अवरोध, उच्छृंखलता का अवरोध और अज्ञान का अवरोध उत्पन्न होता है)। मन क्षुब्ध (byāpajjati) हो जाता है और सड़न की स्थिति में पहुँच जाता है; इसी कारण, उन्होंने कहा: byapādo. "उसने मेरे लिए हानि (anattha) का आचरण किया;" इस प्रकार आरंभ होने पर, द्वेष इस प्रकार उत्पन्न होता है। आलस्य (थिना) मन की अप्रियता (अकल्यता) है, जो ऊर्जा की कमी (उस्साह) को जोड़ती है; उन्मत्त (मिद्धा) शरीर की अप्रियता (अकल्यता) है, जो बिना शस्त्र (सत्ति) के विनाश (विघात) का कारण बनती है; ये दोनों आलस्य और उन्मत्त मिलकर थिनामिद्धं बनाते हैं। यह कथन कर्म (किच्चा) और पोषण (आहार) के विपरीत भावों की एकता को दर्शाते हुए किया गया है। उद्दच्च (विचलित) होने की अवस्था। जिस भी कर्म (धम्म) के कारण मन उत्तेजित और अशांत हो जाता है, वह मन की अशांति (विक्खेप) और व्याकुलता है। यहाँ भी, कर्म (किच्चा) और पोषण के विपरीत भावों की समानता

के कारण, व्याकुलता (उद्धा) का वही गहना (गहन) होना, चिंता (कुक्कुच्च) का कारण भी बनता है। इसे लिया गया है; इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए। यह बाद के कष्ट (अनुताप) को दर्शाता है। वास्तव में, अच्छे और बुरे कर्मों के कर्मों (कटा) और चूक (अकाटा) के फलस्वरूप जो भी पश्चाताप (विप्पतिसार) होता है, वही कष्ट (कुक्कुच्च) है। विचिकिच्चा का अर्थ इस प्रकार है: — "क्या यह वास्तव में ऐसा है या निश्चित रूप से इस प्रकार नहीं?" इस प्रकार, संदेह उत्पन्न होता है; दूसरे शब्दों में, चीजों (धम्म) के स्वरूप की जांच करने में उसे कठिनाई और थकान होती है; इसी कारण, विकिचिच्चा (संदेह); बुद्ध आदि जैसे आधार (वत्थु) पर संदेह। सब्बासो का अर्थ है बिना किसी शेष (अवसेसा) के। न विज्जति का अर्थ है अस्तित्वहीन (नत्थि); सही मार्ग (मार्ग) द्वारा अच्छी तरह से अलग किए जाने के कारण, यह प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इन दो शब्दों के समूह की भी अलग-अलग व्याख्या की जानी चाहिए। वास्तव में, यहाँ यही व्याख्या है: एक भिक्षु, जिसमें सभी प्रकार से, यहां तक कि कामुक सुख (कामच्छंद), मानसिक पीड़ा (ब्यापाद), आलस्य और सुस्ती (थिनामिद्ध) की इच्छा भी नहीं होती है।सही मार्ग (अरीयमग्ग) द्वारा पांचों बाधाओं के पूर्णतः दूर हो जाने के कारण उत्पन्न होने वाली बेचैनी, चिंता और संदेह (उद्धक्कुक्कुच्च) को कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है; दूसरे शब्दों में, यह किए गए कर्मों का संचय (पटिकय) है; इस प्रकार, उन्होंने अपनी अज्ञा (प्राप्ति) के संकेत के साथ अपने अरहंतत्व (अज्ञां) की व्याख्या की। वास्तव में, जब सही मार्ग (मग्ग) द्वारा पांचों बाधाओं का पूर्णतः निवारण हो जाता है, तो उस अठ्ठता (अठ्ठता) की स्थिति के कारण, सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) भी पूर्णतः दूर हो जाते हैं। इसी कारण उन्होंने कहा: "भगवान को, पांचों बाधाओं और मन के सभी दुराचार (उपक्किलेसा) का त्याग करने के बाद।"

थेरा सुयामन के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(75):सुसारदा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (75) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
75. सुसारदा

उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में सारिपुत्त के जन्मस्थान [1] पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ, और उन्हें सुसारदा [75] (मंदबुद्धि) कहा गया, क्योंकि उनका विकास धीमा था। [2] उन्होंने उस थेरा की शिक्षा से सोतापना (निर्वाण का प्रथम समाधि) प्राप्त किया और उचित समय पर, एक भिक्षु के रूप में, अरहंत (प्रबुद्ध) बन गए, और इस श्लोक में अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[75] साधु सुविहिताना दस्सानां कांखा चिज्जति बुद्धि वदहति॥
बलमपि करोंति पणादितं तस्मा साधु सातं समागमोऽ ति.॥॥

[75] हे सुसंस्कृत मनों का दर्शन कितना सुंदर है! [3] संशय दूर हो जाता है और ज्ञान तेजी से बढ़ता है।
वे मूर्ख को भी सक्षम बना देते हैं;
इसलिए संतों के साथ मेलजोल अच्छा है।

[1] मगध में नालक-गाँव।

[2] सुसारदा का अर्थ है 'बहुत पतझड़ी' - यानी, मानो 'अविकसित बीज या वृद्धि वाला', और इसलिए हमारी जलवायु में शुरुआती वसंत ऋतु के अनुरूप। तुलना करें जेपीटीएस, 1909, पृष्ठ 150; और इसके विपरीत, विसारदा, नीचे, सीसीआईआई, श्लोक 338।

[3] यह एक रोचक तथ्य है कि सुविहिताना शब्द पर , जिसका अनुवाद 'संस्कृत' (शाब्दिक रूप से, सुसंस्कृत, व्यवस्थित या अभ्यासी) के रूप में किया गया है, टीका में टिप्पणी है अनुस्वारलोपो कातो; अंतिम ŋ को हटा दिया गया है, गाथा-सुखत्थाŋ, छंद संबंधी कारणों से। पंक्ति 3 के साथ, सिटर्स, श्लोक 213 देखें ।

1.8-5[75] सुसारदत्तेरा के श्लोक पर टीका

साधु सुविहिताना दस्सनं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुसारद का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक ब्राह्मण परिवार में हुआ, उन्होंने ब्राह्मण विद्या (विज्जापाद) में निपुणता प्राप्त की, काम (इंद्रिय सुख) के अभाव को समझा, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बन गए, हिमवंत क्षेत्र के एक वन में आश्रम बनवाया और वहीं रहने लगे। फिर उन्हें उत्थान देने के लिए, भगवान पद्ममुत्तरा भिक्षा मांगने के समय उनके पास गए। दूर से ही उन्होंने उन्हें देखा, श्रद्धा से भर गए, उनसे मिलने के लिए आगे बढ़े, उनका पात्र लिया, उसमें मीठे फल डाले और भेंट की। भगवान ने उस भेंट को स्वीकार किया, दाता को धन्यवाद दिया और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका पुनर्जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ, जो धर्म के सेनापति का संबंधी था। अपनी अल्प बुद्धि के कारण उन्होंने अपना नाम सुसारदा रखा। इसके बाद, उन्होंने धर्म के सेनापति की उपस्थिति में धर्म का ज्ञान ग्रहण किया, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अर्हंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैं पाठ करने और याद करने वाला था

मंत्रों में निपुण, तीनों में निपुण

वेद। हिमालय से ज्यादा दूर नहीं।

मैं एक आश्रम में रहता था।

मेरे अंदर बलिदान की अग्नि भी थी।

सफेद कमल के फल; फेंके हुए

उन्हें टोकरी में नीचे रख दिया गया, उसे रखा गया

मेरे बगल में पेड़ की चोटी पर लटका हुआ।

वह पद्ममुत्तरा, जो सांसारिक मामलों में ज्ञानी है,

बलिदान के योग्य प्राप्तकर्ता

भेंट चढ़ाना, उत्थान की इच्छा रखना

वह मेरे पास आकर उनसे भीख मांगने लगा।

खाना।

मैं धर्मनिष्ठ और नेक हृदय वाला व्यक्ति हूँ।

बुद्ध को फल अर्पित किए। मेरे लिए

वहाँ प्रचार चल रहा था

समृद्धि (वित्तिसंजनाना), वाहक

आनंद को वस्तुओं के एक दृश्य क्रम के रूप में देखना

(दिट्ठधम्म).

स्वर्ण रंगत वाला आत्मजागृत

बुद्ध, योग्य प्राप्तकर्ता

बलिदान भेंट, स्वामी,

आकाश में खड़ा होकर इस छंद को लिख डाला।

फलों की इस भेंट के कारण

इच्छाशक्ति और संकल्प से, आप ऐसा नहीं कर पाएंगे

किसी भी दुष्ट अस्तित्व में पुनर्जन्म लेना (दुग्गती)

एक लाख युगों (कप्पा) के लिए।

उस उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) से भी

मुझे सफलता (संपदा) का आनंद मिला।

मैंने जो अविचल स्थान प्राप्त किया है

जीत और हार को त्यागने के बाद।

सात सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब, मैं राजा सुमंगल बन गया, एक बहुत ही

शक्तिशाली विश्व-राजा, सात शक्तियों से संपन्न

रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी अज्ञा (प्राप्ति) को प्रकट करने के लिए एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें अच्छे व्यक्तियों पर भरोसा करने के लाभ (आनिसंस) की घोषणा (कित्तना) का संकेत (पदेसा) था।

75. "अच्छी तरह से सुसज्जित लोगों को देखना

अच्छा; संदेह दूर हो गया और ज्ञान प्राप्त हुआ।

सिलवटें। ये मूर्ख लोगों को भी सिलवटें बना देती हैं।

बुद्धिमान; इसलिए अच्छे लोगों की सभा

बडीया है।"

वहाँ, साधु का अर्थ है उत्कृष्ट, अच्छा; यही अर्थ है। सुविहिताना दस्सनां का अर्थ है; सुसज्जित को देखना। श्लोक रचना में सुगमता के लिए निग्घिता शब्द को हटा दिया गया है। पवित्र कुलीनों (आर्य) को देखना, जो दूसरों पर दया करने के कारण सत्य (धम्म) की शिक्षा से उत्कृष्ट रूप से सुसज्जित हैं, और जिन्होंने स्वयं को नैतिक उपदेशों आदि गुणों से उत्कृष्ट रूप से सुसज्जित (सुसंविहितत्त) कर लिया है; यही व्याख्या है। "दस्सनां (देखना);" इस प्रकार, स्वयं की प्रचुर अवस्था (कारत्त) के कारण, इंगित करने की सीमा को देखा जाना चाहिए। वास्तव में, भगवान बुद्ध ने यही कहा था:

"वे भिक्षु (भिक्षु), जो वरदानों से संपन्न हैं

नैतिक उपदेश (सीला), एकाग्रता,

(समाधि), ज्ञान (पञ्ञा), से संपन्न

मुक्ति (विमुक्ति), से युक्त

ज्ञान की अंतर्दृष्टि (दशाना)

मुक्ति (विमुत्तिनाना), जो हैं

सलाहकार, निर्देश देने में चतुर (विञ्ञा-

पका), जो प्रशिक्षक (संदसाका) हैं,

भड़काने वाले (समदपका), भड़काने वाले (समुत्ते-

जका), ग्लैडेनर्स (संपहंसका), निर्माता

अच्छे धम्म की शिक्षा पर्याप्त रूप से प्रदान करना

स्पष्ट (अलं समक्खतारा); हे भिक्षुओं! मैं

कहते हैं कि ऐसे भिक्षुओं को देखना भी

बहुत मददगार (बहुपकारा) होने के नाते;

सुनना (सवनम्); पास आना (उपसॅ-

कामनां), उपस्थित रहना (पयिरूपासन)

(अनुसरनम्) पर विचार करते हुए। मैं कहता हूँ,

हे भिक्षुओं! भिक्षुओं, प्रचुर मात्रा में होने के लिए

लाभकारी (बहुपकार)।"

दूसरे शब्दों में, क्योंकि देखना (दस्सना) आधार (मूलक) है, इसलिए यहाँ इसे दूसरों के लिए भी देखना (दस्सना) कहा गया है; कंखा चिज्जति, इस प्रकार, और इसी तरह, वहाँ साधनवाचक शब्द (करणवचनं) बनाते हैं। वास्तव में, जब ऐसे अच्छे मित्रों को देखकर (जैसा कहा गया है) एक अच्छे परिवार का पुत्र (कुलपुत्त) जन्मजात बुद्धिमान (विञ्ञुजाटिक) जो उनके लाभ की इच्छा रखता है (अत्था) उनके पास जाता है और उनकी सेवा करता है (पयिरुपासति); वह ऐसे प्रश्न पूछता है जैसे: "आदरणीय महोदय! अच्छा कर्म क्या है? बुरा कर्म क्या है?" इत्यादि। वे अपनी ओर से, संदेह की कई व्यवस्थित (विहित) स्थितियों (ठाणीय) में उसके संदेहों को दूर करते हैं; इसी कारण से, ऐसा कहा गया है; "कँखँचिज्जति, संदेह दूर हो जाता है।" क्योंकि वे सत्य (धम्म) का उपदेश देकर, उनके संदेह को उचित रूप से दूर करते हैं, प्रभावी (कम्मपथ) सही दृष्टिकोण (सम्मदित्ति) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से सही दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं, इसलिए उनकी बुद्धि वद्धति (जागरूकता) बढ़ती है। जब वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को उत्तरोत्तर विकसित करते हुए, आर्य सत्यों (सच्चानि) में उचित रूप से प्रवेश करते हैं, तब सोलह और आठ क्षेत्रों पर आधारित संदेह दूर हो जाता है और पर्याप्त रूप से विच्छेदित (समुच्चिज्जति) हो जाता है; बिना प्रमाण (निपरीयायन) के, ज्ञान (पञ्ञा) और जागरूकता बढ़ती है। वे अपने शरीर से मूर्खता (बाल्य) से परे जाकर बुद्धिमान बन जाते हैं। उनके कारण, उनकी जागरूकता बढ़ती है; bālampi karonti paṇḍitaṃ, (वे मूर्ख व्यक्ति को भी बुद्धिमान बना देते हैं)। Tasmā (इस प्रकार), और इसी प्रकार आगे का अर्थ है (निगमना)। जैसा कि कहा गया है, भले लोगों को इस प्रकार देखने से संदेह दूर हो जाता है और ज्ञान बढ़ जाता है, वे मूर्ख व्यक्ति को बुद्धिमान बना देते हैं, इसलिए उस परिस्थिति में sādhu का अर्थ है उत्तम (सुंदरं); sataṃ का अर्थ है भले लोगों का, पवित्र कुलीनों का (अरियानं); samāgamo का अर्थ है उनके साथ जुड़ना (समोधान) और उचित रूप से बढ़ाना (सम्मा वढन); इस प्रकार, यही अर्थ है।

थेरा सुसारदा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(76):पियांजहा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (76) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
76. पियांजाहा
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म वैशाली में एक लिच्छवी कुलीन (राजा) परिवार में हुआ। बड़े होकर वे युद्ध के प्रति अत्यंत उत्साही और एक अजेय योद्धा बन गए, जो अपने प्रियजनों का त्याग करते थे, इसलिए वे प्रेम-त्यागी पियांजहा के नाम से प्रसिद्ध हुए। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) वैशाली आए, तो पियांजहा ने उनमें आस्था पाई, भिक्षु संघ में प्रवेश किया, वन में निवास किया, अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अरहंत (ज्ञानोदय प्राप्त) के रूप में उन्होंने विचार किया, 'सांसारिक सफलता आर्य सफलता से कितनी भिन्न है!' और इस अंतर्दृष्टि से ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:

[76] उप्पतंतेसु निपते निपातंतेसु उप्पते॥
वसे अवसामनेसु राममानेसु नि रमे' ति.॥॥

[76] जहाँ लोग अभिमानी हों, वहाँ तुम नीची रहो। [1] जहाँ वे मन से नीच हों, वहाँ हृदय को ऊपर उठाओ।
वहाँ रहो जहाँ दूसरे लोग रहना नहीं चाहते,
जहाँ लोग आनंद पाते हैं, वहाँ तुम्हें कोई आनंद नहीं मिलता।

[1] पाठ में प्रयुक्त विभक्ति पुराने इच्छावाचक का तीसरा व्यक्ति एकवचन है : उसे, एक को, नीचे लेटना चाहिए।

1.8-6[76] पियांजहत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
उप्पतन्तेसु निपाते से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पियांजहा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के प्रति भक्तिपूर्ण कर्म किए, पुण्य कर्मों का संचय किया जिससे उन्हें इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे भगवान विपस्सी (बुद्ध) के समय हिमवंत (हिमालय) में वृक्ष देवता बन गए। एक पहाड़ी पर रहते हुए, अपनी सीमित शक्ति के कारण उन्हें दिव्य प्राणियों की सभा में सबसे दूर बैठना पड़ता था। उन्होंने सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से पवित्र आस्था प्राप्त की, गुरु के गुणों का चिंतन

किया। एक दिन गंगा नदी में उन्हें एक रमणीय और अत्यंत शुद्ध रेतीला तट मिला, जिसके बाद उन्होंने कहा: “इससे भी कहीं अधिक शुद्ध हैं गुरु के गुण, जो अनंत और सर्वव्यापी हैं।” इस प्रकार, गुरु के गुणों के अनुरूप, उन्होंने अपने मन को अत्यंत पवित्र (पसादेत्वा) बनाया और उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म वैशाली के लिच्छवा राजपरिवार में हुआ। वयस्क होने पर, वे युद्ध-युद्धों के प्रति आसक्त (सोंडो) हो गए और युद्धक्षेत्र में अजेय हो गए, तथा शत्रुओं के प्रति प्रेम (पियाहानी) त्यागने (करणे) के कारण वे पियांजहा के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु के वैशाली आगमन पर, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और वन में रहते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को लगातार विकसित करते हुए अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैं हिमवंता पहाड़ी पर रहता था।

पहाड़ी। वैभव को देखकर

रेत के बारे में सोचते हुए, मैंने सबसे पूर्व के बारे में विचार किया-

उत्कृष्ट बुद्ध। ज्ञान में, वहाँ

कोई तुलना नहीं; गुरु के लिए तो

कोई क्रिया प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं करती

(संखार)। विशेष रूप से जानने के बाद

(अभिञ्ञाय) सभी सत्य (धम्म),

वह अत्यंत मुक्त हो गया (अधि-

उनके ज्ञान से (मुक्काती)।

हे सुसंस्कृत, मेरी श्रद्धा आपके प्रति है।

हे परम पूज्य! मैं आपकी पूजा करता हूँ, हे सर्वोच्च।

बहुत बढ़िया! जहाँ तक आपके सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न का संबंध है।

उत्कृष्ट ज्ञान आपको चिंतित करता है

ज्ञान में उनका कोई समकक्ष नहीं है।

मैंने अपने मन को सुखद रूप से धार्मिक बना लिया है

उनके ज्ञान के प्रति, मैं परिपूर्ण था

युगों तक स्वर्ग में आनंद (कप्पा),

शेष युग (कप्पा), अच्छा कर्म

यह मैंने किया था।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

अब, मुझे यह समझ आ गई।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

उनके ज्ञान की धारणा।

आज से सत्तर युग (कप्पा) पहले,

मैं एक बहुत शक्तिशाली विश्व-राजा बन गया जिसका नाम था

पुलिना पुफिया (रेत का फूल), संपन्न

सात रत्नों के साथ। मेरी दुष्टता थी

जल गया। ... बुद्ध के उपदेश में था

संपन्न हो चुका है।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए इस लाभ (अत्था) को इस प्रकार दर्शाया: — "अंधे आम लोगों (पुथुज्जना) के उचित आचरण (पटिपत्ति) से लेकर दुखी दरिद्रों (विधुरा) के आचरण तक, पवित्र कुलीनों (आरिया) का आचरण।"

76. "किसी को भी अपने साथियों के बीच विनम्र रहना चाहिए-"

सम्मानित; किसी को उनके बीच ऊंचा स्थान प्राप्त करना चाहिए

अभिमानहीन लोगों के बीच रहना चाहिए।

जो लोग पवित्र जीवन जी रहे हैं; उनमें से एक को

उन लोगों के बीच खुद को भ्रमित न करें जो हैं

वे इंद्रिय सुखों में आनंदित होते थे।

वहाँ, उप्पतन्तेसु का अर्थ है: अभिमानी लोगों में; उन प्राणियों में जो अहंकार, उद्धच्च, हठ, सारम्भ आदि के कारण आत्म-प्रशंसा से व्याकुल (अनुपसन्त) हो जाते हैं। निपाते का अर्थ है झुकना (नामय्या): व्यक्ति उन बुरे कर्मों (धम्म) से पूर्णतः विरक्त होकर विनम्रता का अभ्यस्त हो जाएगा। निपातन्तेसु का अर्थ है: झुकने वालों में; उन लोगों में जो नीच प्रवृत्ति (हीन) में लीन होने के कारण आलस्य (कोषज्ज) से अच्छे गुणों से विमुख (निहीयामान) हो गए हैं। उप्पते का अर्थ है: वह अभिमानी (उन्नमय्या) होगा; वह श्रेष्ठ प्रवृत्ति और परिश्रम के कारण गुणों (गणतो) के दृष्टिकोण से प्रयास करेगा। दूसरे शब्दों में, उप्पतन्तेसु का अर्थ है; उन लोगों में जो परिश्रम करते हैं, उन लोगों में जो दुराचार के बीच आवेग में आकर अपना सिर उठाते हैं। निपाते का अर्थ है: उसे उचित चिंतन (पच्चवेक्खना) द्वारा अपने आप को इस प्रकार विनम्र करना चाहिए कि गणना (पटिसंखाना) की शक्ति के कारण दुराचार के वे रूप उत्पन्न न हों; उसे उन्हें पंगु (विक्खम्भेय्या) करना चाहिए और उन्हें पूरी तरह से काट देना चाहिए (समुच्चिन्देय्या)। निपत्तन्तेसु का अर्थ है: उन लोगों में जो गिर जाते हैं (परिपत्तन्ते); उन लोगों में जो परिश्रम की अल्प इच्छा (पयोग) के कारण बुद्धिमानी से सचेत (अयोनिसो) नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में, जब शांत स्वभाव (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के कर्म (धम्म), जो प्रारंभ में दृढ़ (यथारद्ध) हो गए थे, क्षीण

(हायमाना) होने लगते हैं। उप्पात का अर्थ है: उन समथा और विपस्सना को सफल (संपदा) परिश्रम (आरंभ) और विवेकपूर्ण जागरूकता के माध्यम से सहारा (उपाट्ठापेय्य), समर्थन (उप्पादेय्या) और विकसित (वड्ढेय्या) किया जाना चाहिए। वसे अवसमानेसु का अर्थ है: उसे स्वयं उन प्राणियों के बीच जीवन व्यतीत करना चाहिए जो सही मार्ग (मग्ग) और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं, साथ ही एक पवित्र कुलीन (आर्य) का जीवन भी व्यतीत करते हैं। दूसरे शब्दों में, उसे स्वयं भी उन पवित्र श्रेष्ठों (अरियेसु) के बीच रहना चाहिए जो पतित जीवन (दुतियाक) नहीं जीते, यानी वे ऐसा जीवन नहीं जी रहे हैं। राममानेसु नोरामे का अर्थ है: उसे स्वयं भी उन प्राणियों के बीच आनंद नहीं लेना चाहिए जो इंद्रिय सुखों और दुराचार के उल्लास में मग्न हैं; दूसरे शब्दों में, उसे उन पवित्र श्रेष्ठों (अरियेसु) के बीच आनंद लेना चाहिए जो ध्यान आदि सुखों में मग्न हैं, जो बैत (आमिसा) से रहित हैं; इसके अलावा, उसे किसी भी अन्य नाम में कभी भी आनंद नहीं लेना चाहिए; दूसरे शब्दों में, उसे विशेष रूप से किसी अन्य प्रकार से आनंद नहीं लेना चाहिए; यही अर्थ है।

थेरा पियांझा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(77): हत्थारोहा-पुट्टा (हाथी-सवार का बेटा)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (77) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
77. हत्थारोह-पुत्त (हाथी सवार का पुत्र)
बुद्ध युग में सावत्थी में एक हाथी-चालक के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, वे बड़े होते-होते हाथियों को संभालने में निपुण हो गए। एक दिन, नदी किनारे हाथी को प्रशिक्षण देते समय, उन्हें यह विचार आया: 'हाथी को वश में करने का क्या लाभ? इससे बेहतर है स्वयं को वश में करना।' अतः वे परम पूज्य बुद्ध के पास गए, धम्म का मार्ग सुना, उस पर विश्वास किया, भिक्षु बन गए और नैतिक ध्यान के आधार पर अंतर्दृष्टि का अभ्यास किया। और जिस प्रकार एक कुशल हाथी-चालक अपने हुक से हाथियों के उग्र स्वभाव को नियंत्रित करता है, उसी प्रकार उन्होंने ध्यान के द्वारा अपने विचारों को अभ्यास से भटकने नहीं दिया और यह श्लोक कहा:

[77] इदाm [12] शुद्ध चित्तमकारि कारिकाm॥
येनिच्चकां यथाकामां यथासुखं॥
तदज्जहौ निग्घेसामि योनिसो॥
हत्थिप्पभन्नं विया अंकुसग्गहो' ति.॥ ॥

[77] कभी यह हृदय एक मैदान की तरह विचरण करता था, एक घुमक्कड़
जहाँ भी इच्छा, सनक या आनंद उसे ले जाता था।
आज मैं उस हृदय को पूरी तरह से नियंत्रण में रखूँगा,
जैसे प्रशिक्षक का हुक जंगली हाथी को नियंत्रित करता है। [1]

और इस प्रकार अभ्यास करते हुए, उनकी अंतर्दृष्टि का विस्तार हुआ, और उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) को प्राप्त किया।

[1] यह तालपुट्टा (CCLXII, 1130) को समर्पित दिलचस्प कविता में एक श्लोक बनाता है। 'प्रशिक्षक का हुक,' अधिक सटीक रूप से 'हुक को पकड़ने वाला।'

1.8-7[77] हत्थारोहपुत्तत्तरा के श्लोक पर टीका
'इदं पुरे चित्तमचारी चानिकं' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा हत्थारोहपुत्त का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भक्तिपूर्ण सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और भगवान बुद्ध के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षुओं से घिरे हुए अपने मठ से निकलते हुए देखा। वे श्रद्धा से भर गए, उन्हें पुष्प अर्पित किए, पांचों अंगों, अर्थात् माथा, दोनों हथेलियाँ और दोनों

घुटने पृथ्वी को स्पर्श करते हुए (पंचपतिठित) प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक हाथी-सवार के परिवार में, सावत्थी में, पुनर्जन्म लिए। बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने हाथी-विज्ञान में निपुणता प्राप्त की। एक दिन जब वे एक हाथी को प्रशिक्षित करवा रहे थे, तब वे नदी के किनारे गए और अपने कर्मों की समृद्धि (हेतुसंपत्ति) से प्रेरित होकर उन्होंने सोचा, "हाथियों को वश में करने का क्या लाभ? इससे बेहतर तो स्वयं को वश में करना है।" उन्होंने भगवान बुद्ध के पास जाकर सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित श्रद्धा से प्रेरित होकर भिक्षु बन गए, अपने आचरण (चरियानुकूला) के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) का अभ्यास किया, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके वे उसमें दीर्घायु (चिरपरीचय) हो गए। अपने मन को, जो मानसिक अभ्यास से बाहर भाग रहा था, एक चतुर हाथी प्रशिक्षक (हत्थाचरिया) की तरह, जो अपने अंकुश से मदमस्त उत्कृष्ट हाथी को नियंत्रित करता है, अंकुश जैसी सावधानी (पटिसंखाना अंकुसा) से उसने "इदं पुरे चित्तमचारी चारिकं" से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया।

77. वहाँ, idaṃ का अर्थ है: उस मन का कथन किया गया है जिसके बारे में कहा जा रहा है और जो स्वयंसिद्ध अवस्था (अत्तपच्चखता) में है। शुद्ध का अर्थ है पूर्व में, पकड़ने से पहले, अधीन रखने (निग्घ) से पहले। अचारी का अर्थ है इधर-उधर भटकना (विचारी); अस्थिर अवस्था (अनवट्ठितता) के कारण, यह विभिन्न इंद्रिय-विषयों (आरम्मन) में पूरी तरह से लोटपोट (परिभमि) हो गया। चारिकं का अर्थ है इच्छा के अनुसार आचरण (यथाकाम)। इसी कारण उन्होंने कहा:— "येनिच्चकंयत्थाकामं यथासुखं।" तं का अर्थ है वह मन। अज्जा का अर्थ है अभी, वर्तमान में (एतरहि)। निग्हेस्सामि का अर्थ है: मैं इसे पकड़ लूँगा, मैं इसे नम्र (निब्बिसेवन) बना दूँगा। योनिसो का अर्थ है: किसी उपाय (उपाय) के माध्यम से। ठीक कैसे? हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो। यही कहा गया है:— "अर्थात मेरा मन, अब से, यदि वह दृश्य रूपों (रूप) आदि जैसे इंद्रिय-विषयों (आरम्मन) में किसी भी प्रकार से आनंद लेना चाहे, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार ऐसा करता है; जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी उसकी इच्छा हो, जहाँ कहीं भी इंद्रिय सुख हो; जिस भी प्रकार से उसके चारों ओर लंबे समय तक घूमने का आनंद हो; उस मन को मैं अब बुद्धिमानी से (योनिसोमनसिकारा) वश में करूँगा, जैसे एक कुशल हाथी प्रशिक्षक अपने अंकुश से करता है; मैं उसे उल्लंघन (विटिक्कमितुं) का अवसर नहीं दूँगा।" इस प्रकार बोलते हुए, थेरा ने धीरे-धीरे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व की कल्पना की। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"स्वर्ण रंग वाले आत्मजागृत बुद्ध,

समर्पित दान के योग्य, घिरा हुआ

उनके शिष्यों द्वारा ही वे उनके भीतर से निकले थे

मठ।

परम श्रेष्ठ बुद्ध के दर्शन करने पर,

अंधकार का सर्वज्ञ नाश करने वाला, मैं

वह धर्मपरायण और अच्छे हृदय वाला हो गया और

उन्हें श्रद्धापूर्वक, उलझे हुए (गंठि) अर्पित किए।

फूल।

उस पवित्र भावना के साथ

द्विपदिन्दु के रूप में व्यक्तित्व,

मैंने खुशी-खुशी और प्रसन्न हृदय से भुगतान किया।

तथागत को मेरा एक बार फिर नमन।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब जबकि मैंने अपना उदार दान कर दिया है

फूल का; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट।

आज से इकतालीस युग (कप्पा) पहले,

खत्तिया वंश का एक अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा

काराना नामक कबीले को संपन्न किया गया था

सात प्रकार के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

यह वही श्लोक है जो थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है।

थेरा हत्तारोहपुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(78):मेंदासिरा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (78) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
78. मेण्डसीरा
उनका पुनर्जन्म इसी बुद्ध युग में साकेता में एक कुलीन परिवार में हुआ। उनका सिर मेढ़े के सिर जैसा था, इसलिए उन्हें मेण्डसीरा (= मेढ़े का सिर) उपनाम मिला। जब भगवान (बुद्ध) अंजन वन में साकेता में रह रहे थे, तब मेण्डसीरा ने उन पर विश्वास किया, भिक्षुओं के संघ में प्रवेश किया और शांत और अंतर्दृष्टि का अभ्यास करते हुए, [77] छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की। इस प्रकार वे अपने पूर्व जन्मों को याद कर सकते थे, और उनके विषय में उन्होंने यह श्लोक कहा:

[78] अनेकाजतिसाअसारं सनुधविस्साअ अनिबिसाṃ॥
तस्स मे दुक्खजातस्स दुक्खक्खन्धो अपरादधो' ति.॥ ॥

[78] मैंने अनेक बार पुनर्जन्म लिया है,

पर कोई सुराग नहीं मिला। [1] देखो! अब मुझसे, जिसने बहुत
कष्ट सहा है, दुख का बोझ हट गया है।

और यही उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थी।

[1] पाठ में, 'मुझे नहीं मिला'; टिप्पणी, 'वापस मुड़ने या लुढ़कने का ज्ञान प्राप्त नहीं करना' (निवत्तकन्याणम्) - अर्थात्, पुनर्जन्म का अंतहीन क्रम।

1.8-8[78] मेंडसिरत्थेरा के श्लोक पर टीका
अनेकाजातिसंसार्म् से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मेंडसिरा का है। इसका उद्गम क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पूर्व बुद्धों के प्रति भक्तिपूर्ण कर्म किए, इस और उस जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म किए, और आज से इक्यावन युग (कप्पा) पहले एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर उन्होंने सांसारिक सुखों का त्याग कर संसार त्याग दिया और संन्यासी बन गए। हिमवंत में अनेक संन्यासियों के साथ रहते हुए उन्होंने गुरु के दर्शन किए, धार्मिक भाव धारण किया, अपने संन्यासियों से कमल के फूल मंगवाए, गुरु को आदरपूर्वक पुष्प अर्पित किए, अपने शिष्यों को परिश्रम का अभ्यास करने का उपदेश दिया, प्राण त्याग कर दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया और बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए साकेत में एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनके सिर की आकृति मेढ़े जैसी होने के कारण उनका नाम (समाञ्ञा) मेढ़सिरा था। जब भगवान साकेत, अंजन वन में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने गुरु से संपर्क किया, उचित श्रद्धा से दीक्षा ली, भिक्षु बन गए और शांत मन (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में परिश्रम करते हुए छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

“हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर एक पहाड़ी थी,

गौतम नाम से जाना जाता है, विभिन्न प्रकार के पत्तों से ढका हुआ

वनस्पतियों का, एक बड़े समूह का निवास स्थान (आलय)

जीवित प्राणियों की संख्या।

उसके बीच में एक साधु था-

विशेष रूप से बनाया गया मंच। मैं रहता था

मेरे शिष्यों से घिरा हुआ आश्रम।

मेरे बहुत सारे विद्यार्थियों को आने दीजिए!

वे मेरे लिए कमल के फूल लाएँ!

मैं श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाऊंगा

बुद्ध को, जो एक ऐसे ही व्यक्तित्व हैं

मनुष्यों के सम्राट (द्विपदिन्द) के रूप में।

'हाँ' उत्तर देने के बाद, वे ले आए

मुझे कमल के फूल बहुत पसंद हैं। इसी प्रकार

मैंने निमित्तम् का चिन्ह किया है, मैंने विशेष रूप से

उन्होंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।

फिर मैंने अपने विद्यार्थियों को एक साथ लाया।

और मैंने उन्हें अच्छे से निर्देश दिए। ऐसा मत करो,

वास्तव में, आप सभी लापरवाह हैं; परिश्रम,

आनंद का वाहक है। इस प्रकार

जिन विद्यार्थियों को अच्छी तरह से निर्देश दिए गए थे

बात सुनने के लिए तैयार (वचनक्खमा),

परिश्रम की गुणवत्ता के साथ-साथ,

तब मेरी मृत्यु हो गई।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से मैंने पुष्प अर्पित किए हैं;

मुझे किसी भी बुरी घटना की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

इक्यावन युग (कप्पा) पहले, मैं एक था

राजा, जलुत्तमा (सर्वोत्तम जल),

एक अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा, जो इन गुणों से संपन्न है

सात प्रकार के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

अपने पुराने निवास को याद करते हुए, उन्होंने एक छंद कहा।

78. मैं (सन्धाविस्सं) दौड़कर (संधाविस्सं)

अनेक जन्मों का संसार बिना

कुछ भी कमाना (अनिबिसम्);

उस व्यक्ति के दुखों का अंबार (दुक्खा)

जो जन्म से ही दुखी था (दुक्खजाता)

गड़बड़ हो गई थी (अपराद्धो)।

वहाँ अनेकजातिसंसारं का अर्थ है: यह संसार चक्र, जो कई लाख पुनर्जन्मों तक चलता है; क्योंकि यह एक निश्चित समयावधि के लिए है, इसलिए यह शब्द एकवचन में है, पूर्ण संरचना (अच्चंतसंयोग) में। संधाविस्सं का अर्थ है कि मैं कभी-कभी जन्म लेने और मृत्यु के चक्र में घूमता रहा। अनिब्बिसं का अर्थ है: इससे विमुख होने का ज्ञान (ज्ञान) प्राप्त न करना। तस्स मे का अर्थ है: जब मैं इस प्रकार बार-बार पुनर्जन्मों के चक्र में घूम रहा था। दु:खजातस्स का अर्थ है: पुनर्जन्म (जाति) आदि के कारण उत्पन्न दु:ख (दुक्खा) का; दूसरे शब्दों में, तीन प्रकार के कष्टों (दुक्खता) के कारण होने वाले दु:ख (दुक्खा) का। दु:खक्खन्धो का अर्थ है: कर्म, कुष्ठ और परिणाम के चक्र (वट्ट) के रूप में वर्गीकृत दु:खों का ढेर (दुक्खरासि)। अपराद्धो का अर्थ है: अरहतत्व के सही मार्ग (मग्ग) की प्राप्ति से आरंभ (पत्थाय) होने पर, परिणामस्वरूप (अभिनिब्बत्तिसति) कोई मंथन (परिभत्तो) और मृत्यु (चुट) नहीं होगी। वैकल्पिक रूप से, “अपराद्धो” इस प्रकार पढ़ा जाता है; इसका अर्थ है: अच्छी तरह से काटने की अवस्था के कारण, सफल (समिद्दि्त) होने के कारण (अपगत) दूर हो गया था; यही अर्थ है। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) का प्रकटीकरण (ब्याकरण) था।

थेरा मेण्डसिरा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(79):रक्खिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (79) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
79. रक्खिता
बुद्ध युग में देवदहा नगर में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम रक्खिता (संरक्षित) रखा गया। वे उन पाँच सौ युवा सरदारों में से एक थे, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया था और जिन्हें शाक्य और कोलियन राजाओं ने बुद्ध के साथ अंगरक्षक के रूप में भेजा था। बुद्ध ने इन युवकों को कुणालजातक [1] के उपदेश से सोतापना (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त कराई थी - यह उपदेश कामुकता के खतरे से आगाह करता है। इस उपदेश को अपने अभ्यासों से जोड़कर, उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, अपने स्वयं के विकारों के त्याग पर चिंतन करते हुए, [2] उन्होंने अपने उस श्लोक का उच्चारण किया जिसमें उन्होंने अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार किया।

[79] सब्बो रागो पहिनो में सब्बो दोसो समुहातो॥
सब्बो मे विगतो मोहो सतीभूतोस्मि निब्बुतोऽ ति॥ ॥

[79] मैंने सभी वासनाओं को त्याग दिया है, और सभी
दुर्भावनाओं को हमेशा के लिए जड़ से उखाड़ फेंका है;
भ्रम पूरी तरह से मुझसे दूर हो गया है;
अब मैं शांत हूँ। भीतर की सारी आग बुझ गई है।

[1] जातक, खंड v, संख्या 536. प्रस्तावना में एस्कॉर्ट देने का वर्णन है।

[2] किलेसा। ऊपर देखें, LXXII., n. 1.

1.8-9 [79] रक्खिताथेरा के श्लोक पर टीका
सब्बो रागो पाहीनो मे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा रक्खिता का है। इसका उद्‌गम क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय में एक पारिवारिक घर में हुआ था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने गुरु से सत्य (धम्म) का उपदेश सुना, श्रद्धावान हुए और उपदेश के ज्ञान के संबंध में स्तुति की। गुरु ने उनकी श्रद्धा (चित्तपसाद) को देखकर भविष्यवाणी की: "यह एक लाख युगों (कप्पा) बाद आत्म-जागृत बुद्ध गौतम के शिष्य रद्धिता बनेंगे।" उस भविष्यवाणी को सुनकर, वे और भी अधिक धार्मिक हो गए, समय-समय पर पुण्य कर्म करते रहे (अपरापरं), और देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए, देवदहा जिले के शाक्य वंश में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम रक्षित था। वे उन पाँच सौ राजकुमारों में से एक थे जिन्हें शाक्य और कोलियन राजाओं ने भगवान बुद्ध के अनुचर दल में शामिल करने के उद्देश्य से भेजा था और वे भिक्षु बन गए थे। परन्तु वे राजराज, पश्चात्ताप के कारण भिक्षु न बनने के कारण, पश्चाताप से ग्रस्त (उक्कन्ठा) हो गए, जब गुरु उन्हें कुनाला झील के तट पर ले गए, जहाँ उन्हें कुनाला की जन्म कथा (जातक) के उपदेश द्वारा स्त्रियों के दोषों का स्पष्टीकरण देकर इंद्रिय सुखों के अभावों को स्पष्ट रूप से समझाया गया (पकसेत्वा), और उन्हें मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) करने का कार्य सौंपा गया। तब, इस व्यक्ति ने भी मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) का अनुसरण करते हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"पदुमुत्तरा (बुद्ध) नामक विजेता,"

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, बैल

पुरुषों के बीच, मार्ग सिखाया

असंख्य लोगों के लिए अमरता (अमता)

पुरुषों के।

उनके वचन सुनकर, महान

(आसभिं) संदेश (वाचं) कहा गया

(उदीरितं), मैंने अपने हाथों को ऊपर उठाया

हाथ और फिर एकबिंदु वाले हो गए

(एकाग्गो)।

जिस प्रकार सागर मार्ग है

समुद्र, नेरु पर्वत (सिलुक्कायो) है

पहाड़ियों में सबसे ऊँची (पावतो); इसी प्रकार

यहां तक कि, जो लोग आगे बढ़ते हैं (वट्टारे)

उनके मन के प्रभाव को मत अपनाओ

पास में एक छोटे अंश (कला) में जाओ

बुद्ध का ज्ञान।

विधि बनाकर

सत्य (धम्म) पर कायम रहना, बुद्ध,

दयालु ऋषि बीच में बैठ गए

भिक्षुओं के पादरी वर्ग ने ये बातें कहीं

छंद।

जिसके पास ज्ञान है (ñānaṃ)

बुद्ध में घोषित (पकित्तेसी),

विश्व नेता नहीं जाएंगे

एक दुष्ट अस्तित्व (दुग्गति)

एक लाख युग (कप्पा)

उसकी सारी दुष्टता जलकर राख हो जाने के बाद,

एकाग्रचित्त (ekaggo) और अच्छी तरह से हो जाओ

रचित (सुसमाहितो), जिसे इस नाम से जाना जाता है

शोभिता के नाम पर, वह बनेगा

गुरु का शिष्य।

पचास हजार युगों (कप्पा) में,

वहाँ सात शासक हो गए

उच्च प्रतिष्ठा (यसुग्गता), बहुत

मजबूत किस्म के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "सब्बो रागो" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपनी ही त्यागी हुई दुष्टता (किलेसा) पर चिंतन किया।

79. वहाँ, सब्बो रागो का अर्थ है: सभी प्रकार की कामवासनाएँ, जिन्हें इंद्रिय सुखों (कामराग) आदि के लिए वर्गीकृत किया गया है। पाहीनो का अर्थ है: त्याग (पहाना) की श्रेणी में अच्छी तरह से अलग किए गए (समुच्छेद) के कारण त्यागे गए। सब्बो दोसो का अर्थ है: सभी प्रकार की दुर्भावना (ब्यापादो), जो द्वेष आदि के कारण उत्पन्न होने वाली अवस्था (भाव) के कारण अनेक तरीकों से नष्ट हो गई। समुहतो का अर्थ है: सही मार्ग (मार्ग) के माध्यम से अच्छी तरह से समाप्त (समुग्घातितो)। सब्बों मे विगतो मोहो का अर्थ इस प्रकार है: — आठ प्रकार के मोहों (मोह) के चकनाचूर होने के कारण, जो भेद (भेद) के अनुसार विषय-दर-विषय (वत्थु) इस प्रकार वर्गीकृत किए गए हैं: “दुक्खे अनआनं (दु:ख (दुक्खा) में कोई ज्ञान नहीं) और जो अनेक विभाजनों (विभाग) से मिलकर बने हैं, आत्म-दुराचार (किलेसा) के आधार का विस्तृत वर्णन (विभाग) करके, सही मार्ग के माध्यम से, मेरा मोह दूर हो गया। सीतिभूतो' स्मि निब्बुतो का अर्थ है: दुष्टता की प्रज्वलित ऊष्मा (दाराथापरिलाह) के अभाव के कारण शीतल अवस्था (सीतिव्हावं) प्राप्त हो गई, जिससे कोई अवशेष (अनवसेसा) नहीं बचा, और उचित शांति (पतिपसद्दता) की स्थिति के कारण, यहाँ तक कि सही (समददेव) भी। इस प्रकार मूल (या बुनियादी) दुराचार (मूलकिलेसा) का त्याग करके एकाकी अवस्था (एकट्ठता) के कारण आत्म-दुराचार (संकिलेसा) हुआ; इसके बाद भी, दुराचार की आग पूरी तरह बुझ जाने (परिनिब्बान) के कारण मैं सर्वांगीण शांति (परिनिब्बुतो) प्राप्त कर गया; इस प्रकार, उसने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

थेरा रक्खिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(80):उग्गा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (80) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
80. उगा
बुद्ध युग में कोसल के उग्गा नगर में एक पार्षद के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम उग्गा रखा गया। जब वे परिपक्व हुए, तो वे उस नगर में आए भगवान (बुद्ध) के प्रवचन सुनने गए, उन पर विश्वास किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अंततः अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने पुनर्जन्म के चक्र को त्यागने का निश्चय किया और इस श्लोक में अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार किया:

[80] याअ मया पकातं कम्माअ अप्पṃ वा यदि वा बहुṃ॥
सब्बमेतं परिक्खिनं नत्थि दानि पुनब्भावोऽ ति.॥ ॥

[80] समस्त कर्म मेरे कारण ही हुआ और जन्म हुआ,
चाहे वह महान शक्ति का हो या छोटी,
वह पूर्णतः चकनाचूर होकर समाप्त हो गया।
अब उसका कोई पुनर्जन्म नहीं है।

1.8-10 [80] उग्गथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यं मया पकातं कम्मं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उगा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, वे आज से इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, भगवान सिखि के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने एक दिन भगवान सिखि के दर्शन किए, श्रद्धा से भर गए और उन्हें केतका पुष्प अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया और बार-बार जन्म लेते हुए, उत्तम जन्मों (सुगति) में कभी-कभी (अपरापरं)

भटकते हुए, कोसल राज्य के उगा नामक बाजार नगर (निगमा) में एक धनाढ्य के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का उदय हुआ। उनका नाम भी उगा ही था। ज्ञान प्राप्ति के बाद, वे उस मठ में गए जहाँ भगवान बुद्ध उस बाजार नगर के भद्दाराम (अच्छे मठ) में निवास कर रहे थे, उन्होंने सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

"विनता नदी के किनारे पर,

लहरदार पत्तियों वाला अंजीर का पेड़ (पिलक्खु)

फल मिला। उसकी तलाश में निकल पड़ा।

पेड़ के पास, संयोगवश मेरी मुलाकात नेता से हो गई।

दुनिया के।

केतका के फूलों को खिलते हुए देखकर,

फिर मैंने उन्हें टहनियों से काट दिया।

और विनम्रतापूर्वक उन्हें बुद्ध सिख धर्म को अर्पित कर दिया।

दुनिया का रिश्तेदार।

हे महान ऋषि, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

(अभिपूजेमि) वह ज्ञान (ज्ञान) द्वारा

जिससे आपने अमरता प्राप्त कर ली है

(अमता) मृत्यु रहित मार्ग (अक्कुता)।

आपके ज्ञान को सम्मान देने के बाद-

मैंने लहरों से ढकी पत्तियों वाली चट्टान को देखा

अंजीर के फल। मैंने उचित लाभ प्राप्त किया है, कि

ज्ञान (पञ्ञा); यही फलदायी परिणाम है।

ज्ञान का सम्मान करने का (पूजा)

तेरह युग (कप्पा) पहले, आज से

बारह अत्यंत शक्तिशाली विश्व-

राजा, फलुग्गता (ऊँचे फल),

सात प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को उजागर करने के लिए एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने स्वयं के पुनर्जन्मों के चक्र (वट्ट) के विनाश (उपच्छेद) को प्रकाश में लाया।

80. मेरे द्वारा जो भी कर्म किया गया हो

चाहे वह अल्प हो या अधिक, जो कुछ भी था

पूरी तरह से नष्ट हो गया है।

अब कोई नया अस्तित्व नहीं है।

वहाँ, yaṃ mayā pakataṃ kammaṃ का अर्थ है: मेरे द्वारा कर्म के तीन द्वारों से, उत्पत्ति के छह द्वारों (द्वार) से, आठ अनियंत्रित द्वारों (असंयम) से और आठ नियंत्रित द्वारों (संयम) से, अनेक प्रकार से (पकारा), अर्थात् बुरे कर्मों आदि से, साथ ही दान-पुण्य आदि से, उन पुनर्जन्मों (संसार) के चक्रों में जिनका आरंभ अज्ञात है; किए गए, संचित (उपचित) और उत्पन्न (अभिनिब्बत्तित) प्रतिशोधात्मक कर्म। अप्पं वा यदि वा बहुं का अर्थ है: या तो यह अल्प (अप्पा) है, क्योंकि आधारभूत (वत्थु), संकल्प (चेतना), आग्रह (पयोग), भ्रष्टता (किलेसा) आदि अवस्थाओं की दुर्बलता (दुब्बला) है, या फिर यह अधिक (बहुं) है, क्योंकि इनमें बल (बलव) है और ये निरंतर (अभिन्ह) प्रचलन में हैं। सब्बमेतं परिक्खीनं का अर्थ है: यह सारा कर्म भी पूर्णतः नष्ट (परिक्खय) हो गया है, क्योंकि इसने कर्मों के विनाशक, प्रमुख मार्ग (मग्ग) को प्राप्त कर लिया है। वास्तव में, दुराचार (किलेसा) के चक्र (वट्ट) का त्याग (पाहन) करने से, केवल प्रतिफल (विपाक) के चक्र (वट्ट) का ही त्याग होता है। इसी कारण उन्होंने कहा: “नत्थिदानि पुनब्बवो”, जिसका अर्थ है: मेरे लिए भविष्य में कोई नया जन्म नहीं है जिसमें पुनर्जन्म लेना हो; यही “सब्बमनेतं” का अर्थ है; यही पाठ (पाठो) भी है, इसका अर्थ यह सब भी है; यही शब्दों का विभाजन (पदविभाग) है।

थेरा उगा के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो गई है।

आठवें अध्याय की टीका पूरी हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(81):समितिगुट्टा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (81) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
81. समितिगुट्टा
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम समितिगुट्टा रखा गया। [1] भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुनकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और पूर्ण पवित्र आचरण प्राप्त किया। पिछले जन्म के कर्मों के फलस्वरूप उन्हें कुष्ठ रोग हो गया और उनके अंग धीरे-धीरे क्षीण होने लगे। वे आश्रम में रहने लगे। [2] एक दिन धर्म के सेनापति (धम्म) ने बीमार भिक्षुओं का हालचाल जानने के लिए दौरा किया। समितिगुट्टा को देखकर उन्होंने उन्हें भाव-ध्यान का अभ्यास कराया और कहा, 'मेरे मित्र, जहाँ तक पंच तत्वों की प्रक्रिया का संबंध है, सारा दुख भाव से संबंधित है। परन्तु यदि केवल तत्व ही अनुपस्थित हों, तो दुख भी अनुपस्थित

है।' ऐसा कहकर वे आगे बढ़ गए; परन्तु इस पाठ से प्रेरित होकर रोगी ने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और षष्ठम अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) को प्राप्त किया। तब उसे पिछले जन्मों के उन बुरे कर्मों की याद आई, जिनके कारण वह अब रोगग्रस्त हो गया था। और यह बताते हुए कि अब सब कुछ समाप्त हो चुका है, उसने यह श्लोक कहा:

[81] यं मया पकातं पापां पुब्बे अणनासु जतिसु॥
इधेव तं वेदनीयं वत्थु अण्णां न विज्जति' ति.॥ ॥

बीते दिनों में, पिछले जन्मों में मेरे द्वारा जो भी बुराई की गई थी , ठीक इसी क्षण,
उसी के कारण मैं लेटा हुआ हूँ और बहुत कष्ट भोग रहा हूँ -
लेकिन दुख का कोई अन्य कारण अब मौजूद नहीं है!

[1] सामंजस्य या संघ द्वारा संरक्षित।'

[2] उन्हें मौन बुद्ध के बारे में यह कहते हुए दर्शाया गया है, 'मुझे लगता है कि यह कुष्ठ रोगग्रस्त मुंडा हुआ सिर कुछ छुपा रहा है,' और थूकते हुए; फिर, एक घुमक्कड़ के रूप में, वे एक गृहस्थ अनुयायी पर क्रोधित होकर कहते हैं, 'तुम कुष्ठ रोगी बन जाओ!' यह दिलचस्प है कि सावत्थी महाविद्यालय में एक औषधालय (गिलानाटाला) शामिल है , हालांकि यह अपेक्षित था। आगंतुक सारिपुत्त हैं। श्लोक 1054-1056 देखें ।

1.9 नौवां अध्याय

1.9-1[81] समितिगुट्टथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यं मया पकातं पापं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा समितिगुत्त का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन हुए, वे श्रद्धावान हो गए और उन्हें प्राकृतिक (जाति) चमेली (सुमन) के फूल आदरपूर्वक अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, जिस भी जन्म में उनका पुनर्जन्म हुआ, वहाँ वे अपने परिवार, सौंदर्य और परिवार की समृद्धि से अन्य प्राणियों को प्रभावित करते रहे। एक जन्म में, संयोगवश उनकी मुलाकात एक मौन बुद्ध से हुई जो भिक्षा मांगते हुए घूम रहे थे। उन्होंने थूकते हुए कहा, "मुझे लगता है कि यह मुंडा हुआ व्यक्ति कुष्ठ रोगी (कुट्ठी) है; इसीलिए यह अपने आप को उचित रूप से ढक कर घूम रहा है," और वहां से चले गए। इस कर्म के कारण, उन्हें लंबे समय तक नरक में कष्ट भोगना पड़ा और भगवान कस्सपा के समय में उनका पुनर्जन्म हुआ। परिब्बाजक के रूप में एकांतवासी दार्शनिक बनकर, उनकी मुलाकात एक ऐसे भक्त से हुई जो नैतिक उपदेशों और अच्छे आचरण (आचार) से परिपूर्ण था। वे क्रोधित हो गए और उन्हें इस प्रकार अपशब्द कहे: "तुम्हें कुष्ठ रोग हो सकता है।" स्नान घाट पर भी, उन्होंने लोगों द्वारा रखे गए बहुत से स्नान पाउडर (न्हानाचुन्न) को दूषित (दुसेति) कर दिया। उस कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म नरक में हुआ, जहाँ उन्होंने अनेक वर्षों तक कष्ट भोगे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम समितिगुत्त था। वयस्क होने पर उन्होंने गुरु के धर्म (धम्म) का उपदेश सुना, उचित श्रद्धा से पवित्र हुए, भिक्षु बन गए और अत्यंत शुद्ध नैतिक आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत किया। अपने पूर्व कर्म के फलस्वरूप उन्हें कुष्ठ रोग हो गया। इस कारण उनके शरीर के जो अंग क्षत-विक्षत हो गए थे, उनसे कुष्ठ रोग का द्रव रिसने लगा। उन्हें क्षुद्रों के कक्ष में रहना पड़ा। फिर एक दिन, धर्म के सेनापति बीमारों की खोज में निकले और इधर-उधर रोगियों से पूछते हुए उनकी मुलाकात उस भिक्षु से हुई, जिनसे थेरा ने वेदना पर चिंतन से संबंधित मानसिक अभ्यास के बारे में कहा था: "मित्र! जब तक इंद्रियों के समूह (खन्ध) मौजूद हैं, तब तक केवल पीड़ादायक संवेदना होती है। लेकिन जब इंद्रियों के समूह मौजूद नहीं होते, तब कोई पीड़ा नहीं होती।" यह कहकर वे चले गए। उन्होंने थेरा के निर्देशों का पालन किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा/आध्यात्मिक शक्ति) का दर्शन किया। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

"जब विपस्सी का जन्म हुआ, तब यह घटना घटी।"

प्रचुर (विपुलो) प्रकाश (आलोक)।

पृथ्वी अपने महासागरों और पहाड़ियों के साथ

भूकंप आया।

पैगंबरों (नेमित्त) ने भविष्यवाणी की (वियाकंसु:—

तब संसार में बुद्ध प्रकट होंगे।

वह सभी जीवित प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ भी है।

यह असंख्य लोगों को ऊपर उठाएगा।

भविष्यवक्ताओं की बातें सुनकर

उन्होंने कहा था कि मैंने श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई थी।

उनके जन्म के सम्मान में। ऐसा करना

सम्मान को इसके समान मानना

बुद्ध के सम्मान में श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट

जन्म का अस्तित्व ही नहीं था।

अच्छा प्रदर्शन करने के बाद

मैंने अपने मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न किया।

श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने के बाद

बुद्ध के जन्म के सम्मान में, मैंने प्राण त्याग दिए।

वहाँ।

मैंने सभी जीवित प्राणियों से अधिक आनंद लिया, जो-

वे जब भी और जैसे भी थे, दिव्य या मानवीय थे।

मैं उनकी स्थिति पर आया; यही वह स्थिति है

मेरी श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का फलदायी परिणाम-

बुद्ध के जन्म के सम्मान में।

मेरी सेवा में दूध पिलाने वाली दाइयाँ थीं;

अनुगा ने मेरी इच्छा और प्रसन्नता का अनुसरण किया।

(चित्तवसा)। उन्होंने साहस किया (सक्कोंति)।

मुझे क्रोधित मत करो (कोपेटुम्); यह है

मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम

के सम्मान में श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट

(बुद्ध का) जन्म।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, कि मैंने तब श्रद्धापूर्वक

बुद्ध के जन्म के सम्मान में अर्पित की जाने वाली भेंट;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध के सम्मान में अर्पित की जाने वाली श्रद्धापूर्ण भेंट

जन्म।

सुपारीकारिया नाम के चौंतीस शासकों में से

पुरुष, बहुत शक्तिशाली विश्व-राजा (आए)

तीसरे युग (कप्पा) में होने से

अब।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

यद्यपि छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन जाने पर, उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में किए गए उस पाप को याद किया, जो उन्हें वर्तमान में (एतरही) होने वाले रोग (अनुभुय्या) के रूप में प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने द्वारा त्यागे गए दुराचार (किलेसा) पर चिंतन करते हुए एक श्लोक कहा, ताकि वे अब हर तरह से अपने द्वारा त्यागे गए दुराचार की स्थिति को प्रकट कर सकें।

81. यहाँ भी, वह बुरा कर्म जो

यह काम मैंने किया था, पहले मेरे द्वारा।

अन्य पुनर्जन्म, बोधगम्य है

(वेदनीयं); अस्तित्व में नहीं है

एक और वस्तु (वत्थु)।

थेर, पापं का अर्थ है अगुण कर्म (अकुसलं कम्मं)। वास्तव में, पापमय (लामक) महत्व (अत्थ) के कारण इसे पाप कहा जाता है। पुब्बे का अर्थ है; पूर्व में, पहले। अञ्ञासु जातिसु का अर्थ है: इस जन्म के अलावा अन्य जन्म; दूसरों के जन्मों (अत्तभाव, शरीरों) में। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है। --- भले ही इस जन्म (अत्तभाव) में मेरे द्वारा किए गए किसी भी बुरे कर्म जैसा कोई कर्म न हो, फिर भी अब उसका कोई फल (संभव) नहीं है। हालांकि, इस जन्म के अलावा अन्य जन्मों में जो कुछ भी किया गया है, वह मौजूद है। इध'एव तं वेदनीयं का अर्थ है: वास्तव में, यही वह प्रतिफल है जिसे महसूस किया जाना चाहिए, लेकिन इस जन्म (अत्तभाव) में भी; क्यों? वत्थु अञ्ञं न विज्जति का अर्थ है कि कोई अन्य निरंतर (पबन्धो) इंद्रिय समूह (खंड) विद्यमान नहीं है जो उस कर्म (कम्म) के लिए परिपक्वता (विपच्चन) का अवसर (ओकासा) हो। यद्यपि ये इंद्रिय समूह (खंड), सभी प्रकार से आसक्तियों (उपादान) का त्याग (पहीनत्त) कर लेने के कारण, अंतिम चेतना अवस्था (चरिमकचित्तनिरोध) के समाप्त होने के कारण, आसक्ति (अनुपादान) से मुक्त वन अग्नि (जातवेद) के समान विलीन (निरुज्जन्ति) हो जाते हैं और पुनर्मिलन (अप्पतिसंधिका) के योग्य नहीं रह जाते; इस प्रकार उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

थेरा समितिगुट्टा के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(82):कस्सापा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (82) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
82. कस्सपा
बुद्ध युग में सावत्थी में उत्तर-पश्चिमी मूल के एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ, [1] और उनका नाम कश्यप रखा गया। उनके पिता का निधन उनके बचपन में ही हो गया था और उनकी माता ने उनका पालन-पोषण किया। एक दिन जब उन्होंने जेतवन में भगवान बुद्ध का उपदेश सुना, तो वे वहीं पर परिपक्व परिस्थितियों से प्रेरित होकर प्रथम मार्ग (निर्वाण समाधि) में प्रवेश करने के लिए विवश हो गए। अपनी माता के पास जाकर उन्होंने भिक्षु दीक्षा के लिए उनसे अनुमति मांगी।

अब जब भगवान (बुद्ध) ने परिवार उत्सव के साथ वर्षा ऋतु समाप्त कर ली थी और अपने देश भ्रमण पर जा रहे थे, तो कश्यप उनके साथ जाने के लिए उत्सुक थे। सबसे पहले वे अपनी माता से विदा लेने गए। उनकी माता ने उन्हें यह उपदेश देकर जाने दिया:

[82] येन येन सुभिक्खानि सिवानि अभयानि च॥
तेन पुत्तका गच्छसु मा सोकापहातो भव' ति.॥॥

[82] जहाँ भीख आसानी से मिल जाए,
जहाँ भी सुरक्षित और खतरे से मुक्त हो, वहाँ
जाओ, मेरे लड़के; चिंता से अपना जीवन अस्त-व्यस्त मत करो।

तब थेरा ने सोचा: 'मेरी माता चाहती हैं कि मैं ऐसी जगह जाऊं जहां मैं चिंताओं से मुक्त हो सकूं। तो चलो, मेरे लिए यही उचित है कि मैं पूरी तरह से चिंताओं से मुक्त स्थान प्राप्त करूं।' और प्रयास करते हुए उन्होंने अंतर्दृष्टि स्थापित की और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इस पर, चूंकि उनकी माता के शब्द ही उन्हें अरहंतत्व प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते थे, उन्होंने उसी श्लोक को दोहराया।

[1] उडिच्च-ब्राह्मणस्स। सी एफ जाट., आई. 324; मिलिंडा, ii. 45, एन. 1.

1.9-2 [82] कस्सपट्टेरा के श्लोक पर टिप्पणी
येन येन सुभिक्खानि से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कस्सपा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और इन्होंने तीनों वेदों के साथ-साथ अन्य ब्राह्मण विद्याओं में भी पारंगत हो गए। एक दिन संयोगवश इन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन हुए, ये श्रद्धा से भर गए और इन्हें चमेली (सुमन) के फूल अर्पित किए। ऐसा करते हुए, उन्होंने मुट्ठी भर फूल भगवान बुद्ध के चारों ओर और ऊपर बिखेर दिए। बुद्ध की शक्ति से, फूल सात दिनों तक पुष्प-आसन के रूप में बने रहे। इस चमत्कार को देखकर वे और भी अधिक श्रद्धा से भर गए। समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे एक लाख युगों (कप्पा) तक अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, परन्तु उत्तम अस्तित्व (सुगति) में रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे उत्तर-पश्चिमी मूल (उदिच्चा) के एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में सावत्थी में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम कस्सपा था। जब वे छोटे ही थे, तब उनके पिता का देहांत हो गया। उनकी माता ने उनका पालन-पोषण किया। एक दिन वे जेतवन पहुँचे, वहाँ उन्होंने भगवान बुद्ध के सत्य (धम्म) के उपदेश सुने और बुद्धि से संपन्न होने के कारण वे उसी स्थान पर सोतापन्न (धारा-प्रवर्तक) बन गए। वह अपनी माता के समक्ष गया, उनकी स्वीकृति से भिक्षु बन गया और जब गुरु ने उपवास समाप्त होने के बाद क्षमादान समारोह (पवारेत्वा) आयोजित करके विभिन्न क्षेत्रों के भ्रमण पर प्रस्थान किया, तो वह भी गुरु के साथ जाने की इच्छा से अपनी माता के समक्ष अनुमति मांगने गया। माता ने उसे जाने की अनुमति देते हुए उसे उपदेशात्मक श्लोक सुनाया।

82. हे पुत्र! तुम्हें वहाँ जाना चाहिए

जहां कहीं भीख-भोजन की भीख मांगी जाती है

आसान, सौभाग्यशाली (शिव) और

सुरक्षित (अभय)। पीड़ित न हों।

(पहता) चिंता (सोका) के साथ।

वहाँ, येना येना का अर्थ है कहाँ और कहाँ। यह शब्दार्थ वास्तव में स्थानवाचक (भूमत्थे) है; दिशा के जिस भी भाग में; यही अर्थ है। सुभिक्खानि का अर्थ है: प्रचुर मात्रा में भिक्षा-भोजन (पिंडानि) जो आसानी से उपलब्ध हो; शिवानि का अर्थ है सुरक्षित (खेमा) स्वस्थ (अरोग) स्थान। अभयानि का अर्थ है: ऐसे स्थान जो लुटेरों के खतरे आदि से मुक्त हों, जबकि रोग, आपदा और अकाल जैसी विपत्तियों के लिए दो शब्द एक ही हैं, अर्थात्: "सुभिक्खानि (आसानी से भीख में प्राप्त होने वाला भोजन), शिवानि (भाग्यशाली भोजन)।" तेना का अर्थ है: वहाँ; दिशा के उस और उस भाग में; यही अर्थ है। पुत्तक का अर्थ है: करुणा से प्रेरित होकर उसने उसे इस प्रकार संबोधित किया। मा का अर्थ निषेध के अर्थ में एक अविकारी कण (निपात) है। सोकापहतो का अर्थ है: उक्त गुणों से रहित राज्यों में जाकर, भव का अर्थ है; अकाल आदि जैसे खतरों से उत्पन्न चिंता से आप पीड़ित न हों; यही अर्थ है। अपनी माता की बात सुनकर थेरा ऊर्जावान (उस्साहजातो) हो गए और मन ही मन कहने लगे, “मेरी माता चाहती हैं (आसीसति) कि मैं चिंता मुक्त (सोकरहित) स्थानों पर जाऊं; आओ! मेरे लिए उस स्थान पर पहुंचना उचित है जहां चिंता का अभाव हो, बल्कि वह सर्वथा (अचन्तं) हो।” उन्होंने स्वयं को आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में लगा दिया और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—
-

“मंत्रों का पाठ करने वाला और उन्हें याद करने वाला

मैं, जो तीनों में निपुण था

वेदों के अनुसार, मैंने स्वयं को खुले में खड़ा रखा।

हवा चल रही थी और मैंने दुनिया के नेता को देखा,

महान ऋषि, शेर के समान

जंगल में घूमना, जैसा कि

टाइगर किंग कांपने से मुक्त, जैसे

मारंग प्रजाति के हाथी को

तीन स्थानों पर गड्ढा फट गया

(तिधापभिन्न).

फूलों को इकट्ठा करने के बाद

सेरेयाका पेड़, मैंने उन्हें ऊपर फेंक दिया

आकाश। उन्होंने चारों ओर से घेर लिया।

बुद्ध की शक्ति द्वारा आदर।

महान नायक, सर्वज्ञानी नेता

दुनिया के बारे में उन्होंने अपना संकल्प लिया;

फूलों की चादरें नीचे तक फैली हुई थीं

हर तरफ पुरुषों के बीच श्रेष्ठता का प्रतीक।

उसके बाद वह फूल आवरण (कां-

कुका), बाहर की ओर मुख करके (बहिमुख)

भीतर डंठलों के साथ (antovanta) बनाया गया

स्वयं सात लोगों के लिए एक छत (छदाना)

कुछ दिनों बाद वह गायब हो गई।

यह भी देखने के बाद अगली कड़ी।

आश्चर्य, विचित्र और रोंगटे खड़े कर देने वाला,

मेरा मन श्रद्धापूर्वक प्रसन्न था

बुद्ध, अच्छे वचन बोलने वाले (सुगता)

और विश्व के नेता।

उस मनभावन पवित्रता के कारण

मन, और उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) द्वारा प्रेरित

मुझे किसी बुराई में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं थी।

एक लाख युगों तक अस्तित्व

(कप्पा)।

पंद्रह हजार युगों (कप्पा) में,

पच्चीस अत्यंत शक्तिशाली विश्व राजा

वे वीतमला नाम से जाने जाते थे।

शुद्ध।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने उत्तर में (पच्चुदहसी) उसी श्लोक का पाठ किया और मन ही मन कहा: "मेरी माता का यह शब्द भी (मेरे) अरहंत पद की प्राप्ति के लिए प्रेरणा (अंकुसम्) बन गया था।"

थेरा कस्सपा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(83):सिहा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (83) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
83. सीहा
बुद्ध युग में मल्ल देश में एक राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम सीहा (सिंह) रखा गया। भगवान (बुद्ध) को देखकर वे उनकी ओर आकर्षित हुए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनके मन की प्रवृत्ति को भांप लिया और उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया, जिससे वे विश्वास करके भिक्षु बन गए और अभ्यास करते हुए वन में रहने लगे। उनके विचार अनेक वस्तुओं से विचलित होते रहे और वे एकाग्र नहीं हो सके। [1] भगवान (बुद्ध) ने यह देखकर उनके ऊपर खड़े होकर यह श्लोक कहा:

[83] सिहप्पामत्ता विहार रत्तीदिवामतंदितो॥
भवेहि कुसलं धम्मं जहा सिघां समुस्संयन्ति॥ ॥

[83] हे सिहा! दृढ़ संकल्पित रहो;
दिन-रात बिना विचलित हुए।

अपने ह्दय में अच्छे मार्ग (धम्म) को जागृत होने दो।
जन्म के उस ढेर सारे मैल का शीघ्र त्याग करो। [2]

इसके द्वारा थेरा ने अंतर्दृष्टि का विस्तार किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और, ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए, उन्होंने श्लोक को दोहराया।

[1] शाब्दिक रूप से, 'उसके लिए एकाग्रता नहीं आती'; सामान्य मनोवैज्ञानिक शब्द, जिसके हम अपने 'एकाग्रता' में केवल अनुमान लगा सकते हैं। तुलना करें। संकलन, पृष्ठ 237, 240 f.

[2] समुस्सायो, शाब्दिक अर्थ, 'संचय।' व्याख्या = 'व्यक्तिगत अस्तित्व से बंधे हुए जुनून।' शरीर या संपूर्ण जीवित समूह के लिए प्रयुक्त। तुलना करें बहनें, श्लोक 22।

1.9-3[83] सीताथेरा के श्लोक पर टीका
सीहाप्पमतो विहार से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सीहा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने के बाद, अठारह सौ युग (कप्पा) पहले, भगवान अथदस्सी के समय, चंदाभागा नदी के तट पर, मनुष्य के सिर वाले पक्षी (किन्नर) के गर्भ में उनका पुनर्जन्म हुआ। पुष्पों से पोषित (भक्खे) और पुष्पों में निवास करते हुए, उन्होंने संयोगवश भगवान अथदस्सी को आकाश में विचरण करते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें श्रद्धापूर्वक भेंट (पूजेतुं) अर्पित करने की इच्छा से, हाथ जोड़कर खड़े हो गए। भगवान बुद्ध ने जब उनका इरादा जान लिया (अज्जासय), तो वे आकाश से अवतरित हुए और एक वृक्ष के चरणों में पालथी मारकर बैठ गए। मनुष्य के मुख वाले पक्षी (किन्नर) ने चंदन के सार को पीसकर (गम्हंसित्वा) उन्हें चंदन की सुगंध और पुष्प अर्पित किए, उनका प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण करते रहे और मल्ल वंश में पुनर्जन्म लेकर इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम सीहा था। भगवान बुद्ध के दर्शन से वे श्रद्धावान हो गए, उनका प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनकी प्रवृत्ति को देखकर उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उन्होंने सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) में लग गए और वन में रहने लगे। उनका मन विभिन्न प्रकार के इंद्रिय-विषयों (आरम्मन) में विचरण करता रहा; उनमें एकाग्रता (एकग्ग) नहीं थी; वे अपने स्वयं के हित (अत्थ) को भी पूरा नहीं कर सके। यह देखकर गुरु आकाश में खड़े हो गए और एक श्लोक के माध्यम से उन्हें उपदेश दिया:

83. हे सीहा! तुम्हें लगन से जीवन यापन करना चाहिए।

मेहनती होने के कारण (atandito) दिन और

रात। अच्छे कर्म करो; छुटकारा पाओ

जटिल (समुस्सया) का शीघ्रता से।

श्लोक के अंत में, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में उत्तरोत्तर वृद्धि की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—--

“चंदाभागा नदी के तट पर,

फिर मैं मानव सिर वाला पक्षी बन गया।

(किन्नारा)। मैंने फूलों से अपना पेट भरा।

और वे भी फूलों के बीच रहते थे।

हे पूज्य अत्थादस्सी,

दुनिया में सबसे उम्रदराज, बैल

पुरुष लकड़ी के ऊपर (विपिना) चले गए।

हंस-संप्रभु के समान

आकाश।

'हे शुद्ध नस्ल के (आजञ्ञा) व्यक्ति!

मेरी श्रद्धा आपके साथ है! आपका मन

अच्छी तरह से शुद्ध किया गया है। आपके चेहरे का रंग

अत्यंत सुखद (पसन्ना) है;

आपकी मुखीय नियंत्रण इंद्रिय है

स्पष्ट रूप से शांत।

व्यापक रूप से बुद्धिमान (भूरिपञ्ञो),

सुमेधासो (सुमेधासो) जो अच्छी तरह से बुद्धिमान है, जो नीचे उतरा है

आकाश से, उन्होंने अपना दोहरा वस्त्र फैलाया

और वे क्रॉस-संसद में बैठ गए (उपविसि)।

टांगों वाला।

अपने साथ चिपकाकर ले जाना (विलीना)

चंदन की लकड़ी, मैं उपस्थिति में गया

विजेता; धर्मपरायण और नेक-

मैंने पूरे मन से अपनी भेंट चढ़ाई (अभिरोपयिं)

बुद्ध को।

स्वयंजागृत व्यक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

बुद्ध, जगत के सबसे वृद्ध, बैल

पुरुषों के बीच, मैंने आनंद (पामोज्जा) से जागृत किया था

मैंने उठकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके प्रस्थान किया।

दिशा।

यह अठारह सौ युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की

चंदन। मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व (दुग्गति); यही फलदायी है

बुद्ध को अर्पित की गई मेरी श्रद्धा का परिणाम।

चौदह सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब, वे तीन बहुत मजबूत थे

विश्व के राजा, जिन्हें रोहिणी के नाम से जाना जाता है।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी: :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यह श्लोक, जो उपदेश के रूप में बोला गया था, इस प्रकार प्रारंभ होता है: "सीहा'प्पमत्तो विहार।" यहाँ, सीहा का अर्थ है उस थेरा को संबोधित किया जाने वाला संबोधन (आलपना)। अप्पमत्तो विहार का अर्थ है: आपको चारों आसनों (इरियापथ) में पूर्ण ध्यान (संपजान) और सती (सती) के साथ रहना चाहिए, लापरवाही से मुक्त होकर, अन्यमनस्कता (सती-अविप्पवास) से दूर रहकर। अब, उस लगनपूर्ण निवास और उसके फल को संक्षेप में दर्शाने के लिए "रत्तिन्दिव" आदि जैसे कथन किए गए हैं। इसका अर्थ है:— रात्रि और दिन दोनों समय, आपको शांत स्वभाव, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और दिव्य सत्य के अच्छे कर्मों को विकसित (भावेहि), जागृत (उप्पादेहि) और बढ़ाना (वड्ढेहि) चाहिए, परिश्रमी (अतन्दितो) होकर, आलसी न होकर, और चार प्रकार के सही परिश्रम (सम्मप्पधान) द्वारा पूर्णतः ऊर्जावान (आरद्धवीरियो) होकर, इस प्रकार:— "चलते-फिरते (चंकम) और बैठे रहने से, उसका मन सर्वत्र शुद्ध और अवरोधों (आवरणीय) की स्थिति (धम्म) से मुक्त हो जाता है; इस प्रकार विकसित होकर, जह सीघं समुस्सयं का अर्थ है: "आपको अपने जटिल कर्मों का त्याग करना चाहिए।" (समुस्सया) सर्वप्रथम, अब शीघ्र ही, बिना विलंब किए, अपने देह-अस्तित्व (अत्तभाव) से छुटकारा पाओ (पहाना), उस कामुक इच्छा (चंदरगा) से जो इसका बंधन (पटिबद्ध) है; ऐसा करने के बाद, आप अंतिम (चरिमाक) चेतन अवस्था (चित्त) के विनाश (निरोध) द्वारा इससे पूर्णतः छुटकारा पा लेंगे। (हालांकि, अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, थेरा ने उत्तर में (पच्चुदहासि) उसी श्लोक का पाठ किया, जिसमें उन्होंने अपनी अञ्ञा (अरहंतत्व) का खुलासा किया।

थेरा सीहा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(84):नीता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (84) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक

84. नीता
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम नीत रखा गया। बड़े होकर उन्होंने सोचा, 'ये शाक्य भिक्षु बहुत भाग्यशाली हैं कि इन्हें सभी आवश्यक वस्तुएँ भली-भांति उपलब्ध हैं। भिक्षु संघ का जीवन सुखमय है।' अतः उन्होंने सुख भोगने के लिए इसमें प्रवेश किया, व्यायाम पर कम ध्यान दिया, भरपेट खाया, दिनभर व्यर्थ की बातें कीं और रातभर सोते रहे। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने उनके पूर्वज कर्मों की परिपक्वता को भांप लिया और उन्हें यह श्लोक उपदेशात्मक रूप से दिया:

[84] सब्बरत्तीm̧ [13] सुपित्वना संगानिके रतो,॥
कुदस्सु1 नाम दुम्मेधो दुक्खासन्तां करिस्सति' ति.॥॥

[84] तुम सारी रात सोने में लीन रहते हो,
जो दिन को बकबक करने वाली भीड़ के बीच बिताना पसंद करते हो: -
क्या तुम कभी इस तरह,
बेचारे मूर्ख, इसका अंत करोगे? [1]

भगवान (बुद्ध) के वचनों से विचलित होकर, उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित करने का निश्चय किया और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। तब उन्होंने इस श्लोक को दोहराते हुए अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] दुम्मेधा दुक्खस्स'अंतां करिस्सिसति पि पालि। साइ.

1.9-4 [84] नीतत्थर के श्लोक पर टीका
सब्बरत्तिं सुपित्वाना से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नीत का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि यह श्लोक भगवान पद्ममुत्तरा के समय के एक ब्राह्मण सुनंदा का था। उन्होंने सैकड़ों ब्राह्मणों को मंत्रों का पाठ सिखाते हुए सोम अर्पण (वाजपेय्य) नामक एक पवित्र यज्ञ (यज्ञं यजी) किया। भगवान बुद्ध ने उस ब्राह्मण के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए यज्ञ स्थल पर जाकर आकाश में चक्कर लगाए। गुरु के दर्शन करते ही ब्राह्मण का मन श्रद्धा से भर गया। उन्होंने अपने शिष्यों से फूल मंगवाए और उन्हें आकाश में प्रक्षेपित करके गुरु को आदरपूर्वक अर्पित किया। बुद्ध की शक्ति से वह स्थान और पूरा शहर फूलों की पंखुड़ियों की छत (पुप्पपता) जैसी किसी चीज से ढक गया। भीड़ ने गुरु के प्रति अपार उत्साह और आनंद का अनुभव किया। इसी पुण्य कर्म के फलस्वरूप ब्राह्मण सुनंदा ने जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच जीवन व्यतीत किया और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक ब्राह्मण के पुत्र बने। उनका नाम नीत था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर उन्होंने मन ही मन कहा, "ये शाक्यवंशी भिक्षु सुखी और सहज आचरण वाले हैं; उत्तम भोजन करके वे वायु से सुरक्षित मठों में रहते हैं; इनके बीच भिक्षु बनकर सुखमय जीवन व्यतीत किया जा सकता है।" भिक्षु बनते ही, गुरु की उपस्थिति में सुख (सुखाभिकासा) की लालसा के कारण, उन्होंने मानसिक साधना (कम्मट्ठान) में लग गए, कुछ दिनों तक उसमें लीन रहे, फिर उसे त्याग दिया, अपनी इच्छा अनुसार भरपेट भोजन (उदरावादेहक) किया, दिनभर व्यर्थों (तिराच्चानकथा) में मग्न रहे और समाज में आनंद लेते रहे; रात्रि में भी आलस्य (थिना) और ऊंघ (मिद्धा) से ग्रस्त होकर वे पूरी रात सोते रहे। उनके सर्वांगीण व्यवहार को देखकर, गुरु ने उन्हें उपदेश देते हुए एक श्लोक कहा:

84. "पूरी रात सोने के बाद और

समाज में आनंदित होने के कारण

दिन के समय, कब (कुडस्सु) एक

मूर्ख व्यक्ति दुख का अंत करता है

(दुख)?

वहाँ, सब्बरत्तिं का अर्थ है पूरी रात। सुपित्वाना का अर्थ है सोना; पूरी रात के तीनों पहरों में बिना जागने (अनुयुंजित्वा) का अभ्यास किए सो जाना, जैसा कि कहा गया है: — "वह रात के पहले पहर में बैठकर और इधर-उधर चलकर अपने मन को सभी बाधाओं (आवरणीय) से पूरी तरह शुद्ध करता है," इत्यादि; यही अर्थ है। दिवा का अर्थ है: दिन में; दिन का पूरा भाग; यही अर्थ है। संगनिकेहि का अर्थ है: शारीरिक शक्ति से भरपूर व्यक्तियों के साथ बैठकर, जो विचित्र कहानियाँ सुनाते हैं, संगनिक (समाज) का निर्माण होता है; रतो का अर्थ

है: उसमें विशेष रूप से आनंदित होना; वहाँ की अविभाज्य इच्छा को "संगनिके रतो (समाज में आनंदित होना)" कहा गया है। इसका एक पाठ "सहगनिकरतो" भी है। कुदस्सु नाम का अर्थ है; कब, अर्थात् (कुदा नाम)। अस्सु का अर्थ है: केवल एक अविकारी कण (निपात); किस समय, अर्थात्; यही अर्थ है। दुम्मेधो का अर्थ है मूर्ख (निप्पञ्ञो)। दुक्खस का अर्थ है बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों का कष्ट (वट्ट)। अंतं का अर्थ है: सर्वांगीण अंत। कब, अर्थात्, वह अपरिपक्वता (अनुप्पाद) को पूर्णतः (अक्कन्तं) समाप्त करेगा; इस प्रकार दुःख (दुक्खा) का अंत होना संभव नहीं है; यही अर्थ है। "दुम्मेधा दुक्खसन्तं करिस्सति (हे मूर्ख! क्या तुम दुःख (दुक्खा) का अंत करोगे?"; यही पाठ है।

जब गुरु ने इस श्लोक का इस प्रकार उच्चारण किया, तो थेरा को पश्चाताप हुआ, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का मार्ग अपनाया और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—-

"जादू-टोने में माहिर एक ब्राह्मण"

(मंतपारागु), एक समर्पित पाठक

उदारता (याकायोगो) के लिए, जिसे जाना जाता है

सुनंदा के नाम ने पवित्र स्थान को विख्यात कर दिया।

वाजपेय्य का बलिदान।

विश्व-ज्ञाता (लोकविदु) पदुमुत्तर (बुद्ध),

सबसे दयालु संत (इसी),

भीड़ के प्रति करुणा से भरा हुआ, चला

फिर आकाश में इधर-उधर।

आत्मजागृत व्यक्ति इधर-उधर चलता रहा

बुद्ध, सर्वज्ञ, नेता

संसार, इच्छा रहित (निरुपधि)

व्यक्तित्व असीम में व्याप्त था

उनके साथ असंख्य जीव-जंतु

प्रिय दयालुपना।

फूलों को डंठल से तोड़कर,

मंत्रों (मंत्रों) में विशेषज्ञ ब्राह्मण

उन्होंने अपने सभी छात्रों को एक साथ लाया और बनाया

उन्हें फूल फेंकते हुए।

जहां तक शहर का इलाका था, वहां

फिर वह फूलों की छत बन गई, जो

बुद्ध के कारण सात दिनों तक रुके रहे।

शक्ति।

उसी उज्ज्वल आधार के कारण

(सुक्कमूला) उसने समृद्धि का आनंद लिया;

सभी विकारों को अच्छी तरह से जान लें

(आसव) वह समुद्र पार चला गया था

संसार में आसक्ति।

ग्यारह सौ युग (कप्पा) पहले,

वहाँ पैंतीस बहुत शक्तिशाली विश्व-

योद्धा वंश (खत्तिया) के राजा; वे

वे अंबारंसा नाम से जाने जाते थे।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने उत्तर में उसी श्लोक का पाठ किया, जिसमें उनकी अञ्ञा (प्राप्ति) का खुलासा किया गया था।

थेरा नीता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(85): सुनगा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (85) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
85. सुनागा

बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म नालक गाँव में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ और वे सारिपुत्त के संसार त्यागने (भिक्षुत्व ग्रहण करने) से पहले उनके मित्र थे। धर्मप्रधान (धम्म) के उपदेश सुनकर, वे भी अंतर्दृष्टि के तल पर स्थापित होकर संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करने) चले गए। [1] शीघ्र ही उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद, भिक्षुओं को शिक्षा देते हुए, उन्होंने इस श्लोक में ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[85] चित्तनिमित्तस्स कोविदो पविवेकरसां विजानिया,॥
झायं निपको पतिस्सतो अधिगच्छेया सुखं निरामिसंति॥॥

[85] कल्पना की गई छवि को समझने में विशेषज्ञ, [2] अनासक्त जीवन के रहस्य में पारंगत,
ध्यान में अभ्यासी, मन में स्पष्ट: -
वह शुद्ध परमानंद को प्राप्त कर सकता है।

[1] दस्सानभूमियां पतिथितो, सामान्य वाक्यांशों से एक विचलन।

[2] ज्ञान के आत्म-सम्मोहन में। संकलन देखें, पृष्ठ 54।

1.9-5 [85] सुनागत्थेरा के श्लोक पर टीका
चित्तनिमित्तस्स कोविदो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुनागा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और आज से इकत्तीस युग (कप्पा) पहले भगवान सिख के समय में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों में निपुणता प्राप्त की और एक आश्रम में रहकर तीन हजार ब्राह्मणों को मंत्रों का पाठ सिखाया। फिर एक दिन जब वे गुरु के दर्शन का चिंतन करते हुए हस्तरेखा शास्त्र (लक्खना) का अभ्यास कर रहे थे, तब उनके भीतर बुद्ध ज्ञान (ज्ञान) से संबंधित अत्यंत सुखद श्रद्धा (पासादो) उत्पन्न हुई, और उन्होंने कहा: "इन लक्षणों (लक्खना) से युक्त होकर, वे बुद्ध बनेंगे, जो अनंत ज्ञान के साथ अनंत विजेता होंगे।" उस श्रद्धा के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ, और वे नालक गाँव में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में बार-बार जन्म लेते रहे, तभी बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम सुनागा था। धर्म के सेनापति के गृहस्थ सहयोगी होने के नाते, वे थेरा के समक्ष गए, धर्म को सुना, अंतर्दृष्टि (दस्सनाभूमि) के आधार पर स्थापित हुए, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के मार्ग पर चले और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः, ऐसा हुआ है। अपदान में कहा गया है:—-

"हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर, एक स्थान था।

वासभा नामक एक पहाड़ी, जो तलहटी में स्थित है।

जिसके अंतर्गत एक आश्रम बनाया गया था।

एक ब्राह्मण के रूप में, मैंने तीन लोगों को शिक्षा दी।

मैंने जिन हजार विद्यार्थियों को एक साथ लाया

और एक तरफ बैठ गया।

एक तरफ बैठ जाने के बाद, मैं,

मंत्रों में निपुण ब्राह्मण

इससे मेरा मन धार्मिक रूप से प्रसन्न हो गया जब मैंने ऐसा किया

मेरे ज्ञान (वेद) की खोज के संबंध में

बुद्ध, अपने ज्ञान (ज्ञान) में।

मेरे मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न करके

वहाँ मैं एक पत्ते पर पालथी मारकर बैठ गया।

वह जगह फैल गई, जहां मेरी मृत्यु हुई।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, कि मैंने तब प्रति-

मुझे कुछ याद नहीं है।

बुरा अस्तित्व; यही फलदायी है

ज्ञान की प्राप्ति का परिणाम।

सत्ताईस युग (कप्पा) पहले, वहाँ

वह राजा सिरिधारा थे, जो विश्व के एक अत्यंत शक्तिशाली शासक थे।

सात रत्नों से सुशोभित राजा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का पाठ किया, जिसमें उन्होंने अपनी अज्ञा (प्राप्ति) को प्रकट किया, और भिक्षुओं को सत्य (धम्म) का उपदेश देने का संकेत दिया।

85. जो व्यक्ति विशिष्ट गुणों में चतुर होता है

मन के संकेत, आने के बाद

एकांत के स्वाद को स्पष्ट रूप से जानने के लिए,

ध्यानमग्न होना (jhāyaṃ), परिपक्व होना (nipako)

और उचित रूप से सचेत (patissato), प्राप्त करेगा

इंद्रिय-सुख से मुक्त सुख

(निरामिसा).

वहाँ, चित्तनिमित्तस्स कोविदो का अर्थ है: मन के विकास (भावना) में निमित्त चिन्ह को ग्रहण करने में चतुर; मन के निमित्त चिन्ह को ग्रहण करने में निपुण, जिसमें इस प्रकार की युक्ति (योग्या) शामिल है: — "इस समय मन को ऊपर उठाना चाहिए; इस समय मन को प्रसन्न करना चाहिए; इस समय समभाव का विशेष अभ्यास करना चाहिए (अज्जुपेक्खितब्बं)," इस प्रकार ऊपर उठाना, आदि। पाविवेकरसं विजानिया का अर्थ है: जिसने शरीर के एकांत का अच्छा विकास किया हो, उसके मन के एकांत के रस को भली-भांति समझ लिया हो; एकांत के सुख का आनंद लिया हो; यही अर्थ है। वास्तव में, यह कथन इस प्रकार है: — "पाविवेकरसं पित्वा (एकांत का रस पीकर)।" झायं का अर्थ है: ध्यान में प्रवेश करना, सर्वप्रथम इंद्रिय-विषय (आरम्मन) पर चिंतन (उपनिझान) करना और बाद में विशिष्ट चिह्न (लक्खन) पर चिंतन (पच्चा) करना। निपाको का अर्थ है: मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) को बनाए रखने में कुशल (परिहरन)। पतिसत्तो का अर्थ है: सती (उपठित) जागरूकता। अधिगच्छेय्या सुखं निरामिसं का अर्थ है:— इंद्रिय सुखों (काम) और जन्म-जन्म के चक्र (वट्ट) के बैत (आमिसा) से मुक्त होकर, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के ध्यान में लीन होकर, सचेत (सतो) और विचारशील (संपजानो) बनकर, मन की एकांतता के आनंद में स्थिर होकर, जो शांत स्वभाव (समथा) आदि के विशिष्ट लक्षण (निमित्त) से प्राप्त हुआ है, वह निर्वाण के निब्बान सुख से भी बढ़कर फलदायी आनंद (फलसुख) को प्राप्त कर सकता है।

थेरा सुनागा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(86):नागिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (86) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
86. नागिता
उनका पुनर्जन्म इसी बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में हुआ और उनका नाम नागिता रखा गया। जब भगवान (बुद्ध) उस स्थान पर निवास कर रहे थे, तब उन्होंने मधुरता का उपदेश दिया। [1] इससे नागिता भिक्षु बनने के लिए प्रेरित हुए और उन्होंने अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। तब, भगवान (बुद्ध) की शिक्षा की सत्यता और धम्म के प्रभावी मार्गदर्शन से रोमांचित होकर, उन्होंने यह स्तुतिगान किया:

[86] इतो बहिद्धा पुथु अण्णवादिनां॥
मग्गो न निब्बानागमो यथा अयं,॥
इतिस्सु संघं भगवानुससति॥
सत्था सयं पणितलेव दस्सयां' ति.॥ ॥

[86] हमारे भिक्षु संघ के बाहर कई अन्य लोग हैं, जो सिखाते हैं, लेकिन
निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग कभी भी इस मार्ग जैसा नहीं होता।
लेकिन हम, परम पूज्य (बुद्ध), स्वयं भगवान (बुद्ध)
ही हथेली फैलाकर निर्देश देते हैं। [2]

[1] मज्झिमा निकाय, 18वां सूत्र, जिसकी रूपरेखा (कपिलवत्थु में) भगवान (बुद्ध) द्वारा दी गई है और महा-कच्चना (देखें भजन 289) द्वारा अरहंत (प्रबुद्ध) के आत्म-नियंत्रण पर व्याख्या की गई है। यह स्पष्ट रूप से कस्सपा वंश का भिक्षु (भिक्षु) नहीं है (संवाद, i. 193 ff.; अंग. iii. 81, 341; iv. 341)। शायद बाद वाले को भेद करने के लिए एन. कस्सपा के नाम से जाना जाता था।

Morrà = Mora. OED: इटली में एक लोकप्रिय खेल जिसमें एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी द्वारा एक साथ उठाई गई उंगलियों की संख्या का अनुमान लगाता है। यूरोपीय लोगों द्वारा चीन में इसी तरह के एक खेल के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

[2] टीका में लिखा है: 'हमारे प्रभु (बुद्ध) सायम्' - यानी सायंभू ज्ञानेन ञातम्, ज्ञान द्वारा 'स्वयंशिक्षित' ज्ञाता, या 'स्वयं' - महान करुणा से प्रेरित होकर, अपने ही सिद्धांत का उपदेश देते हैं, जैसे कोई खेल खेलने के लिए (? विलासपत्तिया) अपनी हथेली में आमलक का बीज दिखाता है। क्या यहाँ मोर्रा जैसे किसी प्राचीन खेल का उल्लेख है?

1.9-6[86] नागिरत्थेरा के श्लोक पर टीका

इतो बहिद्धा पुथु अञ्ञवा-दीनं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नागिता का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि ये बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में नारद नामक एक ब्राह्मण थे। एक दिन अपने मालक में बैठे हुए, उन्होंने बुद्ध को भिक्षुओं के समूह में सबसे आगे जाते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और तीन श्लोकों में उनकी स्तुति की। इस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और अंत में कपिलवस्तु नगर में शाक्य परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम नागिता था। जब भगवान कपिलवस्तु में निवास कर रहे थे, तब संयोगवश उन्होंने मधुपिंडिका सूत्र सुना, उचित श्रद्धा से प्रेरित होकर भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“अपने विशाल (विसाला) में बैठा हुआ

गोलाकार घेरे में, मैंने नेता को देखा

संसार का, रोगों (आसव) से मुक्त,

जोश से भरपूर (बालापट्टा) अग्रणी

भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग।

एक लाख उच्च अरहंत

तीन जादुई शक्तियों से युक्त-

सुपर-साइंस (विज्जा) और छह को मोड़ें

एक प्रकार का उच्च ज्ञान घिरा हुआ

स्वयंजागृत बुद्ध। देखकर

वह कौन होगा जो श्रद्धापूर्वक प्रसन्न न हो?

इस दुनिया में ऐसा कुछ भी मौजूद नहीं है।

दिव्य जगत सहित, कोई भी कॉम-

उनके ज्ञान के साथ उपनिध।

स्वयंजागृत बुद्ध को देखकर

असीम ज्ञान (ज्ञान) का वह कौन है?

क्या धार्मिक रूप से प्रसन्न न होना (pasīdati) उचित है?

वे वर्णन करने में सक्षम नहीं हैं (विकप्पे-

सत्य (धम्म) का शरीर भी,

जो प्रकाश में लाया गया था (दीपेंटं),

पूरी तरह से रत्नों से निर्मित (रतनाकरं)।

अगर उसने भी ऐसा ही देखा है, तो वह धार्मिक क्यों न हो?

प्रसन्न?

स्नेही व्यक्तित्व (वचला)

जिसे नारद कहा जाता है, उसने अपनी प्रशंसा की

पद्ममुत्तरा, अजेय आत्मजागृत

इन तीन श्लोकों के माध्यम से बुद्ध।

उस धार्मिक भावना के कारण

साथ ही बुद्ध की प्रशंसा करने के कारण भी।

मेरा पुनर्जन्म किसी बुरी दुनिया में नहीं हुआ था।

एक लाख युगों (कप्पा) के लिए।

तीस सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब, एक बहुत शक्तिशाली विश्व-राजा था

सुमित्ता नामक योद्धा वंश (खत्तिया) का।

सात रत्नों से सुशोभित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा अपने गुरु की शिक्षा में सत्य (अवितथा) की स्थिति और धम्म की लाभकारी अवस्था (निय्यनिकतं) पर निर्भर करते हुए उत्साह और आनंद से भर गए, और उन्होंने उत्साह (पीतिवेग) की गति में प्रवेश करने (पविस्सा) के उद्देश्य से अपनी आनंदमय वाणी (उदानं उदानेन्तो) करते हुए एक श्लोक का पाठ किया।

86. "यहाँ से, बाहर, कई लोगों के बीच

अन्य विचारकों के लिए, कोई

निर्वाण तक पहुँचने का सही मार्ग (मग्गा)

इस प्रकार। इस प्रकार, महिमामय

स्वयं गुरु ने निर्देश दिया था।

भिक्षुओं का संघ, (चीजों को) प्रदर्शित करना

जैसे उनके खुले हाथ की हथेली पर (पाणि-

ताला)।

वहाँ, इतो बहिद्धा का अर्थ है: बुद्ध के इस शासन (शासन) से बाहर के सिद्धांत (समय) में। इसी कारण उन्होंने कहा: “पुथु अञ्ञवादिनं” जिसका अर्थ है: विभिन्न प्रकार के विधर्मियों (तित्तीय) में; यही अर्थ है। मग्गो न निब्बानगमो यथा अयं का अर्थ है; जिस प्रकार यह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग निश्चित रूप से (एकंसेना) निर्वाण की ओर ले जाता है; उसी प्रकार, निब्बाना गमो (निर्वाण की ओर जाने वाला), उसी प्रकार, विधर्मियों (तित्तीय) के सिद्धांत में निर्वाण की ओर ले जाने वाला सही मार्ग (मग्ग) विद्यमान नहीं है; क्योंकि स्वयंजागृत बुद्ध ने विधर्मियों (तित्तीय) के मत को मानने वाले को वह मार्ग (पवेदिता) ज्ञात नहीं कराया है। अतः भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा:

“हे भिक्षुओं! जो भिक्षु केवल यहीं है, एक

यहां मौजूद दूसरा भिक्षु,

तीसरा भिक्षु, जो यहाँ है, चौथा

जो भिक्षु यहाँ हैं, वे खाली हैं।

दूसरों के विचार और दूसरों से रहित

भिक्षुओं।"

इति का अर्थ है: इस प्रकार। अस्सु का अर्थ है: केवल एक अविभक्ति कण (निपारमत्त)। संघः का अर्थ है भिक्षुओं का संघ; यह एक संपूर्ण व्याख्या (या, उत्कृष्ट शब्द) है, जैसे उदाहरण के लिए “सत्था देवमनुस्सानम् (देव और मनुष्य प्राणियों के गुरु)”। दूसरे शब्दों में, संघः का अर्थ है समूह; ऐसे मनुष्यों का समूह (जन) जो अनुशासन (वेनेय्या) के अधीन हों और निर्वाण की ओर अग्रसर हों; इस प्रकार, इसका महत्व (अधिप्पाय) है। भगवा का अर्थ है: महिमा (भाग्य) आदि से युक्त भगवान; यहाँ, यह संक्षिप्त रूप (संखेप) है। हालाँकि, व्यापक रूप से, इसे परमत्थदीपनी में इतिवुत्तक की व्याख्या में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए। सत्था का अर्थ है: वह योग्य (यथारहं) के अनुसार, प्रत्यक्ष (दित्तधम्मिका) और परलोक (संपरायिका) से संबंधित पूर्ण लाभों (परमत्था) के साथ उपदेश देते हैं; इस प्रकार, सत्था (गुरु)। सयं का अर्थ है: स्वयं, लेकिन व्यक्तिगत रूप से। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है। जिस प्रकार मेरे विधान में, निर्वाण की ओर ले जाने वाला श्रेष्ठ मार्ग (अरिया मार्ग) विद्यमान है, जो आठ प्रकार का है, जिसमें आठ अंग (अंग) जैसे सही दृष्टि आदि शामिल हैं, जो नैतिक उपदेशों (शील) आदि जैसे तीन स्कंधों (खंड) का संग्रह बनाते हैं, उसी प्रकार बाह्यक के सिद्धांतों में ऐसा मार्ग (मार्ग) नहीं है: “इस प्रकार, सिंह के समान गर्जना करते हुए, हमारे गुरु, भगवान बुद्ध ने स्वयं को स्वयं निर्मित ज्ञान (नाना) के माध्यम से समझा; दूसरे शब्दों में, वे भिक्षुओं के पुरोहितों के समूह (जनतं) को मायरोबलन फल के समान उपदेश और सलाह देते हैं।” (आमलक) उनकी हथेली पर (हत्थतले) उनकी स्वयं की शिक्षा (देसनविलास) की सुंदरता की समृद्धि (संपत्ति) के लिए, उनकी महान दया (महाकरुणा) द्वारा अच्छी तरह से प्रेरित होकर।

थेरा नागिता के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(87):पवित्था

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (87) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
87. पवित्र
बुद्ध युग में मगध राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, और स्वाभाविक रूप से संन्यासी जीवन की ओर झुकाव होने के कारण, वे एक घुमक्कड़ बन गए। उनका प्रशिक्षण समाप्त हुआ, वे घूमने निकले, और उन्होंने उपतिस्सा और कोलिता (सारिपुत्त और मोग्गलाना) के बुद्ध के भिक्षु संघ में शामिल होने के बारे में सुना। और उन्होंने सोचा: 'मुझे लगता है कि यह एक बेहतर संघ होना चाहिए क्योंकि ऐसे महान ऋषि इसमें प्रवेश करते हैं।' और वे गए और भगवान (बुद्ध) के वचन सुने, विश्वास किया, और भिक्षुत्व में दीक्षा ली। इसके तुरंत बाद उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, और इस प्रकार अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[87] खंधा दिट्ठा यथाभूतौ भव सब्बे पदलिता॥
विक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भावो' ति.॥॥

[87] स्वयं के कारक पूरी तरह से देखे गए;
नए अस्तित्व के सभी आधार टूट गए।
पुनर्जन्म का चक्र पूरी तरह से समाप्त हो गया।
अब फिर से अस्तित्व में आना संभव नहीं है। [1]

[1] तुलना करें LXVII.

1.9-7 [87] पविट्ठथेरा के श्लोक पर टीका
खंड दिट्ठा यथाभूतं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पविट्ठा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान अठदस्सी के समय केशव नामक एक संन्यासी बन गए। एक दिन वे गुरु के पास गए, सत्य (धम्म) सुना, श्रद्धावान हुए, उन्हें प्रणाम किया, हाथ जोड़कर परिक्रमा की और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे अपने जन्मों के चक्र में भटकते रहे, और मगध राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। समय आने पर जब वे बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुके, तो उन्होंने त्याग की ओर झुके हुए (निन्न) स्वभाव (अज्जासय) के कारण भ्रमणशील दार्शनिकों (परिब्बाजक) के संघ में संन्यासी बन गए। वहाँ उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया और भ्रमण करते हुए उपतिस्सा और कोलिता के बुद्ध के संप्रदाय में भिक्षु बनने का समाचार सुना। उन्होंने मन ही मन कहा, “वे भी, अर्थात् महान ज्ञान वाले (पञ्ञा), वहाँ भिक्षु बन गए हैं; मुझे लगता है, यह और भी बेहतर होगा।” वे गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से श्रद्धा प्राप्त की और भिक्षु बन गए। गुरु ने उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का तरीका बताया। उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करना शुरू किया और कुछ ही समय में अरहंत पद की कल्पना की। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

मेरा नाम नारद था; लोग मुझे इसी नाम से जानते थे।

केशव के रूप में। अच्छे कर्मों की खोज में (एसं)।

प्रमुख और गौण (कुसलाकुसलं), मैं गया था

बुद्ध की उपस्थिति।

महान ऋषि अत्थादस्सी, जो दयालु हैं,

अपनी प्रेममयी करुणा से,

अंतर्दृष्टि रखने वाला (चक्खुमा) सिखाया

सत्य (धम्म) जीवित प्राणियों को सांत्वना देता है

जीव।

अपने मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न करते हुए, मैं

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को अपने सिर पर उठाया;

गुरु को नमन अर्पित करने के बाद, मैं

मैंने पूर्व दिशा की ओर मुख करके प्रस्थान किया।

सत्रह सौ युग (कप्पा) पहले

वह पृथ्वी का संप्रभु स्वामी बन गया, एक

अमिततापना नामक एक अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज।

मेरी सारी बुराइयाँ जलकर राख हो चुकी थीं...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपनी अञ्ञा (प्राप्ति) को प्रकट किया।

87. "मेरी इंद्रियों का समूह (खंधा) था

वास्तविकता के अनुसार देखा गया (यथाभूतं);

सभी अस्तित्व खंडित हो गए थे

(पडालिता)। पुनर्जन्मों का बार-बार चक्र

(जातिसंसार) स्पष्ट रूप से समाप्त हो गया था

(विक्खाना); अब कोई नया अस्तित्व नहीं है।

वहाँ, खन्ध का अर्थ है पाँच आसक्त इंद्रियों का समूह (उपादानक्खन्ध); वास्तव में, उन्हें सर्वांगीण समझ (परिजानन) द्वारा, सुप्रसिद्ध (ज्ञात) बोध (परिञ्ञा) द्वारा, विवेक (उपलक्खन) के दृष्टिकोण से, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) द्वारा, और साथ ही सामान्य

(सामञ्ञ) विशिष्ट चिह्न (लक्खन) के दृष्टिकोण से स्पष्ट रूप से देखा जाना चाहिए (विपस्सितब्बा)। दिठ्ठ यथाभूतं का अर्थ है; सही मार्ग के ज्ञान (मग्गपञ्ञा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के ज्ञान (पञ्ञा) के माध्यम से, इन्हें स्पष्ट रूप से (अविपरीततो) इस प्रकार देखा गया है: "इदं दुःखं (यह मेसरी है)" इत्यादि। भावा सब्बे पदालिता का अर्थ है: सभी सक्रिय-कार्यात्मक (कम्म) अस्तित्व (भव) और सहज फलित (उपपत्ति) अस्तित्व (भव), जैसे कि इंद्रिय सुख (काम) आदि, सही मार्ग के ज्ञान (ज्ञान) के तीव्र हथियार (सत्था) द्वारा टूट (भिन्ना) और चकनाचूर (विद्धांसिता) हो गए हैं। वास्तव में, दुराचार (किलेसा) के विनाश (पादालन) के साथ ही, सक्रिय क्रियाशील और स्वतःस्फूर्त फलदायी (कामोपपत्ति) दोनों प्रकार के अस्तित्व (भव) का विखंडन होता है। इसलिए उन्होंने कहा: "विक्खीनो जातिसंसारो, नत्थिदानि पुनब्भवो।" श्लोक के उस भाग का अर्थ तो पहले ही कहा जा चुका है (हेट्ठा)।

थेरा पवित्र के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(88):अज्जुना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (88) ------>>>> अगला

अध्याय 1।
88. अजजूना
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक पार्षद के परिवार में हुआ और उनका नाम अज्जुन रखा गया। बड़े होकर वे जैन धर्म के संपर्क में आए और बहुत कम उम्र में ही उनके संघ में प्रवेश कर गए, यह सोचकर कि उनके बीच उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा। [1] परन्तु वहाँ उन्हें कुछ भी संतुष्टि नहीं मिली, [2] इसलिए वे भगवान (बुद्ध) से मिले, उन पर विश्वास किया, उनके संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। फिर अपनी इस उपलब्धि से प्रसन्न होकर उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया:

[88] असक्खिउ वात अत्तानाउ उद्धातुउ उदका जलौ॥
वुयहमानो महोघेव सच्चचनि पतिविज्जहां' ति.॥ ॥

[88]
हे आश्चर्य, मुझे जल से निकलकर सूखी भूमि पर आने की शक्ति मिली ।
भयानक बाढ़ में बहते हुए मैंने
सत्यों को जानना सीखा, उनके सत्य को समझना सीखा।

[1] लिट., एम्ब्रोसिया, अमाता, या निब्बाना।

[2] शाब्दिक रूप से, कोई सार या गूदा नहीं, सत्य या प्रामाणिकता न होने के लिए सामान्य रूपक।

1.9-8[88] अजुनत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
असक्खिं वत अत्तानं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अज्जुन का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, पुण्य कर्म संचित करते हुए, जो इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने भगवान विपस्सी (बुद्ध) के समय में एक सिंह के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। एक दिन उस सिंह ने जंगल में एक वृक्ष के चरणों में बैठे गुरु को देखा और श्रद्धापूर्वक मन ही मन कहा, "यद्यपि, इस अवसर पर, यह मनुष्य में श्रेष्ठ है, मनुष्यों में सिंह है," और उसने साल वृक्ष की एक खिली हुई शाखा तोड़कर गुरु को आदरपूर्वक अर्पित की। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वह सिंह जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करता रहा और सावत्थी में एक धनाढ्य परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम अज्जुन था। बुद्धि प्राप्त करने पर, वे जैनों के संपर्क में आए और बचपन में ही जैनों के बीच संन्यासी बन गए, क्योंकि वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए दृढ़ संकल्पित थे और मन ही मन कहते थे, "इस प्रकार मैं अमरत्व प्राप्त करूँगा।" वहाँ सार प्राप्त न कर पाने और गुरु के यमकापतीहारिय चमत्कार को देखकर, उन्होंने उचित श्रद्धा प्राप्त की, शासन के अंतर्गत भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगे और कुछ ही समय में अरहंत बन गए। अतः, अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैं उस समय पशुओं का राजा था, उच्च कुल का।

जैसे किसी उत्कृष्ट शेर की गर्दन पर। (चलते हुए)

पहाड़ियों पर, तलाश में जाना कठिन है (की)

शिकार) संयोगवश मेरी मुलाकात दुनिया से हुई-

नेता।

क्या वास्तव में यही महान नायक है?

जो इतने सारे लोगों को भेजता है

निब्बाण (निब्बापेटि महाजनम्)। सेर-

यदि मैं सेवा करूँ (उपासति होऊँ) तो निश्चित रूप से अच्छा होगा।

देवताओं का देवता, मनुष्यों में बैल।

साल के पेड़ की शाखा तोड़कर,

मैंने इसे इसकी संपत्ति के साथ इकट्ठा किया

फूलों का (सकोसं)। पास आने पर

मैंने आत्मजागृत बुद्ध को उन्हें अर्पित किया।

वह अत्यंत सुंदर फूल।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने फूलों की विशेष भेंट चढ़ाई;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फूल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

इससे पहले के नौवें युग (कप्पा) में,

तीन शासक बन गए, जो बहुत शक्तिशाली थे।

विरोचना नाम के विश्व-राजा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति (उदान) को उस उत्साह की गति से व्यक्त किया जो उस आनंद की प्राप्ति (अधिगम) के लिए उपयुक्त था जिसकी कोई तुलना नहीं है।

88. मुझे पूरा यकीन था (वात के अनुसार) कि मैं ऐसा कर पाऊंगा।

(asakkhiṃ) बाहर निकालना (uddhātuṃ)

पानी से सूखी ज़मीन तक, पर

बहक जाना (vuyhamāno) लेकिन

बड़ी बाढ़ में। मैंने ठीक से प्रवेश किया-

महान सत्य (सक्का) का अनुसरण करें।

वहाँ, असक्खिं का अर्थ है मैं सक्षम था (सक्कोसिं), वात एक अविघटनीय कण (निपाता) है जो विस्मय (विम्हये) में है। वास्तव में, यह अत्यंत आश्चर्यजनक है; यही सत्य की उचित अंतर्दृष्टि है। इसलिए, बुद्ध ने कहा:—

"हे भिक्षुओं! आप इसके बारे में क्या सोचते हैं?"

जो वास्तव में या तो अधिक कठिन है

क्या इसे करना अधिक कठिन है या इस पर काबू पाना अधिक कठिन है?

(अभिसंभव), (या अधिक परेशानी वाला?)?

यदि किसी को उपयुक्त रूप से छेदना पड़े तो

किसी अन्य के माध्यम से पूंछ के बाल के सिरे को

पूंछ का सिरा जो सात भागों में बंट गया था

बार-बार (सत्तधा)? और इसी प्रकार।

अत्तानं का अर्थ है: वह अपने अंतर्मन (अज्जत्त) के संदर्भ में कहता है (संध्याय); जो वास्तव में दूसरा नहीं है, वह स्वयं (अत्त) है। उद्धातुं का अर्थ है बाहर निकालना (उद्धरितुं); "उद्धतं (बाहर निकाला गया है);" यही इसका पाठ भी है। उदका का अर्थ है उस जल से जो पुनर्जन्मों के चक्रों की भयंकर बाढ़ (संसार) के रूप में गिना जाता है। थलं का अर्थ है निर्वाण की शुष्क भूमि। वुयहमानो महोगे वे का अर्थ है विशाल सागर में बह जाने के समान। यही कहा गया है: उदाहरण के लिए, जैसे कोई व्यक्ति किसी भयंकर बाढ़ में, जो गहरी और चौड़ी हो और जिसमें रुकने का कोई स्थान न हो (अपतित्त), तेजी से बहता चला जाए, तो उसे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा पास लाई गई नाव (दाल्ह) मिल जाए जो उसका भला चाहता हो (अत्थ), तो वह आसानी से खुद को उस बाढ़ से बाहर निकाल कर दूसरे किनारे तक पहुँच जाएगा, ठीक उसी प्रकार, मैं भी बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों की भयंकर बाढ़ में, दुराचार की गति से बहता हुआ (वुयहमानो), मुझे शांत स्वभाव और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से युक्त श्रेष्ठ मार्ग की नाव (उपेत) मिल गई, जो मेरे पास लाई गई। गुरु की कृपा से, मैं उस बाढ़ से निकलकर अद्भुत रूप से निर्वाण की सूखी भूमि पर पहुँच सका। उन्होंने जिस भी तरीके से संभव हुआ, उस मार्ग को दिखाने के लिए कहा: "सच्चानि पटिविज्झं।" क्योंकि मैंने दुख से शुरू होने वाले चार आर्य सत्यों को उचित रूप से बोध (परिज्ञा), त्याग (पहान), दृष्टि

(सच्चिकिरिया) और विकास (भावना) के माध्यम से ग्रहण किया और आर्य मार्ग के ज्ञान (ज्ञान) से समझा, इसलिए मैं निश्चित रूप से जल से निकलकर सूखी भूमि पर आ सका; यही व्याख्या है।

थेरा अजजुना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(89):देवसभा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (89) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
89. देवसभा [1]
इस बुद्ध युग में एक जिले के राजा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [2] उन्होंने कम उम्र में ही अपना पद ग्रहण कर लिया। लेकिन [84] जब वे जागृत (बुद्धो) होकर भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुनने गए, तो उन्होंने अपना पद त्याग दिया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। फिर जब उन्होंने उन भ्रष्ट चीजों पर विचार किया जिन्हें उन्होंने त्याग दिया था, तो उनमें आनंद उत्पन्न हुआ और वे इस प्रकार बोले:

[89] उत्तिना पञ्चपालिपा पाताल परिवज्जिता,॥
मुत्ता ओघा च गंथा च सब्बे मन विसंहता' ति.॥ ॥

[89] वासनाओं के दलदल से पार हो गया हूँ।
नरक के विनाश से सुरक्षित निकल आया हूँ,
बाढ़ और बंधनों से जो स्वतंत्रता के लिए हानिकारक हैं,
और आत्म-अभिमान के हर रूप को त्याग दिया है। [3]

[1] भजन संहिता सी. किसी अन्य देवसभा द्वारा रचित है।

[2] मंडलिका-राज। यह शब्द विनय ग्रंथों, iii. 47 में आता है। मेरे पास उपाधि से जुड़े तुलनात्मक पद का कोई प्रमाण नहीं है।

[3] माना. नौ रूपों को विभेदित किया गया है (विभ., पृ. 389)। तुलना करें बुद्ध. मनोविज्ञान, पृ. 299, जो केवल पहले तीन देता है।

1.9-9 [89] (पाठमा) देवसभट्टरा के श्लोक पर टीका
उत्तिन्नापंक पालिपा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा देवसभा का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्ण सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में कबूतर (पारावत) के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, संयोगवश उन्होंने गुरु के दर्शन किए, श्रद्धा से भर गए और उन्हें पियाल के फल (पियालफल) अर्पित किए। गुरु ने उन फलों को खाकर कबूतर की श्रद्धा (पसाद) को और अधिक प्रसन्न किया। इस कारण कबूतर अत्यंत श्रद्धावान हो गया, बार-बार गुरु के पास आता, उन्हें प्रणाम करता और श्रद्धा से प्रसन्न होता रहा। उस पुण्य कर्म के कारण, वह कबूतर दिव्य लोक में पुनर्जन्म लेकर समय-समय पर पुण्य कर्म करता रहा और देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकता रहा। जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वह एक राजा के मंडलिका (प्रतिनिधि) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। युवावस्था में ही वह एक छोटे से देश का शासक बन गया और राजसी सुख भोगते हुए बड़ा हुआ, तभी वह उस गुरु के पास पहुँचा जिसने उसे धर्म का उपदेश दिया। उसने धर्म को सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, पश्चाताप किया, अपना प्रभुत्व त्याग दिया, भिक्षु बन गया और आध्यात्मिक विकास का कर्म किया।

आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की, अरहंतत्व प्राप्त किया, लेकिन शीघ्र ही। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"मैं तब एक कबूतर (पारवत) था।"

जो बाधक नहीं था (उपरोधक)

दूसरों के लिए। पहाड़ की ढलान पर मैंने बनाया

मेरा निवास स्थान, सिख धर्म, गुरु से अधिक दूर नहीं है।

सुबह (पाता) और शाम (सायां)

संयोगवश मुझे बुद्ध के दर्शन हुए, जो सबसे प्रमुख थे।

विश्व के नेता। ऐसे व्यक्ति के लिए-

पुत्रों का पुरुषों के सम्राट के रूप में शासन (द्विपदिन्दा)

मुझमें कोई पुण्य गुण (देय्यधम्म) नहीं था।

प्रस्ताव देना।

मैं अपने साथ पियाल फल लेकर आया था।

मैं बुद्ध के समक्ष गया।

हे भगवान, संसार के सबसे वृद्ध व्यक्ति,

पुरुषों में श्रेष्ठ, उसने (मेरी भेंट) स्वीकार की।

बाद में, तदनुसार (उपाध्याय) उसके बाद,

मैंने नेता की सेवा की (परिचारि)।

(विनायक)। उस मनभावन पवित्रता के साथ

ध्यान रहे, मैं वहीं मर गया था।

आज से इकत्तीस युग पहले की बात है।

मैंने फल चढ़ाए थे; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

फल चढ़ाने का परिणाम।

पंद्रह युग (कप्पा) पहले, आज से,

तीन अत्यंत शक्तिशाली विश्व-

पियालिना नामक राजा, जो वरदानों से संपन्न थे

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने आनंदमय उच्चारण (उदान) को व्यक्त किया, जो उनके द्वारा अपने दुराचार (पहीनकिलेसा) से छुटकारा पाने के चिंतन से उत्पन्न हुई खुशी को दर्शाता है।

89. दलदली कीचड़ को पार कर लिया गया था;

पाताला (अथाह खाई) चारों ओर फैली हुई थी।

टाला (परिवज्जिता); जारी (am

I) बाढ़ (ओघा) के साथ-साथ शारीरिक

गांठें (गांठ); मेरा सारा अभिमान

हटा दिया गया है (visaṃhata)।

वहाँ उत्तिन्ना का अर्थ है; पार कर लिया था, आगे बढ़ गया था। पंकपलिपा का अर्थ है: कीचड़ और दलदल; पंक (कीचड़) को प्राकृतिक कीचड़ कहा जाता है: "पकिपा (दलदल)" एक विशाल, गहरा और चौड़ा (पुथुलो) कीचड़ है। हालाँकि, यहाँ यह कीचड़ (पंक) के समान अपवित्रता है; कामुक सुखों (कामराग) की लालसा, क्योंकि यह अशुद्धता की स्थिति उत्पन्न करके मन को दूषित करती है। विशाल कीचड़ के समान गंदगी; घनी (बहल) इच्छा (चंदा) की लालसा जो पुत्र, पुत्री, पत्नी आदि के ऐसे क्षेत्रों का निर्माण करती है, क्योंकि वे दूषित और पार करना कठिन हैं; अनागामी (अनागामी) के श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के तीसरे चरण द्वारा मैंने उन पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ली थी (अतिक्कंटा)। अत्तिन्न पंक पालिपा (कीचड़ और दलदल पार करना) है। पाताला का अर्थ है: गिरने के लिए पर्याप्त (अलं) एक चट्टानी खाई (पाताला) है; विशाल सागर में गहरे अवसाद (निन्नतारा) का एक स्थान (पदेसा)। हालाँकि, कुछ विद्वान (केची) नागों के निवास को "पातालां" कहते हैं। यहाँ, चट्टानी खाई (पाताला) के समान, क्योंकि यह अभेद्य (आगाह) है, जिसे समझना (दुरवग्गा) और पार करना कठिन है; इस प्रकार, पाताला (चट्टानी खाई); विधर्मी विचार (दिट्ठियो)। मैंने उनसे भी परहेज (वज्जिता) किया था और उन्हें भली-भांति काट डाला था (समुच्चिन्न), परन्तु श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के प्रथम चरण को धारा-प्रवर्तक के रूप में प्राप्त करके। अतः उन्होंने कहा: "पाताला परिवज्जिता।" मुत्तो ओघा च गंथा च का अर्थ है: इंद्रिय सुखों (काम) आदि की बाढ़ से, तथा शरीर के लोभ (अभिज्जा) आदि जैसे बंधनों (गंठ) से, सही मार्ग (मग्ग) के इस और उस चरण द्वारा मुक्त और सर्वांगीण रूप से मुक्त (परिमुत्तो); फिर से अभिभूत न होकर (अनभिकिरण) और उलझ न कर (अंगंथन) आगे बढ़ जाना (अत्तक्कन्तो), यही अर्थ है। सब्बेमाना विसम्भता का अर्थ है: नौ प्रकार के अहंकार (विधा) को स्पष्ट रूप से (विस्सेसातो) उत्पन्न करके नष्ट कर दिया गया (संघात) और विनाश कर दिया गया (विनासा) और उसे भली-भांति काट दिया गया (समुद्धिन्न)। कुछ विद्वान इसे "मनविधा हता (अहंकार की विभिन्न किस्में नष्ट कर दी गईं)" पढ़ते हैं; इसका अर्थ है: अहंकार का अंश (मानकोट्ठास); यही अर्थ है। अन्य विद्वान (अपरे) इसे "मानविसा (अहंकार-विष)" पढ़ते हैं; उनके अनुसार, यह अहंकार के कष्टदायक विष के फलदायी परिणाम के कारण अहंकार-विष है; यही अर्थ है जैसा कि समझा जाना चाहिए।

थेरा (पाथमा) देवसभा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(90):समिदत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (90) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
90. सामिदत्ता
Puissance. OED: शक्ति, सामर्थ्य, बल, सामर्थ्य, प्रभाव।

बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम सामिदत्त रखा गया। जब वे परिपक्व हुए, तब उन्होंने बुद्ध की शक्ति के बारे में सुना और गृहस्थों के साथ उन्हें सुनने के लिए विहार (मठ) गए। उन्होंने विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया, लेकिन अपने ज्ञान की अपरिपक्वता के कारण वे कुछ समय तक अभ्यास नहीं कर पाए। अंततः, भगवान (बुद्ध) को फिर से उपदेश देते हुए सुनकर, वे समर्पित और एकाग्र हो गए और अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

बाद में भिक्षुओं ने उनसे पूछा: 'हे मित्र, अब आप कैसे चुने हुए लोगों की अवस्था तक पहुँच गए हैं?' [1] और उन्होंने सिद्धांत की मार्गदर्शक प्रभावकारिता और स्वयं धम्म और छोटे सिद्धांतों में अपनी सिद्धि को दर्शाते हुए , इस श्लोक में अन्ञा (सर्वोच्च सिद्धि) की घोषणा की:

[90] पंचकखंडा परिण्णाता तिथन्ति छिन्नमूलका,॥
विक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भावो' ति.॥ ॥

[90] मेरे जीवन के कारक अच्छी तरह से समझे गए हैं,
फिर भी थोड़ी देर के लिए कटी हुई जड़ के साथ खड़े हैं।
जीवन का चक्र निश्चित रूप से नवीनीकृत हो गया है।
अब वापस आने का कोई रास्ता नहीं है। [2]

[1] उत्तरि-मनुस्साधम्मो, या, 'सुपरमैन' का।

[2] तुलना करें एल.एक्सएक्स और एल.एक्सएक्सवी.

1.9-10[90] सामिदत्तत्तेरा के श्लोक पर टीका
पंचक्खन्धा परिञ्ञता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सामिदत्त का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने वाले इस व्यक्ति का पुनर्जन्म भगवान अट्ठदस्सी के समय एक पारिवारिक घर में हुआ। जब उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और गुरुदेव पूर्णतः निर्वाण (परिनिभूत) हो गए, तो उन्होंने उनके ठोस मंदिर (स्तूप) पर पुष्पों से छत्र की कई परतें बनाकर श्रद्धापूर्वक अर्पण किया। इस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्म चक्रों में विचरण करते रहे। और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ। उनका नाम सामिदत्त था। समय आने पर जब वे बुद्धिवान हो गए, तो उन्होंने बुद्ध की शक्ति के बारे में सुना, भक्तों के साथ मठ गए, गुरु को सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए देखा, उनका मन श्रद्धा से भर गया और वे एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनकी प्रवृत्ति (अज्जासय) को देखकर उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश इस प्रकार दिया कि उन्होंने जन्म-जन्मांतर के चक्रों में उचित श्रद्धा और पश्चात्ताप दोनों प्राप्त कर लिए। उचित श्रद्धा प्राप्त करने और पश्चात्ताप करने पर वे भिक्षु बन गए, और अपने ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता न होने के कारण वे कुछ समय तक आलसी जीवन व्यतीत करते रहे। फिर गुरु द्वारा दिए गए सत्य (धम्म) के उपदेश से प्रेरित होकर उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के लिए सहायक मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) किया और उस पर एकाग्रचित्त रहते हुए अर्हंतत्व प्राप्त किया, लेकिन कुछ ही समय बाद। अतः, अपदान में ऐसा कहा गया है।

“जब पूज्य अत्थादस्सी,

सबसे उत्कृष्ट व्यक्ति परियों की शरण में चले गए।

निब्बाना, मेरे पास एक बहुस्तरीय छाता था

इसे श्रद्धापूर्वक बनाया और स्थापित किया।

ठोस मंदिर (थूपा) पर।

बार-बार मंदिर में आने के बाद

उस समय, मैंने दुनिया के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की-

नेता।

फूलों की सजावट करने के बाद मैंने आदरपूर्वक

इसे छाते पर टिका दिया था।

सत्रह सौ युगों (कप्पा) के लिए

मैंने दिव्य संप्रभुता का प्रयोग किया;

मुझे मनुष्य नहीं होना था; यह

श्रद्धा भाव रखने का यही फलदायी परिणाम है।

मंदिर को दी जाने वाली पारंपरिक भेंट (थूपा)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी; सब कुछ अस्तित्व में था-

काल समाप्त कर दिए गए थे। जैसे

एक हाथी ने अपनी बेड़ियाँ काट दी हैं

(बंधनं) मैं दोषों से मुक्त रहता हूँ

(आसव).

मेरा यहाँ आना वाकई बहुत सार्थक रहा।

सर्वश्रेष्ठ (सेठ) बुद्ध की उपस्थिति।

तीन प्रकार के महाविज्ञान (विज्जा) थे

तदनुसार प्राप्त किया गया है; बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

इसके बाद, भिक्षुओं द्वारा यह पूछे जाने पर कि “मित्र! आपने उत्तरिमनुस्सधम्म की दिव्य अवस्था क्यों प्राप्त की?” उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिससे उन्हें लाभकारी अवस्था (निय्यानिकभाव) और शिक्षा के अनुरूप अपने स्वयं के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) को समझाते हुए, अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

90. "पांच संवेदी समूह (खंड)"

यह बात सर्वत्र समझ ली गई थी; वे

अपनी जड़ों को काटकर खड़े हैं। पुनः-

पुनर्जन्म के बार-बार दोहराए जाने वाले दौर थे

स्पष्ट रूप से थका हुआ; अब, वहाँ कुछ भी नहीं है

एक नया अस्तित्व।

वहाँ, pañcakkhandhā pariññātā का अर्थ है: इन पाँच आसक्त इंद्रिय-संबंधी समूहों (upādānakkhandhā) को मैंने तीन प्रकार की समझ (pariññā) के माध्यम से गहन विश्लेषण (parichinditvā) करने के बाद जान लिया, समझ लिया और उचित रूप से भेद दिया (paṭividdha) है; - “यही दुःख (dukkha) है: दुःख (dukkha) इतना ही है, इससे अधिक नहीं।” तिट्ठंति छिन्नमूलका का अर्थ है: इसी प्रकार, परन्तु दुख के मूल (समुदय) को, जो उसका मूल (मूल) था, सर्वथा त्याग देने (पाहीन) के पूर्ण ज्ञान (परिञ्ञा) के कारण, वे अंतिम चेतन अवस्था (चरिमक चित्त) के विनाश (निरोध) के कारण उखड़े हुए खड़े रहते हैं; परन्तु अंतिम चेतन अवस्था के विनाश के कारण, अवधारणाएँ समाप्त (निरुज्जंति) हो जाती हैं, और उनका पुनर्मिलन (पटिसंधि) नहीं होता। अतः उन्होंने कहा; “विक्खानो जातिसंसारो, नत्थिदानि पुनब्बवो।” इसका अर्थ पहले ही कहा जा चुका है (हेट्ठा)।

थेरा सामिदत्ता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

नौवें अध्याय की टीका पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(91):परिपुन्नका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (91) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग X
91. परिपुण्णक
उनका पुनर्जन्म बन्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में हुआ। अपनी अपार प्रतिभा और सौभाग्य के कारण वे परिपुणक के नाम से प्रसिद्ध हुए। [1] उनकी सामर्थ्य उन्हें सर्वथा सौ तत्वों का भोजन ग्रहण करने की अनुमति देती थी। परन्तु जब उन्होंने सुना कि भगवान (बुद्ध) मिश्रित भोजन ग्रहण करते हैं, तो उन्होंने कहा: 'यद्यपि वे उत्तम खानदान के हैं, फिर भी भगवान (बुद्ध) निर्वाण के आनंद का ध्यान करते हुए इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं। हम अपने लोभ में क्यों भोगी बनें? हमें भी निर्वाण के उस आनंद की खोज करनी चाहिए!' व्यथित होकर उन्होंने अपना घर त्याग दिया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और भगवान (बुद्ध) से शरीर ध्यान का अभ्यास लेकर समय के साथ अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इस पर उन्होंने यह गाथा कही: [2]

[91] न तथा' मतं सातारसां सुधन्नं यं मयाज्ज परिभुत्तं,॥

अपरिमिता दस्सीना गोतमेना बुद्धेन देसिटो धम्मो' ति.॥ ॥

[91] ऐसा कभी नहीं लगा मानो यह सौ तत्वों का कोई व्यंजन हो।
क्या मैं आज जो ग्रहण किया, उसे बढ़ा-चढ़ाकर बता सकता हूँ,
जब उन्होंने, सर्वदर्शी गौतम, [3] आनंदित बुद्ध ने
स्वयं मुझे पवित्र मार्ग (धम्म) प्रकट किया।

[1] 'पूर्ण' या 'परिपूर्ण' अर्थ, ka के साथ, एजेंट-संज्ञा प्रत्यय।

[2] यहाँ छंद सामान्य श्लोक के छंद जैसा नहीं है।

[3] ध्यान दें कि भगवान (बुद्ध) के नाम का उल्लेख स्पष्ट रूप से लेकिन बहुत कम होता है, जो बाद के बौद्धों में देखने को नहीं मिलता। इस ग्रंथ में यह आठ बार आता है, सिस्टर्स में दो बार (देखें विनय ग्रंथ, i. 228)। कई एपिस्कोपलियन ईसाइयों में इसी तरह की चुप्पी देखें ।

1.10 दसवाँ अध्याय

1.10-1 [91] परिपुन्नकत्थेरा के छंद पर टिप्पणी
ना तथा मतं सतरसं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा परिपुन्नक का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के कारण, इनका पुनर्जन्म भगवान धम्मदस्सी के समय एक पारिवारिक घर में हुआ। वयस्क होने पर, जब गुरुजी परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब इन्होंने गुरुजी के मंदिर में पुष्प आदि का विशाल अर्पण किया। इस पुण्य कर्म के कारण इनका पुनर्जन्म देवताओं के बीच हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए ये उत्तम जन्मों में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब इनका पुनर्जन्म शाक्य वंश के कपिलवस्तु में हुआ। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, सर्वांगीण धन-संपत्ति की स्थिति के कारण ये परिपुन्नक के नाम से प्रसिद्ध हुए। धनवान होने के कारण, वह सदा सौ स्वादों वाले (सतरसा) भोजन का आनंद लेता था और गुरु के मिश्रित भोजन के बारे में सुनकर, जिससे वे अपना जीवन निर्वाह करते थे, उसने मन ही मन कहा: "यद्यपि भगवान नाजुक (सुखुमाला) होते हुए भी निर्वाण के सुख को ध्यान में रखते हुए किसी न किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करते हैं; तो हम, जो भोजन के लिए व्याकुल (गिद्ध) रहे हैं, अपने आहार में क्यों न्यायसंगत (शुद्धिका) हों; हमें तो केवल निर्वाण के सुख की ही खोज करनी चाहिए।" बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से दुखी होकर, उसने गृहस्थ जीवन त्याग दिया, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गया, और भगवान द्वारा शरीर के प्रति जागरूकता के मानसिक अभ्यास के लिए प्रेरित (नियोजितो) होकर, उसने स्वयं को वहीं स्थापित कर लिया। उन्होंने उचित रूप से प्राप्त ध्यान को अपना आधार (पादक) बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म किया, जिसे उन्होंने उत्तरोत्तर विकसित किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—--

"जब लोकनाथ (जगत का स्वामी)

पुरुषों में श्रेष्ठ धम्मदस्सी का निधन हो गया।

निर्वाण में, मैंने एक ध्वज स्तंभ स्थापित किया

बुद्ध के मंदिर में सबसे अच्छा।

मैंने एक सीढ़ी बनाई और उसे अच्छी तरह से फिक्स कर दिया।

(समारुहिं) सबसे उत्तम तीर्थस्थल को।

प्राकृतिक फूल इकट्ठा करने के बाद मेरे पास

उन्हें ठोस पर स्थापित (अभिरोपयिं) किया गया

मंदिर (थूपा)।

बुद्ध अद्‌भुत हैं, धम्म अद्‌भुत है;

हमारी सफलता (संपदा) अद्‌भुत है

गुरुजी। मुझे किसी बुराई के अस्तित्व की याद नहीं है।

tence (duggati); यह फलदायी है

श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने का परिणाम

मंदिर (थूपा)।

आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले,

वहाँ सोलह अत्यंत शक्तिशाली शासकों का शासन था।

विश्व-राजा, जिनका नाम थूपसिखा है

(मंदिर का प्रतीक चिन्ह)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "न तथा मतं सतरसं" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने आनंदमय उच्चारण (उदान) किया, सत्य (धम्म) में आदर (गारव) के साथ अपने उत्साह (पीतिवेग) की गति को मुक्त (विस्साठं) किया।

91. वहां न तथा मतं सतारसं सुधन्नं यं मयाज्ज परिभुत्तं। तथाता का अर्थ है: उस तरीके से (पकारा)। मतं का अर्थ है: सुखद रूप से सहमत। सतरसः का अर्थ है: सौ स्वादों (रस) का भोजन (भोजन); वे इस प्रकार कहते हैं: - "सतारसा भोजनं नाम सतपकसप्पिधि अभिसंखतं भोजनं (सौ स्वादों वाला भोजन, अर्थात्, एक खाने योग्य भोजन (भोजन) है जिसे विशेष रूप से सौ बार पकाए गए (सतपक) घी (सप्पी) और इसी तरह की सामग्री के साथ पकाया जाता है)। दूसरे शब्दों में, व्याकरणिक शब्द 'सता' का अर्थ एक नहीं बल्कि एक से अधिक (अनेकत्था) होता है, जैसे कि "सतसो सहससो" आदि। इसलिए, जिस भी भोजन में एक से अधिक प्रकार के सूप और एक से अधिक प्रकार की करी होती है, उसे "सतरसा (अनेक स्वाद)" कहा जाता है, क्योंकि उसमें अनेक स्वाद होते हैं; यानी विविध स्वादों वाला भोजन। सुधन्नं का अर्थ है: अमृत (सुधा) स्वयं (एव) पका हुआ भोजन है जिसे खाया जाना है (अन्न), दिव्य पोषण, दिव्य व्यंजन। यं मया'ज्ज परिभुतं, जिसे मैंने आज खाया है। "यं मया परिभुतं, जो कुछ भी मैंने खाया है" और साथ ही यह "सतरसां सुधं (सौ स्वादों का अमृत);" अत: यहाँ भी व्याख्या (योजेतब्बं) की जानी चाहिए। यही कहा गया है; निर्वाण का जो भी शांतिपूर्ण (सन्तं), उच्चतर (पानित) सुख मुझे अभी, वर्तमान में (एतरहि) निरोध ध्यान (निरोध समापत्ति) में प्रवेश (समापज्जन) करके और फलदायी ध्यान (फल समापत्ति) से गुजरकर पूर्णतः (अच्चन्तं) प्राप्त हो रहा है; वह समझ (मतं) और सुखद (अभिमतं) के अनुसार अच्छी तरह विकसित (संभावितं) हो चुका है; इस प्रकार, जब मैं राजा था, तब मेरे द्वारा भोगा गया सौ स्वादों का भोजन और मेरे दिव्य स्वरूप (अत्तभाव) में भोगा गया अमृतमय भोजन (सुधन्ना) न तो समझ में आया और न ही सुखद (अभिमत) था। क्यों? क्योंकि यह (पहला) वास्तव में इंद्रिय-इच्छाओं से मुक्त (निरामिस) है, जिसमें पवित्र कुलीन (आर्य) लिप्त (निसेवित) होते हैं, और यह (भूत) किसी भी प्रकार के दुराचार (किलेसा) का विषय नहीं बना है: जबकि दूसरा, सामान्य लोगों (पुथुज्जन) द्वारा भोगा जाता है, जो इंद्रिय-इच्छाओं के अधीन होते हैं और प्रत्येक प्रकार के दुराचार का विषय बन गए हैं। वह (दूसरा) इस (पहले) का सोलहवाँ भाग (कला) या सोलहवें भाग का एक अंश (कलाभाग) ही है। वर्तमान में, अब, सिखाए गए सत्य (वत्तधम्म) को इस प्रकार इंगित करने के लिए: “आज मैंने जिसका पूर्णतः आनंद लिया है,” उन्होंने

कहा: अपारिमितदस्सिना गोतमेना, बुद्धेन सुदेसीतो धम्मो। इसका अर्थ है: द्रष्टा (पसी) अपने स्वयं निर्मित (सयम्भु) ज्ञान (ज्ञान) के माध्यम से, जो असीम, असीमित और शांत है, क्योंकि प्रकट (उप्पाद) और लुप्त (वय) नहीं होते; असीम और असीमितता के ज्ञान (ज्ञेय्य) की अंतर्दृष्टि (दस्सावी) रखने वाला: इस प्रकार, उनके द्वारा,अपरिमिता दासिना (अथाह का द्रष्टा), गोतम, कुल से, आत्म-जागृत बुद्ध, देसिटो धम्मो (सत्य (धम्म) को अच्छी तरह से (सुथु) इस तरह से सिखाया गया था; "खायं विरागं अमातं पनीताम् (अक्षय (खाय), वासनाहीनता (विरागा), अमरता (अमाता), श्रेष्ठ)," "मदनिम्मादानो पिपासविनयो (कामुक अति को कुचलने वाला और प्यास को दूर करने वाला," साथ ही "सब्बासंखारसमथो (सभी 'जीवन के अनुभवों' (संखरा) का समापन (समथ),)" और इसी तरह; निब्बाण का आनंद मैंने आज (अज्ज) लिया है; इस प्रकार, व्याख्या है।

थेरा परिपुन्नक के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(92):विजय

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (92) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
92. विजया
उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उनका नाम विजया रखा गया। जब उन्होंने ब्राह्मण (पुजारी) ज्ञान प्राप्त कर लिया, तो उन्होंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करके) एक तपस्वी के रूप में जीवन व्यतीत किया, [86] और वन में ध्यान का अभ्यास करते रहे। फिर उन्होंने बुद्ध के मिशन के बारे में सुना और प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम करने और उनका प्रवचन सुनने गए। इसके बाद वे भिक्षु संघ में प्रवेश कर गए और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया, और इस श्लोक में अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) का अभिनंदन किया:

[92] यस्सासव [14] परिक्खिना अहारे च अनिसिटो,॥
सुन्नता अनिमितो च विमोक्खो यस्सा गोकारो,॥
अकासेवा सकुन्तनं पदं तस्स दुरन्नयन्ति॥ ॥

[92] जिसमें मादक पदार्थ (अशुद्धियाँ/इच्छाएँ) सूख गए हों;
जिसका सुख भोजन पर निर्भर न हो;
जिसका क्षेत्र शून्य और अचिह्नित
तथा स्वतंत्रता में हो: - जैसे हवा में पक्षियों की उड़ान,
वैसे ही उसका पता लगाना कठिन है। [1]

[1] मादक पदार्थ = आसवा (देखें भजन 147)। भोजन (आहारो) आम लोगों द्वारा प्रदान की जाने वाली सभी चार आवश्यक वस्तुओं (भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि) का प्रतिनिधित्व करता है। टीका। 'स्वतंत्रता' 'लालसा से मुक्ति' या संतोष के तीसरे चिन्ह का प्रतिनिधित्व करती है। एक अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में, उसका मन केवल उन विचारों और इच्छाओं पर रहता है जो तीन लक्षणों - दु:ख, अनित्यता और आत्म-भ्रम - से रहित और अप्रभावित होते हैं। 'पथ' (पदा) से तात्पर्य नियति - अर्थात् पुनर्जन्म से है। इस गाथा का एक भाग, और लगभग वही टीका, धम्मपद के श्लोक 92 (टीका, ii. 171-173) में मिलता है, जिसे भगवान (बुद्ध) द्वारा बेलट्ठसीसा को संबोधित करते समय उद्धृत किया गया है {cf. भजन 16)। उद्धृत टीका पुनर्जन्म के सभी रूपों को सूचीबद्ध करती है; धम्मपाला केवल नरक में 'नियति' का वर्णन करते हैं, बाकी सब कुछ। दोनों का कहना है कि उसकी नियति का निर्धारण करना उतना ही असंभव है जितना यह बताना कि पक्षी कहाँ और कैसे उतरेंगे।

1.10-2[92] विजयथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यस्सासवपरिक्खीना से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा विजय का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के बाद, उन्होंने भगवान पियादस्सी के समय एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब गुरुजी परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने

ज्ञान प्राप्ति पर उनके मंदिर के लिए रत्नजड़ित चौखट बनवाई और उनके सम्मान में एक भव्य चौखट उत्सव आयोजित किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे रत्नमणि के प्रकाश में सैकड़ों जन्मों तक विचरण करते रहे। इस प्रकार देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए, वे श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम विजय था। वयस्क होने पर उन्होंने ब्राह्मण विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, संसार का त्याग किया, संन्यासी बन गए, वन क्षेत्र में ध्यान साधते हुए निवास किया, बुद्ध के प्रकट होने का वृत्तांत सुना, उनके प्रति श्रद्धा जागृत हुई, गुरु के समक्ष उपस्थित हुए, उन्हें प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। गुरु ने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उन्होंने सत्य (धम्म) को सुना, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"जब संसार के रक्षक, पियादस्सी,

श्रेष्ठतम पुरुषों ने निर्वाण प्राप्त किया।

मैंने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर मोतियों की रेलिंग बनाई।

और नेक दिल। मैंने एक बहुत ही उत्कृष्ट काम किया।

रेलिंग, जिसके चारों ओर रत्न जड़े हुए थे

(मणि)। सम्मान में उत्सव आयोजित करने के बाद

रेलिंग से गिरते ही मेरी मौत हो गई।

मैं जिस भी स्थिति में होता

पुनर्जन्म, चाहे दिव्य रूप में हो या मानव रूप में,

उनके पास आकाश में उत्पन्न होने वाले रत्न (मणि) थे।

(मेरे लिए); यह एक सार्थक परिणाम है

सराहनीय कार्य।

सोलह सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब, छत्तीस शासक मौजूद थे।

मणिप्पभासा नामक अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज

(रत्न की चमकती रोशनी)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने "यस्सावा परिक्खीना" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिससे उनकी अञ्ञा (प्राप्ति) प्रकट हुई।

92. वहाँ, yassāsavā parikkhīnā का अर्थ है: — वे चार दोष जिनमें इंद्रिय सुख आदि का दोष शामिल है, जिनका सदा उत्तम व्यक्तित्व अपने श्रेष्ठ मार्ग (ariyamagga) के कारण सर्वथा समाप्त (khīnā) हो गया और त्याग दिया गया। Āhāre ca anissito का अर्थ है: जो भी आश्रित (anissito) नहीं है, भोग के बंधनों (agadhito) से मुक्त है, वह पोषण (āhāre) में निर्दोष (anajjhāpanno) हो गया है; यह केवल (matta) एक उदाहरण (nidassana) है; यहाँ, भोजन (āhāra) के शीर्ष (sīsa) के साथ चार धार्मिक आवश्यक तत्व (paccaya) भी लिए गए हैं (gahita); इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यहाँ व्याकरणिक अभिव्यक्ति (सद्दा), अर्थात् आहार, को एक धार्मिक सार (पच्चय) के नामकरण (परियय) के रूप में समझा जाना चाहिए। "सुञ्ञतो अनिमित्तो च" का अर्थ है: यहाँ, उद्देश्यहीन (अप्पनिहित) मुक्ति (विमोक्खा) को भी लिया गया है; ये तीनों शब्द भी निर्वाण के नाम हैं। वास्तव में, निर्वाण शून्य (सुञ्ञ) है क्योंकि इसमें सूची (राता) आदि का अभाव है; स्पष्ट रूप से उनसे मुक्त (विमुता) (तेहि); इस प्रकार, शून्यताविमोक्खा (शून्यता मुक्ति); इसी प्रकार, यह चिन्हहीन (अनिमित्तं) भी है, क्योंकि इसमें कामवासना (राग) आदि के चिन्हों का अभाव है, साथ ही सृष्टि (संखार) के चिन्ह (निमित्त) का भी अभाव है। स्पष्ट रूप से उनसे मुक्त; अतः, अनिमित्त विमोक्खा (निशानहीन मुक्ति); काम (राग) आदि जैसी आकांक्षा (पनिधि, संकल्प) के अभाव के कारण, यह लक्ष्यहीन (अप्पनिहित) है; स्पष्ट रूप से उनसे मुक्त; अतः, अप्पनिहितविमोक्खो (लक्ष्यहीन मुक्ति); ऐसा कहा गया है। जो व्यक्ति फल प्राप्ति के माध्यम से इन तीन श्रेणियों (विधा) को अपना इंद्रिय विषय (आरम्मन) बनाकर जीवित रहता है, उसके लिए भी विमोक्खो यस्सा गोचरो (जिसका चारागाह (गोचरो) मुक्ति (विमोक्खो) है)। आकाशकेव सकुंतानं, पदं तस्स दुरन्नयं का अर्थ है: — जिस प्रकार आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के बारे में यह जानना संभव नहीं है कि "इस क्षेत्र में वे पैरों से चलकर गए थे; वे इस क्षेत्र में अपने सीने (उरे) से प्रहार करते हुए गए थे; यह सिर (सीसा) से और यह पंखों (पक्खा) से"; ठीक उसी प्रकार, ऐसे भिक्षु के बारे में यह जानना संभव नहीं है कि "वह इस मार्ग (पद) से नरक (निरिया) आदि के मार्गों में गया था।"

थेरा विजय के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(93):एराका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (93) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
93. एराका
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम एराका रखा गया। [1] वे सौंदर्य और आकर्षण से परिपूर्ण थे, इसलिए उन्हें जो भी कार्य करना होता था, उसमें वे सर्वोपरि स्थिति में होते थे। उनके माता-पिता ने उनका विवाह एक ऐसी कन्या से किया जो सौंदर्य, सद्गुण, आयु और योग्यताओं के मामले में उपयुक्त थी। लेकिन जल्द ही, क्योंकि यह उनका अंतिम जीवन था, वे निरंतर जीवन से व्याकुल हो गए और [87] भगवान (बुद्ध) की शरण ली। उनसे धम्म का उपदेश सुनने के बाद, एराका ने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया)। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें अभ्यास कराया, लेकिन कुछ दिनों तक वे बुरे विचारों में लीन रहे। तब भगवान (बुद्ध), उनके विचारों की धारा को जानते हुए, उन्हें एक श्लोक में संबोधित किया। और इसे सुनकर उन्होंने सोचा: 'मैंने अनुचित कार्य किया है; मैं मूर्ख हूँ कि ऐसे भगवान (बुद्ध) से शिक्षा प्राप्त करते समय भी मैं बुरे विचारों में लीन रहा।' और दुःख में डूबे हुए उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त करने में स्वयं को समर्पित कर दिया, और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इस पर उन्होंने उस श्लोक को दोहराते हुए अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[93] दुक्खा कामा एराका न सुखा कामा एराका,॥
यो कामे कामयति दुक्खं सो कामयति एरका,॥
यो कामे न कामयति एरका दुक्खं सो न कामयति एरका' ती॥ ॥

[93] हे एराका, सांसारिक इच्छाएँ दुखद हैं!
हे एराका, सांसारिक इच्छाओं में कोई कल्याण नहीं!
जो कोई इंद्रिय सुखों की इच्छा करता है, वह दुःख की इच्छा करता है।
जो कोई इंद्रिय सुखों की इच्छा नहीं करता, वह दुःख की इच्छा नहीं करता। [2]

[1] एराका एक प्रकार का पौधा प्रतीत होता है, शायद एक घास, जिसे कंबल या चटाई में बुना जाता था (विनय ग्रंथ, ii. 35, n. 8; जातक, iii. 91; सिटर्स, lxii. 435) । मज्झ., i. 87 = मिलिंदा , i. 276 में एक शहर को एराका-घास कहा गया है। तुलना करें धप. टिप्पणी, iii. 231 भी ।

[2] इस गाथा की संयमित और सरल भाषा काव्यमय नहीं है, और अनुवाद में भी इसका बारीकी से पालन किया गया है। काम (सांसारिक इच्छाएँ; इंद्रिय सुख) को समानार्थक नहीं माना जा सकता। बौद्ध धर्म जीवन के इस तल, पशु जीवन और निम्नतम लोकों को भी 'काम का क्षेत्र' मानता है। 'अपुष्ट इच्छा' शायद इसका सबसे सटीक अनुवाद है। केवल 'इच्छा' शब्द सही नहीं है, क्योंकि धम्म-चंदा, या उच्चतर चीजों की इच्छा भी कामावचर लोक के जीवन की विशेषता है। डॉ . न्यूमैन ने 'वासना' शब्द का प्रयोग किया है; हमारा शब्द 'वासना' विशेषीकरण के कारण विकृत हो गया है। 'सुख' को इस प्रकार विकृत नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि सुख (सुख) भी होता है जिसमें दुःख नहीं होता।

1.10-3 [93] एराकत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
दुक्खा कामा एरका से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा एरका का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, इनका पुनर्जन्म भगवान सिद्धार्थ के समय में एक पारिवारिक घर में हुआ। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्हें गुरु के दर्शन हुए। वे श्रद्धा से भर गए, परन्तु गुरु को अर्पित करने योग्य कुछ न मिलने पर उन्होंने मन ही मन कहा, “अब मैं उत्तम कर्म (सार) करूंगा और शारीरिक रूप से (काय) गुरु के मार्ग को समतल (समं) कर दिया। गुरु ने उस मार्ग पर प्रवेश किया। वहाँ भगवान को देखकर वे श्रद्धा से भर गए, उन्हें प्रणाम किया, हाथ जोड़कर खड़े रहे और बुद्ध के ध्यान में लीन रहे, जब तक कि वे उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। इस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे जन्म-जन्म के चक्र में घूमते रहे, परन्तु उत्तम जीवन व्यतीत करते रहे। जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे (सुगति) सावत्थी में एक सम्मानित (संभवनीय) जागीरदार (कुटुम्बिया) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए। उनका नाम एराका था। वे अत्यंत सुंदर (अभिरूपो), आकर्षक (दस्सनीयो), सुरुचिपूर्ण (पासादिको) थे और जो भी कार्य किया जाता था, उसमें पूर्ण (परम) सिद्धि (वेय्यात्तिया) प्राप्त थे। उनके माता-पिता ने उनके समान पारिवारिक स्थिति (कुल), सुंदरता (रूप), आचरण (आचार), आयु (वय) और चतुराई (कोसल्ल) वाली एक उपयुक्त (अनुच्छविक) कन्या लाकर उनका विवाह कराया। घर में उनके साथ सहवास करते हुए, वे बार-बार जन्मों (संसार) के चक्रों से दुखी होकर, अपने अंतिम जन्म में होने के कारण पश्चाताप के किसी स्रोत (वत्थु) के माध्यम से गुरु के समक्ष गए। उन्होंने सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए; उन्हें गुरु ने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) दिया। उन्होंने उस मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को अपनाया और कुछ दिनों के भीतर पश्चाताप (उक्कन्ठ) से ग्रस्त होकर उनका निधन हो गया। तब गुरु ने उनके हृदय में घटी घटना को जानकर, उपदेश के रूप में “दुक्खा कामा एरका” से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। इसे सुनकर उन्होंने मन ही मन कहा, “मैंने जो अनुचित (आयुत्त) कार्य किया है, वह यह है कि मैं अनुचित (मिद्धा) विचारों (वितक्का) में लीन (बहुला) रहा, और गुरु के समक्ष उस मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को प्राप्त करने के बाद उसे भूल गया (विषज्जंतो)। गुरु जैसे व्यक्तित्व के कारण, “उन्हें पश्चाताप हुआ, उन्होंने अपना मन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में लगाया (युत्तपयुत्त) और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।”

“अंतर्दृष्टि (चक्खुमा) के स्वामी,”

एक छोटी नदी (नदीका) पार करने के बाद,

मैं जंगल में गया। संयोगवश मेरे पास

उस स्व-जागृत बुद्ध सुद्धत्थ को देखा,

जिनके विशिष्ट लक्षण (लक्खना) थे

बहुत बढ़िया। अपने साथ ले जाने के बाद

कुदाल और पिटक और

उस पथ को समतल कर दिया।

मैंने गुरु को नमन किया, और

मेरे मन को सुखद रूप से धार्मिक बना दिया, (pasā-

dayiṃ).

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने तब वह काम किया; मैं नहीं करता

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

सड़क (मग्गा) का फलदायी परिणाम

दान (दान)।

सत्तावन युग (कप्पा) पहले वहाँ

एक सम्राट ने असंख्य लोगों पर शासन किया

(जनाधिपा), सुप्पाबुद्ध नाम से; वे थे

एक नेता (नायक), मनुष्यों का सम्राट।

(नारिसारो).

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत बनने के बाद, उन्होंने उत्तर में (पच्चुदाहासी) भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए उसी श्लोक का पाठ किया, जिससे उनकी अञ्ञा (प्राप्ति) (अरहंत पद) प्रकट हुई।

93. हे एराका! कष्टदायक (दुक्खा) कामुक होते हैं

सुख (काम)। हे एराका! कामुक

सुख (काम) आनंदमय (सुख) नहीं होते।

हे एराका! जो कोई भी (कामयति) इच्छा रखता है

वह कामुक सुखों (काम) का स्वागत करता है।

(कामायति) दर्द (दुक्खा)। हे एराका!

जो कोई इच्छा नहीं करता (कामयति)

वह कामुक सुखों (काम) का आनंद नहीं लेता।

स्वागत (कामयति) दर्द (दुक्खा)।"

वहाँ, दुःखा कामा का अर्थ है:— वास्तविकताओं (वत्थु) के लिए ये इच्छाएँ (कामा) और विकृतियों (किलेसा) की इच्छा पीड़ादायक (दुक्खा), पीड़ा से ग्रसित (दुक्खामा) और पीड़ा उत्पन्न करने वाली (निब्बत्तिका) हैं, क्योंकि ये पीड़ा (दुक्खा) का विषय (वत्थु) हैं, और पीड़ा के उतार-चढ़ाव (विपरीतनामदुक्खा) के कारण; और बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) की पीड़ा (दुक्खा)। वास्तव में, यह कहा गया है: "अप्पसादा कामा भुदुक्खा बहुपायासा, आदिनवो एत्थ भिय्यो (इंद्रिय सुख कष्टदायक होते हैं, जो बहुत पीड़ादायक और अत्यधिक निराशा से भरे होते हैं; यहाँ हानि बहुत अधिक है);" और इसी प्रकार। रेवता का अर्थ है; सबसे पहले, भगवान बुद्ध ने उन्हें संबोधित किया; बाद में, थेरा ने स्वयं से नाम लेकर बात की। ना सुखा कामा का अर्थ है: ये इंद्रिय सुख (कामा), अर्थात्, ज्ञानी व्यक्ति के लिए सुख नहीं हैं; लेकिन अज्ञानी व्यक्ति के लिए, ये सुखतो के रूप में उपस्थित होते हैं (उपठहन्ति)। तदनुसार बुद्ध ने कहा: "यो सुखं दुःखतो अड्डा, दुःखमदक्खी सल्लतो (जिसने सुख को दुःख और दुःख को काँटे के समान समझा)," इत्यादि। यो कामे कामयति, दुःखं सो कामयति का अर्थ है: - जो प्राणी कर्म के कारण कर्म की इच्छा रखता है, वह इच्छा कष्टदायी होती है क्योंकि वह वर्तमान में तीव्र बुखार के साथ होती है, और भविष्य में जन्म-मृत्यु के चक्र के कष्टों के कारण भी होती है; हालांकि, कर्म कष्ट पीड़ा के अधीन होते हैं; इसलिए, वह पीड़ा की इच्छा रखता है। अतः, वह दुःख (दुक्खा) के स्वभाव (सभाव), दुःख (दुक्खा) के विशिष्ट लक्षण (निमित्त) और कष्ट (दुक्खा) के आधार (वत्थु) की कामना करता है; ऐसा कहा गया है। दूसरे (इतरं) को उसके विपरीत (पटिपक्खा) के माध्यम से उसी अर्थ को प्रकट करने के लिए कहा गया है; अतः, इसका अर्थ कही गई बात के विपरीत (विपरीय) रूप से समझा जाना चाहिए।

थेरा एराका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(94):मेटाजी

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (94) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
94. मेट्टाजी
बुद्ध युग में मगध राज्य में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम मेट्टाजी रखा गया। [1] बड़े होकर उन्होंने सांसारिक इच्छाओं की बुराई को देखा और वन में रहने वाले एक तपस्वी बन गए। बुद्ध के आगमन की खबर सुनकर और पूर्ववर्ती कारणों से प्रेरित होकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) की शरण ली और उनसे अपनी प्रगति और पतन के बारे में पूछा। दिए गए उत्तर ने उन्हें आश्वस्त किया कि उन्हें भिक्षु संघ में प्रवेश करना चाहिए, जिसके बाद उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। और इस श्लोक में उन्होंने भगवान (बुद्ध) की स्तुति की:

[94] नाम हि तस्स भगवतो शाक्यपुत्तस्स सिरिमतो,॥
तेनायं अग्गप्पट्टेना एग्गो धम्मो सुदेसिटो' ति.॥ ॥

[94] हे परम पूज्य (बुद्ध),
हमारे तेजस्वी प्रभु, शाकियों के पुत्र, की जय हो!
क्योंकि उन्होंने सर्वोच्च शिखर प्राप्त किया है,
और उन्होंने सर्वोच्च मार्ग (धम्म) को भली-भांति प्रदर्शित किया है।

[1] स्नेह से विजेता.

1.10-4 [94] मेट्टाजिथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
नमो हि तस्स भगवतो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मेट्टाजी का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान अनोमदस्सी के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, वे शासन के प्रति विशेष रूप से सजग हो गए और बोधि वृक्ष के लिए ईंटों से बाड़ बनवाई और उसे सीमेंट से पूरा करवाया। गुरु ने उनके लिए धन्यवाद-उपदेश दिया। उस पुण्य कर्म के कारण, उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में भटकते रहे और मगध राज्य में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम मेट्टाजी था। वयस्क होने पर, उन्हें काम (इंद्रिय सुख) में हानि (आदिनवं) का पता चला, उन्होंने संसार त्याग कर संन्यासी बन गए और वन में निवास करने लगे। तभी उन्हें बुद्ध के प्रकट होने का वृत्तांत प्राप्त हुआ। अपने पूर्व (पुब्ब) कारण (हेतु) से प्रेरित होकर वे गुरु के समक्ष गए, घटना (पवत्ति) और वापसी (निवत्ति) से संबंधित प्रश्न पूछे, और जब गुरु ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया, तो उन्होंने उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैंने बोधि वृक्ष के लिए एक रेलिंग बनाई

अनोमादस्सी का; जिसने एक टुकड़ा चढ़ाया था

मैंने सीमेंट (सुधा) का पिंड बनाया।

मेरा शारीरिक श्रम (पानिकम्मा)।

उस (राजमिस्त्री के) काम को देखकर

हम; हो गया, अनोमादस्सी, सबसे

गुरु पुरुषों में श्रेष्ठ थे।

भिक्षुओं के बीच में उन्होंने बात की

यह छंद। इस सीमेंट के कारण

इच्छाशक्ति (cetanā) के साथ मिलकर काम करना

और संकल्प (पनिधि) वह एक रखेगा

पीड़ा का अंत (दुक्खा)

खुशहाल समृद्धि।

मैं सुगठित रंगत वाला (वन्ना) हूँ।

प्रसन्न और पवित्र (पसन्ना) चेहरा (मुख)।

एकाग्रचित्त (एकग्गो) और सुव्यवस्थित

(susamāhito); मैं अपना अंतिम (antima) धारण करता हूँ

व्यवस्था (शासन) में शरीर (देह)

आत्मजागृत बुद्ध का।

यदि सभी तरफ से कम नहीं (अनुनका)

पूर्ण (परिपुन्न) सौ युग (कप्पा)

कुछ समय पहले, सब्बा नाम का एक शासक था-

मैं घाना का एक बहुत शक्तिशाली विश्व-राजा था।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गुरु की प्रशंसा में एक श्लोक बोला।

94. "सचमुच! मेरी श्रद्धा उसी के प्रति है।"

हे ईश्वर, कृपालु साकियान पुत्र;

यह सर्वोपरि सत्य (धम्म) रहा है

जिसने यह उपलब्धि प्राप्त की थी, उससे अच्छी तरह से शिक्षित।

सबसे अग्रणी।"

वहाँ, नमो का अर्थ है: आराधना करना (नमक्कारा)। ही का अर्थ है; केवल एक अविघटनीय कण (निपात)। तस्स का अर्थ है: वह भगवान, जिन्होंने तीसों सिद्धियों को पूर्ण करके, सभी दोषों को चूर-चूर कर दिया (भंजित्वा), और सर्वोत्कृष्ट आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद विशेष रूप से आत्म-जागृत बुद्ध बन गए; वे शाक्य राजा के पुत्र हैं; अतः, शाक्यपुत्र (शाक्य पुत्र)। वह सिरिमा हैं क्योंकि वे अपने सुंदर शरीर (रूपकाय) की उत्तम सुंदरता (सिरी) और अपने आध्यात्मिक शरीर (धम्मकाय) की महिमा (सिरी) से परिपूर्ण हैं, जो कि ऐसे पुण्य कर्मों की समृद्धि (संपत्ति) के फलस्वरूप है जिनका दूसरों से कोई संबंध नहीं है (साधारण)। मेरी आराधना उस धन्य, शाक्य पुत्र, सुंदर महिमा के स्वामी को हो; मैं उन्हें नमामि प्रणाम करता हूँ। यही अर्थ है। तेन का अर्थ है: उस धन्य के द्वारा; अयं का अर्थ है: वह स्वयं उस सत्य (धम्म) का प्रत्यक्ष प्रमाण (पच्चाख) होकर बोलते हैं। अग्गप्पत्तेन (सर्वज्ञता प्राप्त करने वाले के द्वारा); दूसरे शब्दों में, सर्वगुणों से परिपूर्ण सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करने वाले। अग्गधम्मो का अर्थ है; सर्वोत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ नौ प्रकार का (नवविध) पारलौकिक सत्य; दिसितो का अर्थ है; उत्कृष्ट (सुत्तुं) और स्पष्ट रूप से (अविपरितं) सिखाया गया (पवेदितो)।

थेरा मेट्टाजी के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(95):चक्खुपाला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (95) ------>>>> अगला
अध्याय I.
एकल श्लोक
95. चक्खुपाल

बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में महा-सुवञ्ञा नामक एक जमींदार के पुत्र के रूप में हुआ और उन्हें पाल नाम दिया गया। [1] उन्हें पाल मेजर भी कहा जाता था, क्योंकि उनके छोटे भाई को पाल माइनर कहा जाता था। माता-पिता ने पुत्रों को गृहस्थी के बंधन में बांध दिया। लेकिन भगवान (बुद्ध) जेतवन में आए, और वहाँ पाल मेजर ने उन्हें सुना, और अपने भाई को संपत्ति का प्रबंधन सौंपकर भिक्षु बन गए। पाँच वर्ष तक नौसिखिए के रूप में रहने के बाद, वे साठ भिक्षुओं के साथ अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए चले गए। उन्होंने एक सीमावर्ती गाँव के पास एक वन क्षेत्र चुना, जहाँ गाँव के लोग गृहस्थ अनुयायी थे, और वे पत्तों की कुटिया में रहकर एक संन्यासी भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करने लगे।

उन्हें नेत्र रोग हो गया और डॉक्टर ने उन्हें दवा दी। लेकिन उन्होंने सलाह नहीं मानी और बीमारी और बढ़ गई। उन्होंने सोचा, 'आँखों की बीमारी से राहत पाने से बेहतर है नैतिक पीड़ाओं (किलेसा) को दूर करना ।' इसलिए उन्होंने आँखों की पीड़ा को नज़रअंदाज़ कर अपनी अंतर्दृष्टि पर ध्यान दिया, जिससे उनकी आँखें और पीड़ाएँ एक साथ दूर हो गईं। और वे एक 'दृष्टिहीन' अरहंत (प्रबुद्ध) बन गए। [2]

अब ग्रामवासियों ने भिक्षुओं से थेरा के बारे में पूछा, और उनकी अंधता के बारे में सुनकर, वे [89] अपराधबोध से भरे हुए उनकी सेवा करने लगे। फिर उन भिक्षुओं ने भी अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया, और उन्होंने गुरु को प्रणाम करने के लिए सावत्थि लौटने का प्रस्ताव रखा; लेकिन थेरा ने कहा: 'मैं दुर्बल और अंधा हूँ, और यात्रा जोखिम भरी है। मैं तुम्हें रोकूँगा। तुम पहले जाओ और मेरी ओर से भगवान (बुद्ध) और महान थेरों को प्रणाम करो, और पाल माइनर को मेरी स्थिति के बारे में बताओ ताकि वह मेरे पास एक सेवक भेज दे।' अंततः उन्होंने अपने संरक्षकों से विदा लेकर और उन्हें रहने की व्यवस्था करके जाने की सहमति दी। और उन्होंने उनके वचन का पालन किया, और पाल माइनर ने अपने भतीजे पालिका को भेजा। और भिक्षुओं ने पालिका को भिक्षु दीक्षा दी, क्योंकि एक अकेले गृहस्थ के लिए मार्ग सुरक्षित नहीं था। वह गया और थेरा से अपना परिचय दिया, और उनके साथ चल पड़ा। रास्ते में, जंगल में एक गाँव के पास, एक लकड़हारे की पत्नी गा रही थी। नौसिखिए को वह आवाज़ बहुत अच्छी लगी, और उसने अपने चाचा को रुकने के लिए कहकर उसके साथ जाकर गाने लगा। थेरा ने सोचा, 'मैंने एक स्त्री को गाते हुए सुना, और मेरा नौसिखिया यहाँ देर से रुका है। क्या यह किसी बुरे काम में लगा है?' युवक ने लौटकर कहा, 'चलिए, महाराज।' और थेरा ने कहा, 'क्या! क्या तुम बुरे काम में लगे हो?' नौसिखिए ने अंत में अपना गुनाह कबूल कर लिया, और थेरा ने कहा, 'इतना बुरा आदमी मेरे लिए काम नहीं करेगा। यहाँ से चले जाओ!' 'लेकिन रास्ता खतरनाक है, और तुम अंधे हो। कैसे जाओगे?' 'मूर्ख! अगर मैं लेट कर मर भी जाऊँ, तो भी मैं आगे बढ़ूँगा, लेकिन तुम्हारे जैसे लोगों के साथ नहीं।' फिर उसने यह श्लोक कहा:

[95] अंदोहाṃ हटनेटोस्मि कंतारद्धानपक्कनतो,॥
सयमनोऽपि गच्छिस्साऽ न सहयेन पपेनाऽ ति.॥ ॥

[95] मैं पूरी तरह अंधा हूँ और मेरी आँखें नष्ट हो चुकी हैं
और मैं जंगल के वीरान इलाकों में भटकता रहता हूँ।
फिर भी मैं जाऊँगा, चाहे लेटना ही क्यों न हो,
लेकिन बुराई के बच्चे को अपना साथी बनाकर नहीं।

फिर दूसरा, अपने बुरे कर्म के प्रति सचेत होकर, बाहें फैलाकर रोते हुए जंगल में कूद गया। परन्तु थेरा के पुण्य के प्रभाव से सक्का (देवताओं के राजा, जिन्हें इंद्र भी कहा जाता है) का सिंहासन प्रज्वलित हो गया, और देवता, श्रावस्ती की यात्रा पर निकले एक मनुष्य के रूप में, अपना दंड लेकर उसी शाम उसे श्रावस्ती के जेतवन में ले आए। और पाल बालक ने जीवन भर उसकी सेवा की।

[1] पूरा नाम का अर्थ है नेत्र रक्षक, पिता का महान-स्वर्ण। यह कहानी धम्मपद की उस संकलन के आरंभिक श्लोकों पर टिप्पणी में कुछ अधिक विस्तृत रूप से और थोड़े भिन्न शब्दों में दी गई है। उच्चारण चक्खु-।

[2] संकलन देखें , पृष्ठ 75.

1.10-5 [95] चक्खुपालत्थेरा के श्लोक पर टीका
अन्धोऽहं हतनेत्तोऽस्मि से शुरू होने वाला श्लोक चक्खुपाल का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, भगवान सुद्धत्थ के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब उन्होंने बुद्धि प्राप्त की और भगवान सुद्धत्थ परिनिर्वाण में प्रवेश कर चुके थे, तब उन्होंने मंदिर उत्सव (महा) के दौरान सन (उमा) का फूल (असुर) एकत्र करके श्रद्धापूर्वक मंदिर में पूजा की। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया और समय-समय पर पुण्य कर्म करते

हुए, अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में महासुवन्न नामक एक जमींदार (कुटुम्बिका) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उन्होंने उसका नाम पाला रखा। जब वह दौड़ने-भागने लगा, तब उसकी माता को एक और पुत्र प्राप्त हुआ। उसके माता-पिता ने उसका नाम चूलपाल रखा और दूसरे का नाम महापाल रखा। बाद में, जब वे वयस्क हो गए, तो उनके माता-पिता ने उन्हें गृहस्थ जीवन के बंधन में बांध दिया। उस समय गुरु सावत्थी के जेतवन में निवास कर रहे थे। वहाँ, महापाल जेतवन जा रहे भक्तों के साथ मठ गए, गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, अपनी संपत्ति (कुटुम्ब) का दायित्व (भार) अपने छोटे भाई (कनिट्ठ) को सौंप दिया, स्वयं भिक्षु बन गए, संघ की पूर्ण दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त की, पाँच वर्ष तक अपने गुरुओं और उपदेशकों की उपस्थिति में रहे, और उपवास समाप्त करने के बाद, उन्होंने स्पष्ट क्षमा याचना की रस्म अदा की, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठन) को एकत्रित किया, साठ साथी भिक्षुओं को प्राप्त किया, गहन ध्यान (भावना) के विकास के लिए अनुकूल (अनुकूल) निवास स्थान की खोज में लगे रहे, और उनके साथ एक में रहने लगे। वन क्षेत्र में स्थित एक पन्नस्साला नामक झोपड़ी में, जिसे गाँव में रहने वाले भक्तों ने बनवाया था और एक सीमावर्ती गाँव (पच्चन्तगामा) पर निर्भर (निस्साय) रहते हुए, एक भिक्षु (समनधम्म) के कर्तव्यों का पालन करता था। उसे आँखों की बीमारी हो गई थी। एक चिकित्सक ने औषधि तैयार करके उसे दी। उसने चिकित्सक द्वारा बताई गई औषधि का पालन नहीं किया (वत्त)। इसी कारण उसकी बीमारी और बढ़ गई। वह अपनी आंखों की बीमारी के प्रति धीरे-धीरे उदासीन (अज्जुपेक्खित्वा) हो गया और मन ही मन कहने लगा: “मेरे लिए तो आंखों की बीमारी को ठीक करने से बेहतर (वरं) तो इस बीमारी पर विजय पाना (वूपसमना) है।” और उसका ध्यान केवल आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने पर केंद्रित (युत्तपयुत्तो) हो गया। जब वह गहन ध्यान (भावना) में लीन (उसुक्कापेंत) था,उसकी आँखें और उसका दुराचार दोनों एक साथ नष्ट हो गए (भिज्जिंसु) (अपुब्बं अचरिमं)। वह शुष्क दृष्टि वाले अरहंत बन गया (सुक्खविपस्सक)। इसलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

जब विश्व-सम्मानित, योग्य

पवित्र बलिदान प्राप्तकर्ता,

भगवान सिद्धार्थ ने प्रवेश किया

निब्बाना, वहाँ एक महान आयोजन हुआ था

मंदिर-उत्सव।

जब त्योहार मनाया जा रहा था,

महान ऋषि सिद्धार्थ के लिए, मैंने संग्रह किया

सन (उमा) के (नीले) फूल और

विशेष रूप से (अभिरोपयिं) उन्हें अर्पित किया

मंदिर।

आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले,

मैंने विशेष रूप से फूल भेंट किए थे;

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

श्रद्धापूर्वक किए गए इस कार्य का फलदायी परिणाम यही है।

मंदिर में चढ़ाया गया चढ़ावा।

नौवें युग (कप्पा) में इससे पहले

इस (ito) में पचासी उत्पन्न हुए

संप्रभु शासक, अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा,

सोमदेव के नाम से।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

बाद में, जब थेरा अपनी आंखों की बीमारी के कारण मठ में ही रह गए (चीना), तो भक्तों ने भिक्षा मांगने के लिए गांव आए भिक्षुओं को देखकर पूछा, “थेरा क्यों नहीं आए?” यह सुनकर वे व्याकुल हो गए और थेरा के लिए भिक्षा लेकर आए और बोले, “आदरणीय गुरुदेव! चिंता न करें; अब हम भी आपके लिए भिक्षा लेकर आएंगे और आपकी सेवा करेंगे।” और उन्होंने वैसा ही किया। भिक्षुओं ने थेरा की सलाह मानी और अरहंत पद प्राप्त किया, लेकिन कुछ ही समय बाद उन्होंने उपवास रखा, अपने पापों का पश्चाताप किया और क्षमा याचना की रस्म अदा की और कहा, “आदरणीय गुरुदेव! हम गुरु को प्रणाम करने के लिए सावत्थी जाएंगे।” थेरा ने उत्तर दिया: “मेरी दृष्टि कमजोर है; यात्रा भी कष्टदायक है; मेरे साथ जाने में तुम्हें खतरा हो सकता है। तुम्हें पहले जाना चाहिए; वहाँ जाकर मेरी ओर से गुरु और वरिष्ठों (महाथेरा) को प्रणाम करना; चूलपाल से मेरे साथ घटी घटना के बारे में बात करने के बाद, किसी पुरुष को मेरे पास भेजना।” उन्होंने फिर से विनती की, लेकिन थेरा के जाने पर उन्होंने उत्तर दिया, “ठीक है,” अपने पलंग और आसन समेट लिए (सेनासनं संसामेत्वा), अपने भक्तों को विदाई दी (आपुच्चित्वा), अंततः जेतवन पहुँचे, थेरा की ओर से गुरु और महाथेरों को प्रणाम किया, अगले दिन भिक्षा मांगने के लिए निकले (दुतियादिवसे), सावत्थी में चूलपाल से थेरा के बारे में पूछा (तं पवत्तिं), और जब चूलपाल ने उनसे कहा, “आदरणीय महोदय! यह मेरा भतीजा पालिता है; मैं इस युवक को भेजूँगा,” तो उन्होंने उसे प्रेरित किया (पब्बाजेत्वा) और यह कहते हुए भेज दिया, “यात्रा जोखिम भरी है (सपरिसायो); एक गृहस्थ के लिए अकेले जाना संभव नहीं है (गहट्ठा); इसलिए उसे भेजा जाना चाहिए।” भिक्षु संघ में शामिल हो जाओ।” अंततः वह थेरा के समक्ष पहुंचा, थेरा को अपने बारे में बताया और थेरा को लेकर लौटते समय, एक गाँव के आसपास, वन क्षेत्र में, उसने एक महिला को जलाऊ लकड़ी इकट्ठा करते हुए गाते हुए सुना, उस पर मोहित हो गया, मार्गदर्शन करने वाले डंडे का सिरा छोड़ दिया और थेरा से इस प्रकार कहा: “आदरणीय महोदय! कृपया मेरे लौटने तक एक क्षण प्रतीक्षा करें,” उसके पास गया और वहीं उसे नैतिक पतन का सामना करना पड़ा। थेरा ने इस प्रकार विचार किया: “लेकिन अभी-अभी एक महिला के गाने की आवाज सुनाई दी थी; नौसिखिए बहुत दूर चला गया था; निश्चय ही उसे नैतिक पतन का सामना करना पड़ा होगा।” वह ननद भी लौटकर बोला, “आदरणीय महोदय! चलिए चलें।” थेरा ने पूछा, “तुम पापी क्यों हो गए?” ननद चुप हो गया और दोबारा पूछे जाने पर भी एक शब्द भी नहीं बोला। थेरा ने उससे कहा:“तुम जैसे पापी के हाथ में मेरी (मार्गदर्शक) छड़ी होना उचित नहीं है; तुम्हें चले जाना चाहिए।” फिर जब उस नौसिखिए ने कहा, “यात्रा बहुत जोखिम भरी है, और तुम अंधे भी हो; तुम कैसे जाओगे?” तो थेरा ने उत्तर दिया, “हे मूर्ख! यहाँ भी, जब मैं लेटकर मर जाता हूँ और जब मैं गोल-गोल घूमता हूँ, तब भी तुम जैसे किसी के साथ जाना संभव नहीं है।” उन्होंने इस बात को समझाने के लिए एक श्लोक कहा।

95. "मेरी आंखें खराब हो गई हैं और मैं अंधा हो गया हूँ।"

कठिन मामलों पर बातचीत करना (पक्खंदो)

(कंटारा) लंबी यात्रा (अद्धाना)।

मैं लेटना पसंद करूंगा; वहाँ

मेरे लिए किसी के साथ कोई संगति (सहाय) नहीं है।

पाप करनेवाला।"

वहाँ, अंधो का अर्थ है दृष्टिहीन (चक्खु) होना (विकला)। हटनत्ते का अर्थ है दृष्टिहीन (विनाट्ठ चक्खुका): इस प्रकार उन्होंने अपने अंधत्व की स्थिति को परिभाषित किया है, जैसा कि कहा गया है: “मैं अपनी आँखों की स्थिति (मेट्टा) के बिगड़ जाने के कारण (उपहत) साधनों की विफलता (विपत्ति) से अंधा हूँ; जन्मजात (या जन्म से) अंधा नहीं हूँ। दूसरे शब्दों में, “अंधो (अंधा);” अत: यह मांसल आँख (मंसचक्खु) की कमी को उजागर करना (दीपनम्) है, जैसा कि ऐसे कथनों में उल्लेख किया गया है: “अंधे जिन्ने मातापितरो पोसेति (वह अपने अंधे बूढ़े माता-पिता की देखभाल करता है)”, इत्यादि; जैसे कि “सब्बे पि'मे परिब्बाजका अंधा अचक्खुका (ये सभी भटकते दार्शनिक भी अंधे और दृष्टिहीन हैं)”, “अंधो एक चक्खु द्विचक्खु (दोनों आँखों से अंधा), एक आँख से अंधा, और दो आँखों वाला व्यक्ति)”, इत्यादि, यह ज्ञान की आँख (पञ्ञा) की कमी को उजागर करना (दीपनम्) नहीं है; अत:, यह दिखाने के लिए कहा गया है: — “हतनेत्तो'स्मि;” इससे वह अंधता की स्थिति की ओर इशारा करता है, लेकिन वास्तव में (मुख्य) कंतराद्धाना पक्खन्दो का अर्थ है: जंगल (विवना) में एक लंबी यात्रा पर निकल जाना, जो पार करना कठिन है (कंतरा); बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) के चक्रों की यात्रा, ऐसे कठिन मार्ग (गहन) जैसे कि पुनर्जन्मों (जाति) आदि के जंगल (गहन) में न जाना; यही इसका अर्थ (अधिप्पाय) है। वास्तव में, यह थेरा ऐसी कठिन यात्रा को पार कर चुका था; सयामानो पि का अर्थ लेटना भी है; मैं अपने सीने और घुटनों के बल जमीन पर चारों ओर घूमता रहूंगा (परिवत्तेनतो), बार-बार चक्कर लगाता रहूंगा (संसारन्तो), जब मेरे पैर मुझे नहीं ले जा पाएंगे। न सहायेन पापेना का अर्थ है: - मैं तुम्हारे जैसे पापी व्यक्ति के साथ साथी बनकर नहीं जाऊंगा; यही व्याख्या है। यह टिप्पणी सुनकर, दूसरे को पश्चाताप हुआ और उसने मन ही मन कहा, “निश्चित रूप से एक जघन्य पाप (साहसिक) किया गया है।” उसने अपनी भुजाएँ ऊपर उठाईं और घने जंगल (वनसन्द) से छलांग लगाते हुए रोता रहा। इसके बाद, थेरा के नैतिक बल (सीला) के कारण, हल्के पीले मखमली पत्थर के आसन (सक्का) में गर्मी के लक्षण दिखाई देने लगे। इसलिए, (ईश्वरीय संप्रभु) सक्का को जब इस बात का पता चला, तो वे थेरा के समक्ष गए और अपने आप को सावत्थी जा रहे एक व्यक्ति के रूप में प्रकट किया। उन्होंने थेरा के दंड का एक सिरा पकड़कर यात्रा को छोटा किया और उसी दिन शाम को थेरा को सावत्थी पहुँचाया। उन्होंने जेतवन में चूलपालित द्वारा निर्मित पत्तों की कुटिया में थेरा को एक तख्ते पर बैठाया, उन्हें बताया कि वे थेरा के साथी के वेश में आए हैं और फिर विदा हो गए। चूलपालित ने भी अपने जीवन भर श्रद्धापूर्वक थेरा की सेवा की।

थेरा चक्खुपाल के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(96): खंडसुमना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (96) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
96. खंडसुमन
बुद्ध युग में पावा में मल्ल (राजा) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर , [1] उनका नाम खण्डसुमन (चमेली) रखा गया, क्योंकि उनके जन्मदिन पर चमेली खिली हुई थी। [2] उन्होंने पावा में चुंडा के आम के बाग में रहते हुए भगवान बुद्ध का प्रवचन सुना, [3] भिक्षु संघ में प्रवेश किया और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की। इस पर उन्हें अपने पिछले जन्म याद आए: कैसे उन्होंने कश्यप बुद्ध के शिखर पर चमेली का पौधा अर्पित किया था, जब तोड़े गए सभी फूल राजा की भेंट में शामिल हो गए थे; और यह समझकर कि इस कार्य ने उन्हें अब निर्वाण की ओर कैसे मार्गदर्शन किया, उन्होंने यह श्लोक कहा:

[96] एकापुप्पाm कजित्वना असितिओ वस्सा कोटिओ,॥
सग्गेसु परकारेत्वा सेसाकेनामहि निब्बुतो' ति.॥ ॥

[96] एक फूल जो पवित्र भेंट में लाया गया,
उसने मुझे वर्षों तक सुखद जीवन दिलाया,
स्वर्गिक लोकों में; शेष ने
मुझे पूर्ण शांति और पवित्रता प्रदान की। [4]

[1] पृष्ठ 10, नोट 8 देखें।

[2] सुमाना चमेली है; खंडा टूटा हुआ, खंडित है। चमेली को खंड-सक्करा, टूटी हुई चीनी कहा जाता है।

[3] संवाद देखें , ii. 137. उच्चारण चुंडा.

[4] शाब्दिक रूप से, 'शेष से मैं निब्बुतो हूँ ' - अर्थात्, 'मुझे क्लेशों (मानसिक पीड़ाओं) का परिनिर्वाण (निपटान) प्राप्त हुआ है", दस प्रकार के नैतिक भ्रष्टाचार या पीड़ा का पूर्ण रूप से शांत होना। ऊपर देखें, LXXII., n.

1.10-6[96] खंडसुमनथेरा के श्लोक पर टिप्पणी

एकपुप्फं चजित्वाना से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा खंड सुमना का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था। जब उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और गुरुजी परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने उनके मंदिर को चारों ओर से चंदन की बाड़ से घेर लिया और इस प्रकार उन्हें अपनी महान श्रद्धा अर्पित की। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच अपार आनंद का अनुभव किया और भगवान कस्सपा के समय एक जमींदार के परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब गुरुजी परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब उस पर सोने का एक ठोस मंदिर (कौका स्तूप) बनवाया गया था। जब भी पुष्प अर्पित किए जाते थे और पुष्प उपलब्ध नहीं होते थे, तो उनकी दृष्टि एक टूटे हुए (खंड) चमेली के फूल पर पड़ती थी, जिसे वे उच्च मूल्य पर खरीदकर अपने पास रखते थे और श्रद्धापूर्वक मंदिर में अर्पित करते थे। इसके फलस्वरूप उनमें अपार उत्साह और आनंद उत्पन्न हुआ। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया, अस्सी करोड़ वर्षों तक स्वर्गिक आनंद का अनुभव किया और पावा में मल्ल राजा के परिवार में पुनर्जन्म लिया। उनके जन्म के समय उनके घर में चमेली के फूल और चीनी के टुकड़े उग आए थे। इसी कारण उनका नाम खंडसुमन रखा गया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तब वे भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, जब वे पावा में आम के बाग में निवास कर रहे थे। उन्होंने सत्य (धम्म) को सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म करके शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। अतः अपदान में कहा गया है:—

"पदुमुत्तरा नामक विजेता,

दुनिया का सबसे बूढ़ा, बैल

पुरुषों में, स्वयंजागृत बुद्ध

चमकने के बाद परिनिर्वाण में प्रवेश किया

आग के गोले की तरह चमकदार।

जब महान वीर निर्वाण प्राप्त कर चुके थे,

वहाँ एक ठोस मंदिर (थूपा) था, जो व्यापक रूप से फैला हुआ था।

विख्यात (वित्थारिको)। दूर से भी

लोगों ने इसे सबसे बेहतर तरीके से करवाया।

उत्कृष्ट अवशेष निवास (धातुगेहा)।

धार्मिक और नेक दिल होने के कारण, मैंने यह किया।

चंदन की लकड़ी की रेलिंग; का द्रव्यमान

ठोस मंदिर के साथ-साथ (रेलिंग)

मंदिर के अनुरूप ही चीजें देखी गईं

तब।

उस अस्तित्व में, मेरा पुनर्जन्म हो रहा था।

चाहे दिव्य प्राणी के रूप में हो या मनुष्य के रूप में-

क्योंकि, मैंने कभी अपनी हीनता (ओमाट्टा) को नहीं देखा।

यह मेरे पूर्व प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

काम।

पंद्रह सौ युग (कप्पा) पहले, से

अब आठ लोग (जना) उठे;

उन सभी का नाम समात्ता था, जो

वे अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज थे।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्हें अपना पिछला जन्म याद आता रहा, जहां उन्होंने चमेली के फूल की अपनी सर्वांगीण यज्ञ भेंट को स्वर्गीय समृद्धि के विशिष्ट चिह्न (निमित्त) और निर्वाण प्राप्ति के लिए पर्याप्त योग्यता की स्थिति के रूप में देखा था, और उन्होंने उस बात को स्पष्ट करते हुए, अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति के रूप में एक श्लोक कहा।

96. "बलिदान चढ़ाने के बाद

एक फूल के बारे में सोचकर मैं स्वयं चकित हो गया (paricareti)

अस्सी करोड़ के लिए स्वर्ग (सग्गा) में

वर्षों का; जो बचा था (सेसकेना)

मैं निब्बाना (निब्बुतो) की ओर अग्रसर हो गया।

वहाँ, एकपुप्पं का अर्थ फूल (कुसुम) है; हालाँकि, यहाँ वह फूल चमेली के फूल को दर्शाता है। चजित्वान का अर्थ है: ठोस मंदिर (थूप) को संदर्भिक अर्पण करके सर्वांगीण यज्ञ करना, जो ठोस यज्ञ (पसिकग) का कारण बनता है। असितिवसकोतुयो का अर्थ है: मानवीय गणना के अनुसार, अस्सी करोड़ वर्षों तक; यह शब्द कर्म कारक (उपयोग) में पूर्ण (अच्छंत) संरचना (संयोग) में है। इसे पुनर्जन्म (उप्पति) के माध्यम से बार-बार (अपरापरा) और दूसरी बार (दुतिये) स्वर्ग के छह इंद्रिय लोकों (सग्ग) में भी कहा गया है; इस प्रकार, इसे

समझा जाना चाहिए। इसलिए, सग्गेसु का अर्थ है: — तावतिंस (तैंतीस का दिव्य निवास) के रूप में गिने जाने वाले स्वर्ग लोक में; वास्तव में, यहाँ शब्द बहुवचन (बहुवचन) में है, जिसका अर्थ है बार-बार पुनर्जन्म होना। परिकारेत्व का अर्थ है: छह इंद्रियों (इन्द्रिय) को ऐसे इंद्रिय विषयों (आरम्मन) जैसे (सुंदर) रूप (रूप) आदि पर केंद्रित करना (परिकारेति); दूसरे शब्दों में, स्वयं को दिव्य नृत्यांगनाओं द्वारा परिचारित (परिकारेति) और सेवा (उपट्ठापेति) करवाना। शेषकेनांहि निब्बुतो का अर्थ है: उन्होंने उस बात के संबंध में कहा, जो जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति (उपनिस्साय) के लिए पर्याप्त योग्यता (उपनिस्साय) बन गई थी, जिससे दाता के कर्म (दयाकक्कम्म) का वह अंश शेष रह गया था जिसने जन्मों में समृद्धि प्रदान की थी, जिसके परिणामस्वरूप सही इच्छाशक्ति (पवत्त कुसलचेतना) से पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण (वसेना) किया गया था। वास्तव में, पहले (पुब्बा) और बाद (परा) के दौरान उत्पन्न हुई (पवत्त) इच्छाशक्ति (चेतना) बहुत अधिक थी। दूसरे शब्दों में, सेसाकेना का अर्थ है: उसी कर्म (कम्म) के बचे हुए (अवसेसा) 'प्रतिफल' (विपाक) के कारण, उसके पूर्णतः समाप्त (परिक्खाना) होने से पहले ही मैंने उस कर्म के फल (विपाक) में निर्वाण (निब्बुतो) प्राप्त कर लिया था; मैं पाप (किलेसा) की अग्नि के पूर्णतः बुझ जाने (परिनिब्बाना) से पूर्णतः शीतल (परिनिब्बुतो) हो गया था। इससे उन्होंने यह दिखाया: "वह बाद का (चरिमा) आत्म-सत्ता (अत्तभाव) भी, जिसमें मैं खड़ा था और स्वयं अरहंतत्व का दर्शन किया था, उस कर्म (कम्म) का फल (विपाक) है। इसी प्रकार के एक मामले के संबंध में, अन्यत्र (अञ्ञत्थ) भी कहा गया है: "तस्सेव कम्मस्स विपाकवसेसेना, उसी कर्म के अवशिष्ट 'प्रतिफल' के कारण।"

थेरा खंडसुमाना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(97):तिस्सा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (97) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
97. टिस्सा
बुद्ध युग में रोगुवा नगर में एक राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर , अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने उपाधि प्राप्त की। राजा बिम्बिसार के एक अनुपस्थित सहयोगी के रूप में, उन्होंने उन्हें रत्न, मोती और वस्त्र भेंट किए। राजा ने बदले में उन्हें चित्रित पैनल पर बुद्ध का जीवन और विशेष रूप से उत्कीर्ण स्वर्ण प्लेट पर सशर्त उत्पत्ति भेजी। [1]

जब उन्होंने ये सब देखा, तो पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेने और यह उनका अंतिम जन्म होने के कारण, वे आगे बढ़ने और पीछे मुड़ने के बारे में सोचने लगे, अपने हृदय में सिद्धांत की व्यवस्था स्थापित करने लगे और तब तक बेचैन होते रहे जब तक कि वे इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच गए: 'अब मैंने परम पूज्य (बुद्ध) का स्वरूप देख लिया है और साथ ही उनके सिद्धांत की व्यवस्था भी सीख ली है। सांसारिक इच्छाएँ दुःख से भरी हैं। मुझे गृहस्थ जीवन से क्या लेना-देना है?' और उन्होंने संन्यास त्याग दिया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और अपना मिट्टी का पात्र लेकर, राजकुमार पुक्कुसाती [2] की तरह , विलाप करते हुए लोगों के पीछे-पीछे नगर छोड़कर राजगृह चले गए। वहाँ वे सब्बसोंडिका गुफा में रहे और परम पूज्य (बुद्ध) के दर्शन किए। और उनसे ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए उन्होंने यह कथन (गाथा) कहा:

[97] हित्वा सताफलौ कांसाṃ सोवणं सातराजिकाṃ,॥
अग्गहिं मत्तिकापट्टं इदां दुतियाभसेवणं ती.॥ ॥

[97] पीतल से बने कीमती बर्तनों का त्याग करके,
मैंने सोने से बना यह मिट्टी का कटोरा धारण किया।
तब मुझे दूसरी बार अभिषेक किया गया।

[1] प्रारंभिक इतिहासकारों ने अपने समय की सभ्यता को किसी पूर्ववर्ती युग से जोड़ने में कोई विशेष सावधानी नहीं बरती; फिर भी, प्रारंभिक बौद्ध काल में भारत में लेखन का ज्ञान निश्चित रूप से था, भले ही उपयुक्त पुस्तक सामग्री की कमी के कारण इसका उपयोग

केवल संक्षिप्त शिलालेखों तक ही सीमित रहा हो। लिखित सामग्री के संबंध में, इतिहासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि चालीस वर्षों तक सार्वजनिक सम्मान और सफलता में वृद्धि करने वाले एक मंत्रालय ने संभवतः मुद्रण यंत्र के बिना भी अपने संस्थापक के जीवन और प्रमुख सिद्धांतों को लिखा और प्रसारित किया होगा।

[2] तिस्सा की कहानी वास्तव में, बुद्धघोष द्वारा मज्झ पर टीका , iii. 237 ff. में दर्ज, तक्कसिला के राजा पुक्कुसती और बिम्बिसार के बीच मित्रता के पूर्ण और सुखद वृत्तांत का एक संक्षिप्त सारांश है, जिससे यह असंभव नहीं लगता कि दोनों वृत्तांत एक ही से निकले हों। पुक्कुसती को भिक्षु बनने की पूर्व संध्या पर एक उग्र गाय ने सींग मार दिया था, इसलिए उनका नाम थेरों में दर्ज नहीं है। बिम्बिसार के उपहार दोनों कहानियों में थोड़े भिन्न हैं। उन्होंने पुक्कुसती को 'तीन रत्नों' - बुद्ध, धम्म, संघ - का वर्णन भेजा और सोने की थाली पर उन्होंने विभिन्न सिद्धांत, सतिपट्ठान, अष्टांगिक मार्ग, सैंतीस ज्ञान कारक अंकित किए थे, लेकिन पटिच्च-समुप्पाद नहीं । भारतीय साहित्य में तिस्सा से अधिक प्रचलित नाम शायद ही कोई हो, लेकिन रोगुवा के इस पूर्व राजा की पहचान किसी अन्य ज्ञात तिस्सा से नहीं की जा सकती। यह श्लोक भजन संहिता 144 में पुनः मिलता है।

1.10-7[97] तिस्साथेरा के छंद पर टिप्पणी
हितवासतपलं कांसं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा तिस्सा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए और विपस्सी बुद्ध के समय में वाहन (यान) बनाने वाले परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्हें बुद्ध के दर्शन हुए। वे श्रद्धा से भर गए और चंदन के पेड़ की टूटी हुई शाखा से एक तख्ता (चंदनखंड) बनाकर बुद्ध को अर्पित किया। बुद्ध ने उसका भी उपयोग किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और रोरुवा नगर के एक शाही परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। जब वह वयस्क हुआ, अपने पिता की मृत्यु के बाद, वह संप्रभुता (राज्जे) में स्थापित हुआ, और चूंकि राजा बिम्बिसार उसका सहयोगी था जिससे वह कभी नहीं मिला था, उसने उस राजा बिम्बिसार को रत्न, मोती, वस्त्र आदि उपहार भेजे। बिम्बिसार ने यह जानकर कि वह पुण्य (पुण्यवंत) है, अपना प्रतिफल (पटिपाभतं) भेजते हुए, बुद्ध के आचरण (बुद्धचरित) को एक बहुरंगी वस्त्र (चित्तपत्त) पर और आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पाद) को एक स्वर्ण पट्टिका (सुवन्नपट्ट) पर लिखवाकर उसे भेज दिया। उस भेंट को देखकर, उन्होंने बुद्ध के उपदेशों के क्रम (सासनक्कम) को ध्यानपूर्वक देखने (सल्लक्खेत्वा) और आगे-पीछे की गति (पवत्तिनिवत्तियो) का अवलोकन करने के बाद, उस बहुरंगी वस्त्र पर चित्रित बुद्ध के आचरण (बुद्धचरित) तथा स्वर्ण पट्टिका पर अंकित आश्रित उत्पत्ति के क्रम (पटिच्चसमुप्पाद) को ध्यानपूर्वक देखने के बाद, पूर्व बुद्धों के प्रति समर्पित सेवा कर्म करने और अपने अंतिम जन्म में होने के कारण पश्चाताप से भर गए और उन्होंने अपने प्रभुत्व का त्याग करते हुए कहा; मैंने भगवान बुद्ध का वेश (वेसा) देखा है; उपदेशों का क्रम (सासनक्कम) भी थोड़ा-बहुत (एकपकेसा) समझा है; इंद्रिय सुख (काम) अत्यंत कष्टदायक (महादुक्खा) और अत्यधिक कष्टदायी (उपायसा) हैं; अब गृहस्थ जीवन से मुझे क्या लाभ है? अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, उन्होंने परम पूज्य बुद्ध के प्रति समर्पित होकर भिक्षु का दीक्षा संस्कार ग्रहण किया, मिट्टी का कटोरा धारण किया और जनसमूह के विलाप करते समय भी नगर से बाहर निकल गए। पुक्कुसाती के समान, वे समय आने पर राजगृह पहुँचे, जहाँ उन्होंने सप्पसोंडिका पर्वत की ढलान पर विराजमान गौतम बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने धर्म का उपदेश सुना, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए मानसिक अभ्यास किया और उस पर ध्यान केंद्रित करते हुए जीवन व्यतीत किया।उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में स्वयं को व्यस्त रखा (उस्सुक्कापेति) और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

मैं पहले वाहन निर्माता था

(यानकारा), अच्छी तरह से प्रशिक्षित

लकड़ी के काम में (दारुकम्मा): बनाया हुआ

मैंने एक चंदन बोर्ड (फलका) भेंट किया।

संसार के रिश्तेदारों के लिए भी यही बात लागू होती है।

यह दिव्य महल (ब्यम्हं) चमकता है

चमकीला, सोने से अच्छी तरह निर्मित; हाथी

वाहन, घोड़े से चलने वाला वाहन, दिव्य

परिवहन के लिए, उन्होंने खुद को तैयार रखा।

(उपठित).

महल और पालकी (सिविका) उत्पन्न हुए

मेरी इच्छा के अनुसार; मेरा अनमोल रत्न-

रत्न (रतनम्) अविचलित (अक्खुब-) है

भां); यही फलदायी परिणाम है।

तख्ते की भेंट (फलका) का।

सत्तावन युग (कप्पा) पहले, चार

निम्मिता नामक अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज

उन्हें सात रत्नों से संपन्न किया गया था।

मेरी सारी बुराइयाँ जलकर राख हो चुकी थीं...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी वास्तविक उपलब्धि (पतिपत्ति) को आनंदमय अभिव्यक्ति (उदान) के माध्यम से बताने के लिए एक श्लोक बोला।

97. "धातु की ट्रे को त्यागने के बाद..."

वजन में सौ कैरेट (पाला)

सोने का पात्र (सोवन्नम)

मैंने सौ परतें (राजिका) पकड़ीं

मिट्टी के कटोरे को पकड़ना (अग्गहिं);

यह मेरा दूसरा राज्याभिषेक है (अभि-

secanaṃ).

वहाँ, हित्वा का अर्थ है त्याग दिया हुआ (परिच्चजित्वा)। सतपालं का अर्थ है जिसमें सौ कैरेट (पाला) हों, जिसका कुल वज़न सौ कैरेट हो। कांसा का अर्थ है: सोने की बनी थाली। सतराजिकं का अर्थ है: दीवार (भित्ती) की सजावट (विचित्तता) के लिए और साथ ही सुंदर रेखाओं (राजी) से सजाने (चित्तता) के लिए अनेक आवरणों (लेख) से सुसज्जित (युत्त)। अग्गहिं मत्तिकापट्टं का अर्थ है: पहले इस प्रकार के अत्यंत महंगे (एवरूपे महराहे) बर्तनों (भजन) में भोजन करने के बाद, उन्होंने बुद्धों की सलाह (ओवादं) का पालन (करोंतो) किया और अपने प्रभुत्व के त्याग (रेज्जपरिच्चागं) और भिक्षुत्व की ओर अग्रसर होने (उपगमना) पर बधाई देते हुए, बर्तन (भजन) की घोषणा के संकेत (पदेसेना) के माध्यम से कहा: — "वर्तमान में, मैंने इसे त्याग दिया है (चड्डेत्वा) और मिट्टी का कटोरा धारण कर लिया है; मैंने अद्भुत (अहो) अच्छा (साधु) कार्य किया है; मैंने श्रेष्ठ वचन (अरियवतं) बोलने का अभ्यास (अनुट्ठितं) किया है। इसलिए, उन्होंने कहा: "इदं दुतियाभिषेकनम्।" प्रथम राजराज्याभिषेक (राज्जाभिषेकनं) के संदर्भ में, मेरे भिक्षुत्व की ओर यह प्रस्थान (उपगमना) मेरा द्वितीय राज्याभिषेक (अभिषेकन) है। वास्तव में, वह प्रथम राज्याभिषेक कामवासना (राग) आदि से दूषित (संकिलिट्ठं) था, संदेह (सासंक) से ग्रस्त था, शंका (ससंकल्प) से भरा था और संदेह (सपरिसंकं) से मिश्रित था; यह ऐसा कर्म (कम्मं) है जो हानि (अनत्तसंहितं) से जुड़ा है, पीड़ा (दुक्ख) से संबंधित है और नीच (निहीनं) है; परन्तु यह (भिक्षुत्व), इसके विपरीत होने के कारण, अत्यंत उत्कृष्ट और उच्च (पानितं) है; यही इसका महत्व है।

थेरा टिस्सा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(98):अभय2

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (98) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
98. अभय (2)
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम अभय रखा गया। भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनने और भिक्षु बनने के बाद, एक दिन वे भिक्षा मांगने के लिए गाँव गए [1] और वहाँ उन्होंने एक आकर्षक वस्त्रधारी स्त्री को देखा। इससे उनका मन विचलित हो गया और वे विहार (मठ) लौट आए और सोचने लगे: 'किसी दृश्य वस्तु को देखने से मेरा मन दूषित हो गया है। मैंने पाप किया है।' इस चेतना का त्याग करते हुए, उन्होंने ऐसी अंतर्दृष्टि विकसित की कि उन्हें अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ।

इसके बाद उन्होंने इस श्लोक में अपनी नैतिक चूक और उससे उबरने की समीक्षा की:

[98] रूपाṃ दिस्वा सती मुठहा पियानिमित्तṃ मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तां च अज्जोसा तिट्ठति,॥
तस्स वन्धन्ति आसव भवमूला भवगामिनोति॥ ॥

[98] सुंदर आकृति का दर्शन आत्म-नियंत्रण को विचलित कर देता है, [2] यदि कोई केवल उस मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो हृदय भावनाओं से भर उठता है
और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
घातक पाप पनपते हैं [3] जो नए जीवन को निकट लाते हैं।

[1] अतः XIX. और XXIX. यह स्पष्ट रूप से XXVI का अभय नहीं है।

[2] सती - सचेतनता, ध्यान, विचार पर नियंत्रण।

[3] आसवा. तुलना करें श्लोक 794 आगे; सय., iv. 78.

1.10-8[98] अभयत्थेरा के छंद पर टिप्पणी
रूपं दिस्वा सति मुट्ठा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अभय का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे उन्हें जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिली (वट्टा), और इस-उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, सुमेध बुद्ध के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्हें सुमेध बुद्ध के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें सुगंधित शळा पुष्प अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण, उनका जन्म देवताओं के बीच हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते रहे, लेकिन उत्तम जन्मों में, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में, सावत्थी में हुआ। उनका नाम अभया पड़ा। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन अपनी समृद्धि (संपत्ति) (हेतु) से प्रेरित होकर वे मठ गए, गुरु द्वारा दिए गए सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों (पुब्बकिच्चा) को पूरा किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के लिए कर्म किए और जीवन व्यतीत किया। फिर एक दिन जब वे भिक्षा मांगने के लिए गांव में गए, तो संयोगवश उनकी नजर एक सुसज्जित और आभूषणों से लदी हुई गांव की स्त्री पर पड़ी, और उनके मन में उस स्त्री की सुंदरता (रूप) के प्रति कामुक लालसा (चंदराग) उत्पन्न हो गई, जो उनके अज्ञानी (अयोनिसो) मन (मानसिकारा) के प्रभाव (वसेन) के कारण थी। उन्होंने मठ में प्रवेश किया और मन ही मन कहा, "मेरे अंदर शारीरिक सौंदर्य (रूप) के विषय (आरम्मन) में, चेतना (सति) को त्यागने के बाद दृष्टि डालने से, एक अनुचित कर्म (आयुत्तं) उत्पन्न हुआ है।" उन्होंने अपने मन को संयमित (निग्घाति) किया, वहीं पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"अजेय (अपराजित) स्वयं बन गया

बुद्ध (सयम्भु), जिन्हें इस नाम से जाना जाता है

सुमेधा ने स्वयं को समर्पित करने के लिए

(anubrūhanto) विरक्तता (viveka)

गहराई में प्रवेश किया (अज्जोगही)

वन (महावनम)।

सालाला के पेड़ को खिलते हुए देखकर

मैंने एक सिर का आभूषण (वटांसक) बनाया।

फूलों को एक साथ बांधने के बाद

बुद्ध से आमने-सामने, जो नेता थे

दुनिया।

यह तीस हजार युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने पुष्प-अर्पण किया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें, यही वह स्थिति है।

श्रद्धापूर्वक बनाने का फलदायी परिणाम

बुद्ध को पूजा अर्पित करना।

उन्नीस (उनावीसा) सौ युग (कप्पा)

कुछ समय पहले, सोलह बहुत शक्तिशाली लोग उठे।

विश्व-राजा, (नाम) सुनुमित्त (सुंदर-

(निर्मित), सात रत्नों से सुशोभित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने यह दिखाने के लिए एक श्लोक कहा: "जो व्यक्ति अपने आप को दुराचार (किलेसा) के आदेशों (अनुवत्तेनतस्सा) का पालन करने के लिए बाध्य करता है, उसके लिए पुनर्जन्म के चक्र के कष्ट (दुक्खा) से सिर उठाना (उक्खिपना) भी संभव नहीं है (न'अत्थिएव); इसलिए जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने उनके आदेशों का पालन नहीं किया," उन्होंने अपने स्वयं के दुराचार के उत्पन्न होने (उप्पत्ती) के उदाहरण (निदासन) के साथ यह बात कही।

98. शारीरिक सौंदर्य (रूपं) देखकर,

जागरूकता (सती) बच निकली (मुट्ठा)।

जो स्वयं को सचेत करता है (मानसिकरोतो)

सुखद (पिया) विशेषता चिह्न

(निमित्त), वह (वेदेति) अनुभव करता है-

भावुक (सारत्ता) मानसिकता (चित्तो);

वह उससे लिपटा हुआ भी खड़ा है (अज्जोसा)।

उस आदमी के घाव (आसव) जो जाता है

(उपगमिनो) की जड़ (मूला) की ओर

अस्तित्व (भाव) में वृद्धि।

वहाँ, रूप का अर्थ है शारीरिक सौंदर्य का सुखदायक निवास (रज्जनिया); हालाँकि, यहाँ इसका अर्थ सुंदर स्त्री रूप (इत्तिरूप) है। दिस्वा का अर्थ है – आँखों से देखकर; विशिष्ट लक्षणों (निमित्त) और पूरक चिह्नों (अनुभ्यंजन) के विवेक (सल्लक्खना) द्वारा, चक्खुद्वार (चक्खुद्वार) के अनुसार, उसे ग्रहण करना। इसी प्रकार उसे ग्रहण करने का कारण (हेतु); यही अर्थ है। सतिमुत्था का अर्थ है शरीर में स्वाभाविक रूप से अप्रिय (असुभासभाव) अवस्था में उत्पन्न होने वाली "असुभा" चेतना का बिगड़ जाना। हालांकि, शारीरिक सौंदर्य (रूपं) देखने के बाद चेतना दूषित हो गई है; इसे दर्शाने के लिए उन्होंने कहा: "पियं निमित्तं मनसिकरोतो। जो व्यक्ति अज्ञानी (अयोनिसो) मन से (मनसिकरोतो) अपने आप को (मनसिकरोतो) सचेत करता है, वह इंद्रिय-विषय (आरमनं) को उसके स्वरूप के अनुसार (यथा उपठितं) "सुभं सुखं, सुखद और आनंदमय," आदि कहकर सुखद (पिया) लक्षण (निमित्त) बना लेता है, तो उसकी चेतना लुप्त हो जाती

है; यही व्याख्या है। परन्तु उसी प्रकार का होकर, सारत्त चित्तो वेदेति का अर्थ है: अच्छी तरह से भावुक (रत्त) मन (चित्तो) होकर, वह उस शारीरिक सौंदर्य के इंद्रिय-विषय (रूपारम्मन) का अनुभव (अनुभवति) करता है, वह विशेष रूप से आनंदित (अभिनंदति) होता है; परन्तु विशेष रूप से आनंदित होते हुए भी, तंच अज्जोसा तिट्ठति का अर्थ है: उस इंद्रिय-विषय (आरम्मनं) से आसक्त (अज्जोसाया) होकर, वह उसे समाप्त करने के बाद भी निगल जाता है (गिलति) और आगे बढ़ जाता है; तस्सवढंति आसवा भावमूलोपगामिनो का अर्थ है: कामासव (कामासव) नामक इंद्रिय सुखों के क्षों से शुरू होने वाले चार दोष, जो इस प्रकार से उत्पन्न व्यक्ति के अस्तित्व (भव) और बार-बार जन्म-जन्म (संसार) के चक्रों का मूल कारण बनने की ओर अग्रसर (उपगमनसभाव) होते हैं, उस व्यक्ति से ऊपर और ऊपर बढ़ते जाते हैं (उपरूपरि); वे घटते नहीं हैं (हयंति); दूसरी ओर, जब मैं गहन ध्यान में खड़ा होकर, आर्य सत्यों में उचित रूप से मर्मस्पर्शी (सच्चानि पटिविझंता) हुआ, तब मैं (पटिसंखाना) और क्रमिक रूप से सही मार्ग (मग्ग पटिपाटी) के माध्यम से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का उत्तरोत्तर विकास होने से, वे चारों दोष भी पूर्णतः त्याग दिए जाते हैं और सर्वांगीण रूप से समाप्त हो जाते हैं (परिक्खीना); यही इसका महत्व है।

थेरा अभय के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(99):उत्तिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (99) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
99. उत्तिया
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उत्तिया रखा गया। [1] जब वे समझदार हुए, तो उन्होंने बुद्ध की शक्ति को तब देखा जब वे उनके रिश्तेदारों से मिलने आए थे, [2] उन पर विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। एक छात्र के रूप में वे एक दिन भिक्षा मांगने के लिए गाँव गए, और रास्ते में उन्होंने एक स्त्री को गाते हुए सुना, और उनकी एकाग्रता भंग हो गई, उनमें कामवासना और वासना उत्पन्न हो गई। चिंतन की शक्ति से स्वयं को नियंत्रित करते हुए, [93] वे बहुत व्याकुल होकर विहार (मठ) में प्रवेश कर गए, और दोपहर की नींद के लिए बैठते हुए, उन्होंने ऐसी अंतर्दृष्टि विकसित की कि उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। इस पर उन्होंने इस श्लोक में विकृतियों से घृणा के माध्यम से पुनर्जन्म के दुखों से अपनी मुक्ति का उल्लेख किया:

[99] सददाउ सुत्वा सति मुठहा पियानिमित्तm मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तां च अज्जोसा तिट्ठति,॥
तस्स वन्धन्ति आसव संसारमुपगामिनोऽति ॥ ॥

[99] मधुर स्वर की ध्वनि आत्म-नियंत्रण को विचलित कर देती है,
यदि कोई केवल उस प्रिय छवि पर विचार करे, तो
हृदय भावनाओं से भर उठता है
और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
घातक पाप पनपते हैं जो संसार [3] को निकट लाते हैं।

[1] भाष्य (ब्र.) में उत्तरीय और उत्तरीय दोनों हैं।

[2] ऊपर देखें, LXIII.

संसार। संसार = पर, अपना, साथ, अपना; सारति: जाना, बहना, दौड़ना, आगे बढ़ना। प्रवाह पर, अपना प्रवाह। एक और उदाहरण जहाँ संसार का अनुवाद 'अपना' के रूप में करना अधिक उपयुक्त होगा। अस्तित्व के निरंतर प्रवाह में किसी पहलू (जीवित प्राणी) के साथ एकात्मता।

[3] उच्चारित संगसारा, 'निरंतर जाना'; पुनर्जन्म, नया जीवन और मृत्यु की धारा या चक्र।

1.10-9 [99] उत्तियाथेरा के श्लोक पर टीका
saddaṃ sutvā sati muṭṭhā से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उत्तिया का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और सुमेध बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्हें गुरु के दर्शन हुए, वे श्रद्धावान हो गए, उन्होंने बुद्ध के योग्य एक आसन (पल्लंक) बनवाया, जिस पर ऊनी और लिंग ऊन से बना कालीन (गोनक) आदि बिछाया गया, साथ ही सुगंधित कक्ष (गंधकुटी) में एक चंदवा (उत्तराच्छद) भी बनवाया और उसे बुद्ध को अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म कपिलवस्तु के शाही शाक्य परिवार में हुआ। उनका नाम उत्तिया था। वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु के रिश्तेदारों की सभा में बुद्ध की शक्ति देखी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करते हुए, एक दिन भिक्षा मांगने के लिए गांव में गए, रास्ते में उन्हें एक गांव की महिला के गाने की आवाज सुनाई दी, और जब उनके मन में अज्ञानतापूर्ण मानसिकता (मानसिकारा) के प्रभाव (वास) से कामुक इच्छा उत्पन्न हुई, तो उन्होंने उचित चिंतन (पटीसंखाना) के बल (बल) से उसे दूर किया, मठ में प्रवेश किया, पश्चाताप किया, अपने दैनिक जीवन स्थल पर बैठ गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

एक चबूतरा, साथ ही उसके ऊपर कुछ और।

(उत्तरा) और साथ में (कालीन) आवरण

(पच्चाडा) वास्तव में मेरे द्वारा दिया गया था

ऐसे व्यक्ति को जो सबसे बड़ा हो

विश्व, भगवान सुमेधा।

फिर उस चबूतरे को सुसज्जित किया गया

सात रत्न। यह जानकर (अञ्ञाय)

मेरा संकल्प (संकप्पा), यह उत्पन्न होता है

(निब्बत्तति) हमेशा मेरे लिए।

यह तीस हजार युग पहले की बात है।

फिर मैंने अपना आसन अर्पित किया।

किसी भी बुरी सत्ता को याद न करो; यह

यह आसन (अर्पण) का फलदायी परिणाम है।

बीस हजार युग (कप्पा) पहले, तीन

सुवन्नाभा (स्वर्ण-चमकदार) नाम के पुरुष थे

अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा, संपन्न

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक कहा, ताकि यह दिखाया जा सके: — "पुनर्जन्मों के चक्र (वट्ट) के कष्ट (दुक्खा) से जो व्यक्ति दुराचार (किलेसा) का तिरस्कार नहीं करता, वह अपना सिर नहीं उठा पाता (सीसुक्खिपना); लेकिन मैंने तो उनका तिरस्कार किया," और उन्होंने अपने ही दुराचार (किलेसा) के उत्पन्न होने (उप्पति) का उदाहरण दिया।

99. "सद्दा की आवाज़ सुनकर,"

जागरूकता (सती) भाग गई (मुट्ठा);

जो स्वयं को मननशील बनाता है (मानसी-

करोतो)सुखद (पिया) लक्षण-

उसे निमित्त (टिक साइन) का अनुभव होता है।

(वेदेति)। भावुक मानसिकता (सारत्त-

वह चिपका हुआ खड़ा है (अज्जोसा)

यह भी; उस आदमी के नासूर जो जाता है

पुनर्जन्मों के चक्रों (संसार) की ओर वृद्धि होती है।

वहाँ, saddaṃ का अर्थ है; ध्वनि का सुखद इंद्रिय-विषय (saddārammanaṃ)। Saṃsāraupagāmino का अर्थ है:

"इंद्रियों का उत्तराधिकार (पटिपाटि)

स्कंध (कन्ध), धातु (धातु),

इंद्रियों के निवास स्थान (आयतन); उनके

निरंतर (अब्बोच्चिन्नम) चल रहा है

(वत्तमना), कहा जाता है (पवुक्कति)

पुनर्जन्मों का चक्र (संसार)।

पुनर्जन्मों के चक्र (वट्ट) का कारण (कारणं) होने के कारण, इस प्रकार कहा (वत्त), वे पास आते हैं (उपगमेंटि); इस प्रकार, संसारउपगामिनो, जो पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) की ओर जाते हैं। दूसरे शब्दों में, "संसारूपगामिनो, जो संसार की ओर जाता है," यही पाठ है। शेष पाठ ठीक पिछले (अनंतरा) श्लोक में बताए गए तरीके से है।

थेरा उत्तिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(100):देवसभा2

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (100) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
100. देवसभा (2) [1]
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम देवसभा रखा गया। बड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को शाक्यों और कोलियनों के बीच झगड़ा सुलझाते हुए देखकर विश्वास किया, [2] और शरणस्थल में स्थापित हो गए। फिर वे तब गए जब भगवान (बुद्ध) बरगद उद्यान में ठहरे हुए थे, इस बार उन्होंने भिक्षुओं का पंथ ग्रहण किया। उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, और अपने निर्वाण के आनंद में रहते हुए, उन्होंने इस कथन (गाथा) के साथ परमानंद में उद्गार प्रकट किया:

[100] Sammappadhānasampanno satipaṭṭhānagocaro,॥
Vimuttikusumasañchanno parinibbissatyanāsavo' ti.॥ ॥

[100] जिसने भी सर्वोच्च प्रयास किया,
जिसकी सीमा चौगुनी सतर्कता में है, [3] वह स्वतंत्रता के सुंदर फूलों से लिपटा हुआ,
समझदार और निर्बल, पूर्ण शांति प्राप्त करेगा। [4]

इस प्रकार तबेरा ने अना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] एल.एक्सएक्सएक्स देखें।

[2] कुणाल-जातक, प्रस्तावना, जातक, खंड 412 आगे और ऊपर, LXXIX देखें।

[3] देखें संकलन, पृ. 179; संवाद, ii. 327 ff.

[4] शाब्दिक रूप से, परिनिब्बान- आसव से रहित होगा। टीका कहती है, स-उपदिसेआ और अनुपदितेसा निब्बान दोनों द्वारा परिपूर्ण (तुलना करें संकलन, पृष्ठ 153, नोट 5)। इन सभी श्लोकों में 'समझदार और प्रतिरक्षित' शब्द का प्रयोग अटपटे शब्द अन-आसवो को व्यक्त करने के लिए किया गया है ।

1.10-10 [100] देवसभट्टरा (दुतिया) के श्लोक पर टीका
सम्मप्पधाना संपन्नो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा देवसभा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित करने वाले इस देवसभा का पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ। ज्ञान प्राप्ति पर उन्होंने संयोगवश बुद्ध सिखों के दर्शन किए। एक दिन वे धर्मपरायण हो गए और बंधुजीवका पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म कपिलवस्तु के शाक्य परिवार में हुआ। उनका नाम देवसभा था। वयस्क होने पर, उन्होंने बुद्ध की शक्ति को तब देखा जब गुरु एक तकिये (चुंबट) को लेकर हुए झगड़े (कलह) को शांत करने (वूपसमा) के लिए आए थे। वे श्रद्धावान हो गए, शरणाश्रम में स्थापित हुए और फिर गुरु के पास गए, जब गुरु निग्रोध मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों (पुब्बकिच्चा) को पूरा किया; आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के कर्म किए और कुछ ही समय में अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

“बंधन (लगेत्वा) बन्धुजीवक

धागे से बंधे फूल (सुत्तक),

मैंने विशेष रूप से बुद्ध को भी यही भेंट अर्पित की।

सिख धर्म, संसार का सगे भाई।

चन्द्रमा के समान बुद्ध सिक्खी थे

स्वच्छ (विमला) और शुद्ध (सुद्ध)।

स्पष्ट रूप से सुखद (विप्पासन्ना) और

शांत (अनाविला); सुखद (नंदी)

अस्तित्व (भाव) पूरी तरह से

थका हुआ; उसने (तिन्ना) पर काबू पा लिया था

संसार से आसक्ति (विसात्तिका)।

असंख्य पुरुषों को निर्वाण में प्रवेश कराना

(निब्बापयन्तं); पार कर जाने के बाद

निब्बाना (तिन्नम) का दूर का किनारा

वह संयोगवश श्रेष्ठ (वरं) था

जो पार कराने का कारण बनते हैं (संसार);

मैंने ऋषि को गहन ध्यान में लीन देखा।

(झायन्तं) जंगल में, किसी ने इशारा किया

और सुव्यवस्थित (susamāhitaṃ)।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने तब अपना कर्म किया था;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह बनाने का फलदायी परिणाम है

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

सातवें युग (कप्पा) में पहले

इससे भी अधिक प्रसिद्ध सम्राट

पुरुष (मनुनिंदो) एक बहुत शक्तिशाली विश्व-

समंतचक्खु नामक राजा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने आनंदमय उद्घोषणा (उदान) करते हुए एक श्लोक कहा, क्योंकि उनके भीतर स्वयं द्वारा प्राप्त (अधिगत) मुक्ति (विमुक्तिसुख) के आनंद (निस्साय) पर आधारित उत्साह (पीति) और प्रसन्नता (सोमनसा) उत्पन्न हुई थी।

100. "जो सही प्रयासों से संपन्न है

(सम्मप्पधाना), स्थापना होना

जागरूकता (सतिपट्टाना) को अपने चरागाह के रूप में

(गोकारो), अच्छी तरह से ढका हुआ (सानेहान्नो)

मुक्ति के फूलों (कुसुमा) के साथ

(विमुत्ति), रोगमुक्त (अनासवो)

पूर्ण निर्वाण प्राप्त होगा।

वहाँ, सम्मप्पधाना सम्पन्नो का अर्थ है: वह जो चार प्रकार के सही प्रयासों (सम्मप्पधाना) से परिपूर्ण हो गया हो; वह जो उचित कर्तव्यों का पालन करके सिद्ध (संपदेत्वा) खड़ा हो; यही अर्थ है। सतिपट्ठानगोचरो का अर्थ है: इस व्यक्ति के पास वह स्थान (पचत्ति), वह चारागाह था, जिसमें चेतना के ऐसे आधार (पट्टाना) शामिल थे जैसे कि भौतिक शरीर (काया) पर चिंतन (अनुपस्सना) आदि; इस प्रकार, सतिपट्ठानगोचरो (जागरूकता के आधारों का चारागाह; वह व्यक्ति जिसका मन जागरूकता के चार आधारों में सुस्थापित है; यही अर्थ है। गुणोषोभ की कृपा से वही मुक्ति (विमुक्ति) पूर्णतः (परम) सुगंधित (सुगंधित) फूलों (कुसुम) का निर्माण करती है; अच्छी तरह से ढके हुए, अलंकृत और सुशोभित लेकिन उत्कृष्ट रूप से (सम्मा); इस प्रकार, विमुक्तिकुसुमसंचन्नो। परिनिब्बिसत्यनासावो का अर्थ है: एक भिक्षु, इस प्रकार अपने जीवन को सही ढंग से (सम्मा) विनियमित (पटिपन्नो) करके, दोष मुक्त (अनासवो) हो जाएगा, और निर्वाण के ऐसे तत्व (धातु) से परिनिर्वाण में प्रवेश करेगा, चाहे वह अस्तित्व के आधार (उपदिशेष) के साथ हो या उसके बिना; यही अर्थ है। यही श्लोक व्याख्या का सार प्रस्तुत करता है। थेरा की अञ्ञा (प्राप्ति)।

(द्वितीय) थेरा देवसभा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

दसवें अध्याय की टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(101):बेलत्थाकनि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (101) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
भाग XI
101. बेलाट्ठकानी
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम बेलाठकानी रखा गया। भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनकर जब उन्होंने भिक्षु दीक्षा ली और कोसल के एक वन में शांति और अंतर्दृष्टि का अभ्यास कर रहे थे, तब वे बहुत आलसी हो गए और उनकी वाणी भी कर्कश हो गई। अतः वे अपने अभ्यासों के लिए उचित मन की अवस्था को जागृत नहीं कर सके। तब परम पूज्य (बुद्ध) ने उनकी बढ़ती अंतर्दृष्टि पर ध्यान दिया और इस उपदेशात्मक श्लोक से उनके हृदय को प्रेरित किया:

[101] हत्वा गिहित्ताअन अनावोसितात्तो॥
मुखानगालि ओदारिको कुसिटो,॥
महावाराहोऽव निवापापुत्थो॥
पुनप्पुनाऽ गब्भमुपेति मांदो॥॥ ॥

[101] यद्यपि आम आदमी का जीवन बचा रहे, फिर भी यदि कार्य
अधूरा रह जाए, तो मुँह कठोर हल चलाता रहे,
पेट भरा रहे, मन आलस्य से सुस्त रहे: -
जैसे बहुत सारा खाना खाने वाला एक विशाल सूअर,
वह बार-बार पुनर्जन्म लेता है। [1]

तब उन्होंने भगवान (बुद्ध) को अपने सामने बैठे हुए देखकर, उनके प्रवचन से परमानंदित हो गए और अंतर्दृष्टि प्राप्त करके शीघ्र ही अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। और गाथा की अनेक अभिव्यक्तियों के माध्यम से उन्होंने अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] सत्रहवीं देखें.

1.11 ग्यारहवाँ अध्याय

1.11-1 [101] बेलाठानिकत्तेरा के श्लोक पर टीका
Hitvā gihittaṃ anavositatto से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा बेलाठाकनी का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के बाद, इनका पुनर्जन्म भगवान वेस्सभु (बुद्ध) के समय, आज से इकत्तीस युग (कप्पा) पहले, एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वयस्क होने पर उन्होंने ब्राह्मण विद्या (सिप्पा) में पारंगत होकर गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संसार का त्याग कर तपस्वी संन्यासी बन गए और तपस्वियों से घिरे हुए विचरण करते हुए एक दिन संयोगवश उन्हें भगवान वेस्साभू के दर्शन हुए। वे उत्साह और आनंद से भर उठे, गुरु के ज्ञान (ज्ञान) की समृद्धि (संपत्ति) पर निर्भर होकर (निस्साय) पुण्यमय हो गए और ज्ञान के प्रति श्रद्धापूर्वक पुष्प अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उन्होंने जन्म-मृत्यु के चक्र में देव-देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। उन्होंने बेलत्थाकनी नाम प्राप्त किया और बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु से सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मत्थान) में लग गए, और कोसल राज्य के वन में रहते हुए, वे आलसी, शारीरिक शक्ति से भरपूर (कायदहिबहुलो) और अपशब्दों से व्यथित हो गए; उन्होंने कभी भी भिक्षु कर्तव्यों (समनाधम्म) में अपना मन नहीं लगाया (उप्पादेसी)। तब भगवान ने उनके ज्ञान (ज्ञान) की सर्वांगीण परिपक्वता (परिपाक) को देखकर, इस प्रकाशमान (ओभास) श्लोक के माध्यम से उनके पश्चाताप को व्यक्त किया:

101. "किसी अवस्था को त्याग देने के बाद

गृहस्थ (गिहित्म्) उसने नहीं किया

खुद को सफल बनाना (anavo-

(सिटैटो); उसका मुँह हल जैसा था

(मुखानगली); वह पेटू था

(odariko) और आलसी (kusīto), जैसे एक

बड़ा सूअर (वराहो) अनाज खाता था

(निवापपुट्ठो); अज्ञानी मूर्ख

(mando) जन्म लेना होगा (gabbaṃ upeti)

बार - बार।"

उन्हें संयोगवश गुरु के दर्शन हो रहे थे मानो वे उनके सामने विराजमान हों, उन्होंने वह श्लोक भी सुना, पश्चात्ताप के कारण उन्होंने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता प्राप्त कर ली थी और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े, तथा शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदाना में कहा गया है:—

"(मैंने बुद्ध वेस्साभू को) तेज चमकते हुए देखा"

पीले रंग के कनिकारा फूल की तरह,

पहाड़ी के अंदर बैठा हुआ, सब कुछ रोशन कर रहा है

निर्देश 'सुबह' के समान हैं

तारा' (ओसाधितारका)।

वहाँ तीन युवक थे जो स्वयं

उन्हें अपने-अपने विज्ञान में अच्छी तरह से शिक्षित किया गया था;

उनके कंधों के जुए को पकड़ लेने के बाद

(खरीभार), मेरे पीछे-पीछे आया।

फूल इकट्ठा करने के बाद, उन्हें नीचे फेंक दिया गया

संन्यासियों द्वारा बनाई गई सात टोकरियाँ (पुटक)

मैंने उन्हें विशेष रूप से आदरपूर्वक अर्पित किया।

वेस्साभू का ज्ञान।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, मैंने अपनी विशेष भेंट चढ़ा दी है

फूल, मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित करने के लिए

ज्ञान (ñāna).

उन्नीस युग (कप्पा) पहले, मैं था

विपुलासभा नामक एक अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज।

सात रत्नों से सुशोभित।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गुरु के निर्देश का उचित सम्मान करने और एक अतिरिक्त कारक (मुखेना) द्वारा अपनी उपलब्धि (अज्ञात) प्रकट करने के लिए उत्तर में (पच्चुदाहासी) वही श्लोक बोला।

वहाँ, hitvā guhittaṃ का अर्थ है: गृहस्थ अवस्था का पूर्णतः त्याग कर (gahattha bhāvaṃ paricajitvā); भिक्षु बन जाना; यही अर्थ है। Anavositatto का अर्थ है: वह पर्याप्त रूप से (anurūpaṃ) संतुष्ट न होने (avositatta) की अवस्था में था; असंतुष्ट, अपूर्ण, अस्थिर (apariyosita) और जो करना चाहिए था वह न करने (akatakaranīyo) की अवस्था में था, क्योंकि वह तट तक नहीं पहुँचा था (atiritattā); यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, Anavositatto का अर्थ है: तदनुसार संतुष्ट न होने (anuavosita) का स्वभाव (sabhāvo) होना; शुद्ध व्यक्तियों द्वारा जीए जाने वाले जीवन का आरोहण न करने वाला, तथा श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के चरणों में क्रमिक क्रम (अनुपटिपाटि) की प्राप्ति न करने वाला; वह जो पवित्र श्रेष्ठों (आरिया) के दस निवास स्थानों (वास) में निवास (अवुसिटवा) न करने वाला है; यही अर्थ है। इस व्यक्ति का मुख (मुख) हल (नहगला) के समान है; अतः मुखनंगली, हल के समान मुख; हल से पृथ्वी खोदने के समान, वह जो दूसरों के प्रति अपशब्दों के प्रयोग से स्वयं को खोदता रहता है; यही अर्थ है। उदरिको का अर्थ है: अपने पेट (उदरे) पर ध्यान केंद्रित (पसुतो), अपने पेट (उदरापोसना) को पोषित करने में पूर्णतः लीन (तप्परो)। कुसीतो का अर्थ है आलसी (आलस्यो); गहन ध्यान (भावना) के विकास में संलग्न न होने के कारण (अनुयुंजन्तो)। उन्होंने कहा; "महावराणो व निवापपुत्तो, पुनपुनं गभमुपेति मंदो," ताकि वे इस प्रकार (एवं भूत) बनने की अपनी पूर्णता (निप्पत्तिं) को दर्शा सकें। इसका अर्थ पहले ही कहा जा चुका है (हेट्ठा)। यहाँ भी, जैसे कोई मूर्ख (मन्दो) अपनी प्रकृति (सभाव) के कारण, जिसमें उसने (अनवोसित) आदि पूर्ण नहीं किया है, भिक्षु बनकर बार-बार पुनर्जन्म लेता है (गभमुपेति); वैसे नहीं, मेरे जैसा बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा नहीं करता; क्योंकि मेरा स्वभाव (सभाव) इसके विपरीत (तब्बीपरिता) है, और चूंकि मैंने उचित (सम्मा) उपयुक्त प्राप्ति (पटिपत्ति, उचित प्रदर्शन) के शिखर को प्राप्त कर लिया है, (मुझ जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को) पूर्ण निर्वाण प्राप्त होता है; इस प्रकार, उन्होंने एक अतिरिक्त (ब्यतिरेक) कारक (मुख) के माध्यम से अपनी अज्ञा (प्राप्ति) प्रकट की: इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए।

थेरा बेलाट्ठाकनी के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(102):सेतुचा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (102) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
102. सेतुच्चा
बुद्ध युग में एक जिले के राजा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] वे अपने देश की स्वतंत्रता बनाए रखने में असमर्थ रहे और अपना सिंहासन खो बैठे। दुखी होकर देश भर में भटकते हुए, उन्होंने परम पूज्य (बुद्ध) के दर्शन और वाणी का ज्ञान प्राप्त किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और अपने प्रवचन (गाथा) में सांसारिकता का विरोध करते हुए, उन्होंने अनेक प्रकार से ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की :

[102] मानेना वंचितसे संखरेसु संकिलिस्समानसे,॥
लाभालाभेण मथिता समाधिं नाधिगच्छन्ति' ति.॥ ॥

[102]
व्यर्थ के अभिमानों से भ्रमित होकर, और इंद्रियों की विभिन्न चीजों से उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है;
अपने लाभों से उत्साहित होकर, उस उथल-पुथल की कमी से,
वे एकाग्र मन प्राप्त करने में विफल रहते हैं।

मंडल-राजा। 'घूमने-फिरने वाला राजा' उपाधि से मेरा अनुमान है कि यह एक अस्थायी शासन था, शायद समय-समय पर होने वाले चुनावों के अधीन, या किसी बड़े राजा की इच्छा के अधीन।

[1] मंडल-राजा . पृष्ठ 83, नोट 6 देखें. [यह संस्करण नोट 2]

1.11-2[102] सेतुच्छथेरा के श्लोक पर टीका
मानेन वंचितसे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सेतुच्च का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, वे आत्म-जागृत बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने भगवान तिस्सा के दर्शन किए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें उत्तम कटहल और विशेष रूप से तैयार नारियल का काढ़ा (सालव) अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ, और वे बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते हुए, कभी-कभी देवताओं और मनुष्यों के बीच, एक छोटे से शासक (मंडलिकरणो) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म हुए, जब यह बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम सेतुच्चा था। अपने पिता के निधन के बाद, वे संप्रभु बन गए और अपने राजकर्तव्यों का निर्वाह करते हुए (राजकिच्चानि विराधेन्तो) उन्होंने अपने राजतंत्र को दूसरों के हाथों में सौंप दिया (गतं), जिससे वे दुःख में डूब गए, पश्चाताप करने लगे, संयोगवश उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन हुए जो विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने उनसे संपर्क किया, सत्य की शिक्षा सुनी, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने सर्वांगीण कर्तव्यों का पालन किया और उसी दिन अरहंत पद प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

“जी हाँ! धन्य तिस्सा को,

मैंने पहले फल भेंट किए थे।

मैंने नारियल भेंट किया, एक विशेष

मीठा मिश्रण (खज्जकम्

abhisammatṃ).

बुद्ध को वह भेंट चढ़ाने के बाद,

मुझे महान ऋषि तिस्सा से प्रसन्नता हुई;

क्योंकि मैं कामुक इच्छाओं से ग्रस्त था

सुख (कामाकामी) में प्रायोजित था-

तानियसली पुनर्जन्म (उपपज्जिं) के अनुसार

जैसा मैंने (स्वर्ग में) चाहा था।

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब से, मैंने उन्हें दान दिया है।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

इससे तेरह युग (कप्पा) पहले,

मैं एक संप्रभु इंदसमा (सक्का-समान) बन गया।

एक अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा, जो इन गुणों से संपन्न था

रत्नों की सात प्रजातियाँ।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी दुष्टता के लिए निंदा करते हुए एक श्लोक बोला (गराहंतो)।

102. "जो लोग अभिमान से धोखा खा चुके हैं,

जो इंद्रियों में दूषित हो रहे हैं

समूह (संखारा), जो रहे हैं

लाभ और हानि से परेशान (मथिता)

समाधि की एकाग्रता प्राप्त न कर पाना

दिमाग।

वहाँ, mānena vañcitāse का अर्थ है: वे लोग जो "सेय्योहोमस्मि (मैं श्रेष्ठ हूँ)" आदि जैसे अहंकार (मान) से भ्रमित (विप्पलद्धा) हो गए हैं, और स्वयं को श्रेष्ठ (अत्तुक्कंसन) और दूसरों को नीचा (वम्भन) करने आदि जैसे कर्मों से, और इस प्रकार अच्छे कर्मों के खजाने (भण्ड) को नष्ट कर रहे हैं। Saṅkhāresu saṃkilissamānāse का अर्थ है: वे लोग जो स्वयं द्वारा सृजित (संखत) कर्मों (धम्म) जैसे कि आँखों से शुरू होकर अन्य इंद्रियों और दृश्य वस्तुओं (रूप) आदि से शुरू होकर अन्य इंद्रियों के बीच स्वयं को मैला (संख्य) कर रहे हैं। भोग-विलास के द्वारा आत्म-दुराचार (संकिलेसं) प्रदर्शित करते हुए (आपज्जमाना), उस विशिष्ट चिन्ह (निमित्तं) को प्रकट करते हुए, यह कहते हुए: "एतम्मम; एसो' हंसस्मि; एसो मे अत्ता (यह मेरा है; यह मैं हूँ; यह मेरा स्व है)।" लाभालाभेन मतिता का अर्थ है मित्रवत प्रतिक्रिया (अनुनय) और कठोर घृणा (पटिघा) से व्याकुल (मतिता), कुचला जाना (मद्दिता) और अभिभूत (अभिभूत) होना, जो कुंड, वस्त्र आदि जैसे उपहारों की प्राप्ति और उन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति न होने के कारण उत्पन्न होने वाले विशिष्ट लक्षण (निमित्तं) के कारण होता है। यह केवल एक उदाहरण (निदासन) है; यहाँ जीवन के शेष सभी उतार-चढ़ावों (लोकधम्मनं) का संग्रह (संग्रह) देखा जाना चाहिए। समाधिं नाधिगच्छन्ति का अर्थ है: ऐसे व्यक्ति जो शांत स्वभाव और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से एकाग्रता और मन की एकाग्रता (समाधिं) प्राप्त नहीं कर पाते (विन्दन्ति), उचित रूप से प्राप्त नहीं कर पाते (पटिलभन्ति), यहाँ तक कि कभी-कभार भी नहीं, क्योंकि एकाग्रता के लिए अनुकूल वातावरण (धम्मनं) का अभाव होता है और अन्य घटनाओं (इतरेसं) की उपस्थिति होती है। यहाँ भी, जिस प्रकार अहंकार से ग्रस्त अज्ञानी मूर्ख (अविद्दासुनो) एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं कर पाते, उसी प्रकार ज्ञानी लोग (विद्दासुनो) नहीं कर पाते। परन्तु जो मेरे समान हैं, वे उन (अभिमान आदि) से अभिभूत न होकर एकाग्रता (समाधि) प्राप्त करते हैं; इस प्रकार, एक अतिरिक्त (भ्यतिरेक) कारक (मुखेन) के माध्यम से अञ्ञा (प्राप्ति) का प्रकटीकरण होता है; इस प्रकार इसे समझा जाना चाहिए।

थेरा सेतुच्चा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(103): बन्धुरा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (103) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
103. बंधुरा
बुद्ध युग में शिलावती [1] नगर में एक पार्षद के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम बंधुरा [2] रखा गया। एक दिन किसी कार्य से वे सावत्थी गए, जहाँ वे आम लोगों के साथ विहार (मठ) गए, भगवान (बुद्ध) के प्रवचन सुने, विश्वास किया और भिक्षु बन गए, तथा समय आने पर उन्हें अर्हतत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। अब अपने (राजा) की सेवा करने और उनकी सफलता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वे शिलावती गए और (राजा) को धम्म का उपदेश दिया , तथा उन्हें चार सत्यों की घोषणा की। (राजा) ने सोतापान (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त की, नगर में एक विशाल विहार का निर्माण कराया, जिसका नाम सुदस्सन रखा और थेरा को अनेक सम्मान और भेंट भेंट की। बाद में उन्होंने सब कुछ भिक्षु संघ को सौंप दिया और पहले की तरह अपने भ्रमण पर जाते हुए, सावत्थी जाने की इच्छा उत्पन्न की। भिक्षुओं ने कहा: 'महोदय, हमारे साथ ठहरिए। यदि आपको किसी चीज की कमी हो, तो हम उसकी व्यवस्था कर देंगे।' उन्होंने उत्तर दिया: 'मित्रों, मुझे किसी भी अतिरिक्त चीज की आवश्यकता नहीं है; मुझे जो कुछ भी मिलता है, मैं उसी से अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। मैं धम्म के सार से संतुष्ट हूँ,' और यह कथन कहा:

[103] नहाओ एतेना अत्तिको सुखितो धम्मरासेना टैपिटो,॥
पीत्वान2 रसग्गमुत्तमं न च काहामि विसेन संथवन्' ति॥ ॥

नहीं, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, जो आनंद में रहते हैं,
धम्म के मार्ग के सबसे मधुर अमृत का आनंद लेते हैं।
क्या मैं उन अद्वितीय, सर्वोच्च बूंदों को पीकर
अपनी जीभ को विष से परिचित कराऊँ?

[1] साकियाओं का एक नगर (Saṃy., i 117 ff.)।

[2] बर्मी टीका उन्हें बंधन और संध्या कहती है। एक सिंघली एम.एस. उसे सैन्धव कहते हैं।

1.11-3[103] बन्धुरत्थेरा के छंद पर टिप्पणी

नाहं एतेन अत्थिको से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा बंधुरा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के बाद, उन्होंने भगवान सिद्धार्थ के समय में एक राजा के हरम (अंतपुरा) के पहरेदार (गोपाको) के रूप में कार्य किया। एक दिन, संयोगवश उनकी दृष्टि भगवान सिद्धार्थ को उनके अनुयायियों (सपरिसं) के साथ राजमहल (राजंगनेन) से गुजरते हुए देखने पर पड़ी। वे श्रद्धापूर्वक कनवेरा के फूल एकत्र करके उन्हें विश्व के मुखिया और उनके पुरोहितों को आदरपूर्वक अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, और वे समय-समय पर श्रेष्ठ जन्मों में विचरण करते हुए, सिलवती नगर में एक धनाढ्य के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म हुए, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम बंधुरा था। वयस्क होने पर, वे किसी कार्य के सिलसिले में सावत्थी पहुँचे (केनाचिदेव करणीयेन), भक्तों के साथ मठ गए, गुरु से सत्य की शिक्षा (धम्मदेशना) सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और अपने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता के कारण, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चलकर शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"सिद्धार्थ नामक भगवान।"

दुनिया का सबसे बुजुर्ग, बैल

पुरुषों के बीच, उनके शिष्यों द्वारा अनुसरण किया गया,

शहर में प्रवेश किया (नगरपतिपज्जथा)।

मैं एक विशेष रूप से मान्यता प्राप्त (अभिसम्मातो) था।

भीतरी कमरों में संरक्षक (गोपाको)

(राजमहल के अग्रभाग का)। मैंने देखा

विश्व का वह नेता जो निकट आया (उपविट्ठो)

महल।

कनवरम (ओलिएंडर) के फूल तोड़कर,

मैंने उन्हें पादरियों के बीच अच्छी तरह से बिखेर दिया था।

भिक्षुओं का; अलग करके (visuṃ)

मैंने बुद्ध पर ठीक से अपना प्रकाश बिखेरा।

उससे कहीं अधिक।

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

अब, जिसे मैंने विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक बनाया है

फूल चढ़ाने की बात मुझे याद नहीं है।

दुष्ट अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

अस्सी सात युग (कप्पा) पहले

इस प्रकार, चार बहुत शक्तिशाली विश्व-

महान जादुई शक्तियों वाले राजा, जो इन शक्तियों से संपन्न थे

सात रत्न।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी:...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत पद प्राप्त करने पर, वे कृतज्ञता की अवस्था में (कटाञ्ञुभावे हत्वा) खड़े हुए और अपने ऊपर कृपा बरसाने वाले राजा के प्रति कृतज्ञता (पच्चुपकार) अर्पित करने के लिए शिलावती नगर गए। राजा को सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए, थेरा ने आर्य सत्यों को प्रकट किया। सत्यों के सर्वांगीण स्पष्टीकरण के अंत में, राजा ने मोक्ष प्राप्ति के प्रथम चरण (सोतापन्न) में धारा-विजेता का पद प्राप्त किया, अपने नगर में सुदस्सन नामक एक विशाल मठ का निर्माण करवाया और उसे थेरा को भेंट (निय्यतेसि) किया। इससे बहुत लाभ हुआ और व्यक्तिगत रूप से आदरपूर्वक भेंट (सक्कारा) अर्पित की गई। थेरा ने मठ और उससे प्राप्त सभी लाभ और व्यक्तिगत रूप से पुरोहितों (संघ) को समर्पित कर दिए, स्वयं भिक्षा मांगने के लिए भटकते रहे, लेकिन पहले की तरह ही, कुछ दिनों तक वहाँ रहे और सावत्थी जाने की इच्छा हुई। भिक्षुओं ने थेरा से कहा, “आदरणीय महोदय! कृपया यहीं रहें; यदि (चार) धार्मिक आवश्यक तत्वों (पच्चय) में कोई कमी हो, तो हम उसकी पूर्ति कर देंगे।” थेरा ने एक श्लोक कहा, ताकि यह दिखाया जा सके: — “मित्रों! मुझे विशाल (उलारा) धार्मिक आवश्यक पदार्थों (पच्चया) की कोई आवश्यकता नहीं है; मैं किसी न किसी प्रकार के (इतरितरेहि) धार्मिक आवश्यक पदार्थों (पच्चया) से ही अपना जीवन यापन करता हूँ; मैं सत्य (धम्म) के स्वाद (रस) से ही संतुष्ट हूँ।”

103. “मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है (अत्थिको);

मनोरंजन (लप्पिटो) द्वारा

स्वादिष्ट धम्म, मैं खुश हूँ।

सबसे उत्कृष्ट, सर्वोत्कृष्ट, स्वादिष्ट पेय पिया

मैं शराब के साथ कोई संबंध नहीं रखूंगा।

बिल्कुल भी जहर नहीं।

वहाँ, nāhaṃ etena atthiko का अर्थ है: मुझे भौतिक वस्तुओं (आमिसा) के लाभ से इस भौतिक (आमिसा) स्वाद (रस) की आवश्यकता नहीं है, जिसके संबंध में आप सभी ने मुझसे कहा था: “हम (कमी होने पर) उसकी भरपाई करेंगे” क्योंकि आप मुझे संतुष्ट करना चाहते थे; मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है; संतोष ही सर्वश्रेष्ठ आनंद है; इसलिए, मैं केवल किसी न किसी प्रकार की धार्मिक आवश्यक वस्तुओं से ही अपना जीवन यापन करता हूँ; यही अर्थ है। अब, आवश्यकता न होने की स्थिति में भी परिश्रम (पधानकारण)

के परिस्थितिजन्य कारण को दर्शाने के लिए, उन्होंने इस प्रकार कहा: "सुखितो धम्मरसेन तपितो।" ज्ञान के सैंतीस तत्वों (बोधिपक्खिया) और नौ प्रकार के पारलौकिक सत्यों (नवविधलोकोत्तरधम्मरस) के आध्यात्मिक स्वाद (धम्मरसेना) से तृप्त (तप्पितो), प्रसन्न (पीनितो) और सुखी (सुहितो) होकर; उत्कृष्टतम आनंद से संतुष्ट (सुहितो); यही अर्थ है। पित्वा रसग्गमुत्तमं का अर्थ है: धर्म के स्वादिष्ट पेय को पीकर खड़ा हुआ, जैसा कि कहा गया है, जो सर्वोत्कृष्ट (अग्गं), श्रेष्ठ (सेट्ठं) है, उससे भी कहीं अधिक उत्कृष्ट है; इसलिए, बुद्ध ने कहा: "सब्बारसं खम्मरसो जिनाति (धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है)। न च काहामि विसेन संथवं का अर्थ है; धम्म के स्वादिष्ट पेय को पीकर, जो सभी स्वादों में श्रेष्ठ है, मैं विष, विष से मिलती-जुलती किसी भी चीज या विष के स्वाद से कोई घनिष्ठ संबंध (संथवं) और संगति (संसग्ग) नहीं रखूंगा; ऐसा करने का कोई परिस्थितिजन्य कारण (करणं) नहीं है; यही इसका अर्थ है।"

थेरा बंधुरा के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(104):खिटका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (104) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
104. खितका
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, बड़े होने पर उन्होंने महान मोग्गलाना की अलौकिक शक्तियों के बारे में सुना। [1] और उन्होंने सोचा: 'मैं भी ऐसा ही वरदान प्राप्त करूँगा।' और पूर्व कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने परम पूज्य (बुद्ध) के अधीन भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और शांत और अंतर्दृष्टि के प्रशिक्षण में स्वयं को लगाकर, समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की। फिर उन्होंने विभिन्न प्रकार की अलौकिक गतिविधियों का आनंद लेते हुए, उन कार्यों के आश्चर्य और प्रशिक्षण के आश्चर्य से प्राणियों पर कृपा बरसाना जारी रखा। [2] जब भिक्षुओं ने उनसे पूछा: 'खितक, मित्र, क्या तुम अलौकिक शक्ति का प्रयोग करते हो?' तो उन्होंने यह श्लोक कहा:

[104] लहुको वात मे कायो फूट्हो च पितसुखेन विपुलेन॥
तुलमिव एरीतां मलुतेन पिलावतिव मे कायो' ति॥ ॥

[104] मेरा शरीर सत्य में हल्का है, हर धड़कन
अद्भुत आनंद और परमानंद में धड़क रही है।
जैसे रुई हवा में उड़ती है,
वैसे ही मेरा यह हल्का शरीर तैरता और मंडराता है।

[1] सी.एफ. मोग्गल्लाना की कविता, CCLXIII।

[2] ये तीन प्रकार के आश्चर्यों में से पहले और तीसरे हैं जिन्हें बुद्ध ने जानने का दावा किया था (संवाद, i. 277, cf. 88)। दूसरा 'अभिव्यक्ति का आश्चर्य' था - यानी विचार-पठन।

1.11-4[104] खितकत्थेरा के श्लोक पर टीका
लाहुको वता मे कायो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा खितक का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करके, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए और भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय यक्षों की सेना के सेनापति के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, राक्षस सभा में बैठे हुए, उन्होंने एक वृक्ष के चरणों में बैठे गुरु को देखा, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उन्होंने सत्य (धम्म) को सुना और अपार आनंद और उमंग का अनुभव किया, अपनी कोहनियों को ताली बजाई, उठे, गुरु को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे अपने जन्म-जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम खितक था। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने थेरा महामोग्गल्लाना की महान

जादुई शक्ति की अवस्था के बारे में सुना, और अपने पूर्व उद्देश्य (पुब्बहेतु) से प्रेरित होकर भिक्षु बन गए, मन ही मन यह कहते हुए: "मैं जादुई शक्ति से युक्त बनूंगा," उन्होंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अपना मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) किया, और शांत मन (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को बढ़ावा देने वाले कर्म करते हुए, शीघ्र ही छह प्रकार के विशेष ज्ञान (अभिज्ञा) से परिपूर्ण अरहंत बन गए। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"मनुष्यों का सम्राट (द्विपदिन्दो),

पुरुषों में सांड, जिसे इस नाम से जाना जाता है

पद्म, दृष्टि का स्वामी

(चक्खुमा), से बाहर आने के बाद

घने जंगल ने सत्य सिखाया

(धम्म)। वहाँ एक सभा थी।

यक्षों का वह स्थान, जो महान ऋषि से अधिक दूर नहीं था;

जो लोग वहां एक साथ पहुंचे (संपत्ता)

जो भी व्यवसाय (yena kiccena) दिखता था

वहीं और उसी समय पूरी एकाग्रता से (अज्जापेक्खिंसु)

(तावदे).

बुद्ध की वाणी (गिरं) को जानकर,

और अमरता (अमता) की शिक्षा

मैं धर्मपरायण और दयालु बन गया।

और मैंने उनके बाद उनकी सेवा की (उपात्तहिं)

मैंने अपनी बाहों से ताली बजाई (apphoṭetvā)।

अच्छी सेहत के लाभकारी परिणाम देखें

अभ्यास किया (सुसिन्ना) और उपस्थित होने का

मुझे ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी।

किसी भी बुरे अस्तित्व में पुनर्जन्म (उपपज्जा) लेना

तीस हजार युगों में (कप्पा)।

उन्नीस सौ युग (कप्पा)

बहुत समय पहले, मैं समलंकटा नाम का एक विश्व-राजा था।

सात प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी:...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे अनेक व्यवस्थाओं (अनेकविहितं) के साथ अपनी विविध जादुई शक्तियों (इद्धिविध) का अनुभव करते हुए (पच्चानुभन्तो) जीवन व्यतीत करते रहे, क्योंकि वे जादुई शक्ति में पारंगत (वसीभावन) थे और अपनी विशिष्ट (सविशेषं) जादुई शक्तियों के चमत्कार (पाटिहारिय) और मन को वश में करने के चमत्कार (अनुसासनी) से प्राणियों का उत्थान (अनुग्गहं करन्तो) करते थे। जब भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "प्रिय मित्र! आपने अपनी जादुई शक्तियाँ कैसे प्राप्त कीं?", तो उन्होंने एक श्लोक सुनाकर उन्हें इस विषय के बारे में बताया।

104. "मेरा शरीर सचमुच आश्चर्यजनक रूप से हल्का हो जाता है।"

(लाहुको), व्याप्त हो जाने पर

(फुट्थो) प्रचुर (विपुलेना) उत्साही

सुख (पीतिसुखेना)।

कपास की तरह (तुला) स्थानांतरित (एरिटा)

हवा (नालुता) से मेरा शरीर बस

तैरते हुए घूमना (पिलावती)।"

वे यह भी कहते हैं: "उदाहवासेना (उनकी आनंदमयी वाणी के माध्यम से)।"

वहाँ, lahuko vata me kāyo का अर्थ है: मेरे शरीर (रूपकाय) में अद्‌भुत (vata) हल्कापन (sallhuka) आ जाता है, क्योंकि मैं बाधाओं (nīvarana) को रोक देता हूँ (vikkhambana), इत्यादि। मैं चौदह विधियों से अपने मन को वश में कर लेता हूँ और जादुई शक्तियों के चार आधारों (iddhipāda) के विकास (bhāvanā) में उत्कृष्ट निपुणता (suṭṭhu cinnavasībhāva) प्राप्त कर लेता हूँ; जिसके द्वारा मैं इस सड़े हुए शरीर (karajakāya) का उचित उपयोग (perināmemi) करता हूँ, जो धीमा (dandha) है और चार महाभूतों (mahābhūta) पर आधारित (paccaya) भी माना जाता है; यही इसका महत्व है। Phuṭṭho ca pītisukhena vipulena का अर्थ है: मेरा शरीर अपार आनंद और उमंग से भर गया था, जो सर्वव्यापी था; यही व्याख्या है। शरीर के हल्का होने के कारण, इसे दर्शाने के उद्देश्य से कहा गया है। वास्तव में, आनंद की अनुभूति के साथ-साथ हल्कापन का भी अनुभव होता है। यहाँ, आनंद का प्रसार भौतिक रूप (रूप) से भी देखा जाना चाहिए, जो इससे उत्पन्न होता है (taṃsamuṭṭhāna)। परन्तु, उत्साह और आनंद का प्रसार चौथे ध्यान से कैसे जुड़ा है? वास्तव में, यह परमानंदमय आनंद (samatikkantapītisukha) है, इस प्रकार, यदि यह सत्य है; तो यह चौथे ध्यान के क्षण के संदर्भ में नहीं कहा गया है; वास्तव में (atha kho) यह पिछले (pubbabhāga) के संदर्भ में है। "पीतिसुखेन, उत्साहपूर्ण आनंद के साथ;" इस प्रकार, ऐसे आनंद के साथ जो उत्साह (पाति) से युक्त (सहिता) है। वास्तव में, यहाँ समभाव (उपेक्खा) विशिष्ट ज्ञान (ज्ञानविशेष) से जुड़ाव (योग) की दृष्टि से भी सुख (सुख) है, क्योंकि इसका स्वभाव शांतिपूर्ण है; यही इसका महत्व है। इसी प्रकार, वास्तव में, यह कहा गया है: – "सुखसाञ्ञाञ च लहुसाञ्ञाञ च ओक्कमति (वह सुख की अनुभूति और प्रकाश की अनुभूति तक पहुँचता है)।" वह सुख के विचार और प्रकाश की अनुभूति के निकट पहुँचता है, उसमें प्रवेश करता है, उसे स्पर्श करता है और भली-भांति उसे प्राप्त करता है। वह पास आता है। प्रवेश करता है, स्पर्श करता है और सुख के विचार के साथ-साथ प्रकाश की अनुभूति को भी अच्छी तरह से ग्रहण

करता है, जो जादुई शक्ति (इद्धिचत्त) के मन के साथ उत्पन्न होती है, चाहे वह मूल (पादक) ध्यान (आरम्मन) हो या भौतिक रूप (रूपकाय) शरीर (आरम्मन) हो; इस प्रकार, यही अर्थ भी है। इसी प्रकार टीकाकार ने अपनी टीका (अट्ठकथायं) में कहा है: - "सुख (सुख) का विचार (संज्ञा), अर्थात्, समभाव (उपेक्खा) से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ बोध (संज्ञा) है। वास्तव में, समभाव को शांतिपूर्ण (सन्तं) सुख (सुखं) कहा गया है।" उसी अनुभूति (सञ्ञा) को प्रकाश (लहुसञ्ञा) की अनुभूति के रूप में भी समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से बाधाओं (वीवरण) और जंगली विचारों (वितक्क) आदि जैसे शत्रुओं से मुक्त (विमुत्तत्त) है। हालाँकि, उनके लिए,जो अत्यंत हल्का (सल्लहुको) हो जाता है, रुई के समान (तूलपिकु)। इस प्रकार, हवा से उड़ते रुई के टुकड़े (वातखित्ततूल पिकु) के समान, वह अपने अत्यंत हल्के शरीर के साथ ब्रह्मा लोक में जाता है। इसलिए, उन्होंने कहा; "तूलमैव एरितं सालुतेन, पिलावती व मे कायो।" इसका अर्थ है – जब मैं अपनी जादुई शक्ति से ब्रह्मा लोक या किसी अन्य (स्वर्ग) में जाने की इच्छा रखता हूँ, तब मेरा शरीर रुई के समान आकाश पर उछलने (लंघन्तो) लगता है और मेरा मन (चित्तं) हवा से विचलित होता है।

थेरा खितका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(105):मालितावम्भा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (105) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
105. मालितवम्भ
बुद्ध युग में कुरुक्च्छ नगर में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने महान थेरा पच्छभू के उपदेशों से सोतापाण (निर्वाण की पहली ध्यान समाधि) प्राप्त की, [1] और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। अंतर्दृष्टि के अभ्यास में लगे रहकर, वे ऐसे किसी भी स्थान पर निवास करते थे जहाँ जीवन की चार आवश्यक वस्तुओं में से, [2] केवल उपयुक्त भोजन मिलना कठिन होता था; परन्तु जहाँ ऐसा भोजन आसानी से मिल जाता था और [97] शेष वस्तुएँ मिलना कठिन होता था, वहाँ से वे चले जाते थे। इसी प्रकार, अपने पूर्ववृत्तों के कारण और महान पुरुषों के स्वभाव के कारण, [3] उन्होंने अंतर्दृष्टि का विस्तार किया और समय के साथ अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। इस पर, अपनी उपलब्धि पर विचार करते हुए, उन्होंने इस श्लोक में कहा:

[105] उक्कणहितोपि न वसे राममानोपि पक्कमे,॥
नत्वेवनत्थासंमितं वसे वासां विकक्खणो' ति.॥ ॥

[105] जहाँ मुझे प्रदान नहीं किया जाता, वहाँ मुझे कभी न रहना पड़े, [4] मुझे वहाँ से चले जाना चाहिए, यदि जीवन बहुत सुखद सिद्ध हो।
वह व्यक्ति कभी भी आँखों से नहीं देखेगा
जहाँ कुछ भी सर्वोच्च खोज में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

[1] एक नाम जो कहीं और नहीं मिलता। यह घटना बाद की हो सकती है। नाम स्वयं - शाब्दिक रूप से, एपिगोनस - संभवतः महत्वपूर्ण है।

[2] भिक्षु के लिए चार आवश्यक वस्तुएँ (पच्चया) भोजन, वस्त्र, आवास और औषधि थीं। पवित्र जीवन के लिए न तो बहुत कम आराम और न ही बहुत अधिक सुख-सुविधा होना ही सिद्धांत है। जैसा कि डॉ. न्यूमैन हमें याद दिलाते हैं, इस विषय को मज्झ., 18वें सूत्र में विस्तार से समझाया गया है।

[3] महापुरिसजाटिकताया। यह एकमात्र उदाहरण है जहाँ यह अभिव्यक्ति आती है। मुझे मालितवम्भा के मामले में इसका कोई विशेष महत्व नहीं दिखता। एक 'महान व्यक्ति' या तो बुद्ध थे या एक महान सम्राट।

[4] पूरे में काल इच्छावाचक है। 'खोज,' या 'कल्याण' (अत्था) ।

1.11-5[105] मालितवम्भथेरा के श्लोक पर टीका
उक्कनठितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मालितवम्भा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय हिमवंत से कुछ ही दूरी पर स्थित एक प्राकृतिक झील (जातस्सर) में एक व्यक्ति पक्षी के रूप में पुनर्जन्म लिया। उस पक्षी की रक्षा (अनुग्गनहन्तो) करने के लिए भगवान वहां गए और झील के किनारे-किनारे चले। भगवान को देखकर पक्षी का मन श्रद्धा से भर गया, उसने झील से कमल (कुमुद) तोड़े और उन्हें भगवान को आदरपूर्वक अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वह पक्षी अपने जन्म-जन्म चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करता रहा और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब कुरुकच्छ नगर में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनके अयाल का नाम मालितवम्भा था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने महान थेरा पच्छाभू के पास जाकर, उनकी उपस्थिति में सत्य (धम्म) का प्रवचन सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करते हुए जीवन व्यतीत किया। उनका स्वभाव (सभाव) यह था:— जहाँ भोजन के संदर्भ में उपयुक्त वस्तुएँ प्राप्त करना उनके लिए कठिन होता था, परन्तु अन्य वस्तुएँ आसानी से प्राप्त हो जाती थीं, वहाँ से वे प्रस्थान नहीं करते थे; जहाँ भोजन के संदर्भ में उपयुक्त वस्तुएँ प्राप्त करना उनके लिए आसान होता था, परन्तु अन्य वस्तुएँ प्राप्त करना कठिन होता था, वहाँ वे नहीं रहते थे; वे वहाँ से प्रस्थान कर जाते थे। इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए, कारण से संपन्न होने के कारण, और महापुरीसजातिक जन्म के कारण, उन्होंने शीघ्र ही आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर एक

बड़ी प्राकृतिक झील, अच्छी तरह से ढकी हुई (सांचानो)

पद्मा और उप्पला के कमल के फूलों के साथ

विविधता और हर जगह फैलाव (समोत्थाटो)

सफेद लिली (पुंडरिका) के साथ।

मैं तब वहाँ एक पक्षी था जिसे वहाँ के लोग जानते थे

कुकुत्था का नाम। मुझ पर इसका प्रभाव था।

नैतिक उपदेशों (सीला) से युक्त

बुद्धि और चतुर

गुण और दोष।

विश्व-ज्ञाता (लोकविदु) पदुमुत्तर (बुद्ध),

बलिदान के योग्य प्राप्तकर्ता

भेंट, महान ऋषि, अच्छी तरह से विचरण किया

प्राकृतिक झील से कुछ ही दूरी पर।

मैंने खिलते हुए कमल के फूल तोड़े।

मैंने पानी लिया और उसे अपनी भेंट चढ़ाई।

महान ऋषि, जिन्होंने इसे स्वीकार किया था

वह मेरा मकसद समझ गया।

वह भेंट देने के बाद

उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) द्वारा प्रेरित,

मुझे किसी भी तरह से उछल-कूद करने की जरूरत नहीं पड़ी।

सौ वर्षों तक दुष्ट अस्तित्व (दुग्गतिं)

हजार युग (कप्पा)।

सोलह सौ युग (कप्पा) पहले से

अब, ये आठ सम्राट थे

पुरुषों में से, अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजाओं, जिनका नाम है

वरुण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उचित उपलब्धि (पतिपत्ति) पर विचार किया और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति के लिए एक श्लोक बोला।

105. मैं इस पर ध्यान नहीं देता, यद्यपि मैं ऐसा कर चुका हूँ।

मुझे खेद है; फिर भी मैं प्रस्थान नहीं करता।

मैं हैरान हूँ। एक समझदार आदमी

किसी निवास स्थान (वासा) में नहीं रहना चाहिए।

जो बिल्कुल भी (संहिता) से रहित है।

लाभ (अत्था)।

वहाँ, ukkanṭhito pi na vase का अर्थ है: जब भी मैं किसी निवास स्थान (आवास) में रहता था, तो उच्च धार्मिक विषयों (अधिकुकसलेसु धम्मेसु) में उपयुक्त भोजन (भोजनसप्पाय) न मिलने के कारण मुझे असंतोष (अनाभिरति) होता था; मैं अपने खेद (उक्कन्ठित) के बावजूद वहीं रुका रहा। अन्य चीजों (इतरसप्पाय) के लिए उपयुक्त कुछ प्राप्त करने के कारण न तो मैं वहाँ से गया और न ही वहाँ से प्रस्थान किया। Na vase का अर्थ है: यहाँ, अक्षर ना के साथ शब्द पक्कमे को भी जोड़ना चाहिए (संबंधितब्बं)। राममानो पि पक्कमे का अर्थ है: मैं चाहे जब भी रहा, चाहे जिस भी निवास स्थान में रहा, मुझे धार्मिक आवश्यक तत्वों की कमी के कारण कोई खेद

नहीं हुआ, फिर भी मैं विशेष रूप से व्यथित रहा। इस प्रकार व्यथित रहते हुए भी, शेष बातों के अनुरूप उचित लाभ न मिलने के कारण मैं वहाँ से चला गया। इस प्रकार अपने जीवन को व्यवस्थित करते हुए मैंने अपने कल्याण को शीघ्र ही प्राप्त कर लिया। यहाँ यह भी अपने उचित लाभ पर चिंतन है, जो कि व्याख्या है। हालांकि, दूसरों को सलाह देते समय, इसे प्रक्रिया (विधाना) के रूप में इस प्रकार समझा जाना चाहिए: "जीना चाहिए, प्रस्थान नहीं करना चाहिए।" Na tvevānatthasaṃhitaṃ, vase vāsaṃ vicakkhano का अर्थ है: जिस भी निवास स्थान में धार्मिक अनिवार्यताओं को प्राप्त करना आसान हो, लेकिन भिक्षु का कर्तव्य पूर्ण रूप से सिद्ध न हो; और जिस भी निवास स्थान में धार्मिक अनिवार्यताओं को प्राप्त करना कठिन हो, भिक्षु का कर्तव्य भी पूर्ण रूप से सिद्ध न हो (पारिपूरी)। इस प्रकार का निवास स्थान (एवरूपो आवासो) यहाँ लाभकारी कल्याण के लिए अनुकूल नहीं माना जाता है, जो कि विकास (अवड्ढिसाहितो) से संबंधित नहीं है; इस प्रकार, ऐसा करके; विवेकशील (विख्यात), जन्मजात बुद्धिमान व्यक्ति, जो अपने सर्वांगीण कल्याण की कामना करता है, उसे इस प्रकार के निवास में नहीं रहना चाहिए। जहाँ कहीं भी पाँच विशेषताओं से परिपूर्ण निवास हो, वहाँ सात मूल तत्वों के अनुरूप उपयुक्त (सप्पाय) गुण भी प्राप्त होते हैं; उसे वहीं रहना चाहिए; यही अर्थ है।

थेरा मालितवम्भा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(106):सुहेमंत

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (106) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
106. सुहेमंता
बुद्ध युग में सीमावर्ती देश में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वे संकस्सा नगर के हिरण उद्यान में परम पूज्य बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुनने गए। [1] संसार त्यागकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और तीन पिटकों के पाठकर्ता बन गए, [2] और समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली। इस पर उन्होंने सोचा: 'मैंने वह सब कुछ प्राप्त कर लिया है जो एक शिष्य प्राप्त कर सकता है। अब यदि मैं भिक्षुओं की सेवा करूँ तो क्या होगा?' अतः उन्होंने भिक्षुओं को प्रवचन दिए और उनकी समस्याओं का समाधान किया। और एक दिन उन्होंने अपने विषय में इस श्लोक के माध्यम से भिक्षुओं और अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों को संबोधित किया:

[106] सातलिङ्गस्सा अत्थस्सा सातलक्खनधारिनो,॥
एकांगदस्सी दुम्मेधो सतादस्सी च पण्डितो' ति.॥ ॥

[106] सौ संकेत दिखाते हैं, सौ निशान
धोखा देते हैं जिनमें छिपा अर्थ [3] निहित है।
जिसकी आँखें केवल एक को देख पाती हैं, वह मूर्ख है,
जो सौ को पहचान सकता है, वह बुद्धिमान है।

इस प्रकार थेरा ने भिक्षुओं के समक्ष अपने उत्कृष्ट विश्लेषणात्मक ज्ञान की उपलब्धि का बखान किया।

[1] फा-हिएन द्वारा एक समृद्ध बौद्ध केंद्र के रूप में उल्लेख किया गया है। यह नाम आज भी मौजूद है, गाँव कनुज से 45 मील उत्तर पूर्व में है (लेग्गे की फा-हिएन यात्राएँ, 1886)।

[2] तुलना करें एलएक्सवी., एन. 2.

[3] अत्था = ñeyya, Cy.

1.11-6[106] सुहेमंतत्थेरा के श्लोक पर टीका

सतलिंगस्स अत्थस्स से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुहेमंत का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुण्य कर्म संचित किए जिससे उन्हें इस और उस जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे आज से बानवे युग (कप्पा) पहले, भगवान तिस्सा (बुद्ध) के समय में वनवासी बन गए और वन में रहने लगे। उनकी रक्षा करने के लिए भगवान बुद्ध वन में प्रवेश कर गए और उनके निकट एक वृक्ष की तलहटी में बैठ गए। भगवान बुद्ध को देखकर वे श्रद्धा से भर गए और सुगंधित पुन्नाग पुष्प तोड़कर उन्हें श्रद्धापूर्वक अर्पित कर दिया। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में सीमावर्ती क्षेत्र (परियंतदेश) में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम सुहेमंत था। बुद्धि प्राप्त करने पर वे संकस नगर के एक विगदाया (हिरण आश्रम) में निवास कर रहे भगवान बुद्ध के पास गए, धर्म का प्रवचन सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, तीनों पिटकों में विख्यात हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चले और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) और विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटिसंभिदा) से परिपूर्ण अरहंत बन गए। अतः अपदान में कहा गया है:—

घने जंगल में प्रवेश करने के बाद,

मैं एक शिकारी (लुड्डाको) के रूप में रहता था।

मैंने पुन्नागा वृक्ष को फूलों से खिलते हुए देखा।

मैंने परम श्रेष्ठ ज्ञानी व्यक्ति के बारे में सोचा।

उन फूलों को तोड़ने के बाद, जिनकी सुगंध थी...

मीठा और देखने में सुखद (सुभं) था, मैंने रखा

रेत पर उनके साथ एक मंदिर बनाया, और

बुद्ध को मेरी भेंट।

यह बानवे युग पहले की बात है जब मैंने यह किया था।

श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट, विशेषकर फूल।

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

इक्यावन युग (कप्पा) पहले, मैं एक था

अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा (जिसका नाम) तामोनुडा था

(अंधकार को दूर करने वाला) से संपन्न

सात प्रकार के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने मन ही मन सोचा: "शिष्य के रूप में जो कुछ भी प्राप्त करना चाहिए था, वह मैंने प्राप्त कर लिया है; अब यदि मैं भिक्षुओं की रक्षा करूँ तो क्या होगा?" इस प्रकार विचार करने के बाद, वे अपने पास आने वाले भिक्षुओं को सौहार्दपूर्वक सलाह और शिक्षा देते रहे, उनके संदेह दूर करते रहे, उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश देते रहे, और विश्लेषणात्मक ज्ञान और अथक परिश्रम के कारण मानसिक अभ्यास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के तरीके बताते रहे। फिर एक दिन, अपने पास आए भिक्षुओं को व्यापक ज्ञान (विञ्ञा) वाले व्यक्तियों की श्रेष्ठता (विशेषा) से अवगत कराने के लिए उन्होंने एक श्लोक कहा:

106. एक बुद्धिहीन व्यक्ति केवल एक

एकल महत्व (एकांगदास्सी)

जबकि ज्ञानी व्यक्ति सौ देखता है

अर्थ (अत्था) के अपने हुन में-

विभिन्न प्रकार की उपस्थिति (लिंग)

इसके धारण (धारिनो) के संबंध में

सौ विशिष्ट लक्षण

(लक्खना)।

वहाँ, सतलिंगस्स का अर्थ है: वे लज्जा (लीना) की भावना (अत्था) की ओर जाते हैं; इस प्रकार, लिंगानि (लिंग): व्याकरणिक शब्द (सद्द) के अर्थों (अत्थेसु) में अभिव्यक्तियाँ (पवत्ति) और विशिष्ट चिह्न (निमित्तनि); इसके लिए, सौ से अधिक प्रकार की अभिव्यक्तियाँ (लिंगानि) हैं; इस प्रकार, सतलिंगो (यह जिसकी सौ अभिव्यक्तियाँ हैं)। वास्तव में, यहाँ सत शब्द का अर्थ एक नहीं बल्कि अनेक है; इसका अर्थ विशेष संख्या (सांख्यविशेष) नहीं है, जैसा कि "सतं सहस्सं (अनेक)" आदि कथनों में होता है; इतनी अनेक अभिव्यक्तियों (तस्स सतलिंगस्स) का। अत्थस्स का अर्थ है: परिस्थिति (नेय्या) का। वास्तव में, परिस्थिति (ñeyya) को "अत्थ (अर्थ)" कहा जाता है, क्योंकि यह ज्ञान (ñāna) के माध्यम से आग जलाने के लिए लकड़ी (arani) के समान हो जाना है। वह अर्थ (अत्थ) भी, यद्यपि एक ही है, अनेक रूपों (liṅga) में प्रकट होता है, जैसे कि "Sakko purindado maghavā (दिव्य राजा)" और paññā, vijjā, medhā, ñāna (बुद्धि)" जैसी अभिव्यक्तियों में। जिस भी विशिष्ट चिह्न (निमित्त) के प्रकट होने (लिंग) और अभिव्यक्ति (पवत्ति) से शब्द 'इंडा' (इंडासद्दो) तैंतीस के स्वर्गलोक (तावतिंसाधिपति) में प्रकट होता है, उससे नहीं, वहाँ 'सक्का' आदि शब्द प्रकट होते हैं (पवत्त); बल्कि किसी और कारण से। इसी प्रकार, 'विज्जा' आदि शब्द उस कारण से नहीं उत्पन्न होते जिससे सही दृष्टि (सम्मादित्ति) में 'पञ्ञा' शब्द उत्पन्न होता है। इसलिए, ऐसा कहा गया है: — "सतलिंगस अत्थस, जिसका अर्थ है सौ रूपों में प्रकट होने वाला।"

सतलक्खनाधारिनो का अर्थ है:— अनेक विशिष्ट लक्षणों से युक्त: इसकी विशेषता (लक्खियाति) यही है; वहाँ, लक्खनं (विशेषतापूर्ण); अपने स्वयं के फलदायी परिणाम (फल) पर निर्भर (पटिच्च) जो अर्थ (अत्थ) का कारण (भावी) बनने वाला है (पच्चय); इसी कारण (तेन), वास्तव में, यह इसका कारण (कारणं) है; इस प्रकार, यह चिह्नित (लक्खियाति) है। यह ज्ञात (उपलब्भति) है कि एक ही अर्थ (अत्थ) के अनेक विभाजन (पभेदो) होते हैं; इसलिए, उन्होंने कहा: "सटलक्खनधारिनो, सौ विशेषताओं वाले का।" दूसरे शब्दों में, वे चिह्नित हैं; इस प्रकार, लक्खनानि (चिह्न); इस और उस अर्थ के मिश्रित (संखत) होने के कारण, वे विशिष्ट (विशेष) रूप (पकार) हैं; हालाँकि, उन्हें लक्ष्यहीन (अवत्थ) विशेषताओं (विशेषा) के रूप में समझा जाना चाहिए। अर्थ (अत्थेतो)। वे अपने ऐसे साधारण (सामञ्ञ) गुणों जैसे कि अनित्यता आदि को भी प्रकट (ञ्ञेन्ति) करते हैं और प्रकट (लिञ्गेन्ति) करते हैं; इस प्रकार, उन्हें "लिंगानि, प्रकट रूप" कहा गया है। ये इसके गुण (आकार) हैं; क्योंकि एक ही अर्थ (अत्थ) के लिए भी एक से अधिक अर्थ मिल सकते हैं; इसलिए कहा गया है; "सतलिञ् ... बुद्ध के ज्ञान (ज्ञान) के मुख (मुख) पर, प्रत्येक प्रकार (आकार) में सत्य (धम्म) का ध्यान केंद्रित होता है (आपाथं)।"

एकंगदास्सी दुम्मेधो का अर्थ इस प्रकार है:— इस अर्थ (अत्थ) में, जिसके इस प्रकार अनेक रूप (लिंग) और अनेक विशिष्ट चिह्न (लक्खना) हैं, जो कोई भी संग्रह (अंग) के एक घटक भाग का द्रष्टा (दास्सी) है, वह केवल एक ही रूप (एकलिंगमत्तं) और केवल एक ही विशिष्ट चिह्न (एकलक्खनमत्तं) को देखकर, व्यापक ज्ञान (अपुथुपञ्ञता) के अभाव में, केवल अपने स्वयं के दृष्टिकोण (दिट्ठ) का पालन (अभिनिविस्सा) करता है और मन ही मन कहता है: "यही सत्य (सच्चं) है" और दूसरे को यह कहकर अस्वीकार करता है: "अन्य सब व्यर्थ (मोघं) हैं"; हाथी के एक अंधे द्रष्टा के समान, जिसने जानवर के एक ही अंग को पकड़ रखा है (एकंगगाही), दुम्मेधो (कम बुद्धि वाला व्यक्ति) जो वहाँ विद्यमान विशिष्ट भेदों (पकाराविशेष) को जानबूझकर नहीं समझ पाता (अजाननातो), और अपने विधर्म (मिच्छा) के प्रति आसक्ति के कारण। सतदस्सी च पंदितो का अर्थ है: दूसरी ओर, एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि की दृष्टि से वहाँ विद्यमान अनेक विशिष्ट भेदों (पकारा) को भी सर्वत्र देखता है। दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति न केवल स्वयं अपनी बुद्धि की दृष्टि से वहाँ मौजूद अनेक (विशेषताओं) को देखता है, बल्कि उन्हें दूसरों को भी दिखाता और प्रकट करता है, वह पंदितो (दूरदर्शी बुद्धिमान व्यक्ति) है और अर्थ में चतुर व्यक्ति कहलाता है। इस प्रकार, थेरा ने अपने स्वयं के विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटिसंभिदा) की समृद्धि का स्पष्ट वर्णन किया, जो अपनी सर्वोच्च श्रेष्ठता तक पहुँच चुका था।

थेरा सुहेमंता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(107):धम्मसव

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (107) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
107. धम्मसव
मगध राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, और परिस्थितियों की परिपक्वता से प्रेरित होकर, उन्होंने गृहस्थ जीवन के बजाय धार्मिक जीवन को चुना। दक्षिण पहाड़ी पर परम पूज्य (बुद्ध) की खोज में, [1] उन्होंने उनसे धम्म का उपदेश सुना, जिसके बाद वे भिक्षु बन गए और समय के साथ अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। अपने जीवन पर प्रसन्नतापूर्वक विचार करते हुए, उन्होंने इस कथन (गथा) में अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार किया:

[107] पब्बाजीं तुलयत्वाण अग्रस्मानगरियं,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥॥

[107]
मैंने अच्छी तरह विचार किया, फिर गृहस्थ जीवन की दीवारों और बंधनों से परे जीवन की खोज की ।
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है। [2]

[1] दक्षिणगिरि (विनय ग्रंथ, द्वितीय 207, एन. 2)।

[2] भजन संहिता 24.

1.11-7 [107] धम्मासवत्थेरा के श्लोक पर टीका
'पब्बजिं तुलयित्वाना' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा धम्मासव का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि ये बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय सुवच्छ नामक एक ब्राह्मण थे। वे तीनों वेदों में पारंगत थे, उन्होंने गृहस्थ जीवन की कमियों को पहचानकर संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए, पर्वतों के बीच वन क्षेत्र में एक आश्रम बनवाया और कई संन्यासियों के साथ वहाँ निवास करने लगे। तब, उन्हें पुण्य कर्म का बीज बोने के लिए प्रेरित करने हेतु, बुद्ध पद्ममुत्तरा उनके आश्रम के निकट आकाश में खड़े हुए और उन्हें इद्धिपातिहारिय शक्ति का चमत्कार दिखाया। उस चमत्कार को देखकर वे धर्मपरायण हो गए और श्रद्धापूर्वक अर्पण करने की इच्छा से उन्होंने नाग पुष्प

तुड़वाए। गुरु ने यह कहकर प्रस्थान किया: "इस ऋषि के लिए इतना पुण्य बीज पर्याप्त है।" उस पुण्य ने पुष्पों को ग्रहण किया, गुरु के मार्ग पर बिखेर दिया और हाथ जोड़कर प्रसन्न मन से खड़े हो गए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म हुआ और वे बार-बार जन्म लेते रहे, कभी-कभी उत्तम अवस्थाओं (सुगति) में (अपरापरं) रहते हुए, मगध राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। धम्मसव नाम प्राप्त करने के बाद, जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो उन्होंने अपनी समृद्धि (हेतु-संपत्ति) से प्रेरित होकर गृहस्थ जीवन में विमुखता और भिक्षु जीवन में लाभ को पहचाना और दक्षिणागिरि (दक्षिणी पहाड़ी) में निवास कर रहे भगवान बुद्ध के पास गए, उनके सत्य (धम्म) के उपदेश सुने, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्तव्य निभाया और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"एक ब्राह्मण जो (पारागू) में निपुण है

ब्राह्मण विद्या (मन्त), जिसे इस नाम से जाना जाता है

सुवच्छा नाम का एक व्यक्ति पहाड़ी पर रहता था।

अपने द्वारा घिरा हुआ (पुरक्खतो)

विद्यार्थी।

उस विजेता का नाम पद्मुत्तरा था,

बलिदान की भेंट के योग्य प्राप्तकर्ता-

आहुति (ings), खींचने की इच्छा रखना

मुझे ऊपर उठाओ (मंउद्धरित्यम्), मेरे पूर्व में आया-

समझ।

आकाश में, वह इधर-उधर विचरण करता रहा, और

उन्होंने स्वयं को प्रकाशमान और सुगंधित बना लिया

धुआं (धूपायति)। आने पर

मेरी प्रसन्नता (हासम्) को जानकर, वह

पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया

(pācīnamukho).

उस आश्चर्य (आचार्य) पर ध्यान देने पर,

अजीब और रोंगटे खड़े कर देने वाला, मैंने इकट्ठा किया

नाटा के फूल बिखरे हुए थे और फिर नीचे की ओर फैल गए।

जिस मार्ग से वह आगे बढ़ा (गता)।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने फूल बिखेर दिए थे।

मेरी उस धार्मिक इच्छा के कारण

मुझे किसी भी तरह से अचानक उठने की जरूरत नहीं पड़ी।

दुष्ट अस्तित्व।

इकतीस सौ युग (कप्पा) पहले, मैं

महाराजा (अत्यंत योग्य) सम्राट बन गए।

एक अत्यंत शक्तिशाली विश्व-राजा, जो इन गुणों से संपन्न था

सात प्रकार के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उचित उपलब्धि (पतिपत्ति) पर विचार किया, आनंदित हुए और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति (उदान) के माध्यम से एक श्लोक बोला।

107. "मैंने वजन करने के बाद भिक्षु बनने का निश्चय किया

(तुलयति) और घर से बाहर आ जाओ-

जीवन धारण करते हैं। महाविज्ञान के तीन रूप

(tissovijjā) मैंने विधिवत रूप से प्राप्त कर लिया था;

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

वहाँ, पब्बजिं तुलयित्वाना का अर्थ है: उस ज्ञान के माध्यम से जाँच (विकारेत्वा) और परीक्षण (विमंसित्वा) करने के बाद, जो संतुलन (तुल) बन गया है, गृहस्थ जीवन में होने वाली हानि (आदिनवं) इस प्रकार है: "गृहस्थ जीवन में संकरा और धूल भरा मार्ग (राजपथो)" इत्यादि, और इंद्रिय सुखों (कामेसु) में होने वाली हानि (कामेसु) इस प्रकार है कि "इंद्रिय सुख आनंददायक नहीं (अप्पस्सादा), अत्यंत दुखद (बाबु दुक्खा) और अत्यंत कष्टदायक (बहुपायासा) हैं, और इसके विपरीत (तप्पटिपक्खतो) त्याग (नेक्खम्मे) में लाभ (आनिसंसं) भी है; इस प्रकार, यही अर्थ है। शेष तो पहले से ही बताए गए तरीके (हेट्ठा) में है। वही श्लोक थेरा की अञ्ञा (प्राप्ति) (अरहंतत्व) को भी प्रकट करता है।

थेरा धम्मासव के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (108): धम्मसव के पिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (108) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
108. धम्मसव के पिता
उन्होंने अपने पुत्र के उदाहरण का अनुसरण करते हुए कहा: 'मेरे पुत्र ने युवावस्था में ही संसार त्याग दिया (सन्यास ग्रहण कर लिया); तो मैं क्यों न इसे त्याग दूं?' अतः उन्होंने भी भगवान (बुद्ध) की शरण ली और समय आने पर अर्हत्व प्राप्त कर उनका वचन (गाथा) सुनाया।

[108] सा विसाऽवस्सासतिको पब्बाजीm अनागारियाऽ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[108] मैं सौ वर्ष का हो गया और बीस वर्ष तक कड़ी मेहनत की,
फिर मैं चला गया और अपने घर को नहीं पहचान पाया।
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है।

1.11-8 [108] धम्मसवपितुत्तेरा के श्लोक पर टीका
सवीसवस्सासतिको से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा धम्मुआसवपितु का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के कारण, जब लोक बुद्धों से रहित था, तब उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ। भूतागना नामक पर्वत पर निवास कर रहे एक आत्मजागृत मौन बुद्ध को देखकर, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें तिनसूल प्रकार के चमेली के फूल अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और वे अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में विचरण करते हुए, समय-समय पर उत्तम अवस्थाओं में रहते हुए, मगध राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। ज्ञानोदय की आयु प्राप्त करने पर उन्होंने एक पत्नी से विवाह किया (दार परिग्हा), उन्हें धम्मासव नामक पुत्र प्राप्त हुआ और जब उनका पुत्र भिक्षु बन गया, तो स्वयं एक सौ बीस वर्ष की आयु में वे पश्चाताप करने लगे और मन ही मन कहने लगे, "मेरा पुत्र, जो अभी भी युवा है, भिक्षु बन गया है; तो फिर मैं क्यों न बनूँ?" वे गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और अरहंतत्व की कल्पना की, परन्तु शीघ्र ही। अतः अपदान में कहा गया है:—

"हिमवंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर एक

भूतगना नामक पर्वत। वहाँ एक विजेता रहता था।

स्वयं निर्मित (सयम्भु), जो बच निकला था

दुनिया से, रहते थे। एकत्र करके

तिनासुला किस्म के चमेली के फूल

मैंने उन्हें मौन बुद्ध को अर्पित किया।

निन्यानवे हजार युग (कप्पा) मैं था

नरक में दंड के लिए उत्तरदायी नहीं

(vinipātiko).

ग्यारह युग (कप्पा) पहले, मैं एक बन गया

अत्यंत बलवान विश्व-राजा धरणीरुहा (पृथ्वी)।

पर्वतारोही) सात प्रकार के गुणों से संपन्न

जन.

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उचित साधना (पटिपत्ति) पर विचार किया, प्रसन्न हुए और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति में एक श्लोक बोला।

108. "एक सौ बीस वर्ष की आयु में,

मैं भिक्षु बन गया और नेतृत्व करने लगा।

एक गृहस्थ जीवन। तदनुसार मैंने

तिगुना सुपर विज्ञान प्राप्त किया (टिसो)

विज्जा); बुद्ध का निर्देश था

किया गया।

वहाँ, सवीसवस्सतिको का अर्थ है: मैं जो एक सौ बीस वर्ष का था; मैं, एक व्यक्ति के रूप में, अपने जन्म से एक सौ बीस वर्ष बाद। पब्बजिं का अर्थ है: मैं भिक्षुत्व की ओर अग्रसर हुआ। शेष का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। यही श्लोक इस थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) का भी प्रकटीकरण था।

थेरा धम्मसवपितु के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(109):संघ-रक्खिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (109) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
109. संघ-रक्षित [1]

बुद्ध युग में सावत्थी के एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने आस्था प्राप्त की और भिक्षु बनने का निश्चय किया। वे एक अन्य भिक्षु के साथ वन में रहने लगे। उनके निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर, झाड़ियों में एक हिरणी ने अपने बच्चे को जन्म दिया था। उसकी देखभाल करते हुए, उसका प्रेम उसे उससे दूर नहीं जाने देता था, और आस-पास घास और पानी न होने के कारण वह भूखी थी। उसे देखकर थेरा ने कहा: 'अरे, यह संसार भोग-विलास के बंधनों में जकड़ा हुआ है और उन्हें काट नहीं पा रहा है, इसलिए वह बहुत कष्ट भोग रहा है!' इस भावना को प्रेरणा मानकर उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, यह जानकर कि उनके साथी कई गलत विचारों में लीन हैं, उन्होंने हिरणी की कहानी के माध्यम से उन्हें संबोधित किया और यह श्लोक कहा:

[109] ना [16] नुननायं परमहितानुकाम्पिनो॥
रहोगतो अनुविगणेति सासनं,॥
तथाहयं विहारति पाकतिन्द्रियो॥
मिगी यथा तरुणजातिका वने' ति.। ॥

[109] यद्यपि वह एकांतवास में रहता है, फिर भी उसने
उस व्यवस्था को पार नहीं किया है जिसे उस भगवान (बुद्ध) ने बनाया था
जिसने हमारे सर्वोच्च कल्याण के लिए करुणा दिखाई।
उसकी शक्तियाँ अभी भी शिथिल और अनियंत्रित हैं,
जैसे जंगल की हिरणी कोमल और कमजोर हो गई हो। [2]

ये शब्द सुनकर वह भिक्षु व्याकुल हो गया और अंतर्दृष्टि का विस्तार करते हुए, समय आने पर उसने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया।

[1] = आदेश द्वारा संरक्षित।

[2] यह श्लोक, टीका के अभाव में अनुवाद में आने वाली असाधारण कठिनाई का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। सरल छोटी कथा के अभाव ने डॉ. न्यूमैन को एक बहुत ही अलग व्याख्या की ओर अग्रसर किया है, जिसमें पाकतिन्द्रियो शब्द का जटिल प्रयोग किया गया है। पाकत = असंगुता (टीका)। तुलना करें मिलिंदा, ii. 72.

1.11-9 [109] संघरक्षितथेरा के श्लोक पर टीका
'ना नूनायं परमहितानुकम्पिनो' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा संघरक्षित का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी इस और उस जन्म में भक्तिमय कर्म किए और आज से चौरानवे युग (कप्पा) पहले एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने एक पहाड़ी की तलहटी में निवास कर रहे सात आत्मजागृत मौन बुद्धों को देखा। वे श्रद्धा से भर गए, कदंब वृक्ष के (संतरे रंग के सुगंधित) फूल एकत्र किए और उन्हें आदरपूर्वक अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण वे दिव्य लोक में अवतरित हुए और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में घूमते रहे, लेकिन उत्तम जन्मों (सुगति) में, और जब ये बुद्ध प्रकट हुए, तब वे एक समृद्ध (इब्भ) परिवार में, सावत्थी में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम संघरक्षित था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था अपनाई, भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मट्ठाना) में लग गए और एक भिक्षु को अपना साथी बनाकर वन में रहने लगे। थेरा के निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर स्थित एक झाड़ी में, एक हिरणी ने अपने बच्चे को जन्म दिया। अपने बच्चे के प्रति स्नेह के कारण वह दूर चरने नहीं गई, यद्यपि वह भूखी थी; आस-पास घास और पानी न मिलने के कारण वह कमजोर हो गई। यह देखकर थेरा को बहुत पश्चाताप हुआ और उन्होंने मन ही मन कहा, “हाय! वास्तव में, यह संसार तृष्णा (तन्हा) के बंधन में जकड़ा हुआ है, इसलिए वह महादुक्खा है; वह उस तृष्णा को क्षत नहीं कर पा रही है।” उसी पदार्थ को अपना अंकुश बनाकर, उन्होंने विपस्सना का निरंतर विकास किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

हिमावंता (हिमालय) से कुछ ही दूरी पर था

कुक्कुटा (मुर्गा) नाम की एक पहाड़ी।

उस पहाड़ी की तलहटी में, एक निवासी रहता था

वे सात मौन बुद्ध।

कदंब के पेड़ को देखकर

एक ऊंचे (उग्गाटा) दीपक की तरह खिलता हुआ

-राजा (दीपराजा), अपने दोनों हाथों से

मैंने फूल तोड़े (पग्गेहा) और

सात मौन पर अच्छी तरह से बिखरा हुआ

बुद्ध।

यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी विशेष भेंट दी

फूल; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व (दुग्गति); यही है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

बानवे युग (कप्पा) पहले

वर्तमान में, सात बहुत ही थे

पुप्पा नाम के शक्तिशाली विश्वराज, जो सात रत्नों से परिपूर्ण थे।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी:...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्हें यह पता चला (त्रत्वा) कि उनका साथी भिक्षु अत्यंत गलत और जंगली विचारों (मिच्छावितक्कबहुल) में जी रहा था, और उन्होंने उस साथी को उपदेश देने के लिए एक श्लोक कहा, जिसमें उन्होंने उसी हिरणी को उदाहरण (उपमा) के रूप में प्रस्तुत किया।

109. "क्या यह निश्चित रूप से निर्देश नहीं है?"

(बुद्ध) का (सासनं) जो अभ्यस्त है

सहानुभूतिपूर्वक (शावर) पारलौकिक

(सभी जीवित प्राणियों का) कल्याण (परमहिता)

जीव), जिनके बारे में (मुझे लगता है) आपने नहीं सुना है

विचार किया (nānuvigane), बाद में

एकांतवास (राहोगटो) में चले गए। उसके अंतर्गत

वास्तव में, यही परिस्थिति है (तथाहि), यह

एक व्यक्ति अपने सामान्य (असामान्य) जीवन जी रहा है।

नियंत्रित इंद्रिय-शक्तियाँ (पाकतिन्द्रियो),

मादा हिरण के समान (उससे जुड़ी हुई)

जंगल में एक कोमल छोटा बच्चा।

वहाँ, Na nūnāyaṃ का अर्थ इस प्रकार है:— Na का अर्थ है: इस प्रकार, एक नकारात्मक कण (paṭisedhe nipāto)। Nūnā का अर्थ है विचार (parivitakka); nūna ayaṃ (इसके विचार में, इसके संबंध में), इस प्रकार, शब्द का पृथक्करण (padaccheda) है। Paramahitānukampino का अर्थ है: पूर्णतः (paramaṃ) पारलौकिक रूप से (ativiya), दूसरे शब्दों में, भगवान के पूर्ण (paramena) और पारलौकिक (anuttarena) कल्याण (hitena) के माध्यम से, जिनका स्वभाव (sīla) जीवों (satte) पर दया (anukampana, सहानुभूति) है। Rahogato का अर्थ है: एकांतवास में चले गए हैं (rahasi); एक खाली घर (suññāgāra) में चले गए हैं, शारीरिक एकांतवास (kāyaviveka) में लगे हुए हैं (yutto)। अतः, यही अर्थ है। अनुविगनेति का अर्थ इस प्रकार है: यहाँ (एत्था), दो शब्द (पडद्वयं) अर्थात् "नानूना" को लाकर (आनेत्वा) "नानूविगनेति नूना" के रूप में संयोजित (संबंधितब्बं) किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है; "तुम विचार नहीं करते (सिंतेसि), मैं सोचता (मञ्ञे), मेरा मत है (तक्केमि) कि वह तदनुसार इसमें लिप्त नहीं होता" (नानूयुञ्जति); अतः, यही अर्थ है। शासनं का अर्थ है उचित प्राप्ति का विधान (पटिपत्ति शासनं); चार आर्य सत्यों (चतुश्च) पर मानसिक अभ्यास (कम्मठ्ञा) का विकास (भावना); अतः, यही अर्थ (अधिप्पायो) है। तथा ही का अर्थ है: परन्तु उस कारण से (तेनएव कारनेन); यहाँ तक कि गुरु के निर्देशानुसार स्वयं को भोग न लगाने के कारण भी (सत्तु सासनस अननुयुञ्जनतो एव)। अयं का अर्थ है: यह भिक्षु। पाकतिन्द्रियो का अर्थ है: वह व्यक्ति जिसकी इंद्रियों (इन्द्रिय) को नियंत्रित करने की शक्तियाँ (भूत) स्वाभाविक (सभाव) हो गई हैं, क्योंकि उसने अपनी छह मानसिक अवस्थाओं (मनच्छठनं) वाली इंद्रियों (इन्द्रियानं) को उनके अपने-अपने क्षेत्र (विषयेषु) में निर्वाह (बिस्सज्जनतो) किया है; वह व्यक्ति जिसकी नेत्र खोलने (चक्खुद्वार) आदि इंद्रियों के द्वार अच्छी तरह से नियंत्रित (असं वतु) नहीं हैं; यही अर्थ है। वह भिक्षु अपनी सामान्य (पकति) इंद्रियों (इन्द्रियो) के साथ रहता था क्योंकि उसने अपनी आसक्ति (तन्हासंग) को नहीं काटा था (अच्चिन्नताय); उन्हें एक उदाहरण (उपमं) दिखाने के लिए उन्होंने इस प्रकार कहा: "मिगी यथा तरुणजातिका वने। जिस प्रकार यह हिरणी, स्वभाव से कोमल (तरुणसभाव) होने के कारण वन में अपने बच्चे के प्रति स्नेहपूर्ण लगाव को न छोड़ने (अच्चिन्नताय) के कारण दुःख (दुक्खं) भोगती है; वह उस दुःख से उबर नहीं पाती, उसी प्रकार यह भिक्षु भी, अपनी सामान्य इंद्रियों (पाकतिन्द्रियो) के साथ रहते हुए, अपने आसक्ति (संग) को न छोड़ने के कारण, बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) के चक्र से बाहर नहीं निकल पाता, जो दुःख (दुक्खं) का कारण बनता है; यही इसका अर्थ है। वैकल्पिक रूप से, इसका एक पाठ (पाठ) इस प्रकार भी है: "तरुण विजारिका"। एक युवा (बाल) बछड़ा (बछड़ा) हिरण (वच्छ) का जन्म (पसूता) अभी-अभी (अभिनव) हुआ है; यही अर्थ है। उस श्लोक को सुनकर वह भिक्षु पश्चाताप से भर गया।उन्होंने धीरे-धीरे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंत पद प्राप्त किया, लेकिन जल्द ही।

थेरा संघहरक्षित के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(110):उषाभा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (110) ----->>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
110. उसभा
बुद्ध युग में कोसल राज्य के एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) में आस्था प्राप्त की जब उन्होंने जेतवन का उपहार स्वीकार किया। अपनी दीक्षा पूरी करके, वे पर्वत की तलहटी में स्थित जंगल में रहने लगे। अब वर्षा ऋतु में, बादल पहाड़ियों और वृक्षों की चोटियों पर छा गए थे; झाड़ियाँ और लताएँ घनी पत्तियों से भर गई थीं। तब एक दिन थेरा अपनी गुफा से बाहर निकले और उन्होंने वनों और पर्वतों की सुंदरता देखी, और गंभीरता से विचार किया: 'ये वृक्ष और लताएँ अचेतन हैं, फिर भी ऋतु की पूर्णता से इनमें वृद्धि हुई है। मैं, जिसने उपयुक्त ऋतु प्राप्त कर ली है, अच्छे गुणों से वृद्धि क्यों न प्राप्त करूँ?' [1] और उन्होंने यह श्लोक कहा, जो उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा बन गया , क्योंकि उन्होंने तुरंत प्रयास किया और अर्हंत पद प्राप्त किया:

[110] नागा नागाग्गेसु सुसांविरूढ़ा॥
उदग्गमेघेन नवीन सित्ता॥
विवेकाकामास अरणासान्निणो॥
जनेति भय्यो उषाभस्सा कल्यतन' ति.॥ ॥

[110] ऊंचे बादलों से ताज़गी पाकर नए वर्षा से ऊंचे वृक्ष
हरे-भरे हो उठे।
उसभा, जो वैराग्य की लालसा रखती है,
और जिसे वन का ज्ञान है, [2]
उसे [इस प्रतिक्रियाशील झरने से] प्रचुर लाभ प्राप्त हुआ ।

[1] केबल के इस मनोदशा के शरदकालीन समकक्ष की तुलना करें :

' फिर भी कुछ देर रुकिए और शांत पत्तियों को धीरे-धीरे तैरते हुए देखिए,
प्रत्येक पत्ती अपनी मूल छाया के नीचे विश्राम करती है,' इत्यादि।

[2] = araññasaññino.

1.11-10 [110] उसभत्थेरा के छंद पर टिप्पणी
नाग नागगेसु सुसंविरूल्का से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उसभा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म करते हुए, उन्होंने वर्तमान कल्प से इकत्तीस युग पहले, गौरवशाली ओन सिखी काल में एक युवा देवता के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, उन्हें गुरु के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें दिव्य पुष्प अर्पित किए। पुष्पों का वह आदरपूर्ण अर्पण सात दिनों तक मंडप की तरह प्रदर्शित रहा। वहाँ देवी-देवताओं और मनुष्यों का एक विशाल समूह एकत्रित हुआ। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कोसल राज्य के एक समृद्ध (इब्भा) परिवार में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम उषभा था। ज्ञानोदय की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने जेतवन ग्रहण कर रहे गुरु में दिव्य प्रसन्नता पाई, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा किया और एक पहाड़ी की तलहटी में स्थित वन में निवास किया। उस अवसर पर भी, जब मौसमी वर्षा के बादल ने विशेष रूप से वर्षा की बौछारें बरसाईं, तो वृक्षों, जंगलों और पहाड़ियों की चोटियों पर लताओं (पब्बतसिखारेसु) पर पत्तों का घना समूह (घना) और असंख्य (संडिनो) उग आया। फिर एक दिन, थेरा अपनी पत्थर की कुटिया से बाहर निकले, जंगल की उस मनमोहकता और पहाड़ी की सुंदरता को देखकर उन्होंने बुद्धिमानी से सोचते हुए एक श्लोक कहा: “ये निर्जीव (अचेतना) वृक्ष आदि भी अनुकूल मौसम (उत्समपत्ती) के कारण विकसित होते हैं; तो मैं, अनुकूल जलवायु (उत्समपाय) प्राप्त करके, गुणों (गुणों) का निरंतर विकास क्यों न प्राप्त करूँ?”

110. “पेड़ों पर पानी छिड़कने के बाद

ताजा (नवा) ऊंचा (उदग्ग) बौछार

पहाड़ी (नागा) चोटियों (अग्गा) पर बारिश पूरी तरह से भरी हुई है

अच्छी तरह से विकसित, अपने ही पत्तों से ढके हुए।

कल्याता (सौम्यता) और भी अधिक महत्वपूर्ण है।

किसी पुरुष के बैल से उत्पन्न (जनेति)

जो अपने साथ एकांतवास की इच्छा रखता है

वन जीवन का विचार (araññasaññī)।

वहाँ, नाग का अर्थ वृक्ष (रुक्खा) है। कुछ लोग कहते हैं: “नागा” (नाग वृक्ष); यही अर्थ है। नागगेसु का अर्थ है पहाड़ियों की चोटियों पर (पब्बतसिखर)। सुसंविरूल्हा का अर्थ है: अपनी जड़ों पर चारों ओर अच्छी तरह विकसित होने के बाद, शाखाओं के शीर्षों और अंकुरित शाखाओं के साथ अच्छी तरह से विकसित हो गए हैं, जो व्यापक रूप से (परितो) और ऊपर (उपरी) लेकिन उचित रूप से (सम्मेदेव) फैले हुए हैं; यही अर्थ है। उदग्गमेघेना नवेना सिट्ठा का अर्थ है: वर्षा-बादल द्वारा विशेष रूप से बरसाया गया, जिसने अपने पहले अंकुरण (पठमुप्पन्नेन) के कारण अत्यधिक (उलारा) प्रचुर (महाता) वर्षा की बौछार की। विवेककामस का अर्थ है वह व्यक्ति जो दुराचार से रहित मानसिक एकांत चाहता है (किलेसा विवित्तं); वन में निवास करने से अब शारीरिक एकांत (कायविवेको) प्राप्त हो गया है; वर्तमान समय में मानसिक एकांत (चित्तविवेक), जो पुनर्जन्म के आसक्ति (उपाधि) से मुक्ति (विवेक) की प्राप्ति (निस्सायभूत) पर निर्भर (अधिगम) हो गया है, उसे प्राप्त करना चाहिए (लद्धब्बो), इस प्रकार, जो इसकी आकांक्षा रखता है (तंपत्तयमानासस); जो तदनुसार जागृति (जागरिया) में लिप्त रहता है, यही अर्थ है; अतः उन्होंने कहा:— “अरञ्ञसाञ्ञिनो।” अर्थात्, गुरु ने वन में निवास करने की बहुत प्रशंसा की है। वास्तव में, यह भी शांत स्वभाव (समथ) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के पूर्ण विकास (भावना) के लिए ही है; इसीलिए मेरे हाथों में प्राप्त हुई ऐसी उपलब्धि (हत्थगत) मुझे ही करनी चाहिए; इस प्रकार उस व्यक्ति के लिए जो वन में जाने का विचार रखता है, जो त्याग (नेक्खम्म) के लिए बहुत इच्छुक (संकप्प) है; यही अर्थ है। जनेति का अर्थ है: उत्पन्न करना (उप्पादेंति); यह एकवचन शब्द वास्तव में बहुवचन के अर्थ में है। हालांकि, कुछ विद्वान (केची) इसे "जनेंति" पढ़ते हैं। भिय्यो का अर्थ है: ऊपर (उपरूपरी)। उषभस का अर्थ है: वह अपने बारे में इस प्रकार कहता है मानो किसी और के बारे में कह रहा हो। कल्यातम् का अर्थ है: मनभावन अवस्था (कल्याभावम्), मन की अनुकूल अवस्था (कम्मञ्ञतम्), मन के विकास में लीन होने की अवस्था (योग्यता)। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (हेट्ठा)। इस प्रकार, जैसे ही उन्होंने यह श्लोक बोला, थेरा स्वयं आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में लीन हो गए और अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, अपदान में कहा गया है:—

“एक युवा देवत्व होने के नाते, मैं श्रद्धापूर्वक

मैंने सिख नेता को अपनी भेंट अर्पित की।

दिव्य मंदारव फूल, जो मैं

विशेष रूप से बुद्ध के लिए बनाया गया।

तथागत के पास यह एक दिव्य वस्तु बन गया।

मालायुक्त छत (डिब्बां मलं चदानं)

सात दिनों तक; पुरुषों की पूरी भीड़

एक साथ आए और अपनी श्रद्धा व्यक्त की

तथागत।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

इस कप्पा के प्रति, जिसके प्रति मैंने विशेष श्रद्धा व्यक्त की-

फूलों की पारंपरिक भेंट: मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

बुद्ध को अर्पित की गई मेरी श्रद्धा का परिणाम।

वर्तमान से दस युग (कप्पा) पहले

मैं राजा जुटिंधरा (वाहक) बन गया

प्रतिभा), एक बहुत शक्तिशाली विश्व-राजा,

सात रत्नों से जड़ा हुआ। मेरी दुष्टता ने

जल गया है।... बुद्ध का निर्देश

कार्य संपन्न हो चुका था।

यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने वाला श्लोक बन गया।

थेरा उसभा के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।

ग्यारहवें अध्याय की टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(111):जेंटा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (111) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
111. जेंटा
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म मगध राज्य के जेंता गाँव में एक जिले के राजा के पुत्र के रूप में हुआ। [1] युवावस्था में ही, परिस्थितियों की परिपक्वता से प्रेरित होकर उनका मन संसार त्यागने की ओर झुक गया, और वे इस विषय पर विचार करने लगे कि उन्हें क्या करना चाहिए। संशय में रहते हुए उन्होंने भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुना। उस दिन से वे धार्मिक जीवन के प्रति समर्पित हो गए और भिक्षु संघ में प्रवेश कर गए। प्रसन्नतापूर्वक परिश्रम करते हुए और तीव्र अंतर्दृष्टि से उन्होंने अर्हत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया; फिर अपनी उपलब्धि और अपनी दुविधा पर विचार करते हुए उन्होंने आनंदपूर्वक यह श्लोक कहा:

[111] डुप्पाबज्जाṃ वे,॥
दुरधिवास गेहा॥
धम्मो गंभीरो,॥

दुरधिगामा भोग,॥
किच्चा वुति नो इतरितरेनेव;॥
युत्तm सिन्तेतुm सततं अनिच्चतन ती.॥ ॥

[111] संसार का जीवन कठिन है, और
सत्यतः गृहस्थी संभालना भी कठिन है। धम्म का मार्ग गहरा है;
धन कमाना भी कठिन है। अतः
जीवन जीने का तरीका चुनना कठिन है।
मेरा कर्तव्य है कि मैं निरंतर
अनित्यता को ध्यान में रखूँ और सब कुछ देखूँ।

[1] माण्डलिकराजस्स। सी एफ पी। 83, एन. 5.

1.12 बारहवाँ अध्याय

1.12-1 [111] जेंतत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
दुप्पब्बज्जनवे दुराधिवासा गेहा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा जेंता का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित करने वाले इस व्यक्ति का पुनर्जन्म भगवान शिखा के समय एक युवा देवता के रूप में हुआ। एक दिन संयोगवश उन्होंने गुरु के दर्शन किए, श्रद्धा से भर गए और उन्हें स्वर्ण कछुआ-कंठ (किंकिरात) के फूल अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म मगध राज्य के जेंता गाँव में एक क्षेत्रीय (मंडलिका) शासक (राजा) के पुत्र के रूप में हुआ। उनका नाम जेंता था। बुद्धि प्राप्त करने पर, कर्म की समृद्धि (हेतुसंपत्ति) से प्रेरित होकर, वे कम उम्र में ही संन्यासी बनने की ओर विवश हो गए और फिर सोचने लगे: “सन्यासी बनना कठिन है (दुक्करा); गृहस्थ जीवन भी कठिन है; सत्य (धम्म) भी गहरा है; धन प्राप्त करना भी कठिन है (दुरधिगम); तो फिर क्या किया जाए?” इस प्रकार बहुत चिंतित होकर, वे एक दिन घूमते-फिरते गुरु के पास गए और सत्य (धम्म) को सुना। सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के बाद से ही वे भिक्षुत्व से विशेष रूप से प्रसन्न हुए, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) को एकत्रित किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को लगातार विकसित किया और उचित चरित्र (सुखायपटीपदाया) के सहज अभ्यास तथा उच्च ज्ञान (खीप्पभिञ्ञाया) की शीघ्र प्राप्ति के माध्यम से अरहंतत्व की कल्पना की। अतः अपदान में कहा गया है:—

“एक युवा देवदूत के रूप में, मैं

मैंने नेता को अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

सिख. स्वर्गीय (पग्गयहो) उखाड़कर

मैंने विशेष रूप से ये फूल (कक्कारुपुप्पम) मंगवाए थे।

बुद्ध के पास सवार (अभिरोपयिं) हुए। यह तीस था।

वर्तमान से एक युग (कप्पा) पहले जो

मैंने फूल चढ़ाए; मुझे याद नहीं है

किसी भी दुष्ट अस्तित्व का यही फलदायी परिणाम है।

मेरे द्वारा बुद्ध को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित करने के बारे में।

वर्तमान से पहले के नौ युग (कप्पा) भी,

सात अत्यंत उत्कृष्ट सम्राट थे।

सात रत्नों से सुसज्जित अत्यंत शक्तिशाली विश्वराज।

मेरी दुष्टता जलकर भस्म हो गई थी: ... बुद्ध की

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उचित प्राप्ति (पटिपत्ति) पर विचार करते हुए कहा: "वास्तव में! मैं अपने उन अनियंत्रित विचारों (वितक्का) को काटने में सक्षम था जो आरंभ से ही उत्पन्न हुए थे (उप्पन्ना)।" वे प्रसन्न हुए और उन्होंने एक श्लोक कहा ताकि वे अपने अनियंत्रित विचारों (वितक्का) को उचित रूप से काटने (सम्मेदेव) की स्थिति और जिस प्रकार से वे (पूर्व में) उत्पन्न हुए थे (उप्पनाकारं) उसे दर्शा सकें।

111. "वास्तव में, भिक्षु जीवन कठिन है; गृहस्थ जीवन कठिन है।

कठिन जीवन (अधिवास) है; सत्य

(धम्म) गहरा है;

धन प्राप्त करना कठिन है (अधिगम)।

इस व्यवस्था (इधा) में हमारा जीवन (नोवुत्ति)

जो कुछ भी उपलब्ध है (इतरितारेना) वह दयनीय (किच्चा) है;

निरंतर (सततं) विचार करना उचित है

अस्थाई अवस्था।"

वहाँ, दुप्पब्बज्जं का अर्थ है: संन्यास करना कठिन है, संन्यास (पब्बजानं) दुखद (दुक्खं) है क्योंकि संन्यास (पब्बजान) कठिन (दुक्कारा) है, क्योंकि इस युग में अपने प्राणों का त्याग करने के बाद, न केवल अपने धन (खंड) को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, बल्कि अपने सभी रिश्तेदारों को भी त्यागने के बाद, संन्यास करना कठिन (दुक्कारा) है। वे का अर्थ है: केवल एक अविघटनीय कण (किपात); दूसरे शब्दों में, यह अर्थ को दृढ़ (दल्ह) बनाता है, इस प्रकार: "पब्बज्जा दुक्खा (संन्यास दुखद है)।" घर भी रहने योग्य नहीं है, दुराधिवासा गेहा; इसका अर्थ है:— चूंकि घर में रहने वाले व्यक्ति का कुछ कर्तव्य (किच्चा) होता है, जैसे राजा द्वारा सौंपा गया राजकिक कर्तव्य (राजकिच्चा), प्रशासक द्वारा सौंपा गया प्रशासनिक कर्तव्य (इस्सरकिच्चा), और धनी गृहस्थ द्वारा सौंपा गया गृहस्थ कर्तव्य (गहपतिकिच्चा); इसके अतिरिक्त, भिक्षुओं और ब्राह्मणों की बहुलता (पारिजना) का भरण-पोषण (संगहेतब्बा) किया जाना चाहिए; जब भी जो कुछ किया जाना चाहिए वह किया जा रहा हो; फिर भी, गृहस्थ का भरण-पोषण करना कठिन (दुप्पारो) होता है, जैसे एक छलकता हुआ घड़ा (चिद्दघातो) और एक विशाल सागर; इसलिए ये घर, अर्थात्, दयनीय और रहने में कठिन (दुक्करा) होते हैं; इस प्रकार, जीवन और निवास करना कठिन विषय हैं। दूसरी ओर, यदि मैं तदनुसार भिक्षु जीवन व्यतीत करूँ (अनुतित्तेय्यां), धम्मोगम्भीरो; मेरे भिक्षु जीवन का जो भी उद्देश्य (यदत्त) हो, वह उद्देश्य मुझे भिक्षु के रूप में प्राप्त करना चाहिए; वह अच्छा धम्म (सद्धम्म) जिसमें उचित रूप से प्रवेश करना है (पटिवेध), गहरा है (गम्भीरो); गहन ज्ञान के क्षेत्र (गोचरा) की अवस्था के कारण इसे देखना कठिन है (दुद्दसो); धम्म की गहन अवस्था के कारण इसमें उचित प्रवेश करना कठिन है (दुप्पतिविज्जो)। यदि मैं अपने घर में अपने जीवन का आनंद उठाऊं (आवसेय्यं), तो दुरधिगमा भोगा (वे धन जिनके बिना घर में जीवन जीना संभव नहीं है, क्योंकि वे दुख और कठिनाई से प्राप्त होते हैं (अधिगन्तब्बा), इसलिए उन्हें प्राप्त करना कठिन है (दुरधिगमा)। अतः, ऐसी स्थिति में (एवं सन्ते), मैं गृहस्थ जीवन त्यागने के बाद भी भिक्षु जीवन को अपनाए रखूंगा (अनुतित्तेय्यं); इस प्रकार भी, किच्छा वुत्ति नो इतरीतरेन इधा (बुद्ध के इस युग में, हमारा नियमित जीवन (वुत्ति) जीवन (जीविका) जो कुछ भी धार्मिक रूप से आवश्यक (पच्चय) है, उसके अनुसार जीना आसान नहीं है, बल्कि कष्टदायी है; गृहस्थों के लिए क्योंकि घर में धन की प्राप्ति में कठिनाई के कारण निवास करना (दुरधिवासता) कठिन है; (दूसरी ओर) शासन (सासने)

में हमारी दिनचर्या (वुत्ति) आसान (किच्छा) नहीं बल्कि कठिन (कसिर) है, क्योंकि हमें उपलब्ध धार्मिक आवश्यक वस्तुओं से अपना भरण-पोषण करना पड़ता है।उस परिस्थिति (तत्थ) में क्या करना उचित है? युत्तं चिन्तेतुं सततंनिच्चतं का अर्थ है; यह उचित और सही है कि हम इसे स्पष्ट रूप से देखें (विपस्सितुम्) कि यह "अनित्य (अस्थायी) है, जो इसके फलस्वरूप (ततो) है, अर्थात्: पूरे दिन और प्रत्येक रात्रि के आरंभ और पश्चात काल में जो कुछ भी तीन प्रकार के अस्तित्व (ते भूमक) से संबंधित घटना (धम्म) के रूप में उत्पन्न होता है, वह अनित्य (अनिनच्चतम्) अवस्था में होता है; इसके अतिरिक्त, (ततो) यह स्थायी भी नहीं है क्योंकि इसमें प्रकट होने (उप्पाद) और लुप्त होने (वय), आरंभ होने (आदि) और अंत होने (अंत) की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि यह अस्थायी (तावकालिकतो) है। जब अनित्यता पर चिंतन (अनुपस्सना) सिद्ध हो जाता है, तो अन्य विषयों पर चिंतन (इतरा) आसानी से सिद्ध हो जाता है; इस प्रकार, यहाँ केवल अनित्यता पर चिंतन की बात की गई है। यह इसलिए भी है क्योंकि इसे समझना आसान है। (सुखघघनातो) बुद्ध की शिक्षा (सासनिका) क्योंकि दुख (दुक्ख) और गैर-स्वयं (अनत्ता) के स्पष्टीकरण (ब्याभिचरण) की कोई आवश्यकता नहीं है जो कि अनित्यता (अनिच्च) का गठन करते हैं। उस संबंध में, बुद्ध ने कहा: "यदानिच्चं तं दुक्खं; यमदुक्खं तदनत्त (जो अनित्य है वह दुख है; जो दुख है वह गैर-आत्म है);" "यं किंचि समुदय धम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं (वह सब जिसमें उत्पत्ति की प्रकृति है, समाप्ति के अधीन है);" "वयधम्म संखरा (रचनाएं विनाश के अधीन हैं)।" वर्तमान क्षण में, अनित्यता के मुख पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (आरभित्वा) के साथ आरंभ (आरभित्वा) करने और समय-समय पर उत्पन्न होने वाले जंगली विचारों (वितक्के) को दबाने (निग्घेत्वा) के बाद, जो इस प्रकार परस्पर विपरीत (अञ्ञमञ्ञम्) होकर उत्पन्न हुए हैं, उनका पालन (अत्दमिना) करने के बाद, वह कर्तव्य उत्पन्न हुआ है (जातो); उन्होंने यह बताया। अतः यह कहा गया है: "अत्तनो पटिपत्ती (उनकी स्वयं की उचित प्राप्ति या अभ्यास); इत्यादि। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है (ब्याकरण)।अकेले अनित्यता पर चिंतन की बात कही गई थी। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बुद्ध (सासनिका) की शिक्षा (सुखग्गहनतो) को पकड़ना आसान है क्योंकि इसमें दुख (दुक्ख) और गैर-स्वयं (अनत्ता) की व्याख्या (ब्याभिचरण) की कोई आवश्यकता नहीं है जो कि अनित्यता (अनिच्च) का गठन करते हैं। उस संबंध में, बुद्ध ने कहा: "यदानिच्चं तं दुक्खं; यमदुक्खं तदनत्त (जो अनित्य है वह दुख है; जो दुख है वह गैर-आत्म है);" "यं किंचि समुदय धम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं (वह सब जिसमें उत्पत्ति की प्रकृति है, समाप्ति के अधीन है);" "वयधम्म संखरा (रचनाएं विनाश के अधीन हैं)।" वर्तमान क्षण में, अनित्यता के मुख पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (आरभित्वा) के साथ आरंभ (आरभित्वा) करने और समय-समय पर उत्पन्न होने वाले जंगली विचारों (वितक्के) को दबाने (निग्घेत्वा) के बाद, जो इस प्रकार परस्पर विपरीत (अञ्ञमञ्ञम्) होकर उत्पन्न हुए हैं, उनका पालन (अत्दमिना) करने के बाद, वह कर्तव्य उत्पन्न हुआ है (जातो); उन्होंने यह बताया। अतः यह कहा गया है: "अत्तनो पटिपत्ती (उनकी स्वयं की उचित प्राप्ति या अभ्यास); इत्यादि। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है (ब्याकरण)।अकेले अनित्यता पर चिंतन की बात कही गई थी। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बुद्ध (सासनिका) की शिक्षा (सुखग्गहनतो) को पकड़ना आसान है क्योंकि इसमें दुख (दुक्ख) और गैर-स्वयं (अनत्ता) की व्याख्या (ब्याभिचरण) की कोई आवश्यकता नहीं है जो कि अनित्यता (अनिच्च) का गठन करते हैं। उस संबंध में, बुद्ध ने कहा: "यदानिच्चं तं दुक्खं; यमदुक्खं तदनत्त (जो अनित्य है वह दुख है; जो दुख है वह गैर-आत्म है);" "यं किंचि समुदय धम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं (वह सब जिसमें उत्पत्ति की प्रकृति है, समाप्ति के अधीन है);" "वयधम्म संखरा (रचनाएं विनाश के अधीन हैं)।" वर्तमान क्षण में, अनित्यता के मुख पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (आरभित्वा) के साथ आरंभ (आरभित्वा) करने और समय-समय पर उत्पन्न होने वाले जंगली विचारों (वितक्के) को दबाने (निग्घेत्वा) के बाद, जो इस प्रकार परस्पर विपरीत (अञ्ञमञ्ञम्) होकर उत्पन्न हुए हैं, उनका पालन (अत्दमिना) करने के बाद, वह कर्तव्य उत्पन्न हुआ है (जातो); उन्होंने यह बताया। अतः यह कहा गया है: "अत्तनो पटिपत्ती (उनकी स्वयं की उचित प्राप्ति या अभ्यास); इत्यादि। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करता है (ब्याकरण)।

थेरा जेंटा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(112):वाचागोट्टा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (112) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
112. वच्छगोत्ता
बुद्ध युग में राजगृह में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ, और क्योंकि वच्छ नाम के चार थेरा थे, इसलिए उन्हें वच्छगोत्ता कहा गया। [1] परिपक्व होने पर, और ब्राह्मण (पुजारी) विद्या में निपुण होने पर, उन्होंने निर्वाण की खोज में उन

अध्ययनों में कोई सार नहीं पाया, और एक विचरण करने वाले संन्यासी बन गए। इस प्रकार वे भगवान (बुद्ध) से मिले और उनसे प्रश्न पूछे। उत्तरों से संतुष्ट होकर, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की। [2] अपने जीवन पर प्रसन्नतापूर्वक विचार करते हुए, उन्होंने यह कथन (गाथा) कहा:

[112] तेविज्जोहाm महाझायि सेटोसमाथाकोविडो॥
सदात्तो मे अनुप्पत्तो कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[112] त्रिविध ज्ञान मेरा है, और मैं ध्यान
-परमानंद में निपुण हूँ , संतुलित मन की शांति में पारंगत हूँ । मैंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, और सभी बुद्ध-आदेश पूरे हो चुके हैं।

[1] अन्य को बुलाया गया, एक, पिलिंडा-वाचा (IX.) और दो, वाना-वाचा (XIV. और CXIII.)।

[2] ये दोनों संवाद मज्झ., i., 72वें और 73वें सूत्र में मिलते हैं। वच्छगोत्त के भिक्षु बनने की दीक्षा का भी उल्लेख है, और यह भी कि बुद्ध उन्हें शांति और अंतर्दृष्टि के अध्ययन की ओर बढ़ने के लिए कहते हैं, जिससे छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की जा सकती है। देखें संकलन, भाग 9।

1.12-2 [112] वचागोट्टाथेरा के छंद पर टिप्पणी
तेविज्जोऽहं महाजिहायी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वच्छगोत्त का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे कर्मों के बीज बोते हुए, वे भगवान विपस्सी (बुद्ध) के समय बंधुमती नगर के एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने एक दिन राजा और नागरिकों के साथ मिलकर बुद्ध को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की और उसके बाद, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे राजगृह में एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म हुए। उनका नाम वच्छगोत्त था क्योंकि वे वच्च (बछड़ा) वंश से थे। बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने ब्राह्मणों के अनेक ज्ञानों में निपुणता प्राप्त की और मोक्ष (विमुक्ति) की खोज में उन्होंने उन ज्ञानों में अपने सार का कोई अंश नहीं देखा, संसार का त्याग कर परिब्बाजक बन गए, विचरण करते हुए गुरु के पास पहुँचे, उनसे अपने प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर गुरु ने दिया, वे धर्मपरायण हो गए, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु संघ में शामिल हो गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बन गए। अतः अपदान में कहा गया है:—

"सौ किरणों वाले उगते सूरज के समान, सुनहरी किरणों वाले सूर्य के समान, पंद्रह दिन के पूर्णिमा के समान, जगत के नेता अपने प्रस्थान (निय्यन्तं) पर थे। साठ हजार की संख्या में सभी दोषरहित अरहंत आत्म-जागृत बुद्ध, मनुष्यों के सम्राट (द्विपदिन्द), मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्ध के चारों ओर थे।

जिस सड़क से दुनिया का नेता जा रहा था, उसे पूरी तरह साफ करने के बाद,

मैंने वहां एक झंडा फहराया और मेरा मन श्रद्धापूर्वक प्रसन्न हुआ।

यह वर्तमान से इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने झंडा फहराया था; मुझे किसी भी बुरी घटना का जिक्र याद नहीं है;

ध्वजारोहण का यह एक सार्थक परिणाम है।

वर्तमान से पूर्व के चौथे युग (कप्पा) में,

मैं एक बहुत शक्तिशाली शासक बन गया।

सभी विशेषताओं से युक्त,

सुधजा (अच्छा ध्वज) के नाम से प्रसिद्ध।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने अपनी उचित उपलब्धि (पटिपत्ति) पर विचार किया, प्रसन्न हुए और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति के रूप में एक श्लोक बोला।

112. "मैं त्रिगुणात्मक महाविज्ञान (तेविज्जो) का स्वामी हूँ।"

और एक महान ध्यानी (महाझयी)

मेरे मन को शांत और स्थिर रखने में चतुर (cetosamathakovido)।"

इस प्रकार मेरा अपना उद्देश्य पूरा हो गया था;

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

वहाँ, तेविज्जोऽहं का अर्थ है: यदि लोग मुझे पहले "ब्राह्मणो तेविज्जो (त्रिविध विज्ञान का ब्राह्मण)" के रूप में अच्छी तरह जानते थे, क्योंकि मैं तीन वेदों के सागर के दूसरे छोर पर चला गया था, तो वह नाम (समञ्ञामात्तं) केवल वेदों में ज्ञान के कर्तव्य (विज्जाकिच्च) के अभाव के कारण था; अब, मैं तीन प्रकार के महाविज्ञान (विज्जा) जैसे कि पूर्व निवासों का ज्ञान (पुब्बेनिवास ज्ञान) आदि प्राप्त करने के कारण परम महत्व (परमत्थतो) वाला त्रिविध विद्वान (तेविज्जो) हूँ। मैं महाझायी इसलिए भी हूँ क्योंकि मैंने सही मार्ग (मग्ग) और श्रेष्ठ फल (फल) के ध्यान के माध्यम से महान, विशाल (उलारा), उच्च (पनीत) निर्वाण पर ध्यान (झायन) किया है, और साथ ही दुख के मूल (समुदयपक्खुयस्स) का पक्ष लेने वाले दुराचार (किलेसगना) के घने समूह को पूरी तरह (अनवसेस) और प्रचुर मात्रा में (महन्तस्स) जलाकर (झापनतो) मैं महाझायी हूँ। चेतोसमथकोविदो का अर्थ है आत्म-दुराचार (संकिलेस) के कर्मों (धम्मनं) को दबाकर मन (चेतसो) को शांत (समादहने) करना, जो मानसिक अशांति का कारण बनते हैं: इसी के माध्यम से उन्होंने अपने तेविज्ज बनने के कारण की बात की। वास्तव में, एकाग्रता में चतुराई (समाधिकोसाल्ल) के साथ, दोषों के नाश (आसवक्खयेन) के माध्यम से, तेविज्ज की अवस्था प्राप्त होती है; यह केवल सर्वांगीण (नकेवलेना) नहीं है। सदात्थो का अर्थ है; अपना उद्देश्य या लाभ (सकत्थो); यह 'क' अक्षर के 'द' में परिवर्तित होने का उदाहरण है, जैसे: "अनुप्पत्तसदत्थो (अपना उद्देश्य पूरा नहीं हुआ)," इत्यादि। अभिव्यक्ति; "सदात्थो (अपना लाभ)," को अरहंतत्व के रूप में समझा जाना चाहिए। वास्तव में, इसे "सकत्थो (अपना लाभ)" कहा गया है, क्योंकि स्वयं से बंधे होने के कारण स्वयं के लाभ की अवस्था, स्वयं को न त्यागने का अर्थ और अपने परम लाभ (परमत्थ) का अर्थ इसमें निहित है। यह कि मेरा अपना लाभ अनुपत्टो (इस प्रकार) प्राप्त हुआ है (अधुगतो) मुझे (मेरे द्वारा) (मया)। इसके द्वारा उन्होंने बताया कि उन्होंने अपनी ध्यानमग्न अवस्था को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है (महाज्हाई-भावं), जैसा कि कहा गया है। शेष भी इसी प्रकार है।

थेरा वच्छगोत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(113):वनवाच्चा2

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (113) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक

113. वनवच्छ (2)
बुद्ध युग में राजगृह में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर वच्छ नाम से विराजमान हुए, उन्होंने राजा बिम्बिसार के भगवान (बुद्ध) से परामर्श करने पर आस्था प्राप्त की। भिक्षु संघ में प्रवेश करके उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अरहंत (ज्ञानोदय प्राप्त) के रूप में वे वैराग्य में समर्पित होकर वनों में रहने लगे; इसलिए उन्हें वनवच्छ (वनवच्छ) कहा जाने लगा। अब ऐसा हुआ कि थेरा ने अपने परिवार पर कृपा करने के लिए राजगृह जाकर वहाँ कुछ समय के लिए निवास किया और उन्हें अपने जीवन के तरीके के बारे में बताया। उनके परिवार ने उनसे विनती करते हुए कहा, 'हे प्रभु, कृपया हमें निकटवर्ती विहार (मठ) में रहने की कृपा करें, और हम आपकी सेवा करेंगे।' थेरा ने इस श्लोक में उन्हें पर्वतों के प्रति अपना प्रेम और वैराग्यपूर्ण जीवन दोनों दिखाया:

[113] अचोदिका पुथुसिला गोनांगुलमिगायुत,॥
अंबुसेवलसंजन्ना ते सेला रामयंती मन' ती॥ ॥

[113] चट्टानें जहाँ स्वच्छ जल बहता है, एक पथरीली दुनिया,
काले चेहरे वाले बंदरों और डरपोक हिरणों से आबाद,
जहाँ चमकीले फूलों के नीचे चांदी की धाराएँ बहती हैं:
वे मेरे दिल के आनंद के उच्चभूमि हैं। [1]

यह श्लोक थेरा द्वारा अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया।

[1] दोनों वच्छों के बीच एकमात्र बंधन उनकी सामान्य ब्राह्मण (पुजारी) पृष्ठभूमि और प्रकृति के प्रति उनका प्रेम प्रतीत होता है। यह कविता सांकिच्च और महान कस्सपा (11वीं शताब्दी, 11वीं शताब्दी) से संबंधित कविताओं का पूरक है। तुलना करें वनों के कपिलवस्तु वच्छ (13वीं शताब्दी) की कविता से भी। यह संदेहजनक है कि क्या दोनों कथाएँ एक ही स्रोत से उत्पन्न नहीं हुई हैं। लेकिन तुलना करें 12वीं शताब्दी।

1.12-3 [113] वनवच्छथेरा के श्लोक पर टीका
अच्चोदिका पुथु सिला से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वनवच्छ का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे कर्मों के बीज बोते हुए, उन्होंने भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर वह दूसरे व्यक्ति के लिए काम करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, जब उसने किसी दूसरे के प्रति अपराध किया, तो मृत्यु के खतरे से भयभीत होकर वह भाग गया, रास्ते में उसे एक बोधि वृक्ष दिखाई दिया, वह श्रद्धा से भर गया, उसने उसकी जड़ को साफ किया, अशोक पुष्पों के गुच्छे बनाकर श्रद्धापूर्वक अर्पित किए, उसे प्रणाम किया, पालथी मारकर बैठ गया और अपना मुख विशेष रूप से बोधि वृक्ष की ओर करके उसकी आराधना करने लगा, तभी उसने अपने शत्रुओं को उसे मारने के लिए आते देखा, लेकिन उसने उनके प्रति क्रोधित मन नहीं बनाया, केवल बोधि वृक्ष का ध्यान करता रहा और सौ पुरुषों की ऊँचाई वाली एक खाई में गिर पड़ा। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम "वच्छा" था। वयस्क होने पर उन्होंने बिम्बिसार की राजसभा (समागम) में उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बने और अरहंत पद प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैं दूसरों के लिए काम करने में लगा हुआ हूँ।

अपराध पर किया गया।

विशेष रूप से जंगल में भाग गया

अपराधबोध के भय से पीड़ित होना

(भयावेरा).

एक खिलते हुए पेड़ को देखकर, मैंने

अच्छी तरह से बंधे हुए गुलदस्ते बनाए;

तांबे के रंग का (ताम्बा) एकत्र किया गया

मैंने फूलों को नीचे बिखेर दिया।

बोधि वृक्ष।

उस बोधि वृक्ष को पूरी तरह साफ करने के बाद,

सबसे उत्कृष्ट पाटाली वृक्ष, मैं

मैंने अपनी जांघें पार कीं (pallaṅkaṃ ābhujitvā)

और बोधि वृक्ष के आधार की ओर बढ़े

पेड़।

जिस रास्ते से मैं भागा था, उसे खोजते हुए,

वे मेरे पास पहुँच गए; यह देखकर

वहाँ भी, मैंने इस पर विचार किया।

सबसे उत्कृष्ट बोधि वृक्ष।

मैंने बोधि वृक्ष को प्रणाम किया।

मेरा मन श्रद्धा से प्रसन्न था। मैं गिर पड़ा।

पहाड़ी में कई बार पिटाई हुई जो

यात्रा कठिन और भयावह थी।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

जिस वर्तमान समय में मैंने अपना आदर व्यक्त किया है-

फूलों की भेंट; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बोधि वृक्ष को अर्पित की जाने वाली भेंट।

तीसरे युग (कप्पा) में, इससे पहले

वर्तमान में, मैं काफी आत्म-नियंत्रित था।

(सुसान्याता) संप्रभु, एक बहुत शक्तिशाली विश्व-

सात रत्नों से सुशोभित राजा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत बनने के बाद, वे एकांतवास में विशेष आनंद के कारण वन में ही निवास करते थे; इसी कारण उन्हें वनवच्छ नाम दिया गया। फिर, कभी-कभी, थेरा अपने सगे-संबंधियों के उत्थान के उद्देश्य से राजगृह जाते थे, जहाँ वे अपने सगे-संबंधियों के साथ कुछ दिनों तक रहते थे और अपने जाने का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते थे। उनके सगे-संबंधियों ने उनसे निवेदन किया, "आदरणीय गुरुदेव! हमारे उत्थान के उद्देश्य से, कृपया पास के किसी मठ में निवास करें; हम आपकी सेवा करेंगे।" थेरा ने एकांतवास में अपने गहरे आनंद को व्यक्त करने के लिए एक श्लोक का पाठ किया, जिसमें उन्होंने आनंदवर्धक पहाड़ियों की घोषणा का संकेत दिया।

113. "वे पथरीली पहाड़ियाँ (सेला) जो कोमल हैं

पानी, जो नरम पत्थरों से ढका हुआ है,

बंदरों और हिरणों के साथ मिश्रित, ढका हुआ

ठंडे काईयुक्त पानी (अंबुसेवाला) के साथ

मुझे प्रसन्न करो।

वहाँ, अच्छोदिका का अर्थ है: वे "अच्छोदिका, कोमल जल के स्थान" हैं, क्योंकि उनमें स्वच्छ, यह (अभला), उत्तम (सुखम) जल है। यद्यपि इसे (वत्तब्बा) अच्छोदका कहा जाना चाहिए, लिंग विकृति (लिंग विपल्लास) के कारण इसे 'अच्छोदिका' कहा गया है; इससे वह जल आपूर्ति की पर्याप्तता की ओर इशारा करता है। पुथुसिला का अर्थ है: इन (पहाड़ियों) में पत्थर (सिला) हैं, जो प्रचुर मात्रा में (पुथुला) फैले हुए हैं (विट्ठता) और कोमल होने के साथ-साथ संभालने में आसान (मुदुसुख) भी हैं (संपस्सा); इस प्रकार, पुथुसिला, कोमल पत्थरों से ढका हुआ; इससे वह बैठने के स्थानों की पर्याप्तता की ओर इशारा करता है। वे गोनांगुला हैं क्योंकि उनकी पूंछ बैलों जैसी है; काले बंदर; वे "पकतिमक्कट (सामान्य बंदर)" भी कहते हैं। बंदरों और चित्तीदार मृगों आदि के इधर-उधर घूमने से जुड़े (आयुता) और मिश्रित (मिसिता); इस प्रकार, गोणंगुलमिगायुता। इससे वे यह बताते हैं कि गैर-मानव प्राणियों (अमनुस्सा) द्वारा उपयोग किए जाने (उपचारिता) के कारण इनमें वन के लक्षण (लक्खना) मौजूद हैं (उपेता)। अंबुसेवालसंचन्ना का अर्थ है: जल के उत्पादन और निरंतर प्रवाह (पग्घरमनसलिलाता) के कारण यहाँ-वहाँ जल और काई (सेवला) से अच्छी तरह ढके (संचादिता) हैं (संचादिता)। Te selāramayanti maṃ का अर्थ है: वे पथरीली पहाड़ियाँ जहाँ मैं निवास करता हूँ, एकांत में आनंद लेने वाले मुझे प्रसन्न करती हैं; इसलिए मैं वहीं जाता हूँ; यही इसका अर्थ है। यही श्लोक थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) की व्याख्या भी बन गया।

थेरा वनवच्छ के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(114):अधिमुत्ता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (114) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
114. अधिमुत्त [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर अधिमुत्त नाम से जन्मे अधिमुत्त ब्राह्मण (पुजारी) ज्ञान में सारहीन पाकर असंतुष्ट हो गए। अपने जीवन के अंतिम समय में पलायन की तलाश करते हुए उन्होंने जेतवन के प्रस्तुतीकरण के दौरान बुद्ध की महिमा देखी। भिक्षु संघ में प्रवेश करके उन्होंने समय के साथ अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने अपने साथ रहने वाले उन मोटे भिक्षुओं को इस श्लोक में संबोधित किया:

[114] कायदुत्हुल्लागरुणो ह्यमानमहि जीविते,॥
शरीररसुखगिद्धस्स कुतो समाना साधुता' ति.॥ ॥

[114] यदि तुम इस स्थूल शरीर पर इतना ध्यान दोगे,
इसके सुखों का लालच करोगे, जिससे
जीवन की ऊर्जाएँ क्षीण होती रहेंगी, तो हे
पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) में पूर्णता कहाँ से आएगी?

[1] सी.एफ. CCXLVIII., जिसे सावत्थी के अधिमुत्ता का भी श्रेय दिया जाता है।

1.12-4 [114] अधिमुत्तत्तरा के श्लोक पर टीका
कायदुत्तुल्ला गरुनो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अधिमुत्त का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय में उनका एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुआ था, और जब वे वयस्क हुए तो उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं (ब्राह्मणविज्जा) में निपुणता प्राप्त की, काम (इंद्रिय सुख) में हानि देखी, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संसार का त्याग कर एक संन्यासी बन गए, वन में रहने लगे, बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुना, मानव बस्तियों के परिसर (उपचार) में गए, संयोगवश उन्हें भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए गुरु के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और अपने सरकंडे के वस्त्र गुरु के चरणों में बिछा दिए। गुरु ने जब उनकी इस प्रवृत्ति (अज्जासय) का ज्ञान प्राप्त किया, तो वे उस (सरकंडे के वस्त्र) पर खड़े हो गए। उन्होंने वहाँ खड़े भगवान को सुगंधित कालनुसार भेंट किया और "समुद्धरसिऽ मं लोकं (आपने इस संसार को उत्पन्न किया)" से शुरू होने वाले दस श्लोकों में उनकी स्तुति (अभित्तवि) की। गुरु ने उनसे भविष्यवाणी करते हुए कहा, "आने वाले समय में, एक लाख युगों (कप्पा) के बाद, गौतम नामक सर्वथा आत्मज्ञानी बुद्ध के युग में, वे भिक्षु और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनेंगे," और प्रस्थान कर गए। उस पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ और उसके बाद, इस बुद्ध के प्रकट होने तक, वे लगातार जन्म-मृत्यु के चक्र में दिव्य और मानव प्राणियों के बीच विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका जन्म सावत्ती में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उन्हें अधिमुत्त नाम प्राप्त हुआ। बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने समस्त ब्राह्मण विद्या में निपुणता प्राप्त की और उसमें कोई सार न पाकर, अपने अंतिम अस्तित्व की स्थिति के कारण मुक्ति की खोज में जुट गए। जब बुद्ध ने जेतवन ग्रहण किया, तब उनकी शक्ति को देखकर उन्होंने उचित श्रद्धा प्राप्त की, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास के मार्ग पर चल पड़े और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

पीले कनिकारा की तरह चमकीला

फूल, मोमबत्ती की तरह चमक रहे हैं

स्टिक (दीपरुक्खा), चमकदार समान

भोर के तारे के समान,

आकाश में बिजली की चमक, वह

वह निडर और भयभीत नहीं था, जैसे कि

सिंह, पशुओं का स्वामी (मिगाराज);

अपने ज्ञान के प्रकाश को प्रकट करते हुए, वह

विधर्मियों की भीड़ को कुचलते रहे। मैंने देखा

दुनिया का नेता जो ऊपर की ओर खींच रहा था

इस दुनिया में, सभी संदेहों को दूर करते हुए।

मैं गुंथी हुई बालों की लटें (जटा) पहनती थी।

और मृग की पिंडली (अजिमा); मैं ऊँचा था,

सीधा और वैभवशाली;

अपने सरकंडे के वस्त्र को पकड़कर, मैं

इसे उनके चरणों के तलवों पर भी फैला दें।

कालानुसारिया नामक मरहम एकत्र करने के बाद,

इसलिए मैंने तथागत पर लेप लगाया।

आत्मजागृत बुद्ध को कलंकित करने के बाद

मैंने विश्व के नेता की उचित प्रशंसा की।

हे महान ऋषि, जिन्होंने जलप्रलय पार किया!

आप इस दुनिया को बखूबी संभालते हैं; आप इसे बनाते हैं

इसे अपने ज्ञान के प्रकाश से रोशन करो

आपके उत्कृष्ट ज्ञान का अनावरण।

आप धर्म के पहिये को घुमाते हैं, कुचलते हैं-

अन्य मतों के धारकों (परतित्तिया) को शामिल करना;

युद्ध जीतने के बाद, तुम बैल हो।

(पुरुषों के बीच) ने धरती को हिला दिया।

विशाल महासागर में लहरें टूट जाती हैं

समुद्र तट के अंत में (वेलंता);

ठीक इसी प्रकार सभी विधर्म (दिठ्ठि)

अपने ज्ञान में भंग हो जाना।

जब बारीक जाली वाले मछली पकड़ने के जाल के साथ अच्छी तरह से

गिरा दिया और लाया (संपतनिते)

(जलीय) जीव जो अंदर चले गए हैं

जाल वहां हैं और फिर (tāvade)

उत्पीड़ित (पीलित); ठीक उसी तरह,

दुनिया में विधर्मी (तित्तिया)

उनके व्यक्तिगत (पुथु) पर निर्भर

विधर्म, पलटना (परिवत्तंती)

मुझे (मारीसा) आपके उत्कृष्ट ज्ञान के भीतर-

चट्टान। बिल्कुल! आप ही रक्षक हैं।

(नाथो), उन लोगों के लिए जिनके कोई रिश्तेदार नहीं हैं;

आप उन लोगों के लिए शरणस्थल हैं जो बेसहारा हैं।

खतरे से घिरा हुआ; तुम ही हो

जो लोग संकट में हैं, उनके लिए राहत (परायण)

मुक्ति (मुत्ति) की आवश्यकता (अत्थीनम्)।

आप ही एकमात्र नायक (एकवीरो) हैं, अद्वितीय हैं।

(asdiso); आप संग्रह का गठन करते हैं

(सांचयो) प्रेम और दया का,

उनकी मात्रा में; आपका कोई सानी नहीं है, आप

वे अत्यंत शांत और निर्मल हैं (सुसामो)।

(संतो); आप ऐसे हैं जो परिचित हैं

(वसी) विजय के साथ (जितंजयो)।

आप दृढ़ बुद्धिमान (धीरो) हैं, आपमें कोई कमी नहीं है।

भ्रम (विगतसम्मोहो), कामवासना से मुक्त

लालसा (अनेजो), और संदेह। आप हैं-

अपने गुस्से से तंबू (तुसिटो) उल्टी कर दी

(वान्टाडोसो); आप शुद्ध (निम्मलो) स्वयं हैं-

नियंत्रित (सन्यतो) और स्वच्छ (सुचि)।

आप आसक्ति (संगतिगो) से परे जा चुके हैं;

आपने अपना अभिमान (हतामादो) नष्ट कर दिया है; आप

वे तीन प्रकार के महाविज्ञान के स्वामी हैं

(तेविज्जो); आप तीन के अंत तक पहुँच गए हैं

अस्तित्व; तुम सीमा पार कर चुके हो

(सीमातिगो); आप सत्य के शिक्षक हैं

(धम्मगरु); आपको अपना लाभ मिल गया है

(गटत्थो); आप अद्‌भुत कल्याणकारी हैं

(हितवभुतो).

तुम एक नाव की तरह हो जो तैरती हुई पार जा सकती है

(ताराको); तुम छिपे हुए खजाने के समान हो

(निधि), विश्वास का निर्माता (अस्ससकारको);

तुम शेर की तरह निडर हो; तुम कर सकते हो

अभिमानी होने का सामर्थ्य (dappito) के समान

हाथियों का स्वामी। प्रशंसा करते हुए

दस श्लोकों के माध्यम से, बुद्ध पदुमत्तरा

बहुत ख्याति प्राप्त व्यक्ति, और मैंने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

गुरु के चरणों में, मैं चुपचाप खड़ा रहा।

(tunhī aṭṭhāsi). पद्ममुत्तरा, संसार के ज्ञानी,

बलिदान की भेंट के योग्य प्राप्तकर्ता,

गुरु, अपने पुरोहितों के बीच खड़े होकर

भिक्षुओं ने ये श्लोक कहे। मैं घोषणा करूँगा।

उनके बारे में, जिन्होंने मेरे नैतिक उपदेशों की प्रशंसा की थी।

(सीला), ज्ञान के साथ-साथ मेरा अच्छा धर्म

साथ ही, जब मैं बोल रहा हूँ तो आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें।

वह स्वर्ग लोक में आनंदित होगा।

साठ हजार युगों (कप्पा) के लिए; होने के बाद

अन्य दिव्य प्राणियों पर हावी होकर, वह

संप्रभुता का प्रयोग करें।

बाद में, भिक्षु बनने के बाद, वह,

चमक के आधार द्वारा प्रेरित होना

(सुक्कमूला), वह भिक्षु बन जाएगा

भगवान गौतम की देन।

एक भिक्षु बनने के बाद वह स्पष्ट रूप से

शारीरिक रूप से बुरे कर्मों से दूर रहें;

सर्वांगीण समझ प्राप्त करने के बाद

वह सभी रोगों का परिणत हो जाएगा।

रोग मुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करें।

ठीक उसी प्रकार गर्जना (थानयं)

वर्षा इस धरती को सींचती है, उसमें

ठीक उसी तरह, हे महान वीर! आप

आपने मुझे अपनी शिक्षा से संतुष्ट किया।

सत्य (धम्म) की प्रशंसा करते हुए।

विश्व के नेता, उनका नैतिक उपदेश

(सीला), उनका ज्ञान (पञ्ञा) और साथ ही

धम्म, मैंने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है

(परमं सन्तिं), अमर (अच्चुतं)

निर्वाण का मार्ग (पदा)।

निःसंदेह (अहो), निश्चय ही (नूना) वह महिमामयी है

एक; चक्खुमा (आंख) का स्वामी

वह लंबे समय तक (ciraṃ) बना रहेगा (tiṭṭheyya); वह

अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करना (विजान्ययुम्)

वह पुरुषों को स्पर्श करवाता था (अन्नतां च);

(phuseyyuṃ) अमर (amataṃ) पथ (padaṃ).

यह मेरा अंतिम (पच्चिमा) जन्म (जाति) है।

अस्तित्व पूरी तरह से नष्ट हो गए थे (परिञ्ञाय)

सभी बीमारियों (सब्बासवे) के बावजूद, मैं बीमारियों से मुक्त रहता हूँ।

यह एक लाख युग (कप्पा) पूर्व था।

वर्तमान से पहले जब मैंने अपना विशेष बनाया था

बुद्ध की स्तुति। मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है

मेरी घोषणा (कित्तनाया)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए एक श्लोक सुनाया, जो उनके साथ रह रहे थे और जो शारीरिक रूप से बहुत बलवान थे (कायदालहीबहुले)।

114. "जो भारी (गरुनो) है

अपवित्रता (कायदुट्ठुल्ला), जब जीवन

त्यागा जा रहा है (हिय्यामान), कहाँ से

(कुतो) का कल्याण (साधुता) है

एक भिक्षु जो शारीरिक सुख की लालसा रखता है (गिद्धा)।

आनंद (सेरीरासुख)।"

वहाँ, Kāyaduṭṭullagaruno का अर्थ है: अप्रिय (asubhayogyatā) से जुड़े होने की अवस्था के कारण अपवित्रता (duṭṭhullaṃ) है; शरीर की अपवित्रता शारीरिक अपवित्रता (kāyaduṭṭhullaṃ) है; जिस व्यक्ति में शारीरिक अपवित्रता अच्छी तरह विकसित (sambhāvitaṃ) हो गई है, वह शारीरिक अपवित्रता (kāyaduṭṭhullagu) से भारी (garu) है; संसार (anissaranappaññā) से बचने के लिए बुद्धिहीन होकर, वह शारीरिक पोषण (kāyaposana) की खोज (pasuto) में लगा रहता है और शारीरिक दृढ़ता (kāyadaḷhībahulo) से एक हो जाता है; इस प्रकार, यही अर्थ है। जो शारीरिक व्यभिचार से बोझिल है (कायदुत्तुल्लगरुनो)। हिय्यमानंहि जीविते का अर्थ है; जब जीवन के आवश्यक तत्व (संखार) छोटी धाराओं के जल के समान शीघ्रता से बह जाते हैं (कुन्नदीनं)। सरीरसुकगिद्धस्स का अर्थ है: वह व्यक्ति जो अपने शारीरिक सुख के लिए उच्च कोटि के भोजन (पनीताहार) आदि से प्राप्त होने वाले लोभ (गेधं) तक पहुँच चुका हो। कुतो समनसाधुता का अर्थ है: किस कारण से, किस परिस्थिति में (केना कारणन) इस प्रकार के व्यक्ति को भिक्षु बनने से पुण्य (साधुता) और सुषुम्नाय (सुषुमनाता) प्राप्त हो सकता है। हालांकि, निश्चित रूप से (एकंसतो), एक भिक्षु का कल्याण (साधुता) उस व्यक्ति के लिए भी है जो अपने शरीर और जीवन की परवाह नहीं करता (निरापेक्खसस), जो जो कुछ भी प्राप्त होता है उससे संतुष्ट (संतुत्तसस) रहता है और जो केवल सक्रिय और कर्मठ (आरद्धवीरिय) रहता है; यही इसका महत्व है।

थेरा अधिमुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(115):महानामा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (115) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
115. महानामा
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, महानामा [1] नाम प्राप्त करने वाले उन्होंने परम पूज्य (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और श्रद्धा प्राप्त करके भिक्षु संघ में प्रवेश किया। साधना करते हुए वे नेसादक नामक पर्वत पर रहने लगे। बुरे विचारों और इच्छाओं को उत्पन्न होने से रोकने में असमर्थ होकर उन्होंने कहा: 'इस भ्रष्ट मन के साथ मेरे जीवन का क्या मूल्य है?' और स्वयं से घृणा करते हुए वे पर्वत की एक खड़ी चट्टान पर चढ़ गए और ऐसा अभिनय किया मानो स्वयं को नीचे फेंक रहे हों, और स्वयं से किसी और से बात करते हुए इस श्लोक का उच्चारण किया:

[115] एसावहियासे पब्बतेन बहुकुताजसल्लाकिकेना,॥
नेसादेकेना गिरिना यसस्सिना परिच्छदेना' ति.।॥

[115]
देखो तुम! इस खड़ी चट्टान, इस प्रसिद्ध हंटर हिल,
जिसकी कई चोटियाँ साल के पेड़ों से घिरी हैं,
और इसकी सभी संकरी घाटियाँ घनी हरियाली से ढकी हैं, तुम सब कितने दयनीय अंत की ओर आ गए हो !

इस प्रकार स्वयं को फटकारते हुए, थेरा ने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और यह श्लोक उनकी ज्ञान प्राप्ति (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया ।

[1] एक और उदाहरण जहाँ क्रॉनिकल उन बातों को स्पष्ट करता है जो अन्यथा अस्पष्ट हैं। ऐसा कोई संकेत नहीं दिया गया है कि यह थेरा (जिसका नाम 'महान-नाम' है) बुद्ध के पहले (गृहस्थ) शिष्यों में से एक, महा-नामा शाक्य, या अंग के लिच्छवी, iii. 76 के समान है। प्रश्नगत पहाड़ी का उल्लेख अभी तक अन्य ग्रंथों में नहीं मिला है, लेकिन टीका से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक अत्यंत रमणीय स्थल रहा होगा, जहाँ छाया, पानी और औषधीय जड़ी-बूटियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं। उनकी निराशाजनक मनोदशा के लिए, देखें वक्कली (CCV.), सप्पदास (CCXV.), और सिहा (सिटर्स, Ps. xi.)।

1.12-5 [115] महानामत्थेरा के श्लोक पर टीका
एसा'वहिय्यासे पब्बतेन से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा महानामा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की भक्तिमय सेवा करने और इस-उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करने के बाद, सुमेध बुद्ध के समय एक ब्राह्मण परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, एक नदी के किनारे अपना आश्रम बनवाया और वहाँ अनेक ब्राह्मणों को मंत्रों का उपदेश देते रहे। फिर एक दिन, बुद्ध उन्हें प्रेरित करने के लिए उनके आश्रम के पास गए। बुद्ध को देखकर वे श्रद्धा से भर गए, उनके लिए आसन तैयार करवाया और उन्हें अर्पित किया। जब बुद्ध बैठे तो उन्होंने उन्हें उत्तम मीठा शहद भेंट किया। भगवान बुद्ध ने इसका आनंद लिया (परिभुंजित्वा), थेरा अधिमुत्त की कथा में वर्णित तरीके से अपने भविष्य की भविष्यवाणी की (हेट्ठा) और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका दिव्य लोक में पुनर्जन्म हुआ और वे समय-समय पर उत्तम जन्मों में विचरण करते रहे (परिवत्तेनतो), जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में, सावत्थी में हुआ और उन्होंने महानाम नाम प्राप्त किया। बुद्धि प्राप्त करने पर, वे भगवान बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुए, सत्य (धम्म) को ध्यानपूर्वक सुना, श्रद्धावान आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मट्ठान) में लग गए और नेसादक नामक पर्वत पर निवास करने लगे। जब वह अपने भीतर व्याप्त दुराचार (किलेसा) को अस्वीकार (विक्खम्भेतु) न कर पाने के कारण अपने शरीर से घृणा (अत्तभाव) करने लगा और मन ही मन कहने लगा, “इस दुराचारी मन (संकिलित्तचित्त) के जीवन से मेरा क्या लाभ?” तब वह पर्वत की शिखर चोटी (सिखरं) पर चढ़ गया और मन ही मन कहने लगा, “मैं इसे यहाँ से गिराकर मार डालूँगा,” और फिर उसने स्वयं की ओर इशारा करते हुए एक श्लोक बोला, मानो वह किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में बोल रहा हो:

115. इसे आप बिगाड़ते हैं (अवहिय-

(यासे) पहाड़ी के कारण, जहाँ

कई कांटेदार कुटज वृक्ष उगते हैं (जिनके

जड़ें औषधीय होती हैं), नेसादका के साथ

अपनी प्रतिष्ठा और सर्वांगीण विशेषताओं के साथ यह पहाड़ी

छत जैसी (वनस्पति की पत्तियाँ)।

वहाँ, Esā'vahiyyase का अर्थ है: हे महानामा! यह क्षीण और विकृत हो जाता है। Pabbatena का अर्थ है: इस पहाड़ी के कारण, जो (आपका) निवास स्थान बन गया है। Bahukuṭajasallakikena का अर्थ है: अनेक कुटज, इंदसाल और सल्लकी वृक्षों से युक्त: दूसरे शब्दों में, इंदसाल वृक्षों से संपन्न। Nesādakena का अर्थ है; ऐसे नाम के साथ। Girinā का अर्थ है: पहाड़ी (सेलेना) के साथ। वास्तव में, पहाड़ी (सेला) "पब्बता, पहाड़ी" है, क्योंकि यह जोड़ों (संधिसंखातेनि) के रूप में गिने जाने वाले खंडों (पब्बेहि) के साथ खड़ी है; इसे “गिरि (पहाड़ी)” कहा जाता है, क्योंकि यह औषधि आदि जैसे पदार्थों (वत्थूनं) का वर्णन (गिरिनातो) करता है जो सार (सारभूतनं) बन चुके हैं, और जल (जल) के प्रवाह (पसवना) आदि का वर्णन करता है। हालाँकि, यहाँ, क्योंकि यह दोनों अर्थों में उपयुक्त है (तदुभयत्थ

सम्भवतो), इसे “पब्बतेन” कहने के बाद “गिरिना” कहा गया है (वत्तं)। यसस्सिना का अर्थ है: स्पष्ट (पकासेना) और व्यापक रूप से प्रसिद्ध (विसुता) सभी गुणों (गुणों) से युक्त। परिच्छेदन का अर्थ है: चारों ओर से विभिन्न प्रकार के वृक्षों, झाड़ियों (गच्छ) और लताओं से ढका हुआ (छन्नेन)। दूसरे शब्दों में, आपके निवास क्षेत्र (वासनाट्टाना) के चारों ओर से छत (पफिच्छाद) होने के कारण। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ (अधिप्पायो) है: — हे महानामा! यदि आप अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्टाना) को शिथिल करने (विस्साज्जेत्वा) के बाद जंगली विचारों (वितक्का) से भर जाते हैं, तो इस प्रकार आप इस नेसादक पर्वत से, जो आपके लिए अनुकूल (सप्पायेन) निवास क्षेत्र (निवासनाट्टाना) बन गया है और ठंडी छाया और जल से युक्त है, स्वयं को नष्ट कर देते हैं: अब, मैं आपको यहाँ से गिरा दूँगा और मार डालूँगा; इसलिए जंगली विचारों (वितक्का) से परिचित होना (वासिकेन) वर्जित (लब्भ) है। स्वयं को पूरी तरह से खतरे में डालते हुए, लेकिन इस प्रकार, थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में स्वयं को लीन किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

सिंधु नदी के किनारे, मेरा

आश्रम अच्छी तरह से बना हुआ था। वहाँ मैंने पढ़ाया।

मेरे विद्यार्थियों को पारंपरिक पाठ (इतिहास)

हस्तरेखा शास्त्र (लक्खनम) के साथ।

जो लोग धर्म (सिद्धांत) के इच्छुक थे

और सुशासित (विनीरा) होकर, उसने इच्छा की

अच्छी शिक्षा सुनने के लिए (सुसासनम्); वे

छह के सेट में पूर्णता प्राप्त कर ली थी

वे वैदिक विज्ञान के विषयों का पालन करते थे और रहते थे।

सिंधु नदी के किनारे।

वे पाठ्यक्रम के विशेषज्ञ हैं

उप्पारागमना (विपदा), साथ ही

विशिष्ट चिह्नों में (लक्खनेसु);

वे तब जंगल में रहते थे (विपाइन)

उनकी सर्वोत्तम भलाई की कामना करते हुए

(अत्थं)। वहाँ और फिर (तावदे) वहाँ

संसार में आत्मजागृत बुद्ध का उदय हुआ।

सुमेधा नाम की। करुणावश

हम, विशिष्ट नेता (विनायक)

पास आया।

घास बिछाने के बाद, मैंने पेशकश की

दुनिया के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति के लिए भी यही बात लागू होती है।

जब महान नायक, नेता

सुमेधा दुनिया के करीब आ गया था।

लकड़ी से शहद इकट्ठा करने के बाद

(विपिनातो) मैंने वही भेंट की

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध। स्वयंजागृत बुद्ध

मुझे यह अच्छा लगा और मैंने यह बयान दिया।

(वचनं).

मैं उनके बारे में घोषणा करूंगा

जिसने नेक इरादे से मुझे वह शहद दिया

अपनी हथेलियों से; मेरी बात ध्यान से सुनो।

मैं बोलता हूँ। इस शहद की भेंट के कारण।

घास की भेंट के साथ-साथ, उसने

उसे दिव्य जगत में आनंद मिलेगा

तीस हजार युगों (कप्पा) के लिए।

तीस हजार युग (कप्पा) इसलिए वहाँ

वह संसार में गुरु बन जाएगा, जिसका नाम है

गौतम अपने कुल (कुल) में अपने वंश के अनुसार।

ओक्काका की उत्पत्ति (संभव)।

वह उनके कर्मों में उत्तराधिकारी होगा (धम्मेसु)।

एक बोसोन-पुत्र (ओरासो) द्वारा निर्मित (निमिटो)

धम्म; सभी बातों को पूरी तरह से समझने के बाद

वह अपने आसवों (कैंसर) को निर्वाण में प्रवेश कराएगा।

रोगमुक्त अरहंत के रूप में।

दिव्य लोक से यहाँ आकर,

जैसे ही उसने प्रवेश किया (अपगेट)

मां के गर्भ में, बारिश होती थी

शहद की वर्षा धरती को ढक रही है

शहद।

ठीक उसी क्षण जब मैं बाहर आया

मेरी माँ का गर्भ जो बहुत कठिन है

इससे बचने के लिए, शहद की बारिश भी हो रही थी।

बौछार, जो लगातार बरसती रहती थी

बार।

घर से विशेष रूप से बाहर आकर-

जीवन धारण करो (आगरा) मैं बेघर हो गया

भिक्षु; मुझे भोजन और पेय की प्रचुरता थी;

शहद का यही फलदायी परिणाम है-

पेशकश।

मेरी सभी इच्छाएं पूरी हुईं और मुझे सफलता मिली।

(समिद्धो), एक दिव्य प्राणी बन गया

और मनुष्य; क्योंकि उस आत्म-

मुझे शहद का वही अर्पण प्राप्त हुआ है।

आसवक्खयम् (कैंकर) का निवारण

जब बारिश हो चुकी हो और घास

यह चार उंगल मोटा है और जब पेड़

धरती पर उगने वाले पौधे अच्छी तरह से खिल गए हैं और

मैं उचित रूप से पत्तों से आच्छन्ने में निवास करता हूँ

खाली घर में खुश और रोगमुक्त रहना,

एक पंडाल (मंडप) जो पहाड़ी की तलहटी में स्थित है

पेड़।

मैं सभी अस्तित्वों से परे जा चुका था।

मध्यम (मज्जे), श्रेष्ठ (महंते)

और निम्न (hīne) भी। आज

मेरे घाव (आसवा) नष्ट हो गए हैं;

अब कोई नया अस्तित्व मौजूद नहीं है

(पुनब्भव)।

यह तीस हजार युग पहले की बात है।

तब मैंने अपनी भेंट चढ़ाई।

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है:

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

शहद का अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यही श्लोक, थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने वाला श्लोक भी बन गया।

थेरा महानामा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(116):पापापरिया
श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (116) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
116. पापापरिया
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने तीनों वेदों में निपुणता प्राप्त की। पारापर वंश के होने के कारण, उन्हें पारापरीयन [104] कहा जाता था , और वे मंत्रों का उपदेश देते थे। [1] उन्होंने राजगृह सम्मेलन में भगवान (बुद्ध) की बुद्धि और महिमा देखी और भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और समय के साथ अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपने जीवन पर विचार करते हुए, उन्होंने आनंद से यह कहा (गाथा):

[116] चा [17] फस्सायतेन हित्वा गुत्तदवारो सुसाऽवुतो,॥
अघमूलं वमित्वान पत्तो मे आसवक्खयोऽ ति.॥॥

[116] संपर्क के छह गुना क्षेत्र से व्यवहार से बचते हुए,
इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए, आत्मा के स्वामी (बुद्ध),
दुख की उल्टी का सामान्य मूल,
मैं हर विष-दाग (पाप) से प्रतिरक्षित हूँ।

यह श्लोक उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गया।

[1] तुलना करें. सीसीएक्सएलआईसी., सीसीएलवीआईआई.

1.12-6[116] पारापरियत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
cha phassāyatene hitvā से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पारापरिया का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्ण सेवा करके इस और उस जन्म में पुण्य कर्मों का संचय किया और भगवान पियादस्सी के समय एक शिकारी (नेसादा) के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब भगवान पियादस्सी ने गहन ध्यान (निरोध समापत्ति) में प्रवेश करने के बाद, उन्हें उठाने के लिए एक घने जंगल में उनके भ्रमण स्थल पर बैठ गए। वह शिकारी भी हिरण की तलाश में उस क्षेत्र में गया और वहाँ उसने गुरु के दर्शन किए। वह श्रद्धा से भर गया, उसने भगवान को अपने भीतर रखने के लिए पत्तों से बना एक मंडप (साखमंडपम) बनवाया, जो कमलों से अच्छी तरह से ढका हुआ था, मानो एक शिखर वाले महल (कूटागार) का रूप हो। उसने अत्यंत उत्साह और आनंद का अनुभव करते हुए सात दिनों तक उनकी आराधना की। प्रतिदिन वह मुरझाए हुए फूलों को हटाकर उनकी जगह ताजे फूल लगाता रहा। सात दिन बीतने पर गुरु निरोध ध्यान से उठे और अपने भिक्षुओं के बारे में सोचने लगे। तभी लगभग अस्सी हजार भिक्षुओं ने गुरु को घेर लिया। दिव्य प्राणी आपस में यह कहते हुए एकत्रित हुए, “हम सत्य (धम्म) की मधुर शिक्षा सुनेंगे।” वहाँ एक विशाल सभा हुई। गुरु ने नौमोदन करते हुए उन्हें अपनी भविष्यवाणी सुनाई, जिसमें उन्होंने बुद्ध के उदय होने पर उनके दिव्य और मानव प्राणियों के बीच आने और शिष्य के रूप में ज्ञान प्राप्त करने की संभावना का संकेत दिया, और वे प्रस्थान कर गए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे दिव्य और मानव प्राणियों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और बुद्ध के उदय होने पर राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, वे तीनों वेदों में पारंगत हुए, अपने वंश की निरंतरता (पारापरगोत्तताय) के कारण पारापरिया नाम प्राप्त किया, कई ब्राह्मणों को मंत्रों का उपदेश देते रहे, जब गुरु राजगृह पहुँचे तो उन्हें बुद्ध की शक्ति के दर्शन हुए, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और कर्म किए। आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने और अरहंतत्व प्राप्त करने के कारण, कुछ ही समय बाद। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“विपस्सी (बुद्ध) नामक धन्य पुरुष,”

स्व-निर्मित (स्याम्भू), द

विश्व का नेता, स्वयं-

जागृत बुद्ध, बुद्धिमान ऋषि

एकाग्रता में (समाधिकुसालो),

एकांत की इच्छा होने के कारण,

महान ऋषि पियादस्सी, सबसे

पुरुषों में उत्कृष्ट, अच्छी तरह से प्रवेश किया हुआ

घने जंगल में, उसने अपना प्रसार किया

फटे-पुराने वस्त्र (पंसुकूल) पहने, और बैठ गया

नीचे।

मैं पहले हिरणों का शिकारी था।

घने जंगल में; की तलाश में

चित्तीदार मृग (पसाडामिगं),

फिर मैं इधर-उधर भटकने लगा (āhinḍāmi).

वहाँ मैंने आत्मजागृत बुद्ध को देखा।

जो रोग-मुक्त थे और पार कर चुके थे

बाढ़ (ओघा), जो इसके समान है

खिलता हुआ साल संप्रभु (पुप्पितं)

सालराजम्) और उदय के समान

सूर्य (सतरसिं वा उग्गतं)।

देवताओं के देवता (देवदेवं) के दर्शन करने पर

महान प्रतिष्ठा की पियादस्सी (महायसां)

मैं प्राकृतिक झील में काफी नीचे चला गया।

और फिर वे कमल के फूल लेकर आए।

कमल के फूल (पदुमा) लाकर

सौ पंखुड़ियों वाला, मन को भाने वाला।

(सतपट्टं मनोरमं), मैंने शिखरयुक्त भवन का निर्माण किया-

छत वाली संरचना को ढक दिया और उसे ढक दिया

कमल के फूल।

दयालु और करुणामय महान ऋषि पियादस्सी

विजेता बुद्ध वहीं रुके रहे।

सात लोगों के लिए शिखरनुमा छत वाली संरचना

रात-दिन।

पुराने को हटाने के बाद मैंने उन्हें बदल दिया।

ताजे फूलों से ढकी छत; ऊपर उठाकर

मैंने अपने हाथों को आपस में जोड़कर खुद को खड़ा रखा।

वहीं और उसी समय।

अपनी एकाग्रता से उठने के बाद

(समाधि), महान ऋषि पियादस्सी,

विश्व के नेता ने बैठकर सर्वेक्षण किया

(अनुविलोकेन्टो) दिशाएँ (दिसां)।

इसके बाद, सेवा करने वाले परिचारक ने

सुदस्सना नामक महान जादुई शक्ति,

गुरु के मन की बात जान ली।

बुद्ध पियादस्सी।

अस्सी हजार भिक्षुओं से घिरा हुआ।

उन्होंने दुनिया के नेता से संपर्क किया,

जो जंगल में आनंदपूर्वक बैठा था।

ऐसे दिव्य प्राणी जो निवास कर रहे थे

जंगल का घना क्षेत्र सब

तब वे एक साथ एकत्रित हुए, क्योंकि

बुद्ध के विचारों को जान पाया।

जब पृथ्वी के सभी देवता

यक्ष और कुंभ के प्रकार एक साथ

रक्खा के साथ-साथ पुरोहितों के साथ भी

भिक्षु अच्छी तरह से पहुँच चुके थे, विजेता

बोला (पब्याहारी)।

मैं उनके बारे में अपनी घोषणा करूंगा।

जिसने श्रद्धापूर्वक अपनी भेंटें अर्पित कीं

मुझे सात दिनों के लिए, और मेरे निवास

और हां, जब मैं बोल रहा हूं तो मेरी बात ध्यान से सुनें।

मैं अपने ज्ञान का प्रसार करूंगा।

वह गहरा सत्य (धम्म) जो कठिन है

विवेकशील, अत्यंत सूक्ष्म लेकिन कुशल

प्रकट हो गया; जब मैं हूँ तब मेरी बात सुनो

बोला जा रहा है।

चौदह युगों (कप्पा) तक वह धारण करेगा

दैवीय संप्रभुता; उसका शिखर महल

यह विशाल होगा और इसकी छत कमल के फूलों से ढकी होगी।

आकाश में इसे ले जाया जाएगा; यही है

फूलों की कारीगरी का फलदायी परिणाम।

वह अपने चक्करों में घूमता रहेगा

पुनर्जन्म अव्यवस्थित तरीके से (vo-

किन्नम बीस सौ युगों के लिए

(कप्पा)।

वहाँ उसका परियों का पुष्प-महल था

आकाश में ले जाया जाएगा। जैसे कि

कमल के पत्ते पर पानी नहीं लगेगा।

यहां तक कि, उसके ज्ञान में भी,

दुराचार (किलेसा) भिगोता नहीं है:

यह तो फिसलकर दूर चला जाता।

उसके मन से पांच बाधाएं दूर हो गईं।

अपना मन उसकी ओर मोड़ने के बाद

त्याग, वह दूर चला जाएगा

उन्होंने अपना परिवार त्याग दिया और भिक्षु बन गए।

इसके बाद, उन्हें एक महल में ले जाया गया।

फूलों से बना, वह त्याग देगा

दुनिया। जब वह इस पर विचार कर रहा होता है

पेड़ की तलहटी, परिपक्व मानसिकता वाला होना

और सचेतनता से युक्त, वहाँ,

उसके सिर के ऊपर एक महल बना होगा

फूलों से बना हुआ।

दान देने के बाद

वस्त्र, भिक्षा-भोजन और बैठने के लिए आश्रय।

और नींद (सयनासना) को धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मानना

भिक्षुओं के पुरोहित वर्ग के लिए आवश्यक, वह

घावों से मुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करना

(आसव).

मैंने संसार का त्याग कर दिया और बन गया

एक भिक्षु मेरे साथ इधर-उधर भटक रहा था

शिखर वाला महल; भले ही मैं रहता हूँ

एक पेड़ के तल पर, शिखर वाला

महल का निर्माण हो रहा है।

मेरे वस्त्रों में और मेरे भिक्षा-भोजन में भी,

मेरी इच्छाशक्ति (चेतना) का कोई अस्तित्व नहीं है;

अपने पुण्य कर्म में पूरी तरह से संलग्न होकर, मैं लाभ प्राप्त करता हूँ

मेरी सर्वांगीण उपलब्धि।

संख्या में अगणनीय (asaṅkheyya)

(गणनातो), मेरे करोड़ों कप्पा हैं;

वे व्यर्थ ही घिस कर नष्ट हो गए थे (अटिक्कंटा)

(पामुत्ता) (कई) नेताओं को याद करते हुए

दुनिया।

उनकी सेवा करने के बाद,

प्रतिष्ठित नेता (विनायक) पियादस्सी

अठारह सौ युग (कप्पा) पहले, मैं

(अब) इस गर्भ के पास पहुँच गए हैं।

यहां मुझे आत्मजागृत बुद्ध दिखाई देते हैं।

अंतर्दृष्टि रखने वाला (चक्खुमा)

अनोमा (श्रेष्ठ) नाम दिया गया: जिसमें

मैंने उनसे संपर्क किया, मैंने स्वयं को

बेघर होकर भिक्षु बन जाना।

दुखों का निवारण करने वाले बुद्ध।

विजेता ने मुझे सही मार्ग दिखाया

(मग्गा); उनकी शिक्षा सुनने के बाद

मैंने सत्य (धम्म) को प्राप्त कर लिया है।

अविचल (अकलं) मार्ग।

स्वयं को संतुष्ट करके (तोसयित्वाण)

जागृत बुद्ध, गौतम, बैल के समान

मैं साकियान समुदाय के सभी लोगों को जान चुका हूँ।

आसव और जीवित (अब) घाव-

मुक्त (anāsavo).

यह अठारहवीं शताब्दी के युग में हुआ था।

(कप्पा) वर्तमान से पहले, कि मैं

मैंने अपनी विशेष श्रद्धापूर्ण भेंट अर्पित की

बुद्ध; मुझे विशेष रूप से किसी बुराई का ज्ञान नहीं है

अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उचित प्राप्ति (पटिपत्तिं) पर विचार किया, प्रसन्न हुए और अपनी आनंदमय अभिव्यक्ति के रूप में एक श्लोक बोला:

116. "छह इंद्रियों को त्यागने के बाद-

मेरे पास संपर्क (फस्सायतना) थे

संवेदी द्वार की सुरक्षा की जाती है और इसे अच्छी तरह से नियंत्रित किया जाता है।

(वधित्वन) को समाप्त करने के बाद,

मैंने मुंहासों से मुक्ति प्राप्त कर ली है।

(आसवक्खया).

वहाँ, chaphassāyatane hitvā का अर्थ है: उन छह आंतरिक इंद्रियों, जैसे आँख आदि, जिन्हें “Phassāyatanāni (इंद्रिय संपर्क)” नाम दिया गया है, क्योंकि वे आँख आदि जैसे छह संपर्कों के उद्‌गम स्थल हैं, उन्हें उचित रूप से बांधने वाली बुराइयों का त्याग करके। Guttadvāro susaṃvuto का अर्थ है: वह अपने द्वारों की अच्छी तरह से रक्षा और नियंत्रण में था, क्योंकि आँख आदि जैसे द्वारों की रक्षा की गई थी; और वहाँ, ध्यान के द्वार (kavāṭa) के माध्यम से अच्छी तरह से बंद करके, लोभ (abhijjā) आदि जैसे बुरे विचारों (dhamma) के प्रवेश (pavesana) को रोककर, जो (pavattanaka) साबित होते हैं; दूसरे शब्दों में, उक्त विधि से छह मानसिक केंद्रों (मनच्छत्थानं) के छह द्वारों की रक्षा (रक्खितत्ता) करने के कारण वह एक (गुत्तद्वार) है; शारीरिक रूप से संयमित होने के कारण वह सुसम्बुतो है; इत्यादि; अतः, इस प्रकार अर्थ को समझना चाहिए। अघमूलं वमित्वाना का अर्थ है: बाहर रखा हुआ। (बहि) शारीरिक निरंतरता (सन्तानातो) से, उल्टी करने (उग्गिरित्वा) के बाद, वमन (पाण) पेय (योग) के प्रयोग (योग) से, श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) के रूप में गिने जाने वाले सभी दुराचार दोषों (किलेसा दोष) का निवारण होता है: वैकल्पिक रूप से (वा), (उल्टी करने के बाद) अज्ञान (अविज्जा) और अस्तित्व की लालसा (भवतन्हा) के रूप में गिने जाने वाले दोष; दूसरे शब्दों में (वा) निष्कासन (बहिकरण) का कारण। पत्तो मे आसवक्खयो का अर्थ है; कामुक सुख आदि के ऐसे दोष (आसव) यहाँ नष्ट हो जाते हैं; दूसरे शब्दों में, उनके निवारण के माध्यम से इसे प्राप्त किया जाना चाहिए; इस प्रकार, आसवक्खय (दोषों का निवारण); निर्वाण और अरहंतत्व भी। उन्होंने आनंदमय उच्चारण (उदान) के माध्यम से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए कहा: “मैंने आसवक्ख्य विकारों के नाश की अवस्था को प्राप्त कर लिया है।”

थेरा पारापरिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(117):यसा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (117) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
117. यासा
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के समय में बनारस के एक अत्यंत धनी सलाहकार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका पालन-पोषण अत्यंत कोमल भाव से हुआ और उनके पास विभिन्न ऋतुओं के लिए तीन निवास स्थान थे, जिनका वर्णन खंडक में किया गया है। [1] पूर्ववर्ती परिस्थितियों से प्रेरित होकर, उन्होंने एक रात अपने सोते हुए सेवकों में पाप देखा और अत्यंत व्याकुल होकर, अपने सोने के चप्पल पहनकर घर और शहर दोनों छोड़ दिए; देवताओं ने उनके लिए द्वार खोल दिए। वे इसिपताना की ओर यह कहते हुए चले: 'हाय! कितना कष्ट! हाय! कितना खतरा!' उस समय परम पूज्य, जो उन पर कृपा करने के लिए इसिपताना में ठहरे हुए थे, बाहर टहल रहे थे और बोले: 'आओ, यासा, यहाँ न तो कोई कष्ट है और न ही कोई खतरा।' यासा प्रसन्न होकर अपने चप्पल उतारकर परम पूज्य के पास बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनसे क्रमिक प्रवचन द्वारा बात की, और सत्यों का उपदेश समाप्त होने पर, यासा ने सोतापाण (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त की। और जब परम पूज्य (बुद्ध) उनके पिता को सत्यों का उपदेश दे रहे थे, जो उनसे मिलने आए थे, तब यासा ने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

तब भगवान ने यासा की ओर अपना दाहिना हाथ बढ़ाते हुए कहा, 'आओ, भिक्षु!' और केवल ये शब्द कहते ही यासा के बाल दो उंगलियों की लंबाई तक कट गए, और उन्हें [105] आठ आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की गईं। [2] अपने जीवन पर विचार करते हुए, उन्होंने उन शब्दों पर प्रसन्नता व्यक्त की, जिन्होंने उन्हें उनकी वर्तमान स्थिति में बुलाया था, 'आओ, भिक्षु!' [3] और यह कथन (गाथा) कहा:

[117] सुविलितो सुवासनो सब्बाभरणभानुसितो,॥
तिस्सो विज्ज अज्झागामीं कटं बुद्धस्स सासनं' ति.॥॥

[117] सुगंधित त्वचा और नाजुक वस्त्रों से सजे हुए,
और रत्नों से जगमगाते सिर के साथ, फिर भी

मैंने अपना मार्ग खोज लिया और त्रिविध ज्ञान को अपना बना लिया; [4] और अब बुद्ध-आदेश पूरा हो गया है।

[1] विनय ग्रंथ, i. 102 आगे.

[2] यह विनय में पुरानी कहानी का एक पौराणिक विस्तार है । इस क्रम में, शिक्षार्थी या शिष्य को अपने शिक्षक की प्रतीक्षा करते समय अपने जूते उतारने पड़ते थे (iremain., i. 66 (62), 154)।

[3] देखें भद्दा की इन शब्दों पर खुशी, एक उम्मीदवार के लिए एक विशेष सम्मान (सिस्टर्स, भजन xlvi., साथ ही CCXXVI. नीचे और अन्य)।

[4] मुद्दा एक आम आदमी के रूप में उनकी त्वरित उपलब्धि में निहित है।

1.12-7[117] यसत्थेरा के श्लोक पर टीका

सुविलित्तोसुवासनो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा यासा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करके, इस या उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और महान शक्ति के अजगर राजा बने। सामधा बुद्ध के समय, उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को अपने निवास स्थान (भवनम्) में ले जाकर एक महान दान-पुण्य किया। उन्होंने बुद्ध को तीन बहुमूल्य वस्त्रों से आच्छादित किया। उन्होंने प्रत्येक भिक्षु को भी अत्यंत मूल्यवान अलग-अलग वस्त्रों (दुस्सायुग) और सभी धार्मिक आवश्यक वस्तुओं (परिक्खारा) से आच्छादित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, सुद्धत्थ के समय में एक धनाढ्य के पुत्र बने और बोधि वृक्ष के मंडप (मंड) पर सात प्रकार के अनाज का आदरपूर्वक अर्पण किया। वे कस्सपा के समय में भिक्षु बने और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया। इस प्रकार, जन्म-जन्मों के चक्र में विचरण करते हुए, उत्तम जन्मों (सुगति) में रहते हुए, वे हमारे इस प्रतापी के समय में बनारस में एक धनी धनाढ्य के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। यसा नाम से जाने जाने वाले वे अत्यंत कोमल (परम) थे। "तस्स तयो पासादा (उनके लिए तीन महल थे)," इस प्रकार, सब कुछ विनय पिटक के खंडक में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए।

अपने पूर्व उद्देश्य (पुब्बाहेतु) से प्रेरित होकर (कोडियामानो), उसने रात के उस हिस्से (रत्तिभागे) में नींद से व्याकुल (अभिभूत) अपने आस-पास के लोगों (पारिजना) की (घृणित) अव्यवस्था (विप्पकारं) देखी, पश्चाताप हुआ, केवल अपनी सोने की चप्पलें पहनकर घर से बाहर आया, देवताओं द्वारा खोले गए नगर द्वार से निकलकर (निक्खमित्वा) इसिपतानों के पास गया और बोला: "हे! हाय! (मैं) पीड़ित हूँ; हे! हाय! (मैं) दुखी (उपसत्त्तं) हूँ।" उस समय, जब भगवान बुद्ध, जो इसिपताना में निवास कर रहे थे और खुले में विचरण कर रहे थे, उनका उत्थान करने के उद्देश्य से, उनसे यह कहा गया: "हे यासा! आओ, यह उत्पीड़ित (अनुपद्दुतं) नहीं है; यह पीड़ित नहीं है," तो वे प्रसन्न हुए और मन ही मन कहने लगे: "मुझे बताया गया है कि ऐसा भी है जो उत्पीड़ित और पीड़ित नहीं है," उन्होंने अपनी सोने की चप्पल उतार दी (ओरुयह), भगवान बुद्ध के पास गए, एक तरफ बैठ गए, और पवित्रता के प्रथम चरण (सोतापन्न) में प्रवेश कर चुके, जो कि चार प्रकार के श्रेष्ठ सत्य के सर्वांगीण प्रसार का विषय था, जो कि गुरु द्वारा अपने क्रमिक प्रवचन को क्रम से (अनुपुब्बिकतं) देने के बाद सत्य के उपदेश (सच्चादेसना) के रूप में दिया गया था, और अरहंतत्व की कल्पना (सच्चाकासि) की। भगवान बुद्ध अपने पिता को सत्य (सच्चादेसना) बता रहे थे, जो उन्हें खोजने और पाने के उद्देश्य से आए थे। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

"गहराई में (oggayha) महान

सागर, वहीं मेरा घर (भवनम्) था।

अच्छी तरह से निर्मित; कमल का तालाब अच्छी तरह से बना हुआ था।

दुग (सुनिमिता), (गीतों के साथ) गाया

(pakūjitā) लाल हंसों द्वारा (cakkavāka)

(मेरा महल) अच्छी छत वाला था (संचन्ना)

दिव्य फूलों (मंडालाकेही) के साथ

साथ ही पद्मा और उप्पला कमल के साथ भी।

फूल। वहाँ एक जलधारा भी बह रही थी।

शानदार घाट के साथ रमणीय नदी

धब्बे।

(मेरा महल) अच्छी तरह से आबाद था (संचन्ना)

मछलियों और कछुओं द्वारा, और अच्छी तरह से बिखरे हुए

कई प्रकार के पक्षियों के साथ (dija)

वहां मोरों की दहाड़ गूंज रही थी।

और बगुले, और प्यारी (वग्गु) आवाज के साथ

कोयल आदि के बारे में।

कबूतर और फाख्ता (पारेवता) के साथ-साथ

सूर्य-हंस (रविहंस) और लालिमा लिए हुए

हंस जो नदी के किनारे घूमते हैं; यहाँ,

वहां दिंडीभा पक्षी और मैना भी थे।

उड़ने वाले गिरगिट (पम्पाका) और तीतर

(जीवजावका).

हंसों और बगुले ने अपनी आवाजें निकालीं (नदिता);

(इसी प्रकार) कई लाल-पीले (पिंगला) उल्लू भी।

सात प्रकार के रत्नों से संपन्न और

रेत के कण रत्नों और मोतियों के थे।

पेड़ पूरी तरह से सोने के बने थे और

तरह-तरह की मीठी सुगंधों से भरा हुआ।

उन सभी ने मेरे महल को रोशन कर दिया और

हर समय रात।

साठ हजार संगीत वाद्ययंत्र थे

हर शाम और सुबह पवज्जरे खेला जाता था।

सोलह हजार महिलाएं हमेशा घिरी रहती थीं

मुझे।

मैं विशेष रूप से अपने आलीशान घर से बाहर आया हूँ,

मैंने उस नेता को श्रद्धांजलि अर्पित की।

विश्व में सुमेहा की बहुत ख्याति थी,

धर्मपरायण और प्रसन्न।

स्वयंजागृत व्यक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

बुद्ध ने उन्हें उनके साथ आमंत्रित किया।

भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग। वह बुद्धिमान सुमेधा,

विश्व के नेता ने अपनी सहमति दे दी।

धर्म (सत्य) का उपदेश देने के बाद

मुझे, महान ऋषि ने विदा किया (उय्योजेसी)।

स्वयं को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद-

मैं जागृत बुद्ध बनकर लौटा (उपागमि)

मेरे आलीशान घर में।

मैंने अपने आस-पास के अपने दल (पारिजनम्) को इस प्रकार संबोधित किया:— "आप सभी एकत्रित हो जाओ; सूर्योदय के समय बुद्ध हमारे महल में आएंगे।

हमारे लिए, आपकी उपस्थिति में रहने से हमें अच्छा लाभ प्राप्त होगा; हम अपने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, गुरु को श्रद्धापूर्वक भेंट भी अर्पित करेंगे।

भोजन और पेय तैयार होने के बाद

(पट्टुपेत्वा) मैंने भोजन का समय बताया;

एक लाख पर महारत हासिल करना (वसी),

विश्व का नेता आ गया (उपेसी)।

मैं उनसे मिलने और उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा।

पांच प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों के साथ:

पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति एक पर बैठ गया

पूर्णतः सोने से बना आसन (पाठे)

(सब्बासोना)।

फिर ऊपर एक छत (चदाना) थी

(उपारी) पूरी तरह सोने से बनी; पंखे उपलब्ध कराए गए

पुरोहितों के बीच ठंडी हवा (पवयन्ती)

भिक्षुओं का।

मैंने पुरोहितों को संतुष्ट किया (अतप्पयिं)

भिक्षुओं के पास भरपूर भोजन और पेय पदार्थ थे और

कपड़े भेंट किए (dussayugaḷe)

कैच (पच्चेका) भिक्षुओं के पुरोहितों के लिए।

लोगों ने कहा (वदंती): सुमेधा ऐसी थी

कि वह स्वीकार करने के योग्य थे

संसार की बलि भेंटें।

पुरोहितों के बीच बैठने के बाद

भिक्षुओं, उन्होंने ये श्लोक कहे।

मैं एक घोषणा करूँगा (किट्टा-

उसका (yissāmi) जिसने मुझे संतुष्ट किया और

इन सभी भिक्षुओं को भी भोजन और

पियो; जब मैं बोल रहा हूँ तो मेरी बात सुनो।

अठारह सौ युगों तक, वह आनंद उठाएगा

(स्वयं) (remissati) दिव्य जगत में;

वह हजार बार संप्रभु होगा

साथ ही एक विश्व-राजा भी।

चाहे गर्भ दिव्य हो या मानवीय,

वह हर समय एक पूर्ण स्वर्ण रंग के वस्त्र के पास जाता है।

छत (चदनं) ऊपर उठाई जाएगी

उसे)।

तीस हजार युगों (कप्पा) के बाद, एक

ओक्काका (इक्ष्वाकु) परिवार की संतान (संभव),

क्लैम के अनुसार गौतम नाम दिया गया,

गुरु प्रकट होंगे (भविस्सति)

दुनिया।

वह उसका उत्तराधिकारी (दयादो) बनेगा

शिक्षाएँ (धम्मेसु), एक घनिष्ठ पुत्र (ओरासो)

शिक्षा द्वारा निर्मित (धम्मनिम्मितो);

पूरी तरह से समझ लेने के बाद (परि-

सत्य को जानकर, वह निर्वाण में प्रवेश करेगा।

हर तरह के दोष से मुक्त (anāsavo)।

पुरोहितों के बीच बैठने के बाद

भिक्षुओं में से, वह सिंह की दहाड़ मारेगा;

उन्होंने उनके अंतिम संस्कार के दौरान एक छाता उठाया।

चिता (सीटाके); उसका अंतिम संस्कार किया जाएगा

(ḍayhatha) छाते के नीचे।

तदनुसार भिक्षुत्व (समन्नाम्) निर्धारित किया गया था।

मेरे द्वारा प्राप्त (अनुपत्तम्); मेरी दुष्टता

मेरे द्वारा जलाया गया था; या तो पंडाल में

या किसी पेड़ की तलहटी में, ऐसा नहीं होता

मुझमें कोई पीड़ा (संतापो) मौजूद है।

यह तीस हजार युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने अपना दान देने की पेशकश की। मैं करता हूँ।

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

मेरे संपूर्ण समर्पण का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

इसके बाद, भगवान बुद्ध ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर पूज्य यासा से कहा: “हे भिक्षु! आइए। इन शब्दों (वचनसमनंतरं) के तुरंत बाद, वे दो उंगलियों की लंबाई के बाल और दाढ़ी (द्वंग-गुलामत्तकेसमस्सु) के साथ आठ धार्मिक वस्तुओं के धारक (धरो) बन गए, मानो वे साठ वर्ष के वरिष्ठ भिक्षु हों। अपनी उचित प्राप्ति (पटिपत्तिं) पर चिंतन करने के बाद, उन्होंने अपने आनंदमय वाणी (उदान) का उच्चारण करते हुए, एहिभिक्खु की अवस्था की प्राप्ति (पटितो) से पहले (पुरिमा) के अपने जीवन (आवत्थ) का वर्णन किया (पता करना)। (आइए, भिक्षु!)

117. “अच्छी तरह से रंगा हुआ, अच्छे से कपड़े पहने हुए (मैं था)”

सभी अलंकारों से सुशोभित।

मैंने तीन प्रकार की सुपर उपलब्धियां हासिल कीं-

विज्ञान (विज्जा); बुद्ध का उपदेश

इसे अंजाम दिया जा चुका था।

वहाँ, सुविलित्तो का अर्थ है: (मेरा) शरीर उत्तम केसर और चंदन के लेप से सुशोभित था (अनुलेपना)। सुवासनो का अर्थ है: (मैं वह था जिसने) बहुमूल्य काशी वस्त्र (महाग्घ) धारण किया था। सब्बाभरनभूषितो का अर्थ है: सभी आभूषणों से सुशोभित, सिर (सीसा) तक पहुँचने वाला (उपग) और इसी प्रकार। अज्जगमिं का अर्थ है: मैंने (अधिगच्छिं) प्राप्त किया। शेष इसी प्रकार है।

थेरा यासा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(118): किम्बिला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (118) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
118. किम्बिला
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर किम्बिला नाम से जन्मे [1] किम्बिला को अपार धन-संपत्ति विरासत में मिली। अनुपिया में निवास करते समय भगवान (बुद्ध) ने उनकी अंतर्दृष्टि की परिपक्वता देखी और उन्हें प्रेरित करने के लिए एक सुंदर युवती को प्रकट किया और उन्हें वृद्धावस्था में प्रवेश करते हुए दिखाया। तब किम्बिला अत्यंत विचलित होकर यह श्लोक बोले:

[118] अभिसत्थोवा निपातति॥
वायो रूपं अण्णामिव तथैव सन्तं,॥
तस्सेव सातो अविप्पवसतो॥
अण्णससेवा सारमि अत्तनानं ति.॥ ॥

[118] किसी शक्ति द्वारा याद दिलाए जाने पर, उम्र उस पर हावी हो जाती है।
उसका रूप किसी और जैसा है, फिर भी वही है।
अब यह मेरा स्व, जिसने कभी स्वयं को नहीं छोड़ा,
उस स्व से भिन्न प्रतीत होता है जिसे मैं याद करता हूँ।

अत: अनित्यता के तथ्य को ध्यान में रखते हुए, वे और भी अधिक विचलित हो गए और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर धम्म का मार्ग सुना, उस पर विश्वास किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने श्लोक को दोहराते हुए इस बात पर बल दिया कि वे पहले चीजों को स्थायी मानते थे, और इस प्रकार उन्होंने ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) को स्वीकार किया।

[1] इसे (ब्रिटिश) किमिला और किम्मिला भी लिखा जाता है। विनय वृत्तांत के अनुसार, बुद्ध के मिशन के पहले सप्ताह में, पाँच अन्य युवा शाक्य कुलीनों के साथ उनका धर्मांतरण हुआ था। वहाँ उनके धर्मांतरण की विधि का उल्लेख नहीं है। मज्झिमा में किम्बिला को वरिष्ठ थेरा अनुरुद्ध के साथ अपनी प्रारंभिक मित्रता बनाए रखते हुए दर्शाया गया है। वह उनके साथ रहते थे, और एक तीसरे व्यक्ति, नंदिया (भजन संहिता XXV), कभी इस वन या उद्यान में, कभी उस वन या उद्यान में रहते थे (विनय ग्रंथ, 2:309, 3:228; मज्झिमा, 1:205, 3:155; देखें CXXXVIII)। अनुपिया मल्ल गणराज्य का एक नगर था (विनय ग्रंथ, 3:224)।

1.12-8 [118] किमिलाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
अभिसात्तो वा निपातति से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा किमिला का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, वे भगवान ककुसंध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे और गुरुजी परिनिर्वाण में प्रवेश कर चुके थे, तब उन्होंने उनके अवशेषों को समर्पित करते हुए शळा पुष्पों की मालाओं से मंडप के समान आदरपूर्वक अर्पण किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उनका पुनर्जन्म तावतिंस स्वर्ग में हुआ, और वे समय-समय पर देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार जन्मों के चक्र में विचरण करते हुए, कपिलवस्तु नगर में शाक्य राजा के परिवार में उत्पन्न हुए, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम किमिला था। वयस्क होने पर, वह धन-संपन्न समृद्धि से संपन्न हो गया। उसके ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता देखकर, अनुपॉय में निवास करने वाले गुरु ने, उसे पश्चाताप कराने के उद्देश्य से, विशेष रूप से एक सुंदर स्त्री (इत्तिरूपं) को, जो अपनी युवावस्था में थी, उसके सामने प्रकट किया। बाद में, उन्होंने उसे धीरे-धीरे वृद्धावस्था और रोग जैसी दुर्बलताओं से ग्रस्त होते हुए दिखाया। उसे देखकर, युवा राजकुमार किमिला ने अपने अत्यधिक पश्चाताप को प्रकट करने के लिए एक श्लोक कहा।

118. "मानो विशेष रूप से निर्देश दिया गया हो, उम्र

धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है; ऐसी सुंदरता (रूपं)

लेकिन जैसे यह (तथ्येव) प्रकट होता है (सन्तं)

मेरे लिए एक अन्य (अन्नमिवा) के रूप में; क्योंकि

विचारशील होने के कारण, मैं संयोगवश

मैं उसका ध्यान भी रखता हूँ;

मानो यह किसी और (अन्नास्सा) का हो

(ईवा)।

वहाँ, abhisatto va का अर्थ है: मानो किसी दिव्य प्राणी द्वारा सलाह और निर्देश दिया गया हो: — "जल्दी जाओ; देर मत करो (tiṭṭha)। इसका एक पाठ "Abhisaṭṭho'va (मानो विशेष रूप से सलाह दी गई हो)" भी है; मानो किसी ने इस प्रकार कहा हो (abhilāsāpito): — "तेजी से जाओ (lahuṃ);" अतः, यही अर्थ है। निपातति का अर्थ है: आगे गिरना (अतिपातति), विशेष रूप से दौड़ना (अभिधावती), न ठहरना (न तिट्ठति); पल-पल क्षय और क्षीणता की ओर बढ़ना (खयवयं); अतः, यही अर्थ है। वयो का अर्थ है: शरीर की विभिन्न विशिष्ट अवस्थाएँ (विसेवा) जो युवावस्था (बाल्ययोब्बन) से शुरू होती हैं; यहाँ, उनकी युवावस्था (योब्बञ्जं) का अर्थ है (अधिप्पेतं)। वास्तव में, वह युवावस्था उनके निकट खड़ी थी, जो विशेष रूप से पतित (अभिपातं) और क्षीण (खियंतं) हो गई थी। रूपं का अर्थ है कि वे सौंदर्य, शारीरिक समृद्धि (रूपसंपदा) की बात करते हैं। इस प्रकार, रूप शरीर है, जैसे कि ऐसे संदर्भों में: "अट्ठिंच पटिच्च" nhāruñca paṭicca maṃsañ ca paṭicca ākāso parivārito rūpaṃ tveva saṅkhaṃgacchati (हड्डी पर निर्भर, शिराओं पर निर्भर और मांस पर भी निर्भर, घिरा हुआ स्थान भौतिक शरीर के रूप में गणना की ओर ही जाता है)" इत्यादि। Aññamiva tatheva santaṃ का अर्थ है: मैं स्वयं उस सुंदर शरीर (rūpaṃ) के समान हूँ, जो वर्तमान में उसी रूप में विद्यमान (santaṃ vijjamānaṃ) है; फिर भी वह मेरे निकट ऐसे खड़ा है मानो मैं कोई और हूँ (aññaṃviya); यही इसका महत्व है। कुछ विद्वान पढ़ते हैं: "Tadeva santaṃ (यहाँ तक कि विद्यमान भी) "और Tass'eva sato का अर्थ है: उस स्वयं-स्वरूप मुझे, जो कोई और नहीं हूँ (अनञ्ञस्स) सचेत रहना। अविप्पवसतो का अर्थ है: जो अनुपस्थित नहीं है (विप्पवसन्त); वास्तव में, लंबे समय तक अनुपस्थित रहने से, जो दूसरा नहीं है वह भी उसके पास ऐसे खड़ा रहता है मानो वह कोई दूसरा व्यक्ति हो; यह भी यहाँ विद्यमान नहीं है; अतः, यही अर्थ है। अञ्ञस्स'एव सारमि अत्तानं (मैं अपने इस शरीर को किसी अन्य सजीव प्राणी के समान मानता हूँ, ध्यानपूर्वक अपने स्मरण में रखता हूँ (उपधारेमि) और भली-भांति समझता हूँ (संजानमि); त्य, यही अर्थ है। जब इस प्रकार वह अनित्यता की अवस्था के प्रति सचेत हो रहा था, तब पूर्व (दलहतरो) पश्चाताप उत्पन्न हुआ। पश्चाताप से ग्रस्त होकर वह गुरु के पास गया, सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बना, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में स्वयं को स्थापित किया और कुछ ही समय में अरहंत पद प्राप्त कर लिया। अतः, ऐसा कहा गया है अपदान.--

"जब काकुसंधा, जो गाड़ी चलाकर चला गया था

उसके बुरे कर्मों (ब्राह्मण) और खर्च किए गए समय

उनका निष्पाप जीवन (वुसिमाती)

सालका फूलों की मालाएँ एकत्रित कीं

और एक पंडाल बनाया।

उस मुकाम तक पहुँचने वाले व्यक्ति बनकर

तावतिंसा स्वर्ग, मुझे सबसे अधिक लाभ हुआ।

शानदार हवेली। मैंने दूसरों को पीछे छोड़ दिया।

दिव्य प्राणियों: यही फलदायी है

मेरे पुण्य कर्म का परिणाम।

चाहे दिन हो या रात, मैं लगा रहता था

खड़े रहना और इधर-उधर चलना,

सालाला के फूलों से आच्छादित (चन्नो);

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

सराहनीय कार्य।

यह इसी युग (कप्पा) में हुआ था।

कि मैंने अपना काफी श्रद्धापूर्ण बना दिया

बुद्ध को अर्पित की गई वस्तु। मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

बुद्ध को अर्पित की गई मेरी श्रद्धा का परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने अपने पूर्व में उत्पन्न अनित्यता की चेतना को प्रकट करने के लिए उसी श्लोक को दोहराया (पच्चुदाहासि)। इसी कारण, यह श्लोक इस थेरा के अरहंत पद का वर्णन (ब्याकरण) था।

थेरा किमिला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(119):वज्जि-पुत्त2 (द वज्जियन)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (119) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
119. वज्जि-पुत्त (2)
(वज्जिअन)
बुद्ध युग में वैशाली में एक लिच्छवी (राजा) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वे वज्जियन के पुत्र के रूप में जाने गए, क्योंकि उनके पिता वज्जियन थे। [1] युवावस्था में ही हाथियों को प्रशिक्षित करने में लगे रहने के दौरान, वे निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर, उस समय विहार (मठ) गए जब भगवान (बुद्ध) उपदेश देने वाले थे, और सुनकर भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की।

कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) के देहांत के कुछ समय बाद, वज्जीपुत्त ने प्रमुख थेरों के साथ धम्म को अक्षुण्ण रखने का समझौता किया और उनके साथ स्थान-स्थान की यात्रा की। एक दिन उन्होंने पूज्य आनंद को देखा, जो उस समय केवल एक छात्र थे (अरहंत नहीं), एक विशाल मंडली से घिरे हुए, उन्हें धम्म का मार्ग सिखा रहे थे। और उन्हें उच्चतर मार्गों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करने हेतु उन्होंने यह श्लोक कहा:

[119] रुक्खमूलागहनm्ं पसाक्किया॥
निब्बानां हदयास्मिं ओपिया॥
झाय गोतम मा च पमादो॥
किओ ते बिलिबिलिका करिसाति' ती॥ ॥

[119] आओ तुम और वृक्षों के हरे-भरे उपवन में गोता लगाओ,
निर्वाण को अपने हृदय में समाहित करो!
अध्ययन करो और आराम मत करो, हे गौतम वंश के!
इस झंझट का तुम्हारे लिए क्या अर्थ था? [2]

यह सब सुनकर और दूसरों के विषैली इच्छाओं को दूर करने वाले भाषण सुनकर आनंद व्याकुल हो गए और लगभग पूरी रात ध्यान करते हुए इधर-उधर घूमते रहे। फिर, अंतर्दृष्टि से प्रेरित होकर वे अपने कमरे में गए और पलंग पर लेटते ही उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हो गया।

[1] यह स्पष्ट रूप से LXII का वज्जी-पुत्त नहीं है, जो कुलीन पद का नहीं था।

[2] बुद्ध के प्रमुख सेवक आनंद द्वारा इस लक्ष्य की देर से प्राप्ति के लिए विनय ग्रंथ, iii. 373 देखें। यह श्लोक सन्य, i. 199 में भी मिलता है, जहाँ वन के अप्सराएँ आनंद की सांसारिक हितों में व्यस्तता का उल्लेख करती हैं - यह प्रवृत्ति अपने आप में पूरी तरह से मनभावन थी, और जो उनके बारे में बताई गई कई घटनाओं में स्पष्ट है। क्रॉनिकल इन अन्य संबोधितकर्ताओं का उल्लेख करता है। आनंद गौतम वंश के थे, जो बुद्ध के चचेरे भाई थे। विचित्र शब्द बिलिबिलिका को इस प्रकार विलिविलिक्रिया (शाब्दिक रूप से, चिपचिपा-चिपचिपा-कार्य?) के रूप में पुनर्कथन किया गया है, यह पुनरावृत्ति उनके स्वयं के आध्यात्मिक अवरोध के लिए कई लोगों के हितों में उनकी व्यस्तता की निंदा के रूप में अभिप्रेत है। आनंद के कथन (गथा) के लिए, CCLXX देखें; तुलना करें CLXXV भी।

1.12-9 [119] वज्जीपुत्तथेरा के श्लोक पर टीका
रुक्खमूलगहनं पसाक्किया से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वज्जिपुत्त का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए। संयोगवश, उन्होंने पिछले जन्म के चौरानवेवें युग में एक मौन आत्म-जागृत व्यक्ति को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे प्रसन्न हुए और उन्हें केले भेंट किए। उस पुण्य कर्म के फल स्वरूप, उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ, उन्होंने समय-समय पर पुण्य कर्म किए, देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्म के चक्रों में विचरण किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे वैशाली में लिच्छवी राजा के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। उनका नाम (समाञ्ञा) वज्जीपुत्त था, क्योंकि वे सम्राट वज्जी के पुत्र थे। युवावस्था में, कारणवश, उनमें संसार से मुक्ति (निसारण) की प्रबल इच्छा थी, यहाँ तक कि हाथी-सवारी (हत्थि-सिक्खा) आदि का प्रशिक्षण लेते समय भी। भटकते हुए, वे उस समय मठ पहुँचे जब गुरु द्वारा सत्य (धम्म) का उपदेश दिया जा रहा था, वे श्रोताओं के सर्वांगीण छोर पर बैठे, सत्य (धम्म) को ध्यान से सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने वाले कर्म किए और शीघ्र ही छह प्रकार के परम ज्ञान (चलाभिञ्ञ) से युक्त अरहंत बन गए। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

"हजारों में धन्य"

प्रकाश की किरणें (सहस्सरंसी),

अजेय (अपराजितो) स्वयं बनना

एक (सयामभू), जो उत्पन्न हुआ है

उनका एकांतवास विशेष रूप से सामने आया

उनके दान-भोजन से (गोचरायभिनिक-

हमी)।

मेरे हाथ में एक फल था और तभी मुझे यह घटना हुई।

उसे देखने के लिए मैं बैल के पास गया।

पुरुषों में (नरसभं)। धर्मपरायण मन वाला

और प्रसन्न होकर मैंने फल भेंट किए।

मेरे (मेरे) छेद (अवतां) में रखा हुआ

हाथ जोड़कर)

यह चौरानवेवाँ युग (कप्पा) था।

वर्तमान से पहले, कि मैं तब

मैंने इसे फलों की भेंट के रूप में अर्पित किया।

किसी भी बुरी सत्ता (दुग्गति) को याद न करना।

यह मेरे द्वारा किए गए बलिदान का फलदायी परिणाम है।

का फल।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (च्ॅभिञ्ञ) से अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, एक दिन उनका सामना आदरणीय आनंद से हुआ, जो अभी भी एक विद्यार्थी थे, लेकिन अपूर्ण (सेख) थे, और सत्य (धम्म) का उपदेश देने वाली एक विशाल सभा (परिसा) से घिरे हुए थे, जब महान वरिष्ठ भिक्षु (महाथेरा) इधर-उधर निवास कर रहे थे, और गुरु के निधन (अचिरपरिनिब्बुते) के कुछ ही समय बाद बुद्ध के उपदेशों (धम्म) का एक साथ गायन (संगायितुम्) करने के लिए अपनी नियुक्तियाँ (कटवा) कर चुके थे, और उन्होंने (आनंद के) उच्चतर और सर्वोच्च सही मार्ग (मग्ग) की प्राप्ति के लिए उनके प्रयास (उस्साहं जनेंतो) को प्रेरित करने के लिए एक श्लोक कहा।

110. "जड़ के पास पहुँचने पर

वन वृक्ष (रुक्खमूलगहनं)

pasakkiya), अपना मन बना लेने के बाद

शांतिपूर्ण (निब्बाणं हदायस्मि ओपिया)

हे गौतम! झाना पर प्रवेश करो; ऐसा न करें

लेकिन लापरवाही बरतें। किस प्रकार का लाभ?

क्या आप अपने द्वारा इसे पूरा करेंगे (करिसाति)

babbling tittle tattle (biḷi biḷikā)?

वहाँ, रुक्खमूलागहनं का अर्थ है वृक्षों की जड़ों से उत्पन्न घना जंगल (गहन); वास्तव में वहाँ घना जंगल (गहन) विद्यमान है, वृक्ष की जड़ नहीं; वहाँ वृक्ष की जड़ भी विद्यमान है, घना जंगल नहीं; उनमें वह वायु, ऊष्मा और खतरे की अनुपस्थिति (अभावं) दर्शाता है; उस स्थान के घने जंगल के कारण (चुभने वाली) वायु से मुक्ति की स्थिति के कारण, वह वायु-खतरे के साथ-साथ भीड़भाड़ वाली स्थिति की अनुपस्थिति को भी दर्शाता है; इन दोनों (स्थितियों) के माध्यम से मन के विकास में संलग्न होने की सुविधा (भावनायोग्यतं) थी। पसाक्किया का अर्थ है पहुँच जाना (उपगन्त्वा)। निब्बानं हदयस्मिं ओपिया का अर्थ है: स्वयं से कहना: "एवं मया पटिपज्जित्वा निब्बानं अधिगन्तब्बं (इस प्रकार अपने कर्म पथ (पटिपज्जित्वा) का अनुसरण करने से निर्वाण प्राप्त होगा)"; इस प्रकार, हृदय में शांति (निब्बुति) स्थापित करना; मन (चित्ते) में करित्वा धारण करना। झाया का अर्थ है: इस भौतिक जगत के (तीन) गुणों (लक्खना) पर चिंतन (उपनिज्जाना) के साथ ध्यान (झाया) करना; आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास से जुड़े सही मार्ग (मग्ग) के विकास को बढ़ावा देना। गौतम का अर्थ है: वह अपने कुल के माध्यम से सत्य के संजोअर (धम्मभण्डा-गारिका) को संबोधित करते हैं। Mā ca pamādo का अर्थ है: अत्यंत उत्तम कर्मों (adhikusalesu dhammesu) के प्रति लापरवाही (āpajji) न बरतो। अब, इस प्रकार की लापरवाही को नकारते हुए (paṭikkhepa vasena), उन्होंने कहा: "Kiṃ te biḷibiḷikā karissati." वहाँ, biḷibiḷikā का अर्थ है: बड़बड़ाना viḷiviḷi (चुगली); biḷibiḷi ध्वनि का ऐसा निरर्थक उत्पादन है; इस प्रकार बहुत से लोगों का नामकरण biḷibiḷika (बड़बड़ाहट) के समान है। Kiṃ te karissati का अर्थ है: तुम किस प्रकार का लाभ प्राप्त करना चाहते हो? इसलिए, सामूहिक नामकरण (janapaññattiṃ) का त्याग करके तुम्हें अपने कल्याण (sadattha) के प्रति समर्पित (pasuto) होना चाहिए; इस प्रकार उन्होंने सलाह दी।

उस श्लोक को सुनकर (थेरा आनंद) दूसरों द्वारा बोले गए ऐसे शब्दों से पश्चाताप करने लगे जो (वायन) अपनी विषैली मीठी सुगंध बिखेरते थे, वे रात का अधिकांश समय इधर-उधर घूमते हुए बिताते रहे, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में लीन रहे, अपने मठ में प्रवेश किया और अपने पलंग पर लेटते ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया।

थेरा वज्जीपुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(120):इसिदत्ता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (120) ------>>>> अगला

अध्याय I.
एकल श्लोक
120. इसिदत्ता

इस बुद्ध युग में वेलुगामा के अवंती राज्य में पुनर्जन्म लेकर, [1] एक कारवां मार्गदर्शक के पुत्र के रूप में, वे (पत्राचार द्वारा) मच्चिकासाण्ड के एक गृहस्थ चित्त के अगोचर मित्र बन गए। चित्त ने उन्हें बुद्ध की श्रेष्ठता के बारे में लिखा और उन्हें विधि की एक प्रति भेजी। इससे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने महान थेरा कच्चान के अधीन भिक्षु बनने की दीक्षा ली। समय के साथ उन्होंने छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने बुद्ध से मिलने की इच्छा की और थेरा से विदा लेकर समय के साथ मध्य देश [2] आए और भगवान (बुद्ध) से मुलाकात की। बुद्ध ने उनसे पूछा, 'हे भिक्षु, तुम्हारा कैसा हाल है? क्या तुम समृद्ध हो रहे हो?' [108] और उन्होंने उत्तर दिया: 'हे महानुभाव, जिस क्षण से मैं आपके शासन में आया, मेरे सभी दुख और पीड़ा दूर हो गए, मेरे सभी भय और भय का अहसास शांत हो गया।' और उन्होंने यह घोषणा करते हुए अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की , और यह श्लोक बोला:

[120] पंचकखंडा परिण्णाता तिथन्ति छिन्नमूलका,॥
दुक्खक्खयो अनुप्पट्टो पत्तो मे आसवक्खयो' ति.॥ ॥

[120] मेरे जीवन के कारक अच्छी तरह से समझे गए हैं,
फिर भी कुछ समय के लिए कटी हुई जड़ के साथ खड़े हैं। [3] दुःख मर गया! वह खोज मैंने जीत ली है, और जीत ली
है चौगुने विष के दाग से पवित्रता। [4]

[1] अवंती विंध्य पर्वतमाला के उत्तर में, बंबई के उत्तर-पूर्व में स्थित था। बौद्ध धर्म के उदय के समय यह भारत के चार प्रमुख राजतंत्रों में से एक था, और बाद में मोरीयन साम्राज्य में समाहित हो गया। इसकी राजधानी उज्जैन थी। वेलुगामा (बांस का गाँव) का उल्लेख अब तक अन्य ग्रंथों में नहीं मिलता (देखें बौद्ध भारत, पृष्ठ 1 आगे)। चित्त, जिसका घर सावत्थी के पास था, बुद्ध के सबसे प्रमुख गृहस्थ समर्थकों में से एक था। बाद की परंपरा में, लेखन द्वारा सिद्धांत के प्रचार के इस अन्य उदाहरण के लिए, देखें XCVII। कच्चमा के बारे में, देखें CXXIX। उच्चारण चित्त, कच्चाना।

[2] गंगा घाटी (रीस डेविड्स, 'द मिडिल कंट्री,' जे.आर.ए.एस., 1904, पृ. 83 आगे)।

[3] = श्लोक 90, पहला भाग.

[4] आसव.

1.12-10 [120] इसिदत्तत्तेरा के श्लोक पर टिप्पणी
पंचक्खन्ध परिञ्ञता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा इसिदत्त का है। इसका उद्‌गम क्या है? इस एक व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और इस-उस जन्म में उनका पुनर्जन्म हुआ। जब भगवान बुद्ध रथयात्रा पर थे, तब उनका एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुआ। वे पुण्यमय हो गए और उन्हें सुगंधित, मीठे फल (आमोद) अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण वे दिव्य लोक में उत्पन्न हुए, और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और अंत में अवंती राज्य के वढ गाँव में एक रथगामी के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम इसिदत्त था। वयस्क होने पर, संयोगवश वे मच्चिकासंडा के धनी गृहस्थ चित्त के एक अगोचर मित्र बन गए, जिन्होंने उन्हें एक पत्र (शासनम्) भेजा, जिसमें बुद्ध के गुणों का वर्णन था। इस पत्र (शासन) से वे अत्यंत प्रसन्न हुए, थेरा महाकच्चाना की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगे और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान से परिपूर्ण अरहंत बन गए। अतः, अपदान में कहा गया है:—

मैंने सुगंधित फलों की भेंट चढ़ाई

स्वर्णिम आत्मजागृत बुद्ध को

रंगत, योग्य प्राप्तकर्ता

बलि चढ़ाने वाले, जो प्रवेश कर चुके थे

रथ मार्ग पर (रथियाम्)।

यह 91वें युग (कप्पा) में था।

वर्तमान से पहले, कि मैं तब

मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया। मैं नहीं।

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

फलदान का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिञ्ञा) से अर्हंत बनने के बाद, उन्होंने थेरा से अनुमति (उपुच्छित्वा) मांगते हुए कहा: "मैं बुद्ध की सेवा करने जाऊंगा" और मध्य क्षेत्र (मज्झिमदेश) में जाकर गुरु के पास पहुंचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए, और गुरु द्वारा उनसे वार्तालाप (कटपतिसन्थारा) करने के अंदाज़ में पूछे जाने पर, "हे भिक्षु! मुझे आशा है (कच्चि) कि आप शांत (खमनीयं) और पर्याप्त रूप से समर्थित (यापनीयं) हैं?" इत्यादि, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण करते हुए अपने अर्हंतत्व को प्रकट (ब्याकरोंतो) किया। (अञ्ञा) सूचित करते हुए (पवेदना वसेना) इस प्रकार: अपने उत्तर के दौरान (पटीवचन):— "हे भगवान! जब से मैंने आपकी कृपा (शासन) प्राप्त की है, तब से मेरे सभी दुख (दुक्खा) दूर हो गए हैं (अपगत); हर खतरा (परिसयो) समाप्त हो गया है (वुपसन्तो)।

120. "पांच इंद्रिय समुच्चय (खन्ध)

सभी लोग इसे समझ चुके थे (परिञ्ञता)।

उनकी जड़ें उखड़ गई हैं और वे खड़े हैं।

दुःख के निवारण की अवस्था

तदनुसार प्राप्त किया गया था (अनुपत्तो);

मेरे द्वारा विनाश प्राप्त कर लिया गया था

कैंकर (आसवा) का।

वहाँ, pañcakkhandhā pariññātā का अर्थ है: मैंने सही मार्ग के ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के ज्ञान से पाँचों आसक्त इंद्रिय-संबंधी स्कंधों का सर्वांगीण विश्लेषण करके (परिच्छा करके) पाँचों उपादान स्कंधों को जाना है, इस प्रकार: — "यह दुख है, इतना दुख है, इससे अधिक नहीं; उनमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे सर्वांगीण समझा जा सके; यही इसका अर्थ है। तिट्ठन्ति चिन्नमूलका का अर्थ है: वे आर्य मार्ग (आर्य-मग्ग) का त्याग करके और अपने अज्ञान (अविज्जा), लालसा (तन्हा) आदि के मूल को भलीभांति काट कर (समुच्चिन्नता) मन की शांति (चित्तनिरोध) की बाद की (चरिमा) अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे सर्वांगीण रूप से पूर्णतः ज्ञात (परिञ्ञातत्ता) हो चुके हैं। दुःखक्खयो अनुप्पत्तो का अर्थ है: उनके मूलों के कट जाने के कारण दुःख के चक्र (वट्ट दुःख) का सर्वांगीण नाश और अंत हो गया है; निर्वाण प्राप्त हो गया है (अधिगतं)। Patto me āsavakkhayo का अर्थ है: "आसवेक्खया (अपराधों का निवारण)" नाम से प्रदत्त अरहंत पद इसलिए प्राप्त हुआ क्योंकि उन्होंने विशेष रूप से कामासव (इंद्रिय सुख का अपरा) से आरंभ होने वाले सभी अपराधों के निवारण (खयन्ते) की दिशा में प्रयास किया था; इस प्रकार, इसका यही अर्थ है। कुछ विद्वान (केसी) हालांकि पढ़ते हैं (पाठन्ति) "अंतिमायं समुस्सयो (यह जटिल रूप अंतिम है); लेकिन निर्वाण की प्राप्ति के कारण मेरा यह शरीर संचय (अत्तभावो)

अंतिम (अंतिमो) और सभी में अंतिम (सब्बप्पचिमको) है जो अब विद्यमान है। कोई नया अस्तित्व (पुनब्बभावो) नहीं है; यही अर्थ है। हालांकि, जो कुछ भी यहाँ-वहाँ नहीं कहा गया है (तत्थतत्थ अवत्तं) वह पहले कहे गए तरीके (हेट्ठा) के कारण स्पष्ट (उत्तनं) है।"

थेरा इसिदत्ता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

बारहवें अध्याय की टीका पूर्ण हो चुकी है।

परमत्थदीपनी में थेरागाथा की टीका की पुस्तक में वरिष्ठ भिक्षुओं द्वारा लिखे गए एक सौ बीस श्लोकों से सुसज्जित प्रथम खंड के अर्थ को स्पष्ट करने वाली टीका भी पूर्ण है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(121):उत्तर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (121) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
121. उत्तरा
बुद्ध युग में राजगृह में एक प्रख्यात ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उत्तरा नाम प्राप्त करने वाले उत्तरा ने ब्राह्मण विद्या में स्नातक की उपाधि प्राप्त की और अपने संस्कार, सौंदर्य, ज्ञान और सद्गुणों के लिए ख्याति प्राप्त की। मगध के एक प्रमुख मंत्री वस्साकार ने उनकी उपलब्धियों को देखकर अपनी पुत्री से उनका विवाह कराने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु मोक्ष की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और धर्म के सेनापति (धम्म) से शिक्षा प्राप्त की। [1] आस्था प्राप्त करके उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और सारिपुत्त की सेवा करते हुए दीक्षा प्राप्त की।

अब थेरा बीमार पड़ गए, और उत्तरा सुबह वैद्य की तलाश में निकल पड़े। अपने चक्कर के दौरान उन्होंने एक झील के किनारे अपना कटोरा रख दिया और मुँह धोने के लिए पानी में चले गए। तभी एक चोर, जिसका पुलिस पीछा कर रही थी, शहर के मुख्य द्वार से भाग निकला और भागते हुए अपने चुराए हुए गहने नौसिखिए के कटोरे में डाल दिए और फरार हो गया। फिर, जब नौसिखिए अपने कटोरे के पास लौटे, तो राजा के आदमी उनका पीछा करते हुए वहाँ से गुजरे और कटोरा देखकर बोले, 'यही तो चोर है! इसी ने चोरी की है!' और उसके हाथ पीछे बाँधकर वे उसे ब्राह्मण (पुजारी) वस्सकार के सामने ले आए और उसे दंडित किया।

तब परम पूज्य बुद्ध, अपनी अंतर्दृष्टि की परिपक्वता पर ध्यान करते हुए, वहाँ गए और उत्तरा के सिर पर लाल सोने की बूँद के समान कोमल हाथ रखकर बोले, 'उत्तरा, यह पिछले कर्मों का फल है। यहाँ घटित होने के लिए आया है, इसे [110] तुम्हें चिंतन की शक्ति से स्वीकार करना है,' और इस प्रकार उन्होंने उत्तरा को उनकी आवश्यकता के अनुसार धम्म का मार्ग सिखाया। इस प्रकार भगवान (बुद्ध) के हाथ के स्पर्श से अमृतमय रूप से अभिषेकित उत्तरा आनंद और परमानंद से भर उठे और अपनी अंतर्दृष्टि की परिपक्वता और भगवान (बुद्ध) के उपदेश के आकर्षण से उन्होंने सभी अशुद्धियों को इस प्रकार त्याग दिया कि उन्होंने छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली। सूली से उठकर [2] वे हवा में खड़े हो गए और दूसरों के प्रति करुणा से एक चमत्कार किया। सभी के आश्चर्य के लिए, उनका घाव ठीक हो गया। जब भिक्षुओं ने पूछा, 'भिक्षु, आप इतनी पीड़ा सहते हुए अंतर्दृष्टि कैसे प्राप्त कर पाए?' तो उन्होंने कहा, 'चूंकि मैंने स्पष्ट रूप से देखा, भिक्षुओं, पुनर्जन्म की बुराई और बद्धता की प्रकृति, इसलिए वर्तमान पीड़ा की कम बुराई मुझे अंतर्दृष्टि बढ़ाने और प्राप्ति से नहीं रोक सकी': [3]

[121] नत्थि कोसि भावो नक्को सोंखरा वा पि सस्साता,॥
उप्पज्जन्ति च ते खंडा रिक्ति अपरापारं॥ ॥

[122] एतमादीनवं णत्वाभावेनमहि अनत्थि को,॥
निस्सातो सब्बाकामेहि पत्तो मे आसवक्खयो' ति.॥ ॥

[121] ऐसा कोई जीवन नहीं है जो हमेशा के लिए बना रहे,
न ही ऐसी कोई चीज़ है जो कारणों से स्थायी हो।
वे पुनर्जन्म लेते हैं, हमारे जीवन के कारक,
उसके बाद वे विलीन होकर मर जाते हैं।

[122] चूंकि यह बुराई मेरे सभी विचारों पर हावी है,
वास्तव में मैं वह हूं जिसने ऐसा बनने की इच्छा नहीं की।
सांसारिक उद्देश्यों से विरक्त होकर,
मैंने मादक पदार्थों (अपवित्रताओं/इच्छाओं) का अंत कर दिया है। [4]

[1] सारिपुत्त, अपनी मृत्यु तक शिष्यों के प्रमुख।

[2] Sūlato uṭṭhahitvā. वह संभवतः बंधा हुआ था या सूली पर चढ़ाया गया था, या अन्यथा दंड भुगत रहा था।

[3] विसेसो.

[4] यानी, 'मैंने निर्वाण और अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया है।' टीका = श्लोक 458.

2. दूसरा खंड

2.1 पहला अध्याय

2.1-1[121] उत्तराथेरा के श्लोक पर टीका

दूसरे खंड में 'नत्थि भावो निको' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उत्तरा का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए। इस जन्म और उस जन्म में, सुमेध बुद्ध के समय, वे मंत्रों के ज्ञाता (विज्जाधर) बन गए और आकाश में विचरण करने लगे। उस अवसर पर, गुरु ने उन्हें उत्थान देने के उद्देश्य से एक वन में एक वृक्ष के चरणों में बैठकर अपनी छह रंगों वाली प्रकाशमान बुद्ध किरणें प्रवाहित कीं। आकाश में विचरण करते हुए, उन्होंने बुद्ध को दर्शन दिए, श्रद्धा से भर गए, आकाश से अवतरित हुए और बुद्ध को प्रचुर मात्रा में उत्तम शुद्ध कनिकारा पुष्प अर्पित किए। बुद्ध की शक्ति से, पुष्पों ने गुरु के ऊपर छत्र के समान आकार धारण कर लिया। इसके बाद वे और भी अधिक धार्मिक हो गए, फिर उनकी मृत्यु हो गई, वे तावतिंस में उत्पन्न हुए, अपने जीवनकाल तक वहीं रहे, अपार दैवीय समृद्धि का आनंद लिया, फिर उनका निधन हो गया, और बार-बार जन्म लेकर, देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते हुए, राजगृह में एक महान धनी (महासाला) ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम उत्तरा था। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, और अपने जन्म, सौंदर्य (रूप), ज्ञान (विज्जा), आयु (वय), नैतिक उपदेश (शील) और आचरण (आचार) के कारण संसार में आदरणीय (संभवनियो) हो गए। उनकी समृद्धि देखकर मगध के महान मंत्री वस्सकारा ने अपनी पुत्री को उनसे देने की इच्छा की और उत्तरा को अपने इस इरादे की सूचना दी। बार-बार जन्म-जन्म के चक्र से बचने की इच्छा के कारण उन्होंने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने धर्म के सेनापति के समक्ष बार-बार प्रार्थना की, उनकी उपस्थिति में धर्म के सत्य उपदेश सुने, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और कर्तव्यनिष्ठा से थेरा की सेवा की।

ऐसा हुआ कि थेरा को एक विशेष रोग हो गया। उनके लिए औषधि लाने के उद्देश्य से, नौसिखिए (सामनरा) ने सुबह-सुबह ही अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर मठ से बाहर निकले और रास्ते में एक झील (त���क) के किनारे अपना भिक्षापात्र रखकर पानी के पास जाकर अपना चेहरा धोया। तभी एक दुर्भाग्यशाली (उमंग) चोर, जिसका पहरेदार पीछा कर रहे थे, शहर के मुख्य द्वार (अग्गद्वार) से निकला और भागते समय उसने अपने हाथ में पकड़े रत्नों का गट्ठा (रतनभंडिका) नौसिखिए (सामनरा) के भिक्षापात्र (पट्टा) में फेंक दिया और बच निकला। नौसिखिए (उपगतो) अपने भिक्षापात्र के पास (समीपं) चले गए। चोर का पीछा कर रहे राजपुरिसा को वह गठरी (भण्डिका) नौसिखिए के कटोरे में मिली। उन्होंने नौसिखिए (सामनेर) के हाथ पीछे बांधते हुए कहा, "यही चोर है; इसी ने चोरी की है।" और उसे ब्राह्मण वस्सकार के पास ले गए। उस समय वस्सकार न्याय कक्ष में पद पर थे और उन्होंने यातना और अंग-भंग करने के दंड

का आदेश दिया। क्योंकि उसने इस प्रकार द्वेष रखा: — "पहले उसने मेरी बात नहीं मानी; वह शुद्ध संप्रदायों में भिक्षु बन गया," उसने उस नौसिखिए को जीवित रहते हुए ही भाले से छेद दिया (सूले उत्तासेसि), बिना उस कृत्य की जाँच किए (असोधेत्वाव)।

उस समय, भगवान बुद्ध ने उनके ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता को देखकर, उस स्थान पर जाकर, उत्तरा के सिर पर अपना लंबा, कोमल और सुन्नतिपूर्ण हाथ रखा, जो जालीदार लंबे नाखूनों से ढका हुआ था और प्राकृतिक सिंदूरी स्वर्ण सार (सुवन्नरस) के रिसने (पग्घरंत) जैसा प्रतीत होता था, क्योंकि उनके हाथों और नाखूनों (मणि) के कंपन (विप्फुरंत) से प्रकाश की किरण (मयूख) निकल रही थी, और उन्होंने उनकी प्रवृत्ति (अज्जासय) के अनुरूप सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। इस प्रकार कहने के बाद:- "हे उत्तरा! तुम्हारे पूर्व कर्म (पुरिमकम्म) के फलस्वरूप यह फल (फलं) प्राप्त हुआ है, इसलिए तुम्हें चिंतनशील दृष्टि (पच्चवेक्खना) के बलपूर्वक धीरज (कातब्बा) रखना चाहिए। उत्तरा ने गुरु के हाथ के उत्तम स्पर्श से, जो अमृत (अमत) के समान है, पूर्णतः श्रद्धापूर्वक धार्मिक (पसादा) और प्रसन्न (सोमनस्स) होकर अपार उत्साह और उमंग (पीतिपामोज्जं) प्राप्त किया और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर अग्रसर (समारुळ्हो) हो गया, जो कि यथापरिचितं के अनुरूप है।" और ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता (परिपाकम्) प्राप्त करने (गतत्ता) के कारण, और गुरु द्वारा दी गई शिक्षा की सुंदरता (देशनाविलासेना) के कारण, उन्होंने उसी क्षण सही मार्ग (मग्ग) के क्रमिक चरणों (पटिपाटियी) के माध्यम से अपने सभी दोषों को त्याग दिया (खुपेत्वा) और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिञ्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"स्वयं जागृत बुद्ध सुमेधा नाम के थे,

बत्तीस उत्कृष्ट अंकों (लक्खना) के साथ,

भगवान, जो इसकी इच्छा रखते हैं (कामो),

एकांत (विवेक) (उपगामी) की ओर चला गया

हिमवंत। परम दयालु ऋषि।

सबसे उत्कृष्ट पुरुष जिनके पास भेदक क्षमता है-

हिमवंता में अनुवादित (अज्जोघाहेत्वा),

वह अपने पैरों को मोड़कर बैठ गया।

(पल्लकं अभुजित्वना).

मैं तब एक जादूगर (विज्जाधारो) था, एक

वायुमंडल में भटकने वाला (अंतलिक्खा-)

(caro). पकड़ लिया (gayha)

तीन-खिड़की वाला अच्छा काम (tisūlaṃ sugataṃ),

फिर मैं आकाश में चला गया।

बुद्ध ने जंगल को आग की तरह रोशन कर दिया

एक पहाड़ी की चोटी पर, जो पूरी तरह से मिलती-जुलती है

चंद्रमा, और साल संप्रभु खिलने के समान

फूलों के साथ (फुल्लिटो)।

वन की चोटी (वनग्गा) से बाहर आकर,

बुद्ध की किरणें विकीर्ण हुईं और समान रूप से फैलीं

(संकासा) नरकट की आग के रंग का (न◌ँग्गी);

इसे देखकर मेरा मन श्रद्धा से भर गया।

प्रसन्न (pasādayiṃ)। जैसा मैंने चाहा (vicinaṃ)।

मुझे स्वर्गिक मधुरता का अनुभव हुआ (अद्दसम्)-

सुगंधित (देवगंधिकं) कनिकारा फूल।

तीन फूल लाकर मैंने अपना

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

बुद्ध की शक्ति के कारण, मेरे तीनों

फिर फूलों ने (स्वयं को) बना लिया

गुरु के लिए एक छाया, उनके डंठल

ऊपर पंखुड़ियाँ और नीचे पंखुड़ियाँ। इस कारण

उस कार्य के लिए, बहुत बढ़िया, साथ ही साथ

मेरी इच्छा (चेतना) और स्वयं के कारण-

संकल्प (पनिधी), मैं ऊपर गया

तावतिंसा, जब मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया।

वहाँ मेरा आलीशान घर अच्छी तरह से बना हुआ था और प्रसिद्ध था।

कनिकारी के रूप में, जो साठ लीग दूर थी।

(योजना) ऊंचाई में और तीस लीग

(योजना) पार (विट्ठतः)।

एक हजार खंड (कंड़म्), एक सौ

झंडों से सजे बुर्ज (भेंदु)

(धजलु) सोने से बना (हरितुमायम्);

एक लाख शिखर (निय्युहा)

मेरे में यह स्पष्ट हो गया (पातुभविंसु)

हवेली।

सोने और रत्नों से बने सिंहासन (पल्लंका)

और लोहितंक (माणिक) के साथ-साथ क्रिस्टल भी।

वे जहाँ भी और जब भी थे, वहाँ मौजूद थे।

वांछित।

बहुत ही महंगा बिस्तर, जिस पर चादर बिछी हो (युतं)

गद्दे का वर्गीकरण (विकति), (तुलिका),

कालीन के ऊपरी हिस्से पर बाल हैं

(उद्धलोमी) एक छोर पर (एकांतम्); कुंआ-

तकिया से सुसज्जित (समायुतं)

(बिम्बोहाना) भी वहाँ मौजूद थी।

अपने आलीशान घर से बाहर आने के बाद, मैं चलता रहा

एक दिव्य यात्रा पर विचरण करते हुए

(देवाचारिकं); जैसा मैं चाहता था

जाने के लिए, मैं मंडली से घिरा हुआ था-

दिव्य प्राणियों का कथन।

मैं उस फूल के नीचे खड़ा था जो बना था

मेरे ऊपर एक छत; चारों ओर एक

सौ मील (योजना) मुझे छाया दी गई थी

कनिकारा फूलों से ऊपर (चादितं)।

साठ हजार संगीत वाद्ययंत्र

सुबह से मेरा मनोरंजन किया (उपठहुं)

शाम तक (अयम्पातं); संगीतकार हमेशा

वे मुझे घेरे हुए थे; वे कभी थके नहीं।

(अतांडिता) रात और दिन।

वहाँ नृत्य, गायन और प्रहार के साथ

(तालेही) और पिटाई (वादितेही) मैं हैरान था

मैं स्वयं (रमामी) खेल भाव से (खिड्डा) और

मैं प्रसन्न था (रतिया);

kāmakāmahaṃ).

वहाँ भोजन और पेय प्राप्त करने के बाद मैंने

मैंने तीन लोगों के आवास में खूब आनंद लिया और

तीस; सुंदरियों के समूह के साथ

महिलाओं, मैंने खुद को सबसे शानदार तरीके से आनंदित किया।

हवेली।

पांच सौ बार (satānaṃpañcakkhattuṃ)

मैंने संप्रभुता को सुरक्षित किया (अकारयिं)

दिव्य प्राणी; तीन सौ बार

(सतानं तिनिक्खट्टुईं) मैं विश्वराज था;

विशेष संप्रभुता (पदेसरज्जं) में

प्रचुरता (विपुलं) की गणना नहीं की जा सकती थी

संख्यात्मक रूप से (gananāto asaṅkhiyaṃ).

जैसे ही मैं अपने बार-बार के चक्करों में घूमता रहा

इस और उस अस्तित्व में पुनर्जन्म (भावे)

भावे), मैंने बहुत धन अर्जित किया; वहाँ था

मेरी संपत्ति में कोई कमी नहीं हुई;

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है-

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली विशेष भेंट।

मैं अपने नियमित चक्करों में इधर-उधर भटकता रहा।

दो प्रकार के अस्तित्वों में पुनर्जन्म,

पहले दैवीय और फिर मानवीय; मैं नहीं

किसी अन्य गंतव्य को याद रखना (जाहमी)

(गति); यह फलदायी परिणाम है

बुद्ध के प्रति मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट।

मैं दो प्रकार के लोगों में पैदा हुआ (पजयामी) था

परिवार; शाही योद्धा (खत्तिया)

और ब्राह्मण; मुझे याद नहीं (जानामि)

निम्न सामाजिक वर्ग के परिवार में होना

स्थिति (nīce kule); यह फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

बुद्ध।

हाथी परिवहन, घोड़े द्वारा परिवहन,

पालकी (सिविका) और रथ (संदमिका);

मुझे इन सभी चीजों का लाभ मिला; यही है

मेरी श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का फलदायी परिणाम

बुद्ध को।

महिला दासों की भीड़, दासों के समूह

(दासगेना), सुसज्जित महिलाएं; मैंने प्राप्त किया

लेकिन ये सब; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

बुद्ध।

रेशम और ऊनी वस्त्र (कोसेयाकम्बलियानी),

लिनन (खोमा) और सूती कपड़े, मैंने प्राप्त किए

लेकिन इन सब के परिणामस्वरूप यही फलदायी परिणाम प्राप्त हुआ है।

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट।

नए कपड़े, ताजे फल, पौष्टिक भोजन

मुझे सर्वोत्तम स्वाद (नवग्गरसभोजनम्) प्राप्त हुआ।

लेकिन इन सबका यही फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट।

इसे चबाओ; इसे खाओ; इस पर सो जाओ

यह बिस्तर; मुझे बस ये सब मिला; यह है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

मुझे हर जगह सम्मान प्राप्त था; मेरी प्रतिष्ठा

बहुत ऊपर चला गया; मेरा किनारा बहुत अच्छा था

(पक्खो) सदैव; कभी भी विभाजित नहीं (अभेज्जा)

मेरे श्रोता (पेरिसो) थे; मैं सबसे अधिक था

मेरे रिश्तेदारों में सबसे बेहतरीन; यही है

मेरी श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का फलदायी परिणाम

बुद्ध को।

मुझे ठंड और गर्मी का ज्ञान नहीं था;

किसी प्रकार की तीव्र गर्मी (परलाहो) मौजूद नहीं थी;

इसके अलावा, मेरे दिल में ऐसा कुछ भी नहीं था

कोई भी मानसिक कष्ट (चेतसिकं दुक्खं)।

सुनहरे रंग का होकर मैं भटकने लगा।

मेरे बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के बारे में

लघु एवं वृहत्तर अस्तित्व (भवः)

मुझे त्वचा के रंग फीके पड़ने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

(वेवन्नियं); यही फलदायी परिणाम है

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट।

दिव्य लोक से विदा होने के बाद,

और मेरे उज्ज्वल द्वारा प्रेरित (codito) होने के कारण

आधार (सुक्कमूलेना) मेरा पुनर्जन्म शहर में हुआ

सावत्थी का, समृद्ध (सुअद्धके)

धनी ब्राह्मण परिवार (महासाले)।

पांचों धागों का त्याग (हित्वा) कर लेने के बाद

(गुणे) कामुक सुखों (काम) के, मैं

मैं बेघर भिक्षु बन गया; मैं वहीं था

मेरे जन्म के सातवें वर्ष में जब मैंने यह आयु प्राप्त की

अरहंत पद।

बुद्ध, दृष्टिहीन,

मुझे मेरे गुणों (गुणों) का पता चला

पूर्ण दीक्षा (उपसम्पदयी); युवा और

कोमल (तरुनो), मैं वस्तु था

आदर (पूजानियो); यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

बुद्ध।

मेरी दिव्य दृष्टि निर्मल (विशुद्ध) है;

मैं समाधि में निपुण हूँ;

मैंने उच्चतर स्तर पर पूर्णता प्राप्त कर ली है।

ज्ञान; यह इसका फलदायी परिणाम है

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट।

तदनुसार मैंने विश्लेषणात्मक क्षमता प्राप्त कर ली है।

ज्ञान प्राप्त करें और उसमें निपुण बनें

जादुई शक्तियों की नींव (इद्धिपाद)।

मैंने अपने कर्मों में पूर्णता प्राप्त कर ली है।

(धोम्मेसु); यही फलदायी परिणाम है

बुद्ध को मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट।

यह तीस हजार युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने विशेष रूप से अपनी श्रद्धा व्यक्त की

बुद्ध को अर्पित की गई वस्तु; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व (दुग्गति); यही है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी:...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से परिपूर्ण अरहंत बनने के बाद, वे सूली पर चढ़ाए जाने के बाद उठे (सूलतो), आकाश में खड़े हुए और दूसरों के प्रति सहानुभूति (परानुदयाय) के कारण चमत्कार (पाटिहारियं) प्रदर्शित किया। असंख्य लोग चकित और आश्चर्यचकित हो गए (अच्चरियब्भूतचित्त)। वहीं उनका घाव (वनो) ठीक हो गया (सन्रूङ्हि)। जब भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "मित्र! उस पीड़ा (दुक्खं) का अनुभव करते हुए, आप आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सनां) के विकास में कैसे लीन हो सके," तो उन्होंने यह दिखाने के लिए ये दो श्लोक कहे; "मित्रों! संसार रूपी सागर में मेरी हानि (आदिनवो) कितनी अधिक (पगवे) थी? मैंने संस्कारों (संखार) की प्रकृति को भली-भांति समझ लिया था; इस प्रकार मैं पीड़ा (दुक्खं) का अनुभव करते हुए भी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को उत्तरोत्तर विकसित करने और विशिष्टता (विशेष) प्राप्त करने में सक्षम रहा।"

121. “कोई अस्तित्व नहीं है”

जो स्थायी (निक्का) है; न ही

क्या ये मिठाइयाँ (संखारा) हैं?

स्थिर (सस्साटा); वे समूह

(खंडहा) अस्तित्व में आया (उप्पज्जन्ति)

और कभी-कभी मर जाते हैं (कैवांटी)

(अपरापरं).

122. इस हानि को समझने के बाद,

मैं किसी भी चीज की इच्छा से मुक्त हो गया हूँ।

अस्तित्व; मैं बच निकला हूँ (निस्साटो)

सभी इंद्रिय सुख (काम); मेरे द्वारा

आसवेक्खया (कैंकर) का विलुप्त होना

प्राप्त कर लिया गया है।

वहाँ, n'atthi koci bhavo nicco का अर्थ है: कर्म का अस्तित्व (कम्मभाव), स्वतः उत्पन्न होने का अस्तित्व (उपपत्तिभाव), कामुक सुख का अस्तित्व (कामभाव), रूप का अस्तित्व (रूपभाव), निराकार अस्तित्व (अरूपभाव), बोध का अस्तित्व (संज्ञा), अबोध का अस्तित्व (नेव संज्ञासंज्ञा), एक तत्व का अस्तित्व (एकवोकार), चार तत्वों का अस्तित्व (चतुवोकारे), पाँच तत्वों का अस्तित्व (पंचवोकार); इस प्रकार, वर्गीकरण (भेदो) इस प्रकार है; वहाँ निम्न (हीनो), मध्यम (मज्झिमो), उच्च (उक्कठो), दीर्घायु (दीघायुको), अत्यंत आनंदमय (सुखबहुलो), विविध रूप से सुखी और दुखी (सुखदुक्खो) भी हैं; इस प्रकार, इसका विस्तृत वर्णन (विभागो) इसी प्रकार है; कोई भी ऐसा नहीं है जो स्थायी (निक्को), स्थिर (धूवो), दृढ़ (थिरो) हो और सांसारिक पदार्थों के अधीन न हो (अपलोकियधम्मो), क्योंकि वह किसी न किसी परिस्थिति (कारणं) पर निर्भर (पटिच्च) होकर अच्छी तरह से उत्पन्न (समुप्पन्नता) हुआ है। अतः, इस प्रकार, संखारा वापि सस्सता न'अत्थि (न ही ये व्यंजन (संखारा) शाश्वत हैं); इस प्रकार, इसकी व्याख्या (उयोजना) है। वास्तव में, पाँच तत्वों (खंडे) से उत्पन्न (उपादाय) होकर, जिन्हें “संखारा (मिश्रण)” नाम प्राप्त हुआ, क्योंकि वे अस्तित्व (भव) के उद्देश्य (सामञ्ञाय) से कारणों (पच्चयेहि) द्वारा एक साथ गढ़े (संखत) गए थे, वे मात्र मिश्रण (संखारा) बन गए और इस प्रकार संभूत (संभूत) होने के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु के कारण परिवर्तित (खराब) हो जाते हैं; इस प्रकार, वे शाश्वत न होने के कारण परिवर्तन (खराब) के अधीन (विपरीत) होते हैं। इसी प्रकार, वास्तव में, उन्हें “संखार” कहा जाता है। इसी कारण उन्होंने कहा:— uppajjanti ca te khandhā, cavanti aparāparaṃ. वे पाँच समुच्चय (खंडा), जिनका वर्णन अस्तित्व के गुण (भाव) और मिठाई के प्रकार (संखार) में किया गया है, अपने कारण (पच्चय) के अनुसार समय-समय पर (अपरापर) उत्पन्न (uppajjanti) होते हैं; उत्पन्न (uppanna) होकर, वृद्धावस्था के कारण वे सर्वव्यापी उत्पीड़क (परिपीलीता) हो जाते हैं और विलीन (परिभिज्जन्ति) हो जाते हैं; यही अर्थ है। इससे वे यह दर्शाते हैं कि वे पाँच समुच्चय जिन्हें “भाव और संखारा का स्वभाव उदय और अपराजय होता है। चूंकि तीनों अस्तित्वों को भी एक साथ रखा गया है, जो उस व्यक्ति के लिए प्रज्वलित होने के समान है जो तीनों विशेषताओं को ऊपर उठाने के बाद उनका ध्यान करता रहता है, इसलिए जो व्यक्ति आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के माध्यम से आदिनव दोष को समझ लेता है।संस्कारों (संस्कारा) ने अनित्यता (अनिच्चलक्खनेहि) के गुणों के माध्यम से

देखा है और वे उस एक (उपट्ठहंति) के प्रति दुख (दुक्खा) और अनात्म (अनत्त्व) के रूप में स्पष्ट दृष्टि (विभूततरा) से देखते हैं; इसी कारण भगवान ने कहा: "जो अनित्य है वह दुख (दुक्खा) है; जो दुखी (दुक्खं) है वह अनात्म (अनत्त्व) है।"

क्योंकि तीनों अस्तित्व उस व्यक्ति की ओर (उपत्तहन्ति) खड़े होते हैं जो तीन विशेषताओं (तिलक्खनं) तक ले जाने (आरोपेत्वा) के बाद, जलते हुए (आदित्तं) घर (अगारं) के समान, उचित खतरे (सप्पतिभया) के साथ, निरंतर ध्यान (सम्मसन्तस्स) करता है, इसलिए उन्होंने कहा: — "भवनंहि अनत्थिको।" इस प्रकार, हालांकि, हर तरह से अस्तित्वों से विलीन हो रहे (विनिवत्तियमानस्स) व्यक्ति के लिए कामुक सुखों (कामेसु) के प्रति किसी भी प्रकार का आदर (अपेक्खाया) भी उत्पन्न (संभवति) नहीं होता; इसलिए उन्होंने कहा: "निस्सातो सब्बकामेहि, यानी मैं ऐसा हूँ; यही व्याख्या (योजना) है। मैं दिव्य इंद्रिय सुखों के साथ-साथ मानवीय इंद्रिय सुखों से भी विमुख (निवत्तिचित्तो) हूँ: यही अर्थ है। पत्तो मे आसवखयो का अर्थ इस प्रकार है: — क्योंकि इस प्रकार मैंने अपने संस्कार (संस्कार) भलीभूत (सुपरिमज्जिता) कर लिए, जन्मों में सभी हानियों को भलीभूत कर लिया और इंद्रिय सुखों (कामेसु) से विरक्त (अनासत्तमानसो) हो गया, इसलिए मैंने सूली (सूली) के शीर्ष पर बैठने का विचार किया, और मुझे आसवक्षों (आसवक्खय), निर्वाण और अरहंतत्व की प्राप्ति हुई। उन्होंने मुझे सलाह दी। भिक्षुओं ने इस प्रकार कहा:— "प्रयास (उस्साहो) किया जाना चाहिए (करणीयो) न केवल मेरे साथी श्रेष्ठ जीवन के नेताओं (सब्रह्मचारीहि) द्वारा, जो अभी तक किसी भी प्रकार की उपलब्धि प्राप्त न करने के मन में हैं (अपत्तमनसेहि)।"

थेरा उत्तरा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(122):पिंडोला-भारद्वाज

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (122) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
122. पिण्डोला-भारद्वाज
बुद्ध युग में कोसंबी के राजा उदेना के पुजारी के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम भारद्वाज रखा गया। [1] [111] तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त करने और ब्राह्मण (पुजारी) युवकों के एक विद्यालय में भजनों का सफलतापूर्वक शिक्षण करने के बाद, उन्हें यह कार्य अरुचिकर लगने लगा। उन्हें छोड़कर वे राजगृह चले गए। वहाँ बुद्ध के भिक्षु संघ को प्राप्त उपहारों और अनुग्रहों को देखकर वे उसमें प्रवेश कर गए। उन्होंने गुरु की विधियों से आहार संबंधी असंयम पर विजय प्राप्त की और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्तियाँ) प्राप्त कीं।

तब उन्होंने भगवान के समक्ष घोषणा की कि वे मार्ग या फल के संबंध में संदेह में पड़े किसी भी भिक्षु के प्रश्नों का उत्तर देंगे, इस प्रकार उन्होंने अपनी 'सिंह गर्जना' की। [2] इसी कारण भगवान ने उनके विषय में कहा: 'मेरे शिष्यों में जो सिंह गर्जना करने में श्रेष्ठ हैं, वे पिंडोल-भारद्वाज हैं।' अब उनके पास एक पूर्व मित्र, एक कंजूस स्वभाव का ब्राह्मण (पुजारी) आया। थेरा ने उसे दान देने के लिए राजी किया और दान भिक्षु संघ को सौंप दिया। और क्योंकि ब्राह्मण (पुजारी) का मानना था कि थेरा लालची और स्वार्थी हैं, इसलिए थेरा ने उन्हें धार्मिक दान के विशेषाधिकारों के बारे में उपदेश देना शुरू किया और कहा:

[123] नायिदौ अनायेन जीवितान् नाहारो हदयस्सा संतिको,॥
अहारथितिको समुस्सयो इति दिस्वन कैरामि एसानं ॥॥

[124] पांकोटि हि नं पवेदयुm यायं वंदनपूजन कुलसु,॥
सुखुमं सब्बाm दारुल्लाहअ सक्करो कपूरिसेण दुज्जहो' ती॥॥

इत्थं सुदां अयस्मा पिण्डोलाभारद्वाजो थेरो गाथायो अभिसित्था' ति.।

[123] हमें नियम और विधि के बिना नहीं जीना चाहिए।
लेकिन भोजन अपने आप में मेरे दिल के करीब कभी नहीं होता।
'पोषण से शरीर का पोषण होता है': [3] यह मैं जानता हूँ, और इसीलिए मैं भिक्षा की तलाश करता हूँ।

[124] यह एक [धोखेबाज़] दलदल है: - बुद्धिमान लोग अच्छी तरह जानते हैं:
धनी लोगों से मिलने वाले ये धनुष, उपहार और दावतें,
मांस में धंसे हुए स्टील के टुकड़े की तरह हैं,
मूर्ख भिक्षुओं के लिए इससे निकलना मुश्किल है। [4]

[1] भारद्वाज ब्राह्मण (पुजारी) वंश का नाम प्रतीत होता है, यद्यपि यहाँ इसे व्यक्तिगत नाम के रूप में दिया गया है (एस. विभ., पृ. 6; सांग्यी., इ. 160)। अतः या तो पिण्डोल उनका व्यक्तिगत नाम है, या यह एक उपनाम है, जो हमारे 'चंक' के समान है, और उनकी पूर्व की लालची आदतों से जुड़ा है। उदाना 4.6 में उनके पूर्ण आत्म-संयम का वर्णन है। राजा उदेन द्वारा उपदेश देने के कारण उन्हें सताया जाता है (जाट., इ. 375), लेकिन बाद में राजा उनसे परामर्श करते हैं और उनके आचरण में सुधार करते हैं (सान्ज्य., इ. 110)। सस्ते में चमत्कार करने के लिए उन्हें फटकारा जाता है (विनय ग्रंथ, इ. 78)। उनके दो अज्ञात श्लोक उद्धृत किए गए हैं (मिलिंद, इ. 335, 345)।

[2] सक्षमता या कार्य करने की तत्परता की पुष्टि के लिए सामान्य मुहावरा (एंग. निक., i. 23)।

[3] रूढ़िवादी सिद्धांत में शामिल: 'सभी प्राणी पोषण द्वारा कायम हैं' (दीघा निक., iii. 211; खुद्दाका पाठ)।

[4] श्लोक 495, 1053 देखें। जातक, iv. 222 (पाठ) की तुलना करें।

2.1-2 [122] पिंडोलभारद्वाजत्थेरा के श्लोक पर टीका
'नयिदं अनय्येन' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पिंडोल भारद्वाज का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय इनका जन्म सिंह की कोख में हुआ था और ये एक पहाड़ी गुफा में रहते थे। भगवान बुद्ध ने इनका अनुग्रह करने के लिए, सिंह के चरने के लिए जाने के समय गुफा में स्थित सिंह की मांद में प्रवेश किया और निरोध ध्यान में लीन हो गए। शेर ने अपना चारागाह जीत लिया, घर लौट आया, गुफा के द्वार पर भगवान बुद्ध को देखा, प्रसन्न और आनंदित हुआ, जलीय और शुष्क भूमि के फूलों से उन्हें आदरपूर्वक भेंट की, उसका मन प्रसन्नतापूर्वक धार्मिक हो गया, और वह बुद्ध के शेर की दहाड़ से संबंधित जागरूकता के साथ रात के तीन पहरों (तिसु वेलासु) में जंगल में खतरनाक जानवरों (वाळमिगे अपनेतुं) को भगाने के लिए खड़ा रहा, ताकि भगवान बुद्ध की रक्षा कर सके। जिस प्रकार उसने पहले दिन किया था, उसी प्रकार शेर ने सात दिनों तक आदरपूर्वक भेंट की। सात दिन बीत जाने पर, भगवान बुद्ध निरोध ध्यान से उठे और बोले; "इस एक के लिए इतनी पर्याप्त योग्यता (उपनिषय्यो) सिद्ध होगी (वत्तिस्सति)," यह कहते हुए सिंह आकाश में विचरण करने लगा और अपने मठ तक पहुँच गया। पालिलेय्यक हाथी के समान, सिंह बुद्ध से वियोग (वियोग) के कष्ट (दुक्खा) को सहन न कर पाने के कारण मर गया और हंसवती नगर के एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर वह नगरवासियों के साथ मठ गया, सत्य की शिक्षा सुनी, सात दिनों तक महान दान किया, जीवन भर पुण्य कर्म किए, जन्म-मृत्यु के चक्र में समय-समय पर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करता रहा और अंत में कोसंबी में राजा उतेना के निजी पुरोहित (पुरोहित) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। वह भारद्वाज के नाम से जाना गया। वयस्क होने पर उन्होंने तीन वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और पाँच सौ युवकों को मंत्र सिखा रहे थे; अपने उच्च नैतिक स्वभाव और अनुचित आचरण के कारण वे सभी युवकों द्वारा बहिष्कृत कर दिए गए। वे राजगृह गए, वहाँ उन्होंने भगवान बुद्ध और भिक्षुओं के वंश को मिलने वाले लाभ और सम्मान का ज्ञान प्राप्त किया, बुद्ध के मार्गदर्शन में भिक्षु बन गए, भोजन की उचित सीमा का ज्ञान न होने के कारण वे भटकते रहे। गुरु द्वारा अपने विशेष तरीके से उचित सीमा का ज्ञान प्राप्त करने पर उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में स्वयं को लगा दिया और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

मैं पहले हिरण (शेर) का शिकारी था।

फिर वे जंगल में इधर-उधर भटकने लगे;

मैंने बुद्ध को देखा, जो विरजं से मुक्त थे।

सभी सत्यों में निपुण (पारागुं)

(धम्म)।

पियाल का फल तोड़ने के बाद

पेड़, मैंने सबसे अच्छे को भी यही पेशकश की।

बुद्ध। मैं उनके प्रति श्रद्धापूर्वक प्रसन्न था।

पुण्य की खेती (पुण्खेत्त)।

यह इकत्तीसवें युग (कप्पा) में था।

वर्तमान से पहले, कि मैं तब

उसने फल पेश किए। मुझे याद नहीं है।

कोई भी दुष्ट अस्तित्व (दुग्गति); यही है

फल अर्पण का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने मन ही मन कहा: "भगवान बुद्ध की उपस्थिति से, शिष्यों को जो कुछ प्राप्त करना चाहिए था, वह मैंने प्राप्त कर लिया है," और भिक्षुओं के बीच उन्होंने सिंह की गर्जना करते हुए कहा: "जिस किसी को मार्ग (मार्ग) और उसके फल (फल) के बारे में संदेह हो, वह मुझसे पूछे।" इस कारण भगवान बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार इस प्रमुख स्थान (एतदग्ग) पर स्थापित किया: "हे भिक्षु! यह मेरे शिष्यों में, सिंह की गर्जना करने वाले भिक्षुओं में, प्रधान (एतदग्गम्) है, अर्थात् यह पिंडोल भारद्वाज।" एक दिन, एक स्वार्थी (मच्छरिं) विधर्मी ब्राह्मण और उसके तत्कालीन साथी, जो एक गृहस्थ थे, के प्रति सहानुभूति होने पर, जो उनके समक्ष आए थे, उन्होंने उन्हें दान (दानकथां) का सिद्धांत सिखाया, और यद्यपि बाद वाले ने भौंहें चढ़ाईं (भाकुटिं कट्वापि), यह सोचते हुए कि: "यह मेरी संपत्ति को नष्ट करने की इच्छा रखता है;" और जब उनसे कहा गया: "मैं आपको भोजन अर्पित करता हूँ," तो उन्होंने उसे पुरोहितों (संघ) को अर्पित कर दिया और कहा: "इसे पुरोहितों को दीजिए, मुझे नहीं।" फिर, जब ब्राह्मण ने (यह सोचकर कि "यह मेरे द्वारा अधिक भेंट चढ़ाने का इच्छुक है," असंतोष प्रकट किया, तो दूसरे दिन थेरा ने उन्हें धर्म के स्वामी द्वारा पुरोहितों के प्रति किए गए प्रायश्चित भेंट के महान फल (महाप्पलभाव) को प्रकट करके प्रसन्न किया और मन ही मन दो श्लोक बोले: "यह ब्राह्मण सोचता है कि मैंने उसे भोजन के लालच के कारण भेंट चढ़ाने के लिए प्रेरित किया है।" लेकिन वह इस बात को नहीं समझता कि मुझे पोषण के हर पहलू का सर्वांगीण ज्ञान है; अब मैं उसे यह बताने जा रहा हूँ:

123. "यह जीवन इसके बिना नहीं जिया जाता है"

व्यवस्थित विधि (नया); पोषण-

यह किसी भी प्रकार का शांत करने वाला पदार्थ नहीं है।

हृदय; संचित शरीर

(समुस्सायो), पोषण पर निर्भर रहता है

(आहरट्टितिको); पता चलने पर

इसलिए, मैं खोज में निकल पड़ता हूँ (कारामी)।

भिक्षा-भोजन (एसाना) का।

124. यह श्रद्धांजलि (वंदना) और

श्रद्धापूर्वक भेंट (पूजा)

गृहस्थ (कुलेसु) वास्तव में हैं,

कहा जाता है कि यह (अवेकयुं) कीचड़ (प˥का) है;

सुखुम काँटा है

निकालना कठिन (दुरुब्बाहं);

आदरपूर्वक भेंट (सक्कारो) करना कठिन है।

किसी बुरे व्यक्ति द्वारा त्याग दिया जाने वाला पंथ (दुज्जोहो)

man (kāpurisa).

वहाँ, Nayidaṃ anayena jīvitaṃ का अर्थ इस प्रकार है:— मेरे द्वारा जिया गया यह जीवन बिना विधि (anaya), बिना उचित आचरण (ñāya), और न ही बांस दान (veḷudāna), पुष्प अर्पण आदि की माँग (abhāvato) के कारण होता है, क्योंकि जीवन (jīvita) की लालसा (nikanti) का अभाव (abhāvato) है। Nāhāro hadayassa santiko का अर्थ है: लाया गया भोजन (āhāro) (āhariyamāno) हृदय और मन की शांति का स्रोत नहीं बनता, जैसे कि सही मार्ग (magga) और फल (phala) का ज्ञान; बल्कि यह केवल भूख (khuda) को शीघ्रता से (sajjukaṃ) दूर करता है (mattaṃ); यही इसका अर्थ है। दूसरे शब्दों में, नाहारो हदयस्स संतिको का अर्थ है: वह भोजन जो रस-लालसा का स्रोत है, मेरे हृदय में उपस्थित नहीं है और न ही उससे जुड़ा है, क्योंकि मुझमें स्वयं रस-लालसा का अभाव है। विद्वान इसे "संतिके" भी पढ़ते हैं। वास्तव में, जो कोई भोजन का लोभी होता है, वह लाभ और आदर-अर्पण की खोज में भटकता रहता है; उसका भोजन उसके हृदय में उपस्थित माना जाता है, क्योंकि वह सदा भोजन के प्रति सजग रहता है। दूसरी ओर, जिसने भोजन को सर्वथा समझ लिया है, उसकी इच्छा और आसक्ति (राग) उससे दूर हो जाती है; भोजन उसके हृदय में उपस्थित नहीं माना जाता, क्योंकि उसमें केवल यही सजगता रहती है कि "अरे, मुझे यह कैसे मिलेगा?" इत्यादि। यदि वास्तव में जीवन के लिए कोई लालसा (निकन्ति) और भोजन के लिए कोई तृप्ति नहीं है, तो फिर भिक्षा के लिए क्यों भटकते हो? इस प्रश्न पर विचार करते हुए (अनुयोगं) उन्होंने कहा: "आहारत्तितिको समुस्सयो; इति दिस्याना चरामि एशानं," जिसका अर्थ है: भोजन करना जीवन निर्वाह (ठिति) और इसके लिए साधन (पच्चय) की शर्त (ठाण) है; अतः, आहारत्तितिको (भोजन पर निर्भर रहना)। मैं भिक्षा की तलाश करता हूँ, मैं इसकी खोज में भटकता हूँ, इस उद्देश्य (अत्थं) को अपनी बुद्धि (बुद्धि) में स्थापित करके, इस प्रकार समझकर, इस प्रकार देखकर; "शरीर (कायो) संचय (समुस्सायो) है, जिसका व्यवहार (वुत्ति) भोजन पर निर्भर (पटिबद्ध) है;" इस प्रकार, इसका अर्थ है।

उन्होंने "पंको" से शुरू होने वाला एक श्लोक सुनाया, जिसका अर्थ यह था: "मुझ जैसे भिक्षुओं को इस प्रकार नहीं सोचना चाहिए: गृहस्थ परिवारों के पास जाकर धार्मिक आवश्यक बातों (पच्चया) के उद्देश्य से (निमित्तं) वे वहाँ प्रणाम करने, आदरपूर्वक भेंट चढ़ाने, लाभ प्राप्त करने और आदरपूर्ण भेंट (सक्कामा) देने में बंध जाते हैं (बज्जति)। उस श्लोक का अर्थ है: — या अयं का अर्थ है: जो भिक्षु धार्मिक

आवश्यक बातों (पच्चया) का संकेत देते हुए (निमित्तं) उनके पास आए हैं; कुलेसु का अर्थ है: घरों में रहने वालों के बीच (पवत्तिसति) स्तुति (गुण) और आदर (संभव) के साथ-साथ पूजा (आदरपूर्ण भेंट) भी होगी; क्योंकि बुद्ध और अन्य ऋषियों ने अवेदयुं (प्रकट) किया है। (अभञ्ञासुं) या सूचित (पवेदेसुं) के रूप में पंको, कीचड़ (कद्दमो) क्योंकि इसका अर्थ (अत्थ) डूबने (ओसीडापन) का कारण बनना है, साथ ही यह उन लोगों के लिए अपवित्रता की स्थिति पैदा करता है जिन्होंने अपने मन का विकास नहीं किया है (अभावितत्तनं)। इस कारण, (श्रद्धापूर्ण भेंट) अच्छे लोगों (सप्पुरिसानं) के लिए बंधन (बंध) नहीं बनती क्योंकि उन्होंने 'प्रारंभिकत:' (पगेवे) श्रद्धापूर्ण भेंट (सक्कार) की लालसा (आसा) को समाप्त (पाहीन) कर दिया था। दूसरी ओर, दुष्ट लोगों की श्रद्धापूर्ण भेंट (सक्कार) की लालसा (आसा), क्योंकि इसे स्पष्ट रूप से समझना कठिन है (दुविञ्ञेय्यसभावताय), क्योंकि यह उत्पन्न करती है (जननातो) पीड़ादायक उत्पीड़न (पील) के कारण, जो भीतर (अन्तो) चुभता (तुदानतो) है और जिसे निकालना (उद्धरितुं) संभव नहीं है, वह सुखुमं सल्लं दुरुब्बहं (एक महीन कांटा जिसे निकालना कठिन है) है। इसके बाद भी, इसी कारण से, सक्कारो कापुरिसेन दुज्जहो (दुष्ट व्यक्ति के लिए आदरपूर्वक भेंट करना कठिन है): क्योंकि उसने (अप्पटिपज्जनातो) इसके उचित निवारण (पटिपत्ति) के अभ्यास में प्रवेश नहीं किया है, इसलिए इसे निकालना कठिन है: आदरपूर्वक भेंट (सक्कारासा) की लालसा का त्याग करने से इसका निवारण (पाहीनो) होता है। यह सुनकर ब्राह्मण थेरा से अत्यंत प्रसन्न हुआ।

थेरा पिंडोला भारद्वाज के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(123):वल्लिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (123) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
123. वल्लिया [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में एक प्रख्यात ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम वल्लिया रखा गया। किशोरावस्था में और इंद्रियों के वश में रहते हुए, उन्होंने पुण्य मित्रताएँ बनाईं, जिनके माध्यम से वे परम पूज्य (बुद्ध) के संपर्क में आए, आस्था प्राप्त की और भिक्षु संघ में प्रवेश किया, जिसके शीघ्र ही उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अतीत, उसके सांसारिक वस्तुओं और इच्छाओं पर चिंतन करते हुए, और आर्य मार्ग द्वारा उन सभी से विमुख होने पर, उन्होंने इस प्रकार अन्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की:

[125] मक्कतो पञ्चादवारायौ कुतिकायऽ पसाक्किया,॥
द्वारेण अनुपरियति घटयन्तो मुहुँ मुहुँ॥ ॥

[126] तिट्ठा मक्का मां धावि नहि ते तां यथा शुद्ध,॥
निग्घितोसि पन्नया नेवा1 दूरं गमिसासि' ति.॥ ॥

[125] छोटी पाँच दरवाज़ों वाली झोपड़ी के भीतर एक बंदर [2] घूमता था, और दरवाज़े से दरवाज़े तक गोल-गोल
घूमता था, बार-बार वार करते हुए।

[126] रुको, बंदर! भागो मत! क्योंकि अब तुम्हारे लिए
यह वैसा नहीं है जैसा पहले हुआ करता था।
तर्क ने तुम्हें बंदी बना लिया है।
अब तुम कभी भी [पहले की तरह आज़ादी में] दूर तक नहीं भटकोगे।

[1] तुलना करें, एल.आई.आई., और सी.एक्स.एल.आई.वी.

[2] चित्त (चेतना) को साम्युत्त निकाय (ii.9) में वृक्ष-बंदर की बेचैन, बदलती छलांगों के रूप में चित्रित किया गया है। टीका इस उपमा को वर्तमान में नियंत्रित बंदर पर लागू करती है। तिब्बती जीवन के चरणों (भूतकाल, वर्तमान और भविष्य) के चित्रों में बंदर को विज्ञान के प्रतीक के रूप में पाया जाता है, जो चेतना या इंद्रिय-ज्ञान का पर्यायवाची है (देखें जे.आर.ए.एस., 1894, पृष्ठ 367 आगे)। जाहिर है, तिब्बती लामा परंपरा को भूल गए थे, या उन्होंने ऐसी व्याख्या दी थी जो उनके चिकित्सा वार्ताकार, मेजर वाडेल को रुचिकर लगेगी , या बाद वाले ने उनके अपूर्ण रूप से समझे गए विवरणों से एक पश्चिमी व्याख्या विकसित की। तुलना करें भजन 1111 में श्लोक 1111।

2.1-3 [123] वल्लियाथेरा के छंद पर टिप्पणी
मक्काटो पंचद्वरायं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वल्लिया का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए और वर्तमान से पूर्व इकत्तीसवें युग (कप्पा) में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, वे एक दिन किसी कार्य से वन में गए। वहाँ उन्होंने एक वृक्ष के नीचे निवास करते हुए नारद नामक एक मौन बुद्ध को देखा। वे श्रद्धा से भर गए, उन्होंने सरकंडों (नाळ) से एक हॉल (साला) बनाया, उस पर घास (तिना) की छत (छदेतवा) डाली और उसे (उन्हें) अर्पित किया। उन्होंने चहलकदमी के लिए स्थान को भी साफ किया, उस पर रेत बिखेरी और उसे भी (उन्हें) अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम वल्लिया था। वयस्क होने पर, उन्होंने यौवन (योब्बन) प्राप्त किया, अपनी इंद्रियों के वश में हो गए (इन्द्रियवासिको), और भटकते हुए, अपने मित्रों के साथ संगति (कल्याणमित्तसंसग्गेन) के कारण भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास के मार्ग पर चल पड़े और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

“हिमावंता से कुछ ही दूरी पर एक पहाड़ी थी

हारिता नाम का एक व्यक्ति; स्वयं मौन हो जाना

उस स्थान पर नारद नामक बुद्ध निवास करते थे।

पेड़ की तलहटी में बिताया गया समय।

मैंने सरकंडे का घर बनाया है

घास से छत डाली; झाड़ू लगाने के बाद

(सोधायित्वाना) एक मठ-मार्ग

(चंकमा) मैंने इसे स्वयं को अर्पित किया-

मौन बुद्ध बनो।

उस अच्छे कार्य के कारण

संकल्प (चेतना) और संकल्प (पानिद-

(हीही), मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और चला गया

तावतिंसा स्वर्ग के लिए। वहाँ, मेरे लिए एक

हवेली अच्छी तरह से बनी थी, एक सरकंडे की झोपड़ी।

बनाया गया, साठ लीग (योजना) ऊँचा और

तीस लीग (वित्थतं) के पार।

चौदह युगों (कप्पा) तक मैंने आनंद लिया।

दिव्य जगत में। इकहत्तर बार

मैंने दैवीय संप्रभुता का प्रयोग किया।

मैं चौंतीस बार विश्व राजा रहा।

प्रचुर (विपुलं) मेरी क्षेत्रीय भाषा थी।

शासनकाल, जिसकी संख्यात्मक रूप से गणना करना असंभव है।

आध्यात्मिक महल में प्रवेश करने के बाद

(धम्मपासादा) से मिलता-जुलता (उपमं)

सभी प्रकार की उत्कृष्टता (वर)।

मैं वहां तब तक रहा जब तक मुझे अच्छा लगा।

साकियान पुत्र का विधान।

यह इकत्तीसवें युग (कप्पा) में था।

वर्तमान से पहले, कि मैं तब

मैंने यह काम किया। मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

नरकट के निवास (नालाकुटी) का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए दो श्लोक कहे, जिसमें उन्होंने यह बताया कि वर्तमान समय में उन्होंने श्रेष्ठ (आरिया) सही मार्ग (मग्गा) के माध्यम से अपनी इच्छाओं (यथाकाम) के अनुसार अपने मन में उत्पन्न होने वाली घटनाओं (पवत्तिया) को दबा दिया है, जैसे कि सौंदर्य (रूप) के भौतिक रूप आदि, उस समय जब वे आम लोगों में से एक थे।

125. यह बंदर बाहर निकल गया

(पसक्किया) पूरे पांचों पर-

दरवाजे वाली झोपड़ी (कुटिकायं), जाती है

तदनुसार (अनुपारीयेसी)

प्रभाव उत्पन्न करने वाला (घट्टयन्तो) क्षण

क्षण के बाद (मुहुं)।

126. स्थिर खड़े रहो (तिट्ठा) हे बंदर!

इधर-उधर मत भागो (धवी); वास्तव में,

आपके लिए, यह पहले जैसा नहीं है; आप

द्वारा (निघिटो) के अधीन रखा गया है

मेरी बुद्धि (पञ्ञा) का साधन; आप

वह भी ज्यादा दूर नहीं जाएगा।

वहाँ, गहट्टयन्तो का अर्थ है: फल खाने वाले बंदर की तरह, जो अपने अस्थिर लोभ (लोला) के कारण पेड़ को बार-बार हिलाता रहता है, एक शाखा को छोड़कर दूसरी को कई बार पकड़ता है, (मन) अपनी इच्छा के अनुसार भटकता रहता है, वह उसी इंद्रिय-विषय (आरम्मने) जैसे दृश्य रूपों (रूप) आदि के चारों ओर निरंतर (अभिक्खनं) घूमता रहता है, बिना रुके (अप्पदानेन) चेतना की निरंतरता (चित्तसंतान) प्राप्त करने के लिए, एक को छोड़ते और दूसरे को पकड़ते हुए, दृश्य रूपों (रूप) आदि जैसे इंद्रिय-विषयों से नेत्र द्वार आदि के माध्यम से। यहाँ वर्तमान काल का कथन है क्योंकि यह वर्तमान के निकट है (वत्तमान)। इस प्रकार चलते हुए (अनुपरियन्तो), तिट्ठ मक्काट माधवी (हे मन-बंदर! अब स्थिर खड़े रहो, दौड़ना मत); अब से दौड़ना संभव नहीं है; इसलिए, न हि ते तं यथा पुरे, का अर्थ है: क्योंकि उस शरीर-घर (अत्तभावगेहं) का उपयोग (सेवित) तुम्हारे द्वारा पहले की तरह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह बंद है; क्यों? निग्गिहितोऽसि पञ्ञाय (तुम अपने पैरों को काटकर, जो दुराचार (किलेसा) का कर्म (अभिसंखार) माना जाता है, सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान से पूर्णतः नियंत्रित (अच्चन्तिकं) हो चुके हो; अतः, नेव दुरं गमिसादि) वह इस प्रकार दर्शाता है: - तुम्हारा जाना केवल मन की अंतिम अवस्था (चरिमाक) तक ही सीमित है; तुम इस जन्म (अत्तभाव) से आगे दूसरे जन्म में ही जाओगे, और इसी प्रकार आगे भी। "नेतो दुरं" का पाठ भी है; अर्थ वही है।

थेरा वल्लिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(124): गंगातिरिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (124) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
124. गंगातीरिया

बुद्ध युग में सावत्थी में एक नागरिक के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम दत्ता रखा गया। [1] अपने गृहस्थ [113] जीवन में जब उन्होंने अज्ञानता के कारण पाप किया और अपने अपराध का बोध हुआ, तो वे इतने व्यथित हुए कि उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया)। अपने कर्मों से दुखी होकर उन्होंने तपस्या का मार्ग अपनाया और गंगा के किनारे ताड़ के पत्तों का तम्बू बनाकर रहने लगे। अतः वे गंगा-तीरिया (गंगा-किनारे चलने वाले) के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने किसी से बात न करने का संकल्प लिया। इस प्रकार वे पूरे एक वर्ष तक मौन रहे। दूसरे वर्ष, जिस गाँव में वे भिक्षा माँग रहे थे, वहाँ की एक स्त्री ने यह जानने की इच्छा से कि क्या वे गूंगे हैं, उनका कटोरा भरते समय दूध गिरा दिया। तब उन्होंने कहा, 'बस करो बहन।' परन्तु तीसरे वर्ष, अथक परिश्रम के बाद, उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इस पर उन्होंने मौखिक रूप से अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की, और इन छंदों में अपनी पिछली प्रक्रिया का वर्णन किया:

[127] तिअणै मे तलपट्टणं गंगातीरे कुटी काटा,॥
जवासित्टोवा मे पत्तो पसुकुलाṃ कै सिवाराṃ.॥ ॥

[128] द्विन्नै अन्तर्वासनां एका वाचा मे भासिता,॥
ततिये अन्तर्वासमहि तमोक्खन्धो पदालितो॥ ॥

[127] गंगा के किनारे मैंने ताड़ के तीन पत्ते लिए
और अपनी कुटिया बनाई; मेरा कटोरा कफ़न के बर्तन जैसा था
जिससे लोग शव पर दूध छिड़कते हैं;
मेरा वस्त्र कूड़े के ढेर के कचरे से काटा गया था। [2]

[128] दो साल, एक बरसाती से दूसरी बरसाती तक,
मैं [वहाँ रहा], और एक बार को छोड़कर एक शब्द भी नहीं बोला।
ऐसा ही तीसरे साल तक चलता रहा—तब
अंधकार की लंबी रात चीर कर प्रकाश में बदल गई।

[1] = डोनटस। उनकी कहानी—कि कैसे उन्होंने अपनी माँ और अपनी बहन को अपनी पत्नियों के रूप में स्वीकार किया, जबकि उन्हें दोनों से अपने रिश्ते का पता नहीं था—बहनों के कथनों (गाथा) के क्रॉनिकल में पृष्ठ 112, 115 पर बताई गई है। यहाँ उनके अनाचार का संकेत इतने नाजुक या अस्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है कि इसे बहन-इतिहास द्वारा दी गई व्याख्या की आवश्यकता है। पाली इस प्रकार है: Gharāvāsaṃ vasanto agamaniyaṭṭhānabhāvaṃ ajānitvā vītikkamaṃ katvā puna āgamaniyaṭṭhānabhāvaṃ ñatvā.

[2] ऐसी तपस्याओं के लिए, विनय ग्रंथ, iii. 89 देखें। यहाँ कटोरा खोपड़ी (चवसीसाम्) नहीं है, बल्कि टीका में इसे मतानम् खिरासेकनकुंड सदिसो, 'मृतकों के लिए दूध छिड़कने वाले पात्र के समान' बताया गया है - एक प्रकार का मेमेंटो मोरी (देखें न्यूमैन)। यह संभव है कि मूल पाठ चवसीसेन मे पट्टो रहा हो, जैसा कि विनय में मुहावरा है, लेकिन इस प्रकार के खोपड़ी के कटोरे निषिद्ध थे। इस भारतीय ओडिपस की तपस्या में यूनानी राजा के क्रूर आत्म-विकृति की तुलना में अधिक संयम और गरिमा है।

2.1-4 [124] गंगातीरियत्थेरा के श्लोक पर टीका

तिन्नं मे तालपट्टानं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गंगारिया का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, वे व्यवस्था से अत्यंत प्रसन्न हुए और भिक्षुओं को पीने का जल दान किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे दिव्य लोक में अवतरित हुए, समय-समय पर पुण्य कर्म करते रहे, देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक धनी गृहस्वामी के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम "दत्ता" था। वयस्क होने पर, वे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, तभी उन्हें उस स्थान की स्थिति का ज्ञान नहीं था जहाँ जाना निषिद्ध था (आगमनीयत्तनभावं), और उन्होंने पाप किया (वितिक्खम)। बाद में, जब उन्हें उस स्थान की स्थिति का ज्ञान हुआ जहाँ जाना निषिद्ध था, तो उन्हें पश्चाताप हुआ, और वे भिक्षु बन गए। उस कर्म से उन्हें घृणा हुई, और उन्होंने वस्त्रहीनता का उचित अभ्यास किया (लूखपटीपत्तिं अनुतित्तन्तो), धूल के ढेर से चिथड़ों का वस्त्र (पंसुकूल) और पानी के बर्तन के समान मिट्टी का कटोरा (चवसित्त) लेकर गंगा नदी के किनारे ताड़ के तीन पत्तों से एक कुटिया (कुटिका) बनाई और वहाँ रहने लगे। इसी कारण उनकी उपाधि गंगातिरिया हो गई। उन्होंने मन में यह संकल्प लिया कि अरहंतत्व प्राप्त करने से पहले वे किसी से कोई संवाद नहीं करेंगे और प्रथम वर्ष मौन रहकर अपने इस व्रत का उल्लंघन भी नहीं किया। दूसरे वर्ष, जब गाँव में वे भिक्षा माँगते हुए भटक रहे थे, तब एक

स्त्री ने उनके कटोरे में दूध छिड़का, क्योंकि वह यह जानना चाहती थी कि वे गूंगे हैं या नहीं। तब उन्होंने कहा, "आलं भगिनी (बस करो बहन)।" तीसरे वर्ष, अपने आत्म-साधन और परिश्रम से उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—-

"अत्यंत धर्मपरायण और प्रसन्न।"

मैंने जार में पीने का पानी भर दिया

बुद्ध के भिक्षुओं के अद्वितीय पुरोहित वर्ग

पदुमुत्तरा। चाहे पहाड़ी की चोटी पर हो या वृक्षों पर।

शीर्ष पर, चाहे आकाश में हो या जमीन पर,

जब भी मुझे पानी पीने की इच्छा होती है, यह आ जाता है

मेरे लिए अस्तित्व में लाना।

यह एक लाख युग पहले की बात है।

फिर मैंने अपनी भेंट दी; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

जल अर्पण का परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालाँकि, अरहंत बनने के बाद, उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए दो श्लोक कहे, ताकि वे पहले से ही अपने उचित अभ्यास (पटीनट्टी) को स्पष्ट (उभावनमुखेना) कर सकें।

127. "तीन ताड़ के पत्तों से एक झोपड़ी बनी थी

मेरे द्वारा बनाया गया; मेरा कटोरा मिलता-जुलता था

पानी का घड़ा और मेरा वस्त्र चिथड़े-चिट्टे थे।

कूड़े के ढेर (पंसुकूल) से।

128. दो वर्षों के भीतर (वस्सा) एक शब्द

(केवल) मेरे द्वारा बोला गया था; अंदर

तीसरे वर्ष (मेरा) अंधकार का समूह था

हटा दिया गया (padālito).

वहाँ, tinnaṃ me tālapattānaṃ Gaṅgātīre kuṭi katā का अर्थ है: ताड़ के पेड़ से गिरे तीन ताड़ के पत्तों से गंगा नदी के किनारे एक कुटिया बनाई गई थी ताकि वर्षा से मेरी रक्षा (परिहारन) हो सके। इसके द्वारा, वह निवास (सेनासना) के संबंध में अपनी संतुष्टि (सेनासना) प्रकट करता है। वास्तव में धर्म (धम्म) के सेनापति ने इस प्रकार कहा है:—

“घुटनों पर बारिश नहीं होती”

जो स्वयं क्रॉस-बैठ गया हो-

टांगों वाला। एक भिक्षु के लिए जिसका अपना मन

(निर्वाण की ओर) निर्देशित है

आरामदायक (phāsu) की कोई आवश्यकता नहीं (alaṃ)

जीवन (विहार)।

“ताळपट्टिनं” भी एक पाठ है; इसका अर्थ बस यही है। चवसित्तो व मे पत्तो का अर्थ है: मेरा भिक्षापात्र जलपात्र के समान है; मृतकों के दूध को छिड़कने के लिए इस्तेमाल होने वाली बाल्टी (कुंड) के समान; यही इसका अर्थ है। पंसुकूलं च चीवरं का अर्थ है: मेरा वस्त्र भी सड़क, कब्रिस्तान आदि स्थानों पर फेंके गए चिथड़ों (मंतक) से बना था, जिन्हें पसुकूल वस्त्र कहा जाता है। वह इन दो शब्दों के माध्यम से आवश्यकताओं (परिक्खारा) के प्रति अपनी संतुष्टि व्यक्त करता है।

Dvinnaṃ antaravāssānaṃ का अर्थ है: दो वर्षों के दौरान; उन वर्षों में जब उन्होंने भिक्षु बनने के बाद अभी तक अरहंत पद प्राप्त नहीं किया था। Ekāvācā me bhāsitā का अर्थ है: “बस करो बहन!” यह शब्द दूध के उचित त्याग (पटिक्खेप) का प्रतीक है, और यह मैंने ही कहा था; वहाँ मौन व्रत (वचीभेदो) का कोई और उल्लंघन नहीं हुआ था। इससे वह अपने शरीर और वाणी पर उत्कृष्ट नियंत्रण दिखाता है, जो अपने चरम पर पहुँच चुका था। Tatiye antaravassamhi का अर्थ है: तीसरे वर्ष के भीतर; जबकि वह वर्ष अभी पूरी तरह से संपन्न भी नहीं हुआ था। Tamokhandho padālito का अर्थ है: सर्वोत्कृष्ट मार्ग (मग्ग) के माध्यम से अंधकार का समूह टूट गया था; अज्ञान (अविज्जा) का पूर्वाग्रह (अनुसय) पूरी तरह से समाप्त हो गया था; यही इसका अर्थ है। इससे वह एकांतवास (एकठ्ठता) की अवस्था के माध्यम से सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) के पूर्ण त्याग की बात करता है।

थेरा गंगातीरिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(125):अजीना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (125) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
125. अजिना
बुद्ध युग में, सावत्थी में एक गरीब ब्राह्मण (पुजारी) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, जन्म के समय उन्हें हिरण की खाल में लपेटा गया था, और इसीलिए उनका नाम हिरण (अजीना) रखा गया। गरीबी में पले-बढ़े उन्होंने जेतवन का दर्शन किया और बुद्ध की शक्ति और महिमा को देखा। आस्था प्राप्त करके उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और कुछ ही समय बाद अलौकिक चिंतन प्राप्त कर लिया। जब उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया, तब भी अपने पूर्व कर्मों के कारण वे अपमानित और अज्ञात रहे। कुछ सांसारिक भिक्षुओं ने इस कारण उनका तिरस्कार किया। तब थेरा ने इन श्लोकों से उन्हें विचलित किया:

[129] आपी सी होति तेविज्जो मक्कुहायी अनासावो,॥
अप्पन्नतोति नां बाला अवजानन्ति अजनाता॥ ॥

[130] यो [19] च खो अन्नपनास्सा लाभी होतिधा पुग्गलो,॥
पापधम्मोपि सी होति सो नेसां होति सक्कतो' ती॥ ॥

[129] भले ही किसी व्यक्ति ने त्रिविध ज्ञान प्राप्त कर लिया हो,
मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली हो और मादक पदार्थों (अशुद्धियों/इच्छाओं) को शुद्ध कर लिया हो,
फिर भी, चाहे वह प्रसिद्धि में अज्ञात ही क्यों न हो, बेचारे मूर्ख
अपनी अज्ञानता में उसे नीचा देख सकते हैं।

[130] परन्तु उसे इस संसार की अच्छी वस्तुएँ प्राप्त करने दो,
तो चाहे वह बुरे वंश का ही क्यों न हो, फिर भी
वे उसकी सेवा और सम्मान करेंगे।

2.1-5[125] अजीनाथेरा के छंद पर टिप्पणी
'अपि चे हेति तेविज्जो' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अजिना का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और संसार में एक ऐसे परिवार में पुनर्जन्म लिया जो किसी बुद्ध से रहित (सुञ्ञे) था। बुद्धि प्राप्त करने पर वे किसी कार्य से वन में गए। वहाँ उनकी मुलाकात सुचिंतित नामक एक मौन बुद्ध से हुई जो रोगग्रस्त बैठे थे। वे उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया, श्रद्धा भाव से प्रेरित हुए और औषधि के लिए घी (घटमंड) अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे दिव्य लोक में अवतरित हुए, समय-समय पर पुण्य कर्म करते रहे, अपने जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमते रहे, परन्तु उत्तम अवस्थाओं (सुगति) में रहे और सावत्थी में एक दरिद्र ब्राह्मण के घर गर्भ धारण किया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म के समय उनका स्वागत हिरण की खाल से किया गया था, इसलिए उनका नाम अजिन रखा गया। निर्धन परिवार में जन्म लेने के कारण, वयस्क होने पर भी, उन्हें भोजन और पेय पदार्थों की कमी रही, क्योंकि उन्होंने धन अर्जित करने वाला कोई कार्य नहीं किया था। भटकते हुए, संयोगवश उन्होंने जेतवन के प्रवेश के समय बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित श्रद्धा से प्रेरित हुए, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का अभ्यास किया और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) के साथ अर्हत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

“महान मौन बुद्ध के दर्शन करने पर

सुसिनिटिटा, दुनिया की सबसे बड़ी, बैल

उन पुरुषों में से, जो घनी गहराई में प्रवेश कर चुके थे

जंगल में, हवा से होने वाली बीमारी से पीड़ित होकर मैं

वह अत्यंत धर्मनिष्ठ था और उसने उसे पेशकश की

घी की मलाई। क्योंकि ऐसा किया और बनाया गया है।

इस गंगा नदी के माध्यम से (पुण्य का) संचय होता है।

और भागीरता (साथ ही) चारों महान महासागर

यह मेरे लिए (संपज्जरे) घी बन गया। यह भयानक (घोरा)

पृथ्वी भी असीम और अगणनीय है।

मेरे इरादे (संकप्पा) को जानकर

वह मीठी चीनी (मधुसक्करा) बन गई।

चारों महान द्वीपों के वृक्षों में वनस्पति उग रही है

पृथ्वी पर, अपनी इच्छा को समझकर

(संकप्पा), ऐसे वृक्ष बन गए जो एक निश्चित समय तक टिके रहे।

युग (कप्पा)। पचास बार मैं दिव्य था-

वह संप्रभु, जिसने दैवीय संप्रभुता का प्रयोग किया।

मैं इक्यावन बार विश्व-राजा रहा।

मेरे क्षेत्र में शासन समृद्ध (विपुलं) था।

संख्यात्मक रूप से अगणनीय।

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने अपनी भेंट चढ़ाई। मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति (दुग्गती) को याद रखें;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

घी का सार (अर्पण) बनाना।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद भी, अपने पूर्व कर्म के फल (निस्सांडा) के कारण वे अल्प संपन्न और कम प्रसिद्ध रहे। यहाँ तक कि विशेष (उद्देसा) भोजन और टिकट द्वारा वितरित भोजन भी निम्न गुणवत्ता का ही निकला। उनके कर्म के फलस्वरूप ही सामान्य (पुथुज्जना) भिक्षुओं और नौसिखियों ने उन्हें "अप्पञ्ञातो (एक महत्वहीन व्यक्ति)" कहकर उपेक्षित (अवमन्नन्ति) किया। उन भिक्षुओं को पश्चाताप कराने के लिए, थेरा ने दो श्लोक कहे:

129. "भले ही वह कुष्ठ रोग रहित अरहंत होता

(अनासव), जिसने मृत्यु का निवारण किया था

(मच्चुहाइ), और तीन गुना गुणों से युक्त

अतिज्ञान (तेविज्जो), मूर्ख लोग

उसके प्रति विनम्रता (अवजानति) का भाव रखो क्योंकि

वे कम जाने जाते हैं क्योंकि वे समझते नहीं हैं-

खड़ा होना।"

130. "दूसरी ओर, वास्तव में जो कोई भी

एक व्यक्ति है, जो यहाँ लाभ प्राप्त करने वाला है।

वह उनके लिए भोजन और पेय पदार्थ उपलब्ध कराता है।

उसकी विधिवत सेवा की गई (सक्कातो) भले ही वह

वे स्वभाव से ही दुष्ट थे (पापधम्मो)।

वहाँ, अपि एक अविकारी कण है जो अनुमान को दर्शाता है। से का अर्थ है अनुमान। होति का अर्थ है होना। इस व्यक्ति को तीन प्रकार का उच्च्य ज्ञान (विज्जा) प्राप्त होता है; अतः वह तेविज्जो है। वह मृत्यु का त्याग करता है; अतः वह मच्चुकायी है। कामुक विकारों आदि के अभाव के कारण वह अनासवो (अपराध-मुक्त) है। यही कहा गया है: - आसव (अपराधों) के निवारण का ज्ञान, अतः इन तीन प्रकार के उच्च ज्ञान को प्राप्त करने के कारण वह तेविज्जो है; परन्तु उसके बाद, सभी प्रकार से कामुक विकारों आदि का पूर्णतया निवारण (सब्बासो) करने के कारण वह अनासवो (अपराध-मुक्त) है; भविष्य में नया जन्म (पुनब्भव) न लेने और मृत्यु से विरक्त होने के कारण वह मानो मच्चुकायी भी है; इसके बावजूद, appaññāto ti naṃ bālā avajānanti (यद्यपि उसने अपने लाभ के लिए वह अवस्था प्राप्त कर ली थी, जिसके लिए अच्छे परिवारों के पुत्र अपने घरों से निकलकर भिक्षु बन जाते हैं, फिर भी दुष्ट बुद्धि वाले मूर्ख लोग लाभ न होने के कारण उस पर ध्यान नहीं देते हैं) इस प्रकार: "वह तपस्या का प्रचारक (dhūtavādo), विद्वान (bahussuto) और सत्य का शिक्षक (dhammakathiko) है; और कहते हैं: "वह ज्ञात नहीं है; वह प्रसिद्ध नहीं है (pākaṭo)।" क्यों? अज्ञान के कारण; इसका कारण उसके गुणों का अज्ञान है; इस प्रकार वह इंगित करता है।

गुणों के ज्ञान के अभाव मात्र से ही मूर्ख लोग, अपने लाभ के महत्व (लाभगरु) के कारण, उन चीजों का भी अनादर (अवजानन्ति) कर देते हैं जिनका सम्मान किया जाना चाहिए (संभवनीयं); इसी प्रकार उन्होंने दूसरा श्लोक कहा, यह दर्शाने के लिए कि गुणों के ज्ञान के अभाव में वे उन लोगों का भी सम्मान करते हैं जिनका अनादर किया जाना चाहिए (अवजानितब्बं), लाभ के महत्व (ग) के कारण। यहाँ, यो शब्द अनिश्चितता को दर्शाता है। च शब्द अधिशेष को दर्शाता है; इसके द्वारा, इस व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच अंतर (विशेषं) स्पष्ट होता है, जो केवल कही गई बात (वच्चमानं) है। खो शब्द जोर को दर्शाता है। अन्नपानस का अर्थ है मात्र उदाहरण (निदासन)। लाभ का अर्थ है: लाभ का स्वामी। इध का अर्थ है: इस संसार में। वृद्धावस्था और मृत्यु के साथ जीवों के इस और उस निवास (आवास) की परिपूर्णता (पूर्णता) और पतन (गलना) के कारण पुग्गला (व्यक्ति) कहलाता है। पापधम्मो का अर्थ है निम्न (लामक) व्यक्तित्व (धम्मो)। वास्तव में, यहाँ यही अर्थ है: जो भी व्यक्ति केवल संन्यासी के वस्त्र आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं का ही लाभ उठाता है, ध्यान आदि जैसी उपलब्धियों का नहीं, वह मूर्ख लोगों के बीच इस संसार में लाभ की गंभीरता के कारण व्यक्तिगत रूप से आदरणीय (सक्कतो) और सम्मानित (गरुकतो) है, यद्यपि वह अपने बुरे नैतिक उपदेशों (दुस्सीला) और बुरी इच्छाओं (पापिच्छ) के कारण निम्न व्यक्तित्व (हीनधम्मो) है।

थेरा अजिना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(126): मेलाजिना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (126) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
126. मेलाजिना
बुद्ध युग में बनारस में एक कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम मेलजिना रखा गया। वे अपनी विद्वत्ता और उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध हुए और पूरे देश में ख्यातिप्राप्त हुए। जब परम पूज्य बुद्ध बनारस के इसिपताना में ठहरे, तो मेलजिना उनके उपदेश सुनने के लिए धम्म मार्ग पर गए; और श्रद्धा से प्रेरित होकर उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अर्हत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[115] और जब भिक्षुओं ने पूछा कि उसने अलौकिक गुणों को किस हद तक प्राप्त कर लिया है, तो उसने 'शेर की दहाड़' लगाई:

[131] यदाहौ धम्ममसोसिṃ भासामानस्स सत्थुनो,॥
न कण्खमभिजानामि सब्बान्नु अपराजिते॥ ॥

[132] सातवाहे महावीरे सारथिनां वरुत्तमे,॥
मग्गे पतिपादायं वा कनखा मयहां न विज्जति' ती॥ ॥

[131] जब मैंने भगवान (बुद्ध) को धम्म का मार्ग उपदेश देते हुए सुना,
तब से मेरे मन में कोई संदेह नहीं रहा,
वे सर्वज्ञ और अजेय हैं।

[132] न तो उनके समान किसी शक्तिशाली प्रभु में,
कारवां के स्वामी, [1] मनुष्यों के चालक,
अद्वितीय और महान, न ही मार्ग में, नियम में, [2] विश्वास की कमी मुझे कभी विचलित कर सकती है।

[1] देखें संवाद, ii. 32. सत्थावाहे, जिसे वहाँ 'तीर्थयात्री दल का स्वामी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, यहाँ अधिक शाब्दिक रूप से पुनरुत्पादित किया गया है।

[2] Magge, paṭipadāyaṃ vā - यानी, 'आर्यन [आठ गुना] मार्ग, और उपदेश, इत्यादि' (टीका)। ये श्लोक शायद उपयुक्त उत्तर न लगें; लेकिन यदि दर्शनशास्त्र के संकलन (पृष्ठ 65, 210, 213) का अध्ययन किया जाए, तो यह देखा जाएगा कि सभी प्रकार के संदेहों का निवारण, धम्म के अनुभव से परे जाने के लिए एक अत्यंत आवश्यक पूर्व शर्त माना जाता था।

2.1-6 [126] मेलजिनथेरा के श्लोक पर टीका
यदाङ्हं धम्मं अस्ससिं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मेलजिना का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, सुमेध बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुआ। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन संयोगवश उन्होंने बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे धर्मपरायण हो गए और उन्हें सुगंधित (अमोद) फल भेंट किए। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने बार-बार के जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, बनारस में क्षत्रिय (खत्तिया) वंश में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तो उन्होंने मेलजिना नाम प्राप्त किया, कला और विज्ञान में निपुणता प्राप्त की, बुद्धिमान और चतुर (ब्यात्तो) बन गए और सभी दिशाओं में लोकप्रिय हो गए। जब भगवान बनारस के इसिपताना में निवास कर रहे थे, तब वे मठ गए, गुरु के पास गए, सत्य (धम्म) को सुना, उचित श्रद्धा से पवित्र विश्वास प्राप्त किया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और उसी दिन अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदाना में कहा गया है:—

हजार किरणों वाले भगवान जो बन गए

स्वयं बुद्ध, अजेय,

उनके एकांतवास से उत्पन्न होकर, विशेष रूप से आया

भिक्षा-भोजन (गोकाराया) संग्रह के लिए बाहर।

मेरे हाथ में फल थे, मैंने उन्हें देखा और

मैं पुरुषों में श्रेष्ठ बैल के पास पहुँचा। धर्मनिष्ठ-

प्रसन्न और भावपूर्ण होकर मैंने अपनी भेंट चढ़ाई।

फल का, मेरे हाथ के छेद में (अवतां)

यह 94 युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने फल का प्रसाद चढ़ाया।

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फलों का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, भिक्षुओं द्वारा यह पूछे जाने पर कि: "मित्र! आपने पारलौकिक मानक (उत्तरिमनुस्सा धम्म) क्यों प्राप्त किया?" उन्होंने शेर की दहाड़ के साथ दो श्लोक कहे।

131. "जब मैंने सत्य (धम्म) सुना,

जब गुरुजी बोल रहे थे, तब मैंने ऐसा नहीं किया।

किसी भी संदेह के बारे में याद रखें।

"विजयी सर्वज्ञ बुद्ध।"

132. "मेरे लिए, इसमें कोई संदेह नहीं है

या तो काफिले के नेता में,

महान नायक, सबसे उत्कृष्ट

रथ चालकों या उचित अभ्यास में

सही मार्ग (मग्ग) का (पटिपदा)।

वहाँ, यदा का अर्थ है: किसी भी समय; अहं स्वयं को इंगित करता है। धम्म का अर्थ है: चार आर्य सत्यों का उपदेश (धम्म)। अस्सोसिं का अर्थ है: मैंने सुना। सत्थुनो का अर्थ है: गुरु का, क्योंकि इसका अर्थ है सक्षम प्राणियों (वेनेय्यानं) का मार्गदर्शन करने का उपदेश (सासनत्थेन), जिसमें वर्तमान जीवन से संबंधित लाभ (दित्तधम्मिका) आदि शामिल हैं। कंखं का अर्थ है संदेह। वह सृजित (संखत) और असृजित (असंखत) दोनों को पूर्णतः जानने (अनवसेसतो) के कारण सब्बाञ्ञु है। किसी भी स्थान से पराजित न होने के कारण वह अपराजित है। क्योंकि उनका अर्थ है कि वेणेय प्राणियों के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के कठिन सफर से उन्हें निर्वाण तक उचित रूप से ले जाना। जो कहा गया है वह यह है:— "जब गुरु ने सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, तो मैंने चारों आर्य सत्यों का उपदेश सुना, ध्यानपूर्वक ग्रहण किया और उन्हें ग्रहण किया; उसके बाद, स्वयं द्वारा अर्जित ज्ञान (सयम्भुणान) के कारण, सृजित और असृजित (संखतसंखत) सभी सत्यों को बिना किसी शेष (अनवसेसा) के ज्ञात करने के कारण, वे सर्वज्ञ बुद्ध हैं, जो अबाधित दृष्टि (दस्सावी) रखते हैं; पाँचों मारों पर विजय प्राप्त करने और उनसे पराजित न होने के कारण, और सत्य के चक्र (धम्मचक्क) को निर्बाध रूप से घुमाने की अवस्था (अप्पतिहत) के कारण वे अपराजित (अजेय) हैं; लोभ के कठिन मार्ग आदि जैसी कठिन यात्राओं से भार वहन करने योग्य (वेनेय्या) प्राणियों के परिवहन के महत्व (अट्ठ) के कारण वे सत्त्ववाह (कारवां के नेता) हैं; अत्यंत वीर (विक्कन्त) होने के कारण वे महावीर हैं; दूसरों पर निर्भर न होने (पच्चय) की अवस्था (भाव) के कारण, कंखं माभिजानामि (मुझे कोई संदेह नहीं है) इस प्रकार: "क्या वे वास्तव में बुद्ध हैं; या नहीं?" उत्तम (सर्वोत्तम आत्म-जागृत बुद्धों) में, जो पूर्ण (अच्चंतिका) नियंत्रण (दमथा) द्वारा वशीकरण के कारण सर्वश्रेष्ठ (पवरा) सारथीनम् (रथियों में) बन गए थे, क्योंकि वे अन्य साधनों से मनुष्यों को वश में करने में कठिनाई के कारण उनके शरण (सरना) थे। न विज्जति, संदेह का कोई अस्तित्व नहीं है, इस प्रकार: "क्या वास्तव में यह संसार से मुक्ति दिलाने में सहायक है या नहीं?" ऐसे उचित अभ्यास में, पतिपादाय अच्छे नैतिक उपदेशों आदि के रूप में, साथ ही साथ श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) में, जो इससे जुड़ा हुआ था (तदुपादाय) और जिसे उसी रूप (तथारूप) में पवित्र सत्य (अरियाधम्म) में संदेह के अभाव की बात करते हुए सिखाया गया था। इसके अलावा, भिक्षुओं के पवित्र संघ में संदेह की अनुपस्थिति का भी उल्लेख किया गया है; इस प्रकार, यह देखा जाना चाहिए कि वहाँ अस्थिरता (अनञ्ञथा-भाव) नहीं है।जो स्थापित हो चुका था (पतित्तित)।

थेरा मेलजिना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(127):राधा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (127) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
127. राधा
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के समय में राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) के रूप में पुनर्जन्म लेकर , वृद्धावस्था में वे अपने विभिन्न कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ हो गए। [1] उपेक्षित होकर, वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और अपनी अपेक्षाएँ प्रकट कीं। भगवान (बुद्ध) ने उनकी आवश्यक योग्यताओं का ध्यान करते हुए, सारिपुत्त को उन्हें प्रवेश देने का आदेश दिया। इसके शीघ्र ही उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। और उसके बाद, भगवान (बुद्ध) के निकट रहकर, वे उन लोगों में अग्रणी हो गए जो भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं से प्रेरित होकर [2] बिना पूर्व सूचना के बोल सकते थे।

[116] अब एक दिन यह देखकर कि आत्म-प्रशिक्षण की कमी किस प्रकार वासनाओं के वश में होने का कारण बनती है, उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया:

[133] यथा अग्रं दुच्चन्नं वुऽहि समतिविज्जति,॥
एवं अभिवितां चित्तं रागो समतिविज्जति॥ ॥

[134] यथागारां सुच्चन्नं वुऽहि न समतिविज्जति,॥
एवं अभिवितां चित्तं रागो न समतिविज्जति॥ ॥

[133] जैसे किसी खराब छत वाले घर में बारिश

लगातार घुसती और प्रवेश करती है,
वैसे ही अप्रशिक्षित अभ्यास द्वारा मन में
जुनून हमेशा घुसता और प्रवेश करता है।

[134] और जैसे अच्छी छत वाले घर में बारिश
कभी भी प्रवेश नहीं कर पाती,
वैसे ही शांत और अंतर्दृष्टि से प्रशिक्षित मन में
वासना कभी प्रवेश नहीं कर पाती। [3]

[1] पतिखित्टो.

[2] उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करने वाला अंश अंग., i. 25 से उद्धृत किया गया है। वंगीसा की समान, लेकिन एक जैसी नहीं, श्रेष्ठता से तुलना करें, भजन 114। यह थेरा संभवतः संयुत्त के कई छोटे प्रवचनों में संबोधित 'आदरणीय राधा' के समान है (iii. 79, 188 ff.; iv. 48 f.)।

[3] 'अभ्यास,' 'शांति और अंतर्दृष्टि' - पाठ में भावना - शिष्य के आत्म-प्रशिक्षण में व्यवस्थित प्रयास का सामूहिक नाम जो पूर्णता की तलाश करता है (बुद्ध मनोविज्ञान, पृ. 261, नोट 2)। टीका में 'शांति और अंतर्दृष्टि' के रूप में निर्दिष्ट। तुलना करें संकलन, पृ. 202 आगे।

2.1-7[127] राधात्थेरा के श्लोक पर टीका

यथा अगरं दुच्चन्नं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा राधा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर के एक पारिवारिक घर में हुआ था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, वे मठ गए, गुरु के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और देखा कि गुरु ने उत्तर देने के लिए तैयार भिक्षुओं में एक भिक्षु को सबसे आगे (पटिभानेय्यक) स्थान दिया है। उन्होंने स्वयं भी उस पद (ठानंतरा) की आकांक्षा (पत्तेत्वा) की और एक महान दान किया। उन्होंने गुरु को एक विशाल (उलारा) श्रद्धापूर्ण भेंट भी दी। इस प्रकार संकल्प लेकर वे वहां से चले गए और इस-उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, भगवान बुद्ध के समय में एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे धर्मपरायण हो गए और उन्होंने मीठे आम दान किए। उस पुण्य कर्म के कारण वे दिव्य लोक में उत्पन्न हुए और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और अंत में भगवान बुद्ध के समय में राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने राधा नाम प्राप्त किया और वयस्क होने पर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। वृद्धावस्था में वे अपनी पत्नी और बच्चों से असंतुष्ट होकर मठ में चले गए; "गृहस्थ जीवन का मुझे क्या लाभ, मैं भिक्षु बनूँगा," एक वृद्ध भिक्षु ने भिक्षु बनने का निवेदन किया और जब उन्हें यह कहकर अस्वीकार कर दिया गया कि "यह ब्राह्मण वृद्ध है; यह सभी प्रकार के कर्तव्यों (वत्तपटीवत्तं) का निर्वाह करने में सक्षम नहीं है," तो वे गुरु के समक्ष गए और उन्हें अपने इरादे (अज्जासयं) से अवगत कराया। गुरु ने उनकी पर्याप्त योग्यता (उपनिषय) को देखकर धर्म के सेनापति को उन्हें भिक्षु बनाने का निर्देश दिया। भिक्षु बनने के बाद, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर अपना मार्ग अपनाया और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया; इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

मैंने पादाफल (मूल फल) अर्पित किया

स्वर्ण रंगत वाले स्वयंजागृत बुद्ध,

बलिदान के योग्य प्राप्तकर्ता

भेंट चढ़ाना, प्रवेश करना (पणिपज्जंतं)

रथ-मार्ग। यह इक्यावन युग था।

(कप्पा) कुछ समय पहले मैंने अपना बनाया था

फल का अर्पण। मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यह

फल का फलदायी परिणाम है

मेरी दुराचारिता का प्रस्ताव था

जला हुआ।... बुद्ध का उपदेश

कार्य संपन्न हो चुका था।

लेकिन अरहंत बनने के बाद, वे गुरु के सहाबी (सन्तिकावचारो) बन गए और भ्रमण करते हुए, गुरु के सत्य उपदेशों (धम्मदेशना) के विषय में शीघ्र उत्तर देने वाले (पतिभान जाननक) प्रमुख बन गए। वास्तव में, थेरों के विचारों (दिट्ठी) से परिचित होने के कारण, दशबल को नए और ताजे उपदेश (धम्मदेशना) देने का विचार आया। इस कारण भगवान बुद्ध ने कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्य भिक्षुओं में, जो प्रासंगिक और शीघ्र उत्तर देने वाले हैं, यह राधा हैं।" एक दिन उन्होंने दो श्लोक बोले, जिनकी शुरुआत "यथा अगरं" से हुई, जिसमें उन्होंने मानसिक विकास (भावना) की प्रशंसा करते हुए कहा:

"इन प्राणियों में मानसिक विकास (भावना) की कमी के कारण कामवासना (राग) हावी हो जाती है; यदि भावना हो तो कामवासना का अस्तित्व नहीं रहता।"

133-4. वहाँ, अगरं का अर्थ है कोई भी घर। दुच्छन्नं का अर्थ है: दुर्लभ, दरारों और छेदों से भरा हुआ। समतिविज्झति का अर्थ है: वर्षा भेदकर आर-पार हो जाती है। अभावितं का अर्थ है: अविकसित (अभावितं) मन, भावना से रहित होने के कारण, वर्षा भेदकर आर-पार हो जाता है। रागो समतिविज्झति का अर्थ है: यह पूरी तरह से (केवलं) नहीं है, बल्कि कामवासना (राग) है; घृणा (दोष), मोह (मोह), अहंकार (मान) आदि जैसी सभी विकृतियाँ उस मन (तथारूपं) को भी भेद देती हैं। सुभावितम् का अर्थ है: शांत भाव और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि जैसे विकासात्मक कर्मों (भावना) से उत्कृष्ट रूप से विकसित मन; राग आदि प्रकार की बुराइयाँ इस प्रकार के मन को भेद नहीं सकतीं, जैसे बारिश (जो छत वाले घर को भेद नहीं सकती)।

थेरा राधा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (128): सुरधा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (128) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
128. सुराधा
बुद्ध युग में उपर्युक्त राधा के छोटे भाई के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने अपने बड़े भाई के उदाहरण का अनुसरण किया और स्वयं भी अरहंत (प्रबुद्ध) बन गए। धर्म के उद्धारकारी मार्गदर्शन को दर्शाते हुए, उन्होंने इस प्रकार ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की :

[135] खिन्ना हि मयहा जाति वुसितां जिनसासणं,॥
पहिणो जलसंखतो भवनेति समुहता॥ ॥

[136] यस्साथया पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ,॥
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो सब्बासंयोजनक्खयो' ति.॥ ॥

[135] जन्म-पुनरावृत्ति अब नष्ट हो चुकी है।
विजेता के शासन ने मेरे सभी मार्गों का मार्गदर्शन किया है। [1] जिसे हम जाल कहते हैं, उसे मैंने त्याग दिया है; [2] जीवन की ओर ले जाने वाली वासना जड़ से उखाड़ दी गई है।

[136] और वह महान खोज, जिसके लिए मैंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए),
घर छोड़कर बेघर जीवन जीने के लिए,
मैंने वह खोज और उच्च पुरस्कार भी प्राप्त कर लिया है,
क्योंकि मैं वह हूँ जिसके बंधन दो भागों में टूट गए हैं। [3]

[1] 'मैंने मार्ग का पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) जीया है' (टीका)।

[2] धम्मपद , श्लोक 251; सांयुत्त, iii. 83 देखें। टीका, 'जाल = त्रुटि, अज्ञान।' आमतौर पर इसका अर्थ है लालसा या इंद्रिय। संभवतः सुराधा, सांयुत्त के एक प्रवचन (iii. 79) में श्रोता हैं।

[3] सीसीएक्स., 380.

2.1-8 [128] सुरादत्तेरा के श्लोक पर टीका
"खीना हि मयहं जाती" से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुराधा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान सिख धर्म के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन संयोगवश उन्होंने गुरु के दर्शन किए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें एक नींबू (मातुलुंग) भेंट किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे दिव्य लोक में अवतरित हुए और समय-समय पर पुण्य कर्म करते हुए, उत्तम जन्मों में अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे थेरा राधा के सबसे छोटे भाई (अनंतरं) के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम सुराधा था। जब उनके बड़े भाई राधा ने संन्यासी का दीक्षा ली, तो उन्होंने भी संन्यासी का दीक्षा ली और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का अभ्यास करते हुए शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैंने दुनिया के नेता को चमकते हुए देखा

कनुकारा फूल के समान, उससे मिलता-जुलता

पूर्णिमा का चाँद भी उतना ही चमकीला होता है जितना कि

दीपक वृक्ष (दीपरुक्खा)। तोड़कर

मैंने नींबू के फल से एक टुकड़ा तोड़कर उसे भेंट किया।

स्वामी, उन लोगों से अत्यंत प्रसन्न होकर

वीर के हाथ, समर्पित होने के योग्य

भेंट (दक्खिनय्या)।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का अर्पण किया।

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है:

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी अरहंतता (अञ्ञा) प्रकट करने के उद्देश्य से "खीना हि मयहं" से शुरू होने वाले दो श्लोक कहे, ताकि बुद्ध के शासन (सासन) के संसार (निय्यानिक) से मुक्ति के लिए अनुकूल अवस्था को दर्शाया जा सके।

135-6. वहाँ, खीना का अर्थ है: विलुप्ति, सर्वांगीण अंत हो गया था। जाति का अर्थ है अस्तित्व या अस्तित्व की उत्पत्ति (भवनिब्बत्ती)। वुसितं जिन-सासनं का अर्थ है: विजेता, सर्वांगीण आत्मजागृत बुद्ध का उपदेश (सासनं), पवित्र आचरण के सही मार्ग पर चलना, सर्वांगीण मार्गदर्शन करना। पाहीनेजालसंखुतो का अर्थ है: विधर्म (दिट्ठी) और अज्ञान (अविज्जा), जिसे "जाल संखात (जाल के रूप में माना जाता है)" नाम मिला था, क्योंकि यह प्राणी के अस्तित्व (सत्तसंतान) पर फैलता है और साथ ही यह बहुत कम (अप्पदान) को बचने देता है (निसारितं), सही मार्ग (मग्ग) का साधन था। भवनेत्ति समूहा का अर्थ है: तृष्णा (तन्हा), जिसे अस्तित्व का सूत्र (संध्या) और संशयपूर्ण अस्तित्व आदि का नेता (नयन) और प्रवर्तक (पवत्तना) कहा जाता है, का अंत (समुघातिता) हो गया है। यस्सत्थाय पब्बजितो का अर्थ है: चाहे जिस उद्देश्य से, चाहे जिस कारण से; (कोई भिक्षु बन गया था) अगरस्मा का अर्थ है: घर से; अनागारियं का अर्थ है: भिक्षुत्व; पब्बजितो का अर्थ है: पास आ गया था। सो का अर्थ है: पुनर्जन्म चक्र (संयोजन) के सभी बंधनों (बंधन) का अंत (खयभूतो), जिन्हें आरंभिक और अनुगामी संबंधों से संबंधित वर्गीकृत किया गया है; अत्थो का अर्थ है: पूर्ण लाभ (परमत्था) जिसे निर्भान माना जाता है और स्वयं का लाभ (सदत्थो) जिसे अरहंतत्व माना जाता है, अनुपत्टो मुझे प्राप्त हो गया है; यही इसका अर्थ है।

थेरा सुराधा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(129):गौतम

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (129) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
129. गौतम
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर [1] गौतम नाम से विराजमान होकर, वे युवावस्था में ही बुरी संगति में पड़ गए और अपनी सारी संपत्ति एक वेश्या को दे दी। अपने बुरे कर्मों के लिए पश्चाताप करते हुए, उन्होंने बैठे हुए भगवान (बुद्ध) का दर्शन किया - जिन्होंने उनके मन की प्रगति और उनकी प्राप्ति को जान लिया था। वे दृढ़ निश्चय के साथ भगवान (बुद्ध) के पास गए, उनसे शिक्षा प्राप्त की और विश्वास किया। भिक्षु संघ में प्रवेश करते ही, जब उनके बालों पर उस्तरा लगा, तब उन्होंने अर्हत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया। जब वे ध्यान और फल के आनंद पर चिंतन कर रहे थे, तब एक गृहस्थ साथी ने उनसे उनकी संपत्ति के बारे में पूछा। उन्होंने स्वीकार किया कि वे कैसे व्यभिचारी जीवन व्यतीत करते रहे थे, और अपनी वर्तमान वासना से मुक्ति के कारण ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा करते हुए कहा:

[137] सुखो सुपंती मुनायो ये इत्थिसु न बज्जहरे,॥
सदा वे रक्खितब्बासु यासु सच्चै सुदुल्लाभं॥ ॥

[138] वधाऽ कैरिम्हा ते काम अनाना दानी ते मयाऽ,॥
गच्छामा दानि निब्बाणं यथा गन्त्वा न सोसति' ति.॥ ॥

[137] वे आराम से सोते हैं, बुद्धिमान और पवित्र, जो कभी
स्त्री जाति से बंधे नहीं होते, क्योंकि इन्हें
निगरानी और संरक्षण में रखा जाना चाहिए, और उनके बीच
चीजों की सच्चाई जानना हमेशा कठिन होता है। [2]

[138] हे वासना, हमने तेरे साथ तलवार से युद्ध छेड़ा है।
अब हम मुक्त हो गए हैं और तेरे ऋण से मुक्त हैं।
अब हम उस प्रस्थान की ओर आगे बढ़ते हैं, [3] जहाँ हमारी यात्रा के अंत में हम और नहीं रोते।

[1] CLXXXIII., CCXXXIX के अन्य गोटामा थेरास के समान नहीं।

पूर्व।

[2] टीका की इस टिप्पणी में एक सूक्ष्म, विवेकपूर्ण स्पर्श है: 'अब उस [मित्र] को, जो अभी भी ऐसी स्त्रियों से बंधा हुआ है, थेरा, अपनी उस कामवासना के पूर्ण उन्मूलन को दर्शाने के लिए, दूसरा श्लोक कहता है।' प्रथम पुरुष बहुवचन का प्रयोग बौद्ध भजनों में एक दुर्लभ विशेषता है। यह मुक्त मन वाले एक समुदाय को संदर्भित करता है, न कि वक्ता और उसके पूर्व मित्र को, क्योंकि बाद वाले के अभी भी सांसारिक बंधन थे।

[3] मूल में निब्बाना । चूंकि थेरा एक अरहंत (प्रबुद्ध) हैं, इसलिए यह केवल उनके परिनिर्वाण, उनके जीवन के स्थानिक रूप से पूर्ण अंत - उनके अनुपादिस्च-निर्वाण को संदर्भित कर सकता है, टिप्पणी कहती है, चाहे वह किसी भी तरह से समझा गया हो।

2.1-9 [129] गौतमथेरा के श्लोक पर टीका
सुखं सुपन्ती से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा गौतम के हैं। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए और भगवान बुद्ध के विपस्सी काल में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्हें संयोगवश भगवान बुद्ध के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें सुगंधित फल (आमोदफल) भेंट किया। उस पुण्य कर्म के फल के कारण, वे दिव्य लोक में अवतरित हुए, पुण्य कर्म किए, समय-समय पर अपने जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का उदय हुआ, तब वे राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर गौतम नाम प्राप्त किया। जब वह सात वर्ष का था, तब उसने उपनयन किया, रत्नों से सजे भिक्षापात्र भोजन की तलाश में भटका, एक हजार रत्न अर्जित किए, उन्हें उचित स्थान पर रखा और अपने धार्मिक अनुष्ठान का पालन करते हुए, सोलह या सत्रह वर्ष की आयु में, दुष्ट मित्रों द्वारा कामुक सुखों में लिप्त होकर, उसने एक हजार रत्नों का वह खजाना एक स्त्री को दे दिया, जो अपनी सुंदरता से जीविका कमाती थी। इस कारण उसका ब्रह्मचर्य विनाश हुआ, और उसके कारण उसे ब्रह्मचारी सौंदर्य का दर्शन हुआ। जब उसे (वुरत्तकार) दर्शन दिए गए, तो वह एक ही रात के प्रवास से ऊब गया (निब्बिन्नरूपो), उसे अपने ब्रह्मचर्य के पतन और धन की कमी का अहसास हुआ और वह पश्चाताप करते हुए बोला, "मैंने अनुचित कार्य किया है।" गुरु ने उसकी समृद्धि और मानसिक आचरण को जान लिया और उसके निकट ही उसे दर्शन दिए। गुरु को देखकर वह श्रद्धा से भर गया और उनके पास पहुंचा। भगवान ने उसे सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। उन्होंने धम्म को ध्यानपूर्वक सुना, धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने और जब उनके बाल खुरा से मुंडवाए गए, तब उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैंने सुगंधित वस्तुओं की भेंट चढ़ाई

आत्मजागृत बुद्ध के लिए फल

सुनहरे रंगत वाले, योग्य प्राप्तकर्ता-

बलि चढ़ाने में विश्वास रखने वाला, प्रवेश करते हुए

रथ-मार्ग पर।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने फल का अर्पण किया। मैं करता हूँ।

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह फलदान का फलदायी परिणाम है।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी; :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, एक गृहस्थ मित्र उनके पास आया, जो ध्यान के आनंद और फल प्राप्ति की खुशी में समय बिता रहा था, और उससे पूछा; "मित्र! भिक्षु बनकर, आपने रत्नों से सजे भिक्षापान (रतनभिक्खा) से जो कुछ अर्जित किया था, उसका क्या किया?" यह प्रश्न सुनकर, थेरा ने अपने मित्र को यह नहीं बताया कि उन्होंने क्या किया था, बल्कि स्त्री में दोष (दोष) (मातुगामे) प्रकट किया और कामवासना से मुक्त होकर अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए "सुखं सुपन्ति" से शुरू होने वाले दो श्लोक कहे।

137. वहाँ, सुखं सुपन्ती मुनयो, ये इत्थीसु न बज्जरे का अर्थ है: वे ऋषि, तपस्वी जो स्त्री या किसी भी विषय (विषय) या निमित्त (विशेषता) में कामवासना के बंधन से मुक्त हैं, जिनकी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण है, सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; उनके लिए कोई कष्टदायी दुख नहीं है; यही इसका अर्थ है। वास्तव में, यह शब्द सुपन्ती (वे सोते हैं) मात्र एक संकेत है। सदावे रक्खितब्बासु का अर्थ है: जिनकी हर समय निश्चित रूप से देखभाल की जानी चाहिए। वास्तव में, स्त्री जाति के लिए विशेष रूप से निर्मित सात मंजिला आलीशान महल (निप्पुरिसे) में उन्हें रखने और उन्हें गर्भ में डालने के बाद भी उनकी देखभाल करना संभव नहीं है; इसलिए, उनकी देखभाल हमेशा उसी प्रकार की जानी चाहिए जैसे खेत में चरने वाली गायों (किट्ठा) आदि की। पति द्वारा दिए गए वस्त्रों और आभूषणों के अनेक उपहारों (अनप्पदान) के कारण उनकी अत्यधिक चिंता या चंचल मन (चित्तञ्ञथत्त) के कारण उनकी देखभाल हमेशा की जानी चाहिए। उनकी देखभाल इसलिए भी की जानी चाहिए क्योंकि उनके मन की स्थिति को शरीर की प्रकृति के अनुसार या मालाओं, इत्र आदि से उचित रूप से ढककर संरक्षित किया जाना चाहिए। यासु सच्चं सुदुल्लभं का अर्थ है: जिनमें सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है; वास्तव में, स्त्रियाँ अग्नि में भी प्रवेश करती हैं; वे विष पीती हैं (खादन्ति); वे शस्त्र लाती हैं (सत्थं); वे स्वयं को गला घोंटकर मरती हैं (उब्बन्धित्वा); फिर भी वे सत्य पर स्थिर नहीं रह पातीं। इसलिए, इन जैसी महिलाओं से दूर रहकर स्थिर रहने वाले ऋषि निश्चित रूप से सुखी हैं; इस प्रकार, वह बताते हैं।

139. अब उन्होंने दूसरा श्लोक यह दर्शाने के लिए कहा कि उन्होंने उस कामुक इच्छा (काम) का पूर्णतः त्याग कर दिया है, जिसके कारण पुरुष स्त्री-पुरुषों के प्रति आसक्त रहते हैं। "वधं करिंह ते कामा" का अर्थ इस प्रकार है: — कामुक इच्छा! हम तुम्हारे विनाश और शाश्वत संहार के लिए श्रेष्ठ मार्ग (अरियमग्गेन) का अनुसरण करते हैं; इसका एक पाठ "वधं करिंहसे" भी है; हमने त्याग और संहार के लिए सही मार्ग (मग्गा) का अभ्यास किया; यही अर्थ है। अननादानी ते मयं का अर्थ है: अब, सर्वोत्कृष्ट मार्ग की प्राप्ति से आरंभ करके, हे कामुक इच्छा! हम तुम्हारे ऋणी नहीं हैं, क्योंकि हमने ऋण लेने का त्याग कर दिया है; इसलिए हम तुम्हारा ऋण नहीं वहन करते। वास्तव में, जो कामवासना से रहित नहीं है, वह मानो कामवासना का ऋण वहन कर रहा है; दूसरी ओर, जो कामवासना से मुक्त है, उससे परे जाकर, वह अपने मन पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। ऋणमुक्त होने मात्र से (अननत्ता) गच्चानादहि निब्बानं यत्थ गन्त्वा न शोचति का अर्थ है: हम जाते हैं और तदनुसार उसी निर्वाण को प्राप्त करते हैं, जिसका कोई आधार नहीं होता, जहाँ उस निर्वाण में जाने (या पहुँचने) के कारण हर तरह से चिंता के कारणों के अभाव के कारण दुख नहीं होता; यही अर्थ है।

थेरा गौतम के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(130):वसभा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।

आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (130) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
130. वासभा
बुद्ध युग में वैशाली में एक लिच्छवी राजा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] वे बुद्ध की महिमा से प्रभावित हुए जब बुद्ध वैशाली गए और उन्होंने संसार त्यागकर भिक्षु जीवन व्यतीत किया। समय आने पर उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया और उसके बाद अपने संरक्षकों के प्रति उदार रहते हुए, उन्होंने उनके द्वारा प्रदत्त आवश्यक वस्तुओं को अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उनका आनंद लिया। सामान्य बुद्धि वाले लोग उन्हें आत्म-भोगी मानते थे, परन्तु वे उनकी परवाह नहीं करते रहे।

लेकिन उनके पास ही एक कपटी भिक्षु रहता था, जो सादगीपूर्ण जीवन जीने का दिखावा करके, कम में संतुष्ट रहकर लोगों को धोखा देता था और उनका आदर पाता था। तब देवताओं के स्वामी सक्का ने यह बात जान ली और वासभा थेरा के पास आकर पूछा, 'हे पूज्यवर, एक कपटी क्या करता है?' थेरा ने उस दुष्ट को फटकारते हुए उत्तर दिया:

[139] पुब्बे हन्ति अत्तानं पच्चा हन्ति सो पारे,॥
सुहातं हन्ति अत्तानं वितसनेव पक्खिमा॥ ॥

[140] न ब्राह्मणो बहिवाणो अन्तो वणो हि ब्राह्मणो,॥
यसुमीऽ पापनि कम्मनि स वे कान्हो सुजमपति' ति.॥ ॥

[139] उसने स्वयं ही विनाश किया;
उसके बाद उसने अन्य लोगों को भी बर्बाद किया।
वह अपने ही छल से अपने लिए सबसे अधिक हानि पहुँचाता है,
ठीक वैसे ही जैसे कोई छल-पक्षी [2] अपने छल से।

[140] वह ब्राह्मण (पुजारी) बाहरी रंग से नहीं पहचाना जाता।
भीतरी रंग से ही तुम ब्राह्मण (पुजारी) को पहचानोगे।
जिसके कर्म बुराई दर्शाते हैं, वह भी
सांवले चेहरे वाला होता है, हे सूजा की संगिनी। [3]

[1] ऊपर देखें, पृष्ठ 54, नोट 4.

[2] सी.एफ. वितंसा-कक्कारो, जाट में फंदा जंगल-मुर्गा , ii। 161.

[3] सुजमपति, सक्का को दी गई एक उपाधि, जिसकी पत्नी-देवी सुजा थी। आध्यात्मिक रंग पर, सी.एफ. दीघ-निकाय, सुत्तंतस iii., iv., और xxvii; सुत्त निपात, वसेठ-सुत्त।

2.1-10 [130] वासभत्थेरा के श्लोक पर टीका
pubbe hanati attānaṃ से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वासभा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने बुद्धों से रहित संसार में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर, उन्होंने ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की, अपने संन्यासी स्वभाव के कारण गृहस्थ जीवन त्याग दिया, एक संन्यासी के रूप में विरक्त हो गए, उनके साथ चौदह हजार संन्यासियों का एक दल (परिवारो) था, और उन्होंने हिमवंत से कुछ ही दूरी पर स्थित समागगा नामक पर्वत पर अपना आश्रम बनवाया। वहाँ रहते हुए उन्हें ध्यान और उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) का ज्ञान प्राप्त हुआ और वे संन्यासियों को सलाह और मार्गदर्शन देते रहे। एक दिन उन्होंने सोचा, "सचमुच, अब तो मैं इन संन्यासियों द्वारा सम्मानित, आदरणीय और श्रद्धापूर्वक अर्पित किया जा रहा हूँ; मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक सम्मानित किए जाने योग्य कोई भी व्यक्ति मुझे प्राप्त नहीं हो रहा

है; वास्तव में, संसार में यह जीवन बड़ा दुख है, अर्थात् आदरणीय गुरु के बिना जीवन।" इस प्रकार विचार करने के बाद, उन्हें पूर्व बुद्धों के प्रति अपनी समर्पित सेवा के कारण पूर्व बुद्धों के मंदिरों में स्वयं द्वारा अर्पित की गई श्रद्धापूर्ण भेंट और व्यक्तिगत आदर (पूजासक्कारं) याद आया और उन्होंने मन ही मन कहा, "यदि मैं पूर्व बुद्धों को समर्पित एक रेत का मंदिर बनाऊँ और उसमें अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित करूँ तो क्या होगा?" वे प्रसन्न और संतुष्ट हो गए, अपनी जादुई शक्तियों से सोने का बना रेत का मंदिर बनाया, प्रतिदिन तीन हजार सोने के फूलों से आदरपूर्वक अर्पण किया, आदि। उन्होंने अपने जीवनकाल तक पुण्य कर्म किए, सर्वांगीण ध्यान में लीन होकर प्राण त्यागे और ब्रह्मा लोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ भी उन्होंने अपने जीवनकाल तक ब्रह्मा का जीवन व्यतीत किया और वहाँ से मृत्यु के बाद तावतिंसा में पुनर्जन्म लिया। बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए, वे समय-समय पर वैशाली के लिच्छवी राजपरिवार में पुनर्जन्म लेकर इस बुद्ध के जन्म के समय वहाँ पहुँचे। उन्होंने वासभा नाम प्राप्त किया और वयस्क होने पर, उन्होंने बुद्ध की शक्ति को तब देखा जब भगवान बुद्ध वासाली गए थे। उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के मार्ग पर चले और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"हिमावंता से कुछ ही दूरी पर, एक था

समागगा नाम की एक पहाड़ी। एक आश्रम।

मेरे लिए यह अच्छी तरह से बना हुआ था, एक पत्तों से बना हॉल।

अच्छी तरह से बनाया गया।

नारदा नाम से जाना जाने वाला, मैंने पहना

मेरी गुंथी हुई बालियाँ थीं और वह एक शक्तिशाली आदमी था।

आत्म-यातना का। चौदह

हजार छात्र मेरी सेवा में उपस्थित थे।

अपनी एकांत और शांति में, तब मैं

इस प्रकार विचार किया गया।

पूरी भीड़ ने श्रद्धापूर्वक अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

मुझे पेशकश की गई थी; मुझे ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी।

किसी को भी सम्मान देने की जरूरत नहीं थी। मुझे सलाह देने वाला कोई नहीं था।

मेरे कर्तव्यों का पालन करने के लिए कोई मौजूद ही नहीं था।

बिना किसी शिक्षक और गुरु के, मैं

मैंने जंगल में अपना निवास स्थान बना लिया। बैठे हुए

जिसके बारे में मैं चाहता था, उसके पास।

मैं अपने शिक्षक को अपनी सेवाएँ प्रदान करूँ;

मेरे लिए शिक्षक का कोई अस्तित्व नहीं था; मेरा जीवन

जंगल में रहने से मुझे कोई लाभ नहीं हुआ।

मैं एक योग्य प्रतिफल की तलाश में रहूंगा।

मेरी भेंट के प्रति श्रद्धावान, वैसे ही एक शिक्षक

आदरणीय होना (भवनियं); मेरे साथ

मैं शरण लूंगा; कोई नहीं

मुझे फटकारेंगे।

उथले ढलान वाले किनारों वाली छोटी नदियाँ,

उतरने के लिए अच्छी जगहें और साथ ही आनंददायक भी।

क्योंकि साफ-सुथरी शुद्ध रेत से बिखरे हुए नहीं थे

मेरे आश्रम से बहुत दूर। उस नदी की ओर जिसका नाम है

मैंने फिर अमरिका से संपर्क किया; अच्छी तरह से

मैंने रेत का ढेर लगाया और रेत का एक मंदिर बना दिया।

वे आत्मजागृत बुद्ध जो ऋषि थे,

अस्तित्व के अंत के निर्माता; इस तरह का ठोस

मैंने उनके मंदिर (थूपा) का वह चरित्र बनाया-

टेरिस्टिक (निमित्त)। रेत बनाकर

मैंने मंदिर बनाया, वह सोने का बना।

तीन हजार फूलों को श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई

सोने से बनी छोटी घंटियों के आकार की (किंकनी)

मैंने शाम और सुबह को प्यार किया, उन पर विजय प्राप्त की

मैंने श्रद्धा से अपने हाथ जोड़ लिए; जैसे कि

आत्मजागृत बुद्ध की उपस्थिति, मैं

मैंने रेत के मंदिर को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

जब भी और जिस समय भी हर प्रकार की विकृति उत्पन्न हुई।

(किलेसा) और जंगली विचार (विताक्का) con-

गृहस्थी के सांसारिक जीवन से जुड़ा हुआ, मैं

मुझे वह पैगोडा अच्छी तरह से बना हुआ याद था और वहाँ

और फिर इस पर विचार किया।

मेरे दोस्त! यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है

कि तुम दुराचार के बीच सहवास करोगे

(किलेसा), पास में रहना (उपनिस्साय)

कारवां का नेता, स्पष्ट मार्गदर्शक

विश्व (विनायक)।

जब भी मंदिर का प्रतिबिंब दिखाई देता था

उस पर, तब मेरा सम्मान था; मैं

निश्‍चित रूप से दुष्ट को दूर किया (विनोदेसिं)

हाथी के बचने जैसी सोच

मार्गदर्शक अंकुश (tuttaṭṭito) की पीड़ा।

मृत्यु के राजा को विशेष रूप से रौंदा गया (अभिमद्दथा)

मैं, जो इस तरह से जी रहा था। जब मैं

मैं वहीं मर गया, मैं ब्रह्मा के लोक में चला गया।

अपनी जीवन अवधि तक जीने के बाद,

मैं तावतंस में उछल पड़ा। अस्सी बार,

मैं एक दिव्य राजा था जो दिव्य शक्तियों का प्रयोग करता था।

संप्रभुता।

तीन सौ बार भी, मैं एक विश्व बन गया-

राजा; क्षेत्रीय शासन प्रचुरता (विपुलं) में था।

संख्यात्मक रूप से अगणनीय (गणनातो असंखियां)।

मुझे इसके फलदायी परिणाम (विपाक) का आनंद मिला।

(मेरी भेंट) सोने के फूल जो इस प्रकार आकार के हैं

छोटी घंटियाँ। एक लाख धायियाँ।

(धाति) ने मुझे इस अस्तित्व में घेर रखा था।

क्योंकि मैंने हर तरह से सेवा की थी

मंदिर पर धूल और कीचड़ नहीं लगी थी।

मुझे; मेरे शरीर से पसीना नहीं निकला; मैं

वह सुंदरता से जगमगा उठा।

मेरे द्वारा स्थापित किया गया मंदिर बहुत ही शानदार था;

अमरिका नदी अच्छी तरह से पाई गई।

मैंने रेत का मंदिर बनाया। मुझे अस्तबल मिल गया।

(अकलं) पथ.

न तो कोई क्षेत्रयुक्त है और न ही क्षेत्रहीन।

(खेट्टं अखेत्तं) एक प्राणी के लिए (जंतुना)

जो नेक काम करने की इच्छा रखता है और जो

सार (सारगहिना) की खोज में प्रयास करता है; यह है

लेकिन उचित रूप से पूरा करना (साधका)

अभ्यास (पटीपत्ति)।

ठीक उसी प्रकार एक बलवान पुरुष,

पार करने का प्रयास करते हुए (उस्साना)

सागर (अन्नवम्) ने पकड़ लिया

(ādāya) एक छोटा सा टुकड़ा (parittaṃ)

लकड़ी (कट्ठं) और उछल जाएगी

आगे (पक्खान्देय्या) पार

बड़ी झील, जो इस लंच पर निर्भर करती है-

लकड़ी (कट्ठं) मैं पार जाऊँगा

बड़ा सागर (उदाधिं)। मनुष्य को चाहिए

अपने प्रयास से समुद्र पार करना और

परिश्रम।

इसी प्रकार, मेरे द्वारा किया गया यह कार्य भी

छोटा और कमज़ोर हो सकता है; निकट

उस कार्य के आधार पर, मैंने अच्छा किया।

संसार के सागर को पार करो। जब मेरा

अंतिम अस्तित्व अच्छी तरह से प्राप्त हो गया है,

मेरे उज्ज्वल आधार (सुक्कमूल) से प्रेरित होकर

मेरा जन्म सावत्थी शहर में हुआ था।

एक अत्यंत धनी और बेहद प्रतिभाशाली व्यक्ति-

छिद्रयुक्त (परिवार)।

मेरे माता-पिता अत्यंत धर्मनिष्ठ थे।

(सद्धा) और बुद्ध के पास गए थे

शरणस्थली। इन दोनों (माता-पिता) को मिल गई थी।

मार्ग से बाहर (दिट्ठपदा) निकलकर अनुसरण किया

बुद्ध के निर्देश। उन्हें प्राप्त हुए

बोधि के अंकुर (पापटिक) को पकड़ो

उन्होंने पेड़ पर सोने का मंदिर स्थापित किया।

मुझे यह शाम और सुबह दोनों समय बहुत पसंद था।

साकियान पुत्र की उपस्थिति।

सब्त के दिन, वे आदरपूर्वक

सोने का मंदिर निकाला (सोनथूपं)

विनीहारुम् ; उन्होंने तीन बिताए

रात की निगरानी करते हुए बिल्ली के बच्चे की प्रशंसा करना-

ता) बुद्ध की स्तुति (वन्नः)।

जब भी मैंने मंदिर को देखा, मुझे याद आ गया

(मेरी) रेत की वेदी। अकेले बैठकर

एक ही आसन पर बैठकर मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।

उस हीरो की तलाश में, मैं उससे मिला

धर्म का सेनापति;

मैं अपने घरेलू जीवन से बाहर आ गया हूँ।

उनकी उपस्थिति में भिक्षु बन गया।

मेरे जन्म के सातवें वर्ष में, मैंने प्राप्त किया

अरहंत पद। बुद्ध, नेत्र धारक

(चक्खुमा) मेरे गुण को जानकर

मुझे पुरोहित पद पर नियुक्त किया गया। मेरे द्वारा, जो उस समय युवा था।

जो किया जाना चाहिए था वह पूरा हो चुका था।

आज साकियान युग में

पुत्र, जो कुछ किया जाना चाहिए था वह किया जा चुका है।

मेरे द्वारा किया।

हे तपस्वी, जो सभी शत्रुताओं से परे हो गए थे

और खतरों से पार पाकर वह सभी मोह-माया से परे चला गया था।

हे महान वीर! मैं आपका शिष्य हूँ; यह है

स्वर्ण मंदिर का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, दानदाताओं की सहानुभूतिपूर्वक रक्षा करने के लिए, उन्होंने दान के रूप में दिए गए संन्यासी के आवश्यक सामान को अस्वीकार नहीं किया; उन्होंने अपने लाभ के अनुसार उसका सेवन किया। साधारण भिक्षुओं और गृहस्थों ने यह सोचकर कि "यह व्यक्ति शारीरिक रूप से बहुत बलवान और लापरवाह है," उनका कोई आदर नहीं किया। थेरा वहाँ निवास करते रहे, लेकिन उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके पास ही एक कपटी भिक्षु रहता था, जो बुरी इच्छाओं से ग्रस्त होते हुए भी, स्वयं को कम आवश्यकताओं वाला और संतुष्ट व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करता था, लोगों को धोखा देता था। बहुत से लोग उसे अरहंत समझकर सम्मान देते थे। फिर, ऐसा हुआ (अस्सा), देवताओं के स्वामी सक्का को इस बात का पता चला (पवत्ति), वे थेरा के पास गए और इस प्रकार पूछा; "आदरणीय महोदय! एक कपटी व्यक्ति वास्तव में क्या करता है?" थेरा ने दो श्लोकों में बुरी इच्छा की निंदा करते हुए इस प्रकार कहा:—

139. "सबसे पहले वह आत्महत्या करता है; बाद में

वह दूसरों को मारता है। उसने खूब पैसा कमाया।

स्वयं का, शिकारी के समान

उसका छलावा पक्षी।

240. "ब्राह्मण की विशेषता बाहरी गुणों से नहीं होती है।"

वास्तव में, ब्राह्मण ही रंग है।

भीतर (antovanno)। हे सुजा के स्वामी! वह,

बुरे कर्म होते हैं।

वहाँ, pubbehanati attānaṃ का अर्थ है: एक कपटी व्यक्ति, अपने कपटपूर्ण आचरण से लोगों (लोकम्) को धोखा देते हुए, सबसे पहले बुरी इच्छाओं आदि जैसे बुरे कर्मों (धम्म) से स्वयं को नष्ट कर देता है; वह अपने अच्छे कर्मों के हिस्से को भी नष्ट कर देता है। Pacchā hanati so pare का अर्थ है: वह कपटी व्यक्ति, पहले तो उक्त विधि से स्वयं को नष्ट करके, बाद में संन्यासी की आवश्यकताओं (पच्चयविनासन) को नष्ट करके दूसरों को नष्ट कर देता है, उनके कर्मों (तेसं कारानी) को, जो उसने स्वयं किए थे, निष्फल बनाकर; वह उन्हें मार डालता है जिन्होंने या तो सम्मान के साथ कर्म किए थे या यह कहकर कि "यह भिक्षु कर्तव्यनिष्ठ (पेसालो) और श्रेष्ठ (अरियो) है।" जब कपटी व्यक्ति द्वारा दोनों प्रकार की हत्याएँ भी होती हैं, तो यह स्वयं की हत्या में विशिष्ट अंतर (विशेष) है; अतः, यह दर्शाने के लिए उन्होंने कहा; सुहतं हन्ति अत्तानं। वह छल करने वाला (कुहको), स्वयं को मारकर, प्रभावी हत्या (सुहतं) करने के बाद भी मारता और नष्ट करता है; जैसे कि? वीतं सेनेव पक्खिमा (उनका उत्तर है)। वीतंसो का अर्थ है क्षय पक्षी (दीपक सकुनो), जिसके द्वारा। पक्खिमा का अर्थ है: शिकारी (साकुनिको)। जिस प्रकार (एक शिकारी) अपने उस क्षय पक्षी के द्वारा अन्य पक्षियों को छल से मारने के बाद, इस लोक में भी स्वयं को मार डालता है, क्योंकि उसके स्वभाव आदि के कारण वह बुद्धिमानों द्वारा निंदा का पात्र होता है; परन्तु परलोक में (संपरायन), वह अपने दुष्ट अस्तित्व (दुग्गति) के सर्वांगीण दुराचार (किलेसा) के कारण स्वयं को ही मार डालता है; परन्तु परलोक में वह उन पक्षियों को नहीं मार पाता; इसी प्रकार, कुहको (शव) भी, लोगों (लोकं) को अपने छल (कोहञ्ञा) से धोखा देने के बाद, इस लोक में भी, ज्ञानी लोगों द्वारा पश्चाताप और निंदा आदि के कारण स्वयं को मार डालता है; परलोक में भी, वह दुष्ट जीवन में सर्वांगीण दुराचार (परिक्किलेसेहि) के कारण स्वयं को मार डालता है; दूसरी ओर, वह संन्यासी की आवश्यकताओं (पच्चयादायके) का दान करने वालों को नरक (अपायदुक्खा) के कष्टों तक नहीं पहुँचाता। फिर भी, छल करने वाला, समर्पित दान (दक्खिना) के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न करके, जिसका कोई फलदायी परिणाम नहीं होता, दानकर्ता को मार डालता है; इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने कहा है: "बुरे नैतिक बोध वाले मनुष्य को दान देने से, समर्पित दान के हजार गुना फल की अपेक्षा की जानी चाहिए।" इसलिए उन्होंने कहा: "सुहतं हन्ती अत्तानं।"

इस प्रकार, जो व्यक्ति बाहरी रूप से सर्वांगीण शुद्ध हो चुके हैं, उन्हें शुद्ध नहीं कहा जा सकता; केवल आंतरिक शुद्धि से ही वे शुद्ध होते हैं; इसी बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने "न ब्राह्मणो" से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक कहा। उस श्लोक का अर्थ है: — वह व्यक्ति केवल बाहरी समृद्धि, जैसे कि चाल-चलन (इरियापथ) और सामंजस्य (संथापन) आदि के कारण शुद्ध नहीं होता। वास्तव में, यहाँ समृद्धि (संपत्ति) के लिए प्रयुक्त शब्द वन्न है। वह व्यक्ति शुद्ध इसलिए होता है क्योंकि वह अच्छे नैतिक उपदेश आदि जैसे गुणों की आंतरिक समृद्धि से संपन्न होता है, और ऐसा करने के बाद ही शुद्ध होता है: — "बाहितपापो ब्राह्मणो (वह ब्राह्मण जिसने बुराई को दूर किया)।" अत: सूजप्पति (हे दिव्य शक्तियों के स्वामी!) आप इस प्रकार जान लें: "यस्मिं (जिसमें) पापनि कम्मानि (दुष्ट कर्म) विद्यमान हैं (संविज्जन्ति), वह निश्चय ही (एकंसेना) एक नीच (निहान) व्यक्ति है।" यह सुनकर सक्का ने उस कपटी भिक्षु को भयभीत किया और उसे सलाह देते हुए कहा: "तुम्हें धर्म (धम्म) में रहना चाहिए (वत्ताहि), और वह अपने निवास (सकट्ठाना) चला गया।

थेरा वासभा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

दूसरे खंड के पहले अध्याय पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(131): कुंडा द एल्डर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (131) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
131. कुंडा महान
बुद्ध युग में मगध राज्य के नलका गाँव में ब्राह्मण रूपसारी के पुत्र [119] और सारिपुत्त के छोटे भाई [1] के रूप में पुनर्जन्म लेकर , उन्होंने सारिपुत्त का अनुसरण करते हुए भिक्षु संघ में प्रवेश किया और कठिन परिश्रम के बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपनी इस उपलब्धि का गुणगान करते हुए और एकांत जीवन में उन्होंने यह कथन (गाथा) कहा:

[141] सुस्सुसा [20] सुतवद्धनि सुतं पनन्या वद्धनां,॥ पनन्या अत्थं जानाति नातो अत्थो सुखावहो॥ ॥

[142] सेवेथा पंतानि सेनासनानी॥ कैरेया संयोजना विप्पमोक्खाँ,॥ ससे रतिओ नाधिगच्छेया तथात्॥ संगे वसे रक्खितत्तो सतिमा' ति.॥ ॥

[141] सीखने की इच्छा ज्ञान के विकास की ओर ले जाती है; सीखना [2] अंतर्दृष्टि को बढ़ाता है, और अंतर्दृष्टि से हम अच्छाई को जानते हैं; ज्ञात अच्छाई आनंद लाती है।

[142] मनुष्यों से दूर एकांत स्थानों की खोज करो। [3] बंधनों से मुक्त जीवन का अभ्यास करो। यदि वहाँ तुम अपने हृदय की इच्छा से न पहुँच सको, तो भिक्षुओं के साथ सजग और संयमित रहो।

[1] देखें सन्य., चतुर्थ. 251; श्लोक 161; कथन (गाथा), प्रथम, पृष्ठ 96. अपने भाई के साथ वह चन्ना की यात्रा करते हैं (मज्झ., तृतीय. 263; सन्य., चतुर्थ. 55)। वे नौ या दस प्रमुख थेरों में से एक थे। अंगुत्तरा निकाय में उनके तीन प्रवचन वर्णित हैं , जो भिक्षुओं को संबोधित हैं और विशेष रूप से विद्वानों और अधिक रहस्यवादी प्रवृत्ति वाले लोगों के बीच विनम्रता और पारस्परिक सहिष्णुता का उपदेश देते हैं (तृतीय. 355)।

[2] शाब्दिक रूप से, सुनना, मौखिक निर्देश और स्मरणीय रिकॉर्डिंग के युग का संकेत।

[3] भगवान (बुद्ध) की स्वयं की सलाह उसे (मज्ह., i. 46)।

2.2 दूसरा अध्याय

2.2-1 [131] महाकुंडथेरा के श्लोक पर टीका

सुस्सूसा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा महा-चुंडा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान विपस्सी (बुद्ध) के समय एक कुम्हार के परिवार में पुनर्जन्म लिए। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो वे मिट्टी के बर्तन बनाकर जीविका कमा रहे थे, तभी एक दिन संयोगवश उन्होंने गुरु के दर्शन किए, वे श्रद्धा से भर गए, उन्होंने एक विशेष रूप से सुंदर मिट्टी का कटोरा बनाया और उसे भगवान को अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और थेरा सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई और ब्राह्मण स्त्री रूपसारी के पुत्र के रूप में मगध राज्य के नालद गाँव में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम चुंडा था। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने अपने बड़े भाई के धम्म के सेनापति बनने के बाद, एक भिक्षु का पद ग्रहण किया; उनके मार्गदर्शन में, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चलते हुए, अथक परिश्रम किया और शीघ्र ही छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। अतः, अपदान में कहा गया है:—

“हंसवाई नगर में मैं एक बर्तन था-

निर्माता। मैंने स्टेनलेस (विराजं) देखा।

बुद्ध, जो रोग-मुक्त थे और जिन्होंने पार कर लिया था

बाढ़ के ऊपर (ओघतिन्नम)।

मैंने एक सुंदर मिट्टी का कटोरा भेंट किया।

बुद्ध सर्वश्रेष्ठ हैं। मैंने अपना चढ़ावा चढ़ा दिया है।

उस परम पूज्य ईश्वर को कटोरे का प्रसाद अर्पित करना जो ऐसा था

एक ऋषि जो सीधे मार्ग पर चल पड़ा था, उससे मुझे लाभ हुआ।

जैसे ही मेरा किसी भी अस्तित्व में उदय हुआ, सोने की ट्रे मेरे सामने आ गईं।

चांदी, सोने और अन्य धातुओं से बनी चटाइयाँ (तट्टिके)

क्या मुझे रत्न भी मिले?

मैंने चांदी से बने बर्तनों का इस्तेमाल किया

और सोना); यह फलदायी परिणाम है।

मेरे पुण्य कर्म के कारण। मैं सर्वोपरि हो जाता हूँ।

(अग्गा) प्रतिष्ठा और धनवान पुरुषों के बीच।

जैसे किसी उपजाऊ खेत में

(खेत्ते), बीज बोया गया, भले ही वह कम मात्रा में हो,

जब मौसमी वर्षावाहक (सम्माधरं)

बारिश की बौछारें बरसती हैं, फसल को

फसल काटने (फलम्) से किसान संतुष्ट होता है।

(toseti kassakaṃ).

इसी प्रकार, यह उपयुक्त मार्ग भी

मेरे द्वारा बोया गया दान

बुद्ध का क्षेत्र, जब उत्साह का वाहक

(पीति) अपनी वर्षा बरसाता है, फलदायी

इसका परिणाम मुझे बेहद खुशी और संतुष्टि देगा।

जब तक खेत मौजूद रहेंगे, पादरी वर्ग

भिक्षुओं के साथ-साथ भिक्षुओं का समूह भी,

इस क्षेत्र के समान कोई और नहीं है

बुद्ध, सभी को सुख प्रदान करने वाले

जीवित प्राणियों।

हे सुसंस्कृत पुरुष! मेरी श्रद्धा आप पर बनी रहे।

हे परम पूज्य, मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ!

बहुत बढ़िया आदमी! मैंने अपना दान दे दिया है।

एक ही कटोरे से, मैंने प्राप्त कर लिया है

अविचलित पथ (अकलं पदं)।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने एक कटोरा भेंट किया।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे कटोरे का फलदायी परिणाम है।

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिञ्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने दो श्लोकों का उच्चारण किया ताकि वे यह बता सकें कि उनके द्वारा उचित रूप से प्राप्त समृद्धि (संपत्ति) का कारण क्या था और अपने गुरु (गरूपनिस्साय) पर उनकी निर्भरता और एकांतवास का कारण क्या था।

141. "आज्ञाकारी होने के कारण (सुस्सूसा)

इसमें वृद्धि (वढनी) हुई है

सीखना (सुता); जो कुछ भी सुना जाता है

इससे ज्ञान का विकास होता है।

एक व्यक्ति को इस मामले की जानकारी इसके माध्यम से होती है।

ज्ञान। ज्ञात विषय अधिक स्पष्ट है।

परमानंद का।

142. अपने आप को दूरस्थ रूप से संबद्ध करें

एकाकी (पंतानी) सिर और सीटें

(सेनासनानि)। व्यक्ति को एक आचरण करना चाहिए-

बंधनों से स्पष्ट स्वतंत्रता की ओर स्वयं

(सन्यजनविप्पमोक्खं)। यदि कोई न हो

वहाँ आनंद प्राप्त करने के लिए, एक

भिक्षुओं के बीच निवास करना चाहिए।

अपने आप से, देखभाल की गई और अधिकार में

जागरूकता का।"

वहाँ, सुस्सूसा का अर्थ है: पूर्ण ज्ञानी, सुनने योग्य (सोतब्बयुत्त) व्यक्ति को सुनने की इच्छा; साथ ही गुरु के साथ निवास करना। जब वास्तव में, किसी की सेवा करने से प्रसन्न होकर, अच्छे मित्रों के पास लाभकारी विषय (अत्थं) सुनने की इच्छा से जाने पर, जो तात्कालिक अस्तित्व से संबंधित (दित्तधम्मिका) आदि हैं, उनके निकट बैठने की इच्छा (उपनिसीदितुकामा) हो, तो उन्हें उनके पास बैठकर एकाग्रचित्त (ओहितसोतेन) से सुनना चाहिए। जब सुनने की इच्छा पूरी हो जाती है, तो इसे "सुस्सूसा, आज्ञाकारी" कहा गया है,

क्योंकि गुरु के साथ निवास करना भी आज्ञाकारिता का कारण है। वह आज्ञाकारिता (सुस्सुस) वास्तव में, सुतम् का श्रवण है जो श्रेष्ठ सत्यों (सच्च), आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पाद) आदि से उपयुक्त रूप से जुड़ा हुआ है; उस ज्ञान (तम् सुतम्) से संपन्न व्यक्ति का ज्ञान बढ़ता और फलता-फूलता है; अतः, सुतवद्धनी; अत्यधिक ज्ञान का जनक; यही अर्थ है। Sutaṃ paññāya vaddhanaṃ का अर्थ है: वह ज्ञान (bāhusaccaṃ) जिसे "sutadharo sutasannicayo (ज्ञान का वाहक, संचित ज्ञान का भंडार)," Idh'ekaccassa bahukaṃ sutaṃ hoti suttaṃ geyyaṃ veyyākaranaṃ (यहाँ, किसी ने बहुत कुछ सुना है, सूत्रबद्ध प्रवचन (सुत्त), गद्य और पद्य का मिश्रण (गेय्या), व्याख्या (वेय्याकरण)) आदि; यह उस ज्ञान को बढ़ाता है, जो बुरे कर्मों से बचने और अच्छे कर्मों को प्राप्त करने का कारण बना है; इस प्रकार, जो सुना गया है (sutaṃ) वह ज्ञान के विकास का आधार है; वास्तव में, यह भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है।

"सुतावुधो खो भिक्खवे अरियासावको

अकुशलं पजहति, कुसलं भवेति,

सवज्जं पजहति, अनवज्जं भवेति,

सुद्धमत्तनं परिहारति (हे भिक्षुओं!

वह महान शिष्य, वास्तव में, अपने साथ

सुनी गई बातों का हथियार (सुतावुधो)

बुरे कर्मों को त्यागता है, अच्छे कर्मों को विकसित करता है

कर्मों से बचता है, पापपूर्ण कृत्यों से दूर रहता है, पाप से दूर रहता है।

वह कम कर्म करता है और अपने शुद्ध स्वरूप पर ध्यान देता है।

पञ्ञाय अत्थं जानाति का अर्थ है: वह विद्वान व्यक्ति, जो सुनी हुई बातों से प्राप्त ज्ञान में स्थापित है, सुनी हुई बातों के अनुसार उचित प्राप्ति (पटिपत्तिं) की ओर अग्रसर होता है (सुतानुसारण), अर्थ की खोज (अत्तूपपरिक्खाय) करता है, सत्य की समझ (धम्मनिज्जानेन) के विकास (भावनाय) के माध्यम से तर्कसंगत रूप से जानता (पञ्ञाति) और सत्य (यथाभूतं) के अनुसार अर्थ (अत्थं) में प्रवेश करता है (पटिविज्जति), सांसारिक (लोकीय) और उदात्त (लोकउत्तर) में वर्गीकरण (भेदं), और वस्तुओं के दृश्य क्रम (दित्तधम्म) में वितरण (विभागं)। इत्यादि, साथ ही इस प्रकार का विवरण (विभागा) भी दुख (दुक्खा) के रूप में; इसलिए भगवान ने कहा:

"सुतस्स (यथा परियत्तस्स) अत्तमन्नया

धम्ममन्याय धम्मनुधम्मप्पतिपन्नो बोति

(एक विद्वान व्यक्ति को (जैसा कि उसके पास है)

(रटकर याद किया हुआ) उचित अभ्यास है

धर्म का (पटिपन्न)

सत्य (धन्ना) के अनुसार

वह अर्थ समझ गया था (अञ्ञाय)

(अत्था) और समझा (अञ्ञाय)

सत्य (धम्म) "धतानं धम्मनं अत्थं

उपपरिक्खति, अत्थं उपपरिक्खति धम्म

निज्जानं खमन्ति; धम्मनिज्झाणक्खन्तिया

सति चंदो जयति; चंदजातो उस्सहाति;

उसहित्वा तुलेटी; तुलयित्वा पदहति;

पहितत्तो समानो कायेन सीएव परमसच्चं

sacchikaroti; पनन्या कैनं अतिविज्झा

passatīti ca (वह अर्थ की जांच करता है)

उन शिक्षाओं (धम्म) का जो वह जानता था

सुनवाई के माध्यम से; उनकी परीक्षा के परिणामस्वरूप

अर्थ के संदर्भ में, उसे आनंद मिलता है।

जब वह प्रसन्न होता है (धर्म की शिक्षाएँ);

शिक्षाओं के साथ (धम्मनिज्जानक्खंतिया)

सती होने पर, चंदा (इच्छा) उत्पन्न होती है; जब

इच्छा उत्पन्न हुई तो उसने प्रयास किया;

प्रयास करने के बाद, वह वजन करता है;

वजन करने के बाद वह प्रयास करता है; उसके बनने पर

आत्म-प्रयास से प्रेरित होकर, वह परम सत्य की कल्पना करता है।

लेकिन उसके शरीर से भी; वह इसे देखता है

अपनी बुद्धिमत्ता के माध्यम से अत्यधिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करना।

Ñāto attho sukhāvaho का अर्थ है: ऐसा अर्थ जो प्रत्यक्ष व्यवस्था (दित्तधम्मिका) आदि से संबंधित हो, साथ ही ऐसा अर्थ जो पीड़ादायक कष्ट (दुक्खा) से शुरू होता हो, जैसा कि कहा गया है, अनियमित रूप से (यावतावतो) समझा और प्राप्त किया जाता है, जिससे सांसारिक और पारलौकिक (लोकीयलोकोत्तरभेदोम्) सुख प्राप्त होता है; यही अर्थ है।

यह स्थापित विकास ज्ञान (भावनापञ्ञाय) के माध्यम से मात्र सुनने मात्र से उचित रूप से सिद्ध (सिज्जति) नहीं होता; इसलिए, इसके लिए क्रियाविधि (पटिपज्जनाविधिं) दर्शाने के लिए उन्होंने कहा: "सेवेथा ... विप्पमोक्खं।" यहाँ, सेवेथा पंतनि सेनासनानी शारीरिक एकांतवास को दर्शाता है। यहाँ, अच्छे सामान्य उपदेश आदि जैसे आत्म-संयम को उनके सहज ज्ञान के रूप में, या स्पष्ट रूप से अभिभाषित किए बिना ही सिद्ध होने के रूप में (अवत्तसिद्धा), एकांतवास (विवेकवास) में रहने के रूप में समझा जाना चाहिए, जो बंधनों

(संयोजन-प्पहन) को त्यागने की अवस्था (वक्खमनता) के कारण एकांतवास के योग्य भी है। Cureyya saṃyojanavippamokkhaṃ का अर्थ है: जिस प्रकार मन बंधनों (saṃyojana) से स्पष्ट रूप से मुक्त (vippamuccati) हो जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति को आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (vipassanā bhāvanaṃ) के विकास और मार्ग के प्रचार (magggabhāvanaṃ) का उचित आचरण और अभ्यास (paṭipajjeyya) करना चाहिए; यही इसका अर्थ है। Sace retiṃ nādhigaccheyya tattha का अर्थ है: - यदि प्रथम और अंत में (pubbenāparaṃ) विशिष्टता (visesa) प्राप्त न करने के कारण विशेष आनंद (abhiratiṃ) प्राप्त न हुआ हो, तो उन दूरस्थ मठों में प्राप्त आनंद, साथ ही 'उच्च धार्मिकता की वस्तुओं' (adhikusala-dhammesu) में भी आनंद प्राप्त होता है; saṃghe का अर्थ है भिक्षुओं का समूह; रक्खितत्तो का अर्थ है: मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) में निपुणता (परिगणहना) के कारण छह इंद्रियों पर सजग रहना (रक्खितचित्तो); सतिमा वसेय्या का अर्थ है: सजग जागरूकता (सतिआरक्खाय) द्वारा संचालित (उपठपानेन) होकर जीवन व्यतीत करना (विहारेय्य); इस प्रकार जीवन व्यतीत करने वाले को बंधनों (संयोजना) से पूर्ण स्वतंत्रता (विप्पमोक्खो) प्राप्त हो सकती है; यही इसका महत्व है।

थेरा महा-चुंडा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(132):जोतिदास

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (132) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
132. ज्योतिदास
बुद्ध युग में, पाडियात्था देश में एक धनी ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम ज्योतिदास रखा गया। [1] वयस्क होने पर, एक दिन उन्होंने महान कश्यप को भिक्षा मांगते हुए देखा और उन्हें अपने घर में आमंत्रित किया तथा उनका प्रवचन सुना। गाँव के पास की पहाड़ी पर उन्होंने स्वयं थेरा के लिए एक विशाल विहार (मठ) बनवाया और उन्हें चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। इसके बाद थेरा की शिक्षाओं से प्रेरित होकर उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और कुछ ही समय बाद उन्होंने छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली। दस वर्षों के बाद, जिसके दौरान उन्होंने [120] तीनों पिटकों का अध्ययन किया, विशेष रूप से विनय-पिटक में निपुणता प्राप्त की, [2] और भिक्षु समुदाय की सेवा की, वे कई भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती में परम पूज्य (बुद्ध) को प्रणाम करने के लिए निकल पड़े। रास्ते में वे एक धर्मशास्त्री के उद्यान में प्रवेश कर गए, और एक ब्राह्मण (पुजारी) को पंच प्रकार की तपस्या करते हुए देखकर, [3] उन्होंने पूछा: 'हे ब्राह्मण (पुजारी), आप किसी अन्य प्रकार की ऊष्मा से क्यों नहीं जलते?' ब्राह्मण (पुजारी) नाराज होकर बोला: 'गुरुजी, मुंडा हुआ भिक्षु (मुंडक), और कौन सी ऊष्मा है?' थेरा ने उत्तर दिया:

क्रोध, ईर्ष्या, और सभी क्रूर कर्म,
और अभिमान, और अहंकार, और व्यर्थ का झगड़ा,
लालसा, और अज्ञान, और जीवन की लालसा:
ये सब जलकर भस्म हो जाएं और तुम्हारा शरीर शांत हो जाए! [4]

और उसके बाद उन्होंने उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया। और उन सभी धर्मशास्त्रियों ने उनसे भिक्षु बनने की दीक्षा देने का आग्रह किया।

सावत्थी छोड़ने के बाद वह अपने पूर्व घर गया और अपने रिश्तेदारों को इन छंदों में संबोधित किया:

[143] ये खो ते वेघमिस्सेना ननत्थेना च कम्मुना॥
मनुस्से उपरुन्धन्ति फरुसुपक्कमा जना,॥
तेपि तत्थेव किरण्ति नहि कम्मं पनस्सति॥ ॥

[144] यं करोति नरो नम्मौ कल्याणं यदि पापकौ,॥
तस्स तस्सेवदायदो यं यं कम्मं पकुब्बति' ति.॥ ॥

[143] वे जो कई तरीकों से बल
और हिंसा के कृत्यों द्वारा, [5] असभ्य और कठोर व्यवहार वाले लोग,
अपने साथी प्राणियों को चोट पहुँचाते हैं,
इससे वे स्वयं भी पराजित हो जाते हैं, [6] क्योंकि कर्म का परिणाम कभी व्यर्थ नहीं जाता।

[144] मनुष्य ने जो कर्म किया, चाहे वह अच्छा हो या बुरा,
उसके सभी कर्मों का वही उत्तराधिकारी है।

[1] महा-कसेपा राजगृह (सीसीएलएक्सआई) के पास रहते थे, लेकिन अन्य ग्रंथों में न तो जोतिदास और न ही पादियत्थ-जन्नपदा का उल्लेख मिलता है।

[2] देखें पुन्णा, जिन्होंने इन्हें पिछले जन्म में सीखा था (सिस्टर्स, पृ. 116; ऊपर पुनः, LXV)। हम टीकाकार के कथन की विश्वसनीयता को इतना मान सकते हैं कि संस्थापक के लंबे कार्यकाल के दौरान सिद्धांतों का एक त्रिविध समूह आकार ले रहा होगा।

[3] यानी, चार आगों से घिरा हुआ, ऊपर से सूरज की तेज धूप पड़ रही है।

[4] मैंने इन रेखाओं का पता नहीं लगाया है।

[5] वेघामिस्सेना, आदि शब्द पर (तुलना करें संवाद, ii. 107, n. 3), टिप्पणी में है: 'लगाम, पट्टा, आदि द्वारा सिर खींचना, आदि; हाथ, पैर, आदि से दिए गए प्रहार।'

[6] किरंति। डॉ. न्यूमैन ने साईं, बोना, जैसे बीज बिखेरना, प्रयोग किया है। टीका में इस प्रकार के किसी भी रूपक को अनदेखा किया गया है और लिखा है: जैसे उन्होंने दूसरों के लिए कष्ट उत्पन्न किया है, वैसे ही दूसरों द्वारा उन्हें भी कष्ट सहना पड़ता है - तथ'एव अञ्ञेहि किरियंति दुक्खाम् पापीयंति। श्लोक 598 में अभिकीरंति देखें ।

2.2-2 [132] ज्योतिदासत्थेरा के श्लोक पर टीका
ये खो ते से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा ज्योतिदास का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान सिख (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें कासुमारिका फल भेंट किया। इस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म-जन्मांतर का भ्रमण किया और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे पदियात्था जिले के एक धनी ब्राह्मण परिवार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम ज्योतिदास था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, एक दिन उन्होंने अपने ही गाँव में थेरा महाकस्सपा को भिक्षा मांगते हुए देखा। वे धर्मपरायण हो गए, उन्होंने थेरा का भोज कराया, उनके समक्ष धर्म की शिक्षा सुनी, अपने गाँव के निकट एक पहाड़ी पर एक विशाल मठ बनवाया, थेरा को वहाँ निवास कराया, उनकी चार आवश्यक वस्तुओं से सेवा की, थेरा द्वारा दिए गए धर्म के उपदेश से उचित पश्चाताप प्राप्त किया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। ऐसा अपदान में कहा गया है।

"मैंने स्टेनलेस (विराजं) बुद्ध को देखा,

पुरुषों में सबसे वृद्ध (लोकजेठं)

पुरुषों में श्रेष्ठ, तेजस्वी (जोतन्)

कनिकारा फूल के समान, जो बैठा हुआ था

पहाड़ों के बीच (pabbatantare).

मैं धार्मिक भाव से भर गया और प्रसन्न हो गया।

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को अपने ऊपर टिका दिया था

मैंने कासुमारिका फल एकत्र किए और

इसे परम श्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने तीन पिटकों का अध्ययन शुरू किया, विशेष रूप से विनय पिटक में अत्यंत निपुणता (विशेषातो) प्राप्त की, दस वर्ष की आयु में सर्वगुण संपन्न भिक्षु (परिसुपत्थाको) बन गए और कई भिक्षुओं के साथ भगवान बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी की ओर प्रस्थान किया; वहाँ जाते समय (अंतरामग्ग) वे विधर्मियों के आश्रम (आरामम्) में प्रवेश कर गए, ताकि यात्रा की थकान दूर कर सकें (विनोदन), एक तरफ बैठ गए, वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण को पंच धार्मिक तपस्या करते देखा और कहा, "हे ब्राह्मण! जब दूसरा चमक रहा है (तपनीयो), तो दूसरा क्यों चमक रहा है?" यह सुनकर ब्राह्मण क्रोधित हो गया और बोला, "हे गंजे! दूसरा क्यों चमक रहा है?" थेरा ने एक श्लोक के माध्यम से उन्हें सत्य (धम्म) समझाया, इस प्रकार:

क्रोध, दुर्भावना और दूसरों को परेशान करना,

अभिमान, झगड़ा, पागलपन (सारम्भमदो)

और लापरवाही, लालसा (तन्हा), अविज्जा

(अज्ञान) और अस्तित्व का संघ (संगति)

इसलिए, उन्हें जलाया जाना चाहिए (तप्पनाया);

वास्तव में, भौतिक समुच्चय नहीं।

(रूपखंडो)।"

उनकी बात सुनकर वह ब्राह्मण और उस आश्रम के सभी विधर्मी थेरा के समक्ष भिक्षु बन गए। थेरा उनके साथ सावत्थी गए, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, कुछ दिन वहाँ रहे (कटिपाहं) और फिर अपने जन्मस्थान (जातिभूमिं) लौट गए। उन्होंने अपने उन रिश्तेदारों को, जो उनसे मिलने आए थे, जो पारंपरिक यज्ञों से जुड़े थे (यज्ञसुद्धिक), और अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त करने वाले थे (नानालद्धिक), दो श्लोक सुनाए:

143. "वे जीवित प्राणी जो हमला करते हैं

निर्दयतापूर्वक (फरुसुपक्कमा) टूटना

(उपरुन्धन्ति) मनुष्य, जो

इसमें अन्य जीव शामिल हैं, जिनके साथ

मिक्स्ड रैप (वेथामिसेना) और साथ

कई तरह के कार्यक्रम, वे भी

उसी परिस्थिति में प्राप्त करें

प्रतिशोध (कीरन्ती); वास्तव में, एक

क्रिया गायब नहीं होती (पहले)

प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

244. "मनुष्य जो भी कार्य करे, चाहे

अच्छा हो या बुरा; उसकी विरासत तो बस यही है।

उस प्रकार का, और वह कौन सा कार्य करता है

प्रदर्शन किया गया है" ।

यहाँ, 'ये' का अर्थ है: अनिश्चित संकेत (अनियमाउद्देसो)। 'ते' किसी विषय पर वापस आने का संकेत है (पटिनिद्देसो), लेकिन अनिश्चित (अनियमातो) से। इस शब्द "जना" से दोनों शब्दों का संबंध भी स्थापित होता है। 'खो' का अर्थ है केवल अविकारी कण (निपाता)। वेथेमिस्सेना का अर्थ है: सिर पर चमड़े की पट्टी से लपेटना (वेथादानेना) आदि। एक ऐसा पाठ भी है जिसे "वेदामिस्सेना" कहा जाता है; इसका अर्थ भी यही है। नानात्तेन च कम्मुना का अर्थ है: दूसरों को चोट पहुँचाने के विभिन्न प्रकार के कार्य जैसे प्रहार करना, वध करना, हाथ-पैर काटना, छोटे पत्थरों से मारना आदि (खुद्दकसेल्डाना दिना)। मनुस्से का अर्थ है मात्र संकेत (निदासनमत्त); अतः, जो भी सजीव प्राणी हैं; यही इसका अर्थ है। उपरुम्धंति का अर्थ है: वे हानि पहुँचाते हैं (विबाधेन्ति)। फरुसूपक्कम का अर्थ है: क्रूर (दारुन) कर्म (पयोग), रक्तरंजित (कुरूर) व्यवसाय (कम्मंत); यही इसका अर्थ है। जना का अर्थ है: सजीव प्राणी। तेपि तत्त्वेवा कारंति का अर्थ है उक्त श्रेणियों के व्यक्तियों ने दूसरों को अन्यायपूर्ण कर्मों से चोट पहुँचाई। चाहे उनका चरित्र कैसा भी हो; tattheva का अर्थ है: उन्हीं कर्मों में वे स्वयं भी (पीड़ा भोगते हैं) (Kīranti) और त्यागे जाते हैं (pakkhipiyanti); वे उसी रूप में (tathārūpaṃ) कष्ट भोगते हैं; यही अर्थ है। एक अन्य पाठ "Tath'eva kīranti" भी है; जिस प्रकार उन्होंने स्वयं दूसरों को कष्ट दिया, उसी प्रकार वे भी दूसरों द्वारा (पीड़ा भोगते हैं); उन्हें कष्टदायी बनाया जाता है; यही अर्थ है। क्यों? Na hi kammaṃ panassati का अर्थ है: वास्तव में, कर्म निश्चित और स्पष्ट (ekanta) संरक्षित (upacitaṃ) परिणाम (vipākaṃ) दिए बिना नहीं लुप्त होता; शेष (avasesa) कारण (passaya) का संयोजन (samavāya) उसके परिणाम (vipaccate va) को उत्पन्न करता है; यही अर्थ है।

अब, संक्षेप में (संखेपतो) वर्गीकृत (विभजित्वा) करते हुए, जो केवल कहा गया है (वुत्तमत्तं): "न हि कम्मं पणस्सति," उन्होंने "यं करोति" से शुरू करते हुए एक श्लोक कहा, ताकि जीवों के कर्मों की अवस्था (कम्मसकतं) को स्पष्ट किया जा सके। इसका अर्थ है-- यं कम्मं कल्याणं का अर्थ है: अच्छा कर्म; यदि वा पापकं का अर्थ है: बुरा कर्म; करोति का अर्थ है जीव द्वारा किया गया कर्म; और कर्म करते समय भी, यं कम्मं का अर्थ है: फलदायी फल देने की क्षमता के अनुसार, उसी प्रकार वह फल अर्जित करता है। तस्स'एव दयादो का अर्थ है: वह इस और उस कर्म के फल (फल) को ग्रहण करने के कारण, इस और उस कर्म के फल (फल) से प्राप्त होने वाले परिणाम (विपाक) का भागीदार (भागी) है; यही इसका अर्थ है। अतः भगवान बुद्ध ने कहा: "कम्मसका मानवे सत्ता कम्मदायादा (हे युवक! जीव अपने कर्म के स्वामी (कम्मसका) और अपने कर्म के परिणामों (दयादा) के उत्तराधिकारी (दायादा) होते हैं" इत्यादि। इन श्लोकों को सुनकर थेरा के सगे-संबंधी अपने कर्म और प्रतिफल (कम्मसकाता) में विश्वास करने लगे।

थेरा ज्योतिदास के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(133):हेरनाकनि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (133) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
133. हेराञ्ञकनी
बुद्ध युग में कोसल के राजा के मुख्य किरायेदार और डाकुओं के सरदार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद उनका पद ग्रहण किया। बुद्ध को जेतवन ग्रहण करते देख उन्होंने सोतापना (निर्वाण का पहला ध्यान/समाधि) प्राप्त किया, अपने छोटे भाई को उनकी जगह पर बिठाया, संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया), और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने अपने भाई को बेहतर जीवन की ओर मोड़ने का प्रयास किया, और उसे इससे आसक्त देखकर, इन श्लोकों में उसे प्रेरित किया:

[145] अचयन्ति अहोरात्ता जीविताउ उपरुज्जति,॥
अयु खीयति मक्कणं कुन्नदीनं वा ओदकं॥ ॥

[146] अथ पापानि कम्मानि करौ बालो न बुझति,॥
पच्चस्सा कतुकां होति विपाको हिसा पापाको' ती॥ ॥

[145] दिन, रातें बीतती जाती हैं। जीवन रुक जाता है, और मनुष्यों को दिया गया
समय समाप्त हो जाता है और विफल हो जाता है, जैसे उथली पहाड़ी धाराओं में पानी।

[146] लेकिन मूर्ख अभी भी बुरे कर्म करता है,
और उसे पता नहीं चलता कि परिणाम कितना भयानक होगा,
जब तक कि कर्म के फल का कड़वा समय नहीं आ जाता।

थेरा का प्रवचन सुनकर, भाई ने राजा से अनुमति मांगी और संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया) तथा कुछ ही समय बाद मोक्ष प्राप्त कर लिया।

डकैत। ये लुटेरों के गिरोह थे जो धनी लोगों की जागीरों और कस्बों को लूटने और जलाने में माहिर थे। ये हमेशा किसी शक्तिशाली व्यक्ति से संरक्षण प्राप्त करते थे, उसकी सेवा करते थे और उसके आस-पास ही रहते थे।

[1] कोरा-वोसासाको, जिसके अधिकार क्षेत्र में लुटेरे या डाकू हों, चाहे उन्हें काम पर रखना हो या दबाना हो, यह संदिग्ध है।

2.2-3 [133] हेराञ्ञकनित्तेरा के श्लोक पर टीका
अचयंति अहोरात्ता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा हेराञ्ञकानी का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर में एक पारिवारिक घर में हुआ था। बुद्धि प्राप्त करने के बाद, वे अन्य लोगों के यहाँ काम करने वाले एक नौकर के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, तभी एक दिन उन्होंने अपने शिष्य सुजाता को, जो अपने वस्त्र की तलाश में कूड़े के ढेर में भटक रहा था, अपने आधे वस्त्र (उपढदुस्सा) का उपार्जन (परिच्चाजी) कर दिया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे तावतिंस स्वर्ग में दिव्य प्राणियों के बीच प्रकट हुए, और देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए, जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे राजा कोसल के ग्राम प्रधान के चोर-जल्लाद (कोरवोसासक) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम हेराञ्चकानी था। अपने पिता के देहांत के बाद, जब वे वयस्क हुए, तो राजा ने उन्हें उसी ग्राम प्रधान के पद पर नियुक्त किया, और जेतवन ग्रहण समारोह में बुद्ध की शक्ति को देखकर, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, अपना वह पद (थानंतरा) अपने सबसे छोटे भाई को दे दिया, राजा से अनुमति लेकर भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—-

"परमेश्वर का एक शिष्य"

पदुमुतार, जिसका नाम सुजाता है, में है

फटे-पुराने कपड़ों के लिए सामग्री की खोज-

फिर भटक गया (पंसुकूल)।

कूड़े-कचरे (संकार) के बीच में।

हंसवती नगर में, मैं एक था

किसी अन्य व्यक्ति का किराए का नौकर।

मैंने अपने ऊपरी वस्त्र का आधा हिस्सा पेश किया

(उपद्दुस्सा), मैंने अपना सम्मान व्यक्त किया

मेरा सिर। उस कृत्य के कारण,

बहुत बढ़िया, और मेरी इच्छा से।

(चेतना) और संकल्प (पनिधीहि),

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और चला गया

तावतिंसा.

तैंतीस बार मैं दिव्य था

संप्रभु, और दैवीय संप्रभुता का प्रयोग किया-

इक्यावनता। सत्तरह बार भी,

मैं विश्व का राजा था।

क्षेत्रीय शासन मेरे लिए प्रचुर मात्रा में था।

संख्यात्मक रूप से इसकी गणना करना असंभव था।

मेरे द्वारा आधी राशि की पेशकश के कारण

मुझे अपने ऊपरी वस्त्र से खुश रहना होगा।

खतरे से मुक्त।

आज, मैं अपनी इच्छा व्यक्त कर रहा हूँ कि मैं इसे पूरा कर सकूँ।

(मैं) जंगलों और पहाड़ियों के साथ

लिनेन के कपड़े के साथ; यह फलदायी है

(मेरी भेंट का) आधा (मेरा) ऊपरी भाग

वस्त्र।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने दान देने की पेशकश की थी।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

(आधे ऊपरी भाग की भेंट चढ़ाना)

वस्त्र।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंतसिप प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने सबसे छोटे भाई को समझाने के लिए दो श्लोक बोले, क्योंकि वे अपने सबसे छोटे भाई को उस कार्य (अपने कर्तव्य) से पीछे हटने के लिए प्रेरित करना चाहते थे, जब उन्होंने देखा कि उनका भाई उसी कार्य में विशेष रूप से आनंदित था।

145. "दिन-रात वे बीतते हैं; जीवन

समाप्ति की ओर जाता है। जीवनकाल

मनुष्यों का अंत भी इसी तरह होता है

छोटी धाराओं के पानी की ओर।

146. "इस बीच, एक मूर्ख व्यक्ति,

बुरे कर्म करते हुए भी उसे इसका एहसास नहीं होता।

(उनका परिणाम)। बाद में, यह बन जाता है

उसके लिए कड़वा (कटुका); वास्तव में, बुरा

यह इसका परिणाम है।

वहाँ, accayaṃ का अर्थ है: वे आगे बढ़ते हैं; हल्के और फुर्ती से वे चले जाते हैं; यही अर्थ है। Ahorattā का अर्थ है: रात और दिन (rattindivā)। Jīvitaṃ uparujjhati का अर्थ है; जीवन की नियंत्रक शक्ति (jāvitindriyaṃ) भी क्षणिक रूप से समाप्त हो जाती है (nurujjhati)। वास्तव में, यह कहा गया है, "हे भिक्षु! पल-पल तुम जन्म लेते हो, वृद्ध होते हो, मरते हो और फिर से जन्म लेते हो (upapajjati ca)।" Āyu Khīyati maccānaṃ का अर्थ है: मृत्यु के योग्य होने की प्रकृति की अवस्था; maccā (नश्वर); इस प्रकार, इन जीवों के प्राप्त नाम (nāmāni) हैं: āyu का अर्थ है; "जो भी दीर्घायु होता है, वह या तो सौ वर्ष से कम या उससे अधिक जीता है," इस प्रकार, इस तरह, अधिकतम जीवन की एक सीमित अवधि (परिच्छिन्नकालपरमायु) होती है; खीयति का अर्थ है: यह विलुप्त होने के साथ-साथ पूर्ण पतन (संभेद) की ओर भी जाता है। किस प्रकार? कुन्नदीनं व ओदकं का अर्थ है: जैसे, पहाड़ियों से निकलने वाली छोटी धाराओं और नदियों का जल अधिक समय तक नहीं रहता, बल्कि सूख जाता है (खीयति) और शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है (लाहुतरं); यहाँ, उदक शब्द को "ओदक (जल)" कहा गया है, उसी प्रकार जैसे मनो को मनसं (मन) कहा गया है।

अथा पापानि कम्मानि, कोरं बालो न बुझति का अर्थ है: यद्यपि वह अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) में इस प्रकार अनित्य है, फिर भी एक मूर्ख व्यक्ति, लोभ या क्रोध के प्रभाव में आकर, बुरे कर्म करता है; ऐसा करते हुए भी, वह (उसके फल) को नहीं जानता; बुराई करने में भी, अज्ञान के कारण ऐसा कुछ नहीं होता कि वह कहे, "मैं बुरा कर्म करता हूँ।" "न बुझति (वह नहीं जानता)" का अर्थ है: अज्ञान के कारण, वह इस प्रकार कहता है: "इस कर्म का ऐसा फल है, एक भयानक पीड़ा (दुक्खो);" इस प्रकार कहा गया है। पच्छा'स कटुकं होति का अर्थ है: बुरे कर्म करने के प्रयास के क्षण में भी, वह यह नहीं जानता कि "इस कर्म का यह फल है।" इसके बाद, आगे चलकर, उस मूर्ख व्यक्ति के लिए अवांछनीय दुख (दुक्खा) ही रह जाता है, जो निरयण में फंस गया है, इत्यादि। विपाको हि'स्स पापको का अर्थ है: क्योंकि उस बुरे कर्म का परिणाम केवल बुरा, नीच और अवांछनीय ही है। यह सलाह सुनकर, थेरा के सबसे छोटे भाई ने राजा से अनुमति लेकर भिक्षु बन गए और जल्द ही अपना उद्देश्य पूरा कर लिया।

थेरा हेराञ्ञकानी के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(134):सोमामित्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (134) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
134. सोमामित्ता

बुद्ध युग में बनारस में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर सोममित्त नाम से जन्मे, वे तीनों वेदों के ज्ञाता बन गए, लेकिन थेरा विमला [1] द्वारा सोतापाण (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त कर भिक्षु बन गए। वे थेरा के निकट रहकर उनके कर्तव्यों का पालन करते थे। परन्तु थेरा आलस्य और सुस्ती में लिप्त थे। सोममित्त ने यह सोचकर कि 'आलसी के पास कौन सद्‌गुणी हो सकता है?' महान कश्यप [2] के पास जाकर उनके प्रवचनों में भाग लिया और अंतर्दृष्टि प्राप्त की, और शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इस पर उन्होंने विमला को इन श्लोकों में फटकारा:

[147] परित्तं दारुमारूय यथा सीदे महानवे,॥
एवं कुसीतमगम्मा साधुजीवि पि सीदति,॥
तस्मा तं परिवज्जेया नुसितां हिनाविरियौ॥ ॥

[148] पविवित्तेहि अरियहि पहितत्तेहि झायिहि,॥
निच्चैऽ अरद्धविरियेहि पण्डितेहि सहावसेऽ ति.॥ ॥

[147] जैसे कोई व्यक्ति एक छोटे तख्ते पर चढ़कर
समुद्र के बीच में लहरों के नीचे चला जाता है,
वैसे ही निर्दोष जीवन वाला भी डूब जाता है,
जब उसे आलसी व्यक्ति के साथ फेंक दिया जाता है;
इसलिए ऐसे व्यक्ति से
आलसी और ऊर्जाहीन व्यक्ति को अच्छी तरह से अलग रखो।

[148] तुम उनके साथ रहो जो एकांत में रहते हैं,
बुद्धिमानों के साथ, उन महान लोगों के साथ जिन्होंने त्याग कर दिया है,
जो हमेशा तल्लीन ध्यान में प्रयास करते हैं। [3]

उनकी बात सुनकर थेरा विमला अत्यंत भावुक हो गए और अंतर्दृष्टि प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करने के लिए स्वयं को प्रेरित किया, जिसे वे भविष्य में प्राप्त करते हुए दिखाई देंगे।

[1] सीएलएक्सएक्सवी की विमला की तुलना करें , जो बनारस की भी थीं।

[2] अर्थात्, राजगृह (सीसीएलएक्सआई) को।

[3] सीएलXXXV में दोहराया गया।

2.2-4 [134] सोममित्तथेरा के श्लोक पर टीका
परित्तं दारुं से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा सोममित्त का है। इसका उद्‌गम क्या है? यह भी, पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, भगवान सिख धर्म के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने बुद्ध के गुणों के बारे में सुना, धर्मपरायण हो गए, एक दिन संयोगवश किंशुक वृक्ष को फूलों से लदा देखा, उसके फूल एकत्र किए और उन्हें गुरु को समर्पित करते हुए आकाश में प्रज्वलित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और बनारस में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए; उन्होंने सोममित्त नाम प्राप्त किया, तीनों वेदों में निपुण हुए, विमला नामक एक थेरा से परिचित हुए, जिनकी उपस्थिति में वे निरंतर जाते थे, थेरा की शिक्षा (धम्म) सुनी, शासन में अपनी सुखद आस्था (शासन) प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और पूर्ण रूप से सोममित्त ने पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर ली और अपने सामान्य एवं पारस्परिक कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए विचरण करने लगे। दूसरी ओर, थेरा विमला दिन-रात आलस्य और अत्यधिक नींद में व्यतीत करते रहे। वे मन ही मन कहते थे, “एक आलसी व्यक्ति पर निर्भर रहने का क्या लाभ (गुण) है?” सोममित्त ने उस थेरा का त्याग कर थेरा महाकस्सपा के पास गए, जिनकी सलाह का उन्होंने पालन किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और अर्हंत पद प्राप्त कर लिया, लेकिन कुछ ही समय बाद। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

किंसुका वृक्ष को खिलते हुए देखकर

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को ऊपर उठाया;

मुझे बुद्ध की याद आई, सबसे अच्छे, मैंने विशेष बनाया

आकाश में श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

उस कार्य के सफल निष्पादन के कारण,

मैंने अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प से दिया

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और तावतिंसा चला गया।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है,

फिर मैंने अपना काम किया; मुझे कुछ याद नहीं है।

दुष्ट अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी विकृति जलकर राख हो गई थी; सभी अस्तित्व

इसे हटा दिया गया है। एली के समान-

जिस प्रेत ने अपने बंधन तोड़ दिए थे, मैं जीवित हूँ

कैंकर-मुक्त (अनासव)। बिल्कुल! मेरा जाना

बुद्ध की उपस्थिति में जाना एक अच्छा अनुभव था।

तदनुसार मैंने त्रिगुणात्मक प्राप्ति कर ली है।

विज्ञान (तिस्सो विज्जा); बुद्ध का उपदेश

इसे अंजाम दिया जा चुका था।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने दो श्लोक कहे, जिससे थेरा विमला उनकी सलाह से भयभीत हो गईं, इस प्रकार:—

147. "लकड़ी के एक छोटे टुकड़े पर चढ़कर

किसी भी तरह से डूबते हुए बड़े

महासागर भी, उसी प्रकार, निर्भर करता है

एक आलसी व्यक्ति, यहाँ तक कि एक अच्छे जीवन का नेता भी

डूब जाता है। इसलिए, व्यक्ति को सर्वांगीण होना चाहिए।

अपने आप को आलसी और हीन लोगों से अलग कर लो

प्रयास।"

148. "बुद्धिमान और कुलीन लोगों के साथ रहना चाहिए।"

वे लोग (आरिया) जो शारीरिक रूप से एकांत में रहते हैं,

जिसका मन निर्वाण की ओर उन्मुख है

(पहितत्ता), जो ध्यानमग्न हैं (झायी)

और जो हमेशा सक्रिय और कार्यरत रहते हैं।

(आरद्धवीरीय).

वहाँ, parittaṃ dārumāruyha, yathā sīde mahannave का अर्थ है: अच्छे परिवार का पुत्र, भले ही वह अच्छे नैतिक उपदेशों का शौकीन हो (pesalo pi), एक आलसी व्यक्ति पर निर्भर होकर बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में फंस जाता है; वह निर्वाण, उसके अंतिम तट तक नहीं पहुँच पाता; क्योंकि यह नहीं है, tasmātaṃ का अर्थ है: उच्च धार्मिकता (adhikusaladhamma) के माध्यम से सिर उठाए बिना तिरस्कारपूर्वक (kucehitaṃ) डूबने (sīdanato) के कारण, kusitaṃ hīnavīriyaṃ का अर्थ है: प्रयास न करने के कारण, ऐसे व्यक्ति से बचना चाहिए; उसके चिंतन (diṭṭhānugatiṃ) के संकेत (āpajjeyya) से नहीं मिलना चाहिए; इस प्रकार, यही अर्थ है।

इस प्रकार आलस्य के नुकसान को व्यक्तिगत पूर्वाग्रह (अधिष्ठान) वाले श्लोक के माध्यम से इंगित करने के बाद, अब परिश्रम (वीर्यारम्भ) के लाभ को दर्शाने के लिए, "पविवित्तेहि" से शुरू होने वाले श्लोक का उल्लेख किया गया है। इसका अर्थ है- पविवित्त का अर्थ है: वे लोग जो शारीरिक एकांतवास को बढ़ावा देते हैं (संभव); अरिया का अर्थ है: उस शारीरिक एकांतवास के परिणामस्वरूप भी, क्योंकि वे विकृतियों से दूर रहते हैं (किलेसेहि आरकत्ता); पहितत्ता का अर्थ है: क्योंकि स्वयं को उचित रूप से निर्वाण की ओर भेजा गया है; झायिनो का अर्थ है: इंद्रिय-विषय (आरम्मन) पर ध्यान (उपनिज्जान) और विशिष्ट चिह्न (लक्खन) पर ध्यान (उपनिज्जान) दोनों के माध्यम से। āraddhavīriya cantes: हर समय परिश्रम को रोके रखने की स्थिति से; paṇḍitā का अर्थ है: सांसारिक (lokiya) और पारलौकिक (lokuttara) रूप में वर्गीकृत ज्ञान से संपन्न होने की अवस्था से; saha का अर्थ है: लेकिन उनके साथ; āvase का अर्थ है: जो अपना कल्याण (sadatthaṃ) करना चाहता है, उसे साथ रहना चाहिए। यह सुनकर थेरा विमिला पश्चाताप से भर गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और अपना लाभ (sadatthaṃ) प्राप्त किया। यह अर्थ (svāyamattho) बाद में आएगा।

थेरा सोममित्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(135):सब्बमित्ता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (135) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
135. सब्बामिट्टा
बुद्ध युग में सावत्थी के एक ब्राह्मण (पुजारी) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर सब्बामित्त नाम से विराजमान हुए, उन्होंने जेतवन के प्रस्तुतीकरण के समय बुद्ध की अद्भुत शक्ति देखी और भिक्षु संघ में प्रवेश करके अभ्यास का विषय प्राप्त किया तथा वन में रहने लगे। वर्षा ऋतु के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने सावत्थी गए और रास्ते में उन्हें एक हिरण का बच्चा शिकारी के जाल में फंसा हुआ मिला।

हिरणी, हालांकि जाल में नहीं थी, अपने बच्चे के प्रति प्रेम के कारण पास ही रही, फिर भी जाल के करीब आने का साहस नहीं कर रही थी। हिरण का बच्चा इधर-उधर घूमकर दया की भीख मांगते हुए मिमियाया। तब थेरा ने कहा, 'हाय! प्रेम प्राणियों को कितना कष्ट देता है!' आगे जाकर उन्होंने देखा कि कई डाकू एक जीवित पकड़े गए व्यक्ति को भूसे में लपेट रहे थे और उसे आग लगाने वाले थे । उसकी चीखें सुनकर, थेरा ने इन दोनों बातों से दुखी होकर डाकुओं के सामने एक श्लोक कहा।

[149] जानो जन्महि संबुद्धो जनमेवसितो जानो,॥
जानो जनेन हेठियाति हेथेति च जानो जनाउ.॥ ॥

[150] कोही [21] तस्सा जनेनत्तो जनेन जनितेन वा,॥
जनं ओहाय गच्छं तं हेठयित्वा बहुं जनन्ति॥ ॥

[149] लोग आपस में जुड़े होते हैं और एक दूसरे से चिपके रहते हैं।
लोग एक दूसरे से हानि सहते हैं और वही हानि पहुंचाते हैं।

[150] तो फिर इस जाति और इस जाति की संतान से तुम्हें क्या लाभ होता है?
इन लोगों को जाने दो और तुम भी उनसे दूर हो जाओ,
क्योंकि जाते समय ये लोग बहुतों को हानि पहुँचाते हैं। [1]

ऐसा कहकर उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) हासिल कर लिया। लेकिन लुटेरे, उनकी शिक्षा सुनकर हृदयविदारित हो गए और संसार का त्याग कर, सिद्धांत और विस्तार से धम्म मार्ग का अभ्यास करने लगे।

[1] मैंने गच्चनताṃ पढ़ा।

2.2-5 [135] सब्बामित्तथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
जनोजनमहि संबद्धो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सब्बामित्त का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, भगवान तिस्सा के समय, बानवे युग (कप्पा) पहले, एक शिकारी परिवार में पुनर्जन्म लिया और हिरण (मिगा) का वध करके मांस (मांसं) खाकर अपना जीवन व्यतीत किया। उस अवसर पर, उन्हें उत्थान के उद्देश्य से, भगवान ने उनके निवास स्थान के पास अपने पदचिह्नों के तीन मंदिर दिखाए और प्रस्थान किया। अतीत में सुशिक्षित बुद्धों के साथ घनिष्ठ संपर्क के कारण, उन्होंने वृत्तों से चिह्नित (पदचिह्नों) को देखा, श्रद्धा से भर गए और कोरंडा झाड़ी के फूलों से श्रद्धापूर्वक अर्पण किया; उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका जन्म तावतिंसा के महल में हुआ और वे बार-बार जन्म लेते रहे, फिर भी उत्तम जन्मों में ही कभी-कभी सावत्थी नगर के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेते रहे, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम सब्बामित्त था। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने जेतवन ग्रहण समारोह में बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) किया, वन में निवास किया, वर्षा ऋतु में विश्राम (वस्समुपगन्त्वा) किया, उपवास (वुट्ठवस्सो) पूरा किया, भगवान बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी गए, और रास्ते में उन्हें हिरण के शिकारियों द्वारा बिछाए गए जाल में फंसा हुआ एक हिरण का बच्चा (मिगापोतकं) दिखाई दिया। उसकी माँ, हिरणी, यद्यपि जाल में नहीं फंसी (अपविट्ठापि), अपने बच्चे के प्रति स्नेह के कारण दूर नहीं गई; मृत्यु के भय से वह जाल के पास भी नहीं गई; दूसरी ओर, हिरण का बच्चा भयभीत था, इधर-उधर लोट रहा था और दयनीय ढंग से रो रहा था; यह देखकर थेरा ने मन ही मन कहा, "हाय! प्राणियों के स्नेह (स्नेहहेतुकम्) के फलस्वरूप कितना कष्ट (दुक्खं) होता है।" जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया (ततो परम्), उसने देखा कि कई लुटेरे एक आदमी को जिंदा पकड़कर जला रहे थे, उसके शरीर को बुनी हुई घास से लपेट रहे थे और वह पीड़ित भी जोर-जोर से रो रहा था। इन दोनों घटनाओं को देखकर थेरा को पश्चाताप हुआ और उसने उन लुटेरों से, जो केवल सुन रहे थे, दो श्लोक कहे:

149. "मनुष्य मनुष्य में अच्छी तरह से बंधा हुआ है; मनुष्य है

लेकिन एक आदमी से चिपक गया; आदमी घायल हो गया

एक आदमी दूसरे आदमी को चोट पहुँचाता है;

150. वास्तव में, मनुष्य को इससे क्या लाभ है?

उसे? या (समर्थन का) क्या लाभ है?

उत्पादित (जनिता) का उत्पादक; होना

अगर कई लोगों ने शपथ नहीं ली होती, तो मैं उसे छोड़ देता।

आदमी और जाओ।

वहाँ, जानो का अर्थ है: अंधे मूर्ख लोग। जनावि का अर्थ है दूसरे व्यक्ति में। सम्बद्धो का अर्थ है: तृष्णा के बंधन से बंधा हुआ; "यह मेरा पुत्र है, मेरी माता है" जैसे बंधनों से उचित रूप से बंधा हुआ। वैकल्पिक रूप से, इसका एक और अर्थ यह है: "इमे मम् पोसेन्ति, अहम् इमे निस्साय जीवामि (ये लोग मेरा पालन-पोषण करते हैं; मैं इन लोगों पर निर्भर रहता हूँ)" इस प्रकार, मन उचित रूप से आसक्त है; यही अर्थ है। जनमेवस्सितो जानो का अर्थ है: दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे कथन पर निर्भर करता है; "यह मेरा पुत्र है, पुत्री है," इत्यादि; तृष्णा (तन्हा) से जकड़ा हुआ है और तन्हा के सर्वव्यापी शिकंजे में खड़ा रहता है। जानो जनेन हेठीयति, हेठीयति च जानो जमां का अर्थ है; जिस प्रकार एक व्यक्ति लोभ के प्रभाव में आकर, पर्याप्त समभाव (अज्जुपेक्खनं) का पालन किए बिना, गहन ज्ञान के अभाव में, और कर्म को अपना मानकर (कम्मसकतय) जो कुछ घटित हुआ है, उसी प्रकार क्रोध के प्रभाव में आकर एक व्यक्ति दूसरे को चोट पहुँचाता है। एक व्यक्ति दूसरे को भी चोट पहुँचाता है, यह जाने बिना कि “यह चोट मेरे द्वारा पहुँचाई गई चोट के दंड स्वरूप ही मुझ पर आ पड़ेगी।”

Ko hi tassa janena'ttho का अर्थ है: किसी दूसरे पुरुष द्वारा तृष्णा (तन्हा) के प्रभाव में आकर किसी दूसरे पुरुष से आसक्त होने का क्या लाभ है, और क्रोध के प्रभाव में आकर किसी दूसरे पुरुष द्वारा किसी दूसरे पुरुष को चोट पहुँचाने का क्या लाभ है? Janena janitena vā का अर्थ है: माता-पिता बनने के बाद, किसी दूसरे पुरुष द्वारा संतान उत्पन्न करने या किसी दूसरे पुरुष द्वारा संतान उत्पन्न होने का क्या लाभ है? Janaṃ ohāya gacchaṃtaṃ, heṭhayitvā bahuṃ janaṃ का अर्थ है: चूंकि ऐसा उचित सिद्धि (पटिपत्ति) है जो पुनर्जन्मों के चक्र में भटकने वाले मनुष्य के लिए भी समान है, इसलिए मैं उस मनुष्य का, उसके बंधन में जकड़े रहने वाली तृष्णा (तन्हा) का, और अनेक मनुष्यों को पीड़ा पहुँचाने के बाद भी स्थिर रहने वाले क्रोध का भी सर्वथा त्याग कर, सर्वस्व त्याग कर, नीचे उतरता हूँ; मैं उस स्थान पर पहुँचूँगा जहाँ कोई भी इनसे पीड़ित न हो; यही अर्थ है। इस प्रकार कहने के बाद, थेरा ने वहीं आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में तत्परता से लीन होकर अरहंत्सिप प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“पहले मैं वनकर्मी था,

मेरे माता-पिता की मृत्यु।

मैंने अपना जीवन जानवरों को मारकर बिताया; मुझमें

कोई अच्छा कर्म नहीं हुआ था।

मेरे निवास स्थान के पड़ोस में, टिस्सा में,

विश्व का नेता, स्वामी

आँखों से, मुझ पर दया करके बनाया

उसके तीन पदचिह्न दिखाई दे रहे थे।

पैरों के निशान देखे।

मैंने तिस्सा नामक गुरु के बारे में मन बना लिया था।

पदचिह्न से श्रद्धापूर्वक प्रसन्न होकर

मेरा आनंदित हृदय प्रसन्न हो उठा।

कोरंडा झाड़ी को देखकर

ब्लूम, वह झाड़ी जो धरती पर उगती थी,

मैंने फूल तोड़कर इकट्ठा कर लिया।

अपने पात्र (सकोथका) के साथ और बनाया

सबसे प्रिय को मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट-

उत्कृष्ट पदचिह्न।

उस कार्य के सफल निष्पादन के कारण

साथ ही मेरी इच्छाशक्ति और संकल्प भी,

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और चला गया

तावतिंसा.

मैं जिसके भी पास गया, वह या तो दिव्य था

अवस्था या मानवीय स्थिति मेरे पास त्वचा थी

कोरांडा फूल का; मैं अच्छी तरह से तेजस्वी हो गया-

dent (suppabhāso).

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने अपना काम कर दिया। मैं इसे दोहराता नहीं हूँ-

किसी भी बुरी शक्ति का सदस्य; यही है

मेरी श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का फलदायी परिणाम

पदचिह्न (प्रिंट) तक।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

परन्तु उन लुटेरों ने थेरा की उपस्थिति में सत्य (धम्म) को सुनकर पश्चाताप किया, भिक्षु बन गए और शिक्षा के अनुरूप उचित अभ्यास किया (धम्मानुधम्मं पटिपज्जिंसु)।

थेरा सब्बामित्ता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(136):महाकाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (136) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
136. महाकाल
बुद्ध युग में सेतव्या नगर में एक व्यापारी के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम महाकाल रखा गया। [1] वयस्क होने पर और घर पर रहते हुए, वे पाँच सौ गाड़ियों में माल लेकर सावत्थी व्यापार करने गए। शाम को अपने साथियों के साथ वहाँ विश्राम करते समय, उन्होंने गृहस्थों को इत्र और मालाएँ लेकर जेतवन जाते देखा और वे भी उनके साथ चल दिए। वहाँ उन्होंने भगवान (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, विश्वास किया और भिक्षु बन गए। श्मशान भूमि में ध्यान करने का निश्चय करके वे श्मशान क्षेत्र में रहने लगे। और एक दिन काली नाम की एक महिला, जो शवदाह गृह में कार्यरत थी, [2] थेरा को अध्ययन के लिए एक वस्तु देने के उद्देश्य से, हाल ही में दाह संस्कार किए गए शरीर से दोनों जांघें और दोनों भुजाएँ काटकर, सिर को दूध के कटोरे के समान आकार में तोड़कर, सभी [124] अंगों को एक साथ व्यवस्थित किया, उन्हें उस स्थान पर रखा जहाँ थेरा अध्ययन कर रहे थे, और बगल में बैठ गई। यह देखकर थेरा ने स्वयं को इन श्लोकों में शिक्षित किया:

[151] काइ इत्थि ब्रहति धक्षरूपा॥
सत्थिŋ च भेत्वा अपारु च सत्थिŋ,॥
बाहाऽ च भेत्वा अपारं च बहुऽ॥
सीसाऽ च भेत्वा दधिथलकाऽ वा॥
एषा निसिन्ना अभिसद्दहित्वा॥ ॥

[152] यो वे अविद्वा उपधिं करोति॥
पुनप्पुनाऽ दुक्खमुपेति मांदो,॥
तस्मा पजानाउपधिं न कयिरा॥
महुऽ पुना भिन्नासिरो सैइस्संति.॥ ॥

[151] काली, चौड़ी और बड़ी स्त्री, काली चिड़िया के रंग की,
अब उसने एक जांघ की हड्डी तोड़ दी है, अब दूसरी;
अब उसने एक बांह तोड़ दी है, अब दूसरी;
अब खोपड़ी को ऐसे तोड़ दिया है जैसे वह दूध का कटोरा हो,
उन्हें तैयार किया और बैठ गई।

[152] जो बुद्धिहीन होकर नहीं समझता, परन्तु
जीवन के नवीनीकरण का कारण बनाता है, वह फिर से दुःख में लौट आता है।
इसीलिए जो जानता है, वह नए कारण नहीं बनाता।
काश मैं फिर कभी बिखरे अंगों के साथ ऐसे न लेटूँ! [3]

इस प्रकार पूर्णतः आत्म-नियंत्रित होकर, थेरा ने अंतर्दृष्टि उत्पन्न की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[1] तो टीका; ṅkāla नहीं। इस प्रकार नाम का अर्थ है 'बड़ा काला' या, सुविधाजनक इतालवी नामकरण में, Neraccio। Kāḷī का अर्थ भी 'भूरा' है।

[2] जात., खंड 449 में , हमें इस व्यापार को आगे बढ़ाने वाले एक व्यक्ति से मुलाकात होती है।

[3] काली की गतिविधियों का वर्णन एक विचित्र अधूरी पंक्ति के साथ समाप्त होता है, मानो एक विराम द्वारा थेरा द्वारा उसकी भयानक सेवा पर किए गए आधे-मजाक भरे अवलोकन से लेकर उसके दुख के अंत की गंभीर खोज तक के अचानक संक्रमण को चिह्नित किया गया हो। यह एक ऐसी कविता का अच्छा उदाहरण है जिसे टीका की सहायता के बिना समझना मुश्किल है। टीका की सहायता से, अनुवाद जितना अधिक शाब्दिक होगा, कविता उतनी ही अधिक बोधगम्य होगी। इसके बिना, हमें केवल डॉ. न्यूमैन के अनुमान और जबरदस्ती किए गए अनुवाद को देखना होगा, जिसमें काली को व्यभिचारी और अच्छे भिक्षु को कामुक मानसिकता वाला व्यक्ति बताया गया है, जिससे यह पता चलता है कि एक विद्वतापूर्ण व्याख्या भी कितनी अपेक्षाकृत तर्कसंगत और सरल हो सकती है। असुभ-ज्ञान, यानी किसी अप्रिय वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने की प्रथा , संघ के आरंभिक काल से ही अनुशंसित थी, और साथ में दिए गए श्रीलंकाई भिक्षु के चित्र से स्पष्ट है कि यह आज भी प्रचलित है। (देखें बुद्ध मनोविज्ञान, पृष्ठ 69, नोट 2)।

2.2-6 [136] महाकालत्थेरा के श्लोक पर टीका
काली इत्थी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा महाकाल का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और इक्यावन युग (कप्पा) पहले एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे किसी कार्य से वन में गए, जहाँ उन्होंने एक वृक्ष की शाखा पर पुराने कपड़ों के ढेर से एक वस्त्र (पम्सुकूल) लटका हुआ देखा, और श्रद्धा से भरकर कहा; "एक श्रेष्ठ ध्वज (अरियद्धजो) नीचे लटका हुआ है।" उन्होंने किंकनी फूल एकत्र किए और उस वस्त्र (पम्सुकूल) को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सेताब्य नगर में एक कारवां प्रमुख के परिवार में पुनर्जन्म लिए; उन्होंने महादाल नाम प्राप्त किया; बुद्धि प्राप्त करने पर, गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, वे पाँच सौ रथों में माल एकत्रित करके व्यापार के मार्ग से सावत्थी गए; वहाँ पहुँचकर, उन्होंने अपने रथों के काफिले को एक कोने में रोका, जहाँ उनकी यात्रा की थकान दूर हो गई और वे अपने दल के साथ बैठ गए। शाम को संयोगवश उनकी नज़र कुछ भक्तों पर पड़ी, जिनके हाथों में इत्र और पुष्पमालाएँ थीं और वे जेतवन जा रहे थे। वे भी उनके साथ मठ गए, गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धर्मपरायणता प्राप्त की, भिक्षु बन गए और श्मशान में अपने कठोर नियमों का पालन करते हुए निवास किया। फिर एक दिन, काली नाम की एक महिला, जिसका कर्तव्य मृतकों का अंतिम संस्कार करना था, ने थेरा के मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को सुगम बनाने के उद्देश्य से, एक हाल ही में मृत शरीर की दोनों जांघों, दोनों भुजाओं और सिर को दूध के दही से भरी थाली की तरह तोड़ दिया। उसने मृत शरीर के सभी प्रमुख और गौण अंगों को मिलाकर एक ऐसा संयोजन बनाया, जिसे थेरा के दर्शन के लिए अभ्यास स्थल पर रखा गया और वह एक तरफ बैठ गया। यह देखकर थेरा ने स्वयं को उपदेश देने के लिए दो श्लोक कहे:

151 "काली एक बड़ी काया वाली महिला है और

कौवे जैसा रंग; एक को तोड़कर

एक के बाद एक जांघ टूट गई

एक हाथ और फिर दूसरा, टूट जाने के बाद

सिर दूध के दही से भरी थाली के समान था,

वह बैठने के बाद बैठ गई है।

विशेष रूप से उन्होंने उन्हें एकजुट किया।

152 "जो कोई भी, वास्तव में, बुद्धिमान हुए बिना

(अविद्या) एक आधार (उपाधि) बनाता है,

वह कम बुद्धि वाला आदमी-

बार-बार पीड़ादायक कष्टों का सामना करता है।

इसलिए, आधार नहीं बनाना चाहिए

जीवित प्राणियों के लिए; क्या मैं सो नहीं सकता?

फिर से सिर चकरा गया।

वहाँ, काली का अर्थ उसका नाम है। वैकल्पिक रूप से, गहरे रंग के कारण भी ऐसा कहा गया है। ब्राहती का अर्थ है: बड़े शरीर वाली, ऊँची और गठीली महिला। दंकरूपा का अर्थ है: अपने काले रंग के कारण वह कौवे जैसी दिखती है। सत्थिंच भेत्वा का अर्थ है: घुटने को तोड़कर शव की जांघ तोड़ दी। अपरांच सत्थिं का अर्थ है: दूसरी जांघ भी तोड़ दी। बाहंच भेत्वा का अर्थ है: बांह की हड्डी भी तोड़ दी, लेकिन बांह के ऊपरी हिस्से पर। सीसंंच भत्वा दधि तलकं व का अर्थ है: शव का सिर तोड़ दिया; लेकिन टूटने के कारण यह दूध के दही की थाली की तरह दिखता है जो पत्थरों, लाठियों आदि से टकराने के कारण टपक रहा हो; मस्तिष्क को टपकने जैसा बना दिया हो। अतः, इसका अर्थ है, esānisinnā ahhisandahitvā का अर्थ है: वह इस प्रकार बैठी है मानो वह मांस बाजार में मांस का ढेर लगा रही हो, एक मिश्रित इकाई बनाकर, उन्हें इस प्रकार जोड़कर कि वे मृत शरीर के कटे और टूटे हुए अलग-अलग अंगों के विवरण के अनुसार ही खड़े हों।

Yo ve avidvā upadhiṃ karoti का अर्थ है: जो कोई भी, अज्ञानी और कुबुद्ध होकर भी, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को इससे लाभान्वित होते हुए देखकर, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को त्यागने के बाद अज्ञानी (अयोनिसो) ध्यान के कारण दुराचार (किलेसुपधिम्) का आधार उत्पन्न करता है; mando का अर्थ है: वह अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति, अपने बार-बार के पुनर्जन्मों (संसार) से मुक्त न होने के कारण, punappunaṃ dukkhaṃ upeti का अर्थ है: समय-समय पर नरक में कष्ट भोगता है, इत्यादि। Tasmā pajānaṃ upadhiṃ na kayirā का अर्थ है: क्योंकि यह इस प्रकार भी है, इसलिए। पजानं उपाधिं का अर्थ है: मनुष्य को इस प्रकार तर्कसंगत रूप से यह जानकर कि "यहाँ जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह दुखदायी होता है," और स्वयं को बुद्धिमानी से सचेत करके, न तो दुराचार का आधार उत्पन्न करना चाहिए और न ही उसका कारण बनना चाहिए। क्यों? माहं पुन भिन्नसिरो सयिसं का अर्थ है: जिस प्रकार यह मृत शरीर टूटे अंगों के साथ पड़ा है, उसी प्रकार मुझे भी बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पुनर्जन्म लेने के कारण बार-बार श्मशान में दफन होने के बाद टूटे सिर के साथ सोने के लिए मजबूर न किया जाए। केवल इसी प्रकार कहते हुए, थेरा ने गहन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:

"हिमावंता से कुछ ही दूरी पर एक पहाड़ी थी

उदंगना नाम का एक जीव। वहाँ मेरी नज़र एक जीव पर पड़ी।

एक फटा हुआ वस्त्र (पंसुकूल) जो स्पष्ट रूप से लटका हुआ है

एक पेड़ की चोटी पर। तीन किंकानी फूल खिले।

फिर मैं आनंदपूर्वक, प्रसन्न हृदय से, तुरही तोड़ता हूँ।

मैंने उस वस्त्र को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

चूर्ण-चूर्ण कपड़ों (पंसुकूल) का।

उस कार्य के सफल निष्पादन के कारण,

अपनी इच्छा और संकल्प से भी, मैं

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और तावतिंसा चला गया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

फिर मैंने यह काम किया। मुझे याद नहीं है।

मेरे ऐसा करने के बाद किसी भी बुरी शक्ति का अस्तित्व

महान ध्वज के प्रति श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई भेंट

(अरहद्धज, पवित्र प्रतीक)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

थेरा महाकाल के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(137):तिसा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (137) ----->>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
137. टिस्सा [1]
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर तिस्सा नाम से विख्यात हुए। वे वेदों के ज्ञाता बने और पाँच सौ ब्राह्मण बालकों को मंत्रों का अध्यापन कराकर सर्वोच्च ख्याति और यश प्राप्त किया। जब भगवान (बुद्ध) राजगृह आए, तो तिस्सा ने बुद्ध के दर्शन किए और विश्वास के साथ भिक्षु संघ में प्रवेश किया। इसके बाद उन्होंने गहन अंतर्दृष्टि के माध्यम से अर्हत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने भी ख्याति और यश प्राप्त किया।

अब कुछ सांसारिक मन वाले भिक्षुओं ने थेरा पर दिए जा रहे ध्यान को देखकर इसे सहन नहीं कर सके। थेरा यह जानते थे, और उन्होंने ऐसे ध्यान में निहित बुराई और उससे अपने वैराग्य को इन श्लोकों में प्रकट किया:

[153] बाहु सप्ते लभाति मुनादो संघातिपरुतो,॥
लाभि अन्नस्सा पनास्सा वत्थस्सा सयानस्सा चा॥ ॥

[154] एतमादिनावं णत्वा सक्करेसु महाभभयं,॥
अप्पलाभो 'नवसुतो सातो भिक्खु परिब्बाजे' ति.॥ ॥

[153] उसे अनेक शत्रु मिलते हैं, वह भिक्षु (भिक्षु) बाल मुंडवाए हुए,
अपने वस्त्र में लिपटा हुआ, जिसे संसार
भोजन और पेय, वस्त्र और रहने की जगह के उपहार देता है।

[154] तो वह, यहाँ से होने वाले सभी अभिशापों को जानते हुए,
संसार के प्रति भयानक खतरे को जानते हुए,
थोड़ा सा लेते हुए, कामवासना के दाग (पाप) से मुक्त होकर,
सतर्क और सचेत रहते हुए, अपना आगे का मार्ग बनाए रखे।

तब उन भिक्षुओं ने तुरंत थेरा से क्षमा मांगी।

[1] स्पष्ट रूप से उपरोक्त दोनों थेराओं से बिल्कुल अलग तिस्सा। तुलना करें भजन XXXIX, XCVII.

2.2-7 [137] तिस्साथेरा के छंद पर टिप्पणी
बहु सपत्ते लभति से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा तिस्सा का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करके, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए, और इस-उस जन्म में एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया, जो भगवान पियादस्सी के समय का था। ज्ञान प्राप्ति पर उन्होंने सभी ब्राह्मण विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, इंद्रिय सुखों में हानि पाई, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया और वन क्षेत्र में साल के उपवन में एक आश्रम बनाकर उसमें निवास किया। अपने आश्रम से बाहर आकर, वे छोटे-बड़े फल लाने जा रहे थे, तभी उनकी मुलाकात भगवान बुद्ध से हुई। वे श्रद्धा से भर गए और चार लकड़ियाँ लगाकर, साल के वृक्ष की खिली हुई शाखाओं से एक मंडप (छतरी) बनाया, जो भगवान बुद्ध के ऊपर स्थापित हुआ, और सात दिनों तक निरंतर उत्साह के साथ भगवान बुद्ध को ताजे साल के फूल अर्पित करते रहे। सात दिनों की समाप्ति पर, गुरु बुद्ध निरोध समाधि से उठे और अपने भिक्षुओं के बारे में सोचने लगे। तभी एक लाख की संख्या में दोषरहित अरहंतों ने गुरु बुद्ध को घेर लिया। उनकी भावी समृद्धि को प्रकट करने के लिए, गुरु बुद्ध ने उन्हें धन्यवाद दिया और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे दिव्य लोक में अवतरित हुए और अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में घूमते हुए, उत्तम जन्मों में, राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने तिस्सा नाम प्राप्त किया। वयस्क होने पर, उन्होंने तीनों वेदों में निपुणता प्राप्त की और पाँच सौ युवकों को मंत्रों का उपदेश देकर सर्वोच्च यश और ख्याति प्राप्त की। जब गुरु बुद्ध राजगृह गए, तब उनकी शक्ति को देखकर उन्होंने उचित श्रद्धा धारण की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के मार्ग पर चल पड़े और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—-

साल के पेड़ों के झुरमुट में प्रवेश करने के बाद,

मेरा आश्रम अच्छी तरह से बना हुआ था; अच्छी तरह से छायादार था।

साल के फूलों के पास, मैं फिर जंगल में रहने लगा।

हे भगवान पियादस्सी, स्वयं-

बनने वाला (सयम्भू), सबसे अग्रणी व्यक्ति,

आत्मजागृत बुद्ध, जो इच्छुक थे

एकांत का इलाका साल के पेड़ों के झुरमुट के पास आ गया।

विशेष रूप से आश्रम से बाहर आकर,

मैं जड़ों की तलाश में जंगल में गया और

फल। फिर मैं जंगल में घूमने निकल गया।

वहाँ मैंने आत्मजागृत बुद्ध को देखा।

महान प्रसिद्ध पियादस्सी अच्छी तरह से बैठे हुए

वे समाधि में प्रवेश कर गए (समापन्नम्), चमकते हुए

शानदार ढंग से (virocantaṃ)। स्थापित करने के बाद

लकड़ियों से, मैंने एक अच्छी तरह से बना हुआ हॉल बनवाया था और उसे

साल के फूलों से ढकी छत।

सात दिनों तक मेरे पास साल की छत वाला पंडाल (शेड) था।

धारण किया; मेरे मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न कर दिया,

मैंने बुद्ध को सर्वोत्तम तरीके से श्रद्धांजलि अर्पित की।

उस समय भगवान जी उठे।

उनकी एकाग्रता (समाधि/तल्लीनता) से, सबसे अधिक

श्रेष्ठ पुरुष अपनी दृष्टि से बैठ गए

जुए के माप का।

गुरु के शिष्य वरुण का नाम बुद्ध के शिष्य के रूप में रखा गया था।

पियादास्सी, स्पष्ट नेता के पास पहुँचे

(विनायक) एक लाख के साथ

शक्तिशाली स्वामी (वासी)।

पूज्य पियादस्सी, जो सबसे बड़े हैं

दुनिया, पुरुषों में बैल, होने के कारण

भिक्षुओं के बीच बैठे हुए,

विजेता ने अपनी स्पष्ट मुस्कान जाहिर कर दी।

स्वामी के सेवक अनुरुद्ध

पियादस्सी ने अपना ऊपरी वस्त्र व्यवस्थित करते हुए

एक कंधे पर खड़े होकर, महान ऋषि से इसके बारे में पूछा।

हे भगवान! वास्तव में इसका कारण क्या है?

क्या गुरु के मुस्कुराने से? जब कोई कारण

वहाँ, गुरु अपनी मुस्कान स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं

प्रत्यक्ष।

उस युवक के कृत्य को याद करके

जिसने मेरे लिए साल का आश्रय (चदाना) सहा

सात दिनों तक मैंने अपनी मुस्कान को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया।

मुझे अवसरों की कोई कमी नजर नहीं आती।

(ओकासा) जहाँ (उसके) पुण्य से उसका परिणाम निकलता है

फलदायी परिणाम (विपच्चति); या तो

दिव्य या मानवीय जगत, इसका कोई अंत नहीं है (ना

अपने (सुनहरे) अवसर की भी (सममिति)

(okāso'va).

जब (इस प्रकार) उसे पुण्य गुणों से संपन्न किया गया

कर्म दिव्य जगत में रहता है, जहाँ तक

वहाँ उसका दल है, वहाँ सैल भी होगा।

आश्रय (चन्ना)।

पुण्य कर्मों से परिपूर्ण, वह

वहाँ हमेशा शांतिपूर्वक आश्चर्यचकित रहेंगे

दिव्य नृत्य, गायन और वादन के साथ

संगीत के रूप में भी।

जहां तक उसके दल का सवाल है, तब तक

वहाँ और उसी समय, मधुर सुगंध से भरपूर हो।

साल के फूलों की वर्षा होगी।

वहाँ से गुजर जाने के बाद, इस आदमी

मनुष्यत्व में वापस लौटेगा; यहाँ भी एक

सैल शेल्टर हर समय मौजूद रहेगा

उससे ऊपर।

यहां नृत्य और गायन, अच्छी तरह से संगत-

झांझों की थाप के साथ (सममाताळा-)

समाहितम्), हमेशा इसे घेरे रहेगा

(परिवारिसंन्ति'मं); यह है

श्रद्धा करने का फलदायी परिणाम-

बुद्ध को दी जाने वाली विशेष भेंट।

जब सूरज उगेगा तब भी

साल के फूलों की बौछार बरसाओ।

पुण्य कर्मों से अच्छी तरह जुड़ा हुआ,

मौसमी बारिश की बौछार होती है

शाश्वत चरित्र। अठारह सौ

इसलिए, युग (कप्पा) प्रकट होंगे

संसार में गौतम नाम के गुरु हैं।

कुल से, परिवार में अच्छे परिवार में जन्मा।

ओक्काका(इक्ष्वाकु).

वह उनके धर्म का उत्तराधिकारी होगा, एक

धर्म द्वारा सृजित, घनिष्ठ पुत्र।

सभी प्रकार के रोगों (आसव) को पूरी तरह से समझा।

वह निर्वाण में प्रवेश करेगा, रोगमुक्त (अना-

सावो)।

जब वह धर्म को पूर्णतः समझ लेता है,

साल का आश्रय (चन्ना) होगा; जब

(उसके शव का) अंतिम संस्कार किया जा रहा है

अंत्येष्टि की चिता पर, वही (होगा)

वहाँ आश्रय (चदनं) लें।

सफल परिणाम की घोषणा करते हुए

(विपाक), महान ऋषि पियादस्सी

उन्होंने लोगों को सत्य (धम्म) सिखाया

श्रोताओं को संतुष्ट करना

धम्म की वर्षा के साथ।

तीस युगों (कप्पा) तक दिव्य-

मैंने दिव्य संप्रभुता का प्रयोग किया।

मैं 67 बार एक विश्व था-

राजा।

दिव्य लोक से यहाँ आकर,

मुझे अपार आनंद प्राप्त होता है; यही यहाँ है।

साथ ही साल आश्रय (सालाच्छदनं); यह

यह पंडाल का सफल परिणाम है।

यह मेरा आखिरी और अंतिम प्रयास साबित हुआ।

अस्तित्व। यहाँ भी साल है।

जो एक सर्वकालिक आश्रय स्थल होगा

मामला।

महान ऋषि गौतम को प्रसन्न करके,

साकियों में श्रेष्ठ, मैंने प्राप्त किया

अविचलित स्थान, त्याग दिया गया

विजय और पराजय।

यह अठारह सौ युग पहले की बात है।

कि मैंने विशेष रूप से अपनी श्रद्धा व्यक्त की

बुद्ध को अर्पित की गई वस्तु; मुझे याद नहीं है

किसी भी दुष्ट अस्तित्व का यही फल है।

मेरी श्रद्धापूर्वक की गई भेंट का पूर्ण परिणाम

बुद्ध को।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे इतने प्रतिष्ठित थेर बन गए कि उन्होंने यश और ख्याति की सर्वोच्च ऊँचाई प्राप्त कर ली। वहाँ कुछ सामान्य भिक्षुओं (पुथुज्जन) ने थेर के यश और प्रतिष्ठा को देखकर अपनी मूर्खता के कारण असहिष्णुता (आसहन) प्रकट की। यह जानकर, थेर ने दो श्लोकों में यश और प्रतिष्ठा में होने वाली हानि और उससे आसक्ति न रखने की स्थिति को स्पष्ट किया:

153. "एक गंजे सिर वाला पहनने वाला (पारुतो)

दोहरी लड़ी वाली पोशाक (संघति) लाभ

बहुत शत्रुता (सपत्त); इसी प्रकार

भोजन, पेय, वस्त्र और

बिस्तर।"

154. "इस हानि के बारे में जानने के बाद

और संसाधन प्राप्त करने में बड़ा खतरा है।

आदर और सम्मान (सक्कारेसु), एक भिक्षु

मन इधर-उधर भटकना चाहिए (परिब्बाजे)

पूर्णतः जागरूक (सतो) और मुक्त होना

कामुक रिसाव (anavassuto).

इसका अर्थ है:—- मुण्डो का अर्थ है मुंडाए और कटे हुए बालों की स्थिति (मुंडितकेसाता) जिसमें सिर का ऊपरी भाग भी न बचा हो; संघातिपारुतो का अर्थ है: कटे हुए बालों को बांधकर वस्त्र धारण करने के कारण; लाभी का अर्थ है: यदि कोई भिक्षु इस प्रकार जातिहीन

अवस्था (वेवन्नियं) प्राप्त कर लेता है और दूसरों के कल्याण के लिए आचरण करता है, तो उसे भोजन, पेय आदि का लाभ मिलता है; बहु सपत्ते लाभति का अर्थ है; उसे बहुत शत्रुता भी मिलती है; बहुत से लोग उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। एतमादिनवं ञत्वा सक्कारेसु महाभयं का अर्थ है: अत:, ऐसे लाभ और सम्मान में निहित दोष और अत्यधिक खतरे को जानकर, उसने अपने हृदय में अल्प इच्छा और संतोष (संतोष) की स्थिति धारण कर ली है; अप्पलाभो का अर्थ है सभी प्रकार के लाभों से परहेज करके प्राप्त अल्प लाभ, यहाँ तक कि ऐसे लाभ से भी जो निष्पाप प्रतीत हुआ हो; अनवस्सुतो का अर्थ है: व्यथा के रिसाव के अभाव के कारण, लेकिन उसके परिणामस्वरूप, कामवासना के रिसाव से मुक्त होना; भिक्षु सतो परिब्बजे का अर्थ है: बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) में खतरे को भाँतकर या टूटे हुए दुराचार (किलेसा) के कारण, संतोष, सजगता और जागरूकता के प्रभाव में आकर, सदा सतर्क (सतो) होकर भिक्षु को विचरण करना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए और जीवन यापन करना चाहिए। यह सुनकर उन भिक्षुओं ने वहीं थेरा से क्षमा (खमापेसुं) माँगी।

थेरा टिस्सा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(138): किम्बिला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (138) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
138. किम्बिला
बुद्ध से उनकी मुलाकात, उनकी भावना और संसार त्यागने का वर्णन अध्याय I में किया गया है, श्लोक की शुरुआत 'किसी शक्ति द्वारा याद दिलाए जाने पर' [1] यहाँ थेरा बताते हैं कि कैसे वे [126] अपने साथियों, आदरणीय अनुरुद्ध और आदरणीय भद्दिया, साकियन राजाओं (राजाओं) के साथ भाईचारे से रहते थे:

[155] पचिनावंसदयमहि शाक्यपुत्त सहायक,॥
पाहयानप्पाके भोगे उंचापत्तगते रता॥ ॥

[156] अरद्धविरिय पहितत्ता निच्चन दहापरक्कमा,॥
रमन्ति धम्मरतिया हित्वाना लोकियं रतिन्ति॥ ॥

[155] जहाँ पूर्वी बाँस का जंगल है, हम रहते हैं,
साकियान के पुत्रों, साथियों [सभी और सच्चे]।
इसके लिए हमने काफी धन का त्याग किया है,
जो कुछ भी हमारे कटोरे को भरता है, उसी से संतुष्ट हैं।

[156] हमारी ऊर्जा तीव्र और प्रखर है,
हमारा हृदय दृढ़ और संकल्पित है,
हम सदा साहसपूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं।
धम्म के प्रति प्रेम हमारा एकमात्र आनंद है,
हमने समस्त सांसारिक प्रेमों का पूर्णतः त्याग कर दिया है।

[1] उनकी कहानी भजन संहिता सत्रहवीं में दी गई है, क्रॉनिकल गाथा के परिणामस्वरूप होने वाली परिस्थितियों से तुरंत शुरू होता है।

2.2-8 [138] किमिलाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी।
पाचीनवंसदयाम्ही से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा किमिला का है। इसका उद्गम क्या है? उनके पूर्व संबंध (कर्म और प्रतिक्रिया), पश्चाताप की अनुभूति और संन्यास लेकर भिक्षु बनने का उल्लेख भी “अभिसात्तो” से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या में प्रथम खंड

(निपात) में किया गया है। उस श्लोक के माध्यम से उनके स्वयं के विशेषण प्राप्ति का कारण भी बताया गया है। हालांकि, यहां यह दर्शाया गया है कि जब उन्होंने विशेषण प्राप्त किया, तब वे पूज्य अनुरुद्ध और पूज्य नंदीय के साथ एकांतवास में रह रहे थे; इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। उन्होंने तीन लोगों के एकांतवास को दर्शाने के लिए दो श्लोक कहे।

155. “पूर्व में (पाचीन) बांस (वंश)

वन, साकियान के पुत्र जो थे

अपने साथियों को त्यागने के बाद

अपार धन-दौलत के शौकीन थे

जो उनके संग्रह में आया था

कटोरा'।

156. “उनके प्रयासों की अच्छी शुरुआत के साथ,

उनका ध्यान पूरी तरह से इस ओर केंद्रित था-

wards nibbāna, with their permanently

वे अपने दृढ़ प्रयासों से प्रसन्न होते हैं।

धम्म (दिव्य कर्मों) का आनंद

सांसारिक सुखों का त्याग कर।

वहाँ, पाचीनवंसदयाम्ही का अर्थ है: पाचीनवंस नामक वन में, जो चारों ओर से परिच्छेद द्वारा संरक्षित और सुरक्षित है। इसे “पाचीनवंसदयो (पूर्व बाँस वन)” भी कहा गया है, क्योंकि वह वन वास्तव में गाँव के पूर्व दिशा में स्थित था और चारों ओर से बाँस की झाड़ियों से घिरा हुआ था: दूसरे शब्दों में, बाँस वन होने के कारण। शाक्यपुत्त का अर्थ है: थेरा अनुरुद्ध और अन्य जो शाही शाक्य युवक थे। सहायक का अर्थ है: साथी, क्योंकि वे पश्चाताप के उदय में एक साथ गए, भिक्षु बने, भिक्षुओं के कर्तव्यों का पालन किया और एक साथ रहे। पहायनप्पके भोगे का अर्थ है: उस विशाल धन का त्याग करना जो महान पुण्य के बल पर अर्जित किया गया था और पूर्वजों की पीढ़ियों से चला आ रहा था। इसका एक पाठ “सहायनप्पके” है। “उंचे पट्टागते रता” का अर्थ है: वे स्वयं को चकित कर लेते हैं और कटोरे में जो कुछ भी डाला गया है, उससे विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे संग्रहण पात्र में आए हैं, संग्रहण के आचरण के कारण; वे भिक्षा मांगने के आचरण से प्राप्त मिश्रित भोजन से ही संतुष्ट हैं, अपने पैरों की शक्ति पर निर्भर रहते हुए, पुरोहितों (संघभट्ट) आदि के भोजन के रूप में ऐसे अतिरिक्त (अतिरेको) लाभ को त्यागने के बाद। इस प्रकार, इसका अर्थ है।

Āraddhavīriyā का अर्थ है: आरंभ से ही, सर्वप्रथम सर्वोत्तम लाभ (अत्थ) की प्राप्ति हेतु किए गए निरंतर प्रयास (संपादितवीर्या) से प्रेरित होना। Pahitattā का अर्थ है: जिनके मन निर्वाण की ओर बार-बार प्रवृत्त होकर, उसमें प्रवेश करने से, उसकी ओर झुकाव और प्रवृत्त होकर, निर्वाण के प्रति उचित रूप से समर्पित हो गए। Niccaṃ daḷhaparakkamā का अर्थ है: प्रत्यक्ष भौतिक जगत (दित्तधम्म) के सुखमय जीवन के प्रति समर्पण और कर्तव्यों के उचित पालन (पटिपत्ति) से सदा निरंतर प्रयास करते रहना। रमन्ति धम्मरातिया, हित्वाना लोकीयं रतिं का अर्थ है: वे सांसारिक सुखों जैसे सुंदर रूपों आदि के इंद्रिय-विषयक सुखों का त्याग करके, निर्वाण के सर्वोच्च फल के आनंद में लीन हो जाते हैं और विशेष प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, क्योंकि उन्होंने सांसारिक जगत में जो कुछ है उसे समझ लिया है और स्वयं भी सांसारिक जगत में समाहित हैं।

थेरा किमिला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(139):नंदा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (139) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
139. नंदा
कपिलवस्तु में बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, राजा सुद्धोदन और महान प्रजापति के पुत्र के रूप में, [1] अपने कुल का आनंद बनकर, उनका नामकरण नंदा रखा गया। जब नंदा वयस्क हुए, तो भगवान (बुद्ध), धर्मचक्र (धम्म) को घुमाते हुए, करुणावश कपिलवस्तु आए। वर्षा का आयोजन करते हुए, उन्होंने वेस्सन्तरा जातक की कथा सुनाई। [2] दूसरे दिन, 'उठो' श्लोक द्वारा, उन्होंने उनके पिता को सोतापण (निर्वाण की पहली समाधि) के रूप में स्थापित किया; प्रजापति को भी 'संयममय जीवन का पालन करो' श्लोक द्वारा, और राजा को एक बार लौटकर आने वाले के रूप में स्थापित किया। तीसरे दिन, जब राजकुमार नंदा को उनके विवाह की बधाई दी जा रही थी, तब राज्याभिषेक कक्ष में भिक्षा मांगते समय, भगवान (बुद्ध) ने राजकुमार को अपना कुंड भेंट किया और उन्हें शुभकामनाएँ दीं। कुंड लेकर, राजकुमार भगवान (बुद्ध) के साथ विहार गए, जहाँ उन्हें भिक्षु दीक्षा दी गई, यद्यपि नंदा ऐसा नहीं चाहते थे।

उस समय से, यह जानते हुए कि नंदा अपनी अरुचि से पीड़ित हैं, भगवान (बुद्ध) ने उसे दूर किया, जिससे नंदा ने गहन ध्यान के द्वारा अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, मुक्ति के आनंद का अनुभव करते हुए, उन्होंने कहा: 'हे भगवान (बुद्ध) की उत्तम विधि, जिसके द्वारा मैं पुनर्जन्म के दलदल से निकलकर निर्वाण के मार्ग पर चला!' और अपने विचारों में मग्न होकर उन्होंने ये श्लोक कहे:

[157] अयेनिसो मानसिकारा मन्नानाअ अनुयुन्जिसाṃ,॥
उद्धतो कैपलो कैसीं कामरागेना एतितो.।॥

[158] उपयाकुसलेनहाṃ बुद्धेनादिच्चबन्धुना,॥
योनिसो पतिपज्जित्वा भवे चित्तं उदाबहिंति॥॥

[157] एक समय मेरे विचार लापरवाह और उथले थे,
बाहरी दिखावे की सारी धृष्टता पर केंद्रित थे;
मैं कमजोर और गैर-गंभीर था; मेरे सारे दिन
व्यभिचारी कामुकता में बीतते थे।

[158] लेकिन बुद्ध की कुशल दयालु कला से,
जो सूर्य के वंश से आते हैं, मुझे
गहरे विचार से जीने के लिए लाया गया, जिससे मेरा हृदय
(अनंत के महान दलदल) जीवन से [3] खींचा गया।

और परम पूज्य (बुद्ध), यह जानते हुए कि उन्हें आत्म-संयम में कितनी उत्कृष्ट रूप से प्रशिक्षित किया गया था, उन्होंने भिक्षु के आदेश के समक्ष उन्हें अपने शिष्यों में उस श्रेणी में श्रेष्ठ घोषित किया, [4] यहाँ तक कि उस विशिष्टता को प्रदान करने में भी जिसकी थेरा ने अतीत में आकांक्षा की थी।

[1] देखें भजन 1, पृष्ठ 6 एफ. नंदा को ऊपर नंदीय कहा गया है (भजन 25)। यह एकल श्लोक शायद भिक्खुनी-संयुत्त में पाए जाने वाले मार (मृत्युदेव/राक्षस) उपाख्यानों के किसी संग्रह से लिया गया हो।

[2] जाट., वि., संख्या 547; बौद्ध जन्म कथाएँ, पृ. 124.

[3] भव, बनना. Saŋsārapanke nimuggaŋ. Cy.

[4] वह एंग. निक., i. 25 में इतना विशिष्ट है।

2.2-9 [139] नंदथेरा के श्लोक पर टीका
अयोनिसो मनसिकारा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नंदा का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर के एक पारिवारिक घर में हुआ था; जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब वे भगवान की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुनते रहे, तभी उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को उन भिक्षुओं में सबसे आगे बिठा रहे हैं जिनके विवेक के द्वार सुरक्षित हैं; स्वयं उस पद की आकांक्षा रखते हुए, उन्होंने भगवान और भिक्षुओं के प्रति प्रचुर श्रद्धा और आदर का महान दान किया और यह संकल्प लिया: — "मैं भी भविष्य में इस थेरा के समान, आप जैसे बुद्ध का शिष्य बनूँ।" उस समय से, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और परम पूज्य अत्थादस्सी के समय में विनता नामक नदी में एक विशाल कछुए के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, गुरु को नदी के दूसरे किनारे पर खड़े देखकर, कछुआ गुरु के चरणों में लेट गया, क्योंकि वह स्वयं उन्हें नदी के दूसरे किनारे तक ले जाना चाहता था। गुरु ने कछुए की इच्छा को भांप लिया और उसकी पीठ पर सवार हो गए। प्रसन्न होकर कछुआ नदी के उस पार चला गया और गुरु को तेजी से दूसरे किनारे तक पहुँचा दिया। गुरु ने कछुए को धन्यवाद देते हुए, उसके भविष्य की समृद्धि के बारे में बताया और प्रस्थान कर दिया।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, कछुआ अपने जन्म-मृत्यु के चक्र में बार-बार भटकता रहा, परन्तु उत्तमतम जन्मों में ही, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वह महाप्रजापति गौतमी की कोख में पुनर्जन्म लेकर महान राजा सुद्धोदन का पुत्र बना। उसके नामकरण के दिन उसका नाम नंदा रखा गया और कहा गया कि उसका जन्म उसके परिजनों के हृदयों को प्रसन्न करने के लिए हुआ है। वयस्क होने पर, गुरु जी सत्य (धम्म) के उत्कृष्ट चक्र का संचालन करते हुए संसार के उत्थान में लगे रहे। वे कपिलवस्तु गए, जहाँ उन्होंने वेस्सन्तरा जातक का उपदेश दिया। अपने सगे-संबंधियों के मिलन समारोह में पक्खरवस्सा करने के बाद, दूसरे दिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेश किया। उन्होंने अपने पिता को "उत्तित्थे नप्पमज्जेय्या (सक्रिय रहना चाहिए, पर लापरवाही नहीं करनी चाहिए)" श्लोक के माध्यम से सोतापत्ति की प्रथम अवस्था की सिद्धि प्राप्त करवाई। वे राजवास गए, जहाँ उन्होंने महाप्रजापति को "धम्मं चरे सुचरितं (अच्छी तरह से अभ्यास किए गए सत्य (धम्म) का अभ्यास करना चाहिए)" श्लोक के माध्यम से सकदागामी (एक बार लौटने वाले) की सिद्धि प्राप्त करवाई। तीसरे दिन, राज्याभिषेक, राजवास में प्रवेश और विवाह के शुभ समारोह संपन्न हुए। जब प्रार्थना सभाएँ चल रही थीं, तब वे भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया, अपना कटोरा युवा राजकुमार नंदा के हाथ में दिया, उन्हें आशीर्वाद दिया (मंगलं), और राजकुमार के हाथ से कटोरा वापस लिए बिना ही मठ चले गए। उन्होंने उस राजकुमार को, जो कटोरा लेकर मठ आया था, उसकी इच्छा के विरुद्ध भी भिक्षु बना दिया। उन्हें यह भी पता चला कि इस प्रकार भिक्षु बनाए जाने पर राजकुमार को गहरी नाराजगी है, और उन्होंने एक युक्ति (उपायन) से उसकी नाराजगी दूर कर दी। उन्होंने बुद्धिमानी से चिंतन किया (योनिसो पटिसंखाय), आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के मार्ग पर चले और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

"हे भगवान अत्थादस्सी,

आत्म निर्भर (स्याम्भू) नेता

संसार में तथागत आए

विनता नदी के किनारे के पास।

विशेष रूप से पानी से बाहर आने के बाद,

मैं, वह कछुआ जिसकी मुद्रा थी

पानी में, परिवहन की इच्छा रखते हुए-

बुद्ध की पूजा करते हुए, नेता के पास पहुँचा।

दुनिया के।

महान ऋषि, बुद्ध अत्थादस्सी

मुझ पर सवार हो जाओ। मैं तुम्हें पार भेज दूंगा;

आप ही विनाशक (अंतकारो) हैं

दुःख (दुक्खा)।

मेरी मंशा का पता चलने पर,

अत्यंत प्रतिष्ठित अत्थादस्सी,

दुनिया के नेता ने चढ़ाई की और

मेरी पीठ पर खड़ा हो गया।

जब से मुझे याद आया और जब से

मैं बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुका था।

मुझमें ऐसी कोई भावना मौजूद ही नहीं थी

खुशी तब होती है जब उसके पैरों के तलवे

मेरे पैरों ने मुझे छुआ।

आत्मजागृत बुद्ध, अत्यधिक

प्रसिद्ध अत्थादस्सी, पार करने के बाद

वहाँ से आगे बढ़कर, नदी के किनारे खड़ा हो गया और

उन्होंने ये छंद बोले।

जहां तक मेरे मन में आया

मुझे बहते पानी को पार करना था

नदी का, कछुओं का यह बुद्धिमान राजा

मुझे पार भेजा। इस परिवहन द्वारा

बुद्ध और हृदय पर अधिकार

प्रेम और दया से भरा हुआ, (यह कछुआ)

यह दिव्य जगत में स्वयं को मोहित कर लेगा

अठारह सौ युगों तक।

दिव्य स्थान से वापस यहाँ आने के बाद

दुनिया, अपने उज्ज्वल आधार से प्रेरित होकर

(सुक्कमूला) वह एक ही स्थान पर बैठेगा

बैठने की मुद्रा (ईकासन) और क्रॉस

संदेह की धारा के ऊपर,

(कॅखासोटा).

जैसे उपजाऊ खेत में बीज होते हैं,

यद्यपि कम मात्रा में ही बीज बोए गए हों, तब

भारी बारिश से फसलें बर्बाद हो गईं।

फसलों की प्रचुरता किसान को संतुष्ट करती है।

लेकिन इसी तरह इस क्षेत्र में भी

बुद्ध की शिक्षाओं को साकार किया गया है।

आत्मजागृत बुद्ध द्वारा; जब

भारी बारिश हो रही है, फल मिल रहा है

इससे मुझे संतुष्टि मिलेगी।

मैंने स्वयं को कठिन परिश्रम की ओर निर्देशित किया है।

प्रयास (पधाना); मैं बहुत शांत हूँ और

सांसारिक लाभों से मुक्त (उपाधि);

सभी तरह की कमियों को समझ गया, मैं

संक्रमण से मुक्त जीवन जिएं।

यह अठारह सौ युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने अपना कर्म किया था। मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें, यही है

भेजने का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने परमानंद और सुख का आनंद लेते हुए उचित रूप से कहा: "अद्भुत! यह गुरु की चतुराई थी, जिसके द्वारा मुझे अस्तित्व के कीचड़ भरे दलदल से निकालकर निर्वाण की सूखी भूमि पर स्थापित किया गया;" (थेरा) ने अपने आनंद की गंभीर अभिव्यक्ति के रूप में दो श्लोक कहे, उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक था।

157. "नासमझ मानसिकता के कारण

मैं तदनुसार समर्पित रहूंगा

स्वयं को सुधारना (मंदना); पीड़ित

कामराग (कामुक वासना) से मैं

अभिमानी (उद्धत) और चंचल, (कपाल)।

158. मुझे बुद्धिमान बनने के लिए उपयुक्त रूप से बनाया गया था (योनिसो)

(पटिपज्जित्वा) बुद्ध, रिश्तेदार द्वारा

सूर्य का, साधनों में चतुर, जिसने बनाया

मेरा मन अस्तित्व के कीचड़ से बाहर आ गया है।

रुख।

वहाँ, अयोनिसो मनसिकारा का अर्थ है: मेरे अनायास ध्यान लगाने के कारण (अनुपायमनसिकारातो), अप्रिय शरीर सुखद होने के दृष्टिकोण से ध्यान का कारण बन गया है (सुभतो), अप्रिय शरीर पर सुखदता की अनुभूति के साथ; यही अर्थ है। मंदनं का अर्थ है: हाथों में आभूषणों आदि से शरीर को सजाना, साथ ही फूलों और इत्रों की मालाओं से भी। अनुयुंजिसं का अर्थ है, मैं तदनुसार इसमें संलग्न हो गया (अनुयुंजि), मैं अपने शरीर को सजाने में लगा रहा; यही अर्थ है। उद्धतो का अर्थ है: जन्म, वंश, सुंदरता, युवावस्था आदि के कारण असंतुलित और असंतुलित मन। चपालो का अर्थ है: मन के स्थिर न रहने के कारण अस्थिर होना (लोलो), वन के बंदर के समान। या मैं भी चंचल था, क्योंकि मैं शरीर की मरम्मत, वस्त्रों को सजाने आदि जैसी चंचलता से जुड़ा हुआ था। आसिं का अर्थ है: मैं (अहोसिं) था। कामरागेन का अर्थ है: भौतिक सुख में वासना से ग्रस्त (वत्थुकाम); अत्तितो का अर्थ है: मैं पीड़ित (पीलितो) और आहत (विबाधितो) था; इस प्रकार, यह व्याख्या है।

उपायकुसलेना का अर्थ है, अनुशासन के अधीन रहने वालों को वश में करने में निपुण, चतुर (विनेय्यानम्); बुद्धेना का अर्थ है, उस भगवान द्वारा, जो इसके कारण थे। यह साधनवाचक शब्द (करणवचनं) वास्तव में कारण (हेतुअत्थे) के अर्थ में है। (थेरा) कामुक वासनाओं के भोज (आपनयन) के अपने लक्ष्य के संबंध में, सौदेबाजी (उपक्किितवादचोदनाय) की निंदा (या आलोचना) करते हुए, एक मादा बंदर (पलुट्ठा) और अप्सराओं का उदाहरण देते हैं। वास्तव में, भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा थेरा से जनपदकल्याणी के संबंध में

सर्वप्रथम इस प्रकार कहा: “जिस प्रकार यह मादा बंदर है, उसी प्रकार जनपदकल्याणी की तुलना कबूतरों के समान (सुंदर पैरों वाली अप्सराओं) से की जा सकती है,” मानो एक बड़े कांटे में से एक छोटा कांटा निकाला जा रहा हो, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई चिकित्सक शरीर को गाढ़े तरल पदार्थ से नम करने के बाद उल्टी और दस्त (वमनविरेचनही) द्वारा दोष (दोष) निकालता है और कबूतरों के समान पेय पदार्थ पिलाकर मन को जनपदकल्याणी से विरक्त कर देता है और फिर सौदेबाजी की बातों से मन को उनसे विरक्त करके उसे स्थापित कर देता है। मैंने श्रेष्ठ मार्ग (अरीयमग्ग) पर उचित रूप से, लेकिन उत्कृष्ट (समददेव) और निरंतर भक्ति (अनुयोग) द्वारा शांत स्वभाव (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से, अपने श्रेष्ठ मार्ग (अरीयमग्ग) के हाथ से अपने मन को, जो जन्म-जन्म के चक्रों (संसार) में डूबा हुआ था, पार कराया और उसे निर्वाण की सूखी भूमि पर स्थापित किया।

इस आनंदमय उद्घोषणा (उदान) को पूर्णतया करने के बाद, थेरा अगले दिन भगवान बुद्ध के पास गए और इस प्रकार बोले: “आदरणीय! भगवान बुद्ध ने मुझे पाँच सौ कबूतर-पैर वाली अप्सराओं को उचित रूप से प्राप्त करने के लिए जो भी गारंटी (पटिभोगो) दी थी, आदरणीय! मैं भगवान बुद्ध को उस प्रतिबद्धता (पटिस्साव) से मुक्त करता हूँ।” भगवान बुद्ध ने यह भी कहा: “हे नन्द! जिस क्षण तुम्हारा मन संसार के प्रेम (अनुपादाय) से आसक्त होकर आसक्ति (आसव) से मुक्त हो गया, उसी क्षण मैं भी इस प्रतिबद्धता (पटिस्साव) से मुक्त हो गया।” तब भगवान बुद्ध ने जब उनकी इस स्थिति को जाना कि उनकी इंद्रियों के नियंत्रण द्वार सुरक्षित हैं और वे विशिष्ट हैं, तो उन्होंने उन्हें उन सभी सिद्ध पुरुषों में सर्वोच्च स्थान दिया, जिनके नियंत्रण द्वार सुरक्षित हैं, ताकि उनके इस गुण को इस प्रकार प्रकट किया जा सके: “हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, जिनके नियंत्रण द्वार सुरक्षित हैं, उनमें यह नंदा श्रेष्ठ है।” वास्तव में, थेरा ने अपने मन में इस प्रकार कहा: “अपने नियंत्रण की शक्तियों पर ऐसे आत्म-संयम के अभाव के कारण मैं इस दयनीय स्थिति (विप्पकार) में पहुँच गया हूँ, मैं इसे सख्ती से दबाऊँगा (सुत्तु),” वे प्रयास से परिपूर्ण (उस्साहजातो) हो गए, गंभीर लज्जा और भय (बलवहिरत्तप्पो) की भावना के साथ अत्यधिक सचेत (बहुप्रभु) हो गए, और वहाँ भी उन्होंने समर्पित कर्तव्यों (कताधिकारत्ता) के पालन के कारण नियंत्रण की शक्तियों (इन्द्रियसंवरे) के आत्म-संयम में पूर्णता (उक्कंसपारमिं) की सर्वोच्च ऊँचाई (उक्कंसपारमिं) प्राप्त की।

थेरा नंदा के श्लोक पर टीका

तैयार है।

*******oOo *******

' ' BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

नंदा थेरा

नंदा राजा सुद्धोदन और रानी महा प्रजापति गौतमी के पुत्र थे। वे राजकुमार सिद्धार्थ के सौतेले भाई थे।

जिस दिन बुद्ध दोपहर के भोजन के लिए महल में आए थे, उस दिन नंदा तीन महत्वपूर्ण आयोजनों का जश्न मना रहे थे। वे सिंहासनारोहण, जनपद कल्याणी से विवाह और गृह प्रवेश समारोह का जश्न मना रहे थे।

भोजन के बाद बुद्ध ने अपना कटोरा नंदा को सौंप दिया और मठ लौटने के लिए महल से चले गए। बुद्ध के प्रति आदर के कारण, नंदा कटोरा हाथ में लिए उनके पीछे-पीछे चले और सोचने लगे, "निश्चित रूप से भगवान थोड़ी देर में मुझसे कटोरा ले लेंगे।"

लेकिन बुद्ध ने प्याला वापस नहीं लिया। नंदा, जो अपने बड़े भाई बुद्ध का आदर करते थे, उनके पीछे-पीछे मठ तक गए। उनकी मंगेतर ने उन्हें बुद्ध के पीछे जाते देख, रोते हुए उनके पीछे दौड़ी और बोली, "हे परम पूज्य, जल्दी लौट आइए।" इन स्नेह भरे शब्दों और अपनी प्रेमिका के आँसुओं ने नंदा को बहुत प्रभावित किया। लेकिन बुद्ध के प्रति उनका आदर इतना प्रबल था कि वे प्याला वापस नहीं कर सके।

मठ पहुँचने पर बुद्ध ने देखा कि नंदा में अरहंत बनने की क्षमता है, इसलिए उन्होंने नंदा से पूछा कि क्या वे भिक्षु बनना चाहेंगे। नंदा दुविधा में पड़ गए। वे अपनी मंगेतर के पास लौटना चाहते थे। लेकिन वे बुद्ध को कैसे मना कर सकते थे? अपने बड़े भाई, बुद्ध के प्रति उनका आदर इतना अधिक था कि उन्होंने अनिच्छा से ही सहमति दे दी।

भिक्षु नंदा प्रसन्न नहीं थे। वे अपनी होने वाली दुल्हन के बारे में सोचते रहते थे। अंततः हताशा में उन्होंने अपने साथी भिक्षुओं से संपर्क किया और उन्हें अपनी परेशानियाँ बताईं। नंदा ने उन्हें सूचित किया कि वे संन्यासी जीवन त्यागकर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहते हैं।

नंदा के इस निर्णय की खबर जल्द ही बुद्ध तक पहुँच गई। नंदा के पास जाकर बुद्ध ने उनसे समस्या पूछी। नंदा ने बुद्ध को बताया कि वे विचलित और चिंतित थे क्योंकि उन्होंने अपनी सुंदर दुल्हन को शादी के दिन छोड़ दिया था। बुद्ध ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि नंदा थोड़े से प्रयास से ही ज्ञान की परम प्राप्ति कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने उनके वर्तमान मन की स्थिति के अनुरूप उन्हें पवित्र जीवन में बनाए रखने का एक उपाय सोचा।

अपनी मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए बुद्ध ने नंदा को तावतिंसा स्वर्ग पहुँचाया। रास्ते में उन्होंने नंदा को एक झुलसी हुई मादा बंदर दिखाई, जिसके कान, नाक और पूंछ जंगल की आग में जल गए थे। अप्सराओं की ओर इशारा करते हुए बुद्ध ने नंदा से पूछा कि कौन अधिक सुंदर है, अप्सराएँ या उनकी होने वाली दुल्हन? अप्सराओं की असाधारण सुंदरता से मोहित होकर नंदा ने उत्तर दिया कि अप्सराओं की तुलना में उनकी होने वाली दुल्हन उस झुलसी हुई मादा बंदर जैसी है जिसे उन्होंने रास्ते में देखा था।

बुद्ध ने नंदा के अपरिपक्व मन को भांपते हुए कहा, "मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ कि यदि तुम दृढ़ संकल्प से मेरे निर्देशों का पालन करोगे तो तुम्हें अप्सराएँ अवश्य प्राप्त होंगी।" अप्सराओं की सुंदरता पर पूरी तरह मोहित नंदा ने बचकाने ढंग से सहमति दे दी।

तब नंदा ने अपने साथी भिक्षुओं को पवित्र संघ में बने रहने के अपने निर्णय और अपने मन परिवर्तन के कारण के बारे में बताया। जल्द ही सबको पता चल गया कि नंदा अप्सराओं को पाने की आशा में पवित्र संघ में शामिल हुए थे। युवा भिक्षुओं ने नंदा का मज़ाक उड़ाया और उन्हें अपशब्द कहे। उनके मज़ाक ने नंदा को उनकी गलती का एहसास दिलाया। अपने बुरे इरादों से शर्मिंदा होकर उन्होंने ज्ञान प्राप्ति का निश्चय किया। कुछ ही समय बाद, लगन से साधना करने पर नंदा ने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। नंदा ने थेरागथा में अपने आसक्ति, अंतिम मुक्ति और कृतज्ञता का वर्णन किया है।

निर्वाण के असीम आनंद को अनुभव करते हुए, नंदा बुद्ध के पास गए और आदरपूर्वक धन्यवाद देते हुए कहा, "हे प्रभु, मैं आपको दिव्य आनंद की प्रतिज्ञा से मुक्त करता हूँ।" तब बुद्ध ने नंदा को बताया कि निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त करते ही वे प्रतिज्ञा से मुक्त हो गए थे, क्योंकि निर्वाण का आनंद किसी भी दिव्य आनंद से कहीं अधिक महान और श्रेष्ठ है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(140):सिरीमत

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (140) ----->>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
140. सिरीमत
बुद्ध युग में सावत्थी में एक कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, परिवार की सौभाग्यशाली स्थिति और निरंतर सफलता के कारण उनका नाम सिरिमत रखा गया। उनके छोटे भाई, जो उस सौभाग्य को और बढ़ाने वाले थे, का नाम सिरिवद्धा (भाग्य की वृद्धि) रखा गया। [1] दोनों ने जेतवन के प्रस्तुतीकरण के समय बुद्ध की महिमा देखी, उनके मार्ग पर विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। सिरिवद्धा ने यद्यपि प्रारंभ में कोई असाधारण शक्तियाँ प्राप्त नहीं कीं, फिर भी गृहस्थों और [128] संन्यासियों द्वारा उनका सम्मान और सहायता की जाती रही। परन्तु सिरिमत को दोषपूर्ण (पूर्व) कर्मों के कारण कम सम्मान प्राप्त हुआ; फिर भी, शांति और अंतर्दृष्टि में स्वयं को लगाकर, उन्होंने शीघ्र ही छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली।

अब साधारण भिक्षु और नौसिखिए, यह न जानते हुए कि सिरिमत आर्य थे, उनकी आलोचना करते रहे और उनके भाई का सम्मान करते रहे। तब थेरा ने उनके गलत निर्णय को दोषी ठहराते हुए कहा:

[159] पारे सीए न पसासंन्ति अट्टा सी असामहितो,॥
मोघां पारे पसासंन्ति अत्ता हि असामहितो॥ ॥

[160] पारे च नां गरहन्ति अत्ता सी सुसमाही,॥
मोघं पारे गरहंती अत्ता हि सुसामहितोऽ ति.॥ ॥

[159] दूसरे उसकी प्रशंसा और सम्मान कर सकते हैं
जिसका अहंकार अनियंत्रित है।
निःसंदेह उनकी प्रशंसा गलत है,
क्योंकि अहंकार अनियंत्रित है।

[160] दूसरे लोग उसकी निंदा और आलोचना कर सकते हैं
जिसका आत्म-नियंत्रण अच्छा है।
निःसंदेह उनका दोषारोपण गलत है,
क्योंकि आत्म-नियंत्रण अच्छा है।

तब सिरिवाद्धा ने उसकी बात सुनकर व्याकुल होकर, अंतर्दृष्टि प्राप्त कर, कुछ ही समय बाद अपना उद्धार भी प्राप्त कर लिया। और जिन्होंने थेरा की निंदा की थी, उन्होंने उससे क्षमा मांगी।

[1] स्पष्टतः भजन XLI का थेरा नहीं।

2.2-10 [140] सिरिमत्थेरा के श्लोक पर टीका
'परे चे नाम पसंसन्ति' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सिरिमा का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उस समय विराजमान हुए जब भगवान पद्ममुत्तरा ने सभी सिद्धियों को प्राप्त करने के बाद तुषिता स्वर्ग में विराजमान थे; बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, वे तीनों वेदों, निघंडु और केतुभ के साथ-साथ परंपराओं के ग्रंथ (इतिहास) के वर्णानुक्रमिक वर्गीकरण में भी निपुण हो गए; वेदों के पदपाठ में पारंगत, व्याख्या में कुशल व्याकरणविद्, लोक दर्शन और महान पुरुष के विशिष्ट लक्षणों में पूर्ण ज्ञान (अनवयो) के साथ, उन्होंने त्याग की प्रवृत्ति (अज्जासय) के कारण अपने इंद्रिय सुखों (काम) का त्याग कर दिया, संसार का त्याग कर एक संन्यासी बन गए और हिमवन्त (हिमालय) क्षेत्र में दिव्य प्राणियों द्वारा निर्मित एक आश्रम में निवास कर रहे थे, जो चौरासी हजार की संख्या में संन्यासियों की भीड़ से घिरा हुआ था, जिसने उनके लिए ध्यान (सम्मोहन) और उच्च ज्ञान (अभिज्ञा/आध्यात्मिक शक्तियां) को बढ़ावा दिया था; पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के कारण, उन्होंने चिन्हों (लक्खना) के मंत्रों (मन्त) में वर्णित बुद्धों के गुणों को याद किया, एक नदी के मोड़ पर पूर्व बुद्धों को समर्पित (उद्दिसा) एक रेत का मंदिर बनवाया और उनके प्रति श्रद्धापूर्वक आदर और सम्मान व्यक्त करने में विशेष रूप से व्याकुल हो गए। इसे देखकर संन्यासियों ने उनसे पूछा, "यह श्रद्धापूर्वक आदर और सम्मान किसके प्रति समर्पित है?" उन्होंने उनके लिए चिन्हों (लक्खनामन्त) के मंत्र लाए, वहां आने वाले महान पुरुषों के चिन्हों का विश्लेषण (विब्बजित्वा) किया, स्वयं उसी के अनुरूप खड़े होकर बुद्धों के गुणों का वर्णन किया। यह वर्णन सुनकर वे संन्यासी भी श्रद्धा से भर गए और तब से उस मंदिर में श्रद्धापूर्वक आदर करते हुए, उस उत्कृष्ट आत्म-जागृत बुद्ध को समर्पित करते हुए निवास करने लगे।

उस समय भी बोधिसत्व पद्ममुत्तरा तुषिता के स्वर्गलोक से विदा होकर अपनी माता के गर्भ में अवतरित हो रहे थे। अपने अंतिम जन्म में उन्होंने बत्तीस अशुभ संकेत (पुब्बानिमित्तनि) प्रकट किए; वे सभी आश्चर्यजनक और विचित्र घटनाएँ (धम्म) थीं। ऋषि ने उन्हें अपने शिष्यों को दिखाया, जिससे आत्म-जागृत बुद्धों के प्रति उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई, फिर उनका प्राण त्याग गया, वे ब्रह्मा लोक में प्रकट हुए, और जब शिष्य उनके (मृत) शरीर को आदरपूर्वक अर्पण कर रहे थे, तब वे अपने प्रत्यक्ष रूप में (डिस्सेमानारूपो) वापस आए और उनसे कहा, "मैं तुम्हारा गुरु हूँ, जो ब्रह्मा लोक में प्रकट हुआ हूँ; तुम्हें निरंतर रेत के मंदिर को आदरपूर्वक अर्पण करते रहना चाहिए; तुम्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (भावना) के विकास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए," और फिर वे ब्रह्मा लोक में (वापस) चले गए।

इस प्रकार, बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करने के बाद, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तो उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक धनी गृहस्थ परिवार में हुआ। उनका नाम केवल सिरिमा रखा गया, क्योंकि उनके जन्म के दिन से ही उस परिवार में समृद्धि और यश में वृद्धि हुई थी। जब वे चलने लगे, तो उनके छोटे भाई का जन्म हुआ। उनका नाम सिरिवड्ढा रखा गया; "इस व्यक्ति का जन्म हुआ है, जो महिमा (सिरी) को बढ़ाता है। संयोगवश, दोनों ने जेतवन ग्रहण समारोह में बुद्ध की शक्ति देखी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए। अब, इन दोनों में से एक ने पारलौकिक मानक (उत्तरिमनुस्सधम्म) को प्राप्त नहीं किया; वह चार संन्यासी आवश्यकताओं का प्राप्तकर्ता था, गृहस्थों और भिक्षुओं द्वारा व्यक्तिगत रूप से सम्मानित (सक्कतो) और आदर (गरुकतो) किया जाता था; दूसरी ओर, थेरा सिरीमा, भिक्षु बनने के समय से ही, अपने दोषपूर्ण कर्मों के कारण अल्प लाभ प्राप्त करने वाला था और कई लोगों द्वारा निंदा का पात्र था; शांत (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के लिए अपने कर्म करते हुए, वह छह प्रकार के अलौकिक शक्तियों के ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गया, क्योंकि वह छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत था। इसलिए ऐसा कहा गया है।" अपदान में:—

"हिमावंता पहाड़ी में था

देवला नाम का एक साधु; वहाँ था

वहाँ मेरा मठ-मार्ग है, जिसे मैंने बनाया है

अमानवीय दिव्य प्राणी।

बुने हुए का बोझ उठाने के बाद

बालों के लिए, मैं हमेशा पानी का घड़ा साथ रखता था।

लंबी टोंटी के साथ; की तलाश में

सबसे उत्कृष्ट लाभ (उत्तमत्थं)

फिर मैं जंगल (विपिना) से बाहर आ गया।

चौरासी हजार विद्यार्थियों ने भाग लिया

मुझ पर; विशेष रूप से उनके प्रति समर्पित

फिर वे अपने कर्मों के आधार पर निवास करने लगे।

जंगल।

विशेष रूप से मेरी प्रेमिका से बाहर आने के बाद-

मैंने एक रेत का मंदिर बनाया;

कई प्रकार की चीजों को एक साथ लाया

मैंने फूल को अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

मंदिर की ओर।

मेरे मन को श्रद्धापूर्वक प्रसन्न करते हुए

उस रेत के मंदिर में, मैं अपने अंदर प्रवेश कर गया-

मिताज; मेरे सभी छात्र एक साथ आए

और उन्होंने मुझसे इस मामले के बारे में पूछा।

रेत की सहायता से एक मंदिर बनाया गया था

हे प्रभु, आपने जिस मंदिर का निर्माण किया है!

उपासना; हम भी जानने के इच्छुक हैं

इसके बारे में; पूछे जाने पर, आपको चाहिए

हमें सूचित करें ।

क्या इस बात को शब्द में नहीं बताया गया है?

आकर्षण (मंतपदा) के, वे स्वामी

दृष्टिहीन और उच्च प्रतिष्ठा वाले? उन्हें,

वास्तव में, मैं उन सर्वश्रेष्ठ बुद्ध प्रतिमाओं की पूजा करता हूँ।

पूरी तरह से प्रसिद्ध।

वे महान नायक किन लोगों से मिलते-जुलते हैं?

क्या ये दुनिया के सर्वज्ञानी नेता हैं?

उनका रंग कैसा है? उनके

नैतिक उपदेश और जिनके समान हैं

वे लोग जो पूरी तरह से प्रसिद्ध हैं?

बुद्धों पर बत्तीस चिह्न हैं

(लक्खना), साथ ही चालीस दांतों के साथ

(cattālīsadijā); उनकी आँखें

बछिया जैसी पलकें; वे

ये फल गुंजा झाड़ी के फल के समान होते हैं।

उनके आने-जाने के दौरान,

वे बुद्ध केवल एक कदम आगे की ओर देखते हैं

(युगमत्तम्); उनके घुटनों से कोई आवाज नहीं आती;

उसके शरीर के किसी भी जोड़ की आवाज सुनाई नहीं देती।

वे यात्रा में भी सफल रहे हैं;

वे बस अपने पैर ऊपर उठाकर चले जाते हैं;

पहले उनका दाहिना पैर; यही है

बुद्धों का आदरण (धम्मता)।

वे बुद्ध पूर्णतः निर्भय हैं।

अयाल वाला शेर, पशुओं का राजा; न ही

क्या वे स्वयं को ऊंचा उठाते हैं या नहीं?

जीवित प्राणियों को कम से कम करें।

वे अहंकार से मुक्त थे, चाहे वह ऊँच-नीच का हो या न हो।

सभी प्राणियों में समान हैं; बुद्ध

वे कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते; यही बात है

बुद्धों का स्वभाव।

स्वयंजागृत लोगों का भी उदय हुआ।

बुद्ध प्रकाश दिखाते हैं; यह सब

वे धरती को छह प्रकार से हिला देते हैं।

शिष्टाचार का।

वे नरक भी देखते हैं, जो फिर

ठंडक आ गई; तेज बारिश

वर्षा होती है; यही बुद्धों का स्वभाव है।

ये विशालकाय हाथी हैं।

पुरुषों में अद्वितीय और सर्वप्रसिद्ध;

रंग-रूप में वे बेजोड़ हैं।

तथागत अतुलनीय हैं।

मेरे सभी विद्यार्थियों को उचित सम्मान के साथ स्वीकार किया गया।

मैंने जो कहा उसके लिए धन्यवाद; उन्होंने उचित रूप से कहा

इसी प्रकार अभ्यास भी किया गया

उनकी क्षमता और उसके अनुरूप

उनकी ऊर्जा।

जो लोग अपना कर्म करना चाहते हैं

उन्होंने स्वयं ही उचित रूप से अपनी श्रद्धा व्यक्त की

रेत के मंदिर में चढ़ाए गए प्रसाद; वे बन जाते हैं

बुद्ध के प्रति व्यक्तिगत सम्मान व्यक्त करने का मन

क्योंकि वे मेरी बात पर विश्वास करते हैं।

तुसिता से उनका निधन हो जाने के बाद

स्वर्ग, पूर्णतः प्रसिद्ध दिव्य युवक

वह अपनी माँ के गर्भ में ही उत्पन्न हुआ था;

दस हजार (विस्तृत पृथ्वी)

कांप उठा। मैं मठ के गलियारे पर खड़ा था।

मेरे आश्रम से ज्यादा दूर नहीं; मेरे सभी शिष्य

वे सब एकत्रित होकर मेरे समक्ष आए।

धरती बैल की तरह रंभाती है; वह दहाड़ती है

एक शेर की तरह चलता है और (सलती) है।

मगरमच्छ; इसका क्या परिणाम होगा?

वह आत्मजागृत बुद्ध, वह महिमामय

एक, वह गुरु, जिसके बारे में मैंने (तुम्हें) बताया था।

रेत के मंदिर के पास अब प्रवेश कर चुका था

माँ का गर्भ। सत्य का उपदेश देते हुए

(धम्म) उन्हें सुनाया और घोषणा की

महान ऋषि के बारे में, मैंने अपना संदेश भेज दिया।

मैंने विद्यार्थियों को देखा और खुद पालथी मारकर बैठ गया।

पूर्ण रोग के कारण वह शक्ति

मेरा सामान वास्तव में गायब हो गया और वहाँ

मेरी मृत्यु बुद्ध को याद करते हुए हुई, जो सबसे श्रेष्ठ थे।

मेरे सभी छात्र एक साथ इकट्ठा हुए और उन्होंने बनाया

फिर एक अंत्येष्टि चिता; पकड़ में आ गई

उन्होंने मेरे मृत शरीर को भी उठा लिया।

अंत्येष्टि की चिता।

अंतिम संस्कार की चिता को घेरने के बाद,

उन्होंने अपने जुड़े हुए हाथों को अपने हाथों पर रखा

सिर; दुःख के कांटों से छेदे हुए,

वे सब एक साथ आए और रोने लगे।

जब वे शोक मना रहे थे, मैं चला गया

फिर अंतिम संस्कार की चिता पर। मैं तुम्हारा हूँ।

शिक्षक; दुखी मत हो; अच्छे बनो

बुद्धिमत्ता। आपको प्रयास करना चाहिए

आपके स्वयं के कल्याण के लिए, दिन-रात

आलसी मत बनो। लापरवाही मत करो।

आप सभी! अपने-अपने पलों को नियंत्रित करें।

अपने छात्रों को पढ़ाने के बाद, मैं चला गया।

दिव्य जगत में वापसी; अठारह के लिए

युगों (कप्पा) में मैंने खूब आनंद लिया

दिव्य जगत।

मैं पांच सौ बार विश्व-राजा रहा;

मैंने सैकड़ों बार दिव्य शक्ति का अभ्यास किया।

संप्रभुता; शेष युगों में (कप्पा)

मैं अपने चक्करों में उलझकर इधर-उधर भटकता रहा।

बार-बार पुनर्जन्म; मुझे कोई याद नहीं है

दुष्ट अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है।

मेरी शक्ल-सूरत की।

जैसा कि, कत्तिका माह में,

कई पेड़ खिलते हैं, लेकिन उसी तरह मैं भी।

महान ऋषि द्वारा समय पर फलीभूत किया गया।

मेरा प्रयास जुते हुए बैल के समान था।

सुरक्षित आवास तक पहुंचने के लिए बेहतरीन परिवहन

निब्बाण (योगक्खेना) का; पुनःसदृश करना

वह हाथी जिसने अपने बंधन तोड़ दिए थे

मैं रोगों से मुक्त रहता हूँ।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने एक विशेष घोषणा की थी।

बुद्ध के बारे में; मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व; यही इसका फलदायी परिणाम है

मेरी घोषणा।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

सामान्य श्रेणी के भिक्षु (पुथुज्जन) और नौसिखिए, यह न जानते हुए कि पूज्य थेरा सिरिमता एक श्रेष्ठ "आर्य" थे, यद्यपि वे वास्तव में छह प्रकार के उच्च ज्ञान से परिपूर्ण अरहंत थे, उन्होंने लोगों की दृष्टि में विशेष रूप से प्रगति न कर पाने और अल्प लाभ के कारण, कोई अनुमान न लगा पाने की स्थिति में, उन्हें धिक्कारते हुए इधर-उधर की बातें कहीं। दूसरी ओर, वे थेरा सिरिमता की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वे संन्यासी की आवश्यकताओं (पच्चय) के लाभार्थी होने के कारण लोगों द्वारा व्यक्तिगत रूप से सम्मानित (सक्कत) और पूजनीय (गरुकत) हैं। थेरा ने दो श्लोकों में सामान्य श्रेणी (पुथुज्जना) होने की स्थिति की निंदा करते हुए कहा: "किसी ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करना, जो निंदनीय हो, और किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा करना जो प्रशंसा के योग्य हो, नीच (पुथुज्जना) होने का अभिशाप होगा।"

159. "दूसरे लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, अगर वह

वह स्वयं भी शांत स्वभाव का नहीं है।

दूसरों की प्रशंसा व्यर्थ ही होती है;

वास्तव में, स्वयं की स्थिति ठीक नहीं है।

शांत।

160. "दूसरी ओर अन्य लोग

अगर वह खुद ठीक है तो उसे दोष दें।

शांत। दूसरे लोग व्यर्थ ही करते हैं।

यदि कोई व्यक्ति स्वयं को दोष देता है, तो वास्तव में वह ठीक है।

शांत।

वहाँ, 'परे' का अर्थ है: अपने अलावा अन्य लोगों को 'अन्य लोग' कहा जाता है; लेकिन यहाँ, बुद्धिमान लोगों के अलावा मूर्ख लोगों को 'अन्य लोग' कहा गया है। वास्तव में, जब वे बिना जाने-समझे और गहराई से जाँचे-परखे बोलते हैं, तो उनकी प्रशंसा भी निंदा की तरह असीमित हो जाती है। 'नम्' का अर्थ है वह व्यक्ति। पसंसन्ति का अर्थ है: वे किसी अवास्तविक (अभूत) गुण (गुण) को उठाकर (रोपण द्वारा) उसकी घोषणा करते हैं और विशेष रूप से उसकी प्रशंसा करते हैं, या तो उस व्यक्ति की जो प्रामाणिक नहीं है, जैसे कि “अमुक भिक्षु ध्यान का लाभार्थी और श्रेष्ठ (आर्य) है”, या अज्ञानता (अविद्देसु) के कारण या लालसा (तन्हाविपन्नताय) के प्रभाव में भटक जाने के कारण। च का अर्थ है: यहाँ च शब्द का अर्थ है स्वयं का समाहित होना। इस शब्द से वे यह अर्थ इस प्रकार प्रकट करते हैं: — अन्य लोग उस व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं; इतना ही नहीं, वह प्रशंसा भी वास्तव में केवल उनकी प्रशंसा मात्र है; उस प्रशंसा में कोई आधार (वत्थु) नहीं है। अत्तो चे असामहितो का अर्थ है: अन्य लोग जिस भी व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं, यदि वह स्वयं सही मार्ग (मार्ग) पर एकाग्रता (मार्ग) या सही फल (फल) पर एकाग्रता (मार्ग) या केवल पहुँच के कारण शांत नहीं है। यदि मन की एकाग्रता (समाधि) का उपचार और अनुप्रयोग (अप्पना) सुव्यवस्थित नहीं है; यदि वह अपने उन सभी दोषों को दूर न कर पाने के कारण भटकते मन से व्याकुल है जो एकाग्रता के विरोधी बन गए हैं; तो यही अर्थ है। इस शब्द "असमाहितो" से वह एकाग्रता (समाधि) के लक्षणों (निमित्त) के अभाव को दर्शाता है। मोघं का अर्थ है: नपुंसक लिंग की स्थिति का वर्णनात्मक विवरण, जैसे "विसमं चन्दिमसूरिया परिवत्तं (चंद्रमा और सूर्य का चारों ओर असमान घूर्णन)" आदि। परे पसंसन्ति का अर्थ है: जो कोई भी अव्यवस्थित व्यक्ति की प्रशंसा करता है, वह व्यर्थ और निरर्थक प्रशंसा करता है। क्यों? अत्ता हि असमाहितो, क्योंकि उस व्यक्ति का मन सुव्यवस्थित नहीं है; इसलिए यही अर्थ है।

दूसरे श्लोक में, गरहंति का अर्थ है: वे या तो निंदा करते हैं, दोषारोपण करते हैं या निंदा करते हैं, या तो उचित अभ्यास न करने की स्थिति को प्रकट करके या फिर एक श्रेष्ठ (आर्य) व्यक्ति के गुणों (गुणमरिधंसन) को नष्ट करके, भले ही वह ध्यान का लाभार्थी हो, अपने अज्ञान (अविद्दसु) होने के कारण या क्रोध सुनने (दोसंतारताय) के कारण। उदाहरण के लिए: — “अमुक भिक्षु गाय दुहने के लिए भी एक पल के लिए भी जागते नहीं हैं; वे पूरी तरह से शारीरिक शक्ति में व्यस्त रहते हैं, नींद में आनंद लेते हैं, वाणी में सुख पाते हैं और समाज में आनंदित रहते हैं,” इत्यादि; यही अर्थ है। शेष का अर्थ पहले श्लोक में बताए गए तरीके से समझा जाना चाहिए। जब थेरा ने इस प्रकार इन श्लोकों के माध्यम से सिरिवाढ की स्वयं की अनैतिकता से मुक्ति (निक्किलेश) की स्थिति और सिरिवाढ की अनैतिकता (सकिलेष) की स्थिति को स्पष्ट कर दिया, तो यह सुनकर सिरिवाढ पश्चाताप से भर गया, उसने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का मार्ग अपनाया और सर्वथा अपना भला किया; परन्तु कुछ ही समय बाद, निंदा करने वाले व्यक्तियों ने भी थेरा से क्षमा मांगी।

थेरा सिरिमा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

दूसरे अध्याय पर टीका-टिप्पणी पूरी हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(141):उत्तर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (141) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
141. उत्तरा
बुद्ध युग में साकेत में [1] एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम उत्तरा रखा गया। सावत्थी में कदंब वृक्ष पर हुए दोहरे चमत्कार से प्रभावित होकर, [2] जहाँ वे किसी काम से गए थे, उन्होंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करने के लिए) संन्यास लेने का निश्चय किया, जब भगवान (बुद्ध) ने साकेत में कालका उद्यान में प्रवचन दिया। [3] भगवान (बुद्ध) के साथ राजगृह जाकर, उन्होंने वहाँ

अंतर्दृष्टि प्राप्त की और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) अर्जित की। बुद्ध की सेवा करने के लिए सावत्थी लौटकर, भिक्षुओं ने उनसे पूछा: 'हे भिक्षु, क्या आपने अपने [129] धार्मिक कर्तव्यों को पूरा कर लिया है?' उन्होंने अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा करते हुए इन श्लोकों में उत्तर दिया:

[161] खंडा माया परिण्णाता तन्हा मे सुसमुहता,॥
भविता मम बोजझांगा पत्तो मे आसवक्खयो॥ ॥

[162] सोहं खण्डे परिणय अब्बुहित्वाना1 जालिनीm,॥
भावयित्वाना बोजझान्गे निब्बायिस्सं अनासावो' ति.॥ ॥

[161] मैं पाँच कारकों को अच्छी तरह समझता हूँ,
और मेरे भीतर लालसा अच्छी तरह जड़ से उखड़ गई है,
सात ज्ञान-तार विकसित हो गए हैं,
और सभी विष-धुएँ कुछ भी नहीं रह गए हैं।

[162] और चूंकि अब कारक समझ में आ गए हैं,
मैं - देखो! [4] - शिकारी को बाहर फेंक दिया
[जो हर विचार के लिए अपना जाल बिछाती है], [5] और ज्ञान के सामंजस्य को विकसित करते हुए, [6] समझदार और निर्बल, शांति से गुजर जाएगा। [7]

[1] देखें XXVIII.

[2] बुद्ध द्वारा निर्मित (सुम. वी., 57)।

[3] अंग., ii. 24, तथागत (बुद्ध) के ज्ञान और सत्यनिष्ठा की स्पष्टता पर।

[4] सोहं, शाब्दिक अर्थ: 'यह [स्वयं-वही] मैं।'

[5] एक शब्द जूलिनी का विस्तार, 'वह जो जाल बिछाती है' - अर्थात्, लालसा - 'जिसके प्रसार से इंद्रियों का अनेक जाल जाल के समान हो जाता है' (अत्थसालिनी, पृ. 363; बुद्ध. मनोविज्ञान, पृ. 278, n. 2)। चित्तचित्तसंतानतो उद्धरित्वा (टीका)।

[6] बोज्झंगा, जैसा कि श्लोक 161 में है। तुलना करें संकलन, पृष्ठ 66, 180 f. टीका सात को 'धर्म (धम्म) का सामंजस्य' कहती है।

[7] निब्बायिस्सं अनासवो, 'चेतना के अंतिम (क्षण) की समाप्ति से, ईंधन के बिना आग की तरह, मैं (पुनर्जन्म के) खतरे के बिना परिनिब्बान- ते हो जाऊंगा' (टीका)।

2.3. तीसरा अध्याय

2.3-1 [141] उत्तराथेरा के श्लोक पर टीका
खंडा मया परिञ्ञता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उत्तरा का है। क्या यही उत्पत्ति है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित करने वाले इस व्यक्ति का जन्म 94 युग (कप्पा) पहले भगवान सिद्धार्थ के समय में अपने पारिवारिक घर में हुआ था। बुद्धि प्राप्त करने पर, वे शासन में आनंदित हुए और उन्होंने अपने आप को एक भक्त घोषित किया। जब गुरु का परिनिर्वाण हो गया, तो उन्होंने अपने सगे संबंधियों को एकत्रित किया, बहुत श्रद्धापूर्वक भेंट और व्यक्तिगत आदर अर्पित किया और धर्म को अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट दी। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और साकेत में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने उत्तरा नाम प्राप्त किया और वयस्क होने पर किसी कार्य से श्रावस्ती गए। वहाँ उन्होंने कंढ के आम के वृक्ष की तलहटी में बुद्ध द्वारा किए गए दोहरे चमत्कार को देखा, उससे अत्यंत प्रसन्न हुए, कालराम सूत्र की शिक्षा से उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई,

वे भिक्षु बन गए, गुरु के साथ राजगृह गए, उच्च दीक्षा ली, वहीं निवास किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के मार्ग पर चले, और कुछ ही समय में छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"जब सिद्धार्थ, रक्षक

दुनिया निर्वाण में विलीन हो गई, मैं लाया

मैंने अपने रिश्तेदारों को साथ लिया और अपना

उनके अवशेषों को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

यह चौरानवे युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले मैंने विशेष रूप से अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी

अवशेषों को अर्पित करना; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने का परिणाम

अवशेषों के लिए।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, गुरु के श्रावस्ती में निवास करते समय छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बनने के बाद, वे राजगृह से श्रावस्ती गए और जब भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "मित्र! क्या आपने भिक्षु के कर्तव्यों की सर्वोच्च ऊँचाई प्राप्त कर ली है?", तो थेरा ने अपने अरहंतत्व (अज्ञा) को प्रकट करने के लिए दो श्लोक कहे:—

161. "सभी समूह (खंडा) थे

मुझे समझ आ गया; मेरी लालसा

इच्छा (तण्हा) अच्छी तरह से दूर हो गई थी।

मेरे ज्ञानोदय के तत्वों में शामिल थे

विकसित हो चुका है; घावों से मुक्ति

मुझे यह प्राप्त हो चुका था।

162. "कि मैंने सब कुछ समझ लिया है

खंडा (समूहों) को प्राप्त करने के बाद

जालनुमा लालसा (जालिनी) को दूर कर दिया

और ज्ञानोदय के तत्वों का विकास किया।

मैं निर्वाण में दोषमुक्त होकर प्रवेश करूँगा।

वहां, खंधा का अर्थ है आसक्ति के पांच समूह (उपादान)। परिञ्ञता का अर्थ है: पूर्ण वर्गीकरण के बाद विकसित और समझा गया: — "यह पीड़ादायक कष्ट (दुक्खा) है; इससे अधिक कुछ नहीं है (इतो भिय्यो)।" इससे उन्होंने पीड़ादायक कष्ट (दुक्खा) के आर्य सत्य (अरियासच्च) के अपने सर्वांगीण ज्ञान (परिञ्ञा) और पूर्ण समझ (अभिसामयं) के बारे में बताया। तन्हा का अर्थ है प्यासा होना, चारों ओर लालसा करना, इस प्रकार इच्छा (तन्हा) की लालसा करना। सुसमुहता का अर्थ है: अच्छी तरह से वध किया हुआ। इससे वे दुःख के मूल (समुदयसच्च) के आर्य सत्य के त्याग की पूर्ण समझ की बात करते हैं। भाविता मम बोज्झंगा का अर्थ है: एक श्रेष्ठ (अरिया) व्यक्ति का गुण (अंग) जिसे ज्ञान (बोधि) माना जाता है, या तो जागरूकता जैसी घटनाओं (धम्म) के सामंजस्य (समग्गी) के लिए। और इसी प्रकार (सतीआदि) या इसके अधिकार के लिए (तं समांगिनो) को ज्ञान (बोधि) माना जाता है; इस प्रकार, ज्ञान का गुण (बोज्झंग)। सही मार्ग (मग्ग) में शामिल कर्म (धम्म) जिन्हें जागरूकता (सती), सत्य की खोज (धम्मविचय), परिश्रम (वीर्य), उत्साह (पीति), शांति (पसद्धि), एकाग्रता (समाधि) और समभाव (उपेक्खा) माना जाता है, विकसित (भाविता), जागृत (उप्पादिता) और बढ़े (वड्ढहिता) हैं। यहाँ भी, ज्ञान के गुणों को ग्रहण करने से, इसके साथ अभ्यास करने की अवस्था के कारण सही मार्ग (मग्ग) के सभी कर्म, साथ ही ज्ञान के तत्वों (बोधि-पक्खीयधम्म) के सभी कर्म भी विकसित (परियापन्न) हुए हैं। इसे ग्रहण किया गया है; अतः इसे देखा जाना चाहिए। लेकिन इसके माध्यम से भी, वह सही मार्ग (मग्गसच्च) के सत्य के विकास (भावना) की पूर्ण समझ को दर्शाता है। पट्टो मे आसवक्खयो का अर्थ है: यहाँ इंद्रिय दोष (कामासव) से शुरू होने वाले दोष (खीयंती) समाप्त हो जाते हैं; इस प्रकार, आसवक्खयो (दोषों का निवारण); इस प्रकार नाम प्राप्त करके, मैंने अजन्मे घटनाक्रम (असंखतधम्मो) को प्राप्त कर लिया है। इससे वह निरोध सत्य (निरोध सच्च) के अपने दर्शन की पूर्ण समझ (अभिसामय) की बात करता है। इस हद तक (एट्टावता) वह अस्तित्व के आधार (सौपादिसेष) के अवशेष के साथ निर्वाण प्राप्त करने की अपनी समृद्धि को दर्शाता है।

लेकिन, अस्तित्व के किसी आधार के बिना निर्वाण प्राप्त करने की अपनी समृद्धि को दर्शाने के लिए, उन्होंने "सोतं" से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक कहा। इसका अर्थ है: — खंडे परिञ्ञाय का अर्थ है: इस प्रकार, उक्त विधि से, सभी तत्वों (खंड) को पूरी तरह से समझकर; जालिनी का अर्थ है: इसी प्रकार अच्छी तरह से जानकर। इसमें एक जाल विद्यमान है जो बार-बार घटित होता है (पवत्ति), जो अच्छी तरह से बुना हुआ है और इंद्रियों के आंतरिक और बाह्य निवासों (आयतन) में, अपने शरीर और दूसरों के शरीरों में, अतीत आदि में वर्गीकृत है; इस प्रकार, वह लालसा (तण्हा) जिसे जालिनी (जाल युक्त) नाम मिला। abbahitvāna bojjhaṅge bhāvayitvāna का अर्थ है: इसी प्रकार, परन्तु उसे भी बाहर निकालते हुए, ज्ञान के तत्वों के उक्त वर्गीकरणों (bojjhaṅga) को विकसित करने के बाद, उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (bhāvanāpāripūriṃ) के सर्वांगीण विकास की पूर्णता प्राप्त कराकर; anāsavo का अर्थ है: दोषमुक्त होकर, परन्तु इसके फलस्वरूप; nibbāyissaṃ का अर्थ है: उत्पन्न ज्ञान (jātavedo) के साथ इस प्रकार विरक्त (anupādāno) होकर, अब, अंतिम और सर्वथा (carimaka) मन (citta) के निरोध (nirodha) होने पर, मैं पूर्णतः निर्वाण (parinibbāyissāmi) में प्रवेश करूँगा।

थेरा उत्तरा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(142):भद्दाजी

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (142) ------>>>> अगला
अध्याय II.
दो श्लोक
142. भद्दाजी

भद्दिया में इस बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, [1] एक पार्षद के इकलौते बच्चे के रूप में, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (x10 मिलियन) [2] थी , उसका नाम भद्दाजी रखा गया और उसे विलासिता में पाला-पोसा गया, जैसे कि बोधिसत्व के अंतिम पुनर्जन्म में। ... (टीका में आगे उनकी कहानी बताई गई है कि कैसे उन्होंने पहली बार बुद्ध का प्रवचन सुनते हुए अचानक [130] अरहंतत्व (ज्ञानोदय) का अनुभव किया; बुद्ध उन्हें खोजने के लिए विशेष रूप से सावत्थी से आए थे; और उसके एक सप्ताह बाद वे भगवान (बुद्ध) और उनके साथियों के साथ कोटिगामा गए और गंगा के किनारे ध्यान में लीन हो गए । वहाँ से वे तभी निकले जब भगवान (बुद्ध) वहाँ से गुज़रे, उन्होंने पहले आए प्रमुख थेरों की बात नहीं मानी। अपनी नई सर्वोच्च उपलब्धियों को सिद्ध करने के लिए, बुद्ध ने उन्हें अपनी नौका पर आमंत्रित किया और उन्हें एक चमत्कार करने को कहा। इसके बाद भद्दाजी ने उस डूबे हुए महल को ऊपर उठाया जिसमें वे राजा पनाड के रूप में रहते थे, यह सब 'महा-पनाड-जातक' द्वितीय, क्रमांक 264 में वर्णित है।) फिर थेरा ने उस स्वर्ण महल का वर्णन किया जिसमें वे कभी रहते थे, अपने बारे में बात करते हुए, उस आत्मा के गुज़र जाने के बाद। दूर, [3] जैसे किसी और का:

[163] पनादो नाम सो राजा यस्सा युपो सुवन्नयो,॥
तिरियं सोषास्पाब्धेधो उद्दाहु सहस्सधा ॥ ॥

[164] सहस्सकंदो शतभेन्दु धजलु हरितामयो,॥
अनाक्कुं तथा गंधब्बा चासहसानि सत्तधा' ति.॥ ॥

[163] पनादा नाम का वह राजा था
जिसका महल सोने का था;
वह सोलह कमरों वाला था,
और हज़ार गुना ऊँचा था।

[164.] यह एक हजार सीढ़ियाँ ऊँचा उठा,
इसकी दीवारें नक्काशी से सजी थीं,
कई शानदार झंडे लटके हुए थे,
जिनमें पन्ना चमक रहे थे।
वहीं वे नाचे, गंधर्व नाचे,
छह हजार सात टोलियों में।

[1] अंगों के देश में, मगध के पूर्व में। कोटिगामा पटना के पास था। बोधिसत्व, निश्चित रूप से, गौतम हैं, बुद्ध बनने से पहले। टीका जातक संस्करण (अगले पृष्ठ पर देखें) से केवल कुछ छोटे विवरणों में भिन्न है, और स्वतंत्र शब्दावली का उपयोग करती है।

[3] इस पौराणिक राजा के बारे में दीघा, iii. 76; जाट., iv., क्रमांक 489; दीपवंश, iii. 7; महावंश (अनुवाद), xxxi. 7 आदि भी देखें। जाट. क्रमांक 264 में भद्दाजी के प्रदर्शन का विस्तृत विवरण दिया गया है। पाठ संस्करणों में कुछ वर्णनात्मक शब्दों को लेकर अनिश्चितता है, और टीका के स्रोत भी समान रूप से विभाजित हैं। इसलिए ऊपर दिए गए गाथागीत रूप में अनुवाद का प्रयास पूर्णतः सही अनुवाद का दावा नहीं करता है। अंतिम दो पंक्तियाँ पाणाद के पिता द्वारा राजकुमार को हंसाने के लिए एकत्रित किए गए मूक कलाकारों या संगीतकारों के व्यर्थ प्रयासों को संदर्भित करती हैं। वह, दिव्य कला की याद दिलाते हुए, केवल तभी थोड़ा मुस्कुराया जब देवता (देवताओं के राजा) सक्का ने एक दिव्य विदूषक भेजा (जाट., उपर्युक्त)। तुलना करें मिल. 130।

2.3-2 [142] भद्दाजिथेरा के छंद पर टिप्पणी

Panādo nāma so rājā से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा भद्दाजी का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म ब्राह्मण परिवार में, भगवान पद्ममुत्तरा के समय हुआ था; ज्ञान प्राप्ति पर, इन्होंने ब्राह्मणों के विज्ञान और कलाओं के सागर में पराक्रम का अंत किया, इंद्रिय सुखों का त्याग किया, संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए, वन क्षेत्र में एक आश्रम बनवाया और वहाँ निवास कर रहे थे, तभी एक दिन उन्होंने गुरु को आकाश में जाते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। जब गुरु को उनका इरादा पता चला, तो वे आकाश से अवतरित हुए। जब भगवान अवतरित हुए, तो उन्होंने शहद, कमल के अंकुर (भीसा), कमल की डंठल (मूलाला), घी और दूध अर्पित किया। उन पर दया करके भगवान बुद्ध ने उनकी भेंट स्वीकार की, धन्यवाद कहा और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे तुषिता (स्वर्ग) में अवतरित हुए, जहाँ वे अपने जीवनकाल तक रहे और बार-बार पुनर्जन्म लेते हुए, समय-समय पर उत्तम जन्मों में विचरण करते हुए, भगवान बुद्ध के समय में अपार धन के धनी बन गए, और उन्होंने अड़सठ हजार भिक्षुओं को भोजन कराया और प्रत्येक को तीन वस्त्र पहनाए।

इस प्रकार, अनेक पुण्य कर्म करके वे दिव्य लोक में अवतरित हुए, जहाँ वे अपने जीवनकाल तक रहे, फिर वहाँ से उनका निधन हो गया और वे बुद्धों से रहित संसार में मनुष्यों के बीच जन्म लेकर पाँच सौ मौन बुद्धों और चार संन्यासी की आवश्यकताओं (पच्चय) के साथ रहे, फिर वहाँ से उनका निधन हो गया, एक राजपरिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ, उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित किया, अपने पुत्र की सेवा की, जिन्होंने मौन बुद्धत्व प्राप्त कर लिया था, उनके निधन के बाद उनके अवशेषों को एकत्रित किया, एक मंदिर की स्थापना की और उसमें अपनी श्रद्धा अर्पित की। इस प्रकार, इधर-उधर अनेक पुण्य कर्म करके, उनका पुनर्जन्म भद्दिया नगर में अस्सी करोड़ की संपत्ति वाले धनाढ्य भद्दिया के इकलौते पुत्र के रूप में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम भद्दजी था। कहा जाता है कि उनके अंतिम जन्म में उनकी समृद्धि, जिसमें आधिपत्य (इस्रिया), धन, अनुचर आदि शामिल थे, बोधिसत्व के समान थी।

उस समय, गुरुजी ने अपना उपवास सावत्थी में बिताया और भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ भद्दिया नगर गए ताकि वे युवक भद्दजी का उत्थान कर सकें। वे जातिया वन में उनके ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता (ज्ञानपरिपाक) की प्रतीक्षा में रहे। उन्होंने अपने महल की ऊँची इमारत पर बैठकर सिंह-पिंजरे जैसी खिड़की खोली और देखा कि बहुत से लोग भगवान बुद्ध के समक्ष सत्य (धम्म) सुनने जा रहे हैं। उन्होंने पूछा कि इतनी बड़ी भीड़ कहाँ जा रही है, इस बात का पता चलने पर वे स्वयं भी अपने एक बड़े दल के साथ गुरुजी के समक्ष गए और सत्य (धम्म) सुनते-सुनते उन्होंने अपने सभी दोषों का त्याग कर दिया, और सभी आभूषणों से सुशोभित होकर अर्हतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:

"ऐसे कमल में उतरकर

यह तालाब विभिन्न लोगों के लिए एक पसंदीदा स्थान था।

मैंने हाथियों की कई किस्में निकालीं

वहाँ कमल के अंकुर (भीसा) उगते हैं,

अपनी भूख मिटाने के लिए (घासहेतु),

तब।

वास्तव में, उस मोड़ पर, गौरवशाली

एक जिसे पद्ममुत्तरा, बुद्ध कहा जाता है,

लाल बादल का वाहक (रेट्टाम्बराधारो)

आकाश से होकर गुजरा (anilañjase)

अपने चिथड़े-चिथड़े वस्त्र को झाड़ते हुए (पम्सुकुलानि),

फिर मुझे उसकी आवाज सुनाई दी। प्रतिबिम्बित-

उत्सुकता से ऊपर की ओर देखते हुए मुझे वह दिखाई दिया

विश्व का नेता। खुद को बचाए रखते हुए

लेकिन वहीं खड़े-खड़े ही मैंने अपना अनुरोध किया।

विश्व के नेता को; बुद्ध की कृपा से,

दृष्टि रखने वाला (चक्खुमा)

मुझ पर दया करो, मेरी भेंट स्वीकार करो।

शहद में कमल के अंकुर मिलाए गए हों (सहितं)

(भिसेहि), दूध, मक्खन और कमल के डंठलों का

(मुलालिकं)। इसके बाद, दयालु स्वामी,

पूर्णतः प्रसिद्ध, दृष्टि का स्वामी

(चक्खुमा) अवतरित हुए और मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया-

उन्होंने मुझ पर दया करके मुझे भोजन दिया।

आत्मजागृत बुद्ध, जिन्होंने (मेरी) स्वीकार कर लिया है

उन्होंने अपना आभार व्यक्त किया (अनुमोदन):

हे गुणवान पुरुष, आप सुखी रहें।

आपका करियर (गति) समृद्ध हो; द्वारा

कमल के अंकुर (भीसा) की इस भेंट का साधन

आपको अपार आनंद प्राप्त हो।

स्वयंजागृत बुद्ध, जिनका नाम जलजुत्तमा था,

सबसे उत्कृष्ट जलप्रपात, स्वयं-

प्रबुद्ध विजेता आकाश में विचरण करता हुआ चला गया।

मैं अपना भोजन प्रसाद (भिक्खम) ग्रहण कर रहा हूँ।

इसके बाद, कमल एकत्र करने के बाद

मैं अपने आश्रम में वापस आ गया।

मैंने कमल के अंकुर को पेड़ पर लटका दिया, मैंने अपना

मेरे दान की स्मृति में।

तेज हवा चलने लगी और

तब जंगल हिल गया; खासकर आकाश

तेज आवाज सुनाई दी और बिजली चमक उठी।

(फली) तब।

परिणामस्वरूप, मुझ पर बिजली गिरी;

फिर वह मेरे सिर पर गिर गया। मैं वहीं रह गया।

बैठे-बैठे ही उनकी मृत्यु हो गई। मेरे 'से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है।

पुण्य कर्म के फलस्वरूप, मैं स्वतः ही जागृत हो गया।

तुषिता का स्वर्ग; मेरा मृत शरीर (कालेवारा)

मुझे गिरा दिया गया था (पतितं); मुझे आनंद आया

स्वयं को दिव्य जगत में। छियासी

हजारों सजी-धजी महिलाओं ने सेवा की।

मुझे शाम और सुबह; यही फलदायी है

मेरे द्वारा अर्पित किए गए कमल के अंकुर का परिणाम।

मानव गर्भ में आने के बाद, मैं बन गया

तो खुश हूं। मेरी आय में कोई कमी नहीं आई है।

धन। यह इसका फलदायी परिणाम है।

मैं कमल के अंकुर का अर्पण कर रहा हूँ।

उस व्यक्ति द्वारा करुणापूर्वक देखभाल की गई

जैसे व्यक्तित्व (तादी) के परमात्मा के रूप में

मेरे सभी दिव्य प्राणियों (देवदेव)

कैंकर पूरी तरह से थक चुके हैं

(परिक्खाण), अब कोई नया अस्तित्व नहीं है-

तनाव (मेरे लिए)।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

मैंने कुछ समय पहले कमल का अर्पण किया था।

अंकुर। मुझे कोई बुराई याद नहीं है।

अस्तित्व, यही फलदायी परिणाम है

कमल के अंकुर का अर्पण करने के बारे में।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

जब उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया, तो गुरु ने धनाढ्य भद्दिया को संबोधित करते हुए कहा: "आभूषणों से सुशोभित होकर, आपके पुत्र ने सत्य (धम्म) का निरंतर श्रवण करके अरहंतत्व प्राप्त कर लिया है; अतः अब उनका भिक्षु बनना आवश्यक है; यदि वे भिक्षु नहीं बनेंगे, तो वे परिनिर्वाण में लीन हो जाएँगे।" धनाढ्य ने उत्तर दिया, "जब तक मेरा पुत्र छोटा है, उसके परिनिर्वाण में लीन होने की कोई आवश्यकता नहीं है; कृपया उन्हें भिक्षु बना दें।" गुरु ने उन्हें भिक्षु बनाया, उन्हें पूर्ण दीक्षा (उपसंबदेत्व) दी, वहाँ सात दिन निवास किया और कोटि गाँव पहुँचे: वह गाँव गंगा नदी के तट पर स्थित था। कोटि गाँव के निवासियों ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को विशाल दान दिया। गुरु द्वारा किए गए धन्यवाद (अनुमोदनय) से प्रेरित होकर थेरा भद्दाजी गाँव से बाहर गए और समाधि में लीन होकर बैठ गए। वे मन ही मन कहने लगे, "गंगा नदी के किनारे, सड़क के पास, गुरु के आगमन पर मैं समाधि से उठूँगा।" यद्यपि महान थेरा उनके पास आ रहे थे, फिर भी वे समाधि से नहीं उठे, बल्कि गुरु के आगमन पर ही उठे। सामान्य भिक्षु (पुथुज्जन) इस प्रकार बड़बड़ाने लगे, "यह तो अभी-अभी भिक्षु बना है, लेकिन जब महान थेरा उसके पास आ रहे थे, तब भी नहीं उठा, क्योंकि यह अहंकार से कठोर हो गया है।" कोटि गाँव के निवासियों ने गुरु और भिक्षुओं के समूह के लिए अनेक नौकाएँ एकत्र कीं। गुरुदेव नौकाओं के संयुक्त समूह पर खड़े होकर मन ही मन कहने लगे, "अब मुझे उनकी शक्ति प्रकट करनी होगी," और फिर उन्होंने पूछा, "भद्दाजी कहाँ हैं?" थेरा भद्दाजी गुरुदेव के पास आए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए, "आदरणीय गुरुदेव! मैं ही हूँ।" गुरुदेव ने उनसे कहा, "हे भद्दाजी! आइए, हमारे साथ एक ही नौका पर चढ़िए।" वे उछलकर उस नौका पर खड़े हो गए जिस पर गुरुदेव सवार थे। जब गंगा नदी के मध्य में पहुँचे, तब गुरुदेव ने पूछा, "हे भद्दाजी! महापनाद राजा के रूप में आपके निवास के समय आपका रत्नजड़ित महल (अज्जावुत्था) कहाँ है?" "वह अभी भी उसी स्थान पर डूबा हुआ है।" बुद्ध ने कहा, "तो फिर, हे भद्दाजी! अपने साथी साधुओं (सब्रह्मचारी) के संदेह को दूर कीजिए।" उस समय, थेरा ने गुरु को प्रणाम किया, अपनी जादुई शक्ति से बलपूर्वक आगे बढ़े, महल के गुंबद को अपने पैर की उंगलियों के बीच दबाकर (पादंगुलंतरेना सन्निरुम्भित्वा), महल को पच्चीस दीर्घा (योजन) की दूरी तक फैलाकर आकाश में ऊपर उठा दिया (उप्पति): ऊपर उठाते समय (उप्पतन्तो) उन्होंने महल को जल की सतह से पचास दीर्घा ऊपर फेंक दिया। इसके बाद, महल के प्रति लालच के कारण उनके पूर्वज के रिश्तेदार मछलियों, कछुओं और मेंढकों के रूप में पुनर्जन्म लेकर, जब वह महल ऊपर उठा (उठहन्ते), तो चारों ओर लुढ़कते हुए (परिवत्तित्वा) जल में गिर गए।उन्हें गिरते देख गुरु ने कहा: "हे भद्दाजी! आपके रिश्तेदार थक गए हैं (किललमंती)। गुरु के वचन से थेरा ने महल को मुक्त कर दिया। महल अपनी मूल स्थिति में वापस आ गया। भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर, "आदरणीय गुरुजी! थेरा भद्दाजी ने इस महल को कब अपना निवास स्थान बनाया था?" दूर तट पर पहुँच चुके गुरु ने महापनादजातक का उपदेश दिया और असंख्य भिक्षुओं को सत्य (धम्म) का अमर पेय पिलाया। थेरा ने अपने उस स्वर्ण महल को दिखाया, जहाँ वे पहले निवास करते थे, और दो श्लोकों के माध्यम से उसकी प्रशंसा करते हुए अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) का प्रकटीकरण किया।

163. "उस राजा, जिसका नाम पनादा था, का

सोने से बना महल; यह सोलह वर्ष पुराना था।

प्रत्येक तीर के निशाने आधे लीग के थे

(उब्बेधा) चौड़ाई में और

हजार बार (तीर के चलने से)

ऊंचाई (या उससे ऊपर)।

164. "एक हजार कहानियां (कंडा) थीं"

और सौ शिखर (गंडू);

इसे सुशोभित करने वाले प्रचुर बैनर थे

सोने से बना। वहाँ, छह हजार

नर्तकियों ने सात स्थानों (सत्तधा) पर नृत्य किया।

वहाँ, Panādo nāma so rājā का अर्थ है: बहुत समय पहले पनादा नाम का एक राजा था; उसने अपने आप को किसी और व्यक्ति के रूप में प्रकट किया, क्योंकि उसमें आत्म-अस्तित्व (अत्तभाव) का अभाव था। वास्तव में, जब से वह संप्रभु बना, तब से वह "राजा महापनाद" के नाम से प्रसिद्ध हो गया, क्योंकि वह निरंतर परिश्रम से समृद्ध था, साथ ही उसकी ख्याति भी प्रबल थी। Yassa yūpo suvaṇṇayo का अर्थ है: इस राजा का महल सोने का बना था। Tiriyaṃ soḷasubbedho का अर्थ है: चौड़ाई में यह सोलह तीरों के बराबर है। हालाँकि, यह आधा मील (योजन) तक फैला हुआ है। उभमहु सहस्सधा का अर्थ है:— इस प्रकार, उस महल की ऊँचाई हजार तीरों के आकार से हजार गुना थी। हालाँकि, योजन के संदर्भ में यह पच्चीस योजन ऊँचा है। यहाँ, कुछ विद्वानों ने श्लोक रचना में सुगमता के लिए इसे "आहु" के रूप में विस्तारित किया है। वे इस प्रकार कहते हैं: "आहु इस अहोसी (यह था)।"

सहस्सकण्डो का अर्थ है: हजार मंजिला (भूमिको)। सतगेण्डु का अर्थ है: सौ शिखरों वाला (निय्युहको)। धजालू का अर्थ है: स्तंभों, ध्वजों आदि जैसे झंडों से सुसज्जित, जो शिखरों, शिखरों आदि पर सुशोभित हैं। हरितामयो का अर्थ है: उत्तम रंग के सोने से बना (चामीकरसुवण)। हालांकि, कुछ विद्वान कहते हैं, "नरितजातिमणिसरिक्खतो" जिसका अर्थ है: हरे (हेरित) प्राकृतिक (जाति) जीन (मणि) के समान (सरिक्खतो)। गंधबला का अर्थ है: नर्तक (नटा)। च सहस्सानी सत्ताधा का अर्थ है: उस महल के सात स्थानों पर सात बार लगभग छह हजार नर्तकियों ने राजा को विशेष रूप से प्रसन्न करने के उद्देश्य से नृत्य किया। इस प्रकार नृत्य करने के बावजूद वे राजा को हंसाने में सफल नहीं हुए। तब दिव्य सम्राट सक्का ने दिव्य नर्तकियों को भेजा और एक उत्सव का आयोजन करवाया। तब राजा हँसे।

थेरा भद्दाजी के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(143):शोभिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (143) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
143. शोभिता
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम शोभिता रखा गया। भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनने के बाद, उन्होंने संसार त्यागकर (भिक्षुता ग्रहण करके) छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की और अपने पूर्व जन्मों को याद करने का अभ्यास इतनी सफलता से किया कि भगवान (बुद्ध) ने उन्हें स्मरण करने वालों में सर्वोपरि स्थान दिया। [1] अपनी इस श्रेष्ठ उपलब्धि पर विचार करते हुए वे आनंद से भर उठे और उन्होंने यह वाणी (गाथा) कही:

[165] सतीमा पन्नवा भिक्खु अरद्धबलवीरियो,॥
पञ्चकप्पसतानाहाऽ एकरातिṃ अनुसारिṃ॥ ॥

[166] कत्तारो सतिपठाणे सत्ताअथ च भावयौ,॥
पञ्चकप्पसतानाहं एकरत्तीं अनुसारिन्ति ॥॥ ॥

[165] एक भिक्षु (भिक्षु) सचेत, अंतर्दृष्टि से संपन्न,
कठोर प्रयास से दृढ़तापूर्वक काम में लगा हुआ,
मैंने [अनंत अतीत] को याद किया है:
एक ही रात में पाँच सौ युग।

[166] हे ध्यान के चार आरंभ [2] मेरा अध्ययन हो, सात, [3] (महान) आठ! [4] क्योंकि मैंने [अनंत अतीत] को याद किया है:
एक ही रात में पाँच सौ युग।

[1] अंग., i. 25. बहन भद्दा कपिलानी भी इसी प्रकार विशिष्ट थीं (बहनें, पृ. 47)। शोभिता थेरा (संभवतः यही व्यक्ति) तेरह अभिधम्मिकों की धर्मप्रचार परंपरा में तीसरे थे, जिन्होंने इस शिक्षा को महिंदा द्वारा सीलोन तक पहुँचाने तक आगे बढ़ाया। भद्दाजी थेरा दूसरे थे। (अत्थासालिनी, पृ. 32)।

[2] संवाद देखें , ii. 327 ff.; संकलन, पृ. 179. भावयं = भावना होतु (टीका)।

[3] ज्ञानोदय के कारक, ज्ञान के पंख (संकलन, पृ. 180)।

[4] अष्टांगिक मार्ग.

2.3-3 [143] शोभितत्थेरा के श्लोक पर टीका
सतिना पञ्ञवा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा शोभिता का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर, जब वे गुरु से सत्य (धम्म) की शिक्षा सुन रहे थे, तो उन्होंने देखा कि गुरु ने पूर्व जन्मों के ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षुओं में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने स्वयं उस पद की आकांक्षा (उद्दिसा) की, पुण्य कर्म किए, उत्तम जन्मों में ही अपने जन्मों का चक्र पूरा किया और भगवान सुमेधा के समय एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर उन्होंने ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की, वैराग्य से विशेष रूप से मुक्त हुए, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बन गए, हिमवंता पर्वत के निकट एक वन क्षेत्र में एक आश्रम बनवाया, वन की जड़ों और फलों (बड़े और छोटे) से अपना पोषण करते रहे (यापेंतो), बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुना, भद्दावती नगर में गुरु के पास गए, हर जगह केवल एक रात ही ठहरे, धार्मिक भाव से प्रेरित हुए और विशेष रूप से छह श्लोकों में उनकी स्तुति की, जिसकी शुरुआत "तुवं सत्ता च केतु च (आप ही गुरु और ध्वज हैं):" से होती है। गुरु ने उनके भविष्य की समृद्धि का भी खुलासा किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे जन्म-जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। उन्होंने उनका नाम शोभिता रखा। इसके बाद, उन्होंने गुरु द्वारा सिखाए गए सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर विकास किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। वे पूर्वलोकों के ज्ञान में भी निपुणता (चिन्नवसी) प्राप्त कर चुके थे। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

हिमावंता के दक्षिणी भाग में, मेरा

आश्रम अच्छी तरह से बनाया गया था। खोज में

मैंने उस समय अत्यंत उत्कृष्ट कल्याणकारी जीवन व्यतीत किया।

जंगल में।

लाभ और हानि दोनों के साथ मैं था

जड़ों और फलों से संतुष्ट।

शिक्षक की निरंतर खोज में, मैं निवास करता रहा।

सभी अकेले।

वहीं और उसी समय, दुनिया में उत्पन्न हुआ

स्वयंजागृत बुद्ध सुमेधा; खींचना

भीड़ में से उसने चार गुना प्रकट किया

महान सत्य।

मैंने स्वयंजागृत बुद्ध के बारे में नहीं सुना था;

किसी ने मेरी ओर इशारा भी नहीं किया;

जब आठ साल बीत गए, तब मैंने सुना

विश्व के नेता का।

लकड़ियाँ निकालकर और झाड़ू लगाने के बाद

मैंने अपने आश्रम की सफाई की, और एक टोकरी भर ली।

बोझ से लदा हुआ (खरीभारं) और चला गया

जंगल से।

गांवों और बाजारों में एक रात बिताना

फिर मैं धीरे-धीरे उन कस्बों की ओर बढ़ा।

चंदवती.

उस अवसर पर, भगवान ने

विश्व के नेता सुमेधा थे।

अमर मार्ग को दर्शाते हुए बाहर निकलना

अनेक जीव।

लोगों के विशाल समूह से आगे निकल जाने के बाद,

मैंने विजेताओं के सागर को नमन किया;

मैंने अपने एक कंधे को खुला रखा था।

मैंने अपनी मृग की खाल पहनकर अपनी अच्छी प्रशंसा की।

विश्व के नेता के। आप स्वामी हैं।

साथ ही बैनर, झंडा और महल (युपो)

आप ही जीव-जंतुओं के लिए राहत (पराया) हैं।

(न) और समर्थन (पतिट्ठा) के साथ-साथ

द्वीप, दो पैरों वाले प्राणियों में सबसे उत्कृष्ट। तुम,

अनुभवी (नेपुन्नो), अंतर्दृष्टि में नायक

(dassanevīro) भीड़ को पार भेजना

पुरुष। कोई अन्य परिवहनकर्ता (ताराको) मौजूद नहीं है।

विश्व में; हे ऋषि! आप सर्वश्रेष्ठ अनुवादक हैं।

पोर्टर (उत्तरितारो)।

मापना संभव है (pametuṃ)

कुसा घास की नोक वाला सबसे बड़ा महासागर,

बूंद-बूंद करके (थेव); यह बिल्कुल असंभव है

आपके सर्वज्ञ ज्ञान को मापने के लिए (पामेटावे)।

वजन वाली छड़ी पर रखने के बाद

तराजू (तुलदण्ड) सहारा देना संभव है

(धरेतवे)। हे दृष्टिवान!

आपकी बुद्धिमत्ता का कोई माप नहीं है।

आकाश का मापन कराना संभव है।

रस्सी से या उंगली से; हे सर्वज्ञानी

बुद्ध! इसे मापना तो बिलकुल असंभव है।

आपका नैतिक उपदेश (सीला)।

विशाल महासागर का पानी, आकाश भी

पृथ्वी की तरह; ये पूरी तरह से मापने योग्य हैं;

हे दृष्टि के स्वामी! आप अतुलनीय हैं।

पूरी तरह से प्रसिद्ध घोषित करने के बाद

सर्वज्ञ बुद्ध छह के माध्यम से

छंदों को पढ़ने के बाद, मैं चुपचाप खड़ा रहा।

मैंने अपने जुड़े हुए हाथों को ऊपर उठा लिया था।

बुद्ध सुमेधा ऐसे थे कि लोग

उन्हें व्यापक रूप से बुद्धिमान (भूरिपञ्ञ) के रूप में वर्णित करें।

और बहुत बुद्धिमान (सुमेधसा)। वह बैठे थे।

स्वयं भिक्षुओं के बीच में

और उन्होंने ये छंद कहे:

मैं उसके बारे में घोषणा करूंगा जो समर्थक है-

उसने अपने दिमाग से मेरे ज्ञान पर दावा किया

स्पष्ट रूप से धार्मिकता से प्रसन्न; जब

मैं जो कह रहा हूँ, आप सब ध्यान से सुनें।

वह दिव्य आनंद में डूबा रहेगा।

सत्तरह युगों के लिए दुनिया (कप्पा)।

वह हजार बार दिव्य होगा

राजा बनें और दिव्य संप्रभुता का प्रयोग करें।

कई सौ बार, वह विश्व-

राजा; उसका क्षेत्रीय शासन ऐसा होगा

प्रचुर मात्रा में कि उनके अवसर होंगे

संख्यात्मक रूप से अगणनीय।

चाहे वह दिव्य प्राणी हो या

एक इंसान होने के नाते, वह शांत स्वभाव का होगा।

पुण्य कर्मों के साथ, बिना किसी कमी के

अपनी मानसिक योजनाओं (संकप्पो) में और

तीव्र बुद्धि (तिक्खपणो)। तीस हजार

युग (कप्पा) इसलिए, वहाँ होगा

विश्व में स्वामी, परिवार में जन्मा

ओक्काका (संस्कृत इक्ष्वाकु) के वंशज और कुल के अनुसार गौतम कहलाते थे।

वह विशेष रूप से अपना घर छोड़कर जाएगा।

और कुछ भी न होते हुए भिक्षु बन जाओ

(अकिंचानो); वह हासिल करेगा (फुसिसाती)

सात वर्षों के भीतर अरहंत पद प्राप्त करने के बाद

उसका जन्म।

जब से मुझे याद है,

जिस समय मैं उस स्थान पर पहुँचा,

(सासनं), इस अवधि के दौरान, मैं करता हूँ

मेरी इच्छा (चेतनम्) से न जानना कि

यह मुझे आनंददायक नहीं लगता।

अपने चक्करों में घूमने के बाद

सभी जन्मों में बार-बार पुनर्जन्म होता है।

मैंने समृद्धि (संपत्ति) का आनंद लिया।

मेरी संपत्ति में कोई कमी नहीं आई थी;

यह मेरी प्रशंसा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध के ज्ञान का।

मेरी तीनों आग बुझ चुकी थीं;

सभी अस्तित्व का मिट जाना।

मेरे सारे घाव पूरी तरह से साफ हो चुके थे।

थक चुके हैं, अब कुछ नया नहीं बचा है।

अस्तित्व।

यह तीस हजार युग पहले की बात है।

मैंने (बुद्ध के) ज्ञान की प्रशंसा की, मैंने

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो; यह

प्रशंसा करने का फलदायी परिणाम यही है।

(बुद्ध के) ज्ञान।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

लेकिन अरहंत बनने के बाद, अपने पूर्व निवासों को क्रमानुसार याद करते हुए, उन्होंने अपनी बुद्धिहीन कल्पना के अनुसार ब्रह्मा के अस्तित्व को अचेतन (असञ्ञ) अवस्था में पाया। इसके बाद, पाँच सौ युगों (कप्पा) तक मन की उत्पत्ति न देखने और केवल शेष ज्ञान प्राप्त करने पर, उन्होंने इस पर विचार करते हुए, विधि (नय) द्वारा यह निष्कर्ष (नित्त) निकाला: "यह अचेतन (असञ्ञ) अवस्था का अस्तित्व होना चाहिए।" इस कारण भगवान बुद्ध ने कहा: "हे भिक्षुओं! एक दीर्घायु दिव्य-प्राणियों का निवास है जिसे असञ्ञत्त कहा जाता है, जो अचेतन अवस्था है; वहाँ से प्रस्थान करके शोभिता यहाँ उत्पन्न हुए; वे इस अस्तित्व को जानते हैं; शोभिता को यह याद है।" जब उसने विधि (नय) द्वारा इस प्रकार स्मरण किया, तो गुरु ने उसकी स्मरण शक्ति देखकर उसे अपने पूर्व जन्मों को याद करने वालों में सर्वोच्च स्थान दिया। इसके बाद, इस आदरणीय थेरा ने अपने पूर्व जन्म और उसके उचित फल (पत्तिपत्ती) के स्मरण के ज्ञान पर विचार किया, जो उसका आश्रित मूल (पच्चय) बन गया था। वह प्रसन्न हुए और दो श्लोक बोलकर अपने आनंदमय कथन को गंभीरतापूर्वक व्यक्त किया और उसके अर्थ को स्पष्ट किया (तदत्त दीपं)।

165. "मैं, भिक्षु, जो सचेतनता से परिपूर्ण था

(सती) और ज्ञान, जोरदार प्रयास के साथ

अच्छी शुरुआत (आरोद्धा) याद किया

एक ही रात में पाँच सौ युग

(कप्पा)।

166. "चार आधारों का विकास करना"

जागरूकता, सात (तत्वों के)

ज्ञानोदय) और आठ (तत्व)

सही रास्ते का), मुझे याद आया

एक रात पांच सौ युग (कप्पा)।

वहाँ, सतिमा का अर्थ है: स्वयं के प्रति सजग होना ताकि जागरूकता के आधारभूत सिद्धांतों के विकास और जागरूकता की प्रचुरता (सतिवेपुल्ला) की प्राप्ति के लिए सर्वांगीण पूर्णता (समुदागमना) हो सके। पञ्ञवा का अर्थ है: छह प्रकार के उच्च ज्ञान की सर्वांगीण पूर्णता और ज्ञान की प्रचुरता की प्राप्ति के लिए ज्ञान का स्वामी। भिक्षु का अर्थ है भिक्षु, क्योंकि उसकी पतित अवस्था का नाश हो चुका है। आरच्छबलवीर्यो का अर्थ है सुगठित सिद्धि और श्रद्धा आदि जैसी शक्ति की सर्वांगीण पूर्णता, साथ ही चार प्रकार के उचित प्रयासों (सम्मप्पधान) के प्रयास के लिए। वास्तव में, यहाँ आस्था का ग्रहण (गहनं) और बल का आलिंगन (बलग्गणेन) होता है, यद्यपि जब सती (सती) और बल की प्रबल अवस्था (बलभाव) विद्यमान होती है; जैसा कि: "गोबलिबद्धा पुण्याणासुम्भारा (बैल और सांड, पुण्य और ज्ञान का संयोजन)।" पंचकप्पसतनहं एकरत्तिं अनुस्सरं का अर्थ है: मुझे ऐसा याद आया मानो एक ही रात बीती हो। यहाँ व्याकरणिक शब्द 'विय' को लोप (लुत्तनिद्दित्तो) के रूप में दर्शाया गया है; इसके माध्यम से वह अपने पूर्व निवासों को याद करने के ज्ञान में अपने उत्कृष्ट ज्ञान की अवस्था को प्रकाशित करता है।

अब उन्होंने दूसरा श्लोक बोला, जिसकी शुरुआत "चट्टारो" से हुई, ताकि यह दिखाया जा सके कि उचित अभ्यास (पटिपत्ति) जिसके द्वारा उनकी स्वयं की सिद्धि हुई है, साथ ही पूर्व लोकों के ज्ञान में उत्कृष्टता (सातिसयं) भी प्राप्त हुई है, जागरूकता (सति) प्राप्त होने के बाद भी, इत्यादि। वहाँ, चट्टारो सतिपट्ठने का अर्थ है: शरीर (काय) आदि पर चिंतन करते हुए, और सांसारिक और अलौकिक प्रकृति के चार विभिन्न मिश्रित पदार्थों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, जिन्हें अपने स्वयं के क्षेत्र (विषयभेद) के वर्गीकरण द्वारा जागरूकता माना जाता है, ऐसी जागरूकता की स्थापना में। सत्ता का अर्थ है: ज्ञान के सात तत्व (बोज्झंग)। अट्ठ का अर्थ है: पथ के आठ तत्व (मग्गंग); वास्तव में, ज्ञान के सात तत्व (बोज्झंग) हैं, लेकिन जागरूकता (सतिपट्ठाना) की स्थापना में अच्छी तरह से स्थापित मन के सर्वांगीण पूर्ण विकास तक पहुँच गए हैं; इसी प्रकार, आर्य अष्टांगिक मार्ग (अरियो अट्ठंगिको मग्गो)। इसी कारण, सत्य (धम्म) के सेनापति ने कहा; "चतुसु satipaṭṭhānesu suppatiṭṭhitacutta sattabojjhaṅge yathābhūtaṃ bhāvetvā (वे लोग जो चेतना के चार आधारों (satipaṭṭhāna) में अच्छी तरह से स्थापित हैं, सत्य (yathābhūtaṃ) के अनुसार ज्ञान के सात तत्वों (bojjhaṅga) को विकसित कर चुके हैं)" इत्यादि: जब विकास (bhāvanā) की सर्वांगीण पूर्ति (pāripūriṃ) सात खरगोशों के एक भाग (koṭṭhāsa) में या ज्ञान में योगदान देने वाले सैंतीस गुणों (bodhipakkhiyadhamma) में प्राप्त हो जाती है, तो अन्य भागों (itare) तक न पहुँचने जैसी कोई बात नहीं है। Bhāvayaṃ का अर्थ है: विकास का कारण (hetu)। (भावना)। बाकी तो बस कहने के तरीके से ही है।

थेरा शोभिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(144):वल्लिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (144) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
144. वल्लिया
बुद्ध युग में वैशाली में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम काण्मित्त रखा गया। वयस्क होने पर, उन्होंने बुद्ध की महिमा देखी जब वे वैशाली आए, [132] और विश्वास करते हुए, उन्होंने महा-कच्चना के अधीन दीक्षा ली। अंतर्दृष्टि में मंद और प्रयास शुरू करते हुए, वे अपने सहधर्मियों के ज्ञान पर इतने लंबे समय तक निर्भर रहे कि उन्होंने उन्हें वल्लिया (लता-शाखा) कहा, यह कहते हुए, 'जैसे आइवी और ऐसे पौधे जो बिना सहारे के नहीं बढ़ सकते, वैसे ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के सहारे के बिना आगे नहीं बढ़ सकता।' [1]

और ऐसा हुआ कि वह थेरा वेणुदत्त का प्रवचन सुनने गया, और उससे सचेत, बुद्धिमान और ज्ञान में परिपक्व होकर उसने उस कुशल शिक्षक से पूछा:

[167] याṃ किक्काṃ सहाविरियो याṃ कक्काṃ बोधुमिचता,॥
करिसाṃ नवारुज्जहस्सां पासा विरियं परक्कमाṃ॥ ॥

[168] त्वाṃ सीए मे मग्गमक्खाहि अंजसअ अमातोगधाṃ,॥
अहं मोनेना मोनिस्सां गंगगासोतोव सगारन्ति॥ ॥

[167] वह सब कुछ जो लगन से किया जाना है,
वह सब कुछ जो सत्य के प्रति जागृत होने के लिए स्वेच्छा से करना चाहिए।
वह सब कुछ मेरा काम होगा और मैं असफल नहीं होऊंगा।
हे देखो, ऊर्जा से भरे मेरे आगे के कदम!

[168] और क्या आप मुझे दिखाएंगे कि कैसे और कहाँ जाना है -
वह मार्ग जो अमृत पर आधारित है - [2] इसलिए मैं मौन अध्ययन में चिंतन करते हुए
ऋषियों के मौन को प्राप्त करूँगा,
जैसे महान गंगा नदी मुख्य धारा में बहती है। [3]

तब वेणुदत्त ने उन्हें अध्ययन के लिए एक अभ्यास दिया, और उन्होंने उस पर काम करते हुए कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। सर्वोच्च उपलब्धि की घोषणा करते हुए उन्होंने उन्हीं श्लोकों का उच्चारण किया।

[1] जाहिर तौर पर LIII के वल्लियास से एक अलग थेरा। और CXXIII., जिसके मामले में वलिया कोई उपनाम नहीं होगा। मैंने वल्ली (क्रीपर) को 'आइवी' कहा है, क्योंकि यह आमतौर पर हमारे लिए ऐसे चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। महा-कक्काना पर, CCXXIX देखें। वेणुदत्त अन्यत्र नहीं मिलता।

[2] निब्बाणे पतिथित्ता (टिप्पणी)।

[3] चौथाई श्लोक 'अहम् मोनेना मोनिस्साम्' का शायद अनावश्यक विस्तार किया गया है, लेकिन यह शास्त्रीय भारतीय साहित्य में द्रष्टा या ऋषि (मुनि) और मौन के बीच के संबंध को उचित ठहराने के लिए था (देखें छान्दोग्य उपनिषद, 8:5, 2)। गंगा की उपमा मौन प्रगति और प्राप्ति दोनों को दर्शाती है। फिर भी, टीका मौन से कोई संबंध नहीं रखती; क्योंकि इसमें, मोनेना का अर्थ है 'ज्ञान या अंतर्दृष्टि से' और मोनिस्साम् का अर्थ है 'मैं जानूंगा या पहचानूंगा (निर्वाण)।'

2.3-4 [144] वल्लियाथेरा के छंद पर टिप्पणी
यं किच्चं दल्हवीरियेन से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वल्लिया का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, सुमेध बुद्ध के समय एक ब्राह्मण परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ; बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने कला और विज्ञान में निपुणता प्राप्त की, अपनी अस्सी करोड़ की संपत्ति त्याग दी, संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए, एक नदी के किनारे, वन क्षेत्र में, एक पहाड़ी की तलहटी में एक आश्रम बनवाया और वहाँ निवास कर रहे थे, जब उनकी मुलाकात गुरु से हुई जो उनका उत्थान करने के उद्देश्य से उनके पास आए थे; वे धर्मपरायण हो गए, उन्होंने अपनी हिरण की खाल बिछाई और उन्हें अर्पित कर दी। उन्होंने श्रद्धापूर्वक फूल और चंदन अर्पित किए, आम चढ़ाए और पंचपतित्तित (पंचपतित्तित) पांच आसनों में बैठकर प्रणाम किया। भगवान बुद्ध ने अपने 'बैठे हुए आसन' की सुखदायकता (संपत्ति) प्रकट करते हुए उन्हें धन्यवाद कहा और प्रस्थान किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे वैशाली में एक ब्राह्मण परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उन्हें "कण्मित्त" नाम प्राप्त हुआ। वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु की शक्ति को तब देखा जब वे वैशाली गए थे, उन्होंने उचित श्रद्धा प्राप्त की और थेरा महाकच्चाना की उपस्थिति में भिक्षु बन गए। वे अल्प बुद्धि और धीमी गति से साधना करने वाले थे, फिर भी उन्होंने अपने बुद्धिमान साथी गुरु पर निर्भर रहते हुए दीर्घकाल तक आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया। भिक्षु उन्हें केवल वल्लिया कहकर पुकारते थे और कहते थे: "जिस प्रकार लता वृक्षों के सहारे ही बढ़ सकती है, उसी प्रकार यह भी किसी ज्ञानी व्यक्ति के मार्गदर्शन के बिना विकसित नहीं हो सकता।" बाद में, उन्होंने थेरा वेणुदत्त से संपर्क किया, उनकी सलाह

मानी, स्वयं को सचेत और पूर्णतः जागरूक (संपजानो) बनाया, और दो श्लोकों का चिंतन करते हुए थेरा से उचित साधना के क्रम (पटिपत्तिक्कम) के बारे में पूछा, क्योंकि वे ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता (ज्ञान) प्राप्त कर चुके थे।

167. “जो कुछ भी दृढ़ता से किया जाना चाहिए

प्रयास, और जो कुछ भी होना चाहिए

यह कार्य उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

मैं अवश्य करूंगा; मैं लापरवाही नहीं करूंगा।

मेरी मेहनत और प्रयास को जरूर देखें।

168. “आप महोदय! कृपया मुझसे बात करें”

सही रास्ता (मग्गा), सीधा

निब्बाण (अमातोगधम्) में गोता लगाना;

मैं उचित रूप से निर्वाण प्राप्त करूँगा।

सही मार्ग का ज्ञान (मोनेना)

नदी की धारा के समान

गंगा सागर तक पहुँचती है।

वहाँ, yaṃ kiccaṃ daḷhavīriyena का अर्थ है: दृढ़ परिश्रम और निरंतर प्रयास (थिरा परक्कम) द्वारा जो भी कर्तव्य उचित रूप से किया जाना चाहिए; दूसरे शब्दों में, दृढ़ परिश्रम और पौरुषपूर्ण सहनशक्ति (दोरायह) के साथ। Yaṃ kiccaṃboddhumicchatā का अर्थ है: जो भी कर्तव्य चार आर्य सत्यों, या यहाँ तक कि निर्वाण में उचित रूप से प्रवेश करना चाहता है, उसे करना चाहिए। Karissaṃ nāvarrajjhissati का अर्थ है: मैं अब वह करूँगा, मैं चूक नहीं करूँगा: मैं निर्देशानुसार उचित रूप से अभ्यास करूँगा। Passa vīrivaṃ parakkamaṃ का अर्थ है: जब कोई व्यक्ति अपने जीवन को धर्म (धम्म) के अनुसार व्यवस्थित करता है और उसे विधिपूर्वक (विधि) निभाता है, तो वह vīriyaṃ (प्रयास) कहलाता है; और जब वह किसी दूसरे और दूर के स्थान पर कदम रखता है, तो वह “परक्कम (प्रयास)” कहलाता है; यदि विश्वास न हो, तो मेरे उस उचित प्रयास को देखो जिसने vīriya और parakkama नाम प्राप्त किया है: इस प्रकार, वह अपने कर्म करने की इच्छा की अवस्था को दर्शाता है।

त्वंच का अर्थ है: वह अपने अच्छे मित्र, मानसिक अभ्यास दाता (कम्मट्ठान) को संबोधित करता है। मे का अर्थ है मेरा। मगगमक्खाहि का अर्थ है: श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) का वर्णन करें; कृपया चार प्रकार के आर्य सत्यों का मानसिक अभ्यास सिखाएँ जो मुझे पारलौकिक मार्ग (लोकुत्तमग्ग) प्राप्त करने में सहायक होगा; यही इसका अर्थ है। अंजसं का अर्थ है: मध्य मार्ग (पटिपदा) की अवस्था के कारण दो चरम सीमाओं (अंत) का अनुसरण न करने (अनुपगमना) से सीधा (उजुकं)। आमतगधं का अर्थ है: प्राप्ति को सुगम बनाने की स्थिति के माध्यम से अमर निर्वाण में स्थापित होने की अवस्था। मोनेना का अर्थ है सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान के माध्यम से। मोनिस्सां का अर्थ है: मैं समझूंगा, मैं उचित रूप से प्रवेश करूंगा और प्राप्त करूंगा। चंगासोतो व सागरं का अर्थ है: जिस प्रकार गंगा नदी की धारा निःसंदेह सागर में प्रवेश करती है, उसी प्रकार मैं थेरा से अपने मानसिक अभ्यास के लिए प्रार्थना करता हूँ: “मानसिक अभ्यास में स्वयं को समर्पित करके, मैं सही मार्ग के ज्ञान के माध्यम से निर्वाण प्राप्त करूँगा; अतः मुझे उस मानसिक अभ्यास के बारे में बताइए।”

यह निवेदन सुनकर थेरा वेणुदत्त ने उन्हें मानसिक अभ्यास दिया। उन्होंने भी इस मानसिक अभ्यास में लीन होकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न की और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“पांचों धागों को त्यागने के बाद

मनमोहक सुंदरता के कामुक सुख,

दिल को बहुत खुशी हुई। मैं बेघर हो गया।

भिक्षु ने धन का त्याग कर दिया।

अस्सी करोड़ रुपये का।

भिक्षु बनने के बाद, मैंने इस पर ध्यान केंद्रित किया।

नदी के किनारे पर किसी भी कार्य से परहेज करना

मेरे शरीर के माध्यम से किए गए बुरे कर्म और

बुरे कर्मों से बचना।

मेरे पास सर्वश्रेष्ठ बुद्ध आए जो थे

मैं बिल्कुल अकेला रहता था। मुझे पता नहीं था।

वह बुद्ध थे जिनके साथ मैंने अपना हाथ रखा था

वार्तालाप (पटीसंथारा)।

मैंने अपनी सामान्य अभिवादन क्रिया कर ली है।

मैंने उनके नाम और गोत्र के बारे में पूछताछ की।

क्या आप कोई देवता हैं या कोई दिव्य प्राणी?

संगीतकार हो या फिर तुम सक्का हो,

अग्रणी दाता (पुरिंददा)?

तुम कौन हो? या तुम किसके बेटे हो?

महान ब्रह्मा अवश्य ही यहाँ आए होंगे।

आप सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हैं जो मिलती-जुलती हैं

उगते सूरज।

हे मेरे प्रिय मित्र! हजार तीलियों वाला

आपके जूतों के तलवों पर पहिए दिखाई देते हैं (पैडे)।

तुम कौन हो? या तुम किसके बेटे हो?

हम आपको कैसे जानेंगे?

कृपया मुझे अपना नाम और गोत्र बता दें;

कृपया मेरे संदेह दूर करें। मैं कोई देवता नहीं हूँ।

मैं सक्का नहीं हूँ, जो अग्रणी दानदाता हैं।

मुझमें ब्रह्मा की कोई अवस्था नहीं है।

मैं इन सबमें सबसे उत्तम हूँ। मैं चला गया था।

उनके क्षेत्र (विषया) से परे; मेरे पास था

कामुकता के बंधन टूट गए

आनंद। अपनी सारी विकृतियों को पूरा करने के बाद

जलकर, मैंने सर्वोच्च उत्कृष्टता प्राप्त कर ली थी।

आत्मज्ञान। उन्होंने जो सुना, उसे सुनकर।

मैंने कहा, मैंने यह बयान दिया।

हे महान बुद्ध, यदि आप सर्वज्ञ हैं

ऋषि! कृपया बैठ जाइए।

आप ही दुखों का अंत करने वाले हैं।

(दुक्खा): मैं श्रद्धापूर्वक धूम्रपान करूँगा

आपको भेंट।

मैंने अपनी मृग की खाल फैला दी,

मैंने इसे स्वामी को अर्पित किया। महिमावान

वह व्यक्ति शेर की तरह वहाँ बैठ गया।

पर्वतीय घाटी (गिरिगाभारे) में।

मैं तेजी से पहाड़ी पर चढ़ गया और इकट्ठा किया

आम के फल, उत्कृष्ट साल के फूल

साथ ही चंदन की बहुत ही मनमोहक खुशबू भी।

उन सभी को जल्दी से रोककर,

मैंने दुनिया के नेता से संपर्क किया;

उन सभी को जल्दी से रोककर,

मैंने दुनिया के नेता से संपर्क किया;

बुद्ध को फल अर्पित करने के बाद मैंने

साला में श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई।

फूल।

बुद्ध के शरीर पर लेप लगाने के बाद

चंदन की खुशबू, मैंने उसे अपना सम्मान अर्पित किया।

हे गुरु, मैं धर्मपरायण और अच्छा बन गया।

भरपूर उत्साह के साथ हार्दिक

(पीटी).

मेरे हिरण पर अपना आसन ग्रहण करने के बाद

त्वचा, सुमेधा, विश्व की नेता,

मेरे इस काम की घोषणा ने मुझे प्रसन्न कर दिया।

(hāsayanto) then.

फल चढ़ाने के कारण

फूलों की माला और मिठाई दोनों के साथ

खुशबू से उसे आनंद मिलेगा।

पच्चीस सौ के लिए दिव्य दुनिया

युग (कप्पा)।

वह अपनी सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करेगा।

(वासवत्ती), उसके

मानसिक इरादे (अनुना मनसंकप्पो);

वह एक इंसान बनने के लिए जाएगा

छब्बीस युग (कप्पा)।

वह शक्तिशाली लोगों का विश्व-राजा बनेगा

जादुई शक्तियां चारों दिशाओं में फैली हुई थीं

(समुद्रों के किनारे) वेभारा नामक नगर में,

दिव्य वास्तुकार द्वारा निर्मित (विस्सा-

(कम्मा)।

(उनका महल) पूरी तरह सोने से सजा होगा।

विभिन्न प्रकार के रत्नों के साथ; यहाँ तक कि इससे भी

इसका मतलब है कि वह अपने चक्करों में इधर-उधर घूमेगा।

प्रत्येक जीवन में बार-बार पुनर्जन्म लेने की प्रक्रिया।

हर जगह उनका सम्मान किया जाएगा (पुजिटो)

अपनी दिव्य अवस्था में और फिर मानवीय अवस्था में

स्थिति। जब उनका अंतिम अस्तित्व विधिवत

जब वह आएगा तो वह ब्रह्मा का रिश्तेदार बन जाएगा।

अपने घर से विशेष रूप से बाहर आकर,

वह बेघर हो जाएगा; बेघर होने के कारण

जो दूसरे छोर तक जा चुका है

उच्च ज्ञान प्राप्त करने पर वह निर्वाण में प्रवेश करेगा।

रोगमुक्त।

ऐसा कहने के बाद, आत्मजागृत

विश्व के नेता बुद्ध सुमेधा

उन्होंने आकाश की ओर प्रस्थान किया (anilañjase)

जब मैं आत्मचिंतन कर रहा था।

उस उत्तम कार्य के फलस्वरूप,

मैंने दृढ़ संकल्प और दृढ़ता के साथ हार मान ली।

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और तावतिंसा चला गया।

तुसिता से गुजर जाने के बाद मैं उछल पड़ा

मेरी माँ के गर्भ में; वहाँ कोई नहीं है

मेरी संपत्ति में कमी, चाहे किसी भी रूप में हो

मैं गर्भ में निवास करती हूँ।

जब मैं अपनी माँ के घर गया था

गर्भ में, जब भी और जहाँ भी था, उत्पन्न हुआ।

पोषण के लिए भोजन और पेय पदार्थ चाहिए।

मेरी माँ की इच्छा से।

मेरे जन्म के पाँचवें वर्ष तक, मैं

बेघर जीवन जीने वाला भिक्षु बन गया; जब

मेरे बाल मुंडवाए जा रहे थे, मैंने प्राप्त किया

अरहंत पद।

पूर्व कर्मों की खोज में, मुझे कुछ नहीं मिला

मेरी छाती (ओरेना) के साथ। मुझे याद आया

मेरा कर्म तीस हजार युग (कप्पा)

पहले।

हे शुद्ध नस्ल के व्यक्ति, मैं आपको नमन करता हूँ।

हे मनुष्य! हे परम श्रेष्ठ, आपकी आराधना हो!

हे भगवान! तुम्हारे विधान में आकर, मैं

उन्होंने अविचल मार्ग प्राप्त कर लिया है।

यह तीस हजार युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले मैंने अपनी विशेष श्रद्धा व्यक्त की थी

बुद्ध को अर्पित की गई वस्तु। मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

बुद्ध।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने इन्हीं श्लोकों का उच्चारण किया, जिससे उनके अरहंत पद (अञ्ञा) का प्रकटीकरण हुआ।

थेरा वल्लिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(145):वितासोका
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(146):पुन्नमसा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (146) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
146. पुन्णमासा [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में एक जमींदार के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने अपने प्रथम पुत्र के जन्म के बाद संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया)। एक गाँव के पास रहकर, उन्होंने परिश्रम किया और परिश्रम करते हुए छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की। इसके बाद सावत्थी जाकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक श्मशान में निवास किया। अब उनके पुत्र की मृत्यु हो गई, और उनकी पत्नी, यह सोचकर कि उनकी संपत्ति, जिसके कोई उत्तराधिकारी नहीं थे, राजाओं द्वारा न ले ली जाए , अपने पति से मिलने और उन्हें धार्मिक जीवन छोड़ने के लिए प्रेरित करने हेतु अपने अनुयायियों के साथ गईं। परन्तु थेरा ने अपनी भावहीनता को दर्शाते हुए और अपनी उपलब्धि को प्रमाणित करते हुए, वायु में खड़े होकर कहा:

[171] पञ्चनिवरण हित्वा योगक्खेमस्सा पत्तियाया,॥
धम्मदासं गहेत्वाना नानादासनमत्तनो॥ ॥

[172] पक्कवेकाखीṃ इमाṃ कायाṃ सब्बाṃ संतराबहिराṃ,॥
अज्झट्टां च बहिद्धा च तुच्चो कायो आदिसत्था' ति॥ ॥

[171] मार्ग में आने वाली सभी पाँच बाधाएँ [2] सुरक्षित, निश्चित शांति के विरुद्ध [3] मैंने त्याग दीं।
मैंने पवित्र मार्ग (धम्म) के दर्पण को ग्रहण किया: - [4] यह जानना और देखना कि हम क्या हैं -

[172] इसलिए मैंने इस समूहीकृत फ्रेम [5] पर विचार किया , भीतर और बाहर कड़ी मेहनत की, और मैंने देखा
कि कैसे, चाहे वह मेरा हो या नहीं,
"शरीर खाली [है और व्यर्थता].

[1] X में दूसरा संस्करण देखें। टिप्पणी किसी पहचान को नहीं मानती।

[2] इंद्रिय, द्वेष, आलस्य, विचलितता, उलझन की इच्छाएँ - इन्हें 'अलग रखना' फलदायी बौद्धिक प्रयास के लिए शांति और वैराग्य प्राप्त करने की आवश्यक प्रारंभिक अवस्था थी (संवाद, i. 82 84)।

[3] योगक्खेमा। देखें XXXII.

[4] बहनें, श्लोक 222.

[5] कायो शरीर (शरीर) और, सामान्यतः, एक समूह, या जीव दोनों है।

2.3-6 [146] पुन्णमासत्थेरा के श्लोक पर टीका
पंचनीवरणे हित्वा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पुण्णमास का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान तिस्सा के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि की अवस्था प्राप्त करने पर, एक दिन जब गुरु ने अपने चिथड़े वस्त्र (पम्सुकूलचीवरं) को एक वृक्ष की शाखा पर टांगकर अपने सुगंधित पवित्र स्थान में प्रवेश किया, तो वे हाथ में धनुष लिए जंगल में गए, संयोगवश गुरु के चिथड़े वस्त्र (पम्सुकूल) पर उनकी दृष्टि पड़ी, वे श्रद्धा से भर गए, उन्होंने अपना धनुष नीचे फेंक दिया, बुद्ध के गुणों को याद किया और चिथड़े वस्त्र (पम्सुकूल) को प्रणाम किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक जमींदार (कुटुंबी) के परिवार में हुआ। कहा जाता है कि उनके जन्म के दिन उस घर के सभी बर्तन सोने और रत्नों से बने सेमों से भर गए थे। इसी कारण उनका नाम पुण्णमासा रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने विवाह किया, और जब उन्हें पुत्र हुआ, तो उन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागकर भिक्षु बन गए, एक ग्राम-मठ में निवास किया, परिश्रम किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बन गए। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"तिस्सा नाम के धन्य व्यक्ति थे

एक आत्मनिर्भर सर्वोपरि व्यक्ति;

उन्होंने अपने चिथड़े-पिटे वस्त्र (पंसु-) को रख दिया।

(कुला), विजेता ने अपने में प्रवेश किया

मठ।

झुककर (विनाटा) प्रणाम करने के बाद मैं

मैं अपने उद्देश्य से इधर-उधर भटकता रहा

भोजन (भक्खा); एक घेरा जब्त कर लिया-

मैं तलवार लेकर जंगल में दाखिल हुआ।

वहाँ मेरी नज़र एक चोगा पर पड़ी।

पेड़ पर लटके हुए चिथड़े (पंसुकूलं)-

फिर शीर्ष पर। अपना नीचे फेंकने के बाद

लेकिन तभी मैंने अपने हाथ ऊपर उठाए

मैंने अपने हाथ अपने सिर पर रख लिए।

पवित्र मन और नेक दिल वाला, और

मैंने अत्यंत उत्साह के साथ अपना सम्मान व्यक्त किया।

चिथड़े-चिथड़े वस्त्र (पंसुकूल)

बुद्ध को सबसे अच्छे तरीके से याद करते हुए।

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

मुझे चिथड़ों का वह वस्त्र बहुत प्रिय था।

(पंसुकूल); मुझे कुछ याद नहीं है

बुरा अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धा का परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, वे सावत्थी गए, गुरु को प्रणाम किया और एक श्मशान में निवास किया; उनके वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद उनके पुत्र का निधन हो गया। बालक की माता ने थेरा के आगमन की खबर सुनकर मन ही मन कहा, "राजा इस निःसंतान संपत्ति (सापतेय्यं) को न ले जाएँ।" वह अपने पुत्र को वस्त्रहीन करने की इच्छा से (उप्पब्बजेतुकामा) अपने बड़े दल के साथ थेरा के समक्ष गई, उनसे बातचीत की और उन्हें रिझाने (पालोभेतुं) लगी। थेरा आकाश में खड़े होकर दो श्लोक बोले ताकि उन्हें अपने कामवासना रहित (राग) स्वरूप का ज्ञान करा सकें और उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दे सकें, साथ ही अपने उचित अभ्यास (पेटिपत्ती) की घोषणा भी कर सकें:

171. "पांच बाधाओं से बचकर

निर्वाण की प्राप्ति के लिए,

बंधनों से मुक्त सुरक्षित आश्रय

(योगक्खेमा), मैंने उसे पकड़ लिया

सत्य का दर्पण (धम्मादास), मेरा

स्वयं की ज्ञान की अंतर्दृष्टि (ज्ञानदस्सना)...

172. “मैंने इस शरीर पर पूरी तरह से विचार किया।”

बाहर और अंदर एक साथ। मुझे मिला

मुझे पता चला कि मेरा शरीर दोनों आंतरिक रूप से खाली था-

आंतरिक और बाह्य रूप से।

वहाँ, pañca nīvaraṇe hitvā का अर्थ है: इंद्रिय सुख की इच्छा से शुरू होने वाले पाँचों अवरोधों को त्यागकर, ध्यान की प्राप्ति के द्वारा उन्हें नष्ट करना (विद्धंसत्वा)। Yogakkhemassa pattiyā का अर्थ है: निर्वाण की प्राप्ति के लिए, जो इंद्रिय सुख के बंधन से शुरू होने वाले चार बंधनों (योग) से मुक्त है। Dhammādāsaṃ का अर्थ है वह दर्पण जो सत्य (धम्म) बन गया है; वास्तव में, क्योंकि दर्पण प्रतिबिंब (आदमसेति) द्वारा मानसिक शरीर (नामकाय) के गुण को स्पष्ट रूप से दर्शाता है, आत्म-दुराचार (संकिलेषधम्म) के कर्मों के शुद्धिकरण (वोदाह) को प्रकट (विभावनेन) करता है, साथ ही आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सन्तस) से देखने वाले को इसके त्याग का प्रमाण भी देता है। इसलिए उन्होंने कहा:—--

“Dhammādasaṃ gahetvāna,

ñāṇadassanāmattano;

पचवेक्खिं इमं कायं,

sabbaṃsantarabāhiraṃ”

(आध्यात्मिक को पकड़ लेने के बाद)

दर्पण, ज्ञान के प्रति मेरी अपनी अंतर्दृष्टि,

मैंने इस शरीर पर पूरी तरह से विचार किया।

अंदर और बाहर दोनों तरफ।

धम्म दर्पण को धारण करके, मैंने अपने ज्ञान की दृष्टि से इस शरीर, कर्मों के संग्रह (धम्मसमुहं), अपने इस आत्म-सत्ता का उचित प्रतिबिंब देखा और अवलोकन किया, जो आंतरिक और बाह्य इंद्रियों (आयतन) के क्षेत्र होने के कारण पूर्णतः बाह्य और आंतरिक है, और इसमें "अनित्यता (अनिच्चं)," "दुःख (दुक्खं)" और "अनात्म" (अनात्म) जैसी कोई भी बात नहीं है। इस प्रकार अवलोकन करने वाले मेरे द्वारा, अज्जत्तं च बहिद्धा च अपनी उस निरंतर सत्ता (अत्तनोसन्ताने) में संलग्न होता है जो सार (सार) आदि से सदा रहित है, जो खाली है और मेरे ज्ञान की दृष्टि से पाँच स्कंधों (खंधापंचक) के रूप में गिनी जाती है। वास्तव में, संपूर्ण पाँचों स्कंधों को “काया (शरीर)” कहा गया है, जैसे कि: “अविज्जानिवुतस्स भिक्खवे बादस्सतन्हासंयुत्तस्स एवमयं कायो समुदागतो (हे भिक्षुओं! अज्ञान (अविज्जानिवुत) से घिरे और भोग (तन्हाससंयुत्त) में अच्छी तरह से बंधे इस मूर्ख व्यक्ति के शरीर का परिणाम (समुदागतो) यह हुआ है),” इत्यादि। “अदिस्साथ” का अर्थ है: इसके द्वारा, “परन्तु जो कुछ भी समझा जाना चाहिए, वह देखा जा चुका है; अब ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं देख सकूँ;” इस प्रकार, उन्होंने अपने अर्हतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया ताकि यह दिखाया जा सके कि उन्होंने वह कर लिया है जो किया जाना चाहिए। इस प्रकार, थेरा ने अपनी पूर्व पत्नी को सत्य (धम्म) की शिक्षा दी, उसे (तीन) शरणों (सरणों) और नैतिक उपदेशों में सुस्थापित किया और उसे विदा कर दिया।

थेरा पुण्णमास के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(147):नंदका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (147) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
147. नंदका
बुद्ध युग में चंपा में [1] एक कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम नंदक रखा गया। वे भरत के छोटे [135] भाई थे, जिनकी कहानी आगे बताई जाएगी। जब दोनों वयस्क हुए, तो उन्होंने सुना कि सोन-कोलिविसा [2] ने संसार त्याग दिया है (सन्यास ग्रहण कर लिया है)। यह कहते हुए कि, 'सोन जो इतना कोमल है, वह भी (सन्यास ग्रहण कर लिया है); अब हमारा क्या?' वे भी संसार त्याग कर (सन्यास ग्रहण कर लिया)। भरत ने शीघ्र ही छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली, लेकिन नंदक, विकारों के प्रबल प्रभाव के कारण, अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में असमर्थ रहे और केवल उसका अभ्यास ही कर सके। तब भरत ने उनकी सहायता करने की इच्छा से उन्हें अपना सेवक बना लिया और विहार से बाहर चले गए। सड़क के किनारे बैठकर उन्होंने उन्हें अंतर्दृष्टि के विषय में उपदेश दिया।

एक कारवां गुजर रहा था, तभी एक बैल दलदल में गाड़ी खींचते-खींचते गिर पड़ा। कारवां के सरदार ने उसे गाड़ी से उतारा और घास-पानी पिलाया। थकान दूर होने पर, बैल को फिर से जोतकर और ताकतवर बनाकर उसने गाड़ी को दलदल से बाहर खींच लिया। तब भरत ने कहा, 'क्या तुमने वह घटना देखी, भाई नंदक?' 'हाँ।' 'इसका अर्थ समझो।' नंदक ने कहा, 'उस तरोताजा बैल की तरह, मुझे भी संसार के दलदल से खुद को निकालना होगा।' और इसी को अपना अभ्यास बनाकर उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। फिर उन्होंने अपने भाई को इन श्लोकों में ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[173] यथापि भद्दो अजञ्ञो खलित्वा पतितिथति,॥
भिय्यो लद्धना सवेगं आदिनो वहते धुराँ॥ ॥

[174] इवं दस्सानसम्पन्नं सम्मासंबुद्धसावकाऽ,॥
अजनियां मण धारेथा पुत्तं बुद्धस्स ओरासन्ति॥ ॥

[173] भले ही वह ठोकर खाकर गिर जाए,
महान नस्ल का वह साहसी जानवर एक बार फिर दृढ़ता से खड़ा होगा।
नए प्रयास के लिए फिर से प्रेरित होकर,
अब नष्ट नहीं हुआ, अपना बोझ खींचता हुआ आगे बढ़ता है।

[174]
अतः मुझे उस व्यक्ति के रूप में देखो जिसने सर्वप्रबुद्ध ईश्वर से सीखकर और
सच्ची अंतर्दृष्टि प्राप्त करके श्रेष्ठ वंश का हो गया है,
और वास्तव में बुद्ध का पुत्र है।

[1] अंगो की राजधानी, अब बागुलपुर। उच्चारण चंपा.

[2] सीसीएक्सएलआईआई देखें। निम्नलिखित उदाहरण रमणीय-विहारिन के मामले में मिलता है, जैसा कि टीका हमें याद दिलाती है (एक्सएलवी)।

2.3-7 [147] नंदकत्थेरा के श्लोक पर टीका

यथा पि भद्दो आजाञ्ञो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नंदक का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान सिख धर्म के समय सीमावर्ती क्षेत्र में उत्पन्न हुए; ज्ञान प्राप्ति पर वे वनवासी बन गए और भटकते रहे, जब एक दिन संयोगवश उनकी नज़र गुरु के आश्रम के मार्ग पर पड़ी, वे धर्मपरायण हो गए और उन्होंने रेत के कण बिखेर दिए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे चंपा में एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम नंदक रखा गया। उनके बड़े भाई का नाम भरत था। उनका 'पूर्व संबंध' (पुब्बयोग) अगली कथा (अनंतरा) में स्पष्ट हो जाएगा। दोनों ने भी, जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर ली, तो सुसंस्कृत परिवार के पूजनीय सोन के बारे में सुना, जो भिक्षु बन गए थे। उन्होंने आपस में कहा, “सोन जैसा इतना कोमल और सजग व्यक्ति भी भिक्षु बन गया है; हम क्यों न बनें?” और वे भी भिक्षु बन गए। दोनों में से, भरत ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को तेजी से विकसित किया और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बन गए। दूसरी ओर, नंदक अपने अत्यधिक दुराचार के कारण आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को पूरी तरह से विकसित नहीं कर पाए; उन्होंने केवल आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म किया। तब थेरा भरत को जब उनकी प्रवृत्ति (आसय) का पता चला, तो उन्होंने अपने छोटे भाई को अपना परिचारक (पच्चासमण) बना लिया, क्योंकि वे अपने छोटे भाई की सहायता (अवसयो) करने के इच्छुक थे, इसलिए वे मठ से बाहर आए, सड़क के किनारे बैठ गए और (अपने छोटे भाई को) आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने पर प्रवचन दिया।

उस समय, जब बैलगाड़ियों का एक काफिला यात्रा पर था, एक बैल जो गाड़ी से जुता हुआ था, दलदली जगह पर गाड़ी को खींचने में असमर्थ होकर ठोकर खाकर गिर पड़ा (परिपटी)। इसके परिणामस्वरूप, काफिले के सरदार ने बैल को गाड़ी से अलग किया, उसे पानी पिलाया और घास खिलाई, उसकी थकान दूर की और फिर उसे बोझ उठाने के लिए जुता दिया (धुरे योजेसी)। इसके बाद, थकान दूर हो चुकी (वूपसंतपरिसम्मो), बैल ने अपनी शक्ति वापस पाकर गाड़ी को दलदली जगह से बाहर निकाला और उसे सूखी भूमि पर स्थापित किया (थला)। तब थेरा भरत ने नंदक से पूछा, “मित्र नंदक! क्या तुमने इस (बैल) द्वारा किए गए कार्य को देखा?” उसे यह दिखाने के बाद, थेरा भरत ने अपने छोटे भाई द्वारा यह बताए जाने पर कि उन्होंने इसे देखा है, कहा, “तुम्हें इस बात पर ध्यान देना चाहिए।” दूसरे ने मन ही मन कहा, “जिस प्रकार थकावट दूर होने पर बैल दलदल से अपना बोझ निकाल लेता है, उसी प्रकार मैं भी संसार रूपी दलदल से बाहर निकल आऊं।” उसने इसी घटना को अपने चिंतन का विषय बनाया और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का अभ्यास करते हुए शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—

मैं पहले हिरण का शिकारी था,

घने जंगल में; घूमना-फिरना

उड़ने वाले हिरणों की खोज (vātamiga),

मैं मठ के गलियारे पर पहुँच गया।

(चंकमा)। रेत लाने के बाद

मैंने इसे अपनी गोद (उच्चांग) पर फैला दिया।

वक्ता के मठ के मार्ग पर

अच्छे शब्दों (सुगाता) का, धारक

सुंदर महिमा (सिरिमा) का होना

धर्मपरायण और नेक हृदय वाला।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने रेत बिछा दी; मैं करता हूँ

किसी भी बुरी घटना का जिक्र याद नहीं;

यह रेत का फलदायी परिणाम है

(फैल रहा है)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने सबसे बड़े भाई थेरा भरत की उपस्थिति में अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करते हुए दो श्लोक कहे।

173. "एक उत्कृष्ट संपूर्ण के अनुसार-

रोटी ठोकर खाकर फिर खड़ी हो गई;

मुझे और भी अधिक पछतावा हुआ; बिना

दुखी (अदीनो) होने के कारण इसने बोझ उठाया।

174. "इसी प्रकार कृपया पहचानें

(धारेथा) मुझे एक शुद्ध नस्ल का होने के लिए,

अंतर्दृष्टि से संपन्न, शिष्य

सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध का,

बुद्ध के सगे पुत्र।

वहाँ, bhiyyo laddhāna saṃvegaṃ, adīno vahate dhuraṃ का अर्थ है: पश्चाताप करते हुए, "यह मेरी जन्मजात शक्ति और परिश्रम (जातिबलवीरिय) के अनुरूप नहीं है, अर्थात्, जो बोझ मुझ पर आया है उसे न सह पाना," अब मैं दुखी (adīno) नहीं हूँ, न ही मेरा मन उदास (adīnamānaso) है, बल्कि मैं अनासक्त (alīnacitto) हूँ। वैकल्पिक रूप से, वहाँ इस प्रकार पढ़ने पर: "Alīno;" का अर्थ है: "अनासक्त"। इससे भी अधिक, बार-बार, वह अपना भारी बोझ स्वयं सहता है और बह जाता है (ubbahati)। शेष उसी प्रकार है जैसा कि थेरा रमणीयविहारी के श्लोक की पूर्व व्याख्या (heṭṭhā) में कहा गया है।

थेरा नंदक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(148):भरत

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (148) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक

148. भरत
अब जब उनके छोटे भाई नंदका ने घोषणा की कि उन्हें अञ्ञा प्राप्त हो गया है (जैसा कि पिछले थेरागथा में था), तो भरत के मन में यह विचार आया: [136] 'चलो हम दोनों तुरंत भगवान (बुद्ध) के पास चलें और उन्हें बताएं कि हमने किस प्रकार पवित्र जीवन व्यतीत किया है।' और उन्होंने नंदका से ये श्लोक कहे:

[175] एहि नन्दका गच्चमा उपज्झायस्सा सन्तिकाऽ,॥
सिहानादां नदिस्सामा बुद्धसेठस्स सम्मुखा॥ ॥

[176] याया नो अनुकम्पाय अम्हे पब्बाजयी मुनि,॥
सो नो अत्थो अनुप्पत्तो सब्बसाऽयोजनकखायोऽ ति.॥ ॥

[175] आओ, नंदक, अब हम उनके पास चलें
जिनकी धन्य शिक्षा ने हमें वह सब सिखाया जो हम जानते हैं;
और जागृत, प्रधान की उपस्थिति में,
आइए हम अपने हृदयों के सिंह के स्तुतिगान का आनंद लें।

[176] वह खोज जिसके लिए पवित्र ऋषि ने [प्रेम
और महान] करुणा में हमें [1] दोनों को आगे बढ़ाया -
वह परम अच्छाई हम दोनों ने जीत ली है,
और हर बंधन जो हमें रोक रहा था, चला गया है।

[1] Pabbajayi pabbajesi. Cy.

2.3-8 [148] भरतथेरा के श्लोक पर टिप्पणी।
'एहि नंदक गच्छामा' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा भरत का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि इनका पुनर्जन्म भगवान अनोमदस्सी के समय एक गृहस्थ परिवार में हुआ था। एक दिन जब वे ज्ञानोदय की आयु प्राप्त कर चुके थे, तो वे दो चप्पलें (उपाहनद्वयं) लेकर जा रहे थे, जो पहनने में कोमल और सुखदायक (मुदुसुखसम्फसं) थीं और देखने में भी सुंदर थीं। तभी उन्होंने गुरु को आते-जाते देखा और पुण्य भाव से वे चप्पलें भेंट करते हुए बोले, "भगवान इन्हें पहन लें, इससे मुझे दीर्घकाल सुख और कल्याण प्राप्त होगा।" भगवान ने उन्हें उत्थान के उद्देश्य से चप्पलें पहना दीं। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण करते रहे और अंत में चंपा नगर के एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया, तभी इस बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम भरत था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने यह समाचार सुना कि थेरा सोन ने संन्यासी बन गए हैं, और स्वयं संन्यासी संघ में शामिल हो गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों (कटपुब्बकिच्चो) को पूरा किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कार्य जारी रखा और शीघ्र ही छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"धन्य अनोमादस्सी,

दुनिया में सबसे उम्रदराज, बैल

पुरुषों में से, दृष्टि रखने वाला व्यक्ति आया

अपने दिन के प्रवास से बाहर और आया

पथ। धारण करके (गयाहा)

अच्छी तरह से बनी चप्पलों का जोड़ा (पानाधिम्)

मैंने एक यात्रा शुरू की जहाँ मेरी मुलाकात हुई

स्वयंजागृत बुद्ध, सुंदर-

पैदल यात्री जैसा दिख रहा है।

मेरा मन अत्यंत धार्मिक भावों से भरा हुआ था,

मैंने अपनी चप्पलें उतार दीं (पानाधिं),

उन्हें उनके चरणों के तलवे पर रख दिया।

और उन्होंने यह बयान दिया।

हे महान वीर! हे सुगाता के राजा!

हे विनायक (प्रमुख शिष्य)!

मुझे यहीं से सफलता मिलेगी;

ताकि मेरा हित पूरा हो सके।

परम पूज्य अनोमादस्सी, सबसे बड़े

दुनिया में, पुरुषों में बैल ने

चप्पलों के जोड़े (पानाधिं) पर और

यह शब्द बोला।

मैं उस व्यक्ति की घोषणा करूंगा जो

धार्मिक रूप से प्रसन्न होकर उसने पेशकश की

मुझे अपनी हथेलियों से उसकी चप्पलें (पानाधिं);

जब मैं बोल रहा हूँ तो कृपया मेरी बात ध्यान से सुनें।

बुद्ध को जो कुछ पता चला था, उसे जानकर

आवाज उठाई गई, सभी दिव्य प्राणी एक साथ आ गए

प्रसन्न मन और अच्छे हृदय से भरे हुए

उत्साह (वेदजाता) के साथ और उन्होंने

हाथ जोड़े। यह व्यक्ति खुश हो जाएगा।

चप्पलें भेंट करके (पानाधिनम्)।

वह पचपन बार व्यायाम भी करेगा

ईश्वरीय संप्रभुता।

हजार बार, वह विश्व बन जाएगा-

राजा; उसका क्षेत्रीय शासन समृद्ध होगा

और संख्यात्मक रूप से अकल्पनीय।

इसलिए, अनगिनत युगों (कप्पा) के बाद, वहाँ

वह विश्व का गुरु बन जाएगा।

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, संतान

ओक्काका परिवार के। उनकी शिक्षाओं में

(धम्मेसु) वह एक वारिस होगा, एक अभिभावक होगा

धर्म द्वारा सृजित पुत्र; सर्वांगीण गुणों से परिपूर्ण

वह सभी दोषों को समझ गया होगा-

दोषों से मुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करें।

यह गुणवान व्यक्ति उभर कर आएगा

दिव्य जगत में हो या मानवीय जगत में।

दुनिया; वह उपयुक्त रूप से समानता प्राप्त कर लेगा

आकाशीय परिवहन का।

मुझे तो हमेशा ही वे दिखावटी महल जैसे लगने लगते हैं।

पालकी, पोर्टेबल बिस्तर, अच्छी तरह से सजाए गए

हाथी, और यहाँ तक कि रथ भी अच्छी तरह से जुते हुए

शुद्ध नस्ल के।

अपने घर से बाहर निकलते समय, मैंने ऐसा किया,

एक रथ; जब भी मेरे बाल काटे जाते थे

और, मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया।

मुझे अपने लाभ अच्छे लगे थे;

मेरा व्यापार अच्छी तरह से चल रहा था;

चप्पलों की एक जोड़ी भेंट करने के बाद (pāna-

(धिं) मैंने अविचल मार्ग प्राप्त कर लिया था

(इन्बाना का)।

यह असंख्य युगों (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने चप्पल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

चप्पलों का अर्पण (पानाधी)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान (अभिज्ञा) से अर्हंत बनने के बाद, उन्होंने थेरा नंदक से अपने मन में उठे विचार को व्यक्त करने के लिए दो श्लोक कहे: "अब, नंदक भी अर्हंत बन गए हैं; तो फिर, हम दोनों गुरु के समक्ष जाकर उन्हें अपने अत्यंत पवित्र जीवन के बारे में सूचित करेंगे," जब उनके सबसे छोटे भाई, थेरा नंदक द्वारा पहले बताए गए तरीके (हेट्ठा) से अर्हत्व (अज्ञा) प्राप्त करने का रहस्योद्घाटन हुआ था।

175 "आओ, हे नंदक! हम चलें

हमारे गुरु की उपस्थिति

(उपज्जाया); हम गर्जना करें

शेर की उपस्थिति में ही

बुद्ध, सर्वश्रेष्ठ।

176 "ऋषि ने चाहे जिस उद्देश्य से ऐसा किया हो

करुणावश उन्होंने हमें भिक्षु बना दिया

हमारे लिए, वह उद्देश्य तदनुसार था

हमने हासिल कर लिया है: हमारी सारी बेड़ियाँ

वह नष्ट हो गया था।

वहाँ, नंदका का अर्थ है: संबोधन। एहि का अर्थ है: उसे अपने निकट लाना। गच्छामा का अर्थ है: स्वयं के समान स्थान (एकज्जं) पर रहने के लिए उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का कथन। उपज्जायस का अर्थ है: पूर्णतः आत्मजागृत बुद्ध को; वास्तव में, पूर्णतः आत्मजागृत बुद्ध विशिष्ट रूप से एक उपदेशक हैं, इस प्रकार: 'अपनी सार्वभौमिक दृष्टि और बुद्ध की दृष्टि से, प्राणियों की प्रवृत्तियों, स्वभाव आदि के अनुसार अपने स्पष्ट अवलोकन से, वे दिव्य जगत के साथ-साथ संसार की पापमयता और पापरहितता पर विचार करते हैं; इस प्रकार, वे उस बात के योग्य हैं जो कही जानी चाहिए। यह दर्शाने के लिए कि वे कहाँ जाना चाहते थे, उन्होंने कहा: "सीहनादं नदिस्सामा, बुद्धसेट्ठसम्मुखा।" इसका अर्थ है: आइए हम सभी जीवित प्राणियों में श्रेष्ठ होने के कारण, सर्वथान्वित बुद्धों या बुद्ध के जागृत शिष्यों आदि के समक्ष और उनकी उपस्थिति में, निर्भीक सिंह की गर्जना करें; ऐसा इसलिए क्योंकि हम विशेष उच्चारण (अभिभ्याहार) कर रहे हैं या अपने गुणों के अनुरूप (यथाभुच्च) गर्जना कर रहे हैं।

उन्होंने दूसरे श्लोक की शुरुआत "याया" से की, ताकि वे सिंह की दहाड़ की इच्छा प्रकट कर सकें। यहाँ, याया का अर्थ है: जो भी उद्देश्य हो; किसी भी उद्देश्य की उत्पत्ति के लिए; यही अर्थ है। नहीं का अर्थ है: हमारे लिए। अनुकम्पाय का अर्थ है: शाब्दिक रूप से; हम दोनों के उत्थान के साथ, हम दोनों के उत्थान के लिए; पब्बाजयी का अर्थ है: उन्होंने हमें भिक्षु बनाया। मुनि का अर्थ है: भगवान। सो अत्थो अनुप्पत्तो का अर्थ है: वह उद्देश्य, अरहंतत्व की प्राप्ति, सभी सांसारिक बंधनों का नाश होना, हमारे द्वारा प्राप्त किया गया है; यही अर्थ है।

थेरा भरत के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(149):भारद्वाज

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (149) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
149. भारद्वाज
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें उनके कुल का नाम भारद्वाज दिया गया। [1] गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने कण्हदिन्ना रखा। जब बालक वयस्क हुआ, तो उसके पिता ने कहा, 'आओ, प्रिय पुत्र, और फलाँ गुरु के अधीन अध्ययन करो,' और उसे तक्कशिला भेज दिया। [2] रास्ते में उनकी मुलाकात एक महान थेरा, भगवान (बुद्ध) के शिष्य से हुई, उन्होंने उनसे धम्म का पाठ सुना, भिक्षु बन गए और उचित प्रशिक्षण के बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अब उनके पिता भारद्वाज ने बाँस के विहार (मठ) में भगवान (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, और उन्होंने भी संसार त्यागकर (सन्यास ग्रहण कर) अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। लेकिन कण्हदिन्ना राजगृह में भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने आए, और अपने पिता को उनके पास बैठे देखकर प्रसन्न हुए। और उन्होंने अपने मन से पूछा: 'मेरे पिता भी (सन्यास ग्रहण कर) चले गए हैं। क्या उन्होंने, मुझे आश्चर्य है, धार्मिक जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर लिया है?' तब उन्होंने यह जान लिया कि उनके पिता अर्हंत (ज्ञानी) हैं, और उन्हें सिंह की गर्जना करने के लिए प्रेरित करने की इच्छा से, उन्होंने उनसे पूछा: 'क्या आप उस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए हैं जिसके लिए हम संसार त्यागकर (सन्यास ग्रहण करते हैं) जाते हैं?' तब भारद्वाज ने इन श्लोकों में अपनी उपलब्धि प्रकट की:

[177] नदन्ति एवं सप्पन्न सिहाव गिरिगबभारे,॥
वीर विजितसंगमा चेत्वा मारण सवाहिनि, ॥ ॥

[178] सत्था च परिसीनो मे धम्मो सोंघो च पूजितो,॥
अहं च विट्टो सुमनो पुत्तं दिस्व अनासवंती॥ ॥

[177] इस प्रकार प्रबुद्ध लोग अपना विजयगीत गाते हैं,

जैसे शेर पहाड़ी घाटी में दहाड़ते हैं, [3] वे वीर जिन्होंने पवित्र युद्ध में जीत हासिल की है,
और बुराई, मारा (मृत्युदेव/शैतान) और उसकी सेना पर विजय प्राप्त की है।

[178] मैं, भगवान (बुद्ध) का सेवक,
धम्म का अनुयायी और भिक्षु संघ का अनुयायी; और अपने पुत्र को विषों से मुक्त, स्वस्थ और रोगमुक्त
देखकर मेरा हृदय प्रसन्न और तृप्त है ।

[1] एक बड़ी पीढ़ी, लेकिन उच्च पद के बारे में ज्ञात नहीं (विनय ग्रंथ, iv. 6)। पिटक में इस उपनाम के कम से कम बीस व्यक्ति मिलते हैं।

[2] यूनानी इतिहासकारों का तक्षशिला, जो अब इस्लामाबाद के पास है, कश्मीर में एक प्रसिद्ध प्राचीन शिक्षा केंद्र है। जातक में कई संदर्भ देखें।

[3] परिचयात्मक श्लोकों की तुलना करें ।

2.3-9 [149] भारद्वाजथेरा के श्लोक पर टीका
nadanti evaṃ sappaññā से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा भारद्वाज का है। इसका उद्‌गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, संयोगवश उनकी दृष्टि सुमन नामक एक मौन बुद्ध पर पड़ी, जो भिक्षा मांगते हुए भटक रहे थे। एक दिन वे पुण्य भाव से प्रेरित हुए और उन्हें एक पूर्ण पका हुआ वल्लिकार फल भेंट किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए; वे अपने कुल के नाम से भारद्वाज के नाम से ही जाने जाते थे। वयस्क होने पर उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया और एक पुत्र प्राप्त किया जिसका नाम उन्होंने "कण्हदिन्ना" रखा। जब पुत्र ने बुद्धि प्राप्त की, तो उन्होंने उसे तक्कशिला भेजते हुए कहा: "मेरे प्रिय पुत्र! अमुक गुरु की उपस्थिति में कला और विज्ञान (सिप्पं) सीखो और वापस आओ।" वहाँ जाकर, उन्हें रास्ते में गुरु के एक शिष्य, एक महान थेरा से मित्रता प्राप्त हुई, उनकी उपस्थिति में उन्होंने सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, अपने प्रारंभिक कर्तव्यों को पूरा किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कार्य करते रहे और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"स्वयं जागृत बुद्ध सुमना थे

तब उसका स्वामी (takkarāyaṃ)

वासी); वल्लिकारा फल एकत्रित करने के बाद,

मैंने इसे स्वयं-निर्भर बुद्ध को अर्पित किया।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने तब फलों का प्रसाद चढ़ाया। मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही वह बात है

फल अर्पण करने का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

तब उनके पिता भारद्वाज, वेलुवन में निवास कर रहे भगवान बुद्ध के पास गए, धर्म का ज्ञान प्राप्त किया, भिक्षु बन गए और शीघ्र ही अरहंत बनने का दर्शन किया। फिर उनके पुत्र राजगृह में गुरु को प्रणाम करने आए और उन्हें गुरु के समक्ष बैठे देखकर प्रसन्न हुए और यह प्रश्न करने लगे, "सचमुच, मेरे पिता भी भिक्षु बन गए हैं; यह कैसे संभव है कि उन्होंने भिक्षु के कर्तव्य की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है?" और जब उन्हें अपने पिता के रोगों से मुक्त होने का ज्ञान हुआ, तो वे अपने पिता को सिंह के समान दहाड़ते हुए देखना चाहते थे और उन्होंने पूछा, "यह तो उत्तम है कि तुम लोगों ने भिक्षुत्व प्राप्त कर लिया है; परन्तु क्या भिक्षु के कर्तव्य की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली गई है?" भारद्वाज ने अपने पुत्र को अपनी उपलब्धि का प्रकाश देते हुए दो श्लोक कहे।

177. "बुद्धिमान पुरुष इस प्रकार गर्जना करते हैं,

जैसे पर्वत की गोद में शेर। नायक।

युद्धक्षेत्रों में विजयी होने के बाद

उसने अपने हाथियों के साथ मारा पर विजय प्राप्त की।

वाहन (vāhana).

178. "गुरु की पूजा की जाती थी (परि-

(चॅ ...

और भिक्षुओं के पुरोहितों को सम्मानित किया गया था।

(pājito); मुझे प्रसन्नता हुई है (vitto)

और अच्छे हृदय से, अपने बेटे को मुक्त पाकर

कैंकर से।

वहाँ, नादन्ति का अर्थ है: वे गर्जना और अपनी निर्भीक गर्जना करते हैं, विशेष रूप से अपने गुणों का वर्णन करते हुए, जैसा कि वे बन चुके हैं (यथाभुच्चं)। एवं का अर्थ है: वर्तमान क्षण में कही जाने वाली बात को दर्शाना। स्वप्ना का अर्थ है: वे जिन्होंने सर्वप्रथम मार्ग (मग्ग) के ज्ञान को प्राप्त करके और सभी प्रकार के ज्ञान से परिपूर्ण होकर सर्वज्ञान की प्रचुरता प्राप्त कर ली है। वीर का अर्थ है: वीर, क्योंकि वे चौगुने सही प्रयास और परिश्रम से संपन्न हैं; इससे भी बढ़कर, अपने ही दुराचार (संकिलेसा) के पूर्ण कृषिना (निम्मतन) द्वारा। savāhanaṃ Māraṃjetvā का अर्थ है: दुराचार (किलेसा) के मार, कर्मों के संचय (अभिसंखार) के मार और साथ ही युवा देवपुत्त (देवेपुत्त) मार पर हर तरह से विजय प्राप्त करने वाले; vijitasaṅgāmā का अर्थ है: युद्ध के मैदान में विजय प्राप्त करने वाले, जो ज्ञानी हैं, गर्जना करते हैं; इस प्रकार, संबंध है।

इस प्रकार सिंह की दहाड़ दिखाते हुए, स्पष्ट रूप से जीती जाने वाली विजय (विजेतब्बा) के द्वारा, उन्होंने "सत्था च परिचिणो मे" से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक बोला, ताकि उस समृद्धि को दिखाया जा सके जिसकी इच्छा आत्म-पूर्ति (समाराधनेन) के साथ की जानी चाहिए। यहाँ, "सत्था च परिचिणो मे" का अर्थ है: मैंने गुरु, पूर्णतः आत्म-जागृत बुद्ध की सेवा की, मुझे दिए गए परामर्श और निर्देशों का पालन करते हुए; सत्य (धम्माधिकारण) का कोई प्रश्न न क्षीण (विसोसितो) हुआ; यही इसका महत्व है। धाम्मो संघो च पूजितो का अर्थ है: नौ प्रकार के पारलौकिक सत्य (लोकउत्तरधम्म) और उत्तम नैतिक उपदेशों और सही दृष्टिकोण (दिट्ठी) के पालन से भिक्षु बनने वाले श्रेष्ठ पुरोहित (अरियासंघ) जो उचित अभ्यास (पटिपत्ति) से प्राप्त सही मार्ग (मग्ग) की उचित प्राप्ति (अनुपत्ति) के लिए हैं, तदनुसार, मेरे द्वारा सम्मानित और आदरित किए गए हैं। अहं च वित्तो सुमानो, पुत्तं दिस्वा अनासवं का अर्थ है: मैं भी प्रसन्न (वित्तो) हुआ हूँ, निःसंकोच

(निरामिसाय पितिया) उत्साह से संतुष्ट (तुट्ठो) हुआ हूँ, और इससे भी बढ़कर, इंद्रिय सुखों से मुक्त (निरामिसेना) प्रसन्नता से भरा हुआ हूँ; यही अर्थ है।

थेरा भारद्वाज के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(150): कान्हादिन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (150) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
150. कंहदिन्ना
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम कण्हदिन्ना रखा गया। वयस्क होने पर और प्रभावी कारण के चरमोत्कर्ष से प्रेरित होकर वे धम्म के सेनापति के पास आए, [1] धम्म के बारे में सुना, विश्वास किया, संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया), और अंतर्दृष्टि विकसित करके अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने इस प्रकार अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की :

[179] उपासिता सप्पुरिसा सुता धम्म अभिनहासो,॥
सुत्तन पतिपज्जिस्सं अञ्जसअअमतोगधौ.॥ ॥

[180] भवराघातस्स मे सातो भवरागो पुना मे न विज्जति,॥
न चाहु न च मे भविष्यसति न च मे एतराहिपि विज्जति' ति॥ ॥

[179] मैंने संत पुरुषों की प्रतीक्षा की है और
उनके द्वारा सिखाई गई मुक्तिदायक सच्चाइयों को अनेक बार सुना है।
सुनकर मुझे पता चला कि मैं उस मार्ग को प्राप्त करूँगा
जो वृद्ध और नश्वर चीजों से दूर ले जाता है। [2]

[180] [138] और इसलिए मुझमें फिर से जीने की सारी लालसा
इस प्रकार पूरी तरह से बाहर निकाल दी गई है, तब से
मुझमें यह अब और नहीं पाई जाती, न थी, न कभी
वापस आएगी, न इस समय मुझमें उठी। [3]

[1] सारिपुत्त। हमें इस बात पर संदेह है कि क्या कान्हदिन्ना पिछली कहानी में वर्णित पुत्र है या नहीं। यदि वह है, तो जिस 'महान थेरा' से वह मिला था, वह सारिपुत्त था; लेकिन उस स्थिति में यह विचित्र है कि कहानियों को स्पष्ट रूप से जोड़ा नहीं गया है।

[2] शाब्दिक रूप से, अमृतमय मार्ग; टीका के अनुसार - अष्टांगिक मार्ग। 'मुझे पता था कि मुझे करना चाहिए' का शाब्दिक अर्थ है, 'मैं [प्राप्त करूँगा]।' वह पहले ही प्राप्त कर चुका था।

[3] या तो व्याख्याएँ आ गई हैं, या बाद वाली गाथा में अतिरिक्त पद जानबूझकर हैं, ताकि जोर दिया जा सके।

2.3-10 [150] कान्हदिन्नत्थेरा के श्लोक पर टीका

उपासिता सप्पुरिसा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कंहदिन्ना का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने चौरानवे युग (कप्पा) पूर्व एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात शोभिता नामक एक मौन बुद्ध से हुई, वे श्रद्धावान हो गए और उनके द्वारा पुन्नाग पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए; उन्होंने कंहदिन्ना नाम प्राप्त किया। वयस्क होने पर, अपनी पर्याप्त योग्यता (उपनिषयसंपत्ति) से प्रेरित होकर, उन्होंने धर्म के सेनापति (धम्म) से संपर्क किया, उनकी शिक्षाओं को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को लगातार विकसित किया और अरहंत पद प्राप्त किया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

“स्वयंजागृत मौन बुद्ध,

शोभिता नामक एक व्यक्ति चित्तकूला में निवास करता था;

पहाड़ी पुन्नागा फूल एकत्र करने के बाद,

मैंने विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई।

आत्मनिर्भर मौन बुद्ध को।

यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

मौन बुद्ध को; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने का परिणाम

मौन बुद्ध को।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने दो श्लोक कहे जिनमें उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया।

179 “अच्छे लोगों की सेवा की गई थी

(उपसिता); सुना था कि सत्य यही था

(धम्म) निरंतर। सुनकर

मैंने उचित अभ्यास किया (पटिपज्जिस्सम्),

सीधे-सीधे गोता लगाना

अमृत।

180 “जब मैंने अपनी वासना को नष्ट कर दिया (हता)

अस्तित्व के लिए, अस्तित्व नहीं है

फिर से मेरे अस्तित्व के प्रति किसी भी लालसा में।

ऐसा कुछ भी नहीं था; ऐसा कुछ होगा भी नहीं।

मेरे लिए ऐसा हो और उसका अस्तित्व न हो

अब मेरे भीतर।

वहाँ, उपासिता का अर्थ है: सेवा करना, उचित अभ्यास (पटिपत्ति) द्वारा सेवा करना। सप्पुरीसा का अर्थ है वे लोग जो अच्छे नैतिक उपदेशों आदि जैसे अच्छे गुणों से संपन्न हों। थेरा सारिपुत्त आदि जैसे श्रेष्ठ (आर्य) व्यक्ति। इसके माध्यम से, वह पूर्व क्षेत्र (पुरिमचक्क) की समृद्धि के अपने दो रूपों को दर्शाता है। वास्तव में, उपयुक्त स्थान (पतिरूपदेशवास) में निवास किए बिना अच्छे लोगों पर कोई घनिष्ठ निर्भरता (सप्पुरीसूपनिस्सय) संभव नहीं हो सकती (संभवति)। सुता धम्मा का अर्थ है: सत्य (धम्म) की शिक्षाएँ जो (चार प्रकार के श्रेष्ठ) सत्यों और आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पाद) आदि से उचित रूप से जुड़ी हुई हैं, कान के द्वार (अनुसारण) के अनुसार निकटता से धारण की गई हैं। इसके माध्यम से, वह बाद के दो क्षेत्रों (पच्चिमच्चक्कद्वयसंपत्ति) की समृद्धि को दर्शाता है, और साथ ही अपनी विद्वत्ता की स्थिति को भी इंगित करता है। अभिण्हसो का अर्थ है: प्रचुर मात्रा में; उचित समय पर नहीं। यह शब्द “उपासिता सप्पुरिसा (अच्छे लोगों की सेवा की गई थी),” को भी यहाँ जोड़ा जाना चाहिए (योजेतब्बं)। Sutvāna paṭipajjissaṃ, añjasaṃ amatogadhaṃ का अर्थ है: उन शिक्षाओं (dhamme) को सुनकर, मैंने वहाँ वर्णित भौतिक और मानसिक घटनाओं (rūpārūpadhamme) का उनके विशिष्ट लक्षणों आदि के दृष्टिकोण से अध्ययन (pariggahetvā) किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (vipassanā) में उत्तरोत्तर वृद्धि की और अष्टांगिक मार्ग (ariyaṃ atthaṅgikaṃ maggaṃ) पर उचित रूप से प्रवेश करने के बाद, उस अमृत में लीन होकर जिसने मुझे निर्वाण के विश्राम स्थल तक पहुँचाया (amatogadhaṃ nibbānapatiṭṭhaṃ taṃ sampāpakaṃ)।

Bhavarāgahatassa me sato का अर्थ है: जब मैं जन्म-मृत्यु के चक्रों में, जिनका कोई आरंभ नहीं था, अपनी जीवन-वासना से पीड़ित और सताया जा रहा था; दूसरे शब्दों में, जब मेरे सर्वोत्कृष्ट मार्ग (अग्गमग्ग) द्वारा मेरी जीवन-वासना नष्ट हो गई। Bhavarāgo puna me navvijjati का अर्थ है: इसके परिणामस्वरूप, अब मुझमें जीवन-वासना का कोई अस्तित्व नहीं है। Na cāhu na me bhavissati, na ca me etarahi vijjati का अर्थ है: भले ही पहले जब मैं सामान्य श्रेणी का भिक्षु (पुथुज्जन काले) था और जब मैं विद्यार्थी (सेक्खा) बना, तब भी मेरी जीवन-वासना रही हो, सर्वोत्कृष्ट मार्ग (अग्गमग्ग) प्राप्त करने के समय से, वह कभी नहीं थी और न कभी हुई; भविष्य में भी वह मुझमें नहीं आएगी। अब, वर्तमान समय में भी, यह मुझमें विद्यमान नहीं है और न ही मेरे द्वारा इसे निकट से प्राप्त किया जा सकता है (उपलब्भति); इसका त्याग कर दिया गया है; यही अर्थ है। वे सांसारिक बंधनों के सर्वांगीण विनाश (परिक्खीणसंवोजनतं) की स्थिति को इस प्रकार दर्शाते हैं: यहाँ तक कि 'अस्तित्व की लालसा' शब्द से भी, एक ही स्थान पर एक साथ खड़े होने की स्थिति के कारण, अहंकार आदि के अभाव का उल्लेख किया गया है।

थेरा कान्हदिन्ना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

तीसरे अध्याय की टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(151): मिगासिरा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (151) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
भाग IV
151. मिगासिरा
बुद्ध युग में कोसल के एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम मिगासिरा [1] रखा गया, जो उस नक्षत्र के नाम पर था जिसके अंतर्गत उनका जन्म हुआ था। ब्राह्मण (पुजारी) संस्कृति को ग्रहण करने के बाद, उन्होंने खोपड़ी मंत्र [2] का अभ्यास किया , जिससे मंत्र का जाप करने और खोपड़ी पर नाखून से थपथपाने पर वे घोषणा करते थे, 'यह व्यक्ति इस लोक में पुनर्जन्म लेगा,' यहाँ तक कि उन लोगों के संबंध में भी जो तीन वर्ष पहले मर चुके थे। गृहस्थ जीवन से विमुख होकर, वे एक घुमंतू बन गए [3] और अपने कार्यों से उन्होंने कृपा और सम्मान प्राप्त किया। सावत्थी आकर और भगवान (बुद्ध) के समक्ष जाकर, उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए कहा: 'मैं, भगवान (बुद्ध) गौतम, मृतकों का भाग्य बता सकता हूँ।' 'आप यह कैसे बताते हैं?' उन्होंने एक खोपड़ी लाने को कहा, और अपने मंत्र का जाप करते हुए और नाखून से थपथपाते हुए, उन्होंने नरक या किसी अन्य लोक को पुनर्जन्म का स्थान बताया।

तब परम पूज्य बुद्ध ने एक भिक्षु (भिक्षु) की खोपड़ी मंगवाई, जिसने पूर्ण परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया था , और कहा: 'अब उस भिक्षु का भाग्य बताओ जिसकी यह खोपड़ी थी!' मिगासिरा बुदबुदाया और पैर थपथपाया, पर उसे न तो शुरुआत दिखाई दी और न ही अंत। तब भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'हे यात्री, क्या तुम नहीं बता सकते?' उसने उत्तर दिया, 'मुझे पहले सुनिश्चित करना होगा,' और खोपड़ी को बार-बार घुमाते हुए - क्योंकि वह एक अरहंत के बारे में कैसे जान सकता है? [4] - शर्मिंदा होकर, पसीना बहाते हुए, चुप खड़ा रहा । [139] 'हे यात्री, क्या तुम थक गए हो?' 'हाँ, मैं थक गया हूँ; मैं इसका भाग्य नहीं जान सकता। क्या तुम इसे बता सकते हो?' 'मैं जानता हूँ, और इससे भी अधिक। वह निर्वाण प्राप्त कर चुका है।' [5] तब यात्री ने कहा: 'मुझे यह गुप्त ज्ञान दो!' 'तो तुम भिक्षु बन जाओ।' अतः मिगासिरा को भिक्षु दीक्षा दी गई और उन्हें शांत रहने के अभ्यास कराए गए। ध्यान और अभिज्ञा (उच्चतर ज्ञान) में पारंगत होकर उन्होंने अंतर्दृष्टि का अभ्यास किया और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। तब उन्होंने इस प्रकार अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की :

[181] यतो [24] अहं पब्बजितो सम्मासंबुद्धसासने,॥
विमुच्चमानो उग्गच्छिं कामधातुं उपच्चगां॥ ॥

[182] ब्रह्मुणो पेक्खमानस्सा ततो चित्तो विमुची मे,॥
अकुप्पा मे विमुत्तति सब्बासंयोजनक्खया' ति.॥ ॥

[181] जब से मैं (भिक्षुत्व के लिए) निकला और
परम प्रबुद्ध द्वारा भिक्षुत्व में दीक्षित नियम में प्रवेश किया,
मैं मुक्त होकर
इन सभी इंद्रिय-इच्छाओं से ऊपर उठ गया।

[182] जब उस महान ब्राह्मण (पुजारी) ने [6] मेरी ओर देखा,
तब मेरा हृदय मुक्त हो गया! [7] हाँ, क्योंकि सभी बंधन सदा के लिए टूट गए हैं,
मेरे लिए मुक्ति (निर्वाण) निश्चित और पक्की है!

[1] हिरण का सिर = मकर राशि.

[2] तुलना करें वंगीसा की कथा, सीसीएलएक्सवी.

[3] राइस डेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ. 141-143 देखें।

[4] श्लोक 92 देखें.

[5] निब्बानाम् गतो सो, जो कि सामान्य अनुवाद 'निर्वाण में प्रवेश किया' का एकमात्र पाली अनुमान है, जो मुझे अभी तक मिला है।

[6] प्रमुख, सर्वश्रेष्ठ के अर्थ में (टिप्पणी); एक जेनेटिव एब्सोल्यूट।

[7] सिस्टर्स, श्लोक 17, 81, 116 देखें ।

2.4 चौथा अध्याय

2.4-1 [151] मिगासिरत्थेरा के श्लोक पर टीका
यतो अहं पब्बजितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मिगसिरा का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, भगवान कश्यप के समय एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुआ; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उनका गुरु से मिलन हुआ, वे श्रद्धापूर्वक प्रसन्न हुए और उन्होंने कुश घास की आठ पत्तियां (कुसठक) अर्पित कीं। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिया और कोसल राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया, जब बुद्ध का उदय हुआ; मिगसिरा नक्षत्र में जन्म लेने के कारण उन्हें मिगसिरा नाम प्राप्त हुआ। वयस्क होने पर उसने ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की और शव के सिर के मंत्र (चवसीसमंत) में पारंगत हो गया। उसने तीन वर्ष पूर्व मृत व्यक्ति के सिर पर अपने कवच से प्रहार करके और मंत्रों का उच्चारण करके यह जाना: "यह प्राणी फलाँ स्थान में जन्मा था।"

गृहस्थ जीवन न चाहते हुए, उन्होंने संसार का त्याग कर परिब्बाजक दर्शनशास्त्री बन गए और उस विज्ञान (विज्जा) पर निर्भर संसार के लोगों द्वारा आदरणीय और पूजनीय भेंट (लाभी) प्राप्त करने के बाद विचरण करते रहे। जब वे सावत्थी पहुँचे, तो वहाँ वे गुरु के समक्ष गए और उनसे कहा: "हे गौतम! मैं मृतकों के जन्मस्थान को जानता हूँ," और इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति का प्रकटीकरण किया। पूछे जाने पर, "लेकिन आपको कैसे पता?", उन्होंने कहा, "मैंने शवों के सिरों पर मंत्र पढ़े और उन्हें अपने नाखूनों से ठोककर, मुझे उनके जन्मस्थान, जैसे कि नरकलोक आदि का पता चला। तब भगवान बुद्ध ने उन्हें परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके एक भिक्षु की खोपड़ी दी और उनसे कहा, "अब मुझे इस खोपड़ी के स्वामी का पता (गति) बताओ?" उन्होंने मंत्र पढ़ा, उस खोपड़ी को अपने नाखून से ठोका, लेकिन न तो उसका अंत दिखाई दिया और न ही कोई निशान (कोटि)। तब, जब गुरु ने उनसे पूछा, "हे विचरणशील दार्शनिक! क्या तुम पता नहीं लगा पा रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "अब मैं पता लगाऊंगा (उपपरिक्खिस्सामि)," लेकिन बार-बार मंत्र पढ़ने और उसे घुमाने के बावजूद वह पता नहीं लगा सका। भला वह अपवित्र मंत्र (बहिरक मंत्र) के द्वारा कैसे जान पाएगा, जो दोषों से मुक्त अरहंत का पता लगा सकता है? तब उसके सिर और बगल से पसीना बहने लगा। वह लज्जित होकर चुप खड़ा रहा। गुरु ने पूछा, "हे विचरणशील दार्शनिक! क्या तुम थक गए हो?" उसने उत्तर दिया, "हाँ, मैं थक गया हूँ; मुझे इसका पता नहीं है; क्या तुम्हें पता है?" उत्तर था, "मुझे इसके बारे में पता है और इससे आगे भी पता है।" ऐसा कहकर गुरु ने निष्कर्ष निकाला, "वह निर्वाण प्राप्त कर चुका है।" विचरणशील दार्शनिक ने कहा, "कृपया मुझे यह ज्ञान दीजिए।" यह कहकर कि "तो फिर तुम्हें भिक्षु बन जाना चाहिए", उन्होंने पहले उन्हें भिक्षु बनाया और उन्हें शांत मन से स्थिर रहने के मानसिक अभ्यास में लगाया, और जब वे ध्यान और उच्चतर ज्ञान में स्थापित हो गए, तो उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म दिखाया गया। आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म करने पर, उन्होंने शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

"परम पूज्य कस्सपा को, जो

उन्होंने अपने पवित्र जीवन को 'पूर्ण' कर लिया था।

(ब्राह्मणस), मैं, धर्मनिष्ठ और

नेक दिल ने 'आठ ब्लेड' की पेशकश की

कुसा घास का।

लेकिन इसी युग (कप्पा) में मैं

मैंने 'आठ ब्लेड' की अपनी भेंट चढ़ाई।

कुसा घास का। मुझे याद नहीं है।

कोई भी बुरी सत्ता; यही है

मेरे द्वारा किए गए प्रस्ताव का फलदायी परिणाम

कुसा घास की आठ पत्तियाँ

(कुसठक)

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने (ब्याकरोंतो) के लिए दो श्लोक कहे।

181. "जब से मैं भिक्षु बना हूँ

अच्छी तरह से स्व-व्यवस्था का वितरण

जागृत बुद्ध, मैं जागृत प्राणी

मुझे मुक्ति मिल गई थी। मैंने विजय प्राप्त कर ली थी।

(उपच्चगं), का तत्व

कामुक सुख (कामधातुं)।

182. "जब महान भगवान थे

मेरे मन पर नज़र रखते हुए (pekkhamāna)

परिणामस्वरूप मुक्त हो गया

वह। मेरी मुक्ति अटल है।

(विमुक्ति) मेरे द्वारा ऐसा करने के कारण-

मैंने अपने सभी सांसारिक बंधनों को तोड़ दिया।

(संयोजन).

वहाँ, यतो अहं पब्बजितो, सम्मासंबुद्धसासने का अर्थ है: मेरे भिक्षु बनने के समय से, भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में; भिक्षु बनने के समय से। विमुच्चमानो उग्गच्चिं का अर्थ है: आत्म-दुराचार (संकिलेसा) के बंधन से मुक्त होकर, मैंने सर्वप्रथम सत्य (धम्म) के शुद्ध श्रवण से

जागृत होकर, अब शांत (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से जागृत हुआ। कामधातुं उपच्चगं का अर्थ है: इस प्रकार जागृत होकर, मैंने इंद्रिय सुख के तत्व पर विजय प्राप्त की, लेकिन निश्चित रूप से अनागम्य (अप्रत्यावश्यक) मार्ग के माध्यम से।

ब्रह्मुनो पेक्खमानस्स, ततो चित्तं विमुच्चि मे का अर्थ है: भगवान बुद्ध, ब्रह्मा, जो सर्वश्रेष्ठ होने के कारण, जगत और दिव्य जगत में श्रेष्ठ होने के कारण, अपनी महान दया से देख रहे थे और मन ही मन कह रहे थे: "मेरे युग में भिक्षु बनने के बाद इस अच्छे कुल के पुत्र का क्या हाल है (पटिपज्जति)?" फलस्वरूप, अनागामी मार्ग की प्राप्ति के बाद, मेरा मन सर्वथा आत्म-दुराचार से मुक्त हो गया (संकिलेसतो), क्योंकि मैंने सर्वोत्कृष्ट सही मार्ग (अग्गमग्ग) प्राप्त कर लिया था। अकुप्पा मे विमुत्ति, सब्बासंयोजनक्खया का अर्थ है: मेरी मुक्ति इस प्रकार स्थिर है, क्योंकि मेरे मन की मुक्ति के कारण सभी सांसारिक बंधनों (संयोजन) का नाश और सर्वांगीण निवारण हो गया है; इस प्रकार, उन्होंने अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

थेरा मिगासिरा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(152):शिवका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (152) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
152. शिवका
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम शिवक रखा गया। पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने संसार त्यागकर संन्यास लेने का निश्चय किया। भगवान (बुद्ध) से धम्म का उपदेश सुनने के लिए एक यात्री के रूप में आकर, उन्होंने आस्था प्राप्त की, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अंततः अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। तब उन्होंने इस प्रकार अन्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[183] अनिच्चनि गहकानि तत्थ पुनप्पुना,॥
गहकारं गवेसंतो दुक्खा जाति पुनप्पुनः॥ ॥

[184] गहकारका दिथोसि पुना गेहाm न कहासि,॥
सब्बा ते फासुका भगगा थुनिका च विदादिता,॥
विमारियादिकतां चित्तं इधेव विधमिस्सति' ति.॥ ॥

[183] क्षणभंगुर हैं हमारे जीवन के छोटे-छोटे घर,
यहाँ बने, वहाँ बने, बार-बार।
घर बनाने वाले की तलाश में [मैं यहाँ तक आ गया हूँ];
जन्म तो बस दुख है, बार-बार।

[184] [140] हे गृह निर्माता, तुम मिल गए, अंततः तुम दिखाई दिए!
अब तुम मेरे लिए कभी घर नहीं बनाओगे:
तुम्हारी सारी दीवारें टूट गई हैं, तुम्हारी छतें चकनाचूर हो गई हैं।
चेतना का आगे बढ़ना रुक गया है;
यह यहाँ भी शून्यता में विलीन हो जाएगा। [1]

[1] किंवदंती के अनुसार, ये प्रसिद्ध श्लोक बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्ति के बाद कहे गए उनके पहले वचन हैं (बुद्ध घोष, पृष्ठ 103 आगे; सूम. वी., 1.16); लेकिन ये उस घटना के प्रामाणिक वर्णनों में नहीं मिलते (देखें थोड़ा भिन्न गाथाएँ, धम्मपाल, 153, 154; एसबीई, x.

42, n.)। धम्मपाल सामान्य से संक्षिप्त हैं, जाहिरा तौर पर बुद्धघोष में दी गई परंपरा से अनभिज्ञ हैं। वे इसका कोई उल्लेख नहीं करते। वे बताते हैं कि गृह निर्माता लालसा कर रहा है, तन्हा वद्धकी। देखें धम्मपाल, कॉमी, iii. 127।

2.4-2 [152] शिवकत्थेरा के श्लोक पर टीका
अनिच्चानि गहकानि से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा शिवक का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने विपस्सी बुद्ध के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए, उनका पात्र ग्रहण किया, उसे कुम्मासा से भर दिया और उन्हें अर्पित कर दिया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने जन्म-मृत्यु के चक्र में देव-मनुष्यों के बीच विचरण किया और राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम शिवक था। वयस्क होने पर उन्होंने कला और विज्ञान में निपुणता प्राप्त की, वैराग्य की प्रवृत्ति के कारण सांसारिक सुखों का त्याग किया, संसार का त्याग कर परिब्बाजक बन गए और विचरण करते हुए गुरु के पास पहुँचे, उनके उपदेश (धम्म) सुने, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके अल्पकाल में ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"खाली कटोरा देखकर"

महान ऋषि का (रित्तकं पट्टां)

(mahesino) Vipassī, मैंने इसे भर दिया

उबले हुए चावल (कुम्मासा)।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने भिक्षा में भोजन दिया;

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो।

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

उबले हुए चावल (कुम्मासा) का अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने दो श्लोक कहे, जिससे उनके अरहंत होने का पता चलता है (अञ्ञा)।

183. "घर जैसे अपने स्वयं के अस्थायी हैं"

अस्तित्व (गहकानि), बार-बार

इधर-उधर; निर्माता की तलाश में

मेरे घर का (gahakāraṃ gavesanto),

मुझे बहुत कष्ट सहना पड़ा (दुक्खा)

बार-बार पुनर्जन्म लेना (जाति)।

184. "हे घर बनाने वाले! तुम मिल गए हो;

आप दोबारा घर नहीं बना पाएंगे।

आपकी सारी छत की कड़ियां टूट गई हैं;

(आपके) छज्जे (थुणिका) बन गए थे

विभाजित; मेरा मन असंतुलित हो गया था।

पूरी तरह से मुक्त; यहां भी, यह होगा

विधामिसति (गिर जाना)।

वहाँ, aniccāni gahakāni, tattha tattha punappunaṃ का अर्थ है: इस और उस जन्म में, घर, शारीरिक संरचनाएँ (attabhāvagehāni), बार-बार उत्पन्न होती हैं, वे स्थायी नहीं हैं, टिकाऊ नहीं हैं (avaṭṭhita), अस्थिर हैं (ittara) और क्षणभंगुर हैं (parittakāla)। Gahakāraṃ gavesanto का अर्थ है: मैं इतने लंबे समय तक चारों ओर भटकता रहा, उस तृष्णा-निर्माता (taṇhāvaḍḍhakī) की खोज में; मेरे इस शरीर-घर (attabhāvagaha) के निर्माता की; यही इसका महत्व है। Dukkhā jāti punappunaṃ का अर्थ है: यह कथन घर-निर्माता (gahakāraka) की खोज का कारण बनता है; यह, अर्थात् पुनर्जन्म, क्योंकि यह वृद्धावस्था, रोगों और मृत्यु से जुड़ा हुआ है, इसलिए बार-बार इसके पास जाना कष्टदायक (दुक्खा) है; और यह अदृश्य होने पर भी लुप्त (निवात्तति) नहीं होता; इसी कारण मैं इसकी खोज में भटकता रहा; यही इसका अर्थ है।

Gahakāraka diṭṭho si का अर्थ है: हे गृहस्थ! अब तुम श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की दृष्टि (ariyamaggañāṇaccakkhunā) से उस माध्यम से पाए गए हो जिससे उसे पाया जा सकता है (daṭṭhuṃ)। Puna gehaṃ का अर्थ है: मेरा घर, जो इस पुनर्जन्म के चक्र (saṃsāravaṭṭo) में मेरे शरीर (attabhāva) के समान गिना जाता है, फिर से, na kāhasi का अर्थ है: तुम नहीं बनाओगे। Sabba� te phāsukā bhaggā का अर्थ है: तुम्हारे सभी दुराचार (kilesa) के स्तंभ (bhaggā) मेरे द्वारा पूरी तरह (anavasesa) तोड़ दिए गए हैं। Thūṇikā ca vidālitā का अर्थ है: अब, शरीर (attabhāva) के घर की छतें (kaṇikā), जिन्हें आपके द्वारा बनाया जाना था, टूट गई हैं (bhinnā)। Vimariyādikataṃ cittaṃ का अर्थ है; मेरा मन अंततः विगतंतं समाप्त हो गया है (vigatantaṃ); यह भविष्य में (āyatiṃ) उत्पन्न न होने (anuppatti) की स्वाभाविक स्थिति में पहुँच गया है (dhammataṃ)। Idh'eva vidhamissati का अर्थ है: इसके परिणामस्वरूप भी, यह इसी जन्म में (viddhaṃsissati) गिर जाएगा (viddhaṃsissati); यह अंतिम मन के समाप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाएगा (carimaka cittanirodhena nirujjhissati)।

थेरा शिवक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(153): उपवन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (153) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
153. उपवान

बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उपवान रखा गया। उन्होंने जेतवन में बुद्ध की महिमा का दर्शन किया और भिक्षु संघ में प्रवेश करके अंतर्दृष्टि के लिए अभ्यास किया तथा छह प्रकार के अभिन्न (उच्च ज्ञान) को प्राप्त किया।

अब उपवान बुद्ध के सेवक बन गए। [1] उस समय बुद्ध को ऐंठन हो गई। और सावत्थी में रहने वाले थेरा के एक ब्राह्मण (पुजारी) मित्र देवहित, उन्हें चारों आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करा रहे थे। उपवान को कटोरा और वस्त्र लेकर आते देख देवहित समझ गए कि उन्हें कुछ और चाहिए और उन्होंने कहा: 'हे प्रभु, आपकी आवश्यकता पूरी हो। आपको क्या चाहिए?' उपवान ने उत्तर दिया:

[185] अराहं सुगतो लोके वतेहाबाधितो मुनि,॥
ससे उन्हादकां अत्थि मुनिनो देहि ब्राह्मण॥ ॥

[186] पूजितो पूजनीयानां सक्करेयण सक्कतो,॥
अपासिटोपकानियानं तस्सा इच्छामि हतावे' ति.॥ ॥

[185] हे अरहंत (प्रबुद्ध), समस्त मनुष्यों के तथागत (अर्थात बुद्ध),
हे पवित्र ऋषि, वे वायु से बहुत पीड़ित हैं।
यदि यहाँ कोई जल गर्म हो,
तो हे ब्राह्मण (पुजारी), मुझे ऋषि के लिए दे दीजिए।

[186] जिनके प्रति हम आदर रखते हैं,
उनके द्वारा आदरणीय, जो हमारी धार्मिक देखभाल के पात्र हैं,
उनके द्वारा पोषित, जिनके
प्रति सम्मान उचित है, उनके द्वारा सम्मानित, मैं उनसे विनती करता हूँ कि इसे लाया जाए।

इसके कारण ब्राह्मण (पुजारी) ने गर्म जल और उपयुक्त औषधि अर्पित की। इससे भगवान (बुद्ध) की बीमारी ठीक हो गई और भगवान ने उन्हें धन्यवाद दिया।

[1] सी.सी.एल.एक्स. देखें। बीमारी पर , मिलिंदा आई., 194, एन. 4.

2.4-3 [153] उपवाणथेरा के श्लोक पर टीका
अरहं सुगतो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उपावन का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि उनका जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक निर्धन परिवार में हुआ था; जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे और भगवान भगवान परिनिर्वाण में प्रवेश कर चुके थे, तब उन्होंने अपने द्वारा अच्छी तरह से धोए गए ऊपरी वस्त्र को बांस के शिखर पर बांधकर एक ध्वज बनाया और उसे सात टापों (योजनिका) के ठोस मंदिर में अर्पित किया। उस मंदिर का निर्माण सात प्रकार के रत्नों से मनुष्यों, देवताओं, नागों, गरुड़ों, कुम्भंडों, यक्षों और गंधर्बों ने भगवान के अवशेषों को एकत्रित करने के बाद किया था। राक्षसों के सेनापति अभिसम्मतक, जिन्हें देवताओं द्वारा मंदिर में अर्पित की जाने वाली भेंटों की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया था (ठपितो), जिनका शरीर अदृश्य था, ने उस ध्वज को पकड़ लिया, उसे आकाश में उठाया और मंदिर की तीन परिक्रमाएँ कीं। इसे देखकर वे अत्यंत धर्मपरायण हो गए। उस पुण्य कर्म के कारण वे अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में भटकते रहे और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए; उन्होंने उपवन नाम प्राप्त किया; वयस्क होने पर, जेतवन के ग्रहण समारोह में उन्होंने बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित रूप से धर्मपरायणता प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कार्य करते रहे, अर्हंतत्व प्राप्त किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न हुए। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“पदुमुत्तरा नामक विजेता,

सभी सत्यों (धर्म) में निपुण

किसी पिंड की तरह चमकने के बाद

अग्नि, बुद्ध जागृत होकर प्रवेश कर गए

परिनिब्बान.

बहुत सारे लोग इकट्ठा हो गए,

तथागत को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

अच्छी तरह से अंतिम संस्कार की चिता (चितम) बनाई

समाप्त (सुगतं) और शरीर प्राप्त किया

विशेष रूप से (उस पर) लगाया गया।

मृतक के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के बाद

उन्होंने वहां अवशेषों को एकत्रित किया।

उन सभी दिव्य और मानवीय प्राणियों ने निर्माण किया

बुद्ध का एक मंदिर।

सर्वप्रथम यह मंदिर सोने का बना था;

दूसरे, यह पन्ना (मणि) से बना था;

तीसरी बात, यह चमकदार चांदी से बना था।

(रूपिया), चौथा यह क्रिस्टल से बना था;

पांचवीं बात यह भी थी कि यह लाल माणिक्य से बना था;

छठी बात यह थी कि यह बिल्ली की आंख के कीमती पत्थर से बना था।

पत्थर (मसारागल्ला); उपरोक्त सभी का निर्माण किया गया था

रत्नों का।

मंदिर का निचला भाग (जंघा)

पन्ना (मणि) से बना था; रेलिंग

रत्नों से बने थे; मंदिर बना था

पूरी तरह से सोने का; यह एक मील (योजना) तक फैला हुआ था।

अप अबोव।

वहां दिव्य प्राणी एकत्रित हुए और...

तब हम सबने मिलकर (ekato) निर्णय लिया; हमने भी

ऐसे महान व्यक्ति के लिए एक मंदिर स्थापित करेंगे

विश्व के रक्षक के रूप में व्यक्तित्व।

कोई विशेष अवशेष मौजूद नहीं है; शरीर

अवशेषों का एक ही पिंड बन गया था;

हम बुद्ध के इस मंदिर का निर्माण करेंगे।

आवरण (kañcuka).

सात प्रकार के रत्नों के साथ, दिव्य प्राणी

मंदिर का आकार एक और लीग तक बढ़ा दिया गया।

(योजना); मंदिर दो लिग लंबा हो गया

(योजना) ऊँचाई में; वह मंदिर दूर हो गया

(ब्यापहांति) अंधकार (तिमिरं)

वहां ड्रैगन इकट्ठा हुए और उन्होंने विचार-विमर्श किया।

तब एकजुट होकर; मानवीय और दिव्य दोनों

उन प्राणियों ने बुद्ध का एक मंदिर स्थापित किया।

हमें लापरवाह नहीं होना चाहिए; दुनिया

दिव्य जगत के साथ मिलकर,

हम परिश्रमी हैं। हम एक मंदिर भी स्थापित करेंगे।

ऐसे ऋषि को रक्षक के रूप में स्वीकार करना

दुनिया। दिव्य संप्रभु के होने के कारण

नीलम (इंडानिला), शक्तिशाली नीलम

(महानीला), चमकते हुए पन्ना के अलावा

सार (जोतिरेसमाणी) एक साथ एकत्रित

उन्होंने बुद्ध के मंदिर को घेर लिया।

जहां तक बुद्ध का मंदिर था

पूरी तरह से पन्ना (मणि) से बना हुआ, यह अच्छी तरह से

तीन लीग (योजना) ऊँचा हो गया,

प्रकाश का निर्माता। गरुड़ पक्षी भी।

तब वे सब एक साथ आए और एकजुट होकर विचार-विमर्श किया;

वे मनुष्य, दिव्य प्राणी और

ड्रैगनों ने श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई

बुद्ध।

हमें लापरवाह नहीं होना चाहिए; दुनिया

दिव्य जगत के साथ-साथ

हम परिश्रमी हैं। हम एक मंदिर भी स्थापित करेंगे।

ऐसे ऋषि के लिए जो रक्षक हो

दुनिया। उन्होंने एक आवरण भी बनाया;

एक ऐसा मंदिर जो पूरी तरह से पन्ना से बना हो;

उन्होंने फैलाव भी बढ़ा दिया

(आयतं) बुद्ध का मंदिर

चार लीग (योजना)

ऊंचाई में, बुद्ध का मंदिर चमक रहा था।

आगे (विरोकाटी); इसने सभी को प्रकाशित किया

सूर्य के समान दिशाएँ जो

उठ खड़ा हुआ है (sataraṃsīva uggato).

दिव्य प्राणी (कुंभण्ड) भी

एक साथ आए और एकजुट होकर परामर्श किया।

तब; मनुष्य और दिव्य प्राणी

साथ ही, अजगर और इसी प्रकार गरुड़ पक्षी

साथ ही, क्रमशः सबसे अधिक निर्मित

उत्कृष्ट तीर्थस्थल, बुद्ध के लिए सर्वश्रेष्ठ;

हमें लापरवाह नहीं होना चाहिए; दुनिया

दिव्य जगत के साथ, था

लगन से काम किया है।

हम उनके लिए एक मंदिर भी स्थापित करेंगे।

एक ऋषि को विश्व के रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मंदिर को फैलाते हुए (आयतं)

बुद्ध, हम इसे रत्नों से जड़ देंगे।

बुद्ध के मंदिर का विस्तार करते हुए

उन्होंने इसे एक लीग से भी बढ़ा दिया।

(योजना)। पाँच मील ऊँचाई में,

तब मंदिर ने अपना प्रकाश बिखेर दिया था।

वहाँ राक्षस इकट्ठा हुए, और...

तब मानव और दिव्य दोनों ने मिलकर परिणाम भुगते।

प्राणी, ड्रैगन, गरुड़ और दिव्य

राक्षसों, क्रमशः (paccekaṃ) सेट

सबसे उत्कृष्ट मंदिर की ओर; आइए हम

लापरवाही न करें; दुनिया एक साथ

दिव्य जगत के प्रति वह लगनशील रहा था।

हम भी इस प्रकार का एक मंदिर स्थापित करेंगे।

ऋषि को संसार के रक्षक के रूप में;

हम इसे क्रिस्टल (फालिका) में बंद कर देते हैं।

बुद्ध के मंदिर का विस्तार करते हुए।

वे मंदिर का विस्तार करने में भी लगे हुए थे।

इसे एक लीग (योजना) से बढ़ा दिया। छह

ऊंचाई में लीग (योजना), मंदिर

तब वह चमक उठा।

दिव्य संगीतकार (गधब्बा) आये

एक साथ मिलकर परामर्श करने के बाद एकजुट होकर;

मनुष्य, दिव्य प्राणी, ड्रैगन

दिव्य राक्षस और इसी प्रकार गरुड़,

उन सभी ने बुद्ध का मंदिर बनवाया था;

यहां हम निष्कर्मक हैं; हम भी ऐसा ही करेंगे

ऐसे ऋषि का मंदिर स्थापित करो,

दुनिया का रक्षक।

सात रेलिंग (वेदियो) बनाकर,

उन्होंने एक झंडा और एक छाता बनाया;

दिव्य संगीतकारों ने तब बनाया

यह मंदिर पूरी तरह से सोने का बना है।

सात दीर्घ (योजना) ऊँचाई वाला,

तब मंदिर चमक उठा। लोगों ने

दिन और रात के बारे में नहीं जानते;

हर समय प्रकाश रहता था (सब्बादा)।

सूर्य और चंद्रमा, तारों के साथ

उस प्रकाश को बुझा नहीं पाया

मंदिर। एक संघ (योजना) के लिए सभी

गोल आकार का होने के बावजूद, लैंप की रोशनी भी कम थी।

उस समय, वे मनुष्य जो

श्रद्धापूर्वक भेंटें अर्पित कीं

मंदिर में प्रवेश नहीं किया;

उन्होंने अपनी भेंटें ऊपर फेंक दीं

आकाश।

अभिसम्मता नाम की राक्षसी ने पोस्ट किया

दिव्य प्राणियों द्वारा, विशेष रूप से सवार

या तो झंडा या फूलों की माला-

उन्हें ऊपर।

दानदाताओं ने उस राक्षस को नहीं देखा;

लेकिन उन्होंने अपना फूल देखा-

पुष्पमाला ऊपर जा रही है; जो लोग गए

उनकी भेंट देखने के बाद चले गए

इस प्रकार, सभी लोग चले गए

उत्कृष्ट अस्तित्व (सगाती)।

वे मनुष्य जो शत्रुतापूर्ण थे

(विरुद्ध) बुद्ध की शिक्षाओं के लिए

(पावचन) और वे मनुष्य (जो)

वे इस बात से अत्यंत प्रसन्न थे।

प्रायश्चित (सासन), जो इच्छुक थे

चमत्कार (पाटिहीरं) को देखने का

उनके द्वारा अर्पित श्रद्धापूर्वक दी गई भेंटें

हंसवती नगर में स्थित तीर्थस्थल।

मैं उस समय दिहाड़ी मजदूर था; यह देखकर

भीड़ चकित थी (āmoditaṃ)

तो इस तरह से विचार किया जाए।

यह (एसो) धन्य व्यक्ति जिसके लिए

यह एक ऐसा ही प्राचीन निवास (धातुघर) है।

क्योंकि यह (īdisa) उत्कृष्ट ही हो सकता है

(na uḷāro); पुरुषों का यह समूह

आनंदित भी; वे तृप्त नहीं होते

वे उपासना के कार्य करते हैं

(करं कुब्बं न टप्पारे)। मैं भी

मैं अपनी उपासना (कारं) करूंगा।

ऐसे ऋषि को रक्षक के रूप में

दुनिया। आने वाले समय में मैं

उनकी शिक्षाओं के उत्तराधिकारी बनो

सत्य (धम्मेसु)।

मेरे पास मेरा ऊपरी वस्त्र (उत्तरेय्यं) था

pataṃ) अच्छी तरह से धोया और रंगा हुआ (sudhotaṃ)

राजकेना), इसे लटका दिया गया था (अलाग्गत्वा)

मैंने बांस के शिखर (वेलागे) पर लटकाया

आकाश में झंडा फहराना, अभिसम-

मतका ने मेरा झंडा पकड़ा और उसे लेकर चला गया।

इसे आकाश में। मेरा झंडा देखकर

हवा के झोंकों से हिलकर मेरी खुशी और भी बढ़ गई।

अधिक।

मेरे मन को धार्मिक रूप से प्रसन्न करके

उस घटना के बाद, मैंने एक भिक्षु से संपर्क किया;

उस भिक्षु को नमन अर्पित करने के बाद, मैं

मैंने उनसे परिणाम (विपाक) के बारे में पूछा।

वह झंडा (अर्पण)।

उन्होंने मुझसे आनंदमय शब्द कहे।

मेरी उमंग जगाते हुए (पीतिसंजननम्); 'तुम

हमेशा अच्छे परिणाम का आनंद मिलेगा

उस झंडे का।

एक चौगुनी (चतुरंगिनी) सेना (जिसमें शामिल हैं)

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक

सैनिक आपके अनुचर दल (पारिवारेसन्ती) होंगे।

सदा; यही ध्वज अर्पण का फल है।

साठ हजार संगीतकार और अच्छी तरह से सुसज्जित

ढोल की आवाज़ हमेशा आपके चारों ओर रहेगी; यही है

आपके ध्वजदान का फलदायी परिणाम।

छियासी हजार सुशोभित महिलाएं,

रंग-बिरंगे कपड़े और गहने पहने हुए,

पन्ना की बालियों से सजी हुई, साथ में

घनी पलकें (अलारपमहा) के साथ

'मुस्कुराती हुई वाणी' (हसुला), होना

अच्छी समझ (सुसान्या), साथ

कोमल कमर (तनुमाज्जिमा), होगा

हमेशा आपको घेरे रहें; यही है

आपके ध्वजदान का फलदायी परिणाम।

तीस हजार युगों (कप्पा) के लिए

आप दिव्य वातावरण में आनंदित होंगे

दुनिया; अस्सी बार तुम एक बनोगे

दिव्य शासक और दिव्य इच्छा का प्रयोग करेगा

संप्रभुता।

हजार बार, तुम विश्व बनोगे-

राजा; आपका राज भरपूर होगा

शासनकाल, जिसकी संख्यात्मक रूप से गणना करना असंभव है।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

गुरु, जिसे कुल में गौतम नाम दिया गया था, एक

ओक्काका परिवार की संतानें प्रकट होंगी

इस दुनिया में।

दिव्य शक्ति से विदा होने के बाद

दुनिया, तुम एक रिश्तेदार बन जाओगे

ब्रह्मा की प्रेरणा आपके उज्ज्वल आधार से प्रेरित है

(सुक्कामुलेना कोडिटो), से जुड़ा हुआ

आपका सराहनीय कार्य।

आपके अस्सी करोड़ रुपये त्यागने के बाद

(धन का) और कई गुलाम और नौकर-

वांट्स, तुम भिक्षु बन जाओगे

महिमावान का विधान (सासाने)

एक गौतम।

हृदय जीतकर (आराधयित्वा)

स्वयंजागृत बुद्ध गौतम के बारे में,

साकियान वंश का श्रेष्ठ पुरुष,

तुम उसके शिष्य बन जाओगे

गुरु, जो उपवन के नाम से जाने जाते हैं।

मेरे द्वारा किया गया कार्य एक लाख

(युगों पहले) ने अपना फलदायी परिणाम दिखाया।

मेरे लिए यहाँ; एक की गति के समान

तीर सही ढंग से चला, मैंने अपना जला दिया था

दुराचार (किलेसा)।

जब मैं विश्व-राजा था, तब मैंने अपने अधिकार का प्रयोग किया।

चारों द्वीपों पर संप्रभुता,

वहाँ हमेशा झंडे लगे रहते थे

तीनों लीगों (योजना) में सर्वांगीण प्रतिस्पर्धा होगी।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

मैंने अपना कर्म तब किया था; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

मेरे ध्वजदान का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

आदरणीय उपावन भगवान बुद्ध के परिचारक (उपट्ठक) बन गए। उस अवसर पर भी, भगवान बुद्ध को वातबाध (वाताबाध) हो गया, यानी आंतरिक पीड़ा होने लगी। थेरा के एक गृहस्थ सहयोगी, देवहित नामक एक ब्राह्मण, जो सावत्थी में निवास करते थे, ने स्वयं को थेरा के चार संन्यासियों की आवश्यकताओं का आपूर्तिकर्ता (पवेदी) घोषित किया। आदरणीय उपावन ने अपना लबादा धारण किया, कुंड और वस्त्र लेकर उस ब्राह्मण के निवास पर गए। यह जानकर कि थेरा किसी उद्देश्य से उनके पास आए हैं (केनाचि अञ्ञेन पयोजनेन), ब्राह्मण ने इस प्रकार पूछा: “आदरणीय महोदय! कृपया मुझे बताएं कि आपको क्या चाहिए?” थेरा ने ब्राह्मण को अपने उद्देश्य की जानकारी देते हुए दो श्लोक कहे:

185. “सम्मानित ऋषि सुगत ने

दुनिया आंतरिक संकट से जूझ रही है

दर्द (वातेहाबाधिको); हे ब्राह्मण!

अगर आपके पास गर्म पानी है, तो उसे दें।

ऋषि को।

186. “मैं उसे भेंट चढ़ाना चाहता हूँ,

जिन्हें उन लोगों द्वारा सम्मानित किया गया था

सम्मान के योग्य, आदरणीय व्यक्ति-

व्यक्तिगत रूप से उन लोगों द्वारा जिन्हें होना चाहिए

व्यक्तिगत रूप से सम्मानित, और रहा है

जिनके साथ शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार किया गया

उनके साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए।

(apacito'paceyyānaṃ).

उस भाषण का अर्थ है: लोके पूजनेय्यानं पूजितो का अर्थ है: इस संसार में जिसे भी ऐसे दिव्य प्राणियों आदि द्वारा सम्मानित किया गया हो, जो सम्मान के पात्र हों; सक्करेय्यानं सक्कतो का अर्थ है: जिसे बिम्बिसार और कोसल जैसे राजाओं द्वारा व्यक्तिगत रूप से सम्मान दिया गया हो, जो व्यक्तिगत रूप से सम्मान के पात्र हों; अपसेय्यानं अपचितो का अर्थ है: जिसे अरहंत जैसे महान ऋषियों द्वारा शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार किया गया हो, जो दोषों से मुक्त हों और जिनके साथ शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए; वह सभी प्रकार की बुराइयों से दूर रहकर अरहंत है; वह अच्छे आचरण आदि से सुगत है। हे मेरे स्वामी, सर्वज्ञ होने के कारण वे मुनि (ऋषि) हैं; वे परम दिव्य, परम सक्क, परम ब्रह्मा हैं। वातः आबाधिको का अर्थ है: वे वायु जनित रोग से पीड़ित हैं और उनका मन व्याकुल है (वातक्खोभनिमित्तं)। हे ब्राह्मण, क्या गर्म जल उपलब्ध है? तास्स का अर्थ है: उनके वायु रोग को दूर करने के लिए, हारावे इच्छामि का अर्थ है: मैं चाहता हूँ कि आप उन्हें गर्म जल अर्पित करें। यह सुनकर ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध को गर्म जल और वायु रोग को दूर करने के योग्य औषधि अर्पित की। इससे भी गुरु बुद्ध का रोग ठीक हो गया। भगवान बुद्ध ने उनका आभार व्यक्त किया।

थेरा उपावन के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(154):इसिडिना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (154) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
154. इसिदिन्ना

बुद्ध युग में सुनापरंतों के देश में [1] एक पार्षद के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम इसिदिन्ना रखा गया। बड़े होकर उन्होंने चंदन मंडप के प्रस्तुतीकरण के समय दोहरे चमत्कार को देखा [2] और संतुष्ट मन से भगवान (बुद्ध) के पास आकर उन्होंने धम्म का मार्ग सुना और निर्वाण की पहली समाधि (सोतापना) प्राप्त की। गृहस्थ जीवन जीते हुए ही, एक करुणामयी आत्मा ने उन्हें प्रेरित किया और कहा:

[187] दीठ माया धम्मधर उपासका॥
काम अनिच्च इति भस्माना,॥
सारत्तारत्ता मणिकुंडलेसु॥
पुत्तेसु दारेसु च ते अपेक्खा॥ ॥

[188] अद्धा न जानन्ति यथाव6 धम्मौ॥
काम अनिच्च इति कपि आहु,॥
रागं च तेसां न बलत्थि चेट्टुm॥
तस्मा सीता पुत्तदारं धनञ्च ति.॥ ॥

[187] मैं उन धर्मनिष्ठ गृहस्थों को देखता हूँ जो अपने होठों पर धम्म का मार्ग धारण करते हैं;
आप उन्हें अक्सर यह कहते हुए सुन सकते हैं: 'इस संसार की सभी इच्छाएँ क्षणभंगुर हैं!'
परन्तु उनके हृदय में अनुचित तरीके से अर्जित धन, कीमती पत्थरों और रत्नजड़ित अंगूठियों का प्रेम होता है,
और उनके विचारों में पुत्रों, पुत्रियों और पत्नियों की चिंता व्याप्त रहती है।

[188] नहीं, वास्तव में, वे धम्म के आंतरिक अर्थ को नहीं जानते;
हालाँकि आप उन्हें अक्सर यह कहते हुए सुनते हैं: 'इस संसार की सभी इच्छाएँ क्षणभंगुर हैं!'
अपने आप को वासनाओं से मुक्त करने के लिए, उनमें आध्यात्मिक स्वास्थ्य की कमी है,
और इसलिए उनका हृदय पत्नी और बच्चों और धन से दृढ़ता से जुड़ा रहता है।

जब उस आम आदमी ने यह सुना, तो वह भावविभोर हो गया और संसार छोड़कर कुछ ही समय बाद उसने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) का स्वीकार करते हुए उसने इन श्लोकों को दोहराया।

[1] तुलना करें LXX.

[2] मैं इस पौराणिक घटना का पता कहीं और नहीं लगा सकता।

2.4-4 [154] इसिदिन्नाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
दिट्ठा मया से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा इसिदिन्ना का है। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संपन्न किए, और भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने पंखा उठाया और उसे बोधि वृक्ष को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, अंत में सुनापरंत जिले के एक धनाढ्य परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। इसी समय इस बुद्ध का उदय हुआ, उन्होंने इसिदिन्ना नाम प्राप्त किया, और वयस्क होने पर उन्होंने उस चमत्कार को देखा जब गुरु ने औपचारिक रूप से चंदन के महल (चंदनमाला) को स्वीकार किया। वे धर्मपरायण हो गए, गुरु के पास गए, उनके सत्य उपदेश (धम्म) को सुना, सोतापन्न बन गए और एक घर में निवास करने लगे। उनके कल्याण के प्रति सहानुभूति रखने वाले एक देवता ने उन्हें प्रेरित करते हुए दो श्लोक कहे:

187. "सत्य के वाहक भक्त

(धम्मधरा) और जो बता रहे हैं

इंद्रिय सुखों के बारे में

मैं क्षणभंगुर हूँ, मैंने इन्हें देखा है।

पन्ना रंग में मुग्ध और उत्साहित

बेटों और पत्नियों में भी बालियां

वे उनके लिए तरसते हैं (अपेक्खा)।

188. "निश्चित रूप से वे नहीं जानते कि यह कहाँ से आया है"

वे कहते हैं कि यहाँ सत्य (धम्म) है;

साथ ही इंद्रिय सुखों के बारे में भी।

क्षणभंगुर होने के कारण। उनका कोई अस्तित्व नहीं है।

कामवासना (राग) को काटने की शक्ति;

इसीलिए वे आसक्त (सिता) हैं।

पुत्र और पत्नी के साथ-साथ संपत्ति भी।

वहाँ, diṭṭhā mayā dhammadharā upāsakā, kāmā aniccā iti bhāsamānā का अर्थ है: यहाँ, कुछ भक्तों को, जो शास्त्रों के वाहक (अपनी स्मृति में) हैं (pariyattidhammadharā), मैंने देखा है; तीनों पिटकों को कंठस्थ करने के बावजूद, वे सत्य (धम्म) का वर्णन करते हुए इंद्रिय सुखों के नुकसान से उचित रूप से इस प्रकार संवाद स्थापित कर रहे हैं: "ये, अर्थात्, इंद्रिय सुख क्षणभंगुर, पीड़ादायक (दुक्खा) और विकृत (धम्म) होने के अधीन हैं; सारत्तरत्ता मणिकुंदकेसु, पुत्तेसु दारेसु च ते अपेक्खा का अर्थ है: पन्ना और बालियों (या पन्ना जड़ी बालियों) में मोहित होकर वे कामवासना (रागरत्ता) से बहुत दूषित हो गए। उन्होंने पुत्रों, पुत्रियों और पत्नियों में स्नेह उत्पन्न किया; मैंने देखा है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं; यही इसका अर्थ है।"

यतो का अर्थ है, इसलिए, वे भक्त जो पन्ना की बालियों में मोहित और उत्तेजित हैं, और जो पुत्र और पत्नियों की लालसा रखते हैं; अतः, इधा का अर्थ है: बुद्ध के इस युग में, धम्म का अर्थ है: इस प्रकार होने के बाद, वे वे थे जो ऐसा भी कहते थे: "इंद्रिय सुख क्षणभंगुर हैं;" जीव की स्वाभाविक स्थिति (सत्तपकति) विविध प्रकृति (विचित्तसभाव) की होती है; इस प्रकार, इसका महत्व है। रागाञ्च तेसं न बला'त्थि चेत्तुं का अर्थ है: चूंकि उन भक्तों के समान ज्ञान की शक्ति नहीं है जो कामवासना (राग) को काट कर भ्रंश कर सकें, तस्मा: उस परिस्थिति में; सीता का अर्थ है: उस परिस्थिति में आसक्त हो गए; सीता का अर्थ है: तृष्णा (तन्हा) के प्रभाव में आसक्त हो जाना, पुत्तदारं धम्ञ्च का अर्थ है: पुत्रों, पत्नियों और धन के आसक्ति से मुक्त न होना; इस प्रकार, देवता ने उसी भक्त के संदर्भ में अरहंतत्व (अञ्ञा) का संकेत देते हुए ये सब कहा। देवता की कही हुई बातें सुनकर भक्त को पश्चाताप हुआ, वह भिक्षु बन गया और कुछ ही समय में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"सर्वोत्तम बोधि वृक्ष पर

भगवान विपस्सी का (पादप)

मैंने एक पंखा पकड़ा और उससे हवा की।

(अबिजिम) सबसे उत्कृष्ट बोधि

वृक्ष को ईश्वरीय भाव से।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

जिसे मैंने सबसे उत्कृष्ट तरीके से हवा दी

बोधि वृक्ष। मुझे कुछ याद नहीं है।

बुरा अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरे पंखा चलाने का परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद भी, उन्होंने अपनी अरहंतता (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए इन्हीं श्लोकों का उच्चारण किया।

थेरा इसिडिन्ना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(155): संबुला-कक्काना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (155) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
155. संबुला-कच्चाना
मगध राज्य में बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, कच्चन वंश के एक कुलीन व्यक्ति के पुत्र के रूप में, उनका नाम संबुला रखा गया, लेकिन वे संबुला-कच्चन के नाम से जाने जाते थे। [1] भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म का उपदेश सुनने और भिक्षु संघ में प्रवेश करने के बाद, वे हिमालय के आसपास के क्षेत्र में गए और भेरा-वायाना ('भयानक मार्ग') नामक गुफा में अपने अंतर्दृष्टि अभ्यासों का अभ्यास किया।

एक दिन अचानक असमय ही एक विशाल तूफ़ानी बादल आसमान में छा गया, जो गरज, बिजली और तेज़ शोर से गूंज रहा था। फिर बारिश होने लगी और बिजली कड़कने लगी। सभी जीव-जंतु - भालू, लकड़बग्घे, भैंस, हाथी - भय और कंपकंपी से चीखने लगे। लेकिन थेरा ने अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली थी और अपने शरीर और जीवन की परवाह न करते हुए शोर पर ध्यान नहीं दिया, बल्कि तूफ़ान से शांत होकर अपने मन को इतना स्थिर कर लिया कि उन्हें अंतर्दृष्टि की तीव्र प्राप्ति हुई और उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञान) के साथ-साथ अभिज्ञा (उच्चतर ज्ञान) भी प्राप्त कर लिया।

अपनी इस उपलब्धि पर विचार करते हुए वे आनंद से भर उठे और एक कथन (गथा) में उन्होंने अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[187] दीठ माया धम्मधर उपासका॥
काम अनिच्च इति भस्माना,॥
सारत्तारत्ता मणिकुंडलेसु॥
पुत्तेसु दारेसु च ते अपेक्खा॥ ॥

[188] अद्धा न जानन्ति यथाव6 धम्मो॥

काम अनिच्च इति कपि आहु,॥
रागं च तेसां न बलत्थि चेट्ठुm॥
तस्मा सीता पुत्तदारं धनञ्च ति.॥ ॥

[189] ईश्वर की वर्षा बरसती है, हाँ, और ईश्वर की वर्षा गरजती है,
और मैं अकेला ही भयानक खोखले में रहता हूँ।
फिर भी उस भयानक चट्टानी खाई में रहते हुए भी
मुझे कोई डर नहीं लगता, कोई रेंगता हुआ भय नहीं, मैं
[अपने लिए] भयभीत नहीं हूँ।

[190]
ऐसे लोगों के लिए , पवित्र मार्ग (धम्म) में ऐसा नियम है कि इस प्रकार जीने
से मुझे कोई भय निकट नहीं आता, कोई रेंगता हुआ डर नहीं,
मुझे अकेले ही [अपने लिए] डर नहीं लगता। [2]

[1] उसे अन्य कच्चानों से अलग करने की आवश्यकता थी - जैसे, CCXXIX. फाईरे एमएस. और ब्र. सी.वाई., संपहुला-.

[2] इन सुंदर गाथाओं के छंद को मैं पाठ्यपुस्तकों में दिए गए किसी भी प्रकार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं कर सकता। 'ऐसे ... पथ (धम्म)' शब्द सुत्तंत शब्द धम्मता (मम') एस्सा- 'यह मेरे लिए पथ (धम्म) है' का विस्तार है (देखें संवाद, ii. 8, n. 3; मेरा बौद्ध धर्म, पृ. 119)। टीका में, पहले की तरह, देव (ईश्वर) का अर्थ मेघ (बादल) से लगाया गया है।

2.4-5 [155] संबुलकच्चानत्थेरा के श्लोक पर टीका
देवो च से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा संबुलकच्चाना का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में भक्तिभाव से भरे इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करने वाले इस व्यक्ति का जन्म चौरानवे युग (कप्पा) पहले एक गृहस्थ परिवार में हुआ था। बुद्धि प्राप्त करने पर एक दिन उनकी मुलाकात मौन बुद्ध सतरंसी से हुई, जो भिक्षा मांगते हुए भटक रहे थे। निरोध की समाधि से उठने के बाद वे पुण्यभाव से प्रेरित हुए और उन्हें ताड़ का फल भेंट किया। इस पुण्य कर्म के फल के कारण वे जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते रहे और अंत में मगध राज्य के एक धनी गृहस्थ परिवार में जन्म लिया। जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तो उनका नाम संबुला पड़ा और कच्चान वंश के होने के कारण वे संबुला कच्चाना के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और हिमवंता के पास भेरवाया नामक एक पर्वतीय गुफा में आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए निवास करने लगे। फिर, एक दिन, सैकड़ों और हजारों पाटलों के साथ गर्जना करते हुए एक विशाल, बेमौसम वर्षा करने वाला बादल बरसने लगा, बिजली की लपटें बिखेरते हुए, एक भयंकर तूफान (गणगणायन्तो) के रूप में; वज्रपात हुआ। उस ध्वनि को सुनकर भालू, लकड़बग्घे, जंगली भैंसें, हाथी आदि भयभीत होकर डर के मारे चिल्लाने लगे। परन्तु थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित कर ली थी, इसलिए उन्हें अपने शरीर और जीवन की कोई लालसा नहीं रही, उनके रोंगटे खड़े नहीं होते थे, उन्हें उस मूसलाधार बारिश की भी कोई चिंता नहीं थी, वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने वाले कर्मों में लगे रहते थे, गर्मी कम होने से अनुकूल जलवायु प्राप्त होने के कारण उनका मन शांत हो गया, और वहीं निरंतर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने में लीन होकर उन्होंने छह प्रकार के उच्च ज्ञान के साथ अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—-

“महान मौन बुद्ध, नाम

सतरंसी, आत्मनिर्भर और

अजेय, अपने से उठ खड़ा हुआ

एकांतवास, विशेष रूप से इसके लिए बाहर आया

उसका भिक्षा-भोजन (गोकाराया) एकत्र करना।

मैंने उसे हाथ में फल लिए देखा।

और मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ बैल के पास पहुंचा;

मैं धर्मपरायण और नेक हृदय वाला हूँ।

उसने ताड़ का फल भेंट किया।

यह चौरानवे युग पहले की बात है।

फिर मैंने फल का अर्पण किया; मैंने किया

किसी भी बुरी घटना का जिक्र याद नहीं;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

फल का प्रसाद।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित अभ्यास (पटिपत्ति) पर विचार किया, प्रसन्न हुए और अपने आनंदमय उच्चारण के माध्यम से दो श्लोक बोले, जिससे उनका अरहंत पद (अञ्ञा) प्रकट हुआ।

189. "बारिश हुई, बारिश हुई

गर्जना और गड़गड़ाहट हुई। बिलकुल अकेला

क्या मैंने पित्त को दूर करने में समय बिताया?

खतरों के साथ (भेरवे); जब वह

मैं अकेले रहकर टूट रहा था

(पित्त) खतरे, मौजूद थे

न भय (भय) न कांपना

(चैम्बिटट्टा) न ही बाल खड़े होना।

190. "यही मेरा स्वभाव (धम्मता) था।"

जिसमें मेरा अकेले रहना शामिल था

खतरों को दूर करना; मेरे लिए

इस प्रकार निवास करने पर, वहाँ न तो कोई था

न डर, न कांपना, न रोंगटे खड़े होना-

कांटेदार।

वहाँ, devo ca vassati devo ca galagaḷāyati का अर्थ है: वर्षा का बादल बरसता है; जिससे “ग ... n'atthi bhayaṃ vā chambhitattaṃ vā Iomahaṃso vā का अर्थ है: न तो मन के कांपने (सञ्जितम्) से जुड़ा भय था, न ही शरीर का कांपना जो इसकी विशेषता थी (तं निमित्तकम्), और न ही रोंगटे खड़े होने की हद तक।

क्यों? “धम्मता ममेसा” का अर्थ है: उन्होंने वहाँ अपना कारण बताया। वास्तव में, भय आदि जैसी भावनाएँ वहाँ उस व्यक्ति में उत्पन्न होनी चाहिए जिसने सर्वांगीण ज्ञान के अभाव (अपरिञ्ञातवत्थुक) के कारण अपनी कामुक इच्छा (चंदरागत) का त्याग नहीं किया है; परन्तु मेरे द्वारा वहाँ सब कुछ (सब्बासो तत्था) सर्वांगीण रूप से समझ लिया गया था; वहाँ भी मेरी कामुक इच्छा का पूर्णतः निवारण हो गया था; अतः भय आदि का अभाव, धम्मता ममेसा (यही मेरा स्वभाव है) सत्य (धम्म) के अनुसार; इस प्रकार, (थेरा ने) अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

थेरा संबुलकच्चाना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(156):खिटका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (156) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
156. खितका
बुद्ध युग में कोसल राज्य में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, खितक नाम से, [1] उन्होंने भगवान (बुद्ध) से धम्म का मार्ग सुना और भिक्षु संघ में प्रवेश करके एक वन में तब तक रहे जब तक उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त नहीं हो गया। उस फल के आनंद में निरंतर रहते हुए, निर्वाण की प्राप्ति के लिए तत्पर, एक थेरा जो प्रयास के लिए उत्साही थे, वे उस वन में रहने वाले भिक्षुओं के पास उनमें उत्साह जगाने के लिए गए। पहले उनकी कुशलक्षेम पूछते हुए, उन्होंने उस स्वीकारोक्तिपूर्ण ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) में ये श्लोक कहे:

[191] कासा [25] सेलुपामाṃ चित्ताṃ हिताṃ नानूपकम्पति,॥
विराटतौ रजनियेसु कुप्पनिये न कुप्पति,॥
यस्सेवं भवितां चित्तं कुतो तां दुक्खमेस्सति.॥ ॥

[192] मामा सेलूपमाṃ चित्ताṃ हिताṃ नानूपकम्पति,॥
विराटतौ रजनियेसु कुप्पनिये न कुप्पति,॥
मामेवऽ भविताऽ चित्ताऽ कुतो माऽ दुक्खमेसाति' ति.॥ ॥

[191] जिसका हृदय चट्टान की तरह स्थिर है, और डगमगाता नहीं,
वासना से उत्पन्न होने वाली सभी चीजों के प्रति वासना से रहित,
और इस परिवर्तनशील संसार में अविचल है? [2] इस प्रकार प्रशिक्षित हृदय में, दुःख कहाँ से आएगा?

[192] मेरा हृदय चट्टान की तरह स्थिर है, और अविचलित है,
वासना से उत्पन्न होने वाली किसी भी चीज़ के प्रति वासना से रहित है,
और इस परिवर्तनशील संसार में अविचल है।
मेरा हृदय इस प्रकार प्रशिक्षित है - मुझे दुःख कहाँ से आएगा?

[1] क्या यह CIV के लेखक के समान है?

[2] शाब्दिक रूप से, जो हिलने की प्रवृत्ति रखता है उसमें नहीं हिलता।

2.4-6 [156] खितकत्थेरा के श्लोक पर टीका
"कस्सा सेलूपमं चित्तं" से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा खितक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, वे भगवान विपस्सी के समय बंधुमती नगर में एक मठ के संरक्षक (आरामगोपक) के रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे, जब एक दिन संयोगवश उनकी दृष्टि आकाश में विचरण करते हुए भगवान के दर्शन हुई, वे श्रद्धा से भर गए और नारियल (नालिकेराफल) अर्पित करने की इच्छा व्यक्त की। उन्हें प्रसन्न करने के लिए, गुरु आकाश में ही ठहर गए और नारियल स्वीकार कर लिया। नारियल अर्पित करने के बाद, उन्होंने अपार उत्साह और आनंद का अनुभव किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और कोसल राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; उन्होंने खितक नाम प्राप्त किया; बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने, मानसिक साधना (कम्मट्ठान) में लगे रहे, वन में निवास किया और परिश्रम (घटेंतो) करते हुए अरहंत पद प्राप्त किया। अतः अपदाना में कहा गया है:—

"मैं उस समय बंधुमती नगर में था।"

एक मठवासी। मैंने उसे संयोगवश देखा था।

विशुद्ध रूप से शुद्ध (विरजं) बुद्ध

सीधे आकाश में जा रहा है (anilañjase)।

एक नारियल इकट्ठा करने के बाद, मैंने

इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया।

सर्वप्रसिद्ध बुद्ध ने इसे स्वीकार किया।

वह अब भी आकाश में खड़ा था।

समृद्धि (वित्तीय समृद्धि) उचित रूप से प्राप्त हुई थी।

मेरे लिए प्रचारित किया गया, इसने यह सब लाया

तत्काल सुख (दिट्ठममसुखवाहो),

फल अर्पित करने के बाद, मैंने अपने

बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धापूर्ण मन।

तब मुझे उत्साह के साथ-साथ प्रचुर मात्रा में भी प्राप्त हुआ।

मुझे, जो यहाँ पैदा हुआ था, परम आनंद प्राप्त हुआ।

वहाँ, रत्न अचानक प्रकट हो गया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

फल-अर्पण।

मेरी दिव्य दृष्टि स्पष्ट रूप से शुद्ध है; मैं हूँ

एकाग्रता में चतुर (समाधिकुसलो)।

मैंने अपने उच्चतर स्तर पर पूर्णता प्राप्त कर ली है।

ज्ञान; यही फलदायी परिणाम है

मेरे फल प्रसाद का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने "कस्सा सेलूपमं" से शुरू होने वाले पहले श्लोक का उच्चारण किया, जिसका उद्देश्य वन क्षेत्र में निवास करने वाले भिक्षुओं की रक्षा (परिग्गणनत्थं) करना था, जब वे स्वयं निर्वाण के फल और सुख के आनंद में लीन थे और अपने दृढ़ प्रयास (पधानपरिग्गाहको) को बढ़ावा दे रहे थे।

191. वहाँ, कस्स सेलूपमं चित्तं; ठितं नानूपकमपति का अर्थ है: इस वन क्षेत्र में रहने वाले भिक्षुओं में से, जिस भिक्षु का मन सांसारिक सभी उतार-चढ़ावों के कारण न तो डगमगाता है और न ही थरथराता है (लोकधम्मेहि), क्योंकि वह निर्बलता (इंजन) के अभाव में, एक ठोस पत्थर से बने पहाड़ के समान, सर्वोच्च फल (अग्गफलाधिगमेन) की प्राप्ति के कारण, निपुणता (वसीब्बावप्पति) की प्राप्ति का पालन करता है (ठितं)। अब, उनके इस कथन की शुरुआत "विरत्तं" से की गई है, ताकि उनके न डगमगाने के तरीके और उसके कारण को दर्शाया जा सके। वहाँ, virattaṃ rajanīyesu का अर्थ है: (मेरा मन) तीन मुख्य अस्तित्व स्तरों (tebhūmakadhammā) से संबंधित सभी मामलों से विरक्त (virettaṃ) हो गया है, जो कामवासना (rāguppatti) के उत्पन्न होने का कारण थे और जो अत्यंत मनमोहक (rajanīyesu) हैं, कामवासना रहित (virāga) माने जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग (ariyamagga) के माध्यम से; वहाँ, कामवासना हर तरह से (sabbaso) समाप्त हो गई है; यही अर्थ है। Kuppanīya का अर्थ है: क्रोध (paṭigha) के कारण उत्पन्न होने वाली (ṭhānīye) बातों में; दुर्भावना (āghātavatvatthu) के सभी अवसरों पर; na kuppati का अर्थ है: नाराज नहीं होता, परेशान नहीं करता (vikāraṃ āpajjati)। यस्सेवं भावितं चित्तं का अर्थ है: एक श्रेष्ठ व्यक्ति (अरियपुग्गला) का 'मानसिक' विकास (भावितं) इस प्रकार से हुआ है; कुतो तं दुखमेस्सति का अर्थ है: जहाँ से, या तो जीव (सत्ततो) से या परिस्थितियों (संखारतो) से, उस व्यक्ति के निकट दुख (दुक्खं) आता है; ऐसे व्यक्ति को दुख (दुक्खं) अवश्य होता है; यही अर्थ है।

192. इस प्रकार, थेरा खितक ने "नामा सेलूपमं चित्तं (मेरा पत्थर के समान मन)" से शुरू होने वाले दूसरे श्लोक के माध्यम से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया, जिसमें उन्होंने पूछे गए प्रश्न का उत्तर अनिश्चित रूप से (अनियमवसेना) स्वयं का संदर्भ देते हुए (अत्तूपनायिकं) दिया। उस अर्थ का केवल उल्लेख किया गया है।

थेरा खितका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(157):सोना-पोतिरियापुत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (157) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
157. सोना-पोटिरियापुत्त
इस बुद्ध युग में कपिलवस्तु में, जमींदार (जमींदार) [1] पोटिरिया के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर , उनका नाम सोन रखा गया। वयस्क होने पर, वे शाक्य राजा भद्दिया की सेनाओं के प्रमुख सेनापति बने। अब भद्दिया ने संसार त्याग दिया (संन्यास ग्रहण कर लिया), जैसा कि नीचे वर्णित किया जाएगा, सोन ने सोचा: 'यदि राजा भी संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण कर चुके हैं, तो मुझे गृहस्थ जीवन से क्या लेना-देना है?' [144] इसलिए उन्होंने संन्यास ग्रहण किया, लेकिन वे आलसी बने रहे और ध्यान अभ्यास में लीन नहीं रहे। अनुपिया के आम के बाग में निवास करने वाले भगवान (बुद्ध) ने उन पर अपनी महिमामय दिव्य छवि भेजी, और उन्हें सचेत करते हुए संबोधन श्लोक कहे:

[193] न तव सुपितुं होति रत्ती नक्खत्तमालिनी,॥
पतिजग्गितुमेवेसा रति होति विजानाता॥ ॥

[193] नहीं, इसलिए नहीं कि तुम देर तक सो सको,
रात तारों की मालाओं से सजी आती है।
बुद्धिमानों द्वारा जागरण के लिए यह रात आई है।

उनकी बात सुनकर सोन अत्यंत व्याकुल हो गए और अपनी कमियों को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने खुले में साधना शुरू की और आत्मज्ञान प्राप्त करने का अभ्यास किया। और उन्होंने यह श्लोक कहा:

[194] हत्थिक्खंडहवापतितां कुंजरो सी अनुक्कमे,॥
सङ्गमे मे मतं सेय्यो यँ सी जिवे परजीतो' ति.॥ ॥

[194] अगर लड़ाई में मेरा योद्धा-हाथी
आगे बढ़ता, तो बेहतर होता, उसकी पीठ से गिरकर, [2] मैदान में मृत [और कुचला हुआ पड़ा रहता],
बजाय इसके कि दुश्मन के हाथों जीवित बंदी बनकर पीटा जाऊं।

ऐसा कहकर उन्होंने अंतर्दृष्टि को जागृत किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, और उसके बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) के शब्दों और अपने स्वयं के शब्दों को अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा के रूप में दोहराया।

[1] जागीर में भूमि धारण करने वाले भोजक की स्थिति पर , संवाद, i. 108, n. 1 देखें; भद्दिया पर, CCLIV देखें। मल्लों के क्षेत्र में अनुपिया, कपिलवस्तु के पूर्व में स्थित था। दर्शन पर, पहली बहनों के कई कथनों (गाथा) की तुलना करें ।

[2] टीका अवपतितm̩ (न्यूमैन देखें) पाठ की पुष्टि करती है। यह रूपक एक भारतीय सैनिक के लिए बहुत स्वाभाविक है, और इसका प्रयोग आसान है। युद्ध से संबंधित रूपक बौद्ध साहित्य में ईसाई साहित्य की तुलना में कम बार आते हैं, और इस कृति में निहित कुछ रूपक लगभग उन्हें समाप्त कर देते हैं। 'कुचला गया' (हाथी द्वारा) टीका की व्याख्या है।

2.4-7 [157] सोनपतिरियापुत्तथेरा के श्लोक पर टीका
'ना ताव सुपितुं होति' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पोटिरियापुत्त का है, जो सोन के वृत्तांत हैं। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के बाद, वे भगवान सिख धर्म के समय में वनवासी के रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे, जब एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, वे धर्मपरायण हो गए और उन्होंने गुरु को कुरांजिया फल अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के फल के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और कपिलवस्तु में पोटिरिया नामक एक ग्राम प्रधान के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम सोन था। वयस्क होने पर वे शाक्य सम्राट भद्दिया की सेना के सेनापति बने। फिर, जब राजा भद्दिया ने पूर्वोक्त तरीके से (हेट्ठा) संन्यासी बन गए, तो सेनापति भी संन्यासी बन गया और बोला, “जब राजा स्वयं संन्यासी बन गए, तो मुझे गृहस्थ जीवन से क्या लाभ?” संन्यासी बनने के बाद, वह विश्राम करते हुए नींद में मग्न रहा; उसने अपने मन के विकास (भावना) में कोई ध्यान नहीं दिया। अनुपिया में आम के बाग में निवास करने वाले प्रतापी भगवान ने अपना प्रकाश उस पर फैलाया (फरपेत्वा), उस प्रकाश से उसकी चेतना जागृत हुई और इस श्लोक के माध्यम से उसे सलाह देने के लिए दो श्लोक कहे।

193. अब सोने का समय नहीं है; रात है

चंद्र नक्षत्रों से सुशोभित

(नक्खत्तमालिनी); वह रात है

लेकिन देखभाल के लिए (paṭijaggituṃ)

बुद्धिमान लोग।

194. यदि हाथी पीछा करे

(अनुक्कामे) मैं जो गिर गया था

हाथी के शरीर से, मेरा

युद्ध के मैदान में मरना बेहतर है

पराजित होने के बाद जीने से बेहतर है।

वहाँ, na tāva supitaṃ hoti, ratti nakkhattamālinī का अर्थ है: नौवें क्षण को प्राप्त करने के बाद, जिसे आठ अनुपयुक्त क्षणों (अक्खण) द्वारा टाला गया था (वज्जिता), जन्मजात बुद्धिमान व्यक्ति उसका पालन करता है; उस बुद्धिमान व्यक्ति के लिए, जब तक उसे अरहतत्व प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक, चंद्र नक्षत्रों से सजी इस रात में लेटना और सोना नहीं है; सोने का समय नहीं है। वास्तव में, दूसरी ओर, paṭijaggituṃ av'essa, retti hoti vijānatā; यह रात, विशेष रूप से (विशेषातो) एक ध्वनि मुक्त अवसर (निद्दवेला) बन गई है, जिसमें मनुष्य, पशु और पक्षी सो जाते हैं (निद्दुपगमना), और एक स्पष्ट रूप से जानकार बुद्धिमान व्यक्ति को इसकी आवश्यकता होती है, केवल अपने भीतर उचित अभ्यास (पटिपत्ति) को पोषित करने और जागृति के प्रति अपनी भक्ति में संलग्न होने के लिए।

उस श्लोक को सुनकर सोन और भी अधिक पश्चाताप से भर गए, उनकी लज्जा (हिरी) और भय (ओत्तप्पं) प्रबल हो गए, उन्होंने खुले में रहने (अभोकासिकंगं) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के कठोर अभ्यास का संकल्प (अधित्तय) लिया और “हत्थिक्खंडावपतितं” से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक बोला। यहाँ, अवपतितं का अर्थ है: चेहरा नीचे की ओर करके गिरना, पैर ऊपर और चेहरा नीचे करके गिरना। कुंजरो चे अनुक्कमे का अर्थ है: यदि हाथी पीछे जाए (अनुक्कमेय्या)। यह कहा गया है:— जब मैं अपने हाथी पर सवार होकर युद्धक्षेत्र में प्रवेश कर गया (पविट्ठो) और हाथी की पीठ से गिर गया (हत्थिक्खन्धतो पतितो), तो यदि मैं उस हाथी के पैरों तले कुचलकर मर जाऊं (मद्दितो), तो युद्धक्षेत्र में वह मृत्यु मेरे लिए (मेरी) सेय्यो (बेहतर) है; यञ्चे जिवे पराजितो (अब मैं सभी

प्रकार के दुराचारों से पराजित होकर जीवित रहूं; यह बेहतर नहीं है)। जब थेरा इस श्लोक का पाठ कर रहे थे, तब उन्होंने स्वयं आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में लीन होकर अरहंतत्व प्राप्त कर लिया था। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैं पहले हिरण का शिकारी था;

मैं जंगल में घूमता रहा।

निर्मल बुद्ध प्रतिमा देखी, निपुण

सभी धर्मों में।

कुरांजिया फल एकत्र करने के बाद,

मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया, जो

वह ऐसा ऋषि था जैसा कि वह क्षेत्र था

पुण्य कमाते हुए; मैंने श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई

मेरे अपने हाथों (pññibhi).

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने फल भेंट किया।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने गुरु और स्वयं द्वारा बोले गए दोनों श्लोकों को दोहराया (पच्चुदाहासी), जो कि "हत्थिक्खन्धा'वपतितं" से शुरू होने वाला श्लोक था। उस श्लोक के माध्यम से, यह भी उनके अरहंत पद का रहस्योद्घाटन (अञ्ञा) बन गया।

थेरा सोनपोतिरियापुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(158): निसाभा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (158) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
158. निसाभा
बुद्ध युग में कोल्लियन देश में [1] एक कुल के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम निसाभा रखा गया। वयस्क होने पर, उन्होंने शाकियन और कोल्लियन के बीच युद्ध में बुद्ध की बुद्धि और शक्ति देखी, और विश्वास करते हुए, भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और जल्द ही अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

एक साथी भिक्षु (भिक्षु) को लापरवाही से अपना समय व्यतीत करते देखकर [145] उन्होंने उसे संबोधित किया, और यह दिखाने के लिए एक और श्लोक जोड़ा कि वह वही करता था जिसका वह उपदेश देता था:

[195] पंचकामागुने हित्वा पियारूपे मनोरमे,॥
सद्धया अभिनिक्खम्म दुक्खस्सन्तकारो भवे॥ ॥

[196] नाभिनंदामि मरणं नभानंदामि जीविता,॥
कलौं च पतिकोखामि संपजाणो पतिस्सतोऽ ति.॥ ॥

[195] उन पाँच प्रकार की इंद्रियों को त्याग दो,
वे वस्तुएँ जो मन को मोहित और आकर्षित करती हैं।
हे, जिन्होंने विश्वास के द्वारा घर और संसार का त्याग किया,
इसके दु:ख और पीड़ा के अंतकर्ता बनो।

[196] मृत्यु के विचार से मैं न तो सहज होता हूँ, न ही
जीवन में आनंदित होता हूँ। मैं
विवेकशील मन और पूर्ण ध्यानमग्नता के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ। [2]

[1] रोहिणी नदी द्वारा शाकियों से अलग किया गया एक कबीला। सी एफ सी., CCXXXIII.

[2] तुलना करें XX., और संस्करण 607.

2.4-8 [158] निसाभत्थेरा के श्लोक पर टीका
पंच कामगुणे हित्वा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा निसाभा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान विपस्सी के समय एक परिवार में पुनर्जन्म हुए; जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें बेल भेंट की। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने जन्मों के चक्रों में घूमते हुए उत्तम जन्म प्राप्त किए और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे कोलिया जिले के एक परिवार में पुनर्जन्म हुए; निसाभा नाम प्राप्त करके, वे वयस्क हुए और शाक्य और कोलिया के युद्धक्षेत्र में बुद्ध की शक्ति के दर्शन किए, उचित श्रद्धा से प्रेरित हुए, भिक्षु बने और उसी दिन अरहंत पद प्राप्त किया। अतः, अपदान में यह कहा गया है:—

मैंने बेल का फल भेंट किया

सुनहरे रंग वाले स्वयं के लिए फल-

जागृत बुद्ध, प्राप्तकर्ता

बलि चढ़ाने वाले, जो प्रवेश कर रहे थे

रथ मार्ग पर।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

फल-अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने साथी भिक्षुओं को उपदेश देने के उद्देश्य से, यह देखकर कि वे अपना समय लापरवाहीपूर्ण जीवन व्यतीत करके बिता रहे थे, पहली पंक्ति का पाठ किया।

195. पाँच प्यारे सुंदर लोगों को त्यागने के बाद

और मानसिक रूप से आनंददायक कामुकता के पहलू

सुख-सुविधाओं के लिए तुम अपने घरों से बाहर आ गए हो

अपनी पवित्र आस्था के साथ; आपको बनना चाहिए

जो कष्टदायक पीड़ा का अंत करता है

(दुख)।

इसका अर्थ है:— पियारूपे का अर्थ है: अपने ऐसे स्वभाव के कारण जो प्रेमयोग्य है, अज्ञानी आम लोगों (पुथुज्जन) को प्रेमपूर्वक सुंदर लगना; मनो रमे का अर्थ है: मनभावन स्वभाव के कारण मन को प्रसन्न करने वाला; पांचकामागुणे का अर्थ है: सुंदर रूप (रूप) से शुरू होने वाले पांच प्रकार के (कोट्ठासा); हित्वा का अर्थ है: सभी कर्मों का त्याग कर, सद्धाय का अर्थ है कर्मफल और तीन रत्नों (रतनत्तय) में पवित्र आस्था के प्रभाव में आना; घरा का अर्थ है: संन्यास लेकर भिक्षु बनना; जन्म से ही बुद्धिमान (विञ्ञुजातिको) होकर, भिक्षु बनने के समय से ही प्रयास करना; दुःखस अंतकारो भावे का अर्थ है: ऐसा बनना जो बार-बार जन्म-जन्म के कष्टदायक चक्र को समाप्त कर दे। इस प्रकार उन भिक्षुओं को सलाह देने के बाद, उन्होंने दूसरे श्लोक के माध्यम से अपनी अरहतता (अञ्ञा) प्रकट की, ताकि उन्हें अपनी स्वयं की उचित प्राप्ति (पटिपन्न) की स्थिति स्पष्ट हो सके: "इस दृष्टिकोण से मत समझो: 'यह व्यक्ति केवल दूसरों को सलाह (सञ्ञापेन्तो) देता है; वह स्वयं कर्ता नहीं है'।"

196. "मैं मृत्यु का स्वागत नहीं करता; न ही कोई और करता है।"

मैं जीवन का स्वागत करता हूँ; सचेत और विचारशील होकर।

मुझे समय की बहुत याद आती है।

वहाँ, नाभिनंदामि मरणं का अर्थ है: मैं विशेष रूप से मृत्यु की कामना नहीं करता। नाभिनंधामि जीवितं का अर्थ है: यह तो इसके कारण (कारण) का कथन है; क्योंकि मैं जीवन का स्वागत नहीं करता, इसलिए मृत्यु का भी स्वागत नहीं करता। वास्तव में, जो कोई भी जन्म, वृद्धावस्था और भविष्य में मृत्यु के विशेष दुराचार (किलेसा-भिसंखारे) का संचय करता है, वह अंतराल न होने के कारण नए अस्तित्व (पुनब्भव) के विशेष उद्‌भव (अभिनिब्बत्तिं) का स्वागत करते हुए, अपनी मृत्यु का भी स्वागत करता है; क्योंकि उसने कारण (कारणस्स अप्पहीनत्ता) का त्याग नहीं किया है। दोष रहित अरहंत, संचय की ओर ले जाने वाले कर्मों (धम्मे) का पूर्णतः त्याग करके और पुनर्जन्म की संभावना को कम करने वाले कर्मों (धम्मे) में सुस्थापित होकर, सर्वांगीण ज्ञान पर आधारित होकर, जीवन का हर तरह से स्वागत न करते हुए, मृत्यु का भी स्वागत न करने वाला कहा जाता है, क्योंकि उसने मृत्यु के कारण का पूर्णतः त्याग कर दिया है। अतः उन्होंने कहा: "नाभिनंदामि मरणं, नाभिनंदामि जीवनं (मैं मृत्यु का स्वागत नहीं करता। मैं जीवन का स्वागत नहीं करता)।" यदि इस प्रकार दोष रहित अरहंत की निर्वाण में प्रवेश करने की विशेष इच्छा हो, तो निर्वाण में पूर्ण रूप से विलीन होने तक उसकी स्थिति क्या होगी? अत: उन्होंने कहा: "कालं च पटिकंखामि, संपजानो पटिसत्तो" का अर्थ है: जब सभी प्रकार के दुराचारों का सर्वांगीण शमन (सिद्धे) हो जाता है, तो मैं जागरूकता और ज्ञान की प्रचुरता की प्राप्ति के लिए सचेत (सतो) और चिंतनशील (संपजानो) हो जाता हूँ और उस समय की प्रतीक्षा (पटिकंखानि) करता हूँ जब सभी तत्वों का पूर्ण निर्वाण (खन्ध) हो जाएगा; मैं उस घटना की प्रतीक्षा (उदिक्कनमानो) और प्रतीक्षा (आगमयमानो) करता रहता हूँ; परन्तु मेरे प्राण-मृत्यु में मेरा कोई सुख (अभिनंदना) नहीं है, क्योंकि अरहंतत्व के उसी मार्ग से उसका भी अंत (समुग्घातित) हो चुका है।

थेरा निसाबा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(159):उषाभा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (159) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
159. उसभा
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक शाक्य राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उषाभा रखा गया। जब भगवान (बुद्ध) अपने लोगों से मिलने आए, [1] उषाभा ने उनकी शक्ति और ज्ञान को देखा, उन पर विश्वास किया और भिक्षु बन गए। उस समय से उन्होंने कोई धार्मिक कर्तव्य नहीं निभाया, बल्कि सारा दिन समाज में और सारी रात नींद में व्यतीत किया।

एक दिन, मन में उलझन लिए और आलस्य से नींद में डूबते हुए, उन्होंने सपना देखा कि उन्होंने दाढ़ी बनाई, लाल रंग का वस्त्र पहना और हाथी पर बैठकर भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश किया। वहाँ लोगों की भीड़ देखकर वे लज्जा से भर उठे। यह सोचकर वे जाग उठे: 'अरे, यह तो सपना था! मन में उलझन और अविवेकी अवस्था में मैंने स्वयं को सपने में देखा।' और व्यथित होकर उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और समय आने पर उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ।

इस प्रकार, सपने को अपना प्रेरणास्रोत बनाकर, उन्होंने अपनी सर्वोच्च उपलब्धि (अञ्ञा) को स्वीकार करते हुए इसका जश्न मनाया और कहा:

[197] अंबपल्लव संकासां असे कटवना सिवारा,॥
निसिन्नो हत्थि गिवय गमं: पिंडाय पविसीं॥ ॥

[198] हत्थिक्खंडहतो ओरुयहा सवेगअ अलभिm तदा,॥
सोहाऽ दित्तो तदा संतो पत्तो मे आसवक्खयोऽ ति.॥ ॥

[197] बैंगनी आम की कलियों के रंग का एक वस्त्र
मेरे कंधे पर लिपटा हुआ था, मैं

हाथी की पीठ पर
सवार होकर गाँव की गली में भीख मांगने के लिए निकल पड़ा।

[198] [146] उसकी पीठ से नीचे [अत्यंत शर्म से] मैं फिसल गया -
[तभी देखो! मैं जागा और] पीड़ा ने मुझे जकड़ लिया।
यह अभिमानी स्व तब नम्र और सौम्य हो गया,
मेरे मन को दूषित करने वाले विषों को शुद्ध किया गया। [2]

[1] तुलना करें. सीसीXXXIII.

[2] एक और उदाहरण जहाँ कथा गाथा की उलझन को सुलझाती है, जिसे अलग से लिया गया है। उदाहरण के लिए, हाथी सवार का 'भिक्षा मांगने' से क्या लेना-देना था? डॉ. न्यूमैन को यह वाक्यांश हटाना पड़ा। एक स्वप्न की विसंगति के रूप में, यह छोटी कविता बिल्कुल स्पष्ट है। 'फिर... फिर' पाठ से लिया गया एक दोहराव है।

2.4-9 [159] उसभट्टथेरा के छंद पर टीका
अंबपल्लवासंकासं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उसबना का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते हुए, उन्होंने भगवान सिखि (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे धर्मपरायण हो गए और उन्हें कोसंब फल अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों को देवताओं और मनुष्यों के बीच घूमते हुए बिताया, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कपिलवस्तु में शाक्य वंश में पुनर्जन्म लिए; उसभा नाम प्राप्त करने और वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु के रिश्तेदारों के मिलन समारोह में बुद्ध की शक्ति को देखा, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए। उन्होंने अपने भिक्षु कर्तव्यों (धम्म) का पालन नहीं किया और दिन में समाज में मौज-मस्ती (संगणिकाराम) करते हुए और रात भर सोते हुए अपना समय व्यतीत किया। एक दिन, बिना सोचे-समझे (असंपजानो) सोते समय, उन्होंने सपने में स्वयं को एक हाथी की पीठ से लज्जित होकर उतरते हुए देखा, जहाँ उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति वहाँ अच्छी तरह से पहुँचा है, जहाँ वह भी भिक्षा मांगने के लिए हाथी की गर्दन पर बैठा था, आम के अंकुर के रंग का ऊपरी वस्त्र पहने हुए, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, उचित रूप से प्रबुद्ध (पतिबुद्धो) हो गया, और स्वयं से कहा; "मुझे सोते समय अनजाने में और बिना सोचे-समझे ऐसा सपना आया," पश्चाताप से ग्रस्त होकर, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का मार्ग अपनाया और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"राजकीय पोशाक की तरह खुलते हुए"

वैभव (ककुधं विलासंतं)

वह दिव्यों का भी दिव्य था (देव-

देवम्) और मनुष्यों में श्रेष्ठ।

तब मैंने उन्हें कोसाम्बा फल अर्पित किया।

जब उन्होंने रथ यात्रा शुरू की।

यह इकत्तीस युग पहले की बात है, जब मैंने

फिर फल पेश किया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

मेरे द्वारा किए गए प्रयासों का फलदायी परिणाम यह हुआ कि

फल का प्रसाद।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

तब, थेरा ने अपने द्वारा देखे गए स्वप्न को अपना प्रेरणास्रोत (अंकुसा) बनाकर, अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए दो श्लोक कहे, और उसी स्वप्न की घोषणा की, क्योंकि वही स्वप्न उनके अरहंतत्व की प्राप्ति का कारण था।

197. अपना वस्त्र धारण करके (कट्वाना),

मेरे चेहरे पर आम के अंकुर जैसा दिख रहा है

कंधे पर, मैं गांव में दाखिल हुआ

भिक्षा-भोजन के लिए, गर्दन पर बैठा हुआ

हाथी का।

198. पीछे से उतरने के बाद

हाथी को देखकर मुझे पछतावा हुआ।

कि तब मैं, (यद्यपि)

गर्वित (वही), रोग-मुक्त

मुझे अरहंत पद प्राप्त हो चुका था।

वहाँ, ambapallavasaṅkāsaṃ, aṃse katvā cīvaraṃ का अर्थ है: अपने शरीर (खंडे) पर मूंगे के रंग का वस्त्र, जिसमें आम के अंकुर (ambapallava) की विशेषता (आकार) थी, धारण (करित्वा) करने के बाद, मैंने उसका एक ऊपरी वस्त्र बनाया। Gāmaṃ का अर्थ है: उसका अपना राज्य; hatthigīvāyaṃ nisinno piṇḍāya pāvisiṃ का अर्थ है: हाथी की पीठ (खंडे) पर बैठकर, मैं भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया: hathikkhandhato oruyha का अर्थ है: जिस क्षण मैंने (गाँव में) प्रवेश किया, उसी क्षण मुझे बहुत से लोगों द्वारा देखा जा रहा था, (और इसलिए मैं) हाथी की पीठ से उतरा, खड़ा हुआ और उचित रूप से नींद से जाग गया (paṭibojjhiṃ); संवेगं अलभिं तदा का अर्थ है: जैसे ही मैं जागा (पबुद्धो वा), मुझे पश्चाताप हुआ, इस प्रकार: "यह अनजाने में और बिना सोचे-समझे सो जाने के कारण हुआ है।" हालांकि, अन्य विद्वान इस प्रकार कहते हैं: "राजा बनते ही, रात के एक हिस्से में उसने ऐसा सपना देखा, भोर में अपने हाथी की पीठ पर सवार हुआ, अपने शहर की गलियों में घूमते हुए उसे अपना सपना याद आया, वह हाथी की पीठ से उतरा, उसे पश्चाताप हुआ, गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गया, अरहंत पद प्राप्त किया और इन श्लोकों का पाठ करते हुए, गंभीर भाव से अपनी प्रसन्नतापूर्ण अभिव्यक्ति (उदान) की। इसका अर्थ यह है: मुझे पश्चाताप इसलिए नहीं हुआ क्योंकि मैं अपने वंश और धन के घमंड आदि के कारण हर तरह से अहंकारी था; यही व्याख्या है।"

थेरा उसभा के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(160):कप्पटा-कुरा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (160) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
160. कप्पटा-कुरा
बुद्ध युग में सावत्थी में दरिद्र परिस्थितियों में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने अपना भरण-पोषण करने का एकमात्र तरीका यही जाना कि वे फटे-पुराने वस्त्रों में लिपटे, हाथ में पान लिए, चावल के दाने इकट्ठा करने के लिए इधर-उधर भटकते थे। [1] इसलिए वे कप्पटा-कुरा - 'फटे-पुराने वस्त्र और चावल' के नाम से जाने गए। बड़े होकर उन्होंने घास बेचकर अपना जीवन यापन किया। एक दिन जंगल में घास काटते समय, उन्होंने एक थेरा को देखा। प्रणाम करके वे उनके पास बैठ गए और उनसे धर्म का उपदेश (धम्म) सुना। तब उन्होंने विश्वास किया और यह कहते हुए कि 'मेरे लिए यह दयनीय जीवन शैली क्या है?' उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अपने फटे-पुराने वस्त्र एक विशेष स्थान पर रख दिए। जब उन्हें अपने नए जीवन से अरुचि हुई, तो वे जाकर उन फटे-पुराने वस्त्रों को देखते और बेचैन हो जाते। ऐसा करते हुए, उन्होंने सात बार भिक्षु संघ छोड़ दिया। तब भिक्षुओं ने इस बात की सूचना भगवान बुद्ध को दी। और एक दिन जब कप्पटा-कुरा, भिक्षु के रूप में, सभा के किनारे प्रवचन कक्ष में ऊंघ रहे थे, तब उन्होंने उनसे इन छंदों में बात की:

[199] अयामिति कप्पातो कप्पातकुरो अच्चया अतिभृताय॥
अमतघटिकायं धम्मकतमट्टो कटपादं झानानि ओसेटुं॥ ॥

[200] मा [26] खो त्वा कप्पा पकालेसी॥
मा तं उपाकाणाकम्हि तदेस्सं,॥
नहं त्वं कप्पट्ट मत्तमन्नसि॥
सङ्घमज्झामहि पचालयमानोऽ ति.॥ ॥

[199] 'ये,' वह कहता है, 'राग-चावल के चिथड़े हैं!
जो वस्त्र मैंने पहन रखे हैं, वे बहुत भारी हैं।'
उसने अमृतमयी वर्षा में धम्म का पूर्ण सार ग्रहण किया है ; फिर भी वह ध्यान साधना का अभ्यास करने के लिए
कोई कदम नहीं उठाता ।

[200] हे कप्पता, तुम्हें हिलना-डुलना और सिर हिलाना नहीं चाहिए,
न ही मुझे तुम्हारे कान में शब्द ठूंसने पर मजबूर करना चाहिए।
कप्पता, तुमने ज़रा भी नहीं सीखा,
यहाँ श्रोताओं के बीच नींद में झूमते हुए। [2]

इस प्रकार परमेश्वर ने उन्हें इतनी कठोर फटकार लगाई मानो उनकी हड्डियों को भेद दिया हो, मानो कोई भयंकर हाथी उनके मार्ग में आ उतर आया हो। वे अत्यंत व्याकुल होकर अंतर्दृष्टि प्राप्त कर शीघ्र ही अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने उन श्लोकों का पुनरावलोकन किया जो उन्हें लक्ष्य तक ले जाने वाले प्रेरक थे, और वे श्लोक उनकी ज्ञान प्राप्ति की घोषणा बन गए।

[1] कुरा, टीका में एक बार kūra के रूप में आता है (= चाइल्डर्स और बोहट्लिंगक और रोथ में, 'उबला हुआ चावल'), संभवतः किसी न किसी रूप में जंगली चावल है। तुलना करें: विनय के सुत्त-विभंग में sukkha-kūra , ओल्डेनबर्ग संस्करण, iv., पाक. 38, 1.

[2] डॉ. न्यूमैन द्वारा वर्णित 'अस्पष्ट कहावतों' के ठीक विपरीत ये छंद, किंवदंती की सहायता के बावजूद भी, उतने स्पष्ट नहीं हैं। दोनों संस्करणों में टीका सामान्यतः जितनी स्पष्ट नहीं है; फिर भी, जो व्याख्या यह देती है, वह हमेशा की तरह एक सरल और संभावित स्थिति को दर्शाती है - फटी हुई लंगोटी, अपने आवारापन से जुड़े भावों के साथ, एक बोहेमियन और मूर्तिपूजक आकर्षण प्रदान करती है, जिससे अधिक शालीन पीले रोबोस बोझिल और अनुशासन कष्टदायक प्रतीत होते हैं। किंवदंती ऑर्डोर की परंपराओं के 'मानवीय दस्तावेजों' में एक विशिष्ट योगदान है।

2.4-10 [160] कप्पट्टकुरथेरा के श्लोक पर टीका
अयम इति कप्पट्टो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कप्पट्टकुरा का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और विपस्सी (बुद्धों) के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन संयोगवश उन्हें विनता नामक नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठे भगवान बुद्ध के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और केतका पुष्प अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावती में एक दरिद्र परिवार में पुनर्जन्म लिए; जब तक वह वयस्क नहीं हो गया, आजीविका का कोई अन्य साधन न जानते हुए, वह एक फटे पुराने वस्त्र (कप्पटखंड निवासनो) में लिपटा रहता था और हाथ में प्याला (सेराव) लिए उबले हुए चावल की तलाश में इधर-उधर भटकता रहता था; इसी कारण वह कप्पटकुरा के नाम से जाना जाता था। वयस्क होने पर वह घास बेचकर अपना जीवन यापन करता था। एक दिन घास काटने के उद्देश्य से वह जंगल गया, जहाँ उसकी मुलाकात एक अरहंत से हुई, जो रोगों से मुक्त था। उसने उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया। थेरा ने उसे धर्म का उपदेश दिया। धर्म का उपदेश सुनकर उसने उचित श्रद्धा प्राप्त की और भिक्षु बन गया। उसने कहा, "इस कठिन आजीविका से मुझे क्या लाभ है?" और उसने अपने गंदे वस्त्र को एक स्थान पर फेंक दिया। जब भी उसे कोई क्रोध आता, तो उस पुराने वस्त्र को देखकर उसका क्रोध दूर हो जाता था। उन्हें उचित पश्चाताप हुआ। इस प्रकार करने के कारण वे सात बार भिक्षु-बहुल हो गए: भिक्षुओं ने उनके बारे में यह बात भगवान बुद्ध को बताई। फिर एक दिन, भिक्षु कप्पटकुरा धर्म की चर्चा के लिए सभाघर में श्रोताओं के सबसे दूर वाले छोर पर बैठे थे; भगवान बुद्ध ने उन्हें प्रेरित करने के लिए दो श्लोक कहे:

199. “यह भिक्षु कप्पटकुरा, पीड़ादायक

(अच्छय) और अतिभारित (अतिभारितय)

कहती है: 'यह मेरी गंदी पोशाक है'। मेरी

अमृत का जार (अमातागाहिका), वह है

अच्छे सत्य के प्रति लापरवाह (matto)

(धम्म), ध्यान विकसित करने के लिए (ओचेतुं)

प्रक्रिया (कटपदम्) पूरी करने के बाद।

200. “सचमुच, हे गंदे वस्त्र! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए

अस्थिर रहो; मुझे तुम्हें पास से हराने मत दो

आपका कान। वास्तव में, हे कप्पटा, आपने ऐसा नहीं किया।

माप (मत्ता) को समझना, गतिमान

पादरी वर्ग के बीच में

भिक्षुओं।"

वहाँ ayamiti kappaṭo kappaṭakuro का अर्थ है: भिक्षु कप्पटकुरा इस प्रकार जंगली गलत विचारों से ग्रस्त हैं: “यह मेरा गंदा वस्त्र है; इसे चारों ओर पहनकर मैं किसी न किसी तरह अपना जीवन यापन करता हूँ;” acchāya atibharitāya amataghaṭikāyaṃ का अर्थ है: जब मेरा अमृत का घड़ा (amataghaṭe) इधर-उधर वर्षा करता है, तो इसके द्वारा: “मैं तुम्हें अमरत्व (अमता) प्राप्त करना सिखाता हूँ; मैं सत्य (धम्म) सिखाता हूँ,” “इस संसार में जो घोर अंधकार से भर गया है, मैं अमरत्व (अमता) का ढोल (दुंदुभी) बजाता हूँ,” इत्यादि; इस प्रकार घोषणा (घोषेत्वा) करने के बाद और जब मेरे द्वारा अमर सत्य (धम्ममते) की वर्षा हो रही होती है; katapadaṃ jhānāni ocetuṃ का अर्थ है: लोकीय और अलौकिक ध्यान को संचित (upacetuṃ) और विकसित करने के लिए, सिद्ध मार्ग (katapadaṃ), उचित मार्ग

(magga) के विकास (bhāvanā) के लिए, यही मेरा विधान (sāsanaṃ) है; धम्मकटमत्तो का अर्थ है: इसी प्रकार कप्पटकुरा भी मेरे उपदेशात्मक (शासन) शिक्षा (धम्म) से ऊबकर अपना होश खो बैठा है (अपगतमानसो)। इसलिए, उसे प्रेरित (कोदत्वा) करके, बुद्ध ने "मा खो त्वं कप्पट पचलेनि" से शुरू होने वाला श्लोक कहा, ताकि उसे लापरवाही से उसके निवास स्थान को फिर से दिखाया जा सके, ठीक उसी तरह जैसे किसी चोर को उसकी चोरी की संपत्ति के साथ पकड़ लिया जाता है।

वहाँ, mā kho tvaṃ kappaṭa pacālesi का अर्थ है: हे कप्पटकुरा! मेरे सत्य (धम्म) के उपदेश को सुनने का निश्चय करके बैठ जाने पर, तुम ऊंघना (pacālesi) मत करो, विचलित मत हो, सो मत जाओ। Mā tvaṃ upakaṇṇambi tāḷessaṃ का अर्थ है: मुझे सोते हुए तुम्हारे कान के पास अपने उपदेश (desanāhattha) से तुम्हें चोट पहुँचाने पर मजबूर मत करो। क्योंकि आगे मुझे तुम्हें दुराचार से बचने के लिए सलाह नहीं देनी पड़ेगी, इसलिए तुम्हें उसी प्रकार उचित अभ्यास (paṭipajjāhi) करना चाहिए; यही इसका अर्थ है। Na hi tvaṃ kappaṭa mattamaññāsi Saṅghamajjhambi pacalayamāno का अर्थ है: हे कप्पट! भिक्षुओं के बीच विचरण करते हुए न तो आपने इसकी सीमा और मात्रा पर विचार किया और न ही इतना भी समझा: "यह क्षण, जिसे प्राप्त करना अत्यंत कठिन है, उचित रूप से प्राप्त हुआ है; इस क्षण को व्यर्थ न जाने दें; देखो, अब तुमने क्या खोया है (ते अपराद्धं); इस प्रकार बुद्ध ने आग्रह किया।

जब भगवान बुद्ध ने इन दो श्लोकों के माध्यम से उन्हें कड़ी निंदा करने के बाद प्रेरित किया, तो वे ऐसे पश्चाताप से व्याकुल हो गए जैसे उनकी हड्डियाँ तक छिन्न-भिन्न हो गई हों और जैसे कोई उग्र हाथी सड़क पर उतर रहा हो। उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का निश्चय किया और शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—-

"सर्वोत्तम पुरुषों ने इस पर विचार किया

विनता नदी का किनारा। मैंने देखा

निर्मल बुद्ध, एकमुखी और

अच्छी तरह से रचित।

मैं धर्मनिष्ठ और नेक हृदय वाला था, इसलिए मैंने तब

मैंने श्रद्धापूर्वक मिठाई का अर्पण किया-

बुद्ध को अर्पित किए जाने वाले सुगंधित केतका फूल सर्वोत्तम हैं।

मैंने इसे 91 युग पहले बनाया था।

मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई पुष्प; मैं करता हूँ

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गुरु द्वारा कहे गए उन्हीं दो श्लोकों को दोहराया, जो उनके स्वयं के अरहंत पद की प्राप्ति के लिए प्रेरणा (अंकुसा) बने थे। इसी कारण वह दोहराव उनके अरहंत पद का प्रकटीकरण (अञ्ञा) बन गया।

थेरा कप्पटकुरा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

चौथे अध्याय की टीका पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(161):कुमार-कस्साप

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (161) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
भाग V
161. कुमार-कस्सपा
बुद्ध युग में राजगृह में पुनर्जन्म लेने वाली उनकी माता एक सलाहकार की पुत्री थीं। कुंवारी रहते हुए संसार त्यागने (भिक्षुता ग्रहण करने) के लिए माता-पिता की सहमति न मिलने पर उनका विवाह हो गया और उन्होंने अपने पति से भी भिक्षु दीक्षा लेने की सहमति प्राप्त कर ली, उस समय उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि वे गर्भवती हैं। बाद में जब भिक्षुणियों ने उनकी यह स्थिति देखी, तो उन्होंने देवदत्त से परामर्श लिया, जिन्होंने उत्तर दिया: 'वह सच्ची भिक्षुणी नहीं हैं!' तब उन्होंने दस शक्तियों के स्वामी से परामर्श लिया। उन्होंने यह मामला थेरा उपाली को सौंपा, जिन्होंने सावत्थी में कुछ निवासियों को, जिनमें गृहस्थ संरक्षिका विशाखा भी शामिल थीं, एकत्रित किया और राजा की उपस्थिति में पूर्ण सभा में यह घोषणा की कि भिक्षुणी ने भिक्षु दीक्षा लेते समय गर्भ धारण किया था। भगवान (बुद्ध) ने उनके निर्णय को स्वीकार कर लिया। इसलिए उसने विहार (मठ) में अपने बच्चे को जन्म दिया, जो सोने की मूर्ति के समान एक बालक था। राजा ने उसका पालन-पोषण किया और बाद में उसे भिक्षु संघ में शामिल होने के लिए भगवान (बुद्ध) के पास ले आया। क्योंकि वह युवावस्था में ही शामिल हो गया था, [1] और जब भगवान (बुद्ध) कहते थे, 'कस्सपा को बुलाओ,' या 'कस्सपा को यह फल या बिस्कुट दो,' तो लोग पूछते थे, 'कौन सा कस्सपा?' और अपने शाही पालन-पोषण के कारण, वयस्क होने के बाद भी वह कुमार-कस्सपा के नाम से जाना जाने लगा।

अब जब वे अंतर्दृष्टि प्राप्त करने और बुद्ध के वचन सीखने में लगे थे, तब वे अंधकार वन में निवास कर रहे थे। [2] तब एक देव, जिन्होंने उनके साथ केवल पर्वतीय तपस्वी का मार्ग अपनाया था और अनागामी (अनगमी) बनकर शुद्ध लोक में महाब्रह्म (प्रधान देवदूत) के रूप में पुनर्जन्म लिया था, और कुमार कस्सपा को मार्ग और फल प्राप्त करने की विधि बताने का निश्चय किया था। वे अंधकार वन में आए और उन्हें पंद्रह प्रश्न दिखाए जिनका उत्तर केवल भगवान (बुद्ध) ही दे सकते थे। अतः उन्होंने ये प्रश्न भगवान के समक्ष पूछे और उनका उत्तर प्राप्त किया; जिसके बाद अंतर्दृष्टि प्राप्त करके [3] उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

इस पर, भगवान (बुद्ध) द्वारा विविध और बहुमुखी प्रवचन के वरदान प्राप्त लोगों में सर्वोपरि स्थान दिए जाने पर, उन्होंने अपने जीवन की समीक्षा की, और [149] त्रिरत्न (रत्न) के गुणों की प्रशंसा करते हुए, अपनी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[201] अहो बुद्ध अहो धम्म अहो नो सत्थु सम्पदा,॥
यत्थ एतादिसैं धम्मं सावको सच्चिकाहिसी॥ ॥

[202] असान्खयेमु कप्पेसु सक्कयाधिगता आहु॥
Tesamayaŋ pacchiko carimo' yaŋ samussayo,‖
जातिमरणासंसरो नत्थि दानि पुनभभावो ति.॥ ॥

[201] बुद्धों की जय हो, और धम्मों के मार्ग की जय हो। [4] हमारे भगवान (बुद्ध) द्वारा सृजित आनंदमय मार्ग की जय हो,

जिसमें सुनने वाला [नामांकित हो सकता है
और] हमारे जैसे धम्म मार्ग को जान सकता है।

[202] अनगिनत युगों से इसके सदस्य आते रहे हैं,
कभी इस भौतिक शरीर में, कभी उस भौतिक शरीर में पुनर्जन्म लेते रहे हैं।
लेकिन अब उनके लिए यही अंतिम है,
[पांच कारकों का] अंतिम संगम, [5]
पुनर्जन्म और मृत्यु के प्रवाह में।
अब वे फिर कभी अस्तित्व में नहीं आएंगे।

[1] उनके बीसवें वर्ष में (विनय ग्रंथ, i. 229)।

[2] सावत्थी में। इससे बहनों के तीन कथन (गाथा) जुड़े हुए हैं। अगले वाक्य में प्रयुक्त तकनीकी अभिव्यक्तियों के लिए, संकलन, पृष्ठ 91 देखें।

[3] मातृत्व से संबंधित शब्दों से लिया गया एक असाधारण और विचित्र वाक्यांश: विपस्सनाम् गब्बम् गण्हापेत्वा - संभवतः ऊपर वर्णित उनकी माता की पीड़ा के वर्णन की प्रतिध्वनि। थेरा की कहानी अंगुत्तरा निकाय की टीका, i. 24; जातक, i. 148 आदि; और धम्मपद की टीका, iii. 144 आदि में भी बताई गई है। देव के आगमन से उत्पन्न प्रश्न मज्झ., i. 143, 'वम्मीक-सूत्र' में हैं। टीका की एक रोचक विशेषता इसके लेखक धनिमापाल द्वारा अंगुत्तरा निकाय की टीका का संदर्भ है । जहाँ धनिमापाल ' गेहे' लिखते हैं, वहाँ वे आगे कहते हैं: ' अंगुत्तरात्थकथा ' कुलगेहे ' कहती है ' - जैसा कि वास्तव में है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धघोष ने धम्मपाल से पहले लिखा था।

[4] देखें मज्झ., ii. 98, जहाँ संबोधन एकवचन में है। पथ (धम्म) के लिए प्रयुक्त बहुवचन धम्म संभवतः अद्वितीय है। टीका में लिखा है - 'सिद्धांत, नौ लोकुत्तरा धम्मों के साथ।' इनकी गणना पटिसंभिदा (ii. 166) में सात समूहों के रूप में की गई है, जो संकलन , पृष्ठ 179-181 (ag) में दिए गए हैं, साथ ही पथ और फल, और निर्वाण मिलाकर दस हैं।

[5] समुस्सायो। पाँच खंधों का यौगिक, शारीरिक और मानसिक। देखें पृष्ठ 80, नोट 2।

2.5 पांचवां अध्याय

2.5-1 [161] कुमारकसपत्थर के श्लोक पर टीका
अहो बुद्ध अहो धम्म से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुमारकस्सपा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान पद्ममुत्तरा के समय में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया और बुद्धि की आयु प्राप्त की। हालाँकि, अंगुत्तरा निकाय की टीका में इसे इस प्रकार कहा गया है: "कुलगेहे (एक पारिवारिक घर में)।" वह गुरु के समक्ष उपस्थित हुए और जब वे सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनते रहे, तो उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को प्रतिभाशाली शिक्षकों में सबसे आगे स्थान दे रहे हैं। उन्होंने उसी पद के लिए स्वयं को प्रेरित करने का संकल्प लिया, अपनी आकांक्षा के अनुरूप पुण्य कर्म किए, भगवान कस्सपा के समय में भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, अपने बार-बार के जन्मों में उत्कृष्ट जीवन व्यतीत किया और राजगृह में एक धनाढ्य की पुत्री के गर्भ में जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए थे। कहा जाता है कि उस समय भी, जब वह एक युवती थी, वह भिक्षुणी बनने की इच्छुक थी, उसने अपने माता-पिता से अनुमति मांगी, जो उसे नहीं मिली। यद्यपि वह अपने पति के घर (कुलघरं) पहुँच चुकी थी, फिर भी उसे यह ज्ञात नहीं था कि वह गर्भवती हो गई है (गब्भासंठितं), उसने अपने पति को भी वश में कर लिया और उसकी अनुमति से वह भिक्षुणियों में शामिल हो गई। उसकी गर्भावस्था की स्थिति देखकर भिक्षुणियों ने देवदत्त से परामर्श किया (पुच्छिंसु), जिन्होंने उन्हें बताया कि यह एक भिक्षुणी के लिए उचित नहीं है (असमणी)। बाद में उन्होंने यह मामला दशबल के समक्ष रखा (पुच्छिंसु)। गुरु ने तीन उपालि को उचित जाँच करने का आदेश दिया (पटिपुच्छापेसि)। थेरा ने सावत्थी नगर के निवासियों के परिवारों और महिला भक्त विशाखा को बुलवाया (पक्कोसपेट्वा) और राजा सहित उपस्थित लोगों के सामने जाँच करते हुए कहा: “गर्भधारण पूर्ववत था: भिक्षुणी के रूप में उनका त्याग निष्कलंक है (अगोगा)।” गुरु ने थेरा को बधाई देते हुए कहा: “विवाद का उचित निर्णय हो चुका है (सुविनिचितं) (अधिकरणं)।”

उस भिक्षुणी ने एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया जो सोने की प्रतिमा (बिम्बा) के समान था। राजा पसेनादी कोसल ने उसके पालन-पोषण का ध्यान रखा; उन्होंने उसका नाम “कस्सपा” रखा। बाद में, उसे वस्त्र पहनाए गए और सजाया गया, गुरु के समक्ष ले जाया गया और उसे भिक्षु बनाया गया (पब्बाजेसी)। क्योंकि उसे कम उम्र में ही गुरु द्वारा भिक्षु बनाया गया था, इसलिए जब उनसे कहा गया: “कस्सपा को बुलाओ; कस्सपा को या तो यह फल दो या कठोर भोजन दो,” (तो प्रश्न उठा): “किस कस्सपा को?” उत्तर था: “युवा कस्सपा को।” इस प्रकार रखे गए नाम के कारण और राजा द्वारा पाले-पोसे जाने के कारण, बड़े होने पर भी उसे कुमारकस्सपा के नाम से ही जाना जाने लगा।

भिक्षु संघ में शामिल होने के समय से ही उन्होंने केवल आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के कर्म किए; उन्होंने बुद्ध के वचन भी सीखे। फिर एक थेरा, जो उनके साथ एक पहाड़ी की चोटी पर भिक्षु के कर्तव्यों का पालन कर रहे थे, अनागामी (अनागामी) बन गए, और ब्रह्माओं के पवित्र निवास शुद्धवास में एक महान ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने विशेष रूप से पंद्रह प्रश्न तैयार किए और मन ही मन कहा, “मैंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास का द्वार (मुख) दिखा दिया है, और मैं (उनके लिए) मार्ग (मग्गफल) की प्राप्ति का साधन बनाऊंगा।” उन्होंने उस थेरा को, जो उस समय अंधवन में निवास कर रहे थे, यह बताया, “आपको ये प्रश्न गुरु से पूछने चाहिए,” और चले गए। उन्होंने भगवान बुद्ध से वे प्रश्न पूछे। भगवान बुद्ध ने उन्हें व्याख्यात्मक उत्तर भी दिए। थेरा ने उन्हें सीखा, लेकिन गुरु द्वारा सिखाई गई विधि से, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के लिए कक्ष (गब्बम) में प्रवेश किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

“लाखों युग पहले एक उत्पत्ति हुई थी

पदुमुत्तरा नामक नेता, जो एक

नायक, संपूर्ण विश्व का कल्याणकारी।

मैं उस समय एक ब्राह्मण था, लोकप्रिय था, और कुशल था।

वेदों में: मैं दुनिया के नेता से मिला

अपने दिनों में भटकते हुए, प्रकट करते हुए

चार आर्य सत्य, जो ज्ञान प्रदान करते हैं

विश्व के साथ-साथ दिव्य जगत। (मैंने देखा)

इसके अलावा) बहुत से लोग सबसे आगे वाले की प्रशंसा कर रहे हैं

सभी विविध शिक्षकों (vicittakathikānaggaṃ) के।

तब प्रसन्न मन से मैंने तथागत को आमंत्रित किया।

पंडाल को टुकड़ों से सजाने के बाद

विभिन्न रंगों से रंगे हुए कपड़े।

उस समय, वहाँ मैंने स्वामी जी का सत्कार किया।

अपने भिक्षु पुरोहितों के साथ भोजन लेकर,

अनेक रत्नों से जगमगाता हुआ।

सात दिनों तक विभिन्न प्रकार के बेहतरीन भोजन परोसे गए।

स्वादों के लिए, मैंने अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

फूल, बुद्ध के साथ विभिन्न प्रकार से रंगीन

उनके शिष्यों के साथ और स्वयं गिर जाने के बाद

मैंने अपने गुरु के चरणों में (पादमूल में) अपने प्राण त्याग दिए।

उस पद के लिए आकांक्षा।

तब, उस श्रेष्ठ ऋषि ने, अपने निवास स्थान पर,

अद्वितीय दया (करुणेकरसासयो) ने कहा: देखो

यह उत्कृष्ट ब्राह्मण (दीजा), कमल के साथ-

जैसे मुख (आनना) और आँख (लोचना), बहुत अधिक

अपने पतले कमर वाले शरीर के साथ जोश और उल्लास से भरपूर।

उचित ऊंचाई तक उठना (समुग्गततनुरुहं),

विस्तृत आँखों (visālakkhaṃ) से जुड़ा हुआ

खुशी से, अपनी तीव्र इच्छा से (लालासा),

जो मेरे चरणों में गिर पड़ा है, जो

अच्छे विचारों वाला, एक ही वस्त्र पहने हुए; यह

हर कोई मुखिया के उस पद की आकांक्षा रखता है।

अपने लिए विभिन्न प्रकार के शिक्षक,

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

दुनिया में ऐसा हो जाएगा

गोतमा नाम के गुरु, कुल-

ओक्काका परिवार का वसंत।

वह शिक्षाओं का उत्तराधिकारी होगा।

(धम्मेसु दयादो), एक प्रिय पुत्र, बनाया गया

धम्म द्वारा, गुरु के एक शिष्य द्वारा

कुमारकस्सपा नाम दिया गया।

वह मुखिया का पद प्राप्त करेगा

विविध शिक्षकों और पहनने वालों

विभिन्न प्रकार के फूलों से बने वस्त्र, इस कारण

रत्नों का भी (रतननांचवहेसा)।

उस कार्य के लिए, बहुत बढ़िया!

अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प से, मैं गया

तावतिंसा (स्वर्ग) में त्याग करने के बाद

मानव शरीर।

मैंने बड़े और छोटे, हर तरह के जीवन के उतार-चढ़ाव देखे।

उसके केंद्र में एक नर्तक के समान

रंगमंच (रंग)। मैं का पुत्र बन गया।

सखलीर गर्भ में अवतरित होकर

एक मादा हिरण का।

जिस समय मैं अपनी माँ के पास पहुँचा था

गर्भ, वज्झवारो (जिसकी मृत्यु होने की बारी हो)

उपेक्षित (upaṭṭhito)।

मेरी माता साखा शरण लेने के लिए निग्रोधा पहुंचीं।

उस हिरण-राजा के कारण, वह पूरी तरह से

हिरण-राजा मृत्यु से बच गया

उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह से बलिदान कर दिया; (मेरी माँ)

फिर उन्होंने मुझे इस प्रकार सलाह दी।

निग्रोधा की ही सेवा करनी चाहिए;

साखा के पास एक साथ नहीं रहना चाहिए;

(उपस्थिति में) मरना बेहतर है

निग्रोधा में रहने की तुलना में (निग्रोधा में) रहना बेहतर है।

(साखा की उपस्थिति)

उस नेता द्वारा निर्देशित (अनुसिट्ठा)

हिरणों के झुंड में से, मेरी माँ और मैं,

इसी प्रकार अन्य हिरण भी वहां रहने आ गए थे।

आनंदमय दिव्य तुसिता में भी मानो

अपने घर से दूर चले जाना।

फिर जब होरोइक काल की व्यवस्था

बुद्ध कस्पा गायब हो रहे थे (अत्थमेति)

मैं एक पहाड़ी (सेला) की चोटी पर चढ़ गया और

मैंने स्वयं को शासन (सासन) में लगा दिया।

मैं एक बैंकर के परिवार में पैदा हुआ था।

राजगृह। यद्यपि वह गर्भवती थी (आपन्नसत्ता),

मेरी माँ बेघरों के संगठन में शामिल हो गईं।

भिक्षुणी। जब भिक्षुणियां (भिक्खुनी) आईं

उसे गर्भावस्था के बारे में जानने के लिए, उन्होंने नेतृत्व किया

उसे देवदत्ता के सामने ले जाया गया, जिसने उसे सलाह दी।

उन्हें यह कहकर उसे बर्बाद करने के लिए कहा: "यह एक दुष्ट

नन।"

अब, संप्रभु द्वारा सहानुभूति प्राप्त करना भी एक समस्या है।

ऋषियों में से, विजेता, मेरी माता ने जन्म दिया

मुझे भिक्षुणी आश्रम में रहना बहुत अच्छा लगता है।

पृथ्वी के शासक कोसल ने आकर

इसके बारे में जानने से मेरा पालन-पोषण हुआ; मैं कस्सपा हूँ।

नाम से क्योंकि उसकी देखभाल की जाती थी

एक राजकुमार।

महाकस्सप को धन्यवाद, मैं कुमारकस्सप हूं।

मेरे शरीर के समान होने के बारे में सुनकर

मेरे मन में, बुद्ध द्वारा बताए गए अनुसार, चींटियों का टीला है।

मुक्त हो गया, हर चीज से अनासक्त हो गया

इसके परिणामस्वरूप सम्मान।

मेरी उम्मीद की शुरुआत को दबा दिया।

(पायासिं) मैंने यह सर्वोपरि प्राप्ति की

स्थिति (etadagga).

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंतत्व प्राप्त करने और एक बहुमुखी शिक्षक होने के कारण गुरु द्वारा सर्वोच्च स्थान पर रखे जाने के बाद, उन्होंने दो श्लोक कहे, जिसमें उन्होंने तीन रत्नों के गुणों को प्रकट करने के तरीके (मुखेना) से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

201. "बुद्ध अद्भुत हैं! अद्भुत हैं!

उनका उपदेश (धम्म) अद्भुत है!

हमारे स्वामी की समृद्धि, जहाँ

एक शिष्य ने इस प्रकार की कल्पना की।

पारलौकिक प्राप्ति (धम्म)।

202. "युगों की असंख्य श्रृंखलाओं में

(कप्पा) मुझे मेरा शरीर दिया गया था

अस्तित्व में (सक्काया); यह अंतिम है

(पच्चिमाको) उनमें से; यह अंतिम है

(कारिमो) जटिल (समुसायो); गोल

बार-बार जन्म और मृत्यु के रूप में

अब किसी नए अस्तित्व का अस्तित्व नहीं है।"

वहाँ, अहो का अर्थ है: विस्मय के भाव में एक अविभक्ति कण। बुद्ध का अर्थ है: सर्वज्ञ बुद्ध: सम्मान के प्रतीक के रूप में बहुवचन में कहा गया है; आत्मजागृत बुद्ध अद्भुत और विस्मयकारी होते हैं; यही अर्थ है। धम्म का अर्थ है नौ पारलौकिक सत्य (धम्म) और साथ ही तीन प्रामाणिक पिटक (परियत्ति धम्म)। अहो नो सत्थुसम्पदा का अर्थ है: हमारे गुरु, दशाबल की समृद्धि (संपत्तियो) अद्भुत है। यत्थ का अर्थ है: उस गुरु की उपस्थिति में पवित्र जीवन (ब्रह्मचरियवास) के माध्यम से। एतादिसं धम्मं, सावको सच्चिकाहिति का अर्थ है: शिष्य भी, अर्थात्, शांतिपूर्ण, उच्च कोटि के पारलौकिक सत्य (धम्म) का दर्शन करेगा, जो दुराचार के पूर्ण विनाश का प्रवर्तक है; अतः, क्योंकि वे इस प्रकार वर्गीकृत (एवंविध) विशिष्ट गुण (गुणविशेष) की प्राप्ति का कारण बने हैं, बुद्ध, भगवान, अद्भुत हैं; सत्य (धम्म) के गुण अद्भुत हैं; हमारे गुरु की अपार समृद्धि अद्भुत है; इस प्रकार, उन्होंने तीन रत्नों के उच्चतर मुक्ति (गुणधिमुक्ति) के गुण को प्रकट किया। वास्तव में, सत्य (धम्म) की समृद्धि की घोषणा के माध्यम से भिक्षुओं के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) की घोषणा हो जाती है (कित्तिता)।

इस प्रकार, सत्य (धम्म) के दृश्य-दर्शन का सामान्य रूप से उल्लेख किया गया है और अब स्वयं को संदर्भित करते हुए, उन्होंने “असंखेय्येषु” से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। यहाँ असंखेय्येषु का अर्थ है वे महान युग (महाकप्प) जो संख्यात्मक गणना के मार्ग से गुजरे। सक्काया का अर्थ है पाँच आसक्त समुच्चय (उपादानखंड)। वास्तव में, इन्हें 'सक्काया (वर्तमान शरीर)' कहा जाता है, क्योंकि ये परम अर्थ के दृष्टिकोण से वर्तमान अवस्था (धम्म) का संग्रह (समुह) हैं। आहूत का अर्थ है: बिना विदा हुए ही अस्तित्व में आ जाना, क्योंकि उन्होंने पीछे हटने के साधन (निवत्तनूपाया) प्राप्त नहीं किए हैं। तेसामयं पच्चिमको, करिमोऽयं समुस्सयो का अर्थ है: क्योंकि यह सब का अंतिम है, इसलिए इसके बाद भी यही अंतिम है; अतः जातिमरण संसारो का अर्थ है: जन्म और मृत्यु के साथ बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों का चक्र, जिसे सन्नितो (कन्ध) से शुरू होने वाली उपयुक्त श्रृंखला कहा जा सकता है; पुनाबवो नत्थि का अर्थ है: अब, भविष्य में किसी नए अस्तित्व के अभाव के कारण, यह अंतिम जन्म है; इस प्रकार, यही अर्थ है।

थेरा कुमार कस्सपा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(162):धम्मपाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (162) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
162. धम्मपाल
भगवान (बुद्ध) के निधन के बाद, इस बुद्ध युग में, अवंती राज्य में [1] एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम धम्मपाल रखा गया। जब वे तक्कासिला से लौट रहे थे, जहाँ उनकी स्कूली शिक्षा समाप्त हो गई थी, तो उन्होंने रास्ते में एक थेरा को एक कुटिया में देखा, [2] और उनसे धम्म के मार्ग के बारे में सुनकर, उन्होंने विश्वास किया और संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया) छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की।

अब, जब वह अपनी उपलब्धि के आनंद में लीन थे, तभी दो नौसिखिए विहार में एक पेड़ पर फूल तोड़ने चढ़े और एक शाखा टूटकर वे गिरने लगे। उन्हें देखकर थेरा ने उन्हें अपने हाथ से पकड़ लिया और अपनी [150] इद्धि-शक्ति [3] से उन्हें बिना किसी चोट के जमीन पर उतार दिया। और उन्होंने उन्हें उपदेश देते हुए कहा:

[203] यो हवे दाहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने,॥
जागारो पतिसुत्तेसु अमाघं तस्स जीविता:॥ ॥

[204] तस्मा सद्धाञ्च सिलाञ्च पसादं धम्मदस्सनां,॥
अनुयुन्जेथा मेधावी सरं बुद्धं ससानं' ति.॥ ॥

[203] वह भिक्षु जिसने युवावस्था में ही स्वयं को
बुद्ध की योजना को पूर्णतः पूरा करने के लिए समर्पित कर दिया है,
जो सोई हुई दुनिया में जागता रहता है,
वह व्यर्थ में नहीं, व्यर्थ में अपने दिन व्यतीत नहीं करता।

[204] अतः ज्ञानी पुरुष, जो
बुद्धों के उपदेशों को याद रखता है,
अपने आप को आस्था और धर्म के प्रति समर्पित करे,
ताकि वह उस आशीर्वाद को जान सके जो वे हमारे लिए लाए हैं,
और पवित्र मार्ग (धम्म) के सच्चे दर्शन को जान सके। [4]

[1] बंबई के ठीक पूर्व या उत्तर पूर्व का देश। देखें बुड. भारत, पृ. 28.

[2] एकस्मि" विहारे। सी एफ संवाद, ii. 4, एन. 1.

[3] संकलन, पृ. 60 आगे, '209.

[4] इन दो पंक्तियों का शाब्दिक पाली दो बहुत ही अर्थपूर्ण शब्द हैं pasādaṃ (राहत, संतुष्टि, विश्वास व्यक्त करना) और dhammadassanaṃ (धम्म में या उसके माध्यम से अंतर्दृष्टि)।

2.5-2 [162] धम्मपालत्थेरा के श्लोक पर टीका
यो हवे दहारो भिक्खु (भिक्षु) से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा धम्मपाल का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, भगवान अत्थदस्सी के समय एक परिवार में पुनर्जन्म हुआ; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे किसी कार्य से वन की ओर गए, संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, वे धर्मपरायण हो गए और उन्हें लहरदार पत्तों वाले अंजीर के फल अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और इस वर्तमान बुद्ध के प्रकट होने के बाद, जब गुरु परिनिर्वाण में प्रवेश कर गए, तब अवंती राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुआ; धम्मपाल नाम प्राप्त करने के बाद, वे तक्कासिला गए। वयस्क होने पर, उन्होंने कलाओं की शिक्षा प्राप्त की और घर लौटते समय, रास्ते में एक मठ में, एक थेरा से मिले। उन्होंने थेरा की उपस्थिति में उनके सत्य (धम्म) के उपदेश सुने, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर विकास किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"बुद्ध अत्थादस्सी को देखने वाले ने

मैंने पूरी तरह से प्रसिद्ध अंजीर का फल पेश किया,

धर्मपरायण और नेक हृदय वाला।

यह अठारह सौ युग (कप्पा) था।

बहुत पहले, जब से मैंने अपना चढ़ावा चढ़ाया था

फल; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फलों में से।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, वे ध्यान की प्राप्ति के आनंद में लीन रहते थे, तभी एक दिन उन्होंने उस मठ में दो नौसिखियों (सामणर) को फूल तोड़ने के लिए पेड़ की चोटी पर चढ़ते समय उसकी एक शाखा टूटने से गिरते हुए देखा। थेरा ने अपनी जादुई शक्ति से उन्हें अपने हाथ से पकड़ लिया, उन्हें बिना किसी चोट के जमीन पर रख दिया और उन नौसिखियों (सामणर) को सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए ये श्लोक कहे:—

203. "जो भी युवा भिक्षु ऐसा करता है, निश्चित रूप से,

स्वयं को व्यवस्था में संलग्न करना

बुद्ध का (शासन); वह जागृत भिक्षु,

वास्तव में, जो सो रहे हैं उनमें से

(सुत्तेसु), उसका जीवन व्यर्थ नहीं है।

204. अत:, हे बुद्धिमान लोगो! स्मरण करते हुए

बुद्धों का उपदेश (सासनम्)

आपको अपने आप को धार्मिक वस्तुओं से सुसज्जित करना चाहिए

विश्वास, नैतिक उपदेश और स्पष्ट दृष्टि

सत्य (धम्म)।

यहाँ, यो का अर्थ है अनिश्चित कथन। हैव का अर्थ है दृढ़ता (दलहत्था) के अर्थ में एक अविकारी कण। दहारो का अर्थ है कोमल (तरुणो)। वह भिक्षा मांगता है; इस प्रकार, वह भिक्षु है। युंजति का अर्थ है: वह प्रयास करता है, वह मेहनत करता है। जागरो का अर्थ है: जागृति के कर्म (धम्म) से युक्त होना; सुत्तेषु का अर्थ है जो सो रहे लोगों के बीच है। यह कहा गया है:— यो भिक्खु (भिक्षु) दहारो का अर्थ है: वह भिक्षु जो कोमल (तरुणो) है और इस प्रकार नहीं सोचता: "इसी प्रकार मैं बाद में बड़ा होकर जान जाऊँगा।" sāsane yuñjati का अर्थ है: वह स्वयं को बुद्धों के शासन (शासन) में उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के लिए शांत (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (भावना) के लिए समर्पित (योगं करोति) करता है। Suttesujāgaro का अर्थ है: जो लोग अज्ञान (अविज्जानिद्दा) की नींद में सो रहे हैं, उनमें वह सद्धा (धर्म) आदि जैसे जागृति (जागरा) के कर्मों (धम्म) से संपन्न होकर जागृत होता है। amogham̩ tassa jīvitam̩ का अर्थ है: उसका जीवन निष्फल (avañjham̩) नहीं है, बल्कि उस (जागरूकता) के फलस्वरूप वह अपने और दूसरों के

सर्वांगीण कल्याण के लिए है। Tasmā saddhañ ca sīlañ ca का अर्थ है: क्योंकि यह इस प्रकार है, इसलिए कर्मफल (kammaphala) में पवित्र विश्वास, इस प्रकार घटित होने का तरीका (nayapavattaṃ) इस प्रकार है: "कर्म है, कर्म का फल है," इत्यादि; नैतिक उपदेश (sīla) का उस पर आधारित पवित्र विश्वास (saddhā) से घनिष्ठ संबंध होने के कारण ही चार सर्वांगीण शुद्ध उपदेश हैं। Pasādaṃ का अर्थ है; "परमेश्वर पूर्णतः आत्म-जागृत बुद्ध (सम्मासंबुद्धो) हैं, सत्य (धम्म) का पूर्णतः उपदेश (स्वखातो) दिया गया है, पुरोहित उचित अभ्यास (सुप्पतिपन्नो) से परिपूर्ण हैं, इस प्रकार तीनों रत्नों का स्पष्ट दर्शन हुआ है; धम्मदस्सनं का अर्थ है: सर्वांगीण ज्ञान (परिञ्ञा) के माध्यम से चार आर्य सत्यों का दर्शन, इत्यादि, जो आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) से जुड़े मार्ग के ज्ञान (मग्गपञ्ञा) के माध्यम से होता है। मेधावा का अर्थ है: सत्य के सार (धमोजा) के ज्ञान से संपन्न भिक्षु; बुद्धानं शासनं का अर्थ है: बुद्धों की सलाह और शिक्षाओं को निरंतर स्मरण करना और जलने पर भी अपने सिर पर समभाव बनाए रखना; अनुयुञ्जेत का अर्थ है निरंतर भक्ति करना। (अनुयोगम्) और वहाँ कठोर प्रयास; यही अर्थ है।

थेरा धम्मपाल के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(163):ब्रह्माली

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (163) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
163. ब्रह्माली
बुद्ध युग में कोसल राज्य में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम ब्रह्माली रखा गया। वयस्क होने पर, जन्म की शर्तों की पूर्ति से प्रेरित होकर, निरंतर चक्र के कारण उन्हें व्यथा कष्ट हुआ और आध्यात्मिक मित्रों के साथ संगति करने से उन्होंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और वन में साधना करने चले गए। अपने ज्ञान की परिपक्वता से उन्होंने शीघ्र ही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्चतर ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) अर्जित की।

इसके बाद, मार्ग के आनंद में लीन होकर, सर्वव्यापी प्रयास में पारंगत थेरा ने एक दिन उस जंगल में स्थित भिक्षुओं की ओर से प्रयास के प्रति समर्पण के विषय में ये श्लोक कहे:

[205] कसिन्द्रियानि समथाङ्गतानि॥
अस्स यथा सारथिना सुदंता॥
पाहिनामनस्सा अनासवस्सा॥
देवापि मयहं पिहयंति तादिनो ति.॥ ॥

[206] महिन्द्रियाणि समथाङ्गतानि॥
अस्स यथा सारथिना सुदंता॥
पाहिनामनस्सा अनासवस्सा॥
देवापि मयहं पिहयंति तादिनो ति.॥ ॥

[205] जिनमें इंद्रियों को शांत कर दिया गया है,
जैसे सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़े,
जिनमें कोई व्यर्थ अभिमान नहीं पाया जाता है, और न ही
विषैले धुएं का कोई अंश शेष रहता है, ऐसा व्यक्ति
देवताओं में भी ईर्ष्या उत्पन्न कर सकता है।

[206] [151] मुझमें इंद्रियाँ शांत हो गई हैं,
जैसे सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़े,

मुझमें कोई व्यर्थ अभिमान नहीं पाया जाता, न ही
विषैले धुएं का कोई अंश शेष रहता है; - मुझ जैसा व्यक्ति
देवताओं में भी ईर्ष्या उत्पन्न कर सकता है। [1]

[1] पहली गाथा धम्मपद, छंद 94 में पाई जाती है, जो बुद्ध द्वारा महा कक्का[या]ना के संबंध में टिप्पणी (ii 176 एफ.) के अनुसार बोली गई है। सी.एफ. नीचे। CCXXIX.

2.5-3 [163] ब्रह्मलित्तेर के श्लोकों पर टीका
कसिंद्रियानी समथांगतानी स अथांगतानी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा ब्रह्माली का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और विपस्सी (बुद्ध) के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा। वे श्रद्धा से भर गए, उन्हें प्रणाम किया और पादफल अर्पित किए। गुरु ने धन्यवाद कहा और चले गए। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्रों में विचरण किया, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कोसल राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। ब्रह्ममाली नाम प्राप्त करने और बुद्धि की आयु प्राप्त करने के बाद, अपने कर्मों की समृद्धि (हेतुसंपत्ति) से प्रेरित होकर, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों (संसार) के कारण पश्चाताप करने लगे, बुद्ध के मार्ग पर चलने वाले भिक्षु बन गए, अपने जैसे अच्छे मित्रों (सन्निस्सय) से अच्छे संबंध होने के कारण, उन्होंने उपयुक्त मानसिक अभ्यास (पतिरूपकम्मट्ठान) को अपनाया, वन में निवास करते रहे, अपने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता प्राप्त करने के कारण आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि करते रहे और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान वाले अरहंत बन गए। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“मैंने पाड़ा फल (पदफला) अर्पित किया

स्वर्ण रंगत वाले आत्मजागृत व्यक्ति के लिए

बुद्ध, योग्य प्राप्तकर्ता

बलि चढ़ाना, प्रवेश करना

रथ मार्ग।

यह इक्यावन युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, वे सही मार्ग (मग्ग) के आनंद और फल (फल) की प्रसन्नता में समय व्यतीत कर रहे थे, तभी एक दिन उन्होंने दो श्लोक कहे, जिसमें उन्होंने उस वन क्षेत्र में भिक्षुओं के संदर्भ में एक थेरा द्वारा कहे गए कठिन परिश्रम (पधाना) के निमंत्रण (पधानानुयोगं परिग्गणहन्तो) को स्वीकार किया, जो स्वयं कठिन परिश्रम (पधाना) में लीन थे:—-

205. “नियंत्रण करने वाली क्षमताएँ किसकी थीं?”

(इन्द्रियानी) जो शांत हो गया था

घोड़ों के समान संयम (समथा)

जिसे अच्छी तरह से वश में कर लिया गया था

सारथी? ऐसा कौन है जिसके पास

जिसने अहंकार त्याग दिया हो, जो घावों से मुक्त हो, जिसे

क्या देवी-देवता भी प्रिय होते हैं?

206. मेरी नियंत्रण क्षमताएँ (इन्द्रियानी)

शांत अवस्था (समथा) में पहुँच गया था

अच्छी तरह से पालतू बनाए गए घोड़ों के समान

सारथी। यहां तक कि दिव्य प्राणी भी प्यार करते हैं।

मुझ जैसा व्यक्ति, जिसका अभिमान

दूर हो गया और जो मुक्त हो गया

घाव।

इसका अर्थ:—- वन क्षेत्र में रहने वाले भिक्षुओं में, कस्स: जिसका, चाहे वह थेरा हो, वरिष्ठ हो, नव-नवजात कनिष्ठ हो या मध्य श्रेणी का हो, सारथिना अस्स यथा का अर्थ है: एक चतुर सारथी द्वारा अच्छी तरह से प्रशिक्षित घोड़ों के समान; इंद्रियानि समथं गतानि का अर्थ है: मन को छठी इंद्रिय मानकर छह इंद्रियों (मनच्छत्थानि) को वश में कर लिया गया है और वे नम्रतापूर्वक सौम्य हो गई हैं; पहीनमणस्स का अर्थ है: जिसका नौ प्रकार का अभिमान (विधा) त्याग दिया गया था और जिसके कारण वह इस प्रकार खड़ा था: अनासवस्स का अर्थ है: चार प्रकार के दोषों की अनुपस्थिति के कारण दोषों से मुक्त। tādino devāpi pihayanti का अर्थ है: जिसने वांछनीय गुणों को प्राप्त किया है, और इसी प्रकार (iṭṭhādīsu tādilakkhaṇappattiyā), मनुष्य और दिव्य प्राणी भी उससे प्रेम करते हैं और आदरपूर्वक (ādarenapatthenti) उसकी उचित साधना को दर्शाने वाले हाव-भावों के माध्यम से उसकी कामना करते हैं (paṭipatti)।

वहाँ, श्लोक में, पूर्व भाग के माध्यम से अनागामी मार्ग (अनगामीमग्गीधिगमो) की प्राप्ति का प्रश्न किया गया है; वास्तव में, अनागामी (अनगामी) की इंद्रियाँ (इन्द्रियानी) भी कामुक सुख (कामराग) और द्वेष (ब्यापाद) का त्याग करने के कारण शांत और सौम्य हो जाती हैं; पश्चात (भाग) के माध्यम से, अरहंत पद (अरहन्तमग्गपटिलाभो) की प्राप्ति का उचित मार्ग होता है; वास्तव में, अरहंत को “पहीनमनो अनासवो तादि (ऐसा दोषरहित जिसने अहंकार का त्याग कर दिया हो)” कहा गया है।

तब पूज्य ब्रह्मली ने उस बात के उत्तर में एक श्लोक कहा, जो थेरा द्वारा कही गई थी: “कस्सिंद्रियानि (जिनकी इंद्रियाँ)”, जो परिश्रमपूर्वक साधना कर रहे थे। उन्होंने दूसरे श्लोक के माध्यम से, जो “मयहिन्द्रियानि” से शुरू होता है, अपने अर्हंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया, जिसमें उन्होंने स्वयं का उल्लेख करते हुए उस प्रश्न का उत्तर दिया। यहाँ, मयहिन्द्रियाहि का अर्थ है: मेरी ऐसी इंद्रियाँ (इन्द्रिय) जैसे आँखें इत्यादि। शेष उसी प्रकार है जैसा कहा गया है।

थेरा ब्रह्माली के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(164):मोगराजन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (164) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
164. मोगराजन
बुद्ध युग में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, मोगराजन [1] नाम से जाने जाने वाले , उन्होंने ब्राह्मण (पुजारी) बावरिया के अधीन अध्ययन किया। दुखी होकर वे तपस्वी बन गए। वे सोलह शिष्यों में से एक थे, जिनमें अजित और अन्य शामिल थे, जिन्हें बावरिया ने भगवान (बुद्ध) से मिलने के लिए भेजा था। [2] जब मोगराजन ने अपना प्रश्न पूछा और उसका उत्तर प्राप्त किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

इसके बाद उन्होंने कारवां वालों, दर्ज़ियों और रंगसाज़ों द्वारा फेंके गए खुरदुरे कपड़े पहनकर ख्याति प्राप्त की। इसी कारण भगवान (बुद्ध) ने उन्हें ऐसे खुरदुरे कपड़े पहनने वालों में प्रथम स्थान दिया [उन्होंने इस प्रकार अपनी उस आकांक्षा को पूरा किया जो उन्होंने कई युग पहले की थी]। [3]

एक बार, लापरवाही और पूर्व कर्मों के फलस्वरूप, उसके शरीर पर फुंसी और इसी तरह की समस्याएँ उभर आईं और बढ़ने लगीं। यह समझते हुए कि उसका आवास संक्रमित हो गया है, उसने मगध के खेतों में पुआल का पलंग बिछाया और वहाँ, यद्यपि वह शीत ऋतु थी, उसने निवास किया। एक दिन [152] भगवान (बुद्ध) की सेवा करते हुए और उन्हें प्रणाम करते हुए, बुद्ध ने शिष्टाचारवश निम्नलिखित श्लोक में उनसे पूछा:

[207] चविपापक [27] चित्तभङ्गुक॥
मोघराजा सतातं समाहितो,॥
हेमन्तिकासीतकलारत्तियो॥
भिक्खु त्वअसि कथां करिस्सासि॥ ॥

[208] सम्पनसस्सा मगध केवला इति मे सुताm,॥
पल्लाच्चन्नको सेय्यं यथान्ने सुखजीविनो ति.॥ ॥

[207] हे मोगराजन, हे त्वचा-पीड़ित,
हे धन्य हृदय वाले और सदा शांत रहने वाले,
जब सर्दियों की रातें ठंडी होती हैं,
और तुम एक गरीब भिक्षु हो, तो तुम कैसे गुजारा करोगे?

[208] इस प्रकार पूछे जाने पर, थेरा ने भगवान (बुद्ध) को मामला समझाया:
मगधियों के अनाज के खेत समृद्ध हैं, [4] और मैंने सुना है कि वे सभी फल-फूल रहे हैं।
मेरी छोटी सी घास-फूस से बनी छतरी
दूसरों के आराम पाने के तरीके से बेहतर थी।

[1] यह विचित्र नाम (= निरर्थक राजा) कहीं भी स्पष्ट नहीं किया गया है। साम्य. निक., i. 23 में इस नाम से वर्णित व्यक्ति एक देव प्रतीत होता है , लेकिन मिलिंदा, ii. 359 में मोगराज-थेरा द्वारा रचित एक श्लोक इस कैनन में शामिल नहीं किया गया है।

[2] देखें सुत्त-निपाता, श्लोक 976 1031, 1116-1119। सी एफ XX (अजिता), और विविध 'बावरी,' 'बावरिया-ब्राह्मणो' भी।

[3] एंग. निक., आई. 25.

[4] मगध के बड़े मैदानों पर मेरी 'उत्तरी भारत में प्रारंभिक आर्थिक स्थितियाँ,' जे.आर.ए.एस., 1901, पृष्ठ 860 देखें। खेत्ता, सामूहिक एकवचन, यहाँ खेत्तानी हो गया है, लेकिन पृष्ठ 153 देखें ।

2.5-4 [164] मोगराजथेरा के श्लोक पर टीका
चविपापकचित्तभद्दका से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मोगराज का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने के बाद, उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनते रहे, एक दिन, गुरु की उपस्थिति में, उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को फटे-पुराने वस्त्र (लूख चीवर) धारण करने वालों में सबसे आगे स्थान दे रहे हैं; उस पद की कामना करते हुए, उन्होंने संकल्प लिया, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करते रहे, ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, भगवान अथदस्सी के समय में, ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की, और ब्राह्मण युवाओं को कलाओं और विज्ञानों की शिक्षा दे रहे थे, तभी एक दिन उन्होंने भगवान अथदस्सी को भिक्षुओं से घिरे हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए, पांच पृथ्वी स्पर्श (पंचपतिठित) की मुद्रा में प्रणाम किया, अपने जुड़े हुए हाथों को अपने सिर पर रखा, विशेष रूप से "यावतारूपिनो सत्था" से शुरू होने वाले छह श्लोकों के माध्यम से गुरु की स्तुति की, कटोरा (भजन) भरा और उन्हें शहद अर्पित किया।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और भगवान कस्सपा के समय में कट्थवाहन नामक राजा के मंत्री बने; उस राजा द्वारा एक हजार पुरुषों के साथ गुरु को लाने के लिए भेजे जाने पर, वे गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, बीस हजार वर्षों तक भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, वहां से चले गए, अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्रों में उत्कृष्ट अस्तित्व में विचरण किया, एक बुद्ध और दूसरे बुद्ध के बीच की अवधि (बुद्धंतर) के लिए, और एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का उदय हुआ; मोगराज नाम प्राप्त करने के बाद, उन्होंने ब्राह्मण बावरी की उपस्थिति में ब्राह्मण विद्या (उग्घितसिप्पो) का ज्ञान प्राप्त किया, पश्चाताप से ग्रस्त होकर संसार त्याग कर संन्यासी बन गए, और अजित आदि के साथ गुरु के समक्ष भेजे जाने पर, एक हजार संन्यासियों से घिरे हुए, उन्होंने उनमें से पंद्रहवें संन्यासी के रूप में प्रश्न पूछे और सभी प्रश्नों के उत्तर देकर अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“हे भगवान अत्थादस्सी, स्वयं-

आश्रित और अजेय, चारों ओर से घिरा हुआ

(परिब्युल्हो) भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग, प्रवेश किया

रथ मार्ग पर।

मैं, अपने विद्यार्थियों से घिरा हुआ,

विशेष रूप से मेरे घर से बाहर आया;

वहाँ से बाहर आने के बाद, मैंने देखा कि

विश्व का नेता।

स्वयं को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद-

जागृत बुद्ध, मैंने अपनी मुट्ठी रखी

मैंने अपने सिर पर हाथ रखे; मैंने अपना मन बना लिया था

श्रद्धापूर्वक प्रसन्न होकर, मैंने अपनी प्रशंसा व्यक्त की

विश्व का नेता।

सभी जीवित प्राणी, संख्या में और

इनमें विविधता है क्योंकि इनमें ऐसे जीव शामिल हैं जिनके

रूप से (रूपी) या बिना रूप के (अरूपी) या

बिना बोध (asaññī) के अच्छी तरह से

भीतर विलय (समगधा) (अन्तो)

आपका ज्ञान। चाहे आपके आसपास कोई भी हो।

बारीक जाली वाले (सुखुमच्चिका) पानी

जाल, चाहे उसमें कोई भी जलीय जीव हो

वे सब तुम्हारे जाल में फंस जाएंगे।

जिसके पास भी जागरूकता (चेतना) हो, चाहे

वे रूपयुक्त (रूपिनो) या निराकार होते हैं।

(arūpino), वे सभी अच्छी तरह से विलय हो गए

(समगधा) आपके ज्ञान के भीतर।

आप इसे (समुद्धरसी) अच्छी तरह से खींच लेंगे

दुनिया, अच्छी तरह से परेशान (समाकुलं)

अंधकार; सत्य को सुनने के बाद

आपके द्वारा सिखाए गए (धर्म) का वे पालन करते हैं।

संदेह की धारा के ऊपर।

जब आपका ज्ञान चमकता है

वह संसार जो अज्ञान से घिरा हुआ है

और अंधकार से छिपा हुआ (otthaṭe),

घोर अंधकार छंट जाता है।

आप ही सब कुछ देखने वाले हैं, आप ही सारी समस्याओं को दूर करने वाले हैं।

घोर अंधकार का; आपकी बात सुनकर

सत्य (धम्म) की शिक्षा,

हे पुरुषों के समूह, निर्वाण में प्रवेश करो।

एक छोटे बर्तन को भरकर

इतना साफ शहद, मैंने इसे उठा लिया

मैंने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाए और वही पेशकश की

महान ऋषि को।

महान वीर ऋषि ने मेरी भेंट स्वीकार कर ली।

अपने हाथों से; सर्वज्ञ बुद्ध

मुझे वह शहद पसंद आया और मैं ऊपर चला गया।

हवा को आकाश में।

मास्टर अत्थादस्सी, बैल के बीच

आकाश में खड़े होकर पुरुषों ने ये बातें कहीं।

वे छंद मेरे मन को श्रद्धापूर्वक प्रसन्न करते हैं।

वह व्यक्ति जिसने मेरे ज्ञान की प्रशंसा की थी

और बुद्ध, जो सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनकी प्रशंसा की जाती है, कभी नहीं जाते।

उस धार्मिकता के कारण दुष्ट अस्तित्व की ओर

उसका मन प्रसन्न हुआ।

वह चौदह बार दिव्य शक्ति का प्रयोग करेगा।

संप्रभुता; आठ सौ गुना के रूप में

पृथ्वी का सम्राट, वह निवास करेगा

पृथ्वी (वसुधं अवसिस्सति)।

वह पांच सौ बार बनेगा

वह विश्व-राजा बनेगा और स्वयं को स्थापित करेगा।

पृथ्वी असंख्य लोगों के लिए एक क्षेत्रीय शासक है

अवसर।

मंत्रों का पाठ करने वाले और उन्हें धारण करने वाले के रूप में

तीनों वेदों में पारंगत होने के कारण, वह

भिक्षु बनो

भगवान गौतम।

वह अपने ज्ञान के माध्यम से,

गहन जांच-पड़ताल करना (vicinissati)

सूक्ष्म अर्थ को समझें और शिष्य बनें

उस गुरु का जिसे इस नाम से जाना जाता है

मोघनाजा.

गौतम, प्रमुख कारवां-नेता,

उसे, सबसे आगे के स्थान पर,

तीन गुना महाविज्ञान से संपन्न

(विज्जा), एक अरहंत जो रोगों से मुक्त हो

अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद।

मानवीय बंधनों का त्याग करके (योग)

और जीवन के बंधनों को तोड़ दो,

मैं दोषों (anāsavo) से मुक्त रहता हूँ।

सभी बातों को अच्छी तरह समझने के बाद

घाव।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत बनने के बाद, उन्होंने राग (पंसुकूल) से बने वस्त्र धारण किए, जिनमें तीन प्रकार की कमियाँ थीं: कमज़ोर चाकू (सत्था), कमज़ोर धागा (सुत्त) और कमज़ोर रंग (राजना)। इसी कारण गुरु ने उन्हें कमज़ोर वस्त्र धारण करने वालों में सर्वोच्च स्थान दिया। बाद में, पूर्व में किए जाने वाले कर्मों (पूरिमा) के कारण, थेरा के शरीर पर फोड़े-फुंसी आदि हो गए, क्योंकि उन्होंने अपने शरीर की देखभाल नहीं की थी। मन ही मन यह कहते हुए कि "मठ का अपमान हो रहा है (दुस्सति), वे ठंड के मौसम में भी मगध के खेतों में पुआल बिछाने के बाद सो गए (सेति)। एक दिन गुरु ने, "चविपापक" आदि से शुरू होने वाले पहले श्लोक के माध्यम से, स्वागत वार्ता (पटिसंथारेवसेना) के रूप में, उससे पूछा, जो एक तरफ बैठा था, उनके पास आने और उन्हें प्रणाम करने के बाद, उनकी सेवा करने के लिए।

207. वहाँ, चविपापक का अर्थ है: हे दूषित त्वचा वाले भिक्षु (दुट्ठचविका), घृणित त्वचा वाले, क्योंकि दलदली फुंसियों, फोड़ों आदि से त्वचा फट गई है। चित्तभद्दक का अर्थ है: हे अच्छे मन और अच्छे हृदय वाले! पूर्णतः दुराचार का त्याग करके। मोगराज का अर्थ है उन्हें संबोधित किया गया शब्द। सततममाहितो का अर्थ है: अपने मन को शांत रखते हुए, सर्वदा और निरंतर, सर्वोपरि फल (अग्गफल) पर एकाग्रता (समाधि) बनाए रखकर। हेमंतिकसीतकालारत्तियो का अर्थ है शीत ऋतु में ठंडी रातों के समय; यह कर्म कारक (उपयोगवचनं) में पूर्ण (उच्चारण) संरचना (संयोग) में प्रयुक्त शब्द है। एक ऐसी परीक्षा (पालि) भी है, जैसे: “हेमंतिका सीताकालारत्तियो”। यहाँ हेमंतिका का अर्थ है; शीत ऋतु में विलीन होना, शीत ऋतु में समाहित होना; यही अर्थ है। भिक्खु (भिक्षु) त्वं'सि का अर्थ है: हे भिक्षु! तुम कौन हो? इस प्रकार तुम कैसे बन गए, जबकि अन्य लोगों ने मठ बनाकर तुम्हें भेंट नहीं की और तुम भिक्षुओं के सामान्य मठ (संघिकं सेनासनं) में प्रवेश नहीं कर रहे थे। कथां करिस्ससि का अर्थ है: तुमने अपने शरीर को इतनी ठंडी जलवायु में कैसे जीवित रखा, जैसा कि कहा गया है? गुरु ने यह प्रश्न पूछा। इस प्रकार पूछे जाने पर, थेरा ने गुरु से इस विषय पर चर्चा करने के लिए यह श्लोक कहा:

208. “मगध के सभी लोग पूरी तरह से

फसलों से भरपूर; इस प्रकार मैंने

सुना; मैं भूसे से ढककर सोता हूँ।

अन्य लोगों की तरह ही सुखी जीवन जीने के लिए।

वहाँ, संपन्नसस्सा का अर्थ है: फसलें पूरी कर चुके लोग। मगध का अर्थ है: वह मगध राज्य के बारे में कह रहे हैं; मगध नामक जिले में रहने वाले राजराज; यद्यपि उनका निवास एक ही जिला है, परंपरा (रुल्ह) के अनुसार इसे बहुवचन में केवल "मगध" कहा गया है। केवल का अर्थ है: शेष नहीं। इति मे सुतं का अर्थ है: मैंने इसे इस प्रकार सुना है। वहाँ, जो भी क्षेत्र नहीं देखा गया है, उसके माध्यम से इसे सुना गया है; इस प्रकार कहा गया है। इस कथन से थेरा यह दर्शाते हैं: "मैं इस समय में कहीं भी और हर जगह निवास करने में सक्षम हूँ।" Pelālacehannako seyyaṃ, yathaññe sukhajīvuno का अर्थ है: जिस प्रकार अन्य भिक्षु सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए (sukhajīvino), उपयुक्त मठ प्राप्त करके (senā sanasappāya) उत्तम चादरों और लबादों में आनंदपूर्वक सोते थे; उसी प्रकार, मैंने भी पुआल से ढककर लेटकर सोया, क्योंकि मेरे शरीर को ऊपर और चारों ओर पुआल की चादर से ही ढका गया था, नीचे पुआल बिछाने के बाद; मैंने सोने के लिए अपना बिस्तर बनाया; इस प्रकार, उन्होंने जो कुछ भी प्राप्त हुआ, उसमें अपनी संतुष्टि प्रकट की।

थेरा मोगराजा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (165): पंचाली का पुत्र विशाखा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (165) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
165. पंचाली का पुत्र विशाखा

मगध राज्य में इस बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, एक जिला राजा के पुत्र के रूप में, उनका नाम विशाखा रखा गया। लेकिन क्योंकि वे पंचालों के राजा की पुत्री के पुत्र थे, [1] इसलिए वे बाद में पंचाली के पुत्र के रूप में जाने गए।

अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्हें उनका पद विरासत में मिला, लेकिन जब भगवान (बुद्ध) उनके पड़ोस में आए तो वे उन्हें सुनने गए, विश्वास किया और संसार त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया। उनके पीछे-पीछे सावत्थी जाकर उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) अर्जित की।

इसके बाद, अपने लोगों के प्रति दयालुता दिखाते हुए, उन्होंने अपने पैतृक स्थान का दौरा किया। और जैसे-जैसे लोग उन्हें सुनने आते रहे, एक दिन उनसे पूछा गया: 'हे पूज्यवर, धर्म (धम्म) का उपदेशक बनने के लिए एक व्यक्ति को कितने गुण प्राप्त करने चाहिए?' [153] थेरा ने उन्हें ऐसे व्यक्ति की आवश्यक विशेषता इस प्रकार सिखाई: [2]

[209] ना उक्खीपे नो सीए परिक्खीपे परे॥
न ओक्खिपे परगतां न एराये,।
न चत्तवनं परिसासु ब्याहारे॥
अनुद्धतो सम्मिताभानि सुब्बतो.। ॥

[210] सुसुखुमनिपुणत्थदस्सीना॥
मतिकुसलेना निवतवुत्तिना,॥
संसेविताबुद्धसिलिना॥
निब्बाणं न हि तेन दुल्लभन्ति॥ ॥

[209] उसे घमंड नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों को
नीचा दिखाना चाहिए, न ही उसका तिरस्कार करना चाहिए और न ही
दुनिया पर विजय प्राप्त करने वाले विजेता को परेशान करना चाहिए। [3]
न ही उसे जनता के सामने अपनी प्रशंसा बढ़ानी चाहिए ; उसे [4] संयमी, विनम्र
और वाणी में संयमी और गुणी होना चाहिए।

[210] क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो सत्य को पहचान सके,
चाहे वह कितना भी सूक्ष्म और परिष्कृत क्यों न हो?
जो आध्यात्मिक विकास को मापने में कुशल हो,
फिर भी विनम्र और कोमल मन का हो।
जो जागृत लोगों के नियमों के अनुसार अपना जीवन ढालता हो:
उसके लिए निर्वाण पाना कठिन नहीं है। [5]

[1] एक प्राचीन राज्य, जो कुरुओं के पूर्व में स्थित था, जिसकी राजधानी वह स्थान था जहाँ दिल्ली स्थित है (बहुवचन भारत)। उच्चारण पंचाल।

[2] बुद्ध ने धम्मकथिका में पहला स्थान भिक्षुओं में पुन्ण (IV.), बहनों में धम्मदिन्ना (बहनें, पृ. 17), और गृहस्थों में चित्त को दिया था; फिर भी, उन्होंने विशेष रूप से इस थेरा की शिक्षा की प्रशंसा की (साम. निक., ii. 280; अंग. निक., ii. 51)।

[3] शाब्दिक रूप से, वह जो आगे बढ़ गया है।

[4] टीका लिखती है कि यहाँ सियाति को क्रिया-पद के रूप में जोड़ा जाना चाहिए।

[5] यह वच्छपाला का कथन (गाथा) है (LXXI.); यह भी ध्यान दिया जाए कि यह मगधियों का कथन है।

2.5-5 [165] विशाखापंचालपुत्तथेरा के श्लोक पर टीका

'ना उक्खिपे नो च परिक्खिपे परे' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा विशाखा पंचालपुत्त का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और चौदह युग (कप्पा) पहले एक सीमावर्ती गाँव के एक दरिद्र परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे उस गाँव के लोगों के साथ, जो फलों की खोज में भटक रहे थे, जंगल में गए; वहाँ उन्होंने एक मौन बुद्ध को देखा, श्रद्धा से भर गए और एक लता (वल्लीफल) अर्पित की। उस पुण्य के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और मगध राज्य में एक राजा के प्रतिनिधि (मण्डलिका) के शाही परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का उदय हुआ; विशाखा नाम प्राप्त करने के बाद, वे पंचाल राजा की पुत्री होने के कारण पंचालपुत्त के नाम से जाने गए। अपने पिता की मृत्यु के बाद, जब वे शासन कर रहे थे, तब गुरु उनके गाँव के पास पहुँचे, वे गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, गुरु के साथ सावत्थी गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चले और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए अपदान में कहा गया है:—--

सभी लोग एक साथ आ गए

और फिर वे जंगल में चले गए; तदनुसार

फलों की खोज में उन्हें तब प्राप्त हुआ

फल।

वहाँ मैंने आत्मजागृत बुद्ध को देखा।

आत्मनिर्भर, अजेय;

मैं धर्मपरायण और नेक हृदय वाला व्यक्ति था, इसलिए मैंने पेशकश की।

उसे लता का फल अर्पित करो।

चौदह युग (कप्पा) पहले की बात है,

फिर मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही वह बात है

मेरे द्वारा की गई भेंट का फलदायी परिणाम

फल।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, थेरा अपने सगे-संबंधियों के प्रति करुणावश उनके देश गए। वहाँ लोग थेरा के पास आते और बार-बार उनसे धर्म की शिक्षाएँ सुनते। एक दिन उन्होंने उनसे धर्म के शिक्षक के विशिष्ट गुणों के बारे में पूछा, “आदरणीय महोदय! वास्तव में, किन गुणों से युक्त व्यक्ति धर्म का शिक्षक बनता है?” थेरा ने दो श्लोकों में धर्म के शिक्षक के गुणों का वर्णन किया।

209. “मनुष्य को (स्वयं को) ऊंचा नहीं उठाना चाहिए;

और न ही किसी को दूसरों की निंदा करनी चाहिए।

किसी को भी नीचा नहीं देखना चाहिए और न ही

अरहंतों के साथ संघर्ष हुआ था

दूर के तट (पारगतं) पर पहुँच गया।

किसी को प्रशंसा में नहीं बोलना चाहिए

स्वयं श्रोताओं के बीच (परिसासु);

किसी को भी अभिमानी नहीं होना चाहिए (अनुद्धतो)।

लेकिन संयमित शब्दों का प्रयोग करें और ऐसा करना चाहिए।

अच्छे नैतिक आचरण का पालन करें।

210. वास्तव में, निर्वाण प्राप्त करना कठिन नहीं है।

जो अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि रखता है, उसके द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धि

नाजुक और सूक्ष्म अर्थ, चतुर है

ज्ञान में, व्यवहार में विनम्र, और

बुजुर्गों की सेवा करने की आदत है

लोगों को अच्छी तरह से।

वहाँ, ना उक्खिपे का अर्थ है: स्वयं को ऊँचा नहीं उठाना चाहिए; जन्म, वंश, ज्ञान आदि गुणों से स्वयं को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए। नो च परिक्खिपे परे का अर्थ है: न तो दूसरों को चारों ओर से घेरना चाहिए, न ही जन्म आदि गुणों से उन्हें पूरी तरह से काटकर फेंकना चाहिए, न ही गुणों को नष्ट करने के उद्देश्य से फेंकना चाहिए; दूसरों को नीचा नहीं दिखाना चाहिए; इस प्रकार, यह संबंध है। ना इक्खिपे का अर्थ है: दूसरों को जलाकर (ओज्जापन) नीचा करके (हेट्ठतो कत्वा) दूसरों को देखना नहीं चाहिए; उन्हें जलाकर नष्ट नहीं करना चाहिए; इस प्रकार, यह अर्थ है। कुछ विद्वान इसे "ना उक्खिपे" पढ़ते हैं; यही इसका अर्थ है। पारगतं का अर्थ है: या तो अरहंत, जो दोषों से मुक्त हो, या त्रिगुणात्मक महाज्ञान (तेविज्जा) से युक्त हो, या छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त हो, जो अपने महाज्ञान (विज्जा) के माध्यम से पुनर्जन्मों के चक्रों के पार के तट पर जा चुका हो; न एरेये का अर्थ है: किसी को अपराध (घट्टय) नहीं करना चाहिए और न ही अपमान (आसादेय) करना चाहिए। न च' अत्तवण्णं परिसासु ब्याहरे का अर्थ है: योद्धा राजकुमारों आदि की सभा में लाभ, व्यक्तिगत सम्मान (सक्काक) और प्रतिष्ठा (शिलोक) की लालसा के कारण अपनी प्रशंसा और गुणों का बखान नहीं करना चाहिए; अनुद्धतो का अर्थ है: शोरगुल से मुक्त; वास्तव में, वे ऊंचे स्वर में बात नहीं करते। सम्मितभाणी का अर्थ है: संयमित लेकिन सुविचारित वक्ता (सम्मदव) जो समयोचित (कालन), तर्कसंगत (सापदेशं), विवेकपूर्ण (परियंतवतिं) और लाभकारी (अत्थसंहितमेव) शब्दों का प्रयोग करने का अभ्यस्त हो; यही इसका अर्थ है। जो व्यक्ति इससे भिन्न तरीके से बोलता है, उसका वचन स्वीकार्य नहीं (अघणीयं) है। सुब्बतो का अर्थ है: वह सुचारु आचरण वाला (सुन्द्रवतो) है, नैतिक उपदेशों से युक्त है। क्रियापद (किरियापदं) “सिया (होना चाहिए)” को शामिल किया जाना चाहिए और इस प्रकार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

सत्य (धम्म) के शिक्षक के विशिष्ट गुणों का संक्षिप्त रूप में वर्णन करने के बाद, थेरा ने "सुसुखुमनिपुणत्थ-दस्सिना" से शुरू होने वाले दूसरे श्लोक का प्रवचन देते हुए कहा: "इस प्रकार वर्गीकृत (विध) और स्वतंत्रता (विमुत्तायतन) के क्षेत्र से जुड़े (सन्निसिता) सत्य (धम्म) के शिक्षक के लिए निर्वाण प्राप्त करना कठिन नहीं है; बल्कि, इसके विपरीत, (उसके लिए) निर्वाण प्राप्त करना अत्यंत सरल है," यह जानकर कि जनसमूह अपने भीतर उन गुणों (गुण) को प्राप्त करने की क्षमता (लब्भमानतं) के बारे में स्पष्ट (अधिमुच्चित्वा) होने के बाद अधिक श्रद्धापूर्वक प्रसन्न हो गया था। इसका अर्थ पहले ही कहा जा चुका है (हेट्ठा)।

थेरा विसाखपंचालपुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(166):कुलका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (166) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
166. चूलाका
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम चूलक रखा गया। जब उन्होंने भगवान (बुद्ध) को हाथी धनपाल को वश में करते देखा, [1] तो वे आस्तिक हो गए और संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया)। अपने साधना-प्रबंध में लगे रहते हुए वे इंद्र-साल वृक्ष की गुफा में निवास करते थे। [2] एक दिन जब वे गुफा के प्रवेश द्वार पर बैठे मगध के मैदान को देख रहे थे, तभी एक विशाल तूफानी बादल आकाश में घने बादलों से भर गया और गहरी, मधुर गर्जना के बीच बारिश बरसने लगी। गरज सुनकर मोरों का झुंड आनंद से के-का की आवाज निकाल रहा था, [3] और [154] चारों ओर नाच रहा था। तूफानी हवा के स्पर्श से गुफा में बैठे थेरा को ठंडक और आराम मिला, जिससे उचित तापमान पर उनका मन एकाग्र हो गया। वह अपने अभ्यास के मार्ग में प्रवेश कर गया, और अनुकूल समय आ जाने का अहसास करते हुए, उसने अपने अभ्यास की प्रशंसा करते हुए इन छंदों का उच्चारण किया:

[211] नदन्ति मोरा सुसिखा सुपेखुना॥
सुनिलगिवा सुमुखा सुगज्जिनो,॥
सुसद्दला कपि महामहि अयं॥
सुब्यपिताम्बु सुवलाहकान् नभाऽ॥ ॥

[212] सुकल्लारूपो सुमनस्स झाया ताṃ॥
सुनिक्खमो साधु सुबुद्धसासने,॥
सुसुक्कसुक्कṃ निपाणं सुदुद्दसṃ॥
फुसामि तं उत्तममक्कुतां पदन्ति॥ ॥

[211] सुनो! कैसे मोरों की पुकार से बादल (आकाश) गूंज उठते हैं,
सुंदर कलगी वाले, उनके पंख सुंदर और गला नीला,
आकृति में आकर्षक और उनकी पुकार मधुर।
और देखो कैसे यह विशाल भूभाग, अच्छी तरह से सिंचित
, छितरे हुए आकाश के नीचे हरियाली से ढका हुआ है!

[212] अपने शरीर को स्वस्थ और तंदुरुस्त रखो,
बुद्ध के नियमों में अच्छी प्रगति करो।
आओ और संत के मग्न विचार को ग्रहण करो, [4] और उस उज्ज्वल क्रिस्टल को स्पर्श करो, उस सूक्ष्म गहराई को,
उस मायावी रहस्य को - यहाँ तक कि उस मार्ग को भी
जहाँ मृत्यु नहीं आती, जो व्यक्त करने के लिए बहुत महान है।

और इस प्रकार थेरा ने स्वयं को संबोधित करते हुए, उचित समय पर मानसिक एकाग्रता प्राप्त की और अंतर्दृष्टि का आह्वान करते हुए अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपने द्वारा किए गए कार्य की समीक्षा करते हुए, उन्होंने उत्साह और आनंद के साथ उन पंक्तियों को आञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा के रूप में दोहराया।

[1] मिलिंदा, i. 298 f., nn. विनय ग्रंथों पर , iii. 247 f. देखें ।

[2] संवाद देखें , ii. 299.

[3] देखें XXII., n. 2.

[4] सुमनस्स, सुन्दरामनस्स योगावकरस्स द्वारा भावार्थित । 'आओ', 'पकड़ो', 'छूओ' पाली फुसाहि के विस्तार हैं, जो तीनों क्रियाओं में से अंतिम है। दो गाथाओं का लंबा जगती छंद गहन प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए अनुकूलनीय उपसर्ग सु (ग्रीक यू) - अच्छा, उचित, उत्तम - की पुनरावृत्ति पर निर्भर करता है।

2.5-6 [166] चूलकत्थेरा के श्लोक पर टीका

nadanti morā susikhā supekhuṇā से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा चूलक का है। इसका उद्‌गम क्या है? इस जन्म और उस जन्म के चक्रों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले भक्तिपूर्ण कर्म करने के कारण, उन्होंने इकत्तीस युग (कप्पा) पूर्व, भगवान सिख के समय में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उनकी मुलाकात गुरु से हुई, वे धर्मपरायण हो गए और उन्हें चट्टपण्णी फल अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने जन्मों के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। चूलक नाम प्राप्त करने के बाद, वह वयस्क हो गया, उसने धनपाल हाथी को वश में करने के दौरान गुरु के दर्शन से दिव्य प्रसन्नता प्राप्त की, भिक्षु बन गया और इंद्रासला गुफा में निवास करते हुए अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन करने लगा। एक दिन, गुफा के द्वार पर बैठे हुए, उसने मगध के मैदान पर एक नजर डाली। उसी क्षण, गहरे और मधुर ध्वनि वाले मौसमी वर्षा के बादल, सौ-हजार परतों में, काजल की चोटी (अंजनसिखारा) के समान, आकाश में छा गए और वर्षा बरसाने लगे; वर्षा के बादल की गर्जना सुनकर मोरों के झुंड प्रसन्नता और आनंद से भर गए, अपनी कूक-कूक करते हुए इधर-उधर नाचने लगे। अपने निवास कक्ष में भी थेरा का मन एकाग्र हो गया था, क्योंकि उन्हें अनुकूल जलवायु (उत्सप्पाय) प्राप्त हो गई थी। जब उनका शांत (पासद्ध) अशुद्ध (करज) शरीर वर्षा-बादल की हवा के संपर्क (फस्सा) से ऊष्मा दूर होने के कारण तैयार (कल्लतं) अवस्था में पहुँच गया था, तब उनका मन मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) के मार्ग पर उतर गया। यह जानकर उन्होंने दो श्लोक कहे, जिनमें उन्होंने उपयुक्त समय (कालसंपदा) आदि जैसी सुविधाओं (कित्तनमुखेना) के बावजूद आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (भावना) के विकास के लिए प्रयास करने का वर्णन किया।

211. “सुंदर कलगी वाले मोर”

पंख अपनी मधुर आवाज निकालते हैं; वे

उनके गले अच्छे नीलमणि के बने हैं

रंग, सुंदर चेहरे और उत्कृष्ट आवाज

(सुगाज्जिनो); महान पृथ्वी अच्छी है

घास का मैदान है और आसमान में हरियाली छाई हुई है।

बारिश के बादलों और रंगीन बादलों के साथ।

212. उत्कृष्ट पूर्व-रूप में होने के कारण

जब किसी व्यक्ति का स्वभाव अच्छा हो

ध्यान में प्रवेश करते हुए, एक अच्छा आदमी

व्यवस्था में अच्छी तरह से आत्म-प्रयास करना

(शासन) उत्तम बुद्ध का। आप

उसे सबसे ज्यादा संपर्क में आना चाहिए

उत्कृष्ट अमर मार्ग जो विशुद्ध रूप से

और बेहद उज्ज्वल, सूक्ष्म और

देखना बेहद मुश्किल है।

वहाँ, nadanti morā susikhā supekhuṇā, sunīlagīvā sumukhā sugajjino का अर्थ है: ये सुसिखा (सुंदर मुकुट वाले) हैं क्योंकि इनके सिर पर उत्कृष्ट मुकुट हैं जो स्वयं ही उठे हुए हैं (उट्ठिता); ये सुपेखुणा हैं।

(सुंदर पंखों वाला, क्योंकि इसमें अनेक बहुरंगी, सुंदर और उत्कृष्ट पूंछ के पंख हैं; सुनिलगीवा (अच्छा नीलम जैसा गला) क्योंकि इसमें रंग की धारियों के समान उत्कृष्ट नीलम रंग का गला है; सुमुखा (सुंदर मुख वाला), क्योंकि इसका चेहरा सुंदर है; सुगज्जिनो (सुरीली आवाज वाला) क्योंकि इसकी आवाज मधुर (मनुञ्ञ) है; मोरा नादन्ति का अर्थ है: सुरीली आवाज वाले (छज्जसंवदी) मोर केका की ध्वनि निकालते हुए चिल्लाते हैं। सुसक्कला चा पि महामही अयं का अर्थ है: यह महान पृथ्वी भी उत्कृष्ट हरी घास से भरी हुई है। सुब्यापितंबु का अर्थ है: बाढ़ आने की स्थिति के कारण वर्षा जल से अच्छी तरह से व्याप्त और फैला हुआ है) (विसंदामान) यहाँ-वहाँ जल का प्रवाह, जो तत्काल हुई वर्षा (अभिनववुट्ठी) के कारण है। इसका एक पाठ यह भी है: "सुसुक्कतम्बु" (शुद्ध वर्षा जल); इस प्रकार इसका अर्थ है। सुवलककं नभं का अर्थ है: यह आकाश अच्छे गरजते बादलों और वर्षा बादलों से भलीभूत है, जो नीले कमल की पंखुड़ियों के रंग के समान बादलों से चारों ओर आकाश को भर देने के बाद बने हैं।

Sukellarūpo sumanassa jhāyataṃ का अर्थ है: अब, अनुकूल जलवायु (utusappāya) के लाभ से आप तैयार (kallarūpo) होने की अच्छी स्थिति में हैं और अपने कर्म (kammaniyasabhāyo) करने के लिए स्वाभाविक रूप से अनुकूल स्थिति में हैं; जब आध्यात्मिक अभ्यासों का एक नेक मन वाला गंभीर विद्यार्थी (yogāvacara) अपने मन की स्थिति के कारण, जो बाधाओं (nīvaraṇa) से ऊपर (ajjhārūḷha) नहीं है, इंद्रियों के विषयों (ārammaṇūpanijjhāna) और विशिष्ट लक्षणों (lakkhaṇa) पर ध्यान (ajjhāyataṃ) के माध्यम से ध्यान (jhāyataṃ) में प्रवेश कर रहा है। Sunikkamo ... accutaṃ padaṃ का अर्थ है: इस प्रकार भी ध्यान में प्रवेश करना; साधु सुबुद्धस्स सासाने का अर्थ है: सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध के युग में; सुसुक्कं का अर्थ है: सर्वांगीण शुद्ध नैतिक उपदेशों की अवस्था के कारण उत्तम रूप से प्रकाशमान, उत्कृष्ट रूप से प्रकट हुए व्यक्ति के रूप में; सुक्कं का अर्थ है: स्पष्ट रूप से शुद्ध होने की स्वाभाविक स्थिति के कारण प्रकाशमान, सभी प्रकार के आत्म-दुराचार (संकिलेसा) के चरागाह (गोचरभाव) की अवस्था के निकट न जाने के कारण; निपुणं का अर्थ है: सूक्ष्म ज्ञान के क्षेत्र की अवस्था के कारण सूक्ष्म; सुदुद्दसं का अर्थ है: परम गहनता के कारण अत्यंत कठिन दृष्टि; उत्तमं का अर्थ है: उच्च और सर्वश्रेष्ठ होने के कारण सबसे उत्कृष्ट। accutaṃ padaṃ taṃ phusāhi का अर्थ है: आपको उस अमर निर्वाण की कल्पना करनी चाहिए, जो स्थायित्व की स्थिति के कारण मृत्यु से मुक्त है, उचित और उपयुक्त अभ्यास (sammāpaṭipatti) के माध्यम से और इसे स्वयं बनाकर (attapaccakha)।

इस प्रकार, थेरा ने जैसे ही स्वयं को ज्ञान प्राप्त किया, उनका मन शांत (संशिता) हो गया, अनुकूल वातावरण प्राप्त होने पर उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में स्वयं को लीन कर लिया और अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैंने दुनिया के नेता को चमकते हुए देखा

पीले कणिकारा फूल की तरह चमकीला,

पूर्णिमा के चंद्रमा के समान, उसी तरह चमकता हुआ

जलते हुए दीपों के वृक्ष की ओर।

मैंने केले का फल ऊपर उठाकर उसे पेश किया।

गुरु के प्रति: धर्मपरायण और अच्छे

मैंने पूरे हृदय से उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की और ग्रहण किया।

उनकी अनुमति।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने फलों का अपना चढ़ावा चढ़ाया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें, यही वह स्थिति है।

मेरे द्वारा चढ़ाए गए फलों का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने "नदन्ति मोरा" से शुरू होने वाले उन्हीं दो श्लोकों को दोहराया, अपने स्वयं के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) पर चिंतन करने के बाद उत्साह और आनंद से परिपूर्ण हो गए।

थेरा चूलक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(167):अनुपमा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (167) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
167. अनुपमा
बुद्ध युग में कोसला के एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनकी सुंदरता ने उन्हें अनुपमा - 'अतुलनीय' नाम दिलाया। वयस्क होने पर, उन्होंने कर्म के प्रभाव को महसूस किया, संसार का त्याग किया और वन में रहने लगे, [155] अंतर्दृष्टि के लिए अभ्यास करते रहे। लेकिन उनका मन बाहरी वस्तुओं के इर्द-गिर्द घूमता रहा, अपने ध्यान के विषय पर केंद्रित रहा, जिससे उन्होंने स्वयं को फटकारा:

[213] नन्दमनागतं चित्तं सुलामारोपमणकꙅ,॥
तेन तेनेवा वजसि येना सुलाm̧ कलिनगरं॥ ॥

[214] ताहाm̧ चिट्टाकलीm̧ ब्रूमी ताm̧ ब्रूमी चित्तदुब्भकाm̧,॥
सत्था ते दुल्लभो लद्धो मनत्थे माꙅ नियोजयिति॥ ॥

[213] हे चित्त (मन)! प्रसन्न करने वाली चीजों की खोज में भटकते हुए,
हे विनाश के अनेक स्तंभों को आकार देने वाले,
तुम वहीं और केवल वहीं विचरण करते हो
जहाँ अंत में ब्लॉक और खूंटा उठते हैं।

[214] हे हृदय, मैं तुम्हें अपने भाग्य का नाश करने वाला कहता हूँ! हे
हृदय, मैं तुम्हें अपने भाग्य का बिगाड़ने वाला कहता हूँ!
देखो! जिसे तुम युगों तक नहीं पा सके,
भगवान (बुद्ध) अब आ गए हैं - ऐसा न हो
कि मैं विनाश और बर्बादी के हवाले कर दिया जाऊँ। [1]

इस प्रकार अपनी चेतना को संबोधित करते हुए, थेरा ने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[1] यह वाक्पटु कविता, तालपुट द्वारा अपने चित्त (CCLXII) को दिए गए लंबे संबोधन का संक्षिप्त रूप है । टीका में कलिम् को दुर्भाग्य की देवी कालकण्णी के रूप में पहचाना गया है। पाठ के अंतिम शब्दों को, निश्चित रूप से, मा अनत्थे आदि के रूप में समझा जाना चाहिए।

2.5-7 [167] अनुपमत्थेरा के श्लोक पर टीका
नंदमानाऽगतं चित्तं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अनुपमा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन रथ यात्रा के दौरान भिक्षा मांगते हुए भटक रहे पद्मा नामक एक मौन बुद्ध से उनकी मुलाकात हुई। वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें आदरपूर्वक अंकोला पुष्प अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्म के चक्रों में विचरण करते रहे और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब कोसल राज्य के एक समृद्ध परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ; सौंदर्य की इस उत्तम उपलब्धि (संपत्ति) के कारण उन्हें अनुपमा नाम प्राप्त हुआ। (रूप); वयस्क होने पर, उन्होंने अरहंत बनने के लिए पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर ली थी, इसलिए उन्होंने काम (इंद्रिय सुख) का त्याग कर दिया, भिक्षु बन गए और वन में रहकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का अभ्यास करने लगे। उनका मन दृश्य रूपों आदि इंद्रिय-विषयों में भटकता रहा। उनका मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) विकृत (परिवट्टति) हो गया। थेरा ने दो श्लोकों के माध्यम से अपने भटकते मन को नियंत्रित (निग्गण्हन्तो) करने का उपदेश दिया।

213. "हे मन! तुम आनंदित होकर आए हो,

ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी नुकीली चीज पर जड़ा हुआ हो।

सूली पर चढ़ाया जाना; तुम बस यहीं जाओ

और वह जगह जहां स्पाइक है,

सूली पर चढ़ाने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा।

214. मैं मन की दुर्भाग्य की बात कर रहा हूँ;

मैं तुम्हें विश्वासघात के बारे में बताता हूँ

मेरा मन। गुरु, कठिन

आपको लाभ प्राप्त हुआ है।

मुझे वह करने के लिए उकसाओ मत जो उचित नहीं है।

लाभदायक।

वहाँ, नंदमानागतं चित्त का अर्थ है: हे आनंदित, विशेष रूप से आनंदित मन! तुम आनंदपूर्वक आए और उठे हो। सूलामारोपमानकं का अर्थ है: दुराचार कर्मों द्वारा लंबे समय तक इस और उस प्राणी को सूली पर चढ़ाने के लिए सूली पर चढ़ाया गया है, क्योंकि एक प्राणी दुख (दुक्खा) का उद्गम स्थान होने के कारण सूली पर चढ़ाने के समान है। तेन तेनएव वजसि, येन सूलं कलिंगरं का अर्थ है: हे दुष्ट मन! तुम केवल इस और उस स्थान पर जाते हो, जहाँ सूली पर चढ़ाने के समान प्राणी (भव) हैं और जहाँ कामगुण हैं, जो जल्लाद के तख्ते के समान लकड़ी के टुकड़े हैं; हे मन, तुम उसी स्थान पर जाते हो। आप अपनी हानि (अनत्थं) को ध्यान में नहीं रखते (सल्लक्खेसी)।

Tāhaṃ cittakaliṃ brūmi का अर्थ है: अतः, मैं तुम्हें मन की लापरवाही के कारण होने वाले दुर्भाग्य (kaliṃ) और विपत्ति के बारे में बताता हूँ। Taṃ brūmi का अर्थ है: मैं तुम्हें फिर से बताता हूँ; Cittadubbhakaṃ का अर्थ है: कपटी मन, क्योंकि यह मन के रूप में गिने जाने वाले अनेक कर्मों की निरंतरता में हानि पहुँचाता है। विद्वान इसे “cittadubbhāgā” भी पढ़ते हैं; अल्प पुण्य जिसे मन के रूप में नहीं गिना जाता; यही इसका अर्थ है। यदि पूछा जाए कि ऐसा क्यों कहते हो? तो उन्होंने कहा: “Satthā te dullabho laddho, mānatthemaṃ niyojayi” का अर्थ है: असंख्य युगों (कप्पा) तक बुद्ध के बिना संसार जैसी घटना विद्यमान है; गुरु प्रकट होने पर भी, मनुष्य की अवस्था, सद्धा का उचित लाभ आदि जैसी घटनाएँ प्राप्त करना कठिन होता है; इन्हें प्राप्त करने पर भी गुरु प्राप्त करना कठिन हो जाता है; इस प्रकार, जो गुरु प्राप्त करना कठिन था, अब आपने प्राप्त कर लिया है। अब भी (संपतिपि), जब गुरु प्राप्त हो गया है, तो भविष्य में मुझे ऐसे कार्यों में न लगाएँ जो हानिपूर्ण, अलाभकारी हों, और न ही ऐसे कार्यों में जो हानि, दुख और पाप उत्पन्न करते हों। इस प्रकार, थेरा ने अपने मन को उपदेश देते हुए, अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को तुरंत विकसित किया और अरहंतशिप प्राप्त की। इसलिए अपदान में कहा गया है:—--
“स्वयंजागृत मौन बुद्ध,
पद्मा नाम से जाने जाने वाले इस व्यक्ति ने फिर चित्त में निवास किया।
कूटा; उस मौन बुद्ध को देखकर,
आत्मनिर्भर और अजेय,
मैंने संयोगवश अंकोला को देखा।
पेड़ खिल रहा है; फिर, तोड़ लिया गया
मैं फूलों के पास पहुंचा
जागृत मौन बुद्ध पद्म,
विजेता।
मैंने इसे इकत्तीस युग पहले बनाया था।
मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई पुष्प;
किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो।
यह बनाने का फलदायी परिणाम है
मौन के प्रति मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट
बुद्ध।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।
बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।
थेरा अनुपमा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(168):वज्जिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (168) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
168. वज्जिता
ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक से मृत्यु के बाद, बुद्ध युग में एक धनी कोसलन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, वे अपनी माता की गोद में सदा रोते रहे। और क्योंकि वे स्त्री के स्पर्श को सहन नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें वज्जिता - 'संयमित' कहा जाने लगा। वयस्क होने पर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को दो चमत्कार करते देखा, [1] और विश्वास करके, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की। अपने पूर्व जन्म को याद करके, वे पवित्र भाव से भर उठे और बोले:

[215] सस्सरं दीघमद्धानां गतिसु परिवत्तिसैं,॥
अपासाअ अरियासक्कानि अंधभूतो पुथुज्जनो॥ ॥

[216] तस्सा [28] मे अप्पमत्तस्सा ससार विनलिकता,॥
गति1 सब्बा समुच्चिन्ना नत्थि दानि पुनब्भवोऽ ति.॥ ॥

[215] मैं बहुत लंबे युगों पहले एक यात्री था,
और जीवन के क्षेत्रों में घूमता रहा;
कई लोगों में से एक और उनकी तरह अंधा,
मेरे पास आर्यों के सत्यों को देखने की शक्ति नहीं थी।

[216] [156] लेकिन मैंने प्रकाश और शांति के लिए पूरी लगन से प्रयास किया;
और अब अंतहीन मार्ग पूरी तरह से चकनाचूर हो गया है।
भविष्य की सभी सीमाएँ पूरी तरह से समाप्त हो गई हैं,
अब मेरे लिए कभी पुनर्जन्म नहीं होगा।

और यही थेरा की अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गई।

[1] देखें पृष्ठ 36, नोट 1.

2.5-8 [168] वज्जितत्थेरा के श्लोक पर टीका
संसारं दीघमद्धानं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वज्जिता का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और पैंसठ युग (कप्पा) पहले एक सीमावर्ती गाँव में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर वे वनवासी बन गए और भटकते हुए एक दिन उन्होंने उपासंत नामक एक मौन बुद्ध को एक पहाड़ी गुफा में निवास करते देखा। उस मौन बुद्ध की शांति देखकर वे धर्मपरायण हो गए और उन्होंने चंपक वृक्ष के पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया। उस पुण्य कर्म के कारण वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कोसल राज्य में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिए; जन्म से ही वे स्त्री के हाथ में पहुँचते ही रोने लगते थे। कहा जाता है कि वे ब्रह्मालोक से विदा होकर यहाँ आए थे; क्योंकि वे स्त्रियों के संपर्क को सहन नहीं कर पाते थे, इसलिए स्त्री स्पर्श से बचने के कारण उनका नाम वज्जिता पड़ा। वयस्क होने पर उन्होंने गुरु के जुड़वां चमत्कार देखे, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (भावना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े और उसी दिन छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

“स्वयंजागृत मौन बुद्ध,

उपसंता एक पहाड़ी के भीतर निवास करते थे;

मैं अपने साथ चंपा का फूल ले जा रहा हूँ।

मैंने सबसे उत्कृष्ट के पास संपर्क किया

पुरुष।

मैं धर्मनिष्ठ और नेक हृदय वाला व्यक्ति हूँ।

मैंने फूल को अपने दोनों हाथों से ऊपर उठाया

मैंने अपने हाथों से श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाई।

अजेय, परम उत्कृष्ट को

मौन ऋषि।

यह पैंसठ युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की।

फूलों का; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक भेंट चढ़ाने के बारे में

मौन बुद्ध।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व निवासों को याद करने के बाद आध्यात्मिक (धम्म) पश्चाताप के साथ दो श्लोक कहे।

215. "बार-बार किए जाने वाले अपने चक्करों में भटकते हुए

लंबे समय तक पुनर्जन्म होते रहे, मैं

मैंने स्वयं को इधर-उधर घुमाया (परिवत्तिसं)

अस्तित्व (गतीसु)। मैं उनमें से एक था।

सामान्य श्रेणी (पुथुज्जना), जिनके पास था

अंधा हो जाना (अंधभूतो), न देख पाना

महान सत्य।

216. उन लोगों के लिए जो परिश्रमी हो गए हैं,

पुनर्जन्मों का चक्र (संसार)

सब नष्ट हो गया था (विनालीकटा);

अस्तित्व (गति) अच्छी तरह से तराशा गया था

समाप्त; अब कोई नया अस्तित्व नहीं है।

वहाँ, संसारं का अर्थ है बार-बार जन्मों के चक्रों में भटकना; इस और उस जन्म में कभी-कभी अच्छा प्रदर्शन करना, ग्रहण करने और त्यागने (निकखेप) के द्वारा। दीघमद्धानं का अर्थ है: लंबे समय तक, उस जन्मों के चक्र में, जिसका आरंभ अकल्पनीय (अनादिमति) है, एक अनंत काल तक। गतिसु का अर्थ है अच्छे और बुरे कर्मों के फलस्वरूप उत्तम और बुरे जन्मों में रहना। परिवत्तिसं का अर्थ है: मैं कभी-कभी अपने आप को गतिमान (परिवत्ति) करता हूँ, देहान्त (चवन) और उपपज्जन (उत्पन्न) होकर, कुम्हार के चाक (घटीयन्त) की तरह घूमता हूँ। हालाँकि, उस घूर्णन (परिभमन्तो) के कारण के बारे में उन्होंने इस प्रकार कहा: "अपस्सं अरियासच्चानि, अन्धभूतो पुथुज्जनो।" दुख (दुक्खा) से शुरू होने वाले चारों आर्य सत्यों को न देख पाने और न ही उन्हें ठीक से समझ पाने के कारण, मैं अज्ञान के अंधकार से अंधा हो गया, और व्यक्तियों की ऐसी रचनाओं (जननादीहि) के कारण सामान्य श्रेणी का मनुष्य (पुथुज्जनो) होने के कारण, मैं गति में विचरण करता रहा; यही व्याख्या है। इसी कारण भगवान बुद्ध ने कहा:

"चतुन्नं भिक्खवे अरियासच्चानं

ananubodhā appativedhā evamidaṃ

दीघमद्धानं संधावितं संपरितम्

मामन सीएव तुम्हाकन् च (के कारण)

न जानना और उचित प्रवेश

हे भिक्षुओं! चार आर्य सत्यों में से!

इस प्रकार यह चल रहा है

बार-बार पुनर्जन्म के दौर के बारे में

मुझे और आपको लंबे समय तक

समय का)।

तस्स का अर्थ है: जब मैं पहले साधारण भिक्षु (पुथुज्जन) था, जैसा कि कहा गया है, अब गुरु द्वारा दी गई विधि से, अप्पमत्तस का अर्थ है: जब मैंने शांत भाव और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास (भावना) के शिखर पर पहुंचकर, परिश्रम के उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के लिए स्वयं को स्थापित कर लिया है। संसारा विनालीकता का अर्थ है: कर्मों की वह विकृति (कम्मकिलेसा), जिसे "संसार (पुनर्जन्मों का चक्र)" नाम मिला है, क्योंकि इनके कारण प्राणी इधर-उधर भटकते रहते हैं (संसारन्ति), उसे सर्वोत्कृष्ट मार्ग (मेग्गा) द्वारा अच्छी तरह से काट दिया गया है, सरकंडे को हटा दिया गया है (विगतनाला) और जड़विहीन (निम्मूला) कर दिया गया है। सब्बा गति समुच्चिन्ना का अर्थ है कि नरक और इसी प्रकार के सभी अस्तित्व (गति) कर्मों और दुराचारों के कारण बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्त होने के कारण समाप्त और नष्ट हो गए हैं; परन्तु फलस्वरूप न'अत्थि दानि पुनब्बवो का अर्थ है: अब भविष्य में कोई नया अस्तित्व नहीं है; यही थेरा द्वारा अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) का रहस्योद्घाटन था।

थेरा वज्जिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(169):संधिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (169) ------>>>> अगला

अध्याय II.
दो श्लोक
169. संधिता
बुद्ध युग में कोसला के एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर संधिता नाम से जन्मे उन्होंने वयस्क होने पर अनित्यता पर एक उपदेश सुना, जिससे वे भयभीत हो गए और भिक्षु संघ में प्रवेश कर गए। अपने ज्ञान की परिपक्वता के माध्यम से उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) अर्जित की। अपने पूर्व जीवन को याद करते हुए, कि सिख बुद्ध के देहांत के बाद उन्होंने बोधि वृक्ष (पीपल) की पूजा की थी और अनित्यता का बोध प्राप्त किया था, [1] उन्होंने उस प्रभावी कारण से अपने लक्ष्य की प्राप्ति की घोषणा इन श्लोकों में की:

[217] असत्थे हरितोकासे सविरूऽहमपि पदपे,॥
एकं बुद्धगतां संनां अलभित्थं पतिस्सतो.।॥

[218] एकतिसे इतो कप्पे याṃ सनमलाभिṃ तदा,॥
तस्स सान्याय वाहसा पत्तो मे आसवक्खयो' ति.॥॥

[217] वृक्ष के नीचे—पवित्र बोधि वृक्ष—
अपने वसंत ऋतु के हरे रंग की महिमा से सुशोभित,
मुझे ध्यान और सचेत अवस्था में एक विचार आया—
एक बुद्ध-भारित विचार।

[218] इसे आए हुए इक्कीस युग हो गए हैं।
फिर भी मेरे मन में यह विचार इतना फलदायी सिद्ध हुआ
कि मादक पदार्थों (विकृतियों/इच्छाओं) पर
विजय प्राप्त हुई!

[1] इस बात पर शोक व्यक्त करते हुए कि उन्हें उस बुद्ध के निधन के ठीक बाद ही उनके बारे में पता चला। सिख धर्म पर, संवाद, ii. 6 देखें। 'बोधि वृक्ष' असत्थे है, या अंजीर के पेड़ की वह प्रजाति जो गौतम बुद्ध का बोधि वृक्ष (पीपल) था। सिख धर्म में यह एक प्रकार का आम था (चाइल्डर्स की 'पुंडरीका' देखें), और टीका में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि असत्थे शब्द का प्रयोग सामान्यतः बोधि वृक्षों के संदर्भ में किया जाने लगा था। पाठ में 'विचार' - सन्ञ्ञा, अपेर्चु - तीन बार दोहराया गया है।

2.5-9 [169] संधितथेरा के श्लोक पर टीका
असत्थे हरितोभासे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा संधिता का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले भगवान सिख धर्म के समय ग्वाले बन गए। जब गुरु परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब वे एक थेरा के पास गए, उनकी उपस्थिति में बुद्ध के गुणों से उचित रूप से संबंधित सत्य (धम्म) को सुना, श्रद्धा से भर गए, भगवान बुद्ध के बारे में पूछा, परिनिर्वाण प्राप्त करने की अवस्था के बारे में सुना, और इस प्रकार अनित्यता (अनिकसज्ञान) का ज्ञान प्राप्त किया: “इस प्रकार इतने शक्तिशाली बुद्ध को अनित्यता के प्रभाव में आना पड़ा; हाय! संस्कार (संस्कार) शाश्वत नहीं होते।” थेरा ने उन्हें बोधि वृक्ष का सम्मान करने के लिए प्रेरित किया। वे बार-बार बोधि वृक्ष के पास जाते, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के मार्ग पर चलते और बुद्ध के गुणों का चिंतन करते हुए बोधि वृक्ष को प्रणाम करते। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और अंत में कोसल राज्य के एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; संधिता नाम प्राप्त करके, वे वयस्क हुए और अनित्यता से संबंधित सत्य (धम्म) की शिक्षा को

सुनकर, उन्हें पश्चाताप हुआ, वे भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चले और छह प्रकार के महाज्ञान (जादुई) से युक्त अरहंत बन गए, लेकिन शीघ्र ही उन्होंने सर्वांगीण ज्ञान (ज्ञान) प्राप्त कर लिया। अपने पूर्व निवासों पर विचार करते हुए, उन्होंने बोधि वृक्ष को प्रणाम करने, बुद्ध पर चिंतन करने और भगवान बुद्ध के समय अनित्यता की अनुभूति प्राप्त करने को याद किया। सिख धर्म में, अपनी विशिष्टता (विशेषा) को प्रकट करने के लिए, उन्होंने दो श्लोक कहे:—-

217. पवित्र अंजीर के वृक्ष (असत्था) पर

हरे रंग की चमकदार चमक, कुएं पर-

उगा हुआ पेड़, इस बात से भलीभांति अवगत होते हुए, मैं

के संबंध में एक धारणा प्राप्त हुई

(गता) बुद्ध।

218. यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि तब मुझे यह धारणा प्राप्त हुई

(सन्ना); उस बोध द्वारा वहन किया जा रहा है-

मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया है।

संक्रमण रहित (आसवा)।

वहाँ, असत्थे का अर्थ है: पवित्र अंजीर के वृक्ष के स्थान पर; क्योंकि वर्तमान में हमारे भगवान बुद्ध का बोधि वृक्ष ही बोधि वृक्ष है, इस बोधि वृक्ष के स्थान पर, उस समय भगवान बुद्ध सिख का पुण्डरीक बोधि वृक्ष स्थित था; इस प्रकार, सुखदायक प्रोत्साहन का स्थान होने के कारण इसे "असत्था (प्रोत्साहित)" कहा गया है, दूसरे शब्दों में, क्योंकि यह प्राणियों के विश्वास (अस्सासा) को जगाता है। हालाँकि, अन्य विद्वान इस प्रकार कहते हैं: "स्वयं बोधि (असत्था) वृक्ष के चरणों में बैठकर, बुद्ध पर अपना चिंतन करते हुए, थेरा ने इसे 'असत्था' कहा।" हरितोभासे का अर्थ है: हरे रंग के पन्ना (सारमणी) के सार से चमकता हुआ। संविरूलहमहि का अर्थ है अच्छी तरह से विकसित और उत्कृष्ट रूप से स्थापित (वृक्ष) पर; वे यह भी कहते हैं; स्पष्ट रूप से विकसित और घनी पत्तियों, तनों और अंकुरों से आच्छादित (सुघना) वृक्ष। पादपे का अर्थ है वृक्ष। एकं बुद्धगतं सन्ञ्ञं, अलभित्तं पतिसत्तो का अर्थ है: बुद्ध के गुणों के उचित और उपयुक्त स्मरण के कारण, मुझे बुद्ध पर चिंतन के साथ-साथ एक ही रूप में यह अनुभूति (सञ्ञा) प्राप्त हुई, जो इस प्रकार प्रकट हुई: "इति पि सो भगवा" (वह भगवान ऐसे भी हैं), क्योंकि बुद्ध पर चिंतन जैसे चिंतन का एक ही रूप में जन्म (एकजातियत्ता) हुआ था।

परन्तु यह बोध कब प्राप्त हुआ? यह सिद्धि कब हुई? (इन दो प्रश्नों के उत्तर में) थेरा ने कहा: "एकतिंसे इतो कप्पे" इत्यादि। वर्तमान से इकत्तीस युग पूर्व के इस उत्तम (बुद्ध) युग से ऊपर उठकर। यं सन्ञ्ञं का अर्थ है: बुद्ध के चिंतन के साथ प्राप्त यह बोध; तब मैंने समस्त संस्कारों में अनित्यता का बोध प्राप्त किया, जो मैंने बुद्धों की अनित्यता के अनुरूप देखा। तस्स सन्ञ्ञाय वाहसा का अर्थ है: इस बोध (सञ्ञा) को प्राप्त करने की शर्त पर, जैसा कि कहा गया है, मैंने इसे अरहंत पद (उपनिषय) की प्राप्ति के लिए पर्याप्त योग्यता बना लिया। Patto me āsavakkhayo का अर्थ है: मैंने दोषों से मुक्त अरहंतत्व प्राप्त कर लिया था; अब मैंने दोषों के निवारण (निरोध) का सत्य प्राप्त कर लिया है। यही श्लोक इस थेरा के अपदान श्लोक भी हैं। जैसा कि उन्होंने कहा:—

"हरे रंग के बोधि वृक्ष पर;..."

रोग-मुक्त स्थिति प्राप्त कर ली गई।

मेरे द्वारा।

तेरह युग (कप्पा) पहले, मैं एक दुनिया था

योद्धा वंश (खत्तिया) के राजा का नाम

धिन्ठ, महान शक्ति से परिपूर्ण,

सात रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

थेरा संधिता के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।

पांचवें अध्याय की टीका पूरी हो चुकी है।

दूसरे खंड पर टिप्पणी भी पूर्ण है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(170): अंगनिका-भारद्वाज

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (170) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
170. अंगणिका-भारद्वाज
हिमालय के निकट, उक्कट्ठ नगर में, बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, [1] एक अत्यंत धनी ब्राह्मण (पुजारी) के परिवार में उनका नाम अंगणिक-भारद्वाज रखा गया। [2] जब उन्होंने सभी वैदिक ज्ञान और कला का अध्ययन कर लिया, तो वैराग्य की भावना ने उन्हें संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करने के लिए) मोक्ष की तपस्या करने के लिए प्रेरित किया। [3] इधर-उधर भटकते हुए, एक यात्रा के दौरान उनकी मुलाकात परम बुद्ध से हुई और उन्होंने तृप्त मन से उनका उपदेश सुना। अपने झूठे तपस्वियों को छोड़कर, उन्होंने भिक्षु दीक्षा ली और अंतर्दृष्टि के लिए अभ्यास करते हुए, समय के साथ छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की।

इसके बाद स्वतंत्रता के आनंद में रहते हुए, उन्होंने अपने परिवार पर दया की, और उनसे मिलने गए और उन्हें शरण और उपदेशों में शिक्षा दी; फिर उन्हें छोड़कर, वे कुरुओं के कुण्डिया गाँव के पास एक जंगल में रहने चले गए। [4]

[158] किसी उद्देश्य से उग्गायामा जाते समय, उनके कुछ ब्राह्मण (पुजारी) परिचितों ने उनसे संपर्क किया और कहा: 'हे भगवान (बुद्ध) भारद्वाज, आपने ऐसा क्या देखा है कि आपने ब्राह्मण (पुजारी) समुदाय को छोड़कर इस समुदाय में प्रवेश किया है?' और उन्होंने यह दर्शाते हुए कि बुद्ध के गिरजाघर के बाहर कोई शुद्ध नियम नहीं है, कहा:

[219] अयोनि [29] सुद्धिमानवेसाṃ अग्गीṃ परिकारिṃ वेन,॥

सुद्धिमग्गाऽ अजानन्तो आकाशीऽ अमराऽ तपः॥ ॥

[220] ताṃ सुखेन सुखाṃ लडधाṃ पास धम्मसुधम्मतṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससाणं॥ ॥

[221] ब्रह्मबंधु शुद्ध असिṃ इदानी खोमहि ब्राह्मणो,॥
तेविज्जो नाहतको कैम्ही सेठियो कैम्ही वेदगु' ती॥ ॥

[219] सिद्धांतहीन पवित्रता मेरी खोज थी,
जब मैंने उपवन में पवित्र अग्नि को पोषित किया।
स्वर्ग तक पहुँचने के लिए मैंने कष्टदायक तपस्याएँ कीं,
पवित्रता के सच्चे मार्ग से पूरी तरह अनभिज्ञ।

[220] यह सुख सुखमय मार्गों से प्राप्त होता है [5] -
हे देखो, धर्म (धम्म) के उचित भिक्षु का क्रम! [6] अब मुझे त्रिविध ज्ञान प्राप्त हो गया है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो गए हैं।

[221] मैं एक बार ब्राह्मणों (पुजारियों) का पुत्र था; [7] आज मैं वास्तव में ब्राह्मण (पुजारी) हूँ,
त्रिविध ज्ञान में पारंगत और स्नातक, [8] संस्कारिक स्नान द्वारा पवित्रीकृत।

तब उन ब्राह्मणों (पुजारियों) ने उनकी बात सुनकर शासन की अत्यधिक प्रशंसा व्यक्त की।

[1] इस ऊंचे शहर (= 'ऊंचा') पर, संवाद देखें, i. 108. एक सड़क इसे सेतव्या (उप., पृ. 67; अंग., ii. 37) और वैशाली (जात., ii. 259, पाठ) से जोड़ती थी।

[2] पिटकों में लगभग उन्नीस भारद्वाज (एक वंश का नाम) का उल्लेख है । यह कहीं और नहीं मिलता।

[3] पाठ में जिसे अमरा तपम ('स्वर्ग के लिए तपस्या') कहा गया है, उसे टीका में अमाततपम, अमात तपम के रूप में अनुवादित किया गया है। व्युत्पत्ति के अनुसार, अंतर 'अमर' और 'मृत नहीं' के बीच है। दोनों संभवतः देवताओं के साथ पुनर्मिलन को संदर्भित करते हैं, जो पांच अग्नियों आदि की तपस्या द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। देखें उप- पृष्ठ 120 और संवाद, 1 211।

[4] यह कोल्लियों का कुण्डिया नहीं होगा (उदना, ii. 8; जाट., i. संख्या 100)। उग्गायामा संभवतः LXXX का स्थान उग्गा है।

[5] तुलना करें LXIII.

[6] देखें XXIV. टीका कहती है कि वह या तो धम्म को संबोधित कर रहा है या स्वयं को, अधिक संभावित 'या ब्राह्मणों (पुजारियों)' को छोड़कर।

[7] देखें पृष्ठ 222; साथ ही बहुत समान पंक्तियाँ, बहनें, श्लोक 251 और टिप्पणी।

[8] टीका वैदिक परंपरा के इन सभी शब्दों के लिए शासन-समतुल्य शब्द ढूंढती है।

3. तीसरा खंड

3.1[170] अंगणिकभारद्वाजथेरा के श्लोक पर टीका

तीसरे खंड (tikanipāte) में ayoni suddhimanvesaṃ से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अंगणिकभारद्वाज का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुण्य कर्म संचित किए, जो इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। वे इकत्तीस युग (कप्पा) पूर्व, भगवान सिख धर्म के समय में, एक परिवार में पुनर्जन्म लेकर जन्म लिए; जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, जो भिक्षा मांगते हुए भोजन की तलाश में भटक रहे थे। वे श्रद्धावान हो गए, पंचपत्रित्तित्त से उन्हें प्रणाम किया और अपने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और हिमवंता के निकट उक्कट्ठ नामक नगर में एक धनी ब्राह्मण के घर में उनका पुनर्जन्म हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; अंगणिकभारद्वाज नाम प्राप्त करने के बाद, उन्होंने कला और विज्ञान में निपुणता प्राप्त की; वयस्क होने पर, उन्होंने संन्यास की प्रवृत्ति के कारण संसार त्याग कर एक भ्रमणशील संन्यासी बन गए; संयोगवश, उनका दर्शन सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध से हुआ, जो विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर रहे थे; जब वे इधर-उधर भटकते हुए अमर तपस्या का अभ्यास कर रहे थे, तो वे धर्मपरायण हो गए; गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी; उन्होंने तपस्या के उस कुटिल अभ्यास को त्याग दिया; वे शासन (सासन) में भिक्षु बन गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करते हुए, शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए; अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

“पवित्र मन और नेक दिल,

मैंने बुद्ध को नमन किया,

सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में श्रेष्ठ, सबसे श्रेष्ठ

उत्कृष्ट नायक, विजेता

विजय वस्सभु।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

फिर मैंने अपना काम किया। मैं नहीं।

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यह

यह मेरे भुगतान का फलदायी परिणाम है।

श्रद्धांजलि।

चौबीस युग (कप्पा) पहले, मैं था

विकतनंद नामक एक विश्व-राजा,

महान शक्ति, सात गुणों से संपन्न

तरह-तरह के रत्न।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यद्यपि छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने अपने सगे-संबंधियों पर दया करते हुए अपनी जन्मभूमि (जातिभूमि) की ओर प्रस्थान किया। मुक्ति के आनंद में लीन रहते हुए, उन्होंने अपने अनेक सगे-संबंधियों को तीन शरणों (शरण) और नैतिक उपदेशों में स्थापित किया, फिर वहाँ से निवत्तित्व (निवत्तित्व) करते हुए कुरु राज्य के कुण्डिया नामक नगर (निगम) के निकट वन में निवास किया और किसी कार्य के लिए उगाराम गए। जब उनसे पूछा गया, "हे भारद्वाज! क्या देखकर आपने ब्राह्मणों के सिद्धांत को त्यागने के बाद इस सिद्धांत (समय) को अपनाया?" उत्तरपथ से आए अपने मित्र ब्राह्मणों (समदित्त) के समक्ष एकत्रित होकर उन्होंने अपना पहला श्लोक सुनाया, ताकि उन्हें यह दिखाया जा सके कि बुद्ध के इस शासन (सासन) के बाहर कोई पवित्रता (सुदाणी) नहीं है।

219. "मैंने आग बुझाने में मदद की

जंगल में, पवित्रता की खोज में नासमझी से

(अयोनि); मार्ग का ज्ञान न होना

मैंने पवित्रता के लिए अमर तपस्या की।

वहाँ, अयोनि का अर्थ है: नासमझी से, उचित साधनों के बिना (अनुपायेन)। शुद्धिं का अर्थ है: बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) से मुक्ति, अस्तित्वों से छुटकारा। अन्वेषं का अर्थ है: खोज। अग्गिं परिचारिं वेन का अर्थ है: मैंने वेदों में वर्णित अनुष्ठानों के अनुसार श्रद्धापूर्वक अर्पण किया और अग्नि देवता की सेवा की, यज्ञ को बढ़ावा दिया (पग्गणहन्तो), वन क्षेत्र में अग्नि-यज्ञ कक्ष (अग्गीहुत) में अग्नि कक्ष (अग्यागारं) बनाया, जिसका अर्थ है: "यही शुद्ध मार्ग है।" शुद्धिमग्गं अजानन्तो, अकासिं अमरं तपं का अर्थ है: निर्वाण, यानी शुद्ध मार्ग को न जानते हुए, मैंने अग्नि की सेवा (अग्गिपरीचरण) के समान पाँच प्रकार की धार्मिक तपस्या से तृप्त होने जैसी आत्म-संतोष (किलमथा) का अभ्यास किया और उसमें प्रवेश किया, इसे शुद्ध मार्ग (शुद्धि-मग्ग) समझकर।

इस प्रकार, अग्नि की सेवा आदि जैसे अनुष्ठानों का पालन करके, वेदों में निर्धारित विधि (औपचारिकता) के अनुसार एक आश्रम से दूसरे आश्रम जाने के समान, शुद्धता प्राप्त न करने की स्थिति के माध्यम से बाहरी शुद्धता के अभाव को दर्शाते हुए, थेरा ने दूसरा श्लोक कहा, ताकि यह दिखाया जा सके कि अब शुद्धता केवल इसी व्यवस्था (शासन) में है और मैंने शुद्धता प्राप्त कर ली है (मया)।

220. "वह सुख प्राप्त हो गया था"

आसानी से (सुखेना); अच्छाई देखो

सत्य का स्वरूप (सुधम्मता)

(धम्म); त्रिगुणात्मक अति-

विज्ञान (विज्जा) तदनुसार

प्राप्त किया; बुद्ध के उपदेश प्राप्त हुए थे

कार्य संपन्न हो चुका है।

वहाँ, taṃ का अर्थ है: जिस पवित्रता के मार्ग की मैं खोज कर रहा हूँ, उसे न जानते हुए, मैंने अग्नि की सेवा की और अमर तपस्या का अभ्यास किया; sukhaṃ sukhena का अर्थ है: निर्वाण का वह सुख, शांत भाव (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के आनंद के उचित अभ्यास (पटिपदा) के माध्यम से, आत्म-प्रयास (अत्तकिलमथा) का सहारा लिए बिना (अनुपगम्म); laddhaṃ का अर्थ है: मैंने प्राप्त किया है। Passa dhamma Sudhammataṃ का अर्थ है: गुरु के शासन (शासन) के सत्य (धम्म) के पलायन (निय्यानिक) और सहनशीलता (अविपरिता) के कर्म (धम्म) के अच्छे स्वभाव और चरित्र (सभावं) को देखो और समझो; इस प्रकार, थेरा सत्य (धम्म) को संबोधित करते हुए बोलते हैं। दूसरे शब्दों में, वह स्वयं को संबोधित करता है। इसे प्राप्त करने की स्थिति को दर्शाने के लिए थेरा ने कहा:

"तिस्सो विज्जा अनुपत्ता, कटं बुद्धासनं।"

इसका अर्थ बताया जा चुका है। थेरा ने तीसरे श्लोक का उच्चारण इस प्रकार किया: “इसलिए, मैं पूर्ण अर्थों में (परमत्थतो) ब्राह्मण (पवित्र) हूँ, क्योंकि मुझमें इस प्रकार की पवित्रता है।”

221. “मैं पूर्व में ब्रह्मा का रिश्तेदार था;

अब, वास्तव में, मैं एक ब्राह्मण हूँ।

(पवित्र)। मैं तीन बार विद्वान हूँ

(तेविज्जो) जिसने स्नान कर लिया था

(nhātako). मैं इसमें विद्वान था

ज्ञानवान (सत्तियो) और वेदों में पारंगत

(वेदागू).

उस श्लोक का अर्थ:— ब्रह्मबंधु आसिं का अर्थ है: - वर्तमान समय से पहले, मात्र जन्म से ही, ब्राह्मण होने के कारण, मैं ब्राह्मणों के नाम (सेमञ्ञा) के अनुसार ब्रह्मा का संबंधी (ब्रह्मबंधु) कहलाता था। इदानि खो ब्राह्मणो अम्हि का अर्थ है: क्योंकि बुराई का नाश हो गया था, इसलिए मैं अरहंतत्व की प्राप्ति के साथ पूर्ण अर्थ में (परमत्थ) ब्राह्मण हूँ। तेविज्जोच अम्हि का अर्थ है: वर्तमान समय से पहले, मैं मात्र (मत्तेन) नाम (समञ्ञा) से ही तेविज्ज (तीन बार विद्वान) कहलाता था, क्योंकि मैं तीन वेदों का पाठ (अज्जायन) करता था, जो पूर्व में अस्तित्वों के संचय (भवसंचय) के निर्माता (कर) थे; अब मैं पूर्ण अर्थ में तेविज्ज (परमत्थतो) हूँ, क्योंकि मैंने अस्तित्व के उन्मूलन के माध्यम से तीनों विज्जाओं को प्राप्त कर लिया है। न्हातको च अम्हि का अर्थ है: इसी प्रकार, इससे पहले, मैं केवल धार्मिक स्नान की विधि पूरी करने के कारण स्नानित (न्हातक) कहलाता था, क्योंकि मैं पहले अस्तित्व की मिठास (अस्सादा) से जकड़ा हुआ था, लेकिन अब मैं पूर्ण अर्थ में (परमत्थ) स्नानित (न्हातक) हूँ, क्योंकि मैंने आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग (अत्थांगिक मार्ग) के जल (जल) से दुराचार (किलेसा) की अशुद्धता को अच्छी तरह धो डाला है। सोथियो च'अम्ही का अर्थ है कि वर्तमान से पहले, मैं केवल शब्दावली (वोनरामत्त) के आधार पर विद्वान (सोत्तिया) कहलाता था, क्योंकि मैं मंत्रों (मन्तज्जान) का पाठ कर सकता था जो पहले अस्तित्व की मिठास से स्पष्ट रूप से मुक्त नहीं थे, लेकिन अब मैं सत्य (धम्म) के अपने ध्यान के कारण पूर्ण अर्थ में विद्वान (सोत्तिया) हूँ, जो अस्तित्व की मिठास (आकर्षण) से पूरी तरह मुक्त है। वेदागू का अर्थ है: वर्तमान से पूर्व, मैं केवल वेदों के अध्ययन के कारण ही वेदागू कहलाता था, जिन्होंने पहले बुरे कर्मों का त्याग नहीं किया था (अप्पतिनिस्साठपापधम्म)। अब मैं पूर्ण अर्थ में वेदागू हो गया हूँ, क्योंकि मैंने चार आर्य सत्यों, यानी पुनर्जन्मों के चक्रों के ज्ञान (वेद) को जान लिया है, प्राप्त कर लिया है और उसके पार तक पहुँच गया हूँ, जो कि वेद के रूप में माने जाने वाले सही मार्ग (मार्ग) के ज्ञान के माध्यम से प्राप्त हुआ है। इस श्लोक को सुनकर ब्राह्मण इस व्यवस्था (शासन) में अपनी अपार (उलारा) पुण्य प्रसन्नता (पसाद) का अभिनंदन करते हैं।

थेरा अंगणिकभारद्वाज के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(171):पकाया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (171) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
171. पकाया

इस बुद्ध युग में रोही नगर में एक कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम पचया रखा गया। [1] अपने पिता की मृत्यु पर संपत्ति विरासत में मिलने पर, उन्होंने एक महान औपचारिक अर्पण आयोजित करने का फरमान जारी किया, और एक बड़ी सभा एकत्रित हुई।

[159] उस सभा में, भगवान (बुद्ध), अपने पूर्वज वेसवना द्वारा निर्मित रत्नजड़ित मंडप में सिंहासन पर विराजमान होकर, [2] धर्म का उपदेश दे रहे थे, जबकि सभी लोग उन्हें निहार रहे थे। विशाल जनसमूह भी सिद्धांत को समझ गया, परन्तु राजा पचया ने उससे भी आगे बढ़कर कार्य किया। पूर्व कारणों से प्रेरित होकर, उन्होंने अपना सत्व त्याग दिया और संसार छोड़कर (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया)। और जिस प्रकार उन्होंने कश्यप बुद्ध के समय प्रतिज्ञा की थी, उसी प्रकार अब, अपनी कुटिया में प्रवेश करते हुए, उन्होंने पुनः निकलने से पहले ज्ञान प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की। और अंत में, अंतर्दृष्टि में वृद्धि और ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता के साथ, उन्होंने अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

इसके बाद, अपनी उपलब्धि का जश्न मनाते हुए, उन्होंने इस प्रकार अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[222] पञ्चाहाऽ पब्बजितो सेखो अप्पत्तमानसो,॥
विहारं मे पवित्रस्स चेतासो पणिधि आहु॥ ॥

[223] नासिस्सां न पिविस्सामि विहारतो न निक्खमे,॥
नापि पस्सं निपातेस्सं तन्हासल्ले अनुहते॥ ॥

[224] तस्सा सेवाṃ विहारतो पासा वीर्यपराक्कमाṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुपुपत्त कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[222] मुझे (भिक्षु बनने के लिए) निकले पाँच दिन बीत चुके हैं, मैं
एक विद्यार्थी हूँ और मेरा मन अभी पूर्ण नहीं हुआ है। [3] तब मेरे हृदय में, मेरी कोठरी में,
अडिग संकल्प जागा:

[223] मैं न खाऊँगा, न पीऊँगा,
न इस कमरे से बाहर निकलूँगा,
न ही करवट लेकर लेटूँगा,
जब तक लालसा का तीर अभी तक नहीं निकला है। [4]

[224] इस प्रकार मैं दृढ़ रहता हूँ - हे देखो
और ऊर्जा की आगे की चाल पर ध्यान दो:
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना बना लिया है,
और बुद्ध के सभी कार्य पूरे हो चुके हैं!

[1] न तो (राजा)राज और न ही शहर कहीं और पाया जाता है। पच्चया (इस प्रकार उच्चारण करें) शाकीय पूर्वज वेस्संतरा के हाथी का नाम था (जाट., vi. 485, पाठ)।

[2] सी.एफ. पी। 189, एन. 1 जाट., वि. 265 एफएफ। (मूलपाठ)।

[3] निकायों का एक वाक्यांश (मज्ह., i. 4; साम., i. 121, v. 145)।

[4] शिक्षार्थियों पर एक संकल्प लगाया गया (मज्ह., i. 480; अंग., i. 50; साम. , ii. 28)।

3.2 [171] पच्चयत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
पंचाहाहं पव्वजितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा पच्चया का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान विपस्सी के समय, 91 युग (कप्पा) पूर्व, एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन संयोगवश उन्होंने गुरु को विनता नदी के किनारे जाते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए, सुंदर

दिखने वाले बड़े अंजीर तोड़े और उन्हें अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने उत्तम जन्मों के चक्रों में विचरण किया, और जब इस उत्तम युग (भद्दा कल्प) में भगवान कस्सपा संसार में अवतरित हुए, उन्होंने धर्म के उत्तम चक्र का संचालन किया और वेणेयजना के जनसमूह का उत्थान कर रहे थे, तब उन्होंने उनके मार्गदर्शन में संन्यासी बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास के मार्ग पर चल पड़े और भावना में लीन रहते हुए एक दिन उन्हें जन्मों के चक्रों के कष्ट (दु:ख) का विचार आया, वे अत्यंत दुखी हुए, मठ में बैठ गए और यह संकल्प लिया: "मैं अरहंतत्व प्राप्त किए बिना यहाँ से नहीं जाऊँगा।" उन्होंने निरंतर प्रयास किया, लेकिन ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता के अभाव में वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में तत्परता से संलग्न नहीं हो सके। उनकी मृत्यु हो गई और वे बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते हुए, देवताओं और मनुष्यों के बीच रहे, और अंत में रोहित नगर के एक कुलीन योद्धा (खत्तीय) परिवार में पुनर्जन्म लिया, तभी बुद्ध प्रकट हुए; पच्चया नाम प्राप्त करने के बाद, अपने पिता के देहांत के बाद वयस्क होने पर, उन्होंने संप्रभुता प्राप्त की और एक दिन एक महान राजसी आहुति (बलि) देने लगे। वहाँ असंख्य लोग एकत्रित हुए। गुरु ने उस सभा में अपनी पुण्य प्रसन्नता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, असंख्य लोगों के देखते ही, आकाश में वेस्सवण द्वारा निर्मित रत्नों से सजे शिखर-छत वाले कुटागार में स्थित सिंह सिंहासन पर विराजमान होकर सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। असंख्य लोगों को सत्य (धम्म) का ज्ञान प्राप्त हुआ। सत्य की उस शिक्षा (धम्म) को सुनने के बाद, राजा पच्चया ने भी अपने पूर्व उद्देश्य (पुरिमहेतु) से प्रेरित होकर अपना राज्य त्याग दिया और भिक्षु बन गए। उन्होंने उस समय भगवान कस्सपा के प्रति जो प्रतिज्ञा (पटिञ्ञा) की थी, उसी प्रकार प्रतिज्ञा (पटिञ्ञा) की; इस प्रकार प्रतिज्ञा करने के बाद, वे मठ में प्रवेश कर गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि करते रहे और सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त करने के कारण वहीं अरहंतत्व (तावदेव) प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"विनता नदी के किनारे पर,

वहाँ सबसे उत्कृष्ट निवास करता था

पुरुषों; मैंने निर्मल बुद्ध को देखा, एक

सटीक (एकग्गं) और सुव्यवस्थित।

उसके प्रति श्रद्धा भाव रखना जो

दुराचार की अशुद्धता को धो डाला,

मैंने अंजीर के फल एकत्र किए और उन्हें भेंट किया।

उन्हें बुद्ध के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह इसका फलदायी परिणाम है

फल का प्रसाद।

(इस उत्कृष्ट युग में (भद्दके

कप्पे), पश्चाताप से ग्रस्त होना,

मैं उस धर्मविधि में भिक्षु बन गया

भगवान कस्सपा के।

क्योंकि मैं भिक्षु बन गया था,

मैंने अपने मानसिक विकास में खुद को व्यस्त रखा।

विकास (भावना); मैं नहीं करूँगा

मेरे मठ को छोड़ दो; मैंने अपना फैसला कर लिया है

इस प्रकार ध्यान रखें। अच्छी तरह से प्राप्त न कर पाने के कारण

मुझे सबसे अधिक लाभ नहीं मिला।

जिन्होंने सभी के लिए उपलब्धि हासिल की थी

बार (तावड़े)। अब, हालांकि, मेरा

आग बुझा दी जाती है (निब्बुतो)

मेरी सर्वांगीण परिपक्वता के साथ

ज्ञान। अपना संपर्क स्थापित करने के बाद।

अमर मार्ग से मैंने प्राप्ति की है

निर्वाण का अविचल स्थल।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने तीन श्लोक कहे, जिसमें उन्होंने अपने उचित अभ्यास (पटिपत्ति) की घोषणा करते हुए अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट किया।

222. "पांचवें दिन के बाद मैं था

भिक्षु बनना, एक विद्यार्थी (सेखा) जो

मैंने अरहंत पद प्राप्त नहीं किया था। जब मैं

मठ में प्रवेश कर चुका था, वहाँ था

मेरा मानसिक संकल्प।

223. "न तो मैं बैठकर पीऊँगा और न ही

क्या मैं अपना मठ छोड़ दूँ, और न ही

मैं करवट लेकर लेट जाता हूँ (passaṃ nipātessaṃ)

तृप्ति के काँटे के बिना (तण्हासल्ल)

हटा दिया गया था (ūhata)।

224. "जब मैं इस प्रकार निवास कर रहा था,

मेरी मेहनत और प्रयास देखो। तिगुना

तदनुसार ज्ञान (विज्जा) था

प्राप्त हुआ; बुद्ध का उपदेश था

किया गया।"

वहाँ, pañcānāhaṃ pabbajito का अर्थ है: मैं पाँच दिन का हूँ; भिक्षु बनने के पाँच दिन बाद; भिक्षु बनने के दिन से पाँचवाँ दिन समाप्त हो गया (niṭṭhito); यही अर्थ है। Sekho apattamānaso का अर्थ है: उच्च नैतिक उपदेशों (adhisīla), आचरण (sikkhā) आदि जैसे अनुशासनों में प्रशिक्षित होने के कारण एक शिक्षार्थी (sekha); अहंकार पूरी तरह से (anavasesato) कम (siyati) और कट (samucchindati) गया है; इस प्रकार; mānaso (परिविधा रहित); प्रमुख मार्ग (magga); सक्रिय मन (mānasa) से जिसने (nibbattaita) इरादा (mānasaṃ) और अर्हतत्व उत्पन्न किया; इस व्यक्ति ने वह अर्हतत्व प्राप्त नहीं किया है। विहारं मे पविट्ठस्स, चेतसो पणिधी अहु का अर्थ है: जब मैं, जो इस प्रकार एक विद्यार्थी (सेख) था, अपने निवास मठ के भीतरी कक्ष (ओवरक) में प्रवेश कर गया और वहीं (सतो) रहा, तब मेरा ऐसा ही मानसिक संकल्प था जैसा कि अभी कहा जा रहा है। इस प्रकार, मैंने अपना मन बना लिया था; यही इसका अर्थ है।

नासिस्सं: इस शब्द से शुरू करते हुए, वे अपना दृढ़ संकल्प प्रकट करते हैं। यहाँ, नासिस्सं का अर्थ है: जो कुछ भी खाने को हो (भोजनं) (मैं नहीं खाऊँगा), उसका आनंद नहीं लूँगा; तन्हासल्ले अनुहते का अर्थ है: जब तक मेरे हृदय में चुभा हुआ लालसा का काँटा नहीं निकाला गया था; इस प्रकार, सभी शब्दों का अर्थ इसी प्रकार लगाया जाना चाहिए। न पिविस्सामि का अर्थ है: जो कुछ भी पीने को हो, मैं नहीं पीऊँगा। विहारतो ने निक्खमे का अर्थ है: मैं इस कक्ष से बाहर नहीं जाऊँगा जहाँ मैं अभी बैठा हूँ। न पि पस्सं निपटेस्सं का अर्थ है: शारीरिक थकान दूर करने के लिए मैं अपने शरीर के दोनों कोणों में से एक भी कोना नीचे नहीं गिराऊँगा; मैं एक भी करवट नहीं लेटूँगा; यही अर्थ है।

तिस्सां म'अवं विहारतो का अर्थ है: जब मैंने दृढ़ संकल्प लेकर और मन बना कर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के लिए भक्तिपूर्वक निवास किया। पस्सा वीरिय परक्कमं का अर्थ है: उस प्रयास को देखो और समझो जो दूसरे स्थान पर पहुँचने के कारण "परक्कम" (प्रयास) और विधिपूर्वक गति करने के कारण "वीरिय" (प्रयास) बन गया था। तिस्सो विज्जा अनुपत्ता, कतं बुद्धस्स शासनम् का अर्थ है: जिस शक्ति से मुझे त्रिविध ज्ञान (विज्जा) प्राप्त हुआ; बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया; बस इतना ही कहा गया था।

थेरा पचया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (172) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
172. बाकुला
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के प्रकट होने से पहले, कोसंबी में एक पार्षद परिवार में जन्मे, जब उन्हें यमुना नदी में स्वास्थ्य लाभ के लिए स्नान कराया जा रहा था, [1] तभी एक मछली ने उन्हें [160] दाई के हाथों से निगल लिया। मछली को एक मछुआरे ने पकड़ा और बनारस के एक पार्षद की पत्नी को बेच दिया। जब उसे चीरा गया, तो अपने पुण्य के बल पर बच्चा अचंभित निकला। पत्नी ने उसे अपने बेटे की तरह प्यार किया और जब उसने उसकी कहानी सुनी, तो उसने उसके माता-पिता के बारे में पूछा। राजा ने निर्णय लिया कि उन्हें उसे संयुक्त रूप से रखना चाहिए, इसलिए उसका नाम बा-कुल ('दो परिवार', द्वि-वंशज) रखा गया।

एक समृद्ध जीवन के बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुना और अस्सी वर्ष की आयु में संसार त्यागकर (सन्यास के लिए) चले गए। सात दिनों तक वे अज्ञानी रहे, परन्तु आठवें दिन के प्रारंभ होते ही उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया, साथ ही सिद्धांत के अक्षर और भाव पर पूर्ण महारत हासिल कर ली। [2]

एक दिन भगवान (बुद्ध) ने अपने शिष्यों को अनेक प्रकार की श्रेष्ठता प्रदान करते हुए, अच्छे स्वास्थ्य के लिए बकुला को सर्वोपरि स्थान दिया। [3] इसके बाद, जब वे परलोक जाने वाले थे, तो उन्होंने भिक्षुओं के बीच इस प्रकार अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[225] यो पुब्बे करणियानि पच्च सो कतुमिच्छति,॥
सुखा सो धंसते ठाना पच्च च मनुतप्ति॥ ॥

[226] याṃ ही कयिरा ताṃ ही वदे याṃ न कयिरा न तां वदे,॥
अकरोंतं भस्मानां परिजानन्ति पणदिता॥ ॥

[227] सुसुखं वात निब्बाणं सम्मासंबुद्धदेसीतां,॥
असोकं विरजां खेमं यथा दुक्खं निरुज्जति' ति.॥ ॥

[225] जो व्यक्ति कल
उन कामों को करने में प्रसन्न होता है जो उसे कल ही करने चाहिए थे, वह
सुखद अवसर खो देता है, और
उसे शीघ्र ही इसका घोर पश्चाताप होगा। [4]

[226] उसे केवल वही बात करने दो जो की जानी चाहिए;
उसे वह बात न करने दो जो नहीं की जानी चाहिए!
जो बहुत बोलता है, परन्तु करता नहीं,
बुद्धिमान लोग उसका मूल्यांकन करते हैं और उसकी योग्यता के अनुसार उसका आकलन करते हैं। [5]

[227] [161] हे महान, हे अद्भुत है निर्वाण का आनंद,
जो पूर्णतः जागृत (भगवान बुद्ध) द्वारा प्रकट हुआ है!
वहाँ कोई दुःख नहीं, कोई वासना नहीं, निश्चित आश्रय है,
जहाँ दुःख और पीड़ा हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं!

[1] यमुना नदी। कोसंबी यमुना और गंगा के संगम (इलाहाबाद में) के पास रहते थे। बकुला या बक्कुला की कहानी अंगुत्तरा-निकाय टीका और मिलिंदा की सिंहली टीका (ii. 10, n. 2) में दी गई है। उनकी कथा के अनुसार उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में दो बुद्धों का उपचार किया था। मॉरिस की बक्कुला पर अन्य संदर्भ में की गई चर्चा (जेपीटीएस, 1886, पृ. 95 आगे) इस शब्द को एक उचित नाम के रूप में पौराणिक कथा से बेहतर ढंग से नहीं समझाती है।

[2] सिस्टर्स देखें , पृ. 17 एन. कविता दोहराई गई है (सीएलएक्सएक्सआईवी)।

[3] आंग. निक., i. 26; वहाँ बक्कुला कहा जाता है। संभवतः उनकी बड़ी उम्र ने भेद को महत्व दिया।

[4] अनुतप्पति, शाब्दिक रूप से, गर्म होने के लिए आगे बढ़ें। हमारा रूपक काटना (पछतावा) या चुभन (अंतरात्मा की चुभन) है।

[5] दो शब्दों parijānanti paṇḍitā से विस्तारित, बुद्धिमान समझते हैं। टीका का विस्तार है 'वे [उसे] सटीक रूप से जानते हैं, उच्च सम्मान नहीं देते।'

3.3 [172] बाकुलथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यो पब्बे करणीयानी से शुरू होने वाला श्लोक यह पूज्य थेरा बाकुला का है। इसका उद्गम क्या है? कहा जाता है कि यह भी बहुत समय पहले, भगवान अनोमदस्सी (बुद्ध) के प्रकट होने से भी पहले, एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए थे, जो अनगिनत युगों के एक लाख युगों (कप्पा) के बाद का समय है; वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया, जहाँ सार का कोई अंश न देखकर उन्होंने संसार त्याग दिया और संन्यासी बन गए। उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं भविष्य के लाभ की तलाश करूँगा।" वे एक पहाड़ी की तलहटी में निवास करते रहे, पाँच गुना उच्च ज्ञान (अभिज्ञा/अलौकिक) और ध्यान की आठ अवस्थाओं (समापत्ति) को प्राप्त किया। उन्होंने बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुना, गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, शरणस्थलों में स्थापित हुए, और जब गुरु को पेट दर्द हुआ, तो वे जंगल से औषधि लाए, जिससे रोग दूर हुआ। वहाँ उन्होंने रोग मुक्ति (आरोग्य) के लिए अर्पण किया, वहाँ से चले गए, ब्रह्मा लोक में उत्पन्न हुए, और असंख्य युगों (असंख्येय्या) तक दिव्य लोकों में अपने बार-बार जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे। और मनुष्यों के बीच, और बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में, हंसवती नगर में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; उन्होंने देखा कि गुरु स्वस्थ भिक्षुओं में एक भिक्षु को सबसे आगे स्थान दे रहे हैं, और स्वयं उस पद की इच्छा रखते हुए, उन्होंने संकल्प लिया (पाणिधान), जीवन भर अच्छे कर्म संचित किए, अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्रों में घूमते रहे लेकिन उत्तम अस्तित्व में, और भगवान विपस्सी के उदय से पहले ही बंधुमती नगर में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया; उन्होंने पूर्वोक्त तरीके से भी एक तपस्वी संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया, ध्यान और उच्च ज्ञान (अभिज्ञा/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त किया और एक पहाड़ी की तलहटी में निवास किया, बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुना, गुरु के समक्ष गए, गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, शरण में स्थापित हुए, और जब भिक्षुओं में घास-फूल का रोग (तिणपुप्पक रोग) फैल गया, तो उन्होंने उस रोग का निवारण (तंवुपसमेत्वा) किया, अपने जीवनकाल तक वहीं रहे, फिर वहां से उनका निधन हो गया, वे ब्रह्मा लोक में उत्पन्न हुए, और देवताओं और मनुष्यों के बीच 91 युगों (कप्पा) तक बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करने के बाद, भगवान कस्सपा के समय बनारस के एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया, और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, उन्हें एक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में एक पुराना विशाल मठ मिला, उन्होंने वहां सभा कक्ष (उपोसथागार) आदि सभी आवास बनवाए, वहां भिक्षुओं के लिए सभी प्रकार की औषधियों की व्यवस्था की, अपने जीवनकाल तक अच्छे कर्म किए, एक बुद्ध काल (बुद्धंतरं) तक देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा किया, और एक बैंकर के घर में पुनर्जन्म लिया। हमारे प्रभु यीशु के उदय से पहले भी कोसंबी के बारे में यही बात कही जाती थी।रोगमुक्त होने के कारण, जब उन्हें यमुना नदी में स्नान कराया जा रहा था, तभी एक धाय के हाथों से मछली उन्हें निगल गई। जब मछली एक मछुआरे के हाथ लगी और बनारस के धनाढ्य की पत्नी ने उसे खरीदकर चीर दिया, तो संयोगवश वे अपने पुण्य कर्मों के कारण रोगमुक्त थे। जब उनकी पत्नी ने उन्हें अपना पुत्र मानकर उनका पालन-पोषण किया, तो उनके माता-पिता, जिन्होंने उन्हें जन्म दिया था, ने इस घटना के बारे में सुना और अपना दावा करते हुए कहा, "यह हमारा पुत्र है; हमें हमारा पुत्र दे दो।" इस पर राजा ने निर्णय लिया और उन्हें दोनों परिवारों का उत्तराधिकारी घोषित करते हुए कहा, "इसे दोनों का साझा पुत्र बना दो।" इस प्रकार रखे जाने के कारण उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ। बाकुला, वयस्क होने पर अस्सी करोड़ की संपत्ति के स्वामी बन गए और अपार समृद्धि का अनुभव किया; गुरु की उपस्थिति में धम्म का उपदेश सुनकर उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और केवल सात दिनों तक साधारण भिक्षु रहे; आठवें दिन सूर्योदय के समय उन्होंने विश्लेषणात्मक ज्ञान के चार रूपों के साथ अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"हिमावंता से कुछ ही दूरी पर था

शोभिता नाम की एक पहाड़ी, जहाँ मेरा एक

मेरे द्वारा निर्मित उत्तम दर्जे का आश्रम।

विद्यार्थी। कई पंडाल लगे हुए थे:

सिंधुवारक के पेड़ खिल रहे थे।

फूलों और लकड़ी के पेड़ों की संख्या बहुत थी

वहाँ; तीतर पक्षी जैसे फूल

खिल रहे थे।

निग्गुंडी की कई झाड़ियाँ थीं

वहाँ; साथ ही बेर और अमरूद भी।

(मलकानी); फरसाका फल और

फूल और साथ ही लंबे सफेद लौकी;

पुंडरिका कमल भी खिल उठा।

वहाँ अंगूर की बेलें उगती थीं (आलका)

विल्वा के पेड़, केले और नींबू के पेड़

अच्छा। वहाँ कई महानामा पौधे थे।

और अजजुना और पियांगुला के पेड़ भी।

वहाँ कोसम्बा के पेड़ थे, मीठे

सुगंधित सलाला के पेड़, नीम के पेड़, बरगद

पेड़ और साथ ही जंगली सेब के पेड़ भी;

इस प्रकार, मेरा आश्रम था; मैं वहीं रहता था।

मैं वहां अपने छात्रों के साथ हूं।

हे ईश्वर अनोमादस्सी, स्वयं-

विश्व का आश्रित नेता, तलाश कर रहा है

एकांत (पटीसल्लानम्) करीब आ गया

मेरा आश्रम।

जब महान नायक अनोमादस्सी, परिपूर्ण

प्रसिद्धि निकट आ गई थी, वहाँ शीघ्र ही (खाणेना)

रक्षक को वायु-रोग हो गया

दुनिया।

जंगल में घूमते हुए मैंने देखा

विश्व का नेता; पास पहुँचकर

स्वयंजागृत बुद्ध, जो इसके स्वामी हैं

दृष्टि (चक्खुमा) प्रसिद्धि से परिपूर्ण, और

उनके आचरण (इरिया) को देखकर

इसके अलावा, मैंने (उपलक्खिं) उस पर ध्यान दिया

वास्तव में, निस्संदेह बीमारी अवश्य ही

हमारे बुद्ध के प्रति जागृत हुए।

मैं शीघ्र ही अपने आश्रम लौट आया।

मेरे विद्यार्थियों की उपस्थिति में; फिर मैं

मैंने अपने विद्यार्थियों को संबोधित किया और उनसे कहा कि मैं

वह दवा बनाना चाहता था।

उन्होंने मेरी कही बात को स्वीकार कर लिया है।

मेरे सभी विद्यार्थी सम्मानपूर्वक एकत्रित हुए

उनके सम्मान के कारण एक साथ (एकज्जं)

मेरे लिए, उनके शिक्षक के रूप में।

तेजी से पहाड़ी पर चढ़ने के बाद, मैंने

हर अत्यंत स्थायी दवा, मिश्रित

पीने के पानी के साथ, और उसे पेश किया

बुद्ध, सर्वश्रेष्ठ।

जब महान नायक, सर्वज्ञानी

विश्व के नेता ने इसमें भाग लिया

दवा, महान की हवा की समस्या

ऋषि सुगत शीघ्र ही शांत हो गए (वूपसमति)।

यह पता चलने पर कि उनकी बीमारी

अनोमादस्सी, प्रसिद्धि से परिपूर्ण, शांत हो गया।

अपनी सीट पर बैठकर उन्होंने कहा

ये छंद।

मैं उस व्यक्ति के बारे में निर्णय दूंगा जिसने पेशकश की थी

मुझे दवा दी गई, और मेरी बीमारी ठीक हो गई।

शांत हो जाओ; जब मैं बोल रहा हूँ तो सुनो।

एक लाख युगों (कप्पा) के लिए

वह दिव्य आनंद में डूबा रहेगा

दुनिया। यह हमेशा विस्मित करता रहेगा।

वह स्वयं संगीत की धुन के बीच वहां मौजूद था।

मानव जगत में आने के बाद, वह

इच्छा, उज्ज्वल आधार द्वारा प्रेरित होकर

(सुक्कमूला), विश्वराज बनना,

हजार बार।

पचपन युगों (कप्पा) के बाद, हम

जम्बू द्वीप (मंडला) का स्वामी बनें,

चार महासागरों (कटुरांटो) से घिरा हुआ और

कई विजय प्राप्त करेगा (विजितवी);

कुल से योद्धा-राजकुमार (खत्तिया) और

क्या उसे अनोमा नाम से जाना जाएगा?

महान शक्ति से संपन्न विश्व राजा बनें

सात प्रकार के रत्नों के साथ; वह अभ्यास करेगा

उसकी संप्रभुता चौंकाने वाली (खोभेत्वा)

यहां तक कि तावतिंस स्वर्ग भी।

चाहे वह दिव्य प्राणी बन जाए या

वह मनुष्य से मुक्त हो जाएगा

बीमारी।

पत्नी से परहेज करते हुए (परिग्गहा) उसने

यह बीमारी फैल जाएगी

दुनिया।

इसलिए, असीम युगों (कप्पा)

दुनिया में एक गुरु होगा।

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, की संतान

ओक्काका का परिवार,

वह उनकी शिक्षाओं का उत्तराधिकारी होगा।

(धम्मेसु), एक ऐसा पुत्र जिसे जन्म से ही संतान के रूप में बनाया गया हो।

सत्य (धम्म); वह निर्वाण में प्रवेश करेगा।

सभी तरह से उपचार के बाद संक्रमण मुक्त

सभी बातों को समझ गया।

अपनी सारी बुराइयों को जलाकर वह

लालसा की धारा को पार करो (तण्हा)

sotaṃ); वह गुरु का शिष्य होगा

बाकुला नाम से जाना जाता है।

यह सब विशेष रूप से जानते हुए, गौतम ने कहा,

साकियान लोगों में बैल, बन जाने के बाद

भिक्षुओं के बीच बैठे हुए

उन्हें सर्वोच्च स्थान पर नियुक्त करें।

हे ईश्वर अनोमादस्सी, स्वयं-

विश्व का आश्रित नेता, तलाश कर रहा है

(अनुविलोकेंटो) उनका एकांत (विवेक)

मेरे आश्रम के पास आ गया।

मैंने महान वीर को संतुष्ट किया (तप्पेसिं)

विश्व का सर्वज्ञानी नेता जो

मैं धार्मिक रूप से प्रसन्न था इसलिए पास आया था।

अपनी हथेलियों से।

मेरा वह कार्य सफल रहा;

खेत उपजाऊ था और बीज भी उपजाऊ था।

समृद्ध (संपदा); मैं लेकिन असमर्थ था

इसे फेंक देना (खेपेटुं);

वास्तव में, उस समय मेरा काम अच्छा हुआ था।

मुझे इससे काफी लाभ हुआ।

मैं नेता से मिला; बचे हुए हिस्से के साथ

उस कर्म से मैंने अविचलितता प्राप्त कर ली है।

पथ (अकलं पदं)।

यह सब विशेष रूप से जानते हुए,

साकियों के बैल गौतम को स्थान दिया गया

मुझे सबसे आगे (etadagga) पर।

यह असंख्य युगों (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने तब अपना कर्म किया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

औषधि (अर्पण) का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, जब उन्हें रोगमुक्त लोगों में सबसे आगे रखा गया, तो एक दिन, गुरु द्वारा, जो अपने शिष्यों को उनके संबंधित पदक्रम में क्रमानुसार स्थापित कर रहे थे, उन्होंने परिनिर्वाण में प्रवेश करने के अवसर पर पुरोहितों (संघ) के बीच भिक्षुओं को निर्देश देने के प्रकाश (मुखेन) में अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए तीन श्लोक कहे।

255. "यदि वह बाद में ऐसा करना चाहे तो

उसे पहले जो कुछ भी करना चाहिए था,

वह सुखमय स्थानों से गिर जाता है (धंसते);

बाद में उसे पछतावा भी होता है।

226. "किसी को अपनी क्षमताओं के बारे में बात करनी चाहिए;

जिस चीज का अनुभव न हो, उसके बारे में बात नहीं करनी चाहिए।

जो किया है या कर सकता है; बुद्धिमान लोग उन्हें जानते हैं।

जो बोलते तो हैं लेकिन करते नहीं।

227. "निब्बान वास्तव में अत्यंत सुखी है;

यह बात कुएं द्वारा इंगित की गई है

स्वयंजागृत बुद्ध। यह इससे मुक्त है।

चिंता रहित, कामवासना रहित (विरजं) और है

सुरक्षित; यह वह स्थान है जहाँ पीड़ादायक कष्ट होता है।

(दुक्खा) समाप्त हो जाता है (निरुज्जति)।

वहाँ, yo pubbe karaṇiyāni, pacchā so kātumicchati का अर्थ है: वह व्यक्ति जो लापरवाही के प्रभाव में आकर ऐसे कर्म नहीं करना चाहता जो उसके स्वयं के कल्याण और सुख के लिए लाभकारी हों, और जिन्हें पहले केवल वृद्धावस्था और रोग आदि से पीड़ित होने से पहले ही किया जाना चाहिए था, परन्तु वह उस समय के बाद भी उन्हें करना चाहता है जब उसे उन्हें कर लेना चाहिए था। ' सो' का अर्थ केवल एक शब्द (निपाता) है। परन्तु फिर, वृद्धावस्था और रोग आदि से ग्रस्त होने के कारण वह उन्हें करने में असमर्थ है। सुख सो धंसते ठाना, पच्छा च मनुतप्पति का अर्थ है: सक्षम न होने पर, वह व्यक्ति सुखी स्थानों, स्वर्ग और निर्वाण से विमुख होकर, उनके लिए साधन न प्राप्त करने के कारण, पश्चात्पन्न हो जाता है और पश्चाताप करता है, और बाद में अपने मन में कहता है: "यदि मैंने अच्छा

कर्म न किया होता।” अक्षर म शब्दों को जोड़ता है। दूसरी ओर, मैंने अच्छा कर्म किया है, इसलिए मैं तुमसे इस प्रकार कहता हूँ: ऐसा कहते हुए, उन्होंने “यां हि कायिरा” से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक बोला।

वहाँ, परिजानन्ति का अर्थ है: वे विश्लेषण (परिच्छिज्जा) के बाद इस प्रकार जानते हैं; “यह इतना है; वे इस पर अधिक ध्यान नहीं देते;” यही अर्थ है। वास्तव में, अच्छे और उचित अभ्यास (सम्मापटीपत्ति) के माध्यम से, जो कोई भी उसके कहे अनुसार कर्ता है, वह उत्कृष्ट (शोभति) है; इसके अलावा किसी अन्य तरीके से नहीं। उन्होंने “ सुसुखं वत ” से शुरू होने वाले तीसरे श्लोक को यह दिखाने के लिए कहा कि अब समान रूप (सरूपतो) होने के दृष्टिकोण से, कही गई बात का अर्थ (साधारणतो) और किए जाने वाले कार्यों के साधन (साधारणतो) को दर्शाया जा सकता है। इसका अर्थ है:— सम्मासंबुद्धेन देसीतं का अर्थ है: भगवान द्वारा सभी सत्यों (धम्म) के अपने जागृत ज्ञान के कारण स्वयं ही सही ढंग से सिखाया गया; अशोकं का अर्थ है; सभी प्रकार से चिंता के कारणों के अभाव के कारण चिंता से मुक्त; विराजं का अर्थ है; निर्मल, क्योंकि यह कामवासना आदि जैसे दागों से मुक्त है; खेमां का अर्थ है: सुरक्षित, क्योंकि यह योग के चार बंधनों से मुक्त है; सुखं वत का अर्थ है: वास्तव में सुखी, निर्वाण की श्रेष्ठता; क्यों? यत्थ का अर्थ है: जिसमें निर्वाण; वत्त दु:खं निरुज्जति का अर्थ है बार-बार जन्मों के चक्र का संपूर्ण कष्ट, जो निश्चित रूप से समाप्त हो जाता है (वूपसमति)।

थेरा बाकुला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

बक्कुला थेरा

गौतम बुद्ध के समय में, कोसंभी नगर में एक धनी, उच्च जाति का व्यापारी और उसकी पत्नी रहते थे। कुछ समय बाद पत्नी गर्भवती हुई और दंपति को एक सुंदर पुत्र हुआ, जिस पर उन्होंने अपना सारा प्यार और स्नेह लुटाया। चूंकि वे यमुना नदी के पास रहते थे, इसलिए बच्चे को उसकी दाई द्वारा प्रतिदिन स्नान के लिए नदी पर ले जाया जाता था।

यमुना नदी गहरी और चौड़ी थी, जिसके किनारे उथले थे और पानी तेज़ी से बह रहा था। दाई एक छोटे बच्चे को नहला रही थी तभी एक बड़ी मछली उसकी ओर तैरती हुई आई और वह डर गई। पानी से बाहर निकलने की हड़बड़ी में उसने बच्चे को खो दिया। नदी में उतरकर उसने उस प्यारे बच्चे को बचाने की कोशिश की। लेकिन पानी का बहाव बहुत तेज़ था। वह डर के मारे देखती रही कि बच्चा उससे दूर, उस बड़ी मछली की ओर बहता चला जा रहा है।

नदी के किनारे कई मील दूर एक मछुआरों का गाँव था। यमुना नदी में मछली पकड़ने वाले लोग बहुत उत्साहित थे, क्योंकि उनके जालों में एक बहुत बड़ी मछली फँसी थी। बड़ी मुश्किल से जाल खींचकर वे उस छटपटाती हुई मछली को गाँव के सबसे धनी व्यक्ति के घर ले गए, जिसके घर में बहुत सारे नौकर-चाकर थे। यह जानते हुए कि इतनी बड़ी मछली केवल अमीर ही खरीद सकते हैं, उन्होंने उसे उस व्यापारी को बेच दिया, जिसके कोई बच्चे नहीं थे। मछली को रसोई में ले जाया गया, लेकिन रसोइया इतनी बड़ी और सुंदर मछली को काटने से हिचकिचा रहा था। उसे पूरा परोसने का फैसला करके, उसने सावधानी से चाकू को उसके किनारे से काटकर मछली को खोला। रसोइया मछली के पेट में एक जीवित शिशु को देखकर बहुत आश्चर्यचकित हुआ। दौड़कर अपनी मालकिन के पास गया और उस सुंदर शिशु को उसे सौंप दिया। निःसंतान वह महिला शिशु को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई और उसने उसे अपने बच्चे की तरह पालने का फैसला किया।

बच्चे के जन्म की अनोखी कहानी जल्द ही पूरे गाँव में फैल गई। कई लोग उस सुंदर बच्चे को देखने आए, जिसे चमत्कारिक बच्चा माना जाता था। कुछ ही समय में यह खबर नदी के उस पार शोक संतप्त माता-पिता तक पहुँच गई, जो अपने बेटे की मृत्यु के कारण गहरे शोक में डूबे हुए थे। उन्हें संदेह हुआ कि यह उनका ही बच्चा हो सकता है, इसलिए वे बच्चे को देखने के लिए उस मछुआरे गाँव गए। बच्चे को अपना मानकर, जन्म देने वाली माँ ने बच्चे की अभिरक्षा माँगी। हालाँकि, नई माँ, जिसने बच्चे को प्यार से पाला था, बच्चे से इतनी आसक्त थी कि वह उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। विवाद को स्वयं सुलझाने में असमर्थ, दोनों परिवार अपनी शिकायत राजा के पास ले गए। राजा ने दोनों पक्षों की बात सुनी और दोनों परिवारों को बच्चे की संयुक्त अभिरक्षा दे दी, जिसका नाम बदलकर बक्कुला रखा गया, जिसका अर्थ है 'दो जातियाँ'। बक्कुला को दो अत्यंत धनी, उच्च जाति के ब्राह्मण परिवारों से वंशज होने का अनूठा सौभाग्य प्राप्त था। वह दोनों परिवारों के स्नेह और विलासिता के बीच पला-बढ़ा। उसे सर्वोत्तम शिक्षा मिली और वह बारी-बारी से दोनों परिवारों के साथ रहता था। जब वह बालिग हुआ तो उसके माता-पिता ने एक खूबसूरत लड़की से उसकी शादी तय कर दी।

सदियों पहले की गई उस इच्छा को पूरा करना ही था। जैसे-जैसे बक्कुला बड़े होते गए, वे गौतम बुद्ध की शिक्षाओं से प्रेरित हुए। उन्होंने बुद्ध के संप्रदाय में शामिल होने का निर्णय लिया। आठ दिन बाद उन्होंने निर्वाण की परम अनुभूति प्राप्त की।

भिक्षुओं ने जल्द ही बक्कुला के बारे में एक विचित्र घटना देखी। वे न केवल किसी चिकित्सक के समान ज्ञानी थे, बल्कि असाधारण रूप से स्वस्थ भी थे; बीमार भिक्षुओं की देखभाल करने के बावजूद वे कभी बीमार नहीं पड़ते थे। बक्कुला अपनी अद्‌भुत स्मृति के लिए भी प्रसिद्ध थे। बुद्ध के प्रमुख शिष्यों, सारिपुत्त और मोग्गलाना तथा उनकी पूर्व पत्नी यशोदरा की तरह, बक्कुला अनंत काल तक अपने पिछले जन्मों को याद रख सकते थे।

बुद्ध ने बक्कुला को सर्वोत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए सर्वोत्कृष्ट भिक्षु नियुक्त किया। बक्कुला ने अस्सी वर्ष की आयु में भिक्षु जीवन व्यतीत किया और अस्सी वर्षों तक गृहस्थ तथा अस्सी वर्षों तक भिक्षु का जीवन भोगा। उनकी असाधारण स्मृति और दीर्घायु के कारण को समझने के लिए हमें कई वर्षों के अतीत में जाना होगा।

एक लाख विश्व चक्र और अनंत काल पूर्व, अनोमदस्सी नामक एक परम बुद्ध भारत पर विराजमान थे। शाश्वत चार आर्य सत्यों और प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत को जानकर, अनोमदस्सी बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्यों, निसाभा और अनोमा के साथ मिलकर, मानव जाति और देवताओं के कल्याण के लिए बुद्ध धम्म का उपदेश दिया। अनोमदस्सी बुद्ध, जो गांवों और शहरों में धम्म का प्रचार करते हुए यात्रा कर रहे थे, सोभिता नामक विशाल चट्टान के पास पुष्प वृक्षों के एक सुंदर उपवन में स्थित एक मठ में थे, तभी वे एक गंभीर बीमारी से ग्रसित हो गए। अपने मन की शक्ति से अपने दर्द और कष्ट को सहन करते हुए, अनोमदस्सी बुद्ध ने मानव जाति को मुक्ति का मार्ग दिखाकर सभी दुखों को दूर करने के अपने महान मिशन को जारी रखा।

उस समय एक कुशल युवक अपनी शिक्षा से संतुष्ट न होकर सत्य की खोज में जुट गया। उसने गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही उसने ध्यान की अवस्था (झान) प्राप्त कर ली। अनोमादस्सी बुद्ध की शिक्षाओं से प्रेरित होकर उसने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। यद्यपि अपने प्रयासों के बावजूद वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका। अनोमादस्सी बुद्ध के दर्शन करके और उनकी बीमारी का निदान करके, उस युवक ने उनके उपचार की अनुमति मांगी। उसने क्षेत्र की छानबीन की, आवश्यक जड़ी-बूटियाँ और जड़ें प्राप्त कीं और उपचार के लिए आवश्यक औषधि तैयार की। उसने श्रद्धा और करुणा से अनोमादस्सी बुद्ध को औषधि अर्पित की और उनकी देखभाल करके उन्हें स्वस्थ कर दिया। इसके बाद उसने संसार (जन्म-मृत्यु के चक्र) में अपने सभी जन्मों में दीर्घायु और अच्छे स्वास्थ्य की कामना की। यह जानकर कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए उसे और अधिक प्रयास और पुण्य कर्मों की आवश्यकता है, उसने पुण्य कर्म करना जारी रखा।

अनोमादस्सी बुद्ध ने भविष्य देखकर भविष्यवाणी की कि युवा भिक्षु कई जन्मों तक ब्रह्म लोकों में पुनर्जन्म लेगा, जिसके बाद वह एक राजा के रूप में मानव लोक में लौटेगा। तब वह कई जन्मों तक राजा के सुख-सुविधाओं का आनंद लेगा। स्वर्ग और मानव लोकों में अपने जन्म-जन्म के दौरान उसे दीर्घायु और असाधारण रूप से स्वस्थ रहने का आशीर्वाद प्राप्त होगा।

बक्कुला का अगला प्रलेखित जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के शासनकाल में हुआ था। वे एक ऐसे भिक्षु से प्रेरित थे जिन्हें पद्ममुत्तरा बुद्ध ने दीर्घायु और स्वस्थता में श्रेष्ठ भिक्षु की उपाधि प्रदान की थी। उन्होंने अनेक पुण्य कर्म किए और भविष्य के किसी बुद्ध के अधीन दीर्घायु और स्वस्थता में श्रेष्ठ बनने की आकांक्षा रखी। पद्ममुत्तरा बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि अनेक युगों बाद शाक्य वंश के गौतम नामक एक सर्वोच्च बुद्ध का शासन होगा। उस समय, बक्कुला एक धनी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेंगे, निर्वाण की परम प्राप्ति करेंगे और स्वस्थता और दीर्घायु में श्रेष्ठ भिक्षु घोषित किए जाएंगे।

अगला प्रलेखित जन्म वृत्तांत विपस्सी बुद्ध के समय का है, जब बक्कुला का जन्म बंदुमती नगर में हुआ था। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने संघ में शामिल होने का निर्णय लिया। शीघ्र ही उन्होंने मानसिक परमानंद की अनुभूति की। इसी दौरान विपस्सी बुद्ध के संघ में एक संक्रामक रोग फैल गया। अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए बक्कुला ने आवश्यक जड़ी-बूटियाँ और जड़ें एकत्रित कीं और ऐसी औषधि तैयार की जिससे संघ के सदस्य ठीक हो गए। इसके बाद उन्होंने अपनी आकांक्षा को पुनः जागृत किया। मृत्यु के समय उनका ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म हुआ और उन्हें दीर्घकाल तक दिव्य आनंद का अनुभव करने का अवसर मिला।

अगला प्रलेखित जन्म वृत्तांत कश्यप बुद्ध के समय का है। एक जीर्ण-शीर्ण मठ को देखकर उन्होंने उसका जीर्णोद्धार किया और उसे संघ को समर्पित कर दिया। कश्यप बुद्ध की शरण में आकर उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के अपने प्रयास जारी रखे। मृत्यु के बाद उनका स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ।
भविष्यवाणी के अनुसार, पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय की गई आकांक्षा गौतम बुद्ध के शासनकाल में पूरी हुई। बक्कुला, अपनी असाधारण स्मृति और प्रथम संघ परिषद में भाग लेने से प्राप्त अनुभव के साथ, संघ को शिक्षा देने और बुद्ध के वचन को संरक्षित करने में अमूल्य योगदान दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(173):धनिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (173) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
173. धनिया
बुद्ध युग में राजगृह में एक कुम्हार परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम धानिया रखा गया। उन्होंने कुम्हार का काम सीखा। उन्हीं के घर पर भगवान (बुद्ध) ने पुक्कुसती को तत्व-व्यवस्था का सूत्र सिखाया। [1] धानिया ने उसी रात पुक्कुसती के अरहंत (ज्ञान प्राप्त) के रूप में निधन की खबर सुनकर सोचा, 'बुद्ध-शासन वास्तव में मार्गदर्शन करने में शक्तिशाली है, जिसमें एक रात ही मनुष्य को पुनर्जन्म के दुखों से मुक्ति दिला सकती है!' इसलिए उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया। लेकिन वे छतों के लिए टाइलें बनाने का काम करते रहे। [2] बुद्ध द्वारा मिट्टी की झोपड़ी बनाने के लिए फटकार लगाए जाने पर, उन्होंने एक भिक्षु के आवास में निवास किया और वहीं अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया।

इसके बाद, आत्म-संयम के कारण स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने वाले भिक्षुओं को संबोधित करते हुए, उन्होंने अन्न (प्राप्ति) की घोषणा इस प्रकार की:

[228] सुखान्से [30] जीवितुṃ इच्चे समानास्मिṃ अपेक्खवा,॥
साङ्घिकां नातिमान्येया शिवरां पानभोजन:॥ ॥

[229] सुखाँसे जीवितुइ इच्चे समानास्मिअ अपेक्खवा,॥
अहि संगीतशोभं वा सेवेथा सयानासनं॥ ॥

[230] सुखाँसे जीवितुइ इच्चे समानास्मिअ अपेक्खवा,॥
इतरितरेण तुस्सेय एकधम्मञ्च भवायति.॥ ॥

[228] यदि कोई भिक्षु के अनुशासन में
यह सोचे कि वह सुखमय आराम से कैसे रह सकता है, तो
उसे भिक्षु के वस्त्र का तिरस्कार नहीं करना चाहिए,
न ही उसके भोजन और पेय का अनादर करना चाहिए।

[229] यदि कोई भिक्षु के अनुशासन में
यह विचार करे कि वह सुखमय आराम से कैसे रह सकता है, तो उसे जलसाँप या चूहे
जैसे आश्रय में बार-बार जाना चाहिए [आदिम, नग्न]। [3]

[230] यदि कोई भिक्षु के अनुशासन में
यह सोचे कि वह सुखमय आराम से कैसे रह सकता है,
तो उसे प्रसन्न रहना चाहिए, चाहे दिन कुछ भी लाए, [4] और उसे एक मुख्य बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। [5]

[1] 'धातु-विभंग-सुत्त,' मज्झ. निक., iii. 237 ff., जहाँ कुम्हार का नाम उल्लेखित नहीं है। तुलना करें उपरोक्त XCVII., और मेरा बौद्ध धर्म, 1912

[2] धानिया की ईंट बनाने की कुशलता: मिट्टी का काम इंडिगोपाका (श्लोक 13 देखें) की तरह लाल होता है, और थपथपाने पर घंटी जैसी ध्वनि देता है, इस संदर्भ में विनय, iii. 41 f में वर्णित है।

[3] टिप्पणी: 'क्षण का छेद, जहाँ वह अपनी इच्छा से अंदर और बाहर जा सकता है।'

[4] शाब्दिक रूप से, किसी न किसी बात पर प्रसन्न।

[5] अर्थात, उसके अध्ययन का एक-धम्मm जो भी हो, उसे ईमानदारी से रहने दें (टिप्पणी) ।

3.4 [173] धानियाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी

सुखांचे जीवितुं इच्चे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा धानिया का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान सिखि के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्हें गुरु के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें सरकंडे की माला (नङ्मला) अर्पित की। उस पुण्य कर्म के कारण, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे राजगृह में एक कुम्हार के परिवार में पुनर्जन्म लिए; धानिया नाम प्राप्त करके, वयस्क होने पर उन्होंने कुम्हार का काम करके जीविका अर्जित की। उस अवसर पर, गुरु ने कुम्हार के कक्ष में बैठकर पुक्कुसती नामक युवक (कुलपुत्र) को चधातुविभंग सूत्र का उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर वह अरहंत बनकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करने वाला बन गया। धानिया ने जब उनके परिनिर्वाण प्राप्त करने की स्थिति के बारे में सुना, तो उन्होंने उचित श्रद्धा से भरकर मन ही मन कहा, "वास्तव में, बुद्ध का उपदेश लाभदायक (निय्यनिक) है, क्योंकि इससे व्यक्ति जन्म-जन्म के चक्र (वट्ट) के कष्टदायक दुख (दुक्खा) से केवल एक रात के लिए परिचित होने (परिचय) से मुक्त हो जाता है।" वे भिक्षु बन गए और अपने निवास स्थान (जुटी) को सजाने-संवारने में सदा लगे रहने (अनुयुत्तो) के कारण भगवान बुद्ध द्वारा फटकारे (गरहितो) गए। बाद में पुरोहितों के मठ (सांघिक) में निवास करते हुए, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है ।

मैंने सुनहरे रंग वाले स्वयं को देखा-

जागृत बुद्ध, नेता

विश्व, इसके योग्य प्राप्तकर्ता

बलि चढ़ाने की भेंटें ऊपर जा रही हैं

लकड़ी का ऊपरी भाग।

लाल रंग की माला एकत्र करने के बाद,

मैं तुरंत बाहर आया, और

वहाँ मेरी मुलाकात आत्मजागृत बुद्ध से हुई।

जब वह पार कर चुका था तो वह घावों से मुक्त था।

बाढ़ के ऊपर (ओघाटिण्ण)।

धार्मिक और नेक दिल होने के कारण, मैंने यह किया।

मेरी श्रद्धापूर्वक अर्पित की गई सरकंडे की माला

महान नायक को, योग्य प्राप्तकर्ता को

समर्पित दान के, सहानुभूति रखने वाले

दुनिया के।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने विशेष रूप से अपनी पुष्पांजलि अर्पित की थी;

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहंत पद को प्रकट करने के लिए तीन श्लोक कहे, ताकि उन भिक्षुओं को सलाह दी जा सके, जिन्होंने तपस्या में एकाग्रता (समाधान) के द्वारा स्वयं को ऊंचा उठाकर पुरोहितों के लिए बने भोजन का आनंद लेने वाले अन्य भिक्षुओं का अपमान किया था। आदि।

228. "यदि कोई सुखी जीवन जीना चाहता है,

(अपेक्खवा) साधुत्व की लालसा

(सामञ्ञा), किसी को कम नहीं आंकना चाहिए

इससे जुड़ी कोई भी ऐसी चीज

बाथरोब, पेय और भोजन का ऑर्डर दें।

229. "यदि कोई सुखी जीवन जीना चाहता है,

भिक्षु जीवन की लालसा,

किसी को उसके मठ का उपयोग करना चाहिए

जैसा कोई व्यक्ति व्यवहार करेगा

किसी सांप या चूहे के बिल की ओर।

230. “यदि कोई सुखी जीवन जीना चाहता है

और भिक्षु जीवन की कामना करता है, एक

उसे इसी से संतुष्ट रहना चाहिए;

हमें एकमात्र सत्य का ही पोषण करना चाहिए।

(धम्म)।

वहाँ, सुखन चे जीवितुं इच्चे, सामञ्ञस्मिं अपेक्खवा का अर्थ है: यदि कोई जीना चाहता है, तो उसे भिक्षुत्व के सुख की कामना करनी चाहिए, अनुचित व्यवहार (अनेसनं) का त्याग (पहया) करके, भिक्षु की स्थिति के लिए तरसते हुए, और अनुशासित आचरण (सिक्खाया) के प्रति तीव्र आदर (तिब्बगारवो) रखते हुए; यही अर्थ है।

संघिकं नातिमञ्ञेय्य, चीवरं पानभोजनं का अर्थ है: भिक्षु संघ से प्राप्त वस्त्र और भोजन को कम महत्व नहीं देना चाहिए; भिक्षु संघ को जो लाभ प्राप्त होता है, वह सर्वांगीण शुद्धि है; अत:, जो इन्हें धारण और ग्रहण करता है (परिभुञ्जन्तस्स), उसे आजीविका की सर्वांगीण शुद्धता के फलस्वरूप प्राप्त होने से भिक्षुत्व का सुख प्राप्त हो जाता है; यही इसका महत्व है। अहिमुसिकासोभं वा का अर्थ है : चूहे द्वारा खोदा गया एक बिल जो सांप जैसा दिखता है; सेवेथा का अर्थ है: मठ की सेवा करनी चाहिए। जिस प्रकार एक साँप स्वयं अपना घर (आसय) बनाए बिना, चूहे या किसी अन्य प्राणी द्वारा बनाए गए आश्रय में रहकर जहाँ चाहे वहाँ से चला जाता है (येन कामं), ठीक उसी प्रकार एक भिक्षु, मठ के कारण स्वयं को भ्रष्ट किए बिना, यहाँ-वहाँ रहकर भी वहाँ से चला जाता है; यही अर्थ है।

अब, यह दिखाने के लिए कि “सन्यास का सुख केवल संन्यासी की आवश्यकताओं की प्राप्ति से ही प्राप्त होता है, चाहे वे कही गई हों या अनकही; किसी अन्य तरीके से नहीं”, उन्होंने कहा: “इतरीतरेना तुस्सेय्या।” व्यक्ति को किसी भी प्रकार से प्राप्त आवश्यकताओं से संतुष्ट रहना चाहिए, चाहे वे निम्न हों या उच्च; यही अर्थ है। एकधम्मं का अर्थ है परिश्रम की अवस्था; वास्तव में, जो व्यक्ति इसमें लगा रहता है, उसे समस्त दोषरहित सांसारिक सुख और दिव्य सुख प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा: “अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पति विपुलं सुखं (वास्तव में, परिश्रमी व्यक्ति ध्यान में प्रवेश करके प्रचुर सुख प्राप्त करता है)।”

थेरा धानिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (174): मतंग का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (174) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
174. मातंगा का पुत्र
बुद्ध युग में कोसल में मातंग नामक एक जमींदार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम उनके पिता के नाम पर रखा गया। वे आलस्य में पले-बढ़े और जब उनके लोगों ने उन्हें फटकारा, तो उन्होंने भिक्षुओं से मेल-जोल किया और देखा कि शाकिया पुत्र भिक्षु कितने सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन जब उन्होंने भगवान (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, तो उन्होंने विश्वास किया और भिक्षु बन गए। भिक्षुओं द्वारा धारण की गई इद्धि की शक्ति को देखकर, उन्होंने भी वैसी ही शक्ति प्राप्त करने की इच्छा की। अभ्यास करते हुए, उन्होंने छह गुना अभिज्ञा (उच्चतर ज्ञान/आध्यात्मिक शक्ति) प्राप्त की।

इस पर उन्होंने आलस्य की निंदा करते हुए, इन छंदों में अपनी ऊर्जा का प्रवाह व्यक्त किया:

[231] अतिसीताṃ अतिउṇhaṃ अतिसायमिदौ आहु,॥
इति विशत्थकम्मन्ते खाना एक्सेंटि मनावे ॥॥ ॥

[232] यो च सीतां च उन्हांच तिना भय्यो न मन्नति,॥
करं पुरिसकिक्कानि सो सुखा न विहायति॥ ॥

[233] डब्बाṃ कुसाṃ पोआकिलाṃ उसिराṃ मुन्जाबब्बाजाṃ॥
उरसा पनुदिस्सामि विवेकमनुब्रुहयन्ति॥ ॥

[231] बहुत ठंड! बहुत गर्मी! बहुत देर हो गई! यही पुकार है।
और इसलिए, जो लोग काम को टालते हैं [जो
उनका इंतज़ार कर रहा है], उनके लिए भाग्य के क्षण बीत जाते हैं। [1]

[232] परन्तु जो शीत और ताप को
तिनकों से भी कम समझता है, मनुष्य के समान अपने कर्तव्यों का पालन करता है,
वह सुख का निर्दोश सिद्ध नहीं होता।

[163] [233] डब्बा- और कुसा-घास और चुभने वाले तने,
और वह सब जो झाड़ियों और घने जंगलों में चुभता है।
मैं अपने सीने से धकेल कर दूर कर दूँगा, और वहाँ जाऊँगा जहाँ मैं हृदय के वैराग्य, अकेले और पृथक
विकास को पोषित कर सकूँ । [2]

[1] 'भाग्यपूर्ण' शब्द को उस तात्कालिकता को बल देने के लिए जोड़ा गया है जिसके साथ गंभीर भिक्षु के जीवन में, विशेष रूप से 'बुद्ध युग' में, अवसर का संयोग इस वर्तमान जीवन से जुड़ा होता है। इसलिए यहाँ टीका में, और देखें सिस्टर्स, पृष्ठ 12, नोट 4। ये दो श्लोक दीघा 3, 'सिगालोवाद सुत्तंत' में आते हैं, लेकिन 'क्षण' को 'अत्था' , 'लाभ' या 'अच्छा' से प्रतिस्थापित किया गया है - बहुवचन रूप का एक दुर्लभ प्रयोग।

[2] = XXVII.; cf. XXIII. ऊर्जा एक मामले में शारीरिक कोमलता को चुनौती देती है, दूसरे में स्त्रीत्व को।

3.5 [174] मातंगपुत्तथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
अतिसितं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मातंग का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय में, हिमवंता के पास एक विशाल प्राकृतिक झील के नीचे स्थित एक बड़े नाग-भवन में, वे एक शक्तिशाली नाग-राजकुमार के रूप में पुनर्जन्म लिए थे। एक दिन, अपने नाग-भवन से बाहर आकर, वे भटक रहे थे जब उन्होंने भगवान को आकाश में विचरण करते देखा। वे श्रद्धा से भर गए और अपने सिर के रत्न से उन्हें आदरपूर्वक भेंट अर्पित की। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और कोसल राज्य में मातंग नामक एक जमींदार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, और मातंगपुत्र के नाम से भी जाने गए। वयस्क होने पर, वे जन्मजात आलसी होने के कारण कोई काम नहीं कर रहे थे। रिश्तेदारों और अन्य लोगों द्वारा निंदा किए जाने पर, उन्होंने मन ही मन कहा: "सुखद और सरल जीवन के नेता, ये भिक्षु, शाकियान के पुत्र," और सरल जीवन जीने की इच्छा से उन्होंने भिक्षुओं से परिचय प्राप्त किया, गुरु के पास गए, सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, धार्मिक आस्था प्राप्त की, अन्य भिक्षुओं को जादुई शक्तियों से युक्त पाया, जादू की शक्ति की आकांक्षा की, गुरु की उपस्थिति से अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को एकत्रित किया, ध्यान (भावना) के विकास में संलग्न हुए और छह प्रकार के (जादुई) महाज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"पदुमुत्तरा (बुद्ध) नामक विजेता

सभी सत्यों में अत्यंत निपुण

(धम्म), स्वयंजागृत बुद्ध,

एकांत की इच्छा होने के कारण, वह चला गया।

सीधे आकाश के आर-पार।

वहाँ एक विशाल प्राकृतिक झील थी

हिमावंता से दूर; वहीं मेरा महल है

यह सराहनीय कार्यों से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ था।

मैं विशेष रूप से अपने आलीशान घर से बाहर आया हूँ,

मुझे दुनिया के नेता की झलक दिखाई दी,

नीले कमल की तरह चमकता हुआ और दमकता हुआ

जैसे यज्ञ की अग्नि (होतासनं)।

जांच करना (vicinaṃ) और न देखना

(अद्दसम्) वे किसी भी फूल का सम्मान करेंगे।

नेता; मैंने अपना मन श्रद्धापूर्वक बना लिया है

प्रसन्न होकर मैंने गुरु को नमन किया।

मेरे सिर पर लगे रत्न को पकड़ते हुए,

मैंने इसे आदरपूर्वक नेता को अर्पित किया।

दुनिया का कहना है: "के माध्यम से

मेरे रत्न की श्रद्धापूर्वक भेंट, आशा है कि

अच्छा परिणाम मिलेगा!

पद्ममुत्तरा, संसार के ज्ञानी, योग्य

बलिदान भेंट का प्राप्तकर्ता,

गुरु, आकाश में खड़े होकर उन्होंने यह कहा

श्लोक।

आपका वह इरादा पूरा हो जाए;

आपको अपार आनंद प्राप्त हो!

इस अनमोल रत्न को श्रद्धापूर्वक अर्पित करने के लिए धन्यवाद।

आपको प्रसिद्धि का भरपूर आनंद लेना चाहिए।

यह कहने के बाद, भगवान ने कहा कि

हे परम उत्कृष्ट कमल, हे बुद्ध, सर्वश्रेष्ठ,

वह उस स्थान पर चला गया जहाँ उसका मन था

जाने का निश्चय कर लिया।

साठ युगों (कप्पा) तक, मैं दिव्य था

संप्रभु और मैंने दैवीय संप्रभुता का प्रयोग किया;

कई सौ बार मैं एक दुनिया था

राजा।

जब मुझे अपने पूर्व की याद आती रही

कर्म, जबकि मैं एक दिव्य बन गया था

वहाँ मेरी पीढ़ी का उदय हुआ।

मेरे लिए प्रकाश का स्रोत।

छियासी हजार महिलाएं, विभिन्न रूपों में

सजे-धजे, अलंकृत

मेरे ऊपर पन्ना के झुमके आ गए।

घनी पलकों वाली महिलाएं (अलारा-

(पम्हा), मुस्कुराते हुए वाणी (हसुला) के साथ,

अच्छी समझ (सुसाञ्ञा) के साथ और

कोमल कमर के साथ (तनुमाज्जिमा)

मुझे हमेशा घेरे रहता था; यही फलदायी था

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

पन्ना रत्न का।

जब भी मुझे गहनों की आवश्यकता होती थी

मेरी सजावट, मेरे गहने

(भण्डा) अच्छी तरह से निर्मित, सोने से बना हुआ,

पन्ना से बना और इसी प्रकार से बना

रूबी.

मनमोहक शिखर वाले घर, अत्यधिक

जब मैं

मेरी मंशा को जानते हुए, वे चाहते थे। लाभ

जो लोग लाभ कमाते हैं, उनके लिए यह अच्छा लाभ है।

ध्यान (उपसुति); वे गठन करते हैं

मानव जाति के लिए एक उपजाऊ क्षेत्र,

और सभी जीवित प्राणियों के लिए औषधि,

मेरा काम भी अच्छे से संपन्न हुआ था।

मेरी मुलाकात नेता से हुई; मैं बच निकला

मैंने नरक और नरक को प्राप्त कर लिया है

अडिग मार्ग।

मैं चाहे जहाँ कहीं से भी उत्पन्न हुआ होऊं,

चाहे दैवीय अवस्था में हो या मानवीय अवस्था में।

उस स्थिति में, मेरे लिए रोशनी थी

हमेशा दिन के साथ-साथ रात में भी।

उस अत्यंत श्रद्धापूर्ण माध्यम से

मैंने अपने पन्ना का जो अर्पण किया था, उसका मैंने आनंद लिया था।

समृद्धि (संपदा); प्रकाश

मुझे ज्ञान प्राप्त हो चुका था;

अविचल मार्ग प्राप्त कर लिया है

यह एक लाख युगों का समय था।

(कप्पा) पहले, जो मैंने विशेष रूप से पेश किया था

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

पन्ना का अर्पण।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, उन्होंने तीन श्लोकों में अपने स्वयं के प्रयास की घोषणा की और व्यक्तिगत दृढ़ संकल्प (पुग्गलधिष्ठान) के माध्यम से आलस्य की निंदा की।

231. "बहुत ठंड है; बहुत गर्मी है;

यह सिलसिला काफी देर शाम तक चलता रहा;

इस प्रकार, युवाओं ने क्षणों को बीतने दिया।

उनके व्यवसायों (कम्मन्त) को त्यागते हुए।

232. "जो ठंड और गर्मी के बारे में नहीं सोचता"

घास से भी ज्यादा, खारिज नहीं किया जाता

(विहायति) खुशी से, करते हुए

एक पुरुष के रूप में उसके कर्तव्य।

233. "मैं डब्बा घास, कुसा घास को जड़ से उखाड़ दूंगा,

पोटाकिला घास, सुगंधित उसिरा जड़,

मुंजा घास और सरकंडा (पब्बाजा)

अपने हृदय से, स्वयं को समर्पित करते हुए

अलगाव।

वहाँ, atisītaṃ का अर्थ है: ओस की बूँदों और मूसलाधार बारिश के साथ अत्यधिक ठंड; idaṃahu का अर्थ है: यह; इस अभिव्यक्ति के बाद, Atiuṇhaṃ का अर्थ है: अत्यधिक गर्मी और चारों ओर जलन आदि; उन्होंने दोनों प्रकार के मौसमों के माध्यम से आलस्य के आधार के बारे में बात की। Atisāyaṃ का अर्थ है: शाम को बहुत देर हो चुकी होती है, जब दिन पूरी तरह ढल चुका होता है (pariṇati); यहाँ, शाम के साथ-साथ सुबह (pato) भी हो रही होती है (saṅgayhati); उन्होंने इन दोनों स्थितियों के माध्यम से आलस्य के आधार के बारे में बताया। Iti का अर्थ है: इस प्रकार। इसके माध्यम से, वह आलस्य के मूल तत्व को एकत्रित करता है (संगण्हाति), जैसा कि कहा गया है: “इधा भिक्खबे भिक्खुना कम्मं कट्टब्बं होति (हे भिक्षुओं! यहाँ काम एक भिक्षु द्वारा किया जाना चाहिए)।” विसत्तकम्मन्ते का अर्थ है: व्यवसाय के प्रति भक्ति का पूर्णतः त्याग। खण का अर्थ है: पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्यवास) जीने का अवसर और बुद्ध का प्रकट होना, आदि। अचेन्ती का अर्थ है: वे गुजर जाते हैं। मानवे का अर्थ है: सजीव प्राणी। तिण भिय्यो न मान्जति का अर्थ है: वह स्वयं वह करता है जो किया जाना चाहिए। करं का अर्थ है: करना (करन्तो)। पुरिसकिच्चानि का अर्थ है: स्वयं का और दूसरों का कल्याण जो एक वीर पुरुष द्वारा किया जाना चाहिए। सुखा का अर्थ है: निर्वाण के आनंद से सुख। अतः इसका महत्व है। तीसरे श्लोक का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (हेट्ठा)।

थेरा मातंगपुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(175):खुज्जा-शोभिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (175) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
175. खुज्जा-सोभिता
बुद्ध युग में पाटलिपुत्त [1] में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम शोभिता रखा गया। लेकिन थोड़ा कुबड़ा होने के कारण उन्हें कुबड़ा शोभिता कहा जाता था। भगवान (बुद्ध) के निधन के समय वयस्क होने पर, उन्हें आनंद द्वारा भिक्षु दीक्षा दी गई और उन्होंने छह प्रकार की अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्च ज्ञान) प्राप्त की।

अब, सत्तपण्णी गुफा में आयोजित प्रथम महान सभा में, उन्हें आनंद थेरा को सभा में लाने के लिए कहा गया। [2] उस समय, देवों के समूह ने मार (मृत्यु के देवता/राक्षस) के कार्य का प्रतिकार करने के लिए गुफा के प्रवेश द्वार पर एक देवदूत को भेजा। और खुज्जा-शोभिता ने इस श्लोक में देवदूत को अपने आगमन की सूचना दी:

[234] ये चित्तकथि बहुसुता॥
समाना पाटलिपुत्तवासिनो,॥
तेसान्नत्रोयामायुमा॥
द्वारे तिथति खुज्जसोभितो.॥ ॥

[235] ये चित्तकथि बहुसुता॥
समाना पाटलिपुत्तवासिनो,॥
तेसान्नत्रोयामायुवा॥
द्वारे तिथति मालुतेरिटो॥ ॥

[236] सुयुद्देन सुयिष्ठेन संगमविजयेन च,॥
ब्रह्मचर्यानुचैन एवायं सुखमेधति' ति.॥ ॥

[234] पटना में रहने वाले भिक्षुओं में से एक,
विद्वान और ज्ञानी, देखो! द्वार पर,

वृद्ध, कुबड़ा शोभिता खड़ा है।

तब देवदूत ने संघ को थेराए के आगमन की सूचना दी:

[235] पटना में रहने वाले भिक्षुओं में से एक,
विद्वान और वाक्पटु, देखो! द्वार पर,
वृद्धावस्था में, वह हवाओं द्वारा ले जाया जा रहा है। [3]

तब संघ द्वारा अवसर दिए जाने पर, थेरा ने उनके पास जाकर अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[236] उसने अच्छी लड़ाई लड़ी, और अच्छा बलिदान दिया, [4] और युद्ध में जीत हासिल की: - अब ऐसे युद्ध से,
पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) का उत्साहपूर्वक पालन करते हुए,
वह सुख में विश्राम करता है [हमेशा के लिए]।

[1] पटना; सी.सी. सिस्टर्स, पृ. 157 एन.

[2] आनंद के बाद के प्रकट होने के लिए विनय ग्रंथ, iii. 373; विनय, iii. 259 देखें। वहाँ, टीकाकार कथा के अनुसार, आनंद का गुफा तक पृथ्वी या वायु के माध्यम से प्रवेश हमारे थेरा को समर्पित है। आश्चर्यजनक रूप से, विनय ग्रंथ स्वयं वैशाली की सभा तक, जो एक शताब्दी बाद हुई, खुज्जा-शोभिता का उल्लेख नहीं करता (विनय ग्रंथ, iii. 407)। विनय ग्रंथ में यह उल्लेख नहीं है कि सभा इसी गुफा में आयोजित की गई थी , जिसमें केवल वेलुवन (बांस के जंगल) में स्थित कलंदक-निवाप (गिलहरियों का चारागाह) का नाम लिया गया है। 'देवदूत' का शाब्दिक अर्थ है देवता ।

[3] आनंद से संघ में उनकी हवाई वापसी।

[4] सुयिट्ठेना (जो मार्शल विशेषणों की तुलना में पतित ब्राह्मण (पुजारी) से अधिक स्वाभाविक रूप से आता है) टीका 'सद्‌गुणी मित्रों से धार्मिक उपहार' के रूप में व्याख्या करती है। कविता का छंद दो व्याख्याओं समाना और द्वारे से बाधित है।

3.6[175] खुज्जसोभितत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
ये चित्तकुथी बहुस्सुता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा खुज्जसोभिता का है। क्या यही उनकी उत्पत्ति है? कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था; जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब एक दिन उन्होंने संयोगवश भगवान को भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ घूमते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और दस श्लोकों में उनकी स्तुति की। इस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और अंत में पाटलिपुत्त नगर के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनका नाम "सोभिता" था। हालांकि, वे स्वभाव से कुबड़ा होने के कारण खुज्जसोभिता के नाम से प्रसिद्ध हुए। वयस्क होने पर, जब गुरु का देहांत हो गया और वे परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके, तब उन्होंने थेरा आनंद की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बन गए। इसीलिए अपदाना में कहा गया है:—

इसके बाद कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

दिव्य के दिव्य को देखकर,

पुरुषों में श्रेष्ठ, मोती के समान (ककुधं)

अपनी भव्यता प्रदर्शित करते हुए (विलासन्तं)

कौन रथ यात्रा के मार्ग पर प्रवेश कर रहा था?

इसके बाद कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

उस एक को उज्ज्वल रूप से चमकते हुए देखकर

उनके ज्ञान के प्रकाश ने, दूर कर दिया

अच्छी तरह से भेजने के बाद गहरा अंधेरा

कई पुरुष?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

दुनिया के नेता को देखने के बाद

उनके एक लाख स्वामियों के साथ

उनकी वश में होकर, उनके द्वारा निर्देशित होकर, उन्हें खींचते हुए इंद्रियां (वसी)

कई जीवित प्राणियों को (समुद्र से)

saṃsāra)?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

उसे पीटते हुए देखने के बाद

धर्म का ढोल, भीड़ को कुचलते हुए

विधर्मी और शेर की दहाड़?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

ब्रह्मा के साथ दिव्य प्राणियों को देखकर

जो दुनिया के दूर-दूर से आए हैं

क्या ब्रह्मा सूक्ष्म प्रश्न पूछ रहे हैं?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

दिव्य प्राणियों को देखने के बाद

जिन्होंने अपने हाथों को आपस में जोड़कर ऐसा किया,

वे अपनी प्रार्थना करें ताकि वे आनंद उठा सकें

उनकी योग्यता का फल मिलने के कारण

वह?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

उन सभी असंख्य लोगों को देखने के बाद

पुरुषों के एक साथ आने और व्यक्तिगत रूप से

दृष्टिवान बुद्ध को आमंत्रित करो।

जो आमंत्रित किए जाने पर भी विचलित नहीं होता

(अञ्जित्तो)?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

कई ढोलों की गूंज देखने के बाद

(रवंती) और हाथी तुरही बजाते हैं

जब वह प्रवेश करता है तो मत में रोना (मत्ता)।

शहर?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

उनकी सभी किरणों को देखने के बाद हमेशा

जब वह साथ चलता है तो वह चमकता रहता है

सड़क; वे समान रूप से उछल-कूद करने लगे हैं

ऊपर (abbhunnatā)?

कौन धार्मिक रूप से प्रसन्न नहीं होगा?

यह देखने के बाद कि जब बुद्ध

बोलता है (ब्याहरंतस्सा), ब्रह्मांड

उसे सुनने के लिए बनाया जाता है और जब वह सब कुछ करता है

क्या जीव-जंतु समझते हैं (विञ्ञापेटि)?

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने विशेष प्रशंसा की थी

बुद्ध; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मेरी स्तुति (किट्टनाया) करने के लिए।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यद्यपि छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, प्रथम महान संगीति के समय राजगृह स्थित सत्तपण्णी गुफा में एकत्रित भिक्षु संघ ने उन्हें आदेश दिया: "जाओ और पूज्य आनंद को बुलाओ।" उन्होंने स्वयं को पृथ्वी में समाहित कर लिया, थेरा के सामने प्रकट हुए, जिन्हें उन्होंने संघ का संदेश दिया, स्वयं आकाश में विचरण करते हुए सत्तपण्णी गुफा के द्वार पर स्वयं पहुंचे, जहां दिव्य समूह द्वारा मार और मार की सेना को रोकने के उद्देश्य से एक विशेष देवता को भेजा गया था; उस देवता को अपने आगमन की सूचना देने के लिए, खुज्जसोभिता ने प्रथम श्लोक का उच्चारण किया।

234. "यह खुज्जसोभिता उन लोगों में से एक है

आयुवान भिक्षु, जो दीर्घायु होते हैं (आयुवा भिक्षु), जो शिक्षा देते हैं

विविध उपदेश, जो बहुत अधिक हैं

विद्वान और जो नागरिक हैं

पाटलिपुत्त द्वार पर खड़े हैं।

वहाँ, चित्तकथी का अर्थ है: विविध प्रकार के सत्य (धम्म) के शिक्षक; वे दूसरों की रुचि (अज्जासय) के अनुरूप सत्य (धम्म) का शिक्षण करने के अभ्यस्त हैं, जैसे संक्षेपण, विस्तार (वित्थारनं), गहनता, सरलीकरण, संदेह निवारण और सत्य (धम्म) की स्थापना जैसी विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं; इस प्रकार, बहुस्सुता का अर्थ है: बहुत विद्वान, क्योंकि वे प्रामाणिक ग्रंथों (परियत्ति) के ज्ञान और सत्य (पटिवेध) में उचित अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हैं। समण का अर्थ है भिक्षु, क्योंकि उन्होंने हर तरह से (सब्बासो) बुराइयों का निवारण (समिता) किया है। पाटलिपुत्तवासिनो, तेसाञ्ञतरो का अर्थ है: पाटलिपुत्त के नागरिक, क्योंकि वे पाटलिपुत्त नगर में निवास करते हैं। उनमें से एक; eyaṃ āyuvā का अर्थ है: यह एक दीर्घायु पूजनीय व्यक्ति है। Dvāre tiṭṭhati का अर्थ है: वह सत्तपण्णी गुफा के द्वार पर खड़ा है; भिक्षु संघ की स्वीकृति (अनुमति) के अनुसार प्रवेश करने के लिए। उस श्लोक को सुनकर, उस देवता ने संघ में थेरा के आगमन की सूचना देने के लिए दूसरा श्लोक कहा:—

235. "वे विविध प्रकार के शिक्षक..."

हवा के रास्ते आने के बाद, वह खड़ा है

दरवाजे पर।"

वहाँ, मालुतेरितो का अर्थ है: मन द्वारा प्रेरित (एरितो), जादुई शक्तियों के मन की उपज के साथ (इद्धिचित्तजनितेन); वह जादुई शक्ति के बल के साथ आया था: इस प्रकार, इसका अर्थ है।

उस देवता द्वारा इस प्रकार सूचित किए जाने पर संघ में प्रवेश (कटोकासो) दिए जाने पर, थेरा ने संघ में जाकर इस तीसरे श्लोक के माध्यम से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया:

236. "मेरे द्वारा अच्छी लड़ाई लड़ने के माध्यम से,

मेरी अच्छी भेंट के माध्यम से, के माध्यम से

युद्ध के मैदान में मेरी जीत के द्वारा

पवित्र मार्ग पर निरंतर चलने का साधन

इस प्रकार, इस प्रकार, पवित्रता का जीवन

व्यक्ति परमानंद का अनुभव करता है।

वहाँ, सुयुद्धेन का अर्थ है: पूर्व में (पुब्बभागे) क्षणिक (तदंग) और स्थायी त्याग जैसे त्यागों के प्रभाव में अनेक प्रकार के दुराचारों (किलेसा) से अच्छी तरह लड़कर, ध्यान (विक्खम्भन) की अवधि के दौरान। सुयिट्ठेन का अर्थ है: अच्छे मित्रों द्वारा नियमित अंतरालों पर (अंतरंतरा) उचित रूप से दिए गए सत्य (धम्म) के अर्पण के माध्यम से। संगाम विजयेन च का अर्थ है: युद्ध के मैदान में विजय प्राप्त करके, दुराचार (किलेसा) द्वारा निर्मित सृष्टि (अभिसंखार) को हर तरह से कुचलकर (निम्मतन) और पूर्णतः काट कर (समुच्छेद) विजय प्राप्त करके। ब्रह्मचरियनुचिण्नेन का अर्थ है: सर्वोत्कृष्ट मार्ग (अग्गमग्ग) के पवित्र जीवन के माध्यम से निरंतर अभ्यास (अनुचिण) द्वारा। एवायं सुखमेधति का अर्थ है: इस संसार में यह थेरा खुज्जसोभिता निर्वाण के आनंद का अनुभव करते हैं, साथ ही उक्त तरीके से उचित फल प्राप्ति की खुशी का भी आनंद लेते हैं; यही इसका अर्थ है।

थेरा खुज्जसोभिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(176):वाराण

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (176) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
176. वारण
बुद्ध युग में कोसल में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम वारण रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने एक वन में एक थेर को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और विश्वास करके भिक्षु संघ में प्रवेश किया। एक दिन बुद्ध से मिलने जाते समय उन्होंने रास्ते में एक पारिवारिक झगड़ा देखा, जिसमें कुछ लोग मारे गए। व्यथित होकर वे शीघ्र ही बुद्ध के पास गए और उन्हें सब कुछ बताया। बुद्ध ने उनके मन की प्रगति को जानकर उन्हें उपदेश देते हुए कहा:

[237] योधा कोसि मनुस्सेसु परापनानि ह्यंसति,॥
अस्मा लोक परमह च उभय धंसते नरो॥ ॥

[238] यो च मेट्टेना सिट्टेना सब्बापानानुकमपति,॥
बहु1 सो पसवति पुन्नं तेन तदिसाको2 नरो॥ ॥

[239] सुभासितस्स सिक्खेथा समनुपासनास च,॥
एकासनस्स रहो चित्तवुपासमस्स चति ॥ ॥

[237] जो कोई भी यहाँ साथी प्राणियों को पीड़ा पहुँचाता है,
इस लोक से और परलोक से, दोनों से,
यह व्यक्ति उन सभी अच्छाइयों को खो सकता है जो वे देते हैं। [1]

[238] जो कोई प्रेमपूर्ण हृदय से
प्रत्येक प्राणी पर दया भाव रखता है, ऐसा व्यक्ति
पुण्य का प्रचुर भंडार उत्पन्न करता है।

[239] [165] अपने आप को धार्मिक उच्चारण में प्रशिक्षित करो,
हमेशा बुद्धिमान और अच्छे लोगों की प्रतीक्षा में,
गुप्त एकांत स्थान की खोज में,
और शांत और एकाग्र मन में।

इन श्लोकों के समाप्त होने पर, वारण ने अंतर्दृष्टि विकसित करते हुए अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[1] टीका का अंतिम वाक्यांश, 'दोनों लोकों में समाहित अच्छाई और सुख।'

3.7 [176] वारणत्थेरा के श्लोक पर टीका
योऽधा कोचि मनुस्सेसु से शुरू होने वाला श्लोक   पूज्य थेरा वारण का है। इसका उद्‌गम क्या है? इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस या उस जन्म में पुण्य कर्म संपन्न किए, और भगवान तिस्सा के जन्म से भी पूर्व, बानवे युग (कप्पा) पूर्व, एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुण (पारागू) हुए, संसार का त्याग कर तपस्वी बन गए और अपने चौवन हजार शिष्यों को मंत्रों का उपदेश देते हुए निवास किया। उस अवसर पर भी, भगवान तिस्सा के तुषिता शरीर से बोधिसत्व रूप में अपने अंतिम जन्म में उनकी माता के गर्भ में अवतरित होने के कारण एक भयंकर भूकंप आया था। यह देखकर भीड़ भयभीत और उत्तेजित हो गई, और उस तपस्वी के पास जाकर भूकंप का कारण जानने लगी। उन्होंने भीड़ को यह कहकर सांत्वना दी कि यह बुद्ध के आगमन का पूर्वाभास है: "महान बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में अवतरित हुए; इसी कारण यह भूकंप आया; इसलिए आपको डरने की आवश्यकता नहीं है।" उन्होंने बुद्ध को अपने ध्यान का विषय बनाकर उनके प्रति श्रद्धा (पीटि) का भाव भलीभांति अनुभव किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब बुद्ध का उदय हुआ, तब वे कोसल राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। वारण नाम प्राप्त करने के बाद , वयस्क होने पर उन्होंने वन में रहने वाले एक थेरा के समक्ष सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उनका पुण्य (पसाद) प्राप्त किया, भिक्षु बन गए और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया। एक दिन, वे बुद्ध की सेवा में जा रहे थे, तभी रास्ते में उन्होंने देखा कि उच्च कुल के लोग (अहीनकुले) आपस में झगड़ा करने के बाद मर गए हैं। उन्हें पश्चाताप हुआ और उन्होंने मन ही मन कहा, "इन प्राणियों ने परस्पर शत्रुता के कारण अपने प्राणों का विनाश कर लिया है।" वे भगवान बुद्ध के समक्ष गए, जिन्होंने उनके मन के भाव को समझकर उन्हें उचित उपदेश देने के लिए तीन श्लोक कहे।

237. "यहाँ मनुष्यों में से जो कोई भी,

इससे अन्य प्राणियों को परेशान करता है

इस दुनिया से और साथ ही दूसरी दुनिया से भी,

वह व्यक्ति दोनों से गिर जाता है (धंसते)।

238. "दूसरी ओर जो कोई भी सहानुभूति रखता है

अपने हृदय से सभी जीवित प्राणियों को

दयालु प्रेम, ऐसा व्यक्ति,

वास्तव में, इससे बहुत लाभ होता है।

239. "अच्छे भाषण का प्रशिक्षण प्राप्त करें,

साथ ही भिक्षुओं की सेवा करना; प्रशिक्षण देना

खुद को अकेले बैठने के लिए

एकांत के साथ-साथ शांति भी

आपके मन का (चित्तवुपसमा)।

वहाँ, योऽधा कोचि मनुस्सेसु का अर्थ है: यहाँ, मनुष्यों में से कोई भी, चाहे वह क्षत्रिय योद्धा हो, ब्राह्मण हो, व्यापारी हो, शुद्ध श्रमिक हो, गृहस्थ हो या भिक्षु हो, यहाँ मनुष्य का वध करना सर्वोच्च प्राणी को दर्शाता है; इस प्रकार, इसे समझना चाहिए। परपाणानि हिंसति का अर्थ है: वह अन्य प्राणियों को हानि पहुँचाता है और उनकी हत्या करता है। अस्मा लोका का अर्थ है: इस लोक से; परम्हा का अर्थ है: दूसरे लोक से। उभया धंसते का अर्थ है: वह दोनों लोकों से विमुख हो जाता है; वह दोनों लोकों से संबंधित कल्याण और सुख से विमुख हो जाता है; यही इसका अर्थ है।

दूसरों पर अत्याचार करने के गुणधर्म (धम्म) को दर्शाने के बाद, अब दूसरों पर अत्याचार न करने के गुणधर्म (धम्म) को समझाने के लिए, बुद्ध ने "यो च मेत्तेना" से शुरू होने वाला दूसरा श्लोक कहा। यहाँ, मेत्तेना चित्तेना का अर्थ है: प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन; दूसरे शब्दों में, किसी न किसी प्रकार की अनुभूति (अप्पना) की प्राप्ति। सब्बपाणौकम्पति का अर्थ है: सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और करुणा से परिपूर्ण, मानो अपने सगे पुत्र के प्रति। बहुं हि सो पसावती पुण्यं तादिसाको नरो का अर्थ है: जो व्यक्ति इस प्रकार प्रेम और करुणा से भरा रहता है, वह उचित रूप से बहुत से पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करता है।

अब, बुद्ध ने तीसरे श्लोक का आरंभ सुभाषितस से किया, ताकि उन्हें शांत भाव (समत्था) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) तथा उनके घटकों (संभारा) के अभ्यास का निर्देश दिया जा सके। वहाँ, सुभाषितस सिक्खेथा का अर्थ है: सुविचारित परियत्ति सत्य (धम्म) को, जो कुछ इच्छाओं (अपिचा) आदि पर शिक्षा (कथा) के रूप में वर्गीकृत (भेद) है, श्रवण, स्मरण और सर्वव्यापी प्रश्नोत्तर आदि के माध्यम से सीखना चाहिए। समणूपासनस्स च का अर्थ है: बार-बार (कालें कालं) उन भिक्षुओं के पास जाकर जिन्होंने बुरे कर्मों का अंत (समिता) कर दिया है, अच्छे मित्रों और भक्तों के पास जाकर, उनकी सेवा करने और उचित अभ्यास (पटिपत्ति) के लिए उनके निकट रहना सीखना चाहिए। एकासनस च रहो चित्तवूपसमस्स च का अर्थ है: जब निरंतर अभ्यास (अनुब्रुहन्तस्स) अकेले, बिना किसी साथी के, शारीरिक एकांत में करते हुए, व्यक्ति को एकांत में मानसिक अभ्यास में निरंतर लगे रहकर अपनी सीट पर बैठना सीखना चाहिए; इस प्रकार, निरंतर मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) में संलग्न होकर और ध्यान (भावना) की साधना के शिखर (मत्तक) तक पहुँचकर, व्यक्ति को अपने मन को विभिन्न प्रकार के दुराचार (किलेसा) से मुक्त करना सीखना चाहिए। वास्तव में, जो भी दुराचार था, वह अनुशासित आचरण, जैसे उच्च नैतिकता (अधिशील), के माध्यम से शांत और दूर हो गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सही मार्ग और फल प्राप्ति (मग्ग फलसिक्खा) में अनुशासित आचरण ने निश्चित रूप से विद्यार्थी के मन को शांत किया है। श्लोकों के अंत में, थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर विकास किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः, अपदान में कहा गया है:—

"हिमव में प्रवेश करने के बाद,

फिर मैंने मंत्र (मंटे) सिखाए। पचास

चार हजार विद्यार्थियों ने भाग लिया

मुझे।

वे सभी अत्यंत उन्नत (अधिता) थे।

वेदों के ज्ञाता; वे पहुँच चुके थे

छह घटकों में पूर्णता

क्षेत्र (चळांग); द्वारा समर्थित

वे अपने ही विज्ञान में निवास करते थे।

हिमावन्त।

शरीर से विमुख होकर

तुषिता, सर्वप्रसिद्ध दिव्य युवक,

विचारशील और सचेत का उदय हुआ

उसकी मां का गर्भ।

जब आत्मजागृत बुद्ध आए तो

उठो, दस हजार संसारों

कांप उठा। अंधों को उनकी आंखें वापस मिल गईं।

वह दृश्य, जब नेता प्रकट हो रहे थे।

इस पूरी पृथ्वी में हर तरह से कंपन हुआ;

घोषणा की आवाज सुनने के बाद

(निग्घोसा), मनुष्य की भीड़ बन गई

उत्साहित।

सभी पुरुष एक साथ आए और मेरे पास पहुँच गए

उपस्थिति (और कहा); धरती कांप उठी

इसका क्या परिणाम होगा?

तब मैंने उनसे कहा: 'डरो मत;

आपको कोई खतरा नहीं है। आप सभी को

चिंता न करें; यह घटना शुभ है।

लाभ (सुवत्थिको)।

आत्मजागृत बुद्धों के आठ कारणों के साथ,

यह धरती पहले कांपती थी; इसी प्रकार संकेत मिलते थे।

दिखाई देते हैं; प्रकाश अत्यंत महान है।

निःसंदेह, बुद्ध सर्वश्रेष्ठ स्वामी हैं।

दृष्टि की हानि उत्पन्न होगी;

अधिकांश लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं, मैंने उनसे बात की थी।

पांच सिद्धांत।

पाँच उपदेशों को सुनने के बाद और लगभग

बुद्ध का प्रकट होना भी जो कि

हासिल करना मुश्किल था, वे उत्साहित हो गए।

और अच्छे मन वाले; प्रसन्न और आनंदित, वे

कहा:

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी व्याख्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की।

(बुद्ध के प्रकट होने के) चिन्ह का;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;
यह मेरे व्याख्यात्मक कार्य का फलदायी परिणाम है।
स्पष्टीकरण।
मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।
बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।
बाहर।"
थेरा वारण के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(177):पासिका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (177) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
177. पासिका

इस बुद्ध युग में कोसलन ब्राह्मण (पुजारी) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को दो चमत्कार करते देखा, [1] और विश्वास किया। भिक्षु संघ में प्रवेश करने के बाद, भिक्षु अध्ययन करते समय वे बीमार पड़ गए। उनके अपने लोगों ने उनकी देखभाल की और उन्हें स्वस्थ किया। लेकिन अपनी स्वस्थता से अत्यधिक प्रेरित होकर, उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की। इसके बाद वे वायुमार्ग से अपने लोगों के पास गए और उन्हें शरण और उपदेशों में स्थापित किया। और उनके कुछ रिश्तेदार, इस प्रकार स्थापित होकर, स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर मर गए। जब पासिका ने भगवान (बुद्ध) से मुलाकात की, तो उन्होंने उनके रिश्तेदारों के स्वास्थ्य के बारे में पूछा। और पासिका ने इस प्रकार उत्तर दिया:

[240] एकोपि साधो मेधावी अस्सद्धनिधा नातिनाऽ,॥
धम्मत्थो सिलसम्पन्नो होति अत्थया बन्धुनान्, ॥ ॥

[241] निग्ग-अयहा अनुकंपाय कोडितो अनातयो मया,॥
सतीबंधवपेमेन करं कत्वान् भिक्खुसु॥ ॥

[242] ते अभतीता कालांकटा पट्ट ते तिविधाऽ सुखं,॥
भतरो मयुहं माता च मोदन्ति कामाकिमिनो ति ॥॥ ॥

[240] यद्यपि अविश्वासी रिश्तेदारों में से केवल मैं ही था,
जिसके पास पर्याप्त विश्वास और बुद्धि थी, जिसने धम्म के मार्ग को समझा
और सद्गुण के साथ, यह उनके भले के लिए था।

[241] देखो! मेरे अपने लोग, जिन्हें मैंने दयावश
फटकारा, मेरे द्वारा प्रेरित और शिक्षित किए गए,
उनके स्नेह और उनकी भक्ति के कारण
, भिक्षुओं के प्रति अच्छे कार्य किए।

[242] जो अब इस दुनिया से चले गए हैं, इस काल को समाप्त करते हुए,
वे देवताओं के बीच बहुत सुख पाते हैं।
मेरे भाई वहाँ हैं, मेरी माँ भी,
उन सुखों के लिए प्रसन्न हैं जिनका वे अब आनंद लेते हैं।

[1] पृष्ठ 36, नोट 1 देखें।

3.8 [177] वस्सिकाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
एको पि सद्धो मेधावी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वस्सिका का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संपन्न किए, और एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे बुद्धि प्राप्त कर चुके, तो एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, वे धर्मपरायण हो गए और उन्हें लहरदार पत्तों वाले अंजीर के फल अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने बार-बार के जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, और जब इस बुद्ध का उदय हुआ, तब वे कोसल राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए; वस्सिका नाम प्राप्त करने के बाद, जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने, जैसा कि गुरु के दो चमत्कारों में कहा जाता है, उचित रूप से धर्मपरायणता प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करते हुए वे बीमार पड़ गए। तब उनके रिश्तेदारों ने चिकित्सक द्वारा बताई गई दवा से उनका इलाज किया, जिन्होंने उनकी संपूर्ण जांच (परिदिष्ठा) की थी, और उन्हें रोगमुक्त कर दिया। रोग से ठीक होने के बाद, वे पश्चाताप से भर गए, गहन ध्यान (भावना) में लीन हो गए और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है ।

“जंगल के बीच देखने के बाद,

बुद्ध अत्थादस्सी, प्रसिद्धि से परिपूर्ण, मैं

वह धर्मपरायण और नेक हृदय वाला हो गया।

और उन्होंने उसे अंजीर भेंट की।

अठारह युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने फल दिए थे; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

फल चढ़ाने का परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यद्यपि छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, वे अपने सगे-संबंधियों के पास गए, आकाश में खड़े होकर सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और उन्हें (तीन) शरणों और नैतिक उपदेशों में दृढ़ किया। उनमें से कुछ शरणों और नैतिक उपदेशों में दृढ़ होने के कारण स्वर्ग (सग्ग) में पुनर्जन्म लेकर मर गए। तब गुरु ने बुद्ध की सेवा करने के लिए उनके निकट आए हुए उनसे पूछा, "हे वस्सिका! आपके सगे-संबंधियों का स्वास्थ्य कैसा है?" उन्होंने अपने सगे-संबंधियों के लिए किए गए उपकार के बारे में गुरु को बताने के लिए तीन श्लोक कहे:

240. यहाँ तक कि एक अकेला बुद्धिमान व्यक्ति भी जो

पवित्र आस्था (सद्धो), में खड़ा था

सत्य (धम्म), नैतिक गुणों से युक्त

उपदेश उसके संबंधित लोगों के लिए लाभदायक है

जो रिश्तेदार यहाँ कमी महसूस कर रहे हैं

पवित्र आस्था।

241. "उन पर दया करके, मेरा

रिश्तेदारों को (निग्गा) के अधीन रखा गया था।

और मेरे द्वारा आग्रह किया गया (कोडिटा), के कारण

मेरे सगे-संबंधियों के प्रति मेरा प्रेम (पेमा)

उन्हें सम्मानजनक बनाना

भिक्षु। जब उनकी मृत्यु हुई और वे गुजर गए

वे दूर (अभतीत) पहुँच चुके हैं

परम आनंदमय तावतिंसा को; मेरी माता

और भाई खुश हैं क्योंकि वे

उन्हें वही मिल गया जो वे चाहते थे।

वहाँ, प्रथम श्लोक का अर्थ है: सद्धो का अर्थ है: वह व्यक्ति जो कर्मों के फल और तीन रत्नों में आस्था के कारण पवित्र आस्था रखता है; मेधावी का अर्थ है: एक बुद्धिमान व्यक्ति जो अपने कर्मों के ज्ञान आदि जैसे ज्ञान से जुड़ा होने के कारण बुद्धिमान है; धम्मत्तो का अर्थ है: गुरु के उपदेश के कर्म (धम्म) में, साथ ही पारलौकिक सत्यों (धम्म) में रहने की स्थिति के कारण; शीलसंपन्नो का अर्थ है: अच्छे नैतिक आचरण (आचार), मार्ग के नैतिक अभ्यास और फल के माध्यम से नैतिक उपदेशों से संपन्न; एको पि का अर्थ है: वह अकेला है; असद्धानं का अर्थ है: अविश्वासी का, जैसा कि कहा गया है, पवित्र आस्था के अभाव के कारण; इधा का अर्थ है: इस संसार में। ñātīnaṃ का अर्थ है: संबंधियों का, क्योंकि इसका अर्थ है "ये हमारे हैं"; bandhu का अर्थ है: इसी प्रकार, वे रिश्तेदार हैं, क्योंकि इसमें प्रेम के बंधन का भाव निहित है; atthāya hoti का अर्थ है: उन संबंधित रिश्तेदारों के कल्याण के लिए है जिन्होंने "बंधु" नाम प्राप्त किया है ।

उक्त अर्थ को दर्शाने के लिए, एक और श्लोक "निग्ग-अयह" से शुरू होता है, जिससे यह सामान्य (साधारणतो) होने के बजाय स्वयं को संदर्भित करता है। वहाँ, निग्ग-अयह अनुकम्पाय, कोदितो ञातयो मया का अर्थ है: मैंने अपने रिश्तेदारों को अपने अधीन (निग्ग-अहेत्वा) रखने के बाद इस प्रकार सलाह दी: — अब भी तुम दरिद्र हो, कोई अच्छा कर्म नहीं किया; भविष्य में फिर कभी किसी प्रकार के सर्वांगीण दुराचार (किलेसा) में लिप्त मत होना। ञ्तिबंधवपेमेना का अर्थ है: इस प्रकार हुए प्रेम (पवत्त) के कारण: "ये हमारे रिश्तेदार हैं;" कारं कट्वान भिक्खुसु का अर्थ है; मेरे अनुशासन का उल्लंघन न कर पाने के कारण (अतिक्कमितुं), वे धर्मपरायण हो गए हैं और उन्होंने भिक्षुओं को वस्त्र आदि जैसी आवश्यक वस्तुएँ भेंट करके तथा उनकी सेवा करके सम्मान और आतिथ्य सत्कार किया है; अब्भतीता कालंकता का अर्थ है: मृत्यु के बाद, वे इस संसार से परे चले गए हैं। ते का अर्थ है: फिर से एक मात्र कण (निपातनत्त)। तिदवं सुखं का अर्थ है: दिव्य जगत से संबंधित आनंद; दूसरे शब्दों में, उन्होंने तावतिंस स्वर्ग प्राप्त कर लिया है जिसकी उन्हें चाह थी (इत्तं)। परन्तु वे कौन थे? उन्होंने कहा: "भातरो मयहं माता च, मोदन्ति कामकामिनो," का अर्थ है: वे अपनी इच्छा के अनुसार भौतिक प्रकृति के इंद्रिय सुखों से संपन्न होकर विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं, यही इसका अर्थ है।

थेरा वस्सिका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(178):यासोजा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (178) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
178. यासोजा
बुद्ध युग में सावत्थी नगर के द्वार पर एक मछुआरे के गाँव में, 500 मछुआरे परिवारों के मुखिया के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम यशोजा रखा गया। एक दिन वयस्क होने पर वे मछुआरों के पुत्रों के साथ अचिरवती नदी में मछली पकड़ रहे थे। जाल डालते ही उन्हें एक बड़ी सुनहरे रंग की मछली मिली। उन्होंने उसे राजा पसेनदी (प्रसेनजित) को दिखाया, जिन्होंने कहा: 'परमेश्वर (बुद्ध) मछली के रंग का कारण जानते हैं।' और परमेश्वर (बुद्ध) ने उन्हें बताया कि कस्सपा बुद्ध के समय में यह मछली एक दुष्ट भिक्षु थी, जो तब से नरक में कष्ट भोग रहा था; उसकी बहनें अभी भी वहीं थीं, लेकिन उसके भाई ने थेरा के रूप में जीवन को सिद्ध कर लिया था; और फिर उनके कल्याण के लिए उन्होंने कपिल सूत्र का उपदेश दिया। [1]

तब यशोजा ने गहन भाव से संसार का त्याग कर दिया, और अपने साथियों का भी। उनके साथ जेतवन में भगवान (बुद्ध) की सेवा करने जाने और उनके आगमन पर शोर मचाने के कारण उन्हें विदा किए जाने का वृत्तांत उदाना में मिलता है। [2] विदा होने के बाद, वग्गुमुदा

नदी के तट पर निवास करते हुए, यशोजा ने एक उच्च नस्ल के घोड़े की तरह अपने साहस को जगाया, प्रयास किया और परिश्रम किया जब तक कि उन्होंने छह प्रकार का अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त नहीं कर लिया। इसके बाद भगवान ने उन्हें बुलवाया। और वे सभी विशेष तपस्याओं का अभ्यास करने के कारण [3] दुबले-पतले और बदसूरत हो गए थे। तब भगवान ने उनके आत्म-त्याग की इस श्लोक में प्रशंसा की:

[243] कापापब्बांगसांककासो किसो धमनिसंथातो,॥
मत्तान्नु अन्नपानमहि आदिनामनसो नरो॥ ॥

[244] फुṭṭहो [31] ḍaṃsehi makasehi araññasmiṃ ब्रहावणे,॥
नागो संगमसीसेवा सतो तत्राधिवासये॥ ॥

[245] यथा ब्रह्मा तथा एको यथा देवो तथा दुवे,॥
यथा गामो तथा तयो कोल्हालां ततुत्तरिन्ति॥ ॥

[243] देखो! यहाँ एक आदमी है जिसका शरीर इतना पीला और कमजोर है;
उसके जोड़ बेंत की गांठदार टहनियों की तरह हैं, और
उसकी नसों का पतला जाल तीखा है।
भोजन और पेय में संयमी,
उसकी आत्मा न तो कुचली हुई है और न ही उदास।

[167] और यशोजा ने एकांत प्रेम की इतनी प्रशंसा की, और इस प्रकार सिद्धांत का उपदेश दिया:

[244] विशाल जंगल में, विशाल वनों में,
भले ही मैं मक्खी और मच्छर से प्रभावित हो जाऊं, फिर भी मैं योद्धा-हाथी की तरह युद्ध के अग्रभाग में, सचेत और सतर्क होकर घूमूंगा । [4]

[245] अकेला मनुष्य ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के समान है।
और यदि उसका एक साथी हो तो वह देवदूतों के समान है।
तीन लोगों का समूह गाँव के समान है।
एक से अधिक लोगों के होने पर शोरगुल वाली भीड़ के समान है।

[1] मैं इस सूत्र की पहचान नहीं कर सकता।

[2] उदाना, iii., Ī 8. उस कृति में, थेरा की कथा के मद्देनजर, यह दिलचस्प है कि भगवान (बुद्ध), यशोजा के अनुयायियों को फटकारते हुए, उनकी तुलना शोर मचाने वाले मछुआरों से करते हैं।

[3] ये भारतीय तपस्वियों द्वारा स्वयं को दी जाने वाली यातनाएँ नहीं थीं, बल्कि धुतंग थे, जिनमें से सभी मिलिंद, द्वितीय, खंड 6 में दिए गए हैं।

[4] = XXXI.

3.9 [178] यशोजत्थेरा के श्लोक पर टीका
कालपब्बंगसंकासो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा यशोजा का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे विपस्सी बुद्ध के समय में एक मठ के संरक्षक (आरमगोपका) के परिवार में पुनर्जन्म हुए; जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने विपस्सी बुद्ध को आकाश में विचरण करते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें रोटी फल (लाबुजफल) अर्पित किया।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और सावत्थी नगर के द्वार पर स्थित एक मछुआरे के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जो पाँच सौ परिवारों में सबसे बड़ा था; उनका नाम योषज रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने अपने साथी मछुआरों के पुत्रों के साथ अचिरवती नदी में मछली पकड़ने के लिए जाल डाला। तभी एक सुनहरे रंग की बड़ी मछली जाल में आ गई। उन्होंने उसे राजा पसेनदी को दिखाया। राजा ने मन ही मन कहा, "भगवान ही इस सुनहरे रंग की मछली के रंग का कारण जानते हैं," और मछली को पकड़कर भगवान को दिखाया। भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा: "यह व्यक्ति, आत्मज्ञानी बुद्ध कस्सपा के युग के पतन के समय (ओसक्कमहा) भिक्षु बनकर, अपने जीवन को गलत ढंग से (मिच्छा) व्यवस्थित (पटिपज्जंतो) करके, उस युग को (सासन) पीछे धकेल (ओसक्कपेटि) दिया, और नरक में पुनर्जन्म लिया। एक बुद्ध के काल तक (एकं बुद्धन्तरं) नरक में रहने के बाद, वह वहाँ से निकलकर अचिरवती नदी में मछली के रूप में पुनर्जन्म लिया।" इस मछली ने अपनी बहन के नरक में उत्पन्न होने और अपने भाई की स्थिति का वर्णन किया। थेरा ने परिनिर्वाण प्राप्त किया और कपिलसुत्त को इस व्यक्ति की एक कहानी के लिए उपदेश दिया।

गुरु की शिक्षा सुनकर यशोजा पश्चाताप से भर गए, अपने साथियों के साथ गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए और एक उपयुक्त स्थान पर निवास करते हुए एक दिन अपने समूह के साथ भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के लिए जेतवन गए। उनके आगमन पर मठ में जोर-शोर से शोरगुल मच गया, बैठने-बिस्तर आदि की व्यवस्था की जा रही थी। यह सुनकर भगवान बुद्ध ने यशोजा और उनके समूह को विदा कर दिया (पम्नामेशी); इस प्रकार, इसका पूरा वर्णन उदाना में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए। हालाँकि, विदा किए जाने के बाद, पूज्य यशोजा पश्चाताप से भर गए, एक उत्तम नस्ल के घोड़े के समान, जिसे विशेष रूप से कोड़े मारे गए हों, अपने समूह के साथ वग्गुमुदाय नदी के किनारे रहने लगे, परिश्रम करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि करते रहे और व्रत (वस्सा) के दौरान छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। अतः, क्या अपदान में ऐसा कहा गया है :

"बंधुमती नगर में, मैं था

फिर आश्रम का संरक्षक (आरामिका)।

मैंने स्टेनलेस स्टील से बनी बुद्ध प्रतिमा को उड़ते हुए देखा।

सीधे आकाश की ओर।

मैं अपने साथ ब्रेड फ्रूट लेकर आया था।

मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया।

प्रसिद्धि से परिपूर्ण, जिसने इसे स्वीकार कर लिया जबकि अभी भी

आकाश में खड़े रहने के अलावा और कुछ नहीं।

मुझे तो इसका अच्छा प्रचार लगा।

समृद्धि (विटिसं जनानो) लाना

तत्काल आनंद (diṭṭhadhammasukhavāho),

बुद्ध को फल अर्पित करने के बाद

स्पष्ट रूप से धर्मनिष्ठ हृदय से।

तब मुझे भरपूर उत्साह प्राप्त हुआ और

मेरे लिए सबसे उत्तम सुख

क्योंकि मेरा जन्म यहाँ-वहाँ हुआ था, रत्न

गहना लेकिन अचानक प्रकट हो गया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल अर्पित किया; मैं करता हूँ

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

फलदान का फलदायी परिणाम यही है।

(फलदान)

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

गुरु ने पूज्य योसोजा को उनके अनुयायियों सहित बुलवाया, क्योंकि वे छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत थे। उन्होंने उनसे ध्यान की ऐसी उचित प्राप्ति (समापत्ति) के विषय में वार्तालाप किया जो स्थिर (आनेंज) रहती है। उन्होंने सभी प्रकार के तपस्या (धुतंग धम्म) का भी पालन किया। इसी कारण उनका शरीर दुबला-पतला, जर्जर और कुरूप था। भगवान बुद्ध ने उनकी उस परम इच्छाहीनता की प्रशंसा करते हुए प्रथम श्लोक कहा।

213. "शरीर के अंगों के कुछ हिस्से काले दिखाई देते हैं,

पतली और नसों से भरी हुई;

मनुष्य अपने खाने की सीमा को समझता है

और शराब पीना और आलस्य से मुक्त होना-

मन वाला।"

वहाँ, कालपब्बंग संकासो का अर्थ है: उसके अंग (अंग) दंत लता (लता) के जोड़ों (पब्ब) के समान हैं, क्योंकि उसके शरीर के पतले, विकृत (दुसंठित) भाग (अवयव) हैं, मांस के एकीकरण (उपचय) के लुप्त (विगमना) होने के कारण; इसलिए, उसने कहा; "किसो धमानी समथतो।" किसो का अर्थ है: धनिक तपस्या के उचित अभ्यास के कारण शरीर पतला; धमानीसंथतो का अर्थ है: उसका शरीर फैला हुआ (वितत), मांस और रक्त की कमी के कारण प्रमुख (पाकटी) स्नायु (कंढर) और शिरा (सिरा) हैं; उसका शरीर (गत्त) शिराओं से फैला हुआ है। मत्तञ्ञा का अर्थ है: प्राप्त करने, ग्रहण करने, उपयोग करने और देने में अपनी मात्रा (पमाणञ्ञु) को जानता है। अदीनमणसो का अर्थ है: अनासक्त मन और सजग व्यवहार वाला व्यक्ति। नारो का अर्थ है पुरुष; धीरज रखने वाला पुरुष, जो मनुष्य के बोझ (धुरा) को उठाने के कारण पुरुषत्व के लक्षणों (लक्खण) से युक्त है; यही इसका महत्व है।

गुरु द्वारा इस प्रकार प्रशंसा किए जाने पर, थेरा ने भिक्षुओं को सत्य (धम्म) सिखाने के उद्देश्य से दो श्लोक कहे, और इस प्रकार (मुखेना) उन्हें अपनी धीरज (अधिवासन), सहनशीलता (खन्ती), परिश्रम और एकांत में अपने विशेष आनंद के बारे में बताया, जो प्रशंसा की स्थिति के अनुरूप था।

244. “मच्छरों और मक्खियों द्वारा काटा गया”

घने जंगल में, मैं ठीक था

मुझे पता है कि मैं वहां अपना धैर्य बनाए रख रहा हूं।

जैसे किसी हाथी का सिर

युद्धस्थल।

245. “जिस प्रकार ब्रह्मा का नियम है, उसी प्रकार”

अकेले; एक दिव्य प्राणी के अनुसार

इसी प्रकार हम भिक्षुओं में से दो;

जैसे गाँव (मठ) भी

हम भिक्षुओं में से तीन थे; मैं उससे परे था।

झगड़ा (कोलाहला, कोलाहल)।

वहाँ, Nāgo saṅgāmasīse va का अर्थ है: जिस प्रकार एक सुसंस्कृत (ājāneyyo) हाथी युद्ध के मैदान (yuddhammaṇḍala) में तलवारों, भालों (satti), बरछी (tomara) आदि के प्रहारों को सहने के बाद शत्रु (parasenaṃ) की सेना को कुचल देता है (viddhaṃseti); araññasmiṃ brahāvane का अर्थ है: उसी प्रकार, एक भिक्षु जंगल में मच्छरों आदि के खतरों को दूर करता है; Sato का अर्थ है: चिंतनशील (sampajāno) होकर सहन करना चाहिए; इस प्रकार सहन करने के बाद, ध्यान (bhābanā) की शक्ति से मार की सेना को कुचल देना चाहिए।

यथा ब्रह्मा का अर्थ है: वह आनंदमयी जीवन व्यतीत करता है, सदा ध्यान के आनंद में डूबा रहता है, मानसिक क्रोध से मुक्त (रहितो), ब्रह्मा के समान एकांत में रहता है; तथा एको का अर्थ है: एक भिक्षु भी इसी प्रकार बिना किसी साथी के एकांत में सुखमयी जीवन व्यतीत करता है, एकांत के आनंद में डूबा रहता है। वास्तव में, यह कहा गया है कि “एकल भिक्षु का भिक्षुत्व सुख श्रेष्ठ (पणित) है।” इसके द्वारा वह इस प्रकार उपदेश देता है कि एकांत में रहने वाला भिक्षु “ब्रह्मसमो (ब्रह्मा के समान)” है। यथा देवो तथा द्वे का अर्थ है: जिस प्रकार दिव्य प्राणियों के बीच मानसिक क्रोध (अंतरन्तरा) हो सकता है, उसी प्रकार दो भिक्षुओं के एक साथ रहने में भी टकराव हो सकता है; अतः यह कहा गया है कि एक भिक्षु अपने साथी के साथ रहने से “देवसमो” (दिव्य प्राणी के समान) हो जाता है। यथा गामो तथा तयो का अर्थ है: एकांतवास नहीं; तीन भिक्षुओं का एक साथ रहना गाँव में रहने के समान है, जैसा कि उसी पाठ (पाठ) में वर्णित है; यही इसका महत्व है। कोलाहलनततुत्तरिं का अर्थ है: उन तीन से अधिक अनेक लोगों का एक साथ रहना, शोरगुल मचाने वाले लोगों की भीड़ (कोलाहलन) के समान है; इसलिए, एकांतवास करना ही उचित है; यही इसका महत्व है।

थेरा यशोजा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(179):सतिमत्तिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (179) ------>>>> अगला

अध्याय III.

तीन श्लोक
179. सातिमत्तिया
बुद्ध युग में मगध राज्य में एक ब्राह्मण पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने आवश्यक योग्यताएँ [1] धारण करते हुए वनवासी भिक्षुओं के बीच भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अध्ययन एवं अभ्यास के माध्यम से छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने भिक्षुओं को शिक्षा दी और कई लोगों को शरणाश्रम और उपदेशों का प्रचार किया। विशेष रूप से एक परिवार को उन्होंने आस्था और विश्वास में परिवर्तित किया; और उस घर में उनका बहुत स्वागत किया गया, जहाँ उनकी इकलौती पुत्री, एक सुंदर, प्यारी लड़की ने आदरपूर्वक उन्हें भोजन कराया।

एक दिन मारा (मृत्यु का देवता/राक्षस), उसे परेशान करने और अपमानित करने की योजना बनाते हुए, उसका रूप धारण कर लिया और उस युवती के पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। लेकिन युवती ने महसूस किया कि यह मानवीय स्पर्श नहीं है, इसलिए उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। लेकिन घर के अन्य लोगों ने यह देख लिया और थेरा पर से उनका विश्वास उठ गया। थेरा को कुछ भी पता नहीं था, लेकिन अगले दिन उसने उनके बदले हुए व्यवहार को देखा। और यह समझते हुए कि मारा ने कुछ किया है, उसने उनके गले से मरे हुए कुत्ते को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की और उनसे पूछा कि क्या हुआ था। और घर वालों ने उसका स्पष्टीकरण सुनकर उससे क्षमा मांगी, [168] और घोषणा की कि वह स्वयं उसकी सेवा करेगा। थेरा ने इस मामले को इन छंदों में बताया:

[246] अहुतुयहाṃ शुद्ध सद्धा सा ते अज न विज्जति,॥
याṃ तुयहाṃ तुयहमेवेताṃ नत्थी डुकारिताṃ मामा.॥ ॥

[247] अनिच्चा हि कैला सधा इवं दिट्ठा हि सा माया,॥
रज्जन्तिपि विरज्जनिति तथा कियं जियते मुनि॥ ॥

[248] पकाती मुनिनो भट्टाṃ थेका थोकाṃ कुले कुले,॥
पिण्डिकाया कैरिसामि अत्थि जंघाबलं मम' ति.॥ ॥

[246] जो भरोसा तुमने मुझ पर रखा था,
आज वो कायम नहीं है। जो तुम्हारा है, वही तुम्हारा है;
लेकिन इस घर में मैंने कोई बुराई नहीं की है।

[247] आम आदमी का विश्वास क्षणभंगुर और अस्थिर होता है: -
मैंने ऐसा ही देखा है। लोग प्रेम करते हैं और फिर उदासीन हो जाते हैं।
इसके लिए एक पवित्र भिक्षु को क्यों मरना चाहिए?

[248] ऋषि का भोजन थोड़ा-थोड़ा यहाँ,
थोड़ा-थोड़ा वहाँ, एक कुल या दूसरे कुल में पका हुआ रखा है।
मैं अपनी थोड़ी-सी भिक्षा माँगने के लिए घूमूँगा;
मेरे पैर इसके लिए काफी मजबूत हैं। [2]

[1] अर्थात्, चरित्र में विकास की परिपक्वता।

[2] टीका द्वारा इतनी सरलता से समझाई गई यह छोटी कविता, टीका के अभाव में, दो भिक्षुओं (भिक्षुओं) के बीच कर्म आदि पर एक लंगड़े संवाद में विकृत हो गई है। न्यूमैन देखें, उसी स्थान पर।

3.10 [179] सातिमत्तीयत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
आहु तुयहं पुरे सद्धा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सातिमत्तीय का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान सिद्धार्थ के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो एक दिन उन्होंने गुरु को देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें ताड़ का पंखा (तालवण्टं) भेंट किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और मगध राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। सातिमत्तीय नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने वनवासी

भिक्षुओं की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली, क्योंकि हेतु (संतो) से संपन्न होने और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के कर्म के कारण वे छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है ।

मैंने ताड़ के पत्तों का एक पंखा भेंट किया

हे भगवान सिद्धार्थ, मैंने इसे उठाया था।

अत्यंत योग्य व्यक्ति को, उपयुक्त रूप से ढका हुआ

चमेली (फूल)।

यह चौरानवे युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने ताड़ के पंखे का अपना चढ़ावा चढ़ाया;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह ताड़ के पंखे का फलदायी परिणाम है।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्चतर (जादुई) ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनकर, उन्होंने भिक्षुओं को सलाह और शिक्षा दी; अनेक प्राणियों को सत्य (धम्म) का उपदेश देकर उन्होंने उन्हें शरण और नैतिक उपदेशों में स्थापित किया। उन्होंने एक अन्य परिवार को भी, जो अपात्र था, परम श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण किया। इसी कारण उस परिवार के लोग थेरा के प्रति विशेष रूप से समर्पित थे। वहाँ, एक विशेष रूप से सुंदर और आकर्षक कन्या ने भिक्षा मांगने आए थेरा का आदरपूर्वक भोजन कराया। फिर एक दिन, मारा ने यह सोचकर कि "इस प्रकार इसकी बदनामी होगी; यह निर्धन हो जाएगा," थेरा का वेश धारण करके गया और कन्या का हाथ पकड़ लिया। लड़की को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि "यह मानवीय स्पर्श नहीं है" और उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। यह देखकर घरवालों ने थेरा के प्रति अपनी अनादर (अपसादम्) प्रकट किया। अगले दिन, थेरा ने इस मामले पर बिना कोई विचार किए (अनवज्जेन्तो) उस घर में गए। वहाँ लोगों ने उनका अनादर (अनादरा) किया। उस परिस्थिति पर विचार करने पर (कारणम्) थेरा को मारा की साजिश का पता चला और उन्होंने यह संकल्प लिया (अधित्तहित्वा) कि "कुत्ते के शव को उसके गले में बाँध दिया जाए।" उन्होंने पिछले दिन किए गए उस कृत्य के बारे में स्वयं मारा से पूछा था, जो शव से मुक्ति पाने के उद्देश्य से उनके पास आया था, और उसे डराकर उस मारा को मुक्त कर दिया। यह देखकर घर के स्वामी ने क्षमा मांगते हुए कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया मेरी गलती के लिए मुझे क्षमा करें।" उन्होंने आगे कहा, "आदरणीय महोदय! आज से मैं ही आपकी सेवा करूंगा।" थेरा ने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए तीन श्लोक कहे:

246. "पहले तुममें श्रद्धा (सद्धा) थी;

आज वह आस्था मौजूद नहीं है।

जो कुछ भी तुम्हारा है, वह भी तुम्हारा ही है।

यहां तक कि, मेरा कोई बुरा आचरण भी नहीं है।

247. "वास्तव में धार्मिक आस्था अस्थिर होती है और

अस्थाई; इस प्रकार, कि

वास्तव में, पवित्र आस्था देखी गई थी

मेरे द्वारा। वे आसक्त हो जाते हैं (रेज्जंति)।

और अलग भी; वहाँ, क्या होता है

क्या कोई ऋषि हार गया?

248. "ऋषि के लिए भोजन धीरे-धीरे पकाया जाता है"

एक के बाद एक परिवार में थोड़ा-थोड़ा; मैं

भिक्षा के लिए भटकूँगा; मेरे पास है

मेरे पैरों की ताकत।

वहाँ ahu tuyhaṃ pure saddhā, sa te ajja na vijjati का अर्थ है: हे भक्त! इससे पहले, मुझमें आपकी श्रद्धा थी, अर्थात्: "धर्मी आचरण और समभाव वाले स्वामी (समाचारी)" इत्यादि; आज आपको अपनी उस श्रद्धा को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। Yaṃ tuyhaṃ tuyhamevetaṃ का अर्थ है: चारों संन्यासियों की आवश्यकताओं का जो भी दान (किया गया है) वह आपका ही हो; मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है; वास्तव में, दान प्रसन्न मन से ही किया जाना चाहिए; यही इसका अर्थ है। दूसरे शब्दों में: yaṃ tuyhaṃ tuyhamev'ataṃ का अर्थ है: आज आपने मेरे प्रति जो भी अनादर किया है, वह भी आपका ही है; उसका फल आपको ही भुगतना चाहिए (paccānubhavitabbaṃ); अतः, यही अर्थ है। N'atthi duccaritaṃ mama का अर्थ है: मेरे लिए, दुष्ट आचरण के कारणों का निर्माण करने वाली सभी प्रकार की बुराइयों को अच्छी तरह से काट देने की स्थिति के कारण कोई बुरा आचरण नहीं है, बल्कि सही मार्ग (मग्ग) के माध्यम से है।

अनिच्चा हि चाला सद्धा का अर्थ है: क्योंकि सामान्य लोगों (पुथुज्जन) की धार्मिक आस्था (सद्धा) क्षणभंगुर और अनिश्चित (एकान्तिका) होती है, इसलिए वह घोड़े की पीठ पर रखे लौकी (कम्भण्ड) के समान अस्थिर (चाला) होती है, और भूसे (थुसा) के ढेर पर उखड़े हुए पेड़ के तने के समान अस्थिर (निकात) होती है। एवं दिठ्ठा हि समया का अर्थ है: इस प्रकार उत्पन्न हुई वह धार्मिक आस्था तुममें देखी गई है और प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात है (पच्चाक्खतो)। राज्जन्ति पिविराज्जन्ति का अर्थ है: इस प्रकार अस्थिरता की स्थिति के कारण, ये प्राणी कभी-कभी एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और मित्रों के साथ संगति के माध्यम से एक-दूसरे के प्रति स्नेह उत्पन्न करते हैं; कभी-कभी वे एक-दूसरे से विरक्त और वैराग्यप्रिय हो जाते हैं। Ta'ttha kiṃ jiyyate muni का अर्थ है: साधारण लोगों के उस आसक्ति और वैराग्य में (पुथुज्जन), ऋषि, भिक्षु को क्या हानि होती है (जिय्यति)? उसका क्या अंश कम हो जाता है (हानी)? यही अर्थ है।

यह दिखाने के लिए कि उसे इस तरह से नहीं सोचना चाहिए: "यदि तुम मेरे द्वारा दी गई आवश्यकताओं को स्वीकार नहीं करोगे, तो तुम अपना जीवन यापन कैसे करोगे (यापेथा)," उसने "पच्चति" से शुरू होने वाला श्लोक बोला। इसका अर्थ है:— मुनिनो का अर्थ है: मिंक का; भट्टं का अर्थ है: पका हुआ भोजन; कुले कुले का अर्थ है एक घर के बाद दूसरे घर में, दिन-प्रतिदिन; थोकं थोकं का अर्थ है: थोड़ा-थोड़ा करके पकाया जाता है; केवल आपके घर में ही नहीं। पिण्डिकाय कारिसामि, अत्थि जंघबलं मम का अर्थ है: मेरे पैरों में शक्ति है; मैं लंगड़ा नहीं हूँ (ओभग्गजंघो); मैं अपंग नहीं हूँ (खंजो) और न ही मुझे पैरों की कोई बीमारी है; इसलिए, मैं भिक्षा और मिश्रित भोजन के लिए घूमूँगा; भिक्षा के लिए घूमने के बाद मैं गुरु के कहे अनुसार इस प्रकार चलता रहूँगा (यापेसामि): "यथा पि भामरो पुप्पं (जैसे मधुमक्खी फूल के अनुसार)," इत्यादि।

थेरा सातिमत्तिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(180):उपाली

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।

आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (180) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
180. उपाली
बुद्ध युग में एक नाई के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उपाली रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने अनुरुद्ध और अन्य पाँच भिक्षुओं का अनुसरण करते हुए संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया), जब भगवान (बुद्ध) पाली भाषा में वर्णित अनुसार अनुपिया वन में निवास कर रहे थे। [1] अब जब वे भगवान (बुद्ध) से अभ्यास के लिए एक विषय ले रहे थे, तो उन्होंने कहा: 'हे प्रभु, मुझे वन में रहने के लिए मत भेजिए।' 'भिक्षु, वन में रहकर तुम केवल एक ही विषय का अभ्यास करोगे [2] ; यदि तुम हमारे साथ रहोगे, तो तुम पुस्तक ज्ञान [3] और अंतर्दृष्टि दोनों में निपुण हो जाओगे ।' थेरा ने भगवान (बुद्ध) के वचन को स्वीकार करते हुए अंतर्दृष्टि का अभ्यास किया और उचित समय पर अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[169] इसके अलावा, स्वयं भगवान (बुद्ध) ने उन्हें संपूर्ण विनय-पिटक की शिक्षा दी । और बाद में, उपाली ने अज्जुक, कुरुकच्छक भिक्षु और कुमार-कस्सपा के तीन मामलों में अपने निर्णय के लिए भगवान (बुद्ध) की प्रशंसा प्राप्त करने के बाद, उन्हें विनय जानने वालों में प्रथम स्थान दिया गया। [4]

एक पर्व के दिन, जब वह पातिमोक्खा का पाठ कर रहे थे, [5] उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

[249] सद्धया अभिनिक्खम्म नवपब्बजितो नवो,॥
मत्ते भजेय कल्याणे शुद्धजीवे अतंदिते॥ ॥

[250] सद्ध्या अभिनिक्खम्म नवपब्बजितो नवो,॥
सङघस्मिं विहारं भिक्खु सिक्खेथा विनयं बुधो॥ ॥

[251] सद्धया अभिनिक्खम्म नवपब्बजितो नवो,॥
कप्पाकप्पेसु कुसालो विहारेया अपुरक्खतो॥ ॥

[249] जिसने आस्था के लिए [6] संसार का त्याग किया है,
और भिक्षु संघ में नवदीक्षित है,
मित्रों, उसे नेक चरित्र वाले,
अपने जीवन में शुद्ध, अटूट उत्साह वाले लोगों को चुनना चाहिए।

[250] जिसने आस्था के लिए संसार का त्याग किया है,
और भिक्षु संघ में नवदीक्षित है,
वह भिक्षु संघ में रहे,
और बुद्धिमानी से [7] उसके अनुशासन के नियमों को सीखे।

[251] जो आस्था के लिए संसार का त्याग कर चुका है,
और भिक्षु संघ में नवदीक्षित है,
जो करना चाहिए या नहीं करना चाहिए, उसमें निपुण है,
उसे अकेले ही अपने मार्ग पर चलना चाहिए।

[1] मनमोहक प्रसंग देखें, विनय ग्रंथ, iii. 224-230.

[2] धुरम.

[3] गंथा-, ब्र. गंध-धुरम्। इसके साथ तुलना करें दीघा निकाय, iii. 94 : गन्थे करोन्ता। धम्मपाल के मन में ताड़ के पत्तों की पांडुलिपियाँ और लिखित विनय था, जबकि उपाली के मामले में, भगवान (बुद्ध) संभवतः उन्हें मौखिक रूप से (उग्घपेसी) सिखाते थे , हालाँकि शीर्ष या विषय-शब्दों को लिखित रूप में दर्ज किया जा सकता था।

[4] विनय, iii. 66; 39, और ऊपर CLXI. क्रमशः देखें । ये इस प्रख्यात डीन द्वारा निपटाए गए मामलों का केवल एक छोटा सा हिस्सा हैं। तुलना करें XLV., पृष्ठ 50, नोट 2.

[5] यह- 'मुक्ति के नियम' - एक पाक्षिक अनुष्ठान का गठन करते थे, और अभी भी करते हैं (विनय ग्रंथ . i. 1-69)।

[6] टिप्पणी: अर्थात्, या तो जीविका कमाने के उद्देश्य से नहीं, या कर्म के फल और रत्न-त्रिमूर्ति (बुद्ध, धर्म, व्यवस्था) की श्रेष्ठता में विश्वास रखते हुए। उपाली की शुरुआत इतनी एकनिष्ठ नहीं थी, उसने तो अपनी जान बचाने के लिए ही उपाली को अपने साथ लिया था। युवा सरदारों ने उसे अपना सामान घर ले जाने के लिए दे दिया, और उसे डर था कि शाकियन उस पर हत्या का संदेह कर सकते हैं, इसलिए उसने सामान का गट्ठा एक पेड़ पर लटका दिया और उनके पीछे चल दिया।

[7] बुधो. टीका व्याख्या करती है: बुद्धा ति च पथन ति; सो एव'अत्थो. पाठ में पुनरावृत्ति 'नौसिखिया ... नया' है।

3.11 [180] उपलित्तेरा के श्लोक पर टीका

सद्धाय अभिनिक्खम्मा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उपालि का है। इसका उद्गम क्या है? इनका जन्म भी हंसवती नगर में एक पारिवारिक परिवार में, भगवान पद्ममुत्तरा के समय हुआ था। गुरु के सत्य (धम्म) को सुनते हुए, एक दिन उन्होंने गुरु को विनय के धारकों (धरों) में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान देते हुए देखा, और उन्होंने भक्तिपूर्ण कर्म (अधिकारकम्म) किए और उस पद की आकांक्षा की। जीवन भर अच्छे कर्म करते हुए, वे जन्म-जन्म के चक्र में भटकते रहे, देवताओं और मनुष्यों के बीच रहे, और एक नाई के घर में गर्भ धारण किया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने उनका नाम उपालि रखा । वयस्क होने पर वे अनुरुद्ध आदि जैसे छह कुलीन व्यक्तियों के प्रिय मित्र (पासादको) थे, और जब तथागत अनुपिया के आम के बाग में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने संसार का त्याग कर भिक्षु बन गए, और उनके साथ छह अन्य कुलीन व्यक्ति भी भिक्षु बन गए। पाली ग्रंथ में उनके भिक्षु बनने की प्रक्रिया का वर्णन अभी शुरू ही हुआ है।

भिक्षु बनने के बाद, उन्होंने पूर्ण दीक्षा ली, गुरु की उपस्थिति में अपना मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) एकत्रित किया और इस प्रकार निवेदन किया: "आदरणीय गुरुदेव! कृपया वन में मेरे निवास को स्वीकृति दें।" बुद्ध ने उत्तर दिया: "हे भिक्षु! जब तुम वन में निवास करोगे, तब तुम केवल एक ही कर्तव्य (धुरं) निभाओगे; दूसरी ओर, जब तुम हमारी उपस्थिति में निवास करोगे, तब तुम ग्रंथों (गंथ) के अध्ययन के कर्तव्य के साथ-साथ आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के कर्तव्य को भी पूर्णतः निभाओगे।" थेरा ने गुरु का वचन स्वीकार किया और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके शीघ्र ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

"हंसवती नगर में,

सुजाता नामक एक ब्राह्मण, जिसने संचित धन का संचय किया था

(मिकायो) अस्सी करोड़ रुपये नकद; वह

उनके पास प्रचुर धन और अनाज था

धान का।

वह एक वाचक और ज्ञान का भंडार थे।

आकर्षण (मंटा), कुशल (परागु)

तीनों रेडा में और साथ ही एक जो

हस्तरेखा शास्त्र में निपुणता प्राप्त कर ली थी

(लक्खण) और परंपरा के साथ

धर्म (धर्म)।

उस समय, विचरण करने वाले तपस्वियों,

(परिब्बाज), एकल चोटी वाले संन्यासी,

गौतम बुद्ध के शिष्य, और विचरण करते हुए

संन्यासी भी पृथ्वी पर विचरण करते थे।

उन्होंने मुझे घेर लिया; इस प्रकार, मैं

एक प्रसिद्ध (vissuto) ब्राह्मण।

कई लोगों ने मेरा सम्मान किया; मैंने किसी का सम्मान नहीं किया।

कोई भी।

मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखा जो इसे स्वीकार करने योग्य हो।

मेरी श्रद्धापूर्ण भेंट; मैं तब था

अभिमान से हठी (थड्डो); वहाँ

बुद्ध नाम का कोई शब्द अस्तित्व में नहीं था;

उस समय तक, विजेता ने ऐसा नहीं किया था

उत्पन्न हुआ।

दिन और रात के बीतने के साथ-साथ, वहाँ

संसार में उत्पन्न हुआ, जिसके पास है

नेत्र-दृष्टि (चक्कुमा) जिसका नाम पदुमुत्तारा है,

सभी अंधकार को दूर करने के बाद।

जब जनसमूहों के गुण (बाहिजञ्ञ)

हे बुद्ध, उदार (पुथु) बनो।

वह हंसा नामक नगर के निकट आया।

वह बुद्ध, जिनके पास दृष्टि थी

उन्होंने सत्य (धम्म) का उपदेश दिया

अपने पिता के लाभ के लिए। श्रोतागण,

उस समय तक एक लीग (योजना) को कवर कर लिया गया था।

फिर सब तरफ।

सुनंदा नामक वह ऋषि, जो प्रसिद्ध थे

(सम्मत) मनुष्यों के बीच, फिर

फूलों से ढका हुआ क्षेत्र

बुद्ध के श्रोतागण (विस्तारित)।

जब चार आर्य सत्य थे

सबसे उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुआ

निचले पंडाल में , यह अहसास हुआ

एक लाख के सत्य (धम्म) का

करोड़ों (श्रोताओं)

बुद्ध ने सात दिन और सात रात तक जल बरसाया।

सत्य की वर्षा (धम्म-)

(vuṭṭhiyo). जब आठवां दिन आया,

विजेता ने प्रशंसा में बात की (कित्तयी)

सुनंदा की।

चाहे दिव्य जगत हो या मानवीय जगत।

यह दुनिया, अपने आस-पास भटकती हुई

बार-बार पुनर्जन्म के चक्र,

सभी में उत्कृष्ट (पवारो) बनो और

(इस प्रकार) वह विभिन्न अस्तित्वों में भटकता रहेगा

(भवेसु संसारिसति). एक सौ

हजार युगों (कप्पा) के बाद, वहाँ

वह संसार में गुरु बन जाएगा।

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, संतान

ओक्काका परिवार का।

वह उनकी शिक्षाओं का उत्तराधिकारी होगा।

सत्य (धम्म) का, एक प्रिय पुत्र बनाया गया

सत्य (धम्म) के द्वारा वह एक बन जाएगा

पुण्ण नाम से जाने जाने वाले गुरु के शिष्य,

मंताणी का पुत्र।

इस प्रकार, आत्मजागृत

बुद्ध ने (कित्तायी) भविष्यवाणी की

साधु सुनंदा, फिर जयकार करते हुए (हासयंतो)

सभी लोगों को और अपना स्वयं का प्रदर्शन करते हुए

ताकत।

फिर लोगों ने अपने हाथ जोड़ लिए।

उन्होंने सुनंदा के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

उन्होंने बुद्ध के प्रति अपना कर्तव्य (दारं) पूरा कर लिया है।

प्रत्येक ने अपनी नियति (गति) को शुद्ध किया।

वहाँ, मेरी योजना पूरी हुई;

मैंने ऋषि के वचन सुने। मैंने भी

मैं अपना कर्तव्य (करं) उचित ढंग से निभाऊंगा।

मुझे बुद्ध गौतम के दर्शन हुए।

इस प्रकार विचार करने के बाद,

मैंने सोचा कि क्या किया जाना चाहिए

(किरियं). मैं किसके लिए यह कर्म करूँ?

योग्यता के क्षेत्र में अद्वितीय?

यह भिक्षु पाठ में निपुण (पाठिका) है।

सभी पाठकों के वितरण में

(sabbapāṭhissa sāsane) शीर्ष पर था-

विनय में सबसे बड़ा भंडार; मेरी आकांक्षा थी

उस पद के लिए। मेरे पास यह था

असीम धन, अविचलित

समुद्र के समान; उस धन के साथ

मैंने बुद्ध के लिए एक मठ बनाया।

पूर्व दिशा में स्थित शोभना नामक मठ

शहर का; (कीमत पर) खरीदा हुआ

मैंने एक लाख लोगों का संघाराम बनाया।

पुरोहितों का मठ।

शिखर संरचनाओं के होने के कारण और

महल, पंडाल, सपाट छत वाली हवेली

और गुफाएँ, साथ ही मठ के रास्ते

मैंने अच्छी तरह से निर्मित एक मठ बनाया

पादरी वर्ग।

मेरे पास भाप स्नान (जंताघरं) के लिए एक घर था।

एक अग्निशमन कक्ष, साथ ही एक गोलाकार जल

उदकामालाका (बाड़ा) और स्नानघर

(nhānaghara) ने इनका निर्माण किया और इन्हें भेंट किया

भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग।

इस प्रकार का फर्नीचर (परिभोगे) जैसे लंबी कुर्सियाँ,

(आसंदी), स्टूल (पीठक), बर्तन और कड़ाही

(भजन) साथ ही साथ दवा के लिए

मठ; ये सब मैंने अर्पित किए।

मैंने कड़ी सुरक्षा व्यवस्था कर रखी थी,

इस विचार से दीवार को मजबूत बनाया गया;

"किसी को भी ऐसे लोगों को परेशान नहीं करना चाहिए (विहेठेसी)

ऋषियों का हृदय शांत था।

मैंने पुरोहितों के लिए मठ का निर्माण करवाया था।

भिक्षुओं के लिए एक लाख की लागत से।

निवास करने के लिए; इसे समृद्ध बनाकर मैंने भेंट की

इसे आत्मजागृत बुद्ध को सर्मपित करें।

मठ को पूर्ण रूप से बनाया गया था

मेरे द्वारा; हे ऋषि! आप इसे स्वीकार करते हैं। हे वीर!

मैं इसे आपको सौंप दूँगा, हे स्वामी!

दृष्टि! कृपया अपनी सहमति दें (अधिवासेहि)

मेरे इरादे का पता चलने पर।

स्वीकृति के बारे में पता चलने पर

मैंने सर्वज्ञ महान ऋषि का भोजन किया।

उन्होंने तैयारी की और उन्हें (आगमन के बारे में) सूचित किया।

भोजन का समय।

समय की सूचना मिलने पर, नेता

पदुमुत्तरा मेरे मठ में एक लेकर आए थे।

हजार अरहंत रोगमुक्त।

जब मुझे वह समय पता चल जाए जब वह बैठे थे,

मैंने उन्हें भोजन और पेय से तृप्त किया; जब

मुझे पता चला कि उन्होंने खाना खा लिया था।

मैंने उसके भोजन के दौरान यह शब्द बोला।

एक लाख रुपये में खरीदा गया।

और उसी लागत पर निर्मित भी,

मठ का नाम शोभना है; हे ऋषि! आप ऐसा करें

इसे स्वीकार करो। इस भेंट के माध्यम से।

अपनी इच्छा और स्वेच्छा से मठ का।

इस संकल्प से, मुझे वह मिल गया जो मैं चाहता था और

जब मेरा किसी भी रूप में उदय हुआ।

सुनिर्मित मठ को स्वीकार करने के बाद,

आत्मजागृत बुद्ध, बैठे हुए

भिक्षुओं के बीच, इस राज्य का निर्माण हुआ-

मैं उनके बारे में घोषणा कर रहा हूँ।

जिसने अपने सुगठित शरीर की भेंट चढ़ाई

भिक्षुओं के पुरोहितों के लिए मठ

बुद्ध, जब मैं बोल रहा हूँ तो मेरी बात सुनो।

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक-

सैनिक, और चौगुनी सेना

हमेशा उसे घेरे रहो; यही फलदायी है।

पुरोहितों के लिए मठ की पेशकश का परिणाम

(संघराम)। साठ हजार संगीतकार

और सजे-धजे ढोल बजाने वाले हमेशा रहेंगे

उनकी संगति में; यही फलदायी है

संघराम के अर्पण का परिणाम।

छियासी हजार सुशोभित महिलाएं

विभिन्न रंगों से सजे और अलंकृत,

पन्ना की बालियां पहनने से हमेशा फायदा होगा।

उसकी सेवा करो; यही फलदायी है।

संघाराम का परिणाम। (महिलाएं) मोटी-

भौहें, पलकें और मनमोहक मुस्कान,

अच्छी समझ और पतली कमर हमेशा

उसकी सेवा करो; यही फलदायी परिणाम है।

संघाराम अर्पित करने का।

तीस हजार युगों (कप्पा) तक वह

दिव्य जगत में आनंद लें। एक हजार

कई बार, वह एक दिव्य राजा के रूप में शासन करेगा।

ईश्वरीय संप्रभुता। वह उचित रूप से सब कुछ प्राप्त करेगा।

जिसे दिव्य राजा को प्राप्त करना चाहिए;

एक बन जाने के बाद, जिसका धन कभी नहीं

कम होने पर, वह स्वर्गीय कार्य करेगा

संप्रभुता।

हजार बार, वह बन जाएगा

अपने राज्य में विश्व-राजा; संप्रभुता

पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में, अगणनीय मात्रा में मौजूद है।

संख्यात्मक रूप से।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

दुनिया में गुरु अवश्य होंगे

कुल के अनुसार गौतम नाम दिया गया, परिवार में जन्म हुआ

ओक्काका (इक्ष्वाकु) का।

वह उनकी शिक्षाओं का उत्तराधिकारी होगा।

सत्य (धम्म), एक प्रिय पुत्र जिसे बनाया गया है

सत्य (धम्म); वह एक शिष्य होगा

उस गुरु का, जिसे उपालि नाम से जाना जाता है।

विनय में सिद्धि प्राप्त करने के बाद,

वह तार्किक मामलों में चतुर होगा और

अतार्किक; वह रोगों से मुक्त होकर रहेगा।

(आसव) स्वयं को उत्तरदायी ठहराना

विजेता की व्यवस्था।

विशेष रूप से इसके बारे में पता चलने पर,

साकियनों में श्रेष्ठ माने जाने वाले गौतम बैठे हुए हैं।

भिक्षुओं के बीच में, रखा जाएगा

उन्हें सबसे आगे के पद पर।

(उपाद्य) असीम पदार्थ का संदर्भ

(sparimeyya) मेरी इच्छा है (patthemi)

आपके प्रावधान (सासनम्) के लिए; कि

मेरी इच्छा पूरी हो गई है,

बंधनों का नाश (संयोजन)।

जैसे कोई व्यक्ति खंभे पर अटक जाता है (सुलावुतो)

शाही दंड की धमकी दी गई (तज्जितो),

फीकेपन में आनंद न मिलना (सातं)

(सूला) उसकी पूर्ण स्वतंत्रता की इच्छा करता है;

हे महान हृदय! इसी प्रकार,

अस्तित्व के दंड से ग्रस्त होने का खतरा

मैं (अपने ही) दायरे में फंसा हुआ हूँ।

कर्म (कर्म), भयभीत (अट्टितो)

प्यास का एहसास, तीन आगों से झुलसा हुआ,

किसी भी जीवन में आनंद प्राप्त न करना;

शाही पक्ष के अनुरूप

मुझे सजा मिली है, मैं पूर्ण स्वतंत्रता चाहता हूं।

एक ऐसे व्यक्ति के अनुसार जिसने निगल लिया था

विष (विसाडो), होने पर

जहर से पूरी तरह पीड़ित थे

रक्षा करने वाली औषधि (अगादा) की तलाश करना

जहर को नष्ट करके (घाटा) उसका जीवन,

और अपनी खोज में, उसे वह दवा मिल जाती है

जो जहर को नष्ट कर सकता है, और जिसमें

अगर वह इसे पी ले, तो वह आनंदित हो जाएगा।

क्योंकि वह पूरी तरह से मुक्त हो गया था

विष से, लेकिन उसी प्रकार, हे महान वीर!

मैं उस व्यक्ति के अनुसार हूँ जो इससे पीड़ित है।

जहर। अज्ञानता से बुरी तरह पीड़ित, मैं

मैं अच्छे स्वास्थ्य की दवा की तलाश में हूँ

सत्य (सद्धम्म)।

सत्य (धम्म) की औषधि की खोज करना

मुझे शाक्य की व्यवस्था मिली

(सक्यसासनम्); यह सभी में सर्वोच्च है

औषधियाँ, सभी तीरों को दूर भगाने वाली

(सल्ला)।

धम्म की औषधि का सेवन करके, मैं

सभी जहर को मिटा दिया था। मैं आया था।

निर्वाण के संपर्क में, शीतलता के साथ

ऐसी स्थिति जिसमें वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती।

एक ऐसे व्यक्ति के अनुसार जो किसी चीज़ से पीड़ित है

पीड़ित राक्षस (भूत)

किसी राक्षस (भूत) द्वारा कब्जा कर लिए जाने पर

भूतवेज्जन की तलाश करेगा

भूत-प्रेत से पूर्ण मुक्ति के लिए

और खोजबीन करने पर, एक विशेषज्ञ मिल जाए

(कोविदं) जादू टोने के विज्ञान में

(भूता विज्जासु), और बाद वाले थे

उसके भूत (राक्षस) को हटाकर

इसके स्रोत (समूल) सहित नष्ट कर दो।

और इसी प्रकार, हे महान वीर! मैं,

अंधकार के चंगुल से पीड़ित रहा हूँ,

मैं ज्ञान के प्रकाश की खोज में हूँ।

अंधकार से पूर्ण मुक्ति के लिए

इसके बाद, मुझे साकियान भाषा के बारे में पता चला।

ऋषि (शाक्यमुनि), जिन्होंने विपत्तियों का निवारण किया

दुराचार के अंधकार से उसने मुझे मुक्त किया।

तांत्रिक के समान अंधकार

भूतकम् के जादू को दूर करना।

मैंने संसार की धारा को पूरी तरह से काट दिया था।

और लालसा की धारा को प्रतिबंधित किया

(तण्हासोतं)। मैंने सभी प्राणियों का नाश कर दिया था।

अपने मूल स्रोत से दानव चिकित्सक के समान

(मूला).

गरुड़ पक्षी के झपट्टा मारने के अनुसार

अपने भोजन के लिए एक सर्प को खाने से परेशानी होती है

चारों ओर फैली विशाल झील सौ किलोमीटर तक फैली हुई है।

योजनाएँ; वह गरुड़, जिसके पास

उसने सांप को पकड़ा और उसे विदा किया।

सांप को परेशान करते हुए उसे दूर ले जाना

सिर नीचे की ओर झुका हुआ था और ऊपर की ओर उड़ गया।

आकाश अपने इच्छित गंतव्य के लिए (येना)

कामम्)।

इसी प्रकार, हे महान वीर! मैं, इसके अनुसार

शक्तिशाली गरुड़ पक्षी, खोज रहा है

अजन्मा (अङ्खता) धो देना (मेरा)

दोष (दोसा)।

उत्कृष्ट सत्य (धम्म) था

मेरे द्वारा खोजा गया, अद्वितीय मार्ग

शांति। मैं उसमें निवास करता हूँ, उसे अपने साथ लिए फिरता हूँ।

मेरे साथ, गरुड़ के अनुसार

वह सांप को अपने साथ ले जा रहा था।

आसावती नाम की लता आती है

चित्तलता के उपवन में होने के कारण;

उस लता पर फल उग आते हैं (पर)

एक हजार वर्षों का अंतराल;

दिव्य प्राणी उस लता की सेवा करते हैं

उस समय तक जब दूर का फल

अस्तित्व में आता है; वह सबसे उत्कृष्ट

आसावती लता है; इस प्रकार,

देवताओं को प्रिय।

एक लाख के साथ (उपाद्य)

(वर्षों) तक मैंने सेवा की (paricare)

ऋषि; मैं सुबह और शाम को

ईश्वरीय प्राणियों के समान उनकी आराधना करो।

आसावती के साथ ऐसा ही किया जाएगा।

मेरी सेवा व्यर्थ नहीं गई है;

मेरी श्रद्धा व्यर्थ नहीं गई है।

हालांकि उस क्षण ने मुझे नहीं चूका (विराधायी)

मैं शायद बहुत दूर चला गया था। बारीकी से जाँच करना

अस्तित्व, मुझे अब और नहीं दिखते

गर्भाधान (पटीसंधि)। मैं इधर-उधर भटकता हूँ।

शांति (उपसंतो) के साथ

स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म के आधार से मुक्त

(उपाधि)।

कमल के फूल के अनुसार, जिसका नाम है

पद्मा, सूर्य की किरणों के साथ खिलता है।

लेकिन हे महान वीर! मैं भी बन गया हूँ

बुद्धों की किरणों से खिल उठा।

सारस के गर्भ के समान

कोई निर्माण कभी नहीं होता; जब बारिश-

बादल गरजते हैं, वे हमेशा गर्भवती हो जाते हैं;

वे लंबे समय तक अपना सामान ढोते रहते हैं।

गर्भावस्था जब तक बारिश का बादल

बिजली नहीं कड़कती। जब भी बारिश होती है

बादल बारिश बरसाते हैं, वे बन जाते हैं

अंडे देने से पूरी तरह बोझ से मुक्त हो जाना।

जब बुद्ध पद्ममुत्तरा ने गर्जना की

मैंने धर्म के वर्षा-बादल को पकड़ लिया।

आध्यात्मिक गर्भावस्था (धम्मगब्भा)

सत्य (धम्म) के वर्षा-बादल के साथ

(मेरी) पवित्र आस्था (सद्धा)।

साथ-साथ (उपाध्या) एक लाख

मैंने पुण्य की गर्भावस्था को धारण किया है।

(पुण्णगब्भा); (जब तक) आध्यात्मिक

(धम्म) वर्षा-बादल गरजता नहीं है, मैं

बोझ से मुक्त नहीं हुआ।

हे शाक्यमुनि! तब आप गर्जना करते हैं

आध्यात्मिक (धम्म) वर्षा-बादल में

मैं आनंदमय कपिलवस्तु बन गया हूँ।

मैं अपने बोझ से पूरी तरह मुक्त हो गया हूँ।

शून्य (सञ्ञत), चिह्नहीन (अनिमित्त)

इसी प्रकार गुप्त (अपणिहित) भी,

और इस फल में चारों फल (फल)

जिस तरह से मैंने बात की, मुझे सच्चाई स्पष्ट रूप से समझ आ गई थी।

(धम्म)।

असीम के साथ (उपाध्याय),

मैं आपके विधान की प्रतीक्षा करता/करती हूँ (पत्थेमी)।

(सासनं); मेरा वह उद्देश्य (अत्थो)

तदनुसार प्राप्त किया गया था (अनुपत्तो);

अर्थात्; शांति का अद्वितीय मार्ग

(संती)।

मैंने विनय में पूर्णता प्राप्त कर ली थी;

पाठ करने वाले के अनुसार (pāṭhiko)

तपस्वी। उनके समान कोई नहीं है।

(समासामो) मुझे; मैं इस विशेषाधिकार को धारण करता हूँ

(जिम्मेदारी के साथ)।

विनय के खंडक भागों में,

साथ ही त्रयी अनुभाग में और

पंचक (tikacchede ca pañcake); यहाँ, मेरा

वर्णमाला में भी कोई संदेह नहीं है।

या विशेषता में।

मैंने हर क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त कर ली थी;

फटकार में (निग्ग-अहा) और निवारण में (पाटी-)

मैं (कम्मा) इस बात में विशेषज्ञ (कोविडो) हूँ कि मैं

सही और गलत निष्कर्षों को समझें

(थानाथन), बहाली में (ओसाराना)

और किसी अपराध की क्षमा की गई स्थिति

(वुट्ठापन)

चाहे विनय (वास्तविक रूप से) में हो या उसके

खंड (खंडा) मैं एक को हटा सकता हूँ

शब्द (निक्खीपित्वा पदम्); सुलझाकर

(viniveṭheti) दोनों तरफ से (ubhato) मैं

(ओसरती) को दृष्टि से हटा देगा-

मैं स्वाद की गुणवत्ता (रसातो) का बिंदु हूँ

व्याकरण में बहुत निपुण और विशेषज्ञ

सार्थक और निरर्थक में

(अत्थानत्थ); ऐसा कोई नहीं है जो अत्थानत्थ न हो

मैं इसे जानता हूँ; मैं इसमें सबसे आगे हूँ।

गुरु की कृपा। अब मैं चतुर हूँ।

रूपों में (रूपाक्खा) व्यवस्था में

शाक्य पुत्र (साक्यपुत्त) का शासन (शासन)।

मैं सभी शंकाओं को दूर करता हूँ और सभी बाधाओं को काट देता हूँ।

संदेह।

मैं प्रस्तावना में हर जगह विशेषज्ञ हूं

(निदान) और अंत में (सहित)

यह शब्द और इसका अनुक्रम (अनुपदा)

वर्णमाला के साथ-साथ विशेषता भी

(ब्यांजना).

एक राजा के अनुसार, एक मजबूत के स्वामी

सेना ने दूसरे राजा को रोक रखा था

(परंतपा) ने युद्ध जीता और

वहां एक शहर बसाओ;

शहर में वह कई तरह के काम करता था।

अर्थात्; शहर की दीवार, खाई, स्तंभ,

प्रवेश द्वार-अनाज भंडार और निगरानी मीनारें

(अट्टालक),

चारों चौराहों पर स्थित चौक (सिंहाटा-

का), आंगन (ककारा), कुआँ-

संगठित आंतरिक बाजार (सुविभट्टंतरा-

पणम्); वह वहाँ एक हॉल बनवा सकता है

किसी मामले के लाभकारी होने या न होने के संबंध में निर्णय लेना

या नहीं (अत्थानात्थाविनिचयं)।

वह एक सेनापति की भी नियुक्ति करता है।

(सेनापच्चं) देखभाल करने के लिए

सेना का निकाय, इस उद्देश्य के लिए

दुश्मनों को मारने और उनकी कमियों को जानने के बारे में या

दोषरहितता।

वह खजाने के संरक्षक की भी नियुक्ति करता है।

खजाने की रक्षा के उद्देश्य से

और वे लोग जो अपने अच्छे कर्मों को महत्व देते हैं

यह कहते हुए कि, 'मेरी संपत्ति विनाश से बची रहे।'

वह एक निजी पुरोहित नियुक्त करता है।

जो मंत्रों का पाठ करने वाला और उनका भंडार हो

(मंत) जो चतुर है (उप्पत)

संकेत (निमित्त) और हस्तरेखा शास्त्र (लक्खाना),

जो अपना पर्यवेक्षण (अधिकरण) प्रदान करता है,

ताकि उसका राजा उसके जीवन को नियंत्रित कर सके

अपने सहयोगी को, और जो देखना चाहता है

उसके राजा की समृद्धि (वद्धि) जब

उसका राजा अहंकारी (ममात्तो) हो जाता है।

जो इन योग्यताओं से संपन्न हो-

कहा जाता है कि वह एक योद्धा राजकुमार है।

(खत्तिया); वे राजा की देखभाल करते हैं

हर समय एक लाल हंस के समान

संकट में फंसे किसी भी व्यक्ति की देखभाल करना

(दुक्खिता)।

लेकिन इसी प्रकार, हे महान वीर!

वह योद्धा राजकुमार (खट्टिया) जिसके पास

आपने शत्रु को पराजित किया (hatāmitto)

उन्हें आध्यात्मिक संप्रभु कहा जाता है

(धम्मराजा) दुनिया सहित

दिव्य जगत।

विधर्मियों को मार गिराने के बाद और

मारा भी अपनी सेना के साथ, तुम,

घोर अंधकार को दूर किया, बनाया

आध्यात्मिक (धम्म) नगर।

वहाँ, नैतिक उपदेश (सीला) का गठन होता है

दीवार; आपका ज्ञान ही इसका आधार है।

द्वारकोट्ठक; हे वीर!

आपकी आस्था (सद्धा) ही आधार स्तंभ है।

(एसिका); आपका आत्मसंयम (संवर)

द्वारपाल (द्वारपाल) का गठन करता है।

(आपकी) जागरूकता की स्थापना (सती-

पट्ठना (paṭṭhāna) निगरानी मीनार का निर्माण करता है

(अट्टाला); हे ऋषि! आपकी बुद्धिमत्ता (पञ्ञा)

आंगन (ककारा) का गठन करता है;

आपकी चमत्कारी शक्ति की नींव

चौराहे पर स्थित वर्ग का निर्माण करें

(सिंहात्); आध्यात्मिक मार्ग (धम्म-

वीथी का निर्माण अच्छी तरह से किया गया था।

सुत्त, विनय और अभिधम्म, नौ-

बुद्ध के शरीर के अंगों (अंग) को मोड़ना

वचन (वचन); यह आपका आध्यात्मिक वचन है।

हल (धम्मसभा)।

शून्य (सुञ्ञाता), चिह्नहीन (अनिमित्त)

और सभी इच्छाओं से मुक्ति (अप्पणीहित)

अपने मठ का गठन करें; अचलता

(अनञ्जा) और समाप्ति (निरोध); इन

अपनी आध्यात्मिक कुटिया (धम्म-) का निर्माण करें।

कुटी)।

आपके सेनापति को इस नाम से जाना जाता है

सारिपुत्त का, जो सबसे बड़ा भंडार है

(आपकी शिक्षाओं के कारण) उनकी बुद्धिमत्ता के कारण

और वह अपने उत्तरों में विशेषज्ञ है।

(paṭibhāṇa) उत्तर में।

हे ऋषि! आपका निजी पुरोहित

कोलिता नाम से जानी जाती है, जो कि

जीवन और मृत्यु के मामलों में चतुर

(cutūpapāta) और पूर्णता प्राप्त कर ली थी

जादू का प्रदर्शन करते हुए।

हे ऋषि! आपका न्यायाधीश (अक्खड़स्सो) यह है

प्रतिपादन की गुणवत्ता में सर्वोपरि।

तपस्या (धूता), पालनकर्ता (धरो)

प्राचीन परंपरा (वंश) का, उच्च

रैंकिंग शक्ति (उग्गेटजा) और कठिनाई

टूट पड़ना।

हे ऋषि! सत्य (धर्म) के आपके संरक्षक,

आनंद नाम से जाना जाता है, वह बहुत कुछ है।

विद्वान (बहुस्सुतो), वाहक

सत्य (धम्म) की स्मृति और पाठकर्ता

प्रत्येक परीक्षा (सब्बापाठी) में

मुआवजा (सासनं)।

इन सब से आगे बढ़कर,

भगवान ने अपना आकलन (पामेसी) किया।

मुझे और प्रदान किया (पादासी)

टिंक्टिव निर्णय (विनिच्चयं) में

विनय, जो (देसीता) द्वारा सिखाया जाता है

बुद्धिमान (विञ्ञा)।

यदि बुद्ध का कोई शिष्य मुझसे पूछे

विनय में प्रश्न, मैं बोलता हूँ

उस अर्थ (अत्था) का उत्तर बिना

मुझे इस बारे में सोचने की आवश्यकता है

पदार्थ (तत्थ)।

हे महान ऋषि! आपको छोड़कर (ṭha-

(petvā taṃ), मेरे जैसा कोई नहीं है

विनय में बुद्ध के क्षेत्र तक

आवरण (यावता बुद्धखेत्तमहि); जहाँ

क्या मैं श्रेष्ठ साबित होऊंगा?

बीच में बैठे होने के कारण

गौतम बुद्ध ने गरजते हुए भिक्षुओं के पुरोहितों से कहा।

(गज्जति) इस प्रकार: कोई नहीं है

विनय में उपालि के समान और

खंडका (इसके कुछ भाग)।

जैसा कि बुद्ध ने कहा था,

शरीर के नौ गुना अंग (अंग)

बुद्ध की शिक्षाएँ (सासनं), वह सब कुछ

विनय में विलय (अगध) होता है: एक

जो विनय के मूल कारण को देख पाता है।

अपने कर्म को याद करके,

साकियों में श्रेष्ठ माने जाने वाले गौतम

वे पुरोहितों के बीच बैठ गए।

भिक्षुओं ने मुझे सबसे आगे नियुक्त किया

स्थिति (etadagga).

एक लाख के साथ (उपाध्याय),

मुझे इस पद की आकांक्षा थी;

मेरा वह उद्देश्य तदनुसार यही था

मैंने सफलता प्राप्त की; मैंने विनय में पूर्णता प्राप्त कर ली।

पहले मैं हेयरड्रेसर (कप्पाका) था।

साकियान समुदाय के आनंद का संवर्धक;

उस व्यवसाय (जाति) को त्यागकर, मैं

महान के पुत्र बन गए हैं (जातो)

समझदार।

दूसरे युग (कप्पा) में, इससे पहले

इस प्रकार, एक खत्तिया (राजा) था जिसका नाम था

अंजासा, पृथ्वी के एक शासक, जो अपार धन से परिपूर्ण थे।

असीम शक्ति और अपार प्रसिद्धि का।

मैं उस सम्राट का पुत्र था, एक योद्धा।

कैंडाना नामक राजकुमार, जिसे समर्थन प्राप्त था

जन्म का अहंकार और प्रसिद्धि का गर्व और

संपत्ति।

एक लाख हाथी, सजे-धजे

मातंग प्रजाति के सभी आभूषणों सहित,

तीन स्रोतों से उग्रता से भरा हुआ

(तिधापभिन्ना), हमेशा मुझे घेरे रहती थी

(मेरी सेवा करने के लिए)।

(पैरेटो) से सुसज्जित, मेरी अपनी मजबूत

सरणी, और जाने की इच्छा रखते हुए

बगीचे में, मैं हाथी सिरिका पर सवार हो गया।

और शहर से बाहर निकल आए।

स्वयंजागृत मौन बुद्ध, नाम

देवला, (नेक) आचरण से संपन्न,

उसकी इंद्रियों के द्वार सुरक्षित थे, और अच्छी तरह से

नियंत्रित व्यक्ति मेरे सामने आ गया।

हाथी सिरिका को भेजने के बाद, मैंने

मौन बुद्ध पर हमला किया (आसादयिं)

तब; इसके परिणामस्वरूप (tato) कि

हाथी क्रोधित हो गया (संजताकोपो) और

उसने अपना पैर नहीं उठाया (उद्धरति)।

मेरे हाथी को रोते हुए देखकर-

मन से (रुण्णमन), (क्रोधित हो गया)

मौन बुद्ध; मौन धारण किए हुए

बुद्ध ने मुझे परेशान किया, मैं उसकी ओर बढ़ गया।

बगीचा।

वहाँ मुझे कोई आनंद (सात) नहीं मिला; मेरा

मेरा सिर मानो आग की लपटों में जल रहा था। मैं बुरी तरह झुलस गया था।

गर्मी से, मछली के समान, जो

मछली का काँटा (बालिसा) खाया (अडाको)।

मुझे ऐसा लगा मानो पृथ्वी एक साथ

समुद्रों की सीमा के साथ-साथ इसे जलाया जा रहा था

(आदित्त); उपस्थिति के पास पहुँचकर

मैंने अपने पिता के बारे में यह बयान दिया था।

उसे।

मैंने आत्मनिर्भर मौन पर आक्रमण किया

बुद्ध जो विषैले पदार्थ की तरह क्रोधित थे

साँप (आसीविसा), जो एक समूह जैसा दिखता है

आग जो भयंकर रूप से भड़क उठी थी, और इसी तरह

संभोग के मौसम में सूंड वाले हाथी को।

मौन बुद्ध, प्रचंड विजेता,

अत्यंत कठोर, जिस पर मैंने हमला किया था।

इससे पहले कि हम सब बर्बाद हो जाएं, चलो

हम उस ऋषि से माफी मांगते हैं।

यदि हम स्वयं उसे प्रसन्न नहीं करते

आत्मसंयमित और संयमित, हमारा

इस दौरान राज्य नष्ट हो जाएगा

सात दिनों के भीतर।

जिनके अपने-अपने राज्य थे, अर्थात्;

सुमेखला, कोसिया, सिगगावा, और सट्टाका

इसके अलावा, तपस्वियों पर हमला करने के बाद,

दरिद्र हो गया (दुग्गता)।

फिर वे तपस्वी जो संयमी हैं

(सन्याता) प्रमुख कुलीन लोग क्रोधित हो जाते हैं,

यह संसार, दिव्य संसार के साथ मिलकर

महासागरों और पहाड़ों के साथ-साथ बन जाते हैं

तबाह।

पुरुषों की भीड़ (किसी क्षेत्र को कवर करते हुए)

तीन हजार लीग (योजना) एकत्रित

साथ मिलकर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुए

मौन बुद्ध अपने अपराध को स्वीकार करते हैं।

अपने साफ कपड़ों और साफ दिमाग के साथ,

सभी ने अपने हाथ बराबर से जोड़ लिए थे।

मौन बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा और

उन्होंने ये शब्द कहे।

हे महान वीर! कृपया हमें क्षमा करें;

अनेक पुरुष आपसे यह निवेदन करते हैं;

कृपया जलती हुई (परिलाहा) को हटा दें (विनोदेही);

कृपया हमारे राज्य को नष्ट न करें।

सभी मनुष्यों के साथ

दिव्य प्राणी, टाइटन्स के साथ

(दानव) और राक्षस (रक्खासा) हमेशा हो सकते हैं

मेरे सिर को हथौड़े से तोड़ दो

लोहा।

पानी में आग अच्छी तरह से नहीं टिकती;

पत्थर पर बीज अंकुरित होकर नहीं उगता;

इस दवा में कोई भी कीड़ा जीवित नहीं रह पाता;

शांत बुद्ध में क्रोध उत्पन्न नहीं होता।

क्योंकि पृथ्वी कांपती नहीं है,

सागर असीम है, आकाश

अनंत, उसी प्रकार मौन

बुद्ध अविचलित होते हैं।

महान नायक सदा धैर्यवान होते हैं; संन्यासी

जिसे शांत किया जा सकता है (खमिता); कि

धैर्य से विमुख होना (गमना) और

शांत होने से (खमितानं)

अस्तित्व में नहीं हैं।

यह सब कहने के बाद, आत्मजागृत

मौन बुद्ध ने जलती हुई आग को बुझा दिया।

पुरुषों की भीड़ के सामने और

फिर वह आसमान में उड़ गया।

हे वीर बुद्ध! उस कारण

(हमले का) कृत्य मुझे यहाँ आना पड़ा

हीनता की अवस्था (हीना);

उस पुनर्जन्म से आगे बढ़कर मैंने प्रवेश किया।

ऐसा शहर जो खतरे से मुक्त हो।

हे महान नायक! अब मुझे भी इसका खामियाजा भुगतना पड़ रहा था।

तीन अग्नियों द्वारा; मेरे पास तीन अग्नियाँ थीं

बुझ गया और मैंने खुद को स्थानांतरित करवा लिया।

शीतलता की अवस्था तक।

हे, जिनके कान सजग हैं (सोतावधान),

जब मैं बोल रहा हूँ तो मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं सिखाता हूँ।

आपके लाभ के लिए (अत्थं)

क्योंकि मैंने वह मार्ग (पडं) देख लिया है।

आत्मनिर्भरों का अनादर करने के कारण

मौन बुद्ध, शांत मन वाले और

अच्छी तरह से रचित, मैं एक में पुनर्जन्म लेने आया था

उस क्रिया के कारण अब गर्भाशय की स्थिति कमजोर हो गई है।

(कर्म)। आपको कोई भी क्षण नहीं चूकना चाहिए;

वास्तव में, जो लोग क्षणों को बीतने देते हैं, वे महसूस करते हैं

क्षमा करें; आपको इसके लिए प्रयास करना चाहिए

आपका अपना कल्याण, आपका क्षण बीत चुका है

उपयुक्त रूप से उपयोग किया गया (paṭipādito).

कुछ लोगों के लिए उल्टी की दवा (वामना) दी जाती है;

अन्य लोगों के लिए विरेच्य (विरेचना);

कुछ लोगों के लिए विषैला बैनोम दवा है।

दूसरों के लिए।

उल्टी की खुराक उन लोगों के लिए है जिन्हें

उन्होंने अपना उचित प्रदर्शन किया (पाटी-

पन्नानम्); रेचक के स्थान पर

फल प्राप्ति; लाभ प्राप्त करने वालों के लिए औषधि

फल प्राप्ति की तलाश में, जो उपजाऊ भूमि की खोज में हैं

योग्यता का क्षेत्र।

घातक विष के अनुसार

जो व्यवस्था में बाधा डालते हैं

(सासनं), उसी प्रकार,

स्पष्ट रूप से विषैला (दिट्ठवीसो) साँप

उस आदमी को जला दिया गया (झापेटी)।

घातक विष जो शराब के नशे में टूट जाता है

उप (उपरुंधति) जीवन केवल एक बार;

उसने व्यवस्था में बाधा डाली, वह जल गया

एक करोड़ (koṭi) युगों (kappa) के लिए।

धैर्य और क्रूरता के अभाव के माध्यम से,

और प्रेममय हृदय के अधिकार से

वह अपनी दयालुता से दुनिया को सुगम बनाता है

दिव्य दुनिया को पार करने के लिए (समुद्र)

संसार का); इसलिए, उसे नहीं होना चाहिए

आपकी वजह से बाधा उत्पन्न हुई।

वे छोटे-बड़े लाभों से चिपके नहीं रहते।

(लाभालाभे), अच्छा आदर और अनादर

(सम्मनविमानने); बुद्ध समान हैं

इसलिए, वे पृथ्वी के लिए नहीं हैं।

अशांत होना।

हत्यारे देवदत्त में, लुटेरे में

अंगुलिमाला, राहुल में और (हाथी में)

धनपाला, उन सभी के लिए ऋषि हैं

समान।

किसी के प्रति कोई दुर्भावना (पिटिगा) नहीं है

उनमें; न ही उनके प्रति वासना का भाव है;

बुद्ध उन सभी के समान हैं, चाहे

वह उसका या उसके प्रिय पुत्र का हत्यारा है।

सड़क पर (पंथे) एक पीला देखकर

वस्त्र त्याग दिया गया, मल से सना हुआ।

(मील्हा), तपस्वी का ध्वज (इसिद्धहा)

हाथों को आपस में जोड़कर रखना पूजनीय है।

अपने सिर पर, (मैंने तदनुसार अपना सम्मान व्यक्त किया)।

बुद्ध, जो विशेष रूप से अतीत के थे,

जो वर्तमान में (चालू) हैं और जो होंगे

भविष्य में, स्वयं को शुद्ध करें

इसलिए यह ध्वज (धजा) उनके वस्त्र हैं।

वे पूजनीय हैं। मैं उन्हें अपने हृदय में संजो कर रखता हूँ।

अच्छा विनय जो गुरु के समान हो;

मैं विनय की आराधना करते हुए, हर जगह निवास करूंगा।

बार।

विनय मेरा निवास स्थान है; विनय ही मेरा निवास स्थान है

वह स्थान जहाँ मैं खड़ा होकर टहलता हूँ;

मैं विनय में निवास करता हूँ; विनय

यह मेरा चरागाह क्षेत्र है। मैंने इसे प्राप्त कर लिया था।

विनय में पूर्णता; मैं इसमें चतुर हूँ

समभाव (समाथा) भी। हे महान!

हीरो! मैं आपको नमन करता हूँ; वह आपकी पूजा करता है।

गुरु उनके चरणों में।

मैं गाँव से इधर-उधर भटकूँगा

गांव से, शहर से शहर, प्रशंसा करते हुए

स्वयंजागृत बुद्ध और सद्गुण

(सत्य (धम्म) की (सुधम्मता)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

वहाँ गुरु ने स्वयं उन्हें संपूर्ण विनय पिटक का उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने भारकच्छ, अज्जुक और कुमार कस्सप की कथा का विस्तृत विश्लेषण किया। गुरु ने प्रत्येक निर्णय के लिए अपनी प्रशंसा व्यक्त की, तीनों विचार-विमर्शों का वर्णन किया और थेरा को विनय के संवाहकों में सर्वोपरि स्थान दिया। इसके बाद, उपोस्त के एक दिन उन्होंने भिक्षुओं को अनुशासन के बाध्यकारी नियमों का उपदेश देते हुए तीन श्लोक कहे:

249. "विशेष रूप से संसार का त्याग करके

श्रद्धापूर्वक (सद्धा के साथ), एक नवयुवक

(नवो) जो हाल ही में भिक्षु बना था

(नवपब्बाजितो) सेवा करनी चाहिए (भजेय्य)

अच्छे दोस्त, जो बिना किसी बंधन के शुद्ध जीवन जीते हैं

आलसी होना।

250. "विशेष रूप से संसार का त्याग करके

पवित्र आस्था के साथ, एक नवसिखिए, जिसके पास

नवशिक्षित भिक्षु, भिक्षु के रूप में निवास कर रहे हैं

पुरोहितों (संघ) में, बुद्धिमान

(बुद्धो) भिक्षु को सीखना चाहिए

विनय।

251. "विशेष रूप से संसार का त्याग करके

पवित्र आस्था के साथ, एक नवसिखिए छात्र जिसने

नवनिर्मित भिक्षु, अपने क्षेत्र में चतुर

उपयुक्त रूप से उपयुक्त (कप्पा) या अन्यथा

(अकप्पा) को बिना किसी

सबसे आगे रहने के लिए मजबूर किया जा रहा है

(पुराक्खतो).

वहाँ, सद्धाय का अर्थ है: निमित्तम् (पवित्र आस्था) से चिह्नित; जीविका के उद्देश्य से नहीं; यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, सद्धाय का अर्थ है: कर्मफल (कम्मफल) और तीन रत्नों के गुणों में विश्वास रखने वाला। अभिनिक्खम्म का अर्थ है: गृहस्थ जीवन से बाहर आया हुआ। नवपब्बजितो का अर्थ है: जीवन के प्रथम चरण (वय) में ही भिक्षु बन जाना। नव का अर्थ है, विशेष रूप से शासन (सासन) में अनुशासन के लिए नया, युवा। मित्ते भजेय्या कल्याणे, शुद्धाजीवे अतंदिते का अर्थ है: अच्छे मित्र जिनमें "सौम्य, आदरजनक (गरु-भावनियो)" आदि जैसे गुण (लखण) हों; जो गलत और दुष्ट जीवन शैली (मिच्छाजीव) से दूर रहकर शुद्ध जीवन जीते हों। परिश्रम शुरू करने की स्थिति के कारण आलसी नहीं होना चाहिए; व्यक्ति को आगे बढ़कर सेवा करनी चाहिए; व्यक्ति को उनकी सलाह और निर्देश स्वीकार करके सेवा करनी चाहिए। संघस्मिं विहारं का अर्थ है; भिक्षुओं, पुरोहितों के समूह में सभी प्रकार के कर्तव्यों (वत्तपतिवत्त) का पालन करते हुए निवास करना। सिक्खेथा विनयं बुधो का अर्थ है कि व्यक्ति को ज्ञान (बोधाणा) के कारण उत्कृष्ट रूप से चतुर होने के बाद विनय ग्रंथ (परियत्ती) का अध्ययन करना चाहिए; वास्तव में, विनय ही धर्म का जीवन है; जब वह विनय कायम रहता है, तो धर्म कायम रहता है। विद्वान इसे "बुद्धो" भी पढ़ते हैं; यही इसका अर्थ है। कप्पकप्पेसु का अर्थ है उपयुक्त या अनुपयुक्त मामलों में चतुर; नियम (सूत्र) और उसके अनुकूलन (सूत्रानुलोम) के माध्यम से सूक्ष्म विशेषज्ञ। अपुरक्खतो का अर्थ है; किसी को भी कहीं से भी सम्मान (पुरेक्खारा) की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए और न ही लालसा (तन्हा) आदि से प्रेरित या घिरे रहना चाहिए।

वि. 228. बुधो विद्वा विभावी च संतो सप्पन्न कोविदा धीमा सुधि कविब्यत्तो विकक्खना विशारदा।

वी. 229. मेधावी मतिमा पणनो, विनाच विदुरो विदु, धीरो विपसि दोसन्नु बुद्धो च दब्बा विद्दसु।

थेरा उपाली के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(181): उत्तरपाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (181) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
181. उत्तरपाल

बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उत्तरपाल रखा गया। [1] उन्होंने जुड़वां चमत्कार देखा, [2] और विश्वास करके भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अपनी पढ़ाई जारी रखी। एक दिन, अव्यवस्थित स्मृतियों के बीच, कामुक इच्छाएँ उन पर हावी हो गईं, लेकिन एक तीव्र मानसिक संघर्ष के बाद, उन्होंने भ्रष्ट करने वाले भावों (किलेसा) को वश में कर लिया और गंभीर ध्यान में अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अपनी जीत पर विचार करते हुए, उसने 'शेर जैसी दहाड़' लगाई:

[252] पादिताṃ वात माṃ संताअ अलमत्थविसिंताकाṃ,॥
पञ्चकामागुणा लोके सम्मोहा पतयिंसु माऽ॥ ॥

[253] पक्खन्नो मारविसाये दहसल्लसमप्पितो,॥
असक्खी मैक्कुराजस्सा अहं पास पामुच्चुइतुं॥ ॥

[254] सब्बे काम पहिना मे भव सब्बे विदादिता,॥
चिक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनभभावो' ति.॥ ॥

[252] मैं वास्तव में बुद्धिमान प्रतीत होता हूँ, और
अच्छे के लिए आवश्यक चीजों पर पर्याप्त चिंतन करने में व्यतीत करता हूँ,
मैंने इंद्रियों की पाँच प्रकार की इच्छाओं को पराजित किया,
जो संसार के [तर्क के] भ्रमित करने वाले हैं।

[253] यद्यपि मारा (मृत्यु के देवता/शैतान) की पहुँच में फंसा हुआ था, शक्तिशाली बाण से
हमला किया गया था, फिर भी मेरी शक्ति
मृत्यु के राजा द्वारा बिछाए गए जाल से मुक्ति पाने के लिए पर्याप्त थी।

[254] अब सभी इंद्रिय-इच्छाएँ दूर हो गई हैं!
अब सभी पुनर्जन्म हमेशा के लिए चकनाचूर हो गए हैं!
जन्म-मृत्यु का शाश्वत चक्र नष्ट हो गया है!
अब मेरे लिए कोई पुनर्जन्म नहीं होगा!

[1] = उत्तर का संरक्षक.

[2] पृष्ठ 36, नोट 1 देखें।

3.12 [181] उत्तरपालत्थेरा के श्लोक पर टीका

पंडितं वत मं संतं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उत्तरपाल का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान विपस्सी की यात्रा के मार्ग पर एक पुल बनवाया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए; उत्तरपाल नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने जुड़वां चमत्कार देखा, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए और अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन किया। एक दिन, जब वे उस इंद्रिय-विषय (आरम्मणु) पर चिंतन कर रहे थे जिसका उन्होंने अनुचित ध्यान (वास) के प्रभाव (अनुभूत) में आनंद लिया था, तब उनके मन में कामुक सुख (कामराग) की लालसा उत्पन्न हुई। उन्होंने उसी क्षण अपने मन को उसी प्रकार वश में किया जैसे किसी चोर को उसकी लूटी हुई संपत्ति सहित पकड़ लिया जाता है, उन्हें पश्चाताप हुआ, उन्होंने विपरीत ध्यान (पटिपक्खमंसिकार) के माध्यम से सभी दुराचारों का त्याग किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए उत्सुकतापूर्वक ध्यान (भावना) में लीन हो गए और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है :—-

"जब भगवान विपस्सी थे

मेरी उपस्थिति में टहलते हुए मैं बन गया

पवित्र मन और अच्छे हृदय वाला और

उनके लिए बनाया गया एक पुल।

इक्यावन युग (कप्पा) पहले, यह था,

जब मैंने पुल बनाया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही है

ब्रिज ऑफरिंग का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्म (पतिपत्ता) पर विचार करने के बाद, शेर की दहाड़ की तरह तीन श्लोक बोले।

252. "यद्यपि मैं निश्चित रूप से एक बुद्धिमान व्यक्ति था,

कल्याण पर विचार करने में सक्षम (अलं)

(अत्था) पाँच धागों के संबंध में

संसार के इंद्रिय सुख, मेरा स्वयं-

मेरे भ्रम ने मुझे निराश किया।

253. मारा के क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद, मैं

संयोगवश उसके द्वारा छेद दिया गया था

दृढ़ तीर; लेकिन मैं खुद को संभालने में सक्षम हो गया

स्पष्ट रूप से जाल से मुक्त हो गया

मृत्यु का राजा (मैकू संस. मृत्यु)।

254. सभी इंद्रिय सुख (काम) और (अब)

मैंने सभी अस्तित्वों को त्याग दिया था;

टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया; बार-बार के दौर

पुनर्जन्म का उन्मूलन हो चुका था;

अब कोई नया अस्तित्व नहीं रहा।

वहाँ, paṇḍitaṃ vata maṃ santaṃ का अर्थ है: यद्यपि मुझे सुनी-सुनी बातों और चिंतनशील ज्ञान से प्राप्त बुद्धि से ही ज्ञान संपन्न हुआ है। Alamattha vicintakaṃ का अर्थ है: स्वयं और दूसरों के लाभ और कल्याण का स्पष्ट रूप से विचार करने में सक्षम; दूसरे शब्दों में, पर्याप्त ज्ञान (pariyata), लाभ का विचारक; दूसरे शब्दों में, लाभ देखने वाले के लिए दुराचार का नाश करने में सक्षम; थेरा ने यह सब इसलिए कहा क्योंकि वे अंतिम जन्म की अवस्था में थे। Pañca Kāmaguṇā का अर्थ है: शारीरिक सौंदर्य से शुरू होकर आगे तक पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख। Loke का अर्थ है: उनके घटित होने के स्थान का संकेत। Sammohā का अर्थ है: आत्म-भ्रम (sammoha) से चिह्नित अज्ञानी ध्यान का कारण। दूसरे शब्दों में, सम्मोह का अर्थ है: स्वयं को भ्रमित करना, आत्म-भ्रम उत्पन्न करने वाला। पातयिंसु का अर्थ है: दृढ़ता की अवस्था से गिराया जाना; दूसरे शब्दों में, उन्होंने मुझे संसार में गिरा दिया, मुझे जो सांसारिक दुनिया से परे जाने की इच्छा रखता था; यही इसका अर्थ है।

पक्खंदो का अर्थ है: तदनुसार प्रवेश करना। मारविसये का अर्थ है; दुराचार का क्षेत्र (किलेसा), वह स्थान जहाँ दुराचार का मार प्रकट होता था; मैं उसके प्रभाव में आ गया था; यही इसका अर्थ है; दूसरे शब्दों में, मैं तदनुसार प्रवेश करके, युवा देवपुत्र (देवपुत्त) मार के अधिकार क्षेत्र (इसरिया) में खड़ा था। दलहसल्लसमप्पितो का अर्थ है: दृढ़, स्थिर; दूसरे शब्दों में, दृढ़ बाण से अभिभूत (समप्पितो); कामवासना के बाण से भेदा हुआ, हृदय पर प्रहार (हदयं आहच्च)। Asakkhiṃ maccurājessa, ahaṃ, pāsā pamuccituṃ का अर्थ है: जब मैं कामवासना (राग) आदि जैसे कांटों को प्रमुख मार्ग (मग्ग) के चिमटे से निकाल रहा था, तब मैं अपने आप को कामवासना (राग) के बंधन (बंधन) के रूप में गिने जाने वाले मृत्यु के राजाओं (मच्चु) के जाल से पूरी तरह मुक्त करने में सक्षम था।

सब्बे कामा पाहिना मे, भवा सब्बे पदालिता का अर्थ है: इसके परिणामस्वरूप, वास्तविकता (वत्थु) और दृष्टि (आरम्मण) आदि जैसी विशिष्टताओं द्वारा विभिन्न श्रेणियों में विभाजित सभी इंद्रिय-संबंधी विकृतियों (किलेषकामा) को मैंने श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के माध्यम से सुचारु विच्छेदन (समुच्छेद) के प्रभाव से दूर कर दिया है। वास्तव में, जब इंद्रिय-संबंधी विकृतियाँ दूर हो जाती हैं, तो वास्तविकताओं के इंद्रिय सुख (वत्थु कामा) भी त्याग दिए जाते हैं। इसी प्रकार, इंद्रियजन्य (काम) और कर्मजन्य (कम्म) जैसे सभी अस्तित्व मार्ग के ज्ञान (ज्ञान) की तलवार (असि) से कटकर नष्ट (विद्धंसिता) हो गए हैं। वास्तव में, जब इंद्रियजन्य अस्तित्व कट गए, तो स्वतः उत्पन्न होने वाले (उपपत्ति) अस्तित्व भी कटकर नष्ट हो गए। इस प्रकार इंद्रियजन्य अस्तित्वों के कट जाने के कारण, विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानिपुनब्भवो। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। यही थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) का स्पष्टीकरण है।

थेरा उत्तरपाल के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(182):अभिभूत

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (182) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
182. अभिभूत
बुद्ध युग में वेट्ठपुरा नगर में एक राजा के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, अभिभूत का नाम अभिभूत रखा गया और पिता की मृत्यु के बाद उन्हें संपत्ति विरासत में मिली। जब बुद्ध उनके नगर में भ्रमण पर आए, तो अभिभूत उनसे मिलने गए और अगले दिन उनका आतिथ्य सत्कार किया। बुद्ध ने कृतज्ञता व्यक्त की और उन्हें धम्म का विस्तृत उपदेश दिया। तब राजा को आस्था प्राप्त हुई, उन्होंने अपनी संपत्ति त्यागकर भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

जब वे निर्वाण के आनंद में लीन थे, तब उनके रिश्तेदार, सलाहकार और सेवक उनके पास विलाप करते हुए आए कि उन्होंने उन्हें बिना मुखिया के छोड़ दिया है। तब उन्होंने उन्हें धर्म का मार्ग सिखाते हुए और अपने त्याग का कारण बताते हुए कहा:

[255] सुनथ नातायो सब्बे यावंतेत्था समागता,॥
धम्मौ वो देसयिस्सामि दुक्ख जाति पुनप्पुना॥॥

[256] अरभथा निक्खमथा युञ्जथा बुद्धसासने,॥
धनाथ मैक्कुनो सेनं नागागारां वा कुंजरो॥॥

[257] यो इमस्मिm̐ धम्मविनाये अप्पमत्तो विहेस्सति,॥
पहाय जातिसंसारं दुक्खससंतं करिस्सति' ति.॥॥

[255] हे मेरे सगे-संबंधियों, मेरी बात सुनो,
यहाँ एकत्रित सभी लोगों!
वह मार्ग (धम्म) जो तुम मुझसे सीखोगे: -
बार-बार जन्म लेना कष्टदायी है!

[256] जागृत हो, उठो, त्याग करो और आओ,
और अपने हृदयों को बुद्ध के नियम के अधीन करो।
मृत्यु के राजा की सेनाओं को
वैसे ही झटक दो जैसे हाथी ने भूसे की झोपड़ी को झटक दिया था। [2]

[257] जो कोई भी इस धार्मिक अनुशासन के भीतर,
लगन से समझने आएगा।
पुनर्जन्म के शाश्वत चक्र को दूर कर देगा।
वह सभी दर्द और पीड़ा को हमेशा के लिए समाप्त कर देगा। [3]

[1] स्थान या (राजा)राजा का कोई अन्य उल्लेख अभी तक नहीं मिला है, लेकिन मध्य की चार पंक्तियाँ, साय. निक., i. 156 में, एक अभिभू के मुख से कही गई हैं, जो गौतम बुद्ध द्वारा बताई गई एक कहानी के अनुसार सिख बुद्ध के युग में एक भिक्षु (भिक्षु) थे।

[2] श्लोक 1147 देखें।

[3] ये अंतिम आठ पंक्तियाँ अन्यत्र बुद्ध को सौंपी गई हैं, चार नागसेन (मिलिंदा, ii. 60) द्वारा, और चार महान मृत्यु की पुस्तक (संवाद, ii. 128) में। पूर्व को कथा वत्थु, ii. 3, और दिव्यावदान, पृष्ठ 300 में भी ऐसा ही सौंपा गया है, लेकिन देवताओं (इरेमेन, पृष्ठ 569) और भिक्षु अभिभू को साम्य. निक., i. 156/ में।

3.13 [182] अभिभूतत्थेरा के छंद पर टिप्पणी

सनाथा ञातयो सब्बे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा अभिभूत का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान वेस्सभु के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे अपने जैसे अच्छे मित्रों पर अपनी अच्छी निर्भरता (सन्निस्सय) के कारण विशेष रूप से धर्मपरायण और शासन (सासन) के प्रति समर्पित हो गए। जब गुरु परिनिर्वाण में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने स्वयं सबसे पहले चिता की आग को सुगंधित जल से बुझाया, जब बहुत से लोग उनके अवशेषों को इकट्ठा करने का प्रयास कर रहे थे। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और वेथापुरा नगर में एक शाही परिवार में पुनर्जन्म हुए, जब इस बुद्ध का उदय हुआ; अपने पिता के निधन के बाद, अभिभूत नाम प्राप्त करके उन्होंने अपने संप्रभु कर्तव्य का निर्वाह किया। उसी समय, भगवान बुद्ध अपने क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए धीरे-धीरे उस नगर में पहुँचे। इसके बाद, उस राजा ने यह सुनकर कि "भगवान बुद्ध मेरे नगर में आ गए हैं," गुरु के समक्ष जाकर सत्य (धम्म) का उपदेश सुना और दूसरे दिन उन्होंने एक विशाल दान किया। भोजन करने के बाद, भगवान बुद्ध ने राजा की इच्छा के अनुरूप कृतज्ञता व्यक्त करते हुए सत्य (धम्म) का विस्तृत उपदेश दिया। सत्य (धम्म) को सुनकर उन्हें पुण्य (पसाद) प्राप्त हुआ, उन्होंने अपना संप्रभुता त्याग दी, भिक्षु बन गए और अरहंतत्व की कल्पना की। इसलिए अपदान में कहा गया है :

“जब महान ऋषि वेस्साभू का शरीर

जल रहा था, मैंने मिठाई पकड़ ली-

सुगंधित पानी से आग बुझाई

अंत्येष्टि की चिता का।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने अंतिम संस्कार की आग बुझा दी।

मुझे किसी भी बुरी घटना का स्मरण नहीं है;

यह मेरी सुगंधित मेहनत का फलदायी परिणाम है।

पानी।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे मुक्ति (विमुक्ति) के आनंद में लीन थे; उनके रिश्तेदार, मंत्री, सलाहकार (पारिसाज्जा), नागरिक और विभिन्न क्षेत्रों के लोग वहाँ एकत्रित होकर विलाप करने लगे; “आदरणीय गुरुदेव! हमें संरक्षण से वंचित करके आपने भिक्षु क्यों बन गए?” अपने रिश्तेदारों के नेतृत्व में उन लोगों को विलाप करते देख, थेरा ने तीन श्लोक कहे, ताकि वे उन्हें अपने भिक्षु बनने के कारण को मुखेन के माध्यम से प्रकट करते हुए सत्य (धम्म) का उपदेश दे सकें।

255. “हे सभी रिश्तेदारों, जितने भी हों

यहाँ सब एकत्रित हैं! सुनो; मैं तुम्हें सिखाऊँगा

आपको सत्य (धम्म) का ज्ञान है। पुनर्जन्म (जाति)

बार-बार दुख सहना कष्टदायक होता है (दुक्खा)।

256. “प्रयास करो (आरम्भत); छोड़ दो”

आपकी वासना पीछे (निक्कमथा); सहयोगी

आप स्वयं (युंजथा) इस व्यवस्था के साथ

बुद्ध की सेना को नष्ट कर दो (धुनाथ)।

मृत्यु का (मैकू), हाथी के समान

(नष्ट करना) सरकंडे के निवास (नालागारा) को।

257. "जो कोई भी लगन से निवास करेगा (विहस्सति)

सत्य (धम्म) की इस शिक्षा में और

वह अनुशासन (विनय) का अंत कर देगा।

त्याग करने के बाद होने वाला दर्द (दुक्खा)

पुनर्जन्मों का चक्र (जातिसंसार)।

वहाँ, 'सुणाथा' का अर्थ है: चुपचाप सुनो (निसामेथा); अब, मेरे द्वारा बोले जा रहे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनो (उपधारेथा); यही इसका अर्थ है।' नातयो' का अर्थ है: अपने सभी रिश्तेदारों को मुख्य (पामुख) बताते हुए उन्हें संबोधित करना; इसी कारण उन्होंने कहा: "सब्बेयवंत'एत्था समागता।" इसका अर्थ है: जितने भी (यावन्तो यत्थका) यहाँ एकत्रित हैं; दूसरे शब्दों में, जो मेरे इस संन्यास के कारण एकत्रित हुए हैं; यही इसका अर्थ है।

अब, इस संदर्भ में जो भी शब्द कहे गए हैं, जो उसे सुनने का आदेश देते हैं (आणत्तिका), इस प्रकार (संध्याय): "सुनो," और इस प्रकार वचनबद्ध करते हैं (पटिजानित्वा): "धम्मं वो देसयिस्सामि ," और इस प्रकार उपदेश देना शुरू करते हैं: "दुक्खा जाती पुनप्पुनं" इत्यादि। यहाँ, दुक्खा जाती पुनप्पुनं का अर्थ है: यह, अर्थात्, पुनर्जन्म (जाति) कष्टदायी (दुक्खा) है क्योंकि यह विशेष रूप से (अधिष्ठान) अनेक प्रकार के (विहित) कष्टों (दुक्खा) का निवास स्थान है, जिनमें गर्भ में उतरने से उत्पन्न (मूलक) होने वाले कष्ट (मूलक) और वृद्धावस्था आदि शामिल हैं, जो एक अन्य (भेदक) श्रेणी है। बार-बार जन्म लेने से अत्यधिक पीड़ादायक कष्ट (दुक्खा) उत्पन्न होता है।

इस प्रकार यह बताने के लिए कि "पुनर्जन्मों (जाति) से कहीं आगे जाने के उद्देश्य से प्रयास करना चाहिए", उन्होंने कहा; " आरेम्भत " इत्यादि। यहाँ, आरेम्भत का अर्थ है: आपको अपने प्रयास (वीर्य) को प्रयास तत्व (धातु) के रूप में गिनना चाहिए। निक्कमत का अर्थ है: आपको आलस्य के किनारे से बाहर निकलने की स्थिति के कारण बाहर जाने के तत्व के रूप में गिने जाने वाले प्रयास से श्रेष्ठ प्रयास करना चाहिए। युंजथा बुद्धसासने का अर्थ है: चूंकि आत्म-संयम (नैतिक उपदेशों द्वारा), इंद्रियों के द्वार को अच्छी तरह से सुरक्षित रखने (गुत्त), भोजन की उचित सीमा जानने (भोजने मत्ञ्ञुता), सजगता और विचारशीलता (संपजञ्ञं) जैसे गुणों में स्थापित (पतित्तितनं) व्यक्तियों की जागृति (जागरियानुयोग) के पालन से प्रयासों (आरम्भ) और परिश्रम (निक्कम) के तत्व (धातुयो) फलते-फूलते (संपज्जन्ति) हैं; इसलिए, आपको भगवान बुद्ध के उपदेशों (सासने) पर ध्यान केंद्रित (युत्तपयुत्त) करना चाहिए, जिन्हें शांत संयम (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के रूप में माना जाता है। (विपस्सना), या उच्च नैतिक उपदेश (अधिशील) और आचरण (सिक्खा) जो समान रूप से (तथाभूता) हो गया है। धुनाथा मच्चुनो सेनां, न॑आगारं व कुंजरो का अर्थ है; आपको भ्रष्टता (किलेसा) के समूह (गण) को ठीक उसी प्रकार हिलाना (धुनाथा), 'तोड़ना' (विमेथा) और नष्ट करना (विद्धंसेथा) चाहिए, जैसे बलवान (उपपन्नो) हाथी एक ही क्षण में सरकंडों से बने घर और मृत्यु के राजा को नष्ट कर देता है, जो उन तत्वों (धातु) पर अपना नियंत्रण रखता है और अपनी कमजोर और दुर्बल सेना को, जिसे उसकी सेना माना जाता है और जो जीवित प्राणियों को मृत्यु के प्रभाव क्षेत्र (वसं) में ले जाती है, इस प्रकार विधिवत प्रदर्शन करने के बाद (पटिपज्जंता); अतः, यही अर्थ है।

उन्होंने "यो इमस्मिं" से शुरू होने वाले तीसरे श्लोक का उच्चारण इस प्रकार किया: बुद्ध के विधान में, जो व्यक्ति इस प्रकार प्रयास करता है, उसे दुखदायी पुनर्जन्मों (जातिदुक्खा) से मुक्ति और निश्चित सुख प्राप्त होता है। यह श्लोक आसानी से समझ में आ जाना चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा अभिभूत

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(183):गौतम

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (183) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
183. गौतम
इस बुद्ध युग में शाक्य वंश में पुनर्जन्म लेकर, वे केवल अपने वंश के नाम से ही जाने जाने लगे। जब भगवान (बुद्ध) उनके परिवार में आए, तब उन्हें आस्था प्राप्त हुई और भिक्षु संघ में प्रवेश करके और अंतर्दृष्टि के लिए अध्ययन करके उन्होंने छह प्रकार की अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्चतर ज्ञान) प्राप्त की। अब, जब वे [172] निर्वाण के आनंद में जी रहे थे, तो एक दिन उनके परिवार ने उनसे पूछा कि उन्होंने उन्हें क्यों त्याग दिया और भिक्षु बन गए। तब उन्होंने संसार में सहे गए दु:ख और निर्वाण के सुख, जो उन्हें तब प्राप्त हुआ था, दोनों को दर्शाने के लिए कहा:

[258] सअसारɱ [32] हाय निरायɱ अगाचिसाɱ॥
पेटालोकमगमाɱ पुनप्पुनाɱ,॥
दुक्खममहि पि तिरच्चनयोनियं॥
नेकधा हि वुसितां सिराण माया.। ॥

[259] मानुषो च भावोभिराधितो॥
सग्गकायमगमाɱ साकीɱ साकीɱ,॥
रूपधातुसु अरूपधातुसु॥
नेवासानिसु असानिसुथितां ॥॥ ॥

[260] संभव सुविद्ता असारका॥
सोंखता पचलिता सदेरिता,॥
तं विदित्वा महामत्तसम्भवाऽ,॥
सन्तिमेव सतिमा समज्झागन' ति.॥ ॥

[258] देखो! जैसे-जैसे मैं प्राणियों के बीच (पुनर्जन्मों में) घूमता रहा, मैं नरकलोक में आया,
और अनगिनत बार प्रेतों (भूतों) के दुखद लोक में भी।
बुराई [1] ने मुझे पशु-जगत के अनेक रूपों में फिर से जकड़ लिया।

[259] मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म पाकर मैं काफी प्रसन्न हूँ, स्वर्ग तक मैं शायद ही कभी पहुँच पाया हूँ।
हाँ, दृष्टि के क्षेत्र में, उन क्षेत्रों में जहाँ सभी इंद्रियाँ समाप्त हो गई हैं
, मुझे रखा गया है, और चेतना और अचेतन के बीच के क्षेत्रों में। [2]

[260] यह सब कुछ मेरे सामने स्पष्ट रूप से वास्तविक मूल्य से रहित है,
पूर्ववर्ती परिस्थितियों से उत्पन्न, अस्थिर और निरंतर बहता हुआ।
इसलिए अपने इस आत्म के अस्तित्व में आने को समझते हुए, सजग होकर,
अंततः मुझे शांति प्राप्त हुई, हाँ, वह शांति [जिसमें मैं विश्राम कर रहा हूँ]।

[1] टीका में श्लोक में दिया गया अजीबोगरीब अनावश्यक दुक्खमम्ही , लेकिन व्याख्या में दुक्खम्ही के रूप में पुनः व्यक्त किया गया है।

[2] अस्तित्व के इन तलों पर देखें संकलन, पृष्ठ 137 आगे।

3.14 [183] गौतमथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
संसारं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गौतम का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने वाले, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करने वाले इस व्यक्ति ने दिवंगत बुद्ध की चिता (चितकं) पर आठ चंपक पुष्पों का आदरपूर्वक अर्पण किया, जब भगवान सिख परिनिर्वाण में प्रवेश कर रहे थे और जब देवता और मनुष्य उस बुद्ध के पार्थिव अवशेषों को आदरपूर्वक अर्पण कर रहे थे। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे शाक्य वंश में पुनर्जन्म हुए। उन्हें गौतम के रूप में दीक्षा दी गई , लेकिन उनके कुल के माध्यम से, और वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु के रिश्तेदारों के मिलन में उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करके, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

मैंने आठ चंपक के फूल अर्पित किए।

सिख धर्म के लिए, जो दुनिया का रिश्तेदार है, जब

भगवान का अंतिम संस्कार किया जा रहा था।

इकत्तीस युग (कप्पा) पहले जो मैंने बनाया था

मैंने फूल चढ़ाए थे; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

अंत्येष्टि की चिता।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के निर्देशों का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से संपन्न अरहंत बनने के बाद, वे मुक्ति के आनंद में लीन थे, तभी एक दिन उनके रिश्तेदारों ने उनसे पूछा, "आदरणीय महोदय! हमें त्यागने के बाद आपने भिक्षु क्यों बन गए?" इस पर उन्होंने तीन श्लोकों में सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, ताकि वे अपने द्वारा बार-बार जन्म-जन्मों के चक्रों में भोगे गए कष्ट (दुक्खा) और अब प्राप्त निर्वाण के सुख को प्रकट कर सकें।

258. "सचमुच! चारों ओर घूमते हुए

बार-बार पुनर्जन्म लेने पर, मैं नरक की अवस्था में पहुँच जाऊँगा।

और बार-बार पेटा की दुनिया में जाएं;

जानवरों के गर्भ में मैंने दर्दनाक कष्ट सहे।

दुःख (दुक्खा); वास्तव में, कई बार ऐसा हुआ था

मैं लंबे समय से इस जीवन को जी रहा हूँ।

259. "मानव अस्तित्व साझा किया गया था (अभिराधितो)

इसके अलावा, मैं बार-बार वहाँ जाता रहा।

स्वर्ग के शरीर (सग्गकाय) के साथ-साथ

ब्रह्मा का रूप और निराकार जगत

तत्व (धातु); मैं ऐसे ब्रह्मा में रहा था

संसार तो बोध भी नहीं है (nevasaññīsu)

और धारणा (asaññīsu) के रूप में।

260. “अस्तित्वों को अच्छी तरह से समझा गया था; वे

उनमें कोई सार (सार) नहीं है। वे

निर्भर सामग्रियों से बना, अस्थिर और

हमेशा नाजुक (अरिता); समझने के बाद

अपने अस्तित्व के संदर्भ में, मैंने इसे प्राप्त कर लिया है।

ध्यानमग्न रहने से ही शांति (सन्ती) प्राप्त होती है।

वहाँ, संसारं का अर्थ है: कर्मों के दुराचार (कम्मकिलेसा) के कारण बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकना (चवन) और पाँचों प्रकार के जीवन चक्रों (गति) में स्वतः उत्पन्न होना; यही इसका अर्थ है। 'ही' मात्र एक कण है। निरयं अगच्छिसं का अर्थ है: मैं गर्भाधान के द्वारा संजीव से आरंभ होने वाले आठ प्रकार के नरकों और कुक्कुल से आरंभ होने वाले सोलह प्रकार के प्रमुख नरकों में पहुँचा। “पुनप्पुनं” का उल्लेख भी यहाँ किया जाना चाहिए।

पेटलोकं का अर्थ है: पेटों का क्षेत्र (दुःखद दिवंगत आत्माएँ); पेट के शरीर का अस्तित्व, जिसे भूख, प्यास आदि के रूप में वर्गीकृत किया गया है; यही इसका अर्थ है। आगमं का अर्थ है: मैं गर्भ धारण करके पहुंचा। पुनप्पुनं का अर्थ है: कभी-कभी (अपरापरं)। दुक्खमंहिपि का अर्थ है: विशेष रूप से चोट पहुँचाने वाले (अभिघिता) तेज (तीखी) चाबुक से एक दूसरे को हांकने जैसी पीड़ादायक पीड़ा के साथ बुरा संबंध (दुस्साहय पि); वास्तव में, लिंगविपल्लास ने इसे "दुक्खमंहिपि" कहकर लिंग विकृति पैदा की है। तिरच्छानयोनियं का अर्थ है: पशु, पक्षी आदि के गर्भ में। नेकाधा ही का अर्थ है: कई प्रकार से, जैसे ऊँट, गाय, गधे, कौवे, सारस, चील आदि; चिरं का अर्थ है लंबे समय तक; मया वुसिटं का अर्थ है निरंतर भयभीत रहने के कारण मुझे कष्ट भोगना पड़ा आदि। यहाँ “चिरं” का प्रयोग यह दर्शाने के लिए किया गया है कि “एक प्राणी जो किसी पशु के गर्भ में जन्मा, चारों ओर से अत्यधिक भ्रमित होने के कारण वहाँ कभी-कभी लंबे समय तक रहता था।”

मानुसोपि च भावोऽभिराधितो का अर्थ है: ऐसे पुण्य कर्मों के संयोजन (समवय) से मैंने भी मनुष्य अस्तित्व प्राप्त किया (अभिराधितो), पहुंचा (साधितो) और हासिल किया (अधिगतो)। यहां एक आंख वाले कछुए के दृष्टांत पर सूत्र का उल्लेख किया जाना चाहिए (उदाहरितब्बं)। सग्गकाय' मगमं सकिं सकिं का अर्थ है: मैं एक बार फिर, किसी न किसी समय, स्वतः उत्पन्न होकर (उपपज्जनवसेना) इंद्रिय जगत के दिव्य शरीर (कामावचरदेवकायं) में प्रवेश करता हूं, जिसे स्वर्गीय मार्ग (सग्गगति) माना जाता है। रूपधातुसु का अर्थ है; सजीव (ब्रह्मा) के अस्तित्व में, जो सामान्य लोगों (पुथुज्जन) के लिए सर्वांगीण अस्तित्व का सार है। अरूपधातुसु का अर्थ है: निराकार (ब्रह्मा के) अस्तित्व में। नेवसञ्ञीसु असञ्ञासु ṭhitaṃ का अर्थ है; सजीव और निराकार तत्वों (धातु) के बीच भी, उन (ब्रह्माओं) में जो पूर्णतः बोध से रहित (सञ्ञासु) हैं; वास्तव में, मैं तब (ṭhitaṃ) स्वतः उत्पन्न होकर ब्रह्मा के उन निवासों में रहा था जहाँ न तो चेतना है और न ही अचेतना, तथा जहाँ कोई बोध नहीं है (असञ्ञा); अतः, संदर्भ को ध्यान में रखते हुए इसकी व्याख्या की जानी चाहिए। वास्तव में, यहाँ, बोधहीन (नेवसञ्ञी) होकर भी, बोधहीन और अबोधहीन ब्रह्मा के अस्तित्व को एकत्रित किया गया है (नेवसञ्ञीना सञ्ञीभवो

गहितो)। यदि इन दोनों अस्तित्वों को भी मान लिया जाए (गयहंती) परन्तु सजीव और निराकार तत्वों (रूपारूपधातु) के अधिग्रहण (गहनेन) से, जो कुछ भी इससे बाहर है, वह वहाँ है, अर्थात्; वे जो स्थायित्व की धारणा रखते हैं (निच्चसन्निनो) और वे जो अस्तित्व से मुक्ति की धारणा रखते हैं (भवविमोक्खसन्निनो), उनके लिए वह धारणा गलत होने की स्थिति (मिच्छा) को दर्शाने के उद्देश्य से अलग-अलग ली गई है; इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए।

इस प्रकार, उन्होंने दो श्लोकों के माध्यम से, जन्म-जन्म के चक्र (वट्टदुक्खा) में स्वयं द्वारा भोगे गए कष्ट (अनुभवम्) को दर्शाया, जो कि अनादिम (अनादिमति) के कारण अस्तित्व के मूल को पूर्णतः न काट पाने (अनुपच्छिन्नता) की स्थिति के कारण होता है। अब उन्होंने तीसरे श्लोक का आरंभ "संभव" से किया, ताकि वे उस (अस्तित्व के मूल) को पूर्णतः काट पाने के कारण जन्म-जन्म के चक्र (विवट्ट) से मुक्त होने के सुख का आनंद ले सकें। यहाँ, संभव का अर्थ है: अस्तित्व; वास्तव में, कारण-निर्भरता (हेतुपच्चय) के संयोजन (समवाय) से ऐसे अस्तित्व उत्पन्न होते हैं जैसे कि इंद्रिय-संबंधी अस्तित्व (कामभव) आदि। अतः इसे संभव (सह-अस्तित्व) कहा गया है। सुविदित का अर्थ है: आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के साथ जुड़े सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान द्वारा उत्कृष्ट रूप से समझा गया। असारका आदि अभिव्यक्तियाँ उनके समझने के तरीके को दर्शाती हैं। यहाँ, असारका का अर्थ है: स्थायित्व के सार (सार) से रहित (रहित)। संखत का अर्थ है: एकत्रित (समेच्च) होकर, आश्रित कारणों (पच्चयेहि) के साथ मिलकर (संभूय्या) निर्मित होना। पचलिता का अर्थ है: उप्पदा और जरा आदि विभिन्नताओं (पकारा) के कारण, तथा एक साथ निर्मित होने (संखत) की अवस्था के कारण, अस्थिर (अनवट्ठिता)। सद' एरिता का अर्थ है: हमेशा विघटन (भंग) से विचलित (एरिता) होने के कारण; वे अस्थिर (इत्तरा) हैं, विघटन (भंगगामिनो) की ओर अग्रसर हैं, और नाशवान (पभंगुनो) हैं; यही अर्थ है। तं विदित्वा महामत्तसंभवं का अर्थ है: जैसा कहा गया है, उसे समझकर, संबद्ध होने (संखत) की प्रकृति, आत्मा का अस्तित्व (अत्तसंभवं), स्वयं में जो कुछ हुआ है (सम्भूतं), प्रशासन (इस्सर) द्वारा स्वयं की अवस्था (अत्तयत्तं) इत्यादि, सर्वांगीण ज्ञान (परिञ्ञा) की प्राप्ति (अभिसामय) द्वारा दूसरों की अवस्था (अपरायत्तं), समज्झगं का अर्थ है: मैंने श्रेष्ठ मार्ग (अरीयमग्ग) पर ध्यान (भावना) विकसित करके तदनुसार प्राप्त किया, शांतिमव का अर्थ है निर्वाण जो उसका विपरीत (पटिपक्खा) हो गया था, सतिमा का अर्थ है मार्ग (मग्ग) के ज्ञान की जागरूकता के माध्यम से, प्राप्त करने के बाद ध्यानमग्न। इस प्रकार, थेरा ने अपने रिश्तेदारों को सत्य (धम्म) का उपदेश देकर (मुखेन) अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया।

थेरा गौतम के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(184): हरिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (184) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
184. हारिता
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, जन्म के अहंकार से प्रेरित होकर, वे अन्य पुरुषों को नीच कुल का कहने की आदत में पड़ गए। धम्म का पाठ सुनने, विश्वास करने और भिक्षु संघ में प्रवेश करने के बाद भी, इस आदत के संचयी बल के कारण वे इस पर अडिग रहे । [173] लेकिन एक दिन, भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुनने के बाद, उन्होंने अपनी मानसिक प्रक्रिया की समीक्षा की और अहंकार और घमंड के प्रति समर्पण देखकर व्यथित हुए। इन सबको त्यागकर, उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, निर्वाण के आनंद में रहते हुए, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की गवाही दी: [1]

[261] यो पुब्बे करणियानि पच्च सो कतुमिच्छति,॥
सुखा सो धंसते ठाना पच्च च मनुतप्ति॥ ॥

[262] यंहि कयिरा तांहि वदे यं न कयिरा न तां वदे,॥
अकरोंतं भस्मानां परिजानन्ति पंडिता॥ ॥

[263] सुसुखं वात निब्बाणं सम्ममबुद्धदेसितां,॥
असोकं विरजां खेमं यथा दुक्खं निरुज्जति' ति.॥ ॥

[261] जो व्यक्ति कल
उन कामों को करने में प्रसन्न होता है जो उसे कल ही करने चाहिए थे, वह
सुखद अवसर खो देता है,
उसे शीघ्र ही भयंकर पश्चाताप होगा।

[262] उसे केवल वही बात करने दो जो की जानी चाहिए;
उसे वह बात नहीं करनी चाहिए जो नहीं की जानी चाहिए!
जो बहुत बोलता है परन्तु करता नहीं,
बुद्धिमान लोग उसका मूल्यांकन करते हैं और उसकी योग्यता के अनुसार उसका आकलन करते हैं।

[263] हे महान, हे अद्‌भुत है निर्वाण का आनंद,
जो पूर्णतः जागृत (भगवान बुद्ध) द्वारा प्रकट हुआ है!
वहाँ कोई दुःख नहीं, कोई वासना नहीं, निश्चित आश्रय है,
जहाँ दुःख और पीड़ा हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं!

[1] हरिता की कहावत (गाथा) बकुला की (CLXXII) के समान है। सी एफ XXIX का हारीत भी, सावत्थी का एक ब्राह्मण (पुजारी) भी।

3.15 [184] हरित्तथेरा के श्लोक पर टीका
यो पुब्बे करणीयानी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा हारित का है। इसका उद्‌गम क्या है? इनका भी जन्म भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था; बुद्धि प्राप्त करने पर, जब गुरु जी परिनिर्वाण हुए और उनकी चिता पर आदरपूर्वक आहुति दी जा रही थी, तब इन्होंने आदरपूर्वक इत्र का अर्पण किया। इस पुण्य कर्म के कारण, इन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब इनका जन्म श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ; हारित नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर, इन्होंने जन्म के अहंकार (जातिमान) के कारण दूसरों के साथ अपशब्दों का प्रयोग किया। वह भिक्षुओं के समक्ष गए, उनके सत्य (धम्म) के उपदेश सुने, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और यद्यपि वे भिक्षु बन गए थे, फिर भी उन्होंने अपने निम्नतर (वसलसमुदाचार) व्यवहार को नहीं छोड़ा (विस्साज्जी), क्योंकि वे लंबे समय से इससे परिचित थे (परिचित)। फिर, एक दिन, सत्य (धम्म/मार्ग) को सुनकर, उन्हें पश्चाताप हुआ और उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े, अपने मन में जो कुछ हुआ था उसका अन्वेषण किया (उपपरिक्खन्तो), अहंकार और विचलित (उद्धच्च) द्वारा बहकाए जाने की स्थिति का पता लगाया, उसे त्याग दिया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास में तल्लीन हो गए और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है :

“जब अंत्येष्टि की चिताओं के ढेर लगे हुए थे

विभिन्न प्रकार के इत्र बनाए जाते हैं

जब उन्हें एक साथ लाया जा रहा था, तो मैं धार्मिक हो गया।

अच्छे मन और अच्छे हृदय वाले और उन्होंने मेरी श्रद्धा को साकार किया

मुट्ठी भर मिठाई का अर्पण (मुट्ठी)

सुगंध।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने अपनी श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित की थी।

अंतिम संस्कार की चिता तक; मुझे याद नहीं है

कोई भी दुष्ट अस्तित्व; यही फलदायी है

मेरी श्रद्धापूर्वक भेंट का परिणाम

अंत्येष्टि की चिता।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत बनने के बाद, उन्होंने मोक्ष के आनंद का अनुभव करते हुए, भिक्षुओं को उपदेश देते हुए तीन श्लोकों के माध्यम से अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट किया, जो “ यो पुब्बे करणीयानी ” से शुरू होते हैं। इनका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (हेट्ठा)।

थेरा हारिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(185):विमला2

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (185) ------>>>> अगला

अध्याय III.
तीन श्लोक
185. विमला2
बुद्ध युग में बनारस में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने थेरा अमित्ता के अधीन भिक्षु संघ में प्रवेश किया, [1] और उनकी प्रेरणा से अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने अपने एक साथी भिक्षु को इस प्रकार संबोधित किया:

[264] पापमित्ते विवज्जेत्वा भजेयुत्तमपुग्गले॥
ओवाडे कासा तिट्ठेया पत्थेंटो अकलां सुखां॥ ॥

[265] परित्तं दारुमारूय यथा सीदे महानवे,॥
एवं कुसीतमगम्मा साधुजीविपि सीदति, ॥ ॥

[266] पविवित्तेहि अरियहि पहितत्तेहि झायिहि॥
निच्चैऽ अरद्धवीर्येहि पण्डितेहि सहावसेऽ ति.॥ ॥

[264] बुरे विचारों वाले मित्रों से दूर रहो,
और सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में से अपना चुनाव करो। [174] उसकी सलाह को दृढ़ता से मानो, और अपने हृदय को अपरिवर्तनीय सुख की आकांक्षा करने दो।

[265] जैसे [2] कोई व्यक्ति, एक छोटे से तख्ते पर सवार होकर,

मध्य-महासागर में लहरों के नीचे डूब जाता है,
वैसे ही निर्दोष जीवन वाला भी डूब गया,
जब उसे आलस्य के आदमी के साथ फेंक दिया गया।

[266] ऐसे व्यक्ति से भला क्यों दूर रहो,
आलसी और ऊर्जाहीन लोगों से?
तुम उनके साथ रहो जो एकांत में रहते हैं,
बुद्धिमानों के साथ, उन महान लोगों के साथ जिन्होंने त्याग कर दिया है,
जो हमेशा तल्लीन ध्यान में लगे रहते हैं।

[1] इस विचित्र नाम (? अमिता) पर जाट ., vi. 271.

[2] ऊपर देखें, CXXXIV. यह थेरा कहीं और नहीं मिलता, न ही विमला, सेइंग(गाथा) एल के लेखक के समान है।

3.16 [185] विमलथेरा के श्लोक पर टीका
पापमित्ते से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा विमला का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, इस और उस जन्म में, भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में उनका पुनर्जन्म हुआ। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु के गुणों का चिंतन किया, पवित्र मन के हो गए, और गुरु के परिनिर्वाण होने पर चमेली के फूल अर्पित किए, जबकि भक्त पवित्र उत्सवों (साधुकीलन) के दिनों के बाद गुरु के पार्थिव अवशेषों को लेकर श्मशान घाट गए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे बनारस के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए; विमल नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर, वे थेरा सोमनित्त के मार्गदर्शन में भिक्षु बन गए, और उसी थेरा के आग्रह पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े, और कुछ ही समय में अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए अपदान में कहा गया है :

"पवित्र और नेक दिल बनकर-

जब शारीरिक अवशेष (के)

बुद्ध को ले जाया जा रहा था और

ढोल बजाए जा रहे थे (वज्जमानासु)।

मैंने लाओ-रेड का अपना श्रद्धापूर्वक अर्पण किया।

फूल (पट्टिपुप्पहा)

एक लाख युग (कप्पा) पहले,

मैंने विशेष रूप से यही किया था।

फूलों का आदरपूर्वक अर्पण; मैं करता हूँ

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध के शरीर को अर्पित करना।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने सहयोगी भिक्षु को उपदेश देने के उद्देश्य से तीन श्लोक कहे।

264. "दुष्ट मित्रों से बचकर, एक

सबसे उत्कृष्ट सेवा प्रदान करनी चाहिए

व्यक्तिगत; व्यक्ति को उसके नियमों का पालन करना चाहिए

सलाह; अविचल आनंद की आकांक्षा

(अकला-सुख).

265. "एक के अनुसार, पर सवार होकर

लकड़ी का छोटा टुकड़ा (दारू), डूब जाता है

उसी प्रकार, विशाल गहरे महासागर में भी यही स्थिति है।

यहां तक कि एक अच्छा जीवन नेता (साधुजीवी) भी

उसके साथ मिलने के कारण डूब जाता है

एक आलसी व्यक्ति (कुसित); इसलिए, एक

आलसी आदमी से हर तरह से बचना चाहिए।

हीन परिश्रम (हीनवीरिया)।

266. "बुद्धिमानों के साथ रहना चाहिए"

जो हमेशा अच्छी शुरुआत करते हैं

उनका प्रयास (आरद्धवीर्य), जो हैं

कुलीन (आरिया) अपने एकांतवास (पविवित्त) में

और जिनका ध्यान इस ओर केंद्रित था

निब्बाण (पहितत्ता) और कौन प्रवेश कर सकता है

ध्यान पर।

वहाँ, पापमित्ते का अर्थ है: अच्छे मित्र नहीं, निम्न स्तर के बुरे लोग (हीनवीरिया)। विवज्जेत्वा का अर्थ है: सेवा न करके दूर से बचना। भजेय्यात्तमपुग्गलं का अर्थ है: किसी अच्छे, बुद्धिमान और अच्छे मित्र की सेवा करना, उससे सलाह और शिक्षा प्राप्त करना (अनुसानी)। ओवादे च'अस्सा तिट्ठेय्या का अर्थ है: अपने अच्छे मित्र की सलाह और शिक्षा का पालन करना (ओवाद) और उसके अनुसार उचित कर्म करना (पटिपज्जन)। पत्थेंतो का अर्थ है: इच्छा करना (आकम्भंतो)। अचलं सुखं का अर्थ है: निर्वाण का आनंद और फल प्राप्ति का सुख। वास्तव में, इसे भी अविचल (अविचल) कहा गया है, क्योंकि यह अविचल अवस्था (स्कुप्पभावतो) में है। बाकी बातें तो कही ही जा चुकी हैं।

थेरा विमला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

तीसरे खंड पर टिप्पणी पूरी हो चुकी है।

पहला भाग पूरा हो गया है। छोटा खंड

(खुद्दक निकाय)

थेरागाथा पर टीका

दूसरा हिस्सा
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(186):नागसामाला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (186) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
186. नागासमाला
इस बुद्ध युग में शाक्य राजा वंश में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने जीवन की नश्वरता को अपना सिद्धांत बनाया और अंतर्दृष्टि जागृत करके अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने अपने स्वयं के अनुभव में घटित ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की गवाही इस प्रकार दी:

[267] अलंक्ता सुवासना मालिनी चंदानुसदा,॥
मज्झे महापथे नारी तुरिये नच्चन्ति नाटकी॥ ॥

[268] Piṇḍikāya paviṭṭhohaŋ gacchanto naŋ udikkhisaŋ,॥
Alaŋkataŋ savasanaŋ maccupāsaŋva oḍḍitaŋ.॥ ॥

[269] ततो मे मनसिकारो योनिसो उदपज्जथा,॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[270] ततो चित्तम्ṃ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मतामṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[267] गहनों और सुंदर फ्रॉक से सजी,
फूलों की माला से सजी, चंदन की लकड़ी से लदी,
मुख्य सड़क पर, भीड़ के सामने
एक नर्तकी संगीत की पांच गुना ध्वनि पर नाच रही थी। [1]

[268] मैं भिक्षा मांगने शहर गया था,
और वहाँ से गुजरते हुए मैंने नर्तकी को देखा जो
वीर वेशभूषा में सजी हुई थी, मानो मारा (मृत्युदेव/शैतान) का जाल बिछाया गया हो।

[269] इसी कारण मेरे मन में गहरा विचार आया: [2] तथ्य और कारण पर ध्यान।
सारी पीड़ा स्पष्ट थी;
मन में अरुचि और उदासीनता थी।

[270] [176] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया।
हे देखो, धम्म के मार्ग (धार्म) के योग्य भिक्षु का क्रम!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध ने मुझे जो कुछ भी सिखाया है, वह सब कर लिया है। [3]

[1] तुरिया के रूप में आमतौर पर वर्गीकृत पाँच वाद्ययंत्र तीन प्रकार के टॉम-टॉम, झांझ (?) और पाइप या बांसुरी हैं। 'नटच गर्ल' नारी- शाब्दिक रूप से, महिला - और नट्टकी, नर्तकी है।

[2] योनिसो मनसिकरो। टिप्पणी उस दृश्य का विश्लेषण करके व्याख्या करती है जो इंद्रिय और भावना 'अरुचि,' आदि को आकर्षित करने के लिए अभिप्रेत था: Cy. has sampatiṭṭha'hāti ... hadayaṃ saṇhāsi.

[3] यह निश्चित रूप से कहना संभव नहीं है कि यह नागसमाला वही थेरा है जिसका नाम ऐसा है और जो कभी-कभी बुद्ध के साथ उनकी सैर पर जाता था। तुलना करें सीसीएलएक्स.; मज्झ. निक., i. 43; उदाना, viii. 7; जात., iv. 95.

(दुतिया भागो)

मेरी श्रद्धा उस परम पूज्य, उस योग्य और सर्वथा आत्मजागृत व्यक्ति के प्रति है।

4. चौथा खंड (निपाता)

4.1 [186] नागसमलात्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
अलङ्कता से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नागसमाला का है। इसका उद्‌गम क्या है? इनका भी जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था; जब वे वयस्क हुए, तो संयोगवश उनकी मुलाकात भगवान से हुई जो ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गर्मी से तपती हुई जमीन पर चल रहे थे। वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें एक छत्र भेंट किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने जन्म-जन्म चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका जन्म शाही शाकियान परिवार में हुआ। नागसमाला नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने अपने सगे-संबंधियों के मिलन में उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए और कुछ समय तक भगवान की सेवा की (किंचिकलम)। एक दिन, भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करते समय, उन्होंने राजमार्ग पर एक नर्तकी को वाद्ययंत्रों की थाप पर नृत्य करते देखा और मन ही मन कहा, “यह स्त्री वायु तत्व (वायो धातु) के कंपन (विप्फार) के प्रभाव में अपने अशुद्ध शरीर को मन (चित्तकिरिया) के अनुसार इधर-उधर (तथा) घुमा रही है; हाय! ये सौंदर्य (संस्कार) क्षणभंगुर हैं।” उन्होंने अपने आप को खया और वय के चिंतन के मार्ग पर लगाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में तल्लीन रहे और अर्हतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"जमीन जलते हुए कोयले में बदल गई थी;

पृथ्वी तदनुसार पहुँच गई थी

गर्म राख (कुक्कूला) की अवस्था

भगवान खुले आसमान के नीचे टहल रहे थे।

अपने साथ एक पीले रंग का

(पण्डरा) छाता, मैं अंदर प्रवेश कर गया

मेरी यात्रा। वहाँ, मिलने के बाद

स्वयंजागृत बुद्ध, आनंद (विट्टी) उत्पन्न हुआ

(उपपज्जी) फिर मुझमें।

जमीन पर फैला हुआ था

मृगतृष्णा और यह धरती अंगारों के समान प्रतीत होती थी;

तेज हवाएं कर रही थीं घायल (उपहंती)

और शारीरिक सुख-सुविधाओं को त्याग देना

(sarīrassāsukhepanā).

कृपया इस छाते को स्वीकार करें।

सर्दी और गर्मी को दूर करने और बचाव करने के लिए

गर्म हवा (वातातापनिवराणं),

मैं प्राप्त करना चाहूंगा (phassayissāmi)

निब्बाना (निब्बुति) की शांति।

दयालु, कृपालु और

सर्वप्रसिद्ध पद्ममुत्तरा, विजेता,

मेरी मंशा को समझने के बाद,

फिर उन्होंने (मेरी भेंट) स्वीकार कर ली।

तीस युगों (कप्पा) तक मैं ही था

दिव्य शासक और दिव्य शक्तियों का प्रयोग करने वाला

संप्रभुता। पाँच सौ बार

मैं विश्व का राजा था।

मुझे क्षेत्रीय शासन का भरपूर लाभ मिला।

संख्यात्मक रूप से अगणनीय। मुझे आनंद आया।

मेरे स्वयं के अच्छे कर्म का फल

जो काम मैंने पहले किया था।

यह मेरा आखिरी जन्म है जो हुआ है

यही मेरा अंतिम अस्तित्व होगा; अब भी मैं

हमेशा एक सफेद छाता अपने पास रखें

मुझ पर।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने उसे छाता दिया था;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

अंब्रेला ऑफरिंग।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी;...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

हालाँकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपनी उपलब्धि (अञ्ञा) को चार श्लोकों के माध्यम से प्रकट किया, जिसमें उन्होंने अपने उचित प्रदर्शन (पटिपत्ति) की प्रशंसा की।

267. "सजाए-संवारे और अच्छे वस्त्र पहने हुए,

फूलों की मालाओं से सुसज्जित और अभिषेक किया हुआ

चंदन की खुशबू, एक महिला नर्तकी ने प्रदर्शन किया

ऊंचे पहाड़ों के बीच उसका नृत्य

संगीत की धुन पर चलती सड़क।"

268. "मैं, जो भिक्षा मांगने आया था,

रास्ते में मैंने उसे देखा, जो सजी-धजी थी।

और अच्छी तरह से कपड़े पहने हुए, फंदे के समान।

मृत्यु द्वारा निर्धारित (मैकू)।

269. "तब ऐसा हुआ कि

मेरी सचेतनता का निर्माण और वहाँ

तब मेरी बुद्धिमानी भरी सोच (योनिसो) उत्पन्न हुई;

हानि स्पष्ट हो गई (pāturahu);

घृणा (निब्बिडा) के कारण वह फिर अच्छी तरह खड़ा हो गया।

270. इसके बाद मेरा मन मुक्त हो गया;

सुधम्मत की अच्छी प्रकृति को देखो

सत्य (धम्म); त्रिगुणात्मक अति

विधिवत ज्ञान (विज्जा) प्राप्त कर लिया गया था;

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

वहाँ, अलंकता का अर्थ है: उसके शरीर को हाथों, भुजाओं आदि के आभूषणों से सजाया गया था। सुवासना का अर्थ है: उत्तम वस्त्र धारण किए हुए, अच्छे वस्त्र पहने हुए। मालिनी का अर्थ है: फूलों की माला धारण करने वाली, फूलों की मालाओं से सुशोभित। चंदनुस्सदा का अर्थ है: उसके शरीर पर विधिपूर्वक पिसे हुए चंदन का इत्र लगाया गया था। मज्झे महापथे नारी, तुरिये नच्चति नट्टकी का अर्थ है: जैसा कहा गया है, उस स्थान पर, जब शहर की सड़क के बीचोंबीच पाँच प्रकार के संगीत (वज्जन्ते) बजने लगे, तो एक नर्तकी ने नृत्य किया; उसने अपनी स्थिति के अनुसार नृत्य किया।

पिण्डिकाय का अर्थ है: भिक्षा-भोजन (भिक्खाय) के लिए। पविट्ठो 'हं का अर्थ है: मैं नगर में प्रवेश कर चुका था। गच्छन्तो न उदिक्खिसं नगर की सड़क पर चलते हुए, मैंने उस नर्तकी को देखा जब मैं चारों ओर खतरे से बचने के उद्देश्य से सड़क पर नज़र रख रहा था (परिश्यपरिहरण)। किसके समान? Maccupāsaṃ va oḍḍit का अर्थ है: जिस प्रकार सुंदर रूप वाला ऐसा जाल, जो मृत्यु के राजा के लिए मृत्यु का जाल बन गया था और जो संसार में निरंतर विचरण (anuvicaritvā) करने के बाद भी स्थिर रहा, वह निश्चित रूप से जीवों के लिए हानि का कारण (ekaṃsena) है, उसी प्रकार वह उन अंधे आम लोगों (puthujana) के लिए भी निश्चित रूप से हानि का कारण (ekaṃsato) है जो विवेकहीन (appaṭisankhāne) होने पर उसका अनुसरण (ṭhitānaṃ) करते हैं; इस प्रकार, यह कहा गया है कि वह मृत्यु के जाल के समान है।

तातो का अर्थ है, इसलिए, मृत्यु के जाल से मिलती-जुलती स्थिति के कारण। मे का अर्थ है; मेरा, मुझे (मयः)। मनसिकरो योनिसो उदपज्जत का अर्थ है: इस प्रकार बुद्धिमानी से (योनिसो) सचेतनता उत्पन्न हुई; "यह हड्डियों का एक संग्रह है, जो मांस से लगातार लिपटे प्राणियों की नसों से जुड़ा हुआ है, त्वचा से ठीक से ढका हुआ है, दुर्गंधयुक्त अशुद्धियों से घृणित और निंदनीय है, अनित्यता के योग्य है, आवरण से ढका हुआ है, चारों ओर से रौंदा हुआ है, विघटन और विनाश के लिए उत्तरदायी है; वह इस प्रकार के विकृत रूप दिखाती है; इस प्रकार, मैंने इस प्रकार बुद्धिमानी से ध्यान का अभ्यास किया। आदिनवो पातुरहु का अर्थ है: मुझे कई प्रकार से दोष और हानियाँ स्पष्ट हो गईं, जब उनके पास राक्षसों और शैतानों आदि के समान खतरे के कोण से जाया जाता है, क्योंकि मैंने मन के प्रकट होने और गायब होने के आवश्यक गुण (सरसपभंगुता) और मानसिक गुणांकों (चेतसिका) पर ध्यान केंद्रित किया है, जो गणना के लिए इस पर निर्भर करते हैं। शरीर की प्रकृति (उपधारण) का ज्ञान है; इसके विपरीत, निर्वाण में लाभ (आनिसंस) है। निब्बिदा समतित्त का अर्थ है: घृणा का ज्ञान (निब्बिदानाण) जो घृणित है और हानि (आदिनव) पर चिंतन करने की शक्ति (अनुभाव) की सिद्धि (सिद्धं) मेरे हृदय में अच्छी तरह से स्थापित (संथासि) थी; कुछ समय के लिए भी मेरा मन उन भौतिक (रूप) और मानसिक (अरूप) घटनाओं (धम्म) में नहीं लगा; वास्तव में (अञ्ञदत्तु) वहाँ घटना घटी (जात) लेकिन मेरी उदासीनता (उदासीन) वहाँ से बचने की इच्छा (मुञ्चितुकामता) के कारण थी, इत्यादि; इस प्रकार, अर्थ।

तातो का अर्थ है: आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के ज्ञान के अतिरिक्त। चित्तंविमुच्चि मे का अर्थ है: सही मार्ग (मग्ग) के क्रमिक चरणों के माध्यम से मेरा मन सभी प्रकार के दुराचार (किलेष) से मुक्त हो गया, जब लोकउत्तरा भावना (दिव्य ध्यान) उपस्थित थी। इसके माध्यम से, वह फल प्राप्ति (फलप्पति) को दर्शाता है। वास्तव में, सही मार्ग (मग्ग) प्राप्त करने के क्षण में, दुराचार (किलेष) से मुक्ति (विमुच्चन्ति) प्राप्त हो जाती है; फल प्राप्ति (फल) के क्षण में मुक्ति प्राप्त हो जाती है। शेष का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

थेरा नागसमाला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(187):भगु

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (187) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
187. भागू
इस बुद्ध युग में शाक्य राजा वंश में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने अपने कुलवासियों अनुराद्ध और किंबिला के साथ संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया) बालाकलोणा गाँव के पास निवास किया। [1] एक दिन, जब वे आलस्य और सुस्ती की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए अपनी कुटिया से बाहर निकले, तो छत पर चढ़ते समय वे गिर पड़े। इसे प्रेरणा मानकर, [2] उन्होंने आत्म-नियंत्रण प्राप्त किया और अंतर्दृष्टि विकसित करते हुए अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, जब वे निर्वाण के आनंद में लीन थे, तब भगवान (बुद्ध) उन्हें उनके एकांतवास पर बधाई देने आए और उनसे पूछा: 'हे भिक्षु, अब आप गंभीरता से कैसे आगे बढ़ते हैं?' उन्होंने सहमति जताते हुए उत्तर दिया:

[271] अहं मिधेन पकतो विहार उपनिक्खमिm̩,॥
चाङ्कामाऽ अभिरुहंतो तत्त्व पापतिऽ चमा.॥ ॥

[272] गट्टानि परिमाज्जित्वा पुनापार्युह चाङ्कमm̩,॥
कैn̩कामे चाकामिm̩ सोहाऽ अज्झट्टm̩ सुसामहितो॥ ॥

[273] ततो मे मनसिकारो योनिसो उदपज्जथा,॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[274] ततो चित्तm̩ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मताm̩,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[271] नींद से व्याकुल होकर मैं व्यायाम के लिए अपनी कोठरी से उठा
और छत की सीढ़ियाँ चढ़ गया,
और उसी नींद से व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ा।

[272] अपने अंगों को रगड़ते हुए, मैं एक बार फिर ऊपर गया;
और जब मैं छत पर इधर-उधर घूम रहा था,
तब भीतर सब सतर्क, शांत और एकाग्र था।

[273] इसी कारण मेरे मन में गहरा विचार उत्पन्न हुआ:
तथ्य और कारण पर ध्यान देना। [177] इस सब की पीड़ा स्पष्ट थी;
मन में अरुचि और उदासीनता थी;

[274] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया।
हे देखो, धर्म (धम्म) के इस सुशोभनीय भिक्षु क्रम को!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध ने मुझसे जो कुछ करने को कहा है, वह सब कर लिया है।

यह थेरा द्वारा अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थी।

[1] इनके बारे में ऊपर (CXVIII.,n. 4) और नीचे (CCLVI.) देखें। बुद्ध की यात्रा, जिसमें गिरने की घटना का उल्लेख नहीं है, मज्झ. निक., iii. 154; विनय ग्रंथ, ii. 308 में दर्ज है, जहाँ गाँव के नाम में -कारा जोड़ा गया है। तुलना करें जात., i., संख्या 10; मिलिंदा, i. 163। यह गाँव यमुना नदी पर स्थित कोसंबी का एक उपनगर था।

[2] तुलना करें. सिस्टर्स, xvii.

4.2 [187] भगुत्तेरा के श्लोक पर टीका

अहं मिद्धेना से शुरू होने वाला श्लोक थेरा भागु का श्लोक है। इसकी उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि उनका पुनर्जन्म भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में हुआ था, और बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने उस बुद्ध के अवशेषों को पुष्प अर्पित किए, जब गुरु का परिनिर्वाण हुआ। उस पुण्य कर्म के कारण, वे निम्मानारति के दिव्य प्राणियों में उत्पन्न हुए, देवताओं और मनुष्यों के बीच निरंतर विचरण करते रहे और इस बुद्ध के उदय के समय शाही शाक्य परिवार में पुनर्जन्म लिया; भगु नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने अनुरुद्ध और किमिला के साथ संसार का त्याग कर दिया, भिक्षु बन गए और बालक लोनाका गाँव में रहने लगे। एक दिन, आलस्य (थिना) और नींद (मिद्धा) से ग्रस्त होने की स्थिति को दूर करने के लिए, वे अपने मठ से बाहर निकले, मठ के मार्ग पर चढ़े, और पापतीत्व (अंकुसा) के समान ही गिर पड़े, जिससे उनका आलस्य और नींद दूर हो गई, उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) लगातार विकसित हुई और उन्होंने अरहंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में कहा गया है:—

"जब भगवान पद्ममुत्तरा,

प्रसिद्धि से परिपूर्ण होकर परिनिर्वाण में प्रवेश कर चुका था।

मैंने माथे पर फूलों की माला बनाई, और

इसे शारीरिक अवशेषों पर स्थापित किया गया था

(बुद्ध के बारे में)। अपना मन बना लेने के बाद

वहाँ श्रद्धापूर्वक प्रसन्न होकर, मैं वहाँ पहुँच गया।

निम्मानारति की दिव्य दुनिया।

वहाँ पहुँचकर मुझे याद आया

मेरा सराहनीय कार्य।

मेरे लिए तो फूलों की वर्षा हो रही थी।

आकाश से (जो बरसा)

हर समय। क्या ऐसा होना चाहिए कि मैं था

मेरे चक्करों में एक इंसान के रूप में पुनर्जन्म हुआ

बार-बार पुनर्जन्म लेने से मैं राजा बन गया

बहुत प्रसिद्धि प्राप्त।

वहाँ, हर समय विशेष रूप से

मेरे लिए फूलों की वर्षा करो (कुसुमा)।

के धारण (वाहा) के माध्यम से

उस अत्यंत श्रद्धापूर्ण भेंट का

सर्वद्रष्टा (सब्बदस्सी) को फूल।

यह मेरी आखिरी इकाई (पच्चिमाको) है;

यह मेरा अंतिम अस्तित्व है।

वर्तमान में भी, फूलों की वर्षा हो रही है

वह हमेशा मेरे लिए स्नान करेगा।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

मैंने कुछ समय पहले ही फूलों का चढ़ावा चढ़ाया था;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरे प्रयासों का फलदायी परिणाम है।

शरीर को श्रद्धापूर्वक अर्पित करना

अवशेष (देहा)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने स्वयं के लगन से निवास करने के बारे में जानकारी देने के लिए ये चार श्लोक कहे, जब एक मठ के समर्पण के संबंध में धन्यवाद देने आए गुरु ने उनसे पूछा: "हे भिक्षु! कैसा है? क्या आप लगन से निवास करते हैं?" जबकि वे फल प्राप्ति के आनंद और निर्वाण की खुशी में अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

271. "नींद आने की आदत (पकातो)

मैं मठ से बाहर आया और आगे

मठ के गलियारे पर चढ़ते हुए, मैं

जमीन पर गिर पड़ा लेकिन वहीं पर।

272. "अपने अंगों की मालिश करने के बाद (गट्टानी)

(परिमज्जित्वा) मैं सैरगाह पर चढ़ गया

फिर से। मैं इधर-उधर चलता रहा।

मठ-मार्ग, अच्छी तरह से परिचित हो जाने के बाद-

आंतरिक रूप से प्रस्तुत किया गया।

273. "इसके बाद, मेरी रचना का विचार उत्पन्न हुआ

सचेतनता का बुद्धिमानी से प्रयोग करना (yonīso);

नुकसान स्पष्ट हो गया;

घृणा (निब्बिडा) फिर ठीक हो जाना

स्थापित (समतिथि)।"

274. "इसके बाद मेरा मन मुक्त हो जाता है;

के अच्छे स्वभाव (धम्मता) को देखो

सत्य (धम्म)। त्रिगुणात्मक अति

तदनुसार ज्ञान (विज्जा) था

प्राप्त किया; बुद्ध के उपदेश प्राप्त हुए थे

कार्य संपन्न हो चुका है।

वहाँ, मिद्धेनापकतो का अर्थ है: उनींदापन से अभिभूत हो जाना, जिसका स्वभाव (सभाव) शारीरिक आलस्य (अलसिया) के रूप में माने जाने वाले वैराग्य (असत्ति) को नष्ट करना (विघात) है। विहारा का अर्थ है मठ से। उपनिक्खमिं का अर्थ है: मैं इधर-उधर टहलने के लिए बाहर आया। तत्त्वे पापतिंचमा का अर्थ है: मैं गिर गया, लेकिन वहीं मठ की सीढ़ियों पर, नींद से अभिभूत होने के कारण। वत्थानी परिमज्जित्वा का अर्थ है: जमीन पर गिरने के कारण धूल से सने अपने शरीर के विभिन्न भागों को पीटकर साफ करना। पुनपरयः संकमं का अर्थ है: बिना किसी नाराजगी (संकोचं) को दिखाए (अनपज्जित्वा) सैरगाह पर चढ़ जाना, यह कहते हुए कि "मैं अब गिर गया हूँ।" अज्झत्तं सुसमाहितो का अर्थ है; मैं अपने अंतर्मन (गोचराज्झत्त) से संबंधित मानसिक अभ्यास (कम्मत्तन) में बाधाओं को दूर करके (विक्खम्भन) पूर्णतः शांत (समाहितो) और एकाग्रचित्त (एकग्गचित्तो) होकर इधर-उधर विचरण करता था; यही व्याख्या है। शेष का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। यही थेरा द्वारा अपने अरहंतत्व (अन्ना) का प्रकटीकरण था।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा भगू का

तैयार है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(188):सभिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (188) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
188. सभ्यिया
हमारे परम पूज्य बुद्ध के समय में, उन्होंने एक कुलीन व्यक्ति की पुत्री के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया, जिसके माता-पिता ने उसे अन्य धर्मों और रीति-रिवाजों को सीखने के लिए एक भिक्षु के संरक्षण में सौंप दिया था। बड़े होकर, सबिया भी भिक्षु बन गए और विभिन्न मंत्रों का अध्ययन करके एक महान तर्कशास्त्री बन गए, और उन्हें कोई भी उनके बराबर नहीं मिला। नगर द्वार के पास अपना आश्रम बनाकर, उन्होंने कुलीन व्यक्तियों और अन्य लोगों के बच्चों को शिक्षा दी और बीस प्रश्न तैयार किए, जो उन्होंने भिक्षुओं और ब्राह्मणों (पुजारियों) से पूछे। सबिया-सूत्र की कथा में यह वर्णित है कि शुद्ध लोक से आए ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) ने ये प्रश्न तैयार किए थे। [1] वहाँ भी यह बताया गया है कि जब भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के जंगल में आए, तो उन्होंने प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए कि सबिया ने उन पर विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश करके अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

लेकिन इसके बाद, देवदत्त का साथ देने वाले भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने ये श्लोक कहे:

[275] पारे च न विजानन्ति मायामेत्था यममसे,॥
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधागा॥ ॥

[276] यदा च अविजानंता इरियंत्यमारा विय,॥
विजान्ति च ये ममं आतुरेसु अनातुरा॥ ॥

[277] याṃ किन्सी सिथिलाṃ कम्माṃ साओकिलिṭṭहाṃ सीए याṃ वातṃ,॥
सङ्कास्सरौ ब्रह्मचर्यं न तां होति महपफल॥ ॥

[278] यस्सा सब्रह्मचारिसु गारवो नुपलभति,॥
अरका होति सद्धम्मा नभां पुथुविया यथा' ति.॥ ॥

[275] लोग कभी भी वास्तव में यह नहीं समझ सकते कि हम यहाँ थोड़े समय के लिए ही हैं। [2] [178] लेकिन जो लोग इस सत्य को समझते हैं,
वे सभी कलह और झगड़े को दूर कर देते हैं।

[276] और जबकि जो समझ नहीं सकते, वे
स्वयं को अमर के समान व्यवहार करते हैं।
जो वास्तव में धम्म को समझ सकते हैं,
वे रोगग्रस्त संसार में स्वस्थ के समान हैं। [3]

[277] सभी शिथिल कर्म, सभी भ्रष्ट अनुष्ठान,
धार्मिक जीवन में संदिग्ध आचरण:
ऐसे सभी कार्यों पर कोई उच्च पुरस्कार नहीं मिलता।

[278] जो अपने साथी भिक्षुओं के बीच
आदर नहीं पाता, वह अच्छे मार्ग (धम्म) से उतना ही दूर है,
जितना आकाश पृथ्वी से दूर है।

[1] सुत्त-निपाता, श्लोक 510-547 देखें। यहाँ सबिया को समर्पित श्लोकों में से, 275, 277 = धम्मपद, श्लोक 6, 312, श्लोक 6 वहाँ है, जैसा कि विन. ग्रंथों, ii. 306 f. में है, झगड़ालू कोसंबी भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बुद्ध के मुख से कहा गया है।

[2] 'लोग': 'बुद्धिमानों को छोड़कर सभी।' साइ. पंक्ति 2: हम लगातार मृत्यु के निकट चलते हैं।' (साइ.) यह पाठ विपरीत द्वारा पुष्ट किया गया है: 'जैसे वे अमर थे,' अगला श्लोक।

[3] यह पंक्ति = धम्मपद, श्लोक 198 (श्लोक का आधा भाग)। यह ध्यान देने योग्य है कि धम्म-पद के श्लोक 6 पर टिप्पणी धम्मपाल द्वारा की गई टिप्पणी के समान ही है, जबकि श्लोक 312 पर टिप्पणी लगभग समान है।

4.3 [188] सबियाथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
परे च से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा सबिया का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और तेजस्वी काकुसंध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन वे अपने दिन के विश्राम के लिए जाते हुए गुरु से मिले, श्रद्धा से भर गए और उन्हें चप्पल भेंट की। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे। जब भगवान कस्सपा परिनिर्वाण को प्राप्त हुए और एक स्वर्ण मंदिर स्थापित किया गया, तो उन्होंने अपने छह पुत्रों (जो स्वयं सातवें थे) के साथ सासन का मार्ग अपनाया, मानसिक साधना में लीन हो गए, वन में निवास किया और विशेषण प्राप्त न कर पाने पर उन्होंने अन्य भिक्षुओं से कहा: “भिक्षा मांगने जाते समय हमें अपने प्राणों की चिंता सताती है; इसी कारण हम धम्म को भी नहीं जान पाते; साधारण भिक्षु के रूप में मृत्यु दुखदायी होती है; आओ! हम एक सीढ़ी चढ़कर पहाड़ी पर चढ़ें और अपने शरीर और प्राणों की परवाह किए बिना भिक्षु के कर्तव्य निभाएं।” उन्होंने भी वैसा ही किया।

फिर, उनमें से एक महान वरिष्ठ भिक्षु, जो अरहंत पद की प्राप्ति के लिए पर्याप्त योग्यता (उपनिषय) से संपन्न होने के कारण उसी दिन छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए, ने अपने साथी भिक्षुओं को उत्तराकुरा द्वीप से भिक्षा दी। अन्य भिक्षुओं ने यह कहकर भिक्षा ग्रहण करने से इनकार कर दिया: “आदरणीय महोदय! आपने अपने कर्तव्य का पूर्ण निर्वाह कर लिया है; परन्तु आपसे वार्तालाप करना हमारे कर्तव्य निर्वाह में बाधक है; हम तो केवल अपने भिक्षु धर्म का पालन करेंगे; आप अपने सुखमय निवास (दित्तधम्म) में संलग्न रहें।” उन्हें अपने दान से संतुष्ट न कर पाने के कारण, थेरा वहाँ से चले गए।

इसके बाद, उनमें से एक ने दो-तीन दिन बीतने के बाद, अनागामी (तत्काल लौट आने वाले) अवस्था की प्राप्ति का दर्शन किया, जो उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से भी परिपूर्ण थी। उसने कहा, "लेकिन ऐसा ही है," और उनके द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर वह चला गया। उनमें से, दोष रहित (खीणसव) थेरा परिनिर्वाण में प्रवेश कर गया; और शुद्ध जीवन जीने वाले ब्रह्माओं (शुद्धवसा) में अनागामी (तत्काल लौट आने वाले) थेरा का उदय हुआ। बाकी सभी साधारण भिक्षुओं (पुथुज्जन) के रूप में मृत्यु को प्राप्त हुए, उन्होंने छह इंद्रियजन्य दिव्य लोकों (कामसग्ग) में प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में दिव्य समृद्धि का आनंद लिया, और उनमें से एक ने दिव्य लोक से विदा होने के बाद, हमारे भगवान बुद्ध के समय में मल्ल राजा के शाही परिवार में गर्भ धारण किया; दूसरे ने गांधार परिवार में, तीसरे ने बहीरा राज्य में; चौथे ने राजगृह में एक अच्छे परिवार की पुत्री (कुलदारिका) के गर्भ में गर्भ धारण किया; पाँचवें ने एक महिला तपस्वी-भ्रमणिका (परिब्बाजक) के गर्भ में गर्भ धारण किया। कहा जाता है कि वह एक कुलीन योद्धा (खत्तीय) की पुत्री थी। उसके माता-पिता ने उसे एक भ्रमणशील तपस्वी-दार्शनिक (परिब्बाजक) की देखरेख में यह कहते हुए रखा, “हमारी पुत्री को विभिन्न सिद्धांतों (समयंतर) का ज्ञान हो।” इसके बाद एक परिब्बाजक (घूमने वाला दार्शनिक) उसके साथ भटक गया (विप्पटिपज्जी)। वह गर्भवती हो गई। जब उन्होंने उसे गर्भवती देखा तो उसे बाहर खींच लिया। कहीं और जाते समय उसने रास्ते में एक सभा (हॉल) में एक पुत्र को जन्म दिया। इसी कारण उसका नाम सभाह रखा गया। बड़े होकर उसने संसार त्याग दिया, एक घुमंतू तपस्वी बन गया, विभिन्न ग्रंथों का ज्ञान प्राप्त किया (सत्थानी), एक महान विवादकर्ता (महावादी) बन गया और विवादों की खोज में भटकते हुए उसने अपने समान किसी को नहीं देखा; परिणामस्वरूप, उन्होंने नगर द्वार पर एक आश्रम बनवाया और वहाँ निवास करते हुए युवा राजकुमार योद्धाओं (खत्तिया) आदि को अपना दर्शन (सिप्पं) सिखाते रहे। तभी उन्होंने अपनी माता द्वारा तैयार किए गए बीस प्रश्न एकत्र किए, जो अपने स्त्रीत्व से विरक्त होकर ध्यान लगाकर ब्रह्मालोक में विलीन हो गईं और विभिन्न ब्राह्मणों से उनके उत्तर माँगती रहीं। वे उनके प्रश्नों का अर्थ समझाने में असमर्थ रहे। हालाँकि, सभ्यसूत्र की टीका में यह लिखा है: “शुद्धवास के ब्रह्माओं ने वे प्रश्न तैयार किए और दिए।”

जब भगवान बुद्ध ने अपने उत्कृष्ट सत्य चक्र (धम्म) को घुमाते हुए उचित समय पर राजगृह पहुँचकर वेलुवन (बांस के वन) में निवास किया, तब सबिया वहाँ गए, गुरुदेव के पास पहुँचे और उनसे वे प्रश्न पूछे। गुरुदेव ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया; इस प्रकार सब कुछ उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसा कि सबिया सूत्र में बताया गया है। जब भगवान बुद्ध ने उन प्रश्नों का उत्तर दिया, तो सबिया ने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) स्थापित हुई और उन्होंने अर्हंतत्व प्राप्त किया। इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“जब ऋषि काकुसंध, जिन्होंने

अपना पवित्र जीवन व्यतीत किया (ब्राह्मणस्स)

vusimato) उसके पास जा रहा था

दिन भर के विश्राम (सिस्टा) के लिए, मैंने एक प्रस्ताव दिया।

चलने के लिए चप्पलों का जोड़ा (अक्कमाना)

यह तो इसी युग (कप्पा) में हुआ था कि

मैंने दान में अपनी भेंट दी; मैं ऐसा करता हूँ

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह (मेरे द्वारा की गई भेंट का) फलदायी परिणाम है।

चप्पलें (अक्कमाना)

मेरी दुष्टता (किलेसा) जलकर भस्म हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत बनने के बाद, उन्होंने चार श्लोकों के माध्यम से सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, ताकि उन भिक्षुओं को सलाह दी जा सके जिन्होंने देवदत्त का पक्ष लिया था जब बाद वाले ने संघ को विभाजित करने का प्रयास किया था।

275. "अन्य लोग स्पष्ट रूप से नहीं जानते कि वे

उन्हें यहीं मरना होगा। जिनके पास स्पष्ट जानकारी है

वहाँ ज्ञान है, उनके झगड़े होते हैं।

परिणामस्वरूप समाप्त हो जाना।

276. "जब लोगों को स्पष्ट रूप से पता नहीं होता,

वे ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वे

मृत्युदंड के पात्र नहीं हैं; जो कोई भी जानता है

वे स्पष्ट रूप से सत्य (धम्म) हैं।

बुखार से मुक्त (आतुरा) लोगों में

बुखार से पीड़ित।

277. "जो भी कार्य लापरवाही से किया गया हो,

जो भी आचरण भ्रष्ट है, और

संशयपूर्ण चिंतन का पवित्र जीवन,

वह सब कुछ जो महानता के लिए अनुकूल नहीं है

सकारात्मक परिणाम।

278. "जो व्यक्ति लोगों के बीच सम्मान प्राप्त नहीं करता

उनके साथी पवित्र जीवन के नेता हैं,

उत्कृष्ट सत्य से बहुत दूर,

(धम्म) ऊपर आकाश के समान

पृथ्वी।

वहाँ, परे का अर्थ है: बुद्धिमानों को अलग रखते हुए, उसके बाद अन्य लोग; जो "जो सत्य नहीं है वह सत्य है" और "जो सत्य है वह सत्य नहीं है" आदि जैसे मतभेदों के आधार को स्पष्ट करने के लिए विवादों में लगे रहते हैं, उन्हें अन्य लोग (पदे) कहा जाता है। वहाँ विवाद करने वाले लोग यह नहीं जानते कि "हम मृत्यु की ओर बढ़ते हैं, हमारा अंत होता है, हम विनाश की ओर जाते हैं, हम स्थायी रूप से मृत्यु

के निकट जाते हैं।” ये च तत्थ विजानन्ति का अर्थ है: वहाँ जो बुद्धिमान हैं वे स्पष्ट रूप से जानते हैं कि “हम मृत्यु के निकट जाते हैं।” ततो सम्मन्ति मेधगा का अर्थ है: वास्तव में, जो इस प्रकार जानते हैं, वे बुद्धिमान चेतना को जागृत करके, विवादों और झगड़ों के निवारण के लिए अपने जीवन को व्यवस्थित करते हैं। तब, उनके उचित पालन (पटिपत्ति) के कारण, वे झगड़े समाप्त (सममंती) हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, परे च का अर्थ है: जो गुरु की सलाह और निर्देश न मानने के कारण व्यवस्था (सासनतो) से बाहर होने के कारण भिन्न हैं; जब तक वे स्पष्ट रूप से यह नहीं समझते कि: "हमने गलत पकड़ रखी है, इसलिए इस संसार में व्यवस्था (सासनस) को उचित रूप से फटकार (पटिनिग्हा) लगाकर संयम बरतें और प्रयास करें," तब तक विवाद समाप्त नहीं होते (वूपसम्मंती); लेकिन, जो कोई भी सत्य के अनुसार सत्य (धम्म), असत्य (अधम्म) आदि को स्पष्ट रूप से समझता है, सत्य, असत्य आदि के दृष्टिकोण से, वहाँ विवादों में उलझे रहने वालों के बीच, उस गहा (पकड़) से मुक्ति के प्रभाव से, परिणामस्वरूप, उनके द्वारा उन बुद्धिमान गुरुओं पर निर्भरता के कारण, उनके बीच होने वाले झगड़े (विवाद) समाप्त हो जाते हैं; अतः, यहाँ अर्थ को इस प्रकार समझा जाना चाहिए।

यदा का अर्थ है किसी भी समय। अविजानंता का अर्थ है: वे लोग जो विवादों के निवारण (वूपसमा) या सत्य और असत्य (धम्मधम्म) को अपने वास्तविक स्वरूप (याथावतो) के परिप्रेक्ष्य से नहीं जानते। इरियन्त्य' मरा विय का अर्थ है: वे उत्तेजित (उद्धत), अहंकारी (उन्नल), चंचल (चपल), शोरगुल करने वाले (मुखर), अपशब्दों से घिरे हुए (विप्पकिन्नवच) हो जाते हैं, मानो वे वृद्धावस्था और मृत्यु से परे चले गए हों और नश्वर (अमरा) हों; तब विवाद कभी समाप्त नहीं होगा (वूपसम्मति)। Vijānanti ca ye dhammaṃ, āturesu anāturā का अर्थ है: जो कोई भी सत्य के अनुसार (yathābhūtaṃ) जानता है, वह दोषरहित, अधर्म और रोग से मुक्त (anīghā) उन लोगों के बीच रहता है जो दोष (kilesa) से पीड़ित हैं; उनके प्रभाव में, विवाद निश्चित रूप से समाप्त (vūpasammati) हो जाता है; यही इसका अर्थ है।

यं किंची सिथिलं कम्मं का अर्थ है: शिथिलता (साथली) से किया गया कोई भी अच्छा कर्म, पालन करने के बाद ढीली पकड़ बनाकर (करणेन)। संकिलिट्ठं का अर्थ है: वेश्या (वेसी) की तरह अनुचित चरागाह (गोचरा) में भटकने या धोखाधड़ी आदि जैसी गलत आजीविका के माध्यम से स्वयं को भ्रष्ट आचरण का पालन (समादान) करने का दायित्व लेना। संकस्सरं का अर्थ है: स्वयं के बारे में इस प्रकार संदेह (असांक) करना, याद करना, संदेह करना और शंका करना: "निश्चित रूप से, इन भिक्षुओं को मेरे आचरण (चरिया) के बारे में पता चलने पर, वे मुझे निलंबित करने की इच्छा से एकत्रित हुए होंगे" भिक्षुओं के समूह को देखने के बाद, हालांकि वे उपोसथ कर्तव्यों आदि जैसे किसी अन्य कार्य के लिए एकत्रित हुए थे; इसका अर्थ है: संदेह के साथ याद रखना चाहिए; मठ में कुछ भी अनुचित (असारूपं) सुनकर, दूसरों को यह संदेह नहीं करना चाहिए कि: “निश्चित रूप से, यह अमुक भिक्षु (असक) द्वारा किया गया होगा।” न तं होति का अर्थ है: उस व्यक्ति का पवित्र आचरण (ब्रह्मचरिया) और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करना महान फलदायी नहीं है; लेकिन उसके महान फल न देने की स्थिति के कारण, उसके संन्यासी आवश्यकताओं के दाताओं को भी कोई महान फल नहीं मिलता; इसलिए, भिक्षु को तपस्या (सल्लेख) का अभ्यस्त (वुत्ति) हो जाना चाहिए; जो तपस्या का अभ्यस्त हो जाता है, उसके लिए विवाद का अस्तित्व भी नहीं रहता; यही इसका महत्व है।

गारवो नूपलभति का अर्थ है: पवित्र जीवन के साथी नेताओं में से, जिन व्यक्तियों के साथ आदरपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए, उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव नहीं है, क्योंकि वे शिक्षा के कारण समर्पित दान (पादक्खिण) ग्रहण नहीं करते। आरका होति सद्धम्मा का अर्थ है: इस प्रकार का व्यक्ति उचित कर्म (पटिपत्ति) और उचित अंतर्मन (पटिवेध) के अच्छे जीवन (सद्धम्म) से दूर हो जाता है; वास्तव में, शिक्षक उसे शिक्षा नहीं देते; शिक्षा न मिलने और किसी भी धार्मिक अनुष्ठान (अनादियन्तो) का पालन न करने के कारण वह अपने जीवन को (सही ढंग से) नियंत्रित नहीं करता; अपने जीवन को (सही ढंग से) नियंत्रित न करके वह (महान) सत्यों (सच्चानि) में कैसे उचित रूप से अंतर्मन कर सकता है? इसलिए, उन्होंने कहा; “आरका होति सद्धम्मा, वह अच्छे सत्य से दूर है।” किस आधार पर? “निभं पुथविया यथा का अर्थ है: जिस प्रकार आकाश पृथ्वी से, पृथ्वी तत्व से स्वाभाविक रूप से दूर है, उसी कारण वे कभी आपस में मिल नहीं सकते (सममिस्सा)। इसी कारण उन्होंने कहा:

आकाश बहुत दूर है और धरती भी बहुत दूर है:

समुद्र का वह दूर वाला किनारा बहुत दूर है।

हे राजा! उससे भी कहीं अधिक दूर,

वास्तव में, यही अच्छाई का सत्य (धम्म) है।

दुष्ट लोगों में से।

थेरा सबिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(189):नंदका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (189) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
189. नंदका
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के समय में, सावत्थी में एक कुलवासी परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम नंदक रखा गया। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से धम्म का उपदेश सुनकर भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अंतर्दृष्टि विकसित करके अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, निर्वाण के आनंद में रहते हुए, उन्होंने एक पर्व के दिन भगवान (बुद्ध) के आदेश से भिक्षुणियों को उपदेश दिया और उनमें से 500 को अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कराया। इसी कारण परम पूज्य ने उन्हें भिक्षुओं और भिक्षुणियों के गुरुओं में सर्वोच्च स्थान दिया। [1]

अब, एक दिन, जब वह सावत्थी में भिक्षा मांग रहा था, तो एक स्त्री, जिससे उसका विवाह हुआ था, ने उसे देखा और पापी हृदय से हँस पड़ी । [179] थेरा ने उसका यह कार्य देखकर उसे शरीर के प्रति घृणा पर बल देते हुए धम्म का मार्ग सिखाया, इस प्रकार:

[279] धीरत्थु शुद्ध दुग्गंधे मरापक्खे अवसुते,॥
नवसोतानि ते काये यानि संदन्ति सब्बदा॥ ॥

[280] मपुराणाm̩ [34] अमान्नित्थो मासा देसी तथागते,॥
सग्गे'पि ते न रज्जन्ति किमाङ्गा पना मानुसे॥ ॥

[281] ये च खो बाला दुम्मेधा दुम्मंती मोहपरुता,॥
तदिसा तथा राज्जन्ति मरखित्महि बंधते॥ ॥

[282] येसा रागो सीए दोसो सीए अविज्जा च विराजिता,॥
तदित्तत्था न रज्जन्ति1 छिन्नसुत्ता बंधना' ति.॥ ॥

[279] बुरी बदबूदार चीज़ों पर बुरा!
मारा (मृत्युदेव/शैतान) का एक उपकरण, यहाँ तक कि यह भी,
तुम्हारा शरीर, जहाँ से वे अनेक धाराएँ रिस रही हैं,
संख्या में नौ प्रकार की, जो कभी अपना प्रवाह नहीं रोकतीं।

[280] पूर्व के अंशों से कोई अभिमान न पालें।
तथागत (जो परलोक से लौटे हैं) को लुभाने का प्रयास न करें। [2] स्वयं स्वर्ग भी उन्हें प्रसन्न नहीं करता, तो फिर सांसारिक वस्तुएँ उन्हें कैसे प्रसन्न कर सकती हैं? [3]

[281] वे मूर्ख जिनमें विवेक का अभाव है, जिनका मन
मैला है, और जिनका हृदय सुस्ती से ढका हुआ है,
ऐसे लोग शरीर के आकर्षण में आनंद लेते हैं,
क्योंकि वे मारा (मृत्युदेव/राक्षस) द्वारा जकड़े हुए हैं।

[282] जो लोग कामवासना, घृणा, या अज्ञानता से अछूते हैं, उनके लिए

ये बातें सुखदायी नहीं हैं।
उनके बंधन टूट चुके हैं; वे सभी बंधनों से मुक्त हैं।

[1] अंग. i. 25. सफल पाठ नंदकोवाद सूत्र (मज्झ., iii 270) में बताया गया है। अंगुत्तरा टीका उस सूत्र तक ले जाती है, लेकिन इन श्लोकों का विस्तृत वर्णन बुद्ध के सौतेले भाई नंदा की कहानी में मिलता है (CXXXIX.)। एक सुंदर स्त्री पर मोहित होकर, भगवान (बुद्ध) उसे सक्का (देवताओं के राजा) के स्वर्ग में अप्सराओं को दिखाते हैं, और वह उसे उनके मुकाबले बंदर के समान साधारण पाता है।

[2] तथागत, यहाँ टीका द्वारा सभी बुद्ध-सवकों, या आर्य-सवकों को शामिल करने के लिए बनाया गया है, जो संतत्व की शर्तों के साथ 'आए' हैं, या उच्चतम को प्राप्त कर चुके हैं, अवबुद्धा हैं।

[3] मैं यहाँ डॉ. न्यूमैन के वाक्यविन्यास का अनुसरण नहीं कर रहा हूँ। मनुष्य को प्रसन्न करने की स्त्री की शक्ति खतरे का स्रोत थी। वह केवल तथागतों, या संतों को ही प्रभावित करने में असमर्थ थी, जिन्होंने इतने महान सुख प्राप्त कर लिए थे कि उन्हें व्यक्त करना असंभव था।

4.4 [189] नंदकत्थेरा के श्लोक पर टीका
धीरत्थु से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नंदक का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि भगवान पद्ममुत्तरा के समय में, वे हंसवती नगर में एक अत्यंत धनी धनाढ्य व्यक्ति बन गए; संयोगवश उन्होंने गुरु को देखा, जिनकी उपस्थिति में उन्होंने सत्य (धम्म) का प्रवचन सुना, और उन्होंने भिक्षुओं को सलाह देने वालों में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने उस पद की आकांक्षा की, भगवान को एक लाख रुपये का वस्त्र आदरपूर्वक भेंट किया और अपना संकल्प लिया। उन्होंने गुरु के बोधि वृक्ष पर प्रज्वलित दीपक भी अर्पित किए। तब से, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और भगवान ककुसंध के समय में एक करविका पक्षी बन गए; पक्षी ने गुरु के चारों ओर मधुर गीत गाते हुए परिक्रमा की। इसके बाद, वे एक मोर बन गए और प्रतिदिन तीन बार मधुर गीत गाते हुए, एक मौन बुद्ध के निवास स्थान की गुफा के द्वार पर श्रद्धापूर्वक विराजमान रहे। इस प्रकार स्थान-स्थान पुण्य कर्म करते हुए, उनका पुनर्जन्म हमारे प्रतापी बुद्ध के समय में सावत्थी के एक पारिवारिक घर में हुआ; नंदक नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का अध्ययन किया, उचित रूप से श्रद्धावान आस्था प्राप्त की; भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की और अर्हतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—-

"सर्वोत्तम बोधि वृक्ष पर

बुद्ध पद्ममुत्तरा के, धर्मपरायण मन वाले

और मैंने उदारतापूर्वक (अधारयिं) भेंट की।

तीन जलती हुई मशालें।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने अपनी भेंट (अधारयिं) अर्पित की थी।

मशालों का; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मशाल अर्पित करने का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत बनने के बाद, वे मोक्ष के आनंद में लीन थे। तभी गुरु ने उन्हें भिक्षुणियों को सलाह देने का आदेश दिया। एक विशेष उपोसथ दिवस पर उन्होंने केवल एक ही सलाह से पाँच सौ भिक्षुणियों को अरहंत बना दिया। इसी कारण भगवान बुद्ध ने उन्हें भिक्षुओं के सलाहकारों में सर्वोच्च स्थान दिया। फिर एक दिन, उनकी पूर्व पत्नी, एक स्त्री ने श्रावस्ती में भिक्षा मांगते हुए थेरा को देखकर मुस्कुरा दिया। उस स्त्री को मुस्कुराते देख थेरा ने श्लोक सुनाकर शरीर की घृणास्पदता का उदाहरण देते हुए उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया।

270. "तुम्हें शर्म आनी चाहिए! यहाँ

तुम्हारा शरीर जो गंदगी से भरा हुआ है

गंध, मारा का पक्ष लेना (पक्खे),

जिसमें रिसाव हो रहा है (अवसौता)

नौ धाराएँ (सोटा) जो हैं

बिल्कुल भी बह रहा है (सैंडंती)

बार।

280. "अतीत के बारे में मत सोचो; मत सोचो"

आश्चर्यचकित करना (सादसी) शिष्य

बुद्ध। यहां तक कि स्वर्गिक आनंद तक।

वे आसक्त नहीं हैं (राज्जंती)

हालांकि, यह कहना उचित नहीं है (किमंगा)

मानव (आनंद)।

281. "वास्तव में, वे मूर्ख लोग जो हैं

बुद्धिहीन, जो बुरी बातें सोचते हैं

और जो भ्रम में डूबे हुए हैं, वे

जैसे लोग उससे जुड़ जाते हैं

वह स्थान जहाँ मारा ने अपना जाल बिछाया था।

282. "ऐसे लोग जो विरक्त हैं

कामवासना, क्रोध और अज्ञान से दूर मत रहो

वे वहां खुद को संलग्न कर लेते हैं, क्योंकि

अब उनके लिए कोई जाल नहीं बचा, न ही उसके धागे।

बाहर।

वहाँ, धी शब्द घृणा के भाव को व्यक्त करता है; रत्थु का अर्थ है: अक्षर 'र' शब्द का मिलन (पादसंधिकारो) करता है; लज्जा हो (धी अत्थु), मैं तुमसे घृणा करता हूँ; तुम्हें लज्जा हो (धिक्कारो); इस प्रकार, इसका अर्थ है। 'पूरे' से शुरू होने वाले भाव संबोधन के वे शब्द हैं जो उस स्थिति को स्पष्ट करते हैं जिसमें उसे लज्जित किया जाना चाहिए। 'पूरे' का अर्थ है: विभिन्न प्रकार के मृत शरीरों और अशुद्धियों से भरा हुआ, जो अत्यंत घृणित हैं। दुग्गन्ध का अर्थ है: स्वाभाविक रूप से दुर्गंधयुक्त, लेकिन शवों से भरे होने के कारण। मारपक्खा का अर्थ है: अज्ञानी अंध (पुथुज्जन) लोगों की विशिष्ट स्थिति (निमित्तता) के कारण असामान्य वास्तविकता (विषभगवत्थु) दुराचार (किलेसा) के मार को विकसित (वड्ढेति) करती है और युवा देवता मार को प्रवेश (ओतारं पवित्रम्) का अवसर प्रदान करती है, इसलिए वह मार का साथी (पक्खो) बन जाता है; इसी कारण कहा गया है: "मारपक्खे (मार के पंख पर)।" अवस्सुते का अर्थ है: हर समय दुराचार (किलेसावस्सवन) के रिसाव से रिसता हुआ और अशुद्धियों से इधर-उधर बहता हुआ। अब वह उसे रिसाव (अवसवना) का स्थान इस प्रकार दिखाता है: “नवसोटानी ते काये, यानि संदन्ति सब्बदा का अर्थ है: यह “अक्खिम्हा अक्खिगूथको (आँख से निकलने वाला मल)” से शुरू होकर कहा गया है।”

सत्य के अनुसार, इस प्रकार जानते हुए, (तुम्हारा) शरीर जो (भरित) अशुद्धियों से भरा है, नौ छिद्रों (छिद्द) से निरंतर रिसता रहता है, मा पुराणं अमाञ्ञित्थो, का अर्थ है: अपने पुराने (पुराणं) अमिलिंग (हसित), बात करने (लपित) और क्रीलित (कीलित) के बारे में मत सोचो जो अज्ञान (अजानंस) के समय में हुआ था; “अब भी मैं इसी प्रकार स्वयं को नियंत्रित करूँगा;” अतः विचार मत करो। मा' सादेसी तथागते का अर्थ है: जिस प्रकार बुद्ध के शिष्य अरहंत पद (उपनिषय) की प्राप्ति के लिए पर्याप्त योग्यता के भूतकाल (पुरिमक) से संबंधित समृद्धि प्राप्त करते हैं, दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार वे उचित कर्म (सम्मापटिपत्ति) के माध्यम से पहुंचे और उचित रूप से प्राप्त (पटिपन्ना) हुए हैं, जिस प्रकार वे निश्चित (तथा) सत्य (धम्म) और सजीव (रूप) तथा निराकार (अरूप) घटनाओं (धम्म) के सच्चे (लक्खना) गुणों तक पहुंचे (आगत), उन्हें प्राप्त (अधिगत) किया और समझा है, उसी प्रकार वे भी हैं; भ्रष्टता (किलेसा) के प्रभाव में आकर उनका अपमान (आसादेसी) न करें, और उन श्रेष्ठ (आरिया) शिष्यों (सावक) को कम न आंकें जो इसी प्रकार (तथागते) लाभ (अत्था) के लिए आए थे, मानो वे सामान्य (पकति) जीव हों। उन्होंने ऐसी स्थिति के कारण के बारे में कहा जिसका अपमान नहीं किया जाना चाहिए: “सग्गे पि ते न रज्जन्ति, किमंगं पाना मानुसे का अर्थ है: बुद्ध के वे शिष्य स्वर्गिक आनंद (सग्ग) से भी आसक्त (रज्जन्ति) नहीं होते, जो कि एक ऐसा सुख है जिसका पूर्ण मूल्यांकन सर्वज्ञ बुद्ध जैसे व्यक्ति द्वारा किए गए वर्णन (अक्खानेन परियोसापेटुम) से भी नहीं किया जा सकता; उन्होंने मिठाइयों (संखार) के नुकसान को भली-भांति देख लिया था, इसलिए उन्होंने कामवासना (राग) उत्पन्न नहीं की; फिर भी, गोबर के ढेर के समान मनुष्यों से संबंधित इंद्रिय सुख के धागों पर क्यों ध्यान दें (किमंगं)?”

ये च खो बाला का अर्थ है: वे लोग जो मूर्खता से प्रेरित होकर मूर्ख बन जाते हैं; दुम्मेधा का अर्थ है: सत्य (धम्म) के सार का निर्माण करने वाले ज्ञान के अभाव के कारण मूर्ख; दुम्मन्ति का अर्थ है: अप्रिय वस्तु में लगातार सुखद घटना को देखने के कारण बुरे विचार रखने वाला; मोहपारुता का अर्थ है: ज्ञान के भ्रमपूर्ण अभाव से पूरी तरह से ढके हुए मन की स्थिति के कारण भ्रम में लिपटा हुआ; तदिसा का अर्थ है: उस रूप (रूप) के समान अंधे आम लोग; तत्थ का अर्थ है: स्त्री की उस धारणा (इत्तिसाञ्ञिता) में; मारखित्तम्हि बंधने का अर्थ है: मार द्वारा बिछाए गए जाल में फंसा हुआ। राज्जंती का अर्थ है: वे कामवासना (राग) से चिपके (तिट्ठंती), लोभी (गिद्धा), गुलाम (गधिता), आसक्त (मुच्चिता) और लीन (अज्जोपज्जा) रहते हैं।

विराजिता का अर्थ है: इस प्रकार; येसं का अर्थ है: दोषमुक्त अरहंतों के लिए; हालांकि, रागो का अर्थ है: वासना जिसका स्वभाव तेल के लेप के रंग (राग) के समान है और जिससे निकलना कठिन है; दोसो का अर्थ है: क्रोध जिसका स्वभाव अवसर मिलने पर आक्रामक (दुस्सान) होने का है, जो शत्रुतापूर्ण (सपत्तो) होने के समान है; अविज्जा च का अर्थ है: स्वभाव से ज्ञान का अभाव; विराजिता का अर्थ है: श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) के वैराग (विराग) द्वारा सभी प्रकार से त्यागे और अच्छी तरह से अलग किए गए; छिन्न का अर्थ है: उस प्रकार के प्रमुख मार्ग (मग्ग) की छुरी से काटे गए; सुत्त का अर्थ है अस्तित्वों को जोड़ने वाले धागे; अबंधना तत्त का अर्थ है: वहाँ बंधे न होने के कारण, परिणामस्वरूप, बंधन के अभाव के कारण, बल्कि हर जगह; न रज्जन्ति का अर्थ है: वे मार के उस जाल से जुड़े नहीं हैं, जैसा कि कहा गया है। इस प्रकार, थेरा ने उस महिला को सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और चले गए।

थेरा नंदक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(190): जंबुका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (190) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
190. जंबुका
इस बुद्ध युग में एक अत्यंत गरीब परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने पिछले जन्म की तरह ही मल-मूत्र भोजन करना स्वीकार किया और संसार त्यागकर नग्न तपस्वी बन गए। अनेक तपस्याएँ करते हुए और तिनके के सहारे एक-एक करके सेम खाते हुए, जब वे पचपन वर्ष के हुए, तब भगवान (बुद्ध) ने उनके हृदय में अर्हतत्व (ज्ञानोदय) की संभावनाओं को एक दीपक की तरह चमकते हुए देखकर स्वयं उनके पास जाकर उन्हें धम्म का मार्ग सिखाकर उन्हें सोतापाण (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त करवाई। तब उन्होंने कहा: 'आओ, भिक्षु!' और इस प्रकार उन्हें भिक्षु दीक्षा दी। [1] और जंबुका ने अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली, तो भगवान (बुद्ध) ने उन्हें अर्हतत्व (ज्ञानोदय) में स्थापित कर दिया। यह संक्षेप में है, लेकिन इसका पूरा विवरण धम्मपद श्लोक की टीका में दिया गया है:

एक-एक करके तिनके के सिरे से एक-एक बीन। ... [2]

अपने परलोकवास के समय उन्होंने यह दिखाया कि यद्यपि वे एक समय गलत मार्ग पर चल रहे थे, फिर भी उन्होंने परम बुद्ध का सहारा लेकर वह मुकाम हासिल कर लिया था जहाँ एक शिष्य को पहुँचना चाहिए, इस प्रकार:

[283] पंचापन्नसवास्सनि राजोज्जल्लमधारयि,॥
भुञ्जन्तो मासिकां भट्टं केसमासुऽ अलोकैयि॥॥

[284] एकापदेन अथासिṃ आसनो परिवज्जयिṃ,॥
सुक्खागुठानि च खदिं उदादासं च न सादियिं॥॥

[285] एतादिसैं करित्वाना बहुṃ दुग्गतिगामिनाऽ,॥
वुयहमानो महोघेन बुद्धं शरणं अगमः॥॥

[286] सारनागमना पास पासा धम्मसुधम्मतṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥॥

[283] पचपन वर्षों तक धूल
और गंदगी से ढका हुआ, महीने में एक बार खाना खाता हुआ, [3] और अपने सिर और चेहरे से बाल नोचता हुआ,

[284] मैं एक पैर पर खड़ा होता, मैं कोई सोफा इस्तेमाल नहीं करता,
सूखा गोबर खाता, और न ही बचे हुए को स्वीकार करता।

[285] इसलिए मैंने ऐसे कर्म किए जिनसे बहुत दुख
और विनाश हुआ, मैं भयंकर बाढ़ में बह गया,
जब तक कि मुझे बुद्ध की शरण नहीं मिली: -

[286] हे देखो, मैं उस शरण में कैसे आया हूँ!
हे देखो, धर्म (धम्म) के उचित भिक्षु क्रम को!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध ने मुझे जो कुछ सिखाया है, वह सब कर लिया है।

[1] पृष्ठ 106, नोट 2 देखें।

[2] श्लोक 70 (टीका, ii. 52-63)। साहित्यिक संदर्भ रुचिकर है, लेकिन इससे हम यह नहीं कह सकते कि संदर्भित धम्मपद टीका वही है जो अब हमारे पास पाली में है। जंबुका का उल्लेख मिलिंद, ii. 249 में किया गया है।

[3] दीघा-निकाय में एक से अधिक बार आने वाली तपस्याओं की सूची में दिया गया चरम अंतराल महीने में दो बार है - उदाहरण के लिए, संवाद, i. 229.

4.5 [190] जंबुकत्थेरा के छंद पर टीका
पंचपञ्जास से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा जंबुका का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान तिस्सा के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु के उत्कृष्ट आत्मज्ञान में विश्वास करते हुए, आदरपूर्वक बोधि वृक्ष को पंखा अर्पित किया, जिसकी वे पूजा करते थे। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और भगवान कस्सपा के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, वे उनके शासनकाल (शासन) में एक भिक्षु बन गए, जो एक ऐसे भक्त द्वारा निर्मित मठ में निवास करते थे जो उनकी (भिक्षु की) सेवा करता था। फिर एक दिन, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण किए हुए, रोगमुक्त अरहंत थेरा अपने लंबे बाल मुंडवाने के उद्देश्य से जंगल से गाँव की ओर आए; उस अरहंत को देखकर, वह भक्त थेरा के कार्य से प्रसन्न हुआ, नाई से थेरा के बाल और दाढ़ी मुंडवाए, उन्हें उत्तम भोजन कराया, उत्तम वस्त्र दान किए और थेरा को अपने मठ में निवास करने के लिए कहा: "आदरणीय महोदय! कृपया यहाँ निवास करें।" उस थेरा को देखकर, वहाँ रहने वाले भिक्षु, जो स्वभाव से ईर्ष्यालु और द्वेषपूर्ण थे, ने दोषरहित थेरा से कहा: "हे भिक्षु! जब आप इस प्रकार यहाँ निवास कर रहे हैं और इस दुष्ट भक्त की सेवा में हैं, तो नंगे व्यक्ति का जीवन, जो गोबर और मूत्र खाकर, उंगलियों से बाल नोचकर अपना पोषण करता है, उससे बेहतर (वरं) है।" ऐसा कहने के बाद भी, वह वहीं (तावदेव) शौचालय में घुस गया, अपने हाथ से मल को फुलाया, मानो वह दूध-चावल में व्यस्त (वढन्तो) हो, और अपनी आवश्यकता के अनुसार खाया; उसने मूत्र भी पिया। अपने पोषण की इस नियमित (नियम) दिनचर्या के अनुसार वह अपने जीवनकाल तक रहा, मर गया, नरक में पका, फिर गोबर खाकर और मूत्र पीकर पुन: जीवित हुआ; उस कर्म के फल के अवशेष के कारण, यद्यपि वह मनुष्यों के बीच उत्पन्न हुआ था, फिर भी उसे पाँच सौ जन्मों तक जैन (निगंठ) रहना पड़ा और मल (गूठबक्खा) का भोजन करना पड़ा।

फिर, यद्यपि वह मनुष्य के गर्भ में जल रहा था, फिर भी एक दरिद्र परिवार में उसका जन्म हुआ, क्योंकि उसने एक कुलीन व्यक्ति का अपमान किया था। जब उसे (बचपन में) माँ का दूध, दूध या घी पिलाया गया, तो उसने उसे त्याग दिया और केवल मूत्र पिया; जब उसे पका हुआ चावल खिलाया गया, तो उसने उसे भी त्याग दिया और केवल मल खाया; इस प्रकार, गोबर और मूत्र से पोषण प्राप्त करते हुए वह वयस्क होने के बाद भी ऐसा ही करता रहा। उसे ऐसा करने से रोकने में असमर्थ होने पर उसके लोगों ने उसे पूरी तरह से त्याग दिया। अपने रिश्तेदारों द्वारा त्याग दिए जाने पर, उसने नग्न तपस्वी बनकर संसार का त्याग कर दिया और कभी स्नान नहीं किया; अपने शरीर पर धूल और पसीना लिए, उसने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, अन्य आसनों (इरियापत्थ) को त्याग दिया और एक पैर पर खड़ा रहा। उन्हें कोई भी निमंत्रण पसंद नहीं था। उन्होंने एक महीने का उपवास करने का संकल्प लिया था। दिन के समय, वे जरूरतमंद लोगों द्वारा दान में दिए गए भोजन को कुश घास की एक ही नोक से ग्रहण करते थे और उसे जीभ से चाटते थे। रात में वे केवल सूखा गोबर खाते थे और गीले मल को यह कहकर त्याग देते थे कि उसमें जीव (जीवित प्राणी) होते हैं। जब वे पचपन वर्षों तक इसी प्रकार उपवास करते रहे, तो उस अवधि के समाप्त होने पर, बहुत से लोग उनकी ओर आकर्षित हुए और उनके बारे में सोचने लगे: "वे अत्यंत तपस्वी और अपनी इच्छाओं में पूर्णतः विरक्त हैं।"

तब भगवान बुद्ध ने उनके हृदय के भीतर (गब्बह) अर्हंत बनने के लिए आवश्यक योग्यता को एक कलश में जलते दीपक की तरह चमकते हुए पाया। वे स्वयं वहाँ गए, सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, उन्हें सोतापत्ति के प्रथम चरण की सिद्धि दिलाई, उनका स्वागत करते हुए उन्हें पूर्ण भिक्षु दीक्षा दिलाई; "आओ, भिक्षु!" उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में तल्लीन किया और उन्हें अर्हंत पद पर स्थापित किया। यहाँ यह संक्षेप में (संखेप) है; विस्तार से, इसे धम्मपद में "मासे मासे कुसग्गेन" से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या में बताए गए तरीके से समझा जाना चाहिए।

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, परिनिर्वाण में प्रवेश करने के अवसर पर उन्होंने ये चार श्लोक कहे: "यद्यपि मैंने आरंभ से ही अपने जीवन को गलत तरीके से व्यवस्थित किया, फिर भी एक शिष्य को जो कुछ प्राप्त करना चाहिए था, वह मैंने आत्म-जागृत बुद्ध के दयालु सहयोग (निस्साय) से प्राप्त कर लिया था।"

283. “पचपन वर्षों तक मैंने बोझ उठाया

मेरा शरीर धूल से सना हुआ था, पसीने से तर था;

मैं महीने में सिर्फ एक बार ही खाना खाता हूँ।

मैंने अपने बाल और दाढ़ी हटवा ली थी।

(मेरी उंगलियों से)।

284. “मैंने एक पैर पर खड़े होकर अपना रुख अपनाया।

और मैंने सेवन से पूरी तरह परहेज किया।

मेरी सीट। मैंने सूखा गोबर भी खाया; मैं

उन्होंने भोजन के लिए कोई निमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

285. “इतनी अधिक मात्रा में ऐसे कार्य करने के बाद

जो दुष्ट अस्तित्व की ओर सहायक थे

(दुग्गती), द्वारा बहते हुए

बड़ी बाढ़ आने पर मैंने बुद्ध की शरण ली।

285. “इतनी अधिक मात्रा में ऐसे कार्य करने के बाद

जो दुष्ट अस्तित्व की ओर सहायक थे

(दुग्गती), द्वारा बहते हुए

बड़ी बाढ़ आने पर मैंने बुद्ध की शरण ली।

286. “देखो, जाने के बाद मेरा आश्रय।”

(बुद्ध से); सत्य के अच्छे स्वरूप को देखो

(धम्म); त्रिविध महाविज्ञान

तदनुसार (विज्जा) प्राप्त हो गई थी

(मेरे द्वारा); बुद्ध का निर्देश था

किया गया।"

वहाँ, paṅcapaññāsavassāni, rajo jallamadhārayiṃ का अर्थ है: मैंने पचपन वर्षों तक अपने शरीर पर आकस्मिक धूल (आजेंटुक) और पसीने (रेणु) को धारण किया, जो शरीर से चिपका हुआ था। स्नान न करने के कारण, मैंने नग्न संन्यासी का जीवन अपनाया। Bhunjanto māsikaṃ bhattaṃ का अर्थ है: महीने में एक बार, पुण्य कमाने के लिए जरूरतमंदों द्वारा दान किए गए भोजन को जीभ के सिरे पर रखकर खाना, क्योंकि मैं संसार के लोगों को धोखा देने के उद्देश्य से महीने भर उपवास करने वाला (मासोपवासिको) बन गया था और रात में गोबर खाता था। अलोकयिं का अर्थ है: मैंने अपने बाल और दाढ़ी, जिनकी जड़ें कोमल थीं, को अपनी उंगलियों से चुटकी भर (अच्चारिका) पानी (आपा) के त्याग (खेपेना) के साथ उखाड़ दिया।

Ekapādena atthāsim, āsanaṃ parivajjayiṃ का अर्थ है: मैं खड़े रहते हुए अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर केवल एक पैर के सहारे खड़ा रहा; मैंने किसी भी हालत में आसन पर बैठने से पूरी तरह परहेज किया। Uddesaṃ का अर्थ है: निमंत्रण (nimantanaṃ)। कुछ विद्वान कहते हैं: 'uddissakataṃ'। Na sādiyiṃ का अर्थ है: मैंने स्वीकार नहीं किया; मैंने अस्वीकार किया; यही इसका अर्थ है।

Etādisaṃ karitvāna, bahuṃ duggatigāminaṃ का अर्थ है: इतने अधिक बुरे कर्म करना और उत्पन्न करना, जो ऐसे ही परिणामों के लिए सहायक थे, जैसे कि इस जन्म में और पिछले जन्मों में भी बुरे कर्मों के लिए सहायक थे। Vuyhamāno mahoghena का अर्थ है: काम (इंद्रिय सुख) आदि की बाढ़, विशेष रूप से गलत विचारों की बाढ़, द्वारा नरक के सागर में खींच लिया जाना। Buddhaṃ saraṇamāgamaṃ का अर्थ है: मैंने अपने पुण्य कर्मों के बल पर बुद्ध को 'अपना आश्रय' बनाया। अब, अपने पुण्य कर्मों में आई कमियों के कारण कठिनाई से मनुष्य जीवन प्राप्त करने के बाद, मैं अपने अटूट विश्वास के साथ गुरु से अत्यंत प्रसन्न होकर कहता हूँ: "परमेश्वर पूर्णतः आत्मजागृत बुद्ध हैं।" सरणगमनं पस्सा, पस्सा धम्मसुधम्मतं का अर्थ है: देखो, मैं शरण में जा रहा हूँ जो मेरे इंद्रियलोक (आयतन) तक पहुँच गया है; देखो, इस व्यवस्था (शासन) के सत्य (धम्म) का अच्छा स्वरूप भी इस प्रकार है कि यद्यपि मैंने अपने जीवन को इस प्रकार गलत ढंग से व्यवस्थित किया था, फिर भी गुरु के एक ही उपदेश से मुझे इस प्रकार की समृद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने "तिस्सौ विजय" आदि के माध्यम से उस समृद्धि को दिखाया। इसी कारण उन्होंने कहा:—

"वहां एक पंखे को उठाकर और भेंट देकर"

अजेय (अबीजहं) सिंह सिंहासन,

मैंने बोधि वृक्ष को प्रणाम किया।

धन्य हो तिस्सा।

यह बानवे युग (कप्पा) पहले की बात है,

मैंने अजेय शेर को अपनी भेंट अर्पित की।

सिंहासन; मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है;

यह मेरे प्रशंसक का फलदायी परिणाम है

(दान)।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

थेरा जंबुका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(191):सेनाका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (191) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
191. सेनाका
बुद्ध युग में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में, उरुवेला के थेरा कस्सपा की बहन के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम सेनाक रखा गया। [1] जब उन्होंने ब्राह्मणों (पुजारियों) की वैदिक [181] संस्कृति सीख ली, तो वे अपने परिवार के साथ रहने लगे। उस समय लोग मार्च के पूर्वार्ध (फग्गुना) में हर साल एक उत्सव मनाते थे, [2] और नदी किनारे एक पूजा (तीत्त-अभिषेकम) करते थे, जिसे गया - फग्गुना कहा जाता था ।

तब परम पूज्य बुद्ध ने, जो लोग मार्गदर्शित हो सकते थे, उन पर दया करके नदी के किनारे ठहर गए। जब लोग एकत्रित हुए, तो सेनाक भी वहाँ आए और भगवान (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए सुनकर सोतापाण (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त की, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, अपनी विजय पर विचार करते हुए, वे आनंद से भर गए और उन्होंने यह वाणी (गाथा) कही:

[287] स्वगतौ वात मे असि गययाय गयफगुय,॥
यɱ अद्दससिɱ सम्बुद्धौ देसेन्टं धम्ममुत्तमɱ॥ ॥

[288] महप्पभाɱ गणचरियɱ अग्गप्पाट्टɱ विनायककɱ,॥
सदेवकस्सा लेकासा जिनाअतुलदस्साना ɱ॥ ॥

[289] महानागं महावीरं महाजुतिमानसवं,॥
सब्बासवपरिक्खिनं सत्थारमकुतोभ्यं॥ ॥

[290] सिरासांकिलीहाɱ वात माɱ दिशिसंदानासंदिताɱ,॥
विमोचनै सो भगव सब्बागण्तेहि सेनाकं ती.॥ ॥

[287] हे वसंत ऋतु के उस दिन मेरा कितना स्वागत हुआ,
जब गया में, गया के नदी-उत्सव में,
मैंने बुद्ध को सर्वोच्च मार्ग (धम्म) का उपदेश देते हुए देखा,

[288] महान प्रकाश को देखा, असंख्य लोगों के शिक्षक,
जिसने सर्वोच्च को जीता है, सभी के मार्गदर्शक,
मनुष्यों और देवताओं के विजेता, अद्वितीय द्रष्टा।

[289] हे शक्तिशाली जादूगर, हे महिमावान भगवान,
दूरगामी वैभव, शुद्ध, निर्मल मन, [4] हे भगवान (बुद्ध) जिन्होंने सभी आसवों का वध किया है, और उस अवस्था को प्राप्त किया है जहाँ भय नहीं आ सकता। [5]

[290] मैं लंबे समय तक संप्रदाय और हठधर्मिता के बंधनों से बंधा और सताया रहा

- आह! लेकिन अब यह
भगवान (बुद्ध) हैं जिन्होंने सेनाक को
हर बंधन से मुक्त कर दिया है।

[1] इस नाम के ब्राह्मण (पुजारी) जाट., iii., संख्या 401; vi., संख्या 546 में हैं। चाचा के कथन (गाथा) के लिए, CCX देखें।

[2] फाग्गुना, या फाल्गुन, आधा फरवरी में, आधा मार्च में गिरता है।

[3] तित्थाभिषेक। किस प्रकार का 'बपतिस्मा' - शाब्दिक रूप से, छिड़काव - होता था, चाहे वह शिशुओं का हो, विद्वानों का हो, या धार्मिक स्वीकारोक्ति का हो, यह अनुमान लगाना आसान नहीं है। बोहट्लिंगक और रोथ के शब्दकोश के अनुसार, नदी (नेरांजारा) स्वयं फल्गु के नाम से जानी जाती थी। डॉ. न्यूमैन कहते हैं कि गया शहर को भी इसी नाम से पुकारा जाता है (मज्ह-निक., अनुवाद, x. 271. सिस्टर्स में पृष्ठ 134 पर दिया में एक आधुनिक नदी किनारे की सभा की बहुत ही विचारोत्तेजक तस्वीर देखें ।

[4] अनासाव। थेरा यहाँ थोड़ा दोहराते हैं।

[5] निर्वाण की एक सामान्य उपाधि।

4.6 [191] सेनाकत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
स्वागतं वत से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य सेनाक का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने सिख धर्मगुरु के समय एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे वयस्क हुए, तो एक दिन संयोगवश उन्हें गुरु के दर्शन हुए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्होंने भगवान बुद्ध को एक मोर का हाथ (मारहन्त्थेना) आदरपूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक ब्राह्मण परिवार में थेरा उरुवेला कस्सपा की बहन के गर्भ में उत्पन्न हुए। उनका नाम सेनाक था। वयस्क होने पर, उन्होंने ब्राह्मण विद्याओं और विज्ञानों में सिद्धि प्राप्त की और गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। उस समय भी, मार्च (फग्गुन) माह में उत्तराफग्गुन चंद्र नक्षत्र के समय वार्षिक रूप से मनाए जाने वाले भोज में, बहुत से लोग गया में एक स्थान का अभिषेक करते थे; इसी कारण उस भोज को "गयाफग्गु" कहा जाता है। फिर भगवान बुद्ध उस भोज के दिन, अपने उपदेशों के पात्र (वेणेय) लोगों पर दया करके गया के उस स्थान के पास निवास करते थे। बहुत से लोग उस स्थान का अभिषेक करने के उद्देश्य से इधर-उधर से उस ओर जाते थे। उसी समय सेनाक भी उस स्थान का अभिषेक करने के लिए वहाँ पहुँचे, उन्होंने धर्म का उपदेश दे रहे गुरु को देखा, उनके पास गए, धर्म को सुना, उचित श्रद्धा प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अर्हंतत्व प्राप्त कर लिया, लेकिन शीघ्र ही। इसलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"एक मोर को पकड़ लेने के बाद

दूसरी ओर, मैंने नेता से संपर्क किया।

विश्व। धर्मपरायण और नेक हृदय।

मैंने उन्हें मोर का हाथ भेंट किया।

इस मोर के हाथ के माध्यम से, जैसे

साथ ही मेरी इच्छा (चेतना) के कारण भी

और आत्म-संकल्प, तीनों आग

बुझ गया; मुझे भरपूर लाभ हुआ

परम आनंद।

बुद्ध और धर्म अद्भुत हैं; अद्भुत

मेरे लिए तो यही स्वामी की समृद्धि है;

उसे मोर का हाथ देकर,

मुझे अपार आनंद प्राप्त हुआ।

मेरी तीनों आग बुझ चुकी थीं।

मेरे सभी अस्तित्व समाप्त हो गए थे;

मेरे सारे घाव चारों ओर फैल गए थे।

नष्ट हो गया; अब कुछ भी अस्तित्व में नहीं है

नया अस्तित्व।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने तब दान दिया; मैं नहीं

किसी भी बुरी शक्ति को याद रखें; यही वह बात है

मोर के हाथों का फलदायी परिणाम।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्मों (पटिपत्ति) पर विचार किया, अत्यंत प्रसन्न हुए और आनंदमय वाणी के रूप में चार श्लोक बोले।

287. "वास्तव में, यह मेरा अच्छा आचरण (स्वागत) था;

यह गया के तटबंध के निकट था।

गयाफाग्गु के समय में मैंने स्वयं को देखा-

जागृत बुद्ध ने सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्रदान की।

सत्य (धम्म)।

288. "वह अत्यंत तेजस्वी (पभा) था,

भिक्षुओं की भीड़ भरी सभा के शिक्षक, जो

अपनी सर्वोच्च ऊँचाई प्राप्त कर चुके थे,

अनुशासक, विजेता और अद्वितीय

दिव्य दृष्टि के साथ-साथ संसार का दर्शन

दुनिया।

289. “वह (अरहंतों में) एक महान हाथी था।”

महान नायक, महान गौरवशाली और रोगों से मुक्त:

वह ऐसा व्यक्ति था जिसके सारे घाव पूरी तरह से ठीक हो चुके थे।

नष्ट हो गया, स्वामी को कोई खतरा नहीं था

कहीं भी।

290. “उस भगवान ने मुझे, सेनाका को, बचा लिया।”

सभी बंधनों से मुक्त, मैं, जो वास्तव में बहुत लंबे समय से

स्वयं पतित और बंधनों से बंधे हुए

(गलत) विचार।

वहाँ, Svāgataṃ vata me āsi का अर्थ है: वास्तव में, मैं वहाँ अच्छी तरह पहुँचा; दूसरे शब्दों में, वास्तव में, मेरा आगमन उत्तम था। Gayayaṃ का अर्थ है: गया के उतरने के स्थान के निकट। Gayaphagguyā का अर्थ है: मार्च (फग्गुन) माह के उत्तराफग्गुया चंद्र नक्षत्र के उत्सव में, जिसे “गयाफग्गु” के रूप में जाना जाता है। “Yaṃ” से शुरू होने वाला वाक्यांश, अच्छी तरह से जाने की स्थिति का कारण दर्शाता है। वहाँ Yam का अर्थ है (यस्मा) क्योंकि। Addasāsiṃ का अर्थ है: मैंने देखा। Sambuddham का अर्थ है: स्वयं को सभी सत्यों (धम्म) के ज्ञान की अवस्था के कारण उत्कृष्ट रूप से आत्मजागृत बुद्ध। देसेनतं धम्ममुत्तमं का अर्थ है: जो सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्कृष्ट सत्य (धम्म) का कथन कर रहे थे, जो निश्चय ही (एकन्त) लाभकारी (निय्यनिक) है, और अनुशासन के प्रति उत्तरदायी (वेनेय्या) लोगों के आशय के अनुरूप है।

महाप्पभं का अर्थ है: अपने शरीर और ज्ञान की अपार चमक से युक्त। गणचर्यं का अर्थ है: सुचारु आचरण (आचार) द्वारा सुसंस्कृत, भिक्षुओं की सभा आदि जैसे गण समूहों को उत्कृष्ट रूप से नियंत्रित करने वाले गण मंडल के गुरु। अग्गपट्टं का अर्थ है: नैतिक उपदेश आदि सर्वोपरि गुणों की प्राप्ति द्वारा सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाले। विनायकं का अर्थ है: अनुशासक, क्योंकि स्वयं के लिए कोई नेता नहीं है; परम अनुशासन के माध्यम से दिव्य, मानव आदि प्राणियों का नेतृत्व और अनुशासन करने के कारण। सदेवकस्स लोकस्स जिनं का अर्थ है: जगत के विजेता, जगत और दिव्य जगत में अग्रणी विजेता; अतुलदस्सनं का अर्थ है: अतुलदस्सन की अद्वितीय दृष्टि के कारण, असीम दृष्टि की स्थिति के कारण, जगत और दिव्य जगत के लोगों द्वारा, उनके शारीरिक सौंदर्य की स्थिति के कारण, जो बत्तीस उत्कृष्ट प्रमुख चिह्नों (लक्खण) और अस्सी लघु चिह्नों (अनुभ्यंजन) आदि से सुशोभित है, और उनके आध्यात्मिक (धम्म) शरीर (काया) की स्थिति के कारण, जो दस प्रकार की शक्ति (बल), चार प्रकार के आत्मविश्वास (वेसाराज) जैसे गुणों से सुशोभित है।

महानागम् का अर्थ है: महान हाथी, क्योंकि वे अपनी महान शक्ति के कारण दोषरहित अरहंतों में विख्यात हैं, जो स्वयं हाथी के समान हैं, और क्योंकि वे गति, बल, परिश्रम आदि गुणों से परिपूर्ण समृद्धि के कारण एक विशाल हाथी के समान हैं। महावीरम् का अर्थ है: महान वीर, क्योंकि वे मार की सेना द्वारा स्पष्ट रूप से कुचले नहीं गए (अविमथन), जिसके कारण वे अत्यंत वीर हैं। महाजुतिम् का अर्थ है:

महान तेज और महान गौरव। अनासवम् का अर्थ है: दोषों से मुक्त, इस एक में चारों प्रकार के दोष नहीं हैं। सब्बासवपरिक्खिणम् का अर्थ है: इस एक के सभी दोष और उनके सभी प्रकार (वासना) पूरी तरह से नष्ट हो गए हैं। वास्तव में (कामं), बुद्ध के शिष्य और मौन बुद्ध तो दोषरहित (खील्नासाव) अरहंत होते हैं; परन्तु सर्वज्ञ बुद्धों के दोष और उनकी प्रवृत्तियाँ दोनों ही दूर हो जाती हैं; अतः, "अनासवं, दोषरहित" कहने के बाद, फिर से यह कथन किया गया है: "सब्बासाव परिक्खिनां, सभी दोष पूर्णतः नष्ट हो गए हैं," ताकि (स्पष्ट अंतर) दिखाया जा सके। इसी कारण उक्त कथन इस प्रकार है: "सब्बे आसवा सवासना परिक्खिना एतस्सा ति सब्बासाव-परिक्खीणां।" सत्थरं का अर्थ है: स्वामी, क्योंकि उन्होंने अनुशासन के योग्य प्राणियों को, उनकी योग्यता के अनुसार संसार से बाहर निकलने (वेनेय्यानं) का उपदेश दिया, जिसमें वर्तमान और भविष्य के लिए परम लाभ (अत्थ) का अर्थ निहित था। अकुतोभयं का अर्थ है: खतरे से मुक्त, क्योंकि हर जगह से कोई खतरा नहीं था और उनके आत्मविश्वास की अवस्था के कारण, जिसे आत्मविश्वास की चार अवस्थाओं (वेसरज्जा) में गिनाया गया है; चूंकि मैंने ऐसे व्यक्ति को, जो पूर्णतः आत्म-जागृत बुद्ध थे, देखा, इसलिए वास्तव में, मेरे लिए यह सौभाग्य की स्थिति थी; यही व्याख्या है।

अब, उन्होंने गुरु के दर्शन से प्राप्त अपने गुण को दर्शाने के लिए चौथा श्लोक बोला। उस श्लोक का अर्थ है: — चिरासंकिलित्थं का अर्थ है: लंबे समय से पतित, बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों में उलझा हुआ, जिसका न कोई आरंभ है और न कोई अंत (अनामतग्ग), आत्म-पतितता की वास्तविकताओं (वत्थु) के कारण, जो खट्टे चावल के दलिया (कंजिया) से भरे लौकी (लाबु) के खोल के समान है, छाछ (तक्का) से भरे पात्र के समान है, और चिकनाई (वास) से लथपथ (पीत) चिथड़े (पिलोटिका) के समान है। दिट्ठिसन्दानेण बंधितं का अर्थ है: अहंकार (सक्काया) के स्तंभ (तम्भ) पर गलत दृष्टिकोण (दिट्ठि) के बंधन में बंधा हुआ, चमड़े की पट्टियों (गद्दुला) से बंधे कुत्ते (सारमेया) के समान। सब्बगन्थेहि मं सेनाकं विमोचयी वत सो भगव का अर्थ है: भगवान में अपनी अपार प्रसन्नता और पवित्रता को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं; हे मेरे स्वामी, अपने श्रेष्ठ मार्ग (मग्ग) के हाथों से मुझे अनुचित लोभ (अभिज्जा) जैसे बंधन से मुक्त किया है।

थेरा सेनाक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (192): संभुता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (192) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
192. सम्भूता
बुद्ध युग में एक कुलवासी परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने धम्म के कोषाध्यक्ष द्वारा परम पूज्य बुद्ध के निधन के बाद सोतापना (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त की। [1] भिक्षु संघ में प्रवेश करके, उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। इस प्रकार वे निर्वाण के आनंद में तब तक रहे, जब तक कि परम पूज्य बुद्ध के परिनिर्वाण के एक शताब्दी बाद, वैशाली के वज्जियन भिक्षुओं ने दस सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किए, जिनका थेरा नियासा [2] और काकंदकन भिक्षुओं ने विरोध किया, और 700 अरहंतों (प्रबुद्धों) द्वारा धम्म और विनय का एक संशोधित संस्करण तैयार किया गया। तब थेरा, धम्म और विनय के प्रस्तावित विकृति से प्रेरित होकर, अज्ञा को इसकी गवाही देते हुए, इन श्लोकों का उच्चारण किया :

[291] यो दंडकाले तारति तरणिये च दंडये॥
अयोनि1 सविधानेन बालो दुक्खं निगच्छति॥ ॥

[292] तस्सत्था परिहयन्ति कापापक्खेव कैंडिमा॥
अयसास्याञ्च पप्पोति मित्तेहि च विरुज्जति ॥॥ ॥

[293] यो दंडकाले दंडेति तारणिये च तारये॥
योनिसो संविधानेन सुखां पप्पोति पंडितो॥ ॥

[294] तस्सत्था परिपुरेन्ति सुक्खपक्खेवा कैंडिमा॥
यसो कित्तिन्च पप्पोति मित्तेहि न विरुज्जति' ति.॥॥

[291] जो उचित समय पर निर्णय लेता है, उसे विराम लेना चाहिए,
और जो निर्णय लेने के समय लापरवाह हो जाता है, [3] योजना और सिद्धांत के अभाव में इस मूर्ख ने
अनेक कष्ट सहने के लिए यात्रा की। [292] जो पुरस्कार उसके होने चाहिए थे, वे उसी प्रकार लुप्त हो जाते हैं,
जैसे अंधकारमय सप्ताहों में घटता हुआ चंद्रमा पिघल जाता है।
वह अपने मित्रों से मतभेद के कारण अपमान का पात्र बनता है।

[293] जो समय पर रुकने के लिए धीमा है,
जो गलत समय पर भी आगे बढ़ता है,
इस बुद्धिमान व्यक्ति ने अपनी योजना और सिद्धांत से
निश्चित रूप से सुख का मार्ग पाया। [294] उसके लाभ पक कर परिपूर्ण हो जाते हैं,
जैसे उज्ज्वल सप्ताहों में अर्धचंद्र बढ़ता है।
वह मित्रों के साथ मिलकर सम्मान और प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

[1] थेरा आनंद को प्रदान की गई एक उपाधि।

[2] वैशाली की परिषद पर (विनय ग्रंथ, खंड iii, अध्याय xii)। थेरा संभूत 'भांग के वस्त्रधारी' (सानावासी) - सुधार के इस कठिन और नाजुक अभियान के आयोजकों में से एक थे।

[3] शाब्दिक रूप से, क्रॉस। नीचे देखें।

4.7 [192] संभूतथेरा के श्लोक पर टीका
यो दंडकाले से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा सम्भूता का है। क्या यही उत्पत्ति है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संपन्न किए, और चंदाभागा नदी के तट पर एक अर्धमानव पक्षी (किन्नर) के गर्भ में पुनर्जन्म लिया, उस संसार में जब कोई बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे (बुद्ध सुन्नत); एक दिन संयोगवश उन्होंने एक मौन बुद्ध को देखा, श्रद्धा से भर गए, उन्हें प्रणाम किया, हाथ जोड़े और सफेद चांदी के अज्जुन फूल अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए; संभूता नाम प्राप्त करने पर, वयस्क होने पर, उन्होंने भगवान बुद्ध के परनिर्वाण के बाद सत्य के संरक्षक (धम्मभण्डगारिका) की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर विकास किया और अरहंत पद प्राप्त किया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

“मैं तब आधा इंसान-आधा पक्षी (किन्नारा) था;

मैंने निर्मल (विरज) बुद्ध को देखा।

आत्म निर्भर (सयम्भू), द

अजेय।

“पवित्र मन और अच्छे हृदय वाले,

श्रद्धा के साथ आओ (vadajāto) मैंने अपने हाथ पकड़े

हाथों में। सफेद अजजूना को इकट्ठा करने के बाद

मैंने फूल को विशेष श्रद्धापूर्वक अर्पित किया।

इसका कुछ हिस्सा आत्मनिर्भर बुद्ध को समर्पित है।

उस कार्य के लिए, शाबाश!

इच्छाशक्ति और आत्म-संकल्प के साथ

(पणिधि), मैंने शरीर त्याग दिया

आधा इंसान पक्षी (किन्नारा) और अच्छी तरह से

तावतिंसा पहुंचे।

मैं छत्तीस बार दिव्य राजा बना और

उसने दिव्य संप्रभुता का प्रयोग किया।

दस बार, विश्व राजा के रूप में मैंने इसे वहन किया

महान संप्रभुता को बाहर निकालो।

मेरे लिए क्षेत्रीय शासन का अनुभव भरपूर रहा।

संख्यात्मक रूप से अगणनीय; बीज

उपजाऊ खेत में ऐसा ही था,

आत्मनिर्भर बुद्ध ने अद्‌भुत ढंग से

मेरे लिए।

मेरे अच्छे कर्म का फल मिला; मैं एक बन गया

बेघर भिक्षु। आज मैं योग्य हूँ।

श्रद्धापूर्वक भेंट ग्रहण करने का

साकियान पुत्र के शासनकाल में।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे मुक्ति के आनंद में लीन थे। थेरा ने इन (चार) श्लोकों का पाठ करते हुए अपने अरहंत पद का प्रकटीकरण किया, जब उन्हें आध्यात्मिक पश्चाताप (धम्मसंक्वेग) हुआ, क्योंकि वज्जीपुत्तकों (वज्जी के युवा पुत्रों) के गलत सिद्धांत (उद्धम्म) और झूठे अनुशासन (उब्बिनय) का पर्दाफाश (दीपने) किया गया था, जब धर्म और विनय का संपादन (संगह) उन लोगों द्वारा

किया गया था जिन्होंने अच्छे सत्य (सद्धम्म) का समर्थन किया था, और सात सौ दोषमुक्त अरहंतों द्वारा उस गलत दृष्टिकोण (दिट्ठिम) को तोड़ दिया गया था, जिन्हें काकंडक के पुत्र थेरा यासा द्वारा प्रेरित (उस्साहित) किया गया था, जबकि वैशाली से संबंधित वज्जीपुत्तक परिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद दस भोगों (वत्थु) का समर्थन (पग्गयह) कर रहे थे। भगवान का।

291. "जो व्यक्ति उचित समय पर शीघ्रता से कार्य करता है

धीरे चलो, और जब उसे धीरे चलना चाहिए तब वह धीरे चलता है।

तेजी से आगे बढ़ो; अपनी ही नासमझी के कारण

(अयोनि) निष्पादन (संविधान), द

मूर्ख को कष्टदायी पीड़ा सहनी पड़ती है

(दुख)।

292. "उनके लाभ इसी प्रकार कम होते जाते हैं

घटता हुआ चंद्रमा; वह मंच पर पहुँचता है

निंदा किए जाने के कारण; वह विरोध करने लगा।

अपने दोस्तों को।

293. "जो व्यक्ति उचित समय पर धीमे चलता है

जब उसे तेजी से चलना चाहिए, तब वह तेजी से चलता है।

अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण निष्पादन के कारण,

बुद्धिमान व्यक्ति सुख प्राप्त करता है।

294. "उसके लाभ इतने अधिक हो जाते हैं कि वे लबालब भर जाते हैं जैसे कि

बढ़ता हुआ चंद्रमा; वह प्रसिद्धि प्राप्त करता है और

वह प्रतिष्ठा का विरोधी नहीं है; उसे दोस्तों से कोई आपत्ति नहीं है।

वहाँ, यो दंड काले तरति का अर्थ है: अनुशासन के संबंध में कोई संशय (विनयकुक्कुच्चा) उत्पन्न होने पर, वह अतिक्रमण (वितिक्कमा) करता है, जब वह किसी पर पैर रख चुका होता है (मद्दित्वा), इस प्रकार: "क्या यह वास्तव में उचित (कप्पति) है या वास्तव में अनुचित (कप्पति) है?" जब तक वह अनुशासन नियमों के जानकार (विनयधर) से यह अनिश्चितता (कुक्कुच्चा) दूर नहीं कर लेता कि उसे कब धीमा होना चाहिए, उस समय जब उस काम (किच्चा) को धीमा किया जाना चाहिए, वह तेजी से आगे बढ़ता है (तरति) और अतिक्रमण करता है। Taraṇiye ca dandhaye का अर्थ है: गृहस्थ (गहट्ठ) के लिए, जो शरण (शरण) और नैतिक उपदेशों (शील) के पालन (सन्दन) में लगा हुआ है; भिक्षुओं के लिए, बड़े और छोटे कर्तव्यों (वत्तपतिवत्त) के पालन और शांत संयम और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (समथ विपस्सना) में लगे रहने के दौरान, जब कोई काम तेजी से होना चाहिए, तो वह आ जाता है। यदि वह उस काम में उचित रूप से संलग्न हुए बिना (किच्चा) धीरे चलता है, यह कहते हुए कि "मैं इसे अगले महीने (आतमनमास) या पखवाड़े (पक्खा) में करूँगा", तो समय उस काम को किए बिना ही बीत जाएगा। Ayonisaṃvidhānena का अर्थ है: बिना किसी संसाधन के व्यवस्था करने और संसाधन के साथ व्यवस्था न होने के कारण, जब उसे धीरे चलना चाहिए तब वह तेजी से चलता है और जब उसे तेजी से चलना चाहिए

तब वह धीरे चलता है; balo का अर्थ है अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति; dukkham मतलब: वह वर्तमान में और भविष्य में भी अपनी हानि (अनत्था) की स्थिति में पहुँच जाता है।

तस्सत्था का अर्थ है: ऐसे व्यक्ति के तात्कालिक वर्तमान (दित्तधम्मिका) आदि लाभों का वर्गीकरण, जो उस मूर्ख के अनुरूप व्यवहार करता है; कालापक्खे व चन्दिमा का अर्थ है: कृष्ण पक्ष के चंद्रमा के समान; परिहायन्ती का अर्थ है: वे दिन-प्रतिदिन समाप्त और पूर्ण होते जाते हैं। आयस्क्यं का अर्थ है: वह अवस्था जिसमें बुद्धिमानों द्वारा उसकी इस प्रकार निंदा (गरहितब्बा) की जानी चाहिए: “अमुक व्यक्ति में श्रद्धा (सद्धा) नहीं है, वह प्रसन्न करने वाली श्रद्धा (पसन्ना) से रहित है, आलसी (कुसीत) है और हीनवी*** का कम परिश्रम करता है”, इत्यादि; पप्पति का अर्थ है: वह अच्छे मित्रों का विरोधी बन जाता है जो उसे सलाह देते हैं, “अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित करो; इस प्रकार व्यवहार मत करो,” लेकिन सलाह को इस हद तक न मानने के कारण उसके मित्र कहने लगते हैं: “हमें अब उससे बात नहीं करनी चाहिए।”

शेष दो श्लोकों का अर्थ ऊपर कही गई बात के विपरीत समझा जाना चाहिए। हालाँकि, यहाँ कुछ विद्वानों ने "ताराति दंडये (वह वहाँ तेज़ी से चलता है जहाँ उसे धीरे चलना चाहिए)" शब्दों के लाभ के साथ विकसित मन की प्रशंसा और निंदा को उजागर किया है, जो (उनका दृष्टिकोण) बाद के (दो) श्लोकों में (अच्छी तरह) फिट बैठता है। वास्तव में, पूर्व के दो श्लोक थेरा द्वारा वज्जिपुत्तक भिक्षुओं के संदर्भ में कहे गए हैं, जिन्हें संघ द्वारा दस क्षमादानों (वत्थु) का ज्ञान देकर (दीपेत्वा) नीचे गिरा दिया गया था, क्योंकि उस व्यक्ति ने अपनी स्वाभाविक (पकता) अनिश्चितता (कुक्कुच्च) के कारण भिक्षु बनने के समय से ही अपने उन कर्तव्यों का पालन नहीं किया था जो उसे भक्तिपूर्वक करने चाहिए थे; दूसरी ओर, बाद के दो छंदों में, यह कहा गया है कि जब उनके जैसा एक भिक्षु अपने लाभों को प्राप्त कर चुका था, जब उसने अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित कर लिया था।

थेरा संभूत के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(193):राहुला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (193) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
193. राहुल
हमारे बोधिसत्व के माध्यम से इस बुद्ध युग में राजकुमारी यशोदरा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका पालन-पोषण कुलीन वर्ग के एक महान सेवकों के साथ हुआ। उनके भिक्षु संघ में प्रवेश करने की परिस्थितियाँ खंडक में दर्ज हैं। [1] और उन्होंने, अनेक सूत्र अंशों में अनुग्रहपूर्ण शब्दों द्वारा अपने ज्ञान को परिपक्व करते हुए, [2] अंतर्दृष्टि प्राप्त की, और इस प्रकार अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। उस पर, अपनी विजय पर विचार करते हुए, उन्होंने अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की :

[295] उभयनेवा [35] संपन्नो राहुलभद्दो' ती माṃ विदु॥
यांचामहि पुत्तो बुद्धस्स यां च धम्मेसु चक्खुमा॥ ॥

[296] यं च आसव खींणा यं नत्थि पुनब्भवो॥
अराहा दक्खिनीयोमहि तेविज्जो अमातद्दसो॥ ॥

[297] कामान्ध जलापच्चन्न तन्चाचदनाचादिता॥
पमत्तबन्धुना बधा मच्छव कुमिनामुखे॥ ॥

[298] तां कामां अहमुज्जत्वा चेत्वा मारस्सा बंधना॥
समुळान् तंहमब्बुयः सतीभूतोस्मि निब्बुतोऽ ति.॥ ॥

[295] मैं सौभाग्य से दुगुना धन्य हूँ, जिसे मेरे मित्र
'भाग्यशाली राहुल' कहते हैं। क्योंकि मैं
बुद्ध का पुत्र और सत्यों का द्रष्टा हूँ; [296] हाँ, और मादक पदार्थ (विकृतियाँ/इच्छाएँ) मुझसे दूर हो गए हैं;
हाँ, और अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा।
मैं अर्हंत हूँ, योग्य पुरुषों की भेंट;
मेरी समझ अमृतमय चीजों में 'त्रिगुणी' है।

[297] मनुष्य अपनी इंद्रिय-इच्छाओं से अंधे हो गए हैं,
जो उन पर जाल की तरह फैली हुई हैं; वे
लालसा के आवरण से ढके हुए हैं; अपनी लापरवाह आदतों के कारण
वे कीप के मुंह में फंसी मछली की तरह हैं, [3] [298] परन्तु मैंने, उस इंद्रिय-आवाज को त्यागकर,
शैतान के प्रलोभन के बंधन काट दिए हैं।
लालसा को उसकी जड़ से ही नष्ट करके;
मैं अब शांत हो गया हूँ; बुखार की आग बुझ गई है। [4]

[1] विनय ग्रंथ, i. 208 f.

[2] जैसे, मज्झिमा, संख्या 62; 147; सयुत्ता, iii. 135 इत्यादि।

[3] कुमिनामुखे। कुमिना, पासिब्बाका द्वारा वर्णित, एक फ़नल के आकार का जाल जो संभवतः हमारे वीयर-ट्रैप जैसा दिखता है।

[4] निब्बुतो। यह सिस्टर्स, पृष्ठ 19 में इस पंक्ति को दिए गए अनुवाद की तुलना में बौद्ध विचार के अधिक निकट है ; देखें एन. 4.

4.8 [193] राहुलथेरा के श्लोक पर टीका
उभयेन से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा राहुल का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्ध की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान पद्ममत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु को एक भिक्षु को अच्छे आचरण (सिक्खा) के प्रति सजग भिक्षुओं में अग्रणी स्थान पर रखते हुए देखा, स्वयं भी उस पद की आकांक्षा की, मठ की सफाई और सुशोभन (विज्जोतना) आदि जैसे अनेक पुण्य कर्म किए और संकल्प लिया। वहाँ से देह त्यागने के बाद, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे हमारी बोधिसत्व पर आश्रित रानी यशोदरा के गर्भ में पुनर्जन्म लिए; राहुल नाम प्राप्त करने के बाद, वे अपने विशाल शाही दल, जिसमें श्रेष्ठ योद्धा (क्षत्रिय) शामिल थे, के साथ पले-बढ़े; उनके त्याग का विचार विनय पिटक के खंड (खंडक) में वर्णित है। गुरु की उपस्थिति में, अनेक सूत्रों के माध्यम से, वे ज्ञान में सर्वांगीण परिपक्व हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में तत्पर रहे और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

सात मंजिला महल में, मैंने (प्रस्ताव दिया)

दर्पण और ऐसे ऋषि तक फैला हुआ है

हे परम पूज्य पद्ममुत्तरा (बुद्ध), जो अपने पिताओं में सबसे बड़े हैं

दुनिया।

महान ऋषि, हजार से घिरे हुए

रोग-मुक्त अरहंत, मनुष्यों के शासक और

पुरुषों में श्रेष्ठ बैल उनके सुगंधित कक्ष में आया।

सुगंधित कक्ष को जगमगाता हुआ बनाते हुए,

दिव्य प्राणियों में भी दिव्य, बैल

मनुष्य के बीच, गुरु, जिसने स्वयं को स्थापित किया था

भिक्षुओं के बीच धर्मगुरुओं द्वारा इन छंदों का उच्चारण किया जाता था।

मैं उनके बारे में घोषणा करूंगा और बोलूंगा।

जिसने मुझे एक शानदार चमकीला उपहार दिया

बिस्तर (सेय्या) अच्छी तरह से बिछा हुआ, जैसे कि

दर्पण; मेरी बात ध्यान से सुनो, जब मैं बोल रहा हूँ।

उसके लिए महल बनेंगे

सोने से निर्मित, चांदी से तैयार किया गया।

और फिर बेरिल से बना हुआ, जो भी हो।

उसके दिल के करीब रहो।

चौंसठ बार वह दिव्य राजा होगा।

और वे दिव्य संप्रभुता का प्रयोग करेंगे।

बिना किसी अंतराल के वह विश्व-

राजा हजार बार।

इक्कीस युगों (कप्पा) के बाद, वह

राजसी योद्धा का विश्व राजा बनो

(खटिया) वंश, नाम, विमला, होने के बाद

पृथ्वी पर विजय प्राप्त की और चार सीमाओं में समाप्त हुई

(कटुरांटो).

उनके नगर का नाम रेणुवती होगा।

ईंटों से अच्छी तरह से बनाया गया है; इसकी लंबाई होगी

तीन सौ संयुक्त (समायुत) के साथ

चार 'शॉर्ट' (रस्सा)।

दिव्य वास्तुकार द्वारा निर्मित उनका महल

(विस्साकम्मा) सुदस्सना नाम धारण करेगी।

उत्कृष्ट शिखर-छत के साथ पूर्ण

घरों को सात प्रकार की चीजों से सजाया गया है।

रत्न।

वह शहर सात प्रकार के जीवों से भरा होगा।

ध्वनियों का और अच्छी तरह से बसा हुआ (समाकुल)

ताबीज़ धारण करने वालों (विज्जाधर) द्वारा और

यह स्वर्गीय नगर के समान हो जाएगा

सुदसना का।

इसकी चमकती हुई प्रदर्शनी (निग-अच्चता)

वैभव बढ़ते हुए के समान होगा

सूर्य, यह हमेशा चमकता रहेगा आठ

चारों ओर लीग (येजुना) हैं।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

संसार में गुरु अवश्य होंगे।

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, की संतान

ओक्काका का परिवार।

तुसिता से देहांत होने के बाद, वह,

अपने उज्ज्वल आधार से प्रेरित होकर

(सुक्कमूला) का पुत्र बनेगा

हे भगवान!

यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे, तो वह

विश्व-राजा बनो। ऐसी कोई बात।

कि वह घर के सुख का आनंद उठाएगा।

जीवन बेतरतीब हो जाएगा। सब ठीक है।

आचरण के मामले में, वह अपने घर से बाहर आएगा और

भिक्षु बनो; वह एक प्रसिद्ध भिक्षु बनेगा

राहुल नाम से।

नीली जय चिड़िया की तरह दिखने वाली मादा चिड़िया

उसके अंडों के बाद, वह याक (चामारी) से मिलती-जुलती है।

उसकी पूंछ, महान ऋषि, ज्ञान में परिपक्व

और नैतिक उपदेशों से संपन्न, देखभाल की गई

मुझे।

उनके दसवें (धर्म) को समझकर,

मैंने उस व्यवस्था में बड़े आनंद से निवास किया।

सभी खामियों को पूरी तरह से समझ लेने के बाद, मैं

संक्रमण से मुक्त रहें।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी।... बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्म (पटिपत्ति) पर विचार करने के बाद अपने अरहंत पद को प्रकट करने के लिए तीन श्लोक कहे।

295. "दोनों प्रकार के गुणों से संपन्न"

मेरे साथी भिक्षुओं, समृद्धि के लिए मुझे जानते हैं।

क्योंकि मैं राहुलबद्ध हूं, इसलिए मैं उनका पुत्र हूं।

बुद्ध, और चूंकि मेरे पास अंतर्दृष्टि है

उनके सत्य (धम्म) के उपदेशों में।

296. “चूंकि मेरे घाव नष्ट हो गए थे,

क्योंकि अब किसी नए अस्तित्व का अस्तित्व नहीं है,

मैं समर्पित प्रयासों का एक योग्य प्राप्तकर्ता हूँ

दान, तिगुने सुपर से संपन्न-

ज्ञान (तेविज्जो), और मैं ही हूँ

अमर अवस्था का द्रष्टा (अमाता-)

ddaso).

297. “इंद्रिय सुखों से अंधा होकर,

पूरी तरह से उलझा हुआ (पचन्ना)।

जाल (जाला), पर्दे से घिरा हुआ

(चंदन) लालसा (तण्हा) और बंधे हुए

मारा (पनात्तबन्धु) द्वारा, जीवित प्राणी

प्रवेश द्वार (मुख) पर मछलियों के समान दिखते हैं

मछली पकड़ने के जाल (कुमिना) का।

298. “उस कामुक सुख को त्यागकर

और बंधन तोड़ दो

मारा, और साथ ही बाहर निकाल लिया

इसकी मूल जड़ के साथ लालसा (तण्हा), मैं

वे कूल बन गए हैं और उस रास्ते पर पहुंच गए हैं।

parinibbāna (nibbuto).

वहाँ, ubhayen'eva sampanno का अर्थ है: जन्म की समृद्धि और उचित कर्मों (paṭipatti) की समृद्धि, दोनों प्रकार की समृद्धि से संपन्न। Rāhulabhaddo ti maṃ vīdū का अर्थ है: मेरे साथी-पवित्र जीवन के नेता मुझे “Rāhulabhadda” (शुभ राहुल) के रूप में भली-भांति जानते हैं।” वास्तव में, उनके जन्म की खबर (sāsenā) सुनकर, बोधिसत्व की प्रतिक्रिया थी “Rāhu jāto, bandhanaṃ

jātaṃ (राहु का जन्म हुआ है, बंधन उत्पन्न हुआ है);” इस कथन के संदर्भ में महान राजा सुद्धोदन ने “राहुल” नाम धारण किया। वहीं से आरंभ करते हुए, अपने पिता द्वारा कहे गए तरीके (pariyāya) को भी अपनाते हुए उन्होंने कहा; “Rāhulabhaddo 'ti maṃvidū.” भद्धो का अर्थ है: यह स्तुति का शब्द (पसमसा) है।

अब समृद्धि के दोनों रूपों को दर्शाने के लिए, "येन च'म्ही" कथन का प्रयोग किया गया है। यहाँ यं का अर्थ है: जब से (यस्मा)। च शब्द का अर्थ है संग्रह (समुच्चय)। अम्ही पुत्तो बुद्धुस्स का अर्थ है: मैं आत्म-जागृत बुद्ध का पुत्र हूँ। धम्मेसु का अर्थ है: सांसारिक और पारलौकिक मामलों (धम्म) में; धम्म के चार आर्य सत्यों में; इस प्रकार इसका अर्थ है। चक्खुमा का अर्थ है: मैं सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान के नेत्र से प्राप्त दृष्टि का स्वामी हूँ; इस प्रकार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

फिर, अपने भीतर समृद्धि के दोनों रूपों को अनेक अन्य तरीकों से प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने “Yañ ca me āsavā khīṇā” से शुरू होने वाला श्लोक बोला। यहाँ, dakkhiṇeyyo का अर्थ है: समर्पित दान के योग्य (dakkhiṇāraho)। Amataddaso का अर्थ है: निर्वाण का द्रष्टा (dassāvī)। शेष भाग आसानी से समझ में आ जाता है।

अब, ज्ञान (विज्जा) और मुक्ति (विमुक्ति) की समृद्धि के अभाव में, असंख्य प्राणी बार-बार जन्म-जन्म के चक्र में उसी प्रकार घूमते रहते हैं जैसे मछली पकड़ने के जाल (कुमीना) में बंधी मछलियाँ। अपने भीतर इन दोनों प्रकार की समृद्धि को दर्शाने के लिए उन्होंने “कामंधा” से शुरू होने वाले दो श्लोक कहे। यहाँ कामंधा का अर्थ है: वे जो इंद्रिय सुखों में या उनके कारण अंधे हो गए हैं; वे जो वास्तविकता (वत्थु) के ऐसे सुखों में निहित हानि को न देख पाने के कारण अंधे हो गए हैं, जैसे कि रूप (सृप) आदि, और “छन्दो रागो (इच्छा)” जैसे विकृत इंद्रिय सुखों के कारण अंधे हो गए हैं। जालाप्पच्चन्ना का अर्थ है: 'तीनों अस्तित्वों पर फैले हुए आसक्ति (विसात्तिक) जाल से किसी भी प्रकार से ढका और लिपटा हुआ (पालिगुंठित)।' तन्हाचदनाचादिता का अर्थ है: लालसा (तन्हा) के रूप में माने जाने वाले आवरण से पूरी तरह से ढका, अवरुद्ध और उचित रूप से बंद, जो उसी का परिणाम है। पमत्त-बंधुना बद्धा, मच्छा व कुमुना मुखे का अर्थ है: ये जीव, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों के बंधन से बंधे हुए हैं, जो लापरवाही के सगे मार के बंधन का हिस्सा हैं, मछली पकड़ने के जाल (कुमिना) के मुख (मुख) पर मछली पकड़ने वाले बंधन (बंध) के थैले (पसिब्बक) के प्रवेश द्वार पर बंधी मछलियों के समान हैं; इसके बाद वे उस जाल से बाहर नहीं निकल पाते; वे जाल (बंधन) के अंदर ही रह जाते हैं।

तं का अर्थ है: उस रूप जैसा (तथारूपं); कामं का अर्थ है: जो बंधन बन गया था (बंधनभूतं); उज्जित्वा का अर्थ है: प्रारंभिक (पुब्बभाग) उचित कर्म (पटिपत्ति) द्वारा त्याग दिया गया (पहाय); मारस्स बंधनं चेत्वा का अर्थ है: श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) के छुरे (सत्थ) द्वारा मार के दुराचार (किलेसा) को पूरी तरह से काट कर रख दिया; समूलं का अर्थ है: उस अज्ञान (अविज्जा) के रूप में मानी जाने वाली जड़ के साथ; अब्बुयह का अर्थ है: कामुक सुखों (कामतण्हा) की लालसा को उखाड़ फेंका (उद्धरित्वा) इत्यादि। सीतिभूतो का अर्थ है, भ्रष्टता की जलन और गर्मी के अभाव के कारण शीतल हो जाना; निब्बुतो का अर्थ है: अस्तित्व के अवशिष्ट आधार (सौपादिसस) में निहित निर्वाण के तत्व के माध्यम से निर्वाण प्राप्त करना; इस प्रकार, यही अर्थ है।

थेरा राहुल के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

राहुल

राहुल राजकुमार सिद्धार्थ और राजकुमारी यशोदरा के इकलौते पुत्र थे। उनके दादा ने उनका नाम राहुल रखा था क्योंकि पुत्र के जन्म की खबर सुनकर राजकुमार सिद्धार्थ के मुंह से निकला पहला शब्द राहु था, जिसका अर्थ है बाधा। उनके वैराग्य में एक बाधा उत्पन्न हो गई थी। जिस दिन राजकुमार राहुल का जन्म हुआ, उसी दिन राजकुमार सिद्धार्थ ने महान वैराग्य का निश्चय किया। भारी मन से राजकुमार

सिद्धार्थ ने अपनी प्रिय पत्नी और नवजात पुत्र को छोड़कर मानव जाति और देवताओं के कल्याण के लिए दुखों को समाप्त करने का मार्ग खोज निकाला।

राजकुमार राहुल ने अपने पिता को पहली बार सात वर्ष की आयु में देखा। राजकुमारी यशोधरा ने महल की बालकनी से राहुल को भिक्षुओं के साथ भव्य बुद्ध प्रतिमा दिखाई। फिर उन्होंने "पुरुषों का सिंह" नामक सूत्र में उनके पिता, बुद्ध का वर्णन किया। बुद्ध की प्रशंसा और वर्णन करने के बाद, राजकुमारी ने अपने पुत्र से अपने पिता के पास जाकर अपनी विरासत मांगने का अनुरोध किया।

निर्देशानुसार, राहुल अपने पिता के पास गए और अपनी विरासत माँगी। फिर उन्होंने अपने पिता की ओर देखकर कहा, "हे प्रभु, आपकी परछाई भी मुझे प्रिय है।" इसके बाद राहुल बुद्ध के साथ निग्रोधरमा मठ गए जहाँ वे निवास कर रहे थे। बुद्ध ने सोचा, "छोटा राहुल अपनी विरासत माँग रहा है। परन्तु सांसारिक धन-संपत्ति दुःख का कारण है। मैं उसे संसार का सबसे अनमोल खजाना दूँगा। मैं उसे धम्म दूँगा।" उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य पूज्य सारिपुत्त को बुलाया और उनसे छोटे राहुल को दीक्षा देने का अनुरोध किया।

अपने प्रिय पोते के दीक्षा संस्कार के बारे में सुनकर राजा सुद्धोदन अत्यंत दुखी हुए। उन्होंने कहा, "जब भगवान ने संसार त्यागा, तब मुझे बहुत पीड़ा हुई। नंदा को संसार त्यागते देखना मेरे लिए अत्यंत दुखदायी था। परन्तु जब नन्हा राहुल संन्यास लेता है, तो और भी अधिक पीड़ा होती है। पिता का पुत्र के प्रति प्रेम गहरा होता है, जो शरीर, मांस, नस, हड्डी और मज्जा तक को भेद देता है। हे प्रभु, कृपा कीजिए कि श्रेष्ठ पुरुष अपने माता-पिता की अनुमति के बिना पुत्रों को दीक्षा न दें।" बुद्ध ने सहर्ष इस निवेदन को स्वीकार कर लिया और इसे श्रेष्ठ संप्रदाय का एक नियम (विनय) बना दिया।

सारिपुत्त और मोग्गलाना छोटे राहुल के गुरु थे। सारिपुत्त ने राहुल को धम्म का ज्ञान दिया, जबकि मोग्गलाना ने उनके आचरण पर ध्यान केंद्रित किया। यद्यपि राहुल केवल सात वर्ष की आयु में ही भिक्षु बने, फिर भी वे शिक्षा ग्रहण करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे और असाधारण रूप से सुसंस्कृत और आज्ञाकारी थे। प्रत्येक सुबह वे उठकर मुट्ठी भर रेत लेकर हवा में उछालते हुए कहते, "आज मुझे अपने गुरुओं से इन रेत के कणों के समान ही सलाह और शिक्षा प्राप्त हो।"

राहुल के दीक्षा लेने के कुछ ही समय बाद बुद्ध ने उन्हें सत्य बोलने का महत्व सिखाया। यह प्रवचन राहुलवाद सूत्र के नाम से जाना जाता है। बुद्ध ने सत्य को सभी सद्गुणों में सर्वोच्च स्थान दिया। सत्य के साधकों (जिनका लक्ष्य निर्वाण है) को सत्य के नियम का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने इसे एक छोटे बच्चे को भी समझ आने वाले तरीके से समझाने के लिए निम्नलिखित उदाहरण का प्रयोग किया।

राहुल ने अभी-अभी भगवान के चरण धोए थे और उनके लिए आसन तैयार किया था। बुद्ध ने उस पात्र को, जिसमें तल में थोड़ा सा पानी बचा था, राहुल को दिखाते हुए कहा: "राहुल, क्या तुम इस पात्र में बचे हुए थोड़े से पानी को देख रहे हो? इसी प्रकार, राहुल, झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का चरित्र भी तुच्छ (कम महत्व का) होता है।"

तब बुद्ध ने उस थोड़े से पानी को त्याग दिया और कहा, "राहुल, क्या तुम देखते हो कि मैंने इस पात्र में से उस थोड़े से पानी को कैसे त्याग दिया? इसी प्रकार, झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का स्वभाव भी ऐसा ही होता है (उन्हें त्याग दिया जाता है और अनदेखा कर दिया जाता है)।"

फिर उसने पानी से भरे बर्तन को उलट दिया और कहा, "राहुला, क्या तुम देखते हो कि मैं इस बर्तन को कितनी आसानी से उलट देता हूँ? इसी प्रकार, झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का स्वभाव भी आसानी से उलट जाने वाला (आसानी से प्रभावित और परिवर्तित होने वाला) होता है।"

अंत में, बुद्ध ने घड़े को सीधा खड़ा किया, उसे राहुल को दिखाया और कहा, "राहुल, क्या तुम इस खाली बर्तन को देखते हो जिसमें पानी बिल्कुल नहीं है? इसी प्रकार झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का स्वभाव भी खाली और खोखला होता है।"

बुद्ध ने कहा कि सत्य का उपदेश सभी उपदेशों में सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि झूठ बोलने वाला व्यक्ति आसानी से अन्य उपदेशों का उल्लंघन कर देता है और झूठ बोलकर अपने दुराचार को छुपाने की कोशिश करता है। जो व्यक्ति हमेशा सच बोलता है, वह कभी ऐसा कार्य नहीं करेगा जिसे स्वीकार करने में उसे बाद में शर्मिंदगी हो।

बुद्ध ने राहुल को यह भी निर्देश दिया कि वह कोई भी कार्य करने से पहले चिंतन-मनन करे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उसके कार्य नैतिक हों और दूसरों और स्वयं के कल्याण के लिए अनुकूल हों, और इसके लिए उन्होंने ऐसे उदाहरणों और भाषा का प्रयोग किया जो एक छोटा बच्चा भी समझ सके।

बुद्ध ने राहुल को दर्पण दिखाते हुए पूछा कि दर्पण का उपयोग किस लिए होता है। राहुल ने उत्तर दिया कि यह प्रतिबिंब के लिए होता है। तब बुद्ध ने कहा, “इसी प्रकार, राहुल, कुछ भी बोलने या करने से पहले विचार करो। सोचो कि क्या यह बात या कार्य दूसरों और स्वयं के लिए लाभकारी होगा। यदि विचार करने पर तुम्हें लगे कि यह दूसरों और स्वयं के लिए लाभकारी नहीं है, तो इसे बोलने और करने से बचो। यदि विचार करने पर तुम्हें लगे कि यह तुम्हारे और दूसरों के लिए लाभकारी है, कि ऐसा कार्य किसी को हानि नहीं पहुँचाएगा, बल्कि दूसरों के लिए लाभकारी है, तो ही यह कार्य करो। फिर तुम्हें यह कार्य बार-बार करना चाहिए।”

इस सरल लेकिन आसानी से समझ में आने वाले उदाहरण के माध्यम से बुद्ध ने छोटे राहुल को सचेतनता और कर्म से पहले मन के अनुशासन से परिचित कराया ताकि उसके विचार, वाणी और कर्म नैतिक और स्वास्थ्यप्रद हों।

राहुल अपनी आज्ञाकारिता और सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। बुद्ध के पुत्र होने के कारण और अपने मनभावन स्वभाव और कम उम्र के कारण वे सभी के प्रिय थे। जब राहुल अठारह वर्ष के हुए, तब बुद्ध ने उन्हें इंद्रिय-इच्छाओं पर गहन प्रवचन दिया। उन्होंने राहुल को, जो अपने सुंदर रूप से प्रसन्न थे, अभिमान के खतरों को समझने में मदद की।

बुद्ध, राहुल के साथ भिक्षा मांग रहे थे। वे दोनों अत्यंत सुंदर दिख रहे थे, मानो कोई राजसी हाथी और उसका बच्चा, या कोई सुंदर हंस अपने बच्चे के साथ हो। बुद्ध के अत्यंत सुंदर रूप को देखकर राहुल ने सोचा, "मैं भी अपने माता-पिता, परम पूज्य बुद्ध के समान हूँ। बुद्ध का रूप सुंदर है और मेरा भी उनके समान है।"

बुद्ध ने तुरंत राहुल के मन की बात जान ली और कहा, "राहुल, जो भी रूप है, उसे इस प्रकार देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है; यह मैं नहीं हूँ; यह मेरी आत्मा नहीं है।' तब राहुल ने पूछा कि क्या केवल रूप को ही इस प्रकार देखना चाहिए? तब बुद्ध ने कहा कि सभी पाँचों तत्वों को इसी प्रकार देखना चाहिए। इस प्रकार बुद्ध ने राहुल को अनात्म (स्थायी आत्मा का अभाव) की अत्यंत गहन और कठिन अवधारणा से परिचित कराया।"

तब राहुल ने भिक्षा मांगने का विकल्प नहीं चुना और इसके बजाय वापस जाकर बुद्ध के वचनों पर ध्यान लगाकर उनके सत्य को समझने और आत्मसात करने का प्रयास किया। कुछ समय बाद, चूला राहुलवाद सूत्र को सुनकर, उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया।

राहुल बुद्ध, सारिपुत्त और मोग्गलाना से पहले ही परलोक विदा हो गए थे। बुद्ध ने घोषणा की कि राहुल अपने उच्च अनुशासन और आज्ञाकारिता के कारण भिक्षुओं में श्रेष्ठ थे। सात वर्ष की कम उम्र में ही संघ में प्रवेश करने वाले राहुल अपनी आज्ञाकारिता और मनभावन स्वभाव के कारण संघ के युवा सदस्यों के लिए आदर्श थे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (194): कैंडाना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (194) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
194. कनाडा
बुद्ध युग में सावत्थी में एक समृद्ध कुल में पुनर्जन्म लेकर चंदन नाम से जन्मे उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया, जब तक कि उन्होंने [184] भगवान (बुद्ध) को धम्म का उपदेश देते हुए नहीं सुना; और उसी से वे धारा-प्रवर्तक बन गए। [1] जब उनके एक पुत्र का जन्म हुआ, तो उन्होंने भिक्षु बनने के लिए अपना घर छोड़ दिया और अंतर्दृष्टि साधना करते हुए वन में रहने लगे। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के लिए सावत्थी आकर वे एक श्मशान में ठहरे। उनकी पत्नी ने उनके आने की सूचना सुनकर स्वयं को सजाया-संवारा और अपने बच्चे और कई परिचारिकाओं को लेकर उनके पास गईं, यह सोचकर कि अपने आकर्षण से वे उन्हें भिक्षु बनने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। दूर से उन्हें आते देख उन्होंने सोचा: 'अब मैं उनकी पहुँच से बाहर हो जाऊँगा!' और उन्होंने ऐसी अंतर्दृष्टि प्राप्त की कि उन्हें छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त हो गई। इसके बाद वे ऊपर उठे और उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया, और उन्हें शरण और उपदेशों में स्थापित किया। फिर वे अपने पूर्व स्थान पर लौट आए। और जब उनके भिक्षु साथियों ने उनसे पूछा, 'हे भिक्षु, आप कितने शांत दिख रहे हैं; आपने किन सत्यों को जाना है?' [2] तो उन्होंने अपनी उपलब्धि के बारे में बताया और इन श्लोकों में ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की गवाही दी :

[299] जटारूपेण पच्चन्ना दासिगंपुरक्खता॥
अनेकेन पुत्तमादाय भार्या माऽ उपागामी॥ ॥

[300] तां च दिवना अयान्तिṃ सकपुत्तस्सा मातरौ॥

अलंकतं सुवासनं मैक्कुपासाऽव ओङ्गिटाṃ.॥ ॥

[301] ततो मे मनसिकारो योनिसो उदपज्जथा॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[302] ततो चित्ताṃ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मतṃ॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससनन्ति॥ ॥

[299] सुनहरे वस्त्रों से सजी, दासियों की एक टोली के साथ
, और अपनी कमर पर बच्चे को लिए
, मेरी पत्नी मेरे पास आई।

[300] मैंने उसके आने का संकेत दिया, मेरे बच्चे की माँ,
बहादुरी से भरी हुई, जैसे मारा (मृत्युदेव/शैतान) द्वारा बिछाया गया जाल।

[301]   इसी कारण मेरे मन में गहरा विचार उत्पन्न हुआ: [3] तथ्य और कारण पर ध्यान।
सारी पीड़ा स्पष्ट थी;
मन में अरुचि और उदासीनता थी;

[302] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया।
हे देखो, धम्म के मार्ग पर चलने वाले इस सुशोभित भिक्षु का क्रम!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध ने मुझे जो कुछ सिखाया है, वह सब कर लिया है।

[1] या सोतापना, निर्वाण की पहली समाधि।

संत जीवनी। ओईडी: वह साहित्य जो संतों के जीवन और किंवदंतियों से संबंधित है।

[2] Kacci tayā saccāni paṭividdhānīti? मैं तुलनात्मक संत जीवनी के छात्रों के ध्यान में इस महान प्रश्न की अनुशंसा करता हूँ।

[3] श्लोक 269, 270 को दोहराते हुए।

4.9 [194] चंदनथेरा के श्लोक पर टिप्पणी

जतरूपेण से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा चंदन का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले बुद्ध रहित लोक में वृक्ष देवता के रूप में पुनर्जन्म लिया; संयोगवश उन्होंने पहाड़ियों में निवास कर रहे एक मौन बुद्ध को देखा, वे श्रद्धा से भर गए और कुटज औषधीय पुष्पों से उन्हें आदरपूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के जन्मों के चक्र में भटकते रहे और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सावत्थी में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिए; संदना नाम प्राप्त करके, वयस्क होने पर वे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, जब गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनकर वे सोतापन्न बन गए। पुत्र प्राप्ति के बाद, उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग दिया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के लिए मानसिक साधना (कम्मट्ठाना) एकत्रित की और वन में निवास करने लगे। गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए वे सावत्थी पहुँचे और श्मशान में रहने लगे। उनके आगमन की सूचना पाकर, उनकी पूर्व पत्नी, जो सज-धज कर आई थीं, अपने छोटे पुत्र को साथ लेकर अपने बड़े दल के साथ थेरा के पास गईं और मन ही मन कहने लगीं, "मैं अपने स्त्रीत्व के प्रलोभन (पालोभेत्वा) से उसे निर्वस्त्र कर दूँगी।" दूर से ही उन्हें आते देख, थेरा ने अपने द्वारा आरंभ की गई विपस्सना को ध्यानपूर्वक विकसित करने में लीन होकर मन ही मन कहा, "अब मैं उसके विषय से परे हो जाऊँगा" और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बनूँगा। इसी प्रकार, अपदान में कहा गया है।

"हिमावंता से कुछ ही दूरी पर, एक था

वासला नामक एक पहाड़ी; एक मौन बुद्ध,

सुदस्सना नामक एक व्यक्ति पहाड़ी के अंदर रहता था।

हिमावंता को पकड़ लेने के बाद

फूल, मैं आकाश में ऊपर गया जहाँ मैं मिला

स्वयंजागृत मौन बुद्ध,

जो रोगमुक्त थे और बाढ़ पार कर चुके थे।

कुटजा औषधीय फूल का सेवन

मैंने अपने हाथों को आपस में जोड़कर रखा।

मैंने अपना सिर झुकाया और उसे भेंट अर्पित की।

मौन बुद्ध, आत्मनिर्भर

महान ऋषि।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

कि मैंने अपनी विशेष श्रद्धा बनाई

मौन बुद्ध को अर्पित; मैं करता हूँ

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

मौन बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराइयाँ जलकर राख हो चुकी थीं...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बनने के बाद, थेरा आकाश में खड़े होकर उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, उन्हें शरण (शरण) और नैतिक उपदेशों (शील) में स्थापित किया, और स्वयं उसी स्थान पर लौट गए जहाँ वे निवास करते थे। जब उनके साथी भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "हे मित्र! आपकी इंद्रियाँ (इन्द्रियानि) अत्यंत प्रसन्न (विप्पसन्नानि) हैं; ऐसा कैसे? क्या आपने (महान) सत्यों को उचित रूप से आत्मसात (पटिविद्धानि) किया है?", तो उन्होंने अपने स्वयं के उचित कर्मों के वर्णन के लिए इन श्लोकों के माध्यम से अपने अरहंत होने का खुलासा किया।

299. “सोने से सुशोभित (संचन्ना), घिरा हुआ

दासी महिलाओं की भीड़ द्वारा, अपने बेटे को गोद में लिए हुए।

अपनी कमर (अंका) पर, (मेरी बूढ़ी) पत्नी पास आई

मुझे।

300. “उसे देखकर, मेरी अपनी माँ

पुत्र, सजे-धजे और सुसज्जित होकर आ रहा है

(आयन्ति) द्वारा बिछाए गए जाल के समान

मृत्यु (मैकू)।

301. “इसके परिणामस्वरूप जो उत्पन्न हुआ, उससे

बुद्धिमान (योनिसो) जागरूकता का निर्माण;

हानि स्पष्ट हो गई (pāturahu)

और घृणा की भावना भी काफी प्रबल रही।

302. “परिणामस्वरूप मेरा मन मुक्त हो गया;

देखो, धम्मता का अच्छा स्वभाव

मैंने तदनुसार सत्य (धम्म) प्राप्त कर लिया है।

त्रिगुणात्मक उच्च ज्ञान (विज्जा); बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

वहाँ, जातरूपेण संचन्ना का अर्थ है: सिर तक पहुँचने वाले आभूषणों से सुशोभित शरीर, जो सभी आभूषणों से सुशोभित हो; यही अर्थ है। दासीगणपुरक्खता का अर्थ है: अपने सामने खड़ी और अपने ही दासों की भीड़ से घिरी हुई, जो अपने मूल्य के अनुरूप सजी-धजी हों; यही अर्थ है। अंकेन पुत्तमादाय का अर्थ है: अपने बेटे को गोद में लेकर मन ही मन सोच रही थी: “शायद बेटे को देखकर पिता घर पर सहज रूप से निर्भर हो जाए।”

आयंतिं का अर्थ है: आना (आगच्छन्तिं)। सकपुत्तस्स मातारं का अर्थ है: मेरे प्रिय पुत्र की माता (जननी); इस प्रकार, मेरी पूर्व पत्नी का अर्थ है। योनिसो उदपज्जत का अर्थ है: “ऐसी समृद्धि वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से क्षीण हो जाती है; वास्तव में, संस्कार (संस्कार) क्षणभंगुर, अस्थिर और सुखदायी (न अस्सासिका) नहीं होते, इसलिए इस प्रकार, सचेतनता का बुद्धिमान (योनिसो) सृजन हुआ। शेष पहले बताए गए तरीके (हेट्ठा) के अनुसार है।

थेरा चंदना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(195):धम्मिका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (195) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
195. धम्मिका
बुद्ध युग में कोसलन ब्राह्मणों (पुजारियों) के परिवार में पुनर्जन्म लेकर धम्मिका नाम से विराजमान हुए, उन्होंने जेतवन के दर्शन से आस्था प्राप्त की और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। एक ग्राम विहार (मठ) में निवास करते हुए, वे आने वाले भिक्षुओं के कर्तव्यों को लेकर अधीर और चिड़चिड़े हो गए, [1] जिसके कारण बाद वाले विहार छोड़कर चले गए। इस प्रकार वे विहार के एकमात्र स्वामी बन गए। और एक गृहस्थ ने इसकी सूचना भगवान (बुद्ध) को दी। भगवान (बुद्ध) ने धम्मिका को बुलवाया और उनसे स्पष्टीकरण मांगा। इस पर उन्होंने कहा: 'न केवल अब तुम अधीर हो; तुम पहले भी ऐसे ही थे'; और भिक्षुओं के अनुरोध पर उन्होंने धम्म के मार्ग पर वृक्ष-प्रधान प्रवचन दिया, जिसमें अतिरिक्त शिक्षा भी शामिल थी, जो इस प्रकार है:

[303] धम्मो हवे रकिखाति धम्मचारीṃ॥
धम्मो सुचिनो सुखमावहति,॥
एसानीसंसो धम्मे सुचिने॥
न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारि.॥ ॥

[304] न हि धम्मो अधम्मो च उभो समाविपकिनो,॥
अधम्मो निरायौ नेति धम्मो पपेति सुग्गतिṃ॥ ॥

[305] तस्मा हि धम्मेसु करेया 'नदाṃ॥
इति मोदामानो सुगतेन तादिना,॥
धम्मे यथा सुगतवरस्स सावका॥
नियंति धीरा सरणवरग्गगामिनो॥ ॥

[306] विप्पोहितो गंडमुलो॥
तन्हाजालो समुहतो,॥
सो खिणसांसरो न चट्ठि निञ्चणो॥
कैंडो यथा दोसिना पुन्नमासीयति॥ ॥

[303] जो धम्म का अनुसरण करता है, उसे धम्म का मार्ग भली-भांति सुरक्षित रखता है।
धम्म के मार्ग का भली-भांति अभ्यास करने वाला सुख को अपने साथ लाता है।
धम्म के मार्ग का भली-भांति अभ्यास करने वाले को यही प्रतिफल मिलता है:
जो धम्म के मार्ग का अनुसरण करता है, वह कभी दु:ख में नहीं जाता।

[304] क्योंकि सही और गलत का परिणाम एक जैसा नहीं होता:
गलत से बुरा होता है, सही से सुखद विनाश होता है।

[305] इसलिए हम जो कुछ जानते हैं, उसे [भगवान (बुद्ध)] पर लागू करें।
अतः वह इस तरह के स्वागत योग्य आशीर्वाद का आनंदपूर्वक स्वागत करे। [2] [186] स्वागत के मार्ग (धम्म) पर दृढ़ रहते हुए शिष्य आगे बढ़ते हैं,

अपने परम शरण, उनका वीरतापूर्वक अनुसरण करते हुए।

[306] इस सारे कैंसरयुक्त गांठ की जड़ उखाड़ दी, [3] लालसा का जाल पूरी तरह से टूट गया,
जीवन का नवगठित चक्र समाप्त हो गया,
और आसक्ति का कुछ भी शेष नहीं रहा,
ठीक वैसे ही जैसे पंद्रहवें दिन चंद्रमा
बिना किसी दाग के साफ आकाश में चलता है।

जब भगवान (बुद्ध) ने तीन श्लोकों का उपदेश दिया, तो धम्मिका ने उन्हें ध्यान में रखते हुए बैठे-बैठे ही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली और अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। अपने भीतर हुए इस परिवर्तन को भगवान (बुद्ध) को दिखाने के लिए, उन्होंने अंतिम श्लोक के द्वारा ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] यहाँ से उत्पन्न होने वाली छोटी-मोटी परेशानियों के अनेक स्रोतों के विवरण के लिए, विनय ग्रंथ, iii. 272 ff. देखें।

[2] अर्थात्, टीका के अनुसार, बुद्ध की शिक्षा का विशेषाधिकार। इस गाथा में श्लोक (11.5 , 6; 11, 12) का दोहरा पुनरावर्तन , जो अनियमित त्रिष्टुभ छंद में है, ऊपर संबंधित परिवर्तनों द्वारा इंगित किया गया है। वास्तव में, चारों गाथाएँ धम्मिका के अपराध से इतनी कम संबंधित हैं और छंद में इतनी भिन्नता है कि वे एक खंडित संकलन का संकेत देती हैं।

[3] 'गांठ' - पांच खंध (शरीर और मन) - 'जड़' अज्ञान है (टीका)।

4.10 [195] धम्मिकत्थेरा पर छंद पर टिप्पणी
धम्मो से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा धम्मिका का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान सिख धर्मगुरु के समय में हिरण शिकारी का काम शुरू किया; एक दिन, जब गुरु वन क्षेत्र में अपने दिव्य श्रोताओं को सत्य (धम्म) का उपदेश दे रहे थे, तो उन्होंने उपदेश के चिह्न (निमित्त) को धारण करते हुए मन ही मन कहा: "यही सत्य (धम्म) है।" उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और कोसल राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। धम्मिका नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर, उन्होंने जेतवन (मठ) के समर्पण समारोह (पटिग्गहना) में मनभावन भक्ति (पसादा) प्राप्त की, भिक्षु बन गए और एक गाँव के मठ में निवासी भिक्षु के रूप में रहते हुए, अतिथि भिक्षुओं के प्रति अपने छोटे-बड़े कर्तव्यों (वत्तवत्त) में अत्यधिक सावधानी (उज्जना) से ऊब गए (अक्खमो)। इसी कारण भिक्षुओं ने उस मठ को छोड़कर प्रस्थान किया; वे एकाकी रह गए। मठ के स्वामी, जो कि वे भक्त थे, ने इस बात को सुनकर भगवान बुद्ध को सूचित किया। गुरु ने उस भिक्षु को बुलवाया, इस बारे में पूछताछ की और जब उस भिक्षु ने बताया कि यह सच है, तो उन्होंने कहा; "यह न केवल अब धैर्यहीन (अक्खमो) है, बल्कि पहले भी यह अधीर था।" भिक्षुओं के अनुरोध पर, गुरु ने वृक्ष (रुक्खा) के बारे में सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और सर्वप्रथम (उपरी) उन्हें शिक्षा देने के लिए चार श्लोक कहे।

303. "निःसंदेह, एक उत्तम कर्म (धम्म)

कर्म करने वाले की देखभाल करता है

(धम्म)। वह कर्म (धम्म) अच्छा है।

निष्पादित (सुचिण्णो) से आनंद प्राप्त होता है।

जब कर्म (धर्म) का सही ढंग से पालन किया जाता है

(सचिण्ण) यही लाभ है;

कर्म करने वाला (धम्मचारी) ऐसा नहीं करता है

दुष्ट अस्तित्व (दुग्गती) में जाओ

304. “निःसंदेह, दोनों अच्छे कर्म (धम्म)

और बुरे कर्म (अधम) फल नहीं देते।

एक ही परिणाम; बुरा कर्म (अधम)

इससे नरक की ओर ले जाता है और अच्छे कर्मों से मुक्ति मिलती है

उत्कृष्ट जीवन की ओर अग्रसर।

305. “इसलिए वास्तव में, इच्छा होनी चाहिए

अच्छे कर्म (धम्म) करने के लिए बनाया गया।

इस प्रकार प्रसन्न होकर और बधाई प्राप्त करके

सुगत जैसे ऋषि, जो उनके शिष्य थे

उत्कृष्ट सुगाता, जो दृढ़ता से

बुद्धिमान, और जो सबसे उत्कृष्ट की ओर जाते हैं

शरण (सरणवरग्ग), जिन्होंने निवास किया है

अच्छे कर्म (धम्म) में बाहर जाओ (से)

पुनर्जन्मों के चक्र)।

306. "शेकन ही समुच्चय का मूल रहा है"

(गण्ड); तृष्णा का अभाव (तण्ह) है

अच्छी तरह से अलग कर दिया गया है; जिसने नष्ट किया है

पुनर्जन्म के चक्रों में, और कुछ भी नहीं है

(बाएं); वह दोषरहित पूर्णिमा के चंद्रमा के समान दिखता है।

वहाँ, धम्मो का अर्थ है: उत्तम कर्म (धम्म), जो सांसारिक और अलौकिक दोनों प्रकार का हो। रक्खति का अर्थ है: नरक के कष्टों से रक्षा करना; यह बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों के दुख से रक्षा करता है और बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति (वट्ट) के लिए पर्याप्त योग्यता प्राप्त करने में सहायक होता है। धम्मचारिं का अर्थ है: वह व्यक्ति जो अपने जीवन को नियमित रखता है और धार्मिक आचरण करता है (धम्मं)। सुचिण्णो का अर्थ है: कर्म के फल (कम्म) में विश्वास रखते हुए उत्कृष्ट अभ्यास करना; आदरपूर्वक (सक्कच्च) सम्मान (चित्तिकत्व) करते हुए संरक्षण (उपचितो) करना। सुखं का अर्थ है: सांसारिक और अलौकिक सुख। वहाँ, योग्य सांसारिक एक

ऐसी घटना (धम्म) है जो इंद्रिय-संबंधी क्षेत्र (कामावकार) आदि के रूप में वर्गीकृत की गई है, जो स्वयं के आनंद के अनुसार या तो इस अस्तित्व में स्वतः उत्पन्न होती है (उपपज्जे) या किसी अन्य माध्यम से (परियय)। आवहति का अर्थ है: दूसरे को संकलित करना (निप्पादेतो), यद्यपि, पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति के लिए पर्याप्त योग्यता का पालन करते हुए (वट्ट) और आचरण करते हुए (चिण्णो) परंपरा (परंपरा) को जन्म देता है, इसलिए पर्याप्त योग्यता की कमी के अभाव के कारण (उपनिस्सेय) बोलना उचित है (वट्टं वट्टति)। Esānisaṃ so dhamme suciṇṇe, na duggatiṃ gacchati dhammacāri का अर्थ है: जो व्यक्ति अच्छे कर्म करता है (dhammacārī), जब वह उन कर्मों (dhamma) का अच्छी तरह अभ्यास करता है, तो उसके फलस्वरूप (nimitta) वह बुरे कर्मों की ओर नहीं जाता; अतः, जब कर्म (dhamma) अच्छी तरह से किए जाते हैं (suciṇṇe), तो यह लाभकारी (ānisaṃsa) परिणाम (udreya) होता है; यही इसका अर्थ है।

क्योंकि अच्छे कर्म केवल उत्तम जीवन की ओर ले जाते हैं, जबकि बुरे कर्म बुरे जीवन की ओर ले जाते हैं, इसलिए उन्होंने दूसरे श्लोक की शुरुआत "न हि धम्मो" से की, ताकि यह दिखाया जा सके कि "धम्मो अधम्मो (अच्छे कर्म और बुरे कर्म) परस्पर एक समान फल देते हैं। यहाँ अधम्मो का अर्थ है: अच्छे कर्म (धम्म) और बुरे आचरण (दुच्चरित) का विपरीत। समविपाकिनो का अर्थ है: समान फल, समान फल।

तस्मा का अर्थ है: जैसा कि कहा गया है, अच्छे और बुरे कर्मों के फल में यह अंतर है, इसलिए। चंदं का अर्थ है: कर्म करने की इच्छा (कट्टुकम्यता)। इति मोदमाने सुगतेन तादिना का अर्थ है: सुगत द्वारा दिए गए इस प्रकार के विविध उपदेशों से प्रसन्न होकर, अच्छे कर्मों (धम्मेसु) में इच्छा उत्पन्न करना चाहिए, जैसा कि सुगत ने अपने सही मार्ग पर चलकर, अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करके, वांछनीय (इत्त) चीजों में ऐसे ऋषि (तादि) की अवस्था प्राप्त करके, तादि नाम से, जो कारण (हेतु) बन गए थे; यही व्याख्या है। अब तक उन्होंने जन्म-मृत्यु के चक्रों (वट्ट) का वर्णन किया, और अब उन्होंने "धम्मे स्थित" से आरंभ करते हुए जन्म-मृत्यु के चक्रों (विवट्ट) से मुक्ति का वर्णन किया। इसका अर्थ है: सावका का अर्थ है: सुगतों में श्रेष्ठ, सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध सुगत के शिष्य; धम्मे स्थित धीरा का अर्थ है: उस सुगत के दृढ़ और बुद्धिमान शिष्य, जिन्होंने धर्म में बने रहने के कारण शरण ली थी, जो शरण लेने के समान मानी जाती है; नीयन्ति का अर्थ है: वे जन्म-मृत्यु के चक्रों (वट्ट) के संपूर्ण दुःख (दुक्खा) से बच जाते हैं; अतः वास्तव में, अच्छे कर्मों (धम्मेसु) में इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए।

इस प्रकार, तीन श्लोकों के माध्यम से गुरु (थेरा) ने सत्य (धम्म) का उपदेश दिया; वे बैठे-बैठे ही उत्तरोत्तर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करते हुए अर्हतत्व प्राप्त कर चुके। अतः अपदान में यह कहा गया है।

मैं पहले हिरण का शिकारी था।

घना जंगल। मैंने निर्मल बुद्ध प्रतिमा देखी।

दिव्य प्राणियों की भीड़ से घिरा हुआ,

चारों प्रकार के सत्यों (सक्का) को प्रकट करते हुए,

अमरता के मार्ग को दर्शाते हुए।

मैंने मधुर शिक्षा (धम्म) सुनी।

सिख धर्म, जो संसार का सगे-संबंधी है।

अद्वितीय की वाणी में, के बराबर

मैंने वहां अपने मन को धार्मिक रूप से संतुष्ट कर लिया।

और मैंने अस्तित्व की कीमत पर यह पार किया,

इसे पार करना कठिन है।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मुझे यह बोध (सन्या) प्राप्त हुआ; मैं करता हूँ

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यही है

बुद्ध के प्रति मेरी धारणा का फलदायी परिणाम।

आवाज़।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी।... बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

इसी प्रकार, उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया। अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अंतिम श्लोक के माध्यम से अपनी इस उपलब्धि (अञ्ञा) का खुलासा किया ताकि वे गुरु को अपने द्वारा प्राप्त विशिष्टता (विशेषा) के बारे में सूचित कर सकें।

वहाँ, विपफोटितो का अर्थ है त्याग दिया (विधुतो); मार्ग के ज्ञान (मग्ग) के माध्यम से त्याग दिया (पटिनिसत्तो); इस प्रकार, यही अर्थ है। गण्डमूलो का अर्थ है: अज्ञान (अविज्जा); वास्तव में, वह अज्ञान बढ़ता (गण्डति) और बहता (सवती); पांच आसक्ति (उपादान) समूहों (खन्ध) का मूल कारण (अभिधान) सूजन (गड्ड) है, जो इसके फूलने (उद्धुमात), पकने (पक्का) और फूटने (पभिज्जन) के कारण होता है, जो कि उप्पदा (उप्पाद), वृद्ध होने (जरा) और अशुद्ध द्रव के रिसाव (पग्घरण) के कारण विघटन (भंग) की प्रक्रिया से होता है, जो दुख (दुक्खा) के मूल (मूल) से जुड़ा है, जिसका वर्णन गुरु ने इस प्रकार किया है:

हे भिक्षु! यह सूजन वाला घाव (गण्ड) वास्तव में पाँच आसक्ति (उपादान) के समूह (खन्ध) का नाम (अधिवचन) है। ऋषियों के समूह (खन्ध) का अर्थ है: तृष्णा (तन्ध) के रूप में गिना जाने वाला जाल सही मार्ग (मग्ग) द्वारा भली-भांति काट दिया गया है। इसलिए, मैं भी सत्य (खम्म) का सर्वांगीण भागीदार (कोट्ठास) बन गया हूँ, जिसने कामवासना जैसी हर चीज का त्याग कर दिया है। (राग) आदि, अरहंतत्व की प्राप्ति (अधिगम) द्वारा, चंद्रमा के अनुसार, जो महीने की पूर्णिमा के दिन, जब वह सर्वांगीण रूप से पूर्ण हो, बादल, कोहरे (महिका) आदि दोषों से रहित हो।

थेरा धम्मिका के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(196):सब्बाका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (196) ------>>>> अगला

1/2
पॉड्स लोड हो रहे हैं
दाता की वेबसाइट पर जाएं
पृष्ठ पर जाओ

The video player is currently playing an ad.
अध्याय IV.
चार श्लोक
196. सब्बाका
बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर सब्बक नाम से जन्मे उन्होंने परम पूज्य बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और विश्वास करके भिक्षु बन गए। साधना करते हुए वे अजकारणी नदी के किनारे स्थित लोणगिरि विहार गए और वहाँ समय आने पर उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। सावत्थी में भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के लिए वे कुछ समय अपने परिवार के साथ रहे। शरण और उपदेशों में उन्हें दीक्षित करने के बाद वे अपने जीवन-यापन के लिए उत्सुक हो गए। परिवार ने उनसे रुकने और उनका भरण-पोषण करने का अनुरोध किया। लेकिन उन्होंने अपने आने का कारण बताते हुए और अपने निवास स्थान की प्रशंसा करते हुए एकांतवास के प्रति अपनी प्रेम की घोषणा करते हुए कहा:

[307] यदा [36] बलाका सुचिपंडारच्चदा॥
कासास्सा मेघस्सा भयेन तज्जिता,॥
पलेहिति अलयामालयेसिनि॥
तदा नादि अजकरणी रामेति माm॥ ॥

[308] यदा बलाका सुविसुद्धपनदारा॥
कासास्सा मेघस्सा भयेन तज्जिता,॥
परियेसति लेणामलेनदास्सिनि॥
तदा नादि अजकरणी रामेति माm॥ ॥

[309] कां नु तत्थ न रमेंटी जम्बुयो उभातो ताहिm,॥
सोभेंति अपागाकुलं ममा लेनसा पचातो ॥॥ ॥

[310] ता मतमदसंघसुप्पहिना॥
भेका मांदावती पनादयन्ति,॥
नज्ज गिरिणादिहि विप्पवाससमायो॥
खेमा अजकरणी शिव सुरम्मा' ति.॥ ॥

[307] जब भी मैं सारस को देखता हूँ, उसके साफ़ चमकीले पंख
काले तूफ़ानी बादल से भागने के लिए भय से फैले हुए,
आश्रय की तलाश में, सुरक्षित आश्रय की ओर ले जाए जाते हैं,
तब अजकारणी नदी मुझे आनंद देती है।

[187][308] जब भी मैं सारस को देखता हूँ, उसके पंख पीले
और चांदी जैसे सफेद, डर से भागते हुए,
काले तूफानी बादल से, पास में कोई शरण न देखकर,
चट्टानी गुफा की शरण लेते हुए,
तब अजकारणी नदी मुझे आनंद देती है।

[309]
दोनों किनारों पर सुंदर ढंग से सजे हुए गुलाब-सेब के पेड़ किसे नहीं पसंद थे,
मेरी कुटिया की बड़ी गुफा के पीछे [1]

[310] या मेंढकों की कोमल टर्राहट सुनो, जो
अपने अमर नश्वर शत्रुओं से छुटकारा पाकर घोषणा करते हैं:
'पहाड़ी झरनों से आज

जाने का समय नहीं है। अजकारणी सुरक्षित है।
वह हमारे लिए सौभाग्य लाती है। यहाँ रहना अच्छा है।' [2]

तब रिश्तेदारों ने उसे विदा कर दिया। और क्योंकि उसने इसमें एकांत स्थानों में अपनी प्रसन्नता प्रकट की, इसलिए यह थेरा की अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा बन गई।

[1] जांबू का पेड़ सदाबहार है; इसकी शाखाएँ फलों से झुकी हुई हैं; इसके चमकदार पत्ते छाया प्रदान करते हैं (टिप्पणी)।

[2] मुझे इस छोटी नदी का उल्लेख कहीं और नहीं मिलता। यह संभवतः सावत्थी से होकर बहने वाली अचिरवती नदी की एक सहायक नदी का नाम रहा होगा (देखें CLXXII)। मेंढकों की टर्राहट के भार से पहले वाली पंक्ति में, पाठ और टीका के दोनों संस्करणों में भिन्नता है, और मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने इसे सुलझा लिया है, जिस पर टीका के एक संस्करण में अधिक उपयुक्त रूप से चर्चा की जाएगी। सटीक अर्थ उस कविता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण नहीं है जिसमें मूल आकर्षण उसके सौम्य मूर्तिपूजा में निहित है। संघ का प्रयोग सारसों के झुंड के लिए किया जा सकता है, देखें मिलिंदपन्हा, पृष्ठ 403।

4.12 [196] सप्पकत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यदा बलका से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा सप्पक का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले एक सामर्थ्यवान नागराज के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक विशाल कमल का फूल तोड़कर, नाग ने उसे अपने सिर के ऊपर (उपरिमुद्धनि) उठाया और खुले आकाश में ध्यान (समापत्ति) में लीन बैठे संभव बुद्ध को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। सप्पक नाम प्राप्त करने के बाद, उन्होंने बुद्धि प्राप्त करने पर भगवान बुद्ध की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) एकत्रित किया, और अजकारणी नामक नदी के किनारे लेणगिरि मठ में निवास करते हुए अरहंत पद प्राप्त किया, लेकिन शीघ्र ही, इसलिए अपदान में कहा गया है:—

“हिमावंता से ज्यादा दूर नहीं, वहाँ

रोमासा नाम की एक पहाड़ी थी। उस समय,

खुले वातावरण में एक शांत जीव निवास करता था

बुद्ध, जिनका नाम संभवा है।

अपने महल से बाहर आकर, मैंने उसे उठाया

कमल का फूल (मौन बुद्ध के ऊपर)

एक दिन तक (कमल के फूल को) पकड़े रहने के बाद,

मैं वापस अपने आलीशान घर में आ गया।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने विशेष रूप से अपनी श्रद्धापूर्ण भेंट अर्पित की;

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, वे गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी आए थे। अपने रिश्तेदारों के साथ, वे कुछ दिनों तक वहाँ रहे, धर्म का उपदेश दिया, अपने सगे-संबंधियों को आश्रमों और नैतिक उपदेशों में स्थापित किया और उक्त स्थान पर जाने की इच्छा व्यक्त की। थेरा के रिश्तेदारों ने उनसे निवेदन किया: "आदरणीय महोदय! आप यहीं निवास करें; हम आपकी देखभाल करेंगे।" प्रस्थान का संकेत देने के बाद वे खड़े हुए और चार श्लोकों का प्रवचन देकर एकांत में अपने विशेष आनंद को प्रकट किया और अपने निवास स्थान की घोषणा की।

307. "जब भी सारस (बलाका)

अपने शुद्ध पीले पंखों के साथ, भयभीत

काले बादलों के खतरे से होकर गुजरेगा

अपने चरागाह से उड़कर दूर खोज में

घोंसलों के बारे में और विश्राम करने के लिए उतरने की इच्छा रखते हुए,

तो फिर अजकारणी नदी ही वह सब कुछ देती है जो वह देती है।

मुझे खुशी हुई।

308. "जब भी उत्कृष्ट रूप से शुद्ध पीले सारस दिखाई दें,

काले बारिश के बादलों के खतरे से भयभीत होकर,

अपने निवास स्थान को न देख पाने के कारण, वे घोंसले बनाते हैं।

उनके स्थायी निवास स्थान पर; फिर, यह

अजकारानी नदी मुझे आनंद देती है।

309. "सुगेनिया (जाम्बू) के पेड़ किसे नहीं देते?"

वहाँ के वे पेड़ आनंद देते हैं, जो इसे बनाते हैं।

नदी के दोनों किनारों पर सुंदर स्थान स्थित हैं।

मेरे विश्राम निवास (लेण) के पीछे?

310. "मेरा वह निवास स्थान तो पूरी तरह से वीरान पड़ा है।"

साँपों के झुंडों द्वारा (अमतमादा); मेंढकों से भरा हुआ

मधुर ध्वनि (मंडावती) की गूंज उनके साथ गूंजती है

उनकी बारिश के लिए पुकारने वाली चीखों की बौछार

(पनादयन्ति);

फिलहाल मेरे लिए कोई अवसर नहीं है

पहाड़ियों से विपवास (विविपवास)

और नदियाँ; अजकारणी नदी सुरक्षित है।

और इसके रेतीले किनारे के साथ बेहद आनंददायक है।

(सिवा).

वहाँ, वदा का अर्थ है किसी भी समय। बलाका का अर्थ है: सारस पक्षी। सुचिपण्डरच्छदा का अर्थ है: जिनके पंख शुद्ध, शुद्ध और हल्के रंग के हों। कालस्सा मेघस्सा भयेन तज्जिता का अर्थ है वर्षा के खतरे से उत्तेजित और भयभीत, वर्षा के बादलों की गड़गड़ाहट के कारण, जो काजल के पहाड़ (अंजनगिरि) की तरह दिखते हैं, जो वर्षा के पानी से लदे होने के कारण काले हैं। पलेहिती का अर्थ है: अपने चरागाह (गोचरभूमि) से उड़कर (उप्पतित्वा) चले जाएँगे। आलयं का अर्थ है: निवास (नीलय), उनका अपना घोंसला। आलयसिनी का अर्थ है: वहाँ वे केवल अपना मांद (आलयनं) और अपना विश्राम (नीलियनं) चाहते हैं। Tadā nadī Ajakaraṇī rameti maṃ का अर्थ है: जब वर्षा होने वाली होती है, तब अजकारणी नामक नदी, ताजे पानी से लबालब भरी हुई (नवोदक), सब कुछ अपने साथ ले जाती है (हाराहारिनी), ढलानदार किनारे (कूला) से चिह्नित (अंकसा) होकर मुझे आनंदित करती है; मेरा दिल जीत लेती है (चित्तमाराधेति); इस प्रकार, उन्होंने अपने एकांतवास (विवेक) में अपने विशेष आनंद को प्रकट किया।

सुविशुद्धपण्डर का अर्थ है: अत्यंत शुद्ध हल्का रंग; बिना मिलावट वाला रंग (असम्मिसवण्णा), पूर्णतः सफेद; यही इसका अर्थ है। परियेसेति का अर्थ है: यह खोजता है, पीछा करता है (या मग्गती का शिकार करता है)। लेनाम् का अर्थ है: निवास स्थान, घर (वसनाट्टाना)। अलेणदास्सिनी का अर्थ है: अपना निवास स्थान न पाना; पक्षी को पहले स्थायी निवास स्थान न होने के कारण अपना विश्रामस्थल नहीं मिल पा रहा है; परियेसन्ति लेनाम् का अर्थ है: अब, बारिश के बादल की गड़गड़ाहट से उत्पन्न गर्भ धारण करने के बाद, यह अपना स्थायी निवास स्थान और घोंसला बनाता है; यही इसका अर्थ है।

Kaṃ nu tattha, ... Pacchato, इस प्रकार; mama का अर्थ है: मेरे विशाल विश्राम निवास (laṇa) का, जहाँ मैं निवास करता था; pacchato का अर्थ है: पिछले भाग में; āpagākūlaṃ का अर्थ है: अजकारणी नदी के दोनों किनारों पर; tahiṃ tahiṃ का अर्थ है: यहाँ और वहाँ भी (दोनों किनारे) फलदार वृक्षों की शाखाओं से लदे हुए, फलों के भार से झुके हुए और मनमोहक (siniddha) पत्तों से ढके होने के कारण, वे सदा सुशोभित (sobhenitiyo) रहते हैं; jambuyo tatthapu का अर्थ है: उस स्थान पर; kaṃ का अर्थ है: किसे, अर्थात् किस जीव को; na ramenti nu का अर्थ है: वे सब केवल आनंद (ramenti) प्रदान करते हैं?

ते'मतमदा संघसुप्पहीना का अर्थ है: आमत को अगदा (औषधीय औषधि) कहा जाता है, वे इससे मदहोश हो जाते हैं; इस प्रकार, औषधि (अमतमदा) से पागल होकर, सर्प (सप्पा); उनका संग्रह सर्पो (अमतमदसंघो) का समूह (या झुंड) है; उस स्थान को अच्छी तरह से त्यागकर, वे वहाँ से चले गए थे। भीका का अर्थ है: मादा मेंढक (मण्डुकियो); मंदावती का अर्थ है: आवाज से युक्त (सरवती); पनादयन्ति का अर्थ है: वे उस स्थान को अपनी मधुर आवाजों से गूंजाते हैं। नाज्जा गिरिनदीहि विप्पवासस्सम्यो का अर्थ है: अब, वर्तमान में, अन्य पर्वतीय (पब्बतेय्या) नदियों से विपवास (विप्पवास) का कोई अवसर नहीं है; खेमा अजकारणीनदी का अर्थ है: विशेष रूप से, अजकारणी नदी सुरक्षित है, क्योंकि इसमें जंगली जानवर (वाल), भयंकर मछलियाँ, मगरमच्छ आदि नहीं पाए जाते। शिव का अर्थ है: शांत सतह (सुंदरतल), सुगम तट (तित्थ) और चांदी जैसी रेत (पुलिना) की समृद्धि; सुरम्मा का अर्थ है: अत्यंत आनंदमय और रमणीय; इसलिए मेरा मन आनंदित (रमाति) है; यही इसका महत्व है।

इस प्रकार कहने के बाद, उन्होंने अपने रिश्तेदारों को विदा किया और अपने निवास स्थान पर लौट गए। यह श्लोक भी, एक खाली घर में उनकी विशेष प्रसन्नता को उजागर करते हुए, थेरा के अरहंतत्व (आञ्ञा) का स्पष्टीकरण बन गया।

थेरा सप्पक के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(197):मुदिता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (197) ------>>>> अगला

अध्याय IV.
चार श्लोक
197. मुदिता
बुद्ध युग में कोसलन के एक साधारण परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम मुदिता रखा गया। जब वे वयस्क हुए, तो किसी कारणवश उनका कुल राजा को अप्रिय लगने लगा। राजा से भयभीत होकर मुदिता भाग गए, [1] और [188] जंगल में प्रवेश करके एक अरहंत (प्रबुद्ध) थेरा के निवास स्थान पर पहुँचे। थेरा ने उनकी घबराहट देखकर उन्हें भयभीत न होने के लिए कहा और उन्हें आश्वस्त किया। मुदिता ने पूछा, "हे पूज्य, मुझे खतरे से मुक्त होने में कितना समय लगेगा?" थेरा ने उत्तर दिया, "सात या आठ महीने बीत जाने पर।" मुदिता ने आगे कहा, "मैं इतना लंबा इंतजार नहीं कर सकता; मैं संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करके) भिक्षु बन जाऊँगा, हे पूज्य, मुझे भिक्षु दीक्षा दीजिए!" उन्होंने अपने जीवन की रक्षा के लिए यह विनती की। थेरा ने उन्हें भिक्षु दीक्षा दी। और जब उन्होंने इस सिद्धांत में विश्वास किया, तो उनका भय दूर हो गया और उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त करने में असफल रहने पर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक उन्हें यह प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक वे अपना आश्रम नहीं छोड़ेंगे, और इस पर वे सफल हुए। इसके बाद, निर्वाण के आनंद का अनुभव करने पर, उनके साथी भिक्षुओं ने उनसे उनकी सफलता के बारे में पूछा। उन्होंने उन्हें बताया कि उन्हें सफलता कैसे मिली, इस प्रकार:

[311] पब्बाजीṃ जीविकत्थोऽहाṃ लधना उपसम्पदाṃ,॥
ततो सद्धाऽ पहिलाभिṃ दःहविरियो परक्कमिṃ॥ ॥

[312] कामाऽभिज्जतुऽयं कायो माऽसापेसि विस्यारुऽ,॥
उभो जानुकसंधिहि जंघायो पापातंतु मे॥ ॥

[313] नासिस्सां न पिविसामि विहार च न निक्खमे,॥
न'पि पस्सं निपतेस्सं तनहसल्ले अनुहते॥ ॥

[314] तस्सा मेवṃ विहारतो पासा वीर्यपराक्कमाṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[311] मैंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए) ताकि मैं अपना जीवन बचा सकूँ,
और, एक बार भिक्षुत्व में दीक्षित होने के बाद, मैंने विश्वास और आशा को पुनः प्राप्त कर लिया;
वीर ऊर्जा के साथ मैं आगे बढ़ता रहा।

[312] अब ऐसा होना ही है, इस शरीर को टूटने दो
और नष्ट होने दो और इसके मांस को गलने दो,
मेरे अंगों को घुटने पर लड़खड़ाने दो और विफल होने दो;

[313] मैं [2] न खाऊँगा और न ही फिर से पीऊँगा,
न ही इस आवास से बाहर निकलूँगा,

और न ही मैं अपनी करवट लेटूँगा,
जबकि लालसा का तीर अभी तक नहीं खींचा गया है!

[314] इस प्रकार मैं दृढ़ रहता हूँ - हे देखो
और ऊर्जा की आगे की चाल पर ध्यान दो:
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना बना लिया है,
और बुद्ध के सभी कार्य पूरे हो चुके हैं!

[1] सी.एफ. सीसीएक्सआई. मुदिता का अर्थ है आत्मसंतुष्ट, प्रसन्न। सी एफ कली. साई., पी. 65, एन. 1.

[2] = श्लोक 223, 224 (पकाया, CLXXI.)।

4.12 [197] मुदितत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
पब्बजिं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मुदिता का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान विपस्सी के समय एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म हुए; जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, एक दिन संयोगवश उन्होंने गुरु के दर्शन किए, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें अपने पलंग (मंच) पर लेटाया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे बार-बार जन्म लेते रहे, देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे कोसल राज्य में एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म हुए; मुदिता नाम धारण करके उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। उस अवसर पर, राजा ने किसी कार्य के कारण उस परिवार को रोक लिया (पालिबुद्ध)। इस बात की सूचना पाकर वह शाही खतरे से भयभीत हो गया, भागकर जंगल में प्रवेश किया और एक थेरा के निवास पर पहुँचा जिसने उसके घावों को नष्ट कर दिया था। थेरा ने उसकी भयभीत अवस्था को जानकर उसे दिलासा देते हुए कहा, “डरो मत।” उसने पूछा, “हे पूज्यवर! वास्तव में, मेरा यह खतरा कितने समय में समाप्त हो जाएगा?” यह सुनकर कि “सात-आठ महीने बीतने के बाद,” उसने कहा, “हे पूज्यवर! मैं इतने लंबे समय तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा नहीं कर सकता; मैं भिक्षु बन जाऊँगा; कृपया मुझे भिक्षु बना दीजिए।” अत: उन्होंने अपने जीवन की रक्षा के लिए भिक्षुत्व का अनुरोध किया; थेरा ने उन्हें भिक्षु बना दिया। वे भिक्षु बने, विधि में उचित रूप से श्रद्धापूर्वक विश्वास धारण किया, और यद्यपि उनके लिए खतरा टल गया था (वुपसन्त), फिर भी वे भिक्षु के कर्तव्यों में आनंदित रहे, मानसिक अभ्यास में लगे रहे, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कार्य करते हुए उन्होंने यह प्रतिज्ञा की: “अरहंतत्व प्राप्त किए बिना मैं इस निवास कक्ष से बाहर नहीं जाऊंगा;” उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने में गहनता से लीन होकर अरहंतत्व प्राप्त किया। अत:, अपदान में कहा गया है:—

“धन्य विपस्सी को, जो थे

ऐसा ऋषि जो लोगों में सबसे बुजुर्ग हो

दुनिया में, एक सोफा पेश किया गया था

मेरे द्वारा, मेरी प्रसन्नतापूर्ण भक्ति और मेरे द्वारा

अपने हाथों (पाणिना) से, मुझे अच्छी तरह से आपूर्ति की गई थी।

हाथी परिवहन, घोड़ा परिवहन के साथ

और दैवीय परिवहन, मेरे कारण

उस सोफे की पेशकश। मैंने प्राप्त कर लिया है

अरहंत पद ने मेरे सभी दोषों को नष्ट कर दिया।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

फिर मैंने सोफे का प्रस्ताव रखा, मैंने ऐसा किया।

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

मेरे द्वारा सोफे की पेशकश का फलदायी परिणाम।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी।... बुद्ध का

निर्देश का पालन किया जा चुका था।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने साथी भिक्षुओं द्वारा अपनी उपलब्धि (अधिगत) के बारे में पूछे जाने पर अपने स्वयं के उचित प्रदर्शन (पुतिपन्न) के तरीके (आकार) के बारे में बताने के लिए चार श्लोक कहे, क्योंकि वे मुक्ति के सुख का उचित रूप से अनुभव करते रहे।

311. "मैं भिक्षु बना ताकि..."

जीवित रहना और मैंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया

दीक्षा समारोह। इसके बाद, मैंने उचित रूप से

मुझे धार्मिक आस्था प्राप्त हुई; मैं अपनी ऊर्जा में दृढ़ हूं।

मैंने अपना पूरा प्रयास किया।

312. "मेरा यह शरीर टूट जाए,

मेरे मांस के टुकड़े घुल जाएं; मेरे अग्रभाग को...

मेरे दोनों घुटनों से टांगें अलग हो जाती हैं;

313. "मैं नहीं खाऊंगा, मैं नहीं पीऊंगा;

मैं अपने पक्ष में पूरी तरह से झुकने भी नहीं दूंगा

मेरी लालसा का कांटा अभी तक नहीं निकला है।

314. "तब मैं इस प्रकार निवास कर रहा था,

अतः मेरा परिश्रम और प्रयास, तीन गुना

तदनुसार ज्ञान (तिस्सौ विज्जा) प्राप्त हुआ था

प्राप्त किया; बुद्ध का उपदेश प्राप्त हुआ था

किया गया।"

वहाँ, जीविकत्थो का अर्थ है: वह व्यक्ति जो जीवन जीने की इच्छा रखता है; जीवन का उद्देश्य (जीविकप्पयोजनो)। मैंने स्वयं को जीवित रखने के उद्देश्य से भिक्षु का रूप धारण किया और स्वयं से कहा: “यहाँ भिक्षु बनकर मैं बिना थके जीवित रहूँगा;” यही इसका अर्थ है। लद्धाना उपसंपदा का अर्थ है: सर्वप्रथम एक नवोदित भिक्षु (सामणेर) के रूप में त्याग में रहकर, संघ अध्याय के चौथे अध्याय के माध्यम से पूर्ण दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त करना। ततो सद्धं पटिलाभिम् का अर्थ है: मैंने तीन रत्नों में उचित श्रद्धा इस प्रकार प्राप्त की: “भगवान पूर्णतः आत्म-जागृत हैं; सत्य (धम्म) ऐसा है जिसका अच्छी तरह से उपदेश दिया गया है; भिक्षुओं का पुरोहित वर्ग ऐसा है जिसने उसका उचित पालन किया है (पटिपन्नो)”, बुद्ध की महान शक्ति आदि को देखने के बाद, कुछ सूत्रों का ज्ञान, शांत मनन (समथा) के लिए मानसिक अभ्यास और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने की विधि (विधि), साथ ही दो सारणीबद्ध सारांश (माटिका) और तीन प्रकार के धन्यवाद (अनुमोदना) प्राप्त करने के बाद, जैसा कि मैंने अपने पूर्ण दीक्षा के समय से अच्छे मित्रों की सेवा करना जारी रखा। दल्हवीरियो परक्कमिं का अर्थ है: सत्यों (सच्च) में उचित प्रवेश के लिए दृढ़ और स्थिर परिश्रम करने वाला बनने के बाद मैंने प्रयास किया, लेकिन शीघ्र ही इस प्रकार उचित रूप से धार्मिक विश्वास प्राप्त करने के बाद आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म किया; मैंने प्रयास (पादहिं) किया, लेकिन उचित रूप से बुरे कर्मों (धम्म) के त्याग और कर्मों (धम्म) की समृद्धि (उपसम्मादा) के लिए।

“कामं” से शुरू होने वाले श्लोक का अर्थ यह दर्शाना है कि (घटना) उसके प्रयास के अनुसार घटित हुई। यहाँ, कामं का अर्थ है: इच्छा के अनुसार; भिज्जतु का अर्थ है: यह निश्चित रूप से टूट जाए। अयं कायो का अर्थ है: मेरा यह सड़ा हुआ शरीर; यदि (मेरा शरीर) इस परिश्रम (पटाप) से टूट जाए, तो यह बिखरकर टुकड़े-टुकड़े हो जाए। मम्सेपेसी विसीयरुं का अर्थ है: यदि मेरे मांस का यह पिंड इस दृढ़ प्रयास के कारण इस शरीर से विलीन हो जाए, तो ऐसा ही हो; यह इधर-उधर चकनाचूर हो जाए। Ubho jaṇṇukasandhīhi, jaṅghāyo papatantu me का अर्थ है: मेरे दोनों अग्रपाद (ज[illegible]घ) और अंडकोष (सत्थि) तथा दोनों घुटने के जोड़ (ज[illegible]ukasandhi) मेरी जांघों के बंधन (उरुबन्ध) से टूटकर जमीन पर गिर पड़ें। इसका एक पाठ “म[illegible]” भी है; इसका अर्थ केवल यही है। शेष का अर्थ पहले बताए गए तरीके से ही है (हेट्ठ)।

थेरा मुदिता के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(198):राजदत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (198) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
198. राजदत्त
बुद्ध युग में सावत्थी में एक कारवां-नेताओं के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनके माता-पिता ने उनका नाम (राजा)राजदत्त ('राजा द्वारा दिया गया') रखा, क्योंकि उन्होंने महान आकाश देवता वेसवना से प्रार्थना करके उन्हें प्राप्त किया था। [1] वयस्क होने पर, उन्होंने एक बार 500 गाड़ियों का माल लेकर राजगृह गए। वहाँ उन्होंने अपना सारा धन लुटा दिया, एक सुंदर वेश्या पर प्रतिदिन एक हजार खर्च कर दिए, जिससे वे कंगाल हो गए और उनके पास खाने के लिए पर्याप्त नहीं था, और वे दयनीय स्थिति में भटकते रहे। इसलिए वे अन्य गृहस्थों के साथ बाँस के वन में आए, जहाँ भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा को धर्म (धम्म) का उपदेश दे रहे थे। और (राजा)राजदत्त, सभा के किनारे पर बैठे हुए, उन्होंने सुना और विश्वास किया, और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। धुतंगों का पालन करते हुए, [2] वे एक श्मशान क्षेत्र में रहने लगे।

अब एक और कारवां-नेता ने भी वेश्या पर अपना हज़ार खर्च कर दिया, और अपने हाथ में एक कीमती अंगूठी पहन रखी थी, जिस पर वह ललचाती थी। उसने आदमियों को उसे चुराने के लिए उकसाया, लेकिन मालिक के नौकरों ने पुलिस को बता दिया, [3] और उन्होंने उसके घर पर छापा मारा, उसकी हत्या कर दी, और उसके शरीर को श्मशान में फेंक दिया।

ध्यान के लिए किसी दुखद विषय की तलाश में घूमते हुए थेरा (राजा) राजदत्त ने इस शव को देखा। कुछ देर तक [190] उन्होंने अपना ध्यान केंद्रित किया, लेकिन कुत्तों और सियार द्वारा कुतर-बितर न किए गए शरीर के हिस्सों ने उनका ध्यान भटका दिया और उन्हें लगभग वश में कर लिया। बहुत व्याकुल होकर उन्होंने अपने मन को शांत किया और कुछ समय के लिए चले गए; फिर लौटकर उन्होंने ध्यान लगाया, अपनी अंतर्दृष्टि को पुष्ट किया और इस प्रकार अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

इस पर अपनी सफलता पर विचार करते हुए और उत्साह और खुशी से भरते हुए उन्होंने कहा:

[315] भिक्खु [37] सिवाथिकाṃ गन्त्वा अडसअइ इत्थिमुज्जतṃ,॥
अपविद्धां सुसानस्मिं खजजन्तीं किमिहि फूटाṃ॥ ॥

[316] याṃ हाय एके जिगुच्चन्ति मताṃ दिस्वना पपाकाṃ,॥
कामरागो पतुराहु अन्धोऽव वसति अहṃ॥ ॥

[317] ओरं ओडनपाकम्हा तम्हा ठाना अपक्कमिṃ,॥
सतीमा संपजानोहं एकमंतं उपाविसीं॥ ॥

[318] ततो मे वनासिकारो योनिसो उदपज्जथा,॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[319] ततो चित्ताṃ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मताṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[315] एक भिक्षु (भिक्षु) श्मशान क्षेत्र (कब्रिस्तान) गया था,
और वहाँ उसने एक स्त्री का शरीर
मृतकों के बीच लावारिस पड़ा देखा, जो कीड़ों का भोजन था।

[316] अधिकांश पुरुषों को शव को देखकर घृणा हुई
, उस बेचारे मृत दुष्ट प्राणी को देखकर।
मुझमें कामुक वासना प्रकट हुई,
और मैं अंधा हो गया और अपना नियंत्रण खो बैठा।

[317] लेकिन उस जगह से उबलते चावल से भी तेज़
, मैं मुड़कर भाग गया; [4] कहीं और मैं पालथी मारकर बैठ गया,
सजग और विवेकपूर्ण मनोदशा में।

[318] इस पर मेरे मन में गहरा विचार आया: [5] तथ्य और कारण पर ध्यान।
सारी पीड़ा स्पष्ट थी।
मन में अरुचि, उदासीनता थी;

[319] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया।
हे देखो, धम्म के मार्ग पर चलने वाले इस सुशोभनीय भिक्षु का क्रम!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी कार्य जो हमें करने बाकी हैं, वे पूरे हो चुके हैं।

[1] चार तथाकथित महान राजाओं में से एक, जिनमें से प्रत्येक दृश्यमान दुनिया के एक चौथाई भाग पर शासन करता है; कुबेर भी कहलाते हैं, वे उत्तरी भाग पर शासन करते थे [संवाद, ii. 287 f.)।

[2] अतिरिक्त तपस्या (मिलिंदा, द्वितीय, पुस्तक 6)।

[3] अवकारकमनुसा (?). मुझे यह शब्द कहीं और नहीं मिला है, और मैं केवल अर्थ का अनुमान लगाता हूँ।

[4] टीका इस प्रकार बताती है: यावता कालेना सुपारिधोतिनतातंदुलनलिया ओदानं पच्चति, ततो, ओरम इव कलां, ततो लहुकातेन रागं विनोदेनतो।

[5] = श्लोक 269, 270.

5. पांचवां खंड

5.1 [198] राजदत्तथेरा के श्लोक पर टीका
पांचवें खंड में 'भिक्खु (भिक्षु) सीवत्थिकं गन्त्वा' से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा राजदत्त का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म (वट्ट) के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए, और चौदह युग (कप्पा) पहले एक परिवार में बिना किसी बुद्ध (बुद्धसुञ्ञ) के संसार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन वे किसी कार्य से जंगल के अंत के पास जा रहे थे और वहाँ उन्होंने एक वृक्ष के चरणों में एक मौन बुद्ध को बैठे हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें एक पूर्णतः शुद्ध बेर का फल भेंट किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे सावत्थी में एक कारवां-नेता के परिवार में पुनर्जन्म लिए। उनके माता-पिता ने उनका नाम राजदत्त रखा क्योंकि उन्होंने महान वेस्सवण को प्रसन्न करने के बाद यह नाम प्राप्त किया था। वयस्क होने पर, वे एक व्यापारी के रूप में राजगृह गए और अपने साथ पाँच सौ बैलगाड़ियाँ माल ले गए। उसी अवसर पर, राजगृह में, एक अत्यंत सुंदर और आकर्षक गणिका अपने सुडौल शरीर (परमसोबग्गयोग) के कारण प्रतिदिन एक हजार रुपये कमाती थी। तब उस कारवां-प्रमुख के पुत्र ने एक हजार रुपये देकर उस वेश्या के साथ प्रतिदिन सहवास किया, जिससे उसकी सारी संपत्ति समाप्त हो गई। कुछ ही समय बाद वह निर्धन हो गया और भोजन-वस्त्र तक प्राप्त न कर पाने के कारण पश्चाताप से व्याकुल होकर इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन वह भक्तों के साथ वेलुवन मठ गया।

उस अवसर पर, गुरु एक विशाल श्रोतासमूह से घिरे हुए सत्य (धम्म) का उपदेश दे रहे थे। उन्होंने श्रोताओं के एक छोर पर अपना स्थान ग्रहण किया, गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) को सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, कठोर साधना (धुतंग) के कर्तव्यों का पालन करने का दायित्व ग्रहण किया और एक श्मशान में निवास किया। उसी समय, एक अन्य कारवां-प्रमुख का पुत्र उस वेश्या के साथ प्रतिदिन सौ रुपये देकर रहता था। उस वेश्या ने उसके पास एक बहुमूल्य रत्न देखकर लोभ उत्पन्न किया और अन्य दुष्ट पुरुषों से उसकी हत्या करवाकर रत्न छीन लिया। इसके बाद, उस कारवां-प्रमुख के पुत्र के लोगों ने यह घटना सुनकर अपने आदमियों को जासूस (ओकारक) बनाकर भेजा। वे रात में उस वेश्या के घर में घुस गए, उसकी खाल को बिना नुकसान पहुंचाए ही उसकी हत्या कर दी और शव को श्मशान में फेंक दिया। थेरा राजदत्त, श्मशान में घूमते हुए, एक अप्रिय संकेत (असुभानिमित्तम्) प्राप्त करने के लिए, उस वेश्या के मृत शरीर (क◌ेवर) के पास गए ताकि घृणास्पद दृष्टि से उसका ध्यान आकर्षित कर सकें; कुछ समय तक बुद्धिमानी से ध्यान लगाने के बाद, उन्होंने उस मृत शरीर में कामुक सुखों के लिए अपनी वासना (राग) को जागृत किया, और कुछ समय पहले हुई मृत्यु के कारण, कुत्तों, सियार आदि द्वारा क्षतिग्रस्त न हुई उसकी त्वचा के कारण, और उसके मृत शरीर के विचित्र पदार्थ (वत्थु) होने के कारण, उन्होंने अज्ञानता से ध्यान लगाया। वह बहुत अधिक उत्तेजित (सम्बिगत्तरा) हो गया (मानसो), अपने मन को कोसने लगा (परिभासित्वा), कुछ देर के लिए एक तरफ चला गया (अपसक्कित्वा), उस अत्यंत अप्रिय (लसुभ) संकेत (निमित्त) को पकड़ लिया, जो शुरू से ही उस पर छाया हुआ था (उपठितम्), और बुद्धिमानी से (योनिसो) सचेत होकर उसने ध्यान उत्पन्न किया, उस ध्यान को अपना आधार बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में स्वयं को स्थापित किया और वहीं अरहंत पद प्राप्त किया। अतः, अपदान में ऐसा कहा गया है।

“मौन बुद्ध को देखने के बाद,

स्वयं पर निर्भर (स्वयंभूम) और

अजेय, (अपराजितं), मैंने एकत्रित किया

एक हॉग-प्लम आम का फल लिया और उसे भेंट किया

आत्मनिर्भर मौन बुद्ध।

यह इकत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल का अपना चढ़ावा चढ़ाया।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह फल का फलदायी परिणाम है

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्म (पटिपत्ति) पर विचार किया, उत्साह और प्रसन्नता से भर गए और ये पाँच श्लोक कहे:—

315. "भिक्षु (साधु), वहाँ जाकर

कब्रिस्तान में, फेंका हुआ (उज्झिता) देखा।

कब्रिस्तान में एक महिला, अस्वीकृति में

(अपविद्धं), व्याप्त होकर (फुटं)

और कीड़े (किमी) द्वारा खा लिया गया।

316. वास्तव में, कुछ लोगों ने ऐसे मृत व्यक्ति को देखकर-

इस तरह का शरीर घृणा उत्पन्न करेगा;

(मुझमें) स्पष्ट रूप से (पातु) उत्पन्न हुआ;

(अशुद्धियों को) रिसते हुए न देखना

उसके नौ बोलों से), मैं था (अहुं)

जैसे कोई अंधा व्यक्ति।

317. "के इस तरफ (अर्थात में)

चावल को लगने वाले समय से कम समय में

पकाया जा (ओरं अदानपाकम्हा), मैंने लिया

उस स्थान से मेरा प्रस्थान (उस स्थान का)

मृत शरीर); जागरूकता से युक्त

(सतीमा) और विचारशील होना (संपजानो)

मैं एक तरफ बैठ गया (एकमंतम उपविशिं)।

318. "इसके बाद, मुझमें यह उत्पन्न हुआ

मेरी जागरूकता का बुद्धिमान (योनिसो) निर्माण;

हानि स्पष्ट हो गई (pāturahu);

उस महिला के प्रति घृणा अच्छी तरह स्थापित हो गई।

319. "इसके बाद मेरा मन मुक्त हो गया;

सत्य (धम्म) के अच्छे स्वरूप को देखो।

तीन प्रकार का ज्ञान (विज्जा) प्राप्त हो चुका था।

तदनुसार, बुद्ध के निर्देशों का पालन किया गया था।

वहाँ, भिक्कु शिवत्तिकम् गन्त्वा का अर्थ है: एक भिक्षु 'कच्चे मांस के कब्रिस्तान' (आमकसुसाहा) में गया, अप्रिय (असुभ) पर अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) के उद्देश्य से; क्योंकि उसे बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (संसार) में आने वाले खतरे का पूर्वाभास (इक्खना) था। यह अभिव्यक्ति "भिक्खु," स्वयं थेरा ने अपने संदर्भ में (संध्याय) कही थी। इत्तम का अर्थ है: वह यहाँ हठी (थीयति) है; प्राणी होने की निरंतरता (सत्तसंतान) के कारण उसका श्वेत (सुक्क) रक्त (सोणित) दबा हुआ (संहञ्जति) है; इस प्रकार, वह एक स्त्री (मातुगाम) है। इस प्रकार भी, स्वाभाविक (सभाव) व्याकरणिक विश्लेषण (निरुत्ति) के आधार पर उसे "इत्थी" (स्त्री) कहा जाता है। बांझ स्त्रियों आदि के मामले में, उनकी परस्पर समानता और उस प्रकृति (सभाव) से परे न जाने के कारण, वही प्रयोग (वोहारो) किया जाता है। "इत्थी" शब्द किसी स्त्री के शव को भी दर्शाता है। उज्जितं का अर्थ है: पूरी तरह से फेंक दिया गया (परिच्चत्तं)। अपविद्धं का अर्थ है: फेंका हुआ; अनादर की स्थिति में फेंका गया (अनपेक्खा)। खज्जंतिम किमिहि फुतं का अर्थ है: कीड़ों से भर जाने के बाद चबाया गया (खज्जमान)।

Yaṃ hi eke jigucchanti, mataṃ disvāna pāpakaṃ का अर्थ है: कुछ जन्मजात शुद्ध (चोक्ख) लोग भी प्राण, ऊष्मा (उस्मा) और चेतना के चले जाने के कारण मृत शरीर से घृणा करते हैं, जो कि बुरा, नीच (निहीन) और हीन है, और उसे देखना भी नहीं चाहते। Kāmarāgo pāturahū का अर्थ है: उस शव में अज्ञानता (अयोनिसो) की अधिकता के कारण मुझमें कामुक सुख की वासना उत्पन्न हुई और स्पष्ट हो गई। Andho va savati ahuṃ का अर्थ है: मैं उस शव की अपवित्रता की स्थिति को न देख पाने के कारण अंधा हो गया, जब वह शव अपने नौ द्वारों (द्वार) से अशुद्धता का रिसाव कर रहा था। इस कारण (बुद्ध) ने कहा:—-

"रत्तो अत्थं नजानाति, रति धम्मं अना पस्सति।

अंधतमं तदा होति, यं रागो सहते नारां।"

"कामुक (रत्तो) होकर वह करता है

समझ नहीं पाना; भर जाने के कारण

वासना के कारण वह सत्य को नहीं देख पाता।

तब घोर अंधकार छा जाता है; उस अंधकार में वासना मनुष्य को वश में कर लेती है।

"कामाच्छन्दो खो ब्राह्मण और हकरणो, अचक्खुकरणो, हे ब्राह्मण; वास्तव में, इंद्रिय सुख की इच्छा अंधकार और अंधत्व (अचक्खु) का कारण है" इत्यादि। कुछ विद्वान यहाँ अक्षर के आने पर उसका अर्थ इस प्रकार बताते हैं: "कुल भ्रष्टता (किलेसा) के कारण वह या तो नियंत्रण में नहीं है या भ्रष्टता (किलेसा) के नियंत्रण में है।" अन्य विद्वान पाली पाठ को "अन्धोऽवा असति अहं, मैं अंधे के समान अचेत (असति) हो गया," कहकर उसका अर्थ इस प्रकार बताते हैं: "कामारगेन अन्धो एव हुत्वा सतिरहितो अहोसिन, इंद्रिय सुख की लालसा से अंधे के समान होकर मैं चेतना से रहित हो गया।" हालांकि, ये दोनों ही पिटक ग्रंथों (पाली) में मौजूद नहीं हैं।

ओरं ओदनापाकम्हा का अर्थ है: पके हुए चावल (ओदनापाक) का आगे का भाग; जब तक कोई नारियल के खोल के माप (णाली) के गीले (तिन्त) चावल (तण्डुला) को अच्छी तरह से धोकर (सुपरिधोत) पकाता है, तब तक का समय भी; तम्ह ठना अपक्कमिं का अर्थ है: उस समय से भी तेज़ (लहु) समय में वासना से बचने (विनोदन्तो) के लिए, मैंने स्वयं को उस स्थान से दूर कर लिया और प्रस्थान किया जहाँ रहने के दौरान मुझमें वासना उत्पन्न हुई थी। Satimā sampajāno'haṃ का अर्थ है: मैं सजग होकर (vasa के प्रभाव में) एक उपयुक्त स्थान (ekamantaṃ) पर पहुँचा, स्वयं को सजग रखने का ध्यान रखते हुए (satipaṭṭhāna), भिक्षु का बोध प्राप्त करके (upaṭṭhapetvā), और सत्य (dhamma) के स्वरूप को पहचानकर (jānana) चिंतनशील होकर (sampajāno), और फिर पालथी मारकर (pallaṅkaṃ ābhujitvā) बैठ गया। Tato me manasikāro, yoniso udapajjatha का अर्थ है: जो बैठ गया था, उसके लिए इत्यादि। सब कुछ पहले बताए गए तरीके से है (heṭṭha)।

थेरा राजदत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(199): सुभुता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (199) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
199. सुभूत
बुद्ध युग में मगध के एक साधारण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, सुभूत नाम से, पलायन की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग दिया और संप्रदायिक तपस्वियों के साथ जुड़ गए। उनमें कुछ भी वास्तविक न पाकर और उपतिस्सा, कोलिता, सेला [1] और अन्य लोगों को भिक्षु संघ में प्रवेश करने के बाद प्राप्त सुख को देखकर , उन्होंने हमारे सिद्धांत में विश्वास किया और स्वयं भी प्रवेश कर लिया। अपने शिक्षकों और गुरुओं का अनुग्रह प्राप्त करने के बाद, वे एकांतवास में अभ्यास करने चले गए। अंतर्दृष्टि विकसित करके उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

इसके बाद उन्होंने आत्म-यातना से भोगे गए कष्टों और उसके बाद ध्यान आदि में प्राप्त सुख का स्मरण करते हुए अन्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की।

[320] अयोगे युञ्जमत्तानां पुरिसो किक्कामिच्चतो,॥
कैराՠ सी नाधिगच्छेया तां मे दुग्गलक्खणं॥ ॥

[321] अब्बुहाՠ अघगाताՠ विजिताՠ॥
एकाՠ सीई ओस्साजेया कलिव सिया,॥
सब्बानिपि सी ओस्साजेया अंधोव सिया॥
समविसमास्सा अडस्सनातो.॥ ॥

[322] याՠ ही कयिरा ताՠ ही वदे याՠ न कयिरा न तां वदे,॥
अकरोंतं भस्मानां परिजानन्ति पंडिता॥ ॥

[323] यथाअपि रुचिरौ पुप्फाՠ वनवंताअगन्धकाՠ,॥
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो॥ ॥

[324] यथाअपि रुचिरौ पुप्फाՠ वनवंता सगन्धकाՠ,॥
एवं सुभासिता वाचा सफला होति पकुब्बतोऽति॥ ॥

[320] जो व्यक्ति अपने आप को अनुपयुक्त चीजों से जोड़ता है, उसमें काम पूरा करने की
इच्छा रखता है , यदि वह खोज में सफल नहीं हुआ, तो उसकी खोज में दुर्भाग्य के आंतरिक चिह्न आ जाते हैं।

[321]
यदि वह दुख के स्रोत से निकाले गए और उस पर विजय प्राप्त किए गए एक [दृष्टिकोण] को भी त्याग दे ,
तो उसकी स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण पासे की चाल जैसी हो सकती है।
लेकिन यदि वह अपना सब कुछ त्याग दे, तो
वह अंधे आदमी से बेहतर नहीं है,
जो यह नहीं देख पाता कि रास्ता चिकना है या ऊबड़-खाबड़। [3]

[322] जो बहुत बोलता है, पर कुछ करता नहीं,
बुद्धिमान लोग उसका मूल्यांकन करते हैं और उसके गुण के अनुसार उसका आकलन करते हैं।

[323] [192] जैसे सुंदर रंग का सुंदर फूल,
लेकिन सुगंध रहित, वैसे ही बोले गए शब्द होते हैं
जो बांझ साबित होते हैं, कर्म से अच्छे नहीं बनते।

[324] जैसे सुंदर रंग
और सुगंधित खुशबू वाला खूबसूरत फूल, वैसे ही बोले गए शब्द
फलदायी सिद्ध होते हैं, कर्म में अच्छे होते हैं। [4]

[1] उपतिस्सा सारिपुत्त है, कोलिता मोग्गल्लाना है। CCLIX., CCLXIII., CCLIII देखें। पहले वाले दोनों उसके ही देश के थे; सेला मगध के उत्तर में स्थित देश से था।

[2] टीका के अनुसार हमें icchato को = icckante के रूप में पढ़ना है । डॉ. ओल्डेनबर्ग सिस्टर्ट, श्लोक 240 से समानताओं द्वारा इसका समर्थन करते हैं:

अज्ञानियों के प्रति अज्ञानी (ajānato) ने तुम्हें यह बात किसने बताई है?

अजानन्तो के लिए (सम्यी., इ. 11; दीपवम्सा, 21., श्लोक 2)।

अघानी। पीड़ाएँ।

[3] इस गाथा का छंद अत्यंत विचित्र और अनियमित है, और टीका भी इसके मूल वाक्यांशों पर अधिक प्रकाश नहीं डाल पाती। टीका के अनुसार, अघत तीन अघानी (दुःखों) को दर्शाता है - अर्थात् लोभ, घृणा और भ्रम। ब्र. पांडुलिपि इस शब्द को मूल्य (अग्घ) के संदर्भों से सुधारने का प्रयास नहीं करती, जैसा कि एस. पांडुलिपि करती है। फिर भी, यह गाथा कथा के साथ बाद के कथनों (श्लोक 226) की तुलना में अधिक मेल खाती है। यह उस व्यक्ति की भाषा है जिसने जीतने के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है।

[4] = धम्मपद, श्लोक 51, 52.

5.2 [199] सुभूतथेरा के श्लोक पर टीका

अयोगे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुभूत का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस या उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और बनारस में, भगवान कस्सपा के समय में, एक समृद्ध गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; ज्ञान प्राप्ति पर, उन्होंने एक दिन गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, धार्मिक भाव धारण किया, शरण और नैतिक उपदेशों में दृढ़ हुए, और गुरु के गंधकुटी को महीने में आठ बार चार प्रकार के प्राकृतिक इत्रों से भरवाया। उस पुण्य कर्म के कारण, जहाँ भी उनका पुनर्जन्म हुआ, उनका शरीर सुगंधित हो गया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे मगध राज्य में एक धनी गृहस्थ (गृहपति) के परिवार में उत्पन्न हुए। सुभूत नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन का त्याग कर मोक्ष की प्राप्ति के लिए (अज्जासय) संसार त्याग दिया, विधर्मियों के बीच संन्यासी बन गए, जहाँ सार प्राप्त न होने के कारण उन्होंने उपतिस्सा, कोलिता आदि अनेक भिक्षुओं और ब्राह्मणों को देखा, जो गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बनकर संन्यास के आनंद का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने भी इस विधान में उचित श्रद्धा धारण की, भिक्षु बने, अपने गुरुओं और गुरु का हृदय जीता, अपने मानसिक अभ्यास को एकत्रित किया और एकांतवास में रहकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का निरंतर विकास किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

"इस उत्कृष्ट युग (भद्दकप्पा) में,

वहाँ सबसे उत्कृष्ट (वरो) का उदय हुआ।

कस्पाप नाम के शिक्षकों (वदतं) के,

कुल से, ब्रह्मा का संबंधी, यश से परिपूर्ण।

उसमें कई छोटे-छोटे निशान थे।

(अनुभ्यंजन), बत्तीस से परिपूर्ण

उत्कृष्ट प्रमुख अंक (लक्खाणो),

उनकी एक घात लंबाई की विकिरण किरणों (पभा) से घिरे हुए, जो चारों ओर फैली हुई हैं (समोत्थाटो)।

वह एक सांत्वनादाता (असासेटा) था।

चंद्रमा को, प्रकाश उत्पन्न करने वाले की तरह

सूर्य, अग्निशामक (निब्बापेट) समान

वर्षा करने वाला, और गुणों का निर्माता (गुण)

समुद्र के समान।

उनके नैतिक उपदेशों (सीला) के साथ, जैसे

पृथ्वी (धारणी), एकाग्रता

हिमवा के समान, समान ज्ञान से युक्त

आकाश के लिए, अलगाव (असांगो) आकाश (एनिलो) के समान।

उस समय, मैं एक महान

प्रचुर मात्रा में नकदी और अनाज वाले परिवार के साथ,

इसमें विभिन्न प्रकार के रत्नों का अच्छा संग्रह है।

नेता के पास पहुँचकर (उपेक्का)

संसार का वह व्यक्ति जो उसके साथ बैठा था

बड़े दल के साथ, मैंने सुना

सत्य (धम्म) की शिक्षा जो

अमर अवस्था से मिलता जुलता था (का

(निब्बाना) जो मनभावन (मंचराम) है।

वह बत्तीस प्रमुख उपाधियों का धारक था।

चंद्रमा के समान दिखने वाले चिह्न (लक्खण)

अपने चंद्र नक्षत्रों (नक्खत्ता) के साथ;

उनमें लघु दोष (अनुभ्यांजन) थे।

संप्रभु सत वृक्ष के समान जो

खिल उठा था।

प्रकाशमान जाल से घिरा हुआ

किरणें (रंसी), वह सोने के समान चमकता था

उनके द्वारा घिरा हुआ पर्वत (कनाकाचलो)

एक फ़ैदम माप की किरणें विकीर्ण करना

(ब्यामप्पभा) सूर्य के समान (दिवाकरा)

सौ तेजस्वी किरणों (रंसी) का

स्वर्ण चेहरे का उत्कृष्ट विजेता

(आनन) एक पर्वत (सिलुकाया) की तरह था

महिला संन्यासिनियों (समाणी) का; उनका हृदय

वह दया और अपने गुणों से परिपूर्ण था।

यह समुद्र जैसा दिखता था।

वह विश्वव्यापी (लिकाविस्सुता) में से एक थे।

प्रतिष्ठा (किट्टी) सिनेरू के समान,

पर्वतों का स्वामी। वह था

वह नायक जिसने स्वयं को व्यापक रूप से फैला दिया था

यश (यसा), आकाश के समान ऋषि।

उसका मन हर जगह विरक्त था,

नेता आकाश के समान था; ऋषि

सबसे अच्छा (सट्टामो) पृथ्वी के समान।

सांसारिक चीजों से अछूता (अनुपालित)

मामले (लोकेना) लुटस के समान

वह जल जलाने वाला (दहानी) था

बुरी धारणाओं (कुवादा) की झाड़ी (गच्छा);

वह आग के एक विशाल पिंड की तरह चमक रहा था।

हर जगह औषधि के समान, वह था

वह दुराचार (किलेसा) का नाश करने वाला है।

उसे अभिषेक किया गया (विभूसितो)

गुणगंध की मीठी सुगंध

गंधमा की पत्थर की पहाड़ी के समान-

दाना.

नायक गुणों का भंडार (आकारो) था।

(गुण); वह रत्नों के सागर के समान था-

रत्न। सिंधु नदी की तरह।

घने जंगल की रेखा, वह था

अशुद्धता और दुराचार को दूर ले जाने वाला

(किलेसा).

वह तो केवल मारा का विजेता था।

विजयी महान युद्ध के समान सेना

योद्धा; वह तत्कालीन शासक था।

ज्ञानोदय के तत्वों (बोझझंग) में से,

वह रत्न (रत्न) जो उससे मिलता-जुलता हो

विश्व-राजा।

वह एक चिकित्सक थे जो घृणा का इलाज करते थे।

(डोसा) और रोग (ब्याधि) के समान

एक महान चिकित्सक। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने

घाव (गण्ड) को फाड़ देना (विफालको)

गलत दृष्टिकोण (दिट्ठी) के समान

सर्जन डॉक्टर (sallakattovejjo)

वह विजेता, जो प्रकाशमान दीपक है

लोकपज्जोत (विश्व), मनुष्यों द्वारा सम्मानित

और दिव्य प्राणी (सनारमरसक्कतो),

सभी श्रोताओं के बीच मनुष्य-योग, सिखाया गया

सत्य (धम्म)।

उन्होंने इस प्रकार निर्देश दिया: रथ भेंट करने के बाद

व्यक्ति अत्यंत धनी हो जाता है; साधनों के द्वारा

नैतिक उपदेश के मार्ग पर चलकर व्यक्ति उत्कृष्टता की ओर अग्रसर होता है।

अस्तित्व; व्यक्ति शांत और स्थिर हो जाता है

(निब्बाति) ध्यान (भावना) विकसित करके।

(सभी श्रोताओं ने वह सुना)

शिक्षण जो संतोषजनक रूप से मधुर था

(अस्सादा), आरंभ में सुंदर, मध्य में

और अंत जो अमर के समान था

ambroisia (mahārasam).

उस अत्यंत मधुर सत्य को सुनकर

(धम्म) मैं इससे अत्यंत प्रसन्न हुआ

विजेता का विधान; चले जाने के बाद

मैंने सुगत को अपना आश्रय (सरणं) बनाया।

मैंने अपनी शरण (सरनं) बनाई, और उसी में मैंने अपनी आराधना की।

मैं जीवन भर उसी का भक्त रहूंगा।

फिर मैंने भूमि (महिं) को ढेर कर दिया

ऋषि के सुगंधित कक्ष में ढेर लग गया

चार प्रकार के प्राकृतिक परफ्यूम के साथ

मैंने महीने में आठ दिन का संकल्प लिया।

मीठी सुगंध होने की स्थिति के कारण,

मेरे शरीर को सुगंधित करने के लिए।

फिर विजेता ने मेरे बारे में भविष्यवाणी की।

सुगंधित शरीर का लाभ।

क्योंकि उसने सुगंधित भूमि को ढेर कर दिया था

एक बार इत्र से भरे कक्ष के परिणामस्वरूप

वह कर्म, उत्पन्न होने पर

इधर-उधर, यह आदमी बन जाएगा

उसके पूरे शरीर से मीठी सुगंध फैली हुई थी;

इससे जुड़ जाने के कारण

वह मधुर सुगंध के गुण से निर्वाण में प्रवेश करेगा

संक्रमण रहित (आसवा)।

उस अच्छे कार्य के कारण और

इच्छाशक्ति और स्वयं के संकल्पों के कारण,

मैंने अपना मानव शरीर त्याग दिया और चला गया

तावतिमसा.

अब (मेरे) अंतिम जन्म में, मेरा जन्म हुआ।

एक ब्राह्मण (विप्पा) परिवार में; जब मैं रह रहा था

मेरी माँ के गर्भ में, उसका शरीर मधुर हो गया

सुगंधित।

जब मैं दोबारा अपनी माँ के गर्भ से बाहर आया,

तब सावत्थी नगर में हवा बहने लगी।

मानो सभी प्रकार की चीजों से व्याप्त हो

इत्र।

फूलों की वर्षा सुगंधित थी (सुरभि)।

दिव्य सुगंध से भरपूर और हृदय को आनंदित करने वाला।

अत्यधिक महंगी धूपबत्ती की हवा

लगातार हवा चलती रही (तवादे)।

जिस घर में मेरा जन्म हुआ, वहाँ दिव्य प्राणी मौजूद थे।

इसे मीठी सुगंध से भर दिया; उनमें वह बात थी।

घर में तरह-तरह के परफ्यूम की मीठी खुशबू आ रही थी।

और फूलों की अगरबत्ती।

जब मैं अपनी युवावस्था के पहले दिनों में एक नन्हे बच्चे के रूप में खड़ा था

अच्छा बालक, तो फिर, मनुष्यों का सारथी।

ब्राह्मण को वश में करके और अनुशासित करके

सेला और उसके साथी शहर में आए।

सावत्थी उन सभी से घिरी हुई थी।

बुद्ध की शक्ति को देखने के बाद,

मैं भिक्षु बन गया।

इस प्रकार के चार प्रकार विकसित करने के बाद

कर्म (धम्म) नैतिक उपदेशों (सीला) के रूप में

एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान (पन्ना)

साथ ही अतुलनीय मुक्ति

(विमुक्ति), मैंने अरहंत पद प्राप्त किया

घाव समाप्त हो गए।

जब मैं भिक्षु बना, और जब मैं बना

एक अरहंत के साथ-साथ जब मुझे प्रवेश करना था

निब्बाना, फिर वहाँ मीठी सुगंध थी

बारिश की बौछार।

मेरे शरीर की मीठी खुशबू हमेशा से ही

यह अत्यंत उत्कृष्ट (atiseti) था।

अत्यधिक योग्य चंदन की लकड़ी, चंपक (कैंपका)

और सफेद कमल (उप्पला); लेकिन इसी प्रकार थे

अन्य परफ्यूम भी हर लिहाज से बेहतर हैं।

वह जगह इस ओर और वह जगह मैं

मेरी (सुगंधित) हवा बहने लगी

(vāyāmi) जबरदस्ती (pasayha).

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी।... बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने विधर्मियों के बीच संन्यासी बनने के बाद आत्म-यातना (अत्तकिलमथा) के अभ्यास (अनुयोग) से जुड़े कष्टों और भिक्षु बनने के बाद प्राप्त ध्यान आदि के आनंद पर विचार किया और अपने स्वयं के उचित कर्मों पर चिंतन (मुखेन) के माध्यम से अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए इन पांच श्लोकों का कथन किया।

320. "एक आदमी, जो वह करना चाहता है जो उचित है

काम पूरा हो गया, उसने अभ्यास में खुद को लगा दिया

जिसे उसे समर्पित नहीं करना चाहिए (अयोगे)।

यदि वह (इस प्रकार) आचरण करता है, तो

कोई उपलब्धि हासिल नहीं की; यह भिक्षु का काम है

मेरे दोष (दुब्भाग) का।

321. कामवासना आदि जैसी बुराइयों से ग्रसित होने के कारण

(अघा) ने (अब्बुल्हा) को हटाया और पराजित किया

(विजिता), यदि कोई (पूरी तरह से) त्याग दे

(ओस्साजेय्या) एक (लगन) क्योंकि

अकेले रहने पर, कोई बदकिस्मत जैसा होगा।

मन (कली); यदि कोई सब कुछ त्याग दे तो भी

ऐसा करने से व्यक्ति अंधे व्यक्ति के समान हो जाएगा।

यह न देख पाना कि क्या समतल है और क्या नहीं।

नहीं (समाविसमा)।

322. "वास्तव में, व्यक्ति को वही कहना चाहिए जो वह करना चाहेगा;

जो काम हम नहीं करेंगे, उसे नहीं कहना चाहिए।

बुद्धिमान लोग यह बात पूरी तरह समझते हैं कि किसी को क्या कहना चाहिए।

नहीं कर रहा है।

323. "जैसे एक जीवंत (रुचिरं) फूल,

रंग से युक्त लेकिन मिठास से रहित

गंध, उसी प्रकार शब्द भी हैं-

कही गई बातें, करने वाले के लिए व्यर्थ हैं।

उन्हें व्यवहार में न लाएं (अकुब्बातो)।

324. "एक सुंदर फूल के अनुसार,

रंग और मीठी सुगंध का, उसी में

शिष्टाचार अच्छे से बोले गए शब्द हैं; वे

जो व्यक्ति इन्हें व्यवहार में लाता है, उसे लाभ होता है।

वहाँ, 'अयोगे' का अर्थ है: दो चरम सीमाएँ (अन्त) जिनमें संलग्न नहीं होना चाहिए, जिनकी सेवा नहीं करनी चाहिए; हालाँकि, इसका अर्थ आत्म-यातना (अत्तकिलमथा) में संलग्न होने (अनुयोग) के रूप में समझा जाना चाहिए। 'युञ्जं' का अर्थ है: स्वयं को उसमें बांधना और उसमें प्रवेश करना (पटिपज्जन्तो)। 'किच्चमिच्चको' का अर्थ है: कल्याण (हित) लाने के लिए जो किया जाना चाहिए उसे करने की इच्छा रखना (वहं); 'चरं' का अर्थ है: ऐसे लोगों का होना जो इसके विपरीत (तप्पटिपक्खतो) उन कार्यों में संलग्न होते हैं जिनमें संलग्न नहीं होना चाहिए (अयोगे); 'नाधिगच्छेय्या' का अर्थ है: व्यक्ति अपने इरादे के अनुसार कल्याण और सुख प्राप्त नहीं करेगा (अधिप्पेतं); इस प्रकार, इसे समझा जाना चाहिए (नायो)। इसलिए, विधर्मियों के मत (मता) से भ्रमित होकर मैंने जो कुछ भी किया, वह मेरे लिए अयोग (अतिरिक्त कार्यों) का विषय था; taṃ me dubhagalakkhaṇaṃ का अर्थ है: यही मेरे दोष (अपुञ्ञसभावो) का स्वरूप है। वह इस प्रकार समझाते हैं: "अपने पूर्व कर्म (कम्म) से भ्रमित होकर, मैंने उन कार्यों में स्वयं को संलग्न किया जो अयोग (अतिरिक्त कार्यों) के लिए समर्पित नहीं होने चाहिए।"

अब्बूल्हं अघगतं विजितं का अर्थ है: कामवासना (राग) और इसी प्रकार के अन्य दोष, जो हानि पहुँचाने वाले स्वभाव (विबाधन) के कारण पीड़ादायक कष्ट (अघा) कहलाते हैं; पीड़ादायक कष्ट (अघानी) स्वयं दुर्भाग्य (अघा) की स्थिति में पहुँचने का कारण बनते हैं; दुर्भाग्य (अघा) की स्थिति में पहुँच चुके लोगों का बार-बार पुनर्जन्म (संसार) में घटित होना (पवत्ति); इन पर विजय (विजयो) अच्छे कर्मों (कुसलधम्म) द्वारा प्रबल (अभिभावो) होना है। इसे "अघगतं विजितं" कहा गया है, बिना संबंधित अनुनासिकलोपं के लोप के; जिसके द्वारा इसे दूर (अब्बूल्हं) और वश में (अनुद्धतं) किया गया था; इस प्रकार, पीड़ादायक कष्ट (अघा) को दूर करने वाली इस पर विजय प्राप्त करने के बाद। स्वयं को दुराचार (किलेसा) के रूपों से मुक्त किए बिना (असमुच्चिन्दित्वा); यही अर्थ है। एकाञ्चे ओसज्जेय्या का अर्थ है: यदि वह साथी न होने (दुतिया) और कठिन परिश्रम (पधाना) के कारण परिश्रम या उचित प्रयास (सम्मापयोग) को पूरी तरह से त्याग दे (परिच्चजेय्या), तो वह व्यक्ति काले कान वाले अपशगुन के समान हो सकता है। सब्बानी पि चे ओस्सजेय्या का अर्थ है: यदि वह सभी के उद्धार (विमुक्ति) के लिए परिपक्वता (परिपाचक) लाने वाले सत्त्व, परिश्रम (विरिया), सति, एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान

(पञ्चिन्द्रियानी) का त्याग कर दे। अंधो व सिया समविसमस्स अदस्सनतो का अर्थ है: यदि वह भावना के विकास के अभाव में इनका त्याग (चड्डेय्य) कर दे, तो वह मार्ग के समतल और असमान भागों को न देख पाने के कारण अंधे के समान हो जाएगा।

यथा शब्द का प्रयोग उचित प्रस्तुतिकरण (संपटिपादन) के अर्थ में किया जाता है। रुचिरं का अर्थ है सुंदर (शोभनं)। वण्णवंतं का अर्थ है: गंधहीन (गंधरहिता), जिसे अत्यंत शुभ पाली भद्दक फूल, गिरिकण्णिका और जयसूमन फूल आदि के रूप में वर्गीकृत किया गया है। एवं सुभासिता वाचा का अर्थ है: बुद्ध की शिक्षाओं के तीन पिटक (वचन), जो अच्छे रंग और आकार वाले फूल (संथन) के समान हैं, सुविचारित वचन कहलाते हैं: जिस प्रकार गंधहीन फूल अपने धारणकर्ता के शरीर पर अपनी सुगंध नहीं फैलाता, उसी प्रकार जो व्यक्ति आदरपूर्वक (सक्कच्च) सुनी हुई बातों के अनुरूप स्वयं को (समाचरति) नहीं ढालता, वह भी ऐसा ही करता है। जब वह स्वयं वहाँ आदरपूर्वक (सक्कच्चं) अपेक्षित आचरण के अनुरूप कार्य नहीं करता; ऐसा न करने के कारण वह विद्या की मधुर सुगंध (सुत) और उचित कर्म (पटिपत्ति) की गंध (गन्ध) धारण नहीं कर पाता; यह निष्फल हो जाता है। अतः कहा गया है: "एवं सुभासितावाचा स्फला होति अकुब्बतो (इस प्रकार, कर्म न करने वाले के लिए सुविचारित वचन भी निष्फल हो जाता है)।

सुगंधकम् का अर्थ है: चमेली (सुमन), चंपक (चंपक), नीला कमल (नीलुप्पल) आदि जैसे विभिन्न प्रकार के फूल। एवं का अर्थ है: जिस प्रकार उस फूल को धारण करने वाले व्यक्ति के शरीर पर मधुर सुगंध फैलती है, उसी प्रकार जो कोई भी वहाँ उचित कार्य करता है, जो उसने आदरपूर्वक सुना है, और इसी प्रकार बुद्ध के वचनों के तीन पिटक माने जाने वाले सुगठित शब्दों का पालन करता है, उस व्यक्ति के लिए (सुगठित शब्द) फलदायी होते हैं; यह प्रचुर मात्रा में फलदायी और अत्यंत लाभकारी होता है, क्योंकि इसमें ज्ञान (सुत) की मधुर सुगंध और उचित कर्म के सुगंध का समावेश होता है। इसलिए, व्यक्ति को अपने जीवन को निर्देशानुसार व्यवस्थित करना चाहिए और जो कहा गया है उसके अनुरूप कर्ता बनना चाहिए। शेष बातें तो बस इसी प्रकार हैं जैसा कहा गया है।

थेरा सुभूत के श्लोक पर की गई टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(200):गिरिमानंद

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (200) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
200. गिरिमानंद
बुद्ध युग में राजगृह में राजा बिम्बिसार के पुरोहित के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम गिरिमानंद रखा गया। उन्होंने राजगृह में आयोजित सभा में भगवान बुद्ध की शक्ति और महिमा को देखा और भिक्षु बन गए। अपनी पढ़ाई के दौरान वे कुछ समय एक गाँव में रहे, फिर भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के लिए वापस गाँव आए। महाराजा बिम्बिसार को उनके आने की सूचना मिली और वे उनके पास जाकर बोले: 'हे पूज्यवर, आप यहीं निवास करें; मैं आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करूँगा।' लेकिन अपने व्यस्त कार्य में व्यस्त होने के कारण वे भूल गए, इसलिए थेरा खुले में रहने लगे। मौसम के देवताओं ने थेरा को भीगने के डर से वर्षा रोक दी। तब राजा ने सूखे को देखते हुए उनके लिए एक आश्रम बनवाया। और थेरा अपनी कुटिया में आश्रय लेकर, अपनी पूरी शक्ति और शांति का संयोजन करते हुए, अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। फिर, इसके आगमन से प्रसन्न होकर, उसने ऊपर से वर्षा होते हुए 'अञ्ञा' (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[325] वस्सति [38] देवो यथा सुगीताm॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता,॥
तस्सं विहारमि वुपासन्तो॥
अथ वे पथयसि पवस्सा देवा॥ ॥

[326] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता,॥
तस्सं विहारमि संतचित्तो॥

अथ वे पथयसि पवस्सा देवा॥ ॥

[327] वस्सति देवो यथा सुगीताm॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता,॥
तस्सं विहारमि वीतरागो॥
अथ वे पथयसि पवस्सा देवा॥ ॥

[328] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता,॥
तस्सं विहारमि वीतदोसो॥
अथ वे पथयसि पवस्सा देवा॥ ॥

[329] वस्सति देवो यथा सुगीतौ॥
चन्ना मे कुतिका सुख निवाता,॥
तस्सं विहारामि वीतमोहो॥
अथ वे पथयसि पवस्सा देवा॥ ॥

[325] हे ईश्वर, मधुर संगीत की तरह वर्षा करो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक, सुरक्षित और अच्छी छत वाली है।
उसमें मैं शांत और स्थिर हृदय से रहता हूँ।
हे ईश्वर, यदि आपको वर्षा करना अच्छा लगे, तो वर्षा करो!

[326] ईश्वर ऐसी वर्षा करता है मानो कोई मधुर धुन हो।
मेरी छोटी सी झोपड़ी आरामदायक, सुरक्षित और अच्छी छत वाली है।
मैं उसमें रहता हूँ और मेरे हृदय में शांति है।
अब, इत्यादि।

[327] [193] मैं उसमें रहता हूँ, सारी वासनाएँ दूर हो जाती हैं
।

[328] मैं जिस जीवन में रहता हूँ, उसमें सारी घृणा दूर हो जाती है
।

[329] मैं उसमें रहता हूँ, सारी त्रुटियाँ दूर हो गईं।
अब हे ईश्वर, यदि आपको वर्षा करना अच्छा लगे, तो वर्षा करो! [1]

[1] तुलना करें I. और LI.-LIV. एक लापरवाह परोपकारी संरक्षक के इन संदर्भों में इतनी एकरूपता है कि छह कविताएँ और उनकी किंवदंतियाँ व्यक्तिगत वैधता खो देती हैं।

5.3 [200] गिरिमानन्दथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
वस्सती देवो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गिरिमानंद का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, सुमेधा बुद्ध के समय में एक गृहस्थ परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ; वयस्क होने पर, वे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, जब अपनी पत्नी और पुत्र की मृत्यु पर वे शोक के बाण (शोकसल्ला) से क्षत-विक्षत हो गए, वन में प्रवेश किया, और वहाँ जब गुरु ने सत्य (धम्म) का उपदेश देने के बाद उनके शोक के बाण (अब्बूढ़े) को निकाला, तो वे श्रद्धापूर्वक उन्हें सुगंधित फूल अर्पित किए, पाँच प्रकार से पृथ्वी को स्पर्श करके (पंचपतिठित) उन्हें प्रणाम किया, अपने हाथों को सिर पर रखकर उनकी स्तुति की।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के जन्मों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और राजा बिम्बिसार के पुरोहित (पुरोहित) के पुत्र के रूप में राजगृह में पुनर्जन्म लिया, जब बुद्ध प्रकट हुए। उनका नाम गिरिमानद था। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने बुद्ध की शक्ति के दर्शन किए, जब गुरु राजगृह पहुँचे थे। उन्होंने उचित श्रद्धा धारण की, भिक्षु बन गए और अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन करते हुए कुछ दिनों तक एक गाँव के मठ में निवास किया और गुरु को प्रणाम करने के लिए राजगृह गए। महान राजा बिम्बिसार ने उनके आगमन की सूचना पाकर थेरा के पास जाकर उन्हें इस प्रकार आमंत्रित किया: "आदरणीय महोदय! यहीं निवास कीजिए; मैं संन्यासी के चार आवश्यक कार्य करके आपकी सेवा करूँगा।" वे चले गए और अत्यधिक व्यस्तता के कारण अपना वादा भूल गए। मन ही मन यह कहते हुए कि "थेरा खुले आकाश में निवास करते हैं," देवताओं ने वर्षा को रोक दिया, ताकि थेरा के भीगने का कोई खतरा न रहे। राजा ने वर्षा न होने का कारण जानकर (सल्लक्खेत्वा) थेरा के लिए एक कुटिया बनवाई। कुटिया में निवास करते हुए थेरा को निवास की अनुकूलता (सप्पाय) प्राप्त हुई, जिससे उन्हें स्थिरता (समाधान) मिली। उन्होंने सीधा (समा) प्रयास किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने में तत्परता से लगे रहे और अरहंतत्व प्राप्त किया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

"मेरी पत्नी मर चुकी थी; मेरा बेटा चला गया था।"

कब्रिस्तान तक; मेरी माँ, पिता

और भाई की मृत्यु हो गई थी; वे

एक ही चिता पर अंतिम संस्कार किया गया।

उस शोक से पीड़ित (संतात्तो)

मैं दुबला-पतला और पीला पड़ गया।

मेरा दिमाग मनोविक्षिप्त (खेपा) हो गया था,

उस दुख से पीड़ित रहा हूँ।

तीर से भेदा गया (parato)

दुःख में डूबकर, मैं भीतरी भाग की ओर बढ़ा।

वन (वनंतम्); निर्वाह करने वाला

(भुंजित्वा) गिरे हुए (पवत्ता) फलों पर

मैं एक पेड़ की तलहटी में रहता था।

स्वयंजागृत उस बुद्ध का नाम

सुमेधा, वह विजेता जो सबको हरा सकता था

कष्टदायक पीड़ा (दुक्खा) का अंत;

मुझे ऊपर खींचने की इच्छा रखते हुए

(उद्धरितुकामो), मेरे समक्ष आया।

आवाज सुनकर

महान ऋषि के पदचिह्न (पाद)

सुमेधा, मैंने ऊपर उठाया (पग्गहेत्वना)

मैंने अपना सिर ऊपर उठाया और महान की ओर देखा

समझदार।

जब महान नायक मेरे पास पहुंचा

(उपागेट), मेरे भीतर उत्साह (पिति) उत्पन्न हुआ;

उसके बाद मेरा मन एकाग्रचित्त हो गया।

उस विश्व नेता से मुलाकात करने के बाद।

मुझे उचित रूप से इस बात की जानकारी हो जाने के बाद,

मैंने मुट्ठी भर मुट्ठी (मुट्ठी) भेंट की।

पत्तों का (प◌ँ ...

भगवान, आंखों के स्वामी-

दृष्टि करुणावश बैठ गई (के लिए

मुझे)।

विश्व के नेता बुद्ध सुमेधा

वहाँ बैठने के बाद मुझे यह सिखाया गया

वह सत्य (धम्म) जिसने (विनोदन) को दूर किया

मेरे दुख का तीर।

वे बिना बुलाए (अनावहिता) वहाँ से आए थे;

बिना किसी अनुमति के (ananuññātā) वे

वे यहाँ से चले गए थे; उनके पहुँचने के अनुसार,

इसी प्रकार वे चले गए थे (गता); क्या

क्या विलाप करना चाहिए?

और साथ ही राहगीरों (पथिका) के अनुसार

जब बारिश मूसलाधार होती है, तो जीवित प्राणी

इसकी बौछारें, उनके सामान के साथ (भंडा)

उस आश्रय स्थल की ओर बढ़ें जहाँ बारिश न हो।

बौछार: हालाँकि, जब बारिश नहीं होती

लंबी बौछार (ओरामाइट), वे आगे बढ़ते हैं

(अपनी यात्रा के साथ) जैसे और जब चाहें;

इसी प्रकार, अपनी माँ और

पिताजी; फिर विलाप करने की क्या आवश्यकता है?

आने वाले (आगंटुका) मेहमान अस्थिर होते हैं

अस्थिर और कांपते हुए; उसी तरह, हैं

तुम्हारे माता-पिता; कितना विलाप!

क्या वहां होना चाहिए?

जैसे ही एक साँप अपने पंख फैलाता है

इसकी पुरानी, घिसी-पिटी, पपड़ीदार त्वचा (टाका) में

इसी प्रकार अपने माता-पिता से भी करवाएं;

वे अपने शरीर (तनु) को यहीं त्याग देते हैं।

यह समझने के बाद (अञ्ञाय) कि

बुद्ध ने शिक्षा दी (गिरा), मैंने उससे परहेज किया।

मेरे दुःख के तीर से;

इससे (जनायित्वाना) प्रसन्नता उत्पन्न हुई,

मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को नमन अर्पित किया।

महान व्यक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

मैंने अपना श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

शाखाओं वाले पुष्प डंठल की भेंट

(मंजरी) पर्वत (गिरि) की, सुगंधित

दिव्य सुगंध, नेता सुमेधा के लिए

दुनिया के।

मैंने श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित कर दी है

आत्मजागृत बुद्ध, और मैंने अपना

मैंने अपने हाथों को अपने सिर पर रखकर, अपना

विश्व के नेता की प्रशंसा,

उनके सर्वोत्कृष्ट गुणों पर चिंतन करते हुए।

हे महान वीर! हे सर्वज्ञ नेता!

हे महान ऋषि! आपने संसार को बदल दिया है!

(संसार के सागर को) पार किया; तुम खींचते हो

सभी जीवित प्राणियों को (उद्धरसी)

संसार के सागर) के माध्यम से

ज्ञान। हे महान ऋषि! आप प्रभावी रूप से

मेरे संदेह और दुविधा (द्वेलहक) को दूर करो;

आपने मुझे सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया।

(मग्गा) आपके ज्ञान के माध्यम से,

हे दृष्टिवान (चक्खुमा);

अरहंत वे योग्य व्यक्ति हैं जिन्होंने प्राप्ति की है।

अत्यधिक शक्तिशाली स्वामी (वासी)

(इद्धिका) छह प्रकार के सुपर के साथ-

ज्ञान (अभिञ्ञा), दृढ़ बुद्धिमान

जो आकाश में विचरण करते हैं

आप निरंतर (तावड़े)। शिक्षार्थी

(सेखा) जिनके कार्य उचित हों

(पटिपन्ना), वे शिष्य जो पालन करते हैं

उनकी सफलता आपके साथ है। जैसे

सूर्योदय के समय कमल (सूर्योदय), आपका

शिष्य सचमुच फलते-फूलते हैं।

हे दृष्टिवान (चक्खुमा),

अविचलित (अक्खोभो) हैं, जो समान हैं।

विशाल महासागर, अद्वितीय होने के साथ-साथ

अतुलनीय; से संपन्न होना

इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने से, आप

अतुलनीय। अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद

विश्व के विजेता को,

अच्छी दृष्टि वाला, प्रसिद्धि से परिपूर्ण,

मैं विपरीत दिशा में चला गया

सुगंधित कक्ष (paṭikuṭito) का

विभिन्न (पुथु) दिशाओं की आराधना करना।

दिव्य शक्ति से विदा होने के बाद

मैं अपनी माँ की दुनिया में उतर गया।

गर्भ, सोच-समझकर (संपजानो) और उपयुक्त रूप से

जागरूक (patissato), अच्छी तरह से चल रहा है

ये और वो, छोटे-बड़े सभी प्रकार के अस्तित्व।

घर से बाहर निकलते ही मैं

एक बेघर भिक्षु; उत्साही (अतापी) परिपक्व

(निपाको) और ध्यानमग्न (झायी) मैंने समर्पित किया

मैं स्वयं (गोकारो) एकांतवास (पटीसल्लाना) में।

मैंने अपना अथक प्रयास किया (पधानां)

पदहित्वान) और महान ऋषि को संतुष्ट किया।

मैं हमेशा इधर-उधर भटकता रहता था जैसे

चंद्रमा बादलों के समूह से मुक्त।

मुझे लगातार एकांतवास में रखा गया था।

शांत (उपसंतो) और नियंत्रित (निरुपधि);

सभी दोषों को पूरी तरह से समझ लेने के बाद, मैं

आसव (कैंसर) से मुक्त रहना। यह था

तीस हजार युग पहले, मैंने ऐसा किया था

मैंने श्रद्धापूर्वक बुद्ध को अपनी भेंट अर्पित की;

मुझे किसी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

पेशकश।

मेरी दुष्टता जलकर राख हो गई थी।... बुद्ध का

निर्देशों का पालन किया जा चुका है।

फिर, जब बारिश इतनी ज़ोर से बरसने लगी मानो वह थेरा के अरहंत पद प्राप्त करने से प्रसन्न और आनंदित हो रही हो, तो उन्होंने अपनी अरहंतता को प्रकट करने के लिए पाँच श्लोक कहे, ताकि बारिश को और अधिक बरसने के लिए प्रेरित किया जा सके (उपरी)।

325. "बारिश अपनी बौछारें बरसा रही है

सुगीतम् (अच्छी तरह से गाया गया)। मेरी कुटिया है

छत से ढका होने के कारण यह आनंददायक और हवा से मुक्त है।

(निवेट); शांत भाव से संयमित (वुपासन्त)

मैं वहीं निवास करता हूँ, हे वर्षा! क्या तुम

इच्छा, अपनी बौछार को बहने दो।

326. बारिश अपनी बौछारें बरसा रही है

सुगीतम् (अच्छी तरह से गाया गया)। मेरी कुटिया है

छत से ढका हुआ; यह आनंदमय और मुक्त है

हवा; शांत मन से, मैं वहाँ निवास करता हूँ।

तो, हे वर्षा! यदि तुम ऐसा चाहो तो...

इससे आपका शॉवर नीचे गिर सकता है।

327. "बारिश अपनी बौछारें बरसा रही है;..."

मैं कामवासना से मुक्त (राग) होकर वहाँ निवास करता हूँ;

...

328. बारिश अपनी बौछारें बरसा रही है;...

मैं क्रोध और घृणा से मुक्त होकर वहां निवास करता हूं;

...

329. बारिश मूसलाधार बरस रही है;...

मैं वहां भ्रम से मुक्त होकर निवास करता हूं;

ओ बारिश! अपनी बौछार बरसाओ

यदि आप ऐसा चाहें।

वहाँ यथासुगीतं का अर्थ है: अच्छे गायन (सुगीता) के अनुरूप (अनुरूपं); यहाँ तक कि उत्कृष्ट वर्षा के गीत के अनुरूप (अनुरूपं); यही अर्थ है। वास्तव में, बादल से भरा आकाश सुंदर (शोभति) नहीं लगता, जब तक कि वह बिना गरज के लगातार वर्षा करता रहता है; इस प्रकार, यद्यपि बादल सौ-हजार परतों (पटल) में उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह गरज और दहाड़ रहा हो, और यद्यपि लतानुमा बिजली चमक रही हो, फिर भी वर्षा के बिना वह सुंदर नहीं लगता; वर्षा अपने वास्तविक स्वरूप के अनुरूप हो गई है; यद्यपि वर्षा बलशाली है; इसलिए कहा गया है: "वस्सति देवो यथा सुगीतं।" अतः उन्होंने कहा: "अबित्थनय पज्जुन्न (हे वर्षा! गरज हो);" और "गज्जिका च'एव वस्सिता च (गरज के साथ-साथ वर्षा भी हुई)।" तस्संविहारमि का अर्थ है: मैं उस कुटिया में श्रेष्ठ (आरिया) जीवन (विहार) के आभास (गब्बेण) में निवास करता हूँ और उचित मुद्राओं (इरियापथ) के जीवन का आनंद लेता हूँ। वूपसन्तचित्तो का अर्थ है: शांत मन से, लेकिन सर्वोच्च फल की एकाग्रता (समाधि) के साथ।

बादलों से घिरे आकाश के युवा देवता ने, अपना वचन देते हुए, थेरा द्वारा इस प्रकार कई बार किए गए आग्रह (उय्योजना) को अपने सिर के माध्यम से स्वीकार करते हुए, अपनी प्रचुर वर्षा को बरसाया जिससे निचली भूमि और शुष्क भूभाग भर गया।

थेरा गिरिमानंद के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(201):सुमना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (201) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
201. सुमाना
बुद्ध युग में कोसल के एक साधारण परिवार में पुनर्जन्म लेकर सुमना नाम से उनका पालन-पोषण सुखमय परिस्थितियों में हुआ। उनकी माता के भाई अरहंत (ज्ञानी) बन गए और वन में रहने लगे। जब सुमना वयस्क हुए, तो उनके चाचा ने उन्हें भिक्षु दीक्षा दी और नैतिक आचरण का अभ्यास कराया। अंततः, जब उन्होंने चार ध्यान और पंचगुणी अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्चतर ज्ञान) प्राप्त कर लिया, तो थेरा ने उन्हें अंतर्दृष्टि का मार्ग दिखाया, जिससे उन्होंने शीघ्र ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। जब वे अपने चाचा के पास गए और उनसे उनकी सफलता के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने इस प्रकार घोषणा की:

[330] यं पत्थयानो धम्मेसु उपज्झायो अनुग्गहि,॥
अमाताऽ अभिकौंखंताऽ कटेऽ कट्टब्बाकाऽ मया.॥ ॥

[331] अनुप्पत्तो सच्चिकतो सयं धम्मो अनितिहो,॥
विशुद्धाणो निक्काण्खो व्यकारोमि तावंतिके॥ ॥

[332] पुब्बेनिवासः जानामि दिब्बाचक्खु विसोधितां,॥
सदत्तो मे अनुप्पत्तो कटं बुद्धस्स ससनं॥ ॥

[333] अप्पमत्तस्सा मे सिक्खा सुसुता तव सासने,॥
सब्बे मे असवा खीना नत्थि दानी पुनभभावो॥ ॥

[334] अनुसासि माऽ अरियावता अनुकंपि अनुग्गहि,॥
अमोघो तुयहमोवदो अन्तेवासिम्हि सिखितो' ति.॥ ॥

[330] जो मेरे शिक्षक चाहते थे कि मैं अच्छे सिद्धांतों में जानूँ
, और अपनी दया से
मुझे सिखाया, जो अमृत की लालसा रखता था:
अब, निर्धारित कार्य भी पूरा हो गया है।

[331] हाँ, धम्म मार्ग (मार्ग) को जीत लिया गया है और अनुभव किया गया है।
यहाँ तक कि मैंने स्वयं भी इसे 'इस प्रकार' नहीं सीखा है: [2] [194] शुद्ध ज्ञान मेरा है, हर संदेह दूर हो गया है।
मुझे आपके निकट खड़े होकर गवाही देने दीजिए:

[332] मैं पूर्व जन्मों के स्थान और समय को जानता हूँ,
और दिव्य दृष्टि स्पष्ट रूप से चमकती है;
मैंने परम अच्छाई, अर्हंतत्व को जीत लिया है, [3] और बुद्ध हमें जो करने के लिए कहते हैं वह हो चुका है।

[333] मैंने अच्छी तरह से सीखा है, जिसने पूरी लगन से काम किया,
आपके शासन में विधि और प्रशिक्षण;
क्योंकि सभी मादक पदार्थ (अशुद्धियाँ/इच्छाएँ) दूर हो गए हैं;
अब कभी भी नया जीवन नहीं आता।

[334] हे महान पंथ, तूने मेरा मार्गदर्शन किया है।
हे दयालु, तूने मुझ पर कृपा की है।
तेरी शिक्षाएँ व्यर्थ सिद्ध नहीं हुईं।
कभी शिष्य था, अब निपुण हूँ।

[1] पृष्ठ 32, नोट 1 देखें। उनमें केवल आसवक्खया की कमी थी।

[2] धम्मो अनितीहो, सुत्त निपाता में एक पसंदीदा अभिव्यक्ति । फाउसबॉल के अनुवाद और टिप्पणियाँ देखें, श्लोक 934, 1052, 1065, 1080, 1083, 1134; तुलना करें मिज्जी., i. 520.

[3] सदात्तो ती अरहंत्ताṃ (टिप्पणी)।

5.4 [201] सुमनत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यंपट्टयानो से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा सुमन का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और पचानवे युग (कप्पा) पहले, बिना किसी बुद्ध वाले संसार में, एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने एक रोगग्रस्त मौन बुद्ध को देखा और उन्हें पीला हरितक भेंट किया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब कोसल राज्य में एक धनी गृहस्थ परिवार (गहपतिकुल) में उनका पुनर्जन्म हुआ; सुमन नाम प्राप्त करके वे आनंदमय रूप से पले-बढ़े। उनके चाचा; हालांकि, भिक्षु बनने और अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, जब सुमना वयस्क हो गया, तो उन्होंने उसे भिक्षु बनाया और उसके आचरण के अनुरूप मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) (चरितानुकूला) दिया, जिससे उसकी उस कर्म के प्रति भक्ति (योगकम्मम्) विकसित हुई और उसे चार ध्यान और पांच गुना उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) प्राप्त हुआ। तब थेरा ने उसे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने की विधि बताई; उसने भी धीरे-धीरे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और कुछ ही समय में अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैंने स्वयं पीले मायरोबालन की व्यवस्था की।

एम्ब्लिक हरड़ (अमलका), आम,

यूजेनिया (जम्बू), बेलेरिक मायरोबालन;

(विभीतक), बेर फल (कोला),

भल्लातक (निशान लगाने वाला अखरोट) और फल

बिल्वा वृक्ष का।

वहाँ पहुँचने पर, मैंने देखा कि...

पर्वतीय ढलान पर ध्यानमग्न (झायी)

ध्यान में आनंद लेने वाले महान ऋषि

बिना किसी साथी के ऋषि, पीड़ित

बीमारी के साथ;

पीले मायरोबालन को अपने साथ ले जाने के बाद

मैंने इसे आत्मनिर्भर मौन व्यक्ति को अर्पित किया।

बुद्ध; ठीक उसी क्षण जब वे चबा रहे थे

उस औषधीय फल के सेवन से उसकी बीमारी ठीक हो गई।

(पासम्भी) वहीं और उसी समय (तावदे)।

वह मौन बुद्ध जिसने छुटकारा पा लिया था

उसकी जलन की बीमारी (दारथा) ने उसे

मुझे यह कहने के लिए धन्यवाद।

औषधीय फल का अर्पण, उसकी बीमारी

वह आशंका दूर हो गई थी।

चाहे आप दिव्य प्राणी बन गए हों

या कोई मनुष्य हो या किसी अन्य रूप में जन्मा हो

जन्म, आप हर जगह खुश रहें;

आपको कोई बीमारी न आए

यह सब कहने के बाद, आत्मनिर्भर

अजेय, स्वयंजागृत मौन

बुद्ध, दृढ़ बुद्धिमान, भयभीत होकर

आकाश, हंस सम्राट के समान

आकाश में।

क्योंकि पीले मायरोबालन की पेशकश की गई थी

मेरे द्वारा आत्मनिर्भर महान ऋषि को,

इस जन्म के बाद से आगे कोई और संतान उत्पन्न नहीं हुई।

मुझे इससे परेशानी होती है।

यह मेरा आखिरी जन्म है; यह मेरा अंतिम जन्म है।

अस्तित्व; त्रिविध ज्ञान (विज्जा)

कल्पना की जा चुकी थी; बुद्ध का निर्देश

कार्य संपन्न हो चुका था।

यह चौरानवे युग पहले की बात है, जब मैंने

फिर मैंने औषधि का अर्पण किया;

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो; यह

यह चिकित्सा का एक सार्थक परिणाम है।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, एक दिन वे अपने मामा थेरा की सेवा करने के लिए उनके पास गए। थेरा ने उनसे उनकी उपलब्धि के बारे में पूछा। उस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने सिंह की गर्जना करते हुए इन पाँच श्लोकों के माध्यम से अपने अरहंत पद (अञ्ञा) का प्रकटीकरण किया।

330. "मेरे गुरु (उपज्जायो) ने मुझे एक

सत्यों में सहायक हाथ (अनुगही)

(धम्म) जो मैं चाहूँ (पत्थयानो);

अमरता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा रखने वाला (अमता),

जो कुछ किया जाना चाहिए था वह किया जा चुका था।

मुझे।"

331. "सत्य (धम्म), जो आधारित नहीं है

सुनी-सुनाई बातों को विधिवत रूप से स्वीकार कर लिया गया था और

मैंने स्वयं इसकी कल्पना की है; मेरा ज्ञान है

मैं पूरी तरह से शुद्ध हूँ और मैं इससे मुक्त हूँ।

संदेह; मैं आपके सामने (स्वयं को) प्रकट करता हूँ

उपस्थिति।

332. "मैं अपने पूर्व निवासों को जानता हूँ, अपने दिव्य निवासों को जानता हूँ

आँख पूरी तरह से शुद्ध हो गई है; मेरी

मेरी अपनी इच्छा विधिवत रूप से साकार हो गई थी;

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

333. "उच्च नैतिक आचरण (सिक्खा)

मेरे उन लोगों में से जो मेहनती थे, उन्होंने

मुझे आपके विधान में ज्ञान प्राप्त हुआ (सुस्सुता)।

मेरे सारे घाव ठीक हो चुके थे;

अब कोई नया अस्तित्व नहीं है।

334. "आपने मुझे नियमों का पालन करने के लिए अनुशासित किया।"

उच्च नैतिक सिद्धांतों और व्यवहारों का;

मेरे प्रति सहानुभूति दिखाते हुए तुमने मुझे एक चीज़ दी।

मददगार हाथ। आपकी सलाह काम नहीं आई।

व्यर्थ ही रहा; आपके निवासी छात्र के रूप में

मैंने निम्नलिखित के पालन के साथ प्रशिक्षण लिया था:

उच्च नैतिक सिद्धांत और व्यवहार।

वहाँ, yaṃpatthayāno dhammesu, upajjhāyo anuggahi; amataṃ abhikankhaṃ का अर्थ है: मेरे गुरु ने मुझे सलाह देने के बहाने मेरी सहायता की, क्योंकि मैं अमर निर्वाण की तीव्र इच्छा रखता था; उन्होंने मेरी सहायता की, जो सत्य (धम्म) की कामना और चाह रखता था, जिसमें शांत भाव और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) जैसे निष्पाप कर्म (धम्म) शामिल थे। Kataṃ kattabbaṃ maya का अर्थ है: पूर्ण ज्ञान (परिज्ञा) आदि जैसी विभिन्न प्रकार की विधाओं में जो भी कर्म किए जाने चाहिए, उन्हें मैंने पूर्ण कर लिया है।

अनुपत्टो सच्चिकतो का अर्थ है: इसके बाद भी, सही मार्ग (मग्गधम्म) का चार गुना सत्य भी प्राप्त और अनुभव किया गया था। सयंधम्मो अनितिहो का अर्थ है: फल प्राप्ति के लिए किया गया कर्म (धम्म) और निर्वाण के लिए किया गया कर्म (धम्म) सुनी-सुनाई बातों पर आधारित नहीं है, न ही अस्पष्ट है, बल्कि स्वयं अपनी आँखों से देखा गया है; श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) प्रकट हुआ, लेकिन संदेह को अच्छी तरह से दूर करने पर, "इतिहा, इति किता (ऐसा कहा गया है, ऐसा कहा गया है)" जैसे भावों के कारण ऐसा माना गया। इसी कारण उन्होंने कहा: "विशुद्धज्ञानो निक्कंखो" इत्यादि। यहाँ, विशुद्धज्ञानो का अर्थ है: वह पूर्णतः शुद्ध ज्ञान से युक्त थे, क्योंकि वे सभी दोषों से मुक्त थे। तावंतिके का अर्थ है: आपके निकट।

सदात्थो का अर्थ है: अरहंत पद। सिक्खा का अर्थ है: उच्च नैतिक उपदेशों आदि के अनुरूप अनुशासित आचरण। सुस्सुता का अर्थ है: प्रामाणिक ग्रंथों (परियत्ति) में पूर्ण ज्ञान और सही मार्ग में प्रवेश करने के ज्ञान से परिपूर्ण, उत्कृष्ट विद्वान। तव सासाने का अर्थ है: (जिसने) आपकी सलाह और निर्देश का पालन किया।

अरियावता का अर्थ है, अपने ऊपर उचित रूप से ऐसे कर्तव्यों (वात) का पालन करना, जो पूर्णतः शुद्ध नैतिक उपदेश हैं, इत्यादि। अंतेवासिम्हि सोक्खितो का अर्थ है: आपके निकट रहकर व्यावहारिक (चिण) पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत करने के कारण, मैं ऐसे अनुशासित आचरण वाला (सिक्खिता) उच्च नैतिक उपदेशों का पालन करने वाला (सिक्खितावा) शिष्य था।

थेरा सुमना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(202):वड्डा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (202) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
202. वड्डा
बुद्ध युग में भरुकच्छ नगर में एक साधारण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम वड्ड रखा गया और वे समय के साथ बड़े हुए। [1] अब उनकी माता, पुनर्जन्म और मृत्यु की निरंतरता से व्याकुल होकर, अपने पुत्र को अपने परिवार को सौंपकर, भिक्षुणियों के बीच भिक्षुणी बन गईं। इसके बाद उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। उनके पुत्र ने भी थेरा वेलुदंत के अधीन भिक्षुणी बन गए और बुद्ध-शब्दों का अध्ययन करके, वे विद्वान और उपदेशक बन गए। एक दिन, अपने पद की जिम्मेदारी को महसूस करते हुए, उन्होंने सोचा: 'मैं अकेले अपनी माता से मिलने जाऊंगा, और भिक्षु का वस्त्र नहीं पहनूंगा।' इसलिए वे भिक्षुणियों के आवास पर गए। [195] उनकी माता ने उन्हें देखकर फटकारा: 'तुम यहाँ अकेले और भिक्षु का वस्त्र पहने बिना क्यों आए हो?' और अनुचित कार्य करने के दोषी पाए जाने पर, वह अपने विहार (मठ) लौट आया, और दिन के कमरे में बैठकर, वहाँ अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, और अपनी इस उपलब्धि का श्रेय अपनी माता की नसीहत को देते हुए अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) का प्रमाण दिया।

[335] साधु हि कीरा में माता पतोदां उपादौंसयि,॥
यस्साहं वचनं सुत्वा अनुसिट्ठो जनेत्तिया,॥
अरद्धवीरियो पहितत्तो पत्तो संबोधिमुत्तमṃ॥ ॥

[336] अराहा दक्खिनेयोम्ही तेविज्जो अमतद्दसो,॥
जेत्वा1 नमुचानो सेनां विहारामि अनासावो॥ ॥

[337] अज्झट्टṃ च बहिद्ध च ये मे विज्जीसु आसव,॥
सब्बे अस्सो उच्चिन्ना न च उप्पज्जरे पुना॥ ॥

[338] विसारदा खो भगिनी एतम् अत्थाऽ आभासयी,॥
अपिहा नुना मयिपि वनथो ते न विज्जति॥ ॥

[339] परियंतकाटाṃ दुक्खाṃ एंटीमो'ताṃ समुस्सायो,॥
जातिमरणासंसरो नत्थि दानि पुनभभावो ति.॥ ॥

[335] हे सत्य, मेरी माता ने अंकुश का प्रयोग भली-भांति किया!
मैंने उनकी बात मानी, और अपने माता-पिता द्वारा सिखाई गई शिक्षाओं से प्रेरित होकर,
मैंने प्रयास किया, अपनी सारी शक्ति लगा दी,
और लक्ष्य, सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया।

[336] मैं अरहंत हूँ, मनुष्यों की भेंटों के योग्य। [2] तीन गुना बुद्धिमान, मैं अमृतमय दर्शन देखता हूँ;
नामुची (मृत्युदेव/मारा) और उसकी सारी सेना पराजित हो गई है, [3] और अब मैं आगे से स्वस्थ और प्रतिरक्षा से मुक्त रहता हूँ।

[337] हाँ, वे मादक पदार्थ (अपवित्रताएँ/इच्छाएँ) जो कभी मेरे
भीतर, मेरे बाहर, मौजूद थे, [4] पूरी तरह से निकाल दिए गए हैं;
कुछ भी शेष नहीं रहा और न ही वे पुनः प्रकट हो सकते हैं।

[338] देखो! बुद्धिमान और अनुग्रह में परिपक्व बहन [5] थी,
जिसने मुझसे यह गुप्त भलाई का वचन कहा:
अब तुम्हारे लिए भी, मेरे लिए, [मेरे बेटे]
मन के किसी जंगल ने मार्ग में बाधा नहीं डाली।

[339] दुःख के लिए एक अंतिम अवरोध बनाया गया है।
यह अंतिम नश्वर शरीर है, जिससे
जन्म और मृत्यु के अंतहीन संसार का संबंध है,
और तुम्हारे लिए कभी पुनर्जन्म नहीं होगा।

[1] अनुपुब्बेना वड्धति। यह (यहाँ) असामान्य वाक्यांश निस्संदेह उनके नाम को संदर्भित करता है, जिसका अर्थ है 'विकास', 'वृद्धि'। माता की कहानी सिस्टर्स, lxii. ff में दी गई है। वह भी उनके लिए बोलती हैं, लेकिन 'प्रेरक' - शाब्दिक रूप से, 'उकसाने वाला' - उद्देश्य और 'जंगल' को छोड़कर, वह उनके मुख से एक अलग कथन (गाथा) प्रस्तुत करती हैं, जो रचनाकार के अंतर का एक अप्रत्यक्ष प्रमाण है (परिचय देखें)। अंतर्वस्त्रों को बाहरी वस्त्रों के रूप में पहनना - अर्थात्, चीवर को पीछे छोड़ना - विनय अनुशासन (विनय, iv. 281) में टिप्पणी की गई है। संभवतः थेरा ने इसमें अपने पुत्रत्व को अपने पद से ऊपर रखा।

[2] = श्लोक 296, 516.

[3] नामूसी, मारा (मृत्यु के देवता/शैतान) का एक नाम है

[4] अर्थात्, बहिद्धवत्थुका, 'बाहरी आधार या कारण रखने वाला' - जैसे, इंद्रियों के विषय, गुमराह शिक्षक, स्वर्ग आदि।

[5] भगिना, शाब्दिक अर्थ, बहन।

5.5 [202] वड्डत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
साधुही से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वड्ध का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब भरुकच्छ नगर में एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; वड्ध नाम प्राप्त करके, वह समय के साथ परिपक्व हुआ। फिर, उनकी माता, बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों (संसार) में पश्चाताप से ग्रस्त होकर, अपने पुत्र को अपने रिश्तेदारों को सौंपकर, अन्य भिक्षुणियों की उपस्थिति में भिक्षुणी बन गईं और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) का अभ्यास करके अरहंतत्व प्राप्त किया। एक बार उन्होंने अपने पुत्र को, जो बुद्धिवान हो चुका था, थेरा वेलुदंत की उपस्थिति में भिक्षु बना दिया। भिक्षु बनने के बाद, उन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं (वचन) का ज्ञान प्राप्त किया, सत्य (धम्म) के एक प्रख्यात शिक्षक बने और शास्त्रों (गंथ) के अध्ययन का भार (धुरा) वहन करते हुए एक दिन भिक्षुणियों के मठ में यह कहते हुए गए, "मैं केवल भीतर और बाहर (संतरुत्तरो) अपनी माता को देखूंगा।" उसे देखकर उसकी माता ने उससे पूछा: "तुम यहाँ केवल आंतरिक और बाह्य (अंतरुत्तरो) रूप में ही क्यों आए हो?" माता के इस प्रश्न से विचलित होकर उसने पश्चाताप व्यक्त करते हुए कहा: "मुझसे एक अनुचित कार्य हो गया है।" वह अपने मठ लौट गया, अपने दिन के विश्राम कक्ष में बैठा, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सित्वा) प्राप्त की, अरहंतत्व प्राप्त किया और अपनी माता की सलाह की समृद्धि को प्रकट करते हुए, अपने अरहंतत्व को दर्शाते हुए इन श्लोकों का पाठ किया।

335. "वास्तव में, यह कहा जा सकता है कि मेरी माँ

उसने मुझे उकसाने में अच्छा काम किया था

उकसाते हुए। सुनने के बाद

मेरी माँ द्वारा दी गई चेतावनी के अनुसार, उसका वचन।

(janettiyā), मैंने अपना प्रयास अच्छी तरह से किया

शुरू हो गया, मेरा मन अच्छी तरह से निर्देशित था (की ओर)

(निब्बाना), और मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।

ज्ञानोदय की सर्वोच्च चोटी।

336. "मैं अरहंत बन गया, योग्य प्राप्तकर्ता।"

समर्पित दान का, जिसके पास है

त्रिगुण ज्ञान (तेविज्जो) जो

निर्वाण की कल्पना की; विजय प्राप्त कर ली

मैं मारा की सेना से मुक्त होकर रहता हूँ।

कैंकर (आसवा)।

337. "मेरे भीतर जो भी दोष मौजूद थे

बाह्य रूप से भी वे सभी थे

बिना किसी शेष के अलग-अलग काट दिया; वे ऐसा करते हैं

दोबारा न उभरना।

338. "सचमुच, हे बहन! (भगिनी!) तुम

वे आत्मविश्वास से भरे हुए हैं (visāradā);

आपने मुझे यह (सलाह) दी थी

लाभ (अत्था); निश्चय ही, मुझमें भी

तुममें कोई स्नेह (पिहा) नहीं था; तुममें

आसक्ति का कोई जंगल जैसा विकास नहीं है

(वनाथो).

339. "कठोर पीड़ा (दुक्खा) डाल दी गई थी

सभी का अंत; यह संग्रह

मिठाई (समुस्सया) का अंतिम भाग है।

(एंटीमा); अब अस्तित्व में नहीं है

बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र भी

एक नए अस्तित्व के रूप में।"

वहाँ, Sādhū kira me mātā, patodaṃ upadaṃsayi का अर्थ है: यह कितना अच्छा हुआ कि मेरी माता ने मुझे सलाह के रूप में अंकुश दिखाया; इसी कारण मेरा परिश्रम प्रज्वलित (uttejenti) हुआ और मेरे शरीर के सबसे उत्तम अंग (paññāsīse) में प्रवेश (vijjhi) कर गया। Yassā का अर्थ है: मेरी माता का। Sambodhiṃ का अर्थ है: अरहंतत्व। वास्तव में, यहाँ इसका यही अर्थ है:— मेरी माता द्वारा उपदेशित (janettiyā) होकर, मैंने उनके वचन को सुनकर, जो उनका उपदेश बन गया था, अपना परिश्रम अच्छी तरह से शुरू (āraddhavīriyo) किया और मेरा मन (atta) अच्छी तरह से निर्देशित (pahita) हुआ और इस प्रकार रहते हुए, मैंने अरहंतत्व प्राप्त किया, जो सबसे उत्तम और सर्वोत्कृष्ट आत्मज्ञान है।

अरहा का अर्थ है: उन विकृतियों से दूर रहने की अवस्था के कारण; दक्खिणेयो का अर्थ है: पुण्य क्षेत्र (पुण्णखेत्त) होने के कारण मैं समर्पित दान का योग्य प्राप्तकर्ता हूँ। तेविज्जो का अर्थ है: तीन प्रकार के ज्ञान (विज्जा) जैसे कि मेरे पूर्व निवासों (पुब्बेनिवास) आदि के ज्ञान को प्राप्त करने के कारण त्रिविध ज्ञान से युक्त; अमतद्दसो का अर्थ है: निर्वाण के दर्शन के कारण अमरता का द्रष्टा; नमुचिनो सेनां का अर्थ है: मारा की सेना; मैं दोषों (आसव) से मुक्त होकर आनंदपूर्वक निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने ज्ञान (बोधि) के पंखों (पक्खिया) की अपनी सेना द्वारा विकृति (किलेसा) के वाहक (वाहिनीं) को पराजित किया है।

अब, उन्होंने “अज्जत्तं च” से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया ताकि “अनासवो (कैंसर रहित)” के अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सके। इसका अर्थ है: — अज्जत्तं का अर्थ है: आंतरिक आधार (वत्थु); बहिद्धा का अर्थ है: बाह्य आधार; आसवा ये का अर्थ है: श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) की प्राप्ति से पहले मेरे वे कैंसर। विज्जिंसु का अर्थ है: वे प्राप्त हो रहे थे; उच्छिन्ना का अर्थ है: श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) द्वारा उन सभी को बिना किसी अवशेष के काट दिया गया था और त्याग दिया गया था; अब, वे किसी भी अवसर पर फिर से उग आएंगे और प्रकट होंगे।

अब उन्होंने अपनी माता की प्रशंसा करने के लिए “विसारदा” से शुरू होने वाला श्लोक बोला, क्योंकि उन्होंने अपनी माता के वचन को अपना मार्गदर्शक (अंकुसा) बनाकर अरहंतत्व प्राप्त किया था। यहाँ, “विसारदा खो” का अर्थ है: निःसंदेह (साराज्जा)। “भगिनी” का अर्थ है: थेरा ने अपनी माता को “बहन” कहकर संबोधित किया, ताकि वे स्वयं और अपनी माता के इस प्रकार अरहंतत्व प्राप्त करने से गुरु के प्रिय पुत्र होने की स्थिति का वर्णन कर सकें। “एत्तमत्थं आभासयी” का अर्थ है: उन्होंने यह बात कही (अत्थम्) जो मेरे लिए उपदेश बन गई; मुझे नसीहत देते हुए; यद्यपि, इस प्रकार, यह पूरी तरह से विश्वास में नहीं है (विसारदा)। वास्तव में (atha kho) apihā nūna mayi pi का अर्थ है: वास्तव में (atha kho) मुझे लगता है (maññe) कि आप अपने पुत्र से भी स्नेह नहीं रखते और उससे कोई संबंध नहीं रखते; दूसरे शब्दों में, इस युक्ति (parikappana) का प्रयोग क्यों? Vanatho te na vijjati का अर्थ है: अज्ञान (avijjā) आदि जैसी ऐसी जंगली वनस्पति आपके शरीर (santāna) में विद्यमान नहीं है, क्योंकि आप मुझे अस्तित्व के क्षय की ओर धकेल रहे हैं; यही इसका अर्थ है।

अब उन्होंने “परियंतकतां” से शुरू होने वाला अंतिम श्लोक बोला, ताकि यह दिखाया जा सके: “तया नियोजितकारेन् 'एव मया पटिपन्नं (पर आपके आग्रहानुसार ही मैंने उचित कार्य किया था)।” इसका अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में आता है।

थेरा वड्ड के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (203): नदी का कस्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (203) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
203. नदी का कस्सपा

बुद्ध युग में मगध ब्राह्मणों (पुजारियों) के कुल में उरुवेला-कस्सपा के भाई के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनकी धार्मिक प्रवृत्ति ने उन्हें गृहस्थ जीवन से विमुख कर दिया और वे एक तपस्वी बन गए। [196] 300 तपस्वियों के साथ उन्होंने नेरांजरा नदी के किनारे एकांतवासी जीवन व्यतीत किया और इस प्रकार वे अपने वेश और अपने कुल के नाम से नदी के कस्सपा के नाम से जाने गए। अब किस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने उन्हें 'आओ, भिक्षु' कहकर भिक्षुत्व और अपने साथियों को दीक्षा दी, इसका वर्णन खंडक में मिलता है। [1] भगवान के अग्नि संबंधी उपदेश द्वारा उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। इसके बाद अपनी उपलब्धि पर विचार करते हुए, उन्होंने त्रुटि से मुक्ति व्यक्त करते हुए ज्ञान (प्राप्ति) की घोषणा की।

[340] अत्थया वात मे बुद्धो नदीं नेरंजरं आगा,॥
यस्सहं धम्मं सुत्वना मिच्छदिथिं विवज्जयिं॥ ॥

[341] याजीṃ [39] उक्कावेस याननें अग्गिहुट्टाṃ जुही अहाṃ,॥
एसा सुद्धिति मन्नन्तो अन्धभूतो पुथुज्जणो॥ ॥

[342] दितिघहनपक्खन्नो परमसेना मोहितो,॥
अशुद्धि मान्निसां शुद्धि अन्धभूतो अविद्दसु॥ ॥

[343] मिच्छादिथि पहिना मे भव सबे विदालिता,॥
जुहामि दक्षिणेयाग्गिं नमस्सामि तथागतं॥ ॥

[344] मोहा सब्बे पहिना मे भवतन्हा पडलिता,॥
विक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भावो' ति.॥ ॥

[340] हे, सचमुच मेरे भले के लिए ही
बुद्ध नेरंजरा के पास आए, जिनके उपदेश सुनकर मैंने गलत विचारों का त्याग किया।

[341] अनेक बलिदानों में अनुष्ठानकर्ता बनकर,
मैंने पवित्र अग्नि को पोषित किया, आहुति अर्पित की;
'ये शुद्ध और पवित्र अनुष्ठान हैं!' मैं सोचता हूँ -
हे अंधा और साधारण व्यक्ति जो मैं था!

[342] विधर्मों के जंगल में भटकता हुआ,
उनके संक्रमण से व्याकुल और गुमराह होकर,
मैंने उस धर्म को झूठा समझा जो शुद्ध था।
और मैं अंधा, लापरवाह और अज्ञानी था।

[343] अब मेरे लिए सभी त्रुटियाँ दूर हो गई हैं;
वापसी की श्रृंखला टूट गई है।
हर उपहार के लायक, मैं अग्नि का उत्सव मनाता हूँ: [2] मैं तथागत (अर्थात बुद्ध) की पूजा करता हूँ ।

[344] मैंने सभी भ्रमों को दूर कर दिया है।
आगे बढ़ने की प्यास कुचल दी गई है,
और जीवन का अंतहीन चक्र चकनाचूर हो गया है।
अब मेरे लिए कोई पुनर्जन्म नहीं होगा!

[1] विनय ग्रंथ, i. 118-185.

[2] सम्मासंबुद्ध (टीका)।

5.6 [203] नादिकस्सापट्टेरा के श्लोक पर टीका
अत्थाय वत मे से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा नादिकसप्पा का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और उन्होंने अपने द्वारा लगाए गए वृक्ष पर उगे पहले फल, लाल आर्सेनिक (मनोसिला) रंग के आम को भेंट किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे मगध राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में उरुवेलकस्सपा के भाई के रूप में पुनर्जन्म लिए। वयस्क होने पर, उन्होंने संसार से मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा (अज्जासय) के कारण गृहस्थ जीवन न जीने की चाह में संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए और अपना आश्रम (अस्समा) बनाकर नारंजरा नदी के किनारे तीन सौ संन्यासियों के साथ निवास किया। वास्तव में, नदी के किनारे निवास करने और कस्सपा वंश से होने के कारण वे नदीकस्सपा के नाम से जाने गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें और उनके अनुयायियों को "एहि भिक्खु (आओ, हे भिक्षु!)" कहकर पूर्ण दीक्षा दी। यह सब विनय के खंडक भाग में ही वर्णित है। उन्होंने आदित्तपरीय (भगवान बुद्ध की ज्वलंत उपमा) पर उपदेश (देशना) के माध्यम से अरहंत पद प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैंने गुरु बुद्ध पद्ममुत्तरा को यह भेंट अर्पित की।

विश्व के सबसे बुजुर्ग ऋषि के समान एक ऋषि।

समर्पित दान के योग्य प्राप्तकर्ता,

नायक, सबसे अधिक भार वहन करने वाला (धारतो)

असाधारण प्रसिद्धि, जो इधर-उधर भटक रहा था

भिक्षा-भोजन के लिए सर्वोपरि (अग्गा) फल

मेरे द्वारा मेरे मनभावन ढंग से एकत्रित किया गया

पवित्र मन।

हे द्विपादिंडा के स्वामी!

दुनिया का सबसे बड़ा (लोकजेठ),

पुरुषों में बैल!

उस कार्य से, मैंने अविचलितता प्राप्त कर ली है

(अकलं) स्थान, त्यागने के बाद

विजय और पराजय।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने दान दिया था। मैं करता हूँ।

किसी भी बुरी सत्ता को याद नहीं; यह

यह मेरी सबसे महत्वपूर्ण कोशिश का फलदायी परिणाम है।

(अग्गा) भेंट।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।

अरहंत पद पर स्थापित होने के बाद, उन्होंने बाद में अपने उचित आचरण (पटिपत्ति) पर विचार किया और अपने गलत विचारों (दिट्ठी) को जड़ से उखाड़ फेंकने (समुग्घाता) की घोषणा (मुखेना) के माध्यम से अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए इन श्लोकों का उच्चारण किया।

340. "वास्तव में मेरे कल्याण के लिए ही बुद्ध यहाँ पहुँचे थे।"

नेरांजारा नदी; सुनकर

उनके द्वारा सिखाए गए सत्य (धम्म) को मैं

मैंने अपने गलत विचारों को त्याग दिया।

341. "मैंने उच्च और निम्न, दोनों प्रकार के बलिदान किए;

मैंने अग्नि पूजा और बलिदान किया,

इन्हें पवित्रता के कर्म मानते हुए,

मैं, एक अंधा आम आदमी (पुथुज्जना) होने के नाते।

342. "जंगल में घुस गए (पक्खंदो)

गलत विचारों (दिट्ठी) का (गहना), भ्रमित

गलत अभ्यास (परमासा) से अंधा हो गया

(अंधभूतो) और अज्ञानी, मैंने सोचा

अशुद्ध को शुद्ध करना।

343. "गलत दृष्टिकोण को त्याग दिया गया था

मुझे; सभी अस्तित्व खंडित हो गए थे।

मैं (अब) अपनी बलिदानपूर्ण सेवा अर्पित करता हूँ।

(जुहामी) अग्नि के समान, योग्य

समर्पित दान के लिए और मैं अपना शरीर नमन करता हूँ

तथागत को।

344. "मेरे सभी भ्रम दूर हो गए थे:

अस्तित्व (भव) के लिए लालसा (तण्हा)

टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए थे; बार-बार के दौर

पुनर्जन्म की संभावनाएं पूरी तरह समाप्त हो चुकी थीं;

अब कोई नया अस्तित्व नहीं है।

वहाँ, atthāya vata me का अर्थ है: वास्तव में, मेरे कल्याण के लिए। Buddho का अर्थ है: सर्वज्ञ बुद्ध। Nadiṃ Nerañjaraṃ agā का अर्थ है: नेरंजरा नदी पर पहुँचे; उस नदी के किनारे भी, वे मेरे भाई उरुवेला कस्सपा के आश्रम के पास आए; इस प्रकार, इसका महत्व है।

अब, कही गई बातों के अनुसार अर्थ स्पष्ट करने के लिए, यह इस प्रकार कहा गया है: "यस्साहं," इत्यादि। यस्सा का अर्थ है: भगवान बुद्ध का। धम्मं सुत्वन का अर्थ है: चार आर्य सत्यों से उचित रूप से संबंधित सत्य (धम्म) को सुनकर; कानों के द्वारों के अनुसार (अनुसार) गहन ज्ञान प्राप्त करके। मिच्छादित्तिं विवज्जयं का अर्थ है: मैंने "यञ्जादीहिसुच्चि होति (यज्ञ आदि के द्वारा स्वयं को शुद्ध करना)" जैसी घटनाओं से युक्त गलत (विपरीत) धारणा (दस्सना) का त्याग कर दिया।

जो कहा गया है, उसके अर्थ को विस्तार से समझाने के लिए, बस इतना कहा गया है: "मैंने अपना गलत दृष्टिकोण त्याग दिया," और फिर उन्होंने "यजिं" कहा, इत्यादि। वहाँ, यजिं उच्चावचे यञ्जे का अर्थ है: मैंने अनेक प्रकार के यज्ञ किए, जैसे: प्रत्यक्ष (पाकत) "अर्पण", सोम अर्पण, वाजपेय्य यज्ञ इत्यादि। अग्गिहुत्तं जुहिं अहं का अर्थ है: मैंने अग्नि पर सेवा की (परिचारिं), और उन यज्ञों (यञ्जा) के माध्यम से यज्ञ अर्पण (आहुतिं) को बढ़ावा दिया (पग्गणहन्तो)। Esā suddhī ti maññanto का अर्थ है: अग्नि पर यज्ञ और परिचारण की ये क्रियाएँ शुद्धिहेतु होने के कारण शुद्ध हैं, इस प्रकार विचार करते हुए: "इस प्रकार मेरा बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों का शुद्धिकरण (संसारशुद्धि) होता है।" Andhabhuto puthujjano का अर्थ है: अज्ञान के अंध (अविज्जा) के कारण, ज्ञान की आँख (पञ्ञा) के अभाव में, अंधभूत (पुथज्जना) होने के कारण। Diṭṭhigahanapakkhando, parāmāsena का अर्थ है: घोर गलत विचारों का जंगल, वन और पर्वत आदि के समान, पार करने में कठिनाई के कारण गलत विचारों का जंगल है; उसमें डूबकर (पक्खन्दो) उसमें प्रवेश कर गया; सत्य (धम्म) के स्वरूप से परे जाकर, अभिनिवेश की प्रवृत्ति के साथ, विकृत (परमासा) होने के कारण विकृतता से चिपके रहने के रूप में, यह कहते हुए कि: "यही सत्य है।" मोहितो का अर्थ है: भ्रमित अवस्था में पहुँच जाना। असुद्धिं मान्जिसम् शुद्धिं का अर्थ है: मैंने अशुद्ध मार्ग को शुद्ध मार्ग (मार्ग) समझा। उन्होंने इसका कारण इस प्रकार बताया: "अंधभूतो अविद्दासु।" इसका अर्थ है: अज्ञान (अविज्जा) से अंधा हो जाने के कारण, मुझे सत्य (धम्म) और असत्य (अधम्म) के साथ-साथ उचित और अनुचित (युत्तयुत्त) का ज्ञान नहीं था; इसलिए मैंने ऐसा सोचा; यही अर्थ है।

मिच्छादित्ति पहीमानो का अर्थ है: मेरे सभी गलत विचार सही मार्ग (आर्य) के सही दृष्टिकोण (सम्मादित्ति) द्वारा त्याग दिए गए (समुच्चदपहान), जब मैंने गुरु की उपस्थिति में चार आर्य सत्यों से परिपूर्ण सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनकर अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित किया (पटिपज्जन्ता), जो इस प्रकार बुद्धिमानी से (योनिसो) बन गया था। भव विदालीता का अर्थ है: काम (इंद्रिय सुख) आदि जैसे सभी अस्तित्व आर्य मार्ग (आर्य) के शस्त्र (सत्थ) द्वारा नष्ट (विद्धांसित) हो गए। जुहामि दक्खिणेयग्गी का अर्थ है: मैं बुद्ध की सेवा करता हूँ (परीकरामि) और उन्हें अपना अर्पण अर्पित करता हूँ, जो सर्वथा बुराई को भस्म करने के कारण समर्पित दान के योग्य अग्नि हैं, क्योंकि उन्होंने यज्ञ की अग्नि आदि को त्याग दिया है (आहवनीयादिका)। नमस्सामि तथागतं का अर्थ है: उन्होंने कहा: यह मेरी गुरु के प्रति नमस्समा है, कि मैं उन्हें समर्पित दान के योग्य अग्नि के रूप में दूध-दही, ताजा मक्खन (नवनीत), मथा हुआ छाछ, घी आदि के ऐसे

अनासक्त (निरापक्खा) अर्पण के साथ सेवा करता हूँ। दूसरे शब्दों में, जुहामि दक्खिनेय्यग्गी का अर्थ है: मैंने स्वयं को उसी प्रकार ढालकर स्वयं को अर्पण किया है, स्वयं की देखभाल की है और दानदाताओं के दान को ग्रहण करके बुराई को जलाकर स्वयं को समर्पित दान के योग्य बनाया है; पहले मैं अग्नि देवता की आराधना करता था; अब मैं तथागत को नमन करता हूँ।

Mohā sabbe pahīnā me का अर्थ है: मेरे सभी भ्रम दूर हो गए; ज्ञान की कमी और पीड़ा (दुक्खा) आदि के रूप में वर्गीकृत मेरे सभी भ्रम अस्वीकृत और समाप्त हो गए। लेकिन बाद में व्याकरणिक शब्द me (मेरा) को इन तीन अभिव्यक्तियों में लाया जाना चाहिए: “Bhava taṇhā padālitā, vikkhīno jātisaṃsāro, and n'atthi 'dāni punabbhavo”, और इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

थेरा नदी-कस्सपा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (204): गया के कस्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (204) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
204. गया का कस्सपा
इस बुद्ध युग में ब्राह्मण (पुजारी) वंश में उनका पुनर्जन्म हुआ [उनकी कहानी नदी के कश्यप की कहानी से मिलती-जुलती है, उनके अनुयायियों की संख्या 200 थी, और वे गया में रहते थे]। [1] उन्होंने बुराई के निवारण को महिमामंडित करते हुए अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की, इस प्रकार:

[345] पत्तो मज्झन्तिकाऽ सयाऽ तिक्खट्टुऽ दिवास्स्सहाऽ,॥
ओटरिṃ उदकाṃ सो'हाṃ गयाया गयाफग्गुया॥ ॥

[346] यं मया पकातं पापां पुब्बे अणनासु जतिसु,॥
तं दानिधा पवाहेमि एवादिदिथि शुद्ध आहुṃ॥ ॥

[347] सुत्वा सुभाषितं वाचं धम्मत्थसहितं पडां,॥
तथाऽ यथावतं अत्थाऽ योनिसो पचवेक्खिसाऽ॥ ॥

[348] निन्हात्सब्बापापोम्ही निम्मलो पयातो सुचि,॥
सुद्धो सुद्धस्स दयादो पुत्तो बुद्धस्स ओरासो॥ ॥

[349] ओगयहाṭṭहाङ्गिकाṃ सोताṃ सब्बपापाṃ पावहायीṃ,॥
तिस्सो विज्ज अज्झागामीं कटं बुद्धस्स सासनं' ति.॥ ॥

[345] सुबह, दोपहर, शाम को,
दिन में तीन बार मैं गया गया, गया के वसंत उत्सव में पानी में, [1] क्योंकि 'मैंने पिछले जन्मों में पाप किए हैं,

[346] बीते दिनों में, जो यहाँ और अभी हैं,
मैं इसे धो देता हूँ 'ऐसा मैंने कभी माना था।

[347] मैंने एक ऐसी आवाज़ सुनी जिसने मनभावन शब्द कहे,
जिनका सार धर्म और अच्छाई को जोड़ता था।
और उनके सच्चे और वास्तविक अर्थ पर

मैंने बहुत विचार किया और गंभीरता से तर्क किया।

[348] अब मैं सचमुच सभी बुराइयों से मुक्त हो गया हूँ,
त्रुटियों से शुद्ध हो गया हूँ, पवित्र और निष्कलंक हूँ।
पवित्रता में, मैं शुद्धिकृत का उत्तराधिकारी हूँ,
उसका बच्चा हूँ, यहाँ तक कि बुद्ध का ही पुत्र हूँ।

[349] क्योंकि मैं अष्टांगिक धारा (बुद्ध का मार्ग) में विलीन हो गया हूँ,
और मैंने हर बुराई को धो डाला है।
मैंने त्रिविध ज्ञान को पा लिया है और जीत लिया है,
और बुद्ध के सभी कार्य पूरे हो चुके हैं।

[1] विचित्र रूप से, टीका में उरुवेला-कस्सपा या नदी के कस्सपा से उनके संबंध का उल्लेख नहीं है। विनय ग्रंथ देखें, उसी स्थान पर।

[2] टीका दोहराती है (ऊपर देखें, पृष्ठ 181) कि यहाँ फाग्गुना महीने में वार्षिक संस्कार उत्सव का उल्लेख किया गया है, न कि केवल शहर के नाम का, जैसा कि डॉ. न्यूमैन मानते हैं।

5.7 [204] गया-कस्सपत्थर के श्लोक पर टिप्पणी
पातो मज्जण्हिकं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा गया-कस्सपा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और इकत्तीस युग (कप्पा) पहले भगवान सिख के समय में एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (निस्सारण) से मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा (अज्जसया) के कारण गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग कर एक संन्यासी बन गए, वन क्षेत्र में एक आश्रम बनवाया और वन की जड़ों और फलों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करके वहाँ निवास किया। उस समय, भगवान अकेले, बिना किसी साथी के, उनके आश्रम के पास गए। भगवान बुद्ध के दर्शन करते ही वे धर्मपरायण हो गए, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े होकर समय देखा और गुरु को स्वादिष्ट बेर भेंट किए। इस पुण्य कर्म के फल के कारण वे जन्म-मृत्यु के चक्र में भटकते रहे, देवताओं और मनुष्यों के बीच रहे और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिए। वयस्क होने पर उन्होंने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा (अज्जासय) के कारण गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया और दो सौ संन्यासियों के साथ गया में निवास किया। गया में निवास करने और कस्सपा कुल के होने के कारण वे गया-कस्सपा के नाम से जाने गए। भगवान बुद्ध द्वारा "आओ, भिक्षु!" कहकर दीक्षा (उपसंपदा) दिए जाने पर, उन्हें, अपने अनुयायियों सहित, बुद्ध की आदित्तपरियायदेसना (जलने की उपमा) की शिक्षा से लाभान्वित होकर अरहंत पद प्राप्त हुआ। अतः अपदान में कहा गया है:—

“हिरण की खाल (अजीना) पहने हुए,”

उस समय मैं सरकंडे का धारण (धार) करता था।

वस्त्र (वाकसीरा); मैं वापस लाया

मेरे आश्रम में बेर के फल खाने के बाद

मैंने अपनी टोकरी उनसे भर ली।

उस मोड़ पर, बुद्ध सिख धर्म, सभी

वह अकेली थी, उसके साथ कोई साथी नहीं था;

उनके ज्ञान के कारण

हर मौके पर, वह मेरे पास आता था

आश्रम।

अपने मन को सुखद रूप से धार्मिक बनाते हुए, मैं

मैंने सद्‌गुणी (बुद्ध) को अपना नमन अर्पित किया;

मैंने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर ऐसा किया।

मेरी ओर से बेर के फलों की भेंट

बुद्ध।

यह बत्तीस युग (कप्पा) पहले की बात है।

तब मैंने फल-बलि चढ़ाई;

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह बेर का फलदायी परिणाम है।

पेशकश।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालाँकि, अरहंत पद में स्थापित होने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्मों (पटिपत्ति) पर विचार किया और अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए इन पाँच श्लोकों का उच्चारण किया, ताकि वे बुराई (पाप) को धो डालने (पवाहन) की घोषणा कर सकें।

345. "मैं पानी में उतर गया

सुबह, दोपहर और शाम, तीन बार

त्योहार के दिन गया में एक दिन

उत्तरापबागनी के चंद्र नक्षत्र का

मार्च का महीना (फग्गुनी)।

346. "जो भी पाप कर्म (पापा) किया गया हो

यह कार्य मैंने पहले, अन्य जन्मों में किया था।

अब मैं इसे इस प्रकार धो देता हूँ;

पहले, मेरा यह विचार गलत था।

347. “अच्छी तरह से बोलने वाले को सुनने के बाद

शब्द, अभिव्यक्तियाँ सत्य से परिपूर्ण

(धम्म) लाभ और कल्याण, मैं

अर्थ पर बुद्धिमानी से विचार किया।

सत्य (तथं), के अनुसार

सत्य (याथावतम्)।

348. “मैं सभी पापी बुराइयों से शुद्ध हो गया हूँ,

अशुद्धियों से मुक्त, शुद्ध और

मैं शुद्ध हूँ; मैं पवित्र हूँ, मैं इसका उत्तराधिकारी हूँ।

पवित्र, बुद्ध का प्रिय पुत्र।

349. “में डुबकी लगाने (ogayha) के बाद

अष्टांगिक श्रेष्ठता की धारा

उस मार्ग पर, मैंने अपने सभी पाप धो डाले

बुराई। मैंने (अज्जगमि) प्राप्त किया

त्रिविध ज्ञान (विज्जा); बुद्ध का

निर्देश का पालन किया जा चुका था।

तो, पहले श्लोक का संक्षिप्त अर्थ यह है: पातो का अर्थ है: सूर्योदय के समय; मझन्हिकं का अर्थ है: दोपहर के समय; सायं का अर्थ है: संध्या के समय; इस प्रकार, दिन के समय; तिक्खत्तुं का अर्थ है: तीन बार; ओतरिं का अर्थ है: मैं जल में उतरा; जल में डुबकी लगाते समय मैं न यहाँ न वहाँ न कभी न कभी उतरा; गयाया का अर्थ है: तब, वास्तव में, गया के उस स्थान पर जिसे लोगों की भीड़ "पापपवाहन, पापमय बुराई को धोने" के रूप में अच्छी तरह से पहचानती है (अभिसममता)। गयाफग्गुया का अर्थ है: मैं लगातार जल में उतरने में लगा रहता था, प्रतिवर्ष, फाग्गुनी माह के चंद्र नक्षत्र उत्तराफग्गुनी के उत्सव के दिन, जिसे गयाफग्गु के नाम से जाना जाता है।

अब, उस महत्व (अधिप्पाय) को दर्शाने के लिए, जिसके द्वारा वे जल में डुबकी लगा रहे थे, उन्होंने “यं मया” से शुरू होने वाला श्लोक बोला। उस श्लोक का अर्थ है: अहं का अर्थ है: मैं था, एवं दिट्ठी का अर्थ है: ऐसे विकृत दृष्टिकोण वाला (एवरूपविपरीत्तदस्सनो), शुद्ध का अर्थ है: पूर्व में, गुरु के निर्देश का पालन करने से पहले, मैंने स्वयं से कहा: “मेरे द्वारा पूर्व में, अन्य जन्मों में, जो भी बुरे कर्म संचित हुए थे, उन्हें मैं पावाहेमी (अब धो डालता हूँ), हटा देता हूँ और शुद्ध कर देता हूँ (विक्खलेमी), इधा (यहाँ), गया के घाट पर, इस गयाफग्गु को जल में इस (मेरे) अवतरण के माध्यम से।

धम्मत्थासहितं पदं सुत्वा का अर्थ है: पूर्वसर्गों के लोप के बिना व्याख्या (निद्देसा); बुद्ध के वचन को सुनकर, जो सर्वथा आत्मजागृत हैं, वह वचन जो बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति का मार्ग बनाकर (निय्यनिक) उत्कृष्ट रूप से (सुट्ठी) और निश्चित रूप से (एकान्तेन) सत्य (धम्म) से जुड़ा है, साथ ही इसके आरंभ (आदि), मध्य (मज्जा) और अंत (परियोसानतो) के संबंध में अर्थ (अत्थ) से भी जुड़ा है, जिसमें सत्य (धम्म) और उसके अर्थ (अत्थ) का अंश (कोट्टासा) शामिल है; तथां का अर्थ है: जो परम इंद्रिय की स्थिति के अनुसार सत्य होने के कारण सत्य है, वह सत्य जो उनके द्वारा प्रकट किया गया है; याथावकं का अर्थ है: सत्य के अनुसार, घटना की स्थिति (पवत्ति), पुनरावृत्ति (निवत्ति) और गलत धारणा (ब्यभिचार) के दृष्टिकोण से उचित (यथारहम) उपायों (उपाय) के अनुसार; अत्थं का अर्थ है: दुख (दुक्खा) आदि; योनिसो का अर्थ है: बुद्धिमानी से, पूर्ण समझ (परिञ्ञेय्य) की स्थिति के अनुसार ऐसे उपायों (उपाय) से; पच्चवेक्खिसं का अर्थ है: मैंने उचित रूप से विचार किया (पति अवेक्खिं) इस प्रकार: “दुक्खं परिञ्ञेय्यं (दु:ख को सर्वव्यापी रूप से समझना चाहिए) समुदयो पहतब्बो (दु:ख के कारण को अस्वीकार करना चाहिए) निरोधो सच्चिकतभो (दु:ख के निवारण की कल्पना करनी चाहिए) मग्गो भावेतब्बो (सही मार्ग का विकास करना चाहिए)।” मैंने अपने ज्ञान की दृष्टि से देखा और (चार आर्य सत्यों में) उचित रूप से प्रवेश किया; यही इसका अर्थ है।

निन्हातसब्बापापोम्ही का अर्थ है: मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) के जल से अपने सभी पापी दोषों से स्वयं को शुद्ध कर लिया है, लेकिन ऐसा इसलिए क्योंकि मैंने (चार प्रकार के) सत्यों में उचित रूप से प्रवेश किया है। निम्मलो का अर्थ है: अशुद्धियों से मुक्त, क्योंकि मैं मैल से रहित हूँ और कामवासना आदि जैसी अशुद्धियों से मुक्त हूँ, लेकिन इसके परिणामस्वरूप। पयतो सुचि शुद्धो का अर्थ है: शुद्ध, स्वच्छ और पवित्र, क्योंकि मेरा शारीरिक आचरण, वाणी और मानसिक आचरण सर्वांगीण शुद्ध है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप। शुद्धस्स दयादो का अर्थ है: मैं बुद्ध के दिव्य सत्य की विरासत को ग्रहण करने के परिणामस्वरूप उत्तराधिकारी हूँ, जो परम शुद्ध हैं, और सभी प्रकार की अशुद्धियों (किलेसा) और उनकी प्रवृत्ति (वासना) से मुक्त हैं। ओरासो का अर्थ है: मैं गर्भपुत्र हूँ क्योंकि मेरा जन्म विशेष रूप से गर्भ (उरो) के परिश्रम (वायाम) से हुआ है, जिससे उस (बुद्ध) के ज्ञान और शिक्षा का उद्‌गम होता है; यही व्याख्या है।

फिर उन्होंने समापन श्लोक (ओसाना) "ओगयहा" से शुरू करते हुए अपने स्नान (न्हातक) की स्थिति को परम अर्थ (परमत्था) के दृष्टिकोण से स्पष्ट किया। यहाँ ओगयहा का अर्थ है: डुबकी लगाना और उसमें समा जाना। अट्ठंगिकं सोतं का अर्थ है: सही मार्ग (मग्ग) की धारा जो आठ सही मार्गों (सम्मादिट्ठी) आदि के संयोजन (समोधान) में परिवर्तित हो गई है। सब्बपापं पवाहयिं का अर्थ है: मैंने पापमय बुराई की अशुद्धता को पूरी तरह से धो डाला (अनवसेसं)। श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्गा) के जल से शुद्ध होने के कारण मैं परम अर्थ (परमत्था) में शुद्ध हो गया। परिणामस्वरूप लेकिन “तिस्सो विज्जा अज्जगमिं, कतं बुद्धस्स सासनं;” अर्थ बस कहा गया है।

थेरा गया-कस्सपा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(205):वक्कली

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (205) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
205. वक्काली
भगवान (बुद्ध) के समय में, सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) कुल में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने उसका नाम वक्कली रखा। जब वह ज्ञानी हो गया और तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, और ब्राह्मण (पुजारी) योग्यताओं में निपुण हो गया , तब उसने भगवान (बुद्ध) के दर्शन किए। भगवान (बुद्ध) के प्रत्यक्ष रूप से परिपूर्ण शरीर को देखकर कभी तृप्त न होकर, वह उनके साथ घूमने लगा। और जब अपने घर में उसने सोचा: 'मुझे यहाँ उन्हें निरंतर देखने का अवसर नहीं मिलेगा'; इसलिए उसने भिक्षु दीक्षा ली, और भोजन और शौच के समय को छोड़कर अपना सारा समय भगवान (बुद्ध) के ध्यान में व्यतीत किया। भगवान (बुद्ध), उसकी अंतर्दृष्टि की परिपक्वता की प्रतीक्षा करते हुए, लंबे समय तक कोई टिप्पणी नहीं की; फिर एक दिन उन्होंने कहा: 'वक्कली , यह कुरूप शरीर जो तुम देखते हो, तुम्हारे लिए क्या है? जो धम्म का मार्ग देखता है, वही मुझे देखता है।' धम्म के मार्ग को देखकर वह मुझे देखता है, और मुझे देखकर वह धम्म के मार्ग को देखता है।' भगवान (बुद्ध) के शब्दों पर, वक्कली ने देखना बंद कर दिया, लेकिन वह जा नहीं सका। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने सोचा,

'यह भिक्षु, यदि गहरे रूप से विचलित न हो, तो जागृत नहीं होगा,' और वर्षा के अंतिम दिन कहा, 'चले जाओ, वक्कली!' इस प्रकार याद दिलाए जाने पर, वह रुक नहीं सका; बल्कि यह सोचकर कि 'यदि मैं उसे नहीं देख सकता तो मेरे लिए जीवन क्या है?' गिद्ध शिखर पर एक खड़ी चट्टानी जगह पर चढ़ गया। भगवान (बुद्ध), वक्कली के इरादे को जानते हुए, सोचे, 'यह भिक्षु, मुझसे दूर रहकर कोई विश्राम न पाकर, सर्वोच्च फल प्राप्त करने की परिस्थितियों को नष्ट कर देगा'; और स्वयं को एक महिमामय दिव्य स्वरूप में प्रकट करते हुए, इस प्रकार बोले:

अब भिक्षु (भिक्षु) को अत्यंत आनंद के साथ
बुद्ध के मार्ग और ज्ञान में प्रसन्न होकर
पवित्र, सुखी मार्ग पर आगे बढ़ने दो,
जहाँ सांसारिक चीजें उसे कभी उत्तेजित नहीं करतीं। [2]

और अपना हाथ बढ़ाते हुए उन्होंने कहा: 'आओ, भिक्षु!'

थेरा, 'मैं दस शक्तियों वाले परमेश्वर के दर्शन कर रहा हूँ, और मेरा सौभाग्य है कि मैं उन्हें यह कहते हुए सुनूँ: आओ!' इस विचार से अपार आनंद और परमानंद से भर उठे, फिर उन्हें होश आया और उन्हें अपने कार्य का अहसास हुआ। वायु में ऊपर उठकर, वे पहाड़ी के निकटतम बिंदु पर खड़े हो गए और भगवान (बुद्ध) के श्लोक पर चिंतन करने लगे; [199] फिर अपने परमानंद को रोकते हुए, उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया, साथ ही धम्म के रूप और अर्थ को भी समझ लिया। यही बात अंगुत्तरा टीका और धम्मपद दोनों में दर्ज है।

लेकिन यहाँ वे [3] इस प्रकार कहते हैं: भगवान (बुद्ध) के 'तुम्हें इससे क्या लेना-देना है...?' से संबोधित होकर, वक्कली गिद्ध शिखर पर रहने लगा, अंतर्दृष्टि में स्वयं को स्थापित किया, और अपनी आस्था की शक्ति से उस मार्ग में उतर गया। यह जानकर, भगवान ने उसे एक विशेष अभ्यास दिया जिसे वह पूरा नहीं कर सका, और 'अपर्याप्त भोजन के कारण उसे ऐंठन होने लगी। उसे इस प्रकार पीड़ित देखकर, भगवान (बुद्ध) उसके पास गए और उससे पूछा:

[350] वातरोगाभिनितो त्वं विहारं काने वने,॥
पविद्धगोकेरे लक्खे कथां भिक्खु करिस्सि॥ ॥

[350] हे भिक्षु, जो ऐंठन से पीड़ित हो,
जंगल में रहते हो, वनों में रहते हो,
तुम्हारा क्षेत्र सीमित हो, भयानक कठिनाइयों में जी रहे हो -
मुझे बताओ, भिक्षु, तुम कैसे जीओगे?

और थेरा ने अलौकिक सुखों के माध्यम से अपनी निरंतर खुशी का ऐलान करते हुए उत्तर दिया:

[351] पितिसुखेन विपुलेन फरमाणो समुस्सायौ,॥
लुकमपि अभिसम्भन्तो विहारिसामि काने.॥ ॥

[352] भवेंतो सतिपठाणे इन्द्रियाणि बलानि च,॥
बोजझाघानि च भवंतो विहारिसामि काने ॥॥ ॥

[353] अरद्धविरियो पहितट्टो निक्काṃ दहपरक्कमो,॥
समाग्गे सहते दिस्व विहारिसामि काने.। ॥

[354] अनुस्सरन्तो संबुद्धौ अग्गाṃ दंताṃ समाहितो,॥
अतन्दितो रत्तिनदिवं विहारिसामि काने' ति.॥ ॥

[351] आनंद और परमानंद की उमड़ती लहर से
मैं इस नश्वर शरीर को सराबोर कर दूंगा।

चाहे मुझे कितनी भी कठिन और कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़े,
मैं जंगल में ही जीवित रहूंगा।

[352] इसमें मैं स्वयं अभ्यास करूँगा: -
ध्यान के आरंभिक बिंदु,
पाँच शक्तियाँ, बल भी,
ज्ञानोदय के कारक -
इस प्रकार मैं जंगल में रहूँगा।

[353] क्योंकि मैंने देखा है [कि मित्रों ने क्या किया है]: [4] उनका प्रयास जागृत हुआ, उनका तनावग्रस्त मन,
उनका दृढ़ और निरंतर आगे बढ़ता कदम,
सामंजस्य में बंधे हुए, - और यह देखकर,
मैं जंगल में भी जीवित रहूँगा,

[354] [200] उन्हें याद करते हुए, जागृत,
परम शांत, एकाग्र, निर्मल, -
बिना थके मन से रात-दिन,
मैं जंगल में रहूँगा।

इस प्रकार, थेरा ने अंतर्दृष्टि विकसित की, और तब उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ।

[1] या 'आने का कारण बनना' (आगमेंटो)। अंगुत्तरा टीका में भी यही अभिव्यक्ति है, लेकिन फिर [बिना किसी टिप्पणी के] कहती है: 'यह जानकर कि अब यह पक गया है, और वह उसे ज्ञान देने में सक्षम है, उसने कहा ...'

[2] धम्मपद, श्लोक 381. अधिगच्छे वर्तमान काल में नहीं है जैसा कि फाउसबोल्ला आदित में है, न ही भविष्य काल में जैसा कि मैक्स मुलर के अनुवाद में है। भगवान (बुद्ध) का शरीर मुख्य रूप से 'सांसारिक वस्तुओं' (संस्कार) का प्रतीक था।

[3] संभवतः स्रोत उनके स्वयं के कार्य से हैं। संदर्भित टीकाओं को उनके द्वारा सटीक रूप से उद्धृत किया गया है - wii, अंग पर मनोरथ-पुराण , i. 24, Ī 2, और श्लोक 381 पर धम्मपद टीका ।

[4] 'अपने सहधर्मियों को देखकर। इससे वह गुणी मित्रों में अपना सौभाग्य प्रकट करता है' (टिप्पणी)।

5.8 [205] वक्कलित्तेरा के श्लोक पर टिप्पणी
वातरोगाभिनीतः से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा वक्कली का है। उत्पत्ति क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, वे भगवान पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर के एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म हुए; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे गुरु के दर्शन के लिए जा रहे भक्तों के साथ मठ गए, सभा के अंत में विराजमान हुए, सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, गुरु द्वारा एक भिक्षु को परम आरोही (अधिमुत्त) धार्मिक आस्था (सद्धा) के प्रति सजग होते देखा, स्वयं भी उस पद की आकांक्षा की, सात दिनों तक दान किया और अपना संकल्प (पाणिधान) लिया। गुरु ने इसके तात्कालिक (अनंतरा) प्रभाव को देखकर उन्हें भविष्यवाणी की।

उन्होंने जीवन भर अच्छे कर्म किए, जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, और हमारे गुरु के समय में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम वक्काली रखा गया। बड़े होकर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और ब्राह्मण विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की; संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, और उनकी शारीरिक सुंदरता को देखकर संतुष्ट न होकर वे गुरु के साथ ही विचरण करने लगे। मन में यह सोचकर कि “गृहस्थी में रहकर मुझे गुरु के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा,” वे गुरु की उपस्थिति में भिक्षु बन गए और अन्य कर्मों (किच्चा) का त्याग करके, उस स्थान पर स्थिर होकर जहाँ खड़े होकर तथागत के दर्शन होते थे, भोजन और स्नान के समय को छोड़कर शेष समय गुरु के दर्शन करते रहे। गुरु, अपने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता की प्रतीक्षा करते हुए, जब वह इधर-उधर भटक रहा था तो कुछ नहीं बोला, परन्तु अपने शारीरिक सौंदर्य (रूप) को लंबे समय तक निहारते हुए, एक दिन उससे इस प्रकार कहा: “हे वक्कली! मेरे इस सड़े हुए शरीर को देखकर तुम्हें क्या लाभ है? हे वक्कली! निश्चय ही, जो

कोई सत्य (धम्म) को देखता है, वह मुझे देखता है; जो कोई मुझे देखता है, वह सत्य (धम्म) को देखता है। हे वक्कली! निश्चय ही, सत्य (धम्म) को देखकर वह मुझे देखता है; मुझे देखकर वह सत्य (धम्म) को देखता है।"

जब गुरु ने उनसे इस प्रकार कहा, तो थेरा गुरु के दर्शन त्याग कर कहीं और जाने में असमर्थ रहे। इसके फलस्वरूप, गुरु ने मन ही मन सोचा, "यह भिक्षु पश्चाताप किए बिना नहीं जागेगा," और दीक्षा के दिन वर्षा आश्रय के लिए थेरा को विदा करते हुए कहा, "हे वक्कली! तुम्हें चले जाना चाहिए।" गुरु द्वारा विदा किए जाने पर, गुरु के सामने न रह पाने के कारण, उन्होंने मन ही मन कहा, "जब मुझे गुरु के दर्शन ही नहीं होते, तो मेरे जीने का क्या लाभ?" और वे गिद्ध-शिखर पर्वत के ऊबड़-खाबड़ भाग पर चढ़ गए। गुरु को जब उस घटना का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने मन ही मन कहा: "यह भिक्षु मुझसे कोई सांत्वना (अस्सासा) प्राप्त न करके, सही मार्ग और फल प्राप्ति के लिए आवश्यक अपनी पर्याप्त योग्यता (उपनिस्साय) को नष्ट कर सकता है," और फिर उन्होंने अपने प्रकाश की किरण को प्रकट करने के लिए एक श्लोक कहा।

"अत्यंत प्रसन्नता से भरा एक भिक्षु, जो आनंद से परिपूर्ण था"

ईश्वरीय आस्था के विधान में

बुद्ध को शांति प्राप्त होगी

मार्ग, संयम का आनंद (उपसमा)

मिठाइयों का।"

ऐसा कहकर गुरु ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा: "आओ, वक्कली!" थेरा का उत्साह और आनंद उमड़ पड़ा और उन्होंने कहा: "मैंने दशबल के दर्शन कर लिए हैं; यहाँ तक कि उनका मुझे 'आओ' कहना भी मुझे प्राप्त हो गया है।" वे अपने जाने की स्थिति से अनभिज्ञ होकर मन ही मन सोचने लगे: "मैं कहाँ से आया हूँ?" वे आकाश में उड़ रहे थे कि जैसे ही उन्होंने पहाड़ी पर अपना पहला कदम रखा, उन्होंने गुरु द्वारा कहे गए श्लोक पर चिंतन किया, आकाश में ही अपना उत्साह त्याग दिया और चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटिसंभिदा) के साथ अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उनकी कहानी अंगुत्तरा निकाय और धम्मपद की व्याख्या में मिलती है।

लेकिन यहाँ वे इस प्रकार कहते हैं:— गुरु द्वारा "हे वक्कली! आप कैसे हैं?" आदि कहकर सलाह दिए जाने पर, थेरा ने गिज्झकूट में निवास करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में स्वयं को स्थापित कर लिया; परन्तु अपनी अत्यधिक श्रद्धा (सद्धा) के कारण वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के मार्ग पर नहीं उतरे; भगवान को इसका ज्ञान हुआ, उन्होंने उनके मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) की गहन जाँच (शोधत्वा) की और उन्हें उपदेश दिया। फिर भी वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) की ऊँचाई (मत्तक) तक पहुँचने में असमर्थ रहे; तब उनके अनुचित (वक्कल्ल) पोषण के कारण उनमें वात रोग (वातबाधो) उत्पन्न हो गया। जब भगवान बुद्ध को पता चला कि वह वात रोग से पीड़ित हैं, तो वे वहाँ गए और उनसे इस प्रकार प्रार्थना करते हुए एक श्लोक बोला:

350. "तुम्हें वात रोग हो गया है।"

यह बीमारी घने जंगल में निवास करती है।

जब आपका चारागाह छोड़ दिया गया हो

और हे भिक्षु, तुम दुखी (लूखा) हो!

आप कैसे काम करेंगे?

यह प्रश्न सुनकर थेरा ने चार श्लोक कहे।

351. "मैं जंगल में निवास करूँगा, यद्यपि

दुखी होना (लक्खं अभिसम्भोंतो),

मेरे शरीर-समूह में व्याप्त (pharamāno)

प्रचुर उत्साह और खुशी के साथ।

352. "मैं जंगल में निवास करूँगा, विकास करते हुए

जागरूकता की स्थापना (सतिपट्टाना),

इंद्रियों की शक्ति (इन्द्रियानी), सामर्थ्य

(बलाणी) और तत्वों पर ध्यान।

ज्ञानोदय (बोज्झंगानी) का।

353. "मैं बाद में जंगल में निवास करूँगा

उन लोगों को देखकर जिन्होंने अपना परिश्रम किया था

(विरिया) अच्छी शुरुआत (आरद्ध) जिसका मन

(अत्ता) को निर्देशित किया गया था (पाहिता)

निब्बाना, जो अपने दृढ़ निश्चय में सदा स्थिर रहते हैं

प्रयास (परक्कमा) और जो एकजुट हैं,

वे अपना पवित्र जीवन (साहिता) जी रहे हैं।

354. "मैं जंगल में ही निवास करूँगा, सदा के लिए

स्वयंजागृत बुद्ध को याद करते हुए,

सबसे अधिक संयमित और सुव्यवस्थित,

दिन-रात आलसी हुए बिना।

वहाँ, vātarogābhinīto का अर्थ है: वायु रोग (वातबाध) के कारण स्वेच्छाहीनता (असेरिभाव) में आ जाना; पित्ताशय की बीमारी से ग्रस्त होना। Tvaṃ का अर्थ है: थेरा को संबोधित करना। Viharaṃ का अर्थ है: शारीरिक गतिविधि से भरपूर जीवन जीने वाला निवास। Kānane vane का अर्थ है: घना वन; बड़ा वन; यही इसका अर्थ है। Paviddha gocare का अर्थ है: चरागाह से विमुख (vissaṭṭha), जहाँ एकांतवासी की आवश्यकताएँ मिलना कठिन है। Lūkhe का अर्थ है: घी आदि औषधियों की अनुपलब्धता के कारण दयनीय स्थान, जो वायु रोग (वातरोग) के लिए प्रतिकारक (सप्पाय) का कार्य करती हैं, और उस क्षेत्र की ऊबड़-खाबड़ भूमि के कारण। Kathaṃ bhikkhu(monk) karissati का अर्थ है: भगवान बुद्ध ने पूछा: "हे भिक्षु! तुम कैसे निवास करोगे?"

यह प्रश्न सुनकर, थेरा ने "पीतिसुखेन" से शुरू होने वाले श्लोकों का उच्चारण किया ताकि वे अपने आनंदमय जीवन को प्रकट कर सकें, जो परमानंद (पीति) और आनंद (सोमनस्स) आदि भावों से परिपूर्ण था; इंद्रिय-इच्छाओं से मुक्त (निरामिस)। यहाँ, पीतिसुखेन का अर्थ है: उस प्रकार के उत्साह से परिपूर्ण सुख, जो उत्तेजना और रोमांच से चिह्नित होता है। इसी कारण उन्होंने "विपुलेन" कहा, जिसका

अर्थ है अत्यंत; यही अर्थ है। फरमानो समुस्सयं का अर्थ है: जैसा कि कहा गया है, उत्साह के आनंद से परिपूर्ण (समुत्तित) उच्च दृश्य रूपों (रूप) से संपूर्ण शरीर व्याप्त हो और उसे स्थायी रूप से व्याप्त बनाए रखे। लूखम्पी अभिसंभोंतो का अर्थ है: एकांतवास के निरंतर आचरण (वुत्ति) के कारण वन में निवास करने से उत्पन्न होने वाली संन्यासियों की आवश्यकताओं (पच्चय) की कमी (लूख) को विशेष रूप से अनुभव करना (अभिभवन्तो) और सहन करना (अधिवासेनतो)। विहारिसामि कानाने का अर्थ है: मैं वन क्षेत्र में ध्यान के आनंद और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के सुख के साथ निवास करूँगा; यही इसका अर्थ है। इसलिए उन्होंने कहा: "सुखंच कायेन पटिसंवेदेषिं। (मैंने अपने शरीर के माध्यम से भी सुख का उचित अनुभव किया।"

"क्योंकि जब भी कोई ध्यान करता है (सम्मसति)

उदय और अंत (उदयब्बाय) पर

स्कंध (समूह) से व्यक्ति को आनंद प्राप्त होता है

स्पष्टता के कारण (पीति) और आनंद (पामोज्जा)

उस अमरता (अमता) की समझ।

भावन्तो सतिपट्ठे का अर्थ है: शरीर को निरंतर देखने (कायानुपस्सना) से शुरू होने वाली जागरूकता की चार अवस्थाओं (सतिपट्ठाना) को जागृत करना और विकसित करना (उप्पादन्तो), जो सही मार्ग (मग्ग) से संबंधित हैं। इंद्रियाहि का अर्थ है: सद्धा से शुरू होने वाली पाँच इंद्रियाँ, जो सही मार्ग (मग्ग) से संबंधित हैं। बलानि का अर्थ है: सद्धा से शुरू होने वाली पाँच प्रकार की शक्तियाँ, इसी प्रकार बोझांगानी का अर्थ है: सतिसंबोझंग के तत्व की मानसिक जागरूकता से शुरू होने वाले ज्ञान के सात तत्व। व्याकरणिक शब्द 'च' से इसका सामूहिक समावेशन (सम्मप्पधान), जादुई शक्तियों का आधार (इद्धिपाद) और सही मार्ग के गुण (अंग) है। वास्तव में, इससे वियोग (विनभाव) के कारण ही इनका अनुभव होता है, परन्तु इसे ग्रहण करने से ही इनका अनुभव होता है। विहारिसामि का अर्थ है: मैं मार्ग के आनंद (मग्ग), उस सिद्धि (अधिगम), फल के सुख (फल) और निर्वाण के आनंद में निवास करूँगा।

Āraddhaviriye का अर्थ है: चार प्रकार के उचित प्रयासों (सम्मप्पधान) के प्रभाव में प्रेरित (पग्गहित) प्रयास (वीर्य)। Pahitatte का अर्थ है: निर्वाण की ओर उपयुक्त रूप से निर्देशित मन। Niccaṃ daḷhaparakkame का अर्थ है: वे जिनके प्रयास हर समय कभी शिथिल (सिथिला) नहीं होते। Samagge का अर्थ है: वे जो विवाद के अभाव के प्रभाव में शारीरिक एकता प्रदान करके एकजुट होते हैं। Sahite का अर्थ है: सही दृष्टिकोण (दिठ्ठी), नैतिक उपदेशों (शील) और संन्यास (सामञ्ज) के संबंध में पवित्र जीवन के साथी नेताओं (सब्रह्मचारी) को देखकर। इससे वह अच्छे मित्रों के होने की अपनी समृद्धि को दर्शाता है।

अनुस्सन्तो सम्बुद्धं का अर्थ है: सदा स्वयंजागृत बुद्ध को याद रखना; वे समस्त सत्यों (धम्म) के ज्ञान से भली-भांति भली-भांति परिचित हैं; अग्गं का अर्थ है: समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ होने के कारण सर्वोपरि। दंतं का अर्थ है: सर्वोत्तम प्रशिक्षण से प्रशिक्षित; समाहितं का अर्थ है: अतुलनीय एकाग्रता से परिपूर्ण; अतंदितो का अर्थ है: आलसी न होने के बाद। रत्तिन्दिवं का अर्थ है: मैं निरंतर यह स्मरण करते हुए निवास करूंगा: "इति पि सो भगवा अरहं (इस प्रकार भी, वह भगवान पूजा के योग्य हैं), इत्यादि, हर समय।" इससे उन्होंने बुद्ध के निरंतर स्मरण (अनुसति) पर ध्यान केंद्रित करने के अपने निरंतर अभ्यास (कम्मठन) को दर्शाते हुए, सर्वत्र मानसिक अभ्यास (कम्मठन) में अपनी निरंतर संलग्नता (अनुयोग) का वर्णन किया; पूर्व (संदर्भ) से उन्होंने मानसिक अभ्यास (कम्मठन) के पोषण (परिहार्य) के प्रति अपनी भक्ति (अनुयोग) को प्रकट किया।

इस प्रकार कहने के बाद, थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में गहनता से लीन होकर (उस्सुक्कापेत्व) अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अप्पदान में कहा गया है:—

"एक लाख युग (कप्पा)

कुछ समय पहले, नेता (नायाको) का उदय हुआ।

पूर्ण (अनोमा) नाम का, अतुलनीय

(अमितो), नाम से पदुमत्तरा।

उन्होंने एक व्यक्ति के अंदाज़ में बात की (vadano)।

कमल का फूल; उसकी उत्तम त्वचा थी

कमल के समान निर्मल; वह बिल्कुल बेदाग था।

(अनुपालिटो) सांसारिक मैटर (लोकेना) द्वारा

कमल के फूल के समान, बिना नमी वाला

पानी के साथ।

उस नायक की आंखें कमल की पंखुड़ियों जैसी थीं।

(पदुमपट्टाखो); सुंदर (कंटो) जैसा

कमल की तरह; उसमें मीठी सुगंध थी।

श्रेष्ठ कमल के फूल के समान और

इसलिए वह सबसे उत्कृष्ट कमल है।

फूल (पदुमत्तरा)।

वह दुनिया के पुरुषों में सबसे उम्रदराज थे।

अहंकार से मुक्त; वह एक आँख की तरह था

अंधे लोग। वह शांतिपूर्ण था

प्रकट होना और छिपा हुआ खजाना (मिधी)

गुणों से परिपूर्ण; वह दया का सागर थे।

और विचार (सती)।

कभी-कभी उस महान नायक की प्रशंसा की जाती थी

(accito) ब्रह्माओं, दिव्य प्राणियों और

टाइटन्स (असुर); वह सबसे पूर्व था-

भीड़ के बीच उत्कृष्ट विजेता

दिव्य और मानवीय प्राणियों के साथ। उनके साथ

मधुर सुगंध वाले शब्द, मधुर ध्वनि वाले (रूटा),

उन्होंने सभी श्रोताओं को प्रसन्न किया (रंचयम्), प्रशंसा की

उनके अपने शिष्य:—

इस भिक्षु वक्काली के अनुसार, वहाँ

ऐसा कोई भी मौजूद नहीं है; उसके पास

धार्मिक आस्था (सद्धा) के प्रति उत्सुक हो जाना और

देखने के लिए अत्यधिक लालची (लालासो)

मुझे।

उस समय मैं एक ब्राह्मण का पुत्र था।

हंसवती नगर में; यह सुनकर

उस प्रशंसा के शब्द से मैं अत्यंत प्रसन्न हो गया।

(अभिरोकयिम) उस स्थिति (ठाना) का।

तथागत को आमंत्रित करने के बाद, स्पष्ट रूप से

शुद्ध (विमला) अपने शिष्यों के साथ,

फिर मैंने उन्हें सात दिनों तक खाना खिलाया और ढक दिया।

उन्हें कपड़ों के साथ।

उनके चरणों में सिर के बल गिरने के बाद,

उत्साह से भरपूर और गहराई में डूबा हुआ

गुणों के अनंत सागर (गुण), मैं

उन्होंने ये शब्द कहे: हे ऋषि! मैं चाहूँगा

जब आप उस (भिक्षु) के समान हों

सात दिन पहले, सबसे अग्रणी के रूप में प्रशंसा की गई।

वे भिक्षु जो सच्ची श्रद्धा (सद्धा) रखते हैं।

इस प्रकार कहे जाने पर,

महान वीर, निर्बाधित (अनावरण)

हे ऋषि, महान ऋषि ने यह कहा (उदिराय)।

श्रोताओं से शब्द (वाक्यम्):

इस युवक को देखिए, यह उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित है।

पीले रंग के कपड़े (मट्ठा),

बलिदानों का संचय (उपासिटा)

(यञ्ञा) सोने में (अंग) चिह्न (हेमा)

आँखों को भाने वाला (मनचरा)

जना के समूह में से;

यह वाला, भविष्य में आने वाले समय में,

वह सबसे अग्रणी शिष्य बन जाएगा

ऋषि गौतम उन लोगों में से हैं जो उत्सुक हैं

(अधिमुत्तो) पवित्र आस्था (सद्धा)। या तो

किसी दिव्य प्राणी या मनुष्य बन जाने के बाद-

वह मुक्त हो जाएगा (वञ्जितो)।

सभी चिंताओं (संताप) से, सर्वांगीण

(paribyūḷho) हर रूप से प्रदान किया गया

वह अपने सुखदायक धन के साथ इधर-उधर घूमेगा

बार-बार पुनर्जन्म के चक्रों के माध्यम से

आनंदित हो जाओ।

दुनिया में एक गुरु का उदय होगा।

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, की संतान

ओक्काका का परिवार, एक लाख

इसलिए युग (कप्पा)।

वह उनकी शिक्षाओं का उत्तराधिकारी होगा।

(धम्मेसु), उनके प्रिय पुत्र द्वारा निर्मित।

वह सत्य (धम्म) का शिष्य बनेगा।

वक्काली नाम से जाने जाने वाले गुरु के।

मेरे उस विशिष्ट कार्य द्वारा जो मैंने किया है

इच्छाशक्ति और आत्म-संकल्प, होने के बाद

मैंने अपने मानव स्वरूप का त्याग कर तावतिंसा को प्राप्त किया।

(स्वर्ग)।

हर जगह खुश रहने के बाद, मैं भटकने लगा।

मेरे बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के बारे में

प्रमुख और गौण अस्तित्व (भावभावे);

मैं एक ऐसे परिवार में पैदा हुआ था जो गैर-

सावत्थी शहर में स्थित इकाई। मेरी

दुखी (दीना) मन वाले (माता-पिता) डरे हुए

मुझे राक्षस (पिसाका) के खतरे ने ऐसा करने के लिए मजबूर किया,

जो ताजा मक्खन की तरह कोमल था (नोनी-

तसुखुमाला), अंकुर (पल्लव) के समान

प्राकृतिक कमल (कोमल) का, एक छोटा (मंडम)

बच्चा पीठ के बल लेटा हुआ है, आप भी लेट जाइए।

महान ऋषि के चरणों के आधार पर, यह कहते हुए

अत:: हे रक्षक! हे नेता! हम आपको अर्पित करते हैं

कृपया इस (बच्चे) की शरण लें।

फिर वे, ऋषि, उन लोगों के आश्रयदाता जो

वे भयभीत थे, उन्होंने मुझे अपने हाथों से स्वीकार किया।

कोमल कमल के फूल के समान, चिह्नित (अंकित)

पहियों के जाल (जाली) के साथ। आरंभ

(पभूति) उसके बाद से मेरी देखभाल की गई

जिसने ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी (अरक्खेय्या),

मैं स्पष्ट रूप से शत्रुता से मुक्त हो गया और पूरी तरह से

खुशी के माहौल में पली-बढ़ी।

जब एक मिनट के लिए (मुहुत्तकम्) मैं

सुगता के बिना मुझे ऊब महसूस होने लगी (उक्कण्थामि);

मैंने अपने धर्म का त्याग कर बेघरों के संगठन में शामिल हो गया।

भिक्षुओं से मेरी सात साल की मुलाकात के बाद

जन्मदिन। मैं असंतुष्ट होकर (देखता रहा)

सुंदर रूप (रूपं) जो अच्छी तरह से विकसित हो गया था

वह अपनी समस्त परिपूर्णताओं से परिपूर्ण था और

उनकी नीली आंखों (अक्खी) के साथ, जो नयना की आंखें हैं।

मेरी इस रुचि के बारे में जानकर

विजेता बुद्ध की शारीरिक सुंदरता

फिर उन्होंने मुझे अपनी सलाह दी। हे वक्कली!

सुंदर रूप में जो कुछ है, बस इतना ही काफी है।

जिसमें तुम्हें आनंद आता है और जो मूर्खतापूर्ण है

आनंद।

बेशक जो कोई भी अच्छे सत्य (धर्म) को देखता है,

वह बुद्धिमान व्यक्ति मुझे देखता है; अच्छाई को नहीं देखता।

वह मुझे सत्य (धम्म) नहीं देखता, हालांकि

वह मेरी तरफ देखता है।

भौतिक शरीर के अनगिनत नुकसान हैं।

और यह एक विषैले पेड़ जैसा दिखता है; यह है

यह सभी बीमारियों का निवास स्थान है; यह एक

अत्यंत कष्टदायी पीड़ा (दुक्खा)।

परिणामस्वरूप, तिरस्कृत होने के बाद

आपको सुंदर शरीर (रूप) का अनुभव करना चाहिए।

उदय का उद्भव और लुप्त होना

(वया) समुच्चयों (खंड) और

शारीरिक विकृति (उपक्किलेसा); तुम

आसानी से अपने लक्ष्य तक पहुंचें (सुखेना)।

इस प्रकार निर्देश प्राप्त करने के बाद,

वह नेता, जो मेरे कल्याण का साधक है,

मैंने गिद्ध शिखर पर चढ़ाई की और अपना

पर्वत की गुफा में ध्यान (झान)

(कंदरा).

स्वयं को के चरणों में स्थापित करने के बाद

उस पहाड़ी पर, महान ऋषि ने मुझे सांत्वना दी।

(अस्सायी)। यह बात सुनकर

हे वक्काली! विजेता द्वारा निर्मित,

मुझे खुशी हुई।

मैं चट्टानी में कूद पड़ा (पक्खंदिं)

पहाड़ी की ढलान जो उतनी ही ऊँची थी जितनी कि

कई आदमियों की ऊँचाई तक पहुँच गया लेकिन ज़मीन तक पहुँच गया

तब भी आसानी से, शक्ति के कारण

बुद्ध।

फिर उन्होंने मुझे सत्य सिखाया

(धम्म), उदय और लुप्त होना

स्कंधों का; जिसमें

मैंने उस सत्य (धम्म) को समझ लिया।

अरहंत पद प्राप्त किया।

यह एक बहुत बड़े आंदोलन के बीच में था।

दर्शकों को यह पता चले कि महान गुरु

जो अपनी बुद्धि (मति) तक पहुँच चुके थे

अभ्यास (चरणा) की समाप्ति के बाद घोषणा की गई।

(paññapesi) मुझे उन लोगों के मुखिया के रूप में जो थे

(अधिमुत्त) पवित्र आस्था (सद्धा) के प्रति उत्सुक।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले मैंने अपना कर्म किया था;

किसी भी बुरी सत्ता को याद मत करो; यह

यह मेरी श्रद्धा का फलदायी परिणाम है।

बुद्ध को दिया गया सम्मान

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

लेकिन अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने अपने अरहंत पद (अन्ना) को प्रकट करते हुए ये स्वयं-श्लोक कहे। तब गुरु ने भिक्षुओं के बीच बैठकर उन्हें धार्मिक आस्था के प्रति उत्साही लोगों में अग्रणी स्थान दिया।

श्लोक पर टिप्पणी

थेरा वक्काली का

तैयार है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(206):विजिटासेना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (206) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
206. विजितसेना
बुद्ध युग में कोसलन के हाथी-प्रशिक्षकों के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम विजितसेना रखा गया। उनके मामा सेना और उपसेना [1] दोनों भिक्षु संघ में प्रवेश कर चुके थे और अरहंत (प्रबुद्ध) बन चुके थे। विजितसेना ने अपने परिवार की कला सीखने के बाद भगवान (बुद्ध) के दोहरे चमत्कार [2] को देखा , विश्वास किया और स्वभाव से धार्मिक होने के कारण अपने मामाओं के अधीन भिक्षु संघ में प्रवेश कर लिया। उनके निर्देशों से प्रशिक्षण लेकर वे अंतर्दृष्टि के मार्ग पर अग्रसर हुए, परन्तु उनका मन विभिन्न बाह्य वस्तुओं में विवेचना करता रहा, इसलिए उन्होंने उसे संबोधित किया:

[355] ओलग्गेसामि ते चित्त आनिद्वरेव हत्थिनां,॥
न तां पापे नियोजेस्सां कामजाला सरिराजा॥ ॥

[356] त्वाm [40] ओलग्गो न गच्छसी द्वारविवराँ गजो'व अलभन्तो,॥
न च चित्तकलि पुनप्पुनाऽ पसहं पपरतो कैरिसासी॥ ॥

[357] यथा कुञ्जरां मदंतां नवग्गहामन्कुसल्लहो,॥
बलवा अवत्तेति अकामं एवं अवत्तयिस्सं तं.॥ ॥

[358] यथा वराहयदामकुसलौ सारथि पवारो दमेति अजन्नं,॥
एवं दमयिस्साँ तां पतिथितो पञ्कासु बलेसु॥ ॥

[359] सतीया तं नबंधिस्सा पयत्तत्तो वोदापेस्सामि,॥
वीर्यधुरनिग-अहितो न नियातो दूरं गामिससे चित्ता' ति.॥ ॥

[355] मैं तुम्हें रोकूंगा, ध्यान रखो, जैसे हाथियों को
नगरद्वार के छज्जे [3] से रोका जाता है।
मैं तुम्हारे बुरे कामों में तुम्हारा साथ नहीं दूंगा,
हे इच्छाओं के जाल, हे शरीर से जन्मे।

[356] इस प्रकार रोके जाने पर, यह तुम्हारा नहीं होगा, आज़ाद घूमने के लिए।
जैसे हाथी द्वार से नहीं निकल पाता,
हे चुड़ैल, अपनी पूरी कोशिश करो, [4] बार-बार;
तुम भटक नहीं सकती, जो पाप करने में इतनी प्रसन्न हो।

[357] जिस प्रकार एक व्यक्ति दृढ़ता से हुक चलाता है,
वह अदम्य, अनियंत्रित हाथी को
उसकी इच्छा के विरुद्ध मोड़ देता है, उसी प्रकार मैं तुम्हें वापस मोड़ दूँगा।

[201] [358] जैसे कुशल चालक, घोड़े को प्रशिक्षित करने में माहिर,
शुद्ध नस्ल के घोड़े के स्वभाव को वश में करता है,
वैसे ही मैं तुम्हें भी नियंत्रण में लाऊंगा।
पंचगुणी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर।

[359] हाँ, उचित ध्यानपूर्ण एकाग्रता से मैं तुम्हें बांध लूँगा,
मैं स्वयं संयमित हूँ, और हे मेरे हृदय, मैं तुम्हें भी संयमित करूँगा।
उचित ऊर्जा के बंधन में बंधे हुए,
हे मेरे हृदय, तुम मुझसे दूर नहीं जाओगे। [5]

इस प्रकार अपने विचारों को संयमित करके थेरा ने अंतर्दृष्टि का विस्तार किया और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

[1] सारिपुत्त का भाई नहीं (CCXXXVIII.)। न ही चाचा का कहीं और उल्लेख मिलता है।

[2] देखें XXXI.

[3] = ख़ुदका-द्वारं, या निचला, छोटा दरवाज़ा (टिप्पणी)।

[4] = चित्त-कालकानि। मैं पसहं को पसहंतो के रूप में लेता हूं , 'बल का प्रयोग करना। ब्र. साइ. पसंगा पढ़ता है , सरण-संपाससावसेना द्वारा व्याख्या । सी एफ एस. एमएस. डॉ. ओल्डेनबर्ग के नोट में, पृ. 40.

[5] यह इस शैली में रचित तीन कविताओं में से दूसरी है - अर्थात्, एक बेहतर स्व पुराने अविकसित आवेगों के विद्रोह को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा है। तुलना करें LXXVII. और CCLXII.

5.9 [206] विजितसेनत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी

ओलाग्गेस्सामी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा विजितसेण का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और भगवान अत्थादस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया और वन में रहने लगे, तभी उन्होंने भगवान को आकाश में जाते हुए देखा, वे श्रद्धा से भर गए और अपने हाथ जोड़कर खड़े हो गए, जिससे उनकी श्रद्धा का भाव प्रकट हुआ। गुरु ने उनका इरादा जानकर आकाश से अवतरित हुए। उन्होंने भगवान को स्वादिष्ट मीठे फल भेंट किए, जिन्हें भगवान ने उन पर दया करके स्वीकार किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और कोसल राज्य में हाथी प्रशिक्षकों (हत्थाचरिया) के परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; विजितसेन नाम धारण करके उन्होंने ज्ञान की आयु प्राप्त की। उनके चाचा सेना और उपसेना, जो दो हाथी-प्रबंधक थे, ने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, संतत्व की प्रारंभिक अवस्था (वास धुरा) के अपने सामान्य कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। विजितसेन ने हाथी प्रशिक्षण (सिप्पा) में भी निपुणता प्राप्त कर ली थी, लेकिन बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से बचने की अपनी प्रबल इच्छा (अज्जासय) के कारण उनका मन गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गया और उन्होंने अपने चाचा थेरों की उपस्थिति में भिक्षु का रूप धारण कर लिया। गुरु के दोहरे चमत्कार को देखने के बाद उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त कर ली थी; अपने चाचाओं के निर्देश और सलाह के अनुसार आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म करते हुए, उन्होंने स्वयं आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के मार्ग से जुड़कर (लंगित्वा) अपने उस मन को परामर्श देने के लिए श्लोकों का उच्चारण किया जो बाहरी (बहिद्धा) अनेक इंद्रिय-विषयों (आरम्मण) में भटक रहा था।

355. “हे मन! मैं तुम्हें अपने वश में रखूंगा।”

मैंने हाथियों के साथ जो किया था, उसी तरह का काम मैंने पहले भी किया था।

सुई द्वार। मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा।

बुराई में लगे हुए; हे शरीर से जन्मे,

कामुक सुखों का जाल!

356. "तुम (अब, अपनी मर्जी से) नहीं जाओगे;

चूंकि अब आपको हिरासत में रखा गया है

संयम; हाथी के समान

यदि आपको खुला द्वार नहीं मिलता है, तो आप

इधर-उधर भटकने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि

हे अशुभ मन! तुम जो

आपको ऐसा करने में आनंद आया था

बार-बार बुरे कर्मों के तहत

आश्रय न मिलने का प्रभाव

स्वयं (पसाक्का)।

367. "ठीक वैसे ही जैसे अंकुश धारण करने वाला,

अपनी शक्ति से, नव-कब्जे में लिए गए व्यक्ति पर विजय प्राप्त करता है।

जंगली हाथी को उसकी इच्छा के विरुद्ध (अकामं)

इसी प्रकार मैं तुम्हें भी अपने वश में कर लूंगा।

358. एक उत्कृष्ट सारथी के अनुसार,

घोड़ों को वश में करने में माहिर, वह जानवरों को भी वश में कर लेता है।

शुद्ध नस्ल का घोड़ा, उसी प्रकार,

पांचों में स्थापित हो जाने के बाद

मैं तुम्हें बलवान बना दूंगा।

359. "हे मन! मैं तुझे अपने से बांध लूंगा

जागरूकता (सति); इरादा बन जाना

मैं तुम्हें वश में कर लूंगा।

आप बोझ के नीचे दबे हुए हैं

मेरे प्रयास से, आप ज्यादा दूर नहीं जा पाएंगे

यहाँ।

वहाँ, ओलाग्गेसासामि का अर्थ है: मैं नियंत्रण करूँगा, मैं संयम रखूँगा। ते का अर्थ है: तुम (तं); यह संबंध कारक शब्द वास्तव में कर्म कारक (उपयोग) के अर्थ में है। दूसरे शब्दों में, "ते गमनं, तुम्हारा जाना" में शेष अभिव्यक्ति है। हत्थिनं का अर्थ है: हाथी (हत्थिन); इस प्रकार, यही अर्थ है। चित्त का अर्थ है: वह अपने मन को "हे मन!" कहकर संबोधित करता है। क्योंकि वह इसे नियंत्रित करने की इच्छा रखता था, इसलिए उसने इसे दिखाने के लिए "आणिद्वारेव हत्थिनम्" कहा। दीवार से घिरे शहर के छोटे द्वार को छोटा द्वार (आणिद्वार) कहा जाता है; जब किसी छोटे द्वार (आणि) में कटोरे (घटिका) जैसा छेद (चिद्दा) बना दिया जाता है, तो अंदर खड़े लोगों के लिए बिना यंत्र (यांता) के उसे खोलना संभव नहीं होता; क्योंकि मनुष्य, बैल, भैंस आदि बाहर नहीं जा सकते, इसलिए हाथी स्वामी (हत्थाचरियो) ने उस हाथी को, जो शहर से बाहर जाना चाहता था, बाहर जाने की अनुमति नहीं दी (निवारेसि), जबकि उसने उसे शहर से बाहर जाने के लिए मना लिया था (पालोभेत्वा)। दूसरे शब्दों में, एक बाधक (पालिघा) द्वार (द्वार) एक छोटा द्वार (आणिद्वार) होता है। वहाँ, एक अवरोध (पालिघा) रखकर (तिरियं) वे उस पर एक नुकीली कील (आणिं) ठोकते हैं (आवुण्ति) जिसे वृक्ष की सुई के समान माना जाता है (रुक्खसूचि)। पापे का अर्थ है: ऐसे बुरे कर्म जैसे कि उत्पन्न हुआ (उपज्जनक), लोभ (अभिज्जा) और इसी प्रकार के अदृश्य रूप (रूपे) आदि; तं न नियोजेस्सं का अर्थ है: मैं आग्रह नहीं करूँगा (नियोजिस्सामि)। कामजाल का अर्थ है: हे तुम जो कामुक सुखों (काम) के जाल (जाल) में फँस गए हो। वास्तव में, जिस प्रकार मछली पकड़ने वालों (बंध) और हिरण शिकारियों का जाल मछलियों आदि के प्रति उनकी इच्छा (काम) के अनुसार कर्म करने का फल देता है, उसी प्रकार, अज्ञानपूर्ण ध्यान (अयोनिसोमनासिकारा) के अनुरूप होने वाला मन मार की इच्छा के अनुसार कर्म करने का फल देता है। वास्तव में, इसी कारण वह जीवों को हानि (अनत्था) में डालता है। सरितज का अर्थ है: हे शरीरों (शरीरेषु) में उत्पन्न होने वाले (उपज्जनक)। वास्तव में, प्राणियों के पाँच घटकों (खंड) के अस्तित्व में, मन को "शरीरज (शारीरिक उत्पाद)" कहा गया है, क्योंकि इसमें भौतिक रूप (रूपपटीबद्धवुत्ति) पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति होती है।

त्वं ओलाग्गो न गच्छसि का अर्थ है: हे अशुभ (कलि) मन! मैंने तुम्हें सति और ज्ञान जैसे प्रेरक (पटोदा) गुणों से वश में कर लिया है, इसलिए अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार नहीं चल पाओगे; तुम्हें अज्ञानपूर्ण ध्यान के मार्ग पर चलने का अवसर नहीं मिलेगा। किस प्रकार? द्वारविवरम गजो व अलभंतो का अर्थ है: जैसे हाथी को नगर या हाथियों के दमन स्थल से बाहर निकलने का द्वार न मिले। चित्तकली का अर्थ है: हे दुर्भाग्यशाली मन! पुनप्पुनम का अर्थ है: बार-बार (अपरापरण)। पसाक्का का अर्थ है: शरणस्थलों के शुभ दर्शन (संपस्सा) से कोई संबंध न रखना (या उनकी शरण में न जाना)। पापरतो का अर्थ है: पहले की तरह ही बुरे कर्म करने में आनंद लेना; न करिस्ससी का अर्थ है: अब तुम ऐसा नहीं करोगे; मैं तुम्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दूंगा; यही इसका अर्थ है।

अदन्तं का अर्थ है: अदम्य (अदमितं); हाथी की तरह प्रशिक्षित न किया गया हो। नवग्घं का अर्थ है: हाल ही में पकड़ा गया (अचिरगहितं); अंकुसगहो का अर्थ है: हाथी-स्वामी (हत्थाचरियो)। बलवा का अर्थ है: शरीर और ज्ञान दोनों की शक्ति से युक्त। आवत्तेति अकामं का अर्थ है: निषेध के कारण (निषेधना) वह हाथी को मोड़ देता है (निवत्तेति), लेकिन उसकी इच्छा के बिना (अनिच्छन्तं)। एवं आवत्तयिस्सं का अर्थ है: जैसा कि हाथी स्वामी ने कहा है, उसी प्रकार मैं उस मन को, दुर्भाग्य के मन को, दुष्ट आचरण से रोककर मोड़ दूँगा (निवत्तयिस्सं)।

वराहयदमकुसालो का अर्थ है: उत्कृष्ट घोड़ों को वश में करने में कुशल (कुसालो)। सारथी पावरो का अर्थ है: घोड़ों को वश में करने वाले सारथियों में उससे भी श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित (विसित्तो)। दमेति आजञ्ञं का अर्थ है: वह शुद्ध नस्ल के घोड़े को वश में करने में समय और स्थान के अनुरूप कोमल (सन्ह) और कठोर (फरुसा) दोनों तरह से वश में करता है, अनुशासित (विनेति) करता है और आज्ञाकारी (निब्बिसेवनं) बनाता है। Patiṭṭhito pañcasu balesu का अर्थ है: सद्धा (पवित्र विश्वास) आदि पाँच प्रकार की शक्तियों में स्थापित होकर, taṃ damayissaṃ का अर्थ है कि मैं तुम्हें अविश्वास (अस्साधिया) आदि से रोककर वश में कर लूँगा; इस प्रकार, यही अर्थ है।

Satiyā taṃ nibandhissaṃ का अर्थ है: हे दुर्भाग्यशाली मन! मैं तुम्हें मानसिक चेतना (sati) की रस्सी (yotta) से बांधकर अपने वश में रखूंगा (nibandhissāmi) और मानसिक अभ्यास के स्तंभ (kammaṭṭhāna thambha) पर अपने नियंत्रण में रखूंगा, तथा तुम्हें

चरागाह (gocarajjhatta) के भीतर से बाहर जाने नहीं दूंगा (adento)। Payutto te damessami का अर्थ है: मैं तुम्हें वहीं बांधकर (nibandhanto) अपने वश में कर लूंगा (damessami); मैं तुम्हें आत्म-दुराचार (saṃkilesa) की अशुद्धियों से शुद्ध कर दूंगा (yuttappayutto)। विरियाधुरा निग्ग-अहितो का अर्थ है: जिस प्रकार उक्त घोड़े को जुए (युगनिग्ग-अहितो) द्वारा वश में रखकर चतुर और कुशल सारथी द्वारा जुए में डालकर जुए से बाहर नहीं जाने दिया जाता, उसी प्रकार, हे मन! मेरे प्रयास (वीर्य) के उत्तरदायित्व (धुरा) के तहत तुम्हें भी वश में रखा गया है और सत्यनिष्ठा (सातच्च) के अलावा किसी अन्य कार्य (अञ्ञथा) की अनुमति नहीं दी गई है, इसलिए तुम यहाँ से दूर चरागाह (गोचराज्झट्टा) के भीतर नहीं जाओगे। वास्तव में, जो व्यक्ति निरंतर ध्यान (भावना) के विकास में लगा रहता है, उसके लिए मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) के अतिरिक्त, यहाँ तक कि निकट का पदार्थ (आसन्नं) भी दृष्टि (लक्खण) से दूर का प्रतीत होता है; इस प्रकार, थेरा इन श्लोकों के माध्यम से अपने मन को इस प्रकार वश में रखते हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को उत्तरोत्तर विकसित करता है और अरहंतत्व प्राप्त करता है। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

“स्वयंजागृत को देखकर

सुनहरे रंग के बुद्ध, वरदान प्राप्त

बत्तीस उत्कृष्ट अंकों (लक्खणा) के साथ

लकड़ी के ऊपर जाना, कुछ इस तरह

फूलदार साल के पेड़ पर, मेरे पास घास थी-

मैंने तैयारी कर ली और अपना अनुरोध प्रस्तुत किया।

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध: बुद्ध को आशीर्वाद मिले

मुझ पर दया करो; मैं चाहता हूँ कि

दान-भोजन देना।

यशवान बुद्ध अत्थादस्सी

सहानुभूति और दया, यहाँ आकर

मेरा इरादा जानो, नीचे उतर गया

मेरा आश्रम।

नीचे उतरने के बाद, आत्मजागृत

बुद्ध पत्तों से बिछी चादर पर बैठ गए।

प्राप्त करने वाला अंकन अखरोट (भल्ला-

मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया, जो सर्वश्रेष्ठ हैं (टाका)।

तब विजेता ने उस अखरोट का सेवन किया।

जब मैं इस पर विचार कर रहा था (कि

(मेरी दान-पुण्य)। अपना मन बना रहा हूँ

इससे अत्यंत प्रसन्न होकर मैंने अपना भुगतान कर दिया।

विजेता को श्रद्धांजलि।

यह अठारह सौ युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मैंने तब अपनी भेंट चढ़ाई थी

फल; मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मेरे द्वारा अर्पित किए गए फल का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने अरहत्व को प्रकट करने के लिए इन श्लोकों का उच्चारण किया।

थेरा विजितसेना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(207): यशदत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (207) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
207. यशदत्ता
बुद्ध युग में मल्ल (राजा) वंश में पुनर्जन्म लेकर यशदत्त नाम से उनका जन्म हुआ और उन्होंने तकशिला में शिक्षा प्राप्त की। [1] इसके बाद घुमक्कड़ सबिया के साथ यात्रा करते हुए, [2] वे सावत्थी आए, जहाँ सबिया ने बुद्ध से प्रश्न पूछे। यशदत्त ने उत्तर सुने और बैठते हुए, आलोचना करने के लिए उत्सुकता से सोचा: 'मैं समना गौतम (बुद्ध) के प्रवचन में कमियाँ दिखाऊँगा।' अब बुद्ध उनके मन की बात जान गए और 'सबिया सूत्र' के अंत में इन श्लोकों में उन्हें संबोधित किया:

[360] उपरंभाचित्तो दुम्मेधो सुनाति जिनसासना:,॥
अराका होति सद्धम्म नभसो पथवि यथा.॥ ॥

[361] उपरंभाचित्तो दुम्मेधो सुनाति जिनसासना:,॥
परिहयति सद्धम्म कापक्खेव कैंडिमा॥ ॥

[362] उपरंभाचित्तो दुम्मेधो सुनाति जिनसासना:,॥

परिसुस्ति सद्धम्मे मच्च अप्पोदके यथा.॥ ॥

[363] उपरंभाचित्तो दुम्मेधो सुनाति जिनसासना:,॥
न विरूहति सद्धम्मे खेते बीजाव पूतिकौ.॥ ॥

[364] यो च तूथेना सित्तेना सुनाति जिनसासनं,॥
खेपेत्वा असवे सब्बे सच्चिकत्वा अकुप्पतं,॥
पप्पुय्य परमं शांतिं परिनिब्बाति अनासावोऽति ॥॥ ॥

[360] जिसने बुद्धिहीन और आलोचनात्मक मन से
विजेता का उपदेश सुना,
वह सच्चे मार्ग (धम्म) से बहुत दूर है,
जैसे स्वर्ग से पृथ्वी दूर है। [3]

[361] जिसने बुद्धिहीन और आलोचनात्मक मन से
विजेता का उपदेश सुना,
वह सच्चे मार्ग (धम्म) से भटक गया,
जैसे महीने के अंधकारमय भाग में चंद्रमा।

[362] [202] जो बुद्धिहीन, आदि...
सच्चे मार्ग (धम्म) में वह मुरझा जाता है,
जैसे मछली जहाँ पानी कम हो जाता है।

[363] जो बुद्धिहीन, इत्यादि...
सच्चे मार्ग (धम्म) पर वह फला-फूला नहीं,
जैसे खेत में बोया गया सड़ा हुआ बीज।

[364] जिसने प्रसन्न और संतुष्ट मन से
विजेता का उपदेश सुना,
उसने मादक पदार्थों (विकृतियों/इच्छाओं) को त्यागकर,
उतार-चढ़ाव को समझा, [4] उसने ऐसी शांति प्राप्त की जो व्यक्त करने योग्य नहीं है,
और वह परिपूर्ण, समझदार और प्रतिरक्षाशील है।

इस प्रकार भगवान (बुद्ध) द्वारा संबोधित किए जाने पर, यशदत्त भावविभोर हो गए, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और अंतर्दृष्टि प्राप्त करके समय के साथ अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और अन्न (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा करते हुए उन्होंने इन्हीं श्लोकों का उच्चारण किया।

[1] देखें बुड. इंड., पृ. 8, 28, 203.

[2] देखें सभिया की कहावत (गाथा) CLXXXVIII.; सुट्टा-निपाता, iii. 6.

[3] = श्लोक 218 (sic is: 278), सबिया के स्वयं के कथन (गाथा) में एक पंक्ति।

[4] अकुप्पता, अकुप्पा से बना एक बहुत ही दुर्लभ अमूर्त संज्ञा शब्द है, जिसका अर्थ है अविचलित, अविचलित। 'पूर्ण हो गया है' (परिनिब्बाति, अधिक सामान्यतः प्रतिपादक रूप परिनिब्बायति) का अर्थ है पूर्ण, संपूर्ण - अर्थात् जीवन के चरमोत्कर्ष और अंत को प्राप्त कर लिया है। 'समझदार,' आदि = अनासवो।

5.10 [207] यशदत्तत्तेरा के श्लोक पर टिप्पणी

उपरम्भचित्तो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा यशदत्त का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे उन्हें इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म (वट्ट) के चक्र से मुक्ति मिली। इस प्रकार, वे भगवान पद्ममुत्तरा के समय एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुए, ब्राह्मणों की कलाओं और विज्ञानों में निपुणता प्राप्त की, काम (इंद्रिय सुख) का त्याग किया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया और वन में निवास कर रहे थे, जब संयोगवश उन्होंने गुरु को देखा, अत्यंत श्रद्धा से भर गए, हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार के पुनर्जन्म के चक्रों में विचरण करते रहे और मल्ल राज्य में मल्ल के राजपरिवार में पुनर्जन्म हुए, जब इस बुद्ध का उदय हुआ; यशदत्त नाम प्राप्त करने के बाद, वयस्क होने पर वे तेखिला गए, वहाँ उन्होंने सभी कलाओं (सिप्पा) में पारंगत हुए और भ्रमणशील दार्शनिक (परिब्बाजक) सबिया के साथ भ्रमण करते हुए अंततः सावत्थी में भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और बैठ कर मन ही मन कहने लगे, “मैं भिक्षु गौतम के दृष्टिकोण (वाद) में दोष (दोष) देखूँगा।” सबिया द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देते समय दोनों के बीच हुई बातचीत को उन्होंने ध्यान से सुना और स्वयं परिणाम देखे। तब भगवान बुद्ध ने उनके आचार (मानसिक व्यवहार) को जानने के लिए, सबियासुत्त के अपने संपूर्ण उपदेश के अंत में उन्हें सलाह देने के लिए ये पाँच श्लोक कहे:

360. “एक मूर्ख व्यक्ति (दुम्मेधो) जो है

शत्रुतापूर्ण हृदय वाला सुनता है

विजेता का निर्देश; वह है

अच्छे सत्य (सद्धम्म) से बहुत दूर

जिस प्रकार पृथ्वी है

आकाश।"

361. “शत्रु हृदय वाला मूर्ख संदेश लेकर आता है”

विजेता का (शासन); वह क्षीण हो जाता है

(परिहायति) अच्छे सत्य से

(सद्धम्म), चंद्रमा के समान

उसका ढलता हुआ आधा हिस्सा।

362. “शत्रुतापूर्ण हृदय वाला कुबुद्धिपूर्ण

व्यक्ति शिक्षण को ध्यान से सुनता है

विजेता का (शासन); वह बन जाता है

अच्छी सच्चाई में हर तरफ से सूख गया

(सद्धम्म) कम कपड़ों में मछली के समान

पानी।

363. “शत्रुतापूर्ण-बुद्धिहीन”

व्यक्ति इस व्यवस्था को सुनता है

विजेता का (सासनं); वह करता है

अच्छे सत्य (सद्धम्म) में वृद्धि न होना

मिट्टी में सड़े हुए बीज के समान

क्षेत्र का।

364. "दूसरी ओर जो कोई भी सुनता है

विजेता के निर्देशानुसार,

प्रसन्न (तुट्ठ) हृदय से, वह,

सभी दोषों को दूर कर दिया और कल्पना की

अरहंतत्व (अकुप्पाका) की प्राप्ति होगी

परम शांति (परमं शांति);

वह रोगमुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करता है।

पूरी तरह।

वहाँ, उपारम्भचित्तो का अर्थ है: आक्रामक स्वभाव वाला; जो क्रोधित होने का संकेत देता है (अधिप्पायो); यही अर्थ है। दुम्मेधो का अर्थ है: नासमझ (निप्पञ्ञो)। आरका होति सद्धम्मा नभसो विय पथवी का अर्थ है: ऐसा व्यक्ति जो उचित कर्म (पटिपत्ति) के अच्छे सत्य (सद्धम्मा) से भी उतना ही दूर है जितना पृथ्वी आकाश से; वह उचित बोध (पटिवेध) के अच्छे सत्य (सद्धम्मा) से और भी अधिक दूर होगा। जो व्यक्ति इस प्रकार के झगड़ालू भाषण में संलग्न रहता है: "तुम इस धम्म और विनय को नहीं समझते," तो उचित कर्म (पटिपत्ति) के लिए शांत और सूक्ष्म अच्छा सत्य (सद्धम्मा) कहाँ से आएगा?

परिहायति सद्धम्मा का अर्थ है: वह पूर्व भाग (पुब्बभागीय) से संबंधित विश्वास (सद्धा) जैसे अच्छे सत्य (सद्धम्मा) और नौ प्रकार के पारलौकिक (लोकउत्तर) सत्यों (धम्म) से विलीन (निह्यति) हो जाता है। परिसुस्सति का अर्थ है: आनंद (पीहन) रस (रस) और उत्साह और आनंद (पीतिपामोज्जा) जैसी अच्छी अवस्थाओं (धम्म) के अभाव के कारण वह स्पष्ट रूप से सूख जाएगा। न विरूहति का अर्थ है: वह वृद्धि (विरूल्ह) और निरंतर विकास (वद्धि) प्राप्त नहीं करता है। पूतिकं का अर्थ है वह जो गोबर (गोमय) से लेप (दान) न किए जाने के कारण सड़ने की अवस्था में पहुँच गया हो।

तुट्ठेनचित्तेन एक क्रियात्मक अभिव्यक्ति है जो अपादान कारक (इत्तम्भूत) के विशिष्ट (लक्खण) रूप में प्रकट होती है; वह अपने मूल स्वरूप (अत्तमन) में था और प्रसन्न (पामुदितो) हो गया; यही इसका अर्थ है। खेपेत्व का अर्थ है: अच्छी तरह से काट दिया। अकुप्पतं का अर्थ है: अरहंतत्व। पप्पुय्या का अर्थ है: प्राप्त (पापुणित्वा)। परमं समतिं का अर्थ है: निर्वाण, आधार से रहित (अनुपादिसेष)। उसकी प्राप्ति (तदधिगमो) भी पूर्णतः समय के बिना (आगमना) हुई; किसी भी श्रेणी का कोई भी व्यक्ति (विधो) नहीं; इसलिए, इसे दर्शाने के लिए, उसने इसे "परिनिब्बाति'नासवो" कहा है।

गुरु द्वारा इस प्रकार सलाह दिए जाने पर, उन्हें पश्चाताप हुआ, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने के मार्ग पर अग्रसर हुए और अल्पकाल में ही अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। अतः अपदान में ऐसा कहा गया है।

मैंने सबसे उत्तम पुरुषों को देखा (द्वि-

पदुत्तमा) कनिकारा के समान चमक रहा है

फूल, वृक्ष की तरह चमकीला

प्रज्वलित दीपक और जगमगाते हुए, जो मिलते-जुलते हैं

सोना।

लंबे मुंह वाले पानी के घड़े को रखते हुए

(कमाण्डलु), मेरा सरकंडे का वस्त्र भी

मैंने अपने पानी के बर्तन के रूप में अपने मृग को रखा।

मेरी एक कंधे की त्वचा खुली हुई है (एकंसं)

और मैंने बुद्ध की स्तुति को सर्वश्रेष्ठ बना दिया।

हे महान ऋषि! आपने स्पष्ट रूप से पार कर लिया था

घोर अंधकार का सागर, जो कि

विनाशकारी (विधमा), बुरी तरह उलझा हुआ

(समाकुल) भ्रम के जाल से

ज्ञान का प्रकाश दिखाने के बाद

(ज्ञान).

आपकी तुलना में कुछ भी नहीं है

पृथ्वी तक का ज्ञान (जगतो)

गति उस दुनिया की ओर जाती है जिसकी सीमा

सीमा का उन्मूलन हो गया है (सुमुद्धरा)।

सभी संपत्तियों से अतुलनीय (सब्बावंत-

मनुत्तरं)। हे सर्वज्ञ बुद्ध!

उस ज्ञान के कारण, आप हैं

अतः इन्हें बुद्ध, यानी प्रबुद्ध व्यक्ति कहा जाता है।

मैं उस महान नायक को नमन करता हूँ,

सर्वज्ञ, बिना किसी बाधा के (अनावरा)।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले मैंने बुद्ध की प्रशंसा की थी, जो सर्वश्रेष्ठ थे।

मुझे किसी बुरी शख्सियत के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह मेरी प्रशंसा का फलदायी परिणाम है।

(बुद्ध के) ज्ञान का।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, अपने अरहंत पद (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए ही थेरा ने इन्हीं श्लोकों का उच्चारण किया।

थेरा यशदत्त के श्लोकों पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(208):सोना-कुटिकन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (208) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
208. सोना-कुटिकन्ना
बुद्ध युग में अवंती देश में एक अत्यंत धनी पार्षद के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें सोन नाम दिया गया। एक करोड़ (10 करोड़) मूल्य के कान के आभूषण धारण करने के कारण, वे कोटि- या कुटि-कन्ना (करोड़ कान) के नाम से प्रसिद्ध हुए। [1] बड़े होकर वे एक जमींदार बन गए, और जब पूज्य कच्चाना महान [2] उनके घर के पास ठहरे, तो उन्होंने उनकी जरूरतों को पूरा किया, धम्म का मार्ग सीखा, और अंत में व्याकुल होकर उनके माध्यम से भिक्षु संघ में प्रवेश किया। [208] बड़ी कठिनाई से दस शिष्यों का एक समूह एकत्र करके, उन्होंने शीघ्र ही थेरा से विदा लेकर श्रावस्ती जाकर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया। भगवान (बुद्ध) के भाग में रात्रि व्यतीत करने की अनुमति मिलने पर, और सुबह पाठ करने के लिए आमंत्रित किए जाने पर, उनकी सोलह अट्ठकों के लिए प्रशंसा की गई। और जब श्लोक -

सांसारिक जीवन की बुराइयों को देखकर,

जब यह प्रक्रिया पूरी हो गई, तो उनमें अंतर्दृष्टि विकसित हुई और उन्होंने अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

और जब उन्हें कच्चाना महान द्वारा पूछे जाने वाले तीन मामलों पर भगवान (बुद्ध) की सहमति प्राप्त हो गई, तो वे अपने निवास स्थान पर लौट आए और अपने गुरु थेरा को यह बात बताई। इसका विस्तृत वर्णन उदाना और अंगुत्तरा टीकाओं में मिलता है, [3] लेकिन वहाँ यह कहा गया है कि उन्होंने अपने गुरु के अधीन अध्ययन करते हुए अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

जल्द ही, निर्वाण के आनंद में लीन होकर, उन्होंने अपनी उपलब्धि की समीक्षा की और हर्षोल्लास से भरे हुए इन छंदों का उच्चारण किया:

[365] उपसम्पदा च मे लद्धा विमुत्तो चम्हि अनासावो,॥
तो च मे भगव दिट्ठो विहारे च सहवासीं॥ ॥

[366] बहुदेवा रत्तिओ भगव अब्भो कासेटिनामयी,॥
विहारकुसलो सत्थ विहारं पविसी तदा॥ ॥

[367] संथैरित्वना संघतिṃ सेय्यं कप्पेसि गोतामो,॥
सीहो सेलागुहायौव पहिनाभयभेरवो॥ ॥

[368] ततो कल्याणवक्कराणो सम्मासंबुद्धसावको,॥
सोनो अभासि सद्धम्मं बुद्धसेठस्स सम्मुखा॥ ॥

[369] पञ्चखंडे परिणय भावयित्वाना अंजसः,॥
पप्पुय्य परमं शांतिं परिनिब्बिसत्यानासावोऽ ति.॥ ॥

[365] न केवल मैंने भिक्षु दीक्षा प्राप्त की,
बल्कि मैं मुक्त, समझदार और निर्बल भी हो गया;
हाँ, मैंने अब उन्हें देखा है, परम पूज्य (बुद्ध), और जहाँ वे रहते थे, वहीं मैं उनके साथ रहा।

[366] रात भर वह आकाश के नीचे रहा,
फिर, सब कुछ में पारंगत होकर,
भगवान (बुद्ध) अपने कक्ष में विश्राम करने चले गए।

[367] उसने गौतम को अपने वस्त्रों में लपेटकर [4] लिटा दिया,
मानो किसी चट्टानी गुफा में शेर की तरह,
जिसके लिए सारा भय और डर दूर हो गया हो। [5]

[368] इसके बाद, प्रमुख,
प्रबुद्ध व्यक्ति (बुद्ध) की उपस्थिति में,
बुद्ध के शिष्य सोन ने मधुर वाणी का प्रयोग करते हुए, धम्म का मार्ग बताया।

[204] [369] वह इस जीवन के कारकों को भली-भांति जानता था,
उसने [आर्यन] मार्ग का भली-भांति अभ्यास किया,
इसलिए, उस परम परिपूर्ण शांति को प्राप्त करके, वह पूर्ण रूप से समझदार, प्रतिरक्षाशील
बन जाएगा । [6]

[1] या क्या यह संभव है कि उसके कानों में जूलियन हॉथोर्न के 'ट्रांसफॉर्मेशन' के नायक की तरह छोटा नुकीला या पंखे जैसा शिखर (कुटी) था? विनय ग्रंथ, ii. 32, n. 3 देखें।

[2] देखें सीसीएक्सएक्स.

[3] उडाना, वी. 6; अंग पर मनोरथ-पुरानी , i. 24, मैं 2; विनय ग्रंथ, i¡. 32 एफएफ.

[4] XCI., n. 8 देखें, जिसमें दस के लिए नौ बार पढ़ें।

[5] परिचयात्मक छंदों की तुलना करें ।

[6] श्लोक 364 की अंतिम पंक्ति के समान, सिवाय इसके कि क्रिया भविष्य में है, परिनिब्बिस्सति, जो वैसे भी पाली मीटर में एक अनावश्यक पद बनाती है।

5.11 [208] सोनाकुटिकाण्णत्थेरा के श्लोकों पर टीका
उपसम्पदा च मे लद्धा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सोनकुटिकाण्ण का है। इसकी उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि ये बुद्ध, भगवान पद्ममुत्तरा (बुद्ध) के समय हंसवती नगर में धनवान धनवान बन गए; अत्यंत समृद्ध (उलारा) स्थिति में स्थापित होकर, एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, जो एक लाख अपवित्र (आसव) अरहंतों से घिरे हुए थे। बुद्ध की महान कृपा (लीला) और प्रबुद्ध गुरु की समृद्ध शक्ति से नगर में प्रवेश करते ही, वे अत्यंत श्रद्धावान हो गए, उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वहीं रहे। दोपहर में (पच्चाभट्टं) वे भक्तों के साथ मठ गए और भगवान बुद्ध की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुन रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को सर्वज्ञ पाठियों (कल्याणवाक्करण) में अग्रणी स्थान दे रहे हैं। स्वयं भी उस स्थान की आकांक्षा रखते हुए उन्होंने बड़ा दान दिया और संकल्प लिया। गुरु ने उनकी सिद्धि की तत्काल निश्चितता (अनंतरायतं) देखकर उनसे भविष्यवाणी की: “आने वाले समय में, गौतम नामक सर्वज्ञानी बुद्ध के युग में, वे सर्वज्ञ पाठियों के प्रमुख बनेंगे।”

जब तक वे वहाँ रहे, उन्होंने पुण्य कर्म किए और देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए, विपस्सी बुद्ध के समय में वे भिक्षु बने, उन्होंने प्रमुख और गौण कर्तव्यों का पालन किया, एक भिक्षु का वस्त्र सिला और उसे उस भिक्षु को भेंट किया। फिर बुद्ध रहित संसार में, वे बनारस में दर्जी बने, उन्होंने एक मौन बुद्ध के वस्त्र के फटे हुए भाग की मरम्मत की और उसे भेंट किया। इस प्रकार यहाँ-वहाँ पुण्य कर्म करते हुए, उनका पुनर्जन्म एक अत्यंत धनी धनी व्यक्ति के पुत्र के रूप में, कुरारा (मछली) के घर में, अवेन्ती राज्य में हुआ, जब बुद्ध प्रकट हुए। उन्होंने उनका नाम सोन रखा। यद्यपि उन्हें "कोटिकण्णो (करोड़ कान)" के रूप में प्रचलित (वत्तब्बे) होना चाहिए, लेकिन एक करोड़ की कीमत के कान के आभूषणों की एक जोड़ी पहनने (धारण) के कारण, उन्हें कुटिकण्ण के नाम से जाना जाता था।

समय के साथ-साथ बड़े होने पर, उन्होंने अपना गृहस्थी बसाकर, अपने पारिवारिक घर पर निर्भर रहते हुए पावट्टा पहाड़ी पर निवास करने वाले आदरणीय महाकच्चाना की उपस्थिति में सत्य (धम्म) को सुना, शरण और नैतिक उपदेशों में स्थापित हुए और चार प्रकार की संन्यासी की आवश्यकताओं के साथ (थेरा की) सेवा की। इसके बाद, बार-बार जन्म लेने के चक्रों से दुखी होकर, उन्होंने थेरा की उपस्थिति में भिक्षु का दीक्षा संस्कार ग्रहण किया, दस भिक्षुओं के एक पुरोहित मंडल को बड़े उत्साह से एकत्रित किया, स्वयं पूर्णतः दीक्षा ली, कुछ दिनों तक थेरा की उपस्थिति में रहे, थेरा से अनुमति मांगी, गुरु की पूजा करने के लिए सावत्थी गए, गुरु के साथ उसी सुगंधित कक्ष में रहने का विशेषाधिकार प्राप्त किया, सूर्योदय के समय आमंत्रित (अज्जित्तो) हुए और आठ और सोलह भिक्षुओं के एक मंडल द्वारा उत्साहपूर्वक बधाई दिए जाने के बाद उनसे बात की गई, जिसके कारण उन्होंने "दिस्वा आदिनवं लोके (संसार में हानि देखकर)" से शुरू होने वाले अपने गंभीर आनंदमय उच्चारण (उदान) के सर्वांगीण अंत में आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व प्राप्त किया। अतः अपदान में कहा गया है:—-

“पदुमुत्तरा नाम के विजेता ने,

पवित्र बलिदान के योग्य प्राप्तकर्ता

सौ के साथ भेंट (आहुति)

हजार प्रभावशाली (वसी) अरहंतों पर

उस समय, शहर में प्रवेश किया।

जब ऐसा ऋषि शांत था

शहर में प्रवेश करते ही, रत्न चमक उठे

उज्ज्वल; एक घोषणा हुई थी

(निघोसो) निरंतर (तावदे).

बुद्ध की शक्ति के कारण, ढोल

स्वयं ही ध्वनि उत्पन्न हुई (वज्जु-

maghaṭṭitā), वीणाएँ बज उठीं

जब बुद्ध ने प्रवेश किया, तब वे स्वयं ही प्रवेश कर गए।

शहर।

मैं बुद्ध को बहुत मानता था, वे सर्वश्रेष्ठ और महान थे।

ऋषि पद्ममुत्तरा ने यह देखकर

चमत्कारिक रूप से, मेरा मन भी पवित्र हो गया।

मैं इससे बेहद खुश हूं।

बुद्ध अद्भुत हैं, अद्भुत है

धम्म और अद्भुत है हमारा भला।

स्वामी के साथ सौभाग्य (संपदा);

यहां तक कि निर्जीव (acetanā) संगीतमय

वाद्ययंत्र संगीत बजाते हैं लेकिन उनके द्वारा-

स्वयं।

यह एक लाख युग (कप्पा) था।

कुछ समय पहले, मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई

(सन्या); मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

बुद्ध के प्रति मेरी धारणा (सन्ना) के बारे में।

मेरी सारी बुराइयाँ जलकर राख हो चुकी थीं...

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

अरहंत पद पर आसीन होने के बाद, उन्होंने पाँच वरदान (वर) मांगे: सीमावर्ती क्षेत्रों में पुरोहितों के समूह (गणेन) के साथ पूर्ण दीक्षा (उपसंपदा), जिसमें अनुशासन के स्मरणकर्ता (विनयधर) पाँचवें पुरोहित हों, स्थायी भोजन (धुवनानं), चमड़ा आवरण (सम्मत्तरण), अनेक धागों वाली चप्पलें (गुणान्गुणूपाहन) और अपने गुरु द्वारा बताए गए नियमानुसार वस्त्र धारण करने की इच्छा (चीवरा) रखना। उन्होंने ये वरदान गुरु के दर्शन से प्राप्त किए, फिर अपने निवास स्थान पर लौट आए और गुरु को इसकी सूचना दी। यहाँ यह संक्षेप में है; विस्तार से इसे उदाना की टीका में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए। अंगुत्तरा की टीका में, हालांकि, इस प्रकार कहा गया है: "एक भिक्षु के रूप में पूर्णतः दीक्षित होने के बाद, उन्होंने अपने मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठाना) को एकत्रित किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को उत्तरोत्तर विकसित किया और अरहंत पद प्राप्त किया।"

इसके बाद एक अवसर पर, मुक्ति के आनंद में लीन होकर, उन्होंने अपने उचित कर्म (पतिपत्ति) पर विचार किया, प्रसन्न हुए और अपने गंभीर आनंदमय उच्चारण (उदान) के माध्यम से ये पाँच श्लोक कहे:—

365. "पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर ली गई थी

मैं; मैं मुक्त हो गया और आज़ाद हो गया

घाव; उस धन्य व्यक्ति को देखा गया था

मेरे द्वारा; मैं उनके साथ निवास करता था

मठ।

366. "भगवान बुद्ध ने (अतिनामयी) लेकिन

रात का अधिकांश समय खुले आसमान के नीचे; गुरु

मठवासी निवास में चतुर, फिर प्रवेश किया

मठ।

367. "अपनी दोहरी चादर को अच्छी तरह फैलाकर,

बुद्ध गौतम लेट गए; जो इस प्रकार प्रतीत होता है

शेर अपनी पत्थर की गुफा में था, वह था

खतरे और भय से रहित (भेरव)।

368. "इसके बाद, सोन, अच्छे वक्ता

शब्दों में, कुशल शिष्य स्वयं-

जागृत बुद्ध ने शुभ वचन कहे।

सत्य (सद्धम्म) की उपस्थिति में ही

बुद्ध के बारे में सबसे अच्छी बात यही है।

369. "पांचों को पूरी तरह से समझ लेने के बाद

समूह (खंड) और विकसित हो चुके

वह श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग (अंजस) है।

रोगमुक्त होगा और बंधा रहेगा

अस्तित्व के किसी भी आधार के बिना निब्बाना-

पूर्ण शक्ति प्राप्त करने के बाद तनाव

(परमं) शांति (सन्ती)।

वहाँ, उपसम्पदा च मे लद्धा का अर्थ है: उन्होंने दोनों पूर्ण दीक्षाओं (तदुभयं) के संबंध में कहा; एक पूर्ण दीक्षा (उपसम्पदा) जो उन्होंने दस भिक्षुओं के एक समूह को बड़ी कठिनाई से एकत्रित करके प्राप्त की थी, और दूसरी पूर्ण दीक्षा (उपसम्पदा) जो गुरु द्वारा अनुमोदित (अनुञ्ञता) थी, जिसमें अनुशासनात्मक नियमों के एक वाहक (विनयधर) को सभी सीमावर्ती क्षेत्रों में पाँचवें स्थान पर नियुक्त किया गया था, जो प्रदत्त अनुग्रह (वरदान) के फलस्वरूप प्राप्त हुआ था। व्याकरणिक शब्द च का अर्थ संचय (समुच्चय) है; इसके द्वारा, गुरु की उपस्थिति से प्राप्त अन्य अनुग्रहों को भी एकत्रित (संगणाति) किया जाता है। विमुत्तो चम्हि अनासवो का अर्थ है, मैं वह व्यक्ति हूँ जो सर्वोत्कृष्ट मार्ग (मग्ग) के माध्यम से सभी प्रकार की बुराइयों (किलेसवत्थु) से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर चुका हूँ; परन्तु उसके बाद मैं इंद्रिय सुख आदि जैसे दोषों से भी मुक्त हो गया; यही व्याख्या है। सो च मे भगवा दित्तो का अर्थ है: मैं जिस उद्देश्य से अवंती राज्य से सावत्थी गया, उस भगवान को भी, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था, दर्शन प्राप्त हुए। विहारे च सहावासी का अर्थ है: न केवल उस भगवान को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, बल्कि गुरु द्वारा मुझे वहाँ रहने की अनुमति देने के लिए उचित कारण (कारणं) स्पष्ट किए जाने के बाद, मैं गुरु के सुगंधित कक्ष में मठ में उनके साथ रहा। विहारे का अर्थ है: कुछ विद्वानों (केसी) के अनुसार मठ के आसपास (समीपे) स्थित क्षेत्र।

बहुदेव रत्तिं अतिनामयि का अर्थ है: भगवान ने पहला पहर भिक्षुओं को सत्य (धम्म) का उपदेश देने और उनके मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) को शुद्ध करने (शोधन, जांच करने) में व्यतीत किया, मध्य पहर देवताओं और ब्रह्माओं के संदेहों को दूर करने (छेदन) में व्यतीत किया, इस प्रकार उन्होंने रात का अधिकांश समय खुले में बिताया। विहारकुसलो का अर्थ है: ब्रह्मा, अविचलित और श्रेष्ठ (आर्य) के दिव्य जीवन को जीने में कुशल (दिब्बा)। विहारम्पाविसि का अर्थ है: वे लंबे समय तक बैठने और इधर-उधर चलने से उत्पन्न थकान (परिस्समा) को दूर करने (विनोदन) के उद्देश्य से अपने सुगंधित कक्ष (गंधकुटी) में प्रवेश किया।

संथारित्वन संघातिं सेय्यं कप्पेसिं का अर्थ है: चार धागों से बना अपना दोहरा वस्त्र (संघाति) तैयार करने के बाद वे सिंह के समान लेट गए (सिहसेय्यं कप्पेसि)। इसी कारण उन्होंने कहा, "गोतमो सीहो सेलागुहायं व, पाहीनभयभेरवो (गौतम, अपने पत्थर की गुफा में सिंह के समान, नृत्य और भय से रहित)।" यहाँ, गौतम का अर्थ है: वे अपने कुल के द्वारा भगवान की घोषणा (कित्तेति) करते हैं। सीहो सेलागुहायं व का अर्थ है: पत्थर की पहाड़ी की गुफा में; जिस प्रकार पशुओं का राजा सिंह अपने दाहिनी ओर एक पैर दूसरे पर सावधानीपूर्वक रखकर लेटता है (सेय्यं), अपनी शक्ति (तेज) की प्रबलता (उस्साद) के कारण भय और खतरे से मुक्त रहता है, उसी प्रकार भगवान गौतम बुद्ध ने भी भय और खतरे से मुक्त होकर लेटे, क्योंकि उन्होंने मानसिक उत्तेजना (चित्तुत्रास), रोंगटे खड़े होने और कंपकंपी पैदा करने वाले सभी दोषों (किलेसा) को भलीभांति काट डाला था; यही इसका अर्थ है।

तातो का अर्थ है: बाद में (पच्छा); सिंह के लेटने (सीहसेय्या) के बाद, वह उठ खड़ा हुआ, तब गुरु ने उससे पूछा (अज्जेशितो): "हे भिक्षु! जो सत्य (धम्म) तुम्हें सिखाया जाना है, वह तुम्हें स्पष्ट रूप से (पटिभतु) समझ में आ जाए;" यही अर्थ है। कल्याणवक्करणो का अर्थ है: उत्कृष्ट वाणी निर्माता (वचीकरणो); विशिष्ट चिह्नों (लक्खण) से युक्त शब्दों का प्रवाह (काम); यही अर्थ है। Soṇo abhāsi saddhammaṃ Buddhaseṭṭhassa sammukhā का अर्थ है: थेरा सोन कुटिकाण्ण ने स्वयं को किसी अन्य भिक्षु के समान समझा, जो सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध की उपस्थिति में आठवें अध्याय के सोलह सूत्रों का प्रवचन दे रहे थे (अट्टक वग्गीयसुत्तनि)।

पंचक्खन्धे परिञ्ञाय का अर्थ है: तीन प्रकार के पूर्ण ज्ञान (परिञ्ञाहि) के माध्यम से पांचों स्कंधों (उपादानक्खन्ध) को सर्वथा समझ लेना और उन्हें सर्वथा जानना; अंजसं का अर्थ है: श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग (मग्ग) का विकास करना (भावयित्वा); परमं सन्तं का अर्थ है: निर्वाण;

पप्पुय्या का अर्थ है: पापुनित्वा प्राप्त करना; अनासव का अर्थ है: दोषों से मुक्त होना; परिनिब्बिस्ति का अर्थ है: इसके बाद, अब, वह अस्तित्व के किसी भी आधार को छोड़े बिना उस क्षीणता के मार्ग से निर्वाण में प्रवेश करेगा।

थेरा सोनकुटिककण्ण के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(209):कोसिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (209) ------>>>> अगला

अध्याय V.
पाँच श्लोक
209. कोसिया
बुद्ध युग में मगध के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें उनके पारिवारिक नाम कोसिया से पुकारा गया। वयस्क होने पर, वे अक्सर धर्मप्रधान (धम्म) के उपदेश सुनने जाते थे, [1] और इस सिद्धांत में विश्वास रखते हुए, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपनी इस उपलब्धि की समीक्षा करते हुए, उन्होंने इन श्लोकों में बुद्धिमानों की आदरणीयता और भलाई के लिए निर्णायक शक्ति को व्यक्त किया:

[370] यो वे गरुणु सेनानु धीरो॥
वसे च तमहि जनये च पेमṃ,॥
तो भट्टिमा नाम च होति पण्डितो॥
सातत्व च धम्मेसु विसेसि अस्स॥ ॥

[371] यं अपादा उप्पतिता उषारा॥
नक्खमफयन्ते पॅसिसोन्खायन्तं,॥
सो थमव नाम च होति पण्डितो॥
सातत्व च धम्मेसु विसेसि अस्स॥ ॥

[372] यो वे समुद्दो'वा ṭहितो अनेजो॥
गम्भीरापन्नो निपुणत्थदस्सी,॥
असंहारियो नाम च होति पण्डितो॥
सातत्व च धम्मेसु विसेसि अस्स॥ ॥

[373] बहुसुतो धम्मधरो च होति॥
धम्मस्सा होति अनुधस्साचारि,॥
सो तदिसो नाम च होति पण्डितो॥
सातत्व च धम्मेसु विसेसि अस्स॥ ॥

[374] अत्थाऽ च यो जानाति भासीतस्स॥
अत्थौ च न्त्वाना तथा करोति॥
अत्थन्तरो नाम स होति पण्डितो॥
सातत्व च धम्मेसु विसेसि अस्स ति.॥ ॥

[370] जो वीर और गुरुओं के वचन में पारंगत है,
उसमें विश्राम पा सकता है [2] और इसलिए स्नेह संजो सकता है, उसे आप समर्पित [3] और बुद्धिमान

कह सकते हैं : इस प्रकार वह सिद्धांतों के ज्ञान में विशिष्टता प्राप्त करने वाला हो सकता है। [4]

[205] [371] वह, जिसका दृढ़ दर्शन अद्वितीय कठिनाई
परीक्षा को विचलित या भ्रमित नहीं कर सकता,
उसे आप दृढ़ इच्छाशक्ति वाला और बुद्धिमान कह सकते हैं: इस प्रकार वह
सिद्धांतों के ज्ञान में विशिष्टता प्राप्त करने वाला हो सकता है।

[372] जो
सूक्ष्म और नाजुक समस्याओं में अपनी अंतर्दृष्टि के मामले में अथाह सागर के समान रहता है, उसे आप अजेय, [5] बुद्धिमान कह सकते हैं : इस प्रकार वह सिद्धांतों के ज्ञान में विशिष्टता प्राप्त करने वाला हो सकता है।

[373] विद्वान, जो अपने स्मृति में वचन धारण करता है,
वह सभी सिद्धांतों का अभ्यास करता है, चाहे वे बड़े हों या छोटे,
उसे आप यह सब और बुद्धिमान कह सकते हैं: इस प्रकार वह
वह हो सकता है जो सिद्धांतों के ज्ञान में विशिष्टता प्राप्त करता है।

[374] जो कही गई बात का अर्थ जानता है,
वह अर्थ जानकर अपने कार्यों को तदनुसार ढालता है।
'अंतर्निहित अर्थ' [6] उसे बुद्धिमान कहो: इस प्रकार वह
वह हो सकता है जो सिद्धांतों के ज्ञान में विशिष्टता प्राप्त करता है।

[1] सारिपुत्त, मगध के एक गाँव का निवासी।

[2] Vase' = vaseyya (टिप्पणी).

[3] भट्टिमा, जिसका अर्थ या तो यह है, या वह जो भेद कर सकता है (देखें चाइल्डर्स)। पूर्व अर्थ 'स्नेह को पोषित कर सकता है' के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, लेकिन मुझे संदेह है कि यह (बाद में बहुत प्रचलित) अर्थ पिटकों में कहीं और मिलता है। टीका की टिप्पणी है: सो ति सो गौणं वचञ्आ धीरो, सो यथानुसित्तकं पटिपत्तिया, तत्था, भट्टिमा च नाम होति।

[4] देखें सुत्त-निपाता, iv. 13, 11, जहाँ यह पंक्ति आती है। मुझे नहीं लगता कि इसमें डॉ. न्यूमैन द्वारा सुझाए गए परिवर्तन की आवश्यकता है। Visesi assa: viaesavā siyā. Cy.

[5] शाब्दिक रूप से, 'जिन्हें हटाया नहीं जा सकता।'

[6] अत्थ-अंतरो। हमें एम. बर्गसन के इस वाक्यांश की याद आती है कि 'अंतर्ज्ञान से हम भीतर से चीजों के बनने को देख सकते हैं, सहानुभूति के प्रयास से प्रेरित होकर' (क्रिएटिव इवोल्यूशन, पृ. 361 एफ. 334)। हालाँकि , साइ. में इसे अत्थंधरो पढ़ा गया है। ठीक ऊपर धम्मधरो देखें ।

5.12 [209] कोसियाथेथेरा के छंद पर टिप्पणी
यो वे गरूणं से शुरू होने वाला श्लोक आदरणीय थेरा कोसिया का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और भगवान विपस्सी के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे ज्ञान प्राप्त कर चुके, तो एक दिन संयोगवश उनकी मुलाकात गुरु से हुई, वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें गन्ने के टुकड़े भेंट किए। इस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका मगध राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुआ। उनके कुल के कारण उनका नाम कोलिया रखा गया। ज्ञान प्राप्ति के बाद, वे निरंतर सत्य के पूज्य सेनापति (धम्मसेनापति) के पास जाते और उनकी उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनते थे। इसके फलस्वरूप धर्म में उचित श्रद्धा उत्पन्न करने के बाद वे भिक्षु बन गए, निरंतर मानसिक अभ्यास में लगे रहे और शीघ्र ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। इसीलिए अपदान में कहा गया है:—-

“बंधुमती नगर में मैं द्वारपाल था;

मैंने निर्मल बुद्ध प्रतिमा देखी, जो एकदम परिपूर्ण थी।

सभी सत्यों (धम्म) का ज्ञान (पारागू)।

मैं अपने साथ गन्ने के कटे हुए टुकड़े ले जा रहा था।

मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया, जो श्रेष्ठ और महान हैं।

ऋषि विपस्सी, जो धर्मपरायण और अच्छे स्वभाव के थे-

दयालु।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है,

फिर मैंने (कटे हुए टुकड़ों का) अपना चढ़ावा चढ़ाया।

गन्ना; मुझे किसी भी बुरी हस्ती के अस्तित्व की याद नहीं है;

यह (अर्पण) कटौती का फलदायी परिणाम है

गन्ने के टुकड़े।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने स्वयं के उचित आचरण (पटिपत्ति) पर विचार किया और एक शिक्षक के मार्गदर्शन में जीवन और अच्छे लोगों की विश्वसनीय सलाह (सप्पुरिसुपनिसया) की प्रशंसा करते हुए पांच श्लोक कहे।

370. “एक दृढ़ बुद्धिमान व्यक्ति (धीरो) जो स्पष्ट रूप से

(ve) बुद्धिमानों की सलाह को समझना

शिक्षकों (गरु) को निवास करना चाहिए (जैसा कि

सलाह दी) और (स्वयं में) स्नेह जगाया

इसके लिए (तम्ही)। वह स्वामी के रूप में जाना जाता है।

जीविका (भट्टिमा) और एक बुद्धिमान व्यक्ति;

धर्म की सच्चाइयों को समझकर

वह विशिष्ट (visesi) बन जाएगा।

371. "वह व्यक्ति, जिसे हिंसक (उलारा) खतरे हों

(āpadā) जो उत्पन्न हुए हैं (uppatita) करते हैं

उसे न हिलाओ (नक्खम्भयन्ते)

उनके चिंतनशील भेदभाव के कारण

(paṭisankhayantaṃ) को स्वामी कहा जाता है

शक्ति और बुद्धि का; समझकर

वह सत्य (धम्म) बन जाएगा

विशिष्ट।

372. "जो कोई भी वास्तव में किसी के समान खड़ा रहा हो

महासागर, लालसा (अनेजो) से मुक्त, समर्थक-

ज्ञान प्राप्त करने वाला, सूक्ष्म ज्ञान का द्रष्टा (दस्सी) है।

(निपुण) का अर्थ है, वह एक बुद्धिमान के रूप में जाना जाता है

वह मनुष्य जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता (असंहारीय)

धर्म की सच्चाइयों को समझकर,

वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाएगा।

373. "वह बहुत विद्वान हैं, साथ ही साथ

सत्य (धम्म) का वाहक (स्मृति में);

वह अपने आचरण को इसके अनुरूप ढालता है।

वह सत्य (धम्म) के नाम से जाना जाता है।

ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति; जिसने समझ लिया हो

वह सत्य (धम्म) से विमुख हो जाएगा।

क्षीण।

374. "वह, जो इसका अर्थ भी जानता है

उनसे बात की गई है और वे उसी के अनुसार काम करते हैं।

उस अर्थ के रूप में जिसे उसने समझा है,

वह एक बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में जाना जाता है जो

स्वयं को अर्थ के अनुसार योग्य घोषित किया

(अत्थंतरा) सत्यों को समझकर

(धर्म) के मामले में, वह विशिष्ट होगा।

वहाँ, यो का अर्थ है ऐसे श्रोताओं (परिसा) की चार श्रेणियों में से कोई भी, जैसे कि राजकुमार योद्धा (खत्तीय) आदि। वे का अर्थ है: स्पष्ट रूप से (व्यत्तं)। गरुणं का अर्थ है: ऐसे बुद्धिमान पुरुष जो शिक्षक के गुणों से युक्त हों, जैसे नैतिक उपदेश आदि। वचनाञ्ञु का अर्थ है: उनके उपदेशों को जानकर, अपने जीवन को उनके निर्देशों के अनुसार व्यवस्थित करना (पतिपज्जमाहो) और उस (व्यवस्थित जीवन) के फलदायी परिणाम का ज्ञान होना; यही अर्थ है। धीरो का अर्थ है: दृढ़ता से युक्त व्यक्ति। वसे च तम्ही जनयेत पेमं का अर्थ है: उसे शिक्षकों की सलाह का पालन करना चाहिए (वसेय्य), उसे अपने जीवन को उनके निर्देशों के अनुसार व्यवस्थित करना चाहिए; अपने जीवन को व्यवस्थित करने के बाद, उसे उनके प्रति स्नेह और सम्मान जगाना चाहिए, इस प्रकार: वास्तव में, इस सलाह के माध्यम से मैंने जन्म आदि जैसे कष्टों (दुःख) पर विजय प्राप्त की है। वास्तव में, ये दोनों अभिव्यक्तियाँ "गेरूणं वचनणञ्ञु धीरो (शिक्षकों के वचन जानने वाला दृढ़ ज्ञानी व्यक्ति)" के द्वारा कही गई बात के अर्थ को प्रकट करती हैं (पाकटकरणं)। अतः भट्टिमा च नाम होति का अर्थ है: वह दृढ़ ज्ञानी व्यक्ति, जो शिक्षकों के वचन जानता है, वहाँ दिए गए निर्देशों के अनुसार उचित पालन (पटिपत्ति) करके जीविका का स्वामी (भट्ट) कहलाता है; पण्डितो, वह अपने जीवन निर्वाह (जीवितहेतु) के कारण भी उस (निर्देश) का उल्लंघन न करने (अनतिक्कमनतो) के कारण ज्ञानी कहलाता है। Nātvā ca dhammesu visesi assa का अर्थ है: अपने जीवन को उसी प्रकार व्यवस्थित करना, और उस उचित कर्म (paṭipatti) के माध्यम से, वह विशिष्ट और विशिष्ट (visesa) होगा, जैसे: "Tevijjo, chaḷabhiñño, patisambhidā patto (त्रिविध ज्ञान (vijja) और छह प्रकार के अलौकिक ज्ञान (abhiññā) को जानने वाला, विश्लेषणात्मक ज्ञान (paṭisambhidā) प्राप्त करने वाला); चार प्रकार के आर्य सत्यों के ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान के परिणामस्वरूप, सांसारिक और अलौकिक सत्यों (lokiyalokuttaradhamma) में त्रिविध ज्ञान (vijjā) के माध्यम से; इस प्रकार, यही अर्थ है।

यं का अर्थ है: जो भी व्यक्ति (पुग्गलं); उचित कर्म में बाधा उत्पन्न करने (पटिपत्ति) के कारण, वे खतरे (परिस्या) जिन्हें (वोहार) "आपदा (खतरे)" कहा जाता है, जैसे कि सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि प्रत्यक्ष खतरे, साथ ही कामवासना (राग) आदि अप्रत्यक्ष (पटिच्छन्न) खतरे; उपपटिता का अर्थ है: उत्पन्न हुए (उप्पन्ना); उलारा का अर्थ है: जरा भी विचलित न करना (न किंचि चालेंति)। क्यों? पतिसंखवंतं का अर्थ है: विवेकपूर्ण चिंतन करना और विवेकपूर्ण चिंतन की शक्ति में स्थिर होना; यही इसका अर्थ है। इसलिए, इसका अर्थ है: वह जो कठोरतम खतरों से भी विचलित न हो (अक्खम्भनीयो); तामवा का अर्थ है: जो दृढ़ है, वह दृढ़ प्रयास करने वाला कहलाता है; पंडितो का अर्थ है: वह ज्ञान की अपार शक्ति से संपन्न होने के कारण बुद्धिमान कहलाता है, जो आत्म-दुराचार के चरम (पक्खा) पक्ष (अनवसेसा) में निहित है। नात्वा च धम्मेसु विशेषि अस्स का अर्थ है: इसी प्रकार (तथाभूतो) होकर वह सत्य को समझकर उसमें विशिष्ट हो जाएगा। यही अर्थ कहा गया है।

समुद्दो व ṭhito का अर्थ है: उसका स्वभाव सागर के समान स्थिर है। वास्तव में, जिस प्रकार शिनेरु पर्वत के चरणों में स्थित चौरासी हजार मील (योजन) गहरा विशाल सागर ṭhito anejo है, जो दृढ़ता से स्थिर है और आठ दिशाओं से उठने वाली सामान्य (पकति) हवाओं से भी अविचलित रहता है, वह भी गहरा है, उसी प्रकार, (एक दृढ़ बुद्धिमान व्यक्ति) ṭhito anejo है, जो दृढ़ता से स्थिर है और दुराचार (किलेसा) की हवाओं और विधर्मी विचारों (तित्तियवाद) के तूफान से अविचलित रहता है। गंभीरपञ्ञो निपुणस्सदस्सी का अर्थ है: वह गहन ज्ञान से परिपूर्ण है, सूक्ष्म ज्ञान का ज्ञाता है, क्योंकि उसने प्रतीत्यसमुत्पाद आदि के सूक्ष्म और कोमल अर्थ को भलीभांति समझा है, जो ज्ञान के संचित संचय (संभर) से प्राप्त न होने वाले व्यक्ति के लिए अत्यंत सूक्ष्म और कोमल है। असम्भारियो नाम च होति पंडितो का अर्थ है: ऐसा ज्ञानी व्यक्ति अभेद्य कहलाता है, क्योंकि वह युवा देवता मार आदि से या दुष्टता के रूपों से भी नष्ट नहीं होता। इसी अर्थ के कारण वह ज्ञानी (पंडित) कहलाता है। बाकी सब कुछ पहले बताए गए तरीके से ही है।

बहुस्सुतो का अर्थ है प्रामाणिक ग्रंथों (परियत्ति) में गहन ज्ञान के माध्यम से अत्यधिक विद्वान होना। धम्मधारो का अर्थ है: वह सत्य (धम्म) का वाहक है, क्योंकि वह उस सत्य (धम्म) को नष्ट किए बिना धारण करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे सिंह का वीर्य (वसा) सोने के पात्र में डाला जाता है। धम्मस होति अनुधम्मचारी का अर्थ है: वह व्यक्ति जो सत्य (धम्म) के अनुरूप आचरण करता है, इस प्रकार: वह चार

पूर्णतः शुद्ध नैतिक उपदेशों, कठोर अभ्यास (धुतंग), अप्रिय वस्तुओं पर चिंतन करने वाले मानसिक अभ्यास (असुभकममट्ठान) आदि के अनुसार अभ्यास (चरति) करता है और अपने जीवन को (पटिपज्जति) इस प्रकार नियंत्रित करता है, जिसे अभ्यास (पुब्बभाग) के प्रारंभिक भाग के रूप में उचित प्रदर्शन (पटिपदा) माना जाता है, नौ पारलौकिक सत्यों (लोकउत्तरधम्म) के अनुरूप (अनुरूपं) कर्म (धम्म) का अभ्यास, पाठ (धम्म) को समझने और सत्य (धम्म) के अर्थ (अत्थ) को समझने के बाद, जैसा उसने सुना है और पवित्र ग्रंथों (परियत्ति) के अनुरूप (अनुरूपं) करता है। वह स्पष्ट रूप से आर्य सत्यों में उचित अंतर्दृष्टि (पटिवेध) प्राप्त करने की लालसा (आकंठो) रखते हुए आचरण करता है, जैसे कि "आज और अभी भी।" अतः तदिसो नामच होति पंडितो का अर्थ है: जो भी व्यक्ति किसी गुरु पर निर्भर रहकर बहुत ज्ञानी और सत्य (धम्म) का वाहक बन गया हो और सत्य (धम्म) के अनुरूप आचरण करता हो; तदिसो, ऐसा व्यक्ति उचित आचरण (पटिपत्ति) में समानता के कारण उस गुरु के समान ज्ञानी कहलाता है। परन्तु, समान होने पर वह नात्वा च धम्मेसु विशेषि अस्सा होगा; यही अर्थ कहा गया है।

अत्थं चयो जानाति भासितस्स का अर्थ है: जो भी व्यक्ति आत्मजागृत बुद्ध द्वारा उपदेशित सत्य ग्रंथों (परियत्तिधम्म) का अर्थ समझता है; अत्थं च ञत्वान तथा करोति का अर्थ है: समझकर, जैसा कि यहाँ-वहाँ कहा गया है: "यहाँ नैतिक उपदेश (शील) दिए गए हैं; यहाँ एकाग्रता (समाधि) दी गई है, यहाँ ज्ञान (पञ्ञा) दिया गया है," वह गुरु द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है (पटिपज्जति)। अत्थंतारो नाम स होति पंडितो का अर्थ है: जो व्यक्ति अर्थ के अनुरूप (अत्थंतारो) हो गया है, वह ज्ञानी पुरुष है जिसने अर्थ के कारण (अत्थकारणा) अपनी योग्यता (उपनिस्सेयं) को अर्थ की समझ (अत्तजाननामत्तं) के अनुरूप ही निर्धारित किया है। शेष जैसा कहा गया है वैसा ही है।

यहां फिर से, "यो वे गरूणं" से शुरू होने वाले पहले श्लोक के माध्यम से, विशिष्टता (विशेषभावो) की स्थिति, यानी सद्धा (उपनिस्सेय) की योग्यता (उपनिस्सेय) का उल्लेख किया गया है; "यं आपदा" से शुरू होने वाले दूसरे श्लोक के माध्यम से, परिश्रम (वीर्य) (उपनिस्सेय) की योग्यता (उपनिस्सेय) का उल्लेख किया गया है; "यो वे समुद्दो व ठितो" से शुरू होने वाले तीसरे श्लोक के माध्यम से, समाधि (एकाग्रता) (उपनिस्सेय) की योग्यता (उपनिस्सेय) का उल्लेख किया गया है; "बहुस्सुतो" से शुरू होने वाले चौथे श्लोक के माध्यम से, सती (मानसिक जागरूकता) (उपनिस्सेय) की योग्यता (अत्थांच यो जानातो) के माध्यम से, ज्ञान (पञ्ञा) (उपनिस्सेय) की योग्यता को विशिष्टता (विशेष) की स्थिति के रूप में बताया गया है; इस प्रकार, इसे समझा जाना चाहिए।

थेरा कोसिया के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।

पांचवें खंड पर टिप्पणी पूरी हो चुकी है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (210): उरुवेला का कस्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (210) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
210. उरुवेला के कस्सपा
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के समय में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में तीन बंधुओं में से प्रथम पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वे सभी अपने पारिवारिक नाम कस्सपा [1] से जाने जाते थे , और उन सभी ने तीनों वेदों का अध्ययन किया। उनके अनुयायी क्रमशः पाँच, तीन और दो सौ ब्राह्मण (पुजारी) युवक थे। और अपने शास्त्रों में कोई महत्वपूर्ण सत्य न पाकर, [2] बल्कि केवल सांसारिक हितों के विषय पाकर, [3] उन्होंने संसार त्याग दिया (सन्यास के लिए) और तपस्वी बन गए। और वे उन स्थानों के नाम पर ऋषि कहलाए जहाँ वे रहते थे, सबसे बड़े ऋषि अपने साथियों के साथ उरुवेला में रहने चले गए। इसके कई दिनों बाद हमारे बोधिसत्व (बुद्ध) का महान त्याग हुआ, धम्म-चक्र की शुरुआत हुई, पाँचों थेरों को अरहंत का दर्जा प्राप्त हुआ, यासा के नेतृत्व में तिरपन सहयोगियों का धर्मांतरण हुआ, साठ अरहंतों (प्रबुद्धों) को यह संदेश देकर भेजा गया, 'जाओ भिक्षुओं, और भ्रमण करो...', तीस धनी मित्रों का धर्मांतरण हुआ, और भगवान (बुद्ध) उरुवेला आए। जब उन्होंने वहाँ नाग को वश में करने से शुरू करके कई चमत्कार किए, तो कस्सपा आश्वस्त हो गए और भिक्षु

संघ में प्रवेश कर गए, उनके भाइयों ने भी उनका अनुसरण किया। उन्हें और उनके [207] 1,000 अनुयायियों को, भगवान (बुद्ध), गया पर्वत पर एक चट्टान की चोटी पर बैठे हुए, अग्नि पर प्रवचन दिया, और उन सभी को अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में स्थापित किया।

लेकिन उरुवेला-कस्सपा ने अपनी उपलब्धि की समीक्षा करते हुए सिंह-गर्जन वाले छंदों का उच्चारण किया और अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[375] दिसवना पतिहिरानि गोतमस्सा यस्स्सिनो,॥
न तवाहं पणिपतिं इस्सामेनेन वञ्चितो॥ ॥

[376] मामा संकप्पामनया कोडसि नरसारथि,॥
ततो मे असि सवेगो अब्भुतो लोमहांशनो॥ ॥

[377] पुब्बे जटिलभूतस्स या मे सिद्धि1 परित्तिका,॥
तहं तदा निराङ्कत्वा पब्बजीं जिनसासने ॥ ॥

[378] पुब्बे यान्नेन संतुथो कामधातुपुरक्खतो,॥
पच्चा रागं च दोसां च मोहं कपि समुहनिं॥ ॥

[379] पुब्बेनिवासां जानामि दब्बाचक्खु विसोधितां,॥
इद्दिमा परचित्तन्नु दिब्बसोतां च पापुनिं॥ ॥

[380] यस्सा कैथाय पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ,॥
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो सब्बासंयोजनक्खयो' ति.॥ ॥

[375]
गौतम (बुद्ध) की उच्च शक्तियों द्वारा किए गए सभी अद्भुत कार्यों को देखकर ,
मैंने पहले तो स्वयं को विनम्र नहीं किया,
ईर्ष्या और अहंकार से धोखा खाकर।

[376] परन्तु हे मनुष्यों के मार्गदर्शक, जो मेरे विचार
और मेरे इरादे को जानते थे, उन्होंने अंततः मुझे फटकारा।
उस पीड़ा से मैं व्याकुल हो गया,
एक रहस्यमय रोमांच और रोंगटे खड़े कर देने वाले भय से भर गया।

[377] और फिर वे उपहार जो पहले मेरे लिए थे [4] प्रसिद्ध तपस्वी गरीब और बेकार प्रतीत होते थे।
मैंने उन सभी को कुछ भी नहीं समझा,
और विजेता के आदेश में नामांकित हो गया।

[378] एक बार त्याग से संतुष्ट होकर, सबसे बढ़कर
इन संसारों में फिर से जीने के लिए चिंतित,
अब मैंने अपने आप को
सभी वासना, सभी दुःख, इच्छाशक्ति, भ्रम को भी मिटाने के लिए दृढ़ संकल्पित किया है।

[379] मैं जानता हूँ कि मैंने पहले कैसे जीवन व्यतीत किया (पूर्व जन्मों में); मैंने दिव्य दृष्टि,
दिव्य परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट किया है; मैंने
अलौकिक शक्ति, दूसरों के विचारों को पढ़ने,
अविश्वसनीय श्रवण शक्ति को प्राप्त किया है।

[380] और वह महान खोज जिसके लिए मैंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए),
घर छोड़कर, बेघर जीवन जीने के लिए,
वह खोज, वह उच्च पुरस्कार भी मैंने प्राप्त कर लिया है,
क्योंकि अब हर बंधन टूट गया है। [5]

[1] सीसी III, सीसी IV देखें। यहाँ वर्णित घटनाएँ विनय पाठ, i. 119-139 में बताई गई हैं। इस कस्सपा को उन भिक्षुओं (भिक्षुओं) में प्रमुख स्थान दिया गया है जिनके बहुत अनुयायी थे (अंग., 25)।

[2] शाब्दिक रूप से, उनकी अपनी पुस्तक में, attano ganthe.

[3] दीठधम्मिकम् एव अत्थṃ।

[4] लाभ-सक्कर-सम्मिद्धि। साइ.

[5] वह छह प्रकार के अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) या उच्च ज्ञान के तरीकों की गणना करते हैं, केवल अंतिम को चार मादक पदार्थों (विकृतियों/इच्छाओं) के बजाय 'दस बंधनों का नाश' कहते हैं, जो अधिक सामान्य सूत्र है (cf. पृष्ठ 32, n. 1)। अंतिम दो पंक्तियाँ (CXXVIII.) श्लोक 136 के समान हैं; श्लोक 379 में चार पंक्तियाँ, थोड़ी भिन्न रूप में, उप्पलावण्णा की गाथाओं (बहनें, श्लोक 227) में आती हैं। श्लोक 380 = 136.

6. छठा खंड

6.1 [210] उरुवेलकस्सपत्थेरा के श्लोक पर टीका
दिसवान पातिहिरणी से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा उरुवेला कस्सपा का है। इसका उद्गम क्या है? उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्म संचित किए, और भगवान पद्ममुत्तरा के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, जो एक भिक्षु को बहुसंख्यक श्रोताओं में सबसे आगे बैठाते हुए देखे गए थे। उन्होंने स्वयं भी उस स्थान की आकांक्षा की, महान दान किया और संकल्प लिया। भगवान ने उनकी निरंतर सिद्धि को देखकर उनसे भविष्यवाणी की: "आने वाले समय में बुद्ध गौतम के युग में वह बहुसंख्यक श्रोताओं में सबसे आगे होगा।"

उन्होंने जीवन भर वहाँ पुण्य कर्म किए, फिर उनका निधन हो गया और वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और बानवे युग (कप्पा) पहले भगवान फुस्सा के परस्त्री माता से जन्मे छोटे भाई के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनके दो अन्य छोटे भाई भी थे। उन तीनों ने भी बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को परम आदरपूर्वक भेंट (परमय पूजा) की, जीवन भर अच्छे कर्म किए, जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, बनारस के एक ब्राह्मण परिवार में भाई बने, लेकिन हमारे भगवान बुद्ध के जन्म से पहले, एक के बाद एक अपने उचित क्रम (अनुक्कामेना) में जन्म लेने के कारण, वे तीनों अपने कुल के कारण कस्सप कहलाए। वयस्क होने पर, उन तीनों ने तीन वेदों का अध्ययन किया। उनमें सबसे बड़े भाई के पाँच सौ बालक थे; मध्य भाई के तीन सौ और सबसे छोटे भाई के दो सौ बालक थे। अपने वैदिक ग्रंथों में सार का अध्ययन करने पर, उन्होंने केवल वर्तमान जीवन से संबंधित लाभ (दित्तधम्मिका) को देखा और त्याग के प्रति प्रलोभित हो गए। तीनों में से, सबसे बड़े भाई अपने अनुयायियों के साथ उरुवेला गए, वहाँ उन्होंने संन्यासी के रूप में संसार का त्याग किया और उरुवेला कस्सपा के नाम से जाने गए। मध्य भाई ने गंगा नदी के मोड़ पर संसार का त्याग किया और नादिकसप्पा के नाम से प्रसिद्ध हुए, और सबसे छोटे भाई ने गयासीसा में संसार का त्याग किया और गया कस्सपा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जब उन्होंने संसार का त्याग कर तपस्वी संन्यासी बन गए और उस स्थान पर निवास कर रहे थे, तब हमारे बोधिसत्व ने महान त्याग किया, कई दिनों के बाद सर्वज्ञ ज्ञान को उचित रूप से प्राप्त किया, सत्य (धम्म) के चक्र को उचित रूप से घुमाया, पांच (पंचवग्गी) थेरों के समूह को अरहंत पद पर स्थापित किया, योशा के नेतृत्व में पचपन सहायों को परिवर्तित (विनत्वा) किया, साठ संतों (अरहंतों) को यह कहकर विदा किया: "हे भिक्षुओं! अपनी यात्रा पर निकलो," अच्छे राजकुमारों (भद्धवग्गी) के समूह को अपने अनुशासन में लिया, उरुवेला कस्सपा के निवास स्थान पर गए, वहाँ निवास करने के उद्देश्य से अग्नि (या ताप) गृह (अज्ञागार) में प्रवेश किया, उरुवेला कस्सपा को परिवर्तित किया, वहाँ निवास करने के उद्देश्य से अग्नि (या ताप) गृह (अज्ञागार) में प्रवेश किया, उरुवेला को परिवर्तित किया। कस्सपा ने अपने श्रोताओं (सपरिसा) सहित साढ़े तीन हजार चमत्कारों के द्वारा उन्हें भिक्षु बना दिया। जब उनके भिक्षु बनने की

शर्त का पता चला, तो उनके दो अन्य भाई अपने श्रोताओं (सपरिसा) सहित आए और गुरु के समक्ष भिक्षु बन गए। जब उन्हें "आओ भिक्षुओं!" कहकर पुकारा गया, तो वे सभी जादुई प्याले धारण करने वाले और जादुई वस्त्र धारण करने वाले बन गए।

गुरुदेव अपने साथ उन हजार भिक्षुओं को लेकर गयासीसा गए, एक पत्थर पर बैठे और आदित्तपरीय (अग्निप्राय) पर अपने प्रवचन के माध्यम से उन सभी को अरहंत पद पर स्थापित किया। इसीलिए अपदान में ऐसा कहा गया है।

‘‘पदुमुत्तरा नामक विजेता,

वह ऋषि जिसे ज्ञान था

संपूर्ण विश्व, दृष्टि का स्वामी

एक लाख युगों पहले (कप्पा) उत्पन्न हुआ।

पहले।

बुद्ध, जो सलाह देने वाले थे,

जिसने समझ पैदा की (की)

सत्य), जीवित प्राणियों का प्रेषक

संसार के सागर के पार, चतुर

शिक्षण प्रवचन (देसनकुसला), भेजा गया

बहुत सारे लोगों के बीच।

सहानुभूति रखने वाला, दयालु, साधक

सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए,

सभी विधर्मी (तित्तिया) जो पहुँच चुके थे

(उनकी उपस्थिति) पाँचों में स्थापित हो चुकी है

नैतिक उपदेश।

इस प्रकार वह मुक्त हो गया

अशांति (निराकुल) और शून्य (सुञ्ञत)

विधर्मियों का भी; वह बहुरंगी हो गया

(vicittaṃ) उन अरहंतों के साथ जो बन गए थे

ऐसे ऋषि जो शक्तियों से संपन्न थे

(वसी).

वह महान ऋषि अट्ठावन हाथ लंबा था।

(रतन) ऊंचाई में, उनका स्वरूप (संकासा)

कीमत (अघघिया) लीलके सोना (कंकाना) थी;

वह बत्तीस उत्कृष्ट चरित्र वाले व्यक्ति थे।

टिक।

उनकी जीवन अवधि निरंतर (tāvade) थी।

एक लाख वर्षों तक; शेष

इतने लंबे समय तक (जीवित रहते हुए) उसने बहुत बड़ी भीड़ भेजी

संसार के सागर के पार पुरुष। मैं था

फिर हंसवती (शहर) में एक कुआँ

मान्यता प्राप्त (सम्मातो) ब्राह्मण।

चमकते प्रकाश (पज्जोता) के पास पहुंचा

मैंने संसार में सत्य (धम्म) को सुना।

उनके द्वारा सिखाया गया। यह सुनकर फिर

महापरिसा का शिष्य

सबसे आगे की स्थिति में रखा जाना (etadag-

उन लोगों में से जिनके पास बहुत सारे श्रोता थे (गम्ही)

(महापरिसातिम्) मुझे प्रसन्नता हुई।

महान विजेता को आमंत्रित करके, साथ में

मैंने उनके विशाल दल के साथ दान दिया।

साथ ही एक हजार ब्राह्मण भी।

मैंने अपनी महान दानशीलता का प्रस्ताव देकर भुगतान किया।

नेता को मेरा नमन; खड़े होकर

एक तरफ खुशी से मैंने ये शब्द कहे।

हे वीर! मेरी पवित्र आस्था के माध्यम से

आप, और मेरी गुणवत्ता के कारण

वहाँ समर्पित सेवा (अधिकारगुण) हो सकती है

मेरे लिए हर जगह एक बड़ा दर्शक वर्ग (परिसा) हो।

मेरा पुनर्जन्म हो सकता है।

फिर, गुरु, जिनकी आवाज ऐसी थी

किसी के तुरही बजाने के समान उत्कृष्ट

हाथी (गजगज्जिता) और (जितना मीठा)

कोयल का गायन (करविहारुतो)

उन्होंने श्रोताओं से कहा; इस ब्राह्मण को देखो।

(उसे देखो) जिसका रंग सुनहरा है,

उसकी मजबूत भुजाएँ (बहु), उसकी आँखें और मुँह

कमल के फूल की तरह, उसकी उमंग से जन्मा

शरीर से प्रसन्न और हृदय से प्रसन्न, धर्मपरायणता से परिपूर्ण

मुझे अपने गुणों पर भरोसा है।

यह व्यक्ति इस पद की आकांक्षा रखता है।

भिक्षु सिहाघोष (शेर की दहाड़); वह

वह वांछित वस्तु (मनोरथ) प्राप्त कर लेगा।

एक लाख युगों (कप्पा) बाद,

दुनिया में गुरु अवश्य होंगे

कुल द्वारा गौतम नाम दिया गया, भेंट

ओक्काका(इक्ष्वाकु).

वह अपने सत्य (धर्म) का उत्तराधिकारी होगा।

सत्य (धम्म) द्वारा सृजित एक घनिष्ठ पुत्र (ओरासो);

वह गुरु का शिष्य बन जाएगा।

कुल के अनुसार इसका नाम कस्सपा रखा गया था।

बानवे युग (कप्पा) पहले, एक उत्पत्ति हुई

अद्वितीय मास्टर फुस्सा, सबसे अग्रणी

विश्व का नेता, अद्वितीय (अनुपामो)

और अतुलनीय (asadiso)।

सभी अंधकार को दूर करके, उलझनों से मुक्त होकर

प्रचुर उलझन, उसने बारिश बरसा दी

अमरता की वर्षा, संतुष्टिदायक (तप्पयंतो)

विश्व के साथ-साथ दिव्य जगत।

उस समय, वास्तव में, बनेरेस में, हम थे

संप्रभु के पुत्र, तीन भाई

सभी, लेकिन अच्छी तरह से विश्वसनीय (saṃvisaṭṭha) द्वारा

राजा।

हमारे भौतिक शरीर की विशेषताएँ इस प्रकार थीं:

वीरांगरूप होने के नाते, हम बलवान थे।

हम युद्ध के मैदान में अजेय थे;

उस अवसर पर, सीमा थी

विद्रोह और पृथ्वी के स्वामी ने बात की

हम लोगो को।

"आओ। सीमा पर जाकर, तुम

जंगल को पूरी तरह से साफ कर देना चाहिए।

विद्रोही सेना और उसे पूरी तरह से जीत लेने के बाद

(विजिरितं) और सुरक्षित, आपको देना चाहिए

इसे मुझे फिर से दे दो;" उसने इस प्रकार कहा।

इसके बाद हमने (जवाब में) कहा; “अगर आप

इससे हमें वह नेता मिल जाएगा जिसकी देखभाल की जानी है।

हम आपकी इच्छा पूरी करेंगे।

फलस्वरूप।

(मांगी गई) कृपा प्राप्त करने के बाद

इसके बाद, हमें भेज दिया गया

पृथ्वी की चर्बी से सीमा बनी थी

विद्रोहियों ने अपने हथियार डाल दिए और आगे बढ़े

फिर से संप्रभु।

हमने राजा से अपनी विनती की,

हमारे लिए यह करने के लिए लोक के नेता (जनता के नेता)

स्वामी की सेवा; प्राप्त कर लिया

(सेवा करने की अनुमति) वीर ऋषि, हम

हमने अपनी पवित्र भेंट तब तक अर्पित की जब तक हम

रहते थे।

बेहद महंगे कपड़े पेश करने के बाद,

उच्च कोटि के रस से युक्त भोजन। आनंददायक।

मठों और लाभकारी दवाओं के लिए

ऋषि अपने भिक्षुओं के संघ के साथ,

(हमारी भेंट की वस्तुएं) प्राप्त की गईं

हमारे द्वारा धार्मिकतापूर्वक (धम्मेना)।

वे नैतिक उपदेशों (सीला) से युक्त थे।

हम दूसरों के प्रति सहानुभूति रखते थे और हमारा

लोगों का ध्यान विकास की ओर लगा हुआ था।

ध्यान (भावना)।

नेता की देखभाल करने के बाद

पवित्र आस्था और प्रेमपूर्ण दयालु हृदय,

और जब दुनिया का वह अग्रणी व्यक्ति प्रवेश कर गया

हमने निब्बाना के लिए अपनी श्रद्धापूर्वक भेंटें अर्पित कीं।

हमारी क्षमता (बाला) के अनुसार।

वहाँ से निकल जाने के बाद, हम चले गए

उत्कृष्ट तुसिता स्वर्ग में, जहाँ

हम सभी को बहुत खुशी मिली; यही है

हमारी श्रद्धा को साकार करने का फलदायी परिणाम

बुद्ध को अर्पित की जाने वाली वस्तुएँ।

एक जादूगर के अनुसार कई करतब प्रदर्शित किए जाते हैं

नाट्यकला में आकृतियों और रूपों (विकती)

अवस्था (रंगा), इसी प्रकार, मैं, इधर-उधर लुढ़कता हुआ

अस्तित्व में, संप्रभु प्रमुख बन गया

विदेह राज्य के (अधिपति)। मेरी रुचि थी।

(असायो) गलत दृष्टिकोण की ओर (मिच्चदिथि-

(गता) नग्न तपस्वी के कथन के कारण

गुण (गुण) का (असेल); चढ़ाई करने वाला

मैंने नरक के मार्ग को नहीं चुना।

मैंने अपनी बेटी रूका की सलाह मानी;

कई बार ब्रह्मा पर निर्भर (संसितो)

नारोदा, मैंने बुरी दृष्टि को त्याग दिया।

दस को विशिष्ट रूप से पूरा करने के बाद

मानसिक व्यायाम के रूप (कम्मट्ठाना),

मैं स्वर्ग (सग्गा) में ऐसे पहुँच गया मानो वह मेरा ही हो।

मेरे शरीर के विघटन पर, मेरा अपना महल।

जब मेरा अंतिम अस्तित्व समाप्त हो चुका था

वहाँ पहुँचकर मैं ब्राह्मण (ब्रह्मबंधु) बन गया;

मैं एक महान ब्राह्मण (विप्पा) परिवार में पैदा हुआ था।

समृद्ध (फीता) शहर बनारस में।

मृत्यु के खतरे से भयभीत होकर,

बीमारी और बुढ़ापे के कारण, मैं इसमें डूब गया।

घने जंगल में; मैंने संसार का पूर्ण त्याग कर दिया।

गुंथे हुए बालों वाले तपस्वियों के बीच चक्कर लगाते हुए,

निर्वाण के मार्ग की खोज में (esanto)।

उस अवसर पर, मेरे दोनों भाइयों ने

उन्होंने मेरे साथ मिलकर त्याग किया।

उरुवेला में एक आश्रम बनाने के बाद, मैंने

वहाँ निवास करता था।

कबीले ने मेरा नाम कसापा रखा था (जरूरी था), मैं उनमें से एक था।

जो उरुवेला में रहने लगे; परिणामस्वरूप

मैं इस नाम से जाना जाने लगा: उरुवेला कस्सपा।

मेरे भाई, की उपस्थिति (सकासा) में

उस नदी का नाम (सवयो) नादी कस्सपा था।

वह (मेरा सबसे छोटा भाई) वहाँ मौजूद था।

गया के निवासी, और उनका नाम गया कस्सपा रखा गया।

मेरे सबसे छोटे भाई के दो बच्चे थे।

सौ; मेरे मध्य के तीन (सौ)

भाई; निश्चय ही पाँच सौ मेरे थे;

मेरे सभी छात्र मेरे पीछे-पीछे चले।

उस समय बुद्ध मेरे पास आए;

मनुष्यों का सारथी, सबसे आगे

दुनिया ने कई प्रकार बनाए हैं

मेरे लिए चमत्कार, मुझे परिवर्तित (vinesi) कर दिया।

मैं 'आओ, भिक्षु' प्रकार का भिक्षु बन गया

अपने हजार साथियों के साथ;

उन सभी के साथ मिलकर, मैंने हासिल किया

अरहंत पद।

वे और साथ ही कई अन्य छात्र

मेरे चारों ओर घेरा हुआ था। मैं भी ऐसा करने में सक्षम था।

बोलो। परिणामस्वरूप

सातवां तपस्वी (इसिसत्तमो)

मेरा मूल्यांकन किया।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने उचित कर्म (पटिपत्ति) पर विचार किया और शेर की दहाड़ लगाने के लिए इन छह श्लोकों का उच्चारण किया।

375. "प्रसिद्ध लोगों के चमत्कारों को देखकर

गौतम, मैं अभी तक इतना नीचे नहीं गिरा हूँ।

(पणिपतिम्, उनके समक्ष प्रणाम करना)

बेईमानों द्वारा धोखा दिए जाने के कारण

इच्छा (इस्सा) और अभिमान (मान)।

376. "मेरी मंशा का पता चलने पर

पुरुषों के सारथी ने मुझे प्रेरित किया (कोडेसी);

परिणामस्वरूप मुझे पश्चाताप हुआ।

अजीब और रोंगटे खड़े कर देने वाला।

377. "त्याग कर (निराकत्वा)"

तब वह अल्प (परित्तिका) समृद्धि

जब मैं

पहले मैं चोटीदार बालों वाला एक तपस्वी था।

के युग में भिक्षु बन गया

विजेता।

378. "पहले मैं (अपनी) स्थिति से संतुष्ट था।"

पवित्र अग्नि पूजा (यज्ञा संस्कृत)

(पुरक्खतो) कामुक तत्व द्वारा (काम-

बाद में, मैंने अपनी वासना को नष्ट कर दिया।

(राग), घृणा (दोष) और भ्रम

(मोह) भी।

379. "मुझे अपने पूर्व निवास (निवास) याद आ गए;

मेरी दिव्य दृष्टि पूरी तरह से शुद्ध हो चुकी थी;

मुझे दिव्य श्रवण शक्ति भी प्राप्त हुई, मैं एक बन गया

जादुई शक्ति का धारक, एक ज्ञाता

दूसरों के मन को भी।

380. “मेरे लिए वह लाभ, जिसके उद्देश्य से

मैं गृहस्थी से भिक्षु बन गया था

बेघर जीवन को जीवन देना;

तदनुसार हासिल किया; मेरे सभी बंधन

(संयोजन) नष्ट हो गया था।

वहाँ, disvāna pāṭihārāni का अर्थ है: विशाल सर्प को वश में करने से लेकर तीन हज़ार पाँच सौ चमत्कारों को देखने वाला। “Pātihīraṃ, pātiheraṃ और pātihāriya” ये अभिव्यक्तियाँ अर्थ की दृष्टि से एक ही हैं; केवल वर्तनी (ब्यञ्जन) के विवरण में ही इनमें अंतर है। Yasassino का अर्थ है: जिसका सत्य (yathābhuccaṃ) के अनुसार विश्व में, साथ ही दिव्य प्राणियों के जगत में भी, “Iti pi so bhagava (इस प्रकार वह धन्य है)” से प्रारंभ होकर, उसकी प्रतिष्ठा (patthaṭa) फैली हुई है। Na tāvā'haṃ paṇipatiṃ का अर्थ है: जब तक भगवान बुद्ध ने मुझे इस प्रकार धमकी नहीं दी: “हे कस्सपा! वास्तव में, तुम न तो अरहंत हो और न ही तुमने अरहंतत्व के सही मार्ग (मार्ग) पर चलने के लिए अपना जीवन व्यवस्थित किया है; वह उचित अभ्यास (पटिपदा) जिससे तुम या तो अरहंत बन सको या अरहंतत्व के मार्ग पर चल सको, तुममें विद्यमान भी नहीं हो सकता,” तब तक मैंने किस परिस्थिति में प्रणाम नहीं किया? Issāmānena vañcito का अर्थ है: न केवल दुर्भावना (issāya c'eva) के कारण धोखा खाकर नीचे गिर जाना, जिसकी विशेषता दूसरों की समृद्धि को सहन न कर पाना है, जैसे कि: “जब मैंने इस व्यक्ति का शिष्यत्व ग्रहण किया, तो मेरा लाभ और यश (sakkāro) सब जगह कम हो जाएगा और केवल इसी का लाभ और यश बढ़ेगा,” बल्कि अहंकार के कारण भी, जिसकी विशेषता कठोरता (abbhunnata) है, जैसे कि “मैं बहुत से लोगों द्वारा मान्यता प्राप्त समूह का नेता (pāmokkho) हूँ; यही इसका अर्थ है।

मामा संकल्पमञ्ञाय का अर्थ है: मेरे गलत इरादे को जानने के बाद, भगवान ने जादुई शक्तियों के चमत्कार दिखाए, जो मानवीय कर्मों (धम्म) से परे (उत्तरी) हैं; (चमत्कार) देखने के बाद, यद्यपि उन्होंने ऐसा सोचा; “वास्तव में, महान भिक्षु उच्च जादुई शक्ति और महान प्रभाव वाले हैं,” उन्होंने ऐसा कहा; 'वास्तव में, मेरी स्थिति के अनुसार, वे अभी तक अरहंत नहीं हैं; यद्यपि वे इस प्रकार उत्पन्न हुए दुष्ट और उबड़-खाबड़ विचार (मिच्छावितक्कं) को जानते थे, फिर भी उन्होंने अपने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता की प्रतीक्षा करते हुए समभाव (अज्जुपेक्खित्वा) बनाए रखा। बाद में, नेरांजरा नदी के मध्य में नदी के जल को पीछे हटाकर (उस्सारेत्वा), वे धूल से भरी (हता) भूमि पर आगे-पीछे चले, अपने द्वारा लाई गई नाव पर खड़े हुए, तब भी उन्होंने "महिद्धिको (अत्यंत जादुई रूप से शक्तिशाली)" से शुरू करते हुए इस प्रकार सोचा, परन्तु फिर कहा, "जैसा मैं हूँ, वह वास्तव में अरहंत नहीं है।" इस प्रकार, उत्पन्न हुई दुष्ट प्रवृत्ति को जानकर, यही अर्थ है। कोदेसी नरसारथी का अर्थ है: तब, मेरे ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता को जानकर, गुरु, सारथी और मनुष्यों के प्रशिक्षक ने मुझे "न'एव खो त्वं अरहा (वास्तव में, तुम अरहंत नहीं हो)" से शुरू होने वाले कथन से प्रेरित किया और मुझे अपने अधीन (निग-गणही) कर लिया। ततो मे आसी संवेगो, अब्भूतो लोमहंसनो का अर्थ है: इसके बाद, जैसा कहा गया है, उस आग्रह (कोदना) के कारण, यह अब्भूतो (अजीब) है क्योंकि ऐसी स्थिति पहले कभी इतने लंबे समय तक नहीं हुई थी, यह लोमहंसनो (बाल खड़े होने) के कारण है, बाल खड़े होने के कारण; संवेगो का अर्थ है: मुझे ज्ञान का उद्भव (णाणुप्पादो) हुआ, साथ ही पाप करने के भय (ओत्तप्पा) की भावना भी उत्पन्न हुई; "मुझे ऐसा लगता है मानो मैं अरहंत हूँ, यद्यपि मैं ऐसा नहीं हूँ।"

जटिलभूतस्स का अर्थ है: (मुझे) जो एक तपस्वी था। सिद्धि का अर्थ है उत्कृष्ट समृद्धि, लाभ और सम्मान (सक्कारा)। परित्तिका का अर्थ है: सीमित मात्रा में (अप्पमत्तिका)। ताहं का अर्थ है: वह मैं। तदा का अर्थ है: उस समय जब भगवान द्वारा दिए गए आग्रह के कारण (मुझमें) पश्चाताप उत्पन्न हुआ। निराकत्व का अर्थ है: हटाने (अपनेत्व) और त्यागने (छद्दत्व) के बाद, अनासक्त हो जाने (अनपेक्खो) के बाद; इस प्रकार, अर्थ है: "इद्धि तो भावनामय इद्धि (जादुई शक्ति), इस प्रकार, ध्यान (भावना) के विकास से बनी शक्ति है," ऐसा वे कहते हैं। यह उचित नहीं है (आयुत्तं) क्योंकि उस समय उन्होंने ध्यान प्राप्त नहीं किया था। वास्तव में, इसी प्रकार कहा गया है; “कामधातुपुरुक्खतो (इंद्रिय सुख (काम) के तत्व (धातु) द्वारा संचालित)।”

यञ्ञेन सन्तुच्छो का अर्थ है: पवित्र यज्ञ अर्पण करने से संतुष्ट (यञ्ञायजनेन), यह बोध (संञि) रखते हुए कि जो करना चाहिए वह पूरा हो गया है, यह कहते हुए: “पवित्र यज्ञ अर्पण करने के बाद मुझे स्वर्गिक आनंद प्राप्त होगा; इतना ही काफी है (अलमेत्तवता)।”

कामधातुपुरक्खतो का अर्थ है: यज्ञ अर्पण (यञ्ञायजनेन) के माध्यम से अपने सामने (पुरक्खतवा) इंद्रिय सुखों (काम) का संसार रखकर (पुरक्खतवा) जो इंद्रिय सुखों (काम) के उत्तम अस्तित्व (एउगति) के संबंध में (आरब्ब) उत्पन्न लालसा (उप्पन्नतण्हो) के कारण हुआ हो। यदि उस यज्ञ अर्पण (यञ्ञो) में (पटिसंयुत्तो होति) जीवित प्राणियों की हत्या करने से उसे उत्तम अस्तित्व (सुगति) प्राप्त नहीं हो सकता; वास्तव में, बुरे कर्मों से वांछनीय (इट्ठो) और सुखद (कन्तो) परिणाम (विपाको) प्राप्त नहीं होता। यद्यपि दान (दान) आदि जैसे पुण्यकारी (कुसला) संकल्प (चेतना) होने पर, जब सहायक परिस्थितियाँ एक साथ आती हैं (पच्चयासमवाय), तो वह उस संकल्प के माध्यम से उत्तम अस्तित्व (सुगति) प्राप्त कर सकता है। पच्चा का अर्थ है: संन्यास के बाद, जब उसने गुरु की सलाह पर संन्यासियों के विधर्मी दृष्टिकोण (लद्धि) को त्यागकर चार आर्य सत्यों के मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठना) में लीन हो गया था। समूहिं का अर्थ है: मैंने विधिपूर्वक अंत किया। आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास में गहनता से लीन रहने के बाद, निरंतर सही मार्गों (मग्गपटीपतिया) के माध्यम से काम (राग), घृणा (दोष) और भ्रम से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त करना।

हालांकि, इस थेरा ने छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत का दर्जा प्राप्त कर लिया था, तथा उत्तम (आर्य) मार्ग (मार्ग) के माध्यम से कामवासना (राग) आदि का उचित अंत कर लिया था, इसलिए उन्होंने "पुब्बेनिवासं जानामि" से शुरू होने वाला श्लोक कहा।

यह दर्शाने के लिए कि स्वयं छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत हैं। वहाँ, pubbenivāsaṃ janāmi का अर्थ है कि मैं पूर्व (pubbe) निवासों (nivāsa), उत्पन्न (nibbatta) समूहों (khandha) और उन समूहों पर निर्भर (khandhapaṭibaddha) के ज्ञान के माध्यम से हथेली (hatthatala) की सतह पर मायरोबलन फल (āmalaka) के समान स्पष्ट रूप से (paccakkhato) ज्ञान प्राप्त करता हूँ और प्रबुद्ध (bujjhāmi) होता हूँ, अपने और दूसरों के पूर्व निवास (pubbenivāsaṃ) के ज्ञान के माध्यम से। Dibbacakkhu visodhitaṃ का अर्थ है: दिव्य दृष्टि का ज्ञान स्पष्ट रूप से शुद्ध हो गया है; ध्यान (भावना) के विकास के माध्यम से उसे पूर्णतः शुद्ध करने के बाद, मैंने उस अत्यंत सूक्ष्म (सुखुमा) दृश्य वस्तु (रूप) को, जो दिव्य या मानव रूपी हो, दूर (दूर) स्थित (ठित) इस प्रकार प्रकट करने की क्षमता का ज्ञान प्राप्त किया है मानो वह सामान्य (पकतो) दृश्य वस्तु (रूप) हो जो सामान्य (पकति) आँखों द्वारा देखे जाने की सीमा (आपाथा) तक पहुँच चुकी हो; यही अर्थ है। इद्धिमा का अर्थ है: जादुई शक्ति का स्वामी, जिसमें दृढ़ (अधिष्ठान) जादुई शक्ति और मानसिक शक्ति (विकुब्बनिद्धि) आदि शामिल हैं; विविध जादुई शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करने वाला; यही अर्थ है। परचित्तञ्ञु का अर्थ है: दूसरों के मन का ज्ञाता, क्योंकि वह कामुक (सारग) माने जाने वाले दूसरों के मन को जानता है, और इसी कारण उसे दूसरों के विचारों का ज्ञान प्राप्त करने वाला (चेतोपरिया) कहा गया है। दिब्बासोतञ्च पापुणि का अर्थ है: मैंने दिव्य श्रवण का ज्ञान भी उचित रूप से प्राप्त कर लिया है।

इसलिए me attho anupatto, sabbasaṃyojanakkhayo का अर्थ है: विनाश से या सभी बंधनों से मुक्त होने से जो भी लाभ प्राप्त होता, वह परम (परम) लाभ और मेरा स्वयं का लाभ (सदत्थ) मुझे श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) की प्राप्ति से प्राप्त हो चुका है। इस प्रकार, इस श्लोक के माध्यम से थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) का प्रकटीकरण हुआ; इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।

थेरा उरुवेला कस्सपा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(211):तेकिचाकारी

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (211) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
211. Tekicchakāri
बुद्ध युग में सुबुद्ध नामक एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, चिकित्सकों की सहायता से उनका जन्म सुरक्षित रूप से हुआ। इसलिए उनका नाम तेकिच्छाकारी रखा गया, जिसका अर्थ है 'चिकित्सक द्वारा निर्मित'। [1] वे अपने कुल की कलाओं और विद्या को सीखते हुए बड़े हुए। उनके पिता ने अपनी बुद्धिमत्ता और नीति के कारण बनारस के राजा (sic) की ईर्ष्या और संदेह को आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप राजा चंदगुत्त ने उन्हें कारावास में डाल दिया। तब तेकिच्छाकारी ने यह सुनकर भयभीत होकर भाग गए और विहार (मठ) हॉल में रहने वाले थेरा के पास शरण ली और उन्हें अपनी परेशानी का कारण बताया। थेरा ने उन्हें भिक्षु दीक्षा दी और उन्हें एक अभ्यास दिया, जिसके बाद वे खुले में एकांतवास करने वाले भिक्षु बन गए, [2] जो गर्मी या सर्दी की परवाह नहीं करते

थे और विशेष रूप से उदात्त भावों की साधना में लीन रहते थे। दुष्ट देवता हिम मारा (मृत्यु के देवता/शैतान) ने उसे अपने चंगुल से फिसलते हुए देखा; और थेरा को असंतुलित करने की इच्छा से, फसल कटाई समाप्त होने के बाद, वह एक चरवाहे के वेश में उसके पास आया और उसे इस प्रकार लुभाया:

[381] अतिहिता विहि खलगता साली,॥
न च लभे पिण्डदां कथमहौ कस्सां॥ ॥

[381] अब सारी फसल चावल की हो चुकी है, और
जौ की पिसाई भी हो चुकी है। मुझे एक निवाला भी नहीं मिलेगा!
मैं क्या करूँ?

तब थेरा ने सोचा, 'यह व्यक्ति मुझे अपनी स्थिति के बारे में बता रहा है। लेकिन मुझे तो खुद से बात करनी चाहिए। मुझे प्रवचन देने का कोई अधिकार नहीं है,' इस प्रकार उसने स्वयं को तीन आधारों पर ध्यान करना सिखाया:

[382] बुद्धमप्पमेय्यं अनुस्सार पसन्नो,॥
पिटिया फूटसारिरो होहिसि सततमुदग्गो॥ ॥

[383] धम्ममप्पामेय्यं अनुसरा पसन्नो,॥
पिटिया फूटसारिरो होहिसि सततमुदग्गो॥ ॥

[384] सउघमप्पामेय्यं अनुसरा पसन्नो,॥
पिटिया फूटसारिरो होहिसि सततमुदग्गो॥ ॥

[385] अब्भोकसे विहारसि सीता हेमन्तिका इमा रत्तियो,॥
मा सितेना पारेतो विहान्नित्थो पविसा त्वं विहारं फुसिताग्गाणं॥ ॥

[386] फूसिसा कैटासो अप्पमन्नायो॥
ताहि च सुखितो विहारिसं,॥
नहँ सितेन विहन्निस्साm॥
अनिन्जितो विहारन्तो ति.॥ ॥

[382] बुद्ध का ध्यान करो! अनंत ध्यान!
इस प्रकार तुम आनंदमय भक्ति में, तुम्हारा शरीर परमानंद से परिपूर्ण होकर, सदा ऊंचाइयों पर
रहोगे ।

[383] [209] धम्म पर विचार करो! [3] ...

[384] भिक्षु के आदेश पर विचार करो! अनंत विचार! [3]

इस प्रकार तुम परमानंदमय भक्ति में, तुम्हारा शरीर परमानंद से परिपूर्ण होकर, सदा ऊंचाइयों पर
विराजमान रहोगे ।

फिर मारा (मृत्यु का देवता/शैतान) ने उसे एकांतवास से रोकने की इच्छा से, उसका शुभचिंतक होने का नाटक करते हुए कहा:

[385] क्या यह नंगे आसमान के नीचे रहता है? ये रातें ठंडी हैं
और अब सर्दी का मौसम है। सावधान रहो, कहीं
ठंड से मर न जाओ। अपने घर में चले जाओ,
अपने दरवाजे को अच्छी तरह बंद कर लो!

तब थेरा ने यह दर्शाते हुए कहा कि गृहस्थी में रहना एक बंधन है, परन्तु वहाँ उसे आराम मिलता है:

[386] मेरा हृदय आनंदित होकर
चारों असीम भावों को स्पर्श करेगा; [4] इससे
मैं सदा आनंदमय विश्राम में रहूँगा।
ठंड से हारना मेरा नहीं, जो
अविचलित और शांत रहते हैं।

इस प्रकार, थेरा ने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

और चूंकि यह थेरा राजा बिन्दुसार के समय में रहते थे, इसलिए इन छंदों को तीसरे परिषद में प्रामाणिक रूप से पूर्वाभ्यास किया गया समझा जाना चाहिए। [5]

[1] इसलिए ओल्डेनबर्ग की एमएसएस. और ब्र. सी.वाई. में केवल एस. सी.वाई. में -कानी है।

[2] धुतंगों के दो रूप । मिलिंदा, ii., पुस्तक vi देखें ।

[3] श्लोक 382 के अनुसार दोहराएँ।

[4] उनकी और सुभूति की कहानी देखें। चार भाव थे प्रेम, दया, सुख के प्रति सहानुभूति और समभाव। पंक्ति 1 'मैं स्पर्श करूँगा' से विस्तारित है, यह अभिव्यक्ति हमारे लिए उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी किसी बौद्ध या नव-प्लेटोवादी के लिए है। मेरी पुस्तक 'बुद्धिज्म', पृष्ठ 218 देखें।

[5] यह दिलचस्प ऐतिहासिक पहलू ओल्डेनबर्ग के संस्करण, पृष्ठ 42 एन., और बुद्ध के संवाद, i. xvi में देखा गया था । बिण्डूसार, अशोक के पिता, हथियाने वाले चंद्रगुप्त (चंदगुट्टा) के पुत्र थे, जिन्होंने थेरा के पिता को कैद कर लिया था।

6.2 [211] टेकिचकारित्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
अतिहितवीहि से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेर तेकिच्छक का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों के प्रति समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने इक्यावन युग (कप्पा) पहले भगवान विपस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने चिकित्सा ग्रंथों (वज्जसत्थ) में निपुणता प्राप्त की और भगवान विपस्सी की सेवा में कार्यरत बीमार थेर अशोक को रोगमुक्त किया; उन्होंने करुणावश अन्य जीवों को भी उचित औषधि प्रदान की (संविदहि)।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे सुबुद्ध नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए; गर्भावस्था के दौरान बहुत सी औषधियों के द्वारा खतरे को दूर करने (अपहारित्वा) के बाद सर्वांगीण सुरक्षा (परिपालिता) की स्थिति के कारण उनका नाम टेकिच्छकारी रखा गया। उन्होंने अपने परिवार के अनुरूप शिक्षा स्थल पर सभी कलाओं और विज्ञानों का अध्ययन किया। उस समय, सुबुद्ध की बुद्धिमत्ता, संसाधनों और कार्यों में निपुणता देखकर, चानक्का ने अपने स्वाभाविक ईर्ष्या के कारण राजा चंदगुट्ट से उसे कारागार में डलवा दिया और मन ही मन कहा: "यह व्यक्ति इस राजपरिवार में समर्थन प्राप्त करके मुझे भी पीछे छोड़ सकता है।" अपने पिता के कारावास की खबर सुनकर (बंधनागारप्पवेदनम्), टेकिच्चकारी भयभीत होकर भाग गए और थेरा सानवासी के पास गए। उन्होंने थेरा को अपने पश्चाताप का कारण बताया और भिक्षु बन गए। उन्होंने मानसिक साधना की और खुले में रहने वाले स्वामी और तपस्वी के रूप में तपस्वी जीवन व्यतीत करने के बाद, एकांतवास में निवास किया। उन्होंने शीत-ऋतु और शीत-ऋतु की परवाह किए बिना भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया। वे ब्रह्मविहारभावन के पवित्र जीवन पर ध्यान लगाने में निरंतर तल्लीन रहे। उसे देखकर, दुष्ट मारा, फसल कटाई (सस्सा) के समय खेत के रखवाले (खेत्तगोपका) के वेश में (वण्ण) थेरा के पास गया, अशांति (विक्खेप) उत्पन्न करने की इच्छा से मन ही मन बोला; “मैं इसे अपने प्रभाव क्षेत्र (विषय) से बाहर नहीं जाने दूंगा,” और उसे डराने (निप्पण्डेन्तो) के लिए एक श्लोक कहा।

381. “धान (वीही) की कटाई हो चुकी थी”

(अतिहिता); जौ (साली) चला गया था

पीटा जाना (खाला); फिर भी मैं करता हूँ

भोजन का एक टुकड़ा भी प्राप्त न हो;

मुझे यह कैसे करना चाहिए?

यह सुनकर थेरा ने कहा (तीन छंदों में):—

382. "धर्मपरायणता से प्रसन्न होकर

(pasanno) चिंतन करना (anussara)

बुद्ध की असीमता;

सदा (सततं) प्रसन्न (उदग्गो), तुम

आपके शरीर में प्रवेश हो जाना चाहिए (फुटा)

उत्साह के साथ (पीटी)।

383. "सत्य (धम्म) की असीमता।"

... हमेशा प्रसन्न।

384. "आदेश की असीमता"

भिक्षु... सदा प्रसन्न रहते हैं।

यह सुनकर मारा ने कहा:

385. "तुम खुले में रहते हो; ये

बर्फीले ठंडे मौसम की रातें

सर्दी लग गई है। खुद को इससे पीड़ित न होने दें।

और ठंड से परेशान; आपको प्रवेश करना चाहिए

वह मठ जिसका द्वार हो सकता है

बांधे रखा (फुसिटग्गलम्)।"

इस पर थेरा ने इस प्रकार उत्तर दिया:

386. "मैं स्वयं को इसमें समाहित कर लूँगा

असीम पवित्र जीवन के चार रूप

दयालुता और इसी प्रकार के जीवन (अप्पमञ्ञा);

मैं उनके साथ आनंदपूर्वक रहूँगा

(असीम भावनाएँ)। मैं नहीं करूँगा

सर्दी से परेशान होना (विहञ्ञिस्सम्)

(क्योंकि मैं) अविचलित होकर रह रहा हूँ

jhāna (aniñjito).

वहाँ, अतिहिता वीहि का अर्थ है: धान के दाने को अन्न भंडार (कोट्ठागार) में ले जाया गया था और वहाँ रखा गया था; वहाँ (अनाज) को व्यवस्थित (पटिसामिता) किया गया था; दूसरे शब्दों में, (धान के दाने खलिहान से घर ले जाए गए थे (खलतो); यही अर्थ है। यहाँ धान लेने (वीहिगहनेन) के साथ-साथ अन्य अनाज (धञ्ञं) भी लिए जाते हैं (संगण्हाति)। खगता साली का अर्थ है: जौ की फसलें (साली), आमतौर पर धान (वीहितो पच्चा) के बाद पकती हैं (पच्चन्ति); वे अनाज बनाने के स्थान पर चली गई हैं; वहाँ उन्हें ढेर की अवस्था में रखा गया है और रौंदने (मद्दना), फटकने (चावन) आदि द्वारा; यही अर्थ है। यहाँ जौ के दानों को अलग से लेना (विसुं) मुख्य अनाज (धञ्ञ) की स्थिति को दर्शाने के लिए है; वह दोनों के माध्यम से यह भी दर्शाता है कि गाँव में और गाँव के बाहर भी, कटाई की गई फसल (धञ्ञं) चारों ओर से भरपूर खड़ी है। ना च लब्बे पिंडं का अर्थ है: ऐसे समय में जब चावल आसानी से उपलब्ध हैं, मुझे पके हुए चावल का एक टुकड़ा (पिण्डं) भी नहीं मिल रहा है। कथमहांकसं का अर्थ है: अब मैं क्या करूँ? मैं कैसे जीवन यापन करूँ? इस प्रकार उसने (थेरा का) उपहास किया।

यह सुनकर थेरा ने मन ही मन कहा: "इस दुखी व्यक्ति (वराको) ने स्वयं ही अपने व्यथ (पवत्ति) को मेरे समक्ष प्रकट किया; परन्तु मुझे स्वयं ही सलाह देनी चाहिए; मुझे कुछ भी नहीं बोलना चाहिए," और "बुद्धमप्पमेय्यम" से शुरू करते हुए तीन श्लोक कहे, और अपने आप को तीन वास्तविकताओं (वत्थु) पर चिंतन (अनुस्सति) करने के लिए प्रेरित किया। वहाँ, Buddhappameyyaṃ anussara pasanno का अर्थ है: चिंतन करो, अपनी जागरूकता उत्पन्न करो (satiṃpavattehi) बुद्ध को एकाग्रता के विषय (Buddhārammaṇaṃ) के रूप में ध्यान में रखते हुए, तदनुसार और निरंतर, "Iti pi so bhagavā arahaṃ sammāsambuddho (इस प्रकार वह भी) सम्मान के योग्य है, सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध," से प्रारंभ करते हुए, धार्मिक मन से, विशेष रूप से भक्तिपूर्ण आनंद से प्रसन्न होकर, जो विश्वास (okappana) द्वारा चिह्नित (lakkhana) है; भगवान बुद्ध असीम (अपमेय्यं) हैं क्योंकि उनमें कामवासना (राग) जैसी विकृतियाँ (किलेसा) नहीं हैं, जिनके कारण उनका मात्रात्मक मापन (पमाणकार) संभव नहीं है। साथ ही, वे अज्ञान (अविज्जा) और उसकी प्रवृत्ति (सवासनाया) की सुस्ती से निश्चित (अच्छन्त) मुक्ति (विगम) के कारण असीम गुणों से संपन्न होने के कारण अतुलनीय रूप से उपजाऊ (पुण्णक्खेत्त) क्षेत्र हैं। सततमुदग्गो का अर्थ है: आप शारीरिक उल्लास (उदग्गम) उत्पन्न करने के बाद आकाश में उड़ने (लंघितुम) के योग्य (समत्थो) हो सकते हैं, परमानंद (उब्बेगा) उत्साह (पीति) से प्रफुल्लित (उदग्गो), शरीर उदात्त दृश्य रूपों से अभिभूत (समुत्थान) हो जो उत्साह को अच्छी तरह से बढ़ावा देते हैं (समुत्थान), शरीर हमेशा आनंद (पीति) से ओतप्रोत हो जो रोमांचकारी प्रवाह (फरण) से चिह्नित हो, लेकिन निरंतर चिंतन (अनुस्सरन्तोव) द्वारा; आप बुद्ध को ध्यान का विषय (आरम्मणम्) बनाकर अपार (उलारम्) उत्साह और आनंद का उचित रूप से आनंद उठाएंगे, बुद्ध पर अपने चिंतन (अनुस्सति) के माध्यम से; आपको ठंड और गर्मी के परिणामस्वरूप भूख और प्यास से भी अभिभूत नहीं होना चाहिए; अतः, यही अर्थ है।

धम्म का अर्थ है: श्रेष्ठ (अरीयं) पारलौकिक (लोककुत्तर) सत्य (धम्म)। संघ का अर्थ है श्रेष्ठ (अरीयं) पूर्णतः (परम) अर्थपूर्ण (अत्थ) भिक्षु संघ। बाकी सब तो पहले ही कहा जा चुका है। यहाँ, अनुस्सर का अर्थ है: धम्म पर इस प्रकार चिंतन करो कि "भगवान बुद्ध ने सत्य (धम्म) का भली-भांति प्रतिपादन (अक्खातो) किया है", इत्यादि; भिक्षु संघ पर इस प्रकार चिंतन करो कि "भिक्षुओं का संघ गठित करने वाले शिष्य अपने जीवन को भली-भांति व्यवस्थित (सुप्पतिपन्नो) करते हैं"; इस प्रकार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

जब इस प्रकार, थेरा ने स्वयं उन्हें तीन रत्नों के चिंतन (अनुसारण) की ओर प्रेरित करते हुए सलाह दी, तो मारा ने उन्हें एकांतवास से अलग करने की इच्छा से पाँचवाँ श्लोक "अब्भोकासे विहारति" से शुरू करते हुए कहा, मानो वे थेरा के कल्याण चाहने वाले (हितेसी) की स्थिति में हों। इसका अर्थ है: हे भिक्षु! अब्भोकासे विहारसी (खुले आकाश में, बिना छत वाले (अपटिच्छन्ने) आंगन में निवास करते

हुए, आप अपने शारीरिक आंदोलनों (इरियापथे कप्पेसी) को करते हैं। हेमंतिका इमा रत्वो का अर्थ है: ये ठंडी रातें (वत्तन्ति) में समाहित (परियापन्ना) हो जाती हैं। हिमपात का मौसम (समय) है; इसलिए, ठंड से भयभीत न होकर (अभिभूतो), विघात से परेशान न हों, ऊब न जाएँ। फुसितग्गलं का अर्थ है: उस मठ में प्रवेश करें जिसके द्वार बंद हैं; इस प्रकार, वहाँ आपका सुखमय निवास (विहारो) होगा।

यह सुनकर, थेरा ने "फुसिस्सम" से शुरू होने वाला छठा श्लोक इस प्रकार कहा: "मुझे मठ जाने की कोई इच्छा (पयोजन) नहीं है; मुझे अपने निवास में ही सुख (सुख) मिलता है।" वहाँ, फुसिस्सम चतसो अप्पमञ्ञायो का अर्थ है: मैं अपने आप को ब्रह्मविहार के चार रूपों का पालन करके परिपूर्ण (फुसिस्सामि) करूँगा, जिन्हें असीम प्रभाव क्षेत्र (अप्पनानागूआर) की स्थिति के कारण "अप्पमञ्ञा (असीम)" नाम दिया गया है, मैं समय-समय पर अपने जीवन को (तदनुसार) व्यवस्थित करूँगा (कालें कालं)। ताहिचसुखितो विहारिस्सं का अर्थ है: मैं उन असीम पवित्र प्राणियों (अप्पमञ्ञाहि) के साथ सुखपूर्वक (सुखितो) रहकर, अपने चारों शारीरिक क्रियाओं (इरियापथ) का प्रयोग करूँगा और निवास करूँगा। इसी कारण मुझे हर समय केवल आनंद ही प्राप्त होगा, कष्टदायक पीड़ा नहीं। यतो नाहं सीताण विहार्जिस्सं का अर्थ है: हिमपात के मौसम में पूर्णिमा (अंतरट्ठक) से आठ दिन पहले और आठ दिन बाद भी मुझे ठंड से कष्ट नहीं होगा। अनिंजितो विहारन्तो का अर्थ है: अतः मैं सुखी (सुखितो) होकर ध्यान (समापत्ति) की आत्म-प्राप्ति के आनंद से परिपूर्ण होकर निवास करूँगा, क्योंकि मैंने द्वेष (ब्यापाद) आदि का पूर्णतः त्याग कर दिया है, जिससे मन में हलचल उत्पन्न होती है। इस प्रकार, इस श्लोक का उच्चारण करते हुए ही थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का निरंतर विकास किया और अरहंतत्व की कल्पना की। अतः अपदान में कहा गया है:—

मैं बंधुमती नगर में रहता था।

चिकित्सक, सुप्रशिक्षित, लाने वाला

पीड़ित लोगों के समूह को सुख

(आतुरा) रोग से ग्रस्त और परेशान

पीड़ा (दुक्खा)।

एक बीमार भिक्षु को देखकर, प्रेतवाधित व्यक्ति

नैतिक उपदेशों (सीला) का, अत्यंत प्रतिभाशाली

(जुती), मैं, जो धर्मपरायण और दयालु हूँ, तब,

उन्होंने उसे दवा दी।

लेकिन उस औषधि से भिक्षु ठीक हो गया।

उसका स्वास्थ्य (अरोगो)। भिक्षु उनमें से एक था।

जिनकी इंद्रियाँ (इंद्रियाँ) अच्छी तरह से नियंत्रित थीं

(संवुट) वे अशोक नाम से जाने जाते थे।

बुद्ध विपस्सी का परिचारक।

यह 91 युग (कप्पा) पहले की बात है।

मैंने औषधि का अपना अर्पण किया; मैं करता हूँ

मुझे किसी भी बुरी सत्ता का स्मरण नहीं है; यही है

औषधि (अर्पण) का फलदायी परिणाम।

इससे पहले के आठवें युग (कप्पा) में

वर्तमान में मैं एक विश्व राजा था जिसका नाम था

महान फल का सब्बोसधा, संपन्न

सात प्रकार के रत्नों के साथ।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी। :P

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

यहां, इन छंदों को तीसरी सभा में एक साथ गाया गया था क्योंकि राजा बिंदुसारा के समय में इस थेरा की स्थापना हुई थी; इसलिए, इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए।

थेरा टेकिच्चकारी के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(212):महा-नाग

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (212) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
212. महा-नाग
साकेत में मधु-वसेट्ठ नामक एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में इस बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें महा-नाग नाम दिया गया। [1] उन्होंने थेरा गवम्पति द्वारा उत्पन्न चमत्कार को देखा, [2] जब भगवान (बुद्ध) अंजना वन में रह रहे थे, और श्रद्धा प्राप्त करके, उन्होंने थेरा के अधीन भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और उनकी सलाहों के माध्यम से अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया।

अब जब वे निर्वाण के आनंद में लीन थे, तब थेरा महा-नाग ने देखा कि कैसे छह भिक्षु (भिक्षु) [3] अपने सहधर्मियों के प्रति आदर दिखाने में आदतन विफल रहे, और उन्होंने उन्हें श्लोकों में संबोधित किया जो उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा बन गई :

[387] यस्सा [43] सब्रह्मचारिसु गारवो न्युपलभति,॥
परिहयति सद्धम्मा मच्छो अपोदके यथा.॥ ॥

[388] यस्सा सब्रह्मचारिसु गर्वो न्युपलभति,॥
न विरूहति सद्धम्मे खेते बीजाव पूतिकौ.॥ ॥

[389] यस्सा सब्रह्मचारिसु गारवो न्युपलभति,॥
अराको होति निब्बाना, धम्मराजस्स सासाणे॥ ॥

[390] यस्सा सब्रह्मचारिसु गारवो न्युपलभति,॥
न विहायति सद्धम्म मच्छो बव्होदके यथा.॥ ॥

[391] यस्सा सब्रह्मचारिसु गर्वो न्युपलभति,॥
सो विरुहति सद्धम्मे खेते बिजाउव भद्दकान्॥॥ ॥

[392] यस्सा सब्रह्मचारिसु गर्वो न्युपलभति,॥
संतिके होति निब्बाणं धम्मराजस्स ससाने' ति॥ ॥

[387] जो अपने धर्म के साथियों के प्रति
आदर या सम्मान नहीं दिखाता,
वह सच्चे मार्ग (धम्म) से मुरझा जाता है,
जैसे मछली जहाँ पानी कम हो जाता है।

[388] जो अपने धर्म के साथियों के प्रति
आदर या सम्मान नहीं दिखाता,
वह सच्चे मार्ग (धम्म) पर फलता-फूलता नहीं,
जैसे खेत में बोया गया सड़ा हुआ बीज।

[389] जो
निर्वाण से दूर ,
धम्म-भगवान के पंथ और विद्यालय के भीतर खड़ा है।

[390] जो अपने धर्म के साथियों के प्रति
उचित आदर और सम्मान दिखाता है, वह
सच्चे मार्ग (धम्म) से नहीं भटकता,
जैसे मछली जहाँ बहुत पानी होता है।

[391] [211] जो अपने साथियों के प्रति
उचित आदर और सम्मान दिखाता है,
वह सच्चे मार्ग (धम्म) में अच्छी तरह फलता-फूलता है,
जैसे हल में बोया गया सौम्य बीज।

[392] जो अपने नियम के साथियों के प्रति
उचित श्रद्धा और आदर दिखाता है,
वह निर्वाण के बहुत निकट है,
धम्म-भगवान के पंथ और विद्यालय के भीतर। [4]

[1] इस भिक्षु के बारे में और कुछ ज्ञात नहीं है। उनके नाम पर 'ब्लैक क्रीपर पवेलियन' का उल्लेख बहुत बाद में हुआ (जात., iv. 490; vi. 30 [पाठ]; जे.आर.ए.एस. , 1901, पृ. 893)। यह नाम = महान अद्भुत प्राणी या आत्मा, जो सर्प, हाथी, थेरा और परियों के एक वर्ग पर समान रूप से लागू होता है।

[2] देखें XXXVIII.

[3] षड्यंत्रकारियों का एक कुख्यात समूह, जिनके कार्यों ने संघ के संगठन की कड़ी परीक्षा ली। देखें भजन 5; विनय ग्रंथ, i. 218 n.

[4] जो अपने सहधर्मियों के प्रति श्रद्धा नहीं दिखाता, शाब्दिक अनुवाद: जिसके प्रति अपने सहधर्मियों के प्रति श्रद्धा नहीं है, या पाई नहीं जाती, या देखी नहीं जाती (देखें कथावत्थु टीका , नुपलभति , पृष्ठ 8; संवाद, ii. 166, 'पाया नहीं जाता')। धम्मपाल द्वारा ऊपर वर्णित इन श्लोकों का अवसर, धार्मिक परिणामों को तो छोड़ ही दें, डॉ. न्यूमैन के अनुवाद से मेरी असहमति को उचित ठहराता है। उपमाओं के लिए देखें CCVII. पंथ और संप्रदाय = शासन।

6.3 [212] महानागत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यस्स सब्रहमचारीसु से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा महानागा का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, अच्छे कर्म संचित किए, जो इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वट्ट) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। वे तेजस्वी काकुसंध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लेकर आए; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने संयोगवश भगवान काकुसंध को देखा, जो वन में उतरकर एक वृक्ष के चरणों में ध्यान की अवस्था में विलीन थे। वे श्रद्धा से भर गए और उन्हें अनार (दालिम) भेंट किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे बार-बार जन्म लेते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और जब बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे साकेत में मधुवासेत्थ नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए। उनका नाम महानागा था। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके थे, और भगवान साकेत के शलजम वन (अंजनवन) में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने संयोगवश थेरा गवंपति का चमत्कार देखा, उचित श्रद्धा से प्रेरित हुए, उन्हीं थेरा की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, उनकी सलाह का पालन किया और अर्हंतत्व प्राप्त किया। इसलिए, अपदान में ऐसा कहा गया है।

“महान नायक काकुसंध, जिन्होंने

सभी सत्यों के सुदूर तट पर चले गए

(धम्म) एकांतप्रिय (वापकट्ठो) स्वयं

भिक्षुओं (गण) की भीड़ से निकलकर वह चला गया।

घने जंगल में।

सारगर्भित बीजों (बीजामिंजा) को एकत्रित करने के बाद

मैंने उन्हें (आवणिण) लता से पिरोया;

उस समय, भगवान

पहाड़ी के अंदर ध्यान करना (झायते)

(pabbatantare).

दिव्य दर्शन करने के बाद

मैंने दिव्य (देवदेवं) अर्पित किया

नायक को सारगर्भित बीज (बीजामिंज) अर्पित करना।

समर्पित के योग्य प्राप्तकर्ता

मेरी श्रद्धापूर्वक प्रसन्नता के साथ दान।

(विप्पसन्नेन) मन.

यह तो इसी युग (कप्पा) में हुआ था कि

फिर मैंने मज्जा का अर्पण किया।

(मिंजम्); मुझे कोई बुराई याद नहीं है

अस्तित्व; यही फलदायी परिणाम है

मेरे द्वारा सारगर्भित बीज का अर्पण करने के बारे में।

मेरी सारी बुराई जलकर राख हो गई थी।

बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया था।

बाहर।"

हालांकि, अरहंत पद प्राप्त करने के बाद, थेरा ने छह श्लोकों में उन छह भिक्षुओं (छब्बाग्गिये भिक्खु) को सलाह दी, जिन्हें उन्होंने अपने साथी पवित्र जीवन के नेताओं (सब्रह्मचारी) का कोई सम्मान किए बिना रहते हुए देखा, जबकि वे स्वयं मुक्ति के आनंद में लीन थे।

387. "वह व्यक्ति, जिसका उचित सम्मान नहीं किया जाता है

अपने साथी नेताओं के बीच प्राप्त किया

पवित्र जीवन (सब्रमकारिसु) क्षीण हो जाता है

(परिहायति) अच्छे सत्य से (सद्धम्म)

जैसे कम पानी में रहने वाली मछली।

388. "वह व्यक्ति, जिसके मन में सम्मान का भाव नहीं है

जो लोग पवित्र जीवन जी रहे हैं, जैसे

वह (सब्रह्मकारिसु) नहीं बढ़ता है

वह अच्छा सत्य (धम्म) जो एक

खेत में सड़े हुए बीज।

389. "जिसके मन में सम्मान नहीं है

उसके साथी भिक्षु (सब्रह्मचारी) दूर हैं

व्यवस्था में निर्वाण से दूर

आध्यात्मिक सम्राट (धम्मराजा) का।

390. “वह व्यक्ति जिसके प्रति आदर विद्यमान है”

उनके साथी भिक्षु (सब्रह्मचारी) ऐसा नहीं करते

अच्छे सत्य से विलीन हो जाना

(सद्धम्म) प्रचुर मात्रा में मछली की तरह

पानी।

391. “वह व्यक्ति, जिसका अपने साथियों के प्रति सम्मान—

भिक्षु अस्तित्व में हैं, और अच्छे सत्य में विकसित होते हैं।

(सद्धम्म) अच्छे बीजों के समान

एक मैदान।

392. “वह व्यक्ति जिसका अपने साथी भिक्षुओं के प्रति सम्मान

विद्यमान है, निर्वाण के निकट है।

आध्यात्मिक संप्रभु का प्रतिफल।

वहाँ, सब्रह्मचारीसु का अर्थ है: वे समतुल्य (समानं) के बीच नैतिक उपदेशों आदि के रूप में पवित्र (ब्रह्म) कर्म (धम्म) का अभ्यास करते हैं; इस प्रकार, साथी भिक्षु (सब्रह्मचारी); और सहधार्मिक लोग (सहधम्मिका) जो भिक्षुत्व के नैतिक उपदेशों (शील) और दृष्टिकोण (दिट्ठी) तक पहुँच चुके हैं (गता)। गारवो का अर्थ है: शिक्षक होने की स्थिति (गरुभावो), शिक्षक का निर्माण (गरुकरणं) जो नैतिक उपदेशों (शील) आदि के गुणों से युक्त है (निमित्तं)। नूपलभति का अर्थ है: अस्तित्व में नहीं है, अस्तित्व में नहीं है, घटित नहीं होता, निकट नहीं है (उपतित्तति); इस प्रकार, यही अर्थ है। निब्बाना का अर्थ है दुराचार (किलेसा) की आग के बुझने (निब्बापन) से, दुराचार (किलेसाक्खया) के समाप्त होने से; यही इसका अर्थ है। धम्मराजस्स का अर्थ है: गुरु का। वास्तव में, गुरु सांसारिक और अलौकिक सत्य (धम्म) के अनुसार, दिव्य जगत सहित संसार को प्रसन्न (रंजेति) और तृप्त (तोसेति) करते हैं, इस प्रकार वे धम्मराज (आध्यात्मिक स्वामी) कहलाते हैं। यहाँ भी “धम्मराजस्स सासाने (आध्यात्मिक स्वामी के विधान में);” इसी से निर्वाण का नाम दिया गया है, केवल आध्यात्मिक स्वामी के विधान में; कहीं और नहीं। वहाँ, जो कोई अपने साथी भिक्षुओं के प्रति आदरहीन है, वह निर्वाण से दूर है; इसी प्रकार, वह आध्यात्मिक स्वामी के विधान से भी दूर है; इस प्रकार, वे दर्शाते हैं। बावहोदके का अर्थ है; बहुत जल में। शांतिके नोटि निर्वाणं निर्वाण केवल उनकी उपस्थिति में उनके निकट है। शेष जैसा कहा गया है वैसा ही है। वे श्लोक बन गए जो थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करते हैं।

थेरा महानागा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(213): कुल्ला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (213) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
213. कुल्ला
बुद्ध युग में सावत्थी में एक जमींदार के परिवार में पुनर्जन्म लेकर कुल्ला नाम से जन्मे कुल्ला ने आस्था से प्रेरित होकर भगवान (बुद्ध) द्वारा भिक्षु दीक्षा प्राप्त की। परन्तु वे अक्सर कामुक आवेश से ग्रस्त रहते थे। भगवान (बुद्ध) उनकी प्रवृत्ति को जानते हुए उन्हें क्षुद्र कर्मों का अभ्यास कराया और श्मशान में ध्यान करने को कहा। जब इससे भी संतोष नहीं हुआ, तो वे स्वयं उनके साथ गए और उन्हें सड़न और विघटन की प्रक्रिया देखने को कहा। तब कुल्ला निर्विवश हृदय से खड़े थे, तब भगवान (बुद्ध) ने एक दिव्य छवि प्रकट की, जिससे कुल्ला में ऐसी चेतना उत्पन्न हुई कि उन्होंने पाठ को ग्रहण किया, प्रथम ध्यान प्राप्त किया और उसी के आधार पर अंतर्दृष्टि विकसित करते हुए अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अपने अनुभव की समीक्षा करते हुए, उन्होंने ये श्लोक कहे, पहले अपने बारे में बोलते हुए (फिर भगवान (बुद्ध) के शब्दों को दोहराते हुए और अंत में अपने स्वयं के शब्द जोड़ते हुए):

[393] कुल्लो सिवाथिकौ गन्त्वा अडासा इत्थिमुज्जताm̧,॥
अपविद्धां सुसानस्मिं खजजन्तीं किमिहि फूटाm̧॥ ॥

[394] Āturam̧ asucim̧ pūtim̧ passa kulla samussayam̧,॥
उघ्घरान्ताँ पग्घारान्ताँ बलाणं अभिनन्दितौ.॥ ॥

[395] धम्मदासं गहेत्वाना णाणदासनपत्तिया,॥
पचवेक्खीइ इमाँ कायं तुच्चाँ संतराबहिराँ॥ ॥

[396] यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं,॥
यथा अधो तथा उद्धां यति उद्धां तथा अधो॥ ॥

[397] यथा दिवा तथा रतिm̧ यथा रतिm̧ तथा दिवा,॥
यथा शुद्ध तथा पच्च यथा पच्च तथा शुद्ध॥ ॥

[398] पंचांगिकेन तुरियेना न रति होती ताड़सी,॥
यथा एकग्गचित्तस्स सम्मा धम्मं विपश्यतोऽ ति.॥ ॥

[393] कुल्ला उस जगह गया जहाँ मुर्दे पड़े थे
और वहाँ उसने एक स्त्री का शव देखा,
खेत में लावारिस पड़ा हुआ, कीड़ों का भोजन। [1]

[394] [212] देखो वह घिनौना भौतिक शरीर, कुल्ला, रोगग्रस्त,
अशुद्ध, [2] टपकता हुआ, रिसता हुआ, मूर्खों का अभिमान।' [3]

[395] पवित्र मार्ग (धम्म) के दर्पण को पकड़ते हुए,
इसके प्रकट ज्ञान द्वारा दृष्टि प्राप्त करने के लिए,
मैंने वहाँ प्रतिबिंबित देखा, बाहर, भीतर,
इस खाली क्षणभंगुर ढांचे का स्वरूप।

[396] जैसा यह शरीर है, वैसा ही वह शरीर भी कभी था,
और जैसा वह शरीर था, वैसा ही यह शरीर होगा। [4] और जैसा नीचे है, वैसा ही ऊपर है,
और जैसा ऊपर है, वैसा ही नीचे है।

[397] जैसा दिन में होता है, वैसा ही रात में होता है,

और जैसा एक बार था, वैसा ही आगे होगा,
और जैसा होगा, वैसा ही अतीत में था।

[398] संगीत की पंचांगीय विवाहित ध्वनियाँ [5] ऐसा आकर्षण उत्पन्न नहीं कर सकतीं
, जैसा उस व्यक्ति पर आता है जो एकाग्र और शांत हृदय से
सही ढंग से मार्ग (धम्म) देखता है!

ये श्लोक थेरा द्वारा ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थे।

[1] तुलना करें. सीएक्ससीवीआईआई.

[2] सी.एफ. बहनें, xix.; डी हम्मापाड़ा कॉमी., iii., पी. 118 एफ., श्लोक 150 पर।

[3] इसे 'मैं', 'मेरा' कहने में आत्मसंतुष्ट (टिप्पणी)।

[4] सी.एफ. सुत्त-निपात, श्लोक 202।

[5] देखें पृष्ठ 175, टिप्पणी 1; और श्लोक 1071.

6.4 [213] कुल्लत्थेरा के छंद पर टिप्पणी
कुल्लो शिवथिकं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कुल्ला का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब सावत्थी में एक जमींदार के परिवार में पुनर्जन्म लिया; कुल्ला नाम प्राप्त करने के बाद, बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए; यद्यपि वे अपने राग (चरित) आचरण के कारण जन्मजात कामुक (तिब्बारागजातिका) व्यक्ति थे। इसी कारण उनके मन में लगातार विकृति (किलेसा) बनी रही। तब गुरु ने उनके मन की स्थिति जानकर उन्हें अप्रिय वस्तुओं से संबंधित मानसिक अभ्यास (कम्मट्ठान) कराया और कहा, "हे कुल्ला! तुम्हें श्मशान में भ्रमण करना चाहिए।" वे श्मशान में गए, वहाँ उन्होंने फूले हुए शव आदि अप्रिय वस्तुएँ देखीं; क्षण भर के लिए उनका ध्यान अप्रिय वस्तुओं की ओर आकर्षित हुआ, परन्तु श्मशान से बाहर आते ही वे कामुक सुखों (कामराग) के आवेश में डूब गए। फिर एक दिन, भगवान बुद्ध ने उनके इस प्रसंग को जानकर उन्हें एक सुंदर युवती (तरुणित्तिरूपन) का दर्शन कराया, जिसकी त्वचा श्मशान क्षेत्र में पहुँचने के समय तक अप्रभावित (अविनात्तच्छविं) रही थी। उसे देखते ही उसके मन में तीव्र कामुकता (सहसा) उत्पन्न हो उठी, मानो वह असाधारण वास्तविकता (वत्थु) वाली सजीव स्त्री हो। तब गुरु ने उसे शव दिखाया, जबकि वह केवल उसे देख ही रहा था (पेक्खंत), वह शव अत्यंत घृणित (बीभच्छं), दुर्गंधयुक्त, घिनौना (जेगुच्छं) और नफ़रत करने योग्य (पटिक्कूलं) था, कीड़े-मकोड़ों से भरा हुआ था (किमिकलाकुलं), जिसकी अशुद्धियाँ (असुचि) घावों (वनमुख) के नौ छिद्रों से रिस रही थीं; उसे देखते हुए (पेक्खंतो), वह विरक्त (विरत्त) मन से स्थिर रहा। तब भगवान ने अपनी प्रकाश किरणें फैलाकर (फरित्वा), उसकी चेतना (सति) को जागृत किया (जानन्तो), और यह श्लोक कहा।

"हे कुल्ला! दुखी को देखो (आतुरं),

गंदा (असुसी) सड़ा हुआ (पुटी) ढेर (समुस्साया)

रिसकर ऊपर आ रहा था और बह रहा था, जो कि

मूर्ख लोगों का आनंद।"

यह सुनकर, थेरा ने भौतिक शरीर (शरीरसभाव) के स्वरूप को भलीभांति (उपधारेन्तो) जान लिया, परन्तु उचित रूप से (सम्मेदेव), अप्रिय वस्तु (असुभ) की अनुभूति (संज्ञा) प्राप्त कर ली, वहाँ अपना पहला ध्यान उत्पन्न किया, उसे अपना आधार (पादक) बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को उत्तरोत्तर विकसित किया, अरहंतत्व प्राप्त किया, अपने उचित कर्म (पटिपत्ति) पर चिंतन (पच्चवेक्खित्वा) किया और आनंदमय उच्चारण (उदान) के रूप में इन श्लोकों का पाठ किया।

393. "कुल्ला कब्रिस्तान गया और उसने देखा

एक महिला जिसे त्याग दिया गया, छोड़ दिया गया

(अपविद्धं) कब्रिस्तान में,

कीड़े-मकोड़ों द्वारा काटे जाने और उनके द्वारा ग्रस्त होने के कारण।

394. "पीड़ित (āturam) ... होने के कारण

मूर्ख लोगों के मनोरंजन का साधन बन जाना।

395. "दर्पण को पकड़ लेने के बाद

सत्य (धम्म) का (आदास), के लिए

ज्ञान की अंतर्दृष्टि की प्राप्ति

(ज्ञानदस्सना), मैंने इस पर विचार किया

वह शरीर जो व्यर्थ (तुच्छ) है

भीतर और बाहर (संतारबाहिरं)।

396. "जिस प्रकार यह (मेरा शरीर) भी

क्या यह (मृत महिला) है; इसके अनुसार

(मृत महिला) इसी प्रकार इस (शरीर) में

मेरा); नीचे दिए गए अनुसार भी है

ऊपर; जैसा ऊपर है वैसा ही है

नीचे।

397. "जैसे दिन होता है, वैसे ही रात होती है;

जैसे रात होती है, वैसे ही दिन होता है।

जैसा पहले था, वैसा ही बाद में भी होगा;

बाद में जो होता है, वही पहले भी होता है।

398. "पांच प्रकार के संगीत के माध्यम से

आप जैसे उपकरण

प्रसन्न न होना (रती), के अनुसार

जैसे जब आपका एकाग्र मन देखता है

स्पष्ट रूप से (विपस्सतो) सत्य (धम्म)

धार्मिक तरीके से (सम्मा)।

वहां, कुल्लो का अर्थ है: थेरा केवल अपने बारे में इस प्रकार बात करता है मानो वह कोई और (भिक्षु) हो।

आतुरं का अर्थ है: उचित रूप से पीड़ित (पटिपीलितं), सदा अनेक प्रकार के दुखों से ग्रस्त। असुचिं का अर्थ है: अपवित्र, घृणित और अप्रिय। पुतिं का अर्थ है: दुर्गंधयुक्त (दुग्गंधं)। पस्सा का अर्थ है: इसके स्वभाव के अनुसार देखो। कुल्ला का अर्थ है: भगवान बुद्ध ने थेरा को सलाह देते समय उनसे ये शब्द कहे। यद्यपि, अपने आनंदमय वाणी के अवसर पर, थेरा ने अपने बारे में ही कहा, लेकिन स्वयं के माध्यम से। समुस्सायं का अर्थ है: भौतिक शरीर। उग्घरंतं का अर्थ है: घावों के मुखों से ऊपर की ओर बहने वाली अशुद्धता। पग्घरंतं का अर्थ है: घावों के मुखों से चारों ओर नीचे की ओर बहने वाली अशुद्धता। बालानं अभिनंदितं का अर्थ है: मूर्ख, अंधे, आम लोगों (पुथुज्जन) द्वारा गलत दृष्टिकोण (लिट्ठी अधिणंदना) और लालसा (तन्हा) के विशेष आनंद के साथ इसका पालन करने के बाद (अभिनिविस्सा)।

धम्मदासं का अर्थ है: धम्म से बना दर्पण। जिस प्रकार सजीव अपने चेहरे या शरीर पर दर्पण की सहायता से अच्छे (गुण) और बुरे (दोष) बिंदुओं को देखते हैं, उसी प्रकार एक गंभीर विद्यार्थी (योजावचर) अपने शरीर (अत्तभाव) में आत्म-दुराचार (संकिलेसा) और पवित्रता (वोदान) के कर्मों (धम्म) को निरंतर (यथावतो) देखता है; उस स्पष्ट आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के ज्ञान को यहाँ धम्मदास (सत्य का दर्पण) कहा गया है; यहाँ, मैंने अपने शरीर (सन्ताने) में उस दर्पण को उत्पन्न किया है ताकि आध्यात्मिक दृष्टि (धम्मचक्खु) की प्राप्ति (अधिगम) हो सके, जिसे अंतर्दृष्टि (ज्ञान) के सही मार्ग (मार्ग) का ज्ञान माना जाता है। पच्चवेक्खिं इमं कायं का अर्थ है: मैंने इस दयनीय शरीर पर चिंतन किया, जो सदा सारहीन (निच्च) है। संतरबाहिरं का अर्थ है: अपने शरीर और अन्य लोगों के शरीर के वर्गीकरण के अंतर्गत, मैंने ज्ञान की दृष्टि से बार-बार अवलोकन किया।

"यथा इदं" से शुरू होने वाला श्लोक इसे दर्शाने के लिए कहा गया है, जैसा कि मैंने अपने चिंतन में पाया है। वहाँ, यथा इदं तथा एतं का अर्थ है: जिस प्रकार मेरा यह अप्रिय पदार्थ (असुभं), जिसे मेरा भौतिक शरीर (शरीर) माना जाता है, जीवनकाल (आयु), ऊष्मा (उस्मा) और चेतना (विज्ञाना) के न मिटने (अनपगमा) के कारण अनेक (नाना) विवरणों (विधं) में माया (भ्रम) के रूप में अपने कर्म (उपमं) प्रकट करता है, उसी प्रकार यह मृत शरीर भी पहले इन घटनाओं (धम्म) के न मिटने के कारण मृत था। जिस प्रकार इस मृत शरीर में वर्तमान में धम्म तत्वों के लुप्त होने के कारण कोई क्षुद्रण नहीं है, उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी धम्म तत्वों के लुप्त होने के कारण नष्ट (नस्साते) हो जाएगा। जिस प्रकार मेरा यह शरीर वर्तमान में मृत नहीं था और श्मशान में दफनाया नहीं गया था, और न ही फूला हुआ आदि अवस्था में पहुंचा था, उसी प्रकार यह शरीर भी पहले मृत था, यद्यपि वर्तमान में मृत है। यद्यपि यह मृत शरीर वर्तमान में श्मशान में दफनाया गया है और फूला हुआ आदि अवस्था में पहुंच गया है, उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार मेरा यह शरीर अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त, घृणित, नाखुश, क्षणभंगुर, पीड़ादायक (दुक्खा) और अनात्म (अनत्त) है, उसी प्रकार यह मृत शरीर भी है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार इस मृत शरीर में असुचि (गंदगी) और इसी प्रकार के गुण हैं तथा यह क्षणभंगुर (नश्वर) है, उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी है। यथा अधो तथा उद्दं का अर्थ है: जिस प्रकार नाभि के नीचे का यह शरीर असुचि (गंदगी), दुर्गंधयुक्त, घृणित, क्षणभंगुर, पीड़ादायक (दुक्खो) और अनात्म है, उसी प्रकार नाभि से ऊपर का मेरा शरीर भी असुचि (गंदगी) और इसी प्रकार के गुणों से युक्त है। यथा उद्दं तथा अधो का अर्थ है: जिस प्रकार नाभि के ऊपर का मेरा शरीर असुचि (गंदगी) और इसी प्रकार के गुणों से युक्त है, उसी प्रकार नाभि से नीचे का मेरा शरीर भी है।

यथा दिवा तथा रत्तिं का अर्थ है: जिस प्रकार दिन के समय इस शरीर से "अक्खिम्हा अक्खिगूतको (आँखों से निकलने वाला मैल)" आदि अशुद्धियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार रात्रि में भी। यथा रत्तिं तथा दिवा का अर्थ है: जिस प्रकार रात्रि में यह शरीर अशुद्धता उत्सर्जित करता है, उसी प्रकार दिन में भी; समय के विभाग (वर्गीकृत विभाजन) के कारण कोई भेद (अञ्ञथाभावो) नहीं है; यही अर्थ है। यथा पुरे तथा

पच्चा का अर्थ है: जिस प्रकार यह शरीर पहले शिशु अवस्था में (तरुण) गंदा, दुर्गंधयुक्त, घिनौना और अप्रिय था, उसी प्रकार वृद्धावस्था में भी (इस शरीर में) गंदा (असुची) होने की प्रवृत्ति रहती है, इत्यादि, ठीक उसी प्रकार पहले शिशु अवस्था में भी। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार अतीत में और जीवित अवस्था में (सविज्ञाण) इस शरीर में गंदा (असुची) होने की प्रवृत्ति रहती है, अनित्य होने की प्रवृत्ति रहती है, इत्यादि, और इसी प्रकार आगे आने वाले समय में, निर्जीव अवस्था में, चेतनाहीन होने पर भी; इस प्रकार, यहाँ अर्थ को समझना चाहिए।

पंचांगिकेन तुरियेन का अर्थ है: इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण शासक (इस्राजन) को पाँच प्रकार के वाद्ययंत्रों (अंग) से सुसज्जित संगीत से इस प्रकार व्याकुल होना: "आततं विततं अततविततं घनं सुसीरं (एक तरफ से बंद ढोल, दोनों तरफ से बंद ढोल, चारों तरफ से बंद ढोल, ठोस और खोखला (सुसीर)); तदिसी का अर्थ है: उसके समान आकार का (तथा), रति का अर्थ है सुख का कोई आनंद नहीं (अस्सादो)। यथा एकग्गचित्तस्स, सम्मा धम्मं विपस्सतो का अर्थ है: धर्म में ऐसा आनंद (रति) जैसा कि एक गंभीर विद्यार्थी (योगावचर) को आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से स्कंधों (खंड) के उदय और अपघटन (उदयब्बय) का अनुभव होता है। ज्ञान की प्रक्रिया (विथी) में प्रवेश (पटिपन्न) करने से, इंद्रियों के एकत्व (एकरस) से, शांत भाव (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को एक साथ जोड़कर (युगनद्धं); इंद्रिय सुख (कामरति) में आनंद, धर्म में आनंद के एक अंश के भी निकट नहीं आता। वास्तव में, यह भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है।

वह कब से और कहाँ से ध्यान करता है

का उदय और लुप्त होना

वह संघटकों (खंडों) से उत्साह प्राप्त करता है

और उल्लास तथा वह अमरता (अमता)

उन लोगों में से जिन्हें स्पष्ट समझ है

(विजानतं).

ये वही श्लोक थे जो बाद में थेरा के अरहंतत्व (अञ्ञा) को उजागर करने वाले श्लोक बन गए।

थेरा कुल्ला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (214): मलुनक्य का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (214) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
214. मालुंक्य का पुत्र [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में कोसल के राजा के मूल्यांकक के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [2] उनकी माता का नाम मालुंक्या था, और वे उन्हीं के नाम से जाने जाने लगे। जब वे वयस्क हुए तो उनका स्वाभाविक धार्मिक स्वभाव प्रबल हुआ, और उन्होंने एक घुमंतू तपस्वी के रूप में संसार त्याग दिया। फिर, भगवान (बुद्ध) का उपदेश सुनकर, उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और उचित समय पर छह गुना अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्च ज्ञान) प्राप्त किया। उनके परिवार के प्रति करुणा [213] के कारण उनके घर जाकर , उनके परिवार ने उनका बड़े ही सत्कार के साथ स्वागत किया, उन्हें वापस बुलाने का प्रयास करते हुए कहा: 'आपके इस धन से आप परिवार का भरण-पोषण कर सकते हैं और अच्छे कार्य कर सकते हैं।'

लेकिन थेरा ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा:

[399] मनुजस्सा पमत्तकारिनो तन्हा वदहति मालुवा विया,॥
सो पालवति हुरा हुरां फलमिच्छै वा वनस्मिं वानरो॥ ॥

[400] यं एसा सहते जम्मी तान्हा लोके विसात्तिका,॥
सोका तस्स पवधति अभिवत्थं वा बिराणौ ॥ ॥

[401] यो सीताṃ सहते जम्मीṃ ताṇहाṃ लोके दुरक्कायाṃ,॥
सोका तम्हा पापतन्ति उदबिंदुव पोक्खरा॥ ॥

[402] ताṃ [44] वो वदामि भद्दौ वो यावंतेत्था समागता,॥
तन्हाय मूलं खानथा उसीरत्थेव बिराणां,॥
मा वो नादां वा सोतो वा मारो भाणजी पुनप्पुना.॥ ॥

[403] करोथा बुद्धवाकाकां खाणो वो मा उपाकागा,॥
खनातिता हि सोकन्ति निरायमहि संप्पिता॥ ॥

[404] पमादो रजो सब्बदा पमादानुपतितो रजो,॥
अप्पमादेन विजयाय अब्बे सल्लमत्तनो' ति.॥ ॥

[399] क्या [3] कोई ऐसा मनुष्य है जो लापरवाह, बेपरवाह रहता है,
उसमें लालसा लता की तरह बढ़ती है।
वह जन्म-जन्मांतर तक लालसा में लगा रहता है, [4] जैसे जंगल के वृक्ष में बंदर फल की तलाश में।

[400] जिसे उसने पराजित किया, - शर्मनाक जेड,
लालसा, समस्त मानव जाति का विषैला, - [5] उसके लिए जंगल की घास के समान कष्ट उत्पन्न करो।

[401] परन्तु जिसने उसे नीचा दिखाया, - वह लज्जास्पद जेड,
जिसे मात देना कठिन है, - उससे दुःख ऐसे दूर हो जाते हैं
जैसे कमल से ओस की बूँद फिसलती है।

[402] यह संदेश तुम सभी को, जो यहाँ उपस्थित हो [6] सब मिलकर आओ: तुम्हें सारी सफलता मिले!
लालसा की जड़ उखाड़ फेंको, जैसे तुम
मीठी उशीरा जड़ की खोज में लगे थे।
ऐसा न हो कि तुम, हे सरकंडे, और मारा (मृत्यु और पुनर्जन्म की धारा), तुम्हें बार-बार तोड़ डाले!

[403] बुद्ध-वचन को साकार करने के लिए;
युगों के इस क्षण को यूँ ही न जाने दो!
वह क्षण खो जाने पर मनुष्य दुःख में विलाप करते हैं। [7]

[404] [214] जैसे धूल [मिश्रित और दूषित], वैसे ही लापरवाही है;
और धूल-दूषण लापरवाही से आता है।
गंभीरता और उस ज्ञान से जो तुम सुनते हो,
प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय से [पाप का] भाला निकाल ले। [8]

[1] इस थेरा की दूसरी कविता को CCLII के रूप में दिया गया है। थेरा सांग्यी, iv. 72 (बाद वाली कविता के समान एक सूत्र) में और संभवतः अंगी, ii. 248 और मज्झ, i., सूत्र 63, 64 में मिलती है।

[2] अघ्यापनिका। सी एफ XX: अघ्यापानी; [लेकिन ?] जाट., मैं, नं. 5.

[3] धम्मपद, पृ. 334-337.

[4] टीका में, हुराहुरांग का अर्थ 'लालसा' और 'जन्म-जन्म से' दोनों प्रतीत होता है, बाद वाले में पूर्व निहित है। जेपीटीएस, 1909, पृष्ठ 168 देखें।

[5] विसत्ती-का को विसंग से जोड़ना व्युत्पत्ति की दृष्टि से सही नहीं हो सकता। विसत्ती का अर्थ अत्यंत शक्तिशाली या शक्ति छीनने वाला हो सकता है, लेकिन एक क्रिया के रूप में हमें लगभग वेसत्तिका की अपेक्षा करनी चाहिए। लेकिन बुद्धघोष (अत्थसालिनी, पृ. 264) और धम्मपाल दोनों इस शब्द को विष से जोड़ते हैं। हालाँकि, धम्मपाल इसमें आसत्तता जोड़ते हैं। धम्मपद टीका (फॉसबॉल), पृ. 409 देखें।

[6] तुलना करें. सीएलएक्सएक्सआईआई. डीएचपी. 337.

[7] देखें पृ. 162, नोट 3; एस.-निपाता, श्लोक 333 = धम्मपद, श्लोक 815.

[8] बहनें, श्लोक 131. टिप्पणी, हदायनिसिटाŋ।

6.5 [214] मालुक्यपुत्तथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
मनुजस्सा से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मलुक्यपुत्त का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, इस बुद्ध के जन्म के समय, वे कोसल के राजा के मुख्य सिंहासनधारी (अग्गसानिका) के पुत्र के रूप में सावत्थी में पुनर्जन्म लिए। उनकी माता का नाम मलुक्य था; उन्हीं के कारण वे मलुक्यपुत्त कहलाए। वयस्क होने पर, उन्होंने पलायन की प्रवृत्ति (अज्जासय) के कारण गृहस्थ जीवन त्याग दिया, संसार का त्याग कर एकांतवासी बन गए और भटकते हुए गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) की शिक्षा सुनी, उस विधान में उचित श्रद्धा (सासने) प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) से युक्त अरहंत बन गए, लेकिन कुछ ही समय बाद, अपने सगे-संबंधियों के प्रति करुणावश, वे अपने कुलम में चले गए। उनके रिश्तेदारों ने उन्हें उत्तम भोजन से सजाया, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन शामिल थे। धन से उन्हें लुभाने की इच्छा से उन्होंने उनके सामने धन का एक विशाल ढेर लगा दिया और उनसे निवेदन किया: "यह धन आपका है; आप अपने वस्त्र उतार दें और इस धन से अपनी पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण करने के लिए पुण्य कर्म करें।" थेरा आकाश में खड़े होकर इन छह श्लोकों से सत्य का उपदेश देते हुए उनके इरादे को विफल कर दिया।

399. "मनुष्य की लालसा (तन्हा)

जो व्यक्ति लापरवाह है (पामत्ता),

आचरण (कारिनो) में वृद्धि होती है जैसे

मालुवा लता; वह इधर-उधर दौड़ती है

(प्लावती) इस अस्तित्व से

वह अस्तित्व फल लाने जैसा है

जंगल में बंदर।

400. "जिस किसी को भी यह अर्थ (जम्मी) आसक्त करता है

(visattikā) लालसा (taṇhā) पर विजय प्राप्त करता है

दुनिया में, उसकी चिंताएँ बढ़ जाती हैं

संपन्न की तरह (अभिविष्ठः)

बीराणा घास।

401. "जो भी इस पर काबू पा ले, उसका क्या अर्थ होगा?"

ऐसी लालसा जिस पर काबू पाना मुश्किल है

त्यागा हुआ (दुरच्चयं), चिंताएँ

उससे गिरती हुई बूँदें, मानो

कमल के पत्ते से निकला पानी।

402. "हालांकि, इस साधन पर काबू पाना चाहिए

ऐसी लालसा जिस पर काबू पाना मुश्किल है

त्यागा हुआ (दुरच्चयं), चिंताएँ

उससे गिरती हुई बूँदें, मानो

कमल के पत्ते से निकला पानी।

402. "उस परिस्थिति में (तम्),

मैं आपसे बात कर रहा हूँ। आप स्वस्थ रहें।

(भद्दं), आप सभी जो एकत्रित हैं

यहां एक साथ: "जड़ खोदकर निकालो"

लालसा का, उसके समान जो है

उस प्रकार की घास की आवश्यकता है जिसका नाम है

उसिरा, जिसे बीराना के नाम से भी जाना जाता है;

मारा तुम्हें टुकड़े-टुकड़े न कर दे

(भांजी) बार-बार समान

नदी के बहते पानी के लिए

नरकट को नष्ट करना (जो उस पर उगता है)

नदी के किनारे)।"

403. "बुद्ध के वचनों पर अमल करो; तुम

किसी भी क्षण को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए;

वास्तव में, वे लोग जो (अच्छे) क्षणों को जाने देते हैं

गुजर जाना, शोक में पड़ जाना, जल जाना

नरक में।

404. "लापरवाही का अर्थ है कमी

जागरूकता; यह कामवासना के कारण धूल भरी है;

अनुपती के प्रभाव के कारण

लापरवाही, यह कलंकित (रजो) है; द्वारा

परिश्रम और ज्ञान के साधन (के)

सबसे प्रमुख मार्ग) व्यक्ति को अपना हटा देना चाहिए

अपना कांटा (वासना आदि का)।

वहाँ, मनुजस का अर्थ है: किसी सजीव प्राणी का। पमत्तचारिनो का अर्थ है: लापरवाहीपूर्ण आचरण वाले व्यक्ति का, जिसकी लापरवाही सती (सती) के त्याग (वोसग्ग) से चिह्नित होती है; न तो ध्यान, न ही आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना), न ही मार्ग (मग्ग), न ही फल (फल) में वृद्धि होती है। जिस प्रकार मालुव लता पेड़ को घेरकर उसे नष्ट कर देती है, उसी प्रकार तृष्णा (इच्छा) छह इंद्रियों पर निर्भर होकर बार-बार दृश्य रूपों (रूप) में उत्पन्न होती है; जिस प्रकार मालुव लता आकार में बढ़कर उस पेड़ को गिरा देती है जो उसका सहारा था, उसे डुबोने के बाद, उसी प्रकार तृष्णा (तन्हा) के प्रभाव में व्यक्ति नरक में गिर जाता है। अतः प्लवति का अर्थ है: वह व्यक्ति, तृष्णा (तन्हा) के प्रभाव में आकर, समय-समय पर (अपरापरं) वृहत और गौण, सभी लोकों में विचरण करता रहता है। किस प्रकार? फलमिच्छं व वनस्मि वाणरो का अर्थ है: जिस प्रकार वृक्षों के फल खाने की इच्छा से कोई बंदर जंगल में दौड़ते हुए किसी शाखा को पकड़ लेता है, उसे छोड़कर दूसरी शाखा पकड़ लेता है, और उसे भी छोड़ने के बाद, वह उस अवस्था तक नहीं पहुँचता (आपज्जति) जब यह कहा जाए कि "शाखा न मिलने के कारण वह बैठ गया है"; ठीक उसी प्रकार, तृष्णा (तन्हा) के प्रभाव में आकर, इधर-उधर भटकने वाला व्यक्ति उस अवस्था तक नहीं पहुँचता जब यह कहा जाए कि "इंद्रियों को भोगने का कोई विषय (आरम्मणं) प्राप्त न होने के कारण उसकी तृष्णा (तन्हा) समाप्त हो गई है"।

यं का अर्थ है: जो भी व्यक्ति; जम्मी का अर्थ है: यह लालसा नीच (या घटिया) है क्योंकि यह निम्न (लामक) है। विसत्तिका का अर्थ है: छह द्वारों वाली लालसा जो विष धारण करने, विष का मूल होने, विष के फल की संरचना, विष ग्रहण करने (परिभोग), दृश्य वस्तुओं (रूप) से आसक्त होने आदि के कारण विषैली और आसक्तिपूर्ण मानी जाती है; सहते का अर्थ है: यह उस व्यक्ति पर हावी हो जाती है। बीरणम् का अर्थ है: जैसे जंगल में बार-बार वर्षा होने पर अच्छी तरह से भीगी हुई (अभिवट्ठम्) बीरणम् (बीरण प्रजाति की घास) खूब बढ़ती है, उसी प्रकार बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों से उत्पन्न चिंताएँ विशेष रूप से बढ़ती हैं और अत्यधिक बढ़ जाती हैं; यही इसका अर्थ है।

यो च'एतम ... दुराच्चयम का अर्थ है: दूसरी ओर, वह व्यक्ति जो जन्म-जन्म के चक्रों में निहित चिंताओं (वट्टमूलका) को दूर करने में कठिनाई के कारण होने वाली लालसा (दुराच्चयं) पर विजय प्राप्त कर लेता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कमल के बिस्तर पर कमल के पत्ते पर गिरने वाली पानी की बूंद स्थिर नहीं रहती; इस प्रकार उसकी चिंताएँ स्थिर नहीं रहतीं; यही अर्थ है।

Taṃ vo vadāmi का अर्थ है: इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ। Bhaddaṃ vo का अर्थ है: तुम्हें मेरा आशीर्वाद मिले! तृप्ति (taṇhā) के आदेशों (anuvatta) के अधीन कार्य करने वाले व्यक्ति के समान विभवम् और हानि (anatthaṃ) की स्थिति में न पहुँचो। Yavant'ettha samāgatā का अर्थ है, इस स्थान पर जो भी मात्रा एकत्रित हुई है, वह संख्या। यदि पूछा जाए; उन्होंने क्या कहा? Taṇhāya mūlaṃ khaṇatha का अर्थ है: अरहंतत्व के मार्ग के ज्ञान के कुदाल (kudāla) से अज्ञान (avijjā) जैसी विकृतियों के जंगल (gahana) को खोदकर काट डालो, जो इस छह द्वार वाली तृप्ति (chadvārika taṇhā) की नींव है। किसके समान? Usīrattho va bīraṇaṃ का अर्थ है, जिस प्रकार एक व्यक्ति जिसे उसिर की जड़ की आवश्यकता होती है, वह उसिर नामक घास (बीरण) को एक बड़े फावड़े से खोदता है, उसी प्रकार आपको भी उसकी जड़ खोदनी चाहिए; यही इसका अर्थ है। Mā vo naḷaṃ va soto va, māro bhañji punappunaṃ का अर्थ है: दुष्टता के मार (किलेसा), मृत्यु के मार (मच्चु), दिव्य युवक, तुम्हें बार-बार उसी प्रकार कुचल (भङ्जी) न दें, जैसे नदी की तेज धारा किनारे पर उगे सरकंडों को बहा ले जाती है; यही इसका अर्थ है।

करोथा सुद्धवचनं का अर्थ है: अतः, भगवान बुद्ध के वचन के अनुसार कार्य करो, जैसा कि "झायथा भिक्खवे मा पमादत्था (हे भिक्षुओं! ध्यान करो, लापरवाही मत करो)" से शुरू होता है, अपने जीवन को उचित कर्म (पटिपत्ति) के साथ व्यवस्थित करो (संपादेथा) जैसा कि निर्देश दिया गया है। खणो वो मा उपच्चगा का अर्थ है: वास्तव में, जो कोई भी बुद्ध के वचन के अनुसार कार्य नहीं करता है, ऐसे सभी क्षणिक अवसर भी, जैसे बुद्ध के उदय (बुद्धुप्पादक्खण) का यह क्षणिक अवसर, उपयुक्त निवास में उत्पन्न होने का क्षणिक अवसर, उचित दृष्टिकोण (सम्मादिट्ठी) प्राप्त करने का क्षणिक अवसर, छह इंद्रियों (आयतन) की कमी (वेकल्लक) की अनुपस्थिति (लक्खणो) से चिह्नित होने का क्षणिक अवसर; उस क्षणिक अवसर को मत चूकना। खणातीता का अर्थ है: जो लोग उस क्षणिक अवसर को चूक जाते हैं, या वे व्यक्ति जिनके लिए वह क्षणिक अवसर बीत गया; निरयंहि सम्पिता का अर्थ है: वे नरक में उत्पन्न होकर लंबे समय तक दुखी रहते हैं।

पमादो राजो का अर्थ है, दृश्य रूप आदि इंद्रिय-विषयों (आरम्मण) में जागरूकता (सती) की अनुपस्थिति (वोसग्ग) से चिह्नित (लक्खनो); आत्म-वंचितता की स्थिति के कारण कामवासना (रागराज) के दाग से मिश्रित (मिस्सा) होने के कारण दाग (रागो)। पमादानुपतितो राजो का अर्थ है: वास्तव में, जो भी दाग है, वह कामवासना आदि से ग्रस्त (रागदिका) के रूप में जाना जाता है; जो कुछ भी लापरवाही के कारण उत्पन्न होता है (उप्पज्जति)। अप्पमादेन का अर्थ है: लापरवाही न करने के लिए उचित पालन (पटिपत्ति) द्वारा। विजय का अर्थ है: प्रमुख मार्ग (मग्ग) के ज्ञान के माध्यम से। अब्बाहे सल्लमत्तनो का अर्थ है: व्यक्ति को अपने हृदय में सुप्त अवस्था में पड़े कामवासना आदि के काँटे को उखाड़ फेंकना चाहिए (उद्धरय्या) और हटाना चाहिए (समूहनय्या)।

थेरा मालुक्यपुत्त के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(215):सप्पादासा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (215) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
215. सप्पदासा
इस बुद्ध युग में कपिलवस्तु में राजा [1] सुद्धोदन के पुरोहित के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम सप्पदास रखा गया। भगवान (बुद्ध) के अपने लोगों के आगमन के अवसर पर उन्होंने आस्था प्राप्त की, [2] और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। भ्रष्ट मानसिक आदतों (किलेसा) से ग्रस्त होने के कारण, उन्हें कभी एकाग्रता और एकाग्रता प्राप्त नहीं हुई। अंततः इससे वे इतने व्याकुल हो गए कि आत्महत्या करने ही वाले थे, तभी अचानक उनकी आंतरिक दृष्टि का विस्तार हुआ और उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा:

[405] पण्विसति वस्सानि यतो पब्बजितो अहं,॥
अच्चरासंघातमत्तमपि सेतोसन्तिमनज्झाग:॥॥

[406] अलद्धा सित्तस्सेकाग्गाṃ कामरागेना एडिटो,॥
बाहा पग्गयः कन्दन्तो विहार उपनिक्खमिः॥ ॥

[407] सत्थौ वा अहरिसामि को अत्थो जीवितेन मे,॥
कत्थौ ही सिक्खं पक्कक्खां कलां कुब्बेथा मदिसो॥ ॥

[408] तदहाउ खुरमादाय मनकाकमि उपविसिṃ,॥
परिणितो खुरो असि धमनिन्न चेट्टुमत्तनो॥ ॥

[409] ततो मे मनसिकारो योनिसो उदपज्जथा,॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[410] ततो चित्ताṃ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मताṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[405]
संसार छोड़कर (भिक्षुत्व के लिए) और भिक्षु संघ में रहने के बाद पूरे पच्चीस वर्ष बीत चुके हैं ,
और फिर भी एक पल के लिए भी
मुझे मन की शांति [और विवेक [3]] नहीं मिली।

[406] मैंने कभी भी दृढ़ निश्चय और एकल दृष्टि नहीं पाई,
इंद्रियजन्य इच्छाओं से व्याकुल और परेशान;
आँसुओं में, हाथ मलते हुए, मैंने लॉज छोड़ दिया। [4]

[407] नहीं, अब मैं चाकू उठा लूँगा, वरना -
मेरे लिए जीवन का क्या अर्थ है? और मुझ जैसे व्यक्ति के लिए,
जिसने अपने जीवन भर शिक्षा को नकार दिया है,
इससे बेहतर क्या हो सकता है कि मैं इसे समाप्त कर दूँ और मर जाऊँ?

[408] तब मैं आया और एक तरकश लेकर
अपने पलंग पर बैठ गया। और अब ब्लेड को
मेरी गर्दन पर धमनी को काटने के लिए चलाया गया। ...

[409] [215] तभी देखो! मेरे मन में गहरा विचार उत्पन्न हुआ:
तथ्य और कारण पर ध्यान।
सारी पीड़ा स्पष्ट थी;
मन में अरुचि और उदासीनता थी।

[410] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया!
हे देखो, धर्म (धम्म) के उचित भिक्षु का क्रम!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी कार्य पूरे हो चुके हैं। [5]

[1] कमेंटरी द्वारा महाराजा के रूप में प्रतिष्ठित।

[2] देखें CXXXIX.

[3] सीतासो समदानं। कॉमी.

[4] कॉमि.: अनुपनिक्खमिउ, बहि निक्खान्तो।

[5] = श्लोक 269 f. तुलना करें CXV., CCV.

6.6 [215] सप्पदासत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
पन्नवीसति से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सप्पदास का है। इसका उद्‌गम क्या है? उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे उन्हें इस और उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म (वट्ट) के चक्र से मुक्ति मिली। इसी कारण जब बुद्ध प्रकट हुए, तब वे कपिलवस्तु में महान राजा सुद्धोदन के निजी पुरोहित के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए; उनका नाम सप्पदास था। वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु के रिश्तेदारों के मिलन समारोह में उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, और दुराचार (किलेसा) से ग्रस्त होने के कारण मन की एकाग्रता (सेतो) प्राप्त न कर पाने के कारण ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया, पश्चाताप किया, और बाद में स्वयं को छुरा घोंपकर (सत्तम आहारन्तो) अपनी चेतना को बुद्धिमानी से विकसित किया (योनिसो), अरहंतत्व प्राप्त किया और अपने अरहंतत्व को प्रकट करते हुए ये श्लोक कहे:—

405. "अब पच्चीस साल बीत चुके हैं

जब से मैं भिक्षु बना हूँ; मैंने नहीं

मानसिक शांति प्राप्त करना (अज्जगं)

(cetosantiṃ) यहाँ तक कि

उंगलियां चटकाना (अच्चरासंघता)।

406. "एकल लक्ष्यता प्राप्त न कर पाने के कारण

ध्यान रहे, मैं उत्पीड़ित (अत्तितो) था

कामुक सुख (काम) के लिए वासना (राग);

मैं हाथ ऊपर उठाकर रोते हुए बाहर आ गई।

मेरे मठ का।

407. "मैं खुद को चाकू मारना ज़्यादा पसंद करूँगा (सत्थं वा)

āharissāmi); इसका क्या उपयोग है (attho)

मेरे जीवित होने का। वास्तव में, यह कैसे संभव है?

मेरे जैसे भिक्षु की मृत्यु हो जाती है (कालम)

कुब्बेथा) अपने नैतिक सिद्धांतों का त्याग करना

भिक्षुत्व का?

408. "फिर मैंने एक रेज़र उठाया और उसे

मेरे सोफे पर; रेज़र वहीं था

मैं अपनी नसें काटने के लिए तैयार होकर आया था।

409. "इसके बाद मेरे बुद्धिमान उठे

(योनिसो) सचेतनता; हानि

स्पष्ट हो गया और घृणा (निब्बिडा)

अच्छी तरह से उभरा (समतिट्ठथा)।

410. "इसके बाद, मेरा मन बन गया

मुक्त। अच्छे स्वभाव को देखो।

(सुधम्मता) सत्य (धम्म) की;

त्रिविध ज्ञान (विज्जा) था

विधिवत रूप से प्राप्त किया गया; बुद्ध का

निर्देश का पालन किया जा चुका था।

वहाँ, paṇṇavisativassāni, yato pabbajito ahaṃ का अर्थ है: ये पच्चीस वर्ष हैं जो मेरे भिक्षु बनने के समय से शुरू होते हैं। Accharāsaṅghātamattampi, cetosantīmanajjhagaṃ का अर्थ है: इतने समय तक ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते रहने के बावजूद मुझे उंगलियों के चटकने में लगने वाले समय के बराबर भी एकाग्रता (समाधान) और मानसिक शांति प्राप्त नहीं हुई।

यद्यपि इस प्रकार मन की एकाग्रता प्राप्त न कर पाने के कारण उन्होंने "कामरागेनट्टितो" से प्रारंभ होने वाला श्लोक कहा, जिसमें उन्होंने कारण (कारणम्) बताया। अत्तितो का अर्थ है: उत्पीड़ित और व्याकुल होना; यही इसका अर्थ है। बाहा पग्गयह कंदन्तो का अर्थ है: अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर मैं मुख ऊपर करके रोता रहा, इस प्रकार: "यहाँ यह अत्यंत अनुचित घटना घटित होती है; जब मैं पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले धर्म (सासने) में भिक्षु बनने के बाद भी, पाप (किलेसा) के दलदल (प।का) से स्वयं को बाहर नहीं निकाल पाता।" विहारा उपनिक्खमि का अर्थ है: मैं अपने आवासीय मठ से बाहर चला गया।

जिस महत्व के कारण वे अपने मठ से बाहर निकले, उसे दर्शाने के लिए उन्होंने "सत्थं वा आहारीस्सामि" से शुरू होने वाला श्लोक कहा। यहाँ सत्थं वा आहारीस्सामि का अर्थ है: वा शब्द का प्रयोग अनिर्णय (विकप्पन) के अर्थ में किया गया है। उस शब्द के माध्यम से वह मृत्यु के तौर-तरीकों (पकारा) को एक साथ लाता है (संगण्हाति), जैसे कि: "रुक्खा वा पापतिस्सामि, उब्बन्धित्वा वा मरिस्सामि (या तो मैं पेड़ की चोटी से गिर जाऊँगा, या फांसी लगाकर मर जाऊँगा (उब्बन्धति)।" सिक्खं का अर्थ है उच्च नैतिक उपदेशों (अधिशील) का पालन। पच्चक्खं का अर्थ है: त्याग करना (पच्चाचिक्खंतो), सब कुछ छोड़ देना (परिच्चाजंतो)। एक ऐसा पाठ (पाली) भी है "पच्चाक्खा", त्यागने के बाद (पच्चाक्खाय); यही अर्थ है। कालं का अर्थ है: मृत्यु; वास्तव में, मुझ जैसा भिक्षु अपने भिक्षुत्व के नैतिक मूल्यों को छोड़े बिना अपनी मृत्यु कैसे ला सकता है? (सिक्खापच्चक्खानेन); यही अर्थ है। वास्तव में, नैतिक नियमों (सिक्खा) का त्याग करना श्रेष्ठ (आर्य) के अनुशासन (विनय) में मृत्यु के समान है। तदनुसार भगवान बुद्ध ने कहा: "मरणः अतं भिक्खवे यो सिक्खं पच्चक्खाय हीनयावत्तति (हे भिक्षुओं! वास्तव में, यह मृत्यु है जब कोई भिक्षु भिक्षुत्व के नैतिक नियमों का त्याग करने के बाद निम्न जीवन (हीनया आवत्तति) में लौटता है। "सिक्खं पच्चक्खा" के पाठ में, मेरे जैसा भिक्षु भिक्षुत्व के नैतिक नियमों का त्याग करने के बाद कैसे मरेगा? मैं तो भिक्षुत्व के नैतिक नियमों से संपन्न होने के बाद ही मरूँगा; इसलिए, शायद मैं छुरा घोंप दूँ। मैं स्वयं; मेरे जीवित रहने का क्या लाभ है; यही व्याख्या है।

तदाऽहं का अर्थ है: जब मैं अपने जीवन से घृणा (निब्बिंदन्तो) कर रहा था, क्योंकि मैं दुराचार (किलेसा) से ग्रस्त (अभिभव) होने के कारण भिक्षु बनने में असमर्थ था, तब। खुरं का अर्थ है: तेज धार वाला तरकश या तरकश जैसा हथियार। मंचकम्हि उपाविसिं का अर्थ है: अन्य भिक्षुओं के अवरोध (निवारण) के भय से अपने भीतरी कक्ष (ओवरक) में प्रवेश करने के बाद अपने पलंग पर बैठ गया। परिनीतो का अर्थ है: पास लाया गया (उपनीतो); मेरे गले (गल) पर रखा गया; इस प्रकार इसका अर्थ है। धामनिं का अर्थ है: वे कहते हैं "यंथे धमनिं, कंठधामनिं गलावलया (गले की नस, गले की नस, गले का गोल (वलया)। चेट्ठु का अर्थ है: काटना।

Tato me manasikāro, yoniso upapajjatha का अर्थ है: मैंने अपनी गर्दन की नस काटने के लिए उस्तरा अपनी गर्दन पर रखा और कहा, "जब मैं मरूँगा:" इसके बाद, बाद में, मेरे नैतिक उपदेशों को सर्वांगीण शुद्ध, बिना टूटे (अक्खण्ड) या फटे (अच्छिद्धण) देखकर मेरे मन में उत्साह (पीति) उत्पन्न हुआ; "सचमुच! क्या मेरा नैतिक उपदेश (सीला) स्वस्थ है? मेरे आनंदमय मन का शरीर शांत हो गया; मेरे मन की एकाग्रता (समाहित) की स्थिति के कारण आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के प्रभाव (वास) से बुद्धिमान (योनिसो) जागरूकता उत्पन्न हुई, जबकि मैं अपने शांत शीतल शरीर (पसद्धकाय) के निराधार (निरामिस) आनंद का अनुभव करता रहा। दूसरे शब्दों में, ततो का अर्थ है जब मेरे गले पर उस्तरा (उपनय) रखा गया और जब घाव (वण) में सनसनी (वेदनं) उत्पन्न हुई; अब, सही मार्ग (मग्ग) पर चिंतन (पच्चवेक्खण) करने के लिए और "आदिनवो पातुरहु (हानि स्पष्ट हो गई)" इत्यादि। इसका अर्थ पहले ही कहा जा चुका है (हेट्ठा)।"

थेरा सप्पदास के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(216):कटियाना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (216) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
216. कातियाना
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में कोसिया परिवार के एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में हुआ, [1] लेकिन उनकी माता के परिवार के नाम पर उनका नाम कातियाना रखा गया। अपने मित्र सामञ्चकानी [2] को थेरा बनते देख, उन्होंने भी भिक्षु दीक्षा ले ली। अपनी पढ़ाई के दौरान उन्होंने रात में सोने के लिए खुद को अनुशासित करने का निश्चय किया। छत पर टहलते हुए उन्हें नींद आ गई और वे वहीं जमीन पर गिर पड़े। भगवान (बुद्ध) ने यह सब देखकर स्वयं जाकर उनके ऊपर खड़े होकर उन्हें 'कातियाना!' कहकर पुकारा। इससे वे उठ खड़े हुए, प्रणाम किया और बहुत व्याकुल होकर खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें इस प्रकार धम्म का मार्ग सिखाया:

[411] उत्थेहि निसीदि कटियाना॥
मा निद्दबहुलो अहु जगरासु,॥
मा तां अलसां पमत्तबंधु॥
कुत्तेनेव जिनातुमक्कुराजा॥ ॥

[412] सयाथापि महासमुद्दवेगो॥
एवं जातिजरातिवत्तते तं,॥
सो करोहि सुदीपमत्तन त्वऽ॥
न हि तानं तव विज्जतेव अण्णां॥ ॥

[413] सत्था हि विजेसि मग्गेमेटाm̩॥
सोंगा जातिजाराभया अतितां,॥
पुब्बापरात्तमप्पमत्तो॥
अनुयुञ्जस्सु दःहं करोहि योगो॥ ॥

[414] पुरिमानि पमुन्चा बंधनानि॥
संघति खुरामुंडभिक्खभोजी,॥
मा खिद्दारतिन्च निद्दं॥
अनुयुञ्जित्थ झाय कात्याना।॥॥

[415] झायाहि जिनाहि कटियाना॥
योगक्खेमापथेसु कोविदोसि,॥
पप्पुय्य अनुत्तराm̐ विशुद्धm̐॥
परिनिब्बाहिसि वारिणाव जोति.।॥

[416] पज्जोतिकारो परित्तरासो॥
वतेन विनमयते लताव,॥
एवमपि तुवं अनादियाणो॥
मरौ इंदासगोट्टा निद्दुनाही,॥
तो वेदयितसु वितरससो॥
कालं कंख इधेव सतीभूतो' ति.॥॥

[411] उठो, जाग जाओ, कातियान, पालथी मारकर बैठ जाओ। [3] उन्मत्त मत हो। देखते रहो और चौकस रहो, हे लापरवाह वंश के पुत्र, हे आत्मभोगी, साधारण चाल से
मनुष्यों के राजा को तुम पर विजय प्राप्त न करने दो ।

[412] जैसे विशाल सागर पर लहरें उमड़ती हैं,
वैसे ही जन्म और उम्र का चक्र तुम्हें डुबो सकता है।
ध्यान रखो कि तुम अपने लिए एक सुरक्षित द्वीप बना लो, [4] क्योंकि और कुछ भी तुम्हें शरण नहीं दे सकता।

[413] देखो! तुम्हारे लिए भगवान (बुद्ध) ने यह सही मार्ग तैयार किया है, जो
सभी बंधनों और जन्म-मृत्यु के सभी भय से परे है।
रात के समय और उसके बाद भी लगन से काम करो;
अपनी पूरी शक्ति से प्रयास करो और लगन से अध्ययन करो।

[414] सभी पुराने बंधनों को त्याग दो; भिक्षु के समान जीवन व्यतीत करो,
पीले वस्त्र धारण करो, सिर को तंदूर से मुंडवाओ और भिक्षा ग्रहण करो।
मनोरंजनों से प्रसन्न मत हो, न ही लंबी नींद से। [5] व्यस्त रहो। चिंतन करो, हे कातियान!

[415]
हे कातियान, एकाग्रता से विजय प्राप्त करो! निश्चय ही मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग में निपुण बनो ।
परम शुद्धि प्राप्त कर लो,
तो जल में ज्वाला की तरह तुम भी मोक्ष के मार्ग पर अग्रगामी हो जाओगे।

[416] क्षीण किरण का प्रकाश हवा से फटी लता के समान है।
हे इंद्र के कुलवासी, तुम भी, [6] कुछ भी न पकड़ते हुए,
मारा (मृत्युदेव/राक्षस) को झटक दो। इंद्रियों के प्रति वासना से मुक्त होकर,
पवित्र शांतिपूर्ण जीवन में भी अपने समय की प्रतीक्षा करो।

इस प्रकार, भगवान (बुद्ध) के उपदेशों से प्रेरित होकर, जो पुनर्जन्म के किसी भी आधार से रहित निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं, थेरा ने अंतर्दृष्टि विकसित की और अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए श्लोकों का उच्चारण करते हुए अन्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) को स्वीकार किया।

[1] तुलना करें. सीसीएक्स.

[2] देखें XXXV.

[3] अतः टीका ध्यान के लिए निर्धारित आसन है।

[4] देखें सुत्त-निपाता, 501.

[5] Cy . (Br.) niddaṃ के बाद अन्य ca की आपूर्ति करता है।

[6] कोसियागोट्टा। कोसिया, इंद्र देवता के नामों में से एक है। प्रकाश (दीपक) की उपमा का प्रयोग, मेरा मानना है, यह नहीं दर्शाता कि मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) की मृत्यु-मशाल को कोसिया द्वारा बुझाया जाना था (देखें न्यूमैन), बल्कि यह कि उसका अपना पुनर्जन्म - 'अग्नि', जो 'शीघ्र' और मंद हो गई थी, बुझने के द्वारा उसके पुनर्जन्म की योजनाओं को विफल कर रही थी।

6.7 [216] कातियानथेरा के श्लोक पर टिप्पणी
उत्ठेहि से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा कातियान का है। इसका उद्गम क्या है? इस व्यक्ति ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और कोसिया वंश के एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया; अपनी माता के वंश से कातियान नाम प्राप्त करके, वे वयस्क हुए, संयोगवश उन्होंने उस थेरा को देखा जो थेरा सामञ्चकानी के गृहस्थ साथी थे, भिक्षु बन गए, और भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करते हुए रात में मठ के चबूतरे (चंकमा) पर चढ़ते हुए मन ही मन कहने लगे: “मैं अपनी नींद (निद्दाभिभवं) को दूर करूँगा (विनोदस्सामि)।” इधर-उधर घूमते हुए वे नींद से व्याकुल हो गए; वह कुछ करने ही वाला था (पचलायामानो), गिर पड़ा (परिपटित्वा) और नंगी ज़मीन पर लेट गया (अनंतराहिताय भूमिया); गुरु को उसकी इस घटना का पता चला (पवत्तिं), वे स्वयं वहाँ गए और आकाश में खड़े होकर थेरा को “हे कातियान” कहकर याद किया (संज्ञां आकाशि)। गुरु को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ, उन्हें प्रणाम किया और पश्चाताप करता रहा। तब गुरु ने उसे सत्य (धम्म) सिखाने के लिए ये श्लोक कहे।

411. "हे कातियाना! खड़े हो जाओ; बैठ जाओ;

बहुत ज्यादा सोने से मत थको;

आपको सतर्क रहना चाहिए; इसे होने न दें

मृत्यु का राजा, का रिश्तेदार

लापरवाही, आलस्य के कारण तुम पर हावी हो जाती है

भिक्षु लेकिन अपने जाल (कूट) के माध्यम से।

412. तरंगों की गति के अनुसार

विशाल महासागर, उसी प्रकार

जन्म और बुढ़ापा आप पर हावी हो जाते हैं

(एक के ऊपर एक)। आपको चाहिए

अपना खुद का एक अच्छा द्वीप बनाओ;

क्योंकि केवल एक ही अस्तित्व है, और कोई दूसरा नहीं।

आपके लिए आश्रय।

413. "निश्चित रूप से, गुरु ने तैयार किया (विजेसी)

यह मार्ग (मग्गा), जो ले जा सकता है

आसक्ति (संग) से परे (अतीतं)

कामवासना (राग) आदि, और इसके खतरे

जन्म और वृद्धावस्था। आपको यह सुनिश्चित करना चाहिए।

अपने ध्यान (योग) को दृढ़ बनाएं,

अपने निरंतर प्रयास को आगे बढ़ाएं (अनुयुंजस्स)।

दोनों ही स्थितियों में पूरी तरह से सचेत रहकर

रात के शुरुआती और बाद के हिस्से।

414. "हे कातियान! अपने पूर्व को त्याग दो!

बेड़ियाँ, क्योंकि अब तुम जकड़े हुए हो

दोहरा वस्त्र (संघटी), गंजा

रेजर की सहायता से और भिक्षा से प्राप्त भोजन से पोषित।

कोई भी प्रकार का खेल-कूद का आनंद (खिद्दारति) न हो;

निरंतर प्रयास (अनुयुंजित्था) और

ध्यान करना (झाय)।

415. "हे कातियान! अपने दुराचार को जला डालो!

गहरी ध्यान साधना (झयाहि); यह जान लो कि

तुम्हारी दुष्टता पर विजय प्राप्त कर ली गई थी (जानाही)।

आपको मार्ग तक पहुँचने में चतुर होना चाहिए

निर्वाण की ओर, चार बंधनों से मुक्त।

(योग)। अतुलनीय अवस्था प्राप्त कर ली है

(अनुत्तरं) स्पष्ट शुद्धता (विशुद्धिं),

आपको परिनिर्वाण में प्रवेश करना चाहिए जो इससे मिलता-जुलता हो।

अग्नि (ज्योति) का वह समूह जो बुझ गया

पानी।

416. "एक छोटी सी बाती से जलाया गया दीपक ऐसा होता है जैसे

एक लता जिसे हवा आसानी से नष्ट कर देती है।

हे तुम, तुम्हारे जैसे कुल के लोगो, उसी प्रकार से

इंदा को हिलाकर मार को मुक्त कर दो

आसक्ति से मुक्त। तुम ही हो वो एक।

क्योंकि वे कामवासना (राग) से रहित हो गए हैं

सभी संवेदनाएँ (वेदयितसु) और होना

शांत हो जाना (अर्थात निर्वाण की ओर अग्रसर होना)

इस अस्तित्व में, अपने समय का पालन करो।

(कॅख)

वहाँ, उत्थेही का अर्थ है: नींद से उठने के बाद अपनी सक्रियता (उठान) बनाए रखें; क्योंकि लेटना आलस्य का अंग माना जाता है, इसलिए सोने के लिए न लेटें। निसीदा का अर्थ है: पैरों को क्रॉस करके बैठें, शरीर को दृढ़ता से सीधा रखें और सचेत रहें। कातियाना का अर्थ है: बुद्ध ने उन्हें उनके नाम से संबोधित किया। मा निद्दाबहुलो आहु का अर्थ है: अधिक नींद न लें और नींद से अभिभूत न हों। जागरस्सु का अर्थ है: जागृत रहें, निरंतर जागृति में लीन रहें। Mā taṃ alasaṃ pamattabandhu, kuṭen'eva jinātu maccurājā का अर्थ है: मृत्यु के राजा, लापरवाही के रिश्तेदार को तुम पर विजय, विजय और आलस्य न करने दो, तुम वृद्धावस्था और रोगों से ग्रस्त हो, तुम आलसी, निष्क्रिय और निरंतर जागृति से जुड़े नहीं हो, ठीक वैसे ही जैसे कोई शिकारी बिना मार्ग बनाए (दुहाना) हिरण या किसी पंख वाले प्राणी का शिकार करता है; यही अर्थ है।

सेय्याथा पि का अर्थ है: शायद के अनुसार। महासमुद्देवेगो का अर्थ है: विशाल महासागरों की लहरों की तीव्र शक्ति। एवं का अर्थ है: जिस प्रकार विशाल महासागरों की उग्र और तीव्र लहरें उठती हैं और जो मनुष्य उन्हें पार करने में असमर्थ होता है, उसे डुबो देती हैं, उसी प्रकार जन्म और वृद्धावस्था भी एक दूसरे को निगल जाती हैं (अज्जोत्तरति) जो आलस्य से ग्रस्त होता है (कोसज्जाभिभूतं)। सो करोहि सुदीपं अत्तनो का अर्थ है: हे कातियान! तुम्हें अपने शरीर में एक द्वीप उत्पन्न करना चाहिए (उप्पादेहि) जो अरहंतत्व का फल हो, और जिसे चारों ओघों द्वारा निगला न जाए (अनज्जोत्तरनीयं)। Na hi tāṇaṃ tave vijjate'eva aññaṃ का अर्थ है: hi कारण (hetu) के अर्थ में एक अविघटनीय कृदंत है; क्योंकि इस लोक में या परलोक में आपके लिए सर्वोच्च फल के अतिरिक्त कोई अन्य आश्रय (tāṇaṃ) नहीं है, इसलिए आपको उस उत्तम द्वीप को अरहंत पद के रूप में मानना चाहिए।

Satthā hi vijesi maggaṃ etam का अर्थ है: गुरु ने जन्म आदि के खतरे से परे, पाँच प्रकार के आसक्ति (संग) से मुक्त होकर, उस श्रेष्ठ (आर्य) मार्ग (मग्ग) पर विजय प्राप्त की और आपके लिए उसे तैयार किया, जो मार आदि पर विजय प्राप्त करने के बाद उस अच्छे द्वीप का कारण बना। यह वह मार्ग है जिसे अन्य मतों के कई अनुयायी (अञ्ञतित्थिया) पराजित होकर प्राप्त नहीं कर सके। Pubbāpararatt appamatto का अर्थ है: गुरु का जो भी है, वह उनके शिष्यों को प्राप्त करना चाहिए और उसे चूकना नहीं चाहिए,

इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए उन्हें रात के पहले और बाद के समय में, पहले पहर से लेकर अंतिम पहर तक, सजग और विचारशील रहना चाहिए। अनुयुंज योगम् का अर्थ है: ऐसा हो जाने पर, आपको अपनी ध्यान (भावना) को दृढ़ करना चाहिए।

पुरीमानि पामुंच बंधनानि का अर्थ है: अपने आप को मुक्त करो और इंद्रिय सुखों के बंधनों से खुद को मुक्त करो, गृहस्थ जीवन में गृहस्थ रहते हुए गृहस्थ ने तुम्हें इन बंधनों में जकड़ रखा था; तुम्हें इन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। संघाति खुरमुणभिक्खोजी का अर्थ है: दोहरे वस्त्र धारण करने वाला (संघातिधारी), खुरेना से गंजा (कटसिरमुंडो), भिक्षा से भोजन करने वाला (भिक्खाहारब्होगी); इस प्रकार, तीन प्रकार (विधा) का समूह, पूर्व बंधन (पुरीमबंधन) से क्रीड़ा और नींद में आनंद से निरंतर जुड़े रहने की क्रियाविधि या कारण है। हे प्रभु, जो दो वस्त्र धारण करते हो (संघतिपारुतो), और गंजे सिर वाले हो (मुंडो), भिक्षा मांगकर भोजन करते हो; अतः तुम्हारे लिए इंद्रिय सुखों, क्रीड़ा, उल्लास और नींद में लिप्त होना उचित नहीं है; इसलिए बंधनों से मुक्त हो जाओ और क्रीड़ा, उल्लास और नींद में लिप्त न हो; यही व्याख्या है। झाया का अर्थ है: ध्यान में लीन हो जाओ; अनुयुंज का अर्थ है: एकाग्रता के विषय (आरम्मन) पर निरंतर चिंतन (उपनिज्जानं) में संलग्न रहो।

इसका अभ्यास करने से और किसी भी प्रकार के ध्यान में प्रवेश करने के परिणामस्वरूप, सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) पर विजय प्राप्त हो जाती है (सबबस्सो जिता); उन्होंने "झायाहि जिनाहि" से शुरू होने वाला श्लोक इस प्रकार कहा; विशिष्ट चिह्न (लक्खण) पर उस चिंतन (उपनिज्जान) का अभ्यास करो। योगक्खेमपथेसु कोविदोऽसि का अर्थ है: तुम्हें ज्ञान (बोधि) के पंख (पक्खिया) के सिद्धांतों (धम्म) में चतुर और पारंगत होना चाहिए, जो चार बंधनों (योग) से मुक्त होकर निर्वाण के मार्ग बन गए हैं। इसलिए, भावना में तल्लीन होकर (उस्सुक्कापेन्तो), आप अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद परिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे, जो निर्वाण की ओर अग्रसर एक अत्यंत शुद्ध अवस्था है, जिसकी कोई तुलना नहीं है। वारिना व ज्योति का अर्थ है: आप उस उत्तम (आर्य) मार्ग (मग्ग) की वर्षा (वुट्ठि) के फलने-फूलने से पूर्ण निर्वाण में प्रवेश करेंगे, जो प्रचुर मात्रा में वर्षा के जल की बौछार से अग्नि के पिंड के विलीन होने के समान है।

पज्जोतकारो का अर्थ है: प्रकाश देने वाला दीपक (पज्जोतिं करो)। परित्तरंसो का अर्थ है: छोटी बाती वाला। विनम्यते का अर्थ है: बुझ गया (विनमीयति) और नष्ट हो गया (अपनिय्यति)। लता व का अर्थ है: लता के समान। यह कहा गया है: — जिस प्रकार बाती आदि के अभाव के कारण कम प्रकाश (परित्तरंसो) और मंद प्रकाश (मंडपभो) वाला दीपक या छोटी लता (अप्पिका) उड़कर नष्ट हो जाती है (विद्धमसिय्यति), उसी प्रकार तुम भी उड़कर नष्ट हो जाओगे। इंदासगोत्त का अर्थ है: हे जिसका कुल इंदा, सक्का के समान है, क्योंकि उसका कुल कोसिया है। अनादीयनो का अर्थ है: उसके (मारा) प्रभाव में आए बिना (अनावत्तना) और उससे आसक्त न होने के कारण (अनुपादानातो) निद्धुनाहि का अर्थ है: उसे नष्ट करो और मारा का नाश करो; इस प्रकार, (मारा) का नाश करके, तुम अपने सभी भावों में कामुक इच्छा (चंदराग) को दूर कर लोगे; इध'एव का अर्थ है: इसी जन्म में (अत्तभाव); सीतिभूते का अर्थ है: ऊष्मा के अभाव और सभी विकारों (किलेसा) के जलने के कारण, तुम्हारी सभी अग्नियां बुझ जाएंगी और शांत हो जाएंगी; कंख का अर्थ है: तुम अपने परिनिर्वाण के समय की प्रतीक्षा करो। इस प्रकार, गुरु द्वारा दी गई शिक्षा के फलस्वरूप, जब गुरु ने निर्वाण (जो अस्तित्व के किसी भी आधार को नहीं छोड़ता) प्राप्त कर लिया, तो शिक्षा के अंत में गुरु ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को उत्तरोत्तर विकसित किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गुरु द्वारा सिखाई गई शैली में ही इन श्लोकों का पाठ किया। ये श्लोक गुरु के अरहंतत्व (अञ्ञा) का प्रकटीकरण बन गए।

थेरा कातियाना के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(217): मिगजला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (217) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
217. मिगाजाला
बुद्ध युग में सावत्थी में महान गृहस्थ महिला विशाखा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] वे अक्सर विहार (मठ) [217] में धम्म का पाठ सुनने जाते थे। अंततः उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय के साथ अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा:

[417] सुदेसिटो चक्कुमाता बुद्धेनादिक्काबंधुना,॥
सब्बासंयोजनातितो सब्बवत्तविनासनो॥ ॥

[418] निय्यानिको उत्तराणो तन्हामूलाविसोसनो,॥
विसामूलाऽ अघतानाऽ चेत्वा पापेति निब्बुतिऽ॥ ॥

[419] अन्नानामूलभेदाय काममयंतविघ्ननो,॥
विनाणनां परिल्लहे णाणवजिरानीपतिनो॥ ॥

[420] वेदानानं विन्नप्पनो उपादानप्पामोकानो,॥
भवान् अंगारकासुन् वा न्यानेन अनुपासको॥ ॥

[421] महरासो सुगम्भिरो जरामाक्कुनिवारणो,॥
एरियो अठहांगिको मग्गो दुक्खुपासामनो सिवो॥ ॥

[422] कम्मं कम्मन्ति न्त्वाना विपाकं च विपाकतो,॥
पतिकुप्पन्नधम्मनां यथा वा लोकादस्सणो॥
महाखेमाङ्गमो सन्तो परियोसनभद्दकोऽ ति.॥ ॥

[417] यह अच्छी तरह से सिखाया गया है, जो सब कुछ देखता है -
बुद्ध, सूर्य की उच्च जाति के वंशज [2] -
इसके माध्यम से सभी बंधन बीते हुए हैं, इसके माध्यम से
सभी निरंतर गति [3] नष्ट हो जाती है;

[418] यह आगे और बाहर ले जाता है, [4] यह आगे बढ़ता है,
इसके माध्यम से लालसा की जड़ सूख जाती है;
विष की जड़ को काटकर, हमारा दुखद अंत,
यह हमें बुराई के पूर्ण अंत तक ले जाता है; [5]

[419] अज्ञान की जड़ को काटकर,
यह कर्म के जीवित रथ को टुकड़े-टुकड़े कर देता है; [6] यह उन वस्तुओं पर अंतर्दृष्टि का वज्र डालता है
जो पुनर्जन्म में चेतना को दहेज देती हैं; [7]

[420] हमारी सारी चेतना के नीचे छिपे सत्य को उजागर करते हुए,
और सभी उत्तेजित पकड़ से मुक्त करते हुए,
यह हमें ज्ञान द्वारा प्रकट करता है,
पुनर्जन्म को अंगारों के एक धधकते गड्ढे के रूप में; [8]

[421] महान गुणों वाला, दूरगामी, गहरा,
आने वाले क्षय और मृत्यु को दूर करने वाला: -
ऐसा है आर्य, अष्टांगिक मार्ग, सभी बीमारियों का उपचार करने वाला, शुभ, धन्य। [9]

[422] यह कर्म को जानता है, - कर्म का क्या अर्थ था, -
और कर्म के फल को वास्तव में फल के रूप में जानता है। [218] सत्य के प्रकाश से एक दृष्टि दिखाते हुए,
चीजों को कारण के माध्यम से अस्तित्व में आते हुए।
हाँ, यह शक्तिशाली आश्रय [10] की ओर चला;
यह उच्च शांति लाता है और अंत में आनंद निहित है। [11]

इस प्रकार थेरा ने अनेक तरीकों से आर्य पथ (धम्म) को दर्शाते हुए यह घोषणा की कि उन्होंने स्वयं इसका अनुसरण किया है, जो कि अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा है ।

[1] सिस्टर्स देखें, पृ. 16 एन.

[2] देखें XXVI., CXXXIX.

[3] सब्बवट्टविनासानो, 'क्योंकि यह भ्रष्ट कर्मों के परिणामों के निरंतर चलने को नष्ट करता है।' साइ.

[4] निय्यनिको। सी एफ कली. साई., पी. 82, एन. 2.

[5] निब्बुति = निब्बाण - अर्थात, सभी कर्मों (कर्म संस्कारों) और किलेसा (दुखों) का। साइ.

[6] काममयंता: अट्टभावयंता। साइ.

[7] विनाणं परिग्गहे: कामभावदिसु यथासाकाक्कमुना विनानागहन उपपथिते। साइ. सी एफ संवाद, मैं. 313, एन. 1.

[8] देखें मज्झिमा, i. 74. यहाँ नरक में पुनर्जन्म निर्दिष्ट है; उपमा अन्यत्र (इरेमेन, पृ. 365) कामुक इच्छाओं पर लागू होती है, जिसके द्वारा पुनर्जन्म होता है।

[9] शिवो के लिए दो शब्द (cf शिव, बाद में लोकप्रिय हिंदू देवता)।

[10] खेमा (श्लोक 32, 227, 310)। यहाँ 'आश्रय' का तात्पर्य 'सुरक्षित स्थान' या 'पकड़' के प्राथमिक अर्थ से है, न कि किसी समुद्री चीज़ से (श्लोक 415 देखें)।

[11] यह अत्यंत प्रभावशाली गाथा पूरी तरह से विशेषणों और वाक्यांशों की माला है, जो धम्म की प्रशंसा में रची गई है, और टीका द्वारा इस संबंध की पुष्टि की गई है। ओल्डेनबर्ग पाठ में विराम चिह्नों की अनुपस्थिति से यह बात स्पष्ट रूप से इंगित होती है। डॉ. न्यूमैन द्वारा इन विशेषणों को बुद्ध पर लागू करने के लिए विकृत कर दिया गया है - इन्हें कर्ता कारक से, जबकि सामान्य स्थिति में ये सीधे खड़े होते, कर्ता कारक में बदल दिया गया है। अंग्रेज़ी अनुवाद मूल गाथा की उदात्त कविता का उपहास करता है।

6.8 [217] मिगाजालत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी

सुदेसीतो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा मिगजाला का है। इसका उद्‌गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, इस बुद्ध के उदय के समय सावत्थी में महान भक्त वैशाखा के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम मिगजाला था। वे मठ गए, सदा सत्य (धम्म) सुनने के कारण उचित रूप से पवित्र आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में निरंतर वृद्धि की, अरहंतत्व प्राप्त किया और अपने अरहंतत्व (अञ्ञा) को प्रकट करने के लिए इन श्लोकों का कथन किया।

417. "सभी से परे जाना (अतितो)

बंधन (संयोजन) और स्पष्ट

बार-बार होने वाले सभी दौरों का विनाश

पुनर्जन्मों के बारे में अच्छी तरह से शिक्षा दी गई है

बुद्ध, दृष्टि और

सूर्य का संबंधी।

418. “बुद्ध जिन्होंने स्वयं को (से) बाहर निकाल लिया था

संसार), जो पार कर गया था (

संसार की बड़ी बाढ़), जो स्पष्ट रूप से

लालसा (तन्हा) के स्रोत को सुखा दिया।

हत्या को रोककर (आघटनम्)

लालसा की विषैली जड़ (विसामूल)

पुरुषों को निर्वाण प्राप्त कराया।

419. “यांत (तंत्र) का नाश करने वाला

उस (कैंकर) किस्म की क्रिया जो

यह अज्ञान (अज्ञात) का मूल कारण है।

हीरे के हथियार का निपातानो (ड्रॉपर)

उन लोगों के लिए ज्ञान का (जो शेष रहते हैं)

चेतना का संग्रह (परिगाहे)

(विञ्ञाण);

420. “संवेदनाओं का मुखबिर (विञ्ञापानो)

(वेदना), जो मुक्त करता है (पामोकानो)

आसक्ति (उपादान), ध्यान करने वाला

(अनुपस्सानो) अस्तित्व पर (भव)

जलते हुए कोयले के गड्ढे की तरह,

ज्ञान।

421. “अष्टांगिक मार्ग (आरिया)”

(अट्ठंगिको मैगगो) बहुत स्वादिष्ट है

(महारासो), अत्यंत गहन, समर्थक-

वृद्धावस्था और मृत्यु का अवरोधक (या निवारक)

कूल (सिवो) ट्रैंक्विलाइज़र (उपासमानो) का

पीड़ा (दुक्खा)।

422. "कर्म (कर्म) का ज्ञान प्राप्त होने पर

क्रिया, प्रतिक्रिया (विपाक) के रूप में भी

प्रतिक्रिया, वह, जो देखता है (dassano)

प्रकाश (आलोक) लेकिन तदनुसार (यथाव)

आश्रित धर्म के सत्यों (धम्म) का

उत्पत्ति (paṭiceapanna) हो जाती है

शांत (संतो) महान की ओर जाने वाला

सुरक्षा (खेमा) और उत्कृष्ट (भड्डको)

अंत में (परियोसाना)।

वहाँ, सुदेसीतो का अर्थ है: उत्कृष्ट रूप से समझाया गया; परम (परम) के निरपेक्ष अर्थ (अत्थ) को प्रकट करते हुए (विभावन) शिक्षा दी गई है, जो वर्तमान (दिट्ठधम्मिको) और भविष्य (संपरायिक) दोनों से संबंधित है, और अनुशासन के अधीन प्राणियों की प्रवृत्ति (अज्जासय) के अनुरूप है; यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, सुदेसीतो का अर्थ है: अच्छी तरह से समझाया गया; घटना (पवत्ति) और उससे विमुख होने (निवत्ति) तथा दोनों के कारणों (हेतु) को दृढ़तापूर्वक प्रकट करते हुए (पकासना) अच्छी तरह से शिक्षा दी गई है; यही अर्थ है। चक्खुमता का अर्थ है: बुद्ध द्वारा, जिनके पास पाँच प्रकार की आँखें थीं: मांसल (मांसा) आँख, दिव्य (दिब्बा) आँख, ज्ञान (पञ्ञा) आँख, जागृत (बुद्ध) आँख और सार्वभौमिक (समन्त) आँख। बुद्धेन का अर्थ है: सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा। आदिच्चबंधुना का अर्थ है: सूर्य के वंशज द्वारा। वास्तव में, शाही योद्धाओं (क्षत्रिय) की दो प्रकार की वंश-परंपराएँ होती हैं; सूर्य की वंश-परंपरा और चंद्रमा की वंश-परंपरा; वहाँ, राजा ओक्काका की राजवंश-परंपरा को सूर्य की वंश-परंपरा समझा जाना चाहिए; उस वंश से उत्पन्न होने के कारण, शाक्य सूर्य के कुल के थे और भगवान को "आदिच्चबंधु (सूर्य के वंशज)" कहा गया है। दूसरे शब्दों में, वे सूर्य के वंशज भी हैं, इस प्रकार, भगवान सूर्य के रिश्तेदार हैं। इसका अर्थ वही है जो पहले कहा गया था (हेट्ठ)। सब्बसंयोजनतितो का अर्थ है: सभी बंधनों से मुक्त हो जाना, क्योंकि वह स्वयं सभी बंधनों (संयोजन) से मुक्त हो गया था, जिसमें काम (राग) का बंधन भी शामिल है; सब्बवट्ट विनाशनो का अर्थ है: सभी जन्मों के चक्रों का नाश करने वाला, क्योंकि उसने सभी जन्मों (वट्ट) के दुराचार और कर्मों (कम्म) के परिणामों (विपाक) को नष्ट कर दिया था; निय्यानिको का अर्थ है: जन्मों (संसार) के चक्रों में भटकने से मुक्त होकर मुक्ति दिलाने वाला। उत्तरणो का अर्थ है: पार करने वाला, क्योंकि इसका अर्थ है पुनर्जन्मों के चक्रों (संसार) की विशाल बाढ़ (ओघ) से स्वयं को पार करना (समुत्तरणत्थ); तन्हामूलविशोसानो का अर्थ है: वह व्यक्ति जिसकी अज्ञानता (अविज्जा) के कारण तृप्ति का स्रोत सूख गया हो, क्योंकि सभी प्रकार की तृप्ति (तन्हा) जैसे कि कामतन्हा और इसी प्रकार की अन्य तृप्ति, साथ ही अज्ञानी (अयोनिसो) जागरूकता (मोनसिकारा) का स्रोत (मूल) वाष्पित और सूख गया हो। विसमूलं का अर्थ है: विष का आधार, क्योंकि यह विषैले दर्द (विस्सद्दुक्खस्स) का कारण है, साथ ही यह तीन प्रकार के ज्ञान (वेद) के आत्म-प्रवेश (संपटिवेध) के विनाश (विद्धंसन) का कारण भी है; आघटनम् का अर्थ है: हत्या, क्योंकि यह वह स्थान है जहाँ जीवों का विनाश (ब्यासन) उत्पन्न होता है (उप्पति), दूसरे शब्दों में, यह दुराचार (किलेसा) का कार्य (कम्मं) है; चेत्वा का अर्थ है: स्वयं काटकर अलग करने के बाद (समुच्चिन्दित्वा); निब्बुतिम् का अर्थ है:निर्वाण प्राप्त करने के कारण।

अज्ञानता (अयोनिसो) और मनोभ्रंश (आसवा) भी अज्ञानता (आआण) की जड़ हैं; वास्तव में, ऐसा कहा गया है: "अज्ञान (अविज्जा) की उत्पत्ति (सन्दय) के कारण; भेदाय का अर्थ है वजिरा के समान ज्ञान द्वारा विखंडित करना; दूसरे शब्दों में, जब "अज्ञान पर निर्भर अविज्जा पच्चया संखार" जैसे कथन के कारण अज्ञान की जड़ होती है, जिससे मिठाइयाँ उत्पन्न होती हैं, इत्यादि; अस्तित्व का चक्र

(भवचक्क); सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान के वजिरा रूपी हीरे के हथियार द्वारा उस चक्र को काटने (पादालन) के उद्देश्य से सिखाया गया है; इस प्रकार, संबंध (संबंध) है। कम्मयन्तविघातनो का अर्थ है: कर्मों (कम्म) को नष्ट करने (घटितसस) के लिए शरीर (अत्तभाव) की यंत्र-तंत्र (यन्त) का विनाशक (विद्धंसनो)।" viññāṇānam pariggahe का अर्थ है: जब वह अपने कर्मों के फलस्वरूप (kāmabhava) आदि में चेतना एकत्रित (gahaṇe) कर रहा था; तब यही कहना शेष है (vacanaseso)। वास्तव में, इस और उस जन्म में गर्भ धारण करने के कारण, सभी चेतनाएँ भी धारण कर ली हैं जो इस और उस जन्म पर निर्भर हैं। Nāṇavajira nipātano का अर्थ है: ज्ञान रूपी हीरे के हथियार का गिरना; ज्ञान रूपी हीरे के हथियार को गिराकर अलग कर देना; वास्तव में, दिव्य सत्य (lokuttaradhamma) उत्पन्न होकर ऐसा करता है। (उपज्जति) परन्तु चेतना के उन रूपों को तोड़कर (विञ्ञाणि) जो सातवें अस्तित्व में उत्पन्न होने के योग्य हैं इत्यादि।

वेदनां विञ्ञापणो का अर्थ है (वह जो सुख से शुरू होकर तीन प्रकार की संवेदनाओं (वेदना) की जानकारी देता है, जो क्रमानुसार (यथक्कमं) स्थायी पीड़ादायक कांटों (दुक्खा-सल्लानिच्च) के माध्यम से निरंतर (याथावतो) बनी रहती हैं)। उपादानप्पमोचनो का अर्थ है: इंद्रिय सुख आदि चार प्रकार के आसक्ति से मन (सन्ताना) को मुक्त करने वाला (विमोचको)। धवं अंगारकासुं व, ञाणेन अनुपस्सानो का अर्थ है: नौ प्रकार की इंद्रिय-संबंधी अवस्थाओं के अस्तित्व की ओर संकेत करने वाला (दस्सेता), जो मनुष्य की ऊँचाई से परे जलते हुए कोयले के ढेर के समान, फटे हुए अग्नि के रूपों से जलने के समान हैं (साधिकपोरिसं), निरंतर रूप से। सही मार्ग (मग्गा) के ज्ञान के माध्यम से चिंतन किया गया।

महारस्सो का अर्थ है: अत्यंत स्वादिष्ट, क्योंकि इसका अर्थ शांति और उत्कृष्टता के कारण असंतुष्ट (अतित्ति) करना है; सुद्ध गम्भीरो जरामच्चुनिवारानो का अर्थ है: वृद्धावस्था और मृत्यु का निषेध करने वाला (पटिषेधको), क्योंकि यह भविष्य के अस्तित्व को प्रभावित करने से रोकता है (निवत्तनेन), क्योंकि यह संचित सामग्री (संभर) के माध्यम से उस चीज़ में स्थापित (पटिट्ठाय) है जिसे प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए (अलभनेय्या), क्योंकि उसमें लीन होना कठिन (दुरवागहताय) है। अब, विशिष्ट गुण (गुणविशेष) से जुड़े सत्य (धम्म) को दर्शाने के लिए, जैसा कि उसी रूप में (सरूपतो, विस्तार से) कहा गया है, उन्होंने इस प्रकार कहा: "अरियो अत्थांगिको (आठ प्रकार के श्रेष्ठ)", और फिर अपने कुछ गुणों (कतिपाये) को प्रकट करने के लिए उन्होंने कहा "दुक्खूपसमानो शिवो" इत्यादि। इसका अर्थ है — अरियो (श्रेष्ठ) क्योंकि इसका अर्थ सर्वांगीण पवित्रता है; अत्थांगिको (आठ प्रकार के) क्योंकि इसमें आठ सत्यों (धम्म) का संयोजन (समधान) है, जो सही दृष्टि (सममदित्थी) से शुरू होता है; मार्गो (सही मार्ग), क्योंकि इसका अर्थ निर्वाण की खोज (गवेसनट्ट) है। दुःखवुपसमनो (पीड़ादायक कष्टों का पूर्ण निवारण) क्योंकि इसका अर्थ है पुनर्जन्मों के चक्रों के संपूर्ण दर्द (सकलदुक्खा) को शांत करना (वुपसमना); शिवो (शीत) क्योंकि इसका अर्थ है सुरक्षित होना।

पटिच्चुप्पन्नधम्मनं का अर्थ है: इस व्यवस्था (इतो) के बाहर (बाहीरक) अवसर पर, सर्वथा आत्मजागृत बुद्ध द्वारा सूचित न किए जाने के कारण, कर्म और प्रतिक्रिया (कम्मविपाको) पर विकृति (विपल्लासो) हो सकती है; इस प्रकार विकृत न होकर और कर्म (कम्मम्) को कर्म और प्रतिक्रिया (विपाक) को भी आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पन्नेसु) के कर्मों (धम्म) में प्रतिक्रिया के रूप में समझकर, शाश्वतवाद (सस्सता) और शून्यवाद (उच्छेद) की भ्रांति (गाह) को प्रारंभिक (पुब्बभाग) ज्ञान (ज्ञान) के संवर्धन (जनना) का कारण (हेतु) मानकर उसे नष्ट (विधमनेन) करना; yāthāvato ālokadassano (लगातार प्रकाश को देखते हुए), कर्ता (takkarassa) के पारलौकिक (या अलौकिक) ज्ञान (lokuttarañāṇa) के प्रकाश (āloka) का द्रष्टा (dassano)। Mahakhemangamo का अर्थ है: वह जाता है और जीवों को भी निर्वाण तक पहुँचाता है, जो अत्यंत सुरक्षित स्थान है क्योंकि वहाँ किसी भी समय किसी के द्वारा किसी को भी कोई कष्ट नहीं पहुँचाया जाता है। Santo का अर्थ है: शांत क्योंकि दुराचार (kilesa) की सभी जलन और गर्मी बुझ गई है और शांत हो गई है (vūpasama); परियोसानभद्दको निर्वाण के तत्व (धातु) की प्राप्ति का कारण बनता है, मन की स्थिर (अकुप्पाय) मुक्ति (चेतोविमुतीय) के साथ-साथ अस्तित्व के किसी भी आधार (अनुपादिसेसाया) के बिना, जिसे दृष्टिवान (चक्खुमा) बुद्ध ने भली-भांति बताया था; यही व्याख्या है।

इस प्रकार, थेरा ने अपने अरहंतत्व (आञ्ञा) को इंगित (पदेसेना) करके, स्वयं उस सत्य (धम्म) की प्राप्ति की अवस्था को प्रकट किया और विभिन्न तरीकों से उस महान (आर्य) सत्य (धम्म) की प्रशंसा की।

थेरा मिगाजाला के श्लोक पर टीका पूर्ण हो चुकी है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (218): जेंटा पुजारी का बेटा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (218) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
218. जेंटा
पुजारी का बेटा [1]
बुद्ध युग में सावत्थी में कोसल के राजा के पुरोहित के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम जेंत रखा गया। बड़े होकर वे जन्म, धन और पद के लाभों से इतने मुग्ध हो गए कि जहाँ उन्हें सम्मान देना चाहिए था, वहाँ उन्होंने अनादर दिखाया और अहंकार से भर गए। एक दिन वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, जो एक विशाल सभा के बीच उपदेश दे रहे थे, और उन्होंने सोचा: 'यदि समना गौतम (बुद्ध) पहले मुझसे बात करेंगे, तो मैं भी बोलूँगा; मैं स्वेच्छा से उनसे बात नहीं करूँगा।' इस प्रकार, भगवान (बुद्ध) ने उनसे बात नहीं की और उन्होंने भी अहंकार के कारण कुछ नहीं बोला, इस प्रकार उन्होंने वहाँ खड़े-खड़े अपने आने का कारण प्रकट किया। तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें एक श्लोक में संबोधित किया:

अहंकार और व्यर्थ की कल्पनाओं में जीना अच्छा नहीं है।
हे ब्राह्मण (पुजारी), लाभप्रद कर्मों का पालन करो।
जिस लाभ की खोज में तुम यहाँ आए हो
, उसी पर अपना जीवन व्यतीत करो।

जेंता ने सोचा, 'वह मेरे मन की बात जानता है!' और वह उनकी ओर बहुत आकर्षित हुआ, और उनके चरणों में गिरकर सर्वोच्च सम्मान व्यक्त किया। उसने भगवान (बुद्ध) से पूछा:

किसके प्रति हमें अहंकार नहीं रखना चाहिए?
हमें किसका सम्मान करना चाहिए? हमें किसकी पूजा करनी चाहिए?
क्या किसके प्रति श्रद्धा दिखाना उचित है?

उस पर परम पूज्य बुद्ध ने कहा:

माता और पिता के लिए भी, वैसे ही
बड़े भाई के लिए, शिक्षक के लिए,
ब्राह्मण (पुजारी) के लिए और पीले वस्त्र वालों के लिए:
इनके लिए अहंकार नहीं पालना चाहिए,
इनका आदर करना चाहिए, इनका आदर करना चाहिए,
इनके प्रति श्रद्धा दिखाना अच्छा है।
शांत, कुशल, समझदार, निर्मल अरहंतों (प्रबुद्ध व्यक्तियों)
के लिए, जिनके अहंकार ने लक्ष्य पार करते ही नाश कर दिया, [2] उन्हें अन्य सभी से बढ़कर प्रणाम करना चाहिए।

उस शिक्षा से जेंता ने निर्वाण की प्रथम समाधि (सोतापना) प्राप्त की , भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। अपनी इस उपलब्धि का जश्न मनाते हुए उन्होंने इस प्रकार अन्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की:

[423] जातिमदेना मट्टोहाṃ भोगैसरियेना सीए,॥
संथानवनरूपेण मदमत्तो अचरिहाऽ॥ ॥

[424] नट्टनो समकाṃ कान्सी अतिरेकाṃ सीए मनिसाṃ,॥
अतिमानहतो बालो पट्ठद्धो उस्सितद्धजो॥ ॥

[425] मातरौ पितरञ्चपि अन्नेपि गरुसम्मते,॥
न केंचि अभिवदेसिऽ मनत्थद्धो अनादारो॥ ॥

[426] दिस्वा विनायकाअग्गाअ सारथिनाअ वरुत्तमअ,॥
तपन्तं इव आदिच्चै भिक्खुसंघापुरक्खतं ॥॥ ॥

[427] मनं मदां च चण्डेत्वा विप्पसन्नेन चेतसा,॥
सिराणा अभिवादेसिऽ सब्बसत्तनमुत्तमं ॥॥ ॥

[428] अतिमानो [46] च ओमानो पहिना सुसमुहता,॥
असुमिमानो समुच्चिनो सब्बे मानवविधा हता' ति.॥ ॥

[423] अपने जन्म, अपने धन
और प्रभाव से मोहित होकर, अपने रूप की सुंदरता से
मदहोश होकर, मैंने अपना जीवन व्यतीत किया।

[424] मुझे बहुत कुछ पसंद था, लेकिन कोई भी मेरे जैसा नहीं था।
एक बेचारा नौजवान मूर्ख, घमंडी और बिगड़ा हुआ,
अभिमान से हठी, दिखावा करने वाला और असभ्य।

[425] माता और पिता, और अन्य भी,
सम्मान और आदर का दावा करते हुए,
मैंने कभी किसी को सलाम नहीं किया, असभ्य, गर्व से अकड़ा हुआ।

[220] [426] तब मैंने उन्हें मार्गदर्शक, सर्वोच्च नेता,
मानव जाति के चालकों में अद्वितीय प्रमुख,
सूर्य की तरह चमकते हुए महिमा में,
भिक्षुओं की पूरी मंडली के साथ देखा।

[427] अहंकार और व्यर्थ अभिमान को त्यागकर,
मेरे हृदय में एक पवित्र प्रसन्नता भर गई,
मैंने विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर
उन्हें प्रणाम किया जो समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ और श्रेष्ठ हैं।

[428] अब अच्छी तरह से मिटा दिया गया है और दूर कर दिया गया
है झूठा अभिमान और पाखंड दोनों;
'मैं क्या हूँ' और वह दो भागों में टूट गया है,
हाँ, आत्म-अभिमान का हर रूप नष्ट हो गया है। [3]

[1] उन्हें CXI के जेंटा से अलग करने के लिए।

[2] अरहंतत्व (ज्ञानोदय) की ओर ले जाने वाले चौथे या सर्वोच्च मार्ग में टूटने वाले अंतिम 'बंधनों' में से एक माना है। सोतापण के रूप में वह प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) में प्रवेश करता है। तुलना करें बुद्ध. ण्य, पृष्ठ 298, नोट 3।

[3] टीका कहती है कि नौ रूप हैं। इनका उल्लेख विभंग, पृष्ठ 389 f में किया गया है। बौद्ध धर्म में मान में अहंकार के सभी दखल शामिल हैं। यह सत्ता एक मिथक थी, और इसे अपने पड़ोसी के मिथक के विरुद्ध प्रतिद्वंद्विता में नहीं रखा जाना था।

6.9 [218] पुरोहितपुत्तजेनतत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी

जातिमदेन मत्तोऽहं से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेर जेंता का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, जब बुद्ध का जन्म हुआ, तो वे राजा कोसल के निजी पुच्छार (पुचित) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिए; उनका नाम जेंता था। वयस्क होने पर, वे अपने धन, अधिकार (इस्रिया) और सौंदर्य (रूपा) के अहंकार (मदा) में मदहोश (मत्तो) होकर इधर-उधर भटकने (विकारति) लगे, दूसरों का तिरस्कार (हिलेंतो) करते रहे, गुरुओं (गुरुट्ठनिया) का अनादर (अपाचित्त) करते रहे और अहंकार (मानथद्धो) से फूले नहीं रहे। एक दिन उन्होंने गुरु को अपने चारों ओर विशाल श्रोताओं को सत्य का उपदेश देते हुए देखा, और पास जाकर उन्होंने ऐसा किया, जिससे उनके मन में यह विचार आया; "यदि भिक्षु गौतम पहले मुझसे बात करें तो मैं उनका अनुसरण करूंगा; यदि नहीं, तो मैं उनसे बात नहीं करूंगा;" वे उसी मुद्रा में खड़े रहे और जब भगवान बुद्ध ने पहले उनसे बात नहीं की, तो उन्होंने अपने अहंकार के कारण कोई संबोधन नहीं किया और जाने का संकेत दिया; तब भगवान बुद्ध ने एक श्लोक के माध्यम से उनसे बात की।

"हे ब्राह्मण! अभिमान शुभ नहीं है।"

हे ब्राह्मण, जो जरूरतमंद है!

उस इच्छा के अनुसार कहना चाहिए

(अत्था) जिसके लिए तुम आए थे।

उन्होंने मन ही मन कहा, "भिक्षु गौतम मेरे मन की बात जानते थे," और विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर, परम विनम्रता का परिचय देते हुए, इस प्रकार प्रार्थना की:

"किन लोगों में घमंड नहीं होना चाहिए?"

किसके प्रति होना चाहिए?

सम्मान? किसके प्रति होना चाहिए?

श्रद्धा? किसके प्रति है वह श्रद्धा?

श्रद्धापूर्वक भेंट (पूजिता) कुआँ

बनाया हुआ अच्छा है?

भगवान बुद्ध ने उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्हें सत्य इस प्रकार समझाया:

माता और पिता दोनों में,

इसके अतिरिक्त सबसे बड़े भाई में;

चौथे, शिक्षक के साथ-साथ

भिक्षुओं और कुलीन जीवन के नेताओं में

(ब्राह्मण); उनमें अभिमान होना चाहिए

न दिखाया जाए (मानं कायिरथ); एक

उनके प्रति आदरपूर्ण व्यवहार होना चाहिए।

उनका आदर किया जाए;

आदरपूर्वक भेंट, शाबाश (सुपूजिता)

उनके लिए भलाई (साधु) हो।

अभिमान (निहस्सा) को त्यागना और

अभिमान रहित (अत्थद्धो) व्यक्ति को भुगतान करना चाहिए

अतुलनीय को श्रद्धांजलि (नमस्ते)

(अनुत्तरा) अरहंत, जो बन गए थे

शांत (सीतिभूत), जिन्होंने वह किया जो उन्होंने किया

क्या करना चाहिए और जो इससे मुक्त हो चुका था

घाव।

उस शिक्षा के माध्यम से वह धारा-विजेता (सोतापन्न) बन गया, भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का कर्म किया, अरहंतत्व प्राप्त किया और अपने उचित कर्म (पटिपत्ति) की घोषणा (मुखेना) करते हुए अपने अरहंतत्व को प्रकट करते हुए ये श्लोक कहे:–

423. "पागलपन से पागल हो जाने के कारण

जन्म से ही धनवान और अधिकार संपन्न

साथ ही, सुंदर (रूपा) शारीरिक

रूप (संथान) और रंग (वण),

मैं पागलपन के नशे में चूर होकर इधर-उधर भटकता रहा।

424. "मैंने सोचा था कि मेरे बराबर कोई नहीं है, सिवाय मेरे।"

सभी से परे (अतिरेका); मैंने अपना अत्यधिक अभिमान धारण किया और मैं मूर्ख था, बिलकुल अकड़ा हुआ (पत्थद्धो) और (अपना) ध्वज (धजा) ऊँचा (उस्सिता) फहराया।

425. मैंने अपना सम्मान व्यक्त नहीं किया (अभिवादेषि)

मेरी माँ और पिताजी को भी और दूसरों को भी

साथ ही, मान्यता प्राप्त (सम्मत) के रूप में

शिक्षक; मेरे अहंकार से फूले हुए थे

सम्मान की भावना का अभाव।

426. सबसे आगे स्पष्ट देखने पर

नेता (विनायक), सबसे उत्कृष्ट

रथ चालकों के बीच, चमकते हुए, समान रूप से

भिक्षुओं के दल के सबसे आगे सूर्य था।

427. मैंने अपना अभिमान और साथ ही साथ त्याग दिया

नशा किया और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की

मेरा सिर, सभी में सबसे उत्कृष्ट के लिए

मेरे मन में श्रद्धा के साथ जीवित प्राणियों के प्रति श्रद्धा है।

प्रसन्न (vippasannena cetasā).

428. मेरा अभिमान, श्रेष्ठ और हीन

उसे त्याग दिया गया था और काफी दूर ले जाया गया था;

अहंकारी (सामी) अभिमान अच्छी तरह से था

सभी अभिमानी राजाओं का वध कर दिया गया था।

429. मेरा अभिमान, श्रेष्ठ और हीन

उसे त्याग दिया गया था और काफी दूर ले जाया गया था;

अहंकारी (सामी) अभिमान अच्छी तरह से था

सब कुछ कट गया; हर तरह का स्वाभिमान नष्ट हो गया था।"

वहाँ, जातिमदेन मत्तोऽहं का अर्थ है: मैं एक उच्च कोटि के ब्राह्मण परिवार में जन्मा था; मैंने अपने परिवार के गौरव से मदहोश होकर यह आशय किया कि "मेरे जैसा उच्च कुल का कोई और व्यक्ति नहीं है।" यही व्याख्या है। भोगैसारियेन च का अर्थ है धन और आधिपत्य के कारण उत्पन्न हुए सौभाग्य और आशीर्वाद पर निर्भर होकर, मैं अपने आप को अधर्म से मदहोश कर बैठा। संठाना वण्णरूपेण का अर्थ है: शरीर (संठाना) ऊंचाई (आरोहसंपत्ति) और परिधि (परिणाह) में समृद्धि है; रंग (वण्ण) त्वचा की सुनहरे रंगत में समृद्धि है, इत्यादि; रूप (रूपं) शरीर के प्रमुख और गौण अंगों की सुंदरता (शोभ) है। यहाँ भी, व्याख्या को इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। मदमत्तो का अर्थ है: बताए गए तरीके के अलावा अन्य प्रकार के पागलपन से मदहोश होना।

Nāttano samakaṃ kañci' atirekaṃ ca maññissaṃ का अर्थ है: मैं जन्म आदि के संदर्भ में किसी को भी अपने समान या समरूप नहीं मानता; मैं किसी को भी अपने से समरूप या श्रेष्ठ नहीं समझता; मैं किसी को भी अपने समरूप नहीं मानता; मेरा श्रेष्ठ (अधिकं) कौन हो सकता है? यही इसका अर्थ है। Atimānahato bālo का अर्थ है: मैं मूर्ख हूँ; मूर्ख होने के साथ-साथ (tato) मैंने चालाकी से (kusalācāro) झूठे विचारों (khatūpahata) का जीवन व्यतीत किया। Patthaddho ussitaddhajo का अर्थ है: परन्तु इसके अलावा, मैं

अपने गुरुओं के प्रति आज्ञाकारिता का भाव भी न रखने के कारण अत्यधिक (bhusaṃ) कठोर (thaddho), अडिग (anonamanathaddha) हो गया था, और अपने अभिमान का ध्वज (dhaja) बुलंद (ussita) कर बैठा था।

“मातरं (माँ)” से शुरू होने वाला श्लोक कही गई बात के अर्थ को और स्पष्ट करने के लिए जोड़ा गया है। यहाँ अञ्ञा (प्राप्ति) का अर्थ है: बड़े भाइयों आदि के लिए, साथ ही भिक्षुओं और ब्राह्मणों के लिए। गरुसम्मे का अर्थ है: शिक्षक के रूप में मान्यता प्राप्त और शिक्षक का स्थान ग्रहण करने वाले। अनादरो का अर्थ है: सम्मानहीन।

Disvā vināyakaṃ aggaṃ का अर्थ है: इस प्रकार अहंकार से फूलकर (मानाथद्धो) भटकते हुए, (मैंने देखा) अनुशासनात्मक नेता को, क्योंकि वे आत्मनिर्भर होने के कारण नेता हैं, क्योंकि वे वर्तमान (दिट्ठधम्मिका) और भविष्य (संपरायिका) से संबंधित परम (परम) लाभों (अत्थ) के माध्यम से अनुशासन के योग्य (वेनेय्यानं) लोगों को अनुशासित करते हैं; वे दिव्य जगत सहित संसार में सबसे आगे (अग्गं) हैं, क्योंकि वे नैतिक उपदेशों (शील) आदि जैसे गुणों (गुण) के कारण सर्वश्रेष्ठ (सेट्ठ) हैं; सारथीनं वरुत्तमं का अर्थ है: सबसे उत्कृष्ट सारथी, क्योंकि उन्होंने निश्चित रूप से (अक्कन्तता) उन मनुष्यों को वश में कर लिया जिन्हें वश में किया जाना चाहिए; वरुत्तमं का अर्थ है: अत्यधिक उत्कृष्ट; तपन्तं वरुत्तमं का अर्थ है: सूर्य के समान प्रकाशमान, जिसकी किरणें एक फादम लंबाई की किरणों के समान हैं, इत्यादि; गुरु को, जो सभी जीवित प्राणियों में सबसे उत्कृष्ट हैं, अपने चारों ओर भिक्षुओं के दल के प्रमुख के रूप में सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए देखने के बाद; चड्डेत्वा का अर्थ है; धन-दौलत के नशे में चूर होकर जो उन्माद (पवत्तमानं) उस समय उत्पन्न हो रहा था, उसे त्यागकर, इस प्रकार कहा: “मेरे सिवा कोई श्रेष्ठ नहीं; अन्य हीन (हीना) हैं,” बुद्ध की शक्ति से पूर्णतः भयभीत होकर, मैंने प्रसन्न मन से अपने सिर को झुकाकर उन्हें प्रणाम किया; यही व्याख्या है। परन्तु, इस व्यक्ति ने गुरु के दर्शन मात्र से ही अपना अहंकार कैसे त्याग दिया, जबकि वह अहंकार से भरा हुआ था? वास्तव में, इसे इस प्रकार नहीं देखा जाना चाहिए। उसने गुरु के दर्शन होते ही अपना अहंकार नहीं त्यागा; उसने अपना अहंकार उस शिक्षा के कारण त्यागा, जो इस प्रकार शुरू हुई: “हे ब्राह्मण! अहंकार अच्छा नहीं है” इत्यादि। उस संबंध में (संध्या) इस प्रकार कहा गया है: "मानं मदन च चत्तत्वा, विप्पसन्नेन चेतासा सिरसा अभिवादेसिम, अहंकार और पागलपन को दूर करने के बाद, (मैं), अपने मन से प्रसन्न होकर, अपने हाथ से पूजा करता हूं।" विप्पसन्नेन चेतसा का अर्थ है: वाद्य कथन को विभक्ति मामले (इत्थमभूत) के अंकन (लक्खाने) में देखा जाना चाहिए।

अतिमानो का अर्थ है: वह अभिमान जो "अहमेव सेट्ठो (मेरे सिवा कोई श्रेष्ठ नहीं)" के रूप में उत्पन्न होता है। ओमानो का अर्थ है: वे कहते हैं: यह दूसरों से हीनता की भावना से उत्पन्न होने वाला वह अभिमान (दहन्तस्स) है, जिसमें वे कहते हैं, "ये तो नीच (निहिना) हैं।" अतिमानो का अर्थ है: श्रेष्ठ अभिमान (सेय्यामान) जो स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने के कारण उत्पन्न होता है, और इस प्रकार कहते हैं, "सेय्यो'हमस्मि (मैं श्रेष्ठ हूँ)।" ओमानो का अर्थ है: निम्न अभिमान (हीनमान) जो इस प्रकार उत्पन्न हुआ है: “हिमोऽहमस्मि (मैं निम्न हूँ):” पाहीना सुसमुहता का अर्थ है: निम्न (हेट्ठिमा) मार्गों (मग्ग) के माध्यम से त्यागे जाने के बाद, और श्रेष्ठ (अग्ग) मार्ग (मग्ग) द्वारा उत्कृष्ट (सुट्ठु) रूप से वर्णित (समुग्घाटिता)। अस्मिमानो का अर्थ है: “एसोऽहमस्मि (यह मैं हूँ)” और स्कंधों में “अहं (मैं)” के रूप में ग्रहण (गहण) के कारण उत्पन्न अभिमान। सब्बे का अर्थ है: न केवल श्रेष्ठ अभिमान, निम्न अभिमान, अहंकारी अभिमान (अस्मिमान) बल्कि वास्तव में, अभिमान के सभी प्रकार और अभिमान के वे अंश जो नौ प्रकार के अभिमान हैं जैसे श्रेष्ठ अभिमान (सेय्यामान), श्रेष्ठ (सेय्या) आदि, और जो आंतरिक वर्गीकरण (भेद) द्वारा अनेक प्रकार के हैं: हता का अर्थ है सर्वोच्च मार्ग (मग्ग) द्वारा समाप्त कर दिया गया है।

थेरा जेंटा के श्लोक पर टीका पूर्ण हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(219):सुमना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा प्राचीन अनुवाद से रूपांतरित।
आचार्य धम्मपाल द्वारा टीका (अत्थकथा)।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (219) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
219. सुमाना
बुद्ध युग में पुनर्जन्म लेकर उन्होंने एक गृहस्थ शिष्य के परिवार में जन्म लिया, जो पूज्य थेरा अनुराधा के गृहस्थ सेवक बन गए थे। [1] उस गृहस्थ के सभी बच्चे अब तक कम उम्र में ही मर जाते थे। पिता ने कहा, 'यदि मुझे एक और पुत्र प्राप्त हुआ, तो मैं उसे थेरा से भिक्षु

दीक्षा दिलवाऊंगा।' दस महीने बाद उन्हें एक स्वस्थ पुत्र का जन्म हुआ, और जब बच्चा सात वर्ष का हुआ, तो उसे भिक्षु दीक्षा दी गई। अपनी अंतर्दृष्टि की परिपक्वता के कारण, थेरा की सेवा करते हुए उन्होंने शीघ्र ही छह प्रकार की अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्चतर ज्ञान) प्राप्त कर ली। जल लाने के लिए एक घड़ा लेकर, सुमन इद्धि शक्ति से अनोत्तट्टा झील पर आए। [2] और झील के चारों ओर कुंडली मारे एक दुष्ट सर्प-राजा ने अपना विशाल फन ऊपर उठा लिया और उन्हें जल लेने नहीं दिया। तब सुमना ने गरुड़ पक्षी का रूप धारण किया [3] और [221] सर्प पर विजय प्राप्त की, और जल लेकर थेरा लौट आया। और भगवान (बुद्ध), जेतवन में बैठे हुए, उसे जाते हुए देखा, और सारिपुत्त को देखने के लिए बुलाया, और नीचे दिए गए चार श्लोकों में उसकी प्रशंसा की।

अब सुमना ने अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की गवाही देते हुए, अपने श्लोकों में निम्नलिखित श्लोक जोड़े:

[429] यदा नवो पब्बजिता जातिया सत्तवास्सिको,॥
इद्धिया अभिभोत्वान् पन्नगिन्दौ महिद्धिकां॥ ॥

[430] उपज्झायस्सा उदकाṃ अनोत्ता महसार,॥
आहारामि ततो दिस्व माऽ सत्थ एतदब्रवी॥ ॥

[431] सारिपुत्त इमाँ पस अगाच्छन्तं कुमारकाṃ,॥
उदकुंभकमादाय अज्झत्तं सुसमाहितो ॥॥ ॥

[432] पसादिकेन वत्तेन कल्याणैरियापथो,॥
समानेरोनुरुद्धस्सा इद्धिया च विसारदो॥ ॥

[433] अजनीयेन अजन्नो साधुना साधुकारितो,॥
विनितो अनुरुद्धेन कतकिच्चेन सिखितो॥ ॥

[434] सो पट्वा परमं शांतिं सच्चिकत्वा अकुप्पतं,॥
समानेरो सा सुमनो मा मन जान्नति इच्छति' ति.॥ ॥

[429] जब मैं सात साल का था और नया भिक्षु बना, तब
मैंने अलौकिक शक्ति से
सर्प राजा की अद्‌भुत शक्ति पर विजय प्राप्त की।

[430] जब मैं अपने गुरु के लिए
अनोतत्ता की महान झील से जल लाने गया, तब
भगवान (बुद्ध) ने मुझे इस प्रकार आते देखा और कहा:

[431] देखो, सारिपुत्त, कैसे वह छोटा लड़का
पानी का घड़ा लिए हुए आता है,
पूरी तरह तल्लीन, एकदम ध्यानमग्न।

[432] अपनी गरिमामय खोज पर उनका आचरण महान है,
और अलौकिक शक्ति में अच्छी तरह परिपक्व है,
हमारे अनुराधा के दल का यह नौसिखिया।

[433] उच्च नस्ल के प्रशिक्षक द्वारा उच्च कोटि की शिक्षा दी गई,
कुशल द्वारा पूर्णतः निपुण बनाया गया,
पूर्ण योग्यता द्वारा सक्षम बनाया गया,
अनुराधा द्वारा शिक्षा और अनुशासन दिया गया:

[434] उसने सर्वोच्च शांति और भलाई प्राप्त कर ली
और उतार-चढ़ाव को समझ लिया, यहाँ तक कि वह -
यह नौसिखिया सुमना - [अपनी शक्ति छिपाना चाहता था]
और इस प्रकार: मुझे कोई न जाने! चाहता था। [4]

[1] सीसीएलवीआई देखें।

[2] हिमालय क्षेत्र में सात पौराणिक झीलों में से एक (विनय ग्रंथ, i. 124; मिलिंदा, ii. 137)।

[3] भारत का 'रोक'-पक्षी.

[4] यदि अनुराद्ध चाचा होते, तो सुमना संभवतः सी.सी.आई. का सुमना ही होता, और यह एक द्विभाजित कथा का एक और उदाहरण हो सकता है। हालाँकि, यह नाम असामान्य नहीं है। यह सुमना संभवतः पश्चिम के पूजनीय थेरा हैं, जिन्होंने तीन अन्य और पूर्व के चार थेरों के साथ बुद्ध की मृत्यु के एक शताब्दी बाद वैशाली की सभा की अध्यक्षता की थी (विनय ग्रंथ , iii. 407)। वैसे भी एक परंपरा थी कि इन आठ थेरों में से दो - सुमना और वासभागामी - अनुराद्ध के शिष्य थे, और 'तथागत के दर्शन किए थे' (दीपवंग, iv. 48; v. 24)।

6.10 [219] सुमनत्थेरा के श्लोक पर टिप्पणी
यदानव पब्बजितो से शुरू होने वाला श्लोक पूज्य थेरा सुमन का है। इसका उद्गम क्या है? पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित करते हुए, उन्होंने भगवान सिखि के समय एक माला बनाने वाले के परिवार में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने भगवान सिखि को देखा, श्रद्धा से भर गए और उन्हें चमेली के फूल अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के कारण, वे देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते रहे और जब बुद्ध प्रकट हुए, तब एक भक्त के घर में गर्भ धारण किया। वह भक्त पूज्य थेरा अनुराधा का सेवक था। उससे पहले जन्म लेने वाले बालक मर जाते हैं। इसलिए उन्होंने यह योजना बनाई: "यदि मुझे पुत्र प्राप्त हो, तो मैं उसे अपने स्वामी, थेरा अनुरुद्ध के समक्ष भिक्षु बनाऊँगा।" दस माह के भीतर ही उनका जन्म हुआ, वे स्वस्थ थे, धीरे-धीरे बड़े हुए और सात वर्ष के हो गए; उनके पिता ने उन्हें थेरा के समक्ष भिक्षु बना दिया। उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया और उसके बाद, ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता के कारण आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने का कर्म करते हुए, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहंत बन गए, लेकिन कुछ ही समय बाद, थेरा की सेवा करते हुए, वे अपनी जादुई शक्ति से एक जलपात्र (घट) लेकर अनोटट्टा झील चले गए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(220): नहटका-मुनि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (221) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
220. न्हाटाका-मुनि [1]
बुद्ध युग में राजगृह में ब्राह्मण (पुजारी) वंश में पुनर्जन्म लेकर, वैदिक ज्ञान में निपुण होकर, वे स्नान-स्नातक के नाम से प्रसिद्ध हुए। तपस्वी बनकर, वे राजगृह से तीन मील दूर एक वन क्षेत्र में जंगली चावल खाकर और अग्नि की पूजा करके जीवन व्यतीत करते थे।

अब भगवान (बुद्ध) ने उनके हृदय में अर्हत्व (ज्ञानोदय) की अवस्था को एक दीपक की तरह चमकते हुए देखकर उनके आश्रम में आए। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने अपने द्वारा तैयार किया हुआ भोजन उनके समक्ष रखा। भगवान (बुद्ध) ने उसे ग्रहण किया; और इस प्रकार तीन दिन बीत गए। चौथे दिन भगवान ने कहा, 'तुम जो इतने कोमल स्वभाव के हो, इस भोजन से अपना जीवन कैसे चलाते हो?' और इस प्रकार संतत्वपूर्ण संतोष पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया। और उस तपस्वी ने सोतापान (निर्वाण की पहली समाधि) से ही अर्हंत (ज्ञानोदय प्राप्त) हो गए। भगवान ने उन्हें इस बात की पुष्टि की और चले गए। लेकिन वे वहीं रहते हुए ऐंठन से बीमार पड़ गए। भगवान (बुद्ध) उनके पास गए और दयालुतापूर्वक उनका हालचाल पूछा।

[435] वातरोगाभिनितो त्वं विहारं काने वने,॥
पविद्धगोकेरे लक्खे कथां भिक्खु करिस्सि॥ ॥

[435] हे भिक्षु, जो ऐंठन से पीड़ित होकर
जंगल में रहते हो,
तुम्हारा क्षेत्र सीमित है, तुम भयानक कठिनाइयों में जी रहे हो,
मुझे बताओ, भिक्षु, तुम कैसे जीओगे?

तब थेरा ने कहा:

[436] पीतिमुखेन विपुलेन फरित्वाना समुस्सायौ,॥
लुकमपि अभिसम्भन्तो विहारिसामि काने.॥ ॥

[437] भवेंतो सत्ताबेज्झान्गे इन्द्रियाणि बलानि च,॥
झाणासोखुम्मसम्पन्नो विहारिसं अनासावो॥ ॥

[438] विप्पामुत्तŋ किलेसेहि शुद्धचित्तŋ अनाविलाŋ,॥
अभिहन् पच्चवेक्खन्तो विहारिसं अनासावो॥ ॥

[439] अज्झट्टŋ च बहिद्ध च ये मे विज्जीसु आसव,॥
सब्बे असेसा उचिन्ना न च उप्पज्जरे पुना॥ ॥

[440] पंचकखंडा परिण्णाता तिथन्ति छिन्नमूलका,॥
दुक्खक्खयो अनुप्पत्तो नत्थि दानि पुनब्भवोऽ ति.॥ ॥

[436] आनंद और परमानंद की उमड़ती लहर से
यह नश्वर शरीर पूरी तरह से सराबोर है।
चाहे मुझे कितनी भी कठिन और कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़े,
फिर भी मैं जंगल में जीवित रहूंगा। [2]

[437] ज्ञान की सात शाखाओं का अभ्यास करते हुए,
पाँच शक्तियों का, बल भी, [3] विचार की अलौकिक ऊँचाइयों में मग्न होकर,
मैं जंगल में रहूँगा।

[438] सभी भ्रष्ट विचारों से मुक्त होकर,
शुद्ध और निर्मल हृदय से,
अक्सर ध्यान में लीन होकर,
मैं जंगल में रहूँगा।

[439] और वे सभी मादक पदार्थ (अपवित्रता/इच्छाएँ) जो कभी
भीतर, बाहर, मेरे जीवन पर हावी थे,
तराशकर बाहर फेंक दिए गए हैं, और
फिर कभी मेरे लिए नहीं उठेंगे।

[440] पाँच कारक समझे गए हैं, [4] फिर भी टूटी हुई जड़ के साथ बने हुए हैं।
अब दुःख का अंत हो गया है,
और मेरे लिए सभी पुनर्जन्म हो चुके हैं।

[1] ब्राह्मण (पुजारी) स्नातक और हमारे योद्धा के पवित्र स्नान के बीच घनिष्ठ संबंध है। एक न्हाटक को 'सीबी', स्नान का साथी कहना अनुचित नहीं होगा।

[2] देखें वक्काली, सीसीवी.

[3] तुलना करें. संकलन, पृ. 180, एफ, डी, ई.

[4] = सी.एक्स.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(221):ब्रह्मदत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

अध्याय VI.
छह श्लोक
221. ब्रह्मदत्त
बुद्ध युग में सावत्थी में कोसल के राजा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, ब्रह्मदत्त नाम से, उन्होंने जेतवन के उद्घाटन के समय बुद्ध की महिमा देखी, अपने विश्वास के कारण भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान/आध्यात्मिक शक्तियां) प्राप्त की, साथ ही धर्म (धम्म) के अक्षर और अर्थ की पूर्ण समझ भी प्राप्त की।

एक दिन जब वे भिक्षा मांगने निकले थे, तो एक ब्राह्मण (पुजारी) ने उन्हें अपशब्द कहे। थेरा चुपचाप सुनते रहे और अपने काम में लगे रहे। ब्राह्मण (पुजारी) ने फिर उन्हें अपशब्द कहे, और लोगों ने थेरा की चुप्पी पर टिप्पणी की। इस पर ब्रह्मदत्त ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा:

[441] अक्कोधस्सा कुतो कोधो दन्तस्सा सवजीविनो,॥
सम्मादानना विमुत्तस्सा उपसंतस्सा ताडिनो, ॥ ॥

[442] तस्सेवा [47] तेन पापियो यो कुद्धौ पत्तिकुज्जति,॥
कुद्धौ अप्पटिकुज्जन्तो सङ्गमाऽ जेति दुज्जयौ ॥ ॥

[443] उभिन्नमत्थm̐ कैरति अत्तानो सीए परसा कैm̐॥
पराऽसंकुपितां नात्वा यो सातो उपसम्मति॥ ॥

[444] उभिक्काm̐ टिकिकचांटाm̐ ताm̐ अत्तानो सीए परसा सीए,॥
जन मन्नन्ति बलोति ये धम्मस्सा अकोविदा॥ ॥

[441]
क्रोध से रहित , अपने मार्ग के समरूप प्रवाह पर चलने वाले,
आत्म-संयमित, शांत और सर्वोच्च अंतर्दृष्टि से मुक्त व्यक्ति के लिए क्रोध कहाँ से उत्पन्न होता है ?

[442] इन दोनों में सबसे बुरा वह है जो निंदा किए जाने पर, [224] फिर निंदा करता है। जिसने निंदा किए जाने पर फिर निंदा नहीं की , वह दोहरी जीत हासिल करता है। [1]

[443] वह दूसरे और स्वयं दोनों का
भला चाहता है; क्योंकि वह दूसरे के क्रोधित स्वभाव को
समझ गया और उसने स्वयं को शांत किया।

[444]
जो स्वयं और दूसरे का भी चिकित्सक है, उसे
लोग मूर्ख समझते हैं, क्योंकि वे धम्म मार्ग को नहीं जानते।

तब निंदा करने वाले ब्राह्मण (पुजारी) ने ये शब्द सुनकर व्यथित और प्रसन्न दोनों हुए और थेरा से क्षमा मांगी। जी हाँ, उन्होंने उनके अधीन दीक्षा ली और दूसरों के प्रति प्रेम का ध्यान करने का अभ्यास सीखा, इस प्रकार थेरा ने उन्हें क्रोध के आवेश से मुक्त किया।

[445] उप्पज्जे ते सासे कोधो अवज्जा काकाकूपमाm,॥
उप्पज्जाजे सीई रसे तन्हा पुत्तमंसुपमं सरा॥ ॥

[446] ससे धावति चित्तौ ते कामेसु च भावेसु च,॥
खिप्पां निग्ग-अन्हा सतीया किठदां विया डुप्पासुं' ती॥ ॥

[445] यदि तुममें क्रोध उत्पन्न हो, तो
आरी की आकृति पर विचार करो; और यदि
लालसा उत्पन्न हो, तो स्वयं को तृप्त करो, उस दृष्टांत को याद करो
कि कैसे उन्होंने बच्चे को खाया।

[446] यदि स्वर्ग और पृथ्वी में नए जीवन की लालसा में
तुम्हारा हृदय बेकाबू हो जाए, तो हे, इसे तुरंत
सचेतनता से रोको और नियंत्रित करो, जैसे कि मनुष्य
युवा मक्का चरने वाले अतिक्रमणकारी में उस जानवर को पाते हैं, और उसे बांध देते हैं। [2]

[1] शाब्दिक रूप से, निंदा करने वाले को वापस निंदा करता है। तुलना करें I. पेट. ii. 23; धम्मपद, श्लोक 133.

[2] ये तीन दृष्टांत बुद्ध को समर्पित तीन प्रवचनों में मिलते हैं: मज्झ., i. 129; संयुत्त, ii. 98; iv. 196. सुमेधा (सिटर्स, पृ. 173) द्वारा सूत्रों से उपमाओं का एक समान संदर्भ दिया गया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(222):सिरिमंदा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (222) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
222. सिरिमण्ड
बुद्ध युग में, सुंशुमारागिरा में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने भेषकला वन में भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनकर प्राप्त श्रद्धा से भिक्षु संघ में प्रवेश किया। [1] एक पर्व के दिन, जब वे उस स्थान पर बैठे थे जहाँ प्रस्तावना के पाठ के अंत में पाटीमोक्खा (स्वीकारोक्ति) [225] का पाठ किया जाना था [2] ...'क्योंकि [दोष] जब स्वीकार किया जाता है तो उसके लिए प्रकाश हो जाता है,' उन्होंने छिपे हुए दोषों की स्वीकारोक्ति से प्राप्त लाभ पर विचार किया, और उस पर उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ कहा: 'हे भगवान (बुद्ध) का नियम कितना पूर्णतः पवित्र है!' और इस प्रकार अंतर्दृष्टि का विस्तार करते हुए उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। प्रसन्न हृदय से उस मार्ग की समीक्षा करते हुए, उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया:

[447] चन्नमतिवस्सति विवत्तं नतिवस्सति,॥
तस्मा चन्नं विवरेथा एवं तं नातिवस्सति॥ ॥

[448] मैककुनाभहातो लोको जराया परिवारो,॥

तन्हासलेना ओटिनो इच्छाधूपयितो 2 सदा॥ ॥

[449] मैककुनाभहातो लोको परिक्खितो जराया च,॥
हन्नति निक्कमत्तानो पत्तदंडोऍव तक्कारो॥ ॥

[450] अगच्चन्तग्गीखंडहाव मक्कु व्याधि जरा तयो,॥
पक्कुग्गंतुm̐ बलाm̐ नत्थि जावो नत्थि पलयितुm̐॥ ॥

[451] अमोघm̐ दिवासां कयिरा अप्पेना बहुकेना वा,॥
यं य विजाहते रत्ति तदुन्नं तस्स जीवितं॥ ॥

[452] कैराटो तिथथो वा पि असिनासयानस्सा वा,॥
उपेति कारिमा रत्ती न ते कालो पमाज्जितुन' ती॥ ॥

[447] दोष छिपाए जाने पर अपराधबोध की वर्षा भारी पड़ती है
; जहाँ दोष स्पष्ट रूप से प्रकट होता है वहाँ कम भारी पड़ती है [3]

[448] मृत्यु से संसार बहुत कुछ हार जाता है; बुढ़ापे
और क्षय से यह घिरा और त्रस्त हो जाता है,
लालसा के तीर से हमेशा के लिए छेदा जाता है,
परेशान करने वाली इच्छाओं की खुजली से त्रस्त हो जाता है।

[449] मृत्यु से संसार गुलाम बना है; उम्र
और क्षय से सुरक्षित, संरक्षित, [4] बिना किसी शरण के, हमेशा के लिए
चोर द्वारा लाठी और तलवार से मारा गया। [5]

[450] जंगल की आग की तरह उन्हें पास आते देखो: -
मृत्यु और रोग, क्षय, भयानक त्रिमूर्ति,
जिनका सामना करने के लिए कोई ताकत पर्याप्त नहीं है, हाँ,
भागने के लिए कोई तेज़ी भी काम नहीं आती।

[451] अपने दिन को व्यर्थ न होने दो,
चाहे थोड़ा हो या बहुत।
क्योंकि हर दिन और रात [6] जो तुम बर्बाद करते हो,
उतना ही कम जीवन तुम्हारे पास जीने के लिए बचता है।

[452] चाहे तुम चलो, खड़े रहो, बैठो या लेट जाओ,
तुम्हारे लिए जीवन का अंतिम दिन निकट आ रहा है;
तुम्हारे पास लापरवाही से आराम करने का समय नहीं है। [7]

[1] तुलना करें XVIII.

[2] निदान. विनय ग्रंथ देखें, i. 1 f.

[3] यह श्लोक विनय ग्रंथों, iii. 805 में बुद्ध को समर्पित है। 'दोष', 'दोष' व्याख्याएँ हैं, वहाँ का संदर्भ और यहाँ की टिप्पणी उपमा के प्रयोग को उचित ठहराती है।

[4] सांग्य., i. 40 में मिलता है ।

[5] ' सत्थदण्डो पढ़ना.

[6] शाब्दिक रूप से, केवल 'रात'। भारतीय 'दिनों' के साथ-साथ 'रातों' से भी उतना ही जाना जाता है।

[7] तुलना करें. बहनें, श्लोक 95.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(223): सब्बाकामा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (223) ------>>>> अगला

अध्याय VI.
छह श्लोक
223. सब्बकामा
बुद्ध युग में, परम पूज्य बुद्ध के देहांत के बाद, वैशाली में एक कुलीन कुल में पुनर्जन्म लेकर, सब्बकाम नाम से, उन्होंने वयस्क होने पर अपने परिवार को दान और संपत्ति दी, और अपनी धार्मिक प्रवृत्ति का पालन करते हुए संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करके) धम्म के संहारक के अधीन दीक्षा ली। [1] अपनी पढ़ाई के दौरान वे अपने गुरु के साथ वैशाली लौटे और अपने परिवार से मिलने गए। उनकी पूर्व पत्नी, दुखी, दुबली-पतली, दयनीय वस्त्रों में और आँसुओं से भरी हुई, उनका अभिवादन करने के लिए खड़ी थीं। उन्हें इस प्रकार देखकर, उनके मन में दया से प्रेरित स्नेह उत्पन्न हुआ, और वर्तमान विषय पर गहन दृष्टि खोकर, उन पर कामुक भावनाएँ हावी हो गईं। तब कोड़े की मार से प्रचंड घोड़े की तरह, वे पीड़ा से भर गए, और व्यथित चीजों का पाठ सीखने के लिए श्मशान घाट चले गए। उस चिंतन से, उन्होंने अंतर्दृष्टि का विस्तार किया और अर्हंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। अब उनके ससुर अपनी बेटी को एक बार फिर उत्तम वस्त्रों से सजाकर, बड़ी संख्या में सेवकों के साथ विहार (मठ) में लाए, ताकि उन्हें मठ छोड़ने के लिए मना सकें, लेकिन थेरा ने उन्हें बताया कि उन्होंने इस प्रकार की सभी इच्छाओं को त्याग दिया है:

[453] दिपाडाकोयै असुसि दुग्गंदहो परिहिरति,॥
नानाकुणपापरिपूरो विस्वन्तो ततो ततो॥ ॥

[454] मिगाṃ निलिनाṃ कुएना बासीसेनेवा अंबुजाṃ,॥
वानरं विया लेपेण बधायन्ति पुथुज्जन:॥ ॥

[455] रूपा सदा रस गंधा फोथब्बा च मानेरामा,॥
पञ्चकामागुणा एते इत्थि रूपस्मि डिससारे॥ ॥

[456] ये [48] एता उपसेवंती रत्तचित्ता पुथुज्जना,॥
वन्धेन्ति कस्तसिघो घोराअनाचिन्ति पुनभभव:॥ ॥

[457] यो सीता परिवज्जेति सप्पासेवा पदा सिरो,॥
सोऽमाṃ मिसत्तिकाṃ लोके सातो समतिवत्तति॥ ॥

[458] कामेस्वदीनवं दिस्वा नेक्खम्मं दथु खेमतो,॥
निस्सातो सब्बाकामेहि पत्तो मे आसवक्खयो' ति.॥ ॥

[453] यह बदसूरत, अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त वस्तु,
गंदी चीज़ों से भरी हुई, इधर-उधर घटती-बढ़ती हुई,
हमारी सारी चिंताओं में सबसे प्रमुख है। [2]

[454] आह, छल से छिपा हिरण, जैसे मछली काँटे से,
जैसे बंदर छल से, वैसे ही संसार फँसा हुआ है।

[455] दृश्य, ध्वनियाँ और स्वाद, गंध और स्पर्श करने योग्य वस्तुएँ,
वह आनंद और आकर्षण, इंद्रियों का पंचांग मार्ग:
ये सभी स्त्री के रूप में संयुक्त रूप से दिखाए गए हैं।

[456] [227] सांसारिक लोग, जो हृदय में प्रज्वलित होकर उसका पीछा करते हैं
और उसे रिझाते हैं, मृत्यु के भयानक मैदान को भर देते हैं [3] और पुनर्जन्म का संचय करते हैं।

[457] परन्तु जो इससे पूरी तरह दूर रहता है, जैसे पैर से
सर्प के सिर को दूर रखा जाता है, वह सतर्क रहकर
संसार के इस विषैले पदार्थ से बच जाता है। [4]

[458] और मैं, जिसने इंद्रिय-इच्छाओं में बुराई देखी
और त्याग में सुरक्षा देखी, देखो!
सांसारिक उद्देश्यों की प्रशंसा करने वाली सभी चीजों से विरक्त होकर,
सभी मादक पदार्थों (विकारों/इच्छाओं) का अंत कर दिया है। [5]

[1] आनंद. सब्बाकामा संभवतः विन का सब्बाकामा है ।ग्रंथ, iii. 404.

[2] = सुत्त-निपिता, i. 11, 13. मेरी तीसरी पंक्ति paṭihīrati (ṅhiriijati के लिए) शब्द का विस्तार करती है ।

[3] तुलना करें बहनें, श्लोक 502; उदाना, vi. 8; विन. ग्रंथ, iii. 390.

[4] लालसा (सी.)। तुलना करें श्लोक 400, 401.

[5] श्लोक 122 देखें।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(224):सुंदर-समुद्दा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (224) ------>>>> अगला

अध्याय VII.
सात श्लोक
224. सुंदर-समुद्दा
बुद्ध युग में राजगृह में एक अत्यंत धनी सलाहकार के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम समुद्दा रखा गया। अपनी सुंदरता के कारण वे सुंदर-समुद्दा के नाम से प्रसिद्ध हुए। [1] अपनी युवावस्था में उन्होंने राजगृह में बुद्ध के आगमन के उत्सव में बुद्ध की महिमा देखी और श्रद्धा एवं सहज प्रवृत्ति से प्रेरित होकर संसार त्याग कर भिक्षु संघ में प्रवेश किया। एक संदेश के साथ वे राजगृह से सावत्थी गए और वहाँ एक गुणी मित्र के साथ रहकर अंतर्मन का अभ्यास करने लगे। राजगृह में उनकी माता ने अन्य सलाहकारों के पुत्रों और उनकी पत्नियों को उत्सव में उत्तम वस्त्रों में सजे-धजे आनंद मनाते देखा तो उन्हें अपने पुत्र की याद आई और वे रोने लगीं। एक वेश्या ने उन्हें सांत्वना देने के लिए उन्हें वापस लाने का प्रस्ताव रखा। माता ने वादा किया कि यदि वह ऐसा करेगी और उनका पुत्र उससे विवाह करेगा, तो वह उसे परिवार की स्वामिनी बना देगी और उसे अनेक उपहार दिए। अच्छी तरह से सजी-संवरी होकर वह सावत्थी गई और एक घर में रुकी जहाँ थेरा प्रतिदिन भिक्षा मांगने आते थे। उसने थेरा की विशेष सेवा करवाई और स्वयं को सजे-धजे और सोने की चप्पलों में प्रदर्शित किया। एक दिन, घर के द्वार पर चप्पलें उतारकर, [229] उसने गुजरते समय हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया

और मोहक अंदाज में उन्हें अंदर आने का निमंत्रण दिया। तब थेरा, सांसारिक विचारों से विचलित होकर, वहीं पर सर्वोच्च प्रयास करने का संकल्प लिया और खड़े-खड़े ध्यान लगाकर छह प्रकार का अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त किया। इस विषय में कहा गया है:

[459] अलंक्ता [49] सुवासना मालाभारी1 विभूसिता,॥
अलत्तककटपाद पादुकारुयः वेसिका॥ ॥

[460] पादुका ओरुहित्वाना पुरतो पंजलिकता,॥
स मण सान्हेन मुदुना मिहितापुब्बं आभासथ॥ ॥

[461] युवसि त्वाऽ पब्बजितो तिथःहि मम ससाने,॥
भुञ्ज मानुसके कामे अहं वित्तं ददामि ते॥ ॥

[462] सक्का ते पतिजानामी अग्गीm̥ वा ते हरामहाm̥,॥
यदा जिन्ना भविस्सामा उभो दण्डपरायणा,॥
उभो पि पब्बाजिस्सामा उभयत्था कटग्गहो॥ ॥

[463] तां च दिस्वाना याकांति वेसिकं पंजालिकातां,॥
अलंकतं सुवासनं मक्कुपासं व ओदिताm̥.॥ ॥

[464] ततो मे मनसिकारा योनिसो उदपज्जथा,॥
आदिनावो पतुराहु निब्बिदा समतिथथा॥ ॥

[465] ततो चित्ताm̥ विमुची मे पासा धम्मसुधम्मताm̥,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससानं' ति.॥ ॥

[459] भव्य प्रदर्शन के लिए सजी-धजी,
मुकुट में फूलों की माला और कई रत्नों से सजी,
लाख से लाल हुए पैरों में चप्पल पहने,
शहर की एक महिला मेरे पास आई।

[460] चप्पल पहने हुए, सिर पर हाथ रखकर अभिवादन करते हुए,
कोमल, मधुर स्वर में और प्रारंभिक प्रशंसा के साथ:

[461] 'इतनी जवान, इतनी सुंदर, और क्या तुमने संसार त्याग दिया है (भिक्षुत्व के लिए)?
यहीं मेरे नियमों और विधानों के अंतर्गत रहो।
मानवीय सुखों का भरपूर आनंद लो। देखो,
मैं तुम्हें इसके लिए सभी साधन उपलब्ध कराऊंगा।
नहीं, मैं तुम्हें सच बता रहा हूं।
या यदि तुम्हें संदेह है, तो मैं तुम्हारे लिए आग लाऊंगा और शपथ लूंगा।'

[462] जब तुम और मैं बूढ़े हो जाएँगे, तो हम दोनों
सहारा लेने के लिए अपनी लाठी उठाएँगे, और इस प्रकार
हम दोनों संसार को (भिक्षुत्व के लिए) छोड़ देंगे और दोनों तरह से जीत हासिल करेंगे।

[463] उस सार्वजनिक स्त्री को विनती करते हुए
और चमकीले रंगों के वस्त्र पहने हुए,
साहसपूर्वक कपड़े पहने हुए, मानो मारा (मृत्युदेव/शैतान) द्वारा बिछाए गए जाल की तरह, प्रणाम करते हुए देखकर,

[464] [230] इसी कारण मुझमें गहरा दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ:
तथ्य और कारण पर ध्यान।
सारी पीड़ा स्पष्ट थी;
मन में अरुचि और उदासीनता थी;

[465] और इस प्रकार मेरा हृदय मुक्त हो गया।
हे देखो, धर्म (धम्म) के इस सुशोभनीय भिक्षु क्रम को!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध द्वारा हमें जो कुछ भी करना बाकी है, वह सब कर लिया है।

[1] सुंदरा-समुद्दा = सुंदर समुद्र। समुद्दा का कैनन में कहीं और कोई स्थान नहीं है, लेकिन उनका उपनाम केवल विनय में उद्धृत राजगृह के एक भिक्षु (भिक्षु) के नाम के रूप में, या उस प्रकार के भिक्षु (भिक्षु) के रूप में दिखाई देता है जिसने सेंट एंथोनी के समान कष्टों का सामना किया (विनय, iii. 86)।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(225):लकुंटका-भद्दिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (225) ------>>>> अगला

अध्याय VII.
सात श्लोक
225. लकुंटक-भद्दिया
भगवान बुद्ध के समय में, श्रावस्ती में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम भद्दिया रखा गया, लेकिन अपनी अत्यधिक बौनेपन के कारण वे लकुंतक (बौना)-भद्दिया के नाम से जाने जाते थे। भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर, उन्होंने भिक्षुओं का मार्ग अपनाया और विद्वान एवं वाक्पटु बनकर, मधुर स्वर में दूसरों को उनका काम सिखाते थे। एक त्यौहार के दिन, शहर की एक स्त्री, जो एक ब्राह्मण (पुजारी) के साथ रथ में सवार थी, ने थेरा को देखा और अपने दांत दिखाते हुए हंस पड़ी। [1] थेरा ने उन दांतों की पंक्ति को एक संकेत मानकर ध्यान का अनुभव किया और उसी के आधार पर अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अनागामी (अनगामी) बन गए। [2] और शरीर के प्रति सजगता का अभ्यास करने के बाद, [3] जो मार्ग के सेनापति (सारिपुत्र) द्वारा निर्देशित किया गया था, [4] वे अरहंत (ज्ञानोदय) में स्थापित हो गए। बाद में उन्होंने इस प्रकार अन्ना (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की:

[466] पारे अंबाकारमे वनसंदमहि भद्दियो,॥
समुळान् तंहमब्बुयः तत्थ भद्दो झाययति।॥॥

[467] रमन्तेके मुतिउन्गेहि विनाहि पणवेहि च,॥
अहं च रुक्खमूलस्मिं रतो बुद्धस्स ससाने॥॥॥

[468] बुद्धो सीई मे वरअ दज्जा सो कै लब्भेथा मे वरो,॥
गणेहाṃ सब्बलोकास्सा निक्काṃ कायागतौ सतिṃ.॥॥

[469] ये माओ रूपेना पमिअसु ये सीए गेसेना अनवागु,॥
चंद्रागवसुपेता न मां जानन्ति ते जना॥॥

[470] अज्झत्तं च न जानाति बहिद्ध च न पस्सति,॥
समन्तवराणो बालो सा वे घेसेना वुयहति॥॥

[471] अज्झत्तं च न जानाति बहिद्ध च विपश्यति,॥
बहिद्ध फलदस्वि सोऽपि घोसेना वुयहति॥॥

[472] अज्झत्तं च पजानाति बहिद्धा च विपश्यति,॥
अनावरणदासवि न सो घोषेण वुयहति' ति.॥ ॥

[466] अंबताका के बागों से परे, [5] जंगली जंगल में, क्रीड़ा और क्रीड़ा की जड़
से विमुख होकर, और गहरी तल्लीनता (समाधि/समाधि) में लीन होकर,
वहाँ सुखी सौभाग्यशाली भद्दिया बैठा है।

[467] [231] और कुछ लोग झांझ, [6] वीणा और ढोल से मोहित हैं,
और मैं अपने पेड़ों की हरी-भरी छाया में
बुद्ध के नियम से मंत्रमुग्ध होकर रहता हूँ।

[468] बुद्ध मुझे एक वरदान प्रदान करें, और यदि वह वरदान मेरा हो, तो मैं आत्म-नियंत्रण में शाश्वत अध्ययन
को सर्वदा चुनूंगा ।

[469] जो लोग मेरे रूप के लिए मेरी निंदा करते हैं, और जो
लोग मेरी आवाज़ को मंत्रमुग्ध होकर सुनते हैं, ऐसे लोग
कामवासना और आवेग के जाल में मुझे नहीं जानते।

[470] मूर्ख चारों ओर से घिरा हुआ है, वह
आंतरिक जीवन को नहीं जानता, न ही बाहरी चीजों को देखता है,
और वास्तव में एक आवाज से बहक जाता है।

[471] और यदि वह आंतरिक जीवन को नहीं जानता,
फिर भी बाहरी चीजों को समझ सकता है,
केवल बाहरी फलों को देखकर,
वह भी एक आवाज से बहक जाता है।

[472] जो आंतरिक जीवन को समझता है,
और बाहरी चीजों को भी समझता है,
स्पष्ट दृष्टि वाला, किसी भी आवाज से बहकाया नहीं जाता। [7]

[1] किसी का परीक्षण सीलोन के थेरा महा तिस्सा के लिए समान रूप से प्रभावी साबित हुआ। देखें अत्थासलिनी, पृ. 200; बुड. साइ., पृ. 70 n.

[2] अरहंत (प्रबुद्ध) से ठीक नीचे मोक्ष का वह स्तर, जिसमें एक और जीवन के बाद दूर के स्वर्गों में से एक में अंतिम मृत्यु आनी है।

[3] देखें. संवाद, ii. 328 f.

[4] सारिपुत्त.

[5] यह पार्क संभवतः मच्चिकासाण्ड में है, जिसे चित्त ने भिक्षुओं के संघ को दिया था (धम्मपद टीका, ii. 74)।

[6] मुटिंगेही का अर्थ है ढोल की एक किस्म। इस वाद्ययंत्र की भारतीय प्रजातियों की संख्या के लिए हमारी ढोल नामकरण प्रणाली अपर्याप्त है। मधुर आवाज संभवतः संगीत की समझ के साथ थी, और यही कारण है कि वह संगीत को अपने स्वयं के परम आनंद के स्रोत के बाद दूसरे स्थान पर रखता है।

कायगतासति का अर्थ 'स्वयं पर नियंत्रण का अध्ययन' नहीं है, बल्कि 'इंद्रियों के द्वारों का ध्यान रखना' (शरीर के द्वारों का ध्यान रखना) है।

[7] भद्दिया (नाम का अर्थ है फेलिक्स, फॉर्च्यूनाटस; उनका उपनाम उन्हें अन्य भद्दिया से अलग करता है, देखें CCLIV.) अंग., i. 25 में सभी भिक्षुओं में सबसे मधुर स्वर वाले के रूप में वर्णित हैं। कहा जाता है कि यह विशिष्टता पद्ममुत्तरा बुद्ध से पहले, बीते युगों में की गई एक आकांक्षा का परिणाम थी। इस आकांक्षा के विकासवादी प्रभाव के कारण विपस्सी बुद्ध के अधीन उनका पुनर्जन्म एक 'बहुरंगी पंखों वाली कोयल' (चित्त-पट्टकोकिला) के रूप में हुआ, जो भारत में एक मधुर चहचहाने वाली चिड़िया है। साई. उनकी इच्छा की पूर्ति का उल्लेख नहीं करता है, लेकिन कविता इसका संकेत देती है। 'स्वयं पर नियंत्रण का अध्ययन': कायगतासतिं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(226):भद्दा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (226) ------>>>> अगला

अध्याय VII.
सात श्लोक
226. भद्दा
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक पार्षद के परिवार में हुआ, जो अब तक निःसंतान माता-पिता की संतान थे। [232] देवताओं से प्रार्थना करने के बाद भी उन्हें कोई संतान नहीं हुई थी। वे भगवान (बुद्ध) के पास यह कहते हुए गए, 'हे पूज्य, यदि हमें संतान प्राप्ति हो तो हम उसे आपके सेवक के रूप में आपको अर्पित करेंगे।' उन्होंने उसका नाम भद्दा (फॉस्टस) रखा और जब वह सात वर्ष का हुआ, तो उन्होंने उसे सर्वोत्तम वस्त्र पहनाए और भगवान (बुद्ध) के पास यह कहते हुए ले गए, 'हे पूज्य, यह वही संतान है जो हमें आपसे प्रार्थना करने के बाद प्राप्त हुई है; हम इसे आपको सौंपते हैं।' भगवान (बुद्ध) ने आनंद से उन्हें भिक्षु दीक्षा देने का अनुरोध किया और सुगंधित कक्ष में चले गए। आनंद ने उन्हें शिक्षा दी और उनमें इतनी प्रबल आध्यात्मिक क्षमता विकसित हो गई कि अध्ययन करते समय, सूर्योदय होते ही, उन्होंने ध्यान साधना की अवस्था में प्रवेश किया और छह प्रकार की अभिज्ञा (आध्यात्मिक शक्तियों का उच्चतर ज्ञान) प्राप्त कर ली।

अब भगवान (बुद्ध) को पता चला कि क्या हुआ है, और उन्होंने पुकारा, 'आओ, भद्दा!' अतः वह हाथ जोड़कर भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करते हुए चले गए। यही उनका भिक्षुत्व में दीक्षा संस्कार था। और यह बुद्ध-दीक्षा, [1] थेरा, अपने जन्म से ही, इस प्रकार अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार करते हुए महिमामंडित हुई:

[473] एकापुट्टो अहाṃ असिṃ पियो मातु पियो पितु॥
बहुहि वातक्रियाहि लद्धो अयाकनहि चा॥ ॥

[474] ते च मां अनुकम्पाया अत्थकामा हितेसिनो,॥
उभो पिता च माता च बुद्धस्स उपनामायुं, ॥ ॥

[475] किच्चा लद्धो अयं पुत्तो सुखुमालो सुखेधितो,॥
इमां ददामा ते नाथ जिनस्सा परिचरका। ॥ ॥

[476] सत्था च माṃ पटिग्गयहा आनंदं एतदब्रवि,॥
पब्बाजेहि इमाँ खिप्पां हेस्सत्याजणियो अयं॥ ॥

[477] पब्बाजेतवना माऽ सत्था विहारं पविसी जिनो,॥
Anoggatasmiṃ suryasmiṃ tato cittaṃ vimucci me.॥ ॥

[478] ततो सत्था निराङ्कत्वा पतिसन्नावुऽथतो,॥
एहि भद्दा' ती मन अहा सा मे आसुपसम्पदा॥ ॥

[479] जाति सत्तवसेन लद्धा मे उपसम्पदा,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता अहो धम्मसुधम्मता' ति.॥॥

[473]
मैं अपनी माँ और अपने पिता की इकलौती संतान थी । अनेक रीति-रिवाजों
और बहुत से अनुष्ठानों से मेरा पालन-पोषण हुआ, हाँ,
और बहुत सी प्रार्थनाओं से भी। उन्होंने मुझ पर कृपा की।

[474] मेरी अच्छी इच्छा और मेरी खुशी
ने मुझे - पिता और माता को भी -
धन्य बुद्ध की उपस्थिति में पहुँचाया।

[475] 'यह हमारा बच्चा अभी-अभी मिला है,
और वह नाज़ुक और कोमल रूप से पाला-पोसा गया है।
हे प्रभु, हम उसे आपको सौंपते हैं, ताकि वह
विजेता की सेवा में सेवक बनकर रहे।'

[476] भगवान (बुद्ध) मुझे अपने पास ले गए और इस प्रकार
आनंद से कहा: '
इस बच्चे को जल्दी स्वीकार करो, क्योंकि यह एक शुद्ध नस्ल का होगा।'

[477] और फिर, मेरे बाहर आने की अनुमति देते हुए,
विजेता रात बिताने के लिए चले गए।
और जैसे ही सूर्योदय हुआ,
देखो! तब मेरा हृदय मुक्त हो गया।

[478] [233] तब अपना कार्य पूरा करने के लिए भगवान (बुद्ध),
शांति से जागृत होकर: 'आओ, भद्दा!' मुझे पुकारा;
उसी से मुझे भिक्षुत्व में दीक्षा दी गई।

[479] सात वर्ष मेरे थे जब मुझे इस प्रकार भिक्षुत्व की दीक्षा दी गई।
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है।
धम्म के योग्य संघ को नमस्कार!
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(227):सोपाका2
श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (227) ------>>>> अगला

अध्याय VII.
सात श्लोक
227. सोपाका2
बुद्ध युग में एक अछूत की पत्नी से पुनर्जन्म लेकर, जन्म के अनुसार उन्हें सोपाका (अछूत) कहा गया। कुछ लोग कहते हैं कि उनका जन्म एक व्यापारी परिवार में हुआ था। अपदान ग्रंथ (पालिया) इस बात का खंडन करता है ।

जब मैंने अपने अंतिम जन्म पर विजय प्राप्त की, तब
मैं सोपाका की कोख में आया।

जन्म के चार महीने बाद ही सोपाका ने अपने पिता को खो दिया और उसका पालन-पोषण उसके चाचा ने किया। जब सोपाका सात वर्ष का था, तब उसके गुस्सैल बेटे ने उसे बच्चे को मार डालने के लिए उकसाया। इसलिए वह उसे श्मशान घाट ले गया, उसके हाथ बांध दिए और उसकी गर्दन एक शव से बांध दी, यह सोचते हुए कि 'गीदड़ों और अन्य जीवों को उसे खा जाने दो,' क्योंकि वह स्वयं उस बच्चे को नहीं मार सकता था, जो अपने अंतिम जन्म को प्राप्त कर चुका था। गीदड़ और अन्य जीव आए और आधी रात को बच्चा रोने लगा:

ओह, मेरे लिए क्या भाग्य लिखा है,
या इस अकेले अनाथ का रिश्तेदार कौन है!
भयानक मृत्युक्षेत्र में बंधा हुआ,
मुझे अपना मित्र कौन मिलेगा? [1]

उस समय भगवान (बुद्ध) ने यह देखते हुए कि कौन से साथी मनुष्य उद्धार के योग्य हैं, [2] बालक के हृदय में अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) की अवस्थाओं को चमकते हुए देखा [234] और एक शानदार दिव्य छवि प्रकट करके उसका ध्यान आकर्षित किया, और कहा:

तो आओ, सोपाका, डरो मत;
तथागत (अर्थात बुद्ध) को देखो!
मैं, हाँ मैं ही, तुम्हें पार ले जाऊँगा,
जैसे चंद्रमा राहु के जबड़ों से सुरक्षित आता है। [3]

बुद्ध की शक्ति से बालक ने अपने बंधन तोड़ दिए, और श्लोक के अंत में, सुगंधित कक्ष के सामने, सोतापना (निर्वाण की पहली समाधि) के रूप में, वह एक धारा-विजेता के रूप में खड़ा था। [4] अब उसकी माता उसे खोज रही थी, और चाचा ने उसे कुछ नहीं बताया, इसलिए वह यह सोचकर भगवान (बुद्ध) के पास गई कि 'बुद्ध भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ जानते हैं।' जब वह आई, तो भगवान (बुद्ध) ने इद्धि द्वारा बालक को छिपा लिया , और उससे यह कहते हुए, 'हे प्रभु, मुझे मेरा पुत्र नहीं मिल रहा है, फिर भी भगवान जानते हैं कि वह क्या कर रहे हैं?' उन्होंने उत्तर दिया:

पुत्र न तो आश्रय होते हैं, न पिता, न ही कोई पारिवारिक रिश्तेदार।
मृत्यु से घिरे व्यक्ति के लिए रक्त संबंध कोई शरण नहीं है, ... [5]

अत: उन्होंने उसे धम्म का मार्ग सिखाया। सुनकर वह धारा-विजेता बन गई, परन्तु बालक अरहंत (प्रबुद्ध) हो गया। तब भगवान ने इद्धि वापस ले ली, और वह अत्यंत प्रसन्न होकर अपने पुत्र को देखकर प्रसन्न हुई। यह सुनकर कि वह अरहंत (प्रबुद्ध) हो गया है, उसने उसे संसार त्यागने (सन्यास में जाने) के लिए कहा और स्वयं चली गई। [6]

अब वह आया और सुगंधित कक्ष की छाया में टहलते हुए भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे चला। और परम पूज्य (बुद्ध) ने उसे भिक्षु दीक्षा देने की इच्छा से उससे दस प्रश्न पूछे, जिनकी शुरुआत इस प्रकार हुई: 'एक क्या है?' [7] उसने भगवान (बुद्ध) के इरादे को समझते हुए, अपने सर्वज्ञता से उत्तर दिया, 'सभी प्राणी भोजन से पोषित होते हैं,' इत्यादि। यहीं से 'बालक-प्रश्नों' का नाम पड़ा। और भगवान (बुद्ध) उसके उत्तरों से संतुष्ट होकर उसे भिक्षु दीक्षा दी। थेरा ने यह सब ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) को स्वीकार करते हुए इस प्रकार बताया:

[480] दिस्व पसादचयायं चाक्कमंतं नरुत्तमं,॥
तत्थ नाउ उपासांकम्मा वंदिसाmŋ पुरिसुत्तमmŋ॥ ॥

[481] एकं सॅ शिवराऽ कत्वा सङहरित्वन पणयो,॥
अनुचाणकमिस्साँ विराजाँ सब्बसत्तनमुत्तमौ ॥॥ ॥

[482] ततो पान्हे अपुच्चि माmŋ पन्हाणां कोविदो विदु,॥
अचम्भि च अभितो च व्याकासिऽ सत्थुनो अहं॥ ॥

[483] विसज्जितेसु पन्हेसु अनुमोदी तथागतो,॥

भिक्खुसंघां विलोकेत्वा इमामत्थाऽ अभासथ.॥॥

[484] लाभ अगनमगधानां यसायं परिभुञ्जति,॥
शिवराऽपिण्डपताऽ च पच्चयं सयाणासनाऽ,॥
पच्चुथनां च समीसीं तेसां लाभति काब्रवी।॥॥

[485] अज्जतग्गे माm सोपाका असनायुपसांकमा,॥
एसा सेवा ते सोपाका भवतु उपसम्पदा॥॥

[486] जाति सत्तवसोहं लद्धाना उपसम्पदां,॥
धर्ममि अन्तिमं देहं अहो धम्मसुधम्मता' ति.॥॥

[480] छज्जे पर चलते हुए, देखो! मनुष्यों का मुखिया।
मैं वहाँ गया, उनकी उपस्थिति में मनुष्यों के मुखिया की पूजा करते हुए।

[481] मेरा वस्त्र एक कंधे पर लिपटा हुआ था, मेरे जुड़े हुए हाथ आगे की ओर फैले हुए थे,
मैं सभी प्राणियों में सर्वोच्च के पदचिन्हों पर चलता रहा।

[482] तब उन्होंने मुझसे प्रश्न पूछे, वे प्रश्न पूछने में इतने कुशल और इतने बुद्धिमान थे।
और वहाँ अविचलित, निर्भय होकर भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया।

[483] तथागत (अर्थात बुद्ध) ने पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों की प्रशंसा की।
और भिक्षुओं के समूह ने इस बात को उनसे साझा किया।

[484] 'अंग और मगध के लोग भाग्यशाली हैं, जिनसे
वह वस्त्र, भोजन और आवास, औषधि
और उचित आदर प्राप्त करता है, हाँ, वे सुखी हैं!' ऐसा उन्होंने कहा।

[485] 'आज से, सोपाका, जब चाहो मुझसे मिलने आना।
सोपाका, केवल हमारी बातचीत ही तुम्हारा भिक्षुत्व दीक्षा संस्कार होगी।'

[486] सात वर्ष के मेरे जीवन में मुझे इस प्रकार दीक्षा दी गई।
अब मैं अंतिम शरीर धारण करता हूँ। जय हो! सुंदर भिक्षु (बुद्ध) के धम्म मार्ग के आदेश को। [8]

[1] दयाको, परोपकारी.

[2] वेनेय्या - शाब्दिक रूप से, नेतृत्व करने में सक्षम।

[3] तुलना करें. सिस्टर्स, पी.एस. ii.

[4] जेत-विहार में बुद्ध के निवास स्थान।

[5] धम्मपाल, श्लोक 2एस8, 289; पंचारा को, सी.एफ. बहनें, पी. 71.

[6] सी.एफ. यासा की कथा (CXVII) में समान प्रकरण।

[7] ख़ुद्दाका पाठ। सी एफ बहनें, पी. 66.

[8] मैंने इन अपेक्षाकृत सरल और सहज छंदों का लगभग शाब्दिक अनुवाद किया है, इन्हें अधिक सौंदर्यपूर्ण अंग्रेजी में रूपांतरित करने का प्रयास नहीं किया है। यदि इस परंपरा में कोई सच्चाई है, तो इनकी रचना एक आम लड़के ने की थी, जो (गहन प्रश्नों के लिए) स्वाभाविक प्रतिभा से संपन्न था, लेकिन अशिक्षित था। और उसकी युवावस्था और साहित्यिक क्षमता की कमी सरल पाली भाषा में स्पष्ट रूप से झलकती है। पाली और मिगाजाला, कोसिया या कस्सपा बंधुओं की कविताओं के रूप और विषयवस्तु में ज़मीन-आसमान का अंतर है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(228):सरभंगा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (228) ------>>>> अगला

अध्याय VII.
सात श्लोक
228. सरभंगा
बुद्ध युग में राजगृह में एक ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें पारिवारिक परंपराओं के अनुसार या उनसे स्वतंत्र रूप से एक नाम दिया गया, क्योंकि उनमें कोई विशिष्ट चिह्न नहीं थे [1] [और वह नाम अब लुप्त है]। लेकिन जब वे वयस्क हुए, तो वे तपस्वी बन गए और उन्होंने सरकंडों से एक कुटिया बनाई, जिन्हें उन्होंने तोड़ लिया था, और तब से वे सरभंग - सरकंडा तोड़ने वाले के रूप में जाने जाने लगे। अब परम पूज्य (बुद्ध) ने प्रबुद्ध (दिव्य) दृष्टि से संसार को देखते हुए उनमें अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) के गुण देखे और उनके पास जाकर उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया। और वे, विश्वास करके और भिक्षु बनकर, समय आने पर अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया और अपनी कुटिया में ही रहने लगे। यह कुटिया जीर्ण-शीर्ण और जर्जर हो गई, और लोगों ने इसे देखकर कहा: 'हे पूज्य, आप इसकी मरम्मत क्यों नहीं करवाते?' थेरा ने कहा, 'यह कुटिया तब बनाई गई थी जब मैं तपस्या कर रहा था; अब मैं वैसी तपस्या नहीं कर सकता,' और फिर उन्होंने पूरी बात इस प्रकार बताई:

[487] सारे हत्थेहि भंजित्वा कत्वाना कुटिमाचिसां,॥
तेन मे सरभागोति नामां सम्मुतिया आहु॥ ॥

[488] ना [51] मयहाṃ कप्पटे अजजा सारे हत्थेहि भंजितुṃ,॥
सिक्खपादा नो पन्नत्ता गोतमेना यसस्सिना॥ ॥

[489] सकलाṃ समत्तṃ रोगाṃ सरभोगो नद्दसाṃ4 पब्बे,॥
सोऽयं रोगो दिट्ठो वचनाकरेनातिदेवस्सा॥ ॥

[490] येनेवा मैग्गेना गतो विपासि॥
येनेव मग्गेना सिखी च नेस्भु,॥
ककुसन्धकोनागमन च कस्सपो॥
तेनंजसेन अगमसि गोतमो॥ ॥

[491] वितातंहा अनादान सत्त बुद्ध खयोगधा,॥
येहयाऽ1 डेनितो धम्मो धम्मभूतेहि तदिः॥ ॥

[492] कट्टारी अरियासक्कानि अनुकंपाय पाणिनै,॥
दुक्खाऽ समुदयो मग्गो निरोधो दुक्खसाङ्खायो॥ ॥

[493] यस्मिṃ निवत्तते दुक्खाṃ ससारस्मिṃ अनंतकाṃ,॥
भेदा इमस्सा कायस्सा जीवितस्स च संखया,॥
अण्णो पुनब्भावो नत्थि सुविमुत्तोम्हि सब्बाधि' ति.॥ ॥

[487] हाँ, मैंने एक बार मुट्ठी भर सरकंडे तोड़े और
एक झोपड़ी बनाई जिसमें मैं रहता था; इसीलिए
आम बोलचाल ने मुझे 'सरकंडा चुनने वाला' नाम दिया।

[488] परन्तु आज यह मेरा काम नहीं था कि मैं
पुराने समय की तरह मुट्ठी भर सरकंडे तोड़ूँ,
क्योंकि जो प्रशिक्षण ने निर्धारित किया था, वह
हमें तेजस्वी गौतम (बुद्ध) द्वारा प्रकट किया गया था।

[489] वह कितना बुरी तरह बीमार था:-
ऐसा रीडपिकर ने पहले कभी नहीं देखा था। इस बुरी हालत को उसने देवताओं से परे परमेश्वर के वचन से
देखा ।

[490] वही मार्ग जिस पर विपस्सी (प्रथम बुद्ध) चले,
सिख (बुद्ध) और वेसभु (बुद्ध) का मार्ग, ककुसंध, कोनागमना
और कस्सपा बुद्धों का मार्ग, यहाँ तक कि उसी मार्ग से देखो!

अब हमारे सामने गौतम (बुद्ध) का आगमन होता है।

[491] और ये सभी सात बुद्ध, [2] - जिनके लिए
लालसा मर चुकी थी, और कुछ भी नहीं था, और जो
दुःख के निवारण पर स्थिर थे [3] -
उन्होंने इस मार्ग (धम्म) का उपदेश दिया, हाँ, यहाँ तक कि वे भी,
जो स्वयं मार्ग (धम्म) का शरीर थे, [4]

[492] हम सभी के प्रति अपार करुणा के कारण, ये
चार आर्य सत्य भी: दुःख का सत्य; कारण;
मार्ग; दुःख का अंत, दुःख का निवारण,

[493] जिससे
जीवन के महान चक्र में दुख और पीड़ा की अंतहीन गाथा अपना मार्ग नहीं अपना सकती; [5] क्योंकि जब यह शरीर मर जाता है और
जीवन समाप्त हो जाता है, तो
कोई और पुनर्जन्म नहीं आता - हाँ,
मैं जन्म से, बुराई से पूरी तरह मुक्त हूँ! [6]

[1] CCXXXII., CCXXXIII में किंवदंती देखें।

[2] सात पर देखें संवाद, i. 1 ff.

[3] खयोगधा. खाया - निब्बाण (टिप्पणी)।

[4] धम्मभूत - पथ (धम्म), धम्मकाया बन जाता है, धमनियापाल का संक्षिप्त रूप, इस शब्द का उपयोग बड़े पैमाने पर महायानवाद के पक्ष में आ रहा है।

[5] निब्बत्तते, इसका अर्थ है (निर्वत्तते) न पवत्तति, (नहीं) उपज्जति, अर्थात, निरोध के माध्यम से , निब्बाण।

प्रतीकात्मकता (झोपड़ी = शरीर) तो सही है, लेकिन अपनी झोपड़ी का पुनर्निर्माण न करने का कारण संभवतः ऐसा करने के लिए वनस्पतियों को नष्ट करने की आवश्यकता रही होगी।

[6] इसलिए टीका कहती है: सब्बेहि किलेसेहि, सब्बेहि भावेहि। सरल लेकिन ज्ञानवर्धक कथा के बिना पाठक इस उत्कृष्ट कविता का सार शायद न समझ पाए और यह सोचे कि किसी थेरा के लिए हाथों से काम करना उचित नहीं था, जैसा कि डॉ. न्यूमैन के अनुवाद से प्रतीत होता है। भिक्षुओं ने अनेक 'झोपड़ियाँ' बनाईं, अपने वस्त्र बनाए और उनकी मरम्मत की, आदि। लेकिन सरभंग का तात्पर्य छठे और दूसरे अध्याय में वर्णित अन्य दो झोपड़ी-थेरों से है: उनकी 'एकमात्र आवश्यक वस्तु' अत्तभाव-कुटिका का नवीनीकरण न होना है, जैसा कि टीका इसे 'व्यक्तिगत जीव-झोपड़ी' कहती है, और इसीलिए वे दुःख के अंत - अर्थात् पुनर्जन्म - पर इतना बल देते हैं। उनकी सरकंडे की झोपड़ी की स्थिति एक तुच्छ विवरण है, जो केवल एक प्रतीक के रूप में उपयोगी है। कविता और कथा संभवतः नाम की व्याख्या से उत्पन्न हुई होंगी। यह घटना जातक (iii. 454; v. 127 ff.) में ही नहीं, बल्कि महाभारत और रामायण में भी एक द्रष्टा के रूप में घटित होती है ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (229): काकायाना द एल्डर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (229) ------>>>> अगला

अध्याय VIII.
आठ श्लोक
229. कच्चायना महान
बुद्ध युग में उज्जैनी में राजा चंदपज्जोत के पुरोहित परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने बड़े होते हुए तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और अपने पिता की मृत्यु के बाद पुरोहित पद संभाला। वे अपने कुल के नाम कच्चाना से जाने जाते थे। [1] अब राजा ने बुद्ध के के बारे में सुना और कहा: 'गुरुजी, क्या आप जाकर भगवान (बुद्ध) को यहाँ लाएँगे?' वे सात शिष्यों के साथ भगवान (बुद्ध) के पास गए, जिन्होंने उन्हें धम्म का मार्ग इतनी प्रभावी ढंग से सिखाया कि पाठ के अंत में, वे अपने सात सेवकों के साथ अक्षर और अर्थ की पूर्ण समझ के साथ अरहंतत्व (ज्ञानोदय) में स्थापित हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'आओ, भिक्षुओं!' उसने अपना हाथ बढ़ाया, और वे तुरंत ही एक सदी से चल रही वर्षा ऋतुओं के थेरों के समान हो गए, जिनके बाल दो उंगलियों की लंबाई तक कटे हुए थे, और वे कटोरे और वस्त्रों से सुसज्जित थे।

तब थेरा ने स्वयं मोक्ष प्राप्त करने के बाद राजा की ओर से भगवान (बुद्ध) को आमंत्रित किया:

'हे प्रभु, राजा पज्जोत आपके चरणों में पूजा करना और धर्म का पाठ सुनना चाहते हैं।' भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'हे भिक्षु, तुम स्वयं जाओ ; तुम्हारे जाने से भी राजा संतुष्ट हो जाएँगे।' यह याद दिलाए जाने पर, वह सातों के साथ गया, राजा की इच्छा पूरी की, उसे धर्म में स्थापित किया और भगवान (बुद्ध) के पास लौट आया ।

एक दिन बहुत से भिक्षुओं ने अपने कर्तव्यों का त्याग कर सांसारिक गतिविधियों और समाज में सुख पाकर अनैतिक जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। इस पर थेरा ने उन्हें दो श्लोकों में संबोधित किया और अगले छह श्लोकों में राजा को संबोधित किया:

[494] कम्माṃ बहुकाṃ न कराये॥
परिवज्जेया जनाऽ न उय्यमे,॥
तो उस्सुक्को रसानुगिद्धो॥
अत्थाऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ सुखाधिवाहो॥ ॥

[495] पांको' ती ही नाṃ अवेदायुṃ॥
यायं वंदनपूजन कुलसु,॥
सुखुमाṃ सल्लाṃ दुरुब्बाहाṃ॥
सक्कारो कपूरीसेन दुज्जहो॥ ॥

[494] भिक्षु को

व्यस्त कार्यों में नहीं लगना चाहिए, उसे लोगों से दूर रहना चाहिए,
न ही अनुकरण करने का प्रयास करना चाहिए।
जो लालच में आकर जीवन के सारे सुखों का स्वाद चखना चाहता है, वह
उस अच्छाई की उपेक्षा करता है जो सच्ची खुशी लाती है।

[495] यह एक कपटपूर्ण दलदल है,
धनी लोगों से धनुष, उपहार और दावतों का यह संरक्षण।
यह मांस में धंसे हुए एक महीन तीर की तरह है,
जिससे भटकते हुए मनुष्य को निकालना मुश्किल है। [3]

राजा को:

[496] न परसुपिधाय नम्माṃ मैकासा पासकाṃ,॥
मत्तना तां न सेनेया कम्मबंधुहि मटिया.॥ ॥

[497] न परे वचन कोरो न परे वचन मुनि,॥
अत्ता च नाऽ यथा वेत्ति देवाऽपि नाऽ तथा विदुः। ॥ ॥

[498] पारे च न विजानन्ति मायामेत्था यममसे,॥
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधागा॥ ॥

[499] जीवते वा'पि सप्पाको अपि विट्टपरिक्खयो,॥
पनन्या च अलभेन वित्तवापि न जीवति॥ ॥

[496] मनुष्य के कर्म
दूसरे के [कहे या किए] कारण बुरे नहीं होते;
उसे स्वयं ही बुराई से बचना चाहिए, क्योंकि
अपने कर्मों से ही संतानें नश्वर होती हैं। [4]

[497] दूसरों के कहने से कोई व्यक्ति चोर नहीं बन जाता,
दूसरों के कहने से कोई व्यक्ति ऋषि नहीं बन जाता;
और जो हम अपने हृदय में जानते हैं,
वही हमारे हृदय को जानने वाले देवता भी जानते हैं। [5]

[498] लोग कभी भी यह नहीं समझ सकते
कि हम यहाँ थोड़े समय के लिए ही हैं।
लेकिन जो लोग इस सत्य को समझ लेते हैं,
वे सभी कलह और झगड़े दूर कर देंगे। [6]

[499] बुद्धिमान व्यक्ति जीवित है, और केवल वही जीवित है,
भले ही उसका सारा धन नष्ट हो जाए;
और यदि धनवान व्यक्ति में बुद्धि की कमी हो,
तो वह अपने सारे धन के लिए वास्तव में जीवित नहीं रहा।

राजा उससे एक सपने के बारे में सलाह ले रहा था। [7]

[500] सब्बाṃ सुणति सोतेना सब्बाṃ पस्सति चक्खुना,॥
न च दिट्ठं सुतं धीरो सब्बं उज्झतुमराहति॥ ॥

[501] चक्खुमास्सा यथा अन्धो सोतवा बधिरो यथा,॥
पन्नवास्सा यथा मुगो बलवा दुब्बलोरिव,॥
अथ त्थे समुप्पन्ने सयेथा मतासयिकान् ति.॥ ॥

[500] हम कानों से हर तरह की बातें सुनते हैं;
हम आँखों से हर तरह की बातें देखते हैं;
और बुद्धिमान और बलवान के लिए यह उचित नहीं है
कि वह सब कुछ अनदेखी, अनसुनी समझकर उपेक्षित कर दे।

[501] जो देखने में सक्षम है, वह अंधा हो जाए,
जो सुनने में सक्षम है, वह बहरा हो जाए
, जो बुद्धि में पारंगत है, वह गूंगा हो जाए,
और बलवान व्यक्ति कमजोर हो जाए;
परन्तु सच्ची भलाई की वस्तु उत्पन्न हो: -
वही उसके लिए विचार का आश्रय स्थल हो। [8]

[1] वे ग्यारह या बारह 'महान' थेरों में से एक थे (विन. ग्रंथ, ii. 317, 359), और सोन-कुटिकन्न (CCVIII.) के गुरु थे। विनय और निकाय में, उनका नाम आमतौर पर कच्चाना के रूप में मिलता है। इसी तरह, च्य. राजा का उल्लेख जात., v. 133; धम्मपद टीका, i. 192 ff.; और विनय ग्रंथों, ii. 186 में पज्जोत के रूप में मिलता है। कथासरित्सागर, i. 102 भी देखें।

[2] सासाने.

[3] = श्लोक 124, और 1052 एफ.

[4] मज्झ., iii. 203; अंग., iii. 72.

[5] टीका में लिखा है attā ca naṃ yathāvedīti naṃ sattaṃ taasa attā cittaṃ yathā ayaṃ parisuddho aparisuddho cīti yathāvato avedi jānāti. देवताओं को — अर्थात्, शुद्ध देवताओं को — दूसरों के विचारों को जानने का श्रेय दिया जाता है।

[6] = श्लोक 275.

[7] राजा के सपने का वर्णन नहीं किया गया है। केवल इतना कहा गया है कि वह अगले दिन थेरा के पास गया और उसे 'उसी क्रम में बताया जिस क्रम में उसने उसे देखा था।' भविष्यवाणी का उत्तर शायद संतोषजनक नहीं रहा होगा, लेकिन यह संवादों के 'महान शील', अध्याय 17(4) के बिल्कुल अनुरूप है। पुजारी मुख्य रूप से ज्योतिषी और स्वप्न व्याख्याकार था; जबकि साकिया-समण जागृत जीवन और नैतिक नियमों की मूलभूत वास्तविकताओं से संबंधित था।

[8] मिलिंद, ii. 282 f. में उद्धृत अंतिम छह पंक्तियाँ। मेरा अपना अनुवाद 'कथनों (गाथा)' और धम्मपाल के माध्यम से ' अत्था ' (अच्छा) के उच्च महत्व से निर्देशित है । यह सत्य है कि धम्मपाल पर्याप्त मार्गदर्शक नहीं है। वह 'ज्ञान में पारंगत' (देखें मिलिंद, ii. 288, n. 1) के किसी भी संदर्भ को छोड़ देता है, और मट- सायिकं शब्द का अर्थ केवल मटक-सायिकं के रूप में ही बताता है। इस शब्द से पहले उसने पस्सेथा = पसित्वा लिखा है। पूरी कविता प्रचलित लोकप्रिय दर्शन से लिए गए ज्ञानवर्धक कहावतों का एक मिश्रण प्रतीत होती है, जिसे सांज्युत्त प्रथम और जातक ग्रंथों की तरह ही कैनन द्वारा जोड़ा गया है, और जो मूल रूप से बौद्ध शिक्षा के अनुरूप है।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

महा कच्चना

अवंती की राजधानी उज्जैनी जिले में, कच्चयन वंश के एक ब्राह्मण दंपति तिरितवच्छ और चंदीमा रहते थे। कच्चयन वंश सबसे प्राचीन और सम्मानित ब्राह्मण वंशों में से एक था, इसलिए वे बहुत प्रसिद्ध और सम्मानित थे। उनका एक पुत्र था जिसका नाम उन्होंने कंचन (सुनहरे रंग वाला) रखा, क्योंकि उसकी त्वचा असाधारण रूप से सुनहरी थी। कंचन ने ब्राह्मण वेदों का अध्ययन किया और वयस्क होने पर अपने पिता के स्थान पर दरबारी पुरोहित बन गया।

जिस राजा की वह सेवा करता था, वह अपने उग्र स्वभाव के कारण चंदपज्जोत या 'हिंसक पज्जोत' के नाम से जाना जाता था। जब राजा को पता चला कि एक भगवान बुद्ध का जन्म हुआ है, तो उनके मन में बुद्ध के दर्शन करने की तीव्र इच्छा जागी। उन्होंने अपने पुरोहित से बुद्ध को अवंती में अतिथि के रूप में आमंत्रित करने का अनुरोध किया। कंचना ने बुद्ध को आमंत्रित करने की शर्त पर सहमति जताई, बशर्ते राजा उन्हें भिक्षु बनने की अनुमति दे दें।

राजा की अनुमति से कंचना और सात अन्य दरबारी अवंती छोड़कर श्रावस्ती के लिए रवाना हुए, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। बुद्ध के उपदेशों से प्रेरित होकर, उन सभी आठों ने एक साथ अरहंतत्व और चारों विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त किए और भिक्षुओं के रूप में दीक्षा ली। दीक्षा के बाद कंचना को कच्चना के नाम से जाना जाने लगा। कच्चना ने बुद्ध को अवंती आने का निमंत्रण देने के उद्देश्य से उज्जैनी की प्राकृतिक सुंदरता का वर्णन किया। बुद्ध ने यह जानकर कि कच्चना राजा, उनके मंत्रियों और नगरवासियों को प्रेरित करने में सक्षम है, कच्चना को अपने पूर्व दरबारियों के साथ अवंती लौटने के लिए कहा।

वापसी के रास्ते में आठ भिक्षुओं ने तेलपनाली नामक नगर में रात्रि विश्राम किया। इस नगर में दो सुंदर युवतियाँ रहती थीं। एक धनी लड़की थी जिसके बाल एक बीमारी के कारण झड़ गए थे। दूसरी लड़की अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद निर्धन हो गई थी। अपनी पूर्व दाई के साथ रहने वाली उस धनी लड़की के बाल घने, सुंदर और लंबे थे, जिनसे धनी लड़की ईर्ष्या करती थी। धनी लड़की ने बार-बार उस धनी लड़की के चमकदार बालों को अच्छी खासी रकम देकर विग बनाने का प्रस्ताव रखा था। लेकिन धनी लड़की ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया था।

जब उस गरीब लड़की ने शांत भिक्षुओं को भिक्षा मांगते देखा, तो उसके मन में उन्हें भोजन कराने की इच्छा जागी। उसके पास पर्याप्त धन न होने के कारण, उसने अपने बाल काटकर एक धनी लड़की को बेच दिए। उस धन से उसने स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए आवश्यक सामग्री खरीदी और आठ भिक्षुओं के लिए भोजन तैयार किया। इस दान में उसकी भक्ति और प्रसन्नता इतनी प्रबल थी कि उसके इस नेक कार्य का प्रभाव तुरंत दिखाई दिया। उसके बाल फिर से पूरी तरह से लंबे और घने हो गए।

जब कच्चना अवंती लौटे, तो उन्होंने राजा को इस घटना की सूचना दी। राजा ने कन्या को अवंती लाने का आदेश दिया और उन्हें अपनी मुख्य संगिनी बना लिया। इस घटना के बाद राजा पज्जोत को कच्चना पर पूरा भरोसा हो गया। देखते ही देखते, अवंती में भगवा वस्त्रों की लहर दौड़ गई, क्योंकि मंत्री और नगरवासी बुद्ध की शिक्षाओं को अपनाकर सुगठित संप्रदाय में शामिल हो गए। रानी, जो अपने सौभाग्य के लिए कच्चना की कृतज्ञ थीं, ने उनके लिए स्वर्ण उद्यान में एक मठ बनवाया।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को शिक्षा देने के लिए दो विधियों का प्रयोग किया। अक्सर वे एक छोटे श्लोक से शुरुआत करते थे, जिसे वे सुव्यवस्थित उदाहरणों और उपमाओं के साथ विस्तार से समझाते थे, और फिर अपने संदेश के गहन सार को संक्षेप में बताकर उसे आरंभिक श्लोक से जोड़ते थे। हालांकि, कभी-कभी वे एक संक्षिप्त संदेश देते थे जो गहरे अर्थ से परिपूर्ण होता था, और उस पर वे विस्तार से चर्चा नहीं करते थे, क्योंकि वे चाहते थे कि उनका संघ संदेश पर मनन करे और उसका अर्थ खोजे। आध्यात्मिक रूप से अधिक उन्नत भिक्षुओं ने इस चुनौती को उत्साहपूर्वक स्वीकार किया, क्योंकि इससे उनके मन का विस्तार हुआ और उन्हें आध्यात्मिक विकास में सहायता मिली। लेकिन कभी-कभी नौसिखिए भिक्षु उनके शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाते थे। तब नौसिखिए भिक्षु कच्चाना के पास जाते और उनसे बुद्ध के शब्दों की व्याख्या करने का अनुरोध करते। कच्चाना ने तब शिक्षा को विस्तार से समझाया और उसे इस प्रकार व्याख्यायित किया कि संघ के कम उन्नत सदस्य भी उसे समझ सकें। कच्चाना की व्याख्या से अवगत होने पर बुद्ध ने उनकी निरंतर प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि यह प्रश्न उनसे पूछा जाता तो वे स्वयं भी ठीक यही उत्तर देते। कच्चना के विश्लेषणात्मक, सुगठित मन और धम्म को गहराई से समझने तथा संदेश को सरल भाषा में समझाने की क्षमता के कारण, बुद्ध ने उन्हें अपने द्वारा उपदेशित लघु श्लोकों की व्याख्या करने वाले भिक्षुओं में सर्वोपरि घोषित किया। कच्चना को अन्य ब्राह्मण भिक्षुओं से अलग करने के लिए महा कच्चना के नाम से जाना जाता था।

बुद्ध ने अपने संघ को जो अन्य उपाधियाँ दीं, उनकी तरह यह नियुक्ति भी संयोगवश नहीं हुई थी। इस नियुक्ति के लिए जो आकांक्षा और पुण्य कर्म सिद्ध हुए, वे अनेक युगों पहले पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में ही बोए गए थे। उस समय कच्चाना एक धनी परिवार में जन्मे थे और उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध को एक भिक्षु को उनके द्वारा घोषित संक्षिप्त श्लोकों की विस्तृत व्याख्या करने वाले प्रमुख भिक्षुओं के रूप में नियुक्त करते देखा था। कच्चाना भिक्षु की इस योग्यता से प्रेरित हुए और उनके मन में भविष्य के किसी बुद्ध के समय ऐसी ही उपाधि प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। उन्होंने बुद्ध और उनके भिक्षुओं के दल को एक सप्ताह के लिए अपने घर आमंत्रित किया और उन्हें भिक्षा और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। फिर उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा के लिए एक स्तूप बनवाया, जिस पर सोने की जड़ाई कर एक आसन और रत्नजड़ित छत्र बनवाया।

तब कच्चना ने बुद्ध के समक्ष आदरपूर्वक प्रणाम किया और भविष्य के किसी बुद्ध द्वारा कहे गए संक्षिप्त श्लोकों की विस्तृत व्याख्या करने वाले अग्रणी भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। बुद्ध पद्ममुत्तरा ने देखा कि कच्चना की इच्छा पूरी होगी, तो उन्होंने भविष्यवाणी की कि गौतम बुद्ध के समय, जो दस लाख युगों बाद होगा, उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में कच्चना नाम से होगा और उन्हें गौतम बुद्ध द्वारा कहे गए संक्षिप्त श्लोकों की विस्तृत व्याख्या करने वाले अग्रणी भिक्षु के रूप में घोषित किया जाएगा।

बुद्ध पद्ममुत्तरा ने कच्चना के भविष्य के जन्मों के बारे में अन्य भविष्यवाणियाँ भी कीं। उन्होंने घोषणा की कि अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप कच्चना 30 युगों तक देवताओं के स्वामी रहेंगे। फिर वे मानवलोक में पाभासर नामक विश्व सम्राट के रूप में लौटेंगे। कच्चना संसार में पुण्य कर्म करते रहे और अपनी आकांक्षाओं को नवीकृत करते रहे, जब तक कि वे कच्चयन वंश में कंचना के रूप में पुनर्जन्म लेकर अपनी आकांक्षा को पूरा नहीं कर लेते।

इस ग्रंथ में उनके असाधारण रूप से सुंदर, सुनहरे रंग के रहस्य का भी उल्लेख है। कश्यप बुद्ध (हमारे गौतम बुद्ध से पूर्व के बुद्ध) के परिनिर्वाण के कुछ समय बाद, कच्चाना ने कश्यप बुद्ध के नाम पर एक स्तूप बनाने के लिए एक सोने की ईंट दान की थी और यह कामना की थी कि जब भी उनका पुनर्जन्म हो, उनका रंग उसी सोने के समान सुनहरा हो। इसी कामना के फलस्वरूप कच्चाना की त्वचा का रंग असाधारण रूप से सुंदर और सुनहरा हो गया था।

महा कच्चना ने धम्म के संरक्षण में अमूल्य योगदान दिया। गहन विषयों पर उनकी स्पष्ट व्याख्याओं को सावधानीपूर्वक दस्तावेजीकृत किया गया है, जिससे न केवल बुद्ध के समकालीनों को बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी सहायता मिली है। ग्रंथ में एक महान शिक्षक के

रूप में उनकी भूमिका का सटीक वर्णन है। हालांकि, उनकी प्राथमिक भूमिका बुद्ध द्वारा दिए गए कथनों की व्याख्या करना थी। अन्य महान शिष्यों की तुलना में, ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जब उन्होंने व्यक्तिगत रूप से किसी एक व्यक्ति को धम्म की शिक्षा दी हो। उनकी व्याख्याएँ और शिक्षाएँ स्पष्ट और सटीक हैं, जिनमें उपमाओं और उदाहरणों के बजाय विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है।

कच्चाना बुद्ध के एक संक्षिप्त कथन से शुरुआत करते हैं। फिर वे इसके गूढ़ अर्थ की विस्तृत व्याख्या करते हैं। निकायों में पाए जाने वाले आठ सूत्र, जिनमें मज्झिमा निकाय में तीन, समुत्त निकाय में तीन और अंगुत्तरा निकाय में दो सूत्र शामिल हैं, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निकायों में कुछ ऐसे उपदेश भी हैं जो सीधे महा कच्चाना से संबंधित हैं। इन उपदेशों में एक विशिष्ट भाव है जो उस मानसिकता को प्रकट करता है जिससे ये उत्पन्न हुए हैं। ये उपदेश संपूर्ण, सुव्यवस्थित, संतुलित और सटीक हैं। अक्सर कच्चाना श्लोक के सार को कुछ ही शब्दों में समझा देते हैं।

बुद्ध के वचनों के गहन अर्थ को समझाने में कच्चना की कुशलता के कुछ उदाहरण और बुद्ध द्वारा उनकी कुशलता की प्रशंसा निम्नलिखित हैं:

एक दिन जब बुद्ध कपिलवस्तु के निग्रोध उद्यान में ध्यान में बैठे थे, तभी दंडपाणि नामक एक अभिमानी शाक्य उनके पास आया और अभद्र स्वर में पूछा, "यह संन्यासी क्या दावा करता है? वह क्या प्रचार करता है?"

दंडपानी के झगड़ालू स्वभाव और इरादे को भलीभांति समझते हुए बुद्ध ने उत्तर दिया:

"मित्र, मैं इस प्रकार की शिक्षा का प्रतिपादन और प्रचार करता हूँ कि इस युग में संसार में किसी से भी झगड़ा न किया जाए, न उसके देवताओं से, न उसके मारों से, न उसके ब्रह्माओं से, न उसके संन्यासियों से, न उसके ब्राह्मणों से, न उसके राजकुमारों से और न ही उसकी प्रजा से; यहाँ तक कि उन ब्राह्मणों में भी कोई चेतना नहीं रह जाती जो इंद्रिय सुखों से विरक्त, शांत, चिंतामुक्त और किसी भी प्रकार के प्राणी के प्रति लालसामुक्त रहते हैं।" (मज्झिमा निकया)

यह उत्तर दंडपानी को बिल्कुल समझ में नहीं आया और वह निराश होकर चला गया। एक भिक्षु, जिसे बुद्ध के शब्दों का अर्थ समझ नहीं आया था, ने पूछा कि भगवान बुद्ध की वह शिक्षा क्या है जिससे सभी झगड़ों से बचा जा सकता है और साथ ही लालसा के प्रभाव से मुक्त हुआ जा सकता है।

बुद्ध का गहन उत्तर था:

भिक्षुओं, जहाँ तक उस स्रोत का संबंध है जिससे मानसिक अतिवृष्टि से ग्रस्त धारणाएँ और विचार व्यक्ति को घेर लेते हैं, यदि आनंद लेने, स्वागत करने और सहारा लेने के लिए कुछ भी न मिले, तो कामवासना, घृणा, मत, संशय, अहंकार, अस्तित्व की इच्छा और

अज्ञान जैसी अंतर्निहित प्रवृत्तियों का अंत हो जाता है; यहाँ लाठी-डंडों पर निर्भरता, झगड़े, कलह, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, द्वेष और झूठी वाणी का अंत हो जाता है; यहाँ ये सभी बुरी, अस्वस्थ अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। (मज्झिमा निकाय)

लेकिन भिक्षु बुद्ध के शब्दों को समझ नहीं पाए। चूंकि बुद्ध अपने कक्ष में चले गए थे, इसलिए उन्होंने उनसे और प्रश्न नहीं करना चाहा। इसके बजाय, वे महा कच्चना के पास गए और उनसे स्पष्टीकरण मांगा।

महा कच्चना ने सर्वप्रथम उन्हें बताया कि उन्हें बुद्ध के पास जाना चाहिए, क्योंकि वही उनके प्रश्नों का सर्वोत्तम उत्तर दे सकते हैं। उन्होंने भिक्षुओं को याद दिलाया कि बुद्ध की उपस्थिति में उनके पास आना, वृक्ष के तने की उपस्थिति में उसकी शाखाओं और पत्तियों के बीच उसकी मूल सामग्री को खोजने के समान है। परिस्थितियाँ बताए जाने पर उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत से निकले बुद्ध के वचनों की व्याख्या इस प्रकार की:

"आंख (और अन्य इंद्रियों) पर निर्भर, आंख-चेतना (और अन्य प्रकार की इंद्रिय चेतना) उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क की स्थिति में, भावना उत्पन्न होती है। जो महसूस होता है, वही बोध होता है। जो बोध होता है, उसी के बारे में विचार होता है। जो विचार होता है, उसे मन में प्रसारित किया जाता है। मन में प्रसारित विचारों को स्रोत मानकर, मन में प्रसारित विचारों से प्रभावित धारणाएं और विचार (परिस्थितिजन्य क्रियाएं) भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के उन रूपों के संबंध में व्यक्ति को घेर लेते हैं जिन्हें आंख के माध्यम से देखा जा सकता है। यही प्रक्रिया प्रत्येक इंद्रिय के लिए दोहराई जाती है।" इसके बाद, गुरु ने इसे विस्तार से समझाया और इसे आश्रित उत्पत्ति के सिद्धांत की शिक्षा से जोड़ा और भिक्षुओं को बताया कि कैसे सब कुछ पिछली स्थिति पर निर्भर है और पिछली स्थिति के समाप्त होने पर समाप्त हो जाता है।

मज्झिमा निकया के महा कच्चाना भद्देकरत्त सूत्र में भी महा कच्चाना की जटिल विषयवस्तु को समझाने की क्षमता झलकती है। समिद्धि नाम के एक भिक्षु ने बुद्ध से संपर्क किया और उनसे भद्देकरत्त सूत्र प्रदान करने का अनुरोध किया, जो सामान्यतः सभी भिक्षुओं को याद था। बुद्ध ने उत्तर देते हुए कहा:

किसी व्यक्ति को अतीत को पुनर्जीवित नहीं करना चाहिए

या फिर भविष्य पर अपनी उम्मीदें टिकाए।

क्योंकि अतीत पीछे छूट चुका है।

और अभी तक भविष्य तक नहीं पहुंचा जा सका है।

इसके बजाय, अंतर्दृष्टि से उसे देखने दो

वर्तमान में उत्पन्न प्रत्येक अवस्था;

उसे यह बात बता दें और इस बात को लेकर आश्वस्त रहें।

अजेय, अविचल।

आज ही प्रयास करना होगा;

कल मृत्यु आ सकती है, कौन जाने?

मृत्यु के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता

उसे और उसके गिरोह को दूर रखो।

लेकिन जो इस प्रकार उत्साहपूर्वक निवास करता है

दिन-रात निरंतर —

शांतिप्रिय ऋषि ने यही कहा है।

जिसका एक ही सौभाग्यशाली लगाव है।"

तब बुद्ध उठे और अपने कक्ष में चले गए। समिद्धि बुद्ध की कविता को समझ नहीं पाए, लेकिन वे उन्हें परेशान नहीं करना चाहते थे। महा कच्चना के पास पहुँचकर समिद्धि ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और कविता का अर्थ पूछा।

समिद्धि को यह याद दिलाने के बाद कि बुद्ध के निवास के दौरान उनका उनके पास आना उचित नहीं था, कच्चना ने कविता की पहली दो पंक्तियों को लिया और छह इंद्रिय आधारों के माध्यम से उनकी व्याख्या की।

आँख की इंद्रिय से प्रारंभ करते हुए उन्होंने कहा, "जब कोई आँख और अतीत में देखे गए रूपों को याद करता है, और उन पर इच्छा और वासना से लीन रहता है, तो वह अतीत को पुनर्जीवित करता है। जब कोई भविष्य में उन इंद्रिय-विषयों का अनुभव करने की इच्छा रखता है जिनका उसने अभी तक सामना नहीं किया है, तो वह भविष्य के लिए आशा का निर्माण करता है। जो व्यक्ति अतीत की इंद्रिय-अनुभवों की स्मृतियों और भविष्य के इंद्रिय-अनुभवों की लालसा से उत्पन्न इच्छा और वासना से स्वयं को नहीं बांधता, वह अतीत को पुनर्जीवित नहीं करता और न ही भविष्य के लिए आशा का निर्माण करता है। इसी प्रकार, जिसका मन वर्तमान इंद्रिय-शक्तियों और उनके विषयों से वासना से जकड़ा हुआ है, वह वर्तमान में उत्पन्न अवस्थाओं के संबंध में पराजित है, जबकि जो वर्तमान इंद्रिय-शक्ति से वासना से बंधा नहीं है, वह वर्तमान में उत्पन्न अवस्थाओं के संबंध में अजेय कहलाता है।" इसके बाद उन्होंने अन्य सभी इंद्रिय-विषयों का उपयोग करते हुए उपरोक्त व्याख्या को दोहराया।

इस प्रकार, सरल भाषा में, गुरु ने भिक्षुओं को भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की इंद्रिय संबंधी वस्तुओं से आसक्त न होने की सलाह दी। इसके बजाय, सभी घटनाओं की अनित्यता को अंतर्दृष्टि से समझने का प्रयास करें, क्योंकि मृत्यु किसी को भी कभी भी आ सकती है। और मृत्यु से कोई सौदा नहीं कर सकता। महा कच्चना ने समिद्धि को प्रोत्साहित किया कि वे एक क्षण भी व्यर्थ न करें, बल्कि अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए लगन से प्रयास करते रहें।

बाद में, जब भिक्षुओं ने बुद्ध को महा कच्चना की व्याख्या के बारे में बताया, तो उन्होंने उस बुजुर्ग की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि उनसे भी प्रश्न किया जाता, तो वे भी उसी तरह उत्तर देते।

महा कच्चना ने धम्म का उपदेश देने के लिए अपनी विश्लेषणात्मक क्षमताओं और संगठनात्मक कौशल का भी उपयोग किया। मज्झिमा निकाय में महा कच्चना और मधुरा के राजा अवंतीपुत्त के बीच एक बहुत ही रोचक संवाद है। अवंतीपुत्त, मधुरा के राजा चंदप्पज्जोति के पोते थे। एक बार जब महा कच्चना मधुरा में रह रहे थे, तो राजा अवंतीपुत्त ने उनकी प्रसिद्धि सुनकर महा कच्चना से संपर्क किया और उनसे प्रश्न किया। उनका प्रश्न कोई जटिल विषय नहीं था। यह एक महत्वपूर्ण विषय था जो ब्राह्मणों के मन पर गहरा प्रभाव डाल रहा था, जो स्वयं को अपने सृष्टिकर्ता भगवान महाब्रह्म द्वारा चुने गए श्रेष्ठ मानते थे। उच्च जाति के शासकों ने यह दावा करके पूरे भारत पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था कि वे सबसे उत्तम जाति हैं, पवित्र हैं, ब्रह्मा के पुत्र हैं, उनकी संतान हैं - ब्रह्मा से उत्पन्न, ब्रह्मा द्वारा सृजित, ब्रह्मा के वंशज हैं। बुद्ध के समय में, ब्राह्मणों ने यह घोषणा करके पूरे भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था कि ब्राह्मण जाति में, ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले लोग सृष्टिकर्ता भगवान महाब्रह्म के प्रत्यक्ष वंशज हैं। वे चुने हुए लोग थे। वे निर्विवाद नेता और कुलीन वर्ग थे। हालांकि, बुद्ध ने अपमानजनक जाति व्यवस्था की निंदा की थी और घोषणा की थी कि ब्राह्मण (कुलीन) होना जन्म से नहीं, बल्कि कर्मों से निर्धारित होता है।

राजा अवंतीपुत्त का महा कच्चना से पूछा गया प्रश्न, जो एक बहुत पुराने, प्रतिष्ठित और उच्च जाति के ब्राह्मण परिवार से थे, दूरगामी और महत्वपूर्ण था। राजा ने ब्राह्मणवादी मान्यताओं के अनुरूप, दैवीय रूप से निर्धारित स्थिति का हवाला देकर सत्ता के प्रति अपनी लालसा को उचित ठहराने का प्रयास किया। उन्होंने स्वयं प्रतिष्ठित ब्राह्मण जाति के बुजुर्ग से ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के बारे में प्रश्न किया। तब बुजुर्ग ने उनके गलत विचारों को सुधारते हुए कहा:

“ब्राह्मणों का दावा मात्र एक कहावत है — इसका कोई दैवीय आधार नहीं है।” फिर, अपनी बात को और पुष्ट करने के लिए, उस बुजुर्ग ने विस्तार से बताया: “किसी भी सामाजिक वर्ग का कोई भी व्यक्ति जो धनवान हो जाता है, वह अन्य जातियों के लोगों से काम करवा सकता है। यहाँ तक कि एक साधारण व्यक्ति भी ब्राह्मण को अपनी सेवा में रख सकता है। किसी भी जाति का जो व्यक्ति नैतिकता के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है, वह नरक में जन्म ले सकता है (देवदत्त और राजा अजातसत्तु), जबकि किसी भी जाति का जो व्यक्ति नैतिकता और उदारता के सिद्धांतों का पालन करता है, वह सुखमय लोक में जन्म ले सकता है (लाजा)। किसी भी जाति का जो व्यक्ति कानून तोड़ता है, उसे दंडित किया जाएगा। किसी भी जाति का जो व्यक्ति संसार का त्याग करके संन्यासी बन जाता है, उसे आदर और सम्मान प्राप्त होगा (सुनीता और उपली)।” बुजुर्ग ने यह कहकर अपनी बात समाप्त की कि ये चारों जातियाँ (उस समय विद्यमान) एक समान थीं, उनमें कोई भेद नहीं था, उनमें कोई दैवीय आधार नहीं था।

चर्चा के अंत में राजा अवंतीपुत्त ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा, "मैं महा कच्चना की शरण में जाता हूँ, मैं धम्म की शरण में जाता हूँ, मैं संघ की शरण में जाता हूँ।" महा कच्चना ने उन्हें सुधारते हुए कहा, "मेरी शरण में मत आओ। पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के पास जाओ, जिनकी शरण में मैं भी जाता हूँ।" जब राजा ने बुद्ध के बारे में पूछा, तो वरिष्ठ गुरु ने उन्हें बताया कि भगवान बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह चर्चा बुद्ध के देहांत के बाद हुई थी।

महा कच्चना न केवल संघ और गृहस्थ शिष्यों द्वारा आदरणीय थे, बल्कि देवताओं द्वारा भी उनका आदर और सम्मान किया जाता था। भिक्षु आमतौर पर बरसात के मौसम में विभिन्न शहरों और मठों में चले जाते थे। बरसात के मौसम के अंत में वे बुद्ध द्वारा आयोजित एक सभा में एकत्रित होते थे, जहाँ बुद्ध भिक्षुओं को सलाह देते थे और उनके किसी भी दुराचार के लिए उन्हें चेतावनी देते थे। कई भिक्षु इस सभा के लिए बुद्ध के निवास स्थान पर वापस यात्रा करते थे। महा कच्चना भी अपवाद नहीं थे। अक्सर दूर-दूर से यात्रा करते हुए, वे

बरसात के बाद की सभा में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करते थे। अन्य वरिष्ठ भिक्षु, महा कच्चना को देखने के आदी थे, इसलिए सभा में उनके लिए एक स्थान आरक्षित रखते थे।

एक बार तावतिंसा स्वर्ग के राजा सक्का, अपने विशाल दल के साथ, महान शिष्यों को प्रणाम करने और सम्मान देने के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए। जब उन्होंने देखा कि महा कच्चना वहाँ नहीं हैं, तो सक्का ने मन ही मन सोचा, "यदि पूज्य गुरुजी आ जाएँ तो अच्छा होगा, ताकि मैं उन्हें प्रणाम कर सकूँ।" तभी महा कच्चना सभा में आए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। प्रसन्नता से अभिभूत होकर सक्का घुटनों के बल बैठ गए और गुरुजी के चरणों को छुपकर उन्हें प्रणाम किया। फिर उन्होंने उन्हें मालाएँ और धूप अर्पित की।

नवदीक्षित भिक्षु इस बात से नाराज थे कि सक्का ने महा कच्चना को विशेष सम्मान क्यों दिया। बुद्ध ने उन्हें यह कहकर फटकारा कि महा कच्चना जैसे वे भिक्षु, जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं (यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी अपवित्र कर्म न हो), देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रिय होते हैं। फिर उन्होंने घोषणा की:

"देव भी उन्हें प्रिय मानते हैं।"

जिनकी इंद्रियां मंद पड़ गई हैं।

जैसे किसी सारथी द्वारा अच्छी तरह प्रशिक्षित घोड़े,

जिसका अभिमान चूर-चूर हो गया हो,

और कौन भ्रष्टाचार से मुक्त है?

(धम्मपद 94)

इस प्रकार बुद्ध ने अपने शिष्यों को आश्वस्त किया कि देवताओं से कृपा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना का सहारा लेना आवश्यक नहीं है। देवता उन लोगों पर कृपा और सम्मान करना पसंद करते हैं जो सद्‌गुणों का अभ्यास करते हैं और नैतिकता के नियमों का पालन करते हैं।

महा कच्चना ने कई नवोदित भिक्षुओं और गृहस्थ भक्तों को जटिल शिक्षाओं को समझने में सहायता की। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, विश्लेषणात्मक क्षमता और संगठनात्मक कौशल ने कम आध्यात्मिक स्तर वाले कई लोगों को बुद्ध की गहन शिक्षाओं को ग्रहण करने में मदद की। बुद्ध ने महा कच्चना को उन भिक्षुओं में अग्रणी घोषित किया जो बुद्ध द्वारा घोषित संक्षिप्त कथनों की विस्तृत व्याख्या करते थे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (230): सिरिमित्ता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (230) ------>>>> अगला

अध्याय VIII.
आठ श्लोक
230. सिरिमिता
बुद्ध युग में राजगृह में एक अत्यंत धनी जमींदार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम सिरिमित्त रखा गया, उनकी माता सिरिगुत्त की बहन थीं, जिनकी कहानी धम्मपद टीका में शामिल है। [1] अब सिरिमित्त, जो सिरिगुत्त के भतीजे थे, ने उस समय आस्था प्राप्त की जब भगवान (बुद्ध) ने हाथी धनपाल को वश में किया। [2] और उन्होंने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, और समय के साथ अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए।

एक दिन पातिमोक्खा का पाठ करने के लिए अपनी सीट से उठते हुए, उन्होंने एक चित्रित पंखा लिया, [3] और वापस बैठकर, भिक्षुओं को धम्म का पाठ कराया, और ऐसा करते हुए, उन्होंने अधिक प्रमुख गुणों को इस प्रकार अलग किया:

[502] अक्कोधनोनुपनहि अमायो रित्तापेसुनो,॥
तदिसाको भिक्खु इवं पेक्का ना सोकाति को बचाएं॥ ॥

[503] अक्कोधनोनुपनाहि अमायो रित्तापेसुनो,॥
गत्तद्वारो सदा भिक्खु एवं पेक्का न सोचति॥ ॥

[504] अक्कोधनोनुपनहि अमायो रित्तापेसुनो,॥
कल्याणसिलो सो1 भिक्खु एवं पेक्का न सोकाति॥ ॥

[505] अक्कोधनोनुपनहि अमायो रित्तापेसुनो,॥
कल्याणमितो सो भिक्खु एवं पेक्का न सोचति॥ ॥

[506] अक्कोधनोनुपनहि अमायो रित्तापेसुनो,॥
कल्याणपान्नो [53] सो भिक्खु इव पेक्का न सोकाति ॥॥ ॥

[502] क्रोध और घृणा से मुक्त,
छल से शुद्ध, निंदा से रहित,
देखो! उसके जैसा भिक्षु,
जब वह यहाँ से जाएगा, [4] तो फिर कभी नहीं रोएगा।

[503] क्रोध और घृणा से मुक्त,
छल से शुद्ध, निंदा से रहित,
सदा 'द्वार-सुरक्षित' [5] भिक्षु, वह,
जब वह यहाँ से जाएगा, तो अब और नहीं रोएगा।

[504] क्रोध आदि से
... निंदा से मुक्त,
महान गुणों वाला भिक्षु, वह,
जब यहाँ से जाएगा, तो और रोएगा।

[505] [242] क्रोध आदि से,
वह गुणी साथियों का भिक्षु,
जब वह यहाँ से जाएगा, तो अब और नहीं रोएगा।

[506] क्रोध आदि से,

महान अंतर्दृष्टि वाला भिक्षु,
जब वह यहाँ से जाएगा, तो फिर कभी नहीं रोएगा।

क्रोध आदि के विरुद्ध प्रवचन देने के बाद, उन्होंने व्यक्तियों के लिए सही दृष्टिकोण का वर्णन करने वाले छंदों के माध्यम से सर्वोच्च मार्ग को प्रस्तुत किया, और इसके द्वारा स्वयं में आज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की गवाही दी।

[507] पस्सा सद्धा तथागते अचला सुपतिथिता॥
सिलाऽ च यस्सा कल्याणं अरियाकांताऽ पसाऽसिताऽ.॥ ॥

[508] सोंघे पसादो यस्सत्थि उजु भुताm सीए दस्साणो,॥
अदादिद्दोति तं आहु अमोघं तस्स जीवितान्॥ ॥

[509] तस्मा सद्धाऽ च सिलाऽ च पसादौ धम्मदस्सनाअ,॥
अनुयुन्जेथा मेधावी सारं बुद्धानसासनं ति.॥ ॥

[507] जिसका तथागत (बुद्ध) में विश्वास
दृढ़ और अविचल है,
जिसके गुणों की प्रशंसा भले लोगों द्वारा की जाती है
और जो आर्यों की दृष्टि में सुखद है, [6]

[508] जो भिक्षु के आदेश से संतुष्ट रहता है,
जो अपने विचारों में स्पष्ट और ईमानदार है:
'वह कंगाल नहीं है,' वे कहते हैं, इतनी दौलत के साथ,
न ही उसका जीवन बांझ और व्यर्थ है।

[509] अतः ज्ञानी पुरुष, जो
बुद्धों के उपदेशों को याद रखता है,
अपने आप को आस्था और धर्म के प्रति समर्पित करे,
ताकि वह उस आशीर्वाद को जान सके जो वे हमारे लिए लाए हैं
और पवित्र मार्ग (धम्म) के सच्चे दर्शन को जान सके। [7]

सीसीएक्सएक्सआई पंथक मेजर। जब हमारे भगवान (बुद्ध) धर्म के उत्तम चक्र को घुमाते हुए राजगृह गए, तब पंथक, जो कि बड़ा पुत्र था*

[1] संभवतः i. 434 ff. में वह सावत्थी का एक गृहस्थ अनुयायी था,

[2] विनय ग्रंथों में नालागिरि कहा जाता है , iii. 247-250. तुलना करें मिलिंद, i. 297 ff.

[3] विद्वान बहन खुज्जुतारा ने भी उपदेश दिया (धम्मपद टीका, 209)।

[4] 'दूसरे लोक में' (टीका)। वह अनिवार्य रूप से अरहंतों (प्रबुद्ध लोगों) के बारे में या उनसे बात नहीं कर रहे हैं। वाक्यांश के भिन्न अर्थ के लिए श्लोक 188 देखें ।

[5] गुत्ता-द्वारो, बौद्ध नैतिकता में इंद्रियों के 'द्वारों' पर नियंत्रण के लिए तकनीकी वाक्यांश।

[6] 1 बुद्ध, मौन (पच्चेक) बुद्ध, और गंभीर शिष्य (बुद्ध-सवका)।

[7] = श्लोक 204.

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(231): पंथक बुजुर्ग

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (231) ------>>>> अगला

अध्याय VIII.
आठ श्लोक
231. पंथका एल्डर
जब हमारे भगवान (बुद्ध) धर्म के उत्कृष्ट चक्र को घुमाते हुए राजगृह गए थे, तब एक धनी पार्षद की पुत्री और उसके पिता के एक सेवक के बड़े पुत्र पंथक [1] [243] अपने दादा के साथ भगवान (बुद्ध) का प्रवचन सुनने जाया करते थे, और इस प्रकार उन्होंने अंतर्दृष्टि से आस्था प्राप्त की। भिक्षु संघ में प्रवेश करके, वे बुद्ध-शब्द और चार अमूर्त ध्यान (समाधि/तम्मोहन अवस्थाओं) में अत्यधिक पारंगत हो गए, और समय आने पर अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। ध्यान और फल प्राप्ति के आनंद में रहते हुए , एक दिन वे अपनी उपलब्धि की समीक्षा कर रहे थे, और उस कारण अत्यधिक प्रसन्नता से 'सिंह गर्जना' करते हुए इस प्रकार बोले:

[510] यदा पठममद्दक्खीṃ सत्थारमकुतोभ्यो,॥
ततो मे अहु सवेगो पास्तिवा पुरिसुत्तमं॥ ॥

[511] सिरीऽ हत्थेहि पदेहि यो पणमेय्या अगतौ,॥
एतादिसैं सो सत्थारं अराधेत्व विराधये॥ ॥

[512] तदाहाṃ पुत्तदाराṃ च धनाधन्नौ वा चाडयिṃ,॥
केसमसुनि चेदेत्वा पब्बाजीं अनागारियां, ॥ ॥

[513] सिक्खसाजीवासम्पन्नो इंद्रियेसु सुसावुतो.॥
नमास्समानो संबुद्धै विहासिऽ अपराजितो॥ ॥

[514] ततो मे पणिधि असि चेतासो अभिपत्थितो,॥
न निसीदे मुहुत्तमपि तन्हासल्ले अनुहते॥ ॥

[515] तस्सा मेवṃ विहारतो पासा वीर्यपराक्कमाṃ,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससाणं॥ ॥

[516] पुब्बेनिवासाऽ जानामि दिब्बाकक्खुṃ4 विसोधिताऽ,॥
अराहा दक्खिनेयोमहि विप्पमुत्तो निरूपधि.॥ ॥

[517] ततो रत्या विवसने सूर्यसुग्गमनाऽ पति,॥
सब्बाṃ तन्हां निसोनेत्वा पल्लांकेन उपाविसिं' ती.॥ ॥

[510] जब मैंने पहली बार भगवान (बुद्ध) को देखा,
जिनके लिए कहीं से भी भय उत्पन्न नहीं हो सकता, तो
मेरे भीतर गहरी भावना की लहर दौड़ गई,
उन्हें देखकर, जो अद्वितीय पुरुष हैं।

[511] यदि कोई व्यक्ति हाथों और घुटनों के बल बलवान होकर
भाग्य की देवी की कृपा यहाँ लाता,

और इस प्रकार भगवान (बुद्ध) की कृपा प्राप्त करता,
तब भी वह [अपनी चाही हुई चीज़] प्राप्त करने में असफल हो सकता था। [2]

[512] मैंने अपनी ओर से [सभी बाधाओं] को त्याग दिया -
[पत्नी और बच्चों, धन और अनाज की आशा], [3] और अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर
बेघर जीवन में घर से निकल गया।

[513] जीवन और प्रशिक्षण का अभ्यास करते हुए, सभी क्षमताओं को
अच्छी तरह से नियंत्रित रखते हुए, उनके प्रति निष्ठा में,
सर्वोच्च बुद्ध, आत्मा के भगवान (बुद्ध) के रूप में मैंने जीवन व्यतीत किया।

[514] तब मेरे हृदय में लालसा जागी, मैं तरस गया
[पूर्ण करने के लिए]: 'अब मैं और नहीं बैठूंगा,
एक पल के लिए भी नहीं, जबकि लालसा का तीर
चुभता रहे और निकलता न रहे।

[515] हे! मुझे इस प्रकार दृढ़ इच्छाशक्ति से देखो [4] और ऊर्जा की आगे की चाल पर ध्यान दो: [244] मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना बना लिया है,
और बुद्ध के सभी अवशेष हमें करने हैं।

[516] मैं अपने पूर्व जन्मों का स्थान और समय जानता हूँ,
और दिव्य दृष्टि स्पष्ट रूप से चमकती है।
मैं अरहंत हूँ, योग्य पुरुषों की भेंट।
मुक्त और पुनर्जन्म का कोई आधार नहीं।

[517] क्योंकि जैसे ही अंधकार प्रकाश में घुल गया,
और सूर्योदय के साथ दिन निकल आया,
लालसा से, सूखकर, मुक्ति आ गई,
और मैं अपने सोफे पर पालथी मारकर शांति से बैठ गया।

[1] लड़कों का असमय जन्म, जब उनकी माँ अपने परिवार के रिश्तेदारों के पास लौटने के लिए निकली थी, उनका नाम 'रोडलिंग' (बड़ा) और 'छोटा) रखा गया, और उनका अपने परिवार के रिश्तेदारों के साथ रहने जाना, यहाँ संक्षेप में बताया गया है, लेकिन जाट., i. 14 ff., और अंगुत्तरा कमेंट्री i. 26 में अधिक विस्तार से बताया गया है।

[2] 'दुर्भाग्यशाली ... नौवें क्षण में असफल होते हैं' (? ग्यारहवें घंटे), टीका कहती है, जो इसके अलावा, सिरिम में भाग्य की देवी (बौद्ध भारत , पृ. 217) के लिए नहीं, बल्कि एक शिक्षक के सिरिसायना या कैथेड्रा के लिए संकेत देखती है।

[3] अपने दादा-दादी के साथ नाबालिग के रूप में रहते हुए, उसके पास अभी तक इनमें से कुछ भी नहीं था, टिप्पणी में टिप्पणी की गई है।

[4] इस और अगली पंक्तियों के लिए, देखें श्लोक 167, '224, 296, 332, 477.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(232):भूटा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (232) ------>>>> अगला

अध्याय IX.
नौ श्लोकों का कथन (गाथा)
232. भूत
बुद्ध युग में साकेता नगर के उपनगर में एक धनी पार्षद के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वह अंतिम और एकमात्र जीवित संतान थे, क्योंकि अन्य सभी को एक शत्रुतापूर्ण यक्ष ने खा लिया था। इसलिए उनकी अच्छी तरह से रक्षा की गई, लेकिन इस बीच वह राक्षस (भूत) वेसवण [1] की सेवा करने चला गया और फिर कभी वापस नहीं आया। बच्चे के नामकरण के दिन उनका नाम भूत रखा गया, क्योंकि उन्होंने कहा: 'दयालु अमानव उनकी रक्षा करें!' [2] अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप, बिना किसी दुर्घटना के पले-बढ़े, और यस [3] की तरह तीन निवासों में पले-बढ़े , जब भगवान (बुद्ध) साकेता आए, तो वे अन्य गृहस्थों के साथ विहार (मठ) गए और धम्म का पाठ सुना। भिक्षु बनने के बाद, वे अजकारणी नदी के किनारे एक गुफा में रहने चले गए। [4] वहाँ उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने अपने रिश्तेदारों के प्रति दयालुता दिखाते हुए उनसे मिलने के लिए अंजना वन में ठहर गए। जब उन्होंने उनसे वहीं ठहरने का अनुरोध किया और कहा कि इससे दोनों पक्षों को लाभ होगा, तो थेरा ने मठवासी जीवन के प्रति अपने प्रेम और प्रसन्नता को व्यक्त करते हुए, उनसे विदा लेने से पहले ये पंक्तियाँ कहीं:

[518] यदा दुक्खान् जरामरणन्ति पण्डितो॥
अविद्दसु वत्थ सीता पुथुज्जना,॥
दुक्खं परिणया सतोवा झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[519] यदा दुक्खखा ससवहनिm̐ विसात्तिकाm̐॥
पपाञ्चसंघात दुःखधिवाहिनि,॥
तन्हां पहत्वाना सतोवा झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[520] यदा शिवा द्वे कैटुरांगगामिनाm̐॥
मग्गुत्तमाm̐ सब्बाकिलेसासोधनाm̐,॥
पनन्या पासित्वा सतोवा झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[521] यदा अशोका विराजा असोखताm̐॥
संताm̐ पदाm̐ सब्बाकिलेसासोधनाm̐,॥
भवेति संनोजनबन्धनच्चिदौ॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[522] यदा नाभे गज्जति मेघदुन्दुभि॥
धारकुला विहागपथे समन्ततो,॥
भिक्खु च पब्भार्गतोऽव झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[523] यदा नदीनां कुसुमाकुलानां॥
विकत्तवनेयवत्तऽसकानाऽ,॥
तीरे निसिन्नो समणोऽव झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[524] यदा निशिथे रहिकामहि कानेणे॥
देवे गन्तमहि नदन्ति दाथिनो,॥
भिक्खु च पब्भार्गतोऽव झायति॥
ततो रतिm̐ परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[525] यदा वितक्के उपरुंधियात्तनो॥
नागान्तरे नागविवराण समासितो,॥
वितद्दरो विगतखिलोऽव1 झायति॥
ततो रतिm परमतरौ न विंदति.॥ ॥

[526] यदा सुखि वलाखिलसोकानासानो॥
निराग्गाओ निब्बानथे विसालो,॥
सब्बासवे ब्यान्तिकतोऽव झायति॥
ततो रतिm परमतरौ न विन्दति' ति.॥ ॥

[518] जब ज्ञानी व्यक्ति यह समझ लेता है कि बुढ़ापा और मृत्यु, हाँ, वह सब कुछ
जिससे अविवेकी संसारी लोग चिपके रहते हैं, पीड़ा है,
और इस प्रकार पीड़ा को समझकर, वह एकाग्र मन से और विचार के परमानंद में लीन रहता है : - इससे बढ़कर
कोई उच्च आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[519] जब उस भयानक विषक [5] ने उसे प्रतिबंधित कर दिया जो पीड़ा लाता है, -
हाँ, यहाँ तक कि लालसा भी, जिसने उसे
कई चीजों के जाल में कैद होने की पीड़ा की ओर धकेल दिया,
जुनूनी, [6] - और उसने मन से जीवन बचाए
और विचार के परमानंद में डूबे हुए: -
इससे बढ़कर कोई उच्च आनंद नहीं है।

[520] जब वह अंतर्दृष्टि से शुभ संकेतित मार्ग को देखता है, जो
द्विगुणित चौगुना, परम है, जो सभी
अशुद्धियों से शुद्ध करता है, और उसे देखकर, एकाग्र मन से,
विचार के परमानंद में लीन रहता है: -
इससे बढ़कर कोई उच्च आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[521] जब चिंतन का कार्य शांति के मार्ग को वास्तविक और सच्चा बनाता है,
दुःख से मुक्त, बेदाग और असंबद्ध, [7] सभी अशुद्धियों से शुद्ध होकर, और
हर बंधन और जंजीर से अलग होकर, और भिक्षु चिंतन के परमानंद में लीन बैठता है : - इससे बढ़कर
कोई उच्च आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[522] जब ढलते आकाश में तूफ़ान के बादल का ढोल गड़गड़ाता है,
और पक्षियों के सभी रास्ते बारिश से भर जाते हैं, [247] भिक्षु पहाड़ियों की खोखली घाटी में बैठा रहता है,
विचारों के परमानंद में डूबा हुआ: - इससे बढ़कर कोई आनंद
मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[523] या जब नदियों के किनारे, जिनके तट पर
अनेक रंगों से चमकीली जंगली फूलों की मालाएँ उमड़ती हैं,
भिक्षु शांत हृदय से तट पर बैठा रहता है,
विचारों की परमानंद अवस्था में: -
इससे बढ़कर कोई आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[524] या जब आधी रात को सुनसान जंगल में देवता वर्षा करते हैं,
और दाँतों और सूंड वाले जानवर [8] चिल्लाते और चीखते हैं,
भिक्षु पहाड़ियों की खोखली जगह में बैठा रहता है,
विचारों के परमानंद में डूबा हुआ: -

इससे बड़ा आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[525] जब वह मन की विवेचनात्मक बेचैनी को रोक लेता है, [9] और पर्वत की गोद में जाकर किसी गुफा में
आश्रय लेकर बैठ जाता है, भय और बाधा से मुक्त होकर,
विचार के परमानंद में लीन हो जाता
है: - इससे बड़ा आनंद मनुष्य को नहीं मिलता।

[526] जब वह स्वस्थ आराम में रहता है,
कलंक, ठोकर और दुख को दूर करने वाला, शांति के लिए खुला [10] [मन के द्वार], कामवासना से मुक्त, तीर से सुरक्षित, [11] हाँ, सभी मादक पदार्थ (अपवित्रता/इच्छाएँ) कुछ भी नहीं रह जाते, और इस प्रकार
विचार के परमानंद में लीन हो जाता
है: - इससे बड़ा आनंद मनुष्य को नहीं दिया जाता।

[1] आकाश के उत्तरी भाग और यक्षों का शासक [संवाद, ii. 259, 805)।

[2] इस प्रकार ऐसे प्राणियों को प्रायोजक बनाकर उनकी प्रसन्नता को बाध्य करना! भूत = आत्मा, जीव।

[3] सत्रहवीं.

[4] तुलना करें. सप्पाका, सीएक्ससीवीआई.

[5] On visattikā soe p. 218, n. 3.

[6] इस वाक्यांश papañcasanghāṭa(-dukkādhivāhanim̧) के साथ, देखें Majjh., i. 271, l. 1; 383, l. 29; Milinda, 890, l. 7. टीका की व्याख्या बहुत कमजोर है, लेकिन यह papañcanti vitthārentīti का प्रतिलेखन करती है।

[7] असन्खताम̧। न केनसि पकायेना संखतन ती (टिप्पणी)।

[8] टीका में शेरों और बाघों के उदाहरण दिए गए हैं - बेशक यह केवल दूरस्थ स्थानों के लिए ही सत्य है। तुलना करें कम से कम सिस्टर्स, पृ. 151 n.

[9] वितक्का, एक ऐसा शब्द जो इस और उस पर ध्यान लगाने को इंगित करता है, जिससे एकाग्र विचार में बाधा आती है।

[10] शाब्दिक रूप से, वह व्यक्ति जो खुला हुआ है। टीका कहती है कि कुंडी अज्ञान है जो निर्वाण के प्रवेश द्वार में बाधा डालती है।

[11] 'डार्ट' से हमेशा लालसा निहित होती है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(233): कलुदायिन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (233) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
233. कालूदायिन
देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हुए, उनका जन्म हमारे बोधिसत्व (बुद्ध) के ही दिन कपिलवस्तु में राजा के एक मंत्री के परिवार में हुआ था। जी हाँ, उसी दिन इन सातों का जन्म हुआ था: बोधिसत्व, बोधि वृक्ष, राहुल की माता और चार रत्न: सवारी करने

वाला हाथी, घोड़ा कंठक, चन्ना और कालोदयिन। [1] नामकरण के दिन बच्चे का नाम उदयिन रखा गया, और क्योंकि उनका रंग सांवला था, इसलिए वे काल-उदयिन के नाम से जाने जाने लगे। वे बोधिसत्व के साथ खेलते-कूदते बड़े हुए। लेकिन बाद में, जब जगत के स्वामी ने महान त्याग में संन्यास ले लिया, सर्वज्ञ हो गए, और राजगृह के पास बाँस के वन में धम्म के उत्तम मार्ग पर विचरण करते हुए विचरण कर रहे थे, तब राजा सुद्धोदन ने यह सुना और एक हजार सेवकों के दल के साथ एक मंत्री को यह कहते हुए भेजा: 'मेरे पुत्र को यहाँ लाओ।' और जब धम्म का उपदेश दिया जा रहा था, तब वह मंत्री और उसका दल वहाँ पहुंचे, और उन्होंने सुना, और सभी अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए, तब भगवान (बुद्ध) ने अपना हाथ बढ़ाकर कहा: 'आओ, भिक्षुओं!' ... और वे आर्यों में से थे, उन्होंने राजा का संदेश नहीं पहुँचाया। और ऐसा ही अन्य दूतों के साथ भी हुआ। इसलिए राजा ने कालुदयिन को यह कहते हुए भेजा: 'यह उदयिन दस शक्तियों वाले [249] के समान आयु का है , और मेरा सत्कार करता है और मुझसे स्नेह करता है; मैं उसे भेजूँगा; हे मेरे प्रिय, तुम एक हजार आदमियों के साथ जाओ और दस शक्तियों वाले बुद्ध को ले आओ।' तो वह यह कहते हुए चला गया: 'हे प्रभु, यदि मैं संसार त्याग कर संन्यासी बन सकूँ, तो मैं यहाँ बुद्ध को लाऊँगा।' उत्तर मिला, 'जो भी करो, मुझे दिखाओ मेरे पुत्र।' उसने भी प्रथम मंत्री की तरह ही किया और अरहंत (ज्ञान प्राप्त) हो गया। अब उसने सोचा: 'अभी उनके नगर जाने का समय नहीं आया है। जब वर्षा होगी, जंगल फूलों से खिल उठेंगे और धरती हरियाली से ढक जाएगी, तब समय आएगा।' और जब समय आया, तो उसने भगवान (बुद्ध) से यात्रा की सुंदरता की प्रशंसा करते हुए ये श्लोक कहे:

[527] अंगारिनो दानि दुमा भदन्ते॥
फलेसिनो चदानं विप्पहया,॥
ते अचिमन्तोऽव पभासायन्ति॥
समयो महावीर भगीरथनाः।॥ ॥

[528] दुमणी फुलानि मनोरमि॥
समन्ततो सब्बदिसा पवंति,॥
पट्टं पाहाय फलमासाना॥
कालो इतो पक्कमणया वीरा॥ ॥

[529] नेवतिसितां न पनातिउण्हाm॥
सुखा उतु अद्धनिया भदन्ते,॥
पसंतु तां साकिया कोडिया चा॥
पच्चमुखान् रोहिणीं तारयन्तो।॥ ॥

[530] आसया कसते खेताऽ बीजाऽ असया वप्पति,॥
असया वानिजा यान्ति समुद्दं धनहारका,॥
याया असया तिथमि स मे आस समिज्जतु॥ ॥

[531] पुनप्पुनाअ सेवा वापंती बीजाm॥
पुनप्पुनां वस्सति देवराजा,॥
पुनप्पुनाऽ खेताऽ कासन्ति कस्सका॥
पुनप्पुनाऽ धन्नामुपेति रथाऽ॥ ॥

[532] पुनप्पुनाऽ याचनाका कैरन्ति॥
पुनप्पुनां दानपति ददन्ति,॥
पुनप्पुनं दनापति ददित्वा॥
पुनप्पुनाऽ सग्गमुपेन्तीथनाऽऽ॥ ॥

[533] वीरो [57] ने सत्तयुगाm पुनेति॥
यसुमीऽ कुले जयति भूरिपन्नो,॥
मन्नामहं सक्कति देवदावो॥
तया हि जातो मुनि सकानामो॥ ॥

[534] शुद्धेदानो नाम पिता महोसिनो॥
बुद्धस्स माता पाना मयानमा,॥
यबोधिसत्तं परिहरिया कुच्चिना॥
कायस्सा भेदा तिदिवमहि मोदति.॥ ॥

[535] सा गौतमी कलकता इतो काटा॥
दिब्बेहि कामेहि समङ्गिभूता,॥
समोदति कामगुनेहि पंचहि॥
परिर्वतिता देवगाखेहि तेहि.। ॥

[527] हे प्रभु, अब वृक्ष लाल रंग से चमक रहे हैं और
फल की तलाश में अपने प्राचीन पत्तों को त्याग रहे हैं। [2] वे ज्वाला की चोटियों की तरह दीप्तिमान हैं,
और हे महान प्रभु, आशा से भरपूर यह घड़ी है।

[528] हर पेड़ में हरियाली और फूल खिले हैं,
जहाँ भी हम देखते हैं, आँखों को सुकून मिलता है,
और हर तरफ़ सुगंधित हवाएँ बहती हैं, [3] पंखुड़ियाँ गिरती हैं, फल की लालसा होती है: -
हे महान, अब समय आ गया है कि हम यहाँ से प्रस्थान करें।

[529]
हे भगवान (बुद्ध), न अधिक गर्म, न अधिक ठंडा, बल्कि मधुर, अब वर्ष का यही मौसम है। हे शाक्य (बुद्ध का वंश) और कोलिया (पत्नी का वंश) आपको पश्चिम की ओर मुख किए हुए, रोहिणी (सीमा-नदी) पार करते हुए
देखें । [4]

[530] [250] आशा में खेत जोता जाता है, आशा में बीज बोया जाता है,
धन जीतने की आशा में व्यापारी समुद्र पार यात्रा करते हैं।
मेरी आशा पूरी हो!

[531] बार-बार हल में बीज बोया जाता है।
बार-बार बादल-राजा वर्षा बरसाता है,
बार-बार हल चलाने वाले खेत जोतते हैं,
बार-बार राज्य में अनाज आता है।

[532] बार-बार भिखारी अपना चक्कर लगाते हैं;
बार-बार उदार दाता देते हैं;
बार-बार जब बहुत सारे उपहार दिए जाते हैं,
बार-बार दाताओं को अपना स्वर्ग मिलता है।

[533] निश्चय ही एक महान व्यक्ति
सात पीढ़ियों पहले तक, चाहे वह कहीं भी जन्मा हो, उसे परम पवित्रता तक पहुंचाता है।
और मुझे लगता है कि वह भी ऐसा ही कर सकता है, जो अत्यंत बुद्धिमान है, देवताओं का देवता है
। वास्तव में, आप में एक द्रष्टा का जन्म हुआ है।

[534] सुद्धोदन को सर्वशक्तिमान भगवान (बुद्ध) का पिता कहा जाता है,
और बुद्ध की माता [हमारी रानी] माया थीं। उन्होंने अपने गर्भ में ज्ञान को धारण किया और
शरीर की मृत्यु होने पर तुषिता (स्वर्ग) में आनंद पाया। [5]

[535] हे गौतम (बुद्ध), पृथ्वी पर मरकर, यहाँ से विदा होकर,

अब उन देवताओं के साथ स्वर्गिक आनंद में निवास करती हैं।

जब परमेश्वर (बुद्ध) से यह पूछा गया, तो उन्होंने अपने जाने से बहुतों के उद्धार का ज्ञान प्राप्त किया और 20,000 अरहंतों (ज्ञानियों) के साथ प्रतिदिन एक योजन पैदल चलकर प्रस्थान किया। थेरा ने इद्धि (जादुई शक्ति) के बल पर कपिलवस्तु जाकर राजा के समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। राजा ने उनसे पूछा, 'आप कौन हैं?' और उन्होंने उत्तर दिया, 'यदि आप उस मंत्री के पुत्र को नहीं जानते जिसे आपने परमेश्वर (बुद्ध) के पास भेजा है, तो जान लीजिए कि मैं ही वह पुत्र हूँ।'

[536] बुद्धस्सा पुत्तोम्ही असयहासहिनो॥
अंगिरस्स्सप्पतिमस्सा ताडिनो,॥
पितुपिता मयहा तुवंसी सक्का॥
धम्मेन मे गोतम अय्याकोसि' ति.॥ ॥

[536] हे बुद्ध के पुत्र, हाँ, हे
अंगिरस, जिनके समान कोई नहीं है, [251] जिन्होंने अजेय को भी विजय प्राप्त कर ली है।
हे साकियन, मेरे पिता के पिता आप ही हैं। हे गौतम, आप मेरे लिए धम्म के मार्ग में महान स्वामी हैं। [6]

[1] इन सात 'जन्मजात लोगों' पर देखें डैड. बिर्टकटोरीज़, 68 एन.; सीएफ. डायलॉग, ii. 202-208.

[2] 'इच्छा के बिना भी, वे स्वैच्छिक कार्य के बारे में सेटिंग व्यक्त करते हैं,' यह टिप्पणी है।

[3] पावंति: गंधाm̟ विसज्जेंति (टिप्पणी)।

[4] धम्मपाल लिखते हैं, 'इस नदी से, जो उन दो कुलों की भूमि से उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है, राजगृह दक्षिण-पूर्व में स्थित है, इसलिए वहाँ से कपिलवस्तु जाने के लिए इसे पश्चिम की ओर मुख करके पार करना पड़ता है,' या उत्तर-पश्चिम की ओर, 60 योजन की यात्रा (पृष्ठ 9; लगभग 435 मील)। इस नदी पर, जिसे अब रोवाई या रोहवैनी कहा जाता है, कनिंघम के भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, xii, पृष्ठ 190 आदि में विस्तृत विवरण देखें। कालुदयिन 'तब उपमाओं द्वारा अपनी आकांक्षाओं को प्रकट करते हैं' (टीका)।

[5] आनंद का स्वर्ग, इस दुनिया से चौथा ऊपर। तुलना करें सिस्टर्स, पृष्ठ 3.

[6] टीका में अंगीरस की दो व्याख्याएँ दी गई हैं, जो बुद्ध के लिए अन्यत्र प्रयुक्त नाम है - जैसे, दीघा, iii. 196; सामी., i. 196; अंग., iii. 239; जाट., i. 116। एक व्याख्याकार की व्युत्पत्ति है; दूसरी इसे सिद्धार्थ की तरह दूसरा व्यक्तिगत नाम कहती है। पहली तीन सुंदर गाथाएँ जातक टीका (बौद्ध जन्म कथाएँ, पृष्ठ 121) में अधिक संक्षेप में दी गई हैं । अगली गाथा श्लोकों में है; शेष सभी त्रिष्टुभ (उपवजिरा) हैं ; लेकिन यह मानना थोड़ा मुश्किल है कि संगीतमय आरंभ और भद्दा अनुक्रम एक ही व्यक्ति द्वारा रचित हैं। अंग. निक., i.
में कालुदयिन को दिया गया विशिष्ट भेद। 25वीं सीट इस दूतावास द्वारा जीती गई थी - यानी 'उस व्यक्ति के दूतावास द्वारा जिसने कुलों को सबसे अच्छी तरह संतुष्ट किया।'

अपदाना से और भी बहुत कुछ

बुद्ध को उनके पिता (राजा) के पास वापस लौटने में कालुदाई की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.19. जब तथागत उसी बाँस के बाग में निवास कर रहे थे, तब महान राजा सुद्धोदन ने यह सुना: "सुना है कि मेरे पुत्र ने छह वर्ष तक कठिन कर्म करके बुद्ध बनकर सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया है, उसने धर्म का उत्कृष्ट चक्र चलाया है और वह बाँस के बाग (वेलुवन) में है।" उन्होंने एक मंत्री से कहा: "आओ, मेरे सेवक! तुम एक हजार पुरुषों से घिरे हुए राजगृह जाओ और मेरी ओर से कहो: 'तुम्हारे पिता, महान राजा सुद्धोदन अपने पुत्र से मिलना चाहते हैं' और मेरे पुत्र को लेकर वापस आओ।" उस मंत्री ने सिर झुकाकर राजआदेश ग्रहण किया और कहा, "हे महाराज!" फिर वह साठ योजन लंबी यात्रा पर, एक हजार पुरुषों से घिरे हुए, शीघ्र ही आगे बढ़े और दासबाला की चार सभाओं के बीच बैठ गए। उसी समय दासबाला धर्मोपदेश के समय मठ में प्रवेश कर गए। उस मंत्री ने मन ही मन कहा, "राजा द्वारा

भेजा गया राजसंदेश अभी के लिए स्थगित कर दिया जाए", और सभा के अंतिम छोर पर खड़े होकर गुरु के धर्मोपदेश को सुना। खड़े-खड़े ही उन्होंने अपने हजार पुरुषों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया और भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। भगवान ने हाथ बढ़ाकर आह्वान किया, "आओ! भिक्षुओं!" उसी क्षण वे सभी जादुई रूप से प्रकट हुए और साठ वर्ष के थेरों के समान हो गए। अर्हतत्व प्राप्त करने के समय से ही उस मंत्री ने मन ही मन कहा, "हे संतों (आर्यो), समभाव बनाए रखें" और उन्होंने दासबाला को भेजे गए राजसंदेश के बारे में कुछ नहीं कहा। राजा ने ऐसा किया। राजा ने उसी उद्देश्य से एक और मंत्री को भेजा और कहा: "जो गया था, वह न तो लौटा है और न ही उसके लौटने का कोई संदेश आया है।" वह दूसरा मंत्री भी बुद्ध के पास गया, अपने दल के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया, लेकिन मौन रहा। फिर राजा ने उसी उद्देश्य से सात और मंत्रियों को भेजा और कहा: "आओ! मेरे सेवकों! तुम भी जाओ!" वे सभी नौ मंत्री, अपने नौ हजार पुरुषों के साथ, अपने कर्तव्य पूरे करने के बाद, मौन हो गए और वहीं रुके रहे।

3.20. राजा को कोई सूचना न मिलने पर, जो उन्हें संदेश के माध्यम से भेजी जानी थी, उन्होंने सोचा, "मेरे इतने सारे सैनिक, मेरे प्रति स्नेह की कमी के कारण, कोई सूचना संदेश के माध्यम से नहीं लाए; अब भला मेरा दूत कौन बनेगा?" और पूरी राजसेना का सर्वेक्षण करते हुए उन्होंने कालुदायी को देखा। कहा जाता है कि उन्होंने राजा के लिए सभी प्रकार के लाभ किए, वे एक विश्वासयोग्य, अत्यंत विश्वसनीय मंत्री थे, जिनका जन्म बोधिसत्व के साथ एक ही दिन हुआ था, और वे बोधिसत्व के साथ कोमल मिट्टी से खेलने वाले सहयोगी थे। तब राजा ने उनसे इस प्रकार कहा: "प्रिय कालुदाई! क्योंकि मैं अपने पुत्र को देखने की इच्छा रखता हूँ, इसलिए मैंने नौ मंत्रियों को नौ हजार सैनिकों के साथ भेजा था; उनमें से एक भी वापस नहीं आया; कोई भी आकर मुझे कोई खबर नहीं देता, यहाँ तक कि वह खबर भी नहीं जो मेरे जीवन के लिए खतरे के बारे में हो; मैं अपने जीवित रहते अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ; क्या आप सचमुच मुझे मेरे पुत्र से मिलवा सकते हैं?" कालुदाई ने उत्तर दिया: "महाराज! मैं ऐसा कर सकता हूँ, यदि मुझे भिक्षु बनने की अनुमति मिल जाए।" राजा ने कहा: "मेरे प्रिय! चाहे तुम भिक्षु बनो या न बनो, कृपया मुझे मेरे पुत्र से मिलवा दो।" कालुदायी ने "बहुत अच्छा! महाराज!" कहते हुए राजा से राजसंदेश लिया, राजगृह गए, गुरु द्वारा धर्मोपदेश के समय सभा के अंतिम छोर पर खड़े होकर धर्म का प्रवचन सुना, अपने साथियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया, "आओ! भिक्षु!" कहकर भिक्षु बन गए और वहीं निवास करने लगे।

बुद्ध अपने पिता के राज्य में लौटते हैं और अपने पुत्र राहुल को दीक्षा देते हैं ।

3.21. गुरु बुद्ध बनने के बाद, प्रथम वर्षा ऋतु के पूरे समय इसिपताना में रहे और उपवास की समाप्ति पर पवाराना समारोह संपन्न किया, फिर उरुवेला गए, जहाँ तीन माह रहकर उन्होंने गुंथे हुए बालों वाले तीन तपस्वी भाइयों को परिवर्तित किया, और फुस्सा माह की पूर्णिमा के दिन एक हजार भिक्षुओं के दल से घिरे हुए राजगृह गए और वहाँ दो माह रहे। बनारस से प्रस्थान के बाद अब तक पाँच माह बीत चुके थे। शीत ऋतु का पूरा समय बीत चुका था। थेरा कलुदयी के आगमन के बाद से सात-आठ दिन बीत चुके थे। फाग्गुन माह की पूर्णिमा के दिन, थेरा ने सोचा: "सर्दी समाप्त हो गई है; वसंत ऋतु आ गई है। फसल कटाई के बाद मनुष्यों ने चारों ओर यात्रा के लिए सड़कें बना दी हैं; धरती हरी घास से ढकी हुई है; घने जंगल सुंदर फूलों से खिले हुए हैं; सड़कें अब यात्रा के योग्य हैं; अब दशाबल के लिए अपने सगे-संबंधियों पर कृपा करने का समय आ गया है।" तब थेरा परमेश्वर के पास गए और दशाबल के कुल नगर की यात्रा की प्रशंसा में कम से कम साठ श्लोकों में बोले:

"चूंकि पेड़ पूरी तरह से खिल चुके हैं, इसलिए अब

हे पूज्यवर, गहरे लाल रंग का!

अपने पत्तों के आवरण को त्यागकर वे शुरुआत कर रहे हैं

फल देने के लिए। मानो वे आग की लपटों से चमक रहे हों।

हे महान नायक! अब समय आ गया है कि वे अपने अनुभव साझा करें।

स्वाद। मौसम न तो बहुत ठंडा है और न ही बहुत ठंडा।

गर्म; न तो दान की अत्यधिक कमी है और न ही

अकाल; ज़मीन घास से भरी और हरी है। यह है

हे महान ऋषि, वह समय!

तब गुरु ने उनसे कहा, "हे उदयि! तुम अपनी मधुर वाणी में यात्रा की इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो?" उदयि ने उत्तर दिया, "आदरणीय! आपके पिता, महान राजा सुद्धोदन, आपसे मिलना चाहते हैं, कृपया अपने सगे संबंधियों पर कृपा कीजिए।" बुद्ध ने सहमति जताते हुए कहा, "उदयि! मैं अपने सगे संबंधियों पर कृपा करूंगा; भिक्षुओं के समूह को सूचित कर दीजिए, वे यात्रा के सभी कर्तव्यों का पूर्ण पालन करेंगे।" बुद्ध का उत्तर सुनकर गुरु उदयि ने कहा, "आदरणीय! ठीक है, आदरणीय," और भिक्षुओं को तदनुसार सूचित कर दिया।

3.22. बुद्ध ने अंग और मगध के दस हजार निवासियों और कपिलवस्तु के दस हजार निवासियों, कुल मिलाकर बीस हजार भिक्षुओं (जिन्होंने अपने आसवों को नष्ट कर दिया था और अरहत बन गए थे) से घिरे हुए राजगृह को छोड़कर प्रतिदिन एक योजन की दूरी तय करते हुए अपनी यात्रा पर प्रस्थान किया। उन्होंने मन ही मन कहा, "राजगृह से कपिलवस्तु साठ योजन दूर है, मैं दो महीने में वहाँ पहुँच जाऊँगा।" इस प्रकार बुद्ध ने विश्राम यात्रा पर प्रस्थान किया। थेरा कालुदयी ने भी मन ही मन कहा, "मैं महाराज के प्रस्थान की सूचना राजा को दे दूँगा।" वे आकाश में गए और राजमहल में दर्शन दिए। राजा ने थेरा को देखा, उनका हृदय प्रसन्न हुआ, उन्होंने उन्हें पालकी पर बैठने का निमंत्रण दिया और अपने लिए तैयार किए गए विभिन्न प्रकार के उत्तम स्वाद वाले भोजन से भरा एक कटोरा भेंट किया। थेरा अपने आसन से उठे और प्रस्थान के संकेत दिए। राजा ने निवेदन करते हुए कहा, "कृपया बैठिए और भोजन कीजिए, महाराज।" थेरा ने उत्तर दिया, "हे महाराज! मैं गुरु के पास जाकर भोजन करता हूँ।" राजा ने पूछा, "गुरु कहाँ हैं, महाराज?" थेरा ने उत्तर दिया, "हे महाराज! वे आपसे मिलने के उद्देश्य से बीस हजार भिक्षुओं से घिरे हुए अपनी यात्रा पर निकले हैं।" राजा प्रसन्न होकर बोले, "कृपया इस भोजन का आनंद लीजिए; जब तक मेरा पुत्र इस नगर में न पहुँच जाए, तब तक कृपया यहीं से उसके लिए भिक्षापात्र एकत्र करें।" थेरा मान गए। राजा ने थेरा का आतिथ्य सत्कार किया, भिक्षापात्र को सुगंधित पाउडर से शुद्ध किया, उसमें उत्तम भोजन सामग्री भरी और थेरा को सौंपते हुए कहा: "कृपा करके इसे तथागत को अर्पित करें।" सभी उपस्थित लोगों के देखते ही थेरा ने कटोरा आकाश में उछाल दिया, स्वयं वायुमंडल में ऊपर गए, भिक्षापात्र लाए और उसे गुरु के हाथों में रख दिया। गुरु ने भोजन का आनंद लिया। इसी प्रकार थेरा प्रतिदिन भिक्षापात्र लाते रहे। गुरु ने भी अपनी पूरी यात्रा के दौरान राजा द्वारा भिक्षा के रूप में दिए गए भोजन को ही ग्रहण किया। थेरा प्रतिदिन भोजन के अंत में यह सूचना देते थे: "आज प्रतापी इतने योजन निकट आ गए हैं; अब, उन्होंने इतनी दूरी तय कर ली है: और बुद्ध के गुणों से संबंधित विषयों पर अपने धार्मिक प्रवचनों से, बिना उन्हें देखे ही, पूरे राजपरिवार को गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा से भर दिया है। इसी कारण परमेश्वर ने उन्हें सर्वोच्च पदों में से एक प्रदान करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! कालुदायी वह हैं, जो मेरे शिष्य भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान रखते हैं और मेरे परिवार के सदस्यों को मुझमें श्रद्धा दिलाते हैं।"

3.23. जब भगवान बुद्ध आए, तो शाक्यों ने भी मन ही मन कहा, "हम अपने सबसे अच्छे रिश्तेदार का स्वागत करेंगे", और वे सब एकत्रित हुए। भगवान बुद्ध के निवास स्थान पर विचार करने के बाद, उन्होंने शाक्यों के निग्रोध वन को रमणीय मानते हुए चुना। उन्होंने सभी तैयारियाँ करवाईं, सुगंधित फूल लिए और सबसे पहले युवा बालक-बच्चियों को, जो हर प्रकार के आभूषणों से सुशोभित थे, उनका स्वागत करने के लिए आगे भेजा। बाद में, उन्होंने राजकुमारियों और राजकुमारियों को आगे भेजा। उनके बीच, उन्होंने स्वयं भगवान बुद्ध को इत्र, फूल आदि से सम्मानित करते हुए, उन्हें अपने साथ निग्रोध वन ले गए। वहाँ, भगवान बुद्ध दो हजार अरहतों से घिरे हुए, बुद्ध के लिए तैयार किए गए उत्तम आसन पर विराजमान हुए। शाक्य जन्मजात अभिमानी और अत्यधिक घमंडी थे। उन्होंने इस प्रकार विचार किया: "राजकुमार सिद्धार्थ हमसे छोटे हैं; वे हमारे सबसे छोटे चचेरे भाई, भतीजे, पुत्र, पोते हैं" और उन्होंने युवा और कनिष्ठ राजकुमारों से इस प्रकार कहा: "आप सभी उन्हें प्रणाम करें; हम आप सभी के पीछे बैठेंगे।"

3.24. जब वे इस प्रकार बिना उनकी आराधना किए बैठे रहे, तब प्रतापी प्रभु ने उनका इरादा जान लिया और कहा, "मेरे सगे-संबंधी मुझे प्रणाम नहीं करते; देखो! मैं अब उन्हें अपनी आराधना करने पर मजबूर करूँगा", फिर चौथे ध्यान में प्रवेश किया, वहाँ से उठे, आकाश में गए और कंद के आम के वृक्ष के नीचे किए गए दो चमत्कारों के समान एक चमत्कार किया, मानो अपने चरणों की धूल उनके सिर पर बिखेर दी हो। उस भयानक दृश्य को देखकर राजा ने कहा, "हे पूज्यवर! आपके जन्मदिन पर, जैसे ही मैंने आपके चरणों को दूसरी दिशा में घूमते देखा, मैंने आपके चरणों में प्रणाम किया और जब कालदेवल की पूजा करने के लिए आपको आपके चरणों में बुलाया गया, तो मैं ब्राह्मण ऋषि के सिर पर विराजमान हो गया। यह मेरी पहली प्रणाम थी। हल चलाने के दिन भी, जैसे ही मैंने आपके युजेनिया वृक्ष की स्थिर छाया को देखा, जब आप ******** (पृष्ठ 159) के नीचे शुभ पलंग पर सो रहे थे, मैंने आपके चरणों की पूजा की। यह मेरी दूसरी प्रणाम थी। अब, जब मैं ऐसा चमत्कार देख रहा हूँ जो मैंने पहले कभी नहीं देखा, तो मैं आपके चरणों की पूजा कर रहा हूँ। यह मेरी तीसरी प्रणाम है।" जब राजा ने प्रतापी बुद्ध की पूजा की, तो एक भी शाक्य ऐसा नहीं बचा जो उनकी पूजा किए बिना रह सके। सभी ने स्वाभाविक रूप से उन्हें अपना-अपना सम्मान दिया।

3.25. इस प्रकार अपने सगे-संबंधियों से आराधना करवाने के बाद, भगवान आकाश से अवतरित हुए और अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। जब भगवान बैठे, तो उनके व्याकुल सगे-संबंधी एकत्रित हो गए। वे सब एकाग्रचित्त होकर बैठ गए। इसके बाद एक विशाल वर्षा-बादल से कमल-वर्षा हुई। तांबे के रंग की वर्षा ध्वनि उत्पन्न करती हुई गिरी। इसने केवल उन्हीं को भीगा जो भीगना चाहते

थे। जो भीगना नहीं चाहते थे, उनके शरीर पर एक बूंद भी नहीं गिरी। इस घटना को देखकर सभी हृदय और आत्मा से विस्मित हो गए और कहने लगे, "सचमुच, यह अद्भुत है! सचमुच, यह विचित्र है!" गुरु ने उत्तर दिया, "केवल अब ही नहीं, मेरे सगे-संबंधियों की सभा पर कमल-वर्षा हुई है, पहले भी वर्षा हुई थी", और इस कथन को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वेस्सन्तरा जन्म-कथा (जातक) सुनाई। धर्म का उपदेश सुनकर सभी शाक्य पुरुष उठे, प्रणाम किया और चले गए। राजा और उनके मंत्रियों में से एक भी ऐसा नहीं था जिसने जाने से पहले कहा हो: "कल कृपया हमारा भोजन-अर्पण स्वीकार करें।"

3.26. अगले दिन, गुरुजी बीस हजार भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु नगर में प्रवेश किया। उन्हें न तो किसी ने आमंत्रित किया और न ही किसी ने उनका भिक्षापात्र ग्रहण किया। गुरुजी नगर के द्वार के स्तंभ के पास खड़े होकर मन ही मन सोचने लगे, "पूर्ववर्ती बुद्ध अपने कुल नगर में भिक्षा मांगने के लिए कैसे विचरण करते थे? क्या वे शासकों के घरों में वरीयता क्रम से जाते थे? या फिर क्या वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगने का धुतंग अभ्यास करते थे?" इसके बाद, यह देखकर कि पूर्ववर्ती बुद्धों में से कोई भी अपने शाही रिश्तेदारों के पास भोजन के लिए नहीं गया, उन्होंने मन ही मन कहा, "मुझे भी अब उनकी इस परंपरा का पालन करना चाहिए; भविष्य में भी, मेरे शिष्य मेरे ही उदाहरण का अनुसरण करते हुए भिक्षा मांगने के कर्तव्य को पूर्णतः निभाएंगे", और वे स्वयं उस घर से भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े जहाँ से वे प्रवेश कर चुके थे। दो मंजिला, तीन मंजिला आदि आलीशान अपार्टमेंटों में शेर के पिंजरे जैसी खिड़कियां खोलकर बड़ी संख्या में लोग उन्हें ध्यान से देखने में व्यस्त थे और आपस में कह रहे थे: "लोग कहते हैं कि हमारे स्वामी राजकुमार सिद्धार्थ भिक्षा मांगने के लिए घूमते हैं।"

3.27. राहुल की माता ने भी अपने कमरे की खिड़की खोली और मन ही मन कहा, "कहा जाता है कि हमारे युवा स्वामी पहले इसी शहर में राजसी वैभव के साथ सोने की पालकियों आदि पर विचरण करते थे, अब भिक्षा मांगने के लिए अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, हाथों में भिक्षापात्र लिए घूम रहे हैं; क्या यह वाकई शोभा देता है?" उन्होंने बाहर देखा और पाया कि प्रतापी बुद्ध, अतुलनीय महिमा से जगमगाते हुए, एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस गुणों से सुशोभित, अपने अस्सी छोटे अंगों से दीप्तिमान, अपनी एक-दसवीं किरणें भली-भांति प्रदर्शित करते हुए, शहर की सड़कों को अपने रागों (या हर प्रकार की कामुकता से रहित, या विभिन्न रंगों (विरागों) से दीप्तिमान शरीर की चमक से रोशन कर रहे थे, और परिणामस्वरूप उन्होंने अपने सिर के मुकुट से लेकर पैरों के तलवों तक दस स्वरों से प्रतापी की स्तुति की। नर-सिंह श्लोक (नरसिहगाथा) इस प्रकार:-

शेर मनमोहक नीले मुलायम बालों वाला है

लहराते बाल; उसका माथा बेदाग जैसा दिखता है

सूर्य की सतह, उसकी नाक आनुपातिक रूप से है

प्रमुख, कोमल और लंबा; उसकी किरणों की चमक

व्यापक रूप से विकिरण करना,

और राजा को इस प्रकार सूचित किया: "आपका पुत्र भिक्षा मांगने गया है।" राजा व्याकुल हो गए, अपने वस्त्र स्वयं ठीक किए, अपने महल से शीघ्रता से बाहर निकले और उस तेजस्वी व्यक्ति के पास पहुँचे, उनके सामने खड़े होकर पूछा: "हे पूज्यवर! आप हमें कब अपमानित कर रहे हैं? आप भिक्षा मांगने क्यों गए हैं? आपने हमें यह क्यों नहीं बताया कि इतने भिक्षुओं के लिए भोजन जुटाना संभव नहीं है?" उत्तर था: "हे महाराज! यह भिक्षा मांगना हमारी खानदानी परंपरा है।" राजा ने उत्तर दिया: "हे पूज्यवर! क्या हमारा वंश महासम्मत क्षत्रिय के नाम से नहीं जाना जाता? हमारी परंपरा में ऐसा कोई क्षत्रिय नहीं है जो भिक्षा मांगने जाता हो।" बुद्ध सड़क पर खड़े-खड़े ही उत्तर देने लगे: "हे महान राजा! आपका कुल, अर्थात्, यह क्षत्रिय वंश है; परन्तु हमारा वंश, जिसमें 'दीपांकर, कोण्डञ्ञ, कस्सपा' शामिल हैं, यही है, अर्थात् बुद्ध का वंश; ये और हजारों अन्य बुद्ध भी भिक्षा मांगकर ही अपना जीवन यापन करते थे", और उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:-

आपको प्रयास करना होगा; आपको निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए।

लापरवाही; आपको धर्म का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए ताकि यह

अच्छा अभ्यास; जो धम्म का अभ्यास करता है, वह जीवन यापन करता है।

(सेती) इस दुनिया में और अपनी दुनिया में भी खुशी से

अनुवर्ती अस्तित्व"।

श्लोक के पाठ के अंत में, राजा सोतापत्ति के फल में विराजमान हो गया। यह सुनकर एक और श्लोक पढ़ा गया:

धम्म का अभ्यास इस प्रकार करो कि वह अच्छा अभ्यास बन जाए;

इसका अभ्यास इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए कि यह एक बुरी आदत बन जाए।

अभ्यास; जो धम्म का अभ्यास करता है, वह जीवन यापन करता है।

इस जीवन में और यहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक रहना।

बाद में,"

राजा ने सकदागामी (वह जो केवल एक बार ही मानव जन्म लेगा) के फल को प्राप्त कर लिया। महाधम्मपाल की जन्म कथा सुनकर, राजा ने उस फल को प्राप्त कर लिया जो कभी मानवलोक में नहीं लौटेगा (अनागामी)। मृत्यु के निकट, राजा ने सफेद छत्र के नीचे अपने सुंदर राजसी पलंग पर लेटे हुए ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। राजा ने वन में रहकर गहन ध्यान में लीन होने का कोई आडंबर नहीं किया। जैसे ही उन्होंने मोक्ष की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) को प्राप्त किया, राजा ने बुद्ध का प्याला उठाया, भगवान बुद्ध और उनके अनुयायियों को अपने महल में आमंत्रित किया और उन सभी को उत्तम भोजन से दावत दी। भोजन समाप्त होने पर, राहुल की माता को छोड़कर, राजमहल की सभी स्त्रियाँ आईं और भगवान बुद्ध को प्रणाम किया। हालांकि उसके आसपास के लोग उससे कह रहे थे: "कृपया जाइए; कृपया युवा प्रभु को अपना सम्मान दीजिए", फिर भी वह नहीं गई और बोली: "यदि मुझमें योग्यता है, तो युवा प्रभु स्वयं मेरे समक्ष आएंगे; जब वे आएंगे तभी मैं उन्हें अपना सम्मान अर्पित करूंगी।"

3.28. प्रतापी प्रभु ने अपना भिक्षापात्र राजा को सौंप दिया, अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ राजसी राजकुमारी के सुंदर कक्ष में गए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठते हुए कहा: "जब राजकुमारी अपनी इच्छा अनुसार प्रणाम करे, तब कुछ न कहा जाए।" वह शीघ्र ही आई, उनके टखनों को पकड़ा, अपना सिर उनके चरणों में रखा और अपनी इच्छा अनुसार उनकी आराधना की। राजा ने राजकुमारी की उन योग्यताओं के बारे में बताया जो उन्होंने भगवान के प्रति स्नेह और श्रद्धा के रूप में प्राप्त की थीं: "हे पूज्यवर! मेरी पुत्री ने जब सुना कि आपने पीले वस्त्र, ऊपर और नीचे, पहने हैं, तब से वह भी पीले वस्त्र पहनने लगी; जब उसने सुना कि आप केवल एक बार भोजन करते हैं, तो वह भी उसी प्रकार एक बार भोजन करने लगी; जब उसने सुना कि आपने सोने के लिए आलीशान पलंग का त्याग कर दिया है, तो वह भी केवल एक कपड़े की पट्टी वाले पलंग पर सोने लगी; जब उसे पता चला कि आप मालाओं, इत्र आदि का त्याग करते हैं, तो वह भी मालाओं और इत्र का त्याग करने लगी; यद्यपि उसके अपने रिश्तेदारों ने संदेश भेजकर कहा: "हम आपकी देखभाल करेंगे", फिर भी उसने उनमें से किसी की ओर देखा तक नहीं; हे पूज्यवर! इस प्रकार मेरी पुत्री ने अपनी योग्यता प्राप्त कर ली है।" बुद्ध ने उत्तर दिया: "महाराज! यह बात विचित्र नहीं है, क्योंकि अब आपकी देखरेख में, जब राजकुमारी की बुद्धि परिपक्व हो गई है, तो वह अपना ख्याल स्वयं रख सकती है; पहले तो यह राजकुमारी, यद्यपि उसे पहाड़ी की तलहटी में असुरक्षित भटकना पड़ता था और उसकी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई थी, फिर भी वह अपना ख्याल स्वयं रखती थी।" इतना कहकर, बुद्ध ने किन्नरा की जन्म कथा (जातक) सुनाई, अपने आसन से उठे और चले गए।

3.29. अगले दिन, जब राजकुमार नंदा के नए घर में प्रवेश और विवाह समारोह के उपलक्ष्य में भोज आयोजित किए जा रहे थे, बुद्ध उनके घर गए, उन्हें भिक्षु बनाने की इच्छा से उन्हें अपना भिक्षापात्र पकड़ने को कहा, औपचारिक भाषण दिया, अपने आसन से उठे और चले गए। राजकुमार को जाते देख राजकुमारी जनपद कल्याणी ने उनसे कहा, "हे मेरे स्वामी, जल्दी लौट आइए!" और गर्दन उठाकर उनकी ओर देखने लगीं। भगवान से "कृपया अपना भिक्षापात्र वापस ले लीजिए" कहने में असमर्थ होने के कारण, वे मठ पहुँचने तक उनके साथ चले गए। उनकी इच्छा के विरुद्ध ही, भगवान ने उन्हें भिक्षु बना दिया। इस प्रकार, कपिलवस्तु नगर में आगमन के तीसरे दिन, भगवान ने राजकुमार नंदा को भिक्षु बना दिया।

3.30. सातवें दिन, राहुल की माता ने भी युवा राजकुमार को सजाया-संवारा और उसे इन शब्दों के साथ भगवान के समक्ष भेजा: "मेरे प्रिय पुत्र! इस भिक्षु को देखो, जिनका रंग ब्रह्मा के समान है, जो स्वर्ण रंग के हैं, बीस हजार भिक्षुओं से घिरे हुए हैं; वे तुम्हारे पिता हैं; उनके पास सोने का अपार खजाना है; हमने उन्हें उनके संन्यास के समय से नहीं देखा है; जाओ और उनसे अपना उत्तराधिकार मांगो, 'मेरे प्रिय पिता! मैं, आपका राजकुमार, अभिषेक प्राप्त करके विश्वराज बनूंगा; मुझे धन की आवश्यकता है; कृपया मुझे धन दीजिए; वास्तव में, पुत्र ही पिता की संपत्ति का स्वामी होता है।'" युवा राजकुमार जैसे ही भगवान के समक्ष पहुंचा, उसे पिता तुल्य स्नेह प्राप्त हुआ, वह प्रसन्न हुआ और बोला: "हे भिक्षु! आपकी परछाई धन्य है" और अपने विषय के अनुरूप अनेक अन्य बातें कहने लगा। भोजन समाप्त करने के बाद, परम पूज्य गुरु ने धन्यवाद भाषण दिया, अपने आसन से उठे और प्रस्थान किया। युवा राजकुमार भी परम पूज्य गुरु के पीछे-पीछे यह कहते हुए चले: "हे भिक्षु! कृपया मुझे मेरा उत्तराधिकार प्रदान करें; कृपया मुझे मेरा उत्तराधिकार प्रदान करें; कृपया मुझे मेरी विरासत प्रदान करें।" परम पूज्य गुरु ने युवा राजकुमार को वापस नहीं लौटने दिया। आसपास के लोगों ने भी युवा राजकुमार को, जो परम पूज्य गुरु के साथ जा रहे थे, वापस नहीं लौटने दिया। इस प्रकार, युवा राजकुमार परम पूज्य गुरु के साथ सीधे मठ चले गए।

3.31. इसके बाद, भगवान ने मन ही मन सोचा, "पिता के पास जो भी धन है, यह व्यक्ति उसे पाने की इच्छा रखता है, जो पुनर्जन्मों के चक्र में बांधता है और विनाश लाता है; अब मैं इसे वह सात प्रकार का पवित्र धन दूंगा जो मैंने बोधि वृक्ष के प्रांगण में प्राप्त किया था; मैं इसे अलौकिक उत्तराधिकार का स्वामी बना दूंगा," और आदरणीय सारिपुत्त से कहा, "तो फिर, सारिपुत्त! राहुल को भिक्षु संघ में शामिल होने दो।" थेरा ने उन्हें नवोदित भिक्षु बना दिया। जब युवा राजकुमार नवोदित भिक्षु बन गया, तो राजा को घोर कष्ट भोगना पड़ा। उस पीड़ा को सहन न कर पाने के कारण राजा परम पूज्य के समक्ष गए और उनसे एक वरदान मांगा: "हे पूज्य! यह अच्छा होगा यदि मेरे प्रभु माता-पिता की सहमति के बिना पुत्र का विवाह न कराएं।" परम पूज्य ने उन्हें वरदान दिया और अगले दिन, राजमहल में भोजन करने के बाद, जब राजा, जो एक तरफ बैठे थे, ने कहा: "हे पूज्य! जब आप कठिन कर्म कर रहे थे, तभी एक देवता मेरे पास आए और बोले: 'आपका पुत्र मर गया है'।" उनकी बातों पर विश्वास न करते हुए, मैंने उनकी खबर को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया: 'मेरा पुत्र बुद्ध बनकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए बिना नहीं मरेगा'। इस पर प्रतापी ने उत्तर दिया, "अब तुम ऐसी कहानी पर कैसे विश्वास कर सकते हो, जबकि पहले भी तुमने उन लोगों पर विश्वास नहीं किया था जिन्होंने तुम्हारे पुत्र की मृत्यु की कहानी सुनाते हुए हड्डियाँ दिखाई थीं?" और इस घटना के लिए महादम्मपालों की जन्म कथा (जातक) सुनाई। प्रवचन के अंत में, राजा अनागामी (अनागामी) के फल में स्थापित हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (234): एकविहारिया (तिस्सा-कुमारा)

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (234) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
=234. एकविहारिया (तिस्सा-कुमारा)=

बुद्ध युग में, परम पूज्य (बुद्ध) के देहांत के बाद, उनका पुनर्जन्म राजा धम्मासोका के सबसे छोटे भाई के रूप में हुआ। और राजा अशोक ने, उनके देहांत के 218वें वर्ष में, पूरे भारत को एक साम्राज्य में एकजुट करके और अपने छोटे भाई तिस्सा को वायसराय बनाकर, एक ही चाल से शासन के लिए तिस्सा की मित्रता प्राप्त कर ली। [1]

शिकार करते समय राजकुमार, एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए यूनानी थेरा, महा धम्मरक्षित [2] के दर्शन से इतने प्रभावित हुए कि उनका भी जंगल में उसी प्रकार रहने का मन हुआ। थेरा की अलौकिक शक्तियों को देखकर वे [252] महल लौट आए और राजा से कहा कि वे संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करना) चाहते हैं। अशोक उन्हें किसी भी प्रकार से मना नहीं कर सके। भिक्षु के सुख की कामना करते हुए उन्होंने ये श्लोक कहे:

[537] पुरतो पच्चतो वा पि अपारो सीई न विज्जति,॥
अतिव फासु भवति राक्ससो वने.॥ ॥

[538] हांडा एको गमिसामि अरण्यं बुद्धवंणितं,॥
फासु1 एकविहारिसा पहितत्तस्सा भिक्खुनो॥ ॥

[539] योगी पितिकाराm̥ रम्माm̥ मत्तकुञ्जरसेविताm̥,॥
एको अथवसि खिप्पं पविसिसामि काणान:॥ ॥

[540] सुपुफ़िते सीतावने सीताले गिरीकंदरे,॥
गत्तानि परिसिंचित्वा चाणकमिस्सामि एकको॥ ॥

[541] एकाकियो अदुतियो रमणीये महावने,॥
कदाहान् विहारिसामि कटैकिको अनासावो॥ ॥

[542] इवं मे कट्ठुकमस्सा अधिप्पायो समिज्जतु,॥
साधयिस्समहं येव नाणनो अण्णास्सा कराको॥ ॥

[543] एसबंधामि सन्नहाऽ पविसिसामि काणांऽ,॥
न ततो निक्खमिस्सामि अप्पत्तो आसवक्खयौ ॥॥ ॥

[544] मलुते उपवायन्ते सीते सुरभिगांधिके,॥
अविज्जां ददायिस्सामि निसिन्नो नागमुद्धनि.॥ ॥

[545] वेणे कुसुमसांजन्ने पब्भारे नुना सीतले,॥
विमुत्तिसुखेन सुखितो रमिसामि गिरिब्बाजे॥ ॥

[546] सोहाm̥ [58] परिपुणसाअक्कप्पो कैंडो पनारसो यथा,॥
सब्बासव परिक्खिणो नत्थि दानि पुनब्भवो' ति.॥ ॥

[537] यदि आगे कोई न हो, न पीछे कोई
पाया जाए, तो अकेला ही जंगल में होता है,
उसका जीवन अत्यंत सुखद हो जाता है। [3]

[538] तो आओ! मैं अकेला ही यहाँ से निकलकर जाऊँगा,
बुद्ध द्वारा सराहे गए वन-जीवन को जीने के लिए, [4] और उस कल्याण का स्वाद चखने के लिए जिसे भिक्षु जानता है,
जो एकाग्र मन से अकेले रहता है।

[539] हाँ, शीघ्रता से और अकेले, अपनी खोज से बंधे हुए, [5] मैं उस जंगल में जाऊँगा जिसे मैं प्यार करता हूँ, जंगली हाथियों का स्थान , प्रत्येक तपस्वी के लिए रोमांचकारी उत्साह का
स्रोत और साधन । [6]

[540] ठंडे वुडलैंड के फूलों से भरे मैदानों में ठंडे पानी बहते हैं, [7] पहाड़ियों की घाटियों के भीतर; और वहाँ
मैं अपने अंगों को गर्म और थका हुआ होने पर स्नान कराऊँगा, और वहाँ
मैं खुले में एकांत में घूमूँगा। (540)

[541] [253] सुंदर जंगलों में अकेला और बिना साथी के,
मैं कब आराम करने आऊँगा, काम पूरा हो जाएगा, दिल शुद्ध हो जाएगा?

[542] हे, मैं जो इतना प्रसन्न हूँ, काश मैं जीत पाता!
केवल मैं ही इस कार्य को पूरा कर सकता हूँ; इसमें
कोई भी अपने साथी मनुष्य के लिए कुछ भी नहीं कर सकता। [8]

[543] मैं अपनी आत्मा का कवच पहन लूँगा, और इस प्रकार
मैं जंगल में प्रवेश करूँगा, जहाँ से
मैं तब तक बाहर नहीं आऊँगा जब तक निर्वाण प्राप्त नहीं हो जाता। [9]

[544] मैं पर्वत की चोटी पर बैठूंगा, जबकि
ठंडी और सुगंधित हवा मेरे माथे पर बहेगी,
और अज्ञानता के भ्रामक कोहरे को तोड़ देगी।

[545] फिर जंगल के फूलों के कालीन पर,
जल्द ही चट्टान की ठंडी गुफा में,
स्वतंत्रता के आनंद में धन्य होकर मैं
तुम पर अपना आराम पाऊंगा, चट्टान के पुराने गढ़। [10]

[546] देखो! मैं वही हूँ जिसका उद्देश्य पूर्ण हो चुका है।
और पंद्रहवें दिन के चंद्रमा के समान गोलाकार।
सभी घातक रोगों से मुक्त, स्वस्थ, प्रतिरक्षाशील,
मैं जानता हूँ कि मेरे लिए पुनर्जन्म कभी नहीं आएगा।

[1] यह महावंश, अध्याय v, श्लोक 154 160 में बताया गया है । इरेमेन, 161-172, निम्नलिखित पैराग्राफ में धम्मपाल के गद्य विवरण के लिए एक छंदबद्ध समानांतर है, जो थोड़ा संक्षिप्त है।

[2] योनका-महा-धम्मरक्खितथेरा। यह थेरा, जिसे अन्यत्र ग्रीक नहीं कहा जाता, का उल्लेख है, महावंश, स्थान। सिट.; दीपवंश. viii. 8; समन्तपसादिका, पृ. 314, 317.

[3] टीका तक पहुँच प्राप्त करने से पहले, मैं इन पंक्तियों में सुत्त-निपात, श्लोक 645 (iii., 9, 52) की भावना देखने के लिए इच्छुक था ।

जिसके लिए संसार में कुछ भी नहीं है,
न आगे, न आगे, न बीच में—
लेने या अधिकार करने के लिए कुछ भी नहीं।

लेकिन टीका की संक्षिप्त टिप्पणी से अरहंत (प्रबुद्ध) की वैराग्यता नहीं, बल्कि दरबारी अधिकारी की उस निरंतर संगति से मुक्ति पाने की लालसा प्रकट होती है, जिसमें दरबारी, सेवक, सैनिक आदि हमेशा आगे-पीछे, चारों ओर मंडराते रहते हैं, चापलूस होते हैं, शिष्टाचार के गुलाम होते हैं, और शायद देशद्रोही या कम से कम चुगली करने वाले होते हैं। राजकुमार तिस्सा द्वारा अपनाया गया या उन पर लगाया गया नाम, एकविहारिया, का अर्थ है एकाकी।

[4] विनय ग्रंथ, द्वितीय 812, 813 सीएफ। कली. सुत्तस, पी. 210 एफएफ.; सुत्त-निपात, श्लोक 34-74, आदि।

[5] अत्थवासी, 'भिक्षु के व्यवसाय के प्रति समर्पण में' (सी.)।

[6] योगी-पीति-करं.

[7] धम्मपाला लिखते हैं कि जंगल में छह कुंड हैं।

[8] यह सुंदर कविता गद्य के बिना अधिक बेहतर लगती है; लेकिन धम्मपाला इसे तीन खंडों में देते हैं। खंड 2 में तिस्सा के भिक्षु बनने के बाद उनकी आनंदित ऊर्जा के विस्फोट का वर्णन है, अशोक ने उन्हें और उनके दामाद (और भतीजे) अग्गिब्रह्मा को बड़े धूमधाम और समारोह के साथ विहार (मठ) में पहुँचाया (तिस्सा के लिए यह अंतिम परीक्षा थी!)।

[9] शाब्दिक रूप से, जब तक आसव (इच्छाएँ) नष्ट न हो जाएँ।

[10] गिरिब्बाजा, राजगृह के पास स्थित 'पर्वतीय गढ़'। मीलों की परिधि में फैले इसके खंडहर आज भी मौजूद हैं और ये भारत में अब तक पाई गई सबसे प्राचीन पत्थर की इमारतें हैं। कहा जाता है कि 'नया' राजगृह मुख्य रूप से बुद्ध के समकालीन राजा बिम्बिसार का बनाया हुआ था (बौद्ध भारत, पृष्ठ 87)।

अंतिम खंड तिस्सा ('अकेले रहने वाले') के अंतिम शब्द हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने गुरु (धम्मरक्षित) के साथ कलिंग देश गए थे, जो राजगृह के दक्षिण में पूर्वी तट पर स्थित एक विशाल और प्रसिद्ध वन क्षेत्र था (देखें मज्ज, i. 378)। वहाँ अशोक ने उनके लिए भोजक-गिरि विहार (मठ) का निर्माण करवाया। कलिंग में धौली और जौगड़ा के अशोक शिलालेख हैं (कनिंघम, कॉर्प. इंस्क्र. इंड., i. 15 ff.)।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(235):कप्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (235) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
235. कप्पा
भगवान बुद्ध के जन्म से पहले, सीमावर्ती देश में कुक्कुट (मुर्गा) नामक नगर में, एक राजा के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम कप्पिना रखा गया। अपने पिता की मृत्यु के बाद, वे राजा कप्पिना महान के रूप में सिंहासन पर बैठे। अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए, वे सुबह के समय चारों द्वारों से चौराहों पर लोगों को भेजते थे और उनसे कहते थे कि वे आने-जाने वाले विद्वानों को रोककर उन्हें बताएं। उस समय तक भगवान बुद्ध का जन्म हो चुका था और वे सावत्थी में रह रहे थे। उस नगर के व्यापारी कुक्कुट में माल लाते और बेचते थे। फिर वे कहते, 'चलो राजा से मिलते हैं,' और उपहार लेकर अपना परिचय देते थे। राजा ने उनके उपहार स्वीकार किए, उन्हें प्रणाम किया और पूछा कि वे कहाँ से आए हैं, उनका देश और राजा कैसे हैं, और उनका धर्म क्या है ? अंतिम प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, 'महाराज, हम बिना धोए मुँह से आपको बता नहीं सकते।' राजा ने जल से भरा एक सोने का कलश मंगवाया, और उन्होंने शुद्ध मुँह और प्रणाम करते हुए हाथों से कहा, 'महाराज, हमारे देश में बुद्ध का खजाना प्रकट हुआ है।' 'बुद्ध' शब्द सुनते ही राजा का पूरा शरीर आनंद से भर गया। 'मित्रों, क्या तुम बुद्ध कह रहे हो?' और उन्होंने उनसे उस अनंत शब्द को तीन बार दोहराने को कहा और उन्हें एक लाख सिक्के दिए। उन्होंने उन्हें धम्म के खजाने और भिक्षु बनने के मार्ग के बारे में भी बताया, और राजा ने अपना दान तीन गुना कर दिया, और तुरंत संसार का त्याग कर दिया, उनके मंत्रियों ने भी ऐसा ही किया। अब वे [परमेश्वर (बुद्ध) को खोजने के लिए] निकल पड़े और गंगा नदी पर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने सत्य की शक्ति से एक निश्चय किया, [1] यह कहते हुए: 'यदि कोई भगवान (बुद्ध), सर्वोच्च बुद्ध हैं, तो इन घोड़ों का एक खुर भी गीला न हो!' तब वे पूरी नदी की सतह पर पार गए, और इस प्रकार एक और नदी पार की, और तीसरी बार [255] महान नदी चंदाभागा [2] पर पहुँचे , जिसे उन्होंने उसी प्रकार पार किया।

उस दिन भोर में उठे भगवान (बुद्ध) ने भी करुणा से भरकर संसार का अवलोकन किया और यह देखा कि आज महान कप्पिना ने अपना राज्य त्याग दिया है और अपने अनुयायियों के साथ भिक्षु बनने आए हैं; इसलिए उनसे मिलने के लिए दूर जाना उचित है। वे पहले भिक्षुओं के एक समूह के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी गए, फिर स्वयं वायु में उड़कर चंदभागा नदी के तट पर गए और नदी पार करने के स्थान की ओर मुख करके एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे पालथी मारकर बैठ गए, [3] और बुद्ध-किरणें बिखेरने लगे। कप्पिना और उनके साथियों ने किरणों को इधर-उधर जाते देखा और कहा: 'हम भगवान (बुद्ध) के कारण आए हैं, और देखो! वे यहाँ हैं!' और वे उनके पास जाकर प्रणाम करने लगे। तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें धम्म का मार्ग सिखाया, जिससे वे सभी अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) में स्थापित हो गए और भिक्षु बनने के लिए कहा। भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'आओ, भिक्षुओं!' और यही उनकी स्वीकृति और भिक्षुत्व में दीक्षा थी। फिर वे उन्हें अपने साथ वायु के माध्यम से जेतवन ले गए।

एक दिन भगवान बुद्ध ने पूछा कि क्या कप्पिना भिक्षुओं को धम्म का मार्ग सिखाते हैं? उन्होंने कहा कि वे निष्क्रिय जीवन व्यतीत करते हुए सुख का आनंद लेते हैं। जब कप्पिना को बुलाया गया, तो उन्होंने स्वीकार किया कि यह सत्य है, और उनसे कहा गया: 'ब्राह्मण! [4]

ऐसा मत करो; आज से जो भिक्षु आ चुके हैं, उन्हें धम्म का मार्ग सिखाओ।' कप्पिना ने प्रणाम किया और अपने पहले ही प्रवचन से एक हजार भिक्षुओं को अरहंतत्व (ज्ञानोदय) की प्राप्ति कराई।

[256] इसी कारण भगवान (बुद्ध) ने उन्हें भिक्षुओं को शिक्षा देने वालों में सर्वोच्च स्थान दिया। [5]

एक दिन थेरा ने सिस्टर्स को इस प्रकार शिक्षा दी:

[547] अनागतो यो पाटिगाक्का पस्सति॥
हितṃ च अत्थṃ अहिताṃ च ताṃ द्वयṃ,॥
विदेसिनो तस्सा हितेसिनो वा॥
रान्धौ न पस्सन्ति समेक्खमना.॥ ॥

[548] अनापानसति यस्सा परिपूर्ण सुभाविता,॥
अनुपुब्बं परिचिता यथा बुद्धेन देसिता,॥
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोवा कैंडिमा॥ ॥

[549] ओदाताṃ वात मे चित्ताअ अप्पमनाअ सुभावितो,॥
निब्बिद्धौ पग्गहितं च सब्बा ओभासते दिसा॥ ॥

[550] जीविते वा पि सप्पन्नो अपि वित्तपरिक्खयो,॥
पनन्या च अलभेन वित्त्वा पि न जीवति॥ ॥

[551] पन्ना सुताविनिचिनी पन्नाकित्तिसिलोकवधनि,॥
पन्ना सहितो नरो इधा अपि दुक्खेसु सुखानि विंदति॥ ॥

[552] नायं अज्जतानो धम्मो न चचेरो न पि अब्भूतो,॥
यत्थ जायथ मयेथ तत्थ किं विया अब्भुतां॥ ॥

[553] अनन्तराऽ हि जातस्सा जीविता मरणं धुवं,॥
जाटा जाटा मारन्तिधा एवं धम्म हि पणिनो॥ ॥

[554] न हेतदत्तय मतस्सा होति॥
याऽऽ जीवितत्थाऽ परापोरिसनाऽ,॥
मातमहि रुणणौ न यशो न लोक्यौ॥
न वनितां समानब्राह्मणेहि.॥ ॥

[555] चक्खुṃ सरिरौ उपहंति रूणं॥
निह्यति वनबलौ मति च,॥
आनंदिनो तस्सा दिसा भवन्ति॥
हितेसिनो नास्सा सुखी भवन्ति॥ ॥

[556] तस्मा हि इच्छाय कुले वसंते॥
मेधाविनो सेवा बहुसुते च,॥
येसाṃ [59] हाय पणनाविभाफवना किक्काṃ॥
तरन्ति नवाय नदीं वा पुननं ति.॥ ॥

[547] क्या तुम आने से पहले ही उसे देख सकते हो, [6] और ऐसे काम को चिह्नित कर सकते हो जो लाभ या हानि पहुँचाएगा, न तो शत्रु और न ही मित्र, चाहे वे चाहे जो भी प्रयास करें, दरार नहीं पा सकेंगे।

[548] वह व्यक्ति जिसने
आत्म-नियंत्रण के साथ श्वास अभ्यास को पूर्णता तक पहुँचाया,
बुद्ध द्वारा सिखाई गई विधि से अभ्यास किया,
वह संसार में एक दीप्तिमान चमक बिखेरता है,
जैसे बादल से मुक्त होकर निकलता हुआ चंद्रमा।

[549] देखो! अब मेरा मन सचमुच श्वेत है, [7] असीम रूप से विस्तारित, अच्छी तरह से अभ्यास किया हुआ,
इसकी प्रकृति समझी हुई, और परिश्रमी;
हर तरफ एक चमक बिखेर रहा है।

[550] बुद्धिमान व्यक्ति जीवित है और केवल वही जीवित है,
भले ही उसका सारा धन नष्ट हो जाए;
और यदि धनवान व्यक्ति में बुद्धि की कमी हो,
तो वह अपने सारे धन के लिए वास्तव में जीवित नहीं रहा। [8]

[551] बुद्धि सुनी हुई बातों का निर्णायक है।
बुद्धि ने सम्माननीय प्रसिद्धि को पोषित किया।
बुद्धि की संगति में मनुष्य
दुख और शोक में भी आनंद पाता है।

[552] यह एक ऐसा तथ्य है जो कल का नहीं है;
यह न तो असामान्य है और न ही विसंगत:
'जहाँ आपका जन्म होता है, वहीं आपकी मृत्यु भी होती है।'
इसमें प्राकृतिक के अलावा और क्या है?

[553] [257] क्योंकि जन्म लेने के बाद हम
पल-पल मरते ही रहते हैं।
जो भी उसी जीवन में जन्म लेता है, वह मर जाता है -
यही सभी जीवित प्राणियों का स्वभाव है।

[554] जो जीवितों के लिए अच्छा हो, वह मृतकों के लिए अच्छा नहीं है।
मृतकों का शोक मनाना न तो सम्मान है और न ही शुद्धि, [9] और न ही यह बुद्धिमानों, भिक्षुओं और ब्राह्मणों (पुजारियों) द्वारा प्रशंसित है।

[555] शोक आँखों और शरीर को पीड़ा देता है,
सुंदरता, शरीर और मन की शक्ति और बुद्धि को नष्ट कर देता है।
यदि वह लापरवाह हो, तो चारों ओर से
हार्दिक शुभचिंतक बन जाते हैं, भले ही उसका भाग्य सुखद न हो।

[556] इसीलिए आम लोगों को अपने परिवार में
केवल बुद्धिमान, विवेकशील और विद्वान लोगों को ही रखना चाहिए।
वे अपनी बुद्धि की शक्ति से अपना काम पूरा करते हैं,
ठीक वैसे ही जैसे कोई नाव भरी हुई नदी को पार कर लेती है। [10]

[1] सैकाधिट्ठान, अधिक सामान्य सैककिरिया के लिए।' सी एफ जाट., आई. संख्या 20, 35. सी.एफ. 2 राजा, मैं. 10.

[2] यदि यह चेनाब (यूनानियों का अकेसिन) है, तो धम्मपाल की भौगोलिक स्थिति असंभव है; लेकिन यदि हम गंगा के स्थान पर सिंधु (इंडस) को प्रतिस्थापित करें, तो सुदूर उत्तर-पश्चिम से आने वाले कप्पिना (कुक्कुट एक अज्ञात स्थान है) के लिए सिंधु और वितस्ता (झेलम) उनकी पहली और दूसरी नदियाँ होंगी। जाट, चतुर्थ, 180 में कहा गया है कि बुद्ध उनसे मिलने के लिए 2,000 योजन गए थे। यह टीकात्मक कथा है। सावत्थी से चेनाब तक, सिंधु में मिलने से पहले, कौवे (या बुद्ध) की उड़ान के अनुसार लगभग 600 मील (?) है।

[3] Uttaraṇatitthassābhimukhaṭṭhāne, whioh से लगता है कि रहस्यवादी उपलब्धि को अनावश्यक बना दिया गया है।

[4] बुद्ध कभी-कभी अपने अरिहंतों (प्रबुद्ध लोगों) को इस प्रकार संबोधित करते हैं - उदाहरण के लिए, अंगुलिमाल (मज्ज्., 2. 104; सीएफ. पीएस. सीसीएलवी.)। ब्राह्मण = पवित्र, या उत्कृष्ट व्यक्ति। सामाजिक वर्ग के अनुसार, कप्पिना एक खटिया थी।

[5] एंग., आई. 27.

[6] पाइगाक्का: प्युरेतारा येवा (साइ.)।

[7] ओडातम्। जब बुद्ध (साम्य, द्वितीय 284) भिक्षुओं को कप्पिना की ओर इशारा करते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं, तो वे कहते हैं: 'क्या तुम उस चमकीले छोटे सफेद (ओडातक्म्) आदमी को उभरी हुई नाक के साथ आते हुए देख रहे हो?' संभवतः केवल उसके रंग-रूप का जिक्र करते हुए। देखें पृष्ठ 3, नोट 1; और श्लोक 972।

[8] = संस्करण 499

[9] मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने यहाँ की कठिनाइयों को हल कर लिया है। यहाँ तक कि धम्मपाल भी इनसे बचते प्रतीत होते हैं। वे 'ना लोक्यम्, ना सोक्याम्' पढ़ते हैं और इसका अर्थ ' ना विशुद्धि' से निकालते हैं। मैं उनका अनुसरण करता हूँ, क्योंकि यही एकमात्र तरीका है जिससे इस अंश को बोधगम्य बनाया जा सकता है।

[10] कप्पिना बारह 'महान' थेरों में से एक थे; हालाँकि, उनकी कविताएँ अधिकांशतः लोकप्रिय दर्शन की गूढ़ व्याख्याएँ हैं, न कि वास्तविक धम्म, जो भिक्षुओं के संप्रदाय के सदस्यों के लिए उपयुक्त होती, जिन्हें वे संबोधित कर रहे थे। वे किसी प्रारंभिक यूनानी या किसी भी मूर्तिपूजक के लिए उपयुक्त होतीं। और उनसे कविता निकालना संभव नहीं था। डॉ. न्यूमैन कहीं-कहीं सफल होते हैं, लेकिन केवल मूल पाठ से हटकर। छंद में परिवर्तन केवल पाली में हुए संबंधित परिवर्तन को दर्शाने के लिए है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(236):कुल-पंथाका

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (236) ------>>>> अगला
अध्याय X.
दस श्लोक
236. चूला-पंथक
उनकी पिछली कहानी महापंथक (उनके बड़े भाई) के थेरागाथा के आठवें अध्याय में बताई गई है। शेष कहानी [चुल्लक-सेट्ठी-जातक की टीका में बताई गई है । [1]

उन्होंने एक अन्य अवसर पर ये छंद कहे:

[557] दण्ड मयहं गति असि परिभूतो शुद्ध अहं,॥
भता च मण पनामेसि गच्छ दानि तुवं घरं॥ ॥

[558] सोहाऽ पणमितो भता सङ्घारामस्स कोऽथके,॥

दुम्मणो तत्थ अट्ठासिऽ ससानस्मिऽ अपेखवा।॥॥

[559] भगव तत्थ अगांची सिसां मयहां परमसि,॥
बहया मण गहेत्वाना संघरामन पवेसायी॥॥

[560] अनुकम्पया मे सत्था पदासि पदपुंजनी॥
एतं शुद्धो अधिष्ठेहि एकमन्तो स्वधिऽहिताऽ॥॥

[561] तस्सहाऽ वचनाऽ सुत्वा विहासिऽ ससाने रतो,॥
समाधिं पतिपदेसिऽ उत्तममत्थस्स पत्तिया॥॥

[562] पुब्बेनिवासां जानामि दिब्बाकक्खु विसोधितां,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससाणं॥॥

[563] सहस्सक्खट्टुमत्तनं निम्मिनित्वान पन्थाको,॥
निसीदम्बवने रम्मे याव कलप्पवेदाना।॥॥

[564] ततो मे सत्था पाहेसि दुतं कलप्पवेदकं,॥
पवेदितमहि कलमहि वेहसादुपसांकमिः।॥॥

[565] वंदित्वा सत्थुणो पदे एकमंतं निसीदहौ,॥
निसिन्नं माऽ विदित्वान अथ सत्थ पतिग्गहि.॥॥

[566] अयागो सब्बलोकस्सा आहुतिनां पातिग्गाहो,॥
पुन्नक्खेत्तां मनुस्सानां पतिगणहित्था दक्खिनं' ति.॥॥

[557] मेरी प्रगति धीमी और रुकी हुई थी,
और इसलिए मुझे कम सम्मान मिला।
मेरे भाई ने सोचा कि मुझे वापस भेज देना चाहिए,
और मुझसे पूछा, 'अब तुम घर जाओ।'

[558] अतः मैं, बर्खास्त और दुखी होकर,
भिक्षुओं के पार्क (मठ) के द्वार के भीतर खड़ा था,
हृदय में नियम (आदेश) के भीतर रहने की लालसा लिए हुए।

[559] और वहाँ वह मेरे पास आया, हे भगवान (बुद्ध),
और उसने अपना हाथ मेरे सिर पर रखा; और
मेरी बांह पकड़कर मुझे वापस बगीचे में ले गया।

[560] भगवान (बुद्ध) ने अपनी कृपा से मुझे
पैरों के लिए एक रुमाल दिया और मुझे इस प्रकार निर्देश दिया:
'अपना मन इस स्वच्छ वस्तु पर लगाओ, और साथ ही
अच्छी तरह एकाग्र होकर [2] अलग बैठो।'

[561] और मैं जिसने उसका धन्य वचन सुना,
केवल और हमेशा उसके नियम का पालन करने में प्रसन्न रहा, [3] एकाग्र विचार और इच्छा प्राप्त करते हुए,
ताकि मैं अपनी सारी खोज का मुकुट जीत सकूँ।

[260] [562] और अब मैं जानता हूँ कि मैं कहाँ और कैसे रहता था,
और दिव्य दृष्टि स्पष्ट रूप से चमकती है; [4] मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना बना लिया है,
और बुद्ध हमें जो करने के लिए कहते हैं वह हो चुका है।

[563]
पंथक ने स्वयं असाधारण शक्ति से हज़ारो अलग-अलग रूपों में खुद को कई गुना बढ़ा लिया ;
और रमणीय आम के बाग में बैठकर, [5] उस घड़ी के प्रकट होने तक प्रतीक्षा की।

[564] तब भगवान (बुद्ध) ने एक दूत भेजा,
जो मुझे समय का रहस्योद्घाटन करने आया,
और नियत समय पर मैं उसके पास उड़ गया।

[565] मैंने उनके चरणों में झुककर पूजा की; फिर
मैं एक तरफ बैठ गया; और जब मैं पास बैठा था, तब
भगवान (बुद्ध) ने यह समझ लिया कि मनुष्य उनकी सेवा करें। [6]

[566] उच्च वेदी [7] वह जहाँ सारा संसार दे सकता है,
मानव जाति की भेंटों का प्राप्तकर्ता,
मनुष्यों के पुत्रों के लिए पुण्य का मैदान,
उसने धर्मपरायणता के उपहार स्वीकार किए।

[1] जाट., i., अनुवाद पृ. 114. धम्मपाल भी कथा देते हैं, कुछ विवरणों को छोड़कर सभी में सहमत हैं, जिसमें उनका संस्करण सरल है। 'शेष' का सार उपरोक्त श्लोकों में निहित है। वे दोहरी श्रेष्ठता (मन-निर्मित रूपों और मानसिक विकास में) का भी उल्लेख करते हैं, जिसे बुद्धघोष ने चार प्रकार के रूप और अरूप ध्यान में कौशल के रूप में परिभाषित किया है, जो क्रमशः चूल-पंथक और उनके बड़े भाई को सौंपा गया है (अंग., i. 24)।

[2] स्वधित्तितंग का वर्णन केवल मनसिकरेण द्वारा ही किया गया है । पंथक चिंतन करते हुए कपड़े को तब तक संभालता है जब तक वह साफ और चिकना नहीं रह जाता।

[3] बहनें, श्लोक 187, 194, 202.

[4] ऊपर, श्लोक 516.

[5] दरबारी चिकित्सक और गृहस्थ अनुयायी, जीवक की संपत्ति। सिस्टर्स देखें, पृष्ठ 139 एन.

[6] कथा के अनुसार, जबकि पंथक के बड़े भाई, जो प्रबंधक थे, ने जीवक द्वारा दोपहर के भोजन पर आमंत्रित भिक्षुओं में अपने छोटे भाई को शामिल नहीं किया था, बुद्ध (जिन्होंने चूल-पंथक को तौलिये से अशुद्धता का अध्ययन करने के लिए छोड़ दिया था) ने चूल के बुलाए जाने तक भोजन परोसे जाने पर अपना कटोरा हाथ से बंद कर दिया। चूल की जादुई शक्तियों ने किस प्रकार दूत को आश्चर्यचकित कर दिया, इसका वर्णन जातक टीका में किया गया है।

[7] डॉ. न्यूमैन के अनुसार, आयगो की यह व्याख्या , कमेंट्री के यजितब्बा-ठानभूतो, 'जो आहुति देने का स्थान बन गया है' द्वारा समर्थित है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(237):कप्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (237) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
237. कप्पा
बुद्ध युग में मगध राज्य में एक प्रांतीय वंशानुगत राजा के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर , उन्होंने अपने पिता का उत्तराधिकार संभाला, लेकिन वे आत्म-भोग और कामुकता में लिप्त थे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें देखा, जब वे महान करुणा की समाधि से जागे और अपनी अंतर्दृष्टि के जाल के लिए खजाने की तलाश में संसार का अवलोकन कर रहे थे। और यह सोचते हुए कि 'अब वह क्या बनेगा?' उन्होंने यह समझा कि 'यह, मुझसे बुरी चीजों पर प्रवचन सुनकर, अपने हृदय को कामवासनाओं से दूर कर लेगा, और संसार का त्याग करके अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त करेगा।' वायु के माध्यम से कप्पा के पास जाकर, उन्होंने उनसे ये श्लोक कहे:

[567] नानाकुणपासमपुणो महाउक्करसंभवो,॥
कैंडानिकं वा परिपक्कं महगाण्डो महावनो॥ ॥

[568] पुब्बरुहिरासम्पुणो गुत्थाकूपेण गाहितो,॥
आपो पग्घराणो कायो सदा संदति पूतिकान् ॥ ॥

[569] सहिकाṇḍरासंबन्धो [60] मासलेपनलेपिटो ,॥
चम्मकंकुकसन्नद्धो पूतिकायो निरथको ॥ ॥

[570] अट्ठसङ्घाघतितो नाहरु सुत्तनिबन्धनो,॥
नेकेसां संगतिभावा कप्पेति इरियापथाअन्॥ ॥

[571] धुवप्पयतो मरानस्स मैक्कुराजस्सा संतिके,॥
इधेव छंदयित्वाना येन कामाङ्गमो नरो॥ ॥

[572] अविज्जा निवुतो कायो कैटुगंथेना गत्थिटो,॥
ओघासंसीदानो कायो अनुसयाजलमोत्थतो॥ ॥

[573] पञ्चनिवराने युत्तो वितक्केन समाप्पितो,॥
तन्हामुलेनानुगतो मोहच्चदानाचादितो॥ ॥

[574] एवायं वत्तते कायो कम्मयन्तेन यन्तितो,॥
संपत्ति च विपत्तयंता निनाभावो विपज्जति॥ ॥

[575] यमं कायं ममयंती अंधबला पुथुज्जना,॥
वन्धेन्ति कस्तिसिं घेरं अदियंति पुनभभव:॥ ॥

[576] ये'माṃ कायं विवज्जेंति गुथलिट्टाṃव पन्नगाṃ,॥
भवमूलं वमित्वान परिनिब्बन्त्यनसव। ॥ ॥

[567] अनेक अशुद्धियों से भरा हुआ,
मल का बड़ा ढेर,
बासी और स्थिर कीचड़ के तालाब की तरह,
एक बड़े कैंसर की तरह, एक घाव की तरह,

[568] सीरम और रक्त से भरा हुआ,
मानो गोबर के ढेर से निकल रहा हो,
तरल पदार्थ टपक रहा हो—इसी तरह

शरीर रिसता है, एक सड़ा हुआ जीव।

[569] साठ टेंडन द्वारा स्थिर रखा गया,
और मांस के प्लास्टर से लिपटा हुआ,
डर्मिस सशस्त्र और क्यूटिकल द्वारा -
सड़े हुए शव में थोड़ा लाभ है।

[570] दृढ़ अस्थि संरचना द्वारा निर्मित,
एक साथ बुने हुए स्नायु-धागों द्वारा,
जो एक साथ काम करते हुए,
हमारी मुद्राओं को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं;

[571] मृत्यु के अंत तक अनंत संसार में भटकते हुए,
यहाँ तक कि नश्वरों के राजा के राज्य तक: -
यदि इसे यहाँ भी फेंक दिया जाए, तो
मनुष्य जहाँ चाहे जा सकता है। [1]

[572] अज्ञान से ढका शरीर,
चौगुने बंधन से बाधित, [2] [261] बाढ़ में डूबा हुआ शरीर,
गुप्त पूर्वाग्रह के जाल में फंसा हुआ,

[573] पाँच बाधाओं का गुलाम,
मन की बेचैन क्रीड़ाओं से ग्रस्त,
गर्भाधान की तीव्र लालसा से निरंतर पीछा किया जाने वाला,
भ्रम की बाधाओं में लिपटा हुआ: -)

[574] देखो! यह शरीर ऐसी वस्तु है,
कर्म के रथ पर इधर-उधर ले जाया जाता है,
अनेक प्रकार के परिवर्तनों के लिए अभिशप्त है,
कभी सफलता, कभी असफलता।

[575] और जो इसके बारे में कहते हैं 'यह मेरा है!' -
बेचारे मूर्ख अंधे बहुत से लोग -
वे मृत्यु के भयानक मैदान को भर देते हैं, [3] बार-बार पुनर्जन्म को पकड़ते हुए।

[576] जो इस शरीर से बचना चाहते हैं,
जैसे वे कीचड़ से सने सर्प से बचते हैं,
वे, पुनर्जन्म के मूल (कारण) को उल्टी करते हुए,
अंत करेंगे, समझदार और प्रतिरक्षा से मुक्त।

कप्पा ने भगवान (बुद्ध) को शरीर-समूह के स्वरूप और नियति पर अनेक रूपों में प्रवचन देते हुए सुना, तो अपने शरीर से भयभीत और घृणा करते हुए उन्होंने व्यथापूर्वक भिक्षु दीक्षा की विनती की। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें एक भिक्षु के पास दीक्षा के लिए भेज दिया। कप्पा ने पाँच साधनाएँ कीं और जैसे ही उनके बाल मुंडवाए जा रहे थे, उन्हें अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त हो गया। इसके बाद वे भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने गए और एक तरफ बैठकर उन्हीं श्लोकों में ज्ञान (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की। अतः ये श्लोक थेरा-श्लोक कहलाए।

[1] इस श्लोक पर, जिसे कहावत के रूप में जीववादी साहित्य से लिया गया हो सकता है, टीका में लिखा है: 'इस संसार में ही त्याग कर (चड्डेत्वा) ... इन शब्दों से वह दर्शाता है कि, चूंकि शरीर क्षणभंगुर है, इसलिए कोई बंधन नहीं बनाना चाहिए।' डॉ. न्यूमैन का मानना है कि जिसे त्यागा जा सकता है वह मृत्यु की शक्ति है।

[2] अर्थात्, लोभ, द्वेष, अनुष्ठान में विश्वास, हठधर्मिता से चिपके रहना (बुड. पे., पृ. 804 एफ.; कंपेंडियम, पृ. 171)। चार बाढ़ों और सात गुना पूर्वाग्रह (अनुसया) पर देखें (कंपेंडियम, इरेमेन., एफ.)।

[3] श्लोक 456 देखें।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (238): उपासना, वंगंता का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (238) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
238. उपसेना, वांगंत का पुत्र
इस बुद्ध युग में नालक गाँव में रूपसारी ब्राह्मणी के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम उपसेना रखा गया। [1]

वयस्क होने और तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, उन्होंने भगवान (बुद्ध) से धम्म का मार्ग सीखने के बाद संसार का त्याग कर दिया। केवल एक वर्ष के लिए भिक्षु दीक्षा लेने के बाद, उन्होंने सोचा, 'मैं आर्यों की वंश-प्रणाली बढ़ाऊंगा,' और स्वयं एक अन्य भिक्षु को दीक्षा दी और उसके साथ भगवान (बुद्ध) की सेवा करने चले गए। यह सुनकर, बाद वाले ने उनकी जल्दबाजी भरी कार्रवाई की निंदा की। तब उपसेन ने सोचा: 'यदि अब, अनुयायियों के कारण, भगवान (बुद्ध) द्वारा मेरी निंदा की जाती है, तो उसी कारण से मैं उनकी प्रशंसा प्राप्त करूंगा।' [2] और अंतर्दृष्टि के लिए अध्ययन करते हुए, उन्होंने उचित समय में अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, स्वयं कठोर साधनाओं को अपनाते हुए, [3] उन्होंने दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया, और इतनी सफलता प्राप्त की कि भगवान (बुद्ध) ने उन्हें सर्वव्यापी रूप से लोकप्रिय लोगों में सर्वोच्च स्थान दिया। [4]

एक बार दूसरे भिक्षु ने उनसे पूछा कि कोसंबी में रहते हुए वहाँ के मतभेदों और विभाजन के दौरान क्या किया जाना चाहिए? [5] उपसेना ने उन्हें इस प्रकार समझाया:

[577] विवित्तṃ अप्पनिघघोसाṃ वाṃमिगनीसेविताṃ,॥
सेवे सेनासन भक्खु पतीसल्लनकारणा॥॥

[578] सङ्करपुञ्जा अहत्वा सुसाना रथियाहि च,॥
ततो साङ्घतिकाऽ कत्वा लुकाँ धारेय्य शिवराऽ॥॥

[579] निकाṃ मनअ कारित्वाना सपादानां कुलाकुला,॥
पिण्डिकाया ध्याने भिक्खु गुत्तद्वारो सुसान्वुतो॥॥

[580] लक्खेना'पी सीए संतुसे नाण्णाṃ पत्थे रसाṃ बहुṃ,॥
रसेसु अनुगिद्धस्सा झाणे नरामति मानो॥॥

[581] अप्पिचो सी'एवा संतुथेही पविवित्टो वसे मुनि,॥
असंसठो गहथेहि अनागारेहि चुभयौ॥॥

[582] यथा जओऽव मुगोऽव अत्तानाऽ दासये तथा,॥
नातिवेलेऽ पभासेय सङ्घवज्जमहि पण्डितो॥॥

[583] न सो उपवदे कैंचि उपघातो विवज्जये,॥
सवुतो पतिमोक्खस्मिं मत्तान्नु कैसा भोजने॥॥

[584] पग्गहितनिमित्तस्स चित्तसुप्पदाकोविदो,॥
समथां अनुयुञ्जेय कलां च विपश्यनां॥ ॥

[585] वीर्यसताच्चासम्पन्नो [61] युत्तयोगो सदा सिया,॥
न च अप्पत्वा दुक्खन्तं विस्सासं एय पण्डितो॥ ॥

[586] एवं विहारमानस्स शुद्धिकामस्स भिक्खुनो,॥
खियंती आसव सब्बे किब्बुतिनचाधिगच्छति' ति.॥ ॥

[577] एकांत स्थान और दूर जहाँ शोर
मुश्किल से आता है, जंगली प्राणियों का स्थान:
वहीं भाई को
अध्ययनपूर्ण एकांतवास के लिए अपना पलंग तैयार करना चाहिए।

[578] कूड़े के ढेर से, या श्मशान घाट से,
या राजमार्गों से, वह
फटे-पुराने कपड़े ले और लाए और उनसे चिथड़े-चिट्ठों का एक वस्त्र बनाए,
और ऐसे खुरदुरे वस्त्र पहने।

[579] मन की विनम्रता में घर-घर,
बारी-बारी से अटूट [6] भिक्षु को घूमना चाहिए [263] भिक्षा मांगते हुए, इंद्रियों को सुरक्षित रखते हुए, अच्छी तरह से नियंत्रित;

[580] चाहे जैसा भी व्यवहार हो, वह संतुष्ट रहता है,
उसे जो मिलता है या उससे अधिक के लिए प्रसन्न नहीं होता,
क्योंकि यदि वह एक बार स्वाद के लिए लालच में लिप्त हो जाता है, तो
उसका मन कभी भी ध्यान में आनंद नहीं ले सकता।

[581] बड़े संतोष में, बहुत कम इच्छाओं के साथ,
दूर, एकांत में: ऋषि को ऐसा ही जीवन जीना चाहिए,
गृहस्थों और बेघरों, दोनों से विरक्त।

[582] उसे ऐसा दिखाना चाहिए जैसे वह मंदबुद्धि
और गूंगा हो, और बुद्धिमान व्यक्ति को
एकत्रित लोगों के बीच में अनावश्यक रूप से भाषण लंबा नहीं करना चाहिए।

[583] उसे किसी को भी अपशब्द न कहने दो; उसे
चोट पहुँचाने से परहेज़ करने दो; उसे नियम
और उपदेश में प्रशिक्षित होने दो, और भोजन में संयमी रहने दो।

[584] वह ऐसा व्यक्ति हो जो
प्रतीक पर ध्यान केंद्रित करे, विचार की उत्पत्ति में कुशल हो।
उसे शांत रहने का अभ्यास करना चाहिए,
और उचित समय पर अंतर्ज्ञान का भी अभ्यास करना चाहिए।

[585] ऊर्जा और दृढ़ता से लैस होकर,
उसे सदा अपने अध्ययन में लगे रहना चाहिए;
और जब तक वह दुःख के अंत तक न पहुँच जाए,

बुद्धिमान व्यक्ति को विश्वास के साथ आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

[586] इस प्रकार यदि भिक्षु,
ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता से प्रसन्न होकर [7] साथ रहेगा, तो
मादक पदार्थों (विकारों/इच्छाओं) का प्रभाव समाप्त हो जाएगा,
और वह निर्वाण की शांति प्राप्त कर लेगा। [8]

अब थेरा ने उस भिक्षु को संबोधित करते हुए अपनी स्वयं की उपलब्धि प्रदर्शित की और ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की।

[1] इसलिए सारिपुत्त (CCLIX.) और तीन बहनों कला, आदि के भाई। धम्मपद चक्र , ii. 84 देखें ।

[2] विन. ग्रंथों में बताया गया है , i. 175 f.; जाट. ii., संख्या 300.

[3] धुतंगा। मिलिंडा, खंड देखें । ii., पुस्तक vi.

[4] अंग., i. 24. सी.एफ. मिलिंडा, ii. 270; 289, 326, 329 भी।

[5] पृष्ठ 16, नोट 2 देखें; विनय ग्रंथ, ii. 312.

[6] सपादानाŋ। इस पद पर जेपीटीएस, 1909, पृष्ठ देखें। 72; जेआरएएस, 1912, पृ. 786 एफएफ। धम्मपाल ने इसे घरेसु अवखंड-रहितौ, अनुघराओ के रूप में परिभाषित किया है।

[7] तो साइ.

[8] निब्बुति, निब्बाना के रूप में समझाया गया है, यानी पुनर्जन्म और मृत्यु को भी समाप्त करना।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(239):कप्पा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (239) ------>>>> अगला

अध्याय X.
दस श्लोक
239. कप्पा
हमारे पूज्य (बुद्ध) के प्रकट होने से पहले सावत्थी में, उदिच्चा के एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, [1] वे वेदों के विशेषज्ञ और अद्वितीय वक्ता के रूप में विकसित हुए।

अब हमारे परम पूज्य प्रभु, यश और उनके मित्रों के शिष्य बनने के बाद, जब वे उठे और धम्म के मार्ग का चक्र चलाना शुरू किया, [2] अनाथपिंडिक के आग्रह पर सावत्थी आए। ब्राह्मण (पुजारी) गौतम ने उन्हें देखा और सुना, और भिक्षु बनने की दीक्षा मांगी। भगवान (बुद्ध) के उपदेश पर एक भिक्षु द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने बाल मुंडवाते समय ही अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया। कोसल देश में लंबे समय तक निवास करने के बाद, वे सावत्थी लौट आए। और उनके कई रिश्तेदार, प्रख्यात ब्राह्मण (पुजारी), उनसे मिलने आए और उनसे पूछा कि जीवन के मार्गदर्शन के लिए प्रचलित अनेक पुस्तकों [3] में से वे किसका अनुसरण करना उचित समझते हैं। उन्होंने उन्हें इस प्रकार संबोधित किया:

[587] विजानेय सकाअ अत्थअ अवलोकेयथा पावकनं,॥
यान्चेत्था अस्सा पतिरुपाँ समानं अज्झपगतस्स॥ ॥

[588] मित्तm̥ इधा च कल्याणं सिक्खा विपुला समदानं,॥
सुस्सुसा च गरुणां एतं समांस्सा पतिरूपान्, ॥ ॥

[589] बुद्धेसु च सागरवता धम्मे अपासीति यथाभूतौ,॥
सङ्घे च चित्तिकारो एतां समनस्सा पतिरूपाऽ॥ ॥

[590] Ācāragocare yutto ājīvo sodhito agārayho,॥
Cttassa ca saṇṭhapanaṃ etaṃ samaṇassa patirūpaṃ.॥ ॥

[591] चारित्तो अथ मरित्तो इरियापथियै पसादनिअ,॥
अधिचित्ते च अयोगो एतं समांस्सा पतिरूपान्॥ ॥

[592] अरण्यकानि सेनासननि पन्तनि अप्पासद्दानि,॥
भजिताब्बानि मुनिना एतं समनस्सा पतिरुपाँ॥ ॥

[593] सिलाm̥ च बहुसच्चान्चा धम्मनाउ पविकयो यथाभूतौ,॥
सच्चनं अभिसमायो एतं समाणस्स पतिरूपं॥ ॥

[594] भावये च अनिच्चंति अनत्तसान्नाm̥ असुभासनन्याm̥ च,॥
लोकमहि च अनाभिरतिएतं समांस्सा पतिरूपाः॥ ॥

[595] भावेया च बोजझान्गे इधिपादानी इंद्रियानि बलानि,॥
अङ्थाङ्गमग्गमारिअएतं समांस्सा पतिरूपाm̥॥ ॥

[596] तन्हाअ पजाहेय मुनि समुलाके आसवे पडलेय,॥
विहारेया विप्पमुत्तो एतं समनस्स पतिरुपण् ति.॥ ॥

[587] भिक्षु को अपनी वास्तविक भलाई को समझना चाहिए, और उसे अपने द्वारा सुने गए
सभी उपदेशों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए , और उसमें निहित पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) मार्ग का अर्थ समझना चाहिए जिस पर वह आया है।

[588] नियम में धार्मिक मित्रता,
पर्याप्त प्रशिक्षण का एक पाठ्यक्रम, और सिखाने के योग्य पुरुषों को सुनने की इच्छा
: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[589] बुद्धों के प्रति श्रद्धा; धम्म के मार्ग के प्रति
सच्ची श्रद्धा; भाईचारे के प्रति
देखभाल और आदर: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[590] सुसंस्कृत और शुद्ध जीवन जीने वाला,
आचरण में निर्दोष, और बुद्धि [265] अच्छी तरह से समायोजित: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[591] वह जो करता है और जो नहीं करता, उसमें वह
ऐसा आचरण अपनाता है जो अनुकूल हो;
हृदय और मन के उच्च प्रशिक्षण के लिए
उत्साहपूर्वक समर्पित: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[592] जंगल के एकांत, एकांत स्थान, जहाँ ध्वनियाँ
मुश्किल से ही पहुँचती हों, इनमें से गंभीर ऋषि को
अपना चुनाव करना चाहिए: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[593] और सद्‌गुण, और बहुत ज्ञान, और शोध,
यह जानने के लिए कि वास्तव में चीजें कैसी हैं,
सत्यों की समझ: - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[594] अनित्यता पर ध्यान करना,
और सभी स्व के अभाव पर, और
दु:ख पर, और संसार में
हृदय को बांधने के लिए कोई आकर्षण न पाना: - भिक्षु इसी का अनुसरण करता है।

[595] ज्ञान की सात भुजाओं पर ध्यान करना,
रहस्यमय शक्ति के मार्गों पर, (जादुई) शक्तियों
और पाँच बलों पर, और अष्टांगिक मार्ग पर,
आर्य [4] : - भिक्षु इसका अनुसरण करता है।

[596] सच्चे ऋषि को लालसा को दूर रखना चाहिए;
उसे मादक पदार्थों (विकृतियों/इच्छाओं) को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए;
उसे स्वतंत्र जीवन जीना चाहिए: - भिक्षु इसी का अनुसरण करता है।

इस प्रकार, थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) ने भिक्षु के लिए उपयुक्त मार्ग की प्रशंसा करते हुए, अपने भिक्षु संघ की प्रभावशीलता को बढ़ाया और इसके विपरीत, उस संघ से बाहर के भिक्षु की अप्रभावीता को उजागर किया। फिर वे ब्राह्मण (पुजारी), जो बुद्ध के मार्ग (नियम) को पूरी तरह से स्वीकार करते थे, उपदेशों में स्थापित हो गए, इत्यादि।

[1] एक उत्तर-पश्चिमी जिला। देखें पृष्ठ 79, n.

[2] ऊपर देखें, CXVII.; कली. जन्म कथाएँ, पृ. 130.

[3] शाब्दिक अर्थ, शुद्धिवाद (शुद्धिवाद) या शिक्षाएँ। अंगी., iii. 277 (तुलना करें संवाद, i. 220) से प्रतीत होता है कि ऐसे सिद्धांतकारों में गौतमक या गौतमवादी कहलाते थे। स्पष्टतः गौतम कहलाने वाले तीनों थेरों (C2XIX., CLXXXIII., और ऊपर) में से कोई भी यह सिद्धांतकार नहीं था। साइप्रस में उन्हें 'एक अन्य' (अपरा-) गौतम कहा गया है ।

[4] तुलना करें। 'आर्यन' शब्द बौद्धों को वही अर्थ देता था जो 'ईसाई' शब्द हमें देता है। मूल रूप से एक नस्लीय शब्द, इसका अर्थ 'महान, सौम्य' और विशेष रूप से धम्म का एक संत 'स्वीकारक' हो गया था। ये विषय सैंतीस बोधिपक्खिया धम्म, या ज्ञानोदय के कारक हैं, जिनमें से चार ध्यान की शुरुआत (श्लोक 166, 352) और चार सर्वोच्च प्रयास कम हैं। संकलन देखें, पृष्ठ 179 f.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(240):संकिक्का

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (240) ------>>>> अगला

अध्याय XI.
ग्यारह श्लोकों का कथन (गाथा)
240. संकिक्का
बुद्ध युग में, सावत्थी में एक अत्यंत प्रतिष्ठित ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनकी माता का निधन उनके जन्म से ठीक पहले हो गया था, जिसके कारण वे अंतिम संस्कार की चिता पर बिना जले पाए गए। क्योंकि अंतिम जन्म में किसी प्राणी का जीवन अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त करने से पहले नष्ट नहीं हो सकता, चाहे वह शिनेरु पर्वत से ही क्यों न गिर जाए। सात वर्ष की आयु में, जब उन्होंने अपने जन्म के समय अपनी माता के निधन के बारे में सुना, तो वे व्याकुल हो गए और बोले, 'मैं संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करूँगा)।' अतः उन्हें सारिपुत्त के पास लाया गया। और जब उनके बाल काटे जा रहे थे, तभी उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया। धम्मपद टीका में यह वर्णन है कि कैसे उन्होंने 8,000 भिक्षुओं को बचाने के लिए लुटेरों को अपना प्राण त्याग दिए। [1]

अब एक साधारण व्यक्ति, जो उनकी सेवा करना चाहता था, ने उनसे पड़ोस में रहने का अनुरोध करते हुए कहा:

[597] किय तवत्थो वने तत उज्जुहानो वा पावुसे,॥
वेरम्बा रमणीय ते पविवेको हि झायिनं॥ ॥

[597] हे प्रिय बालक, [2]
वर्षा ऋतु में दूर के जंगलों में,
उज्जुहाना की तरह दलदली, घने जंगलों से घिरे रहने से तुम्हें क्या लाभ है?
तुम्हारे लिए वेरम्भा, हवाओं की गुफा, अधिक मधुर है,
क्योंकि जो ध्यान करते हैं उन्हें अलग रहना पड़ता है। [3]

तब थेरा ने जंगल और अन्य चीजों के आकर्षण को दर्शाने के लिए उत्तर दिया:

[598] यथा अभानि वेराम्बो वातो नुदति पावुसे,॥
सन्न्या मे अभिकिरन्ति विवेकाप्तिसंनुता॥ ॥

[599] अपांडारो अंडसंभावो शिवथिकाया निकेतवारिको,॥
उपपादयातव मे सतिṃ सन्देहस्मिṃ1 विरागनिसितौ.॥ ॥

[600] यं च अण्णे न रक्खन्ति यो च अण्णे न रक्खति,॥
सा वे भिक्खु सुखं सेति कामेसु अनापेक्खवा॥ ॥

[601] अचोदिका पुथुसिला गोनागुलामिगायुता,॥
अंबुसेवलसंचन्ना ते सेला रामयंती माऽ॥ ॥

[602] वसिताऽ मे अरण्यनेसु कंदरासु गुहासु च,॥
सेनासनेसु पेंटेसु वदमिगनिसेविते॥ ॥

[603] इमे हन्नन्तु वज्झन्तु दुक्खाँ पप्पोंतु पणिनो ।॥
नानकप्पां नाभिजानामि अनारियं दोषसंहितं॥ ॥

[604] पैरिसिणो माया सत्था काटां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥

[605] यस्सा कैथाय पब्बजीतो अग्रस्मानगरियं,॥
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो सब्बसन्नोजनाक्खयो॥ ॥

[606] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥

कलौं च पतिकोखामि निब्बिसं भक्तो यथा.॥॥

[607] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जिनितौ,॥
कलौं च पतिकोखामि संपजाणो पतिस्सतोऽ ति.॥॥

[598] जैसे मानसून की हवा चलती है
और चारों ओर बादल गरजते हैं, बारिश में,
[वैसे ही एकांत, दूरस्थ जंगल में, उठते हैं]
वे विचार जो वैराग्य के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं,
और मेरी आत्मा को अभिभूत और फैला देते हैं। [4]

[599] यह गिद्ध (लाश खा रहा था), [5] श्मशान क्षेत्र (कब्रिस्तान) में
चक्कर लगा रहा था, जिसने मुझमें
इस शरीर के बारे में स्पष्ट विचार उत्पन्न किया, जो वासना से शुद्ध हो गया था।

[600] इसके अलावा, जिसकी रक्षा करने की दूसरों को आवश्यकता नहीं है,
जिसकी रक्षा करने के लिए कोई और नहीं है: -
भिक्षु भी आनंदमयी अवस्था में रहता है,
चाहे मनुष्य कुछ भी चाहें और प्रेम करें। [6]

[601] चट्टानें जहाँ स्वच्छ जल बहता है, एक पथरीली दुनिया,
काले चेहरे वाले बंदरों और डरपोक हिरणों से आबाद,
जहाँ चमकीले फूलों के नीचे चांदी की धाराएँ बहती हैं: -
वे मेरे दिल के आनंद के उच्चभूमि हैं। [7]

[602] मैं जंगलों और पर्वतीय गुफाओं में,
चट्टानी घाटियों में और दूरस्थ स्थानों में रहा हूँ,
और जहाँ जंगली जीव घूमते हैं;

[603] लेकिन कभी भी दुर्भावना से भरी,
असभ्य और नीच खोज न करें। [8] - 'चलो शिकार करें,
चलो इन प्राणियों को मार डालें, चलो उनके साथ बुरा व्यवहार करें!'

[268] [604] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,
और बुद्ध की सभी शिक्षाएँ पूरी हो चुकी हैं।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है; [9] मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।

[605] वह भलाई जिसके लिए मैंने दुनिया को अलविदा कहा,
और घर छोड़कर बेघर जीवन जीने के लिए निकल गया,
वह सर्वोच्च भलाई मैंने पूरी कर ली है,
और हर बंधन और जंजीर टूट गई है।' [10]

[606] मृत्यु के विचार से मुझे न तो शांति मिलती है और न ही
जीने में आनंद आता है। मैं उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ,
जैसे कोई भाड़े का सैनिक अपना काम पूरा कर लेता है।

[607] मृत्यु के विचार से मैं न तो सहज होता हूँ, न ही
जीवन में आनंदित होता हूँ। मैं

विवेकशील मन और पूर्ण ध्यानमग्नता के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ। [11]

[1] खंड ii, पृ. 240-252: संकिच्चा नामक नवोदित की कहानी, और कैसे उसने डाकुओं को परिवर्तित किया, धम्मपद के श्लोक 110 की परिस्थितियों की व्याख्या करते हुए। उसके जन्म के साथ, देखें डब्बा, वी., पृ. 10, नोट 4.

[2] धम्मपाल कहते हैं , टाटा, लड़के से ऐसे बात कर रहे हैं जैसे वह उसका पिता हो। उन्होंने आगे कहा, किम को (एथो) के लिए है।

[3] उज्जुहाना को या तो जंगल से ढकी और पानी से भरपूर पहाड़ी कहा जाता है, या बारिश के मौसम में झाड़ियों में रहने वाला पक्षी। इसी प्रकार, वेरम्भा मानसूनी हवा है, या जंगल की तुलना में आम आदमी के घर के पास स्थित एक गुफा है। मैं इस बारे में स्पष्ट राय नहीं रखता कि वास्तव में इसका क्या अर्थ था।

[4] यहां पाली बहुत संक्षिप्त है। अभिकिरन्ति के लिए (जाट देखें, iii. 67) = अज्ज्जोथरन्ति। सी एफ पी.एस. CXXXII., किरण.

[5] अर्थात्, शवदाह करने वाला कौआ (या गिद्ध), श्मशान-क्षेत्र में घर जैसा महसूस करता है, मृतकों पर भोजन करता है। अपण्डरो, अस्पष्ट, अस्पष्ट, को कालवण्णो के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

[6] जात., i., क्रमांक 10 देखें ।

[7] देखें CXIII., CCLXI.

[8] तुलना करें. XLVIII., CCXLIV.

[9] 'खंडों का भार' (टीका) - अर्थात्, उन्होंने उनके भविष्य के नवीनीकरण का कारण (तन्हा, अगली पंक्ति देखें) हटा दिया था। अब वे अपने उत्तर को उनसे पूछे गए प्रश्न, अर्थात् 'अच्छा' या 'लाभ' (अत्थ) के संदर्भ में समाप्त करते हैं।

[10] = संस्करण 136; 380.

[11] देखें सीएलएक्सवीआईआई, सीसीएलएक्स (1002 एफ.); तुलना करें मिलिंदा, 1 70. दूसरे के लिए काम करने वाला मजदूर अपने काम के पूरा होने पर कोई खास खुशी नहीं लेता (टीका)। तुलना करें मनु के नियम (एसबीई 25), पृष्ठ 207

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(241): सिलावट

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (241) ------>>>> अगला

अध्याय XII.
बारह छंदों की कविताएँ
241. सीलावत
बुद्ध युग में राजगृह में बिम्बिसार राजा के पुत्र के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम शीलवत रखा गया। जब वे वयस्क हुए, तब उनके भाई अजातसत्तु राजा थे और वे उन्हें मृत्युदंड देना चाहते थे, पर ऐसा करने में असमर्थ रहे, क्योंकि शीलवत अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर थे और उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञान) प्राप्त नहीं किया था। [1] तब भगवान (बुद्ध) ने स्थिति को भांपते हुए उन्हें लाने के लिए महान मोग्गल्लाना को भेजा। राजकुमार शीलवत अपने हाथी से उतरे और भगवान को प्रणाम किया। तब भगवान ने उन्हें उनके स्वभाव के अनुसार शिक्षा दी, जिससे युवक ने विश्वास प्राप्त किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और उचित समय पर अर्हत (ज्ञान प्राप्त) हो गए। वे कोसल में रहते थे, और जब अजातसत्तु ने उन्हें मारने के लिए अपने आदमियों को भेजा, तो उन्होंने उन्हें मार्ग दिखाया और उन्होंने

सोतापना (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त कर ली, जिससे वे भी भिक्षुओं के संघ में शामिल हो गए। और उन्होंने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया:

[608] सिलमेविधा सिखेथा अस्मिṃ लोके सुसिक्खिताṃ,॥
सिलौं हि सब्बासम्पत्तिं उपनामेति सेवितां॥ ॥

[609] सिलाऽ रक्खेया मेधावी पत्थयाणो तयो सुखे,॥
Pasaṃsaṃ विटिलाभाṃ सीए पेक्का सग्गे सीए मोडानाṃ॥ ॥

[610] सिलवा हि बाहु मित्ते सन्नामेनाधिगच्छति,॥
दुस्सिलो पना मिट्ठेहि धां सते पापमाचरं॥ ॥

[611] अवनअ सीए अकित्ति सीए दुसीलो लभते नरो,॥
वन्नं कित्ति पसांसं च सदा लभाति सिलवा॥ ॥

[612] आदि सिलाṃ पतिथ च कल्याण नं च मतुकाṃ,॥
पमुखं सब्बधम्मनां तस्मा सिलौ विशोधये.॥ ॥

[613] वेला च सँवारो सिलाṃ चित्तसा अभिहासन,॥
तित्थौ च सब्बबुद्धानां तस्मा सिलौ विशोधये॥ ॥

[614] सिलाṃ बलाअ अप्पाइमṃ सिलाṃ अवुधमुत्तमṃ,॥
शीलमाभरणं सेठं शीलं कवचंभूतां.॥ ॥

[615] सिलाṃ सेतु महेसक्खो सिलाṃ गंधो2 अनुत्तरो,॥
शीलं विलेपनं सेठंहां येन वती डिसोडिसां॥ ॥

[616] सिलाṃ सम्बलमेनग्गाṃ सिलाṃ पथेय्यमुत्तमṃ,॥
सिलैं सेठो अतिवाहो येन याति डिसोडिसां ॥ ॥

[617] इधेवा निंदां लभाति पेक्कापाये च दुम्मानो,॥
सब्बत्था दुम्मानो बालो सिलेसु असामहितो॥ ॥

[618] इधेवा कितिṃ लभती पेक्का सग्गे सीए सुम्मानो,॥
सब्बत्थ सुमनो धीरो सिलेसु सुसामहितो॥ ॥

[619] सिलमेव इधा अग्गाṃ पन्नवा पना उत्तमो,॥
मनुस्सेसु च देवेसु सिलापन्ननातो जयं' ति.॥ ॥

[608] नैतिकता में [2] यही वह है कि आपको
इस पृथ्वी पर स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए, अच्छी तरह से अभ्यास की गई नैतिकता में। क्योंकि अच्छी तरह से लागू नैतिक संस्कृति ने
हमें हर तरह की सफलता के करीब ला दिया। [3]

[609] बुद्धिमान व्यक्ति को अपने नैतिक मूल्यों की अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए,
जिसने तीन प्रकार के सुख की आकांक्षा की:
एक अच्छा नाम और इस दुनिया के धन का लाभ
और, जब यह जीवन समाप्त हो जाए, तो स्वर्ग के आनंद।

[610] नैतिक व्यक्ति, संयमित, बहुत से मित्र प्राप्त करता है;
अनैतिक व्यक्ति, बुराई करने से मित्र खो देता है।

[611] अनैतिक व्यक्ति को निंदा और बदनामी मिलती है;
अच्छे व्यक्ति को निश्चित रूप से प्रसिद्धि, स्वीकृति और प्रशंसा मिलती है।

[612] आध्यात्मिक मूल्य की कोई वस्तु नहीं है
, लेकिन नैतिक आदत ही उसका आधार,
उसका आधार, उसका अग्रदूत और उसका स्रोत है;
इसलिए तुम अपने नैतिक मूल्यों को पूरी तरह शुद्ध बनाओ।

[613] नैतिकता बंधन और सीमा प्रदान करती है,
हृदय को प्रकाश और आनंद प्रदान करती है; [4] वह किनारा जहाँ सभी अज्ञानी समुद्र में चले जाते हैं; [5] इसलिए अपनी नैतिकता को पूरी तरह शुद्ध बनाओ।

[614] नैतिक बल के समान कोई बल नहीं है;
नैतिक आदत सर्वोच्च हथियार है;
नैतिक जीवन ही मुख्य आभूषण है;
अद्भुत अभेद्य कवच है। [6]

[615] नैतिकता एक शक्तिशाली मार्ग है;
एक अद्वितीय सुगंध, सर्वोच्च लोबान,
जिसके द्वारा हम सुरक्षित रूप से दूर-दूर तक यात्रा करते हैं। [7]

[616] अच्छे नैतिक मूल्य सबसे अच्छा मार्ग हैं, [8] जीवन की तीर्थयात्रा के लिए सर्वोपरि हथियार,
अच्छे नैतिक मूल्य एक अद्वितीय सौभाग्य का प्रतीक हैं,
जिससे हम सुरक्षित रूप से दूर-दूर तक यात्रा करते हैं। [9]

[617] दुष्ट व्यक्ति [10] पृथ्वी पर निंदा पाता है,
और परलोक में एक दुखद नियति पाता है;
मूर्ख चाहे कहीं भी हो, उसे दुखद प्रसन्नता मिलती है, क्योंकि वह
नैतिकता पर दृढ़ता से स्थापित नहीं होता।

[618] सदाचारी मन वाला व्यक्ति पृथ्वी पर यश पाता है,
और परलोक में प्रकाशमान लोकों में विख्यात होता है।
चाहे कहीं भी हो, वीर लोग प्रसन्न रहते हैं,
उनके हृदय नैतिकता में दृढ़ रहते हैं।

[619]
यहाँ नीचे सर्वोपरि नैतिकता है, परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति सर्वोच्च है; देवताओं और मनुष्यों में
वही विजयी हुआ जो अच्छा और बुद्धिमान दोनों है। [11]

[1] सी.एफ. CCXXVII., CCXL.; विन्न्या ग्रंथ भी , iii. 241 फं.

[2] मुझे 'नैतिकता' आदि जैसे जटिल शब्दों के स्थान पर   सुंदर शब्द ' शील' को बनाए रखने का मन हुआ। 'सद्गुण' अधिक सुरुचिपूर्ण है, पर थोड़ा अस्पष्ट है। शील का अर्थ है नैतिक आदत, नियमित अच्छाई या नैतिक आचरण - ऐसे व्यक्ति का आचरण जो जीवित

प्राणियों को हानि नहीं पहुँचाता या लूटता नहीं है, यौन रूप से सीधा है, सत्यवादी है, वाणी में सौम्य है और पेय के मामले में संयमी है। बस इतना ही। ऐसा आचरण ही उच्च जीवन का मूल आधार है। यह उपदेश भाड़े के हत्यारों को संबोधित है, भिक्षुओं को नहीं।

[3] मनुष्य के रूप में, ईश्वर के रूप में, या निर्वाण में सफलता (टीका)।

[4] अभिभासनम् का अर्थ है या तो; टीका बाद वाले अर्थ को पढ़ती है।

[5] 'निब्बाना की महान नदी (या समुद्र) को पार करते हुए' (टीका)।

[6] टीका का मानना है कि अब्भुतय, अद्भुत, का अर्थ अभेज्जा, अटूट है।

[7] शाब्दिक रूप से, एक दिशा (कंपास) से दूसरी दिशा तक, इस प्रकार सभी मनुष्यों को सद्गुण स्वीकार्य हैं।

[8] संबलाम् को पुटाभट्टम्, या यात्री द्वारा ली गई पत्ती में लिपटी हुई हलवी द्वारा चित्रित किया गया है ।

[9] नोट 5 देखें।

[10] दुम्मनो और इसके विपरीत को आमतौर पर 'उदास' और 'खुशमिजाज' के रूप में अनुवादित किया जाता है, लेकिन संदर्भ एक नैतिक अनुवाद की मांग करता है। टीका इसे पापधम्मो, आदि और कल्याणधम्मो द्वारा व्याख्यायित करती है।

[11] = श्लोक 70.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(242):सुनीता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (242) ------>>>> अगला

अध्याय XII.
बारह छंदों की कविताएँ
242. सुनीता
बुद्ध युग में पुष्प संग्रहण करने वाले परिवार में पुनर्जन्म लेकर, [1] वे सड़क साफ करके जीविका कमाते थे, लेकिन उनकी भूख भी नहीं मिटती थी। रात के पहले पहर में, बुद्ध ने, बुद्धों द्वारा व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली महान करुणा की भावना को प्राप्त करते हुए, संसार का अवलोकन किया। उन्होंने सुनीता के हृदय में अर्हत्व (ज्ञानोदय) की अवस्था को देखा, जो एक कलश में रखे दीपक की तरह चमक रही थी। जब रात ढलकर भोर हुई, तो वे उठे, वस्त्र धारण किए, और भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, अपने भिक्षुओं के साथ, भिक्षा मांगने के लिए राजगृह गए, और उस गली को खोजने लगे जहाँ सुनीता सफाई कर रहे थे। सुनीता कूड़ा-कचरा आदि इकट्ठा कर ढेर लगा रहे थे, और फिर उन्हें अपने कंधे पर रखी टोकरियों में भर रहे थे। जब उन्होंने भगवान (बुद्ध) और उनके अनुयायियों को आते देखा, तो उनका हृदय आनंद और श्रद्धा से भर गया। सड़क पर छिपने की कोई जगह न पाकर, उसने अपना जुआ [272] दीवार के मोड़ में रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए दीवार से चिपके हुए खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) पास आकर उनसे मधुर वाणी में बोले, 'सुनीता! तुम्हें यह दयनीय जीवन शैली कैसी लगती है? क्या तुम संसार को त्यागकर (सन्यास में) जाने का कष्ट सह सकते हो?' सुनीता, अमृत से सराबोर व्यक्ति के आनंद से भर उठे और बोले, 'हे भगवान (बुद्ध), यदि मुझ जैसे व्यक्ति को भी इस जीवन में भिक्षु बनने का अवसर मिल सकता है, तो मैं क्यों न ग्रहण करूँ? भगवान मुझे भी ऐसा करने का मार्ग दिखाएँ।' तब भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'आओ, भिक्षु!' और उस शब्द से स्वीकृति और भिक्षु दीक्षा प्राप्त करके, उन्हें जादुई शक्ति से कुंड और वस्त्र पहनाए गए। भगवान (बुद्ध) उन्हें विहार (मठ) में ले गए और उन्हें एक अभ्यास सिखाया, जिससे उन्होंने पहले आठ उपलब्धियाँ [2] और पंचगुण अभिन्न (उच्च ज्ञान) प्राप्त कीं; फिर अंतर्दृष्टि विकसित करके छठी उपलब्धि प्राप्त की। और सक्का (देवताओं के राजा) और ब्रह्मा देवता (प्रधान देवदूत) आए और उन्हें प्रणाम किया, जैसा कि लिखा है:

वे सात सौ तेजस्वी देवता,

ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) और इंद्र के अनुयायी पास आए और वृद्धावस्था और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले उच्च कुल के व्यक्ति सुनीता को प्रसन्नतापूर्वक सम्मान दिया । [3]

भगवान बुद्ध ने उन्हें देवताओं से घिरा हुआ देखा और मुस्कुराते हुए उनकी प्रशंसा की, तथा इस श्लोक के द्वारा धम्म का मार्ग सिखाया:

'पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) के अनुशासन द्वारा! ... [4]

अब बहुत से भिक्षु, अपनी 'सिंह गर्जना' करने की इच्छा से, सुनीता से पूछने लगे: 'आप किस कुल से आए हैं? आपने संसार क्यों छोड़ा (भिक्षुत्व क्यों ग्रहण किया)? और आपने सत्यों को कैसे जाना?' तब सुनीता ने उन्हें सारी बात इस प्रकार बताई:

[620] नीस कुलमहि जातो'हाṃ दादिद्दो अप्पाभोजनो,॥
हिनकम्मां मामं असि अहोसि पुप्पचडको.॥ ॥

[621] जिगुच्चिटो पनुस्सानां परिभूतो च वामहितो,॥
निकैं मनं करित्वाना वंदिसाṃ1 बहुकां जनाअं॥ ॥

[622] अथद्दससिṃ [64] संबुद्धभि भिक्खुसांघपुरक्खताṃ,॥
पवित्रं महावीरं मगधनां पुरुत्तमं॥ ॥

[623] निक्खिपित्वना व्याभाङ्गीṃ वन्दितुऽ उपासांकमिṃ,॥
मामेव अनुकम्पाय अट्ठसि पुरिसुत्तमो॥ ॥

[624] मंडित्वा सत्थुणो पदे एकमंतां थितो तदा,॥
पब्बजजं अहमयासीं सब्बसत्तनमुत्तमं ॥ ॥

[625] ततो करुणिको सत्था सब्बलोकानुकंपको,॥
एहि भिक्खुति माऽ अहा सा मे आसुपासम्पदा॥ ॥

[626] सो'हाṃ एको अरनानास्मिṃ विहारंतो अतंदितो,॥
आकाशिऽ सत्थु वचनं यथा माऽ ओवदि जिनो॥ ॥

[627] रत्तिया पठमं यमं पुबजतिमानुस्सरिṃ,॥
रत्तिया मज्झमं यमं दिब्बाकक्खुं विसोधयिं,॥
रत्तिया पच्चिमे यामे तमेखंडहं पडालैयि॥ ॥

[628] ततो रत्या विवसने सूर्यसुग्गमनाऽ पति,॥
इन्दो ब्रह्मा च आगन्त्वा माऽ नमस्सिऽसु पंजिलि॥ ॥

[629] नमो ते पुरीसाजन नमो ते पुरीसुत्तमा,॥
यस्सा ते आसवा खिना दक्खिनेय्योसि मारिसा॥ ॥

[630] ततो दिस्वना माऽ सत्था देवसङ्घपुरक्खात्,॥
सीतौ पटुकरित्वाना इमामत्था अभिसथ:॥ ॥

[631] तपेण ब्रह्मचर्येण संनामेना दामेना च,॥
एतेन ब्राह्मणो होति एतं ब्राह्मणमुत्तम, नति॥ ॥

[620] जिस कुल में मेरा जन्म हुआ, उसे नीच बना दो,

और मैं गरीब था और मेरा भाग्य अल्प था;
मेरा काम तुच्छ था, फूलों का सफाईकर्मी।

[621] जिसकी किसी ने परवाह नहीं की, जिसे तिरस्कृत किया गया, जिसका अपमान किया गया, मैंने अपना मन विनम्र किया और
लोगों की एक अच्छी कहानी के सम्मान में
सिर झुकाया ।

[622] और फिर मैंने सर्व-प्रबुद्ध को आते देखा,
अपने भिक्षु-समूह से घिरे और उनके पीछे-पीछे,
महान योद्धा मगध के प्रमुख नगर में प्रवेश कर रहे थे।

[623] मैंने अपनी टोकरियाँ और अपना जुआ एक तरफ रख दिया,
और वहाँ आया जहाँ मैं उचित प्रणाम कर सकूँ,
और अपनी दयालुता के कारण, जो उसने मुझ पर ही दिखाई,
मनुष्य के मुखिया ने अपने रास्ते में विराम लिया।

[624] मैं उनके चरणों में नतमस्तक हुआ, फिर पास खड़े होकर
मैंने भगवान (बुद्ध) से उनके शासन में शामिल होने
और उनका अनुसरण करने की अनुमति मांगी, सभी प्राणियों के प्रधान।

[625] तब, जिसकी कोमल दया समस्त
संसार पर विचरण करती है, दयालु और कृपालु भगवान (बुद्ध)
ने मुझे मेरा उत्तर दिया: आओ, भिक्षु! उन्होंने कहा।
इसी द्वारा मुझे भिक्षुत्व की दीक्षा दी गई। [5]

[626] देखो! मैं अकेले ही वन की गहराइयों में निवास करता हूँ,
अटूट उत्साह के साथ भगवान (बुद्ध) के वचन के अनुसार,
यहाँ तक कि विजेता की सलाहों का भी पालन करता हूँ।

[627] जब रात का पहला पहर बीता, तो
बीते जीवन की लंबी यादें जाग उठीं।
जब मध्य पहर बीता, तो दिव्य दृष्टि,
दिव्य परिप्रेक्ष्य, स्पष्ट हो गया।
जब रात का आखिरी पहर बीता, तो मैंने
अज्ञानता के सारे अंधकार को चीर डाला। [6]

[628] फिर जब रात ढलकर भोर हुई
और सूर्य उदय हुआ, तब इंद्र और ब्रह्मा आए और हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम किया:

[629] हे श्रेष्ठ पुरुषों, आपको नमस्कार!
हे श्रेष्ठ पुरुषों, आपको नमस्कार!
आपके लिए सभी मादक पदार्थ (अपवित्रता/इच्छाएँ) नष्ट हो गए हैं;
और हे श्रेष्ठ पुरुष, आप उपहारों के योग्य हैं।

[630] भगवान (बुद्ध) ने मुझे देवताओं के दल से
घिरा और पीछे-पीछे आते हुए देखकर, एक मुस्कान
प्रकट की और इस कथन से उत्तर दिया:

[631] 'पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) के अनुशासन, संयम
और आत्म-नियंत्रण द्वारा: इससे मनुष्य
पवित्र होता है; यही सर्वोच्च पवित्रता है!' [7]

[1] यानी, कटे हुए फूलों, मालाओं आदि को हटाने वाले, जिन्हें एक तरफ फेंक दिया गया था। यह एक 'निम्न' वंशानुगत व्यापार था।

[2] तुलना करें बुड. साइ., 846, एन. 3; कंपेंडियम, पृ. 133, एन. 3 (भाग IX., Ī 11, XI., Ī 12 के स्थान पर पढ़ें। पाँच ज्ञानों को अक्सर चार माना जाता है)। छठा अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) आसवों का उन्मूलन है = अरहंतत्व (ज्ञानोदय)।

[3] देखें सिस्टर्स , पृष्ठ 146, श्लोक 365। ये पंक्तियाँ अपादान से उद्धृत नहीं की गई हैं। अतीत से प्राप्त आध्यात्मिक शिक्षा को निःसंदेह उनके जीवन के अंतिम काल की घृणित परिस्थितियों के साथ सौंदर्य और नैतिक विरोधाभास में बल दिया गया है।

[4] श्लोक 681.

[5] तुलना करें , भद्दा, सीसी 26; सिस्टर्स, श्लोक 109

[6] सिस्टर्स के लगभग समान , श्लोक 172, 173.

[7] अर्थात्, टीका कहती है, सर्वोच्च ब्राह्मणत्व (ब्रह्मञ्ञा), "जाति और इसी प्रकार की चीजें नहीं, और धम्मपद, श्लोक 58, 59 उद्धृत करती है:

जैसे राजमार्ग पर कूड़े के ढेर पर
एक सुगंधित और मधुर लिली उग सकती है,
वैसे ही इन कूड़े-कचरे से बने प्राणियों, अंधे सांसारिक लोगों के बीच
अंतर्दृष्टि से बुद्ध का बालक चमकता है।

पाली भाषा में 'पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य), 'पवित्र', 'पवित्रता' शब्द ब्रह्मचर्य, ब्राह्मणो, ब्राह्मणा से आए हैं। भजन संहिता 11वीं के श्लोक 1086 में एक महान थेरा द्वारा दिए गए इस दिव्य सम्मान से उनके चेहरे पर मुस्कान आ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुस्कान केवल आत्मसंतुष्टि के कारण नहीं बल्कि परिस्थिति में निहित हास्य तत्व (मनुष्य का ईश्वर के समान हो जाना) के कारण थी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(243):सोना-कोलिविसा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (243) ------>>>> अगला

अध्याय XIII.
तेरह श्लोकों का कथन (गाथा)
243. सोना-कोलिविसा
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के जीवनकाल में, उनका पुनर्जन्म चंपा नगर में एक प्रतिष्ठित पार्षद के परिवार में हुआ। उनके जन्म की प्रत्याशा से ही उनके पिता की अपार संपत्ति और भी बढ़ गई, और उनके जन्मदिन पर पूरे नगर में उत्सव मनाया गया। अब, मौन बुद्ध के पुत्र के रूप में अपने पिछले जन्म में उनकी उदारता के कारण, उनका शरीर उत्तम स्वर्ण और अत्यंत कोमल था, इसी कारण उनका नाम सोन (स्वर्ण) रखा गया। उनके पैरों के तलवों और हथेलियों पर सुनहरे रंग के महीन रोएँ उगते थे, और उनका पालन-पोषण तीन ऋतुओं के अनुरूप तीन महलों में विलासितापूर्ण ढंग से हुआ। [1]

जब हमारे भगवान (बुद्ध) सर्वज्ञता प्राप्त कर चुके थे और धर्ममार्ग (धम्म) का प्रचार शुरू कर चुके थे, और राजगृह में रह रहे थे, तब राजा बिम्बिसार ने सोन को बुलवाया। सोन अपने साथ कई नगरवासियों को लेकर आए और उन्होंने भगवान (बुद्ध) को धर्ममार्ग (धम्म) का

उपदेश देते हुए सुना। सोन का विश्वास जीतकर, उन्होंने अपने माता-पिता की सहमति प्राप्त कर भिक्षु बनने का निश्चय किया। उन्हें भगवान (बुद्ध) से अध्ययन का एक विषय मिला, लेकिन शीत वन में रहने के दौरान लोगों के साथ मेलजोल बनाए रखने के कारण वे ध्यान केंद्रित नहीं कर पाए। उन्होंने सोचा, 'मेरा शरीर इतना नाजुक है कि मैं सुख को प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त नहीं कर सकता। [2] एक [276] भिक्षु के कर्तव्यों में शारीरिक थकान शामिल होती है।' इसलिए उन्होंने इधर-उधर चलने से पैरों में हुए दर्दनाक घावों की परवाह नहीं की और पूरी कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने सोचा, 'मैं न तो मार्ग बना सकता हूँ और न ही फल। मेरे लिए धार्मिक जीवन का क्या उपयोग है?' [3] मैं निम्नतर चीजों की ओर लौटकर पुण्य कर्म करूंगा।' तब भगवान (बुद्ध) ने उनकी बुद्धि को समझा और उन्हें वीणा के दृष्टांत [4] के उपदेश से बचाया, जिससे उन्हें ऊर्जा को शांत भाव से नियंत्रित करना सिखाया गया। इस प्रकार सुधरकर वे गिद्ध शिखर गए और समय आने पर उन्हें अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ। अपनी उपलब्धि पर विचार करते हुए उन्होंने अपनी अञ्ञा (सर्वोच्च प्राप्ति) की घोषणा की :

[632] याहु रथे समइउक्काठो रणनो अन्गस्सा पद्धगु,॥
स्वज्जा धम्मे सु उक्कठो सोनो दुक्खस्सा परागु॥ ॥

[633] पञ्च चिन्दे पञ्च जहे पञ्च कटर भावये,॥
पञ्च संगतिगो भिक्खु ओघातिनो' ति वुकाति ॥ ॥

[634] उन्नास्सा पमत्तस्सा बहिरासस्सा भिक्खुनो,॥
शीलं समाधि पन्न च परिपूरि न गच्छति॥ ॥

[635] याṃ हाय किक्काṃ तदापविद्धाṃ अकिक्काṃ पना काइरति,॥
उन्नानां पमत्तनां तेसां वदंहन्ति आसव.॥ ॥

[636] येसां च सुसमरद्धा निककें कायगता सति,॥
अकिक्कां ते ना सेवंती किस्से सातक्काकारिनो,॥
सतानां संपजानां अत्थान् गच्छन्ति आसव॥ ॥

[637] उजुमग्गमहि अक्खाते गच्छथ मा निवत्तथ,॥
अत्ताना कोडयट्टनां निब्बानमभिहारये॥ ॥

[638] अच्चरद्धमहि वीर्यमहि सत्था लोके अनुत्तरो,॥
विनोपमं किरित्वा मे धम्मं देसेसि चक्खुमा॥ ॥

[639] तस्सहाऽ वचनाऽ सुत्वा विहासिऽ ससाने रतो,॥
समथं पतिपदेसिऽ उत्तममत्थस्स पत्तिया,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससाणं॥ ॥

[640] नेक्खम्मे अधिमुत्तस्सा पविवेकाṃ सीए सीटासो,॥
अभ्यपज्जधिमुत्तस्सा उपादानक्खयस्सा च॥ ॥

[641] ताहक्खयाधिमुत्तस्स असम्मोहाṃ सीए सीटासो,॥
दिस्वा आयतानुप्पदां सम्मा चित्तं विमुच्चति॥ ॥

[642] तस्सा [66] सम्मा विमुत्तस्स संतचित्तस्स भिक्खुनो,॥
कटास्सा पटिकायो नत्थि करणीयं न विज्जति॥ ॥

[643] सेलो यथा एकाघानो वतेन न समिरति,॥
एवं रूप रस सद्दा गंध फस्सा च केवला॥ ॥

[644] इत्था धम्म अनित्था च नप्पामेधेन्ति ताडिनो,॥
हितं चित्तं विसंन्नुत्तं वयञ्चसतुपासति' ति.॥ ॥

[632] जो कभी अंग के राज्य में अत्यंत धनी था,
अंग के राजा का एक सहायक, [5] देखो! वह आज
आध्यात्मिक वस्तुओं में पर्याप्त धनवान है।
हाँ, सोन ने सभी दु:खों को पार कर अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया है।

[633] पाँच तुम्हें काट देते हैं; पाँच पीछे छोड़ देते हैं, और इनसे परे पाँच का अभ्यास करते हैं!
जो पंचांग बंधन को पार कर जाता है - उसे बाढ़ पार करने वाला भिक्षु कहा जाता है। [6]

[634] आप एक भिक्षु को उतावले मन से देखते हैं,
[अकड़ू और खाली], [7] तुच्छ, बाहरी चीजों का स्वाद चखने के लिए उत्सुक ? वह नैतिक संहिता के भीतर विकास की पूर्णता,
मानसिक प्रशिक्षण, या अंतर्दृष्टि की पकड़ में
कभी नहीं पाएगा । [8]

[635] [277] ऐसे लोग अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं,
परन्तु जो नहीं करना चाहिए वो करते हैं।
इन अभिमानी, लापरवाह मनों में
मादक पदार्थों (अपवित्रताओं/इच्छाओं) की सड़ी हुई घास उगती है।

[636] जिनमें इंद्रियों का निरंतर नियंत्रण
अच्छी तरह और गंभीरता से शुरू हो जाता है, वे उन चीजों का
अभ्यास नहीं करते जिन्हें नहीं किया जाना चाहिए;
वे हमेशा वही करते हैं जो किया जाना चाहिए।
जो सचेत और आत्मसंयमित रहते हैं, उनके लिए
मादक पदार्थ (विकृतियाँ/इच्छाएँ) पूरी तरह से दूर हो जाते हैं।

[637] सीधे मार्ग पर, उस मार्ग पर जो घोषित किया गया है,
ध्यान रखो कि तुम दाएं या बाएं न मुड़ो।
प्रत्येक स्वयं को संबोधित करे और प्रेरित करे;
प्रत्येक स्वयं को निर्वाण की ओर ले जाए!

[638] जब मेरी ऊर्जा अत्यधिक थक गई और तनावग्रस्त हो गई, तब
भगवान (बुद्ध) - क्या संसार उनके समकक्ष प्रकट कर सकता है? -
ने मुझे वीणा के बारे में दृष्टांत दिया,
और इस प्रकार उस साक्षी पुरुष ने मुझे धम्म का मार्ग सिखाया।

[639] और मैं, जिसने उनके आशीर्वाद भरे वचन सुने,
केवल और सदा उनकी इच्छा पूरी करने में प्रसन्न रहा। [9] मैंने शांत भाव से विकास किया और संतुलन का अभ्यास किया, [10] ताकि
मैं सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर सकूँ।
और अब मैंने त्रिविध ज्ञान प्राप्त कर लिया है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो गए हैं।

[640] जिसने संसार का त्याग कर दिया है,
और मन की वैराग्यता प्राप्त कर ली है, [11] जिसने शत्रुता पर विजय प्राप्त कर ली है,
और जन्म देने वाले मोह को जड़ से उखाड़ फेंका है,

[641] और उसने लालसा की मृत्यु प्राप्त कर ली है और वह सब कुछ
जो मन को भ्रमित और अस्पष्ट करता था, [278] और संवेदनाओं की उत्पत्ति को चिह्नित किया है: -
उसका हृदय पूर्ण रूप से स्वतंत्र है।

[642] ऐसे भिक्षु के लिए, जो सही ढंग से मुक्त हो गया हो, जिसका हृदय
शांत हो, कर्मों का कोई संचय नहीं होता,
और न ही उसके लिए कुछ शेष रहता है।

[643] जैसे कोई चट्टान एक अखंड स्तंभ हो, [12] और हवा के झोंके में कभी कांपती न हो,
वैसे ही सारी दुनिया के दृश्य, स्वाद और ध्वनियाँ,
गंध और स्पर्शनीय वस्तुएँ, हाँ, वांछित वस्तुएँ,

[644] और अवांछनीय कभी भी
उसके जैसे व्यक्ति को उत्तेजित नहीं कर सकता। उसका मन स्थिर, उदासीन रहता है।
और वह [13] यहाँ से गुजरने को देखता है।

[1] यह प्रकरण और निम्नलिखित विनय ग्रंथों, ii. 1 ff. में आते हैं। कोलिविसा, उनका पारिवारिक नाम, उन्हें अन्य सोनों से अलग करता है (CLVII., CCVIII.)।

[2] तुलना करें सीएलएक्सएक्स, श्लोक 220.

[3] निब्बत्तेतुम.

[4] ओप. सिट., पृ. 8, एंग. iii., 874 ff. उसे प्रयास में उचित मध्य मार्ग विकसित करना था, जैसे ऊन से बंधे वीणा की तरह।

[5] इसलिए बिम्बिसार अंग और मगध दोनों का राजा था। सी एफ सेशन. सिट., 1, एन. 2. 'स्क्वॉयर' पर, पद्धागु, पटागु, सीएफ। सुत्त निपाता, श्लोक 1094, 'कॉमरेड।'

[6] = XV. वहाँ टिप्पणी देखें.

[7] उन्नालो बौद्धों द्वारा व्युत्पन्न थुआ है। चाइल्डर्स के शब्दकोश की तुलना करें । टीका में उद्धृत वाक्यांश है: 'अभिमान की सरकंडे को ऊपर उठाना।' व्युत्पत्ति संभवतः केवल व्याख्यात्मक है; लेकिन यह व्यक्त करता है कि बौद्ध के लिए इस शब्द का क्या अर्थ है - और यही यहाँ मायने रखता है।

[8] तीन प्रशिक्षण। तुलना करें मेरी बौद्ध धर्म, अध्याय 8।

[9] देखें श्लोक 561; बहनें, LIX. ff.

[10] पांडुलिपियों में यहाँ कुछ समाथाम्, कुछ समाताम् लिखा है। साइप्रस दोनों का उपयोग करता है, और अनुवाद भी।

[11] ये पंक्तियाँ अंत तक विनय ग्रंथों, लोके. सिट. और अंगुत्तरा iii., 378 में शब्दशः मिलती हैं।

[12] धम्मपद, श्लोक 81.

[13] टासा के लिए अस्सा । साइ . अरम्मानधम्मस्सा द्वारा व्याख्याएँ ... खाणे भिज्जनसभवं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(244):रेवाता

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (244) ------>>>> अगला

अध्याय 14.
चौदह श्लोक
244. रेवता
इस थेरा का श्लोक पहले अध्याय में पहले ही दर्ज किया जा चुका है, [1] जहाँ उनकी बहनों के पुत्रों को सचेत रहने की शिक्षा दी गई है। यहाँ उनके द्वारा भिक्षु संघ में रहते हुए प्रकाशित श्लोक शामिल हैं। उनका सार यह है: जब उन्होंने अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त कर लिया, तो वे समय-समय पर महान थेराओं, सारिपुत्त और अन्य के साथ भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने जाते थे, और कुछ समय वहाँ रहने के बाद, बबूल के वन में लौट आते थे, जहाँ वे प्राप्त फल के आनंद और उदात्त भावों में लीन रहते थे। [2] और इस प्रकार वे वृद्धावस्था तक रहे। एक दिन बुद्ध के दर्शन करने जाते हुए, वे सावत्थी से कुछ दूर एक जंगल में ठहरे। तभी पुलिस चोरों का पीछा करते हुए वहाँ पहुँची। भागते हुए चोरों ने थेरा के पास अपना लूटा हुआ माल गिरा दिया और भाग गए। पुलिस ने दौड़कर थेरा को गिरफ्तार कर लिया, उन्हें राजा के सामने घसीटकर लाया और कहा: 'हे प्रभु, यही चोर है!' राजा [3] ने उसे रिहा कर दिया और उससे पूछा: 'क्या महाराज ने यह डकैती की है या नहीं?' तब थेरा, जिसने जन्म से कभी ऐसा कुछ नहीं किया था, ने ऐसे कृत्य के लिए अपनी अक्षमता दर्शाते हुए, इन श्लोकों में धम्म का उपदेश दिया:

[645] यदा अहं पब्बजितो अग्गस्मानगरियौ,॥
नाभिजानामि संकप्पाअन अनार्यं दोषसंहितं॥ ॥

[646] इमे हन्नन्तु वज्झन्तु दुक्खाँ पप्पोंतु पणिनो,॥
संकप्पां नाभिजानामि इमास्मि दीघमन्तरे॥ ॥

[647] मेत्तm̩ च अभिजानामि अप्पमाणअ सुभावितो,॥
अनुपुब्बं परिसीतां यथा बुद्धेन देसितां॥ ॥

[648] असाहिराm̩ असाकुप्पाm̩ चित्ताm̩ अमोदयामहाm̩,॥
ब्रह्मविहारं भवेमि अनापुरिससेवितां॥ ॥

[650] अवितकक्कं समापन्नो सम्मासंबुद्धसावको,॥
अरियेन तुन्हिभावेन उपेतो होति तावदे॥ ॥

[651] यथाअपि पब्बतो सेलो अकालो सुप्पतिथितो,॥
एवं मोहक्खया भक्खु पब्बतोऽव न वेदति॥॥ ॥

[652] अनांगगासा पोसासा निक्काm̩ सुसिगावेसिनो,॥
वलग्गमत्तं पपास्स अभ्मत्तं वा ख्याति॥ ॥

[653] नागाराऽ यथा पचंताऽ गुट्टां संतराबहिराऽ,॥
एवं गेपेथा अत्तानां खानो वो मा उपक्कागा॥ ॥

[654] नाभिनंदामि मरणं निभिनंदामि जीविता,॥
कालं च पतिकोखामि संपजाना पतिस्सतो॥ ॥

[655] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥
कलौं च पतिकोखामि संपजानो पतिस्सतो॥ ॥

[656] पैरिसिणो माया सत्था कतां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥

[657] यस्सा कैथाय पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ,॥
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो सब्बासाणो जनक्खायो॥ ॥

[658] सम्पादेथप्पामादेन एसा मे अनुसानि,॥
हंदाहाऽ परिनिब्बास्सं विप्पमुत्तोऽ सब्बाधिऽ ति.॥ ॥

[645] जब से मैं घर छोड़कर (भिक्षुता के लिए) बेघर जीवन में गया हूँ,
मैंने कभी भी सचेत इच्छा या योजना नहीं रखी है
जो आर्य विरोधी हो या शत्रुता से जुड़ी हो।

[646] इस लंबे अंतराल में खोज को कभी मत छोड़ो; -
'चलो अपने साथी प्राणियों को मार डालें, चलो मार डालें,
उन्हें दर्द और पीड़ा पहुँचाएँ।' [4]

[647] नहीं, मैं प्रेम को स्वीकार करता हूँ, जो अनंत है,
अच्छी तरह से प्रशिक्षित है, व्यवस्थित प्रगति से विकसित है,
जैसा कि बुद्ध द्वारा सिखाया गया है।

[648] मैं सभी का मित्र हूँ, सभी का साथी हूँ,
और सभी प्राणियों के प्रति दयालु और करुणामय हूँ;
मैं करुणा का हृदय विकसित करता हूँ,
और सदा सद्भावना ही मेरा आनंद है।

[649] मैं उस हृदय को अपना आनंद बनाता हूँ जो विचलित या अस्थिर नहीं हो सकता
; मैं उन उदात्त भावनाओं का
पोषण करता हूँ जिनसे बुरे लोग दूर भागते हैं।

[650] जो कोई भी परमानंद की अवस्था को प्राप्त कर लेता है [5] निरंतर बदलते इंद्रिय सुखों की सीमा से परे,
वह, परम प्रबुद्ध के अनुयायी,
सीधे आर्य मौन को प्राप्त कर लेता है। [6]

[651] जैसे कोई पर्वत चट्टान अडिग
, दृढ़ आधार पर खड़ी होती है, वैसे ही भ्रम से मुक्त एक भिक्षु
पर्वत की तरह अडिग खड़ा रहता है। [7]

[652] निष्कलंक जीवन जीने वाला व्यक्ति, जो सदा
शुद्धता की खोज करता है, उसने किसी तुच्छ दोष को,
जो बाल के सिरे से भी हल्का है,
[गर्भवती महिला के] बादल के भार के समान भारमय समझा।

[653] जैसे सीमावर्ती शहर
भीतर और बाहर से अच्छी तरह सुरक्षित रहता है, वैसे ही तुम भी अपनी अच्छी तरह रक्षा करो।
ध्यान रखो कि यह क्षण व्यर्थ न बीत जाए। [8]

[654] [281] मृत्यु के विचार से [9] मैं न तो सहज होता हूँ, न ही
जीने में आनंद लेता हूँ। मैं उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ
जैसे कोई भाड़े का सैनिक जिसने अपना काम पूरा कर लिया हो।

[655] मृत्यु के विचार से न तो मुझे शांति मिलती है और न ही
जीने में आनंद आता है। मैं
विवेकपूर्ण मन और पूर्ण ध्यानमग्नता के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ।

[656] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,
और बुद्ध की सभी शिक्षाओं का पालन किया जा चुका है।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है।

[657] वह भलाई जिसके लिए मैंने दुनिया को अलविदा कहा,
और बेघर जीवन जीने के लिए घर छोड़ दिया,
वह सर्वोच्च भलाई मैंने पूरी कर ली है,
और हर बंधन और बेड़ी टूट गई है।

[658] उत्साह और लगन से अपना भला करो:
यही मेरी [अंतिम] आज्ञा है तुम्हारे लिए। [10] क्योंकि देखो! अब मैं पूरी तरह से चला जाऊंगा,
मुझे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो रही है। [11]

[1] एक्सएलआईआई। रेवता सारिपुत्त का भाई है, और इसलिए उपसेना (CCXXXVIII.) और कुंडा (CXXXI.) का भाई है। सारांश संदर्भ धम्मपाल के अपने शब्दों में है।

[2] श्लोक 286, एन देखें।

[3] कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनाजित) एक उत्साही गृहस्थ अनुयायी थे और बुद्ध के अंतिम वर्षों में जीवित थे (मज्झ., ii. 124)। पृष्ठ 109 पर एक बहुत अलग न्यायाधीश के साथ इसी तरह के प्रकरण की तुलना करें ।

[4] सी.एफ. XLVIII.; सीसीएक्सएल., श्लोक 603.

[5] - उनके भाई की कविता में 999 आगे के छंद।

[6] अर्थात्, झाना (टीका) के दूसरे चरण में । टीका में मज्झ. निक., i. 161 उद्धृत है। तुलना करें. साम. निक., ii. 273.

[7] देखें CXLVI. और पूर्ववर्ती Ps., श्लोक 643.

[8] श्लोक 231, 403 और बहनों, श्लोक 5 और टिप्पणी देखें । यहाँ टिप्पणी प्रासंगिक रूप से 'मध्य देश' (पृष्ठ 107) में जन्म लेने को महान 'संयोग' में जोड़ती है।

[9] = श्लोक 606, 607, 604, 605.

[10] बुद्ध के अंतिम शब्दों (संवाद, ii. 173) और सारिपुत्त के, नीचे, श्लोक 1017 की तुलना करें ।

[11] क्रॉनिकल में बताया गया है कि वह वहीं और वहीं गुजर गया - शाब्दिक रूप से, 'बुझ गया' - जैसे कोई लौ बुझ जाती है। पाली शब्द paritnibissaṃ में 'यहाँ से गुजर जाना' नहीं है, जैसा कि मूल रूप से समझा गया था।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(245):गोदत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (245) ------>>>> अगला

अध्याय 14.
चौदह श्लोक
245. गोदाट्टा
बुद्ध युग में सावत्थी में कारवां-नेताओं के परिवार में पुनर्जन्म लेकर उनका नाम गोदात्त रखा गया। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपनी संपत्ति का प्रबंधन किया और 500 बैलगाड़ियों में माल भरकर व्यापार करते हुए यात्रा करने लगे। एक दिन गाड़ी खींचते समय एक बैल रास्ते में गिर गया और उनके आदमी उसे उठा नहीं सके, इसलिए उन्होंने स्वयं जाकर उसे बुरी तरह पीटा। [282] तब बैल उनकी इस निर्दयता से क्रोधित होकर मनुष्य की आवाज में बोला, 'गोदात्त, इतने समय तक मैंने निःस्वार्थ भाव से आपके बोझ ढोने के लिए अपनी शक्ति दी, लेकिन आज जब मैं असमर्थ होकर गिर गया, तो आपने मुझे बुरी तरह चोट पहुँचाई। अच्छा! अब से जहाँ कहीं भी आपका पुनर्जन्म हो, मैं वहाँ आपका शत्रु बनकर आपको हानि पहुँचा सकूँ!' यह सुनकर गोदात्त रोमांचित हो गए और सोचने लगे, 'इस जीवन में मैं क्या कर रहा हूँ जो इस प्रकार जीवित प्राणियों को चोट पहुँचाता हूँ?' और उन्होंने अपनी सारी संपत्ति त्याग दी और एक महान थेरा के अधीन दीक्षा ली, और समय आने पर अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

अब एक दिन जब वह फल प्राप्ति के आनंद में थे, तो उन्होंने आर्य समूहों, गृहस्थ और धार्मिक दोनों को सांसारिक ज्ञान पर प्रवचन दिया: [1]

[659] यथाअपि भद्दो अजन्नो धुरे युत्तो धुरासहो॥
मथितो अतिभरेण संयुगं नाटिवत्तति॥ ॥

[660] एवं पनन्या ये तित्ता समुद्दो वारिणा यथा,॥
न पारे अतिमन्नन्ति अरियधम्मोऽव पणिनौ॥ ॥

[661] काले [68] कलावसां पत्त भावाभववसां गता,॥
नारा दुक्खं निगच्छन्ति तेधा सोकन्ति मनावा॥ ॥

[662] उन्नत सुखदम्मेना दुक्खधम्मेना कोनता,॥
द्वयेन बलाहन्नन्ति यथाभूतं अडस्सिनो॥ ॥

[663] ये सीए दुक्खे सुखस्मिṃ सीए मज्झासिब्बनिमाकागु॥
हिता ते इंदखिलोऽव न ते उन्नतिओनता॥ ॥

[664] नहेव लाभे नालभे अयासे न च कित्तिया,॥
न निंदायं पसांसाय न ते दुक्खे सुखमहि च॥ ॥

[665] सब्बत्था ते न लिप्पन्ति उदबिन्दुवा पोक्खरे,॥
सब्बत्था सुखिता धीरा सब्बत्था अपराजिता॥ ॥

[666] धम्मेन च अलभो यो यो च लाभो अधम्मिको,॥
अलाभो धम्मिको सेय्ये यं वे लाभो अधम्मिको॥ ॥

[667] यसो च अप्पाबुद्धिनाṃ विन्निनु अयासो च यो,॥
अयासोऽव सय्यो विष्णुनाऽ न यसो अप्पाबुद्धिनाऽ॥ ॥

[668] दुम्मेधि पसांसा च मिन्नुहि गाराहा च या,॥
गार्हाव सेय्यो विन्नुहि यं सी बलपसाणसना॥ ॥

[669] सुखाऽ च कामामयिकाऽ दुक्खाऽ सीए पविवेकियाṃ,॥
पविवेक1 दुक्खाँ सेय्यो यां सी काममयं सुखं॥ ॥

[670] जीविताṃ च अधम्मेना धम्मेना मरणाṃ च याṃ,॥
मरणं धम्मिकां सेय्यो यां सी जीवे अधम्मिकां॥ ॥

[671] कामकोप्पहिना ये संतचित्त भवभावे,॥
कैरन्ति लोके असिता नत्थि तेसां पियाप्पियं॥ ॥

[672] भावयित्वाना बोजझान्गे इन्द्रियाणि बलानि च,॥
पप्पुय्य परमं शांतिं परिनिब्बन्त्यनसवति। ॥ ॥

[659] यहाँ तक कि कुलीन नस्ल का बलवान पशु भी,
अपने बोझ से बंधा हुआ, उसे खींचता हुआ,
यद्यपि अपनी शक्ति से अधिक बोझ से थका हुआ है, [अनुचित],
अपने बंधनों से विद्रोह करके नहीं भागता,

[660] अतः जिनमें सागर के जल के समान
ज्ञान प्रचुर मात्रा में है, वे अन्य मनुष्यों को तुच्छ न समझें;
प्राणियों में यही आर्य (धर्मी) नियम है। [2]

[661] समय में जीना, समय की शक्ति के अधीन आना;
भविष्य के जीवन के बारे में भय के अधीन, [3] मनुष्य दर्द और दुख के रास्ते पर चलते हैं,
हाँ, यहाँ नीचे मनुष्य के पुत्र शोक मनाते हैं।

[662] किसी सुखद घटना से उत्साहित, और दुःख से
निराश, मूर्ख इधर-उधर व्याकुल हो जाते हैं, [4] जो कुछ भी वास्तव में नहीं देख सकते।

[663] परन्तु जो जाल बुनने वाले से बच सकते हैं, वे [5] मध्य मार्ग धारण करके दुख और सुख के बीच गिर पड़े, [283] वे द्वार पर किसी स्तंभ की तरह खड़े हैं।
न तो वे उत्साहित हैं, न ही उदास।

[664] लाभ या हानि, सम्मान, प्रसिद्धि,
प्रशंसा या निंदा, सुख या दुख के लिए नहीं -

[665] चाहे वह कहीं भी हो - वे पकड़ लेते हैं और चिपके रहते हैं,
कमल के पत्ते पर ओस की बूंद से अधिक नहीं।
स्वस्थ और शांत हर जगह विजेता हैं,
और हर जगह अजेय [जीतने के लिए बाध्य]। [6]

[666] जो सही ढंग से खोजता है और कुछ भी हासिल नहीं करता,
और जो गलत तरीके से खोजता है, उसमें
से बेहतर है वह जिसने सही ढंग से खोज की और खो दिया,
बजाय उसके जिसने गलत तरीकों से हासिल किया।

[667] उनमें से जो प्रतिष्ठा तो रखते हैं, पर
बुद्धि का अभाव रखते हैं, और जो जानते तो हैं, पर प्रतिष्ठा का अभाव रखते हैं,
उनमें से प्रतिष्ठाहीन धूर्त पुरुष,
महान प्रतिष्ठा और कम बुद्धि वाले पुरुषों से बेहतर हैं।

[668] बुद्धिहीनों द्वारा की गई प्रशंसाओं
और बुद्धिमानों द्वारा की गई निंदा और आलोचनाओं में से,
बुद्धिमानों की आलोचना
मूर्ख की प्रशंसाओं से कहीं बेहतर है।

[669] इंद्रिय-संबंधी इच्छा से उत्पन्न सुख,
वैरागी, कठोर जीवन से आने वाला दर्द,
कठोर जीवन से आने वाला दर्द
इंद्रिय-संबंधी इच्छा से उत्पन्न सुख से बेहतर है।

[670] गलत तरीके से जीना; सही काम करने के लिए मरना,
ऐसे जीना से बेहतर था कि ऐसे मर जाओ।

[671] जिन्होंने इंद्रिय-इच्छा और क्रोध को त्याग दिया है,
आने वाले जीवन के विषय में अपने हृदय में शांति रखते हैं, [7] वे दुनिया में कामवासना और लालसा से मुक्त होकर चलते हैं;
पसंद और नापसंद ऐसे लोगों के लिए नहीं हैं।

[672] उन्होंने ज्ञान के कारकों, शक्तियों
और बलों का अध्ययन किया है।
इस प्रकार पूर्ण शांति प्राप्त करके, जैसे अग्नि बुझ जाती है (निर्वाण),
वे पूरी तरह से स्वस्थ और निर्जीव होकर विदा हो जाते हैं।

[1] लोकधम्मा.

[2] भारतीय बैल के विरोध की तुलना बालाक के हिब्रू गधे के विरोध से करना रोचक है। टीका के अनुसार, 'आर्य नियम' का सार यह है कि हम अपनी सफलताओं पर स्वयं को बधाई दें या न दें, हमें अपनी असफलताओं पर दूसरों को नीचा नहीं दिखाना चाहिए। इस प्रकार, दोनों ही मामलों में, समृद्ध ज्ञान मनुष्य को प्रसन्न करता है।

[3] अधिक शाब्दिक रूप से, बनने के अधीन और न बनने के अधीन।

[4] तुलना करें सीआईआई.

[5] यानी, लालसा (तन्हा), जो जीवन को जीवन से जोड़ता है (बुद्ध. मनोविज्ञान, पृ. 278)।

[6] टिप्पणी से यह अंतिम (मेट्री कारण) : अनाभिभवनियतो।

[7] देखें पद 661, नोट 8.

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(246):अन्ना-कोंडन्ना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (246) ------>>>> अगला

अध्याय पंद्रह.
सोलह श्लोक
246. अञ्ञ-कोण्डञ्ञ
हमारे परम पूज्य (बुद्ध) से पहले, कपिलवस्तु से कुछ ही दूरी पर स्थित दोना-वत्थु गाँव में, एक अत्यंत धनी ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका उपनाम उनके परिवार का नाम कोण्डाञ्ञ पड़ा। बड़े होकर वे तीनों वेदों के ज्ञाता और लक्षणों के ज्ञान में निपुण थे। [1] अब जब हमारे बोधिसत्व का जन्म हुआ, तो वे भविष्यवाणी करने के लिए भेजे गए आठ ब्राह्मणों (पुजारियों) में से एक थे। और यद्यपि वे बिल्कुल नौसिखिया थे, उन्होंने शिशु में उस महान पुरुष के लक्षण देखे और कहा: 'निश्चित रूप से यह बुद्ध बनेगा!' इस प्रकार वे उस महान पुरुष के त्याग की प्रतीक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करते रहे। जब बोधिसत्व के उनतीसवें वर्ष में यह घटना घटी, तो कोंडञ्ञ को इसकी सूचना मिली और वे चार अन्य ब्राह्मण (पुजारी) पुत्रों, वप्पा [2] और अन्य लोगों के साथ संसार छोड़कर (भिक्षु बनने के लिए) चले गए और बोधिसत्व के महान संघर्ष के दौरान छह वर्षों तक उनके निकट उरुवेला में रहे । फिर जब बोधिसत्व ने उपवास समाप्त किया, तो वे निराश हो गए और इसिपताना चले गए। वहाँ बुद्ध ने उनका अनुसरण किया और अपने चक्र उपदेश का प्रचार किया, जिससे कोंडञ्ञ और असंख्य ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) ने प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) का फल प्राप्त किया। और पाँचवें दिन, 'स्वयं के किसी भी चिह्न का अभाव' विषय पर उपदेश के माध्यम से, कोंडञ्ञ ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। बाद में, महान जेतवन विहार (मठ) में आयोजित सभा में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ में लंबे समय से रह रहे भिक्षुओं में प्रमुख स्थान प्राप्त किया। [3] और एक अवसर पर कोंडञ्ञ के चार सत्यों पर दिए गए उपदेश - तीन संकेतों की छाप लिए हुए, निराकारता से संबंधित, कई विधियों द्वारा भिन्न, निर्वाण पर आधारित, और बुद्ध की स्वयं की धाराप्रवाहता के साथ दिया गया प्रवचन - ने देवता सक्का (देवताओं के राजा) को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने यह श्लोक कहा:

[673] एसा [69] भय्यो पसीदामि सुत्वा धम्मौ महरासाऽ,॥
विरागो देसितो धम्मो अनुपादाय सब्बासो॥ ॥

[673] आपके सिद्धांत के महान गुणों को सुनकर,
देखो! मैं इससे पूर्णतः संतुष्ट हूँ।
इस प्रकार सिखाया गया मार्ग (धम्म) अत्यंत भावहीन और शुद्ध है,
जो हर प्रकार के आलिंगन से पूर्णतः मुक्त है। [4]

एक अन्य अवसर पर, थेरा ने देखा कि कुछ सांसारिक लोगों के मन गलत विचारों से ग्रसित हो गए हैं, तो उन्होंने इस प्रकार स्वयं को मुक्त कर दिया:

[674] बहुनि लोके सित्राणि असामीṃ पाथविमांडेले,॥
माथेन्ति मन्ने संकप्पां शुभं रागुपाससंहितां॥ ॥

[675] राजमुहतौ च वतेन यथा मेघोपासम्मये,॥
एवं सम्मन्ति संकप्पा यदा पनन्या पस्सति, ॥ ॥

[676] सब्बे संखारा अनिच्चति यदा पनन्या पस्सति,॥
अथ निब्बिंदति दुक्खे एसा मग्गो विशुद्धिआ॥ ॥

[677] सब्बे संखारा दुक्खति यदा पन्नया पस्सति,॥
अथ निब्बिंदति दुक्खे एसा मग्गो विशुद्धिआ॥ ॥

[678] सब्बे धम्म अनात्ता' ति यदा पन्नया पस्सति,॥
अथ निब्बिंदति दुक्खे एसा मग्गो विशुद्धिआ॥ ॥

[674] दुनिया में कई रंगीन चित्र हैं,
इस पृथ्वी की परिधि के भीतर आनंद लिया जाता है,

मैं ध्यान देता हूँ, मनुष्य के उद्देश्यों को उत्तेजित करते हैं,
सुंदर दिखने वाली आशाएँ, और तीव्र इच्छा से जुड़ी हुई हैं।

[675] जैसे हवा से धूल उड़कर बारिश के बादल को बिखेर देती है,
वैसे ही वे उद्देश्य रचित और शांत हो जाते हैं,
जब वह बुद्धि से पहचान कर देखता है।

[676] जब उसने बुद्धि से यह जान लिया और देख लिया कि
'जीवन में सब कुछ क्षणभंगुर है,'
तब उसे इस सारे कष्ट से घृणा हुई।
देखो! इसी में पवित्रता का मार्ग निहित है।

[286][677] जब उसने बुद्धि से यह जान लिया और देख लिया
कि 'जीवन में सब कुछ दुख के लिए बाध्य है' [5] तब उसे इस सब पीड़ा से घृणा होती है।
देखो! इसी में पवित्रता का मार्ग निहित है।

[678] 'जीवन में सब कुछ आत्महीन है',
तब उसे इस सब पीड़ा से घृणा होती है।
देखो! इसी में पवित्रता का मार्ग निहित है।

इस पर उन्होंने स्वयं इस अंतर्दृष्टि को प्राप्त करने का प्रमाण देते हुए, ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) को स्वीकार किया और कहा:

[679] बुद्धानुबुद्धो यो थेरो कोंडाणो तिब्बनिकमो,॥
पाहिनाजातिमारणो ब्रह्मचर्यस्स केवली॥ ॥

[680] ओघापासो दहाखिलो पब्बतो दुप्पादाल्यो,॥
चेत्वा खिलाऽ च पसाऽ च सेलेऽ भेट्वाना दुब्भिदां,॥
तिणो पारंगतो झायि मुत्तो सो मरबन्धना॥ ॥

[679] भिक्षु कोण्डाञ्ञ, प्रबुद्ध व्यक्ति (भगवान बुद्ध) द्वारा जागृत: -
देखो! वह शक्ति के साथ आगे बढ़ गया है;
उसने जन्म और मृत्यु को दूर कर दिया है,
पूर्णतः उदात्त जीवन को प्राप्त कर लिया है।

[680] चाहे वह 'बाढ़' हो या 'जाल' या 'ठोकर का पत्थर',
या चाहे वह 'पहाड़' हो जिसे दो भागों में तोड़ना मुश्किल हो, [6] मैंने जाल, ठोकर का पत्थर काट डाला है,
और उस चट्टान को तोड़ दिया है जिसे तोड़ना बहुत मुश्किल था,
और बाढ़ पार कर ली है।
मैं परमानंदित विचार में डूबा हुआ जीता हूँ, बुराई के बंधन से मुक्त।

एक दिन थेरा ने एक भिक्षु को फटकारा, जो अयोग्य मित्रता के कारण बुरी आदतों में पड़ गया था, और उससे कहा:

[681] उद्धतो कपालो भक्खु मिटे अगम्मा पापाके,॥
संसीदति महोघस्मिं उमिया पतिकुज्जितो॥ ॥

[682] अनुद्धतो अकापालो निपाको सावुतिन्द्रियो,॥
कल्याणमित्तो मेधावी दुक्खस्सन्तकारो सिया॥ ॥

[683] कलापब्बांगसांककासो किसो धमनिसंथातो,॥
मत्तान्नु अन्नपानस्मिं आदिनामानसो नरो॥ ॥

[684] फुṭṭहो ḍaṃsehi makasehi araññasmiṃ ब्रहावने,॥
नागो सङ्गमसीसेव सत्तो तत्राधिवासये॥ ॥

[685] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥
कलौं च पतिकोन्खामि निब्बिसां भटको यथा ॥ ॥

[686] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥
कलौं च पतिकोन्खामि संपजाणो पतिस्सतो ॥ ॥

[687] परिसीणो माया सत्था कतां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥

[688] यस्साथया पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ,॥
तो मे अत्थो अनुप्पत्तो किय मे सद्धिविहारिनति। ॥ ॥

[681] एक व्याकुल, अस्थिर मन वाला भिक्षु,
जिसने दुष्ट मित्रों की संगति की,
[लगातार जीवन जीने की] महान बाढ़ में
सिर के बल गिरता है और उसकी लहरों के नीचे डूब जाता है।

[682] परन्तु जिसने एकाग्र, स्थिर मन से,
हृदय और बुद्धि में विवेक और आत्मसंयम से,
बुद्धिमानी से सद्गुणी मित्रों से संबंध स्थापित किया,
उसी के लिए दुःख का अंत संभव हो।

[287][683] देखो! यहाँ1 एक आदमी है जिसका शरीर थका हुआ और पीला है;
उसके जोड़ बेंत के गांठदार तनों की तरह हैं, और
उसकी नसों का जाल तीखा और कमजोर है;
भोजन और पेय में संयमी,
उसकी आत्मा न तो कुचली हुई है और न ही उदास।

[684] विशाल जंगल में, विशाल वनों में,
भले ही मैं मक्खी और मच्छर से प्रभावित हो जाऊं,
फिर भी मैं योद्धा-हाथी की तरह,
युद्ध के अग्रभाग में, सचेत, सतर्क होकर घूमना चाहूंगा।

[685] मृत्यु के विचार से [7] मैं न तो सहज होता हूँ, न ही
जीने में आनंद लेता हूँ। मैं उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ
जैसे कोई भाड़े का सैनिक अपना काम पूरा कर लेता है।

[686] मृत्यु के विचार से मैं न तो सहज होता हूँ, न ही
जीवन में आनंदित होता हूँ। मैं
विवेकशील मन और पूर्ण ध्यानमग्नता के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ।

[687] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,

और बुद्ध की सभी शिक्षाओं का पालन किया जा चुका है।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है।

[688] वह अच्छाई [8] जिसके लिए मैंने संसार को त्याग दिया,
और घर छोड़कर बेघर जीवन व्यतीत किया,
वह सर्वोच्च अच्छाई मैंने प्राप्त कर ली है।
मुझे भिक्षु के रूप में जीने की क्या आवश्यकता है?

[1] संवाद, i. 17, n. 2. भविष्यवाणी पर, बौद्ध जन्म कथाएँ , पृष्ठ 72 f में एक पूर्ण संस्करण देखें।

[2] ऊपर देखें, एलएक्सआई.

[3] अंग., i. 26. बुद्ध के उपदेश के लिए, विनय ग्रंथ, i. 100 f देखें। [संपादक: एसएन 3.22.59 के विभिन्न अनुवाद भी देखें, और विनय संस्करण के वारेन के अनुवाद के लिए: अनुवाद में बौद्ध धर्म, पृष्ठ 146]

[4] अनुपादाय, अगाहेत्वा विमुत्तिसाधनवीन पवत्तत्ता द्वारा व्याख्यायित।

[5] यहाँ पिछली दो पंक्तियों को दोहराएँ। धम्मपद, श्लोक 277-279 देखें ।

[6] सुत्तस के सभी रूपक - उदाहरण के लिए, दीघा निक।, iii। 230; Saŋy. निक., मैं. 105 एफ.; मैं। 27; मज्झ. निक., iii. 130.

[7] = सीएल.एक्स.एक्स.वी. यह भटके हुए व्यक्ति को संन्यासी जीवन का आदेश देने के लिए है (टीका)।

[8] = श्लोक 606 f., 654 f.; 604 और 655.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(247):उदयिन

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (247) ------>>>> अगला

अध्याय पंद्रह.
सोलह श्लोक
247. उदयिन
इस बुद्ध युग में कपिलवस्तु में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने बुद्ध की शक्ति और महिमा को तब देखा जब [288] वे अपने परिवार से मिलने गए, उन पर विश्वास किया, भिक्षु संघ में प्रवेश किया और समय के साथ अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। अब उदयिन नाम के तीन थेरा हैं: मंत्री का पुत्र, कलुदयिन, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, [1] यह ब्राह्मण (पुजारी), और महान उदयिन। [2] जब राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के हाथी सेता की सार्वजनिक रूप से प्रशंसा की जा रही थी, उस अवसर पर हाथी दृष्टांत का सूत्र पढ़ाया जा रहा था, [3] तब बुद्ध के विचार से वे उत्साह से भर गए और सोचने लगे: 'ये लोग तो बस एक जानवर की प्रशंसा करते हैं। अब आओ, मैं उस महान और अद्भुत हाथी, बुद्ध के गुणों का बखान करूंगा!' उन्होंने ये श्लोक कहे:

[689] मनुस्सभूताŋ संबुद्धाअत्तदन्तो समाहितो,॥
इरियामाणा3 ब्रह्मपते चित्तसुपासमे रताŋ॥ ॥

[690] यं मनुस्सा नमस्सांति सब्बधम्मना परागु,॥
देवाऽपि तं नमस्सन्ति इति मे अरहतो सुत॥॥ ॥

[691] सब्बसाअयजनातिताɱ वना निब्बानमागाताɱ,॥
कामेहि नेक्खम्मरातां मुत्तं सेला'व6 कांचनां॥ ॥

[692] सा वे एकांतारुसी नागो हिमावा मन्ने सिलुक्काये,॥
सब्बेसां नागाणां सच्चनामो अनुत्तरो॥ ॥

[693] नागां वो कित्तायिस्सामि न हि अगुं करोति सो,॥
सोरक्कन अविहिंसा च पदा नागासा ते डुवे॥ ॥

[694] सती च सम्पजान्नस च कैराना नागासा ते पारे,॥
सद्दा हत्थो महानागो उपेक्खसेतदन्तवा॥ ॥

[695] सती च सम्पजान्नना कैराना नागासा ते पारे,॥
धम्मकुच्चिसमवाससो विवेको तस्स वलाधि.॥ ॥

[696] So jhāyī assāsarato ajjhattaɱ susamāhito,॥
Gacchaɱ samāhito nāgo ṭhito nāgo samāhito.॥ ॥

[697] सयं समाहितो नागो निसिन्नोऽपि समाहितो,॥
सब्बत्थ सवुतो नागो एसा नागासा सम्पदा॥ ॥

[698] भुञ्जति अनवज्जनि सवज्जनि न भुञ्जति,॥
घसमच्छदाणं लद्धा सन्निधिं परिवज्जायं॥ ॥

[699] सयोजनानाअ अउउ थुलाअ सब्बाअ चेतवना बंधना,॥
येना येनेवा गच्छति अनापेक्खोवा गच्छति॥ ॥

[700] यथापि उदके जातऽ पुण्डरीकाऽ पवदहति,॥
नोपालिप्पति तोयेना सुसीगंधाɱ मनोरमाɱ॥ ॥

[701] तथेव च लोके जातो बुद्धो लोके विहारति,॥
नोपालिप्पति लोकेन तोयेन पदुमं यथा.॥ ॥

[702] महागिनी पज्जलितो अनाहारोपसम्मति,॥
अंगारेसु च संतेसु निब्बुतो' ति पावुक्कति॥ ॥

[703] अत्थससायं विण्णापानी उपमा विण्णुहि देसिता,॥
विनिस्सान्ति महानागा नागां नागेण देसितां॥ ॥

[704] वीतरागो वीतदोसो वीतमोहो अनासवो,॥
सरिरं विजाहं नागो परिनिब्बिसन्त्यनासावो' ति.॥ ॥

[689] बुद्ध, प्रबुद्ध, मनुष्य के पुत्र,
आत्म-संयमी, अंतर्मुखी दृष्टि से लीन,
उदात्त मार्गों में अपने भीतर तल्लीन,
हृदय की शांति में प्रसन्न;

[690] मनुष्य उन्हें आदर देते हैं, मानो

वे उन सभी चीजों से परे हों जिन्हें हम जानते हैं; [4] देवता भी उन्हें आदर देते हैं:-
ऐसा मैंने, एक अरहंत (प्रबुद्ध), सुना है-

[691] जंगल से निर्वाण में आओ, [5] हर बंधन को पीछे छोड़कर,
सांसारिक सुखों का त्याग करके प्रसन्न होकर,
अयस्क से शुद्ध सोने की तरह निकाले गए,

[692] वह हाथी की तरह ही शानदार है,
हिमालय की वनभूमि में:-
देखो, उसे! नाग शानदार- [289] क्योंकि, निश्चित रूप से, हम सभी 'नाग' नाम के लोगों में
(सर्प या हाथी या मनुष्य)
उसके लिए यह नाम सर्वोत्कृष्ट सत्य है -

[693] मैं इस नाग की आपके सामने प्रशंसा करूँगा,
क्योंकि उसने कोई पाप नहीं किया । [6] दयालुता, संयम: [7] ये नाग के दो चरण हैं;

[694] बुद्धि और सजगता:
इस हाथी के अन्य दो पैर।
नाग की सूंड आत्मविश्वास है;
उसके सफेद दांत समभाव हैं;

[695] उसका कंठ जागरूकता, [8] और उसका सिर
अंतर्दृष्टि है; धड़ का परीक्षण स्पर्श
अच्छे और बुरे का बुद्धिमानी से तौलना है;
मार्ग (धम्म) का मंदिर उसका आंतरिक अंग है;
वैराग्य उसकी पूंछ है।

[696] अत: ध्यानमग्न होकर, और आनंदमय श्वास लेते हुए, [9] शरीर और मन से शांत होकर,
शांत होकर, यह नाग जब चलता है,
शांत होकर, यह नाग जब खड़ा होता है,

[697] लेटे हुए यह नाग शांत है,
और बैठे हुए भी शांत है;
उसने जो कुछ भी किया, वह स्व-नियंत्रित रहा:
यही नाग का उत्तम मार्ग है।

[698] वह अपने सभी सुखों में निर्दोष है,
किसी भी ऐसी चीज का आनंद नहीं लेता जो निंदा के योग्य हो,
उसे केवल भोजन और सामान मिला है,
उसने भंडार से परहेज किया है।

[290] [699] चाहे बंधन मोटा हो या महीन,
वह हर तरह के बंधन तोड़ देता है;
वह जहाँ चाहे जाता है,
और जहाँ चाहे जाता है।

[700] जैसे कमल किसी झील में जन्म लेता है,
पानी से किसी भी प्रकार से दूषित नहीं होता,

बल्कि सुगंधित और सुंदर हो जाता है,

[701] इस संसार में बुद्ध भी ऐसे ही हैं,
संसार में जन्म लेकर वहीं निवास करते हैं,
परन्तु संसार से किसी प्रकार अपवित्र नहीं होते,
जैसे झील के किनारे लिली का फूल।

[702] एक भयंकर आग जो बुझ गई है,
और जिसका कोई ईंधन नहीं बचा है, वह खुद ही बुझ जाती है,
और सुलगती राख के बारे में लोग
कहते हैं 'वह आग अब बुझ गई है।' [10]

[703] देखो! यहाँ एक दृष्टांत है जो बुद्धिमानों ने
अपने अर्थ को समझाने के लिए सिखाया है।
महान नाग, वे समझ जाएँगे।
नाग ने उस नाग के द्वारा सिखाया:

[704] वासना समाप्त, घृणा समाप्त,
और सुस्ती समाप्त, स्वस्थ और निर्बल,
यह नाग, अपना प्राण त्यागकर,
स्वस्थ और निर्बल होकर 'निकल जाएगा'।

[1] सीसीXXXIII देखें.

[2] प्रामाणिक कथाओं में 'आयस्मा उदयी' का उल्लेख करने वाले अंतिम व्यक्ति का पता लगाना आसान नहीं है। ऐसा व्यक्ति अक्सर विनय में मुसीबत में पड़ते हुए, सूत्रों में बुद्ध और शिष्यों से बातचीत करते हुए दिखाई देता है, लेकिन उसे कभी 'महान' नहीं कहा गया, न ही उसने ऐसा कुछ किया जिससे वह इस उपाधि का हकदार हो। संभवतः वह टीकाकार के समय के आसपास रहता था।

[3] अंग. निक., iii. 345 f. देखें , जहाँ यह कहावत (गाथा) भी दी गई है। ई. हार्डी द्वारा अनुवादित, बुद्ध, 1903, पृ. 51.

[4] धम्म-ई, बोधगम्य वस्तुएँ।

[5] Vanā nib-banam āgataṃ; शब्द-क्रीड़ा को पुन: प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। संकलन देखें, पृष्ठ 168।

[6] नाग, चाहे इसकी वास्तविक व्युत्पत्ति (यहाँ की तरह व्याख्यात्मक नहीं) कुछ भी हो, एक परी, दैत्य या रहस्यमय प्राणी को दर्शाता था। सर्प भारतीयों के लिए उतना ही रहस्यमय था जितना कि क्रेता और यूनानियों के लिए। हाथी भी उतना ही रहस्यमय था। संत भी उतने ही रहस्यमय थे। कोष्ठक में दी गई पंक्ति टीका से ली गई है। देखें सुत्त-निपात, श्लोक 522।

[7] संयम (सोरच्चं टिप्पणी = सीलं) पर, बुद्ध. मनोविज्ञान, पृष्ठ 849 देखें । अन्य दो चरणों को, आंग. निक. में, 'तपस्या' (तपो) और 'पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य)' कहा जाता है।

[8] सती, 'सजगता,' ऊपर, भी सती है ।

[9] शाब्दिक रूप से, 'साँस लेने में आनंद लेना,' एक शब्द जिसका अर्थ आराम भी है - अर्थात्, निब्बाना (टीकाकरण) का ।

[10] निब्बुतो.

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (248) ----->>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
248. अधिमुत्ता
इस बुद्ध युग में थेरा संकिच्चा की बहन के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] उन्होंने अपने चाचा के मार्गदर्शन में संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और नौसिखिए रहते हुए ही अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया। फल के आनंद में लीन होकर, उन्होंने भिक्षुत्व में पूर्ण दीक्षा की इच्छा की और अपनी माता से अनुमति लेने घर गए। जाते समय, उनका सामना कुछ लुटेरों से हुआ जो अपने देवता को भेंट चढ़ाने के लिए घात लगाए बैठे थे, और उन्होंने उन्हें एक उपयुक्त बलि समझकर पकड़ लिया। इस प्रकार हमला होने पर भी वे निडर और भयभीत नहीं हुए। तब लुटेरों का सरदार चकित रह गया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा:

[705] यन्नत्थाऽ वा धनत्थाऽ वा ये हनमा मयाऽ शुद्ध,॥
अवसे तं भयं होति वेधन्ति विलापंती च॥ ॥

[706] तस्स ते नत्थि भित्तत्तो भिय्यो वणो पसीदति,॥
कस्मा न परिदेवसि एवरुपे महभभये॥ ॥

[705] उन सभी लोगों में से जिन्हें हमने, ईश्वर [2] या धन के लिए,
अपने समय में पराजित किया है, उनमें से एक भी ऐसा नहीं रहा
जिसने भय न दिखाया हो, कांप न गया हो और बहुत शोर न मचाया हो।

[706] परन्तु तुम, जो भयभीत नहीं हो, नहीं, जिसका चेहरा
अधिक उज्ज्वल दिखता है, [3] तुम विलाप क्यों नहीं करते?
जब ऐसा भयानक संकट तुम्हें धमकाता है?

अधिमुत्ता:

[707] नत्थि सीतादिकाṃ दुक्खाṃ अनापेक्खस्सा गमानी,॥
अतिक्कंता भया सब्बे खिनसाणयोजनास्सा वो॥ ॥

[708] खिनया भवनेत्तिया दाठे धम्मे यथाथे,॥
न भयं मरणे होति भरणीक्खेपणे यथा.॥ ॥

[709] सुसिनाṃ ब्रह्मकारियाṃ मे मग्गो कैपि सुभावितो,॥
मरणे मे भयं नत्थि रोगाणमिव सोंखये ॥॥ ॥

[710] सुसिनाṃ ब्रह्मकारियाṃ मे मग्गो कैपि सुभावितो,॥
निरासदा भव दिट्ठा विशां पीत्वा चदितां ॥॥ ॥

[711] परागु अनुपादनो काटाकिस्को अनासावो,॥
तूत्थो अयुक्खया होति मुत्तो अघाटना यथा.॥ ॥

[712] उत्तमाṃ धम्मताṃ पत्तो सब्बलोके अनत्थिको,॥
आदित्तव घरा मुत्तो मरणस्मिं न सोचति॥ ॥

[713] यदत्थि सङ्गतं किनसि भावो वा यत्थ लब्भाति,॥
सब्बाṃ अनिसारṃ एताṃ इति वुत्ताṃ महेसिना॥ ॥

[714] यो तं तथा पजानाति यथा बुद्धेन देसितां,॥
न गंहति भवान् किञ्चि सुत्तत्त्व अयोगुडान् ॥ ॥

[715] न मे होति अहोसिंति भविसंति न होति मे,॥
संखारा विगामीसन्ति तथा का परिदेवना॥ ॥

[716] शुद्धाṃ धम्मसमुप्पादां शुद्धाṃ सङ्खरसंततिṃ,॥
पसंतस्स यथाभूतं न भयं होति गमानी॥ ॥

[717] तिनकाṭṭहासमाṃ लोनाṃ यदा पनन्या पस्सति,॥
ममत्तṃ सो असवविंदाṃ 'नत्थी मे' ति न सोकाति ॥ ॥

[718] उक्कण्ठामि [72] सारेरेण भवेणमहि अनत्थिको,॥
सोऽयं भिज्जिस्सति कायो अण्णो च न भविष्यसति॥ ॥

[719] याṃ वो किक्काṃ सारेरेना ताṃ करोथा यदिच्छथा,॥
न मे तप्पक्कया तथा दोसो पेमां च होहिती॥ ॥

[707] हे मुखिया,
जिसे कोई आवश्यकता नहीं है, उसके लिए मन का कोई दुख नहीं है। मैंने सभी भय को
पार कर लिया है, क्योंकि बंधन नष्ट हो गए हैं।

[708] पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाली मृत्यु से, [4] सत्य वैसे ही देखे जाते हैं जैसे वे वास्तव में हैं,
और इसलिए मृत्यु में मेरे लिए कोई भय नहीं है,
यह मेरे द्वारा उठाए गए बोझ को उतारने जैसा है।

[709] मैंने पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) भली-भांति जिया है, और
आर्य मार्ग में भली-भांति प्रगति की है;
मृत्यु से कोई भय नहीं है, जो दुःखों का अंत करती है। [5]

[710] जन्म के रूप आनंद से रहित प्रतीत होते हैं, [6] जैसे कोई जहर पीकर फेंक देता है।

[711] जो व्यक्ति मोहभंग से मुक्त होकर आगे बढ़ चुका है,
जिसका कार्य पूरा हो चुका है, जो स्वस्थ और निर्बल है, वह
जीवन की अवधि समाप्त होने पर प्रसन्न होता है, दुखी नहीं,
जैसे कोई कसाईखाने से बच निकलता है।

[712] जिसने आदर्श भिक्षु का आदेश [7] प्राप्त कर लिया है,
वह समस्त संसार में कुछ भी अपना नहीं चाहता,
जैसे कोई जलते हुए घर से बच निकलता है,
जब मृत्यु निकट आती है तो वह शोक नहीं करता।

[713] जो कुछ भी अस्तित्व में आया है,
और जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म होता है,
उसमें कहीं भी व्यक्तिगत उद्देश्य नहीं है: - [8] इस प्रकार महान ऋषि ने हमें बताया है।

[714] और जो जानता है कि चीजें ऐसी ही हैं,
जैसा कि बुद्ध द्वारा सिखाया गया है,
वह किसी भी प्रकार के जन्म को नहीं पकड़ेगा,
जैसे वह लाल गर्म लोहे की गेंद को नहीं पकड़ेगा।

[715] मेरे मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं यही रहा हूँ,'
न ही यह विचार आता है: 'मैं आगे क्या बनूँगा?'
विचार, कर्म और शब्द कोई स्थायी [स्वयं] नहीं हैं,
इसलिए यहाँ विलाप करने का क्या आधार है? [9]

[716] जो देखता है, जैसा कि वास्तव में है, चीजों का
शुद्ध और सरल [10]
कारणिक उदय, हमारे कार्यों का शुद्ध और सरल क्रम: -
ऐसे व्यक्ति को कोई भय नहीं आ सकता, हे मुखिया।

[717] यह सारा संसार जंगल की घास
और झाड़ियों की तरह है [किसी की संपत्ति नहीं] जब कोई
बुद्धि से इसे देखता है, तो उसे कुछ भी 'मेरा' नहीं मिलता,
यह सोचकर: 'यह मेरे लिए नहीं है,' वह शोक नहीं करता। [11]

[718] यह शरीर मुझे परेशान करता है; मैं
जीने का कोई साधक नहीं हूँ। यह नश्वर शरीर टूट जाएगा,
और इससे कभी दूसरा जन्म नहीं होगा।

[719] मेरे शरीर के साथ तुम्हारा जो भी काम हो, आओ, जो
चाहो करो; और इस कारण
मुझमें न तो घृणा उत्पन्न होगी और न ही स्नेह।

[720] तस्स ताṃ वचनाṃ सुत्वा अब्भुताṃ लोमहाअसंनाṃ,॥
सत्तानि निक्खिपित्वाना मनावा एतदब्रवुऽ॥ ॥

[721] किय भद्दन्ते1 करित्वाना को वा अकारियो तव,॥
कस्सा सासनमागम्मा लब्भफता तां असोकता॥ ॥

[720] युवक उसके शब्दों पर चकित हुए, और
विस्मय से भर उठे, उन्होंने अपने चाकू फेंक दिए और कहा:

[721] आपके आदरणीय अभ्यास क्या हैं, [12] या
आपका शिक्षक कौन है? आप किसके अध्यादेश के
सदस्य हैं, जिससे आपको यह शोकहीनता प्राप्त हुई है?

अधिमुत्ता:

[722] सब्बान्नु सब्बदस्सावी जिनो अकारियो मामा,॥
महाकारुणिको सत्था सब्बलोकाटिकिचको ॥॥

[723] तेनाये देसितो धम्मो खायगामी अनुत्तरो,॥
कस्सा सासनमागम्मा लब्भतो तां असोकता॥॥

[722] मेरे गुरु सर्वज्ञ
और सर्वदर्शी विजेता हैं, असीम दया वाले भगवान (बुद्ध)
, समस्त संसार के चिकित्सक, वे हैं।

[723] और वही हैं जिनके द्वारा ये सत्य सिखाए जाते हैं,
निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग (धम्म) अतुलनीय है।
उनके शासन में ही मैंने यह दुःखहीनता प्राप्त की है।

[724] सुत्वना कोरा इसिनो सुभासीतां,॥
निक्खिप्प सत्थानि च अवुधानि च॥
तम्हा च कम्मा विरामीसु एके॥
एके पब्बज्जा मरोकायिउसु.।॥

[725] ते पब्बजित्वा सुगतस्सा ससाने॥
भवेत्वा बोजझांगबलानी पंडिता॥
उदग्गचित्त सुमना कटिन्द्रिया॥
फ़ुसींसु निब्बानपदां असोन्खतन' ति.॥॥

[724] अब जब लुटेरों ने ऋषि के सुविचारित वचन सुने,
तो उन्होंने अपने चाकू, अपने हथियार रख दिए, और कुछ ने वह धंधा छोड़ दिया,
और कुछ ने प्रार्थना की कि वे संसार (भिक्षुत्व) को छोड़कर पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) अपना लें।

[725] इस प्रकार वे बुद्ध के स्वागत नियम [13] के भीतर विख्यात हो गए,
सात कारकों का अभ्यास करते हुए और पाँच शक्तियों के लिए कड़ी मेहनत करते हुए,
शक्तियों में प्रशिक्षित होकर, प्रसन्न हृदय से वे लक्ष्य तक पहुँच गए।

[1] सीसीएक्सएल देखें.

[2] शाब्दिक रूप से, 'बलिदान के लिए।'

[3] अधिमुत्ता एक युवा नवोदित था।

[4] भवनेति - अर्थात, तन्हा।

[5] शाब्दिक रूप से, रोग। तुलना करें टेनीसन की एलेन:

और मृत्यु मधुर है, क्योंकि यह पीड़ा का अंत कर देती है।

[6] डॉ. न्यूमैन द्वारा दिया गया यह कथन कि 'जीवन जीने लायक नहीं है' मुझे बौद्ध धर्म के अनुरूप प्रतीत नहीं होता। जीवन से अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया जा सकता है - जो सर्वोच्च मूल्यवान वस्तु है, समस्त पूर्व प्रयासों का शिखर है। 'पुनर्जन्म असंतोषजनक हैं'; निरस्सादा भाव पाठ का शाब्दिक अनुवाद है। बौद्ध दृष्टिकोण को समझने के लिए हमें अपनी रूढ़ियों को त्यागना होगा।

[7] धम्मतṃ उत्तमṃ - अर्थात्, 'मार्ग (धम्म) का स्वरूप; पूर्ण अरहंतत्व में, और उसके कारण' (टीकाकरण)।

[8] ना-इस्सारा - शाब्दिक रूप से, जिसका कोई स्वामी या शासक नहीं है; इस्सारा का प्रयोग व्यक्तिगत निर्माता के लिए किया जाता है।

[9] शाब्दिक रूप से, 'गुज़र जाएगा।' 'स्वयं' टिप्पणी से लिया गया है।

[10] शुद्ध, शुद्ध, अमिश्रित - अर्थात, आटा के साथ ; केवल अभूतपूर्व प्रक्रिया: धम्ममत्तप्पवत्ती (टिप्पणी)।

[11] = सुत्त-निपात, श्लोक 951।

[12] तपस: धार्मिक तपस्या या जादू (टीकाकरण)।

[13] शाब्दिक रूप से, स्वागत (सु-गत) का नियम, यह उपाधि अक्सर बुद्ध के लिए प्रयोग की जाती है। कारकों, बलों और शक्तियों के लिए, संकलन, पृष्ठ 180 देखें, जिन्हें क्रमशः कारक, शक्तियाँ और क्षमताएँ कहा गया है। 'लक्ष्य तक पहुँचे' - शाब्दिक रूप से, 'निर्वाण की अवस्था, यानी निर्गुण अवस्था को स्पर्श (प्राप्त) किया।' टीका में आगे कहा गया है कि युवा संत अविचलित होकर अपने मार्ग पर चले, भिक्षु संघ में प्रवेश करने के लिए अपनी माता की सहमति प्राप्त की और अपने चाचा द्वारा भिक्षु दीक्षा प्राप्त की। श्लोक 722 पर धम्मपाल इति-वुत्तक पर अपनी ही टीका का उल्लेख करते हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(249):परापरिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (249) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
249. परापरिया
बुद्ध युग में सावत्थी में एक अत्यंत प्रतिष्ठित ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वयस्क होने पर उन्हें उनके पारिवारिक नाम परापरा के नाम पर 'परापरिया' (पारा-परिते) कहा गया । [1] ब्राह्मण (पुजारी) ज्ञान और उपलब्धियों में सुशिक्षित होकर, वे एक दिन भगवान (बुद्ध) के उपदेश के समय जेतवन विहार (मठ) में गए और सभा के किनारे पर बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उनके चरित्र का ध्यान करते हुए, [295] उन्हें 'इंद्रियों का अभ्यास' नामक सूत्र का उपदेश दिया, [2] जिस पर परापरिया ने विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। सूत्र को कंठस्थ करने के बाद, उन्होंने उसके अर्थ पर विचार किया और सोचा: 'श्लोकों में इसका अर्थ इस प्रकार प्रकट होगा।' इस प्रकार इंद्रिय-बोध के विषय पर चिंतन करते हुए उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और समय आने पर अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। बाद में उन्होंने अपने विचारों को काव्य में इस प्रकार व्यक्त किया:

[726] समांस्सा अहु चिंता पारासरियस्सा भिक्खुनो,॥
एककस्सा निसिनस्सा पविवित्तस्सा झायिनो॥ ॥

[727] किमानुपुब्बाṃ पुरिसो किṃ वाताṃ किṃ समाकाराṃ,॥
अट्टानो किक्काकिरिसा न च किंची विहेथये.॥ ॥

[728] इन्द्रियाणि मनुस्सानां हिताय हिताय च,॥
अरक्खितानि हिताय रक्खितानि हिताय च॥ ॥

[729] इन्द्रियानेवं सरक्खाँ इन्द्रियाणि च गोपायं,॥
अत्तानो किक्काकारिसुसा न च नकिनचि विहेथये.॥ ॥

[730] चक्कुंद्रियै सी रूपेसु गच्चन्तं अनिवारयं,॥
अनादीनवादसवि सो दुक्खा न हि मुक्कति॥ ॥

[731] सोतिन्द्रियाŋ सीई1 सद्देसु गच्चन्तं अनिवारयं,॥
अनादीनवादसवि सो मुखा न हि मुक्कति॥ ॥

[732] अनिसारनदासवि [73] गंधे सी पतिसेवती,॥
न सो मुच्चति दुक्खम्हा गंधेसु अधिमुच्चितो॥ ॥

[733] अंबिलाŋ मधुरग्गाŋ सीए टिट्टाकग्गामानुस्साराŋ,॥
रसतन्हाय गधीतो हदयं नवबुज्जति ॥ ॥

[734] सुभन्याप्पिकुलानि फोहब्बानि अनुस्सारŋ,॥
रत्तो रागाधिकारं विविधं विन्दते दुःखं॥ ॥

[735] मनŋ सेतेहि धम्मेहि यो न सक्कोति रक्खितुŋ,॥
ततो नां दुक्खमन्वेति सब्बहेतेहि पञ्चहि ॥ ॥

[736] पुब्बालोहितासंपुणं बाहुस्सा कुणपासा सीए,॥
नरवीरकातं वाग्गुŋ समुग्गमिव चित्तितां॥ ॥

[737] कौउकाŋ मधुरस्सदाŋ पियानिबंधनाŋ दुक्खाŋ,॥
खुराँव मधुना लित्तौ उलिहाँ नावबुज्जति ॥ ॥

[738] इथिरूपे इथिसारे फोथब्बे'पि इत्थिया,॥
इत्थिगन्धेसु शरत्तो विविधै विन्दते दुःखः॥ ॥

[739] इत्थिसोटानि सब्बानि संदन्ति पंच पंचसु,॥
तेसामावरणं कटुऽ सो सक्कोटि वीर्यवा॥ ॥

[740] सो अथवा सो धम्मथो सो दुक्खो सो विकक्खणो,॥
करेय राममानो पि किच्चं धम्मत्थसंहितां॥ ॥

[741] अथो सिदति संनुत्तŋ माज्जे किक्काŋ निरथकाŋ,॥
न तां किच्चन्ति मन्नित्वा अप्पमत्तो विकक्खणो॥ ॥

[742] याŋ च अत्थेना संनुन्तं या च धम्मगता रति,॥
तां समादाय वत्तेथा सा हि उत्तम रति॥ ॥

[743] उच्चावसेहुपायेहि॥
परेसमाभिजिगीसति,॥
हन्त्वा वधित्वा अथ समाजयित्वा,॥
आलोपति सहसा यो परेसां॥ ॥

[744] तच्चन्तो अनिया अनिअ निहंति बलवा यथा,॥
इंद्रियानिन्द्रयेहेव निहन्ति कुसालो तथा॥ ॥

[745] सद्धां वीर्यं समाधिं च सतिं पन्नञ्च1 भावयं,॥

पञ्च पञ्चहि हन्त्वाना अनिघो याति ब्राह्मणो॥ ॥

[746] सो अत्तवा सो धम्मथो कत्वा वाक्यानुसानिः,॥
सब्बेना सब्बाṃ बुद्धस्स सो नरो सुखमेधति' ती॥ ॥

[726] ये प्रेरणाएँ एक भिक्षु को प्राप्त हुईं,
उस भिक्षु पारापरिया को, जब वह एकांत में,
संसार से विरक्त होकर ध्यान कर रहा था:

[727] ऐसा क्या नियम या व्यवस्था है,
ऐसा क्या रीति-रिवाज या आचरण है,
जिससे मनुष्य
वह कार्य पूरा कर सके जो उसे स्वयं करना है,
और किसी अन्य को हानि न पहुँचाए?

[728] देखो! मनुष्य के अंग और शक्तियाँ
कल्याण और बुराई दोनों के लिए होती हैं:
असुरक्षित शक्तियाँ बुराई की ओर ले जाती हैं,
संरक्षित शक्तियाँ कल्याण की ओर ले जाती हैं।

[729] जो अपने अंगों और शक्तियों की रक्षा करता है,
जो अपने अंगों और शक्तियों का ध्यान रखता है,
वह अपने कर्तव्य का पालन करे,
और किसी अन्य को हानि न पहुँचाए।

[730] यदि वह
इंद्रिय-विषयों के बीच दृष्टि की अनियंत्रित शक्ति के साथ जाए, तो वह सभी बुराईयों को कभी न पहचानते हुए भी
दुःख से नहीं बच पाएगा। [3]

[731] यदि वह
अपने आस-पास की आवाज़ों को सुनने की अनियंत्रित शक्ति के साथ जाता है, तो
वह सभी बुराई को कभी नहीं पहचानता,
वह दुख से नहीं बच पाता।

[732] यदि वह अनेक प्रकार की गंधों में
लिप्त होकर, भोग-विलास में डूबा रहे,
शरण का मार्ग कभी न पहचानते हुए, [4] वह दुःख से नहीं बच पाया।

[733] खट्टे, मीठे और कड़वे स्वाद का
आनंद लेते हुए और उस पर विचार करते हुए,
स्वाद की इच्छाओं से चिपके हुए:
उसका दिल कभी जागृत नहीं होगा।

[734] सुंदर, संपर्क की लुभावनी चीजें,
छूना, महसूस करना, विचार करना,
कामुकता को उत्तेजित करना, वह भावुक होकर
दुख के कई रूप पाता है।

[735] हाँ, जो इन इंद्रिय-अनुभूतियों में
मन [प्राप्तकर्ता] की रक्षा नहीं कर सकता,
दु:ख उसका पीछा करेगा,
यहाँ तक कि सभी पाँचों इंद्रियों के माध्यम से भी।

[736] शरीर रक्त और पदार्थ से भरा हुआ है
और कई अन्य घिनौनी चीजों से भी,
इसलिए मानवीय कौशल और बुद्धि से इसे
चित्रित ताबूत की तरह सुंदर बना दिया गया है,

[737] इससे होने वाली कड़वी पीड़ा
मीठी संतुष्टि के रूप में प्रकट होती है,
जो हमारे प्रिय से बंधी होती है, जैसे शहद की मोटी परत के नीचे
छिपा हुआ एक तेज धार वाला ब्लेड , [297] जिसे लालची लोग नहीं पहचान पाते। [5]

[738] जो स्त्री के रूप,
स्त्री के स्वाद, स्पर्श और सुगंध पर मोहित होता है,
उसे दु:ख के अनेक रूप मिलते हैं।

[739] स्त्री से निकलने वाली हर चीज [6] [पुरुषों की सभी इंद्रियों में व्याप्त होकर,] -
इस और उस पुरुष के पाँच द्वार [खुल जाते हैं,] -
इन सबके विरुद्ध अवरोध बनाने के लिए
यदि किसी पुरुष में साहस और वीरता हो,

[740] वह बुद्धिमान और धर्मी है,
वह चतुर और दूरदर्शी है;
क्योंकि वह आराम से और प्रसन्न होकर,
अपने आप को धार्मिक कर्तव्यों में लगा सकता है।

[741] जब सांसारिक लाभ में लीन हो, [7] यदि वह व्यर्थ उपक्रमों से परहेज करे,
यदि वह उनसे परहेज करना उचित समझे, तो
वह गंभीर और दूरदर्शी होता है।

[742] क्या यह अच्छे संबंध वाला काम है,
क्या उसका प्रेम आदर्श पर टिका है, [8] उसे काम लेने दो और उसे करने दो;
अन्य प्रेम उस प्रेम से बढ़कर हैं।

[743] अनेक, अनेक प्रकार के तरीके
जिनसे मनुष्य अपने साथियों को धोखा देता है;
हमला करके, हत्या करके, बहुत कष्ट देकर
वह हिंसा से अत्याचार करता है। [9]

[744] जैसे लकड़ी का काम करने वाला एक बलवान व्यक्ति,
कील निकालने के लिए कील का उपयोग करता है, [298] वैसे ही बुद्धिमान और गुणी भिक्षु
एक शक्ति का उपयोग दूसरों को प्रहार करने के लिए करते हैं: -

[745] विश्वास और प्रयास, एकाग्रता,
सजगता और बुद्धि का प्रयोग,

पाँच को दूसरे पाँच से दूर करते हुए,
संत दोषों से मुक्त हो जाता है। [10]

[746] वह बुद्धिमान और धर्मात्मा है;
उसने बुद्ध द्वारा घोषित नियम का
पूर्णतः पालन किया है।
वह सुखी है, उसने समृद्धि प्राप्त की।

[1] संभवतः राजगृह पारापरों के सोलहवें अध्याय के पारापरिया से संबंधित है, लेकिन उससे बिल्कुल अलग नहीं है। यह पारापरिया सोलहवें अध्याय का है।

[2] इस शीर्षक (इन्द्रिय-भावन) से मुझे जो एकमात्र सूत्र मिला है, वह मज्झिमा निकाय का अंतिम सूत्र है । इसमें ब्राह्मण (पुजारी) शिक्षक पारसरिया द्वारा प्रयुक्त विधियों का उल्लेख है, और फिर 'आर्यन विनय' में सिखाई गई 'संपन्नता-प्रशिक्षण' विधि का वर्णन है, जिसमें बुद्ध (सावत्थी नहीं, कजंगला में) बोल रहे हैं, और वार्ताकार ब्राह्मण के शिष्य उत्तरा और आनंद हैं। विषय की समानता ही सूत्र और कविता को जोड़ती है। विवेचन में कोई समानता नहीं है, और दो समस्याएं उत्पन्न होती हैं: (1) क्या पारपरिया किसी अन्य संस्करण का पुनर्कथन कर रहे थे? (2) क्या पारपरिया स्वयं पारसरिया थे?

[3] टिप्पणी ना ही मुक्काती पाठ का समर्थन करती है, जिसे न्यूमैन द्वारा संशोधित किया गया है।

[4] डॉ. न्यूमैन की 'उंड निष्ट डाई फ्री होहे सीहट' शायद अनावश्यक रूप से मुक्त है, और सुगंधित गंधों के लिए शायद ही कोई अच्छा विपरीतार्थक शब्द है, जैसा कि कोई भी जानता है जिसने जून में फूलों से ढके ऊंचे इलाकों की गंध के लिए एक बदबूदार अल्पाइन गांव छोड़ दिया है।

[5] 'जैसे मीठी चीजों का लालची व्यक्ति किसी तेज धार वाले चाकू की धार को चाटता है' (टिप्पणी)।

[6] शाब्दिक रूप से, धाराएँ - अर्थात्, उसका दृश्य आकार, आदि, इंद्रियों की वस्तुएँ (टिप्पणी)। पाली, न्यूमैन जर्मन संस्करण की तुलना में अधिक परिष्कृत है, और बदनाम ठोस 'वीब' को फिर से घसीटना - 'Wo nieder man zum Weibe sinkt' - पाली द्वारा पूरी तरह से अनुचित है।

[7] टीका atho (in exegesis tato) sīdati saññutaŋ का समर्थन करती है। 'यदि वह सांसारिक प्रकार की भलाई को पकड़ लेता है।'

[8] धम्मगता रति - शाब्दिक रूप से, पथ (धम्म) पर स्थापित।

[9] अनुवाद में छोड़े गए अनावश्यक पद पाली में आ गए हैं।

[10] यहाँ भी जर्मन अनुवाद मुख्य बिंदु को समझने में चूक गया है। पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से संतुष्टि को पाँच प्रकार की आध्यात्मिक इंद्रियों, इंद्रिय शक्तियों या क्षमताओं द्वारा आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा दूर किया जाना चाहिए। देखें XV, n. 2, और संकलन, पृष्ठ 180। तुलना करें ऊपर, श्लोक 725, n. यहाँ आणि (नेल) और अनिघो (दोषरहित) शब्दों का खेल है, जिसका अंग्रेजी में अनुवाद संभव नहीं है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(250):तेलकानि

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (250) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.

बीस श्लोक

250. तेलकानी

बुद्ध युग में, भगवान बुद्ध के जन्म से पहले, उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में हुआ और उनका नाम तेलकानि रखा गया। परिपक्व पूर्वजों के कारण, वे सांसारिक इच्छाओं से ऊब गए और संसार छोड़कर एक संन्यासी के रूप में विचरण करने लगे। आत्मा की मुक्ति (निर्वाण) की खोज में वे भ्रमण करते रहे और सोचते रहे, 'संसार में वह कौन है जो निर्वाण से परे पहुँच गया है?' और संन्यासियों और ब्राह्मणों (पुजारियों) से प्रश्न पूछते रहे, लेकिन उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। इसी बीच, हमारे परम पूज्य (बुद्ध) का उदय हुआ और वे धम्म-चक्र घुमाते हुए संसार के कल्याण के कार्य में लगे हुए थे। एक दिन तेलकानि ने यह सुना और विश्वास से भर गए, भिक्षुओं के मार्ग में दीक्षित हुए और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया।

एक दिन भिक्षुओं के साथ बैठे हुए, अपने परिश्रम और विजय को याद करते हुए, उन्होंने उन सभी को इस प्रकार बताया:

[747] सिरारट्टे मतातापि धम्मं अनुविचिन्तायं,॥
समं चित्तस नालत्थं पुच्चं समणब्राह्मणे॥ ॥

[748] को [74] सो पारंगतो लोके को पत्तो अमातोगधाṃ,॥
कस्सा धम्मं पतिच्छामि परमत्थविजाननं॥ ॥

[749] अंतोवांकागाटो असी माचोवा घसामामिसाṃ,॥
बद्धो3 महिन्दपसेन वेपचित्तसूरो यथा.॥ ॥

[750] अंचामि नां न मुनचामि अस्मा सोकापरिद्दव,॥
Ko me बन्धṃ मुनकाṃ लोके संबोधि वेदयिस्सति.॥ ॥

[751] समानं ब्राह्मणं वा कां आदिसंतं पभौगुणा,॥
कस्सा धम्मं पतिच्चामि जरामक्कुवाहनं॥ ॥

[752] विकिसिच्चाकांकखगाथितां सरंभबालासंनुतां,॥
कोधप्पत्तमनत्तद्धधं अभिजप्पपदारणं॥ ॥

[753] ताङ्हाधनुसामुत्थानं द्वे च पन्नरसयुताऽ,॥
पस्सा ओरासिकां बधां भेत्वा यदि तिथति.॥ ॥

[754] अनुडिथिनाṃ अप्पाहानाṃ संकप्पापरातेजिताṃ,॥
तेन विद्धो पवेधामि पत्तौऽव मालुतेरिताऽ॥ ॥

[755] अज्झट्टṃ मे समुथथया खिप्पाṃ पच्चति मामकाṃ,॥
चफस्सयतानि कायो यथा सारति सब्द॥ ॥

[756] तां न पासामि तेकिचाṃ यो मेटां सल्लामुद्धारे,॥
नानारज्जेण सत्थेन नान्नेण विकिचिचितां॥ ॥

[757] को मे असत्थो अवणो सल्लमभनतारपासयṃ,॥
अहिंसा सब्बगत्तना सल्लं मे उद्धरिससतं॥ ॥

[758] धम्मप्पति हि सो सेठो विसदोसप्पवहाको,॥
गम्भिफरा पतितस्स मे थलं पणिनि च दस्सये॥ ॥

[759] रहादेऽहमस्मि ओगाधो अहरियाराजमत्तिके,॥

मयासुयसारंभ थिनामिद्धमपत्थते.॥ ॥

[760] उधक्कमेघथानिताṃ संनोजनावलाहाकाṃ,॥
वाहा वहन्ति दुद्दिथिं संकप्पा रागनिसिता॥ ॥

[761] सवंति सब्बाधि सोता लता उब्भिज्ज तिथति,॥
ते सोते को निवारेया तां लतां को ही चेकति॥ ॥

[762] वेलैं करोथा भद्दंते सोतानां सन्निवारनं,॥
मा ते मनोमायो सोतो रुक्खाव सहसा लवे॥ ॥

[763] एवं मे भयजातस्स अपरा परमेसतो,॥
ताणो पणनावुधो सत्था इसिसाघनिसेवितो॥ ॥

[764] सोपाणं सुकतं शुद्धं धम्मसारमयं दड़ं,॥
पदासि वुयहमानस्सा 'मा भयि' ति च अब्रावी॥ ॥

[765] सतिपठनपासादौ अरुयहा पक्कवेक्खिसाṃ,॥
यं तां पुब्बे अमानिसिसां सक्कयाभिरतं पजं॥ ॥

[766] यदा च मग्गमद्दक्खिं नवाय अभिरूहणं,॥
अनादिथया अत्तनं तित्थमद्दक्खिमुत्तमं ॥॥ ॥

[767] सल्लाṃ अत्तसमुङ्घनṃ भवनेत्तिपभावितṃ,॥
एतेसाऽ अप्पवत्तया देसेसि मग्गामुत्तम ॥॥ ॥

[768] दीघारत्तनुसायितं चिररतमधिऽहिताऽ,॥
बुद्धो मे पाणुदि गंथां विसदोसप्पवाहणो ति.॥ ॥

[747] ओह, मैं कितने लंबे दिनों तक विचारों में डूबा रहा,
सत्य की खोज में व्याकुल रहा [जो मुझे मुक्त कर सके]! [1] मुझे मन की शांति नहीं मिली, [बल्कि मैं इधर-उधर भटकता रहा,] ब्राह्मण (पुजारी) और संन्यासी से पूछता रहा:

[748] [299] 'संसार में कौन सा मनुष्य इससे आगे बढ़ पाया है?
किसने अमृत में पैर जमाया है? [2] मैं किसका सिद्धांत अपने हृदय में धारण कर सकता हूँ,
जिससे सर्वोच्च [3] को मैं जान सकूँ?'

[749] भीतर ही भीतर एक कांटे में फँसकर, मेरी आत्मा लटकी हुई थी,
ठीक वैसे ही जैसे कोई मछली चारा निगलती है।
मैं फँसा हुआ पड़ा था, जैसे कभी वेपचित्ति (राक्षस राजा),
असुर (राक्षस), शक्तिशाली इंद्र के चंगुल में। [4]

[750] मैं अपनी बेड़ियों को घसीटता रहा,
इस [अंतहीन दुख और पीड़ा के स्रोत] से मुक्ति नहीं पा सका।
क्या पृथ्वी पर कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो मेरे बंधनों को खोल सके
और मुझे ज्ञान प्रदान कर सके?

[751] कौन सा ब्राह्मण (पुजारी), कौन सा संन्यासी मुझे बता सकता है कि

मैं उन्हें कैसे दूर करूँ? मैं किसका मार्ग (धम्म) अपना सकता हूँ,
जो वृद्धावस्था और मृत्यु को दूर कर सके?

[752] इस बोझ को देखो! उलझन और संदेह का कुंडल
, इसकी घातक शक्ति
स्वभाव को कमजोर कर रही है, मन को कठोर बना रही है,
और एक विशाल इच्छा से चीर रही है।

[753] लालसा के धनुष से गिरा हुआ उपशाखा,
[झूठे मत के रूपों के कारण,] पंद्रह दो बार [5] -
देखो, मैं कहता हूँ, यह दबाव मेरे सीने को कितनी ज़ोर से
कुचल रहा है जहाँ यह स्थित है! [6]

[754] व्यर्थ विचारों का शोर [7] दूर नहीं हुआ [300] बल्कि गहरी आशाओं और यादों से प्रेरित होकर: [8] इस स्तब्ध से मैं इधर-उधर लड़खड़ाता हूँ,
और हवा से उड़ते पत्ते की तरह कांपता हूँ।

[755] यह मेरे भीतर से ही है जिसने बाण छोड़ा है, [9] जहाँ से मेरा यह स्व तेज़ी से भस्म हो जाता है, [10] यहाँ तक कि यह शरीर भी अपने छह गुना
संपर्क क्षेत्र के साथ, जहाँ यह हमेशा आगे बढ़ता रहा।

[756] मैं उसे नहीं देखता, वह कुशल सर्जन, जो
डार्ट निकाल सकता है और
सूक्ष्म जांच से मुझे मेरे संदेह से मुक्त कर सकता है, न कि किसी अन्य चाकू से। [11]

[757] क्या कोई बिना चाकू या घाव के,
मेरे सभी अंगों को बिना नुकसान पहुंचाए,
मेरे दिल में फंसे इस बाण को निकाल सकता है?

[758] धम्म (मार्ग) के स्वामी, वह सर्वश्रेष्ठ,
जो विष के बुखार-हानि को दूर कर सकते हैं,
जो, यदि मैं गहरे में गिर जाऊं, तो
हाथ दिखा सकते हैं और [12] बता सकते हैं कि उथले पानी कहाँ से ज़मीन की ओर ढलान बनाते हैं।

[759] हाँ, मैं एक तालाब में डूबा हुआ हूँ,
धूल और कीचड़ का एक गड्ढा जो कभी खाली नहीं होता,
कपटपूर्ण नकलीपन से चौड़ा फैला हुआ है,
ईर्ष्या और अतितनाव, [13] सुस्ती और आलस्य।

[760] [301] विचारों की गड़गड़ाहट ने मेरा ध्यान भटका दिया,
और बेड़ियों ने मेरे रास्ते को घेर लिया: -
वासना से उपजी आवेग और इरादे की बाढ़ ने
मुझे वहाँ बहा दिया - एक संशयवादी के विनाश की ओर। [14]

[761] और हर जगह धाराएँ बह रही हैं,
और लताएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं -
वे धाराएँ जिनकी शक्ति उन्हें रोक सकती है?
वह लता जो अपनी जड़ से अलग हो सकती है? [15]

[762] आप [16] एक बांध बना लें, भले आदमी, धाराओं को बांधने के लिए;
ध्यान रहे कि मन की प्रबल धारा
आपको किसी लट्ठे की तरह बेरहमी से यहाँ से न फेंक दे!

[763] मेरे लिए भी ऐसा ही था, जो भय से
इस ओर दूर तट की ओर खोज रहा था, जब वह,
भगवान (बुद्ध), अपने संत अनुयायियों के साथ चल रहे थे,

[764] वह सच्चा शरणदाता, और अंतर्दृष्टि से सुसज्जित,
मुझे एक सीढ़ी दी, जो दृढ़ता से बनी थी,
और दृढ़ थी, जो धम्म के शुद्ध हृदय से बनी थी, [17] और मुझसे परिश्रम करते हुए कहा: 'डरो मत!'

[765]
मैं छत पर चढ़ गया जहाँ सचेत और सतर्क मन स्वयं को लगाता है, [18] वहाँ से मैं मनुष्यों के पुत्रों का चिंतन कर सकता था,
'मैं' और 'मेरा' की भावना में आनंदित होते हुए, [19] जिसमें मैं कभी अभिमान पालता था।

[766] और जब मैंने मार्ग देखा, यहाँ तक कि वह जहाज़ भी
जिस पर सवार होना था, और स्वयं पर जीना छोड़ दिया,
तब मैंने निर्वाण का किनारा देखा। [20]

[767] [302] स्वयं से निकला तीर, उसकी शाखा
जो बनने की ओर ले जाती है [21] - वह सब रोकने के लिए जो
उसने सिखाया था।

[768] मेरे जीवन में लंबे समय से दबे हुए गांठदार बंधन, जो
इतने वर्षों से मेरे चारों ओर जमे हुए थे,
बुद्ध ने उन्हें मुझसे मुक्त कर फेंक दिया,
और हर विषैले नासूर को साफ कर दिया।

[1] अतः टीका, vimuttidhammaŋ, vimokkhadhammo.

[2] 'इस संसार में, जो लोग धार्मिक शिक्षक माने जाते हैं, उनमें से कौन संसार (अर्थात लगातार जीवन और मृत्यु) से परे निर्वाण तक पहुँच गया है ? कौन निर्वाण में, मुक्ति के मार्ग पर स्थापित है?' (टीका)।

[3] परमत्थ, सर्वोच्च अच्छाई, या अर्थ।

[4] देखें Saŋy. Nik., i. 220, Ī 4.

[5] टीका के अनुसार, 'दो बार पंद्रह' से तात्पर्य सक्कायादिट्ठी के बीस रूपों (6 x 4) से है, या शरीर-स्व-दृष्टि (ध. एस., Ī 1003 = बुड. साइ., पृ. 259), और मिच्छदिट्ठी के दस रूपों (विभंग, पृ. 392) से है।

[6] मैंने टीका bāḷhaŋ और tiṭṭhati के साथ पढ़ा।

[7] अनुडिथिनाŋ शब्द की व्याख्या अनुडिथिना... सस्सातादिहि आदिनाŋ से की गई है ।

[8] टीका में लिखा है sankappa-paratejitaŋ ... micchāvitakkena parajane ... ussāhitaŋ. दूसरा पाठ, sankappasara-tejitaŋ, अधिक बोधगम्य और कम अटपटा लगता है। sarasankappā (Majjh. Nik., i. 458; Saŋy. Nik., iv. 76) में इसका लगभग समान उदाहरण मिलता है। शाब्दिक रूप से, 'टालना नहीं' का अर्थ है 'तेज करना'।

[9] टीका में घाव के स्वयं द्वारा पहुँचाए जाने पर जोर दिया गया है, जो मसीह के शब्दों की शैली में है: '... वे चीजें जो ... हृदय से निकलती हैं; ... वे मनुष्य को अपवित्र करती हैं' (मत्ती 15:18)।

[10] ममकारु = मम संतक: अत्तभाव:।

[11] 'संदेह,' 'बाण' के रूप में, यहाँ किलेसों (शाब्दिक रूप से, पीड़ा, घाव; cf. बुड. साइ., 327, n.) के पूरे समूह का प्रतीक कहा गया है। जांच, नानाराज्जा, को एसानी-सलाका द्वारा व्याख्यायित किया गया है । अहिंसा = अबाधेन्तो।

[12] टीका में pāṇiñ ca लिखा है ।

[13] सारंभ (cf. श्लोक 752) की व्याख्या करकुट्टारिया-लक्खाणो द्वारा की गई है।

[14] टीका vāhā vahanti की व्याख्या 'मुझे विनाश के सागर में ले जाने वाले विशाल जल का प्रवाह' के रूप में करती है। तुलना करें जात., खंड 888 f.; धम्प., खंड 339 f.

[15] ये 'लालसा' (तन्हा) के लिए मानक उपमाएँ हैं। श्लोक 1094 देखें ।

[16] करोथा का अर्थ है 'तुम्हें बनाना', लेकिन इस विभक्ति का सामना एकवचन अर्थ में होता है, जैसा कि संदर्भ की मांग होती है।

[17] शाब्दिक रूप से, 'धर्म (मार्ग) के सार से बना।'

[18] सतिपठन-पासादौ।

[19] सक्कया, अहं ममति के रूप में अनुवादित ।

[20] तित्थाम् उत्तमम् - शाब्दिक रूप से, सर्वश्रेष्ठ या सर्वोच्च तट - 'निर्वाण नामक अमृतमय महान-परलोक के उतरने का स्थान' द्वारा व्याख्या की गई।

[21] तन्हा. पृष्ठ 292, नोट 1 देखें. पभावित = समुत्तित (टीका)।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(251):रत्थपाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (251) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
251. रट्ठपाल
उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में कुरु देश के थुल्लकोट्ठिका नगर में हुआ, जहाँ वे रट्ठपाल नामक एक पार्षद के पुत्र थे। [1] उनका नाम उनके परिवार के नाम पर ही रखा गया। एक बड़े दरबार में पले-बढ़े, किशोरावस्था में ही उनका विवाह एक योग्य पत्नी से हुआ और उन्होंने देवताओं के समान समृद्धि का आनंद लिया। अब, कुरु देश में भ्रमण करते हुए, भगवान (बुद्ध) थुल्लकोट्ठिका आए और रट्ठपाल उनका प्रवचन सुनने गए। श्रद्धा प्राप्त करके, उन्होंने बड़ी कठिनाई से अपने माता-पिता से संसार त्यागने की अनुमति प्राप्त की।

भगवान (बुद्ध) के पास जाकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) के आदेश पर एक भिक्षु से भिक्षु दीक्षा प्राप्त की और लगन से अध्ययन करके अंतर्दृष्टि विकसित की और अर्हंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद उन्हें अपने माता-पिता से मिलने की अनुमति मिल गई और वे भिक्षा मांगने के लिए घर-घर घूमते हुए थुलकोट्थिका चले गए। अपने पिता के घर उन्हें बासी दलिया मिला, लेकिन उन्होंने उसे अमृत के समान खाया। अगले दिन अपने पिता के निमंत्रण पर वे अपने घर गए। जब सुंदर वस्त्र पहने महिलाओं ने उनसे पूछा, 'हे स्वामी, अप्सराएँ कैसी होती हैं? आप किसके लिए ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं?' तो उन्होंने अनित्यता आदि से संबंधित धर्म का उपदेश दिया और उनके दुष्प्रचारपूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर दिया।

[769] पासा चित्तकाटाṃ बिंबाṃ अरुकायाṃ समुसिताṃ,॥
आतुरं बहुसंकप्पां यस्सा नत्थि धुवं तिथि.॥ ॥

[770] पासा चित्तका रूपाṃ मनिना का1ंडलेना सीए,॥
अट्ठीṃ तासेना ओनद्दधां सहा वत्थेहि शोभति.॥ ॥

[771] अलट्टकटा पदा मुखं कुणकमक्खितां,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥

[772] अट्ठपादकटा केसा नेत्ता अंजनमक्खिता,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥

[773] अंजनीव नवा चित्त पूतिकायो अलंकातो,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥

[774] ओदाहि मिगावो पासाँ नासादा वागुरां मिगो,॥
भत्वा निवापं गच्छमा कन्दन्ते मिगबन्धके ॥ ॥

[775] चिन्नो पासो मिगावसा नासादा वागुरां मिगो,॥
भुत्वा निवापं गच्छमा सोकांते मिगालुद्दके॥ ॥

[769] देखो, बनावटी कठपुतली के आकार (मानव शरीर) को,
घावों के ढेर को, रोगग्रस्त ढेर को, और
अनेक उद्देश्यों और योजनाओं से भरा हुआ, फिर भी
जिसमें दृढ़ रहने की कोई शक्ति नहीं है! [2] (769)

[770] देखो, सजे-धजे रूप (मानव शरीर) को, गहनों से सजा हुआ, अंगूठियों से लिपटा हुआ,
हड्डियों और पतले आवरण में लिपटा हुआ,
बढ़िया और देखने में सुंदर उपकरणों की मदद से!

[771] लाख से रंगे पैर, लाल रंग से सने होंठ:
ये सब एक मूर्ख की मंद बुद्धि के लिए काफी अच्छा है,
लेकिन उसके लिए नहीं जो परलोक की तलाश करता है!

[772] आठ गुना गुंथी हुई लटें, काली काजल से सजी आंखें:
ये सब एक मूर्ख की मंद बुद्धि के लिए काफी हैं,
लेकिन उसके लिए नहीं जो परलोक (निर्वाण) की तलाश करता है!

[773] जैसे काजल के घड़े की तरह, [3] एकदम नया, उभरा हुआ,
भीतर से दूषित शरीर को बेधड़क सजाया गया है:
मूर्ख की मंद बुद्धि के लिए सब ठीक है,

लेकिन उसके लिए नहीं जो परलोक की तलाश करता है।

[774] शिकारी ने अपना जाल बिछाया। हिरण
जाल के विरुद्ध नहीं आया। [4] हमने चारा खा लिया है -
चलो चलें! [5] इस बीच हिरण पकड़ने वाले विलाप करते हैं।

[775] शिकारी का जाल टूट गया है! हिरण
जाल के विरुद्ध नहीं आया। हमने चारा खा लिया है -
चलो चलें; इस बीच हिरण पकड़ने वाले रोते और विलाप करते हैं।

इसके बाद रट्ठपाल वायु में विचरण करते हुए [6] राजा कोरव्य के मृग उद्यान में गए और एक पत्थर की शिला पर बैठ गए। थेरा के पिता ने अपने सातों द्वारों पर कुंडी लगवा दी थी और उन्हें बाहर निकलने से रोकने के लिए तथा उनके पीले वस्त्र उतारकर उन्हें सफेद वस्त्र पहनाने के लिए आदमी भेजे थे। [7] इसलिए थेरा वायु में विचरण कर गए। तब राजा ने जब सुना कि वे कहाँ बैठे हैं, तो उनके पास जाकर विनम्रतापूर्वक अभिवादन करते हुए उनसे पूछा: 'हे स्वामी रट्ठपाल, इस संसार में मनुष्य किसी न किसी विपत्ति - बीमारी, राजा की मृत्यु, धन या परिवार की हानि - के कारण इसे त्याग देते हैं। परन्तु आपने ऐसा कुछ भी नहीं सहा, तो आपने संसार क्यों छोड़ा (सन्यास के लिए)?' तब थेरा ने उत्तर दिया: 'संसार क्षणभंगुर है; संसार का कोई आश्रय या ईश्वरीय कृपा नहीं है; संसार का कोई गढ़ नहीं है; संसार अभावग्रस्त और निर्धन है, असंतुष्ट है, भोग-विलास का दास है।' इस प्रकार अपनी पृथक स्थिति दर्शाते हुए, उन्होंने पद्य में एक समानांतर उदाहरण प्रस्तुत किया:

[776] पसिसामि लोके साधने मानुस्से॥
लद्धना वित्तं न ददन्ति मोहा,॥
लुद्धा [76] धनाṃ सन्निकायṃ करोंती॥
भय्यो वा कामे अभिपत्थयन्ति॥ ॥

[777] राजा पसायहा पथविṃ विसेत्वा॥
ससागरान्ताः महिमावसंतो,॥
ओरा्ṃ समुद्दस्सा अतित्तारुपो॥
पराण् समुद्दस्सऽपि पत्तयेथा॥ ॥

[778] राजा च अण्णे च बहु मानुषा॥
अवितातंहा मरणं उपेन्ति,॥
स्नाव हुत्वान् जंहांति देहं॥
कामेहि लोकमहि न हत्थि तिति.॥ ॥

[779] कंदन्ति नैनाति पकिरिया केसो॥
अहो वाता नो अमरति चहु,॥
वत्थेन नैं परतं निहारितवा॥
सीतां समेधाय ततो दहंति.॥ ॥

[780] सो दैहति सुलेहि तुज्जमानो॥
एकेन वत्थेन पाहाय भोगे,।
न मियामानस्स भवन्ति ताना॥
ज्ञाति च मित्ता अथवा सहाय.। ॥

[781] दयादका तस्स धनं हरन्ति॥
सत्तो पण गच्छति येन कम्मं,॥
न मियामानं धन्मन्वेति किञ्चि॥
पुत्त च दारा च धनं च रथं॥ ॥

[782] न दीघमायु लभते धनेन॥
न चा'पि वित्तेन जरां विहन्ति,॥
अप्पं हि तं जीवितमाहु धीरा॥
अस्सस्सतं विप्परिणामधम्मं.॥ ॥

[783] अड्ढा ददिद्दा च फुसन्ति फस्सां॥
बालो च धीरो च तथैव फूटथो,॥
बालो हि बल्या वधितोऽव सेति॥
दिरो च नो वेधाति फस्साफुतहो॥ ॥

[784] तस्मा हि पन्नाव धनेन सेय्य॥
याया वोसानमिदाधिगच्छति,॥
अभ्योसितत्ता हि भवभवेसु,॥
पापानि कम्मानि करोति मोहा॥ ॥

[785] उपेति [77] गब्भं च पारं च लोकाm̄॥
संसारमापज्जा परम्पराय,॥
तस्सप्पन् च अभिसद्दहंतो॥
उपेति गभन् च पराञ्च लोकाm̄॥ ॥

[786] कोरो यथा संधिमुखे गहितो॥
सकाम्मुना हन्नति पापधम्मो,॥
एवं पजा पक्का परमहि लोके॥
सकाम्मुका हन्नति पापधम्म।॥ ॥

[787] काम ही चित्र मधुरा मनोरमा॥
विरूपरूपेण माथेंती चित्ताm̄,॥
आदिनावं कामगुनेसु दिसवा॥
तस्मा अहं पब्बजितोमहि राजा॥ ॥

[788] दुमप्पलानिव पतन्ति मनावा॥
दहरा च वुधा च शरीरभेदा,॥
एतम् पि दिस्व पब्बजितोमहि राजा॥
अपानकाकं समानमेव सेय्यो, ॥ ॥

[789] सद्ध्याहाऽ पब्बजितो उपेतो जिनसासने,॥
अवंझा मयहं पब्बज्जा अन्नो भुञ्जामि भोजनं॥ ॥

[790] कामे आदित्ततो दिस्वा जातरूपाणि सत्थतो,॥
गब्भवोक्कन्तितो दुक्खाऽ निरयेसु महब्भाय॥॥ ॥

[791] एतम् आदिनवं णत्वा सवेगm̄ अलभिm̄ तदा,॥
सोऽहं विद्धो तदा सन्तो संपत्तो आसवक्खयः॥ ॥

[792] पैरिसिणो माया सत्था कतं बुद्धस्स ससनं,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥

[793] यस्साथया पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ,॥
सो मे अत्थे अनुप्पत्तो सब्बासंयोजनकखायोऽ ति.॥ ॥

[776] मैं दुनिया में बहुत धनवान पुरुषों [8]
को देखता हूँ:- धन अर्जित करने में वे देने में गलती करते हैं।
लालच से अपनी संपत्ति का बड़ा भंडार बनाते हैं,
हाँ, फिर भी और अधिक सुखों की लालसा करते हैं।

[777] राजा ने बलपूर्वक पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ली,
समुद्र के किनारे तक,
समुद्र के इस तरफ की भूमि पर अधिकार रखते हुए, वह अभी भी असंतुष्ट होकर
दूसरी तरफ की भी लालसा कर सकता है।

[778] देखो जहाँ राजा और कई अन्य लोग
अपनी लालसाओं को पालते हुए मर रहे हैं।
कंगाल होकर, [9] वे इस शरीर को त्याग देते हैं,
क्योंकि वे इस दुनिया के सुखों से कभी संतुष्ट नहीं होते।

[779] रिश्तेदार उसके लिए विलाप करते हैं, बाल बिखरे हुए,
रोते हुए: 'हाय! काश हमारा रिश्तेदार अमर होता!' [10] उसे कफ़न में लपेटकर वे ले जाते हैं;
चिता उठाकर वे तुरंत उसका दाह संस्कार कर देते हैं।

[305] [780] वह जल रहा है, कांटों से कुरेदा जा रहा है,
एक ही वस्त्र पहने, सारी दौलत से वंचित।
मरने वाले को कभी परिवार
, दोस्त, यहाँ तक कि पड़ोसी भी शरण नहीं देते।

[781] उसकी संपत्ति उसके उत्तराधिकारियों द्वारा छीन ली जाती है, लेकिन वह [11] अपने सभी पिछले कर्मों के अनुसार चलता है।
मरने वाले के पीछे कभी धन नहीं जाता,
न बच्चे, न पत्नी, न धन, न राज्य।

[782] धन से कभी दीर्घायु प्राप्त नहीं होती,
न ही संपत्ति से बुढ़ापा दूर होता है।
यह जीवन क्षणभंगुर है, जैसा कि सभी ऋषियों ने हमें बताया है;
यह क्षणिक है, और मूलतः परिवर्तनशील है।

[783] सभी स्पर्श का अनुभव करते हैं, [12] चाहे गरीब हों या अमीर;
बुद्धिमान भी मूर्ख से कम स्पर्शित नहीं होता।
परन्तु मूर्ख अपनी मूर्खता से अभिभूत होकर ज़मीन पर पड़ा रहता है;
बुद्धिमान, स्पर्श का अनुभव करते समय कभी नहीं कांपता।

[784] इसीलिए धन से कहीं श्रेष्ठ ज्ञान है,
जिसके द्वारा हम यहाँ तक पहुँचते हैं।
क्योंकि लक्ष्य तक न पहुँचने के कारण [13] मंदबुद्धि लोग
भ्रम में दुष्ट कर्म करते हैं, और
उच्चतर या तुच्छ लोकों में पुनर्जन्म लेते हैं। [14]

[785] एक मनुष्य गर्भ में आता है और दूसरे लोकों में पुनर्जन्म पाता है, संसार (लोक)

में फँसकर , अनगिनत पूर्व जन्मों के चक्रों में; अल्प बुद्धि वाला उसका अनुसरण करता है, यहाँ और दूसरे लोकों में भी जन्म लेता है।

[786] यहाँ तक कि एक चोर जो चोरी करते हुए पकड़ा जाता है,
अपने ही कृत्य से अपराधी के रूप में निंदा की जाती है, [15] [306] उसी प्रकार, मृत्यु के बाद, दूसरे लोक में, जाति
अपने ही कर्मों से अपराधी के रूप में निंदा की जाती है।

[787] क्योंकि इंद्रिय-इच्छाओं के मीठे और अनेक आकर्षण से,
मन किसी न किसी तरह असंतुलित हो जाता है;
और इंद्रिय सुखों में बुराई देखकर
, हे राजा, मैंने सब कुछ त्याग दिया है।

[788]
शरीर के क्षय होने पर, सभी मनुष्य, चाहे युवा हों या वृद्ध, वृक्ष से फल की तरह गिरते हैं।
हे राजा, यह देखकर ही मैं (भिक्षुत्व में) चला गया हूँ।
धर्म का सुरक्षित, निश्चित जीवन बेहतर है।

[789] उच्च आत्मविश्वास से परिपूर्ण [16] मैंने संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व के लिए)
और विजेता (बुद्ध) के भिक्षु संघ में शामिल हो गया।
मेरा प्रस्थान निष्कलंक रहा है, और
ऋणमुक्त होकर मैं अपने हिस्से पर जीवन यापन करता हूँ। [17]

[790] इंद्रिय-इच्छाओं को प्रज्वलित अग्नि के समान देखना।
सोने और चांदी को एक [हानिकारक] चाकू के समान देखना,
गर्भ में जन्म से ही दुःख के साथ जीवन को देखना,
और नरक के भयानक खतरे को देखना: -

[791] मैं कहता हूँ, हर जगह बड़ी बुराइयाँ देखकर,
मैं बहुत व्यथित हो गया था।
फिर मुझे, घायल और जख्मी हालत में,
चौगुनी विजय प्राप्त हुई: इंद्रिय-इच्छाओं पर विजय,
पुनर्जन्म पर विजय, त्रुटि पर विजय, अज्ञान पर विजय! [18]

[792] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है, [19] और बुद्ध की सभी शिक्षाएँ पूरी हो चुकी हैं।
मैंने अपने ऊपर से भारी बोझ उतार दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।

[793] वह भलाई जिसके लिए मैंने संसार को अलविदा कहा,
और घर छोड़कर ऐसी जगह रहने चला गया जहाँ घर नहीं था,
वह सर्वोच्च भलाई मैंने पूरी कर ली है,
और हर बंधन और बेड़ी टूट गई है। [20]

तब थेरा ने राजा कोरव्य को धम्म का मार्ग सिखाने के बाद भगवान (बुद्ध) के पास लौट गए। और उसके बाद उन्होंने आर्यों की सभा में रट्ठपाल को विश्वास के माध्यम से संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण करने वालों में) सर्वोत्कृष्ट घोषित किया। [21]

[1] क्योंकि वह एक दिवालिया राज्य को सहारा देने के लिए पर्याप्त धनी था (टीका)। यह कथा मज्झिमा, खंड 2, संख्या 82 में अधिक विस्तार से बताई गई है। यह विनय ग्रंथों और जातक (खंड 1, संख्या 14) में भी पुनः प्रकट होती है। इस पर श्री डब्ल्यू. लप्टन की

चर्चा देखें, जो उन्होंने रट्ठपाल सूत्र के अपने संस्करण और अनुवाद की प्रस्तावना में लिखी है, जे.आर.ए.एस., 1894, पृष्ठ 769 आदि। मैंने श्री लप्टन के श्लोकों के अनुवाद से बहुत लाभ उठाया है। धम्मपाल का संक्षिप्त परिचय पूर्ण रूप से दिया गया है।

[2] तुलना करें श्लोक 1020 एफ.

[3] यहाँ श्री लप्टन ने कुछ हद तक बात को गलत समझा है।

[4] नासदा = न संघत्सेसि (टिप्पणी)।

[5] या, 'हम जाते हैं।'

[6] मज्झिमा निकया में वर्णित पुराने वृत्तांत में थेरा के इस कारनामे का, और न ही पिता के उपायों का उल्लेख है।

[7] आम आदमी का रंग.

[8] श्लोक 789 तक, छंद त्रिष्टुभ (वैदिक) छंद में है, जो 5 + 5 चरणों वाला है।

[9] अर्थात्, उनकी इच्छाओं में (टिप्पणी)।

[10] अहो वात (लंबी मेत्रि कौइसा, 'गाथा- सुखत्तन') अम्हाकं नाति अमारा सियान (! सियुन) ती द्वारा व्याख्या ।

[11] सैटो.

[12] aniṭṭhaphassaŋ pāpunanti द्वारा व्याख्या की गई .

[13] अनाधिगतनिट्ठत्ता (टिप्पणी)।

[14] भावाभावेषु। इस विचित्र शब्द को इस प्रकार व्यक्त किया गया है: महन्ता महन्तेउ भावेउ।

[15] शाब्दिक रूप से: बर्बाद (हञ्ञाती) है, क्योंकि यह बुरी प्रकृति का है।

[16] पाली शब्द सद्धा, 'विश्वास' में यह प्रमुख स्वर है। डॉ. न्यूमैन की ज़ुर्वेर्सिच्ट देखें , न कि ग्लौबे। श्लोक छंद यहाँ पुनः प्रवेश करता है। मज्झ में कविता (788) के साथ समाप्त होती है।

[17] तुलना करें. बहनें, श्लोक 110.

[18] संपत्तो आसवक्खयांग का विस्तार ।

[19] =श्लोक 604, 605, 687.

[20] = श्लोक 136.

[21] एंग. निक., आई. 24.

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (252): मालुन्क्य का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (252) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
252. मालुंक्य का पुत्र
इस पूजनीय व्यक्ति की कथा अध्याय छह (14वीं शताब्दी) में दी गई है, जिसमें थेरा, जो अरहंत (ज्ञानोदय) प्राप्त कर चुके थे, ने अपने परिवार को मार्ग की शिक्षा देते हुए एक गाथा (कथन) कही। लेकिन इस गाथा में, थेरा, जो अभी तक अरहंत (ज्ञानोदय) प्राप्त नहीं हुए थे, ने भगवान (बुद्ध) से संक्षेप में सिद्धांत के बारे में पूछा था, और उन्हें यह उत्तर मिला: 'हे मालुंक्य पुत्र, तुम उन चीजों के बारे में क्या सोचते हो जिन्हें तुमने कभी देखा, सुना, सूंघा, चखा, छुआ या अनुभव नहीं किया है, जिनका तुम्हें वर्तमान में कोई आभास नहीं है, और न ही तुम चाहते हो कि तुम्हें उनका आभास या अनुभूति हो: - क्या तुम उनके लिए इच्छा, लालसा या लगाव महसूस करते हो?' 'नहीं, भगवान।'
'तो फिर, हे मालुंक्य पुत्र, जब तुम्हें किसी चीज का कोई आभास या अनुभूति होगी, तो तुम्हें केवल वही आभास या अनुभूति होगी।' और चूंकि ऐसा है, और आपको इससे या इसमें, न तो यहाँ, न कहीं और, न ही भविष्य में, कोई [लालच, दुर्भावना या भ्रम] प्राप्त होगा, यही, यहाँ तक कि यही, पीड़ा का अंत है। [1]

और मालुंक्य के पुत्र ने, यह दर्शाते हुए कि उसने उस संक्षेपित सिद्धांत को कितनी अच्छी तरह से सीखा था, उसे इन छंदों में व्यक्त किया:

[794] रूपाऽ दिस्व सति मुङ्ढा पियाऽ निमित्ताऽ मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झोस्सा तिट्ठति॥ ॥

[795] तस्स वन्धन्ति वेदना अनेक रूपसम्भव,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खाँ अरा निब्बानां वुक्कति.। ॥

[796] सददाउ सुत्वा सति मुठहा पियाṃ निमित्तṃ मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झोस्सा तिट्ठति॥ ॥

[797] तस्स वन्धन्ति वेदना अनेक सदसम्भवा,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खाँ अरा निब्बानां वुक्कति.। ॥

[798] गन्धौ घट्वा सति मुठ पियाṃ निमित्तौ मनसिकरोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झौस्सा2 तिथति ॥। ॥

[799] तस्स वन्धन्ति वेदाना अनेका गंधसम्भव,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खान् अरा निब्बाना3 वुक्काति॥ ॥

[800] रसाऽ भोत्वा सति मुङ्ढा पियाऽ निमित्ताऽ मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झोस्सा तिट्ठति॥ ॥

[801] तस्स वन्धन्ति वेदना अनेक रससम्भव,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खाँ अरा निब्बानां वुक्कति.। ॥

[802] फस्साṃ [78] फुस्सा सती मुङ्ढा पियाṃ निमित्तṃ मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झोस्सा तिट्ठति॥ ॥

[803] तस्स वन्धन्ति वेदाना अनेका फस्सासम्भव,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खाँ अरा निब्बानां वुक्कति.। ॥

[804] धम्मm नात्वा सति मुड्ढा पियाm निमित्तm मानसिकारोतो,॥
सरत्तचित्तो वेदेति तं च अज्झोस्सा तिट्ठति॥ ॥

[805] तस्स वन्धन्ति वेदाना अनेका धम्मसम्भव,॥
अभिज्झा च विहेसा च चित्तमसुपहन्नति,॥
एवामासिनतो दुक्खाँ अरा निब्बानां वुक्कति.। ॥

[806] नासो राजजति रूपेसु रूपाm दिस्व पतिसातो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा तिथति ॥॥ ॥

[807] यथास्सा पस्सतो रूपाऽ सेवातो चाऽपि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सातो,॥
एवन अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बानाm3 वुक्काति॥ ॥

[808] नासो राजजति सद्देसु सद्दां सुत्वा पतिस्सतो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा1 तिथति ॥॥ ॥

[809] यथास्स सुणतो सद्दौ सेवतो चापि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सातो,॥
एवॅ अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बानाऽ2 वुक्काति॥ ॥

[810] नासो राजजति गंधेसु गंधाऽ घट्वा पतिस्सतो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा1 तिथति ॥॥ ॥

[811] यथास्सा घायतो गन्धौ सेवतो चपि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सातो,॥
एवॅ अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बानाऽ2 वुक्काति॥ ॥

[812] नसो राजजति रसेसु रसाऽ भोत्वा3 पतिस्सतो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा तिथति ॥॥ ॥

[813] यथास्सा सयातो रसाऽ सेवातो चाऽपि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सातो,॥
एवॅ अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बाणो वुक्काति॥ ॥

[814] नासो राजजति फस्सेसु फस्साm फुस्सा पतिसातो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा तिथति ॥॥ ॥

[815] यथास्सा फुसतो फस्साअ सेवतो कापि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सति,॥
एवॅ अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बाणो वुक्काति॥ ॥

[816] नासो राजजति धम्मेसु धम्मं णत्वा पतिस्सतो,॥
विरत्तचित्तो वेदेति तां च नज्ज्हौस्सा तिथति ॥॥ ॥

[817] यथास्स विजानतो धम्मौ सेवतो चपि वेदनाऽ,॥
खीयति नोपचयति एवं सो कैरति सातो,॥
एवॅ अपासिनतो दुक्खाँ संतिके निब्बानाऽ2 वुक्काति॥ ॥

[794] सुंदर आकृति का दर्शन स्पष्ट विचार को भ्रमित कर देता है, [2] यदि कोई केवल उस मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो हृदय भावनाओं से भर उठता है,

[795] और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
दृष्टि से उत्पन्न अनेक भावनाएँ पनपती हैं,
लोभ और घृणा, [3] और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त होता है। उसके विषय में हम कहते हैं,
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला:
निर्वाण से दूर!

[796] ध्वनि, [4] विस्मयकारी स्पष्ट विचार,
यदि कोई केवल मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो
हृदय भावना से प्रज्वलित होकर बह उठता है,

[797] और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
दृष्टि से उत्पन्न अनेक भावनाएँ पनपती हैं,
लोभ और घृणा, और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त होता है। उसके विषय में हम कहते हैं,
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला:
निर्वाण से दूर!

[798] विस्मयकारी स्पष्ट विचार की गंध,
यदि कोई केवल मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो
हृदय भावनाओं से भर उठता है,

[799] और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
दृष्टि से उत्पन्न अनेक भावनाएँ पनपती हैं,
लोभ और घृणा, और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त होता है। उसके विषय में हम कहते हैं,
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला:
निर्वाण से दूर!

[800] स्वाद विस्मयकारी स्पष्ट विचार है,
यदि कोई केवल मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो
हृदय भावनाओं से भर उठता है,

[801] और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
दृष्टि से उत्पन्न अनेक भावनाएँ पनपती हैं,
लोभ और घृणा, और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त होता है। उसके विषय में हम कहते हैं,
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला:
निर्वाण से दूर!

[802] स्पर्श, विस्मयकारी स्पष्ट विचार,
यदि कोई केवल उस मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो
हृदय भावनाओं से भर उठता है,

[803] और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें
दृष्टि से उत्पन्न अनेक भावनाएँ पनपती हैं,
लोभ और घृणा, और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त होता है। उसके विषय में हम कहते हैं,
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला:
निर्वाण से दूर!

[804] वस्तु, विचार, [5] विस्मयकारी स्पष्ट विचार,
यदि कोई केवल उस मधुर और प्रिय छवि पर ध्यान दे, तो
हृदय भावनाओं से भर उठता है,
और आसक्ति बनी रहती है। इस प्रकार उसमें वृद्धि होती है।

[805] [309] विचार में निहित अनेक भावनाएँ,
लोभ और घृणा; और उसका हृदय
अत्यंत पीड़ा से ग्रस्त था। उसके विषय में हम कहते हैं, -
इस प्रकार पीड़ा और कष्टों का भंडार जमा करने वाला: -
निर्वाण से दूर!

[806] जो व्यक्ति देखी हुई चीजों के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं करता,
परन्तु सचेत रहकर, स्पष्ट मन से, वह समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[807] और जैसा वह देखता है, वैसा ही वह धर्म के अनुसार अनुभव करता है; [6] उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।
इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जो दुःखों का भंडार नहीं बनाता, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है!

[808] जो सुनी हुई बातों के लिए कोई जुनून पैदा नहीं करता,
बल्कि सचेत और स्पष्ट मन से समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[809] और जैसा वह सुनता है, वैसा ही वह धर्म के अनुसार अनुभव करता है;
उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।
इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जो दुःखों का भंडार नहीं बनाता, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है!

[810] जो व्यक्ति जिन चीजों की गंध नहीं समझता, उनमें कोई जुनून पैदा नहीं करता,
बल्कि सचेत और स्पष्ट मन से समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[811] और जैसा वह गंध लेता है, वैसा ही वह धर्ममय अनुभव करता है;
उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।

इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जो दुःखों का भंडार नहीं बनाता, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है!

[812] जो चीजों का स्वाद नहीं लेता, वह कोई जुनून पैदा नहीं करता,
बल्कि सचेत और स्पष्ट दिमाग से समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[813] और जैसे-जैसे वह स्वाद लेता है, वैसे-वैसे वह धर्म का अनुभव करता है;
उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।
इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जो दुःखों का भंडार नहीं बनाता, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है!

[814] जो चीजों से प्रभावित होता है, वह कोई जुनून पैदा नहीं करता,
बल्कि सचेत और स्पष्ट दिमाग से समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[815] और जैसे ही वह प्रभावित होता है, वैसे ही वह धर्म के अनुसार अनुभव करता है;
उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।
इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जो दुःखों का भंडार नहीं बनाता, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है!

[816] जो चीजों के लिए महसूस करता है [ed1] कोई जुनून पैदा नहीं करता,
लेकिन सचेत, स्पष्ट दिमाग से, समझ सकता है,
बिना उत्तेजित हृदय से, न ही आसक्ति से चिपका रहता है;

[817] और जैसा उसने देखा, वैसा ही उसने धर्म के अनुसार अनुभव किया;
उसके लिए संचय नहीं, बल्कि कमी करना ही सर्वथा।
इस प्रकार उसने सावधानीपूर्वक अपने मार्ग का अनुसरण किया।
उसके विषय में, जिसने दुःखों का भंडार नहीं बनाया, हम कहते हैं: -
निर्वाण निकट है! [7]

तब थेरा उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और चले गए, कुछ ही समय बाद उन्हें यह अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई कि उन्होंने अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया है।

[1] अर्थात्, आप उत्तेजित होने की लालसा के बिना इंद्रियों और बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं। मैंने इस अंश पर बुद्धघोष की सारत्थपकासिनी में दी गई टीका से कोष्ठक में दिए गए शब्दों को शामिल किया है। थेरा द्वारा अपने पूर्ववर्ती काव्य में तन्हा पर दिए गए ज़ोर की तुलना करें। टीका लगभग शब्दशः सषयतना-संयुत्त (संयु. निक., iv. 72) में सुत्त संगायह का अनुसरण करती है , जहाँ यह काव्य भी मिलता है।

[2] श्लोक 98 और n देखें। 'स्पष्ट विचार' सती के लिए 'आत्म-संयम' से बेहतर है, जिसके लिए सती सहायक है।

[3] टीका के अनुसार, विहेसा तब उत्पन्न होती है जब वस्तु सुखद के विपरीत होती है। संभवतः यह लोभ से उत्पन्न शत्रुता है। देखें संवाद, ii. 55.

[4] प्रत्येक अर्थ को एक अलग श्लोक दिया गया है। [संपादक का नाम यहाँ शामिल है]

[5] धम्मं ञत्वा - अर्थात्, संज्ञान का वह पहलू जो मन की क्रिया के रूप में, इंद्रिय-धारणाओं का पूरक है, या, यह हो सकता है, उनसे स्वतंत्र है।

[6] चेतना का शेष भाग अपने गोचरा, या पथ (धम्म) प्रक्रिया (टिप्पणी) का अनुसरण करता है।

[7] पहले की तरह, प्रत्येक अर्थ को एक पूर्ण श्लोक सौंपा गया है। [संपादक: यहाँ पूर्ण] संयुत्त निकया के अनुसार, बुद्ध ने मालुंक्या के पुत्र के अनुवाद की हार्दिक प्रशंसा की।

[ed1] जाहिर तौर पर श्रीमती राइस डेविड्स का इरादा यही है कि यह मन-इंद्रिय का विषय हो।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(253):सेला

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (253) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
253. सेला [1]
बुद्ध युग में, अंगुत्तरापा [2] में , ब्राह्मण परिवार में, आपना नामक ब्राह्मण गाँव में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम सेला रखा गया। वयस्क होने पर वे वहाँ तीनों वेदों और ब्राह्मण विद्याओं में निपुण होकर 300 ब्राह्मण युवकों को मंत्रों का शिक्षण देते रहे। उस समय भगवान (बुद्ध) सावत्थी छोड़कर 1250 भिक्षुओं के साथ अंगुत्तरापा की यात्रा पर निकले। सेला और उनके शिष्यों की अंतर्दृष्टि की परिपक्वता को देखकर वे एक वन में ठहरे। तब तपस्वी केनिया ने भगवान (बुद्ध) और उनके दल को अगले दिन के लिए आमंत्रित किया और बहुत भोजन की व्यवस्था की। सेला अपने 300 शिष्यों के साथ आश्रम में गए और पूछा, 'अब क्या, केनिया, राजा के मंत्री से क्या अपेक्षा की जा रही है?' इत्यादि। केनिया ने उत्तर दिया: 'मैंने कल के लिए परम पूज्य बुद्ध को आमंत्रित किया है।' अब सेला, 'बुद्ध' शब्द सुनकर आनंदित होकर, अपने युवकों के साथ तुरंत भगवान (बुद्ध) के पास गया और शिष्टाचार का आदान-प्रदान करने के बाद एक तरफ बैठ गया। परम पूज्य का ध्यान करते हुए उसने सोचा: 'उनमें वे सभी लक्षण हैं जो या तो विश्व-सम्राट के हैं, या संसार के पर्दे को हटाने वाले बुद्ध के; फिर भी मुझे नहीं पता कि यह धार्मिक तपस्वी बुद्ध हैं या नहीं। लेकिन मैंने सुना है कि जो परम पूज्य, अरहंत (प्रबुद्ध), सर्वोच्च बुद्ध हैं, वे अपनी प्रशंसा किए जाने पर स्वयं को प्रकट करते हैं; क्योंकि जो ऐसा बुद्ध नहीं है, जब कोई उसके सामने किसी बुद्ध के गुणों की प्रशंसा करता है, तो वह चिढ़ जाता है और असंतुष्ट हो जाता है, क्योंकि उसने बुद्धों का शांत विश्वास प्राप्त नहीं किया है, [3] और वह इन उल्लेखों को सहन नहीं कर सकता। [4] यदि मैं अब समना गौतम (बुद्ध) की उनके सामने उपयुक्त श्लोकों से प्रशंसा करूँ तो क्या होगा? इस प्रकार उन्होंने आरंभ किया:

[818] परिपुणकायो सुरुचि सुजातो चारुदस्सानो,॥
सुवाणावणोसि भगव सुसुक्कदथो वीर्यवा॥॥ ॥

[819] नरस हि सुजातस्ये भवन्ति वियञ्जना,॥
सब्बे ते तव कायास्मिं महापुरिसलक्खणा॥ ॥

[820] पसन्ननेट्टो सुमुखो ब्रह्मा उजु पतपावा,॥
मज्जे समनसांघास्सा आदिकोवा विरोकासी॥ ॥

[821] कल्याणदास्सणो भिक्खु कंकनासन्निभट्टको,॥
किओ ते समनाभावेन एवं उत्तमवनिनो॥॥ ॥

[822] राजा अरहसि भवितुं चक्कवत्ती रथेसभो,॥
चतुरंतो विजितवी जंबुसंदस्सा इस्सरो॥ ॥

[823] खटिया भोगा राजनो अनुयंता भवन्ति ते,॥
राजाधिराज4 मनुजिंदो रज्जन करेहि गोतम॥ ॥

[818] हे परिपूर्ण रूप और दुर्लभ सौंदर्य वाले,
सबसे सुंदर (शारीरिक) अंगों वाले [5] और देखने में मनमोहक,
हे पूज्य (बुद्ध)! आपका रंग शुद्ध सोने के समान है,
हे वीर आत्मा, चमकते दांतों वाले,

[819] जिसका शरीर उन विशेषताओं को दर्शाता है जो
पूर्णतः समायोजित (शारीरिक) अंगों वाले व्यक्ति को प्रकट करती हैं,
हाँ, वे सभी लक्षण जो सुपर-मैन की पहचान हैं;

[820] तुम इतनी स्पष्ट आँखों के साथ, तुम्हारा शांत स्वभाव
इतना सुंदर, विस्तृत, [6] सीधा, राजसी, तुम चमकते हो
जैसे सूर्य, तुम सभी का केंद्र हो,
भिक्षुओं का चुना हुआ समूह तुम्हारे चारों ओर इकट्ठा हुआ।

[821] हे भिक्षु (भिक्षु), हे सुंदर रूप वाले, जिनकी त्वचा
स्वर्णमय है, कहिए,
आपके लिए, इतनी सुंदर उपस्थिति के साथ, संन्यासी का जीवन क्या है?

[822]
तुम वाकई राजकुमार बनने के योग्य हो, विश्व साम्राज्य के रथ को खींचने वाला बैल ;
पृथ्वी के छोर से छोर तक चौकोर स्वामी,
जंबूद्वीप (भारतीय उपमहाद्वीप) के विजेता।

[823] हे कुलीन और धनी सामंतों,
हे प्रभुओं के सामंत, हे मनुष्यों के राजा,
हे गौतम (बुद्ध), अपनी शक्ति ग्रहण करो और शासन करो!

तब परम पूज्य बुद्ध ने सेला की इच्छा पूरी करते हुए उत्तर दिया:

[824] राजहामासुहि सेला (सेलति भगव) धम्मराज अनुत्तरो,॥
धम्मेना वक्कṃ वत्तेमु चक्कṃ अप्पतिवत्तियṃ॥ ॥

[824] 'हे सेला, मैं निश्चय ही राजा हूँ;
धम्म का राजा, मुझसे ऊपर कोई नहीं है। [312] और मैं अपने सिद्धांत [7] से संप्रभुता का पहिया घुमाता हूँ
, वह पहिया जो अपरिवर्तनीय है।'

फिर सेला ने पुष्टि जीतने के लिए फिर से बात की: [8]

[825] सम्बुद्धो पतिजानासि (इति सेलो ब्राह्मणो) धम्मराज सनुत्तरो,॥
धम्मेन चक्कं वत्तेमि इति भासि गोतम ॥॥ ॥

[826] को नु सेनापति भोतो सावको सत्थु अन्वयो,॥
को ते माṃ अनुवत्तेति धम्मचक्काṃ पवत्तिताṃ॥ ॥

[825] पूर्णतः प्रबुद्ध आप स्वयं को यह कहते हैं:
'धर्म के राजा, मुझसे ऊपर कोई नहीं है
और मैं अपने सिद्धांत से ही संप्रभुता का पहिया घुमाता हूँ
' - ऐसा आप कहते हैं, गौतम।

[826] मेरे स्वामी राजा का सेनापति कौन है,
जो भगवान (बुद्ध) के पदचिन्हों पर चलने वाला शिष्य है?
कौन उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए पहिया घुमाता है?

अब पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के दाहिनी ओर विराजमान थे, उनका सिर सोने के ढेर की तरह चमक रहा था। और उन्हें दिखाते हुए भगवान ने कहा:

[827] माया पवत्तिताŋ चक्कŋ (सेलति भगव) धम्मचक्कŋ अनुत्तराŋ,॥
सारिपुत्तो अनुवत्तेति अनुजातो तथागत:॥ ॥

[828] अभिनन्याय अभिनतन भवेतबब च भविता,॥
पहतब्बं पहिनां मे तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥ ॥

[829] विनयसु मयि कांखां अधिमुक्कसु ब्राह्मण,॥
दुल्लाभाऽ दस्सानाऽ होति सम्बुद्धनाऽ अभिन्हासो॥ ॥

[830] यसं वे दुलाभो लोके पतुभावो अभिनहसो,॥
सोऽहं ब्राह्मण सम्बुद्धो सल्लकत्तो अनुत्तरो॥ ॥

[831] ब्रह्मभूतो अतितुलो मरसेनप्पमद्दनो,॥
सब्बामित्ते वसे कत्वा मोदामि अकुतोभ्यो॥ ॥

[827] 'मैंने जिस धम्म पथ का चक्र चलाया,
जिसके ऊपर, सेला, कोई नहीं है, उस चक्र
को सारिपुत्त ने मेरे उदाहरण के बाद घुमाया, जो तथागत (बुद्ध) के समान हो गया है ।

[828] जो कुछ जानना चाहिए वह सब मुझे ज्ञात है,
मैंने मन की सारी संस्कृति का अभ्यास किया है,
जो कुछ त्यागना चाहिए था वह मैंने त्याग दिया है,
अतः, हे ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूँ - सत्य में जागृत व्यक्ति।

[829] [313] मेरे बारे में अपने संदेह दूर करो, ब्राह्मण!
मुझ पर विश्वास रखो। जीतना बहुत कठिन है,
बार-बार दर्शन करना - [जैसा कि तुम अब देख सकते हो] -
जो पृथ्वी पर सर्वोच्च बुद्धों का उदय करते हैं।

[830]
और मैं वास्तव में उन्हीं में से एक हूँ जिनका संसार में आगमन कठिन और दुर्लभ है
, हे ब्राह्मण! हाँ, मैं बुद्ध हूँ,
चिकित्सक और उपचारक, [10] जिस पर कोई नहीं है।

[831] मेरा स्थान सर्वोच्च है और मेरा कार्य अतुलनीय है, मैं
मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) की सेनाओं के आक्रमणों को कुचल देता हूँ। जो कुछ भी शत्रुतापूर्ण है, वह मेरे वश में है,

और मैं प्रसन्न हूँ क्योंकि भय कहीं से नहीं आता।'

तब सेला ब्राह्मण (पुजारी), जो भगवान (बुद्ध) से इतना प्रभावित हुआ कि उसने भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की, ने कहा:

[832] इदां भोंतो निसामेथा यथा भासति चक्खुमा,॥
सल्लकत्तो1 महावीरो निहोऽव नदति वने॥॥

[833] ब्रह्मभूतmJ अतितुला मरसेनप्पमद्दनmJ,॥
को दिस्व नप्पसीदेय अपि कान्हाभिजातिको॥॥

[834] यो माmJ इच्छाति अन्वेतु यो वा निच्चति गच्चतु,॥
इधाहं पब्बजिस्सामि वरपन्नस्सा संतिके॥॥

[832] 'अब ध्यान से सुनो, सज्जनों, उन शब्दों पर जो वह
देखता है, चंगा करने वाला और महान, हमसे कहता है,
जंगल के शेर की दहाड़ की तरह प्रभावशाली।

[833] स्थान में सर्वोच्च और कर्म में अतुलनीय,
जो मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) की सेनाओं के आक्रमणों को कुचल देता है: -

[834] जिसने भी उसे देखा होगा, वह आश्वस्त क्यों नहीं होगा,
चाहे उसका जन्म कितना भी गुमनाम क्यों न हो? [11] जो मुझसे प्रसन्न है, वह मेरा अनुसरण कर सकता है;
और जो प्रसन्न नहीं है, वह अपने मार्ग पर जा सकता है;
परन्तु मैं इस नियम में संसार का त्याग करूँगा,
उस महान और बुद्धिमान के अधीन।

तब ब्राह्मण (पुजारी) युवकों ने भी, क्योंकि वे अपेक्षित अवस्थाओं को प्राप्त कर चुके थे, उत्तर दिया:

[835] एताmJ सी रुकाति भोतो सम्मासंबुद्धसासनं,॥
मयामपि पब्बाजीस्सामा वरपन्नस्सा संतिके॥॥

[835]
'यदि आपके निर्णय के अनुसार, महोदय, परम बुद्ध का यह नियम हमें पसंद आया,
तो हम भी उस नियम का पालन करते हुए संसार का त्याग करेंगे,
उस महान और बुद्धिमान व्यक्ति के अधीन।'

तब सेला उन युवकों के अपने संकल्प में भागीदार होने से प्रसन्न होकर उन्हें भगवान (बुद्ध) के पास ले गया और भिक्षु दीक्षा देने का अनुरोध किया।

[836] ब्राह्मण तिसाता इमे याकन्ति पंजलिकता,॥
ब्रह्मचर्यं करिश्मा भगव तव संतिके॥॥

[836] ये तिस सौ ब्राह्मण (पुजारी) हाथ जोड़कर
आपसे विनती करते हैं, हे पूज्य (बुद्ध), कि हम
आपकी दृष्टि में पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य/ऋषि का जीवन) व्यतीत करें।

तब परम पूज्य परमेश्वर ने, यद्यपि बीते युगों में सेला ने, उन्हीं 300 शिष्यों के गुरु के रूप में, पुण्य का बीज बोया था, और अब अंतिम जन्म में उन्होंने स्वयं अपनी अंतर्दृष्टि और उनकी परिपक्वता दोनों को उत्पन्न किया था, यह जान लिया कि वे भिक्षु दीक्षा के लिए तैयार हैं और कहा:

[837] सवक्खाताऽ ब्रह्मकारियाऽ (सेलति भगवा) सन्दिथिकमकालिकाऽ,॥
यत्था अमोघा पब्बज्जा अप्पमत्तस्सा सिक्खतो॥ ॥

[837] 'अच्छा, सेला, पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य/ऋषि का जीवन)
स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है, जिसे देखा और सुना जा सकता है; फल शीघ्र ही मिलता है, [12] जिसमें उस व्यक्ति का आना व्यर्थ नहीं है
जिसने स्वयं को गंभीरता से प्रशिक्षित किया।'

इस पर भगवान ने कहा: 'आओ, भिक्षुओं!' और उन्होंने, उनकी रहस्यमयी शक्ति से, जिन्हें उन्होंने लंबे समय से भिक्षुओं के वस्त्र और कुंड प्रदान किए थे, [13] प्रणाम किया और अंतर्दृष्टि के लिए अध्ययन शुरू किया, और सातवें दिन अरहंतत्व (ज्ञान) प्राप्त किया। इसी कारण वे भगवान (बुद्ध) के पास आए और इस प्रकार ज्ञान (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा की , सेला ने कहा:

[839] तुवं बुद्धो तुवं सत्था तुवं माराभिभू मुनि,॥
तुवं अनुसये चेत्वा तिणो तारेसिमं पजां॥ ॥

[840] उपधि ते समतिक्कंता आसव ते पदलिता,॥
सिहोऽव अनुपादनो पहिनाभयभेरवो॥ ॥

[841] भिक्खवो तिसाता इमे तिथंथन्ति पंजलिकता,॥
पदे वीर पसारेहि नागा वंदन्तु सत्थुनो ति.॥ ॥

[838] हे सर्वज्ञानी! हमें आए और शरण पाए आठ दिन हो गए हैं । हे परम पूज्य (बुद्ध)!
मात्र एक रात में ही हम आपके नियम में प्रशिक्षित हो गए हैं।

[839] आप बुद्ध हैं! हे हमारे प्रभु (बुद्ध) आप! और आप ही
वह महान द्रष्टा हैं जिन्होंने मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) का वध किया। आप ही हैं जिन्होंने सभी बुरी प्रवृत्तियों को शुद्ध किया
और [जीवन के शाश्वत सागर की बाढ़] को पार किया,
आप ही हैं जो मनुष्यों के पुत्रों को पार करने में सहायता करते हैं।

[840] आपने जन्म के हर कारण को पार कर लिया है,
और भीतर के हर विषैलेपन को चकनाचूर कर दिया है,
आप सिंह के समान, कुछ भी न पकड़ते हुए,
भय और दहशत के हर स्रोत को दूर कर चुके हैं।

[841] हे भगवान! आपके सामने तीन सौ भिक्षु खड़े हैं,
हाथ जोड़कर आपका सम्मान करते हुए,
अपने चरण फैलाएँ, हे भगवान! उन्हें अनुमति दें।

अरहंत (प्रबुद्ध लोग), [14] आपको प्रणाम करते हैं..

[1] कहानी और कविता दोनों ही सुत्त-निपात और मज्झिमा निकाय (ii. 146) में 'सेला-सुत्त' का बड़ा हिस्सा हैं । धम्मपाला इन पुराने संस्करणों पर आश्चर्यजनक रूप से मौन हैं। उनका अपना संस्करण संक्षिप्त है और नीचे उल्लिखित अधिक विकसित मिथक (पृष्ठ 314, नोट 2) को छोड़कर, अधिक सरल है। हालाँकि, उनके द्वारा 'आदि', 'और इसी प्रकार' का प्रयोग , उनके द्वारा ज्ञात अधिक मानक विवरण की ओर संकेत करता प्रतीत होता है।

[2] सुत्त-निपात टीका में यह गंगा के उत्तर में माही नदी के आसपास का क्षेत्र है। आपण का अर्थ है 'बाजार', 'बाजार।'

[3] यह इस विश्वास पर आधारित है कि उनमें बुद्ध के लिए आवश्यक वास्तविक बौद्धिक और नैतिक गुण हैं, और वे जो सिखाते हैं वह सत्य है और इसके परिणाम निश्चित हैं (अंग. निक., ii 8)।

[4] ये नकारात्मक खंड सुत्त-निपाता कथा में नहीं हैं ।

[5] टीका में सुजातो का अर्थ है 'उपस्थिति में पूर्ण', ऊंचाई और चौड़ाई के संदर्भ में। इन अनुपातों पर, संवाद, ii. 14-16 देखें।

[6] ब्रह्म; टीका में ब्रह्मा लिखा है, उत्कृष्ट - अर्थात्, अनुपात में।

[7] पारियाति-धम्मो, पथ (धम्म) अपने साहित्यिक रूप में, या तैयार किए गए सिद्धांत (टिप्पणी)।

[8] मैं पाठ से 'इस प्रकार सेला ने कहा,' आदि की व्याख्याओं को हटा देता हूँ, जो पाली मीटर में बाधा डालती हैं।

[9] अंग. निक. , i. 28. अनु, अनुवत्तेति, अनुजातो में , अनुरूपता, समानता को व्यक्त करने के लिए अभिप्रेत है, न कि समय में अनुक्रम को। इति-वुत्तक (अनुवाद: बुद्ध के वचन), Ī 74 में इस शब्द की तुलना करें , जहाँ इसका प्रयोग उन बच्चों के लिए किया गया है जिनका जीवन उनके माता-पिता के जीवन से मिलता-जुलता है। टीका कहती है कि आर्य बनने पर, सारिपुत्त तथागत के समान जन्म या जाति (जाति) के हो गए । सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के उत्तराधिकारी के रूप में जीवित नहीं रहे।

[10] अर्थात्, लोभ, घृणा और भ्रम (टीकाकरण) .

[11] शाब्दिक रूप से, 'अंधेरे वंश का', nīcajāto के रूप में व्याख्या की गई।

[12] पच्चक्खो, संदित्तिको का भावार्थ है ; अकालिको - शाब्दिक अर्थ, 'समयहीन' - को उस स्थिति के रूप में समझाया गया है जहाँ प्रत्येक मार्ग के तुरंत बाद, समय के अंतराल के बिना, फल प्राप्त किया जाना है। सुत्त-निपाता टीका व्यावहारिक रूप से समान शब्दों में इसकी व्याख्या करती है।

[13] यह पौराणिक विशेषता सुइता-निपाता कहानी में नहीं है।

[14] नाग। इस शब्द पर उदावी का कथन (गाथा) (सीसीXLVII) देखें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (254): भद्दिया, गोधाओं के काली का पुत्र

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (254) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
254. गोध वंश के काली के पुत्र भद्दिया।
बुद्ध युग में कपिलवस्तु में शाक्य राजाओं के कुल में पुनर्जन्म लेकर, [1] उनका नाम भद्दिया रखा गया। वयस्क होने पर, उन्होंने अनुरुद्ध और अन्य चार कुलीनों के साथ संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया), जबकि भगवान (बुद्ध) अनुपिया के आम के बाग में ठहरे हुए थे। भिक्षु संघ में प्रवेश करके, उन्होंने अर्हतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। उन्हें (एक आदि व्रत और उनके प्रयासों के फलस्वरूप), भगवान (बुद्ध) ने जेतवन में आयोजित सभा में, कुलीन कुल के भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया। [2] और वे, निर्वाण के आनंद में, फल प्राप्ति के आनंद में रहते हुए, वन में, किसी वृक्ष के नीचे, किसी एकांत स्थान पर, हमेशा यह उद्घोष करते रहते थे: 'आह, क्या आनंद है! आह,

क्या आनंद है!' अब भिक्षुओं ने उन्हें सुनकर भगवान (बुद्ध) से कहा; जब भद्दिया को बुलाया गया, तो उसने अपनी इस आदत को स्वीकार करते हुए कहा: 'हे प्रभु, [316] पहले जब मैं अपने राज्य पर शासन कर रहा था, तब मुझे पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त थी, फिर भी मैं हमेशा भयभीत, घबराया हुआ और अविश्वासी रहता था। लेकिन अब जब मैंने सब कुछ त्याग दिया है, तो मैं उस अवस्था में नहीं हूँ।' और भगवान (बुद्ध) के समक्ष उसने अपनी 'सिंह गर्जना' इस प्रकार की:

[842] यतौ मे हत्थिगिवय सुखुमा वत्थ पधारिता,॥
सालिनां ओदानो भुट्टो सुसीमासुपासेकानो॥ ॥

[843] सोऽज्जा भद्दो सात्तिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[844] पांसुकुलि साततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[845] पिण्डपति सततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[846] तेसिवरि सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[847] सपादनचारि साततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[848] एकासनि सततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[849] पट्टापिंडी सततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[850] खलूपच्चभट्टी सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[851] अरन्निको साततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[852] रुक्खामूलिको सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[853] अब्भोकसी सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[854] सोसानिको सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[855] यथासंथतिको सततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[856] नेसज्जिको सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥

झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[857] अप्पिचो सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[858] संतुथहो सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[859] पविवित्टो सातटिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[860] असंसाथो सातितिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[861] अरद्धवीरियो सततिको उंचापत्तगते1 रतो,॥
झायति अनुपादनो पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[862] हित्वा सतापाला काअसाṃ सोवनाअ सताराजिकाṃ,॥
अग्गहिं मत्तिकापट्टं इदं दुतियाभिसेकनां.॥ ॥

[863] उच्चे मांडलिपाकरे दहामातालाकोथके,॥
रक्खितो खग्गहत्थेहि उत्तासंं विहारिं शुद्ध॥ ॥

[864] सोऽज्जा भद्दो अनुत्रासि पहिनाभयभेरवो,॥
झायति वनमोगयः पुत्तो गोधाय भाद्दियो॥ ॥

[865] शिलाखंडे पतिथया सतिṃ पण्णौ च भवायौ,॥
पापुणिं अनुपुब्बेना सब्बासंयोजनकखायं' ति.॥ ॥

[842]
मेरे हाथियों पर सवार होते समय मुझे कितना नाजुक वस्त्र पहनना पड़ता था,
मेरे भोजन में कितना शानदार व्यंजन मिलता था,
जो चावल और मांस से तैयार किया जाता था! [3]

[843] आज एक सुखी विजेता, [4]
अपने कटोरे में जो कुछ बचा है उससे प्रसन्न होकर ,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[844] फटे-पुराने वस्त्र पहने, और
अपने कटोरे में भरे टुकड़ों से संतुष्ट होकर,
ध्यान में लीन, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[845] प्रतिदिन भिक्षा मांगते हुए और
अपने कटोरे में जो कुछ भी भरा होता है, उससे संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में लीन, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है। [5]

[846] तीन वस्त्रों में, और कुछ नहीं, और
अपने कटोरे में भरे हुए टुकड़ों से संतुष्ट होकर,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[847] बारी-बारी से प्रत्येक घर में जाकर, और
अपने कटोरे में जो कुछ भी बचा है उससे संतुष्ट होकर,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[848] दिन में एक अच्छा भोजन करके, [6] और
अपने कटोरे में बचे-खुचे टुकड़ों से संतुष्ट रहकर,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[849] केवल कटोरे से खाते हुए और
अपने कटोरे में बचे हुए टुकड़ों से संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[850] भोजन के बाद निःसंकोच करते हुए और अपने कटोरे में बचे-खुचे टुकड़ों से संतुष्ट रहते हुए , ध्यान में लीन , कुछ भी न पकड़ते हुए, गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[851] एकांत जंगलों में रहते हुए और
अपने कटोरे में जो कुछ भी भरा है, उससे संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[317] [852] वृक्ष की छाया में आश्रय लेकर [7] और
अपने कटोरे में जो कुछ भी बचा है उससे संतुष्ट होकर,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[853] खुले आकाश के नीचे, बिना आश्रय के,
अपने कटोरे में जो कुछ भी भरा है, उससे संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[854] श्मशान घाटों में रहते हुए और
अपने कटोरे में जो कुछ भी भरा होता है, उससे संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में लीन, कुछ भी ग्रहण न करते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[855] चाहे कहीं भी बैठा रहे और बना रहे,
अपने कटोरे में जो भी जूठा भरा हो, उससे संतुष्ट,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,

गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[856] बैठने की मुद्रा में विश्राम करते हुए, [8] शेष,
अपने कटोरे में भरे हुए टुकड़ों से संतुष्ट,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[857] सरल और कम ही उसकी ज़रूरतें हैं और शेष,
जो कुछ उसका कटोरा भरा है उससे संतुष्ट, ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[858] मन से संतुष्ट, शांत और
अपने कटोरे में भरे हुए टुकड़ों से प्रसन्न रहते हुए,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[859] एकांत में, बहुत अकेला और
अपने कटोरे में जो कुछ भी भरा है, उससे संतुष्ट होकर,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[860] विरक्त, मनुष्यों से अलग और
अपने कटोरे में भरे टुकड़ों से संतुष्ट,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[861] उमंग भरी ऊर्जा के साथ [9] और
अपने कटोरे में जो कुछ भी बचा है उससे संतुष्ट रहते हुए,
ध्यान में, कुछ भी न पकड़ते हुए,
गोधा का पुत्र भद्दिया रहता है।

[862]
सोने और लाख से बने महंगे बर्तनों का त्याग करके ,
मैंने इस मिट्टी के कटोरे को पकड़ा, और इस प्रकार दूसरी बार
अभिषेक का अभिषेक प्राप्त किया। [10]

[863] ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरे,
और ऊँचे पहरेदार बुर्जों वाले शक्तिशाली द्वारों से घिरे
, और हाथों में तलवार लिए सशस्त्र पुरुषों से घिरे,
मैं डर के मारे जीने का आदी था।

[318] [864] आज एक खुशहाल विजेता, देखो,
आराम से, सभी भय और डर दूर,
वन ध्यान में डूबा हुआ है
गोधा का पुत्र भद्दिया।

[865] नैतिक संहिता पर दृढ़ रूप से स्थापित,
स्पष्टता [11] और अंतर्दृष्टि में प्रशिक्षित,

उचित क्रम में मैंने जीता है [12] हर बंधन के साथ मुक्ति, चला गया!

[1] मुझे कहीं और गोधों के बारे में जानकारी नहीं है, लेकिन काली का उल्लेख संग्य, श्लोक 396 में मिलता है, जहाँ उन्हें कपिलवस्तु में भगवान (बुद्ध) के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और प्रथम मार्ग (सोतापत्ति/निर्वाणिक समाधि) में विश्वास रखने वाली के रूप में उनकी आस्था की प्रशंसा की गई है। उन्हें कालीगोध साकीयं के रूप में वर्णित किया गया है और 'गोधे' कहकर संबोधित किया गया है। यह स्पष्ट नहीं है कि राजा भद्दिया और सुद्धोदन के बीच क्या राजनीतिक संबंध थे, जिन्हें दीघ-निकाय में केवल राजा कहा गया है ; महाराज नहीं , जैसा कि इस टीका में एक बार कहा गया है। तुलना करें: राइस डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ 19 आदि। भद्दिया की कहानी उदाना, द्वितीय 10 में मिलती है।

[2] अंग. निक., i. 23. ऐसे लोगों को और भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तुलना करें बहनें, आयत 517; मज्झ. निक., iii. 129 f.

[3] निर्दिष्ट चीजें इन सभी मामलों में विलासितापूर्ण जीवन के प्रकार हैं (टिप्पणी)।

[4] यहां भड्डा-भड्डिया पर एक शब्द-नाटक है ।

[5] प्रत्येक गाथा में कोरस की तीन पंक्तियों को समझना चाहिए। [संपादक: यहाँ पूरा किया गया]

[6] एकासनी: दिन में केवल एक 'बैठकर भोजन करना'।

[7] यानी, छत के बजाय।

[8] श्लोक 844-856 तेरह दकुटांगों में से बारह को सूचीबद्ध करते हैं, या भिक्षुओं के लिए वैकल्पिक अतिरिक्त तपस्या। मिलिंद, ii. 268 में सूचीबद्ध। देखें मज्झ. निक., 77वां सूत्र।

[9] श्लोक 857-861 उन प्रथाओं को संदर्भित करते हैं जो सभी भिक्षुओं पर बिना विकल्प के अनिवार्य हैं।

[10] श्लोक 97, एक पूर्व राजकुमार द्वारा भी कहा गया।

[11] सती, जो बुद्धिमान जागरूकता है। देखें श्लोक 794, n.

[12] इस 'उत्तराधिकार' पर, राइस डेविड्स, अमेरिकन लेक्चर्स, पृ. 141-150 देखें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(255): अंगुलिमाल

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (255) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
255. अंगुलिमाला
बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म ब्राह्मण (पुजारी) भगव [1] के पुत्र के रूप में हुआ , जो कोसल के राजा के पुजारी थे। उनके जन्म की रात शहर के सभी कवच चमक उठे। [2] राजा का राजकीय कवच भी चमक उठा, जिसे देखकर राजा बिस्तर पर लेटे-लेटे सो नहीं सके, बल्कि घबरा गए और भयभीत हो गए। उस रात पुजारी ने नक्षत्रों का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि उनके पुत्र का जन्म चोरों के नक्षत्रों के संयोग में हुआ है। [3] भोर होते ही वे राजा के पास गए और पूछा कि क्या उनकी नींद अच्छी रही। राजा ने उत्तर दिया, 'हे गुरुजी, मैं कैसे अच्छी नींद सो सकता था? मेरा कवच तो पूरी रात चमकता रहा। अब इससे क्या संकेत मिलता है?' [319] 'महाराज,

भयभीत न हों, मेरे घर में एक बालक का जन्म हुआ है। उनके प्रभाव से पूरे शहर के कवच चमक उठे।' 'तो फिर वह क्या बनेगा, गुरुजी?' 'बालक चोर बनेगा।' 'अकेला चोर, या किसी गिरोह का सरदार?' 'अकेले ही, प्रभु।' 'क्या हमें उसे मार नहीं डालना चाहिए?' 'यदि अकेले ही, तो उसे काबू में रखा जा सकता है।'

क्योंकि वह जन्म से ही राजा के मन को चिढ़ाने वाला था, इसलिए उसका नाम हिंसक (हिंसक) रखा गया। लेकिन बाद में जब जो दिखाई देता था वह दिखना बंद हो गया, तो वह अहिंसक (अहिंसक) के नाम से जाना जाने लगा। [4] अपने पूर्व कर्मों के फलस्वरूप उसमें सात हाथियों के बराबर बल था। और जब वह तकशिला में प्रथम गुरु के अधीन अध्ययन कर रहा था, तो वह आदरपूर्वक गुरु और उनकी पत्नी की सेवा करता था, जिससे वह अक्सर उनके साथ भोजन आदि करता था। लेकिन अन्य ब्राह्मण (पुजारी) युवक उसे सहन नहीं कर सके, [5] और अंततः उन्होंने गुरु को उसके विरुद्ध भड़काकर उसके और ब्राह्मण (पुजारी) गुरु के बीच कलह उत्पन्न कर दी। अपने शिष्य के अत्यधिक बल के कारण, ब्राह्मण (पुजारी) ने उसके विनाश की एक योजना बनाई और कहा: 'अहिंसक, अब तुम्हारा मेरे शिष्य के रूप में अध्ययन समाप्त हो गया है: मुझे मेरा मानदेय दे दो।' 'बहुत अच्छा, गुरुजी, आप इसे कैसे लेंगे?' 'मुझे एक हजार मनुष्य की दाहिनी उंगलियां ला दो।' क्योंकि उसे उम्मीद थी कि अहिंसक शर्म से केवल एक को ही लाएगा, और तब उसे दंडित किया जा सकेगा। इसी कारण अहिंसक का लंबे समय से संचित निर्ममता प्रकट हुई, और कवच पहनकर वह कोसल के जालिनी वन [6] में गया, और मुख्य मार्ग के निकट एक चट्टान से राहगीरों को देखता रहा, और नीचे झपट्टा मारकर उनकी उंगलियां काट कर एक पेड़ पर लटका देता था, जब तक कि गिद्धों और कौवों ने हड्डियों से मांस नोच न लिया। फिर उंगलियों की हड्डियों की माला बनाकर उसने उसे अपने कंधों पर इस प्रकार लटका लिया मानो वह बलिदान के लिए तैयार हो रहा हो। उस समय से उसे उंगलियों की मालाधारी (अंगुलिमाला) कहा जाने लगा। और जब उसके कृत्यों के कारण मार्ग निषिद्ध हो गया, तो वह गांवों में प्रवेश कर गया, और वे गांव वीरान हो गए। तब राजा ने घोषणा की: ' एक मजबूत सेना भेजो ताकि हम डाकू को शीघ्र पकड़ सकें।' और अंगुलिमाला की माता, जो मंतानी ब्राह्मण (पुजारी) थीं, [7] ने अपने पति से कहा: 'हमारा बेटा चोर है और तरह-तरह के अपराध करता है। उसे बुलवाओ, उसे ये सब करने से रोको।' लेकिन उसने उत्तर दिया: 'मुझे ऐसे बेटों से कोई लेना-देना नहीं है; राजा जो चाहे करे।' तब वह प्रेमवश भोजन सामग्री लेकर निकली और बोली: 'मैं अपने बेटे को लाकर उसे रोकूंगी।'

भगवान बुद्ध ने सोचा, 'यदि वह उसके पास आई, तो अंगुलिमाला उसे मारकर अपनी हजार उंगलियां पूरी कर लेगा। यह उसका अंतिम जन्म है। यदि मैं नहीं गया तो बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है। मैं उससे बात करूंगा।' अतः भोजन के बाद वे तीस मील की दूरी तय करके ग्वालों और अन्य लोगों को रास्ता दिखाते हुए जालिनी वन की ओर बढ़े। अंगुलिमाला ने अभी-अभी अपनी माता को देखा था और अपनी संख्या पूरी करने के लिए उसकी उंगली के बारे में सोच रहा था, तभी भगवान बुद्ध उनके बीच प्रकट हुए। तब पुत्र ने कहा, 'मैं अपनी माता को एक उंगली के लिए क्यों मारूं? मेरी माता को जीने दो! मैं तो उस भिक्षु की उंगली छीनने ही जा रहा हूं।' और अपनी तलवार निकालकर वह भगवान बुद्ध के पीछे चल पड़ा। तब भगवान ने ऐसी जादुई शक्ति का प्रयोग किया कि अंगुलिमाला अपनी सामान्य गति से चलते हुए भी दौड़कर भी उन्हें पकड़ नहीं सका, बल्कि हांफता हुआ, पसीने से तरबतर, पैर उठाने में असमर्थ, एक खंभे की तरह खड़ा रहा और चिल्लाया: 'रुको, भिक्षु!' भगवान ने कहा: 'यद्यपि मैं चल रहा हूँ, फिर भी मैं रुक गया हूँ, और तुम भी, अंगुलिमाला, रुक जाओ!' तब चोर ने सोचा: 'ये शाकियान साधु सच कहते हैं, फिर भी वह कहता है कि वह रुक गया है, जबकि मैं रुका हूँ। उसका क्या मतलब है?' इसलिए उसने पूछा

[866] गच्चाṃ वदेसी समाना ṭहितोऽम्हि॥
मामौ च ब्रूसि हितितं अथितो' ति,॥ [81] पुच्छमि तं समं एतम् अत्थौ॥
कस्मा अट्ठितोऽमहि.॥ ॥

[866.] हे साधु, तुम जो चल रहे हो, कहो:
'देखो! मैं रुक गया हूँ!'
और मुझसे कहते हो, कौन रुका है,
मैं तो नहीं रुका!
हे साधु, मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम्हारे शब्दों का क्या अर्थ है?
तुम कैसे कहते हो कि तुम रुक गए हो, पर मैं नहीं रुका?

[321] तब परम पूज्य (बुद्ध) ने उत्तर दिया:

[867] हितो अहं अंगुलिमाला सब्बादा॥
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डौ,॥

तुवं च पनेसु आसननतोऽसि,॥
तस्मा ठीतोऽहाऽ तुवं अथितोऽसि.॥ ॥

[867.] हाँ, मैंने रुक गया हूँ, अंगुलिमाला, हमेशा के लिए,
सभी जीवित प्राणियों के प्रति हिंसा का त्याग करते हुए;
तुम अपने साथी मनुष्यों के विरुद्ध हाथ नहीं उठाते,
इसलिए मैं रुक गया हूँ, परन्तु तुम अभी भी आगे बढ़ते हो।

इसी कारण अंगुलिमाला ने, जब भगवान बुद्ध वहाँ खड़े होकर अपने सच्चे गुणों को प्रकट कर रहे थे, अपने बारे में सुनी हुई अफवाहों को याद किया और उनकी अंतर्दृष्टि परिपक्व हो गई, जिससे उनके भीतर परमानंद छा गया, मानो जल की चादर पूरी पृथ्वी पर फैल गई हो। और मन ही मन सोचते हुए, 'इस सिंह की दहाड़ कितनी महान है। मुझे लगता है कि यह समना गौतम (बुद्ध) के अलावा और कोई नहीं हो सकता; भगवान बुद्ध मेरी सहायता के लिए यहाँ आए हैं!' उन्होंने कहा: -

[868] सिरास्सो वात मे महितो महेसि॥
महावनाऽ समणो पच्चुपदि,॥
सोऽहाऽ चजिस्सामि सहससापाऽ॥
सुत्वान गाथां तव धम्मयुत्तं॥ ॥

[869] इति एव कोरो असीम अवुधं च॥
सोब्बे पापते नरके अनवकासी,॥
अवंदी कोरो सुगतस्सा पदे,।
तत्थेव पब्बज्जं अयाचि बुद्धौ.॥ ॥

[870] बुद्धो च खो करुणिको महेसि॥
यो सत्था लोकास्सा सदेवकस्सा,॥
तम् 'एहि भिक्खु' ति तदा अवोका;।
एसेवा तस्स अहु भिक्खुभावो॥ ॥

[871] यो पुब्बे पमज्जित्वाना पच्चा सो न पपमज्जति,॥
सोऽमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो वा कैंडिमा॥ ॥

[872] यस्सा पापां कटै कम्मं कुसलेना पिथियाति,॥
सोऽमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो वा कैंडिमा॥ ॥

[873] यो हवे दाहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने,॥
सोऽमं लोकं पभसेति अब्भा मुत्तो वा कैंडिमा॥ ॥

[868.] हे महान ऋषि, बहुत समय हो गया है जब से मैंने उनका आदर किया है,
एक साधु, इस महान वन में अपना मार्ग पा गया है! देखो! मैं तुम्हारे इस श्लोक में निहित धार्मिक उपदेश को सुनकर
हज़ार अपराध सहर्ष छोड़ दूँगा ।

[869.] और इसलिए [8] डाकू ने [9] अपना कवच और अपनी तलवार उतार दी
और उन्हें एक चट्टान से नीचे, एक गड्ढे में, एक खाई में फेंक दिया।
स्वागत करने वाले के सामने, विनम्र पूजा करते हुए, चोर ने
तुरंत बुद्ध से (भिक्षु संघ में) भर्ती होने का अनुरोध किया।

[870.] इसी कारण बुद्ध, हे परम दयालु ऋषि,
समस्त जगत और समस्त देवताओं के स्वामी (बुद्ध),

ने उनसे ये शब्द कहे: 'हाँ, आओ, भिक्षु!'
और इसी कारण उन्हें भिक्षु का दर्जा दिया गया।

[871.] जो पूर्व में फिजूलखर्ची करता था,
बाद में ऐसा समय नहीं व्यतीत करता,
वह संसार में प्रकाश बिखेरता है,
जैसे बादल भरे आकाश में चंद्रमा मुक्त होकर निकलता है।

[872.] जिसके भी बुरे कर्म उसने किए हैं,
अच्छे जीवन से बंद और सील हो गए हैं, [10] वह दुनिया भर में प्रकाश बिखेरता है
जैसे चंद्रमा बादलों से घिरे आकाश में मुक्त होकर आता है।

[873.] निश्चय ही वह भिक्षु जिसने यौवन में
स्वयं को बुद्ध के नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए समर्पित कर दिया,
वह संसार में प्रकाश बिखेरता है,
जैसे बादल भरे आकाश में चंद्रमा स्वतंत्र रूप से निकलता है।

इस प्रकार, निर्वाण के आनंद और सहजता में लीन होकर, वह भिक्षा मांगने के लिए नगर में गया। और लोगों ने उस पर कभी मिट्टी का ढेला तो कभी डंडा फेंका, जिससे उसके सिर पर चोट लगी और वह टूटे हुए कटोरे [11] के साथ विहार (मठ) लौट आया और भगवान (बुद्ध) की शरण ली। बुद्ध ने उससे कहा: 'इसे सहो, ब्राह्मण (ऋषि), तुम्हें इसे सहना होगा। तुम्हारे कर्मों का फल, जिसके लिए तुम्हें सदियों तक नरक में जलाया जा सकता था, तुम अब इस जीवन में भोग रहे हो।' तब थेरा ने सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी भेद के प्रेम का भाव धारण करते हुए [12] कहा:

[874] दिसा हि मे धम्मकथां सुनंतु॥
दिसा हि मे युञ्जन्तु बुद्धसासने,॥
दिसा ही मे ते मानुषे भजन्तु॥
ये धम्मम एवादपयन्ति संतो॥ ॥

[875] दिसा ही मे खंतीवादनअविरोधप्पसाअसिणṃ,॥
सुनन्तु धम्मं कालेन तं च अनुविधियन्तु॥ ॥

[876] ना ही जातु सो ममाṃ हिṃसे अण्णाṃ वा पना कांसिनाṃ,॥
पप्पुय्य परमं शांतिं रक्खेया तसथवारे॥ ॥

[82] [877] उदकाऽ हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनाऽ,॥
दारुं नमयन्ति तच्चका, अत्तानां दमयंति पंडिता॥ ॥

[878] दानें'एके दमयंती अंकुसेहि कसाहि च:॥
एडंडेन असत्थेन अहं अंतोमि तदिना॥ ॥

[879] 'अहिंसको' ति मे नामाṃ हिअसाकस शुद्ध सातो,॥
अज्जाहं सच्चनामोऽम्हि, न नाण् हिंसामि किञ्चिनौ ॥॥ ॥

[880] कोरो अहाṃ प्योर असिṃ अगुलिमलो' ती विसुतो,॥
वुयहमानो महोघेन बुद्धं शरणं अगमः॥ ॥

[881] लोहितापाणि शुद्ध असिṃ अंगुलिमालो' ति विसुतो,॥
शरणागमनं पस्सा; भवनेति समुहता.॥ ॥

[882] तदिसैं कम्मं कतवना बहुं दुग्गतिगामिनाऽ॥
फूटथो कम्मविपाकेण अन्नो भुञ्जामि भोजनान्॥॥ ॥

[883] पमादं अनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना॥
अप्पमादां च मेधावी धनं सेठं वा रक्खति॥ ॥

[884] मा पमादम अनुयुञ्जेथा मा कामरतिसंथवं,॥
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति परमं सुखं॥ ॥

[885] स्वागताm̩ नपागाताm̩, न'एताm̩ दुम्मंतिताm̩ मामा,॥
सङ्विभत्तेसु धम्मेसु यं सेठठं तद् उपागमौ॥॥ ॥

[886] स्वागताm̩ नपागाताm̩ एन'एटाm̩ दुम्मंतिताm̩ मामा,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा, कतं बुद्धस्स ससाणं॥ ॥

[887] अरण्ये रुक्खमुले वा पब्बतेसु गुहासु वा,॥
तत्थ तत्थेव अट्ठसिउ उब्बिग्गमानसो तदा॥ ॥

[888] सुखं सयामि थयामि, सुखं कप्पेमि जीवितं,॥
अहत्थपासो मरास्साः अहो सत्थानुकम्पितो॥ ॥

[889] ब्रह्मजाको शुद्ध असिm̩, उडिको उभातो अहुm̩,॥
सोऽज्जा पुत्तो सुगात्स्स धम्मराजस्सा सत्थुनो॥ ॥

[890] वितातन्हो अनादानो गुत्तदवारो सुसावुतो,॥
अघमूलं वधित्वाना पत्तो मे आसवक्खयो॥ ॥

[891] पैरिसिणो माया सत्था, कतौ बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो, भवनेति समुहता' ति.॥ ॥

[874.] हे मेरे शत्रुओं, कृपया मुझे बताए गए धम्म मार्ग को सुनें,
और सुनकर मेरे साथ बुद्ध के नियमों का पालन करें!
हे मेरे शत्रुओं, कृपया शांतिप्रिय लोगों की सेवा करें,
जिन्होंने उस पवित्र धम्म मार्ग को अपने हृदय में बसा लिया है!

[875.] हे मेरे शत्रु समय-समय पर
उन लोगों से धम्म (मार्ग) सुन लें जो कोमलता का गुणगान करते हैं और
स्नेह की प्रशंसा करते हैं, और जो वे सुनते हैं, उसके अनुसार उनके कर्म भी उचित होते हैं!

[323] [876.] ऐसा शत्रु मुझे,
या किसी भी अन्य प्राणी को, चाहे वह कहीं भी पाया जाए, हानि नहीं पहुँचाएगा।
वह स्वयं उस शांति को प्राप्त करेगा जो अवर्णनीय है,
और इस प्रकार प्राप्त करके सभी अच्छे और बुरे का पालन-पोषण करेगा। [13]

[877.] नहर बनाने वाले धारा का नेतृत्व करते हैं,
धनुष बनाने वाले तीर के शाफ्ट को सीधा करते हैं,
बढ़ई लकड़ी के तख्ते को आकार देते हैं,

स्वयं ही वह है जिसे धर्मनिष्ठ वश में करते हैं।

[878.] कुछ प्राणियों को बलपूर्वक वश में किया जाता है,
कुछ को हुक से, और कुछ को कोड़ों से;
परन्तु मैं ऐसे व्यक्ति द्वारा वश में किया गया
जिसे न तो लाठी की आवश्यकता थी और न ही तलवार की।

[879.] निर्दोषता! यही नाम मैं धारण करता हूँ, [15] जबकि अतीत में मैं हानिकारक था;
आज मुझे सबसे सही नाम दिया गया है,
क्योंकि अब मैं किसी को चोट नहीं पहुँचाता।

[824] [880 .] एक समय मैं एक घृणित डाकू था, जिसे
उंगली-माला के नाम से जाना जाता था,
जब तक कि भयानक बाढ़ के बीच मेहनत करते हुए,
मैंने बुद्ध की शरण ली।

[61.] एक समय मेरे हाथ खून से सने हुए थे;
मेरा नाम उंगलियों की माला के नाम से जाना जाता था।
हे देखो, मैंने जो शरण पाई है,
हर लालसा [16] जड़ से उधेड़ दी गई है!

[882.] मैं, जिसने ऐसे भयानक कर्म किए थे,
अपने विनाश के स्थान की ओर तेजी से जा रहा हूँ,
मेरे ऊपर उन सभी कर्मों का परिणाम
यहाँ तक भी पड़ा है—और ऋणमुक्त होकर
अब मैं अपना नियत हिस्सा लेता हूँ। [17]

[883.] अपनी जान को व्यर्थ जाने देना मूर्खता है:-
ऐसे लोग ही समझते नहीं हैं।
बुद्धिमान व्यक्ति गंभीरता से काम लेता है,
मानो वह अपनी सबसे बड़ी संपत्ति की रखवाली कर रहा हो।

[884.] अपने जीवन को व्यर्थ के कामों में मत लगाओ,
न ही इंद्रियों के सुखों में लिप्त रहो।
जिसने गहन ध्यान किया,
उसे ही परम आनंद प्राप्त होगा।

[885.] हे स्वागत [18] यह जो आया और न ही गलत आया!
हे मुझे दी गई सलाह कितनी अच्छी थी!
मनुष्यों के बीच प्रचलित अनेक सिद्धांतों में से,
निश्चित रूप से यह सबसे अच्छा था जिसे मैंने खोजा और पाया।

[886.] हे स्वागत है इस आने वाले का, जो व्यर्थ नहीं आया!
हे मुझे दी गई सलाह कितनी अच्छी थी!
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है।

[887.] घने जंगल में, किसी वन वृक्ष के नीचे,

या पर्वत की गुफा में, क्या यह यहाँ है, क्या यह वहाँ है,
मैं ऐसे ही खड़ा रहा और अपने धड़कते दिल को धड़कने दिया

[325] [888.] आनंदित होकर मैं विश्राम करता हूँ,
प्रसन्न होकर उठता हूँ, प्रसन्न होकर दिन गुजारता हूँ,
बुराई के जाल से बच निकला हूँ - आह! देखो
भगवान (बुद्ध) की मधुर करुणा मुझ पर!

[889.] मैं एक अच्छे ब्राह्मण (पुजारी) वंश का पुत्र था;
शुद्ध और उच्च वंश का, इस तरफ से उस तरफ से।
आज ही के दिन स्वागत करने वाले ने मुझे पुत्र कहा, [19] भगवान (बुद्ध), हाँ, धम्म के मार्ग के स्वामी।

[890.] सारी लालसा दूर हो गई है, कहीं भी मेरा कोई बंधन नहीं है।
मैंने द्वारों की रक्षा की है और अपनी इंद्रियों को अच्छी तरह नियंत्रित किया है।
इस संसार के दुखों की जड़ को उखाड़ फेंकते हुए,
मैं हर विष-दाग (पाप) से मुक्त हूँ। [20]

[891.] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं।
मैंने अपने ऊपर से भारी बोझ उतार दिया है:
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है। [21]

[1] भगव से पहचान योग्य नहीं, जिनके आश्रम में राजकुमार सिद्धार्थ (जो बुद्ध बने) ने अपने संन्यास के बाद पहली बार अध्ययन किया था। सिस्टर्स, पृष्ठ 2 देखें।

[2] मैंने इस विचित्र कथा को - किसी उपनाम की व्याख्या करने के लिए गढ़ी गई? - पूरी तरह से प्रस्तुत किया है, ताकि बुद्धघोष (मज्झिमा निक्यूया पर टीका, 'सूत्र 86') और धम्मपाल के विद्वतापूर्ण पत्रकारिता की तुलना की जा सके। 'दोनों वृत्तांत विवरणों में भिन्न हैं, और संभवतः परस्पर स्वतंत्र और लगभग समकालीन हैं। यह कहानी लोकप्रिय थी; यह अवदान-शतक (संख्या 27) में मिलती है, और इसका उल्लेख (मिलिंद, ii. 355) में किया गया है। धम्मपद, श्लोक 173, 422, इसका उल्लेख करते हैं, लेकिन टीका और जातक V., संख्या 537, दोनों बुद्धघोष के वृत्तांत का उल्लेख करते हैं। क्या शिशु जेंता का भाई था, CCXVIII?

[3] इस 'ब्राह्मण (पुजारी) कला' पर, देखें संवाद , i. 16 f., 20 f. मुझे नहीं पता कि किस तारे या तारों का मतलब है।

[4] हमारे सबसे करीबी समकक्ष नोसेन्स और इनोसेंस हैं, जिनमें से बाद वाला कभी एक पसंदीदा ईसाई नाम था। डॉ. न्यूमैन का वैगनरियन 'फ्रीडरिच,' आदि, अधिक सटीक नहीं है। पाप. सूद. के अनुसार, उनका नाम अहिंशका, या अभिंशका, पहले से ही था।

[5] मज्झिमा निकया टीका में वे 'विदेशी' (बाहिरका) थे ।

[6] 'ट्रैप वुड।'

[7] तुलना करें IV

[8] टीकाओं के अनुसार, डाकू ये शब्द वहीं और उसी समय बोलता है। श्लोक 871 में अंगुलिमाला का अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में विजय गीत शुरू होता है।

[9] अनवाकासी (पाप सूद, अनवाकारी) को खिपी, चदेसी के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

[10] पिथियाति टीका एक दरवाजे के बंद होने से जुड़ती है।

[11] मज्झिमा निकया अधिक रंगीन चित्र प्रस्तुत करता है: 'टूटे हुए सिर और बहते खून के साथ, कटा हुआ और कुचला हुआ।' धम्मपद टीका, iii., 169 में, उसे इन छंदों का उच्चारण करने के बाद मरते हुए दर्शाया गया है।

[12] तुलना करें. I., पृ. 4, 5, n. 1.

[13] ताआ-थावरे: चाइल्डर्स में 'कमजोर-मजबूत', लेकिन निश्चित रूप से एक संदिग्ध अर्थ वाला शब्द। धम्मपाल में 'सभी प्राणी' हैं। बुद्धघोष कहते हैं: तासा को सतण्हा, थावरा, नित्तण्हा (लालसा और उसके विपरीत) कहा जाता है ।

डॉ. न्यूमैन, जो इन तीनों गाथाओं में 'दिसा ' का अर्थ 'शत्रु' नहीं, जैसा कि दोनों टीकाओं में है, बल्कि आकाश की दिशाओं (दिसा, दिसायो) से लगाते हैं , अपने आप को 'दी लुफ्ते' की स्तुति में पूरी तरह से लीन कर देते हैं, जो पिछली शताब्दी के जर्मन रोमांटिक कवियों की शैली और शब्दों में है। परिणाम, थेरा की परंपरा के अनुरूप न होते हुए भी, कविता के रूप में अधिक सुंदर है, जैसा कि उनके उपहास करने वाले टीकाकारों ने कहा है। थेरा को इस बात का खेद है कि 'उनके अनेक पीड़ितों के रिश्तेदार' यह नहीं जानते कि वह कितना बदल गए हैं, और न ही उस चीज़ के गुणों को जानते हैं जिसने उन्हें बदला है।

[14] XIX देखें। [878] में छंद श्लोक में वापस आ जाता है। थेरा ने अपनी रक्षा (बुद्धघोष) और दूसरों को बुराई से बचाने (धम्मपाल) के लिए उपरोक्त बातें कहने के बाद, अब अपने पूर्ण किए गए कार्य की घोषणा की।

[15] 'मैं वहन करता हूँ' हमारी टीका से अधिक मेल खाता है, जो हिंसाका को थेरा का मूल नाम और अहिंसक को उनके धर्मांतरण पर दिया गया नाम बताती है। बुद्धघोष का संस्करण शायद अधिक तर्कसंगत है। देखें पृष्ठ 319, नोट 1। यह भी याद रखना चाहिए कि जब तक उन्होंने अपने महाविद्यालय का शुल्क चुकाने का प्रयास नहीं किया, तब तक उनका रिकॉर्ड बेदाग था।

[16] भवानत्ति, 'पुनर्जन्म का मार्गदर्शक' = तन्हा। श्लोक 604, n. 1 देखें।

[17] श्लोक 789 देखें।

[18] पिलिंडा-वाचा की कविता (IX.)

[19] धम्मपद टीका (iii. 170) में वर्णित है कि जब अंगुलिमाला का देहांत हुआ और भगवान (बुद्ध) ने इसके बारे में सुना, तो उन्होंने कहा: 'मेरे पुत्र, भिक्षुओं, परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके हो।' 'हे प्रभु, क्या वह व्यक्ति परिनिर्वाण प्राप्त कर चुका है जिसने इतने लोगों को मारा?' 'हाँ, उसने तब बुराई की जब उसका एक भी गुणी मित्र नहीं था, लेकिन जब उसे एक मिला, तो उसने पूरी लगन से प्रयास किया, इसी कारण उसकी बुराई अच्छाई से ढक गई।'

[20] तुलना करें. सोलहवीं.

[21] = श्लोक 604, 792.

संदर्भ:

मज्झिमा निकुइया, 'सुत्त 86' जातक वि., संख्या 537,

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

अंगुलिमाला

राजा पसेनादि कोसल की प्रजा में भगव गग्गा नाम का एक विद्वान ब्राह्मण (पुजारी) भी था, जो उनके शाही सहायक के रूप में सेवा करता था। भगव और उनकी पत्नी मंतानी का एक पुत्र हुआ। उस समय की प्रथा के अनुसार, उनके पिता ने नवजात शिशु की कुंडली बनाई। उन्हें यह जानकर गहरा आश्चर्य हुआ कि शिशु "अपराधी नक्षत्र" के अंतर्गत पैदा हुआ है, जिसके कारण उसमें अपराध की प्रवृत्ति विकसित होने की संभावना है।

उस सुबह जब पादरी राजा से मिलने आया और उनसे पूछा कि उनकी नींद कैसी रही, तो राजा ने बताया कि उनकी रात भयानक रही। राजा ने कहा, "मैं रात में जागा और देखा कि मेरे हथियार, जो मेरे बिस्तर के किनारे पड़े थे, तेज़ी से चमक रहे थे। क्या इसका मतलब मेरे राज्य या मेरे लिए कोई खतरा हो सकता है?"

भगगवा ने राजा को बताया कि पूरे शहर में ऐसी ही विचित्र घटनाएँ घटी हैं और इसका कारण उनका नवजात पुत्र है, जिसकी कुंडली में डाकुओं के लक्षण हैं। राजा ने भगगवा से पूछा कि क्या नक्षत्रों ने भविष्यवाणी की है कि लड़का एक अकेला डाकू बनेगा? भगगवा ने राजा को बताया कि वास्तव में नक्षत्रों ने भविष्यवाणी की है कि उनका पुत्र एकाकी अपराध का जीवन व्यतीत करेगा। भगगवा ने राजा से पूछा कि क्या उन्हें बच्चे को अभी मार देना चाहिए ताकि भविष्य में होने वाले अपराधों को रोका जा सके, यदि यह बच्चा जीवित रहा। राजा पसेनादि ने इस तथ्य पर विचार करते हुए कि बच्चा बड़ा होकर एक अकेला डाकू बनेगा, अपने पुरोहित को आदेश दिया कि वह बच्चे का सावधानीपूर्वक पालन-पोषण करे और उसे अच्छी शिक्षा दे ताकि इस भविष्यवाणी को टाला जा सके।

भगगवा और मंतानी ने बच्चे का नाम अहिंसक रखा, इस उम्मीद में कि नाम और अच्छे पालन-पोषण व शिक्षा से उसमें छिपी बुरी प्रवृत्तियाँ बदल जाएँगी। अहिंसक शारीरिक रूप से बलवान, बुद्धिमान और अच्छे व्यवहार वाला बच्चा बना। पढ़ाई में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के कारण उसके पिता ने उसे उच्च शिक्षा के लिए भारत के प्रसिद्ध प्राचीन विश्वविद्यालय तक्षशिला में भेज दिया। एक होशियार छात्र होने के कारण अहिंसक ने जल्द ही अन्य सभी छात्रों को पीछे छोड़ दिया और उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। कुछ ही समय में वह अपने शिक्षक का प्रिय बन गया। शिक्षक उसे अपने बेटे की तरह मानते थे और अक्सर उसे अपने घर भोजन करने के लिए आमंत्रित करते थे। अहिंसक की शैक्षणिक उत्कृष्टता और शिक्षक के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता ने उसके कई शत्रु बना दिए। उसकी सफलता से ईर्ष्या करने वाले उसके सहपाठियों ने मित्रता तोड़ने के लिए शिक्षक के मन में जहर घोलने की योजना बनाई।

उन्होंने अहिंसाका पर झूठे आरोप लगाकर शिक्षक के मन में संवेगपूर्ण विष डालना शुरू कर दिया। आरंभिक रूप से शिक्षक ने उनकी निंदा को अनसुना कर उन्हें फटकारा, परन्तु जब अधिकाधिक विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से वही कहानी लेकर उनके पास आने लगे तो उनका विश्वास डगमगा उठा। धीरे-धीरे उनके मन में संदेह का बीज बोया जाने लगा। क्या अहिंसाका उनके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा था? क्या वह उनके शिष्यों को अपने अधीन करके उनसे आगे निकलने की योजना बना रहा था? शिक्षक ने निश्चय किया कि स्वयं मारे जाने से पहले उन्हें अहिंसाका को मारना होगा। परन्तु अहिंसाका विशाल और बलवान था। उसे मारना आसान नहीं था। इसके अतिरिक्त, अहिंसाका की मृत्यु से किसी भी प्रकार का संबंध होने पर शिक्षक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती। शिक्षक ने अहिंसाका से छुटकारा पाने की एक योजना पर विचार किया, जिसे अब वे अपने लिए खतरा मानते थे, और यह योजना इस प्रकार बनाई गई कि उन पर कोई आरोप न लगे।

अहिंसक ने अभी-अभी अपनी पढ़ाई पूरी की थी। उस समय शिष्यों द्वारा गुरु को उपहार देकर उनका सम्मान करने की प्रथा थी। अहिंसक को इस सम्मानजनक प्रथा की याद दिलाते हुए, उन्होंने एक हजार उंगलियों की माला मांगी, जिनमें से प्रत्येक उंगली अलग-अलग व्यक्ति के शरीर से ली जानी थी। गुरु ने संभवतः गुप्त रूप से अहिंसक की कुंडली स्वयं बनाई थी, क्योंकि उस समय कुंडली विज्ञान काफ़ी प्रचलित था, और उन्होंने देखा था कि अहिंसक में आपराधिक प्रवृत्ति है। उन्हें यह भी आशंका थी कि जल्द ही अहिंसक

राजा के आदमियों द्वारा पकड़ा जाएगा और अपने अपराधों के लिए उसे मृत्युदंड दिया जाएगा। इसलिए, यह सोचकर कि उन्होंने अहिंसक को मारने की एक अचूक योजना बना ली है, उन्होंने अहिंसक के हिचकिचाने पर भी उपहार देने पर ज़ोर दिया।

अहिंसक एक ऐसे परिवार से थे जो अहिंसा में विश्वास रखता था। अपने माता-पिता और परिवार के मूल्यों को याद रखते हुए, अहिंसक ने यह भेंट देने से इनकार कर दिया। लेकिन गुरु ने ज़ोर देकर कहा कि उनसे यही अपेक्षा की जाती है और अगर वे यह भेंट नहीं देंगे तो उन्होंने जो कुछ भी सीखा है उसका कोई महत्व नहीं रह जाएगा, क्योंकि वे आदरणीय गुरु की इच्छा पूरी नहीं करेंगे। इसलिए अहिंसक को सहमत होना पड़ा।

इस समय अहिंसक की हिंसा की दबी हुई प्रवृत्ति जागृत हुई और उसके भीतर फूट पड़ी। पिछले जन्मों में वह बलवान और हिंसक था। वास्तव में, उसने मानव मांस खाया था और हत्या करने में आनंद लिया था। उसका अंधकारमय अतीत और करुणा का अभाव फिर से उभर आया और माता-पिता का अच्छा प्रभाव और परवरिश भुला दी गई। खतरे, रोमांच और हत्या के प्रति उसका प्रेम हावी हो गया। शवों से हजार उंगलियां इकट्ठा करने के बजाय, जो कब्रिस्तानों में मिल सकती थीं, उसने अपने गृह राज्य कोसला के जलिनी जंगल में अपराध का जीवन अपना लिया।

वहाँ वह एक ऊँची चट्टान पर रहता था और यात्रियों पर नज़र रखता था, जिन पर वह झपट्टा मारकर उन्हें मार डालता था। उन्हें मारने के बाद, वह प्रत्येक शिकार की एक उंगली काट लेता था। पहले वह उंगली को एक पेड़ पर लटका देता था ताकि पक्षी और अन्य जीव सड़ते हुए मांस को खा सकें, और फिर हड्डियों को पिरोकर एक माला बनाता था जिसे वह अपने गले में पहनता था। जल्द ही वह अंगुलिमाला, यानी "उंगलियों की माला" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

पूरा शहर दहशत में था। अंगुलिमाला की शक्ति और सामर्थ्य अजेय थी। कई लोगों ने इस खूंखार सीरियल किलर को पकड़ने की कोशिश की, लेकिन उसकी क्रूरता और अमानवीयता के आगे वे सब मारे गए। अंगुलिमाला को अपने क्रूर जीवन में आनंद आने लगा था और वह अपने अतीत के हत्या और क्रूरता भरे काले जीवन में पूरी तरह डूब चुका था। मौत के डर से कोई भी जंगल के पास जाने की हिम्मत नहीं करता था। अंगुलिमाला अपने शिकारों की तलाश में शहर के बाहरी इलाकों में जाने लगा। वह घरों में घुसने लगा और रात में शहर में छापा मारकर लोगों को मारने और उनकी उंगलियां निकालने लगा। भयभीत ग्रामीण अपने घर छोड़कर सावत्थी की राजधानी भाग गए। उन्होंने महल की दीवारों के बाहर डेरा डाला और राजा से शिकायत की कि अंगुलिमाला द्वारा शहर के लोगों को बेरहमी से मारा जा रहा है। इसलिए राजा ने उसे पकड़ने के लिए सेना तैयार की।

इस समय अंगुलिमाला ने गुरु को भेंट करने के लिए आवश्यक हजार उंगलियों में से 999 उंगलियां एकत्र कर ली थीं। अंगुलिमाला का असली नाम और वंश ज्ञात नहीं था, क्योंकि उसका रूप बदल चुका था। उसकी दाढ़ी और बाल उलझे हुए थे और वह बासी, सूखे खून से लथपथ था। उसके चारों ओर मृत्यु और कच्चे मांस की दुर्गंध फैली हुई थी। वह एक खूंखार, भयानक हत्यारे जैसा दिख रहा था। सौम्य स्वभाव वाले अहिंसक को पहचानना असंभव था।

अंगुलिमाला द्वारा मचाए गए आतंक की खबर अंततः उसके माता-पिता तक पहुँच गई। अंगुलिमाला को संदेह था कि वही उनका बेटा है जो तकशिला विश्वविद्यालय से कभी वापस नहीं लौटा। उसकी माँ ने अपने पति से अपने बेटे को वापस लाने की विनती की। लेकिन भगगवा को ऐसे बेटे की कोई ज़रूरत नहीं थी। उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "उसे पकड़ लिया जाए, राजा के आदमियों द्वारा उसे मार डाला जाए।" मंतानी ने अपने बेटे को बचाने के लिए अकेले जंगल में जाने का फैसला किया। एक माँ का अपने बच्चे के प्रति

अटूट प्रेम उसे उम्मीद थी कि वह अंगुलिमाला को अपना रास्ता सुधारने के लिए मना लेगी, क्योंकि राजा उसे पकड़ने और मारने के लिए अपनी सेना तैयार कर रहा था।

अंगुलिमाला अपने आखिरी शिकार की बेताब तलाश में था। वह अपराध की दुनिया से ऊब चुका था और अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बेचैन था। दूर से उसने जलिनी जंगल में स्थित अपने ठिकाने की ओर आती एक महिला को देखा। पहाड़ से नीचे उतरते हुए वह उस बूढ़ी औरत का पीछा करने लगा, जिसे उसने जल्द ही अपनी माँ के रूप में पहचान लिया।

उस समय बुद्ध करुणामयी दृष्टि से संसार का अवलोकन कर रहे थे, ज्ञानवान और जरूरतमंद लोगों की तलाश में थे जिनकी सहायता की जा सके। उन्होंने अंगुलिमाला को अपनी माता की अंतिम हत्या के लिए भागते हुए देखा। उन्होंने यह भी देखा कि अंगुलिमाला के भीतर मोक्ष प्राप्त करने का गुण मौजूद था। यह अंगुलिमाला से बुद्ध की पहली मुलाकात नहीं थी। अनेक पूर्व जन्मों में उनका मिलन हुआ था और बुद्ध ने अपने मन की शक्ति से अंगुलिमाला के शारीरिक बल पर विजय प्राप्त की थी। एक बार तो अंगुलिमाला बोधिसत्व का मामा भी था (जातक 513)। वे मातृहत्या के जघन्य अपराध को रोकने के लिए जलिनी वन की ओर चल पड़े। नगरवासियों ने उन्हें उस कुख्यात हत्यारे के बारे में बताकर आगे बढ़ने से रोकने का प्रयास किया।

उनकी विनती अनसुनी करते हुए बुद्ध घने जंगल में चले गए। अंगुलिमाला और उसकी माता के बीच खड़े होकर उन्होंने अंगुलिमाला का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। शांत और गंभीर बुद्ध को देखकर अंगुलिमाला मुड़ गया। अंगुलिमाला ने सोचा, "मैं अपनी माता को क्यों मारूँ? मेरा अंतिम शिकार तो यह तपस्वी होगा जो शांति से मेरे मार्ग में खड़ा है।"

अंगुलिमाला मुड़ते हुए बुद्ध के पीछे चल पड़ा। घने पत्तों के बीच से निकलते हुए उसने अपनी तलवार लहराई, उसका इरादा बुद्ध को पकड़ने का था। लेकिन अपनी असाधारण शक्ति और तेज गति के बावजूद वह बुद्ध के साथ नहीं चल सका। बुद्ध दौड़ते हुए प्रतीत नहीं हो रहे थे, फिर भी अंगुलिमाला के प्रयासों के बावजूद वे कुछ कदम आगे ही रहे। थककर अंगुलिमाला ने बुद्ध को पुकारा, "रुको, संन्यासी! रुको, संन्यासी!" बुद्ध ने शांत भाव से उत्तर दिया, "मैं रुक गया हूँ, अंगुलिमाला। तुम्हें भी रुक जाना चाहिए।"

अंगुलिमाला बुद्ध के शब्दों से व्याकुल हो गया। रुककर उसने बुद्ध से पूछा कि उनका क्या तात्पर्य है। तब बुद्ध ने समझाया:

"अंगुलिमाला, मैंने हमेशा के लिए रुकना शुरू कर दिया है।"

मैं सभी जीवित प्राणियों के प्रति हिंसा से परहेज करता हूँ।

लेकिन तुम सांस लेने वाली चीजों के प्रति कोई संयम नहीं रखते।

इसलिए मैंने रुकना शुरू कर दिया है और आपने नहीं।"

अंगुलिमाला ने ये शब्द सुनकर एक चमत्कारिक परिवर्तन देखा। उनके पूर्व के अच्छे कर्म और पवित्रता प्रकट हो उठी। उन्हें पता चला कि करुणा बुद्ध केवल उन्हीं के लिए जालिनी वन में आए हैं। अंतर्मन से द्रवित होकर अंगुलिमाला ने अपनी तलवार फेंक दी, बुद्ध के समक्ष सिर झुकाकर घुटने टेके और परिवर्तन का संकल्प लिया।

"अरे, आखिरकार इस एकांतवासी, एक पूजनीय ऋषि को देख ही लिया,"

वह मेरे लिए इस जंगल में आया है।

आपके श्लोक को सुनकर, आपने मुझे सत्य (धम्म) का उपदेश दिया।

मैं निश्चय ही बुराई का सदा के लिए त्याग करूंगा।

बुद्ध ने अंगुलिमाला को दीक्षा दी और उसे सावत्थी के जेतवन मठ में वापस ले गए। गाँव वाले, जो हुए परिवर्तन से अनभिज्ञ थे, राजा से शिकायत करते रहे। राजा अपने सर्वश्रेष्ठ सैनिकों के साथ अंगुलिमाला को पकड़ने के लिए जलिनी वन की ओर चल पड़े। रास्ते में वे जेतवन मठ से गुज़रे। प्रबुद्ध बुद्ध के परम अनुयायी होने के कारण, राजा पसेनादि कोसल बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ में रुके। बुद्ध ने राजा को युद्ध के वस्त्रों में अपने सर्वश्रेष्ठ सैनिकों के साथ देखकर पूछा कि क्या वे किसी पड़ोसी राज्य से युद्ध करने जा रहे हैं। राजा पसेनादि ने उत्तर दिया कि वे किसी राज्य को नहीं, बल्कि अंगुलिमाला, उस खूंखार हत्यारे को उखाड़ फेंकने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ सैनिकों को अपने साथ भेजा है, फिर भी उन्हें नहीं लगता कि वे उस क्रूर हत्यारे को पकड़ने में सफल होंगे।

बुद्ध ने राजा से पूछा कि यदि अंगुलिमाला अपने हत्यारे मार्ग को त्यागकर भिक्षुओं के मार्ग पर चल पड़े तो राजा उसके साथ कैसा व्यवहार करेगा। राजा ने उत्तर दिया कि वह उसे भिक्षुओं के योग्य आदर और पूजा करेगा। तब बुद्ध ने अंगुलिमाला को आगे आने को कहा। एक शांत और सौम्य, मुंडा हुआ भिक्षु राजा की ओर बढ़ा। अंगुलिमाला को देखते ही राजा भय से कांप उठा। बुद्ध के साथ होने और भगवा वस्त्र धारण करने से यह तथ्य नहीं बदल सका कि वह एक खूंखार हत्यारा था। राजा भयवश पीछे हट गया।

तब बुद्ध ने राजा से कहा कि उन्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अंगुलिमाला ने हत्या करना छोड़कर उनके मार्ग का अनुसरण किया था। राजा ने अंगुलिमाला से उनके परिवार और उत्पत्ति के बारे में पूछा। अंगुलिमाला ने उत्तर दिया कि वे भगव गग्गा और मंतानी के पुत्र हैं। राजा को तुरंत अंगुलिमाला के जन्म का दिन और रात में घटी असामान्य घटना याद आ गई। लेकिन बुद्ध द्वारा पूर्व हत्यारे को स्वीकार किए जाने पर विश्वास रखते हुए, राजा ने उन्हें गग्गा मंतानीपुत्त कहकर संबोधित किया ताकि अतीत से उनका संबंध भुला दिया जाए। राजा पसेनादि ने मंतानीपुत्त (मंतनी के पुत्र) को अपना संरक्षण और भिक्षु बनने के लिए आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने की पेशकश की। हालाँकि, मंतानीपुत्त ने तपस्या करने का निश्चय किया था। उनके पास पहले से ही भिक्षु बनने के लिए आवश्यक तीन वस्त्र थे। उन्होंने राजा की पेशकश को अस्वीकार कर दिया। इस परिवर्तन से चकित होकर, राजा पसेनादि ने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की:

"यह अद्भुत है, पूज्यवर। यह आश्चर्यजनक है कि भगवान किस प्रकार अविचल को वश में करते हैं, अशांत को शांत करते हैं, अशांत को स्थिर करते हैं। जिसे हम दंड और शस्त्रों से वश में नहीं कर सके, उसे भगवान ने बिना दंड या शस्त्रों के वश में कर लिया है।"

राजा द्वारा मंतानिपुत्त (अंगुलिमाला) को स्वीकार किए जाने के बावजूद, नगरवासी उस पूर्व हत्यारे से भयभीत थे। जब मंतानिपुत्त भिक्षा मांगने जाते थे, तो लोग डर के मारे भाग जाते थे। यद्यपि वे प्रतिदिन भिक्षा मांगने जाते थे, जैसा कि बुद्ध के भिक्षुओं का रिवाज था, फिर भी उन्हें शायद ही कभी भिक्षा प्राप्त होती थी। ग्रामीणों को यह भी भय था कि इस प्रथा के फलस्वरूप अनुभवी अपराधी भी अपने दंड से बचने के लिए भिक्षु संघ में शामिल हो जाएंगे। उनकी चिंताओं पर विचार करते हुए, बुद्ध ने महसूस किया कि केवल उन्हीं के पास किसी व्यक्ति के भीतर की अच्छाई को देखने की क्षमता है। भविष्य में दुष्ट व्यक्तियों द्वारा भिक्षु संघ का दुरुपयोग हो सकता है। उनकी विनती को स्वीकार करते हुए, बुद्ध ने घोषणा की कि दोषी अपराधियों को अपने दंड या कारावास से बचने के साधन के रूप में भिक्षु संघ में शामिल होने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण आदर करने वाले मंतानिपुत्त को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में कठिनाई हो रही थी। उनके अतीत के पीड़ितों के जीवनदान, उनकी पीड़ा और व्यथा की चीखें उन्हें सताती रहती थीं। अपने बुरे अतीत को याद करके वे अपने मन को शांत नहीं कर पाते थे और अपने विचारों को एकाग्र नहीं कर पाते थे। उन्होंने निरंतर प्रयास जारी रखा और भिक्षा न मिलने के बावजूद, वे अन्य भिक्षुओं के साथ प्रतिदिन भिक्षा मांगने जाते थे। एक दिन उन्होंने एक स्त्री को प्रसव पीड़ा में देखा, क्योंकि वह अपने बच्चे को जन्म नहीं दे पा रही थी। उसके कष्टों पर करुणा से भरकर वे बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि क्या वे उस युवती की सहायता के लिए कुछ कर सकते हैं।

इसके बाद बुद्ध ने सत्य का एक श्लोक सुनाया, जिसे अब अंगुलिमाला सूत्र के नाम से जाना जाता है। बुद्ध ने उनसे उस स्त्री के पास जाकर निम्नलिखित बातें कहने को कहा:

"चूंकि मैं कुलीन परिवार के साथ था,

मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी जानबूझकर ऐसा किया हो

एक जीवित प्राणी को उसके जीवन से वंचित कर दिया।

इस सत्य से आप स्वस्थ रहें और आपका शिशु सुरक्षित रहे।"

निर्देशानुसार मंतानिपुत्त उस स्त्री के घर लौट गए। उन्होंने सूत्र का पाठ किया। स्त्री का कष्ट समाप्त हो गया और उसने एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया। सत्य की शक्ति और उससे उत्पन्न चमत्कार पूरे नगर में फैल गया। ग्रामीणों का मंतानिपुत्त के प्रति भय समाप्त हो गया और वे करुणा से उनका स्वागत करने लगे। भिक्षा मांगने के दौरान उन्हें भोजन मिलने लगा।

बुद्ध सामान्यतः अपने शिष्यों को चमत्कार करने या आस्था के बल पर उपचार करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते थे। तो फिर इस घटना में उन्होंने मंतानिपुत्त (अंगुलिमाला) को सत्य की शक्ति से उस स्त्री की सहायता करने के लिए क्यों प्रेरित किया? ऐसा इसलिए था क्योंकि बुद्ध जानते थे कि मंतानिपुत्त को कोई भिक्षा नहीं मिलती थी क्योंकि ग्रामीणों को उन पर विश्वास नहीं था। यह मंतानिपुत्त को किसी सकारात्मक चीज़ पर ध्यान केंद्रित करने के लिए भी था ताकि वे अपने अतीत को भुलाकर अपने मन को अनुशासित करने पर ध्यान दे सकें। इस घटना के बाद लोगों का मंतानिपुत्त पर विश्वास धीरे-धीरे पुनः जागृत होने लगा। वे भी अपने बुरे अतीत को बार-बार याद किए बिना ध्यान केंद्रित करने में सक्षम हो गए। उस स्त्री के प्रति उनकी करुणा और इस कार्य से प्राप्त सुख ने उनके मन को शांत करने में सहायता की। इसके कुछ ही समय बाद, निरंतर अभ्यास से, पूर्व हत्यारे अंगुलिमाला मंतानिपुत्त ने अरहंत पद प्राप्त किया।

लेकिन स्वीकृति पूर्ण नहीं थी। जिन परिवारों को उसने मारा था, उनमें से कई ने उसे कभी क्षमा नहीं किया। उन्होंने उसे लाठियों और पत्थरों से पीटा और मंतानिपुत्त अक्सर फटे वस्त्रों में लहूलुहान जेतवन लौटता था। उसने इस पीड़ा को शांति से सहन किया क्योंकि अंततः उसे मोक्ष प्राप्त हो गया था। उसका शरीर क्रूर हमलों का शिकार था क्योंकि उसे अपने बुरे कर्मों का फल भोगना था, परन्तु उसका मन मुक्त हो चुका था।

आज भी विश्वभर के बौद्ध अंगुलिमाला सूत्र में अटूट आस्था रखते हैं। प्रसव पीड़ा के दौरान बौद्ध महिलाओं के लिए सुरक्षित और सुखदायक प्रसव हेतु इस सूत्र का उपयोग करना एक आम प्रथा है। यहीं से मंतानिपुत्त की करुणा का प्रसार हुआ। उन्होंने वनों और वनभूमियों में रहकर तपस्या करते हुए एकांत जीवन व्यतीत किया।

इस थेरागाथा में मंतानिपुत्त अपने शत्रुओं और अन्य गलत काम करने वालों को प्रोत्साहित करते हैं और बुद्ध के प्रति अपने परिवर्तन और कृतज्ञता का वर्णन करते हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(256):अनुरुद्ध

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (256) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
256. अनुराधा
इस बुद्ध युग में कपिलवस्तु में, साकियन अमितोदन के घर में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम अनुरुद्ध रखा गया। [1] इस प्रकार उनके बड़े भाई साकियन महानामा थे, जो भगवान (बुद्ध) के चाचा के पुत्र थे। उनका पालन-पोषण अत्यंत सुख-सुविधाओं से संपन्न हुआ, प्रत्येक ऋतु के लिए एक अलग घर में, [326] और वे नर्तकों और अभिनेताओं से घिरे रहे, और उन्हें दिव्य सौभाग्य प्राप्त था। जब उन्हें साकियन राजाओं के साथ भगवान (बुद्ध) की रक्षा के लिए बुलाया गया, तो वे अनुपिया के आम के जंगल में उनके पास गए, भिक्षु दीक्षा ली और वर्षा ऋतु के दौरान दिव्य दृष्टि प्राप्त की। फिर, धर्म के सेनापति (धम्म) के मार्गदर्शन में अभ्यास प्राप्त करते हुए, वे पूर्वी बाँस के जंगल में गए और अध्ययन करते हुए एक महान व्यक्ति के सात विचारों में महारत हासिल की, लेकिन आठवें विचार को नहीं सीख सके। भगवान (बुद्ध) ने यह जानकर उन्हें आर्य वंश की महान परंपरा का उपदेश दिया। [2] इस पाठ को याद रखते हुए, अनुराद्ध ने अंतर्दृष्टि विकसित की और अलौकिक एवं विश्लेषणात्मक शक्तियों के साथ अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। [3] भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि स्थान दिया। [4] और वे निर्वाण के आनंद में लीन होकर एक दिन अपनी इस उपलब्धि की समीक्षा करने लगे। और आनंद से भर कर उन्होंने यह वाणी (गाथा) कही:

[892] पहाया मातापितारो भगिनी नातिभतारो,॥
पञ्चकामागुने हित्वा अनुरुद्धोऽव झायतु॥ ॥

[893] समेटो नक्कागितेहि सम्मतअप्पबोधनो,॥
न तेन सुद्धिमज्झगां मरास्सा विसाये रतो॥ ॥

[894] एताm̐ सीए समतिक्कम्मा रातो बुद्धस्सा ससाने,॥
सब्बोघं समतिक्कम्मा अनुरुद्धोऽव झायति ॥॥ ॥

[895] रूपा सदा रस गंधा फेठब्बा च मनोरमा'॥
एते च समतिक्कम्मा अनुरुद्धोऽव झायति.॥ ॥

[896] पिण्डपता पतिक्कन्तो एको अदुतियो मुनि,॥
एसाति पौंसुकुलानि अनुरुद्धो अनासवो॥ ॥

[897] विचिनी अग्गहि धोवि राजयी धारयी मुनि,॥
पणसुकुलानि मतिमा अनुरुद्धो अनासवो॥ ॥

[898] महिच्चो च असन्तुऽहो सङ्साऽहो यो च उद्धतो,॥
तस्सा धम्म इमे होंति पापाका सोंकिलेसिका॥ ॥

[899] सातो च होति अप्पिचो संतुथो अविघातव,॥
पविवेकरतो विट्टो निच्चमरद्धवीरियो॥ ॥

[900] तस्सा धम्म इमे होंति कुसल बोधिपक्खिका,॥
अनासावो च सो होति इति वुत्तं महेसिना॥ ॥

[901] मम संकप्पामनया सत्था लोके अनुत्तरो,॥
मनोमयेन कायेन इद्धिया उपसंकामि.॥ ॥

[902] यदा मे अहु संकप्पो ततो उत्तरि देसायी,॥
निप्पपञ्चरातो बुद्धो निप्पपञ्चमदेसायि ॥॥ ॥

[903] तस्माहं धम्ममन्नया विहासीं सासने रतो,॥
तिस्सो विज्जा अनुप्पट्टा कतं बुद्धस्स ससाणं॥ ॥

[904] पंचापन्नसवस्सानि यतो नेसज्जिको अहं,॥
पञ्चविसतिवासनि यतो मिद्धान् समुहताः॥ ॥

[905] नाहु अस्स्सापास्सा ऋहितवित्तस ताडिनो,॥
अनेजो संतिमारभ चक्खुमा परिनिब्बुतो॥ ॥

[906] असल्लीनेना सित्तेना वेदानां अज्झावसायी,॥
पज्जोतस्सेवा निब्बाणं विमोक्खो चेतासो आहु॥ ॥

[907] एते पचिमिका दानी मुनिनो फस्सापनकामा,॥
नान्ने धम्म भविस्संति समुबद्दे परिनिब्बुते॥ ॥

[892] माता, पिता, अपने सभी सगे-संबंधियों,
बहन और भाई को त्यागकर, इंद्रियों के सुखों का त्याग करके,
अनुराद्ध समाधि में मग्न बैठे हैं।

[893]
नृत्य और गीत के साथ, सुबह झांझ की आवाज़ से जागृत हुआ: - ऐसा नहीं
था कि शुद्ध धर्म (धम्म) तक पहुँचा जा सके,
मैं मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) के स्थान पर होने से बहुत प्रसन्न था।

[894] और अब जब वे सब बातें पीछे छूट गई हैं,
बुद्ध के नियम का पालन करते हुए पूरे मन से प्रसन्न होकर,
हाँ, उस भयंकर बाढ़ को पार करते हुए,
अनुराद्ध समाधि में मग्न बैठे हैं।

[895] [327] दृश्य, ध्वनियाँ और स्वाद, गंध और स्पर्श करने योग्य वस्तुएँ,
वह आनंद और आकर्षण, [5] इन सबको पीछे छोड़कर,
अनुराद्ध समाधि में मग्न बैठे हैं।

[896] भिक्षा की खोज से वह अकेला लौटता है,
एक निर्मल [6] मौन ऋषि;
कूड़े के ढेर से अपने वस्त्रों को नवीनीकृत करने के लिए
अनुराधा ने खोज की, समझदार और निर्मल।

[897] वह खोजता है, लेता है, धोता है, रंगता है, पहनता है
जर्जर वस्त्र, [7] यह ऋषि विचारपूर्वक: -
क्योंकि अनुरुद्ध ऐसा ही है, समझदार, प्रतिरक्षाशील।

[898] जो चाहतों और असंतोष से भरा है, वह
घमंडी है [8] और अपने जैसे लोगों से चिपका रहता है,
भ्रष्ट और नीच गुणों को प्रदर्शित करता है।

[899] और क्या वह सचेत है, जिसकी इच्छाएँ कम हैं,
जो संतुष्ट और शांत है और कभी विचलित नहीं होता,
एकांत में आनंदित रहता है, जिसका हृदय प्रसन्न रहता है?

[900] निश्चय ही परिश्रमी: - उसके गुण अच्छे हैं
और ज्ञान से संबंधित हैं,
और वह समझदार और निर्बल है, - महान द्रष्टा कहते हैं।

[901] मेरे हृदय के इरादे को जानने वाले, भगवान (बुद्ध),
जिनकी दुनिया में कोई समानता नहीं है, वे
रहस्यमयी शक्ति से मन द्वारा निर्मित शरीर के साथ मेरे पास आए। [9]

[902] [328] मुझे, जब मैं और सत्य सीखना चाहता था, तो
जागृत व्यक्ति, बुद्ध ने [वह अंतिम सत्य] प्रकट किया;
जिसने जुनून से मुक्ति में आनंद लिया [10],
उसने मुझे जुनून से मुक्ति सिखाई।

[903] और मैं, जिसने धन्य मार्ग (धम्म) का निवास सुना,
केवल और हमेशा उसके नियम का पालन करने में प्रसन्न हूँ;
मैंने त्रिविध ज्ञान को अपना लिया है,
और बुद्ध के सभी विधानों का पालन किया है। [11]

[904] मैं पचास वर्षों से बिस्तर पर कभी ठीक से आराम नहीं कर पाया, [12] आलस्य पर विजय प्राप्त किए हुए पच्चीस वर्ष हो गए हैं।

[905] जब वह लेटा था, तब उसकी साँसें रुकी हुई थीं;
मन ध्यान की स्थिर अवस्था में था,

हर लालसा से मुक्त विचार के साथ,
निरंतर शांति पर स्थिर था:
इस प्रकार वह मनुष्य चला गया जिसने देखा।

[906] मन अविचलित रखते हुए, जैसे ही वे आए,
उन्होंने शांति से मृत्यु की पीड़ा सहन की;
उनके हृदय पर अंतिम मुक्ति छा गई: बुझी हुई लौ का निर्वाण। [13]

[907] अंतिम चीजें जो अब हम उनके बारे में देखते हैं, -
स्पर्श और ऋषि की अन्य इंद्रियां -
कोई अन्य सचेत अवस्था [14] नहीं आएगी,
जब एक पूर्णतः जागृत व्यक्ति का निधन हो गया।

अब, एक आत्मा, [15] जो पिछले जन्म में उसकी परिचारिका थी, थेरा को बूढ़ा और कमजोर देखकर, [329] उसके प्रति अपने पूर्व प्रेम के कारण आई और उससे देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेने की आकांक्षा रखने के लिए कहा। लेकिन उसने उत्तर दिया:

[908] नत्थि दानि पुनावासो देवकायमहि1 जालिनी,॥
विक्खिणो जातिसंसारो नत्थि दानी पुनभभावो॥ ॥

[908] देवताओं की संगति में रहते हुए , हे मोहक, [16]
फिर कभी मेरे पास नहीं आएगा। पुनर्जन्म का सारा नवीनीकरण नष्ट हो गया है। अब फिर से अस्तित्व में आने का कोई रास्ता नहीं है।

तब अन्य भिक्षु, देवता को न देखकर, यह सोचने लगे कि थेरा किससे बात कर रहे हैं। अपनी रहस्यमयी शक्ति दिखाने के लिए उन्होंने यह श्लोक कहा:

[909] यस्सा मुहुत्तेन सहस्सधा लोको सविदितो सबब्रह्मकप्पो,॥
वसि इधिगुने कटुपापते काले पस्सति देवता स भिक्खु। ॥ ॥

[909] जो एक पल में ही हज़ार तरीकों से
समस्त संसार का अवलोकन कर सकता है, वह ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के स्वर्ग के योग्य है। [17] परन्तु यहाँ एक ऐसा भिक्षु है जो जादू की शक्ति में पारंगत है, जिसने देखा कि
हे देवी, किस समय [मनुष्य और देवता दोनों] मरते हैं और जन्म लेते हैं।

अब वह अपने पूर्व कर्मों का खुलासा करता है: -

[910] अन्नभरो शुद्ध असिm̩ ददिद्दो घसाहारको,॥
समानाऽ पतिपदेसिऽ उपरिऽथाऽ यस्स्स्सनऽ॥ ॥

[911] सोमहि शाक्यकुले जातो अनुरुद्धो' ति माm̩ विदु,॥
उपेतो नक्कागितेहि सम्मतअप्पबोधनो॥ ॥

[912] अथद्दससिm̩ संबुद्धौ सत्थारौ अकुतोभयm̩,॥
तस्मिं चित्तं पसादेत्वा पब्बाजीं अनागारियां॥ ॥

[913] पुब्बेनिवासां जानामि यथा मे वुसितां शुद्ध,॥
तावतिसेसु देवेसु अट्ठासिऽ सतजतिया.॥ ॥

[914] सत्तकखट्टुm̄ मनुसिन्दो अहाm̄ राजजमकारयिm̄,॥
चतुरंतो विजितवी जंबुसंदस्सा इस्सरो,॥
अदंडेन असत्थेन धम्मेन अनुसासायिं॥ ॥

[915] इतो सत्त ततो सत्त सःसारनि चतुद्दसा,॥
निवासमभिजानिस्सां देवलोके ठितो तदा॥ ॥

[916] पंचांगिके समाधिमहि संते एकोडिभाविते,॥
पटिपाससद्धिलद्धमहि दिब्बाचक्खु विसुज्ज मे.॥ ॥

[917] कटुपपताऽ जाणवी सत्तनाऽ अगतिm̄ गतिm̄,॥
इत्थभवननाथभवं झाणे पंचांगिके ठितो॥ ॥

[918] पैरिसिणो माया सत्था कतां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥

[919] वज्जिणौ वेफवगामे अहं जीवितसंखया,॥
हेतथतो वेफगुंबस्मिm̄ निबबयिस्सं अनासावो' ति.॥ ॥

[910] देखो! मैं बहुत पहले अन्नाभार था, [18] एक गरीब आदमी जो अपनी रोजी-रोटी के लिए काम करता था, तब मैंने उपरिट्ठ को, पवित्र यश वाले
संन्यासी को , विनम्र भेंट दी।

[911] [330] तब मेरा जन्म साकियान वंश में हुआ,
जैसा कि अनुरुद्ध को ज्ञात है; नृत्य और गीत द्वारा
उपस्थित होकर, और झांझ की झंकार से जागृत हुआ। [19]

[912] परन्तु मैंने बुद्ध को देखा, प्रबुद्ध व्यक्ति,
भगवान (बुद्ध), जिनके लिए कहीं से भी भय नहीं आता।
उनमें मेरा हृदय विश्वास कर बैठा और शांत हो गया,
और मैंने घर छोड़कर बेघर जीवन की खोज की।

[913] मैं अपने पूर्व जन्मों को जानता हूँ, और जानता हूँ कि
बीते वर्षों में मैं कहाँ और कैसे रहता था; देवताओं में
मैं सक्का (देवताओं के राजा) के पद का तैंतीसवाँ हिस्सा था।

[914] सात बार मैंने मनुष्यों के राजा के रूप में अपना शासन किया,
पृथ्वी के छोर से छोर तक स्वामी,
जंबुदीपा का विजेता, [20] बिना किसी बल या हथियार के मैंने अधिकार से शासन किया। [21]

[915] वहाँ से सात, और जीवन के अन्य सात कालखंड,
यहाँ तक कि चौदह पूर्व जन्मों को भी मैं पहचानता हूँ,
तब भी जब देवताओं के संसार में पुनर्जन्म हुआ।

[916] पांच गुना केंद्रित परमानंद में, [22] मेरा हृदय शांति और एकता में ऊपर उठता है।
मैंने शांत संयम को अपना बना लिया है;
एक देवता के रूप में मेरी दृष्टि स्पष्ट हो गई है।

[917] मैं अन्य जीवन के नियति को जानता हूँ: -
जहाँ से प्राणी आते हैं और जहाँ जाते हैं;
यहाँ नीचे का जीवन, या जीवन का अन्य स्थान -
दृढ़ और तल्लीन, पंचगुणी ध्यान में डूबा हुआ।

[918] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है, [23] और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं। [331] मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है।

[919] वेलुवा में, [24] वज्जियन भूमि में ऐसा होगा
कि मेरे लिए जीवन अपने अंतिम चरण तक पहुँच जाएगा;
और मैं उस दिन बाँस की झाड़ियों की छाया में,
स्वस्थ और निर्बल होकर, पूरी तरह से विदा हो जाऊँगा।

[1] पाठ और किंवदंती दोनों में उनके पिछले जन्म में, कस्सपा बुद्ध के समय में, उनके नामों में से एक का उल्लेख है (श्लोक 910)। ब्र. पांडुलिपि में पिता के नाम की वर्तनी गलत है (अंगुत्तरा निकया टीका में सही रूप से दिया गया है) अमित्तोधन। आगे देखें, विनय ग्रंथ, iii. 224 ff. नर्तकियों आदि (नाटक) के बारे में, देखें iremain., iii. 225, n. 1.

[2] आठ विचार (अंग. निक., iv. 228 ff. जहाँ संवाद दिया गया है) यह है कि धम्म उसके लिए है जो - (1) कम इच्छाएँ रखता है; (2) संतुष्ट, शांत, (8) बहुत एकांतप्रिय, (4) परिश्रमी, (5) अंतर्मुखी, (6) एकाग्र, और (7) बुद्धिमान; (8) जुनून से मुक्ति में आनंदित।

अंग. निक., ii. 26 में आर्यों की वंश परंपरा (अरियावांसपटीपदा) का मार्ग भिक्षु की 'चार स्थितियों' या आवश्यकताओं में से तीन - वस्त्र, भोजन और आश्रय - तथा व्यायाम या अध्ययन तथा चयनात्मक या छंटाई संस्कृति (भावना, पाहन) से संतुष्ट रहना है।

[3] एक अनोखा रूपांतर: अभिन्यापतिअम्बिदापरिवरा अरहन्तता।

[4] एंग. निक., i. 23. तुलना करें ऊपर, पृ. 32, n. 2; संवाद, i. 91.

[5] श्लोक 455 देखें ।

[6] शाब्दिक अर्थ, अप्रतिबद्ध, अयुग्मित (देखें श्लोक 54, 541)। टीका इसे नित्तन्हो, यानी लालसा रहित, के रूप में व्याख्यायित करती है। देखें बौद्ध मनोविज्ञान, पृष्ठ 278; सुत्त निपीता, श्लोक 740; और सय्य निचिता, अध्याय 25, जहाँ विश्वास 'साथी' है। जैसा कि अनुरुद्ध, मज्झिमा निकाय में, एक स्नेही, वफादार साथी भिक्षु (सम्मोहन) का प्रतीक है (सुत्त 82, 128), वह एकविहारिया (सीसीXXXIV) जैसे संन्यासी का प्रतीक नहीं हो सकता । श्लोक 155 भी देखें।

[7] पहला धुतंगा. तुलना करें . सी.सी.एल.आई.वी., श्लोक 844.

[8] उद्धातो, अक्सर, जैसा कि यहाँ है, संतुलन की कमी के साथ समानार्थी बनाया जाता है, जैसे कि हमारे 'सूजे हुए सिर' में।

[9] श्लोक 901-903 अंगुत्तरा निक., चतुर्थ 235 में हैं , जो संदर्भित पाठ का समापन करते हैं। 'मानो मन से बना हो... इस शरीर को इस मन के समान होने दो: इस प्रकार इच्छा-स्थिरीकरण की प्रक्रिया द्वारा इद्धि' (टीका)। तुलना करें संकलन, पृष्ठ 61, अधिष्ठानिद्धि। अंगुत्तरा चक्र (i. 23) श्लोक 901-903 उद्धृत करता है।

[10] पापांका, एक शब्द जिसे यहाँ केवल 'दस किलेसा (दु:ख की जड़ें), वासना,' आदि के रूप में व्याख्यायित किया गया है। देखें पृष्ठ 343, n. 4, और बुड.साइ., पृष्ठ 327 f.

[11] तुलना करें श्लोक 561 और बहनें, श्लोक 187, 194, 202.

[12] श्लोक 856 देखें।

[13] अन्यत्र श्लोकों का श्रेय बुद्ध के परिनिर्वाण के समय अनुरुद्ध को दिया जाता है (संवाद, द्वितीय 176; अवदाना, 100)। दो संस्करणों पर (संवादों में, पंक्ति 4, है: ... यन कालम अकारी मुनि, 'द्रष्टा मर गया'), सीएफ। ओल्डेनबर्ग की चर्चा, 'स्टूडियन ज़ूर गेस्चिच्टे डेस बुद्धिस्टिसचेन कानोन,' नचरिचेन डेर विसेनशाफ्टन ज़ू गोटिंगेन, 1912. पी. 168 फं.

[14] धम्मा.

[15] देवता.

[16] टीका के अनुसार, देवी को संबोधित। साम. निक., i. 200 में, जहाँ देवी के छंद दिए गए हैं, जालिनी (मोहक, फँसाने वाली) को उनका नाम बताया गया है। हालाँकि, नीचे, श्लोक (1181) देखें।

[17] टीका में sa Brahmakappo को saha -Brṅ पढ़ा गया है, जैसा कि अक्सर sa-Brahmako आदि शब्दों में प्रयोग होता है। लेकिन यह उपरोक्त व्याख्या से अधिक जटिल प्रतीत होता है, जिसमें अधिक शाब्दिक अनुवाद के साथ मैं डॉ. न्यूमैन का अनुसरण करता हूँ। टीका में devatā का संबोधन में अर्थ नहीं बताया गया है , अन्यथा श्लोक का सही अर्थ नहीं निकलता। Sa bhikkhu(भिक्षु) को मैं eso bhikkhu मानता हूँ। श्लोक 1181, n. 1 देखें।

[18] यह प्रसंग 'हमारे बुद्ध' के समय से पहले उनके जीवन की गद्य कथा में दर्ज नवीनतम घटना है। अन्नभार, 'भोजनवाहक' (देखें अंग. iii. 122), नाम निस्संदेह कथा के अनुरूप गढ़ा गया है या इसके विपरीत। अन्नभार बनारस के एक पार्षद सुमना के लिए काम करता है, जिसने यह सुनकर कि उसने मौन बुद्ध को भोजन कराने के लिए भोजन त्याग दिया था, उसे पुरस्कृत किया और उसे व्यापार में स्थापित किया।

[19] पबोधनो.

[20] श्लोक 822 देखें।

[21] देवताओं में सात, मनुष्यों में सात (टीका)। तथाकथित 'दिव्य आँख' या दृष्टि का वर्णन श्लोक 916, 917 में किया गया है।

[22] समाधि - अर्थात्, चौथे ध्यान की - उनकी अभिज्ञा शक्ति पर आधारित (टीका)। टीका के अनुसार, 'पंचगुण' गुण चार अवस्थाओं का समूह नहीं है, जिसमें प्रथम को विभाजित किया गया है (देखें बुद्ध मनोविज्ञान, पृष्ठ 52), बल्कि कुछ इसी तरह के गुणों की सूची है - (1) उत्साह; (2) आनंद; (8) चेतो, इच्छा या बुद्धि; (4) प्रकाश; (5) एक प्रतिनिधि छवि। पंचगुण ध्यान (917) को इस प्रकार परिभाषित नहीं किया गया है। मुझे अभी तक यह वर्गीकरण कहीं और नहीं मिला है।

[23] = श्लोक 891, इत्यादि।

[24] टीका के अनुसार यह वेसाली के पास हत्थिगामा था।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

अनुराधा

अनुराधा राजकुमार सिद्धार्थ के चचेरे भाइयों में से एक थे। उनके पिता, जिनका नाम अमितोदन था, राजा सुद्धोदन के छोटे भाई थे। अमितोदन की दो पत्नियाँ थीं। अनुराधा, उनके भाई महानामा और उनकी बहन रोहिणी, एक पत्नी से उत्पन्न हुए थे। आनंद, जो बाद में बुद्ध के निजी सेवक बने, दूसरी पत्नी के पुत्र थे। इस प्रकार आनंद अनुराधा के सौतेले भाई थे।

अनुराधा का पालन-पोषण अत्यंत विलासिता में हुआ था। उनकी माँ, जो उनसे बहुत प्यार करती थीं, उनकी हर इच्छा पूरी करती थीं। निम्नलिखित कहानी उनकी विलासिता का उदाहरण है। एक दिन अनुराधा अपने दोस्तों के साथ कंचे खेल रहे थे और उन्होंने अपनी जीत पर शर्त लगा दी। उन्होंने वादा किया कि जो भी उन्हें कंचे में हराएगा, उसे ताज़े केक मिलेंगे। लेकिन किस्मत उनके साथ नहीं थी। बार-बार वे अपने दोस्तों से हारते रहे। हर बार वे अपनी माँ को संदेश भेजकर केक मांगते, जिसे उनकी माँ बड़े प्यार से भेज देती थीं। अंत में संदेश आया कि केक नहीं है। अनुराधा, जिन्हें हमेशा सब कुछ मिलता था, ने सोचा कि यह कोई नया प्रकार का केक है और उन्होंने अपनी माँ को संदेश भेजकर कहा कि वे केक न होने पर भी उनका कर्ज चुका दें।

जब शाक्य राजकुमारों ने बुद्ध का अनुसरण करने के लिए अपने राजवंश को त्यागना शुरू किया, तो राजा अमितोदन के बड़े पुत्र महानामा ने महसूस किया कि या तो अनुराद्ध को या उन्हें अपने महान चचेरे भाई के पदचिन्हों पर चलना चाहिए। उन्होंने अपने छोटे भाई को बुलाया और पूछा कि क्या वह बुद्ध के अधीन दीक्षा लेना चाहेंगे। हालांकि, अनुराद्ध इंद्रिय सुखों के प्रति अत्यधिक आसक्त थे। वे नृत्य, संगीत और विलासिता के प्रति अपने प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे। अनुराद्ध को लगा कि विलासिता में पले-बढ़े व्यक्ति के लिए बेघर जीवन बहुत कठिन होगा। लेकिन महानामा ने अपने भाई को एक कुलीन व्यक्ति के रूप में अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को निभाते समय आने वाली कठिनाइयों का वर्णन करके उन्हें समझाया। जब अनुराद्ध को यह अहसास हुआ कि यदि वे अपने बड़े भाई का स्थान लेंगे तो उन्हें अनेक जिम्मेदारियाँ निभानी होंगी और संसार के अंतहीन चक्रों में उलझकर कष्ट भोगना होगा, तो उन्होंने विलासितापूर्ण जीवन त्यागने का निश्चय किया। वे अपनी माता के पास गए और शाक्य ऋषि के अधीन दीक्षा लेने की अनुमति मांगी।

उनकी माता, जो अपने दोनों पुत्रों को अपने पास रखना चाहती थीं, ने इनकार कर दिया। यह सोचकर कि सिंहासन का उत्तराधिकारी उनका मित्र कभी भी अपनी राजसी विरासत नहीं छोड़ेगा, उन्होंने अनुराधा को बताया कि यदि उनका मित्र भद्दिया उनके साथ जाए तो वह जा सकता है। अनुराधा ने अपने मित्र से संघ में शामिल होने के लिए बात की। भद्दिया ने इनकार कर दिया, क्योंकि भावी राजा बनने का गौरव उन्हें अधिक आकर्षित कर रहा था। अनुराधा ने हार नहीं मानी। धीरे-धीरे उन्होंने अपने मित्र के प्रतिरोध को तोड़ दिया। पहले भद्दिया सात वर्षों में संघ में शामिल होने के लिए सहमत हुए। और अधिक आग्रह और विनती करने पर, भद्दिया ने समय कम कर दिया और अंततः सात दिनों में जाने के लिए सहमत हो गए क्योंकि उन्हें अपने मामलों को निपटाने और वायसराय के पद का उत्तराधिकार अपने उत्तराधिकारी को सौंपने में इतना समय लगेगा। उनके इस निर्णय के बारे में सुनकर अनुराधा के सौतेले भाई आनंद, उनके चचेरे भाई देवदत्त और दो अन्य शाक्य राजकुमार, किंबिला और भागू ने भी उनके साथ शामिल होने का निर्णय लिया। राजकुमार, दरबारी नाई उपाली के साथ, आनंद उद्यानों में जाने के बहाने महल से निकल गए।

कुछ दूर यात्रा करने के बाद राजकुमारों ने अपने राजसी आभूषण और कीमती वस्त्र उपाली को सौंप दिए और स्वयं तपस्वियों के साधारण वस्त्र धारण कर लिए। फिर उन्होंने उपाली को यह संदेश लेकर महल लौटने का निर्देश दिया कि शाक्य राजकुमार महान शाक्य ऋषि बुद्ध के मार्गदर्शन में भिक्षुओं के संघ में शामिल होने के लिए निकल गए हैं। हालांकि, उपाली को डर था कि शाक्य, जो एक अत्यंत क्रूर योद्धा जाति थे, उस पर विश्वास नहीं करेंगे। उसे लगा कि उसकी हत्या कर दी जाएगी, क्योंकि शाक्य सोचेंगे कि उपाली ने ही युवा राजकुमारों को लूटा और मार डाला है। उसने बुद्ध के मार्गदर्शन में दीक्षा लेने के लिए उनके साथ जाने की अनुमति मांगी। राजकुमारों ने सहमति दे दी।

वे सब मिलकर बुद्ध के निवास स्थान पर पहुँचे और दीक्षा लेने का अनुरोध किया। शाक्य राजकुमार, जो अपने अभिमान और घमंड के लिए प्रसिद्ध थे, ने बुद्ध से अनुरोध किया कि वे उपाली को, जो लंबे समय से उनकी सेवा कर रहा था, पहले दीक्षा दें, ताकि वह उनसे वरिष्ठ हो जाए। इस प्रकार उन्हें उपाली को प्रणाम और सम्मान करना पड़ता, जिससे उनका शाक्य अभिमान कम हो जाता। बुद्ध ने उनकी विनती मान ली।

कुछ ही समय में अनुराधा ने दिव्य दृष्टि प्राप्त कर ली — भौतिक आँख की पहुँच से परे देखने की क्षमता। वे एक हजार विश्व प्रणालियों का अवलोकन कर सकते थे (बुद्ध दस हजार विश्व प्रणालियों को देख सकते थे और उनका वर्णन भी कर चुके हैं)। इन विश्व प्रणालियों की तुलना आधुनिक आकाशगंगाओं से की जा सकती है। बुद्ध ने कहा था कि प्रत्येक विश्व प्रणाली में अस्तित्व के 31 तल होते हैं जिनमें 31 विभिन्न जीवन रूप विद्यमान होते हैं, और उन्होंने ऐसी दस हजार विश्व प्रणालियों का अवलोकन किया था। हालांकि, अनुराधा ने अपनी दिव्य दृष्टि को केवल एक हजार विश्व प्रणालियों को देखने की क्षमता तक ही विकसित किया। उनमें दूसरों के पिछले जन्मों को देखने और मृत्यु के बाद उनके पुनर्जन्म के स्थान को जानने की क्षमता भी थी।

दिव्य दृष्टि का विकास सांसारिक प्रकृति का है। इसे आध्यात्मिक विकास के चार चरणों - सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी या अरहंतत्व - में से किसी को भी प्राप्त किए बिना विकसित किया जा सकता है। वास्तव में, अनुराद्ध ने संतत्व के प्रथम चरण को प्राप्त करने से पहले ही इसे प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार, इसे एक अमुक्त सांसारिक व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है। दिव्य दृष्टि का विकास वह व्यक्ति कर सकता है जो मानसिक एकाग्रता (झान) के चौथे चरण को प्राप्त कर चुका हो और विशुद्धिमग्ग (शुद्धिकरण का मार्ग) में वर्णित अनुसार इस ध्यान को आगे बढ़ाता हो। अनुराद्ध अक्सर अपने छात्रों को यह कौशल सिखाते थे। थेरागथा में उनके श्लोक उनके अनुभव को वर्णित करते हैं।

इस उपलब्धि के बावजूद अनुराधा को अरहंत पद प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। हालांकि, उनके आध्यात्मिक विकास ने उन्हें किंबिला और नंदिया नामक दो अन्य भिक्षुओं के साथ सद्भावपूर्वक जीवन जीने में सहायता की। ये तीनों पूर्वी बांस उद्यान में एकांतवास में रहते थे और प्रत्येक पांचवीं रात को धम्म पर चर्चा करने के लिए मिलते थे। इन भिक्षुओं के बीच का सद्भाव प्रसिद्ध हो गया। एक बार बुद्ध ने अनुराधा से पूछा कि वे अपने दोनों साथियों के साथ शांति और सद्भाव से कैसे रहते हैं। अनुराधा ने उत्तर दिया, "कर्म, वचन और विचार से मैं सार्वजनिक और निजी मन से इन पूज्य भिक्षुओं के प्रति प्रेम और दया भाव रखता हूँ। मैं अपनी इच्छाओं को त्यागकर केवल वही क्यों न करूँ जो वे चाहते हैं? हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, परन्तु मन से एक हैं।" बुद्ध ने उनके सद्भाव की प्रशंसा की और उन्हें संघ की एकता को मजबूत करने के लिए अन्य भिक्षुओं के लिए एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया।

तब बुद्ध ने अनुराद्ध से मोक्ष प्राप्त करने में आ रही कठिनाइयों के बारे में प्रश्न किया। अनुराद्ध ने बताया कि वे एकाग्रता की एक उच्चतर अवस्था तक पहुँच गए थे जिसमें उन्होंने एक आंतरिक प्रकाश और दीप्ति का अनुभव किया, लेकिन वह प्रकाश और दीप्ति बहुत शीघ्र ही लुप्त हो गई और उन्हें इसका कारण समझ नहीं आया।

अपने स्वयं के अनुभव से वर्णन करते हुए बुद्ध ने ग्यारह दोषों या बाधाओं की व्याख्या की और उनसे निपटने के तरीके बताए। अनुराधा ने बुद्ध की सलाह का पालन किया और ध्यान की परिष्कृत अवस्था में और अधिक विकास किया। यद्यपि वे अरहंत पद तक नहीं पहुँचे।

एक दिन अनुराधा सारिपुत्त के पास गए और बोले, "भाई सारिपुत्त, दिव्य दृष्टि से मैं हजार प्रकार की विश्व प्रणालियों को देख सकता हूँ। मेरी ऊर्जा प्रबल है, मेरा ध्यान सजग और स्पष्ट है, मेरा शरीर एकाग्र और एकीकृत है। फिर भी मेरा मन अशुद्धियों से मुक्त नहीं हो पा रहा है।"

सारिपुत्त ने उत्तर दिया, “हे अनुराद्ध भाई, जब तुम यह सोचते हो कि तुम्हारी दिव्य दृष्टि से तुम हज़ार प्रकार की विश्व व्यवस्थाओं को देख सकते हो, तो यह अहंकार है। जब तुम अपनी अथक ऊर्जा, सजगता, शांत शरीर और एकाग्र मन के बारे में सोचते हो, तो यह बेचैनी है। जब तुम सोचते हो कि तुम्हारा मन अभी भी दोषों से मुक्त नहीं हुआ है, तो यह तुम्हारे भीतर का संशय है। इन तीनों बातों को त्याग दो। इन पर ध्यान मत दो। इसके बजाय, अपने मन को अमरता की ओर लगाओ।” अनुराद्ध फिर एकांत में चले गए और इन बाधाओं को दूर करने के लिए पूरी लगन से अपना मन लगाया।

बुद्ध ने यह जानकर कि अनुराद्ध ज्ञान प्राप्ति के निकट हैं, परन्तु उन्हें और अधिक शिक्षा की आवश्यकता है, उनके समक्ष मन से निर्मित एक रूप में प्रकट हुए। बुद्ध द्वारा अनुराद्ध को दिए गए अविभाजित ज्ञान ने उन्हें पूर्णता प्राप्त करने में सहायता की। सिद्धि प्राप्त करने के एक घंटे बाद उन्होंने थेरागाथा श्लोकों का पाठ किया।

अनुराधा द्वारा दिव्य दृष्टि के विकास के कारण बुद्ध ने उन्हें दिव्य दृष्टि विकसित करने वाले भिक्षुओं में अग्रणी घोषित किया। अनुराधा ने एक लाख विश्व चक्र पूर्व, पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय, दिव्य दृष्टि के विकास में अग्रणी होने की आकांक्षा रखी थी। पद्ममुत्तरा बुद्ध द्वारा अपने एक भिक्षु को दिव्य दृष्टि में अग्रणी नियुक्त करते देख और उस भिक्षु के चरित्र और गुणों से प्रेरित होकर, अनुराधा ने निश्चय किया कि वे भविष्य के किसी बुद्ध के अधीन ऐसा पद प्राप्त करना चाहेंगे। इसी विचार से उन्होंने अनेक पुण्य कर्म किए और भविष्य के किसी बुद्ध के अधीन दिव्य दृष्टि में अग्रणी होने की आकांक्षा रखी। पद्ममुत्तरा बुद्ध ने अनुराधा की आकांक्षा पूर्ण होते देख घोषणा की कि गौतम बुद्ध के समय अनुराधा दिव्य दृष्टि में अग्रणी होंगे।

पद्ममुत्तरा बुद्ध के देहांत के बाद, अनुराधा ने भिक्षु से संपर्क किया और उनसे पूछा कि उन्हें ऐसा पद प्राप्त करने के लिए कौन से पुण्य कर्म करने चाहिए। भिक्षु ने उन्हें पद्ममुत्तरा बुद्ध के अवशेषों वाले मंदिर में अनेक दीपक जलाने और यह प्रार्थना करने का निर्देश दिया कि जैसे ये दीपक अंधकार को दूर करके आसपास के क्षेत्र में प्रकाश फैलाते हैं ताकि अन्य लोग देख सकें, वैसे ही उन्हें अनेक विश्व प्रणालियों और दिव्य प्राणियों को देखने की दिव्य दृष्टि प्राप्त हो। थेरागाथा में कहा गया है कि कस्सपा बुद्ध के समय, अनुराधा ने कस्सपा बुद्ध की समाधि पर घी के दीपक जलाए और अपनी प्रार्थना को नवीकृत किया। अनुराधा द्वारा किए गए इन और अनेक अन्य पुण्य कर्मों के कारण गौतम बुद्ध के समय उनकी प्रार्थना पूर्ण हुई।

जातक कथाओं (बुद्ध के जन्म वृत्तांतों) में अनुरुद्ध के तेईस पूर्व जन्मों का वर्णन मिलता है। इनमें से पंद्रह जन्म स्वर्गलोक में हुए, जिनमें से तेरह जन्म तावतिंसा स्वर्ग के प्रमुख सक्का के रूप में थे। सक्का रूप में अनुरुद्ध ने ही एक वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके वेस्सन्तारा जातक में बोधिसत्व की परीक्षा ली और उनकी पत्नी, राजकुमारी मद्दी को मांगा। सक्का रूप में अनुरुद्ध ने दो बार बोधिसत्व का जीवन संकट में रहते हुए बचाया। गुट्टिला जातक में अनुरुद्ध ने ही बोधिसत्व को स्वर्ग और नरक लोक का दर्शन कराया। सात सांसारिक जन्मों में वे अक्सर तपस्वी रहे। केवल एक जन्म कथा में पशु (लकड़ी का कबूतर) के रूप में जन्म का वर्णन है। इन कथाओं में अनुरुद्ध के दृढ़ चरित्र, उनकी निष्ठा और दूसरों के प्रति उनकी करुणा बार-बार प्रकट होती है। अनेक जन्मों में उन्होंने बोधिसत्व की सहायता की थी। थेरागाथा में उनके कुछ पूर्व जन्मों का भी वर्णन है। अनुराधा, जो अपने पिछले जन्मों को देख सकते थे, ने उनमें से कुछ का वर्णन थेरागाथा में किया है।

अनुरुद्ध बुद्ध से अधिक समय तक जीवित रहे और बुद्ध के अंतिम संस्कार में देवताओं की इच्छाओं की पूर्ति सुनिश्चित करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। बुद्ध के निधन पर महा ब्रह्मा (ब्राह्मण सृष्टिकर्ता देवता) और सक्का (तावतिंसा स्वर्ग के शासक) ने शोक संतप्त ब्रह्माओं और देवताओं को सांत्वना देने के लिए अनित्यता के नियम का आह्वान करते हुए श्लोकों द्वारा बुद्ध का सम्मान किया। तीसरे वक्ता अनुरुद्ध थे, जिन्होंने निम्नलिखित शब्दों से शोक संतप्तों को सांत्वना दी:

"श्वास की कोई गति नहीं, परन्तु दृढ़ हृदय से,

इच्छा रहित और शांत भाव से ऋषि अपने अंत की ओर अग्रसर होते हैं।

किसी भी पीड़ादायक भावना से हृदय अविचलित रहते हुए,

जैसे कोई लौ बुझ जाती है, वैसे ही उनका मन मुक्त हो गया।

अनुरुद्ध ने प्रथम संघ सभा से पहले आनंद को अरहंत पद प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित और सहायता भी की। प्रथम सभा में अनुरुद्ध अंगुत्तरा निकाय के प्रभारी थे। उनका निधन वज्जियान भूमि के वेलुवा में हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(257):परापरिया

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (257) ------>>>> अगला

अध्याय सोलह.
बीस श्लोक
257. परापरिया
उनकी कहानी ऊपर दर्ज है [1] अब ये श्लोक उन्होंने भगवान (बुद्ध) के जीवनकाल में कहे थे, जब वे स्वयं अभी तक अरहंत (प्रबुद्ध) नहीं हुए थे, और ये छह शक्तियों (पाँच इंद्रियों और मन) के शासन से संबंधित थे। परन्तु ये श्लोक उन्होंने भगवान (बुद्ध) के देहान्तरण के बाद और अपने स्वयं के देहान्तरण के निकट होने पर कहे थे। और उनमें उन्होंने विकृत मार्ग के अंतर्गत भिक्षुओं के भविष्य की घोषणा की थी।

(संकलनकर्ताओं द्वारा पहला श्लोक अब रखा गया।)

[920] Samaṇassa ahu cintā pupphitamhi mahāvane,‖
Ekaggassa nisinnassa pavivattassa jhāyino.‖ ‖

[921] अनंता लोकानाथमहि तिथंते पुरिसुत्तमे,॥
इरीयं असि भक्खुनं अनंत दानी डिस्सति॥ ॥

[922] सीतावतपरित्तनं हिरिकोपिनाचदानं,॥
मत्तत्थियं अभान्जिंसु संतुत्था इतरितरे ॥॥ ॥

[923] पणितां यदि वा लुकहाअ अप्पां वा यदि वा बहुं,॥
यापनत्थाऽ अभुञ्जिऽसु अगिद्ध नाधिमुच्चित:॥ ॥

[924] जीवितानां परिक्खरे भेसज्जे अथा पकाए,॥
न बाधं उस्सुका आसुऽ यथा ते आसवक्खये॥ ॥

[925] अरण्ये रुक्खमुलेसु कंदारसु गुहासु च,॥
विवेकमनुब्रुहेन्ता विहंसु तप्परायण॥ ॥

[926] निका निविथा सुभारा मुदु अत्थद्धमानसा,॥
अभ्यसेका अमुखरा अट्ठचिन्तावसानुगा॥ ॥

[927] ततो पसादिकां असि गतं भुत्तां निसेवितां,॥
सिनिधा तेलधाराव अहोसि इरियापथो॥ ॥

[928] सब्बासवपरिक्खिना महाझायि महहिता,॥
निब्बुता दानी ते थेरा परित्ता दानी तदिसा॥ ॥

[929] कुसलानां च धम्मनां पणन्या च परिक्खया,॥
सब्बाकारवरूपेतं लुज्जते जिनसासनं॥ ॥

[930] पपकानां च धम्मनां किलेसाणं च यो उतु,॥
उपथिता विवेकाय ये च सद्धम्मसेसाका॥ ॥

[931] ते किलेसा पवन्दहंता अविसन्ति बहुऽ जनाऽ,॥
किंन्ति मन्ने बलेहि उम्मतेहि वा रक्खसा॥ ॥

[932] किलेसाभिभूत ते तेन तेन विधाविता,॥
नारा किलेसवत्थुसु ससाङ्गामेव घोसिते.॥ ॥

[933] परिच्चजित्वा सद्धम्मं अण्णामन्नेहि भण्डारे,॥
दिथिगतानी अन्वेंटा इदां सेय्योति रणनारे ॥॥ ॥

[934] धनौ च पुत्तṃ भारियौ च चडयित्वना निगता,॥
कटच्चुभिक्खहेतु अकिक्कानि निसेवारे॥ ॥

[935] उदारवदेहक भुत्वा सयन्तुत्तनसेयका,॥
कथा वन्धेन्ति पतिबुद्धा या कथा सत्थुगृहिता॥ ॥

[936] सब्बाकारुकासिप्पनि चित्तिकत्वन सिक्खरे,॥
अवूपासंता अज्झत्तं समान्नत्थो ति अच्छति॥ ॥

[937] मटिकाṃ तेलाṃ क्यूनाṃ सीए उदकासनभोजन,॥
गिहिनां उपानामेंटि अकाकंखंता बहुत्तारं॥ ॥

[938] दन्तपोनाṃ कपित्थाṃ च पुप्फाṃ खादनियानि सीए,॥
पिण्डपते च सम्पन्ने अम्बे अमलकानि च॥ ॥

[939] भेसज्जेसु यथा वेज्जा किक्काकिस्से यथा गिहि,॥
गणिकाव विभूषायं इस्सरे खट्टिय यथा ॥॥ ॥

[940] नेकाटिका मन्चानिका कुत्साक्खि अपातुका,॥
बहुहि परिकप्पेहि अमिसान् परिभुञ्जरे ॥॥ ॥

[941] लेसकाप्पे परियाये परिकाप्पेनुधविता,॥
जीविकत्था उपयेन संखन्दन्ति बहुऽ धनौ ॥॥

[942] उपाथपेंती परिसां कम्मातो नो सीए धम्मतो,॥
धम्मं परेसां देसेन्ति लभतो नो च अत्थतो॥ ॥

[943] संघलाभस्सा भंन्ति संघतो परिबाहिरा,॥
परलाभूपजीवंता अहिरिका न लज्जारे॥ ॥

[944] नानुयुत्ता तथा एके मुंडा संघातिपरुता,॥
संभवानं येविच्छन्ति लाभसक्करामुच्चितः॥ ॥

[945] एवं नाणप्पयतामहि न दानि सुकारं तथा,॥
अफुसितां व फुनितुं फुनासितां नानुरक्खितुं॥ ॥

[946] यथा कनकठनमहि कैरेया अनुपाहनो,॥
सतिउ उपत्थपेत्वना एवं खेल मुनि देखभाल॥ ॥

[947] सरित्वा पुब्बके योगी तेसाअ वत्तमनुस्सरm,॥
काकिनचा'पि पचिमो कालो फुसेय अमातां पदो ॥॥

[948] इदां वत्वा सालवने समणो भवितिन्द्रियो,॥
ब्राह्मणो परिनिब्बायि इसि खिणपुणभवो' ति.॥ ॥

[920] ये वे विचार हैं जो एक भिक्षु के मन में आए, जो
विशाल वन के [2] सुंदर फूलों के नीचे,
एकांत और एकांत में, गहन ध्यान में बैठा था: -

[921] भिक्षुओं का आचरण कैसे बदल गया है?
जब से जगत के स्वामी (बुद्ध),
परम पुरुष, पृथ्वी पर निवास कर रहे थे!

[922] ठंडी हवाओं से बचाव के लिए कपड़े,
जो छिपाना चाहिए, बस उतना ही, इससे ज़्यादा नहीं, उन्होंने चाहा,
जो कुछ भी मिला, उसका उन्होंने संतोषपूर्वक आनंद लिया।

[923] चाहे भोजन उत्कृष्ट हो या घटिया,
चाहे वह बहुत हो या थोड़ा, उन्होंने
जीवन को आगे बढ़ाने के लिए, लालची सनक से मुक्त रहने के लिए, उसमें भाग लिया।

[924] जीवित प्राणियों के रूप में मनुष्यों के लिए आवश्यक चीजें,
और जीने के साधन के रूप में दवा भी: - इनके लिए
उन्होंने उतनी गंभीरता से परवाह नहीं की, जितनी कि उन्होंने
मन के जहर को नष्ट करने के बारे में की।

[925] घने जंगलों में पेड़ों की छाया में,
गुफाओं में, चट्टानों की गोद में,

वैराग्य का अध्ययन और विकास करते हुए: -
इस प्रकार वे जीवन व्यतीत करते थे, इसे अपनी तात्कालिक खोज बनाते हुए।

[926] विनम्र, नम्र स्वभाव और मितव्ययी स्वभाव का,
कोमल हृदय वाला, लचीला और बुद्धिमान,
शालीन व्यवहार वाला, आपत्तिजनक वाणी नहीं बोलने वाला,
दूसरों और स्वयं के भले के लिए तत्पर। [3]

[927] इसलिए उनका जीवन सुखद और प्यारा है: -
उनका आना-जाना, उनके आनंद, उनके काम, -
तेल की धारा की चिकनी रेखा की तरह।

[928] उनके लिए हर तरह का नशा (अपवित्रता/इच्छा) मर चुका था,
वे ध्यान में महान थे, भलाई के लिए महान थे:
अब वे बुजुर्ग पूरी तरह से गुजर चुके हैं।
आजकल उनके जैसे बहुत कम लोग बचे हैं।

[929] अच्छी परिस्थितियों और अंतर्दृष्टि की कमी से,
विजेता का शासन,
योजना और तरीके में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, वह बिखर जाता है और घिस जाता है।

[930] परिस्थितियाँ बुरी हैं और युग भ्रष्ट है,
जिसमें वे भी, जिन्होंने जीवन के लिए विरक्त होकर
अच्छी शुरुआत की थी, और जो अभी भी उच्चतर चीजों की ओर
अग्रसर हो सकते हैं, - वे भी

[931] भ्रष्टाचार के तीव्र विकास से,
कई लोग बुराई की ओर प्रभावित होते हैं।
मुझे लगता है कि वे मूर्खों के विवेक से इस प्रकार खिलवाड़ करते हैं
जैसे शैतान पागलों के साथ खेलते हैं।

[932] भ्रष्टाचारों पर विजय प्राप्त करके, ऐसे लोग, -
इधर-उधर जो भ्रष्ट किया है उसका पीछा करते हुए,
जैसे कोई जोर से चिल्लाता है कि उसे क्या मिला है, - [4]

[933] वे आपस में झगड़ा करते हैं,
पवित्र मार्ग (धम्म) को पूरी तरह से त्याग देते हैं, और त्रुटियों के बाद
सोचते हैं: - देखो! यह बेहतर है, यह सबसे अच्छा है।

[934] जिन्होंने धन, पत्नी
और बच्चे से मुंह मोड़ लिया है और अपना घर छोड़ दिया है, अगर उन्हें
भीख भी मिल जाए तो वे अनुचित काम करेंगे।

[935] वे पेट भर खाते हैं, फिर
बिस्तर पर लेट जाते हैं, और जागने पर
उन मामलों पर चर्चा करते हैं जिनकी भगवान (बुद्ध) निंदा करते हैं। [5]

[936] वे सभी कलाओं और हस्तशिल्पों को उच्च दर्जा देते हैं

और अभ्यास करते हैं: - भिक्षुओं के कर्तव्य यही माने जाते हैं,
जबकि वे आंतरिक विजय से परहेज करते हैं।

[937] और स्नान के लिए मिट्टी, तेल और पाउडर,
पानी, भोजन और आवास वे
आम लोगों को देते हैं, इस आशा में कि उन्हें अधिक दान मिलेगा;

[938] हाँ, टूथस्टिक्स भी और कपिट्ठ फल, [6] चबाने के लिए फूलों की पंखुड़ियाँ, और पसंद की करी,
आम [7] और नारियल, मायरोबालन (आंवला)।

[939] दवा बेचने में वे डॉक्टरों की तरह होते हैं, [8] व्यापारिक मामलों में आम लोगों की तरह,
वेश्याओं की तरह वे अपना सामान दिखाते हैं,
और किसी कुलीन जमींदार की तरह स्वामी की तरह व्यवहार करते हैं।

[940] [334] वे मिलावटखोर, छल करने वाले और धोखेबाज हैं,
बेईमान हैं, अनेक षड्यंत्रों से
वे इस दुनिया की चीजों में खुलकर लिप्त होते हैं,

[941] धोखाधड़ी के लिए उपयुक्त तरीकों और विधियों का अनुसरण करते हुए, चालाकी से
जीविका की तलाश करते हुए [9]
वे धन का प्रचुर भंडार इकट्ठा करते हैं।

[942] व्यापार निपटाना वह अध्याय है जिसे
पवित्र मार्ग (धम्म) के हित में नहीं कहा जाता है।
और जब वे दूसरों को उपदेश देते हैं, तो
उनका उद्देश्य केवल लाभ होता है, न कि मनुष्यों का भला।

[943] भिक्षु संघ के दायरे से बाहर बहुत से लोग हैं
जो भिक्षु संघ के लाभों पर झगड़ा और कलह करते हैं:
वे असभ्य आत्माएं हैं,
दूसरों को दिए गए चढ़ावों पर जीने के लिए बिल्कुल भी लज्जित नहीं हैं।

[944] कुछ ऐसे भी हैं जिनमें धर्मपरायणता का अभाव है,
यद्यपि उनका सिर मुंडा हुआ है और वे पीले वस्त्र पहने हुए हैं, फिर भी
वे हर समय आदरणीय होने की लालसा रखते हैं,
और कृपा, दावत और उपहारों की लालसा करते हैं।

[945] इस प्रकार जब अब इतना कुछ खो गया है,
तो यह उतना आसान नहीं है जितना पहले था,
न तो अपात्र को छूना और जीतना,
न ही छुए और जीते हुए को थामे रखना।

[946] जैसे कोई व्यक्ति काँटेदार झाड़ी में बिना जूते के चलता है,
हर कदम पर ध्यानमग्न रहता है,
वैसे ही नगर में ऋषि को अपना भ्रमण करना चाहिए।

[947] बीते दिनों के संतों को याद करते हुए,
और उनके जीवन को याद करते हुए,

भले ही आज का समय बीत चुका हो,
वह शांति का अमृतमय मार्ग पा सकता है।

[948] इस प्रकार साल के जंगल में, सुशिक्षित और अपने ज्ञान में निपुण साधु ने वाणी मारी । तब संत को मृत्यु की शांति प्राप्त हुई - उस द्रष्टा को जिसके लिए पुनर्जन्म का कोई ध्येय नहीं है।

[1] सीसीएक्सएलआईएक्स.

[2] साल के पेड़ों के विशाल जंगल में (टीका, 948)। कपिलवस्तु, वैशाली और मगध में नेरंजरा पर एक 'महावन' था। पारापरिया एक सावत्थी थेरा था; इसलिए जंगल की पहचान नहीं की जा सकती।

[3] तो टिप्पणी। Ver. 926-8 अरियावंसपपतिपदा दिखाएँ।

[4] उपर्युक्त तीनों गाथाएँ कठिनाइयों से भरी हैं, जो मेरे लिए टीका द्वारा हमेशा स्पष्ट नहीं हो पातीं। उपठित-विवेकीय सुविशुद्धशीलचारा पि समाना है । शेषधम्मका का शाब्दिक अर्थ है 'नियम का शेष भाग'। 'अंतरात्मा' शब्द प्रक्षेपित है। सयामगहे आदि के स्थान पर ससंगामे का सुझाव दिया गया है , जो किलेशों (दुःखों) के सेनापति मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) का युद्धघोष है । ये सामान्यतः बुराई या पाप के प्रतीक हैं: लोभ, घृणा, सुस्ती, अहंकार, त्रुटि, उलझन, आलस्य, विचलित होना, धृष्टता, अविवेकीपन। डॉ. न्यूमैन केवल पहले का उल्लेख करते हैं, जिससे बुरी स्थितियों को सरलीकृत कर दिया गया है।

[5] संयम, केवल करवट लेकर लेटना और कुछ विषयों से बचना भिक्षु के कर्तव्यों में शामिल थे। तुलना करें बुद्ध मनोविज्ञान, पृ. 858; संवाद, i. 245 ('वीर' के लिए 'चैंपियन, एथलीट' समझें); अंग निक, i. 114; बुद्ध सूत्र, 227.

[6] जाहिरा तौर पर एक प्रकार का सेब। तुलना करें मिलिंडा, i. 202. चाइल्डर्स के शब्दकोश में फेरोनिया एलिफेंटम के रूप में पहचाना गया।

[7] टीका कहती है कि आम कई फलों का प्रतीक है, जैसे नींबू, नारियल आदि।

[8] भिक्षुओं के लिए लाभ के लिए चिकित्सा और सर्जरी का अभ्यास निषिद्ध है (संवाद, i. 25/.)।

[9] जीविकत्था (जहाँ डॉ. न्यूमैन का अनुवाद चतुर है, भले ही थोड़ा अटपटा हो) को जीविकप्पयोजन; आजीवहेतुका द्वारा पुनर्कथन किया गया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(258):फुस्सा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (258) ------>>>> अगला

अध्याय XVII.
तीस श्लोक
258. फुस्सा
बुद्ध युग में एक प्रांत के शासक के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लेकर, [1] उनका नाम फुस्सा रखा गया और उन्हें कुलीन युवकों के सभी गुणों में प्रशिक्षित किया गया। लेकिन अपनी प्राप्त परिस्थितियों के कारण उनका हृदय सांसारिक इच्छाओं से अछूता रहा, इसलिए जब उन्होंने एक महान थेरा को धम्म का उपदेश देते सुना, तो उन्होंने विश्वास किया और भिक्षु संघ में प्रवेश किया। ध्यान का अभ्यास करते हुए, उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और समय के साथ छह प्रकार की अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) अर्जित की।

एक दिन पाण्डरागोत्त [2] नामक एक तपस्वी ने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना। थेरा के चारों ओर सदाचारी, तन-मन से प्रशिक्षित और संयमित भिक्षुओं का समूह देखकर उस तपस्वी ने सोचा, 'यह धर्म प्रणाली कितनी उत्कृष्ट है! यह पृथ्वी पर लंबे समय तक कायम रहे!' और उन्होंने थेरा से पूछा, 'हे पूज्यवर, भविष्य में भिक्षुओं की प्रगति कैसी होगी?'

इस स्थिति को समझाने के लिए संकलकों ने सर्वप्रथम यह श्लोक रखा:

[949] पसादिके बहु दिस्व भावितते सुसावुते,॥
इसि पांडारस्सा गोत्तो अपुच्चि फुस्सासवहायो।॥ ॥

[950] किंचंदा किमधिप्पया किमकप्पा भविसरे,॥
अनागतमहि कलमहि तां मे अक्खाहि पुच्छितो॥ ॥

[949] पाण्डरस-गोत्त, भिक्षु,
ऐसे सुसंस्कृत श्रोताओं को देखकर,
विनम्र, शांत, ध्यानमग्न होकर,
फुस्सा से प्रश्न पूछते हुए:-

[950] आने वाले दिनों में तुम्हारे उद्देश्य क्या होंगे,
और तुम्हारी प्रवृत्तियाँ क्या होंगी [3] और
तुम्हारे रीति-रिवाज और प्रथाएँ क्या होंगी? [4] मुझसे, जो तुमसे यह पूछता है, तुम यह बताओ।

फुस्सा:

[951] सुओहि वचनाṃ मयहाṃ इसिपाङरसवहाय,॥
सक्कच्चान् उपाधारेहि अक्खिस्साम्यनागतान्।॥ ॥

[952] कोधाना उपनाहि च मक्खी थम्भी साथा बहु,॥
इस्सुकी नानावदा च भविस्संति अनागते॥ ॥

[953] अनानातामानिनो धम्मे गंभीरे तिरगोचरा,॥
लहुका अगरु धम्मे अण्णामन्नमगरावा॥ ॥

[954] बहु आदिनावा लोके उप्पज्जिस्सन्त्यनागते,॥
सुदेसितां इमां धम्मं किलेसिसंति दुम्मति.॥ ॥

[955] गुनाहिनापि सङ्घमहि वोहरन्ता2 विसारदा,॥
बलवंतो भविस्संति मुखरा अस्सुताविनो॥ ॥

[956] गुणवंतोऽपि सङ्घमहि वोहरंता यथात्ततो,॥
दुब्बाला ते भविस्संति हिरीमाना अनात्तिका॥ ॥

[957] राजताṃ जातरूपाṃ च खेताṃ वत्थुमाजेḷकाṃ,॥
दासीदासं च दुमेधा सादियिस्सन्त्यनागते। ॥ ॥

[958] उज्जहनसान्निनो बाला सिलेसु अस्महिता,॥
उन्नदा विकारिस्संति कलहाभिरता मगा॥ ॥

[959] उद्धता च भविसंति नीलशिवरापरुता,॥

कुहा थधा लपा सिंगी कैरिसन्तारिया विया॥ ॥

[960] तेलसांथे केसेही कैपलाṃ अंजितक्खिका,॥
रथियाया गमिस्संति दंतवनिकपरुता।॥ ॥

[961] Ajegucchaṃ vimuttehi surattaṃ arahaddhajaṃ,॥
Jigucchissanti kāsāvaṃ odātesu samucchitā.॥ ॥

[962] लाभकामा भविसंति कुसीता हिनावीरिया,॥
किच्चन्ता वनपत्थानि गावन्तेसु वसिसरे.॥ ॥

[963] ये [88] ये लाभं लभिसंति मिच्छाजीवरता सदा,॥
ते तेव अनुसिक्खान्ता भमिसंन्ति1 असन्याता॥ ॥

[964] ये ये अलभिनो लाभं न ते पुज् भविसरे,॥
सुपेसालेऽपि ते धीरे सेविसंन्ति न ते तदा॥ ॥

[965] पिलक्खुराजानाṃ रत्ताṃ गरहंता साकाṃ धजाṃ,॥
तिट्ठियानां धजं केचि धारेस्सन्त्यवदातकं॥ ॥

[966] अग्रवो च कासवे तदा तेसां भविस्सति,॥
पतीसोन्खा च कासवे भिक्खुनं न भविष्यसति॥ ॥

[967] अभिभूतस्स दुक्खेन सल्लविद्धस्स रुप्पतो,॥
पतिसंखा महाघोरा नागासासी अचिन्तिया॥ ॥

[968] छद्दन्तो हाय तदा दिस्वा सुरत्तṃ अरहद्दजाṃ,॥
तवदेव भानि गाथा गजो अत्थोपसंहिता॥ ॥

[969] अनिक्कसावो कासावं यो वत्थाऽ परिदहेस्साति,॥
अपेतो दमासक्केन न सो कासावमारहति॥ ॥

[970] यो च वंतकासावस सिलेसु सुसामहितो,॥
उपेतो दमासक्केन सा वे कासावमारहति॥ ॥

[971] विपन्नसिलो दुम्मेधो पकाता कम्मकारियो,॥
विब्भंताचित्तो निस्सुक्को न सो कासावमरहति॥ ॥

[972] यो च सिलेना संपन्नो वीतरागो समाहितो,॥
ओदतमनसांकप्पो सेव कसावमरहति॥ ॥

[973] उद्धतो उन्नाओ बालो सिलौ यस्सा न विज्जति,॥
ओदातकं अरहति कसावं कीं करिस्सति॥ ॥

[974] भिक्खु च भक्खुनियो च दुथचित्त अनादारा,॥
तादिनां मेत्तचित्तनां निगिगणहिसंत्यानागते॥ ॥

[975] सिक्खापेन्टापपि तरेहि बाला शिवराधारणा,॥

न सुनिस्सान्ति दुमेधा पकाता कामकारिया॥ ॥

[976] ते तथा सिक्खिता बला अण्णामन्न्यां अगरवा,॥
नदियिस्सन्तुपज्झये थफाँको विया सारथीं॥ ॥

[977] एवं अनागतद्धनां पतिपत्ति भविस्सति,॥
भिक्खुन्नै भिक्खुनिन्न च पत्ते कलम्हि पछिमे ॥ ॥

[978] पुरा अगाच्छते एतं अनागतं महाभभयं,॥
सुब्बाचा होथा सखिला अण्णामण्णां सागरवा॥ ॥

[979] मेटासिट्टा करुणिका होथा सिलेसु सवुता,॥
अरद्धविरिय पहितत्ता निक्कं ददहापरक्कम॥ ॥

[980] पमादाm [89] भयतो दिसावा अप्पमादाm च खेमातो,॥
भवेथथंघिकां मग्गाm फुसंता1 अवतं पदं' ति.॥ ॥

[951] हे द्रष्टा, पाण्डरसा नाम के, मेरी बातें सुनो,
और उन्हें ध्यानपूर्वक अपने मन में संजो लो;
मैं आने वाली बातों के विषय में बताऊंगा। [5]

[952] उग्र स्वभाव वाले और द्वेषी,
अभिमानी, पाखंडी,
कपटी, ईर्ष्यालु, झगड़ालू:
उन दिनों में बहुत से लोग ऐसे ही होंगे;

[953] वे सत्य की गहराई को जानते हैं,
जबकि वे जल के किनारे खड़े हैं।
चंचल, धर्म के प्रति अनादरपूर्ण;
और परस्पर अनादरपूर्ण।

[954] हाँ, भविष्य में इस पृथ्वी पर अनेक बुराइयाँ
घटित होंगी।
हमारे इस धम्म मार्ग को इतनी अच्छी तरह से प्रस्तुत किया गया है कि
मूर्ख लोग इसे भ्रष्ट कर देंगे।

[955] जब सभा में आवाज और वोट
दिए जाते हैं, तो लोग, भले ही सद्गुण में गरीब
हों, आगे बढ़ेंगे, समर्थकों में मजबूत, [6] अपमानजनक और अविद्वत्तापूर्ण।

[956] जब सभा में आवाज़ और वोट
दिए जाते हैं, तो सदाचारी
और ईमानदार लोग कमज़ोर हो जाएँगे,
लज्जित मनोदशा और कम उत्साह वाले।

[337] [957] चांदी और सोना, खेत, स्थल और झुंड, [7] दास, दासियाँ और पुरुष, आने वाले दिनों में
अविवेकी लोग स्वीकार करेंगे।

[958] और चिड़चिड़े स्वभाव के मूर्ख,
नैतिक संयम का अभाव रखते हुए, जंगली जानवरों की तरह लड़ाई के लिए उतावले होकर
बर्बरता से इधर-उधर भटकेंगे ।

[959] वे संयम नहीं जानेंगे:-
वे नीले वस्त्रों में लिपटे रहेंगे, [8] पाखंडी, हठी, जिद्दी,
बकवास करने वाले, कुशल कूटनीतिज्ञ, [9] पुराने संतों की नकल करते हुए।

[960] तेल से चिकने बाल, और गंभीर न दिखने वाले,
और काजल से रंगी पलकें,
और हाथीदांत रंग के वस्त्र में लिपटे हुए:
इस प्रकार वे सड़कों पर चलेंगे।

[961] पीला वस्त्र, वह उत्तम रंग,
जिसे मुक्त लोग बिना घृणा के धारण करते हैं,
अरहंत (प्रबुद्ध) का ध्वज,
उनमें केवल बेचैनी पैदा करता है,
जो सफेद वस्त्रों की लालसा करते हैं।

[962] लाभ के लालची हो जाएँगे,
सुस्त और ऊर्जाहीन;
वन क्षेत्रों में थकान पाकर,
वे बस्ती के आसपास ही रहेंगे।

[963] और हमेशा गलत रास्तों पर चलने के लिए तत्पर,
बिना किसी रोक-टोक के, जैसे छात्र अक्सर करते हैं,
वे उनका अनुसरण करेंगे जिन्हें सबसे अधिक उपहार मिलते हैं।

[964] लेकिन जिन्हें कोई उपहार नहीं दिया जाता,
उन्हें न सम्मान मिलेगा, न आदर;
चाहे वे योग्य और आकर्षक पुरुष ही क्यों न हों,
उस दिन उनका कोई अनुयायी नहीं होगा।

[338] [965] अपने पीले वस्त्रों का तिरस्कार करते हुए,
कुछ लोग विदेशी रंग के लाल वस्त्र पहनेंगे, [10]
और अन्य लोग किसी सांप्रदायिक ध्वज के सफेद वस्त्र पहने हुए पाए जाएँगे ।

[966] पीले वस्त्र के प्रति अनादर
वे उन दिनों में दिखाएंगे; भिक्षु (भिक्षु)
इस बात पर विचार नहीं करेंगे कि इसका क्या अर्थ है।

[967] इस प्रकार विवेक का अभाव उस बुद्धिमान जानवर के लिए
अकल्पनीय त्रासदी थी जो दर्द से व्याकुल, घायल और भयानक संकट में पड़ा था। [11]

[968] तब छह दांत वाले हाथी ने
अरहंतों (प्रबुद्धों) का अच्छी तरह से रंगा हुआ झंडा देखा,
और उस पर हाथी के विषय में,

नैतिक शिक्षा देते हुए, श्लोक कहे:

[969] जो बुराई करता है, फिर भी भगवा वस्त्र धारण करता है,
आत्मसंयम और सत्य से विमुख रहता है,
वह भगवा रंग धारण करने के अयोग्य है।

[970] जो बुराई को त्यागकर, सदाचारी मार्ग पर दृढ़ रहता है,
और आत्मसंयम और सत्य से जुड़ा रहता है,
वही भगवा रंग धारण करने योग्य है [12]

[971] अनैतिक, मूर्ख और विकृत,
एक व्यभिचारी, जिसका हृदय
अस्थिर है, जिसका मन (विचारों से) घिरा हुआ है:
वह भगवा वस्त्र के अयोग्य है।

[339] [972] जो सद्गुण से धन्य है,
कामवासना से मुक्त है, हृदय से एकाग्र है,
जिसकी आशाएँ और उद्देश्य श्वेत हैं [13] वह केसरिया वस्त्र के योग्य है।

[973] एक मूर्ख, जिसका मन घमंडी और व्याकुल है,
जिसके लिए कोई नैतिक संहिता नहीं है:
सफेद रंग के वस्त्र ही उसके योग्य थे।
केसरिया वस्त्र का उसे क्या उपयोग है?

[974] उस दिन भिक्षु और ननें,
भ्रष्ट और अधर्मी हृदयों से, उन लोगों
को धमकाएंगे और अपमानित करेंगे
जिन्होंने अपने हृदयों को प्रेम में प्रशिक्षित किया है।

[975] और मूर्ख, जिन्हें उनके बड़ों ने
वस्त्र पहनने और उपयोग करने का सही तरीका सिखाया है,
बुद्धि की कमी के कारण नहीं सुनते, वे
सभी कुटिल और मनमानी करने वाले हैं।

[976] और इसलिए मूर्ख, इस प्रकार शिक्षित होकर,
आपसी सम्मान की कमी के कारण,
अपने शिक्षकों के वचन का पालन नहीं करेंगे,
दुष्ट अपने रखवाले को काटने के समान।

[977] इस प्रकार आने वाले युग में भिक्षुओं और भिक्षुणियों का
मार्ग और प्रवृत्तियाँ होंगी , जब अंतिम समय निकट होगा। [14]

[978] इस भयंकर भय के समय तक
, जो अब नहीं है,
तुम कोमल, विनम्र हृदय वाले बनो,
आपसी सम्मान से भरे रहो।

[979] प्रेममय और दयालु बनो

और सद्गुणों के मार्ग में अच्छी तरह से नियंत्रित रहो, [340] परिश्रमी, लक्ष्य पर केंद्रित,
और हमेशा बहादुरी से आगे बढ़ते रहो।

[980] वह खतरा छेड़छाड़ में निहित था:-
वह गंभीरता निश्चित और सुरक्षित है:-
जब तुम यह देख लो, तो
अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करो, तो तुम उसे स्पर्श करोगे,
इस प्रकार अपना बना लो, [15] अमर मार्ग।

इस प्रकार थेरा ने अपने अनुयायियों से कहा। अब केवल यही श्लोक उनकी अञ्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा थे।

[1] मँडलिकारान्नो। पी देखें. 83, एन. 5.

[2] टीका में पाण्ड, पाण्डरा और पाण्डरसा को समान रूप से मान्य बताया गया है। उनके बारे में इससे अधिक कुछ ज्ञात नहीं है; लेकिन संभवतः उनका संबंध पाण्डरंगों से है, जो बिंदुसार और उनके पुत्र सम्राट अशोक के समय के 'भटकने वाले' समूह थे। (समंतपासादिका, त्वनय, iii., 300)

[3] = किं-दिसाज्जासया (टीकाकरण) .

[4] = vārittacārittavanto (टिप्पणी).

[5] भविष्य में संघ को घेरने वाले खतरों (अनागत-भयानी, आदि) की समान भविष्यवाणियाँ कई प्रवचनों में बुद्ध को सौंपी गई हैं [अंग. निक., iii. 105-110; cf. पृ. 176 f., 247 f., 329 f., 340 [? 339])।

[6] = पक्खबलेना बलवंतो (टिप्पणी) ।

[7] अर्थात्, भवन निर्माण के लिए, या परती भूमि - akatabhūmibhāgo vatthu, 'झुंड,' शाब्दिक रूप से, बकरियाँ, सभी मवेशियों का प्रतिनिधित्व करती हैं (Cy.). cf. Vin. Texts, iii. 389 f.

[8] 'आम तौर पर अनुपयुक्त रंग से रंगा हुआ' (टिप्पणी) ।

[9] सी.एफ. जेपीटीएस, 1885, पृ. 53; मिलिंडा, ii. 258 ; इति-वुट्टका, पृ. 112. टीका स्थानों में बुद्धघोष (अंग. निक., ii. 26) के समान शब्दों में परिभाषित करती है।

[10] मिलक्कुराजानां रत्तं पर टिप्पणी में काकड़राजनेन रत्तं है, ' मिलक्कुराजना-रतं में 'नाक ŋ को मेट्री कॉज डाला जा रहा है' ।

[11] रुप्पाटो, दैट। रुप्पां का ; शरीरविकारं अपज्जतो (टिप्पणी) . सी एफ सुत्ता निपाता, वी. 331.

[12] छद्दंत (छह दांत वाला) जातक, खंड, संख्या 514 से । हाथी, जिसके बारे में दावा किया गया था कि वह बोधिसत्व (बुद्ध बनने के लिए नियत) था, एक शिकारी की चालाकी से एक गड्ढे में फँस जाता है, जो जानवर के मन में नुकसान का संदेह पैदा करने से बचने के लिए, खुद को एक भिक्षु के रूप में भेस बदल लेता है! जातक के श्लोक धम्मपद के श्लोक 9, 10 में भी शामिल हैं। तुलना करें कासाव-जातक, द्वितीय, संख्या 221। शब्द-क्रीड़ा पर, कासाव, 'बुराई', कासाव, 'पीला रंग', देखें एम. मुलर का धम्मपद, एसबीई, x. 5, n. 9. खुद्दक-निकाय की एक अन्य पुस्तक द्वारा इस प्राचीन गाथा और इसकी कहानी का उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

[13] सी.एफ. श्लोक 549. सुविशुद्धमानो विटक्को अनाविलसंकप्पो वा (सा.)।

[14] टीका में पूछा गया है, 'अंतिम समय (पच्चिमो कालो) क्या है? "तीसरी सभा से" (पटना में, अशोक के शासनकाल में) यह उत्तर कुछ लोगों द्वारा विवादित है। क्योंकि शासन के जीवन में पाँच अवस्थाएँ (युगानि) होती हैं : विमुक्ति, समाधि, शील, सुत, दान। ये इसी क्रम में तब तक चलती हैं जब तक केवल बाहरी लक्षण (लिंगमत्तं) शेष नहीं रह जाते।'

[15] 'स्पर्श' - यानी, 'अनुभव करना,' टिप्पणी पाठ फुसंता.
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(259): सारिपुत्त

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (259) ------>>>> अगला

अध्याय XVII.
तीस श्लोक
259. सारिपुत्त
उनकी और महान मोग्गलाना [1] की कहानी को एक साथ लिया गया है। युगों पूर्व, बुद्ध अनोमदस्सी के समय में, शारदा और सिरिवद्धा नाम के दो साथी थे, जो एक प्रख्यात ब्राह्मण (पुजारी) के पुत्र थे, और दूसरे एक महान जमींदार के पुत्र थे। शारदा को अपने पिता की संपत्ति विरासत में मिली, लेकिन सभी प्राणियों के सामान्य दुर्भाग्य से व्याकुल होकर, उन्होंने मोक्ष का मार्ग खोजने के लिए संसार त्याग दिया (भिक्षुत्व ग्रहण किया) और सिरिवद्धा को भी ऐसा ही करने के लिए आमंत्रित किया। 'मैं नहीं कर सकता,' सिरिवद्धा ने उत्तर दिया, लेकिन जब शारदा को बुद्ध ने ऋषि के रूप में दर्शन दिए, तो वे मान गए। अब शारदा के सभी अनुयायी, मुख्य शिष्य अनोमा द्वारा धर्म (धम्म) के उपदेश सुनने के बाद, अरहंत (प्रबुद्ध) हो गए। लेकिन शारदा स्वयं, मन में लीन होने के कारण, धर्म के मार्ग और फल को ग्रहण करने में असमर्थ रहे। इस पर शारदा और सिरिवद्ध दोनों ने बुद्ध की उपस्थिति में, अनोमा की तरह, भविष्य में किसी बुद्ध के प्रमुख शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त की। बुद्ध ने यह आश्वासन दिया कि गौतम बुद्ध के समय में ऐसा ही होगा। उनके बाद के कर्मों का कोई विवरण नहीं है, लेकिन हमारे परम पूज्य (बुद्ध) के जन्म से पहले, शारदा का पुनर्जन्म राजगृह से कुछ ही दूरी पर उपतिसों के नगर [341] में ब्राह्मण रूपसारी के घर हुआ, और उसी दिन सिरिवद्ध का जन्म राजगृह से कुछ ही दूरी पर कोलितों के नगर में ब्राह्मण मोग्गली के घर हुआ। और क्योंकि दोनों अपने-अपने परिवार के मुखिया के पुत्र थे, इसलिए एक का नाम उपतिस और दूसरे का कोलित रखा गया। दोनों बालकों [3] का पालन-पोषण विलासिता में हुआ और वे सभी गुणों में निपुण थे। लेकिन एक दिन राजगृह में पहाड़ी पर लगे मेले [4] में उमड़ी भीड़ को देखकर , उनकी अंतर्दृष्टि परिपक्व हो चुकी थी, और उन्होंने देखा कि एक सदी के भीतर ही सभी लोग मृत्यु के चंगुल में गिर पड़ेंगे, और उन्होंने तुरंत मुक्ति का मार्ग खोजने का निश्चय किया। और वे संसार छोड़कर (भिक्षुत्व के लिए) घुमक्कड़ संजय के विद्यालय में चले गए, और इस बात पर सहमत हुए कि यदि कोई पहले अमाता पहुंचेगा तो वे एक-दूसरे को सूचित करेंगे।

संजय की शिक्षा में उन्हें कुछ भी वास्तविक नहीं मिला, और उन्होंने संन्यासियों और ब्राह्मणों (पुजारियों) से पूछते हुए अपनी खोज जारी रखी, यहाँ तक कि भिक्षु अस्सजी के माध्यम से उन्हें परम पूज्य (बुद्ध) प्राप्त हुए, [5] और उन्होंने हाथ रखकर और "आओ, भिक्षुओं" कहकर उन्हें भिक्षुत्व की दीक्षा दी। अस्सजी द्वारा धम्म के सारांश से सोतापना (निर्वाण की पहली समाधि) प्राप्त करने के बाद, [6] उन्हें अन्य तीन मार्गों में से किसी का भी अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं रही। क्यों? क्योंकि शिष्य होने के बावजूद भी उन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त था। इसके द्वारा पूज्य मोग्गलाना ने सातवें दिन मगध के कल्लावाला गाँव में भगवान (बुद्ध) के आदेश से आलस्य और सुस्ती पर विजय प्राप्त की और तत्वों पर एक अभ्यास सुनकर [7] सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, जबकि पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षु दीक्षा के आधे महीने बाद राजगृह में सुकराखात गुफा [8] में भगवान (बुद्ध) के साथ रहते हुए इसे प्राप्त किया ; जबकि [342] उनकी बहन के पुत्र दीघनाखा, जो एक घुमक्कड़ थे, को 'वेदनपरिग्गह' सूत्रंत [9] की शिक्षा दी जा रही थी। इसके बाद भगवान (बुद्ध) ने जेतवन में एक सभा में सारिपुत्त को अपने शिष्यों में ज्ञान और अंतर्दृष्टि में श्रेष्ठ स्थान दिया।

और उन्होंने, धम्म के सेनापति के पद पर स्थापित होकर, प्राणियों के कल्याण के लिए कार्य करते हुए, एक दिन अपने साथी शिष्यों के समक्ष अपनी अज्ञा (सर्वोच्च उपलब्धि) की घोषणा इस प्रकार की:

[981] यथाचारि यथासतो सतीमा यतसाङ्कम्मज्झायि अप्पमत्तो,॥
अज्झत्तरतो समाहितत्तो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुनं॥ ॥

[982] अल्लाऽ सुक्खाँ वा भुञ्जन्तो न बङहाऽ सुहितो सिया,॥

स्नोदरो मिताहारो सातो भिक्खु परिब्बाजे॥ ॥

[983] कैटारो पंचा आलोपे अभुत्वा उदकां पिवे,॥
अलां फासुविहाराय पहितत्तस्सा भिक्खुनो॥ ॥

[984] कप्पियाṃ ताṃ सी चदेति तिवराṃ इदमत्थिताṃ,॥
अलां फासुविहाराय पहितत्तस्सा भिक्खुनो॥ ॥

[985] पल्लौकेना निसिन्नस्सा जानुके नाभिवस्सति,॥
अलां फासुविहाराय पहितत्तस्सा भिक्खुनो॥ ॥

[986] यो सुखाṃ दुक्खतो अड्डा दुक्खमद्दक्खी सल्लतो,॥
उभयन्तरेण नहोसि केन लोकस्मिं किओ सिया ॥ ॥

[987] मा मे कदाचि पपीचो कुसिटो हिनाविरियो,॥
अप्पसुतो अनादारो केना लोकस्मिं किओ सिया ॥ ॥

[988] बहुसुतो च मेधावी सिलेसु सुसामहितो,॥
सेतोसमथमनुयुत्तो अपि मुद्धनि तिथतु ॥ ॥

[989] यो पापञ्चमनुयुत्तो पापञ्चभारतो मगो,॥
विराधयी सो निर्वाणं येगक्खेमं अनुत्तराऽ॥ ॥

[990] यो सीए पपनकाṃ हित्वाना निप्पापनाकापथे रतो,॥
अराधयी सो निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तराऽ॥ ॥

[981] जो कोई अपनी सामर्थ्य के अनुसार
गुणी हो, [10] संत, मन से स्पष्ट,
अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए गंभीर,
जो आत्मनिरीक्षण कार्य से प्रेम करता हो, [11] अच्छी तरह से एकाग्र और अभिमानी,
एकांत और विरक्त, आनंदित, शांत:
इस व्यक्ति को सही मायने में भिक्षु (भिक्षु) कहा जाता है।

[982] जब भी वह गीला या सूखा भोजन खाए, [12] उसे पूरी तरह संतुष्ट नहीं होना चाहिए।
पेट में हल्कापन रखो, भोजन में संयम बरतो,
और भिक्षु (भिक्षु) को अपने मार्ग पर सतर्क रहना चाहिए। [13]

[983] क्या उसने केवल चार या पाँच निवाले ही खाए हैं? उसे पानी पीने दो: — यहाँ उत्साह से भरे भिक्षु (भिक्षु) के लिए पर्याप्त ताज़गी है ।

[984] जो चीज़ें उचित हैं, उन्हें वह प्राप्त कर सकता है और ले सकता है: -
इस विशेष उद्देश्य के लिए पहने जाने वाले वस्त्र: -
उत्साह से भरे भिक्षु (भिक्षु) के लिए पर्याप्त आराम।

[985] [343] और जब वह अपने पलंग पर पालथी मारकर बैठता है,
अगर उसके घुटने बारिश से सुरक्षित रहें, [14] तो उत्साह से भरे भिक्षु (भिक्षु) के लिए यह पर्याप्त आराम है।

[986] जिसने भी सुख को केवल पीड़ा समझा है;

जिसने पीड़ा में चुभने वाला तीर देखा है; जिसने
दोनों के बीच कोई आत्म नहीं देखा: - [15] वह संसार क्या धारण करेगा, कौन सा भाग्य उस मनुष्य को रोके रखेगा?

[987] मुझे कभी भी ऐसा व्यक्ति न दो जिसके हृदय में बुराई हो,
जो जड़, निष्क्रिय और हठी हो,
और जो पवित्र मार्ग (धम्म) का बहुत कम ज्ञान रखता हो।
वह संसार उसे क्या धारण करेगा, उसका क्या भाग्य होगा? [16]

[988] जो पवित्र मार्ग (धम्म) में विद्वान है,
समझ सकता है,
नैतिक आधार पर पूरी तरह से एकाग्र है, और आंतरिक शांति से जुड़ा हुआ है: -
उसे मेरे लिए मुखिया और सबसे आगे खड़ा रहने दो।

[989] जिसका हृदय जुनूनों [17] में डूबा हुआ है -
मोह के जाल में फँसा हिरण -
वह निर्वाण से बहुत दूर भटक जाता है,
परम आश्रय में भी मार्ग नहीं पाता।

[990] परन्तु जो अपने हृदय को आसक्तियों से मुक्त करता है,
उस मार्ग में आनंदित होता है जहाँ ये नहीं हैं,
वह निश्चय ही निर्वाण का मार्ग पाता है,
परम आश्रय की ओर सुरक्षित रूप से अपना मार्ग तय करता है।

अब एक दिन थेरा ने अपने छोटे भाई रेवता [18] के रहने की जगह देखकर - काँटेदार और बबूल के पेड़ों के एक जलहीन जंगल में - उसकी प्रशंसा करते हुए कहा:

[991] गेमे वा यदि वा रानने निन्ने वा यदि वा थले,॥
यत्था अरहंतो विहारन्ति तं भूमिं रामनेय्यका:॥ ॥

[992] रमणीय अरण्यनि यथा न रमति मनो,॥
वीतरागा रामिस्संति न ते कामगावेसिनो॥ ॥

[991] गाँव में हो या जंगल में, घाटी में हो या पहाड़ी पर,
जहाँ कहीं भी योग्य पुरुष, अरहंत (प्रबुद्ध लोग),
अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वह स्थान रमणीय होता है।

[992] वन रमणीय हैं, जहाँ भीड़
आनंद लेने नहीं आती; वहाँ वे लोग
आनंद पाते हैं जो वासनाओं से मुक्त हैं।
वे इंद्रिय-संतुष्टि के साधक नहीं हैं।

फिर, थेरा ने राधा नामक एक दुर्भाग्यशाली ब्राह्मण (पुजारी) पर दया दिखाई, जिसके कारण उसने संसार त्याग दिया और भिक्षु संघ में प्रवेश कर लिया। [19] इसके बाद, यात्रा के दौरान, उन्होंने राधा के सौम्य व्यवहार से प्रसन्न होकर उनसे बात की:

[993] निधिनाउ'व पवत्ताराṃ याṃ पस्से वज्जदस्सीनाṃ,॥
निग्ग-अहवादिं मेधाविं तदिसैं पण्डितं भजे,॥
तदिसैं भजमानस्सा सेय्यो होति न पापियो॥ ॥

[993] जैसे कोई छिपे हुए खजाने दिखाता है,
वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है
कि क्या टालना चाहिए और समझदारी भरी सलाह देता है: -
यदि तुम ऐसे योग्य मार्गदर्शक को देखते और मानते हो,
तो तुम्हारा अनुसरण करना बेहतर है, बुरा नहीं।

अब एक दिन, भगवान (बुद्ध) स्वयं किता पहाड़ी पर स्थित असजी-पुनब्बासु भिक्षुओं की भ्रष्ट बस्ती को दबाने के लिए नहीं गए, [20] बल्कि सारिपुत्त मोग्गलाना और उनके अनुयायियों के साथ गए। और जब सारिपुत्त के निर्देश की अवहेलना की गई, तो उन्होंने इस प्रकार कहा:

[994] ओवदेय्यानुसासेय असब्भा च निवारये,॥
सातो ही सो पियो होति असातौ होति अप्पियो॥ ॥

[994] हमें सिखाना चाहिए, निर्देश देना चाहिए, मना करना चाहिए,
बुराई और गलत कामों में बाधा डालनी चाहिए।
ऐसा करने से, अच्छे कामों से ही व्यक्ति प्रिय होता है;
केवल बुरे काम करने वाले ही घृणा पाते हैं।

जब भिक्षु कह रहे थे कि जिसे गुरु शिक्षा दे रहे थे - अर्थात् दीघनाखा [21] - वह अपने पूर्ववृत्तों से पूरी तरह तैयार था, तब सारिपुत्त ने हस्तक्षेप करते हुए कहा: ऐसा नहीं था:

[995] अनास्स भगव बुद्धो धम्मं देसेसी चक्खुमा,॥
धम्मे देसियामानमहि सोतामोधेसिमत्थिको॥ ॥

[996] ताṃ मे अमोघṃ सवानाṃ विमुत्तोमि अनासावो॥
नेवा पुब्बेनिवासया न'पि दिब्बासा चक्खुनो॥ ॥

[997] सेतोपरिया इदिधिया कुतिया उपपत्तिया,॥
सोतधातुविशुद्धिया पणिय मे न विज्जति॥ ॥

[995] दूसरा वह था जिसे उन्होंने धम्म का मार्ग सिखाया -
हे परम पूज्य, बुद्ध, वह जो देखता है -
क्योंकि जब धम्म का मार्ग सिखाया जा रहा था, मैंने सुना,
पूरी एकाग्रता से सुनकर भलाई की तलाश करते हुए।

[996] और मुझे विश्वास है कि मेरा सुनना व्यर्थ नहीं गया,
क्योंकि मुझे मुक्ति मिल गई है, मैं स्वस्थ हूँ, प्रतिरक्षा प्राप्त है।
न तो अपने अतीत की दृष्टि प्राप्त करने के लिए,
न ही दिव्य दृष्टि से देखने के साधन के लिए -

[997] मनुष्यों के विचारों को पढ़ने की रहस्यमय शक्ति,
पृथ्वी और स्वर्ग में मृत्यु, पुनर्जन्म को समझने की शक्ति,
न ही दिव्य रूप से अनुकूलित कान के लिए
मुझे मन को समायोजित करने की आवश्यकता थी। [22]

अगले तीन श्लोकों में उनके बारे में बात की गई है, जब कबूतर गुफा विहार (मठ) में रहते हुए, उन्हें यक्ष के प्रहार से कोई चोट नहीं आई: [23]

[998] रुक्खमूलाऽ वा निस्साया मुन्दो सङ्घातिपरुतो,॥
पनन्या उत्तमो थेरो उपतिस्सो च झायति॥ ॥

[999] अवितकक्कु समापन्नो सम्मासंबुद्धसावको,॥
अरियेन तुन्हिभाणे उपेतो होति तावडे॥ ॥

[1000] यथापि पब्बतो सेलो अकालो सुप्पतिथितो,॥
एवं मोहक्खया भिक्खु पब्बतोऽव न वेधति॥ ॥

[998] वृक्ष की तलहटी में बैठे, मुंडा सिर वाले,
अपने वस्त्रों में लिपटे हुए, ज्ञान में सर्वोच्च स्थान प्राप्त,
थेरा उपतिस्सा गहन ध्यान में लीन हैं।

[999] उनके विचार क्रिया-बोध से परे हैं, [24] सर्वोच्च बुद्ध के शिष्य, वे
अब तक आर्य मौन में लीन थे।

[1000] जैसे कोई पर्वत-चट्टान अडिग खड़ी रहती है,
दृढ़ आधार वाली, वैसे ही भ्रम से मुक्त एक भिक्षु,
उस पर्वत की तरह अडिग खड़ा रहता है।

एक दिन, थेरा की अनमनेपन से, उनके वस्त्र का फासला नीचे लटक गया। तब एक शिष्य ने कहा: 'महामहिम, इसे आपके चारों ओर लपेटा जाना चाहिए।' तब सरी-पुत्त ने सिर हिलाते हुए कहा: 'अच्छा, तुमने सही कहा!' और थोड़ा आगे जाकर उन्होंने अपना वस्त्र उनके चारों ओर लपेट दिया। और यह बताते हुए कि उनके जैसे व्यक्ति के लिए यह एक दोष है, उन्होंने कहा:

[1001] अनांगगासा पोसासा निक्काṃ सुसिगावेसिनो,॥
वलग्गमत्तै पपास्स अभ्मत्तैव ख्याति॥ ॥

[1001] निष्कलंक जीवन जीने वाला व्यक्ति, जो सदा
शुद्धता की खोज करता है, उसने किसी तुच्छ दोष को,
जो किसी बाल के सिरे से भी हल्का है,
[गर्भवती] बादल के भार के समान भार समझा। [25]

उन्होंने एक बार फिर इस श्लोक के माध्यम से जीने या मरने के संबंध में अपने मन की समता प्रदर्शित की:

[1002] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥
निक्खिपिस्साँ इमाँ कायं सम्पाजाणो पतिस्सतो॥ ॥

[1003] नाभिनंदामि मरणं नाभिनदामि जीविता,॥
कलौं च पतिकोखामि निब्बिसं भक्तो यथा.॥ ॥

[1002] न तो मुझे मरने की खुशी है और न ही जीने की।
मैं जल्द ही इस नश्वर शरीर को त्याग दूंगा
, सचेत मन से, नियंत्रित चेतना के साथ।

[1003] मृत्यु के विचार से मुझे आराम नहीं मिलता, न ही
जीने में आनंद आता है। मैं उस घड़ी की प्रतीक्षा करता हूँ
जैसे कोई भाड़े का सैनिक अपना काम पूरा कर लेता है। [26]

फिर, धम्म का उपदेश देते हुए उन्होंने ये श्लोक कहे:

[1004] उभयेनमिदां मरणमेव नामारणं पच्च वा शुद्ध वा,॥
पतिपज्जथा मा विनस्सथ खानो वो1 मा उपच्चगा॥ ॥

[1005] नागाराऽ यथा पचंताऽ गुट्टाअ संतराबहिराऽ,॥
एवं गोपेथा अत्तानां खानो वो मा उपक्कागा,॥
खनातिता हि सोकन्ति निरायमहि संप्पिता॥ ॥

[1004] दृश्य के दोनों ओर [हम देखते हैं], और देखो!
यह मृत्यु है, मृत्यु की कमी नहीं [हम देखते हैं], [347] चाहे वह पीछे का दृश्य हो या आगे का। [27] तो तुम अपना मार्ग पूरा करो, कहीं तुम खो न जाओ!
देखो कि यह क्षण व्यर्थ न बीत जाए! [28]

[1005] जैसे सीमावर्ती नगर
भीतर और बाहर से अच्छी तरह सुरक्षित रहता है, वैसे ही तुम भी अपनी अच्छी तरह रक्षा करो!
ध्यान रखो कि क्षण बीत न जाए और खो न जाए,
क्योंकि बहुत से लोग बीते हुए क्षण पर शोक मनाते हैं।

अब एक दिन, आदरणीय कोट्टिता महान को देखकर, उन्होंने उनकी श्रेष्ठता का बखान करते हुए तीन श्लोक बोले: [29]

[1006] उपसंतो उपरतो मंतभानि अनुद्धतो,॥
धुनाति पापे धम्मे दुमापट्टं वा मालुतो॥ ॥

[1007] उपसंतो उपरतो मंतभानि अनुद्धतो,॥
अप्पासि पापके धम्मे दुमापट्टं वा मालुतो॥ ॥

[1008] उपसंतो अनायासो विप्पसन्नो अनाविलो,॥
कल्याणसिलो धोवि दुक्खस्सन्तकारो सिया॥ ॥

[1006] जो कोई भी शांत और स्थिर है, संसार से विरक्त है, वह
बिना अहंकार के बुद्धिमान वाक्य बोल सकता है,
बिना विचलित हुए, उसने शरारती चीजों को झटक दिया,
जैसे कि वे पवन-देव द्वारा उड़ाई गई वन-पत्तियाँ हों।

[1007] जो कोई भी शांत और स्थिर है, संसार से विरक्त है, वह
बिना अहंकार के बुद्धिमान वाक्य बोल सकता है,
बिना विचलित हुए, उसने शरारती चीजों को त्याग दिया,
जैसे कि वे पवन-देव द्वारा उड़ाए गए वन-पत्तों की तरह हों।

[1008] शांत और निर्मल, दोष से अप्रभावित;
मन की स्पष्टता में बाधा डालने वाली हर चीज से मुक्त,
सद्‌गुणों में सुंदर, विवेकशील बुद्धि वाला,
उसे दुख का अंत करने वाला होना चाहिए।

देवदत्त में विश्वास करने वाले वज्जियों के विषय में निम्नलिखित कहा गया था, [30] और उनके सिद्धांत को स्वीकार किया गया था:

[1009] ना विसासे एकतियेसु एवm॥

अगरिसु पब्बजितेसु चापि,॥
साधुऽपि हुत्वान् असाधु होंति॥
असाधु हुत्वा पुना साधु होन्ति॥ ॥

[1010] कामछन्दो च व्यापादो थिनमिद्धौ च भिक्खुनो,॥
उद्धाक्कं विकिसिच्चा च पैन्सेटे चित्ताकेलिसा॥ ॥

[1011] यस्सा सक्करियामानस्सा असक्करेण चुभायौ,॥
समाधि न विकमपति अप्पमादविहारिनो॥ ॥

[1012] तं झायिकां सातातिकां सुखुमादिथिविपासकअ,॥
उपादानक्खयारामं आहु सप्पुरिसो इति॥ ॥

[1009] कुछ [31] ऐसे भी हैं जिन पर किसी को भरोसा नहीं करना चाहिए,
चाहे वे गृहस्थ हों या भिक्षुओं में से कोई भी।
ऐसे लोग जो कभी अच्छे थे और बुरे बन गए,
और फिर बुरे से अच्छे की ओर मुड़ गए।

[1010]
भिक्षु में इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ, द्वेष, सुस्ती और आलस्य , मन का विचलित होना,
और संदेह: - ये पाँच हृदय की बुराइयाँ हैं [32] ।

[1011] जो कोई भी भाग्य की दोनों चरम सीमाओं को सहन कर सकता है:
संसार के पक्ष और विपक्ष,
जब तक वह गंभीर गंभीरता में रहता है,
अपने एकाग्र मन को अविचलित रखता है: -

[1012] वह, जो गहन और अथक ध्यान में लीन है,
सूक्ष्म और कोमल अंतर्ज्ञान के साथ,
पकड़ने की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए उत्सुक है: -
उसे वास्तव में 'एक अच्छा आदमी' कहना चाहिए।

अन्य भेदों को स्पष्ट करने के लिए, उदाहरण के तौर पर भगवान (बुद्ध) और स्वयं के बीच, उन्होंने ये श्लोक कहे:

[1013] महासमुद्दो पाथवि पब्बतो अनिलोपि च,॥
उपरया न युज्जन्ति सत्थु वरविमुत्तिया॥ ॥

[1014] चक्कनुवत्तको थेरो महानानि समाहितो,॥
पथवापग्गिसमानो न राजजति न दु:सति.॥ ॥

[1015] पन्नपारमितां पत्तो महाबुद्धि महामति,॥
अजजो जसासामानो सदा चरति निब्बुतो॥ ॥

[1013] विशाल सागर, विस्तृत पृथ्वी,
पर्वत, हाँ, आकाश [33]
कोई भी ऐसा चित्र प्रस्तुत नहीं करते जो यह दर्शा सके
कि हमारे भगवान (बुद्ध) के मन की मुक्ति (निर्वाण) कितनी उत्कृष्ट है।

[1014] वह वरिष्ठ भिक्षु, अत्यंत बुद्धिमान, एकाग्र,
जो उनके उदाहरण का अनुसरण करते हुए चक्र घुमाता है,
पृथ्वी, जल और अग्नि के समान है,
क्योंकि वह न तो किसी के प्रति स्नेह रखता है और न ही घृणा। [34]

[1015] अब ज्ञान में उनका सर्वोच्च स्थान है,
बुद्धि में पराक्रमी, एक महान ऋषि;
यद्यपि वे बुद्धि में मंद प्रतीत होते हैं, वे मंदबुद्धि नहीं हैं; [35] वे सदा आनंदमय शांति में अपने मार्ग पर चलते हैं।

अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति दर्शाने के लिए उन्होंने कहा:

[1016] परिसीने मया सत्था काटां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता' ति.॥ ॥

[1016] गुरु (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है;
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है। [36]

और जब उनका पूर्णतः शरीर त्यागने का समय आया, तो उन्होंने अपने चारों ओर एकत्रित भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

[1017] संपदेथ'अप्पामादेन एसा मे अनुसानि,॥
हन्दाहाऽ परिनिब्बिस्साँ विप्पमुत्तोऽमहि सब्बाधिऽ ति.॥ ॥

[1017] पूरी लगन से आगे बढ़ो और लक्ष्य प्राप्त करो!
यही आज्ञा मैं तुम्हें देता हूँ।
देखो! अब मेरा प्रस्थान पूर्ण होगा।
मैं सब से मुक्त और पूर्णतः मुक्त हो गया हूँ। [37]

[1] सी.सी.एल.एक्स.आई.आई.आई. देखें। धामिनपाला द्वारा कथा का वर्णन यहाँ कुछ संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

[2] नालका। उपतिस्सा उनके परिवार का नाम था, वंगंता उनके पिता का नाम था (धम्मपद टिप्पणी, ii. 84, ऊपर देखें, CCXXXVIII।)।

[3] उनकी घनिष्ठ मित्रता का विस्तृत वर्णन धम्मपद टीका, i. 90 ff. (अग्गसावक-वत्थु, श्लोक 11, 12 पर) में किया गया है।

[4] गिरग्गसमाज्जा। समाज्जा पर , संवाद देखें , i. 7, n. 4.

[5] विनय ग्रंथों में पूर्णतः वर्णित है , i. 144 ff.; इसलिए मैंने यहाँ वर्णन को बहुत संक्षिप्त कर दिया है।

[6] अर्थात्, बुद्ध ने सभी चीजों को कारण-कार्य संबंध के आधार पर समझाया।

[7] मैं निकायों में इस विशेष अभ्यास का पता नहीं लगा सकता , लेकिन कई ऐसे हैं जो इस तरह के उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं - उदाहरण के लिए, धातु -संयुत्त, ii. 143; भी 248; iii. 227 ff.; अंग. निक., iii. 245, 290.

[8] या सूकरा। यह नाम कहीं और नहीं मिलता। धम्मपद टीका, i. 96 देखें ।

[9] अर्थात, 'दिघनखा सुत्तंता' (मज्झ. निक., आई., संख्या 74). धम्मपद भाष्य में इसे उपरोक्त कहा गया है । सीआईटी., और दीघा पर सुमंगला-विलासिनी में , ii., XIV., Ī 10.

[10] टीका यथाचारि को यतो कायाधि संयतो, सवुतो हुत्वा कैरति के रूप में परिभाषित करती है, जो केवल व्याख्यात्मक है; -साटो - सैंटो के लिए है ।

[11] अजहत्तरतो। यह शब्द, जो देखने में विचित्र लगता है - शाब्दिक रूप से, स्वयं से संबंधित या व्यक्तिगत चीज़ों में आनंद लेना - सुत्त-पिटक में चार बार दोहराए गए एक श्लोक में आता है: दिघा निक., 2. 107; सांघ निक., श्लोक 268; धम्मपद, श्लोक 862; उदाना, 6. 1. संवादों में, 2. 113 में, इसका अनुवाद 'आंतरिक आनंद के साथ' किया गया है, टीका में इसका केवल नियाक, 'स्वयं का' (थेरीगाथ, श्लोक 469) द्वारा पुनर्कथन किया गया है। यहाँ हमारी टीका इसका 'ध्यान अभ्यास में आनंद लेना' द्वारा पुनर्कथन करती है।

[12] यहाँ छंद एक लंबे अनियमित छंद से श्लोक में बदल जाता है।

[13] परिब्बाजे = विहारेया (Cy.)। मिल में उद्धृत . द्वितीय. 850; जाट. साइ., ii., 293.

[14] यह मिलिंद में सारिपुत्त की गाथाओं में से पहली है (ii 280)। इनमें से कुछ गाथाएँ कैनन में नहीं मिलतीं। टीका में बताया गया है: 'जिसकी कुटिया में बैठे रहने पर भी बारिश से उसके घुटने नहीं भींचते।'

[15] सांघ्य निक., चतुर्थ 207; इति-वुत्तक, ई 58 में वर्णित सिद्धांत का संदर्भ देते हुए। नैतिक बिंदु इंद्रियजन्य अवसरों पर तीन प्रकार की भावनाओं के संबंध में आत्म-नियंत्रण है। तीसरे प्रकार, तटस्थ भावना का सामान्य संदर्भ 'इसे अनित्य माना है' (aniccato) है। यहाँ यह anattato है। टीका में nāhosīti: yathābhūtāva-bodhe na attaniyābhinivesanaṃ ahosi. है।

[16] शाब्दिक रूप से: दुनिया में किससे क्या हो सकता है? मिलिंदा, ii. 332 में उद्धृत, लेकिन शब्दशः नहीं । डॉ. ओल्डेनबर्ग का मानना है कि अनाकारो , अनादारो, असाध्य (थेरागाथा, पृ. 89, एन.) से अधिक सही हो सकता है ।

[17] कठिन शब्द पापंचा। इस अंश पर डॉ. न्यूमैन की टिप्पणी और हमारी टिप्पणी देखें (संवाद, ii. 812)। पूर्व इसे सोंडरहेट, विएलहाइट, विविधता, बहुलता के रूप में प्रस्तुत करता है। लेकिन जब उनमें मौजूद खतरे को 'एकाग्रता', 'चयन', 'सरलता' आदि के विपरीत रखा जाता है, तो एकत्त के विपरीत शब्द , जैसा कि मुझे लगता है, नानात्त है, न कि पापंचा। पापंचा को तीन गुना परिभाषित किया गया है: 'लालसा', 'अभिमान' और 'त्रुटि' (दिट्ठी)। विभंग में , पृष्ठ। 390, papañcitāni भविष्य के व्यक्तिगत अस्तित्व के बारे में अटकलों (diṭṭhi) के नौ रूप हैं , एक ऐसा विषय जो maññitāni (कल्पना), phanditāni ('वाष्प,' कल्पनाएँ), sankhatāni (मानसिक रचनाएँ) शब्दों द्वारा साझा किया जाता है । तुलना करें मेरा नोट JRAS, 1906, 246 f.

[18] तुलना करें. XLII., CCXLIV.

[19] यह धम्मपद टीका (राधा-थेरा-वत्थु), ii में पूरी तरह से संबंधित है । 104 एफ.एफ., श्लोक 76 पर। राधा संभवत: CXXVII की वृद्ध थेरा हैं, जिन्हें सारिपुत्त द्वारा भिक्षुत्व में दीक्षित किया गया था।

[20] प्रथम विद्वतावाद के इस खंड पर, विनय ग्रंथ, द्वितीय देखें। 847 एफएफ। सी एफ iii. 211; धम्मपद टीका, ii. 109. पहाड़ी श्रावस्ती के पास थी ।

[21] ऊपर देखें, पृष्ठ 84, नोट 5.

[22] पाणिधि मे न विज्जति। सारिपुत्त की कहानी देखें - उसे मध्यवर्ती अध्ययन की आवश्यकता नहीं थी।

[23] यह विचित्र रूप से वर्णित प्रसंग उदाना, iv. 4 में है। विहार अभी तक कहीं और नहीं मिलता। उस ग्रंथ में अंतिम तीन पंक्तियाँ बुद्ध द्वारा उनके बारे में कही गई बताई जाती हैं। श्लोक 998-1000 रेवता (CCXLIV.) को भी समर्पित हैं।

[24] वह चौथे झाना (टीका) में थे । लेकिन अविताक्का दूसरे चरण में ही पहुँच जाता है।

[25] उनके भाई की कविता में भी, = श्लोक 652.

[26] = श्लोक 606. ये, फिर से, रेवता के श्लोकों में आते हैं।

[27] मध्य आयु में खड़े होकर वृद्धावस्था या युवावस्था को देखना (टीका)। इन चार पंक्तियों में श्लोक को एक अनियमित प्रकार के श्लोक से बदल दिया गया है। उभयेन-म-इदं पढ़ें।

[28] तुलना करें श्लोक 408, 053; बहनें, श्लोक 5.

[29] आश्चर्यजनक रूप से पहला कोट्टित को ही समर्पित है। देखें II.

[30] बुद्ध के प्रथम चचेरे भाई देवदत्त के जीवन पर, विनय ग्रंथ, i. 228 f., 288 ff., विशेष रूप से 239 ff. देखें। मिलिंद, i. 162 ff. देखें। सारिपुत्त, जिसने पहले उसकी प्रशंसा की थी, उसे धर्मत्यागी घोषित करने के लिए नियुक्त किया गया था, जिसके गुण स्वयं अविश्वसनीय थे।

[31] ekatiyesu (Cy ekaccesu) पर , देखें ट्रेंकनर, पाली मिसलेनी, पृ. 56

[32] ये पाँच 'बाधाएँ' यहाँ किलेस (मानसिक पीड़ाएँ), या केलुसा (बुद्ध. साइ., 310 ff.) के रूप में वर्गीकृत की गई हैं - इसी प्रकार (ब्र.) साइ. = चित्तुपक्किलेस।

[33] 'जो पूर्व, इत्यादि में विभाजित है' (टिप्पणी)।

[34] टीका कहती है कि भगवान (बुद्ध) जानबूझकर और उदारतापूर्वक, वांछनीय और अवांछनीय चीजों के प्रति उतने ही समभाव रखते थे, जितने कि तत्व अनजाने में रखते थे। भिक्षु को इसी उद्देश्य से पृथ्वी-मन और जल-मन का विकास करना पड़ता था (मज्झ. निक., i. 423; अंग. निक., iv. 374; तुलना करें जात., iii. 247; मिलिंद, i. 258; ii. 308, 311)।

[35] श्लोक 501 देखें। 'उनकी ज़रूरतों की सादगी के कारण।' टीका, महामुनि के स्थान पर महामती पढ़ते हुए, और सारिपुत्त की बुद्ध की स्तुति का उद्धरण देते हुए, मज्झ., iii. 25.

[36] = श्लोक 604, 792, 891, 918.

[37] उनके भाई रेवता को समर्पित, जब बाद वाला भी मर रहा था (श्लोक 658)। बुद्ध के अंतिम शब्द, संवाद, ii. 178 देखें ।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

सारिपुत्र

सारिपुत्त बुद्ध के प्रथम (दाहिने) प्रमुख शिष्य और ज्ञान में अग्रणी थे। उनका विशेष कार्य धर्म का विस्तृत विश्लेषण और व्यवस्थितीकरण करना था। परम सत्य की गहरी समझ के कारण वे धम्म के सूक्ष्म निहितार्थों को उजागर करने और जटिल शिक्षाओं के अर्थ को समझाने के लिए उत्तरदायी थे।

अपनी बुद्धिमत्ता के साथ-साथ, सारिपुत्त अपने धैर्य, करुणा, विनम्रता और दूसरों की मदद करने की भावना के लिए भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने न केवल धम्म में समुदाय और भिक्षुओं की सहायता की, बल्कि भौतिक सहायता और आराम भी प्रदान किया। जब भिक्षु सुबह-सुबह भिक्षा मांगने निकलते थे, तो सारिपुत्त उनके साथ नहीं जाते थे। इसके बजाय, वे मठ में ही रहते थे और यह सुनिश्चित करते थे कि

सब कुछ व्यवस्थित रहे। यदि कोई नौसिखिया भिक्षु किसी कमरे की सफाई करना भूल जाता था या कोई वस्तु अव्यवस्थित होती थी, तो सारिपुत्त उसे सही जगह पर रखते थे और परिसर की सफाई करते थे। वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि मठ हर समय व्यवस्थित रहे ताकि दर्शनार्थियों पर संघ के बारे में कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े।

सारिपुत्त की देखभाल

इसके बाद उन्होंने बीमारों के आश्रम का दौरा किया और बीमार भिक्षुओं को सांत्वना और दवा दी। बुद्ध ने तिस्सा नामक एक बीमार भिक्षु की देखभाल करते हुए कहा था, जिसे सभी ने ठुकरा दिया था, "जो बीमारों की देखभाल करते हैं, वे मेरी देखभाल करते हैं (मेरे उपदेशों का पालन करते हैं)।" सारिपुत्त ने भिक्षुओं को यह याद दिलाते हुए, नए भिक्षुओं को बीमारों की देखभाल और उन्हें सांत्वना देने में मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया। यदि उनमें से किसी को ऐसी दवा की आवश्यकता होती जो वहां उपलब्ध नहीं होती, तो उन्होंने उसे उपलब्ध कराने की व्यवस्था की। इन सभी कार्यों के पूरा होने के बाद ही सारिपुत्त भिक्षा मांगने के लिए निकले।

सारिपुत्त द्वारा बीमारों की सेवा करने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। अनाथपिंडिका को दिए गए उनके उपदेश और सांत्वना विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सारिपुत्त ने दो अवसरों पर अनाथपिंडिका की सहायता की। पहला अवसर तब था जब वे बीमार थे और असहनीय पीड़ा से ग्रस्त थे। सारिपुत्त ने अनाथपिंडिका को याद दिलाया कि वे सोतापन्न हैं और इस प्रकार ज्ञानोदय के मार्ग पर अग्रसर हैं। वे धर्म से विमुख नहीं हो सकते और न ही दुखमय लोकों में पुनर्जन्म ले सकते हैं। इन शब्दों से अनाथपिंडिका का मन शांत हुआ और उन्हें अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनकी असहनीय पीड़ा दूर हो गई। अनाथपिंडिका सारिपुत्त के प्रति इतने कृतज्ञ थे कि उन्होंने अपने सेवकों द्वारा तैयार किया गया स्वादिष्ट भोजन उन्हें खाने के लिए प्रेरित करने हेतु अर्पित कर दिया।

दूसरी घटना अनाथपिंडिका के मृत्युशय्या पर घटी। सारिपुत्त पर अथाह विश्वास और आदर रखने वाले अनाथपिंडिका ने 'उन पर दया भाव से' उनकी उपस्थिति का अनुरोध किया था। सारिपुत्त, आनंद के साथ आए और अनासक्ति पर एक प्रेरणादायक उपदेश दिया। अनाथपिंडिका उस गहन प्रवचन से इतने भावुक हो गए कि उनकी आँखों में आँसू आ गए, ऐसा प्रवचन उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। कुछ ही समय बाद, अनाथपिंडिका का निधन हो गया और वे तुषिता स्वर्ग में एक देव के रूप में पुनर्जन्म हुए। उसी रात वे अपने प्रधान शिष्य की महिमा का गुणगान करने के लिए वैभवशाली रूप में जेतवन आए। बुद्ध को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा:

सारिपुत्त वास्तव में ज्ञान से परिपूर्ण हैं।

सद्‌गुण और आंतरिक शांति के साथ,

यहां तक कि एक भिक्षु भी जो इससे आगे बढ़ चुका है

"अधिकतम तो वह केवल उसके बराबर ही हो सकता है।"

अगली सुबह बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को अपने आगंतुक और उसकी कही बातों के बारे में बताया, लेकिन देव की पहचान नहीं बताई। आनंद ने तुरंत अनाथपिंडिका की सही पहचान करते हुए कहा कि देव अवश्य ही अनाथपिंडिका होंगे, जिन्होंने देव के रूप में पुनर्जन्म लिया है, क्योंकि उन्हें सारिपुत्त के प्रति बहुत आदर और विश्वास था।

सारिपुत्त की विनम्रता

सारिपुत्त की विनम्रता का वर्णन भी ग्रंथों में मिलता है। बुद्ध के साथ यात्रा करते समय, उन्हें यह उचित नहीं लगा कि प्रथम प्रमुख शिष्य होने के नाते उनका स्थान बुद्ध के बगल में होना चाहिए। इसके बजाय, वे पीछे-पीछे चलते रहे और उन बीमार और दुर्बल भिक्षुओं की सहायता करते रहे जो अक्सर पीछे रह जाते थे। वास्तव में, उनकी अपार करुणा और देखभाल के कारण, एक बार सारिपुत्त सबसे अंत में पहुँचे। क्योंकि सभी अच्छे आवास भरे जा चुके थे, सारिपुत्त ने वस्त्रों से बने तम्बू में रात बिताई। जब यह बात बुद्ध के ध्यान में लाई गई, तो उन्होंने कहा कि आवास की व्यवस्था संघ में वरिष्ठता के आधार पर की जानी चाहिए और तित्तिर जातक का पाठ सुनाया, जिसमें पिछले जन्म में बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्यों ने इसी प्रकार यह निर्णय लिया था कि वे तीनों सबसे वरिष्ठ सदस्य को प्रणाम और सम्मान करेंगे।

एक अन्य अवसर पर, सात वर्षीय एक नवोदित भिक्षु ने सारिपुत्त का ध्यान इस ओर दिलाया कि उनका भीतरी वस्त्र उनके बाहरी वस्त्र से नीचे घिसट रहा है। एक तरफ हटकर, सारिपुत्त ने अपना वस्त्र ठीक किया, फिर उस युवा भिक्षु को प्रणाम किया और पूछा, "अब ठीक है, गुरुजी?" मिलिंदपन्हा में इस घटना का सारिपुत्त का विवरण इस प्रकार दर्ज है:

"यदि कोई व्यक्ति जो आज सात वर्ष की आयु में बाहर चला गया है"

अगर मुझे सिखाया जाए, तो मैं इसे सिर झुकाकर स्वीकार करता हूँ;

उन्हें देखते ही मैं अपना उत्साह और सम्मान प्रकट करता हूँ:

काश मैं उसे हमेशा शिक्षक के स्थान पर ही रख सकूँ।

सारिपुत्त का अपने गुरु असाजी के प्रति आदर, जिन्होंने उन्हें सर्वप्रथम धम्म का ज्ञान दिया, एक ऐसा उदाहरण है जिसका सभी को अनुसरण करना चाहिए। प्रत्येक रात्रि को सोने से पहले सारिपुत्त बुद्ध को प्रणाम करते थे। फिर वे चारों ओर देखते, प्रणाम करते और किसी दिशा की आराधना करते। यह देखकर भिक्षुओं ने बुद्ध को सूचित किया कि सारिपुत्त विभिन्न दिशाओं (उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम) की आराधना करने लगे हैं। बुद्ध ने उनकी इस धारणा को सुधारते हुए कहा कि प्रत्येक रात्रि को सारिपुत्त अपनी दिव्य दृष्टि से यह देखते थे कि उनके प्रथम गुरु असाजी किस दिशा में निवास कर रहे हैं। फिर, उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे अपना सिर उसी दिशा में रखकर सोते थे, इस बात का विशेष ध्यान रखते हुए कि उनके पैर उस दिशा में न हों जिस दिशा में असाजी निवास कर रहे हैं।

गुरुओं का आदर करना बुद्ध की शिक्षा का अभिन्न अंग है। नव सूत्र में यह निर्देश दिया गया है कि व्यक्ति को अपने गुरुओं का आदर करना चाहिए, विशेषकर उन गुरुओं का जो धम्म का अमृत सिखाते हैं। सूत्र की शुरुआत इस प्रकार होती है:

"जैसे देवता इंद्र को श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं,

तो क्या हमें उस व्यक्ति का आदर करना चाहिए?

जिनके माध्यम से धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ है।

सारिपुत्त का धैर्य

सारिपुत्त का धैर्य और सहनशीलता भी प्रसिद्ध है। कुछ लोग सारिपुत्त के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे, तभी एक युवक ब्राह्मण ने उन्हें चुनौती देते हुए कहा कि सारिपुत्त ने कभी क्रोध नहीं दिखाया, क्योंकि उन्हें कभी उकसाया ही नहीं गया। यह साबित करने के लिए कि सारिपुत्त भी दूसरों की तरह क्रोध करते हैं, वह सारिपुत्त के पीछे गया और उन्हें ज़ोरदार प्रहार किया। सारिपुत्त ने कहा, 'यह क्या था?' और फिर, यह देखे बिना कि किसने उन्हें प्रहार किया है, आगे बढ़ते रहे। ब्राह्मण अपने इस व्यवहार से अपराधबोध और लज्जा से भर गया। घुटनों के बल गिरकर उसने क्षमा मांगी और सारिपुत्त को बताया कि उसने उन्हें क्रोधित करने के लिए प्रहार किया था। तब सारिपुत्त ने ब्राह्मण को क्षमा कर दिया। ब्राह्मण केवल मौखिक क्षमा से संतुष्ट नहीं हुआ और उसने सारिपुत्त को दोपहर के भोजन के लिए अपने घर आने का निमंत्रण दिया ताकि यह दिखाया जा सके कि उसके मन में कोई द्वेष नहीं है। सारिपुत्त ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

भोजन के बाद, जब सारिपुत्त जा रहे थे, तो उन्होंने देखा कि ब्राह्मण को दंडित करने के लिए क्रोधित समर्थकों की भीड़ लाठी-पत्थर लेकर जमा हो गई थी। उन्होंने ब्राह्मण द्वारा अपने प्रिय और आदरणीय बुजुर्ग के साथ किए गए दुर्व्यवहार को देखा था। सारिपुत्त ने उनसे पूछा कि यह हंगामा किस बात का है। जब उन्हें बताया गया, तो उन्होंने पूछा, "ब्राह्मण ने किसे मारा, आपको या मुझे?" यह जानकर कि ब्राह्मण ने बुजुर्ग को मारा है, उन्होंने क्रोधित भीड़ को यह कहकर शांत किया, "मैंने उसे क्षमा कर दिया है। क्रोध का क्या कारण है जब मुझे, जिसे उसने मारा है, कोई क्रोध नहीं है।"

सारिपुत्त की दयालुता, करुणा और विनम्रता ने उन्हें अनेक मित्र बना दिए। वे बुद्ध के प्रमुख शिष्य थे और ज्ञान में बुद्ध के बाद दूसरे स्थान पर थे। फिर भी वे विनम्र, दयालु और करुणामय थे। उन्होंने कभी भी अपने पद का दुरुपयोग विशेष व्यवहार के लिए नहीं किया। अपने बचपन के मित्र मोग्गलाना के साथ घनिष्ठ मित्रता के अलावा, उनका बुद्ध के निजी सेवक आनंद के साथ भी घनिष्ठ संबंध था।

सारिपुत्त, जो अपने प्रमुख शिष्य होने के नाते बुद्ध की आवश्यकताओं का ध्यान रखना अपना कर्तव्य समझते थे, आनंद द्वारा बुद्ध के प्रति दिखाए गए आदर, देखभाल और ध्यान के लिए अत्यंत कृतज्ञ थे। बदले में, आनंद भी बुद्ध के प्रमुख शिष्य के प्रति अत्यंत आदर रखते थे, जो बुद्ध के विशाल अनुयायी समूह के प्रबंधन और प्रशिक्षण में सहायक थे। जब आनंद नवोदित भिक्षुओं को दीक्षा देते थे, तो उन्हें उच्च दीक्षा के लिए सारिपुत्त के पास ले जाते थे। इसी प्रकार, जब सारिपुत्त नवोदित भिक्षुओं को दीक्षा देते थे, तो उन्हें उच्च दीक्षा के लिए आनंद के पास ले जाते थे। इस प्रकार, इन दो महान भिक्षुओं ने भिक्षुओं के एक विशाल समुदाय का सह-मार्गदर्शन किया।

आनंद भी बुद्ध की अनुमति से सारिपुत्त के लिए प्राप्त उत्तम वस्त्रों को अक्सर अपने पास रखते थे। इसी प्रकार, सारिपुत्त भी अपने द्वारा प्राप्त उत्तम भेंटों को आनंद को सौंप देते थे। एक बार आनंद को एक धनी ब्राह्मण से एक अत्यंत कीमती वस्त्र प्राप्त हुआ और उन्होंने बुद्ध की अनुमति से उसे सारिपुत्त के लौटने तक दस दिनों के लिए अपने पास रखा। अन्य भिक्षुओं ने इस गहरी मित्रता पर टिप्पणी करते हुए कहा, "हम समझ सकते हैं कि आनंद, जिन्होंने अभी तक अर्हत्व प्राप्त नहीं किया है, सारिपुत्त के प्रति इतना गहरा स्नेह रखते हैं, लेकिन यह कैसे संभव है कि सारिपुत्त, जो दोषों से मुक्त हैं, ऐसा स्नेह प्रदर्शित करें?" इसका उत्तर यह था कि सारिपुत्त का आसक्ति

सांसारिक आसक्ति नहीं थी, बल्कि आनंद के गुणों के प्रति प्रेम और सम्मान था। यह इसलिए भी था क्योंकि अर्हन्तों ने सांसारिक गुणों (वासना गुण) का नाश नहीं किया है। वासना गुण का नाश केवल बुद्ध ने ही किया है।

सारिपुत्त एक अत्यंत प्रेरक साथी रहे होंगे, क्योंकि अनेक लोग उनसे संगति करना चाहते थे। लोगों को उनकी ओर आकर्षित करने वाली बातें थीं उनका दूसरों के प्रति गहरा स्नेह, उनका अपार धैर्य और उनका अनुकरणीय व्यवहार। जब सारिपुत्त ध्यानमग्न अवस्था में प्रवेश कर गए, तो देव (देवदूत) भी उन्हें प्रणाम करने आए।

हालांकि उनके बहुत से अनुयायी थे और वे बहुत सम्मानित थे, फिर भी सारिपुत्त को अपनी माता रूपासरी को सत्य के प्रति आश्वस्त करने में कठिनाई हुई, क्योंकि उन्हें जन्म से ही ब्राह्मणों के सिद्धांतों की शिक्षा दी गई थी। सारिपुत्त के तीन भाई थे - चुंडा, उपसेना और रेवता, और तीन बहनें थीं - चाला, उपकला और शिशुकला। इन सभी छह भाइयों ने बुद्ध के मार्गदर्शन में दीक्षा ली और अरहंत पद प्राप्त किया। बाद के वर्षों में चुंडा सारिपुत्त के सेवक बन गए। हालांकि रूपासरी के इतने प्रतिष्ठित पुत्र संघ में थे, फिर भी वे स्वयं ब्राह्मण रीति-रिवाजों में गहरी आस्था रखती थीं और किसी भी संप्रदाय में विश्वास नहीं करती थीं। वास्तव में, वे अपने सबसे छोटे पुत्र रेवता को दीक्षा नहीं देना चाहती थीं और उन्हें संघ में प्रवेश करने से रोकने के लिए बहुत कम उम्र में ही उनका विवाह निर्धारित कर दिया था। हालांकि, विवाह के दिन, जब रेवता ने अपनी होने वाली दुल्हन की बहुत बूढ़ी दादी को देखा, तो वे निराश हो गए और सभी चीजों की क्षणभंगुरता को समझते हुए, दीक्षा लेने के लिए विवाह स्थल से भागकर मठ चले गए। उनकी तीनों बहनों ने शादी तो कर ली, लेकिन गृहस्थी जीवन त्यागकर भिक्षुणी बन गईं। उनके बच्चे भी भिक्षुणी बन गए।

रूपासरी पर उनके किसी भी बच्चे या पोते-पोती का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जब सारिपुत्त भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ अपने जन्म नगर गए, तो वे भिक्षा मांगने अपनी माता के घर आए। उनकी माता ने उन्हें भोजन देते हुए सभी भिक्षुओं के सामने उनका अपमान किया और उन्हें फटकारा। उन्होंने कहा, "हे दूसरों का जूठा खाने वाले! जब तुम्हें भोजन नहीं मिलता, तो तुम अजनबियों के घर-घर जाकर उनके चम्मचों से जूठा चाटते हो। इसी कारण तुमने अस्सी करोड़ की संपत्ति त्याग दी। तुमने मुझे बर्बाद कर दिया। अब जाओ और खाओ।" फिर उन्होंने भिक्षुओं को अपने छोटे बेटे को सेवक बनाने के लिए फटकारा और कहा, "तो तुम ही हो जिन्होंने मेरे छोटे बेटे को अपना सेवक बनाया है।" लेकिन सारिपुत्त ने एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने चुपचाप भोजन ग्रहण किया और मठ लौट गए।

भिक्षुओं के दल में शामिल राहुल ने यह घटना बुद्ध को सुनाई। तब बुद्ध ने भिक्षुओं की सभा के सामने सारिपुत्त की प्रशंसा करते हुए कहा:

जो क्रोध से मुक्त है,

जो अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह करता है,

जो नियमों का पालन करता है और कामवासना से मुक्त है,

जिसने स्वयं को वश में कर लिया है,

जो अपना अंतिम शरीर धारण करता है -

मैं इसे ब्राह्मण (अरहंत) कहता हूँ।

(धम्मपद 400)

हम सभी सारिपुत्त के महान धैर्य, सहनशीलता और विनम्रता से सीख सकते हैं। बुद्ध ने हमें माताओं के प्रति आदर का उपदेश दिया है। सारिपुत्त का अनुकरणीय आचरण हम सभी के लिए उपयुक्त है।

सारिपुत्त का ज्ञानोदय

सारिपुत्त ने अपने भतीजे दिघनाखा को संबोधित करते हुए बुद्ध के प्रवचन को सुनते समय परम ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध भावबोध का ज्ञान दे रहे थे और उन्होंने शरीर की प्रकृति समझाते हुए प्रवचन का शुभारंभ किया। फिर उन्होंने दिघनाखा से शरीर का चिंतन करने को कहा ताकि शरीर के प्रति इच्छा और चिंता का त्याग हो सके। इसके बाद उन्होंने समस्त भावों की अनित्यता और आश्रित उत्पत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। बुद्ध को पंखा झलते हुए सारिपुत्त प्रवचन सुनते रहे और फिर उन्होंने तेरगाथा में वर्णित अपने अरहंतत्व प्राप्ति का वर्णन किया।

बुद्ध ने सारिपुत्त के प्रशासन और भिक्षुओं के प्रति उनके व्यवहार की बार-बार प्रशंसा की और उसे सुदृढ़ किया। यद्यपि एक अवसर ऐसा भी आया जब बुद्ध ने सारिपुत्त को हल्के से फटकारा। सारिपुत्त ने ब्राह्मण धनंजनी को उनकी मृत्युशय्या पर शिक्षा दी थी और उन्हें चार ब्रह्म विहारों - मेत्ता (प्रेम-कृपा), करुणा (दया), मुदिता (सहानुभूतिपूर्ण आनंद) और उपेक्षा (समभाव) - का ज्ञान देकर ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म सुनिश्चित किया था। बुद्ध ने उनसे पूछा कि उन्होंने धनंजनी को आगे क्यों नहीं पढ़ाया और उनके सभी दोषों को नष्ट करके निर्वाण प्राप्त करने में उनकी सहायता क्यों नहीं की। बुद्ध के विपरीत, सारिपुत्त किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक क्षमताओं को जानने में सक्षम नहीं थे। धनंजनी ब्राह्मण थे, इसलिए उन्होंने सुनिश्चित किया कि उनका लक्ष्य, जो ब्रह्मलोक में जन्म लेना था, पूरा हो जाए। बुद्ध ने समझाया कि इसके फलस्वरूप धनंजनी को अरहंतत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्यलोक में पुनः जन्म लेना होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मलोक में भी पुनर्जन्म वांछनीय नहीं है, क्योंकि सोतापन्न प्राप्ति न कर पाने वाला व्यक्ति अगले जन्म में कोई ऐसा अशुभ कर्म कर सकता है जिससे उसे किसी दुखी लोक में पुनर्जन्म लेना पड़े। बुद्ध ने देखा था कि उचित मार्गदर्शन से धनंजनी अरहंतत्व प्राप्त करने में सक्षम होते।

सारिपुत्त के अंतिम दिन

जब सारिपुत्त का जीवन अंत के निकट था, तब उन्होंने निश्चय किया कि अब समय आ गया है कि वे अपनी माता को सत्य का विश्वास दिलाएं और उन्हें बुद्ध के मार्ग पर अग्रसर करें। सारिपुत्त जानते थे कि उन्हें पहले उनका मन खोलना होगा ताकि वे बुद्ध की शिक्षाओं को ग्रहण कर सकें। वे यह भी जानते थे कि ऐसा करने का एकमात्र तरीका महाब्रह्म में उनकी आस्था को भंग करना था। यह जानते हुए कि महाब्रह्म सहित सभी ब्रह्मा उनका बहुत आदर करते हैं, उन्होंने अपने जन्मस्थान जाकर उसी पलंग पर अंत्येष्टि करने का निश्चय किया जिस पलंग पर उनका जन्म हुआ था। परन्तु पहले उन्हें बुद्ध से विदा लेनी थी। अपने भिक्षुओं के दल के साथ वे बुद्ध के पास गए और उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने कहा:

हे महान ऋषि, जगत के स्वामी,

मुझे जल्द ही जीवन से मुक्ति मिल जाएगी।

अब आना-जाना नहीं रहेगा।

यह आखिरी बार है जब मैं आपकी पूजा करता हूँ।

अब मेरे जीवन में जो क्षणिक समय बचा है, वह बहुत कम है।

लेकिन अब से सात दिन बाद मैं लेट जाऊंगा

इस शरीर को नीचे गिराकर बोझ उतार फेंकना।

हे स्वामी! इसे स्वीकार कीजिए! हे प्रभु! अनुमति दीजिए!

अंततः मेरे निर्वाण का समय आ गया है

अब मैंने जीने की इच्छा त्याग दी है।

तब बुद्ध ने सारिपुत्त से पूछा कि वे अंतिम निर्वाण कहाँ प्राप्त करेंगे। सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि वे मगध देश के नलका (उपतिस्सा) नामक गाँव में प्राप्त करेंगे। बुद्ध ने सारिपुत्त से कहा कि वे अपने छोटे और बड़े भाइयों को धर्म का उपदेश दें, क्योंकि उन्हें अब उनके जैसा भिक्षु देखने का अवसर नहीं मिलेगा।

तब उस महान गुरु ने प्रवचन दिया जिसमें उन्होंने अपनी सभी अद्भुत शक्तियों का प्रदर्शन किया। सत्य की सर्वोच्च ऊँचाई तक पहुँचकर, सांसारिक सत्य तक उतरकर, बार-बार ऊपर उठते हुए, उन्होंने धम्म का प्रत्यक्ष और उपमाओं के साथ विवेचन किया।

फिर उन्होंने बुद्ध के चरणों की पूजा की, उन्हें आलिंगन किया और कहा: "इन चरणों की पूजा करने के लिए मैंने अनगिनत काल और एक लाख विश्व चक्रों में सभी सिद्धियों को प्राप्त किया है। मेरे हृदय की मनोकामना पूरी हो गई है। अब आगे कोई संपर्क या संवेदना नहीं रहेगी। मैं शीघ्र ही निर्वाण नगर में प्रवेश करूँगा, जो अमर, शांत, आनंदमय और सुरक्षित है, जिसे लाखों बुद्धों ने प्राप्त किया है। हे प्रभु, यदि मेरे किसी कर्म या वचन से आप प्रसन्न न हुए हों, तो भगवान मुझे क्षमा करें। अब मेरे जाने का समय हो गया है।"

तब बुद्ध ने सारिपुत्त को क्षमा करते हुए कहा, "सारिपुत्त, न तो कर्म से और न ही वचन से मुझे तुम्हें दोषी ठहराने की कोई बात है, क्योंकि तुम विद्वान हो, महान बुद्धि के स्वामी हो, व्यापक और उज्ज्वल बुद्धि के स्वामी हो, तीव्र, तीक्ष्ण और मर्मस्पर्शी बुद्धि के स्वामी हो।"

जैसे ही बुद्ध ने सारिपुत्त को निर्वाण प्राप्त करने की अनुमति दी, पृथ्वी कांप उठी और आकाश में मूसलाधार वर्षा हुई, मानो स्वयं स्वर्ग उस महान गुरु के देहांत पर विलाप कर रहा हो। तब बुद्ध उठे और अपने सुगंधित कक्ष में चले गए। सारिपुत्त ने तीन बार कक्ष की परिक्रमा की और प्रणाम करते हुए कहा, “असंख्य काल और एक लाख विश्व-चक्र पूर्व मैंने अनोमदस्सी बुद्ध के चरणों में प्रणाम किया

था और आपके दर्शन की कामना की थी। अब मेरी यह कामना पूर्ण हो गई है और मैंने आपको देख लिया है। पहली मुलाकात में ही मैंने आपको पहली बार देखा था। यह मेरा अंतिम दर्शन है। अब आगे कोई दर्शन नहीं होगा।" और हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और पीछे की ओर तब तक चलते रहे जब तक कि बुद्ध दृष्टि से ओझल नहीं हो गए।

भगवान बुद्ध ने अपने चारों ओर उपस्थित भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उनसे सारिपुत्त की अंतिम यात्रा में उनका साथ देने का अनुरोध किया। उनके ऐसा कहते ही जेतवन में उपस्थित चारों सभाएँ गुरु को अकेला छोड़कर उनके साथ चल पड़ीं। सावत्थी के नागरिक भी धूप और सुगंधित फूल लेकर उनके साथ शामिल हो गए। रोते-बिलखते भक्तों की एक बड़ी भीड़ गुरु के पीछे-पीछे चली। सारिपुत्त ने भक्तों को संबोधित करते हुए उन्हें सभी वस्तुओं की अनित्यता का स्मरण कराया। उन्होंने कहा, "क्या मैंने तुम्हें हमारे प्रियतम सभी वस्तुओं की अनित्यता के बारे में नहीं सिखाया है?" फिर उन्होंने सभी से सावत्थी लौटने का अनुरोध किया, क्योंकि गुरु अकेले थे और उन्हें अकेला नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

स्वयं द्वारा दीक्षित किए गए पाँच सौ भिक्षुओं के दल के साथ सारिपुत्त अपने जन्मस्थान के लिए रवाना हुए। नालका पहुँचने में उन्हें एक सप्ताह लगा और रास्ते में उन्होंने प्रत्येक नगर में एक रात बिताई, जहाँ उन्होंने अंतिम बार भक्तों को करुणापूर्वक धम्म का उपदेश दिया। अपने जन्म नगर में प्रवेश करते ही उन्होंने अपने भतीजे के माध्यम से अपनी माता को संदेश भेजा कि वे और उनके साथी एक दिन उनके साथ रहेंगे और उनसे अपने जन्म कक्ष और 500 भिक्षुओं के निवास की व्यवस्था करने का अनुरोध किया।

फिर वह धीरे-धीरे अपने बचपन के घर की ओर चल पड़ा। रूपासारी अपने बेटे की इस हालत को देखकर व्याकुल हो उठी। उसने सोचा, "पता नहीं उसे अपनी सारी संपत्ति छोड़ने की गलती का एहसास हो गया है या नहीं। शायद बुढ़ापे में वह समझदार हो गया है और अपनी संपत्ति वापस लेने लौट आया है।" इसके बाद वह अपने बेटे और उसके दल के स्वागत की तैयारी में जुट गई।

सारिपुत्त अपनी माता के घर पहुँचा और उस शयनकक्ष में प्रवेश किया जहाँ उसका जन्म हुआ था। परन्तु वह अत्यंत पीड़ा में था और पेचिश से बुरी तरह बीमार था। वह लेट गया और आराम करने लगा, जबकि उसका भाई, नवोदित चुंडा, उसकी देखभाल करने लगा।

चतुमहाराजिका स्वर्ग के चार प्रमुख देवताओं ने देखा कि धम्म के सेनापति का देहांत होने वाला है, तो वे अपनी पूर्ण ज्योति के साथ पूज्य गुरु को प्रणाम करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए। कुछ ही समय बाद, तावतिंसा स्वर्ग के राजा सक्का ने पूरे क्षेत्र को प्रकाशित किया और पृथ्वी पर अवतरित होकर गुरु के समक्ष घुटने टेककर उन्हें प्रणाम किया। अंत में, महा बहामा अपनी पूर्ण ज्योति के साथ पृथ्वी पर अवतरित हुए ताकि वे गुरु को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें और उनके अंतिम दर्शन कर सकें।

रूपासारी अपने पुत्र के पास आईं और उससे उसके आगंतुकों के बारे में पूछा। उन्होंने पूछा, "वे चार तेजस्वी प्राणी कौन थे, जिन्होंने आपको प्रणाम किया?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "वे चार महान दिव्य राजा, उपासिका थे।" उनकी माता ने पूछा, "तो क्या आप उनसे श्रेष्ठ हैं?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "वे मंदिर के सेवकों के समान हैं। जब से हमारे गुरु ने पुनर्जन्म लिया है, वे तलवारें लिए उनकी रक्षा कर रहे हैं।"

फिर उनकी माता ने उनसे उनके अगले आगंतुक के बारे में पूछा, जो तेज में चारों राजाओं से भी श्रेष्ठ था। सारिपुत्त ने कहा, "वह देवों के राजा सक्का हैं।" उनकी माता ने पूछा, "तो क्या तुम देवों के राजा से भी श्रेष्ठ हो, प्रिय?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "वह एक भिक्षु के समान हैं जो भिक्षु का सामान ढोते हैं। जब हमारे गुरु तावतिमास स्वर्ग से लौटते हैं, तो सक्का उनका कुंड और अतिरिक्त वस्त्र लेकर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।"

“और जब सक्का चले गए,” उनकी माँ ने पूछा, “तुम्हारे कमरे में कौन आया और अपने प्रकाश से कमरे को भर दिया?” “वह,” सारिपुत्त ने उत्तर दिया, “तुम्हारे महाब्रह्म हैं। वह स्वामी और स्वामी जिन्हें तुम प्रणाम करते हो।” “तो क्या आप मेरे स्वामी महाब्रह्म से भी महान हैं?” उनकी माँ ने पूछा।

"जी हां, उपासिका," सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "ऐसा कहा जाता है कि जिस दिन हमारे स्वामी का जन्म हुआ था, उस दिन महा ब्रह्मा ने उस महान प्राणी को एक सुनहरे जाल में ग्रहण किया था।"

यह सुनकर ब्राह्मण स्त्री ने सोचा, "मेरे पुत्र के स्वामी की शक्ति और अच्छाई कितनी महान होगी," और वह परम पूज्य में प्रसन्नता, आनंद और विश्वास से भर उठी।

सारिपुत्त ने देखा कि उनकी माता अब बुद्ध की शिक्षाओं को ग्रहण करने के लिए तैयार हैं, इसलिए उन्होंने बुद्ध के गुणों पर आधारित धम्म का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में उनकी माता ने संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापन्न प्राप्त की। सोतापन्न अवस्था के आनंद का अनुभव करते हुए उन्होंने सारिपुत्त से पूछा कि इतने वर्षों तक उन्होंने उन्हें अमर ज्ञान का अमृत क्यों नहीं दिया। सारिपुत्त को आभास हुआ कि उनका अंत निकट है। यह देखकर कि उनकी माता अब मोक्ष के मार्ग पर हैं और इस मार्ग से विमुख नहीं होंगी, सारिपुत्त ने अपने भिक्षुओं के समूह को अपने पास बुलाया।

जब भिक्षु एकत्रित हो गए, तो उन्होंने चुंडा से बैठने में सहायता करने का अनुरोध किया। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "मैं पैंतालीस वर्षों से आपके साथ रहा और यात्रा की है। यदि मैंने अपने कर्म या वचन से आपको दुख पहुँचाया हो, तो मुझे क्षमा कर दीजिए, भाइयों।"

भिक्षुओं ने उत्तर दिया कि उन्होंने कभी भी अप्रसन्नता या पीड़ा का कोई कारण नहीं दिया था और बदले में उन्होंने सारिपुत्त से अपने द्वारा किए गए किसी भी गलत कार्य के लिए क्षमा मांगी। तब बड़े भिक्षु ने अपना वस्त्र अपने चारों ओर लपेटकर दाहिनी ओर लेटकर ध्यान की नौ क्रमिक अवस्थाओं में प्रवेश किया, फिर चार समाधि अवस्थाओं से गुजरे और जैसे ही सूर्योदय हुआ, भोर होते ही वे अंतिम निर्वाण को प्राप्त हुए।

अगली सुबह जब उसकी माता को पता चला कि उसका निधन हो गया है, तो वह अपने पुत्र के लिए पुण्य कर्म करने का अवसर चूक जाने पर विलाप करने लगी। इस प्रकार, अपनी पिछली मूर्खता पर विलाप और रोते हुए उसने पूरी सुबह बिताई, क्योंकि सोतापन्ना होने के बावजूद भी वह सभी आसक्तियों से मुक्त नहीं हो पाई थी।

एक सप्ताह तक चले अनुष्ठानों और श्रद्धांजलि के बाद, वरिष्ठ संत के अंतिम संस्कार के लिए चंदन की लकड़ी से बनी चिता का निर्माण किया गया, जिस पर सोने के अलंकृत मेहराब बनाए गए। वरिष्ठ संत की मृत्यु की खबर फैल गई और दूर-दूर से लोग धम्म के महापुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित करने और अंतिम सम्मान देने के लिए आए। रात भर भक्त धम्म के प्रवचन सुनते रहे, अंततः पूज्य अनुराधा ने सुगंधित जल से दहकते अंगारों को बुझाया और एक छलनी कपड़े का उपयोग करके वरिष्ठ संत के अवशेषों को छाना।

जब सारिपुत्त के सेवक चुंडा ने आनंद को सूचित किया कि सारिपुत्त का देहांत हो गया है और उन्हें उनके गुरु का वस्त्र और कुंड सौंपा, तो आनंद अपने मित्र के शोक से क्षीण और पीले पड़ गए। उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, नवोदित चुंडा ने मुझे बताया है कि सारिपुत्त का देहांत हो गया है। तब, हे प्रभु, मेरा शरीर लता के समान क्षीण हो गया; मेरे चारों ओर सब कुछ धुंधला हो गया और मुझे कुछ भी स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था...”

तब बुद्ध ने आनंद से पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है, क्योंकि सारिपुत्त अपने प्राण त्यागते समय आनंद का कोई ज्ञान या सद्‌गुण अपने साथ नहीं ले गए थे। बुद्ध ने आनंद को अनित्यता का स्मरण कराया और यह भी बताया कि उन्होंने ही आनंद को सिखाया था कि हमारे सभी प्रियतम अंततः इस दुनिया से चले जाएंगे।

सारिपुत्त का योगदान

धम्म के सेनापति के रूप में सारिपुत्त के विशाल योगदान को उनके द्वारा सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति के वर्णन और बुद्ध द्वारा उनकी प्रशंसा से समझा जा सकता है। सारिपुत्त ने कहा:

"मेरे दीक्षा संस्कार के छह महीने बाद, दोस्तों, मुझे इन सभी बातों के हर पहलू और हर छोटी-छोटी बात का एहसास हुआ,

अर्थ का विश्लेषणात्मक ज्ञान,

सिद्धांत का विश्लेषणात्मक ज्ञान,

भाषा का विश्लेषणात्मक ज्ञान,

दूरदर्शिता का विश्लेषणात्मक ज्ञान।

मैं इन बातों को अनेक तरीकों से समझाता हूँ, सिखाता हूँ और लोगों को बताता हूँ, स्थापित करता हूँ और प्रकट करता हूँ, इनकी व्याख्या करता हूँ और इन्हें स्पष्ट करता हूँ। यदि किसी को कोई शंका या अनिश्चितता हो, तो वह मुझसे पूछ सकता है और मैं उसे समझा दूँगा। (अंगुत्तरा निकया)

सारिपुत्त ने अपने इस चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान से न केवल धम्म को समझने में उत्कृष्टता प्राप्त की, बल्कि इसे दूसरों को समझाने में भी निपुणता हासिल की। अनुपदा सूत्र में उनकी उत्कृष्टता के कारण, बुद्ध ने उन्हें सच्चा आध्यात्मिक पुत्र और "धम्म चक्र को आगे बढ़ाने" में अपना मुख्य सहायक घोषित किया। बुद्ध ने कहा:

"यदि किसी व्यक्ति के बारे में सही-सही कहा जा सकता है कि उसने श्रेष्ठ सद्‌गुण, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ मुक्ति में निपुणता और पूर्णता प्राप्त कर ली है, तो वह सारिपुत्त ही हैं जिनके बारे में ऐसा सही-सही कहा जा सकता है।"

यदि किसी के बारे में यह कहना उचित हो कि वह भगवान बुद्ध का सच्चा पुत्र है, जो उनकी वाणी से उत्पन्न हुआ है, धम्म से उत्पन्न हुआ है, धम्म से बना है, धम्म का उत्तराधिकारी है (सांसारिक लाभों का उत्तराधिकारी नहीं), तो वह सारिपुत्त ही है जिसके बारे में यह बात उचित रूप से कही जा सकती है।

हे भिक्षुओं, मेरे बाद सारिपुत्त उसी प्रकार धम्म के सर्वोच्च चक्र को सही ढंग से घुमाते हैं जैसे मैंने घुमाया है।

सारिपुत्त से संबंधित अनेक प्रवचन और पुस्तकें हैं जो बुद्ध की शिक्षाओं का एक व्यापक संग्रह प्रस्तुत करती हैं। सारिपुत्त ने गहन और समृद्ध धम्म को बौद्धिक रूप से प्रेरक और प्रेरणादायक बनाने के लिए उसे व्यवस्थित और प्रस्तुत करने का अनूठा तरीका समझा। बुद्ध ने तावतिंसा स्वर्ग में देवताओं को जो अभिधम्म सिखाया था, उसका संहिताकरण भी उन्होंने ही किया था। बुद्ध प्रतिदिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए पृथ्वी पर आते थे और फिर यह ज्ञान सारिपुत्त को प्रदान करते थे। इस प्रकार, उच्चतर शिक्षाओं की विधि का ज्ञान उस प्रमुख शिष्य को दिया जाता था जो विश्लेषणात्मक ज्ञान से संपन्न होता था, और फिर वह इसे भिक्षुओं तक पहुंचाता था।

बुद्ध का सारिपुत्त के प्रति उच्च सम्मान बार-बार देखने को मिलता है। एक उदाहरण में बुद्ध ने सारिपुत्त की तुलना युवराज से इस प्रकार की:

हे भिक्षुओं, यदि कोई विश्व सम्राट पाँच गुणों से संपन्न है, तो वह अपने पिता द्वारा चलाए गए सत्ता के चक्र को विधिपूर्वक आगे बढ़ाता है। और सत्ता का यह चक्र किसी शत्रु मनुष्य द्वारा पलटा नहीं जा सकता। वे पाँच गुण क्या हैं? विश्व सम्राट का वृहद पुत्र लाभकारी ज्ञान रखता है, विधि का ज्ञान रखता है, उचित माप का ज्ञान रखता है, उचित समय का ज्ञान रखता है और उस समाज का ज्ञान रखता है (जिसके साथ उसे व्यवहार करना है)।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, सारिपुत्त पाँच गुणों से युक्त हैं और वे धर्म के सर्वोच्च चक्र को उसी प्रकार सुचारू रूप से घुमाते हैं जैसे मैंने घुमाया है। और धर्म के चक्र को न तो तपस्वी, न पुरोहित, न देवता, न ब्रह्मा, और न ही संसार में कोई और घुमा सकता है। वे पाँच गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, सारिपुत्त लाभ को जानते हैं, धर्म को जानते हैं, उचित माप को जानते हैं, उचित समय को जानते हैं और उस सभा को जानते हैं जिसे उन्हें संबोधित करना है।

सारिपुत्त ने अपने ज्ञान और सौम्य स्वभाव से धर्मानुयायी लोगों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा:

संयमित आचरण वाला, सचेतनता से परिपूर्ण,

जैसे कोई सचेत व्यक्ति संयमित इरादों के साथ ध्यान कर रहा हो,

सतर्क, अंतर्मुखी चीजों में आनंद लेने वाला,

स्वयं को पूरी तरह से एकाग्र रखने के साथ,

एकांत में रहने वाले, संतुष्ट रहने वाले व्यक्ति को भिक्षु कहते हैं।

चाहे नम भोजन खा रहे हों या सूखा भोजन,

उसे संतुष्ट होना चाहिए;

भिक्षु को खाली पेट ही घूमना चाहिए।

संयम से और सोच-समझकर भोजन करें।

चार-पाँच निवाले छोड़कर,

उसे पानी पीना चाहिए;

आराम से रहने वालों के लिए यह पर्याप्त है।

एक दृढ़ निश्चयी भिक्षु का।

यदि वह उचित वस्त्र धारण कर ले,

जो इस उद्देश्य के लिए है,

आराम से रहने वालों के लिए यह पर्याप्त है।

एक दृढ़ निश्चयी भिक्षु का।

जिस प्रकार एक चट्टानी पर्वत स्थिर रहता है,

अच्छी तरह स्थापित, इसलिए एक भिक्षु।

जैसे पहाड़ कांपता नहीं,

भ्रम के नाश के बाद।

जो व्यक्ति पापरहित है,

हमेशा पवित्रता की तलाश में,

बुराई का पैमाना बाल बराबर ही प्रतीत होता है।

मानो बादल के आकार का हो।

मुझे मृत्यु की कामना नहीं है।

मुझे जीवन की लालसा नहीं है।

मैं इस शरीर को सचेत अवस्था में त्याग दूंगा।

और सचेत।

सीमावर्ती शहर की सुरक्षा अंदर और बाहर दोनों तरफ से की जाती है।

इसलिए आपको अपनी सुरक्षा करनी चाहिए।

इस अवसर को हाथ से जाने न दें।

उन लोगों के लिए जिन्होंने यह अवसर खो दिया है

नरक में भेजे जाने पर शोक मनाएं।

शांत, संयमित, कम बोलने वाला

वह अभिमानी नहीं है, वह अपनी बुरी विशेषताओं को त्याग देता है।

जैसे हवा पेड़ के पत्तों को झटक देती है।

शांत, संयमित, कम बोलने वाला

वह अभिमानी नहीं है, बल्कि वह बुरी विशेषताओं को उजागर करता है।

जैसे हवा पेड़ के पत्तों को तोड़ देती है।

शांत, शोक रहित, स्थिर और अविचलित।

अच्छे गुणों का, उसे रखना चाहिए

दर्द का अंत।

कामुक सुख की इच्छा,

दुर्भावना, आलस्य और सुस्ती,

अहंकार और अनिश्चितता,

भिक्षु के मन में ये पाँच दोष पाए जाते हैं।

ध्यान करना, दृढ़ रहना,

विचारों की सूक्ष्म समझ होना,

लालच के नाश में आनंदित होना,

लोग उसे अच्छा आदमी कहते हैं।

यहां तक कि विशाल समुद्र, पृथ्वी, पर्वत और हवा भी,

उपमा में लागू नहीं होते।

शिक्षक की शानदार प्रस्तुति के लिए।

पहिए को घूमते रहना,

बहुत ज्ञान होना,

एकाग्र, पृथ्वी, जल, अग्नि के समान।

बड़ा व्यक्ति आसक्त नहीं है।

विरोध नहीं किया जाता।

ज्ञान की पूर्णता प्राप्त करने के बाद,

गहरी समझ और गहन चिंतन रखने वाला,

नीरस नहीं (बल्कि) मानो नीरस हो।

वह हमेशा प्यास बुझाकर भटकता रहता है।

मैंने शिक्षक की सेवा कर ली है।

बुद्ध की शिक्षा पूरी हो चुकी है।

भारी बोझ नीचे रख दिया गया है।

जिस चीज से नए जीवन की प्राप्ति होती है, उसे जड़ से उखाड़ फेंका गया है।

सारिपुत्त की महान प्रतिष्ठा उनके बाद भी लंबे समय तक कायम रही। उनका महान कार्य आज भी मौजूद है, जो बुद्ध के वचनों के साथ बौद्ध धर्म के कुछ सबसे प्राचीन ग्रंथों में संरक्षित और अंकित है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(260):आनंद

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (260) ------>>>> अगला

अध्याय XVII.
तीस श्लोक
260. आनंद
तुषिता स्वर्ग से हमारे बोधिसत्व के साथ प्रस्थान करने के बाद, उन्होंने साकियन अमितोदना के परिवार में जन्म लिया। [1] और क्योंकि परिवार ने कहा, 'वह तुम्हें सुख देने के लिए पैदा हुआ है' (आनंद), इसलिए उन्होंने उसका नाम रखा। जब वह बड़ा हुआ, और त्याग, परम ज्ञान और चक्र-घुमाव हो चुका था, और भगवान (बुद्ध) ने कपिलवस्तु की अपनी यात्रा पूरी कर ली थी, तब आनंद ने भद्दिया [2] और अन्य लोगों के साथ संसार का त्याग कर दिया, और भगवान द्वारा भिक्षु दीक्षा प्राप्त की। इसके कुछ ही समय बाद उन्होंने मंतानी [3] के पुन्ण द्वारा दिए गए प्रवचन को सुना, और प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) को पूर्ण किया।

[350] अब, भगवान बुद्ध के बुद्धत्व के पूर्व बीस वर्षों के दौरान, उनके निजी सेवक स्थायी रूप से नहीं थे। एक दिन नागसमला [4] थे, जो कुंड और भिक्षु वस्त्र लेकर उनके पीछे-पीछे चलते थे; दूसरे दिन नागिता [5], तीसरे दिन उपवान [6], सुनक्खत्त [7], चुंडा (नवदीक्षित), [8] सागत [9], मेघिया [10]। सामान्यतः भगवान (बुद्ध) किसी एक को दूसरे से अधिक पसंद नहीं करते थे। परन्तु एक दिन भगवान (बुद्ध), सुगंधित कक्ष की कोठरी में, बुद्ध के सर्वोच्च आसन पर विराजमान, भिक्षुओं से घिरे हुए, उनसे इस प्रकार कहा: 'हे भिक्षुओं, मैं अब वृद्ध हो गया हूँ; [11] और कुछ भिक्षु, जब उन्हें कहा जाता है, "चलो इस मार्ग से चलें," तो वे दूसरा मार्ग अपना लेते हैं, और कुछ मेरे कुंड और वस्त्र जमीन पर गिरा देते हैं। क्या आप किसी ऐसे भिक्षु को जानते हैं जो मेरा स्थायी देह-सेवक बन सके?' तब भिक्षुओं में एक धार्मिक उत्साह दौड़ गया, और पूज्य सारिपुत्त उठे और भगवान को प्रणाम करते हुए बोले: 'हे प्रभु, मैं आपकी सेवा करूंगा।' भगवान ने उन्हें और महान मोग्गलाना को भी अस्वीकार कर दिया। सभी महान शिष्यों ने कहा, 'हम आपकी सेवा करेंगे,' सिवाय आनंद के। लेकिन वह चुपचाप बैठे रहे। तब उन्होंने उनसे कहा: 'भिक्षु, क्या आप भी भगवान (बुद्ध) से सेवक का पद मांगते हैं?' 'यदि मैं मांगूं, तो वह किस प्रकार का पद होगा? वह स्वयं ही बता देंगे कि वे किसे पसंद करते हैं।' तब भगवान ने कहा: 'आनंद, भिक्षुओं, दूसरों के दबाव में नहीं आना चाहिए; यदि वह स्वयं जानता है, तो वह मेरी सेवा करेगा।' तब भिक्षुओं ने फिर कहा: 'उठो, भिक्षु आनंद, भगवान (बुद्ध) से पद मांगो।'

[351] तब आनंद खड़े होकर बोले: 'हे प्रभु, यदि परमेश्वर मुझे चार वस्तुएँ देने से मना करें और चार वस्तुएँ दें, तो मैं उनकी सेवा करूँगा। क्या वे मुझे कभी भी अपने द्वारा प्राप्त उत्तम वस्त्र या भोजन नहीं देंगे, न ही कोई अलग "सुगंधित कोठरी" देंगे, और न ही निमंत्रण मिलने पर जाएँगे? क्योंकि यदि वे मुझे ये वस्तुएँ नहीं देंगे, तो कुछ लोग कहेंगे: "ऐसी सेवा का क्या लाभ? आनंद तो वस्त्र, अच्छा व्यवहार और आवास पाने के लिए सेवा करता है, और निमंत्रणों में शामिल होने के लिए।" और फिर, क्या परमेश्वर मेरे निमंत्रण मिलने पर जाएँगे? क्या वे मुझे दूर-दूर से आने वालों को उनके पास लाने के लिए कहेंगे? क्या वे मुझे दुविधा में होने पर अपने पास बुलाएँगे? क्या वे मुझे वे उपदेश दोहराएँगे जो उन्होंने मेरी उपस्थिति में दिए थे? [अनुपस्थित, उपस्थित नहीं] [ed1] क्योंकि यदि वे मुझे ये वस्तुएँ नहीं देंगे, तो कुछ लोग कहेंगे: "ऐसी सेवा का क्या लाभ?" यदि अगले दिन मुझे भगवान को भोजन पर लाने के लिए कहा जाए और वे न आएं, या यदि वे मेरे द्वारा लाए गए व्यक्ति से मिलने के लिए सहमत न हों, तो लोग मुझ पर भरोसा नहीं करेंगे और कहेंगे कि वे मेरी ओर ध्यान नहीं देते। और यदि वे सिद्धांत और उसके विभाजनों की व्याख्या न करें, तो वे कहेंगे: "मित्र, क्या तुम नहीं जानते, चाहे तुम उनकी परछाई की तरह उनका अनुसरण ही क्यों न करते हो?" तो यदि भगवान (बुद्ध) मुझे ये आठ वरदान प्रदान करें, तो मैं उनकी सेवा करूंगा। और भगवान ने उन्हें वरदान प्रदान किए। [12]

उस दिन से आनंद दस शक्तियों के स्वामी (दशबल, अर्थात् बुद्ध) की सेवा में लग गए, वे उनके लिए जल और माचिस लाते, उनके पैर धोते, उनके साथ रहते, उनकी कुटिया की सफाई करते आदि। दिन के समय वे भगवान (बुद्ध) के निर्देशों का पालन करते थे, जैसे 'यह लाया जाए', 'वह किया जाए'। रात में, एक मजबूत लाठी और लालटेन लेकर वे 'सुगंधित कुटिया' के नौ चक्कर लगाते, ताकि भगवान (बुद्ध) के आह्वान पर वे उत्तर दें और उन्हें नींद न आ जाए।

तब भगवान (बुद्ध) ने जेतवन में आर्य सभा में, [352] उन्हें पाँच गुणों में श्रेष्ठ भिक्षु का दर्जा दिया: विद्वत्ता, मानसिक सतर्कता, चलने की शक्ति, दृढ़ता और सेवाभाव। [13] ... और इस प्रकार, भगवान (बुद्ध) के देहांत के बाद भी विद्यार्थी बने रहे इस महान भिक्षु ने, जब भिक्षुओं द्वारा संबोधित किया गया [14] और एक परी द्वारा भयभीत किया गया [15] - जैसा कि ऊपर बताया गया है - सोचा, 'कल

[16] सभा होगी, लेकिन मेरे लिए, जो विद्यार्थी का कार्य कर रहा हूँ, गुरुओं, वरिष्ठों के साथ धर्मग्रंथ का पाठ करने के लिए सभा में जाना उचित नहीं है।' तब उनमें उत्साह जागा, और उन्होंने रात भर चबूतरे पर अंतर्दृष्टि का अभ्यास किया। अपने प्रयासों के फलहीन होकर वे विहार में प्रवेश कर गए और पलंग पर बैठ गए। लेटने की इच्छा से उन्होंने अपना शरीर झुकाया। उनका सिर तकिये से नहीं लगा था और न ही उनके पैर जमीन से उठे थे कि उसी क्षण उनका हृदय बिना किसी आसक्ति के मादक पदार्थों (विकारों/इच्छाओं) से मुक्त हो गया और उन्होंने छह गुना अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) प्राप्त कर ली। अतः वे सभा भवन में प्रवेश कर गए।

अब समय-समय पर उनके द्वारा कहे गए श्लोकों को एकत्रित किया गया और खुद्दक-निकाय के पाठ में भिक्षुओं के कथनों (गाथा) में शामिल किया गया। [17]

पहले श्लोक उन भिक्षुओं को उपदेश के रूप में दिए गए थे जिन्हें उन्होंने देवदत्त के अनुयायियों के साथ ठहरते हुए देखा था:

[1018] पिसुनेना च कोधनेन च मच्छरिना च विभूतानंदिना,॥
सखितां न करेय पण्डितो पापो कपूरिसेण सङ्गमो ॥॥

[1019] सद्धेन च पेसलेना च पन्नवता बहुसुतेन च,॥
सखितां हि1 करेया पण्डितो भद्दो सप्पुरिसेण सङ्गमो ॥॥

[1018] निंदा करने वाले और क्रोधी व्यक्ति के साथ,
नीच और द्वेषी [18] के साथ बुद्धिमान व्यक्ति को कोई व्यापार नहीं करना चाहिए।
बुरे लोगों के साथ संगति बुरी है।

[1019] विश्वासी और बुद्धिमान के साथ,
सज्जन और विद्वान व्यक्ति के साथ [19] बुद्धिमान व्यक्ति को संगति रखनी चाहिए।
क्योंकि भले लोगों के साथ संगति धन्य है।

जब गृहस्थ अनुयायी उत्तरा अपनी सुंदरता के प्रति आसक्त होकर कामुकता में लिप्त थी, तब यह श्लोक कहा गया था, ताकि उसे शरीर की कमजोरी का एहसास हो सके। कुछ लोग कहते हैं कि यह श्लोक उन लोगों को चेतावनी देने के लिए कहा गया था जो अंबपाली को देखते ही अपना आपा खो बैठे थे: [20]

[1020] पासा चित्तकटाŋ बिम्बाŋ अरुकायाŋ समुसिताŋ,॥
आतुरं बहुसंकप्पां यस्सा नत्थि धुवं तिथि.॥॥

[1020ए] पासा चित्तकटाŋ रूपाŋ मनिना कुंडलेना सीए,॥
आथिŋ तासेना ओनदधाŋ सहा वत्थेन शोभति.॥॥

[1020बी] अलट्टकाकाटा पद मुखाŋ कुणकाकमक्खिताŋ,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥॥

[1020सी] अट्ठपादकटा केसा नेत्ता अंजनमक्खिता,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥॥

[1020डी] अंजनीव नवा चित्त पूतिकायो अलंकातो,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥॥

[1020e] ओदाहि मिगावो पासाँ नासादा वागुरां मिगो,॥
भुत्वा निवापं गच्छमा कन्दन्ते मिगबन्धके॥॥

[1020एफ] चिन्ना पासा मिगवस्सा नासादा वागुरां मिगो,॥

भुत्वा निवापं गच्छमा सोकांते मिगालुद्दके॥ ॥

[1020] देखो वह बनावटी कठपुतली का आकार (मानव शरीर),
घावों का ढेर, एक बीमार ढेर,
अनेक उद्देश्यों और योजनाओं से भरा हुआ, और फिर भी
जिसमें बने रहने की कोई शक्ति नहीं है।

[1020a] देखो, सजी-धजी आकृति (मानव शरीर), गहनों से सजी, छल्लेदार,
हड्डियों और पतले आवरण में लिपटी हुई,
बढ़िया और देखने में सुंदर उपकरणों की मदद से। [21]

[1020b] पैरों और चेहरे को सजाने के लिए मेकअप करने की आदत के साथ

मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,

कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।

[1020 ई.पू.] बालों को संवारने और आँखों को सजाने की आदत के साथ

मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,

कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।

[1020 ई.पू.] शरीर के अन्य अंगों को सजाने-संवारने की आदत के साथ

मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,

कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।

[1020d,e,f] [स्वयं को संवारने और सजाने की आदत वाले लोग]

शरीर के विखंडन (मृत्यु) के बाद उन्हें एक दुखद अवस्था का सामना करना पड़ेगा।

[जैसे कोई हिरण जाल में फंस जाता है और शिकारी उसे उठाकर ले जाता है]

अगले छंद एक कविता थे जो थेरा ने उस रात अपने पलंग पर अरहंत पद (ज्ञानोदय) प्राप्त करने के बाद कही थी:

[1021] बहुसुतो चित्तकथि बुद्धस्स परिचारको,॥
पन्नभरो विष्णुनुत्तो सेय्यं कपपेति गोतमो॥ ॥

[1022] खिनसावो विसान्नुत्तो संगतितो सुनिब्बुतो,॥
धारेति अन्तिमं देहं जातिमरनपरागु। ॥ ॥

[1023] यस्मिṃ पस्मिṃ पतिहितता धम्म बुद्धसदिच्चहँधुनो,॥
निब्बानागमाने मग्गे सोऽयं तिट्ठति गोतमो॥ ॥

[1021] पवित्र ज्ञान में बहुत विद्वान और वाक्पटु,
बुद्ध का सच्चा सेवक वही है (आनंद);

अब उसके कंधों से बोझ उतर गया है। [22]

मुक्त होने पर (और दिव्य ज्ञान प्राप्त होने पर), गौतम बुद्ध का अनुयायी विश्राम करने के लिए लेट जाता है।

[1022] उसके लिए भीतर की घातक बुराइयाँ अब जीवित नहीं
हैं; जंजीरें, सारी बाधाएँ पीछे छूट गई हैं;
वह परम शांति में अपना अंतिम शरीर धारण करता है,
जन्म और मृत्यु की शक्ति से हमेशा के लिए परे।

[1023] जिसमें
सूर्य वंश के महान बुद्ध द्वारा सिखाई गई सत्य स्थापित और स्थापित हैं: -
वह मार्ग जो सीधे निर्वाण की ओर ले जाता है -
वहाँ गौतम वंश के आनंद भी खड़े हैं। [23]

एक दिन मोग्गलाना नामक ब्राह्मण (पुजारी) पशुपालक [24] ने थेरा से पूछा: 'आप बुद्ध के नियमों में बहुत विद्वान हैं। आपके प्रभु (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए कितने सिद्धांतों को आप अपने मन में रखते हैं?' थेरा ने उत्तर दिया:

[1024] द्वादसिति बुद्धतो गणहिं द्वे सहसानि भिक्खुतो,॥
चतुरासंतिसाहासनि ये मे धम्म पवत्तिनो॥ ॥

[1024] मैंने स्वयं बुद्ध से बयासी हजार
और भिक्षुओं से दो हजार और सीखे हैं:
अतः कुल मिलाकर चौरासी हजार ग्रंथ,
जो मेरे लिए प्रासंगिक हैं। [25]

एक दिन थेरा ने एक अव्यवस्थित जीवन जीने वाले व्यक्ति को संस्कृतिहीनता के खतरे को इस प्रकार समझाया:

[1025] अप्पासुता'यं पुरिसो बालिवड्डो'व जिरति,॥
मंसानि तस्स वन्धति पञ्जा तस्स न वन्धहति॥ ॥

[1025] जिसे थोड़ा सा भी ज्ञान है,
वह बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है। [26] उसका शारीरिक आकार तो बढ़ जाता है,
पर ईश्वरीय समझ नहीं बढ़ती।

उन्होंने एक भिक्षु के विषय में निम्नलिखित श्लोक कहे, जो दूसरे भिक्षु को अपने से कम विद्वान समझकर उसका तिरस्कार करता था:

[1026] बहुसुतो अप्पसुताm̐ यो सुतेनातिमान्ति,॥
अन्धो पदीपधारोऽव तथेव पतिभाति माऽ॥ ॥

[1027] बहुसुताm̐ उपासेय सुताm̐ च न विनाशये,॥
तं मूलं ब्रह्मचर्यस्स तस्मा धम्मधारो सिया॥ ॥

[1028] पुब्बापरन्नु अत्थान्नु निरुत्तिपदाकोविदो,॥
सुग्गहितां च गंहाति अत्थाँ कोपरिक्खति॥ ॥

[1029] खांत्या चंडिकातो होति उस्सहित्वा तुलेति तं,॥
समये सो पदहति अज्झत्तौ सुसमाहितो॥ ॥

[1030] बहुसुताm̩ धम्मधराm̩ सप्पन्नm̩ बुद्धसावकाm̩,॥
धम्मविनाणामकंखं तं भजेथा तथाविधं॥ ॥

[1031] बहुसुतो धम्मधरो कोसारक्खो महेसिनो,॥
चक्खु सब्बास्सा लोकस्सा पूजनीयो बहुसुतो॥ ॥

[1032] धम्मरामो धम्मरतो धम्मm̩ अनुविचिंतयm̩,॥
धम्मौ अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्म न परिहयति॥ ॥

[1026] वह विद्वान जिसने
ज्ञान के लिए अल्पज्ञानी व्यक्ति का तिरस्कार किया, वह
उस अंधे व्यक्ति के समान है जो
दीपक लेकर चलता है: - इसलिए यह बात मुझे समझ में आती है। [27]

[1027] विद्वानों की प्रतीक्षा करो; ध्यान रखो
कि विद्या को किसी प्रकार से ठेस न पहुँचे;
क्योंकि यह पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) की जड़ है; [28] अतः इस सिद्धांत को अपने हृदयों में धारण करो।

[1028] पाठ के क्रम को जानते हुए, [29] और पाठ के अर्थ में पारंगत, [355] व्याख्या और स्पष्टीकरण करने में सक्षम: [30] यह
विद्वान धम्म पथ को सही ढंग से समझता है,
और इसके अर्थ को अच्छी तरह से समझता है।

[1029] धैर्य से उत्सुक उद्देश्य बढ़ता है, [31] प्रयास उमड़ता है; फिर वह तौलता है;
इस प्रकार समय पर इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए, [32] भीतर वह शांत, एकाग्र हो जाता है।

[1030] जो धम्म मार्ग में व्यापक रूप से पारंगत है
और उसके सिद्धांतों को अपने हृदय में धारण करता है,
बुद्ध का शिष्य, बुद्धिमान,
धम्म मार्ग को समझने के लिए उत्सुक: [33] तुम उसका अनुसरण करो।

[1031] जो धम्म के मार्ग में व्यापक रूप से पारंगत है
और उसके सिद्धांतों को अपने हृदय में धारण करता है,
वह महान भगवान (बुद्ध) के खजाने का संरक्षक है, [34] वह समस्त संसार के लिए आँख है,
जिसका समस्त आदर एवं सम्मान करना चाहिए।

[1032] जो धम्म मार्ग में व्यापक रूप से पारंगत है,
जो धम्म मार्ग में आनंद लेता है, [35] जिसने इसे अच्छी तरह से प्रेम किया और इस पर विचार किया,
और इसे स्मृति में जीवित रखा,
वह भिक्षु पवित्र धम्म मार्ग से
कभी विमुख नहीं होगा और न ही विमुख होगा।

एक दिन उन्होंने एक सुस्त और आलसी भिक्षु को इस प्रकार जगाया:

[1033] कयामाचेरागारुणो हिय्यमाने अनुथहे,॥
शरीररसुखगिद्धस्स कुतो समानफासुता॥ ॥

[1033] क्या तुम इतने भारी हो, कार्य करने के लिए अनिच्छुक?
जीवन पल-पल घटता जा रहा है, उठ नहीं पा रहे?

अपने शरीर को स्थूल सुख देने के लिए इतने लालची? तुम्हें पवित्र भिक्षु का सुख
कहाँ से मिलेगा ?

धम्म पथ के सेनापति के निधन की खबर सुनकर थेरा ने निम्नलिखित श्लोक कहा: [36]

[1034] न पक्खन्ति दिसा सब्बा धम्म नप्पटिभन्ति माm,॥
गते कल्याणमित्तमहि अंधकरव ख्याति॥ ॥

[1035] अब्भतीतसहायस्स अतीतगतसत्थुनो,॥
नत्थि एतादिसैं मित्तं यथा कायगता सति॥ ॥

[1036] ये पुराण अतिता ते नवेहि न समेटि मे,॥
स्वज्जा एकोऽव झायामि वासुपेटोऽव1 पक्खिमा॥ ॥

[1034] चारों ओर आकाश धुंधला हो रहा है, हाँ, सभी सत्य जो मुझे समझ में आते थे,
भ्रमित खड़े हैं । [37] हमारा प्रिय मित्र (बुद्ध) चला गया है, और पृथ्वी और ऊपर आकाश अंधकारमय है।

[1035] और क्या साथी का देहांत हो गया है,
और क्या भगवान (बुद्ध) यहाँ से चले गए हैं?
मुझे लगता है
कि कर्म और बुद्धि पर नियंत्रण रखने से बेहतर कोई मित्र नहीं बचा है। [38]

[1036] पुराने समय के लोग चले गए;
नए लोग मुझे बिल्कुल भी पसंद नहीं हैं।
आज यह बच्चा अकेला ही बैठा रहा,
जैसे घोंसला बनाने वाला पक्षी [39] जब बारिश हुई।

अगला श्लोक भगवान (बुद्ध) ने तब कहा था (जब उनका देहांत निकट था):

[1037] दस्सनाया अभिक्तंते नाना वेरज्जाके बाहु,॥
मा वारयित्थ सोतारो पासन्तु समायो मामौ ॥ ॥

[1037] अनेक क्षेत्रों से अनेक लोग
मुझे देखने आए हैं। उन्हें धम्म के श्रोता होने से मत रोको;
उन्हें मुझे देखने दो, यही समय है।

और उसके बाद थेरा (आनंद) द्वारा, उनकी इच्छा पूरी करने में प्रसन्नता का अनुभव करते हुए:

[1038] दस्सानाया अभिक्कंते नाना वेरज्जाके पुथु,॥
करोति सत्था ओकासां न निवारेति चक्खुमा॥ ॥

[1038] बहुत से लोग बहुत से क्षेत्रों से
देखने आते हैं। भगवान (बुद्ध) ने अवसर
दिया। देखने वाला किसी को नहीं रोकता। [40]

अगले पांच छंदों को मुख्य परिचारक के रूप में उनकी स्थिति को दर्शाने के लिए बोला गया था:

[1039] पण्विसति वस्सानि शेखभूतस्स मे सातो,॥
न कामसान्या उप्पज्जि पस धम्मसुधम्मत:॥ ॥

[1040] पण्विसति वस्सानि शेखभूतस्स मे सातो,॥
न देसासंना उप्पज्जि पस धम्मसुधम्मतौ॥ ॥

[1041] पण्विसति वस्सानि शेखभूतस्स मे सातो,॥
मेत्तेन कायकम्मेन चायैव अनपायिनि॥ ॥

[1042] पण्विसति वस्सानि शेखभूतस्स मे सातो,॥
मेत्तेन वाचिकम्मेन चायैव अनापायिनि॥ ॥

[1043] पण्विसति वस्सानि शेखभूतस्स मे सातो,॥
मेत्तेना मनोकम्मेन चायैव अनपायिनि॥ ॥

[1039] मैं पच्चीस वर्षों तक एक विद्यार्थी रहा;
मुझमें कोई इंद्रिय चेतना उत्पन्न नहीं हुई।
हे देखो, धर्म (धम्म) के इस सुशोभनीय भिक्षु क्रम को! [41]

[1040] मैं पच्चीस वर्षों तक एक विद्यार्थी रहा;
मुझमें कोई शत्रुतापूर्ण चेतना उत्पन्न नहीं हुई।
हे देखो, धम्म मार्ग के इस सुशोभित भिक्षु क्रम को!

[1041] पच्चीस वर्षों तक
मैंने परम पूज्य (बुद्ध) की प्रतीक्षा की, प्रेममय कर्मों द्वारा उनकी सेवा की,
और उनकी परछाई की तरह उनके पीछे-पीछे चला।

[1042] मैंने पच्चीस वर्षों तक परम पूज्य की
प्रतीक्षा की, प्रेमपूर्ण वाणी से उनकी सेवा की,
और उनकी परछाई की तरह उनके पीछे-पीछे चला।

[1043] पच्चीस वर्षों तक
मैंने परम पूज्य की प्रतीक्षा की, प्रेमपूर्ण विचारों से उनकी सेवा की,
और उनकी परछाई की तरह उनके पीछे-पीछे चला।

अधिक...

[1044] बुद्धस्सा चकामांतासा पिṭṭहितो अनुकाŋकामिŋ,॥
धम्मे देसियामानमहि नानाना मे उदपज्जथा॥ ॥

[1045] अहं सकाराणिओमहि सेखो अप्पत्तमानसो,॥
सत्थु च परिनिब्बाणो यो अम्हाँ अनुकमपको॥ ॥

[1046] तदासि यऽभिŋसनकाŋ तदासि लोमहाअसंनाअ,॥
सब्बाकारवरूपेते सम्बुद्धे परिनिब्बुते॥ ॥

[1044] जब बुद्ध इधर-उधर टहलते थे,
मैं हमेशा उनकी पीठ के पीछे कदम रखता था;

और जब धम्म का उपदेश दिया जा रहा था, तो मुझमें
उसका ज्ञान और समझ बढ़ती गई।

[1045] परन्तु मैं तो अभी भी काम करने वाला हूँ,
एक ऐसा विद्यार्थी जिसका मन अभी परिपक्व नहीं हुआ है;
और अब भगवान (बुद्ध) यहाँ से चले गए हैं,
जिन्होंने मुझ पर इतनी मधुर करुणा दिखाई! [42]

[1046] हे! तब आतंक था, तब घोर भय था,
तब रोंगटे खड़े हो गए और नसें सिहर उठीं,
जब वे, हर श्रेष्ठ कृपा से परिपूर्ण,
सर्वप्रबुद्ध बुद्ध का निधन हो गया।

निम्नलिखित तीन श्लोक परिषद के सदस्यों द्वारा थेरा (आनंद) की प्रशंसा में जोड़े गए थे:

[1047] बहुसुतो धम्मधारो कोसारक्खो महेसिनो,॥
चक्खु सब्बास्सा लोकास्सा आनंदो परिनिब्बुतो॥ ॥

[1048] बहुसुतो धम्मधारो कोसारक्खो महेसिनो,॥
चक्खु सब्बास्सा लोकास्सा अन्धकारे तमोनुदो॥ ॥

[1049] गतिमंतो सतिमंतो धितिमंतो च यो इसी,॥
सद्धम्मधरको थेरो आनंदो रत्नाकरो॥ ॥

[1047] जो धम्म के मार्ग में व्यापक रूप से पारंगत है,
और उसके सिद्धांतों को अपने हृदय में धारण करता है -
वह महान भगवान (बुद्ध) के खजाने का संरक्षक है।

जिनका देहांत हो गया है,

आनंद की एक आंख पूरी दुनिया के लिए थी।

[1048] जो धम्म के मार्ग में व्यापक रूप से पारंगत है,
और उसके सिद्धांतों को अपने हृदय में धारण करता है -
महान भगवान (बुद्ध) के खजाने का रक्षक -
वह समस्त संसार के लिए एक आँख था,
अंधकारमय स्थान में भी अंधकार को दूर करता था।

[1049] अथक सेवा के ऋषि,
सचेत सतर्कता में सबसे आगे,
दृढ़ धैर्य में सबसे आगे! [43] पवित्र मार्ग (धम्म) के रक्षक,
इसके सभी रत्नों की एक जीवित खान: -
हमारे थेरा, आनंद।

और अंतिम मृत्यु के समय लेटे हुए उन्होंने ये वचन कहे:

[1050] पैरिसिणो माया सत्था कतां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो नत्थि दानि पुनब्भवोऽ ति.॥ ॥

[1050] गुरु (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है। [44]

[1] राइस डेविड्स, बौद्ध धर्म, पृष्ठ 52 में वंशावली तालिका देखें , जहाँ धम्मपाल के बाद के अधिकारियों के अनुसार, उन्हें सुद्धोदना के एक अन्य भाई सुक्लोदना का पुत्र बनाया गया है। यहाँ उन्हें महानामा और अनुरुद्ध का भाई (संभवतः सौतेला भाई) बनाया गया है (देखें सीसीएलवीआई)।

[2] तुलना करें . सी.सी.एल.आई.वी.

[3] तुलना करें IV.

[4] तुलना करें. सीएलएक्सएक्सवी.

[5] तुलना करें LXXXVI.

[6] देखें. संवाद, ii. 151.

[7] देखें. संवाद, iii., XXIV., Ī 8, 4.

[8] जाहिरा तौर पर चुंडा महान नहीं (CXXXI.)। वह सारिपुत्त की मृत्यु तक उनका परिचारक था। फिर उसने आनंद और बुद्ध को मृत्यु की सूचना दी (सांयी निक., खंड 161 f.)।

[9] देखें विनय ग्रंथ, ii. 2 आगे; जातक, i., संख्या 81.

[10] तुलना करें. LXVI.

[11] आनंद द्वारा श्लोक 1089-1043 में निरंतर परिचारक के रूप में अपने कार्यकाल के वर्णन के अनुसार, बुद्ध उस समय छप्पन वर्ष के रहे होंगे। इन पच्चीस वर्षों में अस्थायी परिचारण के बीस वर्ष जोड़ने से बुद्ध की सेवा का काल पूरा हो जाता है।

[12] आनंद के विवेकपूर्ण अनुबंध के बारे में बुद्धघोष का विवरण (अंगुत्तरा पर टिप्पणी, i. 24 f.) धमुईपाला की टिप्पणी की हमारी बर्मी पांडुलिपि में दिए गए विवरण की तुलना में अधिक सुसंगत है। मैंने उपरोक्त में इसकी सहायता ली है, और दोनों विवरणों को कुछ हद तक संक्षिप्त किया है।

[13] एंग. निक., आई. 24 एफ.

[14] विनय, ii. 288.

[15] सांगी. निक., i. 199. तुलना करें ऊपर, CXIX.

[16] विनय ग्रंथ, iii. 373 f.

[17] सुत्त-पिटक का पाँचवाँ और समापन खंड , जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ वर्तमान कृति भी शामिल है ।

[18] शाब्दिक अर्थ, (दूसरों के) विनाश में आनंद लेना। देवदत्त पर, पिछली कविता देखें। [v 1009 f.]

[19] पेसालो, मिलनसार, टीका में, आकर्षक गुण (पियासीलो) है ।

[20] मैं दोनों में से किसी भी घटना का पता नहीं लगा सकता। श्लोक 769, 770 देखें। उत्तरा, एक गृहस्थ अनुयायी, की कहानी धम्मपद टीका, iii. 802 ff में है, लेकिन यह ऊपर संदर्भित कहानी नहीं है।

[21] डॉ. ओल्डेनबर्ग पांडुलिपियों में पे, 'आदि,' के लिए केवल एक श्लोक (769) की अनुमति देते हैं, लेकिन टिप्पणी में श्लोक 769, 770 पूर्ण रूप से दिए गए हैं।

"बुनियान में।" यह अंग्रेजी लेखक जॉन बुनियान (1628-1688) की विशेषता है , जिन्होंने अन्य रचनाओं के साथ-साथ 'पिलग्रम्स प्रोग्रेस ' भी लिखी है। इस लेखक की किस विशेषता का यहाँ उल्लेख किया गया है, यह बुनियान के बारे में मेरे ज्ञान से परे है।

[22] पन्नाभारो, 'गिरा हुआ बोझ उठाने वाला' (मज्ह. निक., i. 189, आदि)। यह, बून्यान में नए धर्मांतरित व्यक्ति की एक योग्यता है, बौद्ध धर्म में अरहंत (प्रबुद्ध) के लिए एक चरमोत्कर्ष घटना है।

[23] यह टिप्पणी एक महान ब्रह्मा देवता को इन शब्दों के द्वारा परिषद में उनके प्रवेश पर अरहंत (प्रबुद्ध) के रूप में आनंद की उपाधि प्रदान करती है। सी एफ ऊपर, खुज्जा-शोभिता, CLXXV। गौतम वंश के सूर्य वंश पर, cf. XXVI. और CXXXIX.

[24] गोपका-मोग्गल्लाना-सुत्त (मज्ह. निक., iii. 7. ff.) में आनंद के वार्ताकार , जहाँ, हालाँकि, यह प्रश्न स्थान नहीं पाता है।

[25] पावत्तिनो, 'जो आगे बढ़ते हैं'; बौद्ध मनोविज्ञान में लोकप्रिय 'ध्यारेति' (ध्यारेति) को व्यक्त करने का बेहतर तरीका।

[26] अर्थात् माता-पिता, सगे-संबंधियों या किसी और की भलाई न चाहना (टिप्पणी)।

[27] अर्थात्, जबकि उसका ज्ञान दूसरों को लाभ पहुँचाता है, उसका अभिमान उसकी स्वयं की प्रगति को अंधकारमय कर देता है (टिप्पणी)।

[28] संत प्रयास का आधार (टिप्पणी)।

[29] यानी अगर आधा श्लोक दिया गया है, तो वह दूसरा आधा भाग दे सकता है (टिप्पणी)।

[30] निरूत्ती यहाँ अन्य तीन पटिसंभिदासों का भी प्रतिनिधित्व करता है (टीका)। तुलना करें सिस्टर्स, पृ. 17, नोट 1.

[31] चंडीकतो होती। विब्बंग, पृष्ठ 208 में , चंडीकता, संगत भाववाचक संज्ञा, कट्टुकम्यता, करने की इच्छा का पर्यायवाची है। टीका में इसे चंडजातो के रूप में व्याख्यायित किया गया है। अतः स्पष्टतः -कतो का अर्थ 'गठित' या 'स्थापित' है, न कि 'किया गया' या 'पूर्ण किया गया'।

[32] पदाहती.

[33] धम्म-विनाणं आकंखं: धम्म-विनासंखतं धम्मनानां। विनाणम् का अर्थ है इंद्रिय-वस्तुओं के अवसर पर या उनके संबंध में जानना। इसका उपयोग संभवतः यहां नाननान के लिए मेट्री कॉसा के रूप में किया गया है, क्योंकि मैं इस शब्द के ऐसे उपयोग से मेल नहीं खा सकता।

[34] कोसाराक्खो: धम्मभण्डगारिका, पथ (धम्म) के कोषाध्यक्ष , उनके सामान्य (टीकाकरण) शीर्षक का संकेत ।

[35] शाब्दिक रूप से, सिद्धांत को अपना आनंद मानते हुए (धम्मपद टीका, 364)।

[36] सारिपुत्त। श्लोक का पहला भाग आनंद के मुख से तब कहा गया है जब वह सारिपुत्त के सेवक चुंडा द्वारा भगवान (बुद्ध) को लाई गई खबर सुना रहे थे (संध्या निकेत, श्लोक 163)। श्लोक 1035 और आगे संभवतः महामृत्यु के बाद कहे गए थे। संभवतः ब्र. पांडुलिपि ने टीका से प्रारंभिक वाक्य को छोड़ दिया है।

[37] ' मैंने मृत्यु के बारे में भी सिद्धांतों (परियत्तिधम्मा) को अच्छी तरह से सीख लिया था' (टीका)।

[38] देखें संवाद, ii. 177 ff., शोक में कायगत सती की आवश्यकता पर ।

[39] 'वर्षा ऋतु में अपने घोंसले में चला गया' (टिप्पणी)।

[40] देखें ḍnanda का छठा अनुरोध, पृ. 351.

[41] तुलना करें XXIV., n.

[42] देखें संवाद, ii. 158 f., जहाँ आनंद विलाप करता है और भगवान (बुद्ध) उसे सांत्वना देते हैं; अगले श्लोक के लिए फिर से देखें, पृष्ठ 177।

[43] गतिमन्तो, सतीमन्तो, धितिमन्तो, जो कि विशुद्ध रूप से कर्ता कारक बहुवचन हैं, टीका में इसि के विशेषण के रूप में समझाए गए हैं , और संभवतः एक काव्यात्मक स्वतंत्रता हैं। पहले को पन्नाणगति के रूप में समझाया गया है। हालाँकि, बुद्धघोष (अंग. निक. पर टीका , i. 24) आनंद की अथक सक्रियता और अपने भगवान (बुद्ध) की सेवा में कार्य करने की तत्परता पर निर्भर करते हैं।

[44] श्लोक 1016 और वहाँ दिए गए नोट देखें।

[ed1] DPPN में 'अनुपस्थिति' शब्द है, जैसा कि जातक 456 की प्रस्तावना में वर्णित कहानी में भी है। यह अधिक तर्कसंगत है क्योंकि आनंद के पास एक फोटोग्राफिक मेमोरी होने की बात कही जाती है। देखें AN 1 220

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

आनंदा

आनंद राजकुमार सिद्धार्थ के चचेरे भाइयों में से एक थे। उनके पिता अमितोदन, राजा सुद्धोदन के छोटे भाई थे। उनके जन्म से उनके परिवार में अपार प्रसन्नता आई, इसलिए उनका नाम आनंद रखा गया। उनका जन्म राजकुमार सिद्धार्थ के ही दिन हुआ था।

बुद्ध के उपदेशों के दूसरे वर्ष में, जब आनंद 37 वर्ष के थे, तब उन्होंने भिक्षु दीक्षा ली। इसके कुछ ही समय बाद, पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त का उपदेश सुनकर, उन्होंने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त कर ली। जब बुद्ध 55 वर्ष के थे, तब आनंद उनके निजी सेवक बन गए।

बुद्ध ने उपस्थित भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बताया कि उनके कई सेवक थे जो समय-समय पर उनकी सहायता करते थे, लेकिन उनमें से कोई भी अपने कर्तव्यों का पूर्ण पालन नहीं कर पाया था। उन्होंने कहा, "अब समय आ गया है कि हमें एक विश्वसनीय और भरोसेमंद सेवक मिले।" फिर उन्होंने पूछा कि क्या उपस्थित भिक्षुओं में से कोई उनका निजी सेवक बनना चाहेगा। सभी भिक्षुओं ने तुरंत उनकी सेवा की पेशकश करते हुए उनके अनुरोध का उत्तर दिया। हालांकि, आनंद, जो उनका सेवक बनने की प्रबल इच्छा रखते थे, विनम्रतापूर्वक पीछे हट गए, यह सोचते हुए कि "यदि मैं सबसे उपयुक्त व्यक्ति होता तो बुद्ध मुझे अवश्य नियुक्त करते।" बुद्ध ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि कई युगों पहले आनंद ने एक बुद्ध के निजी सेवक बनने की इच्छा की थी, जिसकी पूर्ति उनके शासनकाल में होनी थी। अन्य भिक्षुओं के प्रस्तावों को अस्वीकार करते हुए, उन्होंने आनंद की ओर रुख किया और उन्हें यह पद प्रदान किया।

आनंद ने यह पद स्वीकार करने की शर्त पर सहमति जताई कि बुद्ध आठ शर्तें मान लें। इनमें से चार शर्तें बुद्ध से उपहार या अनुग्रह न लेने से संबंधित थीं। आनंद यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि किसी को भी यह संदेह न हो कि उन्होंने भौतिक लाभ के लिए यह पद स्वीकार किया है। अन्य चार शर्तें अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए आध्यात्मिक मार्ग पर अपनी उन्नति का ध्यान रखने से संबंधित थीं। बुद्ध ने आनंद की सभी शर्तें मान लीं।

आनंद का अपने प्रिय और आदरणीय बुद्ध से, जिनके प्रति वे निष्ठावान थे, सशर्त स्वीकृति मांगने में सहज महसूस करना, बुद्ध और उनके भिक्षुओं के बीच के संबंध और बुद्ध द्वारा अपने उपदेशों को संचालित करने के तरीके को दर्शाता है। बुद्ध निर्विवाद नेता थे, लेकिन उनके शासनकाल में कोई भय नहीं था। भिक्षु अपनी राय व्यक्त करने और बुद्ध से इच्छानुसार प्रश्न पूछने के लिए स्वतंत्र थे।

वास्तव में, निजी सेवक शब्द आनंद द्वारा निभाए गए सभी कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को पूरी तरह से व्यक्त नहीं करता है। बुद्ध की सभी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की देखभाल करने के अलावा, आनंद बुद्ध के कार्यकारी सहायक थे और उनके भिक्षुओं, भिक्षुणियों और भक्तों के विशाल दल के प्रबंधन में भी सहायता करते थे। उन्हें बुद्ध के अधिकांश प्रवचनों को सुनने का अनूठा सौभाग्य भी प्राप्त था और अपनी असाधारण स्मृति के कारण उन्हें धम्म का संरक्षक घोषित किया गया था।

किसी बुद्ध के निजी सेवक का पद प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को इस पद की आकांक्षा रखनी चाहिए और 100,000 विश्व चक्रों तक अनेक पुण्य कर्म करने चाहिए। आनंद ने 100,000 विश्व चक्र पहले, बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में, यह आकांक्षा रखी थी। उस समय उनका जन्म सुमना के रूप में हुआ था, जो बोधिसत्व गौतम (उस समय जटिला के नाम से जाने जाते थे) के छोटे सौतेले भाई थे। उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीनों के दौरान पद्ममुत्तरा बुद्ध और उनके 100,000 भिक्षुओं के दल को आवश्यक सामग्री प्रदान की। तब उन्होंने भविष्य के किसी बुद्ध के निजी सेवक बनने की आकांक्षा रखी। बुद्ध पद्ममुत्तरा ने भविष्य में देखा और पाया कि उनकी यह आकांक्षा पूरी होगी। उन्होंने आनंद को सूचित किया कि 100,000 विश्व चक्रों में वे बुद्ध गौतम के निजी सेवक होंगे। तब से आनंद ने अपनी आकांक्षा को पूरा करने के लिए निरंतर पुण्य कर्म किए।

धम्म के संरक्षक होने के अलावा, आनंद दो अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं के लिए भी प्रसिद्ध थे जिनकी उन्होंने शुरुआत की थी। ये थीं आनंद बोधि वृक्ष की स्थापना और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना।

अनेक लोग बुद्ध को प्रणाम करने और उनके उपदेश सीखने के लिए जेतवन आते थे। कभी-कभी जब वे आते थे, तो बुद्ध किसी संकटग्रस्त व्यक्ति की सहायता करने के लिए दूर होते थे। चूंकि अनेक लोग उनसे मिलने के लिए लंबी दूरी तय करके आए थे और निराश हुए थे, इसलिए आनंद ने बुद्ध से पूछा कि इन निराश भक्तों की सहायता के लिए क्या किया जा सकता है।

तब बुद्ध ने आनंद से बुद्धगया में स्थित बोधि वृक्ष से एक पौधा लाकर जेतवन में लगाने को कहा। फिर उन्होंने कहा, "मेरी अनुपस्थिति में, मेरे भक्त उस महान बोधि वृक्ष को प्रणाम करें जिसने मुझे ज्ञान प्राप्ति के दौरान सुरक्षा प्रदान की। बोधि वृक्ष मेरी उपस्थिति का प्रतीक हो। जो लोग बोधि वृक्ष का आदर करते हैं, वे वास्तव में मेरा आदर और प्रणाम कर रहे होते हैं।"

तब से लेकर आज तक, विश्वभर के बौद्ध बोधि वृक्ष की पूजा उसी प्रकार करते आए हैं जैसे वे बुद्ध की, सुगंधित जल, फूलों और अगरबत्ती से। अनेक अज्ञानी लोगों ने इस प्रतीकात्मक क्रिया को गलत समझा है और कहा है कि बौद्ध वृक्षों की पूजा करते हैं। बुद्ध प्रतिमा, बोधि वृक्ष, बुद्ध के अवशेष, ये सब बुद्ध के प्रतीक मात्र हैं जिनका उपयोग लोग बुद्ध के करुणामय और शांत गुणों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए करते हैं। बुद्ध की पूजा से मन को वह शांति और सुकून मिलता है जो अनेक लोगों को ध्यान, अध्ययन और उनके उपदेशों को सुनने से आसानी से प्राप्त नहीं होता।

आनंद के अनुरोध पर, महा प्रजापति की ओर से, बुद्ध ने भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की। बुद्ध ने प्रारंभ में महा प्रजापति गौतमी के दीक्षा लेने के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया था। आनंद द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर कि क्या स्त्रियाँ आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचने में असमर्थ हैं, और बुद्ध द्वारा यह उत्तर दिए जाने पर कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचने में सक्षम हैं, बुद्ध भिक्षुणियों के संघ की स्थापना के लिए सहमत हुए। इस प्रकार, स्त्रियों के मन में आनंद के प्रति विशेष आदर और श्रद्धा थी। उनके इस आदर और उनके प्रसन्न स्वभाव ने उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना दिया। कहा जाता है कि बुद्ध के निकट और उच्च पद पर होने के बावजूद, कोई भी आनंद की निंदा नहीं करता था और न ही उनसे ईर्ष्या करता था।

आनंद के पूर्व जन्मों की लिखित कथाओं से पता चलता है कि वे शायद ही कभी देवता (अपने सौतेले भाई अनुराद्ध के विपरीत) या पशु (अपने चचेरे भाई देवदत्त के विपरीत) थे। आनंद अक्सर मनुष्य के रूप में ही जन्म लेते थे और कई जन्मों में बोधिसत्व के भाई भी रहे।

यद्यपि आनंद अत्यंत विद्वान और ज्ञानी थे, फिर भी वे बुद्ध के जीवनकाल में ही संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापन्न, तक पहुँच पाए। बुद्ध के प्रति उनके गहरे लगाव ने उन्हें अरहंतत्व प्राप्त करने से रोक दिया। परिणामस्वरूप, उन्हें बुद्ध के देहांत का सटीक समय ज्ञात नहीं था। यह सोचकर कि बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने अपने सौतेले भाई अनुराधा को सूचित किया। अनुराधा, जो एक अरहंत (पूर्ण, पूर्णतः प्रबुद्ध) थे, ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि ऐसा नहीं था, और उन्होंने आनंद को स्पष्ट किया कि बुद्ध का अभी देहांत नहीं हुआ था। वे ध्यान की उस अवस्था तक पहुँच चुके थे जिसे बोध और भावना का अंत कहा जाता है।

बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही समय बाद, प्रथम धम्म सभा (सांगायण) के दिन, आनंद ने अरहंत पद प्राप्त किया। बुद्ध ने आनंद को पाँच श्रेणियों में अग्रणी नियुक्त किया था। वे श्रेणियाँ थीं:

पांडित्य

प्रतिधारण स्मृति

अच्छा व्यवहार

दृढ़ता

देखभाल प्रदान करना

आनंद के तीस श्लोक थेरागाथा में संरक्षित हैं जो अच्छे मित्रों और धम्म में पारंगत लोगों के साथ संगति करने के लिए उनके प्रोत्साहन को दर्शाते हैं।

आनंद ने धम्म के संरक्षक के रूप में अपने उदाहरण का अनुसरण करने के लिए दूसरों को प्रेरित करने हेतु थेरागथा श्लोकों की घोषणा की। उन्होंने दूसरों को अभ्यास से पहले शिक्षाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन और समझना भी प्रोत्साहित किया।

आनंद का निधन एक सौ बीस वर्ष की आयु में हुआ। धम्मपद में वर्णित है कि रोहिणी नदी के दोनों किनारों पर रहने वाले लोग उनके अवशेष प्राप्त करना चाहते थे, इसलिए आनंद ने नदी के मध्य में वायु में बैठकर लोगों को धम्म का उपदेश दिया और कामना की कि उनका शरीर दो भागों में विभाजित हो जाए, एक भाग नदी के एक किनारे पर और दूसरा भाग दूसरे किनारे पर गिरे। इसके बाद वे अग्नि समाधि में लीन हो गए। उनके शरीर से तुरंत ज्वालाएं निकलीं और इच्छा के अनुसार, उनके अवशेषों का एक भाग नदी के एक किनारे पर और दूसरा भाग दूसरे किनारे पर गिर गया। तब लोगों ने उनके अवशेषों को स्तूपों में स्थापित किया ताकि वे उनका सम्मान कर सकें।

धम्म के प्रति आनंद का सबसे बड़ा योगदान भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के तीन महीने बाद हुआ। बुद्ध ने आनंद को उनकी असाधारण स्मृति के कारण धम्म का संरक्षक घोषित किया था। प्रथम संघ सभा में, महा कस्सपा के मार्गदर्शन में, आनंद ने पाँच सौ अरहंतों को शिक्षाओं का पाठ कराया और धम्म के संहिताकरण में सहायता की। धम्म के संरक्षण की यह विधि बाद के वर्षों में भी अपनाई गई। द्वितीय संघ सभा का नेतृत्व आनंद के एक शिष्य ने किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (261): कस्पा द एल्डर

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (261) ------>>>> अगला

अध्याय XVIII.
चालीस श्लोक
261. कस्सपा महान [1]
हमारे भगवान (बुद्ध) पहले ही अवतरित हो चुके थे और धर्ममार्ग (धम्म) का चक्र चला रहे थे तथा राजगृह में निवास कर रहे थे, तभी मगध के महातीथ के ब्राह्मण ग्राम में, इस थेरा का पुनर्जन्म पिप्पली-मानव के रूप में हुआ, जो ब्राह्मण (पुजारी) कपिल की प्रमुख पत्नी के पुत्र थे। चार वर्ष बाद, भद्दा कपिलाणी का पुनर्जन्म मद्दा राज्य के सागला में कोसिया-गोत्त ब्राह्मण (पुजारी) की प्रमुख पत्नी से हुआ। [2] अब पिप्पली-मानव ने विवाह करने से इनकार कर दिया। उन्होंने अपने माता-पिता से कहा, 'जब तक आप जीवित रहेंगे, मैं आपकी देखभाल करूंगा; उसके बाद मैं संसार त्यागकर संन्यास ले लूंगा।' लेकिन अपनी माता को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने लाल वस्त्र और आभूषणों से सजी एक सुंदर कन्या की मूर्ति बनवाई और उन्हें दिखाते हुए कहा: 'माँ, यदि मुझे ऐसी कोई मिल जाए, तो मैं गृहस्थ जीवन व्यतीत करूंगा।' उनकी माता एक चतुर महिला थीं, और उन्होंने ब्राह्मणों (पुजारियों) को मूर्ति के साथ उस खोज पर भेजा। वे सागला पहुँचे और मूर्ति को नदी के किनारे रखकर अलग बैठ गए। भद्दा की धाय, जो अपनी देखभाल करने वाली को नहलाकर खुद नहाने के लिए नीचे गई थी, ने मूर्ति को देखा और सोचा, 'क्या! क्या मेरी [360] युवती इतनी बदतमीज़ है?' उसने मूर्ति के गाल पर एक थप्पड़ मारा और पाया कि यह भद्दा नहीं, बल्कि सोने की मूर्ति थी। ब्राह्मण (पुजारी) उसके पास आए और उसकी स्वामिनी के बारे में पूछताछ की, और वह उन्हें कोसियागोत्ता के घर ले गई, जहाँ उनका स्वागत किया गया। और उन्होंने कपिल को संदेश भेजा:

'हमें कन्या मिल गई है; आप उसी के अनुसार कार्य करें।' लेकिन पिप्पली-मानव और भद्दा, दोनों ही विवाह के इच्छुक नहीं थे, इसलिए उन्होंने एक-दूसरे को गुप्त रूप से पत्र लिखे - उन्होंने: 'भद्दा!' और उन्होंने: 'महोदय!' 'आपको अपने कुल और भाग्य के अनुरूप

जीवनसाथी मिले। मैं संसार त्याग कर संन्यासी बनने जा रही हूँ। ऐसा कोई कार्य न करें जिससे आपको बाद में पछतावा हो।' अब दोनों पत्रवाहक मिले, एक-दूसरे से प्रश्न किए, पत्र पढ़े और बोले: 'देखो इन बच्चों का काम!' उन्होंने पत्र जंगल में फेंक दिए, दूसरे पत्र लिखे और उन्हें ले आए। इस प्रकार विवाह संपन्न हुआ। लेकिन नवविवाहित जोड़े ने रात फूलों की माला से अलग होकर बिताई। और जब पिप्पली-मानव के माता-पिता का देहांत हो गया, तो एक दिन भोजन करने और बातचीत करने के बाद उन्होंने और भद्दा ने संसार त्यागने का निश्चय किया।

और उन्होंने अपनी अलमारियों से पीले वस्त्र निकाले, एक दूसरे के बाल काटे, अपने कंधों से कटोरे लटकाए, अपने रोते हुए सेवकों के बीच से गुजरे, जिन्हें उन्होंने अपनी स्वतंत्रता दी, और एक साथ चले गए, पिप्पली-मानव आगे-आगे चल रहे थे।

और पीछे मुड़कर देखते हुए उन्होंने सोचा: 'यहाँ भद्दा कपिलाणी हैं, जो पूरे भारत के बराबर मूल्यवान स्त्री हैं, मेरे पीछे-पीछे चल रही हैं। हमें देखकर कोई सोचेगा: "इन्होंने संसार त्याग दिया है, लेकिन एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।" इसलिए, हम पर झूठा आरोप लगाकर वे नरक के खतरे में पड़ सकते हैं।' और उन्होंने भद्दा को यह बताया, और वह मान गईं कि एक स्त्री पुरुष भिक्षु के लिए बाधा अवश्य ही होती है। अतः उन्होंने चौराहे पर तय किया कि वह दाईं ओर जाएँगे और वह बाईं ओर। तब पृथ्वी, यद्यपि वह सभी सिनेरू का भार सहन कर सकती थी, ऐसे सद्गुण के भार से काँप उठी। [3] और सर्वोच्च बुद्ध, बाँस के जंगल में स्थित महान विहार (मठ) के सुगंधित कक्ष में विराजमान, भूकंप का अर्थ जानते थे, और अस्सी प्रमुख थेरों [361] को एकत्रित करके, वे तीन मील सड़क पर चले, और राजगृह और नालंदा के बीच बहुपुत्तक बरगद [4] के चरणों में बैठ गए। यद्यपि वे फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे, फिर भी उनसे बुद्ध की किरणें निकलकर इधर-उधर फैल गईं और वृक्ष का रंग बदल गया। तब महान कस्सपा [5] ने यह समझा: 'यही हमारे प्रभु (बुद्ध) होंगे, जिनके कारण मैंने संसार त्यागकर (भिक्षुत्व ग्रहण किया है)।' और झुककर उन्होंने कहा: 'परमेश्वर, परम पूज्य (बुद्ध), मेरे प्रभु (बुद्ध) हैं! मैं उनका शिष्य हूँ।' तब परमेश्वर ने कहा: 'बैठो, कस्सपा, मैं तुम्हें तुम्हारा उत्तराधिकार दिखाऊँगा।' और तीन प्रवचनों में उन्होंने उन्हें भिक्षु दीक्षा दी। अतः वे राजगृह लौट आए, कस्सपा ने अपना नया वस्त्र भगवान (बुद्ध) के पुराने वस्त्र से बदल लिया, [6] और विनम्रता और उत्साह के साथ तेरह धुतंगों का अभ्यास करने का निश्चय किया। [7] और उसके आठवें दिन उन्होंने धम्म के सार और अक्षर को भलीभांति समझकर अर्हत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें अतिरिक्त तपस्या करने वालों में श्रेष्ठ घोषित किया। और उन्होंने वैराग्य का आकर्षण दिखाते हुए भिक्षुओं को संबोधित करते हुए अपने अनुभवों को इस प्रकार बताया:

मैं।

भिक्षुओं को भीड़ में घुलमिलते और गृहस्थों के घरों में बार-बार जाते देखकर:

[1051] न गणेना पुरक्खतो देखभाल॥
विमानो होति समाधि दुलाभो,॥
नाना जनसंगहो दुखो॥
इति दिस्वन गणन न रोकाये॥ ॥

[1052] न कुलानि उपब्बाजे मुनि॥
विमानो होति समाधि दुलाभो,॥
तो उस्सुक्को रसानुगिद्धो॥
अत्थाऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ सुखवाहो॥ ॥

[1053] पांकोटि हाय नाṃ पवेदायुṃ॥
यायं वंदनपूजन कुलसु,॥
सुखुमाṃ सल्लाṃ दुरुब्बाहाṃ॥
सक्कारो कपूरीसेन दुज्जहो॥ ॥

[1051] ऐसी जगह मत चलो जहाँ बहुत से लोग तुम्हें मुखिया बनाना चाहें।
इससे मन चकरा जाता है, [8] और एकाग्रचित्त मन को जीतना कठिन हो जाता
है। और जो जानता है:
'बहुत से लोगों की संगति दुर्भाग्य लाती है,'
वह भीड़-भाड़ वाली जगहों से दूर रहेगा।

[1052] हे ऋषि, नागरिकों के घरों में मत जाओ।
जो [9] लालची होकर जीवन के संपूर्ण भोज का स्वाद लेना चाहता है,
वह उस अच्छाई की उपेक्षा करता है जो सच्ची खुशी लाती है।

[1053] यह एक कपटपूर्ण दलदल है,
धनी लोगों से धनुष, उपहार और दावतों का यह संरक्षण।
यह मांस में धंसे हुए एक महीन तीर की तरह है,
जिससे भटकते हुए मनुष्य को निकालना मुश्किल है।

II.

भिक्षुओं को जीवन की चार आवश्यक चीजों का सम्मान करते हुए संतोष का अभ्यास करने की शिक्षा:

[1054] सेनासनमहा ओरुयहा नागारापि पिंडाय पविसी,॥
भुञ्जन्तं पुरिसाṃ कुथि सक्कक्काṃ ताṃ उपाथहिṃ॥ ॥

[1055] सो मे पक्केना हत्थेना आलोपाऽ उपानामयी,॥
अलोपाṃ पक्खिपंतस्सा अंगुलीपेत्था चिज्जथा॥ ॥

[1056] कुḍḍअमूलाṃ च निस्साया अलोपाṃ ताṃ अभुञ्जिसाṃ,॥
भुंजमने वा भुत्ते वा जेगुच्छं मे न विज्जति॥ ॥

[1057] उत्तिथपिंदो अहारो पुतिमुत्तṃ च ओसाधाṃ,॥
सेनासनं रुक्खमूलं पसुकुलं च शिवरां,॥
यस्सेते अभिसंभूत्वा स वे चतुद्दिसो नरो॥ ॥

[1054] मैं एक दिन अपनी पहाड़ी झोपड़ी से नीचे आया [10]
और गलियों में भीख माँगने लगा।
वहाँ मैंने एक कुष्ठ रोगी को भोजन करते देखा,
[और जैसा उचित था, कि उसे मौका मिल सके, [11]]
मैं [मौन] शिष्टाचार से उसके पास रुक गया।

[1055] उसने अपने कुष्ठ रोगग्रस्त हाथ से
मेरे कटोरे में एक निवाला डाला; जैसे ही उसने फेंका,
एक उंगली दर्दनाक रूप से टूट कर गिर गई।

[1056] दीवार से टिककर मैंने अपना हिस्सा खाया,
न उस समय और न बाद में मुझे घृणा महसूस हुई।

[1057] केवल वही जो आता है उसे लेता है
, भोजन के टुकड़े, मल से बनी दवा, [12] पेड़ के नीचे का पलंग, पैचवर्क वस्त्र,
उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम में एक आदमी के रूप में खड़ा है।

III.

जब उनसे उनके जीवन के अंतिम वर्षों में पूछा गया: 'आपकी इस आयु में आप प्रतिदिन पहाड़ियों पर चढ़ने में कैसे सक्षम हैं?'

[1058] यथा एके विहानन्ति अरुहंता सिलुच्चयं,॥
तत्थ बुद्धस्स दयादो संपजानो पतिस्सतो,॥
इद्धिबालेनुपत्थद्धो कस्सपो अभिरूहति॥ ॥

[1059] पिण्डपातापाटिक्कान्तो सेलामारुयहा कस्सपो,॥
झायति अनुपादनो पहिनाभयभेरवो॥ ॥

[1060] पिंडापतापिकाकांतो सेलामारुयहा कस्सपो,॥
झायति अनुपादनो द्यहमानेसु निब्बुतो॥ ॥

[1061] पिंडापतापिकाकांतो सेलामारुयहा कस्सपो,॥
झायति अनुपादनो कताचिक्को अनासावो॥ ॥

[1058] जहाँ कुछ लोग चट्टानों पर चढ़ते हुए मर जाते हैं,
बुद्ध के उत्तराधिकारी, [13] सचेत, आत्मसंयमित, [363] आत्मा (आध्यात्मिक शक्ति) की शक्तियों द्वारा मजबूत होकर,
कश्यप पर्वत शिखर पर चढ़े।

[1059] भिक्षा मांगने के लिए दैनिक चक्कर से लौटकर,
कस्सपा किसी चट्टानी कोने पर चढ़ जाता है और
ध्यान में मग्न होकर बैठ जाता है, किसी भी चीज़ को पकड़े हुए नहीं,
क्योंकि उसने भय और डर को अपने से दूर रखा है।

[1060] भिक्षा मांगने के लिए दैनिक चक्कर से लौटकर,
कस्सपा किसी चट्टानी कोने पर चढ़ जाता है और
ध्यान में मग्न होकर बैठ जाता है, कुछ भी नहीं पकड़ता,
क्योंकि वह जलने वालों के बीच शांत और स्थिर है।

[1061] भिक्षा मांगने के लिए दैनिक चक्कर से लौटकर,
कस्सपा किसी चट्टानी कोने पर चढ़ जाता है और
ध्यान में मग्न होकर बैठ जाता है, किसी भी चीज़ को पकड़े बिना,
उसका काम पूरा हो गया है, और वह [भौतिक] इच्छाओं से मुक्त है।

IV.

आगे पूछे जाने पर: 'लेकिन इस उम्र में आप पर्वतीय-जंगल में क्यों रहते हैं? क्या आपको बांस का जंगल या उसके जैसे अन्य जंगल सुखद नहीं लगते?' उन्होंने उत्तर दिया:

[1062] करेरीमालविता [95] भूमिभागा मनोरमा,॥
कुंजराभिरुदा रम्मा ते सेला रामयंती माऽ॥ ॥

[1063] नीलाभवाना रुचिरा वरिसिता सुविंधरा,॥
इंदगोपाकसञ्चन्ना ते सेला रामयन्ति माऽ॥ ॥

[1064] नीलाभकुतसदिसा कूटगारावरूपमा,॥
वारणाभिरुदा रम्मा ते सेला रामयन्ति माऽ॥ ॥

[1065] अभिवुथ रम्मतला नागा इशिहि सेविता,॥
अभुन्नदिता सीखि ते सेला रामयन्ति माऽ॥ ॥

[1066] अलं झायितुकमस्सा पहितत्तस्सा मे सातो,॥
अलं मे अत्थकमस्सा पहितत्तस्सा भिक्खुनो॥ ॥

[1067] अलं मे फासुकमस्सा पहितत्तस्सा भिक्खुनो,॥
अलं मे योगकामस्सा पहितत्तस्सा ताडिनो॥ ॥

[1068] उम्मपुप्पेण समाना गगनववभचदिता,॥
नानादिजगनाकिन्ना ते सेला रामयन्ति माऽ॥ ॥

[1069] अनाकिना गहथेहि मिगसंघनिसेविता,॥
नानादिजगनाकिन्ना ते सेला रामयन्ति माऽ॥ ॥

[1070] अचोदिका पुथुसिला गेनागुलामिगायुत,॥
अंबुसेवलसंचन्ना ते सेला रामयंती माऽ॥ ॥

[1071] न पंचांगिकेन तुरियेना रति में होति तदिसी,॥
यथा एकग्गचित्तस्स सम्मा धम्मं विपश्यतो.॥ ॥

[1062] वे ऊंचे मैदान जो आत्मा को प्रसन्न करते हैं,
जहाँ करेरी अपने जंगली वलय फैलाती है, [14] जहाँ हाथियों की तुरही की आवाजें गूंजती हैं:
वे पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरी आत्मा प्रसन्न होती है।

[364] [1063] गहरे नीले बादलों के रंग से ढकी वे चट्टानी ऊंचाइयाँ,
जहाँ
क्रिस्टल-स्पष्ट, ठंडे पानी के कई चमकते हुए तालाब स्थित हैं, और जिनकी ढलानों को
'इंद्र के झुंड' ढकते और सजाते हैं:
वे पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरा मन आनंदित होता है। [15]

[1064] नीले-काले बादलों की कतारबद्ध प्राचीरों की तरह,
भव्य महल पर बने शिखरों की तरह,
जंगल के लोगों की पुकारों की गूंज:
वे पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरा मन आनंदित होता है।

[1065] वर्षा से ताज़गी से भरे सुंदर ऊंचे इलाके, और
मुकुटधारी प्राणियों की प्रतिध्वनि से गूंजते हुए,
एकांत ऊंचाइयां जहां मौन ऋषि अक्सर शरण लेते हैं:
वे पहाड़ हैं जिनमें मेरा मन प्रसन्न होता है।

[1066] मेरे लिए इतना ही काफी है, जो प्रसन्नतापूर्वक
ध्यान में तल्लीन, सचेत और तल्लीन रहना चाहता है।
मेरे लिए इतना ही काफी है, जो
उत्साह से भरे भिक्षु के रूप में सर्वोच्च कल्याण की खोज करना चाहता है।

[1067] मेरे लिए इतना ही काफी है, जो
सुखमय आराम में रहना चाहता हूँ, एक उत्साही भिक्षु।
मेरे लिए इतना ही काफी है, जो स्वयं को
अध्ययनशील परिश्रम में लगाता हूँ, इसलिए मैं उत्साह से भरा हुआ हूँ।

[1068] अलसी के पौधों के नीले रंग के फूलों से लदे, शरद ऋतु में आकाश की तरह नीले बिंदीदार ; अपने विविध पंखों वाले जीवों की भीड़ से जीवंत : ये वे पहाड़ हैं जिनमें मेरा मन प्रसन्न होता है।

[1069] नीचे नागरिकों की भीड़ से मुक्त,
लेकिन कई पंखों वाले जीवों के झुंडों से भरा हुआ,
जंगली चरवाहा प्राणियों का घर:
ऐसी पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरा मन प्रसन्न होता है।

[1070] चट्टानें [16] जहाँ स्वच्छ जल बहता है, एक पथरीली दुनिया,
काले चेहरे वाले बंदरों और डरपोक हिरणों से आबाद,
जहाँ चमकीले फूलों के नीचे चांदी की धाराएँ बहती हैं:
ऐसी पहाड़ियाँ हैं जिनमें मेरा मन आनंदित होता है।

[1071] क्योंकि जो मुझे अत्यंत आनंद देता है,
वह तार, बांसुरी और ढोल की धुनें नहीं हैं, [17] बल्कि जब, बुद्धि को अच्छी तरह से संतुलित करके,
धम्म के मार्ग (विपश्यना) में तल्लीन होकर।

वी

सांसारिक गतिविधियों में आनंद लेने वाले और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के दान के प्रति लालची भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा:

[1072] कम्माṃ बहुकाṃ न करये परिवज्जेया जनाṃ न उय्यमे,॥
उस्सुक्को सो रसानुगिद्धो अत्थं रिन्काति यो सुखवाहो॥ ॥

[1073] कम्माṃ बहुकाṃ न करये परिवज्जेया अनत्तनेय्यमेता,॥
किच्चति कायो किलमति दुक्खितो सो समथौ न विन्दति॥ ॥

[1072] भिक्षु को
व्यस्त कार्यों में नहीं लगना चाहिए; उसे लोगों से दूर रहना चाहिए,
न ही [नकल करने का] प्रयास करना चाहिए।
जो लालच में आकर जीवन के संपूर्ण भोज का स्वाद चखना चाहता है,
वह उस अच्छाई की उपेक्षा करता है जो सच्ची खुशी लाती है। [18]

[1073] भिक्षु को
व्यस्त कार्यों में स्वयं को लगाम नहीं लगाना चाहिए; उसे इससे दूर रहना चाहिए
जो किसी भी तरह से उसके वास्तविक कल्याण की ओर अग्रसर नहीं होता;
शरीर परिश्रम करता है और थकावट से ग्रस्त होता है,
और इस प्रकार पीड़ित होकर उसे शांति प्राप्त नहीं होती।

VI.

निम्नलिखित श्लोक कुछ विशेष अवसरों पर संबोधित करने के लिए बोले जाते थे:

[1074] ओथप्पाहाटमट्टेन अत्तनमपि ता पासति,॥
पट्ठद्धागिवो चरति अहं सय्योति मन्नति ॥॥ ॥

[1075] असेय्यो सेय्यसामानं बालो मन्नति अत्तानां,॥
न तं विण्णु पसासंन्ति पत्थद्धमानसां नरौ ॥॥ ॥

[1076] यो च सेय्योहामास्मिति नहाओ सेय्योति वा पुना,॥
हिनोहाऽ1 सदिसो वा' ति विधासु न विकमपति॥ ॥

[1077] पन्नवंताṃ [96] तथा तदिं सिलेसु सुसामहितां,॥
Cetosamathamanuyuttṃ taṃ ve viññu pasaṃsare.॥ ॥

[1078] यस्सा सब्रह्मचारिसु गर्वो न्युपलभति,॥
अराका होति सद्धम्म नभसो पथवि यथा.॥ ॥

[1079] येसाṃ सीए हिरी ओट्टप्पाṃ सदा सम्मा उपाथिताṃ,॥
विरूहब्रह्मचर्य ते तेसां किना पुनब्भवा॥ ॥

[1080] उद्धतो कैपालो भिक्खु पसुकुलेना परुतो,॥
कपिव सिहाकम्मेन न सो तेनुपासोभाति॥ ॥

[1081] अनुद्धतो अकापालो निपाको सावुतिन्द्रियो,॥
लोभति पौंसुकुलेन सिहोऽव गिरिगबभारे॥ ॥

[1074] केवल बुदबुदाते होंठों से दोहराने मात्र से, [19] हम स्वयं को भी नहीं देख पाते कि हम क्या हैं;
और इसलिए, हठीले होकर हम इधर-उधर घूमते हैं और सोचते हैं:
'मैं उससे, उनसे बेहतर आदमी हूँ!'

[1075] मूर्ख वास्तव में श्रेष्ठ नहीं है, फिर भी
वह स्वयं को श्रेष्ठ समझता है।
परन्तु हे हठी मन के उस बेचारे प्राणी,
जो सचमुच समझदार है, उसकी प्रशंसा मत करो।

[366] [1076] जो अपने बारे में चिंतित नहीं है,
चाहे इस तरह से हो या उस तरह से: [20] - 'मैं बेहतर आदमी
हूँ'; 'मैं बेहतर नहीं हूँ'; या 'मैं बदतर हूँ,'
या फिर 'मैं उसके जितना ही अच्छा हूँ' -

[1077] जो वास्तव में जानता है, और सत्य बोलता है, [21] जिसका हृदय धार्मिकता में अच्छी तरह से स्थिर है,
और संत की शांति को दृढ़ता से धारण करता है, [22] उसकी प्रशंसा करते हैं, जो वास्तव में समझते हैं।

[1078] जो अपने साथी भिक्षुओं के बीच
आदर नहीं पाता, वह धर्म के मार्ग (धम्म) से उतना ही दूर है
जितना आकाश पृथ्वी से दूर होता है। [23]

[1079] परन्तु जिन्होंने नम्रता को अच्छी तरह रोपा है
तथा अपने हृदय में विवेक के लिए सदा परिश्रम किया है,
वे पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) में भरपूर फलते-फूलते हैं;
उनके लिए पुनर्जन्म का कोई अंत नहीं है।

[1080] एक भिक्षु जो, यद्यपि चितकबरा वस्त्र पहने हुए है,
घमंडी और अस्थिर मन का है,
जैसे शेर की खाल में बंदर,
अपने भव्य वस्त्रों से कोई यश प्राप्त नहीं कर सका।

[1081] परन्तु जो, संयमित, दृढ़ मन से,
विवेकशील है, अपनी इंद्रियों को अच्छी तरह नियंत्रित रखता है,
वह चितकबरी पोशाक में शानदार ढंग से चमकता है,
जैसे अंधकारमय पर्वतीय गुफा में शेर।

सातवीं।

ब्रह्मा जगत के देवताओं को पूज्य सारिपुत्त को प्रणाम करते देख और पूज्य कप्पिना के मुस्कुराते चेहरे को देखकर:

[1082] एते संबहुला देवा इधिमंतो यसस्सिनो,॥
दशदेवसहस्सानि सब्बे ते ब्रह्मकायिका॥ ॥

[1083] धम्मसेनापतिं वीरं महझायिं समाहितं,॥
सारिपुत्तं नमस्संतं तिथंथन्ति पंजलिकता.॥ ॥

[1084] नमो ते पुरीसाजन नमो ते पुरीसुत्तमा,॥
यस्सा ते नाभिजानाम यपि निस्साय झायति॥ ॥

[1085] अच्चेराऽ वात बुद्धानाऽ गंभीरो गोकारो सको,॥
ये मायां नाभिजानाम वलावेधिसमागता॥ ॥

[1086] तं तथा देवकायेहि पूजितां पूजनाराहं,॥
सारिपुत्तं तदा दिस्व कप्पिनस्सा सीतां आहु॥ ॥

[1082] देखो वे कैसे खड़े हैं, रहस्यमय शक्ति और महिमा से परिपूर्ण देवताओं से भरे हुए,
दस हजार गुना, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के सभी स्वर्ग।

[1083] हमारे वीर पथ-प्रदर्शक (सारिपुत्र),
सारी के महान पुत्र, के चारों ओर शांत और चिंतनशील होकर,
हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करते हुए: -

[1084] 'हे मानवता के अभिजात वर्ग, आपको प्रणाम!
हे सर्वोच्च पुरुष, आपकी महिमा हो!
देखो! आपके विचार हमारी सोच से परे हैं;

[1085] हे संसार के प्रबुद्ध कितने अद्भुत हैं! [24] उनकी अंतर्दृष्टि कितनी गहरी है,
उन शक्तियों से परे जिनकी हम गवाही देते हैं,
भले ही हम बाल की खाल निकालने वाले धनुर्धर की तरह कुशल हों!' [25]

[1086]
तब, सारिपुत्त को इस प्रकार दिव्य सेनाओं द्वारा पूजे जाते हुए देखकर , हे सबसे प्यारे संत,
कप्पिना के चेहरे पर एक मुस्कान आ गई। [26]

आठवीं।

थेरा की अपने बारे में 'शेर की दहाड़':

[1087] यावता बुद्धखेत्तमहि थपयित्वा महामुनि,॥
धुतगुने विसिथोहां सदिसो मे न विज्जति॥ ॥

[1088] परिसीनो मया सत्था कतां बुद्धस्स ससाणो,॥
ओहितो गरुको भरो नत्थि दानी पुनभभवो॥ ॥

[1089] न सिवारे न सयाने भोजने नुपालिप्पति,॥
गोतमो अनप्पामेय्यो मूलापुप्फहां विमलाउ'व,॥
अम्बुना निक्खमानिन्नो तिभवभिनिस्सातो। ॥ ॥

[1090] सतिपत्थनागिवो सो सद्धहत्थो महामुनि,॥
पणनासीसो महानानी सदा कैरति निब्बुतो' ति.॥ ॥

[1087] बुद्ध के अनुयायियों के पूरे क्षेत्र में,
केवल सर्वशक्तिमान भगवान (बुद्ध) को छोड़कर,
मैं तपस्वी मार्गों में सबसे आगे खड़ा हूँ;
किसी ने भी मेरे जितना तपस्वी मार्ग नहीं अपनाया।

[1088] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है, [27] और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं।
मैंने अपने ऊपर का भारी बोझ नीचे रख दिया है,
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है।

[1089] क्योंकि हमारे गौतम (बुद्ध) के महान, असीम मन ने कभी वस्त्र, भोजन या
विश्राम के बारे में नहीं सोचा, [368] जैसे निर्मल कमल जल से कोई निशान नहीं लेता; [28] आत्म-बलिदान के लिए [29] निरंतर प्रवृत्त, वह नए बनने के त्रिगुण क्षेत्र से [30] विरक्त है।

[1090] उनका गला
सजगता के चौगुने मीनार के समान है; हाँ, महान द्रष्टा
के हाथों में विश्वास और भरोसा है; ऊपर,
उनका माथा अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है;
वे अत्यंत बुद्धिमान हैं, और सदा शांतिमय आनंद में विचरण करते हैं।

[1] महा-कस्सपा और उनकी पत्नी की कथा, उनके पूर्व और अंतिम जन्मों में (देखें सिस्टर्स, पृष्ठ 47 आगे), जो स्वयं एक कविता का उपयुक्त विषय है, इतनी लंबी है कि इसे पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना संभव नहीं है, इसलिए इसे यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। यह अंग निक. i. 23 पर टिप्पणी में दिए गए संस्करण का बहुत बारीकी से अनुसरण करती है। विपस्सी-बुद्ध के अधीन वे एक ब्राह्मण (पुजारी) दंपत्ति थे, जिनके पास बाहर पहनने के लिए केवल एक ही वस्त्र था। यह वस्त्र कस्सपा ने बुद्ध को भेंट किया था। वे कई जन्मों तक पति-पत्नी रहे।

[2] सी.एफ. जाट. वी. (सं. 531), 283, 289; vi. (सं. 545), 280.

[3] संवादों में भूकंप के आठ कारणों में से दूसरा , ii. 144.

[4] अर्थात्, अनेक पुत्रों का; संभवतः (इसके चेतिया के साथ) संतान के लिए प्रार्थना करने वाले माता-पिता के लिए एक मन्नत का पेड़।

[5] यहाँ वह नाम अचानक प्रकट होता है जिससे वह जाना जाता है। यह संभवतः उसके कबीले का नाम था।

[6] ऐसा माना जाता है कि बुद्ध ने जानबूझकर फटे-पुराने वस्त्र पहने थे। इस घटना का विस्तृत वर्णन किया गया है, लेकिन संक्षिप्तता के लिए इसे छोड़ दिया गया है।

[7] पृष्ठ 317, नोट 2 देखें।

[8] विमानो, विकारिभूतचित्तो (Cy.).

[9] तुलना करें श्लोक 124, और CCXXIX., श्लोक 494, 495.

[10] पब्बतसेनाइसनट्टा (टिप्पणी)। मिलिंडा में उद्धृत, ii. 830.

[11] एक अरहंत (प्रबुद्ध) की सेवा करने का गौरव प्राप्त करने का अवसर (जैसा कि टीका में है)।

[12] गोमुत्तपरिभाविताहरिताकादि (Cy.).

[13] तुलना करें XVIII.

[14] चाइल्डर्स के शब्दकोश में करेरी को - मुझे नहीं पता किस आधार पर; यह स्पष्ट रूप से संस्कृत साहित्य में नहीं है - कैपरिस ट्राइफोलियाटा वृक्ष कहा गया है। इसी वृक्ष के नाम पर सावत्थी के जेतवन में एक मंडप, या मंडाल-माला का नाम रखा गया है (संवाद, 2:4; उदाना, 3:8)। ऊपर दिए गए अभिव्यक्ति, करेरीमाल-विताता से, मुझे इस पौधे में नेपाल और उत्तर-पश्चिमी हिमालय के कस्तूरी गुलाब के पेड़ (रोजा मोएचाटा) को देखने की बहुत इच्छा होती है, जिसे अभी भी कुछ बोलियों में करेर के नाम से जाना जाता है , और डायट्रिच ब्रांडिस की इंडियन ट्रीज़ (लंदन, 1906) में इसका वर्णन इस प्रकार है: 'एक कांटेदार झाड़ी जो ऊंचे पेड़ों की चोटियों तक चढ़ती है, फूलों की शाखाएं समृद्ध मालाओं की तरह नीचे लटकती हैं। फूल, सफेद, ... बड़े संयुक्त टर्मिनल कोरिम्ब्स में। दो से ग्यारह हजार फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है।' भूमध्यसागरीय क्षेत्र के रोजा सेम्परविरेंस से लगभग मिलता-जुलता । क्या 'केपर' वृक्ष को एक लता बनाने वाले मैदान को मालाविटाटा, 'जालेदार' या 'मालाओं से सजा हुआ' के रूप में वर्णित किया जा सकता है, साथ ही एक चढ़ने वाले गुलाब के रूप में भी?

[15] = XIII., जंगल का वाचा।

[16] = CXIII., वाचा ऑफ़ द वुड्स और CCXL., श्लोक 601, संकिक्का।

[17] शाब्दिक रूप से, पाँच प्रकार के संगीत वाद्ययंत्र; = श्लोक 398.

[18] तुलना करें श्लोक 494, 1052.

[19] 0ṭṭhapahatamattena, sjjhāyakaranavasena (टिप्पणी)। सी एफ मज्झ. निक., मैं. 164.

[20] विधासु. विभंग, पृ. 389 में आत्म-अभिमान के ऐसे नौ तरीके दर्ज हैं। तुलना करें बुद्ध. मनोविज्ञान, Ī 1116; अंग. निक., iii. 359.

[21] टिप्पणी में लिखा है, तथावादिं नहीं, बल्कि तथा तदिं: इथादिस इ तदि-भवपपत्तिया। पूर्व वाचन कम बाध्य है।

[22] अरहन्तफलसमापत्तिसमापज्जनेन। . . (टिप्पणी).

[23] = श्लोक 278.

[24] बौद्ध: सीएफ। संवाद, ii. 2; इतिवुत्तका, Ī 68.

[25] एक वाक्यांश जो कहीं और सारिपुत्त की बौद्धिक क्षमताओं से जुड़ा है। उनके भाई का श्लोक देखें, XL.

[26] महान कप्पिना। तुलना करें सीसीXXXV। हमने देखा है कि देवताओं की यह भेंट भगवान (बुद्ध) पर समान प्रभाव डालती है। तुलना करें सीसीXLII, श्लोक 629, 680।

[27] = श्लोक 1050 और पासिम.

[28] श्लोक 701 देखें; साथ ही उस कविता के पूर्ववर्ती श्लोकों को भी देखें, जिनमें ऊपर दिए गए अंतिम उपमाएँ हैं।

[29] निखम्मा.

[30] अस्तित्व के तीन स्तर: काम-भाव, या -लोक, रूप-भाव, अरूप-भाव। देखें सार-संग्रह, पृ. 186.

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

महा कस्सपा

मगध जिले के महातीत्था नामक एक गाँव में कपिला और सुमनादेवी नामक एक धनी ब्राह्मण दंपति रहते थे। उनका एक पुत्र था जिसका नाम उन्होंने पिप्पली कस्सपा रखा था।

उस समय की प्रथा के अनुसार, जब पिप्पली बालिग हुए तो उनके माता-पिता ने उनके लिए एक उपयुक्त कन्या की तलाश की। लेकिन पिप्पली को विवाह में कोई रुचि नहीं थी और उन्होंने अपने माता-पिता को बताया कि वे उनके देहांत तक उनकी देखभाल करेंगे और फिर संन्यासी का जीवन व्यतीत करेंगे। उनके माता-पिता इस निर्णय से प्रसन्न नहीं हुए और उन्होंने जोर दिया कि पिप्पली को एक उपयुक्त कन्या का चयन करना चाहिए। अपने माता-पिता को प्रसन्न करने के लिए, कश्यप ने अपने सुनार से ठोस सोने की एक सुंदर कन्या की मूर्ति बनवाई और कहा कि यदि उन्हें कोई ऐसी कन्या मिल जाए जो मूर्ति से मिलती-जुलती हो, तो वे विवाह करेंगे।

तब कपिल ने आठ ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें बड़ी रकम और मूर्ति देकर अपने बेटे के लिए सोने की मूर्ति से मिलती-जुलती दुल्हन की तलाश में देश भर में घूमने को कहा।

ब्राह्मण सगला नामक गाँव में थे, जहाँ उनकी नज़र भद्दा कपिलानी नाम की एक बेहद खूबसूरत लड़की पर पड़ी, जो मूर्ति से हूबहू मिलती-जुलती थी। उन्होंने उसके माता-पिता से बात की और पता चला कि वे विवाह के लिए सहमत हैं। फिर वे वापस गए और कपिला और सुमनादेवी को सूचना दी कि एक उपयुक्त दुल्हन मिल गई है।

जब कश्यप को भद्दा से अपने होने वाले विवाह के बारे में पता चला, तो उन्होंने भद्दा को पत्र लिखने का फैसला किया। उन्होंने बताया कि वे संन्यासी बनना चाहते हैं और भद्दा से अनुरोध किया कि वे इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दें और कहीं और उपयुक्त साथी की तलाश करें। कश्यप को यह ज्ञात नहीं था कि भद्दा की भी विवाह करने की कोई इच्छा नहीं थी और उन्होंने संन्यासी जीवन को चुना था। उन्होंने

भी कश्यप को ऐसा ही पत्र लिखकर उनसे कहीं और से दुल्हन ढूंढने का अनुरोध किया था। हालांकि, दोनों बच्चों के माता-पिता, जो अपने बच्चों की भावनाओं से अवगत थे, ने पत्रों को रोक लिया और प्रेम भरे पत्र लिखकर विवाह के लिए सहमति दे दी।

एक भव्य विवाह समारोह आयोजित किया गया और बड़े धूमधाम से भद्दा का विवाह कश्यप से संपन्न हुआ। हालांकि, दोनों में से किसी को भी वैवाहिक जीवन में रुचि नहीं थी। उनके पिछले पुण्य कर्मों और तपस्वी जीवन का प्रभाव इतना प्रबल था कि दोनों ने ब्रह्मचर्य का जीवन जीने का निश्चय किया। वे सौहार्दपूर्वक मित्रवत रहे, कश्यप के वृद्ध माता-पिता की रीति-रिवाजानुसार मृत्यु तक देखभाल की और पारिवारिक संपत्ति व जागीर के उत्तराधिकारी बने।

महा कस्सपा का त्याग

एक दिन जब कस्सपा फसल के मौसम की तैयारी में खेत की जुताई का निरीक्षण कर रहा था, तो वह एक ऐसी आम चीज़ को देखकर चौंक गया जो पहले कभी उसकी नज़र में नहीं आई थी। जुताई के परिणामस्वरूप कई कीड़े और छोटे जीव ज़मीन से बाहर आ गए थे और कीड़ों से आकर्षित होकर कई पक्षी उसके खेत के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे और दावत उड़ा रहे थे।

अनेक निर्दोष प्राणियों के विनाश को देखकर कश्यप ने अपने श्रमिकों से पूछा कि उनके कष्ट और मृत्यु के लिए कौन जिम्मेदार है। तब श्रमिकों ने उन्हें बताया कि वे स्वयं इसके लिए जिम्मेदार हैं, क्योंकि वे उनके नाम पर खेत जोत रहे थे। इस कथन का कश्यप पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने निश्चय किया कि वे परिवार की सारी संपत्ति भद्दा को सौंप देंगे और मोक्ष की खोज में निकले एक तपस्वी का प्राण त्याग देंगे।

उसे इस बात का पता नहीं था कि लगभग उसी समय भद्दा ने भी ऐसा ही निर्णय लिया था। उसके नौकरों ने कुछ तिल धूप में सुखाने के लिए रख दिए थे। छोटे-छोटे जीव तिलों के चारों ओर जमा हो गए थे और शोर मचाने वाले पक्षी उन नन्हे जीवों को खाने के लिए इकट्ठा हो गए थे। भद्दा ने उन नन्हे जीवों का कष्ट देखा और अपने नौकरों से पूछा कि उनके कष्ट और मृत्यु के लिए कौन जिम्मेदार है। उसे भी बताया गया कि वह स्वयं जिम्मेदार है, क्योंकि उसी के निर्देश पर और उसी के खाने के लिए तिल धूप में फैलाए गए थे।

अपने कष्टों पर विचार करते हुए, भद्दा ने परिवार की सारी संपत्ति कश्यप को सौंपने और संन्यासी जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। शाम को कश्यप और भद्दा ने अपने निर्णय पर चर्चा की और पाया कि दोनों का मत एक जैसा है। आपस में विचार करने के बाद, दोनों ने पवित्र जीवन व्यतीत करने और कष्टों से मुक्ति पाने का संकल्प लिया। एक-दूसरे के सिर मुंडवाकर उन्होंने संन्यासियों के साधारण वस्त्र धारण किए और अपना घर छोड़ दिया।

जब उनके नौकरों और ग्रामीणों को उनके संन्यास के बारे में पता चला तो वे रोने-धोने लगे और दंपति को समझाने की कोशिश करने लगे। लेकिन कश्यप और भद्दा ने अपना मन बना लिया था। उन्होंने अपनी संपत्ति नौकरों में बाँट दी और आगे बढ़ गए। इस तरह वे गुरु की तलाश में भटकते रहे, कश्यप आगे और भद्दा कुछ गज पीछे।

कुछ समय बाद, कश्यप को लगा कि उनकी खूबसूरत पूर्व पत्नी का उनके पीछे आना उचित नहीं है। उन्होंने सोचा कि लोग मान लेंगे कि उनका भद्दा से संबंध है और अफवाहें फैलाकर आरोप लगाएंगे। चूंकि वे दोनों पवित्र और निर्दोष थे, इसलिए लोगों की गलत धारणाएं उन्हें बहुत कष्ट पहुंचाएंगी। भद्दा से अपने विचार साझा करते हुए, उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि वे अब उनका पीछा न करें। भद्दा ने उनकी बात मान ली और अगले चौराहे पर उनसे अलग हो गईं। कश्यप ने अपने दाहिनी ओर का रास्ता लिया, जबकि भद्दा ने अपने बाईं ओर का रास्ता लिया।

इस ग्रंथ से पता चलता है कि तपस्वियों की पवित्रता और पुण्य के कारण इस त्याग से पृथ्वी कांप उठी। पृथ्वी के इस कंपन को देखकर बुद्ध ने अपनी अलौकिक दृष्टि से यह जान लिया कि उनके भावी महान शिष्यों में से एक उनसे मिलने आ रहा है। उन्होंने कश्यप से मिलने का निश्चय किया और महातीथ की ओर चल पड़े।

नालंदा और राजगृह के बीच के मार्ग पर बुद्ध अपने भावी शिष्य की प्रतीक्षा में एक अंजीर के वृक्ष के नीचे बैठ गए। जिस क्षण कश्यप ने बुद्ध को देखा, वह समझ गया कि उसे अपना गुरु मिल गया है। बुद्ध अपने पूर्ण प्रकाश में विराजमान थे, उनके चारों ओर एक आभा फैली हुई थी। कश्यप ने बुद्ध के चरणों में गिरकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और भिक्षु संघ में प्रवेश करने की अनुमति मांगी।

इसके बाद बुद्ध ने कश्यप को तीन विषयों पर उपदेश दिया। उन्होंने कश्यप को ये निर्देश इसलिए दिए ताकि वे:

उसे स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए कि वह वरिष्ठों, नौसिखियों और कुलीन वर्ग में मध्यम स्तर के लोगों के प्रति अनुचित कार्य करने पर गहरी शर्म महसूस करे।

उन शिक्षाओं को सुनें, उनका अध्ययन करें, उन पर मनन करें और आत्मसात करें जो अच्छे कर्मों के लिए सहायक हों।

अपने शरीर और उसके विचारों और कार्यों के प्रति सचेत रहें।

इस प्रवचन के बाद गुरु और उनका नया शिष्य राजगृह वापस चले गए।

रास्ते में बुद्ध एक वृक्ष की जड़ के नीचे विश्राम करना चाहते थे। तब कश्यप ने अपना बाहरी वस्त्र लिया, उसे चार तहों में मोड़ा और बुद्ध से उस पर बैठने का अनुरोध किया, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें लंबे समय तक लाभ होगा। बुद्ध ने कश्यप का वस्त्र स्वीकार किया और उसकी कोमलता की प्रशंसा की। यह सुनकर कश्यप ने तुरंत अपना वस्त्र बुद्ध को देते हुए कहा, "हे भगवान, मुझ पर दया करके, इस वस्त्र को स्वीकार करें।" तब बुद्ध ने कश्यप से पूछा कि क्या वे अपना पुराना, खुरदुरा वस्त्र पहनेंगे। खुशी से भरकर कश्यप ने बुद्ध का वस्त्र स्वीकार कर लिया और उसे पहनने के लिए सहमत हो गए। कश्यप एकमात्र भिक्षु थे जिनके साथ बुद्ध ने वस्त्रों का आदान-प्रदान

किया था। यद्यपि इस आदान-प्रदान का महत्व ग्रंथ में वर्णित नहीं है, फिर भी संभवतः इसने कश्यप को तपस्वी साधनाओं में अग्रणी भिक्षु बनने की अपनी प्राचीन आकांक्षा की याद दिलाई होगी, क्योंकि उन्होंने तेरह तपस्वी साधनाओं का पालन किया था।

महा कस्सपा की आकांक्षा

एक लाख विश्व चक्र पूर्व, पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय, कश्यप का जन्म वेदेह नामक एक धनी जमींदार के रूप में हुआ था, और उस समय भी भद्दा उनकी पत्नी थीं। पद्ममुत्तरा बुद्ध हंसवती नगर के निकट खेमा हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। वेदेह ने देखा कि पद्ममुत्तरा बुद्ध ने महानिसभा नामक एक भिक्षु को कठोर तपस्या में अग्रणी शिष्य और अपना तीसरा सबसे श्रेष्ठ शिष्य नियुक्त किया। पद्ममुत्तरा बुद्ध से प्रेरित होकर, वेदेह ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया।

जब बुद्ध और उनके भिक्षु भोजन कर रहे थे, तब वेदेह ने देखा कि भिक्षु महानिसभा भिक्षा मांगने के लिए सड़कों पर घूम रहे हैं। वेदेह ने उन्हें अपने घर पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। जब महानिसभा ने मना कर दिया, तो उन्होंने भिक्षु का कटोरा लेकर उसे सुगंधित भोजन से भर दिया और उन्हें वापस दे दिया। फिर उन्होंने बुद्ध से पूछा कि महानिसभा ने उनके घर भोजन के लिए आने का निमंत्रण क्यों स्वीकार नहीं किया। तब पद्ममुत्तरा बुद्ध ने समझाया कि अनेक विश्व चक्रों पहले महानिसभा ने तपस्या में अग्रणी बनने की इच्छा रखी थी, और अपनी इसी इच्छा के अनुरूप उन्होंने केवल भिक्षा मांगने से प्राप्त भोजन ही ग्रहण किया था।

महानिसभा से प्रेरित होकर वेदेह अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने निश्चय किया कि वे भी तपस्या में अग्रणी भिक्षु और भावी बुद्ध के शिष्य कहलाना चाहते हैं। उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा और उनके भिक्षुओं के दल को सात दिनों के लिए भोजन और आवश्यक सामग्री भेंट की और पद्ममुत्तरा बुद्ध के समक्ष प्रणाम करते हुए भावी बुद्ध के शिष्य के रूप में तपस्या में अग्रणी भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। यह देखकर कि वेदेह उनकी इस इच्छा को पूरा करेंगे, बुद्ध पद्ममुत्तरा ने घोषणा की कि गौतम बुद्ध के समय में वेदेह महा कस्सपा के नाम से जाने जाएंगे और उन्हें तीसरे सबसे प्रतिष्ठित भिक्षु और तपस्या में अग्रणी घोषित किया जाएगा।

गौतम बुद्ध और कश्यप का संबंध कई जन्मों पहले शुरू हुआ था। जातक कथाओं में कश्यप के उन्नीस जन्मों का वर्णन है जिनमें वे बोधिसत्व से संबंधित थे, कभी उनके पिता के रूप में, कभी उनके भाई के रूप में, और अक्सर उनके गुरु या मित्र के रूप में। इस प्रकार, जब कश्यप ने बुद्ध को देखा तो उनके बीच जो तत्काल संबंध स्थापित हुआ, वह गहरा था। कश्यप ने बाद के बुद्धों की उपस्थिति में भी अपनी आकांक्षा को नवीकृत किया और अनगिनत वर्षों तक कई पुण्य कर्म किए। जैसा कि भविष्यवाणी की गई थी, कश्यप ने गौतम बुद्ध के समय अपनी आकांक्षा को पूरा किया। बुद्ध ने कश्यप को कठोर साधना करने वाले भिक्षुओं में सर्वोपरि नियुक्त किया।

बुद्ध ने कश्यप की तपस्या और वैराग्यपूर्ण व्यवहार की बार-बार प्रशंसा की। उन्होंने कहा:

"जब कस्सपा परिवारों के बीच जाते हैं, तो उनका मन आसक्त नहीं होता, व्यथित नहीं होता, बंधा हुआ नहीं होता। वे सोचते हैं, 'लाभ चाहने वाले लाभ प्राप्त करें! पुण्य चाहने वाले पुण्य करें!' वे दूसरों के लाभ से प्रसन्न और प्रसन्न होते हैं, जैसे वे अपने लाभ से प्रसन्न और प्रसन्न होते हैं। ऐसा भिक्षु परिवारों के बीच जाने के योग्य है।"

"जब वह उपदेश देता है, तो वह व्यक्तिगत मान्यता और प्रशंसा के लिए नहीं, बल्कि परमेश्वर की शिक्षाओं को लोगों तक पहुंचाने के लिए देता है, ताकि सुनने वाले उन्हें स्वीकार करें और तदनुसार अभ्यास करें। वह शिक्षा की उत्कृष्टता और करुणा एवं सहानुभूति के कारण उपदेश देता है।" -- (साम्युत्त निकाय)

महा कस्सपा की तपस्या पद्धति

देवताओं के साथ दो रोचक मुलाकातों से कश्यप की तपस्या के प्रति प्रतिबद्धता और भी स्पष्ट होती है। पहली घटना देवी लाजा की सेवा के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है। लाजा को याद था कि उनकी वर्तमान वैभवशाली स्थिति उस भेंट के कारण थी जो उन्होंने उस महान गुरु को अर्पित की थी। लाजा, जो एक गरीब महिला थीं, ने बड़े श्रद्धा से उस गुरु को भुने हुए चावल अर्पित किए थे। घर लौटते समय उन्हें एक विषैले सांप ने काट लिया और उनकी मृत्यु हो गई। उनकी भेंट के फलस्वरूप उन्हें तावतिंसा स्वर्ग में अपार वैभव के साथ पुनर्जन्म मिला।

कृतज्ञ लाजा ने बुजुर्ग की कुटिया साफ करने और उनके बर्तनों में पानी भरने का निश्चय किया। तीसरे दिन उसने देवी को पूर्ण प्रकाश में उनकी कुटिया साफ करते हुए देखा। कश्यप ने उनसे पूछा कि वे क्या कर रही हैं और जब उन्हें बताया गया, तो उन्होंने उनसे कहा कि वे भविष्य में उनकी सेवा न करें क्योंकि वे कठोर साधना में लीन थे। निराश लाजा बड़े दुख में चली गईं। बुद्ध ने निराश लाजा को देखकर करुणा से उनके सामने आकर उन्हें उनकी सेवा के पुण्य फल बताए। फिर उन्होंने बुजुर्ग की मनोकामना के बारे में बताकर उन्हें सांत्वना दी।

दूसरी घटना तब की है जब कश्यप पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे। वे ध्यान की अवस्था में पहुँच गए थे और सात दिनों तक वहीं रहे। इसके बाद वे राजगृह के लिए भिक्षा मांगने निकले। कश्यप से प्रेरित होकर देवता दिव्य भोजन लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुए। परंतु कश्यप ने देवताओं का अमृत यह कहते हुए ग्रहण करने से इनकार कर दिया कि वे यह अवसर गरीबों को देना चाहते हैं ताकि वे पुण्य अर्जित कर सकें। निराश देवता स्वर्ग लौट गए और उन्होंने स्वर्ग के राजा सक्का को कश्यप के इनकार के बारे में बताया।

जब सक्का को कश्यप के इनकार के बारे में पता चला, तो उसके मन में उस महान वृषभ की सेवा करने की तीव्र इच्छा जागी। एक गरीब बुनकर का वेश धारण करके उसने कश्यप को चावल भेंट किए। जब वृषभ ने भोजन ग्रहण किया, तो एक दिव्य सुगंध उत्पन्न हुई और कश्यप तुरंत समझ गए कि देव ने उन्हें छल किया है। तब उन्होंने सक्का को गरीबों से पुण्य कमाने का अवसर छीनने के लिए फटकारा। सक्का ने कश्यप से पूछा कि क्या छल के कारण उन्हें इस कर्म से पुण्य नहीं मिला? कश्यप ने सक्का को बताया कि छल के बावजूद उन्हें पुण्य प्राप्त हुआ है और वे अपने भिक्षाटन कार्य में आगे बढ़ गए।

बुद्ध ने कश्यप को तपस्वी जीवन के गुणों और मोक्ष प्राप्ति में तपस्या के लाभों के बारे में भी बताया। इससे कश्यप को न केवल अपनी तपस्या जारी रखने की प्रेरणा मिली, बल्कि दूसरों के लिए एक आदर्श बनकर इसे आगे बढ़ाने की भी प्रेरणा मिली। बुद्ध ने कहा:

"पहले, कस्सपा, संघ में ऐसे वरिष्ठ भिक्षु थे जो वनवासी थे, भिक्षा पर जीवन यापन करते थे, चिथड़े-चिथड़े पहनते थे, केवल तीन प्रकार के वस्त्र धारण करते थे, उनकी आवश्यकताएँ कम थीं और वे समाज से अलग एकांत में रहकर संतुष्ट रहते थे, ऊर्जावान थे, और वे ऐसे जीवन शैली की प्रशंसा और प्रोत्साहन करते थे। जब ऐसे वरिष्ठ या युवा भिक्षु मठ में आते थे, तो उनका सहर्ष स्वागत किया जाता था और उन्हें धम्म के अभ्यास के प्रति समर्पित मानकर सम्मानित किया जाता था। तब जो लोग उन श्रेष्ठ भिक्षुओं का स्वागत और सम्मान करते थे, वे भी उनके जीवन शैली का अनुकरण करने का प्रयास करते थे और इससे उन्हें दीर्घकाल तक बहुत लाभ होता था।"

"परन्तु आजकल, कश्यप, मठ में आने वाले भिक्षुओं का सम्मान कठोर और गंभीर जीवन व्यतीत करने वाले भिक्षुओं को नहीं, बल्कि प्रसिद्ध और लोकप्रिय भिक्षुओं को किया जाता है, जिन्हें भिक्षु बनने के लिए आवश्यक सभी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इनका स्वागत और सम्मान किया जाता है, और मेज़बान इनका अनुकरण करने का प्रयास करते हैं, जिससे उन्हें दीर्घकाल तक हानि होती है। अतः यह कहना उचित होगा कि ऐसे भिक्षुओं को उस चीज़ से हानि पहुँचती है और वे उस पर हावी हो जाते हैं जो भिक्षु के जीवन को हानि पहुँचाती है।" --(साम्युत्त निकाय)

कासपा, जिन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में तपस्या में अग्रणी भिक्षु बनने की आकांक्षा रखी थी, ने इन शब्दों को दिल से आत्मसात कर लिया। वास्तव में, एक बार उन्होंने आनंद को फटकारा, जो धम्म में उन्नत होने से पहले ही 200 नवोदित भिक्षुओं को उनके शिष्यों के घर ले गए थे। सांसारिक सुखों के आकर्षण में आकर, नवोदित भिक्षुओं ने संघ त्याग दिया था और पारिवारिक जीवन में लौट गए थे। कासपा ने आनंद को अपने शिष्यों की देखभाल न करने के लिए फटकारा। धनी लोग अक्सर बुद्ध और उनके अनुयायियों को भोजन के लिए आमंत्रित करते थे। कासपा ने भिक्षा मांगने के लिए स्वयं जाकर और ऐसे निमंत्रणों को अस्वीकार करके यह सुनिश्चित किया कि भिक्षा देने के इस पुण्य कार्य का अवसर गरीबों को भी मिले। वे मार्ग में प्रत्येक घर पर रुके और प्रत्येक दान को समान विनम्रता से स्वीकार किया।

कस्सपा के तपस्वी जीवन और वैराग्य का वर्णन उन्होंने अपनी थेरागथा कविताओं में किया है।

एक अन्य अवसर पर बुद्ध ने कश्यप से पथभ्रष्ट भिक्षुओं को शिक्षा देने का अनुरोध किया। बुद्ध ने कहा, "कश्यप, भिक्षुओं को उपदेश दो। या तो मैं, कश्यप, भिक्षुओं को उपदेश दूँ, या तुम। या तो मैं या तुम उन्हें धम्म पर प्रवचन दो।" ये शब्द कश्यप पर बुद्ध के विश्वास को दर्शाते हैं, क्योंकि प्रत्येक अरहंत में इस प्रकार शिक्षा देने की क्षमता नहीं होती कि उसे समझा जा सके।

इस ग्रंथ में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्यों सारिपुत्त और मोग्गलाना के बजाय कश्यप को इस उपदेश के लिए क्यों चुना। वे भी उत्कृष्ट शिक्षक थे। संभव है कि यह उपदेश उनके देहांत के बाद या ठीक पहले दिया गया हो, क्योंकि बुद्ध जानते थे कि कश्यप उनसे अधिक समय तक जीवित रहेंगे, जबकि उनके प्रमुख शिष्य उनसे पहले ही देहांत प्राप्त कर लेंगे। यह भी संभव है कि बुद्ध ने अपने भिक्षुओं में कठोर जीवन शैली से हटकर सुख-सुविधाओं और भौतिकवाद की ओर रुझान देखा हो। कश्यप, जिन्होंने कठोर जीवन व्यतीत किया, पथभ्रष्ट भिक्षुओं के लिए आदर्श थे।

अन्य भिक्षुओं की तरह कस्सपा भी अक्सर बुद्ध से प्रश्न पूछते थे। एक बार कस्सपा ने बुद्ध से पूछा कि उनके उपदेश के आरंभ में भिक्षुओं के लिए नियम कम और अरहंत अधिक क्यों थे, जबकि बाद में भिक्षुओं के लिए नियम अधिक और अरहंत कम हो गए। बुद्ध ने उत्तर इस प्रकार दिया:

"तो ऐसा होता है, कस्सपा, जब प्राणी पतित हो जाते हैं और सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है: तब नियम बढ़ जाते हैं और अरहंत कम हो जाते हैं। लेकिन जब तक संसार में कोई पाखंडी धम्म उत्पन्न नहीं होता, तब तक धम्म का लुप्त होना संभव नहीं है। परन्तु जब संसार में पाखंडी धम्म उत्पन्न हो जाता है, तब नियम बढ़ जाते हैं और अरहंत कम हो जाते हैं।"

"परन्तु, कस्सपा, धम्म के लुप्त होने का कारण पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु - इन चार तत्वों का प्रलय नहीं है। न ही इसके लुप्त होने का कारण किसी जहाज पर अत्यधिक भार लादने के कारण उसके डूबने जैसा है। बल्कि, पाँच हानिकारक मनोवृत्तियों की उपस्थिति ही धम्म के आवरण और लुप्त होने का कारण है।"

ये पाँच बातें हैं: भिक्षुओं, भिक्षुणियों और पुरुष एवं स्त्री भक्तों द्वारा बुद्ध, धम्म, संघ, प्रशिक्षण और ध्यान में एकाग्रता का अभाव। परन्तु जब तक इन पाँचों बातों का आदर और सम्मान बना रहेगा, धम्म अपवित्रता से मुक्त रहेगा और लुप्त नहीं होगा।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धम्म के संरक्षण का दायित्व केवल संघ को ही नहीं सौंपा गया है। गृहस्थ भक्त भी इसके संरक्षण में योगदान दे सकते हैं और उन्हें देना भी चाहिए। वास्तव में, हममें से प्रत्येक को धम्म के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिए ताकि भावी पीढ़ियों के लिए धम्म सुलभ बना रहे।

कश्यप ने बुद्ध से यह प्रश्न नहीं किया कि संसार में छद्म धम्म कब प्रकट होगा या छद्म धम्म से उनका वास्तव में क्या तात्पर्य है। यद्यपि संसार में बौद्ध धर्म की अनेक परंपराएँ हैं, उन सभी में चार आर्य सत्य और प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत समाहित है, जो बुद्ध की शिक्षाओं का मूल है।

यद्यपि बुद्ध अक्सर कश्यप की तपस्या और वैराग्य की प्रशंसा करते थे, फिर भी उन्हें वृद्ध कश्यप के प्रति गहरी करुणा थी। दो अवसरों पर बुद्ध ने कश्यप को याद दिलाया कि अब जब वे वृद्ध हो गए हैं, तो उनका खुरदरा, फटा हुआ वस्त्र उनकी त्वचा के लिए असुविधाजनक हो सकता है, इसलिए उन्हें अब कोमल वस्त्र धारण करने चाहिए। उन्होंने उनसे गृहस्थों से भिक्षा मांगने के निमंत्रण स्वीकार करने और भिक्षा मांगने तथा वनवास में रहने के बजाय मठों में रहने का भी अनुरोध किया। परंतु कश्यप ने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि वे लंबे समय तक वनवासी रहे हैं और फटे वस्त्र धारण करते रहे हैं, और उन्होंने दूसरों को भी ऐसा करने की सलाह दी है। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी आवश्यकताएँ कम हैं और वे अपने पास जो कुछ है उससे संतुष्ट और प्रसन्न हैं, और उन्होंने दूसरों को भी ऐसा करने की सलाह दी है। इसलिए, उन्होंने उन तपस्याओं में बने रहना पसंद किया जिनकी उन्होंने कई अवसरों पर दूसरों को सलाह दी थी।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि वे इतना तपस्वी जीवन क्यों व्यतीत करते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह उनके स्वयं के कल्याण और आने वाली पीढ़ियों के प्रति करुणा के कारण है। उन्होंने कहा कि वे उनके अनुकरणीय आचरण का अनुसरण कर सकते हैं और उनसे प्रेरणा ले सकते हैं। क्योंकि उन्होंने न केवल दूसरों को तपस्या का उपदेश दिया, बल्कि अपने आचरण में भी इसका उदाहरण प्रस्तुत किया। बुद्ध ने उनके शब्दों की प्रशंसा की और उन्हें वनवासी के रूप में रहने, वस्त्र धारण करने और भिक्षा मांगने की अनुमति दी, क्योंकि ऐसा करना मनुष्यों और देवताओं दोनों के लिए लाभकारी होगा।

ऐसा प्रतीत होता है मानो बुद्ध ने परिनिर्वाण के बाद मठवासी मूल्यों में गिरावट को भांपते हुए कश्यप को धम्म के संरक्षण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए तैयार किया था। बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा था कि उनके निधन के बाद कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा, बल्कि धम्म ही उनका गुरु होगा। फिर भी बुद्ध ने यह पूर्वाभास कर लिया था कि कश्यप की तपस्या उन्हें एक प्रतिष्ठित, उत्कृष्ट नेता बनाएगी, जिनका भिक्षुओं द्वारा सम्मान किया जाएगा। बुद्ध ने अनेक अवसरों पर कश्यप की तपस्या की प्रशंसा और प्रोत्साहन किया। कश्यप ने भी अपने शिष्यों को भौतिकवाद से दूर और तपस्वी जीवन की सुंदरता की ओर प्रेरित करने का हर अवसर प्रयोग किया।

थेरागाथा में, कस्सपा वनवास की सुंदरता और उससे मिलने वाली अंतर्दृष्टि और शांति का वर्णन करते हैं, जो धम्म की गहरी समझ की ओर ले जाती है।

महा कस्सपा का महान योगदान

धम्म के संरक्षण में कश्यप का सबसे बड़ा योगदान भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद हुआ। बुद्ध के महान शिष्यों में से केवल आनंद और अनुराधा ही कुशीना में बुद्ध के निधन के समय उपस्थित थे, क्योंकि सारिपुत्त और मोग्गलन दोनों का निधन बुद्ध से पहले ही हो चुका था। कश्यप अपने भिक्षुओं के दल के साथ पावा से कुशीना की ओर यात्रा कर रहे थे, तभी उनकी मुलाकात एक तपस्वी से हुई, जिसके पास मंदारव (मूंगा वृक्ष) का फूल था। चूंकि यह पौधा स्वर्ग में उगता है, कश्यप समझ गए कि कुछ असामान्य हुआ है। उन्होंने तपस्वी से पूछा कि क्या वे बुद्ध के बारे में कुछ जानते हैं, और तपस्वी ने पुष्टि की कि बुद्ध का निधन एक सप्ताह पहले हो चुका था। उन्होंने बताया कि देवता और मल्ल राजा अगरबत्ती और फूलों से बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि यह मंदारव का पौधा उन्होंने श्मशान स्थल से लिया था।

जब भिक्षुओं ने बुद्ध के देहांत का समाचार सुना, तो जो भी अर्हंत पद प्राप्त नहीं कर पाए थे, वे सब विलाप करने और रोने लगे। परन्तु सुभद्दा नामक एक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "बस करो मित्रों। शोक मत करो, विलाप मत करो। हम महान तपस्वी से मुक्त हो गए हैं। उनके द्वारा यह बताने से कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है, हम बहुत परेशान थे। अब हम अपनी इच्छा अनुसार कार्य कर सकते हैं और हमें वह करने की आवश्यकता नहीं है जो हमें पसंद नहीं है।"

इस लेख में कश्यप की इन कठोर बातों पर प्रतिक्रिया का उल्लेख नहीं है। हो सकता है कि कश्यप भिक्षुओं के बीच कलह उत्पन्न न हो इसलिए चुप रहे हों। इसके बजाय, उन्होंने शोक संतप्त भिक्षुओं को बुद्ध द्वारा सिखाई गई अनित्यता की सच्चाई याद दिलाकर उन्हें सांत्वना दी। कश्यप ने इस घटना का उल्लेख अवश्य किया, क्योंकि प्रथम संघ परिषद के लिए अरहंतों को एकत्रित करते समय उन्होंने इसी घटना का जिक्र किया था।

कस्सपा ने मन ही मन यह कामना की कि जब तक वह और उनके भिक्षुओं का दल कुसिनारा न पहुँच जाए, तब तक चिता प्रज्वलित न हो। उनकी कामना के अनुरूप चंदन की चिता प्रज्वलित नहीं हुई। जब कस्सपा और उनके भिक्षु वहाँ पहुँचे, तो लकड़ी खिसक गई और बुद्ध के पवित्र चरण दिखाई दिए। कस्सपा और उनके भिक्षुओं ने सिर झुकाकर बुद्ध को प्रणाम किया, जिसके बाद चंदन की चिता में आग लग गई।

बुद्ध के अंतिम संस्कार और अवशेषों के वितरण के बाद, कश्यप ने अपना सारा ध्यान धम्म के संरक्षण पर केंद्रित किया। सुब्बद्दा की चुनौती और नैतिक शिथिलता तथा धम्म के पतन की संभावना को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने एक संघ परिषद आयोजित करने का प्रस्ताव रखा, जिसमें धम्म और संघ के नियमों, विनय की समीक्षा की जाएगी। जब उन्होंने अपने विचार अन्य संघ सदस्यों के साथ साझा किए, तो वे सहमत हो गए।

प्रथम संघ सभा के लिए, कश्यप ने संघ से 500 सदस्यों का चयन किया, जिनमें आनंद को छोड़कर सभी अरहंत थे। आनंद, जो धम्म के संरक्षक के रूप में जाने जाते थे, को उनकी उत्कृष्ट स्मृति और बुद्ध तथा उनके महान शिष्यों द्वारा प्रतिपादित 84,000 सूत्रों के विस्तृत ज्ञान के कारण चुना गया था। शाक्य राजकुमार के पूर्व नाई, उपाली, जो एक अरहंत थे, ने विनय पाठ का नेतृत्व किया क्योंकि बुद्ध ने उन्हें विनय नियमों के ज्ञान में अग्रणी भिक्षु घोषित किया था। अन्य सभी भिक्षुओं को सात माह की पाठ अवधि के लिए राजगृह छोड़ने का आदेश दिया गया था। बुद्ध की सभी शिक्षाओं और मठवासी अनुशासन का पाठ किया गया। धम्म को संहिताबद्ध किया गया और पाँच संग्रहों (निकायों) तथा तीन पिटकों: सूत्र पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक में व्यवस्थित किया गया। बुद्ध के निधन के तीन महीने बाद, मगध देश की राजधानी राजगृह में राजा अजातसत्तु के संरक्षण में पहली संघ परिषद का आयोजन किया गया था।

अनुराधा के प्रोत्साहन से आनंद ने ध्यान किया और प्रथम संघ सभा के दिन भोर में अरहंत पद प्राप्त किया। फिर उन्होंने सूक्ष्म आध्यात्मिक यात्रा का उपयोग करते हुए वायुमार्ग से यात्रा की, जो उनके मोक्ष का प्रतीक था, और सभा के अन्य सदस्यों के बीच अपना स्थान ग्रहण किया।

प्रथम सभा के बाद भिक्षुओं का कश्यप के प्रति आदर और भी बढ़ गया। उन्हें संघ का मुखिया माना जाता था, यद्यपि बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा था कि उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा और उनके जाने के बाद धम्म ही गुरु होगा। अपनी मृत्यु से पहले, कश्यप ने बुद्ध का कुंड आनंद को सौंप दिया, जो धम्म के निष्ठापूर्वक संरक्षण की निरंतरता का प्रतीक था। कश्यप, जिन्हें आम तौर पर उत्तराधिकार में सबसे योग्य माना जाता था, ने आनंद को अपने बाद सबसे योग्य चुना।

कस्सपा ने थेरागाथा में अपनी मुक्ति, कृतज्ञता और गुरु की प्रशंसा का वर्णन किया है।

कस्सपा को महा कस्सपा (महान) के नाम से जाना जाता था ताकि उन्हें समान ब्राह्मण नाम वाले अन्य भिक्षुओं से अलग किया जा सके। ऐसा कहा जाता है कि महा कस्सपा एकमात्र ऐसे भिक्षु थे जिनमें बुद्ध के बत्तीस कुलीन लक्षणों में से सात लक्षण थे। अपनी आकांक्षा के अनुरूप, बुद्ध ने महा कस्सपा को तपस्वी साधनाओं में अग्रणी भिक्षु घोषित किया। वे बुद्ध के अनुयायियों में तीसरे सबसे प्रतिष्ठित भिक्षु भी थे।

प्रथम संघ परिषद बुद्ध के वचन के संरक्षण में अत्यंत सफल रही। इस पद्धति के प्रचलन से महा कस्सपा को "धम्म का पिता" कहा जाने लगा और आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग बाद के वर्षों में भी किया गया। इसी से बुद्ध के वचन के लिए "थेरवाद" या वरिष्ठों (अरहंतों) द्वारा पाठ शब्द का प्रयोग भी शुरू हुआ। तब से थेरवाद परंपरा के अंतर्गत छह और संघ परिषदें तथा महायान परंपरा के अंतर्गत एक संघ परिषद का आयोजन हो चुका है। द्वितीय संघ परिषद बुद्ध के परिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद, राजा कलाशोक के संरक्षण में, वैशाली के

वलुकर्म में आयोजित की गई थी। आनंद के शिष्यों में से एक, 120 वर्षीय अरहंत सब्बक मि ने द्वितीय संघ परिषद की अध्यक्षता की और संघ के 700 सदस्य, जो सभी अरहंत थे, ने इसमें भाग लिया। द्वितीय संघ परिषद को पूरा होने में आठ माह लगे।

तीसरी संघ सभा बुद्ध के परिनिर्वाण के 235 वर्ष बाद, राजा अशोक के शासनकाल के सत्रहवें वर्ष में, उनके संरक्षण में पाटलिपुत्त के अशोकराम में आयोजित की गई थी। अरहंत मोग्गलिपुत्त तिस्सा ने तीसरी संघ सभा की अध्यक्षता की और संघ के 1,000 सदस्यों ने, जो सभी अरहंत थे, इसमें भाग लिया। तीसरी संघ सभा को पूरा होने में नौ महीने लगे।

बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग साढ़े चार सौ वर्ष बाद, लगभग 90 ईसा पूर्व, थेरवाद परंपरा में चौथी संघ सभा आयोजित की गई, और बुद्ध के वचनों को पहली बार श्रीलंका के अलुविहार स्थित मतले में राजा वट्टा गामिनी अभय (वालगम्भाहु) के संरक्षण में लिखित रूप में दर्ज किया गया। चौथी संघ सभा में संघ के पाँच सौ सदस्य, जो सभी अरहंत थे, ने भाग लिया। विशुद्धि मार्ग (शुद्धि मार्ग) के लेखक महान टीकाकार बुद्धघोष का कहना है कि ताड़ के पत्तों पर लिखी गई पुस्तकों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन्हें एक के ऊपर एक रखने पर उनकी ऊँचाई छह हाथियों के बराबर हो गई।

महायान परंपरा की पहली संघ सभा, जो कि अगली संघ सभा थी, भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद कश्मीर में राजा कनिष्क (78 ईसा पूर्व - 101 ईस्वी) के संरक्षण में आयोजित की गई थी। पूज्य वसुमित्त ने इसकी अध्यक्षता की।

भगवान बुद्ध के निधन के 2415 वर्ष बाद, नवंबर 1871 में म्यांमार (बर्मा) के मांडले में थेरवाद परंपरा की पांचवीं संघ परिषद का आयोजन राजा मिंडन के संरक्षण में किया गया था। ताड़ के पत्तों पर लिखे गए ग्रंथ समय के साथ नष्ट हो जाते थे। इन ग्रंथों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए बुद्ध धम्म को संगमरमर की शिलाओं पर उत्कीर्ण किया गया।

दक्षिणाराम मठ के पूज्य जागृतभिवांस के नेतृत्व में, पूज्य नरिंदभिधजा और पूज्य सुमंगलसामी के सहयोग से, दो हजार चार सौ भिक्षुओं ने परंपरागत विधि से शास्त्रों का पाठ शुरू किया। यह सामूहिक धम्म पाठ पाँच महीने तक चला। फिर कुशल कारीगरों की सहायता से इसे सात सौ उनतीस संगमरमर की शिलाओं पर उकेरा गया। इस कार्य को पूरा करने में सात वर्ष छह महीने और चौदह दिन लगे। इन संगमरमर की शिलाओं को मंडले पहाड़ी की तलहटी में स्थित राजा मिंडन के कुथोडॉ पैगोडा के परिसर में बने पिटक पैगोडा में स्थापित किया गया। अब इसे विश्व की सबसे बड़ी पुस्तक के रूप में जाना जाता है।

छठी संघ परिषद, जिसे काबा आये के नाम से जाना जाता है, जो थेरवाद परंपरा की थी, 1954 में यांगोन (रंगून) में आयोजित की गई थी। इसका प्रायोजन माननीय प्रधानमंत्री यू नू के नेतृत्व वाली बर्मी सरकार ने किया था। उन्होंने महा पासना गुफा, 'महान गुफा' के निर्माण को अधिकृत किया, जो एक कृत्रिम गुफा थी और उस गुफा के समान थी जिसमें पहली संघ परिषद का पाठ किया गया था। छठी संघ परिषद इस मायने में अनूठी थी कि इसमें भाग लेने वाले भिक्षु आठ अलग-अलग देशों से आए थे। म्यांमार, कंबोडिया, भारत, लाओस, नेपाल, श्रीलंका, थाईलैंड और वियतनाम के ढाई हजार विद्वान थेरवाद भिक्षुओं ने इस महत्वपूर्ण अवसर को सुशोभित किया। स्वर्गीय पूज्य महासी सयादाव को आवश्यकतानुसार धम्म पर प्रश्न पूछने के लिए नियुक्त किया गया था और पूज्य भदंत विवित्तसरभिवंसा ने प्रश्नों के उत्तर वाक्पटुता से दिए। इस समय तक भारत को छोड़कर सभी भाग लेने वाले देशों की मातृभाषा में शास्त्रों का अनुवाद हो चुका था। पारंपरिक पाठ में दो वर्ष लगे। विभिन्न टीकाओं और ग्रंथों की भी जाँच की गई और जहाँ आवश्यक था, उनमें सामंजस्य स्थापित किया गया। त्रिपिटक का यह संस्करण, जिसे संपूर्ण थेरवाद बौद्ध जगत द्वारा मान्यता प्राप्त है, अब बुद्ध गौतम की मूल शिक्षाओं के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अरहंतों के मन की धारण क्षमता वर्षों के ध्यान से विकसित हुई, बुद्ध की शिक्षा देने की शैली दोहरावपूर्ण थी, और उन्होंने शिक्षा को याद करके दूसरों तक पहुंचाने का निर्देश दिया, जिसके परिणामस्वरूप भावी पीढ़ियों के लिए एक व्यापक ग्रंथ तैयार हुआ। प्रारंभिक संगयानों में केवल अरहंतों को ही प्रवेश दिया जाता था, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि सत्य का अनुभव कर चुके, निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त कर चुके लोग ही इस महत्वपूर्ण संरक्षण में भागीदार थे। बुद्ध द्वारा जांच-पड़ताल, प्रश्न पूछने और वाद-विवाद करने की स्वतंत्रता ने भी इसमें योगदान दिया, क्योंकि जब भी मतों में मतभेद होता था, शिक्षाओं का विश्लेषण किया जाता था और यह सुनिश्चित करने के लिए सुधार किया जाता था कि बुद्ध के वचन ही संरक्षित रहें। इस प्रकार, अरहंत महा कस्सपा, जो बुद्ध के तीसरे सबसे प्रमुख भिक्षु थे और जिन्हें अक्सर "धम्म के पिता" के रूप में जाना जाता है, ने भावी पीढ़ियों के लिए धम्म के संरक्षण को सुनिश्चित किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(262):तालपुटा

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (262) ------>>>> अगला

अध्याय XIX.
पचास श्लोक
262. तालपुट
बुद्ध युग में राजगृह में एक अभिनेता परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने कुल के लोगों के लिए उपयुक्त थिएटरों में निपुणता प्राप्त की, [1] और अभिनेताओं की एक मंडली के नेता के रूप में पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गए। पाँच सौ महिलाओं की मंडली और भव्य नाटकीय प्रदर्शन के साथ वे गाँव, कस्बे और राजमहल में आयोजित उत्सवों में भाग लेते थे और बहुत प्रसिद्धि और कृपा प्राप्त करते थे। अब जब वे राजगृह [2] में अपनी सामान्य सफलता के साथ प्रदर्शन कर रहे थे, तो उनकी बढ़ती अंतर्दृष्टि ने उन्हें भगवान (बुद्ध) से मिलने के लिए प्रेरित किया। और एक तरफ बैठकर उन्होंने कहा: 'मैंने सुना है, आदरणीय, शिक्षकों और उनके शिक्षकों द्वारा अभिनेताओं के बारे में बात करते हुए, कि जो अभिनेता मंच पर सत्य का अनुकरण करके अपने दर्शकों का मनोरंजन और आनंद करता है, वह मृत्यु के बाद हँसी के देवताओं के बीच पुनर्जन्म लेगा। इस विषय पर भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?' भगवान ने तीन बार प्रश्न को अस्वीकार करते हुए कहा: 'मुझसे यह मत पूछो, निर्देशक।' लेकिन जब चौथी बार पूछा गया, तो उन्होंने कहा: 'निर्देशक महोदय, जो लोग दूसरों में कामुक, मानवद्वेषी या मानसिक रूप से भ्रमित अवस्थाएँ उत्पन्न करते हैं और उन्हें उत्साह खोने का कारण बनते हैं, वे मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लेंगे। लेकिन यदि वह वैसा ही सोचता है जैसा आपने सुना है, तो उसकी राय गलत है। और इस प्रकार गलत राय रखने वाले का भाग्य या तो नरक में पुनर्जन्म लेना है, या पशु के रूप में।' इस पर तालपुत रो पड़े। 'क्या मैंने आपसे, निर्देशक महोदय, यह नहीं कहा था कि " मुझे इस विषय में नहीं कहा था?"' 'हे आदरणीय, मैं इस कारण नहीं रो रहा हूँ कि भगवान ने भविष्य की स्थिति के बारे में ऐसा कहा है, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि पुराने अभिनेताओं ने मुझे धोखा दिया है, यह कहकर कि सार्वजनिक प्रदर्शन करने वाला अभिनेता सुखी जीवन में पुनर्जन्म लेता है।'

तब तलपुता ने भगवान (बुद्ध) की शिक्षा सुनी और श्रद्धापूर्वक भिक्षु दीक्षा ली, तथा उचित अध्ययन के बाद अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने अपने हृदय को गहन समझ के लिए संयमित और संयमित करने के विभिन्न तरीकों का विस्तृत वर्णन करते हुए ये श्लोक कहे:

मैं।

[1091] कदा नु'हाṃ पब्बताकंदरसु॥
एकाकियो अद्दुतियो विहस्सान्॥
अनिच्चतो सब्बाभावाउ विपश्याṃ॥
ताṃ मे इदां तां नु कदा भविष्यति.॥ ॥

[1092] कदा नु'हाṃ भिन्नापंडधारो1 मुनि॥

कसाववत्थो अममो निरासो॥
रागं च दोसां च तथेव मोहान्॥
हन्त्वा सुखि पावनगतो विहस्साः॥ ॥

[1093] कदा अनिच्चा वधरोगनि!अṃ॥
कायऽ इमाऽ मैक्कुजारायुपद्दुताऽ॥
विपश्यमानो विताभ्यो विहस्सान्॥
एको वने तां नु कदा भविष्यति.॥ ॥

[1094] कदा नु'हाṃ भयजानानीṃ दुक्खावहṃ॥
तन्हालता बहुविधानुवत्तनिं॥
पन्नमयं तिखिनमसीं गहेत्वा॥
चेत्वा वसे तम्पि कड़ा भविष्यसति॥ ॥

[1095] कदा नु पन्नमयमुग्गतेजाṃ॥
सत्थौ इसिनां सहसदियित्वा॥
मराऽ ससेनऽ सहसा भंजिस्साऽ॥
सिहासने तं नु कदा भविष्यति॥ ॥

[1096] कदा नु'हाṃ सब्भिसमागमसु॥
दिट्ठो भवे धम्मगारुहि तदिहि॥
यथावदस्सीहि जितिन्द्रियेहि॥
पधानियो तं नु कदा भविष्यति.॥ ॥

[1097] कदा नू मां तंदीखुदा पिपासा॥
वातातपा कितासिरिसपा वा॥
नबधायिस्सन्ति न तां गिरिब्बाजे॥
अत्थत्थियौ तं नु कदा भविस्सति॥ ॥

[1098] कड़ा [98] नू खो याअ विदिताṃ महेसिना॥
चत्तारि सच्चनि सुदुद्दसानि॥
समाहितत्तो सतीमा अगाच्छं,॥
पनन्या तं तं नु कदा भविष्यति.॥ ॥

[1099] कादा नु रूपे अमिते च साड्डे॥
गंधे रसे फुसिताब्बे च धम्मे॥
अदित्ततोहाऽ समथेहि युत्तो॥
पनन्या दक्खं तदिदां कदा मे.॥ ॥

[1100] कदा नु'हाṃ दुब्बाकेनेना वुट्टो॥
ततो निमित्तौ विमानो न हेस्सा॥
अथो पसत्थोऽपि ततो निमित्तौ॥
तुमो न हेस्सां तदिदां कदा मी.॥ ॥

[1101] कदा नु काथे च तिने लाता च॥
खंडे इमेहाṃ अमिते च धम्मे॥
अज्जत्तिकानेव च बहिराणि च॥
समं तुलेययं तदिदां कदा मे.॥ ॥

[1102] कदा नु माm̐ पावुसाकालमेघो॥
नवेना टोयेना सैकिवरां वेने॥
इसिप्पयतमहि पथे वजन्तं॥
ओवस्सते तं नु कदा भविष्यति.॥ ॥

[1103] कादा मयूरसा सिखंडिनो वेन॥
दिजस्सा सुत्वा गिरिगब्भारे रुतं॥
पच्चुथहित्वा अमातस्सा पत्तिया॥
सङ्चिन्तिये तां नु कदा भविष्यसति ॥॥ ॥

[1104] कदा नु गोंगाm̐ यमुनाअ सारस्सतिm̐॥
पातालखितत्तं वववामुखं चा॥
असज्जमानो पतरेयमिद्धिया॥
विभीसनं तं नु कदा भविस्सति॥ ॥

[1105] कदा नु नागो'वा असंगचारी॥
पदालये कामगुनेसु चन्दां॥
निब्बज्जयौ सब्बासुभाm̐ निमित्तm̐॥
झणे युतो तं नु कदा भविस्सति॥ ॥

[1106] कड़ा [99] इनाṭṭओव ददिद्दको निधिm̐॥
अराधयित्वा धनिकेहि पण्डितो॥
तुऽथो भविस्सौ अधिगम्मा सासणो॥
महेसिनो तं नु कदा भविस्सति.॥ ॥

[1091] मैं कब पर्वतीय गुफाओं में रहने आऊँगा,
कभी यहाँ, कभी वहाँ, [इच्छा से] अविभाजित,
और उस दृष्टि से जो प्राप्त हुई है, उस सब की
अनित्यता में जो अस्तित्व में आया - हाँ, मेरे लिए यही, यही कब होगा? [3]

[1092] हे मैं, जो पैचवर्क वाला वस्त्र पहनती हूँ, कब
पीले वस्त्रों वाली सच्ची संत बनूँगी,
बिना इस विचार के कि 'मेरा' क्या है;
और सभी लालसाओं से शुद्ध होकर,
कामवासना और घृणा से, हाँ, और भ्रमों से भी,
इस प्रकार जंगली जंगलों में जाकर, आनंद में रहूँगी?

[1093] हे मैं, जो देखता और जानता हूँ कि
मेरा यह शरीर, [4] मृत्यु और रोग का घोंसला,
उम्र और मृत्यु से पीड़ित,
सब कुछ क्षणभंगुर है, कब
जंगल में अकेले भय से मुक्त रहूँगा ?

[371] [1094] हे, मैं कब अंतर्दृष्टि की तेज तलवार से
इसे काट डालूँगा, इच्छा की इस लता को, [5] अपनी सभी शाखाओं के साथ दूर और मजबूत रूप से लिपटते हुए,
अनेक भयों को जन्म देने वाली,

दर्द और दुख को सहने वाली -
हाँ, यहाँ तक कि यह भी! यह कब होगा?

[1095] हे, मुझे कब अंतर्दृष्टि की तलवार खींचने की शक्ति मिलेगी
, संतों की अग्निमय चमक,
और
विजेता की मुद्रा में बैठे हुए मारा (मृत्युदेव/शैतान) और उसकी सेना को शीघ्रता से चकनाचूर कर दूँगी - [6] हाँ, ये बातें कब घटित होंगी?

[1096] हे, मैं कब पवित्र संगति में
धम्म का
आदर करने वाले, नेक परिश्रम में लगे रहने वाले
, सार को
समझने वाले और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले लोगों के बीच देखा
जा सकूँ?

[1097] हे कब सुस्ती, भूख, प्यास
मुझे और परेशान नहीं करेंगी, न ही हवा, गर्मी,
कीड़े-मकोड़े और रेंगने वाले जीव उसे नुकसान पहुंचाएंगे।
जिसने चट्टान की दुर्गमता पर [7] अपनी उच्च आवश्यकताओं का ध्यान रखा -
हाँ, यह कब होगा?

[1098] हे, मैं कब शांत विचार, एकाग्रचित्त
और अंतर्दृष्टि की स्पष्टता के साथ उस चीज़ को स्पर्श कर पाऊँगा
जिसे महान द्रष्टा ने समझा था -
वे चार आर्य सत्य,
जिन्हें देखना अत्यंत कठिन है -
हाँ, यह भी, यह कब होगा?

[372] [1099] हे, मैं कब शांति के रास्तों से बंधा हुआ,
गहरी दृष्टि से इंद्रियों की
असंख्य चीजों को देख पाऊंगा - दृश्य और ध्वनियाँ,
गंध और स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुएँ,
और मन की सभी आंतरिक वस्तुएँ
जैसे जलती हुई और धधकती हुई वस्तुएँ - [8] हाँ, यह मेरे लिए कब आएगा?

[1100] हे मैं कब [अविचलित] रहूँगा -
अपमानजनक शब्दों के कारण निराश नहीं,
और न ही जब मेरी प्रशंसा फिर से गाई जाए,
तो आत्मसंतुष्टि से भर जाऊँगा - [9] यह मेरे लिए कब आएगा?

[1101] हे कब, जैसे इतनी सारी जलाऊ लकड़ी, जंगली घास, भूसा,
मैं अपने जीवन के कारकों को महत्व दूँ, [10] उन सभी अनगिनत वस्तुओं के साथ, जिन्हें इंद्रियों द्वारा जाना जाता है, [11] आंतरिक या बाहरी,
उन सभी को एक समान मानते हुए -
[खोखला, क्षणभंगुर] [12] - हाँ, यह मेरे लिए, () कब?

[1102] हे कब [मेरे सिर के ऊपर]
बारिश का बैंगनी तूफ़ानी बादल छाएगा,

और नए जलप्रपात से जंगलों में मेरे कपड़े भिगो देगा,
जिस रास्ते पर मैं चलता हूँ,
उस पथ पर जिस पर द्रष्टा पहले चल चुके हैं -
हाँ, यह कब होगा?

[1103]
हे, कब मैं, जंगल में से आती हुई , मुकुटधारी, द्विज [13] मोर की पुकार सुनकर, [जब मैं पहाड़ी की गोद में विश्राम कर रहा हूँ]
उठूँगा और अमृत को पाने के लिए विचार और इच्छाशक्ति का आह्वान करूँगा
?
हाँ, यह कब होगा?

[1104] हे, मैं कब आध्यात्मिक शक्तियों से जागृत होकर
गंगा, यमुना पार करूँगी, [14] सरस्वती, बिना डूबे, हाँ, नरक से निकले भयानक
सागर के मुख पर तैरूँगी -
हाँ, यह कब होगा?

[1105] हे कब, युद्ध में आक्रमण करते हाथी की तरह,
मैं इंद्रिय सुखों की इच्छा को तोड़कर,
और तल्लीन ध्यान में लीन होकर,
बाहरी सुंदरता के सभी चिह्नों से दूर हो जाऊँगा?
हाँ, ये बातें कब घटित होंगी?

[1106] हे, कब, जैसे कोई कंगाल गरीब,
छुपे हुए खजाने को पाकर
आनंदित हो उठता है,
कि मैंने
सर्वशक्तिमान भगवान (बुद्ध) के शासन की शरण पा ली है?
हाँ, यह कब होगा?

II. [15]

[1107] बहुनि वस्सानि तयामहि याचितो॥
अग्रवसेन अलं नु ते इदां॥
तां दानी मण पब्बजितां समानं॥
किंकरणा चित्त तुवं न युञ्जसि.॥ ॥

[1108] ननु अहं चित्त तयामहि याचितो॥
गिरिब्बाजे चित्रचदा विहंगमा॥
महिन्दघोसत्थनताभिगाज्जिनो॥
ते तां रामिस्संति वनमहि झायिनं॥ ॥

[1109] कुलमहि मित्ते च पियो च नाताके॥
ख़िन्द्रतिं कामगुणं च लोके॥
सब्बाऽ पहाया इमामज्झापगातो॥
अथोऽपि त्वाऽ चित्त न मयः तुस्सासी॥ ॥

[1110] ममेवा एताṃ ना ही त्वाṃ परेसाṃ॥

सन्नाहकाले परिदेवितेन किṃ॥
सब्बाṃ इदां कैलमिति पेक्खमानो॥
अभिनिखमीṃ अमातापडाṃ जिगिसाṃ॥ ॥

[1111] सुयुत्तवादी द्विपादनमुत्तमो॥
महाभिषक्को नारदम्मसारथि॥
चित्तṃ कैलाṃ मक्कसंसनिभाṃ इति॥
अवितरागेण सुदुनिवारयं॥ ॥

[1112] काम ही चित्र मधुरा मनोरमा॥
अविद्दसु यत्थ सीता पुथुज्जना॥
ते दुक्खमिच्छन्ति पुनब्भावेसिनो॥
चित्तेन निता निराये निराकाता॥ ॥

[1113] मयूरकोन्चाभिरुतमहि कणेन॥
दीपिहि व्याग्घेहि पुरक्खतो वसन्॥
काए अपेक्खं जहां मा विराधय॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1114] भावेहि [100] झानानि च इनिद्रियानि॥
बलानि बोज्झाङ्गसमाधिभवना॥
तिस्सो च विज्जा फुसा बुद्धसासने॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1115] भावेहि मग्गाṃ अमतस्सा पत्तिया॥
निय्यनिकं सब्बदुक्खक्खयोगधौ॥
अठहाङगिकाṃ सब्बाकिलेसासोधनṃ॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1116] दुक्खन्ति खंडे पतिपासा योनिसो॥
यतो च दुक्खं समुदेति तां जहा॥
इधेवा दुक्खस्सा करोहि अन्ताṃ॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1117] अनिक्काṃ दुक्खन्ति विपश्या योनिसो॥
सुन्नं अनात्तति अघां वधन्ति च॥
मनोविकारे उपरुन्ध सीतासो॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1118] मुण्डो विरुपो अभिसापमागतो॥
कपालहत्थोवा कुलेसु भिक्खसु॥
युञ्जस्सु सत्थुवाकेन महेसिनो॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1119] सुसावुत्तो विशिकंतारे कैराṃ॥
कुलेसु कामेसु असंगमनासो॥
कैंडो यथा दोसिनपुन्नमसिया॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1120] अरन्निको होहि च पिनादापटिको॥
सोसानिको होहि कै पांसुकुलिको॥
नेसज्जिको होहि सदा धुते रतो॥
इतिसु माṃ चित्त शुद्ध नियुञ्जसि.॥ ॥

[1121] रोपेत्व रुक्खानि यथा फलेसी॥
मुले तरुऽ चेत्तु तमेव इच्छासि॥
तथुपमं चित्तमिदं करोसि॥
याṃ माṃ अनिच्चमहि काले नियुञ्जसि.॥ ॥

[1122] अरूपा दुरंगमा एकाचारी॥
ना ते करिसाअ वकानाइ इदानिहाṃ॥
दुक्खा हि कामा कटुका महभभाय॥
निब्बानामेवाभिमानो कैरिसां॥ ॥

[1123] नाहऽ अलक्ख्य अहिरिकट्टया3 वा॥
न चित्तहेतु न च दूरकांताना॥
अजीवहेतु च अहं न निक्खमिṃ॥
कातो च ते चित्त पतिसावो मया॥ ॥

[1124] अप्पिच्चता सप्पुरिसेहि वनिता॥
मक्खप्पाहनं वीपसामो दुःखस्सा॥
इतिस्सु [101] माṃ चित्त तदा नियुञ्जसि॥
इदाकि त्वं गच्छसि पुब्बसिणं॥ ॥

[1125] तन्हा अविज्जा च पियाप्पियानचा॥
सुभानि रूपाणि सुख च वेदना॥
मनपिया कामगुण च वन्ता॥
वन्ते अहं अवामितुऽ न उस्सहे॥ ॥

[1126] सब्बत्था ते चित्त वाको काटां माया॥
बहुसु जातिसु न मेसि कोपिटो॥
अज्झत्तसम्भवो कतन्नुताय ते॥
दुक्खे सिराँ संसारिता ताया कते.॥ ॥

[1127] त्वन्नैव नो चित्त करोसि ब्राह्मणो॥
त्वं खत्तियो राजदसि करोसि॥
वेस्सा च सुदा च भवामा एकदा॥
देवत्तनं वापि तवेव वाहसा॥ ॥

[1128] तवेव हेतु असुर भावमसे॥
त्वंमूलकान् नेरायिका भावमसे॥
अथो तिरच्चनगतापि एकदा॥
पेत्तातनं वापि तवेव वाहसा॥ ॥

[1129] नानू दुब्भिस्सासि माṃ पुनप्पुनाṃ॥
मुहुं मुहुं चारणिकैव दासयं॥

उम्मत्तकेनेव मया पलोभासि॥
किंचापि ते चित्त विराधितं मया॥ ॥

[1130] इदाṃ शुद्ध चित्तामाकारी कारिकाṃ॥
येनिच्चकां यथाकामां यथासुखं॥
तदज्जहाṃ निग-अहेसामी योनिसो॥
हत्थिप्पभिन्नं विया अंकुसग्गहो॥ ॥

[1131] सत्था च मे लोकमिमाऽ अधिष्ठाहि॥
अनिच्चतो अधुवतो असरतो,॥
पाखंडा माṃ चित्त जिनस्सा ससाने॥
तारेहि ओघा महता1 सुदत्तरा॥ ॥

[1132] न ते इदां चित्त यथा पुराणकौ॥
नहाṃ अलं तुयहवसे निवत्तितुṃ,॥
महेसिनो पब्बाजितोमहि ससाणे॥
न मदीसा होन्ति विनाशधारिनो॥ ॥

[1133] नागा [102] समुद्दा सरिता वसुंधरा॥
दिसा कैटसो विदिसा अधो दिवा,॥
सब्बे अनिच्च तिभव उपद्दुता॥
कुहिṃ गतो चित्त सुखो रामिस्ससि.॥ ॥

[1134] धितिप्पराṃ किṃ मामा चित्त कहिसी॥
न ते अलं चित्त वसानुवत्तको,॥
न जातु भस्तां उभतोमुखं छुपे॥
धीरत्थु पुराण नवा सोत्संदनीṃ॥ ॥

[1135] वराहानेय्य विगाहसेविते॥
पब्भराकुते पकातेव सुन्दरे,॥
नवम्बुना पवुसासित्तकाणे॥
ताहिं गुहगेहागातो रामिसासि.॥ ॥

[1136] सुनिलगिवा सुसिखा सुपेखुना॥
सुचित्तपट्टच्चदाना विहंगमा,॥
सुवान्जुघोसत्थनिताभिगाज्जिनो॥
ते तां रामिस्संति वनमहि झायिनं॥ ॥

[1137] वुṭṭहमहि देवे कैटुरांगुले तिने॥
संपुप्फाइटे मेघनिभामहि काने,॥
नागनतारे वितापिसामो सइसाṃ॥
तं मे मुदु हेहिती तुलासन्निभां॥ ॥

[1138] तथा तु कस्सामि यथापि इस्सरो॥
यऽ लब्भाति तेनाऽपि होतु मे अळाऽ,॥
न ताहं कस्सामि8 यथा अतन्दितो॥
बिसारभस्तौव यथा सुमाद्दितौ ॥॥ ॥

[1139] तथा तु कस्सामि यथापि इस्सरो॥
यऽ लब्भाति तेनाऽपि होतु मे अळाऽ,॥
विरियेना तं मयः वासनायिस्सं॥
गजाउ'व मत्ताᶆ कुसलांकुसाग्गाहो॥ ॥

[1140] तया सुदन्तेन अवतिथितेन1 हि॥
हयेना योगगाकारियोएव उज्जुना,॥
पाहोमी मग्गाᶆ पाइपज्जितुᶆ शिवाᶆ॥
चित्तानुरक्खिहि सदा निसेविता॥ ॥

[1141] अरम्माणे [103] ताᶆ बालासा निबन्धिसाᶆ॥
नागौव थंभमहि दधाय रज्जुय,॥
तं मे सुगुत्तं सत्यं सुभावितं॥
अनिसिताऽ सब्बाभावेसु हेहिसि.॥ ॥

[1142] पनन्या चेत्वा विपथानुसारिनाना॥
योगेना निग्ग-अयहा पथे निवेसिया,॥
दिसुवा समुदयौ विभावाऽ च संभवाऽ॥
दयादाको हेहिसि अग्गवादिनो॥ ॥

[1143] कैटुबिपल्लसवसाअ अधिशिताᶆ॥
गमंडलाव परिनेसी चित्त माᶆ,॥
नूना संनोजनबंधनच्चिदौ॥
संसेवासे करुणिकै महामुनिः॥ ॥

[1144] मिगो यथा सेरी सुचित्तकाणे॥
रम्ममं गिरिᶆ पवुसाअभमालिनीᶆ,॥
अनाकुले तत्थ नागे रामिस्सं॥
असंस्यायं चित्त परभविस्सासि.॥ ॥

[1145] ये तुयाहा चंदेना वसेना वत्तिनो॥
नारा च नारी च अनुभूति यं सुखं,॥
अविद्दसु मारवसानुवत्तिनो॥
भावभनन्दि तव चित्त सवाकति.॥ ॥

[1107] हे मेरे हृदय, तुमने अनेक वर्षों से मुझे प्रेरित किया था,
'अब बस करो, इस गृहस्थ जीवन से!'
देखो! मैंने संसार त्याग दिया है (सन्यास के लिए)। हे हृदय, तुम अपने कार्य के प्रति समर्पण क्यों नहीं रखते?

[374] [1108] हे मेरे हृदय, क्या तुमने मुझे प्रेरित नहीं किया:
'चट्टान की दुर्ग पर,
वायु के चमकीले पंखों वाले यात्री,
महान इंद्र के गर्जन का अपनी चीखों से स्वागत करते हुए,
जंगल में चिंतन करने वाले को आनंद प्रदान करो। [16]

[1109] सामाजिक दायरे में, दोस्तों, प्रियजनों और रिश्तेदारों के बीच,
खेल, कला, इंद्रियों के सुखों को

मैंने त्याग दिया है, ताकि मैं यहाँ आ सकूँ।
तो फिर, हे हृदय, क्या तुम मुझसे प्रसन्न नहीं हो?

[1110] मैंने ऐसा केवल अपने लिए किया,
किसी और के लिए नहीं [यह बलिदान मैंने किया]।
तो फिर हथियार उठाने का समय आने पर क्यों विलाप करें?
यह जीवन तो पूरी तरह से कांप रहा है! - ऐसा मैंने देखा। [17] और मैंने संसार का त्याग कर अमृतमय मार्ग चुना।

[1111] क्या उसने नहीं कहा - जो सब कुछ अच्छी तरह से कहता है,
प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ, [18] महान चिकित्सक,
मनुष्यों के पुत्रों का वशीकरण और मार्गदर्शन करने वाला -
हृदय नाचते हुए बंदर की तरह अस्थिर है, [19] इसलिए उस हृदय को,
अनवरत भावनाओं से, नियंत्रित रखना मुश्किल है।

[1112] इंद्रियों की इच्छाएँ विविध, मधुर और मोहक होती हैं,
जिनमें अज्ञानी बहुसंख्यक
उलझे रहते हैं।
जो लोग फिर से जीना चाहते हैं, वे तो केवल दुख की कामना करते हैं,
अपने हृदय द्वारा नरक में नष्ट होने के लिए प्रेरित होते हैं।

[375] [1113] 'वहाँ जंगल में
मोर और बगुले की चीखों से गूंजते हुए तुम रहोगे,
तेंदुओं और बाघों के मुखिया बनकर। [20] और अपने शरीर को चिंताओं से मुक्त करो;
अपना समय, अपना लक्ष्य मत चूकना!' [21] हे मेरे हृदय, तुम मुझे प्रेरित करते थे।

[1114] 'उत्पन्न करो, विकसित करो [22] तुम परमानंद (समाधि/समाधि),
पंच प्रकार की नैतिक शक्तियाँ और सामर्थ्य,
ज्ञान के सात पंख
और एकाग्रता की चार अवस्थाओं को; [23]
बुद्ध के नियम के भीतर त्रिविध ज्ञान को स्पर्श करो ': -
हे मेरे हृदय, तुम मुझे प्रेरित करते हो।

[1115] 'अपने जीवन में वह मार्ग बनाओ, विकसित करो
जिससे तुम अमृत पा सको -
प्रगति और निकास का मार्ग, जो
सभी दुखों के अंत पर आधारित है,
आठ गुना, सभी अशुद्धियों से शुद्ध करता है': -
हे मेरे हृदय, तुम मुझे ऐसा ही प्रेरित करते हो।

[1116] 'इस मन और शरीर की तुम गहन जांच करो
और इसे "दुःख" मानो; और दुःख के सभी स्रोतों को भी।

क्या तुम इसे अपने से दूर रखते हो;
हाँ, यहीं और अभी अपने दुखों का अंत करो! -
इसलिए, मेरे हृदय, तुम मुझे प्रेरित करते हो।

[1117] 'और समझो कि क्षणभंगुरता दुख है,
खाली है, आत्महीन है, अभिशाप और बुराई है;

अपने मन की विवेचनात्मक भटकन को रोको': -
हे मेरे हृदय, तुम मुझे प्रेरित करते हो।

अपोस्ट्रोफ़ाइज़्ड। अर्थ है छोटा करना। यहाँ अपने पूर्व यश और धन के बिना अस्तित्व में रहना। "वह गृहस्थ के सुखों से वंचित रह गया है..." आईटीआई 91

[376] [1118] 'मुंडा सिर, बदसूरत, और अभिमंत्रित [24] जब भिक्षा मांगने आते हैं, हाथ में खोपड़ी जैसे कटोरे के साथ [25]
नागरिकों के बीच,
क्या अब आप स्वयं को
पूरी तरह से भगवान (बुद्ध) के वचन, द्रष्टा के वचन को पूरा करने के लिए समर्पित करते हैं -
इसलिए आप, मेरे हृदय, मुझे प्रेरित करते हैं।

[1119] 'गलियों में सुशासित होकर चलो, अपने
मन को उन लोगों की इंद्रिय-इच्छाओं से मुक्त रखो
जो वहाँ रहते हैं।
बादलों से रहित आकाश में दो सप्ताह पुराने चाँद की तरह बनो:' [26] -
हे मेरे हृदय, तुम मुझे ऐसा ही प्रेरित करते हो।

[1120] 'जो जंगल में रहता है और भिक्षा से जीवन यापन करता है,
जो मृत्यु के मैदान (कब्रिस्तान) में विचरण करता है, चितकबरा वस्त्र पहनता है,
लेटने से परहेज करता है, [27] वह सदा सच्चे तपस्वी आनंद को पाता है': -
तो तुम चाहते हो, मेरे हृदय को मुझे प्रेरित करने के लिए।

[1121] 'जैसे कोई वृक्ष बोकर फल की तलाश करता है,
क्या अब तुम फल न पाकर
अपने वृक्ष को जड़ से काट देना चाहते हो?' - हे
मेरे हृदय, तुमने यही दृष्टांत रचा था,
जब तू, जो अस्थिर और क्षणभंगुर है,
ने मुझे प्रेरित किया।

[1122] हे अदृश्य सत्ता, जो दूर से सब जानती है, [28] एक पंक्ति में खड़े होकर,
मैं अब तेरे वचन का पालन नहीं करूँगा। क्योंकि तेरी इंद्रियजन्य इच्छाएँ
केवल दुःख, कड़वे फल और भय की ओर ले जाती हैं।
अब से
मैं केवल निर्वाण की शांति की ओर ही चलूँगा।

[377] [1123] मैंने दुर्भाग्यवश संसार नहीं छोड़ा (भिक्षुत्व के लिए),
न ही बेशर्म मजाक के रूप में, न ही सनक से,
न ही मुझे अपमानित करके निर्वासित किया गया,
न ही जीविका की तलाश में,
जब मैंने अपना हृदय तुम्हें सौंप दिया।

[1124] 'अच्छे लोग छोटी ज़रूरतों और भरपूर संतोष की प्रशंसा करते हैं,
हाँ, और पाखंड का त्याग करने
और सभी पीड़ाओं को दूर करने की भी प्रशंसा करते हैं': -
हे मेरे हृदय, तुमने तब मुझे यही सिखाया था।
अब तुम अपने पुराने प्रेमों की ओर लौट जाओ।

[1125] लालसा और अज्ञान और प्रेम और घृणा,
और सौंदर्य की वस्तुएँ, सभी सुखद रोमांच
और इंद्रिय सुखों का आकर्षण: - मैंने इन सबको त्याग दिया है,
और मैं फिर कभी इन चीजों की ओर लौटने का प्रयास नहीं कर सकता।

[1126] हे मेरे हृदय, मेरा जीवन जहाँ कहीं भी गिरा हो,
मैंने तेरे वचन का पालन किया है।
अनेक जन्मों में तू मुझसे नाराज़ नहीं हुआ।
और यही तेरी कृतज्ञता है: -
यह सांसारिक शरीर,
तेरे द्वारा दिए गए सभी कष्टों के साथ,
मेरे जीवन के लंबे-लंबे युगों तक क्षीण रहा।

[378] [1127] हे हृदय, तुम ही हमें वह बनाते हो जो हम हैं।
तुम बनाते हो, हम बन जाते हैं। आज ब्राह्मण (पुजारी),
फिर हम कुलीन, हाँ, राजा, ऋषि, [29] एक दिन कुलीन, और अगले दिन सेवक,
या यहाँ तक कि देवता भी - और यह सब
केवल तुम्हारी ही कृपा से;

[1128] केवल आप ही के कारण हम असुर बने हैं,
आपके कार्य से ही हम नरकीय विनाश से गुज़रे हैं;
फिर, एक दिन, जानवरों के लोक में पुनर्जन्म लेंगे,
या पेटों में, केवल आपकी ही कृपा से।

[1129]
नहीं, अब तुम मुझे पहले की तरह बार-बार धोखा नहीं दोगे ,
जैसे कोई धूर्त अपना छोटा सा खेल दिखाता है; [30] तुम मेरे साथ छल-कपट भरे खेल खेलते हो,
जैसे किसी पागल के साथ। [31] हे मेरे हृदय, मुझे बताओ, मेरी गलती क्या है?

[1130] कभी यह हृदय मैदान में भटकता था, एक घुमक्कड़,
जहाँ इच्छा, सनक या आनंद ले जाता था।
आज मैं उस हृदय को पूरी तरह से नियंत्रण में रखूँगा,
जैसे प्रशिक्षक का हुक जंगली हाथी को नियंत्रित करता है। [32]

[1131] भगवान (बुद्ध) ने मुझसे आग्रह किया [33] : - यह संसार
क्षणभंगुर, अस्थायी और आत्माहीन है।
अब, हिम्मत रखो, विजेता के शासन में आगे बढ़ो,
और मुझे भयानक बाढ़ से पार ले जाओ। [34]

[1132] हे हृदय, तेरे लिए अब पहले जैसी स्थिति नहीं है। [35] यह पर्याप्त नहीं होगा कि मैं तेरे वश में होकर
फिर से जीवन व्यतीत करने के लिए लौट जाऊं। [379] मैं महान भगवान (बुद्ध) के शासन के अधीन (भिक्षुत्व में) चला गया हूँ।
मुझ जैसे मनुष्य अब किसी भी दंड को सहन नहीं कर सकते।

[1133] पहाड़ और समुद्र, नदियाँ, स्वयं पृथ्वी,
चारों दिशाएँ, बीच के बिंदु, निम्नतम
बिंदु, हाँ, और ऊपर के सभी आकाश [36] : -
अस्तित्व के तीन तल [37] प्रत्येक क्षणभंगुर
और वे सभी वीरान - तो

फिर, मेरे हृदय, तुम कहाँ आराम और विश्राम पा सकते हो?

[1134] हे हृदय, चूंकि मेरा लक्ष्य इतना दृढ़, इतना निश्चित है, [38] तू मुझे मोड़ने के लिए क्या करेगा?
अब मेरा, मेरे हृदय का, तेरा अनुसरण करना नहीं।
कोई भी समझदार व्यक्ति उस थैली को नहीं छुएगा
जो दोनों सिरों से खुलती हो। घिनौना! फिर,
उस भरे हुए शरीर पर जो नौ छिद्रों से बह रहा है। [39]

[1135] हे [तुम्हें जीवन से प्रेम होगा], चाहे वह
गुफादार चट्टानों की चोटी पर हो, जहाँ सूअर और हिरण चरते हैं,
या सुंदर खुले मैदान में, या नई बारिश से ताज़ा हुए जंगल की गहराई में - गुफा-कुटिया से दूर तुम्हारे लिए आनंद
वहीं है । [40]

[1136] सुंदर पंखों वाले, सुंदर कलगी वाले वायु के यात्री,
गहरे नीले गले और अनेक रंगों वाले पंखों के साथ, मधुर, अनेक प्रकार की आवाज़ों से
गरजते हुए बादल का अभिवादन करते हैं
; वे ही
आपको वहाँ ध्यान करते समय आनंद देंगे।

[380] [1137] और जब देवता चार इंच घास पर वर्षा करते हैं, [41] और कलियों वाले जंगलों की बादल जैसी चोटियों पर,
पहाड़ के हृदय में मैं
एक कटी हुई शाखा की तरह अचल बैठा रहूँगा, [42] और मेरी पथरीली चारपाई पर रुई की तरह कोमल
प्रतीत होऊँगा।

[1138] मैं ऐसा ही करूँगा, जैसे किसी स्वामी को करना चाहिए।
जो कुछ भी मिले, मेरे लिए पर्याप्त हो।
और जैसे कोई अथक चमड़ा तैयार करता है, [43] मैं तुम्हें बिल्ली की खाल की तरह कोमल बना दूँगा।

[1139] मैं ऐसा ही करूँगा जैसे स्वामी को करना चाहिए।
जो कुछ भी मिले, मेरे लिए पर्याप्त हो।
मैं तुम्हें अपनी शक्ति और इच्छाशक्ति से नेतृत्व करूँगा, [44] जैसे एक कुशल महावत द्वारा एक भयंकर हाथी।

[1140] जब तुम अंततः अच्छी तरह से वश में हो जाओगे और दृढ़ हो जाओगे,
जैसे प्रशिक्षक घोड़े को बुराई से मुक्त कर देता है,
तब मैं सुखद भाग्य के मार्ग पर चल सकता हूँ,
उन लोगों द्वारा चाहा जाता हूँ जिनके दिल अच्छी तरह से सुरक्षित हैं।

[1141] और जिस विषय पर तुम्हें चिंतन करना चाहिए, उस पर
मैं तुम्हें प्रशिक्षण की शक्ति से बांध दूँगा,
जैसे हाथी को खंभे से मजबूत रस्सी से बांधा जाता है।
इसलिए जब मैं तुम्हारी अच्छी तरह से रक्षा करूँगा और तुम्हें
स्पष्ट विचार से प्रशिक्षित करूँगा, तो तुम
भविष्य के जीवन के सभी रूपों से मुक्त हो जाओगे।

[1142] जब अंतर्दृष्टि की सहायता से आपने
अपने भटके हुए मार्ग को रोका, अध्ययन द्वारा संयमित किया, [381] उसे सत्य के मार्ग पर मोड़ा, [45] तो आप देख सकते हैं कि सभी
चीजें कैसे होती हैं: -
अस्तित्व में आती हैं और फिर विलीन हो जाती हैं -

तब आप उसके [बच्चे और] उत्तराधिकारी होंगे:
सर्वोच्च चीजों के ज्ञाता और शिक्षक।

[1143] चौगुनी मतिभ्रम पर, [46] जैसे गाँव के बदमाश ने मुझे भगाया, हे मेरे हृदय। [47] अब आओ और उसका अनुसरण करो, दयालु,
महान द्रष्टा जिसके लिए सभी बंधन और जंजीरें टूट गई हैं।

[1144] जैसे जंगली जीव
सुंदर फूलों से भरे जंगल में विचरण करते हैं, वैसे ही तुम भी
सुंदर बादलों से घिरी चोटी पर चढ़ गए हो।
वहाँ पहाड़ पर, जहाँ कोई भीड़ नहीं आ सकती,
तुम्हें आनंद मिलेगा, हे हृदय, क्योंकि कभी संदेह मत करना
, तुम निश्चित रूप से परलोक में पहुँच जाओगे। [48]

[1145] जो आपकी इच्छा के अधीन रहते हैं,
चाहे पुरुष हों या स्त्री, वे आपके दिए हुए का आनंद लेते हैं,
बार-बार लौटकर आने में प्रसन्न होते हैं: -
अनजाने में, मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) की शक्ति के प्रभाव में,
ये सभी, हे हृदय, आपके ही अनुयायी हैं। [49]

[1] कुलानूरूपेसु नक्कत्थानेसु।

[2] नगरवसीनं समाजं दस्सेत्वा।

[3] पाठ का मीटर पूरी तरह से त्रिष्टुभ है। आरंभिक भाग की उदास लालसा को पुन: प्रस्तुत करने के प्रयास में, मैंने टेनीसन के 'लोटस-ईटर्स' के 'कोरस सॉन्ग' को ध्यान में रखा है। Ekākiyo = ekeko.

[4] कायो, शाब्दिक रूप से, समूह, जिसमें न केवल शरीर बल्कि मानसिक समूह भी शामिल हैं (टिप्पणी)। 'घोंसला': तुलना करें इतिवुत्तक, I 43.

[5] तन्हा-लता। धर्मग्रंथ में एक पसंदीदा उपमा। श्लोक 761 देखें ।

[6] पूरी पंक्ति शब्द sīhāsane 'शेर की सीट पर' या 'सिंहासन पर' में निहित है। टिप्पणी: thirāsane aparājitapallanke.

[7] गिरिब्बाजा। देखें CCXXXIV., 545, एन.

[8] तुलना करें सिटर्स, श्लोक 200, 351. टीका, 'इंद्रिय की चीजों' का नमूना लेते हुए, 'आंतरिक वस्तुओं' में सुखद और पीड़ादायक चीजों को निर्दिष्ट करती है; लेकिन उनमें ठोस धारणाएं (संवेदना के प्रत्येक तरीके से अलग), छवियां, विचार आदि भी शामिल हैं।

[9] यह तालपुट के एक व्यक्ति के लिए पार करने के लिए एक बड़ा कदम था।

[10] खंडे.

[11] धम्मे. टिप्पणी: rūpadhamme.

[12] अनिच्चैवसेन सीएव असारादि-उपमानवसेन (टिप्पणी)।

[13] द्विज अंडप्रजक प्राणियों के लिए एक सामान्य नाम है, 'माँ और अंडे से पैदा हुआ' (टिप्पणी)।

[14] देखें पृष्ठ 159. अतिरिक्त जानकारी आदि भी देखें।

[15] 'अब, संसार त्यागने से पहले अपने विचारों का मार्ग दिखाने के बाद, वह भिक्षु के क्रम में रहते हुए, दिखाता है कि उसने किस प्रकार अपने हृदय को प्राप्त करने के लिए संबोधित किया' (टिप्पणी)।

[16] अर्थात्, अध्ययन करना (टीका)।

[17] सी. सिस्टर्स, पृ. 188, श्लोक 200, 201.

[18] शाब्दिक रूप से, द्विपादों का। तुलना करें बहनें, श्लोक 432. डॉ. न्यूमैन एक अन्य उदाहरण उद्धृत करते हैं: एपिग्राफिया इंडिका, iii., पृ. 3131, 6.

[19] भजन संहिता CXXIII देखें।

[20] सार्वभौमिक प्रेम के अभ्यास के कारण' [mettā{brahma) vihāratāya] (टीका)।

[21] मा विराधया टीका में पाठ है, और टिप्पणी मा विराधेहि है, 'इस पल को मत चूको जिसे जीतना इतना कठिन है।' श्लोक 403 देखें ।

[22] भावेहि के लिए टीका में 'उत्पन्न होने का कारण, बढ़ने का कारण' दिया गया है।

[23] टीका में संख्याएँ दी गई हैं। अंतिम संख्याएँ चार इद्धिपादों को संदर्भित करती हैं। तुलना करें संकलन, पृष्ठ 180, डी, ई, एफ, सी, और ऊपर, श्लोक 437।

[24] धम्मपाल, अभिसापम-अगतो को भी पढ़ते हुए , इत्तुत्तका, 91 को संदर्भित करता है । उस कार्य पर उनकी टिप्पणी में अभलापो ती अक्कोसो है।

[25] देखें पृ. 113, नोट 1.

[26] श्लोक 306 देखें ।

[27] श्लोक 856 देखें।

[28] देखें ध्यदा, श्लोक 37; टिप्पणी, i. 304. बाद वाला ग्रंथ इस और अगले वाक्यांश पर हमारी टिप्पणी से काफी हद तक शाब्दिक रूप से सहमत है। चेतना के कोई दृश्य गुण नहीं होते, और वह मकड़ी के धागे की चौड़ाई जितनी जगह में भी गति नहीं कर सकती, लेकिन वह ऐसे संपर्क के बिना ही अपने विषय को जानती है। फिर, यह मानसिक जीवन की इकाइयों की एक श्रृंखला है जो एकल रूप से उत्पन्न होती है। 'दो, तीन चेतनाएँ एक साथ उत्पन्न नहीं होतीं। एक समाप्त होती है, दूसरी उत्पन्न होती है।' यह संभव है कि पाली में जो हमें सुझाया गया है - 'हे निराकार, अकेले दूर यात्री!' - वह विद्वानों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की तुलना में तालपुत के अर्थ के अधिक निकट हो। फिर भी, जब अन्यत्र पंक्तियाँ बाद वाले के लिए रोमांस का सुझाव देती हैं, तो वे इसे दबाती नहीं हैं। वैसे भी, विशिष्ट बौद्ध अंतर दिलचस्प है।

[29] (राजा)राज -द-इसी में दो शब्दों (Cy.) को जोड़ने के लिए द डाला गया है ।

अतिरिक्त जानकारी आदि। "V और c अक्सर न केवल सिंहली में, बल्कि बर्मी में भी, ताड़ के पत्तों पर लिखे जाने पर भ्रमित हो जाते हैं। सुत्त-निपात के श्लोक 162 f. में, -cārano और -vārano के बीच , फाउसबॉल ने पहले वाले को चुना। तो फिर, cāranikaŋ क्या है? टीका स्वयं अस्पष्ट है: abhinhako carakārahaŋ viya mano-dassento carakārahaŋ purisaŋ tantaŋ-bhavaŋ dassento. मैं carakārahaŋ और tantaŋ-bhavaŋ पर प्रकाश डालने के लिए आभारी रहूंगा । संस्कृत में cārano एक टहलते हुए खिलाड़ी को

कहते हैं, इसलिए मेरा अनुवाद ऐसा है। यदि यह सही है, तो यह तालपुट के पारंपरिक पूर्वजों द्वारा प्रयुक्त एक बहुत ही संभावित उपमा है।"

[30] cāraṇikaŋ पढ़ना । अतिरिक्त देखें, आदि।

[31] देखें श्लोक 931; जेपीटीएस, 1889, पृ. 203.

[32] देखें LXXVII., पृष्ठ 76.

[33] अधित्थाहि, इस शब्द का एक असामान्य उपयोग।

[34] संसार (टीका) का ।

[35] तुलना करें श्लोक 126, 280.

[36] दिसा ति देवलोक (टिप्पणी)।

[37] श्लोक 1089 देखें।

[38] टिप्पणी में लिखा है: धितिप्परं ती धिति-परायणं परं माŋ तिरभावे थितां ... माŋ कैलेतुं न सक्खिस्सि ति अथो। यह 'प्रतिकारक' पढ़ने से बेहतर लगता है! फिर से यहाँ, और घृणित!' फिर से उसी गाथा में।

[39] टीका के साथ पढ़ने पर उभतो। यह अन्यथा अस्पष्ट पंक्ति शरीर की आकृति के विचित्र लेकिन सटीक विरोधाभास में अपना स्थान ग्रहण करती है। तुलना करें श्लोक 279, 1151।

[40] पाली अनुप्रास को पुन: प्रस्तुत करने का प्रयास - गुहागेहागातो।

[41] 'लाल रंग के कंबल जैसा' (टिप्पणी) हमें हमारे तिपतिया घास के खेतों की याद दिलाता है।

[42] शाब्दिक रूप से, 'बिना सहायक अंगों के लट्ठे की तरह' (टिप्पणी)। तुलना करें LXII.

[43] सी.एफ. मज्झ में यह उपमा . निक., मैं. 128. टिप्पणी में कहा गया है, तां तां करिसामं, नहंता-कस्सामि के लिए।

[44] विरियेना.

[45] पाथे को विपस्सनावीथियां द्वारा पुनर्कथनित किया गया है ।

[46] अर्थात्, अनित्य को स्थायी मानना, और कुरूप (असुभं), पीड़ादायक, निस्वार्थ को क्रमशः सुंदर, सुखद और आत्मा से युक्त मानना। अंतिम भ्रम, ब्र. एम.एस. कॉमी. में या तो असामान्य रूप से लिखा गया है - अतानी अत्ता ति ('स्वयं में एक आत्मा'), या लेखक ने अनात्तानी ('आत्माहीन में एक आत्मा') से 'अन' हटा दिया है।

[47] गामाण्डलं। टीका में पहले गामाण्डलं पढ़ा जाता है, फिर टिप्पणी करते हुए गामंतलं, लेकिन इसका अर्थ गामन्दरकं बताया गया है - 'मेरे अच्छे दिल, तुम मुझे इधर-उधर घसीटते (परिकड्धसि) हो , मानो मैं कोई (मूर्ख) गाँव का लड़का हूँ।' डॉ. न्यूमैन गा के स्थान पर गो पढ़ते हैं।

[48] शाब्दिक अर्थ: 'तुम उससे भी आगे बढ़ जाओगे, उसे नीचा दिखाओगे या उससे श्रेष्ठ हो जाओगे।' व्याख्या: 'तुम अपने संसार के विनाश के समय दृढ़ रहोगे।'

[49] अंतिम श्लोक, साथ ही 1143, कविता में थोड़ा पीछे रखे जाने पर बेहतर लगेगा।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा (263): महा मोग्गल्लाना

श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (263) ------>>>> अगला

अंतर्वस्तु

1अध्याय XX. छठी छंदों की कविता
2263. महा मोग्गलाना
2.1मैं।
2.2II.
2.3III.
2.4चौथा
2.5वी
2.6छठी
2.7सातवीं
2.8आठवीं
2.9दोवीं
2.10एक्स
2.11ग्यारहवीं
2.12बारहवें
2.13तेरह

अध्याय XX.

साठ छंदों की कविता

263. महा मोग्गल्लाना

उनकी कहानी पूज्य सारिपुत्त की कथा में वर्णित है। [1] भिक्षु दीक्षा लेने के एक सप्ताह बाद, जब वे मगध के छोटे से गाँव कल्लावला [2] के पास अपने कर्तव्यों में व्यस्त थे , तो उन्हें आलस्य और नींद आने लगी, जिससे भगवान (बुद्ध) ने उन्हें इन शब्दों से जगाया: 'मोग्गल्लाना, आलस्य आर्य मौन के समान नहीं है।' भगवान (बुद्ध) द्वारा दिए गए तत्वों पर एक अभ्यास को सुनकर ही उन्होंने अपनी कमजोरी पर विजय प्राप्त कर ली और बुद्ध के शिष्य द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली सर्वोच्च अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली। एक अन्य अवसर पर, भगवान (बुद्ध) ने जेतवन में आयोजित सभा में उन्हें असाधारण इच्छाशक्ति (इद्धि) में अग्रणी घोषित किया । और इस प्रकार वरदान प्राप्त होने पर उनके द्वारा बोले गए श्लोकों को सभा के समय धर्मग्रंथ के संकलकों द्वारा एक श्रृंखला में संकलित किया गया था।

मैं।

भिक्षुओं को शिक्षा देते समय:

[1146] अरण्यक पिंडपतिका उंचपट्टगते रता,॥
दाडेमु मैककुनो सेनं अज्झट्टां सुसामहिता ॥॥ ॥
[1147] अरण्यक पिंडपतिका उंचापत्तगते रता,॥
धुनामा1 मैककुनो सेनना नदगाराणव कुंजरो॥ ॥
[1148] रुक्खमूलिका सात्तिका उंचापत्तगते रता,॥
दाडेमु मैककुनो सेनं अज्झट्टां सुसामहिता ॥॥ ॥
[1149] रुक्खमूलिका सात्तिका उंचापत्तगते रता,॥
धुनामा मैक्कुनो सेनं नागागाराणव कुंजरो॥ ॥

[1146] हम वनवासी, सभी भिखारी,
अपने कटोरे में रखे जूठे टुकड़ों से संतुष्ट हैं।

हम मारा के सैनिकों को नष्ट कर सकते हैं [3] यदि हमने आत्म-संयम अच्छी तरह सीख लिया है।
[1147] [383] हम वनवासी, सभी भिखारी,
जिन टुकड़ों से हमारा पेट भरता है, उनसे संतुष्ट, मारा और मेजबानों, चलो, हाथी की तरह सरकंडे से बनी झोपड़ी को साफ कर दें । [4]

[1148] हम जो छायादार वृक्ष की जड़ में
अपने काम में निरंतर लगे रहते हैं,
अपने कटोरे में रखे टुकड़ों से संतुष्ट रहते हैं,
हम मारा के सैनिकों को नष्ट कर सकते हैं
यदि हमने आत्म-नियंत्रण अच्छी तरह सीख लिया हो।
[1149] हम जो छायादार वृक्ष की जड़ में
अपने काम में निरंतर लगे रहते हैं,
जिन टुकड़ों से हमारा पेट भरता है, उनसे संतुष्ट रहते हैं,
हे मारा और मेजबानों, चलो उन्हें झाड़ दें,
जैसे हाथी सरकंडे से बनी झोपड़ी को झाड़ देता है।

II.
एक वेश्या को जिसने उसे लुभाने की कोशिश की: [5]

[1150] अथिहिकाओन्कलाकुतिके मनसनानाहरुसिब्बिते,॥
धीरत्थु पूरे दुग्गन्धे पारगत्ते मामयसे, ॥ ॥
[1151] गुत्थभस्ते तकोनाद्दे उरगंड4 पिसासिनि,॥
नवा सोतानि ते काये यानि संदन्ति सबबदा॥ ॥
[1152] तव शरीरारौ नवसोताṃ दुग्गन्धकराṃ परिबन्धṃ,॥
भिक्खु परिवज्जयते तं मिधाञ्च यथा सुचिकामो॥ ॥
[1153] इवं सीई तं जानो जनना यथा जानामि तं अहं,॥
अरका परिवज्जेया गुठत्थानौव पावुसे।॥ ॥
[1154] एवं एतं महावीर यथा समान भाससि,॥
एत्था चेके विसीदंति पंचमहिव जारग्गावो॥ ॥
[1155] अकासाम्हि हलिद्दिया यो मन्ने, राजेतवे,॥
अन्नेन वापि रंगेण विघातुदयामेव तां॥ ॥
[1156] तदाकासासमाṃ चित्ताṃ अज्झट्टाṃ सुसमाहिताṃ,॥
मा पापचित्ते अहनि अग्गिखंडहौव पक्खिमा॥ ॥
[1157] पासा चित्तकाटाṃ बिंबाṃ अरुकायाṃ समुसिताṃ,॥
आतुरं बहुसंकप्पां यस्सा नत्थि धुवं तिथि.॥ ॥
[1157ए] पासा चित्तकटाṃ रूपाṃ मनिना कुंडलेना सीए,॥
अट्ठीṃ तासेना ओनद्दधां सहा वत्थेहि शोभति.॥ ॥
[1157बी] अलट्टकाकाटा पद मुखाṃ कुणकाकमक्खिताṃ,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥
[1157सी] अट्ठपादकटा केसा नेत्ता अंजनमक्खिता,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥
[1157डी] अंजनीव नवा चित्त पूतिकायो अलंकातो,॥
अलं बलास्सा मोहया नो च परागवेसिनो॥ ॥
[1157ई] ओदाही मिगावो पासाण् नासादा वागुरां मिगो,॥
भुत्वा निवापं गच्छमा कन्दकान्ते मिगबन्धके।॥ ॥
[1157एफ] चिन्नो पासो मिगावसा नासादा वागुरां मिगो,॥
भुत्वा निवापं गच्छमा सोकांते मिगालुद्दके॥ ॥

[1150] तुम उस छोटी सी झोपड़ी के साथ, जो हड्डियों के ढांचे
और मांस से बनी है, और रेशेदार सिलाई से घिरी है: -
तुम पर लानत है, घिनौने! तुम अशोभनीय गंधों से भरे हो,
अपने आप को उन अंगों में पाते हो जो 'तुम' नहीं हैं। [6]
[1151] हे चमड़ी में लिपटी गंदगी की थैली! हे
घावदार छाती वाली चुड़ैल! नौ धाराएँ हैं
जो रात-दिन तुम्हारे शरीर पर रिसती हैं;
[1152] तुम्हारा शरीर नौ धाराओं से भरा और दुर्गंधयुक्त है,
बंधनों का निर्माता: [7] - जिससे भिक्षु (भिक्षु) दूर रहे
, जैसे कोई गोबर से दूर रहता है, वैसे ही वह साफ रहना चाहेगा।
[1153] अगर लोग तुम्हें वैसे ही जानते जैसे मैं
जानता हूँ, तो वे तुम्हें दूर से ही दूर भगाते,
जैसे वे बारिश में गंदे पानी के तालाब से दूर भागते हैं।
तब उस स्त्री को शर्म महसूस हुई और उसने थेरा के सामने सिर झुकाकर कहा:
[1154] हाँ, हे महान वीर, ऐसा ही है
जैसा कि आपने, हे पवित्र भिक्षु, कहा है।
और इसमें बहुत से लोग बुरी तरह असफल हो जाते हैं
और दलदल में बूढ़े बैल की तरह कमजोर पड़ जाते हैं।
थेरा:
[1155] जो यह कल्पना करता है कि वह आकाश को
पीले रंग से, या शायद किसी अन्य रंग से रंग सकता है,
वह निश्चित रूप से हार जाएगा, और केवल यही।
[1156] मेरा हृदय उस आकाश के समान है, जो तुम्हारी पहुँच से परे है,
क्योंकि यह भीतर से अच्छी तरह नियंत्रित और शांत है। [8] इसलिए अपने बुरे विचार मुझ पर मत लाओ,
जैसे कोई पक्षी आग में व्याकुल होकर उड़ता है।
[1157] देखो वह बनावटी कठपुतली-आकार (मानव शरीर),
घावों का ढेर, एक रोगग्रस्त ढेर,
अनेक उद्देश्यों और योजनाओं से भरा हुआ, और फिर भी
जिसमें बने रहने की कोई शक्ति नहीं है। [9]
[1157a] देखो, सजी-संवरी आकृति (मानव शरीर), गहनों से सजी, छल्लेदार,
हड्डियों और पतले आवरण में लिपटी हुई,
बढ़िया और देखने में सुंदर उपकरणों की मदद से। [21]
[1157b]   पैरों और चेहरे को सजाने के लिए मेकअप करने की आदत के साथ
मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,
कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।
[1157 ई.] बालों को संवारने और आँखों को सजाने की आदत के साथ
मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,
कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।
[1157 ई.स.] शरीर के अन्य अंगों को सजाने-संवारने की आदत के साथ
मोह (सुंदर शरीर होने का भ्रम) के प्रभाव में रहना,
कि कोई भी व्यक्ति देवत्व की अवस्था तक नहीं पहुंचेगा।
[1157d,e,f] [स्वयं को संवारने और सजाने की आदत वाले लोग]
शरीर के विखंडन (मृत्यु) के बाद उन्हें एक दुखद अवस्था का सामना करना पड़ेगा।
[जैसे कोई हिरण जाल में फंस जाता है और शिकारी उसे उठाकर ले जाता है]

III.
सारिपुत्त थेरा के निधन के विषय में: [10]

[1158] तदासि यङ् भिṃसनकाṃ तदासि लोमहाऽसानाऽ,॥
अनेकाकारसम्पन्ने सारिपुत्तमहि निब्बुते॥ ॥
[1159] अनिच्चा [105] वात संखारा उप्पादावयधम्मिनो,॥
उपज्जित्वा निरुज्जन्ति तेसां वुपसमो सुखो॥ ॥
[1160] सुखुमाउ ते पतिविज्जन्ति विलग्गाउ उसुना यथा,॥
ये पञ्चकखंडे पासन्ति परतो नो च अत्ततो॥ ॥
[1161] ये च पस्संती सोंखरे परतो नो सीए अत्ततो,॥
पच्चब्याधिंसु निपुणं वलग्गं उसुना यथा.॥ ॥

[1158] हे! तब आतंक था, तब घोर भय था,
तब रोंगटे खड़े हो गए और कंपकंपी हुई नसें कांप उठीं,
जब वह, हर श्रेष्ठ कृपा से परिपूर्ण, [11] आदरणीय सारिपुत्त का निधन हो गया।
[1159] [385] हे क्षणभंगुर हैं हमारे जीवन के अनुभव!
उनका स्वभाव है उठना और चले जाना।
वे हमारी समझ में घटित होते हैं, उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
हे हमारे लिए कितना अच्छा है जब वे विश्राम में डूब जाते हैं! [12]
[1160] वे जो हमारे पंचांग जीव को
किसी 'अन्य' के रूप में देखते हैं, स्वयं नहीं, आत्मा नहीं, [13] वे [सत्य की] नाजुक चीजों में प्रवेश करते हैं
जैसे तीर की नोक बाल के सिरे को भेदती है।
[1161] जो हमारे जीवन के अनुभव को
किसी 'अन्य' के रूप में देखते हैं, स्वयं के रूप में नहीं, आत्मा के रूप में नहीं,
उन्होंने सूक्ष्म [सत्य के रहस्यों] को भेद दिया है,
जैसे तीर की नोक बाल के सिरे को भेद देती है।

चतुर्थ
तिस्सा थेरा के विषय में कहा गया: [14]

[1162] सत्तिया विया ओमाथो दैहमानोऽव मत्थके,॥
कामरागप्पाहनाय सातो भिक्खु परिब्बजे॥ ॥

[1162] जैसे कोई आसन्न तलवार से हारा हुआ हो,
जैसे किसी के बाल और पगड़ी जल रहे हों,
वैसे ही भिक्षु सचेत और सतर्क होकर
आगे बढ़े, सभी सांसारिक भावनाओं को पीछे छोड़कर।

यद्धमाना थेरा के विषय में कही गई बातें:

[1163] सत्तिया विया ओमाथो दैहमानोऽव मत्थके,॥
भवरागप्पाहनाय सातो भिक्खु परिब्बजे॥ ॥

[1163] जैसे कोई आसन्न तलवार से घायल होकर गिर जाता है,
जैसे किसी के बाल और पगड़ी जल उठते हैं,
वैसे ही भिक्षु सचेत और सतर्क होकर
आगे बढ़े, जीवन की सभी वासनाओं को पीछे छोड़कर।

वी

'टेरेस के अधिनियम' संवाद के संबंध में बोला गया: [15]

[1164] कोदितो भावित्तेन सरिरन्तिमाधारिना,॥
मिगरामातुपासादं पदुंगुत्थेन कम्पयिं॥ ॥

[1164] उनके द्वारा सलाह दी गई, जो पूर्ण रूप से विकसित हुए, [16] अंतिम बार एक नश्वर शरीर धारण करते हुए,
मैंने अपने पैर की उंगली से अपना पैर उठाकर
मिगारा की माँ द्वारा निर्मित चबूतरे को हिला दिया।

छठी
एक भिक्षु के विषय में कहा गया: [17]

[1165] नायिदm̩ सिथलामरभ नायिदm̩ अप्पेना थमासा,॥
निब्बानमाधिगंतबब सब्बगंथपमोकाना.॥ ॥
[1166] अयाm̩ सीए दहारो भिक्खु अयामुत्तमपोरिसो,॥
धारेति1 अन्तिमं देहाऽ चेत्वा मारऽ सवाहिनि। ॥ ॥

[1165] सुस्ती और सुस्ती से इसका कोई लेना-देना नहीं है ,
थोड़े से परिश्रम से निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता, हर बंधन और बेड़ी से मुक्ति नहीं मिल सकती।
[1166] इस युवा भिक्षु को देखो, तुममें यह अद्वितीय है!
उसने मारा और उसकी सारी सेना को परास्त कर दिया है,
और [इसलिए] वह अपना अंतिम शरीर धारण करता है।

सातवीं
उनके स्वयं के वैरागी जीवन के संबंध में:

[1167] विवरमनुपतन्ति विज्जुता वेहरस्स च पण्डावस्स च,॥
नागविवरगतोऽव झायति पुत्तो अप्पतिमस्सा ताडिनो॥ ॥

[1167] चट्टानी गुफा में भी बिजली चमकती है,
वेभारा की चोटी और पांडव पर प्रहार करती है, और पर्वत की गोद में छिपे हुए,
अतुलनीय भगवान (बुद्ध) का एक बच्चा बैठा है,
ध्यानमग्न समाधि में लीन। [18]

आठवीं
राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश करते हुए, वह सारिपुत्त थेरा के भतीजे को संबोधित करते हैं, जो गलत मतों वाला एक ब्राह्मण (पुजारी) है, जिसने महान कश्यप को देखकर घृणा का अनुभव किया, मानो उसने स्वयं दुर्भाग्य की देवी को देख लिया हो।

[1168] उपसंतो उपरतो पन्तसेनसाणो मुनि,॥
दयादो बुद्धसेठस्स ब्राह्मणा अभिवन्दितो॥ ॥
[1169] उपसंताm̩ उपराताm̩ पन्तसेनसानाm̩ मुनिm̩,॥
दयादां बुद्धसेठस्स वंदा ब्राह्मण कस्सापं॥ ॥
[1170] यो च जातिसतां गच्छे सब्बा ब्राह्मणजातियो,॥
सोत्थियो वेदसम्पन्नो मनुस्सेसु पुनसुनाm̩.॥ ॥
[1171] अज्झायको'पि सी अस्सा तिन्नन वेदना परागु,॥
एतस्सा वंदनयेतौ कलं नागघाटी सोऽसिm̩॥ ॥
[1172] यो सो अष्टविमोक्खनि प्योरभट्टm̩ अफसायि,॥
अनुलोमं पतीलोमं ततो पिंडाय गच्छति॥ ॥

[1173] तदिसैं भिक्खुं मा हानि मत्तनं खाणि ब्राह्मण,॥
अभिप्पसादेहि मनः अरहंतामि तादिनो॥
खिप्पं पञ्जालिको वंदा मा ते विजति मत्थाकं॥ ॥

[1168] शांत और निर्मल द्रष्टा, संसार से विरक्त,
जिसका जीवन दूर है, मनुष्यों से विरक्त है, [19] बुद्ध का उत्तराधिकारी, जागृत और सभी का प्रमुख,
महान ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) द्वारा सम्मानपूर्वक अभिवादन किया गया;
[1169] उन्हें देखो, शांत, निर्मल, संसार से विरक्त,
वह ऋषि जो दूर, मनुष्यों से अलग रहते हैं,
बुद्ध के उत्तराधिकारी, प्रबुद्ध और सभी के प्रमुख: -
ब्राह्मण (पुजारी), कस्सपा को प्रणाम करो!
[1170] जो सौ पीढ़ियों पहले तक
अपने वंश का पता लगा सकता है, सभी ब्राह्मण (पुजारी) पूर्वजों का,
स्वयं स्नातक और वेद ज्ञाता होते हुए,
बार-बार मानवजाति में पुनर्जन्म लेता है।
[1171] यद्यपि वह वेदों में तीन
भूतपूर्व-भगवान (बुद्ध) के रूप में शिक्षक है, तुम इसके लिए उसका सम्मान करोगे, उसके लिए तुम्हारा आदर एक तिनके के बराबर भी नहीं होगा।
[1172] जो व्यक्ति उपवास तोड़ने से पहले
मानसिक मुक्ति (निर्वाण) की आठ अवस्थाओं को
आरोही क्रम में और फिर वापस उसी क्रम में स्पर्श कर सकता है:- [20] तभी वह भिक्षा मांगने के लिए निकलता है: -
[1173] आक्रमण [21] तुम इस प्रकार के भिक्षु (साधु) नहीं हो।
अपने आप को खोदने से बचो, [अपने भले]! [22]
प्रसन्न करो, ब्राह्मण (पुजारी), और ऐसे अरहंत (प्रबुद्ध) का ध्यान करके अपने मन को प्रसन्न करो ।
शीघ्रता से अपने हाथ उठाओ और प्रणाम करो।
अपने उस सिर को खतरे में मत डालो। [23]

नौवीं
पोट्ठिला नामक भिक्षु (भिक्षु) को संबोधित करते समय:

[1174] नेसो पस्सति सद्धम्मं ससैरेण पुरक्खतो,॥
अधोगमं जिम्हपठां कुम्मग्गमनुधावति। ॥ ॥
[1175] किमिअवा मिढासल्लिटो संखरे अधिमुच्चितो,॥

[1174] उसने अभी तक उस धन्य मानक को नहीं देखा है
जिसके साथ शाश्वत जीवन है;
वह पाठ्यक्रम परिसर से दूर भटकता है,
त्रुटि के कुटिल खतरनाक रास्तों में भटकता है।
[1175] गोबर से सने हुए घिनौने कीड़े की तरह,
वह जीवन की पापमय चीजों में लिप्त रहता है, [24] एहसान और लाभ की खोज में डूबा हुआ,
पोट्ठिला [सच्चे लाभ से] वंचित रहता है।

एक्स
आदरणीय सारिपुत्त की प्रशंसा में: [25]

[1176] इमाŋ सीए पासा अयंताŋ सारिपुत्तŋ सुदस्सानाŋ,॥
विमुत्तं उभतोभगे अज्झत्तं सुसमाहितां॥ ॥
[1177] विसल्लाŋ [106] खिनसाअयोगŋ तेविज्जाŋ मक्कुहायिनाŋ,॥

दक्खिनेययं मनुस्नानं पुननक्खेत्तां अनुत्तराऽ, ॥ ॥

[1176] वहाँ देखो जहाँ सारिपुत्त जा रहे हैं,
कितने सुंदर और गरिमामय!
ध्यान में मग्न होकर वे मुक्त हो गए हैं, और पवित्रता से, [26] और उनका सारा आंतरिक स्वरूप सुव्यवस्थित है।
[1177] नैतिक हानि से मुक्त, सभी बंधन टूट गए,
उच्च वेदों में वर्णित, मृत्यु का संहारक,
इस योग्य कि मनुष्य उसे भेंट लाएँ;
महान पुरस्कार के लिए अतुलनीय क्षेत्र। [27]

ग्यारहवीं
आदरणीय सारिपुत्त द्वारा महान थेरा मोग्गलाना की प्रशंसा में कहे गए शब्द:

[1178] एते संबहुला देवा इद्दमंतो यसस्सिनो॥
दशदेवसहस्सानि सब्बे ब्रह्मपुरोहिता॥
मोग्गल्लानां नमस्सांता तिथंथन्ति पंजलिकता॥ ॥
[1179] नमो ते पुरीसाजन नमो ते पुरीसुत्तमा॥
यस्सा ते आसवा खिना दक्खिनेय्योऽसि मारिसा॥ ॥
[1180] पूजितो नरदेवेन उप्पन्नो मरणाभिभू॥
पुण्डरीकाऽव तोयेना सङ्खारेनोपलिप्पति, ॥ ॥
[1181] यस्सा मुहुत्तेन सहस्साधा लोको सविदितो सबब्रह्मकप्पो वासी॥
इधिगुने कटुपापते काले पस्सति देवता स भिक्खु॥ ॥

[1178] देखो वे कैसे खड़े हैं, जो देवताओं से भरे हुए हैं [28] रहस्यमय शक्ति और महिमा से परिपूर्ण,
दस हजार गुना, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के सेवक,
श्रद्धापूर्वक मोग्गलाना की स्तुति कर रहे हैं: -
[1179] 'हे मानवता के अभिजात वर्ग,
आपको प्रणाम! हे मनुष्यों में सर्वोच्च, आपकी महिमा हो!
आपके लिए मादक पदार्थ (अपवित्रता/इच्छाएँ) नष्ट हो गए हैं,
और हे प्रभु, आप उपहारों के सबसे योग्य हैं!
[1180] मनुष्यों और देवताओं द्वारा समान रूप से सम्मानित, [29] मृत्यु के विजेता के रूप में उठे,
जैसे कमल जल से कोई दाग नहीं लेता,
वैसे ही तुम बदलते संसार में चिपके नहीं रहते।' [30]
[1181] जो एक क्षण में ही हज़ार तरीकों से
समस्त संसार का अवलोकन कर सकता है, [31] मानो वह स्वयं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हो। [32] हाँ, यहाँ एक ऐसा भिक्षु है जो आध्यात्मिक [जादू] की शक्ति में पारंगत है [33] जिसने देखा
कि देवताओं और मनुष्यों के लिए मरने और जन्म लेने का समय क्या उपयुक्त है। [34]

बारहवीं
मोग्गलाना महान बोलते हैं, और अपनी प्रतिभाओं की पुष्टि करते हैं:

[1182] सारिपुत्तोऽव पन्नया सिलेना उपासमेन च॥
योऽपि पराङ्गतो भिक्खु एतावपरमो सिया॥ ॥
[1183] कोइसातासाहास्सा अत्तभावं खनेना निम्मिने॥
अहं विकुब्बानासु कुसालो वसिभूतोमहि इद्धिया॥ ॥
[1184] समाधिविज्जवसिपारामी गतो.॥
मोग्गलानगोत्तो असितस्स ससाने॥
धीरो नमुच्छिंदि समाहितिन्द्रियो॥

नागो यथा पुतिलताव बन्धनान्॥ ॥
[1185] पैरिसिणो माया सत्था काटां बुद्धस्स ससाणो॥
ओहितो गरुको भरो भवनेति समुहता॥ ॥
[1186] यस्साथया पब्बजितो अग्रस्मानगरियौ॥
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो सब्बासंयोजनकखायो॥ ॥

[1182] अब सारी का पुत्र ज्ञान, सद्गुण और आत्मसंयम से
सभी को श्रेष्ठ मानता है; यहाँ इस भिक्षु को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो।
[1183] लेकिन मैं पल भर में अनगिनत बार
एक सजीव आकृति बना सकता हूँ; स्वयं को
दूसरों के रूप में रूपांतरित करने में कुशल, हाँ, मेरे पास इच्छा से सभी जादुई शक्तियाँ हैं। [35]
[1184]
मोग्गलानाओं में से वह, जो अकेले खड़े हैं, उनके नियम में , [36] अपनी शक्तियों को सिद्ध कर चुका है; [37] ध्यानमग्न परमानंद और उच्चतर ज्ञान में
निपुण, वीर और आत्म-संयमित होकर उसने अपने बंधन तोड़ दिए हैं,
जैसे हाथी ने सड़ी हुई रस्सी तोड़ दी थी। [38]
[1185] भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी निष्ठा और प्रेम है, [39] और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो चुके हैं।
मैंने अपने ऊपर से भारी बोझ उतार दिया है;
मुझमें पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं बचा है।
[1186] वह भलाई जिसके लिए मैंने दुनिया को अलविदा कहा, [40] और घर छोड़कर ऐसी जगह रहने चला गया जहाँ कोई घर नहीं है,
वह सर्वोच्च भलाई मैंने प्राप्त कर ली है और जीत ली है,
और वह सब कुछ जो मुझे बांधे और जंजीरों में जकड़े हुए था, चला गया है।

तेरहवें
मारा (मृत्युदेव/शैतान) को फटकारते हुए, जो थेरा के गर्भगृह में प्रवेश कर गया था और फिर बाहर निकल गया था: [41]

[1187] किदिसो निरायो असि यत्थ दुस्सी अपाचत्था॥
विधुरं सवकमसज्ज ककुसंन्धौ च ब्राह्मणाः॥ ॥
[1188] सातो असी अयोसांकु सब्बे पचट्टवेदाना॥
इदिसो निरयो असि यत्था दुस्सी अप्पाचत्था॥
विधुरं सवकमसज्ज ककुसंन्धौ च ब्राह्मणाः॥ ॥
[1189] यो एतं अभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[107] [1190] मज्झे सरस्स तिथन्ति विमान कप्पाथयिनो॥
वेफरियावना रुचिरा अचिमन्तो पभास्सार॥
अच्चरा तथा नच्चन्ति पुथु ननत्तवनियो॥ ॥
[1191] यो एतं अभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1192] यो वे बुद्धेना कोदितो भिक्खुसांघस्सा पेक्खतो॥
मिगरामातुपासदां पदांगुत्थेन काम्पिसाण। ॥ ॥
[1193] यो एतामभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1194] यो वैजयंता पसादौ पदांगुधेन कम्पायि॥
इद्धि बालेणुपत्थद्धो सवेजेसि च देवता॥ ॥
[1195] यो एतामभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1196] यो वेजयंतपसादे सक्कं सो परिपुच्छति॥
अपि आवुसो जनासि तंहक्खयाविमुत्तियो॥

तस्स साको वियाकासि पन्हां पुठो यथातथ:॥ ॥
[1197] यो एतामभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1198] यो ब्राह्मणान् परिपुच्छति सुधम्मयैऽहितो4 सभाऽ॥
अज्जाऽपि त्यावुसो सा दितिथि य ते दितिथि शुद्ध आहु॥
पस्सासि वीतिवत्तन्तं ब्रह्मलोके पभस्सरौ ॥॥ ॥
[1199] तस्स ब्रह्मा वियाकासि पन्हां पुठो यथातथौ॥
न मे मारिसा सादिति य मे दितिथि शुद्ध आहु॥ ॥
[1200] पासामि वितिवत्तन्तं ब्रहुमलोके पभस्सरṃ॥
सोऽहाṃ अज्ज कटो वज्जṃ अहाṃ निक्कोहि सस्सतो॥ ॥
[1201] यो एतामभिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1202] यो महानेरुणो कुत्तो विमोक्खेना अफस्सासि॥
वनं पुब्बविदेहनां ये च भूमिसया नारा॥ ॥
[1203] यो एताम्बिजानाति भिक्खु बुद्धस्स सावको॥
तदिसैं भिक्खुमसज्जा कान्हा दुक्खं निगच्छसी॥ ॥
[1204] न वे अग्गि चेतायति अहं बालौ दाहामिति,॥
बालोऽव1 जलितौ अग्गिऽ असज्जन पदैहति॥ ॥
[1205] एवमेव तुवं मरा असज्जना3 तथागतौ॥
सयं दहिस्सासि अत्तानां बालो अग्गीव सम्फुसां॥ ॥
[1206] अपुन्नं पसवि मापो असज्जना तथागतं॥
किन्नु हन्नसि पणिमा न मे पापं विपच्चति॥ ॥
[1207] करातो ते चीयते पापां सिरारट्टया अंतकाका॥
मरा निब्बिंडा बुद्धमहा असां मकासि भिक्खुसु॥ ॥
[1208] इति मरौ अतज्जेसि भिक्खु भेसाकलावने॥
ततो सो दुम्मणो यक्खो तत्थेवंतराध्यायथति। ॥ ॥

[1187] वह किस प्रकार का नरक था जहाँ दुस्सी
पीड़ा में खाना पका रहा था, जब उसने
शिष्य विदुर और पवित्र काकुसंध को भी घायल कर दिया था?
[1188] यह लोहे की कीलों का नरक लोक था,
सौ नुकीले कांटे, जिनमें से प्रत्येक भयंकर पीड़ा देता था।
यह उस प्रकार का नरक था जहाँ दुस्सी
पीड़ा में खाना पका रहा था, जब उसने
शिष्य विदुर और पवित्र काकुसंध को भी घायल कर दिया था।
[1189] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले दिल वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा। [42]
[1190] सागर के बीचोंबीच,
युगों से महल खड़े हैं, बेहद खूबसूरत,
बेरिल पत्थरों के रंग से जगमगाते, ज्वाला की चोटियों की तरह चमकते हुए।
वहाँ अनेक अप्सराएँ अनेक रंगों में नृत्य करती हैं:-
[1191] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले दिल वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1192] बुद्ध के स्वयं द्वारा प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया,
समस्त भिक्षु संघ के समक्ष, [392] अपना पैर उठाकर, अपने अंगूठे से मैंने
मिगारा की माता द्वारा निर्मित चबूतरे को हिला दिया। [43]

[1193] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले हृदय वाले आत्मा! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1194] मैं जिसने अपना पैर उठाकर, अपने अंगूठे से
वेजयंत के सीढ़ीदार मंदिर को हिला दिया,
अपनी जादुई शक्ति से लोहे की तरह कठोर कर दिया,
और देवताओं के बीच भय का रोमांच भेज दिया:- [44]
[1195] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले दिल वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1196] जिसने वेजयंत के सीढ़ीदार मंदिर में
देवता सक्का (देवताओं के राजा) से प्रश्न किया:- [44] 'आओ, मित्र, क्या तुमने वास्तव में
भोग-विलास के अंत से मुक्ति को समझा [जो तुम्हें सिखाया गया था]?'
जिस पर सक्का ने सत्यपूर्वक उत्तर दिया-
[1197] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले हृदय वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1198]
जिन्होंने सुधम्मा के हॉल में सभा में बैठे हुए महान ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) से ही प्रश्न किया : - [45] 'आओ मुझे बताओ, मित्र, क्या आज तुम्हारे वे विचार हैं
जो बीते दिनों में तुम्हारे विचार थे?
या अब तुम अपने स्वर्ग की महिमा देखते हो,
कि कैसे युग-युग बीतता जा रहा है?'
[393][1199] जिस पर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) ने सत्यपूर्वक उत्तर दिया: -
'मेरे स्वामी, मैं अब उन विचारों को नहीं मानता,
जो बीते दिनों में मेरे विचार थे।
[1200] मैं अपने स्वर्ग की महिमा देखता हूँ,
कैसे युग-युग बीतते जा रहे हैं।
आज मैं अपने उस कथन को असत्य मानता हूँ जो मैंने कभी कहा था: -
"मैं शाश्वत हूँ; मैं स्थायी हूँ!"
[1201] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
काले हृदय वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1202] जिसने मुक्ति (निर्वाण) [के परमानंद] में [46] महान नेहरू के सर्वोच्च शिखर को छुआ है, [47] पुब्बाविदेह के वन जगत को देखा है, [48] और उस सुदूर मैदान में रहने वाले मनुष्यों को देखा है: -
[1203] यदि तुम एक भिक्षु हो जो इतना कुछ बता सकते हो -
बुद्ध के शिष्य - हमला करो,
हे काले हृदय वाले प्रेत! तुम्हें दुख में जाना होगा।
[1204] आग ने नहीं सोचा: 'देखो! मैं मूर्ख को जला दूँगा!'
लेकिन अगर मूर्ख धधकती आग पर हाथ रख दे, तो
आग को जलाना ही होगा और उसे जलना ही पड़ेगा।
[1205] इस प्रकार, मारा (मृत्युदेव/राक्षस), तुमने तथागत (अर्थात बुद्ध) [49] पर पहले आक्रमण किया था, परन्तु यह तुम्हारे अपने ही नुकसान के लिए था,
जैसे कोई मूर्ख बच्चा आग को छू लेता है।
[1206] दुष्ट ने दोष उत्पन्न किया है,
जिसने तथागत (अर्थात बुद्ध) पर आक्रमण किया।
क्या? हे दुष्ट, क्या तुम सोचते हो
कि बुराई तुम्हें उसका निश्चित फल नहीं देती?

[1207] हे मृत्यु , तुमने जो किया है, उसके कारण
यह बुराई बहुत समय तक समाप्त नहीं होगी। [50] [394] हे मारा (मृत्युदेव/राक्षस), जागृत मन से दूर हो जाओ! [51] भिक्षुओं के विरुद्ध अपनी दुष्ट साजिशें बंद करो।
[1208] इस प्रकार भेसकला [52] के जंगल में मारा को एक भिक्षु द्वारा निंदा की गई थी।
इसके कारण वह निंदा किया गया शरारती व्यक्ति बहुत निराश होकर,
जहाँ वह खड़ा था, वहीं से पूरी तरह गायब हो गया।
इस प्रकार पूज्य मोग्गलाना महान ने अपने छंदों का उच्चारण किया।

---

[1] सी.सी.एल.आई.एक्स. देखें।
[2] आंग देखें । निक., मैं. 28. इधि पर, कम्पेंडियम देखें, 60 एफ।
[3] एमू में ऑप्टेटिव पर , देखें ई. मुलर की पाली व्याकरण, पृ. 109.
[4] तुलना करें श्लोक 256; साम. निक., i. 156.
[5] सिस्टर्स के अनुसार , पृष्ठ 52, यह वैसाली की विमला थीं। वह एक गृहस्थ अनुयायी बनीं, फिर एक भिक्षुणी, अंततः एक अरहंत (प्रबुद्ध)।
[6] परागत्ते। परा-, 'अन्य' पर , सिस्टर्स, श्लोक 101, n. 8 देखें: परतो दिस्वा। तुलना करें मज्ज, i. 465, अंग. iv. 422. साई. जोड़ता है: गत्तभूते कलेवरे ममत्तम करोसि: 'तुम अंगों वाले शव के प्रति अपनापन बनाते हो ।' स्पष्ट रूप से दूसरे के अंगों का कोई संदर्भ नहीं है।
[7] टिप्पणी में कारिपरिबंध पढ़ा जाता है, लेकिन इसके विश्लेषण से कारि- को हटा दिया जाता है: सम्मापतिपत्ति परिबंधभूतः।
[8] = शब्दशः, आयत 1146 की अंतिम पंक्ति। तुलना करें मज्जह, i. 127.
[9] तुलना करें श्लोक 769, 1020.
[10] श्लोक 1046 देखें।
[11] टीका 'सद्गुणी आचरण, आत्म-संयम,' आदि के उदाहरण देती है।
[12] टीका में ये पंक्तियाँ पूर्ण रूप से दी गई हैं। ये बौद्धों के लिए एक कहावत के समान हैं, और शायद इन्हीं से परिचित होने के कारण, यद्यपि ये इन कविताओं में केवल एक बार ही आती हैं, इस पाठ के संपादक द्वारा प्रयुक्त पांडुलिपियों में केवल पहली पंक्ति ही दी गई है, जिसमें 'एतो' जोड़ा गया है। देखें संवाद, ii. 175; 176, n. 1; 194. धम्मपाला कोई टिप्पणी नहीं करते। मैं संस्कार को व्यक्तिपरक रूप से विचारित घटनाओं (अनुभवों) के रूप में मानना पसंद करता हूँ ; ज्ञात और अनुभव की गई वस्तुएँ ; बौद्ध शब्दावली में, कर्म, वचन और विचार का संस्कार । तुलना करें श्लोक 1175, 1180, श्लोक 3।
[13] तत्थ परतो ति अनात्ततो; तस्सा अट्टागाहा-पइक्खेपा-दस्सानां हेताओ, तेनाहा नो सीए अत्ततो ती (टिप्पणी)। (इतनी क्रांतिकारी किसी भी चीज़ के लिए कोई लाइसेंस नहीं दिया जाता है कि संवेदनाओं के पांच वर्गों को पांच खंड कहा जाए। Cf. न्यूमैन।)
[14] यह श्लोक बुद्ध को बताया गया है, जिसमें तिस्सा, XXXIX, और वाधमान, XL को संबोधित किया गया है।
[15] पसादकम्मा-सुत्तंता। मज्झ देखें . निक., मैं. 337. मज्झिमा में इस संवाद का नाम मारा-तज्जनिया-सुट्टा[एनटीए] (मारा (मृत्युपति/शैतान) का तिरस्कार) है - शीर्षक का एक और अंतर जो दिलचस्पी से रहित नहीं है। पैर की अंगुली-करतब का उल्लेख केवल सुट्टंता से जुड़े छंदों में किया गया है। मिगारा की माँ - विशाखा, थेरा मिगाजाला की भी माँ, CCXVII। ध'पाड़ा साइ. आई., पी.384 एफ.
[16] भावितत्तेन, शाब्दिक रूप से, उसके द्वारा जो विकसित या अभ्यासी अवस्था में था - अर्थात्, जिसने शरीर और मन के विकास का पूरा पाठ्यक्रम पूरा कर लिया था - अर्थात्, बुद्ध।
[17] दो भिक्षुओं (भिक्षुओं) की तुलना की गई है; लेकिन टीका में केवल पहले संदर्भित भिक्षु का उल्लेख है, जिसे 'सुस्त और कामुक' बताया गया है, दूसरे का नहीं।
[18] = श्लोक 41, सिरिवाढ की उक्ति (गाथा)।
[19] देखें कस्सपा थेरा की विशेषताएँ, सी.सी.एल.एक्स.आई., 1057 आगे।
[20] संवाद, ii. 119. 'स्पर्श', एपी(एच)असायी = समापज्जी।
[21] आहारी', आसादति द्वारा व्याख्या की गई । विनय ग्रंथ, ii. 373; मिलिंद पाठ), 100.
[22] अतः टीका।
[23] शाब्दिक रूप से, अपने केशविन्यास को न बिगाड़ें! (व्यंग्यपूर्वक कहा गया)। जोखिम पर, संवाद, i. 116 देखें। ब्राह्मण (पुजारी) ने शिष्टाचार की कमी के लिए क्षमा मांगी।
[24] सांखरा। पोथिला धम्मपद भाष्य का विषय है , iii. 417 एफएफ., श्लोक 282 पर।
[25] मोगल्लाना स्वयं से बात करता है (टीका)।
[26] संवाद देखें , ii. 70. शाब्दिक रूप से, 'दोनों तरफ से मुक्त।'

[27] आम तौर पर इस संप्रदाय के लिए एक पसंदीदा रूपक। पुण्य धर्मनिष्ठ समर्थकों को प्राप्त होता है, जैसे बीज से फसल। तुलना करें (1087)।

[28] तुलना करें 1082; साथ ही 629.

[29] टीका वैकल्पिक पाठ के रूप में सुझाव देती है, 'मनुष्य-ईश्वर द्वारा, पूज्य (बुद्ध), जो ऊपर उठे हैं,' आदि।

[30] देखें सुत्त-निपाता, श्लोक 547. संखारगते, घटनाओं के बीच जन्म लेने वाला, वह लालसा और भ्रम के कीचड़ से नहीं चिपकता; ना उपलिम्पति (sic) कत्थाचि पि, अनिस्सितो ति अत्थो (टीका)। सुत्त-निपाता, श्लोक 812 में थोड़ी सी छंद संबंधी अनियमितता देखें , जहाँ संखारा को दिट्ठसुतm̃-मुतेसु के रूप में विस्तृत किया गया है ।

[31] अंतरिक्ष की दुनिया (टिप्पणी)।

[32] यहाँ (श्लोक 629 के लिए टिप्पणी देखें) [sic v 631] स-ब्रह्मकप्पो को महा-ब्रह्म-सदिसो के रूप में समझाया गया है ।

[33] इधि पर , सीएफ। सार-संग्रह, पृ. 71, संवादों के साथ, i. 87 फं.

[34] यहाँ टीका अनुरुद्ध की कविता, श्लोक 911 की तरह किसी विशेष प्राणी के साथ देवता, देवात्मा, देवदूत को जोड़ने का प्रयास नहीं करती है। इससे देवता का प्रयोग थोड़ा असामान्य हो जाता है। मोग्गलाना की दृष्टि एक देव की है - ' वह भिक्षु एक देवता है!'

[35] देखें एन. 6, पृ. 389.

[36] असितसे, तन्हानिस्सायदि रहितस्स। (साइ.)

[37] जातक इ. (पाठ) 17 89

[38] सुत्त-निपात, श्लोक 29 देखें। मज्झ. नि. के सुत्तंत 141 में इन महान 'जुड़वां भिक्षुओं' का वर्णन उनके भगवान (बुद्ध) द्वारा इस प्रकार किया गया है:

'सारिपुत्त जन्म देने वाली स्त्री के समान हैं, मोग्गलाना जन्म लेने वाले की पालन-पोषण करने वाली हैं। सारिपुत्त प्रथम मार्ग (निर्वाणिक समाधि) के फल के लिए प्रशिक्षण देते हैं, जबकि मोग्गलाना सर्वोच्च मार्ग के लिए। सारिपुत्त चारों आर्य सत्यों को सिखाने और स्पष्ट करने में सक्षम हैं।'

[39] = 604, 656, 687, 792, 891, 918, 1016, 1088, 1050.

[40] = 136, 380, 605.

[41] मज्झ. निक., i., 50वें सूत्र में वर्णित । श्लोक 1164 देखें। दुस्सी, पिछले जन्म में मारा (मृत्यु के देवता/राक्षस) का एक नाम। काकुसंध, गौतम से दो पहले बुद्ध। विदुर (या विधुरा, ओल्डेनबर्ग के संस्करण में देखें; ब्र. साइ. विदुर), उनके दो प्रमुख शिष्यों में से एक। कांटों का नरक कई यातनास्थलों में से एक था। टीका, इसके वर्णन के लिए, देवदूत-सूत्र (अंग. निक., i. 138 ff.) का संदर्भ देती है। राक्षस के विलक्षण विश्राम के बारे में, उप्पलावन्न की कविता, सिस्टर्स, पृष्ठ 114 देखें।

[42] =श्लोक 25.

[43] तुलना करें श्लोक 1164, और n.

[44] संबंधित मज्झ. निक., i., संख्या 37, चूला तन्हा सांक्खया सुत्त ; टीका द्वारा इस प्रकार संदर्भित। तुलना करें. साम्य i. 234 f. ध्य. साइ. i. 273.

[45] शाब्दिक अर्थ, 'ब्रह्मा एक सभा में उपस्थित हैं।' इसका वर्णन मज्झ. नि., i., क्रमांक 49, ब्रह्मा निमान्तणिक-सूत्र में मिलता है, जिसे टीका में 'बका-ब्रह्मा सूत्र' कहा गया है। टीका में ' ठितो सभा' लिखा है, लेकिन आगे केवल इतना जोड़ा गया है: 'यह ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक में सुधम्म सभा है, न कि तावत्स लोक में। सुधम्म सभा के बिना कोई स्वर्गीय लोक नहीं है।'

[46] झना-विमोखेना (टिप्पणी)।

[47] माउंट सिनेरू, या मेरु, दुनिया का काल्पनिक केंद्र।

[48] मेरु के चारों ओर समूहीकृत चार महान महाद्वीपों में से पूर्वी महाद्वीप।

[49] तथागत को यहाँ स्पष्ट रूप से, टीका में स्पष्ट रूप से, एक थेरा अरहंत (प्रबुद्ध) पर लागू किया गया है।

[50] अंतका, या 'अंतर' (जीवन काल का); इन कविताओं में मारा के लिए प्रयुक्त, केवल यहाँ और बहनों में, छंद 59, 62।

[51] बुद्धमहा (अबल.), शिष्य पर लागू।

[52] श्लोक 18 देखें।

BUDSAS.ORG से और अधिक जानकारी

महा-मोग्गलाना

मोग्गलाना, जो बुद्ध के दूसरे (बाएँ) प्रमुख शिष्य थे, ने भावी पीढ़ियों के लिए धम्म के संरक्षण, संवर्धन और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अलौकिक शक्तियों में भी अग्रणी थे। जल्द ही उन्हें महा मोग्गलाना या "महान मोग्गलाना" के नाम से जाना जाने लगा, ताकि उन्हें उसी नाम के अन्य समकालीनों से अलग किया जा सके।

कई भिक्षु विभिन्न अलौकिक शक्तियों में निपुण थे। लेकिन उनमें से प्रत्येक ने केवल एक या दो शक्तियों में ही महारत हासिल की थी। अनुराधा और भिक्षुणी शकुला के पास अलौकिक दृष्टि या दिव्य नेत्र था। भिक्षु शोभिता और भिक्षुणी भद्दा कपिलानी कई जन्मों को याद रख सकते थे। चुला पंथक सूक्ष्म यात्रा में कुशल थे, जबकि भिक्षु सगाला ने अग्नि तत्व में महारत हासिल की थी और पिलिंदी वच्छा दिव्य प्राणियों से संवाद करने में माहिर थे। महा मोग्गलाना ने इन सभी अलौकिक शक्तियों में व्यापक रूप से महारत हासिल की थी और इस प्रकार वे अन्य भिक्षुओं और भिक्षुणियों से श्रेष्ठ थे। उनकी शक्तियां भिक्षुणी उप्पलावन्ना से भी अधिक शक्तिशाली थीं, जो अलौकिक शक्तियों में भिक्षुणियों में अग्रणी थीं।

सामान्यतः हम अपने ज्ञान को पाँचों इंद्रियों से प्राप्त होने वाले अनुभवों तक ही सीमित रखते हैं। अपनी इंद्रियों की सीमित क्षमताओं के कारण हम अपने सीमित अनुभवों को ही परम सत्य मान लेते हैं। अतः, हम आत्मविश्वास से एक खाली कमरे में देखते हैं और कहते हैं कि उसमें कुछ नहीं है, जबकि वास्तव में वह कमरा इतने छोटे जीवों से भरा होता है कि उन्हें नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार, अनेक ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें हम सुन नहीं सकते और कई ऐसी गंध हैं जिन्हें हम महसूस नहीं कर सकते। वास्तव में, यह सिद्ध हो चुका है कि कुत्ते की श्रवण और गंध की क्षमता मनुष्य से कहीं अधिक श्रेष्ठ होती है। इस तथ्य के बावजूद, हम अपने अनुभव को सीमित कर लेते हैं और अपनी इंद्रियों की सीमाओं के कारण सत्य को ही परम सत्य मान लेते हैं। बुद्धिमानों द्वारा अनुभव किया जाने वाला ब्रह्मांड कहीं अधिक विशाल होता है, क्योंकि वे अपने विकसित मन से ऊर्जा के अन्य स्रोतों का भी उपयोग कर सकते हैं।

शक्ति के चार मार्गों (इद्धिपाद) के विकास के माध्यम से, महा मोग्गलाना अंतरिक्ष और समय में कहीं अधिक व्यापक अनुभव प्राप्त करने में सक्षम थे। उनका ज्ञान सामान्य मन की सीमाओं से परे था। अनंत काल तक अपने मन का विकास करते हुए, मोग्गलाना ने ऐसी अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं जो आधुनिक मनुष्य को अकल्पनीय लग सकती हैं। उनकी कुछ शक्तियों और कारनामों को सावधानीपूर्वक प्रलेखित और संरक्षित किया गया है ताकि भावी पीढ़ियाँ मन की पूर्ण क्षमता को समझ सकें। महा मोग्गलाना ने छह प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ विकसित की थीं। ग्रंथों में दर्ज उदाहरणों के साथ उनका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

(1). दूसरों के मन में प्रवेश करना और विचार पढ़ना।

मोग्गलाना, बुद्ध की ही तरह, दूसरों के मन को जानने और समझने की क्षमता रखते थे और अक्सर इसी गुण का उपयोग करके बुद्ध की सहायता करते थे। एक रात बुद्ध भिक्षुओं की सभा के सामने चुपचाप बैठे रहे और बिना कुछ बोले बारी-बारी से सभी भिक्षुओं को देखते रहे। सुबह होने पर बुद्ध ने सभा को संबोधित करते हुए कहा कि यह सभा अपवित्र है, क्योंकि इसमें एक भ्रष्ट भिक्षु मौजूद है।

मोग्गलाना ने सभा में उपस्थित सभी भिक्षुओं के मन का अवलोकन किया और पाया कि उनमें से एक भिक्षु भ्रष्ट है। उसके पास जाकर उन्होंने उसे सभा छोड़कर जाने को कहा। भिक्षु ने इनकार कर दिया। मोग्गलाना ने तीन बार उससे सभा छोड़ने का अनुरोध किया। हर बार भिक्षु ने इनकार कर दिया। तब मोग्गलाना उसे सभा से बाहर ले गए और दरवाजा बंद कर दिया। फिर मोग्गलाना ने बुद्ध से अनुरोध किया कि वे मठवासी अनुशासन (पतिमोक्खा) के नियमों का पाठ करें, क्योंकि अब सभा शुद्ध हो चुकी थी। बुद्ध ने सभा को शुद्ध देखकर भिक्षुओं को मठवासी अनुशासन पर उपदेश दिया।

इस ग्रंथ में एक ऐसी घटना का भी उल्लेख है जिसमें मोग्गलाना ने अपने 500 शिष्यों के मन में प्रवेश करके यह निर्धारित किया था कि वे सभी अरहंत थे। अपनी काव्यमय भाषा के लिए प्रसिद्ध भिक्षु वांगिसा ने तुरंत इस घटना को समझ लिया और मोग्गलाना की इस क्षमता की प्रशंसा करते हुए बुद्ध से इस प्रकार कहा:

"जब ऋषि पर्वत की ढलान पर बैठे होते हैं,
दुःख के उस पार चले गए,
उनके शिष्य उनकी सेवा में बैठे हैं।
वे त्रिगुण ज्ञानी पुरुष जिन्होंने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है।
मोग्गलाना, आध्यात्मिक शक्तियों में महान,
उन्होंने अपने विचारों से उनके मन को भर दिया
और वह उनके मन की खोज करने आया था।
पूरी तरह से मुक्त, बिना किसी लगाव के।"

(2). ऐसी आवाज़ें सुनने की क्षमता जो मनुष्य नहीं सुन सकते - दैवीय कान

एक शाम जब सारिपुत्त मोग्गलाना से मिलने आए, तो उन्होंने अपने मित्र के चेहरे पर ऐसा शांत और सौम्य भाव देखा कि उन्होंने मोग्गलाना से पूछा कि क्या वे मन की शांति के किसी लोक में लीन थे। मोग्गलाना ने सारिपुत्त को बताया कि ऐसा नहीं था, वे भगवान बुद्ध से गहन प्रवचन में लीन थे। सारिपुत्त ने कहा कि बुद्ध श्रावस्ती में निवास कर रहे थे जबकि वे स्वयं राजगृह में कई मील दूर थे। उन्होंने पूछा कि क्या मोग्गलाना बुद्ध के पास गए थे या बुद्ध उनके पास आए थे। मोग्गलाना ने कहा कि ऐसा कुछ नहीं हुआ था। वे दिव्य दृष्टि और श्रवण शक्ति का उपयोग करके ऊर्जा की मानसिक शक्ति पर धम्म प्रवचन में लगे हुए थे। अपने मित्र की अलौकिक शक्तियों को देखकर सारिपुत्त ने कहा कि मोग्गलाना की अलौकिक शक्तियां इतनी शक्तिशाली हैं कि यदि वे चाहें, तो बुद्ध की तरह वे भी एक युग तक जीवित रह सकते हैं।

मोग्गलाना में दिव्य प्राणियों और आत्माओं की वाणी सुनने की क्षमता भी थी। उदाहरण के लिए, एक आत्मा ने उन्हें देवदत्त द्वारा बुद्ध पर मंडरा रहे खतरे के बारे में चेतावनी दी थी, जो उनकी हत्या की साजिश रच रहा था। मोग्गलाना अक्सर स्वर्ग और पाताल लोकों की यात्रा करते थे और वहां निवास करने वाले प्राणियों से उनके द्वारा किए गए कर्मों के बारे में पूछते थे, जिनके कारण उन्हें यह जन्म प्राप्त हुआ था। फिर वे यह जानकारी अपने शिष्यों को देते थे ताकि वे अच्छे कर्म करें और बुरे कर्मों से दूर रहें।

(3). ऐसी चीजों को देखने की क्षमता जो सामान्यतः मनुष्यों द्वारा नहीं देखी जा सकतीं - दैवीय दृष्टि

मोग्गलाना अक्सर अपनी दिव्य दृष्टि का उपयोग बुद्ध के ठिकाने का पता लगाने के लिए करते थे। वे इसका उपयोग अन्य प्राणियों को देखने के लिए भी करते थे। एक बार जब सारिपुत्त गहन ध्यान में बैठे थे, मोग्गलाना ने देखा कि एक राक्षस उनके सिर पर प्रहार कर रहा है। तब उन्होंने अपने मित्र से पूछा कि उन्हें कैसा लग रहा है। सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि प्रहार के कारण उन्हें हल्का सिरदर्द हो रहा है। मोग्गलाना ने अपने मित्र की एकाग्रता की शक्ति की प्रशंसा की, जबकि सारिपुत्त ने राक्षस को देखने की उनकी क्षमता की प्रशंसा की, जिसे उन्होंने स्वयं नहीं देखा था।

ऐसी ही एक घटना दर्ज की गई है जब मोग्गलाना और भिक्षु लक्खाना गिद्ध शिखर से नीचे उतर रहे थे। मोग्गलाना ने एक पेटा (दुखी आत्मा) को देखा और वह मुस्कुराया। लक्खाना को जब यह एहसास हुआ कि मोग्गलाना ने कुछ ऐसा देखा है जो उन्होंने नहीं देखा था, तो उन्होंने मोग्गलाना से प्रश्न किया। मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में उत्तर देने का वादा किया।

जब वे बुद्ध के पास पहुँचे, तो लक्खाना ने फिर मोग्गलाना से पूछा कि वह क्यों मुस्कुरा रहे थे। मोग्गलाना ने उत्तर दिया कि उन्होंने एक विशाल सर्प के आकार की आत्मा को ज्वालाओं में घिरा हुआ देखा, जो गिद्धों द्वारा पीछा किए जाने और नोचे जाने के दौरान चीख रही थी। मोग्गलाना को उस पीड़ित प्राणी पर दया आई और फिर इस ज्ञान से राहत मिली कि भविष्य में उनका ऐसा जन्म कभी नहीं होगा, क्योंकि यह उनका अंतिम जन्म था। इसी राहत के कारण वे मुस्कुराए थे। मोग्गलाना को लगा कि बुद्ध द्वारा पुष्टि किए बिना कोई भी उनके देखे पर विश्वास नहीं करेगा। फिर उन्होंने ऐसे जन्म का कर्मिक कारण बताया। उन्होंने कहा कि पिछले जन्म में यह आत्मा एक किसान थी। उसका एक खेत था, जिसे वह उस स्थान के पास जोत रहा था जहाँ पच्चेक (मौन) बुद्ध विराजमान थे। नगरवासी अक्सर पच्चेक बुद्ध के दर्शन के लिए उसके खेत से होकर गुजरते थे। इससे किसान परेशान हो गया और उसने लोगों को अपने खेत से गुजरने से रोकने के लिए हर संभव प्रयास किया। हालांकि, श्रद्धालुओं की भीड़ ने उनके निर्देशों को नजरअंदाज कर दिया और उनके खेत पर चलना जारी रखा।

किसान ने पच्चेक बुद्ध के अपने निवास से निकलने का अवसर तलाशते हुए, उनका सामान नष्ट कर दिया और उनकी कुटिया जला दी। जब भक्तों को पता चला कि किसान ने पच्चेक बुद्ध की कुटिया और सामान नष्ट कर दिया है, तो वे क्रोधित हो गए। उन्होंने अपना क्रोध किसान पर निकालते हुए उसे पीट-पीटकर मार डाला। किसान का पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ और हजारों वर्षों के बाद, वह गिद्ध शिखर पर अग्नि में घिरे सर्प प्रेत (पेटा) के रूप में पुनर्जन्म लिया।

बुद्ध ने मोग्गलाना के दर्शन और कहानी की पुष्टि करते हुए कहा कि उन्होंने स्वयं उसी आत्मा को उस दिन देखा था जिस दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था।

बुद्ध की तरह, मोग्गलाना भी कर्म के नियम को क्रियान्वित होते देख सकते थे। वे देखते थे कि बुरे कर्म करने वाले लोग पेटा और असुर लोकों में पुनर्जन्म लेते हैं और अच्छे कर्म करने वाले स्वर्ग लोकों में पुनर्जन्म लेते हैं। पेटवत्थु में 51 घटनाओं का और विमानवत्थु में 85 घटनाओं का वर्णन है जिन्हें मोग्गलाना ने देखा था और जिनका उपयोग उन्होंने अपने शिष्यों को अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों को समझाने में किया था। वास्तव में, इस क्षमता के बल पर मोग्गलाना ने अन्य गुरुओं के कई शिष्यों को आर्य मार्ग की ओर आकर्षित किया। इससे उन गुरुओं में ईर्ष्या उत्पन्न हुई जिन्होंने अपने शिष्यों को खो दिया।

(4). अंतरिक्ष में यात्रा करने की क्षमता - एस्ट्रल ट्रैवल

सातवीं वर्षा ऋतु के दौरान बुद्ध ने तीन महीने तक तावतिंसा स्वर्ग में देवताओं को अभिधम्म, यानी उच्चतर शिक्षाओं का पाठ किया। सूक्ष्म यात्रा का उपयोग करते हुए, मोग्गलाना समय-समय पर बुद्ध से मिलने जाते थे और उन्हें श्रेष्ठ धर्म की प्रगति के बारे में सूचित करते थे।

एक अन्य अवसर पर जब मोग्गलाना बुद्ध की खोज में निकले थे, तब उन्होंने देखा कि बुद्ध एक ब्रह्मा के अहंकार को तोड़ने के लिए ब्रह्मालोक गए थे। वह ब्रह्मा इस भ्रम में था कि ब्रह्मा होने के नाते वह बुद्ध और अन्य स्वामियों से श्रेष्ठ है। यह देखकर और उस ब्रह्मा की क्षमता को पहचानकर बुद्ध अपने सिंहासन पर प्रकट हुए। मोग्गलाना ने बुद्ध के इरादे को समझकर उनका साथ दिया और इस प्रकार ब्रह्मा के अहंकार को परास्त कर दिया। परास्त ब्रह्मा बुद्ध और उनकी शिक्षाओं की सर्वोच्चता को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए।

मोग्गलाना ने अपनी सूक्ष्म यात्रा की क्षमता का उपयोग सारिपुत्त की बीमारी में उनकी सहायता करने के लिए भी किया। चिकित्सक ने कमल के डंठलों से बनी एक औषधि की सलाह दी थी, जो केवल हिमालय पर्वत में ही उपलब्ध थी। मोग्गलाना तुरंत पर्वतों की यात्रा पर गए और अपने मित्र के उपचार के लिए आवश्यक औषधि प्राप्त की।

मोग्गलाना ही आनंद बोधि वृक्ष को बुद्ध गया से सावत्थी लेकर आए थे। आनंद ने बुद्ध से पूछा कि उन अनेक निराश भक्तों की सहायता के लिए क्या किया जा सकता है जो बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी आते हैं, लेकिन पाते हैं कि बुद्ध किसी अन्य व्यथित व्यक्ति की सेवा में अनुपस्थित हैं। बुद्ध ने उस महान बोधि वृक्ष का एक पौधा सावत्थी में लगाने का अनुरोध किया, जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने घोषणा की कि बोधि वृक्ष बुद्ध का प्रतीक होगा, जिसकी भक्त उनकी अनुपस्थिति में पूजा कर सकेंगे। मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए बुद्ध गया की यात्रा की और वह पौधा लेकर आए।

(5). पदार्थ पर महारत - असाधारण गति

इस ग्रंथ में अनेक उदाहरणों का उल्लेख है, जहाँ बुद्ध के अनुरोध पर मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करके लोगों को धर्म के प्रति उनकी निष्क्रियता और उदासीनता से जगाया। एक बार मिगारा की माता के महल में रहने वाले भिक्षु लापरवाह और आलसी थे। बुद्ध ने मोग्गलाना को एक चमत्कार करके उनमें विश्वास जगाने का निर्देश दिया। मोग्गलाना ने अपने पैर के अंगूठे से महल को धक्का देकर हिला दिया। भिक्षुओं ने इस अलौकिक चमत्कार को देखकर और मोग्गलाना की शक्तियों को पहचानकर, लगन से साधना में लौट आए और आध्यात्मिक विकास के उच्च स्तर प्राप्त किए।

एक अन्य घटना में, मोग्गलाना ने देखा कि स्वर्ग के राजा सक्का, इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर लापरवाही बरत रहे थे। सक्का के स्वर्गलोक जाकर, मोग्गलाना ने अपने पैर के अंगूठे से सक्का के महल को हिलाया और इस प्रकार उन्हें उनकी नश्वरता और समस्त घटनाओं की क्षणभंगुरता का स्मरण कराया। तब सक्का ने एक अधिक धार्मिक जीवन शैली अपना ली।

एक बार बुद्ध और उनके अनुयायियों को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ा क्योंकि बारिश में देरी हो रही थी और अकाल पड़ गया था। मोग्गलाना ने मिट्टी को पलटने का प्रस्ताव रखा ताकि नीचे की उपजाऊ मिट्टी ऊपर आ जाए और फसल काटी जा सके। बुद्ध ने मोग्गलाना का प्रस्ताव यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि ऐसा करने से कई निर्दोष जीव मारे जाएंगे क्योंकि मिट्टी में कई छोटे जीव रहते हैं। फिर मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्तियों का उपयोग करके उस शहर और एक अन्य हरे-भरे शहर के बीच सड़क बनाने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने फिर से यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि वे इस अकाल को सहन कर लेंगे, जो जल्द ही समाप्त हो जाएगा। ये एकमात्र ऐसे उदाहरण हैं जहां बुद्ध ने मोग्गलाना के अनुरोध को अस्वीकार किया। सामान्यतः, बुद्ध, जिन्हें मोग्गलाना पर बहुत विश्वास और सम्मान था, उनके निर्णयों और अनुरोधों का समर्थन करते थे।

(6). रूप का रूपांतरण

मोग्गलाना की शक्तियों में सबसे प्रसिद्ध और अद्भुत शक्ति थी स्वयं को अन्य प्राणियों में रूपांतरित करने की उनकी क्षमता। नाग नाग नंदोपानंद के साथ सत्ता संघर्ष और अंततः उसकी पराजय सर्वविदित है। विशुद्धिमग्ग में इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार है: एक बार बुद्ध 500 अरहंतों के साथ तावतिंसा स्वर्ग गए। वहाँ से गुजरते हुए उन्होंने दिव्य नाग नंदोपानंद को विवश कर लिया। क्रोधित होकर उसने विशाल कुंडलियों से सिनरू पर्वत को घेर लिया और अपना विशाल फन फैला दिया, जिससे नीचे का संसार अंधकार में डूब गया। कई

भिक्षुओं ने क्रोधित नाग को वश में करने का प्रस्ताव रखा, लेकिन बुद्ध ने दिव्य नाग की शक्तियों को भलीभांति जानते हुए मोग्गलाना को इस कार्य के लिए चुना। तब मोग्गलाना ने स्वयं को एक विशाल नाग में रूपांतरित कर नंदोपानंद के साथ भयंकर युद्ध किया। एक के बाद एक शक्ति का प्रयोग करते हुए, विभिन्न रूपों में प्रकट होकर, उसने अपने प्रतिद्वंद्वी पर विजय प्राप्त की। युद्ध के अंतिम चरण में उन्होंने सर्प के कट्टर शत्रु, दिव्य बाज सुपन्ना का रूप धारण कर लिया। इस समय नंदोपानंद पराजित होकर पीछे हट गए और मोग्गलाना ने भिक्षु का रूप धारण कर लिया और पराजित नंदोपानंद को क्षमा मांगने के लिए बुद्ध के पास ले आए। जातक कथा में मोग्गलाना के पूर्व जन्मों के अनेक संदर्भ मिलते हैं। अनेक जन्म कथाओं में बोधिसत्व, मोग्गलाना और सारिपुत्त भाई, मित्र, सेवक या शिष्य के रूप में सह-अस्तित्व में रहे थे। अन्य पूर्व संबंधों के भी उदाहरण मिलते हैं। जातक कथा मोग्गलाना और सारिपुत्त के बीच के मजबूत बंधन को भी उजागर करती है, क्योंकि अनेक अवसरों पर वे सह-अस्तित्व में रहे और घनिष्ठ मित्र थे। सामान्यतः, सारिपुत्त मोग्गलाना से उच्च पद पर थे, हालांकि यह बात तब अधिक स्पष्ट होती है जब दोनों का जन्म पशु रूप में हुआ था। जातक कथा में उनके पूर्व संबंधों के 30 से अधिक उदाहरण दर्ज हैं।

मोग्गलाना का ज्ञानोदय

मोग्गलाना ने अपने अनुभवों की विरासत को तिरसठ छंदों में समेटा है, जो थेरागाथा में दर्ज हैं और जो उनके आंतरिक प्रयासों, उनकी ध्यान शक्ति, अपने मित्रों की मुक्ति पर उनकी खुशी, आत्माहीनता और अलौकिक सत्य के उनके अनुभव और उनकी अंतिम मुक्ति पर जोर देते हैं।

मोग्गलाना के अंतिम दिन यद्यपि मोग्गलाना के पास असाधारण शक्तियाँ थीं और वे एक अरहंत थे, फिर भी अपने मित्र सारिपुत्त के विपरीत उन्हें शांतिपूर्ण मृत्यु प्राप्त नहीं हुई। मोग्गलाना की अन्य लोकों में झाँकने और कर्म के नियम की व्याख्या करने की क्षमता, साथ ही उनके असाधारण शिक्षण कौशल ने उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना दिया। मोग्गलाना ने कई अन्य शिक्षकों के शिष्यों को बुद्ध के श्रेष्ठ मार्ग पर स्थापित किया। अन्य संप्रदायों के तपस्वियों ने अपनी घटती संख्या देखकर मोग्गलाना को मारने का निश्चय किया। स्वयं इस जघन्य कृत्य को अंजाम देने से भयभीत होकर, उन्होंने हत्यारों को काम पर रखा। जब हत्यारों ने पहली बार प्रयास किया, तब मोग्गलाना राजगाह के बाहरी इलाके में स्थित इसिगिली पर्वत पर ब्लैक रॉक में अपनी कुटिया में ध्यान कर रहे थे। मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्तियों का उपयोग करके बिना किसी की नज़र में आए भाग निकले। दूसरी बार भी हत्यारों को कुटिया खाली मिली। तीसरे प्रयास में मोग्गलाना की अलौकिक शक्तियां क्षण भर के लिए उनका साथ छोड़ गईं। हत्यारों ने उन्हें बुरी तरह पीटा और उनकी हड्डियां चूर-चूर कर दीं और उन्हें मरा समझकर छोड़ दिया। मोग्गलाना बुद्ध के दूसरे प्रमुख शिष्य थे। वे बुद्ध को प्रणाम किए बिना और परिनिर्वाण की अनुमति प्राप्त किए बिना परलोक नहीं जाना चाहते थे। अत्यंत प्रयास से, सूक्ष्म यात्रा का उपयोग करते हुए, मोग्गलाना अपने घायल शरीर को समेटकर बुद्ध के निवास स्थान पर गए और परलोक जाने की अनुमति मांगी। फिर, प्रमुख शिष्य की परंपरा के अनुसार, उन्होंने उपस्थित लोगों को धर्म का उपदेश दिया, भीड़ को विश्वास दिलाने के लिए अनेक चमत्कार किए और परनिर्वाण प्राप्त कर लिया। मोग्गलाना का परलोक उनके मित्र सारिपुत्त के दो सप्ताह बाद, कत्तिका (अक्टूबर/नवंबर) माह में हुआ। अपने प्रिय गुरु की असमय मृत्यु से भिक्षु और शिष्य व्यथित थे। राजा ने हत्या की जांच का आदेश दिया और हत्यारों को पकड़ लिया, जिन्होंने बताया कि उन्हें निगंथनाथ तपस्वियों ने किराए पर लिया था। इसके बाद राजा ने उस समय के हत्यारों के लिए निर्धारित कानूनों के अनुसार तपस्वियों को यातना देकर मार डाला। भक्तों ने बुद्ध से यह भी पूछा कि महा मोग्गलाना की मृत्यु इतनी पीड़ादायक क्यों हुई। बुद्ध ने कर्म के उस नियम की व्याख्या की जिससे एक अरहंत भी नहीं बच सकता, और मोग्गलाना द्वारा पिछले जन्म में किए गए एक गंभीर अपराध का वर्णन किया। अपनी पत्नी के उकसावे पर, मोग्गलाना ने अपने दोनों अंधे माता-पिता को पीट-पीटकर मार डाला। उसके बूढ़े माता-पिता, जिन्हें लगा कि उन पर लुटेरों का एक गिरोह हमला कर रहा है, ने अपने प्रिय पुत्र से जान बचाने की गुहार लगाई। उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं था कि लुटेरों के वेश में उनका अपना ही पुत्र इस जघन्य अपराध को अंजाम दे रहा था। मोग्गलाना ने हजारों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा और अरहंत के रूप में भी उसे भीषण मृत्यु का सामना करना पड़ा, क्योंकि माता-पिता की हत्या एक गंभीर (गरुका) अपराध है, जिसके परिणाम आसानी से नहीं मिटते।

मोग्गलाना की शिक्षण क्षमता और उनकी अलौकिक शक्तियों ने संघ और जनसमूह के प्रशिक्षण में उनकी सहायता की। यह मोग्गलाना ही थे जिन्होंने अपने मित्र सारिपुत्त के साथ मिलकर, देवदत्त द्वारा संघ में फूट डालने पर पथभ्रष्ट भिक्षुओं को बुद्ध के पास वापस लाया। उन्होंने धम्म के सुदृढ़ीकरण और संघ के प्रशासन में भी सहयोग दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरागाथा >> थेरा(264):वांगीसा
श्रीमती सी.ए.एफ. राइस डेविड्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
नोट: पाली पाठ में 'सी' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

पिछला <<<<------ (264) अंत॥

अंतर्वस्तु

1अध्याय XXI. इकहत्तर छंदों की कविताएँ जिनमें 'महान निपटा' भी शामिल है।
2264. वांगीसा
2.1मैं।
2.2II.
2.3तृतीय
2.4चौथा
2.5वी
2.6छठी
2.7सातवीं
2.8आठवीं
2.9दोवीं
2.10एक्स
2.11ग्यारहवीं
2.12बारहवें
2.13तेरह
2.14©

अध्याय XXI.

इकहत्तर छंदों की कविताएँ जिन्हें 'महान निपाता'
भी कहा जाता है ।

264. वांगीसा

बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम वांगीसा रखा गया और उन्हें तीनों वेदों की शिक्षा दी गई। उन्होंने अपनी उंगली के नाखून से खोपड़ियों पर थपथपाकर और उनके पूर्व निवासों के पुनर्जन्म के स्थान का पता लगाकर एक शिक्षक के रूप में लोकप्रियता हासिल की। [1] ब्राह्मणों (पुजारियों) ने इसमें लाभ का साधन देखा और वांगीसा को अपने साथ लेकर गांवों, कस्बों और राजमहलों का भ्रमण किया। तीन वर्षों तक वांगीसा के पास खोपड़ियाँ लाई गईं और उनसे भविष्यवाणी करवाई गई। लोगों को अपने ऊपर विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने 100 और यहाँ तक कि 1000 (कहापन) तक की फीस अर्जित की। और ब्राह्मण (पुजारी) उन्हें अपने साथ जहाँ भी जाना चाहते थे, ले जाते थे। अब उसने भगवान (बुद्ध) के गुणों के बारे में सुना और उनसे मिलने की इच्छा की, लेकिन ब्राह्मणों (पुजारियों) ने आपत्ति जताते हुए कहा: 'गौतम (बुद्ध) भिक्षु अपनी चालाकी से तुम्हें बहका देंगे।' [2] लेकिन वांगीसा ने उनकी बात नहीं मानी और जाकर एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें देखकर पूछा: 'वांगीसा, क्या तुम कोई कला या शिल्प जानते हो?' 'जी, भगवान गौतम (बुद्ध), मैं खोपड़ी मंत्र जानता हूँ। इसके द्वारा, अपनी उंगली के नाखून से खोपड़ी पर थपथपाकर , मैं पिछले तीन वर्षों से यह पता लगाता आ रहा हूँ कि पुनर्जन्म कहाँ हुआ है।' भगवान (बुद्ध) ने उन्हें नरक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्तियों की खोपड़ियाँ दिखाईं, मनुष्य के रूप में, देवता के रूप में, और एक ऐसे व्यक्ति की जो पूरी तरह से मर चुका था। अंतिम को छोड़कर बाकी सभी के बारे में अनुमान लगाने पर, वह कुछ भी नहीं जान सका। तब भगवान (बुद्ध) ने पूछा: 'क्या तुम्हारी कला सक्षम नहीं है?' "वांगीसा?" "मुझे अच्छी तरह से पता कर लेना चाहिए," वांगीसा ने कहा, और वह उसे तब तक बार-बार घुमाता रहा जब तक उसके माथे पर पसीना नहीं आ गया - क्योंकि उसे अरहंत के जाने का पता कैसे चलेगा? और वह वहाँ चुपचाप और शर्मिंदा खड़ा रहा। "क्या तुम थक गए हो, वांगीसा?" "हाँ, भगवान गौतम (बुद्ध), मुझे पता नहीं चल रहा है कि इसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। यदि आपको पता है, तो बताएँ।" "वांगीसा, मुझे यह भी पता है, और इससे भी अधिक पता है:"

जो प्रत्येक प्राणी को भली-भांति जानता है
कि वे कहाँ से मरते हैं और कहाँ से आते हैं, वह
प्रबुद्ध, आनंदित, हर बंधन से मुक्त है:
मैं उसे ब्राह्मण (ऋषि) कहता हूँ।
जिसका भाग्य न देवदूत, न देवता, न मनुष्य
जानता था, वह अरहंत (प्रबुद्ध), समझदार और निर्मल है:
मैं उसे ब्राह्मण (ऋषि) कहता हूँ।' [3]

तब वांगीसा ने कहा, “हे गौतम बुद्ध, मुझे यह गुप्त ज्ञान दीजिए।” प्रणाम करते हुए वे बुद्ध के शिष्य के रूप में बैठ गए। लेकिन बुद्ध ने कहा, “आइए हम आपको भिक्षु के लक्षण सिखाते हैं।” तब वांगीसा ने सोचा, “मुझे हर हाल में यह मंत्र सीखना है।” और उन्होंने अपने साथी ब्राह्मणों (पुजारियों) से कहा, “यदि मैं भिक्षु बन जाऊं तो इसे गलत न समझें। जब मैं यह मंत्र सीख लूंगा, तो मैं पूरे भारत में प्रथम हो जाऊंगा, और इससे मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा।” अतः उन्होंने भिक्षु दीक्षा का अनुरोध किया, और बुद्ध ने पास खड़े निग्रोधकप्पा थेरा को वांगीसा को भिक्षु दीक्षा देने का आदेश दिया। थेरा ने ऐसा ही किया, और फिर यह कहते हुए: 'तुम्हें पहले मंत्र के सहायक तत्व सीखने होंगे,' उन्हें शरीर के बत्तीस घटकों का अभ्यास कराया, [4] और एक अंतर्दृष्टि का अभ्यास कराया। पहले का अभ्यास करके उन्होंने दूसरी क्षमता विकसित की। और जब ब्राह्मण (पुजारी) यह पूछने आए कि क्या उन्होंने कला प्राप्त कर ली है, तो उन्होंने उत्तर दिया: 'कैसी कला प्राप्त करना? तुम यहाँ से चले जाओ; मुझे तुमसे कोई लेना-देना नहीं है।' ब्राह्मण (पुजारी) बोले: 'देखो! यह भी धूर्तता से भ्रष्ट होकर गौतम (बुद्ध) भिक्षु के प्रभाव में आ गया है। गुरु के रूप में हमें तुमसे क्या लेना-देना है?' और वे चले गए। लेकिन वांगीसा ने अरहंतत्व (ज्ञानोदय) प्राप्त कर लिया।
अरहंत (प्रबुद्ध) होने पर, वे भगवान (बुद्ध) के समक्ष गए और दर्जनों श्लोकों में उनकी महिमा का बखान करते हुए उनकी तुलना चंद्रमा, सूर्य, आकाश, सागर, पर्वत, सिंह और हाथी से की। सभा में बैठे भगवान (बुद्ध) ने उन्हें वाणी की सुगमता में सर्वोपरि घोषित किया। [5] परन्तु अरहंत (प्रबुद्ध) होने से पहले और बाद में उन्होंने जो कुछ श्लोकों में कहा, उसे आनंद और अन्य थेरों ने सभा में इस प्रकार संकलित और दर्ज किया:

मैं।
यह बात तब कही गई जब एक नौसिखिए ने विहार (मठ) के पास आई कई चमकीले रंग के कपड़े पहने महिलाओं को देखकर प्रभावित होने के बाद, एक ऐसी भावना जिसे उसने दबा दिया: [6]

[1209] निकखन्तं वात माऽ सन्तं अग्रस्मानगरियं॥
विटक्का उपधावन्ति पगब्भा कान्हा तो इमे॥॥
[1210] उग्गपुत्त महिस्सा सिक्खिता दधधम्मिनो॥
समंता परिकिमेय्युं सहस्सां अपालयिनं॥॥
[1211] ससेऽपि एत्तका भय्यो अगामिस्सान्ति इत्थियो॥
नेव मां ब्याध्यायिस्संति धम्मे समहि पतिथितां॥॥
[1212] सक्खिहि मे सुताṃ एतां बुद्धस्सदिक्काबन्धुनो॥
निब्बानगमनं मग्गं तथा तथा मे निरतो मानो॥॥
[1213] इवाṃ सीई माṃ विहारंताṃ पपीमा उपगच्छसि॥
तथा मक्कु करिसामि न मे मग्गमपि दक्खसी॥॥

[1209] हाय! कि अब जब मैं घर से निकलकर
बेघर जीवन में आ गया हूँ, तो
अंधेरे से उपजे ये अप्रिय विचार मेरे मन से दूर हो जाएँ। [7]
[1210] वे उच्च कुल के योद्धा थे, पराक्रमी तीरंदाज थे,
श्रेष्ठ धनुष-बाण में प्रशिक्षित थे, ऐसे जो कभी भागते नहीं थे,
और चारों ओर हजारों तीर बिखेर देते थे। ...
[1211] लेकिन महिलाएं! खैर, उनसे कहीं अधिक आ सकती हैं,
फिर भी वे मेरी मन की शांति को कभी भंग नहीं करेंगी,
मैं जिन सत्यों में दृढ़ हूं, उनमें दृढ़ हूं। [8]
[398] [1212] क्योंकि उनकी उपस्थिति में भी [9] मैंने
सूर्य के उच्च वंश के बुद्ध को [10] निर्वाण की ओर जाने वाले मार्ग के बारे में बताते हुए सुना है;
और वहाँ मेरे पूरे हृदय का प्रेम दिया गया है।
[1213] अब जबकि मैं हमेशा साथ रहने के ऐसे मूड में हूँ,
हे नीच, क्या तुम सोचते हो कि तुम मेरे पास आ सकते हो?
तब मैं भी वैसा ही करूँगा, हे मृत्यु, और तुम
कभी नहीं जान पाओगे कि मैं कौन सा रास्ता अपनाता हूँ। [11]

II.
अपनी भावनाओं, घृणा आदि को दबाते हुए बोला गया:

[1214] अरतीṃ रतिṃ सीए पहाया सब्बसो गेहेसिटाṃ सीए विटक्कṃ॥
वनाथो न करेया कुहिनसि निब्बानथो अवनाथो सा भिक्खु॥ ॥
[1215] यमिधा पाथविṃ च वेहसाṃ रूपगताṃ जगतोगधाṃ किञ्ची॥
परिजीयति सब्बमनिच्चै एवं समेच्च कैरन्ति मुत्तत्ता॥ ॥
[1216] उपधिसु जन गधितासे दिट्ठे सुते पतिघे च म्यूट चा॥
एत्थ विनोदाय चन्द्रमनेजो यो हेत्थ न लिप्ति मुनि तमाहु ॥॥ ॥
[1217] अट्ठा सहिसिता सवितक्का पुथुज्जनतायṃ11 सधम्म निविट्ठा॥
न च वग्गागत्स्स कुहिनचि नो पना दुतहुल्लागाहि सा भिक्खु॥ ॥
[1218] डब्बो सिराट्टसामहितो अकुहाको निपाको अपिहालु,॥
सन्तं पदं अज्झगमा मुनि पॅतिका परिनिब्बुतो कांखति कलां ॥॥ ॥

[1214]
मैं, जिसने सांसारिक कल्पना को उत्तेजित करने वाली हर चीज में नापसंद और पसंद का त्याग कर दिया है ,
कहीं भी वासना के लिए जगह नहीं बना सकता।
जो जंगली बुराई [12] से मुक्त होकर खुले में पहुँच गया है
, वही वास्तव में भिक्षु है।
[1215] पृथ्वी पर दिखाई देने वाली आकृति की सभी वस्तुएँ,
या पृथ्वी पर आधारित ऊपरी आकाश में, [13] सब क्षणभंगुर हैं, और सब कुछ बीत जाता है: -
इस प्रकार जो सोचते हैं वे समझते हुए चलते हैं। [14]
[1216] जीवन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, उसमें [15] लोग हमेशा [16] जो देखा, सुना, छुआ और सोचा जाता है, उससे जुड़े रहते हैं। [17] [399] जो यहाँ इच्छाओं को दबाकर, अप्रभावित,
कहीं भी नहीं टिकता, उसे [बुद्धिमान] संत कहते हैं।
[1217] जो अड़ियल और साठ गलत विचारों से चिपके रहते हैं, [18] उनका स्वभाव सामान्य औसत दर्जे का होता है,
वे बुरे और अधर्मी रास्तों पर चलते रहते हैं। [19] परन्तु जो कोई किसी संप्रदाय में न जाए,
और व्यर्थ की राय के सहारे न चले, [20] उसे सब लोग एक सच्चे भिक्षु के रूप में जान सकते हैं।
[1218] पूर्ण रूप से संपन्न, [21] बहुत समय से स्वयं भगवान (बुद्ध),
स्पष्टवादी फिर भी बुद्धिमान, और लालसा की शक्ति से मुक्त,
एक संत, उन्होंने शांति का मार्ग प्राप्त कर लिया है;
शांत और निर्मल, अपने अंतिम क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

तृतीय
अपनी वाक्पटुता से संबंधित अपने स्वयं के व्यवहार को दबाते हुए बोला गया:

[1219] मनन पजाहसु गोतम मनपथाṃ सीए जहस्सु असेसाṃ॥
मनापथमहि सा मुच्चितो विप्पतिसारि हुवा सिरारत्तो॥ ॥
[1220] मक्खेन मक्खिता पजा मानहत निरयं पापतन्ति॥
सोकन्ति जना सिरार्त्तै मनहता निरयं उपपन्ना॥ ॥
[1221] न हि सोकाति भिक्खु कदाचि मग्गाजिनो सम्मा पतिपन्नो॥
कित्तिओ च सुखं चनुभोति धम्मदासो' ति तमाहु तथात्तो ॥॥ ॥
[1222] तस्मा अखिलो पधानावा निवारणानि पहाय विशुद्धो॥
मनन च पहाया असेसां विज्जयंतकरो समितवी ॥॥ ॥

[1219] हे गौतम (बुद्ध) के शिष्य, अहंकार का त्याग करो! [22] अपने पैर को अहंकार के मार्ग से पूरी तरह हटा लो।
क्योंकि तुम कुछ समय के लिए उस मार्ग पर मोहित हो गए थे, और
आज से बहुत पहले तुमने वास्तव में पश्चाताप किया था।

[1220] आत्म-प्रवंचना से धोखा खाकर यह पीढ़ी,
अभिमान से नष्ट होकर, विपत्ति के लिए अभिशप्त है।
कई युगों तक नरक में पुनर्जन्म लेकर,
अभिमान से नष्ट हुए लोग अपने विनाश पर विलाप करेंगे।
[1221] [400] भिक्षु कभी नहीं रोता:
पथ-विजेता जिसने सर्वोच्च को प्राप्त किया है। वह
प्रसिद्धि और सुखी अंतरात्मा [23]
दोनों का आनंद लेता है। 'मानदंड-द्रष्टा' [24] कहते हैं, और बुद्धिमान सही कहते हैं।
[1222] अतः इस जीवन में, संयमी और निर्बाध,
सभी बाधक बादलों को दूर करके, और मन से स्पष्ट होकर,
अभिमान और व्यर्थ की धारणाओं का पूर्णतः त्याग करके,
मुझे अंत-निर्माता और शांत पाया जाए। [25]

चतुर्थ

एक दिन, एक नौसिखिए के रूप में, वे पूज्य आनंद के पास गए, जिन्हें राजा के एक मंत्री ने उनसे मिलने के लिए कहा था। वहाँ वे अत्यधिक सजी-धजी महिलाओं से घिरे हुए थे, जिन्होंने थेरा को प्रणाम किया और प्रश्न पूछे, और उनका धर्मोपदेश सुना। लेकिन वांगीसा उत्तेजित और इच्छा से भर गए। तब, एक सुसंस्कृत, धर्मनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति होने के नाते, उन्होंने सोचा: 'मेरी यह बढ़ती हुई भावना मेरे वर्तमान और भविष्य के भले के लिए उपयुक्त नहीं है।' और बैठे-बैठे ही उन्होंने थेरा को अपनी स्थिति बताते हुए कहा:

[1223] कामरागेना दायहामि चित्तौ मे परिद्यहति॥
साधु निब्बापनं ब्रूहि अनुकम्पाय गौतम ॥॥ ॥

[1223] मेरी इंद्रियाँ जोश से जल रही हैं, मेरा मन प्रज्वलित है।
मुझ पर दया करो, हे गौतम वंश के!
मुझे सच-सच बताओ कि कैसे बुझाया जाए! [26]

और पूज्य आनंद ने उत्तर दिया:

[1224] सान्या विपरियेसा चित्तं तेपरिद्यहति॥
निमित्तौ परिवज्जेहि सुभौ रघुपासाऽहिताऽ॥ ॥
[1224ए] सौंखरे परतो पासा दुक्खतो मा च अत्ततो॥
निब्बापेहि महरागं मा दयिहितथो पुनप्पुना। *॥ ॥
[1225] असुभया चित्ताऽ भवेहि एकग्गाऽ सुसमाहिताऽ॥
सति कायगतात्यथु निब्बिदबाहुलो भव॥ ॥
[1226] अनिमित्तं च भवेहि मननुस्यामुज्जहा॥
ततो मनाभिसमय उपसंतो कैरिसि.॥ ॥

[1224] क्योंकि तुम्हारा निर्णय बिगड़ा हुआ है, विकृत है,
इसलिए तुम्हारा मन प्रज्वलित है। तुम्हें [27] सुंदर वस्तुओं को देखने से बचना चाहिए जो वासना से जुड़ी हैं।
[1225] अपने दृढ़ और संयमित मन को
उन चीजों पर विचार करने के लिए विवश करो जो देखने में उचित नहीं हैं,
इंद्रियों के प्रति ध्यानपूर्ण सतर्कता रखो।
और एक विवेकपूर्ण अरुचि से परिपूर्ण रहो।
[1226] त्रिविध चिह्न की अनुपस्थिति का अध्ययन करो; [28] अहंकार के हानिकारक पूर्वाग्रह को त्याग दो।
क्या मन ने व्यर्थ कल्पनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है?
तब तुम शांत और निर्मल होकर अपने मार्ग पर चल सकते हो।

वी

यह कथन परम पूज्य (बुद्ध) द्वारा भगवान (बुद्ध) की स्तुति में 'अच्छी तरह से कही गई बातें' [29] पर सूत्र सिखाने के बाद कहा गया था:

[1227] तमेव वाचान् भासेय ययत्तनः न तपये॥
पारे च न विहिनसेय सा वे वाचा सुभाषिता॥ ॥
[1228] पियवाकामेव भासेय या वाचा पतिनंदिता॥
यं अनादया पापानि परेसां भासते पियौं॥ ॥
[1229] सक्कै वे अमाता वाचा एसा धम्मो सनंतनो॥
सच्चे अत्थे च शम्मे च आहु सत्तो पतितिता॥ ॥
[1230] यं बुद्धो भासति वाचं खेमं निब्बानपत्तिया॥
दुक्खस्सन्तकिरिया सा वे वचनमुत्तमा॥ ॥

[1227] जो कोई ऐसा शब्द बोल सकता है जिससे
वह स्वयं को कष्ट न पहुँचाए,
और न ही साथी मनुष्यों को हानि पहुँचाए -
वह शब्द अच्छा बोला गया है।
[1228] जो शब्द बोले जाएं वे कितने सुखद होते हैं।
जो शब्द कानों को भाते हों,
जो दूसरों की कमियों को न पकड़ें,
वे सुनने में कितने मधुर होते हैं।
[1229] सत्य वह शब्द है जो स्वयं समाप्त नहीं होता।
यही प्राचीन आदिम मार्ग (धम्म) है। [30] सत्य, अच्छाई और मार्ग (धम्म) पर कहा जाता है कि
संत दृढ़ता से खड़े रहते हैं।
[1230] जिसके बारे में प्रबुद्ध व्यक्ति बात करता है,
निर्वाण को हमारा बनाने का निश्चित सुरक्षित मार्गदर्शक,
दुख का स्थायी अंत करने के लिए -
वही सर्वोच्च शब्द है।

छठी
सारिपुत्त की प्रशंसा में बोले गए शब्द:

[1231] गंभीरापन्नो मेधावी मग्गमग्गसा कोविडो॥
सारिपुत्तो महापन्नो धम्मं देसेति भिक्खुणं॥ ॥
[1232] संखितेन'पि देसेटि विट्ठरेण'पि भासति॥
सालिकायिव1 निग-घोसो पतिभानां उदिर्यि। ॥ ॥
[1233] तस्स ताm̐ देसायंतस्सा सुनंती3 मधुरागिराm̐॥
सरेण रजनीयेन सवानीयेन वग्गुना,॥
उदग्गचित्ता मुदिता सोतां ओधेन्ति भिक्खवो॥ ॥

[1231] गहन रहस्यों की अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण,
और विद्वत्तापूर्ण ज्ञान से भरपूर,
सत्य और असत्य दोनों मार्गों में निपुण,
सारी के पुत्र, अत्यंत बुद्धिमान,
भिक्षुओं को धम्म के मार्ग पर शिक्षा देते हैं।
[1232] वह पहले संक्षिप्त रूपरेखा में सिखाता है,
और फिर पूरी तरह से विस्तार से समझाता है।
और मैना पक्षी के मधुर गीत की तरह, [31] उसका स्पष्टीकरण बह निकलता है।
[1233] और जब वह सिखाते हैं, तो जो लोग
उनके मधुर भाषण को सुनते हैं, वे उनकी

मनमोहक, संगीतमय आवाज़ के स्वरों को पसंद करते हैं,
मंत्रमुग्ध कानों और आनंदित हृदयों से,
उनके हर शब्द को प्रसन्नतापूर्वक सुनते हैं।

सातवीं
परमपुरुष (बुद्ध) द्वारा पवाराण (प्रत्यावर्तन या बर्खास्तगी) सुत्तंता में प्रवचन देने के बाद बोली गई: [32]

[1234] अजजा पनारसे विशुद्धिआ भिक्खु पंचसाता समागता॥
संयोजनबन्धनच्छिदा अनिघा खिनपुनभवा इसी.l ॥
[1235] चक्कवत्ती यथा राजा अमाक्कपरिवारितो॥
समंता अनुपर्येति सागरंतां महीऽ इमाऽ॥ ॥
[1236] इवं विजितसङ्गमाṃ सत्थवाहाऽ अनुत्तराṃ॥
सावका पयिरुपासन्ति तेविज्जा मक्कुहायिनो॥ ॥
[1237] सब्बे भगवतो पुत्ता पलासेत्थ4 न विज्जति॥
तन्हासल्लस्स हन्तराण वन्दे आदिच्चबन्धुनः॥ ॥

[1234] आज पूर्णिमा के दिन, पूर्ण पवित्रता के लिए
पाँच सौ भिक्षु एक साथ आए हैं।
उन सभी ने अपनी बेड़ियाँ और बंधन काट दिए हैं;
वे द्रष्टा हैं जो पुनर्जन्म और दुःख से मुक्त हैं।
[1235] और एक राजा के रूप में जो पूरी दुनिया पर राज करता है,
अपने राज्य सलाहकारों से घिरा हुआ,
अपने साम्राज्य में हर जगह भ्रमण करता है,
उन सभी भूमियों में घूमता है जो समुद्र में समाप्त होती हैं,
[403] [1236] इसलिए, जो युद्ध में हमारे विजेता हैं,
हमारे कारवां के अद्वितीय भगवान (बुद्ध),
हम अनुयायी उनकी सेवा करते हैं और उनकी प्रतीक्षा करते हैं,
जो त्रिविध ज्ञान धारण करते हैं, मृत्यु के नाशवान।
[1237] हम सब परम पूज्य के पुत्र हैं। हमारे बीच
कोई निरर्थक बकवास करने वाला नहीं पाया जाता। [33]
मैं उसकी पूजा करता हूँ जो लालसा के बाणों को भेदता है।
मैं सूर्य के महान वंश की संतानों को प्रणाम करता हूँ।

आठवीं
परम पूज्य (बुद्ध) की प्रशंसा में कहा गया, जो निर्वाण पर भिक्षुओं को धार्मिक प्रवचन दे रहे थे: [34]

[1238] परोसहस्साṃ भिक्खुनाṃ सुगाताṃ पयिरुपसति॥
देसेंतां विरजां धम्मं निब्बाणं अकुतोभायं॥ ॥
[1239] सुनन्ति धम्मṃ विमलाṃ5 सम्मासंबुद्धदेसिताṃ॥
शोभति वात सम्बुद्धो भिक्खुसाङ्घपुरक्खतो॥ ॥
[1240] नागानामोसि भगव इसिनं इसिसत्तमो,॥
महामेघोवा हुत्वान् सावके अभिवस्सति। ॥ ॥
[1241] दिवाविहार निखम्मा सत्थुस्सानकमायता॥
सावको ते महावीर पदे वंदति वाङगिसो॥ ॥

[1238] एक हजार भिक्षु, हाँ, और इनसे भी अधिक,
उस स्वागतयोग्य व्यक्ति के चारों ओर सेवा करते हैं, जिसने यहाँ
धर्म का मार्ग (शुद्ध धर्म), निर्मल धर्म, [35] यहाँ तक कि निर्वाण का भी उपदेश दिया, जहाँ कोई भय नहीं आ सकता।

[1239] वे धम्म के प्रचुर प्रवाह को सुनते हैं,
जो परम बुद्ध द्वारा प्रदान किया जाता है,
हे अद्भुत सुंदर, सर्व-प्रबुद्ध चमकते हैं,
चारों ओर बैठे भिक्षुओं के सभी समूह के साथ।
[1240] रहस्यमय आत्मा [36] आप, हे पूज्य (बुद्ध)!
द्रष्टाओं की वंशावली में सातवें, [37] ग्रीष्म आकाश में एक विशाल तूफानी बादल की तरह,
आप अपने अनुयायियों पर बहुमूल्य वर्षा बरसाते हैं।
[1241] और इनमें से एक, ध्यान से आया,
अपने कृपालु स्वामी (बुद्ध) को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ -
हे वीर, देखो! आपका सच्चा शिष्य
आपके चरणों में झुककर आपकी पूजा करता है।

तब [38] भगवान (बुद्ध) ने पूछा: 'हे वांगीसा, क्या तुमने ये श्लोक पहले से रचे थे, या ये तुम्हें अभी-अभी सूझे?' वांगीसा ने उत्तर दिया, 'ये मुझे अभी-अभी सूझे।' ['तो फिर, तुम्हें ऐसे और श्लोक सूझने चाहिए।' 'जी प्रभु' - और वांगीसा ने आगे स्तुति की:]

[1242] उम्मग्गपथाṃ मरास्सा अभिभुय कैरति पभिज्जा खिलानि॥
तं पस्सथ पंधानपमुन्चकारान् असितौव भगसो पतिभज्जा।॥॥
[1243] ओघास्सा हि नित्थराणत्थṃ अनेकविहिताṃ मग्गाṃ अक्खासी॥
तस्मिञ्च अमाते अक्खाते धम्मदसा ठीका असाहिरा॥॥
[1244] पज्जोत्कारो अतिविज्ज धम्मṃ सब्बाऽहितिनाऽ अतिक्कममदा॥
तत्त्वा च सच्चिकत्वा च अग्गं सो देसायि दशद्धानां॥॥
[1245] एवाṃ सुडेसाइट धम्मे॥
को पमादो विजानातं धम्मं॥
तस्मा हि तस्स भगवतो ससाने॥
अप्पमट्टो सदा नमस्सामनुसिक्खे॥॥

[1242] वह मारा के कुटिल मार्गों पर विजयपूर्वक विचरण करता है,
और हर बाधा को तोड़ देता है।
देखो, वह हमारे मुक्तिदाता हैं, जो सभी बंधनों से मुक्त हैं;
स्वयं परिपूर्ण होकर, वे मार्ग (धम्म) का विभाजक हैं। [39]
[1243]
क्योंकि उसने अनेक विधियों से भयंकर चौगुनी बाढ़ को पार करने का मार्ग दिखाया है ; [40] और हम, जिन्हें उसने अमृत बताया है, [41] अजेय धम्म-द्रष्टा के रूप में खड़े हैं।
[1244] प्रकाश लाने वाले, उन्होंने
उन सभी पड़ावों को पार करते हुए, जहाँ मन ठहर गया था, पार कर लिया है। [42] सर्वोच्च ऊँचाइयों को जानते और समझते हुए, वे हमें दृष्टि का मार्ग दिखाते हैं। [43]
[1245] देखो! अब इतने अच्छे से प्रकट हुए सत्यों में, तुच्छ समझे जाने
वालों में उनकी बुद्धि का क्या स्थान है?
अतः प्रत्येक व्यक्ति उस भगवान (बुद्ध) की प्रणाली में उत्साहपूर्वक
अभ्यास करे, और अभ्यास करते समय आराधना करे।

नौवीं
आदरणीय थेरा अन्ना-कोंडान्ना की प्रशंसा में कहा गया: [44]

[1246] बुद्धानुबुद्धो यो थेरो कोंडाणो तिब्बानिक्खमो॥
लसि सुखविहरणं विवेकाणं अभिनहासो॥॥
[1247] याṃ [112] सवकेण पत्तब्बाṃ सत्थुसासनकारिना॥
सब्बास्सा तं अनुप्पत्तं अप्पमत्तस्सा सिक्खतो॥॥

[1248] महानुभावो तेविज्जो सिटोपेरियाकोविडो॥
कोंडाणिनो बुद्धदायदो पदे वंदति सत्थुनो॥ ॥

[1246] हमारे महान प्रबुद्ध (बुद्ध) के बाद कौन जागृत हुआ,
भिक्षु कोंडञ्ञा, ऊर्जा में बलवान,
जो अक्सर आनंदमय सहजता के घंटे बिताता है -
[पूर्ण वैराग्य] की फसल - [45]
[1247] भगवान (बुद्ध) के अनुयायी जो कुछ भी जीत सकते हैं,
यदि वे नियम के प्रशिक्षण को पूरा करते हैं - यह सब कोंडञ्ञा ने परिश्रमपूर्वक और लगन से अध्ययन करके
चरण दर चरण जीता है ।

[1248] शक्ति में श्रेष्ठ और त्रिविध ज्ञान में पारंगत,
दूसरों के विचारों को समझने में निपुण, [46] बुद्ध के सही उत्तराधिकारी कोंडञ्ञा,
भगवान (बुद्ध) के चरणों में उन्हें लेटे हुए देखें।

एक्स
पूज्य मोग्गलाना महान की प्रशंसा में, परम पूज्य (बुद्ध) के समक्ष, जब उन्होंने देखा कि राजगृह में ऋषियों की पहाड़ी पर काले पत्थर पर एकत्रित 500 अरहंतों (प्रबुद्धों) के हृदय मुक्त हो गए थे और पुनर्जन्म की स्थितियों से मुक्त थे: [47]

[1249] नागास्सा पासे असीनाṃ मुनिṃ दुक्खासा परागुṃ॥
सावका पयिरुपासन्ति तेविज्जा मक्कुहायिनो॥ ॥
[1250] चेतासा अनुपरायेति मोग्गलानो महिधिको॥
चित्तṃ नेसाṃ समन्वेसाṃ विप्पमुत्तṃ निरूपधिṃ॥ ॥
[1251] एवाṃ सब्बांगसम्पन्नाṃ मुनिṃ दुक्खस्सा परागुṃ॥
अनेकाकारसम्पन्नै पयिरुपासन्ति गोतमौ ॥॥ ॥

[1249] पहाड़ी ढलानों पर शिष्य बैठे हैं,
त्रिविध ज्ञान धारण किए हुए, मृत्यु के संहारक, [406] बैठे हुए संत की प्रसन्नता पर,
जिन्होंने दुःख की समस्त शक्ति को पार कर लिया है।
[1250] और मोग्गलाना, जो रहस्यवादी शक्ति में महान थे,
ने सभी के हृदयों का चिंतन किया,
और इस प्रकार जाँच करके उन्होंने पाया कि वे मुक्त हो गए हैं,
और उनके पास पुनर्जन्म लेने के लिए कुछ भी नहीं है। [48]
[1251] इसलिए वे उस पूर्ण संत की प्रतीक्षा करते हैं,
जिसने दुःख की समस्त शक्ति को पार कर लिया है,
और हर तरफ अपने कार्य को पूर्ण कर दिया है -
इसलिए गौतम (बुद्ध) की प्रतीक्षा और सम्मान करें।

ग्यारहवीं
अपनी सुंदरता और महिमा से प्रकाशित, परम पूज्य की प्रशंसा में बोले गए, जब वे कैम्पा में गग्गरा कमल-झील पर भिक्षुओं के संघ और आम लोगों से घिरे हुए थे: [49]

[1252] कैंडो यथा विगतावलाहे नभे॥
विरोचति वीतमलोऽव भानुमा॥
एवङपि अंगिरस त्वं महामुनि॥
अतिरोकासि यसासा सब्बलोकान्॥ ॥

[1252] जैसे जब आकाश से बादल छंट जाते हैं, तो

चंद्रमा सूर्य के समान चमकता है,
वैसे ही हे अंगीरासा, [50] हे सबसे शक्तिशाली द्रष्टा,
आप अपनी महिमा से समस्त विश्व को प्रकाशित करें।

बारहवीं
नवशिक्षित अरहंत (ज्ञानी) के रूप में अपने अनुभवों और भगवान (बुद्ध) पर चिंतन करते समय बोले गए शब्द:

[1253] काव्यमत्ता विचारिम्हा पुब्बे गामा गमं पुरा पुरṃ॥
अथद्दसाम संबुद्धौ सब्बधम्मना परागु:॥ ॥
[1254] सो मे धम्मदेसेसि मुनि दुक्खस्सा परागु॥
धम्मं सुत्वा पसीदिम्हा अद्धा नो उदपज्जथा॥ ॥
[1255] तस्साह वचनं सुत्वा खंडे आयतनानि च॥
धातुयो च विदित्वाना पब्बाजीं अनागारियौ ॥॥ ॥
[1256] बहुन्नै वात अत्थया उपज्जन्ति तथागता॥
इत्थिनां पुरिसानां च ये ते ससनकारका॥ ॥
[1257] तेसां खो वात अत्थया बोधिमज्झागमा मुनि॥
भिक्खुन्नै भिक्खुनिन्न च ये नियमगतद्दसा। ॥ ॥
[1258] सुदेसिता चक्कुमाता बुद्धेनादिच्चबंधुना॥
कत्तारि अरियासच्चनि अनुकंपाय पणिनं॥ ॥
[1259] दुक्खाṃ दुक्खसमुप्पादाṃ दुक्खस्सा च अतिक्कमṃ॥
अरिअयं चथौंगिकाṃ1 मग्गाṃ दुक्खुपसमागमिनाṃ॥ ॥
[1260] एवमेते तथा वुत्ता दिट्ठा मे ते यथा तथा॥
सदत्तो मे अनुप्पत्तो कटं बुद्धस्स ससनं॥ ॥
[1261] स्वागतो वात मे असि मम बुद्धस्स संतिके॥
सङ्विभत्तेसु धम्मेसु यं सेठंहां तदुपगामिऽ॥ ॥
[1262] अभिन्यापारमिप्पत्तो सोतधातु विसोधिता॥
तेविज्जो इधिपट्टोमहि सेतोप्रियकोविदो.॥ ॥

[1253] भविष्यवाणी की कला में मदहोश होकर, [51] हम पुराने समय
में शहर-गांव घूमते थे, फिर शहर लौट आते थे।
तब हमने सर्व-प्रबुद्ध को देखा,
जिसने हमारे ज्ञान से परे जाकर सब कुछ पार कर लिया है।
[1254] उन्होंने मुझे धम्म के मार्ग में उपदेश दिया - द्रष्टा,
जो दु:ख की समस्त शक्ति से परे हैं।
और जब हमने वह धम्म मार्ग सुना तो हमारा हृदय प्रसन्न हुआ,
और उसमें विश्वास और आस्था हमारे भीतर जागृत हुई।
[1255]
शरीर, मन, संवेदनाओं, उनके विषयों और
हमारे ज्ञान के सभी डेटा के बारे में उनके वचन को सुनकर [52] - इन्हें समझकर,
मैंने दुनिया (मठवास के लिए) छोड़ दी और बेघर जीवन जीने लगा।
[1256] हे निश्चय ही अनेक लोगों के कल्याण के लिए
उनका आगमन हुआ है जो इस प्रकार आए हैं! -
उन स्त्रियों और पुरुषों का जो अपने नियम का पालन करते हैं।
[1257] हाँ, निश्चय ही, और उन लोगों के सर्वोच्च कल्याण के लिए -
भिक्षुओं और ननों, जो देखते हैं
कि क्या है, क्या हो सकता है [53] -
उनके लिए द्रष्टा ने ज्ञान प्राप्त किया।
[1258] सूर्य वंश के, जो दृष्टि रखते हैं, बुद्ध द्वारा, [54] सभी प्राणियों के प्रति दयालुता में अच्छी तरह से शिक्षित

हैं चार आर्य, चार आर्य सत्य;
[1259] दुःख क्या है और क्यों है,
दुःख कैसे आता है और दुःख को कैसे दूर किया जा सकता है,
आर्य मार्ग से भी, जो अष्टमार्ग है,
जिससे सभी दुःख दूर हो जाते हैं। [55]
[1260] इस प्रकार उपदेश दिए गए, और मैंने
उन्हें वैसे ही देखा जैसे मुझे दिखाए गए थे;
और अब मैंने निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लिया है,
और बुद्ध के सभी विधान पूरे हो गए हैं।
[1261] हे शुभ समाचार! मेरे लिए शुभ समय है
भगवान (बुद्ध) के चरणों के निकट रहने और अध्ययन करने का;
मनुष्यों के बीच प्रचलित अनेक सिद्धांतों में से,
मैंने निश्चित रूप से इसे ही सर्वश्रेष्ठ पाया। [56]
[1262] मैंने अंतर्ज्ञान की ऊँचाइयों को प्राप्त कर लिया है, [57] श्रवण शक्ति से सुस्ती दूर हो गई है;
मेरे पास त्रिविध ज्ञान और जादुई शक्ति है;
मैं दूसरों के विचारों को जानने में निपुण हूँ।

तेरहवें
जब यह पूछताछ की जा रही थी कि क्या उनके शिक्षक [58] की मृत्यु के समय पूरी तरह से मृत्यु हो गई थी:

[1263] पुच्छामि [113] सत्थारमनोमपन्नm̃॥
दिट्ठोऽव धम्मे यो विकिसिच्चनं चेत्वा॥
अग्गादवे कलमकासि भिक्खु॥
सातो यस्सि अभिनिब्बुत्तो॥ ॥
[1264] निग्रोधकप्पो इति तस्स नामाm̃,॥
तया कतं भगव ब्राह्मणस्स॥
सोऽहाm̃ नमस्साm̃ अकारिm̃ मुत्त्यपेखो॥
अरद्धवीरियो दधधम्मदस्सी.॥ ॥
[1265] ताऽ सवकाऽ सक्का मयाऽपि सब्बे॥
अन्नातुमिच्छामा समन्तचक्खु॥
समावथिता नो सवानाय सोता॥
तुवं नो सत्था त्वमानुत्तरोसि.॥ ॥
[1266] चिंदा नो विकिकिचाm̃ ब्रूहि मेटाm̃॥
परिणिब्बुतां वेदया भूरिपन्न॥
मज्जहेव नो भासा समन्तचक्खु॥
सत्तोऽव देवान् सहस्सनेत्तो॥ ॥
[1267] ये केचि गंथा इधा मोहमग्गा॥
अनानापक्खा विकिचिच्छना॥
तथागतं पट्वा न ते भवन्ति॥
चक्खुm̃ हि एतां परमं नारायणं॥ ॥
[1268] नो सीई ही जतु पुरिसो किलिसे॥
वतो यथा अभ्भघनान् विहने॥
तमोवस्सा निवुतो सब्बालोको॥
जोतिमन्तोऽपि न पभासेयुऽ ॥ ॥
[1269] धीरा च पज्जोत्कारा भवन्ति॥
तं तं अहं वीर तथैव मन्ने॥
विपश्यिनं जनमुपागमिम्हा॥
परिसासु नो अविकारोहि कप्पां॥ ॥

[1270] खिप्पाṃ गिराṃ एराया वग्गु वग्गुṃ॥
हंसो'वा पग्गयहा सैनिकानि निकुजा॥
बंडुसरेना [114] सुविकप्पितेना॥
सब्बे' ते उज्जुगत सुनोमा॥ ॥
[1271] पाहिनाजतिमरणाṃ असेसाṃ॥
निग-गयः धोनं पतिवेदीयामि॥
न कामकारो हि पुथुज्जनानं॥
सान्खेय्यकारोऽव तथागतानान्॥ ॥
[1272] सम्पनवेय्याकारणं तवेदाṃ॥
समुज्जुपन्नस्सा समुग्गहितं॥
अयमंजलि पचिमो सुप्पनामितो॥
मा मोहयि जन्मनोमपन्न.॥ ॥
[1273] परोवरअ अरियाधम्मं विदित्वा॥
मा मोहयि जन्मनोमावीरा॥
वारिं यथा घम्मानि घम्मतत्तो॥
वाचभिकंखामि सुतं पवस्सा॥ ॥
[1274] यसत्थिकाṃ ब्रह्मकारियाअचरी॥
कप्पायणो कच्चि सतां अमोघं॥
निब्बायी सो अदु सौपादिसेसो॥
यथा विमुत्तो अहु ताओ सुनोमा॥ ॥

[1263] मैं भगवान (बुद्ध) से पूछता हूँ - उनकी बुद्धि असीम है -
जो इस जीवन के बारे में हर संदेह को दूर करते हैं: [59] -
यहाँ अग्गलवा [60] में एक भिक्षु का निधन हो गया है,
जो सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध थे, शांत और स्थिर [उनका हृदय];
[1264] निग्रोधा-कप्पा, आपने ही उन्हें
ऐसा नाम दिया था, इस भले आदमी का यही नाम था, हे पूज्य (बुद्ध)। [61] आपका आदर करते हुए वे रहते थे, उनकी दृष्टि स्वतंत्रता पर थी,
और स्थिर के द्रष्टा, [62] उन्होंने अच्छा प्रयास किया।
[1265] हे शाक्यन,
हम सब इस शिष्य के भाग्य को जानने के लिए उत्सुक हैं, हे सर्वदर्शी;
आप ध्यानपूर्वक इसे सभी के कानों तक पहुंचाते हैं: -
आप हमारे भगवान (बुद्ध) हैं और आप सर्वोच्च हैं।
[409] [1266] क्या आप हमारे सभी संदेहों को दूर कर देंगे?
हे परम ज्ञान, मुझे बताइए:
क्या उसने वास्तव में अपने जीवन का लंबा चक्र पूरा कर लिया है?
हे सर्वज्ञ द्रष्टा, हमारे बीच में हमसे बात कीजिए,
जैसे स्वर्गिक हॉल में हजार आँखों वाले सक्का (देवताओं के राजा) कहते हैं। [63]
[1267] यहाँ हमें बांधने वाले बंधन, भ्रम के मार्ग,
अज्ञान के कारक, संदेह के स्थान: -
चाहे वे कुछ भी हों, भगवान (बुद्ध) के सामने, तथागत (अर्थात बुद्ध)
के सामने , वे अस्तित्वहीन हो जाते हैं, क्योंकि मनुष्यों में सर्वोच्च नेत्र वही है।

[1268] क्योंकि यदि, वास्तव में, कोई मनुष्य संसार के भ्रष्टाचारों को
हवा की तरह नीचे आते बादलों को नहीं बहाता, तो
संसार [64] पूरी तरह से घने अंधकार में ढक जाएगा,
और यहाँ तक कि उज्ज्वल दिमाग भी अपना प्रकाश खो देंगे।
[1269] हम सभी के लिए प्रकाश लाने वाले बुद्धिमान पुरुष हैं;

और हे ऋषि, मुझे लगता है कि आप भी वैसे ही हैं।
हम उस व्यक्ति के निकट आए हैं जो देखता है, जानता है; [65] हम सभी को कप्पा का भाग्य प्रकट कीजिए!
[1270] हे सबसे सुंदर , अपनी सारी सुंदरता के साथ शीघ्रता से अपनी आवाज़ भेजो
; जैसे हंस,
मधुर और सुरीले स्वरों के साथ,
लयबद्ध तुरही बजाते हुए अपनी गर्दन उठाता है,
और हम सब सच्चे दिलों से सुनेंगे।
[1271] उसके मार्ग से जन्म और मृत्यु का सारा रिवाज़ दूर हो गया; [66] और जिसने उन्हें बिना किसी अवशेष के त्याग दिया,
अब मैं उसी को विवश करके बोलने का आग्रह करूँगा।
क्योंकि [67] आम लोग अपनी इच्छाओं को पूरा करने में असफल रहते हैं,
परन्तु संत जो भी योजना बनाते हैं, उसे पूरा करते हैं।
[410] [1272] हमने अच्छी तरह से सीख लिया है कि आप कैसे उत्तर दे सकते हैं,
जिनकी अंतर्दृष्टि सीधे चीजों के मर्म तक जाती है,
व्यर्थ में हम खड़े नहीं हैं, एक बार फिर प्रणाम करते हुए।
हे ज्ञान में असीम, भ्रमित न करें,
जो [कप्पा के भाग्य] को निश्चित रूप से जानते हैं।
[1273] आर्य पथ (धम्म) को आप उसकी सभी दिशाओं में जानते हैं, [68] हे ज्ञानवान और कर्म करने में सक्षम, हे भ्रमित न करें!
जैसे गर्मी से पीड़ित होने पर ठंडे पानी की प्रतीक्षा में,
हम आपके वचन की प्रतीक्षा करते हैं: - वर्षा हो ताकि हम सुन सकें! [69]
[1274] वह पवित्र जीवन (ब्रह्मचर्य) जो उसने, वांछित लक्ष्य के लिए,
कप्पसों के उस व्यक्ति ने व्यतीत किया, व्यर्थ नहीं था?
क्या वह पुनर्जन्म के बीज से भरा हुआ चला गया, [70] या पूरी तरह से मुक्त होकर? - यही हम सुनना चाहते हैं।

[परमेश्वर (बुद्ध):]
[1275] उन्होंने मन और शरीर के जीवन के लिए सभी लालसाओं को यहाँ नीचे काट दिया, और अपने भीतर गहराई से बहने वाली लालसा की
धारा को पार कर लिया , जन्म और मृत्यु दोनों से पूरी तरह परे चले गए।

(इस प्रकार पांचों में सर्वश्रेष्ठ, परम पूज्य ने कहा।) [71]

[वांगीसा]:

[1276]
हे पराक्रमी ऋषियों , आपका वचन सुनकर मेरा हृदय प्रसन्न हुआ ! [72] वास्तव में, मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं थी
, हे पवित्र! [73]
[1277] जैसा कप्पा ने कहा, वैसा ही कप्पा ने किया,
वह बुद्ध का शिष्य था, [74]
क्योंकि उसने चालाक मृत्यु द्वारा फैलाए और बलवान जाल को काट डाला ।
[1278]
हे पूज्य बुद्ध! कल्पों में से जिसने पकड़ का स्रोत देखा , उसने सचमुच मृत्यु के उस क्षेत्र को
पार कर लिया है जिसे पार करना इतना कठिन है।

[1279] हे देवताओं से भी महान, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ,
तुम्हारे पुत्र के साथ, हे पुरुषों में श्रेष्ठ, [75] तुम्हारे जैसा एक महान वीर,
अद्भुत अस्तित्व का, [76] तुम्हारा पुत्र।

इस प्रकार पूज्य भिक्षु वांगीसा ने अपना वचन (गाथा) कहा।

[1] कोसल (CLI) के एक ब्राह्मण (पुजारी) मिगासिरा के बारे में भी यही कहानी बताई जाती है, और संभवतः यह एक और विभाजित कथा है। संयुत्त-निकाय में, आठवां खंड पूरी तरह से वांगीसा की उन रचनाओं को समर्पित है जो निम्नलिखित बारह खंडों में निहित हैं, साथ ही गद्य प्रसंग भी हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण हमारी टीका में दिया गया है। शेष श्लोक (1263-78) सुत्त-निपात (श्लोक 343-58) में निहित हैं, साथ ही श्लोक (1227)-(1230) भी।
[2] प्रतिद्वंद्वी शिक्षकों द्वारा अक्सर लगाया जाने वाला एक आरोप। तुलना करें मज्झ. निक., i. 375; साम. निक., iv. 341.
[3] सुत्त-निपात, श्लोक 643, 644।
[4] खुद्दक-पाठ देखें ।
[5] एंग. निक., आई. 24.
[6] सामी. निक., i. 185 एफ. वहाँ वांगीसा को विहार का संरक्षक या द्वारपाल कहा जाता है, और महिलाएं इसे देखने आती हैं।
[7] कादातो लामकभावतो (साइ.)। मरापक्खतो. Saṃy. साइ.
"ढाल क्यों नहीं?" क्योंकि लाठी से तीरों को रोकना (यह कला तलवार या हाथ से भी की जाती है) अधिक कठिन है, इसलिए तुलना और भी स्पष्ट हो जाती है। श्रीमती राइस डेविड्स ने शायद चीनी कुंग-फू फिल्में नहीं देखी होंगी जिनमें यह कौशल अक्सर देखने को मिलता है।
[8] इस कठिन अंश की व्याख्या टीका द्वारा इस प्रकार की गई है: 'एक पुरुष लाठी लेकर (ढाल क्यों नहीं?) कई तीरों को मार गिरा सकता है, लेकिन प्रत्येक स्त्री एक साथ पाँच तीर चलाती है (प्रत्येक इंद्रिय पर आक्रमण करते हुए), और इसलिए अधिक खतरनाक होती है।' 'सत्य' (धम्मेसु) का अर्थ सामान्यतः सिद्धांत है, लेकिन विशेष रूप से सैंतीस बोधिपक्खिया धम्म। तुलना करें संकलन, पृष्ठ 179 f.
[9] समुखा (टीका)।
[10] तुलना करें XXVI.
[11] सी. सिस्टर्स, उप्पलावन्न और मारा, श्लोक 231 एफ.
[12] जंगल या वन को कामवासना या लालसा के प्रतीक के रूप में देखें , बहनें, वड्ढ की माँ, श्लोक 208।
[13] टीका के अनुसार, वेहसाṃ = देवलोकनिसिटाṃ; जगतो-गधाṃ = लोकिकाṃ।
[14] पढ़ना mutantā = pariññā (टिप्पणी).
[15] उपधीसु, या आधार। टीका में केवल पाँच खंधों का नाम है, लेकिन अन्यत्र तीन अन्य श्रेणियों का नाम दिया गया है (धम्मपद, श्लोक 418; एसबीई, x., पृ. 94): - काम (इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ), क्लेसा (बुराइयाँ, पाप; cf. पृ. 78, n. i.), और कम्म।
[16] गधितासे. टिप्पणी: paṭibandhacittā.
[17] पतीघे। टिप्पणी: घाटनिये, फोठब्बे (मारो जाने वाली, छुई जाने वाली चीजें)। यह दिलचस्पी की बात है कि धम्मपाल ने सारत्थपकासिनी (बुद्धघोष द्वारा रचित संयुत्त टिप्पणी) को उद्धृत किया है: सारत्थपकसिनियं पतिघसद्देना गंधारसा गहिता, आदि।
[18] आमतौर पर डायलॉग्स, यानी 'ब्रह्मजाल-सुत्तंत' में वर्णित अनुमानित राय को बासठ के रूप में जाना जाता है। यहां, टीका कहती है, पाली (यानी, पाठ) थोड़ा अधिक या कम के संबंध में सटीक नहीं है। द सैय. साइ. अथ सत्थिनिसिता: अथ च आराम्मनिसिता।
[19] सी.एफ. जाट. मैं। 259: अधम्मस्मिṃ निवित्थो।
[20] पदुल्ला- मुझे लगता है, किसी अन्य कृति में नहीं मिलता। तुलना करें बोथलिंगक और रोथ: sv दुल। टीका में duṭṭhullagāhī है; Saṃy.: -bhāṇi.
[21] डब्बो। टिप्पणी, डब्बाजातिको (अंग. निक., i. 354 देखें),[?] पिंडिटो। बाद वाले शब्द का उपयोग, जातक टिप्पणी (खंड II, पाठ का पृष्ठ 439) में, पक्षी की समृद्ध या पूर्ण आवाज़ , बिंदुसारो की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। अंगुत्तारा साइ. पंडिता-जातिको द्वारा व्याख्या ; Saṃy. साइ. दुब्बाजातिको पंडितो (एसआईसी) द्वारा । वैसे भी, मुझे डॉ. न्यूमैन की तरह थेरा डब्बा (वी.) को इसमें घसीटने का कोई औचित्य नहीं दिखता।
[22] गोतमगोत्तस भगवतो सावकत्त अत्तनः गोतमगोत्तṃ कट्वा अलपति (टिप्पणी)।
[23] चेतना के मूल अर्थ में। 'सर्वोच्च': सम्मा।
[24] धम्मदासो. सय . निक. 'मानद-प्रेमी,' धम्मरातो.
[25] सुत्त निपाता, श्लोक 520 और उसके संदर्भ की तुलना करें।
[26] निब्बापना, (इस जुनून की आग या बुखार को) बुझाना। बाद की व्याख्या शायद निब्बाना के इस अर्थ पर कम और प्रस्थान या पलायन के अर्थ में निकलने पर अधिक आधारित थी (संकलन, पृष्ठ 168); फिर भी ऊपर देखें, श्लोक 691।
[27] = सुत्त-निपात, श्लोक 340 एफ।
[28] सिस्टर अभिरूप-नंदा को भी श्रेय दिया जाता है, लेकिन, उनके कथन (गाथा) में, बुद्ध से प्रेरित (सिस्टर्स, पृ. 23)। 'स्टील,' एकग्गाम्; शाब्दिक रूप से, एक-बिंदु; 'अध्ययन,' आदि: चीजों को क्षणभंगुर, दुख से युक्त, आत्माहीन (स्वयं से रहित) के रूप में देखें।

[29] साय. निक., i. 188; सुत्त निप., श्लोक 450 f.: 'अच्छी तरह से बोलने के लिए, वाणी न केवल अच्छी होनी चाहिए, बल्कि धार्मिक, सुंदर और सच्ची भी होनी चाहिए।' इस पर वांगीसा ने अपने विचार व्यक्त करने की इच्छा जताई। भगवान (बुद्ध) ने सहमति दी, और वांगीसा उनके सामने खड़े होकर गद्य सूत्र को पद्य में बदल दिया।
[30] यहां बुद्धघसा और धम्मपाल दोनों शब्दश: सहमत हैं: एसा पोराणो धम्मो करियापावेनि; इदं एव हि पोराणाणं अचिन्नं न ते (धपाल: यं ते न) अलिकां भसींसु। परिवर्धन आदि भी देखें।
सिसकिन। एक छोटा सा गाने वाला पक्षी।
[31] सालिका, शाब्दिक रूप से, 'चावल की किनारी,' जैसे हम 'सिसकिन' कहते हैं।
[32] वर्षा ऋतु की समाप्ति पर आयोजित एक सभा, जिसमें पश्चात्ताप आमंत्रित किया गया था। विनय ग्रंथ, i. 825 आदि देखें। भगवान (बुद्ध) (सुत्तंत, साम्य. निक., i. 189 में) अपने विरुद्ध शिकायतें आमंत्रित करते हैं, और सारिपुत्त, दूसरों की ओर से, उन्हें दोषमुक्ति देते हैं, और फिर स्वयं वही दोषमुक्ति प्राप्त करते हैं।
[33] हमारे पाठ में पलापो, या बड़बड़ाने वाला; पाठ और टीका की बर्मी पांडुलिपियों में पलासो, फलासो। पलासो, जिसमें फल नहीं बल्कि पत्ते हैं, संभवतः 'बांझ' का अर्थ है। दोनों टीकाएँ, हमारी और सारत्थ-पकासिनी, तुच्चो अंतो, साराहितो, दुस्सीलो (खाली, सारहीन, नैतिक रूप से बुरा) द्वारा व्याख्या करती हैं ।
[34] वांगीसा फिर सुझाव देते हैं कि उन्हें बोलने की अनुमति दी जानी चाहिए (साम्य. निक., i. 192)।
[35] तुलना करें. बहनें, श्लोक 97.
[36] नाग. तुलना करें ऊपर CCXLVII.
[37] बुद्धों में से सातवाँ। निकाय अतीत में केवल इन्हीं को ध्यान में रखते हैं।
[38] टीका में केवल प्रश्न और उत्तर उद्धृत किए गए हैं। शेष मैं सा◌ॅय. निक. धम्मपाल से लेता हूँ। इसमें केवल इतना जोड़ा गया है कि भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को वांगीसा का उपहार दिखाना चाहते थे।
[39] इस वाक्यांश - असिता व भागसो पविभज्जा[ṃ] - का अनुवाद डॉ. न्यूमैन की तरह 'हंसिया द्वारा खंडों (या गट्ठों) में विभाजित' के रूप में किया जा सकता है, लेकिन (1) मैं बौद्धों के उद्धारकर्ता की तुलना हंसिया से करने में संकोच करता हूँ; (2) दोनों टीकाएँ इस बात पर सहमत हैं कि असिता , अन्य गाथाओं की तरह , जैसे (1184), अनिस्सिता (स्वतंत्र, स्वयं किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं) है। मैंने असिता का अर्थ धात लिया है (जातक टीका, खंड 2, पृष्ठ 247, पाठ देखें, जो चाटा, अभाव के विपरीत है)। मुख्य ज़ोर शिक्षक द्वारा अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने पर है।
[40] तुलना करें. XV., n. 2.
[41] शाब्दिक रूप से, कि अमृत घोषित किया गया है।
[42] दोनों कॉम. हव दिथिथिठानानां विनानानानाना वा।
[43] दोनों टीकाएँ dasaṭṭhānaṃ को अस्वीकार करती हैं, dasaddhānaṃ पढ़ती हैं , और पाँच भिक्षुओं को दिए गए प्रथम उपदेश को aggaṃ dhammaṃ के प्राप्तकर्ताओं के रूप में संदर्भित करती हैं , न ही इस शब्द की व्याख्या करती हैं।
[44] सामी. निक., i. 193. सी.सी.एक्सएलवी .
[45] विवेकानम्, टुकड़ियों में से -अर्थात तीन: शरीर की, मिहद की, और निर्वाण में लीन।
[46] [संपादक: अनुपस्थित, लेकिन संभवतः Saṃy. Nik., i. 193 का भी संदर्भ है ।]
[47] सामी. निक., आई. 194.
[48] निर-उपधिṃ। श्लोक 1216, एन.15 देखें
[49] देखें पृ. 82, एन. 2; 134; 275. संवाद भी देखें, i. 144.
[50] तुलना करें श्लोक 536, n. .
[51] कावेय्यमत्ता। मैंने कहीं और इसका गलत अनुवाद किया है। टीका के बिना मैंने वांगीसा को तालपुत (CCLXII) की तरह एक गायक, नाट या मूक कलाकार समझा था। उनमें कल्पनाशीलता और वाक्पटुता की क्षमता थी, लेकिन पुरानी परंपरा के स्थान पर नई कथा गढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यह शब्द साम्य. निक., i. 110 में फिर से आता है, जहाँ बुद्ध बैठे हुए, अपने पैर में चुभे हुए कांटे से उत्पन्न दर्द को दबाते हुए, मारा (मृत्युदेव/राक्षस) पूछते हैं कि वे सिर झुकाकर अलग क्यों बैठे हैं: क्या वे 'बेहोश' या चिंतित हैं, कावेय्यमत्ता, या केवल नींद आ रही है? टीका में लिखा है 'जैसे कि वे सोच रहे हों कि उन्हें क्या कहना है, जो उन्हें करना है उसके कारण पागल हो रहे हों।' यहां दोनों टिप्पणियों में काव्ययान-कब्बा-(ous: -काव्य-) कारकेन मत्ता, मनिता, संभविता, गरुकोडायं अपन्ना है। वान्गिसा की कहानी इस शब्द के चयन की व्याख्या करती है।
[52] खन्धे आयतनानी च धातुयो च. तुलना करें सिस्टर्स, भजन XXX, XXXVIII; मेरा बौद्ध धर्म भी, पृ. 70; और n. 2 के लिए, पृ. 119 f.; 241.
[53] शाब्दिक रूप से, व्यवस्था में शामिल चीज़ों के द्रष्टा - अर्थात्, दुनिया, भौतिक और नैतिक। टीका केवल बाद वाले पर ज़ोर देती है - संपत्तिनियाम, वह व्यवस्था जिसके द्वारा (संत) सफलता प्राप्त की जा सकती है।
[54] देखें XXVI., n.

[55] सी. सिस्टर्स, श्लोक 186.
[56] तुलना करें. IX.
[57] अभिज्ञा (उच्च ज्ञान) के छह रूपों में महारत हासिल करना । तुलना करें पृष्ठ 14, नोट 8, पृष्ठ 32, नोट 2 के साथ।
[58] निग्रोधा-कप्पा थेरा। यह प्रसंग सुत्त-निपात, श्लोक 342 एफएफ में भी दिया गया है। (एसबीई, एक्स., पी. 67 एफएफ.)।
[59] ओल्डेनबर्ग के सुझाव के अनुसार, चेट्वा के स्थान पर चेट्टा पढ़ें । टीका में इसका अर्थ चेडाको से लगाया गया है: 'संदेहों को काटने वाला।'
[60] गंगा पर स्थित आलवी नामक चेतिया (पूर्व-बौद्ध तीर्थस्थल) में विहार , बनारस से 12 योजन और सावत्थी से 30 योजन दूर।
[61] क्योंकि वह नियमित रूप से बरगद (निग्रोध) की छाया में बैठता था , और वहाँ भी अरहंत (प्रबुद्ध) हो गया (टीका)।
[62] अर्थात्, निर्वाण, जो न नष्ट होता है। वह बुद्ध को इस उपाधि से संबोधित कर रहे हैं (टीका)।
[63] शाब्दिक रूप से, देवों को।
[64] निब्बुतो के लिए निवुतो (टिप्पणी) समझें ।
[65] जानन्ताम् के लिए जानन्ताम् । बौद्ध और जैन सूत्र लगातार इन दो क्रियाओं को जोड़ते हैं।
[66] धोना, धुनाति का कर्ता-संज्ञा , जो द्वितीय में आता है। देखें सुत्त-निपाता, श्लोक 818।
[67] हमारा कॉमी. भी hi और va पढ़ता है.
[68] पारोपाराṃ। सी एफ सुत्त-निपात, पृ. 59, एन. 2, पी के साथ. 193, एन. हमारी टिप्पणी उस टिप्पणी की व्याख्या को संक्षेप में प्रस्तुत करती है: [लोकुट्टारा-] लोकियावसेना सुंदराṃ [असुंदराṃ] दूरे संतिकाṃ वा अरिया-धम्मन ती।
[69] शाब्दिक रूप से, 'बारिश सुनी हुई बात' - यानी, भाषण।
[70] हमारी टिप्पणी, पाठ के विपरीत, में nibbāyi so anupādiseso है।
[71] टीका के अनुसार, बुद्ध के बारे में जोड़े गए संदर्भ संकलनकर्ताओं द्वारा हैं। मैं यहाँ पंच-सेत्थो को उतना ही नहीं समझ पा रहा जितना टीकाकारों ने समझा। सुत्त-निपात टीका में दिया गया संकेत स्पष्ट रूप से गलत है। बुद्ध पाँचों में से एक नहीं थे, न ही सामाजिक अर्थ में ब्राह्मण (पुजारी) थे। हमारी टीका पाँच इंद्रियों या पाँच उपदेशों का सुझाव देती है, जो दोनों ही यहाँ अनुपयुक्त हैं। डॉ. न्यूमैन द्वारा मध्य देश के पाँच विभाजन और बर्बरों के चार भाग विश्व-प्रशंसा का अधिक तर्कसंगत विस्तार प्रस्तुत करते हैं, लेकिन मेरे विचार से इसका कोई पूर्व उदाहरण नहीं है। संभवतः, मूल पाठ केवल पुमा-सेत्थो जैसा कोई मिश्रित शब्द रहा होगा, जिसका अर्थ है पुरुषों का मुखिया। अब छंद श्लोकों की ओर मुड़ता है।
[72] यानी, सातवें बुद्ध। तुलना करें 403, n. 5.
[73] शाब्दिक रूप से, ब्राह्मण (पुजारी), लेकिन इसके मूल अर्थ में प्रयोग किया गया है: पवित्र, उत्कृष्ट।
[74] वचन और कर्म के बीच संगति को स्पष्ट रूप से तथागत के गुण के रूप में नामित किया गया है। इति-वुत्तक, Ī 112.
[75] निग्रोध-कप्पा, ज़ाहिर है, 'पुत्र' है। 'मनुष्य' का शाब्दिक अर्थ है द्विपाद। अंतिम श्लोक सुत्त-निपात में नहीं है। देवदेवम् शब्द एक बाद के स्रोत का संकेत देता है।
[76] नाग.

एन्वॉय
अपने 'शेर' की दहाड़ की प्रशंसा करते हुए,
बुद्ध के ये बच्चे, समझदार, निर्बल,
अपनी खोज की सुरक्षित और निश्चित शरण पाकर,
बुझ चुकी अग्नि की लौ (निर्वाण) की तरह धन्य शांति में रहते थे।

थेरीगाथा

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा

अंतर्वस्तु

1रिरी थेगाथा: संपूर्ण एवं विस्तृत संस्करण
1.1अध्याय 1: एकल छंद
1.2अध्याय 2: दो श्लोक
1.3अध्याय 3: तीन श्लोक
1.4अध्याय 4: चार श्लोक
1.5अध्याय 5: पाँचवाँ श्लोक
1.6अध्याय 6: छह श्लोक
1.7अध्याय 7: सात श्लोक
1.8अध्याय 8: आठ श्लोक
1.9अध्याय 9: नौ श्लोक
1.10अध्याय 10: श्लोक 10
1.11अध्याय 11: बारह श्लोक
1.12अध्याय 12: सेल श्लोक
1.13अध्याय 13: बीस श्लोक
1.14अध्याय 14
1.15अध्याय 15
1.16अध्याय 16: महान अध्याय
2थेरीगाथा: पुराना अपूर्ण एटीआई संस्करण
2.1अध्याय 1 - एकल श्लोक 1-18
2.2अध्याय 2 - जोड़ा गया
2.3अध्याय 3 - तीन श्लोकों का समूह {थिग्वैद्युत 39-62}
2.4अध्याय 4 - चार श्लोकों का समूह {थिग्वैथी 63-66}
2.5अध्याय 5 - पाँच श्लोकों का समूह {थिग्वैथी 67-126}
2.6अध्याय 6 - छह श्लोकों का समूह {थिग्वैथी 127-174}
2.7अध्याय 10
2.8अध्याय 12 - सेल श्लोकों का समूह {थिग 236-251}
2.9अध्याय 13 — लगभग बीस श्लोकों का समूह {थिग् 252-365}
2.10अध्याय 14 — लगभग तीस श्लोकों का समूह {थिग् 366-399}
3मूल पाली संस्करण
3.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
3.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

थेरिगाथा: संपूर्ण एवं विस्तृत संस्करण

थेरीगाथा (थेरी+गाथा) में थेरी (वरिष्ठ भिक्षुणियों) द्वारा रचित कविताएँ (गाथाएँ) शामिल हैं, जो बुद्ध के समय की सर्वोत्कृष्ट और पूर्णतः प्रबुद्ध (अरहत) थीं। ये असीम रूप से आत्मप्रबुद्ध भिक्षुणियाँ निर्वाण/निब्बान (दिव्य आयाम) के उस पार पहुँच चुकी थीं जहाँ शाश्वत आनंद और जीवन है। ये वृत्तांत उनके पदचिन्हों पर चलने की प्रेरणा देते हैं।

कुछ उल्लेखनीय वृत्तांत इस प्रकार हैं:

6.6 महा-प्रजापति-गोतामी - भगवान बुद्ध की रानी, मौसी और पालक माता। उन्होंने भिक्षुणी संघ की स्थापना की।

यशोदरा - भगवान बुद्ध की पत्नी - उनका वृत्तांत। वे अनेक पूर्व जन्मों में भगवान बुद्ध के साथ रहीं, आदि।

1.13 विशाखा

5.10 पताचारा - एक पागल स्त्री जिसने विवेक प्राप्त किया और ज्ञान प्राप्त किया।

10.1 किसा-गोतमी - बेटे की मौत ने उसे असहनीय पीड़ा दी, लेकिन रास्ते ने उसे राह दिखाई।
13.1 अंबपाली - वेसाली की पूर्व वेश्या।

परिचय: बुद्ध का जीवन और भिक्षुणियों (नन) के संघ की स्थापना
अध्याय 1: एकल छंद
1.1 वेसाली के एक कुलीन परिवार की एक थेरी, जिसे थेरिका के नाम से जाना जाता है।
1.2 मुत्ता, सावत्थी के एक ब्राह्मण (पुजारी) की बेटी
1.3 पुन्ना, सावत्थी के एक करोड़पति (सेट्ठी) की बेटी
1.4 तिस्सा, साकियों की बेटी, कपिलवत्थु
1.5 एक और थेरी तिस्सा
1.6 धीरा
1.7 वीरा
1.8 मित्ता
1.9 भद्र
1.10 उपसामा
1.11 मुत्ता, कोसलन ब्राह्मणों की बेटी और पत्नी
1.12 धम्मदिन्ना, एक कुलाधिपति (कुलगेहे) की बेटी, एक करोड़पति (सेट्ठी) (विशाखा) की पत्नी, दोनों राजगृह की, सबसे बड़ी नन जो उपदेशक थीं
1.13 विशाखा
1.14 सुमना
1.15 उत्तरा
1.16 सुमना, पसेनदी की बहन, कोसल के राजा
1.17 धम्म, सावत्थी के एक कुलाधिपति की बेटी
1.18 संघ

अध्याय 2: दो श्लोक
2.1 अभिरूपा-नंदा, शाक्यों की बेटी, कपिलवत्थु
2.2 जेंती (या जेंटा), लिच्छवियों की बेटी, वेसाली
2.3 सुमंगला की मां, गरीब लोगों की बेटी, एक भीड़-भाड़ वाले की पत्नी, सावत्थी
2.4 अद्धकासी, काशी के एक करोड़पति (सेट्ठी) की बेटी, पूर्व-वेश्या
2.5 सीता, राजगृह के महान अभिजात वर्ग की बेटी
2.6 मेत्तिका, राजगृह के एक ब्राह्मण की बेटी
2.7 मित्ता(2), साकियों की बेटी, कपिलवत्थु
2.8 अभय की माँ, पदुमवती, उज्जेनी की पूर्व गणिका
2.9 अभया, उज्जेनी के एक कुल के व्यक्ति की बेटी
2.10 सामा, कोसंबी के एक महान कुलीन की बेटी
अध्याय 3: तीन श्लोक
3.1 एक अन्य समा, कोसंबी के एक कुल के व्यक्ति की पुत्री
3.2 उत्तमा, सावत्थी के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, पताचारा की शिष्या
3.3 एक अन्य उत्तमा, कोसल के एक ब्राह्मण की पुत्री
3.4 दंतिका, कोसल के राजा सावत्थी के एक ब्राह्मण पुजारी
की पुत्री 3.5 उब्बिरी, सावत्थी के एक महान कुलीन परिवार की पुत्री, राजा की पत्नी
3.6 सुक्का, राजगृह के एक महान कुलीन परिवार की पुत्री, धम्मदिन्ना की शिष्या, उपदेशक के रूप में विख्यात
3.7 सेला, 'अलवी की पुत्री'
3.8 सोमा, एक ब्राह्मण की पुत्री, मगध के राजा (बिम्बिसार) की पुजारी
अध्याय 4: चार श्लोक

4.1 कपिलानी की भद्दा, जो कोसिया ब्राह्मण की पुत्री थी, सागला में रहती थी, महातीथ के पिप्पली कस्सपा (महा-कस्सपा) की पत्नी थी, जो पूर्व जन्मों को याद रखने वाले थेरियों में अग्रणी और एक विशिष्ट उपदेशक थी।

अध्याय 5: पाँच श्लोक
5.1 वड्ढेसी, अज्ञात परिवार की, बुद्ध की पालक माता, महान प्रजापति गौतमी की धाय।
5.2 विमला, वैशाली की एक वेश्या की पुत्री, पूर्व वेश्या।
5.3 सिहा, वैशाली के सेनापति सिहा की भतीजी।
5.4 सुंदरी-नंदा, कपिलवस्तु की शाक्य गौतमों की महान प्रजापति गौतमी (रानी, बुद्ध की पालक माता) की पुत्री, बुद्ध की छोटी (सौतेली) बहन।
5.5 नंदुत्तरा, कम्मसदम्मा के एक ब्राह्मण की पुत्री, पूर्व जैन, महान मोग्गलाना की शिष्या।
5.6 मित्तकली, कम्मसदम्मा के एक ब्राह्मण (पुजारी) की पुत्री।
5.7 शकुला या पाकुला, श्रावस्ती की एक ब्राह्मण (पुजारी), 'दिव्य दृष्टि' की क्षमता रखने वाली थेरियों में अग्रणी।
5.8 सोना, 'बहुपुट्टिका', एक सावत्थी के कुलवासी, दृढ़ इच्छाशक्ति में अग्रणी थेरी
5.9 भद्दा कुंडलकेसा, पूर्व जैन, राजगृह के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, एक ब्राह्मण सरदार की पत्नी, तीव्र अंतर्ज्ञान वाली थेरी
5.10 पताचारा, सावत्थी के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, अपने पिता के सेवक की पत्नी, विनय में निपुण थेरी 5.11 एक प्रख्यात शिक्षिका और नेता
5.11 पताचारा के अधीन तीस थेरी अपने अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा करते हैं
5.12 चंदा, एक गरीब ब्राह्मण की पुत्री
अध्याय 6: छह श्लोक
6.1 पताचारा की 'पाँच सौ' शोकग्रस्त माताएँ जिन्हें उन्होंने सांत्वना दी और दीक्षा दी।
6.2 वसित्थी, या वसेत्थी, वैशाली के एक कुल के सदस्य की पुत्री, एक ब्राह्मण की पत्नी, एक शिक्षिका।
6.3 खेमा, मगध के सगला में राजा के परिवार की पुत्री, राजा बिम्बिसार की पत्नी, राजगृह, अंतर्दृष्टि के लिए विख्यात थेरियों में अग्रणी, बुद्ध द्वारा एक आदर्श थेरी के रूप में स्थानित।
6.4 सुजाता, सकेता के एक करोड़पति (सेत्थी) की पुत्री, एक करोड़पति (सेत्थी) की पत्नी।
6.5 अनोपमा, सकेता के करोड़पति (सेत्थी) मज्झा की पुत्री।
6.6 महान महा-प्रजापति गौतमी, (बुद्ध की पालक माता, बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी, कपिलवस्तु की रानी और साथ ही भिक्षुणी संघ की प्रमुख)।
6.7 गुट्टा, एक ब्राह्मण की पुत्री। सवत्थी
6.8 विजया, राजगृह के एक कुल के व्यक्ति की बेटी

अध्याय 7: सात श्लोक
7.1 उत्तरा, सवत्थी कुल के व्यक्ति की बेटी, पटाचारा की शिष्या
7.2 चाला, नलका, मगध की ब्राह्मणी सुरूपासारी की बेटी, सारिपुत्त की बहन, भिक्खुओं (भिक्षुओं) के प्रमुख
7.3 उपाचला, चाला और सारिपुत्त की बहन
अध्याय 8: आठ श्लोक
8.1 शिशुपचला, चाला, उपचला और सारिपुत्त की बहन
अध्याय 9: नौ श्लोक
9.1 वड्ढा की माँ, भरूकच्छ (भरूच) के एक कुल के व्यक्ति की बेटी
अध्याय 10: ग्यारह श्लोक
10.1 श्रावस्ती के गरीब लोगों की पुत्री किसा-गोतामी, खुरदुरे वस्त्र पहनने वाली थेरी कन्याओं में अग्रणी थी।
अध्याय 11: बारह श्लोक
11.1 उप्पलवन्ना, सावत्थी के एक करोड़पति (सेट्ठी) की बेटी, इधि (जादुई क्षमता) रखने वाली थेरियों में अग्रणी, बुद्ध द्वारा खेमा के साथ भिक्कुनियों (ननों) में श्रेष्ठ स्थान दिया गया
अध्याय 12: सोलह श्लोक
12.1 पुन्ना या पुन्निका, जो सावत्थी के करोड़पति (सेठी) अनाथपिंडिका के घर में एक दासी की पुत्री थी, और जिसे उसने मुक्त कर दिया था।
अध्याय 13: बीस श्लोक
13.1 अम्बापाली, वैशाली की पूर्व दरबारी;

13.2 रोहिणी, वैशाली के एक ब्राह्मण (पुजारी) की पुत्री;
13.3 चापा, वंकाहारा के एक सिर काटने वाले (जेत्तकमिगलुद्दक) की पुत्री, उपक की पत्नी, पूर्व-आजीव (तपस्वी);
13.4 सुंदरी, श्रावस्ती के एक धनी ब्राह्मण सुजाता की पुत्री;
13.5 राजगृह की सुभा (सुनार की पुत्री)।

अध्याय 14
14.1 राजगृह के ब्राह्मण की पुत्री, जीवक के आम के बाग की सुभा
अध्याय 15
15.1 उज्जेनी के एक करोड़पति (सेट्ठी) की बेटी इसिदासी, साकेता (पटना) के एक करोड़पति (सेट्ठी) की पूर्व पत्नी
अध्याय 16: महान अध्याय
16.1 सुमेधा, कोंचा की बेटी, वारणावती के राजा
टिप्पणीकार-एनवोई

यशोदरा - भगवान बुद्ध की पत्नी - यह अपादान से लिया गया है। पूर्णता के लिए प्रदान किया गया है।

थेरिगाथा: पुराना अपूर्ण एटीआई संस्करण
नोट : पाली श्लोक संख्याएँ कोष्ठकों { } में दिखाई देती हैं।
अध्याय 1 — एकल श्लोक 1-18
थिग 1-18- अध्याय 1: एकल श्लोक (अंश)
अध्याय 2 — जोड़े
थिग 2 पीटीएस: थिग 19-38- अध्याय 2: छंदों के जोड़े (अंश) - अंततः अपने निर्लज्ज पति से मुक्त!
अध्याय 3 — तीन श्लोकों के समूह {थिग्वैद्युत 39-62}
थिग 3.2 पीटीएस: थिग 42-44- उत्तम - सात दिनों का निरंतर ध्यान। आठवें दिन: विजय!
थिग 3.4 अंक: थिग 39-62- दंतिका और हाथी - मन को वश में करना: "मैं सबसे पहले जंगल में क्यों गया था।"
थिग 3 पीटीएस: थिग 51-53- उब्बिरी: तीन छंदों के समूह (अंश) - एक माँ अपनी बेटी की मृत्यु पर अपने शोक पर विजय प्राप्त करती है।

अध्याय 4 — चार श्लोकों का समूह {थिग्वैथी 63-66}
थिग 4.1 पीटीएस: थिग 63-66- भद्दा कपिलानी - भद्दा अपने पूर्व पति (वेन. थेरा महा कस्सपा) को याद करती है, और गाती है कि कैसे अब वे दोनों कामवासनाओं से मुक्त हो गए हैं।
अध्याय 5 — पाँच श्लोकों के समूह {थिग्वैथी 67-126}
थिग 5.2 पीटीएस: थिग 72-76- विमला: पूर्व वेश्या - एक पूर्व वेश्या अरहंतों की श्रेणी में शामिल हो जाती है।
थिग 5.4 पीटीएस: थिग 82-86- नंदा: नंदा का दर्शन - शरीर की बुरी प्रकृति पर विचार करते हुए, नंदा सभी वासनाओं को जड़ से उखाड़ फेंकते हैं।
थिग 5.6 अंक: थिग 92-96- मित्तकली - लापरवाही का समय नहीं!
थिग 5.8 अंक: थिग 102-106- सोना: दस बच्चों की माँ - सोना बुढ़ापे पर विजय प्राप्त करती है: "मैं बुढ़ापे को थूकती हूँ!"
थिग 5.9 अंक: थिग 107-111- भद्दा कुंडलकेसा: पूर्व जैन तपस्वी - भद्दा पीछे मुड़कर देखती है और उस व्यक्ति को धन्यवाद देती है जिसने बहुत पहले उसे वस्त्र दिया था जब वह बेघर जीवन में निकली थी।
थिग 5.10 अंक: थिग 112-116- पटाकारा - "और एक पिन लेकर, मैंने बाती को बाहर निकाल दिया..."
थिग 5.11 पीटीएस: थिग 117-121- पटाकारा के तीस छात्र - पटाकारा के निर्देश उनके सभी छात्रों को अरहंत पद की ओर ले जाते हैं।
थिग 5.12 पीटीएस: थिग 122-126- कैंडा: भिखारी - एक पूर्व भिखारी अरिहंत बन जाता है।
अध्याय 6 — छह श्लोकों के समूह {थिग्वैथी 127-174}
थिग 6.1 पीटीएस: थिग 127-132- पंचासाटा पटाकारा: पटाकारा के 500 छात्र - शोक का शमन। एक माँ अपने बेटे की मृत्यु पर अपने शोक पर विजय प्राप्त करती है: "जैसा वह आया था, वैसा ही चला गया - तो शोक करने की क्या बात है?"
थिग 6.2 पीटीएस: थिग 133-138- वासित्थी पागल औरत - एक माँ अपने बेटे की मौत पर अपने दुख पर विजय प्राप्त करती है।
थिग 6.4 पीटीएस: थिग 133-138- भिक्खुनी सुजाता के अंतिम ज्ञान के श्लोक - जब संयोग से वह एक मठ के पास से गुजरी, तो उसका जीवन हमेशा के लिए बदल गया।

थिग 6.5 अंक: थिग 151-156- अनोपमा, करोड़पति की बेटी - एक धनी उत्तराधिकारी धम्म सुनती है और गैर-वापसी करने वाली बन जाती है।
थिग 6.6 पीटीएस: थिग 157-162 - महा पजापति (गोतमी) थेरी: एक माँ का आशीर्वाद - अर्हंतत्व प्राप्त करने के बाद, पजापति गोतमी (गौतम बुद्ध की चाची और सौतेली माँ) बुद्ध की स्तुति गाती हैं।
थिग 6.7 पीटीएस: थिग 163-168- गुट्टा - बुद्ध निःसंतान माँ को अमरता की खोज में प्रोत्साहित करते हैं।

अध्याय 10
थिग 10 अंक: थिग 213-223- किसागोतमी थेरी — मृत शिशु वाली स्त्री। किसागोतमी, जो अब एक अरहंत हैं, अपने लंबे, कठिन और दुख भरे जीवन को याद करते हुए कहती हैं: "तुम्हारे आँसू हजारों जन्मों के लिए बहे हैं।"
अध्याय 12 — सोलह श्लोकों का समूह {थिग् 236-251}
थिग 12.1 पीटीएस: थिग 236-251- पुन्निका: पुन्निका और ब्राह्मण - पुन्निका एक ब्राह्मण को अपने शुद्धिकरण जल-अनुष्ठानों को त्यागने के लिए मना लेती है - आखिरकार, अगर स्नान पवित्र होता, तो मेंढक, कछुए और मछली सभी शुद्ध होते!
अध्याय 13 — लगभग बीस श्लोकों के समूह {थिग् 252-365}
थिग 13.1 अंक: थिग 252-270 - अंबपाली - एक पूर्व दरबारी महिला - अब एक अरहंत - बताती है कि कैसे उम्र बढ़ने ने उसकी युवावस्था की सुंदरता को पूरी तरह से मिटा दिया है। उम्र बढ़ने के प्रभावों का एक उत्कृष्ट चित्रण।
थिग 13.2 पीटीएस: थिग 271-290- रोहिणी - दीक्षा से पहले, रोहिणी अपने पिता के इस आरोप का जवाब देती है कि भिक्षु आलसी होते हैं। वास्तव में, वह कहती है, "वे सबसे अच्छा काम करते हैं।"
थिग 13.5 अंक: थिग 339-367- सुभा: सुनार की बेटी - सुभा अपने परिवार के उसे कामुकता और धन की दुनिया में वापस लुभाने के प्रयासों का विरोध करती है, और जल्द ही एक ऐसा खजाना खोजती है जो किसी भी सोने या चांदी की मात्रा से अधिक मूल्यवान है।
अध्याय 14 — लगभग तीस श्लोकों का समूह {थिग् 366-399}
थिग 14.1 पीटीएस: थिग 366-399 - सुभा जीवकंबवनिका: सुभा और व्यभिचारी - जंगल में अकेली रहने वाली अरहंत भिक्षुणी सुभा को एक कामुक व्यक्ति परेशान करता है। सुभा द्वारा उसे दिया गया "विशेष उपहार" उसे तुरंत हृदय परिवर्तन करा देता है। एक शानदार कहानी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.6
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||55|| ------>>>> अगला

6.6 महान महा-प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता, बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी, कपिलवस्तु की रानी और भिक्षुणी संघ की प्रमुख)
उनका जन्म उस समय हुआ जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, हंसवती नगर में एक कुलवासी परिवार में। गुरु के उपदेश सुनकर और एक भिक्षुणी को अनुभव का प्रमुख स्थान देते हुए, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन उन्हें भी ऐसा ही स्थान प्राप्त होगा। फिर, अनेक जन्मों के बाद, उनका पुनर्जन्म बुद्ध-शून्य युग में, कश्यप और हमारे बुद्ध के बीच, बनारस में 500 दासियों में से एक के रूप में हुआ। अब, जब वर्षा ऋतु निकट आई, तो पाँच मौन बुद्ध नंदमूलक पर्वत-गुफा से भिक्षा मांगने के लिए इसिपताना आए; और उन स्त्रियों ने अपने पतियों से वर्षा ऋतुओं के दौरान बुद्धों के लिए पाँच कुटियाएँ बनवाईं और उस दौरान उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की। बनारस के पास एक बुनकर के गाँव में मुखिया के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ और उन्होंने फिर से मौन बुद्धों की सेवा की। अंततः, हमारे गुरु (बुद्ध) के हमारे पास आने से कुछ समय पहले, देवदहा में महा-सुप्पबुद्ध के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका पारिवारिक नाम गौतमा था और वे महान माया (बुद्ध की माता) की छोटी बहन थीं। जन्मचिह्नों के व्याख्याकारों ने कहा कि दोनों बहनों की संतानें चक्र-चालक शासक (सम्राट) होंगी। अब, राजा सुद्धोदन (बुद्ध के पिता) जब वयस्क हुए, तो उन्होंने एक उत्सव आयोजित किया और दोनों बहनों का विवाह कराया। इसके बाद, जब हमारे गुरु (बुद्ध) का उदय हुआ और वे धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के उत्तम चक्र को घुमाते हुए आत्माओं का पालन-पोषण कर रहे थे, तब उनके पिता वैशाली, जो अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर चुके थे, का निधन हो गया।
तब महान प्रजापति ने संसार त्यागने की इच्छा से गुरु (बुद्ध) से दीक्षा मांगी, लेकिन उन्हें दीक्षा नहीं मिली। तब उन्होंने अपने बाल कटवाए, वस्त्र धारण किए और कलह और विवाद पर आधारित सुत्तंत के प्रवचन के अंत में, वे शीघ्र ही चली गईं और उन 500 शाक्य स्त्रियों के साथ, जिनके पतियों ने संसार त्याग दिया था, वैशाली गईं और आनंद थेरा के माध्यम से गुरु से दीक्षा प्राप्त करने का अनुरोध किया। उन्हें दीक्षा और भिक्षुणियों के लिए आठ अतिरिक्त नियम प्राप्त हुए।

इस प्रकार दीक्षा प्राप्त करने के बाद, महान प्रजापति आईं और गुरु को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं। तब गुरु ने उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया; और उन्होंने अभ्यास और साधना से शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही उन्हें अंतर्ज्ञान और विश्लेषणात्मक ज्ञान भी प्राप्त हुआ। शेष 500 भिक्षुणियों को नंदक के प्रवचन के बाद अंतर्ज्ञान ज्ञान की छह शाखाओं से संपन्नता प्राप्त हुई।[1]
एक दिन, जब गुरु (बुद्ध) महान जेतवन वन विहार में आर्यों (भिक्षुओं और भिक्षुणियों) की सभा में विराजमान थे, तब उन्होंने महान प्रजापति गौतमी को ज्ञान में सर्वोपरि स्थान दिया। गौतमी, जो पूर्ण ज्ञान और निर्वाण के आनंद में लीन थीं, ने एक दिन गुरु के समक्ष अपनी अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा करके और उनके सद्‌गुणों की प्रशंसा करके अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।
बुद्ध, ज्ञान प्राप्त, महान!

सभी जीवित प्राणियों से श्रेष्ठ,

जिसने समस्त कष्टों और दुखों से मुक्ति दिलाई है

मैं और बहुत से पीड़ित लोग। (157)

अब मुझे समझ में आ गया है कि दुख कैसे आता है।

मेरे भीतर की लालसा, यानी कारण, सूख गई है।

क्या मैं नहीं चला, क्या मैंने अंत को नहीं छुआ?

आर्य (कुलीन) अष्टांगिक मार्ग पर कष्टों के बारे में? (158)

ओह! लेकिन मैं तो बहुत लंबे समय से इस राह पर भटकता आ रहा हूँ।

मां, पिता, भाई, पुत्र के रूप में जीवन जीना

और बीते युगों में (पिछले जन्मों में) दादा-दादी के रूप में—

चीजों की असलियत न जानना,

और मुझे जो चाहिए था वह कभी नहीं मिला। (159)

लेकिन अब मेरी आँखों ने भगवान बुद्ध के दर्शन कर लिए हैं;

और अब मुझे पता है कि यह जीवित शरीर आखिरी है,

और जन्मों का अंतहीन चक्र चकनाचूर हो गया है।

अब मैं कभी पुनर्जन्म नहीं लूंगा! (160)

उस मंडली को देखो जो उसके बारे में जानती है—

भाईचारे की सुखद सद्‌भावना में,

अत्यंत ऊर्जावान और दृढ़ निश्चयी,

निरंतर दृढ़ता से लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए—

यह बुद्धों को दी गई सबसे श्रेष्ठ श्रद्धांजलि है। (161)

ओह! निश्चित रूप से अनगिनत जिंदगियों के भले के लिए।

क्या माया बहन ने गौतम को जन्म दिया था?

हमारे दुखों के बोझ को दूर करने वाला,

जो रोग और मृत्यु के बोझ से दबे हुए पड़े थे! (162)

[1] इद्धि (जादुई क्षमता), किसी भी स्थान की शुद्ध श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) की स्मृति, अन्य प्राणियों के पूर्व जन्म, भीतर आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का निवारण, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

प्रजापति गौतमी, रानी महा माया की छोटी बहन और राजा सुद्धोदन की दूसरी पत्नी थीं। उन्हें महा (महान) प्रजापति कहा जाता था क्योंकि ऋषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक विशाल अनुयायी समूह की नेता बनेंगी। जब उनकी प्रिय बहन ने राजकुमार सिद्धार्थ को जन्म देने के सात दिन बाद देहांत कर दिया, तो वे अत्यंत दुखी हुईं। वे बहनें बहुत करीब थीं। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी बहन के बच्चे को अपने बच्चे की तरह पालेंगी।

अपने पुत्र नंदा की देखभाल का जिम्मा नर्सों को सौंपकर, महा प्रजापति ने नवजात शिशु की देखभाल की। राजा सुद्धोदन और महा प्रजापति दोनों ही सौम्य राजकुमार को बहुत प्यार करते थे। राजकुमार सिद्धार्थ अपने सौतेले भाई और सौतेली बहन, महा प्रजापति के दो बच्चों, नंदा और नंदा के साथ विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत हुए।

जब बुद्ध कपिलवस्तु आए और उन्होंने राजा सुद्धोदन को धम्मपाल जातक का उपदेश दिया, तब महा प्रजापति ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न प्राप्त की। राजा सुद्धोदन के देहांत के बाद, महा प्रजापति ने निश्चय किया कि वे भी दीक्षा ग्रहण करेंगी और बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करेंगी। उनके पुत्र नंदा और पोते नन्हे राहुल ने भी बुद्ध के मार्गदर्शन में दीक्षा ग्रहण कर ली थी। प्रजापति को सांसारिक सुखों की कोई इच्छा नहीं रही।

बुद्ध कपिलवस्तु में शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी के जल को लेकर हुए विवाद को सुलझाने के लिए आए थे, तभी महा प्रजापति ने उनसे महिलाओं को दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति देने का अनुरोध किया। बुद्ध ने कारण बताए बिना ही मना कर दिया और कहा, "हे गौतमी, यह तुम्हें भाए नहीं कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।" लेकिन महा प्रजापति ने हार नहीं मानी। उन्होंने दूसरी और तीसरी बार भी महिलाओं के लिए दीक्षा का अनुरोध किया। हर बार बुद्ध ने एक ही उत्तर दिया।

इसके बाद बुद्ध वैशाली चले गए और कुटागारा हॉल में स्थित महावन में निवास करने लगे। दृढ़ निश्चयी महा प्रजापति हतोत्साहित नहीं हुईं। अपने बाल मुंडवाकर, उन्होंने भिक्षुणी के पीले वस्त्र धारण किए और शाक्य स्त्रीयों के एक बड़े दल के साथ 150 मील की दूरी तय करके वैशाली पहुँचीं। धूल से सनी, सूजे और लहूलुहान पैरों के साथ, वह हॉल के बाहर खड़ी रो रही थीं। जब बुद्ध के निजी सेवक आनंद ने उन्हें देखा और उनके दुःख का कारण सुना, तो उन्होंने उनकी ओर से बुद्ध से विनती करने का निश्चय किया।

करुणामय आनंद ने स्त्रियों की ओर से विनती की। जब बुद्ध ने इनकार कर दिया, तो आनंद ने उनसे पूछा कि क्या वे यह मानते हैं कि स्त्रियाँ आध्यात्मिक ऊँचाइयों और अरहंतत्व को प्राप्त करने में असमर्थ हैं? बुद्ध ने उत्तर दिया कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान आध्यात्मिक

विकास प्राप्त करने में सक्षम हैं। फिर उन्होंने महा प्रजापति के पिछले जन्मों को देखा। यह देखकर कि महा प्रजापति ने कई युगों पहले भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की इच्छा की थी, जिसकी पूर्ति उनके शासनकाल में होनी थी, बुद्ध ने दया दिखाई, आनंद की विनती स्वीकार की और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की।

बुद्ध ने महा प्रजापति को शुरू में मना करने का कारण नहीं बताया। अतीत के सभी बुद्धों के साथ भिक्षुणियों का संघ था। गौतम बुद्ध ने इसे देखा होगा और महसूस किया होगा कि स्त्री संघ प्रत्येक बुद्ध के अनुयायी का अभिन्न अंग है। इसलिए, कुछ लोगों का मानना है कि वे प्रजापति के दृढ़ संकल्प और संकल्प की परीक्षा ले रहे थे, क्योंकि महिलाओं, विशेषकर राजपरिवार की महिलाओं के लिए पवित्र जीवन कठिन और कई कठिनाइयों से भरा होता है। कुछ का यह भी मानना है कि शुरू में मना करने का कारण उस समय समाज और महिलाओं के प्रति उसका व्यवहार था, और बुद्ध को स्त्री संघ की सुरक्षा की चिंता थी। सामान्य तौर पर, यह माना जाता है कि शुरू में मना करने का उद्देश्य कुलीन महिलाओं के दृढ़ संकल्प और संकल्प को मजबूत करना और उन्हें भविष्य में आने वाली कठिनाइयों के लिए बेहतर ढंग से तैयार करना था।

बुद्ध के समय भारत में महिलाओं को पुरुषों से हीन समझा जाता था। उन्हें ज्यादा स्वतंत्रता नहीं थी और अक्सर उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया जाता था। कुलीन परिवारों की महिलाओं को सावधानीपूर्वक एकांत में रखा जाता था और दुर्व्यवहार से बचाया जाता था। पुरुष महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करते थे। बुद्ध के शिष्य अक्सर जंगलों में ध्यान करते थे और सुनसान सड़कों पर अकेले ही एक शहर से दूसरे शहर पैदल चलकर धम्म का प्रचार करते थे। वे भिक्षुणियों की सुरक्षा और संरक्षण कैसे सुनिश्चित करते? वे यह कैसे सुनिश्चित करते कि उनके साथ सम्मान और निष्पक्षता से व्यवहार किया जाए? वे भिक्षुणियों की सुरक्षा का जिम्मा ब्रह्मचर्य का व्रत लेने वाले भिक्षुओं को कैसे सौंपते? क्या इससे भिक्षुओं के लिए अनुशासन बनाए रखना और भी कठिन नहीं हो जाता?

बुद्ध ने भिक्षुणियों के लिए आठ अतिरिक्त अनुशासनात्मक (विनय) नियम निर्धारित किए, जिनमें से अधिकांश इस बात से संबंधित थे कि उन्हें भिक्षुओं का सम्मान और आदर कैसे करना होगा, जिन्हें आवश्यकतावश उनकी रक्षा करनी होगी। उन्होंने यह भविष्यवाणी भी की कि भिक्षुणियों के दीक्षा लेने से पृथ्वी पर उनके उपदेशों का समय कम हो जाएगा।

आधुनिक जगत की कुछ महिलाओं को इनमें से कुछ नियमों को स्वीकार करना कठिन लग सकता है, लेकिन बुद्ध द्वारा शुरू किए गए साहसिक और क्रांतिकारी परिवर्तन को पूरी तरह से समझने के लिए हमें इन्हें बुद्ध के समय की महिलाओं की भूमिका और स्थिति के संदर्भ में देखना चाहिए।

महिलाओं पर लागू होने वाले आठ मठवासी नियम इस प्रकार थे:

1. एक भिक्षुणी को हमेशा भिक्षु का आदर करना चाहिए, भले ही वह संघ में उससे कनिष्ठ हो। भिक्षुओं में कनिष्ठ भिक्षु वरिष्ठ भिक्षुओं का आदर करते थे, ठीक उसी प्रकार जैसे कनिष्ठ भिक्षुणियां वरिष्ठ भिक्षुणियों का आदर करती थीं।

2. एक भिक्षुणी को वर्षा ऋतु ऐसे स्थान पर नहीं बितानी चाहिए जहाँ भिक्षु न हों। (बुद्ध के समय भारत में महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण के कारण भिक्षुणियों की सुरक्षा के लिए यह सावधानी आवश्यक थी)।

3. महीने में दो बार भिक्षुणी को भिक्षुओं से मठवासी अनुशासन (उपोसथ) के पाठ का समय पूछना चाहिए और भिक्षुणियों (जो मठवासी नियमों से विचलित हो गई हैं) को सलाह और चेतावनी देने के लिए किसी भिक्षु को भेजने का अनुरोध करना चाहिए।

4. वर्षा ऋतु के दौरान हुए एकांतवास की समाप्ति पर, भिक्षुओं और भिक्षुणियों की एक सभा में अंतिम समारोह आयोजित किया जाएगा।

5. भिक्षुणियों द्वारा किए गए कुछ अपराधों का निपटारा भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों की सभाओं द्वारा किया जाना चाहिए। भिक्षुणियों की सभा केवल छोटे-मोटे अपराधों और महिलाओं से संबंधित कुछ व्यक्तिगत मामलों पर ही विचार करती है।

6. एक नवदीक्षित भिक्षुणी को दो वर्ष के प्रशिक्षण के बाद उच्च दीक्षा प्राप्त होगी। ऐसे उदाहरण भी हैं जब भिक्षुओं को दीक्षा के तुरंत बाद उच्च दीक्षा दी गई थी।

7. किसी भी परिस्थिति में एक भिक्षुणी को किसी भिक्षु को फटकार नहीं लगानी चाहिए। 8.

यद्यपि भिक्षुणियां भिक्षुओं को उपदेश नहीं दे सकतीं, फिर भी एक भिक्षु उस भिक्षुणी को उपदेश दे सकता है जिसने मठवासी अनुशासन का उल्लंघन किया हो।

महा प्रजापति और उनकी शाक्य स्त्रियों के समूह ने आठ अतिरिक्त अनुशासन नियमों को स्वीकार किया और बुद्ध से दीक्षा प्राप्त की। बुद्ध भिक्षुणियों (भिक्षुओं) के संघ की स्थापना करने वाले पहले धार्मिक शिक्षक थे। भिक्षुणियों को भी भिक्षुओं के समान ही मठवासी नियमों का पालन करना सिखाया गया। बुद्ध ने अपनी बढ़ती हुई भिक्षुणी मंडली की सहायता के लिए दो प्रमुख महिला शिष्यों को नियुक्त किया (जैसे उन्होंने दो प्रमुख पुरुष शिष्यों को नियुक्त किया था)। इसके बाद, परिस्थितियों के अनुसार अनुशासन में नए नियम जोड़े गए। उदाहरण के लिए, भिक्षुणी उप्पलावन्ना से संबंधित एक घटना के बाद भिक्षुणियों को जंगलों में अकेले ध्यान करने और निवास करने की अनुमति नहीं थी।

भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए बुद्ध का मठवासी अनुशासन (पाँच ग्रंथ) एक अनुकरणीय लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिससे हम आज भी सीख सकते हैं। संघ के असाधारण रूप से उच्च नैतिक मानक और बुद्ध द्वारा स्थापित अद्वितीय प्रशासनिक व्यवस्था सुविचारित और दूरदर्शी थी। भारत के पूर्व वायसराय लॉर्ड ज़ेटलैंड लिखते हैं, "और यह जानकर कई लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि दो हज़ार वर्ष और उससे भी अधिक समय पहले भारत में बौद्धों की सभाओं में हमारी वर्तमान संसदीय प्रणाली के मूल तत्व पाए जाते हैं।"

कुछ ही समय बाद, महा प्रजापति ने अरहंत पद के साथ-साथ अंतर्ज्ञान और विश्लेषणात्मक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। उनकी शाक्य स्त्रियों का समूह भी अरहंत पद प्राप्त कर चुका था। महा प्रजापति को वरिष्ठता और अनुभव में सर्वोच्च स्थान दिया गया।

कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, प्रजापति ने बुद्ध और अपनी प्रिय बहन माया को प्रणाम किया, जिन्होंने शिशु को जन्म दिया था।

महा प्रजापति ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में भिक्षुणियों के संघ की स्थापना करने की इच्छा रखी थी। उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा को एक अन्य भिक्षुणी को इसी प्रकार की उपाधि प्रदान करते हुए देखा था। उस भिक्षुणी से प्रेरित होकर, उन्होंने भविष्य के किसी बुद्ध के समय में इसी प्रकार का पद प्राप्त करने की कामना की थी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध और उनके अनुयायियों को दान दिया और अपनी इच्छा व्यक्त की। बुद्ध ने उनकी इच्छा की पूर्ति को भांपते हुए भविष्यवाणी की थी कि गौतम बुद्ध के समय में वे भिक्षुणियों में वरिष्ठता और अनुभव में अग्रणी होंगी और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना करेंगी। इस समय से महा प्रजापति ने पुण्य कर्म किए और धम्म का अभ्यास करने के लिए अथक प्रयास किया।

अगली प्रलेखित जन्म कथा उस समय की है जब कोई सर्वोच्च बुद्ध नहीं थे। प्रजापति का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था और उनकी सेवा में 500 दासियाँ थीं। उन्होंने पाँच पच्चेक बुद्धों को बरसाती ऋतु में आश्रय की तलाश में शहर आते देखा था। अपनी दासियों के साथ मिलकर उन्होंने बुद्धों के लिए पाँच आश्रय स्थल बनवाए और उन्हें सुसज्जित किया। फिर उन्होंने पाँच पच्चेक बुद्धों को आमंत्रित किया और अपनी दासियों के साथ मिलकर वर्षा ऋतु के तीनों महीनों तक उन्हें भोजन कराया। ऋतु के अंत में, अपनी दासियों के साथ मिलकर उन्होंने बुद्धों को भेंट करने के लिए कथिना वस्त्र सिले। मृत्यु के बाद प्रजापति और उनकी पाँच सौ दासियाँ स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेकर दीर्घकाल तक स्वर्गिक सुखों का आनंद लेती रहीं।

उनका अगला प्रलेखित जन्म महा प्रजापति के रूप में हुआ, जो राजकुमार सिद्धार्थ की पालक माता और मौसी थीं। दृढ़ संकल्प और अथक परिश्रम से उन्होंने एक लाख विश्व चक्र पूर्व की अपनी मनोकामना को पूरा करने के लिए असंख्य युगों तक धम्म का अभ्यास किया।

वैशाली के लिच्छवी राजाओं ने महा प्रजापति और उनके साथ आईं पाँच सौ शाक्य राजकुमारियों के लिए एक विशाल मठ बनवाया। प्रजापति सभी भिक्षुणियों के लिए, विशेष रूप से कुलीन वर्ग की अन्य महिलाओं के लिए एक आदर्श थीं। उन्होंने उन्हें भिक्षुणी के एकांत और संयमी जीवन में ढलने के लिए प्रोत्साहित किया और सहायता प्रदान की। उन्होंने ननदियों के अध्यापन और प्रशासन में भी सहयोग दिया। जब महा प्रजापति 120 वर्ष की आयु के निकट पहुँचीं, तो उन्हें अहसास हुआ कि उनके पास जीने के लिए अधिक समय नहीं बचा है। अब समय आ गया था कि वे बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करें, जिन्होंने उन्हें धम्म का अमृत सिखाया था और निर्वाण प्राप्त करने में उनकी सहायता की थी। बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने कहा:
"हे प्रभु! मैंने आपका भौतिक शरीर तो उत्पन्न किया, लेकिन

आपने मेरे आध्यात्मिक शरीर का जिक्र किया।

मैंने तुम्हें अपना दूध पिलाया, लेकिन

आपने मुझे धम्म का दूध पिलाया।

दुख और संसार का नाश करने के लिए।

बुद्ध की प्रतिमा के दर्शन करने का यह एक दुर्लभ अवसर है।

मैं दर्शन करना और श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहूंगा।

आपके कमल जैसे चरणों में।

कृपया अपने पैरों को आगे की ओर फैलाएं।

बुद्ध ने करुणा से अपने चरण फैलाए, जो गुलाबी कमल के समान थे। उनके चरणों में गिरकर और प्रबुद्धता के प्रतीक महान चिह्नों का आदर करते हुए, प्रजापति ने उनकी आराधना की और अपनी किसी भी कमी के लिए क्षमा मांगी। फिर उन्होंने परलोक जाने की अनुमति मांगी।

प्रजापति के निकट परलोक जाने की खबर दूर-दूर तक फैल गई। भिक्षु और भिक्षुणियां उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एकत्रित हुए। सारिपुत्त, मोग्गलाना, नंदा, राहुल, आनंद, खेमा, उप्पलावन्ना और कई अन्य लोग वैशाली में एकत्रित हुए। आनंद, जो उस समय केवल सोतापन्ना थे, रोने लगे। प्रजापति ने उन्हें यह याद दिलाकर सांत्वना दी कि उन्होंने बुद्ध से उनकी ओर से भिक्षुणियों के संघ की स्थापना के लिए कहकर उनकी कितनी बड़ी सेवा की थी। फिर उन्होंने आनंद को धीरे से समझाया कि वे न रोएं, क्योंकि सबसे श्रेष्ठ भिक्षु का रोना उचित नहीं था।

बुद्ध ने स्त्रियों की बौद्धिक क्षमताओं को स्वीकार किया था, फिर भी अनेक पुरुष वर्षों से अपने अंतर्विचारों को बदलने को तैयार नहीं थे। बुद्ध ने प्रजापति को बुलाकर कहा, "हे गौतमी, आप जैसी स्त्री (पूर्व रानी) का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है। उन मूर्ख पुरुषों के भ्रम को दूर करने के लिए कोई चमत्कार कीजिए जो स्त्रियों की आध्यात्मिक क्षमताओं के प्रति संशय में हैं।"

तब प्रजापति वायु में उठीं और फिर नीचे आकर बुद्ध की आराधना की। उन्होंने तीन बार इस प्रकार उन्हें प्रणाम किया, फिर वे अंतर्धान हो गईं और भीड़ के सामने पुनः प्रकट हुईं। अंत में बुद्ध से परिनिर्वाण प्राप्त करने की अनुमति स्वीकार करके, वे बुद्ध पर दृष्टि रखते हुए पीछे की ओर नन आश्रम की ओर चलीं। बुद्ध ने सभी को उनके अंतिम विदाई के लिए उनके पीछे चलने का निर्देश दिया। प्रजापति नन आश्रम में प्रवेश कर गईं और पद्मासन में बैठकर गहन ध्यान में लीन हो गईं, ध्यान अवस्था को प्राप्त किया और परिनिर्वाण के आनंद में विलीन हो गईं।

लिच्छवी राजाओं ने प्रजापति के अवशेषों को सोने के ताबूत में रखा और भव्य जुलूस के साथ शहर में घुमाया। महा प्रजापति के अंतिम संस्कार में बुद्ध का अपनी पालक माता और सभी माताओं के प्रति आदर स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। बुद्ध, जो कभी किसी के पीछे नहीं चलते थे, उनके पार्थिव शरीर को ले जा रहे रथ के पीछे-पीछे चले। इस प्रकार, बुद्ध ने अपने उदाहरण से हमें दिखाया कि हमें अपनी माताओं का आदर और सम्मान करना चाहिए, क्योंकि जब हम छोटे थे और अपना ख्याल रखने में असमर्थ थे, तब उन्होंने हमारी देखभाल और प्यार किया। सैकड़ों भिक्षु और भिक्षुणियां श्मशान घाट तक रथ के पीछे-पीछे चले। फिर ताबूत को चंदन की चिता पर रखा गया और उस पर चमेली और अन्य सुगंधित तेल छिड़के गए। इसके बाद लिच्छवी राजाओं ने चिता को प्रज्वलित किया।

कहा जाता है कि महा प्रजापति के अवशेष चमकते मोतियों की तरह सफेद हो गए थे। आनंद ने अवशेषों को एकत्र किया और उन्हें बुद्ध को सौंप दिया, और बाद में लिच्छवी राजाओं को। राजाओं ने महा प्रजापति के अवशेषों को स्थापित करने के लिए एक स्तूप का निर्माण करवाया। विश्व भर की महिलाएं भिक्षुणी संघ की शुरुआत करने के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हुए महा प्रजापति को सम्मान और श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 28.यशोधरा, भगवान बुद्ध की पत्नी

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

<<<< पिछला । अगला >>>>

यह पृष्ठ वास्तव में अपदाना ग्रंथ से संबंधित है। यह भगवान बुद्ध की पत्नी, यशोदरा के बारे में है, जिन्हें यशोवती, भद्धकंचना या बिम्बादेवी भी कहा जाता है। वे अपनी सास, रानी महा-प्रजापजी-गोतमी के साथ भिक्षुणी बन गईं और भिक्षुणियों के लिए बने अलग मठ में रहने लगीं। उन्होंने धम्म के मार्ग पर चलते हुए सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध के परिवार के बारे में बौद्ध धर्म से संबंधित अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न 20 भी देखें ।
78 वर्ष की आयु में अपने शरीर त्यागने के दिन उन्होंने ये बातें कहीं:

28. यशोदरा (बुद्ध की पत्नी)

एक समय पुरुषों का नेता राजगाह शहर में एक पहाड़ी गुफा में ठहरा हुआ था।

जो सुंदर और समृद्ध था। [952]693

उस समय यही तर्क दिया गया था।

उस नगर में निवास करने वाली यशोधरा नामक भिक्षुणी द्वारा,

एक सुंदर मठ के अंदर [वहाँ]: [953]

"नंदा, राहुल (पुत्र) और भद्दा; साथ ही दो प्रमुख अनुयायी; सुद्धोदन महाराजा (राजा और ससुर) ।"

और गोतमी प्रजापति (रानी, बाद में भिक्षुणियों की प्रमुख); [954]

महान ख्याति के महान थेरा; और महान शक्तियों वाली थेरी:694 वे शांतिपूर्ण [निर्वाण] में चले गए हैं, दीपक की लौ की तरह निशानहीन। [955]

जब तक संसार का स्वामी जीवित है, मैं भी उस शांतिपूर्ण मार्ग पर चलूंगा।" और इन सब बातों पर विचार करने के बाद,

उसने अपने जीवन के अंत का पूर्वाभास कर लिया था। [956]

यह पूर्वाभास करते हुए कि जीवन के सभी तत्व उसी दिन नष्ट हो जाएंगे, वह अपने आश्रम से निकल पड़ी।

अपना वस्त्र और कटोरा लिए हुए। [957]

एक लाख 695 भिक्षुणियों द्वारा सम्मानित, [यशोधरा नामक भिक्षुणी,] अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत बुद्धिमान,

[तब] संबुद्ध के पास गया। (1) [958]

संबुद्ध की पूजा करने के बाद,

पहिए के निशान वाले [पैरों के तलवों] पर, एक तरफ बैठे हुए [उसके बगल में]

उसने शिक्षक से ये शब्द कहे: (2) [959]

693 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

694 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

695 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

अब मेरी उम्र अठहत्तर वर्ष हो गई है, बुढ़ापे का अंतिम चरण आ चुका है;

मैं महान ऋषि को रिपोर्ट कर रहा हूँ:

मैंने गुफा में [संतत्व] प्राप्त किया है। (3) [960]

अब मेरे लिए बुढ़ापा परिपक्व हो चुका है;

सचमुच मेरा जीवन तुच्छ है। मैं तुम्हें सब कुछ त्यागकर चला जाऊंगा।

मेरी शरण स्वयं में ही बनी है। (4) [961]

बुढ़ापे के अंतिम दिनों में,

मृत्यु शरीर को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ देती है;

आज रात को, महान नायक,

मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। (5) [962]

जहां न जन्म है, न बुढ़ापा, न बीमारी और न मृत्यु, हे महान ऋषि, मैं उस महान नगर की ओर जा रहा हूँ।

[जो,] बिना शर्त, उसकी कोई मृत्यु नहीं होती। (6) [963]

इस विशाल जनसमूह में,696 ये सभी शिक्षक का आदर करते हैं,697 और जानते हैं कि प्रत्येक अपूर्णता

आमने-सामने क्षमा की जाती है, ऋषि। (7) [964]

पिछले जन्मों में (पूर्व जन्मों में) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना।

अगर मैंने कभी आपको परेशान किया हो,699

मैं इसकी घोषणा कर रहा हूँ, महान नायक;

कृपया मेरी अपूर्णता को क्षमा करें। (8) [965]

उसकी बात सुनकर ऋषियों के स्वामी (बुद्ध) ने 700 कहा: "मैं तुमसे इससे बेहतर और क्या कह सकता हूँ?

आप निर्वाण कब प्राप्त करेंगे? [966]

अब अपनी महाशक्तियों का प्रदर्शन करो, हे मेरे विधान के कर्ता;

व्यवस्था में संदेह को रहने दो

सभी सभाओं के लिए काट दिया जाए।"702 (9) [967]

696 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

697, अर्थात् तैंतीस देवता।

698 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

699 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

700 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

702 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

ऋषि के वचन सुनकर, बौद्ध भिक्षुणी यशोदरा ने ऋषियों के राजा की आराधना की।

[तब] ने [बुद्ध] से यह भाषण दिया: [968]

मैं यशोदरा हूं, हीरो;

घर में मैं तुम्हारी मुख्य रानी थी,703

शाक्य वंश में जन्मा,

महिलाओं के बीच स्थापित.704 (10) [969]

हे वीर, आपके घर में, मैं

वह नेता था, सबका स्वामी था।

वहाँ मौजूद [महिलाओं की संख्या]

एक लाख छियानवे. (11) [970]

वे सभी महिलाएं, जो सौंदर्य और शालीनता के गुणों से परिपूर्ण हैं, युवा और सुभाषी हैं, आदर करती हैं...

मुझे, जैसे लोग देवताओं की पूजा करते हैं।705 (12) [971]

शाक्यन पुत्र के घर में हजार कन्याओं की नेता,

सुख और दुख में वे एक समान हैं,706

जैसे देवता [उस बगीचे में जिसका नाम] “आनंद” है। (13) [972]

इच्छा के सार से परे, सौंदर्य के सार के रूप में स्थिर,

सुंदरता के मामले में उनका कोई मुकाबला नहीं है।

विश्व के नेता के अलावा।" (14) [973]

इन शब्दों से शुरू होने वाले शब्द बोलते हुए, आकाश में उठकर,

यशोदरा ने विविध प्रकार के प्रदर्शन किए।

बुद्ध की अनुमति से शक्तियाँ,707। [974]708

संबुद्ध की उपासना करते हुए, उसने गुरु को अलौकिक शक्तियाँ दिखाईं।

उसने असाधारण महाशक्तियों का प्रदर्शन किया।

703 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

704 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

705 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

706 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

707 puṇṇā ti nāmaŋ

708 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

709 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

710 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

विविध, विभिन्न रूपों वाला। (15)711

शरीर ब्रह्मांड जितना विशाल है,712

उसने उत्तर में महाद्वीप713 को अपना सिर बनाया; पूर्व और पश्चिम को अपने पंख; और भारत को अपना धड़ बनाया; (16) [975]

पूंछ के पंख: दक्षिणी महासागर; [अन्य] पंख: विभिन्न नदियाँ;

उसकी आंखें चांद और सूरज जैसी थीं।

[उसका] प्रतीक ब्रह्मांडीय माउंट मेरु था। (17) [976]

[उसकी] चोंच में, दुनिया के छोर पर स्थित पर्वत,714 [वह] एक पेड़715 को उसकी जड़ों सहित ले जा रही थी। उसके पास आकर, [उसे] पंखा झलते हुए,]

वह विश्व नेता की पूजा कर रही है। (18) [977]

उसने स्वयं को हाथी, घोड़ा, पर्वत, सागर, चंद्रमा और सूर्य, मेरु पर्वत का रूप धारण किया।

और शकरा, [देवताओं का राजा]। (19) [978]

उसने हजार गुना संसार को खिलते हुए कमलों से ढक दिया,717 [और फिर कहा,] “मैं यशोदरा हूँ, वीरांगना;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे आँखों वाले।” (20) [979]

और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का रूप प्रकट करते हुए, उन्होंने पुण्य के सिद्धांत का प्रचार किया;718 “मैं यशोदरा, वीरांगना हूँ;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।" (21) [980]

711 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

712 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

713 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

714 डांटो , या "वश में किया हुआ"

715 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

716 vimutt'o

717 सिंगी-निक्खा-सवण्णो , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

718 ये पंक्तियाँ (पीटीएस में 41 अक्षर, बीजेटीएस में 40 अक्षर [जो पुराणजतिलेहि के बाद 'च' को छोड़ देता है]) पीटीएस और बीजेटीएस दोनों द्वारा एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, हालांकि वे दो पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ती हैं और मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि इस "श्लोक" को छंद के अनुसार कैसे समझा जाए। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण में विकृत हो गया है? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे सटीक अनुवाद का प्रयास किया है , अर्थात् 12-12-12-12 छंद (जो संचरण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों के लोप [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों के लोप [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले छंद-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूलभूत इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (22) [981]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (23) [982]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान नायक। (24) [983]

विश्व-स्वामियों, 719 सभी बुद्धों के साथ मेरी मुलाकात आप लोगों को अच्छी तरह से दिखाई दी; 720 उनके प्रति मेरी व्यापक सेवा

यह आपके लिए था, हे महान ऋषि। (25) [984]

हे ऋषि, मेरे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों को याद कीजिए; उनसे मुझे पुण्य प्राप्त हुआ था।

हे महान नायक, आपके लिए। (26) [985]

मैंने कदाचार से परहेज किया, बाधा उत्पन्न की 721

[नौ] असंभव स्थान;722

मैंने जीवन का बलिदान दिया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (27) [986]

मैंने स्वयं को पत्नी बनने के लिए समर्पित कर दिया।

कई दसियों अरब गुना। मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं थी।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (28) [987]

मैंने स्वयं को सेवा में समर्पित कर दिया, कई दसियों अरब बार। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (29) [988]

719 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

720 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

721 #23, ऊपर

722 शाब्दिक अर्थ, “ बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।” धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है “ धम्म की अंतर्दृष्टि”, “ धम्म में प्रवेश ”, “ धम्म की समझ ” , या “धम्म में प्रवेश ” , शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

723 y'akkho

मैंने कई दसियों अरब बार भोजन उपलब्ध कराने के लिए खुद को समर्पित किया। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (30) [989]

मैंने तुम्हें अपने सारे जीवन दे दिए हैं, कई दसियों अरब बार। मैं स्वयं को भय से मुक्त करूँगा।

मैं अपना जीवन [एक बार फिर] त्याग दूँगा। (31) [990]

हे महान ऋषि, आपके लिए मैं एक स्त्री की चीजों को नहीं छुपाती, विभिन्न प्रकार के कई वस्त्रों को छुपाती हूँ।

725 [मेरे] अंगों पर लगे आभूषण। (32) [991]

धन-दौलत और अनाज, गाँव और छोटे कस्बे भी त्याग दिए गए हैं।

खेत और बेटे और बेटियाँ [भी]

हे महान ऋषि, त्याग दिया गया है। (33) [992]

हाथी, घोड़े, गायें, गुलाम और नौकरानियाँ सभी को अनगिनत मात्रा में त्याग दिया गया है।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (34) [993]

मुझे जो भी देने को कहा जाएगा

मैं भिखारियों को दान के रूप में वह देता हूँ; मुझे किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं दिखती।

अंतिम उपहार देने से। (35) [994]

मुझे 727 बीमारियों का अनुभव हुआ है

इस बहुविविध अस्तित्व में अनगिनत प्रकार के लोग मौजूद हैं।728

हे महान नायक, आपके लिए। (36) [995]

मुझे सुख-सुविधाएं प्राप्त करने में कोई रोमांच नहीं मिलता;

मुझे 729 परेशानियों से कोई परेशानी नहीं होती। मैं हर जगह संतुलित रहता हूँ।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (37) [996]

[दोनों] का अनुभव करने के बाद

724 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, "वे लोग जिनके पास नहीं है"

725 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

726 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

727 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

728 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

729 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप पढ़ रहे हैं

मार्ग में सुख और दुख दोनों का सामना करते हुए, महान ऋषि ने ज्ञानोदय प्राप्त किया।

वह शिक्षा जिसके लिए बुद्ध ने प्रयास किया। (38) [997]

आपके और मेरे द्वारा अन्य विश्व-स्वामियों से बहुत मुलाकातें हुईं, चाहे आप ब्रह्मा हों या कोई और।

गौतम बुद्ध, 733 विश्व के नेता। (39) [998]

मैंने बहुत सारी सेवाएँ कीं।

हे महान ऋषि, आपके लिए;

जब आप बुद्ध की शिक्षाओं की खोज कर रहे थे,734

मैं [हमेशा] आपका परिचारक था। (40) [999]

एक लाख युग [और]

चार अगणनीय [युग]

अतः, दीपांकर, महान नायक,

विश्व के नेता का जन्म हुआ। (41) [1000]

पास के किसी देश में, उसे आमंत्रित करते हुए, उस दिवंगत आत्मा के प्रसन्न मन वाले लोग सफाई कर रहे हैं।

जिस सड़क से वह आ रहा है। (42) [1001]

उस समय सुमेधा नाम का एक ब्राह्मण था। वह मार्ग तैयार करवा रहा था।

उस सर्वज्ञ के लिए जो आ रहा था। (43) [1002]

उस समय मैं एक कुंवारी लड़की थी, जो एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी थी और सुमित्ता नाम से जानी जाती थी।

मैं उस सभा में गया। (44) [1003]

शिक्षक को अर्पित करने के लिए नीले कमल के आठ मुट्ठी भर फूल (735) के साथ

सभी लोगों के बीच

मैंने उस भयंकर [तपस्वी] ऋषि को देखा।736 (45) [1004]

730 शाब्दिक अर्थ, "भविष्य में" (एकवचन)

731 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

732 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

733 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

734 में जटाम्ह का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस अजता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

735 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

736 लिट., "हर समय हम नहीं हैं..."

उसे छाल के ऊपर बैठे हुए देखकर,737 उत्कृष्ट738 और मनमोहक,739 तब मैंने [अपने मन में इस प्रकार सोचा:]

"[यह] मेरा जीवन फलदायी हो रहा है।" (46) [1005]

उस समय मैंने उस ऋषि को देखा

वह प्रयास [जो उस समय] फलदायी हो रहा था;

पिछले कर्मों के कारण, मेरा

संबुद्ध में हृदय प्रसन्न हुआ। (47) [1006]

मेरे हृदय को और भी प्रसन्न करते हुए, मैंने कहा, "हे उच्च विचारों वाले ऋषि,

कोई और उपहार न देखकर [देने के लिए]

मैं तुम्हें फूल दे रहा हूँ, ऋषि।740 (48) [1007]

हे ऋषि, आपके लिए पाँच मुट्ठी भर हैं;

शेष तीन741 मेरे लिए हैं।

इस [उपहार] के माध्यम से सफलता मिले।

हे ऋषि, आपके जागरण के लिए। (49) [1008]

चौथा पाठ भाग

तब उस ऋषि ने, ज्ञानोदय के लिए, फूल लेकर लोगों के बीच पूजा की।

हे प्रसिद्ध, महान ऋषि 745 जो आ रहे थे। (50) [1009]

महान ऋषि [जिनका नाम] दीपांकर था, ने [उन्हें] लोगों के बीच देखकर [भविष्य में बुद्धत्व प्राप्त होने की] भविष्यवाणी की।746

[उस] ऋषि के लिए जिसका मन ऊँचा है। (51) [1010]

महान ऋषि दीपांकर ने भविष्यवाणी की कि मेरा कर्म असंख्य युगों तक जारी रहेगा।

737 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ (“कीचड़ भरे रास्तों पर जाना”)

738 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato (“पिछले कर्मों के फल के बाद”)

739 संसारपथ-नित्तिना

740 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo (“अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा”)

741 t'ato tato

742 BJTS और PTS में वैकल्पिक रूप से saha के स्थान पर samā (“बराबर”) पढ़ा जाता है ।

743 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

744 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

745 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

746 शाब्दिक अर्थ, "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

हे महान ऋषि, आपकी महिमा हो: (52)747

वह आपके जैसी ही स्वभाव और आचरण वाली पत्नी होगी; इसी कर्म के फलस्वरूप वह प्रेममय होगी।

हे महान ऋषि, आपके लिए।748 (53) [1011]

सुंदर दिखने वाली और बेहद प्रिय, आकर्षक, मीठी बातें करने वाली, वह एक प्यारी महिला होगी।

[और] आपके सिद्धांतों में एक उत्तराधिकारी। (54) [1012]

जिस प्रकार स्वामी अपने द्वारा संचित वस्तुओं की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार यह भी उनकी रक्षा करेगा।

[सभी] चीजें जो स्वास्थ्यवर्धक हैं। (55) [1013]

आपके भविष्य के प्रति करुणा से भरी, वह आपकी सभी खूबियों को पूरा करेगी। पिंजरे से मुक्त हुए शेर की तरह,

वह जागृति प्राप्त करेगी।” (56) [1014]

बुद्ध के वचन से प्रसन्न होकर, मैंने उसी प्रकार व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत किया।

बुद्ध ने असंख्य युग पहले मेरे लिए भविष्यवाणी की थी। (57) [1015]

जब मैंने वह कर्म सफलतापूर्वक पूरा किया तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

मैंने अनगिनत गर्भाशयों का अनुभव किया है,

दैवीय [साथ ही] मानवीय [लोग]। (58) [1016]

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख और दुख का अनुभव करते हुए, जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

मैं शाक्यान वंश में पैदा हुआ था। (59) [1017]

सुंदर और अत्यंत धनी, प्रसिद्ध और उतनी ही गुणी; हर योग्यता से संपन्न।

मैं कुलों में बहुत सम्मानित हूँ। (60) [1018]

747 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

748 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

749 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

750 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

धन-दौलत, शोहरत, आतिथ्य सत्कार,

और सांसारिक चीजों में लिप्त होना – ये मेरे मन को विचलित नहीं करते;751

मुझे किसी भी चीज से डर नहीं है। (61) [1019]

मुझे उपस्थित होने के लिए नियुक्त किया गया था

भगवान बुद्ध ने राजा के हरम में जो कहा था, उस पर

तब क्षत्रिय नगर में। (62)752

मैं एक नौकरानी हूं।

और [वह] जो सुख और दुख का अनुभव करती है, एक महिला753 जो तथ्यों की घोषणा करती है,

एक महिला754 जो दयालु है। (63)

मैंने पाँच अरब बुद्धों को, और नौ अरब अन्य बुद्धों को भी, विशाल दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के ऊपर देवता.755 (64)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

ग्यारह अरब [अन्य लोगों] के लिए

और पचास अरब [बुद्ध और]। (65)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (66)

बीस अरब [अन्य] बुद्ध और [एक और] तीस अरब –

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (67)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

चालीस अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] पचास अरब। (68)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

751 लिट., “मेरे मन में कोई हलचल नहीं है”

752 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

753 लिट., “और एक महिला”

754 लिट., “और एक महिला”

755 etesaŋ devedevānaŋ

756 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (69)

साठ अरब [अन्य] बुद्ध, [एक और] सत्तर अरब –

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (70)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

अस्सी अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] नब्बे अरब। (71)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (72)

लाखों-करोड़ों

जो विश्व के प्रमुख नेता थे; मैंने उन्हें व्यापक दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (73)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

एक और नब्बे ट्रिलियन तक

जो विश्व के नेता भी थे। (74)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ (75)

महान ऋषियों को [जिनकी संख्या थी]

आठ सौ पचास ट्रिलियन, और सात सौ पचासी अरब [अतिरिक्त बुद्ध]। (76)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (77)

हे अकेले बुद्धों, वासना से मुक्त, छह सौ चालीस मिलियन; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (78)

बुद्धों के अनगिनत अनुयायी,

मैं दोषों से मुक्त और निष्कलंक हूँ; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (79)

मैं हमेशा शिक्षण का अभ्यास करता हूँ।

उन लोगों में से जो शिक्षाओं का अभ्यास करते हैं,759

शिक्षण का अभ्यास करते समय सहज महसूस करना,

इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में। (80)

शिक्षण-अभ्यास का अच्छी तरह से अभ्यास किया जाना चाहिए;

वह अभ्यास कुप्रथा नहीं है। [मैं] इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में शिक्षण का अभ्यास करने में सहज हूँ। (81)

पुनर्जन्मों से विरक्ति होकर, मैं हजारों भिक्षुणियों से घिरी हुई, निर्जनता (त्याग) की राह पर चल पड़ी।

कुछ भी त्यागने के बाद। (82) [1020]

अपना घर छोड़ने के बाद,

मैं बेघर हो गया।

जब आठ महीने 760 अभी बीते भी नहीं थे

मैंने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (83) [1021]

समुद्र की लहरों की तरह, लोग अनेक प्रकार के मठवासी वस्त्र और भिक्षा लेकर भोजन के लिए आ रहे हैं।

आवश्यकताएँ [साथ ही] आवास। (84) [1022]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (85) [1023]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (86) [1024]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान (महाशक्तियां) प्राप्त कर लीं।

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (87) [1025]

757 या करें: कारती से

758 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

759 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

760 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse (“आधा महीना”) पढ़ता है

761 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

इस प्रकार अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुख होते हैं;

अब शुद्ध जीवन प्राप्त हो चुका है।

मैंने सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। [1026]762

जो स्त्री स्वयं को महान ऋषि के पुण्य के लिए समर्पित करती है, उसे [उनका] साथ और [अपूर्ण निर्वाण] प्राप्त होता है। [1027]

अतीत पूरी तरह से नष्ट हो गया है, और वर्तमान और भविष्य भी; मेरे सारे कर्म नष्ट हो गए हैं:

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।” [1028]

इस प्रकार भिक्खुनी यशोदरा ने ये श्लोक कहे।

यशोदरा थेरी763 की कथा समाप्त हुई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.13
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||13|| ------>>>> अगला

1.13 विशाखा:
उनकी कहानी थेरी धीरा की कहानी से मिलती-जुलती है। अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने के बाद उन्होंने ज्ञान के आनंद (विमुक्ति, विमुक्ति) पर चिंतन किया और इस प्रकार अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा की।
बुद्ध की साधना पूरी हुई! ध्यान रहे कि तुम उनकी इच्छा का पालन करो।

और आपने यह कर दिखाया, अब कभी नहीं।

तुम्हें अपने कर्मों के लिए पश्चाताप करना होगा। इसलिए, जल्दी से धो लो।

अपने पैर फैलाकर एकांत में बैठ जाओ; अकेले (ध्यान करो) (13)

इसलिए उन्होंने दूसरों से भी उनका अनुसरण करने का आग्रह किया।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

मगध राज्य के भद्दिया नगर में मेंडका नाम का एक अत्यंत धनी व्यापारी रहता था। पिछले जन्म में, अकाल के समय, उसने और उसके परिवार ने अपना अंतिम भंडार पच्चेक बुद्ध को दे दिया था। इस भावपूर्ण दान के फलस्वरूप, मेंडका और उसके परिवार (जिन्हें कर्म ने पुनः एक साथ लाया था) के घर में इतना भंडार था कि वे कभी समाप्त नहीं हो सकते थे, इसके बावजूद कि वे अत्यंत उदारता का अभ्यास करते रहे। उसके पुत्र धनंजय और बहू सुमनदेवी की एक अत्यंत सुंदर पुत्री थी जिसका नाम विशाखा था। वे अत्यंत धन और सुख-सुविधाओं में रहते थे और अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध थे, जिसका वे सभी के प्रति अभ्यास करते थे।

एक दिन, जब विशाखा सात वर्ष की थी, बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े दल के साथ भद्दिया आए। जब मेंडका ने बुद्ध के आगमन के बारे में सुना, तो उसने अपनी युवा पोती को बुलाया और उसे अपनी दासियों को इकट्ठा करके बुद्ध का स्वागत करने के लिए बाहर जाने का निर्देश दिया। विशाखा ने आज्ञा का पालन किया। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और उनके उपदेश सुनने के लिए तैयार हुईं। बुद्ध ने विशाखा को धम्म का उपदेश दिया और उन्हें तथा उनकी 500 दासियों को संतत्व के प्रथम चरण, सोतापन्न में स्थापित किया। मेंडका, उनकी पत्नी, पुत्र, बहू और घर के अन्य कई सेवक जो उपस्थित थे, उन्होंने भी संतत्व का प्रथम चरण प्राप्त किया।

मगध राज्य पर धर्मात्मा राजा बिम्बिसार का शासन था। राजा पसेनादि कोसल ने यह महसूस करते हुए कि ऐसा उदार और सम्मानित परिवार उनके राज्य के लिए एक संपत्ति होगा, अपने मित्र राजा बिम्बिसार से पूछा कि क्या धनंजय और उनका परिवार कोसल में आकर बस सकता है, जहाँ वे उनकी प्रजा के लिए एक उदाहरण बन सकते हैं। राजा बिम्बिसार ने अपने मित्र के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। धनंजय और उनका परिवार कोसल में बस गया, जहाँ उन्होंने धम्म का अभ्यास करते हुए एक अनुकरणीय जीवन व्यतीत किया। विशाखा का पालन-पोषण विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ, जहाँ उन्हें उदारता और धर्म का अभ्यास करने का भरपूर अवसर मिला, जिसे वे अक्सर सुनती थीं।

उस समय, सावत्थी में मिगारा नामक एक धनी व्यापारी रहता था, जिसका एक पुत्र था जिसका नाम पुन्नवद्धन था। अपने माता-पिता के बार-बार आग्रह के बावजूद, पुन्नवद्धन ने विवाह करने से इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि उसकी दुल्हन अत्यंत सुंदर होनी चाहिए और उसमें पाँचों सुशोभित कन्या गुण होने चाहिए: बालों, दाँतों, त्वचा, यौवन और सुडौल शरीर। उसके बाल घने और चमकदार होने चाहिए, जो उसके टखनों तक पहुँचें। उसके दाँत सफेद और मोतियों की पंक्ति के समान होने चाहिए। उसकी त्वचा सुनहरे रंग की, कोमल और बेदाग होनी चाहिए। वह लगभग सोलह वर्ष की आयु की होनी चाहिए। उसका सुडौल शरीर सुंदर और स्त्रीत्वपूर्ण होना

चाहिए, न अधिक मोटा और न अधिक पतला। हताश होकर, मिगारा ने ब्राह्मणों का एक दल राज्य भर में ऐसी कन्या की खोज में भेजा जिसमें उसके पुत्र की सभी अपेक्षाएँ पूरी हों।

उस समय, अत्यंत सुंदर विशाखा अपनी दासियों के साथ नदी में स्नान करने जा रही थीं, तभी अचानक आए तूफान ने उन्हें घेर लिया। दासियाँ आश्रय लेने के लिए भागीं, जबकि विशाखा शांत और शालीनता से आश्रय की ओर चली गईं। मिगारा के ब्राह्मणों ने सुंदर विशाखा को देखकर उनसे पूछा कि वह भीगने से बचने के लिए क्यों नहीं भागीं। विशाखा ने मिगारा के पुरुषों को बताया कि इतने सुंदर वस्त्रों में सजी एक कन्या का भागना उचित नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे राजसी वस्त्रों में सजे राजा, जुलूस के लिए सजे हाथी या वस्त्रों में सजे शांत भिक्षु का भागना उचित नहीं होता। उनके उत्तर और उनकी असाधारण सुंदरता से प्रसन्न होकर वे वापस गए और मिगारा को सूचित किया कि पुन्नवद्धन के लिए एक उपयुक्त वर मिल गया है।

दोनों परिवार इस व्यवस्था से प्रसन्न थे। और इस प्रकार, भव्य समारोह के साथ, विशाखा का विवाह उनके पिता द्वारा पुन्नवद्धन से कर दिया गया। विशाखा के पिता, जो उससे बेहद प्यार करते थे, ने शादी के उपहार के रूप में उसे कई उपहार और एक बेहद खूबसूरत रत्नजड़ित मुकुट दिया, जो उसके लंबे बालों से होते हुए उसके पैरों तक पहुँचता था। उन्होंने उसे विवाहित महिला के उचित आचरण के बारे में भी सलाह दी। उन्होंने अपनी बेटी को निम्नलिखित सलाह दी:

1. जब तक तुम अपने ससुराल वालों के साथ रहती हो, अपने पति और ससुराल वालों की कमियों के बारे में दूसरों को मत बताओ।

2. यदि तुम्हारे पड़ोसी तुम्हारे पति या ससुराल वालों के बारे में बुरा-भला कहें, तो उसे बढ़ावा मत दो और न ही उन्हें बताओ।

3. पैसा और सामान उन्हीं को उधार दो जो उसे लौटा दें।

4. किसी को कुछ भी उधार मत दो जो उसे लौटा न दे।

5. जब कोई रिश्तेदार या दोस्त जरूरतमंद हो, तो बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा किए उसकी मदद करो।

6. जब तुम अपने पति या ससुराल वालों को आते हुए देखो, तो सम्मानपूर्वक खड़ी हो जाओ।

7. अपने पति या ससुराल वालों से पहले खाना मत खाओ।

8. अपने पति या ससुराल वालों से पहले बिस्तर पर मत जाओ।

9. तुम्हें अपने पति और ससुराल वालों को लौ के समान समझना चाहिए; सावधानी और आदर के साथ।

10. तुम्हें अपने पति और ससुराल वालों को देवता के समान सम्मान देना चाहिए।

हालाँकि धनंजय द्वारा अपनी पुत्री को दी गई यह सलाह आज की अधिकांश महिलाओं को स्वीकार्य नहीं होगी, लेकिन बुद्ध के समय में महिलाओं से यही अपेक्षा की जाती थी। विशाखा, जिन्होंने इस सलाह और निर्देश का पालन किया, एक आदर्श पत्नी मानी जाती थीं।

विशाखा की सुंदरता और उदारता सर्वविदित थी, इसलिए कई शुभचिंतक सुंदर दुल्हन को सम्मानित करने और उन्हें उपहार देने आए। अपनी उदारता के कारण, विशाखा ने इन उपहारों को सावत्थी के जरूरतमंदों में बाँट दिया। लोग उनके इस कार्य से इतने प्रसन्न हुए कि वे शीघ्र ही सबकी प्रिय बन गईं। उस समय की प्रथा के अनुसार, विशाखा अपने पति के परिवार के साथ रहती थीं।

विशाखा के ससुर, मिगारा, नग्न तपस्वियों के एक संप्रदाय के अनुयायी थे। यद्यपि बुद्ध और उनके शिष्य उनके घर के पास ही एक मठ में रहते थे, फिर भी उन्हें मिगारा के घर आमंत्रित नहीं किया जाता था। एक दिन मिगारा ने नग्न तपस्वियों को आमंत्रित किया और विशाखा से उनकी सेवा करने का अनुरोध किया। विशाखा उनकी लज्जाहीनता देखकर भयभीत हो गईं और उन्होंने इनकार कर दिया। इससे नग्न तपस्वियों में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मिगारा की निंदा की कि उन्होंने तपस्वी गौतम की एक महिला अनुयायी को अपने घर में बुलाया।

इस घटना के कुछ ही समय बाद, जब मिगारा एक सोने के कटोरे में लजीज चावल की खीर खा रहे थे, तभी एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगने आया। यद्यपि मिगारा भिक्षु को देख सकते थे, फिर भी उन्होंने उसे अनदेखा किया और अपना भोजन जारी रखा। अपने ससुर को पंखा कर रही विशाखा ने भिक्षु से यह कहते हुए जाने का अनुरोध किया, "आदरणीय महोदय, कृपया जाइए, मेरे ससुर बासी खाना खा रहे हैं।"

सोने के कटोरे में स्वादिष्ट और ताज़ा भोजन कर रहे मिगारा को ये शब्द अपमानजनक लगे और वे क्रोधित हो गए। उन्होंने विशाखा को अपना घर छोड़कर अपने माता-पिता के पास वापस जाने का आदेश दिया। लेकिन विशाखा ने अपने आचरण का न्याय करने के लिए एक स्वतंत्र मध्यस्थ को बुलाया। उन्होंने सलाहकार को समझाया कि उनके ससुर जो स्वादिष्ट भोजन कर रहे थे, वह उनके पिछले अच्छे कर्मों का फल था। इसलिए, निरंतर समृद्धि सुनिश्चित करने वाले अच्छे कर्म करने के बजाय, वे "बासी भोजन खा रहे थे"।

जब मिगारा को विशाखा के शब्दों का अर्थ समझ आया, तो उन्होंने उससे क्षमा मांगी। हालांकि, विशाखा ने फैसला किया कि वह अब अपने पति के परिवार के साथ नहीं रहना चाहती। यह पहली बार नहीं था जब मिगारा ने उस पर गलत आरोप लगाया था। उसने अपने माता-पिता के पास वापस जाने का फैसला किया। मिगारा, जिन्हें अंततः अपनी बहू के नेक गुणों का एहसास हुआ, भयभीत हो गए। मिगारा ने उनसे वहीं रहने की विनती की। विशाखा इस शर्त पर रहने को राजी हो गईं कि उन्हें बुद्ध और उनके अनुयायियों को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी जाए। जब मिगारा मान गए, तो विशाखा ने बुद्ध और उनके भिक्षुओं के समूह को भोजन के लिए आमंत्रित किया और स्वादिष्ट भोजन की व्यवस्था की।

भोजन के बाद बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया। मिगारा और उनकी पत्नी, जो अपने पूर्व पुण्य कर्मों के फलस्वरूप आध्यात्मिक रूप से विकसित हो चुके थे, दोनों ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त की। इसके बाद, मिगारा, जो विशाखा के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे, उन्हें मिगारा माता कहकर पुकारने लगे और उनका आदर अपनी माता के समान करने लगे। वे बुद्ध के भक्त भी बन गए।

अत्यंत प्रसन्नता से विशाखा बुद्ध और उनके भिक्षुओं के प्रति उदारतापूर्वक कार्य करती रहीं। उनके दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, जिनका उन्होंने धर्म के मार्ग पर पालन-पोषण किया। सुंदर वस्त्रों और आभूषणों की शौकीन विशाखा हमेशा उत्तम वस्त्रों से सजी-धजी रहती थीं। एक दिन गलती से उनका अनमोल रत्नजड़ित मुकुट जेतवन में छूट गया, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। यह सोचकर कि मठ में छूटी हुई वस्तु वापस नहीं ली जानी चाहिए, उन्होंने उसे बुद्ध को अर्पित कर दिया। जब उन्हें बताया गया कि बुद्ध के भिक्षुओं के लिए अनमोल खजाने का कोई मूल्य नहीं है, तो विशाखा ने रत्नजड़ित मुकुट को बेचने का प्रस्ताव रखा, ताकि उससे प्राप्त धन से मठों का निर्माण किया जा सके और आवश्यक सामग्रियाँ उपलब्ध कराई जा सकें। जब उन्हें कोई ऐसा खरीदार नहीं मिला जो उस उत्तम रत्नजड़ित मुकुट को खरीद सके, तो उन्होंने उसे स्वयं खरीद लिया और उस धन का उपयोग पुब्बाराम मठ (जिसे मिगारा की माता का महल भी कहा जाता है) के निर्माण में किया, ताकि बुद्ध और उनके भिक्षुओं और भिक्षुणियों के भरण-पोषण में सहायता की जा सके।

विशाखा बुद्ध को दिए अपने उपहार से अत्यंत प्रसन्न थीं। जिस दिन उन्होंने बुद्ध को मठ भेंट किया, उस दिन उन्होंने आनंद के गीत गाए और अपने बच्चों और पोते-पोतियों के साथ पुब्बाराम मठ की परिक्रमा की। बुद्ध ने लोगों को बताया कि विशाखा आनंद के गीत इसलिए गा रही हैं क्योंकि उन्होंने कई विश्व चक्र पहले की अपनी मनोकामना पूरी कर ली थी - बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बनना।

बुद्ध ने पुब्बाराम मठ में नौ वर्षा ऋतुएँ बिताईं, इस दौरान उन्होंने अनेक सूत्र दिए और अनेक लोगों की सहायता की। एक बार वे पुब्बाराम में ही थे जब एक हलचल ने उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने देखा कि विशाखा भीगे हुए कपड़ों में अस्त-व्यस्त होकर उनकी ओर रोती हुई दौड़ रही हैं। विशाखा नदी में स्नान कर रही थीं जब उन्हें अपने प्रिय पोते दत्ता की मृत्यु का समाचार मिला। अपने दु:ख को सहन न कर पाने के कारण वे सांत्वना और दिलासा पाने के लिए बुद्ध के पास दौड़ीं।

बुद्ध ने विशाखा से उनके दु:ख का कारण पूछा और उन्हें बताया गया कि यह उनके प्रिय पोते की मृत्यु के कारण है। उन्होंने आगे बताया कि उस बच्चे ने उन्हें कितना सुख दिया था। तब बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि क्या वह प्रसन्न होंगी यदि उनके उतने ही पोते-पोतियां हों जितने सावत्थी के नागरिक हैं? विशाखा ने पुष्टि की कि वह वास्तव में बहुत प्रसन्न होंगी क्योंकि उनके पोते-पोतियों से उन्हें असीम आनंद मिलता है। फिर बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि सावत्थी के कितने नागरिक प्रतिदिन मरते हैं? विशाखा ने उत्तर दिया कि प्रतिदिन बहुत से लोग मरते हैं। तब बुद्ध ने उन्हें जीवन की अनित्यता समझाई। उन्होंने कहा, "मृत्यु सभी जीवित प्राणियों के पास आती है। इसलिए सोचो कि तुम कितनी दुखी हो जाओगी, क्योंकि तुम्हारे इतने सारे पोते-पोतियां होंगे, जिनमें से कुछ प्रतिदिन मर जाएंगे। तब तुम्हें मुझसे सांत्वना पाने के लिए बार-बार आना पड़ेगा।"

विशाखा ने बुद्ध के वचनों पर मनन किया और यह महसूस किया कि उनका लगाव जितना प्रबल होगा, वियोग का दुःख उतना ही अधिक होगा। यह जानकर कि सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, उन्होंने स्वयं को संभाला और बुद्ध के पास से विदा ली। विशाखा यह इसलिए समझ पाईं क्योंकि उन्होंने बुद्ध की शिक्षाएँ सुनकर कम उम्र में ही संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त कर ली थी। विशाखा

ने कई कुलीन महिलाओं को धम्म के प्रचार में भी सहायता की। एक बार जब वे महिलाओं के एक बड़े समूह को धम्म सुनने के लिए ले गईं, तो यह देखकर उन्हें बहुत दुख हुआ कि उन्होंने बड़ी मात्रा में मादक पदार्थों का सेवन किया था और उनका व्यवहार अशोभनीय था। तब उन्होंने बुद्ध से पूछा कि मनुष्य सबसे पहले मादक पदार्थों के प्रति आसक्त कैसे हुए। तब बुद्ध ने कुंभ जातक कथा सुनाई, जिसमें एक व्यक्ति को एक पेड़ की दरार में किण्वित फल और पानी मिला और उसने झूठे सुख का अनुभव करने के लिए उस किण्वित तरल का सेवन करना शुरू कर दिया।

बुद्ध ने एक अन्य अवसर पर भी विशाखा की सहायता की, जब उन पर लगाए गए कुछ अनुचित करों से वे व्याकुल थीं। विशाखा ने अपने कुछ रिश्तेदारों को एक पार्सल भेजा था और सीमा रक्षकों ने उस पर अनुचित रूप से अधिक शुल्क लगा दिया था। विशाखा ने राजा से शिकायत की, लेकिन राजकीय मामलों के दबाव के कारण राजा ने उसकी शिकायत पर ध्यान नहीं दिया। नाराज़ और क्रोधित होकर विशाखा ने सांत्वना के लिए बुद्ध से प्रार्थना की। बुद्ध ने यह कहकर उसका मन शांत किया:
"सभी प्रकार की अधीनता कष्टदायक होती है।"

परमानंद का अर्थ है पूर्ण नियंत्रण।

लोग आम चिंताओं से परेशान हैं।

इन बंधनों से छुटकारा पाना मुश्किल है।

बुद्ध के इन ज्ञानवर्धक वचनों ने विशाखा को अपनी इस छोटी सी परेशानी को सही परिप्रेक्ष्य में देखने में मदद की। बुद्ध की सलाह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी 2500 साल पहले थी। लालसा और आसक्ति के बंधन इतने प्रबल होते हैं कि अक्सर हम छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित और विचलित हो जाते हैं, जिनमें से कई तो हमारे नियंत्रण से बाहर होती हैं और मानव जाति को प्रभावित करने वाली अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं की तुलना में तुच्छ होती हैं।

विशाखा अक्सर बुद्ध से उन विषयों पर प्रश्न पूछती थीं जिनमें उनकी रुचि होती थी, और अंगुत्तरा निकाय में तीन सूत्र हैं जो बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर में उन्हें दिए थे। एक बार विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि एक स्त्री में कौन से गुण होते हैं जो उसे इस लोक और परलोक दोनों पर विजय प्राप्त करने में सक्षम बनाते हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया:

"वह परिश्रम, अपने सेवकों की देखभाल, अपने पति के प्रति प्रेम और उसकी संपत्ति की रक्षा करके इस लोक पर विजय प्राप्त करती है। वह आत्मविश्वास, सद्गुण, उदारता और ज्ञान से परलोक पर विजय प्राप्त करती है।"

बुद्ध ने विशाखा को धार्मिक पर्वों (उपोसथा) को उचित तरीके से मनाने का भी निर्देश दिया। विशाखा ने धार्मिक पर्व मनाया था और पर्व मनाने के सर्वोत्तम तरीके के बारे में मार्गदर्शन लेने के लिए उनके पास आई थीं। पहले तो बुद्ध ने उन्हें त्योहार मनाने के गलत तरीकों के बारे में बताया, फिर उन्हें सही तरीका बताते हुए कहा कि उन्हें आठ नियमों का पालन करना चाहिए, बुद्ध, धम्म और संघ की महानता और अच्छे गुणों पर मनन करना चाहिए, देवताओं (देवदूतों) के गुणों पर मनन करना चाहिए और अपने गुणों पर भी मनन करना चाहिए। इसके बाद बुद्ध ने देवताओं के सुखी और चिंतामुक्त जीवन का वर्णन किया और अंत में कहा, "मनुष्यों का वैभव ऐसे स्वर्गीय आनंद के आगे तुच्छ है।" बुद्ध ने स्वर्गिक जन्म के चमत्कारों का वर्णन किया क्योंकि वे जानते थे कि विशाखा, जो एक सोतापन्न थीं, मृत्यु के समय ऐसे ही स्वर्गीय आनंद का अनुभव करेंगी।

एक दिन जब बुद्ध पुब्बाराम में निवास कर रहे थे, विशाखा बुद्ध के पास आईं और आठ वरदान मांगे। बुद्ध ने उन्हें बताया कि पूर्ण पुरुष वरदान देने की प्रथा से परे हैं। तब उन्होंने उन्हें बताया कि ये वरदान संघ के लिए बहुत लाभकारी होंगे और ये वरदान स्वीकार्य हैं। बुद्ध की अनुमति से, विशाखा ने संघ को निम्नलिखित उपहार देने की अनुमति मांगी:

1. वर्षा ऋतु के लिए वस्त्र, क्योंकि भिक्षु अपने वस्त्रों को सुरक्षित रखने के लिए कभी-कभी बारिश में आधे नग्न होकर दौड़ते थे, जो उचित नहीं था।

2. नए भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि लंबी यात्रा के बाद सावत्थी पहुंचे भिक्षु थके हुए थे और नगर से परिचित नहीं थे। ऐसे में उनके लिए भिक्षा मांगना कठिन होता।

3. यात्रा पर जाने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, ताकि वे आगे की यात्रा के लिए बलवान और पोषित रहें।

4. बीमार भिक्षुओं के लिए औषधि, क्योंकि बीमार भिक्षु पीड़ा और कष्ट में थे।

5. बीमार भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि बीमार भिक्षु भिक्षा मांगने की स्थिति में नहीं थे।

6. बीमारों की सेवा करने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि बीमारों की सेवा करने के बाद भिक्षा मांगने जाने के कारण उन्हें अक्सर भोजन नहीं मिल पाता था और वे भिक्षा मांगने में देर कर देते थे।

7. सुबह के लिए नियमित रूप से चावल का दलिया वितरित करना, क्योंकि यह संघ के लिए पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक था, जो दोपहर के बाद भोजन नहीं करते थे।

8. भिक्षुणियों के लिए नदी में स्नान करने हेतु स्नान वस्त्र, क्योंकि जिन भिक्षुणियों के पास स्नान वस्त्र नहीं होते थे, उन्हें अक्सर स्नान करते समय अपने शरीर को नंगा रखना पड़ता था, जो उचित नहीं था।

बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि इन उपहारों से उन्हें क्या आंतरिक लाभ की अपेक्षा है। विशाखा ने उत्तर दिया कि अक्सर विभिन्न स्थानों पर वर्षा ऋतु बिताने वाले संघ के सदस्य बुद्ध के पास आते हैं और उनसे किसी दिवंगत भिक्षु (या भिक्षुणी) के बारे में पूछते हैं और उनके पुनर्जन्म स्थान के बारे में प्रश्न करते हैं। तब भगवान बुद्ध उनके (या उनके) जन्म और पुनर्जन्म स्थान के बारे में बताते हैं। मैं भिक्षु के पास जाकर पूछूंगा, "हे प्रभु, क्या वह भिक्षु (भिक्षुणी) कभी सावत्थी आए थे?" यदि वे हाँ में उत्तर दें, तो मैं यह निष्कर्ष निकालूंगा कि उस भिक्षु ने अवश्य ही किसी वस्त्र, आगंतुकों के भोजन, यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति के भोजन, बीमारों के भोजन, बीमारों की देखभाल करने वालों के भोजन या चावल की दलिया का उपयोग किया होगा। और जब मैं ऐसा चिंतन करूंगा, तो मैं प्रसन्न और आनंदित होऊंगा। जब मेरा मन प्रसन्न होगा, तो मेरा शरीर शांत होगा। जब मेरा शरीर शांत होगा, तो मुझे आनंद का अनुभव होगा। जब मुझे आनंद का अनुभव होगा, तो मेरा मन एकाग्र हो जाएगा। इससे आध्यात्मिक शक्तियों और ज्ञानोदय की क्षमताओं का विकास होगा। हे प्रभु, यही वह लाभ है जो मैं अपने लिए देख रही हूँ।"

विशाखा द्वारा आठ वरदान माँगने की प्रशंसा करते हुए, बुद्ध ने उन्हें संघ को निवेदनानुसार दान देने की अनुमति दी। विशाखा द्वारा दान देने का तरीका उल्लेखनीय है। न केवल उनका इरादा प्रबल होता है, बल्कि वे दान की तैयारी (पहले), दान देते समय और दान के बाद चिंतन करते समय भी उस प्रबलता को बनाए रखती हैं। दान देने से पहले, दान देते समय और दान देने के बाद की यह प्रबल प्रसन्नता या इच्छाशक्ति अधिकतम फल सुनिश्चित करती है। स्वयं को शुद्ध करने, मन का विकास करने और ज्ञान प्राप्ति के इरादे से दान देना ही दान देने का उचित तरीका है और हम सभी को बुद्ध की प्रमुख महिला गृहस्थ परोपकारी विशाखा से उदारता का अभ्यास करने का उचित तरीका सीखना चाहिए।

बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति उनकी उदारता के कारण, बुद्ध ने विशाखा को अपनी प्रमुख महिला गृहस्थ परोपकारी घोषित किया। बुद्ध और संघ को आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने के अलावा, विशाखा ने संघ के सदस्यों के बीच उत्पन्न होने वाले मुद्दों और विवादों को सुलझाने में भी सहायता की। भिक्षुणियों में से एक। उन्होंने लंबा और स्वस्थ जीवन व्यतीत किया और 120 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। विशाखा, जिनमें कुंवारी सौंदर्य के पांच गुण समाहित थे, अंत तक अत्यंत सुंदर थीं और अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भी उन्होंने अपनी युवावस्था और सुंदरता को बरकरार रखा।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.10
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||47|| ------>>>> अगला

5.10 पताचारा, सावत्थी के एक करोड़पति (सेत्थी) की पुत्री, अपने पिता के सेवक की पत्नी, विनय विद्या में निपुण थेरी में अग्रणी, एक प्रख्यात शिक्षिका और नेता।

उनका भी पुनर्जन्म हुआ, जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, हंसवती में एक कुलवासी परिवार में। एक दिन वे गुरु का प्रवचन सुन रही थीं, और जब उन्होंने भिक्षुणियों को संघ के नियमों में पारंगत भिक्षुणियों में सर्वोच्च स्थान दिया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन वे भी इस पद को प्राप्त करेंगी। जीवन भर अच्छे कर्म करने और स्वर्ग-पृथ्वी में पुनर्जन्म लेने के बाद, उनका पुनर्जन्म उस समय हुआ जब कश्यप बुद्ध थे, काशी के राजा किकी की सात पुत्रियों में से एक के रूप में। उन्होंने 20,000 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया और संघ के लिए एक कुटिया का निर्माण किया। जब तक पृथ्वी पर कोई बुद्ध नहीं थे, वे देवताओं (देवदूतों) के बीच महिमामयी निवास करती रहीं, और अंत में, इस बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म सावत्थी में करोड़पति (सेठी) के घर में हुआ। बड़े होने पर, उनका अपने घर के एक सेवक से घनिष्ठ संबंध बन गया। जब माता-पिता ने उसकी शादी उसके ही दर्जे के युवक से तय करने का दिन तय किया, तो उसने मुट्ठी भर सामान लिया और अपने प्रेमी के साथ शहर के मुख्य द्वार से निकलकर एक वन-शाखापत्तनम गाँव में रहने लगी। (गर्भवती होने के कारण) जब प्रसव का समय निकट आया, तो उसने कहा: 'यहाँ मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं है; चलो घर चलते हैं, पतिदेव।' और वह टालमटोल करता रहा, कभी कहता रहा: 'आज चलेंगे; कभी कल चलेंगे', यहाँ तक कि उसने कहा: 'यह मूर्ख मुझे कभी वहाँ नहीं ले जाएगा'; और उसके जाने के बाद उसने अपने सारे काम निपटा लिए, अपने पड़ोसियों से कहा कि वे कहें कि वह घर चली गई है, और वह अकेले ही निकल पड़ी। जब वह वापस आया और उसे यह बात पता चली, तो वह चिल्लाया: 'मेरी वजह से एक उच्च कोटि की महिला असुरक्षित है,' और उसके पीछे दौड़ते हुए उसे पकड़ लिया। रास्ते में ही उसे प्रसव पीड़ा होने लगी, और जब वह संभली, तो वे वापस गाँव की ओर लौट आए। दूसरे बच्चे के जन्म पर सब कुछ पहले जैसा ही हुआ, बस एक फर्क था: जब कर्म (भाग्य) की हवाएँ उस पर चलीं, तो एक भयंकर तूफान आ गया और उसने कहा, 'पतिदेव, मुझे बारिश से बचाओ!' जब वह जंगल में घास और लकड़ियाँ काट रहा था, तो उसने चींटियों के टीले में खड़े एक पेड़ से एक डंडा काट लिया। तभी चींटियों के टीले से एक साँप निकला और उसे काट लिया, जिससे वह वहीं गिर पड़ा और मर गया। वह बहुत दुखी थी और उसके आने का इंतज़ार कर रही थी, जबकि दोनों बच्चे हवा और बारिश से रो रहे थे। उसने उन्हें अपनी गोद में लिया और ज़मीन पर उनके ऊपर लेटकर रात बिताई। भोर होते ही, एक बच्चे को अपनी गोद में लिए और दूसरे से कहते हुए, 'आओ, प्यारे, पिता तुम्हें छोड़कर चले गए हैं,' वह गई और उसे चींटियों के टीले के पास मृत पाया। 'ओह!' वह रो पड़ी, 'मेरे कारण मेरे पति की मृत्यु हो गई,' और पूरी रात रोती और विलाप करती रही। बारिश के कारण उसके रास्ते में बहने वाली नदी घुटनों तक उफान पर थी, और वह घबराई हुई और कमजोर होने के कारण दोनों बच्चों को लेकर नदी पार नहीं कर सकी। इसलिए उसने बड़े बच्चे को एक तरफ छोड़ दिया और दूसरे बच्चे को लेकर नदी पार कर गई। फिर उसने एक टहनी तोड़कर बिछाई और बच्चे को अपने सिर पर लपेटे हुए कपड़े पर लिटा दिया। लेकिन जब वह उस नन्हे बच्चे को छोड़कर जा रही थी,और नदी की ओर जाते समय वह बार-बार पीछे मुड़कर उसे देखती रही। जब वह आधे रास्ते पहुँच चुकी थी, तभी हवा में उड़ते एक बाज़ ने बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर झपट लिया। माँ ने उसे देखकर ताली बजाई और 'सू! सू!' चिल्लाई, लेकिन बाज़ ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह उससे दूर थी, और बच्चे को हवा में उठा लिया। फिर बड़ा बेटा, यह सोचकर कि माँ उसके कारण चिल्ला रही है, घबरा गया और नदी में गिर गया; इस प्रकार माँ ने दोनों बच्चों को खो दिया और रोते हुए सावत्थी आ गई। वहाँ एक आदमी से मिलकर उसने पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं?' उसने कहा, 'सावत्थी में, महोदया।' 'सावत्थी में फलाँ गली में फलाँ परिवार रहता है। क्या आप उन्हें जानते हैं, मित्र?' उसने कहा, 'मैं उन्हें जानता हूँ, महोदया; लेकिन उनके बारे में मत पूछिए; कुछ और पूछिए।' उसने कहा, 'मुझे किसी और बात से मतलब नहीं है। मैं उन्हीं के बारे में पूछ रही हूँ, मित्र।' उसने कहा, 'महोदय, क्या आप स्वयं बता नहीं सकतीं?' आपने देखा कि भगवान ने कल रात कैसे बारिश की?' वह बोली, 'हाँ, मित्र'। मुझ पर पूरी रात बारिश होती रही। मैं अभी बताती हूँ। लेकिन पहले, मुझे उस करोड़पति (सेठी) के परिवार के बारे में बताओ।' वह बोला, 'महोदया, कल रात घर गिर गया और उन पर आ गिरा (वे सब मर गए) और अब वे सब जल रहे हैं, करोड़पति (सेठी), उसकी पत्नी और उसका बेटा एक ही चिता पर। महोदया, उसका धुआँ दिखाई दे रहा है।' उस दुःख के कारण वह पागल हो गई, यहाँ तक कि उसे अपने कपड़े उतर जाने का भी पता नहीं चला। अपने दुख में विलाप करते हुए—
मेरे दोनों बच्चे अब इस दुनिया में नहीं हैं।

और झाड़ियों में मेरे पति मृत पड़े हैं;

एक ही चिता पर मेरी मां, मेरे पिता और मेरे भाई जल रहे हैं।

उस दिन से वह गोल-गोल घूमने लगी, और क्योंकि उसका लबादा उससे अलग हो गया था, इसलिए उसे 'लबादा-चालक' नाम दिया गया। लोग उसे देखकर कहते, 'जाओ, छोटी पागल औरत!' कुछ लोग उसके सिर पर कूड़ा फेंकते, कुछ उस पर धूल छिड़कते, कुछ उस पर मिट्टी के ढेले मारते। गुरु (बुद्ध), जेतवन वन में एक विशाल समूह के बीच धम्म का उपदेश देते हुए बैठे थे, उन्होंने उसे इस प्रकार गोल-गोल घूमते देखा और उसमें आई परिपक्वता पर विचार किया। जब वह विहार की ओर आई, तो वे भी उसी रास्ते से चले। भीड़ ने उसे देखकर कहा, 'कृपया उस छोटी पागल को यहाँ न आने दें।' भगवान बुद्ध ने कहा, 'उसे मत रोको,' और जब वह फिर से घूम कर आई, तो पास खड़े होकर उन्होंने उससे कहा, 'बहन, अपना होश संभालो।' बुद्ध की असीम शक्ति से, उसने होश में आकर अपनी दयनीय स्थिति को पहचाना, और शर्म और अंतरात्मा से प्रेरित होकर वह धरती पर गिर पड़ी। एक व्यक्ति ने उसे अपना बाहरी वस्त्र

दिया, और उसने उसे ओढ़ लिया, और गुरु (बुद्ध) के पास आकर उनके चरणों में प्रणाम करते हुए कहा, 'हे प्रभु, मेरी सहायता कीजिए। मेरे एक बच्चे को बाज़ ले गया है, एक को पानी बहा ले गया है; जंगल में मेरे पति मृत पड़े हैं; मेरे माता-पिता और भाई, ढहे हुए घर के नीचे दबकर एक ही चिता पर जल रहे हैं।' इस प्रकार उसने उन्हें अपने शोक का कारण बताया। गुरु (बुद्ध) ने उसे इस प्रकार समझाया: 'पटाचारा, यह मत सोचो कि तुम किसी ऐसे व्यक्ति के पास आई हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है। जिस प्रकार अब तुम बच्चों और अन्य लोगों की मृत्यु के कारण आँसू बहा रही हो, उसी प्रकार जीवन के अनंत चक्र में तुम बच्चों और अन्य लोगों की मृत्यु के कारण चारों सागरों के जल से भी अधिक आँसू बहाती रही हो।'
'महासागरों का जल चार गुना कम है'

आंसुओं में बहाए गए जल की सारी बर्बादी से भी कहीं अधिक।

दुःख से व्याकुल मनुष्य के हृदय द्वारा।

अपना जीवन कड़वे दुख के बारे में सोचकर क्यों बर्बाद करें?

इस प्रकार, गुरु (बुद्ध) के उन वचनों के माध्यम से, जो मोक्ष के मार्ग को छूते हैं, उसका दुःख सहना आसान हो गया। यह जानकर उन्होंने आगे कहा: 'हे पताकारा, परलोक जाने वाले के लिए न तो कोई बच्चा, न ही कोई रिश्तेदार आश्रय, छुपने की जगह या शरण बन सकता है। यहाँ भी वे ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए, जो भी बुद्धिमान हो, वह अपने आचरण को शुद्ध करे और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग का अनुसरण करे।' इस प्रकार उन्होंने उसे उपदेश दिया और कहा:
'पुत्र न तो आश्रय होते हैं, न पिता, न ही कोई रिश्तेदार।'

मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, तुम्हारे लिए रक्त संबंध कोई सहारा नहीं है।

इस सत्य को जानकर, सद्गुणों से परिपूर्ण बुद्धिमान व्यक्ति,

स्विफ्टली निब्बाना की ओर जाने वाली सड़क को स्पष्ट कर देता है।

जब उन्होंने बोलना समाप्त किया, तब वह सोतापना (प्रथम दिव्य जागृति) के फल में स्थापित हो चुकी थीं और उन्होंने दीक्षा का अनुरोध किया। गुरु (बुद्ध) उन्हें भिक्षुणियों के पास ले गए और उन्हें प्रवेश दे दिया।
वह अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में उच्चतर उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए अभ्यास कर रही थीं। एक दिन उन्होंने एक कटोरे में जल लिया और अपने पैर धोते हुए कुछ जल बहा दिया, जो थोड़ी दूर तक रिसकर गायब हो गया। उन्होंने और जल डाला, और वह और दूर तक गया। और तीसरी बार जल गायब होने से पहले और भी दूर तक गया। इसे अपने चिंतन का आधार बनाकर उन्होंने मनन किया: 'इसी प्रकार मनुष्य मरते हैं, या तो बचपन में, या मध्य आयु में, या बुढ़ापे में।' और गुरु, अपने 'सुगंधित कक्ष' में बैठे हुए, अपने तेजस्वी दिव्य रूप को प्रकट किया और मानो उनके सामने बोलते हुए प्रकट हुए, और कहा: 'इसी प्रकार, हे पताचारा, सभी मनुष्य मरने के योग्य हैं; इसलिए क्या यह बेहतर है कि हम इस तरह से जिएं कि पांचों खंधों (5 आंतरिक समुच्चयों) के आने-जाने को देख सकें, भले ही केवल एक दिन के लिए ही सही, एक पल के लिए ही सही, बजाय इसके कि हम सौ साल तक जिएं और उसे न देखें।
'वह व्यक्ति जो सौ वर्ष तक जीवित रहा,

वह कभी यह नहीं देखता कि चीजें कैसे उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं (भौतिक संसार का सत्य)।

एक दिन से अधिक न जीना ही बेहतर है।

अतः उस दिन उसे अनित्यता का सत्य दिखाई देता है।

और जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो पताकारा ने अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का रूप और अर्थ दोनों में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। उस समय से, अपनी शिष्या अवस्था में ही इस उपलब्धि को याद करते हुए और इस आध्यात्मिक परिवर्तन को महत्व देते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:
हल से खेतों की जुताई करते हुए, बीज बोते हुए

धरती की गोद में बोए गए बीज से ही मनुष्य अपनी फसलें प्राप्त करते हैं।

उनकी कमाई का आनंद लें और पत्नी और बच्चे का पालन-पोषण करें। (112)

मैं, जिसका जीवन पवित्र है, जो खोजता है, क्यों नहीं कर सकता?

गुरु (बुद्ध) की इच्छा पूरी करने में मैं आलसी नहीं हूँ।

न ही घमंड से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है? (113)

एक दिन, अपने पैर धोते हुए, मैं बैठकर देखने लगा

ढलान से नीचे रिसता हुआ पानी।

इससे मैंने स्वयं को दृढ़ संकल्पित कर लिया था।

जैसे किसी श्रेष्ठ नस्ल के घोड़े को प्रशिक्षित किया जाता है। (114)

फिर मैं अपनी कोठरी में जाकर अपना लैंप ले लेता हूँ।

और मैं अपने सोफे पर बैठकर लौ को देखता हूँ। (115)

पिन को पकड़कर, मैं बाती को पूरी तरह नीचे खींच लेता हूँ।

तेल में. . . .

देखो! नन्हे दीपक का निर्वाण!

आत्मज्ञान (विमोक्खो, विमुक्ति) का उदय होता है!

मेरा मन अब मुक्त हो गया है (विमोक्खो, विमुक्ति, मोक्ष)! (116)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

पताकारा एक धनी सावत्थी व्यापारी की सुंदर पुत्री थी। जब वह बालिग हुई तो उसके माता-पिता ने उसके लिए उसी के समान प्रतिष्ठा और धन वाले एक पुरुष से विवाह निर्धारित कर दिया। परन्तु पताकारा अपने माता-पिता के घर के एक नौकर से प्रेम करती थी। उसने अपने प्रेमी के साथ भाग जाने का निश्चय किया क्योंकि उसे लगा कि नौकर से विवाह करने के लिए माता-पिता की सहमति प्राप्त करना असंभव होगा।

नौकरानी का वेश धारण करके और सिर पर पानी का घड़ा लेकर पताकारा अपने प्रेमी के साथ भाग गई। उन्होंने सावत्थी से कुछ दूरी पर स्थित एक गाँव में अपना घर बसाया। उसका पति खेत जोतता था और मामूली कमाई करता था। पताकारा चावल कूटने, खाना पकाने

और सफाई करने का काम करती थी - ये सभी काम पहले उसके माता-पिता के घर के नौकर किया करते थे। इस प्रकार उसने एक कठिन जीवन व्यतीत किया, और अपने भाग जाने के कारण माता-पिता को जो कष्ट पहुँचाया था, उसका प्रायश्चित इसी जन्म में कर रही थी।

कुछ समय बाद पताकारा अपने पहले बच्चे से गर्भवती हुई। रिवाज के अनुसार वह प्रसव के लिए अपने माता-पिता के घर वापस जाना चाहती थी। उचित समय आने पर उसने अपने पति से उसे अपने माता-पिता के पास वापस ले जाने का अनुरोध किया। उसने इनकार कर दिया, क्योंकि उसे यकीन था कि उसे उनसे दूर ले जाने के लिए उसके माता-पिता उसे यातनाएँ देंगे और मार डालेंगे। तब पताकारा ने अकेले जाने का फैसला किया। पड़ोसियों को यह बताकर कि वह अपने माता-पिता से मिलने गई है, पताकारा सावत्थी की ओर चल पड़ी।

जब उसका पति काम से लौटा और उसे पता चला कि पताकारा अपने माता-पिता से मिलने गई है, तो वह बहुत परेशान हुआ। उसके पीछे दौड़कर उसने उसे पकड़ लिया और वापस लौटने की विनती की। उसी समय प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। कुछ झाड़ियों की ओट में छिपकर पताकारा ने एक बेटे को जन्म दिया। अपने पति के आग्रह पर वह वापस लौट आई।

कुछ वर्षों बाद पताकारा अपने दूसरे बच्चे से गर्भवती हुई। जब बच्चे के जन्म का समय निकट आया, तो अपने माता-पिता के सहयोग से बच्चे को जन्म देने के दृढ़ संकल्प के साथ, वह अपने बड़े बेटे को लेकर सावत्थी की ओर चल पड़ी। वह आधी दूरी ही तय कर पाई थी कि उसका पति उसके पास पहुँच गया। उसने फिर से उसे जाने से मना किया। लेकिन इस बार पताकारा अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए दृढ़ थी।

वे इसी तरह यात्रा कर रहे थे कि अचानक भयंकर तूफान आ गया। तेज हवाओं ने रास्ते को तहस-नहस कर दिया, पेड़ की डालियाँ इधर-उधर हिलने लगीं और मूसलाधार बारिश होने लगी। तूफान के बीच ही पताकारा को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। उसने अपने पति से मूसलाधार बारिश और हवा से बचने के लिए एक अस्थायी आश्रय बनाने को कहा। वह आश्रय बनाने के लिए कुछ उपयुक्त डालियाँ काटने चला गया। पताकारा अपने पति के लौटने का व्यर्थ ही इंतजार करती रही। फिर, अपने पहले बच्चे को यथासंभव बचाते हुए, उसने दूसरे बेटे को जन्म दिया। पताकारा ने रात एक झाड़ी के नीचे दुबककर सोई, अपने शरीर को इस तरह झुकाकर कि उसके दोनों बेटे तूफान से सुरक्षित रहें।

अगली सुबह जब वह अपने पति के पदचिह्नों पर चली तो उसने उनका अकड़ा हुआ शरीर पाया। आश्रय के लिए शाखाएँ काटते समय उन्होंने एक विषैले साँप को परेशान कर दिया था। मृत्यु दर्दनाक थी लेकिन क्षणिक थी। शोक में लीन, पताकारा ने अपने बेटों को इकट्ठा किया और सावत्थी में अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में उन्हें उफनती अचिरवती नदी पार करनी पड़ी। पानी कमर तक था और धारा तेज़ थी। तूफान और हाल ही में प्रसव पीड़ा से थकी हुई पताकारा जानती थी कि वह दोनों बच्चों को नहीं ले जा सकती। अपने बड़े बेटे को किनारे पर छोड़कर वह नवजात शिशु को दूसरी ओर ले गई। फिर वह अपने पहले बच्चे को लाने के लिए वापस चल पड़ी। वह आधे रास्ते में ही थी कि उसने एक बाज़ को नीचे झपट्टा मारते हुए देखा जो लाल मांस के टुकड़े जैसे दिखने वाले नवजात शिशु को उठाकर ले जा रहा था। पताकारा चीखी और अपने हाथ हिलाए, उम्मीद कर रही थी कि बाज़ उसके बच्चे को छोड़ देगा। बाज़ ने उसकी चीखों को अनसुना कर दिया, लेकिन उसका पहला बच्चा, यह सोचकर कि उसकी माँ उसे बुला रही है, नदी में दौड़ पड़ा और तेज़ बहते पानी में बह गया।

पताकारा शोक से टूट गई। एक ही दिन में उसने अपने पति और दो बेटों को खो दिया था। शोक से व्याकुल, उसके बाल बिखरे हुए थे, कपड़े भीगे हुए थे, आँसुओं से भीगी हुई पटाकारा सावत्थी पहुँची। वहाँ उसकी मुलाकात एक नगरवासी से हुई और उसने अपने माता-पिता के बारे में पूछा। अजनबी ने उससे उस परिवार के बारे में न पूछने की विनती की। उसने कहा, "किसी और के बारे में पूछो, लेकिन उस परिवार के बारे में नहीं।" लेकिन पटाकारा अड़ी रही। तब उसने उसे बताया कि पिछली रात तेज़ हवाओं ने उनका घर गिरा दिया था, जिससे उसके माता-पिता और भाई दोनों की मृत्यु हो गई थी। फिर, हवा में उठते नीले धुएँ की ओर इशारा करते हुए उसने कहा, "देखो, यह उन तीनों की चिता का धुआँ है जो मर गए। उनका अंतिम संस्कार एक साथ किया गया था।"

असहनीय शोक में पटाकारा अपना मानसिक संतुलन खो बैठी। दर्द से चीखती हुई वह शहर में इधर-उधर भागी, उसके कपड़े फटे हुए थे, बाल बिखरे हुए थे, वह अधनंगी थी। स्थानीय लोगों ने उसे गालियाँ दीं और अपशब्द कहे क्योंकि उन्हें यकीन था कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त है। दु:ख से व्याकुल और अधमरी अवस्था में पटाचारा जेतवन मठ के पास पहुँची, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। नगरवासियों ने उसे रोकने का प्रयास किया। परन्तु बुद्ध ने अपनी करुणामय दृष्टि से उसकी आंतरिक बुद्धि को पहचानते हुए उसे अंदर आने का

आदेश दिया। फिर उन्होंने अपनी करुणा और वचनों से उसे चेतना में वापस लाया। बुद्ध ने कहा, "बहन, अपनी चेतना को पुनः प्राप्त करो।" मानो उसके शरीर पर ठंडे पानी की बाल्टी उड़ेल दी गई हो। इन शब्दों ने उसके पूरे अस्तित्व को झकझोर दिया और उसके दुःख से व्याकुल मन को शांत कर दिया। किसी द्वारा फेंके गए एक लबादे को अपने ऊपर ओढ़कर पटाचारा ने बुद्ध को अपनी दुखमय कहानी सुनाई।

बुद्ध ने करुणा और धैर्य से उनकी बात सुनी और फिर उनसे कहा कि अब और परेशान न हों। “तुम उस परमेश्वर के पास आई हो जो तुम्हारे दुख को दूर कर सकता है। तुमने केवल आज ही पुत्रों, पतियों और माता-पिता को नहीं खोया है, बल्कि इस अनंत संसार चक्र में तुमने पुत्रों और अन्य प्रियजनों को खोया है।” उन्होंने कहा, “तुमने चारों सागरों के जल से भी अधिक आँसू बहाए हैं।” जैसे-जैसे वे बोलते गए, पताकारा का दुःख कम होता गया। बुद्ध ने अंत में निम्नलिखित श्लोक से अपनी बात समाप्त की:
चारों महासागरों में बहुत कम पानी है।

हमने जितने आंसू बहाए हैं, उनकी तुलना में

दुःख से व्याकुल, पीड़ा से विक्षिप्त

हे स्त्री, तुम अब भी क्यों लापरवाह हो?

आश्रय देने के लिए कोई पुत्र नहीं हैं

कोई पिता या रिश्तेदार नहीं

मृत्यु से घिरे व्यक्ति के लिए

रिश्तेदार आश्रय प्रदान नहीं करते।

इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेने के बाद

सद्‌गुणों से परिपूर्ण बुद्धिमान पुरुष

जल्दी ही स्पष्ट हो जाना चाहिए

निर्वाण की ओर जाने वाला मार्ग।

(धम्मपद 268, 288, 289)

जब बुद्ध ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तब तक पताकारा वह उन्मादग्रस्त स्त्री नहीं रह चुकी थीं जो मठ में आई थीं। उन्होंने समस्त सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता के सत्य को भलीभांति जान लिया था और संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापन्न प्राप्त कर ली थी। इसके बाद उन्होंने भिक्षुणी बनने का निवेदन किया। भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने के बाद, पताकारा ने लगन से धम्म का अभ्यास किया। उनकी लगन शीघ्र ही फलदायी हुई, क्योंकि कुछ ही समय में पताकारा ने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया।

पताकारा ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। दीपक बुझने के साथ ही, उनका एकाग्र मन मोक्ष प्राप्त कर चुका था। बुद्ध ने पताकारा को विनय (भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अनुशासन नियम) में अग्रणी भिक्षुणी के रूप में नामित किया था। बचपन में पताकारा अनुशासनहीन और चंचल थीं। उन्होंने अपने माता-पिता के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया था और अपने विद्रोह का परिणाम भुगता था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने अनुशासन के महत्व को समझा और विनय में अग्रणी भिक्षुणी बनीं।

पताकारा अपने पिछले जन्म की आकांक्षाओं और प्रशिक्षण के कारण ही इतनी जल्दी एक चंचल लड़की से संत बन सकीं। एक लाख विश्व चक्र पूर्व पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय, उन्होंने गुरु को एक भिक्षुणी को अनुशासन में अग्रणी की उपाधि प्रदान करते हुए देखा था। वह

उस भिक्षुणी से प्रेरित हुईं और भविष्य के किसी बुद्ध के अधीन अनुशासन में अग्रणी भिक्षुणी बनने की आकांक्षा रखने लगीं। बुद्ध पद्ममुत्तरा ने देखा कि पताकारा में अपनी आकांक्षा को पूरा करने की योग्यता और गुण हैं, इसलिए उन्होंने भविष्यवाणी की कि वह गौतम बुद्ध के समय में अनुशासन में अग्रणी भिक्षुणी होंगी। पताकारा ने अनेक बुद्धों के अधीन भिक्षुणी के रूप में जीवन व्यतीत किया और गौतम बुद्ध के मार्गदर्शन में उन्होंने जो अंतर्दृष्टि और ज्ञान अर्जित किया, वह फलीभूत हुआ।

पताकारा, जिन्होंने अपने अनुशासनहीन और लापरवाह व्यवहार के कारण बहुत कष्ट सहा, उन्होंने अपना जीवन अन्य युवतियों को मठवासी अनुशासन और अनुशासित मन के लाभों की शिक्षा देने में समर्पित कर दिया। उन्हें एक महान शिक्षिका और करुणामयी भिक्षुणी के रूप में सम्मान प्राप्त था, जिन्होंने अनेक महिलाओं को मुक्ति प्राप्त करने में सहायता की।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा10.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||62|| ------>>>> अगला

10.1 किसा-गोतमी, श्रावस्ती के गरीब परिवार की पुत्री, खुरदरे वस्त्र धारण करने वाली भिक्षुणियों में अग्रणी।
उनका जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय हंसवती नगर में एक कुलवासी परिवार में हुआ था। एक दिन उन्होंने गुरु को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और भिक्षुणी को खुरदरे वस्त्र धारण करने के मामले में सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन उन्हें भी यह स्थान प्राप्त होगा। बुद्ध युग में उनका श्रावस्ती में एक गरीब परिवार में पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम गोतमी था और दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें दुबली-पतली गोतमी कहा जाता था। विवाह के बाद उनके साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया गया और उन्हें तुच्छ पुत्री कहा गया। परन्तु जब उन्होंने पुत्र को जन्म दिया, तो उन्हें सम्मान दिया गया। फिर जब पुत्र खेलने-कूदने लायक बड़ा हुआ, तो उसकी मृत्यु हो गई और गोतमी देह से विक्षिप्त हो गईं। और, उसके जन्म के बाद से लोगों के व्यवहार में आए बदलाव को ध्यान में रखते हुए, उसने सोचा: 'वे मेरे बच्चे को भी छीनकर छोड़ देंगे।' इसलिए, शव को अपनी कमर पर उठाकर, वह शोक से पागल होकर घर-घर जाकर कहने लगी: 'मेरे बच्चे के लिए दवा दीजिए!' और लोग तिरस्कारपूर्वक कहते थे: 'दवा! इसका क्या फायदा?' वह उनकी बात नहीं समझ पाई। लेकिन एक बुद्धिमान व्यक्ति ने सोचा: 'उसका मन अपने बच्चे के शोक से व्याकुल है। दस गुना शक्ति वाले परमेश्वर को उसके लिए कोई न कोई दवा अवश्य पता होगी।' और उसने कहा: 'हे प्रिय स्त्री, स्वयं बुद्ध के पास जाओ और उनसे अपने बच्चे के लिए दवा मांगो।' वह उस समय विहार (मठ) गई जब गुरु (बुद्ध) धर्मोपदेश दे रहे थे, और बोली: 'भगवान बुद्ध, मेरे बच्चे के लिए दवा दीजिए!' गुरु ने उसमें आशा देखकर कहा: 'जाओ, नगर में प्रवेश करो, और जिस भी घर में अभी तक किसी की मृत्यु न हुई हो, वहाँ से थोड़ा सा सरसों का दाना ले आओ।' उसने राहत की सांस लेते हुए कहा, 'हे प्रभु, यह ठीक है!' और नगर के पहले घर में जाकर बोली, 'मुझे थोड़ा सा सरसों का दाना दे दीजिए, ताकि मैं अपने बच्चे को दवा दे सकूँ। यदि इस घर में अभी तक किसी की मृत्यु न हुई हो, तो मुझे थोड़ा सा सरसों का दाना दे दीजिए।' 'कौन कह सकता है कि यहाँ कितने लोग नहीं मरे हैं?' 'तो फिर मुझे इतने सरसों के दाने की कोई आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार वह दूसरे और तीसरे घर में गई, जब तक कि बुद्ध की शक्ति से उसका उन्माद दूर नहीं हो गया, उसका स्वाभाविक मन शांत नहीं हो गया, और उसने सोचा: 'पूरे नगर में यही व्यवस्था रहेगी। भगवान बुद्ध ने मेरी भलाई के लिए दया करके यह पूर्वाभास कर लिया था।' और इस विचार से रोमांचित होकर वह नगर छोड़कर चली गई और अपने बच्चे को श्मशान भूमि में लिटाते हुए बोली:
'यह न तो किसी गांव का कानून है, न ही किसी शहर का कानून।'

इस कबीले के लिए या केवल उस कबीले के लिए कोई कानून नहीं है;

हाँ, पूरी दुनिया के लिए, और स्वर्ग में रहने वाले देवताओं (देवदूतों) के लिए भी।

यही नियम है: सब कुछ क्षणभंगुर है!

ऐसा कहकर वह गुरु (बुद्ध) के पास गईं। उन्होंने कहा, 'गोतमी, क्या तुम्हारे पास थोड़ी सी सरसों है?' उन्होंने कहा, 'हे प्रभु, कारण कर्मों में है, सरसों में नहीं। कृपया मुझे उपदेश दीजिए।' तब गुरु (बुद्ध) ने इस प्रकार कहा:
जिसका मन बच्चों और धन-संपत्ति पर लगा रहता है...

वह केंद्रित है, अपने विचारों में उनसे जुड़ा हुआ है।

मृत्यु रात में आई भीषण बाढ़ की तरह आती है।

सोते हुए गांव को छीन लेना।

जब उन्होंने बात पूरी की, तो वह प्रथम मार्ग (धारा-प्रवेश/सोतापना, प्रथम दिव्य जागृति) की सिद्धि में दृढ़ हो गईं और दीक्षा के लिए निवेदन किया। उन्होंने सहमति दी, और उन्होंने तीन बार दाहिनी ओर प्रणाम करके भिक्षुणियों के पास जाकर दीक्षा ली। और कुछ ही समय बाद, चीजों के कारणों का अध्ययन करते हुए, उन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) को विकसित किया। तब गुरु (बुद्ध) ने एक महिमापूर्ण श्लोक कहा:
'वह व्यक्ति जो सौ वर्ष तक जीवित रहा,

वह कभी भी अमृतमय मार्ग (शाश्वतता/अमरता का मार्ग) नहीं देखता।

एक दिन से अधिक न जीना ही बेहतर है।

अतः उसने उसी दिन मार्ग को देखा।

जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और तपस्वी जीवन शैली में अग्रणी होकर, वे तीन प्रकार के खुरदुरे वस्त्र धारण करने लगीं। तब गुरु (बुद्ध), जेतवन वन (मठ) में एक सभा में बैठे हुए, भिक्षुणियों को उनके गुणों के अनुसार क्रम देते हुए, उन्हें खुरदुरे वस्त्र धारण करने वालों में प्रथम घोषित किया। और उन्होंने, अपनी उपलब्धियों को याद करते हुए, गुरु के समक्ष, चुने हुए लोगों के साथ मित्रता की प्रशंसा में यह भजन गाया:
विश्वभर के नेक लोगों के साथ मित्रता

ऋषि ने प्रशंसा की है। मूर्ख भी वास्तव में बुद्धिमान बन जाता है।

यदि वह किसी कुलीन मित्र का स्वागत करे। (213)

पवित्र लोगों के पास जाओ! उनमें जो जाते हैं

ज्ञान (पन्न) बढ़ता है; और उस पवित्र प्रेम में

तुम अपने सभी दुखों से मुक्त हो जाओगे। (214)

दुःख को अच्छी तरह से पहचानो; ध्यान दो कि यह कैसे आता है।

और यह कैसे गुजरता है; अष्टांगिक मार्ग को ध्यान से देखें

इससे दुखों का अंत होता है, ये चार महान आर्य सत्य हैं। (215)

उसने कहा है, स्त्री का भाग्य कितना दयनीय है!

पुरुषों को वश में करने वाला और उनका मार्गदर्शन करने वाला:

शत्रुतापूर्ण पत्नियों के साथ घर साझा करना कष्टदायक होता है।

प्रसव पीड़ा में असहनीय कष्ट होता है।

कुछ लोग मृत्यु की तलाश में हैं, अन्यथा उन्हें दो बार कष्ट भोगना पड़ेगा, (216)

गले को भेदते हुए; नाजुक जहर शरीर में प्रवेश करता है।

माँ की हत्या करने वाले भ्रूण के मामले में भी दुख की बात है।

जन्म नहीं होता, और दोनों की मृत्यु एक समान ही होती है। (217)

'अपने बच्चे को जन्म देने के लिए घर लौटना [2]

मैंने जंगल में अपने पति को मरते हुए देखा।

मुसीबतें आने से पहले मैं अपने माता-पिता तक भी नहीं पहुँच सका। (218)

मैंने अपने दोनों बेटों को खो दिया, अपने पति को भी।

और जब मैं विपत्ति में अपने घर पहुँचा,

देखो! जहाँ सब एक छोटी सी चिता पर एक साथ जल रहे थे,

मेरी माँ, मेरे पिता और मेरा भाई जल रहे हैं!' (219)

हे अभागी, बर्बाद स्त्री! यह सारा बोझ!

आपने जिन दुःखों को सहा है, उन्हीं से ये आँसू बहाए हैं।

हजारों जिंदगियों के थका देने वाले चक्र के माध्यम से। (220)

मैंने भी देखा है कि श्मशान भूमि में,

मेरे बेटे का कोमल मांस खा लिया गया [3]

(सफाई करने वाले जानवरों द्वारा)

उसके रिश्तेदार अब मर चुके हैं, वह खुद समाज से बहिष्कृत है।

उसके पति की मृत्यु हो चुकी है।

अब वह अमरत्व को प्राप्त हो चुकी है (221)

अब मुझे समझ आ गया है

आर्यों का मार्ग, अष्टांगिक मार्ग पर

वह अवस्था अमृतमय (शाश्वतता/अमरता) की ओर जाती है।

मैंने निर्वाण का अनुभव किया है और उसे निहार लिया है।

पवित्र धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के दर्पण में। (222)

मैं भी अपने दर्द से उबर चुका हूँ।

मेरा बोझ हल्का हो गया है, मेरा काम पूरा हो गया है।

मेरा मन पूरी तरह से स्वतंत्रता (विमुक्ति/विमुक्ति) के लिए तैयार है।

मैंने, थेरी किसा-गोतामी ने, यह कहा है! (223)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] यहाँ वह अपने भजन में पताचारा (अपने गुरु) की कहानी को शामिल करती है, मानो 'नारी' की दुर्दशा को और अधिक पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए, 'नारी के भाग्य' में निहित दुखद संभावनाओं के तमाशे और त्रासदी को, जिसका उसका अपना मामला मात्र एक चरण था। आलोचना इसे छंदों और टीका के बीच ऐतिहासिक सामंजस्य में एक और 'दोष' के रूप में देख सकती है - भौगोलिक दृष्टि से। फिर भी, यहाँ एक ऐसी विशेषता है जो विशुद्ध रूप से साहित्यिक रचना वाले किसी भी छंद में कभी नहीं हो सकती। और सौंदर्यपरक तीव्रता में ये छंद किसा-गोतमी के अपने दुख के अंतर्निहित गहरे दुख की इस आधारभूत लहर और अंत में मिश्रित विजय के माध्यम से अद्भुत रूप से लाभ प्राप्त करते हैं।
[3] कुत्ते, सियार, बाघ, पैंथर, बिल्लियाँ, आदि, खुले शवों के सफाईकर्मी के रूप में।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

गौतमी एक गरीब आदमी की बेटी थी। दुबली-पतली होने के कारण उसे किसा गौतमी या "दुबली-पतली गौतमी" कहा जाता था। सौभाग्य से उसका विवाह एक धनी व्यापारी के पुत्र से हुआ। परन्तु ससुराल वालों का व्यवहार एक कुलीन महिला के लिए उचित नहीं था। उन्होंने उसे कभी भी उसकी साधारण पृष्ठभूमि नहीं भूलने दी।

कुछ ही समय में किसा गौतमी गर्भवती हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। वह अपने बच्चे से बहुत प्यार करती थी और उस पर अपना सारा स्नेह और स्नेह लुटाती थी। बच्चा चलना सीख ही रहा था कि एक जानलेवा बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई। किसा गौतमी, जिसने पहले कभी मृत्यु का अनुभव नहीं किया था, अत्यंत दुखी हुई। जिन ससुराल वालों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था, उन्होंने पुत्र के जन्म के बाद उसे स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार उसने अपना सारा स्नेह अपने पुत्र पर लुटाया और अपना जीवन उस बच्चे के इर्द-गिर्द ही केंद्रित कर लिया, जिसके कारण उसे स्वीकार किया गया था। उसे पुनर्जीवित करने के लिए औषधि खोजने के दृढ़ संकल्प के साथ, उसने अपने मृत बच्चे को अपनी गोद में उठाया और एक कुशल चिकित्सक की तलाश में घर-घर भटकने लगी।

गाँव वाले उस पर हंसने लगे और उसे अपशब्द कहने लगे। क्या वह देख नहीं पा रही थी कि उसका बच्चा मर चुका है? लेकिन दुःख से व्याकुल गौतमी डटी रही। एक ज्ञानी व्यक्ति ने उस दुखी स्त्री पर दया करते हुए उसे बुद्ध के पास भेजा। बुद्ध को प्रणाम करके किसा गौतमी ने उनसे अपने बच्चे को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की।

बुद्ध ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि किसा गौतमी पिछले जन्मों के परिश्रम से आध्यात्मिक रूप से उन्नत थीं। परन्तु असहनीय दुःख के कारण उनका मन धर्म के लिए तैयार नहीं था।

यह देखकर कि किसा गौतमी ने पहले कभी मृत्यु का अनुभव नहीं किया था, बुद्ध ने उनसे कहा कि वे किसी ऐसे घर से कुछ सरसों के बीज लाएँ जहाँ मृत्यु न हुई हो। किसा गौतमी एक ऐसे गाँव में रहती थीं जहाँ संयुक्त परिवार साथ रहते थे। वह अपने मृत बच्चे को लेकर घर-घर गईं, लेकिन उन्हें कोई ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। कुछ ही समय में किसा गौतमी को अहसास हुआ कि मृत्यु सभी प्राणियों के लिए सामान्य है। अपने मृत बच्चे का अंतिम संस्कार करके वह सांत्वना के लिए बुद्ध के पास लौट आईं।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें सरसों के बीज मिल गए हैं। गौतमी ने बुद्ध को बताया कि गाँव के हर परिवार में किसी न किसी की मृत्यु हो गई है। उन्होंने कहा, "मृतकों की संख्या जीवितों से कहीं अधिक प्रतीत होती है।"

यह देखकर कि किसा गौतमी धम्म के लिए तैयार हैं, बुद्ध ने उन्हें समस्त वस्तुओं की अनित्यता का उपदेश दिया। चार पंक्तियों के प्रवचन के अंत में, आध्यात्मिक रूप से परिपक्व किसा गौतमी ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी।

भिक्षुणी किसा गौतमी बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण आदर करती थीं। एक दिन, जब वे धम्म हॉल में दीपक बुझाने ही वाली थीं, तो उनकी नज़र लौ पर पड़ी। नाचती हुई लौ पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन्होंने मन ही मन सोचा, “जिस प्रकार इस लौ का है, उसी प्रकार प्राणियों का भी है। कुछ प्रज्वलित होते हैं, तो कुछ बुझ जाते हैं। केवल वे ही जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, फिर कभी दिखाई नहीं देते।”

बुद्ध ने यह जानकर कि किसा गौतमी अपने लक्ष्य के निकट हैं, अपना एक प्रकाशमान स्वरूप प्रकट किया और उनके प्रतिबिंबों का उपयोग करते हुए उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया: “जिस प्रकार इस लौ का है, उसी प्रकार प्राणियों का भी है। कुछ प्रज्वलित होते हैं, तो कुछ बुझ जाते हैं। केवल वे ही जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, फिर कभी दिखाई नहीं देते। इसलिए, जो क्षण भर के लिए ही सही, निर्वाण को देख लेता है, उसका जीवन सौ वर्ष तक जीवित रहकर निर्वाण को न देखने से श्रेष्ठ है।” प्रवचन के अंत में किसा गौतमी ने निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त कर लिया।

कृतज्ञता व्यक्त करते हुए किसा गौतमी ने बुद्ध द्वारा दिए गए अपार आनंद का वर्णन किया और दूसरों को भी श्रेष्ठ पुरुषों के साथ संगति करने के लिए प्रोत्साहित किया।

निम्न कुल की एक गरीब महिला होने के कारण अत्यधिक कष्ट सहने वाली किसा गौतमी ने अन्य स्त्रियों के दर्द को समझा। एक स्त्री का जीवन कठिन और पीड़ा से भरा था। स्त्रियों को अक्सर संपत्ति की तरह समझा जाता था और उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। कई पुरुषों की एक से अधिक पत्नियाँ होती थीं। एक स्त्री होने के नाते कष्ट सहने वाली किसा गौतमी स्त्रियों के कष्टों के प्रति सहानुभूति रखती थीं। उन्होंने अपने परिचित स्त्रियों द्वारा झेली गई कुछ कठिनाइयों का वर्णन किया और कष्टों से मुक्ति पाकर अपनी राहत को व्यक्त किया। बुद्ध के समय भारत में स्त्रियों की दुर्दशा को समझने पर ही उनके द्वारा स्थापित आमूलचूल परिवर्तन और किसा गौतमी जैसी स्त्रियों द्वारा उनके प्रति व्यक्त की गई कृतज्ञता को सही मायने में समझा जा सकता है, क्योंकि बुद्ध ने स्त्रियों को पुरुषों के समान आध्यात्मिक रूप से सक्षम माना था।

एक बार दुष्ट मारा ने उन्हें बहकाने का प्रयास किया, लेकिन गौतमी बलवान और अदम्य थीं।

बुद्ध ने धम्म का उपदेश इसलिए दिया क्योंकि सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, और यही अनित्यता दुख का कारण है। बुद्ध अक्सर प्रियजन की मृत्यु से होने वाले दुख का उदाहरण देकर सभी सांसारिक घटनाओं की अनित्यता को समझाते थे। फिर उन्होंने किसा गौतमी जैसी आध्यात्मिक रूप से उन्नत साधिकाओं को निर्वाण की परम आनंद प्राप्ति में सहायता की। किसा गौतमी ने तपस्या का मार्ग अपनाया और श्मशान घाटों से मिले पुराने कपड़ों से बने मोटे वस्त्र धारण किए। बुद्ध ने कहा कि गौतमी मोटे वस्त्र धारण करने वाली भिक्षुणियों में सबसे श्रेष्ठ थीं, जो तेरह तपस्याओं में से एक है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||65|| ------>>>> अगला

13.1 अंबपाली, वैशाली की पूर्व वेश्या:
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और कई जन्मों में युगों तक प्रभावी रहने वाले अच्छे कर्मों का संचय करके सिख बुद्ध (एक पूर्व बुद्ध) के समय में संघ में प्रवेश किया। एक दिन, जब वे अभी नौसिखिया ही थीं, भिक्षुणियों के साथ जुलूस में एक मंदिर में दर्शन कर रही थीं, तभी उनके आगे चल रहे एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) थेरी ने मंदिर के प्रांगण में जल्दबाजी में थूक दिया। उनके पीछे आकर, थेरी के इस कृत्य पर ध्यान न देते हुए, उन्होंने फटकार लगाते हुए कहा, 'कौन सी गणिका (वेश्या) यहाँ थूक रही है?'
एक भिक्षुणी होने के नाते, नैतिक उपदेशों (शील) का पालन करते हुए, उन्हें गर्भ से पुनर्जन्म से घृणा थी और उन्होंने स्वतः पुनर्जन्म पर अपना ध्यान केंद्रित किया। अपने पिछले जन्म में वह वैशाली में राजा के उद्यानों में, एक आम के वृक्ष की तलहटी में अनायास ही प्रकट हुईं। माली ने उन्हें पाया और नगर ले आया। वे आम के रक्षक की कन्या के नाम से प्रसिद्ध हुईं। उनकी सुंदरता, आकर्षण और मोहकता

ऐसी थी कि अनेक राजकुमार उन्हें पाने के लिए आपस में होड़ करते रहे। अंततः, अपने झगड़े को समाप्त करने के लिए और कर्म के नियम के कारण, उन्होंने "सभी की संपत्ति" होने का वचन दिया और उन्हें गणिका (नृत्य करने वाली और क्रीड़ा करने वाली) नियुक्त किया। बाद में, गुरु (बुद्ध) में आस्था के कारण, उन्होंने अपने ही उद्यानों में एक विहार (मठ) बनवाया और उसे गुरु और संघ को सौंप दिया। (बाद में उनका अपना पुत्र भिक्षु बन गया) और जब उन्होंने अपने पुत्र, वरिष्ठ भिक्षु विमला-कोंडन्ना को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सुना, तो उन्होंने भी दीक्षा ली और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया, और अपने ऊपर वृद्धावस्था के प्रभाव को देखकर, सांसारिक अनित्यता का नियम उनके मन में आया, प्रेरित होकर, उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:
कभी मेरे घुंघराले बाल मधुमक्खी के पंखों की तरह चमकदार और काले रंग के गुच्छों में गुच्छों की तरह हुआ करते थे।

समय के साथ वे बोरी या छाल के कपड़े की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (252)

मेरे बाल इत्र की पेटी की तरह सुगंधित हैं, मीठे फूलों से भरे हुए हैं।

बीते वर्षों की बर्बादी अब खरगोश के फर की गंध के समान लगती है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (253)

घनी झाड़ियों की तरह, अच्छी तरह से लगाए गए पौधों से सुसज्जित, और कंघी, पिन और पार्टिंग से सुंदर।

वर्षों के बीतने से सुंदर चोटियाँ बिखर गईं और सब कुछ टूट गया।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (254)

काले रंग की चोटियाँ रत्नों और सोने से सजे सिर के आभूषणों में जगमगा रही थीं।

वर्षों की बर्बादी के साथ सब कुछ टूट गया है, और बालों की लटें अब पूरी तरह से झड़ गई हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (255)

किसी मूर्तिकार की शिल्पकारी की तरह सजी हुई मेरी भौहें चमक रही थीं, जिन्हें बारीकी से पेंसिल से उकेरा गया था।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे झुर्रियों से भर गए हैं, लटकते हुए से।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (256)

मेरी आंखें रत्नों की तरह चमकीली और दमकती हुई थीं, गहरे नीले रंग की और लंबी पलकों वाली।

वर्षों की बर्बादी से वे पूरी तरह से नष्ट हो गए, अब उनमें कोई चमक नहीं बची।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (257)

बच्चों की तरह ही नाक के नथुनों का घुमाव नाजुक और चिकना होता है।

अब वर्षों की बर्बादी से नाक झुलस गई है और सिकुड़ गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (258)

मेरे कानों की बनावट इतनी सुंदर है मानो किसी सुनार ने इसे नाजुक कारीगरी से बनाया हो।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे झुर्रियों से भर गए हैं और लटके हुए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (259)

मेरी मुस्कान से मेरे दांत ऐसे चमक उठे जैसे केले के पेड़ की कलियाँ खिल रही हों।

वर्षों के बीतने से वे टूट-फूट गए हैं और जौ की तरह पीले पड़ गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (260)

मेरी आवाज इतनी मधुर थी मानो कोयल जंगल में उड़ते हुए घंटी की आवाज हो।

अब वर्षों के बीतने के साथ, आवाज टूट गई है और रुक-रुक कर निकल रही है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (261)

मेरे गले के सामने सीप की तरह कोमल चमक दिखाई दी।

अब वर्षों के बीतने से इसकी सारी सुंदरता मुरझा गई है और विकृत हो गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (262)

कभी मेरी भुजाएँ दो बेलनाकार स्तंभों की तरह चमकती थीं।

वर्षों के बीतने के साथ वे मुरझाई हुई शाखाओं की तरह कमजोर होकर लटक जाते हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (263)

पहले मेरे कोमल हाथ खूबसूरत थे, जिन पर चमकती सोने की अंगूठियां और चूड़ियां थीं।

वर्षों की बर्बादी के साथ वे उलझी हुई जड़ों की तरह हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (264)

मेरे छोटे स्तनों के सामने सुडौल और सुंदर आकृति में एक उभार आया।

वर्षों की बर्बादी के साथ वे ऐसे मुरझाए हुए हैं जैसे पानी के बिना (पानी ढोने वाली) खालें।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (265)

पहले मेरा शरीर अच्छी तरह से पॉलिश किए गए सोने की ढाल की तरह चमकता था।

अब उम्र के साथ-साथ शरीर झुर्रियों के जाल से ढक गया है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (266)

सांप की कुंडली की तरह, मेरी जांघों की पूरी सुंदरता समाई हुई थी।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे बांस के तनों के समान हो गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (267)

सोने की चूड़ियों से सजी मेरी टखने पहले देखने में बहुत खूबसूरत लगती थीं।

वर्षों की बर्बादी से वे तिल के गट्ठों की तरह सिकुड़ गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (268)

मेरे पैर पहले इतने कोमल और प्यारे थे मानो उन पर रुई के गुच्छे लगे हों।

समय के साथ-साथ ये त्वचा फट गई है और अब झुर्रियों से भर गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (269)

इस शरीर की यही हालत रही है। अब यह उम्र से थका हुआ, कमजोर और बदसूरत हो गया है।

कई बुराइयों का घर; एक पुराना मकान जहाँ से गारा टपक रहा है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (270)

और यह देखकर कि थेरी ने अपने स्वयं के व्यक्तित्व में अनित्यता के प्रत्यक्ष संकेतों से तीनों लोकों की सभी घटनाओं में अनित्यता को पहचाना, और इसे ध्यान में रखते हुए, दुख और आत्माहीनता के सत्य को जाना, उसने अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में स्पष्टता प्राप्त करते हुए मार्ग पर प्रगति की और अरहंतत्व (बुद्ध के समतुल्य ज्ञान) प्राप्त किया।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> परिचय

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 में किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।
थेरिगाथा <<<<------ ||परिचय|| ------>>>> अगला

बुद्ध का जीवन और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना
भिक्षुणियों के विभिन्न श्लोकों की व्याख्या को समझना आसान और अधिक सुगम हो जाएगा, यदि पहले उन परिस्थितियों का वर्णन किया जाए जिनके अंतर्गत आरंभ में भिक्षुणियों ने संसार त्याग कर संघ में प्रवेश लिया। अतः इसका संक्षिप्त विवरण दिया जाएगा।

जब जगत के स्वामी ने अष्टम तत्वों — मानवता और शेष बुद्धत्व — को समाहित कर लिया, जब उन्होंने बुद्ध दीपांकर के चरणों में अपना महान संकल्प लिया,[1] और उनके विषय में चौबीसवें बुद्ध की भविष्यवाणी के अनुसार सभी तीस सिद्धियों में समान रूप से निपुणता प्राप्त कर ली, और ज्ञान, संसार के ज्ञान और बुद्धत्व की ओर अपनी प्रगति के चरम पर पहुँच गए, तब उन्होंने आनंद के लोकों (तुषिता स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया। और वहाँ, जब उन्होंने ब्रह्मांडीय मंडलों के दस हजार देवताओं (देवदूतों) के बीच अपना जीवनकाल

व्यतीत कर लिया, तो उन्होंने उन देवताओं (देवदूतों) के अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वे मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लें ताकि वे उनके शब्दों के अनुसार बुद्ध बन सकें।
अब वह समय आ रहा है जब आप,

हे महानुभाव, मनुष्य के रूप में जन्म लेना चाहिए।

देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों दोनों को पार ले जाना,

अब आप ही शाश्वतता का मार्ग प्रकट करते हैं!

अतः उन्होंने पंचमार्थ का ध्यान किया, और फिर शाक्य वंश के राजा सुद्धोदन (बुद्ध के पिता और राजा) के घर में, सचेत और आत्म-जागरूक होकर, एक माता के गर्भ में प्रवेश किया; फिर सचेत और आत्म-जागरूक होकर, वे वहाँ दस माह तक रहे; फिर सचेत और आत्म-जागरूक होकर, वे वहाँ से निकले और लुम्बिनी वन में जन्म लिया।

अनेक दाइयों द्वारा पाले-पोसे गए और एक विशाल दल-व्यस्त जीवन से घिरे, वे समय के साथ बड़े हुए और तीन महलों में से एक में अनेक नर्तकियों के बीच रहते हुए, देवदूत के समान सम्मान भोगते रहे। फिर, एक वृद्ध, एक बीमार और एक मृत व्यक्ति को देखकर उनके मन में व्यथा उत्पन्न हुई। अपने पूर्व जन्मों के ज्ञान से उन्होंने इंद्रिय सुखों से भरे जीवन के खतरे को समझा और इसके त्याग के लाभ का विचार किया। अपने घोड़े कंथक पर सवार होकर और चन्ना को अपना साथी बनाकर, आधी रात को आत्माओं द्वारा खोले गए द्वार से होकर वे महान त्याग के लिए निकल पड़े। उस रात के शेष समय में उन्होंने तीन राज्यों की यात्रा की और अनोमा नदी के तट पर पहुँचकर, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) घटिकारा द्वारा दिए गए अरहंत के वस्त्र धारण करके उन्होंने संसार का त्याग कर दिया (तपस्वी बन गए)। इसके बाद, मानो वे आठ गुणों से परिपूर्ण, सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व वाले एक वरिष्ठ व्यक्ति हों, वे उचित समय पर राजगृह (उस समय मगध की राजधानी, वर्तमान में बिहार, भारत) पहुँचे और वहाँ भिक्षा माँगते हुए उन्होंने पांडव पर्वत की गुफा में भोजन किया। वहाँ मगध के राजा ने उन्हें अपना राज्य प्रदान किया। लेकिन उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया और भगव के आश्रम में जाकर उनकी साधना सीखी; वहाँ से वे अलारा और उद्दक गए और उनकी साधनाएँ सीखीं। जब उन्हें यह सब अपर्याप्त लगा, तो वे उरुवेला चले गए और वहाँ छह वर्षों तक तपस्या की। फिर, यह जानकर कि इससे आर्य धम्म (शाश्वत सत्य) का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, उन्होंने कहा, 'यह ज्ञान प्राप्ति का मार्ग नहीं है,' और ठोस भोजन ग्रहण करके कुछ ही दिनों में वे पुनः स्वस्थ हो गए। अतः, मई माह की पूर्णिमा के दिन, उन्होंने सुजाता द्वारा दिए गए उत्तम भोजन को ग्रहण किया और स्वर्ण थाली को नदी में बहाते हुए, दृढ़ निश्चय के साथ, 'आज ही मैं बुद्ध बनूँगा!', संध्या में बोधि वृक्ष के आसन पर आरोहण किया — नागों के राजा काल द्वारा उनकी स्तुति की गई — और वहाँ, पूर्व दिशा की ओर मुख किए एक स्थिर स्थान पर, वे पद्मासन में विवश होकर विराजमान हुए। वहाँ, चार दिशाओं में अपनी इच्छाशक्ति को स्थिर करते हुए, उन्होंने सूर्यास्त से पहले ही मारा (राक्षस) की शक्ति को पराजित कर दिया। रात्रि के प्रथम पहर में उन्होंने अपने पूर्व जन्मों को याद किया; मध्य पहर में उन्होंने दिव्य दृष्टि प्राप्त की; अंतिम पहर में उन्होंने कर्म-कर्म के नियम के गहन ज्ञान का अवलोकन किया। और, कारण-कार्य संबंध के चरणों को प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में समझते हुए, उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की और उस पूर्ण ज्ञान को प्राप्त किया जो सभी बुद्धों को प्राप्त होता है। वहाँ उन्होंने सात दिन निर्वाण की प्राप्ति में व्यतीत किए, और उसी प्रकार सात दिन बोधि वृक्ष के आसन पर व्यतीत करते हुए राजयतन वृक्ष के नीचे मधुर भोजन किया। फिर, बकरियों के बरगद के नीचे बैठकर उन्होंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के सार की गहराई पर चिंतन किया। उनका मन परिश्रम करने के लिए अनिच्छुक था, जब तक कि ब्रह्मा ने उनसे विनती नहीं की; परन्तु तब उन्होंने बुद्ध-दृष्टि से संसार को देखा, औरसभी प्राणियों में मौजूद अनेक प्रकार की क्षमताओं को देखकर, उन्होंने परम ब्रह्मा से वादा किया कि वे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देंगे। यह सोचते हुए कि 'अब मैं सबसे पहले धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश कहाँ दूँ?' उन्हें पता चला कि अलारा और उद्दक का देहांत हो चुका है; परन्तु फिर उन्होंने सोचा, 'जब मैंने तपस्या त्यागी थी, तब मेरी सेवा में रहे पाँचों ने मेरी बहुत सहायता की थी। क्या होगा यदि मैं पहले उन्हें उपदेश दूँ?' अतः जुलाई की पूर्णिमा को वे महान बोधि वृक्ष से बनारस की ओर चल पड़े। अठारह मील की यात्रा करने के बाद, वे आधे रास्ते में तपस्वी उपक से मिले और उनसे वार्तालाप किया; और फिर इसिपताना पहुँचे, जहाँ उन्होंने 'धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का चक्र घुमाना' नामक प्रवचन के माध्यम से पाँचों को आश्वस्त किया, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है:

'हे भिक्षुओं, दो चरम सीमाएँ हैं जिनका अनुसरण संसार त्यागने वाले व्यक्ति को नहीं करना चाहिए'...

इस प्रकार उन्होंने अन्नकोंडन्ना से प्रारंभ करते हुए अठारह असंख्य ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) को सत्य-अमृत का पान (समझ) कराया। फिर अगले पखवाड़े के पहले दिन उन्होंने वरिष्ठ भद्दाजी को भी सोतापना (प्रथम दिव्य ज्ञान) के मार्ग पर स्थापित किया; दूसरे दिन वरिष्ठ वप्पा को; तीसरे दिन वरिष्ठ महानामा को; चौथे दिन वरिष्ठ असाजी को; और पाँचवें दिन, आत्माहीनता के उपदेश द्वारा, उन्होंने उन सभी

को अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) में स्थापित किया। उस समय से उन्होंने अनेक लोगों को आर्य मार्ग (महान मार्ग) में शामिल किया, अर्थात् यासा के नेतृत्व में पचपन युवकों को, कपास-वन में तीस भारद्वाजियों को और गया-शीर्ष की चोटी पर एक हजार पूर्व तपस्वियों को। जब उन्होंने बिम्बिसार के नेतृत्व में ग्यारह कन्याओं को सोतापना (प्रथम दिव्य ज्ञान) के फल में स्थापित किया, और एक कन्या को तीन शरणों में स्थापित किया, तब उन्होंने वेलुवन (बांस के वन) का उपहार स्वीकार किया और वहीं निवास किया। अब, जब सारिपुत्त और मोग्गलाना, असाजी के माध्यम से प्रथम मार्ग (सोतापना) में शामिल हुए, संजय (उनके गुरु) से विदा लेकर अपने-अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध से जुड़ गए और सर्वोच्च फल प्राप्त कर लिया, तब उन्होंने उन्हें, जिन्होंने शिष्यत्व की पूर्णता प्राप्त कर ली थी, अपने सभी शिष्यों का प्रधान बना दिया। फिर, एल्डर कलुदयी द्वारा कपिलवस्तु के पास जाकर, उन्होंने जुड़वां चमत्कार द्वारा अपने रिश्तेदारों के घमंडी हठ को वश में किया, और अपने पिता को वापसी की अवस्था (अनगामी[2]) में स्थापित किया, और महान प्रजापति (बुद्ध की रानी और पालक माता) को धारा में प्रवेश करने की सफलता (सोतापना, पहला दिव्य जागरण) में स्थापित किया, और राजकुमार नंदा और पुत्र राहुल को संसार का त्याग (सन्यासी बनने) के लिए प्रेरित किया, और वह राजगृह वापस चले गए।

फिर उस समय से यह वृत्तांत चला कि जब गुरु (बुद्ध) वैशाली के निकट स्थित गैबल हाउस के हॉल में ठहरे हुए थे, तब राजा सुद्धोधन (बुद्ध के पिता) ने श्वेत छत्र के नीचे अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया और फिर उनका देहांत हो गया। तब महान प्रजापति (बुद्ध की रानी और पालक माता) के मन में संसार त्यागने का विचार आया। तब उन पाँच सौ युवा सरदारों की पत्नियाँ उनके पास आईं, जिन्होंने रोहिणी नदी के तट पर 'कलह और फूट के विषय में प्रवचन' सुनकर संसार त्याग दिया था, और उन्होंने उनसे कहा: 'हम सब गुरु (बुद्ध) का अनुसरण करने के लिए संसार त्याग देंगे।' और उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि वह उन्हें गुरु (बुद्ध) के पास ले चलें। महान प्रजापति ने एक बार गुरु (बुद्ध) से उनके संघ में प्रवेश के लिए निवेदन किया था, लेकिन उनकी सहमति नहीं मिली थी (क्योंकि उस समय तक महिला संन्यासिनों की कोई परंपरा नहीं थी); फिर उन्होंने अपने नाई से अपने बाल मुंडवा लिए और पीले वस्त्र पहनकर वे सभी साकिया स्त्रियों को अपने साथ वेसाली ले गईं। वहाँ उन्होंने बड़े आनंद के माध्यम से वेसाली से विनती की और महिला शिष्यों के लिए निर्धारित आठ अतिरिक्त नियमों को स्वीकार करके दीक्षा लेने और संघ में प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त की। अन्य सभी स्त्रियों को भी उसी समय दीक्षा दी गई।

इस प्रकार दीक्षा प्राप्त करने के बाद, महान प्रजापति (बुद्ध की पालक माता और मौसी, और बाद में भिक्षुणियों की प्रमुख) गुरु (बुद्ध) के समक्ष आईं और उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ी हो गईं। तब गुरु ने उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। उन्होंने गुरु के मार्गदर्शन में अभ्यास विधि का पालन करते हुए अर्हंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। अन्य पाँच सौ भिक्षुणियों ने नंदक के प्रवचन के अंत में अर्हंतत्व प्राप्त किया। अब जब भिक्षुणियों का संघ सुस्थापित हो गया और विभिन्न गांवों, कस्बों, ग्रामीण क्षेत्रों और राजमहलों में फैल गया, तो कुलों की स्त्रियाँ, बहुएँ और युवतियाँ बुद्ध के महान ज्ञान, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के सत्य और संघ के उत्तम आचरणों के बारे में सुनकर इस प्रणाली से अत्यंत प्रसन्न हुईं। पुनर्जन्म के चक्र से भयभीत होकर उन्होंने पति, माता-पिता और सगे-संबंधियों से अनुमति लेकर बुद्ध के मार्ग को हृदय में उतार लिया और संसार का त्याग कर भिक्षुणियाँ बन गईं। इस प्रकार संसार का त्याग करके और सदाचारी जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने गुरु (बुद्ध) और वरिष्ठों से शिक्षा प्राप्त की और परिश्रम एवं प्रयास से शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। उनके द्वारा समय-समय पर उत्साहपूर्वक तथा अन्य प्रकार से गाए गए भजनों को बाद में संशोधकों ने संकलन में शामिल किया और ग्यारह अध्यायों में संकलित किया। इन्हें वरिष्ठ भिक्षुणियों के श्लोक (थेरी-गाथा) कहा जाता है, और इन्हें एक-एक श्लोक, दो-दो श्लोक आदि के अध्यायों में विभाजित किया गया है, जैसा कि नीचे दिया गया है:

[1] उत्तरकालीन बौद्ध धर्म के चौबीस बुद्धों में से एक। प्रारंभिक बौद्ध धर्म ने केवल सात को मान्यता दी।

[2] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: गैर-वापसीकर्ता, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका की तुलना में
पिछला <<<<------ ||1|| ------>>>> अगला

1.1 वेसाली के एक कुलीन परिवार की एक थेरी, जिसे थेरिका के नाम से जाना जाता है।
थेरिका, चैन से सो जाओ, आराम करो।

अपने द्वारा स्वयं बनाए गए वस्त्र में लिपटे हुए, आराम से रहें।

भीतर जो भावनाएं उग्र रूप धारण कर लेती थीं, वे अब शांत हो गई हैं।

ओवन में सुखाई गई सब्जियों की तरह मुरझा गई। (1)

उसका पुनर्जन्म कैसे हुआ?
बहुत समय पहले, एक कुल की एक पुत्री बुद्ध कोनागमना की शिक्षाओं की परम अनुयायी बन गई, [1] और उसने उनका आतिथ्य सत्कार किया। उसने वृक्षों की शाखाओं से बना एक घर बनवाया, जिसकी छत पर कपड़ा लगा था और फर्श को चिकना किया गया था, और उसने फूलों और इत्रों से उनका सम्मान किया। अपने पूरे जीवन में पुण्य कर्म करते हुए, उसका पुनर्जन्म देवताओं (देवदूतों) के बीच हुआ, और फिर मनुष्यों के बीच तब हुआ जब कश्यप बुद्ध थे, जिनके अधीन उसने संसार का त्याग किया। इस बुद्ध काल तक स्वर्ग में पुनर्जन्म लेने के बाद, अंत में उसका जन्म वैशाली में एक महान कुलीन परिवार में हुआ। उसके मजबूत शरीर के कारण लोग उसे 'मजबूत स्त्री' कहते थे। वह एक युवा कुलीन की समर्पित पत्नी बनी। जब गुरु (बुद्ध) वैशाली आए, तो वह उनकी शिक्षाओं से प्रभावित हुई और एक गृहस्थ शिष्या बन गई। बाद में, जब उन्होंने महान प्रजापति (बुद्ध की पालक माता और चाची, साथ ही भिक्षुणी संघ की प्रमुख) को उपदेश देते हुए सुना, तो उनके मन में संसार त्यागकर भिक्षुणी बनने की इच्छा जागी और उन्होंने यह बात अपने पति को बताई। उनके पति सहमत नहीं हुए; इसलिए वे अपने कर्तव्यों का पालन करती रहीं, उपदेश की मधुरता को याद करती रहीं और अंतर्मन में लीन रहीं। फिर एक दिन रसोई में, जब करी पक रही थी, अचानक आग की एक प्रचंड लपट उठी और सारा खाना चटकते हुए जल गया। उन्होंने इसे देखकर समस्त वस्तुओं की पूर्ण अनित्यता पर गहन ध्यान का आधार बनाया। इससे उनका अंतर्मन ध्यान (विपश्यना[2]) बढ़ा और वे अनागामी[3] की अवस्था में स्थापित हो गईं। तब से उन्होंने गहने और आभूषण पहनना छोड़ दिया। जब उनके पति ने उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बताया कि वे गृहस्थ जीवन जीने में कितनी असमर्थ महसूस करती हैं। अतः वह उसे, जिस प्रकार विशाखा धम्मदिन्ना को लाए थे, अपने अनेक अनुयायियों के साथ महान गौतमी प्रजापति के पास ले गए और कहा: 'आदरणीय थेरी उसे दीक्षा दें।' प्रजापति ने ऐसा ही किया और उसे गुरु (बुद्ध) के दर्शन कराए; और गुरु ने, अपनी प्रथा के अनुसार, यह स्पष्ट करते हुए कि उसने क्या प्राप्त किया है, ऊपर दिए गए श्लोक का उच्चारण किया।
अब, जब उसने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, तो थेरी ने अपने परमानंद में उस श्लोक को दोहराया, इसी कारण यह श्लोक उसका श्लोक बन गया।

[1] कोनागमना और कस्सपा क्रमशः गौतम बुद्ध से पहले बुद्ध बने।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, मन, भावनाएँ और संवेदनाएँ) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[3] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: वापस न लौटने वाला, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||2|| ------>>>> अगला

1.2 मुत्ता, सावत्थी के एक ब्राह्मण (पुजारी) की पुत्री
मुक्त रहो, मुत्ता, चंद्रमा की तरह मुक्त रहो

राहु (ग्रहण) के जबड़ों से निकलकर, आकाश में स्वतंत्र रूप से विचरण करता है।

अपनी चेतना को बाधित करने वाले ऋणों को मिटा दें, और इस प्रकार,

विमुक्ति की अवस्था में मन रखकर अपना व्रत तोड़ो। (2)

यह मुत्ता[1] नामक एक शिष्या का श्लोक है। पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेने वाली वह भी अनेक जन्मों में युगों-युगों तक पुण्य कर्म संचित करती रही। अंत में, इस बुद्ध काल में सावत्थी में एक प्रख्यात ब्राह्मण की संतान के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम

मुत्ता रखा गया। बीस वर्ष की आयु में, जब उनका भाग्य पूर्णतः परिपक्व हो गया, तो उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता और चाची तथा भिक्षुणियों के संघ की प्रमुख) के अधीन संसार का त्याग कर दिया, दीक्षा ली और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) का अभ्यास किया। एक दिन भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, उन्होंने अपने वरिष्ठों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया और फिर विश्राम करने के लिए एकांत में बैठकर मन की घटनाओं पर स्वयं अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) करने लगीं। तब गुरु (बुद्ध), विहार (मठ) के 'सुगंधित कक्ष'[3] में बैठे हुए, अपने प्रकाशमान दिव्य रूप को प्रकट किया और मानो उनके सामने बैठे हुए, उपरोक्त श्लोक का उच्चारण किया। और वह, उस शिक्षा में दृढ़ होकर, थोड़े ही समय में अर्हंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, और इस प्रकार उस श्लोक के शब्दों में आनंदित हुई। अपनी शिक्षा पूरी करने और पूर्ण पद पर पदोन्नत होने के बाद, उन्होंने परलोक जाते समय फिर से उस श्लोक का उच्चारण किया।

[1] मुत्ता = मुक्ता या मुक्त (स्त्री)
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, मन, भावनाएँ और संवेदनाएँ) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[3] गंध-कुटी, बुद्ध के निजी कमरे के लिए पारंपरिक शब्द, विशेष रूप से सावत्थी के जेतवन विहार (मठ) में स्थित कमरा। इस कमरे को शिष्यों द्वारा प्रतिदिन सुगंधित फूलों से सजाया जाता था।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||3|| ------>>>> अगला

1.3 पुन्ना, श्रावस्ती के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री:
निम्नलिखित श्लोक पुन्ना नामक एक छात्रा का है।[1] पूर्व बुद्धों के अधीन अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करने के कारण, जब संसार में कोई उद्धारक बुद्ध नहीं था, तब वह चंदाभागा नदी के किनारे एक परी के रूप में जन्मी। एक दिन उसने एक मौन बुद्ध (पचेकबुद्ध[2]) की सरकंडों की माला से पूजा की। उस पुण्य के फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करने पर, वह इस बुद्ध-काल में श्रावस्ती के एक प्रमुख कुलीन परिवार की संतान के रूप में पुनर्जन्म लेकर पुन्ना नाम से जानी गई। बीस वर्षों तक इस प्रकार निवास करने के बाद, जब उसका भाग्य पूर्ण हो गया, तब उसने महान प्रजापति (बुद्ध की माता की बहन और सहपत्नी तथा भिक्षुणियों के संघ की प्रमुख) को उपदेश देते हुए सुना और संसार का त्याग कर दिया। एक छात्रा बनकर, उसने अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[3]) का अभ्यास करना शुरू किया। और सुगंधित कक्ष से गुरु (बुद्ध) ने अपना तेजस्वी दिव्य रूप प्रकट किया और यह श्लोक कहा:
हे पुन्ना, धम्म (पवित्र जीवन) से परिपूर्ण हो जाओ।

ठीक उसी प्रकार जैसे पंद्रहवें दिन पूर्णिमा का चंद्रमा होता है।

पन्ना (दिव्य समझ) के पूर्ण ज्ञान को परिपूर्ण करें।

और अज्ञानता के समस्त अंधकार को दूर भगाओ। (3)

यह सुनकर, उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना) फलीभूत हुई और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। यह श्लोक उनके आनंद की अभिव्यक्ति और उनके अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की पुष्टि है।[4]

[1] पुन्ना = 'पूर्ण', 'संपूर्ण' (पूर्णा)
[2] पच्चेक-बुद्ध का एक स्वतंत्र अनुवाद - वह जो केवल स्वयं के लिए प्रबुद्ध है, न कि विश्व-उद्धारकर्ता।
[3] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, मन, भावनाएँ और संवेदनाएँ) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[4] उच्चारण अन्या = शाब्दिक रूप से, उसका ज्ञान प्राप्त करना। अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) का एक व्यक्तिपरक पर्यायवाची।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||4|| ------>>>> अगला

1.4 तिस्सा, शाक्य वंश की पुत्री, कपिलवस्तु:

निम्नलिखित श्लोक तिस्सा नामक एक शिष्या का है। पूर्व बुद्धों के अधीन पुण्य संचय करते हुए, तिस्सा का इस बुद्ध-काल में कपिलवस्तु में शाक्य वंश में पुनर्जन्म हुआ। बोधिसत्व के दरबार की महिला बनकर, उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी तथा भिक्षुणी संघ की प्रमुख) के साथ संसार का त्याग कर स्वयं को विपश्यना ध्यान में लगा दिया। [1] तब गुरु (बुद्ध), विहार (मठ) के अपने 'सुगंधित कक्ष' में बैठे हुए, अपने तेजस्वी दिव्य रूप को प्रकट किया, और मानो उनके सामने बैठे हुए, उपरोक्त श्लोक का उच्चारण किया:

हे तिस्सा! अपने आप को तीन प्रशिक्षणों में प्रशिक्षित करो[2].

अब आपके सामने मौजूद इस महान अवसर का लाभ उठाएं।

इसे अनदेखा मत करो! बाकी सभी बंधनों को तोड़ दो।

सांसारिक इच्छाओं से मुक्त। (4)

और जब उसने श्लोक सुना, तो उसकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) बढ़ गई, और उसने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। उस समय से वह पंक्तियों को दोहराने की आदी हो गई थी।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांत्विकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, मन, भावनाएँ और संवेदनाएँ) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।

[2] इसके तीन प्रशिक्षण हैं: i. शील (नैतिक उपदेश) ii. समाधि (ध्यान और समाधि अवस्था प्राप्त करना) iii. पन्ना (ध्यान की समाधि अवस्था से प्राप्त प्रत्यक्ष दिव्य बोध)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.5

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,

www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||5|| ------>>>> अगला

1.5 एक और थेरी टिस्सा

तिस्सा! स्वयं को धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) से जोड़ो।

उस पल को आते हुए देखो! उस पल को यूं ही बीतने मत दो!

बहुतों के लिए, वे लोग जो बीते हुए क्षण के दुख में शोक मनाते हैं। (5)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.6

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,

www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||6|| ------>>>> अगला

1.6 धीरा

हे धीरा, आओ, ऊपर पहुँचो और लक्ष्य को स्पर्श करो।

जहां सब कुछ समाप्त हो जाता है, जहां इंद्रियां शांत हो जाती हैं,

जहां आनंद का वास है; निर्वाण प्राप्त करो, निर्वाण प्राप्त करो

ध्यान की वह निश्चित दिव्य अवस्था (योगक्खेमा)

जिसकी कोई तुलना नहीं है। (6)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.7
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका की तुलना में
पिछला <<<<------ ||7|| ------>>>> अगला

1.7 वीरा

वीर, वीर भिक्षुणी! जो साहसी है!

अपनी इंद्रियों को श्रेष्ठतम संस्कृति में प्रशिक्षित करें।

इस उद्देश्य के लिए अपने अंतिम अवतारित शरीर को धारण करो।

क्योंकि तुमने मारा (शैतान) और उसकी सेना पर विजय प्राप्त कर ली है। (7)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.8
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||8|| ------>>>> अगला

1.8 मिट्टा

मित्ता, आपने आस्था के साथ यह आदेश दिया है! सदा करुणामय रहो।

लाभकारी धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का अनुभव करें।

ध्यान की निश्चित दिव्य अवस्था (योगक्खेमा) में सदा बने रहो (8)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.9
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||9|| ------>>>> अगला

1.9 भद्रा

आस्था के साथ पुरोहित बने,

भद्रा, संतत्व की महानता को प्राप्त करो!

लाभकारी धम्म (शाश्वत सत्य) का विकास और अहसास करें।

और अतुलनीय योगाक्खेमा (ईश्वर से मिलन) प्राप्त करें। (9)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.10
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||10|| ------>>>> अगला

1.10 उपसमा

उपसमा! आप शांत और स्थिर रहें

वह भयंकर बाढ़ जिसमें मृत्यु का ही राज है।

इस उद्देश्य के लिए अपने अंतिम शरीर को धारण करो।

क्योंकि तुमने मारा (शैतान) और उसकी सेना को परास्त कर दिया है। (10)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.11
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||11|| ------>>>> अगला

1.11 मुत्ता, कोसल के ब्राह्मणों की पुत्री और पत्नी:
मुत्ता ने पूर्व बुद्धों के अधीन अच्छे कर्मों का निर्वाह करते हुए, इस बुद्ध काल में कोसल देश में ओघटक नामक एक गरीब ब्राह्मण की पुत्री के रूप में जन्म लिया। जब वह वयस्क हुई, तो उसका विवाह एक कुबड़ा ब्राह्मण से हुआ; परन्तु उसने उससे कहा कि वह गृहस्थी का जीवन नहीं जी सकती, और उसे संसार त्यागने के लिए राजी कर लिया। उसने दीक्षा ली और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया, फिर भी उसके विचार बाहरी रुचि की वस्तुओं पर केंद्रित रहे। अतः उसने आत्म-संयम का अभ्यास किया, और अपने श्लोक को दोहराते हुए, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) के लिए प्रयास किया जब तक कि उसने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त नहीं कर लिया; तब प्रसन्न होकर उसने दोहराया:
ओह, सचमुच आज़ाद! ओह, शानदार आज़ाद!

क्या मैं तीन कुटिल चीजों से मुक्त हूँ:—

मूसल से और मेरे कुबड़ा पति से!

और मैं पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्त हूँ, हाँ

जो भी चीज़ मुझे पीछे खींच रही थी, वह सब दूर फेंक दी गई है। (11)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा1.12
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||12|| ------>>>> अगला

1.12 धम्मदिन्ना, एक कुलवासी (कुलगेहे) की बेटी, एक करोड़पति (सेट्ठी) (विशाखा) की पत्नी, राजगृह के दोनों, बड़ी ननों में अग्रणी, जो उपदेशक थीं
अब, जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, तब वह हंसावती में दासता का जीवन व्यतीत कर रही थीं; और जब उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों में से एक को ध्यान की समाधि अवस्था से उठते हुए पूजा-अर्चना और सम्मान दिया, तो उनका स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ और इसी प्रकार, फुस्सा बुद्ध होने तक वे देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच रहीं। फिर उन्होंने अपने पति द्वारा गुरु के सौतेले भाइयों को दिए गए दान को दुगुना करके पुण्य कर्म किया, जब वे एक सेवक के घर में रह रहे थे। और जब कश्यप बुद्ध हुए, तब उनका जन्म काशी के राजा किकी के घर में उनकी सात बहनों (पुत्रियों) में से एक के रूप में हुआ और उन्होंने 20,000 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया। . . . अंत

में, इस बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक कुलवासी परिवार में हुआ और वे एक प्रमुख नागरिक विशाखा की पत्नी बनीं। एक दिन उनके पति गुरु (बुद्ध) का प्रवचन सुनने गए और अनागामी (अवतरणकर्ता, जो देवदूतों के लोक में जाने के लिए नियत थे) बन गए। जब वे घर लौटे, तो सीढ़ियों से ऊपर जाते समय धम्मदिन्ना उनसे मिलीं; लेकिन उन्होंने न तो उनका हाथ थामा और न ही भोजन के समय उनसे बात की। तब उन्होंने पूछा: 'प्रिय महोदय, आपने मेरा हाथ क्यों नहीं थामा? आप मुझसे बात क्यों नहीं कर रहे हैं? क्या मैंने कुछ अनुचित किया है?' 'इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है, धम्मदिन्ना; लेकिन अब से मैं किसी स्त्री को छूने या भोजन में आनंद लेने के योग्य नहीं हूँ, क्योंकि यही सिद्धांत अब मुझ पर लागू होता है। तुम अपनी इच्छा अनुसार करो, या तो यहीं निवास करना जारी रखो, या अपनी आवश्यकता के अनुसार धन लेकर अपने परिवार के पास लौट जाओ।' 'नहीं, प्रिय महोदय, मैं ऐसा कोई वापसी नहीं करूँगी। मुझे संसार छोड़ने (त्याग करने और भिक्षुणी बनने) की अनुमति दें।' 'यह अच्छा है, धम्मदिन्ना,' विशाखा ने उत्तर दिया और उन्हें एक स्वर्ण पालकी में भिक्षुणियों के पास भेज दिया। संघ में प्रवेश पाने के कुछ ही समय बाद, उन्होंने अपने गुरुओं से एकांतवास में जाने की अनुमति मांगते हुए कहा: 'माताओं, भीड़-भाड़ वाली जगह में मेरा मन प्रसन्न नहीं होता; मैं किसी ग्रामीण आश्रम में जाना चाहती हूँ।' भिक्षुणियाँ उन्हें वहाँ ले गईं, और वहाँ रहते हुए, क्योंकि उन्होंने अपने पिछले जन्मों में विचार, वचन और कर्म की जटिलताओं को वश में कर लिया था, उन्होंने शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य) के रूप और अर्थ पर पूर्ण महारत हासिल कर ली। इस पर उन्होंने सोचा: 'अब मैं शिखर पर पहुँच गई हूँ। अब मुझे यहाँ क्या करना है? मैं राजगृह जाकर गुरु (बुद्ध) की आराधना भी करूँगी, और मेरे कई रिश्तेदार मेरे माध्यम से पुण्य अर्जित करेंगे।' अतः वे अपनी भिक्षुणियों के साथ लौट आईं। तब विशाखा (पति), उसके लौटने की खबर सुनकर, यह जानने के लिए उत्सुक हुए कि वह क्यों आई थी, उन्होंने उससे खन्धों और इसी तरह के विषयों पर प्रश्न पूछे। धम्मदिन्ना ने हर प्रश्न का उत्तर ऐसे दिया जैसे कोई कमल की डंठल को छुरी से काट रहा हो, और अंत में उन्हें गुरु के पास भेज दिया। गुरु (बुद्ध) ने उनकी महान बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की, जैसा कि लघु वेदल्ला (विविध) सूत्र में वर्णित है, और उन्हें उपदेश देने वाले थेरियों में सर्वोच्च स्थान दिया।
लेकिन जब वह ग्रामीण इलाके में रह रही थी, और अभी भी सबसे निचले मार्ग पर थी, तब उसने सर्वोच्च स्तर तक पहुँचने के लिए अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) का अभ्यास किया, तभी उसने अपनी कविता कही:
जिनमें अंतिम विश्राम प्राप्त करने की इच्छा हो

यह उसके संपूर्ण मन में व्याप्त होकर जन्म लेता है,

जिसका मन अब इंद्रिय-इच्छाओं के आकर्षण से मुक्त है

धारा के विपरीत दिशा में जाने वाली, उसे यही कहा जाएगा। (12)

[1] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: जो वापस नहीं लौटता, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.13
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||13|| ------>>>> अगला

1.13 विशाखा:
उनकी कहानी थेरी धीरा की कहानी से मिलती-जुलती है। अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने के बाद उन्होंने ज्ञान के आनंद (विमुक्ति, विमुक्ति) पर चिंतन किया और इस प्रकार अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा की।
बुद्ध की साधना पूरी हुई! ध्यान रहे कि तुम उनकी इच्छा का पालन करो।

और आपने यह कर दिखाया, अब कभी नहीं।

तुम्हें अपने कर्मों के लिए पश्चाताप करना होगा। इसलिए, जल्दी से धो लो।

अपने पैर फैलाकर एकांत में बैठ जाओ; अकेले (ध्यान करो) (13)

इसलिए उन्होंने दूसरों से भी उनका अनुसरण करने का आग्रह किया।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

मगध राज्य के भद्दिया नगर में मेंडका नाम का एक अत्यंत धनी व्यापारी रहता था। पिछले जन्म में, अकाल के समय, उसने और उसके परिवार ने अपना अंतिम भंडार पच्चेक बुद्ध को दे दिया था। इस भावपूर्ण दान के फलस्वरूप, मेंडका और उसके परिवार (जिन्हें कर्म ने पुनः एक साथ लाया था) के घर में इतना भंडार था कि वे कभी समाप्त नहीं हो सकते थे, इसके बावजूद कि वे अत्यंत उदारता का अभ्यास करते रहे। उसके पुत्र धनंजय और बहू सुमनदेवी की एक अत्यंत सुंदर पुत्री थी जिसका नाम विशाखा था। वे अत्यंत धन और सुख-सुविधाओं में रहते थे और अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध थे, जिसका वे सभी के प्रति अभ्यास करते थे।

एक दिन, जब विशाखा सात वर्ष की थी, बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े दल के साथ भद्दिया आए। जब मेंडका ने बुद्ध के आगमन के बारे में सुना, तो उसने अपनी युवा पोती को बुलाया और उसे अपनी दासियों को इकट्ठा करके बुद्ध का स्वागत करने के लिए बाहर जाने का निर्देश दिया। विशाखा ने आज्ञा का पालन किया। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और उनके उपदेश सुनने के लिए तैयार हुईं। बुद्ध ने विशाखा को धम्म का उपदेश दिया और उन्हें तथा उनकी 500 दासियों को संतत्व के प्रथम चरण, सोतापन्न में स्थापित किया। मेंडका, उनकी पत्नी, पुत्र, बहू और घर के अन्य कई सेवक जो उपस्थित थे, उन्होंने भी संतत्व का प्रथम चरण प्राप्त किया।

मगध राज्य पर धर्मात्मा राजा बिम्बिसार का शासन था। राजा पसेनादि कोसल ने यह महसूस करते हुए कि ऐसा उदार और सम्मानित परिवार उनके राज्य के लिए एक संपत्ति होगा, अपने मित्र राजा बिम्बिसार से पूछा कि क्या धनंजय और उनका परिवार कोसल में आकर बस सकता है, जहाँ वे उनकी प्रजा के लिए एक उदाहरण बन सकते हैं। राजा बिम्बिसार ने अपने मित्र के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। धनंजय और उनका परिवार कोसल में बस गया, जहाँ उन्होंने धम्म का अभ्यास करते हुए एक अनुकरणीय जीवन व्यतीत किया। विशाखा का पालन-पोषण विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ, जहाँ उन्हें उदारता और धर्म का अभ्यास करने का भरपूर अवसर मिला, जिसे वे अक्सर सुनती थीं।

उस समय, सावत्थी में मिगारा नामक एक धनी व्यापारी रहता था, जिसका एक पुत्र था जिसका नाम पुन्नवद्धन था। अपने माता-पिता के बार-बार आग्रह के बावजूद, पुन्नवद्धन ने विवाह करने से इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि उसकी दुल्हन अत्यंत सुंदर होनी चाहिए और उसमें पाँचों सुशोभित कन्या गुण होने चाहिए: बालों, दाँतों, त्वचा, यौवन और सुडौल शरीर। उसके बाल घने और चमकदार होने चाहिए, जो उसके टखनों तक पहुँचें। उसके दाँत सफेद और मोतियों की पंक्ति के समान होने चाहिए। उसकी त्वचा सुनहरे रंग की, कोमल और बेदाग होनी चाहिए। वह लगभग सोलह वर्ष की आयु की होनी चाहिए। उसका सुडौल शरीर सुंदर और स्त्रीत्वपूर्ण होना चाहिए, न अधिक मोटा और न अधिक पतला। हताश होकर, मिगारा ने ब्राह्मणों का एक दल राज्य भर में ऐसी कन्या की खोज में भेजा जिसमें उसके पुत्र की सभी अपेक्षाएँ पूरी हों।

उस समय, अत्यंत सुंदर विशाखा अपनी दासियों के साथ नदी में स्नान करने जा रही थीं, तभी अचानक आए तूफान ने उन्हें घेर लिया। दासियाँ आश्रय लेने के लिए भागीं, जबकि विशाखा शांत और शालीनता से आश्रय की ओर चली गईं। मिगारा के ब्राह्मणों ने सुंदर विशाखा को देखकर उनसे पूछा कि वह भीगने से बचने के लिए क्यों नहीं भागीं। विशाखा ने मिगारा के पुरुषों को बताया कि इतने सुंदर वस्त्रों में सजी एक कन्या का भागना उचित नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे राजसी वस्त्रों में सजे राजा, जुलूस के लिए सजे हाथी या वस्त्रों में सजे शांत भिक्षु का भागना उचित नहीं होता। उनके उत्तर और उनकी असाधारण सुंदरता से प्रसन्न होकर वे वापस गए और मिगारा को सूचित किया कि पुन्नवद्धन के लिए एक उपयुक्त वर मिल गया है।

दोनों परिवार इस व्यवस्था से प्रसन्न थे। और इस प्रकार, भव्य समारोह के साथ, विशाखा का विवाह उनके पिता द्वारा पुन्नवद्धन से कर दिया गया। विशाखा के पिता, जो उससे बेहद प्यार करते थे, ने शादी के उपहार के रूप में उसे कई उपहार और एक बेहद खूबसूरत रत्नजड़ित मुकुट दिया, जो उसके लंबे बालों से होते हुए उसके पैरों तक पहुँचता था। उन्होंने उसे विवाहित महिला के उचित आचरण के बारे में भी सलाह दी। उन्होंने अपनी बेटी को निम्नलिखित सलाह दी:

1. जब तक तुम अपने ससुराल वालों के साथ रहती हो, अपने पति और ससुराल वालों की कमियों के बारे में दूसरों को मत बताओ।

2. यदि तुम्हारे पड़ोसी तुम्हारे पति या ससुराल वालों के बारे में बुरा-भला कहें, तो उसे बढ़ावा मत दो और न ही उन्हें बताओ।

3. पैसा और सामान उन्हीं को उधार दो जो उसे लौटा दें।

4. किसी को कुछ भी उधार मत दो जो उसे लौटा न दे।

5. जब कोई रिश्तेदार या दोस्त जरूरतमंद हो, तो बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा किए उसकी मदद करो।

6. जब तुम अपने पति या ससुराल वालों को आते हुए देखो, तो सम्मानपूर्वक खड़ी हो जाओ।

7. अपने पति या ससुराल वालों से पहले खाना मत खाओ।

8. अपने पति या ससुराल वालों से पहले बिस्तर पर मत जाओ।

9. तुम्हें अपने पति और ससुराल वालों को लौ के समान समझना चाहिए; सावधानी और आदर के साथ।

10. तुम्हें अपने पति और ससुराल वालों को देवता के समान सम्मान देना चाहिए।

हालाँकि धनंजय द्वारा अपनी पुत्री को दी गई यह सलाह आज की अधिकांश महिलाओं को स्वीकार्य नहीं होगी, लेकिन बुद्ध के समय में महिलाओं से यही अपेक्षा की जाती थी। विशाखा, जिन्होंने इस सलाह और निर्देश का पालन किया, एक आदर्श पत्नी मानी जाती थीं।

विशाखा की सुंदरता और उदारता सर्वविदित थी, इसलिए कई शुभचिंतक सुंदर दुल्हन को सम्मानित करने और उन्हें उपहार देने आए। अपनी उदारता के कारण, विशाखा ने इन उपहारों को सावत्थी के जरूरतमंदों में बाँट दिया। लोग उनके इस कार्य से इतने प्रसन्न हुए कि वे शीघ्र ही सबकी प्रिय बन गईं। उस समय की प्रथा के अनुसार, विशाखा अपने पति के परिवार के साथ रहती थीं।

विशाखा के ससुर, मिगारा, नग्न तपस्वियों के एक संप्रदाय के अनुयायी थे। यद्यपि बुद्ध और उनके शिष्य उनके घर के पास ही एक मठ में रहते थे, फिर भी उन्हें मिगारा के घर आमंत्रित नहीं किया जाता था। एक दिन मिगारा ने नग्न तपस्वियों को आमंत्रित किया और विशाखा से उनकी सेवा करने का अनुरोध किया। विशाखा उनकी लज्जाहीनता देखकर भयभीत हो गईं और उन्होंने इनकार कर दिया। इससे नग्न तपस्वियों में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मिगारा की निंदा की कि उन्होंने तपस्वी गौतम की एक महिला अनुयायी को अपने घर में बुलाया।

इस घटना के कुछ ही समय बाद, जब मिगारा एक सोने के कटोरे में लजीज चावल की खीर खा रहे थे, तभी एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगने आया। यद्यपि मिगारा भिक्षु को देख सकते थे, फिर भी उन्होंने उसे अनदेखा किया और अपना भोजन जारी रखा। अपने ससुर को पंखा कर रही विशाखा ने भिक्षु से यह कहते हुए जाने का अनुरोध किया, "आदरणीय महोदय, कृपया जाइए, मेरे ससुर बासी खाना खा रहे हैं।"

सोने के कटोरे में स्वादिष्ट और ताज़ा भोजन कर रहे मिगारा को ये शब्द अपमानजनक लगे और वे क्रोधित हो गए। उन्होंने विशाखा को अपना घर छोड़कर अपने माता-पिता के पास वापस जाने का आदेश दिया। लेकिन विशाखा ने अपने आचरण का न्याय करने के लिए एक स्वतंत्र मध्यस्थ को बुलाया। उन्होंने सलाहकार को समझाया कि उनके ससुर जो स्वादिष्ट भोजन कर रहे थे, वह उनके पिछले अच्छे कर्मों का फल था। इसलिए, निरंतर समृद्धि सुनिश्चित करने वाले अच्छे कर्म करने के बजाय, वे "बासी भोजन खा रहे थे"।

जब मिगारा को विशाखा के शब्दों का अर्थ समझ आया, तो उन्होंने उससे क्षमा मांगी। हालांकि, विशाखा ने फैसला किया कि वह अब अपने पति के परिवार के साथ नहीं रहना चाहती। यह पहली बार नहीं था जब मिगारा ने उस पर गलत आरोप लगाया था। उसने अपने माता-पिता के पास वापस जाने का फैसला किया। मिगारा, जिन्हें अंततः अपनी बहू के नेक गुणों का एहसास हुआ, भयभीत हो गए। मिगारा ने उनसे वहीं रहने की विनती की। विशाखा इस शर्त पर रहने को राजी हो गईं कि उन्हें बुद्ध और उनके अनुयायियों को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी जाए। जब मिगारा मान गए, तो विशाखा ने बुद्ध और उनके भिक्षुओं के समूह को भोजन के लिए आमंत्रित किया और स्वादिष्ट भोजन की व्यवस्था की।

भोजन के बाद बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया। मिगारा और उनकी पत्नी, जो अपने पूर्व पुण्य कर्मों के फलस्वरूप आध्यात्मिक रूप से विकसित हो चुके थे, दोनों ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त की। इसके बाद, मिगारा, जो विशाखा के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे, उन्हें मिगारा माता कहकर पुकारने लगे और उनका आदर अपनी माता के समान करने लगे। वे बुद्ध के भक्त भी बन गए।

अत्यंत प्रसन्नता से विशाखा बुद्ध और उनके भिक्षुओं के प्रति उदारतापूर्वक कार्य करती रहीं। उनके दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, जिनका उन्होंने धर्म के मार्ग पर पालन-पोषण किया। सुंदर वस्त्रों और आभूषणों की शौकीन विशाखा हमेशा उत्तम वस्त्रों से सजी-धजी रहती थीं। एक दिन गलती से उनका अनमोल रत्नजड़ित मुकुट जेतवन में छूट गया, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। यह सोचकर कि मठ में छूटी हुई वस्तु वापस नहीं ली जानी चाहिए, उन्होंने उसे बुद्ध को अर्पित कर दिया। जब उन्हें बताया गया कि बुद्ध के भिक्षुओं के लिए अनमोल खजाने का कोई मूल्य नहीं है, तो विशाखा ने रत्नजड़ित मुकुट को बेचने का प्रस्ताव रखा, ताकि उससे प्राप्त धन से मठों का निर्माण किया जा सके और आवश्यक सामग्रियाँ उपलब्ध कराई जा सकें। जब उन्हें कोई ऐसा खरीदार नहीं मिला जो उस उत्तम रत्नजड़ित मुकुट को खरीद सके, तो उन्होंने उसे स्वयं खरीद लिया और उस धन का उपयोग पुब्बाराम मठ (जिसे मिगारा की माता का महल भी कहा जाता है) के निर्माण में किया, ताकि बुद्ध और उनके भिक्षुओं और भिक्षुणियों के भरण-पोषण में सहायता की जा सके।

विशाखा बुद्ध को दिए अपने उपहार से अत्यंत प्रसन्न थीं। जिस दिन उन्होंने बुद्ध को मठ भेंट किया, उस दिन उन्होंने आनंद के गीत गाए और अपने बच्चों और पोते-पोतियों के साथ पुब्बाराम मठ की परिक्रमा की। बुद्ध ने लोगों को बताया कि विशाखा आनंद के गीत इसलिए गा रही हैं क्योंकि उन्होंने कई विश्व चक्र पहले की अपनी मनोकामना पूरी कर ली थी - बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बनना।

बुद्ध ने पुब्बाराम मठ में नौ वर्षा ऋतुएँ बिताईं, इस दौरान उन्होंने अनेक सूत्र दिए और अनेक लोगों की सहायता की। एक बार वे पुब्बाराम में ही थे जब एक हलचल ने उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने देखा कि विशाखा भीगे हुए कपड़ों में अस्त-व्यस्त होकर उनकी ओर रोती हुई दौड़ रही हैं। विशाखा नदी में स्नान कर रही थीं जब उन्हें अपने प्रिय पोते दत्ता की मृत्यु का समाचार मिला। अपने दुःख को सहन न कर पाने के कारण वे सांत्वना और दिलासा पाने के लिए बुद्ध के पास दौड़ीं।

बुद्ध ने विशाखा से उनके दुःख का कारण पूछा और उन्हें बताया गया कि यह उनके प्रिय पोते की मृत्यु के कारण है। उन्होंने आगे बताया कि उस बच्चे ने उन्हें कितना सुख दिया था। तब बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि क्या वह प्रसन्न होंगी यदि उनके उतने ही पोते-पोतियां हों जितने सावत्थी के नागरिक हैं? विशाखा ने पुष्टि की कि वह वास्तव में बहुत प्रसन्न होंगी क्योंकि उनके पोते-पोतियों से उन्हें असीम आनंद मिलता है। फिर बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि सावत्थी के कितने नागरिक प्रतिदिन मरते हैं? विशाखा ने उत्तर दिया कि प्रतिदिन बहुत से लोग मरते हैं। तब बुद्ध ने उन्हें जीवन की अनित्यता समझाई। उन्होंने कहा, "मृत्यु सभी जीवित प्राणियों के पास आती है। इसलिए सोचो कि तुम कितनी दुखी हो जाओगी, क्योंकि तुम्हारे इतने सारे पोते-पोतियां होंगे, जिनमें से कुछ प्रतिदिन मर जाएंगे। तब तुम्हें मुझसे सांत्वना पाने के लिए बार-बार आना पड़ेगा।"

विशाखा ने बुद्ध के वचनों पर मनन किया और यह महसूस किया कि उनका लगाव जितना प्रबल होगा, वियोग का दुःख उतना ही अधिक होगा। यह जानकर कि सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, उन्होंने स्वयं को संभाला और बुद्ध के पास से विदा ली। विशाखा यह इसलिए समझ पाईं क्योंकि उन्होंने बुद्ध की शिक्षाएँ सुनकर कम उम्र में ही संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त कर ली थी। विशाखा

ने कई कुलीन महिलाओं को धम्म के प्रचार में भी सहायता की। एक बार जब वे महिलाओं के एक बड़े समूह को धम्म सुनने के लिए ले गईं, तो यह देखकर उन्हें बहुत दुख हुआ कि उन्होंने बड़ी मात्रा में मादक पदार्थों का सेवन किया था और उनका व्यवहार अशोभनीय था। तब उन्होंने बुद्ध से पूछा कि मनुष्य सबसे पहले मादक पदार्थों के प्रति आसक्त कैसे हुए। तब बुद्ध ने कुंभ जातक कथा सुनाई, जिसमें एक व्यक्ति को एक पेड़ की दरार में किण्वित फल और पानी मिला और उसने झूठे सुख का अनुभव करने के लिए उस किण्वित तरल का सेवन करना शुरू कर दिया।

बुद्ध ने एक अन्य अवसर पर भी विशाखा की सहायता की, जब उन पर लगाए गए कुछ अनुचित करों से वे व्याकुल थीं। विशाखा ने अपने कुछ रिश्तेदारों को एक पार्सल भेजा था और सीमा रक्षकों ने उस पर अनुचित रूप से अधिक शुल्क लगा दिया था। विशाखा ने राजा से शिकायत की, लेकिन राजकीय मामलों के दबाव के कारण राजा ने उसकी शिकायत पर ध्यान नहीं दिया। नाराज़ और क्रोधित होकर विशाखा ने सांत्वना के लिए बुद्ध से प्रार्थना की। बुद्ध ने यह कहकर उसका मन शांत किया:
"सभी प्रकार की अधीनता कष्टदायक होती है।"

परमानंद का अर्थ है पूर्ण नियंत्रण।

लोग आम चिंताओं से परेशान हैं।

इन बंधनों से छुटकारा पाना मुश्किल है।

बुद्ध के इन ज्ञानवर्धक वचनों ने विशाखा को अपनी इस छोटी सी परेशानी को सही परिप्रेक्ष्य में देखने में मदद की। बुद्ध की सलाह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी 2500 साल पहले थी। लालसा और आसक्ति के बंधन इतने प्रबल होते हैं कि अक्सर हम छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित और विचलित हो जाते हैं, जिनमें से कई तो हमारे नियंत्रण से बाहर होती हैं और मानव जाति को प्रभावित करने वाली अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं की तुलना में तुच्छ होती हैं।

विशाखा अक्सर बुद्ध से उन विषयों पर प्रश्न पूछती थीं जिनमें उनकी रुचि होती थी, और अंगुत्तरा निकाय में तीन सूत्र हैं जो बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर में उन्हें दिए थे। एक बार विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि एक स्त्री में कौन से गुण होते हैं जो उसे इस लोक और परलोक दोनों पर विजय प्राप्त करने में सक्षम बनाते हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया:

"वह परिश्रम, अपने सेवकों की देखभाल, अपने पति के प्रति प्रेम और उसकी संपत्ति की रक्षा करके इस लोक पर विजय प्राप्त करती है। वह आत्मविश्वास, सद्गुण, उदारता और ज्ञान से परलोक पर विजय प्राप्त करती है।"

बुद्ध ने विशाखा को धार्मिक पर्वों (उपोसथा) को उचित तरीके से मनाने का भी निर्देश दिया। विशाखा ने धार्मिक पर्व मनाया था और पर्व मनाने के सर्वोत्तम तरीके के बारे में मार्गदर्शन लेने के लिए उनके पास आई थीं। पहले तो बुद्ध ने उन्हें त्योहार मनाने के गलत तरीकों के बारे में बताया, फिर उन्हें सही तरीका बताते हुए कहा कि उन्हें आठ नियमों का पालन करना चाहिए, बुद्ध, धम्म और संघ की महानता और अच्छे गुणों पर मनन करना चाहिए, देवताओं (देवदूतों) के गुणों पर मनन करना चाहिए और अपने गुणों पर भी मनन करना चाहिए। इसके बाद बुद्ध ने देवताओं के सुखी और चिंतामुक्त जीवन का वर्णन किया और अंत में कहा, "मनुष्यों का वैभव ऐसे स्वर्गीय आनंद के आगे तुच्छ है।" बुद्ध ने स्वर्गिक जन्म के चमत्कारों का वर्णन किया क्योंकि वे जानते थे कि विशाखा, जो एक सोतापन्न थीं, मृत्यु के समय ऐसे ही स्वर्गीय आनंद का अनुभव करेंगी।

एक दिन जब बुद्ध पुब्बाराम में निवास कर रहे थे, विशाखा बुद्ध के पास आईं और आठ वरदान मांगे। बुद्ध ने उन्हें बताया कि पूर्ण पुरुष वरदान देने की प्रथा से परे हैं। तब उन्होंने उन्हें बताया कि ये वरदान संघ के लिए बहुत लाभकारी होंगे और ये वरदान स्वीकार्य हैं। बुद्ध की अनुमति से, विशाखा ने संघ को निम्नलिखित उपहार देने की अनुमति मांगी:

1. वर्षा ऋतु के लिए वस्त्र, क्योंकि भिक्षु अपने वस्त्रों को सुरक्षित रखने के लिए कभी-कभी बारिश में आधे नग्न होकर दौड़ते थे, जो उचित नहीं था।

2. नए भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि लंबी यात्रा के बाद सावत्थी पहुंचे भिक्षु थके हुए थे और नगर से परिचित नहीं थे। ऐसे में उनके लिए भिक्षा मांगना कठिन होता।

3. यात्रा पर जाने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, ताकि वे आगे की यात्रा के लिए बलवान और पोषित रहें।

4. बीमार भिक्षुओं के लिए औषधि, क्योंकि बीमार भिक्षु पीड़ा और कष्ट में थे।

5. बीमार भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि बीमार भिक्षु भिक्षा मांगने की स्थिति में नहीं थे।

6. बीमारों की सेवा करने वाले भिक्षुओं के लिए भोजन, क्योंकि बीमारों की सेवा करने के बाद भिक्षा मांगने जाने के कारण उन्हें अक्सर भोजन नहीं मिल पाता था और वे भिक्षा मांगने में देर कर देते थे।

7. सुबह के लिए नियमित रूप से चावल का दलिया वितरित करना, क्योंकि यह संघ के लिए पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक था, जो दोपहर के बाद भोजन नहीं करते थे।

8. भिक्षुणियों के लिए नदी में स्नान करने हेतु स्नान वस्त्र, क्योंकि जिन भिक्षुणियों के पास स्नान वस्त्र नहीं होते थे, उन्हें अक्सर स्नान करते समय अपने शरीर को नंगा रखना पड़ता था, जो उचित नहीं था।

बुद्ध ने विशाखा से पूछा कि इन उपहारों से उन्हें क्या आंतरिक लाभ की अपेक्षा है। विशाखा ने उत्तर दिया कि अक्सर विभिन्न स्थानों पर वर्षा ऋतु बिताने वाले संघ के सदस्य बुद्ध के पास आते हैं और उनसे किसी दिवंगत भिक्षु (या भिक्षुणी) के बारे में पूछते हैं और उनके पुनर्जन्म स्थान के बारे में प्रश्न करते हैं। तब भगवान बुद्ध उनके (या उनके) जन्म और पुनर्जन्म स्थान के बारे में बताते हैं। मैं भिक्षु के पास जाकर पूछूंगा, "हे प्रभु, क्या वह भिक्षु (भिक्षुणी) कभी सावत्थी आए थे?" यदि वे हाँ में उत्तर दें, तो मैं यह निष्कर्ष निकालूंगा कि उस भिक्षु ने अवश्य ही किसी वस्त्र, आगंतुकों के भोजन, यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति के भोजन, बीमारों के भोजन, बीमारों की देखभाल करने वालों के भोजन या चावल की दलिया का उपयोग किया होगा। और जब मैं ऐसा चिंतन करूंगा, तो मैं प्रसन्न और आनंदित होऊंगा। जब मेरा मन प्रसन्न होगा, तो मेरा शरीर शांत होगा। जब मेरा शरीर शांत होगा, तो मुझे आनंद का अनुभव होगा। जब मुझे आनंद का अनुभव होगा, तो मेरा मन एकाग्र हो जाएगा। इससे आध्यात्मिक शक्तियों और ज्ञानोदय की क्षमताओं का विकास होगा। हे प्रभु, यही वह लाभ है जो मैं अपने लिए देख रही हूँ।"

विशाखा द्वारा आठ वरदान माँगने की प्रशंसा करते हुए, बुद्ध ने उन्हें संघ को निवेदनानुसार दान देने की अनुमति दी। विशाखा द्वारा दान देने का तरीका उल्लेखनीय है। न केवल उनका इरादा प्रबल होता है, बल्कि वे दान की तैयारी (पहले), दान देते समय और दान के बाद चिंतन करते समय भी उस प्रबलता को बनाए रखती हैं। दान देने से पहले, दान देते समय और दान देने के बाद की यह प्रबल प्रसन्नता या इच्छाशक्ति अधिकतम फल सुनिश्चित करती है। स्वयं को शुद्ध करने, मन का विकास करने और ज्ञान प्राप्ति के इरादे से दान देना ही दान देने का उचित तरीका है और हम सभी को बुद्ध की प्रमुख महिला गृहस्थ परोपकारी विशाखा से उदारता का अभ्यास करने का उचित तरीका सीखना चाहिए।

बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति उनकी उदारता के कारण, बुद्ध ने विशाखा को अपनी प्रमुख महिला गृहस्थ परोपकारी घोषित किया। बुद्ध और संघ को आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने के अलावा, विशाखा ने संघ के सदस्यों के बीच उत्पन्न होने वाले मुद्दों और विवादों को सुलझाने में भी सहायता की। भिक्षुणियों में से एक। उन्होंने लंबा और स्वस्थ जीवन व्यतीत किया और 120 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। विशाखा, जिनमें कुंवारी सौंदर्य के पांच गुण समाहित थे, अंत तक अत्यंत सुंदर थीं और अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भी उन्होंने अपनी युवावस्था और सुंदरता को बरकरार रखा।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.14
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||14|| ------>>>> अगला

1.14 सुमना
की कहानी थेरी तिस्सा की कहानी से मिलती-जुलती है। अपने तेजस्वी दिव्य रूप को प्रकट करते हुए, गुरु (बुद्ध) ने मानो उसके सामने बैठकर स्वयं को प्रकट किया और कहा:
क्या तुमने सभी में दुख और पीड़ा नहीं देखी?

जीवन के स्रोत? जन्म लेने के लिए वापस मत जाओ!

फिर से अस्तित्व में आने की तीव्र इच्छा को त्याग दो।

अतः तुम शांत और निर्मल होकर अपने मार्ग पर चलते रहोगे। (14)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.15
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||15|| ------>>>> अगला

1.15 उत्तरा
की कहानी भी थेरी तिस्सा से मिलती-जुलती है। उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता और चाची तथा भिक्षुणियों के संघ की प्रमुख) के अधीन संसार का त्याग किया। जब वह ध्यान कर रही थीं, तब गुरु (बुद्ध), विहार (मठ) के 'सुगंधित कक्ष' (उनकी कुटिया)

में बैठे हुए, ने उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए अपना प्रकाशमान दिव्य रूप भेजा, जिसके माध्यम से उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, जिसके बारे में उन्होंने परमानंद में बात की:
मैंने शारीरिक/क्रियात्मक रूप से स्वयं को अनुशासित किया है,

वाणी में और मन में, इरादे में और ध्यान में।

लालसा को जड़ से पूरी तरह से उखाड़ फेंका जाता है;

अब मैं शांत हो गया हूँ; मुझे निर्वाण की शांति का ज्ञान है। (15)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.16
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||16|| ------>>>> अगला

1.16 सुमना, कोसल के राजा पसेनादि की बहन
(जिन्होंने वृद्धावस्था में संसार त्याग दिया)।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और इस जीवन और पिछले जीवन में अच्छे कर्म संचित किए थे, और इसी बुद्ध काल में श्रावस्ती में कोसल के राजा की बहन के रूप में जन्मीं। गुरु (बुद्ध) द्वारा राजा पसेनादि को दिए गए उपदेश, 'चार ऐसे बालक हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती,' [1] को सुनकर, उन्होंने विश्वास किया और शरण और नैतिक उपदेशों (शील) में दृढ़ हो गईं। संसार त्यागने की इच्छा को उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्थगित कर दिया ताकि वे अपनी दादी की जीवन भर देखभाल कर सकें। दादी की मृत्यु के बाद, सुमना राजा के साथ विहार (मठ) गईं, और अपने साथ कालीनों और शॉलों का बहुत सारा खजाना लेकर गईं, और उन्हें संघ को भेंट कर दिया। और गुरु (बुद्ध) के उपदेश सुनकर, उन्होंने अनागामी[2] की अवस्था प्राप्त की और दीक्षा का अनुरोध किया। गुरु ने उनके ज्ञान की परिपक्वता को पहचानते हुए कहा:

हे आदरणीय महिला, सुखपूर्वक विश्राम करें!

आप स्वयं द्वारा निर्मित वस्त्र में लिपटे हुए विश्राम करें।

भीतर जो भावनाएं उग्र रूप से भड़क रही थीं, वे अब शांत हो गई हैं।

निर्वाण की शांति को जानकर अब आप शांत हो गए हैं। (16)

और जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया। अपनी परमानंदमय अवस्था में उन्होंने उसी श्लोक का उच्चारण किया, जिससे वह उनके अन्न (ज्ञानोदय की अवस्था) की घोषणा बन गया। उन्होंने तुरंत संसार त्याग कर संघ में प्रवेश किया।

[1] दृष्टांत में वर्णित 'युवा प्राणी' एक राजकुमार, एक सर्प, एक अग्नि और एक भिक्षु हैं। ये चारों ही अच्छे या बुरे के लिए महान संभावित कारक हैं, इसलिए इनका सामना होने पर इन्हें अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।
[2] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: जो वापस नहीं लौटता, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.17
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||17|| ------>>>> अगला

1.17 धम्म, सावत्थी के एक कुल के व्यक्ति की पुत्री।

उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और विभिन्न अवस्थाओं में पुण्य अर्जित करते हुए, इस बुद्ध काल में सावत्थी के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया। उनका विवाह एक योग्य पति से हुआ, परन्तु उन्होंने बुद्ध के मार्ग में आस्था विकसित की और संसार त्यागने (भिक्षुणी बनने) की इच्छा की, परन्तु उनके पति सहमत नहीं हुए। अतः उन्होंने उनकी मृत्यु के बाद तक प्रतीक्षा की और फिर संघ में प्रवेश कर विपश्यना[1] (ध्यान) का अभ्यास किया। एक दिन भिक्षा माँगकर विहार (मठ) लौटते समय उनका संतुलन बिगड़ गया और वे गिर पड़ीं। केवल इसी बात को अपने ध्यान का विषय बनाकर उन्होंने विपश्यना[1] का अभ्यास किया और अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और फिर उन्होंने यह श्लोक कहा:
मैं अपने दैनिक भोजन की तलाश में बहुत दूर तक भटकता रहा था;

कांपते हुए अंगों से थककर मैं अपने विश्राम स्थल पर पहुंचा।

अपने कर्मचारियों पर भरोसा करते हुए, जबकि वहाँ भी

मैं धरती पर गिर पड़ा। देखो! यहाँ कितना दुख है!

इस नश्वर शरीर पर मंडरा रहे दुख स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहे थे।

अंतर्मुखी दृष्टि की ओर। शरीर पेट के बल लेटा हुआ था;

मेरा मन स्वतंत्रता (विमुच्चि/विमुक्ति) में जागृत हुआ। (17)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 1.18
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||18|| ------>>>> अगला

1.18 संघा:
उनकी कहानी थेरी धीरा जैसी ही है, लेकिन उनका श्लोक इस प्रकार है:
मैंने अपना घर छोड़ दिया है, क्योंकि मैंने अपनी दुनिया छोड़ दी है!

मैंने अपने बच्चे को और अपने सभी प्रिय झुंडों को छोड़ दिया है!

मैंने वासना को त्याग दिया है, और द्वेष भी चला गया है।

और मैंने अज्ञान को अपने से दूर कर दिया है;

लालसा और लालसा की जड़ पर काबू पा लिया गया।

निर्वाण की शांति को जानकर अब मैं शांत हूँ। (18)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||19|| ------>>>> अगला

2.1 अभिरूपा-नंदा, शाक्य वंश की पुत्री, कपिलवस्तु में
जन्मीं। विपस्सी बुद्ध (पूर्ववर्ती बुद्ध) के समय में, उनके गृह नगर बंधुमती में एक धनी कुलीन परिवार में जन्मीं अभिरूपा-नंदा एक धर्मपरायण गृहस्थ अनुयायी बनीं। गुरु की मृत्यु पर उन्होंने उनकी अस्थियों के मंदिर में रत्नों से जड़ा एक स्वर्ण छत्र [1] अर्पित किया। इसके फलस्वरूप विभिन्न स्वर्गों में पुनर्जन्म लेकर, इस बुद्ध काल में उनका पुनर्जन्म कपिलवस्तु में शाक्य वंश के खेमक की प्रमुख पत्नी के रूप में हुआ और उनका नाम नंदा रखा गया। अपनी अत्यधिक सुंदरता, आकर्षण और मोहकता के कारण वे सुंदर नंदा के नाम से प्रसिद्ध हुईं।
अब, जिस दिन उन्हें अपने दूल्हों में से किसी एक को चुनना था, उसी दिन उनके युवा शाक्य संबंधी चरभूत का निधन हो गया। तब उनके माता-पिता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें संसार त्यागने के लिए विदा किया। लेकिन संघ में प्रवेश करने के बाद भी वह अपनी सुंदरता पर मोहित थी और गुरु (बुद्ध) की फटकार के डर से उनकी उपस्थिति से बचती रही। अब भगवान बुद्ध जानते थे कि वह ज्ञान ग्रहण करने के लिए परिपक्व हो चुकी है, और उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता और चाची होने के साथ-साथ भिक्षुणी संघ की प्रमुख) को निर्देश दिया कि सभी भिक्षुणियों को उनके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाए। नंदा ने उसकी जगह किसी और को भेजा। और भगवान बुद्ध ने कहा, 'किसी को भी प्रतिनिधि के रूप में न आने दें।' इसलिए उसे आना ही पड़ा। और भगवान बुद्ध ने अपनी जादुई शक्ति से एक सुंदर स्त्री को प्रकट किया और उसे वृद्ध और कमजोर होते हुए दिखाया, जिससे नंदा को पीड़ा हुई। और उन्होंने उससे इन शब्दों में बात की:
देखो, नंदा, यह गंदा परिसर, रोगग्रस्त है।

यह अपवित्र है! अपने मन को समझने के लिए विवश करो।

और एकाग्र मन से एकाग्र हो जाओ। (19)

अनिमित्तन[2] को समझें

अहंकार के हानिकारक पूर्वाग्रह को दूर भगाएं।

क्या मन ने व्यर्थ की कल्पनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है?

तब आप शांत और निर्मल होकर अपने मार्ग पर प्रस्थान करें। (20)

और जब उन्होंने बोलना समाप्त किया, तो उन्हें अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त हुआ। उन्होंने मन ही मन उन श्लोकों को दोहराया और उन्हें अपने अन्न (ज्ञान की अवस्था) की घोषणा बना दिया।

[1] या टी, गुंबद के ऊपर। विपस्सी पिटक के सात बुद्धों में से प्रथम थे।
[2] अनिमित्तन, आदर्श जो क्षणभंगुर, दुःख उत्पन्न करने वाली या निरंतर आत्मा-सत्ता की उपस्थिति पर निर्भर नहीं करते।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 2.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||20|| ------>>>> अगला

2.2 जेंती (या जेंता), लिच्छवियों की पुत्री, वैशाली।
उनके अतीत और वर्तमान की कहानी सुंदर नंदा के समान है; लेकिन उनका पुनर्जन्म वैशाली में, लिच्छवियों के राजसी परिवार में हुआ था। एक और अंतर यह है: उन्होंने गुरु (बुद्ध) के धम्म उपदेश सुनने के बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, और अपने भीतर आए परिवर्तन को याद करते हुए उन्होंने आनंद से ये श्लोक कहे:
जागृत मन के सात कारक [1]

सात तरीके जिनसे हम निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं —

मैंने सब कुछ विकसित किया है और उसे परिपक्व बनाया है।

बुद्ध के वचन के अनुसार भी। (21)

क्योंकि मैंने उसे अपनी आँखों से देखा है

महान, भगवान (भगवान बुद्ध)। [2] सभी जन्मों का अंतिम।

क्या यही मेरा निर्माण करता है? जन्मों का चक्र।

पराजित हो गया हूँ—अब मेरा पुनर्जन्म कभी नहीं होगा! (22)

[1] बोज्झंग या संबोज्झंग; शाब्दिक अर्थ, बोधि (जागृति) के भाग। वे थे सजगता, धम्म का अध्ययन, ऊर्जा, आनंद, शांति, एकाग्रता, समभाव।
[2] 'चूंकि भगवान बुद्ध स्वयं धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का शरीर हैं, इसलिए उनके आर्य धम्म को समझना ही उन्हें देखना है। बुद्धों और अन्य आर्यों को न केवल उनके दृश्य स्वरूप के दर्शन से, बल्कि आर्य धम्म की अंतर्दृष्टि से भी देखा जा सकता है, जैसा कि उन्होंने कहा: "यद्यपि, वक्खली, जो धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) देखता है, वह मुझे देखता है।"'
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||21|| ------>>>> अगला

2.3 सुमंगला की माता, गरीब परिवार की पुत्री, सरकंडा बुनने वाले की पत्नी, सावत्थी।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और इस जन्म-जन्मांतर में अच्छे कर्म संचित किए थे। उनका जन्म इसी बुद्ध काल में सावत्थी के एक गरीब परिवार में हुआ था और उनका विवाह एक सरकंडा बुनने वाले से हुआ था। उनका प्रथम पुत्र, अंतिम जन्म था, जो बड़ा होकर सुमंगला और अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बना।[1] उनका नाम ज्ञात न होने के कारण पाली ग्रंथों में उन्हें एक अज्ञात थेरी कहा गया है और वे सुमंगला की माता के रूप में जानी जाती हैं। वह भिक्षुणी के रूप में दीक्षित हुईं, विपश्यना का अभ्यास किया और एक दिन, गृहस्थ जीवन में अपने द्वारा सहे गए सभी कष्टों को याद करते हुए, वे बहुत प्रभावित हुईं, और अपनी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना) में प्रगति करते हुए, उन्होंने धम्म के रूप और अर्थ के पूर्ण ज्ञान के साथ अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। इस पर उन्होंने कहा:
हे पूर्णतः स्वतंत्र स्त्री! मैं कितनी स्वतंत्र हूँ!

मूसल और मोर्टार से कितना पूरी तरह मुक्त![3]

मैं अपने खाना पकाने के बर्तनों के साथ काम करते हुए काला और गंदा था।

मेरे क्रूर पति का दर्जा तो और भी कम था।

वह धूप से बचने के लिए छांव में बैठता है और हमेशा बुनाई करता रहता है। (23)

अब मैं अपनी सारी पूर्व वासना और घृणा से मुक्त हो चुका हूँ।

मैं छाया में आराम से बैठकर चिंतन करता हूँ।

पेड़ की फैली हुई शाखाओं का — ओह, कितना आनंदमय!

मैं ध्यान में आनंदित हूँ (24)

[1] ये सुमंगला हैं, जिन्होंने अपने श्लोक (थेरागथा, 43) में तीन 'टेढ़ी चीजों' - हंसिया, हल और कुदाल से मुक्ति का जश्न मनाया है।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएं, संवेदनाएं और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।
[3] रसोई का श्रम (मुसला)।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||22|| ------>>>> अगला

2.4 काशी के करोड़पति (सेठी) की पुत्री अड्ढकाशी, पूर्व वेश्या:
कश्यप बुद्ध के समय में एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मी, उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और नैतिक उपदेशों (शील) में स्थापित भिक्षुणी बन गईं। लेकिन उन्होंने एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) वरिष्ठ भिक्षुणी को वेश्या कहकर अपमानित किया, जिसके कारण उन्हें नरक भोगना पड़ा। बुद्ध काल में उनका पुनर्जन्म काशी राज्य में एक प्रतिष्ठित और समृद्ध नागरिक की संतान के रूप में हुआ। लेकिन अपने पूर्व के बुरे शब्दों के निरंतर प्रभाव के कारण, वे स्वयं वेश्या बन गईं। उन्होंने कैसे संसार का त्याग किया और विशेष दूत द्वारा दीक्षा प्राप्त की, इसका वर्णन चुल्ला वग्ग में किया गया है। वे भगवान बुद्ध से दीक्षा प्राप्त करने के लिए श्रावस्ती जाना चाहती थीं। लेकिन बनारस के अनियंत्रित लोगों ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया, इसलिए उन्होंने भगवान बुद्ध से परामर्श मांगा, और उन्होंने उन्हें एक दूत द्वारा दीक्षा प्राप्त करने की अनुमति दी। फिर उन्होंने अंतर्दृष्टि ध्यान (विपस्सना[1]) का अभ्यास करते हुए, कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, जिसमें उन्हें धम्म का रूप और अर्थ का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इस पर उन्होंने कहा:
मेरी फीस काशी राज्य से कम नहीं थी।

राजस्व के रूप में भुगतान किया गया - यह उसी पर आधारित था।

मेरे लिए मूल्य के बदले मूल्य तय किया गया था। (25)

लेकिन अब मेरी सारी सुंदरता कष्टदायक हो गई है;

मैं इससे ऊब गया हूँ, मेरा मोहभंग हो गया है।

मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा, बार-बार, और फिर कभी नहीं।

पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में दौड़ते रहो!

अब मेरे लिए वास्तविक और सत्य है त्रिविध ज्ञान.[2]

मैं भगवान बुद्ध के अनुशासन में सिद्ध हो चुका हूँ। (26)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] तिस्सो विज्जा: यह पन्ना की तीन उपलब्धियों पर लागू होता है, अर्थात् (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 2.5
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||23|| ------>>>> अगला

2.5 चित्त, राजगृह के महान अभिजात वर्ग की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके 94वें युग (कप्पा/कल्प) [1] में एक परी के रूप में जन्म लिया। उन्होंने मौन बुद्ध (पचेकबुद्ध) की पुष्पांजलि अर्पित की। मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के बीच अनेक जन्मों के बाद, इस बुद्ध-काल में उनका जन्म राजगृह में एक प्रमुख अभिजात वर्ग के परिवार में हुआ। जब वे समझदार हुईं, तब उन्होंने राजगृह के द्वार पर गुरु (बुद्ध) का उपदेश सुना और विश्वास की अनुयायी बनकर महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी तथा भिक्षुणियों के संघ की प्रमुख) द्वारा दीक्षा ली। और अंततः, अपने वृद्धावस्था में, जब उन्होंने गिद्ध शिखर पर चढ़ाई की और संन्यासी के अभ्यास किए, तब उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) में प्रगति हुई और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, उन्होंने इस प्रकार कहा:
हालाँकि मैं बीमार और कमजोर हूँ, और सब कुछ

मेरी जवानी का जोश भले ही बीत गया हो, फिर भी मैंने चढ़ाई जारी रखी है।

मेरी लाठी पर झुककर, पर्वत शिखर। (27)

मेरे कंधे से मेरा लबादा उल्टा लटका हुआ है।

मेरा छोटा सा कटोरा। इसलिए मैं चट्टान के सहारे झुक जाता हूँ।

और अपने इस स्व को सहारा दो, और टूटकर अलग हो जाओ

भीतर अज्ञान का अंधकार। (28)

[1] कल्प/कप्पा ब्रह्मांड के विस्तार और संकुचन के चक्र; इस वर्तमान युग से पहले।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएं, संवेदनाएं और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.6
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||24|| ------>>>> अगला

2.6 राजगृह के एक ब्राह्मण की पुत्री मेत्तिका,
पूर्व बुद्धों के अधीन पुण्य संचय करते हुए, सिद्धार्थ [1] भगवान (भगवान बुद्ध) के समय में एक कुलीन परिवार में जन्मीं और उनके मंदिर में रत्नजड़ित कमरबंद अर्पित करके उनकी पूजा की। स्वर्ग और पृथ्वी पर अनेक जन्मों के बाद, उस पुण्य के फलस्वरूप, वह इस बुद्ध काल में राजगृह के एक प्रख्यात ब्राह्मण की संतान बनीं। अन्य मामलों में उनका मामला पिछले मामले के समान ही है, सिवाय इसके कि यह गिद्ध शिखर के समान एक अन्य पर्वत था जिस पर वह चढ़ीं। [2], और एक संन्यासी के अभ्यास करने से उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना [3]) में प्रगति हुई और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। उन्होंने भी, अपनी उपलब्धि को याद करते हुए, परमानंद में कहा:
भले ही मैं पीड़ित और कमजोर हूँ, और सब कुछ

मेरी जवानी का वसंत भले ही बीत गया हो, फिर भी मैं आ चुका हूँ।

मैंने अपनी लाठी का सहारा लिया और ऊपर चढ़ गया।

पर्वत शिखर। (29)

मैंने अपना लबादा उतार दिया,

मेरा छोटा कटोरा उलट गया: इसलिए मैं यहाँ बैठा हूँ

चट्टान पर। और मेरे मन पर छा जाता है

मैं स्वतंत्रता (विमुक्ति, मोक्ष) की सांस जीतता हूं

त्रिविध ज्ञान की विजय हुई! बुद्ध की साधना पूर्ण हुई!(30)

[1] चौबीस बुद्धों में से एक।
[2] राजगीर (प्राचीन शहर) लगभग सात पहाड़ियों से घिरा हुआ है।
[3] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.7
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||25|| ------>>>> अगला

2.7 मित्त(2), शाकियों की पुत्री, कपिलवस्तु में
जन्मीं, विपस्सी बुद्ध के समय में एक कुलीन परिवार में जन्मीं और उनके पिता के दरबार की महिला बनीं, उन्होंने एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) वरिष्ठ भिक्षुणी को भोजन और कीमती वस्त्र भेंट करके पुण्य कर्म अर्जित किया। अंततः, इसी बुद्ध काल में, कपिलवस्तु में शाकियों के राजसी परिवार में जन्मीं, उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी तथा भिक्षुणी संघ की प्रमुख) के साथ संसार का त्याग किया, और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपस्सना[1]) के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, कुछ ही समय में अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, आनंद और प्रसन्नता ने उन्हें यह कहने के लिए प्रेरित किया:
पूर्णिमा के दिन और पंद्रहवें दिन,

और महीने के दोनों हिस्सों की आठवीं तारीख को,

मैंने उपवास रखने का भरसक प्रयास किया; मैंने आठ नियमों का पालन किया(31)

अतिरिक्त उपवास, जो देवताओं (देवदूतों) को आकर्षित करते हैं,

और स्वर्गिक घरों में खुशी से निवास करना।

आज एक ही भोजन, सिर मुंडा हुआ, पीला वस्त्र —

मेरे लिए इतना ही काफी है। मुझे देवताओं (देवदूतों) का स्वर्ग नहीं चाहिए।

मैंने हृदय के दर्द, हृदय की तड़प को प्रशिक्षण के माध्यम से दूर कर दिया है। (32)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.8

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||26|| ------>>>> अगला

2.8 अभय की माता, पद्मावती, उज्जैनी की पूर्व वेश्या:
पूर्व बुद्धों के अधीन पुण्य संचय करते हुए, उन्होंने तिस्सा बुद्ध के समय में उन्हें भिक्षा मांगते हुए देखा और प्रसन्नतापूर्वक उनका कटोरा लेकर उसमें एक चम्मच भोजन डाला। इसके फलस्वरूप देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने इस बुद्ध काल में भी जन्म लिया और उज्जैनी नगर की सुंदरी पद्मावती बन गईं।[1] मगध के राजा बिम्बिसार ने उनके बारे में सुना और अपने पुरोहित से उन्हें देखने की इच्छा व्यक्त की। पुरोहित ने अपने मंत्रों की शक्ति से एक यक्ष को बुलाया, जिसने अपनी शक्ति से राजा को उज्जैनी ले आया। बाद में जब उन्होंने राजा को संदेश भेजा कि वे उनसे गर्भवती हैं, तो राजा ने उत्तर में संदेश भेजा, 'यदि पुत्र हो, तो मुझे उसके बड़े होने पर देखने दो।' और उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम अभय रखा। जब वह सात वर्ष का था, तब उसकी माँ ने उसे बताया कि उसका पिता कौन है, और उसे बिम्बिसार के पास भेज दिया। राजा को वह लड़का बहुत प्रिय लगा, और उसने उसे अपने दरबार के अन्य लड़कों के साथ पाला-पोसा। उसके धर्म परिवर्तन और दीक्षा का वर्णन वृहदों के भजनों (थेरागाथा) में मिलता है। बाद में, उसकी माता ने अपने पुत्र को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, और उसने भी संसार त्याग दिया, भिक्षुणी बन गई और विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान) करने लगी, और फिर अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, जिसमें धम्म का रूप और अर्थ दोनों पूर्णतः ज्ञात थे। तब उसने उस श्लोक को याद किया और दोहराया जिससे उसके पुत्र ने उसे उपदेश दिया था, और उसमें अपना श्लोक भी जोड़ा:
'पैर के तलवे से ऊपर की ओर, हे प्रिय माता,

बालों के शीर्ष से नीचे की ओर इस शरीर को देखें।

क्या यह दुर्गंधयुक्त वस्तु अशुद्ध नहीं है?' (33)

मैंने इस पर विचार किया है। अभी भी ध्यान में डूबा हुआ हूँ।

जब तक कामवासना की हर नस जड़ से उखाड़ न दी जाए।

इच्छा की सारी उत्तेजना मिटा दी गई है।

अब मैं शांत हूँ और मैंने निर्वाण की शांति प्राप्त कर ली है। (34)

[1] यानी, कमल की तरह
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 2.9
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||27|| ------>>>> अगला

2.9 अभया, उज्जैनी के एक कुल के व्यक्ति की पुत्री।
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्मों का सदुपयोग करते हुए, सिख बुद्ध के समय में[1] उनका एक महान कुलीन परिवार में पुनर्जन्म हुआ और वे उनके पिता अरुणा की प्रधान रानी बनीं। एक दिन जब सिख बुद्ध भिक्षा के समय महल में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्होंने राजा द्वारा दिए गए लाल कमलों का अर्पण करके बुद्ध की आराधना की। इस कर्म के फलस्वरूप देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच अनेक जन्मों (उच्च जन्मों) में जन्म लेने के बाद, उनका इस बुद्ध काल में उज्जैनी में एक प्रतिष्ठित परिवार में पुनः जन्म हुआ और वे अभया की माता की बहुत निकट हो गईं। जब उनकी माता ने संसार त्याग दिया, तो अभया ने भी उनके प्रेम के कारण संन्यास ले लिया। राजगृह में उनके साथ रहते हुए, एक दिन वह शीतल वन (सीतवनम) में संसार की कुरूपता के विचार पर ध्यान करने गईं। गुरु (बुद्ध), अपने सुगंधित कक्ष में विराजमान थे, उन्होंने उन्हें उस प्रकार की वस्तु दिखाई जिसे

उन्हें चुनने का निर्देश दिया गया था। उस दृश्य को देखकर वह भयभीत हो गईं। तब गुरु ने अपना प्रकाशमान दिव्य रूप प्रकट किया, मानो उनके सामने बैठे हों, और कहा:
हे अभय, शरीर तो नश्वर है,

जिससे सांसारिक व्यक्ति का सुख जुड़ा हुआ है।

मैं अपने इस नश्वर शरीर को त्याग दूंगा।

मैं जो कुछ भी करता हूँ, उसमें सचेत और आत्म-जागरूक रहता हूँ। (35)

अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न करने वाली गतिविधियों में संलग्न था।

मैंने आलस्य के बिना संघर्ष किया, उन सब चीजों से मुक्त होकर।

मैंने लालसा को नष्ट कर दिया है, और

बुद्ध की साधना पूर्ण हुई। (36)

और जब उन्होंने बोलना समाप्त किया तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने श्लोकों को स्वयं को संबोधित करते हुए कहा।

[1] सात बुद्धों में से द्वितीय।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा2.10
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||28|| ------>>>> अगला

2.10 समा, कोसंबी के एक महान कुलीन परिवार की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे। सौभाग्यशाली परिस्थितियों में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने इस बुद्ध-काल में कोसंबी में एक प्रतिष्ठित कुलीन परिवार में जन्म लिया। जब उनकी प्रिय मित्र, गृहस्थ शिष्या समवती का निधन हुआ, तो उन्होंने व्यथा में संसार का त्याग कर दिया। परन्तु अपनी मित्र के शोक को वश में न कर पाने के कारण वे आर्य मार्ग (बुद्ध का मार्ग) को नहीं समझ पाईं। अब, जब वे बैठक कक्ष में बैठकर वरिष्ठ आनंद का उपदेश सुन रही थीं, तब वे अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में लीन हो गईं और सातवें दिन, उन्होंने धम्म (शाश्वत सत्य) को रूप और अर्थ में पूर्णतः समझकर अर्हंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया।
और अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए, उन्होंने इसे इस स्तोत्र में व्यक्त किया:
चार बार नहीं, पांच बार, मैं अपनी कोठरी से तेजी से बाहर निकला।

और मन की शांति की तलाश में भटकता रहा।

मैंने व्यर्थ ही प्रयास किया, और विचारों का शासन भी व्यर्थ रहा।

मैं उन्हें कैद में नहीं ला सका।

मुझे, यहाँ तक कि मुझे भी, उस आठवें दिन

यह आया: मेरे मन से सारी लालसा दूर हो गई। (37)

अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न करने वाली गतिविधियों में संलग्न था।

मैंने आलस्य के बिना संघर्ष किया, उन सब चीजों से मुक्त होकर।

मैंने लालसा को नष्ट कर दिया है, और

बुद्ध की साधना पूर्ण हो गई। (38)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

बुद्ध के समय में एक पुरुष और स्त्री रहते थे जिनकी एक सुंदर पुत्री थी जिसका नाम समावती था। वे अपने शहर में महामारी फैलने तक सौहार्द और सुख से रहते थे। अपने जीवन के भय से, उन्होंने वंश की राजधानी कोसंबी जाने का निर्णय लिया, जहाँ उन्हें राजा उदेना के वित्त मंत्री घोषक से सहायता मिलने की आशा थी, जो उनके पारिवारिक मित्र थे।

नगर पालिका ने महामारी के कारण बेघर हुए शरणार्थियों के लिए एक सार्वजनिक भिक्षागृह स्थापित किया था। समावती अपने माता-पिता और स्वयं के लिए भोजन लेने वहाँ गई। पहले दिन उसने तीन भाग भोजन माँगा, दूसरे दिन दो भाग और तीसरे दिन एक भाग।

भोजन बाँटने वाले मित्त ने व्यंग्यपूर्वक उससे पूछा कि क्या उसे अंततः अपने पेट की क्षमता का एहसास हो गया है। समावती ने शांत भाव से उत्तर दिया कि पहले दिन तो तीन लोग थे जिनके लिए वह भोजन ले जा रही थी। फिर उसके पिता महामारी से मर गए। दूसरे दिन वह अपनी माँ और अपने लिए भोजन ला रही थी। तभी उसकी माँ प्लेग की चपेट में आ गई और उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए, आज उसे केवल एक भाग भोजन की आवश्यकता थी।

मित्त को अपने व्यंग्य और बिना सोचे-समझे की गई टिप्पणी पर बहुत बुरा लगा। उसने समावती को अपनी पालक संतान के रूप में गोद लेने का प्रस्ताव रखा। समावती मान गई। फिर वह अपने पालक पिता के साथ भिक्षा वितरण में मदद करने लगी। कुछ ही समय में, समावती, जो बहुत ही सक्षम और बुद्धिमान थी, ने अव्यवस्थित और शोरगुल वाले भिक्षागृह को एक सुव्यवस्थित और सुचारू रूप से चलने वाले केंद्र में बदल दिया। इतना कि वित्त मंत्री घोषक इस बदलाव को देखकर आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने मित्त की संगठन क्षमता की प्रशंसा की। मित्त ने विनम्रतापूर्वक इसका श्रेय अपनी गोद ली हुई बेटी को दिया और घोषक का परिचय समावती से कराया।

जब घोषक को पता चला कि समावती उनके दिवंगत मित्र की पुत्री है, तो उन्होंने उसे गोद लेने और अपनी बेटी की तरह पालने का निर्णय लिया। यद्यपि मित्त उसे बहुत प्यार करते थे और अपनी पालक पुत्री को खोना नहीं चाहते थे, फिर भी उन्हें यह एहसास था कि वित्त मंत्री की पुत्री होने के नाते उसे कई ऐसी सुख-सुविधाएँ मिलेंगी जो वे स्वयं नहीं दे सकते। समवती के सौभाग्य में बाधा न बनने की इच्छा से वह सहमत हो गया। घोषक की पुत्री होने के नाते, समवती एक विशाल संपत्ति की उत्तराधिकारी बनी और कुलीन वर्ग में विचरण करने लगी।

कोसंबी के राजा, उदेना की दो सुंदर पत्नियाँ थीं। उन्होंने पहली रानी, वासुलदत्ता से राजनीतिक कारणों से विवाह किया था, और दूसरी रानी, मगंदिया से उनकी बुद्धिमत्ता के कारण। हालाँकि, उनकी दोनों पत्नियाँ उन्हें वह प्रेम, करुणा और कोमलता प्रदान नहीं कर सकीं जो वे एक पत्नी से चाहते थे। वास्तव में, मगंदिया तो ठंडी, स्वार्थी और कठोर स्वभाव की थी।

एक दिन राजा ने सुंदर, सौम्य और दयालु समावती को देखा। उनकी सुंदरता और सौम्यता से मोहित होकर उन्होंने उन्हें अपनी तीसरी संगिनी बनाने का निश्चय किया। घोषक, जो अपनी दत्तक पुत्री से अत्यंत प्रेम करते थे और राजा के स्वभाव को भलीभांति जानते थे, ने इनकार कर दिया। राजा उदेना क्रोधित हो गए। उन्होंने घोषक को वित्त मंत्री के पद से बर्खास्त कर दिया और उनका महल जब्त कर लिया।

समावती अपने दत्तक पिता पर आई विपत्ति से व्याकुल थीं। यद्यपि वे राजा से विवाह नहीं करना चाहती थीं, फिर भी उन्होंने इस शर्त पर राजा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि घोषक को उनके पद पर पुनः स्थापित किया जाए और उनका महल वापस दे दिया जाए। राजा मान गए। समावती शीघ्र ही राजा की प्रिय संगिनी बन गईं।

अपने पद के अनुरूप, समावती के पास सेवकों का एक बड़ा दल था जो उनकी हर इच्छा का ध्यान रखता था। उनमें से एक सेवक खुज्जुत्तारा था। रानी प्रतिदिन खुज्जुत्तारा को फूल खरीदने के लिए आठ सोने के सिक्के देती थीं। खुज्जुत्तारा प्रतिदिन चार सोने के सिक्के अपनी जेब में रख लेता था और शेष से फूल खरीदता था। एक दिन जब वह फूल खरीदने गई तो फूलवाले ने उसे बताया कि उसने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया है और पूछा कि क्या वह रुककर प्रवचन में भाग लेना चाहेगी।

खुज्जुतारा मान गई। वह मदद करने के लिए रुक गई और भोजन के बाद बुद्ध के प्रवचन को ध्यान से सुना। बुद्ध की शिक्षाओं से खुज्जुतारा का रूप बदल गया। अनगिनत वर्षों के ज्ञान से उसका मन तीव्र हो गया था। प्रवचन के अंत तक उसने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त कर ली। अपने पूर्व छल पर पश्चाताप करते हुए, खुज्जुतारा ने रानी के लिए आठ सोने के सिक्कों के बराबर फूल खरीदे।

रानी समवती ने खुज्जुतारा को देखते ही एक बदलाव महसूस किया। खुज्जुतारा शांत और सौम्य लग रही थी और उससे एक आंतरिक तेज निकल रहा था। वह इस बात से भी हैरान थी कि फूलों की मात्रा दोगुनी क्यों थी। रानी ने खुज्जुतारा से उसके परिवर्तन और अतिरिक्त फूलों के बारे में पूछा। खुज्जुतारा ने सच्चाई और अपने पूर्व छल को स्वीकार किया और क्षमा मांगी। फिर उसने रानी को बुद्ध के उस उपदेश के बारे में बताया जिसने उसका जीवन बदल दिया था।

खुज्जुत्तरा के आंतरिक परिवर्तन से प्रभावित होकर रानी ने बुद्ध और उनकी शिक्षाओं के बारे में और अधिक जानने का निश्चय किया। उसने खुज्जुत्तरा को अपनी निजी सेविका नियुक्त किया और उससे प्रतिदिन मठ आने का अनुरोध किया। उसने उसे धम्म सुनने और वापस आकर रानी और उसके दरबार को जो कुछ सीखा है, उसे सिखाने का निर्देश दिया।

असाधारण स्मृति वाली खुज्जुत्तरा ने बुद्ध की शिक्षाओं को शब्दशः दोहराया। रानी और उसकी दासियाँ धम्म और खुज्जुत्तरा के इस उपहार से प्रेरित हुईं। उसे ऊँची कुर्सी पर बिठाकर और स्वयं नीची सीटों पर बैठकर, उन्होंने आदर और कृतज्ञता के साथ उसकी शिक्षाओं को सुना।

धम्म से पूर्णतः प्रेरित रानी समवती ने राजा से बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने महल में दैनिक भोजन के लिए आमंत्रित करने की अनुमति मांगी। स्वयं उपस्थित न हो पाने के कारण बुद्ध ने आनंद को अपना प्रतिनिधि बनाकर महल भेजा। प्रतिदिन (जब तक बुद्ध कोसंबी में निवास कर रहे थे), आनंद रानी समवती से दोपहर का भोजन ग्रहण करते थे और उन्हें तथा उनके दरबार की महिलाओं को धम्म का उपदेश देते थे। शीघ्र ही रानी समवती ने संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापन्न, प्राप्त कर ली। दरबार की कई महिलाओं ने भी संतत्व की उच्च अवस्थाएं प्राप्त कीं। उनके पालक पिता, घोषक ने भी इस सिद्धांत को अपनाया और बुद्ध और उनके अनुयायियों के लिए कोसंबी में घोषिताराम नामक एक विशाल मठ का निर्माण करवाया।

रानी समवती धम्म में निरंतर प्रगति करती रहीं। उनका सबसे उत्कृष्ट गुण सभी प्राणियों के प्रति उनका अपार प्रेम और करुणा था। समवती करुणा और प्रेम की साक्षात मूर्ति थीं और जिनसे भी वे संपर्क में आती थीं, उन सभी में इसे फैलाती थीं।

हालांकि, रानी की लोकप्रियता और इस तथ्य से कि वह निस्संदेह राजा उदय की प्रिय थीं, रानी मगंदिया प्रसन्न नहीं हुईं। उन्होंने समवती को इसलिए स्वीकार किया था क्योंकि राजा के लिए एक से अधिक पत्नियां रखना सामान्य प्रथा थी। लेकिन वह समवती की बुद्ध और धम्म के प्रति श्रद्धा को स्वीकार नहीं कर सकीं।

बचपन से ही मगंदिया असाधारण रूप से सुंदर थीं। उनके माता-पिता ने उनके लिए एक उपयुक्त जीवनसाथी की तलाश की थी और एक बेहद सुंदर और सुसंस्कृत पुरुष की खोज की थी। एक दिन बुद्ध भिक्षा मांगने उनके घर आए। बुद्ध को पहचान न पाने के बावजूद, उनके व्यवहार और चेहरे से प्रसन्न होकर, उन्होंने मगंदिया का विवाह उनसे प्रस्तावित कर दिया। बुद्ध ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और अनित्यता और शरीर की तुच्छता पर एक सूत्र का प्रवचन दिया, जिसकी उन्हें कोई इच्छा नहीं थी। हालांकि, अपनी सुंदरता पर घमंड और अभिमान करने वाली मगंदिया ने उनके प्रवचन को व्यक्तिगत रूप से लिया और अस्वीकार किए जाने पर अपमानित महसूस किया। समवती को बुद्ध का आदर करते देख, जिन्होंने कथित तौर पर उनका अपमान किया था, उन्हें पुराने घाव याद आ गए। उसने अपना क्रोध और ईर्ष्या समावती पर केंद्रित करने का निश्चय किया। उसने झूठे आरोप लगाकर राजा उदेना के समावती के प्रति प्रेम

और आस्था को भंग करने का अनेक प्रयास किए। परन्तु समावती शांत और करुणा एवं प्रेम से परिपूर्ण रहीं। मगंदिया के किसी भी कार्य से राजा का अपनी प्रिय रानी के प्रति अटूट प्रेम नहीं बदला।

हताशा में मगंदिया ने रानी को मारने का निश्चय किया। कुछ लालची रिश्तेदारों की सहायता से उसने उस दिन रानी के निवास में आग लगाने की योजना बनाई जब वह स्वयं शहर से बाहर थीं। मगंदिया राजा के क्रोध से भलीभांति परिचित थी और यह सुनिश्चित करना चाहती थी कि किसी भी प्रकार का दोष उस पर न लगे। रानी समावती और उनके दरबार के अधिकांश सदस्य आग में जलकर मर गए। परन्तु रानी अंत तक करुणा एवं प्रेम से परिपूर्ण रहीं। उन्होंने अपनी दासियों को, जो लपटों में घिरी हुई थीं, यह कहकर प्रोत्साहित किया कि वे एकाग्र होकर धर्म का पालन करें:
"यह आसान मामला नहीं होगा।"

बुद्ध के ज्ञान के बावजूद भी,

ठीक-ठीक यह निर्धारित करने के लिए कि कितनी बार

इस प्रकार हमारे शरीर आग से जल गए हैं।

जैसे-जैसे हम जन्म-दर-जन्म आगे बढ़ते गए हैं

अस्तित्व के अनादि चक्र में।"

उनके वचनों से प्रेरित होकर दरबार की स्त्रियों ने ध्यान किया और मानसिक विकास प्राप्त किया, जिससे मृत्यु के समय वे सभी संतत्व की विभिन्न अवस्थाओं में प्रवेश कर चुकी थीं।

यह दुखद समाचार सुनकर भिक्षुओं ने बुद्ध से रानी और उनकी स्त्रियों के पुनर्जन्म स्थान और उनकी दुखद मृत्यु के कारण के बारे में प्रश्न किया। बुद्ध ने उन्हें बताया कि सभी स्त्रियाँ संतत्व की प्रथम, द्वितीय या तृतीय अवस्था में पहुँच चुकी थीं और इस प्रकार देव और ब्रह्म लोकों में पुनर्जन्म लेकर वहाँ से समय आने पर अर्हंतत्व प्राप्त करेंगी।

उन्होंने आगे बताया कि पिछले जन्म में समवती बनारस की रानी के रूप में जन्मी थीं और अपनी स्त्रियों के साथ नदी में स्नान करने गई थीं। ठंड लगने पर उन्होंने अपनी दासियों को चारों ओर की झाड़ियों में आग लगाने का आदेश दिया। उन्हें देर से पता चला कि पच्चेक बुद्ध वहाँ झाड़ियों के बीच छिपे हुए ध्यान कर रहे थे। पच्चेक बुद्ध के जीवित रहने और अपनी कहानी सुनाने पर अपनी लापरवाही के लिए फटकार का सामना करने के भय से उन्होंने अपनी दासियों को उन पर तेल डालने का आदेश दिया, इस आशा में कि वे मर जाएँगी। वे पच्चेक बुद्ध को मारने में सफल नहीं हुए थे, लेकिन सुनियोजित हत्या के कारण समवती और उनकी दासियों की मृत्यु हो गई।

मगंदिया की कुटिल योजना के बावजूद, राजा को यह एहसास हो गया कि समवती की हत्या के लिए उसी ने उकसाया था। अपने दुःख से व्याकुल होकर उसने मगंदिया और उसके रिश्तेदारों को यातना देकर जलाकर मार डालने का आदेश दिया। बाद में राजा को अपने प्रतिशोध पर पछतावा हुआ। वह करुणामयी समवती को बार-बार देखता रहा और महसूस करता रहा कि प्रतिशोध के कारण वह उससे और भी दूर हो गया है, जितना कि उसकी मृत्यु के कारण हुआ था। उसने बुद्ध की उन शिक्षाओं को अपनाया जिन्होंने समवती का जीवन बदल दिया था और वह उनके शाही संरक्षकों में से एक बन गया। बुद्ध ने समवती को प्रेम और करुणा का अभ्यास करने वाली स्त्री शिष्याओं में सर्वोपरि घोषित किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा3.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||29|| ------>>>> अगला

3.1 एक अन्य समा, कोसंबी के एक कुलवासी की पुत्री।
वह भी, पिछली समा की तरह, पुण्य कर्मों से संपन्न होकर, विपस्सी बुद्ध के समय में चंदाभागा नदी के किनारे एक परी के रूप में जन्मी। परी के रूप में जीवन व्यतीत करते हुए, उसने एक दिन गुरु (बुद्ध) को नदी के किनारे चलते हुए देखा, ताकि वे प्राणियों में धर्म का बीज

बो सकें। अत्यंत प्रसन्नता से उसने पुष्प अर्पित करके उनकी पूजा की। इसके फलस्वरूप उसे देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म प्राप्त हुआ, और इस बुद्ध काल में उसने कोसंबी में एक कुलवासी के परिवार में जन्म लिया। वह भी समावती की मित्र बनी और समावती की मृत्यु के दुःख से व्याकुल होकर संघ में प्रवेश किया। वह भी पच्चीस वर्षों तक आत्म-नियंत्रण प्राप्त नहीं कर सकीं, जब तक कि वृद्धावस्था में उन्होंने एक सामयिक उपदेश नहीं सुना, जिसके माध्यम से उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में प्रगति हुई और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, जिसमें धम्म का रूप और अर्थ दोनों पूर्ण रूप से ज्ञात था। उस पर पीछे मुड़कर देखने पर, उन्होंने कहा:
मुझे पुरोहित बने पूरे पच्चीस साल हो गए हैं!

लेकिन मेरे परेशान मन में अभी तक ऐसा बिल्कुल नहीं है।

क्या मैं समभाव (समथा) प्राप्त कर सकता हूँ (39)

मन की शांति, विचारों का नियंत्रण

मैंने इसे प्राप्त करने का बहुत प्रयास किया, लेकिन यह नहीं मिला;

और फिर रोमांच के सैलाब के साथ,

मैंने विजेता (बुद्ध) के अनुशासन में निवास किया।148 (40)

मैंने स्वयं को सभी दुखों से मुक्त कर लिया।

मैंने बिना आलस्य के मेहनत की और जीत हासिल की!

लालसा का नाश हो गया है, और बुद्ध की साधना पूर्ण हो गई है।

आज से सात दिन हो गए हैं जब से मैंने

भीतर ही भीतर मुरझा गई, वह प्राचीन लालसा (भौतिक इच्छाओं की)। (41)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 3.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||30|| ------>>>> अगला

3.2 उत्तमा, श्रावस्ती के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, पताचारा की शिष्या।
पूर्व बुद्धों के अधीन अच्छे कर्मों का संचय करते हुए, विपस्सी बुद्ध के समय में उनका जन्म बंधुमती में एक धनी जमींदार के घर हुआ और वे घरेलू सेविका बन गईं। बड़ी होकर उन्होंने अपने स्वामी के घर की देखभाल की। उस समय, राजा बंधुमा (विपस्सी के पिता) ने व्रत प्रथा को पुनः स्थापित किया और भोजन से पहले दान देते थे और भोजन के बाद प्रवचन सुनते थे। लोगों ने उनके इस नेक उदाहरण का अनुसरण करते हुए व्रत रखा, तो दासी ने सोचा: 'मैं भी क्यों न इन सबका अनुसरण करूँ?' व्रतों का पूर्ण पालन करने के कारण उनका पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं (स्वर्ग में देवदूतों) के बीच और अन्य सुखी लोकों में हुआ, और अंत में, इस बुद्ध युग में, श्रावस्ती के एक करोड़पति (सेठी) के घर में हुआ। विवेक की आयु में आकर, उन्होंने पताकारा का उपदेश सुना और संघ में प्रवेश किया; लेकिन वे अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में प्रगति करने में असमर्थ रहीं, जब तक कि पताकारा ने उनकी मनस्थिति को देखकर उन्हें उपदेश नहीं

दिया। इससे स्थापित होकर, उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया। और उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक इस प्रकार कहा:
चार बार नहीं, पांच बार, मैं अपनी कोठरी से तेजी से बाहर निकला।

और मन की शांति की तलाश में भटकता रहा।

विचारों के शासन को प्राप्त करने के व्यर्थ प्रयास लंबे समय से जारी हैं।

मैं उन्हें कैद में नहीं ला सका। (42)

वह महान भिक्षुणी मेरे पास आई।

धर्म में मेरी पालक माँ कौन थीं?

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया, जिसे मैंने सीखा।

इस क्षणिक स्व की प्रकृति.[2] (43)

और मैंने उनकी सारी बातों का ध्यान रखा, यहाँ तक कि जब वह पढ़ा रही थीं तब भी।

मैं सात दिनों तक ध्यान की अवस्था (ध्यान में समाधि की अवस्था) के आनंद में बैठा रहा।

और आराम से, पालथी मारकर; अंततः आठवें दिन।

मैंने अपने हाथ-पैर फैलाए और शांति से अपने रास्ते चला गया।

क्योंकि मैंने चारों ओर फैले अंधकार को चीर डाला था। (44)

अब, यह उनकी अन्ना (प्रबुद्ध अवस्था) की पुष्टि थी।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] शाब्दिक रूप से, खंड, इंद्रिय-बोध की प्रकृति और आत्मा के तत्व।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा3.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||31|| ------>>>> अगला

3.3 एक अन्य उत्तमा, कोसल ब्राह्मण की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युगों-युगीन प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके, विपस्सी बुद्ध के समय में बंधुमती में एक गृहस्थी के रूप में जन्म लिया। एक दिन, गुरु के संघ के एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) को भिक्षा मांगते देख, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें तीन मीठे केक भेंट किए। इस (अच्छे कर्म) के कारण उन्होंने अनेक बार सुखमय जन्म लिए और अंततः इस बुद्ध युग में कोसल देश के एक प्रख्यात ब्राह्मण के परिवार में जन्म लिया। जब वे समझदार हुईं, तो उन्होंने देश में भ्रमण करते हुए गुरु (बुद्ध) के उपदेश सुने और संसार को त्यागकर शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान प्रबुद्धता) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया। और उस पर विचार करते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक इस प्रकार कहा:

जागृत मन के सात कारक

सात तरीके जिनसे हम निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं —

मैंने सब कुछ विकसित किया है और उसे परिपक्व बनाया है।

बुद्ध के वचन के अनुसार भी। (45)

इच्छा पूरी हुई: मैंने शून्य (निर्वाण) को जीत लिया,[1]

मैं कारण-कार्य संबंध को समझती हूँ! बुद्ध की पुत्री,

मैं उनके मुख से, उनके पवित्र वचन से जन्मा हूँ, और मैं खड़ा हूँ।

निर्वाण के आनंद से सदा ग्रस्त। (46)

और वे सभी इंद्रिय-इच्छाएँ जो देवताओं (देवदूतों) को बांधती हैं,

जो भी बाधाएँ पुरुषों को रोकती हैं, उन्हें पूरी तरह से भगा दिया जाता है।

जन्मों का अनंत चक्र समाप्त हो गया है।

मेरे लिए पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) कभी दोबारा नहीं आएगा। (47)

[1] 'शून्य,' यानी मैं लोभ, द्वेष और सुस्ती से मुक्त हूँ, जो सभी बुराइयों के तीन स्रोत हैं। 'निशानहीन,' यानी मैं किसी भी ऐसी चीज़ से लगाव से मुक्त हूँ जिसे क्षणभंगुर, बुरा या आत्मा वाला 'चिह्नित' किया गया हो।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा3.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||32|| ------>>>> अगला

3.4 दंतिका, कोसल के राजा के ब्राह्मण पुजारी की पुत्री, सावत्थी।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और इस-उस जन्म में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे। जब संसार में कोई बुद्ध नहीं था, तब वे चंदाभागा नदी के किनारे एक परी के रूप में जन्मीं। एक दिन परियों के साथ खेलते हुए और कुछ देर भटकते हुए उन्होंने एक वृक्ष की तलहटी में बैठे एक मौन बुद्ध को देखा और श्रद्धापूर्वक पुष्प अर्पित किए। इस (अच्छे कर्म) के कारण उनका कई बार देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म हुआ और अंत में, इस बुद्ध युग में, सावत्थी में, राजा के पुरोहित-ब्राह्मण के घर में जन्म हुआ। जब वे समझदार हुईं, तो वे जेतवन वन (मठ) में एक गृहस्थ बन गईं और बाद में महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता और भिक्षुणियों की प्रमुख) के अधीन भिक्षुणी बन गईं। और एक दिन, राजगृह में रहते हुए, भोजन के बाद वे गिद्ध शिखर पर चढ़ गईं और विश्राम करते समय उन्होंने एक पालतू हाथी को अपने प्रशिक्षक के निर्देश पर अपना पैर फैलाते हुए देखा। यह देखकर उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में वृद्धि हुई, जिससे उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया। इसके बाद, अपनी इस उपलब्धि के विचार से प्रसन्न होकर उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:
गिद्ध शिखर पर दोपहर के विश्राम के बाद,

मैंने एक हाथी को नहलाते हुए देखा।

नदी से निकला।, (48)

और एक व्यक्ति ने अपना अंकुश लेकर उस विशालकाय प्राणी को निर्देश देना शुरू किया।

अपना पैर फैलाते हुए: 'मुझे अपना पैर दो!' हाथी

आज्ञा का पालन किया गया, और ड्राइवर उसकी गर्दन पर झपट्टा मार उठा। (49)

मैंने जंगली को वश में होते देखा, मैंने उसे झुका हुआ देखा

स्वामी की इच्छा का पालन करते हुए; और मन ही मन ध्यान देते हुए,

मैं ध्यान लगाने के लिए जंगल की गहराई में चला गया और वहाँ

मैंने समाधि की अवस्था में मन पर विजय प्राप्त की। (50)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा3.5
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||33|| ------>>>> अगला

3.5 उब्बिरी, श्रावस्ती के एक महान कुलीन परिवार की पुत्री और राजा की पत्नी।

उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के समय में संकल्प लिया था और जन्म-जन्मांतर में एक युग तक मान्य अच्छे कर्म संचित किए थे। उनका पुनर्जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में हंसवती नगर में एक कुलवासी के घर में हुआ। एक दिन जब वे समझदार हो गईं, तो उनके माता-पिता घर के भीतरी प्रांगण में एक भोज में व्यस्त थे, इसलिए वे घर में अकेली रह गईं। उन्होंने देखा कि एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) घर के द्वार की ओर आ रहे हैं, तो उन्होंने उनसे कहा, 'प्रभु, अंदर आइए,' और उन्हें प्रणाम करते हुए बैठने के लिए कहा; फिर उन्होंने उनका कटोरा लिया और उसमें भोजन भर दिया। अरहंत ने उन्हें धन्यवाद दिया और चले गए। फिर उनका पुनर्जन्म तैंतीस देवताओं (देवदूतों) के स्वर्ग में हुआ, जहाँ उन्होंने स्वर्गिक सुख भोगा और अनेक सुखमय जीवन व्यतीत किए। बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म श्रावस्ती में एक अत्यंत प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। वे अत्यंत सुंदर थीं और उन्हें स्वयं कोसल के राजा के घर लाया गया।[1] कुछ वर्षों बाद उनकी एक पुत्री हुई, जिसका नाम उन्होंने जीव रखा। राजा ने बच्ची को देखकर इतना प्रसन्न हुए कि उन्होंने उब्बिरी का राज्याभिषेक करवा दिया। परन्तु बाद में उस छोटी बच्ची का निधन हो गया और माता प्रतिदिन श्मशान घाट पर शोक मनाने जाती थीं। एक दिन वे वहाँ गईं और गुरु (बुद्ध) की आराधना की और बैठ गईं; परन्तु शीघ्र ही वे उठकर अचिरावती नदी के किनारे विलाप करने लगीं। तब गुरु ने उन्हें दूर से देखा और अपने 'सुगंधित कक्ष' से प्रकट एक अलौकिक आकृति के रूप में स्वयं को प्रकट किया और उनसे पूछा: 'तुम क्यों रो रही हो?' उसने कहा, 'मैं अपनी पुत्री भगवा (भगवान बुद्ध) के कारण रो रही हूँ।' बुद्ध ने कहा, 'इस श्मशान में तुम्हारी लगभग 84,000 पुत्रियाँ दफ़न हैं। तुम उनमें से किसके लिए रो रही हो?' और उस स्थान की ओर इशारा करते हुए जहाँ इसे और उसे दफ़न किया गया था, उन्होंने आधी बात कही:

हे उब्बिरी, जो जंगल में विलाप करता है,

'ओ जीवा! ओ मेरी प्यारी बेटी!' कहकर रोते हुए।

होश में आओ! देखो, इस कब्रिस्तान में

हजारों प्यारी बेटियाँ जलकर राख हो गईं।

और उन सभी का नाम उसी के समान रखा गया था।

अब तुम उन सभी जीवों में से किस जीव का शोक मनाते हो? (51)

और उसने गुरु (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) पर बुद्धिमत्तापूर्वक विचार किया, और विपश्यना[1] में इस प्रकार तल्लीन हो गई कि, उनके उपदेश और स्वयं विपश्यना[1] की प्राप्ति के फलस्वरूप, वह सर्वोच्च फल, यहाँ तक कि अरहंतत्व (बुद्ध के समतुल्य ज्ञान)[2] तक पहुँच गई। और अपनी प्राप्त उच्च विशिष्टता को दर्शाते हुए, उसने भजन का दूसरा भाग कहा:

देखो! मेरे हृदय से (दुख का) छिपा हुआ बाँट निकल गया है!

उसने वहां स्थित शाफ्ट को हटा दिया है।

और मेरे मृत बच्चे के लिए वह असहनीय शोक

जिसने मेरे पूरे जीवन को विषैला बना दिया था, वह मर चुका है। (52)

आज मेरा दिल ठीक हो गया है, मेरी तड़प अभी भी बाकी है।

और भीतर सब कुछ पवित्रता और शांति से परिपूर्ण है।

मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ।

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और संघ (व्यवस्था) के लिए।[3] (53)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] वह न केवल एक गैर-दीक्षित गृहस्थ महिला के रूप में इसे प्राप्त करती है।
[3] बौद्ध त्रिमूर्ति या त्रिरत्न
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 3.6
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||34|| ------>>>> अगला

3.6 सुक्का, राजगाह के एक महान कुलीन परिवार की पुत्री, धम्मदिन्ना की शिष्या, उपदेशक के रूप में विख्यात।
पूर्व थेरियों की तरह, वह भी अतीत में एक कुलवासी के घर में जन्मी थीं। जब वे समझदार हुईं, तो वे गृहस्थ महिला शिष्यों के साथ विहार (मठ) गईं, [1] और गुरु (बुद्ध) का उपदेश सुना। विश्वासी बनकर, उन्होंने संसार का त्याग कर दिया और विद्वान, धर्मशास्त्र में निपुण और कुशल वक्ता बन गईं। सदियों तक ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए, [2] वे हृदय से सांसारिक ही रहीं और आनंद के स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया। फिर, जब विपस्सी बुद्ध थे, और फिर जब वेसाभु बुद्ध थे, तब उन्होंने नैतिक उपदेशों (शील) का पालन किया और विद्वान एवं धर्मशास्त्र में निपुण रहीं। फिर, जब काकुसंध बुद्ध थे, और फिर जब कोनागमना बुद्ध थे, तब उन्होंने संन्यासी बन गईं और उनका आचरण शुद्ध, विद्वतापूर्ण और उपदेशात्मक था। अंततः, इसी बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक प्रतिष्ठित कुलीन परिवार में हुआ और उन्हें सुक्का (उज्ज्वल, तेजस्वी) कहा गया। विवेक की आयु में आकर, उन्होंने अपने घर में ही गुरु (बुद्ध) में आस्था पाई और गृहस्थ शिष्या बन गईं। लेकिन बाद में, जब उन्होंने धम्मदिन्ना का उपदेश सुना, तो वे बहुत प्रेरित हुईं और उन्होंने संसार का त्याग कर दिया। और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[3]) का अभ्यास करते हुए, उन्होंने कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझ लिया।
इसके बाद, 500 भिक्षुणियों के साथ, वे एक महान उपदेशक बन गईं। एक दिन, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने गए और भोजन करके लौटे, तो वे भिक्षुणियों के आश्रम में गए। सुक्का ने अपने चारों ओर बैठी हुई भिक्षुणियों के एक बड़े समूह के साथ इस प्रकार उपदेश दिया कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह उन्हें मीठा शहद पिला रही हो और उन पर अमृत छिड़क रही हो। वे सभी एकाग्रचित्त होकर, बिना हिले-

डुले, ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रहे थे। तभी भिक्षुणी की छत के अंत में स्थित वृक्ष में निवास करने वाले देवता उनके उपदेश से प्रेरित हुए और राजगृह जाकर सड़कों और चौकों पर घूम-घूमकर उनकी श्रेष्ठता का बखान करते हुए कहने लगे:
राजगाह के लोगों, आप क्या चाहते हैं?

तुमने क्या किया है? तुम यहाँ बिल्कुल चुप और निष्क्रिय बैठे हो।

तुम ऐसे लेटे रहते हो मानो शराब के नशे में चूर हो।

और सुक्का का इंतज़ार भी न करो, जब वह खुलासा करे

बुद्ध द्वारा दी गई अनमोल शिक्षा। (54)

मुझे लगता है कि बुद्धिमान लोग पीने में प्रसन्न होते थे।

जीवन का वह अमृत, एक बार प्राप्त हो जाए तो कभी खोता नहीं।

जो उसके मीठे शब्दों में हमेशा उभर कर सामने आता है,

जैसे राहगीर बारिश का स्वागत करता है। (55)

और वृक्ष-आत्मा की बातें सुनकर लोग प्रेरित हुए और थेरी के पास आकर ध्यान से सुनने लगे।

बाद के समय में, जब थेरी अपने जीवन के अंत में निर्वाण की अवस्था में थीं और यह दिखाना चाहती थीं कि उनके द्वारा सिखाई गई प्रणाली किस प्रकार मोक्ष की ओर ले जाती है, तो उन्होंने अपने अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा इस प्रकार की:

हे प्रकाश के बालक! धम्म (शाश्वत सत्य) के प्रकाश से!

तीव्र इच्छाओं से मुक्त, दृढ़, आत्म-नियंत्रित, शांत।

अपने अंतिम नश्वर शरीर को इसी उद्देश्य के लिए धारण करो।

क्योंकि तुमने मारा (शैतान) और उसकी सेना पर विजय प्राप्त कर ली है। (56)

[1] प्राचीन काल में, बुद्ध या प्रमुख शिक्षक के लिए आरक्षित झोपड़ी या शैले, ऐसे ही कई झोपड़ियों के समूह में स्थित होते थे, जिनमें एक खुला हॉल और उससे सटा हुआ एक विश्राम कक्ष होता था।
[2] माना जाता था कि पूर्वकाल में मानव जीवन की अवधि बहुत लंबी होती थी।
[3] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा3.7
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||35|| ------>>>> अगला

3.7 सेला, 'अलवीका', अलवी के राजा की पुत्री।

वह भी पूर्व थेरी की तरह अतीत में रह चुकी थीं। उनका जन्म हंसावती में एक कुलवासी के घर में हुआ था और उनके माता-पिता ने उनका विवाह उसी कुलवासी के पुत्र से कर दिया था। उनके साथ वह उनकी मृत्यु तक सुखपूर्वक रहीं। फिर, वृद्धावस्था में, और अच्छे गंतव्य (परलोक) की खोज में चिंतित होकर, वह धर्म के शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से स्थान-स्थान, विहार-विहार भटकती रहीं। [1] फिर एक दिन वह गुरु के बोधि वृक्ष के पास आईं और बैठ गईं, यह सोचते हुए: 'यदि बुद्ध, भगवान, मनुष्यों में अद्वितीय और अतुलनीय हैं, तो यह मुझे बुद्धत्व का चमत्कार दिखाएँ।' यह विचार आते ही वृक्ष प्रज्वलित हो उठा, शाखाएँ मानो सोने की बनी हुई प्रतीत हुईं, और क्षितिज चारों ओर चमक उठा। उस दृश्य से प्रेरित होकर, वह नीचे गिर पड़ीं और पूजा की, और सात दिनों तक वहीं बैठी रहीं। सातवें दिन उन्होंने बुद्ध को भव्य भोज और पूजा अर्पित की। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म बुद्ध युग में, अलावी राज्य में, राजा की पुत्री के रूप में हुआ और उनका नाम सेला रखा गया। उन्हें 'अलवीका' के नाम से भी जाना जाता था। जब वे समझदार हुईं, तो उनके पिता गुरु (बुद्ध) के शिष्य बन गए, उन्होंने दीक्षा भी ली और उनके साथ अलावी नगर चले गए। सेला, जो अभी अविवाहित थीं, राजा के साथ गईं और गुरु (बुद्ध) के उपदेश सुने। वे विश्वासी और गृहस्थ शिष्या बन गईं। बाद में, जब उनके भीतर ज्ञानोदय की धाराएं प्रवाहित होने लगीं, तो उन्होंने दीक्षा ली, विपश्यना[3] में गहन साधना की और अपने भीतर की प्रतिभा और ज्ञान की परिपक्वता के कारण, उन्होंने विचार, वचन और कर्म के संस्कारों (इच्छाओं, भावनाओं, आदतों) को कुचलकर[4] शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया।
उस समय से, एक वरिष्ठ नागरिक के रूप में, वह सावत्थी में रहने लगीं। एक दिन वह सावत्थी से निकलकर अंधकारमय वन (अंध-वनम) में ध्यान करने गईं और एक पेड़ के नीचे बैठ गईं। तभी मारा (राक्षस), अकेला और उनकी एकांतता भंग करने की इच्छा से, एक अजनबी का वेश धारण करके उनके पास आया और बोला:
इस दुनिया में रहते हुए आपको कभी भी इससे छुटकारा नहीं मिलेगा!

फिर अकेलेपन से आपको क्या लाभ होता है?

जब तक संभव हो, जीवन की अच्छी चीजों का आनंद लें।

अन्यथा पश्चाताप करो, वरना बहुत देर हो जाएगी। (57)

तब थेरी ने मन ही मन सोचा, 'यह वही मूर्ख मारा (राक्षस) है जो मुझे प्रकट हुए निर्वाण से वंचित करना चाहता है और मुझे कामुक जीवन चुनने के लिए कहता है। वह नहीं जानता कि मैं अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) हूँ। अब मैं उसे बताकर उसे भ्रमित करूँगा।' और फिर उन्होंने निम्नलिखित पाठ किया:

भाले और बरछी की तरह ही इंद्रियों का आनंद होता है।

जो हमारे नश्वर शरीरों को भेदकर चीर-फाड़ देते हैं।

इन्हें ही आप जीवन की अच्छी चीजें कहते हैं।

उस वर्ग की अच्छाई मेरे लिए कुछ भी मायने नहीं रखती। (58)

हर तरह से सुख की लालसा दूर हो जाती है।

और भीतर का अज्ञान भाग दूर हो जाता है

हे दुष्ट, यह जान लो!

हे विनाशक, यहाँ तुम विजयी नहीं होगे। (59)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 3.8
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||36|| ------>>>> अगला

3.8 सोम, मगध के राजा (बिम्बिसार) के पुरोहित ब्राह्मण की पुत्री।
पूर्व थेरी की तरह, वह भी अतीत में जन्म ले चुकी थीं और सिख बुद्ध काल में [1] एक प्रतिष्ठित कुलीन परिवार में पुनर्जन्म लेकर बड़ी हुईं और राजा अरुणाव की मुख्य पत्नी बनीं। उनके अतीत की कहानी थेरी अभया के समान है। उनकी वर्तमान कहानी यह है कि इस बुद्ध युग में, उन्होंने राजगृह में राजा बिम्बिसार के पुरोहित की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लिया और उनका नाम सोम रखा गया। समझदार होने पर, उन्होंने अपने घर में ही गुरु (बुद्ध) पर विश्वास किया और एक गृहस्थ शिष्या बन गईं। बाद में, स्वयं प्रेरित होकर, उन्होंने भिक्षुणी संघ में प्रवेश किया और विपश्यना [2] का अभ्यास करते हुए, कुछ ही समय बाद अर्हंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को अक्षरशः और भाव से भलीभांति समझ लिया।
फिर, सावत्थी में ज्ञान के आनंद में लीन होकर, वह एक दिन अंधकारमय वन में ध्यान करने के लिए निकली और एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। तभी मारा (राक्षस), अकेला, और कामवासना से उसे विचलित करने की इच्छा से, अदृश्य रूप से हवा में उसके पास आया और बोला:
ऋषियों को जिस श्रेष्ठ स्थान तक पहुंचना संभव हो, वह कठिन है।

पहुँचने के लिए। अपनी दो उंगलियों की चेतना के साथ

वह स्त्री लाभ प्राप्त करने में सक्षम नहीं है! (60)

सात या आठ साल की उम्र से ही महिलाओं को हर समय चावल उबालना पड़ता है, उन्हें यह पता नहीं होता कि चावल कब पक गया है, बल्कि उन्हें चम्मच में कुछ दाने लेकर दो उंगलियों से दबाना पड़ता है; इसीलिए 'दो उंगलियों से समझने' वाली कहावत प्रचलित है। तब बड़े ने मारा (शैतान) को फटकारा:

स्त्री की प्रकृति हमें किस प्रकार बाधित कर सकती है?

जिनके मन दृढ़ निश्चय वाले हों, जो हमेशा गतिशील रहें

क्या ज्ञान में वृद्धि के साथ-साथ हम इस मार्ग पर आगे बढ़ते रहेंगे?

इसका उस व्यक्ति के लिए क्या अर्थ हो सकता है जिसमें

क्या अंतर्दृष्टि वास्तव में धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को समझ सकती है? (61)

हर तरह से सुख की लालसा दूर हो जाती है।

और भीतर का अज्ञान भाग दूर हो जाता है

हे दुष्ट, यह जान लो!

हे विनाशक, यहाँ तुम विजयी नहीं होगे। (62)

[1] सात बुद्धों में से द्वितीय।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा4.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||37|| ------>>>> अगला

4.1 कपिलानी भद्दा, कोसिया ब्राह्मण की पुत्री, सगला में रहने वाली, महातीथ के पिप्पली कस्सपा (महा-कस्सपा) की पत्नी, पूर्व जन्मों को याद रखने वाले थेरियों में अग्रणी, एक विशिष्ट उपदेशक।
उनका जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में हंसावती में एक कुलवासी के घर में हुआ था। जब वे समझदार हुईं, तो उन्होंने गुरु (बुद्ध) का उपदेश सुना और देखा कि उन्होंने पूर्व जन्मों को याद रखने वालों में एक भिक्षुणी को प्रथम स्थान दिया है। इससे प्रेरित होकर उन्होंने भी ऐसा ही स्थान प्राप्त करने का संकल्प लिया। जीवन भर पुण्य कर्म करते हुए, उनका पुनर्जन्म बनारस में एक कुलवासी के घर में हुआ, जब कोई बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे, और समय आने पर उनका विवाह हो गया।
फिर एक दिन उनका अपनी भाभी से झगड़ा हो गया। जब भद्दा ने मौन बुद्ध को भोजन कराया, तो उसने सोचा, 'इससे उसे यश मिलेगा,' और उनके हाथ से कटोरा लेकर उसमें भोजन की जगह मिट्टी भर दी। लोगों ने कहा, 'मूर्ख स्त्री! मौन बुद्ध ने ऐसा क्या किया है जिससे तुम्हें ठेस पहुंची?' वह अपने आप पर लज्जित हुई, उसने कटोरा वापस लिया, उसे खाली किया और सुगंधित पाउडर से रगड़कर साफ किया, उसमें चार प्रकार के मीठे प्रसाद भरे और ऊपर से कमल के रंग का घी छिड़का। चमकते हुए कटोरे को मौन बुद्ध को लौटाते हुए उसने प्रार्थना की: 'काश मेरा शरीर भी इस कटोरे की तरह चमकता रहे!'
अनेक सौभाग्यशाली पुनर्जन्मों के बाद, वह कश्यप बुद्ध के समय में बनारस में एक धनी करोड़पति (सेठी) की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म हुई। परन्तु अपने पिछले कर्मों के फल के कारण उसका शरीर दुर्गंधयुक्त था और वह दूसरों को घृणित लगती थी। इससे बहुत दुखी होकर, उसने अपने आभूषणों को सोने की ईंट में बदलवाकर बुद्ध के मंदिर में रख दिया और कमलों से सजे हाथों से प्रणाम किया। इस कार्य से उसका शरीर, उसी जन्म में भी, सुगंधित और मधुर हो गया। एक प्रिय पत्नी के रूप में उसने जीवन भर अच्छे कर्म किए, स्वर्ग में दिव्य सुखों के लिए पुनर्जन्म लिया और अंत में बनारस के राजा की पुत्री के रूप में जन्म लिया। वहाँ उसने मौन बुद्धों की सेवा करते हुए वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत किया। उनके देहांत से वह बहुत दुखी हुई और संसार त्याग कर तपस्या करने लगी। वनों में निवास करते हुए उसने ध्यान का अभ्यास किया और ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लिया, और वहाँ से सागला में कोसिया वंश के एक ब्राह्मण के परिवार में जन्म लिया। भव्य रूप से पली-बढ़ी, उसका विवाह महा-तीथ्थ गाँव में युवा कुलीन पिप्पली से हुआ। जब उसने संसार त्याग दिया, तो उसने अपनी अपार संपत्ति अपने रिश्तेदारों को सौंप दी ताकि वह भी वैराग्य का मार्ग अपना सके। और वह पाँच साल तक ननों के मठ में रहीं,[1] जिसके बाद उन्हें महान प्रजापति गौतमी (ननों के संघ की प्रमुख और बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी) द्वारा दीक्षा दी गई। अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) में स्थापित होकर, उन्होंने जल्द ही अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया।
और फिर वह अपने पूर्व जन्मों के ज्ञान में निपुण हो गईं, अपने संकल्प की प्रबल शक्ति के कारण (जो उन्होंने बीते युगों में किया था), और इस मामले में गुरु (बुद्ध) ने उन्हें प्रथम स्थान दिया, जब वे आर्यों के समूह के बीच जेतवन वन (मठ) में बैठे थे,[3] और उन्होंने भिक्षुणियों का वर्गीकरण किया। एक दिन उन्होंने अपने सभी अनुभवों को याद करते हुए, महान गुरु कश्यप के गुणों की प्रशंसा करते हुए एक भजन गाया,[4] इस प्रकार:
वह बुद्ध का पुत्र और उनका उत्तराधिकारी है।

महान कस्सपा, आत्म-स्वामी, शांत!

सुदूर बीते दिनों की कल्पना उनके मन में बसी है।

हाँ, स्वर्ग और नरक में उसके लिए कोई रहस्य नहीं है। (63)

उसने मृत्यु और पुनर्जन्म दोनों पर विजय प्राप्त की है।

संत वह होता है जिसे गहन रहस्यवादी ज्ञान प्राप्त हो।

सीखने की तीन शाखाओं द्वारा[5]

त्रिविध ज्ञानी (त्रे-विद्या) [6],

उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। (64)

वह भी, भड्डा द कपिलन- तीन बार बुद्धिमान[6]

और जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाली वही है।

इस उद्देश्य से वह अपना अंतिम अवतार धारण करती है।

क्योंकि उसने मारा (शैतान) और उसकी सेना पर विजय प्राप्त कर ली है। (65)

हम दोनों ने, उसने और मैंने, उस पीड़ा को देखा है।

और संसार पर दया करके वे आगे बढ़ गए।

हम दोनों ही अरहंत हैं और हमने अपने आत्म-नियंत्रण को भलीभांति सिद्ध कर लिया है।

हम दोनों शांत हैं, अब हमारा निर्वाण है! (66)

[1] तिथियाराम, सावत्थी में जेतवव उपवन के पास।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोत्कृष्ट अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[3] पिटकों में इसका अर्थ बुद्ध, मौन बुद्ध और उनके शिष्य हैं।
[4] बुद्ध के निधन के बाद महा-कस्सपा बौद्ध संघ के नेता बने। अपादान के अनुसार, कस्सपा उनके पति पिप्पली के समान थे और तीन पूर्व जन्मों में उनके पति रहे थे। कस्सपा या तो पारिवारिक नाम था या व्यक्तिगत नाम; पिप्पली या तो व्यक्तिगत नाम था या स्थानीय नाम।
[5] तीन प्रशिक्षण हैं: i. शील (नैतिक उपदेश) ii. समाधि (ध्यान और समाधि अवस्था प्राप्त करना) iii. पन्ना (ध्यान समाधि अवस्थाओं से उत्पन्न प्रत्यक्ष दिव्य समझ)
[6] त्रिविध ज्ञानी: ज्ञानोदय के बाद की उपलब्धियाँ (i) पिछले पुनर्जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी स्वर्गीय आँख (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर सभी आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का विनाश, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

भद्दा महा कस्सपा की पूर्व पत्नी थीं। अपने पति के साथ उन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया और अंततः सत्य की खोज में तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी सारी संपत्ति और सामर्थ्य त्याग दी। जब कस्सपा ने उन्हें गुरु की खोज में अलग होने का सुझाव दिया, तो वे सहमत हो गईं और मार्ग के बाईं ओर मुड़कर श्रावस्ती पहुँचीं। उन्होंने जेतवन में बुद्ध के धम्म का प्रवचन सुना, लेकिन चूंकि बुद्ध ने अभी तक नन-सांत्वना संघ की स्थापना नहीं की थी, इसलिए वे तपस्वियों के एक अन्य संप्रदाय के साथ नन-सांत्वना में रहीं।

लगभग पाँच वर्ष बाद बुद्ध ने नन-सांत्वना संघ की स्थापना की। भद्दा तब संघ में शामिल हुईं, ध्यान किया और अरहंतत्व प्राप्त किया। पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय, भद्दा ने अपने पति के साथ मिलकर कई पुण्य कर्म किए थे। कस्सपा, जिन्हें उस समय वेदेह के नाम से जाना जाता था, एक तपस्वी भिक्षु से प्रेरित थे, जबकि भद्दा एक ऐसी भिक्षुणी से प्रेरित थीं जो कई जन्मों को याद रख सकती थीं। अनेक पुण्य कर्म करने के बाद, उन्होंने जन्मों को याद रखने वाली अग्रणी भिक्षुणी बनने की इच्छा रखी। पद्ममुत्तरा बुद्ध ने उनकी इस इच्छा को पूर्ण होते देख घोषणा की कि गौतम बुद्ध के समय, जो भविष्य में एक लाख विश्व चक्रों के बाद होगा, वे जन्मों को याद रखने वाली अग्रणी भिक्षुणी होंगी।

महान अरहंतों की आकांक्षाओं और उनकी पूर्ति के प्रभावों को देखना रोचक है। यद्यपि भद्दा में अरहंत बनने की क्षमता थी और उन्होंने महा प्रजापति से पाँच वर्ष पूर्व ही संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया था, फिर भी उन्हें भिक्षुणियों का संघ स्थापित करने की कोई इच्छा नहीं थी। उनकी आकांक्षा तो जन्मों के युगों को याद रखने की थी। यही ज्ञान उनका बल था और इसी से वे अपने शिष्यों को प्रेरित करती थीं।

महान शिष्यों के इतिहास का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि वे स्वभाव और रुचियों में कितने विविध थे, प्रत्येक शिष्य अलग-अलग गुणों से प्रेरित था, अपनी रुचि के अनुसार मार्ग चुनता था और फिर इस क्षमता का उपयोग दूसरों को सत्य का दर्शन कराने में करता था। भद्दा ने अपने पूर्व जन्मों के ज्ञान का उपयोग अपने शिष्यों को पुण्य कर्म करने और लगन से परिश्रम करने के लिए प्रेरित करने और उनमें रुचि जगाने के लिए किया।

भद्दा और कश्यप के बीच के संबंध भी रोचक हैं। बुद्ध पद्ममुत्तरा के युग में, भद्दा और वेदेह ने अनेक पुण्य कर्म किए और मृत्यु के बाद स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया।

अगला दर्ज जीवन वृत्तांत कई वर्षों बाद, बुद्ध विपस्सी के समय का है, जो बुद्ध गौतम से पाँचवें पूर्व बुद्ध थे, और बुद्ध गौतम से इक्यावन विश्व चक्र पहले के थे। उस समय भद्दा और कश्यप एक बार फिर पति-पत्नी थे, लेकिन वे अत्यंत गरीब थे। इतने गरीब कि उनके पास केवल एक ही उत्तम वस्त्र था। पति-पत्नी बारी-बारी से उस एक वस्त्र को पहनते थे।

उस समय विपस्सी बुद्ध विशेष प्रवचन दे रहे थे और भद्दा तथा उनके पति एकासतक दोनों ही उन्हें सुनना चाहते थे। उनके पास केवल एक ही वस्त्र था, इसलिए भद्दा दिन में और उनके पति रात में गए। प्रवचन सुनते-सुनते एकासतक के मन में दान और उदारता का भाव इतना गहरा बैठ गया कि वे अपना एकमात्र वस्त्र विपस्सी बुद्ध को अर्पित करना चाहते थे। लेकिन

यह विचार आते ही एकासतक के मन में शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं। उनके मन में कई विचार उमड़ने लगे, "बिना वस्त्र के हम कैसे गुजारा करेंगे? हमारे पास बस यही है। क्या मुझे पहले अपनी पत्नी से सलाह नहीं लेनी चाहिए?" फिर इन शंकाओं को दरकिनार करते हुए उन्होंने अपना वस्त्र उतारकर विपस्सी बुद्ध के चरणों में रख दिया। ऐसा करते ही उन्होंने खुशी से ताली बजाई और पुकार कर कहा, "मैं जीत गया! मैं जीत गया!" जब राजा, जो वहाँ उपस्थित थे, ने विजय की यह पुकार सुनी, तो उन्होंने पूछा कि क्या हुआ है। राजा उस गरीब व्यक्ति की उदारता से अभिभूत हो गए। उन्होंने एकाशतक को दरबारी पुरोहित बनाकर उन्हें और उनकी पत्नी को कई वस्त्र भेंट किए।

इस प्रकार उस गरीब दंपति की स्थिति में सुधार हुआ। इस निस्वार्थ कार्य के फलस्वरूप, मृत्यु के समय एकाशतक का पुनर्जन्म स्वर्गलोक में हुआ। वहाँ वे वैभवशाली जीवन व्यतीत करते रहे, जब तक कि उनके पुण्य कर्मों का प्रभाव समाप्त नहीं हो गया, जिसके बाद उनका पुनर्जन्म एक धर्मात्मा राजा के रूप में हुआ और भद्दा उनकी मुख्य रानी बनीं।

कई अन्य पूर्व जन्म कथाएँ भी दर्ज हैं जिनमें कश्यप और भद्दा का संबंध रहा है। एक बार भद्दा और कश्यप आनंद के माता-पिता थे। आनंद के गुरु की वृद्ध माता को आनंद से इतना प्रेम हो गया कि उन्होंने अपने प्रेमी को पाने के लिए अपने गुरु, यानी अपने ही पुत्र की हत्या की योजना बनाई। इसके बाद भद्दा और आनंद दोनों ने संन्यासी जीवन व्यतीत किया।

एक अन्य घटना में कश्यप और भद्दा चार पुत्रों के ब्राह्मण माता-पिता थे। भद्दा के चार पुत्र बोधिसत्व, हमारे बुद्ध गौतम, सारिपुत्त, मोग्गलाना और अनुराधा थे (जातक 509)। उनके माता-पिता और संतान सभी ने तपस्वी जीवन व्यतीत किया था।

एक और रोचक तथ्य यह है कि भद्दा ने दो बुद्धों के बीच के समय में एक पच्चेक बुद्ध के साथ अन्याय किया था। उनका अपनी भाभी से झगड़ा हुआ था और यह देखकर कि उनकी भाभी ने अभी-अभी पच्चेक बुद्ध को सुगंधित भोजन अर्पित किया है, उन्होंने उनका कटोरा ले लिया, भोजन फेंक दिया और उसमें मिट्टी भर दी। लगभग तुरंत ही उन्हें अपने इस कृत्य पर पश्चाताप हुआ। कटोरा वापस लेकर उन्होंने उसे धोया और उसमें सुगंधित, उत्तम भोजन भर दिया।

इस कर्मफल के रूप में, अगले जन्म में भद्दा अपार धन और सौंदर्य के साथ जन्मीं, लेकिन उनके शरीर से असहनीय दुर्गंध आती थी। उनके पति, जो कि कश्यप थे, उस दुर्गंध को सहन नहीं कर सके और उन्हें छोड़कर चले गए। उनके धन और सौंदर्य के कारण उनके कई चाहने वाले थे, लेकिन उनकी दुर्गंध के कारण कोई भी उनके साथ नहीं रहा।

इस काल में, कश्यप नामक पूर्णतः प्रबुद्ध परम बुद्ध का संसार में आगमन हुआ। अपने जीवन को व्यर्थ समझते हुए, भद्र ने अपनी समस्त संपत्ति बेच दी, अपने आभूषणों को पिघलाकर एक स्वर्ण ईंट बनाई और उसे कश्यप बुद्ध के अवशेषों को रखने के लिए बन रहे मंदिर को दान कर दिया। इस कर्म के फलस्वरूप उनका शरीर फिर से सुगंधित हो गया और उनके पूर्व पति ने उन्हें वापस अपना लिया।

भद्र की अंतिम प्रलेखित जीवन कथा के अनुसार, वे बनारस की रानी थीं और उन्होंने अनेक पच्चेक बुद्धों का समर्थन किया था। पच्चेक बुद्धों की अचानक मृत्यु से व्याकुल होकर उन्होंने रानी का जीवन त्याग दिया और तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगीं। अपने त्याग और

ध्यानमग्न जीवन शैली के बल पर उनका ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म हुआ। उसी समय कश्यप का भी ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म हुआ। इस जीवन के बाद उनका मानवलोक में पिप्पली कश्यप और भद्र कपिलना के रूप में पुनर्जन्म हुआ। ब्रह्मलोक के अनुभव ने ही उन्हें ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने का निश्चय दिलाया।

अरहंत भिक्षुणी भद्दा ने अपना जीवन युवा भिक्षुणियों को मठवासी अनुशासन सिखाने में समर्पित कर दिया। थेरिगाथा में उनके पूर्व पति कश्यप की प्रशंसा और स्वयं की मोक्ष प्राप्ति का वर्णन मिलता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||38|| ------>>>> अगला

5.1 वड्ढेसी, अज्ञात परिवार की, बुद्ध की पालक माता, महान प्रजापति गौतमी की धाय।
वह भी पूर्व थेरी की तरह अतीत में रह चुकी थीं और इस बुद्ध युग में देवदहा (नेपाल) नगर में पुनर्जन्म लेकर महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता और भिक्षुणी संघ की प्रमुख) की धाय बनीं। उनका नाम वड्ढेसी था, लेकिन उनके परिवार का नाम ज्ञात नहीं है। जब प्रजापति गौतमी ने संसार त्याग दिया, तो उन्होंने भी ऐसा ही किया। लेकिन पच्चीस वर्षों तक वे इंद्रियों की वासनाओं से ग्रस्त रहीं, एक क्षण के लिए भी उनका ध्यान नहीं लग पाता था और वे अपनी इस स्थिति पर बाहें फैलाकर रोती रहती थीं, जब तक कि अंततः उन्होंने धम्मदिन्ना को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए नहीं सुना। तब, इंद्रियों से ध्यान हटाकर, उन्होंने ध्यान साधना शुरू की और कुछ ही समय में अंतर्ज्ञान की छह शक्तियों को प्राप्त कर लिया।[1] और अपनी उपलब्धियों को याद करते हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा:
मेरे पुरोहित बनने के बाद से पच्चीस वर्षों तक,

एक पल के लिए भी मेरा मन यह नहीं समझ सका।

शांत और निर्मल होने का सुख। (67)

मुझे मन की शांति नहीं मिली। मेरे हर विचार

इंद्रिय-इच्छा के नीच नशे में डूबा हुआ था[2].

बाहें फैलाकर और व्यर्थ आँसू बहाते हुए

एक दयनीय स्त्री के रूप में, मैं अपनी कोठरी में चली गई। (68)

फिर वह उस निर्धन भिक्षुणी के पास आई।

धर्म के संदर्भ में मेरी पालक माँ कौन थी?

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया, जिसे मैंने सीखा।

इस आत्मा के कारक, अंग, आधार,

अस्थाई यौगिक। (69)

उसकी बातें सुनकर मैं उसके बगल में बैठकर ध्यान करने लगा।

और अब मुझे बीते दिनों की यादें ताजा हो गई हैं।

और मुझमें दिव्य नेत्र स्पष्ट रूप से चमकता है, (70)

मैं दूसरों के विचारों को जानता हूँ।

और असीम इंद्रियों से उन चीजों की ध्वनि सुनें जिनका वर्णन करना असंभव है।

मैं जादुई शक्तियों का प्रयोग करता हूँ;

और सभी घातक इच्छाएँ

वे सभी विषैले विचार दूर हो जाते हैं।

मेरे लिए एक जीवंत सत्य यह है कि छह प्रकार की (जादुई) शक्तियां[1]

और बुद्ध की साधना पूर्ण हो जाती है। (71)

[1] चलाभिन। पिछले स्तोत्र में अभिन को अंतर्ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये छह, जिन्हें पन्ना और विज्जा के रूप में भी परिभाषित किया गया है, हैं: इद्धि (जादुई क्षमता), किसी भी स्थान की शुद्ध श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व जन्मों की स्मृति, अन्य प्राणियों के जीवन का विकास, भीतर आसवों (इंद्रिय-सुख) का निवारण, अर्थात् पवित्रता।
[2] शाब्दिक रूप से, 'इंद्रिय-सुख से लथपथ', और इसे ऐसे व्यक्ति के रूप में समझाया गया है जिसका मन अत्यधिक प्रबल झुकाव से, इंद्रियों द्वारा प्राप्त सभी सुखों के लिए अत्यधिक भावुक इच्छा से तर हो गया हो। 'लथपथ' (अवस्सुता) का रूपक आसवों (इंद्रिय-सुख) नामक प्रमुख दोषों के लगभग समान है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 5.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||39|| ------>>>> अगला

5.2 विमला, वैशाली की एक वेश्या की पुत्री, पूर्व वेश्या:
वह भी पूर्व थेरी की तरह अतीत में रह चुकी थी और बुद्ध युग में वैशाली में एक ऐसी स्त्री की पुत्री के रूप में जन्मी, जो अपनी सुंदरता से जीविका कमाती थी। उसका नाम विमला था। जब वह बड़ी हुई और बुरे विचारों में लीन थी, तो एक दिन उसने पूज्य महा-मोग्गलाना (भिक्षुओं के प्रमुख) को वैशाली में भिक्षा मांगते हुए देखा। उनसे आकर्षित होकर वह उनके निवास पर गई और उन्हें लुभाने का प्रयास किया। कुछ लोग कहते हैं कि उसे अन्य संप्रदायों के लोगों ने ऐसा करने के लिए उकसाया था। भिक्षुओं के स्तोत्र (थेरागाथा) में वर्णित अनुसार, वरिष्ठ भिक्षु ने उसके अनुचित व्यवहार की निंदा की और उसे फटकारा। वह लज्जा और आत्म-आलोचना से भर उठी और एक विश्वासी और गृहस्थ अनुयायी बन गई। बाद में उन्होंने संघ में प्रवेश किया, और कड़ी मेहनत और लगन से—क्योंकि सिद्धि का मूल उनके भीतर ही था—कुछ ही समय बाद उन्होंने अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। उस समय से, अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए, वे आनंदपूर्वक इस प्रकार कहती थीं:
एक समय मैं अपनी सुंदरता पर कितना गर्व करती थी, कितनी क्रोधित होती थी।

मेरी उत्तम आकृति, लोगों के बीच मेरी प्रसिद्धि और सफलता व्यर्थ है,

अपनी जवानी के अभिमान से भरा हुआ, सत्य से अनभिज्ञ और उदासीन! (72)

देखो! मैंने अपना शरीर बनाया, साहसपूर्वक सजाया, कुशलता से रंगा,

मैंने लड़कों से बात की, जबकि मैं वेश्याओं के दरवाजे पर था।

वह एक चतुर शिकारी की तरह खड़ा था, अपने जाल बुनता हुआ, हमेशा चौकस। (73)

हाँ, मैंने बिना किसी शर्म के अपने शरीर और अपने आभूषणों का प्रदर्शन किया;

मैंने अनेक छल किए, अनेकों के सद्‌गुणों को नष्ट किया। (74)

आज मुंडा सिर और लबादा ओढ़े हुए,

मैं प्रतिदिन भोजन के लिए भिक्षा मांगने निकलता हूँ;

और जंगल के वृक्षों की फैली हुई शाखाओं के नीचे

मैं बैठता हूँ और द्वितीय-ध्यान की परमानंद अवस्था (ध्यानमग्न अवस्था का आनंद) प्राप्त करता हूँ।

जहां तर्क-वितर्क (विचार) समाप्त हो जाते हैं। (75)

अब वे सभी बुरी जंजीरें जो देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों दोनों को गुलाम बनाती हैं

पूरी तरह से फाड़कर अलग कर दिए गए हैं।

जिन इच्छाओं ने मुझे मदहोश कर दिया था, वे अब दूर हो गई हैं।

मैं शांत और संतुष्ट होकर निर्वाण की शांति को जानता हूँ। (76)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||40|| ------>>>> अगला

5.3 सिहा, सेनापति सिहा की भतीजी, वैशाली की।
पूर्व थेरियों की तरह ही, उनका भी अतीत में यही हाल रहा। बुद्ध युग में उनका जन्म वैशाली में सेनापति सिहा की बहन के पुत्र के रूप में हुआ। अपने मामा के नाम पर उनका नाम सिहा रखा गया। जब वे समझदार हुईं, तो एक दिन उन्होंने गुरु (बुद्ध) को सेनापति को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सुना और अनुयायी बनकर उन्होंने अपने माता-पिता की सहमति से संघ में प्रवेश किया। जब उन्होंने विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान) का अभ्यास किया, तो उनका मन बाहरी आकर्षणों की ओर भटकने से नहीं रुका। सात वर्षों तक इस प्रकार व्याकुल होकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला, 'मैं इस बुरे जीवन से कैसे मुक्ति पाऊं? मैं मर जाऊंगी।' और एक फंदा लेकर उन्होंने उसे एक पेड़ की शाखा पर लटका दिया और उसे अपने गले में बांधकर, अपने पूर्व प्रयासों के संचयी प्रभाव से, उन्होंने अपने मन को विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान) में लीन कर लिया। फिर, जो वास्तव में अपने अंतिम जन्म में आई थीं, उसी क्षण, अपने परिपक्व ज्ञान के माध्यम से, उनमें अंतर्दृष्टि का विकास हुआ और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया। अतः, उन्होंने अपने गले से रस्सी खोलकर वापस मुड़ गईं। अरहंत (बुद्ध के समान ज्ञानी) के रूप में स्थापित होकर, उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:
विचलित, इंद्रियजन्य इच्छाओं से व्याकुल,

अधर्मी विचार रखते हुए, [2]

यादों से आहत और उत्तेजित

बीते दिनों की बात है, जिन पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं था—(77)

मेरे दिमाग पर भ्रष्ट करने वाला नासूर फैल रहा है-

मैंने खुशी के बेपरवाह सपनों का पीछा किया,

और मुझे मन की शांति नहीं मिली।

सब कुछ इंद्रियों की पसंद के वश में है। (78)

इस प्रकार मैंने सात थकाऊ वर्ष बिताए।

अशांति के दुख में, मैं, दुखी,

दिन हो या रात, कोई सुख नहीं मिला, (79)

इसलिए उसने एक रस्सी ली और जंगल में कूद गया:

'मेरे लिए एक मित्रवत फांसी का पेड़ ही बेहतर है!'

मैं फिर से दुनिया का नीच जीवन जीऊंगा।' (80)

मैंने जो फंदा बनाया वह मजबूत था; और एक शाखा पर

मैंने रस्सी बांधी और उसे अपने गले में डाल लिया।

जब देखो! मेरा मन मुक्त हो गया (विमुच्चि/विमुक्ति)! (81)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] अयोनिसो-मानसिकरा, शाब्दिक अर्थ, अधर्मी सोच।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा 5.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||41|| ------>>>> अगला

5.4 सुंदरी-नंदा, महान प्रजापति गौतमी (रानी, बुद्ध की पालक माता) की पुत्री, शाक्य गौतम वंश की, कपिलवस्तु की, बुद्ध की सौतेली बहन।
उनका जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध (पूर्व बुद्ध) के समय में हंसवती नगर में हुआ था। जब वे समझदार हुईं, तो उन्होंने गुरु (बुद्ध) को उपदेश देते हुए सुना और उन्होंने एक भिक्षुणी को ध्यान शक्ति में सर्वोच्च स्थान दिया। उस स्थान को प्राप्त करने का संकल्प लेकर, वे अच्छे कर्म करने लगीं। युगों-युगों तक देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेने के बाद, उन्होंने इस बुद्ध युग में शाक्य वंश के शासक परिवार में जन्म लिया। नंदा नाम से वे सुंदर नंदा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जब हमारे भगवान (भगवान बुद्ध) ने सर्वज्ञान प्राप्त कर लिया, तो वे कपिलवस्तु गए और उन्होंने राजकुमार (चचेरे भाई) नंदा और (पुत्र) राहुल को संघ में शामिल कराया; जब राजा सुद्धोदन (बुद्ध के पिता) का निधन हुआ और महा प्रजापति (पालक माता और बुद्ध की दिवंगत माता की बहन एवं सहपत्नी) संघ में शामिल हुईं, तब नंदा ने सोचा: 'मेरे बड़े भाई (चचेरे भाई बुद्ध) ने साम्राज्य की विरासत का त्याग कर दिया है, संसार का त्याग कर दिया है और बुद्ध बन गए हैं,

एक महान पुरुष। 203 उनके पुत्र राहुल ने भी संसार का त्याग कर दिया है, मेरे भाई नंदा, मेरी माता महा-प्रजापति और मेरी बहन राहुल की माता ने भी। लेकिन अब मैं घर पर क्या करूँ? मैं संसार का त्याग कर दूँगी।' इस प्रकार वह आस्था से नहीं, बल्कि अपने रिश्तेदारों के प्रेम से प्रेरित होकर चली गईं। और इस प्रकार, अपने त्याग के बाद भी, वह अपनी सुंदरता के प्रति आसक्त थीं और गुरु (बुद्ध) के समक्ष नहीं जाती थीं, अन्यथा वे उन्हें फटकार लगाते। लेकिन उनके साथ भी वही हुआ जो थेरी अब्बिरूपा-नंदा, 204 के साथ हुआ था, बस एक अंतर था: जब उन्होंने गुरु (बुद्ध) द्वारा प्रकट की गई स्त्री आकृति को धीरे-धीरे वृद्ध होते देखा, तो जीवन की अनित्यता और दुख पर केंद्रित उनका मन ध्यान साधना की ओर मुड़ गया। और गुरु ने यह देखकर उन्हें उपयुक्त शिक्षा दी, इस प्रकार:
देखो, नंदा, यह गंदा परिसर, रोगग्रस्त है।

यह अपवित्र है! अपने मन को समझने के लिए विवश करो।

और एकाग्र मन से एकाग्र हो जाओ। (82)

इस शरीर के साथ जैसा है, वैसा ही आपके साथ भी है; जैसे

तुम्हारी सुंदरता, इसी के साथ—ऐसा ही होगा

इस दुर्गंधयुक्त, अप्रिय आकृति के साथ,

जिसमें केवल मूर्ख ही आनंद लेते हैं। (83)

इसलिए दिन-रात पूरी लगन से इस पर नज़र रखें।

अविचल दृढ़, अकेला,

दिव्य ज्ञान (पन्ना) द्वारा, मृगतृष्णा से मुक्त

सौंदर्य से आपको शांत दृष्टि प्राप्त होती है। (84)

तब उसने उपदेश को ध्यान में रखते हुए ज्ञान का संचार किया और प्रथम मार्ग की सिद्धि में दृढ़ रही। और उसे उच्चतर प्रगति के लिए अभ्यास कराने के लिए, उन्होंने उसे यह कहते हुए सिखाया: 'नंदा, इस शरीर में जरा सा भी सार नहीं है। यह तो केवल हड्डियों का ढेर है जो मांस और रक्त से लिपटा हुआ है और क्षय और मृत्यु के रूप में है।' जैसा कि धम्मपद:207 में कहा गया है।

हड्डियों से बना एक गढ़ बनाया है जिस पर लेप लगा हुआ है

मांस और रक्त के साथ, जहाँ कहीं भी क्षय का राज हो

और मृत्यु, और वह स्थान जहाँ अहंकार और छल का भंडार होता है।

फिर, जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और जब उन्होंने अपनी इस विजय पर विचार किया, तो उन्होंने आनंदपूर्वक गुरु (बुद्ध) के शब्दों को दोहराते हुए कहा:

मैंने भी, अंदर और बाहर से सब कुछ देखा है।

यह शरीर, जैसा वास्तव में यह है,

किसने इसके 'क्या' और 'क्यों' को जानने की कोशिश की?

अटूट उत्साह और लगन के साथ। (85)

अब मैं शरीर की (इच्छाओं) से मुक्त हो गया हूँ।

और मेरी पूरी चेतना वासना से मुक्त है।

आलस्य के बिना उत्सुक, उदासीन,

शांत और निर्मल होकर मैं निर्वाण की शांति का अनुभव करता हूँ। (86)

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

नंदा राजा सुद्धोदन और रानी महा प्रजापति गौतमी की पुत्री और राजकुमार सिद्धार्थ की सौतेली बहन थीं। अपने माता-पिता को अपार प्रसन्नता और आनंद प्रदान करने के कारण उनका नाम नंदा रखा गया, जिसका अर्थ है आनंद और प्रसन्नता। नंदा अत्यंत सुंदर और आकर्षक थीं और उन्हें अक्सर सुनदारी नंदा या 'सुंदर नंदा' कहा जाता था।

जब उनकी माता, रानी प्रजापति, और कई अन्य शाक्य स्त्रियों ने गृहस्थ जीवन त्यागकर साधुत्व का मार्ग अपनाया, तो नंदा ने भी उनका अनुसरण करने का निर्णय लिया। हालाँकि, उन्होंने ऐसा बुद्ध या धम्म में आस्था के कारण नहीं किया। नंदा ने अपने उन रिश्तेदारों की इच्छाओं का पालन करने के लिए भिक्षुणी का दीक्षा संस्कार लिया, जिनसे वह प्रेम करती थीं।

सुंदर नंदा बहुत लोकप्रिय और सभी द्वारा सम्मानित थीं। बुद्ध की बहन, सुंदर राजपुत्री को भिक्षुणी के साधारण वस्त्रों में भिक्षा माँगते हुए देखकर लोग भावुक हो जाते थे। हालाँकि, नंदा का मन अपने मोक्ष पर नहीं था। वह अपनी सुंदरता और लोकप्रियता से मुग्ध थीं।

नंदा जानती थी कि वह पवित्र संघ के उच्च आदर्शों का पालन नहीं कर रही है। उसे डर था कि बुद्ध उसके घमंड और सौंदर्य के प्रति अत्यधिक लगाव के लिए उसे फटकार लगाएंगे, इसलिए वह उनसे मिलने से बचती रही।

एक दिन बुद्ध ने अपने सभी भिक्षुणियों को, जो उनके निवास में थीं, एक-एक करके उपदेश देने के लिए बुलाया। नंदा ने ऐसा नहीं किया क्योंकि वह अपराधबोध से ग्रस्त थी और बुद्ध का सामना नहीं करना चाहती थी। तब बुद्ध ने उसे बुलाया और उसे एक आध्यात्मिक संदेश दिया जिसमें उसके सभी अच्छे गुणों पर बल दिया गया था। यद्यपि इस प्रवचन से नंदा प्रसन्न हुई और उसका मनोबल बढ़ा, फिर भी बुद्ध ने महसूस किया कि नंदा अभी चार आर्य सत्यों पर प्रवचन के लिए तैयार नहीं थी।

यह देखकर कि नंदा अभी भी अपने सौंदर्य में मग्न थी, उन्होंने एक सुंदर कन्या का अद्भुत रूप प्रकट किया जिसकी सुंदरता नंदा की चमक से भी कहीं अधिक थी। फिर उन्होंने नंदा के सामने उस छवि को वृद्ध बना दिया। नंदा ने उस सुंदर कन्या को वृद्ध होते देखा, उसकी त्वचा बूढ़ी और झुर्रीदार हो गई और उसके बाल सफेद हो गए। उसने उस स्त्री को वृद्धावस्था के कारण कमजोर होते और अंततः मरते देखा। उसने शरीर को सड़ते और कीड़ों से भरे एक बदसूरत दृश्य में बदलते देखा। नंदा को इस शरीर की अनित्यता का अहसास हुआ, जिसके प्रति वह अत्यधिक चिंतित थीं। उनका मन अब शिक्षाओं को ग्रहण करने के लिए तैयार था। बुद्ध ने उन्हें अनित्यता का धर्म और इस शरीर की घृणा का उपदेश दिया। उन्होंने नंदा को शरीर की घृणा को ध्यान का विषय भी बनाया। अपनी सुंदरता के प्रति उनके प्रबल आकर्षण के कारण सत्य को जानने के लिए उन्हें अपने शरीर की घृणा पर चिंतन करना आवश्यक था। शीघ्र ही नंदा ने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.5
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||42|| ------>>>> अगला

5.5 नंदुत्तरा, कम्मसदम्मा के एक ब्राह्मण की पुत्री, पूर्व जैन, महान मोग्गलाना की शिष्या।

वह भी, उपर्युक्त थेरियों की तरह, अतीत में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मीं। बुद्ध युग में उनका जन्म कुरु राज्य के कम्मसदम्मा नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनसे कुछ कला और विज्ञान सीखने के बाद, उन्होंने निगंथों (जैनों) के संघ में प्रवेश किया और एक प्रख्यात वक्ता के रूप में, भद्दा घुंघराले बालों वाले की तरह, जामुन के पेड़ की शाखा लेकर भारत के मैदानों का भ्रमण किया। इस प्रकार उनकी मुलाकात महा-मोग्गलाना से हुई और वाद-विवाद में उन्हें हार का सामना करना पड़ा। इसके बाद उन्होंने उनकी सलाह मानी, संघ में प्रवेश किया और कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के उपदेश और अर्थ का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया। अपनी विजय पर ध्यान करते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:
आग और चंद्रमा, सूर्य और देवता (देवदूत)

मैं एक समय पूजा करने का प्रयास कर रहा था,

मैं नदी के किनारों पर होने वाली बड़ी सभाओं में जाया करता था।

स्नान अनुष्ठानों के लिए जल में। (87)

मैंने कई (धार्मिक) अनुष्ठान किए

मुझ पर, क्योंकि मैंने अपने सिर के आधे बाल मुंडवा लिए थे।

और न ही मुझे धरती के अलावा कहीं और आराम करने के लिए लिटाया गया।

और मैंने कभी भी दिन के अंत में अपना उपवास नहीं तोड़ा। (88)

(पहले) मुझे खुद को सजाने-संवारने में आनंद आता था।

रत्नों और आभूषणों आदि के साथ।

मैंने इस शरीर को स्नान कराया, मलहम लगाया और मालिश की।

कामरागों की वासनाओं से प्रेरित होकर (89)

तब मुझे बुद्ध के मार्ग में आस्था मिली।

मैंने भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ली, और तपस्वी जीवन में प्रवेश किया।

क्योंकि मैंने शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में (गंदा) देखा है।

और इंद्रियों की वासना अब कभी वापस नहीं आ सकती। (90)

पुनर्जन्म के सभी कारक (भाव) अच्छी तरह से नष्ट हो गए थे।

हर इच्छा और हर लालसा दूर हो गई है।

जिन चीजों ने मुझे बांध रखा था, वे सब ढीली पड़ गईं।

मैं पापों से मुक्त होकर शांत हो गया हूँ, और अब सदा सचेत रहता हूँ। (91)

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||43|| ------>>>> अगला

5.6 मित्तकली, कम्मसदम्मा के एक ब्राह्मण (पुजारी) की पुत्री।
वह भी, उपर्युक्त थेरियों की तरह, अतीत में इसी बुद्ध युग में कुरु राज्य (अब पंजाब/हरियाणा) के कम्मसदम्मा नगर में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में जन्मीं। जब वे समझदार हुईं, तो उन्होंने महासतिपट्टाना सूत्र (मनोदशा के अनुप्रयोगों पर महान प्रवचन) की शिक्षा सुनकर आस्था प्राप्त की और भिक्षुणियों के संघ में प्रवेश किया। सात वर्षों तक वे उपहारों और सम्मानों के प्रति आसक्ति से ग्रस्त रहीं और संन्यासी के कर्तव्यों का पालन करते हुए वे कभी-कभी झगड़ालू भी हो जाती थीं। बाद में, जब वे बौद्धिक चिंतन में लीन थीं, [1] और आत्म-जागरूकता प्राप्त कर रही थीं, तब उन्होंने विपश्यना ([2]) में अंतर्दृष्टि स्थापित की और शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझ लिया। अपनी जीत को याद करते हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा:
आस्था की पुकार पर अपना घर छोड़कर, मैंने खोज की

बेघर तपस्वी जीवन, और दृष्टिगत एकाग्रता के साथ निवास किया।

विश्वासियों की भेंटों और स्तुति पर

इसका और उसका आभार। (92)

मैंने अंतर्दृष्टि के जिस मार्ग की उपेक्षा की, वह मुड़ गया

सर्वोच्च भलाई से लेकर निम्नतम उद्देश्यों की पूर्ति तक।

मैं सांसारिक बुराइयों में लिप्त होकर पड़ा रहा और कुछ नहीं किया।

अपने उच्च शिक्षण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए। (93)

लेकिन मुझ पर पीड़ा हावी हो गई,

जब मैं अपनी छोटी सी कोठरी में बैठकर सोच रहा था:

मैं इस बुरी राह पर कैसे आ गया!

मैं लालसा की शक्ति में भटक गया हूँ! (94)

मेरे पास अभी जीवन का बहुत कम समय बचा है;

वृद्धावस्था, बीमारी, पतन के कगार पर हैं।

अब, इससे पहले कि यह शरीर नष्ट होकर घुल जाए,

स्विफ्ट, मुझे अकेला छोड़ दो; मेरे पास आलस्य के लिए समय नहीं है। (95)

और वे वास्तव में ध्यान कर रहे हैं,

जीवन के वे समूह जो आते-जाते रहते हैं,

मैं मन से मुक्ति (विमुक्ति/विमुक्ति) के साथ उठ खड़ा हुआ!

मेरे लिए बुद्ध की साधना पूर्ण हो गई है। (96)

[1] योनिसो उप्पज्जन्ति
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.7
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||44|| ------>>>> अगला

5.7 सकुला, या पाकुला, श्रावस्ती की एक ब्राह्मण (पुजारिन), जो 'दिव्य दृष्टि' की क्षमता रखने वाली थेरियों में अग्रणी थीं।
अब, जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, तब उनका जन्म हंसावती में राजा आनंद की पुत्री और गुरु की सौतेली बहन के रूप में हुआ और उनका नाम नंदा रखा गया। एक दिन वे गुरु का प्रवचन सुन रही थीं और जब उन्होंने गुरु को 'दिव्य दृष्टि' की क्षमता रखने वालों में एक भिक्षुणी को शीर्ष स्थान देते हुए सुना, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन यह स्थान उनका भी होगा। अनेक पुण्य कर्मों और उसके बाद के सुखी पुनर्जन्मों के बाद, वे कश्यप बुद्ध के समय एक ब्राह्मणी के रूप में पृथ्वी पर आईं और एक तपस्वी के रूप में संसार का त्याग कर एकांतवास का व्रत लिया। [1] एक दिन उन्होंने गुरु के मंदिर में रात भर भिक्षा अर्पित की। तैंतीस देवताओं (स्वर्ग में देवदूतों) के स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर, उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई; और जब यह बुद्ध जीवित थे, तब उनका जन्म श्रावस्ती में एक ब्राह्मण के रूप में हुआ और उनका नाम पाकुला रखा गया। गुरु (बुद्ध) द्वारा जेतवन वन (मठ) के उपहार को स्वीकार करने में सहायता करते हुए, वह अनुयायी बन गईं; और बाद में, एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) भिक्षु के उपदेश से प्रभावित होकर, वह आत्म-जागरूक हुईं, संघ में प्रवेश किया, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) में प्रयास और संघर्ष किया, और शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया।
उस समय से, अपनी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप, उन्होंने दिव्य दृष्टि में कौशल अर्जित किया, और गुरु (बुद्ध) द्वारा उन्हें उसमें सर्वोच्च स्थान दिया गया। और उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, आनंद से भर उठीं, उन्होंने परमानंद से इस प्रकार कहा:
जब मैं घर की मुखिया के रूप में रहती थी,

मैंने एक भिक्षु को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की व्याख्या करते हुए सुना।

मैंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग), शुद्ध, वासना रहित मार्ग को देखा।

मृत्यु और पुनर्जन्म से परे, निर्वाण का मार्ग। (97)

इसी वजह से मैंने अपनी बेटी को छोड़ दिया, अपने बेटे को छोड़ दिया।

मैंने अपने खजाने और अनाज के भंडार छोड़ दिए;

मैंने वस्त्र और रेजर मंगवाए, अपने बाल मुंडवाए,

और मैंने स्वयं को बेघर तपस्वी जीवन के लिए समर्पित कर दिया। (98)

और पहले एक नौसिखिए के रूप में, गुणी और उत्साही।

ऊपर की ओर बढ़ने वाले मार्ग को विकसित करने के लिए,

मैंने इच्छाओं को त्याग दिया और उसके साथ ही सभी दुर्भावनाओं को भी।

और उसके बाद, एक-एक करके, घातक इच्छाएँ। (99)

फिर परिपक्व शक्ति वाली भिक्षुणी की ओर

एक दिव्य दृष्टि में पिछले जन्मों की यादें उभर आईं।

स्पष्ट, पवित्र दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई।

निरंतर व्यायाम द्वारा। (100)

मैंने अपने कार्यों, वाणी और विचारों को अपने स्वयं के रूप में नहीं देखा।

कारण और परिणाम की संतान, क्षणभंगुर, अस्थाई।

और अब, हर जहरीली इच्छा को दूर कर दिया गया है,

शांत और निर्मल होकर, मैं निर्वाण की शांति देखता हूँ। (101)

[1] परिब्बजक
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.8
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||45|| ------>>>> अगला

5.8 सोना, 'बहुपुट्टिका', श्रावस्ती के एक कुल के व्यक्ति की पुत्री, जो दृढ़ संकल्प वाली भिक्षुणियों में अग्रणी थीं।
उनका जन्म भी उसी समय हुआ था जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, हंसवती में एक कुल के व्यक्ति के परिवार में। एक दिन वे गुरु का प्रवचन सुन रही थीं, और जब उन्होंने एक भिक्षुणी को परिश्रम क्षमता में श्रेष्ठ भिक्षुणियों में सर्वोच्च स्थान दिया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन वे भी इस पद को प्राप्त करेंगी। अनेक जन्मों के सुखमय बाद, उनका जन्म उसी समय हुआ जब ये बुद्ध जीवित थे, श्रावस्ती में एक कुल के व्यक्ति के परिवार में। विवाह के बाद, वे दस पुत्रों और पुत्रियों की माता बनीं और 'अनेक संतानों वाली' के नाम से जानी गईं। जब उनके पति ने संसार त्याग दिया, तो उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्रियों को गृहस्थी का कार्यभार सौंप दिया, अपनी सारी संपत्ति अपने पुत्रों को दे दी और अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। उनके पुत्रों और बहुओं ने उनका भरण-पोषण करने के कुछ ही समय बाद उनका अनादर करना बंद कर दिया। और यह कहते हुए कि, 'मुझे ऐसे घर में रहने का क्या लाभ जहाँ मेरा कोई आदर नहीं होता?' उन्होंने भिक्षुणियों के संघ में प्रवेश किया। फिर उन्होंने सोचा: 'मैंने वृद्धावस्था में संसार का त्याग कर दिया है; मुझे परिश्रमपूर्वक काम करना चाहिए।' अतः, भिक्षुणियों की सेवा करते हुए, उन्होंने रात भर तपस्वी धम्म (ध्यान आदि) में स्वयं को समर्पित करने का संकल्प लिया। और उन्होंने इस प्रकार दृढ़ और अविचलित होकर तपस्वी धम्म (ध्यान आदि) का पालन किया, जैसे कोई बरामदे के खंभे या अंधेरे में किसी पेड़ से सिर

टकराने के डर से दृढ़तापूर्वक चिपका रहता है, कभी भी हाथ नहीं छोड़ता। इस पर उनकी अथक ऊर्जा प्रकट हुई, और गुरु (बुद्ध), उनके ज्ञान को परिपक्व होते देख, वहाँ अपने प्रकाशमान दिव्य रूप में प्रकट हुए, और उनके सामने बैठे हुए प्रतीत हुए, और इस प्रकार कहा: 'वह व्यक्ति जो सौ वर्ष तक जीवित रहता है,

वह कभी भी उस चीज को नहीं देखता जो सभी में सर्वश्रेष्ठ है, यानी धम्म (शाश्वत जीवन का मार्ग)।

एक दिन से अधिक न जीना ही बेहतर है।

अतः उस दिन के भीतर (ध्यान/पासाटो[1] में) यह देखा जाता है कि

जो कि सबसे श्रेष्ठ है, धम्म (शाश्वत जीवन का मार्ग)!

और जब उन्होंने ऐसा कहा, तो उन्हें अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त हुआ। अब, भगवान बुद्ध ने भिक्षुणियों को पुण्य क्रम देते समय, परिश्रम की क्षमता के आधार पर उन्हें प्रथम स्थान दिया। एक दिन, इस पर विचार करते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:

मैंने अपने गर्भ में दस पुत्र और पुत्रियों को जन्म दिया।

यह स्पष्ट रूप से क्षय का ढेर है। फिर कमजोर

और मैं वृद्ध भिक्खुनी के पास गया। (102)

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया, जिसे मैंने सीखा।

इस आत्मा के कारक, अंग, आधार सब कुछ यही हैं-

अस्थाई यौगिक। उसकी बातें सुनकर,

और अपने बाल मुंडवाकर मैंने संसार का त्याग कर दिया। (103)

फिर जब मैंने त्रिगुणात्मक प्रशिक्षण[2] से जूझना शुरू किया,

[शील (सद्‌गुण), समाधि (ध्यान), पन्ना (प्रत्यक्ष दिव्य बोध)]

मेरे लिए दिव्य नेत्र स्पष्ट रूप से चमक उठा।

मुझे पता है कि मेरा जन्म कैसे और कब हुआ।

बहुत अतीत में (ज्ञात पूर्व जन्मों में), और जहाँ मैं रहता था। (104)

मैं कारण और परिणाम को समझता हूँ, और मेरा मन

अत्यंत शांत और एकाग्रचित्त अवस्था में।

मेरी मुक्ति का परमानंद (विमोक्ख/विमुक्ति) जीत गया है

मैं किसी भी चीज को न मानते हुए निर्वाण में रहता हूँ। (105)

मैंने इस पंचसमूह वाले अस्तित्व (स्वयं) को समझ लिया है।

पुनर्जन्म के मूल से काट दिए जाने पर, आगे की सारी वृद्धि रुक जाती है।

मैं भी रुका हुआ हूँ, विजेता इस विचार के आधार पर निश्चित है।

अविचल। पुनर्जन्म कभी नहीं होता। (106)

[1] पासतो: देखना, यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को भी संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है। यहाँ पासतो का अर्थ है - भीतर देखना (अंतर्दृष्टि), जो ध्यान का अभ्यास है।
[2] तीन प्रकार के प्रशिक्षण हैं: i. शील (नैतिक उपदेश) ii. समाधि (ध्यान और समाधि अवस्था प्राप्त करना) iii. पन्ना (ध्यान की समाधि अवस्था से प्राप्त प्रत्यक्ष दिव्य बोध)

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

बुद्ध के समय में, श्रावस्ती में सोना नाम की एक महिला रहती थी, जिसके दस बच्चे थे। उसने अपना पूरा जीवन अपने बच्चों के कल्याण में व्यतीत किया था। उसे उनकी देखभाल करना, उन्हें भोजन कराना, उन्हें शिक्षित करना और उनके बड़े होने पर उनके लिए उपयुक्त जीवनसाथी खोजना अच्छा लगता था। उसका पूरा जीवन अपने बच्चों के इर्द-गिर्द घूमता था और जल्द ही वह 'बहुत से बच्चों वाली सोना' के नाम से जानी जाने लगी।

सोना के पति बुद्ध के गृहस्थ भक्त थे। उनके सभी बच्चों का विवाह हो जाने और उनकी जिम्मेदारियाँ कम हो जाने के कारण, वे धम्म के अध्ययन और अभ्यास में अधिक से अधिक समय बिताने लगे। कुछ ही समय में वे शिक्षाओं से पूरी तरह प्रेरित हो गए। उन्होंने पवित्र संघ में शामिल होने का निर्णय लिया। सोना के लिए इस निर्णय को स्वीकार करना आसान नहीं था, लेकिन उन्हें रोकने के बजाय, उन्होंने भी अधिक धार्मिक जीवन जीने का निश्चय किया। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने अपनी संपत्ति और जमीन अपने बच्चों में बाँट दी और उनसे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करके उनका भरण-पोषण करने का अनुरोध किया। फिर उन्होंने बुद्ध की गृहस्थ भक्त के रूप में अपना समय धार्मिक कार्यों में व्यतीत किया।

कुछ समय तक सब कुछ ठीक रहा। फिर, एक-एक करके, उसके बच्चों और उनके जीवनसाथियों को लगने लगा कि वह उन पर बोझ है। उन्होंने अपने पिता के संन्यासी बनने के निर्णय को कभी स्वीकार नहीं किया था और वे अपनी माँ का भरण-पोषण करने से नाराज़ थे, जो अब अपना अधिकांश समय धार्मिक साधना में व्यतीत कर रही थी। माँ ने उनके लिए जो कुछ किया था, उसे भूलकर वे उसके भरण-पोषण और देखभाल के उचित बंटवारे को लेकर आपस में झगड़ने लगे। उन सभी को लगा कि यह एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था है जिसमें उनमें से प्रत्येक को माँ के भरण-पोषण का अनुचित हिस्सा वहन करना पड़ रहा है। उनके लिए, इतनी कुर्बानियाँ देने वाली माँ एक झंझट और बोझ बन गई थी।

इस कृतघ्न व्यवहार से सोना को बहुत पीड़ा हुई, जिसने अपना पूरा जीवन अपने बच्चों के लिए न्योछावर कर दिया था। वह कड़वी और क्रोधित हो गई। उसने अपने बच्चों से बुढ़ापे में सहारा देने की उम्मीद की थी, जैसा कि भारत में प्रथा थी। अपनी संपत्ति उनमें बाँट देने के बाद, उसके पास स्वयं का भरण-पोषण करने का कोई साधन नहीं बचा था। निराश होकर, उसने बुद्ध से सांत्वना पाने का निर्णय लिया।

बुद्ध की एक भिक्षुणी की बातें सुनने के बाद, सोना ने अपने बच्चों के प्रति अपनी भावनाओं और निराशा का विश्लेषण करना शुरू किया। क्या उसने उनके लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया और निस्वार्थ भाव से उनका पालन-पोषण किया, या उसने बदले में कुछ पाने की उम्मीद से ऐसा किया? क्या उसने अपने बच्चों को बिना शर्त प्यार दिया? उसकी भावनाएँ बुद्ध द्वारा प्रतिपादित करुणा और प्रेम से कितनी मेल खाती हैं?

सोना ने निस्वार्थ प्रेम और सद्गुणों का अभ्यास और विकास करने के लिए बुद्ध के भिक्षुणी संघ में शामिल होने का निश्चय किया। अपने पति के मार्ग का अनुसरण करते हुए, वह भिक्षुणी बन गईं। हालांकि, कुछ ही समय बाद, सोना को एहसास हुआ कि वह अपनी पुरानी आदतें अपने साथ संघ में ले आई हैं। वह एक ऐसी वृद्ध महिला थीं जो अपनी आदतों में दृढ़ थीं। संघ में शामिल होने से उनके

व्यक्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं आया था। अक्सर युवा भिक्षुणियों द्वारा उनकी आलोचना की जाती थी क्योंकि उन्हें अपनी आदतों में बदलाव लाने में कठिनाई होती थी। सोना को एहसास हुआ कि आध्यात्मिक पवित्रता प्राप्त करना आसान काम नहीं है।

सोना ने गंभीरता से ध्यान और आत्म-अवलोकन का अभ्यास शुरू किया। उन्हें अपनी भावनाओं और कमजोरियों के प्रति सचेत रहना था और अपने मन को अनुशासित करना था। चूंकि उन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में संघ में प्रवेश किया था, सोना जानती थीं कि उन्हें मेहनत करनी होगी। उन्होंने लगन से ध्यान का अभ्यास किया, अक्सर पूरी रात बैठकर और चलते हुए ध्यान में बिताती थीं। दूसरों को परेशान न करने के लिए, उन्होंने खंभों का सहारा लेकर अंधेरे में निचले कक्ष में ध्यान करना शुरू किया। कुछ ही समय बाद, उनके दृढ़ संकल्प और प्रयास के फलस्वरूप सोना ने अरहंत पद प्राप्त कर लिया। वह अपनी उपलब्धि का वर्णन अपने शब्दों में करती है:
फिर दूसरी भिक्षुणियाँ

मुझे कॉन्वेंट में अकेला छोड़ दिया।

उन्होंने मुझे निर्देश दिए थे

पानी से भरे बर्तन को उबालना।

पानी लाने के बाद

मैंने इसे कड़ाही में डाल दिया।

मैंने कड़ाही को चूल्हे पर रखा और बैठ गया।

तब मेरा मन शांत हो गया।

मैंने इन समूहों को अस्थाई माना।

मैंने उन्हें पीड़ित के रूप में देखा, स्वयं के रूप में नहीं।

मैंने अपने हृदय से सभी कलंक निकाल दिए हैं,

वहीं मुझे अरहंत पद प्राप्त हुआ।

(अपदाना 234-236)

जब अन्य भिक्षुणियाँ लौटीं तो उन्होंने सोना से गर्म पानी माँगा और उसे एहसास हुआ कि उसने अभी तक पानी उबाला नहीं था। अपनी अलौकिक शक्तियों और अग्नि तत्व का उपयोग करते हुए सोना ने पानी गर्म किया और भिक्षुणियों को दिया, जिन्होंने उसके इस असाधारण कार्य की सूचना बुद्ध को दी। बुद्ध ने सोना को उन भिक्षुणियों में श्रेष्ठ घोषित किया जिन्होंने अथक परिश्रम किया और उसके परिश्रम और उपलब्धि की प्रशंसा करते हुए कहा:
भले ही व्यक्ति सौ साल तक जीवित रहे

एक आलसी, सुस्त व्यक्ति के रूप में,

एक दिन जीना ही बेहतर है।

किसी की ऊर्जा को दृढ़तापूर्वक जागृत करना।"

(धम्मपद 112)

सोना की कहानी से हम सभी सीख सकते हैं। इसे पढ़ने वाले बच्चों को अपने माता-पिता के प्रति अपने दायित्वों पर विचार करना चाहिए। जब हम छोटे थे और अपना ख्याल खुद नहीं रख सकते थे, तब हमारे माता-पिता ने हमारा ख्याल रखा, हमें सही-गलत का ज्ञान दिया और धर्म का मार्ग दिखाया। बुद्ध ने कहा है कि अगर हम जीवन भर अपने माता-पिता का बोझ अपने कंधों पर उठाएं (उनकी देखभाल और आराम की जिम्मेदारी उठाएं), तब भी हम उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा नहीं कर पाएंगे। माता-पिता के प्रति किए गए व्यवहार का प्रभाव बहुत गहरा होता है। माता-पिता के प्रति किए गए अच्छे और बुरे, दोनों ही कर्मों के गंभीर परिणाम होते हैं।

माता-पिता के लिए सोना से सीखने को बहुत कुछ है। हम अपने बच्चों के मालिक नहीं हैं। भला कैसे हो सकते हैं, जब हम खुद के ही मालिक नहीं हैं? बच्चों को अपने माता-पिता के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करना चाहिए। हमें उन्हें उदाहरण देकर सिखाना चाहिए। लेकिन पश्चिमी समाज में बच्चों का पालन-पोषण करना पूर्वी समाज की तुलना में कहीं अधिक कठिन है। अगर हमारे बच्चे अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं, तो हमें याद रखना चाहिए कि बुद्ध ने कहा था कि हम स्वयं अपने रक्षक हैं। उनकी गलतियों पर पछतावा करने और कड़वाहट व क्रोध से भर जाने से कुछ भी लाभ नहीं होता। लेकिन स्वयं को अनुशासित करने और अपने मन को शुद्ध करने से बहुत लाभ हो सकता है। दुख का कारण — लालसा — हमारे भीतर ही निहित है। हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि हमने अपने बच्चों के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया है। हम उन्हें नहीं बचा सकते, ठीक वैसे ही जैसे वे हमें नहीं बचा सकते। अंततः हममें से प्रत्येक स्वयं अपना उद्धारकर्ता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.9
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||46|| ------>>>> अगला

5.9 भद्दा कुंडलकेसा, पूर्व जैन, राजगृह के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, एक ब्राह्मण सरदार की पत्नी, तीव्र अंतर्ज्ञान वाली थेरियों में अग्रणी।
उनका भी पुनर्जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय हंसवती में एक कुलवासी परिवार में हुआ था। एक दिन वे गुरु का प्रवचन सुन रही थीं, और जब उन्होंने एक भिक्षुणी को तीव्र अंतर्ज्ञान वाली भिक्षुणियों में सर्वोच्च स्थान दिया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन वे भी इस स्थान को प्राप्त करेंगी। अनेक पुण्य कर्म करने और देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच युगों-युगों तक पुनर्जन्म का अनुभव करने के बाद, जब कश्यप बुद्ध थे, वे काशी के राजा किकी की सात पुत्रियों में से एक बनीं। फिर बीस हजार वर्षों तक उन्होंने ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया और संघ के लिए एक कुटिया का निर्माण किया। अंत में, इस बुद्ध युग में, उनका जन्म राजगृह में राजा के कोषाध्यक्ष भद्दा के परिवार में हुआ। परिचारकों से घिरी हुई पली-बढ़ी भद्दा ने अपनी खिड़की से झाँकते हुए देखा कि राजा के आदेश पर नगर रक्षक सत्तुका, जो राजपुजारी का पुत्र और चोर था, को फाँसी के लिए ले जा रहे थे। उससे प्रेम हो जाने पर वह अपने पलंग पर गिर पड़ी और बोली, 'यदि मैं उसे पा लूँ, तो मैं जीवित रहूँगी; अन्यथा मैं मर जाऊँगी।' तब उसके पिता ने उसकी यह दशा सुनकर, अपने प्रेमवश, रक्षक को भारी रिश्वत देकर चोर को छुड़वा दिया, उसे सुगंधित जल से स्नान कराया, उसे आभूषणों से सुसज्जित किया और उसे वहाँ आने दिया जहाँ भद्दा, आभूषणों से सजी हुई, उसकी सेवा कर रही थी। तब सत्तुका ने शीघ्र ही भद्दा के आभूषणों की इच्छा व्यक्त की और कहा, 'भद्दा, जब नगर रक्षक मुझे लुटेरों की चट्टान पर ले जा रहे थे, तब मैंने चट्टान के देवता से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरा जीवन बख्श दिया जाए तो मैं भेंट लाऊँगा। क्या आप एक भेंट तैयार कर देंगी?' उसे प्रसन्न करने की इच्छा से भद्दा ने ऐसा ही किया और अपने सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर, भद्दा के साथ रथ पर सवार होकर चट्टान की ओर चल पड़ी। सत्थुका ने उसे अपने वश में करने के लिए सेवकों को रोक दिया; और भेंट लेकर वह अकेले उसके पास गया, लेकिन उससे स्नेह का एक शब्द भी नहीं बोला। उसके व्यवहार से ही वह उसकी साजिश समझ गई। फिर उसने उसे अपना बाहरी वस्त्र उतारने और उसमें अपने गहने लपेटने के लिए कहा। उसने उससे पूछा कि उसने क्या गलती की है, और उसने उत्तर दिया: 'अरे मूर्ख, क्या तुम्हें लगता है कि मैं यहाँ भेंट चढ़ाने आया हूँ? मैं तुम्हारे गहने लेने आया हूँ।' उसने पूछा, 'लेकिन फिर, प्रिय, गहने किसके हैं और मैं किसकी हूँ?' चोर ने कहा, 'मुझे इस विभाजन का कोई ज्ञान नहीं है।' उसने कहा, 'ठीक है, प्रिय; लेकिन मेरी एक इच्छा पूरी करो: मुझे अपने गहने पहने हुए तुम्हें गले लगाने दो।' उसने सहमति जताते हुए कहा, 'ठीक है।' इस पर उसने उसे सामने से गले लगाया, और फिर, मानो पीछे से गले लगाते हुए, उसे खाई में धकेल दिया। और पर्वत पर निवास करने वाले देवता ने उसका यह कारनामा देखा और उसकी चतुराई की प्रशंसा करते हुए कहा:
हर मामले में मनुष्य अधिक बुद्धिमान नहीं होता;

तेज बुद्धि वाली स्त्री भी उतनी ही चतुर साबित हो सकती है।

हर मामले में मनुष्य को ही बुद्धिमान नहीं माना जाता;

स्त्री भी चतुर होती है, वह बस एक पल के लिए सोचती है।

उस समय से भद्दा ने सोचा: 'इस परिस्थिति में मैं घर नहीं जा सकती; मैं यहीं से जाऊंगी और संसार त्याग दूंगी (तपस्वी बन जाऊंगी)।' इसलिए उन्होंने निगंथों (जैन) के संघ में प्रवेश किया। उन्होंने उनसे पूछा: 'आप किस स्तर का त्याग करती हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'जिस भी स्तर का आपका नियम है, वही मुझ पर लागू कीजिए।' तब उन्होंने ताड़ के कंघे से उनके बाल नोच डाले। (जब बाल फिर से घने घुंघराले हो गए तो उन्होंने उन्हें घुंघराले बाल नाम दिया।) अपनी परीक्षा के दौरान उन्होंने उनके उपदेशों का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि: 'वे जितना जानते हैं, उतना तो जानते हैं, लेकिन उससे आगे उनकी शिक्षा में कुछ भी विशिष्ट नहीं है।' अतः वह उन्हें छोड़कर, जहाँ कहीं भी विद्वान व्यक्ति होते थे, वहाँ जाकर उनसे ज्ञान की विधियाँ सीखती रही। जब उसे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उससे वाद-विवाद कर सके, तब उसने किसी गाँव या कस्बे के द्वार पर रेत का ढेर बनाया और उसमें जामुन की एक शाखा स्थापित कर दी। उसने बच्चों को उसके पास पहरा देने के लिए कहा, "जो कोई भी मुझसे वाद-विवाद कर सके, वह इस शाखा को कुचल दे।" फिर वह अपने निवास स्थान पर चली गई और यदि एक सप्ताह बाद भी शाखा खड़ी रहती, तो वह उसे लेकर चली जाती।
उसी समय हमारे भगवान बुद्ध, उत्तम धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का प्रचार करते हुए, श्रावस्ती के निकट जेतवन वन में आकर निवास करने लगे, ठीक उसी समय जब घुंघराली ने उस नगर के द्वार पर जामुन की शाखा स्थापित की थी।
फिर आदरणीय धम्म के सेनापति (सारिपुत्त) अकेले नगर में आए और उनकी वृक्ष शाखा को देखकर उन्हें वश में करने की इच्छा हुई। उन्होंने बच्चों से पूछा, 'यह वृक्ष शाखा यहाँ क्यों अटकी हुई है?' बच्चों ने उन्हें बताया। बड़े ने कहा, 'यदि ऐसा है, तो इस शाखा को कुचल दो।' और बच्चों ने वैसा ही किया। फिर घुंघराले बालों वाली महिला नगर में भोजन करने के बाद बाहर आई और कुचली हुई वृक्ष शाखा को देखकर पूछा कि यह किसने किया है। जब उसने सुना कि यह बड़े ने किया है, तो उसने सोचा, 'बिना आधार के बहस प्रभावी नहीं होती,' और सावत्थी में वापस जाकर वह गली-गली घूमती हुई कहने लगी, 'क्या आप शाक्य तपस्वियों और मेरे बीच बहस देखना चाहते हैं?' इस प्रकार, बहुत से अनुयायियों के साथ, वह धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के सेनापति के पास गई, जो एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, और मैत्रीपूर्ण अभिवादन के बाद पूछा, 'क्या आपके आदेश पर ही मेरी जामुन की शाखा को कुचला गया था?' 'हाँ, मेरे आदेश पर ही।' 'ऐसा होने पर, आइए हम आपस में चर्चा करें।' 'चलिए, भद्दा।' 'कौन प्रश्न पूछेगा, कौन उत्तर देगा?' 'मुझसे प्रश्न पूछिए; आप जो चाहें पूछिए।' वे इस प्रकार आगे बढ़े, बड़े ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया, जब तक कि वह और प्रश्न न सोच पाने के कारण चुप नहीं हो गई। तब बड़े ने कहा: 'तुमने बहुत कुछ पूछा है; मैं भी पूछूंगा, लेकिन केवल यही प्रश्न।' 'पूछिए, स्वामी।' 'एक—वह क्या है?'[1] घुंघराले बालों वाली, इस प्रश्न का कोई अंत या उद्देश्य न देखकर, मानो अंधेरे में खो गई हो, और बोली: 'मैं नहीं जानती, स्वामी।' तब उन्होंने कहा, 'तुम इतना भी नहीं जानतीं। तुम्हें और क्या पता चलेगा?' और उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया। वह उनके चरणों में गिर पड़ी और बोलीं: 'स्वामी, मैं आपकी शरण लेती हूँ।' सारिपुत्त ने कहा, 'भद्दा, मेरे पास शरण मत लो; भगवान (बुद्ध) की शरण लो, जो मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) में सर्वोच्च हैं।' "मैं ऐसा ही करूंगी, प्रभु," उसने कहा; और उसी शाम, जब गुरु (बुद्ध) धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दे रहे थे, तब वह उनके पास गई और उनकी आराधना करते हुए एक तरफ खड़ी हो गई। गुरु ने उसके ज्ञान की परिपक्वता को भांपते हुए कहा:
'हजारों छंदों से बेहतर, जहाँ लाभ का कोई स्वार्थ न हो'

क्या एकाकी छंद सुनने पर शांति और सुकून मिलता है?

और जब उन्होंने बोलना समाप्त किया, तो उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही शास्त्र और भाव का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया। अब उन्होंने अर्हंत के रूप में संघ में प्रवेश किया, स्वयं गुरु (बुद्ध) ने उन्हें प्रवेश दिया। और भिक्षुणियों के निवास स्थान पर जाकर, वे निर्वाण और पूर्ण प्राप्ति के आनंद में लीन रहीं, और अपनी इस उपलब्धि से प्रसन्न होकर उन्होंने इस प्रकार कहा:
बाल रहित, धूल से लथपथ और अधनंगे कपड़ों में मैं रहता था।

पहले, यह मानते हुए कि हानिरहित चीजें

मुझे कोई नुकसान नहीं हुआ था, और न ही मुझे नुकसान की जानकारी थी।

कई ऐसी चीजों में, जिनमें वास्तव में हानि निहित है। (107)

फिर मैं अकेले छाया में ध्यान करने चला गया।

गिज्जाकुटा चोटी तक, और वहाँ मैंने देखा

बुद्ध, निष्कलंक, चारों ओर से घिरे हुए

और इसके बाद भिक्षु संघ का अनुसरण किया जाता है। (108)

मैं घुटनों के बल बैठकर दोनों हाथों से पूजा करता था।

आराधना. 'आओ, भद्दा!' गुरु (बुद्ध) ने कहा!

इसके द्वारा मुझे दीक्षा प्रदान की गई। (109)

देखो! मैं पचास वर्षों से तीर्थयात्री (तपस्वी) रहा हूँ।

अंग, मगध और वज्जी में,

काशी और कोसल की भूमि में,

कोई कर्ज नहीं, जनता की भीख पर जीवन यापन करता था। (110)

और उस आम आदमी ने बहुत पुण्य अर्जित किया।

बुद्धिमान व्यक्ति, जिसने भद्दा को वस्त्र दिया—

भद्दा जो अब

सभी आंतरिक बंधनों से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त, विमुक्त)। (111)

[1] 'Ekan nama kin? या अधिक पूर्ण रूप से, 'वह क्या है जिसे "एक" कहा जाता है (नाम दिया जाता है)?'

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

बुद्ध के समय में, राजगृह नगर में एक धनी व्यापारी रहता था जिसकी एक बहुत सुंदर पुत्री थी जिसका नाम भद्दा था। उसके चंचल और भावुक स्वभाव के कारण उसके माता-पिता ने उसे सात मंजिला हवेली की सातवीं मंजिल पर कैद कर रखा था जहाँ वह अपनी दासियों के साथ एकांत में रहती थी।

एक दिन उसने शोर सुना और खिड़की से बाहर देखा तो उसे एक बहुत सुंदर युवक दिखाई दिया जिसे डकैती के आरोप में मुकदमे के लिए लाया गया था। भद्दा को तुरंत उस युवक से बेइंतहा प्रेम हो गया। उसके माता-पिता ने उसे यह कहकर समझाने की कोशिश की कि वह चोर है और उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता, लेकिन भद्दा ने उनकी सलाह नहीं मानी। इसके बजाय, वह अपने पलंग पर लेट गई और तब तक खाने-पीने से इनकार कर दिया जब तक कि उस युवक से उसकी शादी न हो जाए। हताशा में, भद्दा के माता-पिता उसकी बात मान गए। उसके पिता ने अधिकारियों को बड़ी रिश्वत दी जिन्होंने युवक के स्थान पर एक गरीब, निर्दोष व्यक्ति को नियुक्त कर दिया, और भद्दा के प्रेमी को रिहा कर दिया गया। भद्दा के माता-पिता ने उसकी शादी उस युवक से कर दी, इस उम्मीद में कि उसका प्यार और उसकी अच्छी किस्मत उसके सुधरने में मदद करेगी।

लेकिन वह युवक, जो दिल से चोर था, नहीं बदला। इसके बजाय, वह अपनी पत्नी के सुंदर विवाह आभूषणों के प्रति आसक्त हो गया, जिन्हें वह उससे चुराने की योजना बना रहा था। उसने भद्दा को बताया कि उसने पर्वतों के देवता से एक प्रतिज्ञा ली है। उसने प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसका जीवन बचा लिया गया तो वह पर्वत की चोटी पर, जो देवता का निवास स्थान है, जाकर भेंट चढ़ाएगा। उसने कहा कि अब प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आ गया है। भद्दा को अपने सारे आभूषण पहनने का निर्देश देकर वह उसे लेकर एक ऊंचे पर्वत की चोटी की ओर चल पड़ा।

रास्ते में वे एक खड़ी चट्टान पर पहुँचे, जिसे लुटेरों की चट्टान के नाम से जाना जाता था, क्योंकि उस समय के कानूनों के अनुसार चोरों को इस स्थान से चट्टान से नीचे धकेल कर मौत की सजा दी जाती थी। फिर उसने भद्दा से अपने सारे आभूषण सौंपने को कहा और उसे उसकी आसन्न मृत्यु के बारे में बताया क्योंकि वह उसे चट्टान से नीचे धकेल कर उसके आभूषण लेकर भाग जाना चाहता था। भद्दा को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। लेकिन अपनी सूझबूझ के चलते उसने अपने पति की योजना को नाकाम करने का एक उपाय सोच लिया।

उसने पति का अनुरोध मान लिया और उससे अपने प्रिय पति को प्रणाम करने की अनुमति मांगी। फिर घुटनों के बल बैठकर उसने दोनों ओर से उसे प्रणाम किया और जब वह ठीक उसके पीछे आ गई, तो उसे चट्टान से नीचे धकेल दिया।

दयालु और करुणामयी भद्दा अपने किए पर भयभीत हो गई। आत्मरक्षा में भी किसी की हत्या करने का डर उसके मन पर गहरा सता रहा था। अब उसे पुरुषों और सांसारिक सुखों में कोई आकर्षण नहीं रहा। संन्यासी जीवन जीने का निश्चय करके वह जैन धर्म में शामिल हो गई।

जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार प्रायश्चित के रूप में उनके बाल जड़ से उखाड़ दिए गए। उन्होंने जैन धर्म की शिक्षाओं का पालन किया और पूरी निष्ठा से धर्म का अभ्यास किया। हालांकि, उनके बाल फिर से उगने लगे, लेकिन इस बार वे घने घुंघराले बालों के रूप में थे। भद्दा को जल्द ही कुंडलकेशा या 'घुंघराले बाल' के नाम से जाना जाने लगा।

कुछ ही समय में कुंडलकेशा ने जैन धर्म के सभी ज्ञान में महारत हासिल कर ली। वह एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाती रहीं और उनके दर्शन और प्रथाओं को बहुत जल्दी आत्मसात कर लिया। कई आध्यात्मिक गुरुओं के अधीन अध्ययन करने के बाद कुंडलकेशा एक अत्यंत ज्ञानी और आध्यात्मिक व्यक्तित्व बन गईं। इतनी ज्ञानी कि उन्होंने धर्म और दर्शन के विषयों पर बहस करने में निपुणता प्राप्त कर ली।

कुंडलकेशा शहर-शहर घूमकर लोगों को बहस के लिए चुनौती देती थीं। जब भी वह किसी शहर में प्रवेश करतीं, तो वह रेत का एक छोटा सा टीला बनातीं और उसके बीच में गुलाब-खलिहान की एक शाखा लगा देतीं। फिर वह बहस करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति को रेत के टीले को कुचलकर उनकी चुनौती स्वीकार करने के लिए कहतीं।

एक दिन जब बुद्ध जेतवन मठ में निवास कर रहे थे, कुंडलकेशा श्रावस्ती पहुंची और उन्हें चुनौती दी। सारिपुत्त ने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने कुछ बच्चों को अपने नाम पर रेत का टीला रौंदने और कुंडलकेशा को अगले दिन मठ में आकर उनसे वाद-विवाद करने के लिए कहने का आदेश दिया।

अपनी जीत के प्रति आश्वस्त कुंडलकेशा अपने समर्थकों की एक बड़ी सभा के साथ मठ पहुंचीं। उन्होंने सारिपुत्त से प्रश्न पूछना शुरू किया। उनके हर प्रश्न का सारिपुत्त ने सही उत्तर दिया। कुंडलकेशा ने एक के बाद एक प्रश्न पूछे, जब तक कि उनके प्रश्न समाप्त नहीं हो गए। उनका प्रश्न चाहे जो भी हो, सारिपुत्त को उसका उत्तर ज्ञात था। अब सारिपुत्त की बारी थी उन्हें चुनौती देने की। कुंडलकेशा पहले ही प्रश्न पर अटक गईं। उत्तर न जानने के कारण उन्होंने सारिपुत्त से उन्हें सिखाने का अनुरोध किया। सारिपुत्त बुद्ध की उपस्थिति में प्रश्न का उत्तर देने के लिए सहमत हो गए।

सारिपुत्त उन्हें बुद्ध के पास ले गए और भद्दा ने उनका उपदेश सुना। भद्दा, जो अत्यंत बुद्धिमान थीं, ने पल भर में अरहंतत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध ने कहा कि भद्दा भिक्षुणियों में धम्म को शीघ्रता से समझने में अग्रणी थीं, क्योंकि उन्होंने भी भिक्षुणी बाहिया की तरह ही क्षण भर में ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अपनी वाद-विवाद की कुशलता का उपयोग करते हुए, भद्दा ने दूर-दूर तक यात्रा की और दूसरों को धम्म का उपदेश दिया ताकि वे भी सत्य से लाभान्वित हो सकें।

5.10 पताचारा, सावत्थी के एक करोड़पति (सेत्थी) की पुत्री, अपने पिता के सेवक की पत्नी, विनय विद्या में निपुण थेरी में अग्रणी, एक प्रख्यात शिक्षिका और नेता।

उनका भी पुनर्जन्म हुआ, जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, हंसवती में एक कुलवासी परिवार में। एक दिन वे गुरु का प्रवचन सुन रही थीं, और जब उन्होंने भिक्षुणियों को संघ के नियमों में पारंगत भिक्षुणियों में सर्वोच्च स्थान दिया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन वे भी इस पद को प्राप्त करेंगी। जीवन भर अच्छे कर्म करने और स्वर्ग-पृथ्वी में पुनर्जन्म लेने के बाद, उनका पुनर्जन्म उस समय हुआ जब कश्यप बुद्ध थे, काशी के राजा किकी की सात पुत्रियों में से एक के रूप में। उन्होंने 20,000 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया और संघ के लिए एक कुटिया का निर्माण किया। जब तक पृथ्वी पर कोई बुद्ध नहीं थे, वे देवताओं (देवदूतों) के बीच महिमामयी निवास करती रहीं, और अंत में, इस बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म सावत्थी में करोड़पति (सेठी) के घर में हुआ। बड़े होने पर, उनका अपने घर के एक सेवक से घनिष्ठ संबंध बन गया। जब माता-पिता ने उसकी शादी उसके ही दर्जे के युवक से तय करने का दिन तय किया, तो उसने मुट्ठी भर सामान लिया और अपने प्रेमी के साथ शहर के मुख्य द्वार से निकलकर एक वन-शाखापत्तनम गाँव में रहने लगी। (गर्भवती होने के कारण) जब प्रसव का समय निकट आया, तो उसने कहा: 'यहाँ मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं है; चलो घर चलते हैं, पतिदेव।' और वह टालमटोल करता रहा, कभी कहता रहा: 'आज चलेंगे; कभी कल चलेंगे', यहाँ तक कि उसने कहा: 'यह मूर्ख मुझे कभी वहाँ नहीं ले जाएगा'; और उसके जाने के बाद उसने अपने सारे काम निपटा लिए, अपने पड़ोसियों से कहा कि वे कहें कि वह घर चली गई है, और वह अकेले ही निकल पड़ी। जब वह वापस आया और उसे यह बात पता चली, तो वह चिल्लाया: 'मेरी वजह से एक उच्च कोटि की महिला असुरक्षित है,' और उसके पीछे दौड़ते हुए उसे पकड़ लिया। रास्ते में ही उसे प्रसव पीड़ा होने लगी, और जब वह संभली, तो वे वापस गाँव की ओर लौट आए। दूसरे बच्चे के जन्म पर सब कुछ पहले जैसा ही हुआ, बस एक फर्क था: जब कर्म (भाग्य) की हवाएँ उस पर चलीं, तो एक भयंकर तूफान आ गया और उसने कहा, 'पतिदेव, मुझे बारिश से बचाओ!' जब वह जंगल में घास और लकड़ियाँ काट रहा था, तो उसने चींटियों के टीले में खड़े एक पेड़ से एक डंडा काट लिया। तभी चींटियों के टीले से एक साँप निकला और उसे काट लिया, जिससे वह वहीं गिर पड़ा और मर गया। वह बहुत दुखी थी और उसके आने का इंतज़ार कर रही थी, जबकि दोनों बच्चे हवा और बारिश से रो रहे थे। उसने उन्हें अपनी गोद में लिया और ज़मीन पर उनके ऊपर लेटकर रात बिताई। भोर होते ही, एक बच्चे को अपनी गोद में लिए और दूसरे से कहते हुए, 'आओ, प्यारे, पिता तुम्हें छोड़कर चले गए हैं,' वह गई और उसे चींटियों के टीले के पास मृत पाया। 'ओह!' वह रो पड़ी, 'मेरे कारण मेरे पति की मृत्यु हो गई,' और पूरी रात रोती और विलाप करती रही। बारिश के कारण उसके रास्ते में बहने वाली नदी घुटनों तक उफान पर थी, और वह घबराई हुई और कमजोर होने के कारण दोनों बच्चों को लेकर नदी पार नहीं कर सकी। इसलिए उसने बड़े बच्चे को एक तरफ छोड़ दिया और दूसरे बच्चे को लेकर नदी पार कर गई। फिर उसने एक टहनी तोड़कर बिछाई और बच्चे को अपने सिर पर लपेटे हुए कपड़े पर लिटा दिया। लेकिन जब वह उस नन्हे बच्चे को छोड़कर जा रही थी,और नदी की ओर जाते समय वह बार-बार पीछे मुड़कर उसे देखती रही। जब वह आधे रास्ते पहुँच चुकी थी, तभी हवा में उड़ते एक बाज़ ने बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर झपट लिया। माँ ने उसे देखकर ताली बजाई और 'सू! सू!' चिल्लाई, लेकिन बाज़ ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह उससे दूर थी, और बच्चे को हवा में उठा लिया। फिर बड़ा बेटा, यह सोचकर कि माँ उसके कारण चिल्ला रही है, घबरा गया और नदी में गिर गया; इस प्रकार माँ ने दोनों बच्चों को खो दिया और रोते हुए सावत्थी आ गई। वहाँ एक आदमी से मिलकर उसने पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं?' उसने कहा, 'सावत्थी में, महोदया।' 'सावत्थी में फलाँ गली में फलाँ परिवार रहता है। क्या आप उन्हें जानते हैं, मित्र?' उसने कहा, 'मैं उन्हें जानता हूँ, महोदया; लेकिन उनके बारे में मत पूछिए; कुछ और पूछिए।' उसने कहा, 'मुझे किसी और बात से मतलब नहीं है। मैं उन्हीं के बारे में पूछ रही हूँ, मित्रा।' उसने कहा, 'महोदय, क्या आप स्वयं बता नहीं सकतीं?' आपने देखा कि भगवान ने कल रात कैसे बारिश की?' वह बोली, 'हाँ, मित्र। मुझ पर पूरी रात बारिश होती रही। मैं अभी बताती हूँ। लेकिन पहले, मुझे उस करोड़पति (सेठी) के परिवार के बारे में बताओ।' वह बोला, 'महोदया, कल रात घर गिर गया और उन पर आ गिरा (वे सब मर गए) और अब वे सब जल रहे हैं, करोड़पति (सेठी), उसकी पत्नी और उसका बेटा एक ही चिता पर। महोदया, उसका धुआँ दिखाई दे रहा है।' उस दुःख के कारण वह पागल हो गई, यहाँ तक कि उसे अपने कपड़े उतर जाने का भी पता नहीं चला। अपने दुख में विलाप करते हुए—
मेरे दोनों बच्चे अब इस दुनिया में नहीं हैं।

और झाड़ियों में मेरे पति मृत पड़े हैं;

एक ही चिता पर मेरी मां, मेरे पिता और मेरे भाई जल रहे हैं।

उस दिन से वह गोल-गोल घूमने लगी, और क्योंकि उसका लबादा उससे अलग हो गया था, इसलिए उसे 'लबादा-चालक' नाम दिया गया। लोग उसे देखकर कहते, 'जाओ, छोटी पागल औरत!' कुछ लोग उसके सिर पर कूड़ा फेंकते, कुछ उस पर धूल छिड़कते, कुछ उस पर मिट्टी के ढेले मारते। गुरु (बुद्ध), जेतवन वन में एक विशाल समूह के बीच धम्म का उपदेश देते हुए बैठे थे, उन्होंने उसे इस प्रकार गोल-गोल घूमते देखा और उसमें आई परिपक्वता पर विचार किया। जब वह विहार की ओर आई, तो वे भी उसी रास्ते से चले। भीड़ ने उसे देखकर कहा, 'कृपया उस छोटी पागल को यहाँ न आने दें।' भगवान बुद्ध ने कहा, 'उसे मत रोको,' और जब वह फिर से घूम कर आई, तो पास खड़े होकर उन्होंने उससे कहा, 'बहन, अपना होश संभालो।' बुद्ध की असीम शक्ति से, उसने होश में आकर अपनी दयनीय स्थिति को पहचाना, और शर्म और अंतरात्मा से प्रेरित होकर वह धरती पर गिर पड़ी। एक व्यक्ति ने उसे अपना बाहरी वस्त्र दिया, और उसने उसे ओढ़ लिया, और गुरु (बुद्ध) के पास आकर उनके चरणों में प्रणाम करते हुए कहा, 'हे प्रभु, मेरी सहायता कीजिए। मेरे एक बच्चे को बाज़ ले गया है, एक को पानी बहा ले गया है; जंगल में मेरे पति मृत पड़े हैं; मेरे माता-पिता और भाई, ढहे हुए घर के नीचे दबकर एक ही चिता पर जल रहे हैं।' इस प्रकार उसने उन्हें अपने शोक का कारण बताया। गुरु (बुद्ध) ने उसे इस प्रकार समझाया: 'पटाचारा, यह मत सोचो कि तुम किसी ऐसे व्यक्ति के पास आई हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है। जिस प्रकार अब तुम बच्चों और अन्य लोगों की मृत्यु के कारण आँसू बहा रही हो, उसी प्रकार जीवन के अनंत चक्र में तुम बच्चों और अन्य लोगों की मृत्यु के कारण चारों सागरों के जल से भी अधिक आँसू बहाती रही हो।'
'महासागरों का जल चार गुना कम है'

आंसुओं में बहाए गए जल की सारी बर्बादी से भी कहीं अधिक।

दुःख से व्याकुल मनुष्य के हृदय द्वारा।

अपना जीवन कड़वे दुख के बारे में सोचकर क्यों बर्बाद करें?

इस प्रकार, गुरु (बुद्ध) के उन वचनों के माध्यम से, जो मोक्ष के मार्ग को छूते हैं, उसका दुःख सहना आसान हो गया। यह जानकर उन्होंने आगे कहा: 'हे पताकारा, परलोक जाने वाले के लिए न तो कोई बच्चा, न ही कोई रिश्तेदार आश्रय, छुपने की जगह या शरण बन सकता है। यहाँ भी वे ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए, जो भी बुद्धिमान हो, वह अपने आचरण को शुद्ध करे और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग का अनुसरण करे।' इस प्रकार उन्होंने उसे उपदेश दिया और कहा:
'पुत्र न तो आश्रय होते हैं, न पिता, न ही कोई रिश्तेदार।'

मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, तुम्हारे लिए रक्त संबंध कोई सहारा नहीं है।

इस सत्य को जानकर, सद्गुणों से परिपूर्ण बुद्धिमान व्यक्ति,

स्विफ्टली निब्बाना की ओर जाने वाली सड़क को स्पष्ट कर देता है।

जब उन्होंने बोलना समाप्त किया, तब वह सोतापना (प्रथम दिव्य जागृति) के फल में स्थापित हो चुकी थीं और उन्होंने दीक्षा का अनुरोध किया। गुरु (बुद्ध) उन्हें भिक्षुणियों के पास ले गए और उन्हें प्रवेश दे दिया।
वह अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में उच्चतर उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए अभ्यास कर रही थीं। एक दिन उन्होंने एक कटोरे में जल लिया और अपने पैर धोते हुए कुछ जल बहा दिया, जो थोड़ी दूर तक रिसकर गायब हो गया। उन्होंने और जल डाला, और वह और दूर तक गया। और तीसरी बार जल गायब होने से पहले और भी दूर तक गया। इसे अपने चिंतन का आधार बनाकर उन्होंने मनन किया: 'इसी प्रकार मनुष्य मरते हैं, या तो बचपन में, या मध्य आयु में, या बुढ़ापे में।' और गुरु, अपने 'सुगंधित कक्ष' में बैठे हुए, अपने तेजस्वी दिव्य रूप को प्रकट किया और मानो उनके सामने बोलते हुए प्रकट हुए, और कहा: 'इसी प्रकार, हे पताचारा, सभी मनुष्य मरने के योग्य हैं; इसलिए क्या यह बेहतर है कि हम इस तरह से जिएं कि पांचों खंधों (5 आंतरिक समुच्चयों) के आने-जाने को देख सकें, भले ही केवल एक दिन के लिए ही सही, एक पल के लिए ही सही, बजाय इसके कि हम सौ साल तक जिएं और उसे न देखें।
'वह व्यक्ति जो सौ वर्ष तक जीवित रहा,

वह कभी यह नहीं देखता कि चीजें कैसे उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं (भौतिक संसार का सत्य)।

एक दिन से अधिक न जीना ही बेहतर है।

अतः उस दिन उसे अनित्यता का सत्य दिखाई देता है।

और जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो पताकारा ने अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का रूप और अर्थ दोनों में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। उस समय से, अपनी शिष्या अवस्था में ही इस उपलब्धि को याद करते हुए और इस आध्यात्मिक परिवर्तन को महत्व देते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक कहा:
हल से खेतों की जुताई करते हुए, बीज बोते हुए

धरती की गोद में बोए गए बीज से ही मनुष्य अपनी फसलें प्राप्त करते हैं।

उनकी कमाई का आनंद लें और पत्नी और बच्चे का पालन-पोषण करें। (112)

मैं, जिसका जीवन पवित्र है, जो खोजता है, क्यों नहीं कर सकता?

गुरु (बुद्ध) की इच्छा पूरी करने में मैं आलसी नहीं हूँ।

न ही घमंड से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है? (113)

एक दिन, अपने पैर धोते हुए, मैं बैठकर देखने लगा

ढलान से नीचे रिसता हुआ पानी।

इससे मैंने स्वयं को दृढ़ संकल्पित कर लिया था।

जैसे किसी श्रेष्ठ नस्ल के घोड़े को प्रशिक्षित किया जाता है। (114)

फिर मैं अपनी कोठरी में जाकर अपना लैंप ले लेता हूँ।

और मैं अपने सोफे पर बैठकर लौ को देखता हूँ। (115)

पिन को पकड़कर, मैं बाती को पूरी तरह नीचे खींच लेता हूँ।

तेल में. . . .

देखो! नन्हे दीपक का निर्वाण!

आत्मज्ञान (विमोक्खो, विमुक्ति) का उदय होता है!

मेरा मन अब मुक्त हो गया है (विमोक्खो, विमुक्ति, मोक्ष)! (116)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

पताकारा एक धनी सावत्थी व्यापारी की सुंदर पुत्री थी। जब वह बालिग हुई तो उसके माता-पिता ने उसके लिए उसी के समान प्रतिष्ठा और धन वाले एक पुरुष से विवाह निर्धारित कर दिया। परन्तु पताकारा अपने माता-पिता के घर के एक नौकर से प्रेम करती थी। उसने अपने प्रेमी के साथ भाग जाने का निश्चय किया क्योंकि उसे लगा कि नौकर से विवाह करने के लिए माता-पिता की सहमति प्राप्त करना असंभव होगा।

नौकरानी का वेश धारण करके और सिर पर पानी का घड़ा लेकर पताकारा अपने प्रेमी के साथ भाग गई। उन्होंने सावत्थी से कुछ दूरी पर स्थित एक गाँव में अपना घर बसाया। उसका पति खेत जोतता था और मामूली कमाई करता था। पताकारा चावल कूटने, खाना पकाने और सफाई करने का काम करती थी - ये सभी काम पहले उसके माता-पिता के घर के नौकर किया करते थे। इस प्रकार उसने एक कठिन जीवन व्यतीत किया, और अपने भाग जाने के कारण माता-पिता को जो कष्ट पहुँचाया था, उसका प्रायश्चित इसी जन्म में कर रही थी।

कुछ समय बाद पताकारा अपने पहले बच्चे से गर्भवती हुई। रिवाज के अनुसार वह प्रसव के लिए अपने माता-पिता के घर वापस जाना चाहती थी। उचित समय आने पर उसने अपने पति से उसे अपने माता-पिता के पास वापस ले जाने का अनुरोध किया। उसने इनकार कर दिया, क्योंकि उसे यकीन था कि उसे उनसे दूर ले जाने के लिए उसके माता-पिता उसे यातनाएँ देंगे और मार डालेंगे। तब पताकारा ने अकेले जाने का फैसला किया। पड़ोसियों को यह बताकर कि वह अपने माता-पिता से मिलने गई है, पताकारा सावत्थी की ओर चल पड़ी।

जब उसका पति काम से लौटा और उसे पता चला कि पताकारा अपने माता-पिता से मिलने गई है, तो वह बहुत परेशान हुआ। उसके पीछे दौड़कर उसने उसे पकड़ लिया और वापस लौटने की विनती की। उसी समय प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। कुछ झाड़ियों की ओट में छिपकर पताकारा ने एक बेटे को जन्म दिया। अपने पति के आग्रह पर वह वापस लौट आई।

कुछ वर्षों बाद पताकारा अपने दूसरे बच्चे से गर्भवती हुई। जब बच्चे के जन्म का समय निकट आया, तो अपने माता-पिता के सहयोग से बच्चे को जन्म देने के दृढ़ संकल्प के साथ, वह अपने बड़े बेटे को लेकर सावत्थी की ओर चल पड़ी। वह आधी दूरी ही तय कर पाई थी कि उसका पति उसके पास पहुँच गया। उसने फिर से उसे जाने से मना किया। लेकिन इस बार पताकारा अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए दृढ़ थी।

वे इसी तरह यात्रा कर रहे थे कि अचानक भयंकर तूफान आ गया। तेज हवाओं ने रास्ते को तहस-नहस कर दिया, पेड़ की डालियाँ इधर-उधर हिलने लगीं और मूसलाधार बारिश होने लगी। तूफान के बीच ही पताकारा को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। उसने अपने पति से मूसलाधार बारिश और हवा से बचने के लिए एक अस्थायी आश्रय बनाने को कहा। वह आश्रय बनाने के लिए कुछ उपयुक्त डालियाँ काटने चला गया। पताकारा अपने पति के लौटने का व्यर्थ ही इंतजार करती रही। फिर, अपने पहले बच्चे को यथासंभव बचाते हुए, उसने दूसरे बेटे को जन्म दिया। पताकारा ने रात एक झाड़ी के नीचे दुबककर सोई, अपने शरीर को इस तरह झुकाकर कि उसके दोनों बेटे तूफान से सुरक्षित रहें।

अगली सुबह जब वह अपने पति के पदचिह्नों पर चली तो उसने उनका अकड़ा हुआ शरीर पाया। आश्रय के लिए शाखाएँ काटते समय उन्होंने एक विषैले साँप को परेशान कर दिया था। मृत्यु दर्दनाक थी लेकिन क्षणिक थी। शोक में लीन, पताकारा ने अपने बेटों को इकट्ठा किया और सावत्थी में अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में उन्हें उफनती अचिरवती नदी पार करनी पड़ी। पानी कमर तक था और धारा तेज़ थी। तूफान और हाल ही में प्रसव पीड़ा से थकी हुई पताकारा जानती थी कि वह दोनों बच्चों को नहीं ले जा सकती। अपने बड़े बेटे को किनारे पर छोड़कर वह नवजात शिशु को दूसरी ओर ले गई। फिर वह अपने पहले बच्चे को लाने के लिए वापस चल पड़ी। वह आधे रास्ते में ही थी कि उसने एक बाज़ को नीचे झपट्टा मारते हुए देखा जो लाल मांस के टुकड़े जैसे दिखने वाले नवजात शिशु को उठाकर ले जा रहा था। पताकारा चीखी और अपने हाथ हिलाए, उम्मीद कर रही थी कि बाज़ उसके बच्चे को छोड़ देगा। बाज़ ने उसकी चीखों को अनसुना कर दिया, लेकिन उसका पहला बच्चा, यह सोचकर कि उसकी माँ उसे बुला रही है, नदी में दौड़ पड़ा और तेज़ बहते पानी में बह गया।

पताकारा शोक से टूट गई। एक ही दिन में उसने अपने पति और दो बेटों को खो दिया था। शोक से व्याकुल, उसके बाल बिखरे हुए थे, कपड़े भीगे हुए थे, आँसुओं से भीगी हुई पटाकारा सावत्थी पहुँची। वहाँ उसकी मुलाकात एक नगरवासी से हुई और उसने अपने माता-पिता के बारे में पूछा। अजनबी ने उससे उस परिवार के बारे में न पूछने की विनती की। उसने कहा, "किसी और के बारे में पूछो, लेकिन उस परिवार के बारे में नहीं।" लेकिन पटाकारा अड़ी रही। तब उसने उसे बताया कि पिछली रात तेज़ हवाओं ने उनका घर गिरा दिया था, जिससे उसके माता-पिता और भाई दोनों की मृत्यु हो गई थी। फिर, हवा में उठते नीले धुएँ की ओर इशारा करते हुए उसने कहा, "देखो, यह उन तीनों की चिता का धुआँ है जो मर गए। उनका अंतिम संस्कार एक साथ किया गया था।"

असहनीय शोक में पटाकारा अपना मानसिक संतुलन खो बैठी। दर्द से चीखती हुई वह शहर में इधर-उधर भागी, उसके कपड़े फटे हुए थे, बाल बिखरे हुए थे, वह अधनंगी थी। स्थानीय लोगों ने उसे गालियाँ दीं और अपशब्द कहे क्योंकि उन्हें यकीन था कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त है। दुःख से व्याकुल और अधमरी अवस्था में पटाचारा जेतवन मठ के पास पहुँची, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। नगरवासियों ने उसे रोकने का प्रयास किया। परन्तु बुद्ध ने अपनी करुणामय दृष्टि से उसकी आंतरिक बुद्धि को पहचानते हुए उसे अंदर आने का आदेश दिया। फिर उन्होंने अपनी करुणा और वचनों से उसे चेतना में वापस लाया। बुद्ध ने कहा, "बहन, अपनी चेतना को पुनः प्राप्त करो।" मानो उसके शरीर पर ठंडे पानी की बाल्टी उड़ेल दी गई हो। इन शब्दों ने उसके पूरे अस्तित्व को झकझोर दिया और उसके दुःख से व्याकुल मन को शांत कर दिया। किसी द्वारा फेंके गए एक लबादे को अपने ऊपर ओढ़कर पटाचारा ने बुद्ध को अपनी दुखमय कहानी सुनाई।

बुद्ध ने करुणा और धैर्य से उनकी बात सुनी और फिर उनसे कहा कि अब और परेशान न हों। “तुम उस परमेश्वर के पास आई हो जो तुम्हारे दुख को दूर कर सकता है। तुमने केवल आज ही पुत्रों, पतियों और माता-पिता को नहीं खोया है, बल्कि इस अनंत संसार चक्र में तुमने पुत्रों और अन्य प्रियजनों को खोया है।” उन्होंने कहा, “तुमने चारों सागरों के जल से भी अधिक आँसू बहाए हैं।” जैसे-जैसे वे बोलते गए, पताकारा का दुःख कम होता गया। बुद्ध ने अंत में निम्नलिखित श्लोक से अपनी बात समाप्त की:
चारों महासागरों में बहुत कम पानी है।

हमने जितने आंसू बहाए हैं, उनकी तुलना में

दुःख से व्याकुल, पीड़ा से विक्षिप्त

हे स्त्री, तुम अब भी क्यों लापरवाह हो?

आश्रय देने के लिए कोई पुत्र नहीं हैं

कोई पिता या रिश्तेदार नहीं

मृत्यु से घिरे व्यक्ति के लिए

रिश्तेदार आश्रय प्रदान नहीं करते।

इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेने के बाद

सद्‌गुणों से परिपूर्ण बुद्धिमान पुरुष

जल्दी ही स्पष्ट हो जाना चाहिए

निर्वाण की ओर जाने वाला मार्ग।

(धम्मपद 268, 288, 289)

जब बुद्ध ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तब तक पताकारा वह उन्मादग्रस्त स्त्री नहीं रह चुकी थीं जो मठ में आई थीं। उन्होंने समस्त सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता के सत्य को भलीभांति जान लिया था और संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापन्न प्राप्त कर ली थी। इसके बाद उन्होंने भिक्षुणी बनने का निवेदन किया। भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने के बाद, पताकारा ने लगन से धम्म का अभ्यास किया। उनकी लगन शीघ्र ही फलदायी हुई, क्योंकि कुछ ही समय में पताकारा ने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया।

पताकारा ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। दीपक बुझने के साथ ही, उनका एकाग्र मन मोक्ष प्राप्त कर चुका था। बुद्ध ने पताकारा को विनय (भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अनुशासन नियम) में अग्रणी भिक्षुणी के रूप में नामित किया था। बचपन में पताकारा अनुशासनहीन और चंचल थीं। उन्होंने अपने माता-पिता के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया था और अपने विद्रोह का परिणाम भुगता था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने अनुशासन के महत्व को समझा और विनय में अग्रणी भिक्षुणी बनीं।

पताकारा अपने पिछले जन्म की आकांक्षाओं और प्रशिक्षण के कारण ही इतनी जल्दी एक चंचल लड़की से संत बन सकीं। एक लाख विश्व चक्र पूर्व पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय, उन्होंने गुरु को एक भिक्षुणी को अनुशासन में अग्रणी की उपाधि प्रदान करते हुए देखा था। वह उस भिक्षुणी से प्रेरित हुईं और भविष्य के किसी बुद्ध के अधीन अनुशासन में अग्रणी भिक्षुणी बनने की आकांक्षा रखने लगीं। बुद्ध पद्ममुत्तरा ने देखा कि पताकारा में अपनी आकांक्षा को पूरा करने की योग्यता और गुण हैं, इसलिए उन्होंने भविष्यवाणी की कि वह गौतम बुद्ध के समय में अनुशासन में अग्रणी भिक्षुणी होंगी। पताकारा ने अनेक बुद्धों के अधीन भिक्षुणी के रूप में जीवन व्यतीत किया और गौतम बुद्ध के मार्गदर्शन में उन्होंने जो अंतर्दृष्टि और ज्ञान अर्जित किया, वह फलीभूत हुआ।

पताकारा, जिन्होंने अपने अनुशासनहीन और लापरवाह व्यवहार के कारण बहुत कष्ट सहा, उन्होंने अपना जीवन अन्य युवतियों को मठवासी अनुशासन और अनुशासित मन के लाभों की शिक्षा देने में समर्पित कर दिया। उन्हें एक महान शिक्षिका और करुणामयी भिक्षुणी के रूप में सम्मान प्राप्त था, जिन्होंने अनेक महिलाओं को मुक्ति प्राप्त करने में सहायता की।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.11
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||48|| ------>>>> अगला

5.11 पताचारा के अधीन तीस थेरी अपने अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा करते हैं।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन प्रतिज्ञाएँ ली थीं और अच्छे कर्म संचित करके ज्ञान प्राप्ति (विमोक्ष, विमुक्ति) की परिस्थितियाँ संजोई थीं। वे इस बुद्ध काल में विभिन्न स्थानों पर कुल के परिवारों में जन्मीं, पताचारा का उपदेश सुना, आस्था विकसित की और दीक्षा ली। एक दिन उन्होंने सद्‌गुणों (नैतिक उपदेशों) को पूर्ण करते हुए और अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए उन्हें यह उपदेश दिया:
'पुरुष मूसल से चावल कूटने में व्यस्त हैं।'

युवावस्था में पुरुष धन इकट्ठा करते हैं और उसे संचित करते हैं।

प्रिय पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए। (117)

लेकिन ध्यान रखें कि आप निवास करें

बुद्ध का वह अनुशासन, जिससे पश्चाताप नहीं होता।

जल्दी से अपने पैर धो लें, फिर एकाग्र मन से बैठ जाएं।

और अपनी चेतना को समभाव (समथा) होने दें।

बुद्ध के अनुशासन में सफलता प्राप्त करने के लिए। (118)

तब उन भिक्षुणियों ने थेरी की सलाह का पालन करते हुए, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में स्वयं को स्थापित किया, उसमें अभ्यास किया और ज्ञान को इतनी परिपक्वता तक पहुँचाया - और उनमें यह प्रतिज्ञा भी निहित थी - कि उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान)

प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को अक्षरशः और भाव से पूर्णतः समझ लिया। और उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, उन्होंने आनंदपूर्वक इस प्रकार कहा, और थेरी के श्लोकों को अपने श्लोकों में जोड़ा:
पटाकारा की शिक्षाओं के तहत, उसकी बातें सुनने के बाद

अपने पैरों को धोकर, वे एकमत होकर अलग-अलग बैठ गए।

और समभाव (समथा) में चेतना के साथ, शांत मन से,

इस प्रकार बुद्ध के अनुशासन का अनुसरण करते हुए। (119)

रात के पहले पहर बीतने के बाद, एक उदय हुआ।

पिछले जन्मों (पुनर्जन्मों) की लंबी यादें;

दूसरी पहर बीतने के बाद, कुछ ही समय में उठ खड़ा हुआ।

स्पष्ट, दिव्य, दिव्य दृष्टि, पवित्रता से परिपूर्ण;

रात का आखिरी पहर बीतते ही वे फूट पड़े।

और अज्ञानता का अंधकार दूर हो गया। (120)

फिर वे उठ खड़े हुए और उसे धन्य कहकर उसकी प्रशंसा की।

आपकी इच्छा पूरी हुई! और हम आपको ले चलते हैं।

जैसे इंद्र (इन्द) तैंतीस (10 मिलियन) देवताओं (देवदूतों) के प्रमुख थे,

आकाशीय युद्धों में अजेय,

हम आपको अपना मुखिया मानते हैं, और इसी प्रकार हम जीवन व्यतीत करेंगे।

हमने जो त्रिविध ज्ञान[2] प्राप्त किया है,

और सांसारिक इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। (121)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण प्राप्तियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वव्यापी दिव्य दृष्टि (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा5.12
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||49|| ------>>>> अगला

5.12 चंदा, एक गरीब ब्राह्मण की पुत्री:

वह भी पूर्व युगों में पिछली कन्याओं की तरह ही जन्मी थी, और इस बुद्ध युग में एक ब्राह्मण गाँव में एक ऐसे ब्राह्मण की पुत्री के रूप में जन्मी जिसके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। बचपन से ही उसके परिवार ने अपनी संपत्ति खो दी और वह दयनीय परिस्थितियों में पली-बढ़ी।

अब, उसके घर में नाग-विस्फोटक रोग (संक्रामक रोग) फैल गया और उसके परिवार के सभी सदस्य इसकी चपेट में आकर मर गए। वह अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ होने के कारण एक मिट्टी का बर्तन लेकर घर-घर भीख माँगती रही। एक दिन वह वहाँ पहुँची जहाँ पताकारा ने अभी-अभी अपना भोजन समाप्त किया था। भिक्षुणियों ने उसे दयनीय और भूख से व्याकुल देखकर, उस पर दया करते हुए स्नेहपूर्वक उसका स्वागत किया और अपने पास मौजूद भोजन से उसे तृप्त किया। उनके इस नेक आचरण से प्रसन्न होकर, वह थेरी के पास गई, उन्हें प्रणाम किया और थेरी के प्रवचन के दौरान एक तरफ बैठ गई। उसने आनंदपूर्वक सुना और जीवन चक्र के बारे में चिंतित होकर संसार का त्याग कर दिया। थेरी के उपदेश का पालन करते हुए, वह अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में स्थापित हो गई और अभ्यास में लीन हो गई। फिर, अपने दृढ़ संकल्प और ज्ञान की परिपक्वता के कारण, उसने कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके रूप और अर्थ में भलीभांति समझ लिया। और अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए, उसने आनंदपूर्वक कहा:

मैं पहले बुरे दिनों में फंसा हुआ था।

मेरा न कोई पति था, न कोई संतान, न कोई मित्र।

या रिश्तेदार—मैं खाना या कपड़े कहाँ से पा सकता हूँ? (122)

भिखारियों की तरह, मैंने अपना कटोरा और लाठी ले ली।

और उन्होंने मेरे लिए भिक्षा जुटाने का प्रयास किया, घर-घर जाकर भीख मांगी।

धूप से झुलसे हुए, ठंड से जमे हुए, सात थका देने वाले साल। (123)

फिर मैं आया जहाँ एक महिला तपस्वी थी

उन्होंने मेरे साथ भोजन और पेय साझा किया और मेरा स्वागत किया।

और कहा: 'हमारे बेघर तपस्वी जीवन में आओ!' (124)

दया भाव से उसने मुझे आने दिया।

और उन्होंने मुझे प्रतिज्ञा लेते हुए सुना।

और तब से ज्ञान और शक्ति के शब्द

उसने बात की और मेरे सामने रख दिया

सर्वोच्च उपलब्धि तक पहुँचने का मार्ग। 251 (125)

मैंने उन्हें पढ़ाते हुए सुना और उनके बताए रास्ते पर चला।

हमारी माता की शिक्षा बुद्धिमानी और स्पष्टता से भरी है!

मुझे अब त्रिविध ज्ञान[2] प्राप्त हो गया है।

घातक इच्छाओं से मुक्त। (126)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण प्राप्तियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वव्यापी दिव्य दृष्टि (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||50|| ------>>>> अगला

6.1 पताकारा की 'पाँच सौ' शोकग्रस्त माताएँ जिन्हें उन्होंने सांत्वना दी और दीक्षा दी:
ये माताएँ भी पूर्व बुद्धों के अधीन पूर्व थेरी के रूप में जीवन व्यतीत कर चुकी थीं, और इस बुद्ध युग में विभिन्न स्थानों पर किसी कुलवासी के घर में पुनर्जन्म लेकर विवाह किया और संतान उत्पन्न की, तथा गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। ऐसे कर्म करने के कारण, जिनसे ऐसा परिणाम उत्पन्न हुआ, उन्हें एक बच्चे की मृत्यु का शोक सहना पड़ा। तब वे व्यथित होकर पताकारा के पास पहुँचीं, उन्हें प्रणाम किया और उनके पास बैठकर अपने दुःख का वर्णन किया। थेरी ने उनके दुःख को संयमित करते हुए इस प्रकार कहा:
हम यह नहीं जान सकते कि मनुष्य किस प्रकार जन्म लेते हैं।

और न ही हम वह रास्ता देख सकते हैं जिससे वे जाते हैं (मरते हैं)।

फिर तुम उसके लिए क्यों शोक मनाते हो जो तुम्हारे पास आया था?

आँसुओं के बीच विलाप करते हुए: 'मेरे बेटे! मेरे बेटे!' (127)

तुम्हें देखकर वह रास्ता नहीं जानता जिससे वह आया था।

और न ही उसके तुम्हें छोड़कर जाने का तरीका?

रोओ मत, क्योंकि मनुष्य का जीवन ऐसा ही होता है। (128)

वह बिना पूछे आया, बिना बुलाए चला गया।

देखो! अपने आप से फिर से पूछो कि तुम्हारा बेटा कहाँ से आया है।

इस धरती पर इस थोड़ी सी सांस लेने की जगह में बने रहने के लिए? (129)

एक रास्ते से आया और दूसरे रास्ते से चला गया।

मनुष्य को मरना है और दूसरे जन्मों में जाना है।

तो यहाँ और इसलिए आगे—तुम क्यों रोओगे? (130)

उनकी शिक्षा सुनकर वे प्रेरणा से भर गए और थेरी के मार्गदर्शन में संसार का त्याग कर दिया। अब से वे अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास करते रहे, उनका मन ज्ञानोदय (विमुक्ति, विमुक्ति) के लिए परिपक्व होता गया और वे शीघ्र ही अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) में स्थापित हो गए, और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में भलीभांति समझ गए। उस समय

से, अपनी इस उपलब्धि पर विचार करते हुए, वे इन शब्दों से प्रसन्न होते रहे, 'जिस मार्ग से लोग आते हैं,' और उसमें अन्य श्लोक जोड़कर उन्हें क्रमानुसार इस प्रकार दोहराते रहे:
देखो! मेरे हृदय से छिपा हुआ तीर निकल गया है।

वहां जो शाफ्ट था, उसे उसने हटा दिया है।

और मेरे मृत बच्चे के लिए वह असहनीय शोक

जिसने मेरे पूरे जीवन को विषैला बना दिया था, वह मर चुका है। (131)

आज मैं ठीक हो गया हूँ, मेरी तड़प अभी भी बाकी है।

मुझे पूर्ण रूप से मुक्ति प्राप्त हुई।

मैं बुद्धिमान और शांत बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ(132)

अब, चूंकि वे 500 भिक्षुणियां पताकारा की शिक्षाओं में पारंगत थीं, इसलिए उन्हें पताकारा की भिक्षुणियां कहा जाने लगा।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||51|| ------>>>> अगला

6.2 वसित्थी, या वसेत्थी, वैशाली के एक कुल के व्यक्ति की पुत्री, एक ब्राह्मण की पत्नी, एक शिक्षिका।
वह भी पूर्व बुद्धों की तरह ही पूर्व बुद्धों के अधीन रहते हुए, इस बुद्ध युग में वैशाली के एक कुल के व्यक्ति के परिवार में पुनर्जन्म लेकर जन्मीं। उनके माता-पिता ने उनका विवाह अपने ही कुल के एक पुत्र से कर दिया, और उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया और अपने पति के साथ सुखी जीवन व्यतीत किया। परन्तु जब बच्चा दौड़ने-भागने लायक हुआ, तो उसकी मृत्यु हो गई; और वह हृदयविदारित होकर शोक से पागल हो गईं। जब रिश्तेदार पति को सांत्वना दे रहे थे, तब वह, उनकी जानकारी के बिना, रोते हुए भाग गईं और (पागलपन की अवस्था में) इधर-उधर भटकती रहीं, जब तक कि वह मिथिला नहीं पहुँच गईं। वहाँ उन्होंने भगवान बुद्ध को अगली गली से नीचे जाते हुए देखा, जो आत्मसंयमित, शांत और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण में थे। महान गुरु के दर्शन मात्र से और बुद्ध की कृपा से, वह अपने पागलपन से उबरकर सामान्य अवस्था में आ गईं। तब गुरु (बुद्ध) ने उन्हें संक्षेप में धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। इसे सुनकर वे परमानंद की लहरों से भर उठीं और उन्होंने गुरु (बुद्ध) से दीक्षा देने का अनुरोध किया। तब उन्होंने एक अन्य भिक्षुणी (भिक्षुणी) से उन्हें दीक्षा देने के लिए कहा। सभी आवश्यक कर्तव्यों और प्रारंभिक अनुष्ठानों को पूरा करते हुए, वे अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में स्थापित हुईं और पूर्ण परिश्रम और परिपक्व समझ के साथ, उन्होंने शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को सच्चे रूप और भावना में पूर्णतः समझ लिया। अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए, प्रसन्न होकर उन्होंने कहा:
अपने बच्चे के लिए शोक मनाते हुए, मेरा दिमाग सुन्न हो गया है, मैं शोक से पागल हो गया हूँ।

मैं इधर-उधर, इधर-उधर भटकता रहा।

नग्न, बिखरे बालों के साथ, (133)

सड़कों के किनारे खड़े रहना,

और जहाँ मुर्दे पड़े थे, और रथों के रास्तों के किनारे—

अतः मैं तीन वर्ष तक भूखा-प्यासा रहा। (134)

और फिर अंत में मैंने उन्हें (बुद्ध को) देखा, जब वे जा रहे थे।

उस पवित्र नगर मिथिला में:

अनियंत्रित को वश में करने वाला महान गुरु, जी हाँ, वही।

स्वयं बुद्ध, भय के निवारक। (135)

फिर मेरा भटकता हुआ मन वापस मेरे नियंत्रण में आ गया;

मैं तुरंत उनके पास जाकर प्रणाम करने लगा।

और वहाँ, उनके चरणों में ही मैंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना।

उन्होंने मुझ पर, गौतम (बुद्ध) पर, बड़ी करुणा दिखाई। (136)

मैंने उनके द्वारा सिखाए गए धम्म का पालन किया, दीक्षा ली और संसार का त्याग किया।

और अपनी सारी चिंताओं को पीछे छोड़कर, मैंने खुद को समर्पित कर दिया।

गुरु की शिक्षाओं का अनुसरण करना और उन्हें साकार करना।

जीवन महान सौभाग्य के मार्ग पर अग्रसर है। (137)

अब मेरे सारे दुख दूर हो गए हैं, चकनाचूर हो गए हैं।

जड़ से उखाड़ दिया गया, पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया,

अब मैं इसे समझ और ग्रहण कर सकता हूँ।

वह आधार जिस पर दुःख टिका होता है। (138)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||52|| ------>>>> अगला

6.3 मगध के सगाला में राजा के परिवार की पुत्री, राजा बिम्बिसार (राजगृह) की पत्नी खेमा, जो अंतर्दृष्टि में विख्यात थेरी में अग्रणी थीं और बुद्ध द्वारा आदर्श थेरी के रूप में स्थान प्राप्त थीं,
अब जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, तब वह हंसवती में दूसरों की दासी बनकर, अपनी आजीविका के लिए दूसरों पर निर्भर थीं। एक दिन, उन्होंने वृद्ध सुजाता को भिक्षा मांगते हुए देखा, तो उन्होंने उन्हें तीन मीठे केक दिए और साथ ही अपने बाल उतारकर उन्हें देते हुए कहा: 'काश मैं भविष्य में बुद्ध की महान ज्ञानवान शिष्या बन सकूँ!' अनेक सौभाग्यशाली पुनर्जन्मों के बाद, देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों दोनों के बीच रानी के रूप में, क्योंकि उन्होंने उत्तम कर्म किए थे, वह मनुष्य बनीं, जब विपस्सी बुद्ध थे। संसार का त्याग करके, उन्होंने दस हजार वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया और वे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की विद्वान उपदेशक थीं। जब काकुसंध बुद्ध थे, तब एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लेकर उन्होंने संघ के लिए एक विशाल उद्यान बनवाया और बुद्ध को संघ का प्रमुख बनाकर उसे संघ को सौंप दिया। कोनागमना बुद्ध के समय भी उन्होंने यही कार्य किया। जब कश्यप बुद्ध थे, तब वे राजा किकी की सबसे बड़ी पुत्री बनीं, जिनका नाम समानी रखा गया। उन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया और संघ को एक कुटिया दान में दी। अंततः, इस बुद्ध युग (गौतम बुद्ध के युग) में, उनका जन्म मगध के सगाला में राजा के परिवार में हुआ और उनका नाम खेमा रखा गया। सुंदर और स्वर्णमयी त्वचा वाली वे राजा बिम्बिसार की पत्नी बनीं। जब गुरु (बुद्ध) वेलुवन (बांस के वन) में थे, तब वे अपनी सुंदरता पर मोहित होकर उनसे मिलने नहीं गईं, क्योंकि उन्हें डर था कि वे इसे उनकी कमी समझेंगे। राजा ने लोगों से वेलुवन की प्रशंसा करवाई ताकि वे वहां आएं। तब उन्होंने राजा से वेलुवन देखने की अनुमति मांगी। राजा विहार गए और जब उन्हें कोई गुरु नहीं मिला, तो उन्होंने ठान लिया कि रानी को जाने नहीं देंगे। उन्होंने अपने आदमियों को आदेश दिया कि वे रानी को दस शक्तियों वाले बुद्ध से मिलवाएं, चाहे इसके लिए उन्हें विवश ही क्यों न करना पड़े। जब रानी गुरु से मिले बिना ही जाने वाली थीं, तब उन्होंने ऐसा ही किया। जब वे अनिच्छा से रानी को लाए, तो गुरु ने अपनी जादुई शक्ति से एक अप्सरा जैसी स्त्री को प्रकट किया, जो ताड़ के पत्ते से उन्हें हवा दे रही थी। खेमा ने उसे देखकर सोचा, 'सचमुच भगवान बुद्ध के चारों ओर देवियों जैसी सुंदर स्त्रियां हैं। मैं तो ऐसी स्त्री की सेवा करने के भी योग्य नहीं हूं। मैं अपने नीच और गलत विचारों के कारण बर्बाद हो गया!' फिर, देखते ही देखते, गुरु की दृढ़ इच्छाशक्ति से वह स्त्री यौवन से अधेड़ और फिर वृद्धावस्था में पहुंच गई, और अंत में टूटे दांतों, सफेद बालों और झुर्रीदार त्वचा के साथ ताड़ के पत्ते सहित पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब खेमा ने अपने प्राचीन संकल्प के कारण सोचा: 'क्या ऐसा शरीर इस तरह से क्षतिग्रस्त हो सकता है? तो मेरा शरीर भी ऐसा ही हो जाएगा!' और गुरु (बुद्ध), उसके विचारों को जानते हुए, बोले:
'जो लोग कामवासना के गुलाम होते हैं, वे धारा के साथ बह जाते हैं।'

जैसे कोई मकड़ी जाले पर सरकती है

उसने स्वयं ही इसे बनाया है। लेकिन जो मुक्त हुआ है,

जिनके सारे बंधन टूटकर बिखर गए हैं,

कहीं और विचार केंद्रित करके, संसार को त्याग दो।

और इंद्रिय सुख में लिप्त रहने वाले सभी आनंद को दूर रखा जाए।

टीकाओं में कहा गया है कि जब उन्होंने अपना कार्य पूरा किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का रूप और अर्थ में पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया। लेकिन अपदाना के अनुसार, उन्हें केवल उस फल (सोतापना, प्रथम दिव्य जागृति) में स्थापित किया गया था जिसने धारा में प्रवेश किया था, और राजा की सहमति से, उन्होंने संघ में प्रवेश किया और तब वे अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गईं।
उस समय से वे अपनी महान अंतर्दृष्टि (पन्ना, दिव्य समझ) के लिए जानी जाने लगीं, और जेतवन वन विहार (मठ) में आर्यों (अनुयायियों) की सभा में बैठे भगवान (बुद्ध) द्वारा उन्हें इसमें सर्वोच्च स्थान दिया गया।
और एक दिन जब वे एक पेड़ के नीचे ध्यान कर रही थीं, तो युवा रूप में दुष्ट मारा (राक्षस) उनके पास आया और कामुक विचारों से उन्हें लुभाने लगा।
तुम सुंदर हो, और जीवन अभी जवान है, खूबसूरत खेमा!

मैं भी जवान हूँ—आओ, हे सबसे सुंदर महिला!

हमारे कानों में पांचों प्रकार की मधुर ध्वनियाँ गूंजती हैं,

हम अपनी खुशी की तलाश करेंगे। (139)

यह शरीर घृणित, रोग और भ्रष्टाचार का घिनौना अड्डा है।

मुझे घृणा और उत्पीड़न का अनुभव होता है। वासना की लालसा जड़ से उखड़ जाती है। (140)

देह और इंद्रिय-मन की वासनाएँ खंजर और भाले की तरह वार करती हैं।

मुझे किसी भी प्रकार के इंद्रिय सुख में आनंद लेने के बारे में मत बताओ!

अब ऐसी सभी व्यर्थ चीजें मुझे और प्रसन्न नहीं कर सकतीं। (141)

संसार, शरीर और शैतान के प्रेम को चारों ओर से मार डाला गया है। [1]

अज्ञानता का वह अंधकार जो कभी मुझे घेरे हुए था, अब छंट गया है।

हे दुष्ट! यह जान लो! विनाशक, अपनी हार जान लो! (142)

देखो! तुम जो आकाश के तारों की अंधाधुंध पूजा करते हो,

वन में अग्नि की पूजा करने वाले, अग्नि की प्रतीक्षा करो।

तुम सब सच्चाई से अनजान हो, तुम सब मूर्ख और नासमझ हो।

यह मानते हुए कि इस तरह से तुम्हें बुराई से मुक्ति मिल सकती है। (143)

मैं जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं परम मानव, प्रबुद्ध बुद्ध की पूजा करता हूँ, [2]

सभी दुःखों से पूर्णतः मुक्त, गुरु के आदेशों का पालन करने वाला। (144)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||53|| ------>>>> अगला

6.4 सुजाता, साकेत के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, एक करोड़पति (सेठी) की पत्नी।
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्पित होकर, अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके और ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्तों (विमुक्ति, विमुक्ति) को सुदृढ़ करके, वह इस बुद्ध युग में साकेत में एक करोड़पति (सेठी) परिवार में पुनर्जन्म लेकर जन्मीं। उनके माता-पिता ने उनका विवाह एक समान पदस्थ करोड़पति (सेठी) के पुत्र से कर दिया और वह उनके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। एक दिन उद्यान में आयोजित नक्षत्र उत्सव में भाग लेने के लिए जाते समय, वह अपनी सेविकाओं के साथ नगर लौट रही थीं, तभी अंजना वन में उन्होंने गुरु (बुद्ध) के दर्शन किए और प्रसन्नतापूर्वक उनके पास जाकर आदर किया और विराजमान हो गईं। गुरु ने अपना प्रवचन क्रमबद्ध रूप से समाप्त करते हुए, उनके शांत मन को जानकर, उन्हें प्रेरणादायक उपदेश के रूप में धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) समझाया। इसी कारण, क्योंकि उनकी बुद्धि पूर्णतः परिपक्व थी, वे बैठे-बैठे ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर गईं, साथ ही उन्होंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ दोनों में पूर्णतः समझ लिया। गुरु को प्रणाम करके घर

लौटकर उन्होंने अपने पति और माता-पिता की सहमति प्राप्त की और गुरु (बुद्ध) के आदेशानुसार भिक्षुणियों के संघ में प्रवेश लिया। अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए वे अत्यंत प्रसन्न हुईं और उन्होंने कहा:
सुंदर वस्त्रों से सजी, आकर्षक पोशाक में,

चंदन की धूल से सजी मालाओं में,

मेरे सभी आभूषणों से सजा हुआ, घिरा हुआ (145)

दासियों की टुकड़ी के साथ, और अच्छी तरह से सुसज्जित

ठोस और नरम भोजन के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में पानी भी पिएं।

मैं घर से स्वयं गाड़ी चलाकर सुंदर उद्यान (गार्डन) गया। (146)

वहाँ हमने खूब खेल-कूद की और आनंद मनाया।

फिर हम एक बार फिर घर की ओर चल पड़े।

अत: हम अंजना नामक उपवन में प्रवेश कर गए।

सकेता के पास, जहाँ पेड़ों के बीच

विहार (मठ) स्थित है (147)

उन्होंने (बुद्ध ने) मुझे वहाँ बैठे देखा, हे जगत के प्रकाश।

और वे उसकी उपस्थिति में जाकर आराधना करने लगे।

और हम सबके प्रति उनकी अपार करुणा के बारे में,

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया — वह जो देखता है! (148)

मैं भी तुरंत भेदने और प्रवेश करने में सक्षम हो गया।

महान द्रष्टा द्वारा सिखाई गई सच्चाई को सुनकर,

क्योंकि वहाँ, जब मैं बैठा था, मैंने स्पर्श किया

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग)

निर्मल, अमृतमयी मार्ग (शाश्वतता/अमरता की ओर)। (149)

फिर सबसे पहले मैंने घर की जिंदगी छोड़ दी,

जब मुझे धर्म का मार्ग (धम्म) ज्ञात हुआ,

और अब मैंने त्रिविध ज्ञान[1] प्राप्त कर लिया है।

हे बुद्ध का मार्ग कितना बुद्धिमान और निश्चित है! (150)

[1] ज्ञानोदय के कारण प्राप्तियाँ (i) पिछले पुनर्जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर सभी आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का विनाश, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

राजपरिवार में जन्मी खेमा मगध राज्य के सागला नगर में रहती थी। अपने सुनहरे रंग के कारण उसके माता-पिता ने उसका नाम खेमा रखा था। बड़ी होकर वह राजा बिम्बिसार की मुख्य पत्नी बनी। वह अत्यंत सुंदर थी और अपनी सुंदरता के प्रति बहुत सजग थी। इसलिए वह बुद्ध के दर्शन या धर्मोपदेश सुनना नहीं चाहती थी, क्योंकि बुद्ध ने स्पष्ट कर दिया था कि बाहरी सुंदरता क्षणभंगुर है और ज्ञान प्राप्ति में उसका कोई महत्व नहीं है।

राजा बिम्बिसार, जो बुद्ध के कट्टर अनुयायी थे, चाहते थे कि उनकी रानी बुद्ध के उपदेशों को सुनें। उन्होंने एक योजना बनाई जिससे उन्हें बुद्ध के निवास स्थान वाले मठ में आने के लिए प्रेरित किया जा सके। राजा बिम्बिसार ने अपने संगीतकारों से उस उपवन की प्राकृतिक सुंदरता का गीत के माध्यम से वर्णन करवाया जिसमें बुद्ध निवास कर रहे थे। सुंदरता की शौकीन खेमा ने बुद्ध के चारों ओर फैले सुंदर फूलों और वृक्षों के वर्णन को मंत्रमुग्ध होकर सुना। उपवन की सुंदरता का अनुभव करने की इच्छा से खेमा ने मठ जाने का निर्णय लिया।

बुद्ध एक विशाल सभा को प्रवचन दे रहे थे, तभी उन्होंने दूर से खेमा को मठ की ओर आते देखा। अपनी मानसिक शक्तियों से उन्होंने अपने सामने एक अत्यंत सुंदर कन्या का आभास कराया। उपवन और उसके सुगंधित फूलों की सुंदरता से मोहित खेमा सभा के निकट आती गईं, जब तक कि उनकी नज़र बुद्ध को पंखा झल रही उस सुंदर कन्या पर नहीं पड़ी। सुंदरता की प्रशंसिका खेमा उस कन्या की सुंदरता से मंत्रमुग्ध हो गईं, जो उनकी अपनी सुंदरता से कहीं अधिक थी।

तब बुद्ध ने उस सुंदर कन्या को उनकी आँखों के सामने धीरे-धीरे बूढ़ा कर दिया। खेमा ने कन्या की सुंदर त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ते, उसके बाल भूरे होते और शरीर को बूढ़ा होते देखा। फिर उन्होंने शरीर को उम्र के साथ ढहते और नष्ट होते देखा, केवल एक शव बचा जो अंततः हड्डियों के ढेर में बदल गया। यह समझते हुए कि सभी परिस्थितिजन्य घटनाएँ क्षणभंगुर हैं, खेमा को एहसास हुआ कि उनके साथ भी ऐसा ही होगा। जब यह सुंदर आकृति उनकी आँखों के सामने बूढ़ी होकर विघटित हो रही है, तो वह अपनी सुंदरता कैसे बनाए रख सकती हैं?

खेमा बुद्ध की बातें सुनने के लिए तैयार थीं, जिन्होंने उन्हें कामवासना और इंद्रिय सुखों के खतरों से अवगत कराया और क्षणभंगुर इंद्रिय सुखों का त्याग करने का आग्रह किया। आध्यात्मिक रूप से उन्नत मन से इन शिक्षाओं का पालन करते हुए, खेमा ने अरहंतत्व प्राप्त किया। इसके बाद उन्हें राजा बिम्बिसार से भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने की अनुमति मिली।

खेमा को सत्य का ज्ञान इतनी शीघ्रता से इसलिए प्राप्त हुआ क्योंकि उन्होंने कई युगों पहले सद्गुणों और ज्ञान का अभ्यास किया था। सत्य और ज्ञान के प्रति प्रबल आकर्षण के कारण, खेमा ने कई पूर्व जन्मों में बुद्धों, पच्चेक बुद्धों और बोधिसत्वों के निकट जन्म लिया था और धम्म का अध्ययन, अभ्यास और अध्यापन किया था।

एक लाख विश्व चक्र पूर्व, बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय, खेमा का जन्म हंसावती नगर में एक सेवक परिवार में हुआ था। वे पद्ममुत्तरा बुद्ध से प्रेरित थीं, जो भिक्षुओं और भिक्षुणियों की सभा में धम्म का उपदेश दे रहे थे। उनके मन में पद्ममुत्तरा बुद्ध को भोजन अर्पित करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। धन की कमी के कारण, उन्होंने अपने सुंदर बाल काटकर बेच दिए ताकि बुद्ध को भिक्षा दे सकें। तब उन्होंने भावी बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बनने और ज्ञान में अग्रणी बनने की आकांक्षा रखी। उस समय से खेमा ने अपनी आकांक्षा को पूरा करने के लिए अथक परिश्रम किया। 91 विश्व चक्र पूर्व, बुद्ध विपस्सी के समय, वे एक भिक्षुणी और धम्म की शिक्षिका थीं। वर्तमान महा बद्ध कप्पा में बुद्ध काकुसंध, कोनागमना और कस्सपा के समय में, वह संबंधित बुद्धों की गृहस्थ शिष्या थीं, उन्होंने मठों का निर्माण किया था और प्रत्येक बुद्ध और उनके भिक्षुओं और भिक्षुणियों के समूह को दान दिया था, और लगन से धम्म का अभ्यास किया था।

खेमा के पिछले जन्मों की कई जातक कथाएँ हैं। उन्हें बोधिसत्व गौतम की पत्नी (जातक 354), उनकी बहू (जातक 397) और सारिपुत्त की पत्नी (जातक 534) के रूप में ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला था। इन सभी पिछले जन्मों में वह गुणी थीं और उन्होंने अपनी आकांक्षा को पूरा करने के लिए कई पुण्य कर्म किए थे।

अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद खेमा ने शरीर की अनित्यता और कामुक सुखों के खतरों को समझा। एक बार एक लगातार चाहने वाले ने उन्हें बहकाने की कोशिश की।

खेमा, जो पहले से ही अरहंत थीं, ने उन्हें उपदेश दिया।

बुद्ध की पहली महिला प्रमुख शिष्या खेमा, ज्ञान और अंतर्दृष्टि में सर्वोपरि थीं। उच्च शिक्षाओं को समझाने की उनकी क्षमता और बुद्धिमत्ता के कारण सभी उनका आदर करते थे। गहन विषयों पर उनकी बुद्धिमत्ता और स्पष्टतापूर्ण व्याख्याओं ने राजा पसेनादि कोसल पर अमिट छाप छोड़ी, जो उनका बहुत आदर करते थे। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, ज्ञान और विश्लेषणात्मक कौशल से खेमा ने बुद्ध को उनकी भिक्षुणियों की विशाल मंडली को धम्म का उपदेश देने और उन्हें प्रशिक्षित करने में सहायता की, जिनके लिए वे एक आदर्श थीं। ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ खेमा ने करुणा और समझ के साथ पुरुष और स्त्री गृहस्थ भक्तों को धम्म का उपदेश दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.5
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||54|| ------>>>> अगला

6.5 साकेत के करोड़पति (सेठी) मज्झा की पुत्री अनोपमा:
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युगों-युगों तक प्रभावी अच्छे कर्म संचित करके, ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पूर्ण करके, वह इस बुद्ध युग में साकेत में करोड़पति (सेठी) मज्झा की पुत्री के रूप में पुनर्जन्मीं। अपनी सुंदरता के कारण उन्हें 'अतुलनीय' (अनोपमा) नाम मिला। जब वह बड़ी हुईं, तो अनेक धनी पुरुषों के पुत्रों, राजाओं के मंत्रियों और राजकुमारों ने उनके पिता के पास दूत भेजकर कहा: 'हमें अपनी पुत्री अनोपमा दे दीजिए, हम आपको यह या वह देंगे।' यह सुनकर, क्योंकि उनके भीतर सर्वोच्च प्राप्ति का वचन था, उन्होंने सोचा: 'गृहस्थी के जीवन में मुझे कोई लाभ नहीं है'; और उन्होंने गुरु (बुद्ध) की खोज की। उन्होंने उन्हें उपदेश देते हुए सुना, और उनकी बुद्धि परिपक्व होने लगी, उस उपदेश की स्मृति और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में किए गए अथक प्रयास ने उन्हें तृतीय अवस्था—अनगामी (प्रधान देवदूत संसार से बंधे[2])—में स्थापित कर दिया। गुरु (बुद्ध) से प्रवेश का अनुरोध करने पर, उनके आदेश से उन्हें भिक्षुणियों में प्रवेश दिया गया। और उस दिन से सातवें दिन, उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। उस पर पीछे मुड़कर देखते हुए, वे प्रसन्न हुईं और बोलीं:
करोड़पति (सेठी) मजझा के प्रसिद्ध घर की बेटी,

मैं धनी, सुंदर और समृद्ध पैदा हुई थी।

विशाल संपत्ति और उच्च पद की ओर। (151)

और मेरे चाहने वालों की भी कमी नहीं थी—बहुत से लोग आए और मुझसे प्रेम निवेदन किया;

राजाओं और व्यापारी राजकुमारों के पुत्र आए

महंगे उपहारों के साथ, सभी मेरा हाथ पाने के लिए उत्सुक थे।

और अनेक देशों से दूत भेजे गए।

मेरे पिता से किए वादे के साथ: 'मुझे दे दो (152)

अनोपमा, और देखो! उसका वजन चाहे जो भी हो,

अनोपमा, तुम्हारी बेटी, मैं उसे दे दूँगा।

उस वजन का आठ गुना सोना और कीमती रत्न। (153)

लेकिन मैंने प्रबुद्ध बुद्ध को देखा था।

विश्व का एकमात्र सर्वोच्च, अतुलनीय।

मैं नम्रता से बैठकर उनके चरणों में पूजा करने लगा। (154)

गौतम ने दया भाव से ऐसा किया।

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया।

और वहाँ बैठे हुए भी,

मैंने तीसरा लक्ष्य (अनागामी, प्रधान देवदूत जगतबद्ध[2]) प्राप्त किया,

और मुझे पता था कि यह दुनिया मुझे कभी वापस आते हुए नहीं देखेगी (पुनर्जन्म नहीं होगा)। (155)

फिर अपने बाल मुंडवा लिए,

मैंने बेघर तपस्वी जीवन शैली अपना ली।

अब सातवीं रात हो चुकी है जब से सभी इंद्रियां सुन्न हो गई हैं

मेरे भीतर लालसा सूख गई है। (156)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।

[2] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: वापस न लौटने वाला, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.6

श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,

www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||55|| ------>>>> अगला

6.6 महान महा-प्रजापति गौतमी (बुद्ध की पालक माता, बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी, कपिलवस्तु की रानी और भिक्षुणी संघ की प्रमुख)

उनका जन्म उस समय हुआ जब पद्ममुत्तरा बुद्ध थे, हंसवती नगर में एक कुलवासी परिवार में। गुरु के उपदेश सुनकर और एक भिक्षुणी को अनुभव का प्रमुख स्थान देते हुए, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन उन्हें भी ऐसा ही स्थान प्राप्त होगा। फिर, अनेक जन्मों के बाद, उनका पुनर्जन्म बुद्ध-शून्य युग में, कश्यप और हमारे बुद्ध के बीच, बनारस में 500 दासियों में से एक के रूप में हुआ। अब, जब वर्षा ऋतु निकट आई, तो पाँच मौन बुद्ध नंदमूलक पर्वत-गुफा से भिक्षा मांगने के लिए इसिपताना आए; और उन स्त्रियों ने अपने पतियों से वर्षा ऋतुओं के दौरान बुद्धों के लिए पाँच कुटियाएँ बनवाईं और उस दौरान उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की। बनारस के पास एक बुनकर के गाँव में मुखिया के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ और उन्होंने फिर से मौन बुद्धों की सेवा की। अंततः, हमारे गुरु (बुद्ध)

के हमारे पास आने से कुछ समय पहले, देवदहा में महा-सुप्पबुद्ध के परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका पारिवारिक नाम गौतमा था और वे महान माया (बुद्ध की माता) की छोटी बहन थीं। जन्मचिह्नों के व्याख्याकारों ने कहा कि दोनों बहनों की संतानें चक्र-चालक शासक (सम्राट) होंगी। अब, राजा सुद्धोदन (बुद्ध के पिता) जब वयस्क हुए, तो उन्होंने एक उत्सव आयोजित किया और दोनों बहनों का विवाह कराया। इसके बाद, जब हमारे गुरु (बुद्ध) का उदय हुआ और वे धर्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के उत्तम चक्र को घुमाते हुए आत्माओं का पालन-पोषण कर रहे थे, तब उनके पिता वैशाली, जो अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर चुके थे, का निधन हो गया।

तब महान प्रजापति ने संसार त्यागने की इच्छा से गुरु (बुद्ध) से दीक्षा मांगी, लेकिन उन्हें दीक्षा नहीं मिली। तब उन्होंने अपने बाल कटवाए, वस्त्र धारण किए और कलह और विवाद पर आधारित सुत्तंत के प्रवचन के अंत में, वे शीघ्र ही चली गईं और उन 500 शाक्य स्त्रियों के साथ, जिनके पतियों ने संसार त्याग दिया था, वैशाली गईं और आनंद थेरा के माध्यम से गुरु से दीक्षा प्राप्त करने का अनुरोध किया। उन्हें दीक्षा और भिक्षुणियों के लिए आठ अतिरिक्त नियम प्राप्त हुए।

इस प्रकार दीक्षा प्राप्त करने के बाद, महान प्रजापति आईं और गुरु को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं। तब गुरु ने उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया; और उन्होंने अभ्यास और साधना से शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही उन्हें अंतर्ज्ञान और विश्लेषणात्मक ज्ञान भी प्राप्त हुआ। शेष 500 भिक्षुणियों को नंदक के प्रवचन के बाद अंतर्ज्ञान ज्ञान की छह शाखाओं से संपन्नता प्राप्त हुई।[1]

एक दिन, जब गुरु (बुद्ध) महान जेतवन वन विहार में आर्यों (भिक्षुओं और भिक्षुणियों) की सभा में विराजमान थे, तब उन्होंने महान प्रजापति गौतमी को ज्ञान में सर्वोपरि स्थान दिया। गौतमी, जो पूर्ण ज्ञान और निर्वाण के आनंद में लीन थीं, ने एक दिन गुरु के समक्ष अपनी अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा करके और उनके सद्गुणों की प्रशंसा करके अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

बुद्ध, ज्ञान प्राप्त, महान!

सभी जीवित प्राणियों से श्रेष्ठ,

जिसने समस्त कष्टों और दुखों से मुक्ति दिलाई है

मैं और बहुत से पीड़ित लोग। (157)

अब मुझे समझ में आ गया है कि दुख कैसे आता है।

मेरे भीतर की लालसा, यानी कारण, सूख गई है।

क्या मैं नहीं चला, क्या मैंने अंत को नहीं छुआ?

आर्य (कुलीन) अष्टांगिक मार्ग पर कष्टों के बारे में? (158)

ओह! लेकिन मैं तो बहुत लंबे समय से इस राह पर भटकता आ रहा हूँ।

मां, पिता, भाई, पुत्र के रूप में जीवन जीना

और बीते युगों में (पिछले जन्मों में) दादा-दादी के रूप में—

चीजों की असलियत न जानना,

और मुझे जो चाहिए था वह कभी नहीं मिला। (159)

लेकिन अब मेरी आँखों ने भगवान बुद्ध के दर्शन कर लिए हैं;

और अब मुझे पता है कि यह जीवित शरीर आखिरी है,

और जन्मों का अंतहीन चक्र चकनाचूर हो गया है।

अब मैं कभी पुनर्जन्म नहीं लूंगा! (160)

उस मंडली को देखो जो उसके बारे में जानती है—

भाईचारे की सुखद सद्भावना में,

अत्यंत ऊर्जावान और दृढ़ निश्चयी,

निरंतर दृढ़ता से लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए—

यह बुद्धों को दी गई सबसे श्रेष्ठ श्रद्धांजलि है। (161)

ओह! निश्चित रूप से अनगिनत जिंदगियों के भले के लिए।

क्या माया बहन ने गौतम को जन्म दिया था?

हमारे दुखों के बोझ को दूर करने वाला,

जो रोग और मृत्यु के बोझ से दबे हुए पड़े थे! (162)

[1] इद्धि (जादुई क्षमता), किसी भी स्थान की शुद्ध श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) की स्मृति, अन्य प्राणियों के पूर्व जन्म, भीतर आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का निवारण, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

प्रजापति गौतमी, रानी महा माया की छोटी बहन और राजा सुद्धोदन की दूसरी पत्नी थीं। उन्हें महा (महान) प्रजापति कहा जाता था क्योंकि ऋषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक विशाल अनुयायी समूह की नेता बनेंगी। जब उनकी प्रिय बहन ने राजकुमार सिद्धार्थ को जन्म देने के सात दिन बाद देहांत कर दिया, तो वे अत्यंत दुखी हुईं। वे बहनें बहुत करीब थीं। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी बहन के बच्चे को अपने बच्चे की तरह पालेंगी।

अपने पुत्र नंदा की देखभाल का जिम्मा नर्सों को सौंपकर, महा प्रजापति ने नवजात शिशु की देखभाल की। राजा सुद्धोदन और महा प्रजापति दोनों ही सौम्य राजकुमार को बहुत प्यार करते थे। राजकुमार सिद्धार्थ अपने सौतेले भाई और सौतेली बहन, महा प्रजापति के दो बच्चों, नंदा और नंदा के साथ विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत हुए।

जब बुद्ध कपिलवस्तु आए और उन्होंने राजा सुद्धोदन को धम्मपाल जातक का उपदेश दिया, तब महा प्रजापति ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न प्राप्त की। राजा सुद्धोदन के देहांत के बाद, महा प्रजापति ने निश्चय किया कि वे भी दीक्षा ग्रहण करेंगी और बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करेंगी। उनके पुत्र नंदा और पोते नन्हे राहुल ने भी बुद्ध के मार्गदर्शन में दीक्षा ग्रहण कर ली थी। प्रजापति को सांसारिक सुखों की कोई इच्छा नहीं रही।

बुद्ध कपिलवस्तु में शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी के जल को लेकर हुए विवाद को सुलझाने के लिए आए थे, तभी महा प्रजापति ने उनसे महिलाओं को दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति देने का अनुरोध किया। बुद्ध ने कारण बताए बिना ही मना कर दिया और

कहा, "हे गौतमी, यह तुम्हें भाए नहीं कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।" लेकिन महा प्रजापति ने हार नहीं मानी। उन्होंने दूसरी और तीसरी बार भी महिलाओं के लिए दीक्षा का अनुरोध किया। हर बार बुद्ध ने एक ही उत्तर दिया।

इसके बाद बुद्ध वैशाली चले गए और कुटागारा हॉल में स्थित महावन में निवास करने लगे। दृढ़ निश्चयी महा प्रजापति हतोत्साहित नहीं हुईं। अपने बाल मुंडवाकर, उन्होंने भिक्षुणी के पीले वस्त्र धारण किए और शाक्य स्त्रीयों के एक बड़े दल के साथ 150 मील की दूरी तय करके वैशाली पहुँचीं। धूल से सनी, सूजे और लहूलुहान पैरों के साथ, वह हॉल के बाहर खड़ी रो रही थीं। जब बुद्ध के निजी सेवक आनंद ने उन्हें देखा और उनके दु:ख का कारण सुना, तो उन्होंने उनकी ओर से बुद्ध से विनती करने का निश्चय किया।

करुणामय आनंद ने स्त्रियों की ओर से विनती की। जब बुद्ध ने इनकार कर दिया, तो आनंद ने उनसे पूछा कि क्या वे यह मानते हैं कि स्त्रियाँ आध्यात्मिक ऊँचाइयों और अरहंतत्व को प्राप्त करने में असमर्थ हैं? बुद्ध ने उत्तर दिया कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने में सक्षम हैं। फिर उन्होंने महा प्रजापति के पिछले जन्मों को देखा। यह देखकर कि महा प्रजापति ने कई युगों पहले भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की इच्छा की थी, जिसकी पूर्ति उनके शासनकाल में होनी थी, बुद्ध ने दया दिखाई, आनंद की विनती स्वीकार की और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की।

बुद्ध ने महा प्रजापति को शुरू में मना करने का कारण नहीं बताया। अतीत के सभी बुद्धों के साथ भिक्षुणियों का संघ था। गौतम बुद्ध ने इसे देखा होगा और महसूस किया होगा कि स्त्री संघ प्रत्येक बुद्ध के अनुयायी का अभिन्न अंग है। इसलिए, कुछ लोगों का मानना है कि वे प्रजापति के दृढ़ संकल्प और संकल्प की परीक्षा ले रहे थे, क्योंकि महिलाओं, विशेषकर राजपरिवार की महिलाओं के लिए पवित्र जीवन कठिन और कई कठिनाइयों से भरा होता है। कुछ का यह भी मानना है कि शुरू में मना करने का कारण उस समय समाज और महिलाओं के प्रति उसका व्यवहार था, और बुद्ध को स्त्री संघ की सुरक्षा की चिंता थी। सामान्य तौर पर, यह माना जाता है कि शुरू में मना करने का उद्देश्य कुलीन महिलाओं के दृढ़ संकल्प और संकल्प को मजबूत करना और उन्हें भविष्य में आने वाली कठिनाइयों के लिए बेहतर ढंग से तैयार करना था।

बुद्ध के समय भारत में महिलाओं को पुरुषों से हीन समझा जाता था। उन्हें ज्यादा स्वतंत्रता नहीं थी और अक्सर उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया जाता था। कुलीन परिवारों की महिलाओं को सावधानीपूर्वक एकांत में रखा जाता था और दुर्व्यवहार से बचाया जाता था। पुरुष महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करते थे। बुद्ध के शिष्य अक्सर जंगलों में ध्यान करते थे और सुनसान सड़कों पर अकेले ही एक शहर से दूसरे शहर पैदल चलकर धम्म का प्रचार करते थे। वे भिक्षुणियों की सुरक्षा और संरक्षण कैसे सुनिश्चित करते? वे यह कैसे सुनिश्चित करते कि उनके साथ सम्मान और निष्पक्षता से व्यवहार किया जाए? वे भिक्षुणियों की सुरक्षा का जिम्मा ब्रह्मचर्य का व्रत लेने वाले भिक्षुओं को कैसे सौंपते? क्या इससे भिक्षुओं के लिए अनुशासन बनाए रखना और भी कठिन नहीं हो जाता?

बुद्ध ने भिक्षुणियों के लिए आठ अतिरिक्त अनुशासनात्मक (विनय) नियम निर्धारित किए, जिनमें से अधिकांश इस बात से संबंधित थे कि उन्हें भिक्षुओं का सम्मान और आदर कैसे करना होगा, जिन्हें आवश्यकतावश उनकी रक्षा करनी होगी। उन्होंने यह भविष्यवाणी भी की कि भिक्षुणियों के दीक्षा लेने से पृथ्वी पर उनके उपदेशों का समय कम हो जाएगा।

आधुनिक जगत की कुछ महिलाओं को इनमें से कुछ नियमों को स्वीकार करना कठिन लग सकता है, लेकिन बुद्ध द्वारा शुरू किए गए साहसिक और क्रांतिकारी परिवर्तन को पूरी तरह से समझने के लिए हमें इन्हें बुद्ध के समय की महिलाओं की भूमिका और स्थिति के संदर्भ में देखना चाहिए।

महिलाओं पर लागू होने वाले आठ मठवासी नियम इस प्रकार थे:

1. एक भिक्षुणी को हमेशा भिक्षु का आदर करना चाहिए, भले ही वह संघ में उससे कनिष्ठ हो। भिक्षुओं में कनिष्ठ भिक्षु वरिष्ठ भिक्षुओं का आदर करते थे, ठीक उसी प्रकार जैसे कनिष्ठ भिक्षुणियां वरिष्ठ भिक्षुणियों का आदर करती थीं।

2. एक भिक्षुणी को वर्षा ऋतु ऐसे स्थान पर नहीं बितानी चाहिए जहाँ भिक्षु न हों। (बुद्ध के समय भारत में महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण के कारण भिक्षुणियों की सुरक्षा के लिए यह सावधानी आवश्यक थी)।

3. महीने में दो बार भिक्षुणी को भिक्षुओं से मठवासी अनुशासन (उपोसथ) के पाठ का समय पूछना चाहिए और भिक्षुणियों (जो मठवासी नियमों से विचलित हो गई हैं) को सलाह और चेतावनी देने के लिए किसी भिक्षु को भेजने का अनुरोध करना चाहिए।

4. वर्षा ऋतु के दौरान हुए एकांतवास की समाप्ति पर, भिक्षुओं और भिक्षुणियों की एक सभा में अंतिम समारोह आयोजित किया जाएगा।

5. भिक्षुणियों द्वारा किए गए कुछ अपराधों का निपटारा भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों की सभाओं द्वारा किया जाना चाहिए। भिक्षुणियों की सभा केवल छोटे-मोटे अपराधों और महिलाओं से संबंधित कुछ व्यक्तिगत मामलों पर ही विचार करती है।

6. एक नवदीक्षित भिक्षुणी को दो वर्ष के प्रशिक्षण के बाद उच्च दीक्षा प्राप्त होगी। ऐसे उदाहरण भी हैं जब भिक्षुओं को दीक्षा के तुरंत बाद उच्च दीक्षा दी गई थी।

7. किसी भी परिस्थिति में एक भिक्षुणी को किसी भिक्षु को फटकार नहीं लगानी चाहिए। 8.

यद्यपि भिक्षुणियां भिक्षुओं को उपदेश नहीं दे सकतीं, फिर भी एक भिक्षु उस भिक्षुणी को उपदेश दे सकता है जिसने मठवासी अनुशासन का उल्लंघन किया हो।

महा प्रजापति और उनकी शाक्य स्त्रियों के समूह ने आठ अतिरिक्त अनुशासन नियमों को स्वीकार किया और बुद्ध से दीक्षा प्राप्त की। बुद्ध भिक्षुणियों (भिक्षुओं) के संघ की स्थापना करने वाले पहले धार्मिक शिक्षक थे। भिक्षुणियों को भी भिक्षुओं के समान ही मठवासी नियमों का पालन करना सिखाया गया। बुद्ध ने अपनी बढ़ती हुई भिक्षुणी मंडली की सहायता के लिए दो प्रमुख महिला शिष्यों को नियुक्त किया (जैसे उन्होंने दो प्रमुख पुरुष शिष्यों को नियुक्त किया था)। इसके बाद, परिस्थितियों के अनुसार अनुशासन में नए नियम जोड़े गए। उदाहरण के लिए, भिक्षुणी उप्पलावन्ना से संबंधित एक घटना के बाद भिक्षुणियों को जंगलों में अकेले ध्यान करने और निवास करने की अनुमति नहीं थी।

भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए बुद्ध का मठवासी अनुशासन (पाँच ग्रंथ) एक अनुकरणीय लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिससे हम आज भी सीख सकते हैं। संघ के असाधारण रूप से उच्च नैतिक मानक और बुद्ध द्वारा स्थापित अद्वितीय प्रशासनिक व्यवस्था सुविचारित और दूरदर्शी थी। भारत के पूर्व वायसराय लॉर्ड ज़ेटलैंड लिखते हैं, "और यह जानकर कई लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि दो हज़ार वर्ष और उससे भी अधिक समय पहले भारत में बौद्धों की सभाओं में हमारी वर्तमान संसदीय प्रणाली के मूल तत्व पाए जाते हैं।"

कुछ ही समय बाद, महा प्रजापति ने अरहंत पद के साथ-साथ अंतर्ज्ञान और विश्लेषणात्मक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। उनकी शाक्य स्त्रियों का समूह भी अरहंत पद प्राप्त कर चुका था। महा प्रजापति को वरिष्ठता और अनुभव में सर्वोच्च स्थान दिया गया।

कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, प्रजापति ने बुद्ध और अपनी प्रिय बहन माया को प्रणाम किया, जिन्होंने शिशु को जन्म दिया था।

महा प्रजापति ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में भिक्षुणियों के संघ की स्थापना करने की इच्छा रखी थी। उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा को एक अन्य भिक्षुणी को इसी प्रकार की उपाधि प्रदान करते हुए देखा था। उस भिक्षुणी से प्रेरित होकर, उन्होंने भविष्य के किसी बुद्ध के समय में इसी प्रकार का पद प्राप्त करने की कामना की थी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध और उनके अनुयायियों को दान दिया और अपनी इच्छा व्यक्त की। बुद्ध ने उनकी इच्छा की पूर्ति को भांपते हुए भविष्यवाणी की थी कि गौतम बुद्ध के समय में वे भिक्षुणियों में वरिष्ठता और अनुभव में अग्रणी होंगी और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना करेंगी। इस समय से महा प्रजापति ने पुण्य कर्म किए और धम्म का अभ्यास करने के लिए अथक प्रयास किया।

अगली प्रलेखित जन्म कथा उस समय की है जब कोई सर्वोच्च बुद्ध नहीं थे। प्रजापति का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था और उनकी सेवा में 500 दासियाँ थीं। उन्होंने पाँच पच्चेक बुद्धों को बरसाती ऋतु में आश्रय की तलाश में शहर आते देखा था। अपनी दासियों के साथ मिलकर उन्होंने बुद्धों के लिए पाँच आश्रय स्थल बनवाए और उन्हें सुसज्जित किया। फिर उन्होंने पाँच पच्चेक बुद्धों को आमंत्रित किया और अपनी दासियों के साथ मिलकर वर्षा ऋतु के तीनों महीनों तक उन्हें भोजन कराया। ऋतु के अंत में, अपनी दासियों के साथ मिलकर उन्होंने बुद्धों को भेंट करने के लिए कथिना वस्त्र सिले। मृत्यु के बाद प्रजापति और उनकी पाँच सौ दासियाँ स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेकर दीर्घकाल तक स्वर्गिक सुखों का आनंद लेती रहीं।

उनका अगला प्रलेखित जन्म महा प्रजापति के रूप में हुआ, जो राजकुमार सिद्धार्थ की पालक माता और मौसी थीं। दृढ़ संकल्प और अथक परिश्रम से उन्होंने एक लाख विश्व चक्र पूर्व की अपनी मनोकामना को पूरा करने के लिए असंख्य युगों तक धम्म का अभ्यास किया।

वैशाली के लिच्छवी राजाओं ने महा प्रजापति और उनके साथ आईं पाँच सौ शाक्य राजकुमारियों के लिए एक विशाल मठ बनवाया। प्रजापति सभी भिक्षुणियों के लिए, विशेष रूप से कुलीन वर्ग की अन्य महिलाओं के लिए एक आदर्श थीं। उन्होंने उन्हें भिक्षुणी के एकांत और संयमी जीवन में ढलने के लिए प्रोत्साहित किया और सहायता प्रदान की। उन्होंने ननदियों के अध्यापन और प्रशासन में भी सहयोग दिया। जब महा प्रजापति 120 वर्ष की आयु के निकट पहुँचीं, तो उन्हें अहसास हुआ कि उनके पास जीने के लिए अधिक समय नहीं बचा है। अब समय आ गया था कि वे बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करें, जिन्होंने उन्हें धम्म का अमृत सिखाया था और निर्वाण प्राप्त करने में उनकी सहायता की थी। बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने कहा:
"हे प्रभु! मैंने आपका भौतिक शरीर तो उत्पन्न किया, लेकिन

आपने मेरे आध्यात्मिक शरीर का जिक्र किया।

मैंने तुम्हें अपना दूध पिलाया, लेकिन

आपने मुझे धम्म का दूध पिलाया।

दुख और संसार का नाश करने के लिए।

बुद्ध की प्रतिमा के दर्शन करने का यह एक दुर्लभ अवसर है।

मैं दर्शन करना और श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहूंगा।

आपके कमल जैसे चरणों में।

कृपया अपने पैरों को आगे की ओर फैलाएं।

बुद्ध ने करुणा से अपने चरण फैलाए, जो गुलाबी कमल के समान थे। उनके चरणों में गिरकर और प्रबुद्धता के प्रतीक महान चिह्नों का आदर करते हुए, प्रजापति ने उनकी आराधना की और अपनी किसी भी कमी के लिए क्षमा मांगी। फिर उन्होंने परलोक जाने की अनुमति मांगी।

प्रजापति के निकट परलोक जाने की खबर दूर-दूर तक फैल गई। भिक्षु और भिक्षुणियां उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एकत्रित हुए। सारिपुत्त, मोग्गलाना, नंदा, राहुल, आनंद, खेमा, उप्पलावन्ना और कई अन्य लोग वैशाली में एकत्रित हुए। आनंद, जो उस समय केवल सोतापन्ना थे, रोने लगे। प्रजापति ने उन्हें यह याद दिलाकर सांत्वना दी कि उन्होंने बुद्ध से उनकी ओर से भिक्षुणियों के संघ की स्थापना के लिए कहकर उनकी कितनी बड़ी सेवा की थी। फिर उन्होंने आनंद को धीरे से समझाया कि वे न रोएं, क्योंकि सबसे श्रेष्ठ भिक्षु का रोना उचित नहीं था।

बुद्ध ने स्त्रियों की बौद्धिक क्षमताओं को स्वीकार किया था, फिर भी अनेक पुरुष वर्षों से अपने अंतर्विचारों को बदलने को तैयार नहीं थे। बुद्ध ने प्रजापति को बुलाकर कहा, “हे गौतमी, आप जैसी स्त्री (पूर्व रानी) का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है। उन मूर्ख पुरुषों के भ्रम को दूर करने के लिए कोई चमत्कार कीजिए जो स्त्रियों की आध्यात्मिक क्षमताओं के प्रति संशय में हैं।”

तब प्रजापति वायु में उठीं और फिर नीचे आकर बुद्ध की आराधना की। उन्होंने तीन बार इस प्रकार उन्हें प्रणाम किया, फिर वे अंतर्धान हो गईं और भीड़ के सामने पुनः प्रकट हुईं। अंत में बुद्ध से परिनिर्वाण प्राप्त करने की अनुमति स्वीकार करके, वे बुद्ध पर दृष्टि रखते हुए पीछे की ओर नन आश्रम की ओर चलीं। बुद्ध ने सभी को उनके अंतिम विदाई के लिए उनके पीछे चलने का निर्देश दिया। प्रजापति नन आश्रम में प्रवेश कर गईं और पद्मासन में बैठकर गहन ध्यान में लीन हो गईं, ध्यान अवस्था को प्राप्त किया और परिनिर्वाण के आनंद में विलीन हो गईं।

लिच्छवी राजाओं ने प्रजापति के अवशेषों को सोने के ताबूत में रखा और भव्य जुलूस के साथ शहर में घुमाया। महा प्रजापति के अंतिम संस्कार में बुद्ध का अपनी पालक माता और सभी माताओं के प्रति आदर स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। बुद्ध, जो कभी किसी के पीछे नहीं

चलते थे, उनके पार्थिव शरीर को ले जा रहे रथ के पीछे-पीछे चले। इस प्रकार, बुद्ध ने अपने उदाहरण से हमें दिखाया कि हमें अपनी माताओं का आदर और सम्मान करना चाहिए, क्योंकि जब हम छोटे थे और अपना ख्याल रखने में असमर्थ थे, तब उन्होंने हमारी देखभाल और प्यार किया। सैकड़ों भिक्षु और भिक्षुणियां श्मशान घाट तक रथ के पीछे-पीछे चले। फिर ताबूत को चंदन की चिता पर रखा गया और उस पर चमेली और अन्य सुगंधित तेल छिड़के गए। इसके बाद लिच्छवी राजाओं ने चिता को प्रज्वलित किया।

कहा जाता है कि महा प्रजापति के अवशेष चमकते मोतियों की तरह सफेद हो गए थे। आनंद ने अवशेषों को एकत्र किया और उन्हें बुद्ध को सौंप दिया, और बाद में लिच्छवी राजाओं को। राजाओं ने महा प्रजापति के अवशेषों को स्थापित करने के लिए एक स्तूप का निर्माण करवाया। विश्व भर की महिलाएं भिक्षुणी संघ की शुरुआत करने के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हुए महा प्रजापति को सम्मान और श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.7
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||56|| ------>>>> अगला

6.7 सावत्थी के एक ब्राह्मण की पुत्री गुट्टा:
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर, अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके और ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्तों (विमुक्ति, विमुक्ति) को सुदृढ़ करके, वह भी इस बुद्ध युग में सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर गुट्टा नाम से जन्मीं। किशोरावस्था में उन्हें घर का जीवन अरुचिकर लगने लगा और उन्होंने अपने माता-पिता की सहमति से महान प्रजापति (पालक माता और बुद्ध की दिवंगत माता की बहन एवं सहपत्नी) के अधीन संघ में प्रवेश किया। उस समय से, यद्यपि उन्होंने भक्तिपूर्वक अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया, उनका मन लंबे समय तक बाहरी हितों के पीछे भागता रहा, जिससे एकाग्रता भंग हो गई। तब गुरु (बुद्ध) ने उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए अपने 'सुगंधित कक्ष' से अपना तेजस्वी दिव्य रूप प्रकट किया और उनके निकट, मानो हवा में बैठे हुए, ये शब्द कहे:
गुट्टा, क्या तुम उस उच्च पुरस्कार के बारे में सोचते हो?

जिसके लिए तुम अपनी दुनिया खोने को तैयार थे,

संतान की आशा का त्याग करके धन के लालच में पड़ जाना।

इससे मन को सही दिशा मिलती है और वह शुद्ध होता है।

और न ही अपने आप को भटकते विचारों के प्रभाव में आने दो। (163)

मनुष्य के विचार हमेशा भ्रामक होते हैं।

उन स्थानों के लिए खुशी की बात है जहां मारा (शैतान) अपना शिकार ढूंढता है;

और अनेक पुनर्जन्मों का कारण बनते हुए,

इस भयावह चक्र में मूर्खों का ही स्थान है। (164)

आपको उन पांच बंधनों को तोड़ना है: वासना
विवेक, दुर्भावना, आत्म-भ्रम,
रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का कलंक, और संदेह, (165)
हे भिक्षुणी (भिक्षुणी) इन निम्न बंधनों को त्यागकर...
जो आपको वापस यहीं किनारे पर खींच लाते हैं।
आपको यहाँ दोबारा आने की ज़रूरत नहीं है! (166)
आपको जीवन की लालसा से दूर ले जाए,[2] अहंकार से दूर ले जाए,

अज्ञानता से, और ध्यान भटकाने के उन्माद से;
बंधनों को तोड़ दो; तभी तुम आ पाओगे
पीड़ा का पूर्ण अंत। जंजीर तोड़ दो (167)
जन्म और मृत्यु—आप जानते हैं इनका क्या मतलब है।
अतः, इस पृथ्वी पर जीवन में लालसा से मुक्त रहो।
और धम्म (शाश्वत सत्य) की पवित्रता को देखकर,
तुम शांत और निर्मल होकर अपने मार्ग पर आगे बढ़ोगे। (168)

और जब गुरु (बुद्ध) ने वह वचन समाप्त किया, तो थेरी ने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त हुआ। उस आनंद से परिपूर्ण होकर उन्होंने भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए क्रम में ही उन पंक्तियों का उच्चारण किया, और यहीं से वे पंक्तियाँ थेरी की श्लोक कहलाने लगीं।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।

[2] देहधारी या निराकार रूप में पुनः जीवन जीने की लालसा। यह और इसके बाद के तीन शब्द अंतिम पाँच बंधन हैं, 'जिनके दूर होने से तत्काल अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) प्राप्त होता है'।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा6.8
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
6.8 विजया, राजगृह के एक कुल के सदस्य की पुत्री:

उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे। बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक कुल के सदस्य के परिवार में हुआ। बड़ी होकर वे खेमा की सहेली बनीं, जो बाद में थेरी कहलाए, लेकिन तब वे गृहस्थ थीं। खेमा के संसार त्यागने की बात सुनकर उन्होंने कहा, 'यदि वे राजा की पत्नी होकर संसार त्याग सकती हैं, तो मैं भी अवश्य त्याग सकती हूँ।' अतः वे खेमा थेरी के पास गईं और थेरी ने उनकी इच्छा को समझकर उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया, जिससे पुनर्जन्म के विषय में उनका मन विचलित हुआ और वे इस व्यवस्था में शांति की खोज करने लगीं। ऐसा ही हुआ और थेरी ने उन्हें दीक्षा दी। वह कर्तव्यानुसार सेवा और अध्ययन करते हुए, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में निपुण हो गईं, और अपनी क्षमता के कारण शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ में भलीभांति समझ लिया। और जब उन्होंने उस पर पीछे मुड़कर देखा, तो वे प्रसन्न हुईं और इस प्रकार बोलीं:

चार बार नहीं, पांच बार, मैं तेजी से अपनी कोठरी से बाहर निकला।
और मन की शांति की तलाश में भटकता रहा।
मुझमें कमी थी, और विचारों के शासन की भी कमी थी।
मैं उन्हें कैद में नहीं ला सका। (169)
फिर मैं एक भिक्षुणी के पास आया और उनसे पूछा
मेरे मन में कई शंकाएं हैं।
उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया: तत्व, (170)
इंद्रियों के जीवन में अंग और वस्तु,
[और फिर श्रेष्ठ जीवन के कारक:]
आर्यों के चार सत्य, उनकी शक्तियाँ, उनकी सामर्थ्यें,
जागृति के सात कारक,
अष्टांगिक मार्ग, जो परम कल्याण की ओर ले जाता है। (171)
मैंने उसकी बातें सुनीं, उसकी शिक्षाओं का मैंने पालन किया।
रात के पहले पहर बीतने के बाद, एक उदय हुआ।
पिछले जन्मों (पुनर्जन्मों) की लंबी यादें। (172)
दूसरी पहर बीतने के बाद, कुछ ही समय में उठ खड़ा हुआ।
स्पष्ट, दिव्य, दिव्य दृष्टि, पवित्रता से परिपूर्ण;
रात के आखिरी पहर बीतते ही, मैं फूट पड़ा
और अज्ञानता के अंधकार को चीर डाला। (173)
फिर, आनंद और मन की परम शांति को महसूस करें।
मेरे शरीर में ऊर्जा भर दो, मैं सात दिन तक समाधि/सम्मोहन की अवस्था में बैठा रहा।

फिर जकड़े हुए अंगों को फैलाकर मैं दोबारा उठ खड़ा हुआ।
और क्या वह अज्ञानता का अंधकार सचमुच ही क्षत-विक्षत कर रहा था? (174)
[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा7.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||57|| ------>>>> अगला

7.1 उत्तरा, सावत्थी के एक कुली की पुत्री, पताचार की शिष्या।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया और लाभकारी कर्म करके अपने भीतर अच्छे कर्मों की जड़ जमा ली, और ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक तत्व (विमुक्ति, विमुक्ति) अच्छी तरह से संचित कर लिए। बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक कुली के परिवार में हुआ और उनका नाम उत्तरा रखा गया। जब वे समझदार हुईं, तो उन्होंने पताचार को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सुना, जिससे वे उसमें विश्वास करने लगीं। उन्होंने भिक्षुणी संघ में प्रवेश किया, विपश्यना[1] का अभ्यास किया और जल्द ही वे अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गईं। अपनी उपलब्धि पर पीछे मुड़कर देखते हुए, वे प्रसन्न हुईं और उन्होंने इस प्रकार कहा:
'पुरुष मूसल से चावल कूटने में व्यस्त हैं।'

युवावस्था में पुरुष धन इकट्ठा करते हैं और उसे संचित करते हैं।

प्रिय पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए। (175)

लेकिन ध्यान रखें कि आप निवास करें

बुद्ध का वह अनुशासन, जिससे पश्चाताप नहीं होता।

जल्दी से अपने पैर धो लो, फिर एकाग्र मन से बैठ जाओ (176)

अपने मन में दृढ़ता स्थापित करें,

एकाग्र एकाग्रता के साथ, गहन ध्यान में,

संकार (भावनाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं, पाप) के कार्यों को देखें।

जो तुम्हारे स्वयं से उत्पन्न नहीं होता, वह तुम्हारा स्वयं नहीं है। [2] (177)

पटाकारा की शिक्षाओं के तहत, उसकी बातें सुनने के बाद

अपने पैर धोकर, वे एकमत होकर अलग-अलग बैठ गए, (178)

रात के पहले पहर बीतने के बाद, एक उदय हुआ।

पिछले जन्मों (पुनर्जन्मों) की लंबी यादें।

दूसरी पहर बीतने के बाद, कुछ ही समय में उठ खड़ा हुआ।

स्पष्ट दिव्य दृष्टि, दिव्य, पवित्रता की। (179)

रात के तीसरे पहर के बीतते ही, मैं फूट पड़ा

और अज्ञानता के अंधकार को चीर डाला।

अब त्रिविध ज्ञान से परिपूर्ण होकर[3] मैं उठा:

'हे देवी! निश्चय ही आपकी इच्छा पूरी हुई है। (180)

जैसे इंद्र (इन्द) तैंतीस (10 मिलियन) देवताओं (देवदूतों) के प्रमुख थे,

आकाशीय युद्धों में अजेय,

मुखिया के रूप में, और मैं इसी तरह जीवन व्यतीत करूंगा।

मैंने जो त्रिविध ज्ञान[3] प्राप्त किया है,

और सांसारिक इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। (181)

एक दिन, पताकारा के अधीन अपना कार्य पूरा करने के बाद, यह थेरी अपने निवास स्थान पर गईं और पालथी मारकर बैठ गईं। उन्होंने मन में यह निश्चय किया कि जब तक मैं अपने मन को आसवों (भौतिक इच्छाओं) से पूरी तरह मुक्त नहीं कर लेती, तब तक मैं इस स्थिति से नहीं उठूंगी। इस प्रकार उन्होंने अपने मन में दृढ़ संकल्प किया और विपश्यना (ध्यान) में धीरे-धीरे स्पष्टता प्राप्त करते हुए, मार्ग पर अग्रसर होकर, उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही अंतर्ज्ञान की शक्ति और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया। इस प्रकार, उन्नीस विषयों पर एक के बाद एक चिंतन करते हुए, इस चेतना के साथ कि 'मैंने इस विषय में जो करना था वह कर लिया है,' उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ऊपर दिए गए श्लोक कहे और अपने अंगों को फैलाया। और जब भोर हुई और रात से दिन का प्रकाश निकला, तो उन्होंने थेरी को खोजा और अपने श्लोकों को दोहराया।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान विधि को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] शाब्दिक रूप से, संस्कारों को स्वयं के रूप में नहीं, बल्कि अन्य के रूप में समझें।
[3] ज्ञानोदय के कारण प्राप्तियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा7.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||58|| ------>>>> अगला

7.2 चाला, मगध के नलका की ब्राह्मणी सुरुपासारी की पुत्री, भिक्षुओं के प्रमुख सारिपुत्त की बहन।
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके, वह भी इस बुद्ध युग में मगध के नलका गाँव में पुनर्जन्म लेकर जन्मीं।[1] वह ब्राह्मणी सुरुपासारी की संतान थीं। उनके नामकरण के दिन उनका नाम चाला रखा गया। उनकी छोटी बहन उपाचल और सबसे छोटी शिशुपचला थीं, और तीनों अपने भाई सारिपुत्त, धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) के सेनापति से छोटी थीं। अब, जब तीनों ने सुना कि उनके भाई ने संघ के लिए संसार का त्याग कर दिया है, तो उन्होंने कहा: 'यह कोई साधारण प्रणाली या साधारण त्याग नहीं हो सकता, यदि हमारे भाई जैसे किसी ने इसका अनुसरण किया हो!' और इच्छा और लालसा से परिपूर्ण होकर, उन्होंने भी संसार का त्याग कर संन्यासी बन गईं, अपने रोते-बिलखते रिश्तेदारों और परिचारकों को त्याग दिया। संन्यासी

बनने के बाद, परिश्रम और मेहनत से, पापों को दूर करते हुए, उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया और निर्वाण के आनंद में निवास किया।
अब, चाला भिक्षुणी, अपने परिक्रमा और भोजन के बाद, एक दिन अंधवन में ध्यान करने के लिए गईं। तभी एक राक्षस (मारा) उनमें कामुक इच्छाएं जगाने आया। सूत्र में वर्णित है:
'फिर, चाला भिक्षुणी, श्रावस्ती में अपनी परिक्रमा और भोजन के बाद, एक दिन अंधवन में ध्यान करने के लिए गईं। और, अंधवन में नीचे जाकर, वे एक पेड़ के नीचे बैठ गईं। तभी पापी राक्षस (मारा) वहाँ आया।'
अपने पवित्र ब्रह्मचर्य के व्रत को तोड़ने की इच्छा से, मारा (राक्षस) ने उससे पूछा कि वह मुंडा हुआ भिक्षुणी क्यों बन गई है। जब उसने उसे गुरु (बुद्ध) और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के गुणों के बारे में बताया, तो उसने समझाया कि उसने इसमें निपुणता प्राप्त कर ली है और कामुक जीवन पर विजय प्राप्त कर ली है। इससे मारा (राक्षस) व्याकुल और निराश होकर वहाँ से गायब हो गया। लेकिन उसने मारा (राक्षस) के साथ हुई अपनी बातचीत का विवरण इस प्रकार दिया:
सभी इंद्रियों से परिपूर्ण, आत्मजागरूक, ध्यानमग्न भिक्षुणी (भिक्षुणी)

प्रशिक्षित और आत्मसंयमित, पवित्र मार्ग पर चलने वाला, शांत।

कर्म, वाणी और विचार पर पूर्ण निपुणता के साथ

शांत भाव से, (दिव्य) आनंद में निवास करता है। (182)

मारा (शैतान):

अब क्यों और तुम इस तरह के कपड़े पहने हुए क्यों दिख रहे हो?

और नन की तरह मुंडाए हुए, फिर भी शामिल न हों

क्या आप किसी संप्रदाय के तपस्वियों के साथ उनके अनुष्ठानों में भाग लेना चाहेंगे?

तुम्हारा यह व्यर्थ और स्वार्थी उद्देश्य क्या है? (183)

चला:

वे ही हैं जो बाहर हैं, जाल में फंसे हुए हैं।

उन व्यर्थ दर्शनों में से जिन पर वे निर्भर हैं—

वे ही लोग हैं जिन्हें धम्म (सत्य) का ज्ञान नहीं है।

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में वे ही सर्वथा अयोग्य हैं। (184)

शाही साकिया वंश में जन्म होता है

एक बुद्ध, जो पुरुषों में अद्वितीय हैं:

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) प्रदान किया है।

जो व्यर्थ दार्शनिक मतों पर विजय प्राप्त करता है। (185)

दुख का उद्गम और कारण, दुख पर काबू पाने के तरीके,

आर्यों का अष्टांगिक मार्ग निम्नलिखित की ओर ले जाता है:

समस्त दुखों का निवारण। (186)

और मैंने, जिसने उसके वचन सुने हैं,

वह पूरी ईमानदारी से अपने अनुशासन का पालन करेगा।

अब मुझे अद्वितीय त्रिविध ज्ञान[2] प्राप्त हो गया है,

बुद्ध के समय के दौरान। (187)

हर तरह से, इंद्रियों का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

और भीतर का अंधकार (अज्ञान) क्षेत्र चीर-फाड़ कर अलग हो जाता है।

हे पापी! यह जान लो!

हे विनाशक! यहाँ तुम विजयी नहीं हो पाओगे। (188)

[1] इसे नाला-गाँव भी कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सारिपुत्त समय-समय पर वहाँ निवास करते रहे और वहीं उनकी मृत्यु हुई और उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।
[2] ज्ञानोदय के कारण प्राप्तियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वव्यापी दिव्य दृष्टि (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा7.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||59|| ------>>>> अगला

7.3 उपचला, चाला और सारिपुत्त की बहन।
वह भिक्षु संघ के सेनापति सारिपुत्र की दूसरी बहन भी थीं। उनकी कहानी पिछली कहानी में बताई जा चुकी है। चाला की तरह, उन्होंने भी दीक्षा ली, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया और अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गईं। वे प्रसन्न हुईं और मारा (राक्षस) द्वारा व्यर्थ में प्रलोभित किए जाने के बाद उन्होंने कहा:
सभी इंद्रियों से परिपूर्ण, आत्मजागरूक, ध्यानमग्न भिक्षुणी (भिक्षुणी)

प्रशिक्षित और आत्म-संयम में,

आंतरिक शांति पूर्ण होने के साथ,

और उसने पथ पर अपनी जगह बना ली है

जिन पवित्र लोगों ने अमरता प्राप्त कर ली है, वे यहाँ से होकर गुजरे। (189)

मारा (शैतान):

पुनर्जन्म क्यों नहीं, तुम्हें प्यार क्यों?296 क्योंकि, जन्म लेने के बाद से,

आप इंद्रियों से मिलने वाले जीवन का आनंद ले सकते हैं।

इंद्रियों और यौन क्रिया के खेल का आनंद लें और मजे करें।

अन्यथा बहुत देर हो जाने पर आपको घोर पश्चाताप होगा। 297 (190)

उपचला:

जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्य होगी।

और हत्या जैसे कई खतरे,

चोट, यातना, अंग हानि, बंधन, शोक

अतः जन्म लेने वाले व्यक्ति को दुख भोगना ही पड़ता है। (191)

शाही साकिया वंश में जन्म होता है

जो पवित्र है, जो जागृत बुद्ध है, जो अजेय है।

उन्होंने मुझे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) प्रदान किया है।

जिससे पुनर्जन्म का चक्र भलीभांति पार हो जाता है, (192)

दुख का उद्‌गम और कारण, दुख पर काबू पाने के तरीके,

आर्यों का अष्टांगिक मार्ग निम्नलिखित की ओर ले जाता है:

समस्त दुखों का निवारण। (193)

और मैंने, जिसने उसके वचन सुने हैं,

वह पूरी ईमानदारी से अपने अनुशासन का पालन करेगा।

अब मुझे अद्वितीय त्रिविध ज्ञान[2] प्राप्त हो गया है,

बुद्ध के समय के दौरान। (194)

हर तरह से, इंद्रियों का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

और भीतर का अंधकार (अज्ञान) क्षेत्र चीर-फाड़ कर अलग हो जाता है।

हे पापी! यह जान लो!

हे विनाशक! यहाँ तुम विजयी नहीं हो पाओगे। (195)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा8.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||60|| ------>>>> अगला

8.1 शिशुपचला, चाला, उपचला और सारिपुत्त की बहन।
उनकी कहानी उनकी बहन चाला की कहानी में बताई गई है - कैसे उन्होंने अपने महान भाई (सारिपुत्र, भिक्षु संघ के प्रमुख) के पदचिन्हों पर चलकर संघ में प्रवेश किया, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया और अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गईं। सिद्धि के आनंद में लीन होकर, उन्होंने एक दिन अपनी उपलब्धि पर विचार किया, और जो कुछ करना था वह सब कर लेने के बाद, वे प्रसन्न हुईं और अपने आनंदमयी भाव में इस प्रकार कहा:
भिक्कुनी (नन) नैतिक उपदेशों (शील) में निपुण,

हर मायने में पूरी तरह से सुरक्षित,

जिसने उस पवित्र मार्ग को प्राप्त कर लिया है, वह शांत हो गया है।

जीवन का वह अनवरत अमृत। (196)

मारा (शैतान):

तावंतिस, यम और तुसिता देवता (स्वर्ग के देवदूत),

निम्मनराती देव (स्वर्गदूत) और वासवत्ती देव (स्वर्गदूत)

उनके मन में लालसा भरी आकांक्षाएं हैं,

आप बीते युगों में कहाँ-कहाँ रह चुके हैं? (197)

जब थेरी ने यह सुना, तो उसने कहा: 'रुको, मारा (राक्षस)! जिस कमललोक की तुम बात कर रहे हो, वह समस्त संसार की तरह कामवासना, घृणा और अज्ञान की आग से जल रहा है। वहाँ विवेकशील मन को कोई आकर्षण नहीं मिल सकता।' और मारा (राक्षस) को यह दिखाते हुए कि उसका मन संसार और इंद्रिय सुखों से विमुख हो गया है, उसने उसे इस प्रकार फटकारा:

तावंतिस, यम और तुसिता देवता (स्वर्ग के देवदूत),

निम्मनराती देव (देवदूत) और वासवत्ती देव (देवदूत)(198)

सोचिए कि वे कितनी बार ऐसा करते हैं

जन्म से मृत्यु तक, और मृत्यु से पुन: जन्म तक,

पहले यह बनना और फिर वह बनना,

बार-बार आने वाली विपत्ति से हमेशा घिरा हुआ

दयनीय व्यक्तित्व का,

जहां से दयालु मुक्ति नहीं आती। (199)

सारी दुनिया आग की लपटों में घिरी है, सब कुछ जल रहा है!

सारा संसार प्रज्वलित है, सारे संसार क्षणभंगुर हैं! (200)

लेकिन जो चीज नहीं बदलती, वह अतुलनीय है।

जो सांसारिक लोगों को ज्ञात नहीं है,

जिसके लिए बुद्ध ने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया है।

मेरा मन उसमें लीन रहना पसंद करता है। (201)

और मैंने, जिसने उसके वचन सुने हैं,

वह पूरी ईमानदारी से अपने अनुशासन का पालन करेगा।

अब मुझे अद्वितीय त्रिविध ज्ञान[2] प्राप्त हो गया है,

बुद्ध के समय के दौरान। (202)

हर तरह से, इंद्रियों का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

और भीतर का अंधकार (अज्ञान) क्षेत्र चीर-फाड़ कर अलग हो जाता है।

हे पापी! यह जान लो!

हे विनाशक! यहाँ तुम विजयी नहीं हो पाओगे। (203)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा9.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||61|| ------>>>> अगला

9.1 वड्ढा की माता, भारुकच्छ (भरुच) के एक कुलवासी की पुत्री:
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए, जिससे ज्ञान प्राप्ति की तैयारी धीरे-धीरे पूर्ण हो गई। बुद्ध युग में उनका जन्म भारुकच्छ[1] नगर में एक कुलवासी के परिवार में हुआ। विवाह के बाद उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम वड्ढा रखा गया। तब से वे वड्ढा की माता के नाम से जानी जाने लगीं। एक भिक्षु का उपदेश सुनकर वे भी अनुयायी बन गईं और अपने बच्चे को अपने रिश्तेदारों को सौंपकर भिक्षुणियों के पास गईं और संघ में प्रवेश किया। शेष कथा, जिसका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, भिक्षु वड्ढा की कथा से पूर्ण की जा सकती है, जो वरिष्ठ भिक्षुओं के भजनों (थेरागाथा) में वर्णित है। वड्ढा अपनी माता से मिलने के लिए अकेले ही भिक्षुणियों के कक्ष में चले गए और उनकी माता ने उनसे पूछा, 'तुम यहाँ अकेले क्यों आए हो?' और उन्हें इस प्रकार फटकारा:
हे मेरे वड्ढा, तुम फिर कभी मत आना।

बार-बार दुनिया के जंगल में

मेरे पुत्र! पुनर्जन्मों से मुक्त हो जाओ।

और जीवन के सभी कष्टों से मुक्ति। (204)

सच्ची ख़ुशी, हे वड्ढा मेरी, उनकी है

जो बुद्धिमान और लालसा एवं संदेह से मुक्त है,

शांत और निर्मल, लालसा को वश में कर लिया है।

और सभी घातक इच्छाओं से मुक्त होकर निवास करें। (205)

जिस मार्ग पर इन जैसे ऋषियों ने यात्रा की है—

मार्ग के मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए, वे कैसे

हे प्रिय बालक, क्या तुम दुखों का निश्चित अंत कर पाओगे?

अपने स्वयं के कल्याण के लिए अध्ययन करें और विकास को बढ़ावा दें। (206)

और पुत्र वड्ढा ने यह सोचकर कि 'मेरी माता निश्चय ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर चुकी हैं, इस प्रकार कहा:

अब आप बड़ी आशा और विश्वास के साथ ऐसा कहते हैं,

हे माँ! मुझे आप पर पूरा भरोसा है।

मेरी प्यारी माँ, जंगल रास्ते में बाधा नहीं है। (207)

तब थेरी (माता) ने उत्तर दिया, जिससे पता चला कि उसका काम पूरा हो गया है:

आह, नहीं! मेरी वड्ढा, मैं जो कुछ भी करता हूँ,

या कहें, या सोचें, चाहे चीजें बड़ी हों या छोटी,

जंगली बुराई की छोटी सी भी वृद्धि नहीं

अब मेरे आगे के रास्ते में बाधा खड़ी है। (208)

मैंने सभी सांसारिक इच्छाओं का त्याग कर दिया है।

मैंने अत्यंत उत्साह से (बिना आलस्य के) ध्यान किया है।

अब मुझे त्रिविध ज्ञान[3] प्राप्त हो गया है,

और बुद्ध की साधना पूर्ण हो गई है। (209)

भिक्षु वद्धा ने उनकी शिक्षा को प्रेरणा मानकर और उससे प्रेरित होकर अपने विहार (मठ) में जाकर, अपने सामान्य विश्राम स्थल पर बैठकर, अपनी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[2]) को इस प्रकार विकसित किया कि उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और अपनी इस उपलब्धि पर प्रसन्न होकर, वे अपनी माता के पास गए और अपने अन्न (ज्ञान की अवस्था) की घोषणा की।

मेरी माँ ने जो प्रलोभन दिया वह कितना शानदार था!

और फटकार भी उतनी ही दयालु थी।

उन्होंने मुझे वह शिक्षा भी दी जो उन्होंने मुझे दी।

अपने परम सद्गुणों के बोझ से लदा हुआ। (210)

मैंने उसकी बातें सुनीं, मैंने उसकी सलाह को समझदारी भरा माना।

और धार्मिक श्रद्धा से रोमांचित होकर उसने पुकारा

मुक्ति प्राप्त करने का दर्शन। (211)

और मैंने दिन-रात अथक परिश्रम (ध्यान) किया।

जब तक उनकी चेतावनियों का फल नहीं मिला,

और मैं निर्वाण की परम शांति को स्पर्श कर सकता था। (212)

[1] भरूच - भारत के पश्चिम में गुजरात राज्य का एक बंदरगाह शहर।
[2] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[3] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा10.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||62|| ------>>>> अगला

10.1 किसा-गोतमी, श्रावस्ती के गरीब परिवार की पुत्री, खुरदरे वस्त्र धारण करने वाली भिक्षुणियों में अग्रणी।

उनका जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय हंसवती नगर में एक कुलवासी परिवार में हुआ था। एक दिन उन्होंने गुरु को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और भिक्षुणी को खुरदरे वस्त्र धारण करने के मामले में सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि एक दिन उन्हें भी यह स्थान प्राप्त होगा। बुद्ध युग में उनका श्रावस्ती में एक गरीब परिवार में पुनर्जन्म हुआ। उनका नाम गोतमी था और दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें दुबली-पतली गोतमी कहा जाता था। विवाह के बाद उनके साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया गया और उन्हें तुच्छ पुत्री कहा गया। परन्तु जब उन्होंने पुत्र को जन्म दिया, तो उन्हें सम्मान दिया गया। फिर जब पुत्र खेलने-कूदने लायक बड़ा हुआ, तो उसकी मृत्यु हो गई और गोतमी देह से विक्षिप्त हो गईं। और, उसके जन्म के बाद से लोगों के व्यवहार में आए बदलाव को ध्यान में रखते हुए, उसने सोचा: 'वे मेरे बच्चे को भी छीनकर छोड़ देंगे।' इसलिए, शव को अपनी कमर पर उठाकर, वह शोक से पागल होकर घर-घर जाकर कहने लगी: 'मेरे बच्चे के लिए दवा दीजिए!' और लोग तिरस्कारपूर्वक कहते थे: 'दवा! इसका क्या फायदा?' वह उनकी बात नहीं समझ पाई। लेकिन एक बुद्धिमान व्यक्ति ने सोचा: 'उसका मन अपने बच्चे के शोक से व्याकुल है। दस गुना शक्ति वाले परमेश्वर को उसके लिए कोई न कोई दवा अवश्य पता होगी।' और उसने कहा: 'हे प्रिय स्त्री, स्वयं बुद्ध के पास जाओ और उनसे अपने बच्चे के लिए दवा मांगो।' वह उस समय विहार (मठ) गई जब गुरु (बुद्ध) धर्मोपदेश दे रहे थे, और बोली: 'भगवान बुद्ध, मेरे बच्चे के लिए दवा दीजिए!' गुरु ने उसमें आशा देखकर कहा: 'जाओ, नगर में प्रवेश करो, और जिस भी घर में अभी तक किसी की मृत्यु न हुई हो, वहाँ से थोड़ा सा सरसों का दाना ले आओ।' उसने राहत की सांस लेते हुए कहा, 'हे प्रभु, यह ठीक है!' और नगर के पहले घर में जाकर बोली, 'मुझे थोड़ा सा सरसों का दाना दे दीजिए, ताकि मैं अपने बच्चे को दवा दे सकूँ। यदि इस घर में अभी तक किसी की मृत्यु न हुई हो, तो मुझे थोड़ा सा सरसों का दाना दे दीजिए।' 'कौन कह सकता है कि यहाँ कितने लोग नहीं मरे हैं?' 'तो फिर मुझे इतने सरसों के दाने की कोई आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार वह दूसरे और तीसरे घर में गई, जब तक कि बुद्ध की शक्ति से उसका उन्माद दूर नहीं हो गया, उसका स्वाभाविक मन शांत नहीं हो गया, और उसने सोचा: 'पूरे नगर में यही व्यवस्था रहेगी। भगवान बुद्ध ने मेरी भलाई के लिए दया करके यह पूर्वाभास कर लिया था।' और इस विचार से रोमांचित होकर वह नगर छोड़कर चली गई और अपने बच्चे को श्मशान भूमि में लिटाते हुए बोली:
'यह न तो किसी गांव का कानून है, न ही किसी शहर का कानून।'

इस कबीले के लिए या केवल उस कबीले के लिए कोई कानून नहीं है;

हाँ, पूरी दुनिया के लिए, और स्वर्ग में रहने वाले देवताओं (देवदूतों) के लिए भी।

यही नियम है: सब कुछ क्षणभंगुर है!

ऐसा कहकर वह गुरु (बुद्ध) के पास गईं। उन्होंने कहा, 'गोतमी, क्या तुम्हारे पास थोड़ी सी सरसों है?' उन्होंने कहा, 'हे प्रभु, कारण कर्मों में है, सरसों में नहीं। कृपया मुझे उपदेश दीजिए।' तब गुरु (बुद्ध) ने इस प्रकार कहा:
जिसका मन बच्चों और धन-संपत्ति पर लगा रहता है...

वह केंद्रित है, अपने विचारों में उनसे जुड़ा हुआ है।

मृत्यु रात में आई भीषण बाढ़ की तरह आती है।

सोते हुए गांव को छीन लेना।

जब उन्होंने बात पूरी की, तो वह प्रथम मार्ग (धारा-प्रवेश/सोतापना, प्रथम दिव्य जागृति) की सिद्धि में दृढ़ हो गईं और दीक्षा के लिए निवेदन किया। उन्होंने सहमति दी, और उन्होंने तीन बार दाहिनी ओर प्रणाम करके भिक्षुणियों के पास जाकर दीक्षा ली। और कुछ ही समय बाद, चीजों के कारणों का अध्ययन करते हुए, उन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) को विकसित किया। तब गुरु (बुद्ध) ने एक महिमापूर्ण श्लोक कहा:
'वह व्यक्ति जो सौ वर्ष तक जीवित रहा,

वह कभी भी अमृतमय मार्ग (शाश्वतता/अमरता का मार्ग) नहीं देखता।

एक दिन से अधिक न जीना ही बेहतर है।

अतः उसने उसी दिन मार्ग को देखा।

जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और तपस्वी जीवन शैली में अग्रणी होकर, वे तीन प्रकार के खुरदुरे वस्त्र धारण करने लगीं। तब गुरु (बुद्ध), जेतवन वन (मठ) में एक सभा में बैठे हुए, भिक्षुणियों को उनके गुणों के अनुसार क्रम देते हुए, उन्हें खुरदुरे वस्त्र धारण करने वालों में प्रथम घोषित किया। और उन्होंने, अपनी उपलब्धियों को याद करते हुए, गुरु के समक्ष, चुने हुए लोगों के साथ मित्रता की प्रशंसा में यह भजन गाया:
विश्वभर के नेक लोगों के साथ मित्रता

ऋषि ने प्रशंसा की है। मूर्ख भी वास्तव में बुद्धिमान बन जाता है।

यदि वह किसी कुलीन मित्र का स्वागत करे। (213)

पवित्र लोगों के पास जाओ! उनमें जो जाते हैं

ज्ञान (पन्न) बढ़ता है; और उस पवित्र प्रेम में

तुम अपने सभी दुखों से मुक्त हो जाओगे। (214)

दु:ख को अच्छी तरह से पहचानो; ध्यान दो कि यह कैसे आता है।

और यह कैसे गुजरता है; अष्टांगिक मार्ग को ध्यान से देखें

इससे दुखों का अंत होता है, ये चार महान आर्य सत्य हैं। (215)

उसने कहा है, स्त्री का भाग्य कितना दयनीय है!

पुरुषों को वश में करने वाला और उनका मार्गदर्शन करने वाला:

शत्रुतापूर्ण पत्नियों के साथ घर साझा करना कष्टदायक होता है।

प्रसव पीड़ा में असहनीय कष्ट होता है।

कुछ लोग मृत्यु की तलाश में हैं, अन्यथा उन्हें दो बार कष्ट भोगना पड़ेगा, (216)

गले को भेदते हुए; नाजुक जहर शरीर में प्रवेश करता है।

माँ की हत्या करने वाले भ्रूण के मामले में भी दुख की बात है।

जन्म नहीं होता, और दोनों की मृत्यु एक समान ही होती है। (217)

'अपने बच्चे को जन्म देने के लिए घर लौटना [2]

मैंने जंगल में अपने पति को मरते हुए देखा।

मुसीबतें आने से पहले मैं अपने माता-पिता तक भी नहीं पहुँच सका। (218)

मैंने अपने दोनों बेटों को खो दिया, अपने पति को भी।

और जब मैं विपत्ति में अपने घर पहुँचा,

देखो! जहाँ सब एक छोटी सी चिता पर एक साथ जल रहे थे,

मेरी माँ, मेरे पिता और मेरा भाई जल रहे हैं!' (219)

हे अभागी, बर्बाद स्त्री! यह सारा बोझ!

आपने जिन दुःखों को सहा है, उन्हीं से ये आँसू बहाए हैं।

हजारों जिंदगियों के थका देने वाले चक्र के माध्यम से। (220)

मैंने भी देखा है कि श्मशान भूमि में,

मेरे बेटे का कोमल मांस खा लिया गया [3]

(सफाई करने वाले जानवरों द्वारा)

उसके रिश्तेदार अब मर चुके हैं, वह खुद समाज से बहिष्कृत है।

उसके पति की मृत्यु हो चुकी है।

अब वह अमरत्व को प्राप्त हो चुकी है (221)

अब मुझे समझ आ गया है

आर्यों का मार्ग, अष्टांगिक मार्ग पर

वह अवस्था अमृतमय (शाश्वतता/अमरता) की ओर जाती है।

मैंने निर्वाण का अनुभव किया है और उसे निहार लिया है।

पवित्र धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के दर्पण में। (222)

मैं भी अपने दर्द से उबर चुका हूँ।

मेरा बोझ हल्का हो गया है, मेरा काम पूरा हो गया है।

मेरा मन पूरी तरह से स्वतंत्रता (विमुक्ति/विमुक्ति) के लिए तैयार है।

मैंने, थेरी किसा-गोतामी ने, यह कहा है! (223)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] यहाँ वह अपने भजन में पताचारा (अपने गुरु) की कहानी को शामिल करती है, मानो 'नारी' की दुर्दशा को और अधिक पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए, 'नारी के भाग्य' में निहित दुखद संभावनाओं के तमाशे और त्रासदी को, जिसका उसका अपना मामला मात्र एक चरण था। आलोचना इसे छंदों और टीका के बीच ऐतिहासिक सामंजस्य में एक और 'दोष' के रूप में देख सकती है - भौगोलिक दृष्टि से। फिर भी, यहाँ एक ऐसी विशेषता है जो विशुद्ध रूप से साहित्यिक रचना वाले किसी भी छंद में कभी नहीं हो सकती। और सौंदर्यपरक तीव्रता में ये छंद किसा-गोतमी के अपने दुख के अंतर्निहित गहरे दुख की इस आधारभूत लहर और अंत में मिश्रित विजय के माध्यम से अद्‌भुत रूप से लाभ प्राप्त करते हैं।
[3] कुत्ते, सियार, बाघ, पैंथर, बिल्लियाँ, आदि, खुले शवों के सफाईकर्मी के रूप में।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

गौतमी एक गरीब आदमी की बेटी थी। दुबली-पतली होने के कारण उसे किसा गौतमी या "दुबली-पतली गौतमी" कहा जाता था। सौभाग्य से उसका विवाह एक धनी व्यापारी के पुत्र से हुआ। परन्तु ससुराल वालों का व्यवहार एक कुलीन महिला के लिए उचित नहीं था। उन्होंने उसे कभी भी उसकी साधारण पृष्ठभूमि नहीं भूलने दी।

कुछ ही समय में किसा गौतमी गर्भवती हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। वह अपने बच्चे से बहुत प्यार करती थी और उस पर अपना सारा स्नेह और स्नेह लुटाती थी। बच्चा चलना सीख ही रहा था कि एक जानलेवा बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई। किसा गौतमी, जिसने पहले कभी मृत्यु का अनुभव नहीं किया था, अत्यंत दुखी हुई। जिन ससुराल वालों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था, उन्होंने पुत्र के जन्म के बाद उसे स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार उसने अपना सारा स्नेह अपने पुत्र पर लुटाया और अपना जीवन उस बच्चे के इर्द-गिर्द ही केंद्रित कर लिया, जिसके कारण उसे स्वीकार किया गया था। उसे पुनर्जीवित करने के लिए औषधि खोजने के दृढ़ संकल्प के साथ, उसने अपने मृत बच्चे को अपनी गोद में उठाया और एक कुशल चिकित्सक की तलाश में घर-घर भटकने लगी।

गाँव वाले उस पर हंसने लगे और उसे अपशब्द कहने लगे। क्या वह देख नहीं पा रही थी कि उसका बच्चा मर चुका है? लेकिन दुःख से व्याकुल गौतमी डटी रही। एक ज्ञानी व्यक्ति ने उस दुखी स्त्री पर दया करते हुए उसे बुद्ध के पास भेजा। बुद्ध को प्रणाम करके किसा गौतमी ने उनसे अपने बच्चे को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की।

बुद्ध ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि किसा गौतमी पिछले जन्मों के परिश्रम से आध्यात्मिक रूप से उन्नत थीं। परन्तु असहनीय दुःख के कारण उनका मन धर्म के लिए तैयार नहीं था।

यह देखकर कि किसा गौतमी ने पहले कभी मृत्यु का अनुभव नहीं किया था, बुद्ध ने उनसे कहा कि वे किसी ऐसे घर से कुछ सरसों के बीज लाएँ जहाँ मृत्यु न हुई हो। किसा गौतमी एक ऐसे गाँव में रहती थीं जहाँ संयुक्त परिवार साथ रहते थे। वह अपने मृत बच्चे को लेकर घर-घर गईं, लेकिन उन्हें कोई ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। कुछ ही समय में किसा गौतमी को अहसास हुआ कि मृत्यु सभी प्राणियों के लिए सामान्य है। अपने मृत बच्चे का अंतिम संस्कार करके वह सांत्वना के लिए बुद्ध के पास लौट आईं।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें सरसों के बीज मिल गए हैं। गौतमी ने बुद्ध को बताया कि गाँव के हर परिवार में किसी न किसी की मृत्यु हो गई है। उन्होंने कहा, "मृतकों की संख्या जीवितों से कहीं अधिक प्रतीत होती है।"

यह देखकर कि किसा गौतमी धम्म के लिए तैयार हैं, बुद्ध ने उन्हें समस्त वस्तुओं की अनित्यता का उपदेश दिया। चार पंक्तियों के प्रवचन के अंत में, आध्यात्मिक रूप से परिपक्व किसा गौतमी ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्न प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी।

भिक्षुणी किसा गौतमी बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण आदर करती थीं। एक दिन, जब वे धम्म हॉल में दीपक बुझाने ही वाली थीं, तो उनकी नज़र लौ पर पड़ी। नाचती हुई लौ पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन्होंने मन ही मन सोचा, “जिस प्रकार इस लौ का है, उसी प्रकार प्राणियों का भी है। कुछ प्रज्वलित होते हैं, तो कुछ बुझ जाते हैं। केवल वे ही जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, फिर कभी दिखाई नहीं देते।”

बुद्ध ने यह जानकर कि किसा गौतमी अपने लक्ष्य के निकट हैं, अपना एक प्रकाशमान स्वरूप प्रकट किया और उनके प्रतिबिंबों का उपयोग करते हुए उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया: "जिस प्रकार इस लौ का है, उसी प्रकार प्राणियों का भी है। कुछ प्रज्वलित होते हैं, तो कुछ बुझ जाते हैं। केवल वे ही जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, फिर कभी दिखाई नहीं देते। इसलिए, जो क्षण भर के लिए ही सही, निर्वाण को देख लेता है, उसका जीवन सौ वर्ष तक जीवित रहकर निर्वाण को न देखने से श्रेष्ठ है।" प्रवचन के अंत में किसा गौतमी ने निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त कर लिया।

कृतज्ञता व्यक्त करते हुए किसा गौतमी ने बुद्ध द्वारा दिए गए अपार आनंद का वर्णन किया और दूसरों को भी श्रेष्ठ पुरुषों के साथ संगति करने के लिए प्रोत्साहित किया।

निम्न कुल की एक गरीब महिला होने के कारण अत्यधिक कष्ट सहने वाली किसा गौतमी ने अन्य स्त्रियों के दर्द को समझा। एक स्त्री का जीवन कठिन और पीड़ा से भरा था। स्त्रियों को अक्सर संपत्ति की तरह समझा जाता था और उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। कई पुरुषों की एक से अधिक पत्नियाँ होती थीं। एक स्त्री होने के नाते कष्ट सहने वाली किसा गौतमी स्त्रियों के कष्टों के प्रति सहानुभूति रखती थीं। उन्होंने अपने परिचित स्त्रियों द्वारा झेली गई कुछ कठिनाइयों का वर्णन किया और कष्टों से मुक्ति पाकर अपनी राहत को व्यक्त किया। बुद्ध के समय भारत में स्त्रियों की दुर्दशा को समझने पर ही उनके द्वारा स्थापित आमूलचूल परिवर्तन और किसा गौतमी जैसी स्त्रियों द्वारा उनके प्रति व्यक्त की गई कृतज्ञता को सही मायने में समझा जा सकता है, क्योंकि बुद्ध ने स्त्रियों को पुरुषों के समान आध्यात्मिक रूप से सक्षम माना था।

एक बार दुष्ट मारा ने उन्हें बहकाने का प्रयास किया, लेकिन गौतमी बलवान और अदम्य थीं।

बुद्ध ने धम्म का उपदेश इसलिए दिया क्योंकि सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, और यही अनित्यता दुख का कारण है। बुद्ध अक्सर प्रियजन की मृत्यु से होने वाले दुख का उदाहरण देकर सभी सांसारिक घटनाओं की अनित्यता को समझाते थे। फिर उन्होंने किसा गौतमी जैसी आध्यात्मिक रूप से उन्नत साधिकाओं को निर्वाण की परम आनंद प्राप्ति में सहायता की। किसा गौतमी ने तपस्या का मार्ग अपनाया और श्मशान घाटों से मिले पुराने कपड़ों से बने मोटे वस्त्र धारण किए। बुद्ध ने कहा कि गौतमी मोटे वस्त्र धारण करने वाली भिक्षुणियों में सबसे श्रेष्ठ थीं, जो तेरह तपस्याओं में से एक है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा11.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||63|| ------>>>> अगला

11.1 उपपालवन्ना, श्रावस्ती के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, इद्धि (जादुई शक्ति) प्राप्त थेरियों में अग्रणी, बुद्ध द्वारा खेमा के समान भिक्षुणियों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त।
उनका जन्म भी पद्ममुत्तरा के समय, हंसवती नगर में एक कुलवासी परिवार में हुआ था। जब वे बड़ी हुईं, तो उन्होंने एक विशाल जनसमूह के साथ गुरु (बुद्ध) का उपदेश सुना, जिसमें उन्होंने एक भिक्षुणी को जादुई शक्तियों से युक्त भिक्षुणियों में प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने सात दिनों तक बुद्ध और संघ को महान दान दिए और उसी पद की आकांक्षा की। . . .
[यहां अनुवादक द्वारा बहुत सी सामग्री उपलब्ध नहीं कराई गई है]
इस बुद्ध युग में, उनका श्रावस्ती में करोड़पति (सेठी) की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म हुआ। और क्योंकि उनकी त्वचा नीले कमल के हृदय के रंग की थी, इसलिए उन्हें उपपालवन्ना कहा गया। जब वह वयस्क हुई, तो पूरे भारत से राजाओं और आम लोगों ने उसके पिता के पास दूत भेजे और कहा, 'हमें अपनी पुत्री दे दीजिए।' इस पर करोड़पति (सेठी) ने सोचा, 'मैं सबकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। मुझे कोई योजना बनानी होगी।' और अपनी पुत्री को बुलवाकर उन्होंने कहा, 'प्रिय पुत्री, क्या तुम संसार त्यागकर संन्यासी बनने के लिए तैयार हो?' जीवन के अंतिम पड़ाव पर होने के कारण, उनके शब्द मानो सौ गुना शुद्ध तेल से अभिषेक किए गए हों। इसलिए उन्होंने कहा, 'प्रिय पिता, मैं संसार त्याग दूंगी!' उन्होंने उनका सम्मान करते हुए उन्हें भिक्षुणियों के निवास स्थान पर ले जाकर दीक्षा दी।
कुछ समय बाद उपवास गृह में उनकी बारी आई। उन्होंने दीपक जलाकर कमरे की सफाई की। फिर दीपक की लौ को प्रत्यक्ष प्रतीक मानकर और उस पर निरंतर ध्यान लगाकर, उन्होंने 'दीप्तिमान यंत्र' के माध्यम से ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) प्राप्त की, और उसे अपना आधार बनाकर अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। इसके फलस्वरूप, उन्हें अंतर्ज्ञान और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का ज्ञान प्राप्त हुआ, और वे रूपांतरण की जादुई शक्तियों में विशेष रूप से निपुण हो गईं।

और गुरु (बुद्ध), जेतवन वन (मठ) में एक सभा में विराजमान होकर, उन्हें जादुई शक्तियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। ध्यान (ध्यानमग्न अवस्था) और फलस्वरूप प्राप्त होने के आनंद पर चिंतन करते हुए, उन्होंने एक दिन कुछ श्लोक दोहराए। ये श्लोक एक ऐसी माता द्वारा व्यथा गए थे जो अपनी पुत्री की प्रतिद्वंद्वी के रूप में रह रही थी, जो बाद में भिक्षु बनकर गंगा-तट के वृहद के रूप में प्रसिद्ध हुए, और ये श्लोक कामुक इच्छाओं के नुकसान, नीचता और भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालते थे।
मैं।

'हम एक ही व्यक्ति से बंधे हुए, शत्रुता में जीते रहे,'

मां और बेटी, दोनों प्रतिद्वंद्वी पत्नियों के रूप में!

ओह, हमारी हालत कितनी दयनीय थी!

अस्वाभाविक अपराध! मेरे रोंगटे खड़े हो गए। (224)

मुझ पर भय छा गया। यह जीवन कितना घिनौना है!

कामुक इच्छाओं से भरी, अशुद्ध और घृणित,

कांटों से घना जंगल, जिसमें

हम दोनों, मेरी प्रेमिका और मैं, दुर्भाग्यवश भटक गए थे!' (225)

इंद्रियों के जीवन में मौजूद बुराइयाँ, शक्तिशाली

उसने देखा कि सब कुछ त्यागने में ही निश्चित शरण है।

राजगृह जाकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और दीक्षा ली।

वह घर जहाँ कोई घर नहीं है (तपस्वी जीवन जीने के लिए)। (226)

II.

प्रसन्न और प्रसन्न होकर, वह अपनी प्राप्त उपलब्धि पर चिंतन करती है:

मुझे अपने पिछले जन्मों (पुनर्जन्मों) का ज्ञान है।

दिव्य, पवित्र और दिव्य दृष्टि से स्पष्ट और शुद्ध होकर;

अब मैं दूसरों के मन को समझ सकता हूँ;

मुझे पवित्रता की दिव्य श्रवण शक्ति प्राप्त है; (227)

मैंने अलौकिक शक्तियों (इद्धि) को अपना बना लिया है;

और घातक सांसारिक इच्छाओं को दूर किया।

ये छह उच्च ज्ञान मेरे हैं। [1]

और इस प्रकार बुद्ध का अनुशासन पूर्ण हो जाता है (228)

III.

वह बुद्ध की सहमति से उनके समक्ष एक अद्‌भुत कार्य करती है और उसे दर्ज करती है:

मैं रथ और चार घोड़ों के साथ आया था।

असाधारण शक्ति द्वारा दृश्यमान बनाया गया,

और उनके चरणों में गिरकर पूजा की।

अद्‌भुत बुद्ध, समस्त लोकों के स्वामी। (229)

IV.

वह साल के पेड़ों के झुरमुट में मारा (शैतान) से परेशान है और उसे फटकार लगाती है:

मारा (शैतान)

तुम उस स्थान पर आए हो जहाँ सुगंधित वृक्ष फूलों से लदे खड़े हैं।

साल के पेड़ के नीचे अकेला रहता है

तुम्हारा कोई साथी नहीं है — क्या तुम्हें छेड़छाड़ करने वालों से डर नहीं लगता? (230)

वह

यदि तुम्हारे जैसे एक लाख बहकाने वाले भी होते,

मेरे शरीर का एक बाल भी अकड़ता या कांपता नहीं — मारा, तुम क्या कर सकती हो? (231)

हालांकि मैं यहां खड़ा हूं, मैं गायब हो सकता हूं और तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर सकता हूं।

देखो! मैं तुम्हारी भौहों के बीच खड़ा हो सकता हूँ, ऐसी जगह खड़ा हो सकता हूँ जहाँ तुम मुझे देख न सको। (232)

अब मेरा मन पूरी तरह से आत्मनियंत्रित है।

और जादुई शक्तियों का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लिया गया है।

हाँ, छह उच्च ज्ञान[1] मेरे हैं।

और इस प्रकार बुद्ध का अनुशासन पूर्ण हो जाता है। (233)

भाले और बरछी की तरह ही इंद्रिय सुखों का आनंद भी होता है।

जो हमारे नश्वर शरीरों को भेदकर चीर-फाड़ देते हैं।

जिन सुखों को तुम वासनापूर्ण जीवन के सुख कहते हो—

ये मेरे लिए कोई मायने नहीं रखते, मैं ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता हूँ। (234)

मैंने हर तरह से इंद्रिय सुखों को त्याग दिया है।

और भीतर का अज्ञान का अंधकार छंट जाता है

हे पापी, यह जान लो!

हे विनाशक! यहाँ तुम विजयी नहीं हो पाओगे। (235)

टिप्पणी — इस प्रसिद्ध थेरी से जुड़ी चार गाथाएँ, थेरीगाथा में बिना किसी अंतराल के दर्ज हैं। टीका इन्हें चार प्रसंगों में विभाजित करती है। पहले प्रसंग में, राजगृह में व्यापार के सिलसिले में लंबे समय तक अनुपस्थित रहने के दौरान, सावत्थी में एक व्यापारी की पत्नी अपने पहले बच्चे को जन्म देने वाली होती है, तभी उसकी माँ, जो पत्नी की वफादारी पर विश्वास नहीं करती, उसे घर से निकाल देती है। वह अपने पति की तलाश में निकलती है और रास्ते में एक बंगले में एक बेटे को जन्म देती है। उसकी अनुपस्थिति में एक अन्य व्यापारी बच्चे को ले जाता है और उसे गोद ले लेता है। एक डाकू सरदार उस विचलित माँ को पाता है और वह उसे एक बेटी को जन्म देती है। वह अनजाने में उस बच्ची को घायल कर देती है और सरदार के क्रोध से बचने के लिए भाग जाती है। कई वर्षों बाद, एक युवक, रिश्ते से अनजान, माँ और बेटी दोनों का विवाह कर लेता है। माँ अपनी बेटी के सिर पर निशान देखती है और अपनी प्रतिद्वंद्वी को अपनी ही संतान के रूप में पहचान लेती है।

[1] पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति की छह महाशक्तियाँ: इद्धि (जादुई क्षमता), किसी भी स्थान की शुद्ध श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) की स्मृति, अन्य प्राणियों के पूर्व जन्म, भीतर आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का निरोध, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

उप्पलावन्ना एक धनी व्यापारी की असाधारण रूप से सुंदर पुत्री थी। उसकी त्वचा नीले कमल के फूल की पंखुड़ी के समान नीले-काले रंग की थी। उसकी त्वचा के असाधारण रूप से सुंदर रंग के कारण, उसके माता-पिता ने उसका नाम उप्पलावन्ना रखा, जिसका अर्थ है 'नीले कमल के रंग वाली'। जब वह बालिग हुई, तो उसके माता-पिता ने उसका विवाह एक धनी परिवार के युवा व्यापारी से कर दिया। उस समय की प्रथा के अनुसार, वह अपने पति के घर सावत्थी चली गई।

उप्पलावन्ना अपने ससुराल में खुशी से रहती थी, जब तक कि उसके पति को व्यापार के सिलसिले में राजगृह की यात्रा नहीं करनी पड़ी। जब उसके पति ने प्रस्थान किया, तब न तो उप्पलावन्ना और न ही उसके पति को पता था कि वह गर्भवती है। जब उसकी गर्भावस्था स्पष्ट हुई, तो उसकी सास ने उस पर दुराचार का आरोप लगाया। अपनी निर्दोषता का दावा करने के बावजूद, उप्पलावन्ना को उसकी सास ने घर से निकाल दिया, जो अब उससे घृणा करती थी। उप्पलावन्ना, जिसने कोई गलती नहीं की थी, ने अपने पति की खोज में राजगृह जाने का फैसला किया।

यात्रा लंबी और कठिन थी। गर्भवती सुंदर स्त्री पर दया करने वाले अजनबियों की शरण में रहते हुए, वह धीरे-धीरे एक शहर से दूसरे शहर चलती रही, जब तक कि उसे प्रसव पीड़ा शुरू नहीं हो गई। रास्ते में एक झोपड़ी में विश्राम करते हुए उसने एक पुत्र को जन्म दिया। थकी-हारी और कमजोर उप्पलावन्ना ने नवजात शिशु को अपने वस्त्र में लपेटकर विश्राम किया। फिर, शिशु को झोपड़ी में छोड़कर वह पास की नदी में स्नान करने चली गई।

वहाँ से गुजर रहे एक अजनबी ने उसके शिशु के रोने की हल्की आवाज सुनी। शिशु को बिना माता-पिता के देखकर उसने उसे गोद लेने का फैसला किया। जब उप्पलावन्ना झोपड़ी में लौटी तो वह पूरी तरह टूट चुकी थी। शोक में रोते हुए वह अपने शिशु को ढूंढने के लिए इधर-उधर भागी, लेकिन उसे अपना पुत्र नहीं मिला।

उप्पलावन्ना व्याकुल थी। वह जानती थी कि अब वह अपने पति के पास नहीं जा सकती। अगर उसे पता चला कि उसने अपने पुत्र को खो दिया है, तो वह निश्चित रूप से उसे मार डालेगा। परिवार का मुखिया पहला पुत्र होता है, जो वंश को आगे बढ़ाता है। भारत के पुरुष प्रधान समाज में यह एक अत्यंत अनमोल बच्चा था और उसका जन्म एक उत्सवपूर्ण घटना थी। उप्पलावन्ना जानती थी कि उसकी लापरवाही के लिए उसे कभी क्षमा नहीं मिलेगी। कहीं और जाने की जगह न होने के कारण उसने अपने माता-पिता के घर लौटने का फैसला किया। वह घने जंगल से गुजर रही थी कि जंगल में छिपे एक डाकू की नजर उस पर पड़ी। उसकी असाधारण सुंदरता से मोहित होकर उसने उसे अपनी पत्नी बनाने का फैसला किया। हताश उप्पलावन्ना मान गई।

कुछ ही समय बाद वह फिर से गर्भवती हुई और उसने एक बच्ची को जन्म दिया। हालाँकि, उसका जीवन सुखमय और आरामदायक नहीं था। उसका पति अक्सर उस पर बहुत क्रोधित रहता था। वह लगातार उसे उसके अतीत और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने के अपने उदार आतिथ्य की याद दिलाता रहता था। एक बार ऐसे ही लंबे और भयंकर झगड़े के बाद वह गुस्से में घर छोड़कर चला गया। अपने पति पर क्रोधित उप्पलावन्ना उछल पड़ी और अपनी गोद में सो रही बच्ची को बिस्तर पर पटक दिया। बच्ची बिस्तर से उछलकर ज़मीन पर गिरी और उसके सिर में चोट लग गई। घाव से खून बहने लगा और बच्ची बेहोश पड़ी रही। उप्पलावन्ना को यकीन था कि उसने गलती से अपनी बेटी को मार डाला है। वह जानती थी कि उसका पति कभी उस पर विश्वास नहीं करेगा। उसे अपनी जान का डर था क्योंकि वह अपने लुटेरे पति के क्रोध को जानती थी। उसने फिर से भाग जाने का फैसला किया।

छोटे-मोटे काम करके सुंदर उप्पलावन्ना किसी तरह अपना गुजारा चलाती रही। उसकी पिछली दौलत और खूबसूरती अब उसके किसी काम की नहीं थी। वह एक पतित स्त्री थी, अपने माता-पिता के पास लौटने में शर्म महसूस करती थी और अपने पति के पास लौटने से डरती थी। वह कई वर्षों तक घोर गरीबी में रही। एक दिन जब वह लकड़ियाँ इकट्ठा कर रही थी, तभी एक सुंदर युवक की नज़र उस पर पड़ी। उस वृद्ध महिला की सुंदरता से मोहित होकर उसने उसे अपनी पत्नी बनाने का निश्चय किया। उप्पलावन्ना, जो अपने असुरक्षित जीवन से तंग आ चुकी थी, मान गई।

उप्पलावन्ना और उसके पति कुछ समय तक सौहार्दपूर्वक साथ रहे। फिर एक दिन उसे व्यापार के सिलसिले में जाना पड़ा। जब वह लौटा तो अपने साथ एक दूसरी पत्नी को भी लाया — एक बेहद खूबसूरत युवती जो यौवन के चरम पर थी। उप्पलावन्ना ने अनिच्छा से उस युवती को स्वीकार किया। पुरुष अक्सर महिलाओं पर अपना अधिकार जमा लेते थे और एक से अधिक पत्नियाँ रखना आम बात थी। दोनों महिलाओं के बीच एक अस्थिर मित्रता विकसित हुई। एक दिन उप्पलावन्ना उस युवती के बाल संवार रही थी, तभी उसने उसके सिर पर एक बड़ा, टेढ़ा-मेढ़ा निशान देखा। युवती ने उसे बताया कि वह एक डाकू की बेटी थी और उसके पिता के साथ उसकी माँ की लड़ाई में उसके सिर पर चोट लगी थी। उप्पलावन्ना भयभीत हो गई। यह उसकी अपनी बेटी थी जिसे उसने कई साल पहले मरा हुआ समझकर छोड़ दिया था। यह सोचकर कि उसने और उसकी बेटी ने एक ही पुरुष को साझा किया था, वह अंदर से टूट गई। अपने दयनीय जीवन की शर्म सहन न कर पाने के कारण वह बुद्ध के पास सांत्वना और आराम के लिए गईं। उप्पलावन्ना ने तब भिक्षुणी संघ में शामिल होने का निर्णय लिया।

कुछ समय बाद सभा भवन की सफाई और ताला खोलने की बारी उनकी आई। दीपक जलाने और भवन की सफाई करने के बाद, दीपक की लौ ने उन्हें आकर्षित किया। अग्नि तत्व पर ध्यान केंद्रित करते हुए, वे गहन ध्यान में लीन हो गईं और विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ-साथ अरहंतत्व प्राप्त कर लिया।

अपनी असीम अलौकिक शक्तियों के कारण, बुद्ध ने उप्पलावन्ना को अपनी भिक्षुणियों में सबसे श्रेष्ठ घोषित किया था। वे उनकी दूसरी प्रमुख महिला शिष्या भी थीं। खेमा के साथ मिलकर उन्होंने बुद्ध को भिक्षुणियों के बढ़ते समूह के शिक्षण और प्रशासन में सहायता की। उप्पलावन्ना, जिन्होंने युवावस्था में समाज द्वारा महिलाओं के प्रति किए जाने वाले व्यवहार के कारण बहुत कष्ट सहा था, ने अन्य युवतियों को कष्टों से मुक्ति दिलाने में सहायता की। महिलाओं द्वारा झेले जाने वाले अद्वितीय कष्टों के अपने अनुभव के कारण, वे समान परिस्थितियों में दूसरों के प्रति सहानुभूति रखने में सक्षम थीं।

उप्पलावन्ना की शीघ्र ज्ञान प्राप्ति को समझने के लिए हमें कई युगों पहले बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय में जाना होगा। बुद्ध पद्ममुत्तरा के समय, उप्पलावन्ना का जन्म हंसवती नगर के एक धनी परिवार में हुआ था। उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध को एक अन्य भिक्षुणी को, जो अलौकिक शक्तियों में श्रेष्ठ थीं, अपनी दूसरी महिला शिष्या नियुक्त करते हुए देखा था। उस भिक्षुणी से प्रेरित होकर, उप्पलावन्ना ने बुद्ध और उनके

अनुयायियों को सात दिनों तक भोजन और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की थीं। तब उन्होंने बुद्ध की दूसरी प्रमुख शिष्या बनने की इच्छा रखी। बुद्ध पद्ममुत्तरा ने देखा कि उप्पलावन्ना अपनी इच्छा पूरी करेंगी, इसलिए उन्होंने भविष्यवाणी की कि बुद्ध गौतम के अधीन वह दूसरी प्रमुख महिला शिष्या और अलौकिक शक्तियों में अग्रणी होंगी। तब से उप्पलावन्ना ने लगन से पुण्य कर्म किए और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयासरत रहीं।

ग्रंथ में उप्पलावन्ना के कुछ पिछले जन्मों का वर्णन है। कश्यप बुद्ध के समय, जो हमारे गौतम बुद्ध से पहले थे, उप्पलावन्ना का जन्म बनारस नगर के राजपरिवार में राजा किकी की पुत्री के रूप में हुआ था। वह बुद्ध की समर्पित अनुयायी थीं और उन्होंने कई पुण्य कर्म किए, जिनमें बुद्ध के लिए एक सुंदर मठ का निर्माण भी शामिल था। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म एक दिव्य लोक में हुआ और उन्होंने दीर्घकाल तक स्वर्गिक आनंद का अनुभव किया।

उनका अगला जन्म एक गरीब महिला के रूप में दर्ज है। सर्वोच्च बुद्ध कश्यप और सर्वोच्च बुद्ध गौतम के बीच पृथ्वी पर कई पच्चेक बुद्ध प्रकट हुए थे। गंधमादन पर्वत पर सात दिनों तक गहन ध्यान में लीन रहे पच्चेक बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए पर्वत से नीचे उतरे थे। उस समय उप्पलावन्ना ने नीले कमल के फूल और चावल तोड़े थे, जिन्हें उन्होंने भुने हुए चावलों में बदल दिया था। पच्चेक बुद्ध को देखकर उन्होंने उन्हें भुने हुए चावल और सुंदर नीले कमल के फूल भेंट किए। फिर, आनंद से भरकर, उन्होंने नीले कमल के समान सुंदर होने की इच्छा व्यक्त की। भोजन और फूल स्वीकार करके, पच्चेक बुद्ध सूक्ष्म यात्रा द्वारा पर्वत की चोटी पर लौट गए। मृत्यु के बाद उप्पलावन्ना का पुनर्जन्म स्वर्गलोक में हुआ, जहाँ उन्होंने दीर्घकाल तक दिव्य आनंद का अनुभव किया।

फिर वह स्वर्गलोक से चली गईं और मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लिया। उनके माता-पिता या जन्म का कोई रिकॉर्ड मौजूद नहीं है। ग्रंथों में दर्ज है कि नीले कमल के फूलों से भरी एक झील के पास जंगल में रहने वाले एक ऋषि को झील के किनारे, फूलों के पास एक सुंदर बच्ची मिली। नीले कमल के रंग की त्वचा वाली वह बच्ची बेहद खूबसूरत थी, जिसका नाम ऋषि ने उप्पलावन्ना रखा। उन्होंने उस असहाय शिशु को गोद लेने का फैसला किया। उप्पलावन्ना बड़ी होकर अत्यंत सुंदर हो गईं और किसी अप्सरा जैसी दिखती थीं। वह ऋषि के साथ जंगल में एकांत जीवन व्यतीत करती रहीं।

एक दिन, जंगल से गुजर रहे एक यात्री ने उस असाधारण रूप से सुंदर लड़की को देखा और ऋषि से उसके जन्म के बारे में पूछा। जब ऋषि ने बताया कि वह अनाथ है और उन्होंने उसे अपने बच्चे की तरह पाला है, तो वह वापस गया और जंगल में रहने वाली उस असाधारण सुंदर कन्या के बारे में राजा को सूचित किया। राजा ने उसे अपनी संगिनी बनाने का निर्णय लिया। अपने दरबारियों के साथ, उन्होंने ऋषि के पास जाकर उप्पलावन्ना से अपनी रानी बनने का अनुरोध किया। उप्पलावन्ना मान गईं। वन छोड़कर वे महल में रहने लगीं और जल्द ही उनकी प्रिय रानी बन गईं।

अगला प्रलेखित जन्म तब हुआ जब उप्पलावन्ना का पुनर्जन्म राजगृह में एक किसान की पत्नी के रूप में हुआ। उस समय आठ पच्चेक बुद्ध संसार में प्रकट हुए थे और उप्पलावन्ना को उन्हें भिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सुगंधित चावल का भोजन तैयार किया था और उसे अपने पति के पास ले जा रही थीं जो खेत जोत रहे थे, तभी उन्होंने आठ बुद्धों को भिक्षा मांगते हुए देखा। उन्होंने तुरंत अपने पति के लिए तैयार किया हुआ भोजन बुद्धों को दे दिया और अगले दिन उन्हें अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सुगंधित भोजन तैयार किया और नीले कमल के आठ गुच्छे तोड़े, जिन्हें उन्होंने भोजन के बाद बुद्धों को अर्पित किया। दूसरी बार, उन्होंने नीले कमल के समान सुंदर होने की इच्छा की।

अगला प्रलेखित जन्म हमारे गौतम बुद्ध के समय श्रावस्ती में हुआ। पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में उन्होंने जो आकांक्षा व्यक्त की थी, वह फलदायी होना था। उनका अपमानजनक जीवन असहनीय था। अपने पति को अपनी बेटी के साथ साझा करना उनके मन पर गहरा बोझ था। उन्होंने बुद्ध के मार्गदर्शन में भिक्षुणी बनने का निश्चय किया। यद्यपि ग्रंथ में उप्पलावन्ना की नीले कमल के समान सुंदर होने की आकांक्षा के दो उदाहरण मिलते हैं, यह संभव है कि उन्होंने अलौकिक शक्तियों में अग्रणी बनने और बुद्ध की दूसरी प्रमुख शिष्या बनने की अपनी मूल आकांक्षा को भी नवप्रवर्तित किया हो। ऐसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए महान परिश्रम और अनेक पुण्य कर्मों की आवश्यकता होती है।

संभवतः उनके असामान्य रंग और अनोखी सुंदरता ने अधिक ध्यान आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप पाठ का यह भाग संरक्षित हो सका। यह तथ्य कि उप्पलावन्ना ने तुरंत बुद्ध गौतम के अधीन भिक्षुणी बनने की सहमति दी और उसके कुछ ही समय बाद अरहंत पद प्राप्त किया, यह दर्शाता है कि ऐसे कई अन्य अवसर रहे होंगे जब उन्होंने पुण्य कर्म करने के बाद ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अपनी आकांक्षाओं को पुनर्जीवित किया। हालाँकि, ये मेरे शोध में उपलब्ध नहीं हैं।

उस समय भिक्षुओं की तरह भिक्षुणियों के लिए भी ध्यान करने के लिए वन में जाना आम बात थी। उप्पलावन्ना भिक्षा मांगने के बाद लौटीं और घने वन में स्थित अपनी कुटिया में प्रवेश किया। उन्हें पता नहीं था कि आनंद नामक एक पूर्व प्रेमी, जो उनसे प्रेम करता था, उनकी कुटिया में घुस गया था और उनके पलंग के नीचे छिप गया था। उनके लेटते ही, उन्हें अचानक घेरकर, वह उनके ऊपर चढ़ गया और उन पर हावी हो गया। उनकी विनती और विरोध के बावजूद, उसने उनके साथ दुर्व्यवहार किया और अपनी मनमानी की। फिर वह चुपके से निकल गया, जैसे आया था वैसे ही चुपके से।

लेकिन अरहंत का अपमान करने का पाप बहुत भारी था। अपने इस बुरे कर्म से व्यथित होकर आनंद अपनी इच्छाओं की आग में जलकर मर गया और अविची नरक में पुनर्जन्म लिया।

उप्पलावन्ना ने स्वयं को संभाला और भिक्षुणियों को अपनी आपबीती सुनाई। भिक्षुणियों ने यह सूचना भगवान बुद्ध को दी। भिक्षुणियों के लिए बुद्ध का सबसे बुरा डर सच हो गया था। उनकी प्रमुख शिष्या उप्पलावन्ना पर अत्याचार किया गया, उनका अपमान किया गया और उनके साथ अनादरपूर्ण व्यवहार किया गया। राजा पसेनादि कोसल के पास जाकर बुद्ध ने उनसे नगर परिसर के भीतर भिक्षुणियों के लिए एक निवास स्थान बनाने का अनुरोध किया। फिर उन्होंने यह नियम बना दिया कि भिक्षुणियां जंगल में अकेले ध्यान और निवास नहीं करेंगी। इस समय से भिक्षुणियां केवल नगर में ही निवास करने लगीं।

कुछ समय बाद भिक्षु धम्म हॉल में एकत्रित हुए और इस घटना पर चर्चा करने लगे। अरहंतों की वासनाओं को तृप्त करने की आवश्यकता को लेकर एक बहस छिड़ गई। तब बुद्ध ने उन्हें यह बताकर उनके संदेह दूर किए कि अरहंत पद प्राप्त कर चुके पुरुषों और महिलाओं के बीच की वासना शांत हो जाती है।

उप्पलावन्ना अपनी असाधारण सुंदरता के कारण अनेकों प्रशंसकों की चाहत का पात्र थीं। बुद्ध के पवित्र संघ की सदस्य होने के बावजूद भी वे उनसे विमुख नहीं हुए।

स्त्री-पुरुषों के अनूठे कष्टों को समझने वाली उप्पलावन्ना बुद्ध के लिए एक अमूल्य संपत्ति थीं। अपनी अलौकिक शक्तियों और सौम्य स्वभाव से उन्होंने हजारों स्त्रियों को मुक्ति दिलाने में सहायता की। उनकी सुंदरता, करुणा और सौम्यता से प्रभावित होकर अनेकों ने महान अरहंत का अनुकरण किया और स्वयं ज्ञान प्राप्त किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा12.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||64|| ------>>>> अगला

12.1 पुन्ना या पुन्निका, जो सावत्थी के करोड़पति (सेठी) अनाथपिंडिका के घर में एक दासी की पुत्री थीं और जिन्हें उन्होंने मुक्त किया था , उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे। जब विपस्सी बुद्ध थे, तब उनका एक कुलवासी परिवार में पुनर्जन्म हुआ। विवेक की आयु में आकर, अपने भीतर निहित प्रतिज्ञा के कारण, वे पुनर्जन्म की संभावना को लेकर चिंतित हो गईं और भिक्षुणियों के पास जाकर धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना, उस पर विश्वास किया और भिक्षुणी संघ में प्रवेश किया। सद्गुणों में परिपूर्ण होकर और तीनों पिटकों का अध्ययन करके, वे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में बहुत विद्वान हो गईं और उसकी शिक्षिका भी बनीं। यही नियति उन्हें पांचों बुद्धों - सिख, वेसभु, ककुसंध, कोनागमना और कस्सपा - के अधीन भी प्राप्त हुई। लेकिन अपने अहंकार के कारण वह दोषों को जड़ से उखाड़ने में असमर्थ रही। अतः, उसके अहंकार के कर्मों के फलस्वरूप, इस बुद्ध युग में उसका पुनर्जन्म सावत्थी में अनाथपिंडिका (करोड़पति) के घर में एक घरेलू दासी के रूप में हुआ। बुद्ध के सिंह गर्जना प्रवचन (एमएन 11, 12) को सुनने के बाद वह सोतापना (प्रथम दिव्य ज्ञानोदय) की साध्वी बनी। इसके बाद, जब उसने ब्राह्मण (पुजारी) को बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति अनुकूल बना दिया और इस प्रकार अपने स्वामी का सम्मान प्राप्त कर लिया, जिससे उसने उसे मुक्त कर दिया, तो उसने संघ में प्रवेश करने के लिए उसकी सहमति प्राप्त कर ली। और, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास करते हुए, उसने अल्पकाल में ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया। अपनी इस उपलब्धि को याद करते हुए, उसने परमानंद में ये श्लोक कहे:
पानी का दराज, एक बार मैं नदी के किनारे गया था,

सर्दी के मौसम में भी, सजा के डर से जाते थे।

रखैलियों से निंदा के भय से परेशान। (236)

(वह एक ब्राह्मण/पुजारी को धार्मिक शुद्धि के लिए स्नान करते हुए देखती है)

वह: 'क्या, ब्राह्मण, तुम्हें इस बात का डर है कि हमेशा ऐसा ही रहेगा?'

तुम नदी में उतरोगे? क्यों?

कांपते अंगों के साथ भीषण ठंड सहन करें?' (237)

उन्होंने कहा: 'अच्छा, आप जानती ही हैं, लेडी पुन्निका, पूछने की क्या ज़रूरत है?'

जो व्यक्ति उचित कर्मों द्वारा इस प्रकार दूर करता है

बुरे कर्मों का प्रभाव? जो युवावस्था में, (238)

या बुढ़ापे में बुरे कर्म किए हों।

उस कर्म से मुक्ति मिलती है। (239)

वह: 'नहीं, अब, जो अज्ञानी को अज्ञानी से अवगत कराता है,'

उसने आपको यह बताया है: कि ऐसा करने से (स्नान करने से),

क्या बुरे कर्मों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है? (240)

तो फिर मछलियाँ और कछुए क्यों?

मेंढक, जलीय सांप, मगरमच्छ

और जो भी जल में भटकते हैं वे सीधे स्वर्ग जाएंगे (241)

हाँ, वे सभी जो बुरे कर्मों का फल भोगते हैं।

भेड़ और सूअर काटने वाले, शिकार करने वाले,

चोर, हत्यारे—वे तो बस खुद को ही बदनाम करते हैं।

जल से बुरे कर्मों से मुक्ति मिलती है! (242)

और अगर ये धाराएँ पहले की चीज़ों को बहा ले जा सकतीं

तुम्हारे द्वारा किए गए बुरे कार्यों को वे अपने साथ ले जाना चाहेंगे।

आपकी योग्यता भी, आपको पूरी तरह से नंगा और निर्वस्त्र छोड़ देगी। (243)

हे ब्राह्मण, इसी बात से भयभीत होकर तुम सदा के लिए आते हो।

यहां नहाना और कांपना, वह भी, वह भी

तुम्हें बर्बाद कर देगा, और तुम्हारी त्वचा को ठंड से बचाएगा। (244)

उन्होंने कहा: 'वे लोग जो गलतियों के रास्ते पर भटक गए थे'

अब आप आर्य मार्ग पर अग्रसर हैं।

हे महिला, मैं अपना स्नान वस्त्र आपको दान के रूप में देता हूँ। (245)

वह बोली: 'अपनी पोशाक अपने पास रखो! मुझे पोशाकों की कोई तलाश नहीं है।'

यदि आप कष्ट से डरते हैं, यदि आप इसे पसंद नहीं करते, (246)

तुम न तो खुलेआम कोई गलत काम करते हो और न ही कोई छिपा हुआ गलत काम।

लेकिन यदि तुम बुराई करोगे, या कर चुके हो, (247)

तो फिर तुम्हारे लिए दुख से बचने का कोई रास्ता नहीं है?

भले ही आप उसे आते हुए देखें और भाग जाएं।

यदि तुम कष्ट से डरते हो, यदि कष्ट तुम्हें प्रसन्न नहीं करता, (248)

जाओ और बुद्ध तथा धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की खोज करो।

और अपने आश्रय के लिए आदेश का पालन करें; उनसे सीखें।

नैतिक उपदेशों (शील) का पालन करना। इस प्रकार तुम भलाई पाओगे। (249)

वह बोला: 'देखो! मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ।'

और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और व्यवस्था का मार्ग। मैं सीखूंगा।

उनमें से कुछ को अपने ऊपर लेना और रखना

नैतिक उपदेश (शील); इस प्रकार मैं वास्तव में अच्छा पाऊंगा। (250)

मैं एक समय ब्राह्मण वंश का पुत्र था।

आज मैं एक सच्चे ब्राह्मण (पवित्र पुरुष) के रूप में खड़ा हूँ।

मैंने श्रेष्ठ त्रिविध ज्ञान (त्रे-विद्या)[2] प्राप्त कर लिया है,

सच्चे वेद ज्ञान को प्राप्त किया।

आंतरिक धारा के आध्यात्मिक स्नान द्वारा शुद्ध किया गया।' (251)

ब्राह्मण के लिए, शरण और नैतिक उपदेशों (शील) में स्थापित होने के बाद, जब उन्होंने गुरु (बुद्ध) को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सुना, तो वे अनुयायी बन गए और संघ में प्रवेश कर गए। अथक प्रयास से, वे कुछ ही समय बाद त्रिविध ज्ञान (तीनों ज्ञान)[2] प्राप्त कर चुके थे, और अपनी इस अवस्था को याद करते हुए उन श्लोकों में प्रसन्न हुए। और थेरी ने स्वयं उन श्लोकों को दोहराते हुए, उन्हें अपना भजन बना लिया।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||65|| ------>>>> अगला

13.1 अंबपाली, वैशाली की पूर्व वेश्या:
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और कई जन्मों में युगों तक प्रभावी रहने वाले अच्छे कर्मों का संचय करके सिख बुद्ध (एक पूर्व बुद्ध) के समय में संघ में प्रवेश किया। एक दिन, जब वे अभी नौसिखिया ही थीं, भिक्षुणियों के साथ जुलूस में एक मंदिर में दर्शन कर रही थीं, तभी उनके आगे चल रहे एक अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) थेरी ने मंदिर के प्रांगण में जल्दबाजी में थूक दिया। उनके पीछे आकर, थेरी के इस कृत्य पर ध्यान न देते हुए, उन्होंने फटकार लगाते हुए कहा, 'कौन सी गणिका (वेश्या) यहाँ थूक रही है?'
एक भिक्षुणी होने के नाते, नैतिक उपदेशों (शील) का पालन करते हुए, उन्हें गर्भ से पुनर्जन्म से घृणा थी और उन्होंने स्वतः पुनर्जन्म पर अपना ध्यान केंद्रित किया। अपने पिछले जन्म में वह वैशाली में राजा के उद्यानों में, एक आम के वृक्ष की तलहटी में अनायास ही प्रकट हुईं। माली ने उन्हें पाया और नगर ले आया। वे आम के रक्षक की कन्या के नाम से प्रसिद्ध हुईं। उनकी सुंदरता, आकर्षण और मोहकता ऐसी थी कि अनेक राजकुमार उन्हें पाने के लिए आपस में होड़ करते रहे। अंततः, अपने झगड़े को समाप्त करने के लिए और कर्म के नियम के कारण, उन्होंने "सभी की संपत्ति" होने का वचन दिया और उन्हें गणिका (नृत्य करने वाली और क्रीड़ा करने वाली) नियुक्त किया। बाद में, गुरु (बुद्ध) में आस्था के कारण, उन्होंने अपने ही उद्यानों में एक विहार (मठ) बनवाया और उसे गुरु और संघ को सौंप दिया। (बाद में उनका अपना पुत्र भिक्षु बन गया) और जब उन्होंने अपने पुत्र, वरिष्ठ भिक्षु विमला-कोंडन्ना को धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हुए सुना, तो उन्होंने भी दीक्षा ली और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास किया, और अपने ऊपर वृद्धावस्था के प्रभाव को देखकर, सांसारिक अनित्यता का नियम उनके मन में आया, प्रेरित होकर, उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:
कभी मेरे घुंघराले बाल मधुमक्खी के पंखों की तरह चमकदार और काले रंग के गुच्छों में गुच्छों की तरह हुआ करते थे।

समय के साथ वे बोरी या छाल के कपड़े की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (252)

मेरे बाल इत्र की पेटी की तरह सुगंधित हैं, मीठे फूलों से भरे हुए हैं।

बीते वर्षों की बर्बादी अब खरगोश के फर की गंध के समान लगती है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (253)

घनी झाड़ियों की तरह, अच्छी तरह से लगाए गए पौधों से सुसज्जित, और कंघी, पिन और पार्टिंग से सुंदर।

वर्षों के बीतने से सुंदर चोटियाँ बिखर गईं और सब कुछ टूट गया।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (254)

काले रंग की चोटियाँ रत्नों और सोने से सजे सिर के आभूषणों में जगमगा रही थीं।

वर्षों की बर्बादी के साथ सब कुछ टूट गया है, और बालों की लटें अब पूरी तरह से झड़ गई हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (255)

किसी मूर्तिकार की शिल्पकारी की तरह सजी हुई मेरी भौहें चमक रही थीं, जिन्हें बारीकी से पेंसिल से उकेरा गया था।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे झुर्रियों से भर गए हैं, लटकते हुए से।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (256)

मेरी आंखें रत्नों की तरह चमकीली और दमकती हुई थीं, गहरे नीले रंग की और लंबी पलकों वाली।

वर्षों की बर्बादी से वे पूरी तरह से नष्ट हो गए, अब उनमें कोई चमक नहीं बची।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (257)

बच्चों की तरह ही नाक के नथुनों का घुमाव नाजुक और चिकना होता है।

अब वर्षों की बर्बादी से नाक झुलस गई है और सिकुड़ गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (258)

मेरे कानों की बनावट इतनी सुंदर है मानो किसी सुनार ने इसे नाजुक कारीगरी से बनाया हो।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे झुर्रियों से भर गए हैं और लटके हुए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (259)

मेरी मुस्कान से मेरे दांत ऐसे चमक उठे जैसे केले के पेड़ की कलियाँ खिल रही हों।

वर्षों के बीतने से वे टूट-फूट गए हैं और जौ की तरह पीले पड़ गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (260)

मेरी आवाज इतनी मधुर थी मानो कोयल जंगल में उड़ते हुए घंटी की आवाज हो।

अब वर्षों के बीतने के साथ, आवाज टूट गई है और रुक-रुक कर निकल रही है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (261)

मेरे गले के सामने सीप की तरह कोमल चमक दिखाई दी।

अब वर्षों के बीतने से इसकी सारी सुंदरता मुरझा गई है और विकृत हो गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (262)

कभी मेरी भुजाएँ दो बेलनाकार स्तंभों की तरह चमकती थीं।

वर्षों के बीतने के साथ वे मुरझाई हुई शाखाओं की तरह कमजोर होकर लटक जाते हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (263)

पहले मेरे कोमल हाथ खूबसूरत थे, जिन पर चमकती सोने की अंगूठियां और चूड़ियां थीं।

वर्षों की बर्बादी के साथ वे उलझी हुई जड़ों की तरह हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (264)

मेरे छोटे स्तनों के सामने सुडौल और सुंदर आकृति में एक उभार आया।

वर्षों की बर्बादी के साथ वे ऐसे मुरझाए हुए हैं जैसे पानी के बिना (पानी ढोने वाली) खालें।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (265)

पहले मेरा शरीर अच्छी तरह से पॉलिश किए गए सोने की ढाल की तरह चमकता था।

अब उम्र के साथ-साथ शरीर झुर्रियों के जाल से ढक गया है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (266)

सांप की कुंडली की तरह, मेरी जांघों की पूरी सुंदरता समाई हुई थी।

वर्षों के बीतने के साथ-साथ वे बांस के तनों के समान हो गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (267)

सोने की चूड़ियों से सजी मेरी टखने पहले देखने में बहुत खूबसूरत लगती थीं।

वर्षों की बर्बादी से वे तिल के गट्ठों की तरह सिकुड़ गए हैं।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (268)

मेरे पैर पहले इतने कोमल और प्यारे थे मानो उन पर रुई के गुच्छे लगे हों।

समय के साथ-साथ ये त्वचा फट गई है और अब झुर्रियों से भर गई है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (269)

इस शरीर की यही हालत रही है। अब यह उम्र से थका हुआ, कमजोर और बदसूरत हो गया है।

कई बुराइयों का घर; एक पुराना मकान जहाँ से गारा टपक रहा है।

सत्यवक्ता (बुद्ध) के वचन अन्यथा (असत्य) नहीं हैं। (270)

और यह देखकर कि थेरी ने अपने स्वयं के व्यक्तित्व में अनित्यता के प्रत्यक्ष संकेतों से तीनों लोकों की सभी घटनाओं में अनित्यता को पहचाना, और इसे ध्यान में रखते हुए, दुख और आत्माहीनता के सत्य को जाना, उसने अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में स्पष्टता प्राप्त करते हुए मार्ग पर प्रगति की और अरहंतत्व (बुद्ध के समतुल्य ज्ञान) प्राप्त किया।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.2
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

पिछला <<<<------ ||66|| ------>>>> अगला

13.2 वैशाली के एक ब्राह्मण (पुजारी) की पुत्री रोहिणी:
पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लेकर और अनेक जन्मों में युग-स्थायी फलदायी अच्छे कर्म संचित करके, वह इक्यावन युग पूर्व, विपस्सी बुद्ध के समय में, एक कुलवासी परिवार में जन्मी। एक दिन उसने बंधुमती नगर में भगवान बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा और उनके कटोरे को मीठे पकवानों से भरते हुए देखकर, उसने प्रसन्नता और आनंद से उनके चरणों में नमन किया। उस कर्म के फलस्वरूप स्वर्ग और पृथ्वी पर अनेक जन्मों के बाद, जब उसने ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक सभी गुण (विमुक्ति) संचित कर लिए, तो इस बुद्ध युग में वैशाली में एक अत्यंत समृद्ध ब्राह्मण के घर में उसका पुनर्जन्म हुआ और उसका नाम रोहिणी रखा गया। जब वह समझदार हुई, तो गुरु

(बुद्ध) के वैशाली में रहने के दौरान वह विहार (मठ) गई और प्रवचन सुने। वह 'सोतापना (प्रथम दिव्य जागरण)' की साध्वी बनीं और अपने माता-पिता को सिद्धांत सिखाकर, जब उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया, तो उन्हें संन्यासी संघ में प्रवेश करने की अनुमति मिल गई। अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) का अभ्यास करते हुए, उन्होंने कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझ लिया।
और सोतापना (प्रथम दिव्य जागरण) में प्रवेश करने के दौरान अपने पिता के साथ हुई चर्चा को याद करते हुए, उन्होंने उसका सार उल्लासपूर्ण छंदों के रूप में व्यक्त किया:
रोहिणी के पिता:

"भिक्षुओं को देखो!" क्या तुम कभी ऐसा कहते हो?

"भिक्षुओं को देखो!" कहकर उसने मुझे नींद से जगा दिया।

भिक्षुओं की प्रशंसा सदा तुम्हारी जुबान पर रहे।

वे कहते हैं, क्या वह एकांतवास करना चाहती है? (271)

आप इन भिक्षुओं को उनके आने पर दान देते हैं।

भरपूर भोजन और पेय। आओ, रोहिणी।

मैं पूछता हूँ, भिक्षु आपको इतने प्रिय क्यों हैं? (272)

ये आलसी लोग काम करने से खुश नहीं हैं।

वे दूसरों से मिलने वाले दान से अपना जीवन यापन करते हैं।

वे भिखारी हैं, और टुकड़ों-टुकड़ों के लालची हैं।

मैं पूछता हूँ, भिक्षु आपको इतने प्रिय क्यों हैं?' (273)

रोहिणी:

हे प्रिय पिताजी, आपने कई दिनों तक पूछा है

एकांतवासियों के बारे में। अब क्या मैं इसके बारे में बात करूँ?

उनके सद्‌गुण, उनकी बुद्धिमत्ता और उनका काम। (274)

वे काम करने के लिए उत्सुक रहते हैं, आलसी लोग नहीं हैं।

वे जो सबसे महान कार्य करते हैं, उसमें वे सांसारिक इच्छाओं का त्याग करते हैं।

और घृणा। इसीलिए भिक्षु मुझे प्रिय हैं। (275)

वे बुराई की तीन नीच जड़ों को दूर करते हैं[2]

भीतर से पूर्णतः शुद्ध करना, सभी पापों को दूर करना,

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (276)

उनके कर्मों में पवित्रता है, उनके वचनों में पवित्रता है।

और उनके विचार (मन) में उनका कार्य शुद्ध है।

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (277)

सीप के समान निर्मल,

भीतर और बाहर से शुद्धता के साथ

पवित्र तेजस्वी पात्रों के साथ

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (278)

धम्म (शाश्वत सत्य की शिक्षा) के विद्वान और अनुयायी;

धर्म के मार्ग पर चलने वाला और नेक व्यक्ति।

वे धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश देते हैं।

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (279)

धम्म (शाश्वत सत्य की शिक्षा) के विद्वान और अनुयायी;

धर्म के मार्ग पर चलने वाला और नेक व्यक्ति।

पूरी एकाग्रता के साथ ध्यान करते हुए

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (280)

वे दूर-दूर तक, आत्म-नियंत्रित और एकाग्र होकर विचरण करते हैं;

अपने शब्दों में बुद्धिमान और विनम्र,

वे वास्तव में पीड़ा के अंत को जानते हैं

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (281)

और जब वे गांव की गली से गुजरते हैं,

वे बिना किसी कारण के मुड़कर देखते हैं; वे बिना किसी अपेक्षा के चलते रहते हैं।

इसलिए मुझे संन्यासी प्रिय हैं। (282)

वे भंडारगृह बनाने के लिए इसका उपयोग नहीं करते।

न जार, न डिब्बा। उन्होंने इसे परिपूर्ण बनाया।

उनकी खोज। इसीलिए भिक्षु मुझे प्रिय हैं। (283)

वे न तो कोई सिक्का पकड़ते हैं, न ही उनके हाथ में सोना आता है।

न ही चांदी। वे अपनी जरूरतों के लिए पर्याप्त मात्रा में ही सामान ले लेते हैं।

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (284)

अनेक कुलों से और अनेक ग्रामीण क्षेत्रों से

वे संघ में शामिल हो गए। वे सद्भावना से हैं।

इसलिए मुझे भिक्षु प्रिय हैं। (285)

रोहिणी के पिता:

'अब सचमुच हमारे कल्याण के लिए, हे रोहिणी,

तुम इसी घर में जन्मी बेटी हो!

आपका विश्वास बुद्ध और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) में है।

और संघ में; अपनी धर्मपरायणता को तीव्र करो। (286)

आप अच्छी तरह जानते हैं कि यह सर्वोच्च क्षेत्र है

जहां योग्यता का सृजन हो सकता है। हम भी अब से ऐसा ही करेंगे।

हम स्वयं को पवित्र पुरुषों (तपस्वियों/भिक्षुओं) की सेवा में समर्पित करेंगे।

इससे हमारे खाते में पुण्य जमा होगा।

उन्हें प्रचुर मात्रा में दान देकर। (287)

रोहिणी:

'यदि यह पीड़ा है जिससे आप डरते हैं, यदि आप इसे पसंद नहीं करते हैं,

जाओ और बुद्ध तथा धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की खोज करो।

और अपने आश्रय के लिए आदेश दें; उनसे सीखें

और नैतिक उपदेशों (शील) का पालन करो। ऐसा करने से तुम्हें सुख मिलेगा। (289)

रोहिणी के पिता:

देखो! मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ।

और धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) और व्यवस्था का मार्ग। मैं सीखूंगा।

उनमें से कुछ को अपने ऊपर लेने के लिए और

नैतिक उपदेशों (शील) का पालन करो। तभी मुझे सुख मिलेगा। (290)

मैं भी एक समय ब्राह्मण वंश का पुत्र था।

आज मैं अपने कर्मों में ब्राह्मण के रूप में खड़ा हूँ।

मैंने श्रेष्ठ त्रिविध ज्ञान (त्रे-विद्या)[3] प्राप्त कर लिया है,

सच्चे वेद ज्ञान को प्राप्त किया।

और आंतरिक आध्यात्मिक स्नान द्वारा शुद्ध हो चुके हैं।' (291)

ब्राह्मण शरण (बुद्ध, धम्म और संघ) और नैतिक उपदेशों (शील) में स्थापित था, बाद में जब वह प्रसन्न हुआ, तो उसने संसार का त्याग कर दिया और अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में विकसित होकर अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। अपनी उपलब्धि को याद करते हुए, प्रसन्न होकर उसने अंतिम श्लोक कहा।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] (i) राग - संसार की पसंद/लालसा, (ii) द्वेष - संसार की नापसंद, (iii) मोह - भीतर की सच्ची घटना का अज्ञान।
[3] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

रोहिणी बुद्ध की चचेरी बहन और अनुराधा की बहन थीं। जब दरबार की महिलाओं ने प्रजापति गौतमी का अनुसरण करते हुए भिक्षुणी बनने का निर्णय लिया, तो रोहिणी ने मना कर दिया।

जब अनुराधा भिक्षुओं के एक बड़े दल के साथ कपिलवस्तु गए, तो उनके सभी रिश्तेदार मठ में उन्हें श्रद्धांजलि देने आए। लेकिन रोहिणी नहीं आईं। जब अनुराधा ने अपनी बहन के न आने का कारण पूछा, तो उन्हें बताया गया कि त्वचा पर भयंकर दाने होने के कारण उन्हें लोगों का सामना करने में शर्म आती है। अनुराधा ने उन्हें अपने समक्ष लाने का अनुरोध किया। रोहिणी घूंघट ओढ़े चेहरे के साथ आईं।

अनुराधा ने रोहिणी से भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए एक सभा भवन बनाने का अनुरोध किया, क्योंकि उनकी यह समस्या कर्मिक कर्मों के कारण थी। सभा भवन बनाने के लिए उनके पास पर्याप्त धन नहीं था, इसलिए उन्होंने आवश्यक धन जुटाने के लिए अपने गहने बेचने का निर्णय लिया। अपने शाक्य चचेरे भाइयों की सहायता से और पूज्य गुरु के मार्गदर्शन में... अनुराधा नामक एक सभा भवन बुद्ध और उनके अनुयायियों के लिए बनवाया गया था। भवन के निर्माण के पूरा होते ही रोहिणी के चेहरे पर मौजूद भयंकर दाने गायब हो गए। तब रोहिणी ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को भोजन के लिए आमंत्रित किया।

बुद्ध ने पूछा कि यह सभा भवन किसके लिए बनवाया गया है और भोजन किसने परोसा है, तब उन्हें रोहिणी की आश्चर्यजनक कहानी सुनाई गई। फिर उन्होंने रोहिणी को उनके चेहरे पर मौजूद भयंकर दानों का कारण बताया। कई जन्म पहले वह बनारस के राजा की मुख्य संगिनी थीं। राजा की एक प्रिय नर्तकी से उनका झगड़ा हो गया था। नर्तकी से ईर्ष्या करने वाली रोहिणी ने एक संक्रमित व्यक्ति से पपड़ी लेकर उसे पीसकर चूरा बना लिया और नर्तकी के बिस्तर और चेहरे पर लगा दिया। इससे नर्तकी को संक्रमण हो गया और उसकी त्वचा पर भयंकर दाने निकल आए। इस अशुभ कर्म का फल ही रोहिणी के चेहरे पर ये भयंकर दाने थे। सभा भवन के निर्माण के शुभ प्रभावों ने इस बुरे कर्म के प्रभाव को निष्फल कर दिया।

धम्म का अध्ययन करने के बाद, रोहिणी ने संतत्व की पहली अवस्था, सोतापन्ना प्राप्त की। वे बुद्ध और उनके भिक्षुओं की समर्थक बन गईं और अनेक पुण्य कर्म करती रहीं। मृत्यु के समय वे तावतिंसा स्वर्ग में गईं, जहाँ उनका जन्म तावतिंसा स्वर्ग के राजा सक्का की अत्यंत सुंदर संगिनी के रूप में हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.3
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||67|| ------>>>> अगला

13.3 चपा, वंकाहारा के एक प्रमुख शिकारी (जेत्तकमिगलुद्दक) की पुत्री, उपक की पत्नी, जो पूर्व-अजीवक (तपस्वी)
थे। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे, जिससे उन्हें लाभकारी मूल प्राप्त हुए और ज्ञान प्राप्ति की परिस्थितियाँ परिपक्व हुईं। इस बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म वंकाहारा देश के एक शिकारी गाँव में हुआ, जहाँ वे प्रमुख शिकारी की पुत्री थीं और उनका नाम चपा रखा गया।
एक बार उपक नामक एक तपस्वी, गुरु (बुद्ध) से मिले जब वे बनारस जा रहे थे (अपने ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद), जहाँ वे अपने बोधि वृक्ष सिंहासन से धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का चक्र शुरू करने वाले थे, और उन्होंने उनसे पूछा: 'हे मेरे मित्र, आप पूर्ण रूप से स्वस्थ प्रतीत होते हैं! आपका रंग निर्मल और शुद्ध है। 'हे मित्र, तुमने संसार का त्याग क्यों किया? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किस सिद्धांत में विश्वास करते हो?' बुद्ध ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:
मैंने सभी बाधाओं को पार कर लिया है। मैं समस्त धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को जानता हूँ।

सभी लालसाओं (तन्हा/तृष्णा) से मुक्त (विमुत्तो/विमुक्ति)।

अब मुझे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त है। मैं आपके सामने किसका नाम लूं?

मेरे लिए कोई शिक्षक जीवित नहीं है। मैं अकेला खड़ा हूँ।

पृथ्वी पर और स्वर्ग में, मेरा कोई प्रतिद्वंदी नहीं है।

अब मैं बनारस नगर की खोज में चलता हूँ।

चक्र की शुरुआत करने के लिए, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की शिक्षा देना।

अंधे और भटके हुए राष्ट्रों को जगाने और उनका मार्गदर्शन करने के लिए,

शाश्वत जीवनदायी अमृत (अमता/अमृत) के ढोल को बजाना।

तपस्वी (उपक), गुरु (बुद्ध) के सर्वज्ञता और महान उद्देश्य को समझकर, मन को शांति मिली और उन्होंने उत्तर दिया, 'मित्र, ऐसा ही हो! तुम शाश्वत विजय के योग्य हो!' फिर, एक छोटे रास्ते से वे वंकाहारा देश में आए और शिकारी गाँव के पास रहने लगे, जहाँ मुख्य शिकारी उनकी ज़रूरतें पूरी करता था। एक दिन, मुख्य शिकारी अपने पुत्रों और भाइयों के साथ एक लंबी शिकार यात्रा पर निकला और अपनी पुत्री से निवेदन किया कि उसकी अनुपस्थिति में वह 'अरहंत' [1] की उपेक्षा न करे। वह अत्यंत सुंदर थी; उपक उसके घर भिक्षा माँगते हुए, उसकी सुंदरता पर मोहित हो गए और भोजन नहीं कर सके, बल्कि अपना भोजन घर ले गए और उपवास कर बैठे, यह प्रतिज्ञा करते हुए कि यदि वे चापा को नहीं जीत पाए तो मर जाएँगे। सात दिन बाद पिता वापस लौटे और अपने 'अरहंत' के बारे में पूछने पर उन्हें पता चला कि वे पहले दिन के बाद वापस नहीं आए हैं। शिकारी ने उसकी तलाश की, और उपका कराहते हुए और करवटें बदलते हुए अपनी दुर्दशा बताई। शिकारी ने पूछा कि क्या उसे कोई हुनर आता है, तो उसने कहा, 'नहीं'; लेकिन उसने उनके लिए शिकार लाने और उसे बेचने की पेशकश की। शिकारी मान गया, और उसे एक कोट देकर अपने घर ले आया और अपनी बेटी उसे दे दी।
कुछ समय बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम उन्होंने सुभद्दा रखा। जब बच्चा रोया, तो चापा ने उसे लोरी गाकर सुनाया: 'उपका का बेटा, तपस्वी का बेटा, शिकारी का बेटा, रो मत, रो मत!' अपने पति का मज़ाक उड़ाते हुए।
अंत में उसने कहा: 'क्या तुम्हें लगता है, चापा, मेरा कोई रक्षक नहीं है? मेरा एक मित्र है, जो अनन्तता का विजेता है, और मैं उसी के पास जाऊंगा।'
उसने देखा कि वह परेशान है, और बार-बार उसी तरह उसे चिढ़ाती रही, जब तक कि एक दिन गुस्से में आकर वह जाने के लिए तैयार नहीं हो गया। उसने उसे रोकने के लिए बहुत कुछ कहा, लेकिन व्यर्थ, और वह पश्चिम की ओर चल पड़ा।
उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन वन में विराजमान थे और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "जो आज यह पूछने आए कि 'शाश्वत विजयकर्ता कहाँ है?' उसे मेरे पास भेज दो।"
तब उपक वहाँ पहुँचा और विहार के बीच में खड़ा होकर पूछा, "शाश्वत विजयकर्ता कहाँ है?"
तो वे उसे ले आए और जब उसने भगवान बुद्ध को देखा, तो उसने कहा, "क्या आप मुझे जानते हैं, भगवान बुद्ध?"
बुद्ध ने कहा, "जी हाँ, मैं जानता हूँ। लेकिन तुम, तुमने अब तक अपना समय कहाँ बिताया है?"
उपक ने कहा, "वान्काहारा देश में, भगवान।"
बुद्ध ने कहा, "उपक, तुम अब बूढ़े हो गए हो; क्या तुम दीक्षा का जीवन जी सकते हो?"
उपक ने कहा, "मैं दीक्षा लूँगा, भगवान।"
गुरु (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, इसे दीक्षा दो।" और उस समय से अभ्यास और प्रशिक्षण करते हुए, वह शीघ्र ही अनागामी (वापसी न होने की अवस्था) की सिद्धि में स्थापित हो गया। [2] और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गई, और उसका पुनर्जन्म अविहा स्वर्ग में हुआ। [3] और वहाँ उस पुनर्जन्म के क्षण में, उसने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया।
लेकिन चापा, अपने पति के जाने से दुखी होकर, अपने बेटे को उसके दादा के पास छोड़कर, उपक के मार्ग का अनुसरण करते हुए, श्रावस्ती में संसार का त्याग कर (बुद्ध के संप्रदाय में भिक्षुणी बनने के लिए), अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[4]) का अभ्यास किया और शीघ्र ही अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। और प्रसन्न होकर, उपक के श्लोकों को अपने श्लोकों के साथ मिलाकर, उसने (अपने पति के जाने के बारे में) इस प्रकार कहा:
उनके पति उपाका बोलते हैं:

'एक समय था जब मैं लाठी लेकर बेघर तपस्वी की तरह स्वतंत्र रूप से घूमता था।'

अब मैं तो एक शिकारी हूँ, लेकिन जल्दी ही डूब गया।

सांसारिक वासनाओं के हानिकारक दलदल में भी, प्रसन्न

दूसरी तरफ से बाहर निकलना। (292)

मेरी पत्नी अपने बच्चे के साथ खेलती है और मेरी पिछली हालत का मजाक उड़ाती है।

मुझे विश्वास है कि उसका आकर्षण अब भी मुझे अपने बंधन में बांधे रखता है।

लेकिन मैं चापा से बंधन तोड़कर फिर से दीक्षा लूंगा।' (293)

चापा:

'हे मेरे वीर, मुझसे क्रोधित मत हो!'

हे महान मुनि (संत), मुझ पर क्रोधित न हों!

जो क्रोध को स्थान देता है, वह भला कैसे भला हो सकता है?

पवित्र जीवन और ध्यान की प्राप्ति?' (294)

उपका:

नहीं, मैं नाला जाऊंगा। अब नाला में ही रहूंगा।

और पवित्र तपस्वियों के धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) का जीवन व्यतीत करें।

यहां तो मैं सिर्फ (नारीत्व की) सुंदरता में ही जकड़ा जा रहा हूँ!' (295)

चापा:

'ओह, मेरे काली आँखों वाले प्रेमी, फिर से मुड़ो, आओ'

और इस घर में हमेशा मेरे साथ काम (सेक्स) का आनंद लो।

और मैं तुम्हारा दास बनूंगा।

और मेरे सभी रिश्तेदार आपके सेवक होंगे। (296)

उपका:

'अब तुम मुझे सिर्फ एक चौथाई (आकर्षक) ही लगती हो।'

यदि कोई पुरुष आपके प्रेम का इच्छुक हो,

आप उसे किस महिमा का वादा करेंगे? (297)

चापा:

'ओ काली आंखों वाली प्रेमिका, क्या मैं देखने में उचित नहीं हूँ?'

जैसे जंगल में लता लहराती है,

जैसे अनार का पेड़ पूरी तरह से खिल गया हो

पहाड़ी की चोटी पर उगने वाला, या तुरही के आकार का फूल

द्वीप की गुफा के मुहाने पर झुका हुआ? देखें, (298)

मैं लाल चंदन की खुशबू वाला परफ्यूम पहनूंगा।

आपके लिए बेहतरीन बनारस का रेशमी वस्त्र – ओह, क्यों?

ओह, तुम मुझसे इतनी दूर कैसे जाओगे?' (299)

उपका:

इसलिए शिकारी (शिकारी) (स्वतंत्र पक्षी को) फंसाने की कोशिश करता है।

आप अपनी खूबसूरती का प्रदर्शन जैसे चाहें वैसे कर सकते हैं।

तुम मुझे पहले की तरह कभी अपने से नहीं बांध पाओगे। (300)

चापा:

और हे मेरे पति, इस नन्हे फूल को देखो

आपने मुझे जो उपहार दिया था—अब निश्चित रूप से आप ऐसा नहीं करेंगे।

क्या तुम उसे त्याग दोगे जिसने तुम्हें संतान दी है? (301)

उपका:

'बुद्धिमान लोग अपने बच्चों, धन और रिश्तेदारों का त्याग कर देते हैं।'

महान नायक हमेशा संसार से विमुख होकर (त्याग की ओर) प्रस्थान करते हैं।

जैसे हाथी अपने बंधन को दो भागों में तोड़ देते हैं।' (302)

चापा:

फिर अपने बच्चे को तुरंत छड़ी या चाकू से मारो।

मैं ज़मीन पर पीटूँगा—खुद को बचाने के लिए

तुम अपने बेटे के शोक से नहीं हटोगे!' (303)

उपका:

और यदि तुम बच्चे को सियार, भेड़ियों या कुत्तों के सामने फेंक दोगे,

हे बच्चे की माँ, फिर भी इससे कोई लाभ नहीं होगा।

मुझे वापस मोड़ने के लिए!' (304)

चापा:

'तो फिर, अगर आपको जाना ही है तो जाइए, और आपकी यात्रा मंगलमय हो।'

लेकिन मुझे बताओ तुम किस गांव में जाओगे?

आपका लक्ष्य कौन सा कस्बा, शहर या राजधानी है?' (305)

उपका:

'पिछले कुछ दिनों में हम अपनी तपस्या में लीन थे।'

अपनी सतही प्रथाओं को वास्तविक मानना।

हम तीर्थयात्रियों की तरह भटकते रहे—गांव, शहर, कस्बा,

और पूंजी—हम बारी-बारी से प्रत्येक पर चले गए।' (306)

लेकिन परम पूज्य बुद्ध अब उपदेश देते हैं।

नेरंजारा नदी के किनारे-किनारे,

वह धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) जिसके द्वारा

सभी को कष्टों से मुक्ति मिल सकती है।

मैं उसी के पास जाता हूँ; अब वही मेरा मार्गदर्शक होगा। (307)

चापा:

'हाँ, जाओ और मेरी ओर से उन्हें प्रणाम करो।'

कौन है संसार का सर्वोच्च स्वामी?

और दाहिनी ओर से अभिवादन करते हुए, [5]

क्या तुम हमारी ओर से उसे भेंट चढ़ाओगे? (308)

उपका:

'अब यह उचित और सही है, जैसा कि आप कहते हैं,'

मैं श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आपकी ओर से बोल रहा हूँ।

उन्हें, जो संसार के सर्वोच्च स्वामी हैं।

और दाहिनी ओर से अभिवादन करते हुए,

मैं तुम्हारे और अपने लिए भेंट चढ़ाऊंगा। (309)

इसलिए वह नेरंजारा के पास गया।

और उन्होंने नदी के किनारे बुद्ध की प्रतिमा देखी।

अमृत का मार्ग सिखाना (अनंत काल/अमरता की ओर) (310)

पीड़ा और पीड़ा कैसे उत्पन्न होती है, और पीड़ा कैसे कम हो सकती है

इस पर काबू पाओ, और उस तक पहुँचने का मार्ग अपनाओ,

आर्यों का (महान) अष्टांगिक मार्ग भी। (311)

पति ने उनके चरणों में झुककर उन्हें प्रणाम किया।

दाहिनी ओर से सलाम और चापा की प्रतिज्ञाएँ

प्रस्तुत किया गया; फिर संसार का त्याग कर दिया गया

बेघर तपस्वी जीवन के लिए; त्रिविध ज्ञान[6] ने विजय प्राप्त की,

और उन्होंने भगवान बुद्ध के अनुशासन का पालन किया। (312)

[1] हमारी परंपरा के अनुसार, वे 'पवित्र पुरुष' थे। बौद्ध अर्थ में वे अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) नहीं थे।
[2] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: पुनर्जन्म न लेने वाला, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।
[3] यह 'रूप जगत' या ब्रह्मलोक के पाँच 'सर्वोच्च' स्वर्गों में से एक था।

[4] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोत्कृष्ट अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञान प्राप्त होता है।
[5] श्रद्धा के पात्र की ओर दाहिनी ओर रखते हुए उसके चारों ओर घूमना (या दक्षिणावर्त वृत्त में घूमना)।
[6] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ (i) पिछले पुनर्जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि (या दिव्य दृष्टि) जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर सभी आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का विनाश, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.4
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||68|| ------>>>> अगला

13.4 सुंदरी, धनी ब्राह्मण सुजाता की पुत्री, श्रावस्ती की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युगों-युगों तक प्रभावी अच्छे कर्म संचित किए थे। इकत्तीस युग पूर्व, जब वेसभु बुद्ध थे, एक कुलवासी परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। एक दिन उन्होंने गुरु को भिक्षा दी और उनकी आराधना की। गुरु ने उनके आस्तिक हृदय को देखकर उनका धन्यवाद किया। स्वर्ग और अन्य सुखमय जन्मों के बाद, जब उनकी समझ परिपक्व हो गई, तो इस बुद्ध युग में उनका बनारस में ब्राह्मण सुजाता की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म हुआ। उनके उत्तम रूप के कारण उन्हें सुंदरी कहा जाता था। जब वह बड़ी हुईं, तो उनके छोटे भाई का निधन हो गया। उनके पिता व्यथित होकर इधर-उधर भटकते हुए थेरी वसित्ती से मिले। जब उन्होंने उनसे पूछा कि उन्हें क्या कष्ट है, तो उन्होंने पहले दो श्लोकों में वर्णित उत्तर दिया। उनके दुःख को कम करने की इच्छा से, उन्होंने अगले दो श्लोक कहे और उन्हें अपने दुःख रहित होने की बात बताई। ब्राह्मण ने उनसे पूछा, 'हे देवी, आप दुःख से कैसे मुक्त हुईं?' थेरी ने उन्हें त्रिरत्न (तीन रत्नों) के बारे में बताया, जो शरणस्थल हैं। उन्होंने पूछा, 'गुरु (बुद्ध) कहाँ हैं?' 'वे इस समय मिथिला में हैं।' अतः ब्राह्मण अपने रथ से मिथिला गए और गुरु से मिलने का प्रयास किया। गुरु (बुद्ध) ने उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया; और उन्होंने विश्वास किया और विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान) का गहन अभ्यास करने के बाद संघ में प्रवेश किया और तीसरे दिन अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। लेकिन सारथी अपना रथ वापस बनारस ले गया और ब्राह्मणी (पत्नी) को सारी घटना बताई। जब सुंदरी (पुत्री) ने यह सुना, तो उसने अपनी माता से कहा, “माँ, मैं भी संसार त्यागकर संघ में शामिल होना चाहती हूँ।” माता ने कहा, “इस घर की सारी संपत्ति तुम्हारी है। तुम इस परिवार की वारिस हो। अपनी विरासत को स्वीकार करो और उसका आनंद लो। त्याग की ओर मत जाओ।” लेकिन सुंदरी ने कहा, “धन मेरे किसी काम का नहीं। माँ, मैं संसार त्याग दूँगी।” और माता को राजी करके उसने अपनी सारी संपत्ति थूक की तरह त्याग दी और बनारस में संघ में प्रवेश कर लिया। अपनी योग्यता और ज्ञान की परिपक्वता के कारण, वह विद्यार्थी बनकर और विपश्यना (ध्यान) में लगन से परिश्रम करते हुए, अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, और उसने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ में पूर्णतः समझ लिया।
उस समय से सिद्धि की सहजता और निर्वाण के आनंद में लीन होकर, उन्होंने सोचा: 'मैं गुरु (बुद्ध) के समक्ष सिंह गर्जना (उपलब्धि का कथन) करूंगी।' और अपने गुरु से अनुमति लेकर, वे भिक्षुणियों के एक बड़े समूह के साथ बनारस से प्रस्थान करके, उचित समय पर सावत्थी पहुंचीं, गुरु को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं। गुरु द्वारा स्वागत किए जाने पर, उन्होंने अपने अन्न (प्रबुद्ध अवस्था) की घोषणा करते हुए बताया कि वे 'उनके मुख की पुत्री' हैं, इत्यादि। इसके बाद, उनकी माता सहित उनके सभी रिश्तेदारों और उनके परिचारकों ने संसार का त्याग कर दिया। अपनी उपलब्धि को याद करते हुए, और अपने पिता के वचनों को अपने भजन में प्रयुक्त करते हुए, वे प्रसन्न हुईं और इस प्रकार बोलीं:
ब्राह्मण (पुजारी) सुजाता:

ब्राह्मणों की देवी, आप भी अतीत में—

आप जानते हैं कि मौत ने आपके नन्हे-मुन्ने को छीन लिया।

और शिकार किया गया; और तुम पूरी रात, पूरे दिन

तुमने अपना तीखा विलाप किया। वसित्थी, कहो! (313)

ऐसा कैसे हो सकता है कि आज तुम, जिसने खो दिया है

इतने सारे—क्या सात थे?—आपके सभी बेटे,

अब और इतना शोक और विलाप नहीं? (314)

थेरी वासित्थी:

नहीं, ब्राह्मण, हमारे सैकड़ों बच्चे,

और हमारे सैकड़ों रिश्तेदार और भी हैं,

क्या हम बीते युगों में ऐसा करते आए हैं?

मृत्यु के शिकार के रूप में, तुम और मैं दोनों को देखा गया। (315)

लेकिन मैंने जन्म और मृत्यु दोनों से यह सीखा है।

वहाँ से निकलने का एक रास्ता है। इसीलिए अब और नहीं।

मैं शोक मनाता हूँ, न रोता हूँ, न ही तीखा विलाप करता हूँ। (316)

ब्राह्मण (पुजारी) सुजाता:

हे वासित्थी, ये शब्द वास्तव में अद्भुत हैं।

आप बोलिए! आपने यह सिद्धांत किसका सीखा है?

इस प्रकार के भाषण के लिए आपको अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ? (317)

थेरी वासित्थी:

वह वही है, प्रबुद्ध व्यक्ति, बुद्ध, वह।

जो कुछ समय बाद, मिथिला शहर के पास,

क्या उन्होंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया, ब्राह्मण, जिसके द्वारा

जो भी जीवित है, वह हर दुख को दूर कर सकता है। (318)

हे ब्राह्मण, जब मैंने अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) को सुना...

निरुपाधि (गैर-सब्सट्रेट) के सिद्धांत को प्रकट करो[2],

मुझे वह शिक्षा तुरंत समझ में आ गई।

और मेरे सारे मातृ-शोक मुझसे दूर हो गए। (319)

ब्राह्मण (पुजारी) सुजाता:

फिर मैं भी सीधे मिथिला चला जाऊंगा।

यदि सौभाग्यवश परम पूज्य बुद्ध

मैं, यहाँ तक कि मैं भी, हर दुख से मुक्त हो जाऊँ। (320)

ब्राह्मण गया; उसने प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा।

यद्यपि मुक्त, फिर भी उसमें

पुनर्जन्म का कोई आधार कारक नहीं पाया जाता, और उनसे,

द्रष्टा, वह जो सभी कष्टों से परे हो चुका है, (321)

उन्होंने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सुना: दुख का सत्य, और कैसे

दुख आते हैं, और दुखों पर कैसे काबू पाया जा सकता है?

आर्यों (कुलीनों) द्वारा भी, अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया जाता है।

इससे समस्त दुखों का निवारण हो जाता है। (322)

उन्हें तुरंत ही धम्म के धर्म मार्ग का ज्ञान हो गया।

उन्होंने संसार का त्याग कर दिया, उन्होंने बेघर तपस्वी जीवन को चुना।

तीसरी रात जब मैं एकाग्रचित्त होकर ध्यान में था,

सुजाता ने सत्य की तीनों प्रकार की समझ को स्पर्श किया और प्राप्त किया। (323)

ब्राह्मण (पुजारी) सुजाता:

'आओ, सारथी, अब इस रथ को घर ले चलो!'

आपकी प्रिय प्रेमिका, ब्राह्मणी, के अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती हूँ।

और कहो: "ब्राह्मण ने संसार का त्याग कर दिया है।"

तीसरी रात को पूर्ण एकाग्रता से ध्यान करते हुए

सुजाता ने सत्य की तीनों प्रकार की समझ को स्पर्श किया और प्राप्त किया। (324)

और इसलिए ड्राइवर ने कार और पर्स ले लिया।

उसने घर पर पैसे भेजे और अपनी प्रेमिका के अच्छे स्वास्थ्य की कामना की।

और कहा: 'ब्राह्मण ने संसार का त्याग कर दिया है।'

तीसरी रात को पूर्ण एकाग्रता से ध्यान करते हुए

सुजाता ने सत्य की तीनों प्रकार की समझ को स्पर्श किया और प्राप्त किया। (325)

सुंदरी की माँ:

हे सारथी, तुमने जो सुना है, उसी के लिए

और बताता है कि ब्राह्मण ने प्राप्त कर लिया है

त्रिविध ज्ञान (त्रे-विद्या[3]), मैं तुम्हें आधा उपहार नहीं देता (अर्थात पूर्ण)।

रथ ले लो, दोनों घोड़े ले लो।

और अपने परिश्रम के लिए हजार टुकड़े ले लो। (326)

सारथी:

'हे ब्राह्मणी, इन्हें अपना ही रहने दो।'

घोड़े, रथ और हजार सिक्के,

क्योंकि मेरा भी मन संसार छोड़ने का है।

सर्वोच्च ज्ञान वाले व्यक्ति के निकट जाने के लिए। (327)

सुंदरी की माँ:

लेकिन हे मेरी सुंदरी, अब जब तुम्हारे पिता चले गए हैं,

अपना घर छोड़कर, अपनी सारी संपत्ति का त्याग करके—

मवेशी और घोड़े, हाथी, गहने और अंगूठियां –

कम से कम तुम अपने हक के तो हो! तुम ही वारिस हो।

क्या आप अपने परिवार के साथ इस धन का आनंद लेते हैं? (328)

सुंदरी ने अपनी माँ से कहा:

'मवेशी और घोड़े, हाथी, गहने और अंगूठियां-

ये सब मिलकर इस निष्पक्ष और व्यापक क्षेत्र का निर्माण करते हैं।

क्या उसने उसे अपने से दूर कर दिया है, मेरे प्यारे पिता?

और अपने पुत्र के शोक में उसने संसार का त्याग कर दिया।

मैं भी अपने भाई की मृत्यु से दुखी हूँ।

मेरी भी उसी की तरह दुनिया छोड़ने की इच्छा है। (329)

सुंदरी की माँ:

'तो, हे सुंदरी, यही तुम्हारा इरादा हो।'

आपका संकल्प सफलता से परिपूर्ण हो!

(तुम्हें) हाथ से मुंह तक भोजन मिलेगा।

इधर-उधर से इकट्ठा किया गया (टुकड़ों में),

पैचवर्क वाला चोला—इन चीजों ने ये सब हासिल किया

परलोक में शुद्धिकरण होगा

जो भी बात तुम्हारे जीवन को इस दुनिया में दूषित कर रही है।' (330)

सुंदरी ने अपनी शिक्षिका थेरी से कहा

मैंने खुद को प्रशिक्षित किया है, लेडी, त्रिविध पाठ्यक्रम में।[4]

मेरे लिए दिव्य नेत्र स्पष्ट रूप से चमकता है।

मुझे पता है कि मेरा जन्म कैसे और कब हुआ।

बहुत अतीत में, और जहाँ मैं रहता था (ज्ञात पूर्व जीवन)। (331)

हे मेरे परम मित्र, यह सब मैं आपका ऋणी हूँ।

संघ की सबसे प्यारी थेरी,

अब मुझे त्रिविध ज्ञान (त्रुविधा[3]) प्राप्त हो गया है।

और इस प्रकार बुद्ध की साधना पूर्ण होती है। (332)

हे महिला, कृपया मुझे अपनी सहमति दें, क्योंकि मैं

मैं सावत्थी जाऊँगा, ताकि मैं

मैं अपनी सफलता की 'शेर जैसी दहाड़' लगाऊंगा।

परम संत बुद्ध की उपस्थिति में। (333)

शिक्षिका थेरी ने सुंदरी से कहा:

देखो, सुंदरी, सुंदर रंगत वाले गुरु (बुद्ध)!

उनका स्वरूप शुद्ध सोने के समान, निर्मल और उज्ज्वल है।

जो सर्वप्रबुद्ध हैं, बुद्ध हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं।

अनियंत्रित को वश में करने वाला, जिसने कभी भय का स्वाद नहीं चखा। (334)

और देखो, हे स्वामी, सुंदरी, कौन आ रही है

आपको आत्मज्ञान (विमुक्ति, विमुक्ति) के बारे में बताने के लिए,

और उसे फिर से जन्म लेने का अधिकार नहीं है।

जिसने स्वयं को वासना से मुक्त कर लिया है

बंधनों से मुक्त, संसार से विमुख।

निर्धारित कार्य अब पूर्ण हो चुका है।

और मदहोश कर देने वाली सभी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। (335)

सुंदरी ने बुद्ध से कहा:

मैं बनारस से तुम्हारे पास आया हूँ।

मैं, सुंदरी, आपकी शिष्या, आपके चरणों में नतमस्तक होती हूँ।

हे महान वीर, मुझे यहाँ पूजा करते हुए देखो। (336)

आप बुद्ध हैं! आप गुरु हैं! और आप,

मैं तुम्हारी बेटी हूँ, तुम्हारे मुख की संतान हूँ।

आप तो बिल्कुल ब्राह्मण हैं! अपने वचन के भी पक्के।

अब मेरा निर्धारित कार्य पूरा हो चुका है।

और वे सभी इच्छाएँ जिन्होंने मुझे मदहोश कर दिया था, दूर हो गईं। (337)

बुद्धः

'आपका स्वागत है, हे आदरणीय महिला!'

आपके लिए तो यह बस थोड़ी सी दूरी थी।

क्योंकि वे लोग आते हैं जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं,

प्रभु के चरणों में उपासना करने में प्रसन्नता होती है।

जो स्वयं भी वासना से मुक्त हो चुके हैं,

बंधनों से मुक्त, संसार से विमुख,

जिन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है।

और वे सभी इच्छाएँ जो नशे में चूर थीं, दूर हो गईं। (338)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] निरुपधि - अर्थात्, पुनर्जन्म की स्थितियों या आधारों को समाप्त करने के लिए कैसे जीना है। निम्नलिखित पंक्ति का शाब्दिक अर्थ है: 'मैं, जिसने शिक्षा को समझा था, ने अपने बचपन के दुःख को वहीं दूर कर दिया।'
[3] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।

[4] तीन प्रशिक्षण हैं: i. शील (नैतिक उपदेश) ii. समाधि (ध्यान और समाधि अवस्था प्राप्त करना) iii. पन्ना (ध्यानमग्न अवस्थाओं से उत्पन्न प्रत्यक्ष दिव्य बोध)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा13.5
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई

13.5 राजगृह की सुभा (सुनार की पुत्री)
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित किए थे, जिससे उन्होंने धीरे-धीरे अच्छाई की जड़ जमाई और ज्ञानोदय की अवस्थाएँ (विमुक्ति, विमुक्ति) प्राप्त कीं। इस बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक सुनार की पुत्री के रूप में हुआ। अपने सुंदर रूप के कारण उन्हें सुभा कहा जाता था। एक दिन जब वे समझदार हुईं, तो वे राजगृह में गुरु (बुद्ध) के पास गईं और उन पर श्रद्धा रखते हुए, एक तरफ बैठकर उन्हें प्रणाम किया। गुरु ने उनके नैतिक गुणों की परिपक्वता को देखकर और उनकी इच्छा के अनुसार, उन्हें चार सत्यों में निहित धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) सिखाया। इससे उन्हें सोतापना (प्रथम दिव्य जागरण) की सिद्धि प्राप्त हुई। बाद में उन्हें गृहस्थ जीवन की कमियों का एहसास हुआ और उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (पालक माता, बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी, और भिक्षुणियों की प्रमुख) के अधीन संघ में प्रवेश किया और स्वयं को उच्चतर मार्ग के लिए समर्पित कर दिया। समय-समय पर उनके रिश्तेदारों ने उन्हें संसार में लौटने के लिए आमंत्रित किया और इसके आकर्षणों के बारे में बताया। एक दिन जब वे आए, तो उन्होंने उन्हें गृहस्थ जीवन और संसार में मौजूद खतरों के बारे में बताया और नीचे दिए गए चौबीस श्लोकों में धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया, और तब वे (उन्हें अपने साथ ले जाने की) इच्छा से मुक्त होकर चले गए। फिर उन्होंने अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में प्रयास किया, अपनी इंद्रियों को शुद्ध किया, अंततः अरहंत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) के रूप में उन्होंने इस प्रकार कहा:
एक लड़की, जो पूरी तरह सफेद कपड़े पहने थी, ने एक बार सुना था

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उन्होंने उत्सुकतापूर्वक, गंभीरता से सुना।

इस प्रकार मुझमें सत्यों को समझने की क्षमता उत्पन्न हुई। (339)

इसी वजह से मुझे सभी सांसारिक सुख-सुविधाएं बहुत अप्रिय लगने लगीं।

क्योंकि मैं उन खतरों को देख सकता था जो मुझे घेर रहे थे।

यह पुनर्जन्मित यौगिक, 'व्यक्तित्व,'

और इसका त्याग करना ही मेरी एकमात्र इच्छा थी। (340)

इसलिए मैंने अपनी दुनिया—अपने सभी रिश्तेदारों—को त्याग दिया।

मेरे दास, मेरे श्रमिक और मेरे गाँव,

और चारों ओर उपजाऊ खेत और घास के मैदान फैले हुए थे, (341)

सब कुछ उचित हो और जीवन में आनंद का संचार हो।

मैंने ये सब छोड़ दिया, बड़ी-बड़ी जागीरों से मुंह मोड़ लिया।

और दीक्षा प्राप्त करने का प्रयास किया (342)

अब यह अनुचित होगा कि मैं, जो पूर्ण विश्वास में हूँ

जिसने सत्य को भलीभांति समझा, उसने उस संसार का त्याग कर दिया।

जो सोने-चांदी से मिलने वाली संपत्ति को त्यागकर,

किसी भी सांसारिक इच्छा को संजोकर न रखें।

कहीं ऐसा न हो कि सब कुछ तुम्हारे ऊपर फिर आ पड़े! (343)

जागृत व्यक्तियों और संतों को चांदी और सोना किसी काम का नहीं।

तपस्वियों के पवित्र जीवन के लिए अनुपयुक्त।

वे आर्यों की संपत्ति नहीं हैं—कुलीन वर्ग की संपत्ति नहीं हैं। (344)

जिससे लोभ और कामुकता जागृत होती है,

मोह और सभी शारीरिक वासनाएँ,

हानि का भय और अनेक प्रकार की चिंताएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं?

यहाँ दृढ़ता बनाए रखने का कोई आधार नहीं है। (345)

यहां पुरुष, लापरवाह और इच्छाओं के उन्माद में डूबे हुए,

मन से भ्रष्ट, एक दूसरे को

और बाधित होकर, सामान्य शत्रुता में संघर्ष करते हैं। (346)

मृत्यु, बंधन, यातना, विनाश, शोक और पीड़ा

इंद्रियों के गुलामों और भयानक विनाश की प्रतीक्षा करो। (347)

मेरे सगे-संबंधियों—नहीं, मेरे शत्रुओं— ऐसा क्यों?

मुझे अपनी इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से क्यों बांधते हो?

मुझे उस व्यक्ति के रूप में जानो जिसने देखा और इसलिए भाग गया।

इंद्रिय-प्रधान जीवन से उत्पन्न होने वाले खतरे। (348)

न तो सोना और न ही पैसा सफाई के काम आ सकता है

घातक आसवों का जहर।

निर्दयी और हत्यारी इंद्रिय-इच्छाएं हैं;

जैसे क्रूर भाला और कारागार के बंधन। (349)

मेरे रिश्तेदारों को इससे क्या फर्क पड़ता है? नहीं,

मुझे अपनी इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से क्यों बांधते हो?

मुझे उस स्त्री के रूप में जानो जिसने विवेकपूर्ण जीवन से पलायन किया।

अपने बाल मुंडवाकर, पीले वस्त्र में लिपटी हुई। (350)

जैसे-तैसे जुटाकर भोजन जुटाया जाता था,

पैचवर्क वाला यह गाउन—ये चीजें मेरे लिए उपयुक्त हैं।

बेघर तपस्वी जीवन का आधार। (351)

महान ऋषि इंद्रियों की सभी इच्छाओं का निवारण करते हैं।

चाहे वे स्वर्ग में हों या पृथ्वी पर;

वे शांति से निवास करते हैं, क्योंकि वे स्वतंत्र भूमिधारक हैं।

क्योंकि उन्होंने स्थिर आनंद प्राप्त कर लिया है। (352)

मुझे कभी भी सांसारिक वासनाओं के पीछे न भागने देना।

जिसमें कोई शरण नहीं है; क्योंकि वे शत्रु हैं।

और हत्यारे, और क्रूर भयंकर आग। (353)

ओह! लेकिन यहाँ एक राक्षस है, जो भूत बनकर घूमता है।

मृत्यु के भय और डर का, एक काँटेदार झाड़ी,

यह एक लालची मुंह है, एक ऐसा रास्ता है जिसे पार करना असंभव है।

एक गड्ढे का मुँह जिसमें हम अपनी बुद्धि खो देते हैं, (354)

विनाश का एक भयावह रूप मंडरा रहा है—ऐसा

सांसारिक वासनाएँ हैं; साँपों के उठे हुए सिर।

मूर्खों को इसी में आनंद मिलता है।

अंधा, सामान्य, औसत, कामुक व्यक्ति। (355)

उन सभी असंख्य लोगों के लिए, जो इस प्रकार अज्ञानी रह जाते हैं

सांसारिक वासनाओं के दलदल में अज्ञानता से ग्रस्त,

जन्म और मृत्यु को सीमित करने वाली किसी भी बात पर ध्यान न दें। (356)

सांसारिक इच्छाओं के कारण मनुष्य आकर्षित होता है।

कई लोगों के लिए दुखद मार्ग से एक भयानक विनाश की ओर—

जहां हर कदम का अपना दंड होता है। (357)

शत्रुता का कारण सांसारिक वासनाएँ हैं।

पश्चाताप और दुर्भावना को जन्म देना।

(358) मांस के लालच, जो हमें संसार और मृत्यु से बांधते हैं।

जिससे पागलपन, उन्माद की स्थिति उत्पन्न होती है।

मन को उत्तेजित करने वाली चीजें सांसारिक वासनाएं हैं।

ये वो जाल हैं जो मारा (शैतान) ने मनुष्यों को बर्बाद करने के लिए बिछाए थे। (359)

सांसारिक वासनाओं के भयानक फल अंतहीन हैं।

विष से भरा हुआ, अनेक बुराइयाँ बोने वाला,

इसकी मिठास कम और क्षणिक है, जो कलह को भड़काती है।

और हमारे दिनों की चमक को मुरझा रहा है। (360)

जिसने यह चुनाव किया है, मैं कभी नहीं

दुनिया की आपदाओं में फिर से आना,

क्योंकि निर्वाण में ही मेरा आनंद सदा रहता है। (361)

अतः, सांसारिक वासनाओं से लड़कर और उन पर विजय प्राप्त करके,

शीतल आशीर्वाद की आशा में प्रतीक्षा करो।

प्रयास में निरंतर लगन बनाए रखते हुए,

जब तक सभी बंधन हटा नहीं दिए जाते (362)

यही मार्ग है, वह मार्ग जो दुःख से परे ले जाता है।

उन सभी चीजों से परे जो अपवित्र करती हैं,

आर्यों का अष्टमार्ग भी सीधा है।

हम उन रास्तों पर चलें जिन पर संत चले हैं। (363)

* * * * *

अब इस सुभा को देखो, जो धम्म (शाश्वत सत्य के मार्ग) पर खड़ी है।

एक सुनार की बेटी!

देखो! वह पूर्ण रूप से शांत हो गई है;

वृक्ष के नीचे ध्यान की समाधि में लीन रहता है। (364)

आज से आठ दिन हो गए हैं जब से वह (अभिषिक्त) हुई हैं।

आस्था में, और शिक्षा के प्रकाश में दीप्तिमान।

उप्पलवन्ना के निर्देशानुसार, लो!

वह तीन गुना बुद्धिमान है और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाली है। (365)

वह महिला मुक्त हो गई है, उसके सारे कर्ज माफ हो गए हैं।

एक भिक्षुणी, जो उच्चतर अर्थों में प्रशिक्षित हो।

सारे बंधन टूट गए हैं, उसका काम पूरा हो गया है।

और जिन सांसारिक इच्छाओं ने उसे विषैला बना दिया था, वे शुद्ध हो गईं। (366)

उसके पास सक्का (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) आए।

और अपने देवदूतों के दल के साथ।

अपनी पूरी शान-शौकत के साथ, सुभा की पूजा करते हुए,

एक सुनार की बेटी,

और सभी के स्वामी (बुद्ध)। (367)

जब दीक्षा के आठवें दिन उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, और एक वृक्ष के नीचे बैठकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया, तो भगवान बुद्ध ने उनकी प्रशंसा में श्लोक (364-366) कहे, और भिक्षुओं को बताया कि सक्का (इंद्र) ने यह सब दिव्य दृष्टि से देखा, फिर वह और तावंती स्वर्ग के देव (देवदूत) श्रद्धापूर्वक नीचे आए और हाथ जोड़कर उनकी पूजा की, फिर अंतिम श्लोक बोला गया।

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक प्रमुख अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है जिसमें ध्यान अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटना (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर केंद्रित होता है जो आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।

www.budsas.org से और अधिक

जानकारी: पूर्व बुद्ध की एक अच्छी भक्त होने के नाते, सुभा का जन्म भगवान गौतम बुद्ध के युग में एक समृद्ध सुनार की सुंदर पुत्री के रूप में हुआ था। उनके जन्म से घर में सौभाग्य आया, इसलिए उनके गर्वित पिता ने उनका नाम सुभा रखा, जिसका अर्थ है "भाग्यशाली"। वे अक्सर सोचते थे, "मेरी यह पुत्री पूर्ण सौंदर्य की धनी होगी। यह मुझे मेरे द्वारा बनाए गए उत्तम शाही आभूषणों की याद दिलाती है!"

जब सुभा सोलह वर्ष की हुईं, तब तक उनके पिता धनी हो चुके थे और कई धनी ग्राहकों से काम प्राप्त करते थे। जैसे-जैसे उनका व्यापार फलता-फूलता गया, उनके अधीन कई सुनार काम करने लगे। सुभा अक्सर रानियों और राजकुमारियों के लिए उनके द्वारा बनाए गए सुंदर हार, मुकुट और अन्य आभूषण पहनती थीं और अपनी सुंदरता का प्रदर्शन करती थीं। माता-पिता और पड़ोसी सौम्य स्वभाव वाली सुभा की प्रशंसा करते थे, जो नाजुक और परिष्कृत आभूषण पहनने पर और भी सुंदर प्रतीत होती थीं। सुभा दयालु थीं, इसलिए उनका घर एक सुखमय स्थान था, जहाँ मित्र और रिश्तेदार सद्भाव से एकत्रित होते थे।

सुभा के पड़ोसी अक्सर एक ऐसे राजकुमार की चर्चा करते थे जिसने अपना महल छोड़कर तपस्वी जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया था। वे कहते थे कि वह महान ऋषि एक संत बन गए थे और उनके कई शिष्य थे। एक दिन जब राजगृह के लोग उस महान ऋषि के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, तो सुभा के पिता ने उस दिन अपने कामगारों के लिए छुट्टी घोषित कर दी और सुभा अपने माता-पिता और मित्रों के साथ उस महान ऋषि के आगमन को देखने गई। जब राजा बिम्बिसार के नेतृत्व में जनता ने भगवान बुद्ध के उपदेश सुने, तो वे आनंद से भर उठे। शाम तक राजा, उनके दल और नगर के सभी नागरिकों ने बौद्ध धर्म को अपना धर्म मान लिया। शीघ्र ही बुद्ध को समर्पित मठ स्थापित किए गए, जहाँ कुछ भिक्षु निवास करने लगे, जबकि अन्य धर्म का प्रचार करने के लिए निकल पड़े।

जल्द ही बौद्ध धर्म देश का स्वीकृत धर्म बन गया। कई युवा लड़के-लड़कियाँ भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संघ में शामिल हो गए। सुभा अपने माता-पिता के साथ उपदेश स्थल पर गई और प्रवचनों को प्रसन्नतापूर्वक सुना। उसने पीले वस्त्रधारी भिक्षुणियों को देखा और उनसे बातचीत की। उनका परिवार मठ का अच्छा भक्त बन गया और अक्सर वहां जाता था। एक दिन, जब भगवान ने अलौकिक दृष्टि से उपस्थित लोगों को देखा, तो उन्होंने पाया कि दासी सुभा सांसारिक जीवन का अंतिम जन्म जी रही है - यानी वह भिक्षुणी बनेगी और ज्ञान प्राप्त करेगी। उस दिन जब भगवान उपदेश दे रहे थे, सुभा ने ध्यान से सुना और प्रवचन के अंत में, उसने ज्ञानोदय की अवस्था प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने अपने माता-पिता से भिक्षुणी बनने की अनुमति देने की विनती की। माता-पिता उसे अपने माता-पिता से अलग नहीं करना चाहते थे क्योंकि वह उनकी इकलौती संतान थी और उनकी संपत्ति की उत्तराधिकारी बनने वाली थी। इसलिए, क्योंकि वे उससे प्यार करते थे, उन्होंने उसका मन बदलने की पूरी कोशिश की। अंततः, वे मान गए और कुछ समय बाद वह भिक्षुणी बन गई। उसके माता-पिता और रिश्तेदारों को लगा कि सुभा जल्द ही भिक्षुणी छोड़कर उनके पास लौट आएगी, क्योंकि उसे सुंदर वस्त्र और आभूषण पहनने का शौक था।

इस बीच सुभा ने भिक्षुणियों से धार्मिक शिक्षाएँ प्राप्त कीं और उनके नियमों का पालन किया। भिक्षुणियों द्वारा धर्म के उपदेशों और धार्मिक विषयों पर विस्तृत चर्चाओं को वह ध्यानपूर्वक सुनती थीं। उन्होंने ध्यान की शिक्षाएँ प्राप्त कीं और शांतिपूर्वक ध्यान किया। उनके बिना, उनके प्रिय माता-पिता का घर वीरान हो गया। अंततः, उन्होंने अपने मित्रों से बात की और सुभा को घर वापस लाने के इरादे से भिक्षुणी आश्रम जाने का निर्णय लिया। भिक्षुणी आश्रम पहुँचते ही, उनकी माताजी रोने लगीं और बोलीं: "प्यारी बेटी! तुम्हारे बिना हमारा घर वीरान हो गया है। सोचो तुम्हारे पिता द्वारा तुम्हारे लिए विशेष रूप से बनाए गए सुंदर सोने के आभूषण! ये आभूषण तुम्हारे

गले, कानों और बाजुओं की शोभा बढ़ाते थे! एक समय था जब तुम्हें इन्हें पहनना बहुत पसंद था! अब हमारे पास इन्हें विरासत में पाने के लिए कोई बेटी नहीं है! प्यारी बेटी, हम धनवान हैं और हमारे पास बहुत से नौकर हैं! वापस आ जाओ और हमारी सारी संपत्ति की मालकिन बन जाओ!" जब माताजी रो रही थीं, तब उनके रिश्तेदारों और मित्रों ने भी यही अपील की।

सुभा ने आगे की अपीलों को रोकने का निश्चय किया और उन्हें समझाने की कोशिश की कि उनकी अपीलें व्यर्थ हैं। उन्होंने उन्हें इन शब्दों में सलाह दी:
मेरी मां और रिश्तेदारों, ध्यान से सुनो।

एक युवक के लिए उपयुक्त सुरुचिपूर्ण वस्त्र पहने हुए,

मैंने प्रभु की शिक्षाओं को सुना।

स्वस्थ मन की स्थिति में,

तब मुझे सच्चाई का एहसास हुआ।

इसलिए मैंने अपने उन माता-पिता को छोड़ दिया जो मुझसे प्यार करते थे।

मेरे सभी प्रिय मित्रों और रिश्तेदारों,

एक सुखमय जीवन की सभी विलासिताएं,

काफी धन-दौलत, जमीनें और खेत।

सांसारिक सुख-सुविधाओं की लालसा में,

यह मेरी वर्तमान जीवनशैली के अनुकूल नहीं है।

मैंने अपने घर के सुख-सुविधाओं को छोड़ दिया।

मैं वहां दोबारा नहीं जाऊंगी।

मुझे एकांत का जीवन पसंद है।

सभी प्रकार की लालसाओं से रहित।

जो लोग इच्छा की खाई में गिर गए हैं,

अक्सर निराशाओं का सामना करना पड़ता है,

उनकी संपत्ति का नुकसान,

शारीरिक चोटें और इससे भी बदतर आपदाएँ।

प्रिय रिश्तेदारों, मेरी बात सुनो।

तुम मुझे क्यों लुभाने की कोशिश करते हो?

मैंने अपने पीछे कितनी परेशानियां छोड़ दी हैं?

प्रिय मित्रों, कृपया यह समझें कि मैं एक बेघर नन हूँ।

जो धन-दौलत में कोई मूल्य नहीं देखता!

मेरा सिर मुंडा हुआ है;

मैंने धार्मिक संघ के वस्त्र धारण कर रखे हैं।

कृपया मेरी बेघर और भिखारी जैसी हालत को समझें!

मैं दूसरों द्वारा दिए गए भोजन पर ही गुजारा करता हूँ।

दूसरों द्वारा दिए गए वस्त्रों को पहनकर,

सिद्धांतों के अनुसार जीवन जीना -

एक नन का जीवन ऐसा ही होता है।

सर्वज्ञ भगवान बुद्ध

साथ ही साथ महान संघ भी,

इच्छा के सभी बंधनों को तोड़ दिया है

मुक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए।

वे स्वतंत्र और खुश हैं!

लालसा और इच्छा भयानक शत्रु हैं।

एक विनाशकारी आग की तरह, वे लाते हैं

अपने साथ तमाम कष्ट और दुख लेकर आते हैं।

दुश्मनों की तरह, उन्होंने हमें दंडित करने का विकल्प चुना।

इंद्रिय सुख एक आतंक हैं।

लोगों के दिमाग में जहर घोलना।

विषैले तीर की तरह, वे पवित्र मन को भेद देते हैं।

लोगों को खतरे और पाप की ओर गुमराह करना।

इंद्रियों के सुख भयावह होते हैं।

जैसे कोई सांप का सिर डंक मारने ही वाला हो।

वे अज्ञानी लोग,

जो इच्छाओं के दलदल को पार करने में असमर्थ हैं,

इंद्रियों के सुखों में लिप्त हो जाओ।

वे जन्म और मृत्यु में कोई अंत नहीं देखते।

अस्तित्व के विशाल सागर में।

इस प्रकार लालसा उत्पन्न करती है,

दुःखपूर्ण परिस्थितियों में पुनर्जन्म।

उनकी पत्तियाँ मानो बंधी हुई हैं

सांसारिक अस्तित्व के सागर में सदा के लिए।

लोभ और व्यथा शत्रुओं को जन्म देते हैं।

अनुयायियों को खतरे की ओर आकर्षित करना।

अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करते हुए,

उन्हें अंतहीन दुखों का सामना करना पड़ता है।

चीनी से लेपित विषैले भोजन का सेवन करना,

वे पहले तो खुश होकर गाना गाते हैं।

जैसे-जैसे जहर अपना असर दिखाता है, यह बहुत पीड़ा लाता है।

इसके परिणामस्वरूप दुख और आपदा आती है।

अतः, प्रिय मित्रों और सगे संबंधियों,

इन कारणों से, मैं स्वीकार नहीं करता/करती।

आपकी खुशी की अवधारणा धन पर निर्भर करती है।

मुझे नन बनकर खुशी मिली है।

मैं अब कभी भी घर का जीवन स्वीकार नहीं करूँगी!

यहां तक कि महान लोगों के रूप में भी,

जिन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया,

संसार के भयानक सागर को पार करने में सक्षम हुए।

मैं निश्चित रूप से उनके पदचिह्नों का अनुसरण करूंगा।

निर्वाण की अनुभूति प्राप्त करने के लिए।

जिन मित्रों और रिश्तेदारों ने उनकी बातें सुनीं, उन्होंने फिर कभी उन्हें उकसाने की कोशिश नहीं की। उनमें से अधिकांश ने उनके शब्दों की सच्चाई को समझ लिया और उन्हें सुनकर प्रसन्न हुए।

शांति का ध्यान करते हुए, सुभा ने दीक्षा के आठवें दिन पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली। एक दिन, जब प्रबुद्ध भिक्षुणी ध्यान के आनंद में डूबी हुई थीं, तब भगवान बुद्ध ने उनकी ओर ध्यान दिलाते हुए, उनकी पूजा करने आई भिक्षुणियों से कहा: "भिक्षुणियों! सुभा भिक्षुणी को देखो! थेरी उप्पलावन्ना ने उन्हें अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया है। आस्था से परिपूर्ण होकर, उन्होंने सचेतनता बनाए रखी है और अपनी इंद्रियों को संयमित रखा है। अथक परिश्रम से उन्होंने बंधनों से मुक्ति प्राप्त की है। उनका अभ्यास अरहंतत्व की पूर्ण प्राप्ति में परिणत हुआ है। उन्होंने तीन उच्च ज्ञान प्राप्त कर लिए हैं। दीक्षा प्राप्त किए हुए उन्हें केवल आठ दिन हुए हैं। वे वास्तव में भिक्षुणी संघ के लिए गौरव हैं!" जब देवताओं के राजा इंद्र ने भगवान के शब्दों को सुना, तो वे अपने दिव्य प्राणियों के दल के साथ आए और प्रबुद्ध भिक्षुणी सुभा की पूजा की।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा14.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||69|| ------>>>> अगला

14.1 जीवक के आम के बाग की सुभा, राजगृह के एक ब्राह्मण की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके, सद्गुणों की जड़ों को विकसित किया और अपने ज्ञान की परिपक्वता के माध्यम से ज्ञानोदय (विमुक्ति, विमुक्ति) के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ प्राप्त कीं। बुद्ध युग में, उनका पुनर्जन्म राजगृह में एक अत्यंत प्रतिष्ठित ब्राह्मण के परिवार में हुआ। उनका नाम सुभा था और उनका शरीर अपने सभी अंगों में अत्यंत सुंदर था। इसी कारण उन्हें यह नाम दिया गया। जब गुरु (बुद्ध) राजगृह में रहे, तब उन्होंने आस्था प्राप्त की और एक गृहस्थ शिष्या बन गईं। बाद में वे जीवन चक्र (पुनर्जन्मों का चक्र) के बारे में चिंतित हो गईं और इंद्रियों के सुखों में खतरे को देखकर उन्होंने निश्चय किया कि त्याग में ही सुरक्षा है। उन्होंने महान प्रजापति गौतमी (बुद्ध की दिवंगत माता की बहन और सहपत्नी तथा भिक्षुणियों की प्रमुख) के मार्गदर्शन में संघ में प्रवेश किया और विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान) का अभ्यास करते हुए शीघ्र ही अनागामी (अनगामी) अवस्था की प्राप्ति कर ली।
एक दिन राजगृह का एक उग्र और शराबी युवक जीवक (राजा का चिकित्सक) के आम के बाग में खड़ा था और उसने उन्हें ध्यान करने जाते देखा। मोहित होकर उसने उनका रास्ता रोक दिया और उन्हें कामुक भोगों के लिए उकसाया। उन्होंने अनेक उदाहरणों से उन्हें कामुक भोगों के अभिशाप और अपने त्याग के मार्ग के बारे में बताया तथा उन्हें धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश दिया। फिर भी वह सुधर नहीं पाया और अपने अभिमानों पर अड़ा रहा। थेरी ने अपने शब्दों पर ही न रुकते हुए, उस व्यक्ति की अपनी आँखों की सुंदरता के प्रति आसक्ति देखकर, अपनी एक आँख को आँख के सॉकेट से निकाल लिया, उसे फाड़ दिया और उसे देते हुए कहा: 'आओ, फिर! इस आपत्तिजनक आँख को ले लो!' यह देखकर वह व्यक्ति भयभीत और क्षुब्ध हो गया और उसकी सारी वासना समाप्त हो गई, उसने थेरी से क्षमा मांगी। तब थेरी गुरु (बुद्ध) के समक्ष गईं, और वहाँ उन्हें देखते ही उनकी आँख पहले जैसी हो गई। इसी कारण वे बुद्ध के प्रति निरंतर आनंद से कांपती रहीं। गुरु (बुद्ध), उनके मन की स्थिति को जानते हुए, उन्हें शिक्षा दी और सर्वोच्च प्राप्ति के लिए

अभ्यास दिखाया। अपने आनंद को दबाते हुए, उनकी अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) बढ़ती गई, और उन्होंने अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझ लिया। उस समय से, निर्वाण के आनंद और फल में लीन होकर, उसने अपनी जीती हुई चीज़ों को याद करते हुए, अपने सामने खड़े उस बेलगाम पुरुष से इन छंदों में संवाद किया:
जीवक के रमणीय वन क्षेत्र में सुभा भिक्खुनी (नन) घूमती थी।

वहाँ एक शराबी और अनियंत्रित व्यक्ति उससे मिला।

और उसने रास्ता रोक दिया। उससे सुभा ने इस प्रकार कहा: 389 (368)

मैंने ऐसा क्या किया है जिससे तुम नाराज हो गए हो, कि तुम इस तरह मेरे रास्ते में आ गए हो?

हे मित्र, ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी पुरुष के लिए किसी दीक्षित (नन) को छूना संभव नहीं है। (369)

इसी प्रकार मेरे गुरु (बुद्ध) ने मुझे नैतिक उपदेशों (शील) में दीक्षित किया है।

हम सम्मान करते हैं और अनुसरण करते हैं;

वेलकम वन ने मुझे जिस प्रशिक्षण में प्रशिक्षित किया है, उसमें भी यही सिखाया गया है।

शुद्धिकरण और अनुशासन पवित्र हैं। तुम मेरा रास्ता क्यों रोक रहे हो? (370)

मेरा शुद्ध, अविचल मन; मेरा भावहीन मन, तुम नीच भावनाओं से परिपूर्ण;

मैं, जो अपने संपूर्ण स्वरूप में मुक्त (विमुत्त/विमुक्त) और निर्दोष हूँ,

मुझे यह बात कहाँ से आती है कि तुम मुझे रोकते हो, अप्रिय रूप से खड़े रहते हो?' (371)

मनुष्य :

'हे महिला, आप युवा हैं और पापरहित हैं—आप पुरोहित जीवन में क्या चाहती हैं?'

उस पीले रंग की पोशाक (नन की) उतार फेंको और आओ! खिलते हुए जंगल में

हम अपनी खुशी की तलाश करते हैं। फूलों की सुगंध से भरे वृक्षों से सुगंध आती है (372)

मिठास। देखो, वसंत अपने चरम पर है, खुशियों का मौसम!

तो चलो मेरे साथ फूलों से लदे जंगल में चलें और हम आनंद की तलाश करें। (373)

ऊपर से आती हवा की मधुर ध्वनि जंगल की खिलती चोटियों को छू रही है।

पवनदेवों के प्रभाव में। लेकिन तुम जंगल में अकेले जा रहे हो,

इसकी गहराइयों में खो जाने पर, तुम्हें आनंद या संतोष देने वाली कोई चीज कैसे मिलेगी? (374)

वह विशाल जंगल प्रेतवाधित है, जिसमें जंगली जीवों के कई झुंड रहते हैं।

हाथियों के उग्र और हिंसक उत्पात से इसकी शांति भंग हो गई।

वह स्थान मानव जाति से रहित और भयावह है, क्या आपको वहां अकेले नहीं जाना चाहिए? (375)

तुम सोने की बनी किसी मूर्ति की तरह हो, मानो किसी अप्सरा की तरह स्वर्ग के बगीचे में विचरण कर रही हो।

हे अद्वितीय प्राणी! तुम्हारी सुंदरता प्रकाशमान हो!

बनारस के उत्तम रेशमी वस्त्र से सजी सुंदर पोशाक में लिपटी हुई। (376)

मैं केवल आपकी सेवा करने और आपको जंगल में रहने देने के लिए ही जीवित रहूंगा।

इस संसार में तुमसे अधिक प्रिय और प्यारा कोई प्राणी नहीं है।

तुम जंगल की परी जैसी धीमी गति से चलने वाली आँखों वाली हो। (377)

अगर तुम मेरी बात मानोगे, तो वहाँ आओ जहाँ सुरक्षित जीवन के सुख तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।

बरामदों और छतों वाले घर में निवास करो, दासियाँ तुम्हारी सेवा में तत्पर हों। (378)

बनारस के नाजुक रेशमी वस्त्र पहनें, मालाएं धारण करें, मलहम लगाएं।

मैं तुम्हें अनेक प्रकार के आभूषण देता हूँ, जो बहुमूल्य पत्थरों से बने हैं।

सोने का काम और मोती। और तुम एक सुंदर और आलीशान पलंग पर सवार होगे, (379)

चंदन की लकड़ी से तराशा हुआ, सुगंधों से महका हुआ, नए तकियों से सजा हुआ,

ऊनी और मुलायम बिस्तर, और बेदाग चंदोबों से सजे हुए। (380)

तुम जल की गोद में खिले कमल के समान हो, जिसकी सेवा परियां करती हैं।

ब्रह्मचर्य का जीवन जीने वाले तुम बूढ़े हो जाओगे, तुम्हारी सुंदरता अतुलनीय है।' (381)

सुभा:

अब तुम्हारा क्या होगा, इस गंदगी से भरे, कब्र में समा चुके इतने नाजुक शव में?

क्या आपने मुझे यह बुरी शिक्षा देते हुए देखा है, क्या आप मोहित हैं? (382)

मनुष्य :

तुम्हारी आंखें हिरण जैसी हैं, पहाड़ों में बसी किसी परी जैसी।

तुम्हारी वो परी जैसी आंखें ही हैं, जिन्हें देखकर मेरे दिल में प्यार की गहराई और बढ़ जाती है। (383)

आपके तेजस्वी, निर्मल चेहरे में कमल की पंखुड़ी के समान विराजमान,

तुम्हारी उन आँखों को देखकर ही मेरे जुनून को बल मिलता है। (384)

हे देवी, तुम मुझसे कितनी भी दूर क्यों न हो, मैं तुम्हें कभी कैसे भूल सकता हूँ?

लंबी पलकों वाली तुम, तुम्हारी आंखें कितनी चमत्कारी हैं?

हे जादूगरनी आँखों वाली परी!, उन गोलों से बढ़कर मुझे कुछ भी प्रिय नहीं है! (385)

सुभा:

देखो! तुम वहाँ चलना चाहते हो जहाँ कोई रास्ता नहीं है; तुम कब्जा करना चाहते हो

आपके खेल के लिए आकाश से चंद्रमा;

तुम मेरु (पर्वत) की चोटियों को पार कर जाओगे।

तुम जो बुद्ध के बच्चे की घात लगाने का साहस करते हो! (386)

अब न तो धरती पर और न ही स्वर्ग में कोई ऐसी वस्तु जीवित है जो मेरे लिए वासना का पात्र हो।

मुझे अभी यह नहीं पता। यह कैसा है?

महान मार्ग पर जड़ से शाखा तक नष्ट कर दिया गया। (387)

हाथ से जलते हुए कोयले की तरह फेंका गया, और विष के प्याले के समान घातक माना गया।

यह मुझे दिखाई नहीं देता। यह कैसा है? पवित्र मार्ग पर जड़ से शाखा सहित नष्ट हो जाना। (388)

किसी ऐसी स्त्री को बहकाओ जिसने मेरी बात नहीं समझी है, या जिसका शिक्षक

वह अभी सीख रही है; सौभाग्य से वह सुनेगी; सुभा, उसे बहकाने की कोशिश मत करो;

वह समझती है। और अब झुंझलाहट और असफलता आपको ही झेलनी पड़ेगी। (389)

क्योंकि मैंने अपने मन में ठान लिया है कि जो कुछ भी मेरे ऊपर आएगा, मैं उसके प्रति सतर्क रहूंगा।

दोष हो या सम्मान, प्रसन्नता हो या दुःख—और इस सिद्धांत को जानते हुए:—

'सभी भौतिक वस्तुएँ घृणित हैं,' मेरा मन कहीं भी उनसे नहीं जुड़ता। (390)

हाँ, मैं बुद्ध का शिष्य हूँ; मैं आगे बढ़ता रहता हूँ।

अष्टांगिक मार्ग की गाड़ी पर सवार। तीर खींचे गए हैं।

मेरे घावों से, और मेरी आत्मा इच्छाओं और मादक पदार्थों से शुद्ध हो गई है।

इसलिए मैं परमानंद में ध्यान करने के लिए एकांत स्थानों में आया हूँ। (391)

ओह! मैंने इसे (शरीर को) देखा है - एक अच्छी तरह से रंगी हुई कठपुतली, जिसमें नए लकड़ी के तकुए लगे हुए हैं।

धूर्ततापूर्वक डोरियों और पिनों से बांधे गए, और विभिन्न प्रकार से नाचते हुए। (392)

लेकिन यदि सभी तार और पिन खींचे हुए, ढीले और बिखरे हुए हों,

ताकि कठपुतली का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए और वह टुकड़े-टुकड़े हो जाए।

आप अपने मन को शांत करने के लिए किस अंग का चयन करेंगे और उसे नियुक्त करेंगे? (393)

इस प्रकार ये बेचारे नन्हे शरीर अस्तित्व बनाए रखते हैं:

सदस्यों और विशेषताओं को हटा दें तो कुछ भी किसी भी रूप में शेष नहीं रहता।

कुछ भी नहीं बचता! आप अपने मन को शांत करने के लिए क्या चुनते हैं? (394)

यहां तक कि दीवार पर नारंगी रंग से रंगी हुई किसी पेंटिंग के रूप में भी,

[यह हमें सत्य और वास्तविकता का कुछ भी नहीं देता, सिवाय झूठे दिखावे के;]

आप इस मामले में विकृत दृष्टि से [भेद नहीं कर सकते; न्यायाधीशों के साथ]

औसत मनुष्य का ज्ञान, त्रुटिपूर्ण, व्यर्थ। (395)

ओह, तुम अंधे हो! तुम एक काल्पनिक दुनिया के पीछे भाग रहे हो, कठपुतली के तमाशों से भ्रमित हो गए हो।

भीड़ के बीच में दिखाई देने वाले; आप मूल्य और वास्तविकता के ज्ञाता हैं।

जादूगर की चालें काम करती हैं, जैसे सपने में दिखाई देने वाले सोने के पेड़। (396)

यह आंख आखिर है क्या, सिवाय एक खोखले पेड़ के बीच में फंसी एक छोटी सी गेंद के?

आंसुओं के खारे पानी से सना हुआ, चिपचिपा पदार्थ टपकाता हुआ, फिल्म का बुलबुला।

अनेक पहलुओं वाली आंख के आकार में बनाई गई खाद?' (397)

तुरंत ही सुभा ने अपनी आंख (आंख के सॉकेट से) निकालकर उसे दे दी:

'तो यहाँ देखो! तुम अपनी नज़र डालो!' उसने पाप नहीं किया, उसका मन आसक्ति से मुक्त था। (398)

उसके भीतर की वासना तुरंत शांत हो गई और वह उससे क्षमा मांगने लगा:

हे पवित्र और ब्रह्मचारी कन्या, काश तुम अपनी दृष्टि पुनः प्राप्त कर सको।

मैं फिर कभी इस तरह से आपको अपमानित करने की हिम्मत नहीं करूंगा। (399)

आपने मेरे पाप को बहुत हद तक नष्ट कर दिया है; मैंने धधकती ज्वालाओं को अपने हृदय से लगा रखा है;

मैंने विषैले साँप को छुआ है — लेकिन हे! मुझे ठीक कर दे और मुझे क्षमा कर दे! (400)

उत्पीड़न से मुक्त होकर भिक्षुणी संत बुद्ध के पास चली गई।

वहाँ उनकी उपस्थिति में, उनके पवित्र स्वरूप को देखकर

अत्यंत गुणवान परिवार में जन्मी होने के कारण, उसकी दृष्टि तुरंत ही बहाल हो गई। (401)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] अनागामी - शाब्दिक अर्थ: वापस न लौटने वाला, निर्वाण से पूर्व की अवस्था, वह व्यक्ति जो ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में पुनर्जन्म लेगा और फिर वहाँ से निर्वाण प्राप्त करेगा।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा15.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||70|| ------>>>> अगला

15.1. इसिदासी, उज्जैनी के एक करोड़पति (सेठी) की पुत्री, सकेता (पटना) के एक करोड़पति (सेठी) की पूर्व पत्नी
, उसने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और जन्म-जन्मांतर में अपने पूर्व स्वभाव पर कायम रहते हुए, युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्मों का संचय किया था। अपने जीवन के अंतिम चरण से पहले सातवें जन्म में, वह कामुक आकर्षण से प्रभावित होकर व्यभिचारी आचरण में लिप्त हो गई। इसके कारण वह कई शताब्दियों तक नरक में रही और उसके बाद तीन जन्मों तक पशुवत रही। उसके बाद एक दासी ने उसे नपुंसक के रूप में जन्म दिया और फिर वह एक गरीब आम आदमी की पुत्री के रूप में जन्म लेती रही। जब वह वयस्क हुई, तो उसका विवाह गिरिदास नामक एक कारवां-नेता के पुत्र से हुआ। अब उसकी दूसरी पत्नी गुणी और उच्च गुणों वाली थी, और नई पत्नी उससे ईर्ष्या करती थी और उसके कारण पति से झगड़ा करती थी। उनकी मृत्यु के बाद, बुद्ध युग में उनका पुनर्जन्म उज्जैन में एक गुणी, सम्मानित और धनी व्यापारी की पुत्री के रूप में हुआ और उनका नाम इसिदसी रखा गया। जब वे वयस्क हुईं, तो उनके माता-पिता ने उनका विवाह एक व्यापारी के पुत्र से कर दिया, जो उनके लिए उपयुक्त था। एक माह तक वे एक समर्पित पत्नी के रूप में उनके साथ रहीं; फिर, अपने पूर्व कर्मों के फल स्वरूप, उनके पति ने उनसे विमुख होकर उन्हें घर से निकाल दिया। यह सब पाली ग्रंथ में वर्णित है। एक के बाद एक पतियों के लिए वांछनीय न साबित होने के कारण, वे व्याकुल हो गईं और अपने पिता की सहमति से, थेरी जिनादत्त के अधीन भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ली। और अंतर्दृष्टि (विपश्यना[1]) में प्रगति करते हुए, उन्होंने कुछ ही समय बाद अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, साथ ही धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझ लिया। पुण्य और निर्वाण के आनंद में लीन होकर, एक दिन पटना नगर में भोजन करने के बाद, वह महान गंगा के एक रेतीले किनारे पर बैठ गईं। जब उनकी सहेली, थेरी बोधि ने उनसे उनके पूर्व अनुभव के बारे में पूछा, तो उन्होंने उसे छंदों में सुनाया। उनके पूर्व और बाद के उत्तरों के संबंध को दर्शाने के लिए, संशोधकों ने ये तीन छंद जोड़े:
पटना के सुंदर नगर में, पृथ्वी के सबसे सुंदर नगर में,

इसका नाम ट्रम्पेट-फ्लावर की सुंदरता के कारण रखा गया है।

शाक्य वंश से जन्मी दो संत भिक्षुणियाँ (भिक्षुणियाँ) निवास करती थीं, (402)

इसिदसी एक, बोधि दूसरा।

नैतिक उपदेश (शील) का पालन करने वाले

ध्यान की अवस्था (ध्यानमग्न अवस्था का आनंद) के प्रेमियों के लिए

विद्वान महिलाएं, जो सभी सांसारिकता के दाग से मुक्त हैं। (403)

इन्होंने दान-पुण्य कर अपना उपवास तोड़ लिया।

उन्होंने अपने कटोरे धोए और एकांत में प्रसन्नतापूर्वक बैठ गए।

वे एक दूसरे से इस प्रकार बात करते रहे, पूछते और उत्तर देते रहे: (404)

'तुम्हारा रूप-रंग बहुत प्यारा है, इसिदासी।'

ताजा और अछूता, फिर भी आपकी स्त्री अपने चरम पर है।

आपने अपने पूर्व जीवन में क्या खामी देखी है?

क्या आपने अपनी नियति के लिए आत्मसमर्पण करना चुना?' (405)

फिर उस शांत जगह इसिदासी में,

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की व्याख्या करने में कुशल।

उसने उसकी बात को आगे बढ़ाया और इस प्रकार उत्तर दिया:

'सुनो, बोधि, मैंने कैसे संन्यास लिया (भिक्षुणी बनने के लिए)। (406)

अवंती के प्रमुख शहर उज्नेनी में,

मेरे पिता एक सदाचारी नागरिक के रूप में रहते हैं।

मैं, उनकी इकलौती बेटी, उनकी प्रियतम,

उनके जीवन का सबसे प्रिय और अनमोल खजाना। (407)

अब सकेता से एक नागरिक आया

प्रथम श्रेणी का और अत्यंत धनी

अपने बेटे के लिए मुझसे शादी का प्रस्ताव रखने के लिए।

और पिता ने मुझे उसे बहू के रूप में दे दिया। (408)

मैं सुबह और शाम को अपनी शुभकामनाएँ लेकर आया।

मेरे पति के माता-पिता दोनों को,

मैंने अपना सिर झुकाया और उनके चरणों में घुटने टेके,

मुझे दिए गए प्रशिक्षण के अनुसार। (409)

मेरे पति की बहनें और उनके भाई भी,

और उसके सभी रिश्तेदार जैसे ही अंदर दाखिल हुए, तभी

मैंने संकोची उत्साह से उठकर उन्हें जगह दी। (410)

और जहां तक भोजन, उबला हुआ या सूखा भोजन, और पेय पदार्थ की बात है,

जो कुछ संग्रहित करना था, उसे मैंने अलग रख दिया।

और उसे बाँट दिया और जिसका हक था उसे दे दिया। (411)

मैं समय से पहले उठकर घर में इधर-उधर घूमने लगा।

फिर मैंने अपने हाथ-पैर अच्छी तरह धोकर आगे बढ़ा।

अपने स्वामी (पति) को आदरपूर्वक अभिवादन करने के लिए, (412)

और कंघी, दर्पण, मलहम, साबुन लेकर,

मैंने उसे एक दासी की तरह कपड़े पहनाए और संवारा। (413)

मैंने चावल उबाले, मैंने बर्तन धोए;

और एक माँ के रूप में, अपने इकलौते बच्चे के लिए,

इसलिए मैंने अपने भले आदमी की सेवा की। (414)

मेरे लिए, जिसने इस प्रकार असीम परिश्रम किया,

और उन्होंने विनम्र मन से सेवा की।

मैं सुबह जल्दी उठती थी, हमेशा मेहनती और अच्छी थी।

मुझे उससे घृणा के सिवा कुछ भी महसूस नहीं हुआ। (415)

नहीं, अपनी माँ और अपने पिता के लिए वह

उन्होंने कहा:— 'आप मुझे अनुमति दीजिए और मैं चला जाऊंगा।'

क्योंकि मैं इसिदासी के साथ नहीं रहूँगा

एक ही छत के नीचे, और कभी भी उसके साथ न रहें।' (416)

'हे पुत्र, अपनी पत्नी के बारे में इस प्रकार मत बोलो,'

इसिदासी बुद्धिमान और विवेकशील है।

वह सुबह जल्दी उठने वाली और एक मेहनती गृहिणी हैं।

कहिए, क्या वह आपकी नजरों में बिल्कुल भी पसंद नहीं है? (417)

'वह मुझे किसी भी तरह से नुकसान नहीं पहुंचाती, फिर भी'

मैं इसिदासी के साथ कभी नहीं रह पाऊंगा।

मैं उसे कष्ट नहीं दे सकता। रहने दो, रहने दो!

आप मुझे अनुमति दीजिए और मैं चला जाऊंगा। (418)

और जब उन्होंने यह सुना, तो सास-ससुर ने

मुझसे पूछा गया: 'तो फिर आपने ऐसा क्या किया है जिससे किसी को ठेस पहुंची हो?'

बच्चे, हमसे खुलकर बात करो, और सच को वैसे ही बोलो जैसा वह है। (419)

मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया है जिससे किसी को ठेस पहुंचे या नुकसान हो।

न ही मैं बुरी बातों से नाराज होती हूँ। मैं क्या कर सकती हूँ?

क्या मेरे पति मुझे इतना नापसंद करते हैं?' (420)

अपने बेटे की रक्षा और सुरक्षा के लिए, वे मुझे वापस ले गए।

अनिच्छुक होकर, पिता के घर जाने के लिए, व्याकुल होकर,

व्याकुल होकर: 'हाय! हम टूट गए, प्यारी लक!' (421)

फिर पिता ने मुझे दूसरी बार दुल्हन के रूप में विदा किया।

मेरे पति के पिता द्वारा चुकाई गई आधी राशि से संतुष्ट। (422)

उस घर से भी, जब मैं वहाँ एक महीना रह चुका था,

मुझे वापस भेज दिया गया, हालांकि मैंने काम किया था और सेवा दी थी।

निर्दोष और सदाचारी, किसी भी दास के समान। (423)

और तीसरा, एक साधु जो भिक्षा मांग रहा था—

जो आत्मसंयमित था और नियंत्रण कर सकता था

साथी मनुष्यों में कृपा—मेरे पिता मिले

और उसने उससे इस प्रकार कहा: 'तुम मेरे दामाद बनो!'

आओ, उस फटे हुए वस्त्र और बर्तन को फेंक दो!' (424)

वह आया, और इस तरह हम आधे महीने और रुके रहे।

एक साथ। फिर उसने पिता से इस प्रकार कहा:

'हे प्रभु, मुझे मेरा वस्त्र, मेरा कटोरा और मेरा प्याला वापस दे दो।'

मुझे जाने दो ताकि मैं अपने बचे-खुचे टुकड़े फिर से खोज सकूँ। (425)

फिर उसके पिता, माता और पूरे कबीले ने उसे बुलाया

रिश्तेदारों के यह पूछने पर कि: 'आखिर यह क्या है?'

क्या तुम्हें यहाँ रहना पसंद नहीं है? जल्दी बताओ, क्या बात है?

हम ऐसा क्या कर सकते हैं जिससे आप और अधिक प्रसन्न हों?' (426)

फिर उसने कहा: 'अगर मैं खुद के लिए पर्याप्त हूं,

मेरे लिए इतना ही काफी है। एक बात मैं जानता हूँ:—नीचे

मैं इसिदासी के साथ एक छत के नीचे नहीं रहूँगा!' (427)

उसे बर्खास्त कर दिया गया। मुझे भी, मैंने सोचा, मैं भी अकेला ही चला गया।

और फिर मैंने अपने माता-पिता से मरने की अनुमति मांगी।

या फिर वे मुझे इस दुनिया को छोड़ने की अनुमति दें। (428)

अब लेडी जिनादत्ता अपने काम पर जुट गई हैं।

मैं अपने पिता के घर प्रतिदिन भिक्षा मांगने आता था।

वह हर नैतिक सिद्धांत का ध्यान रखती थी,

विनय (नैतिक नियमों) में विद्वान और विशेषज्ञ। (429)

और उसे देखकर हम उठे, और मैंने तैयारी की

उसके लिए एक आसन, और जैसे ही वह बैठी, मैं घुटनों के बल बैठ गया।

फिर उसे उबला हुआ और सूखा हुआ भोजन दिया, (430)

और पानी के बर्तन जो हमने अलग रखे थे—

और उसने अपनी भूख मिटा ली। फिर मैंने कहा:

'देवी, मैं संसार त्यागना चाहता/चाहती हूँ।' 'यहाँ क्यों?' (431)

मेरे पिता ने कहा, 'प्यारे बच्चे, तुम्हारे लिए अवसर हैं।'

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के अनुसार चलना। भोजन सहित।

और पेय पदार्थ पवित्र भिक्षुओं को तृप्त कर सकता है।

और द्विज (ब्राह्मण)। परन्तु मैं अपने पिता के बारे में, (432)

रोते हुए और हाथ जोड़कर उसने बेताबी से विनती की:

नहीं, लेकिन मैंने जो बुरा कर्म किया है,

ताकि मैं प्रायश्चित कर सकूँ और यह मिट जाए।' (433)

तब पिता ने कहा: 'तुम जाओ और ज्ञान प्राप्त करो।'

और सर्वोच्च धम्म (शाश्वत सत्य) का ज्ञान प्राप्त करो, और निर्वाण पाओ।

कि उन्होंने, जो कि सर्वोत्कृष्ट प्राणी (बुद्ध) हैं, यह जान लिया है। (434)

फिर मेरी प्यारी माँ और पिताजी को,

और मैंने अपने सभी रिश्तेदारों और परिवार को विदाई दी।

और सात दिन बाद ही मैं रवाना हुआ था।

मैंने त्रिविध ज्ञान[2] को स्पर्श किया और प्राप्त किया। (435)

तब मुझे अपने पूर्व जन्मों के बारे में पता चला।

यहां तक कि उनमें से सात भी, और मैं अब भी उसका फल भोग रहा हूँ।

जो फसल मैंने बोई, जो परिणाम आया।

अब मैं तुम्हें यही बताऊंगा, और तुम

मैं अपने (पूर्व जन्म की) कहानी को एकाग्रता से सुनूंगा। (436)

मेरे रहने से पहले एराकाचा के कस्बे में,

सोने के सभी कामों में निपुण एक धनी शिल्पकार।

युवावस्था के उमंग से उत्तेजित होकर, एक व्यभिचारी,

मैंने पड़ोसियों की पत्नियों के साथ (कामुक रूप से) आनंद लिया। (437)

उसके कारण मेरी मृत्यु हुई और मैं लंबे समय तक नरक में जलता रहा।

जब तक मैं पूरी तरह पककर बाहर नहीं आया, और फिर

उसे एक वानर के शरीर में पुनर्जन्म मिला। (438)

विशाल वानर के सामने मैं मुश्किल से सात दिन ही जीवित रहा।

बंदरों के सरदार ने मुझे नपुंसक बना दिया।

मेरी कामुकता का यही फल था। (439)

वहीं से सिंध के जंगलों में उनकी मृत्यु हो गई।

एक आँख वाली बकरी की संतान का पुनर्जन्म (440)

और लंगड़ा; बारह वर्ष तक नपुंसक अवस्था में रहा, कीड़ों द्वारा कुतरा हुआ।

मैं अस्वस्थ होने के कारण बच्चों को अपनी पीठ पर लादकर ले जाता था।

मेरी कामुकता का यही फल था। (441)

उससे मृत्यु होने के बाद, मुझे पुनः जन्म प्राप्त हुआ।

एक पशु व्यापारी की गाय का बच्चा,

लाख जैसे लाल रंग का एक बछड़ा; बारहवें महीने में (442)

नपुंसक बनाकर, जुते हुए, मैंने हल और गाड़ी खींची।

दूरदर्शिता का अभाव और चिंतित, प्रेरित और अयोग्य।

मेरी कामुकता का यही फल था। (443)

इसलिए सड़क पर भी उसकी मृत्यु हो जाती है

मैं एक घरेलू दासी की संतान के रूप में जन्म लिया।

न तो स्त्री और न ही पुरुष, मेरा लिंग (नपुंसक) है।

मेरी कामुकता का यही फल था। (444)

तीस वर्ष की आयु में मेरी मृत्यु हुई और मेरा पुनर्जन्म हुआ।

एक लड़की, एक ठेले वाले की बेटी, गरीब

और दुर्भाग्य से पीड़ित, और कर्ज के बोझ तले दबे हुए।

साहूकारों से लिया गया। (445)

ब्याज की उस राशि का भुगतान करने के लिए, जो लगातार बढ़ती और फैलती जा रही थी,

पैसे के बदले, कारवां का व्यापारी

मुझे रोते-बिलखते घसीटकर ले जाया गया, मैं तब छोटी थी।

मुझे मेरे घर से दूर ले जा रहे हैं। (446)

अब मैं सोलह वर्ष का हो चुका हूँ, जब मैं

एक लड़की के रूप में खिल उठी, वही व्यापारी का बेटा,

उनका नाम गिरिदास था, उन्होंने मुझसे प्रेम किया (447)

और उसने मुझे अपनी पत्नी बना लिया। उसकी एक और पत्नी थी।

एक गुणी और प्रतिष्ठित महिला,

अपने साथी की ओर आकर्षित। और इसलिए मैं लाया

उस घर में कलह और शत्रुता थी। (448)

मेरे कर्मों का फल यही था कि उन्हें यह सब झेलना पड़ा।

इस अंतिम जीवन में, आपने मेरा अपमान किया है, भले ही

मैंने उनके विनम्र दास के रूप में उनकी सेवा की।

अच्छा! अब मैंने इन सब बातों का अंत कर दिया है! (449)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/सांभाविकता) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] ज्ञानोदय के कारण तीन उपलब्धियाँ: (i) पिछले जन्मों का स्मरण, (ii) सर्वदर्शी दिव्य दृष्टि जो ब्रह्मांड में कहीं भी देख सकती है, और (iii) भीतर के सभी आसवों (इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं) का नाश, अर्थात् पवित्रता।

www.budsas.org से और अधिक जानकारी:

पाटलिपुत्त में, जो बाद में सम्राट अशोक की राजधानी बना, बोधि और इसिदासी नाम की दो भिक्षुणियाँ रहती थीं, जो आपस में गहरी सहेलियाँ थीं। दोनों ने सभी दोषों को नष्ट कर दिया था और ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक दिन दोनों सहेलियों ने अपने अतीत और भिक्षुणी बनने की दीक्षा के बारे में चर्चा की। वृद्ध भिक्षुणी बोधि ने बहुत कष्ट सहे थे। उन्होंने अपनी कहानी इसिदासी को सुनाई और फिर उस युवा और सुंदर भिक्षुणी से पूछा कि उन जैसी सुंदर और मनमोहक भिक्षुणी ने जीवन के कष्ट कैसे सहे।

तब इसिदासी ने अपनी जीवन कहानी सुनाई। उनका जन्म उज्जैन शहर में एक धनी व्यापारी की इकलौती लाडली बेटी के रूप में हुआ था। जब वह वयस्क हुईं, तो उनके पिता के एक मित्र, धनी व्यापारी ने अपने बेटे के लिए उनका हाथ मांगा। इसिदासी के माता-पिता इस प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि वे उस परिवार को अच्छी तरह जानते थे। एक आदर्श पुत्री होने के नाते, इसिदासी ने अपने पति और ससुराल वालों के सामने भी इन्हीं गुणों और व्यवहार का प्रदर्शन किया। जल्द ही उसने अपने सास-ससुर का दिल जीत लिया। इसिदासी को अपने पति से भी प्यार हो गया। नौकरों की मदद को नज़रअंदाज़ करते हुए वह खुद ही उनके खाने-पीने और ज़रूरतों का ख्याल रखती थी। हालांकि, उसके प्यार और आदर्श व्यवहार के बावजूद, उसका पति जल्द ही उससे ऊब गया।

अपने माता-पिता के सामने यह स्वीकार करते हुए कि इसिदासी निर्दोष थी, उसके पति ने ज़ोर देकर कहा कि वह अब उसके साथ नहीं रह सकता। हालांकि, चूंकि उसने कोई गलती नहीं की थी, इसलिए उसने शहर छोड़कर कहीं और नई ज़िंदगी शुरू करने का प्रस्ताव रखा। इसिदासी के सास-ससुर स्तब्ध रह गए। वे अपनी बहू से बहुत प्यार करते थे और उसे खोना नहीं चाहते थे। यह सोचकर कि उनके बेटे के मन में कोई ऐसी बात है जिसे वह बताने में हिचकिचा रहा है, उन्होंने इसिदासी से पूछताछ की। उसने सच-सच जवाब दिया कि उसने कुछ भी गलत नहीं किया है।

उसके सास-ससुर स्तब्ध और निराश हो गए। वे इसिदासी को अपनी बेटी की तरह प्यार करते थे। लेकिन वे नहीं चाहते थे कि उनका बेटा दूसरे शहर चला जाए। उन्होंने इसिदासी को उसके माता-पिता के पास वापस भेजने का फैसला किया, उन्हें पूरा विश्वास था कि अपनी सुंदरता और दयालुता के कारण उसे आसानी से कोई दूसरा उपयुक्त जीवनसाथी मिल जाएगा। इस अस्वीकृति से इसिदासी को गहरा सदमा लगा। बुद्ध के समय में भारतीय समाज में माता-पिता के पास वापस भेजा जाना एक अपमान और कलंक माना जाता था।

इसिदासी के माता-पिता इस घटना से व्याकुल थे। उन्होंने इस अपरिहार्य स्थिति को स्वीकार करते हुए एक उपयुक्त पति की तलाश शुरू की। जल्द ही उन्हें एक धनी युवक मिला जो इसिदासी की सुंदरता और व्यवहार से इतना मोहित हो गया कि उसने दुल्हन के पिता द्वारा दिए जाने वाले दहेज का आधा हिस्सा देने की पेशकश की। इसिदासी ने अपने नए पति पर पूरा ध्यान दिया और उनका अत्यंत सम्मान किया, फिर भी वही सिलसिला जारी रहा। एक महीने के भीतर ही उसने इसिदासी को उसके पिता के पास वापस भेज दिया और विवाह रद्द कर दिया, हालांकि वह अपनी आदर्श पत्नी के प्रति अपनी इस घोर नापसंदगी का कोई कारण नहीं बता सका।

इसिदासी पूरी तरह टूट गई थी। इस दूसरी बार ठुकराए जाने से उसका दिल ज़हर के तीर की तरह छलनी हो गया था। वह घर में उदास घूमती रहती थी। जब एक साधु उनके घर भीख मांगने आया, तो इसिदासी के हताश पिता ने उसे साधु को सौंप दिया। साधु अपने एकांत जीवन से संतुष्ट नहीं था। एक सुंदर पत्नी और आलीशान महल में विलासितापूर्ण जीवन की संभावना उसे लुभा रही थी। उसने अपना

भिक्षापात्र और वस्त्र इसिदासी के पिता को देकर उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। लेकिन दो सप्ताह बाद वह उसे वापस ले आया और अपना वस्त्र और वस्त्र वापस मांग लिया। उसने कहा, "वह इसिदासी के साथ एक ही छत के नीचे रहने की बजाय धरती का सबसे गरीब आदमी बनना पसंद करेगा।" बार-बार ठुकराए जाने का कारण जानने की विनती करने के बावजूद वह कोई कारण नहीं बता सका। उसने कहा, "उसे बस इतना पता था कि वह उसके साथ नहीं रह सकता।"

इसिदासी आत्महत्या करने को तैयार थी। तीन बार ठुकराए जाने का दुख और शर्म उसके लिए असहनीय थी। जब वह अपनी मृत्यु की योजना बना रही थी, तभी जिनाद्दता नाम की एक बौद्ध भिक्षुणी उनके घर भिक्षा मांगने आई। उनकी शांत और सौम्य प्रकृति से प्रसन्न होकर, इसिदासी ने अपने पिता से भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी। उनके पिता अनिच्छुक थे क्योंकि वे उनका साथ नहीं छोड़ना चाहते थे, लेकिन अपनी प्रिय पुत्री की आँखों में पीड़ा देखकर वे सहमत हो गए। फिर उन्होंने इसिदासी को निर्वाण की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

दीक्षा लेने के बाद, इसिदासी ने निर्वाण की परम आनंद प्राप्ति के लिए अपना सारा ध्यान केंद्रित किया। सात दिनों के भीतर ही उन्हें उच्च ज्ञान प्राप्त हो गया। इसिदासी अपने पिछले जन्मों को याद कर सकती थीं, प्राणियों के जन्म और मृत्यु को देख सकती थीं और सभी दुखों के नाश के लिए आवश्यक ज्ञान को ग्रहण कर सकती थीं। अपने पिछले जन्मों को देखकर इसिदासी को अपने असफल विवाहों का कारण समझ में आया।

उन्होंने अपने मित्र बोधि को अपने वर्तमान दुख का कारण समझाया। आठ जन्म पहले इसिदासी एक पुरुष के रूप में पैदा हुई थीं - एक धनी, सुंदर और आकर्षक सुनार। स्त्रियाँ उनकी ओर आकर्षित होती थीं और वे उनका लाभ उठाते थे, भले ही वे अन्य पुरुषों की पत्नियाँ और भोली-भाली लड़कियाँ थीं। वह एक स्त्री से दूसरी स्त्री के पास जाता रहा, दिल तोड़ता रहा, उसे इस बात का ज़रा भी एहसास नहीं था कि वह कितना दर्द और पीड़ा पहुँचा रहा है। वह बार-बार अपनी इच्छा पूरी करना चाहता था। वह बदलाव चाहता था। उसने कई दिल और शादियाँ तोड़ी थीं, इस बात से उसे ज़रा भी फ़र्क नहीं पड़ता था। ये सब उसके लिए उपलब्धियाँ थीं जिन पर वह गर्व कर सकता था।

मृत्यु के समय उसने अपना अंतिम नृत्य किया। उसे अपने द्वारा पहुँचाई गई पीड़ा का फल भुगतना पड़ा। मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म नरक में हुआ और उसने कई वर्षों तक उस अग्निलोक की यातना और पीड़ा सहन की। जिस प्रकार उसने दूसरों के दर्द की परवाह किए बिना पीड़ा पहुँचाई थी, उसी प्रकार उसने भी निर्दयता से यातना सहन की।

इसलोक के जीवनकाल तक नरक जैसी यातना सहने के बाद उसका पुनर्जन्म एक बंदर के गर्भ में हुआ। उसके जन्म के सात दिन बाद, नवजात बंदर से अपने पद को खतरा देखकर, बंदरों के सरदार ने उसके जननांगों को काट दिया और उसे नपुंसक बना दिया। इसिदासी ने भविष्य में होने वाली प्रतिद्वंद्विता को रोकने के लिए किए गए इस कृत्य का वर्णन किया है।

मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म एक भेड़ के रूप में हुआ, जो एक लंगड़ी, एक आँख वाली भेड़ की संतान थी। बारह वर्षों तक वह कष्टों में रहा, आंतों के कीड़ों से ग्रस्त रहा, बच्चों को ढोने और हल व गाड़ी खींचने का काम करता रहा, और उसे शायद ही कभी आराम मिलता था। वह कठिन परिश्रम ही था जिससे वह चंचल सुनार हमेशा बचता रहा था, और अब एक बोझ ढोने वाले जानवर के रूप में उसे वही कठिन परिश्रम सहना पड़ा। उसके मालिक ने उसे नपुंसक बना दिया था और उसका जीवन गहन परिश्रम से भरा हुआ था, और अपने अंतिम वर्षों में उसकी दृष्टि भी चली गई थी।

दो जन्मों तक पशु जगत में रहने के बाद उसका पुनर्जन्म मानव जगत में एक नर और मादा के मिश्रित रूप में हुआ। वह गटर में जन्मी एक दासी की संतान था। उसने एकांत और पीड़ामय जीवन व्यतीत किया, नर और मादा दोनों ने उसे त्याग दिया और उसे एक विचित्र प्राणी की तरह माना जाता था।

अपने अगले जन्म में उसका (पूर्व सुनार का) पुनर्जन्म एक स्त्री के रूप में हुआ। अब वह एक स्त्री बन गया था, जो उसकी पूर्व इच्छा का पात्र थी। उस स्त्री का पिता एक निकम्मा गाड़ीवान था जो हर काम में असफल रहा। उसने अपने कर्ज चुकाने के लिए अपनी बेटी को एक अमीर व्यापारी को सौंप दिया। बेटी की विनती के बावजूद, उसे व्यापारी के घर में दासी के रूप में रख लिया गया। वह सोलह वर्ष की थी और बेहद आकर्षक थी। कुछ समय बाद, घर के बेटे को उससे प्रेम हो गया और उसने उसे अपनी दूसरी पत्नी बना लिया। स्वाभाविक रूप से, पहली पत्नी इस व्यवस्था से बहुत असंतुष्ट थी। दासी ने अपनी नई स्थिति से संतुष्ट होकर पति-पत्नी के बीच कलह पैदा करने के लिए हर संभव प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप घर में बहुत झगड़े और कलह हुए, अंततः वह शादी तोड़ने और पति-पत्नी को अलग करने में सफल हो गई।

सुनार के रूप में उसके पिछले बुरे कर्मों का फल तो मिल चुका था। लेकिन उसके द्वारा उत्पन्न इस नए कष्ट का फल उसे भुगतना ही था। दासी का पुनर्जन्म इसिदासी के रूप में हुआ। अपने पिछले जन्म में उसने कलह पैदा की थी और पति-पत्नी को अलग कर दिया था, जिससे उन्हें बहुत दुख और पीड़ा हुई थी। अब उसे हर उस पुरुष के तिरस्कार और अस्वीकृति का सामना करना पड़ा जिससे उसकी शादी हुई। इस ग्रंथ में उन पुण्य कर्मों का उल्लेख नहीं है जो उन्होंने अपने चंचल व्यवहार से पहले किए होंगे, लेकिन उनके पतियों के प्रति उनकी करुणा, शांत स्वीकृति और समर्पण ने उनके पिछले अच्छे कर्मों को फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया। परिश्रम और लगन से इसिदासी ने निर्वाण (ज्ञानोदय) प्राप्त किया।

हम सभी इसिदासी की कहानी से सीख ले सकते हैं। समय के साथ, विशेषकर पश्चिमी दुनिया में, नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है। युवा लड़के-लड़कियाँ यौन व्यवहार को लेकर बहुत लापरवाह हो गए हैं और मीडिया और टेलीविजन ने विज्ञापनों, फिल्मों और पत्रिकाओं के माध्यम से यौन संबंध का महिमामंडन किया है। जो कभी अनैतिक माना जाता था, अब नैतिक माना जाता है। मानव जाति की अज्ञानता के बावजूद, कर्म का नियम लागू होता है। बुद्ध ने यौन व्यवहार के संबंध में पालन करने के लिए एक बहुत ही सरल नैतिक संहिता निर्धारित की। बौद्ध होने के नाते, हमें न केवल व्यभिचार और बलात्कार से दूर रहने की सलाह दी जाती है, बल्कि किसी भी प्रकार के अनुचित यौन व्यवहार के प्रति भी सचेत किया जाता है। इसमें माता-पिता, रिश्तेदारों और दोस्तों की देखरेख में रहने वालों के साथ संबंध और ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने वाले धार्मिक समुदायों के सदस्यों के साथ संबंध शामिल हैं। बौद्धों को आकस्मिक यौन संबंध में लिप्त नहीं होना चाहिए, बल्कि संयम बरतना चाहिए और अपनी इच्छाओं के आगे झुकने से पहले प्रेम और प्रतिबद्धता पर आधारित सार्थक, दीर्घकालिक संबंध बनाना सुनिश्चित करना चाहिए। बौद्धों को बाल शोषण और आकस्मिक संबंधों के कारण होने वाले विवाह विच्छेद और विघटन को रोकने के लिए भी सक्रिय रूप से काम करना चाहिए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> थेरिगाथा >> थेरिगाथा16.1
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटका के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||71|| ------>>>> अगला

16.1 सुमेधा, वारनावती के राजा कोंचा की पुत्री।
उन्होंने भी पूर्व बुद्धों के अधीन संकल्प लिया था और अनेक जन्मों में युग-स्थायी प्रभाव वाले अच्छे कर्म संचित करके ज्ञान प्राप्ति की पूर्ण तैयारी की थी। उनका जन्म कोनागमना बुद्ध के समय एक कुलवासी परिवार में हुआ था। जब वे वयस्क हुईं, तो उन्होंने और उनकी सहेलियों, जो कुलवासी पुत्रियाँ थीं, ने मिलकर एक विशाल उद्यान बनवाया और उसे बुद्ध और उनके संघ को सौंप दिया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म तैंतीस देवदूतों के स्वर्ग में हुआ। वहाँ दिव्य धन-संपत्ति का आनंद लेते हुए एक शानदार काल व्यतीत करने के बाद, वह एक बार फिर यम देवताओं (देवदूतों) के बीच, फिर तुषिता स्वर्ग के आनंदमय देवताओं (देवदूतों) के बीच, फिर निम्मनराती स्वर्ग के सुखी सृष्टिकर्ता देवताओं (देवदूतों) के बीच, फिर अन्य रचनाओं के संचालक देवताओं (देवदूतों) के बीच जन्म लेकर अंततः देवताओं (देवदूतों) के राजा की रानी बनीं।
उस समय से, जब कश्यप बुद्ध थे, एक धनी नागरिक की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उन्होंने एक गृहस्थ भक्त के रूप में उत्कृष्ट पुण्य अर्जित किया और तैंतीस देवताओं (देवदूतों) के बीच एक और पुनर्जन्म प्राप्त किया। अंततः, इस बुद्ध युग में, मंतवती नगर में, राजा कोंचा की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लेकर, उनका नाम सुमेधा रखा गया। और जब वह समझदार हुईं, तो उनके माता-पिता ने वारनावती के राजा अनिकरत्त को उनसे मिलने की अनुमति दे दी। लेकिन बचपन से ही उन्हें अपनी उम्र की राजकुमारियों और दासियों के साथ भिक्षुणियों के आश्रम में जाकर धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का उपदेश सुनने की आदत थी। अपने दृढ़ संकल्प के कारण वे लंबे समय से जन्म-जन्म के चक्र से भयभीत थीं, धर्म के प्रति समर्पित थीं और इंद्रिय सुखों से विमुख थीं।
इसी कारण जब उन्होंने अपने माता-पिता और रिश्तेदारों का निर्णय सुना, तो उन्होंने कहा, 'गृहस्थी के जीवन में मेरा कर्तव्य नहीं है। मैं संसार त्याग दूंगी (भिक्षुणी बनने के लिए)।' और वे उन्हें मना नहीं सके। उन्होंने सोचा, 'इस प्रकार मुझे संसार त्यागने की अनुमति मिल जाएगी,' और अपने निश्चय पर अडिग होकर अपने बाल काट लिए। फिर भिक्षुणियों से सुनी विधियों के अनुसार अपने बालों का उपयोग करते हुए, उन्होंने शारीरिक आकर्षण के प्रति घृणा पर ध्यान केंद्रित किया और 'अशुभ वस्तुओं' का विचार मन में लाते हुए प्रथम ध्यान (सम्मोहन अवस्था) प्राप्त की। और जब वह इस प्रकार एकाग्र ध्यान में लीन थी, तो उसके माता-पिता उसे विदा करने के लिए उसके कमरे में आए। लेकिन उसने पहले उन्हें, उनके सभी दल और राजा के सभी लोगों को धर्म में विश्वास दिलाया और भिक्षुणियों के आवास में संसार का त्याग करते हुए घर छोड़ दिया।
कुछ ही समय बाद, अंतर्दृष्टि ध्यान (विपश्यना[1]) में अच्छी तरह स्थापित होकर, और ज्ञानोदय (विमुक्ति, विमुक्ति) के लिए परिपक्व होकर, उसने धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) को उसके वास्तविक रूप और अर्थ में पूर्ण रूप से समझकर अरहंतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) प्राप्त किया। और अपनी विजय को याद करते हुए,वह परमानंद से भर उठी:

मंतावती में राजा हेरॉन की पुत्री,

उनकी प्रमुख पत्नी से सुमेधा का जन्म हुआ था।

कानून निर्माताओं को समर्पित। (450)

वह एक गुणी और वाक्पटु लड़की थी।

ज्ञानवान और हमारे भगवान बुद्ध की पद्धति में पारंगत

अच्छी तरह से प्रशिक्षित। उसने अपने माता-पिता से बात की।

और बोला: 'अब सुनो, माँ, पिताजी, दोनों! (451)

मैं निर्वाण के प्रति समर्पित हूँ।

क्षणभंगुर वह सब कुछ है जो घटित होता है।

भले ही उसमें किसी देवता (देवदूत) का स्वरूप हो।

तो फिर मुझे इस खाली जीवन का क्या करना होगा?

उस समझ का क्या अर्थ है, जो थोड़ा देती है, बहुत कुछ नष्ट कर देती है? (452)

वासनाएँ सर्प के विष के समान कड़वी होती हैं।

जिस समझदारी के लिए युवा मूर्ख तरसते हैं।

उस वजह से कई रातें दुख में गुज़रीं

वे दु:ख के लोकों में कष्टदायी जीवन व्यतीत करते हैं। (453)

पापी मन वाले, पापी लोग शोक मनाते हैं

जीवन नरक जैसा है। ये सब मूर्ख ही हैं।

कर्म, वचन और विचार में बिना किसी संयम के। (454)

लेकिन मूर्खों में न तो बुद्धि होती है और न ही इच्छाशक्ति।

वे यह नहीं समझ सकते कि दुख किस कारण उत्पन्न होता है।

जब उन्हें सिखाया जाता है, तब भी वे नहीं सीखते; क्योंकि उनका मन आलसी होता है।

आर्यों का चार प्रकार का सत्य जागृत नहीं होता। (455)

हे माता, वे सत्य जो प्रबुद्ध व्यक्ति को ज्ञात हैं,

सर्वश्रेष्ठ, जो बुद्ध ने हमें प्रकट किया है,

वे, यानी बहुसंख्यक लोग, नहीं जानते, और वे

पुनः जन्म लेने में आनंद लें,

और देवताओं (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेने की लालसा रखते हैं। (456)

यहां तक कि देवताओं (देवदूतों) के पास भी कोई शाश्वत घर नहीं है।

आवश्यकताएँ अस्थाई होनी चाहिए।

फिर भी वे मूर्ख आत्माएं भयभीत नहीं हैं।

बार-बार कहीं जन्म लेने के लिए आना। (457)

दुःखपूर्ण जीवन के चार मार्ग हैं (चार बुरे गंतव्य)।

और केवल दो ही कल्याण के मार्ग (2 अच्छे गंतव्य) [2]

और इन्हें जीतना कितना मुश्किल है! अगर कोई चार में आ जाए,

उन लोकों में कोई दीक्षा उपलब्ध नहीं है। (458)

(अर्थात, चार बुरे गंतव्यों में मन इतना परिपक्व नहीं होता कि धम्म को समझ सके)

आप दोनों मुझे अनुमति दें, कि मैं अपने संसार का त्याग कर दूं;

और दस शक्तियों के स्वामी (बुद्ध) की धन्य शिक्षा में[3]

बाहरी दुनिया की परवाह किए बिना, मैं जन्म और मृत्यु को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयास करूंगा। (459)

मैं अनेक जन्मों में आनंद कैसे ले सकता हूँ?

इस निर्जीव शरीर में, आत्मा के बिना झाग?

ताकि मैं प्यास को पूरी तरह से समाप्त कर सकूँ।

मुझे फिर से होने दो, मुझे आगे बढ़ने दो (तपस्वी बनने दो)। (460)

अब बुद्ध का युग है! अभाव का दौर समाप्त हो गया है।

अवसर का! पल जीत लिया!

हे भगवान, मेरे जीवन में ऐसा कभी न हो,

नैतिक उपदेशों (शील) दोनों को कम आंकना।

और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन!' (461)

सुमेधा ने इस प्रकार कहा, और फिर दोहराया: 'माँ'

और मेरे पिता, मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा।

एक आम महिला होने के नाते मैं अपना व्रत तोड़कर भोजन करती हूँ।

मैं यहीं लेटकर मरना पसंद करूँगा!' (462)

पीड़ित माँ रो रही थी; पिता स्तब्ध था।

दुःख के साथ, उसने उसे समझाने और सांत्वना देने का प्रयास किया।

जो महल के फर्श पर साष्टांग प्रणाम कर लेटा था, (463)

उन्होंने कहा, 'उठो, प्यारे बच्चे। यह उदासी क्यों?'

आपके लिए? आपकी शादी इसलिए हो रही है ताकि आप जाकर राज कर सकें।

वारनावती में, प्रतिज्ञा की गई दुल्हन

राजा अनिकारत्ता का, सुंदर युवक। (464)

तुम उसकी प्रमुख पत्नी, उसकी रानी बनोगी।

नन्हे बच्चे, इस दुनिया को छोड़ना कितना कठिन है!

नैतिक उपदेश (शील) और ब्रह्मचर्य जीवन कठिन हैं। (465)

रानी के रूप में आपको अधिकार प्राप्त होंगे।

धन-दौलत, संप्रभुता और विलासिता।

आपमें से जो इस मामले में सौभाग्यशाली हैं और युवा हैं, आनंद लें।

जीवन के मीठे पल। चलो तुम्हारी शादी में चलते हैं, बच्चे। (466)

तब सुमेधा ने उन्हें उत्तर दिया, 'नहीं, इस तरह नहीं!'

कोई आत्मा, कोई सार, विकास को जन्म नहीं दे सकता।

इनमें से कोई एक होगा – आप चुनिए कि कौन सा:

या तो मुझे इस दुनिया से विदा होने दो, या मुझे मरने दो।

इसलिए, और केवल इसलिए, मैं विवाह करना चुनूंगा। [4] (467)

इस गंदे, अपवित्र शरीर का क्या मूल्य है?

दुर्गंध उत्सर्जित करने वाला, भय का स्रोत, एक थैला

मैल से भरी, रिसती हुई, अशुद्ध त्वचा (468)

इस बीच? जो जानता है उसके लिए इसका क्या महत्व है?

घिनौना शव, मांस से लिपटा हुआ

और रक्त, कीड़ों का निवास स्थान, पक्षियों का भोजन—

ऐसी वस्तु किसे दी जाएगी? (469)

थोड़ी देर में उसे श्मशान घाट ले जाया गया।

जब चेतना शरीर से निकल जाती है, तो यह शरीर वहीं पड़ा रहता है।

जैसे बेकार लकड़ी का लट्ठा, जिससे रिश्तेदार भी मुंह मोड़ लेते हैं। (470)

जिस चीज से उन्हें नहलाना पड़ता है उसे फेंकना

पराई चीजों का भोजन, जिस पर पीछे हटना

स्वयं माता-पिता, उनके रिश्तेदारों की तो बात ही छोड़िए। (471)

उन्हें इस आत्माहीन (अनत्ता संस्कृत अनात्म) शरीर से लगाव है।

वह हड्डियों और नसों से बुना हुआ है, शरीर गंदा है,

अनेक प्रकार के रिसावों से भरा हुआ। (472)

जहां शरीर का विच्छेदन करना है, और उसे पलटना है

सबसे भीतरी बाहरी भाग, गंध से यह साबित हो जाएगा

माँ के लिए भी सहन करना असहनीय है। (473)

मेरे अस्तित्व के कारक, अंग, तत्व,

ये सभी क्षणिक यौगिक हैं, जिनकी जड़ें गहरी हैं।

जन्म में दुख है, और सबसे पहले और अंत में यही बात है।

मैं ऐसा नहीं करूँगा। फिर मैं किससे विवाह करना चाहूँगा? (474)

बल्कि मैं तो दिन-प्रतिदिन मृत्यु का सामना करना चाहूंगा।

तीन सौ भाले मुझे फिर से भेद रहे थे,

अगर ऐसा सौ साल तक भी होता तो

दर्द का अंतिम अंत करो, अन्यथा यह अंतहीन होगा। (475)

समझदार लोग इस सौदे को अंतिम रूप देंगे और मिलेंगे।

पूर्ण विनाश, क्योंकि उसका वचन,

गुरु (बुद्ध) कहते हैं: "लंबी यात्रा

जो लोग मारे जाते हैं, वे बार-बार पुनर्जन्म लेते हैं। (476)

मृत्यु से हमारा सामना अनगिनत तरीकों से होता है।

देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच, राक्षसों या जानवरों के रूप में,

भूतों के बीच, या नरक के कोठरियों में। (477)

और वहाँ कितने ही अभिशप्त और पीड़ाग्रस्त लोग रहते हैं!

स्वर्ग में भी हमें कोई निश्चित शरण नहीं मिलती।

इससे ऊपर कुछ भी नहीं है, निर्वाण का आनंद। (478)

और उन्होंने उस आनंद को प्राप्त कर लिया है जिसने उनके सभी हृदयों को मोह लिया है।

मैंने उनके पवित्र वचन के प्रति प्रतिज्ञा की है।

जो दस प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण है (बुद्ध), और किसी बात की परवाह नहीं करता,

जन्म और मृत्यु (पुनर्जन्म) को उनसे दूर रखने का प्रयास करो। (479)

हे पिता, आज मैं संन्यास लेने जा रहा हूँ!

मैं खोखली दौलत से कुछ भी नहीं लूंगा!

इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ मुझे विचलित और विक्षिप्त करती हैं, और वे मेरे लिए अभिशप्त हो गई हैं।

ठीक वैसे ही जैसे वह ठूंठ जहाँ कभी ताड़ का पेड़ खड़ा था। (480)

उसने अपने पिता से ऐसा कहा। अब राजा ने...

अनिकारत्ता, अपने प्रेम निवेदन के लिए जा रहा है

उसकी युवा दुल्हन की सहमति नजदीक आ रही थी।

निर्धारित समय पर। लेकिन सुमेधा (481)

उसके मुलायम काले बालों के गुच्छों को नीचे गिरने दिया गया

और फिर एक खंजर से उन्हें काट डाला। फिर बंद कर दिया।

वह दरवाजा जो उसके अपने सीढ़ीदार कमरों की ओर जाता था,

और तुरंत प्रथम ध्यान-उत्साह (ध्यानमग्न अवस्था का आनंद) प्राप्त हुआ। (482)

वह वहीं आनंद में डूबी बैठी थी, जबकि

अनिकारत्ता राजधानी पहुंच गया।

फिर वह अनित्यता के बारे में सोचने लगी।

अपने विचार का विकास करते हुए। (483)

इस बीच अनिकारत्ता तेजी से आगे बढ़ता है

महल की सीढ़ियाँ, रत्नों की शानदार श्रृंखला से सजी हुई।

और सोना, और झुककर सुमेधा से प्रेम निवेदन करता है। (484)

'मेरे राज्य पर शासन करो और मेरी संपत्ति का आनंद लो।'

और शक्ति। आप अमीर, खुश और इतने युवा हैं।

जीवन और प्रेम से मिलने वाली खुशियों का आनंद लें।

यद्यपि उन्हें जीतना कठिन होता है और कुछ ही लोग उन्हें जीत पाते हैं। (485)

मैं अपना राज्य आपको समर्पित करता हूँ!

आप अपनी इच्छानुसार इनका निपटान कर सकते हैं, और ढेर सारे उपहार दे सकते हैं।

निराश मत हो। तुम्हारे माता-पिता परेशान हैं। (486)

इस प्रकार सुमेधा के लिए, जिसके लिए इच्छाएँ

कामुक प्रेम व्यर्थ था, न ही किसी काम का।

गुमराह करने के लिए, उत्तर दिया: 'हे मत करो'

इस कामुक प्रेम के लिए आपकी इच्छाएँ।

सभी खतरों और इंद्रियों के सुखों को देखो। (487)

विश्व के चारों महाद्वीपों के राजा मंधाता

उसके पास अपनी इंद्रियों को संतुष्ट करने के लिए अधिक धन था

अन्य किसी भी व्यक्ति की तुलना में, फिर भी उनका निधन हो गया

असंतुष्ट, उसकी इच्छाएँ अधूरी रह गईं। (488)

नहीं, और वर्षा के देवता ने सातों प्रकार की वर्षा की।

पृथ्वी और आकाश रत्नों से भर जाने तक, फिर भी ऐसा ही होता रहेगा

इंद्रियों की लालसा बढ़ती है, और तृप्त न होने पर मनुष्य मर जाता है। (489)

'इंद्रिय-इच्छाएं तलवार की तेज धार के समान होती हैं।'

'जैसे सांपों के सिर झपटने के लिए तैयार हों।'

'जैसे धधकती मशालें,' और 'जैसे कुतरी हुई नंगी हड्डियाँ।' (490)

इंद्रियों की इच्छाएँ क्षणभंगुर और अस्थिर होती हैं।

पीड़ा से भरी और विष से लबालब, भयानक

छूने पर इतना तीव्र जलन होती है जैसे गर्म लोहे का गोला।

उनकी जड़ भी हानिकारक है और उनका फल भी हानिकारक है। (491)

जैसे 'फल' पर्वतारोही को पतन की ओर ले जाता है,

ये इंद्रिय-इच्छाएं हैं; बुराई 'मांस के लोथड़ों' के समान है।

वे लालची पक्षी एक दूसरे से छीन लेते हैं;

जैसे धोखा देने वाले 'सपने'; जैसे 'उधार ली गई वस्तुएँ' जिन्हें वापस प्राप्त किया गया हो। (492)

'जैसे भाले और बरछी वासनाओं की इच्छाएं हैं,'

'एक महामारी, एक फोड़ा, एक अभिशाप और एक मुसीबत।'

धधकते कोयलों की भट्टी, 'दुख का मूल कारण'

हत्यारा और भयावह भय का स्रोत। (493)

इसी प्रकार इंद्रिय-इच्छाओं की तीव्रता भी बढ़ गई है।

मोक्ष के मार्ग में आने वाली उन बाधाओं की घोषणा कर दी गई है।

जाओ, मुझे अकेला छोड़ दो, क्योंकि मुझे खुद पर भरोसा नहीं है।

जब तक इस संसार में मेरा कुछ हिस्सा और भाग्य शेष है। (494)

दूसरा मेरे लिए क्या करेगा? मेरे लिए

जिसका सिर आग की लपटों में लिपटा है, जिसके कदमों का पीछा किया जा रहा है

उम्र और मृत्यु से भी नहीं रुकता। कुचलने के लिए

मुझे उनके लिए पूरी तरह से प्रयास करना होगा। (495)

फिर अपने दरवाजे पर आकर उसने राजा को देखा।

उसका प्रेमी और उसके माता-पिता वहाँ बैठे थे

और आंसू बहाते हुए। और एक बार फिर उनसे बात की: (496)

उन्हें अभी भी दुनिया भर में भटकना बाकी है।

जो एक बार फिर बेसुध होकर अपने आँसू बहाते हैं,

पिता की मृत्यु पर रोने का कोई अंत नहीं है।

या तो भाई मारा जाए, या फिर उन्हें स्वयं मरना पड़े। (497)

आपको याद आता है कि कैसे कहा गया था कि आँसू

और दूध और रक्त इस संसार में अनंत काल तक बहते रहते हैं।

और याद रखें कि यह हड्डियों और खून का एक बंडल है।

उन प्राणियों द्वारा जो संसारों में विचरण करते हैं। (498)

चार महासागरों की तुलना को याद रखें

आंसुओं, दूध और खून के प्रवाह के साथ।

'एक आदमी की हड्डियों के विशाल ढेर' को याद रखें

केवल एक युग से, विपुल (पर्वत) के बराबर; (499)

और महान भारत (जम्बुद्वीप) भी पर्याप्त नहीं होगा।

मोल्ड की छोटी-छोटी गिनती वाली गेंदें प्रदान करने के लिए,

जिससे सभी पूर्वजों की गणना की जा सके

अपने जीवन चक्र का, अनंत संसार में। (500)

याद है वो छोटे-छोटे तिनकों के टुकड़े?

और पेड़ की शाखाएँ और टहनियाँ कभी भी पर्याप्त नहीं हो सकती थीं।

अपने पिता के लिए अनंत काल तक गिनती करो।' (501)

याद है वह दृष्टांत कैसे सुनाया गया था?

पूर्वी समुद्रों में रहने वाले मूर्ख कछुए के बारे में,

या फिर समय बीतने के साथ-साथ अन्य महासागर भी,

बहते हुए जुए के छेद से अपना सिर बाहर निकालते हुए;

मानव जन्म की संभावना इतनी दुर्लभ है। [5] (502)

शरीर से संबंधित दृष्टांत को भी याद रखें।

थूक का वह 'झाग का गुच्छा', जिसका कोई सार नहीं होता,

बहते रहना। यहाँ क्षणभंगुरता के पाँच कारक देखें।

और हे नरक को मत भूलो जहाँ बहुत से लोग कष्ट भोगते हैं। (503)

याद है हम श्मशान घाटों को कैसे भर देते हैं?

अब मृत्यु, अब कहीं और पुनर्जन्म।

'मगरमच्छों' के बारे में क्या कहा गया था, याद है?

और उन खतरों का हमारे लिए क्या मतलब था, और हे!

आप आर्यों के चार सत्यों को ध्यान में रखें। (504)

अब शाश्वत जीवन का अमृत (अमता/अमृत)[6] ज्ञात है

आप कामुकता के कड़वे पेय से कैसे संतुष्ट हो सकते हैं?

सेक्स समेत सभी इंद्रिय सुख कड़वे होते हैं।

और पांचों इंद्रियां कड़वी हैं (जो कड़वी पीड़ा की ओर ले जाती हैं) (505)

अब शाश्वत जीवन का अमृत ज्ञात हो चुका है।

आप कामुकता के उग्र आवेगों से कैसे संतुष्ट हो सकते हैं?

सेक्स समेत सभी इंद्रिय सुख तीव्र गति से प्रवाहित हो रहे हैं।

क्षय, उबलना, शोक और बुखार (506)

वहाँ है, जहाँ शत्रुता नहीं है! ओह कैसे

क्या आप इंद्रियों के सुखों से संतुष्ट हो सकते हैं?

तुम अनेक शत्रुओं के प्रकोप से खतरे में हो—उनका प्रकोप

या राजा का लालच, या चोर का, या प्रतिद्वंद्वी का, हानि

आग से हो या पानी से—हाँ, कितने सारे दुश्मन! (507)

ज्ञानोदय (मोक्खा, मोक्ष) को जानना बाकी है!

हे, तुम इंद्रिय सुखों से कैसे संतुष्ट हो सकते हो, जिनमें

क्या झूठ, बंधन और मृत्यु? हाँ, उन्हीं खुशियों में।

मृत्युदंड और जल्लाद घात लगाए बैठे हैं। जो लोग भोग-विलास करना चाहते हैं

उस समय से उनकी वासनाओं और आवश्यकताओं के कारण उन्हें कष्ट भोगना पड़ेगा। (508)

जो व्यक्ति भूसे की मशालें लंबे समय तक थामे रहेगा, वही उन्हें जलाएगा।

और चलिए नहीं चलते। तो, इस दृष्टांत में,

इंद्रिय वशीकरण उन्हें जलाता है जो इसे जाने नहीं देते। (509)

किसी व्यर्थ आनंद के कारण त्याग मत करो।

अर्थ की दृष्टि से, बड़ी खुशी उदात्त होती है,

नहीं तो, मछली की तरह आप कांटा निगल जाएंगे।

और फिर खुद को बर्बाद हुआ पाना (510)

अपने आप को इंद्रिय-इच्छाओं के वश में रखो, और न ही

तुम स्वयं उनसे बंधे रहो, जैसे कुत्ता बंधा रहता है।

जंजीर से बंधे हुए; अन्यथा वे काम चला लेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

तुम भूखे-प्यासे बहिष्कृत के साथ उस कुत्ते को खा गए। (511)

मैं एक बार फिर कहता हूँ, अथाह पीड़ाएँ

और मन की अनेक कष्टदायक पीड़ाएँ

तुम कामुक जीवन के बंधन में जकड़े हुए व्यथित हो। त्याग करो।

इंद्रिय सुखों का त्याग करो! वे नष्ट हो जाते हैं। (512)

एक ऐसी चीज है जो कभी बूढ़ी नहीं होती! ओह, कैसे

क्या आप इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से संतुष्ट हो सकते हैं?

इतनी जल्दी वह उम्र? क्या सभी चीजें पुनर्जन्म नहीं लेतीं?

चाहे वह कहीं भी हो, क्या वह बीमारी और मृत्यु से ग्रस्त है? (513)

यह जो कभी बूढ़ा नहीं होता, जो कभी मरता नहीं,

यह कभी बूढ़ा न होने वाला, कभी न मरने वाला मार्ग—

वहां कोई दुख नहीं आता, कोई शत्रु नहीं।

न ही यहाँ कोई भीड़ है; न कोई बेहोश होता है और न ही कोई असफल होता है।

न तो कोई भय आता है, न ही कोई ऐसी चीज जो पीड़ा देती हो—(514)

इसी मार्ग पर, अमृत के मार्ग (शाश्वतता/अमरता के मार्ग) पर, चले गए हैं

बहुत सारे। और आज भी, इसे जीतना बाकी है।

लेकिन केवल एक ऐसे जीवन से जो पूरी तरह से

भक्ति में समर्पित। परिश्रम न करो।

और तुम इसे प्राप्त नहीं कर पाओगे!' सुमेधा ने ऐसा कहा (515)

उसने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा कि उसे किसी भी चीज़ में कोई खुशी नहीं मिली।

वे गतिविधियाँ जो एक जीवन से दूसरे जीवन की ओर ले जाती हैं,

और, इस प्रकार अनिकारत्ता के मन में

यह कहते हुए उसने अपने लंबे बाल फर्श पर गिरा दिए। (516)

फिर वह हाथ जोड़कर फैलाते हुए उठ खड़ा हुआ।

और उसने अपने पिता से उसके लिए इस प्रकार विनती की:

हे सुमेधा को संसार छोड़ने (तपस्वी बनने) की अनुमति दो।

ताकि वह सत्य और मोक्ष/निर्वाण का निश्चय कर सके और उसे देख सके!' (517)

माता-पिता ने अनुमति दे दी और उन्होंने पुरोहिती दीक्षा प्राप्त कर ली।

वहाँ रुकने और भय तथा दुःख को बढ़ाने से डर लगता है।

अंतर्दृष्टि की छह शाखाएँ [7] उसने महसूस कीं,

एक शिक्षार्थी के रूप में, सर्वोच्च फल प्राप्त करना। (518)

यह कितना अद्भुत है! कितना चमत्कारी है!

राजा की पुत्री के लिए निर्वाण!

उसके पूर्व जन्मों में उसकी स्थिति और आचरण,

जैसा कि उसने अपने अंतिम जीवन में बताया था, ये बातें थीं: (519)

'जब कोनागमना यहाँ बुद्ध थे,

और एक नए निवास स्थान में, ऑर्डर के पार्क में,

मेरे दो दोस्तों और मैंने उसके घर में रहना शुरू कर दिया।

गुरु के उपयोग के लिए एक विहार (मठ) का निर्माण किया। (520)

और कई दशकों और सदियों के जीवन

हम देवताओं (देवदूतों) के बीच रहते थे, मनुष्यों की तो बात ही छोड़िए। (521)

हमारी महिमा और हमारी शक्ति महान है।

मुझे न तो देवताओं (देवदूतों) की बात करने की आवश्यकता है और न ही पृथ्वी पर प्रसिद्धि की।

क्या मैं एक सम्राट की पत्नी नहीं थी?

सात खजानों में से खजाना-महिला? (522)

गुरु (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म (शाश्वत सत्य) में धीरज रखना –

यही कारण था, यही स्रोत था, यही जड़ थी।

यह लंबी कारण-कार्य श्रृंखला की पहली कड़ी है।

यदि हम धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) से प्रेम करते हैं तो यही निर्वाण है। (523)

इस प्रकार कार्य करने वाले वे लोग जो उस पर भरोसा रखते हैं,

हे परम ज्ञान, अपनी सभी इच्छाओं और आशाओं को त्याग दो।

वापस अस्तित्व में आने का—और इस प्रकार मुक्त होने का

वे सभी वासनाओं के दाग से शुद्ध हो जाते हैं। (524)

[1] विपश्यना: यह बुद्ध द्वारा सिखाई गई 'विपश्यना' नामक सर्वोच्च अंतर्दृष्टि ध्यान को संदर्भित करता है, जिसमें अनासक्ति (समता/समभाव) के साथ आंतरिक घटनाओं (श्वास, शरीर, भावनाएँ, संवेदनाएँ और मन) पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और ज्ञानोदय प्राप्त होता है।
[2] 'नरक' में पुनर्जन्म, पशु के रूप में, भूत के रूप में, राक्षस के रूप में, ये चार बुरे गंतव्य ('शुद्धिकरण जीवन') हैं; अच्छे गंतव्य मनुष्य या देवदूत (देवदूत) के रूप में हैं।
[3] दशबल: तथागत की दस विशिष्ट शक्तियाँ हैं: (1) वे सही और गलत अवसरों को भली-भांति जानते हैं; (2) वे सभी कर्म-श्रृंखलाओं के प्रभाव को भली-भांति जानते हैं; (3) किसी भी कार्य को पूरा करने की विधियाँ; (4) संसार के तत्व (डेटा); (5) प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, झुकाव; (6) प्राणियों की क्षमताएँ; (7) सभी चिंतनशील अनुशासनों की प्रकृति और प्रक्रिया; (8) पूर्व जन्म। (9) उसे 'दिव्य दृष्टि' प्राप्त है; (10) उसने अरहंत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) के बौद्धिक ज्ञान (विमुक्ति, विमुक्ति) को प्राप्त कर लिया है।
[4] वरेय्यम। जैसा कि ऊपर बताया गया है, शाब्दिक रूप से, 'हे बालक, तुम्हारे लिए चुनाव हो,' उच्च जीवन में विवाह के लिए प्रयुक्त शब्द, चाहे इस मामले में स्त्री की कोई राय हो या न हो।
[5] शरीर (रूप) गंगा में बहते झाग के थक्के की तरह सार (आत्मा) से रहित है।
[6] अमृत = अमतान, जिसे इस कृति में अन्यत्र 'अमृत' के रूप में अनुवादित किया गया है, जो इसका व्युत्पत्ति संबंधी समकक्ष है। आमतौर पर निर्वाण के अनेक शब्दों में से एक माना जाता है, यहाँ टीका परंपरा द्वारा इसे धम्म से जोड़ा गया है - 'धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) का अमत, जिसे स्वयं बुद्ध ने अपनी महान करुणा से हमारे लिए लाया है'।
[7] इद्धि (जादुई क्षमता), किसी भी स्थान की शुद्ध श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व जन्मों (पुनर्जन्मों) की स्मृति, अन्य प्राणियों के पूर्व जन्म, भीतर आसवों (इंद्रिय इच्छाओं) का निवारण, अर्थात् पवित्रता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> टिप्पणीकार-एनवोई
श्रीमती राइस डेविड्स द्वारा 1909 के पुरातन अनुवाद से अनुकूलित,
www.tipitka.org पर पाली टिपिटक के साथ तुलना की गई
पिछला <<<<------ ||टिप्पणीकार-एनवोई|| ------>>>> अगला

टिप्पणीकार-परिशिष्ट

धर्मपरायण धर्म के माध्यम से लोगों के भजन

वे वास्तविक संतान और उत्तराधिकारी बन गए।

मुख से उत्पन्न, उस महान गुरु (बुद्ध) के द्वारा।

धम्म के राजा, धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) की संतान बने।

सभी सद्गुणों में श्रेष्ठ, अरहंतों,

जिसने वह सब कुछ संभव करवाया जो संभव था—

ये भजन, अन्ना (प्रबुद्ध अवस्था) के समय उनके द्वारा कहे गए शब्द।

उन्होंने घोषणा की थी, या जब भी की थी,

भिक्षु सुभूति की कविता से शुरू करते हुए,

थेरिका के नेतृत्व में थेरिस भजन के साथ-

ये सभी बातें संघ के नेताओं ने स्वीकार कीं।

और एक क्रमबद्ध धारावाहिक में संकलित किया गया,

थेरागाथा-थेरिगाथा नाम दिया गया।

उस कार्य के महत्व को स्पष्ट करने के लिए

तीन पुरानी टीकाएँ अभी भी मौजूद हैं।

मैंने इस व्याख्या को करने का प्रयास किया है।

जिसकी रचना करना, जहाँ भी उपयुक्त हो,

मैंने उच्चतम अर्थ को व्यक्त करने का प्रयास किया।

मैंने इसका नाम परमत्था-दीपानी रखा;

जिसका संपूर्ण कार्य अब पूर्णतः संपन्न हो चुका है,

व्यवस्थित निर्णय द्वारा व्यवस्था की जाती है,

पवित्र ग्रंथ के पाठ के लिए,

अध्याय संख्या बानवे में।

इस प्रकार ऐसी अच्छी चीजों की प्रभावकारिता से

जैसा मुझे दिया गया है, मैंने उसे लागू किया है।

क्या मैंने वचन की महिमा को उजागर किया है?

जगत के स्वामी की व्यवस्था;

कि वे समस्त सत्य में अपनी शुद्ध प्राप्ति के द्वारा

और सद्गुण का स्वाद सभी मनुष्य चख सकते हैं।

आत्मज्ञान का सार (विमुक्ति, विमुक्ति)।

बुद्ध के वचन और धर्म सदा अमर रहें।

और यह सदा आदरणीय रहे।

हर उस प्राणी द्वारा जिसमें जीवन और सांस है!

और मौसम के देवता उचित समय पर कृपा करें।

धरती पर वर्षा भेजो, और सर्वशक्तिमानों की कृपा हो।

धम्म (धर्म) के मार्ग से संसार पर शासन करो।

धम्म (शाश्वत सत्य का मार्ग) के प्रेमियों के रूप में!

इस प्रकार, पादरा-तीत्थ-विहार (मठ) में निवास करने वाले आचार्य धम्मपाला थेरा द्वारा थेरिगाथा पर की गई टीका समाप्त होती है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 28.यशोधरा, भगवान बुद्ध की पत्नी

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

<<<< पिछला । अगला >>>>

यह पृष्ठ वास्तव में अपदाना ग्रंथ से संबंधित है। यह भगवान बुद्ध की पत्नी, यशोदरा के बारे में है, जिन्हें यशोवती, भद्धकंचना या बिम्बादेवी भी कहा जाता है। वे अपनी सास, रानी महा-प्रजापजी-गोतमी के साथ भिक्षुणी बन गईं और भिक्षुणियों के लिए बने अलग मठ में रहने लगीं। उन्होंने धम्म के मार्ग पर चलते हुए सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध के परिवार के बारे में बौद्ध धर्म से संबंधित अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न 20 भी देखें ।
78 वर्ष की आयु में अपने शरीर त्यागने के दिन उन्होंने ये बातें कहीं:

28. यशोदरा (बुद्ध की पत्नी)

एक समय पुरुषों का नेता राजगाह शहर में एक पहाड़ी गुफा में ठहरा हुआ था।

जो सुंदर और समृद्ध था। [952]693

उस समय यही तर्क दिया गया था।

उस नगर में निवास करने वाली यशोधरा नामक भिक्षुणी द्वारा,

एक सुंदर मठ के अंदर [वहाँ]: [953]

“नंदा, राहुल (पुत्र) और भद्दा; साथ ही दो प्रमुख अनुयायी; सुद्धोदन महाराजा (राजा और ससुर)।”

और गोतमी प्रजापति (रानी, बाद में भिक्षुणियों की प्रमुख); [954]

महान ख्याति के महान थेरा; और महान शक्तियों वाली थेरी:694 वे शांतिपूर्ण [निर्वाण] में चले गए हैं, दीपक की लौ की तरह निशानहीन। [955]

जब तक संसार का स्वामी जीवित है, मैं भी उस शांतिपूर्ण मार्ग पर चलूंगा।” और इन सब बातों पर विचार करने के बाद,

उसने अपने जीवन के अंत का पूर्वाभास कर लिया था। [956]

यह पूर्वाभास करते हुए कि जीवन के सभी तत्व उसी दिन नष्ट हो जाएंगे, वह अपने आश्रम से निकल पड़ी।

अपना वस्त्र और कटोरा लिए हुए। [957]

एक लाख 695 भिक्षुणियों द्वारा सम्मानित, [यशोधरा नामक भिक्षुणी,] अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत बुद्धिमान,

[तब] संबुद्ध के पास गया। (1) [958]

संबुद्ध की पूजा करने के बाद,

पहिए के निशान वाले [पैरों के तलवों] पर, एक तरफ बैठे हुए [उसके बगल में]

उसने शिक्षक से ये शब्द कहे: (2) [959]

693 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

694 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

695 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

अब मेरी उम्र अठहत्तर वर्ष हो गई है, बुढ़ापे का अंतिम चरण आ चुका है;

मैं महान ऋषि को रिपोर्ट कर रहा हूँ:

मैंने गुफा में [संतत्व] प्राप्त किया है। (3) [960]

अब मेरे लिए बुढ़ापा परिपक्व हो चुका है;

सचमुच मेरा जीवन तुच्छ है। मैं तुम्हें सब कुछ त्यागकर चला जाऊंगा।

मेरी शरण स्वयं में ही बनी है। (4) [961]

बुढ़ापे के अंतिम दिनों में,

मृत्यु शरीर को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ देती है;

आज रात को, महान नायक,

मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। (5) [962]

जहां न जन्म है, न बुढ़ापा, न बीमारी और न मृत्यु, हे महान ऋषि, मैं उस महान नगर की ओर जा रहा हूँ।

[जो,] बिना शर्त, उसकी कोई मृत्यु नहीं होती। (6) [963]

इस विशाल जनसमूह में,696 ये सभी शिक्षक का आदर करते हैं,697 और जानते हैं कि प्रत्येक अपूर्णता

आमने-सामने क्षमा की जाती है, ऋषि। (7) [964]

पिछले जन्मों में (पूर्व जन्मों में) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना।

अगर मैंने कभी आपको परेशान किया हो,699

मैं इसकी घोषणा कर रहा हूँ, महान नायक;

कृपया मेरी अपूर्णता को क्षमा करें। (8) [965]

उसकी बात सुनकर ऋषियों के स्वामी (बुद्ध) ने 700 कहा: "मैं तुमसे इससे बेहतर और क्या कह सकता हूँ?

आप निर्वाण कब प्राप्त करेंगे? [966]

अब अपनी महाशक्तियों का प्रदर्शन करो, हे मेरे विधान के कर्ता;

व्यवस्था में संदेह को रहने दो

सभी सभाओं के लिए काट दिया जाए।"702 (9) [967]

696 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

697, अर्थात् तैंतीस देवता।

698 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

699 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

700 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

702 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

ऋषि के वचन सुनकर, बौद्ध भिक्षुणी यशोदरा ने ऋषियों के राजा की आराधना की।

[तब] ने [बुद्ध] से यह भाषण दिया: [968]

मैं यशोदरा हूं, हीरो;

घर में मैं तुम्हारी मुख्य रानी थी,703

शाक्य वंश में जन्मा,

महिलाओं के बीच स्थापित.704 (10) [969]

हे वीर, आपके घर में, मैं

वह नेता था, सबका स्वामी था।

वहाँ मौजूद [महिलाओं की संख्या]

एक लाख छियानवे. (11) [970]

वे सभी महिलाएं, जो सौंदर्य और शालीनता के गुणों से परिपूर्ण हैं, युवा और सुभाषी हैं, आदर करती हैं...

मुझे, जैसे लोग देवताओं की पूजा करते हैं।705 (12) [971]

शाक्यन पुत्र के घर में हजार कन्याओं की नेता,

सुख और दुख में वे एक समान हैं,706

जैसे देवता [उस बगीचे में जिसका नाम] “आनंद” है। (13) [972]

इच्छा के सार से परे, सौंदर्य के सार के रूप में स्थिर,

सुंदरता के मामले में उनका कोई मुकाबला नहीं है।

विश्व के नेता के अलावा।" (14) [973]

इन शब्दों से शुरू होने वाले शब्द बोलते हुए, आकाश में उठकर,

यशोदरा ने विविध प्रकार के प्रदर्शन किए।

बुद्ध की अनुमति से शक्तियाँ,707। [974]708

संबुद्ध की उपासना करते हुए, उसने गुरु को अलौकिक शक्तियाँ दिखाईं।

उसने असाधारण महाशक्तियों का प्रदर्शन किया।

703 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

704 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

705 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

706 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

707 puṇṇā ti nāmaŋ

708 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

709 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्निका के लिए

710 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

विविध, विभिन्न रूपों वाला। (15)711

शरीर ब्रह्मांड जितना विशाल है,712

उसने उत्तर में महाद्वीप713 को अपना सिर बनाया; पूर्व और पश्चिम को अपने पंख; और भारत को अपना धड़ बनाया; (16) [975]

पूंछ के पंख: दक्षिणी महासागर; [अन्य] पंख: विभिन्न नदियाँ;

उसकी आंखें चांद और सूरज जैसी थीं।

[उसका] प्रतीक ब्रह्मांडीय माउंट मेरु था। (17) [976]

[उसकी] चोंच में, दुनिया के छोर पर स्थित पर्वत,714 [वह] एक पेड़715 को उसकी जड़ों सहित ले जा रही थी। उसके पास आकर, [उसे] पंखा झलते हुए,]

वह विश्व नेता की पूजा कर रही है। (18) [977]

उसने स्वयं को हाथी, घोड़ा, पर्वत, सागर, चंद्रमा और सूर्य, मेरु पर्वत का रूप धारण किया।

और शकरा, [देवताओं का राजा]। (19) [978]

उसने हजार गुना संसार को खिलते हुए कमलों से ढक दिया,717 [और फिर कहा,] “मैं यशोदरा हूँ, वीरांगना;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे आँखों वाले।” (20) [979]

और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का रूप प्रकट करते हुए, उन्होंने पुण्य के सिद्धांत का प्रचार किया;718 “मैं यशोदरा, वीरांगना हूँ;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।” (21) [980]

711 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

712 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

713 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

714 डांटो , या "वश में किया हुआ"

715 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

716 vimutt'o

717 सिंगी-निक्खा-सवण्णो , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

718 ये पंक्तियाँ (पीटीएस में 41 अक्षर, बीजेटीएस में 40 अक्षर [जो पुराणजतिलेहि के बाद 'च' को छोड़ देता है]) पीटीएस और बीजेटीएस दोनों द्वारा एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, हालांकि वे दो पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ती हैं और मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि इस "श्लोक" को छंद के अनुसार कैसे समझा जाए। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण में विकृत हो गया है? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे सटीक अनुवाद का प्रयास किया है , अर्थात् 12-12-12-12 छंद (जो संचरण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों के लोप [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों के लोप [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले छंद-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूलभूत इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

मैंने “दिव्य श्रवण” जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (22) [981]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (23) [982]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान नायक। (24) [983]

विश्व-स्वामियों, 719 सभी बुद्धों के साथ मेरी मुलाकात आप लोगों को अच्छी तरह से दिखाई दी; 720 उनके प्रति मेरी व्यापक सेवा

यह आपके लिए था, हे महान ऋषि। (25) [984]

हे ऋषि, मेरे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों को याद कीजिए; उनसे मुझे पुण्य प्राप्त हुआ था।

हे महान नायक, आपके लिए। (26) [985]

मैंने कदाचार से परहेज किया, बाधा उत्पन्न की 721

[नौ] असंभव स्थान;722

मैंने जीवन का बलिदान दिया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (27) [986]

मैंने स्वयं को पत्नी बनने के लिए समर्पित कर दिया।

कई दसियों अरब गुना। मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं थी।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (28) [987]

मैंने स्वयं को सेवा में समर्पित कर दिया, कई दसियों अरब बार। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (29) [988]

719 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

720 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"

721 #23, ऊपर

722 शाब्दिक अर्थ, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश " , शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

723 y'akkho

मैंने कई दसियों अरब बार भोजन उपलब्ध कराने के लिए खुद को समर्पित किया। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (30) [989]

मैंने तुम्हें अपने सारे जीवन दे दिए हैं, कई दसियों अरब बार। मैं स्वयं को भय से मुक्त करूँगा।

मैं अपना जीवन [एक बार फिर] त्याग दूँगा। (31) [990]

हे महान ऋषि, आपके लिए मैं एक स्त्री की चीजों को नहीं छुपाती, विभिन्न प्रकार के कई वस्त्रों को छुपाती हूँ।

725 [मेरे] अंगों पर लगे आभूषण। (32) [991]

धन-दौलत और अनाज, गाँव और छोटे कस्बे भी त्याग दिए गए हैं।

खेत और बेटे और बेटियाँ [भी]

हे महान ऋषि, त्याग दिया गया है। (33) [992]

हाथी, घोड़े, गायें, गुलाम और नौकरानियाँ सभी को अनगिनत मात्रा में त्याग दिया गया है।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (34) [993]

मुझे जो भी देने को कहा जाएगा

मैं भिखारियों को दान के रूप में वह देता हूँ; मुझे किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं दिखती।

अंतिम उपहार देने से। (35) [994]

मुझे 727 बीमारियों का अनुभव हुआ है

इस बहुविविध अस्तित्व में अनगिनत प्रकार के लोग मौजूद हैं।728

हे महान नायक, आपके लिए। (36) [995]

मुझे सुख-सुविधाएं प्राप्त करने में कोई रोमांच नहीं मिलता;

मुझे 729 परेशानियों से कोई परेशानी नहीं होती। मैं हर जगह संतुलित रहता हूँ।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (37) [996]

[दोनों] का अनुभव करने के बाद

724 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, "वे लोग जिनके पास नहीं है"

725 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

726 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

727 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

728 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

729 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप पढ़ रहे हैं

मार्ग में सुख और दुख दोनों का सामना करते हुए, महान ऋषि ने ज्ञानोदय प्राप्त किया।

वह शिक्षा जिसके लिए बुद्ध ने प्रयास किया। (38) [997]

आपके और मेरे द्वारा अन्य विश्व-स्वामियों से बहुत मुलाकातें हुईं, चाहे आप ब्रह्मा हों या कोई और।

गौतम बुद्ध, 733 विश्व के नेता। (39) [998]

मैंने बहुत सारी सेवाएँ कीं।

हे महान ऋषि, आपके लिए;

जब आप बुद्ध की शिक्षाओं की खोज कर रहे थे,734

मैं [हमेशा] आपका परिचारक था। (40) [999]

एक लाख युग [और]

चार अगणनीय [युग]

अतः, दीपांकर, महान नायक,

विश्व के नेता का जन्म हुआ। (41) [1000]

पास के किसी देश में, उसे आमंत्रित करते हुए, उस दिवंगत आत्मा के प्रसन्न मन वाले लोग सफाई कर रहे हैं।

जिस सड़क से वह आ रहा है। (42) [1001]

उस समय सुमेधा नाम का एक ब्राह्मण था। वह मार्ग तैयार करवा रहा था।

उस सर्वज्ञ के लिए जो आ रहा था। (43) [1002]

उस समय मैं एक कुंवारी लड़की थी, जो एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी थी और सुमित्ता नाम से जानी जाती थी।

मैं उस सभा में गया। (44) [1003]

शिक्षक को अर्पित करने के लिए नीले कमल के आठ मुट्ठी भर फूल (735) के साथ

सभी लोगों के बीच

मैंने उस भयंकर [तपस्वी] ऋषि को देखा।736 (45) [1004]

730 शाब्दिक अर्थ, "भविष्य में" (एकवचन)

731 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

732 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

733 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

734 में जटाम्ह का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस अजता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

735 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

736 लिट., "हर समय हम नहीं हैं..."

उसे छाल के ऊपर बैठे हुए देखकर,737 उत्कृष्ट738 और मनमोहक,739 तब मैंने [अपने मन में इस प्रकार सोचा:]

"[यह] मेरा जीवन फलदायी हो रहा है।" (46) [1005]

उस समय मैंने उस ऋषि को देखा

वह प्रयास [जो उस समय] फलदायी हो रहा था;

पिछले कर्मों के कारण, मेरा

संबुद्ध में हृदय प्रसन्न हुआ। (47) [1006]

मेरे हृदय को और भी प्रसन्न करते हुए, मैंने कहा, "हे उच्च विचारों वाले ऋषि,

कोई और उपहार न देखकर [देने के लिए]

मैं तुम्हें फूल दे रहा हूँ, ऋषि।740 (48) [1007]

हे ऋषि, आपके लिए पाँच मुट्ठी भर हैं;

शेष तीन741 मेरे लिए हैं।

इस [उपहार] के माध्यम से सफलता मिले।

हे ऋषि, आपके जागरण के लिए। (49) [1008]

चौथा पाठ भाग

तब उस ऋषि ने, ज्ञानोदय के लिए, फूल लेकर लोगों के बीच पूजा की।

हे प्रसिद्ध, महान ऋषि 745 जो आ रहे थे। (50) [1009]

महान ऋषि [जिनका नाम] दीपांकर था, ने [उन्हें] लोगों के बीच देखकर [भविष्य में बुद्धत्व प्राप्त होने की] भविष्यवाणी की।746

[उस] ऋषि के लिए जिसका मन ऊँचा है। (51) [1010]

महान ऋषि दीपांकर ने भविष्यवाणी की कि मेरा कर्म असंख्य युगों तक जारी रहेगा।

737 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

738 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("पिछले कर्मों के फल के बाद")

739 संसारपथ-नित्तिना

740 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo ("अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा")

741 t'ato tato

742 BJTS और PTS में वैकल्पिक रूप से saha के स्थान पर samā ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

743 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

744 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

745 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

746 शाब्दिक अर्थ, "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

हे महान ऋषि, आपकी महिमा हो: (52)747

वह आपके जैसी ही स्वभाव और आचरण वाली पत्नी होगी; इसी कर्म के फलस्वरूप वह प्रेममय होगी।

हे महान ऋषि, आपके लिए।748 (53) [1011]

सुंदर दिखने वाली और बेहद प्रिय, आकर्षक, मीठी बातें करने वाली, वह एक प्यारी महिला होगी।

[और] आपके सिद्धांतों में एक उत्तराधिकारी। (54) [1012]

जिस प्रकार स्वामी अपने द्वारा संचित वस्तुओं की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार यह भी उनकी रक्षा करेगा।

[सभी] चीजें जो स्वास्थ्यवर्धक हैं। (55) [1013]

आपके भविष्य के प्रति करुणा से भरी, वह आपकी सभी खूबियों को पूरा करेगी। पिंजरे से मुक्त हुए शेर की तरह,

वह जागृति प्राप्त करेगी।" (56) [1014]

बुद्ध के वचन से प्रसन्न होकर, मैंने उसी प्रकार व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत किया।

बुद्ध ने असंख्य युग पहले मेरे लिए भविष्यवाणी की थी। (57) [1015]

जब मैंने वह कर्म सफलतापूर्वक पूरा किया तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

मैंने अनगिनत गर्भाशयों का अनुभव किया है,

दैवीय [साथ ही] मानवीय [लोग]। (58) [1016]

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख और दुख का अनुभव करते हुए, जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

मैं शाक्यान वंश में पैदा हुआ था। (59) [1017]

सुंदर और अत्यंत धनी, प्रसिद्ध और उतनी ही गुणी; हर योग्यता से संपन्न।

मैं कुलों में बहुत सम्मानित हूँ। (60) [1018]

747 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

748 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

749 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

750 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

धन-दौलत, शोहरत, आतिथ्य सत्कार,

और सांसारिक चीजों में लिप्त होना — ये मेरे मन को विचलित नहीं करते;751

मुझे किसी भी चीज से डर नहीं है। (61) [1019]

मुझे उपस्थित होने के लिए नियुक्त किया गया था

भगवान बुद्ध ने राजा के हरम में जो कहा था, उस पर

तब क्षत्रिय नगर में। (62)752

मैं एक नौकरानी हूं।

और [वह] जो सुख और दुख का अनुभव करती है, एक महिला753 जो तथ्यों की घोषणा करती है,

एक महिला754 जो दयालु है। (63)

मैंने पाँच अरब बुद्धों को, और नौ अरब अन्य बुद्धों को भी, विशाल दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के ऊपर देवता.755 (64)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

ग्यारह अरब [अन्य लोगों] के लिए

और पचास अरब [बुद्ध और]। (65)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (66)

बीस अरब [अन्य] बुद्ध और [एक और] तीस अरब —

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (67)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

चालीस अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] पचास अरब। (68)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

751 लिट., “मेरे मन में कोई हलचल नहीं है”

752 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

753 लिट., “और एक महिला”

754 लिट., “और एक महिला”

755 etesaŋ devedevānaŋ

756 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (69)

साठ अरब [अन्य] बुद्ध, [एक और] सत्तर अरब –

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (70)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

अस्सी अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] नब्बे अरब। (71)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (72)

लाखों-करोड़ों

जो विश्व के प्रमुख नेता थे; मैंने उन्हें व्यापक दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (73)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

एक और नब्बे ट्रिलियन तक

जो विश्व के नेता भी थे। (74)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ (75)

महान ऋषियों को [जिनकी संख्या थी]

आठ सौ पचास ट्रिलियन, और सात सौ पचासी अरब [अतिरिक्त बुद्ध]। (76)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (77)

हे अकेले बुद्धों, वासना से मुक्त, छह सौ चालीस मिलियन; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (78)

बुद्धों के अनगिनत अनुयायी,

मैं दोषों से मुक्त और निष्कलंक हूँ; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (79)

मैं हमेशा शिक्षण का अभ्यास करता हूँ।

उन लोगों में से जो शिक्षाओं का अभ्यास करते हैं,759

शिक्षण का अभ्यास करते समय सहज महसूस करना,

इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में। (80)

शिक्षण-अभ्यास का अच्छी तरह से अभ्यास किया जाना चाहिए;

वह अभ्यास कुप्रथा नहीं है। [मैं] इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में शिक्षण का अभ्यास करने में सहज हूँ। (81)

पुनर्जन्मों से विरक्ति होकर, मैं हजारों भिक्षुणियों से घिरी हुई, निर्जनता (त्याग) की राह पर चल पड़ी।

कुछ भी त्यागने के बाद। (82) [1020]

अपना घर छोड़ने के बाद,

मैं बेघर हो गया।

जब आठ महीने 760 अभी बीते भी नहीं थे

मैंने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (83) [1021]

समुद्र की लहरों की तरह, लोग अनेक प्रकार के मठवासी वस्त्र और भिक्षा लेकर भोजन के लिए आ रहे हैं।

आवश्यकताएँ [साथ ही] आवास। (84) [1022]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (85) [1023]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (86) [1024]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान (महाशक्तियां) प्राप्त कर लीं।

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (87) [1025]

757 या करें: कारती से

758 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

759 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

760 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse (“आधा महीना”) पढ़ता है

761 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

इस प्रकार अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुख होते हैं;

अब शुद्ध जीवन प्राप्त हो चुका है।

मैंने सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। [1026]762

जो स्त्री स्वयं को महान ऋषि के पुण्य के लिए समर्पित करती है, उसे [उनका] साथ और [अपूर्ण निर्वाण] प्राप्त होता है। [1027]

अतीत पूरी तरह से नष्ट हो गया है, और वर्तमान और भविष्य भी; मेरे सारे कर्म नष्ट हो गए हैं:

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।" [1028]

इस प्रकार भिक्खुनी यशोदरा ने ये श्लोक कहे।

यशोदरा थेरी763 की कथा समाप्त हुई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> अध्याय 1: एकल छंद (अंश)
पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994

अंतर्वस्तु
1थिग 1 पीटीएस: थिग 1-18- अध्याय 1: एकल छंद (अंश)
1.1I.1 — एक अनाम भिक्षुणी {v. 1}
1.2I.3 — पुन्ना {v. 3}
1.3I.11 — मुत्ता {v. 11}
1.4I.17 — धम्म {v. 17}
थिग 1 पीटीएस: थिग 1-18- अध्याय 1: एकल छंद (अंश)
I.1 — एक अनाम भिक्षुणी {v. 1}

सो जाओ, नन्ही थेरी, आराम से सो जाओ।
आपके द्वारा बनाए गए वस्त्र में लिपटा हुआ,
क्योंकि तुम्हारा जुनून शांत हो गया है —
जैसे अचार वाली हरी सब्जियों का एक बर्तन
उबालकर सुखा दिया गया।

I.3 — पुन्ना {v. 3}

पुन्ना, अच्छे गुणों से परिपूर्ण हो जाओ
पंद्रहवें दिन के चंद्रमा की तरह।
पूर्ण विवेक के साथ, फूट पड़ो
सामूहिक
अंधेरे का।

I.11 — मुत्ता {v. 11}

कितना मुक्त! मैं पूरी तरह से मुक्त हूँ!
तीन टेढ़ी-मेढ़ी चीजों से मुक्त किया गया:
ओखली, मूसल से
और उसका कुटिल बूढ़ा पति।

लालसा को जड़ से उखाड़ फेंकने के बाद
जिससे यह स्थिति उत्पन्न होती है,
मैं बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त हो गया हूँ।

I.17 — धम्म {v. 17}

भिक्षा मांगने भटकना —
कमजोर, लाठी के सहारे झुकी हुई
कांपते अंगों के साथ —
मैं वहीं जमीन पर गिर पड़ा।
शरीर की कमियों को देखकर,
उस समय मेरा मन
आजाद करना।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> अध्याय 2: छंदों के जोड़े (अंश)

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994
थिग 2 पीटीएस: थिग 19-38- अध्याय 2: छंदों के जोड़े (अंश)
II.3 - सुमंगला की माँ {vv. 23-24}

कितना मुक्त! कितना मुक्त!

मैं पूरी तरह से मुक्त हो चुका हूँ —

मेरे मूसल से,

मेरे बेशर्म पति

और उनका धूप से बचाव के लिए शेड बनाना,

मेरा फफूंदी लगा पुराना बर्तन

इसकी पानी के सांप जैसी गंध के साथ।

घृणा और जुनून

मैंने एक झटके से काटा।

एक पेड़ की तलहटी में आकर,

मैं परमानंद में लीन होकर ध्यान करता हूँ:

"कितना आनंद है!"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> उत्तम

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1997
थिग 3.2 पीटीएस: थिग 42-44- उत्तम
मैं चार बार, पांच बार अपने घर से बेकाबू होकर भागा था।

जागरूकता की शांति प्राप्त न होने पर,

मेरे विचार बेकाबू हो गए हैं।

इसलिए मैं एक भरोसेमंद नन के पास गया।

उन्होंने मुझे धम्म की शिक्षा दी:

समुच्चय, इंद्रिय क्षेत्र और तत्व।

धम्म को सुनकर,

मैंने वैसा ही किया जैसा उसने कहा था।

मैं सात दिनों तक एक ही जगह पर बैठा रहा।

परमानंद और आनंद में डूबा हुआ।

आठ तारीख को मैंने अपने पैर फैलाए।

द्रव्यमान के फटने के बाद

अंधेरे का।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> दन्तिका और हाथी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1997
थिग 3.4 पीटीएस: थिग 39-62- दन्तिका और हाथी
मेरे दिन भर के स्थायी अनुभवों से बाहर आते हुए

वल्चर पीक पर्वत पर,

मैंने नदी के किनारे देखा

एक हाथी

अपनी गिरावट से उबर गया।

एक व्यक्ति ने हुक पकड़े हुए अनुरोध किया:

"मुझे अपना पैर दो।"

हाथी

उसने अपना पैर आगे बढ़ाया।

मनुष्य

हाथी पर चढ़ गया।

जो अप्रशिक्षित था, अब पालतू बन चुका है

मानव नियंत्रण में लाया गया,

इसके साथ ही मैंने अपना ध्यान केंद्रित किया।

मैं जंगल में क्यों गया था?

सबसे पहले तो।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> उबिरि: तीन श्लोकों का समूह (अंश)

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1997
थिग 3 पीटीएस: थिग 51-53- उब्बिरी: तीन श्लोकों का समूह (अंश)
'जीवा, मेरी बेटी,'

तुम जंगल में रोते हो।

उब्बिरी, होश में आओ।

84,000

सभी का नाम जीवा है

उस श्मशान भूमि में जलाए गए होंगे।

आप इनमें से किसके लिए शोक मना रहे हैं?

बाहर निकलना

पूरी तरह से बाहर

तीर को देखना इतना मुश्किल है,

मेरे दिल में बसा हुआ,

उसने मुझे निष्कासित कर दिया

शोक से व्याकुल होकर

दुखी

मेरी बेटी के ऊपर।

आज — तीर हटा दिया गया है,

बिना भूख के, पूरी तरह से

असीमित —

मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाता हूँ।

शरण के लिए

संत।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरीगाथा >> भड्डा कपिलानी

पाली भाषा से अनुवादित: हेल्मुथ हेकर और सिस्टर खेमा © 1994
थिग 4.1 पीटीएस: थिग 63-66- भड्डा कपिलानी
वह बुद्ध का पुत्र और उनका उत्तराधिकारी है।

महान कस्सपा—उनका मन शांत और संयमित था।

उन्हें पूर्व जन्मों की दृष्टि प्राप्त होती है।

वह स्वर्ग और नरक दोनों में प्रवेश करता है।

उसने पुनर्जन्म का अंत प्राप्त कर लिया है।

और उन्होंने असाधारण ज्ञान में महारत हासिल कर ली है।

इन तीन ज्ञानों के साथ जो उसे प्राप्त थे

वह सच्चा ब्राह्मण है, जिसे त्रिविध ज्ञान प्राप्त है।

इसी प्रकार, हे कपिलाणी भद्दा ने भी अपने लिए लाभ अर्जित किया है।

उसे त्रिविध ज्ञान प्राप्त है और उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है।

मारा और उसकी सेना को बहादुरी से हराने के बाद,

यह उसके शरीर का अंतिम रूप है जिसे वह धारण करती है।

दुनिया की घोर पीड़ा देखकर हम दोनों आगे बढ़े।

और अब वे दोनों दोषों से मुक्त हैं, और उनके मन अच्छी तरह से नियंत्रित हैं।

अपने आवेशों को शांत करके, हमने मुक्ति प्राप्त कर ली है;

अपने आवेशों को शांत करके, हमने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> विमला: पूर्व वैश्या

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1998
थिग 5.2 पीटीएस: थिग 72-76-विमला: पूर्व वैश्या
मेरे रंग-रूप से मदहोश

आकृति, सौंदर्य और प्रसिद्धि;

जवानी के घमंड में चूर,

मुझे दूसरी महिलाओं से घृणा थी।

इस शरीर को सुशोभित करना

मूर्ख लोगों को भ्रमित करने के लिए अलंकृत किया गया,

मैं वेश्यालय के दरवाजे पर खड़ा था:

एक शिकारी ने जाल बिछा रखा है।

मैंने अपने गहने दिखाए,

और कई निजी अंगों का खुलासा किया।

मैंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन किया,

भीड़ को देखकर जोर-जोर से हंसना।

आज, दोहरे आवरण में लिपटा हुआ,

मैंने अपना सिर मुंडवा लिया है।

भिक्षा मांगने के लिए भटकने के बाद,

मैं एक पेड़ की तलहटी में बैठा हूँ

और विचारहीनता की अवस्था प्राप्त करें।

सभी मानवीय और दैवीय संबंध टूट चुके हैं।

सभी अपशिष्ट पदार्थों को त्यागने के बाद,

मैं शांत और मुक्त हूँ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> नंद: नंद का दर्शन

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994
थिग 5.4 पीटीएस: थिग 82-86- नंदा: नंदा की दृष्टि

"बीमार, सड़ा हुआ, अशुद्ध:

देखो, नंदा, इस भौतिक ढेर को।

अपराध पर विचार करने के माध्यम से,

अपने दिमाग का विकास करो,

इसे एक बनाओ, जो अच्छी तरह से केंद्रित हो।

जैसे यह (आपका शरीर), वैसे ही।

जैसा कि वह, वैसा ही यह।

इससे दुर्गंध आती है।

मूर्खों का आनंद।"

इस प्रकार विचार करते हुए,

दिन-रात अथक परिश्रम से

मैं, अपने विवेक के अनुसार

इसका विश्लेषण करते हुए,

देखा।

और मैं, सतर्क रहते हुए,

इसका उचित ढंग से परीक्षण किया गया।

यह शरीर—जैसा कि यह वास्तव में है—

अंदर और बाहर दोनों तरफ से देखा गया।

तब मेरा शरीर से मोहभंग हो गया।

और भीतर से निष्पक्ष:

सावधान, उदासीन,

मैं शांत हो गया था।

असीमित।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> मित्तकली

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1998
थिग 5.6 पीटीएस: थिग 92-96-मित्तकली
दृढ़ विश्वास के साथ आगे बढ़ना

घर से बेघर होने की स्थिति में

मैं इधर-उधर घूमता रहा।

लाभ और भेंट के प्रति लालची।

सबसे अहम गोल से चूक जाना,

मैंने एक तुच्छ पद का पीछा किया।

अपवित्रताओं के प्रभाव में

मैंने लक्ष्य छोड़ दिया

चिंतनशील जीवन का।

फिर, अपने घर में बैठे हुए,

मुझे अचानक होश आ गया:

मैं एक दुखद रास्ते पर चल रहा हूँ।

मैं के प्रभाव में हूँ

तीव्र इच्छा।

मेरा जीवन लगभग न के बराबर है।

कुचल

उम्र बढ़ने और बीमारी के कारण।

शरीर के टुकड़े-टुकड़े होने से पहले,

मेरे पास बिल्कुल समय नही है

लापरवाही के लिए।

इसे देखने के बाद, जैसा कि वास्तव में था,

समुच्चय का बढ़ना और घटना

मैं मन को मुक्त करके खड़ा हुआ।

जागृत व्यक्ति का आदेश

हो गया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> सोना: दस की माँ

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1998
थिग 5.8 पीटीएस: थिग 102-106- सोना: दस की माँ
मैंने दस बच्चों को जन्म दिया

इस भौतिक ढेर से।

फिर उससे कमजोर होकर, बूढ़े होकर,

मैं एक नन के पास गया।

उन्होंने मुझे धम्म की शिक्षा दी:

समुच्चय, इंद्रिय क्षेत्र और तत्व।

उसका धर्म सुनकर,

मैंने अपने बाल कटवा लिए और पुरोहित बन गया।

दिव्य दृष्टि को शुद्ध करने के बाद

परिवीक्षा अवधि के दौरान,

मुझे अपने पिछले जन्मों का ज्ञान है।

जहां मैं पहले रहता था।

मैं विषयहीन ध्यान पद्धति विकसित करता हूँ।

सुस्पष्ट रूप से केंद्रित एकता।

मुझे तात्कालिकता की मुक्ति प्राप्त होती है —

आसक्ति के अभाव से, बंधनमुक्त।

पाँचों समुच्चय, जिन्हें समाहित किया गया है,

जड़ कटी हुई वृक्ष की तरह खड़े रहो।

मैं बुढ़ापे पर थूकता हूँ।

अब आगे कोई विकास नहीं हो सकता।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> भड्डा कुंडलकेश: पूर्व जैन तपस्वी

पाली भाषा से अनुवादित: हेल्मुथ हेकर और सिस्टर खेमा © 1998
थिग 5.9 पीटीएस: थिग 107-111- भड्डा कुंडलकेसा: पूर्व जैन तपस्वी
मैंने पहले भी एक ही कपड़े में यात्रा की है।

मुंडा सिर, धूल से सना हुआ,

निर्दोष में दोष ढूंढना,

जबकि त्रुटिपूर्ण स्थिति में कोई त्रुटि दिखाई नहीं देती।

जब दिन का अंतिम कार्य पूरा हो गया,

मैं माउंट वल्चर पीक गया था

और निर्मल बुद्ध को देखा

भिक्षुओं के आदरणीय संघ द्वारा।

फिर उनके सामने मेरे हाथ अंजलि मुद्रा में।

मैंने विनम्रतापूर्वक घुटने टेक दिए।

"आओ, भद्दा," उसने मुझसे कहा:

और इस प्रकार मेरा अभिषेक हुआ।

कर्ज मुक्त होकर मैंने पचास साल तक यात्रा की।

अंग, मगध और वज्जी में,

काशी और कोसला में भी,

भूमि की भिक्षा पर जीवन यापन करना।

वह आम समर्थक—वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति—

उन्हें अनेक पुण्य प्राप्त हों!

भद्दा को यह वस्त्र किसने दिया?

वह हर बंधन से मुक्त है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> पटाकरा

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994
थिग 5.10 पीटीएस: थिग 112-116- पटाकारा
(मैंने सोचा:)

हल से खेत जोतना,

जमीन में बीज बोना,

अपनी पत्नियों और बच्चों का समर्थन करना,

युवा पुरुष धन इकट्ठा करते हैं।

तो ऐसा क्यों है कि मैं,

सद्गुणों में परिपूर्ण,

शिक्षक के आदेशों का पालन करने वाला,

क्या अनबाइंडिंग प्राप्त नहीं होती?

मैं आलसी या घमंडी नहीं हूँ।

पैर धोते समय मैंने ध्यान दिया

the

पानी।

और इसे ऊँचाई से बहते हुए देखना

को

कम,

मेरा हृदय शांत था

एक उत्तम नस्ल के घोड़े की तरह।

फिर मैंने एक दीपक लेकर झोपड़ी में प्रवेश किया।

बिस्तर की जाँच की।

बिस्तर पर बैठ गया।

और मैंने एक पिन लेकर बाती को बाहर निकाल लिया:

जैसे लौ का बंधन टूटना

क्या मुक्ति थी?

जागरूकता का।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> पटाकारा के तीस छात्र

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994
थिग 5.11 पीटीएस: थिग 117-121- पटाकारा के तीस छात्र
(पटाकारा ने सिखाया:)

मूसल लेकर,

युवक मक्का पीसते हैं।

अपनी पत्नियों और बच्चों का समर्थन करना,

वे धन इकट्ठा करते हैं।

ज्ञानी पुरुष की आज्ञा का पालन करो।

ऐसा करने के बाद,

आपको कोई पछतावा नहीं होगा।

जागरूकता की शांति पर केंद्रित,

ज्ञानी व्यक्ति के आदेशों का पालन करो।

जल्दी से:

अपने पैर धोने के बाद,

एक तरफ जाकर बैठ जाओ।

ये शब्द सुनकर,

पटाकारा की बोली,

उन्होंने अपने पैर धोए

और एक तरफ हट गया।

जागरूकता की शांति पर केंद्रित,

उन्होंने प्रबुद्ध व्यक्ति के आदेशों का पालन किया।

रात के पहले पहर में,

उन्हें अपने पिछले जन्म याद आ गए।

मध्य पहर में,

दिव्य दृष्टि को शुद्ध किया।

आखिर में,

अंधकार का विशाल घेरा टूट गया।

उठकर उन्होंने उसके चरणों में झुककर प्रणाम किया।

हमने आपका आदेश मान लिया है।

जैसे तीस देवता इंद्र का सम्मान करते हैं,

युद्ध में अजेय,

हम—तीन ज्ञानवान महिलाएं,

किण्वन रहित —

हम आपका सम्मान करना जारी रखेंगे।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> कैंडा: भिखारी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1994
थिग 5.12 पीटीएस: थिग 122-126- कैंडा: भिखारी
इससे पहले, मुझ पर बुरे दिन आ पड़े थे:

न पति, न बच्चे।

कोई रिश्तेदार नहीं, कोई दोस्त नहीं,

कपड़े और भोजन प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है।

तो, हाथ में लाठी और कटोरा लेकर,

घर-घर जाकर भीख मांगना,

सर्दी और गर्मी से बुखार

मैं पूरे सात साल तक भटकता रहा।

फिर एक नन को देखकर

भोजन और पेय पदार्थ प्राप्त करना,

मैंने उसके पास जाकर कहा:

"मुझे बेघर होने के लिए आगे बढ़ने दो।"

वह, पटाकारा, सहानुभूति से,

मुझे जाने दो;

फिर, मुझे समझाते हुए,

मुझे सर्वोच्च लक्ष्य की ओर प्रेरित किया।

उसकी बातें सुनकर,

मैंने उसकी बात मानी।

उनकी सलाह व्यर्थ नहीं गई।

मैं तीन प्रकार के ज्ञान वाली महिला हूँ।

किण्वन रहित।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> पंचसाटा पटाकारा: पटाकारा के 500 छात्र

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1998
थिग 6.1 पीटीएस: थिग 127-132- पंचसाटा पटाकारा: पटाकारा के 500 छात्र
(पटाकारा बुद्ध के शब्दों को याद करते हैं:)

"तुम्हें नहीं पता"

मार्ग

उसके आने या जाने के बारे में,

वह प्राणी जो आया है

कहां से? -

जिसके लिए तुम शोक मनाते हो और उसे 'मेरा बेटा' कहते हो।

लेकिन जब आपको पता चल जाए

मार्ग

उसके आने या जाने के बारे में,

आप उसके जाने पर शोक नहीं मनाते।

क्योंकि यही उसका स्वभाव है।

प्राणियों का।

बिना पूछे,

वह वहीं से आया था।

अनुमति के बिना,

वह यहाँ से चला गया —

कहां से आ रहे हो?

कुछ दिन रुकने के बाद।

और यहाँ से एक ही रास्ता है,

वह एक और बार जाता है

वहाँ से।

मानव रूप में मरना,

वह भटकता रहेगा।

जैसा आया था, वैसा ही चला गया।

तो वहाँ क्या है?

विलाप करने के लिए?

बाहर निकलना

पूरी तरह से बाहर

तीर को देखना इतना मुश्किल है,

मेरे दिल में बसा हुआ,

उसने मुझे निष्कासित कर दिया

दु:ख से व्याकुल होकर

दुखी

मेरे बेटे के ऊपर।

आज — तीर हटा दिया गया है,

बिना भूख के, पूरी तरह से

असीमित —

मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में जाता हूं।

शरण के लिए

संत।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> वासिथि द मदवूमन

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1995
थिग 6.2 पीटीएस: थिग 133-138- वासिथी द मैडवूमन
अपने बेटे के निधन के शोक से मैं व्याकुल हूँ।

नग्न, विक्षिप्त,

मेरे बाल बिखरे हुए थे

मेरा दिमाग खराब हो गया है —

मैं इधर-उधर घूमता रहा।

सड़क के किनारे रहना,

कब्रिस्तानों और कूड़े के ढेरों में,

पूरे तीन वर्षों के लिए,

भूख और प्यास से पीड़ित।

तब मैंने देखा

वह एक अच्छी तरह से चला गया,

मिथिला शहर गया:

अनियंत्रित प्राणियों को वश में करने वाला,

स्वयंजागृत,

डरने की कोई बात नहीं

किसी भी चीज़ से, कहीं से भी।

होश में आने पर,

उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए,

मैं बैठ गया।

गौतम ने सहानुभूति से

उन्होंने मुझे धम्म सिखाया।

उनके धर्म को सुनकर,

मैं बेघर हो गया।

शिक्षक के वचनों को अपने जीवन में उतारने के लिए,

मुझे परम आनंद की अवस्था का अहसास हुआ।

सभी दुःख दूर हो गए हैं।

छोड़ा हुआ,

इस निष्कर्ष पर पहुँचाया गया,

क्योंकि मैंने समझ लिया है

जिन आधारों से दुःख उत्पन्न होते हैं

आओ, खेल में शामिल हो।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> भिक्खुनी सुजाता के अंतिम ज्ञान के छंद

पाली भाषा से अनुवादित: हेल्मुथ हेकर और सिस्टर खेमा © 1998
थिग 6.4 पीटीएस: थिग 133-138- भिक्खुनी सुजाता के अंतिम ज्ञान के छंद
सूक्ष्म पर्दों से सुशोभित,

मालाओं और चंदन से सजे हुए,

पूरी तरह से आभूषणों से ढका हुआ,

मेरे सेवकों से घिरा हुआ,

हम अपने साथ खाने-पीने का सामान ले जा रहे हैं।

कई प्रकार के खाद्य पदार्थ,

घर से निकलते हुए,

हम वह सब कुछ जंगल में ले गए।

वहाँ आनंद लेने और खेलकूद का अनुभव करने के बाद,

हमने घर की ओर अपने कदम बढ़ाए।

लेकिन रास्ते में मैंने देखा और प्रवेश कर लिया।

सकेता के पास एक मठ।

दुनिया की रोशनी देखना

मैं उनके पास गया और उन्हें प्रणाम किया;

करुणावश, उस द्रष्टा ने

फिर उन्होंने मुझे वहां धम्म की शिक्षा दी।

महान ऋषि के वचन सुनकर,

मैंने सत्य में प्रवेश किया:

धम्म भावहीन है,

मैंने अमरता के धम्म को स्पर्श किया।

जब सच्चे धम्म का ज्ञान हो गया,

मैं बेघर जीवन जीने के लिए निकल पड़ा;

तीनों सच्चे ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं।

बुद्ध की शिक्षाओं को व्यर्थ न जाने दें!
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> अनोपमा, करोड़पति की बेटी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1995
थिग 6.5 पीटीएस: थिग 151-156- अनोपमा, करोड़पति की बेटी
उच्च पदस्थ परिवार में जन्म हुआ।

बहुत सारी संपत्ति, अपार धन-दौलत के साथ,

रंग-रूप और कद-काठी में परिपूर्ण,

मैं कोषाध्यक्ष मज्जा की पुत्री थी।

राजाओं के पुत्र मुझे ढूंढ रहे थे,

धनी व्यापारियों के पुत्र

वह मुझे बहुत याद करता था।

उनमें से एक ने मेरे पिता के पास एक दूत भेजा,

यह कहते हुए, "मुझे अनोपमा दो।"

मैं बदले में दूंगा

उसका वजन आठ गुना

गहनों और सोने में।"

लेकिन मैंने देखा है

वह एक आत्मजागृत व्यक्ति,

अद्वितीय, विश्व में उत्कृष्ट

उनके चरणों को श्रद्धांजलि अर्पित की।

एक तरफ बैठ गया।

वह, गौतम, सहानुभूति से,

उन्होंने मुझे धम्म सिखाया।

और जब मैं उसी सीट पर बैठा था,

मैंने तीसरा फल प्राप्त किया

(वापसी न होने के संबंध में।)

फिर मैंने अपने बाल कटवा लिए।

और वे बेघर हो गए।

आज सातवां दिन है

क्योंकि मुझे लालसा हो रही थी

मुरझा देना।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> महा पजापति (गोतमी) थेरी: एक माँ का आशीर्वाद

पाली भाषा से अनुवादित: एंड्रयू ओलेन्ड्ज़की © 2005
थिग 6.6 पीटीएस: थिग 157-162- महा पजापति (गोतमी) थेरी: एक माँ का आशीर्वाद
अनुवादक की टिप्पणी

ऐसा माना जाता है कि इस कविता की रचना प्रजापति ने की थी, जो बुद्ध की सौतेली माँ और शाक्यों वंश की रानी थीं। उनकी छोटी बहन माया का विवाह राजा सुद्धोदन से हुआ था, क्योंकि प्रजापति स्वयं संतान प्राप्ति में असमर्थ थीं। रानी माया का प्रसव के दौरान निधन हो गया, और प्रजापति ने गौतम को अपने पुत्र के समान पाला। ज्ञान प्राप्ति के बाद, प्रजापति ने भी महल छोड़ दिया और भिक्षुणियों के संघ की प्रथम संभाव्यता बनीं।

तीसरे श्लोक से पता चलता है कि उनकी उपलब्धियों में पूर्व जन्मों का स्मरण शामिल था, जिसके द्वारा वे निरंतर पुनर्जन्म की सत्यता को अनुभवजन्य रूप से सिद्ध करने में सक्षम थीं—एक जीवन से दूसरे जीवन में "प्रवाहित होना" (संसार)। जैसा कि वे अपनी कविता में उल्लेख करती हैं, यह प्रक्रिया लालसा और "अज्ञान" से प्रेरित है। दूसरे और चौथे श्लोकों में प्रजापति इसी जीवन में निर्वाण, यानी अंतिम और पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति की घोषणा करती हैं।

यह सोचना उल्लेखनीय है कि जब अंतिम छंद में माया को याद किया जाता है, तो लेखक के मन में माया का वह मातृत्व और बलिदान का प्रतीक नहीं होता जो बौद्ध परंपरा में बन गई थी, बल्कि एक प्रिय छोटी बहन होती है जिसकी दुखद रूप से कम उम्र में मृत्यु हो गई - बिना यह देखे कि उसका बेटा क्या बन गया था।

****

बुद्ध! महान! आपकी जय हो!

आप समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं!

हे प्रभु, जिन्होंने मुझे पीड़ा से मुक्त किया है,

और भी बहुत से जीव-जंतु।

सभी प्रकार के कष्टों को समझ लिया गया है।

लालसा का स्रोत मुरझा गया है।

समाप्ति का प्रभाव मुझ पर पड़ा है

श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग पर।

मैं पहले भी मां और बेटे की भूमिका निभा चुकी हूं;

और पिता, भाई — दादी भी।

वास्तविकता को न समझ पाना,

मैं शांति पाए बिना ही आगे बढ़ता रहा।

लेकिन अब मैंने भगवान को देख लिया है!

यह मेरा आखिरी संयुक्त रूप है।

जन्म की निरंतर प्रक्रिया समाप्त हो गई है।

अब और पुनर्जन्म की कोई संभावना नहीं है।

अनुयायियों की भीड़ देखें:

प्रयास करना, आत्म-संयम रखना,

हमेशा मजबूत संकल्प के साथ

बुद्धों का सम्मान करने का यही तरीका है!

-निःसंदेह इतने सारे लोगों के भले के लिए

क्या माया ने गौतम को जन्म दिया था?

कौन है जो पीड़ा के समूह को चीर देता है?

बीमारी और मृत्यु से पीड़ित लोगों में से।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> गुट्टा

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 2004
थिग 6.7 पीटीएस: थिग 163-168- गुट्टा
(बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया:)

गुट्टा, अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित हो जाओ।

जिसके लिए तुम निकले थे,

(आशा) त्यागने के बाद

अपने प्रिय पुत्र के लिए।

किसी के बहकावे में मत आओ

मन का।

मन द्वारा धोखा दिया गया,

मारा के राज्य से प्रेम करने वाले प्राणी,

इधर-उधर भटकना

अनेक जन्मों के भटकने के माध्यम से,

अनभिज्ञ।

हे नन, इन निम्न बंधनों को त्यागकर—

कामुक इच्छा, दुर्भावना,

आत्म-पहचान संबंधी विचार,

सिद्धांतों और प्रथाओं को अपनाना,

और अनिश्चितता पांचवें कारक के रूप में —

तुम नहीं आओगे

फिर से यही करना होगा।

वासना, अहंकार का त्याग करते हुए,

अज्ञानता और बेचैनी

सभी बंधनों को तोड़ते हुए

आप अंत कर देंगे

पीड़ा और तनाव का।

जन्म को त्यागकर भटकते रहना,

आगे की समझ विकसित हो रही है,

भूख से मुक्त

अभी इसी वक्त

आप आगे बढ़ेंगे

पूरी तरह शांत।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> थेरिगाथा >> किसागोतामी थेरी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 2006
थिग 10 पीटीएस: थिग 213-223- किसागोटामी थेरी

अनुवादक का परिचय

किसा गौतमी के नाम से बौद्ध परंपरा में दो सबसे मार्मिक कहानियां जुड़ी हुई हैं। इस श्लोक की व्याख्या बताती है कि जब उनके छोटे बच्चे की मृत्यु हो गई, तो उन्होंने उसे मृत मानने से इनकार कर दिया। कई लोगों से बच्चे को जीवित करने वाली दवा मांगने के बाद भी जब उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ, तो अंततः उन्हें बुद्ध के पास भेजा गया। जब उन्होंने बुद्ध को अपनी कहानी सुनाई, तो उन्होंने बच्चे के लिए दवा देने की पेशकश की, लेकिन इसके लिए उन्हें कुछ सरसों के बीज चाहिए थे - जो भारत का सबसे सस्ता मसाला है - और ये बीज ऐसे परिवार से मिलने चाहिए थे जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। वह घर-घर जाकर सरसों के बीज मांगती रहीं, और किसी ने भी उन्हें देने से इनकार नहीं किया। लेकिन जब उन्होंने पूछा कि क्या उस परिवार में किसी की मृत्यु हुई है, तो सभी का उत्तर हमेशा "हां, बिल्कुल" होता था। कुछ समय बाद, उन्हें यह बात समझ में आ गई: मृत्यु सार्वभौमिक है। बच्चे के शरीर को श्मशान में त्यागने के बाद, वह बुद्ध के पास लौट आईं और भिक्षुणी बनने का अनुरोध किया, और बाद में अरहंत बन गईं।

किसा गौतमी के नाम से जुड़े प्रामाणिक श्लोक एक अलग ही कहानी बताते हैं, जो टीका में पताकारा से जुड़ी कहानी से मिलती-जुलती है: अपने दूसरे बच्चे से गर्भवती पताकारा अपने पति और पहले बच्चे के साथ प्रसव के लिए अपने माता-पिता के घर लौट रही थी। रास्ते में एक भयंकर तूफान आ गया, और उसने अपने पति से परिवार को आश्रय देने के लिए कहा। जब वह आश्रय बनाने के लिए घास और लकड़ियाँ काट रहा था, तभी एक साँप ने उसे काट लिया और जहर से उसकी मृत्यु हो गई। बेघर और अपने पति की लंबे समय तक अनुपस्थिति से दुखी पताकारा ने बच्चे को जन्म दिया और पूरी रात अपने शरीर के सहारे बारिश और हवा से अपने दोनों बच्चों को बचाए रखा। अगली सुबह उसने अपने पति को मृत पाया। व्याकुल होकर उसने अपने माता-पिता के घर लौटने का फैसला किया। लेकिन पिछली रात की बारिश से उफनती एक नदी उसके रास्ते में बह रही थी। दोनों बच्चों को नदी पार ले जाने में असमर्थ, उसने अपने पहले बच्चे को किनारे पर ही छोड़ दिया और अपने बच्चे को गोद में लेकर उफनती धारा में से होकर नदी पार की। शिशु को नदी के दूसरे किनारे पर रखकर वह अपने पहले बच्चे को लाने के लिए वापस मुड़ी। एक बाज़ ने शिशु को देखकर उसे मांस का टुकड़ा समझकर उस पर झपट्टा मारा। यह देखकर पताकारा ने अपने हाथ उठाकर बाज़ को भगाने की कोशिश की, पर कोई लाभ नहीं हुआ: बाज़ शिशु को उठाकर ले गया। इसी बीच, उसके पहले बच्चे ने अपनी माँ को हाथ उठाते देख नदी पार करने का संकेत समझ लिया। उफनती धारा में कूदते ही उसकी मृत्यु हो गई। दुःख से व्याकुल होकर पताकारा अपने माता-पिता के घर लौटी, तो उसे पता चला कि पिछली रात के तूफान में बिजली गिरने से उसका घर जलकर राख हो गया था। उसके माता-पिता और भाई का उस समय एक ही चिता पर अंतिम संस्कार किया जा रहा था। इस क्षण वह पागल हो गई और अर्धनग्न अवस्था में इधर-उधर भटकने लगी। बुद्ध के दर्शन करने पर ही उसे होश आया। उन्होंने उसे धम्म का उपदेश दिया और अंततः उसने दीक्षा लेकर अरहंत बन गई।

यह बताना कठिन है कि टीका में इस कहानी का श्रेय पताकार को क्यों दिया गया है, जबकि मूल ग्रंथ में यह स्पष्ट रूप से किसा गौतमी की है। कुछ विद्वानों का मानना है कि पाली टीकाओं में वर्णित कहानियाँ अन्य बौद्ध परंपराओं, जैसे मूलसर्वास्तिवादिन से ली गई हैं। इस प्रकार, मूल ग्रंथों और टीकाओं में वर्णित कहानियों के बीच अंतर इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि विभिन्न परंपराओं ने विशिष्ट कहानियों का श्रेय अलग-अलग वरिष्ठ भिक्षुओं और भिक्षुणियों को दिया है। उदाहरण के लिए, पाली मूल ग्रंथ में उस स्त्री की कहानी, जिसका परिवार एक ही दिन में नष्ट हो गया, का श्रेय किसा गौतमी को दिया गया है, जबकि जिस परंपरा से टीका ली गई है, उसमें इसका श्रेय पताकार को दिया गया है। यदि ऐसा है, तो यह देखना रोचक है कि इन कहानियों को अपनाने वाले टीकाकार फिर भी अपने मूल ग्रंथ के प्रति निष्ठावान रहे। पाली भाषा को उस टीका स्रोत के अनुरूप ढालने की कोशिश करने के बजाय, जिस पर उन्होंने आधारित पाठ लिखा था, उन्होंने दोनों स्रोतों के बीच की विसंगतियों को यथावत रहने दिया: यह उन अनेक उदाहरणों में से एक है जिनमें कैनन और टीकाओं के बीच की विसंगतियां यह दर्शाती हैं कि पाली कैनन को आगे बढ़ाने वाले भिक्षुओं ने इसे अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया, भले ही वे इससे सहमत न हों।

बाद के थेरवाद ग्रंथों ने किसा गौतमी के श्लोकों और उन श्लोकों की टीका के बीच की विसंगतियों को यह कहकर छिपाने की कोशिश की है कि "चलते-चलते, जन्म देने वाली थी" से शुरू होकर "मेरे पति की मृत्यु हो गई, मैं अमरत्व तक पहुँच गई" तक के श्लोकों का अंश वास्तव में पताकारा द्वारा बोला गया है, लेकिन यह असंभव लगता है: एक अरहंत दूसरे के वृत्तांत में दखल क्यों देगा?

बहरहाल, चाहे पटाकारा की कहानी हो या किसा गौतमी की, दोनों ही मृत्यु की सार्वभौमिकता और साधना के मार्ग की शक्ति की बात करती हैं: कि इस मानवीय संसार में, इसके सभी दुखों के बीच, शोक, बुढ़ापा और बीमारी से मुक्त होने का एक मार्ग अभी भी मौजूद है: अमरता।

****

प्रशंसनीय मित्र होना

ऋषि द्वारा इसकी प्रशंसा की गई है

विश्व के संदर्भ में।

एक प्रशंसनीय मित्र के साथ समय बिताना

यहां तक कि एक मूर्ख भी

बुद्धिमान हो जाता है।

ईमानदारी वाले लोग

इससे संबद्ध होना चाहिए।

इस तरह विवेक विकसित होता है।

ईमानदार लोगों के साथ मेलजोल रखना

इससे व्यक्ति सभी दुखों और तनावों से मुक्त हो जाएगा।

तनाव को समझेंगे,

तनाव की उत्पत्ति,

समाप्ति और अष्टांगिक मार्ग:

चार आर्य सत्य।

महिला की स्थिति तनावपूर्ण और पीड़ादायक है:

ऐसा तो उन लोगों को वश में करने वाले ने कहा है जिन्हें वश में किया जा सकता है।

सौतन होना कष्टदायक होता है।

कुछ महिलाएं एक बार बच्चे को जन्म देने के बाद,

उनके गले काट दो।

अन्य, नाजुक शारीरिक बनावट वाले

जहर लेना।

प्रसव के दौरान

दोनों (मां और बच्चा) विनाश का शिकार होते हैं।

आगे बढ़ते हुए, प्रसव होने ही वाला है।

मैंने अपने पति को मृत देखा।

सड़क पर बच्चे को जन्म देना,

मैं अभी तक अपने घर नहीं पहुंचा था।

दो बच्चों की मौत हो गई।

मेरे पति की सड़क पर मौत हो गई

मैं कितना दुखी हूँ!

मेरी माँ, मेरे पिता और मेरा भाई

एक ही चिता पर जल रहे थे।

"तुम्हारा पूरा परिवार चला गया, बहुत दुखी हो।"

आपने असहनीय पीड़ा सहन की है।

तुम्हारे आंसू बह चुके हैं

हजारों जिंदगियों के लिए।"

तब मैंने देखा,

मैं श्मशान भूमि के बीचोंबीच,

बेटों की मांसपेशियों को चबाया जा रहा है।

परिवार के मारे जाने के बाद,

सभी द्वारा तिरस्कृत,

मेरे पति की मृत्यु हो गई है।

मैं अमरता तक पहुँच गया।

मैंने यह मार्ग विकसित किया है,

महान, आठ गुना,

अमरता की ओर जाना।

मुक्ति का अहसास होने पर,

मैंने धम्म के दर्पण में झाँका है।

मैंने तीर को काट दिया है।

बोझ उतार दो,

कार्य पूरा हो गया।

मैं, किसागोटामी थेरी,

मेरा दिल पूरी तरह से मुक्त हो गया है।

मैंने यह कहा है।

टिप्पणी : टीका के अनुसार, यह बुद्ध का किसा गौतमी को दिया गया संदेश था। एसएन 13.8 और थाग 3.5 देखें।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> पुन्निका: पुन्निका और ब्राह्मण

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1995
थिग 12.1 पीटीएस: थिग 236-251- पुन्निका: पुन्निका और ब्राह्मण
(पुन्निका:)

मैं पानी ढोने वाला हूँ, ठंड लग रही है।

हमेशा पानी की ओर नीचे जाते हुए

अपनी रखेलों की पिटाई के डर से,

उनके क्रोध और शब्दों से परेशान।

लेकिन तुम, ब्राह्मण,

आपको किस बात का डर है?

कि तुम हमेशा पानी की ओर जाओगे

शरीर कांप रहा है, बहुत ठंड लग रही है?

(ब्राह्मण:)

पुन्निका, तुम तो जानती ही होगी।

आप एक कुशल कर्म करने वाले व्यक्ति से पूछ रहे हैं।

और बुराई को दूर भगाना।

जो कोई भी, चाहे जवान हो या बूढ़ा, बुरे कर्म करता है

जल से स्नान करने के माध्यम से,

बुरे कर्मों से मुक्ति मिली।

(पुन्निका:)

आपको यह किसने सिखाया?

अज्ञानी से अज्ञानी तक

'एक, जल स्नान के माध्यम से,

क्या इससे बुरे कर्मों से मुक्ति मिलती है?

उस स्थिति में, वे सभी स्वर्ग जाएंगे:

सभी मेंढक, कछुए,

सर्प, मगरमच्छ,

और पानी में रहने वाले अन्य सभी जीव।

भेड़ काटने वाले, सूअर काटने वाले,

मछुआरे, शिकारी,

चोर, जल्लाद,

और अन्य सभी बुरे काम करने वाले,

जल स्नान के माध्यम से,

बुरे कर्मों से मुक्त हो जाओ।

अगर ये नदियाँ बहाकर ले जा सकतीं

तुमने अतीत में जो बुरे कर्म किए हैं,

वे आपकी योग्यता को भी छीन लेंगे।

और फिर आप होंगे

पूरी तरह से बाहर कर दिया गया।

आपको जिस भी बात से डर लगता है,

कि तुम हमेशा पानी की ओर जाते रहते हो,

ऐसा मत करो।

ठंड से अपनी त्वचा को नुकसान न होने दें।

(ब्राह्मण:)

मैं इस दुखद रास्ते पर चल रहा हूँ, महोदया।

और अब तुम मुझे यहाँ ले आए हो

वापस कुलीन वर्ग के पास।

मैं तुम्हें यह वस्त्र जल से स्नान करने के लिए देता हूँ।

(पुन्निका:)

यह चोला तुम्हारा है। मुझे इसकी जरूरत नहीं है।

अगर आपको दर्द से डर लगता है,

अगर आपको दर्द पसंद नहीं है,

तो फिर कोई भी बुरा कर्म मत करो।

खुलेआम, गुप्त रूप से।

लेकिन अगर आप ऐसा करते हैं या करेंगे

कोई भी बुरा कर्म,

आपको दर्द से मुक्ति नहीं मिलेगी।

भले ही आप उड़कर तेजी से चले जाएं।

अगर आपको दर्द से डर लगता है,

अगर आपको दर्द पसंद नहीं है,

जागृत व्यक्ति की शरण में जाओ।

धम्म और संघ में जाओ।

इन सिद्धांतों को अपनाएं:

इससे आपको मुक्ति मिलेगी।

(ब्राह्मण:)

मैं जागृत व्यक्ति की शरण में जाता हूँ;

मैं धम्म और संघ में जाता हूँ।

मैं इन सिद्धांतों को अपनाता हूँ:

इससे मुझे मुक्ति मिलेगी।

पहले मैं ब्रह्मा का रिश्तेदार था;

अब, वास्तव में एक ब्राह्मण।

मैं तीन प्रकार के ज्ञान वाला व्यक्ति हूं।

ज्ञान में परिपूर्ण,

सुरक्षित और अच्छी तरह से धुल गया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> अम्बपाली

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1995
थिग 13.1 पीटीएस: थिग 252-270- अम्बपाली
मेरे बाल काले थे

मधुमक्खियों का रंग

और सिरे मुड़े हुए;

उम्र बढ़ने के साथ, यह खुरदुरे भांग के पौधे जैसा दिखने लगा।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

सुगंधित, जैसे कोई सुगंधित टोकरी हो।

फूलों से भरा हुआ:

उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसमें सीलन की गंध आने लगी।

जैसे जानवरों की खाल।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

घनी और हरी-भरी, जैसे किसी अच्छी तरह से देखभाल किया गया बाग।

शानदार बनाया गया, सिरे विस्तृत हैं

कंघी और पिन के साथ।

उम्र के साथ-साथ यह पतला होता गया

और कहीं-कहीं नंगे।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

सोने और नाजुक पिनों से सजी हुई,

यह भव्य था, और चोटियों से सुशोभित था।

अब, उम्र के साथ,

उसका सिर गंजा हो गया है।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

घुमावदार, मानो किसी कलाकार द्वारा कुशलतापूर्वक बनाया गया हो।

मेरी भौहें कभी बहुत खूबसूरत थीं।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे सिलवटों के रूप में नीचे लटकने लगते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

रत्नों की तरह चमकीला, शानदार

मेरी आँखें:

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे उतने शानदार नहीं रह जाते।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

एक नाजुक चोटी की तरह, मेरी नाक

मेरी जवानी के सुनहरे दिनों में सब कुछ शानदार था।

उम्र के साथ, यह एक लंबी मिर्च की तरह हो जाता है।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

कंगन की तरह—सुंदर ढंग से निर्मित, उत्तम गुणवत्ता के साथ—

मेरे कान कभी बहुत सुंदर थे।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे सिलवटों के रूप में नीचे लटकने लगते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

रंग में केले की कलियों की तरह,

मेरे दांत कभी बहुत खूबसूरत थे।

उम्र के साथ-साथ वे टूट-फूट गए हैं और पीले पड़ गए हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

घने जंगल में कोयल की आवाज की तरह,

घने जंगलों की झाड़ियों से होकर गुजरना:

मेरी आवाज का लहजा मधुर था।

उम्र के साथ-साथ इसमें जगह-जगह दरारें पड़ जाती हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

चिकना—जैसे कोई अच्छी तरह से पॉलिश किया हुआ शंख—

एक समय मेरी गर्दन बेहद खूबसूरत थी।

उम्र के साथ-साथ यह टूट-फूट गया है, मुड़ गया है।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

गोल दरवाजों की सलाखों की तरह—दोनों ही—

मेरी भुजाएँ कभी बहुत सुंदर थीं।

उम्र के साथ-साथ वे सूखे हुए पटाली वृक्षों की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

सोने और नाजुक अंगूठियों से सजी हुई,

मेरे हाथ कभी बहुत सुंदर थे।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे प्याज और कंदों की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

सूजन, गोल, सख्त और ऊंची,

एक समय मेरे दोनों स्तन बेहद खूबसूरत थे।

बुढ़ापे के सूखे में, वे लटकते रहते हैं

जैसे खाली पुराने पानी के थैले।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

जैसे सोने की चादर, अच्छी तरह से पॉलिश की हुई,

मेरा शरीर शानदार था।

अब यह बहुत बारीक झुर्रियों से ढका हुआ है।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

उनकी रेखाएं हाथी की सूंड की तरह चिकनी हैं।

एक समय मेरी दोनों जांघें बेहद खूबसूरत थीं।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे गांठदार बांस की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

सोने और नाजुक पायल से सजी हुई,

एक समय मेरी पिंडलियाँ बहुत खूबसूरत थीं।

उम्र के साथ, वे तिल की छड़ियों की तरह हो जाते हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

मानो उनमें मुलायम रुई भरी हो,

एक समय मेरे दोनों पैर बेहद खूबसूरत थे।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे सिकुड़ जाते हैं और उनमें दरारें पड़ जाती हैं।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।

यह भौतिक ढेर कुछ इस प्रकार था,

अब:

एक ऐसा घर जिसका सारा प्लास्टर उखड़ गया हो।

सत्यवक्ता के शब्दों की सत्यता

नहीं बदलता।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> रोहिणी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 2000
थिग 13.2 पीटीएस: थिग 271-290- रोहिणी
(रोहिणी के पिता:)

आप यह कहते हुए सो जाते हैं,

भिक्षुओं।

तुम उठे,

भिक्षुओं।

आप केवल प्रशंसा करते हैं

भिक्षुओं।

इसमें कोई शक नहीं कि आप होंगे

एक नन।

भरपूर भोजन और पेय

आप भिक्षुओं को दान देते हैं।

अब, रोहिणी, मैं तुमसे पूछता हूँ:

आप ऐसा क्यों करते हैं?

प्रिय भिक्षु?

उन्हें काम करना पसंद नहीं है।

वे आलसी हैं।

दूसरों द्वारा दी गई चीजों पर जीवन यापन करना,

लालसाओं से भरा हुआ,

स्वादिष्ट चीजों की चाहत:

आप ऐसा क्यों करते हैं?

प्रिय भिक्षु?

(रोहिणी:)

बहुत समय से, पिताजी,

आपने मुझसे सवाल पूछे हैं

भिक्षुओं के बारे में।

मैं आपकी प्रशंसा करूंगा

उनकी विवेकशीलता,

गुण,

प्रयास करना।

उन्हें काम करना पसंद है।

वे आलसी नहीं हैं।

वे सबसे अच्छा काम करते हैं:

वे त्याग देते हैं

जुनून और क्रोध।

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

उन्होंने खुद को मुक्त कर लिया

तीन बुरी जड़ों में से,

शुद्ध कर्म करना।

उनकी सारी बुराइयाँ

छोड़ा हुआ।

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

उनकी शारीरिक क्रिया को साफ करें,

उनकी मौखिक क्रिया भी वैसी ही है।

उनकी मानसिक क्रिया को शुद्ध करें:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

बेदाग, सीप के समान।

भीतर और बाहर से शुद्ध,

स्पष्ट गुणों में परिपूर्ण:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

विद्वान, धम्म का पालन करने वाला,

धर्म का पालन करने वाला, नेक और धर्मपरायण व्यक्ति।

वे लक्ष्य सिखाते हैं

एवं धम्म:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

विद्वान, धम्म का पालन करने वाला,

धर्म का पालन करने वाला, नेक और धर्मपरायण व्यक्ति।

एकजुट विचारों के साथ

और सचेत:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

दूर-दूर तक यात्रा करना, सचेत रहना,

बिना विचलित हुए सलाह देना,

वे अंत को पहचान लेते हैं

पीड़ा का:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

जब वे किसी गांव को छोड़ते हैं

वे पीछे मुड़कर नहीं देखते।

किसी भी चीज में।

चिंता से कितना मुक्त

वे जाते हैं!

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

इन्हें अनाज भंडार में नहीं रखा जाता है।

बर्तन,

या टोकरी।

वे (केवल) शिकार करते हैं।

जो पहले से पका हुआ है उसके लिए:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

वे न तो चांदी लेते हैं,

न ही सोना,

न ही पैसा।

वे जो कुछ भी उपलब्ध होता है, उसी से अपना जीवन यापन करते हैं:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

बाहर जाने के बाद

अलग-अलग परिवारों से

और विभिन्न देशों से,

फिर भी वे कायम हैं

एक दूसरे को प्यार करें:

इसलिए मैं इसे मानता हूँ

प्रिय भिक्षुओं।

(रोहिणी के पिता:)

रोहिणी, सचमुच हमारे कल्याण के लिए

क्या आप हमारे परिवार में पैदा हुए थे?

आपको दृढ़ विश्वास है

बुद्ध और धम्म में,

और गहरा सम्मान

संघ के लिए।

आप सचमुच समझते हैं

योग्यता का यह क्षेत्र

अद्वितीय।

इन भिक्षुओं को प्राप्त होगा

हमारी पेशकश भी,

हम यहाँ व्यवस्था करेंगे

हमारा प्रचुर बलिदान।

(रोहिणी:)

अगर आपको दर्द से डर लगता है,

अगर आपको दर्द पसंद नहीं है,

शरण के लिए बुद्ध के पास जाओ।

धम्म और संघ में जाओ।

इन सिद्धांतों को अपनाएं:

इससे यह होगा

आपके अच्छे स्वास्थ्य के लिए।

(रोहिणी के पिता:)

मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ;

मैं धम्म और संघ में जाता हूँ।

मैं इन सिद्धांतों को अपनाता हूँ:

इससे यह होगा

मेरे स्वास्थ्य के लिए।

पहले मैं ब्रह्मा का रिश्तेदार था;

अब, वास्तव में एक ब्राह्मण।

मैं तीन जानकारियों वाला व्यक्ति हूं और सुरक्षित हूं।

ज्ञान में परिपूर्ण,

अच्छी तरह से धोकर साफ किया गया।
नोट : तीन अकुशल मूल शब्द हैं लोभ, घृणा और भ्रम।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> सुभा: सुनार की बेटी

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 2000
थिग 13.5 पीटीएस: थिग 339-367- सुभा: सुनार की बेटी
मैं एक बच्चा था, साफ कपड़े पहने हुए था,

जब मैंने पहली बार धम्म के बारे में सुना।

और मेरे भीतर, सजग,

यह सत्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम था।

फिर मैं पहुंचा

अत्यधिक असंतोष के साथ

पूरी कामुकता के साथ।

खतरे को देखते हुए

आत्म-पहचान में,

मुझे केवल यही लालसा थी

त्याग के लिए।

अपने रिश्तेदारों के दायरे को छोड़कर,

गुलाम, मजदूर,

समृद्ध गाँव और खेत,

मनमोहक, आकर्षक संपत्तियाँ,

मैं आगे बढ़ा,

काफी संपत्ति का त्याग करना।

दृढ़ विश्वास के कारण बाहर निकल जाने के बाद

अच्छी तरह से सिखाए गए सच्चे धम्म में,

मेरे लिए यह उचित नहीं होगा—

शून्यता की आकांक्षा रखना —

सोना और चांदी त्यागने के बाद

उन्हें वापस ले जाने के लिए।

सोना चांदी

अवेकनिंग मत खरीदो।

शांति मत खरीदो।

यह (सोना) भिक्षुओं के लिए उचित नहीं है।

यह कुलीन वर्ग का धन नहीं है।

यह है

लालच, नशा,

भ्रम, धूल से बंधन,

संदेह, अनेक परेशानियाँ।

यहां कोई स्थायी स्थिरता नहीं है।

इस हद तक कि बहुत से पुरुष

— लापरवाह, उनके हृदय दूषित —

एक दूसरे का विरोध करते हुए, बनाना

संघर्ष, हत्या, गुलामी,

विपत्ति, हानि, शोक और विलाप।

कई विपत्तियाँ देखने को मिलती हैं

उन लोगों के लिए जो कामुकता में पूरी तरह डूबे हुए हैं।

तो, मेरे रिश्तेदार:

आप दुश्मनों की तरह क्यों सोचते हैं?

क्या तुम मुझे कामुकता से बांधने की कोशिश कर रहे हो?

आप जानते हैं कि मैं आगे बढ़ चुका हूँ,

कामुकता में निहित खतरे को देखना।

सोने के सिक्के और बुलियन

किण्वन प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता।

कामुकता शत्रु है।

एक हत्यारा,

शत्रुतापूर्ण, तीर और बंधन।

तो, मेरे रिश्तेदार:

आप दुश्मनों की तरह क्यों सोचते हैं?

क्या तुम मुझे कामुकता से बांधने की कोशिश कर रहे हो?

आप जानते हैं कि मैं आगे बढ़ चुका हूँ

मुंडा हुआ सिर, पैचवर्क वाले लबादे में लिपटा हुआ।

भिक्षा से प्राप्त बचा हुआ, त्यागा हुआ, इकट्ठा किया हुआ सामान

पुराने कपड़ों से बना वस्त्र:

मेरे लिए यही उचित है।

बेघर व्यक्ति की आवश्यकताएं।

महान ऋषियों ने कामुकता का त्याग किया है।

मानवीय और दिव्य दोनों।

उन्हें सुरक्षा स्थल पर रिहा कर दिया गया है।

वे अटूट सहजता के साथ पहुँच गए हैं।

तो क्या मैं संघ में शामिल नहीं हो सकता?

कामुकता के साथ, जिसमें कोई आश्रय नहीं मिलता।

यह एक दुश्मन है, एक हत्यारा है।

— कामुकता —

दर्दनाक, जैसे आग का गोला।

लालच:

एक बाधा, भयभीत, खतरे में

कांटों से भरा हुआ,

बहुत ही बेमेल,

भ्रम का एक बड़ा कारण।

कामुकता:

एक भयावह हमला,

जैसे साँप का सिर

जिसमें मूर्ख आनंदित होते हैं —

अंधा, सामान्य।

क्योंकि दुनिया में बहुत से लोग

वे कामुकता के दलदल में फंसे हुए हैं।

अनजाने में,

उन्हें जन्म और मृत्यु के अंत का एहसास नहीं होता।

बहुत से लोग इस मार्ग का अनुसरण करते हैं

खराब गंतव्यों की ओर

कामुकता के कारण,

वे स्वयं ही बीमारी को आमंत्रित कर रहे हैं।

इस प्रकार कामुकता शत्रुओं को जन्म देती है।

यह जलता है, अपवित्र हो जाता है।

यह दुनिया का चारा है,

बंधनकारी, मृत्यु का बंधन,

पागल कर देने वाला, भ्रामक, मन को उत्तेजित करने वाला।

यह मारा द्वारा डाला गया जाल है

जीवित प्राणियों के अपवित्र होने के कारण:

अनगिनत कमियों और बहुत दर्द के साथ,

बड़ा जहर,

कम आनंद देने वाला, संघर्ष उत्पन्न करने वाला,

मन के अच्छे पक्ष को सुखा देना।

मैंने इस तरह बहुत परेशानी खड़ी की है।

कामुकता के कारण,

मैं उस पर वापस नहीं लौटूँगा।

क्योंकि मुझे बंधन मुक्त करने में हमेशा आनंद आता है।

कामुकता से जूझना

ठंडे राज्य की उम्मीद में,

मैं सजग रहूँगा और आनंद प्राप्त करूँगा।

बेड़ियों के अंत में।

मैं मार्ग का अनुसरण करता हूँ —

आठ गुना, सीधा,

शोक रहित, निर्मल, सुरक्षित —

जिन पर महान द्रष्टाओं ने

पार कर चुके हैं।"

सुनहरी की बेटी सुभा को देखो।

धम्म में दृढ़ रहना,

अविचलित अवस्था में प्रवेश करना,

पेड़ की तलहटी में ध्यान करना।

उसके प्रस्थान का यह आठवां दिन है।

सच्चे धम्म के माध्यम से आत्मविश्वास से भरपूर और सुंदर।

उप्पलावन्ना द्वारा प्रशिक्षित,

वह तीन ज्ञान वाली महिला है

जिसने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है;

गुलामी से मुक्त, कर्ज मुक्त,

एक ऐसी नन जिसके बौद्धिक कौशल विकसित हो चुके हों,

सभी बंधनों से मुक्त हो जाओ,

उसका काम पूरा हो गया,

किण्वन रहित।

सक्का, प्राणियों के स्वामी,

अपने देव समुदाय के साथ,

अलौकिक शक्ति के माध्यम से उसके पास पहुँचते हुए,

उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता है:

सुनार की बेटी सुभा।

टिप्पणी : एमएन 106 देखें। उसने अपनी इंद्रियों पर संयम प्राप्त कर लिया है, या उसने दृढ़ विश्वास, दृढ़ता, सजगता, एकाग्रता और विवेक की क्षमताओं को पूर्णतः विकसित कर लिया है। एसएन 48.10 और एएन 4.37 देखें।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> थेरिगाथा >> सुभा जीवकम्बवनिका: सुभा और लिबर्टिन

पाली से अनुवादित: थानिसारो भिक्खु © 1995
थिग 14.1 पीटीएस: थिग 366-399- सुभा जीवकम्बवनिका: सुभा और लिबर्टिन
जब भिक्षुणी सुभा जीवक के रमणीय आमों के बाग से गुजर रही थी, तभी एक व्यभिचारी (एक सुनार का बेटा) ने उसका रास्ता रोक दिया, तो उसने उससे कहा:

मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

क्या तुम मेरे रास्ते में खड़े हो?

यह उचित नहीं है, मेरे दोस्त।

कि कोई पुरुष स्पर्श करे

एक महिला जो आगे बढ़ चुकी है।

मैं गुरु के संदेश का सम्मान करता हूँ।

उस प्रशिक्षण की ओर इशारा किया गया है जो एक दिवंगत व्यक्ति ने किया था।

मैं शुद्ध हूँ, बेदाग हूँ:

तुम मेरे रास्ते में क्यों खड़े हो?

तुम्हारा मन अशांत है,

मैं—अविचलित;

आप— भावुक,

मैं— भावहीन, बेदाग,

हर जगह एक मुक्त मानसिकता के साथ:

तुम मेरे रास्ते में क्यों खड़े हो?

"तुम जवान हो और दिखने में भी बुरे नहीं हो।"

आपको आगे बढ़ने की क्या आवश्यकता है?

अपने गेरूए रंग के वस्त्र उतार फेंको —

आइए, फूलों से भरे जंगल का आनंद लें।

उनके चारों ओर से एक मधुरता झलकती है।

पराग से लदे ऊंचे-ऊंचे पेड़।

वसंत ऋतु का आरंभ एक सुखद मौसम होता है।

आइए, फूलों से भरे जंगल का आनंद लें।

फूलों से लदे पेड़ों के ऊपरी सिरे

मानो हवा में कराहना:

आपको कितना आनंद मिलेगा!

अगर आप अकेले जंगल में उतरते हैं तो?

जंगली जानवरों के झुंडों द्वारा अक्सर देखा जाने वाला क्षेत्र,

हाथियों के संभोग से विचलित और उत्तेजित:

आप जाना चाहते हैं

बिना साथी

उस विशाल, एकांत, भयावह जंगल में?

तुम सोने की गुड़िया की तरह घूमोगी,

जैसे स्वर्ग के बागों में कोई देवी।

नाजुक, चिकने कासी कपड़ों के साथ,

हे अतुलनीय सौंदर्य, तुम चमकोगी।

मैं आपके वश में रहूंगा

यदि हम जंगल में निवास करते।

क्योंकि मुझे उससे प्रिय कोई प्राणी नहीं है।

आपके मुकाबले,

हे अप्सरा, जो मृदु दृष्टि रखती है।

अगर तुम मेरी बात मानोगे, तो खुशी-खुशी मेरे घर में आकर रहोगे।

महल की शांति में निवास करते हुए,

अपने लिए महिलाओं की सेवा लें,

नाजुक काशी वस्त्र पहनें।

अपने आप को फूलों की मालाओं और क्रीम से सजाएं।

मैं आपके लिए कई प्रकार के आभूषण बनाऊंगी।

सोने, रत्नों और मोतियों से बना हुआ।

एक महंगे बिस्तर पर चढ़ जाओ,

चंदन की नक्काशी से सुगंधित,

अच्छी तरह से धुली हुई चादर के साथ, सुंदर,

ऊनी रजाई से ढका हुआ, बिलकुल नया।

जैसे पानी से नीला कमल निकलता है,

जहां अमानवीय आत्माएं निवास करती हैं,

तुम अपने अंगों को अदृश्य रखते हुए बुढ़ापे तक जाओगे।

यदि तुम पवित्र जीवन में यथावत बने रहो।

आप किसी भी सार के बारे में क्या अनुमान लगाते हैं?

यहां इस कब्रिस्तान में, जो लाशों से भरा हुआ है,

क्या इस शरीर का टूटना तय है?

जब आप मुझे देखते हैं तो आपको क्या दिखाई देता है?

तुम पागल हो गए हो क्या?

"आपकी आंखें

वे हिरण के बच्चे की तरह होते हैं।

जैसे पहाड़ों में रहने वाली किसी अप्सरा की होती हैं।

तुम्हारी आँखों को देखकर मुझे असीम आनंद मिलता है।

और भी अधिक बढ़ता जाता है।

ये नीले कमलों की पत्तियों की नोकों की तरह हैं।

आपके सुनहरे चेहरे में

— बेदाग:

तुम्हारी आँखों को देखकर मुझे असीम आनंद मिलता है।

और भी अधिक बढ़ता जाता है।

भले ही आपको बहुत दूर जाना पड़े,

मैं केवल तुम्हारी पवित्रता के बारे में सोचूंगा,

लंबी पलकों वाली निगाह,

क्योंकि मुझे इससे प्रिय कुछ भी नहीं है

आपकी आंखों से भी ज्यादा,

हे मृदु दृष्टि वाली अप्सरा।"

"तुम रास्ते से भटकना चाहते हो,"

तुम चांद को खिलौने की तरह रखना चाहते हो,

आप माउंट सिनेरू के ऊपर से छलांग लगाना चाहते हैं,

तुम जो बुद्ध के पुत्र पर बुरी नज़र रखते हो।

क्योंकि यहाँ कहीं भी कुछ भी नहीं है।

इस दुनिया में, इसके देवताओं के साथ,

वह मेरे लिए जुनून का विषय होगा।

मुझे तो यह भी नहीं पता कि वह जुनून क्या होगा।

क्योंकि रास्ते ने इसे जड़ समेत नष्ट कर दिया है।

जैसे किसी गड्ढे से निकली राख बिखरी हुई हो,

जैसे जहर का कटोरा - वाष्पीकृत हो गया हो,

मुझे तो यह भी समझ नहीं आ रहा कि वह जुनून क्या होगा।

क्योंकि रास्ते ने इसे जड़ समेत नष्ट कर दिया है।

ऐसे व्यक्ति को बहकाने की कोशिश करो जिसने इस बारे में विचार नहीं किया हो।

या जिन्हें गुरु ने निर्देश नहीं दिया है।

लेकिन इसे इसके साथ आजमा कर देखें, कौन जाने?

और आप खुद को ही नुकसान पहुंचाते हैं।

चाहे अपमानित किया जाए या पूजा की जाए,

सुख या दुख में,

मेरी जागरूकता दृढ़ है।

अनाकर्षकता को जानते हुए

मनगढ़ंत चीजों का,

मेरा दिल कहीं भी नहीं टिकता।

मैं उस एक दिवंगत व्यक्ति का अनुयायी हूँ।

अष्टमार्ग के वाहन पर सवार होकर:

मेरा तीर हटा दिया गया, अपशिष्ट मुक्त,

मुझे खाली घर में जाकर खुशी हुई।

क्योंकि मैंने अच्छी तरह से चित्रित कठपुतलियाँ देखी हैं,

लकड़ियों और रस्सियों से बांधा हुआ,

उन्हें विभिन्न तरीकों से नृत्य कराया गया।

जब छड़ें और डोरियां हटा दी जाती हैं,

फेंक दिया गया, बिखेर दिया गया, टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया,

टुकड़े-टुकड़े हो गए, कहीं नहीं मिले।

वहां मन किस चीज में अपना घर बनाएगा?

मेरा यह शरीर, जो बिल्कुल वैसा ही है,

जब धर्मों का अभाव होता है तो वह कार्य नहीं करता।

जब धर्मों से रहित होने पर यह कार्य नहीं करता,

वहां मन किस चीज में अपना घर बनाएगा?

जैसे आपने किसी दीवार पर बना भित्तिचित्र देखा हो,

पीले रंग के ऑर्पिमेंट से लिपटा हुआ,

वहां आपकी दृष्टि विकृत हो गई है।

मनुष्य के प्रति आपकी धारणा अर्थहीन है।

जैसे कोई मृगतृष्णा गायब हो गई हो,

सपने में सोने के पेड़ की तरह,

जैसे भीड़ के बीच कोई जादू का शो हो —

आप अवास्तविक चीजों के पीछे अंधे होकर भागते हैं।

सीलिंग वैक्स की गेंद के समान,

एक खोखले में स्थापित,

बीच में एक बुलबुले के साथ

और आंसुओं से भीग गया,

आंखों से निकलने वाला स्राव भी वहीं उत्पन्न होता है:

आँख के भाग

सभी को एक साथ लपेटा जाता है

विभिन्न तरीकों से।"

उसकी प्यारी आंख निकाल कर,

अनासक्त मन से

उसे कोई पछतावा नहीं था।

"लो, ये आंख ले लो। ये तुम्हारी है।"

उसने तुरंत उसे दे दिया।

उसी क्षण उसका जोश वहीं पर फीका पड़ गया।

और उसने उससे माफी मांगी।

"पवित्र जीवन के अनुयायी, सुरक्षित रहें।"

इस तरह की चीजें

ऐसा दोबारा नहीं होगा।

आप जैसे व्यक्ति को नुकसान पहुंचाना

यह धधकती आग को गले लगाने जैसा है।

ऐसा लग रहा है जैसे मैंने किसी जहरीले सांप को पकड़ लिया हो।

आप सुरक्षित रहें। मुझे क्षमा करें।

और वहां से मुक्त होकर, नन

श्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में गया।

जब उसने उसकी उत्कृष्ट योग्यता का प्रमाण देखा,

उसकी आँख बन गई

जैसा पहले था।

जातक
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> **जातक**

अंतर्वस्तु

- 1 जति
- 2 अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
- 3 हिंदी अनुवाद (पीडीएफ)
- 4 मूल पाली संस्करण
  - 4.1 पाली-अंग्रेजी संस्करण
  - 4.2 पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

जातक
जातक कथाएँ बुद्ध के जन्म वृत्तांत हैं, जिनमें उनके बोधिसत्व जीवन के दौरान ज्ञान और बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए किए गए 547 जन्मों का वर्णन है। ये केवल उनके अतीत की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि बुद्ध ने इनका उपयोग अपने कई शिष्यों को ज्ञान के मार्ग पर प्रेरित करने के लिए भी किया। ज्ञान और निर्वाण ही बुद्ध का सर्वोपरि लक्ष्य था, जिसे वे अनेक लोगों में प्रज्वलित करना चाहते थे। इनसे हमें यह भी पता चलता है कि भगवान बुद्ध, भगवान राम थे (जैसा कि दशरथ जातक 461 में वर्णित है); पिछले जन्म में, भगवान कृष्ण के समय में, वे उनके नौवें भाई घट पंडित थे (घट जातक 454 में वर्णित है); वे अगस्त्य ऋषि भी थे (अकित्त जातक 480 में वर्णित है); और वे मातंग ऋषि भी थे (मातंग जातक 497 में वर्णित है)। यह भी उल्लेख किया गया है कि वह राजा ओक्काका (531 में इक्ष्वाकु। कुसा-जातक) का पुत्र था। वह कृष्णदीपायन ऋषि (444 में कान्हादीपायन-जातक) और महाजनक (539 में महाजनक-जातक) के रूप में भी प्रकट होते हैं।

पुनर्जन्म की अवधारणा बौद्ध धर्म (और हिंदू धर्म जैसे कई अन्य भारतीय धर्मों) का केंद्रबिंदु है; इसके अनुसार, प्रत्येक प्राणी वास्तव में अमर है, लेकिन अपने कर्मों के अनुसार अनेक जन्मों और नियतियों का सामना करता है, चाहे वे अच्छे हों या बुरे; अनेक लोकों में और विभिन्न प्रकार के प्राणियों के रूप में जन्म लेता है। अच्छे कर्मों से मनुष्य, देवदूत (ईश्वर) या प्रधान देवदूत (ब्रह्मा) जैसे उच्च कोटि के प्राणी के रूप में पुनर्जन्म होता है। बुरे कर्मों से दुख के चार लोकों में पुनर्जन्म हो सकता है, जैसे पशु (पक्षी, मछली, कीट आदि), प्रेत (पेटा, प्रेत), असुर (हिंसा और बुराई करने वाले) और नरक (अनेक प्रकार के नरक)। बुद्ध कहते हैं कि दुख के लोकों में बुरे प्राणी दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, उनका विनाश करते हैं और उन्हें भस्म कर देते हैं। किसी भी लोक में, अच्छे निर्णय (दूसरों की सहायता करना) उत्थान की ओर ले जाते हैं और जो दूसरों को हानि पहुँचाते रहते हैं, उनका पतन और अधिक होता जाता है। नीचे दिए गए सूत्रों में ऐसा प्रतीत होता है कि नरक पृथ्वी की सतह के नीचे, संभवतः पिघली हुई चट्टानों (लावा) में, अदृश्य आयामों में स्थित हैं; और स्वर्ग ऊपरी दिशाओं में (अदृश्य आयामों में) स्थित हैं। हमें यह समझना होगा कि दृश्य जगत 5 प्रतिशत से भी कम है और शेष अदृश्य आयाम हैं जिन्हें विज्ञान डार्क मैटर और डार्क एनर्जी भी कहता है। निर्वाण/मोक्ष: अंततः जब अच्छे नैतिक आचरण, अच्छे कर्मों और ध्यान के अभ्यास से सभी बुरे गुण समाप्त हो जाते हैं, तब पूर्ण व्यक्ति को अरहत/अरिहंत कहा जाता है और वह किसी भी जन्मलोक में पुनर्जन्म नहीं लेगा; बल्कि वह निर्वाण की उस अवस्था में विलीन हो जाएगा जो अनंत, शाश्वत और शाश्वत परम आनंद है।

(कहानियों में प्रयुक्त कई सामान्य शब्दों को इस पृष्ठ के अंत में प्रस्तुत किया गया है।)
पुस्तक I.--एकनिपात:

1. अपाण्णक-जातक - पथभ्रष्ट लोगों के लिए सलाह; दो व्यापारियों की पिछली जन्म की कहानी, एक नासमझ जिसने गलत सलाह मानकर सब कुछ खो दिया और मर गया, और दूसरा (बुद्ध अपने पिछले जन्म में) जिसने बुद्धिमानी से बिछाए गए जाल को पहचान लिया।

2. वन्नुपथ-जातक - उस भिक्षु को सलाह जिसने मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास छोड़ दिया। बुद्ध के पूर्व जीवन की कथा, रेगिस्तान में, जब उन्होंने कुआँ खोदने का प्रयास जारी रखा, पानी पाया और सभी को बचाया।

3. सेरिवाणिज-जातक - एक भिक्षु को सलाह जिसने मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास छोड़ दिया। एक फेरीवाले (देवदत्त) की पूर्व जन्म कथा, जिसने एक लाख सिक्कों के मूल्य का एक सोने का कटोरा खो दिया था।

4. चुल्लक-सेट्ठी-जातक - कैसे एक निराश भिक्षु को बुद्ध द्वारा ध्यान में चमत्कारिक रूप से सहायता मिली, थोड़े समय में ही उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और जब सभी भिक्षु मठ से दूर थे, तब उसने स्वयं को हजार गुना बढ़ाने का चमत्कार प्रदर्शित किया।

5. तांडुलनाली-जातक - एक मंदबुद्धि भिक्षु जिसने भोजन का उचित वितरण नहीं किया; पिछले जन्म में भी उसने 500 घोड़ों और पूरे राज्य को चावल के एक माप के बराबर महत्व दिया था।

6. देवधम्म-जातक - भिक्षुओं के लिए विनम्रता के बारे में; एक धनी व्यक्ति, भिक्षु बनने पर, घर से लाई गई प्रचुरता में रहने लगा। जब उससे पूछा गया, तो उसने क्रोध में अपने वस्त्र उतार दिए और लंगोटी पहनकर कहा कि वह इसी तरह रहेगा। उसे बताया गया कि पिछले जन्म में वह एक जल यक्ष था जो उन लोगों को खा जाता था जो उसके इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते थे कि ईश्वरीय आचरण क्या है। बुद्ध ने उत्तर दिया और यक्ष को आगे के पाप से भी बचाया।

7. कट्ठाहारी-जातक - जाति और नस्लवाद के बारे में; अनजाने में एक दासी का विवाह कोसल के राजा से हो गया और उसे रानी बना दिया गया। जब राजा को इस बात का पता चला, तो उसने उसकी स्थिति को दासी के पद तक गिरा दिया, लेकिन बुद्ध ने उसे समान मानकर उसकी स्थिति बहाल कर दी। उन्होंने अपने पिछले जन्म की एक ऐसी ही कहानी सुनाई, जिसमें उनका जन्म एक साधारण महिला से एक राजा के घर हुआ था, राजा ने अपनी अंगूठी उसे दे दी थी; बाद में जब वह अपना पद वापस लेने आई, तो बुद्ध ने एक चमत्कार दिखाकर उन्हें कैसे मना लिया।

8. गामणि-जातक - जातक 462 में पूरी कहानी; धैर्य के बारे में; एक भिक्षु जिसने मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास छोड़ दिया था, उसे बुद्ध ने सहायता प्रदान की, जिन्होंने पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जिसमें बुद्ध ने सबसे छोटे राजकुमार को राजा और अन्य सभी की जीवन भर सहायता करने की सलाह दी और राजा की मृत्यु पर, भाइयों के साथ लड़ाई भी छोड़ दी, लेकिन अच्छे स्वभाव के कारण राजा के रूप में सिंहासन पर आसीन हुए।

9. मखादेव-जातक - बुद्ध के पिछले त्यागों के बारे में; पिछले जन्मों में भी उन्होंने तपस्वी जीवन के लिए त्याग किया था; राजा मखादेव की कहानी में, जब एक नाई को उनके सिर पर एक सफेद बाल मिलता है, तो राजा पश्चाताप से भर जाते हैं और त्याग कर देते हैं, अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप देते हैं और तपस्वी के रूप में आम के कंदरा में विश्राम करते हैं।

10. सुखाविहारी-जातक - मार्ग से प्राप्त सुख के बारे में। एक पूर्व राजा (अब एक अरहत भिक्षु) भय में रहता था, अब आनंद में रहता है; पिछले जन्म में भी उसने अपने राज्य का त्याग कर आनंदमय जीवन व्यतीत किया था।

11. लक्खण-जातक: देवदत्त द्वारा बनाए गए विभाजन के बारे में, जिसमें 500 भिक्षुओं को छोड़ दिया गया था, सारिपुत्त ने उन्हें उपदेश दिया और उन्हें वापस ले आए; बुद्ध सारिपुत्त की प्रशंसा करते हैं कि पिछले जन्म में जब वे एक हिरण थे, तब उनके पुत्र (अब सारिपुत्त) ने झुंड को जंगल से सुरक्षित वापस लाया था;

12. निग्रोधामिगा-जातक - यह बुद्ध द्वारा एक गर्भवती भिक्षुणी के उद्धार के बारे में है, जिन्होंने अरिहंत कश्यप को जन्म दिया। एक धनी महिला, जिसे अपनी गर्भावस्था का पता नहीं था, देवदत्त (जिसने बाद में विभाजन पैदा किया) के अधीन भिक्षुणी संघ में शामिल हो गई। बाद में जब उसकी गर्भावस्था का पता चला, तो देवदत्त ने उसे संघ से निकाल दिया। लेकिन भगवान बुद्ध ने उसे बचाया और पुनः संघ में शामिल कर लिया, जहाँ उसने कश्यप को जन्म दिया और दोनों ने अरिहंत पद प्राप्त किया। भगवान बुद्ध ने उसके पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जिसमें वे सभी हिरण के रूप में पैदा हुए थे और राजा द्वारा बारी-बारी से भोजन के लिए पकड़े गए थे। जब उसकी बारी आई, तब वह गर्भवती थी। लेकिन भगवान बुद्ध ने हिरणों के राजा के रूप में उसे बख्श दिया और स्वयं उसकी जगह मर गए। उनकी इस नैतिकता को देखकर राजा ने सभी प्राणियों के जीवन को बख्श दिया।

13. कंढिन-जातक - यह एक ऐसे भिक्षु के बारे में है जो अपनी पूर्व पत्नी के प्रेम में व्याकुल था। भगवान बुद्ध ने अपने पूर्वज जीवन की कथा सुनाई है, जब वे एक हिरण थे और जंगल में एक हिरणी से आसक्त हो गए थे। जब एक शिकारी आया, तो खतरे को भांपते हुए हिरणी ने हिरण को आगे बढ़ने के लिए कहा, जिसके परिणामस्वरूप शिकारी ने हिरण को मार डाला। हिरणी भाग गई। शिकारी ने हिरण की खाल उतारी, उसे भूना और उसका मांस खा लिया और बाकी को अपने साथ ले गया। इस प्रकार, वासना बड़े खतरे का कारण बनती है। इसमें तीन दंड भी बताए गए हैं।

14. वातमिगा-जातक - जीभ के स्वाद के बंधन के बारे में। एक भिक्षु को जीभ के स्वाद ने भिक्षुत्व छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था। उसके माता-पिता द्वारा उसे वापस लाने के लिए भेजी गई एक दासी ने ऐसा किया। वह दासी उसके भिक्षायात्रा के

दौरान सबसे आगे चलती थी, उसे उत्तम भोजन देती थी, फिर उसे अपने घर बुलाकर भिक्षावृत्ति छुड़वा देती थी और अंत में उसे उसके माता-पिता के पास भेज देती थी। भगवान बुद्ध ने अपने पिछले जन्म में भी यही बताया था, जब वे एक शर्मीले हिरण थे जो मनुष्यों को देखकर भाग जाते थे। उस समय एक व्यक्ति ने उनके रास्ते में मीठी घास का जाल बिछाकर उन्हें पकड़ लिया था और राजा के महल में ले आया था।

15. खरादीय-जातक - अनुशासनहीनता के बारे में। एक भिक्षु अनुशासनहीन था। भगवान बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जब वे एक हिरण के बच्चे थे और उन्होंने प्रशिक्षण के निर्देशों का पालन नहीं किया और एक शिकारी द्वारा बिछाए गए जाल में फंसकर मारे गए।

16. तिपल्लत्था-मिगा-जातक - अनुशासन और विद्या के पालन के बारे में। एक बार जब भगवान बुद्ध के पुत्र राहुल एक नवोदित भिक्षु थे, तब एक नियम के कारण उन्हें आवास नहीं दिया गया। इसलिए उन्हें खुले में सोना पड़ा, लेकिन उन्होंने कोई शिकायत नहीं की। अगले दिन भगवान बुद्ध ने नियम में संशोधन किया ताकि नवोदित भिक्षुओं को इस तरह के व्यवहार का सामना न करना पड़े। बाद में अन्य भिक्षुओं ने उनके धैर्य और विनम्रता के लिए उनकी प्रशंसा की। भगवान बुद्ध ने बताया कि अपने पिछले जन्म में, जब वे एक हिरण थे, तब वे विद्या के प्रति अत्यंत उत्सुक थे। एक बार जब वे एक शिकारी के जाल में फंस गए, तो उन्होंने मरने का नाटक किया और जैसे ही शिकारी ने उन्हें छोड़ा, वे भाग गए और अपनी जान बचा ली।

17. मालुत-जातक - दो भिक्षुओं के बीच सर्दी को लेकर हुई चर्चा के बारे में। वे इस बात पर सहमत नहीं थे कि महीने के किस भाग में सर्दी होती है। भगवान बुद्ध ने उन्हें बताया कि उनके पिछले जन्मों में भी उन्होंने यही प्रश्न पूछा था और जब वे शेर और बाघ के रूप में पैदा हुए थे, तब उन्होंने यही उत्तर दिया था। उन्होंने कहा था कि सर्दी तब होती है जब हवा चलती है।

18. मतकभट्ट-जातक - पशु बलि पर। एक व्यक्ति ने बकरी की हत्या की, फिर बाद में 500 बार बकरी के रूप में पुनर्जन्म लिया और दंड के रूप में उसकी हत्या कर दी गई।

19. आयाचितभट्ट-जातक - पशु बलि पर। जब एक व्यक्ति ने एक परी को बलि के रूप में कई प्राणियों को मार डाला, तो वृक्ष परी ने उसे सिखाया कि इससे समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

20. नलपान-जातक - भगवान बुद्ध और उनके भिक्षुओं की यात्रा के दौरान एक तालाब और वहाँ उगने वाले खोखले सरकंडों के बारे में। इसमें पिछले जन्म की एक कथा है जिसमें भगवान बुद्ध ने वानरों के नेता के रूप में उसी स्थान पर अन्य वानरों की मृत्यु को रोका था, क्योंकि पानी में एक राक्षस मौजूद था। उन्होंने लंबे खोखले सरकंडों से पानी पीकर ऐसा किया था। इसमें चार चमत्कारों का भी उल्लेख है जो युगों-युगों तक बने रहेंगे।

21. कुरुंग-जातक - देवदत्त द्वारा भगवान बुद्ध को मारने के प्रयास पर आधारित। बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों की एक कथा सुनाई, जिसमें वे एक हिरण थे और देवदत्त एक शिकारी। शिकारी ने पेड़ पर चबूतरा बनाया और उसके फल जमीन पर फेंके, लेकिन बुद्ध ने खतरे को भांपते हुए, फल को एक तरफ गिरते हुए देखकर, उसकी जान बचाई।

22. कुक्कुर-जातक - अहिंसा के बारे में। बहुत समय पहले, जब भगवान बुद्ध कुत्ते बोधिसत्व के रूप में पैदा हुए थे, तब एक राजा के चमड़े के सामान को पालतू कुत्तों ने कुतर दिया था। राजा ने जंगली कुत्तों के बारे में सोचकर सभी कुत्तों को मारने का आदेश दिया। बोधिसत्व राजा के पास गए और पालतू कुत्तों को छाछ के साथ घास खिलाकर उल्टी करवाई ताकि सबूत मिल सके। फिर उन्होंने राजा को सद्गुण का उपदेश दिया और सभी कुत्तों की जान बचाई।

23. भोजाजानी-जातक - कठिनाइयों का सामना करते हुए भी मार्ग पर दृढ़ रहने के बारे में। पिछले जन्म में भगवान बुद्ध अश्व बोधिसत्व के रूप में जन्मे थे। वे एक युद्ध अश्व थे जिन्होंने घातक घावों के बावजूद युद्ध लड़ा और युद्ध जीतने में सहायता की।

24. आज्ञ-जातक - मार्ग पर दृढ़ रहने के बारे में। पिछले जन्म की कहानी पहले जैसी ही है, लेकिन यहाँ रथ में दो घोड़े थे।

25. तित्त-जातक - भगवान बुद्ध द्वारा विचारों को पढ़कर समाधान खोजने के बारे में। एक सुनार भिक्षु प्रगति नहीं कर पा रहा था, जब उसे बुद्ध के पास लाया गया, तो उसे एक कमल दिखाया गया जो समय के साथ मुरझा गया था, जिससे उसे यह अहसास हुआ कि क्षय सभी को प्रभावित करता है, इसके बाद ध्यान में उसे ज्ञान प्राप्त हुआ। पिछले जन्म में, भगवान बुद्ध ने एक शाही घोड़े की देखभाल की थी जो उस स्थान पर न तो पानी पीता था और न ही स्नान करता था जहाँ दूसरे घोड़े ने ऐसा

किया था। इसलिए यह जानकर कि उसका स्थान बदल दिया गया था, उन्होंने समाधान खोज लिया।

26. महिलामुख जातक - भगवान बुद्ध द्वारा विचारों को जानने और उनका समाधान खोजने के बारे में। एक भिक्षु अपने प्रतिद्वंद्वी का भोजन खा रहा था, जब उसे भगवान बुद्ध के पास लाया गया तो उसे एक हाथी की पिछली जन्म की कहानी सुनाई गई, जो रात में चोरों की बुरी बातें सुनकर क्रूर हो गया था। बोधिसत्व की सलाह पर, जब उसके पास सद्भावना की बातें की गईं, तो वह फिर से अच्छा हो गया।

27. अभिण्हजातक - भगवान बुद्ध द्वारा विचारों को जानने और उनका समाधान खोजने के बारे में। एक भिक्षु और उसका गृहस्थ मित्र साथ में बहुत समय बिताते थे। बुद्ध को यह कहानी सुनाने पर उन्होंने अपने पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जिसमें एक हाथी था और दूसरा कुत्ता। दोनों एक-दूसरे से बहुत प्यार करते थे और साथ में खाना भी खाते थे। जब एक व्यक्ति कुत्ते को ले गया, तो हाथी दुखी हो गया और उसने खाना छोड़ दिया। एक बुद्धिमान मंत्री (बोधिसत्व) की सलाह पर, एक घोषणा की गई, जिसके बाद कुत्ते को वापस लाया गया और दोनों फिर से प्रसन्न हो गए।

28. नंदीविसाल-जातक - दयालु शब्द बोलने के बारे में। एक बार भगवान बुद्ध का जन्म बैल के रूप में हुआ। जब उनके साथ कठोर शब्दों का प्रयोग किया गया तो उन्होंने रथों को नहीं खींचा, जिससे मालिक को हानि हुई, लेकिन जब उनके साथ दयालुता से बात की गई तो उन्होंने मालिक को बहुत धन का लाभ दिलाया।

29. कंह-जातक: बुद्ध की असमानता के बारे में। एक बार बुद्ध ने चमत्कार दिखाए और शरीर सहित स्वर्ग चले गए। उनके लौटने पर भिक्षु बुद्ध की असमानता पर चर्चा कर रहे थे। यह जानकर बुद्ध ने उन्हें बताया कि वे पिछले जन्मों में भी असमान थे। एक पिछले जन्म की कथा के अनुसार, जब वे एक काले बैल थे, तब उन्होंने एक नदी के पार 500 गाड़ियाँ खींचीं और इसके लिए उन्हें भारी प्रतिफल मिला।

30. मुणिक-जातक - प्रलोभन के बारे में। जब एक युवा भिक्षु एक लड़की के प्यार में पड़ गया, तो भगवान बुद्ध ने उसे अपने पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जिसमें वह एक सुअर के रूप में उसी लड़की के विवाह के लिए करी बना दिया गया था।

31. कुलावक-जातक - पाँच शीलों (नैतिक मूल्यों) के बारे में। प्रेम, साहस, त्याग, देवताओं आदि से भरे एक सुंदर पूर्व जीवन का वर्णन है, और यह भी कि कैसे उन्होंने पिछले जन्म में पाँच शीलों के पालन से स्वर्ग राज्य प्राप्त किया। मनुष्य रूप में भगवान बुद्ध ने पाँच शीलों का पालन किया, जिससे मृत्यु के खतरे में भी उनकी रक्षा हुई। कई लोगों ने, विशेष रूप से चार महिलाओं ने, दान-पुण्य कार्यों में उनकी सहायता की। जीवन समाप्त होने के बाद वे स्वर्ग में देवताओं (देवदूतों) के राजा बने और उनके सहायक भी स्वर्ग में ही जन्म लिए। वहाँ भी उन्होंने शीलों का पालन किया और पक्षियों के बच्चों की जान बचाने के लिए असुरों (राक्षसों) के साथ युद्ध में हार मानने को तैयार थे, लेकिन फिर से धर्म के मार्गदर्शन से असुर भाग गए। उनकी सांसारिक सहायक (सुजा) असुरों के राजा की पुत्री के रूप में जन्मीं और कैसे उन्होंने सुजा को बचाने के लिए छद्म वेश में उनसे विवाह किया।

32. नच्चा जातक - लज्जा और लज्जा के बारे में। एक भिक्षु के पास बहुत सारा सामान और वस्त्र थे। जब किसी ने आपत्ति जताई, तो उसने सारे वस्त्र त्याग दिए और नग्न रहने की शपथ ली। लेकिन जब फिर आपत्ति जताई गई, तो उसने मठ और भिक्षु जीवन त्याग दिया और सांसारिक जीवन में लौट आया, जिससे उसका विश्वास भंग हो गया। बुद्ध ने उसके पिछले जन्म की कहानी सुनाई, जिसमें वह एक मोर के रूप में पैदा हुआ था। जब एक सुनहरी बत्तख ने उसे चुना, तो वह सबके सामने नाचने लगा और अपने पंख और नग्नता दिखाने लगा, इसलिए उसे अस्वीकार कर दिया गया। इस तरह उसने अपनी पत्नी को खो दिया।

33. सम्मोदमान-जातक - कुणाल जातक (536) में उठाए गए मुद्दों पर युद्ध से बचने के लिए बुद्ध ने अपने गृह नगर कपिलवस्तु में अपने परिवार को अपने ससुराल वालों के साथ सामंजस्य बनाए रखने के विषय में प्रवचन दिया। पिछले जन्म में बुद्ध एक बटेर थे। उन्होंने अपने परिवार को शिकारी के जाल में फंसकर एक साथ उड़कर शिकारी से बचने का तरीका सिखाया। बाद में जब कुछ बटेर आपस में झगड़ने लगे तो उन्होंने अपने झुंड को छोड़ दिया, जिसके बाद शेष बटेर जाल में फंस गए।

34. मच्छाजातक - अपनी पूर्व पत्नी के प्रेम में डूबे एक भिक्षु को अपने पिछले जन्म की कहानी सुनाई गई, जिसमें बताया गया कि कैसे वह मछली थे और अपनी पत्नी के साथ खेलते समय एक मछुआरे के जाल में फंस गए थे। उनकी पत्नी बच निकली,

जिससे भिक्षु अपनी पत्नी को खोने के गम में डूब गए। फिर एक पुजारी ने उन्हें बचाया।

35. वट्टक-जातक

36. सकुण-जातक

37. तित्तिर-जातक

38. बका-जातक

39. नन्द-जातक

40. खदिरंगारा-जातक

41. लोसाका-जातक

42. कपोता-जातक

43. वेलुका-जातक

44. मकासा-जातक

45. रोहिणी-जातक

46. आरामदूसक-जातक

47. वारुणि-जातक

48. वेदब्भ-जातक

49. नक्खत्त-जातक

50. दुम्मेधा जातक

51. महासीलव-जातक

52. चूल-जनक-जातक

53. पुण्णपाति-जातक

54. फलाजातक

55. पंचवुध-जातक

56. कंचनक्खंध-जातक

57. वानरिंद-जातक

58. तयोधम्म-जातक

59. भेरिवाद-जातक

60. संखधमन-जातक

61. असातमंत-जातक - शोक ग्रंथ। एक छात्र शोक ग्रंथों को कठिन तरीके से सीखता है (विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण के बारे में)।

62. अण्डभूत-जातक

63. तकका-जातक

64. दुराजाना-जातक

65. अनाभिराति-जातक

66. मुदुलक्खण-जातक - यौन वासना के बारे में, कि कैसे यह संतों के भी पतन का कारण बनती है
67. उच्चांग-जातक

68. साकेत-जातक

69. विसवंत-जातक

70. कुड्डाला-जातक

71. वरण-जातक

72. सीलावनगा-जातक

73. सच्चंकिरा-जातक

74. रुक्खधम्म-जातक

75. मच्छा-जातक 2 - बुद्ध ने चमत्कारिक रूप से सूखे के समय में वर्षा कराई

76. असंकीय-जातक

77. महासुपीना-जातक - कोसल के राजा को भविष्य के बारे में 16 सपने आते हैं और इनकी व्याख्या करते हुए, बुद्ध आने वाले समय में मानव जाति के नैतिक पतन की भविष्यवाणी करते हैं।
78. इल्लिसा-जातक - एक कंजूस के धर्म परिवर्तन की सच्ची कहानी, जो अकेले रहकर अच्छा भोजन करना चाहता था, लेकिन देखता है कि बुद्ध के शिष्य हवाई मार्ग से आकर शिक्षा दे रहे हैं; बाद में वह बुद्ध को एक ऐसी टोकरी से भोजन देते हुए भी देखता है जो कभी खाली नहीं होती। फिर बुद्ध उस कंजूस के जीवन की पुरानी कहानी और उसके धन के भाग्य के बारे में बताते हैं।

79. खरस्सर-जातक

80. भीमसेन-जातक

81. सुरपान-जातक - नशा का दुष्परिणाम; जादुई शक्तियों वाले एक वृद्ध भिक्षु की सच्ची कहानी, जो नशे में धुत होने पर शक्तिहीन हो गया; उन शिष्यों की पुरानी जीवन कहानी, जिन्होंने राजा द्वारा भिक्षा में शराब दिए जाने पर सभी शिक्षाओं को भुला दिया।

82. मित्तविन्द-जातक

83. कालकाण्णि-जातक

84. अत्थस्सद्वार-जातक

85. किम्पक्का-जातक

86. सीलावीमंसन-जातक

87. मंगला-जातक

88. सारम्भ-जातक

89. कुहक-जातक

90. अकाताञ्ञु-जातक

91. लिट्ठा-जातक

92. महासार-जातक

93. विस्साभोजना-जातक

94. लोमहांस-जातक

95. महासुदस्सन-जातक

96. तेलपट्टा-जातक

97. नामसिद्धि-जातक

98. कूटवाणिज-जातक

99. परोसहस्स-जातक

100. असतरूपा-जातक

101. परोसत-जातक

102. पण्णिक-जातक

103. वेरी-जातक

104. मित्तविन्द-जातक2

105. दुब्बालकठ-जातक

106. उदांचनी-जातक

107. सालित्तक-जातक

108. बाहिया-जातक

109. कुण्डकपुव-जातक

110. सब्बासंहारक-पन्ह
111. गद्रभ-पन्ह
112. अमरादेवी-पन्ह
113. सिगाला-जातक

114. मितासिंति-जातक

115. अनुसासिक-जातक

116. दुब्बाका-जातक

117. तित्तिर-जातक2

118. वट्टक-जातक2

119. अकालावी-जातक

120. बंधनमोक्खा-जातक - यह चिंचा नाम की महिला के बारे में है, जो बुद्ध पर गर्भावस्था का नाटक करने का झूठा आरोप लगाती है, और जब उसका पर्दाफाश होता है, तब बुद्ध उसके पूर्व जीवन के बारे में बताते हैं, जिसमें वह एक रानी थी और राजा के 64 दूतों के लिए वासना रखती थी।
121. कुसनाली-जातक

122. दुम्मेधा-जातक2

123. नांगलिसा-जातक

124. अम्बा-जातक

125. कटहक-जातक

126. असिलक्खण-जातक

127. कलण्डुक-जातक

128. बिलार-जातक

129. अग्गिका-जातक

130. कोसिया-जातक

131. असंपदान-जातक

132. पंचगरु-जातक

133. घटासन-जातक

134. झानशोधन-जातक

135. चंदाभ-जातक

136. सुवनहंस-जातक

137. बब्बू-जातक

138. गोधा-जातक

139. उभतोभट्ठ-जातक

140. काका-जातक

141. गोधा-जातक2

142. सिगाला-जातक2

143. विरोचन-जातक

144. नांगुट्ठ-जातक

145. राधा-जातक

146. काका-जातक2

147. पुप्परत्त-जातक

148. सिगाला-जातक3

149. एकपण्ण-जातक

150. संजीव जातक

पुस्तक II. दुकानिपाता:

151. राजवाद-जातक

152. सिगाला-जातक4

153. सूकरा-जातक

154. उरगा-जातक

155. गग्ग-जातक

156. अलीनाचित्त-जातक

157. गुणजातक

158. सुहानु-जातक

159. मोरा-जातक

160. विनीलक-जातक

161. इंदसमानगोत्त-जातक

162. संथव-जातक

163. सुसीमा-जातक

164. गिज्झा-जातक

165. नकुला-जातक

166. उपसाल्हा-जातक

167. समिद्धि-जातक

168. सकुणग्घी-जातक

169. अरक-जातक

170. काकण्टक-जातक

171. कल्याण-धम्म-जातक

172. दद्दरा-जातक

173. मक्काट-जातक

174. दुभिया-मक्कट-जातक

175. अदिक्कुपत्थान-जातक

176. कालय-मुथि-जातक

177. तिण्डुक-जातक

178. कच्छप-जातक

179. सताधम्म-जातक

180. दुद्दादा-जातक

181. असादिसा-जातक

182. संगमावचरा-जातक

183. वालोदक-जातक

184. गिरिदांत-जातक

185. अनाभिराति-जातक2

186. दधि-वाहन-जातक

187. चतुमट्ट-जातक

188. सिहकोठुक-जातक

189. सिहाचम्म-जातक

190. सीलानिसंस-जातक

191. रूहक-जातक

192. सिरी-काकाकानि-जातक

193. कुल्ला-पदुमा-जातक

194. मणिकोर-जातक

195. पब्बतुपत्थर-जातक

196. वलहस्स-जातक

197. मित्तमित्त-जातक

198. नोनेम-जातक - बुराई न देखो; दो तोते भाइयों की कहानी, जिनमें से एक बुराई का सच बता देता है और अपनी जान गंवा देता है।

199. गहापति-जातक

200. साधुसील-जातक

201. बंधनागार-जातक

202. केली-सीला-जातक

203. खन्ध-वत्त-जातक

204. वीरक-जातक

205. गंगेय्या-जातक

206. कुरुंग-मिगा-जातक - मित्रता; देवदत्त द्वारा बुद्ध को मारने के प्रयास के बारे में; तीन मित्रों हिरण, कठफोड़वा और कछुए की पुरानी जीवन कहानी, कैसे उन्होंने एक शिकारी से एक साथ सहयोग करके खुद को बचाया।

207. अस्सका-जातक - प्रेम-पीड़न; दिवंगत पत्नी के प्रेम में डूबा एक भिक्षु; मृत रानी के शोक में डूबे एक राजा की पुरानी जीवन कथा, लेकिन रानी गोबर के कीड़े के रूप में पुनर्जन्म लेती है और राजा की निंदा करती है और इसके बजाय अपने साथी गोबर के कीड़े से प्यार करती है।

208. सुंसुमार-जातक

209. कक्करा-जातक

210. कंदगलक-जातक

211. सोमदत्त-जातक

212. उच्छीठ-भट्ट-जातक

213. भारु-जातक - रिश्वत; विभिन्न धर्मों के लोगों के एक समूह ने भगवान बुद्ध के शिष्यों को परेशान करने के लिए राजा को रिश्वत देकर भगवान बुद्ध के मठ के बगल में अपना मठ बनवाया; दो झगड़ने वाले संन्यासियों के समूहों की प्राचीन जीवन गाथा।

214. पुन्ण-नदी-जातक

215. कच्छप-जातक2

216. मच्छा-जातक3

217. सेग्गु-जातक

218. कूट-वणिज-जातक

219. गरहित-जातक

220. धम्मद्धज-जातक

221. कासाव-जातक

222. चूला-नंदीय-जातक

223. पुटा-भट्ट-जातक

224. कुंभीला जातक

225. खांति-वन्नान-जातक

226. कोसिया-जातक2

227. गूथा-पाण-जातक

228. कामानित-जातक

229. पलायी-जातक

230. दुतिया-पालयी-जातक

231. उपाहन-जातक

232. वीणा-थून-जातक

233. विकाण्णक-जातक

234. असिताभू-जातक

235. वच्छ-नख-जातक

236. बका-जातक2

237. साकेत-जातक2

238. एकपद-जातक

239. हरित-माता-जातक

240. महापिंगल-जातक

241. सब्बादठ-जातक

242. सुनख-जातक

243. गुट्टिला-जातक

244. वीटिच्च-जातक

245. मूल-परियया-जातक

246. तेलोवादा-जातक

247. पादंजलि-जातक

248. किंसुकोपमा-जातक

249. सालक-जातक

250. कपि-जातक

पुस्तक III. टीका-निपाता:

251. संकल्प-जातक

252. तिल-मुट्ठी-जातक

253. मणि-कण्ठ-जातक

254. कुंडक-कुच्चि-सिंधव-जातक

255. सुका-जातक

256. जरुदपान-जातक

257. गमानी-चंड-जातक

258. मंधातु-जातक - इच्छाएँ अनंत हैं; एक भिक्षु को एक स्त्री की इच्छा हुई; एक राजा की पुरानी जीवन कथा जिसने स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा की, उसने स्वर्ग प्राप्त कर लिया, लेकिन जब उसने स्वर्ग के सह-शासक को मारकर स्वर्ग पर एकमात्र प्रभुत्व प्राप्त करने की दूसरी इच्छा की, तो उसने इसे खो दिया और फिर से पृथ्वी पर लौट आया।

259. तिरीट-वच्छ-जातक

260. दूता-जातक

261. पद्मा-जातक

262. मुदु-पाणि-जातक

263. चुल्ला-पालोभना-जातक - यौन प्रेम व्यर्थ है; एक भिक्षु एक स्त्री के प्रति आकर्षित हो गया; एक राजकुमार की पुरानी जीवन कथा जो एक स्त्री से आसक्त हो गया, हिंसक हो गया, निर्वासित कर दिया गया, एक उड़ते हुए तपस्वी को देखा और इसलिए उसने भी तपस्वी बनने का निश्चय कर लिया;

264. महा-पानाद-जातक

265. खुरप्पा-जातक

266. वातग्ग-सिन्धव-जातक

267. कक्कटा-जातक

268. आराम-दूसा-जातक

269. सुजात-जातक

270. उलूका-जातक

271. उदपान-दूसका-जातक

272. व्याग्घ-जातक

273. कच्छप-जातक3

274. लोला-जातक

275. NONAME-Jātaka2

276. कुरुधम्म-जातक

277. रोमाका-जातक

278. महिषा-जातक

279. शतपट्ट-जातक

280. पुटा-दूसका-जातक

281. अब्भंतरा-जातक - बुद्ध की पत्नी के बारे में, मठ में भिक्षुणी के रूप में संघ में शामिल होने और कैसे वह बीमार पड़ गई और उसे राजा के महल से भिक्षा के रूप में लाए गए आम का रस और चीनी प्रदान की गई।

282. सेय्या-जातक

283. वधकि-शुकर-जातक

284. सिरी-जातक

285. मनीषूकर-जातक

286. सालूका-जातक

287. लाभ-गरह-जातक

288. मच्छ-उद्दान-जातक

289. नाना-छन्द-जातक

290. सीला-विमंस-जातक

291. भद्र-घट-जातक

292. सुपत्त-जातक - बुद्ध की पत्नी (एक भिक्षुणी जो अब मठ में रहती हैं) के बारे में, जो बीमार पड़ गईं और बुद्ध के प्रमुख अनुयायियों द्वारा राजा से दान में लाए गए चावल और मछली उन्हें दी गई।

293. काया-विच्चिन्द-जातक

294. जंबु-खादक-जातक

295. अंताजातक

296. समुद्दा-जातक

297. काम-विलप-जातक

298. उदंबरा-जातक

299. कोमाया-पुत्त-जातक

300. वाका-जातक

पुस्तक IV. चतुक्कनिपाटा:

301. चुल्लाकालिंग-जातक

302. महासारोह-जातक

303. एकराज-जातक

304. दद्दरा-जातक2

305. शीलविमांसन-जातक2

306. सुजात-जातक2

307. पलासा-जातक

308. जावसकुण-जातक

309. चावक-जातक

310. सयह-जातक

311. पुचिमांडा-जातक

312. कस्सपमंडीय-जातक

313. खन्तीवादी-जातक

314. लोहाकुंभी-जातक

315. मांसाजातक

316. सासा-जातक

317. मातरोदना-जातक

318. कनावेरा-जातक

319. तित्तिर-जातक3

320. सुच्चजा-जातक

321. कुटिदूसका-जातक

322. दद्दभा-जातक

323. ब्रह्मदत्त-जातक

324. कम्मासाटक-जातक

325. गोधा-जातक3

326. कक्कारु-जातक

327. काकाति-जातक

328. अन्नुसोसिया-जातक

329. कालबाहु-जातक

330. सीलावीमंस-जातक

331. कोकालिका-जातक

332. रथलट्ठी-जातक

333. गोधा-जातक4

334. राजोवाद-जातक2

335. जंबुका-जातक

336. ब्रह्मचत्त जातक

337. पीठाजातक

338. थुसा-जातक

339. बावेरु-जातक

340. विषय-जातक

341. कंडरी-जातक

342. वानर-जातक

343. कुन्तानी-जातक

344. अंबकोर-जातक

345. गजकुंभ-जातक

346. केशव-जातक

347. अयाकूत-जातक

348. अरञ्ञ-जातक

349. संधिभेद-जातक

350. देवतापन्ह-जातक

पुस्तक V. पंचनिपाता:

351. मणिकुंडल-जातक

352. सुजात-जातक3

353. धोनासाख-जातक

354. उराग-जातक2

355. घटा-जातक

356. कारंडिया-जातक

357. लाटुकिका-जातक

358. कुलधम्मपाल-जातक

359. सुवण्णमिगा-जातक

360. सुसोंडी-जातक

361. वण्णारोह-जातक

362. सीलावीमंस-जातक2

363. हिरि-जातक

364. खज्जोपनक-जातक

365. अहिगुंडिक-जातक

366. गुम्बिया-जातक

367. सालिया-जातक

368. तचसार-जातक

369. मित्तविन्द-जातक3

370. पलासा-जातक2

371. दीघितिकोसला-जातक

372. मिगापोताका-जातक

373. मूसाका-जातक

374. चुल्लधनुग्गहा-जातक

375. कपोता-जातक2

पुस्तक VI. चानीपाता:

376. अवार्य जातक

377. सेताकेतु-जातक

378. दरीमुख-जातक

379. नेरु-जातक

380. आसंक-जातक

381. मिगालोपा-जातक

382. सिरिकालकणि-जातक

383. कुक्कुट-जातक

384. धम्मद्धज-जातबा

385. नंदीयमिगा-जातक

386. खरपुत्त-जातक

387. सूचि-जातक

388. तुंडिल-जातक

389. सुवन्नक्कक्कट-जातक

390. मयहाक-जातक

391. धजविहेठ-जातक

392. भीसपुप्फ-जातक

393. विघास-जातक

394. वट्टक-जातक3

395. काका-जातक3

पुस्तक VII. सत्तनिपाता:

396. कुक्कू-जातक

397. मनोजा-जातक

398. सुतानो-जातक

399. गिज्जा-जातक2

400. दब्बपुप्फ-जातक

401. दशाण्णक-जातक

402. सत्तुभस्त-जातक

403. अट्ठिसेना-जातक

404. कपि-जातक2

405. बका-ब्रह्म-जातक

406. गंधार-जातक

407. महाकपि-जातक

408. कुंभकार जातक

409. दल्हधम्म-जातक

410. सोमदत्त-जातक2

411. सुसीमा-जातक2

412. कोटिसिम्बली-जातक

413. धूमकारी-जातक

414. जागर-जातक

415. कुम्मासापिण्ड-जातक

416. परंतप-जातक

पुस्तक VIII. अत्थ-निपाता:

417. कच्चानी-जातक

418. अट्ठसद्द-जातक

419. सुलासा-जातक

420. सुमंगल-जातक

421. गंगामाल जातक

422. चेतिया-जातक

423. इंद्रिय-जातक

424. आदित्य-जातक

425. अट्ठाना-जातक

426. दीप-जातक

पुस्तक 9. नवनीपाता:

427. गिज्जा-जातक3

428. कोसंबी-जातक

429. महासुका-जातक

430. कुल्लासुका-जातक

431. हरित-जातक

432. पादकुसलमानव-जातक

433. लोमासकस्सपा-जातक

434. चक्कवाका-जातक

435. हलिददिराग-जातक

436. समुग्ग-जातक

437. पूतिमंस-जातक

438. तित्तिर-जातक4

पुस्तक X. दशा-निपाता:

439. चतु-द्वार-जातक

440. काण्हजातक 2 - यह कहानी बुद्ध ने कपिलवस्तु (अपने गृहनगर) में सुनाई थी जब उनका जन्म ब्राह्मण के रूप में हुआ था और उन्होंने केवल पवित्र जीवन के लिए सक्का वरदान मांगे थे।

441. चतु-पोसाथिका-जातक

442. शंख-जातक

443. कुल्ला-बोधि-जातक

444. कान्हादीपायन-जातक

445. निग्रोध-जातक

446. तक्ल-जातक

447. महा-धम्म-पाल-जातक

448. कुक्कुट-जातक2

449. माता-कुंडली-जातक

450. बिलारी-कोसिया-जातक

451. चक्क-वाका-जातक

452. भूरी-पन्ह-जातक

453. महा-मंगल-जातक - बुद्ध शगुन और भाग्य के संकेतों में विश्वास करने की निरर्थकता सिखाते हैं और फिर बताते हैं कि इसके स्थान पर क्या अभ्यास करना चाहिए।

454. घट-जातक 2 - कृष्ण और बलराम की कहानी, बुद्ध उनके भाई थे जिनका नाम घटपंडित था

पुस्तक XI. एकादशी-निपाता:

455. माति-पोसाका-जातक

456. जुन्ह-जातक

457. धम्म-जातक

458. उदय-जातक

459. पाणीय-जातक

460. युवंजय-जातक

461. दशरथ जातक - राम, लक्ष्मण और सीता की कथा। बुद्ध स्वीकार करते हैं कि वे पिछले जन्म में राम थे।

462. संवर-जातक

463. सुप्पारक-जातक

पुस्तक XII. द्वादश-निपात:

464. चुल्ला-कुणाल-जातक

465. भद्दा-साला-जातक - जाति आधारित घृणा किस प्रकार विनाश का कारण बनती है

466. समुद्द-वणिज-जातक - विधर्मी और बुद्ध के विरोधी देवदत्त की मृत्यु, जिसने क्रम में फूट पैदा की

467. कामजातक

468. जनसंध-जातक

469. महाकम्भजातक

470. कोसिया-जातक3

471. मेण्डक-जातक

472. महा-पदुमा-जातक

473. मित्तमित्त-जातक2

पुस्तक XIII. तेरसा-निपाता:

474. अम्बा-जातक2

475. फंदना-जातक

476. जवाना-हंस-जातक

477. कुल्ला-नारद-जातक

478. दूता-जातक2

479. कालींग-बोधि-जातक - बुद्ध ने मूल बोधि वृक्ष (गया से) से लिए गए बीज से जेतवन मठ में बो (पीपल) वृक्ष को तुरंत उगाकर चमत्कार किया।

480. अकित्ता-जातक - बुद्ध अगत्स्य ऋषि थे

481. तक्कारिया-जातक

482. रुरु-जातक

483. सरभ-मिगा-जातक - बुद्ध ने पल भर में आम का पेड़ उगाकर चमत्कार किया, फिर हवा में उड़े और फिर वहां के देवताओं (देवदूतों) को शिक्षा देने के लिए स्वर्ग लोक गए और फिर तीन महीने बाद दूसरे शहर में पृथ्वी पर अवतरित हुए।

पुस्तक XIV. पकिन्नाका-निपाता :

484. सालिकेदार-जातक

485. चंद-किन्नर-जातक - बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद पहली बार अपने राज्य (कपिलवस्तु) लौटते हैं और अपनी रोती हुई पत्नी से मिलते हैं, जिन्होंने उनके जाने के समय एक नन के समान सरल जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया था। वे उनके अच्छे गुणों की प्रशंसा करते हैं और उनके पिछले जन्मों की कथा सुनाते हैं कि वे पिछले जन्मों में भी निष्ठावान थीं।

486. महा-उक्कुसा-जातक

487. उद्दालक-जातक

488. भीसा-जातक

489. सुरुचि-जातक

490. पंच-उपोसाथ-जातक

491. महा-मोरा-जातक

492. तच्छ-सूकर-जातक

493. महा-वाणिज-जातक

494. साधना-जातक

495. दश-ब्राह्मण-जातक

496. भिक्खा-परंपरा-जातक

पुस्तक XV. VISATI-NIPATA:

497. मातंग-जातक - बुद्ध मतंग ऋषि थे

498. चित्त-संभूत-जातक

499. सिवि-जातक

500. सिरिमंडा-जातक

501. रोहंत-मिगा-जातक

502. हंसाजातक

503. सत्तिगुम्बा-जातक

504. भल्लातिया-जातक

505. सोमनस्सा-जातक

506. कैम्पेय्य-जातक

507. महा-पालोभना-जातक

508. पंच-पंडित जातक

509. हत्थी-पाल जातक

510. अयोघरा-जातक

पुस्तक XVI. तिमसानिपाटा:

511. किंचन्द-जातक

512. कुंभ जातक

513. जयअदिशा-जातक

514. छद्दन्त-जातक

515. संभवा-जातक

516. महाकपि-जातक2

517. दकारक्खस-जातक

518. पाण्डर-जातक

519. संबुला-जातक

520. गण्डतिन्दु-जातक

पुस्तक XVII. कैटलिसानीपाटा:

521. तेसकुण-जातक

522. सरभंग-जातक

523. आलमबुसा-जातक

524. सांखपाल-जातक

525. कुल्ला-सुतसोमा-जातक

पुस्तक XVIII. पन्नासानिपाटा:

526. नलिनीका-जातक

527. उमदन्ती-जातक

528. महाबोधि-जातक

पुस्तक XIX. सत्थिनीपाता:

529. सोनाका-जातक

530. संकिच्च-जातक

पुस्तक XX. सत्ततिनिपाता:

531. कुसा-जातक

532. सोना-नंद-जातक

पुस्तक XXI. असितिनिपता:

533. चुल्लाहंस-जातक - विधर्मी देवदत्त राजा के नशे में धुत हाथी नलगिरि की मदद से बुद्ध को मारने की कोशिश करता है, लेकिन बुद्ध बच जाते हैं और हाथी को वश में कर लेते हैं।

534. महाहंस-जातक

535. सुधाभोजन-जातक

536. कुणाल-जातक - बुद्ध हवा में उड़ने का चमत्कार दिखाते हैं; उपदेश देते हैं और अपने कुल (शाक्य) और अपनी पत्नी के कुल (कोलिय) के बीच युद्ध को रोकते हैं; बाद में 500 भिक्षुओं के साथ हवा में उड़ते हैं ताकि उन्हें ऊपर से हिमालय दिखा सकें।

537. महा-सुतसोमा-जातक

पुस्तक XXII. महानिपता:

538. मुगा-पक्खा-जातक

539. महाजनक-जातक

540. समा-जातक

541. निमि-जातक - नरक और स्वर्ग का वर्णन
542. खंडाहल जातक - देवदत्त ने राजा के 130 धनुर्धारियों का उपयोग करके बुद्ध को मारने का प्रयास किया, बुद्ध बच गए और उन सभी को परिवर्तित कर दिया, फिर देवदत्त के पिछले जीवन की कहानी सुनाते हैं जब वह एक राजा था जिसने अपने पुजारी द्वारा रची गई साजिश के अनुसार अपने पूरे परिवार को बलिदान द्वारा मारकर स्वर्ग पहुंचने की इच्छा की थी।
543. भूरिदत्त-जातक

544. महानादकस्सपा-जातक

545. विधुरापंडित-जातक

546. महा-उम्मग्ग-जातक

547. वेस्सन्तरा-जातक - बुद्ध अपने पिता के राज्य (कपिलवस्तु) लौटते हैं और एक सभा में, हवा में तैरने का चमत्कार प्रदर्शित करते हैं और उनका विश्वास जीत लेते हैं।

जातक कथाओं में पाए जाने वाले सामान्य शब्द:---
टिप्पणी-1 : अधिकांश कथाओं के अंत में बुद्ध के श्रोताओं को प्रथम मार्ग, द्वितीय मार्ग, तृतीय मार्ग या चतुर्थ मार्ग प्राप्त करते हुए दर्शाया गया है। इनका विवरण यहाँ दिया गया है। (ये जातक कथा संख्या 1 में भी वर्णित हैं)

ध्यान का अभ्यास करने का बौद्ध अष्टांग मार्ग (धार्मिक जीवन के साथ) चार चरणों की उपलब्धियों की ओर ले जाता है, जिसे चट्टारो मार्ग (चार मार्ग) भी कहा जाता है:

प्रथम मार्ग (प्रथम मार्ग) - जिसे **सोतापन्ना** कहा जाता है , यानी धारा का विजेता, ध्यान में कई पापों/कर्मों के निवारण के साथ, पहली बार समाधि में निर्वाण की अवस्था का अनुभव होता है, मनुष्य/देवदूत के रूप में केवल सात बार पुनर्जन्म लेता है ताकि ध्यान के माध्यम से अपूर्णताओं को दूर कर सके और फिर निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर सके।
द्वितीय मार्ग (द्वितीय मार्ग) - जिसे **सकदागामी** कहा जाता है , इसमें बहुत कम पाप/कर्म शेष रहते हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति समाधि की अवस्था में कई बार निर्वाण का अनुभव करता है। वह केवल एक बार मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेता है ताकि ध्यान के माध्यम से अपूर्णताओं को दूर कर सके और फिर निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर सके।
तीसरा मार्ग (तीसरा मार्ग) - जिसे **अनागामी** कहा जाता है , इसमें बहुत कम पाप/कर्म शेष रहते हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति समाधि की अवस्था में कई बार निर्वाण का अनुभव करता है। वह कभी मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म नहीं लेता, बल्कि ब्रह्मा (राजदेव) के लोक में जन्म लेता है, जहाँ ध्यान के माध्यम से वह अपूर्णताओं को दूर करता है और निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त करता है।
चौथा मार्ग (चौथा मार्ग) - अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) नामक अंतिम उपलब्धि , जिसमें व्यक्ति समाधि अवस्था में ध्यान के माध्यम से सभी पापों/कर्मों को पूर्णतः दूर कर लेता है, फिर निर्वाण से पूर्व की तीन अवस्थाओं का अनुभव करता है: (क) अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण (ख) इनसे भौतिक जगत में आसक्तियों के कारण पुनर्जन्म के कारण-कार्य चक्र का ज्ञान (ग) आसक्तियों और पापों का विलीन होना; फिर निर्वाण तक पहुँचने के लिए समाधि की नौ अवस्थाओं का अनुभव करना: 1. भीतर चेतना की प्रबुद्ध आनंदमय अवस्था। 5. भौतिक शरीर से परे सभी दिशाओं में चेतना का विस्तार होकर भौतिक ब्रह्मांड में अनंत अंतरिक्ष/सर्वव्यापकता का अनुभव करना। 7. शून्यता का अनुभव करना, अर्थात् भौतिक ब्रह्मांड का अनुभव न होना। 9. अंत में शाश्वत, अनंत, अपरिवर्तनीय, अदृश्य प्रकाश के सागर के समान पारलौकिक सर्वव्यापी अवस्था में रूपांतरित होना - अंतिम ज्ञानोदय/मोक्ष/निर्वाण। टिपिटका में अरियापरियेसन सुत्त (मज्झिमा निकया 26) देखें ।
(जैसा कि आर्यपरियेसन सूत्र में बताया गया है, प्रबुद्ध व्यक्ति अनंत के साथ एक हो जाता है, इस प्रकार अनंत क्षमताओं का स्वामी बन जाता है। कृपया ध्यान दें कि 'जादुई' शब्द का अर्थ उपरोक्त मार्ग का 'अनुयायी' या 'प्राप्तकर्ता' हो सकता है। लेकिन यह जादू नहीं है, यद्यपि जो लोग इसे प्राप्त करते हैं, उन्हें अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं जिनका उल्लेख सम्मनफल और अन्य सूत्रों में किया गया है, लेकिन इन शक्तियों की प्राप्ति उद्देश्य बिल्कुल नहीं है। बुद्ध के मार्ग का उद्देश्य **ज्ञानोदय** है , अर्थात् भौतिक संसार में हमें बांधने वाली चीजों से मुक्त होना और अनंत काल तक जीवित रहना, अर्थात् मोक्ष/निर्वाण।)
टिप्पणी-2 : बौद्ध धर्म के **चार प्रमुख सत्य** हैं: (i) जीवन दुखमय है; (ii) भौतिक प्रकृति की लालसाएँ व्यक्ति/प्राणी के भविष्य के पुनर्जन्म का कारण बनती हैं; (iii) लालसाओं के लुप्त होने से व्यक्ति भी विलीन हो जाता है और ज्ञान/मोक्ष/शाश्वत जीवन प्राप्त करता है; और (iv) बुद्ध द्वारा शिक्षा दी गई धर्मपरायण अष्टमार्ग विधि का अनुसरण करने से लालसाएँ लुप्त हो जाती हैं।

टिप्पणी-3 : बौद्ध धर्म के **तीन रत्न,** जिन्हें त्रिरत्न (त्रिमूर्ति) के रूप में जाना जाता है, इस प्रकार हैं: (1) बुद्ध - यह विश्वास रखना कि यदि बुद्ध इसे प्राप्त कर सकते हैं, तो कोई भी कर सकता है। (2) धम्म - बुद्ध द्वारा दिखाया गया अष्टांगिक मार्ग, जो धर्म (शील), ध्यान (समाधि) और समाधि (प्रज्ञा) पर आधारित है। (3) संघ - भिक्षुओं का वह भाईचारा या पवित्र संघ, जिसकी स्थापना उन्होंने की थी (विशेषकर प्रबुद्ध भिक्षुओं का)।
नोट-4 : प्रतिद्वंद्वी या ' **विधर्मी** '। जिन छह प्रतिद्वंद्वियों के साथ गौतम (बुद्ध) को प्रतिस्पर्धा करनी थी, वे थे पुराण कश्यप, मक्खली गोशाल, अजिता केसा-कंबली, पकुधा कक्कायण, संजय बेलाथि-पुट्टा, और निगंथा नटपुट्टा (जिन्हें जैनियों के गुरु महावीर के नाम से भी जाना जाता है)।
नोट-5 : अनुवादकों ने भाई, भाईचारा और बंधुत्व शब्दों का प्रयोग किया है, अर्थात् भाई = भिक्षु; बंधुत्व = भिक्षुओं का पवित्र संघ; बंधुत्व = भिक्षु।
नोट-6 : **देव** = स्वर्ग लोक में देवदूत या देवता (ये भी पुनर्जन्म के अधीन हैं)
टिप्पणी-7 : **ब्रह्मा** = उच्च स्वर्ग में स्थित प्रधान देवदूत (ये भी पुनर्जन्म के अधीन हैं)
टिप्पणी-8 : **तथागत** = गौतम बुद्ध; तथा = परे, अगत = वापस आए; तथागत शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने मृत्यु को पार किया, शाश्वत, कालातीत, अमर निर्वाण अवस्था में प्रवेश किया और फिर मनुष्यों को मार्ग सिखाने के लिए जीवित होकर वापस आया, एक अनुभवी व्यक्ति के रूप में जो मार्ग को भलीभांति जानता है।
नोट-9 : **दशबाला** = बुद्ध; दस = दस, बला = शक्तियाँ; बुद्ध को दस अलौकिक शक्तियों से युक्त माना जाता है।
टिप्पणी-10 : ज्ञान प्राप्ति की ओर ले जाने वाला धर्म का **अष्टांगिक मार्ग** । 1. सही दृष्टिकोण 2. सही इरादा 3. सही वाणी 4. सही कर्म 5. सही आजीविका 6. सही प्रयास 7. सही ध्यान (सती) 8. सही समाधि (समाधि)। यहाँ 'सही' शब्द का अर्थ वह है जो ज्ञान प्राप्ति की ओर ले जाता है। विस्तृत जानकारी के लिए, आर्य अष्टांगिक मार्ग देखें ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अपन्नक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक <<<<-----||-1-||----->>>> अगला

पुस्तक I.--एकनिपाता (*1)
जातक क्रमांक 1
अपन्नक-जातक

सत्य के विषय में यह (*2) प्रवचन भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती शहर के पास जेतवन स्थित महान मठ में रहते हुए दिया था। लेकिन आप पूछेंगे कि इस कहानी की शुरुआत किसने की? दरअसल, यह कोषाध्यक्ष के पाँच सौ मित्र थे, जो गलत धारणा वाले गुरुओं के शिष्य थे (*3)।

एक दिन, कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका (*4) अपने पाँच सौ शिष्यों को साथ लेकर जेतवन मठ गए, जहाँ उन्होंने मालाएँ, इत्र, मलहम, तेल, शहद, गुड़, वस्त्र और लबादे का एक बड़ा भंडार मंगवाया। भगवान बुद्ध को विधिवत प्रणाम करने के बाद, उन्होंने उन्हें मालाएँ और इसी प्रकार की वस्तुएँ भेंट कीं और भिक्षु संघ को औषधीय तेल और वस्त्र सौंप दिए; और यह सब करने के बाद, वे बैठने के छह दोषों से बचते हुए एक तरफ बैठ गए। अन्य संप्रदायों के शिष्यों ने भी बुद्ध को प्रणाम किया और अनाथपिंडिका के निकट आकर बैठ गए, वे गुरु की पूर्णिमा के समान तेजस्वी शांति, बुद्धत्व के चिन्हों से परिपूर्ण उनकी उत्कृष्ट उपस्थिति और 6 फीट तक प्रकाश से घिरे उनके स्वरूप तथा बुद्ध की समृद्ध महिमा को निहारते रहे, वह महिमा मानो एक के ऊपर एक मालाओं के रूप में प्रकट हो रही हो।

फिर, यद्यपि लाल घाटी में दहाड़ते युवा शेर की गर्जना जैसी या बरसात के मौसम में तूफानी बादल की तरह, मानो स्वर्ग की गंगा को नीचे ला रहा हो (*5) और रत्नों का घेरा बुनता प्रतीत होता हो, फिर भी आठ गुना परिपूर्णता की आवाज में, जिसका आकर्षण कानों को मंत्रमुग्ध कर देता था, उन्होंने उन्हें मधुरता से भरे और विविध सुंदरता से उज्ज्वल प्रवचन में सत्य का उपदेश दिया।

गुरु के प्रवचन सुनने के बाद, वे परिवर्तित हृदय से उठे और ज्ञान के स्वामी को उचित प्रणाम करके, उन अन्य शिक्षाओं को त्याग दिया जिनमें उन्होंने शरण ली थी, और बुद्ध को अपना आश्रय बनाया। तब से वे निरंतर अनाथापिंडिका लेकर, हाथों में इत्र और मालाएँ आदि लिए हुए, मठ में सत्य का प्रवचन सुनने जाते थे; वे दानशील थे, आज्ञाओं का पालन करते थे और साप्ताहिक उपवास रखते थे।

अब भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगर से राजगृह नगर लौट आए। बुद्ध के जाते ही उन्होंने अपना नया धर्म त्याग दिया और अन्य शिक्षाओं को शरण देकर अपनी मूल अवस्था में लौट गए।

लगभग सात-आठ महीने रहने के बाद भगवान बुद्ध जेतवन मठ लौट आए। एक बार फिर अनाथपिंडिका अपने मित्रों के साथ गुरु के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, सुगंध और अन्य वस्तुएँ भेंट कीं और एक तरफ बैठ गए। उनके मित्रों ने भी भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उसी प्रकार बैठ गए। तब अनाथपिंडिका ने भगवान बुद्ध को बताया कि कैसे जब वे (बुद्ध) भिक्षायात्रा पर गए थे, तो उनके मित्रों ने पुराने उपदेशों का सहारा छोड़कर फिर से अपनी मूल अवस्था में लौट आए थे।

भगवान बुद्ध ने अपने मुख कमल को, मानो वह रत्नों से भरा हुआ एक संदूक हो, दिव्य सुगंधों से महकते हुए और अनगिनत युगों तक उचित रूप से बोलने के कारण अनेक सुगंधों से परिपूर्ण, खोलकर अपनी मधुर वाणी से पूछा:- "क्या यह खबर सच है कि तुम शिष्यों ने तीन शरणों (*6) को छोड़कर अन्य शिक्षाओं की शरण ली है?"

और जब वे इस तथ्य को छुपाने में असमर्थ होकर यह स्वीकार कर चुके थे, "यह सच है, भगवान बुद्ध," तब गुरु ने कहा, "शिष्य, न तो नीचे नरक (*7) की सीमाओं के बीच और न ही ऊपर सर्वोच्च स्वर्ग में, न ही दाएं और बाएं फैले हुए सभी अनंत लोकों में, कोई भी बुद्ध के बराबर, और न ही उनसे श्रेष्ठ, उन उत्कृष्टताओं में है जो आज्ञाओं का पालन करने और अन्य सद्‌गुणी आचरण से उत्पन्न होती हैं।"

फिर उन्होंने उन्हें त्रिरत्न (त्रिमूर्ति) तीन रत्नों (1. बुद्ध, 2. धम्म (निर्वाण का मार्ग) और 3. संघ (पवित्र व्यवस्था) की श्रेष्ठताएँ बताईं, जैसा कि पवित्र ग्रंथों में वर्णित है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं: "हे भिक्षुओं, समस्त प्राणियों में, चाहे वे निराकार हों..., बुद्ध सर्वोपरि हैं"; "इस लोक या अन्य लोकों में जो भी धन-संपत्ति है... (पहले जैसा ही)"; और "वास्तव में, वे ही विश्वासियों के सर्वोपरि हैं... (पहले जैसा ही)।" वहाँ से उन्होंने आगे कहा:- "कोई भी शिष्य, चाहे पुरुष हो या स्त्री, जो असाधारण गुणों से परिपूर्ण त्रिरत्न (त्रिमूर्ति) तीन रत्नों की शरण लेता है, कभी भी नरक या ऐसे ही अन्य लोकों में जन्म नहीं लेता; बल्कि, दुख के सभी जन्मों से मुक्त होकर, वे देवलोक में जाते हैं और वहाँ महान यश प्राप्त करते हैं। इसलिए, अन्य शिक्षाओं द्वारा दी गई शरण के लिए ऐसी शरण को त्यागकर, तुम भटक गए हो।"

और यहाँ निम्नलिखित पवित्र ग्रंथों का हवाला देना उचित होगा ताकि यह स्पष्ट हो सके कि जो लोग मुक्ति और परम सुख की प्राप्ति के लिए त्रिरत्न (तीन रत्नों) की शरण लेते हैं, वे दुख की अवस्थाओं में पुनर्जन्म नहीं लेंगे:

जो बुद्धों की शरण लेते हैं,
वे दुख की अवस्थाओं में नहीं जाएंगे;
जैसे ही वे अपना मानव शरीर त्यागेंगे,
वे देव (देवदूत) रूप धारण कर लेंगे (*8)।
================
जो धम्म
(धर्म, ध्यान और निर्वाण की दिव्य अंतर्दृष्टि का मार्ग) की शरण लेते हैं
, वे दुख की अवस्थाओं में नहीं जाएंगे;
जैसे ही वे अपना मानव शरीर त्यागेंगे,
वे देव (देवदूत) रूप धारण कर लेंगे।
================
जो संघ, प्रबुद्धों के पवित्र संघ की शरण लेते हैं,
वे दुख की अवस्थाओं में नहीं जाएंगे;
जैसे ही वे अपना मानव शरीर त्यागेंगे,
वे देव (देवदूत) रूप धारण कर लेंगे।
================
मनुष्य अनेक शरणस्थलों की खोज करते हैं,
जैसे पर्वत शिखर, वन का एकांत,
(अतः)
जब वह इस शरणस्थल को खोजकर पा लेता है, तो
उसे हर प्रकार के कष्ट से पूर्ण मुक्ति मिल जाती है। (*9)

लेकिन गुरु ने यहीं पर अपना उपदेश समाप्त नहीं किया; उन्होंने आगे कहा: “शिष्यों, बुद्ध के मार्ग पर ध्यान, धम्म के मार्ग पर ध्यान (निर्वाण/मोक्ष की ओर ले जाने वाला धर्म और नियम), संघ के मार्ग पर ध्यान (पवित्र संघ/अच्छी संगति), यही वह मार्ग है जो परमानंद के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ मार्गों में प्रवेश और उनकी प्राप्ति कराता है (*12)।” और जब उन्होंने इन और अन्य तरीकों से उन्हें सत्य का उपदेश दिया, तो उन्होंने कहा, “इस शरण को त्यागकर तुम भटक गए हो।”

(और यहाँ बुद्ध के मार्ग पर ध्यान करने वालों को मिलने वाले अनेक मार्गों के उपहार को निम्नलिखित शास्त्रों द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए:- "भिक्षुओं, एक ही बात है, जिसका अभ्यास और विकास करने से संसार के सुखों से पूर्ण अरुचि, वासनाओं का निवारण, पुनर्जन्मों का अंत, शांति, अंतर्दृष्टि, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है। वह एक बात क्या है?--बुद्ध के मार्ग पर ध्यान....आदि") (यहाँ ध्यान का तात्पर्य शरीर और मन के कठोर प्रशिक्षण/अनुशासन से है, जैसे ज़ेन, अनापान, विपश्यना, मेट्टा, सतिपत्तना, समाथा आदि, जिससे विचारों, भावनाओं, आसक्तियों और इच्छाओं में स्थिरता आती है, जो आगे चलकर दिव्य आनंदमय समाधि, अंतर्दृष्टि, आत्मज्ञान और अंततः चेतना के नश्वर एकत्व/अहंकार से अनंत सर्वव्यापकता के ज्ञानोदय की ओर ले जाती है।)

शिष्यों को इस प्रकार प्रोत्साहित करने के बाद, भगवान बुद्ध ने कहा, “इसी प्रकार अतीत में, शिष्यों ने मूर्खतापूर्ण निष्कर्ष निकाला कि जो शरण नहीं थी वही वास्तविक शरण थी, और वे राक्षस-ग्रस्त वन में प्रेतों के शिकार होकर पूरी तरह नष्ट हो गए; जबकि जो लोग सत्य के इस पूर्ण और निर्विवाद मार्ग पर दृढ़ रहे, वे उसी वन में समृद्ध हुए।” और यह कहकर वे मौन हो गए।

तब, गृहस्थ अनाथपिंडिका अपनी सीट से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हुए स्तुतिगान करने लगे और माथे पर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले, “हे प्रभु, यह हमारे लिए स्पष्ट है कि इन दिनों ये शिष्य भ्रम में पड़कर परम शरण से विमुख हो गए। परन्तु राक्षस-ग्रस्त वन में उन हठधर्मियों का विनाश और सत्य पर अडिग रहने वालों की समृद्धि हमसे छिपी हुई है, केवल आपको ही ज्ञात है। भगवान बुद्ध कृपा करें, मानो आकाश में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय कर रहे हों, कि वे इस बात को हमारे लिए स्पष्ट कर दें।”

तब भगवान बुद्ध ने कहा:- "संसार की कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही मैंने असंख्य युगों तक दस सिद्धियों (*10) का प्रदर्शन करके अनंत ज्ञान प्राप्त किया। ध्यान से सुनो, मानो तुम सोने की नली में शेर की मज्जा भर रहे हो।"

इस प्रकार कोषाध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करने के बाद, उन्होंने उस बात को स्पष्ट कर दिया जिसे पुनर्जन्म ने उनसे छिपा रखा था, मानो वे आकाश से पूर्णिमा को मुक्त कर रहे हों, जो बर्फ का जन्मस्थान है।

बहुत समय पहले काशी देश के बनारस नगर में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा रहता था। उन दिनों बोधिसत्व ब्रह्मदत्त एक व्यापारी परिवार में जन्मे थे और बड़े होकर पाँच सौ रथों के साथ व्यापार करने के लिए पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व की ओर यात्रा करते थे। बनारस में एक और युवा व्यापारी भी था, जो मूर्ख और संसाधनहीन था।

अब हमारी कहानी के समय, बोधिसत्व ने बनारस के कीमती सामान से पाँच सौ गाड़ियाँ लाद ली थीं और उन्हें यात्रा के लिए तैयार कर लिया था। और वह मूर्ख युवक व्यापारी भी तैयार था। बोधिसत्व ने सोचा, "अगर यह मूर्ख युवक व्यापारी मेरे साथ-साथ चलता रहा और हज़ार गाड़ियाँ एक साथ चलती रहीं, तो सड़क पर बहुत बोझ हो जाएगा; आदमियों के लिए लकड़ी, पानी आदि और बैलों के लिए घास लाना मुश्किल हो जाएगा। या तो उसे पहले जाना होगा या मुझे।" इसलिए उन्होंने दूसरे को बुलवाया और उसके सामने अपना विचार रखते हुए कहा, "हम दोनों एक साथ यात्रा नहीं कर सकते; तुम पहले जाना चाहोगे या बाद में?" दूसरे ने सोचा, "अगर मैं पहले जाऊँ तो बहुत से फायदे होंगे। मुझे ऐसी सड़क मिलेगी जो अभी तक कटी-फटी नहीं है; मेरे बैलों को सबसे अच्छी घास मिलेगी; मेरे आदमियों को करी के लिए सबसे अच्छी जड़ी-बूटियाँ मिलेंगी; पानी साफ रहेगा; और अंत में, मैं अपने सामान के बदले अपनी मनचाही कीमत तय कर सकूँगा।" इसलिए उन्होंने जवाब दिया, "मैं पहले जाऊंगा, मेरे प्रिय महोदय।"

दूसरी ओर, बोधिसत्व को अंत में जाने में अनेक लाभ दिखाई दिए, और उन्होंने मन ही मन कहा: "जो पहले जाएंगे वे ऊबड़-खाबड़ रास्तों को समतल कर देंगे, जबकि मैं उनके द्वारा तय किए गए रास्ते पर चलूंगा; उनके बैल पुरानी खुरदरी घास चर चुके होंगे, जबकि मेरे बैल उसकी जगह उगने वाली मीठी नई घास चरेंगे; मेरे आदमियों को करी के लिए मीठी जड़ी-बूटियां मिलेंगी जहां पुरानी तोड़ी जा चुकी होंगी; जहां पानी नहीं होगा, वहां पहले कारवां को पानी की व्यवस्था के लिए कुआं खोदना पड़ेगा, और हम उनके खोदे हुए कुओं से पानी पिएंगे। कीमतों पर मोलभाव करना थका देने वाला काम है; जबकि मैं बाद में जाकर, उनके द्वारा तय की गई कीमतों पर अपना सामान बेच सकूंगा।" इन सभी लाभों को देखते हुए, उन्होंने दूसरे से कहा, "तो आप पहले जाइए, मेरे प्रिय महोदय।"

“ठीक है, मैं चलूँगा,” मूर्ख व्यापारी ने कहा। और उसने अपनी गाड़ियाँ जोड़ीं और चल पड़ा। यात्रा करते-करते वह मानव बस्तियों को पीछे छोड़ते हुए जंगल के बाहरी इलाके में पहुँच गया। (जंगल पाँच प्रकार के होते हैं: लुटेरों का जंगल, जंगली जानवरों का जंगल, सूखे का जंगल, राक्षसों का जंगल और अकाल का जंगल। पहला प्रकार वह है जब रास्ता लुटेरों से भरा हो; दूसरा प्रकार वह है जब रास्ता शेरों और अन्य जंगली जानवरों से भरा हो; तीसरा प्रकार वह है जब नहाने या पानी की कोई व्यवस्था न हो; चौथा प्रकार वह है जब रास्ता राक्षसों से भरा हो; और पाँचवाँ प्रकार वह है जब कोई जड़ या अन्य भोजन न मिले। इस पाँचों श्रेणियों में, प्रश्न में उल्लिखित जंगल सूखा और राक्षसों का जंगल दोनों था।) तदनुसार, इस युवक व्यापारी ने अपनी गाड़ियों पर बड़े-बड़े पानी के घड़े रखे और उन्हें पानी से भरकर अपने सामने फैले साठ मील (4.23 किमी) के रेगिस्तान को पार करने के लिए चल पड़ा। जब वह घने जंगल के बीचोंबीच पहुँच गया, तो वहाँ रहने वाले जिन्न ने मन ही मन कहा, "मैं इन आदमियों को पानी का भंडार फेंकने पर मजबूर करूँगा और जब ये कमज़ोर पड़ जाएँगे, तब मैं इन सबको खा जाऊँगा।" इसलिए उसने अपनी जादुई शक्ति से शुद्ध सफेद रंग के युवा बैलों द्वारा खींची जाने वाली एक सुंदर रथ बनाई। लगभग दस-बारह जिन्नों के एक दल के साथ, जिनके पास धनुष-बाण, तलवारें और ढालें थीं, वह एक शक्तिशाली स्वामी की तरह इस रथ पर सवार होकर उनसे मिलने गया। उसके सिर पर नीले कमल और सफेद कमलों की मालाएँ थीं, उसके बाल और कपड़े गीले थे और रथ के पहिए कीचड़ से सने थे। उसके सेवक भी उसके आगे-पीछे गीले बालों और कपड़ों के साथ, मोतियों पर नीले कमल और सफेद कमलों की मालाएँ और हाथों में सफेद कमलों के गुच्छे लिए, खाने योग्य डंठल चबाते हुए, पानी और कीचड़ से लथपथ होकर चल रहे थे। अब कारवां के सरदारों की यह प्रथा है: जब भी हवा उनके सामने से आती है, तो वे धूल से बचने के लिए अपने रथ में अपने सेवकों के साथ आगे-आगे चलते हैं; लेकिन जब हवा पीछे से आती है, तो वे इसी तरह काफिले के पीछे चलते हैं। और, जैसा कि इस बार हवा उनके विपरीत दिशा से आ रही थी, युवक व्यापारी आगे चल रहा था। जब जिन्न को व्यापारी के आने का आभास हुआ, तो उसने अपना रथ रास्ते से हटाकर किनारे कर लिया और विनम्रतापूर्वक उसका अभिवादन करते हुए पूछा कि वह कहाँ जा रहा है। काफिले के सरदार ने भी अपनी गाड़ी को रास्ते से हटाकर किनारे कर दिया ताकि गाड़ियाँ निकल सकें। वह रास्ते में रुका और उस जिन्न से बोला, "हम अभी बनारस से आ रहे हैं, महोदय। लेकिन मैंने देखा है कि आपके सिर और हाथों में कमल और कमल के फूल हैं, आपके लोग उनकी खाने योग्य डंठलें चबा रहे हैं, और आप सब कीचड़ से सने हुए और भीगे हुए हैं। मैं पूछता हूँ, क्या रास्ते में बारिश हुई थी, और क्या आपको कमल और कमल से ढके हुए तालाब मिले थे?"

इस पर जिन्न ने कहा, "तुमने क्या कहा? अरे, उधर जंगल की गहरी हरी लकीर दिखाई दे रही है, और वहाँ से आगे पूरे जंगल में सिर्फ पानी ही पानी है। वहाँ हमेशा बारिश होती रहती है; तालाब भरे रहते हैं; और चारों ओर कमल और कमल के फूलों से ढकी झीलें हैं।" फिर जब गाड़ियों की कतार गुजरी, तो उसने पूछा कि वे कहाँ जा रही हैं। जवाब मिला, "फलां जगह।" "और इस गाड़ी में और इस गाड़ी में क्या सामान है?" "फलां।" "और इस आखिरी गाड़ी में क्या है जो भारी सामान से लदी हुई लग रही है?" "ओह, उसमें पानी है।" "तुम दूसरी तरफ से पानी लेकर आई हो, अच्छा किया। लेकिन अब इसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि आगे पानी भरपूर है। इसलिए घड़े तोड़ दो और पानी फेंक दो, ताकि तुम आराम से यात्रा कर सको।" और उसने आगे कहा, "अब अपने रास्ते पर आगे बढ़ो, क्योंकि हम पहले ही बहुत देर तक रुक चुके हैं।" फिर वह थोड़ी दूर और आगे चला गया, जब तक कि वह नजरों से ओझल नहीं हो गया, तब वह वापस उस जिन्न-शहर की ओर चल पड़ा जहां वह रहता था।

उस मूर्ख व्यापारी की गलती इतनी बड़ी थी कि उसने पिशाच का आदेश मान लिया और उसके घड़े टूट गए और सारा पानी बर्बाद हो गया, यहाँ तक कि हथेली में आने जितना पानी भी नहीं बचा। फिर उसने गाड़ियों को आगे बढ़ने का आदेश दिया। आगे उन्हें पानी की एक बूँद भी नहीं मिली और प्यास से वे थक गए। दिनभर, सूरज डूबने तक वे चलते रहे; लेकिन सूर्यास्त के समय उन्होंने अपनी गाड़ियाँ खोल दीं और बैलों को पहियों से बाँधकर एक शिविर बना लिया। बैलों को पीने के लिए पानी नहीं मिला और आदमियों के पास चावल पकाने के लिए कुछ नहीं था; और थके-हारे लोग सोने के लिए ज़मीन पर गिर पड़े। लेकिन जैसे ही रात हुई, पिशाच अपने शहर से निकले और उन सभी आदमियों और बैलों को मार डाला; और जब उन्होंने उनका मांस खाकर केवल हड्डियाँ छोड़ीं, तो पिशाच चले गए। इस प्रकार, उस मूर्ख युवक व्यापारी के कारण ही उस पूरे समूह का विनाश हुआ, जिनके कंकाल हर दिशा में बिखरे पड़े थे, जबकि पाँच सौ गाड़ियाँ अपने भार के साथ वहीं खड़ी रहीं।

अब बोधिसत्व ने उस मूर्ख युवक व्यापारी के प्रस्थान के बाद लगभग छह सप्ताह का समय बीतने दिया, फिर वे रवाना हुए। तब वे अपने पाँच सौ रथों के साथ शहर से निकले और कुछ समय बाद जंगल के बाहरी इलाके में पहुँचे। यहाँ उन्होंने अपने जलपात्रों को भरवाया और उनमें पर्याप्त जल का भंडार रखा; और ढोल बजाकर अपने आदमियों को शिविर में इकट्ठा किया और उन्हें संबोधित करते हुए कहा: "मेरी अनुमति के बिना एक मुट्ठी भर पानी भी इस्तेमाल न करें। इस जंगल में विषैले वृक्ष हैं; इसलिए आप में से कोई भी व्यक्ति मुझसे पूछे बिना कोई भी पत्ता, फूल या फल न खाए।" अपने आदमियों को यह सलाह देकर वे अपने 500 रथों के साथ जंगल में आगे बढ़े। जब वे जंगल के मध्य में पहुँचे, तो भूत पहले की तरह ही बोधिसत्व के मार्ग में प्रकट हुआ। लेकिन जैसे ही बोधिसत्व को भूत का आभास हुआ, उन्होंने उसे पहचान लिया; क्योंकि उसने मन ही मन सोचा, "यहाँ पानी नहीं है, इस 'जलहीन रेगिस्तान' में। लाल आँखों और आक्रामक चेहरे वाला यह व्यक्ति तो परछाई भी नहीं बना सकता। शायद इसने मुझसे पहले आए मूर्ख युवक व्यापारी को अपना सारा पानी फेंकने के लिए उकसाया होगा, और फिर उनके थक जाने का इंतज़ार करके उसे उसके सभी आदमियों के साथ खा गया

होगा। लेकिन इसे मेरी चतुराई और हाजिरजवाबी का अंदाज़ा नहीं है।" फिर उसने उस जिन्न को चिल्लाकर कहा, "चले जाओ! हम व्यापारी हैं, और जब तक हमें पता नहीं चलता कि और पानी कहाँ से आएगा, तब तक हम अपना पानी नहीं फेंकते। लेकिन जब हमें और पानी मिल जाता है, तो आप भरोसा कर सकते हैं कि हम इस पानी को फेंक देंगे और अपनी गाड़ियों का भार कम कर लेंगे।"

वह जिन्न कुछ दूर तक घोड़े पर सवार होकर तब तक चलता रहा जब तक वह नज़रों से ओझल नहीं हो गया, और फिर राक्षसों के शहर में अपने घर लौट गया। लेकिन जिन्न के चले जाने के बाद, बोधिसत्व के आदमियों ने उनसे कहा, "महोदय, हमने उन आदमियों से सुना है कि वहाँ जंगल की एक गहरी हरी लकीर दिखाई देती है, जहाँ उन्होंने कहा कि हमेशा बारिश होती रहती है। उनके सिर पर कमल थे और हाथों में कमल की कलियाँ थीं और वे उनकी डंठलें खा रहे थे, जबकि उनके कपड़े और बाल पानी से पूरी तरह भीगे हुए थे। आइए हम अपना पानी फेंक दें और हल्की गाड़ियों के साथ थोड़ा तेज़ी से चलें।" ये शब्द सुनकर, बोधिसत्व ने रुकने का आदेश दिया और सभी आदमियों को इकट्ठा किया। उन्होंने कहा, "मुझे बताइए; क्या आप में से किसी ने आज से पहले कभी सुना था कि इस वीरान जगह में कोई झील या तालाब है?" उत्तर था, "नहीं, महाराज, इसीलिए इसे 'जलहीन रेगिस्तान' कहा जाता है।"

"हमें अभी कुछ लोगों ने बताया है कि आगे जंगल के इलाके में बारिश हो रही है; अब बारिश की हवा कितनी दूर तक जाती है?" "एक लीग (4.23 किमी), महोदय।" "क्या यह बारिश की हवा यहाँ किसी तक पहुँची है?" "नहीं, महोदय।" "तूफ़ानी बादल का शिखर कितनी दूर तक दिखाई देता है?" "एक लीग, महोदय।" "क्या यहाँ किसी ने एक भी तूफ़ानी बादल का शिखर देखा है?" "नहीं, महोदय।" "बिजली की चमक कितनी दूर तक दिखाई देती है?" "चार या पाँच लीग, महोदय।" "क्या यहाँ किसी ने बिजली की चमक देखी है?" "नहीं, महोदय।" गरज की आवाज़ कितनी दूर तक सुनाई देती है?" "दो या तीन लीग, महोदय।" "क्या यहाँ किसी ने गरज की आवाज़ सुनी है?" "नहीं, महोदय।" "ये इंसान नहीं, बल्कि जिन्न हैं। ये वापस आएंगे, इस उम्मीद में कि जब हम उनके कहने पर पानी फेंक देंगे और कमज़ोर पड़ जाएंगे, तो हमें खा जाएंगे।" हमारे आगे चलने वाला युवक साधन संपन्न नहीं था, इसलिए संभवतः उसने अपना पानी बर्बाद कर दिया होगा और थकान के कारण उसका शिकार हो गया होगा। हमें उम्मीद है कि उसकी पाँच सौ गाड़ियाँ ठीक उसी तरह खड़ी मिलेंगी जैसे शुरुआत में भरी गई थीं; हम आज उन तक पहुँच जाएँगे। बिना एक बूँद पानी बर्बाद किए पूरी गति से आगे बढ़ते रहो।

इन शब्दों से अपने आदमियों को आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देते हुए, वह तब तक आगे बढ़ता रहा जब तक कि वह उन 500 गाड़ियों के पास नहीं पहुँच गया जो ठीक उसी तरह खड़ी थीं जैसे उन पर लादी गई थीं, और आदमियों और बैलों के कंकाल चारों ओर बिखरे पड़े थे। उसने अपनी गाड़ियों को जुए से अलग करवाया और उन्हें एक मजबूत घेरा बनाने के लिए व्यवस्थित करवाया; उसने देखा कि उसके आदमियों और बैलों ने जल्दी ही रात का भोजन कर लिया था, और बैलों को बीच में लिटाया गया था और आदमियों को उनके चारों ओर रखा गया था; और वह स्वयं अपने दल के प्रमुख आदमियों के साथ, हाथ में तलवार लिए, रात के तीनों पहरों में पहरा देता रहा, सूर्योदय की प्रतीक्षा करता रहा। अगले दिन सुबह होते ही, जब उसने अपने बैलों को चारा खिला दिया और सभी आवश्यक कार्य कर लिए, तो उसने अपनी कमजोर गाड़ियों को मजबूत गाड़ियों से बदल दिया, और अपने सामान्य सामान को छोड़े हुए सबसे कीमती सामान से बदल दिया। फिर वह अपने गंतव्य की ओर चल पड़ा, जहाँ उसने अपने माल को उसके मूल्य से दोगुने या तिगुने मूल्य के सामान से बदल दिया, और अपने पूरे दल में से एक भी आदमी खोए बिना अपने शहर लौट आया।

यह कहानी समाप्त करते हुए गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, अतीत में मूर्ख लोग पूर्ण विनाश की ओर अग्रसर हुए, जबकि सत्य के मार्ग पर चलने वाले लोग राक्षसों के चंगुल से बचकर सुरक्षित अपने गंतव्य तक पहुँचे और अपने घरों को लौट आए।" और इस प्रकार दोनों कहानियों को जोड़कर, उन्होंने बुद्ध के रूप में सत्य पर इस पाठ के लिए निम्नलिखित श्लोक कहा:

फिर कुछ लोगों ने एकमात्र, असाधारण सत्य की व्याख्या की;

लेकिन इसके अलावा झूठे शिक्षकों ने बातें कीं।

जो बुद्धिमान हो, वह इससे सबक ले।

और एकमात्र, असाधारण सत्य को दृढ़ता से ग्रहण करो।

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने सत्य के विषय में यह शिक्षा दी। उन्होंने आगे कहा: "सत्य के मार्ग पर चलना न केवल तीन सुखदायी वरदान, इंद्रियों के छह दिव्य देव/देवदूत अवस्थाओं और ब्रह्मा/प्रधान देवदूत के उच्चतर लोक के वरदान देता है, बल्कि अंततः अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) का दाता भी है; जबकि असत्य के मार्ग पर चलना चार प्रकार के दंडों या मानव जाति की निम्नतम जातियों में पुनर्जन्म का

कारण बनता है।" इसके आगे गुरु ने सोलह विधियों से चार सत्यों (*11) की व्याख्या की, जिसके अंत में उन सभी पाँच सौ शिष्यों ने प्रथम मार्ग (*12) के फल को प्राप्त किया।

अपना पाठ और उपदेश देने के बाद, दोनों कहानियाँ सुनाकर और उनके बीच संबंध स्थापित करके, गुरु ने अंत में जन्म की पहचान इस प्रकार की: "देवदत्त उस समय का मूर्ख युवक व्यापारी था; उसके अनुयायी उस व्यापारी के अनुयायी थे; बुद्ध के अनुयायी उस बुद्धिमान व्यापारी के अनुयायी थे, जो मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) जातक ग्रंथों का प्रामाणिक पाठ, जो केवल गाथाओं या श्लोकों से बना है, गाथाओं की संख्या के अनुसार 'पुस्तकों' या निपातों में विभाजित है। पहले खंड में 150 कथाएँ हैं जो प्रत्येक गाथा की व्याख्या और टीका प्रस्तुत करती हैं, और इस प्रकार पहला खंड बनता है। बाद के खंडों में गाथाओं की संख्या बढ़ती जाती है और कथाओं की संख्या घटती जाती है: उदाहरण के लिए, दूसरे खंड में 100 दो-गाथा कथाएँ हैं, तीसरे खंड में 50 तीन-गाथा कथाएँ हैं, इत्यादि। निपातों की कुल संख्या 22 है, जिनमें से 21 पाली पाठ के पाँच प्रकाशित खंडों का पाठ हैं। निपातों को वग्गों, या लगभग 10 कथाओं के समूहों में उपविभाजित किया गया है, जिनका नाम सामान्यतः उनकी पहली कथा के नाम पर रखा गया है। इन उपविभाजनों से अनुवाद को जटिल बनाना उचित नहीं समझा गया है।

(2) परिचयात्मक कहानी आमतौर पर एक कैचवर्ड के रूप में, बाद की गाथा (कहानी) के पहले शब्दों को उद्धृत करके शुरू होती है।

(3)प्रतिद्वंद्वी या 'विधर्मी'। जिन छह प्रतिद्वंद्वियों के साथ गौतम (बुद्ध) को मुख्य रूप से प्रतिस्पर्धा करनी थी, वे थे पुराण कश्यप, मक्खली गोशाल, अजिता केसा-कंबली, पकुधा कक्कायण, संजय बेलाथि-पुट्टा, और निगंथा नटपुट्टा (जिन्हें जैनियों के गुरु महावीर के रूप में भी जाना जाता है) (देखें, दीघा निकाय में समन्नाफला सुत्त)।

(4) यह एक उपनाम है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'गरीबों का पालन-पोषण करने वाला'। उनका सामान्य नाम सुदत्ता था। उन्होंने राजकुमार जेत से उनका बगीचा उतने सोने में खरीदा, जितने में ज़मीन को पक्का किया जा सकता था, और उन्होंने उस पर बुद्ध के लिए महान मठ जेतवन का निर्माण किया।

(5)अर्थात् मिल्की वे.

(6)अर्थात् 1. बुद्ध, 2. सत्य का मार्ग जिसका उन्होंने प्रचार किया, और 3. भिक्षुओं का पवित्र संघ, जिसकी उन्होंने स्थापना की। इस त्रिमूर्ति को 'तीन रत्न' के नाम से जाना जाता है।

(7) बौद्ध धर्म में सख्ती से कहें तो, दुख के 4 तल (नरक सहित) पीड़ा के स्थान हैं - अस्थायी और शिक्षाप्रद हैं और दंड की अवधि सीमित है, उसके बाद दूसरे तल में पुनर्जन्म हो सकता है।

(8)पाली रूप में बरकरार रखा गया शब्द 'देव' का अर्थ 'देवदूत' है।

(9)धम्मपद, खंड 188-192.

(10)अर्थात दान, भलाई, त्याग, ज्ञान, ऊर्जा, धैर्य, सत्य, संकल्प, प्रेम और समभाव। जातक संख्या (35) भी देखें।

(11) बौद्ध धर्म के ये चार प्रमुख सत्य इस प्रकार हैं:-(i) दु:ख: जीवन **दुखमय** है ; (ii) समुदय: (भौतिक प्रकृति की) लालसाएँ किसी व्यक्ति/प्राणी के **उद्भव** और निरंतरता का कारण बनती हैं; (iii) निरोध: लालसाओं के **लुप्त होने** से व्यक्ति भी लुप्त हो जाता है; और (iv) मार्ग: बुद्ध द्वारा शिक्षा दिए गए धर्म पर आधारित ध्यानमय अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने से लालसाएँ लुप्त हो जाती हैं।

(12) ध्यान का अभ्यास करने का बौद्ध अष्टांगिक मार्ग (धार्मिक जीवन के साथ) चार चरणों की उपलब्धियों में परिणत होता है, जिन्हें चट्टारो मार्ग (चार मार्ग) भी कहा जाता है:

प्रथम मार्ग (प्रथम मार्ग) - इसे सोतापन्ना कहा जाता है, धारा का विजेता, ध्यान में कई पापों/कर्मों के निवारण के साथ, पहली बार समाधि में निर्वाण की अवस्था का अनुभव होता है, मनुष्य/देवदूत के रूप में केवल सात बार पुनर्जन्म होता है ताकि ध्यान के माध्यम से अपूर्णताओं को दूर किया जा सके और फिर निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त होता है।

दूसरा मार्ग (दूसरा मार्ग) - जिसे सकदागामी कहा जाता है, इसमें बहुत कम पाप/कर्म शेष रहते हैं, ध्यान के माध्यम से व्यक्ति समाधि की अवस्था में कई बार निर्वाण का अनुभव करता है, केवल एक बार मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेता है ताकि ध्यान के माध्यम से अपूर्णताओं को दूर कर सके और फिर निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर सके।

तीसरा मार्ग (तीसरा मार्ग) - जिसे अनागामी कहा जाता है, इसमें बहुत कम पाप/कर्म शेष रहते हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति समाधि की अवस्था में कई बार निर्वाण का अनुभव करता है। वह कभी मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म नहीं लेता, बल्कि ब्रह्मा (राजदेव) के लोक में जन्म लेता है, जहाँ ध्यान के माध्यम से वह अपूर्णताओं को दूर करता है और निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त करता है।

चौथा मार्ग (चौथा मार्ग) - अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) नामक अंतिम उपलब्धि, जिसमें व्यक्ति समाधि अवस्था में ध्यान के माध्यम से सभी पापों/कर्मों को पूर्णतः दूर कर लेता है, फिर निर्वाण से पूर्व की तीन अवस्थाओं का अनुभव करता है: (क) अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण (ख) इनसे भौतिक जगत में आसक्तियों के कारण पुनर्जन्म के कारण-परिणाम चक्र का ज्ञान (ग) आसक्तियों और पापों का अब विलीन होना; फिर निर्वाण तक पहुँचने के लिए समाधि की नौ अवस्थाओं का अनुभव करना: 1. भीतर चेतना की प्रबुद्ध आनंदमय अवस्था। 5. भौतिक शरीर से परे सभी दिशाओं में चेतना का विस्तार, भौतिक ब्रह्मांड में अनंत अंतरिक्ष/सर्वव्यापकता का अनुभव। 7. शून्यता का अनुभव, अर्थात् भौतिक ब्रह्मांड का अनुभव न होना। 9. अंत में कालातीत, शाश्वत, अपरिवर्तनीय, अदृश्य प्रकाश के सागर के समान पारलौकिक सर्वव्यापी अवस्था में रूपांतरित होना - अंतिम ज्ञानोदय/मोक्ष/निर्वाण। टिपिटका में अरियापरियेसन सुत्त (मज्झिमा निकया 26) देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वानुपथ-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-2-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 2
वन्नुपथ-जातक

"वे अथक परिश्रम से गहराई तक खुदाई करते रहे।" - यह प्रवचन भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती नगर में रहते हुए दिया था।

आप पूछेंगे, किसके बारे में?

एक भाई (भिक्षु) (*1) के बारे में जिसने मार्ग पर बने रहने का प्रयास छोड़ दिया।

परंपरा के अनुसार, जब बुद्ध श्रावस्ती नगर में रह रहे थे, तब श्रावस्ती नगर के एक परिवार का वंशज जेतवन मठ में आया। गुरु के प्रवचन सुनकर उसे यह अहसास हुआ कि कामवासनाएँ दुख का कारण बनती हैं, और उसने भिक्षु संघ के प्रथम चरण में प्रवेश लिया। पूर्ण भिक्षु संघ में प्रवेश की तैयारी में पाँच वर्ष व्यतीत करने के बाद (*2), जब उसने दो सारांश सीख लिए और अंतर्दृष्टि की विधियों में स्वयं को प्रशिक्षित कर लिया, तब उसे गुरु से ध्यान का एक विषय प्राप्त हुआ जो उसे बहुत अच्छा लगा। एक वन में जाकर उसने वर्षा ऋतु व्यतीत की; परन्तु तीन महीने के अपने अथक प्रयासों के बावजूद, वह अंतर्दृष्टि का एक अंश भी प्राप्त नहीं कर सका। तब उनके मन में यह विचार आया, "गुरु ने कहा था कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं, और मैं उनमें सबसे निम्न श्रेणी का हूँ; इस जन्म में, मुझे लगता है, न तो कोई मार्ग है और न ही कोई फल। वन में रहकर मैं क्या लाभ करूँगा? मैं गुरु के पास वापस जाऊँगा, और बुद्ध की महिमा को देखते हुए और उनके मधुर उपदेशों को सुनते हुए अपना जीवन व्यतीत करूँगा।" और वे फिर से जेतवन मठ लौट आए।

अब उनके मित्रों और करीबी लोगों ने कहा, “महोदय, आपने ही गुरु से ध्यान का विषय प्राप्त किया था और एक ऋषि का एकांतवास करने के लिए प्रस्थान किया था। फिर भी आप वापस आ गए हैं और संगति का आनंद ले रहे हैं। क्या ऐसा हो सकता है कि आपने भिक्षुओं के ज्ञान का मुकुट प्राप्त कर लिया है और आप कभी पुनर्जन्म नहीं लेंगे?” “महोदय, क्योंकि मुझे न तो मार्ग प्राप्त हुआ और न ही फल, मैंने स्वयं को निरर्थक समझा और इसलिए मार्ग पर बने रहना छोड़ दिया और वापस आ गया।” “महोदय, आपने दृढ़ गुरु के उपदेशों के प्रति स्वयं को समर्पित करते हुए दुर्भावना दिखाकर गलती की है। आइए, हम आपको बुद्ध के ध्यान में लाते हैं।” और वे उन्हें अपने साथ गुरु के पास ले गए। जब गुरु को उनके आने का पता चला, तो उन्होंने कहा, “भाइयों, आप इस भाई को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने साथ लाए हैं। उसने क्या किया है?”

"महोदय, इतने पूर्णतः सत्य उपदेश के प्रति स्वयं को समर्पित करने के बाद, इस भिक्षु ने एकांतवास के मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास त्याग दिया है और वापस लौट आए हैं।"

तब गुरु ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि हे भाई, तुमने मार्ग पर दृढ़ता छोड़ दी है?" "जी हाँ, भगवान बुद्ध।" "पर यह कैसे हो सकता है कि इतनी शिक्षा में स्वयं को समर्पित करने के बाद, हे भाई, तुम एक ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रकट हो रहे हो जो कम इच्छाओं वाला, संतुष्ट, एकांतप्रिय और दृढ़ निश्चयी नहीं, बल्कि मार्ग पर दृढ़ता का अभाव दिखा रहे हो? क्या तुम ही अतीत में इतने साहसी नहीं थे? क्या यह तुम्हारे अकेले प्रयास से ही नहीं था, तुम्हारी मार्ग पर दृढ़ता के कारण, कि एक रेतीले रेगिस्तान में पाँच सौ गाड़ियों के कारवां के पुरुषों और बैलों को पानी मिला और वे प्रसन्न हुए? और अब तुम कैसे हार मान रहे हो?" ये शब्द उस भाई को हिम्मत देने के लिए काफी थे।

यह सुनकर, भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से पूछा, "हे प्रभु, इस भिक्षु की वर्तमान दुर्भावना तो हमें स्पष्ट है; परन्तु यह ज्ञान हमसे छिपा है कि कैसे इस अकेले व्यक्ति के निरंतर प्रयास से रेगिस्तान में मनुष्यों और बैलों को पानी मिला और वे प्रसन्न हुए। यह केवल आप ही जानते हैं, जो असीम ज्ञानी हैं; कृपया हमें इसके बारे में बताइए।"

"तो सुनो, भाइयों," भगवान बुद्ध ने कहा; और उनका ध्यान आकर्षित करने के बाद, उन्होंने उस बात को स्पष्ट किया जिसे पुनर्जन्म ने उनसे छिपा रखा था।

बहुत समय पहले, जब बनारस के काशी में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक व्यापारी परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे 500 गाड़ियों के साथ व्यापार करने के लिए यात्रा करते थे। एक बार वे साठ मील (4.23 किमी) चौड़े एक रेतीले रेगिस्तान में पहुँचे, जिसकी रेत इतनी महीन थी कि मुट्ठी पकड़ने पर उंगलियों से फिसल जाती थी। सूर्योदय होते ही वह स्थान अंगारों के ढेर की तरह गर्म हो जाता था और उस पर चलना असंभव हो जाता था। इसलिए, वहाँ से गुजरने वाले लोग अपनी गाड़ियों में जलाऊ लकड़ी, पानी, तेल, चावल आदि लेकर केवल रात में ही यात्रा करते थे। भोर होते ही वे अपनी गाड़ियों को एक वृत्त में व्यवस्थित करके एक शिविर बनाते थे, जिसके ऊपर एक शामियाना लगा होता था, और सुबह का भोजन करने के बाद वे दिन भर छाया में बैठे रहते थे। सूर्यास्त के समय वे अपना रात्रि भोज करते थे। और जैसे ही ज़मीन ठंडी होती, वे अपनी गाड़ियाँ जोतकर आगे बढ़ जाते। इस रेगिस्तान में सफ़र करना समुद्र में यात्रा करने जैसा था; एक 'रेगिस्तान-मार्गदर्शक', जैसा कि उसे कहा जाता था, तारों के ज्ञान से उनका मार्गदर्शन करता था। और इसी तरह हमारा व्यापारी अब उस निर्जन क्षेत्र में यात्रा कर रहा था।

जब उसके सामने केवल सात मील ही बचे थे, तो उसने मन ही मन सोचा, "आज रात हम इस रेतीले रेगिस्तान से निकल जाएँगे।" इसलिए, रात का खाना खाने के बाद, उसने लकड़ी और पानी फेंकने का आदेश दिया और अपनी गाड़ियों को जोतकर सड़क पर चल पड़ा। सबसे आगे वाली गाड़ी में चबूतरा बैठा था, जो आकाश में तारों को देख रहा था और उसी से रास्ता तय कर रहा था। लेकिन वह इतनी देर से सोया नहीं था कि थककर सो गया, और इस वजह से उसने ध्यान नहीं दिया कि बैल मुड़कर वापस चलने लगे हैं। पूरी रात बैल चलते रहे, लेकिन भोर होते ही चबूतरा जागा और ऊपर तारों की स्थिति देखकर चिल्लाया, "गाड़ियों को घुमाओ! गाड़ियों को घुमाओ!" और जैसे ही गाड़ियों को घुमाकर कतार में लगाया जा रहा था, दिन निकल आया। "अरे, कल तो हमने यहीं डेरा डाला था!" कारवां के लोग चिल्लाए। "हमारी सारी लकड़ी और पानी खत्म हो गया है, और हम रास्ता भटक गए हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी गाड़ियाँ खोल दीं और एक शिविर बनाकर ऊपर से शामियाना फैला दिया; फिर हर कोई अपनी-अपनी गाड़ी के नीचे निराशा में लेट गया। बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "अगर मैं हार मान लूँगा, तो सब मर जाएँगे।" इसलिए वे सुबह के ठंडे मौसम में इधर-उधर घूमते रहे, जब तक कि उन्हें कुश घास का एक झुंड नहीं मिला। उन्होंने सोचा, "यह घास यहाँ नीचे पानी की मौजूदगी के कारण ही उगी होगी।" इसलिए उन्होंने एक फावड़ा लाने और उस जगह पर एक गड्ढा खोदने का आदेश दिया। उन्होंने साठ भुजाओं की गहराई तक खोदा, जब तक कि उस गहराई पर फावड़ा एक चट्टान से नहीं टकराया, और सब निराश हो गए। लेकिन बोधिसत्व को पूरा विश्वास था कि उस चट्टान के नीचे पानी जरूर होगा, इसलिए वे गड्ढे में उतरे और चट्टान पर खड़े हो गए। झुककर उन्होंने अपना कान उस पर लगाया और सुना। नीचे बहते पानी की आवाज़ सुनकर वह बाहर आया और एक नौकर से बोला, "मेरे बेटे, अगर तुमने हार मान ली तो हम सब मर जाएँगे। इसलिए हिम्मत और साहस रखो। इस लोहे के हथौड़े को लेकर गड्ढे में जाओ और चट्टान पर प्रहार करो।"

अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुए, वह बालक, जहाँ अन्य सभी ने हिम्मत हार दी थी, दृढ़ निश्चय के साथ नीचे उतरा और चट्टान पर प्रहार किया। नदी को रोके रखने वाली चट्टान टूटकर गिर पड़ी। गड्ढे में पानी इतना भर गया कि वह ताड़ के पेड़ जितना ऊँचा हो गया; और सभी ने पानी पिया और स्नान किया। फिर उन्होंने अपने अतिरिक्त धुरे, जुए और अन्य फालतू सामान को काटकर चावल पकाया और खाया, और अपने बैलों को खिलाया। और जैसे ही सूरज डूबा, उन्होंने कुएँ के किनारे एक झंडा फहराया और अपने गंतव्य की ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने अपना सामान दुगुने और चौगुने मूल्य पर बेच दिया। प्राप्त धन से वे अपने घर लौट आए, जहाँ उन्होंने अपना

जीवन व्यतीत किया और अंत में अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चले गए। बोधिसत्व ने भी दान और अन्य अच्छे कार्यों में जीवन व्यतीत करने के बाद, अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चले गए।

जब परम बुद्ध ने यह प्रवचन दिया, तब स्वयं सर्वज्ञ ने यह श्लोक कहा:

उन्होंने बिना थके, उस रेतीले रास्ते को गहराई तक खोदा।

जब तक कि उन्हें उस रास्ते पर पानी नहीं मिल गया जिस पर वे चल रहे थे।

अतः ऋषि को दृढ़ मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ने दो,

जब तक उसके हृदय को शांति न मिल जाए, तब तक न हार मानो और न ही थको।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, उन्होंने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में कमजोर हृदय वाले भिक्षु को सभी फलों में सर्वोच्च फल, यानी अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) प्राप्त हुआ।

इन दोनों कहानियों को सुनाने के बाद, गुरु ने उन दोनों को जोड़ने वाला संबंध स्थापित किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा: "आज का यह दुर्बल हृदय वाला भाई उन दिनों वह सेवक था जिसने दृढ़ मार्ग पर चलते हुए चट्टान को तोड़ा और सभी लोगों को पानी पिलाया; बुद्ध के अनुयायी कारवां के शेष लोग थे; और मैं स्वयं उनका नेता था।"

फुटनोट:

(1) भाई = भिक्षु (वास्तव में भाई शब्द 'भिक्षु' का ईसाई अनुवाद है जिसका अर्थ भिक्षु होता है); भाई = भिक्षु (बहुवचन)।

(2) बंधुत्व = भिक्षुओं का पवित्र संघ। पब्बज्जा और उपसंपदा शब्द, जो बौद्ध संघ के भिक्षु के दीक्षा के दो चरणों को दर्शाते हैं और किसी संकाय में स्नातक और गुरु की क्रमिक उपाधियों के समान हैं, दीक्षा प्राप्त भिक्षु और वरिष्ठ भिक्षु के क्रमिक दीक्षा समारोहों का संकेत देते हैं। लेकिन, बौद्ध दर्शन के बारे में बात करते समय ईसाई शब्दावली का प्रयोग भ्रामक है। पब्बज्जा के लिए सामान्य आयु पंद्रह वर्ष और उपसंपदा के लिए बीस वर्ष थी, जिनके बीच का अंतराल पाठ में उल्लिखित पाँच वर्ष है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सेरिवानिजा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-3-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 3
सेरिवानिजा-जातक

"यदि इस आस्था में।" यह शिक्षा भी भगवान बुद्ध ने श्रावस्ती नगर में दी थी, एक ऐसे भिक्षु के बारे में जिसने मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास छोड़ दिया था।

क्योंकि, जब भिक्षुओं द्वारा उस व्यक्ति को ठीक उसी तरह लाया गया जैसा कि पहले उल्लेखित मामले में हुआ था, तो गुरु ने कहा, "हे भाई, तुम, जो इस गौरवशाली शिक्षा के प्रति स्वयं को समर्पित करने के बाद, जो मार्ग और फल (निर्वाण) प्रदान करती है, मार्ग पर बने रहना छोड़ रहे हो, तुम्हें लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ेगा, जैसे सेरी के उस फेरीवाले को जिसने एक लाख सिक्कों के मूल्य का सोने का कटोरा खो दिया था।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट किया।

पांच युग पूर्व, सेरी राज्य में, एक बोधिसत्व बर्तनों का व्यापार करते थे और उन्हें 'सेरीवन' कहा जाता था। उनके साथ एक और लालची व्यापारी था, जो 'सेरीवन' के नाम से ही जाना जाता था। वे तेलवाहा नदी पार करके अंधपुरा नगर में प्रवेश कर गए। उन्होंने दोनों ने मिलकर गलियों को आपस में बाँट लिया और अपने क्षेत्र की गलियों में अपना सामान बेचने लगे। दूसरे ने भी अपने क्षेत्र में ऐसा ही किया।

उस शहर में एक जर्जर परिवार रहता था। कभी वे धनी व्यापारी थे, लेकिन हमारी कहानी के समय तक वे अपने सभी बेटों, भाइयों और सारी दौलत खो चुके थे। केवल एक लड़की और उसकी दादी ही बची थीं, और वे मजदूरी करके अपना जीवन यापन करती थीं। इसके बावजूद, उनके घर में वह सोने का कटोरा था जिसमें पुराने समय में परिवार के मुखिया, महान व्यापारी, खाना खाते थे; लेकिन वह बर्तनों के बीच पड़ा हुआ था और लंबे समय तक इस्तेमाल न होने के कारण उस पर इतनी गंदगी जम गई थी कि दोनों महिलाओं को पता ही नहीं था कि वह सोने का है। उनके घर के दरवाजे पर एक लालची फेरीवाला आया और चिल्लाने लगा, "पानी के बर्तन बेचने हैं! पानी के बर्तन बेचने हैं!" और जब लड़की को पता चला कि वह वहाँ है, तो उसने अपनी दादी से कहा, "ओह, दादी, मेरे लिए एक छोटी सी चीज खरीद दीजिए।"

"हम बहुत गरीब हैं, प्रिय; इसके बदले हम क्या दे सकते हैं?" "यह कटोरा हमारे किसी काम का नहीं है। इसे हम आपको दे देते हैं।"

उस बूढ़ी औरत ने फेरीवाले को अंदर बुलवाया और उसे बिठाया, और उसे कटोरा देते हुए कहा, "यह लीजिए, महोदय, और कृपा करके अपनी बहन को इसके बदले में कुछ न कुछ दे दीजिए।"

फेरीवाले ने कटोरा हाथ में लिया, उसे पलटा और, सोने का संदेह होने पर, उसकी पीठ पर सुई से एक रेखा खींची, जिससे उसे पक्का पता चल गया कि वह असली सोना है। फिर, यह सोचकर कि वह औरत को कुछ भी दिए बिना कटोरा ले लेगा, वह चिल्लाया, "इसकी क्या कीमत है? यह तो आधे सिक्के के बराबर भी नहीं है!" और इतना कहकर उसने कटोरा ज़मीन पर फेंक दिया, अपनी जगह से उठा और घर से चला गया। अब, जैसा कि दोनों फेरीवालों के बीच तय हुआ था कि एक फेरीवाला उन गलियों में जाएगा जहाँ दूसरा जा चुका है, बोधिसत्व उसी गली में आए और घर के दरवाजे पर आकर चिल्लाए, "पानी के बर्तन बेचने हैं!" एक बार फिर उस महिला ने अपनी दादी से वही अनुरोध किया; और बूढ़ी औरत ने जवाब दिया, "मेरी प्यारी, पहले फेरीवाले ने हमारा कटोरा ज़मीन पर फेंक दिया और घर से बाहर निकाल दिया। अब हमारे पास बेचने के लिए क्या बचा है?"

"अरे, दादी माँ, वो फेरीवाला तो बहुत बदतमीज़ था; ये वाला तो देखने में अच्छा लगता है और मीठी बातें करता है। शायद ये इसे ले ही लेगा।" "तो फिर उसे अंदर बुलाओ।" तो वो घर में आया, और उन्होंने उसे बैठने के लिए जगह दी और कटोरा उसके हाथों में थमा दिया। कटोरा सोने का देखकर उसने कहा, "माँ, ये कटोरा एक लाख सिक्कों के बराबर है; मेरे पास इसकी कीमत नहीं है।"

"महोदय, यहाँ आने वाले पहले फेरीवाले ने कहा कि इसकी कीमत आधे सिक्के के बराबर भी नहीं है; इसलिए उसने इसे ज़मीन पर फेंक दिया और चला गया। यह आपकी दयालुता का ही परिणाम है जिसने कटोरे को सोने में बदल दिया है। इसे ले लीजिए; इसके बदले हमें कुछ दे दीजिए; और आप चले जाइए।" उस समय बोधिसत्व के पास 500 सिक्के और उससे भी अधिक मूल्य का भंडार था। उन्होंने यह सब उन्हें देते हुए कहा, "मुझे अपना तराजू, अपना थैला और आठ सिक्के रखने दीजिए।" उनकी सहमति से वे ये सब अपने साथ लेकर तेज़ी से नदी किनारे चले गए, जहाँ उन्होंने अपने आठ सिक्के नाविक को दिए और नाव में कूद गए। बाद में वह लालची फेरीवाला घर वापस आया और उनसे अपना कटोरा लाने को कहा, यह कहते हुए कि वह इसके बदले उन्हें कुछ न कुछ देगा। लेकिन बूढ़ी औरत उस पर भड़क उठी और बोली, "तुमने तो हमारे सोने के कटोरे को, जिसकी कीमत एक लाख सिक्के के बराबर भी नहीं समझी, एक छोटे सिक्के के बराबर भी नहीं समझा। लेकिन तभी एक ईमानदार फेरीवाला आया (शायद तुम्हारा मालिक), जिसने हमें उसके बदले एक हजार सिक्के दिए और कटोरा ले गया।"

इस पर वह चिल्लाया, "इसने मुझसे एक लाख सिक्कों के बराबर कीमत का सोने का कटोरा छीन लिया है; इसने मुझे बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाया है।" और उस पर इतना गहरा दुःख छा गया कि वह अपना आपा खो बैठा और पागलों जैसा व्यवहार करने लगा। उसने अपना सारा धन-सामान घर के दरवाजे पर फेंक दिया; उसने अपने ऊपरी और भीतरी वस्त्र उतार फेंके; और अपने तराजू के बीम को गदा बनाकर नदी किनारे तक उसका पीछा किया। जब उसने देखा कि बोधिसत्व नदी पार कर रहे हैं, तो उसने नाविक को वापस लौटने के लिए कहा, लेकिन बोधिसत्व ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया। जब वह बोधिसत्व को जाते हुए देखता रहा, तो उस पर गहरा दुःख छा गया। उसका हृदय प्रचंड हो गया; उसके होठों से खून बहने लगा; और उसका हृदय किसी तालाब की तलहटी में जमी मिट्टी की तरह फट गया, जिसे सूरज ने सुखा दिया हो। बोधिसत्व के प्रति अपने भीतर पनपी घृणा के कारण, वह वहीं पर मर गया। (यह पहली बार था जब देवदत्त ने बोधिसत्व के प्रति द्वेष भाव रखा।) बोधिसत्व ने अपना जीवन दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत करने के बाद अपने कर्मों के फल के लिए परलोक देह त्याग दिया।

जब परम बुद्ध ने यह उपदेश समाप्त किया, तब स्वयं सर्वज्ञ ने यह श्लोक कहा:-

> यदि आप इस विश्वास में लापरवाही बरतते हैं, और असफल हो जाते हैं
>
> उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जिसकी ओर इसकी शिक्षाएं मार्गदर्शन करती हैं,
>
> फिर, 'सेरिवान' नामक फेरीवाले की तरह,
>
> आपको अपने गलत काम की वजह से खोई हुई कीमत पर लंबे समय तक पछतावा होगा।

इस प्रकार अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) की ओर ले जाने वाले अपने प्रवचन को देने के बाद, गुरु ने चार सत्यों की व्याख्या की, जिसके अंत में कमजोर हृदय वाले भिक्षु को सभी फलों में सर्वोच्च फल, यानी अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

और, दोनों कहानियाँ सुनाने के बाद, गुरु ने उन दोनों को आपस में जोड़ने वाला संबंध स्थापित किया, और अंत में यह कहकर जन्म की पहचान बताई, "उन दिनों देवदत्त मूर्ख फेरीवाला था; और मैं स्वयं बुद्धिमान और अच्छा फेरीवाला था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्लका-सेठी-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-4-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 4.
CULLAKA-SETTHI-JATAKA

"बेहद साधारण शुरुआत के साथ।"

यह कथा गुरु ने राजगृह नगर के पास जीवक के आम के बाग (*1) में नन्हे व्यापारी नामक वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई थी। यहाँ नन्हे व्यापारी के जन्म का वर्णन भी आवश्यक है। परंपरा के अनुसार, राजगृह नगर के एक धनी व्यापारी परिवार की पुत्री ने एक दास के साथ अंतरंग संबंध बना लिया। अपने दुराचार के सार्वजनिक होने के भय से उसने दास से कहा, "हम यहाँ नहीं रह सकते; क्योंकि यदि मेरे माता-पिता को हमारे इस पाप का पता चल गया, तो वे हमें टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। चलो कहीं दूर जाकर बसते हैं।" अतः वे अपने सामान के साथ चुपके से उस दरवाजे से बाहर निकल गए जो मुश्किल से खुला था, और वे भाग गए। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वे कहाँ जाएँगे, ताकि अपने परिवार की नज़रों से दूर कहीं शरण पा सकें। फिर वे एक स्थान पर साथ रहने लगे, जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो गई। जब उसका प्रसव का समय लगभग आ गया, तो उसने अपने पति से कहा, "अगर मुझे परिवार और दोस्तों से दूर प्रसव पीड़ा होने लगी, तो हम दोनों के लिए परेशानी होगी। इसलिए चलो घर चलते हैं।" पहले तो वह आज ही जाने को तैयार हो गया, फिर उसने इसे अगले दिन के लिए टाल दिया; और इस तरह दिन बीतते चले गए, यहाँ तक कि उसने मन ही मन सोचा, "यह मूर्ख अपने बड़े अपराध के प्रति इतना सचेत है कि जाने की हिम्मत ही नहीं कर रहा। माता-पिता ही सबसे अच्छे दोस्त होते हैं; इसलिए चाहे वह जाए या रुके, मुझे तो जाना ही होगा।" तो, जब वह बाहर गया, तो उसने घर के सारे काम निपटाए और घर के लिए निकल पड़ी, और अपने पड़ोस में रहने वाली महिला को अपना पता बता दिया। घर लौटने पर, जब उसे अपनी पत्नी नहीं मिली, तो पड़ोसियों से पता चला कि वह घर के लिए निकल चुकी है, तो वह उसके पीछे भागा और सड़क पर उससे मिला; और तभी उसे प्रसव पीड़ा होने लगी।

"यह क्या है, मेरी प्यारी?" उसने कहा।

उन्होंने कहा, "मैंने एक बेटे को जन्म दिया है, जो मेरा पति है।"

इसलिए, चूंकि अब वही घटना घटित हो चुकी थी जिसके कारण यात्रा की गई थी, वे दोनों इस बात पर सहमत हुए कि अब आगे बढ़ना व्यर्थ है, और इसलिए वे वापस लौट गए। और चूंकि रास्ते में उनका बच्चा पैदा हुआ था, इसलिए उन्होंने उसका नाम 'मार्ग व्यापारी' रखा।

कुछ समय बाद ही वह फिर से गर्भवती हो गई, और सब कुछ पहले जैसा ही हो गया। और चूंकि यह दूसरा बच्चा भी संयोगवश पैदा हुआ था, इसलिए उन्होंने उसका नाम भी 'मार्ग व्यापारी' रख दिया, बड़े को 'वृद्ध व्यापारी' और छोटे को 'छोटा व्यापारी' कहकर अलग किया। फिर, वे अपने दोनों बच्चों के साथ वापस अपने घर लौट गए।

अब, जब वे वहाँ रह रहे थे, तो उनके राहगीर बच्चे ने दूसरे लड़कों को अपने चाचाओं, दादा-दादी के बारे में बातें करते सुना; इसलिए उसने अपनी माँ से पूछा कि क्या उसके भी दूसरे लड़कों की तरह रिश्तेदार नहीं हैं? "हाँ, मेरे प्यारे," उसकी माँ ने कहा; "लेकिन वे यहाँ नहीं रहते। तुम्हारे दादा राजगृह नगर में एक धनी व्यापारी हैं, और वहाँ तुम्हारे बहुत सारे रिश्तेदार हैं।" "माँ, क्यों न हम वहाँ चलें?" उसने बच्चे को वहाँ न जाने का कारण बताया; लेकिन, जब बच्चे उन रिश्तेदारों के बारे में बातें करते रहे, तो उसने अपने पति से कहा, "बच्चे हमेशा मुझे परेशान करते हैं। क्या मेरे माता-पिता हमें देखते ही खा जाएँगे? चलो, बच्चों को उनके दादा के परिवार से मिलवाते हैं।" "ठीक है, मुझे उन्हें वहाँ ले जाने में कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन मैं सचमुच आपके माता-पिता का सामना नहीं कर सकता।" "ठीक है; बस किसी न किसी तरह से बच्चे अपने दादा के परिवार को देख लें," उसने कहा।

तो वे दोनों अपने बच्चों को लेकर उचित समय पर राजगृह नगर पहुँचे और नगर द्वार के पास एक सार्वजनिक विश्रामगृह में ठहरे। फिर, स्त्री ने अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर अपने माता-पिता को उनके आने की सूचना दी। माता-पिता ने यह संदेश सुनकर उत्तर दिया, "यह सच है कि संतानहीन होना विचित्र है, जब तक कि कोई अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) की खोज में संसार का त्याग न कर दे। फिर भी, इन दोनों का हमारे प्रति इतना बड़ा पाप है कि वे हमारे सामने खड़े न हो सकें। यह उनके लिए कुछ धन है: वे इसे लेकर जहाँ चाहें वहाँ रहने चले जाएँ। लेकिन बच्चों को वे यहाँ भेज दें।" तब व्यापारी की पुत्री ने धन लेकर उसे भेजा और बच्चों को दूतों के द्वारा भेज दिया। इस प्रकार बच्चे अपने दादा के घर में पले-बढ़े। छोटा व्यापारी अभी छोटा था, जबकि बड़ा व्यापारी अपने दादा के साथ बुद्ध के प्रवचन सुनने जाया करता था। और गुरु के मुख से सत्य को निरंतर सुनने से, लड़के के हृदय में संसार का त्याग करके भिक्षु का जीवन व्यतीत करने की तीव्र इच्छा जागृत हुई।

"आपकी अनुमति से," उसने अपने दादाजी से कहा, "मैं भिक्षु संघ में शामिल होना चाहता/चाहती हूँ।" "क्या सुन रहा/रही?" बूढ़े ने हैरानी से कहा। "अरे, तुम्हें भिक्षु संघ में शामिल होते देखना मुझे पूरी दुनिया के शामिल होने से भी अधिक प्रसन्नता देगा। यदि तुम सक्षम हो, तो भिक्षु बन जाओ।" और वह उसे गुरु के पास ले गए।

"अच्छा, व्यापारी," गुरु ने कहा, "क्या तुम अपने बेटे को साथ लाए हो?" "जी जी; यह मेरा पोता है, जो आपके भिक्षु संघ में शामिल होना चाहता है।" तब गुरु ने एक भिक्षु को बुलवाया और उसे लड़के को संघ में शामिल करने के लिए कहा; भिक्षु ने नश्वर शरीर की शिक्षा (*2) दोहराई और लड़के को नौसिखिया के रूप में प्रवेश दिया। जब लड़के ने बुद्ध के कई वचन कंठस्थ कर लिए और वह पर्याप्त उम्र का हो गया, तो उसे पूर्ण भिक्षु के रूप में प्रवेश दिया गया। अब उसने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने के लिए स्वयं को गहन चिंतन में समर्पित कर दिया; और जैसे-जैसे वह अंतर्दृष्टि और मार्ग के आनंद में दिन बिताता गया, उसने सोचा कि क्या वह नन्हे व्यापारी को भी ऐसा ही सुख दे सकता है। इसलिए वह अपने दादा व्यापारी के पास गया और बोला, "वृद्ध व्यापारी, आपकी सहमति से, मैं नन्हे व्यापारी को संघ में प्रवेश देना चाहता हूँ।" उत्तर मिला, "कृपया ऐसा करें, आदरणीय महोदय।"

तब बड़े भिक्षु (बड़े व्यापारी) ने छोटे व्यापारी को अपने यहाँ प्रवेश दिया और उसे दस आज्ञाओं की शिक्षा दी। लेकिन छोटा व्यापारी मंदबुद्धि साबित हुआ: चार महीने के अध्ययन के बाद भी वह इस एक श्लोक को भी याद नहीं कर पाया:-

> अद्भुत! भोर में खिले सुगंधित कमल की तरह।
>
> दिन के समय, पूरी तरह से खिले हुए, सुगंध की अछूती संपदा के साथ,
>
> बुद्ध की महिमा को चमकते हुए देखो,
>
> जैसे ऊंचे आकाश में सूर्य की किरणें चमकती हैं!

हमें बताया जाता है कि कश्यप के बुद्धत्व काल में, इस लघु व्यापारी ने स्वयं भिक्षु बनकर ज्ञान प्राप्त कर लिया था और एक मंदबुद्धि भिक्षु का उपहास किया जो एक श्लोक को कंठस्थ कर रहा था। उसके उपहास ने उसे इतना भ्रमित कर दिया कि वह भिक्षु न तो श्लोक को याद कर सका और न ही सुना सका। परिणामस्वरूप, भिक्षु संघ में शामिल होने पर वह स्वयं भी मंदबुद्धि साबित हुआ। हर नई पंक्ति उसे पिछली पंक्ति से विमुख कर देती थी; और इस एक श्लोक से जूझते हुए चार महीने बीत गए। उसके बड़े भाई ने उससे कहा, "लघु व्यापारी, तुम इस शिक्षा को ग्रहण करने में सक्षम नहीं हो। पूरे चार महीनों में तुम एक श्लोक भी नहीं याद कर पाए हो। फिर तुम अपने

ज्ञान को सर्वोच्च सफलता तक कैसे पहुंचा सकते हो? मठ छोड़ दो।" परन्तु, अपने भाई द्वारा निष्कासित किए जाने के बावजूद, लघु व्यापारी बुद्ध के मार्ग से इतना जुड़ा हुआ था कि वह फिर से गृहस्थ नहीं बनना चाहता था।

उस समय, वृद्ध व्यापारी वहाँ मठ के प्रबंधक (रक्षक) के रूप में कार्यरत थे। जीवक कुमारभच्च, जो उनके शिष्य थे, गुरु के लिए इत्र और फूलों का एक बड़ा उपहार लेकर आम के बाग में गए। वहाँ उन्होंने अपना भेंट प्रस्तुत किया और एक प्रवचन सुना; फिर, अपनी सीट से उठकर बुद्ध को प्रणाम करते हुए, वे वृद्ध व्यापारी के पास गए और पूछा, "आदरणीय महोदय, गुरु के साथ कितने भिक्षु हैं?" "महोदय, केवल 500।" "क्या आप कल बुद्ध सहित उन 500 भिक्षुओं को मेरे घर भोजन के लिए लाएँगे?" "शिष्य, उनमें से एक, जिसका नाम लघु व्यापारी है, मंदबुद्धि है और धर्म में कोई प्रगति नहीं करता," वृद्ध भिक्षु (वृद्ध व्यापारी) ने कहा; "मैं सभी का निमंत्रण स्वीकार करता हूँ, सिवाय उसके।"

यह सुनकर छोटे व्यापारी ने मन ही मन सोचा, "इन सभी भिक्षुओं का निमंत्रण स्वीकार करके, बड़े भाई ने जानबूझकर मुझे बाहर रखा है। इससे साबित होता है कि मेरे भाई का मेरे प्रति स्नेह समाप्त हो गया है। मुझे इससे क्या लेना-देना? मैं गृहस्थ बन जाऊंगा और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में अपना जीवन व्यतीत करूंगा।" और अगले दिन सुबह जल्दी ही वह फिर से गृहस्थ बनने का संकल्प लेकर चल पड़ा।

सुबह होते ही, जब भगवान बुद्ध ध्यानमग्न अवस्था में संसार का अवलोकन कर रहे थे (जैसा कि वे हर सुबह करते थे), गुरुजी को इसका आभास हुआ; और लघु व्यापारी से भी पहले आगे बढ़कर, वे लघु व्यापारी के रास्ते पर बने बरामदे के पास चक्कर लगाने लगे। जैसे ही लघु व्यापारी घर से बाहर आया, उसने गुरुजी को देखा और प्रणाम करके उनके पास गया। गुरुजी ने कहा, "इस समय तुम कहाँ जा रहे हो, लघु व्यापारी?"

"मेरे भाई ने मुझे मठ (सन्यास) से निकाल दिया है, महोदय; और मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ।"

“छोटे व्यापारी, तुमने मुझसे ही प्रतिज्ञा ली थी, तो अपने भाई द्वारा निष्कासित किए जाने पर मेरे पास क्यों नहीं आए? तुम्हें एक गृहस्थ जीवन से क्या लेना-देना? मेरे साथ चलो।” ऐसा कहकर उन्होंने छोटे व्यापारी को अपने सुगंधित कक्ष के द्वार पर बैठाया। फिर उन्होंने उसे एक बिल्कुल साफ कपड़ा दिया, जिसे उन्होंने अलौकिक रूप से बनाया था, और कहा, “पूर्व की ओर मुख करो, और इस कपड़े को छूते हुए इन शब्दों का जाप करो—'अशुद्धता का निवारण; अशुद्धता का निवारण।'” फिर नियत समय पर गुरु, अपने अनुयायियों के साथ, जीवक के घर गए और उनके लिए निर्धारित आसन पर बैठ गए।

अब लघु व्यापारी सूर्य पर टकटकी लगाए, कपड़े को छूते हुए, "अशुद्धता का निवारण; अशुद्धता का निवारण" शब्दों को दोहराता रहा। जैसे-जैसे वह कपड़े को छूता रहा, वह गंदा होता गया। तब उसने सोचा, "अभी तो यह कपड़ा बिल्कुल साफ था; लेकिन मेरे स्वभाव ने इसकी मूल अवस्था को नष्ट कर दिया और इसे गंदा कर दिया। वास्तव में सभी सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं!" और मृत्यु और क्षय को जानने के बाद भी, उसने अर्हत का ज्ञान (बुद्ध के समान प्रबुद्धता) प्राप्त कर लिया। लघु व्यापारी के मन को ज्ञान प्राप्त होने का ज्ञान प्राप्त होने पर, गुरु ने एक आकृति भेजी और स्वयं के रूप में उसके सामने प्रकट हुए, मानो उसके सामने बैठे हों और कह रहे हों, "लघु व्यापारी, यह साधारण सा कपड़ा अशुद्धता से मैला हो गया है; तुम्हारे भीतर कामवासना और अन्य बुरी चीजों की अशुद्धियाँ हैं। इन्हें दूर करो।" और आकृति ने ये श्लोक कहे:-

==============

अपवित्रता कामवासना (राग/इच्छा) में विद्यमान होती है, गंदगी में नहीं;

और कामवासना को हम वास्तविक अपवित्रता कहते हैं।

हाँ, भिक्षुओं, जो कोई भी इसे अपने से दूर भगाता है,

वह वास्तव में शुद्धिकरण की शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारता है।

==============

अपवित्रता गंदगी में नहीं, बल्कि घृणा (दोष/द्वेष) में निहित है;

और घृणा को हम वास्तविक अपवित्रता कहते हैं।

हाँ, भिक्षुओं, जो कोई भी इसे अपने से दूर भगाता है,

वह वास्तव में शुद्धिकरण की शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारता है।

===============

अशुद्धता भ्रम (मोह, ज्ञान की कमी) में विद्यमान होती है, गंदगी में नहीं;

और इस भ्रम को हम वास्तविक अशुद्धता कहते हैं।

हाँ, भिक्षुओं, जो कोई भी इसे अपने से दूर भगाता है,

वह वास्तव में शुद्धिकरण की शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारता है।

===============

(नोट: यहाँ भ्रम का अर्थ है (1) बुद्ध द्वारा सिखाई गई ध्यान विधि का अभ्यास न करना, क्योंकि ध्यान में व्यक्ति रोजमर्रा की जिंदगी से संबंधित सत्यों का अनुभव कर सकता है, जैसे कि इंद्रिय बोध, भावनाएँ, मनोभाव, इच्छाएँ, प्रतिक्रियाएँ, विचार आदि। (2) भ्रम का अर्थ है समाधि अवस्था में आंतरिक स्व के सच्चे सुख का अनुभव न करना और सांसारिक सुखों को ही सुख का एकमात्र साधन मानकर भ्रमित रहना। (3) और अंततः भ्रम का अर्थ है परम सत्य, निर्वाण की दिव्य अवस्था का अनुभव न करना।)

इन श्लोकों के अंत में लघु व्यापारी ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, जिसमें ज्ञान की चारों शाखाएँ (*3) समाहित थीं, जिससे उन्हें प्रत्यक्ष ही समस्त पवित्र ग्रंथों का ज्ञान प्राप्त हो गया। परंपरा के अनुसार, अतीत में जब वे राजा थे और अपने नगर में जुलूस निकाल रहे थे, तब उन्होंने अपने माथे से पसीना पोंछने के लिए अपने वस्त्र को एक निर्मल वस्त्र से ढक लिया; और वह वस्त्र मैला हो गया। उन्होंने सोचा, "यह मेरा शरीर ही है जिसने वस्त्र की मूल शुद्धता और सफेदी को नष्ट कर दिया है और उसे मैला कर दिया है। वास्तव में समस्त सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं।" इस प्रकार उन्होंने क्षणभंगुरता का विचार ग्रहण किया; और इसीलिए अशुद्धता के दूर होने से ही उन्हें ज्ञान/निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त हुआ।

इसी बीच, जीवक कोमरभच्चा ने दान जल (*4) (औपचारिक; भोजन की शुरुआत के प्रतीक के रूप में) अर्पित किया; लेकिन गुरु ने पात्र पर हाथ रखते हुए कहा, "क्या मठ में कोई भाई (भिक्षु) नहीं हैं, जीवक?"

वृद्ध व्यापारी ने कहा, "वहाँ कोई भिक्षु नहीं हैं, आदरणीय महोदय।" "जीवका, वहाँ हैं," गुरु ने कहा। "अरे! तुम जाओ और पता लगाओ कि मठ में कोई भिक्षु बचा है या नहीं।"

उसी क्षण, छोटे व्यापारी को (दिव्य श्रवण शक्ति के माध्यम से) यह आशय हुआ कि उसका भाई कह रहा है कि मठ में कोई भिक्षु नहीं हैं। उसने यह सिद्ध करने का निश्चय किया कि वहाँ भिक्षु हैं, और इसलिए उसने (ज्ञान प्राप्ति के बाद प्राप्त अर्हतत्व की अलौकिक शक्तियों का उपयोग करते हुए) पूरे आम के बाग को केवल शिष्यों से भर दिया। कुछ वस्त्र बना रहे थे, कुछ रंग रहे थे, जबकि अन्य पवित्र ग्रंथों का पाठ कर रहे थे। उसने अपने द्वारा बनाए गए हज़ार भिक्षुओं में से प्रत्येक को एक दूसरे से अद्वितीय बनाया। मठ में इतने सारे भिक्षुओं को देखकर वह लौट आया और कहा कि पूरा आम का बाग भिक्षुओं से भरा हुआ है।

लेकिन मठ में रहने वाले उस छोटे व्यापारी (जो अब वरिष्ठ भिक्षु बन चुका है) के बारे में—

छोटे व्यापारी, हजार गुना स्वयं-गुणित,

वे उस रमणीय उपवन में उपस्थित हैं।

“अब वापस जाओ,” गुरु ने उस आदमी से कहा, “और कहो, ‘गुरु ने उस व्यक्ति को बुलवाया है जिसका नाम छोटा व्यापारी है।’”

लेकिन जब वह आदमी जाकर अपना संदेश देने लगा, तो हज़ारों लोगों ने एक साथ जवाब दिया, "मैं छोटा व्यापारी हूँ! मैं छोटा व्यापारी हूँ!"

रिपोर्ट लेकर वह व्यक्ति वापस आया और बोला, "वे सभी कहते हैं कि वे 'लिटिल मर्चेंट' हैं, आदरणीय महोदय।"

“अच्छा, अब वापस जाओ,” गुरु ने कहा, “और उनमें से जो भी खुद को छोटा व्यापारी बताए, उसका हाथ पकड़ लो, बाकी सब गायब हो जाएँगे।” उस आदमी ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था, और देखते ही देखते हज़ार भिक्षु आँखों से ओझल हो गए। छोटा व्यापारी (जो अब एक वरिष्ठ भिक्षु था) उस आदमी के साथ वापस आया।

भोजन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "जीवक, छोटे व्यापारी का कटोरा ले लो; वह धन्यवाद देगा।" जीवक ने वैसा ही किया। फिर एक युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए, बड़े भिक्षु (छोटे व्यापारी) ने अपने धन्यवाद भाषण में सभी पवित्र ग्रंथों को पढ़ा। अंत में, गुरु अपने आसन से उठे और भिक्षुओं के साथ मठ लौट आए, और वहाँ भिक्षुओं द्वारा कार्यों के आवंटन के बाद, वे अपने आसन से उठे और अपने सुगंधित कक्ष के द्वार पर खड़े होकर भिक्षुओं को बुद्ध-प्रवचन दिया। ध्यान के लिए एक विषय सुझाकर, भिक्षुओं को विदा करते हुए, वे अपने सुगंधित कक्ष में चले गए और विश्राम करने के लिए शेर की तरह अपनी दाहिनी ओर लेट गए।

शाम के समय, नारंगी वस्त्रधारी भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में चारों ओर से एकत्रित हुए और गुरु की स्तुति गाते हुए ऐसे गीत गाए मानो वे बैठते समय उनके चारों ओर नारंगी कपड़े का पर्दा फैला रहे हों।

“भाइयों,” उन्होंने कहा, “वृद्ध व्यापारी ने लघु व्यापारी के उत्साह को नहीं पहचाना और उसे मठ से यह कहकर निकाल दिया कि वह एक मंदबुद्धि है जो पूरे चार महीनों में एक श्लोक भी नहीं सीख सका। परन्तु सर्वज्ञ बुद्ध ने सत्य में अपनी श्रेष्ठता के कारण उसे अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्रदान किया, जिसमें समस्त अलौकिक ज्ञान भी शामिल था, यहाँ तक कि भोजन करते समय भी। और उस ज्ञान से उसने समस्त पवित्र ग्रंथों को आत्मसात कर लिया। ओह! बुद्ध की शक्ति कितनी महान है!”

अब भगवान बुद्ध सत्य सभा में चल रही चर्चा को भलीभांति (दिव्य दृष्टि से) जानते हुए वहाँ जाना उचित समझते थे। अतः वे अपने बुद्ध-शय्या से उठे, अपने दो नारंगी अंतर्वस्त्र धारण किए हुए, बिजली की गति से उठे, अपने नारंगी रंग के वस्त्र, बुद्ध के विशाल वस्त्र को धारण किया और बुद्ध की असीम कृपा के साथ, हाथी के राजसी आरोहण के साथ सत्य सभा में आए। भव्य सभा के मध्य में स्थापित भव्य बुद्ध-सिंहासन पर आसीन होकर, वे सिंहासन के मध्य में विराजमान हुए, बुद्ध के छह रंगों वाले प्रकाश से ऐसे विराजमान हुए जैसे नवभू सूर्य, जैसे युगान्ध पर्वत की चोटियों से सागर की गहराइयों को प्रकाशित करता है। सर्वज्ञ बुद्ध के सभा में आते ही, सभी भिक्षुओं ने अपनी चर्चा रोक दी और मौन हो गए। गुरुजी ने सौम्य प्रेम और करुणा से भरे भाव से सभा पर नज़र डालते हुए मन ही मन सोचा, "यह सभा परिपूर्ण है! कोई भी व्यक्ति गलत तरीके से हाथ-पैर नहीं हिला रहा; न कोई आवाज़ सुनाई दे रही है, न खांसी, न छींक! बुद्ध की महिमा और भव्यता के प्रति श्रद्धा और सम्मान में, कोई भी व्यक्ति मेरे बोलने से पहले बोलने का साहस नहीं करेगा, चाहे मैं जीवन भर मौन ही क्यों न बैठा रहूँ। परन्तु अब मेरी बारी है आरंभ करने की; और मैं वार्तालाप शुरू करूँगा।" फिर अपने मधुर दिव्य स्वर में उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "कृपया इस सभा का विषय क्या है? और जो चर्चा अधूरी रह गई थी, उसका क्या अर्थ था?"

उन्होंने कहा, "महोदय, यह कोई व्यर्थ विषय नहीं था, बल्कि बैठक में हम आपकी ही प्रशंसा कर रहे थे।"

और जब उन्होंने उसे अपनी कही हुई सारी बातें शब्दशः बता दीं, तो गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), हाँ, मेरे द्वारा ही लघु व्यापारी ने अभी-अभी धर्म में महान ऊंचाइयों को छुआ है; अतीत में भी मेरे द्वारा ही उसने धन-दौलत में महान कार्य किए थे।"

भिक्षुओं ने गुरु से इसका स्पष्टीकरण मांगा; और भगवान बुद्ध ने इन शब्दों में उस बात को स्पष्ट किया जो पिछले जन्मों में उनसे छिपी हुई थी:

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त काशी के बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म कोषाध्यक्ष के परिवार में हुआ और बड़े होकर उन्हें कोषाध्यक्ष बना दिया गया, जिन्हें लघु कोषाध्यक्ष कहा जाता था। वे एक बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति थे, जो शकुन और संकेतों को परखने में माहिर थे। एक दिन राजा से मिलने जाते समय, उन्हें रास्ते में एक मरा हुआ चूहा पड़ा मिला; और उस समय तारों की स्थिति को देखकर उन्होंने कहा, "कोई भी समझदार और नेक युवक इस चूहे को उठा ले, तो वह अपना व्यवसाय शुरू कर सकता है और पत्नी का भरण-पोषण कर सकता है।"

अच्छे परिवार से ताल्लुक रखने वाले लेकिन आर्थिक तंगी से जूझ रहे एक युवक ने उसकी बातें सुन लीं और मन ही मन सोचा, "यह आदमी जो कुछ भी कहता है, उसके पीछे कोई न कोई वजह जरूर होती है।" और उसने चूहे को उठा लिया और उसे एक सराय में मामूली सिक्कों में बेचकर अपनी बिल्ली को खिला दिया।

उस छोटे सिक्के से उसने गुड़ खरीदा और एक घड़े में पीने का पानी भर लिया। जंगल से लौट रहे फूल तोड़ने वालों को देखकर उसने उनमें से प्रत्येक को थोड़ा-थोड़ा गुड़ दिया और उन्हें पानी पिलाया। उनमें से प्रत्येक ने उसे मुट्ठी भर फूल दिए, जिनसे प्राप्त धन से वह

अगले दिन फिर से गुड़ और पानी का घड़ा लेकर फूल के खेत में लौट आया। उस दिन फूल तोड़ने वालों ने जाने से पहले उसे आधे फूलों वाले पौधे दे दिए; और इस प्रकार थोड़े ही समय में उसने आठ पैसे कमा लिए।

बाद में, एक बरसात और तेज़ हवा वाले दिन, राजा के बगीचे में हवा से बहुत सारी सड़ी हुई टहनियाँ और पत्तियाँ गिर आईं, और माली को उन्हें हटाने का कोई तरीका समझ नहीं आया। तभी एक युवक आया और उसने कहा कि अगर लकड़ी और पत्तियाँ उसे दे दी जाएँ तो वह उन्हें हटा देगा। माली ने तुरंत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर कोषाध्यक्ष लिटिल का यह होनहार शिष्य बच्चों के खेल के मैदान में गया और थोड़ी ही देर में गुड़ का लालच देकर उन्हें बगीचे के प्रवेश द्वार पर हर एक टहनी और पत्ती इकट्ठा करने के लिए मना लिया। उसी समय राजा का कुम्हार महल के लिए बर्तन पकाने के लिए ईंधन की तलाश में था, और जब उसे यह ढेर मिला, तो उसने इसे खरीद लिया। अपनी लकड़ी बेचकर कोषाध्यक्ष लिटिल के इस शिष्य को सोलह पैसे मिले, साथ ही पाँच कटोरे और अन्य बर्तन भी। अब उसके पास कुल चौबीस पैसे हो गए थे, तो उसे एक योजना सूझी। वह पानी से भरा एक घड़ा लेकर शहर के द्वार के पास गया और 500 घास काटने वालों को पीने का पानी दिया। उन्होंने कहा, “आपने हम पर बहुत बड़ा उपकार किया है, मित्र। हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?” उन्होंने कहा, “जब मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता होगी, मैं आपको बता दूंगा।” और जैसे-जैसे वे आगे बढ़े, उनकी एक भूमि व्यापारी और एक समुद्री व्यापारी से घनिष्ठ मित्रता हो गई। भूमि व्यापारी ने उनसे कहा, “कल शहर में एक घोड़ा व्यापारी 500 घोड़े बेचने आएगा।” यह खबर सुनकर उसने घास काटने वालों से कहा, “मैं चाहता हूं कि आप में से प्रत्येक आज मुझे घास का एक गट्ठा दे दें और जब तक मेरा गट्ठा बिक न जाए, तब तक आप अपना गट्ठा न बेचें।” उन्होंने कहा, “ज़रूर,” और घास के 500 गट्ठे उसके घर पहुंचा दिए। अपने घोड़ों के लिए कहीं और से घास न मिलने के कारण, व्यापारी ने हमारे मित्र की घास एक हजार पीस में खरीद ली।

कुछ ही दिनों बाद उनके समुद्री व्यापारी मित्र ने उन्हें बंदरगाह पर एक बड़े जहाज के आगमन की खबर दी; और उनके मन में एक और योजना आई। उन्होंने आठ पेंस में एक सुसज्जित गाड़ी किराए पर ली, जो प्रति घंटा किराए पर चलती थी, और बड़े ठाठ-बाठ से बंदरगाह की ओर चल पड़े। उन्होंने जहाज को उधार पर खरीद लिया और अपनी अंगूठी जमानत के तौर पर जमा कर दी। इसके बाद उन्होंने पास ही में एक मंडप बनवाया और अंदर बैठते हुए अपने लोगों से कहा, "जब व्यापारी अंदर आएं, तो उन्हें तीन क्रमानुसार राहगीरों के माध्यम से मेरे पास लाया जाए।" बंदरगाह पर जहाज के आने की खबर सुनकर लगभग सौ व्यापारी माल खरीदने के लिए आए; लेकिन उन्हें बताया गया कि वे माल नहीं खरीद सकते क्योंकि एक बड़े व्यापारी ने पहले ही अग्रिम भुगतान कर दिया था। इसलिए वे सभी उस युवक के पास चले गए; और नौकरों ने पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार तीन क्रमानुसार राहगीरों के माध्यम से उनका आगमन करवाया। सौ में से प्रत्येक व्यक्ति ने जहाज में हिस्सा खरीदने के लिए उसे एक हजार सिक्के दिए और फिर जहाज का पूरा हिस्सा खरीदने के लिए प्रत्येक ने एक हजार सिक्के और दिए। इस प्रकार कोषाध्यक्ष लिटिल का यह शिष्य 200,000 सिक्कों के साथ बनारस लौट आया।

कृतज्ञता व्यक्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर, वह एक लाख सिक्के लेकर कोषाध्यक्ष लिटिल से मिलने गया। कोषाध्यक्ष ने पूछा, "तुम्हें यह सारी संपत्ति कहाँ से मिली?" युवक ने उत्तर दिया, "केवल चार महीनों में, आपके सुझावों का पालन करके।" उसने मरे हुए चूहे से शुरू करके पूरी कहानी सुनाई। यह सब सुनकर उच्च कोषाध्यक्ष लिटिल ने सोचा, "मुझे यह सुनिश्चित करना होगा कि इस क्षेत्र का यह युवक किसी और के हाथों में न पड़े।" इसलिए उन्होंने अपनी वयस्क पुत्री से उसका विवाह करा दिया और परिवार की सारी संपत्ति उस युवक के नाम कर दी। कोषाध्यक्ष की मृत्यु के बाद, वह उस शहर का कोषाध्यक्ष बन गया। और बोधिसत्व को अपने कर्मों के फल का आनंद प्राप्त हुआ।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ, तब सर्वज्ञानी, परम बुद्ध ने स्वयं इस श्लोक को दोहराया:

> बेहद साधारण शुरुआत और कम पूंजी के साथ
>
> एक चतुर और सक्षम व्यक्ति धनवान बनेगा।
>
> यहां तक कि उसकी सांस भी एक छोटी सी लौ को जीवित रख सकती है।

भगवान बुद्ध ने यह भी कहा, "हे भिक्षुओं, मेरे कारण ही लघु व्यापारी ने धर्म में इतनी ऊँचाई प्राप्त की है, जैसे अतीत में उसने धन-संपत्ति में महान कार्य किए थे।" इस प्रकार अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने अपने द्वारा सुनाई गई दोनों कहानियों के बीच संबंध स्थापित किया और अपने अंतिम शब्दों में जन्म का उल्लेख किया, "उन दिनों लघु व्यापारी कोषाध्यक्ष लघु का शिष्य था, और मैं स्वयं उच्च कोषाध्यक्ष लघु था।"

फुटनोट:

(1)जीवक, बुद्ध के एक प्रमुख गृहस्थ अनुयायी, मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार के चिकित्सक थे।

(2) बौद्ध धर्म वस्तुओं की अनित्यता सिखाता है, और इस शिक्षा को साकार करने के लिए विचार की प्रमुख धारा शरीर और उसकी 32 अशुद्धियों पर ध्यान है।

(3) ये चार शाखाएँ थीं: (i) पवित्र ग्रंथों के अर्थ को समझना, (ii) उनके नैतिक सत्य को समझना, (iii) किसी व्याख्या को व्याकरणिक रूप से, तार्किक रूप से, आदि के आधार पर उचित ठहराने की क्षमता, और (iv) सार्वजनिक व्याख्या की शक्ति। जातक 1 के नोट (12) को भी देखें।

(4) जब कोई दान दिया जाता था, तो दाता दानग्राही के हाथ पर पानी डालता था। यहाँ जीवक द्वारा दिया गया दान भिक्षुओं को दिया गया भोजन था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तंदुलनालि-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-5-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 5.
तंडुलनाली-जातक

"यह जरूर पूछें कि एक पेक चावल की कीमत कितनी है?"

यह बात गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए भिक्षु उदयि के बारे में बताई थी, जिसे मंदबुद्धि कहा जाता था।

उस समय पूज्य मल्यन दब्बा संघ (भिक्षुओं के संघ) के प्रबंध (अनुदान प्रभारी) थे (*1)। जब दब्बा सुबह-सुबह चावल के लिए चेक बाँटते थे, तो कभी उत्तम चावल मिलता था और कभी घटिया किस्म का, जो वरिष्ठ भिक्षु उदयि के हिस्से में आता था। जिन दिनों उन्हें घटिया किस्म का चावल मिलता था, वे चेक-रूम में हंगामा करते हुए पूछते थे, "क्या चेक बाँटना सिर्फ दब्बा को ही आता है? क्या हमें नहीं आता?" एक दिन जब वे हंगामा कर रहे थे, तो उन्होंने उन्हें चेक-टोकरी थमाते हुए कहा, "लो! आज आप खुद ही चेक बाँटिए!" तब से उदयि ही भिक्षुओं को चेक बाँटने लगे। लेकिन, बाँटने में वे उत्तम और घटिया चावल में अंतर नहीं कर पाते थे; न ही उन्हें यह पता था कि उत्तम चावल किसे मिलेगा और घटिया चावल किसे। (*1) इसी तरह, जब वह सूची बना रहा था, तो उसे भिक्षुओं की वरिष्ठता का कोई ज्ञान नहीं था। परिणामस्वरूप, जब भिक्षु अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए, तो उसने ज़मीन या दीवार पर निशान लगा दिए ताकि पता चले कि एक टुकड़ी यहाँ है और दूसरी वहाँ। अगले दिन जाँच कक्ष में एक श्रेणी के भिक्षुओं की संख्या कम और दूसरी श्रेणी के भिक्षुओं की संख्या अधिक थी; जहाँ संख्या कम थी, वहाँ निशान बहुत नीचे लगा था; जहाँ संख्या अधिक थी, वहाँ निशान बहुत ऊपर लगा था। लेकिन उदय, जो टुकड़ियों के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ था, उसने पुराने निशानों के अनुसार ही जाँच के आदेश दिए।

इसलिए, भाइयों ने उससे कहा, "मित्र उदयि, यह निशान बहुत ऊपर या बहुत नीचे है; सबसे अच्छा चावल फलां-फलां वरिष्ठता वालों के लिए है, और घटिया चावल फलां-फलां दूसरों के लिए।" लेकिन उसने उन्हें यह कहकर चुप करा दिया, "अगर यह निशान यहीं है, तो तुम यहाँ क्यों खड़े हो? मैं तुम पर भरोसा क्यों करूँ? मुझे तो अपने निशान पर भरोसा है।"

तब लड़कों और नौसिखियों ने उसे चेक-रूम से बाहर धकेलते हुए चिल्लाकर कहा, "मूर्ख उदयि, जब तुम चेक देते हो, तो भाइयों को उनका हक नहीं मिलता; तुम चेक देने के लायक नहीं हो; यहाँ से चले जाओ।" इस पर चेक-रूम में ज़बरदस्त हंगामा मच गया।

शोर सुनकर गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु आनंद से पूछा, "आनंद, चेक-रूम में बहुत शोर हो रहा है। यह शोर किस बात का है?"

वरिष्ठ भिक्षु ने बुद्ध को सब कुछ समझाया। उन्होंने कहा, "आनंद, यह एकमात्र ऐसा समय नहीं है जब उदयि ने अपनी मूर्खता से दूसरों को उनके लाभ से वंचित किया है; उसने अतीत में भी ठीक ऐसा ही किया था।"

वरिष्ठ भिक्षु ने भगवान बुद्ध से स्पष्टीकरण मांगा, और भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण छिपे रहस्य को स्पष्ट कर दिया।

एक समय की बात है, काशी के बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था। उन दिनों हमारे बोधिसत्व उनके मूल्यांकक थे। वे घोड़ों, हाथियों और इसी प्रकार की वस्तुओं का मूल्यांक करते थे; और रत्नों, सोने और इसी प्रकार की वस्तुओं का भी मूल्यांक करते थे; और वे वस्तुओं के मालिकों को उनके द्वारा निर्धारित उचित मूल्य का भुगतान करते थे।

लेकिन राजा लालची था और उसके लालच ने उसे यह विचार दिया: "यह मूल्यांकक अपने मूल्यांकन के तरीके से मेरे महल का सारा धन जल्द ही खत्म कर देगा; मुझे दूसरा मूल्यांकक नियुक्त करना होगा।" उसने अपनी खिड़की खोलकर अपने आंगन में देखा तो उसे एक मूर्ख, लालची आदमी चलता हुआ दिखाई दिया, जिसमें उसे इस पद के लिए उपयुक्त उम्मीदवार नज़र आया। इसलिए राजा ने उस आदमी को बुलवाया और उससे पूछा कि क्या वह यह काम कर सकता है। "हाँ," उस आदमी ने कहा; और इस प्रकार, शाही खजाने की रक्षा के लिए, इस मूर्ख को मूल्यांकक नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद वह मूर्ख, हाथियों, घोड़ों और इसी तरह के अन्य पशुओं का मूल्यांकन करते समय, उनकी वास्तविक कीमत की परवाह किए बिना, अपनी मनमर्जी से कीमत तय करता था; लेकिन, चूंकि वह मूल्यांकक था, इसलिए कीमत वही होती थी जो वह कहता था, और कुछ नहीं।

उस समय उत्तर देश (*2) से एक घोड़ा व्यापारी 500 घोड़े लेकर आया। राजा ने अपने नए मूल्यांकक को बुलवाया और उससे घोड़ों का मूल्य लगाने को कहा। उसने सभी 500 घोड़ों का मूल्य केवल एक माप चावल के बराबर लगाया, जिसे उसने व्यापारी को देने का आदेश दिया और घोड़ों को अस्तबल में ले जाने का निर्देश दिया। घोड़ा व्यापारी पुराने मूल्यांकक के पास गया, उसे सारी बात बताई और पूछा कि क्या किया जाए। पुराने मूल्यांकक ने कहा, "उसे रिश्वत दो और उससे यह कहो: 'हम जानते हैं कि हमारे घोड़ों का मूल्य केवल एक माप चावल के बराबर है, इसलिए हम यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि एक माप चावल का सही मूल्य क्या है; क्या आप राजा के सामने इसका मूल्य बता सकते हैं?' यदि वह कहता है कि वह बता सकता है, तो उसे राजा के सामने ले जाओ; और मैं भी वहाँ उपस्थित रहूँगा।"

बोधिसत्व की सलाह का तुरंत पालन करते हुए, घोड़े के व्यापारी ने उस व्यक्ति को रिश्वत दी और उससे प्रश्न पूछा। दूसरे व्यक्ति ने चावल के एक माप का मूल्य बताने की क्षमता प्रकट की, जिसके बाद उसे तुरंत महल में ले जाया गया, जहाँ बोधिसत्व और कई अन्य मंत्री भी गए थे। घोड़े के व्यापारी ने आदरपूर्वक कहा, "महाराज, मैं इस बात से असहमत नहीं हूँ कि 500 घोड़ों की कीमत चावल का एक माप है; लेकिन मैं महाराज से अनुरोध करता हूँ कि आप अपने मूल्यांकक से चावल के उस माप का मूल्य पूछें।" जो कुछ हुआ था, उससे अनभिज्ञ राजा ने उस व्यक्ति से कहा, "मूल्यांकक, 500 घोड़ों का मूल्य क्या है?" उत्तर था, "महाराज, चावल का एक माप।" "बहुत खूब, मेरे मित्र; यदि 500 घोड़ों का मूल्य चावल का एक माप है, तो चावल के उस माप का मूल्य क्या है?" मूर्ख ने उत्तर दिया, "यह पूरे बनारस और उसके आसपास के क्षेत्रों के बराबर है।"

(इस प्रकार हमें पता चलता है कि राजा को प्रसन्न करने के लिए पहले तो उसने घोड़ों का मूल्य पहाड़ी धान के एक माप के बराबर लगाया, फिर घोड़े के व्यापारी ने उसे रिश्वत देकर उस चावल के माप का मूल्य पूरे बनारस और उसके उपनगरों के बराबर लगवा दिया। और यद्यपि बनारस की दीवारें अकेले ही बारह लीग (x 4.23 किमी) की थीं, जबकि शहर और उपनगरों का कुल क्षेत्रफल तीन सौ लीग (x 4.23 किमी) था! फिर भी उस मूर्ख ने इस विशाल शहर और उसके उपनगरों का मूल्य केवल एक माप चावल के बराबर लगा दिया!)

इस पर मंत्रियों ने ताली बजाई और खिलखिलाकर हँसे। उन्होंने तिरस्कार भरे लहजे में कहा, “हम तो पहले सोचते थे कि धरती और राज्य अनमोल हैं; पर अब हमें पता चला है कि बनारस राज्य अपने राजा समेत मात्र एक माप चावल के बराबर है! इस मूल्यांकक में कितनी प्रतिभा है! इतने लंबे समय तक वह अपने पद पर कैसे बना रहा? सचमुच, यह मूल्यांकक हमारे राजा के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।”

तब बोधिसत्व ने इस श्लोक को दोहराया:

> यह जरूर पूछें कि एक पेक चावल की कीमत कितनी है?
>
> क्यों, बनारस के सभी लोग, भीतर और बाहर दोनों तरफ से।
>
> फिर भी, हैरानी की बात यह है कि पाँच सौ घोड़े भी
>
> इनकी कीमत ठीक इतने ही एक पेक चावल के बराबर है!

इस प्रकार सबके सामने अपमानित होकर राजा ने उस मूर्ख को निकाल दिया और बोधिसत्व को पुनः पद पर नियुक्त कर दिया। और जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो बोधिसत्व को उनके कर्मों का फल मिला।

उनका पाठ समाप्त हुआ और दोनों कहानियाँ सुनाने के बाद, गुरु ने दोनों को आपस में जोड़ते हुए संबंध स्थापित किया और अंत में यह कहकर जन्म की पहचान बताई, "उदयी मंदबुद्धि उस समय का मूर्ख देहाती मूल्यांकक था, और मैं स्वयं बुद्धिमान मूल्यांकक हूँ।"

फुटनोट:

(1) वरिष्ठों को, रोस्टर के अनुसार, पहले परोसा जाएगा। मैनसिपल ने रोस्टर बनाए रखा।

(2) बनारस के उत्तर में स्थित देश

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **देवधम्म-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-6-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 6
देवधम्मा-जातक

"केवल 'ईश्वरीय' लोगों को ही कहा जाता है..."

यह कहानी भगवान बुद्ध ने जेतवन मठ में रहते हुए एक धनी भिक्षु (भाई) के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती नगर के एक उच्च अधिकारी के सहायक ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद भिक्षु संघ में प्रवेश किया। प्रवेश के समय उन्होंने अपने लिए एक रहने का कमरा, चूल्हे के लिए एक कमरा और एक भंडारगृह बनवाया; और जब तक उन्होंने अपने भंडारगृह में घी, चावल और इसी तरह की अन्य सामग्री नहीं भर ली, तब तक वे भिक्षु नहीं बने। भिक्षु बनने के बाद भी वे अपने नौकरों को बुलाकर अपनी पसंद का खाना बनवाते थे। उनके पास सभी आवश्यक सामग्री (*1) उपलब्ध थी, रात और दिन के लिए अलग-अलग वस्त्र थे; और वे मठ के बाहरी इलाके में एकांत में रहते थे।

एक दिन जब उन्होंने अपने कपड़े और बिस्तर निकालकर अपने कमरे में सूखने के लिए फैला दिए थे, तभी देश भर से कई भिक्षु (भाई), जो एक मठ से दूसरे मठ की तीर्थयात्रा पर थे, अपनी यात्रा के दौरान उनकी कुटिया में आए और उन्हें ये सभी सामान मिले।

“ये किसके हैं?” उन्होंने पूछा। “मेरे हैं,” उन्होंने उत्तर दिया। “क्या, महाराज?” वे चिल्लाए; “ये ऊपरी वस्त्र और वो भी; ये अंदरूनी वस्त्र और वो भी; और वो बिस्तर भी, क्या ये सब आपका है?” “जी हाँ, किसी का नहीं, सिर्फ मेरा।” “महाराज,” उन्होंने कहा, “भगवान बुद्ध ने केवल तीन वस्त्रों को ही मान्यता दी है; और फिर भी, जबकि बुद्ध, जिनकी शिक्षाओं के लिए आपने स्वयं को समर्पित किया है, अपनी आवश्यकताओं में इतने सरल हैं, आपने इन सभी वस्तुओं का भंडार क्यों जमा कर लिया है? आइए! हमें आपको ज्ञान के स्वामी के समक्ष ले जाना होगा।” और ऐसा कहकर वे उनके साथ गुरु के पास चले गए।

उनकी उपस्थिति का आभास होते ही गुरु ने कहा, "भिक्षुओं, आप इस भिक्षु को उसकी इच्छा के विरुद्ध क्यों लाए हैं?" "महाराज, यह भिक्षु धनी है और उसके पास काफी सामान है।" "क्या यह सच है, भाई, जैसा कि लोग कहते हैं, कि आप इतने धनी हैं?" "जी हां, भगवान बुद्ध।" "परन्तु, भिक्षु, आपने यह सब सामान क्यों जमा किया है? क्या मैं कम इच्छा, संतोष, एकांत और दृढ़ संकल्प के गुणों की प्रशंसा नहीं करता?"

गुरु के शब्दों से क्रोधित होकर वह चिल्लाया, "तो मैं इस तरह घूमूंगा!" और अपने बाहरी वस्त्र उतार फेंककर, वह केवल कमरबंद पहने उनके बीच खड़ा हो गया।

तब, उन्हें नैतिक समर्थन देते हुए, गुरु ने कहा, "हे भिक्षु, क्या तुम ही अतीत में पाप से विमुख होने की लज्जा के साधक नहीं थे, और जब तुम जल यक्ष थे तब भी बारह वर्ष तक उसी लज्जा की खोज में व्यतीत हुए थे? फिर ऐसा कैसे हुआ कि बुद्ध के महान मार्ग का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करने के बाद, तुमने अपने वस्त्र उतार दिए और यहाँ निर्लज्ज खड़े हो?"

गुरु के वचन पर, उसकी शर्म की भावना फिर से जागृत हो गई; उसने अपने वस्त्र पुनः धारण किए, और गुरु को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया।

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से उस विषय की व्याख्या करने का अनुरोध किया जिसका उन्होंने उल्लेख किया था, तो भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट कर दिया।

एक समय की बात है, काशी के बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे। उन दिनों राजा की रानी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनका नाम विधिपूर्वक राजकुमार महिंशसा रखा गया। जब वे दौड़ने-भागने लायक हुए, तभी राजा के दूसरे पुत्र का जन्म हुआ और उनका नाम राजकुमार चंद्र रखा गया; लेकिन जब तक वे दौड़ने-भागने लायक हुए, बोधिसत्व की माता का देहांत हो गया। तब राजा ने दूसरी रानी से विवाह किया, जो उनकी प्रसन्नता और आनंद का स्रोत थीं; और उनके प्रेम को एक और राजकुमार के जन्म से और भी बल मिला, जिनका नाम उन्होंने राजकुमार सूर्य रखा। पुत्र के जन्म से प्रसन्न होकर राजा ने रानी से वादा किया कि वे पुत्र के लिए जो भी वरदान मांगेगी, उसे पूरा करेंगे। लेकिन रानी ने उस वादे को अपने उचित समय पर पूरा करने का निश्चय कर लिया। बाद में, जब उनका पुत्र बड़ा हुआ, तो उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, जब मेरे पुत्र का जन्म हुआ था, तब आपने मुझे उसके लिए वरदान मांगने का वरदान दिया था। कृपया उसे राजा बनाइए।"

“नहीं,” राजा ने कहा; “मेरे दो पुत्र हैं, जो धधकती आग के समान तेजस्वी हैं; मैं तुम्हारे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता।” परन्तु जब राजा ने देखा कि इस इनकार से भी रानी विचलित नहीं हुई और बार-बार उससे अपनी विनती मनवाने के लिए दबाव डालती रही, तो राजा को डर था कि कहीं वह स्त्री उसके पुत्रों के विरुद्ध कोई षड्यंत्र न रच दे। इसलिए उसने उन्हें बुलवाया और कहा, “मेरे पुत्रों, जब राजकुमार सूर्य का जन्म हुआ था, तब मैंने एक वरदान दिया था; और अब उसकी माता उसके लिए राज्य चाहती है। मैं उसे राज्य देना नहीं चाहता; परन्तु स्त्रियाँ स्वभाव से दुष्ट होती हैं, और वह तुम्हारे विरुद्ध षड्यंत्र रच रही होगी। बेहतर होगा कि तुम वन में शरण ले लो, और मेरी मृत्यु के बाद लौटकर उस नगर पर शासन करो जो हमारे कुल का अधिकार है।” इतना कहकर, आँसुओं और सिसकियों के साथ, राजा ने अपने दोनों पुत्रों के सिर चूमे और उन्हें विदा कर दिया।

पिता से विदाई लेने के बाद जब राजकुमार महल से निकल रहे थे, तभी प्रांगण में खेल रहे राजकुमार सूर्य ने उन्हें देख लिया। जैसे ही उन्हें बात पता चली, उन्होंने भी अपने भाइयों के साथ जाने का निश्चय कर लिया। इसलिए वे भी उनके साथ चल दिए।

तीनों हिमालय क्षेत्र में पहुँचे; और वहाँ बोधिसत्व, जो मार्ग से हटकर एक वृक्ष की तलहटी में बैठे थे, ने राजकुमार सूर्य से कहा, "हे प्रिय सूर्य, उस ओर स्थित तालाब में जाओ; वहाँ जल पियो और स्नान करो; और फिर हमारे लिए भी कमल के पत्ते में थोड़ा जल ले आओ।"

(अब उस कुंड को वेसवना (*2) ने एक जल-यक्ष को सौंप दिया था, जिसने उससे कहा, "जो लोग वास्तव में ईश्वर-समानता को जानते हैं, उनके अलावा इस कुंड में उतरने वाले सभी लोग तुम्हारे भक्षण के पात्र हैं। जो लोग जल में प्रवेश नहीं करते, उन पर तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।" और तब से वह जल-यक्ष कुंड में उतरने वाले सभी लोगों से ईश्वर-समानता का रहस्य पूछता था और जो लोग इसे नहीं जानते थे, उन्हें भक्षण कर देता था।)

अब राजकुमार सूर्य बड़ी बेखबरी से इसी कुंड में उतर गए, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें जल यक्ष ने पकड़ लिया और उनसे पूछा, "क्या तुम जानते हो कि वास्तव में ईश्वरीय क्या है?" "जी हां," उन्होंने कहा; "सूर्य और चंद्रमा।" "तुम नहीं जानते," राक्षस ने कहा और राजकुमार को जल की गहराई में खींचकर अपने ही निवास में कैद कर लिया। यह देखकर कि उनका भाई बहुत समय से गायब है, बोधिसत्व ने राजकुमार चंद्रमा को भेजा। उन्हें भी जल यक्ष ने पकड़ लिया और पूछा कि क्या वे जानते हैं कि वास्तव में ईश्वरीय क्या है। "जी हां, मैं जानता हूं," उन्होंने कहा; "स्वर्ग की चारों दिशाएं हैं।" "तुम नहीं जानते," जल यक्ष ने कहा और इस दूसरे शिकार को भी उसी कारागार में ले गया।

यह देखकर कि दूसरा भाई भी बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा, बोधिसत्व को विश्वास हो गया कि उनके साथ कुछ हुआ है। इसलिए वे उनके पीछे चल पड़े और पानी में उनके पदचिह्नों का पीछा किया। तुरंत यह समझते हुए कि यह कुंड किसी जल-यक्ष का क्षेत्र होना चाहिए, उन्होंने अपनी तलवार सुरक्षित कर ली, हाथ में धनुष लिया और प्रतीक्षा करने लगे। अब जब यक्ष ने देखा कि बोधिसत्व का पानी में प्रवेश करने का कोई इरादा नहीं है, तो उसने एक वनपाल का रूप धारण कर लिया और इस वेश में बोधिसत्व से कहा: "मित्र, तुम

अपनी यात्रा से थक गए हो; क्यों न तुम अंदर जाकर स्नान करो, पानी पियो और कमलों से खुद को सुशोभित करो? इसके बाद तुम आराम से यात्रा कर पाओगे।" उसे तुरंत यक्ष के रूप में पहचानते हुए, बोधिसत्व ने कहा, "तुमने ही मेरे भाइयों को पकड़ा है।" "हाँ, तुमने ही," उत्तर आया। "क्यों?" "क्योंकि जो भी इस कुंड में उतरता है, वह मेरा है।" "क्या, सभी?" "वे नहीं जो वास्तव में ईश्वरीयता को जानते हैं; इनके अलावा बाकी सब मेरे हैं।" "और क्या तुम ईश्वरीय गुणों के बारे में जानना चाहते हो?" "हाँ।" "यदि ऐसा है, तो मैं तुम्हें बताऊँगा कि वास्तव में ईश्वरीय गुण क्या हैं।" "बताओ, मैं सुनूँगा।"

बोधिसत्व ने कहा, “मैं आरंभ करना चाहता हूँ, परन्तु यात्रा के कारण मैं मैला हो गया हूँ।” तब जल यक्ष ने बोधिसत्व को स्नान कराया, उन्हें भोजन और जल दिया, फूलों की वर्षा की, सुगंधों का छिड़काव किया और एक भव्य मंडप के बीच में उनके लिए पलंग बिछाया। स्वयं उस पलंग पर विराजमान होकर और जल यक्ष को अपने चरणों में बैठाकर बोधिसत्व ने कहा, “सुनो, और तुम्हें पता चलेगा कि वास्तव में ईश्वरीय स्वरूप क्या है।” और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:-

केवल वही लोग 'ईश्वरीय' कहलाते हैं जो पाप से विरक्त रहते हैं।

पवित्र आत्मा वाले, शांत स्वभाव के, अच्छे के उपासक।

जब यक्ष ने यह सुना, तो वह प्रसन्न हुआ और बोधिसत्व से बोला, “हे ज्ञानी, मैं आपसे प्रसन्न हूँ और आपके एक भाई को आपको सौंपता हूँ। मैं किसे लाऊँ?” “सबसे छोटे को।” “हे ज्ञानी, यद्यपि आप जानते हैं कि सच्चे ईश्वरीय गुण क्या होते हैं, फिर भी आप अपने ज्ञान का उपयोग नहीं करते।” “ऐसा क्यों?” “आप बड़े की वरिष्ठता का ध्यान रखे बिना छोटे को प्राथमिकता देते हैं।” “हे यक्ष, मैं न केवल ईश्वरीय गुणों को जानता हूँ, बल्कि उनका अभ्यास भी करता हूँ। इसी बालक के कारण हमने वन में शरण ली थी; इसी के लिए उसकी माता ने हमारे पिता से राज्य की माँग की थी, और हमारे पिता ने उसकी माँग पूरी करने से इनकार कर दिया और हमें वन में शरण लेने की अनुमति दे दी। यह बालक भी हमारे साथ आया था, और हमने कभी वापस लौटने का सोचा भी नहीं। अगर मैं यह कहूँ कि उसे वन में किसी यक्ष ने खा लिया था, तो कोई भी मुझ पर विश्वास नहीं करेगा; और अन्याय के भय के कारण ही मैं उसे आपसे माँग रहा हूँ।”

"अद्भुत! उत्तम! हे ज्ञानवान पुरुष," यक्ष ने प्रशंसा करते हुए कहा; "आप न केवल ज्ञान रखते हैं बल्कि ईश्वरीय गुणों का अभ्यास भी करते हैं।" और अपनी प्रसन्नता और स्वीकृति के प्रतीक के रूप में उन्होंने दोनों भाइयों को लाकर बोधिसत्व को सौंप दिया।

तब दूसरे यक्ष ने जल-यक्ष से कहा, “मित्र, तुम्हारे अतीत के बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही तुम अब दूसरे प्राणियों के मांस और रक्त पर जीवित रहने वाले यक्ष के रूप में जन्म ले रहे हो; और इस जन्म में भी तुम बुराई कर रहे हो। यह बुरा आचरण तुम्हें नरक और अन्य बुरी अवस्थाओं में पुनर्जन्म से सदा के लिए वंचित कर देगा। इसलिए, अब से बुराई का त्याग करो और सद्गुणों का जीवन व्यतीत करो।”

यक्ष का धर्म परिवर्तन कराने के बाद, बोधिसत्व उसकी देखरेख में उसी स्थान पर निवास करते रहे, जब तक कि एक दिन उन्होंने नक्षत्रों में अपने पिता के निधन की खबर नहीं देखी। तब वे जल-यक्ष को अपने साथ लेकर बनारस लौट आए और राज्य पर अधिकार कर लिया, उन्होंने राजकुमार चंद्रमा को अपना प्रतिनिधि और राजकुमार सूर्य को अपना सेनापति नियुक्त किया। जल-यक्ष के लिए उन्होंने एक रमणीय स्थान पर निवास बनाया और यह सुनिश्चित किया कि उसे उत्तम मालाएँ, फूल और भोजन उपलब्ध कराया जाए। उन्होंने स्वयं अपने कर्मों के फल के अनुसार मृत्यु को प्राप्त होने तक धर्मपरायणता से शासन किया।

उनका उपदेश समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का प्रवचन दिया, जिसके अंत में उस भिक्षु भाई ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। सर्वज्ञ बुद्ध ने दोनों कथाएँ सुनाकर, दोनों को आपस में जोड़ते हुए, जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "धनवान भिक्षु भाई उन दिनों के जल यक्ष थे; आनंद सूर्य राजकुमार थे, सारिपुत्र चंद्र राजकुमार थे, और मैं स्वयं सबसे बड़ा भाई, महिंश राजकुमार था।"

फुटनोट:

(1) अर्थात् एक भिक्षापात्र, तीन वस्त्र, एक कमरबंद, एक रेजर, एक सुई और एक जल छानने वाला यंत्र।

(2) यह कुबेर (धन के देवता) का दूसरा नाम है, जो हिंदू प्लूटस हैं, रामायण में सीलोन के यक्ष-राजा रावण के सौतेले भाई हैं। जातक संख्या (74) से पता चलता है कि वेसवना वृक्ष-आत्माओं के साथ-साथ जल-आत्माओं पर भी शासन करते थे, और सक्का (इंद्र) से अपना पद ग्रहण करते थे।

स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-7-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 7
कत्थाहारी-जातक

"मैं तुम्हारा पुत्र हूँ।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में वासभा-क्षत्रिय की कथा के बारे में सुनाई थी, जो भद्दसला-जातक (*1) के बारहवें खंड में मिलेगी। परंपरा के अनुसार, वह कपिलवस्तु (बुद्ध के वंश का राज्य) के राजा महानामा शाक्य (बुद्ध के सौतेले भाई और रानी महा-प्रजापति गौतमी के पुत्र, जो अब भिक्षुणियों की प्रमुख थीं) की नागमुंडा नामक दासी से पुत्री थीं, और बाद में कोसल के राजा की पत्नी बनीं। उन्होंने राजा से एक पुत्र को जन्म दिया; लेकिन राजा को जब उनके दास वंश का पता चला, तो उन्होंने उन्हें उनके पद से हटा दिया और उनके पुत्र विदुदभ को भी पदच्युत कर दिया। माता-पिता और पुत्र कभी महल से बाहर नहीं निकले।

यह सुनकर गुरुजी भोर होते ही पाँच सौ भिक्षुओं के साथ महल में आए और अपने लिए तैयार की गई सीट पर बैठकर बोले, "महाराज, वसाभा-क्षत्रिय कहाँ हैं?"

तब राजा ने उसे सारी घटना बताई।

महाराज, वसाभ-क्षत्रिय किसकी पुत्री हैं? "महानामा की पुत्री, महाराज।" "जब वह आई, तो किसके पास पत्नी बनकर आई?" "मेरे पास, महाराज।" "महाराज, वह एक राजा की पुत्री हैं; एक राजा से उनका विवाह हुआ है; और एक राजा को ही उन्होंने पुत्र को जन्म दिया है। वह पुत्र अपने पिता के अधिकार वाले राज्य पर अधिकार क्यों नहीं रखता? पुराने समय में, जिस राजा का किसी साधारण लकड़हारा स्त्री से पुत्र होता था, वह उस पुत्र को शासन करने की शक्ति दे देता था।"

राजा ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट किया।

एक समय की बात है, बनारस में राजा ब्रह्मदत्त बड़े ठाठ-बाठ से अपने उद्यान में फल और फूल ढूँढ़ते हुए घूम रहे थे, तभी उनकी नज़र एक स्त्री पर पड़ी जो उद्यान में लकड़ियाँ चुनते हुए प्रसन्नतापूर्वक गीत गा रही थी। पहली नज़र में ही उन्हें उससे प्रेम हो गया और वे उसके साथ अंतरंग हो गए, और उसी क्षण बोधिसत्व गर्भ में आ गए। इंद्र के बाण से बोझिल होकर स्त्री को अपने भीतर भारीपन का अनुभव हुआ, और उसने जान लिया कि वह माँ बनने वाली है, और उसने राजा को यह बात बताई। राजा ने अपनी उंगली से अंगूठी उतारकर उसे दी और इन शब्दों के साथ विदा किया: "यदि पुत्री हो, तो इस अंगूठी का उपयोग उसके पालन-पोषण के लिए करना; परन्तु यदि पुत्र हो, तो अंगूठी और बच्चे को मेरे पास लाना।"

जब स्त्री का प्रसव का समय आया, तब बोधिसत्व का जन्म हुआ। जब वह दौड़ने-भागने लायक हो गए और खेल के मैदान में खेलने लगे, तो अचानक उनकी आवाज़ सुनाई दी, "मुझे किसी ने मारा है!" यह सुनकर बोधिसत्व दौड़कर अपनी माँ के पास गए और उनसे अपने पिता के बारे में पूछा।

“मेरे बेटे, तुम बनारस के राजा के पुत्र हो।” “माँ, इसका क्या प्रमाण है?” “मेरे बेटे, राजा ने मुझे छोड़ते समय यह अंगूठी दी और कहा, ‘यदि बेटी हो, तो इस अंगूठी का इस्तेमाल उसके पालन-पोषण के लिए करना; परन्तु यदि बेटा हो, तो अंगूठी और बच्चे को मेरे पास लाना।’” “तो फिर आप मुझे मेरे पिता के पास क्यों नहीं ले जातीं, माँ?”

यह देखकर कि लड़के ने अपना मन बना लिया है, वह उसे महल के द्वार तक ले गई और राजा को उनके आने की सूचना देने का अनुरोध किया। बुलाए जाने पर, वह अंदर गई और महाराज के सामने झुककर बोली, "महाराज, मैं आपका पुत्र हूँ।"

राजा भली-भांति जानते थे कि यह सच है, परन्तु अपने दरबार के समक्ष शर्मिंदगी के कारण उन्होंने कहा, “यह मेरा पुत्र नहीं है।” “परन्तु यह रही आपकी अंगूठी, महाराज; आप इसे पहचान लेंगे।” “यह भी मेरी अंगूठी नहीं है।” तब स्त्री ने कहा, “महाराज, मेरे पास अब अपने वचन को सिद्ध करने के लिए सत्य के सिवा कोई साक्षी नहीं है। इसलिए, यदि आप मेरे पुत्र के पिता हैं, तो मैं प्रार्थना करती हूँ कि वह

आकाश में ही रहे; परन्तु यदि नहीं, तो वह पृथ्वी पर गिरकर मर जाए।" ऐसा कहकर उसने बोधिसत्व का पैर पकड़कर उसे हवा में उछाल दिया।

हवा में पालथी मारकर बैठे बोधिसत्व ने मधुर स्वर में अपने पिता से इस श्लोक को दोहराया और सत्य का वर्णन किया:

> हे महान सम्राट, मैं आपका पुत्र हूँ; मेरा पालन-पोषण कीजिए, महाराज!
>
> राजा दूसरों का पालन-पोषण करता है, लेकिन अपने बच्चे का पालन-पोषण उससे कहीं अधिक करता है।

बोधिसत्व को आकाश में रहते हुए सत्य का उपदेश देते हुए सुनकर राजा ने अपने हाथ फैलाकर पुकारा, "मेरे बालक, मेरे पास आओ! मेरे सिवा कोई और तुम्हारा पालन-पोषण नहीं करेगा!" बोधिसत्व को ग्रहण करने के लिए हज़ारों हाथ फैले; परन्तु वे राजा की बाहों में ही समा गए, किसी और की नहीं, और उनकी गोद में बैठ गए। राजा ने उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया और उनकी माता को रानी बना दिया। अपने पिता राजा की मृत्यु के बाद, वे राजदंड धारण करने वाले राजा कत्थावाहन की उपाधि से सिंहासन पर आसीन हुए और अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करने के बाद, अपने कर्मों के फल के अनुसार इस दुनिया से विदा हो गए।

कोसल के राजा को दिए गए उनके उपदेश का समापन हुआ और जब उनकी दोनों कथाएँ सुनाई गईं, तो गुरु ने उन दोनों को आपस में जोड़ते हुए उनके जन्म का वर्णन किया और कहा: "महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) उन दिनों की माता थीं, राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) उनके पिता थे, और मैं स्वयं राजा कत्थवाहन हूँ।"

[नोट: महाभारत में दुष्यंत और शकुंतला की कहानी और कालिदास के नाटक 'खोई हुई अंगूठी' का संदर्भ।]

फुटनोट:

(1)संख्या 465 देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गमानी-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-8-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 8
गामणि-जातक
"उनके दिल की ख्वाहिश।"

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसने मार्ग पर दृढ़ रहने का प्रयास छोड़ दिया था। इस जातक कथा में परिचयात्मक कथा और अतीत की कथा दोनों को संवर-जातक (*1) के संदर्भ में ग्यारहवें खंड में दिया जाएगा; घटनाएँ उस जातक कथा और इस जातक कथा दोनों में समान हैं, लेकिन श्लोक भिन्न हैं।

बोधिसत्व के उपदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए, राजकुमार गमानी, अपने सौ भाइयों में सबसे छोटे होते हुए भी, स्वयं को उन सौ भाइयों से घिरे हुए, सेवकों के समूह के रूप में और राजत्व के श्वेत छत्र के नीचे बैठे हुए पाकर, अपनी महिमा को निहारते हुए सोचने लगे—"यह सारी महिमा मेरे गुरु की देन है।" और, अपनी प्रसन्नता में, वे हृदयस्पर्शी इस शब्द को कहने लगे:

जो लोग जल्दी नहीं करते, वे अपनी मनोकामना पूरी करते हैं;

हे गमानी, जान लो, तुम्हारी ही सफलता सिद्ध हो चुकी है।

राजा बनने के सात-आठ दिन बाद ही उनके सभी भाई अपने-अपने घर लौट गए। राजा गमानी ने अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करने के बाद अपने कर्मों के फल के लिए परलोक देह त्याग दिया। बोधिसत्व भी अपने कर्मों के फल के लिए परलोक देह त्याग गए।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में दुर्बल हृदय वाले भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। दोनों कथाएँ सुनाने के बाद, गुरु ने उन दोनों के बीच संबंध समझाया और जन्म का कारण बताया।

फुटनोट:

(1)सं. 462.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मखादेव-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-9-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 9

मखदेव-जातक

"ओह! ये सफेद बाल!"

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो महान त्याग के बारे में है और जिसका वर्णन पहले ही निदान-कथा में किया जा चुका है।

इस अवसर पर भिक्षुओं ने ज्ञान के स्वामी के त्याग की प्रशंसा करते हुए बैठक की। सत्य के हॉल में प्रवेश करके और बुद्ध-आसन पर विराजमान होकर, गुरु ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर क्या विषय पर चर्चा कर रहे हैं?"

"हे महोदय, यह आपके स्वयं के त्याग की प्रशंसा के सिवा और कुछ नहीं है।" "भाइयों," गुरु ने उत्तर दिया, "तथागत (बुद्ध) (*1) ने न केवल इन अंतिम दिनों में त्याग किया है; अतीत में भी उन्होंने इसी प्रकार संसार का त्याग किया था।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट किया।

बहुत समय पहले, विदेह राज्य के मिथिला में मखदेव नाम का एक राजा रहता था, जो धर्मात्मा और न्यायप्रिय था। चौरासी हजार वर्षों तक उसने क्रमशः राजकुमार, वायसराय और राजा के रूप में जीवन व्यतीत किया। इतने वर्षों तक जीवित रहने के बाद, एक दिन उसने अपने नाई से कहा, "नाई, मुझे बताना जब तुम्हें मेरे सिर में कोई सफेद बाल दिखाई दे।" कई वर्षों बाद, एक दिन नाई को राजा के काले घने बालों में एक सफेद बाल मिला और उसने राजा को बताया। राजा ने कहा, "इसे निकाल दो, मेरे मित्र, और मेरी हथेली पर रख दो।" नाई ने सोने के चिमटे से बाल निकाला और राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय राजा के पास अभी चौरासी हजार वर्ष और जीने को थे; फिर भी उस एक सफेद बाल को देखकर वह अत्यंत भावुक हो गया। उन्हें ऐसा लगा मानो मृत्यु का राजा उनके ऊपर खड़ा हो, या वे जलते हुए पत्तों के गुच्छे में कैद हों। "मूर्ख मखदेव!" वे चिल्लाए; "तुम्हारे बाल तो अभी तक बुरे कर्मों से मुक्त भी नहीं हुए हैं कि सफेद हो गए।" और जैसे-जैसे वे अपने सफेद बालों के बारे में सोचते रहे, उनका क्रोध भड़कता गया; उनके शरीर से पसीना बहने लगा; और उनके वस्त्र उन्हें जकड़ रहे थे और असहनीय लग रहे थे। "आज ही," उन्होंने सोचा, "मैं संसार का त्याग करके तपस्वी का जीवन अपना लूँगा।"

उन्होंने अपने नाई को एक गाँव दान में दिया, जिससे उन्हें एक लाख सिक्के प्राप्त हुए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र को बुलवाया और उससे कहा, "पुत्र, मेरे बाल सफेद हो गए हैं और मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैंने सांसारिक सुखों का भरपूर आनंद ले लिया है और अब मैं दिव्य सुखों

का अनुभव करना चाहता हूँ; अब मेरे लिए संन्यास का समय आ गया है। तुम स्वयं पर शासन करो; मैं मखदेव के आमों के बाग में निवास करूँगा और वहीं तपस्वी मार्ग पर चलूँगा।"

चूंकि वे तपस्वी जीवन जीने के लिए दृढ़ संकल्पित थे, इसलिए उनके मंत्री उनके पास आए और बोले, "महाराज, आप तपस्वी जीवन क्यों अपना रहे हैं?"

अपने हाथ में सफेद बाल लेकर राजा ने अपने मंत्रियों से यह श्लोक दोहराया:-

ओह, मेरे सिर पर ये सफेद बाल दिखाई दे रहे हैं

क्या ये मौत के खुद के दूत हैं जो लूटने आए हैं?

मेरा जीवन। अब समय आ गया है कि मैं सांसारिक चीजों से मुंह मोड़ लूं।

और संन्यासी के मार्ग पर चलकर स्थायी शांति की खोज करो।

इन शब्दों के बाद, उन्होंने उसी दिन शासन करने की शक्ति त्याग दी और संन्यासी बन गए। मखदेव के उसी आम के बाग में रहते हुए, उन्होंने चौरासी हजार वर्षों तक अपने भीतर चारों सिद्ध अवस्थाओं का पोषण किया और पूर्ण और अक्षुण्ण अंतर्दृष्टि के साथ प्राण त्याग कर ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म लिया। वहां से प्रस्थान करके, वे मिथिला में निमि नाम से पुनः राजा बने और अपने बिखरे हुए परिवार को एकजुट करने के बाद, उसी आम के बाग में पुनः संन्यासी बन गए, चारों सिद्ध अवस्थाओं को प्राप्त किया और वहां से एक बार फिर ब्रह्मलोक (परमलोक) में चले गए।

अपने इस कथन को दोहराते हुए कि उन्होंने भी अतीत में इसी प्रकार संसार का त्याग किया था, गुरु ने अपने प्रवचन के अंत में चार सत्यों का उपदेश दिया। कुछ ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया, कुछ ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) में और कुछ ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) में। दो कथाएँ सुनाने के बाद, गुरु ने उनके बीच संबंध स्पष्ट किया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों आनंद नाई थे, राहुल पुत्र थे और मैं स्वयं राजा मखदेव था।"

फुटनोट:

(1) तथागत (तथा = पार चले गए, अगत = वापस आ गए) का अर्थ है वह जिसने भौतिक ब्रह्मांड को पार किया, मृत्यु से परे मोक्ष की उस महिमामय, दिव्य, अभौतिक, अपरिवर्तनीय, कालातीत, शाश्वत अवस्था में प्रवेश किया और फिर भी भौतिक संसार में मार्ग की खोज का सुसमाचार सुनाने के लिए वापस आया। बुद्ध को विशेषण के रूप में तथागत भी कहा जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुखविहारी-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-10-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 10
सुखाविहारी-जातक

"वह व्यक्ति जो पहरा नहीं देता।"

यह कथा गुरु ने अनुपिया नगर के पास अनुपिया आम के बाग में सुनाई थी। इसमें वरिष्ठ भिक्षु भद्दिया (सुखद) के बारे में बताया गया है, जिन्होंने छह युवा भिक्षुओं के साथ भिक्षु संघ में प्रवेश किया था, जिनमें उपाली (*1) भी शामिल थे। इनमें से वरिष्ठ भिक्षु भद्दिया, किंबिला, भागु और उपाली ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया; वरिष्ठ भिक्षु आनंद ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया; वरिष्ठ भिक्षु अनुरुद्ध ने सर्वदृष्टि प्राप्त की; और देवदत्त ने समाधि की अवस्था में परमानंद की शक्ति प्राप्त की। अनुपिया में घटित घटनाओं तक इन छह युवा भिक्षुओं की कथा खंडाहल जातक (*2) में वर्णित की जाएगी।

आदरणीय भद्दिया, जो अपने राजवास के दिनों में स्वयं को ऐसे सुरक्षित रखते थे मानो स्वयं उनके संरक्षक देवता हों, उन्हें उस भय की अवस्था याद आई जिसमें वे तब रहते थे जब अनेक पहरेदार उनकी रक्षा करते थे और महल के ऊंचे निजी कक्षों में अपने शाही पलंग पर भी करवटें बदलते रहते थे; और इसकी तुलना उन्होंने उस भयहीनता से की जिसमें वे अब अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बनकर जंगलों और रेगिस्तानों में विचरण करते थे। और इस विचार से वे हृदयस्पर्शी स्वर में बोले—"ओह, कितना सुख! ओह, कितना सुख!"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को यह सूचना देते हुए कहा, "आदरणीय भद्दिया अपने द्वारा प्राप्त आनंद के बारे में बता रहे हैं।"

भगवान बुद्ध ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि भद्दिया का जीवन सुखमय हुआ है; अतीत में भी उसका जीवन उतना ही सुखमय था।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट किया।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब एक धनी उत्तरी ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। कामवासनाओं के बुरे प्रभाव और संसार त्याग से मिलने वाले लाभों को जानकर, उन्होंने कामवासनाओं का त्याग कर हिमालय में शरण ली और वहाँ एक संन्यासी बन गए तथा ज्ञान के आठ वरदान प्राप्त किए। उनके अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई और लगभग पाँच सौ हो गई। एक बार जब वर्षा ऋतु शुरू हुई, तो उन्होंने हिमालय छोड़ दिया और अपने साथी संन्यासियों के साथ गाँव-नगरों से होते हुए भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। अंत में वे बनारस पहुँचे, जहाँ उन्होंने राजा की उदारता के फलस्वरूप राजमहल में निवास किया। वर्षा ऋतुओं के चार महीने यहाँ रहने के बाद, वे राजा से विदा लेने आए। परन्तु राजा ने उनसे कहा, "हे पूज्यवर, आप वृद्ध हो चुके हैं। आपको हिमालय वापस क्यों जाना चाहिए? अपने शिष्यों को वहाँ वापस भेज दीजिए और आप स्वयं यहीं ठहर जाइए।"

बोधिसत्व ने अपने पांच सौ तपस्वियों को अपने सबसे बुजुर्ग शिष्य की देखरेख में सौंपते हुए कहा, "तुम इन्हें लेकर हिमालय जाओ; मैं यहीं ठहर जाऊंगा।"

वह सबसे पुराना शिष्य कभी राजा हुआ करता था, लेकिन उसने एक शक्तिशाली राज्य त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत किया था; एकाग्रचित्त अनुष्ठानों का विधिवत पालन करके उसने ज्ञान के आठ वरदान प्राप्त कर लिए थे। जब वह हिमालय में तपस्वियों के साथ रह रहा था, एक दिन उसे गुरु के दर्शन की तीव्र इच्छा हुई और उसने अपने साथियों से कहा, "आप लोग यहीं संतुष्ट होकर रहिए; गुरु को प्रणाम करके मैं तुरंत वापस आ जाऊँगा।" इस प्रकार वह गुरु के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक अभिवादन किया। फिर वह गुरु द्वारा बिछाई गई चटाई पर उनके बगल में लेट गया।

इसी समय राजा वहाँ आ गए, जो तपस्वी से मिलने उद्यान में आए थे; उन्होंने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। यद्यपि राजा की उपस्थिति से अवगत थे, फिर भी उस सबसे पुराने शिष्य ने उठने से परहेज किया और वहीं लेटे-लेटे अत्यंत भावुकता से पुकारते रहे, "ओह, कितना सुख! ओह, कितना सुख!"

राजा इस बात से नाराज थे कि तपस्वी ने उन्हें देखने के बावजूद भी नहीं उठे, इसलिए उन्होंने बोधिसत्व से कहा, "हे पूज्यवर, इस तपस्वी ने अवश्य ही भरपेट भोजन कर लिया होगा, क्योंकि वे अभी भी इतने प्रसन्नतापूर्वक लेटे हुए हैं और इतनी गंभीरता से उद्गार व्यक्त कर रहे हैं।"

"महाराज," बोधिसत्व ने कहा, "पुराने समय में यह तपस्वी आपकी ही तरह राजा हुआ करता था। वह सोच रहा है कि पुराने समय में जब वह गृहस्थ था और राजसी वैभव में रहता था, तथा अनेक सैनिकों से सुरक्षित रहता था, तब उसने कभी ऐसा सुख नहीं जाना था जैसा अब उसे प्राप्त है। तपस्वी के जीवन का सुख और अंतर्दृष्टि से प्राप्त सुख ही उसे इस हृदयस्पर्शी वचन को कहने के लिए प्रेरित करता है।" और बोधिसत्व ने राजा को सत्य सिखाने के लिए इस श्लोक को दोहराया:-

महाराज, जो व्यक्ति न तो रक्षा करता है और न ही उसकी रक्षा की जाती है।
सुखी जीवन जीता है, वासनाओं की गुलामी से मुक्त।

इस प्रकार प्राप्त शिक्षा से प्रसन्न होकर राजा ने प्रणाम किया और अपने महल लौट गए। शिष्य ने भी अपने गुरु से विदा ली और हिमालय लौट गए। परन्तु बोधिसत्व वहीं निवास करते रहे और पूर्ण एवं अक्षुण्ण अंतर्दृष्टि के साथ प्राण त्याग कर ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया।

उनका पाठ समाप्त हुआ, और दोनों कहानियाँ सुनाने के बाद, गुरु ने उन दोनों को जोड़ने वाले संबंध की व्याख्या की, और जन्म की पहचान करते हुए कहा, "वरिष्ठ भिक्षु भद्दिया उन दिनों के शिष्य थे, और मैं स्वयं तपस्वियों के समूह का गुरु था।"

फुटनोट:

(1) उपाली निम्न जाति (बहिष्कृत) और जाति से नाई था।

(2)सं. 534

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लक्षणा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-11-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 11
लखन-जातक

"नेक इंसान।"

राजगृह नगर के पास बांस के वन में गुरु ने देवदत्त के बारे में यह कथा सुनाई थी। देवदत्त (*1) की कथा अभिमारा पद ग्रहण करने तक खंडाहल जातक में, कोषाध्यक्ष पद से बर्खास्तगी तक चुल्लमांश जातक (*2) में और पृथ्वी में समा जाने तक सोलहवें खंड समुद्र-वाणिजा जातक (*3) में वर्णित है।

दरअसल, इस अवसर पर देवदत्त ने अपने द्वारा सुझाए गए पंचसूत्रों का पालन न कर पाने के कारण भिक्षु संघ में फूट डाल दी थी और पाँच सौ भिक्षुओं के साथ गया-सिसा में निवास करने चले गए थे। अब, ये भिक्षु अधिक ज्ञानी हो गए थे; और गुरु ने यह जानकर अपने दो प्रमुख शिष्यों (*4) को बुलाया और कहा, "सारिपुत्र, देवदत्त की शिक्षा से पथभ्रष्ट होकर उसके साथ चले गए तुम्हारे पाँच सौ शिष्य अब अधिक ज्ञानी हो गए हैं। तुम कुछ भिक्षुओं को लेकर वहाँ जाओ, उन्हें सत्य का उपदेश दो, इन भटके हुए भिक्षुओं को मार्ग और फल का ज्ञान दो और उन्हें अपने साथ वापस ले आओ।"

वे वहाँ गए, सत्य का उपदेश दिया, उन्हें मार्ग और फल के विषय में ज्ञान दिया, और अगले दिन भोर में उन भिक्षुओं के साथ बाँस के वन में लौट आए। जब सारिपुत्र भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद वहाँ खड़े थे, तब भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा, "महोदय, सत्य के सेनापति, हमारे वरिष्ठ भाई (भिक्षु) की महिमा अत्यंत उज्ज्वल थी, क्योंकि वे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ लौटे; जबकि देवदत्त अपने सभी अनुयायियों को खो बैठे।"

"भाइयों, यह एकमात्र ऐसा समय नहीं है जब सारिपुत्र अपने परिवार के साथ लौटकर गौरवान्वित हुए हों; जैसे अतीत में भी वे गौरवान्वित हुए थे। इसी प्रकार, यह एकमात्र ऐसा समय नहीं है जब देवदत्त ने अपने अनुयायियों को खोया हो; अतीत में भी वे अपने अनुयायियों को खो चुके थे।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण छिपे रहस्य को स्पष्ट किया।

बहुत समय पहले मगध राज्य के राजग्रह नगर में एक राजा रहता था, जिसके समय में बोधिसत्व ने हिरण का रूप धारण किया। बड़े होकर वह जंगल में एक हजार हिरणों के झुंड के मुखिया के रूप में रहने लगा। उसके दो बच्चे थे, जिनका नाम लकी और ब्लैकी था।

जब वह बूढ़ा हो गया, तो उसने अपने दोनों बेटों को झुंड की जिम्मेदारी सौंप दी और प्रत्येक को पाँच सौ हिरणों की देखभाल का जिम्मा दे दिया। इस प्रकार अब ये दोनों युवा हिरण झुंड के मुखिया बन गए।

मगध में फसल कटाई के समय, जब खेतों में फसलें खूब उग जाती हैं, तो आसपास के जंगलों में हिरणों के लिए खतरा पैदा हो जाता है। अपनी फसलों को चट कर जाने वाले इन जीवों को मारने के लिए किसान गड्ढे खोदते हैं, खूंटे गाड़ते हैं, पत्थर के जाल बिछाते हैं और फंदे व अन्य जाल लगाते हैं; जिससे बड़ी संख्या में हिरण मारे जाते हैं।

इसलिए, जब बोधिसत्व ने देखा कि फसल का समय आ गया है, तो उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलवाया और उनसे कहा, "मेरे पुत्रों, अब खेतों में फसलें खूब उग रही हैं और इस मौसम में बहुत से हिरण मर जाते हैं। हम बूढ़े हो चुके हैं, इसलिए हम एक ही जगह पर ठहरेंगे; लेकिन तुम दोनों अपने-अपने पशुओं के साथ जंगल के पहाड़ी इलाकों में चले जाओ और फसल कट जाने के बाद वापस आ जाना।" "ठीक है," उनके दोनों पुत्रों ने कहा और अपने-अपने पशुओं के साथ अपने पिता के कहे अनुसार चले गए।

रास्ते में रहने वाले लोग हिरणों के पहाड़ों पर जाने और वहां से लौटने का समय भली-भांति जानते हैं। वे रास्ते में जगह-जगह घात लगाकर बैठे रहते हैं और बड़ी संख्या में हिरणों को मार डालते हैं। मूर्ख ब्लैकी, जिसे यात्रा के समय और रुकने के समय का ज्ञान नहीं था, अपने हिरणों को सुबह-शाम, भोर और गोधूलि बेला में लगातार दौड़ाता रहा, यहाँ तक कि गाँवों की सीमा तक पहुँच गया। किसानों ने घात लगाकर या खुले में उसके झुंड के कई हिरणों को मार डाला। इस प्रकार अपने नासमझी भरे कार्यों से इन सभी का विनाश करने के बाद, वह कुछ बचे हुए हिरणों के साथ जंगल तक पहुँचा।

दूसरी ओर, लकी अपनी बुद्धिमत्ता, चतुराई और सूझबूझ के कारण कभी किसी गाँव की सीमा के पास भी नहीं गया। वह दिन में, यहाँ तक कि भोर या शाम के समय भी यात्रा नहीं करता था। वह केवल रात के अंधेरे में ही निकलता था; और इसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने एक भी हिरण को खोए बिना जंगल पहुँच गया।

चार महीने तक वे जंगल में ही रहे, फसल की कटाई होने तक पहाड़ियों से नीचे नहीं उतरे। घर लौटते समय ब्लैकी ने अपनी पिछली गलती दोहराते हुए अपने झुंड के बाकी हिरणों को खो दिया और अकेला लौट आया; जबकि लकी ने अपने झुंड का एक भी हिरण नहीं खोया था, बल्कि अपने माता-पिता के सामने प्रकट होते समय वह पूरे पाँच सौ हिरणों को वापस ले आया था। अपने दोनों बेटों को लौटते देख बोधिसत्व ने हिरणों के झुंड के साथ मिलकर यह श्लोक रचा:-

ईमानदार और दयालु व्यक्ति को उसका प्रतिफल मिलता है।

देखिए लकी अपने परिवार के दल का नेतृत्व करते हुए वापस लौट रहा है।

और तभी ब्लैकी अपने पूरे झुंड को छोड़कर आ जाता है।

बोधिसत्व ने अपने पुत्र का ऐसा स्वागत किया; और अच्छी वृद्धावस्था जीने के बाद, वह अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

अपने पाठ के अंत में, जब गुरु ने दोहराया कि सारिपुत्र की महिमा और देवदत्त की हानि दोनों की ही अतीत में एक समानता थी, तो उन्होंने दोनों कहानियों को जोड़ने वाले संबंध को स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का काला व्यक्ति था; उसके अनुयायी काले व्यक्ति के अनुयायी थे; सारिपुत्र उन दिनों का भाग्यशाली व्यक्ति था, और उसके अनुयायी बुद्ध के अनुयायी थे; राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) उन दिनों की माता थीं; और मैं स्वयं पिता था।"

फुटनोट:

(1) देवदत्त के "पाँच सूत्र":- "भाई अपना सारा जीवन वन में व्यतीत करेंगे, केवल बाहर से भिक्षा प्राप्त करके ही जीवन यापन करेंगे, कूड़े के ढेर से चुने हुए चिथड़े-चिथड़े पहनेंगे, पेड़ों के नीचे निवास करेंगे और कभी छत के नीचे नहीं रहेंगे, कभी मछली या मांस नहीं

खाएंगे।" ये पाँच सूत्र बुद्ध के नियमों की तुलना में अधिक कठोर तपस्या से भरे थे, और देवदत्त ने इन्हें अपने चचेरे भाई और गुरु (बुद्ध) से आगे निकलने के लिए बनाया था।

(2)सं. 533.

(3)सं. 466.

(4) दो प्रमुख शिष्य, जिनमें से केवल एक का नाम पाठ में दिया गया है, सारिपुत्र (उपनाम 'धर्म का सेनापति') और मोग्गल्याना थे, जो दो ब्राह्मण मित्र थे और मूल रूप से एक घुमंतू तपस्वी के अनुयायी थे, जिसने बौद्ध धर्म अपना लिया था। धर्मभ्रष्ट लोगों को पुनः बौद्ध धर्म में परिवर्तित करने का श्रेय आंशिक रूप से मोग्गल्याना को दिया जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **निग्रोधामिगा-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-12-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 12
निग्रोधामिगा-जातक

"इसे केवल बरगद के हिरण के साथ ही रखें।"

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो राजकुमार कश्यप नामक वरिष्ठ भिक्षु की माता के बारे में है। हमें पता चलता है कि राजग्रह नगर के एक धनी व्यापारी की पुत्री, सद्गुणों में पूर्णतः लीन थी और सांसारिक वस्तुओं से घृणा करती थी; वह अपने अंतिम जन्म को प्राप्त कर चुकी थी, और उसके हृदय में, जैसे कलश में जलता दीपक, अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने की उसकी अटूट आशा प्रज्वलित थी। आत्मज्ञान प्राप्त होते ही, उसे सांसारिक जीवन में कोई आनंद नहीं रहा, बल्कि वह संसार का त्याग करने के लिए तड़प उठी। इसी उद्देश्य से उसने अपने माता-पिता से कहा, "प्रिय माता-पिता, मेरे हृदय को सांसारिक जीवन में कोई आनंद नहीं है; मैं बुद्ध की असाधारण शिक्षाओं को सहर्ष ग्रहण करना चाहती हूँ। मुझे प्रतिज्ञा लेने की अनुमति दीजिए।"

"क्या, मेरी प्यारी? हमारा परिवार बहुत धनी है, और तुम हमारी इकलौती बेटी हो। तुम ये शपथ नहीं ले सकती।"

बार-बार विनती करने के बावजूद जब उसके माता-पिता की सहमति नहीं मिली, तो उसने मन ही मन सोचा, "ठीक है, जब मेरी शादी किसी दूसरे परिवार में होगी, तब मैं अपने पति की सहमति लेकर विवाह की प्रतिज्ञा ले लूंगी।" और जब वह बड़ी होकर दूसरे परिवार में गई, तो उसने एक समर्पित पत्नी होने का प्रमाण दिया और अपने नए घर में सदाचारी जीवन व्यतीत किया। अब उसे पता नहीं था कि वह गर्भवती हो गई है।

उस नगर में एक उत्सव मनाया जा रहा था और सभी लोग छुट्टी मना रहे थे, नगर को देवताओं के नगर की तरह सजाया गया था। लेकिन वह, उत्सव के चरम पर भी, न तो इत्र लगाती थी और न ही कोई आभूषण पहनती थी, वह अपने साधारण वस्त्रों में ही घूमती रही। तब उसके पति ने उससे कहा, "मेरी प्यारी पत्नी, सभी लोग उत्सव मना रहे हैं; लेकिन तुम आभूषण नहीं पहनती हो।"

“मेरे स्वामी,” उसने उत्तर दिया, “शरीर बत्तीस कुरूप वस्तुओं से भरा हुआ है। इसे सजाने का क्या कारण है? यह शरीर देवदूतों या महादेवदूतों के साँचे का नहीं है; यह सोने, रत्नों या पीले चंदन से नहीं बना है; यह सफेद, लाल या नीले कमलों की कोख से जन्म नहीं लेता; यह किसी अमर मरहम से भरा नहीं है। नहीं, यह भ्रष्टाचार से उत्पन्न हुआ है और नश्वर माता-पिता से जन्मा है; इसके गुण क्षणभंगुरता, क्षय और विनाश हैं; यह कब्रिस्तान में समा जाने के लिए नियत है और वासनाओं में लिप्त है; यह दुःख का स्रोत और शोक का कारण है; यह सभी रोगों का निवास स्थान और कर्मों का भंडार है। भीतर से मैला, यह हमेशा मल त्याग करता रहता है। हाँ, जैसा कि समस्त संसार देख सकता है, इसका अंत मृत्यु है, श्मशान में जाना, जहाँ यह कीड़ों का निवास स्थान बन जाता है (*1)। हे मेरे दूल्हे, मैं इससे क्या प्राप्त करूँगी? इस शरीर को सजाना? क्या इसे अलंकृत करना किसी बंद कुर्सी के बाहरी हिस्से को सजाने जैसा नहीं होगा?

"मेरी प्यारी पत्नी," युवक व्यापारी ने उत्तर दिया, "यदि तुम इस शरीर को इतना पापी मानती हो, तो क्यों न तुम नन बन जाओ?"

“यदि मुझे स्वीकार कर लिया गया, मेरे पति, तो मैं आज ही दीक्षा ले लूँगी।” “बहुत अच्छा,” उन्होंने कहा, “मैं तुम्हें संघ में प्रवेश दिला दूँगा।” और संघ के प्रति उदारता और आतिथ्य सत्कार दिखाने के बाद, वे उसे अपने साथ कई लोगों को लेकर मठ ले गए और उसे देवदत्त की अनुयायी नन के रूप में प्रवेश दिला दिया। नन बनने की अपनी इच्छा पूरी होने पर वह अत्यंत प्रसन्न हुई।

जैसे-जैसे उनका समय नजदीक आता गया, ननों ने उनके शरीर में आए बदलाव, हाथों और पैरों में सूजन और उनके बढ़ते आकार को देखकर कहा, "देवी, ऐसा लगता है कि आप मां बनने वाली हैं; इसका क्या मतलब है?"

"मैं बता नहीं सकता, देवियों; मैं केवल इतना जानता हूं कि मैंने एक सदाचारी जीवन व्यतीत किया है।"

तब ननों ने उसे देवदत्त के समक्ष लाकर कहा, "हे प्रभु, यह युवती, जिसे उसके पति की अनिच्छा से नन के रूप में दीक्षा दी गई थी, अब गर्भवती हो गई है; परन्तु क्या यह गर्भ उसके दीक्षा लेने से पहले का है या नहीं, हम निश्चित नहीं कह सकते। अब हम क्या करें?"

बुद्ध न होते हुए और दान, प्रेम या करुणा से रहित, देवदत्त ने सोचा: "यह खबर फैल जाए तो बहुत बुरा होगा कि मेरी एक भिक्षुणी गर्भवती है और मैं इस अपराध को स्वीकार करता हूँ। मेरा रास्ता स्पष्ट है; मुझे इस स्त्री को संघ से निष्कासित करना होगा।" बिना किसी पूछताछ के, मानो पत्थर के ढेर को धकेलते हुए, वह आगे बढ़ा और बोला, "चलो, इस स्त्री को निष्कासित करो!"

यह उत्तर पाकर वे उठीं और आदरपूर्वक प्रणाम करके अपने मठ की ओर चल पड़ीं। परन्तु उस कन्या ने उन भिक्षुणियों से कहा, “देवियों, देवदत्त, वरिष्ठ भिक्षु, बुद्ध नहीं हैं। मैंने देवदत्त के अधीन नहीं, बल्कि जगत के सर्वोत्कृष्ट बुद्ध के अधीन व्रत लिए थे। मेरी उस विद्या को मुझसे मत छीनिए जो मैंने इतनी मेहनत से अर्जित की है; परन्तु मुझे जेतवन मठ में गुरु के समक्ष ले चलिए।” अतः वे उसे लेकर जेतवन मठ के लिए चल पड़ीं और राजगृह नगर से पैंतालीस मील (4.23 किमी) की दूरी तय करके समय रहते अपने गंतव्य पर पहुँच गईं, जहाँ उन्होंने गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करके अपना मामला उनके समक्ष रखा।

गुरु ने सोचा, “यद्यपि शिशु का गर्भाधान उस समय हुआ जब वह अभी भी गृहस्थ थी, फिर भी इससे गलत विश्वासियों को यह कहने का अवसर मिलेगा कि तपस्वी गौतम (बुद्ध) ने देवदत्त द्वारा निष्कासित एक भिक्षुणी से विवाह किया है। इसलिए, ऐसी बातों को रोकने के लिए, इस मामले की सुनवाई राजा और उनके दरबार के समक्ष होनी चाहिए।” अतः अगले दिन उन्होंने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित), वरिष्ठ भिक्षु और युवा अनाथपिंडिका, महान गृहस्थ शिष्या विशाखा और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलवाया; और शाम को जब चारों वर्गों के विश्वासी - भिक्षु, भिक्षुणियां और गृहस्थ शिष्य, पुरुष और स्त्री दोनों - एकत्रित हुए, तो उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु उपाली से कहा, “जाओ, और मेरे चारों वर्गों के शिष्यों के समक्ष इस युवा भिक्षुणी के मामले का समाधान करो।”

“यह किया जाएगा, आदरणीय महोदय,” वरिष्ठ भिक्षु ने कहा और सभा की ओर चल दिए। वहाँ वे अपने स्थान पर बैठ गए और राजा के सामने शिष्या विशाखा को बुलाया और जाँच का कार्य उन्हें सौंपते हुए कहा, “विशाखा, पहले उस महीने की सही तारीख का पता लगाओ जिस दिन इस कन्या ने संघ में प्रवेश किया था; और फिर गणना करो कि क्या उसने उस तारीख से पहले गर्भ धारण किया था या उसके बाद।” तदनुसार, उस महिला ने एक पर्दा लगवाया और कन्या के साथ उसके पीछे चली गई। दिनों और महीनों की तुलना करने पर, उस महिला ने पाया कि कन्या के नन बनने से पहले ही गर्भ धारण हो गया था। उसने यह बात वरिष्ठ भिक्षु को बताई, जिन्होंने सभा के समक्ष नन को निर्दोष घोषित किया। अब जब उसकी निर्दोषता सिद्ध हो गई थी, तो उसने आदरपूर्वक संघ और माता को प्रणाम किया और अन्य ननों के साथ अपने नन आश्रम लौट गई।

जब उनका समय आया, तो उन्हें एक बलवान पुत्र का जन्म हुआ, जिसके लिए उन्होंने युगों पूर्व बुद्ध पद्ममुत्तरा के चरणों में प्रार्थना की थी। एक दिन, जब राजा नन आश्रम के पास से गुजर रहे थे, तो उन्होंने एक शिशु के रोने की आवाज सुनी और अपने दरबारियों से इसका अर्थ पूछा। वे तथ्य जानते हुए महाराज को बताया कि यह रोने की आवाज उस बच्चे की है जिसे नन ने जन्म दिया है। राजा ने कहा, "महोदय, बच्चों की देखभाल ननों के धार्मिक जीवन में बाधा है; आइए हम इसकी जिम्मेदारी लें।" अतः राजा के आदेश पर शिशु को उनके परिवार की महिलाओं को सौंप दिया गया और उनका पालन-पोषण एक राजकुमार की तरह हुआ। जब उसका नामकरण का समय आया, तो उसका नाम कश्यप रखा गया, लेकिन राजकुमार कश्यप के रूप में जाना जाने लगा क्योंकि उसका पालन-पोषण एक राजकुमार की तरह हुआ था।

सात वर्ष की आयु में उन्हें गुरु के अधीन एक नौसिखिया के रूप में प्रवेश दिया गया, और वयस्क होने पर वे पूर्ण भिक्षु बन गए। समय बीतने के साथ-साथ वे सत्य के प्रचारकों में प्रसिद्ध होते गए। इसलिए गुरु ने उन्हें प्राथमिकता देते हुए कहा, "भाइयों, मेरे शिष्यों में वाक्पटुता में प्रथम राजकुमार कश्यप हैं।" इसके बाद, वाम्मिका सूत्र (*2) के कारण उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। उनकी माता, भिक्षुणी, ने भी स्पष्ट दृष्टि प्राप्त की और परम फल प्राप्त किया। वरिष्ठ भिक्षु राजकुमार कश्यप बुद्ध की आस्था में ऐसे चमकते थे जैसे मध्य आकाश में पूर्णिमा का चंद्रमा। एक दिन दोपहर में जब तथागत (बुद्ध) भिक्षाटन से लौटकर भिक्षुओं को संबोधित

कर रहे थे, तब वे अपने सुगंधित कक्ष में चले गए। अपने संबोधन के समापन पर, भिक्षुओं ने दिन का समय या तो अपने रात्रि-आश्रय में या अपने दिन-आश्रय में बिताया, जब तक कि शाम नहीं हो गई। शाम होते ही वे सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और इस प्रकार बोले: “भाइयों, देवदत्त, क्योंकि वह बुद्ध नहीं था और क्योंकि उसमें दान, प्रेम या करुणा नहीं थी, वह वरिष्ठ भिक्षु राजकुमार कश्यप और उनकी पूज्य माता के विनाश के निकट था। परन्तु सर्वप्रबुद्ध बुद्ध, जो सत्य के स्वामी हैं और दान, प्रेम और करुणा में परिपूर्ण हैं, ने उनके निर्वाण (मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त किया है।” और जब वे वहाँ बैठकर बुद्ध की स्तुति कर रहे थे, तभी वे बुद्ध के पूर्ण आडंबर के साथ हॉल में प्रवेश कर गए और बैठते ही उन्होंने पूछा कि वे सब आपस में बैठकर किस विषय पर चर्चा कर रहे थे।

"आपकी खूबियों के बारे में, महोदय," उन्होंने कहा और उन्हें सब कुछ बता दिया।

उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि तथागत (बुद्ध) ने इन दोनों के लिए निर्वाण (मोक्ष) और शरण सिद्ध की है: वे अतीत में भी इनके लिए समान थे।"

फिर, जब भाइयों ने उनसे इसका स्पष्टीकरण मांगा, तो उन्होंने वह बात प्रकट की जो पुनर्जन्म ने उनसे छिपा रखी थी।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक हिरण के रूप में हुआ। जन्म के समय उनका रंग सुनहरा था; उनकी आँखें गोल रत्नों के समान थीं; उनके सींग चाँदी जैसे चमकते थे; उनका मुँह लाल कपड़े के गुच्छे के समान था; उनके चारों खुर मानो लाह से रंगे हुए थे; उनकी पूंछ याक जैसी थी; और वे एक जवान जानवर के समान बड़े थे। पाँच सौ हिरणों के साथ, वे बरगद के राजा के नाम से वन में रहते थे। उनके पास ही एक और हिरण रहता था, जिसके साथ पाँच सौ हिरणों का झुंड था, जिसका नाम शाखा हिरण था, और वह बोधिसत्व के समान सुनहरे रंग का था।

उन दिनों बनारस के राजा को शिकार का बहुत शौक था और वे हर भोजन में मांस खाते थे। प्रतिदिन वे अपने सभी नागरिकों, नगरवासियों और गाँववासियों को, उनके काम-काज में बाधा डालते हुए, इकट्ठा करते और शिकार पर जाते थे। उनकी प्रजा ने सोचा, "हमारे ये राजा तो हमारा सारा काम रोक देते हैं। मान लीजिए कि हम उनके बगीचे में हिरणों के लिए भोजन और पानी बो दें, और कुछ हिरणों को पकड़कर उन्हें अंदर बंद कर दें और राजा को सौंप दें!" इसलिए उन्होंने बगीचे में हिरणों के खाने के लिए घास बोई और पीने के लिए पानी का इंतजाम किया और द्वार चौड़ा खोल दिया। फिर उन्होंने नगरवासियों को बुलाया और हिरणों को खोजने के लिए लाठियों और हर तरह के हथियारों से लैस होकर जंगल में निकल पड़े। उन्होंने हिरणों को अपने घेरे में लेने के लिए लगभग एक लीग (4.23 किमी) जंगल को घेर लिया और इस तरह उन्होंने बरगद और शाखा हिरणों के निवास स्थान को घेर लिया। जैसे ही उन्हें हिरण दिखाई दिए, वे अपनी लाठियों से पेड़ों, झाड़ियों और ज़मीन को तब तक पीटते रहे जब तक कि हिरणों का झुंड उनके मांदों से बाहर नहीं निकल आया; फिर उन्होंने अपनी तलवारों, भालों और धनुषों को इतनी ज़ोर से बजाया कि सारे हिरण बगीचे में घुस आए और उन्होंने फाटक बंद कर दिया। फिर वे राजा के पास गए और बोले, “महाराज, आप हमेशा शिकार पर जाकर हमारे काम में बाधा डालते हैं; इसलिए हमने जंगल से इतने हिरण भगा दिए हैं कि आपका बगीचा भर जाए। अब से इन्हें खाएँ।”

इस पर राजा स्वयं उद्यान में गए और अपने झुंड को देखते हुए उन्होंने उनमें दो सुनहरे हिरण देखे, जिन्हें उन्होंने वफ़ादारी प्रदान की। कभी वे स्वयं जाकर एक हिरण का शिकार करके घर ले आते; कभी उनका रसोइया जाकर एक हिरण का शिकार करता। धनुष देखते ही हिरण जान बचाने के लिए कांपते हुए भाग जाते, परन्तु दो-तीन घाव लगने के बाद वे थककर कमजोर पड़ जाते और मारे जाते। हिरणों के झुंड ने यह बात बोधिसत्व को बताई, जिन्होंने शाखा को बुलवाया और कहा, “मित्र, हिरण बड़ी संख्या में मारे जा रहे हैं; और यद्यपि वे मृत्यु से नहीं बच सकते, कम से कम उन्हें अनावश्यक रूप से घायल न किया जाए। हिरणों को बारी-बारी से बलि के तख्ते पर भेजा जाए, एक दिन मेरे झुंड से एक, और अगले दिन तुम्हारे झुंड से एक। जिस हिरण की बारी निकले, उसे बलि के तख्ते पर सिर रखकर लेट जाना चाहिए। इस प्रकार हिरण घायल होने से बच जाएगा।” दूसरे ने सहमति जताई; और तब से जिस हिरण की बारी आती, वह बलि के तख्ते पर गर्दन रखकर लेट जाता। रसोइया जाकर केवल उसी शिकार को ले आता था जो उसका इंतजार कर रहा होता था।

एक दिन, ब्रांच के झुंड की एक गर्भवती हिरणी की पर्ची निकली। वह ब्रांच के पास गई और बोली, "हे प्रभु, मैं गर्भवती हूँ। जब मेरा बच्चा हो जाएगा, तो हम दो होंगे, बारी-बारी से। मुझे इस बार छूट दे दीजिए।" ब्रांच ने कहा, "नहीं, मैं तुम्हारी बारी नहीं दे सकता, किसी और की बारी तो नहीं। तुम्हें अपने भाग्य का फल भुगतना होगा। चली जाओ!" ब्रांच की कृपा न मिलने पर, हिरणी बोधिसत्व के पास गई और उन्हें अपनी कहानी सुनाई। बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है; तुम चली जाओ, मैं देख लूँगा कि बारी तुम्हें छोड़ दे।" इतना कहकर वह स्वयं मृत्युदंड स्थल पर गए और तख्ते पर सिर रखकर लेट गए। उन्हें देखकर रसोइया चिल्लाया, "अरे, हिरणों का राजा तो छूट पा गया! इसका क्या मतलब है?" और वह दौड़कर राजा को बताने चला गया। जैसे ही राजा ने यह सुना, वह अपने रथ पर सवार होकर

अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर वहाँ पहुँचे। बोधिसत्व को देखकर उसने कहा, "मेरे मित्र, हिरणों के राजा, क्या मैंने तुम्हें जीवनदान देने का वादा नहीं किया था? फिर तुम यहाँ क्यों पड़े हो?"

महाराज, मेरे पास एक गर्भवती हिरणी आई, जिसने मुझसे विनती की कि मैं उसे किसी दूसरे हिरण पर गिरने दूं; और चूंकि मैं एक का भाग्य दूसरे पर नहीं डाल सकता था, इसलिए मैंने उसके लिए अपना प्राण त्याग दिए और उसका भाग्य अपने ऊपर ले लिया, और मैं यहाँ लेट गया हूँ। महाराज, यह मत सोचिए कि इसके पीछे कोई और छुपी हुई बात है।

“हे मेरे प्रभु, हिरणों के स्वर्ण राजा,” राजा ने कहा, “मैंने मनुष्यों में भी आपके समान प्रेम, दया और करुणा से परिपूर्ण कोई नहीं देखा। इसलिए मैं आपसे प्रसन्न हूँ। उठो! मैं तुम दोनों का जीवन बख्श देता हूँ।”

“यद्यपि दो बच गए, तो शेष क्या करेंगे, हे मनुष्यों के राजा?” “मैं उनके जीवन भी बख्श देता हूँ, मेरे स्वामी।” “महाराज, केवल आपके उद्यान के हिरण ही इस प्रकार सुरक्षित रहेंगे; शेष सभी क्या करेंगे?” “मैं उनके जीवन भी बख्श देता हूँ, मेरे स्वामी।” “महाराज, हिरण तो सुरक्षित रहेंगे; परन्तु शेष चौपाये क्या करेंगे?” “मैं उनके जीवन भी बख्श देता हूँ, मेरे स्वामी।” “महाराज, चौपाये तो सुरक्षित रहेंगे; परन्तु पक्षियों के झुंड क्या करेंगे?” “वे भी बच जाएँगे, मेरे स्वामी।” “महाराज, पक्षी तो सुरक्षित रहेंगे; परन्तु जल में रहने वाली मछलियाँ क्या करेंगी?” “मैं उनके जीवन भी बख्श देता हूँ, मेरे स्वामी।”

सभी प्राणियों के जीवन के लिए राजा से प्रार्थना करने के बाद, महान बुद्ध प्रकट हुए और राजा को पंच आज्ञाओं का उपदेश देते हुए कहा, "हे महाराज, धर्म के मार्ग पर चलें। माता-पिता, बच्चों, नगरवासियों और देशवासियों के प्रति धर्म और न्याय का मार्ग अपनाएँ, ताकि इस पार्थिव शरीर के विलीन होने पर आप स्वर्ग के आनंद में प्रवेश कर सकें।" इस प्रकार, बुद्ध के विशिष्ट अनुग्रह और आकर्षण से उन्होंने राजा को सत्य का उपदेश दिया। कुछ दिनों तक वे राजा के उपदेश की प्रतीक्षा में उद्यान में रहे और फिर अपने पशुओं के साथ वन में चले गए।

और उस हिरणी ने कमल की खिलती कली के समान एक सुंदर बच्चे को जन्म दिया, जो बरगद के हिरणों के साथ खेला करता था। यह देखकर उसकी माँ ने उससे कहा, "मेरे बच्चे, उसके साथ मत जाओ, केवल बरगद के हिरणों के झुंड के साथ जाओ।" और सलाह देते हुए उसने यह श्लोक दोहराया—

इसे केवल बरगद के हिरण के साथ ही रखें।

और शाखा हिरणों के झुंड से दूर रहो; कहीं अधिक स्वागत योग्य।

क्या मृत्यु, मेरे बच्चे, बरगद के साथ है?

ब्रांच के साथ बिताए गए जीवन की सबसे समृद्ध अवधि से भी कहीं अधिक।

तब से, अब सुरक्षा का लाभ उठाते हुए हिरण मनुष्यों की फसलें खाने लगे, और मनुष्य अपनी सुरक्षा को याद रखते हुए हिरणों को मारने या भगाने की हिम्मत नहीं करते थे। इसलिए वे राजा के प्रांगण में एकत्रित हुए और राजा के समक्ष मामला रखा। राजा ने कहा, "जब बरगद के हिरण ने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया, तो मैंने उसे एक वरदान देने का वादा किया था। मैं अपना वादा छोड़कर अपना राज्य त्याग दूँगा। चले जाओ! मेरे राज्य में कोई भी व्यक्ति हिरण को नुकसान नहीं पहुँचा सकता।"

लेकिन जब यह बात बरगद के हिरण के कानों तक पहुँची, तो उसने अपने झुंड को इकट्ठा किया और कहा, "आज से तुम दूसरों की फसलें नहीं खाओगे।" और इस प्रकार मना करने के बाद, उसने पुरुषों को संदेश भेजा, "आज से कोई भी किसान अपने खेत की बाड़ न लगाए, बल्कि केवल चारों ओर पत्ते बाँधकर उसे चिह्नित करे।" और इस तरह, हमें सुनने में आता है, खेतों को चिह्नित करने के लिए पत्ते बाँधने की योजना शुरू हुई; और तब से कोई भी हिरण कभी भी इस तरह चिह्नित खेत में घुसपैठ नहीं करता था। क्योंकि बोधिसत्व ने उन्हें यही निर्देश दिया था।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने झुंड के हिरणों को उपदेश दिया, और जीवन भर उनका अनुसरण किया, और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार उनके साथ ही परलोक विदा हो गए। राजा भी बोधिसत्व की शिक्षाओं का पालन करते हुए, अच्छे कर्मों में व्यतीत जीवन के बाद अपने कर्मों के फल के लिए परलोक विदा हो गए।

इस पाठ के अंत में, जब गुरु ने दोहराया कि जिस प्रकार अब और अतीत में भी वे इस जोड़े के उद्धारक थे, तब उन्होंने चार सत्यों का उपदेश दिया। फिर उन्होंने दोनों कहानियों को आपस में जोड़ते हुए संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का बारहसिंगा था, और उसके अनुयायी उस बारहसिंगे का झुंड थे; भिक्षुणी हिरणी थी, और राजकुमार कश्यप उसकी संतान थे; आनंद राजा थे; और मैं स्वयं बरगद का राजा था।"

फुटनोट:

(1) शरीर की संरचना के बारे में घृणित छंदों की एक लंबी श्रृंखला को यहाँ छोड़ दिया गया है।

(2)मज्झिमा निकाय का 23वाँ सुत्त।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कंडिन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-13-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 13
कंदिना-जातक

प्रेम के तीर पर लानत हो।

यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें उन्होंने अपने सांसारिक जन्म की पत्नियों के कारण भिक्षुओं को हुए प्रलोभन का वर्णन किया है। इसका वर्णन इंद्रिय-जातक (*1) के आठवें खंड में किया जाएगा। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भाई, इसी स्त्री के कारण पिछले जन्म में तुम्हारी मृत्यु हुई और तुम धधकते अंगारों पर झुलस गए।" भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से इसका स्पष्टीकरण मांगा। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म के कारण उनसे छिपी हुई बात को स्पष्ट किया।

(अब से हम भाइयों द्वारा स्पष्टीकरण मांगने और पुनर्जन्म के कारण छिपी हुई बातों को स्पष्ट करने से संबंधित शब्दों को छोड़ देंगे; और केवल "अतीत की यह कहानी सुनाई" कहेंगे। जब केवल यही कहा जाए, तो बाकी सब कुछ ऊपर बताए अनुसार जोड़ा और दोहराया जाना चाहिए, अनुरोध, बादलों से चंद्रमा को मुक्त करने की उपमा, और पुनर्जन्म के कारण छिपी हुई बातों को स्पष्ट करना।)

बहुत समय पहले मगध राज्य में राजगृह नगर में राजा शासन कर रहे थे। फसलें तैयार होने पर हिरणों को भारी खतरों का सामना करना पड़ा, इसलिए वे जंगल में शरण लेने चले गए। जंगल में रहने वाले एक पहाड़ी हिरण को पास के एक गाँव से आई एक हिरणी से प्रेम हो गया। प्रेमवश हिरणी जंगल से लौटते समय हिरणी के साथ चलने का निश्चय कर लिया। हिरणी ने कहा, "हे महाराज, आप तो जंगल के एक साधारण हिरण मात्र हैं, और आसपास के गाँव खतरे और संकट से घिरे हुए हैं।"

इसलिए हमारे साथ नीचे मत आओ।" लेकिन उसके प्रति अपने अपार प्रेम के कारण वह रुका नहीं, बल्कि उसके साथ चला गया।

जब मगधवासियों को पता चला कि हिरणों के पहाड़ियों से नीचे आने का समय हो गया है, तो उन्होंने सड़क के किनारे घात लगा ली; और एक शिकारी ठीक उसी सड़क के किनारे घात लगाए बैठा था जहाँ से हिरणों का जोड़ा गुजर रहा था। किसी आदमी की गंध महसूस करते हुए, युवा हिरणी को शक हुआ कि कोई शिकारी घात लगाए बैठा है, और उसने हिरण को पहले जाने दिया और खुद कुछ दूरी पर उसके पीछे-पीछे चलने लगी। शिकारी ने एक ही तीर से हिरण को गिरा दिया, और हिरणी ने उसे घायल देखकर हवा की तरह भाग निकली। फिर वह शिकारी अपने छिपने की जगह से निकला और हिरण की खाल उतारकर आग जलाई और अंगारों पर उसका मीठा मांस पकाया। खाने-पीने के बाद, वह खून से लथपथ शव के बचे हुए हिस्से को अपने डंडे पर लादकर अपने बच्चों को खिलाने के लिए घर ले गया।

अब उन मिट्टी में, बोधिसत्व उसी वनक्षेत्र में रहने वाला एक परी था, और उसने देखा कि क्या हुआ था। "यह न तो पिता था और न ही माता, बल्कि केवल कामवासना ही थी जिसने इस मूर्ख हिरण का नाश किया। कामवासना का उदय आनंदमय होता है, परन्तु उसका अंत दुःख और पीड़ा, हाथों का कष्टदायक नुकसान, और पांच प्रकार के बंधनों और मारों का कष्ट है। किसी दूसरे की मृत्यु का कारण बनना इस संसार में निंदनीय माना जाता है; वह भूमि भी निंदनीय है जिस पर स्त्री का अधिकार और शासन है; और वे पुरुष भी निंदनीय हैं जो स्त्रियों के अधीन हो जाते हैं।" और इसके साथ ही, जब वन की अन्य परियों ने प्रशंसा की और श्रद्धापूर्वक इत्र, फूल आदि भेंट किए, तो बोधिसत्व ने तीनों निंदनों को एक ही श्लोक में पिरो दिया, और इन पंक्तियों में सत्य का उपदेश देते हुए अपने मधुर स्वर से वन को गूंजने दिया।

प्रेम के उस तीर पर लानत हो जो पुरुषों को पीड़ा देता है!

उस देश पर लानत हो जहाँ महिलाओं का राज चलता है!

और उस मूर्ख पर लानत हो जो स्त्री के वश में झुकता है!

इस प्रकार एक ही श्लोक में बोधिसत्व द्वारा दी गई तीनों निंदाओं को समाहित किया गया था, और जब उन्होंने बुद्ध की पूर्ण निपुणता और गरिमा के साथ सत्य का उपदेश दिया तो जंगल गूंज उठा।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ और गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) में स्थापित हो गए। दो कथाएँ सुनाने के बाद, गुरु ने दोनों को जोड़ने वाले संबंध को समझाया और जन्म की पहचान बताई।

(इसके बाद, हम 'दोनों कहानियां सुनाने के बाद' शब्दों को हटा देंगे और सीधे 'संबंध समझाया...' कहेंगे; हटाए गए शब्दों को पहले की तरह ही जोड़ा जाएगा।)

"उन दिनों में," गुरु ने कहा, "प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) पर्वतीय हिरण थे; उनकी सांसारिक पत्नी युवा हिरणी थीं, और मैं स्वयं वह परी थी जो वासना के पाप को दर्शाते हुए सत्य का उपदेश देती थी।"

फुटनोट:

(1)सं. 423.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वातामिगा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-14-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 14
वातमिगा-जातक

इससे बुरा कुछ नहीं हो सकता।

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा, जिन्हें प्रत्यक्ष भिक्षादाता कहा जाता था, का वर्णन है। परंपरा के अनुसार, जब गुरु राजगृह नगर के पास बांस के वन में रह रहे थे, तब एक धनी परिवार के वंशज, राजकुमार तिस्सा, एक दिन बांस के वन में आए और वहां गुरु का प्रवचन सुनकर भिक्षु संघ में शामिल होना चाहते थे। लेकिन माता-पिता की सहमति न मिलने पर, उन्होंने रत्थपाल (*1) के उदाहरण का अनुसरण करते हुए सात दिनों तक भोजन न करके उनकी सहमति प्राप्त की और अंततः गुरु के साथ दीक्षा ली।

इस युवक को प्रवेश देने के लगभग दो सप्ताह बाद, गुरुजी बाँस के वन से जेतवन मठ गए, जहाँ उस युवक ने तेरह प्रतिज्ञाओं (*2) का पालन किया और घर-घर जाकर भिक्षा माँगने में अपना समय व्यतीत किया। वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा (प्रत्यक्ष भिक्षा) के नाम से वे बौद्ध धर्म में आकाश में चंद्रमा के समान तेजस्वी प्रकाश बन गए।

राजगृह नगर में इस समय एक त्योहार की घोषणा हुई थी। बड़े भिक्षु के माता-पिता ने उनके गृहस्थ जीवन में पहने जाने वाले आभूषणों को एक चांदी के डिब्बे में रखा और बहुत दुखी होकर विलाप करते हुए कहा, “अन्य त्योहारों में हमारा पुत्र यह या वह आभूषण पहनकर त्योहार मनाता था; और हमारा इकलौता पुत्र, गौतम बुद्ध, श्रावस्ती नगर ले गए हैं। हमारा पुत्र अब कहाँ बैठा है या खड़ा है?” तभी घर में आई एक दासी ने देखा कि घर की मालकिन रो रही है और उसने उससे पूछा कि वह क्यों रो रही है; मालकिन ने उसे सब कुछ बता दिया।

“महोदया, आपके बेटे को क्या पसंद था?” “अमुक चीज़,” महिला ने उत्तर दिया। “अच्छा, अगर आप मुझे इस घर में अधिकार देंगी, तो मैं आपके बेटे को वापस ले आऊंगी।” “ठीक है,” महिला ने सहमति जताते हुए कहा और लड़की को उसके खर्चे दिए और उसे अपने साथ कई लोगों को भेजकर कहा, “जाओ, और मेरे बेटे को वापस ले आओ।”

अतः वह कन्या पालकी (एक व्यक्ति को ले जाने वाली ढकी हुई हाथ से चलने वाली गाड़ी) में बैठकर श्रावस्ती नगर चली गई, जहाँ उसने उस गली में अपना निवास स्थान बना लिया जहाँ वह भिक्षा मांगने अक्सर आया करता था। उसने अपने सेवकों से खुद को घेर लिया और भिक्षा मांगने वाले ...

भिक्षा मांगने के अपने नियमित दौर में, उचित समय पर, वरिष्ठ भिक्षु उसके घर के दरवाजे पर आए; और उसके लोगों ने वरिष्ठ भिक्षु का कटोरा लिया और उन्हें घर में बैठा दिया।

जब वह बैठ गया, तो उसने कहा, "वह गृहस्थ शिष्या कहाँ है?" "वह बीमार है, महोदय; वह आपसे मिलकर प्रसन्न होगी।"

स्वाद की लालसा के बंधन में बंधा होने के कारण, उसने अपनी प्रतिज्ञा और कर्तव्य को तोड़ दिया और उस स्थान पर गया जहाँ वह महिला लेटी हुई थी।

फिर उसने उसे अपने आने का कारण बताया और इस प्रकार उसे वश में कर लिया कि स्वाद की लालसा के बंधन में जकड़े होने के कारण उसने उसे भिक्षु संघ (साधु संघ) छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया; जब वह उसके वश में आ गया, तो उसने उसे पालकी में बिठाया और अपने साथ बड़ी संख्या में अनुयायियों को लेकर राजगृह नगर लौट आई।

यह सब बातें चारों ओर फैल गईं। सत्य के हॉल में बैठे भिक्षुओं ने इस मामले पर चर्चा करते हुए कहा, "महोदय, खबर है कि एक दासी ने कामुक लालसा के बंधन में बंधी हुई, वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा द लेस, जिन्हें डायरेक्ट-आल्म्स कहा जाता है, को अगवा कर लिया है।" हॉल में प्रवेश करते हुए गुरुजी अपने रत्नजड़ित आसन पर बैठ गए और बोले, "भाइयों, इस सभा में चर्चा का विषय क्या है?" उन्होंने उन्हें घटना के बारे में बताया।

“भाइयों,” उसने कहा, “यह पहली बार नहीं है कि वह स्वाद की लालसा के बंधन में पड़कर उसके वश में आ गया है; पहले भी वह इसी तरह उसके वश में आ चुका है।” और ऐसा कहते हुए उसने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, उनके यहाँ संजय नाम का एक माली था। राजा के बगीचे में एक पवन-हिरण आया, जो संजय को देखते ही भाग गया, लेकिन संजय ने उसे डराए बिना जाने दिया। कई बार आने के बाद हिरण बगीचे में घूमने लगा। माली की आदत थी कि वह फूल और फल इकट्ठा करके प्रतिदिन राजा के लिए ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे कहा, "माली, क्या तुमने बगीचे में कुछ अजीब देखा है?" "जी, बस एक पवन-हिरण बगीचे में आया है।" "क्या तुम उसे पकड़ सकते हो?" "हाँ, बिल्कुल; अगर मेरे पास थोड़ा सा शहद होता, तो मैं उसे सीधे महाराज के महल में ले आता।"

राजा ने उस आदमी को शहद देने का आदेश दिया और वह उसे लेकर बगीचे में चला गया। वहाँ उसने सबसे पहले हिरणों के आने-जाने वाले स्थानों पर घास पर शहद छिड़का और फिर खुद को छिपा लिया। जब हिरण आया और उसने शहद लगी घास का स्वाद चखा, तो वह स्वाद के लालच में इतना फंस गया कि वह बगीचे के अलावा कहीं और नहीं गया। अपनी चाल की सफलता को देखकर माली धीरे-धीरे प्रकट होने लगा। पहले एक-दो दिन तो हिरण को देखकर वह भाग जाता था, लेकिन उसे देखकर उसका आत्मविश्वास बढ़ गया और वह धीरे-धीरे उसके हाथ से घास खाने लगा। जब उसने देखा कि जानवर का विश्वास जीत लिया गया है, तो उसने सबसे पहले टूटी

हुई शाखाओं से रास्ते को कालीन की तरह मोटा बिछा दिया; फिर अपने कंधे पर शहद से भरा एक लौकी बांधकर और अपनी कमरबंद में घास का एक गुच्छा लगाकर, वह हिरण के सामने शहद लगी घास के टुकड़े गिराता रहा, जब तक कि अंत में वह उसे महल के अंदर तक नहीं ले आया। हिरण के अंदर आते ही उन्होंने दरवाजा बंद कर दिया। आदमियों को देखते ही हिरण डर और जान के डर से कांपते हुए हॉल में इधर-उधर भागने लगा; और राजा अपने ऊपर के कमरे से नीचे आकर उस कांपते हुए प्राणी को देखकर बोला, "पवन-हिरण इतना डरपोक होता है कि पूरे एक हफ्ते तक उस जगह पर नहीं जाता जहाँ उसने किसी आदमी को देखा हो; और अगर एक बार कहीं डर भी जाए तो जीवन भर फिर कभी वहाँ नहीं जाता। फिर भी, स्वाद की लालसा में फँसकर जंगल का यह जंगली प्राणी ऐसी जगह पर आ गया है। सचमुच, मेरे मित्रों, दुनिया में स्वाद की इस लालसा से ज्यादा नीच कुछ भी नहीं है।" और उसने अपनी शिक्षा को इस श्लोक में व्यक्त किया:-

पुरुषों का कहना है कि स्वाद को फंसाने से बुरा कुछ नहीं है।

अकेले या दोस्तों के साथ। देखो! स्वाद लाजवाब था!

जिसने संजय को उस जंगली हिरण को सौंप दिया जो जंगल में भटकता रहता था।

और इन शब्दों के साथ उसने हिरण को वापस उसके जंगल में जाने दिया।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त कर लिया और उस भिक्षु के बारे में अपनी कही हुई बात दोहराई कि वह अतीत और वर्तमान दोनों समय में उस स्त्री के वश में आ गया था, तो उन्होंने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म का वर्णन किया और कहा, "उन दिनों यह दासी संजय थी, भिक्षादाता पवन मृग था और मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1) रत्थपाल-सुत्त मज्झिमा-निकाय (संख्या 83) में है,

(2) ये कर्मों पर विजय पाने के लिए पुण्यकारी तपस्वी अभ्यास हैं, जिनमें से तीसरा यह वचन है कि भिक्षु के भिक्षापात्र में दाता से सीधे प्राप्त भिक्षा के अलावा कोई भोजन नहीं करना है। अतः "टिकट-भोजन" (जातक (संख्या 5)) अस्वीकार्य था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खरादिया-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-15-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 15
खराडिया-जातक

"जब कोई हिरण हो।"

यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक उद्दंड भिक्षु के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, यह भिक्षु उद्दंड था और उपदेश सुनने को तैयार नहीं था। इसलिए, गुरु ने उससे पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि तुम उद्दंड हो और उपदेश सुनने को तैयार नहीं हो?"

"यह सच है, भगवान बुद्ध," यह उत्तर मिला।

"इसी प्रकार, अतीत में," गुरु ने कहा, "तुम अनुशासनहीन थे और बुद्धिमान एवं भले लोगों की सलाह नहीं मानते थे, परिणामस्वरूप तुम एक जाल में फंस गए और तुम्हारी मृत्यु हो गई।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में थे, तब बोधिसत्व हिरण के रूप में पैदा हुए और जंगल में हिरणों के झुंड के मुखिया के रूप में रहते थे। उनकी बहन अपने बेटे को उनके पास लाकर बोली, "भाई, यह आपका भतीजा है; इसे हिरण की चालें सिखाइए।" इस प्रकार उसने अपने बेटे को बोधिसत्व की देखरेख में सौंप दिया। बोधिसत्व ने अपने भतीजे से कहा, "फलां समय पर आना, मैं तुम्हें सिखाऊंगा।" लेकिन भतीजा तय समय पर नहीं आया। और, जैसा उस दिन हुआ, वैसा ही सात दिनों तक उसने अपना पाठ छोड़ दिया और हिरण की चालें नहीं सीखीं; और अंत में, घूमते-घूमते वह एक जाल में फंस गया। उसकी माँ आई और बोधिसत्व से बोली, "भाई, क्या आपके भतीजे को हिरण की चालें नहीं सिखाई गईं?"

बोधिसत्व ने कहा, "उस अज्ञानी बदमाश की चिंता मत करो; तुम्हारा बेटा हिरण की चालें भी नहीं सीख पाया।" और ऐसा कहकर, उस बदमाश को उसकी जान के खतरे में भी सलाह देने की इच्छा खोकर, उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

जब हिरण के पास दौड़ने के लिए चार खुरों की दोगुनी संख्या होती है

और अनगिनत नुकीले सिरों से लैस शाखाओं वाले सींग,

और जब उसने सात तरकीबों से खुद को बचा लिया,

फिर मैं उसे और कुछ नहीं सिखाता, खराडिया।

लेकिन शिकारी ने फंदे में फंसे उस जिद्दी हिरण को मार डाला और उसका मांस लेकर चला गया।

जब गुरु ने भाई (भिक्षु) की अतीत और वर्तमान में अनुशासनहीनता के बारे में कही गई बातों के समर्थन में यह पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने संबंध की व्याख्या की और जन्म की पहचान करते हुए कहा, "उन दिनों में यह अनुशासनहीन भाई (भिक्षु) भतीजा-हिरण था, उप्पला-वन्ना (*1) बहन थी, और मैं स्वयं वह हिरण था जिसने सलाह दी।"

फुटनोट:

(1) उप्पला-वन्ना थेरी (वरिष्ठ नन) को यह नाम इसलिए मिला क्योंकि उनकी त्वचा गहरे नीले कमल के हृदय के रंग जैसी थी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **टिपल्लत्था-मिगा-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-16-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 16
TIPALLATTHA-MIGA-JATAKA

"तीनों मुद्राओं में।"

यह कहानी गुरु ने कोसंबी के बदरिका मठ में निवास करते हुए सुनाई थी, जिसमें वरिष्ठ भिक्षु राहुल के बारे में बताया गया है, जिनका हृदय भिक्षु संघ के नियमों का पालन करने में लगा हुआ था।

एक बार जब गुरुजी अलावी नगर के निकट अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे, तब बहुत सी महिला शिष्याएँ और नन (भिक्षुणियाँ) वहाँ सत्य का उपदेश सुनने के लिए आती थीं। उपदेश दिन में होता था, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ महिलाएँ आना बंद कर देती थीं, और केवल भिक्षु और पुरुष शिष्य ही उपस्थित रहते थे। फिर उपदेश शाम को होने लगा; और उपदेश समाप्त होने पर बड़े भिक्षु अपने-अपने कक्ष में चले जाते थे। लेकिन छोटे भिक्षु और शिष्य सेवा-कक्ष में विश्राम करने के लिए लेट गए। जब वे सो गए, तो उनके खर्राटे, घुरघुराहट और दाँत पीसने की आवाज़ें तेज़ हो गईं। थोड़ी देर की नींद के बाद कुछ भिक्षु उठे और उन्होंने भगवान बुद्ध को उस कुकर्म के

बारे में बताया जो उन्होंने देखा था। उन्होंने कहा, "यदि कोई भिक्षु नौसिखियों के साथ सोता है, तो यह पचित्त्य अपराध है (जिसके लिए पश्चात्ताप और क्षमा आवश्यक है)।" और यह आज्ञा देने के बाद वे कोसंबी चले गए।

इस पर भिक्षुओं ने पूज्य राहुल से कहा, "महोदय, भगवान बुद्ध ने यह नियम बनाया है, और अब आप कृपया अपने लिए अलग से जगह ढूंढ लें।" इससे पहले, भिक्षुओं ने पिता के प्रति आदर और पुत्र की भिक्षु संघ के नियमों का पालन करने की प्रबल इच्छा के कारण युवक का इस प्रकार स्वागत किया था मानो वह स्थान उसका ही हो; उन्होंने उसके लिए एक छोटा सा पलंग लगाया था और उसे तकिया बनाने के लिए कपड़ा दिया था। लेकिन हमारी कहानी के दिन उन्होंने उसे घर में रहने तक नहीं दिया, क्योंकि उन्हें गलत करने का इतना डर था। उत्तम राहुल न तो बुद्ध के पास पिता के रूप में गए, न ही धर्म के प्रमुख सारिपुत्र के पास गुरु के रूप में, न ही महान मोग्गल्याण के पास गुरु के रूप में, और न ही वरिष्ठ भिक्षु आनंद के पास चाचा के रूप में; बल्कि वे बुद्ध के प्रांगण में चले गए और वहाँ स्वर्गिक महल की तरह रहने लगे। बुद्ध के प्रांगण में दरवाजा हमेशा बंद रहता है; समतल फर्श सुगंधित मिट्टी का होता है; दीवारों पर फूल और मालाएँ सजी हैं; और रात भर वहाँ एक दीपक जलता रहता है। लेकिन यह वैभव ही राहुल के यहाँ निवास करने का कारण नहीं था। नहीं, बल्कि इसलिए कि भिक्षुओं ने उनसे अपने लिए रहने की जगह ढूँढ़ने को कहा था, और क्योंकि वे शिक्षा का आदर करते थे और संघ के नियमों का पालन करने के लिए उत्सुक थे। वास्तव में, समय-समय पर भिक्षु, उनकी परीक्षा लेने के लिए, जब उन्हें दूर से आते हुए देखते थे, तो एक झाड़ू या थोड़ी सी धूल फेंक देते थे, और राहुल के अंदर आने के बाद पूछते थे कि किसने फेंकी है। "राहुल उस तरफ से आया था," वे कहते थे, लेकिन भावी भिक्षु ने कभी यह नहीं कहा कि उन्हें इसके बारे में कुछ पता नहीं था। इसके विपरीत, वे कूड़ा हटाते थे और विनम्रतापूर्वक भिक्षु से क्षमा मांगते थे, और तब तक नहीं जाते थे जब तक उन्हें क्षमा का आश्वासन नहीं मिल जाता था;—वे नियमों का पालन करने के लिए इतने उत्सुक थे। और केवल इसी उत्सुकता ने उन्हें खुले मैदान में रहने के लिए प्रेरित किया।

हालांकि अभी दिन नहीं निकला था, गुरुजी खुले मैदान के द्वार पर रुके और खांसते हुए बोले, 'अहम।' पूज्य राहुल ने जवाब दिया, 'अहम।' बुद्ध ने पूछा, "कौन है?" उत्तर मिला, "मैं हूँ, राहुल।" फिर वह युवक बाहर आया और झुककर प्रणाम किया। "राहुल, तुम यहाँ क्यों सो रहे थे?" "क्योंकि मेरे पास कहीं और जाने की जगह नहीं थी। अब तक, महाराज, भिक्षुओं ने मुझ पर बहुत कृपा की है; लेकिन अब उन्हें गलती करने का इतना डर है कि वे मुझे अब और आश्रय नहीं देंगे। इसलिए, मैंने यहाँ अपना निवास स्थान बना लिया, क्योंकि मुझे लगा कि यह एक ऐसी जगह है जहाँ मैं किसी और के संपर्क में नहीं आऊँगा।"

तब गुरु ने मन ही मन सोचा, "अगर वे राहुल के साथ भी ऐसा व्यवहार करते हैं, तो संघ में शामिल किए जाने वाले अन्य युवकों के साथ वे क्या नहीं करेंगे?" और सत्य के लिए उनका हृदय प्रज्वलित हो गया। अतः उन्होंने सुबह तड़के ही भाइयों को एकत्रित किया और संघ के प्रमुख (सारिपुत्र) से इस प्रकार पूछा, "मुझे लगता है, सारिपुत्र, आपको कम से कम यह तो पता होगा कि राहुल इस समय कहाँ है?"

"नहीं, महोदय, मैं ऐसा नहीं करता/करती।"

"सारिपुत्र, राहुल आज खुले मैदान में रह रहा था। सारिपुत्र, अगर तुम राहुल के साथ ऐसा व्यवहार करोगे, तो संघ में शामिल होने वाले अन्य युवकों के साथ कैसा व्यवहार करोगे? ऐसा व्यवहार संघ में शामिल होने वालों को रोक नहीं पाएगा। भविष्य में, अपने नौसिखियों को एक-दो दिन अपने कमरे में रखो, और तीसरे दिन ही उन्हें बाहर रहने दो, और उनके रहने की जगह के बारे में अच्छी तरह जान लो।" इस शर्त के साथ गुरु ने नियम बता दिया।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर भिक्षुओं ने राहुल के गुणों की प्रशंसा की। “देखिए, महोदय, राहुल नियमों का पालन करने के लिए कितने तत्पर थे। जब उन्हें अपना आवास स्वयं खोजने को कहा गया, तो उन्होंने यह नहीं कहा, 'मैं बुद्ध का पुत्र हूँ; आवास से तुम्हारा क्या लेना-देना? तुम बाहर निकलो!' नहीं; उन्होंने किसी भी भिक्षु को नहीं निकाला, बल्कि स्वयं खुले मैदान में ही निवास किया।”

जब वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, तभी गुरुजी हॉल में आए और अपने राजसी सिंहासन पर बैठते हुए बोले, "भाइयों, आप लोग किस विषय पर बात कर रहे हैं?" उत्तर आया, "महाराज, हम राहुल की नियमों का पालन करने की चिंता के बारे में बात कर रहे थे, और कुछ नहीं।"

तब गुरु ने कहा, "राहुल ने यह चिंता न केवल अभी दिखाई है, बल्कि अतीत में भी दिखाई थी, जब वह पशु के रूप में पैदा हुआ था।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, मगध के राजगृह नगर में एक राजा राज कर रहा था। उस समय, एक बोधिसत्व, जो जन्म से हिरण था, जंगल में हिरणों के झुंड का मुखिया बनकर रहता था। उसकी बहन अपने बेटे को उसके पास लाकर बोली, "भाई, अपने भतीजे को हिरणों की

कला सिखाओ।" बोधिसत्व ने कहा, "ज़रूर; अब जाओ, मेरे बेटे, और अमुक समय पर वापस आना।" ठीक उसी समय, जैसा उसके चाचा ने बताया था, वह युवा हिरण वहाँ पहुँच गया और हिरणों की कला सीखी।

एक दिन जब वह जंगल में घूम रहा था, तो वह एक जाल में फंस गया और एक कैदी की तरह दर्द भरी चीख निकाली। झुंड भाग निकला और माँ को उसके बेटे के पकड़े जाने की सूचना दी। वह अपने भाई के पास आई और उससे पूछा कि क्या उसके भतीजे को हिरणों की चालें सिखाई गई थीं। बोधिसत्व ने कहा, "चिंता मत करो; तुम्हारा बेटा निर्दोष है। उसने हिरणों की चालें अच्छी तरह सीख ली हैं और वह तुरंत तुम्हारे पास लौट आएगा और तुम्हें बहुत प्रसन्न करेगा।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

तीनों ही मुद्राओं में—पीठ के बल या करवट के बल—

आपका बेटा पारंगत है; उसे आठ खुरों का उपयोग करने का प्रशिक्षण दिया गया है (*1)

और आधी रात को छोड़कर उसकी प्यास कभी नहीं बुझती;

जब वह धरती पर लेटा होता है, तो वह निर्जीव प्रतीत होता है।

और वह केवल अपनी नाक के नीचे से ही सांस लेता है।

मेरे भतीजे को अपने प्रतिद्वंद्वियों को धोखा देने के लिए छह तरकीबें पता हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपनी बहन को यह दिखाकर सांत्वना दी कि उसके पुत्र ने हिरणों की चालों में कितनी निपुणता प्राप्त कर ली थी। इसी बीच, फंदे में फँसने पर युवा हिरण ने कोई संघर्ष नहीं किया, बल्कि अपने पैरों को सीधा और अकड़ाकर एक तरफ लेट गया। उसने अपने खुरों के चारों ओर की ज़मीन को खुरचकर घास और मिट्टी बिखेर दी; शौच किया; अपना सिर नीचे लटका लिया; अपनी जीभ बाहर निकाल ली; अपने पूरे शरीर को लार से लथपथ कर लिया; हवा लगने से खुद को फुला लिया; अपनी आँखें ऊपर कर लीं; केवल निचले नथुने से साँस ली, ऊपरी नथुने से साँस रोक ली; और अपने आप को इतना कठोर और अकड़ा हुआ बना लिया कि वह एक लाश जैसा दिखने लगा। यहाँ तक कि चिड़ियाएँ भी उसके चारों ओर मंडरा रही थीं; और जगह-जगह कौवे बैठ गए।

शिकारी पास आया और हिरण के पेट पर हाथ से थपथपाते हुए बोला, "इसे आज सुबह जल्दी पकड़ा गया होगा; यह अभी से सड़ने लगा है।" इतना कहकर उसने हिरण के बंधन खोल दिए और मन ही मन कहा, "मैं इसे यहीं काटूंगा और इसका मांस घर ले जाऊंगा।" लेकिन जैसे ही वह आग जलाने के लिए लकड़ियाँ और पत्ते इकट्ठा करने लगा, युवा हिरण उठ खड़ा हुआ, खुद को झटका दिया, अपनी गर्दन फैलाई और तेज़ हवा के सामने उड़ते छोटे बादल की तरह तेज़ी से अपनी माँ के पास वापस चला गया।

राहुल ने अतीत में भी नियमों का पालन करने में उतनी ही चिंता दिखाई थी जितनी वर्तमान में, इस बात को दोहराते हुए गुरु ने संबंध स्थापित किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "राहुल उन दिनों का युवा हिरण था, उप्पला-वन्ना उसकी माता थी और मैं उसका चाचा हिरण था।"

फुटनोट:

(1)हिरण का फटा हुआ खुर।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मालुता-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-17-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 17
मालुत-जातक

"उजाले में हो या अंधेरे में।"

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी। यह कथा दो भिक्षुओं के बारे में है जो वृद्धावस्था में भिक्षु संघ में शामिल हुए थे। परंपरा के अनुसार, वे कोसल देश के एक जंगल में रहते थे, और उनमें से एक का नाम 'वृद्ध अंधकार' और दूसरे का नाम 'वृद्ध प्रकाश' था। एक दिन प्रकाश ने अंधकार से पूछा, "महोदय, शीतकाल कब आता है?" अंधकार ने उत्तर दिया, "यह माह के कृष्ण पक्ष में आता है।"

चूंकि वे दोनों मिलकर भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके, इसलिए वे गुरु के पास गए और विधिपूर्वक अभिवादन करते हुए पूछा, "महोदय, सर्दी कब प्रकट होती है?"

गुरु ने उनकी बातें सुनने के बाद कहा, "भाइयों, बीते दिनों में भी मैंने तुम्हारे लिए इसी प्रश्न का उत्तर दिया था; परन्तु तुम्हारे पिछले जन्म तुम भूल चुके हो।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, एक पर्वत की तलहटी में, एक ही गुफा में दो मित्र, एक शेर और एक बाघ, साथ रहते थे। बोधिसत्व भी उसी पर्वत की तलहटी में एक तपस्वी के रूप में निवास करते थे।

एक दिन दो मित्रों के बीच सर्दी को लेकर बहस छिड़ गई। बाघ ने कहा कि महीने के कृष्ण पक्ष में ठंड होती है, जबकि शेर का कहना था कि शुक्ल पक्ष में ठंड होती है। जब दोनों मिलकर भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाए, तो उन्होंने इसे बोधिसत्व के समक्ष रखा। उन्होंने यह श्लोक दोहराया—

प्रकाशमय या अंधकारमय भाग में, जब भी हवा चले

हवा चली, ठंड है। क्योंकि ठंड हवा के कारण ही होती है।

इसलिए, मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि आप दोनों सही हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने उन मित्रों के बीच सुलह कराई।

जब गुरु ने अतीत में इसी प्रश्न का उत्तर देने के अपने कथन के समर्थन में अपना पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में दोनों वरिष्ठ भिक्षुओं ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया।

गुरु ने संबंध की व्याख्या करते हुए जन्म की पहचान बताई और कहा, "उन दिनों का बाघ अंधकारमय था, सिंह प्रकाश था, और मैं स्वयं वह तपस्वी था जिसने प्रश्न का उत्तर दिया।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मटकभट्ट-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-18-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 18
माताकभट्ट-जातक

"काश लोगों को पता होता।"

यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में मृतकों के लिए आयोजित भोज के बारे में सुनाई थी। उस समय लोग बकरियों, भेड़ों और अन्य जानवरों को मारकर मृतकों के लिए भोज के रूप में चढ़ा रहे थे, ताकि अपने दिवंगत परिजनों की याद में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर

सकें। जब उन्होंने गुरुजी को ऐसा करते देखा, तो उन्होंने उनसे पूछा, "हे गुरुजी, अभी लोग बहुत से जीवित प्राणियों की बलि देकर उन्हें मृतकों के लिए भोज के रूप में चढ़ा रहे हैं। क्या इसमें कोई अच्छाई है?"

"नहीं, भिक्षुओं," गुरु ने उत्तर दिया; "यहाँ तक कि मृतकों के लिए भोज आयोजित करने के उद्देश्य से भी प्राण त्यागने से कोई लाभ नहीं होता। अतीत में, ज्ञानियों ने आकाश में रहकर सत्य का उपदेश दिया और इस प्रथा के बुरे परिणामों को दर्शाते हुए समस्त महाद्वीप को इसका त्याग करने के लिए प्रेरित किया। परन्तु अब, जब उनके पूर्व जन्मों का ज्ञान उनके मन में लुप्त हो गया है, तो यह प्रथा पुनः प्रकट हो गई है।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तब एक ब्राह्मण, जो तीनों वेदों में पारंगत और विश्व प्रसिद्ध शिक्षक थे, ने मृतकों के लिए भोज आयोजित करने का विचार किया। उन्होंने एक बकरी मंगवाई और अपने शिष्यों से कहा, "मेरे पुत्रों, इस बकरी को नदी तक ले जाओ और इसे नहलाओ; फिर इसके गले में एक माला डालो, इसे एक बर्तन अनाज खाने को दो, थोड़ा संवार लो और वापस ले आओ।"

"बहुत अच्छा," उन्होंने कहा और बकरी को नदी के किनारे ले गए, जहाँ उन्होंने उसे नहलाया-धुलाया और किनारे पर बिठा दिया। बकरी को अपने पिछले जन्मों के कर्मों का एहसास हुआ और यह सोचकर वह अत्यंत प्रसन्न हुई कि आज ही के दिन वह अपने सभी कष्टों से मुक्त हो जाएगी, और वह ज़ोर से हँसी जैसे कोई घड़ा टूट गया हो। फिर यह सोचकर कि ब्राह्मण उसे मारकर अपने कष्टों को सहेगा, बकरी को ब्राह्मण पर बहुत दया आई और वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। "मित्र बकरी," युवा ब्राह्मणों ने कहा, "तुम्हारी आवाज़ हँसते और रोते दोनों समय बहुत ऊँची रही है; तुम्हें हँसी क्यों आई और रोना क्यों आया?"

"अपना प्रश्न अपने गुरु के समक्ष मुझसे पूछें।"

तो वे बकरी के साथ अपने मालिक के पास आए और उसे सारी बात बताई। उनकी कहानी सुनने के बाद, मालिक ने बकरी से पूछा कि वह क्यों हंस रही थी और क्यों रो रही थी। इस पर उस जानवर ने अपने पूर्व जन्मों को याद करते हुए ब्राह्मण से कहा, "हे ब्राह्मण, बीते समय में मैं भी आपकी ही तरह वेदों के रहस्यवादी ग्रंथों का ज्ञाता ब्राह्मण था। मैंने मृतकों के लिए भोज अर्पित करने हेतु एक बकरी का वध किया था। उस एक बकरी के वध के कारण मेरा सिर पाँच सौ बार काटा गया, सिवाय एक बार के। यह मेरा पाँच सौवाँ और अंतिम जन्म है। यह सोचकर मैं हँस पड़ा कि आज ही मैं अपने दुखों से मुक्त हो जाऊँगा। वहीं दूसरी ओर, यह सोचकर मेरा रोना फूट पड़ा कि बकरी को मारने के कारण पाँच सौ बार सिर कटने का श्राप मुझे मिला था, जबकि आज मुझे अपने दुखों से मुक्ति मिल रही है। वहीं, मुझे मेरे वध के दंड स्वरूप मेरी ही तरह पाँच सौ बार सिर कटने का श्राप मिलेगा। इसलिए, तुम्हारे प्रति करुणावश ही मैं रोया।" ब्राह्मण ने कहा, "डरो मत, बकरी; मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।" "यह क्या कह रहे हो, ब्राह्मण?" बकरी ने कहा। "चाहे तुम मुझे मारो या न मारो, मैं आज मृत्यु से नहीं बच सकता।" "डरो मत, बकरी; मैं तुम्हारी रक्षा के लिए तुम्हारे साथ चलूंगा।" "तुम्हारी रक्षा कमजोर है, ब्राह्मण, और मेरे कर्मों की शक्ति प्रबल है।"

बकरी को आज़ाद करते हुए ब्राह्मण ने अपने शिष्यों से कहा, "हम किसी को भी इस बकरी को मारने नहीं देंगे।" और युवकों के साथ वह बकरी के पीछे-पीछे चलने लगा। जैसे ही बकरी को आज़ाद किया गया, उसने चट्टान की चोटी के पास उगी झाड़ी की पत्तियाँ चरने के लिए अपनी गर्दन आगे बढ़ाई। उसी क्षण बिजली गिरी और चट्टान से एक बड़ा टुकड़ा टूटकर बकरी की गर्दन पर लगा, जिससे उसका सिर धड़ से अलग हो गया। और लोग वहाँ जमा हो गए।

उन दिनों बोधिसत्व ने उसी स्थान पर वृक्ष-परी के रूप में जन्म लिया था। अपनी अलौकिक शक्तियों से वे अब वायु में पालथी मारकर बैठ गए, जबकि समस्त भीड़ उन्हें देख रही थी। मन ही मन सोचते हुए, 'यदि ये प्राणी केवल बुराई के फल को जान लें, तो शायद वे हत्या करना छोड़ दें,' उन्होंने मधुर स्वर में उन्हें इस श्लोक में सत्य का उपदेश दिया:-

अगर लोगों को पता होता कि सजा क्या होगी

दुःख से जन्म, जीवन का अंत हो जाएगा

जान लेने से ही हत्यारे का अंत कठोर होता है।

इस प्रकार उस महान सत्ता ने सत्य का उपदेश दिया, जिससे श्रोता नरक के भय से भयभीत हो गए; और लोग उन्हें सुनकर नरक के भय से इतने भयभीत हो गए कि उन्होंने प्राण त्याग दिए। बोधिसत्व ने सत्य का उपदेश देकर लोगों को आज्ञाओं का पालन करना सिखाया

और फिर अपने कर्मों के फल के लिए परलोक चले गए। लोग भी बोधिसत्व की शिक्षाओं में लीन रहे और अपना जीवन दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत किया, जिससे अंत में वे देवों के नगर (देवदूतों के नगर) में आबाद हो गए।

उनका पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों मैं वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अयाचितभट्ट-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-19-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 19
अयचितभट्ट-जातक

"परलोक के बारे में सोचो।"

यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें देवताओं को मन्नत के तहत बलि देने की बात कही गई थी। परंपरा के अनुसार, उन दिनों लोग व्यापार के सिलसिले में यात्रा पर जाते समय जीवित प्राणियों को मारकर देवताओं को बलि चढ़ाते थे और यह मन्नत मांगकर विदा लेते थे, "यदि हम लाभ के साथ सुरक्षित लौट आए, तो हम आपको एक और बलि देंगे।" और जब वे लाभ के साथ सुरक्षित लौट आते थे, तो यह सोचकर कि यह सब देवताओं की कृपा से हुआ है, वे कई जीवित प्राणियों को मारकर बलि चढ़ा देते थे ताकि उनकी मन्नत पूरी हो जाए।

जब भिक्षुओं को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भगवान बुद्ध से पूछा, "हे प्रभु, क्या इसमें कोई अच्छाई हो सकती है?"

भगवान बुद्ध ने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले काशी देश में एक छोटे से गाँव के एक उच्च अधिकारी के सहायक ने गाँव के प्रवेश द्वार पर स्थित बरगद के वृक्ष की परी को बलि चढ़ाने का वचन दिया। बाद में जब वह लौटा, तो उसने कई जीवों को मार डाला और अपने वचन से मुक्ति पाने के लिए वृक्ष की परी के पास गया। लेकिन वृक्ष की परी, वृक्ष की शाखाओं के बीच खड़ी होकर, यह श्लोक दोहराने लगी:-

जब आप अपनी आकांक्षाओं की तलाश करें तो परलोक के बारे में सोचें।

'रिहाई'; क्योंकि यह रिहाई कठोर बंधन है।

बुद्धिमान और भले लोग इस प्रकार स्वयं को मुक्त नहीं करते;

इसके लिए, मूर्ख की मुक्ति, बंधन में ही समाप्त होती है।

तब से मनुष्यों ने इस प्रकार जीवन लेने से परहेज किया और धार्मिकता के मार्ग पर चलकर देवों (देवदूतों) के नगर में भीड़ जमा कर ली।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों की वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नापापान-जातक**

स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-20-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 20
नलपना-जातक

मुझे पैरों के निशान मिल गए।

यह कहानी गुरुजी ने कोसला में भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा करते समय सुनाई थी, जब वे नलका-पना (गन्ने का पानी) गाँव में आए थे और नलका-पना कुंड के पास केतक-वन में रह रहे थे। उन्होंने गन्ने की छड़ियों के बारे में बताया। उन दिनों भिक्षु नलका-पना कुंड में स्नान करने के बाद नौसिखियों से सुई रखने के लिए गन्ने की छड़ियाँ लाने को कहते थे (*1), लेकिन जब उन्होंने देखा कि वे पूरी तरह से खोखली हैं, तो वे गुरुजी के पास गए और बोले, "गुरुजी, हमने सुई रखने के लिए गन्ने की छड़ियाँ मंगवाई थीं; और वे ऊपर से नीचे तक पूरी तरह खोखली हैं। अब ऐसा कैसे हो सकता है?"

“भाइयों,” गुरु ने कहा, “बीते समय में मेरा यही नियम था।” और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

हमें बताया जाता है कि पुराने समय में इस स्थान पर एक घना जंगल था। और यहाँ एक झील थी जिसमें एक जल-राक्षस रहता था जो पानी में उतरने वाले हर किसी को खा जाता था। उन दिनों बोधिसत्व ने वानरों के राजा के रूप में जन्म लिया था और वे लाल हिरण के बच्चे जितने बड़े थे; वे उस जंगल में लगभग अस्सी हजार वानरों के झुंड के मुखिया के रूप में रहते थे और उनकी रक्षा करते थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को सलाह दी: "मेरे मित्रों, इस जंगल में विषैले पेड़ और राक्षसी झीलें हैं। कोई भी फल खाने या पानी पीने से पहले मुझसे अवश्य पूछ लेना, चाहे वह आपने पहले कभी न खाया हो।" "ज़रूर," उन्होंने तुरंत कहा।

एक दिन वे एक ऐसी जगह पर पहुँचे जहाँ वे पहले कभी नहीं गए थे। दिनभर की यात्रा के बाद पीने के लिए पानी की तलाश करते हुए वे इस झील के पास पहुँचे। लेकिन उन्होंने पानी नहीं पिया; इसके विपरीत वे बोधिसत्व के आने की प्रतीक्षा में बैठ गए।

जब वह आया तो उसने कहा, "अच्छा, मेरे दोस्तों, तुम लोग क्यों नहीं पीते?"

"हम आपके आने का इंतजार कर रहे थे।"

“बिल्कुल सही, मेरे मित्रों,” बोधिसत्व ने कहा। फिर उन्होंने झील का चक्कर लगाया और चारों ओर बने पदचिह्नों का बारीकी से निरीक्षण किया। उन्होंने पाया कि सभी पदचिह्न पानी में ही जा रहे थे और कोई भी ऊपर नहीं आ रहा था। “निस्संदेह,” उन्होंने मन ही मन सोचा, “यह किसी राक्षस का निवास स्थान है।” इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा, “मेरे मित्रों, इस जल को न पीने का आपका निर्णय बिल्कुल सही है; क्योंकि इस झील में एक राक्षस का वास है।”

जब जल-राक्षस को यह अहसास हुआ कि वे उसके क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर रहे हैं, तो उसने नीले पेट, सफेद चेहरे और चमकीले लाल हाथों और पैरों वाले एक भयानक राक्षस का रूप धारण कर लिया; इस रूप में वह जल से बाहर आया और बोला, "तुम यहाँ क्यों बैठे हो? झील में उतरकर पानी पियो।" लेकिन बोधिसत्व ने उससे कहा, "क्या तुम इस जल के राक्षस नहीं हो?" "हाँ, मैं हूँ," उत्तर था। "क्या तुम इस जल में उतरने वाले सभी को अपना शिकार बनाते हो?" "हाँ, मैं बनाता हूँ; छोटे पक्षियों से लेकर ऊपर तक, जो भी मेरे जल में उतरता है, मैं उसे कभी नहीं छोड़ता। मैं तुम सबको भी खा जाऊँगा।" "लेकिन हम तुम्हें हमें खाने नहीं देंगे।" "बस पानी पी लो।" "हाँ, हम पानी पिएंगे, और फिर भी तुम्हारे वश में नहीं आएंगे।" "तो फिर तुम पानी कैसे पीने का इरादा रखते हो?" "अरे, आपको लगता है कि हमें पानी पीने के लिए पानी में उतरना पड़ेगा; जबकि हम पानी में बिल्कुल नहीं उतरेंगे, बल्कि हम सभी अस्सी हजार लोग एक-एक छड़ी लेकर आपकी झील से ऐसे पानी पिएंगे जैसे कमल के खोखले डंठल से आसानी से पानी पी सकते हैं। और इस तरह आप हमें खा नहीं पाएंगे।" और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक का उत्तरार्ध दोहराया (प्रथम भाग गुरु ने बुद्ध के रूप में घटना को याद करते हुए जोड़ा था):-

मैंने देखा कि सारे पदचिह्न नीचे की ओर जा रहे थे, कोई भी वापस नहीं आ रहा था।

हम डंडों से पिएंगे; तुम मेरी जान नहीं ले सकते।

ऐसा कहकर बोधिसत्व ने एक छड़ी मंगवाई। फिर, अपने द्वारा प्रदर्शित दस सिद्धियों को याद करते हुए, उन्होंने उनका दृढ़तापूर्वक पाठ किया (*2), और छड़ी को फूंक मारकर गिरा दिया। तुरंत ही छड़ी पूरी तरह खोखली हो गई, उसकी पूरी लंबाई में एक भी गांठ नहीं बची। इसी प्रकार उन्होंने एक-एक करके और छड़ियां मंगवाईं और उन्हें भी फूंक मारकर गिरा दिया। (पर यदि ऐसा होता, तो वे कभी भी अपना कार्य पूरा नहीं कर पाते; और इसलिए ऊपर उल्लिखित वाक्य को इस शाब्दिक अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए।) इसके बाद बोधिसत्व ने झील का चक्कर लगाया और आज्ञा दी, "यहाँ उगने वाली सभी छड़ें पूरी तरह खोखली हो जाएं।" अब, बोधिसत्वों के असाधारण सद्गुणों के कारण, उनकी आज्ञाएँ हमेशा पूरी होती हैं। और तब से उस झील के चारों ओर उगने वाली प्रत्येक छड़ी पूरी तरह खोखली हो गई।

(इस कल्प (या युग) में चार चमत्कार हैं जो पूरे युग तक बने रहते हैं। वे चार क्या हैं? वे हैं - पहला, चंद्रमा में खरगोश का चिन्ह (*3), जो पूरे युग तक बना रहेगा; दूसरा, वट्टक जातक (*4) में वर्णित वह स्थान जहाँ आग बुझाई गई थी, जो पूरे युग में अग्नि से अछूता रहेगा; तीसरा, घटिकारा के घर के स्थान पर इस युग के दौरान कभी वर्षा नहीं होगी; और तीसरा, इस झील के चारों ओर उगने वाले सरकंडे पूरे युग में खोखले रहेंगे। इन्हें चार युग-चमत्कार कहा जाता है।)

यह आदेश देने के बाद, बोधिसत्व अपने हाथों में छड़ी लेकर बैठ गए। बाकी सभी अस्सी हजार बंदर भी झील के चारों ओर बैठ गए, हर एक के हाथ में छड़ी थी। और जिस क्षण बोधिसत्व ने अपनी छड़ी से पानी पिया, उसी क्षण वे सभी किनारे पर बैठे-बैठे उसी प्रकार पानी पीने लगे। इस प्रकार पानी पीने से जल-राक्षस उनमें से किसी को भी नहीं पकड़ सका; इसलिए वह क्रोधित होकर अपने निवास स्थान पर चला गया। बोधिसत्व भी अपने अनुयायियों के साथ जंगल में वापस चले गए।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त कर लिया और अपने द्वारा कही गई बात को दोहराया कि बेंत का खोखला होना उनके अपने पूर्व विधान का परिणाम है, तो उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का जल-राक्षस था; मेरे शिष्य अस्सी हजार बंदर थे; और मैं संसाधनों से भरपूर बंदरों का राजा था।"

फुटनोट:

(1) विनय (नियमों) में, बुद्ध बांस से बने सुई के खोल के उपयोग की अनुमति देते हैं।

(2) शाब्दिक रूप से "सत्य-कार्य किया"। यदि यह इरादे से किया जाता है, तो तुरंत एक चमत्कार होता है। तुलना करें क्रमांक (35)

(3) जातक क्रमांक 316 देखें।

(4)सं. (35).

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुरुंग-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-21-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 21
कुरुंगा-जातक

"हिरण को यह बात अच्छी तरह पता है।"

यह कहानी गुरु ने बांस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। एक बार जब भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में एकत्रित हुए, तो वे देवदत्त की निंदा करते हुए बातें कर रहे थे, "महोदय, बुद्ध को नष्ट करने के उद्देश्य से देवदत्त ने धनुर्धारियों को किराए पर लिया, एक चट्टान फेंकी और धनपालक हाथी को छोड़ दिया; वह हर तरह से ज्ञान के स्वामी (बुद्ध) को मारने का प्रयास कर रहा है (*1)।" गुरु ने हॉल में प्रवेश

किया और अपने लिए तैयार आसन पर बैठते हुए पूछा, “महोदय, आप लोग यहाँ किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” उत्तर मिला, “महोदय, हम देवदत्त की दुष्टता पर चर्चा कर रहे थे, कि वह हमेशा आपको मारने का प्रयास करता रहता है।” गुरु ने कहा, “भाइयों, केवल आज ही देवदत्त मुझे मारने का प्रयास नहीं कर रहा है; वह पहले भी इसी इरादे से प्रयास करता था, परन्तु मुझे मार नहीं सका।” और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक हिरण के रूप में जन्म लिया और जंगल में अपनी यात्राओं के दौरान फल खाकर अपना जीवन यापन करते थे।

एक समय वह सेपन्नी वृक्ष के फल खाकर अपना जीवन यापन करते थे। गाँव में एक शिकारी रहता था, जो पेड़ों पर चबूतरा बनाकर हिरणों के पदचिह्न देखकर ऊपर से उनके फल खाने आने का इंतज़ार करता था। जब हिरण आते, तो वह भाले से उन्हें मार गिराता और उनका मांस बेचकर अपना गुजारा करता था। एक दिन उस शिकारी ने बोधिसत्व के पदचिह्न पेड़ के नीचे देखे और उसने भी शाखा पर एक चबूतरा बना लिया। सुबह जल्दी नाश्ता करके वह अपने भाले के साथ जंगल में गया और चबूतरे पर बैठ गया। बोधिसत्व भी सुबह जल्दी उस पेड़ का फल खाने आए; लेकिन उन्हें पेड़ के पास जाने की कोई जल्दी नहीं थी। उन्होंने मन ही मन सोचा, "कभी-कभी ये चबूतरा बनाने वाले शिकारी शाखाओं पर चबूतरे बना लेते हैं। क्या यह कुटिया यहीं बनी होगी?" और वह कुछ दूर रुककर स्थिति का जायजा लेने लगे। बोधिसत्व के न आने पर शिकारी, जो अभी भी अपने ऊंचे चबूतरे पर बैठा था, ने हिरण के सामने फल फेंक दिए। हिरण ने मन ही मन कहा, "देखो, फल मुझसे मिलने आ रहे हैं; पता नहीं ऊपर कोई शिकारी है या नहीं।" उसने तब तक देखा, जब तक उसे पेड़ पर बैठा शिकारी दिखाई नहीं दिया; लेकिन, जैसे उसने उस आदमी को न देखा हो, उसने चिल्लाकर कहा, "हे मेरे पूजनीय वृक्ष, अब तक तुम अपने फलों को लटकती लता की तरह सीधे जमीन पर गिराते रहे हो; लेकिन आज तुमने वृक्ष की तरह व्यवहार करना छोड़ दिया है। इसलिए, जैसे तुमने वृक्ष के अनुरूप व्यवहार करना छोड़ दिया है, मुझे भी बदलना होगा और दूसरे पेड़ के नीचे भोजन खोजना होगा।" और ऐसा कहते हुए, उसने यह श्लोक दोहराया:-

हिरण आपके द्वारा गिराए गए फलों को अच्छी तरह पहचानता है।

मुझे यह पसंद नहीं है; मैं कोई दूसरा पेड़ ढूंढूंगा।

तब शिकारी ने अपने चबूतरे से बोधिसत्व पर भाला फेंका और चिल्लाया, "चले जाओ! इस बार मेरा निशाना चूक गया।" बोधिसत्व घूमकर रुके और बोले, "हे मेरे भले मनुष्य, भले ही तुम्हारा निशाना चूक गया हो; लेकिन यकीन मानो, तुम्हें अपने कर्मों का फल अवश्य मिलेगा, अर्थात् आठ बड़े और सोलह छोटे नरक तथा सभी पाँच प्रकार के बंधन और यातनाएँ।" ये शब्द सुनकर हिरण उछलकर अपने रास्ते चला गया; और शिकारी भी नीचे उतरकर अपने रास्ते चला गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया और देवदत्त द्वारा अतीत में भी उन्हें जान से मारने के प्रयास के बारे में जो कहा था उसे दोहराया, तो उन्होंने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताई और कहा, "देवदत्त उन दिनों का मंच-शिकारी था, और मैं स्वयं मृग था।"

फुटनोट:

(1) देवदत्त द्वारा गौतम बुद्ध की हत्या का प्रयास। हाथी का नाम भी नालगिरी है।

जातक क्रमांक 22

कुक्कुरा-जातक

"राजमहल में पलने वाले कुत्ते।"

--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें परिवार के हित के लिए कार्य करने के बारे में बताया गया था, जैसा कि भद्दसला-जातक (*1) के बारहवें खंड में बताया जाएगा। इसी बात को पुष्ट करने के लिए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई थी।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, बोधिसत्व के एक पिछले कर्म के फलस्वरूप उनका जन्म एक कुत्ते के रूप में हुआ और वे सैकड़ों कुत्तों के बीच एक विशाल कब्रिस्तान में रहने लगे।

एक दिन राजा अपने राजसी रथ में बैठकर, जो दूध जैसे सफेद घोड़ों द्वारा खींचा जा रहा था, अपने उद्यान के लिए निकले। दिनभर उद्यान में आनंद लेने के बाद वे सूर्यास्त के समय शहर लौट आए। रथ का लगाम वे आंगन में ही छोड़ आए थे, जो रथ से जुड़ा हुआ था। रात में बारिश हुई और लगाम भीग गया। इसके अलावा, राजा के कुत्ते ऊपरी कमरों से नीचे आए और रथ के चमड़े और पट्टियों को कुतर दिया। अगले दिन उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, कुत्ते नाले के मुँह से अंदर घुस आए हैं और आपके रथ के चमड़े और पट्टियों को कुतर दिया है।" कुत्तों पर क्रोधित होकर राजा ने कहा, "जो भी कुत्ता दिखे, उसे मार डालो।" तब कुत्तों का बड़े पैमाने पर नरसंहार शुरू हुआ; और जब उन जीवों ने देखा कि उन्हें देखते ही मार दिया जा रहा है, तो वे बोधिसत्व के पास कब्रिस्तान गए। बोधिसत्व ने पूछा, "इतनी बड़ी संख्या में यहाँ आने का क्या अर्थ है?" उन्होंने कहा, "राजा को यह खबर सुनकर इतना गुस्सा आया है कि राजमहल परिसर में कुत्तों ने उनकी गाड़ी के चमड़े और पट्टियों को कुतर दिया है, कि उन्होंने सभी कुत्तों को मारने का आदेश दे दिया है। कुत्तों को बड़े पैमाने पर मारा जा रहा है, और बड़ा खतरा पैदा हो गया है।"

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, बोधिसत्व के एक पूर्व कर्म के अवशेष उनका जन्म कुत्ते के रूप में हुआ और वे सैकड़ों गिरोह के मुखिया के रूप में एक विशाल कब्रिस्तान में रहने लगे।

एक दिन, राजा अपने राजसी रथ पर सवार होकर, जो दूध की तरह सफेद रथ निकालकर निकाला जाता था, अपने बगीचे के लिए निकल रहा था और दिन भर बगीचे में आनंद लेने के बाद सूरज के शहर में वापस आ गया। रथ का स्थान वे बैलून में ही छोड़ आए थे, जो रथ से गिर गया था। रात में बारिश हुई और लगम भीग गई। इसके अलावा, राजा के कुत्ते के ऊपरी दर्शन से नीचे और रथों की इमारतों और मूर्तियों को कुतर दिया गया। अगले दिन उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, कुत्ता गाड़ी के मुँह से अन्दर घुस आया है और तुम्हारे रथ के रथ और आभूषण को कुतर दिया है।" चित्रा पर क्रोधित अभिनय राजा ने कहा, "जो भी कुत्ते की गोली है, उसे मार डालो।" तब हुआ एक बड़ा नरसंहार शुरू हुआ; जब उन अपराधियों ने देखा कि उन्हें देखते ही मार दिया जाता है, तो वे बोधिसत्व के पास श्मशान में चले गये। उन्होंने पूछा, "इतनी बड़ी संख्या में यहां आने का क्या मतलब है?" उन्होंने कहा, "राजा को यह खबर सुनकर बहुत गुस्सा आया है कि राजमहल परिसर में मूर्तियों ने अपने रथों की मूर्तियां और मूर्तियां बनाने का आदेश दिया है, कि उन्होंने सभी मूर्तियों को मारने का आदेश दिया है। बड़े पैमाने पर मूर्तियां बनाई जा रही हैं, और एक बड़ा खतरा पैदा हो गया है।" बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "इतनी कड़ी निगरानी वाली जगह में बाहर से कोई कुत्ता कैसे घुस सकता है? यह काम महल के अंदर मौजूद बेहतरीन नस्ल के कुत्तों ने ही किया होगा। फिलहाल असली दोषियों को कोई सज़ा नहीं मिल रही, जबकि निर्दोषों को मौत की सज़ा दी जा रही है। अगर मैं राजा को दोषियों के बारे में बता दूं और इस तरह अपने मित्रों और परिवार की जान बचा लूं तो क्या होगा?" उन्होंने अपने परिवार को दिलासा देते हुए कहा, "चिंता मत करो; मैं तुम्हें बचा लूंगा। तुम यहीं इंतज़ार करो जब तक मैं राजा से न मिल लूं।"

फिर, प्रेम के विचारों से प्रेरित होकर और दस सिद्धियों का स्मरण करते हुए, वह अकेले ही नगर में प्रवेश कर गए और आदेश दिया, "कोई भी मुझ पर लाठी या पत्थर फेंकने के लिए हाथ न उठाए।" तदनुसार, जब वह प्रकट हुए, तो उन्हें देखकर कोई भी क्रोधित नहीं हुआ।

इसी बीच राजा ने कुत्तों को मारने का आदेश देकर न्याय कक्ष में अपना आसन ग्रहण कर लिया था। तभी बोधिसत्व दौड़ते हुए राजा के सिंहासन के नीचे कूद पड़े। राजा के सेवकों ने उन्हें बाहर निकालने का प्रयास किया, लेकिन महाराज ने उन्हें रोक दिया। थोड़ा सा हौसला पाकर बोधिसत्व सिंहासन के नीचे से बाहर आए और राजा को प्रणाम करते हुए बोले, "क्या आप ही इन कुत्तों को मरवा रहे हैं?" "जी हाँ, मैं ही।" "हे मनुष्यों के राजा, इनका क्या कसूर है?" "ये मेरे रथ के पट्टे और चमड़े को कुतर रहे थे।" "क्या आप उन कुत्तों को जानते हैं जिन्होंने वास्तव में ये शरारत की है?" "नहीं, मैं नहीं जानता।" "लेकिन महाराज, यदि आप असली अपराधियों को निश्चित रूप से नहीं जानते, तो हर कुत्ते को मारने का आदेश देना उचित नहीं है।" "कुत्तों ने मेरे रथ का चमड़ा कुतर दिया था, इसीलिए मैंने उन सभी को मारने का आदेश दिया था।" "क्या आपके लोग बिना किसी अपवाद के सभी कुत्तों को मार डालते हैं; या कुछ कुत्तों को बख्श दिया जाता है?" "कुछ बच गए हैं, मेरे महल के शुद्ध नस्ल के कुत्ते।" "महाराज, अभी आप कह रहे थे कि आपने सभी कुत्तों को, जहाँ कहीं भी मिलें, मारने का आदेश दिया है, क्योंकि कुत्तों ने आपके रथ का चमड़ा कुतर दिया था; जबकि अब आप कहते हैं कि आपके महल के शुद्ध

नस्ल के कुत्ते मौत से बच गए। इसलिए आप पक्षपात, घृणा, अज्ञानता और भय के चार बुरे रास्तों पर चल रहे हैं। ऐसे रास्ते गलत हैं और राजाओं के लिए उचित नहीं हैं। क्योंकि राजाओं को न्याय के मामलों में तराजू के पलड़े की तरह निष्पक्ष होना चाहिए। लेकिन इस मामले में, चूंकि शाही कुत्ते बच गए हैं, जबकि बेचारे कुत्तों को मार दिया गया है, यह सभी कुत्तों के लिए एक समान न्याय नहीं है, बल्कि केवल बेचारे कुत्तों का वध है।" और इसके अलावा, महान सत्ता ने अपनी मधुर आवाज में कहा, "महाराज, आप जो कर रहे हैं वह न्याय नहीं है," और उन्होंने इस श्लोक में राजा को सत्य का उपदेश दिया:

राजमहल में पलने वाले कुत्ते,

वे उत्तम नस्ल के कुत्ते, जो इतने बलवान और सुंदर रूप वाले थे,

ये नहीं, बल्कि केवल हम ही मरने के लिए अभिशप्त हैं।

यहां कोई निष्पक्ष फैसला नहीं सुनाया गया है।

यह सबके लिए एक समान है; यह गरीबों का नरसंहार है।

बोधिसत्व की बातें सुनकर राजा ने कहा, "क्या आप अपनी बुद्धिमत्ता से जानते हैं कि वास्तव में मेरे रथ का चमड़ा किसने कुतरा है?" "जी महाराज।" "कौन थे?" "आपके महल में रहने वाले बेहतरीन नस्ल के कुत्तों ने।" "यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि उन्होंने ही चमड़ा कुतरा है?" "मैं इसे सिद्ध कर दूंगा।" "ऐसा कीजिए, ऋषि।" "तो अपने कुत्तों को बुलवाइए और थोड़ा छाछ और कुश घास मंगवाइए।" राजा ने वैसा ही किया।

तब उस महान प्राणी ने कहा, "इस घास को छाछ में मसलकर कुत्तों को पिला दो।"

राजा ने ऐसा ही किया; परिणामस्वरूप, जैसे ही एक-एक कुत्ता पानी पीता, उसे उल्टी हो जाती थी। और उन सभी ने चमड़े के टुकड़े निकाले! "यह तो स्वयं एक पूर्ण बुद्ध के न्याय के समान है," राजा अत्यंत प्रसन्न होकर चिल्लाया, और उसने बोधिसत्व को राजसी छत्र भेंट करके उन्हें सम्मान दिया। लेकिन बोधिसत्व ने ते-सकुना जातक (*2) में धर्म पर दस श्लोकों में सत्य का उपदेश दिया, जिसकी शुरुआत इन शब्दों से होती है:-

हे राजसी वंश के महान राजा, धार्मिक मार्ग पर चलो।

फिर राजा को पंच आज्ञाओं में स्थापित करने और उन्हें भक्ति के लिए प्रोत्साहित करने के बाद, बोधिसत्व ने राजा को राजत्व का श्वेत छाता वापस सौंप दिया।

महान बोधिसत्व के वचन समाप्त होने पर राजा ने सभी प्राणियों के जीवन को हानि से सुरक्षित रखने का आदेश दिया। उन्होंने आदेश दिया कि बोधिसत्व से लेकर सभी कुत्तों को उनके समान निरंतर भोजन उपलब्ध कराया जाए; और बोधिसत्व की शिक्षाओं का पालन करते हुए उन्होंने अपना जीवन दान-पुण्य और अन्य अच्छे कर्मों में व्यतीत किया, ताकि उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म देवलोक में हो। 'कुत्ते की शिक्षा' दस हजार वर्षों तक कायम रही। बोधिसत्व भी दीर्घायु हुए और फिर अपने कर्मों के फल के अनुसार इसलोक में विलीन हो गए।

जब गुरु ने यह पाठ समाप्त किया और कहा, "हे भिक्षुओं, बुद्ध न केवल अब बल्कि पहले भी अपने अनुयायियों के हित में कार्य करते थे," तो उन्होंने इस संबंध को स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा,

"आनंद उन दिनों का राजा था, बुद्ध के अनुयायी बाकी लोग थे, और मैं खुद कुत्ता था।"

फुटनोट:

(1)सं. 465.

(2)सं. 521.

जातक क्रमांक 23

भोजजनीय-जातक

"यद्यपि अब पतित हो गया है।"
यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसने मार्ग पर चलना छोड़ दिया था। तब गुरु ने उस भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, बीते दिनों में बुद्धिमान और भले लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मार्ग पर चलते रहे, और घायल होने पर भी उन्होंने हार नहीं मानी।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक उत्कृष्ट नस्ल के सिंधी घोड़े के रूप में जन्म लिया और उन्हें राजा का युद्ध घोड़ा बनाया गया। उनका भव्य और शान-शौकत से स्वागत किया गया। उन्हें तीन साल पुराने उत्तम चावल खिलाए जाते थे, जो हमेशा एक लाख सिक्कों के मूल्य के सोने के बर्तन में परोसे जाते थे; और उनके अस्तबल की ज़मीन चारों सुगंधों से महकती रहती थी। उनके अस्तबल के चारों ओर लाल रंग के पर्दे लगे थे, और ऊपर सोने के तारों से जड़ा एक मंडप था। दीवारों पर सुगंधित फूलों की मालाएँ सजी थीं; और वहाँ हमेशा सुगंधित तेल से जलने वाला एक दीपक रहता था।

अब चारों ओर के सभी राजा बनारस राज्य पर अधिकार करने के लिए उत्सुक थे। एक बार सात राजाओं ने बनारस को घेर लिया और राजा को संदेश भेजा, "या तो अपना राज्य हमें सौंप दें या युद्ध करें।" बनारस के राजा ने अपने मंत्रियों को इकट्ठा किया और उनके सामने मामला रखा और उनसे पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा, "महाराज, पहले आप स्वयं युद्ध में न जाएं। पहले फलां-फलां योद्धा को उनसे लड़ने के लिए भेजें; और बाद में, यदि वह असफल हो जाता है, तो हम निर्णय लेंगे कि क्या करना है।"

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक उत्तम नस्ल के सिंधी घोड़ों के रूप में अवतरित हुआ और उन्हें राजा युद्ध का अश्व बना दिया गया। उन्हें अत्यंत वैभव और शान-शौकत के साथ रखा गया। उन्हें तीन साल पुराने उत्तम चावल खिलाए जाते थे, जो हमेशा एक लाख करोड़ की कीमत के सोने के थाले में फेंके जाते थे; और उनकी अस्तबल की ज़मीन चारों ओर सुगंधों से महकती रहती थी। उनके अस्तबल के चारों ओर लाल रंग के कण लगे थे, और ऊपर सोने के स्थान से जड़ा हुआ एक मंडप था। दीवारों पर फूलों की मालाएँ साजी वाली; और वहां हमेशा तेल से भरा एक दीपक जलता रहता था।

अब आसपास के सभी राजस्थान बनारस राज्य पर अधिकार करने के लिए किराए पर रहे थे। एक बार सात सम्राटों ने बार्सिलोना को घेर लिया और राजा को संदेश भेजा, "या तो अपना राज्य हमें दो या युद्ध करो।" बनारस के राजा ने अपने सहयोगियों को एकजुट किया और उनका समसामयिक मामला रखा और उनसे पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा, "महाराज, आपको पहले स्वयं युद्ध में नहीं जाना चाहिए। पहले फलां-फलां योद्धाओं को अपनी लड़ाई के लिए भेजना चाहिए; और बाद में, यदि वह शामिल हो जाता है, तो हम तय करेंगे कि क्या करना है।" तब राजा ने उस योद्धा को बुलवाया और उससे कहा, "हे मेरे वीर योद्धा, क्या तुम सातों राजाओं से लड़ सकते हो?" योद्धा ने कहा, "बस मुझे अपना उत्तम युद्ध अश्व दे दो, तब मैं न केवल सात राजाओं से, बल्कि भारत के सभी राजाओं से लड़ सकूँगा।" "हे मेरे वीर योद्धा, मेरा युद्ध अश्व या जो भी घोड़ा तुम्हें पसंद हो, ले लो और युद्ध करो।" योद्धा ने कहा, "बहुत अच्छा, महाराज।" और धनुष लेकर वह महल के ऊपरी कक्षों से नीचे उतरा। फिर उसने शाही युद्ध अश्व को बाहर निकलवाया और उसे कवच पहनाया, स्वयं भी पूरी तरह से तैयार हुआ और अपनी तलवार को कमर पर बाँध लिया। अपने उत्तम अश्व पर सवार होकर वह नगरद्वार से बाहर निकला और बिजली की तेज़ी से हमला करके पहले शिविर को ध्वस्त कर दिया, एक राजा को जीवित पकड़कर सैनिकों की हिरासत में ले आया। युद्धक्षेत्र में लौटकर उसने दूसरे और तीसरे शिविरों को ध्वस्त कर दिया, और इसी तरह पाँचों राजाओं को जीवित पकड़ लिया। छठे शिविर को ध्वस्त करके छठे राजा को बंदी बनाने के बाद, उनके युद्ध के घोड़े को एक घाव लग गया, जिससे खून बहने लगा और उस वीर घोड़े को असहनीय पीड़ा हुई। घोड़े के घायल होने का पता चलने पर, योद्धा ने उसे राजा के द्वार पर लिटा दिया, उसका कवच ढीला किया और दूसरे घोड़े को कवच पहनाने लगा। जब बोधिसत्व करवट लेकर लेटे थे, तब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और योद्धा की गतिविधियों को समझा। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मेरा सवार दूसरे घोड़े को कवच पहना रहा है। वह दूसरा घोड़ा सातवें शिविर को ध्वस्त करके सातवें राजा को बंदी नहीं बना पाएगा; वह मेरी सारी उपलब्धियों को व्यर्थ कर देगा। यह असाधारण योद्धा मारा जाएगा; और राजा भी शत्रु के हाथों में पड़ जाएगा। केवल मैं ही, कोई दूसरा घोड़ा नहीं, उस सातवें शिविर को ध्वस्त करके सातवें राजा को बंदी बना सकता हूँ।" अतः, जब वह वहाँ लेटा हुआ था, उसने शूरवीर को पुकारा और कहा, "महोदय शूरवीर, मेरे सिवा कोई ऐसा

घोड़ा नहीं है जो सातवें शिविर को ध्वस्त कर सातवें राजा को बंदी बना सके। मैंने जो कुछ किया है, उसे मैं व्यर्थ नहीं जाने दूँगा; बस मुझे फिर से खड़ा कर दीजिए और मुझे मेरा कवच पहना दीजिए।" और ऐसा कहते हुए, उसने यह छंद दोहराया:-

यद्यपि अब मैं गिर चुका हूँ और बाणों से भेदा हुआ हूँ, फिर भी पड़ा हूँ।

फिर भी कोई भी इस युद्ध-घोड़े की बराबरी नहीं कर सकता।

इसलिए हे सारथी, मेरे सिवा किसी और को जुताई न करो।

उस योद्धा ने बोधिसत्व को खड़ा किया, उनके घाव पर पट्टी बांधी और उन्हें फिर से हथियारबंद कर दिया। युद्ध के घोड़े पर सवार होकर, उन्होंने सातवें शिविर को ध्वस्त कर दिया और सातवें राजा को जीवित वापस ले आए, जिन्हें उन्होंने सैनिकों की हिरासत में सौंप दिया। सैनिक बोधिसत्व को भी राजा के द्वार तक ले गए, और राजा उन्हें देखने के लिए बाहर आए। तब उस महान सत्ता ने राजा से कहा, "महाराज, इन सात राजाओं को मत मारो; उन्हें शपथ दिलाकर जाने दो। योद्धा को हम दोनों के प्रति पूरा सम्मान प्राप्त करने दो, क्योंकि यह उचित नहीं है कि जिस योद्धा ने आपको सात बंदी राजाओं को प्रस्तुत किया है, उसे अपमानित किया जाए। और आप स्वयं, दानशीलता का अभ्यास करें, आज्ञाओं का पालन करें और अपने राज्य पर धर्म और न्याय से शासन करें।" जब बोधिसत्व ने इस प्रकार राजा को प्रोत्साहित किया, तो उन्होंने उनका कवच उतार दिया; परन्तु जब वे उसे धीरे-धीरे उतार रहे थे, तभी उनका देहांत हो गया।

राजा ने शव का पूर्ण आदर करते हुए अंतिम संस्कार किया, उस योद्धा को महान सम्मान दिया और सातों राजाओं से यह शपथ लेकर उन्हें उनके घर भेज दिया कि वे अब कभी भी राजा के विरुद्ध युद्ध नहीं करेंगे। राजा ने अपने राज्य पर न्याय और धर्म के साथ शासन किया और अपने कर्मों के फल के अनुसार परलोक विदा हुआ।

तब गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, बीते समय में बुद्धिमान और भले लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मार्ग पर दृढ़ रहे, और गंभीर रूप से घायल होने पर भी उन्होंने हार नहीं मानी। परन्तु तुम, जिसने अपने आप को इतने असाधारण उपदेश के लिए समर्पित किया है, तुम मार्ग पर दृढ़ रहना क्यों छोड़ देते हो?" इसके बाद उन्होंने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में उस निर्भीक भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "आनंद उस समय के राजा थे, सारिपुत्र योद्धा थे, और मैं स्वयं शुद्ध नस्ल का सिंधी घोड़ा हूँ।"

जातक क्रमांक 24

अजान्न-जातक

"चाहे कभी भी हो या कहीं भी हो।"
यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक अन्य भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसने मार्ग पर चलना छोड़ दिया था। लेकिन, इस बार उन्होंने उस भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, बीते दिनों में बुद्धिमान और भले लोग घायल होने पर भी मार्ग पर चलते रहे।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब शहर को सात राजाओं ने घेर रखा था, ठीक वैसे ही जैसे पहले बताई गई कहानी में है।

तो एक योद्धा, जो रथ पर सवार होकर लड़ता था, ने दो सिंध घोड़ों (भाई) को जोता और शहर से तेजी से निकलते हुए छह शिविरों को ध्वस्त कर दिया और छह राजाओं को बंदी बना लिया। ठीक इसी समय बड़ा घोड़ा घायल हो गया। सारथी राजा के द्वार तक रथ चलाता रहा, जहाँ उसने बड़े घोड़े को रथ से उतारा और जब घोड़ा एक तरफ लेटा हुआ था, तब उसके कवच को खोलकर दूसरे घोड़े को कवच पहनाने लगा। योद्धा के इरादे को समझते हुए, बोधिसत्व के मन में वही विचार आए जो पहले बताई गई कहानी में थे, और सारथी को बुलवाकर, लेटे हुए ही, उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

चाहे कभी हो या कहीं भी, सुख-दुख की स्थिति में हो या कष्ट में,

एक श्रेष्ठ नस्ल का योद्धा लड़ता रहता है; दूसरा हार मान लेता है।

सारथी ने बोधिसत्व को खड़ा किया और उन्हें लगाम पहनाई। फिर उसने सातवें शिविर को ध्वस्त कर दिया और सातवें राजा को बंदी बना लिया। वह उसे राजा के द्वार तक ले गया और वहाँ से उसने अपना उत्तम घोड़ा निकाला। जब बोधिसत्व एक तरफ लेटे हुए थे, तब उन्होंने राजा को वही उपदेश दिए जो पिछली कथा में दिए गए थे, और फिर उनका प्राण त्याग दिए। राजा ने पूर्ण आदर के साथ उनके शरीर का अंतिम संस्कार किया, सारथी का भरपूर सम्मान किया, और अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करने के बाद अपने कर्मों के फल के अनुसार परलोक विदा हो गए।

उनका पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया (जिसके समापन पर उस भिक्षु ने अर्हतत्व/ज्ञानोदय प्राप्त किया); और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "वरिष्ठ भिक्षु आनंद राजा थे, और पूर्ण बुद्ध उन दिनों के अश्व थे।"

जातक क्रमांक 25

तीर्थ-जातक

"अपनी जगह बदल लो।"
--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक पूर्व सुनार के बारे में, जो भिक्षु बन गया था और धर्म के सरदार (सारिपुत्र) के साथ सह-निवासी था

अब, केवल बुद्ध ही हृदयों का ज्ञान रखते हैं और मनुष्यों के विचारों को पढ़ सकते हैं; और इसलिए इस शक्ति के अभाव में, धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) अपने सहवासी के हृदय और विचारों के बारे में इतना कम जानते थे कि उन्होंने अशुद्धता को ध्यान का विषय बताया। यह उस भाई के लिए लाभकारी नहीं था। इसका कारण यह था कि परंपरा के अनुसार, वे पाँच सौ जन्मों तक लगातार सुनार के रूप में ही जन्म लेते रहे थे; और परिणामस्वरूप, इतने लंबे समय तक शुद्ध सोने को देखने के संचयी प्रभाव ने अशुद्धता के विषय को उनके लिए निरर्थक बना दिया था। उन्होंने चार महीने बिताए, लेकिन उन्हें इस विचार का पहला संकेत भी नहीं मिला। अपने सहवासी को अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्रदान करने में असमर्थ पाकर, धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने मन ही मन सोचा, "यह निश्चित रूप से वह व्यक्ति है जिसे केवल बुद्ध ही परिवर्तित कर सकते हैं; मैं इसे बुद्ध के पास ले जाऊँगा।" अतः वे भोर होते ही भाई के साथ गुरु के पास आ गए।

“सारिपुत्र, क्या बात है जो तुम्हें इस भाई के साथ यहाँ लाई है?” गुरु ने कहा। “गुरुजी, मैंने उसे ध्यान के लिए एक विषय दिया था, और चार महीने बाद भी उसे उस विचार का पहला संकेत भी नहीं मिला; इसलिए मैं उसे आपके पास लाया, यह सोचकर कि यह वह व्यक्ति है जिसे केवल बुद्ध ही परिवर्तित कर सकते हैं।” “सारिपुत्र, आपने उसे कौन सा ध्यान बताया?” “अशुद्धता का ध्यान, भगवान बुद्ध।” “सारिपुत्र, लोगों के हृदयों का ज्ञान होना और उनके विचारों को पढ़ना तुम्हारे बस की बात नहीं है। अब तुम अकेले जाओ, और शाम को अपने सहवासी को लेने वापस आना।”

अब, केवल बुद्ध ही हृदयों का ज्ञान रखते हैं और मनुष्यों के विचारों को पढ़ सकते हैं; और इसली इस शक्ति के आभास में, धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) अपने सहवासी के हृदय और विचारों के इतने कम ज्ञान से पहले कि उन्होनें शुद्धता को ध्यान का विषय निर्धारित किया। हाँ हमें भाई के झूठ का लाभ नहीं था। इसका कारण यह था कि परंपरा के अनुसार, वे पांच सौ जन्मों तक लगातर सुनार के रूप में ही जन्म लेते रहे थे; और परिनामस्वरूप, इतने लम्बे समय तक पूर्णत: शुद्ध सोना देखने के संचयी प्रभाव ने शुद्धता के विषय को उनाके झूठ निरर्थक बना दिया था। उन्हें चार महीने बीते, लेकिन उन्हें इस विचार का पहला संकेत भी नहीं मिला। अपने सहवासियों को अरहतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्रदान करने में असमार्थ पाकर, धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने मन ही मन सोचा, "यह निश्चित रूप से वह व्यक्ति है जिसे केवल बौद्ध ही परिवर्तित कर सकते हैं; मैं इसे बौद्ध के पास ले जाऊंगा।" अत: वे भोर होते ही भाई के साथ गुरु के पास आ गए। “सारीपुत्र, क्या बात है जो तुमने इस भाई के साथ यहाँ लाई है?” गुरु ने कहा. "गुरुजी, मैंने ध्यान के लिए झूठ एक विषय दिया था, और चार महीने बाद भी हमें विचार का पहला संकेत भी नहीं मिला; इसलिए मैंने तुम्हारे पास लाया, यह सोचकर कि यह वह व्यक्ति है जिसे केवल बुद्ध ही परिवर्तन कर सकते हैं।" “सारीपुत्र, आपने उसे कौन सा ध्यान बताया?” "अशुद्धता का ध्यान, भगवान बुद्ध।" "सारिपुत्र, लोगों के दिलों का ज्ञान होना और उनके विचारों को पढ़ना तुम्हारे बस की बात नहीं है। अब तुम अकेले जाओ, और शाम को अपने साथी को लेने वापस आना।" इस प्रकार वरिष्ठ भिक्षु को विदा करने के बाद, गुरु ने उस भाई को उत्तम अंतर्वस्त्र और चोगा पहनाया, भिक्षा मांगने जाते समय उसे अपने साथ रखा और यह सुनिश्चित किया कि उसे उत्तम भोजन मिले। भिक्षुओं से घिरे हुए, गुरु एक बार

फिर मठ लौट आए और दिन के समय अपने सुगंधित कक्ष में विश्राम करते थे। शाम को, जब वे उस भाई के साथ मठ में टहल रहे थे, तो उन्होंने एक तालाब प्रकट किया और उसमें कमलों का एक बड़ा समूह प्रकट किया, जिसमें से एक बड़ा कमल खिला। उन्होंने कहा, "भाई, यहाँ बैठो और इस फूल को निहारो।" और भाई को वहीं बैठा छोड़कर वे अपने सुगंधित कक्ष में चले गए।

उस भिक्षु ने उस फूल को निहारते हुए देखा। भगवान बुद्ध ने उसे क्षयकारी बना दिया। जैसे-जैसे वह उसे देखता रहा, फूल क्षय की प्रक्रिया से मुरझाता गया; पंखुड़ियाँ किनारे से गिरनी शुरू हुईं और थोड़ी देर में सारी झड़ गईं; फिर बीच का पुंकेसर (उभरा हुआ भाग) गिर गया और केवल उसकी बाहरी परत ही बची रही। देखते हुए उस भिक्षु ने मन ही मन सोचा, "अभी भी यह कमल कितना सुंदर और आकर्षक था; फिर भी इसका रंग उड़ गया और केवल बाहरी परत ही बची है। इस सुंदर कमल का क्षय हो गया; मेरे शरीर का क्या न हो? सभी सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं!" और इसी विचार से उन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई।

यह जानकर कि भाई का मन अंतर्दृष्टि से भर गया है, गुरु ने अपने सुगंधित कक्ष में बैठे हुए ही वहाँ अपनी एक उज्ज्वल छवि/दर्शन भेजा और यह श्लोक कहा:-

स्वयं से प्रेम करना सीखें, ठीक वैसे ही जैसे आप किसी चीज़ को चुनते समय अपना हाथ चुनते हैं।

शरद ऋतु का जल लिली। अपना दिल लगा लो।

केवल इसी मार्ग पर चलकर, शांति का परिपूर्ण मार्ग प्राप्त किया जा सकता है।

और पुनर्जन्मों से मुक्ति/निर्वाण प्राप्त करने का वह मार्ग,

ध्यान और धर्म के द्वारा, जिसकी शिक्षा बुद्ध ने दी है।

इस श्लोक के अंत में, उस भाई ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। यह सोचकर कि उनका पुनर्जन्म कभी नहीं होगा, और भविष्य में उन्हें किसी भी रूप में अस्तित्व की चिंता नहीं करनी पड़ेगी, वे भावपूर्ण शब्दों में बोले, जिनकी शुरुआत इन श्लोकों से होती है: जिसने अपना जीवन जी लिया है, जिसके विचार परिपक्व हैं;

जो सभी अशुद्धियों से शुद्ध और मुक्त हो गया हो,

वह अपना अंतिम शरीर धारण करता है; जिसका जीवन पवित्र है।

जिसकी वश में इंद्रियां उसे सर्वोपरि स्वामी मानती हैं;

वह, चंद्रमा की तरह, अंततः अपना रास्ता बना लेता है।

राहु (बुराई) के जबड़ों (*1) से सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त कर ली है।

वह अपवित्रता जिसने मुझे घेर लिया था, जिसके कारण

मैंने भ्रम के घोर अंधकार को दूर किया;

जैसे हजारों किरणों से छलित होकर, चमकता हुआ सूरज

प्रकाश की बाढ़ से आकाश को रोशन करता है।

इसके बाद और आनंद की नई अभिव्यक्ति के साथ, वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। वरिष्ठ भिक्षु भी आए और गुरु को विधिवत प्रणाम करने के बाद अपने सह-निवासी के साथ चले गए।

जब यह सब खबर भिक्षुओं में फैली, तो वे सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और वहाँ बैठकर ज्ञान के स्वामी के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहने लगे, "महोदय, मनुष्यों के हृदय और विचारों को न जानने के कारण, वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र अपने सहवासी की स्थिति से अनभिज्ञ

थे। परन्तु गुरु को सब ज्ञात था, और उन्होंने एक ही दिन में उन्हें अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) और पूर्ण विद्वत्ता प्रदान कर दी। हे बुद्ध की अद्‌भुत शक्तियाँ कितनी महान हैं!"

अंदर आकर और अपने लिए तैयार की गई सीट पर बैठते हुए, गुरु ने पूछा, "भाइयों, इस सभा में आप लोग किस विषय पर प्रवचन दे रहे हैं?"

"हे भगवान बुद्ध, इसके अलावा और कुछ नहीं कि केवल आपको ही हृदय का ज्ञान था और आप धर्म के सेनापति (सारिपुत्र) के सह-निवासी के विचारों को पढ़ सकते थे।"

"यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, भाइयों; कि मैं, बुद्ध होने के नाते, अब उस भाई की स्थिति को जानता हूँ। अतीत में भी मैं इसे उतनी ही अच्छी तरह जानता था।" और ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था। उन दिनों बोधिसत्व राजा के सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के मार्गदर्शक हुआ करते थे।

उस समय कुछ लोग राजा के राजसी घोड़े के स्नानागार में एक और बेचारे घोड़े को नहला रहे थे। जब उसका सेवक राजसी घोड़े को उसी पानी में ले जाने लगा, तो घोड़ा इतना नाराज़ हो गया कि वह अंदर जाने को तैयार नहीं था। इसलिए सेवक राजा के पास गया और बोला, "महाराज, आपका राजसी घोड़ा स्नान नहीं कर रहा है।"

तब राजा ने बोधिसत्व को यह कहते हुए भेजा, "हे ऋषि, आप जाइए और पता लगाइए कि जब जानवर को पानी में ले जाया जा रहा है तो वह पानी में क्यों नहीं जा रहा है।" "महाराज," बोधिसत्व ने कहा और जलमार्ग की ओर चल दिए। वहाँ उन्होंने घोड़े की जाँच की; और यह देखकर कि वह किसी भी प्रकार से बीमार नहीं था, उन्होंने कारण जानने का प्रयास किया। अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उस स्थान पर किसी अन्य घोड़े को धोया गया होगा, और उस बलवान घोड़े को इस बात से इतनी ठेस पहुँची होगी कि वह पानी में नहीं जा रहा है। इसलिए उन्होंने घोड़ों की देखभाल करने वालों से पूछा कि उन्होंने पहले किस जानवर को पानी में धोया था। "एक और घोड़ा, महाराज, एक साधारण जानवर।" "अरे, उसके अहंकार को इतनी गहरी ठेस पहुँची है कि वह पानी में नहीं जा रहा है," बोधिसत्व ने मन ही मन कहा; "उसे कहीं और धोना चाहिए।" तो उसने घोड़े के रखवाले से कहा, "मेरे मित्र, चाहे कितना भी अच्छा व्यवहार मिले, अगर उसे हमेशा वही मिलता रहे तो वह थक जाएगा। और इस घोड़े के साथ भी यही हाल है। इसे यहाँ कई बार धोया जा चुका है। इसे किसी और जगह ले जाओ, और वहाँ इसे नहलाओ और पानी पिलाओ।" और ऐसा कहते हुए उसने यह पंक्ति दोहराई:-

अपनी जगह बदल लो, और घोड़े को पानी पीने दो।

कभी यहाँ, कभी वहाँ, दृश्य लगातार बदलता रहता है।

अंततः दूध-चावल भी मनुष्य को ऊबने पर मजबूर कर देता है।

उनकी बातें सुनकर वे घोड़े को दूसरी जगह ले गए और वहाँ उसे पानी पिलाकर नहलाया। पानी पिलाने के बाद जब वे उसे धो रहे थे, तभी बोधिसत्व राजा के पास लौट आए। राजा ने कहा, "क्या मेरे घोड़े ने पानी पी लिया है और नहा लिया है, मेरे मित्र?" "जी हाँ, महाराज।" "पहले उसने ऐसा क्यों नहीं किया?" बोधिसत्व ने कहा, "इसका कारण यह है," और राजा को पूरी कहानी सुनाई। राजा ने कहा, "यह कितना चतुर है! यह तो इस जैसे जानवर के मन को भी पढ़ सकता है।" उन्होंने बोधिसत्व का बहुत सम्मान किया और जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक चले गए। बोधिसत्व भी अपने कर्मों के फल के लिए परलोक चले गए।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त कर लिया और उस भिक्षु की अतीत और वर्तमान स्थिति के बारे में अपने ज्ञान को दोहराया, तो उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह भिक्षु उन दिनों का राजकीय अश्व था; आनंद राजा थे और मैं स्वयं बुद्धिमान मंत्री था।"

फुटनोट्स:

(1) राहु एक प्रकार का टाइटन था जिसके बारे में माना जाता था कि वह सूर्य और चंद्रमा को अस्थायी रूप से निगलकर ग्रहण का कारण बनता था

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महिलामुख-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-26-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 26
महिलामुख जातक

"पहले सुनकर।"

यह कथा गुरु ने बाँस के वन में सुनाई थी। यह कथा देवदत्त के बारे में है, जिन्होंने राजकुमार अजात-सत्तु का समर्थन प्राप्त करके लाभ और सम्मान दोनों अर्जित किए थे। राजकुमार अजात-सत्तु ने गया-सिसा में देवदत्त के लिए एक मठ बनवाया और प्रतिदिन उन्हें पाँच सौ कलश सुगंधित तीन वर्ष पुराने चावल लाते थे, जिनमें उत्तम मसाले डाले जाते थे। इस लाभ और सम्मान के कारण देवदत्त के बहुत सारे अनुयायी हो गए, जिनके साथ देवदत्त अपने मठ से बाहर निकले बिना ही जीवन व्यतीत करते रहे।

उस समय राजगृह नगर में दो मित्र रहते थे, जिनमें से एक ने गुरु के अधीन दीक्षा ली थी, जबकि दूसरे ने देवदत्त के अधीन। वे दोनों अक्सर एक-दूसरे से मिलते रहते थे, कभी-कभी तो कभी मठों में जाकर। एक दिन देवदत्त के शिष्य ने दूसरे से कहा, "महोदय, आप प्रतिदिन पसीना बहाते हुए भिक्षा क्यों मांगते हैं? देवदत्त गया-सिसा में शांति से बैठे रहते हैं और उत्तम भोजन का आनंद लेते हैं, जो सर्वोत्तम मसालों से भरपूर होता है। उनके जैसा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आप अपने लिए कष्ट क्यों बढ़ाते हैं? आपके लिए यह अच्छा क्यों नहीं होगा कि आप सुबह सबसे पहले गया-सिसा स्थित मठ में आएं और वहां हमारे चावल के दलिया को बड़े चाव से पिएं, हमारे अठारह प्रकार के ठोस व्यंजन खाएं और हमारे उत्तम नरम भोजन का आनंद लें, जो सर्वोत्तम मसालों से भरपूर होता है?"

बार-बार निमंत्रण स्वीकार करने के लिए दबाव डाले जाने पर, वह जाने के लिए उत्सुक हो गया और तब से गया-सिसा जाकर खूब खाता-पीता था, लेकिन उचित समय पर बांस के जंगल में लौटना नहीं भूलता था। इसके बावजूद वह इसे हमेशा गुप्त नहीं रख सका; और कुछ ही समय में यह बात सामने आ गई कि वह गया-सिसा जाकर देवदत्त के लिए उपलब्ध कराए गए भोजन से अपना पेट भरता था। इस पर उसके मित्रों ने उससे पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि तुम देवदत्त के लिए उपलब्ध कराए गए भोजन से अपना पेट भरते हो?" "यह किसने कहा?" उसने कहा। "फलां व्यक्ति ने कहा।" "यह सच है, महोदय, कि मैं गया-सिसा जाता हूँ और वहाँ भोजन करता हूँ। लेकिन मुझे भोजन देवदत्त नहीं देते; दूसरे लोग देते हैं।" "हे प्रभु, देवदत्त बुद्धों का शत्रु है; उसने अपने दुष्ट कर्मों से अजात-सत्तु का अनुयायी बना लिया है और अधर्म से लाभ और सम्मान प्राप्त किया है। फिर भी, आप जिन्होंने निर्वाण (मोक्ष) की ओर ले जाने वाले इस धर्म के अनुसार व्रत लिए हैं, वह भोजन ग्रहण करें जो देवदत्त अधर्म से प्राप्त करता है। आइए, हम आपको गुरु के समक्ष ले चलते हैं।" और वे भिक्षु को साथ लेकर सत्य के हॉल में चले गए।

जब गुरुजी को उनकी उपस्थिति का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, क्या आप इस भाई को उसकी इच्छा के विरुद्ध यहाँ लाए हैं?" "जी जी; यह भाई, आपके अधीन व्रत लेने के बाद, देवदत्त द्वारा अधर्म से प्राप्त भोजन खाता है।" "क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि आप देवदत्त द्वारा अधर्म से प्राप्त भोजन खाते हैं?" "यह देवदत्त ने मुझे नहीं दिया, बल्कि दूसरों ने दिया।" "भाईजी, यहाँ कोई विवाद मत कीजिए," गुरुजी ने कहा। "देवदत्त बुरे आचरण और बुरे सिद्धांतों वाला व्यक्ति है। आप, जिन्होंने यहाँ व्रत लिया है, मेरे उपदेशों का पालन करते हुए देवदत्त का भोजन कैसे खा सकते हैं? आप हमेशा बहकने के आदी रहे हैं, और बदले में हर उस व्यक्ति का अनुसरण करते हैं जिससे आप मिलते हैं।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके मंत्री बने। उन दिनों राजा के पास एक राजसी हाथी था, जिसका नाम 'लेडी-फेस' था, जो गुणी और नेक था और कभी किसी को चोट नहीं पहुँचाता था।

एक दिन रात में कुछ चोर हाथी के अस्तबल के पास आए और बैठकर अपनी योजना पर चर्चा करने लगे। उन्होंने कहा, "घर में सुरंग खोदकर घुसने का यही तरीका है; दीवारों को तोड़कर अंदर जाने का यही तरीका है; लूट का माल ले जाने से पहले, सुरंग या दीवार में

बना छेद सड़क या नदी पार करने के रास्ते की तरह साफ और खुला होना चाहिए। सामान चुराते समय हत्या करने से पीछे मत हटना; क्योंकि इससे कोई भी विरोध नहीं कर पाएगा। चोर को सारी अच्छाई और सद्गुण त्याग देना चाहिए और बिल्कुल निर्दयी, क्रूर और हिंसक बन जाना चाहिए।" इन सलाहों से आपस में सीख लेने के बाद चोर चले गए। अगले दिन भी वे आए, और कई दिनों तक आते रहे, और यही बातें करते रहे, यहाँ तक कि हाथी को यह समझ आ गया कि वे उसे सिखाने के लिए ही आए हैं, और उसे निर्दयी, क्रूर और हिंसक बनना होगा। और सचमुच वह वैसा ही बन गया। सुबह-सुबह जैसे ही उसका महावत दिखाई दिया, हाथी ने उस आदमी को अपनी सूंड में उठाया और ज़मीन पर पटक कर मार डाला। और उसने दूसरे, तीसरे और बारी-बारी से अपने पास आने वाले हर व्यक्ति के साथ इसी तरह व्यवहार किया।

राजा को यह खबर मिली कि स्त्री-मुख वाला व्यक्ति पागल हो गया है और जिसे भी देखता है उसे मार डालता है। इसलिए राजा ने बोधिसत्व को यह कहते हुए भेजा, "हे ऋषि, जाइए और पता लगाइए कि उसे किसने विकृत किया है।"

बोधिसत्व चले गए और शीघ्र ही इस बात से संतुष्ट हो गए कि हाथी में शारीरिक रोग के कोई लक्षण नहीं हैं। जब उन्होंने इस परिवर्तन के संभावित कारणों पर विचार किया, तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हाथी ने अपने आस-पास लोगों की बातें सुनी होंगी और उन्हें लगा होगा कि वे उसे उपदेश दे रहे हैं, और इसी कारण से वह विकृत हो गया है। तदनुसार, उन्होंने हाथी के रखवालों से पूछा कि क्या हाल ही में रात में उसके अस्तबल के पास कोई लोग बातें कर रहे थे। उत्तर मिला, "जी महाराज; कुछ चोर आए और बातें कर रहे थे।" तब बोधिसत्व राजा के पास गए और कहा, "महाराज, हाथी में शारीरिक रूप से कोई समस्या नहीं है; वह कुछ चोरों की बातें सुनकर विकृत हो गया है।" "अच्छा, अब क्या किया जाए?" "अच्छे पुरुषों, ऋषियों और ब्राह्मणों को आदेश दें कि वे उसके अस्तबल में बैठें और अच्छाई की बातें करें।" राजा ने कहा, "ऐसा ही करें, मेरे मित्र।" तब बोधिसत्व ने गौशाला में अच्छे पुरुषों, ऋषियों और ब्राह्मणों को बैठाया और उनसे सद्गुणों के विषय में बात करने को कहा। वे हाथी के पास बैठकर इस प्रकार बोले, "न तो दुर्व्यवहार करो और न ही मारो। अच्छे लोगों को धैर्यवान, प्रेममय और दयालु होना चाहिए।" यह सुनकर हाथी ने सोचा कि वे उसे यह शिक्षा दे रहे हैं और उसने तब से अच्छा बनने का संकल्प लिया। और वह अच्छा बन गया।

"तो मेरे मित्र," राजा ने बोधिसत्व से कहा; "क्या अब वह ठीक है?" "जी महाराज," बोधिसत्व ने कहा; "बुद्धिमान और भले लोगों की कृपा से, जो हाथी इतना बिगड़ गया था, वह फिर से अपने पुराने रूप में आ गया है।" और ऐसा कहते हुए, उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

चोरों की दुष्टतापूर्ण बातें सुनकर

एक महिला अपने चेहरे के साथ लोगों को घायल करने और मारने के लिए घूमती रही;

बाद में, सुनने के माध्यम से, बुद्धिमान पुरुषों के उच्च वचन प्राप्त होते हैं।

वह नेक हाथी एक बार फिर अच्छा बन गया।

राजा ने कहा, "वह तो जानवर के मन की भी जानकारी प्राप्त कर सकता है!" और उसने बोधिसत्व को बहुत सम्मान दिया। अच्छी आयु जीने के बाद, वह बोधिसत्व के साथ अपने कर्मों के फल के लिए परलोक सिधार गया।

गुरु ने कहा, "पहले भी, हे भिक्षु, तुम जिससे भी मिलते थे, उसका अनुसरण करते थे; चोरों की बातें सुनकर भी उनकी बातों पर चलते थे; और बुद्धिमान और भले लोगों की बातें सुनकर भी उनकी बातों पर चलते थे।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "देशद्रोही भिक्षु उन दिनों की स्त्री-प्रधान महिला, राजा आनंद थे, और मैं स्वयं मंत्री था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अभिन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-27-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 27
अभिन्ह-जातक

वह एक निवाला भी नहीं खा सकता।

यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक गृहस्थ शिष्य और एक वृद्ध भिक्षु की कहानी है।

परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती शहर में दो मित्र थे, जिनमें से एक ने भिक्षु संघ में प्रवेश किया, लेकिन प्रतिदिन दूसरे के घर जाया करता था। वहां उसका मित्र उसे भोजन दान देता और स्वयं भोजन बनाता, फिर उसे वापस मठ ले जाता, जहां वह सूर्यास्त तक दिनभर बातें करता रहता और फिर शहर लौट जाता। उसका मित्र, भिक्षु, उसे वापस घर तक शहर के द्वार तक छोड़ने जाता और फिर लौट आता।

इन दोनों की घनिष्ठता भिक्षुओं के बीच तब फैल गई, जब एक दिन वे सत्य के हॉल में बैठे हुए इन दोनों के बीच मौजूद घनिष्ठता के बारे में बात कर रहे थे, तभी गुरुजी हॉल में प्रवेश करते हुए आए और उन्होंने पूछा कि वे किस विषय पर बात कर रहे हैं; और भिक्षुओं ने उन्हें सब कुछ बता दिया।

“भाइयों, ये दोनों न केवल अभी एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र हैं,” गुरु ने कहा; “वे अतीत में भी घनिष्ठ मित्र थे।” और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व उनके मंत्री बने। उन दिनों एक कुत्ता था जो राजसी हाथी के अस्तबल में जाकर गिरे हुए चावल के टुकड़ों को खा जाता था। भोजन की लालसा में वह उस जगह के आसपास मंडराता रहता था और हाथी से उसका गहरा लगाव हो गया। अंत में वह हाथी के बिना खाना नहीं खाता था। दोनों एक-दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते थे। कुत्ता हाथी की सूंड पर आगे-पीछे झूलकर खूब आनंद लेता था। एक दिन एक ग्रामीण ने महावत से उस कुत्ते को खरीद लिया और उसे अपने घर ले गया। तब से हाथी कुत्ते को याद करते हुए न तो खाने लगा, न पीने लगा और न ही नहाने लगा। इस बात की सूचना राजा को मिली। महाराज ने बोधिसत्व को यह पता लगाने के लिए भेजा कि हाथी ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है। हाथी-घर की ओर बढ़ते हुए, बोधिसत्व ने हाथी की उदासी देखकर मन ही मन कहा, "इसे कोई शारीरिक बीमारी नहीं है; इसने किसी मित्र से गहरी मित्रता कर ली होगी और अपने मित्र के बिछड़ने से दुखी है।" इसलिए उन्होंने हाथी से पूछा कि क्या उसने किसी से मित्रता की है।

"जी महाराज," उत्तर मिला; "उसका और एक कुत्ते का बहुत गहरा मित्रता है।" "वह कुत्ता अब कहाँ है?" "एक आदमी उसे ले गया।" "क्या आपको पता है कि वह आदमी कहाँ रहता है?" "नहीं, महाराज।" बोधिसत्व राजा के पास गए और बोले, "महाराज, हाथी को कोई समस्या नहीं है; लेकिन उसका एक कुत्ते से बहुत गहरा मित्रता थी, और मुझे लगता है कि अपने मित्र की कमी के कारण ही उसने खाना छोड़ दिया है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

वह एक निवाला भी नहीं खा सकता, न चावल और न घास;

और अब उसे नहाने में कोई आनंद नहीं आता।

मुझे लगता है, कुत्ता इतना परिचित हो गया था,

वह हाथी और कुत्ता घनिष्ठ मित्र थे।

“अच्छा,” यह सुनकर राजा ने कहा, “अब क्या किया जाए, हे विद्वान?” “महाराज, ढोल बजाकर यह घोषणा की जाए कि एक व्यक्ति ने राजसी हाथी के प्रिय कुत्ते को चुरा लिया है, और जिस व्यक्ति के घर में वह कुत्ता मिलेगा, उसे इतना जुर्माना देना होगा।” राजा ने इस सलाह पर अमल किया; और जब उस व्यक्ति को इसकी सूचना मिली, तो उसने तुरंत कुत्ते को छोड़ दिया। कुत्ता तुरंत भाग निकला और हाथी के पास पहुँच गया। हाथी ने कुत्ते को अपनी सूंड में उठाया और अपने सिर पर रख लिया, और रोने-धोने लगा। फिर उसने कुत्ते को ज़मीन पर रख दिया और देखा कि कुत्ता पहले खा रहा है और फिर अपना खाना खा रहा है।

"वह जानवरों के मन को भी जानता है," राजा ने कहा, और उसने बोधिसत्व को सम्मानों से नवाजा।

इस प्रकार गुरु ने अपने पाठ का समापन यह दर्शाते हुए किया कि वे दोनों अतीत में भी और उस समय भी घनिष्ठ संबंध रखते थे। इसके बाद उन्होंने चार सत्यों का प्रतिपादन किया। (चार सत्यों का यह प्रतिपादन अन्य सभी जातक कथाओं का भाग है; परन्तु हम इसका

उल्लेख केवल वहीं करेंगे जहाँ स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि यह फलदायी सिद्ध हुआ।) फिर उन्होंने संबंध की व्याख्या करते हुए जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "गृहस्थ शिष्य उन दिनों का कुत्ता था, वृद्ध भिक्षु हाथी था, और मैं स्वयं ज्ञानी सेवक था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> नंदीविसाल - जातक
स्रोत : *रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-28-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 28
नंदीविसला-जातक

"केवल दयालुता के शब्द बोलें।"

यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें छह भिक्षुओं द्वारा बोले गए कठोर शब्दों का वर्णन है। उन दिनों, जब वे छह भिक्षु आदरणीय भिक्षुओं से असहमत होते थे, तो उनका उपहास करते, गाली देते और दस प्रकार की गालियाँ देते थे। भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई, जिन्होंने उन छह भिक्षुओं को बुलवाया और पूछा कि क्या यह आरोप सत्य है। जब उन्होंने इसे सत्य स्वीकार किया, तो उन्होंने उन्हें फटकारते हुए कहा, "भाइयों, कठोर शब्द तो पशुओं को भी कष्ट पहुँचाते हैं: बीते दिनों में एक पशु ने कठोर भाषा का प्रयोग करने वाले मनुष्य को हज़ार टुकड़ों में तोड़ दिया था।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह भूतकाल की घटना सुनाई।

बहुत समय पहले गांधार देश (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के तक्षशिला में एक राजा राज करता था, और बोधिसत्व ने बैल के रूप में जन्म लिया। जब वह बहुत छोटा बछड़ा था, तो उसके मालिकों ने उसे एक ब्राह्मण को भेंट कर दिया, जो वहाँ आया था - क्योंकि वे ऐसे पवित्र पुरुषों को बैल भेंट करने के लिए जाने जाते थे। ब्राह्मण ने उसका नाम नंदी-विशाल (महान आनंद) रखा और उसे अपने बच्चे की तरह पाला, उसे चावल की दलिया और चावल खिलाए। जब बोधिसत्व बड़े हुए, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "इस ब्राह्मण ने मुझे बड़ी मेहनत से पाला है, और सारा भारत भी ऐसा बैल नहीं दिखा सकता जो मेरी तरह खींच सके। अगर मैं अपनी शक्ति का प्रमाण देकर ब्राह्मण को अपने पालन-पोषण का बदला चुका सकूँ तो कैसा रहेगा?" इसलिए, एक दिन उसने ब्राह्मण से कहा, "जाओ, ब्राह्मण, किसी ऐसे व्यापारी के पास जाओ जो पशुओं से भरा हो, और उससे एक हजार सिक्कों की शर्त लगाओ कि तुम्हारा बैल सौ भरी हुई गाड़ियाँ खींच सकता है।"

ब्राह्मण एक व्यापारी के पास गया और उससे इस बात पर बहस करने लगा कि कस्बे में किसके बैल सबसे ताकतवर हैं। व्यापारी ने कहा, "अरे, फलां के, या फलां के।" उसने आगे कहा, "लेकिन कस्बे में कोई भी बैल मेरे बैलों की ताकत का मुकाबला नहीं कर सकता।" ब्राह्मण ने कहा, "मेरे पास एक बैल है जो सौ भरी हुई गाड़ियाँ खींच सकता है।" व्यापारी हँसते हुए बोला, "ऐसा बैल कहाँ मिलेगा?" ब्राह्मण ने कहा, "मेरे घर पर है। शर्त लगाओ।" ब्राह्मण ने कहा, "ज़रूर," और एक हज़ार सिक्के दांव पर लगा दिए। फिर उसने सौ गाड़ियों में रेत, बजरी और पत्थर भर दिए और उन्हें एक के पीछे एक रस्सी से बाँध दिया। रस्सी आगे वाली गाड़ी के धुरे से पीछे वाली गाड़ी के पायदान तक जाती थी। यह सब करने के बाद, उन्होंने नंदी-विसला को स्नान कराया, उन्हें सुगंधित चावल खिलाया, उनके गले में माला पहनाई और उन्हें अकेले ही आगे वाली गाड़ी से जोड़ दिया। स्वयं ब्राह्मण खंभे पर बैठ गए और हवा में अपना डंडा लहराते हुए चिल्लाए, "अब आ जाओ, बदमाश! इन्हें खींचो, बदमाश!"

"मैं वह बदमाश नहीं हूँ जैसा वह मुझे कहता है," बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा; और इसलिए उसने अपने चारों पैरों को खंभों की तरह जमा लिया और एक इंच भी नहीं हिला।

व्यापारी ने तुरंत ब्राह्मण से हज़ार से ज़्यादा सिक्के ले लिए। पैसे जाने पर ब्राह्मण ने अपने बैल को गाड़ी से उतारा और घर चला गया, जहाँ वह शोक से व्याकुल होकर अपने पलंग पर लेट गया। जब नंदी-विशाल टहलते हुए आए और ब्राह्मण को इतने दुखी देखा, तो वे उसके पास गए और पूछा कि क्या वह झपकी ले रहा है। "मैं झपकी कैसे ले सकता हूँ, जब मुझसे हज़ार सिक्के हार गए हैं?" "ब्राह्मण, जब से मैं तुम्हारे घर में रह रहा हूँ, क्या मैंने कभी कोई घड़ा तोड़ा है, या किसी से धक्का-मुक्की की है, या कोई गड़बड़ की है?" "कभी नहीं, मेरे बच्चे।" "तो फिर तुमने मुझे बदमाश क्यों कहा? गलती तुम्हारी है, मेरी नहीं। जाओ और इस बार उससे दो हज़ार की शर्त लगाओ। बस याद रखना कि मुझे फिर कभी बदमाश मत कहना।" यह सुनकर ब्राह्मण व्यापारी के पास गया और दो हज़ार की शर्त लगा

दी। पहले की तरह ही, उन्होंने सौ गाड़ियों को आपस में बांधा और सबसे आगे वाली गाड़ी में सुंदर और आकर्षक नंदी-विशाल को जोता। अगर आप पूछें कि उन्होंने उन्हें कैसे जोता, तो उन्होंने इस प्रकार किया: सबसे पहले, उन्होंने जुए को खंभे पर कस दिया; फिर उन्होंने बैल को एक तरफ से बिठाया और दूसरी तरफ जुए से लकड़ी का एक चिकना टुकड़ा धुरी पर बांधकर उसे कस दिया, ताकि जुआ तना हुआ रहे और किसी भी तरफ न झुके। इस प्रकार एक बैल दो गाड़ियों के लिए बनी गाड़ी को खींच सकता था। अब खंभे पर बैठे ब्राह्मण ने नंदी-विशाल की पीठ थपथपाई और इस तरह से उन्हें पुकारा, "अब, मेरे प्यारे! इन्हें खींचो, मेरे प्यारे!" एक ही झटके में बोधिसत्व ने सौ गाड़ियों की पूरी कतार को तब तक खींचा जब तक कि आखिरी गाड़ी वहीं नहीं पहुँच गई जहाँ से सबसे आगे वाली गाड़ी शुरू हुई थी। पशुधन से समृद्ध व्यापारी ने ब्राह्मण को अपने दो हजार सिक्कों का हर्जाना चुका दिया। अन्य लोगों ने भी बोधिसत्व को बड़ी रकम दी, और सारी संपत्ति ब्राह्मण के हाथ में चली गई। इस प्रकार बोधिसत्व के कारण उसे बहुत लाभ हुआ।

इस प्रकार, उन छहों को फटकार लगाते हुए, यह नियम स्थापित करते हुए कि कठोर शब्द किसी को प्रसन्न नहीं करते, गुरु ने बुद्ध के रूप में निम्नलिखित श्लोक कहा:-

केवल दयालुता के शब्द बोलें, कभी भी अपमानजनक शब्द न बोलें।

निर्दयी। जिसने उसके बारे में अच्छी बातें कही थीं, उसके लिए वह चला गया।

प्रेम के बदले में उसने भारी बोझ उठाया और धन अर्जित किया।

जब उन्होंने केवल दयालुता के शब्द बोलने के अपने पाठ को इस प्रकार समाप्त किया, तो गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आनंद उन दिनों का ब्राह्मण था, और मैं स्वयं नंदी-विशाल हूँ।"

फुटनोट:

(1) 'छह' कुख्यात भाई थे जिनका उल्लेख हमेशा संघ के नियमों की अवहेलना करने वाले के रूप में किया जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कान्हा-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-29-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 29
कान्हा-जातक

"भारी भार के साथ।"

--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, दोहरे चमत्कार के बारे में, जो स्वर्ग से अवतरण के साथ, सरभामिगा-जातक (*1) के तेरहवें खंड में बताया जाएगा।

दोहरे चमत्कार को अंजाम देने और स्वर्ग में कुछ समय बिताने के बाद, सर्वज्ञानी बुद्ध महान पवाराना (*2) उत्सव के दिन समकस्सा शहर में उतरे और वहाँ से अपने अनुयायियों के साथ जेतवन मठ की ओर चल दिए।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर भिक्षुओं ने गुरु के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा, "महोदय, बुद्ध असाधारण हैं; बुद्ध द्वारा उठाए गए बोझ को कोई नहीं उठा सकता। छह गुरुओं ने बार-बार यह दावा किया कि वे और केवल वे ही चमत्कार करेंगे, फिर भी उन्होंने एक भी चमत्कार नहीं किया। हे! गुरु कितने असाधारण हैं!"

हॉल में प्रवेश करते हुए और सभा में उपस्थित भाइयों से चर्चा का विषय पूछने पर, गुरु को पता चला कि उनका विषय उनके स्वयं के सद्गुणों के अलावा और कुछ नहीं था। गुरु ने कहा, "भाइयों, अब मेरे द्वारा उठाए गए बोझ को कौन उठाएगा? अतीत में भी, जब मैंने पशु रूप धारण किया था, तब भी मैं अद्वितीय था।" और ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने बैल का रूप धारण किया। जब वह छोटा बछड़ा ही था, तब उसके मालिक, जो एक बूढ़ी औरत के यहाँ ठहरे हुए थे, ने अपने बछड़े के बदले उसे उस बूढ़ी औरत को सौंप दिया। उस बूढ़ी औरत ने उसे अपने बच्चे की तरह पाला, उसे चावल की दलिया, चावल और अन्य पौष्टिक आहार खिलाया। उसका नाम "दादी का काला बछड़ा" पड़ गया। बड़ा होकर वह गाँव के अन्य पशुओं के साथ घूमता था और उसका रंग गहरा काला था। गाँव के शरारती बच्चे उसके सींग, कान और गलफड़े पकड़कर उस पर सवारी करते थे; या फिर खेलते-खेलते उसकी पूंछ पकड़कर उसकी पीठ पर चढ़ जाते थे।

एक दिन उसने मन ही मन सोचा, "मेरी माँ बहुत गरीब है; उसने मुझे बड़ी तकलीफों से पाला-पोसा है, मानो मैं उसका अपना बच्चा हूँ। अगर मैं कुछ पैसे कमा सकूँ तो उसकी मुश्किलों में कुछ राहत मिलेगी?" तब से वह हमेशा नौकरी की तलाश में रहता था। एक दिन एक युवा व्यापारी अपने काफिले के मुखिया के रूप में पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर एक ऐसे घाट पर पहुँचा, जिसका तल इतना उबड़-खाबड़ था कि उसके बैल गाड़ियों को खींच नहीं पा रहे थे। और जब उसने पाँच सौ जोड़ी बैलों को एक साथ जोतकर एक जोड़ी बनाई, तब भी वे एक गाड़ी को अकेले नदी पार नहीं करा पाए। उस घाट के पास ही बोधिसत्व गाँव के अन्य पशुओं के साथ मौजूद थे। युवा व्यापारी, जो पशुओं को परखने में माहिर था, ने झुंड पर नज़र डाली कि क्या उनमें कोई ऐसा बैल है जो गाड़ियों को नदी पार करा सके। जब उसकी नज़र बोधिसत्व पर पड़ी, तो उसे पूरा यकीन हो गया कि वही इसके लिए उपयुक्त है। और, बोधिसत्व के स्वामी का पता लगाने के लिए, उन्होंने चरवाहों से कहा, "इस जानवर का मालिक कौन है? अगर मैं इसे जुतकर अपनी गाड़ियाँ पार करा सकूँ, तो मैं इसके लिए भुगतान करूँगा।" उन्होंने कहा, "तो इसे ले जाओ और इसे जोत दो; यहाँ आस-पास इसका कोई स्वामी नहीं है।"

लेकिन जब उस नौजवान व्यापारी ने बोधिसत्व की नाक में रस्सी डालकर उन्हें ले जाने की कोशिश की, तो बैल टस से मस नहीं हुआ। क्योंकि, जैसा कि बताया जाता है, बोधिसत्व तब तक नहीं जाएंगे जब तक उनकी तनख्वाह तय नहीं हो जाती। बोधिसत्व का मतलब समझते हुए व्यापारी ने कहा, "गुरुजी, यदि आप इन पाँच सौ गाड़ियों को पार करा देंगे, तो मैं आपको प्रति गाड़ी दो सिक्के या कुल मिलाकर एक हजार सिक्के दूंगा।"

अब बोधिसत्व को लाने के लिए किसी बल प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी। वे चले गए और लोगों ने उन्हें गाड़ियों से जोड़ दिया। पहली गाड़ी को उन्होंने एक ही झटके में खींचकर किनारे पर सुरक्षित उतार दिया; और इसी प्रकार उन्होंने बाकी सभी गाड़ियों के साथ भी किया।

उस नौजवान व्यापारी ने बोधिसत्व के गले में पाँच सौ सिक्कों का एक गट्ठा बाँध दिया, यानी हर गाड़ी के लिए सिर्फ़ एक सिक्का। बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "यह आदमी हमें तयशुदा भुगतान नहीं कर रहा! मैं इसे आगे नहीं बढ़ने दूँगा!" इसलिए वह सबसे आगे वाली गाड़ी के रास्ते में खड़ा हो गया और रास्ता रोक दिया। लाख कोशिश करने के बावजूद वे उसे रास्ते से हटा नहीं सके। व्यापारी ने सोचा, "शायद उसे पता चल गया है कि मैंने उसे कम भुगतान किया है"; और उसने एक हज़ार सिक्कों का एक गट्ठा बनाया, जिसे उसने बोधिसत्व के गले में बाँधते हुए कहा, "गाड़ियों को सड़क पार कराने के लिए ये तुम्हारा भुगतान है।" और बोधिसत्व उन हज़ार सिक्कों के साथ अपनी "माता" के पास चल दिए।

“दादी के काले घोड़े के गले में यह क्या है?” गाँव के बच्चे दौड़ते हुए उसके पास आए और चिल्लाए। लेकिन बोधिसत्व ने दूर से ही उन पर नज़र रखी और उन्हें भगा दिया, जिससे वह अपनी “माँ” के पास सुरक्षित पहुँच गया। हालाँकि वह थका हुआ लग रहा था, उसकी आँखें लाल थीं, क्योंकि वह नदी के उस पार पाँच सौ गाड़ियाँ खींचकर लाया था। धर्मपरायण स्त्री ने उसके गले में एक हज़ार सिक्के देखकर कहा, “यह तुम्हें कहाँ से मिला, मेरे बच्चे?” चरवाहों से बात पता चलने पर उसने कहा, “क्या मैं तुम्हारी कमाई पर जीना चाहती हूँ, मेरे बच्चे? तुमने इतनी मेहनत क्यों की?” इतना कहकर उसने बोधिसत्व को गर्म पानी से धोया और पूरे शरीर पर तेल मल दिया; उसने उसे पानी पिलाया और उचित भोजन कराया। और जब उसका जीवन समाप्त हुआ, तो वह बोधिसत्व के साथ अपने कर्मों के फल के लिए इस दुनिया से चली गई।

जब उन्होंने यह पाठ समाप्त करते हुए दिखाया कि बुद्ध अतीत में भी और उस समय भी अद्वितीय थे, तो उन्होंने बुद्ध के रूप में इस श्लोक का उच्चारण करके इस संबंध को स्पष्ट किया:

> भारी सामान ढोने के साथ-साथ खराब सड़कें भी हैं,
>
> वे 'ब्लैकी' को जोतते हैं; वह जल्द ही बोझ खींचने लगता है।

यह साबित करने के लिए कि केवल 'ब्लैकी' ही बोझ खींच सकता है, अपना पाठ पढ़ाने के बाद, उसने रिश्ते को समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उप्पला-वन्ना उन दिनों की बूढ़ी औरत थी, और मैं खुद 'दादी का ब्लैकी' था।"

फुटनोट:

(1)सं. 483.

(2) वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला त्योहार।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मुनिका-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-30-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 30
मुनिका-जातक

"तो फिर बेचारी मुनिका से ईर्ष्या मत करो।"

--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक मोटी युवती द्वारा बहकाए जाने का वर्णन है, जैसा कि चुल्ला-नारद-कश्यप-जातक (*1) के तेरहवें खंड में बताया जाएगा।

तब गुरु ने भिक्षु भाई से पूछा, "क्या सच है, भिक्षु, जैसा कि लोग कहते हैं, कि तुम वासना से ग्रस्त हो?" "जी हाँ, श्रीमान," उत्तर आया। गुरु ने कहा, "भाई, वह तुम्हारी कमजोरी है; बीते दिनों में भी, उसकी शादी के दिन तुम्हारा अंत हो गया था और तुम वहाँ के लोगों के लिए एक स्वादिष्ट व्यंजन बन गए थे।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब एक गाँव में एक अधिकारी की जागीर में बोधिसत्व ने बैल के रूप में जन्म लिया, जिसका नाम बिग रेड था। उनका एक छोटा भाई था, जिसे लिटिल रेड के नाम से जाना जाता था। परिवार के सारे काम करने के लिए केवल यही दो भाई थे। अधिकारी की एक इकलौती बेटी थी, जिसका विवाह उनके बेटे के लिए शहर के एक सज्जन ने प्रस्तावित किया। और लड़की के माता-पिता ने शादी के मेहमानों के लिए शानदार दावत की व्यवस्था करने के उद्देश्य से मुनिका नाम के एक सूअर को पालना शुरू किया।

यह देखकर लिटिल रेड ने अपने भाई से कहा, "भाई, इस घर के सारे बोझ हम दोनों ही उठाते हैं; लेकिन बदले में हमें खाने के लिए सिर्फ़ सूखी घास और भूसा ही मिलता है। और यहाँ सूअर को चावल खिलाया जा रहा है! आखिर उसके साथ ऐसा बर्ताव क्यों किया जा रहा है?"

उसके भाई ने कहा, "मेरी प्यारी छोटी लाल, उससे ईर्ष्या मत करो; क्योंकि सुअर तो मृत्यु का भोजन खा रहा है। परिवार वाले तो बस अपनी बेटी की शादी में आए मेहमानों को दावत देने के लिए सुअर को पाल रहे हैं। बस थोड़ी देर रुको, मेहमान आ जाएँगे। तब तुम देखोगी कि सुअर को उसके बाड़े से टांगों से घसीटकर बाहर निकाला जा रहा है, मारा जा रहा है और उसे करी में बदला जा रहा है।" और ऐसा कहते हुए उसने यह छंद दोहराया:-

> इसलिए बेचारी मुनिका से ईर्ष्या मत करो; यह मृत्यु के समान है।
>
> वह खाता है। संतुष्ट होकर अपना कम भोजन चबाओ।
>
> दिनों की अवधि का वादा और गारंटी।

कुछ ही समय बाद मेहमान आ गए; और मुनिका को मार कर तरह-तरह के पकवानों में पका दिया गया। बोधिसत्व ने छोटे लाल से कहा, "क्या तुमने मुनिका को देखा, प्यारे भाई?" "हाँ, भाई, मुनिका के भोज का परिणाम मैंने देखा है। ऐसा भोजन हमारे लिए सौ गुना नहीं, बल्कि हज़ार गुना बेहतर है, भले ही वह घास, भूसा और भूसा ही क्यों न हो; क्योंकि हमारे साथ किया गया यह व्यवहार हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाता, और यह इस बात का आश्वासन है कि हमारा जीवन छोटा नहीं होगा।"

जब उन्होंने यह कहकर अपना पाठ समाप्त किया कि अतीत में उस युवती के कारण ही उस भाई का विनाश हुआ था और वह उस संगति का मोह बन गया था, तब उन्होंने सत्य का उपदेश दिया, जिसके अंत में उस वासनाग्रस्त भाई (भिक्षु) ने निर्वाण (मुक्ति) के प्रथम मार्ग (सम्मोहन) को प्राप्त किया। गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों का वह वासनाग्रस्त भाई सुअर मुनिका था, दोनों ही मामलों में वह युवती एक ही है, आनंद छोटा लाल था और मैं स्वयं बड़ा लाल था।"

फुटनोट:

(1)सं. 477.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुलवक-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-31-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 31
कुलावक-जातक

"जंगल के सभी बच्चों को रहने दो।"

--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक भाई (भिक्षु) के बारे में जिसने पानी को बिना छाने पिया (*1)।

परंपरा के अनुसार, दो युवा मित्र भाई श्रावस्ती शहर से निकलकर ग्रामीण इलाके में गए और एक रमणीय स्थान पर रहने लगे। वहाँ अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय बिताने के बाद वे वहाँ से विदा होकर पूर्ण बुद्ध के दर्शन के लिए जेतवन मठ की ओर चल पड़े।

उनमें से एक के पास छलनी थी; दूसरे के पास नहीं थी; इसलिए दोनों पीने से पहले एक ही छलनी का इस्तेमाल करते थे। एक दिन उनमें झगड़ा हो गया। छलनी के मालिक ने उसे अपने साथी को नहीं दिया, बल्कि खुद छानकर पी लिया।

दूसरे को छलनी इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं थी, और प्यास सहन न कर पाने के कारण उसने बिना छाने ही पानी पी लिया। कुछ देर बाद दोनों जेतवन मठ पहुँचे और गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करके बैठ गए। सौहार्दपूर्ण अभिवादन के बाद उन्होंने उनसे पूछा कि वे कहाँ से आए हैं।

“महोदय,” उन्होंने कहा, “हम कोसला देश के एक गाँव में रहते थे, जहाँ से हम आपसे मिलने आए हैं।” “मुझे उम्मीद है कि आप वैसे ही अच्छे दोस्त बनकर पहुँचे हैं जैसे आप गए थे?” बिना छलनी वाले भिक्षु ने कहा, “महोदय, रास्ते में उसका मुझसे झगड़ा हो गया और उसने मुझे अपनी छलनी नहीं दी।” दूसरे ने कहा, “महोदय, उसने पानी नहीं छाना, बल्कि जानबूझकर उसमें मौजूद सभी जीवों सहित पी लिया।” “क्या यह बात सच है, भिक्षु, कि आपने जानबूझकर उसमें मौजूद सभी जीवों सहित पानी पी लिया?” “जी हाँ, मैंने बिना छाना हुआ पानी पी लिया,” उत्तर मिला। "भाई (भिक्षु), अतीत के बुद्धिमान और भले भिक्षु, जब देवों (देवदूतों) के नगर पर शासन करने की शक्ति के दिनों में गहरे सागर में हारते हुए भाग रहे थे, तो उन्होंने अपने लिए सत्ता सुरक्षित करने के लिए जीवित प्राणियों को मारना तुच्छ समझा। इसके बजाय, उन्होंने अपने रथ को वापस मोड़ दिया, महान यश का त्याग करके गरुड़ों के बच्चों के जीवन को बचाया (*2)।" और ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, मगध देश के राजगृह नगर में मगध का एक राजा शासन करता था। तभी बोधिसत्व (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) ने स्वर्ग में अपना जीवनकाल पूरा करने के बाद मगध देश के मचला गाँव में एक युवा (मनुष्य) बोधिसत्व के रूप में जन्म लिया। जब उनका नामकरण संस्कार हुआ, तो उनका नाम 'मघ कुमार' रखा गया, लेकिन बड़े होने पर वे 'मघ पुरुष' के नाम से जाने गए। उनके माता-पिता ने अपने ही परिवार के समान ही प्रतिष्ठित परिवार से उनके लिए एक पत्नी का विवाह किया; और अपने पुत्र-पुत्रियों के परिवार के साथ बड़े होते हुए, उन्होंने दान-पुण्य में उत्कृष्टता प्राप्त की और पंच शीलों का पालन किया।

नोट 5 साइलस:

1. जीवन का नाश न करना (अहत्या)।

2. जो दिया न गया हो उसे न लेना (चोरी न करना)।

3. यौन दुर्व्यवहार का कोई मामला नहीं।

4. झूठ न बोलना।

5. मादक पेय का सेवन न करना (नशा न करना)।

उस गाँव में केवल तीस परिवार थे, और एक दिन गाँव के बीचोंबीच पुरुष गाँव के कामकाज निपटा रहे थे। बोधिसत्व ने जहाँ वे खड़े थे, वहाँ से धूल झाड़ दी थी और आराम से खड़े थे, तभी एक और व्यक्ति आया और वहाँ खड़ा हो गया। तब बोधिसत्व ने अपने लिए एक और आरामदायक जगह बनाई, लेकिन वह भी पहली बार की तरह उनसे छीन ली गई। बोधिसत्व ने बार-बार नए सिरे से शुरुआत की, जब तक कि उन्होंने वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आरामदायक जगह नहीं बना दी। एक बार उन्होंने एक मंडप बनाया, जिसे बाद में उन्होंने तोड़ दिया और उसके स्थान पर बेंचों और पानी के घड़े वाला एक हॉल बनवाया। एक बार बोधिसत्व ने इन तीस पुरुषों को अपने समान विचारधारा का अनुयायी बनाया; उन्होंने उन्हें पंच आज्ञाओं में स्थापित किया और तब से उनके साथ अच्छे कार्य करते हुए घूमने लगे। और वे भी अच्छे कार्य करते हुए, हमेशा बोधिसत्व के साथ, सुबह जल्दी उठकर अपने हाथों में तेज धार वाले औजार, कुल्हाड़ी और गदा लेकर तेजी से आगे बढ़ते थे। वे अपने डंडों से गाँव के चारों राजमार्गों और अन्य सड़कों पर पड़े सभी पत्थरों को हटा देते थे; रथों के धुरों से टकराने वाले पेड़ों को काट डालते थे; ऊबड़-खाबड़ जगहों को समतल करते थे; पक्के रास्ते बनाते थे, पानी के टैंक खोदते थे और एक भवन का निर्माण करते थे; वे दान-पुण्य का उपदेश देते थे और बोधिसत्वों का पालन करते थे। इस प्रकार गाँव के अधिकांश लोग बोधिसत्वों की शिक्षाओं का पालन करते थे और बोधिसत्वों का अनुपालन करते थे।

ग्राम प्रधान मन ही मन सोचने लगा, "जब ये लोग शराब पीकर हत्याएँ वगैरह करते थे, तो मैं उनसे न केवल शराब के दामों से, बल्कि जुर्माने और अन्य करों के रूप में भी खूब पैसा कमाता था। लेकिन अब ये नौजवान मघा मान उन्हें धर्म के नियमों का पालन करवाने पर तुला हुआ है; ये हत्याओं और अन्य अपराधों को रोक रहा है।" और क्रोध में आकर उसने कहा, "मैं इन्हें पाँचों धर्म नियमों का पालन करने से रोकूँगा!" और वह राजा के पास गया और बोला, "महाराज, लुटेरों का एक गिरोह गाँवों को लूट रहा है और अन्य अपराध कर रहा है।" जब राजा ने यह सुना, तो उसने प्रधान को उन लोगों को लाने के लिए कहा। प्रधान गया और उन तीसों लोगों को कैदी बनाकर राजा के सामने पेश कर दिया, और उन्हें बदमाश बताया। उनके कारनामों की जाँच किए बिना, राजा ने कठोर आदेश दिया कि उन्हें हाथी से कुचलवाकर मार डाला जाए। फिर उन्होंने उन्हें राजा के प्रांगण में लिटाया और हाथी को बुलवाया। बोधिसत्व ने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा, "शीलों का ध्यान रखो; निंदा करने वाले, राजा और हाथी से अपने समान प्रेम करो।" और उन्होंने वैसा ही किया।

फिर उन्हें कुचल कर मार डालने के लिए हाथी को लाया गया। लेकिन वे उसे लाख कोशिशों से लाते रहे, फिर भी वह उनके पास नहीं आया, बल्कि जोर-जोर से चिंघाड़ते हुए भाग गया। एक के बाद एक कई हाथी लाए गए; लेकिन सभी पहले हाथी की तरह भाग गए। राजा ने सोचा कि शायद उन आदमियों ने अपने पास कोई नशीला पदार्थ रखा है, इसलिए उसने उनकी तलाशी का आदेश दिया। तलाशी ली गई, लेकिन कुछ नहीं मिला; और उन्होंने राजा को यही बताया। राजा ने कहा, "तो फिर वे कोई मंत्र बुदबुदा रहे होंगे; उनसे पूछो कि क्या उनके पास कोई मंत्र है जिसे वे बुदबुदा रहे हैं।"

जब उनसे यह प्रश्न पूछा गया, तो बोधिसत्व ने कहा कि उन्हें एक मंत्र प्राप्त हुआ है। यह बात राजा के लोगों ने महाराज को बता दी। तब राजा ने उन सभी को अपने समक्ष बुलाया और कहा, "मुझे अपना मंत्र बताओ।"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, हमारे पास इस मंत्र के अलावा कोई और मंत्र नहीं है कि हम तीसों में से कोई भी व्यक्ति जीव-जंतुओं का संहार नहीं करता, न ही कोई वस्तु लेता है जो हमें नहीं दी गई है, न ही यौन दुराचार करता है, न ही झूठ बोलता है; हम मादक पेय नहीं

पीते; हम प्रेम और दान में श्रेष्ठ हैं; हम सड़कों को समतल करते हैं, तालाब खुदवाते हैं और एक सार्वजनिक भवन बनवाते हैं; यही हमारा मंत्र, हमारी सुरक्षा और हमारी शक्ति है।"

उनसे प्रसन्न होकर राजा ने निंदा करने वाले के घर की सारी संपत्ति उन्हें दे दी और उसे उनका दास बना दिया; साथ ही उसने उन्हें हाथी और पूरा गाँव भी दे दिया।

तब से, वे अपनी इच्छा अनुसार अच्छे काम करते रहे और उन्होंने एक बढ़ई को बुलवाया और उससे चारों राजमार्गों के संगम पर एक बड़ा हॉल बनवाया; लेकिन चूंकि उनमें स्त्री जाति के प्रति कोई इच्छा नहीं रह गई थी, इसलिए उन्होंने किसी भी स्त्री को अच्छे काम में भागीदार नहीं बनने दिया।

उन दिनों बोधिसत्व के घर में चार स्त्रियाँ थीं, जिनके नाम सुधम्म, चित्त, नन्द और सुजाति थे। इनमें से सुधम्म ने जब बढ़ई को अकेले पाया, तो उसे रिश्वत देते हुए कहा, "भाई, मुझे इस भवन से संबंधित प्रमुख व्यक्ति बनाने की योजना बनाइए।"

“बहुत बढ़िया,” उसने कहा। और भवन पर कोई और काम शुरू करने से पहले, उसने कुछ लकड़ी सुखाई, उसे तराशा, छेद किया और एक तैयार शिखर (टॉप) बना लिया। उसने इसे एक कपड़े में लपेटकर एक तरफ रख दिया। जब हॉल बनकर तैयार हो गया और टॉप लगाने का समय आया, तो उसने कहा, “अफ़सोस, मेरे स्वामी, एक चीज़ हम बनाना भूल गए।” “क्या?” “अरे, हमें एक टॉप चाहिए।” “ठीक है, एक का इंतज़ाम करो।” “लेकिन यह कच्ची लकड़ी से नहीं बन सकता; हमें एक ऐसा टॉप चाहिए जो कुछ समय पहले काटा गया हो, तराशा गया हो, छेद किया गया हो और रखा गया हो।” “तो अब क्या करें?” “अरे, आस-पास देखो कि क्या किसी के घर में ऐसा कोई तैयार टॉप बिक्री के लिए है।” जब उन्होंने ऐसा किया, तो उन्हें सुधम्मा के घर में एक टॉप मिला, लेकिन वे उसे किसी भी कीमत पर उससे नहीं खरीद सके। उसने कहा, "यदि आप मुझे इस नेक काम में भागीदार बनाएंगे, तो मैं इसे आपको निःशुल्क दे दूंगी।"

"नहीं," जवाब मिला, "हम महिलाओं को अच्छे कामों में हिस्सा नहीं लेने देते।"

तब बढ़ई ने उनसे कहा, "हे स्वामियों, आप लोग क्या कह रहे हैं? ब्रह्मा के लोक (परम स्वर्ग) को छोड़कर, ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ से स्त्रियों को बाहर रखा गया हो। शिखर को ले लीजिए, और हमारा काम पूरा हो जाएगा।"

सहमति मिलने पर उन्होंने शीर्ष भाग पर कब्जा कर लिया और अपना हॉल पूरा किया। उन्होंने बेंचें लगवाईं और अंदर पानी के कलश रखे, जिससे उबले हुए चावल की निरंतर आपूर्ति होती रही। हॉल के चारों ओर उन्होंने एक दीवार बनाई और उसमें एक द्वार लगाया, दीवार के अंदर की जगह में रेत भर दी और बाहर ताड़ के पेड़ों की एक पंक्ति लगाई। विचारशील (चित्त) ने भी उस स्थान पर एक बगीचा बनवाया, और ऐसा कोई फूलदार या फलदार पेड़ नहीं था जो वहां न उगता हो। आनंदित (नंदा) ने भी उसी स्थान पर एक पानी की टंकी खुदवाई, जिसे पांच प्रकार के कमलों से ढक दिया गया, जो देखने में सुंदर थे। उच्च कुल के (सूजा) ने कुछ भी नहीं किया।

बोधिसत्व ने इन सात आज्ञाओं का पालन किया: माता का आदर करना, पिता का आदर करना, बड़ों का सम्मान करना, सत्य बोलना, कठोर वाणी से बचना, निंदा से बचना और कंजूसी से दूर रहना।

जो कोई अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता है, वह उम्र का सम्मान करता है।

वह सौम्य, सौहार्दपूर्ण भाषी और निंदा न करने वाला है।

सभ्य, सत्यवादी, क्रोध का स्वामी—दास नहीं।

*उसे तैंतीस (*3) भी अच्छा कहेंगे।*

वह जिस प्रशंसनीय अवस्था तक पहुंचे, वह सराहनीय थी, और अपने जीवन के अंत में वे तैंतीस के स्वर्गलोक में देवों के राजा सक्का (इंद्र) के रूप में पुनर्जन्म लेने के लिए देह त्याग कर गए; और वहां उनके मित्र भी पुनर्जन्म लेकर गए।

उन दिनों तैंतीस लोकों में असुर निवास करते थे। देवों के राजा इंद्र ने कहा, "जिस राज्य में दूसरे भी हिस्सा बाँटें, उसका हमें क्या लाभ?" इसलिए उन्होंने असुरों को देवों का पेय पिलाया और जब वे मदमस्त हो गए, तो उन्हें पैरों से पकड़कर शिनेरु पर्वत की ढलानों पर फेंक दिया। वे लुढ़कते हुए सीधे 'असुर लोक' में पहुँच गए, जो शिनेरु पर्वत के सबसे निचले तल पर स्थित है और जिसका क्षेत्रफल तैंतीस लोकों के बराबर है। यहाँ एक वृक्ष उगता है, जो देवों के मूंगा वृक्ष जैसा दिखता है, जो युगों तक जीवित रहता है और उसे चितकबरा तुरही-पुष्प कहा जाता है। इस वृक्ष के फूलों ने उन्हें तुरंत समझा दिया कि यह देवों का लोक नहीं है, क्योंकि वहाँ मूंगा वृक्ष खिलता है। तब

वे चिल्लाए, "बूढ़े सक्का (इंद्र) ने हमें मदहोश कर दिया है और हमारे स्वर्ग नगर पर कब्ज़ा करके हमें गहरे समुद्र में फेंक दिया है।" "आओ," वे चिल्लाए, "हम शस्त्र बल से अपना राज्य उससे वापस जीत लें।" और वे चींटियों की तरह खंभे पर चढ़ गए।

असुरों के जागने की सूचना सुनकर, सक्का (इंद्र) उनसे युद्ध करने के लिए गहरे समुद्र में चले गए, लेकिन युद्ध में पराजित होकर वे मुड़कर अपने 'विजय रथ' में सवार होकर दक्षिणी समुद्र की एक के बाद एक चोटियों से होते हुए भाग गए, जो एक सौ पचास लीग (x 4.23 किमी) लंबा था।

अब जब उनका रथ गहरे पानी में तेज़ी से आगे बढ़ रहा था, तो वह रेशम-कपास के पेड़ों के जंगल में पहुँचा। रथ के मार्ग में ये विशाल वृक्ष ताड़ के पेड़ों की तरह कटते हुए गहरे पानी में गिर पड़े। और जब गरुड़ों के बच्चे गहरे पानी में गिरे, तो उनकी चीखें तेज़ हो गईं। इंद्र ने अपने सारथी मतली से कहा, "मतली, मेरे मित्र, यह कैसी आवाज़ है? यह कितनी हृदयविदारक है।" "महाराज, यह गरुड़ों के बच्चों की भय से भरी चीख है, क्योंकि आपके रथ की तेज़ी से उनका जंगल उखड़ रहा है।" महान पुरुष ने कहा, "मेरे कारण उन्हें परेशान न होने दो, मेरे मित्र मतली। हम साम्राज्य के लिए ऐसा कार्य न करें जिससे जीवन नष्ट हो। बल्कि मैं उनके लिए असुरों को अपना प्राण बलिदान कर दूंगा। रथ को वापस मोड़ो।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

जंगल के सभी नन्हे-मुन्ने, मताली,

हमारे सर्वभक्षी रथ से बच निकलो।

मैं स्वेच्छापूर्वक बलिदान अर्पित करता हूँ।

मेरी जान उन असुरों को समर्पित है; ये बेचारे पक्षी

मेरे कारण वे अपने घोंसलों से नहीं तोड़े जाएँगे।

यह सुनकर सारथी मतली ने रथ को घुमाया और दूसरे मार्ग से देवलोक की ओर चल पड़ा। परन्तु जैसे ही असुरों ने उसे रथ घुमाते देखा, वे चिल्ला उठे कि दूसरे लोकों के सक्का (इंद्र) अवश्य आ रहे हैं; "यह उसकी अतिरिक्त सेना ही होगी जो उसे रथ वापस मोड़ने पर मजबूर कर रही है।" अपने प्राणों के भय से कांपते हुए वे सब भाग गए और असुरलोक पहुँचने तक नहीं रुके। और सक्का (इंद्र) स्वर्ग में प्रवेश करके अपने नगर के मध्य में खड़ा हो गया, जो उसके अपने और ब्रह्मा के प्रधान देवदूतों के एक देवमंडल से घिरा हुआ था। और उसी क्षण फटी हुई पृथ्वी से लगभग एक हजार मील (4.23 किमी) ऊँचा 'विजय महल' प्रकट हुआ, जिसे विजय के समय प्रकट होने के कारण यह नाम दिया गया। फिर, असुरों को वापस आने से रोकने के लिए, सक्का (इंद्र) ने पाँच स्थानों पर पहरेदार नियुक्त किए, जिनके बारे में कहा गया है:-

दोनों शहर अभेद्य हैं!

पांच बार पहरा देते हुए, नागों, गरुलों को देखो,

कुम्भंड, जिन्न और चार महान राजा!

लेकिन जब सक्का (इंद्र) देवों के राजा के रूप में स्वर्ग की महिमा का आनंद ले रहे थे, और इन पांच चौकियों पर तैनात अपने पहरेदारों द्वारा सुरक्षित थे, तब सुधम्मा का निधन हो गया और वे सक्का (इंद्र) की दासी के रूप में पुनर्जन्म हुईं। उनके द्वारा शीर्ष स्थान दान करने का फल यह हुआ कि उनके लिए एक महल का निर्माण हुआ, जिसका नाम 'सुधम्मा' रखा गया, जो दिव्य रत्नों से जड़ा हुआ था और पांच सौ मील (4.23 किमी) ऊंचा था। वहां, राजसी सफेद छत्र के नीचे, देवों के राजा सक्का (इंद्र), मनुष्यों और देवों पर शासन करते हुए विराजमान थे।

चित्त (चिंतनशील) की भी मृत्यु हो गई और वह इंद्र (सक्का) की दासी के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी; उसके द्वारा बाग में किए गए कर्मों का फल यह हुआ कि वहाँ 'चिंतनशील लता-वन' नामक एक बाग बन गया। नंद (आनंद) की भी मृत्यु हो गई और वह इंद्र (सक्का) की दासियों में से एक के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी; उसके द्वारा किए गए सरोवर का फल यह हुआ कि उसके नाम पर 'आनंद' नामक एक सरोवर बन गया। परन्तु सुजा (उच्च कुल का) ने कोई पुण्य कर्म न किया था, इसलिए वह जंगल की एक गुफा में सारस के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी।

“सुजा का कोई अता-पता नहीं है,” सक्का (इंद्र) ने मन ही मन कहा; “पता नहीं वह कहाँ पुनर्जन्म लेकर आई है।” विचार करते-करते उन्हें उसका पता चल गया। इसलिए वे उससे मिलने गए और उसे अपने साथ स्वर्ग ले आए। उन्होंने उसे देवों के रमणीय नगर, पुण्य के महल, चिंतनशील लता-वन और आनंदमय सरोवर के बारे में बताया। “ये तीनों अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मेरी दासियों के रूप में पुनर्जन्म लेकर आई हैं; परन्तु तुम, तुमने कोई अच्छा कर्म नहीं किया, इसलिए पशु जगत में पुनर्जन्म लेकर आई हो। अब से आज्ञाओं का पालन करो।” इस प्रकार उसे प्रोत्साहित करके और पाँच आज्ञाओं का निश्चय दिलाकर, वे उसे वापस ले गए और उसे मुक्त कर दिया। तब से वह आज्ञाओं का पालन करती रही।

कुछ समय बाद, यह जानने की उत्सुकता में कि क्या सुजा सचमुच शिलाओं का पालन कर सकती है, सक्का (इंद्र) मछली का रूप धारण करके उसके सामने लेट गए। मछली को मृत समझकर सारस ने उसका सिर पकड़ लिया। मछली ने अपनी पूंछ हिलाई। सारस ने कहा, "अरे, मुझे तो लगता है कि यह जीवित है," और मछली को छोड़ दिया। सक्का (इंद्र) ने कहा, "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; तुम शिलाओं का पालन कर पाओगी।" इतना कहकर वे चले गए।

सारस के रूप में मरने के बाद, उच्चवंशी का पुनर्जन्म बनारस के एक कुम्हार के परिवार में हुआ। यह सोचकर कि वह कहाँ चली गई, और अंततः उसका पता चलने पर, सक्का (इंद्र), एक बूढ़े व्यक्ति का वेश धारण करके, सोने के खीरों से भरी एक गाड़ी लेकर गाँव के बीच में बैठ गया और चिल्लाने लगा, "मेरे खीरे खरीदो! मेरे खीरे खरीदो!" लोग उसके पास आए और खीरे माँगने लगे। उसने कहा, "मैं इन्हें केवल उन्हीं को देता हूँ जो आज्ञाओं का पालन करते हैं। क्या आप करते हैं?" "हमें नहीं पता कि आप अपनी 'आज्ञाओं' से क्या मतलब रखते हैं; हमें खीरे बेचिए।" "नहीं; मुझे अपने खीरों के लिए पैसे नहीं चाहिए। मैं इन्हें मुफ्त में देता हूँ, लेकिन केवल उन्हीं को जो आज्ञाओं का पालन करते हैं।" लोग मुँह फेरते हुए बोले, "यह कौन है?" यह सुनकर उच्चवंशी (सुजा) ने मन ही मन सोचा कि खीरे उसके लिए ही लाए गए होंगे, और इसलिए वह गई और कुछ खीरे माँगे। "क्या आप आज्ञाओं का पालन करती हैं, महोदया?" उसने कहा। "हाँ, मैं करती हूँ," जवाब मिला। "मैं ये सब तुम्हारे लिए ही यहाँ लाया हूँ," उसने कहा और खीरे, ठेला और सारा सामान उसके दरवाजे पर छोड़कर चला गया।

जीवन भर शिलाओं का पालन करते हुए, सुजा का निधन होने पर उनका पुनर्जन्म असुर राजा वेपचित्तिय की पुत्री के रूप में हुआ और उनकी अच्छाई के फलस्वरूप उन्हें अपार सौंदर्य का वरदान प्राप्त हुआ। जब वह बड़ी हुईं, तो उनके पिता ने असुरों को एकत्रित किया ताकि उनकी पुत्री उनमें से किसी एक को अपना जीवनसाथी चुन सकें। इंद्र ने सुजा का पता लगाकर असुर का रूप धारण किया और मन ही मन कहा, "यदि सुजा अपने मनपसंद जीवनसाथी का चुनाव करती हैं, तो मैं ही उनका जीवनसाथी बनूंगा।"

उच्च कुल की सुजा को सज-धज कर सभा स्थल पर लाया गया, जहाँ उनसे अपने मनपसंद पति का चुनाव करने को कहा गया। चारों ओर देखकर और सक्का (इंद्र) को निहारते हुए, पिछले जन्म में उनके प्रति अपने प्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने उन्हें ही अपना पति चुना। सक्का (इंद्र) उन्हें देवों के नगर में ले गए और उन्हें पच्चीस करोड़ नर्तकियों की मुखिया बना दिया। और जब उनका जीवनकाल समाप्त हुआ, तो वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक सिधार गए।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने उस भिक्षु को इन शब्दों में फटकारा, “हे भिक्षुओं, बीते समय के बुद्धिमान और भले भिक्षु, जब वे देवों के शासक थे, तब भी अपने प्राणों का बलिदान देकर भी वध के अपराध से विरक्त रहे। तो क्या तुम, जिन्होंने अपने आप को इतने असाधारण उपदेश के लिए समर्पित किया है, सभी जीवित प्राणियों से युक्त बिना छाने हुए जल को पी सकते हो?” और उन्होंने संबंध बताते हुए जन्म का वर्णन किया, “आनंद तब सारथी मतली थे, और मैं इंद्र था।”

फुटनोट:

(1)जल छानने के नियमों के लिए, विनय देखें।

(2) गरुल अलौकिक श्रेणी के पंख वाले प्राणी थे, जो नागों के कट्टर प्रतिद्वंद्वी थे, जिनका क्षेत्र जल था। (जैसे जातक संख्या 154)

(3) बौद्ध ब्रह्मांड विज्ञान के देवलोकों में से एक, तावतिंसा-भवनम्, या 'तैंतीस का लोक' था, जिसे यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि इसके निवासी पूर्व-बौद्ध धर्म के इंद्र, सक्का (इंद्र) के नेतृत्व में तैंतीस देवों (देवदूतों) के अधीन थे। यहाँ यह भी जोड़ा जा सकता है कि प्रत्येक विश्व-प्रणाली का अपना एक सक्का (इंद्र) होता था।

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-32-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 32
नक्का-जातक

"एक सुखद स्वर।"

यह कहानी गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु (भाई) के बारे में सुनाई थी, जिसके पास बहुत सारा सामान था। यह घटना देवधम्म-जातक (*1) में वर्णित घटना के समान ही है।

“क्या यह खबर सच है, भिक्षु भाई,” गुरु ने कहा, “कि तुम्हारे पास बहुत सारा सामान है?” “जी हाँ।” “तुम्हारे पास इतना सारा सामान क्यों है?” इसके आगे सुने बिना ही, भिक्षु ने अपने सारे वस्त्र फाड़ दिए और गुरु के सामने नग्न खड़ा होकर चिल्लाया, “मैं ऐसे ही घूमूँगा!” “अरे, बुरा हुआ!” सबने कहा। वह आदमी भाग गया और एक आम आदमी की नीची अवस्था में लौट गया। सत्य के हॉल में इकट्ठा होकर भिक्षु भाइयों ने गुरु के सामने उसके इस तरह के व्यवहार के बारे में बात की। गुरु अंदर आए और पूछा कि सभा में चर्चा का विषय क्या है। “महोदय,” उत्तर मिला, “हम उस भिक्षु के इस बुरे काम पर चर्चा कर रहे थे और कह रहे थे कि आपकी उपस्थिति में और आपके चारों वर्गों के सामने (*2) उसने इतनी शर्म खो दी कि वह गाँव के आवारा बच्चे की तरह नग्न खड़ा हो गया, और जब उसने देखा कि सब उसे नापसंद कर रहे हैं, तो वह नीची अवस्था में लौट गया और उसने अपना विश्वास खो दिया।”

गुरु ने कहा, "भाइयों, उसकी निर्लज्जता से उसे केवल यही हानि नहीं हुई है; क्योंकि बीते दिनों में उसने एक अनमोल पत्नी को खो दिया था, ठीक वैसे ही जैसे अब उसने विश्वास के रत्न को खो दिया है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

विश्व इतिहास के प्रथम चक्र में, एक समय की बात है, चौपायों ने सिंह को अपना राजा चुना, मछलियों ने आनंद नामक राक्षस मछली को और पक्षियों ने स्वर्ण बत्तख को (*3)। स्वर्ण बत्तख राजा की एक सुंदर युवती थी, और उसके पिता ने उसे वरदान देने का वचन दिया था। उसने अपने लिए पति चुनने की स्वतंत्रता का वरदान मांगा। राजा ने अपने वचन का पालन करते हुए हिमालय देश में सभी पक्षियों को एकत्रित किया। हंस, मोर और अन्य सभी प्रकार के पक्षी आए और एक विशाल चट्टानी पठार पर एकत्रित हो गए। फिर राजा ने अपनी पुत्री को बुलवाया और उससे कहा कि वह जाकर अपने मनपसंद का पति चुने। जब उसने पक्षियों के समूह का अवलोकन किया, तो उसकी दृष्टि रत्नजड़ित गर्दन और रंग-बिरंगी पूंछ वाले मोर पर पड़ी; और उसने उसे चुनते हुए कहा, "यही मेरा पति हो।" तब पक्षियों का समूह मोर के पास गया और बोला, "मित्र मोर, इस राजकुमारी ने इन सभी पक्षियों में से अपने पति का चुनाव करते समय तुम्हें चुना है।"

अपनी अत्यधिक खुशी में मदहोश होकर मोर ने कहा, "इस धरती पर तुमने कभी नहीं देखा कि मैं कितना फुर्तीला हूँ;" और सारी मर्यादाओं को धता बताते हुए उसने अपने पंख फैलाए और नाचने लगा; और नाचते हुए उसने अपने शरीर को सबके सामने प्रकट कर दिया।

शर्म से व्याकुल होकर, सुनहरे बत्तख के राजा ने कहा, "इस बत्तख में न तो हृदय में लज्जा है और न ही बाहरी व्यवहार में शालीनता; मैं अपनी बेटी को ऐसे निर्लज्ज व्यक्ति को कभी नहीं दूंगा।" और वहाँ पक्षियों की उस सभा के बीच, उसने यह छंद दोहराया:-

> आपको एक सुखद संदेश मिलता है, एक सुंदर पीठ।
>
> नीलम के समान रंग की गर्दन;
>
> आपके फैले हुए पंख एक फैदम (6 फीट) की लंबाई तक पहुंचते हैं।
>
> इसके अलावा, तुम्हारा नाचना तुम्हें नुकसान पहुंचाता है, मेरे बच्चे।

सभी उपस्थित लोगों के सामने ही राजा राजसी बत्तख ने अपनी बेटी का विवाह अपने भतीजे, एक युवा बत्तख से करवा दिया। राजकुमारी को खोने के दुख से लज्जित मोर तुरंत वहां से उठा और भाग गया। और राजा स्वर्ण बत्तख भी अपने निवास स्थान पर लौट गया।

“इस प्रकार, भिक्षुओं,” गुरु ने कहा, “यह एकमात्र समय नहीं है जब उसके लज्जा भंग ने उसे हानि पहुँचाई है; जिस प्रकार इसने अब उसे धर्म का रत्न खो दिया है, उसी प्रकार अतीत में इसने उसे पत्नी का रत्न खो दिया था।” यह पाठ समाप्त करने के बाद, उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा,

"बहुत सारी वस्तुओं से सुसज्जित वह भिक्षु उस समय का मोर था, और मैं स्वयं शाही बत्तख था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 6.

(2)अर्थात भाई, बहनें, आम भाई और आम बहनें।

(3)सं. 270.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सम्मोदामन-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-33-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 33
सम्मोदमन-जातक

जब तक सद्भाव कायम है।

यह कहानी गुरु ने कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) के पास बरगद के बाग में रहते हुए सुनाई थी, कुली के सिर पर बांधने वाले पैड को लेकर हुए झगड़े के बारे में, जैसा कि कुणाल-जातक (*1) में बताया जाएगा।

इस अवसर पर गुरु ने अपने परिवार से कहा, "हे स्वामियों, परिवार में कलह उचित नहीं है। जी हाँ, पुराने समय में, जो जानवर सद्भाव से रहते हुए अपने शत्रुओं को हरा देते थे, वे आपस में झगड़ने पर पूरी तरह नष्ट हो गए।" और अपने शाही परिवार के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक बटेर के रूप में हुआ और वे हजारों बटेरों के झुंड के मुखिया के रूप में जंगल में रहते थे। उसी दौरान एक शिकारी बटेरों का शिकार करने के लिए उस स्थान पर आया; और वह बटेरों की आवाज की नकल करता था, जब तक कि उसने देखा कि पक्षी एक साथ जमा हो गए हैं। तब उसने अपना जाल उन पर फेंका और जाल के किनारों को आपस में टकराकर उन्हें एक ढेर में इकट्ठा कर लिया। फिर उसने उन्हें अपनी टोकरी में भर लिया और घर जाकर अपने शिकार को बेचकर जीविका कमाने लगा।

एक दिन बोधिसत्व ने उन बटेरों से कहा, "यह शिकारी हमारे परिवार में आतंक मचा रहा है। मेरे पास एक उपाय है जिससे वह हमें पकड़ नहीं पाएगा। आज से, जैसे ही वह तुम पर जाल फेंके, तुम सब अपना सिर एक-एक जाल में डाल दो और फिर सब मिलकर उस जाल को अपने मनचाहे स्थान पर ले जाओ और वहाँ उसे किसी कंटीली झाड़ी में डाल दो; ऐसा करने से हम सब अपने-अपने जालों से मुक्त हो जाएँगे।" "बहुत अच्छा," सबने तुरंत सहमति जताते हुए कहा।

अगले दिन जब उन पर जाल डाला गया, तो उन्होंने ठीक वैसा ही किया जैसा बोधिसत्व ने उन्हें बताया था: उन्होंने जाल उठाया और उसे कंटीली झाड़ियों पर गिरा दिया, और खुद उसके नीचे से निकल गए। शिकारी अभी अपना जाल सुलझा ही रहा था कि शाम हो गई; और वह खाली हाथ लौट गया। अगले दिन और उसके बाद के दिनों में भी बटेरों ने यही चाल चली। इस तरह शिकारी के लिए यह नियमित हो गया कि वह सूर्यास्त तक अपना जाल सुलझाने में लगा रहता और फिर खाली हाथ घर लौटता। इस पर उसकी पत्नी क्रोधित हो गई और बोली, "तुम दिन-ब-दिन खाली हाथ लौट रहे हो; मुझे लगता है कि तुम्हें कहीं और भी अपना काम चलाना है।"

“नहीं, मेरी प्रिय,” शिकारी ने कहा; “मुझे कोई दूसरा ठिकाना नहीं चलाना है। असल बात तो यह है कि अब ये बटेरें मिलकर काम करने लगी हैं। जैसे ही मेरा जाल उन पर पड़ता है, वे उसे लेकर उड़ जाती हैं और काँटेदार झाड़ी में छोड़कर भाग जाती हैं। फिर भी, वे हमेशा एकता में नहीं रहेंगी। तुम चिंता मत करो; जैसे ही वे आपस में झगड़ने लगेंगी, मैं सबको पकड़ लूँगा, और यह देखकर तुम्हारे चेहरे पर मुस्कान आ जाएगी।” और ऐसा कहकर उसने अपनी पत्नी से यह पंक्ति दोहराई:-

> जब शांति का माहौल बना हुआ था, तब पक्षी जाल से उड़ गए।
>
> जब झगड़े बढ़ेंगे, तो वे मेरे शिकार बन जाएंगे।

इसके कुछ ही समय बाद, एक बटेर अपने चारागाह पर उतरते समय गलती से दूसरी बटेर के सिर पर चढ़ गई। "मेरे सिर पर कौन चला?" दूसरी बटेर गुस्से से चिल्लाई। "मैं ही चली; पर मेरा इरादा नहीं था। गुस्सा मत हो," पहली बटेर ने कहा। लेकिन इस जवाब के बावजूद, दूसरी बटेर पहले की तरह ही गुस्से में थी। एक-दूसरे को ताने मारते हुए, वे कहने लगे, "मुझे लगता है कि जाल तो तुमने अकेले ही उठाया है।" जब वे इस तरह आपस में झगड़ रहे थे, तब बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "झगड़ालू व्यक्ति के साथ कोई सुरक्षा नहीं है। वह समय आ गया है जब वे जाल नहीं उठा पाएंगे, और इससे उनका भारी विनाश होगा। शिकारी को अपना मौका मिल जाएगा। मैं अब यहाँ नहीं रुक सकता।" और इतना कहकर वे अपने साथियों के साथ कहीं और चले गए।

कुछ दिनों बाद शिकारी फिर लौटा और बटेर की आवाज़ की नकल करते हुए उन्हें इकट्ठा किया और फिर उन पर अपना जाल फेंक दिया। तब एक बटेर बोली, "कहते हैं जब तुम जाल उठा रहे थे, तो तुम्हारे सिर के बाल झड़ गए। अब तुम्हारी बारी है; उठ जाओ।" दूसरी बटेर ने जवाब दिया, "कहते हैं जब तुम जाल उठा रहे थे, तो तुम्हारे दोनों पंख झड़ गए। अब तुम्हारी बारी है; उठ जाओ।"

लेकिन जब वे एक-दूसरे को जाल उठाने के लिए आमंत्रित कर रहे थे, तो शिकारी ने खुद ही उनके लिए जाल उठाया और उन्हें एक ढेर में अपनी टोकरी में ठूंस दिया और उन्हें घर ले गया, जिससे उसकी पत्नी के चेहरे पर मुस्कान छा गई।

“हे महाराज,” गुरु ने कहा, “परिवार में कलह जैसी बात उचित नहीं है; कलह केवल विनाश की ओर ले जाती है।” अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, “देवदत्त उन दिनों का मूर्ख बटेर था, और मैं स्वयं बुद्धिमान और अच्छा बटेर हूँ।”

फुटनोट:

(1) संख्या 536.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मच्छ-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-34-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 34
मच्छा-जातक

"यह ठंड नहीं है।" - यह कहानी गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें भिक्षु संघ में शामिल होने से पहले सांसारिक जीवन की पत्नी द्वारा बहकाए जाने का वर्णन था। इस अवसर पर गुरु ने कहा, "क्या यह सच है, जैसा मैंने सुना है, भिक्षु भाई, कि तुम वासना से ग्रस्त हो?"

"जी हां, भगवान बुद्ध।"

"किसकी वजह से?"

“हे प्रभु, मेरी पूर्व पत्नी स्पर्श में कोमल है; मैं उसे छोड़ नहीं सकता!” तब गुरु ने कहा, “भाई, यह स्त्री तुम्हारे लिए हानिकारक है। अतीत में भी इसी के कारण तुम्हारा अंत होने वाला था, जब मैंने तुम्हें बचाया था।” और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके कुलपुजारी बन गए।

उन दिनों कुछ मछुआरे नदी में जाल फेंक रहे थे। तभी एक बड़ी मछली अपनी पत्नी के साथ प्रेम-क्रीड़ा करते हुए आई। मछली ने जाल की गंध पहचान ली और उससे आगे तैरते हुए उसके चारों ओर चक्कर लगाकर बच निकली। लेकिन उसका प्रेमी, वासना में अंधा होकर, सीधे जाल में फंस गया। जैसे ही मछुआरों ने उसे अपने जाल में महसूस किया, उन्होंने जाल खींच लिया और मछली को बाहर निकाल लिया; उन्होंने उसे तुरंत नहीं मारा, बल्कि जिंदा ही रेत पर फेंक दिया। उन्होंने कहा, "हम इसे अंगारों में पकाकर खाएंगे" और उसी के अनुसार वे आग जलाने और उसे भूनने के लिए एक सींक तराशने में जुट गए। मछली विलाप करते हुए मन ही मन बोली, "मुझे अंगारों की यातना, सींक की पीड़ा या कोई और दर्द नहीं सता रहा है; बल्कि केवल इस दुखद विचार से पीड़ा हो रही है कि मेरी पत्नी यह सोचकर दुखी होगी कि मैं किसी और के साथ चला गया हूँ।" और उसने यह पंक्ति दोहराई:-

> यह न तो ठंड है, न गर्मी है, और न ही चोट पहुंचाने वाला जाल है;
>
> मुझे बस इस बात का डर है कि मेरी प्यारी पत्नी ऐसा सोचेगी
>
> किसी और के प्यार ने उसके पति को उससे दूर कर दिया है।

तभी पुजारी अपने दासों के साथ नदी किनारे स्नान करने आया। वह सभी जानवरों की भाषा समझता था। इसलिए, जब उसने मछली की रोने की आवाज़ सुनी, तो उसने मन ही मन सोचा, "यह मछली वासना की पुकार पर विलाप कर रही है। यदि वह इस अस्वस्थ मनःस्थिति में मर जाए, तो वह नरक में पुनर्जन्म से नहीं बच पाएगी। मैं इसे बचाऊँगा।" इसलिए वह मछुआरों के पास गया और बोला, "मेरे साथियों, क्या तुम हमें हर दिन हमारी करी के लिए एक मछली नहीं देते?" मछुआरों ने कहा, "क्या कहते हो, महाराज? हम निवेदन करते हैं, जो भी मछली तुम्हें पसंद आए, ले जाओ।" "हमें इस मछली के अलावा किसी और की ज़रूरत नहीं है; बस यही एक मछली दे दो।" "यह आपकी है, महाराज।"

बोधिसत्व ने मछली को दोनों हाथों में लेकर किनारे पर बैठ कर कहा, "मित्र मछली, यदि आज मैंने तुम्हें न देखा होता, तो तुम्हारी मृत्यु हो जाती। अब से वासनाओं के वश में मत रहो।" यह कहकर उन्होंने मछली को पानी में फेंक दिया और नगर की ओर चल दिए।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में वासना से ग्रस्त भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) प्राप्त किया। गुरु ने संबंध की व्याख्या करते हुए जन्म की पहचान बताई और कहा, "पूर्व पत्नी उन दिनों की मादा मछली थी, वासना से ग्रस्त भाई नर मछली था, और मैं स्वयं कुल-पुजारी था।"

[नोट: जातक क्रमांक 216 और 297 की तुलना करें।]

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वत्तक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 35
वट्टक-जातक

“ऐसे पंख जो उड़ नहीं सकते।”—यह कहानी गुरुजी ने मगध में भिक्षा मांगने के दौरान जंगल की आग के बुझने के बारे में सुनाई थी। एक बार गुरुजी मगध में भिक्षा मांगने के दौरान सुबह एक गाँव में भिक्षा मांगने गए। भोजन के बाद लौटते समय वे भिक्षुओं के साथ फिर से बाहर निकले। तभी एक भीषण आग लग गई। गुरुजी के आगे और पीछे कई भिक्षु थे। आग फैलती चली गई और चारों ओर धुएँ और लपटों की चादर बिछ गई। यह देखकर कुछ गैर-भिक्षुओं को मृत्यु का भय सताने लगा। वे बोले, “चलो हम भी एक छोटी सी आग जलाते हैं; इससे बड़ी आग उस जगह पर नहीं फैलेगी जहाँ हमने आग लगाई है।” और इसी विचार से उन्होंने अपनी बारूद की लकड़ियों से आग जलाना शुरू कर दिया।

लेकिन दूसरों ने कहा, "भाइयों, तुम ये क्या कर रहे हो? तुम उन लोगों के समान हो जो आकाश में चंद्रमा, पूर्व से अनगिनत किरणों के साथ उगते सूर्य, अपने तट पर स्थित समुद्र, या अपनी आँखों के सामने खड़े विशाल पर्वत शिनेरु पर ध्यान नहीं देते। जब तुम देवों और मनुष्यों में समान रूप से असाधारण गुरु के साथ यात्रा कर रहे हो, तब भी तुम सर्वज्ञानी बुद्ध का ध्यान नहीं रखते, बल्कि चिल्लाते हो, 'आग जलाएँ!' तुम बुद्ध की शक्ति को नहीं जानते! आओ, गुरु के पास चलें।" तब, आगे और पीछे से सभी भाइयों ने मिलकर ज्ञान के स्वामी को घेर लिया। एक स्थान पर गुरु रुक गए, उनके चारों ओर भाइयों का यह विशाल समूह था। लपटें ऐसे भड़क उठीं मानो उन्हें भस्म कर देंगी। लेकिन जब वे उस स्थान के पास पहुँचे जहाँ बुद्ध खड़े थे, तो वे सोलह कदम से अधिक दूर नहीं जा सके, और वहीं बुझ गईं, जैसे कोई मशाल पानी में डूब जाती है। इसमें बत्तीस लंबाई के व्यास वाले स्थान पर फैलने की शक्ति नहीं थी।

भिक्षुओं ने गुरु की स्तुति करते हुए कहा, "हे बुद्ध के गुण कितने महान हैं! क्योंकि यह अग्नि, भले ही इंद्रियहीन है, बुद्ध के स्थान को अपनी चपेट में नहीं ले सकी, बल्कि पानी में मशाल की तरह बुझ गई। हे बुद्ध की शक्तियाँ कितनी अद्‌भुत हैं!"

उनकी बातें सुनकर गुरु ने कहा, "हे भाइयों, यह मेरी कोई वर्तमान शक्ति नहीं है जो इस स्थान पर पहुँचते ही आग को बुझा देती है। यह मेरे एक पूर्व 'सत्य कर्म' की शक्ति है। क्योंकि इस स्थान पर युगों-युगों तक कोई आग नहीं जलेगी, यह चमत्कार युगों तक कायम रहेगा।"

तब वरिष्ठ भिक्षु आनंद ने एक वस्त्र को चार भागों में मोड़कर गुरुजी के बैठने के लिए फैला दिया। गुरुजी बैठ गए। बुद्ध को प्रणाम करते हुए, जो पालथी मारकर बैठे थे, उनके चारों ओर भिक्षु भी बैठ गए। फिर उन्होंने उनसे पूछा, "हे गुरुजी, हमें केवल वर्तमान का ज्ञान है; अतीत हमसे छिपा हुआ है। कृपया हमें अतीत के बारे में बताएं।" और उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, मगध में ठीक इसी स्थान पर, बोधिसत्व ने बटेर के रूप में पुनर्जन्म लिया। जिस अंडे में उनका जन्म हुआ था, उसके खोल को तोड़कर वे एक नन्हे बटेर के रूप में बाहर आए, जो लगभग एक बड़ी गेंद के आकार का था। उनके माता-पिता उन्हें घोंसले में लिटाए रखते थे और अपनी चोंच में भोजन लाकर उन्हें खिलाते थे। उनमें न तो पंख फैलाकर हवा में उड़ने की शक्ति थी और न ही पैर उठाकर जमीन पर चलने की। वर्ष दर वर्ष वह स्थान जंगल की आग से तबाह होता रहता था; और ठीक इसी समय, लपटें ज़ोरदार गर्जना के साथ उस पर टूट पड़ीं। अपने-अपने घोंसलों से निकले पक्षियों के झुंड मृत्यु के भय से कांप उठे और चीखते हुए उड़ गए। बोधिसत्व के माता-पिता भी अन्य पक्षियों की तरह भयभीत हो गए और उन्हें वहीं छोड़कर उड़ गए। घोंसले में लेटे हुए बोधिसत्व ने अपनी गर्दन फैला ली और अपनी ओर फैलती हुई लपटों को देखकर मन ही मन सोचने लगे, "काश मेरे पास पंख होते और मैं उड़ पाता, तो मैं उड़कर यहाँ से सुरक्षित निकल जाता; या, अगर मैं अपने पैरों को हिला पाता और चल पाता, तो मैं पैदल ही कहीं और भाग जाता। इसके अलावा, मेरे माता-पिता मृत्यु के भय से व्याकुल होकर अपनी जान बचाने के लिए भाग गए हैं, मुझे यहाँ संसार में बिलकुल अकेला छोड़कर। मेरा कोई रक्षक या सहायक नहीं है। तो फिर, आज मैं क्या करूँ?"

तब उनके मन में यह विचार आया:- "इस संसार में, जिसे अच्छाई की प्रभावशीलता कहा जाता है, और जिसे सत्य की प्रभावशीलता कहा जाता है, वह विद्यमान है। ऐसे लोग हैं जिन्होंने बीते युगों में सिद्धियों को प्राप्त करके बोधि वृक्ष के नीचे सर्वज्ञानी अवस्था प्राप्त की है; जिन्होंने अच्छाई, शांति और ज्ञान के द्वारा मोक्ष प्राप्त किया है और ऐसे मोक्ष के ज्ञान का विवेक भी रखते हैं; जो सत्य, करुणा, दया और धैर्य से परिपूर्ण हैं; जिनका प्रेम सभी प्राणियों को समान रूप से आलिंगन करता है; जिन्हें मनुष्य असीम ज्ञानी बुद्ध कहते हैं। उनके द्वारा प्राप्त गुणों में एक प्रभावशीलता है। और मैं भी एक सत्य को ग्रहण करता हूँ; मैं प्रकृति के एक ही सिद्धांत में विश्वास रखता हूँ। इसलिए, यह मुझे अतीत के बुद्धों और उनके द्वारा अर्जित महत्व को याद करने और प्रकृति के सिद्धांत के प्रति अपने भीतर निहित सच्चे

विश्वास को थामे रखने के लिए प्रेरित करता है; और सत्य के एक कार्य द्वारा ज्वालाओं को वापस बुझाने के लिए, ताकि मैं और शेष पक्षी दोनों बच सकें।"

इसलिए यह कहा गया है:-

इस संसार में अच्छाई में असाधारण कृपा निहित है;
इसमें सत्य, करुणा और जीवन की पवित्रता है।
इसके द्वारा, मैं सत्य का एक बेमिसाल कार्य करूंगा।

आस्था की शक्ति को याद करते हुए और विचार करते हुए
बीते दिनों में विजय प्राप्त करने वालों को श्रद्धांजलि।
सत्य में दृढ़, मैंने सत्य का एक कार्य किया।
तदनुसार, बोधिसत्व ने बहुत पहले दिवंगत हुए बुद्धों की शक्ति को याद करते हुए, अपने भीतर निहित सच्चे विश्वास के नाम पर सत्य का एक कार्य किया और इस श्लोक को दोहराया:-

ऐसे पंख जो उड़ना नहीं जानते, ऐसे पैर जो अभी चलना नहीं जानते,
मेरे माता-पिता ने मुझे त्याग दिया है, मैं यहाँ पड़ा हूँ!
इसीलिए मैं आपसे आह्वान करता हूँ, हे अग्नि के भयानक स्वामी,
आदिम जातवेद, बारी! वापस जाओ!
सत्य का कार्य करते हुए भी, जातवेद सोलह कदम पीछे हट गए; और पीछे हटते समय ज्वालाएँ जंगल में जाकर अपने रास्ते में आने वाली हर चीज़ को भस्म नहीं कर गईं। नहीं; वे वहीं बुझ गईं, मानो पानी में डूबी हुई मशाल। इसलिए कहा गया है:-

मैं अपना सत्य का वचन लेकर आया था, और उसके साथ
धधकती आग की लपटों ने सोलह लंबाई छोड़ दीं
अछूते, जैसे पानी के संपर्क में आने से ज्वालाएं बुझ जाती हैं।
और चूंकि वह स्थान पूरे युग भर अग्नि से नष्ट होने से बचा रहा, इसलिए इस चमत्कार को 'युग-चमत्कार' कहा जाता है। जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो सत्य का यह कार्य करने वाले बोधिसत्व अपने कर्मों के फल के अनुसार इस दुनिया से विदा हो गए।

“इस प्रकार, भिक्षुओं,” गुरु ने कहा, “यह मेरी वर्तमान शक्ति नहीं है, बल्कि मेरे द्वारा बचपन में किए गए सत्य के एक कर्म की शक्ति है, जिसके कारण जंगल के इस स्थान से ज्वाला गुजरी है।” अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने सत्यों का प्रचार किया, जिसके अंत में कुछ ने प्रथम, कुछ ने द्वितीय, कुछ ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) प्राप्त किया, जबकि अन्य अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गए। गुरु ने जन्म के संबंध को समझाते हुए कहा, “मेरे वर्तमान माता-पिता उन दिनों के माता-पिता थे, और मैं स्वयं बटेरों का राजा हूँ।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सकुण-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-36-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 36
सकुना-जातक

"हे वायु के निवासियों!" - यह कहानी गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसकी कुटिया जल गई थी।

परंपरा के अनुसार, एक भिक्षु को गुरु द्वारा ध्यान के लिए एक विषय दिया गया, और वे जेतवन मठ से कोसल देश में गए और वहाँ एक सीमावर्ती गाँव के निकट जंगल में एक कुटिया में रहने लगे। वहाँ रहने के पहले ही महीने में उनकी कुटिया जल गई। उन्होंने गाँव वालों को बताया, "मेरी कुटिया जल गई है; मैं असुविधा में रह रहा हूँ।" गाँव वालों ने कहा, "अभी ज़मीन सूखे से ग्रस्त है; खेतों की सिंचाई हो

जाने पर हम इसे देख लेंगे।" सिंचाई पूरी होने पर उन्होंने कहा कि पहले उन्हें बुवाई करनी होगी; बुवाई पूरी होने पर उन्हें बाड़ लगानी थी; बाड़ लगाने के बाद उन्हें पहले निराई, कटाई और अनाज निकालने का काम करना था; इसी तरह एक के बाद एक काम करते-करते पूरे तीन महीने बीत गए।

तीन महीने तक खुले आसमान के नीचे असुविधा में रहने के बाद, उस भाई ने ध्यान के लिए अपना विषय तो विकसित कर लिया था, लेकिन आगे नहीं बढ़ सका। इसलिए, वर्षा ऋतु के अंत में आने वाले पवाराना उत्सव के बाद, वह गुरु के पास वापस गया और विधिपूर्वक प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गया। स्नेहपूर्ण अभिवादन के बाद, गुरु ने कहा, "भाई, क्या तुमने वर्षा ऋतु सुखपूर्वक बिताई? क्या तुम्हारा ध्यान सफल रहा?" भाई ने उन्हें सब कुछ बताया और कहा, "चूंकि मुझे रहने के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला, इसलिए मेरा ध्यान सफल नहीं हो सका।"

गुरु ने कहा, "भाई, पुराने समय में तो जानवर भी जानते थे कि उनके लिए क्या ठीक है और क्या नहीं। तुम यह कैसे नहीं जानते?" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व पक्षी के रूप में जन्मे और एक विशाल वृक्ष के चारों ओर, बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले एक समूह के मुखिया के रूप में रहने लगे। एक दिन, जब उस वृक्ष की शाखाएँ आपस में रगड़ खा रही थीं, तो धूल गिरने लगी और फिर धुआँ उठने लगा। जब बोधिसत्व को इसका एहसास हुआ, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि ये दोनों शाखाएँ इसी तरह आपस में रगड़ खाती रहीं, तो आग लग जाएगी; और आग गिरकर पुराने पत्तों को पकड़ लेगी, और इस प्रकार इस वृक्ष को भी जला देगी। हम यहाँ नहीं रह सकते; उचित यही होगा कि हम शीघ्र ही कहीं और चले जाएँ।" और उन्होंने पक्षियों के समूह को यह श्लोक दोहराया:-

हे आकाश के निवासियों, जिन्होंने अपना ठिकाना ढूंढ लिया है!
इन शाखाओं में आग के निशान देखें
इस धरती से निकले वृक्ष से शुरुआत करो! उड़ान में सुरक्षा की तलाश करो!
हमारा भरोसेमंद घर, अब मौत का अड्डा बन गया है!
बोधिसत्व की सलाह मानने वाले बुद्धिमान पक्षी तुरंत हवा में उड़ गए और उनके साथ कहीं और चले गए। लेकिन मूर्ख पक्षियों ने कहा,

“उसका यही हाल है; वो पानी की एक बूंद में भी मगरमच्छ देखता है।” बोधिसत्व की बातों पर ध्यान न देते हुए वे वहीं रुक गए। कुछ ही क्षणों में, जैसा बोधिसत्व ने भविष्यवाणी की थी, सचमुच आग भड़क उठी और पेड़ में लपटें उठने लगीं। जब धुआँ और आग उठी, तो धुएँ से आँखें चौंधिया जाने के कारण पक्षी भाग नहीं सके; एक-एक करके वे आग में गिर पड़े और जलकर राख हो गए।

“इसलिए, हे भिक्षुओं,” गुरु ने कहा, “पुराने समय में वृक्षों की चोटियों पर रहने वाले जानवर भी जानते थे कि उनके लिए क्या उचित है और क्या नहीं। तुम कैसे नहीं जानते थे?” उनका उपदेश समाप्त हुआ और उन्होंने सत्यों का प्रवचन दिया, जिसके अंत में उस भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म का वर्णन किया, “बुद्ध के शिष्य वे पक्षी थे जिन्होंने बोधिसत्व की बात सुनी, और मैं स्वयं वह बुद्धिमान और नेक पक्षी था।”

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तित्तिर-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-37-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 37
तित्तिरा-जातक

"जो लोग उम्र का सम्मान करते हैं।" - यह कहानी गुरु (बुद्ध) ने श्रावस्ती नगर जाते समय सुनाई थी, जिसमें बताया गया था कि कैसे वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र को एक रात ठहरने की जगह नहीं मिली।

जब अनाथपिंडिका ने अपना मठ बनवा लिया और उसके पूरा होने की सूचना भेज दी, तो गुरुजी राजगृह नगर छोड़कर वैशाली नगर आ गए और अपनी इच्छा अनुसार वैशाली में विश्राम करने के बाद अपनी यात्रा पर निकल पड़े। तभी छह शिष्य आगे बढ़ गए और गुरुजी के लिए आवास मिलने से पहले ही उन्होंने सारे आवासों पर कब्जा कर लिया और उन्हें अपने वरिष्ठों, गुरुओं और स्वयं में बाँट लिया। जब गुरुजी बाद में आए, तो उन्हें रात बिताने के लिए कोई आवास नहीं मिला। सारिपुत्र के शिष्यों ने भी बहुत खोजबीन की, लेकिन उन्हें गुरुजी के लिए आवास नहीं मिला। आवास न होने के कारण गुरुजी ने गुरुजी के आवास के पास एक वृक्ष की छाया में रात बिताई; वे या तो इधर-उधर टहलते रहे या वृक्ष की छाया में बैठे रहे।

भोर होते ही गुरुजी खांसते हुए बाहर आए। वरिष्ठ भिक्षु भी खांसे। गुरुजी ने पूछा, "यह कौन है?" गुरुजी ने कहा, "मैं सारिपुत्र हूँ, श्रीमान।" गुरुजी ने पूछा, "सारिपुत्र, आप इस समय यहाँ क्या कर रहे हैं?" तब वरिष्ठ भिक्षु ने अपनी कहानी सुनाई, जिसके अंत में गुरुजी ने सोचा, "अभी भी, जब मैं जीवित हूँ, भिक्षुओं में शिष्टाचार और आज्ञाकारिता का अभाव है; मेरे मरने के बाद वे क्या करेंगे?" और इस विचार ने उन्हें सत्य के लिए चिंता से भर दिया। जैसे ही दिन हुआ, उन्होंने भिक्षुओं की सभा बुलाई और उनसे पूछा, "क्या यह सच है, भिक्षुओं, जैसा मैंने सुना है, कि छह भिक्षुओं के अनुयायी आगे चले गए और भिक्षुओं में से वरिष्ठ भिक्षुओं को रात भर ठहरने नहीं दिया?" उत्तर मिला, "जी हाँ, भगवान बुद्ध।" इस पर, उन्होंने छह अनुयायियों को फटकार लगाते हुए और सभी को सबक सिखाते हुए भाइयों को संबोधित किया और कहा, "मुझे बताओ, भाइयों, सबसे अच्छा आवास, सबसे अच्छा पानी और सबसे अच्छा चावल पाने का हकदार कौन है?"

कुछ ने उत्तर दिया, "वह जो भिक्षु बनने से पहले एक कुलीन व्यक्ति था।" कुछ ने कहा, "वह जो मूल रूप से ब्राह्मण था, या एक धनी व्यक्ति था।" कुछ ने ज़ोर देकर कहा, "वह व्यक्ति जो संघ के नियमों में पारंगत है; वह व्यक्ति जो धर्ममार्ग का उपदेश दे सकता है; वह व्यक्ति जिसने रहस्यमयी परमानंद (सम्मोहन) की पहली, दूसरी, तीसरी या चौथी अवस्था प्राप्त कर ली है।" जबकि कुछ ने फिर कहा, "वह व्यक्ति जो निर्वाण (मोक्ष) के प्रथम, द्वितीय या तृतीय मार्ग (सम्मोहन) में है, या अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध व्यक्ति); वह व्यक्ति जो तीन महा सत्यों को जानता है; वह व्यक्ति जिसे छह उच्चतर ज्ञान प्राप्त हैं।"

जब भिक्षुओं ने आवास और इसी प्रकार के मामलों में वरीयता के योग्य व्यक्ति के बारे में अपने विचार स्पष्ट रूप से बता दिए, तो गुरु ने कहा, "जिस धम्म (मार्ग) का मैं उपदेश देता हूँ, उसमें आवास और इसी प्रकार के मामलों में वरीयता का मानदंड कुलीन जन्म, ब्राह्मण होना या संघ में प्रवेश से पहले धनी होना नहीं है; मानदंड संघ के नियमों, सूत्रों या आध्यात्मिक ग्रंथों (*1) का ज्ञान होना भी नहीं है; न ही यह समाधि की चार अवस्थाओं में से किसी एक की प्राप्ति है, न ही मोक्ष के चार मार्गों में से किसी एक पर चलना है। भिक्षुओं, मेरे मार्ग में वरिष्ठता ही वचन और कर्म में आदर, अभिवादन और सभी उचित सेवा का आधार है; वरिष्ठों को ही सर्वोत्तम आवास, सर्वोत्तम जल और सर्वोत्तम चावल प्राप्त होने चाहिए। यही सच्चा मानदंड है, और इसलिए वरिष्ठ भिक्षु को ये सब प्राप्त होने चाहिए। फिर भी, भिक्षुओं, यहाँ सारिपुत्र हैं, जो मेरे प्रमुख हैं।" शिष्य, जिसने लघु सत्य के चक्र को गतिमान किया है, और जो मेरे बाद ठहरने का पात्र है। और सारिपुत्र ने यह रात एक वृक्ष की गोद में बिना किसी आश्रय के बिताई! यदि तुममें अभी भी आदर और आज्ञाकारिता का अभाव है, तो समय बीतने पर तुम्हारा व्यवहार कैसा होगा?

और आगे की शिक्षा देते हुए उन्होंने कहा, "हे भाइयों, पुराने समय में, यहाँ तक कि पशुओं ने भी यह निष्कर्ष निकाला कि उनके लिए एक-दूसरे का आदर और अधीनता किए बिना या अपने सामूहिक जीवन को व्यवस्थित किए बिना रहना उचित नहीं था; इन पशुओं ने भी यह पता लगाने का निर्णय लिया कि उनमें से वरिष्ठ कौन है, और फिर उसका सर्वथा आदर करें। अतः उन्होंने इस विषय पर विचार किया, और जब उन्हें पता चल गया कि उनमें से वरिष्ठ कौन है, तो उन्होंने उसका सर्वथा आदर किया, जिसके फलस्वरूप वे अपने जीवन के अंत में मनुष्यों के स्वर्ग में विलीन हो गए।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, हिमालय की ढलानों पर एक विशाल बरगद के पेड़ के पास, तीन मित्र रहते थे: एक तीतर, एक बंदर और एक हाथी। उनमें आपस में सम्मान और अधीनता की भावना नहीं रही और उनके जीवन में कोई व्यवस्था नहीं थी। तब उन्हें लगा कि इस तरह रहना उनके लिए उचित नहीं है और उन्हें यह पता लगाना चाहिए कि उनमें से वरिष्ठ कौन है और उसका सम्मान करना चाहिए।

वे तीनों यह सोच रहे थे कि इनमें से सबसे पुराना कौन है, तभी एक दिन उनके मन में एक विचार आया। बरगद के पेड़ की तलहटी में बैठे हुए तीतर और बंदर ने हाथी से कहा, "मित्र हाथी, जब तुम्हें यह बरगद पहली बार याद है, तब यह कितना बड़ा था?" हाथी ने कहा, "जब मैं छोटा था, तब यह बरगद एक छोटी सी झाड़ी मात्र थी, जिस पर मैं चला करता था; और जब मैं इस पर खड़ा होता था, तो इसकी सबसे ऊपरी शाखाएँ मेरे पेट तक पहुँचती थीं। मैं इस पेड़ को तब से जानता हूँ जब यह एक छोटी सी झाड़ी मात्र थी।"

इसके बाद बाकी दोनों बंदरों ने भी उसी बंदर से वही सवाल पूछा; और उसने जवाब दिया, "मेरे दोस्तों, जब मैं छोटा था, तो मैं ज़मीन पर बैठकर बस अपनी गर्दन फैलाता था और इस बरगद के सबसे ऊपरी अंकुर खा लेता था। इसलिए मैं इस बरगद को तब से जानता हूँ जब यह बहुत छोटा था।"

फिर बाकी दो पक्षियों ने तीतर से वही सवाल पूछा; और उसने कहा, "दोस्तों, पुराने समय में फलां जगह पर एक बड़ा बरगद का पेड़ था; मैंने उसके बीज खाए और उन्हें यहीं पर त्याग दिया; यही इस पेड़ की उत्पत्ति है। इसलिए, मुझे इस पेड़ के जन्म से पहले से ही इसकी जानकारी है, और मैं तुम दोनों से उम्र में बड़ा हूँ।"

इस पर बंदर और हाथी ने ऋषि तीतर से कहा, "मित्र, आप सबसे बड़े हैं। अब से हम आपका आदर और सम्मान करेंगे, आपके प्रति श्रद्धा और श्रद्धा का भाव रखेंगे, वचन और कर्म से आदर करेंगे, अभिवादन करेंगे और सभी उचित सम्मान प्रदान करेंगे; और हम आपकी सलाह का पालन करेंगे। आप भी अब से हमें आवश्यकतानुसार सलाह देते रहें।"

तब से तीतर पक्षी ने उन्हें सलाह दी और उन्हें ईश्वरीय आज्ञाओं में दृढ़ किया, जिनका पालन करने का वचन उसने स्वयं भी लिया। इस प्रकार ईश्वरीय आज्ञाओं में दृढ़ होकर, आपस में आदरणीय और आज्ञाकारी बनकर, और अपने सामान्य जीवन को उचित रूप से व्यवस्थित करके, इन तीनों ने इस जीवन के अंत में स्वर्ग में पुनर्जन्म सुनिश्चित किया।

"इन तीनों के उद्देश्य," गुरु ने आगे कहा, "'तीतर पक्षी की पवित्रता' के नाम से जाने जाते हैं। यदि ये तीनों प्राणी, हे भिक्षुओं, आदर और अधीनता के साथ एक साथ रहते हैं, तो आप, जिन्होंने इतने सुशिक्षित धर्म को अपनाया है, उचित आदर और अधीनता के बिना कैसे एक साथ रह सकते हैं? हे भिक्षुओं, अब से मैं यह नियम बनाता हूँ कि वरिष्ठता का वचन और कर्म, अभिवादन और सभी उचित सेवाओं में आदर किया जाएगा; वरिष्ठता सर्वोत्तम आवास, सर्वोत्तम जल और सर्वोत्तम चावल का अधिकार होगी; और कभी भी किसी कनिष्ठ को किसी वरिष्ठ को आवास से वंचित न करने दें। जो कोई भी अपने वरिष्ठ को आवास से वंचित रखता है, वह अपराध करता है।"

इस पाठ के अंत में गुरु ने बुद्ध के रूप में इस श्लोक को दोहराया:-

जो लोग उम्र का सम्मान करते हैं, वे सत्य में पारंगत होते हैं;
अब प्रशंसा और परलोक का सुख ही उनका प्रतिफल है।

जब गुरु ने आयु का आदर करने के गुण के बारे में बोलना समाप्त कर दिया, तो उन्होंने वर्णन को आगे बढ़ाते हुए जन्म की पहचान करते हुए कहा, "मोग्गल्याना उन दिनों का हाथी था, सारिपुत्र बंदर था, और मैं स्वयं ऋषि तीतर पक्षी था।"

फुटनोट:

(1)अर्थात बौद्ध धर्मग्रंथों के तीन विभाजन, या 'तीन टोकरियाँ', जिन्हें त्रिपिटक या त्रिपिटक के नाम से भी जाना जाता है ---

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बका-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-38-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 38
बका-जातक

"धोखाधड़ी से लाभ नहीं होता।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक दर्जी भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, जेतवन मठ में एक भिक्षु रहते थे जो वस्त्रों को काटने, जोड़ने, सजाने और सिलने जैसे सभी कार्यों में अत्यंत कुशल थे। इसी कौशल के कारण वे वस्त्र सिलते थे और इसीलिए उन्हें 'वस्त्र-दर्जी' के नाम से जाना जाने लगा। आप पूछेंगे कि वे क्या करते थे? वे पुराने कपड़ों के टुकड़ों पर अपनी कला का अभ्यास करते और एक सुंदर, मुलायम वस्त्र बनाते थे। रंगाई के बाद, वे आटे से बने घोल

से उसका रंग निखारते और उसे शंख से तब तक रगड़ते जब तक वह एकदम आकर्षक और सुंदर न हो जाए। फिर वे अपनी कारीगरी को एक तरफ रख देते थे।

वस्त्र बनाने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण, भिक्षु उनके पास बिल्कुल नया कपड़ा लेकर आते थे और कहते थे, "हमें वस्त्र बनाना नहीं आता; आप हमारे लिए बना दीजिए।"

"महोदय," वह जवाब देता, "एक वस्त्र बनाने में बहुत समय लगता है; लेकिन मेरे पास एक वस्त्र अभी-अभी बनकर तैयार हुआ है। आप इसे ले सकते हैं, बशर्ते आप ये वस्त्र बदले में छोड़ दें।" और ऐसा कहकर वह अपना वस्त्र निकालकर उन्हें दिखाता। वे केवल उसके सुंदर रंग को देखकर, और यह जाने बिना कि वह किस पदार्थ से बना है, यह सोचकर कि वह अच्छा और मजबूत है, अपना नया वस्त्र उस वस्त्र बनाने वाले को सौंपकर, उसके द्वारा दिए गए वस्त्र को लेकर चले गए। जब वह वस्त्र गंदा हो गया और गर्म पानी में धोया जा रहा था, तो उसकी असलियत सामने आ गई, और जगह-जगह से घिसे हुए पैच दिखाई देने लगे। तब वस्त्र मालिकों को अपने सौदे पर पछतावा हुआ। इस तरह धोखा देने के लिए वह भिक्षु हर जगह प्रसिद्ध हो गया, जो भी उसके पास आता था।

एक गाँव में एक वस्त्र बनाने वाला था जो जेतवन मठ के उस भाई की तरह सबको धोखा देता था। उस आदमी के कुछ मित्रों ने उससे कहा, "महोदय, लोग कहते हैं कि जेतवन मठ में एक वस्त्र बनाने वाला है जो तुम्हारी तरह सबको धोखा देता है।" तब उसके मन में विचार आया, "चलो, मैं उस शहर वाले को धोखा देता हूँ!" तो उसने चिथड़ों से एक बहुत ही सुंदर वस्त्र बनाया और उसे नारंगी रंग में रंग दिया। उसने उसे पहना और जेतवन मठ चला गया। जैसे ही दूसरे ने उसे देखा, वह उसे पाने के लिए तरस गया और उसके मालिक से पूछा, "महोदय, क्या आपने यह वस्त्र बनाया है?" "जी हाँ, मैंने बनाया है," जवाब मिला। "मुझे यह वस्त्र दे दीजिए, साहब; आपको इसके बदले दूसरा मिल जाएगा।" "लेकिन, साहब, हम गाँव के भाइयों को ज़रूरी चीज़ें मिलना मुश्किल होता है; अगर मैं आपको यह दे दूँ, तो मेरे पास पहनने के लिए क्या होगा?" "महोदय, मेरे पास कुछ नया कपड़ा है; इसे ले लीजिए और अपने लिए एक वस्त्र बना लीजिए।" "आदरणीय महोदय, इस मामले में मैंने अपनी चालाकी का परिचय दे दिया है; लेकिन यदि आप ऐसा कहेंगे तो मैं क्या करूँ? इसे ले लीजिए।" और फटे-पुराने वस्त्र को नए वस्त्र से बदलकर उसने दूसरे को धोखा दिया और अपने रास्ते चला गया।

जेतवन मठ के उस भिक्षु ने जब वह खराब ढंग से बना वस्त्र पहना, तो कुछ ही समय बाद उसे गर्म पानी में धोते समय उसे पता चला कि वह चिथड़ों से बना है; और वह शर्मिंदा हो गया। भिक्षुओं के पूरे समुदाय को यह खबर मिली कि जेतवन मठ के उस भिक्षु को एक देहाती दर्जी ने धोखा दिया है।

एक दिन, भाई लोग सत्य के हॉल में बैठे समाचारों पर चर्चा कर रहे थे, तभी गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में चर्चा कर रहे हैं; और उन्होंने उन्हें सब कुछ बता दिया।

गुरु ने कहा, "भाइयों, जेतवन मठ के वस्त्रकार की धोखाधड़ी की यह एकमात्र घटना नहीं है; अतीत में भी उसने ऐसा ही किया था, और जिस प्रकार अब उसे देश के लोगों ने धोखा दिया है, उसी प्रकार अतीत में भी उसके साथ ऐसा ही हुआ था।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व एक वन में एक कमल-कुंड के पास स्थित वृक्ष के वृक्ष-परी के रूप में अवतरित हुए। उन दिनों, गर्मियों में एक छोटे से तालाब का जलस्तर बहुत कम हो जाता था, जिसमें मछलियाँ बहुतायत में थीं। इन मछलियों को देखकर एक सारस ने मन ही मन सोचा, "मुझे इन मछलियों को खाने का कोई तरीका ढूंढना होगा।" इसलिए वह जाकर तालाब के किनारे गहरी सोच में डूब गया।

जब मछलियों ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा, "हे स्वामी, आप यहाँ बैठे-बैठे क्या सोच रहे हैं?" "मैं आपके बारे में सोच रहा हूँ," उसने उत्तर दिया। "और आप हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं?" "इस तालाब में पानी कम है, भोजन दुर्लभ है, और गर्मी बहुत तेज़ है, इसलिए मैं यहाँ बैठे-बैठे सोच रहा था कि तुम मछलियाँ क्या करोगी।" "और हम क्या करें, हे स्वामी?" "अच्छा, अगर तुम मेरी सलाह मानोगी, तो मैं तुम्हें एक-एक करके अपनी चोंच में उठाऊँगा, और तुम सबको पाँच प्रकार के कमलों से ढके एक बड़े सुंदर तालाब में ले जाऊँगा, और वहाँ तुम्हें छोड़ दूँगा।" "हे स्वामी," उन्होंने कहा, "दुनिया की शुरुआत से लेकर आज तक किसी भी सारस ने मछलियों के बारे में कभी सोचा भी नहीं। आपकी इच्छा हमें एक-एक करके खाने की है।" "नहीं; "जब तक तुम मुझ पर भरोसा करोगे, मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा," सारस ने कहा। "अगर तुम्हें मेरी बात पर यकीन नहीं है कि ऐसा कोई तालाब है, तो अपने किसी साथी को मेरे साथ भेजो और उसे खुद देखने को कहो।" सारस की बात पर विश्वास करके मछलियों ने उसे एक बहुत बड़ी मछली भेंट की (वैसे, उसकी एक आंख अंधी थी), जिसे वे सारस का मुकाबला करने के लिए उपयुक्त समझते थे, चाहे वह पानी पर हो या किनारे पर; और उन्होंने कहा, "यही है, इसे अपने साथ ले चलो।"

सारस ने मछली को उठाकर तालाब में डाल दिया, और उसे तालाब का पूरा आकार दिखाने के बाद वापस लाकर उसके पुराने तालाब की अन्य मछलियों के साथ डाल दिया। और मछली नए तालाब के आकर्षण में आकर उनसे चिपकी रही।

यह खबर सुनकर वे वहां जाने के लिए उत्सुक हो गए और सारस से कहा, "बहुत अच्छा, मेरे स्वामी; कृपया हमें पार ले चलें।"

सबसे पहले, सारस ने उस बड़ी एक आँख वाली मछली को फिर से उठाया और उसे तालाब के किनारे ले गया, ताकि वह पानी देख सके, लेकिन वास्तव में वह किनारे पर उगे एक वरुण वृक्ष पर उतर गया। मछली को पेड़ की एक शाखा में पटककर, उसने उसे चोंच मारकर मार डाला, फिर उसने उसे साफ किया और उसकी हड्डियों को पेड़ के नीचे गिरा दिया। फिर वह वापस गया और बोला, "मैंने इसे फेंक दिया है; अगला कौन है?" और इस तरह उसने एक-एक करके मछलियों को उठाया और उन्हें खा गया, जब तक कि अंत में जब वह वापस आया, तो उसे एक भी मछली नहीं मिली। लेकिन तालाब में अभी भी एक केकड़ा बचा था; इसलिए सारस, जो उसे भी खाना चाहता था, बोला, "श्रीमान केकड़े, मैंने उन सभी मछलियों को निकाल लिया है और उन्हें कमलों से ढके एक बड़े सुंदर तालाब में बदल दिया है। मेरे साथ आइए; मैं आपको भी ले चलूँगा।" "आप मुझे कैसे पार ले जाएँगे?" केकड़े ने कहा। "क्यों, अपनी चोंच में," सारस ने कहा। “अरे, तुम मुझे ऐसे गिरा सकते हो,” केकड़े ने कहा; “मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा।” “डरो मत; मैं तुम्हें पूरे रास्ते कसकर पकड़े रहूँगा।” केकड़े ने मन ही मन सोचा, “उसने मछली को तालाब में नहीं डाला है। लेकिन, अगर वह सच में मुझे डाल दे, तो बहुत अच्छा होगा। अगर वह ऐसा नहीं करता है, तो मैं उसका सिर काट कर उसे मार डालूँगा।” इसलिए उसने सारस से कहा, “तुम मुझे कभी भी इतनी कसकर नहीं पकड़ पाओगे, मेरे दोस्त सारस; जबकि हम केकड़ों की पकड़ बहुत मजबूत होती है। अगर मैं अपने पंजों से तुम्हारी गर्दन पकड़ लूँ, तो मैं उसे कसकर पकड़ लूँगा और फिर तुम्हारे साथ चलूँगा।”

केकड़े की चाल को न भांपते हुए सारस ने अपनी सहमति दे दी। केकड़े ने अपने पंजों से सारस की गर्दन को ऐसे जकड़ लिया जैसे कोई लोहार अपने चिमटे से जकड़ता है, और बोला, "अब तुम जा सकते हो।" सारस ने उसे पकड़ा और पहले उसे तालाब के बारे में समझाया, फिर पेड़ की ओर चल पड़ा।

“तालाब इधर है, नानी,” केकड़े ने कहा; “लेकिन तुम मुझे दूसरी तरफ ले जा रहे हो।” “मैं तुम्हारा नानी ही हूँ, प्रिय!” सारस ने कहा; “और तुम मेरे भतीजे ही हो! मुझे लगता है तुमने मुझे अपना गुलाम समझा होगा जो तुम्हें उठाकर इधर-उधर ले जाए! ज़रा पेड़ के नीचे पड़े हड्डियों के ढेर पर नज़र डालो; जैसे मैंने उन सारी मछलियों को खा लिया, वैसे ही मैं तुम्हें भी खा जाऊँगा।” केकड़े ने कहा, “उनकी अपनी गलती के कारण ही तुमने उन मछलियों को खाया; लेकिन मैं तुम्हें मुझे खाने का मौका नहीं दूँगा। नहीं; मैं तुम्हें मार डालूँगा। क्योंकि तुम मूर्ख थे, तुमने मेरी चाल नहीं समझी। अगर हम दोनों मरेंगे, तो साथ-साथ मरेंगे; मैं तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा।” और ऐसा कहते हुए उसने अपने पंजों से सारस के गले को ऐसे जकड़ लिया जैसे चिमटे से। अपना मुंह चौड़ा खोले और आंखों से आंसू बहाते हुए, जान के डर से कांपते हुए सारस ने कहा, "हे प्रभु, मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा! मेरी जान बख्श दो!"

“अच्छा, तो फिर तालाब में उतरकर मुझे उसमें डाल दो,” केकड़े ने कहा। फिर सारस वापस मुड़ा और निर्देशानुसार तालाब में उतरकर केकड़े को पानी के किनारे कीचड़ पर रख दिया। लेकिन पानी में उतरने से पहले ही केकड़े ने सारस का सिर इतनी कुशलता से काट डाला मानो वह चाकू से कमल की डंठल काट रहा हो।

पेड़ में रहने वाली वृक्ष-परी ने इस अद्‌भुत बात को देखकर पूरे जंगल को तालियों से गूंजने पर मजबूर कर दिया और मधुर स्वर में इस श्लोक को दोहराया:-

छल से लाभ नहीं होता, आपके स्वयं के छलकारी लोगों को।
देखो उस धूर्त सारस को केकड़े से क्या मिला!

“भाइयों,” गुरु ने कहा, “यह पहली बार नहीं है जब इस व्यक्ति को गाँव के वस्त्रकार ने धोखा दिया है; पहले भी उसे ठीक इसी तरह धोखा दिया गया था।” अपना पाठ समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, “जेतवन मठ का वस्त्रकार उन दिनों का सारस था, गाँव का वस्त्रकार केकड़ा था, और मैं स्वयं वृक्ष-परी हूँ।”

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नंद-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 39
नंदा जातक

"मुझे लगता है सोना।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सारिपुत्र के एक सह-निवासी शिष्य के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, यह भिक्षु विनम्र और शांत स्वभाव का था और गुरुजी की सेवा में तत्पर रहता था। एक बार गुरुजी की अनुमति से गुरुजी भिक्षा मांगने के लिए दक्षिण मगध चले गए। वहाँ पहुँचकर वह भिक्षु इतना अहंकारी हो गया कि गुरुजी की बात मानने को तैयार नहीं था। यहाँ तक कि अगर कोई उससे कहता, "महोदय, ऐसा कीजिए," तो वह गुरुजी से झगड़ा करने लगता। गुरुजी को समझ नहीं आ रहा था कि उसे क्या हो गया है।

उन क्षेत्रों की तीर्थयात्रा करने के बाद, वे फिर से जेतवन मठ लौट आए। जेतवन मठ में लौटते ही, वे फिर से वही बन गए जो वे हमेशा से थे।

वरिष्ठ भिक्षु ने बुद्ध से यह कहते हुए कहा, "हे प्रभु, मेरे साथ रहने वाला एक भिक्षु एक जगह सौ सिक्कों में खरीदे गए गुलाम की तरह है, और दूसरी जगह इतना अहंकारी है कि कुछ भी करने का आदेश मिलने पर वह झगड़ा करने लगता है।"

गुरु ने कहा, "सारिपुत्र, यह पहली बार नहीं है जब उसने ऐसा व्यवहार दिखाया है; पहले भी, यदि वह एक जगह जाता तो सौ सिक्कों में खरीदे गए गुलाम के समान व्यवहार करता, जबकि दूसरी जगह जाने पर झगड़ालू और उग्र हो जाता।" और ऐसा कहकर, वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक अधिकारी के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनका एक मित्र, एक अन्य अधिकारी, स्वयं तो वृद्ध था, लेकिन उसकी एक युवा पत्नी थी जिसने उसे एक पुत्र और उत्तराधिकारी को जन्म दिया था। वृद्ध ने मन ही मन कहा, "जैसे ही मैं मर जाऊँगा, यह युवती, इतनी कम उम्र में, न जाने किससे विवाह कर लेगी और मेरे पुत्र को देने के बजाय मेरी सारी संपत्ति खर्च कर देगी। क्या मेरे लिए बेहतर यही नहीं होगा कि मैं अपनी संपत्ति को सुरक्षित रूप से जमीन में गाड़ दूँ?"

इसलिए, अपने एक घरेलू दास, नंदा के साथ, वह जंगल में गया और एक निश्चित स्थान पर अपना धन गाड़ दिया, और दास से कहा, "मेरे भले नंदा, मेरे जाने के बाद इस खजाने को मेरे बेटे को बता देना, और लकड़ी को बिकने मत देना।"

अपने दास को यह आदेश देने के बाद, बूढ़े व्यक्ति की मृत्यु हो गई। समय बीतने पर पुत्र बड़ा हुआ और उसकी माँ ने उससे कहा, "पुत्र, तुम्हारे पिता ने नंदा के साथ मिलकर अपना धन गाड़ दिया है। उसे वापस ले आओ और परिवार की संपत्ति की देखभाल करो।" एक दिन उसने नंदा से कहा, "नन्की, क्या कोई खजाना है जिसे मेरे पिता ने गाड़ा है?" "जी, स्वामी।" "कहाँ गाड़ा है?" "जंगल में, स्वामी।" "अच्छा, तो चलो वहाँ चलते हैं।" और उसने एक फावड़ा और एक टोकरी ली, और वहाँ जाकर नंदा से कहा, "नन्की, धन कहाँ है?" लेकिन जब तक नंदा खजाने तक पहुँचा और उसके ठीक ऊपर खड़ा हुआ, तब तक वह धन से इतना घमंडी हो चुका था कि उसने अपने स्वामी को अपशब्द कहते हुए कहा, "एक वेश्या के बेटे के दास! यहाँ तुम्हारे पास धन कैसे हो सकता है?"

उस युवक ने यह बदतमीज़ी अनसुनी करते हुए कहा, "चलिए फिर चलते हैं," और दास को अपने साथ घर ले गया। दो-तीन दिन बाद वह फिर उस जगह लौटा; लेकिन नंदा ने पहले की तरह ही उसे फिर से बुरा-भला कहा। बिना कोई अपशब्द कहे, वह युवक वापस आया और मन ही मन सोचने लगा। उसने सोचा, "यह दास शुरू में तो हमेशा पैसे का पता बताने की कोशिश करता है; लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है, वह मुझे गाली देने लगता है। इसका कारण मुझे समझ नहीं आता; लेकिन अगर मैं अपने पिता के पुराने मित्र, उस अधिकारी से पूछूँ तो पता चल जाएगा।" इसलिए वह बोधिसत्व के पास गया और सारी बात उनके सामने रखते हुए अपने मित्र से ऐसे व्यवहार का असली कारण पूछा।

बोधिसत्व ने कहा, "हे मित्र, जिस स्थान पर नंदा खड़ा होकर तुम्हें गाली दे रहा है, वहीं तुम्हारे पिता का धन गँवाया हुआ है। इसलिए, जैसे ही वह तुम्हें फिर से गाली देने लगे, उससे कहो, 'तू किससे बात कर रहा है, हे दास?' उसे वहाँ से खींच ले, फावड़ा ले, खोद कर अपना कीमती खजाना निकाल ले और दास से उसे घर ले जाने को कह दे।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

मुझे लगता है कि सोना और रत्न दफन हैं

जहां नीच कुल की दासी नंदा इतनी जोर-जोर से रो रही है!
बोधिसत्व से आदरपूर्वक विदा लेकर वह युवक घर लौटा और नंदा को साथ लेकर उस स्थान पर गया जहाँ धन गँवाया गया था। बोधिसत्व की सलाह का पूर्णतया पालन करते हुए उसने धन को वहाँ से निकाला और पारिवारिक संपत्ति की देखभाल की। वह बोधिसत्व की सलाहों के प्रति समर्पित रहा और दान-पुण्य एवं अन्य नेक कार्यों में जीवन व्यतीत करने के बाद अपने कर्मों के फल के अनुसार परलोक विदा हुआ।

गुरु ने कहा, "पहले भी इस व्यक्ति का स्वभाव ऐसा ही था।" अपना पाठ समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म का उल्लेख करते हुए कहा, "सारिपुत्र के साथ उस समय के नंदा रहते थे, और मैं एक बुद्धिमान और कुशल अधिकारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खादिरंगार-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-40-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 40
खादिरंगरा-जातक

"मैं तो सीधे छलांग लगाऊंगा।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के बारे में सुनाई थी।

अनाथपिंडिका ने अकेले मठ पर ही बुद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में चौवन करोड़ (10 मिलियन) रुपये लुटा दिए थे और वे त्रिरत्न (तीन रत्नों) (1. बुद्ध, 2. धम्म (निर्वाण का मार्ग) और 3. संघ (पवित्र संघ) के सिवा किसी और चीज को महत्व नहीं देते थे। वे गुरु के जेतवन मठ में रहने के दौरान प्रतिदिन महान पूजा-अर्चना में शामिल होने जाते थे, एक बार सूर्योदय के समय, एक बार नाश्ते के बाद और एक बार शाम को। बीच-बीच में भी पूजा-अर्चना होती थी; लेकिन वे कभी खाली हाथ नहीं जाते थे, इस डर से कि कहीं नौसिखिए और लड़के यह न देख लें कि वे अपने साथ क्या लाए हैं। सुबह जल्दी जाते समय वे चावल की दलिया ले जाते थे; नाश्ते के बाद घी, मक्खन, शहद, गुड़ आदि; और शाम को वे इत्र, माला और वस्त्र ले जाते थे। वे प्रतिदिन इतना खर्च करते थे कि उनके खर्च की कोई सीमा नहीं थी। इसके अलावा, कई व्यापारियों ने उनसे अपने बांडों पर अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये का ऋण लिया था; और उस महान व्यापारी ने कभी भी वह पैसा वापस नहीं मांगा। इतना ही नहीं, नदी किनारे दबी हुई उनकी पारिवारिक संपत्ति के अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये भी तूफान में नदी के बह जाने पर समुद्र में बह गए; और पीतल के बर्तन, जिनके बंधन और मुहरें टूटी नहीं थीं, समुद्र की गहराई में समा गए। उनके घर में भी 500 भिक्षुओं के लिए हमेशा चावल तैयार रहता था, इसलिए भिक्षुओं के लिए उनका घर ऐसा था जैसे चार रास्तों के मिलन बिंदु पर खोदा गया तालाब, जी हाँ, वे उनके लिए माता-पिता के समान थे। इसलिए, सर्वज्ञानी बुद्ध भी उनके घर जाया करते थे, और अस्सी प्रमुख भिक्षु भी; और आने-जाने वाले अन्य भिक्षुओं की संख्या अनगिनत थी।

उनका घर सात मंजिला था और उसमें सात द्वार थे; चौथे द्वार के ऊपर एक परी रहती थी जो गलत धारणा रखती थी। जब सर्वज्ञानी बुद्ध घर में आते थे, तो वह ऊपर अपने निवास स्थान पर नहीं रह पाती थी, बल्कि अपने बच्चों के साथ नीचे भूतल पर आ जाती थी; और जब भी अस्सी प्रमुख भिक्षु या अन्य भिक्षु आते-जाते थे, तो उसे ऐसा ही करना पड़ता था। वह सोचती थी, "जब तक तपस्वी गौतम (बुद्ध) और उनके शिष्य इस घर में आते रहेंगे, मुझे यहाँ शांति नहीं मिल सकती; मैं हमेशा नीचे भूतल पर नहीं आ सकती। मुझे उन्हें इस घर में आने से रोकने की योजना बनानी होगी।" तो एक दिन, जब व्यापार प्रबंधक विश्राम करने के लिए चले गए, तो वह उनके सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुईं।

"वह कौन है?" उसने कहा।

"मैं ही हूँ," जवाब आया; "मैं वो परी हूँ जो चौथे द्वार के ऊपर रहती हूँ।" "यहाँ क्यों आई हो?" "तुम्हें पता नहीं चल रहा कि व्यापारी क्या कर रहा है। अपने भविष्य की परवाह किए बिना, वो अपनी सारी संपत्ति केवल तपस्वी गौतम (बुद्ध) को समृद्ध करने के लिए निकाल रहा है। वो कोई व्यापार नहीं करता; कोई कारोबार नहीं करता। व्यापारी को सलाह दो कि वो अपने कारोबार पर ध्यान दे, और यह व्यवस्था करो कि तपस्वी गौतम (बुद्ध) अपने शिष्यों के साथ फिर कभी घर में न आएँ।"

तब उसने कहा, "मूर्ख परी, यदि व्यापारी अपना पैसा खर्च करता है, तो वह बुद्ध के धर्म पर खर्च करता है, जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाता है। यदि वह मुझे बालों से पकड़कर गुलाम के रूप में बेच भी दे, तो भी मैं कुछ नहीं कहूंगा। चले जाओ!"

एक दिन वह व्यापारी के सबसे बड़े बेटे के पास गई और उसे भी वही सलाह दी। लेकिन उसने उसी तरह उसकी बात को अनसुना कर दिया। पर व्यापारी से इस मामले पर बोलने की हिम्मत तक नहीं हुई।

अब निरंतर दान-पुण्य और व्यापार न करने के कारण व्यापारी की आमदनी कम होती गई और उसकी संपत्ति घटती ही गई; जिससे वह धीरे-धीरे गरीबी में डूबता चला गया, और उसका भोजन, वस्त्र, बिस्तर और भोजन अब पहले जैसे नहीं रहे। फिर भी, अपनी बदली हुई परिस्थितियों के बावजूद, वह भिक्षुओं के समूह का सत्कार करता रहा, हालांकि अब वह उन्हें भोज नहीं दे पाता था। एक दिन जब उसने प्रणाम किया और अपनी जगह पर बैठा, तो गुरु ने उससे कहा, "गृहस्वामी, क्या आपके घर में उपहार दिए जा रहे हैं?" "जी जी," उसने कहा; "लेकिन कल का बचा हुआ थोड़ा सा खट्टा भूसे का दलिया ही है।" "हे गृहस्थ, इस विचार से दुखी मत हो कि तुम केवल अप्रिय वस्तु ही अर्पित कर सकते हो। यदि हृदय अच्छा हो, तो बुद्धों, पच्चेक बुद्धों (*1) और उनके शिष्यों को दिया गया भोजन भी निश्चित रूप से अच्छा होगा। और क्यों? क्योंकि उस भोजन का फल महान है। जो अपने हृदय को सुखद बना सकता है, वह अप्रिय दान नहीं दे सकता, जैसा कि निम्नलिखित कथन से प्रमाणित होता है:-

क्योंकि, यदि हृदय में आस्था हो, तो कोई भी उपहार छोटा नहीं होता।
बुद्धों या उनके शिष्यों के प्रति सत्य।
कहते हैं कि किसी भी सेवा को छोटा नहीं समझा जा सकता।
यह बुद्धों को, महान ख्याति प्राप्त देवताओं को दिया जाता है।
ध्यान से देखिए कि उस तुच्छ उपहार के बदले में क्या फल मिला।
सूप, सूखा हुआ, खट्टा और नमक रहित (*2)।"
इसके बाद उन्होंने आगे कहा, “हे गृहस्थ, यह अप्रिय दान देकर आप उन लोगों को दान दे रहे हैं जिन्होंने अष्टांगिक मार्ग (बुद्ध का ध्यान/ज़ेन पर आधारित और निर्वाण/मोक्ष की ओर ले जाने वाला मार्ग) का अनुसरण किया है। जबकि मैंने वेलामा के समय में सात बहुमूल्य वस्तुएँ दान करके पूरे भारत में हलचल मचा दी थी, और अपनी उदारता से उन वस्तुओं को ऐसे उंडेल दिया था मानो पाँचों बड़ी नदियों को एक विशाल धारा में मिला दिया हो, फिर भी मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने तीन शरणों को प्राप्त किया हो या पाँच आज्ञाओं का पालन किया हो; क्योंकि दान के योग्य लोग दुर्लभ हैं। इसलिए, इस विचार से अपने हृदय को विचलित न होने दें कि आपका दान अप्रिय है।” और ऐसा कहकर उन्होंने वेलामाका सूत्र को दोहराया।

अब वह परी, जिसने अपने वैभव के दिनों में व्यापारी से बात करने की हिम्मत नहीं की थी, सोच रही थी कि अब जब वह गरीब है तो वह उसकी बात सुनेगा। इसलिए, आधी रात को उसके कमरे में प्रवेश करते हुए वह उसके सामने हवा में खड़ी होकर प्रकट हुई। "यह कौन है?" व्यापारी ने उसकी उपस्थिति का एहसास होने पर कहा। "मैं परी हूँ, महान व्यापारी, जो चौथे द्वार के ऊपर निवास करती हूँ।" "यहाँ क्यों आई हो?" "आपको सलाह देने।" "तो फिर आगे बढ़ो।" "हे महान व्यापारी, आपको अपने भविष्य या अपने बच्चों की कोई चिंता नहीं है। आपने गौतम बुद्ध के धर्म पर अपार धन खर्च कर दिया है; वास्तव में, निरंतर खर्च और नए व्यापार न करने के कारण ही गौतम बुद्ध ने आपको दरिद्र कर दिया है। लेकिन इस दरिद्रता में भी आप गौतम बुद्ध को नहीं भूले हैं! आज भी वे आपके घर आते-जाते रहते हैं! जो उन्होंने आपसे लिया है, वह वापस नहीं लिया जा सकता। यह निश्चित है। लेकिन अब से आप स्वयं गौतम बुद्ध के पास न जाएं और उनके शिष्यों को अपने घर में कदम न रखने दें। गौतम बुद्ध की ओर मुड़कर भी न देखें, बल्कि अपने व्यापार और कारोबार पर ध्यान दें ताकि परिवार की संपत्ति को संवार सकें।"

फिर उसने उससे कहा, "क्या यही सलाह तुम मुझे देना चाहती थी?"

"हाँ यह था।"

व्यापारी ने कहा, “ज्ञान के सर्वशक्तिमान भगवान ने मुझे तुम्हारे जैसी सौ, हज़ार, हाँ, एक लाख परियों से भी सुरक्षित रखा है! मेरा विश्वास सिनेरु पर्वत के समान दृढ़ और समर्पित है! मैंने अपनी सारी संपत्ति मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले धर्म में लगा दी है। तुम्हारे शब्द दुष्टतापूर्ण हैं; हे दुष्ट और धृष्ट चुड़ैल, तुम बुद्धों के धर्म पर प्रहार कर रही हो। मैं तुम्हारे साथ एक ही छत के नीचे नहीं रह सकता; तुरंत मेरे घर से निकल जाओ और कहीं और शरण लो!” उस परिवर्तित व्यक्ति और चुने हुए शिष्य के ये शब्द सुनकर वह रुक नहीं सकी, बल्कि अपने घर गई, अपने बच्चों का हाथ पकड़ा और चली गई। लेकिन जाते हुए भी उसने मन बना लिया था कि अगर उसे कहीं और रहने की जगह नहीं मिली, तो वह व्यापारी को प्रसन्न करके उसके घर में वापस रहने लगेगी; और इसी विचार से वह नगर के संरक्षक देवता के पास गई और विधिपूर्वक उनके समक्ष प्रणाम किया। जब उनसे पूछा गया कि वे वहाँ क्यों आई हैं, तो उन्होंने कहा, "हे प्रभु, मैंने अनाथपिंडिका से अनुचित बातें कह दीं, और उन्होंने क्रोधित होकर मुझे मेरे घर से निकाल दिया है। मुझे उनके पास ले जाइए

और हमारे बीच सुलह करवाइए, ताकि वे मुझे वहाँ फिर से रहने दें।" "लेकिन आपने व्यापारी से क्या कहा?" "मैंने उनसे कहा कि भविष्य में वे बुद्ध और संघ का समर्थन न करें, और तपस्वी गौतम (बुद्ध) को अपने घर में फिर कभी कदम न रखने दें। मैंने यही कहा था, हे प्रभु।" "तुम्हारे शब्द दुष्टतापूर्ण थे; यह धर्म पर प्रहार था। मैं तुम्हें व्यापारी के पास अपने साथ नहीं ले जा सकता।" उनसे कोई समर्थन न मिलने पर, वे विश्व के चार महान अधिकारियों के पास गईं। और उनसे उसी प्रकार घृणा होने पर, वह देवों के राजा सक्का (इंद्र) के पास गई और उन्हें अपनी कहानी सुनाते हुए, और भी अधिक गंभीरता से उनसे विनती की, "देव (देवदूत), मुझे कोई आश्रय न मिलने के कारण, मैं अपने बच्चों का हाथ पकड़कर एक तपस्वी की तरह भटक रही हूँ। हे महाराज, मुझे रहने के लिए कोई स्थान प्रदान कीजिए।"

और उसने भी उससे कहा, "तुमने दुष्टता की है; यह विजेता के धर्म पर प्रहार था। मैं तुम्हारी ओर से व्यापारी से बात नहीं कर सकता। लेकिन मैं तुम्हें एक तरीका बता सकता हूँ जिससे व्यापारी तुम्हें क्षमा कर दे।" "कृपया मुझे बताइए, देव।" "लोगों ने व्यापारी के अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये के बॉन्ड रखे हैं। उसके एजेंट का रूप धारण करो, और किसी को बताए बिना कुछ युवा जिन्नों के साथ बॉन्ड लेकर उनके घरों में जाओ। उनके घरों के बीच में एक हाथ में बॉन्ड और दूसरे हाथ में रसीद लेकर खड़े हो जाओ, और अपनी जिन्न शक्ति से उन्हें डराते हुए कहो, 'यह आपके ऋण की स्वीकृति है। जब हमारा व्यापारी समृद्ध था, तब उसने इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की; लेकिन अब वह गरीब है, और आपको अपना बकाया चुकाना होगा।'" अपनी अलौकिक शक्ति से वह अठारह करोड़ (10 मिलियन) सोना प्राप्त करो और व्यापारी के खाली खजाने भर दो। उसका एक और खजाना अचिरवती नदी के किनारे दबा हुआ था, लेकिन जब नदी का किनारा बह गया, तो वह खजाना समुद्र में चला गया। अपनी अलौकिक शक्ति से उसे भी वापस लाओ और उसके खजाने में जमा करो। इसके अलावा, फलां स्थान पर अठारह करोड़ (10 मिलियन) की एक और राशि लावारिस पड़ी है। उसे भी लाओ और उसके खाली खजाने में डाल दो। जब तुम इन चौवन करोड़ (10 मिलियन) को वापस लाकर प्रायश्चित कर लोगी, तो व्यापारी से क्षमा मांग लेना।" "बहुत अच्छा, देव," उसने कहा। और वह आज्ञाकारी होकर काम पर लग गई और ठीक वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। जब उसने सारा पैसा वापस ला लिया, तो वह आधी रात को व्यापारी के कमरे में गई और हवा में खड़ी होकर उसके सामने प्रकट हुई।

व्यापारी ने पूछा कि कौन है, तो उसने उत्तर दिया, "हे महान व्यापारी, मैं ही हूँ, अंधी और मूर्ख परी जो आपके चौथे द्वार के ऊपर रहती थी। अपने अहंकार में डूबे हुए पाप में मैं बुद्ध के गुणों को नहीं जानती थी, इसलिए कुछ दिन पहले आपसे जो कहा था, वही कहने आई हूँ। मुझे क्षमा करें! देवों के राजा सक्का (इंद्र) के कहने पर, मैंने आपके अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये वसूल कर प्रायश्चित किया है, जिनमें से अठारह करोड़ (10 मिलियन) समुद्र में बह गए थे, और दूसरे अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये फलाँ-फलाँ स्थान पर लावारिस पड़े थे, कुल मिलाकर चौवन करोड़ (10 मिलियन) रुपये, जो मैंने आपके खाली खजाने में डाल दिए हैं। जेतवन में मठ पर आपने जो खर्च किया था, वह अब वसूल हो गया है। मेरे पास रहने की कोई जगह नहीं है, इसलिए मैं दुखी हूँ। हे महान व्यापारी, मेरे अज्ञान में किए गए पाप को न भूलें, बल्कि मुझे क्षमा करें।"

अनाथपिंडिका ने उसकी बातें सुनकर मन ही मन सोचा, "यह एक परी है, और यह कहती है कि उसने प्रायश्चित कर लिया है और अपने दोष को स्वीकार कर लिया है। गुरु इस पर विचार करेंगे और उसे अपने गुणों से अवगत कराएंगे। मैं इसे सर्वज्ञानी बुद्ध के समक्ष ले जाऊंगा।" इसलिए उन्होंने कहा, "मेरी प्यारी परी, यदि तुम मुझसे क्षमा चाहती हो, तो गुरु के समक्ष मुझसे विनती करो।" "ठीक है," उसने कहा, "मैं करूंगी। मुझे अपने साथ गुरु के पास ले चलो।" "ज़रूर," उन्होंने कहा। और सुबह तड़के, जब रात ढल रही थी, वे उसे अपने साथ गुरु के पास ले गए और भगवान बुद्ध को उसके द्वारा किए गए सभी कर्मों के बारे में बताया।

यह सुनकर गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, देखो पापी मनुष्य पाप को उसके फल लगने से पहले उत्तम समझता है। परन्तु जब वह फल लग जाता है, तब उसे पाप का वास्तविक रूप दिखाई देता है। इसी प्रकार, भले मनुष्य अपने अच्छे कर्मों को उसके फल लगने से पहले पाप समझता है; परन्तु जब वे फल लग जाते हैं, तब उसे अच्छाई दिखाई देती है।" ऐसा कहकर उन्होंने धम्मपद के ये दो श्लोक दोहराए:-

पापी अपने पापपूर्ण कर्म को अच्छा समझता है।
जब तक पाप फल के रूप में पक न जाए।
लेकिन जब उसका पाप अंततः परिपक्व हो जाता है,
पापी को निश्चित रूप से यह एहसास होता है कि "पाप तो मैंने ही किया है।"

वह नेक इंसान अपनी अच्छाई को पाप समझता है।
जब तक यह पककर फल न दे दे।
लेकिन जब उसकी अच्छाई परिपक्वता तक पहुँच जाती है,
वह नेक इंसान निश्चित रूप से देखता है कि "अच्छा हुआ कि मैं (*3) लाया।"

इन श्लोकों के अंत में वह परी प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) में स्थापित हो गई। वह गुरु के चक्रचिह्नित चरणों में गिर पड़ी और रोते हुए बोली, “मैं वासना से दूषित, पाप से भ्रष्ट, भ्रम से गुमराह और अज्ञान से अंधी होकर, आपके गुणों को न जानने के कारण दुष्टतापूर्ण बातें बोली। मुझे क्षमा कीजिए!” तब उसे गुरु और महान व्यापारी से क्षमा प्राप्त हुई।

इस समय अनाथपिंडिका ने गुरु की उपस्थिति में अपनी प्रशंसा करते हुए कहा, "हे प्रभु, यद्यपि इस परी ने मुझे बुद्ध और उनके अनुयायियों का समर्थन करने से रोकने की पूरी कोशिश की, पर वह सफल नहीं हो सकी; और यद्यपि उसने मुझे दान देने से रोकने का प्रयास किया, फिर भी मैंने दान दिया! क्या यह मेरी ओर से अच्छाई नहीं थी?"

गुरु ने कहा, “हे गृहस्थ, तुम परिवर्तित पुरुष और चुने हुए शिष्य हो; तुम्हारा विश्वास दृढ़ है और तुम्हारी दृष्टि शुद्ध है। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं कि तुम इस शक्तिहीन परी से नहीं रुके। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बीते युग के बुद्धिमान और भले लोग, जब बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे और ज्ञान अपने पूर्ण फल तक नहीं पहुँचा था, तब कमल के हृदय से दान देते रहे, जबकि कामवासनाओं के लोक के स्वामी मारा मध्य आकाश में प्रकट होकर चिल्ला रहे थे, ‘यदि तुम दान दोगे, तो तुम इस नरक में जल जाओगे,’ और उन्हें 80 भुजाओं जितना गहरा, धधकते अंगारों से भरा एक गड्ढा दिखा रहे थे।” और ऐसा कहकर, अनाथपिंडिका के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म बनारस के प्रधान कोषाध्यक्ष के परिवार में हुआ और उनका पालन-पोषण एक राजकुमार की तरह विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ। सोलह वर्ष की आयु में ही, जब वे विवेकशील हुए, तब तक उन्होंने सभी गुणों में निपुणता प्राप्त कर ली थी। अपने पिता की मृत्यु के बाद, उन्होंने प्रधान कोषाध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया और छह भिक्षागृह बनवाए, जिनमें से एक नगर के चारों द्वारों पर, एक नगर के केंद्र में और एक उनके अपने महल के द्वार पर था। वे अत्यंत उदार थे, और वे आज्ञाओं का पालन करते थे तथा व्रत के नियमों का पालन करते थे।

एक दिन सुबह के नाश्ते के समय जब बोधिसत्व के लिए स्वादिष्ट और विविध प्रकार के लज़ीज़ व्यंजन लाए जा रहे थे, तभी सात दिनों की रहस्यमयी समाधि से जागे एक पच्चेक बुद्ध ने देखा कि अब उनके भ्रमण का समय हो गया है, तो उन्हें लगा कि इस सुबह बनारस के कोषाध्यक्ष से मिलना अच्छा रहेगा। इसलिए उन्होंने पान के पत्तों से बनी पान-छलनी से अपने दांत साफ किए, अनोतत्ता झील के जल से कुल्ला किया, मनोशिला के पठार पर खड़े होकर अपने अंतर्वस्त्र पहने, कमरबंद बांधा और बाहरी वस्त्र धारण किया; और अपने द्वारा प्रकट किए गए एक कटोरे को लेकर वे वायु में विचरण करते हुए महल के द्वार पर ठीक उसी समय पहुंचे जब बोधिसत्व का नाश्ता परोसा जा रहा था।

जैसे ही बोधिसत्व को वहाँ उसकी उपस्थिति का ज्ञान हुआ, वे तुरंत अपने आसन से उठे और सेवक की ओर देखकर यह संकेत दिया कि कोई सेवा आवश्यक है। "हे स्वामी, मुझे क्या करना है?" "आदरणीय महोदय का कुंड लाओ," बोधिसत्व ने कहा।

उसी क्षण दुष्ट मारा अत्यंत उत्तेजित होकर उठा और बोला, “पच्चेक बुद्ध को भोजन दिए सात दिन हो गए हैं; यदि आज उन्हें भोजन नहीं मिला तो वे मर जाएँगे। मैं उन्हें नष्ट कर दूँगा और कोषाध्यक्ष को भी दान देने से रोक दूँगा।” और उसी क्षण वह महल के भीतर गया और अस्सी भुजाओं जितना गहरा, जलते हुए अंगारों का एक गड्ढा बना दिया, जो बबूल के कोयले से भरा हुआ था और अविची के नरक की तरह आग की लपटों से घिरा हुआ था। इस गड्ढे को बनाने के बाद, मारा स्वयं हवा में खड़ा हो गया।

जब कटोरा लाने जा रहे व्यक्ति को इस बात का पता चला, तो वह भयभीत होकर वापस भागने लगा। बोधिसत्व ने पूछा, "तुम क्यों वापस भाग रहे हो? मेरे मित्र?" उत्तर मिला, "हे स्वामी, घर के बीचोंबीच धधकते अंगारों का एक बड़ा गड्ढा है।" और जैसे-जैसे एक-एक करके लोग उस स्थान पर पहुँचते गए, वे सब भयभीत होकर अपनी पूरी शक्ति से भागने लगे।

बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "आज तो मुझे भिक्षा देने से रोकने के लिए सम्मोहन करने वाला मारा ही होगा। लेकिन मुझे अभी यह सीखना बाकी है कि सौ या हज़ार मारा मिलकर मुझे हिला देंगे। आज पता चल जाएगा कि किसकी शक्ति अधिक प्रबल है, किसकी सामर्थ्य अधिक है, मेरी या मारा की।" फिर तैयार रखे हुए कटोरे को हाथ में लेकर वे घर से बाहर निकल गए और अग्निकुंड के किनारे खड़े होकर आकाश की ओर देखने लगे। मारा को देखकर उन्होंने पूछा, "आप कौन हैं?" उत्तर मिला, "मैं मारा हूँ।"

“क्या तुमने इस धधकते अंगारों के गड्ढे को बनाया है?” “हाँ, मैंने।” “क्यों?” “तुम्हें भिक्षा देने से रोकने और उस पच्चेक बुद्ध के जीवन को नष्ट करने के लिए।” “मैं तुम्हें न तो मुझे भिक्षा देने से रोकने दूँगा और न ही पच्चेक बुद्ध के जीवन को नष्ट करने दूँगा। मैं आज देखूँगा कि तुम्हारी शक्ति अधिक है या मेरी।” और उस धधकते गड्ढे के किनारे खड़े होकर उन्होंने पुकारा, “आदरणीय पच्चेक बुद्ध, भले

ही मैं इस धधकते अंगारों के गड्ढे में सिर के बल गिरने ही वाला हूँ, मैं पीछे नहीं हटूँगा। बस मेरे द्वारा लाया गया भोजन स्वीकार कर लो।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

मैं बल्कि जल्दबाजी में सीधे छलांग लगाऊंगा
इस नरक की खाई में पूरी तरह डूब जाना, शर्म से झुकने से बेहतर है!
महोदय, मेरी ओर से यह भिक्षा स्वीकार करने की कृपा कीजिए!
इन शब्दों के साथ, बोधिसत्व ने भोजन का कटोरा थामकर, निडर दृढ़ संकल्प के साथ अग्निकुंड की सतह पर कदम रखा। लेकिन जैसे ही उन्होंने ऐसा किया, अग्निकुंड की अस्सी भुजाओं की गहराई से एक विशाल और असाधारण कमल का फूल प्रकट हुआ, जिसने बोधिसत्व के चरणों को ग्रहण किया! और उससे पराग की एक मात्रा निकली जो उस महान प्राणी के सिर पर गिरी, जिससे उनका पूरा शरीर मानो सिर से पैर तक सोने की धूल से ढक गया! कमल के ठीक बीच में खड़े होकर, उन्होंने उत्तम भोजन को पच्चेक बुद्ध के कटोरे में उंडेल दिया।

और जब उसने भोजन ग्रहण कर लिया और धन्यवाद दिया, तो उसने अपना कटोरा आकाश में बहुत ऊपर फेंक दिया, और सभी लोगों के सामने वह स्वयं भी शरीर सहित हवा में उठ गया, और हिमालय की ओर फिर से विदा हो गया, मानो वह बादलों से बने एक विचित्र आकार के रास्ते पर चल रहा हो।

और मारा भी पराजित और निराश होकर अपने निवास स्थान पर लौट गया।

लेकिन बोधिसत्व कमल में विराजमान रहते हुए लोगों को सत्य का उपदेश देते रहे, दान और आज्ञाओं की प्रशंसा करते रहे; इसके बाद, अपने अनुयायियों से घिरे हुए वे अपने निवास स्थान पर लौट गए। और जीवन भर उन्होंने दान का उपदेश दिया और अन्य अच्छे कार्य किए, अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार उनका निधन हो गया।

गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सत्य की समझ रखने वाले तुम अब परी के वश में नहीं आए; असली आश्चर्य तो वह था जो बुद्धिमान और भले लोगों ने बीते दिनों में किया।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों के पच्चेक बुद्ध का निधन हो गया, और वे फिर कभी जन्म नहीं लेंगे। मैं स्वयं बनारस का कोषाध्यक्ष था, जिसने मारा को पराजित करके और कमल के हृदय में खड़े होकर पच्चेक बुद्ध के पात्र में भिक्षा डाली थी।"

फुटनोट्स :

(1) सभी बुद्धों ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है; लेकिन एक पच्चेक बुद्ध अपने ज्ञान को अपने तक ही सीमित रखता है और 'पूर्ण बुद्ध' के विपरीत, वह अपने साथी मनुष्यों को असाधारण सत्य का उपदेश नहीं देता।

(2) पहली दो पंक्तियाँ त्रिपिटक के विमान-वत्थु से हैं।

(3) ये श्लोक धम्मपद में संख्या 119 और 120 हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लोसाका-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-41-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 41
लोसाका-जातक

"जिद्दी आदमी।"--यह कहानी गुरु ने जेतवना मठ में रहते हुए वरिष्ठ भिक्षु लोसाका तिस्सा के बारे में सुनाई थी।

आप पूछेंगे, 'ये वरिष्ठ भिक्षु लोसाका तिस्सा कौन थे?' दरअसल, उनके पिता कोसला में मछुआरे थे और वे अपने परिवार के सबसे कमज़ोर सदस्य थे। भिक्षु बनने के बाद भी उन्हें कभी कुछ नहीं मिला। उनका पिछला जन्म कोसला के एक हज़ार परिवारों वाले मछली

पकड़ने वाले गाँव में एक मछुआरे की पत्नी से हुआ था। जिस दिन उनका जन्म हुआ, उस दिन वे सभी हज़ार परिवार जाल लेकर नदी और तालाब में मछली पकड़ने गए, लेकिन एक भी मछली नहीं पकड़ पाए। उस दिन से ही उनका दुर्भाग्य उनका पीछा करता रहा। उनके जन्म से पहले, गाँव सात बार आग से नष्ट हो चुका था और सात बार राजा के प्रकोप का शिकार हुआ था। समय के साथ, गाँव की हालत दयनीय हो गई। यह सोचकर कि पहले के जन्मों में उनका ऐसा हाल नहीं था, बल्कि अब वे दुर्भाग्य और बर्बादी की ओर बढ़ रहे हैं, उन्होंने सोचा कि उनमें से कोई न कोई दुर्भाग्य का कारण ज़रूर है, और उन्होंने दो समूहों में बँटने का निश्चय किया। उन्होंने ऐसा ही किया; तब पाँच-पाँच सौ परिवारों के दो समूह थे। उनसे आगे, भावी लोसाका के माता-पिता वाले समूह पर विपत्ति का साया मंडराता रहा, जबकि अन्य पाँच सौ परिवार तेज़ी से तरक्की करते रहे। इसलिए पहले समूह ने अपने सदस्यों की संख्या आधी करने का निश्चय किया और ऐसा ही करते रहे, जब तक कि यह एक परिवार बाकी सभी से अलग नहीं हो गया। तब उन्हें पता चला कि दुर्भाग्य का जनक इसी परिवार में है, और उन्होंने मार-पीट कर उन्हें भगा दिया। उसकी माँ बड़ी मुश्किल से अपना जीवन यापन कर पाती थी; परन्तु जब उसका समय आया, तो उसने एक विशेष स्थान पर अपने पुत्र को जन्म दिया। (जो अपने अंतिम जन्म में जन्म लेता है, उसे मारा नहीं जा सकता। क्योंकि जैसे कलश में दीपक जलता है, वैसे ही उसकी छाती में बुद्ध के समान अर्हत/प्रबुद्ध बनने की नियति की लौ सुरक्षित रूप से जलती रहती है।) माँ ने बच्चे की तब तक देखभाल की जब तक वह दौड़ने-भागने लायक नहीं हो गया, और जब वह दौड़ने-भागने लायक हो गया, तब उसने उसके हाथों में एक टूटा हुआ मिट्टी का बर्तन थमा दिया और उसे किसी घर में भीख मांगने के लिए कहकर भाग गई। तब से, वह अकेला बच्चा आसपास भीख मांगकर अपना भोजन प्राप्त करता था और जहाँ भी जगह मिलती, सो जाता था। वह गंदा और मैला था, और मिट्टी खाने वाले जिन्न (*1) की तरह जीवन यापन करता था। जब वह सात साल का था, तो वह कौवे की तरह, एक-एक करके, घर के दरवाजे के बाहर जो भी चावल मिलता था, उसे उठाकर खाता था, जहाँ चावल के बर्तनों की धुलाई का पानी फेंक दिया जाता था।

धर्म के प्रमुख सारिपुत्र, भिक्षा मांगने के लिए श्रावस्ती नगर में गए, तो उनकी नज़र उस बच्चे पर पड़ी। वे यह सोचकर आश्चर्यचकित रह गए कि यह बेचारा बच्चा किस गाँव से आया है। उन्हें उस पर दया आ गई और उन्होंने पुकारा, "इधर आओ।" बच्चा आया, उसने बड़े भिक्षु को प्रणाम किया और उनके सामने खड़ा हो गया। तब सारिपुत्र ने पूछा, "तुम किस गाँव के हो और तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं?"

"मैं बेसहारा हूँ, महोदय," बच्चे ने कहा; "क्योंकि मेरे माता-पिता ने कहा कि वे थक गए थे, इसलिए उन्होंने मुझे छोड़ दिया और चले गए।"

"क्या आप भिक्षु बनना चाहेंगे?" "जी हाँ, महोदय; लेकिन मुझ जैसे गरीब और लाचार को कौन अपने संघ में स्वीकार करेगा?" "मैं करूँगा।" "तो फिर, मैं निवेदन करता हूँ, मुझे भिक्षु बनने दीजिए।"

बड़े भिक्षु ने बच्चे को भोजन कराया और उसे मठ ले गए, अपने हाथों से उसका स्नान कराया और पहले उसे नौसिखिए के रूप में और बाद में, जब वह वयस्क हो गया, तो उसे पूर्ण भिक्षु के रूप में दीक्षा दी। वृद्धावस्था में वे बड़े भिक्षु लोसाका तिस्सा के नाम से जाने जाते थे; वे सदा दुर्भाग्यशाली (*2) रहे और उन्हें बहुत कम दान मिलता था। कहा जाता है कि दान कितना भी उदार क्यों न हो, उन्हें कभी भी पेट भरकर भोजन नहीं मिलता था, बस इतना ही मिलता था जिससे वे जीवित रह सकें। चावल का एक चम्मच ही उनके भिक्षापात्र को लबालब भर देता था, जिससे दानदाता यह सोचकर कि उनका कटोरा भर गया है, शेष चावल अगले चम्मच में डाल देते थे। कहा जाता है कि जब उनके कटोरे में चावल डाला जाता था, तो दानदाता के बर्तन से चावल गायब हो जाते थे। और ऐसा ही हर प्रकार के भोजन के साथ होता था। समय बीतने के साथ-साथ जब उन्होंने विवेक विकसित कर लिया और सर्वोच्च फल, अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया, तब भी उन्हें बहुत कम ही मिलता था।

समय की पूर्णता में, जब उनके जीवन के अस्तित्व (जीवन काल) (*3) को निर्धारित करने वाले कारण समाप्त हो गए, तो उनके परलोक जाने का दिन आ गया। धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ध्यान करते हुए इस बात से अवगत हुए और मन ही मन सोचने लगे, 'लोसाका तिस्सा आज परलोक चले जाएंगे; और आज तो मैं यह सुनिश्चित करूँगा कि उन्हें पर्याप्त भोजन मिले।' अतः वे वरिष्ठ भिक्षु को साथ लेकर भिक्षा मांगने श्रावस्ती नगर आए। परन्तु लोसाका उनके साथ थे, इसलिए घनी आबादी वाले श्रावस्ती नगर में सारिपुत्र का भिक्षा मांगने का प्रयास व्यर्थ रहा; उन्हें प्रणाम तक नहीं किया गया। अतः उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु से वापस जाकर मठ के बैठक कक्ष में बैठने का अनुरोध किया और भोजन एकत्र किया, जिसे उन्होंने लोसाका को देने का संदेश भेज दिया। जिन्हें उन्होंने भोजन दिया, उन्होंने उसे लिया और अपने-अपने मार्ग पर चले गए, परन्तु लोसाका को पूरी तरह भूलकर, उसे स्वयं खा लिया। जब सारिपुत्र उठे और मठ में प्रवेश करने लगे, तो लोसाका उनके पास आए और उन्हें प्रणाम किया। सारिपुत्र रुक गए और मुड़कर बोले, "तो, क्या आपको भोजन मिल गया, भिक्षु भाई?"

“मुझे यह समय पर अवश्य मिल जाएगा,” वरिष्ठ भिक्षु ने कहा। सारिपुत्र बहुत व्याकुल हुए और देखने लगे कि समय क्या हुआ है। परन्तु दोपहर बीत चुकी थी (*4)। “यहीं ठहरिए, भाई,” सारिपुत्र ने कहा; “और हिलना मत”; और उन्होंने लोषक तिस्सा को बैठक में

बैठाया और कोसल के राजा के महल के लिए चल दिए। राजा ने अपना कटोरा मंगवाया और कहा कि दोपहर बीत चुकी है और इसलिए चावल खाने का समय नहीं है, इसलिए उन्होंने अपने कटोरे को चार प्रकार के मीठे पकवानों से भरने का आदेश दिया (*5)। यह लेकर वे लौटे और कटोरा हाथ में लिए उनके सामने खड़े होकर ऋषि से खाने का अनुरोध किया। परन्तु वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र के प्रति अपने आदर के कारण लज्जित थे और उन्होंने खाने से इनकार कर दिया। “आइए, भाई (भिक्षु) तिस्सा,” सारिपुत्र ने कहा, “मुझे कटोरा लेकर खड़ा रहना होगा; आप बैठ जाइए और खा लीजिए। यदि कटोरा मेरे हाथ से छूट गया, तो उसमें रखा सब कुछ नष्ट हो जाएगा।”

अतः आदरणीय भिक्षु लोसाका तिस्सा ने मिठाई खाई, जबकि धर्म के परम पूज्य सेनापति (सारिपुत्र) कटोरा पकड़े खड़े रहे; और सारिपुत्र के गुणों और शक्तियों के कारण भोजन नष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार, भिक्षु लोसाका तिस्सा ने अपनी इच्छा अनुसार भोजन किया और तृप्त हुए, और उसी दिन उस मृत्यु को प्राप्त हुए जिससे जीवन का शाश्वत अंत हो जाता है।

सर्वज्ञानी बुद्ध वहीं खड़े रहे और उन्होंने जलते हुए शरीर को देखा; और उन्होंने एकत्रित राख के लिए एक मंदिर बनाया।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर, भिक्षुओं ने कहा, "भाइयों, लोसाका दुर्भाग्यशाली था, और उसे बहुत कम दिया गया था। अपने दुर्भाग्य और अभाव के बावजूद वह अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) की महिमा कैसे प्राप्त कर सका?"

हॉल में प्रवेश करते ही गुरु ने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं; और उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, “भाइयों, इस भिक्षु के अपने कर्मों के कारण ही उसे इतना कम ज्ञान प्राप्त हुआ और वह अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गया। अतीत में उसने दूसरों को ज्ञान प्राप्त करने से रोका था, और इसीलिए उसे स्वयं इतना कम ज्ञान प्राप्त हुआ। लेकिन दुःख, क्षणभंगुरता और वस्तुओं में किसी स्थायी सिद्धांत के अभाव पर ध्यान करने से ही उसने स्वयं अर्हतत्व (बुद्ध के समान प्रबुद्धता) प्राप्त किया।” और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बुद्ध कश्यप (एक पूर्व बुद्ध) के समय में, एक भिक्षु गाँव में रहते थे और एक ग्रामीण अधिकारी उनका भरण-पोषण करते थे। वे भिक्षु के रूप में नियमित आचरण करते थे (*6), सदाचारी जीवन जीते थे और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण थे। एक वरिष्ठ भिक्षु भी थे, जो अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) थे और अपने साथियों के साथ समानता के भाव से रहते थे। कहानी के समय, उन्होंने पहली बार उस गाँव का दौरा किया जहाँ वह अधिकारी रहता था जो इस भिक्षु का भरण-पोषण करता था। वरिष्ठ भिक्षु को देखकर अधिकारी इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपना भोजन पात्र लेकर उन्हें घर में प्रवेश कराया और पूरे आदर के साथ भोजन के लिए आमंत्रित किया। फिर उसने वरिष्ठ भिक्षु का संक्षिप्त प्रवचन सुना और प्रवचन समाप्त होने पर प्रणाम करते हुए कहा, "महोदय, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप हमारे पास ही स्थित मठ से आगे यात्रा न करें; शाम को मैं वहाँ आकर आपसे मिलूँगा।" इस प्रकार, वरिष्ठ भिक्षु मठ की ओर चल पड़े और प्रवेश करते समय वहाँ रहने वाले भिक्षु को प्रणाम किया; और, पहले विनम्रतापूर्वक अनुमति मांगकर, उनके बगल में बैठ गए। भाई ने उनका पूरे सौहार्द से स्वागत किया और पूछा कि क्या उन्हें दान में कुछ भोजन मिला है।

“जी हाँ,” वृद्ध भिक्षु ने उत्तर दिया। “कहाँ?” “आपके पास ही स्थित गाँव में, अधिकारी के घर में।” इतना कहकर वृद्ध भिक्षु ने अपना कमरा दिखाने को कहा और उसे तैयार करवाया। फिर अपना पान-पात्र और वस्त्र एक तरफ रखकर, वे एकाग्र हो गए और आध्यात्मिक ज्ञान में लीन होकर आध्यात्मिक मार्ग के फलों के आनंद का अनुभव करने लगे।

शाम को अधिकारी अपने सेवकों के साथ फूल, इत्र, दीपक और तेल लेकर आए। उन्होंने वहां रहने वाले भिक्षु को प्रणाम किया और पूछा कि क्या कोई अतिथि, कोई वरिष्ठ भिक्षु, आए हैं। यह जानकर कि वे आए हैं, अधिकारी ने पूछा कि वे कहां हैं और उन्हें कौन सा कमरा दिया गया है। फिर अधिकारी वरिष्ठ भिक्षु के पास गए और पहले विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके उनके पास बैठ गए और प्रवचन सुनने लगे। शाम की ठंडक में अधिकारी ने स्तूप और बोधि वृक्ष पर अपनी भेंट चढ़ाई, अपना दीपक जलाया और अगले दिन अपने घर भोजन के लिए आने का निमंत्रण देकर विदा हो गए।

“अधिकारी पर मेरी पकड़ कमजोर होती जा रही है,” भाई ने सोचा। “अगर यह वरिष्ठ भिक्षु रुक गए, तो मैं उनके लिए कुछ भी नहीं रहूँगा।” इसलिए वे असंतुष्ट हो गए और सोचने लगे कि वरिष्ठ भिक्षु को कैसे समझाया जाए कि उन्हें वहाँ स्थायी रूप से नहीं बसना चाहिए। तदनुसार, जब वरिष्ठ भिक्षु सुबह-सुबह प्रणाम करने आए, तो भाई ने कुछ नहीं कहा। अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) ने दूसरे के विचारों को समझ लिया और मन ही मन कहा, “यह भाई नहीं जानता कि मैं न तो उसके परिवार के साथ, न ही उसके भिक्षु समुदाय के साथ, कभी उसके प्रकाश में खड़ा हो पाऊँगा।” और अपनी कुटिया में लौटकर वे अंतर्दृष्टि के आनंद और फलों के आनंद में लीन हो गए।

अगले दिन, निवासी भिक्षु ने पहले धीरे से घंटा बजाया और फिर अपने नाखून के पिछले हिस्से से घंटा पर थपथपाया, और फिर अकेले अधिकारी के घर चले गए। अधिकारी ने उनसे भिक्षापात्र लेकर उन्हें बैठने को कहा और पूछा कि वह अजनबी कहाँ है।

“मुझे आपके मित्र के बारे में कोई खबर नहीं है,” भाई ने कहा। “मैंने घंटा बजाया और उनके दरवाजे पर दस्तक भी दी, लेकिन उन्हें जगा नहीं सका। मेरा अनुमान है कि कल यहाँ उनके साथ हुए शानदार व्यवहार से वे संतुष्ट नहीं हैं और इसी वजह से अभी भी बिस्तर पर हैं। शायद ऐसा करना आपको अच्छा लगे।”

(इसी बीच, अर्हत/बुद्ध के समान प्रबुद्ध व्यक्ति, जो भिक्षा मांगने के लिए अपने भ्रमण पर जाने का समय आने तक प्रतीक्षा कर रहे थे, स्नान करके वस्त्र धारण कर चुके थे और कटोरा और वस्त्र हवा में लहराते हुए उठकर कहीं और चले गए थे।)

अधिकारी ने भिक्षु को खाने के लिए चावल और दूध दिया, जिसमें घी, चीनी और शहद मिला हुआ था। फिर उसने अपने कटोरे को सुगंधित चूने के पाउडर से साफ करवाया और उसमें नया भोजन भरते हुए कहा, "महोदय, बड़े भिक्षु यात्रा से थक गए होंगे; उन्हें यह दे दीजिए।" भिक्षु ने बिना कोई आपत्ति किए भोजन लिया और मन ही मन सोचते हुए चल दिए, "अगर हमारे मित्र को एक बार इसका स्वाद लग गया, तो उसे गला पकड़कर बाहर फेंकने से भी वह नहीं जाएगा। लेकिन मैं इससे कैसे छुटकारा पाऊँ? अगर मैं इसे किसी इंसान को दे दूँ, तो सबको पता चल जाएगा। अगर मैं इसे पानी में फेंक दूँ, तो घी ऊपर तैरने लगेगा। और इसे ज़मीन पर फेंकने से तो पूरे इलाके के कौवे वहाँ जमा हो जाएँगे।" अपनी उलझन में उनकी नज़र एक जलते हुए खेत पर पड़ी, और उन्होंने अंगारों को खुरचकर अपने कटोरे का सारा भोजन गड्ढे में डाल दिया, ऊपर से अंगारे भर दिए और घर चले गए। वहाँ वरिष्ठ भिक्षु को न पाकर, उसने सोचा कि अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) उसकी ईर्ष्या को समझकर चले गए हैं। "मैं व्यथित हूँ, क्योंकि मेरे लालच ने मुझे पाप करने पर मजबूर किया है।"

और तब से वह भीषण बीमारी से ग्रसित हो गया और एक जीवित प्रेत के समान हो गया। शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में पुनर्जन्म लेकर लाखों वर्षों तक कष्ट भोगता रहा। अपने बढ़ते पाप के कारण, वह लगातार पाँच सौ जन्मों तक एक राक्षस बना रहा और उसे कभी भी तृप्ति नहीं मिली, सिवाय एक दिन के जब उसने एक जानवर के आंतरिक अंगों का अत्यधिक सेवन किया। इसके बाद, पाँच सौ और जन्मों तक वह एक कुत्ता बना रहा, और यहाँ भी, केवल एक ही दिन उसका पेट भरा - चावल की उल्टी से; किसी अन्य अवसर पर उसे तृप्ति नहीं मिली। यहाँ तक कि जब उसने कुत्ते का रूप त्याग दिया, तब भी उसका जन्म काशी गाँव के एक भिखारी परिवार में हुआ। उसके जन्म के समय से ही वह परिवार और भी अधिक भिखारी हो गया, और उसे कभी भी अपनी इच्छा के अनुसार आधा पानी का दलिया भी नहीं मिला। और उसे मित्त-विन्दक कहा जाने लगा।

अंततः भूख की पीड़ा सहन न कर पाने के कारण, उसके माता-पिता ने उसे पीटा और यह कहते हुए भगा दिया, "चले जाओ, तुम अभिशाप!"

अपनी यात्राओं के दौरान, वह छोटा बहिष्कृत व्यक्ति बनारस पहुँचा, जहाँ उन दिनों बोधिसत्व विश्वप्रसिद्ध गुरु थे और पाँच सौ युवा ब्राह्मणों को शिक्षा देते थे। उन दिनों बनारस के लोग गरीब लड़कों को प्रतिदिन भोजन देते थे और उन्हें निःशुल्क शिक्षा देते थे, इसलिए यह मित्र-विन्दक भी बोधिसत्व के शिष्य बन गया। परन्तु वह उग्र और हठी था, हमेशा अपने साथियों से लड़ता रहता था और अपने गुरु की डांट की परवाह नहीं करता था; इसलिए बोधिसत्व ने उससे फीस लेना बंद कर दिया। और क्योंकि वह इतना झगड़ालू था और डांट नहीं मानता था, अंततः वह युवक भाग गया और एक सीमावर्ती गाँव में आ गया जहाँ उसने मजदूरी करके अपना जीवन यापन किया और एक अत्यंत गरीब स्त्री से विवाह किया जिससे उसके दो बच्चे हुए। बाद में, ग्रामीणों ने उसे सच्चे और झूठे उपदेशों का ज्ञान देने के लिए भुगतान किया और उसे अपने गाँव के प्रवेश द्वार पर रहने के लिए एक झोपड़ी दी। लेकिन, मित्त-विन्दक के उनके बीच रहने आने के कारण ही राजा का प्रतिशोध उन ग्रामीणों पर सात बार बरसा, और सात बार उनके घर जलकर राख हो गए; सात बार उनके पानी के टैंक भी सूख गए।

तब उन्होंने इस मामले पर विचार किया और इस बात पर सहमत हुए कि मित्त-विन्दक के आने से पहले उनकी स्थिति ऐसी नहीं थी, परन्तु उसके आने के बाद से उनकी हालत बद से बदतर होती चली गई। अतः उन्होंने उसे पीट-पीटकर अपने गाँव से निकाल दिया; और वह अपने परिवार के साथ आगे बढ़ता गया और एक प्रेतवाधित जंगल में पहुँच गया। वहाँ राक्षसों ने उसकी पत्नी और बच्चों को मार डाला और खा लिया। वहाँ से भागकर, वह बहुत भटकने के बाद तट पर स्थित गम्भीरा नामक गाँव में पहुँचा, उस दिन जब एक जहाज समुद्र में जा रहा था; और उसने जहाज पर काम करने के लिए खुद को किराए पर दे दिया। एक सप्ताह तक जहाज चलता रहा, परन्तु सातवें दिन वह समुद्र के बीच में पूरी तरह रुक गया, मानो किसी चट्टान से टकरा गया हो। तब उन्होंने अपनी कमजोरी दूर करने के लिए पर्ची निकाली; और सातों बार पर्ची मित्त-विन्दक के नाम निकली। अतः उन्होंने उसे बाँसों का एक बेड़ा दिया, और उसे पकड़कर समुद्र में फेंक दिया। तब जहाज फिर से चलने लगा।

मित्त-विन्दक अपने बांसों पर सवार होकर लहरों पर तैरने लगा। बुद्ध कश्यप के समय में आज्ञाओं का पालन करने के कारण, उसे मध्य सागर में क्रिस्टल के महल में रहने वाली देवताओं की चार पुत्रियाँ मिलीं, जिनके साथ वह सात दिनों तक सुखपूर्वक रहा। महल के प्रेत केवल सात दिनों तक ही सुख भोगते हैं; इसलिए, जब सातवाँ दिन आया और उन्हें अपने दंड के लिए जाना पड़ा, तो उन्होंने मित्त-विन्दक को उनके लौटने की प्रतीक्षा करने का आदेश दिया। लेकिन उनके जाते ही, मित्त-विन्दक फिर से अपने बेड़े पर सवार होकर उस स्थान पर पहुँचा जहाँ देवताओं की आठ पुत्रियाँ चाँदी के महल में रहती थीं। उन्हें बारी-बारी से छोड़कर, वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ देवताओं की सोलह पुत्रियाँ रत्नों के महल में रहती थीं, और उसके बाद उस स्थान पर जहाँ बत्तीस पुत्रियाँ सोने के महल में रहती थीं। उनकी बातों पर ध्यान न देते हुए, वह फिर से रवाना हुआ और द्वीपों के बीच बसे राक्षसों के शहर में पहुँचा। वहाँ एक राक्षसी बकरी के रूप में घूम रही थी। यह न जानते हुए कि वह एक राक्षसी है, मित्त-विन्दका ने बकरी को अपना भोजन बनाने का सोचा और उसका पैर पकड़ लिया। तुरंत ही, अपने राक्षसी स्वभाव के कारण, उसने उसे समुद्र के ऊपर उछाल दिया, और वह बनारस की सूखी खाई की ढलान पर कंटीली झाड़ियों में धड़ाम से गिर पड़ा और वहाँ से लुढ़कते हुए धरती पर आ गिरा।

अब संयोगवश उस समय चोर उस खाई में अक्सर आते-जाते थे और राजा की बकरियों को मार डालते थे; और पास के बकरी चराने वालों ने उन बदमाशों को पकड़ने के लिए आपस में मिलकर काम किया था।

मित्त-विन्दक उठा और बकरियों को देखा। उसने मन ही मन सोचा, "अच्छा, समुद्र के एक द्वीप पर एक बकरी ने मुझे पैर पकड़कर यहाँ फेंक दिया था। शायद, अगर मैं भी इन बकरियों में से किसी एक के साथ ऐसा ही करूँ, तो मैं वापस वहीं पहुँच जाऊँगा जहाँ देवताओं की पुत्रियाँ अपने समुद्र-राजमहलों में रहती हैं।" इसलिए, बिना सोचे-समझे उसने एक बकरी का पैर पकड़ लिया। तुरंत बकरी मिमियाने लगी और चारों ओर से चरवाहे दौड़ते हुए आ गए। उन्होंने उसे तुरंत पकड़ लिया और चिल्लाते हुए कहा, "यह वही चोर है जो इतने दिनों से राजा की बकरियों पर पल रहा है।" और उन्होंने उसे पीटा और जंजीरों में बाँधकर राजा के पास ले जाने लगे।

ठीक उसी समय बोधिसत्व अपने पाँच सौ युवा ब्राह्मणों के साथ स्नान करने के लिए नगर से बाहर आ रहे थे। मित्त-विन्दक को देखकर और पहचानकर उन्होंने चरवाहों से कहा, "अरे, यह तो मेरा शिष्य है, मेरे सज्जनों; तुमने इसे किसलिए पकड़ा है?" "गुरुजी," उन्होंने कहा, "हमने इस चोर को बकरी को टांग से पकड़ते हुए रंगे हाथों पकड़ा है, इसलिए हमने इसे पकड़ रखा है।" "ठीक है," बोधिसत्व ने कहा, "मान लीजिए आप इसे हमारे हवाले कर दें ताकि हम इसे अपने साथ दास के रूप में रख सकें।" "ठीक है, महाराज," उन्होंने उत्तर दिया और अपने कैदी को छोड़कर अपने रास्ते चले गए। तब बोधिसत्व ने मित्त-विन्दक से पूछा कि वह इतने समय तक कहाँ था; और मित्त-विन्दक ने उन्हें अपने सारे कर्मों का वर्णन किया।

बोधिसत्व ने कहा, "उसने अपने शुभचिंतकों की बात न सुनने के कारण ही ये सभी विपत्तियाँ झेली हैं।" और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:-

वह जिद्दी आदमी जो उकसाए जाने पर भुगतान करता है
जिन मित्रों ने दयालुतापूर्वक सलाह दी, उनकी परवाह नहीं की गई।
मित्तक की तरह निश्चित रूप से हानि होगी।
जब उसने चर रही बकरी को पैर से पकड़ लिया।
और उसी समय उस गुरु और मित्तविन्दक दोनों का देहांत हो गया, और उनका परलोक उनके कर्मों के अनुसार ही हुआ।

गुरु ने कहा, "यह लोसाका स्वयं ही अपने अल्प प्राप्ति और अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) की प्राप्ति का कारण था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "वरिष्ठ भिक्षु लोसाका तिस्सा उन दिनों के मित्त-विन्दक थे, और मैं विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त गुरु हूँ।"

फुटनोट:

(1) पामसु-पिसाका को पेटा (प्रेत) या 'भूतों' का चौथा वर्ग कहा जाता है (जिन्हें एक साथ गुफानुमा मुंह और सुई की आंख से भी छोटे मुंह से शाप दिया गया था, ताकि उनकी भूख उनकी सामान्य अवस्था में भी कभी संतुष्ट न हो)।

(2) निप्पन्नो के स्थान पर निप्पन्नो पढ़ना। सीलोन आरएएस जर्नल, 1884, पृष्ठ 158 देखें; और पाली मूल के पृष्ठ 236, पंक्ति 20 पर अपुन्नो की तुलना करें।

(3)आयु-संखारा बौद्ध विचारों के अनुसार जीवन का नैतिक आधार है। बौद्ध धर्म का उद्देश्य इसे जड़ से उखाड़ फेंकना है, ताकि पुनर्जन्म न हो।

(4) यानी उस दिन और चावल नहीं खाए जा सकते थे। अगर एक सीधी छड़ी से उंगली की चौड़ाई जितनी भी छाया पड़ती है, तो एक सख्त भाई चावल और इसी तरह के भोजन नहीं खाएगा।

(5) शहद, घी (स्पष्ट मक्खन), मक्खन और चीनी।

(6) पकातत्तो को एक भाई (भिक्षु) के रूप में समझाया गया है "जिसने स्वयं को किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया है, कोई अनियमितता नहीं की है।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कपोता-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-42-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 42
कपोता-जातक

"वह हठी व्यक्ति" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। उसके लालच का वर्णन काका-जातक के नौवें खंड में किया जाएगा।

लेकिन इस अवसर पर भिक्षुओं ने गुरु से कहा, "महोदय, यह भिक्षु लालची है।"

गुरु ने कहा, "भाई, क्या यह सच है कि तुम लालची हो?" "जी हाँ," उत्तर मिला।

“भाई, बीते दिनों में तुम भी लालची थे, और इसी लालच के कारण तुमने अपनी जान गंवाई; तुमने बुद्धिमान और भले लोगों को भी अपना घर गंवाने पर मजबूर किया।” और ऐसा कहते हुए उसने बीते दिनों की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व कबूतर के रूप में पैदा हुए। उस समय बनारस के लोग भलाई के भाव से पक्षियों के आश्रय और आराम के लिए कई स्थानों पर भूसे की टोकरियाँ टांगते थे; बनारस के प्रधान कोषाध्यक्ष के रसोइए ने भी ऐसी ही एक टोकरी अपनी रसोई में टांग दी। बोधिसत्व इसी टोकरी में रहने लगे, भोर होते ही भोजन की तलाश में निकल जाते और शाम को लौट आते; इस प्रकार उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

लेकिन एक दिन रसोई के ऊपर उड़ते हुए एक कौवे ने वहाँ रखे नमक, ताज़ी मछली और मांस की अच्छी खुशबू सूंघ ली और उसे चखने की तीव्र इच्छा से भर गया। अपनी इच्छा पूरी करने का तरीका सोचते हुए वह पास ही बैठ गया और शाम को उसने बोधिसत्व को घर आते और रसोई में जाते देखा। "अहा!" उसने सोचा, "मैं कबूतर के ज़रिए यह काम कर सकता हूँ।"

इसलिए वह अगले दिन भोर में वापस आया, और जब बोधिसत्व भोजन की तलाश में तेज़ी से निकले, तो वह उनकी परछाई की तरह उनके पीछे-पीछे चलता रहा। तब बोधिसत्व ने कहा, "मित्र, तुम मेरे साथ क्यों रहते हो?"

“हे प्रभु,” कौवे ने उत्तर दिया, “आपका रूप मुझे बहुत भा गया है; और अब से मेरी इच्छा है कि मैं आपका अनुसरण करूँ।” “परन्तु, मित्र, तुम्हारा और मेरा भोजन एक जैसा नहीं है,” बोधिसत्व ने कहा, “यदि तुम मुझसे जुड़ जाओगे तो तुम्हें कठिनाई होगी।” “हे प्रभु,” कौवे ने कहा, “जब आप भोजन की तलाश में होंगे, तो मैं भी आपके साथ भोजन करूँगा।” “ठीक है,” बोधिसत्व ने कहा, “बस तुम्हें लगन से भोजन करना होगा।” कौवे को यह चेतावनी देकर बोधिसत्व घास के बीज चुगने लगे; जबकि दूसरा कौवा गोबर पलटकर उसके नीचे से कीड़े-मकोड़े निकालता रहा, जब तक कि उसका पेट भर नहीं गया। फिर वह बोधिसत्व के पास लौटकर बोला, “हे प्रभु, आप भोजन में बहुत अधिक समय लगाते हैं; इसमें अति नहीं करनी चाहिए।”

और जब बोधिसत्व ने भोजन कर लिया और शाम को घर वापस पहुंचे, तो कौआ उनके साथ उड़कर रसोई में आ गया।

“अरे वाह! हमारा पक्षी तो अपने साथ एक और को घर ले आया है!” रसोइए ने हैरानी से कहा और कौए के लिए एक और टोकरी टांग दी। और तब से वे दोनों पक्षी रसोई में साथ रहने लगे।

एक दिन, प्रधान कोषाध्यक्ष के पास मछलियों का भंडार था जिसे रसोइए ने रसोई में लटका दिया। उसे देखकर कौआ ललचा गया और उसने अगले दिन घर पर ही रहकर इस स्वादिष्ट दावत का आनंद लेने का निश्चय कर लिया।

तो पूरी रात वह कराहता रहा; और अगले दिन, जब बोधिसत्व भोजन की तलाश में निकले और पुकार कर बोले, "चलो, मित्र कौवे," तो कौवे ने उत्तर दिया, "मेरे बिना जाइए, मेरे पेट में दर्द है।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मित्र, मैंने पहले कभी कौवों के पेट में दर्द के बारे में नहीं सुना। हाँ, कौवे रात के तीनों पहरों में कमजोर महसूस करते हैं; लेकिन अगर वे दीपक की बाती खा लें, तो उनकी भूख क्षण भर के लिए शांत हो जाती है। आप यहाँ रसोई में रखी मछली के लिए तरस रहे होंगे। अब आइए, मनुष्य का भोजन आपको रास नहीं आएगा। इस तरह हार मत मानिए, बल्कि मेरे साथ आइए और अपना भोजन खोजिए।" कौवे ने कहा, "जी हाँ, मैं नहीं कर सकता, स्वामी।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, आपका आचरण ही बताएगा। केवल लालच के शिकार मत बनिए, बल्कि भक्ति भाव रखिए।" और इस सलाह के साथ, वह अपना दैनिक भोजन खोजने के लिए उड़ गया।

रसोइए ने कई तरह की मछलियाँ लीं, कुछ को एक तरह से पकाया, कुछ को दूसरी तरह से। फिर उसने बर्तनों के ढक्कन थोड़े से उठाकर भाप निकलने दी, एक बर्तन के ऊपर छेद वाला कटोरा रखा और दरवाजे के बाहर चला गया, जहाँ वह माथे से पसीना पोंछने लगा। ठीक उसी क्षण टोकरी से कौवे का सिर बाहर निकला। एक नज़र में ही उसे पता चल गया कि रसोइया चला गया है, और उसने सोचा, "अब या कभी नहीं, यही मेरा समय है। अब बस यही सवाल है कि मैं कीमा बनाया हुआ मांस चुनूँ या मछली का बड़ा टुकड़ा?" यह सोचकर कि कीमे से पूरा भोजन बनाने में बहुत समय लगता है, उसने मछली का एक बड़ा टुकड़ा लेने और टोकरी में बैठकर खाने का फैसला किया। तो वह उड़कर बाहर आया और छेद वाले कटोरे पर जा गिरा। "क्लिक" की आवाज़ आई।

शोर सुनकर रसोइया दौड़कर अंदर आया और बोला, "ये क्या हो सकता है?" कौए को देखकर वह चिल्लाया, "अरे, ये बदमाश कौआ मेरे मालिक का खाना खाने आ गया है। मुझे अपने मालिक के लिए काम करना है, उस बदमाश के लिए नहीं! मुझे उससे क्या लेना-देना है?" तो उसने पहले दरवाजा बंद किया, कौए को पकड़ा और उसके सारे पंख नोच डाले। फिर उसने अदरक को नमक और जीरे के साथ पीसकर उसमें खट्टी छाछ मिलाई और आखिर में कौए को अचार में लपेटकर उसकी टोकरी में वापस फेंक दिया। और कौआ दर्द से कराहता हुआ वहीं पड़ा रहा।

शाम को बोधिसत्व वापस आए और कौवे की दयनीय हालत देखी। “अरे! लालची कौवे,” उन्होंने कहा, “तूने मेरी बात नहीं मानी, और अब तेरे लालच ने ही तुझे यह कष्ट दिया है।” ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

वह जिद्दी आदमी जो उकसाए जाने पर भुगतान करता है
जो मित्र दयालुतापूर्वक सलाह देते हैं, उनकी परवाह नहीं की जाती।
वह लालची कौवे की तरह अवश्य ही नष्ट हो जाएगा।
जिसने कबूतर के चेतावनी भरे शब्दों का तिरस्कार करते हुए हँसा।
फिर, "मैं भी अब यहाँ नहीं रह सकता" कहते हुए बोधिसत्व उड़ गया। लेकिन कौआ वहीं मर गया, और रसोइए ने उसे टोकरी समेत कूड़े के ढेर पर फेंक दिया।

गुरु ने कहा, “भाई, तुम अतीत में भी लालची थे, ठीक वैसे ही जैसे अब हो; और तुम्हारे लालच के कारण ही उन दिनों के बुद्धिमान और भले लोगों को अपने घर छोड़ने पड़े।” यह उपदेश समाप्त करके गुरु ने चार सत्यों का प्रवचन दिया, जिसके अंत में उस भिक्षु ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। फिर गुरु ने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: “लालची भिक्षु उस समय का कौआ था, और मैं कबूतर।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वेशुक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-43-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 43
वेलुका-जातक

“जिद्दी आदमी।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जिद्दी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। भगवान बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या यह बात सच है कि वे जिद्दी थे, और भिक्षु ने स्वीकार किया कि यह सच था। गुरु ने कहा, “भाइ, यह पहली बार नहीं है जब तुम जिद्दी हुए हो: पहले भी तुम इतने ही जिद्दी थे। और बुद्धिमानों की सलाह न मानने की तुम्हारी जिद के कारण ही तुम्हारी मृत्यु सांप के काटने से हुई थी।” और ऐसा कहकर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य के एक समृद्ध परिवार में हुआ। परिपक्व होने पर उन्होंने देखा कि कामवासना से दुख उत्पन्न होता है और कामवासना का त्याग करने से ही सच्चा आनंद प्राप्त होता है। इसलिए उन्होंने कामवासनाओं को त्याग दिया और हिमालय जाकर संन्यासी बन गए। वहां उन्होंने ध्यान साधना के माध्यम से पांचों उच्च ज्ञान और आठों सिद्धियां प्राप्त कीं। उन्होंने अपना जीवन अंतर्दृष्टि के आनंद में व्यतीत किया और समय के साथ उनके पांच सौ संन्यासी शिष्य हो गए, जिनके वे गुरु थे।

एक दिन एक युवा विषैला साँप, जो साँपों की आदत के अनुसार इधर-उधर भटक रहा था, एक साधु की कुटिया में आ पहुँचा; और वह साधु उस जीव से इतना स्नेह करने लगा मानो वह उसका अपना बच्चा हो, उसने उसे बाँस के एक टुकड़े में रखा और उसके प्रति दयालुता दिखाई। और क्योंकि वह बाँस के एक टुकड़े में रहता था, इसलिए उस साँप का नाम "बाँस" पड़ गया। इतना ही नहीं, क्योंकि साधु उस साँप से इतना स्नेह करता था मानो वह उसका अपना बच्चा हो, इसलिए लोग उसे "बाँस का पिता" कहने लगे।

यह सुनकर कि एक भिक्षु ने एक विषैला साँप पाल रखा है, बोधिसत्व ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा कि क्या यह बात सच है। जब उसे बताया गया कि यह सच है, तो बोधिसत्व ने कहा, "एक विषैले साँप पर कभी भरोसा नहीं किया जा सकता; इसे अब और मत पालो।"

“परन्तु,” बोधिसत्व ने आग्रह किया, “मेरा सर्प मुझे उतना ही प्रिय है जितना एक शिष्य गुरु को; मैं उसके बिना नहीं रह सकता।” “तो फिर,” बोधिसत्व ने उत्तर दिया, “जान लो कि यही सर्प तुम्हारा प्राण छीन लेगा।” परन्तु गुरु की चेतावनी को अनसुना करते हुए, उस बोधिसत्व ने अपने पालतू सर्प को अपने पास ही रखा, क्योंकि वह उससे अलग नहीं होना चाहता था। कुछ ही दिनों बाद सभी बोधिसत्व फल तोड़ने निकले और एक ऐसी जगह पर पहुँचे जहाँ हर प्रकार के फल बहुतायत में उगते थे, वे वहाँ दो-तीन दिन रुके। उनके साथ “बांस के पिता” भी गए, और अपने सर्प को उसके बाँस के पिंजरे में ही छोड़ गए। दो-तीन दिन बाद जब वे वापस आए, तो उन्होंने सर्प को भोजन कराने का सोचा और बाँस खोलकर अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा, “आओ, मेरे पुत्र; तुम्हें भूख लगी होगी।” परन्तु लंबे समय से उपवास से क्रोधित सर्प ने उनके बढ़े हुए हाथ पर काट लिया, जिससे उनकी मौके पर ही मृत्यु हो गई, और सर्प जंगल में भाग गया।

उन्हें वहाँ मृत पड़ा देखकर, भिक्षुओं ने आकर बोधिसत्व को सूचना दी, जिन्होंने शरीर को जलाने का आदेश दिया। फिर, उनके बीच बैठकर, उन्होंने इस श्लोक को दोहराकर भिक्षुओं को प्रोत्साहित किया:

वह जिद्दी आदमी, जो उकसाए जाने पर भुगतान करता है

जो मित्र दयालुतापूर्वक सलाह देते हैं, उनकी परवाह नहीं की जाती।
'बांस के पिता' की तरह, इसका भी नाश हो जाएगा।
इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया; और उन्होंने अपने भीतर चार श्रेष्ठ अवस्थाओं का विकास किया, और अपनी मृत्यु के बाद ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में पुनर्जन्म लिया।

गुरु ने कहा, "भाई (भिक्षु), यह पहली बार नहीं है जब तुमने हठ दिखाया है; तुम पहले भी इतने ही हठी थे, और इसी कारण एक सांप के डंक से तुम्हारी मृत्यु हुई थी।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों, यह हठी भाई (भिक्षु) 'बांस के पिता' थे, मेरे शिष्य शिष्यों का समूह थे, और मैं स्वयं उनका गुरु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मकासा-जातक**

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-44-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 44
मकासा-जातक

"समझहीन मित्रों!" - यह कहानी गुरुजी ने मगध में भिक्षा मांगने के दौरान सुनाई थी, एक गाँव के कुछ मूर्ख ग्रामीणों के बारे में। परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती शहर से मगध राज्य की यात्रा के बाद, वे उस राज्य में घूम रहे थे जब वे एक ऐसे गाँव में पहुँचे जो मूर्खों से भरा हुआ था। उस गाँव में ये मूर्ख एक दिन इकट्ठा हुए और आपस में बहस करने लगे, "मित्रों, जब हम जंगल में काम करते हैं, तो मच्छर हमें काटते हैं; और इससे हमारा काम रुक जाता है। चलो, हम धनुष और हथियारों से लैस होकर मच्छरों से युद्ध करें और उन्हें मार डालें या काट डालें।" तो वे जंगल में गए और "मच्छरों को मार गिराओ" चिल्लाते हुए, एक-दूसरे पर तीर चलाते और वार करते रहे, जब तक कि वे बुरी तरह घायल नहीं हो गए और वापस आकर गाँव के अंदर या उसके प्रवेश द्वार पर जमीन पर गिर पड़े।

भिक्षुओं के संघ से घिरे हुए, गुरु भिक्षा मांगने उस गाँव में आए। गाँव के कुछ समझदार लोगों ने भगवान बुद्ध को देखते ही अपने गाँव के प्रवेश द्वार पर एक मंडप बना लिया और बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को बड़ी मात्रा में दान देकर गुरु को प्रणाम किया और बैठ गए। इधर-उधर घायल पड़े लोगों को देखकर गुरु ने उन भिक्षुओं से पूछा, "यहाँ बहुत से अपंग लोग पड़े हैं; उनके साथ क्या हुआ है?" उत्तर मिला, "महोदय, वे मच्छरों से लड़ने गए थे, लेकिन उन्होंने एक-दूसरे को ही मार डाला और इस तरह खुद को अपंग कर लिया।" गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है कि इन मूर्ख लोगों ने मच्छरों को मारने के बजाय खुद को ही चोट पहुँचाई है; पहले भी ऐसे लोग थे जो मच्छर को मारने के चक्कर में किसी दूसरे जीव को ही मार देते थे।" ऐसा कहकर, गाँव वालों के अनुरोध पर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, बोधिसत्व व्यापारी के रूप में अपना जीवन यापन करते थे। उन दिनों काशी के सीमावर्ती गाँव में कई बढ़ई रहते थे। संयोगवश, उनमें से एक, एक गंजे, सफ़ेद बालों वाले व्यक्ति, तांबे के कटोरे की तरह चमकते हुए अपने सिर पर लकड़ी को तराश रहे थे, तभी एक मच्छर उनके सिर पर बैठ गया और अपने तीर जैसे डंक से उन्हें काट लिया।

बढ़ई ने पास ही बैठे अपने बेटे से कहा, "बेटा, मेरे सिर पर मच्छर काट रहा है; उसे भगा दो।" बेटे ने कहा, "शांत रहो पिताजी; एक ही वार में काम तमाम हो जाएगा।"

(ठीक उसी समय बोधिसत्व व्यापार के सिलसिले में उस गाँव में पहुँचे थे और बढ़ई की दुकान में बैठे थे।)

“मुझे इससे छुटकारा दिलाओ,” पिता चिल्लाया। “ठीक है, पिताजी,” बूढ़े के पीछे छिपे बेटे ने जवाब दिया और केवल मच्छर को मारने के इरादे से एक तेज कुल्हाड़ी उठाकर अपने पिता का सिर दो टुकड़ों में काट दिया। इस तरह बूढ़ा वहीं गिर पड़ा और मर गया।

उस पूरे दृश्य के प्रत्यक्षदर्शी बोधिसत्व ने सोचा, "ऐसे मित्र से बेहतर तो वह शत्रु है जो समझदार हो, जिसे लोगों के प्रतिशोध के भय से किसी मनुष्य की हत्या करने से रोका जा सके।" और उन्होंने ये पंक्तियाँ सुनाईं:-

बुद्धिहीन मित्र, बुद्धिवान शत्रुओं से भी बदतर होते हैं;
उस बेटे को देखो जो मच्छर को मारना चाहता था।
लेकिन बेचारे ने अपने पिता की खोपड़ी को दो टुकड़ों में फाड़ दिया।
इतना कहकर बोधिसत्व उठे और चले गए, और आने वाले दिनों में अपने कर्मों के फल के अनुसार उनका निधन हो गया। और बढ़ई के शरीर को उसके परिवार ने जला दिया।

“इस प्रकार, हे भाइयों,” गुरु ने कहा, “पुराने समय में भी ऐसे लोग थे जो मच्छर को मारने की कोशिश में अपने ही साथी प्राणी को मार डालते थे।” यह पाठ समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, “उन दिनों मैं स्वयं एक बुद्धिमान और कुशल व्यापारी था जो इस श्लोक को दोहराने के बाद चला गया।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रोहिणी-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-45-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 45
रोहिणी जातक

"समझहीन मित्रो।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो महा कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका की एक दासी के बारे में है। कहा जाता है कि उनकी एक दासी थी जिसका नाम रोहिणी था। उसकी बूढ़ी माँ धान कूट रही लड़की के पास आकर लेट गई। मक्खियाँ उस बूढ़ी औरत के चारों ओर आ गईं और उसे सुई की तरह चुभने लगीं। तब उसने अपनी बेटी से कहा, "मक्खियाँ मुझे चुभ रही हैं, मेरी प्यारी; इन्हें भगा दो।" "ओह! मैं इन्हें भगा दूँगी, माँ," लड़की ने अपनी माँ पर बैठी मक्खियों पर मूसल उठाते हुए कहा। फिर, "मैं इन्हें मार डालूँगी!" चिल्लाते हुए, उसने अपनी माँ को इतनी ज़ोर से मारा कि बूढ़ी औरत की तुरंत मृत्यु हो गई। अपनी इस करारी करतूत को देखकर लड़की रोने लगी और चिल्लाने लगी, "ओह! माँ, माँ!"

यह खबर प्रधान कोषाध्यक्ष तक पहुंची, जिन्होंने शव को दफ़नाने के बाद मठ जाकर गुरु को सारी घटना बताई। गुरु ने कहा, “हे गृहस्थ, यह पहली बार नहीं है कि रोहिणी ने अपनी माताजी पर बैठी मक्खियों को मारने की हड़बड़ी में अपनी माताजी को मूसल से मार डाला हो; उसने पहले भी ठीक ऐसा ही किया था।” फिर अनाथपिंडिका के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म महाकोषाध्यक्ष के पुत्र के रूप में हुआ और अपने पिता की मृत्यु के बाद वे स्वयं महाकोषाध्यक्ष बन गए। उनकी भी एक दासी थी जिसका नाम रोहिणी था। उनकी माता भी उसी प्रकार रोहिणी के पास गईं, जहाँ उनकी पुत्री धान कूट रही थी, और लेटकर बोलीं, 'मेरी प्यारी, इन मक्खियों को मुझसे दूर भगा दो।' ठीक इसी प्रकार रोहिणी ने अपनी माता पर मूसल से प्रहार किया और उन्हें मार डाला, और रोने लगीं।

जो कुछ हुआ था, उसे सुनकर बोधिसत्व ने सोचा, 'इस संसार में तो एक समझदार शत्रु भी श्रेष्ठ होगा,' और उन्होंने ये पंक्तियाँ पढ़ीं:-

बुद्धिहीन मित्र, बुद्धिवान प्रतिद्वंद्वियों से भी बदतर होते हैं।

उस लड़की को देखो जिसके लापरवाह हाथों ने उसे नीचे गिरा दिया
उसकी माँ, जिसके लिए वह अब व्यर्थ ही शोक मना रही है।
इन पंक्तियों में, जो बुद्धिमानों की प्रशंसा करती हैं, बोधिसत्व ने सत्य का उपदेश दिया।

“हे मनुष्य, यह पहली बार नहीं है कि रोहिणी मक्खियाँ मारने की हड़बड़ी में अपनी ही माँ को मार डाले।” यह पाठ समाप्त करते हुए उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा: “आज की माता और पुत्री अतीत में भी माता और पुत्री थीं, और मैं स्वयं परमेश्वर, सर्वोच्च कोषाध्यक्ष हूँ।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अरामदुसक-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-46-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 46
अरमादुसक-जातक

"यह ज्ञान है।" - यह कहानी गुरु ने कोसला के एक गाँव में एक ऐसे व्यक्ति के बारे में सुनाई थी जिसने एक बगीचे को बर्बाद कर दिया था।

परंपरा के अनुसार, कोसल के लोगों के बीच भिक्षा मांगने के दौरान, गुरु बुद्ध एक गाँव में पहुँचे। उस गाँव के एक अधिकारी ने बुद्ध को अपने घर पर दोपहर का भोजन करने के लिए आमंत्रित किया और अतिथि को बगीचे में बैठाया। वहाँ उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ (भाईचारे) को आतिथ्य सत्कार के बारे में समझाया और उन्हें विनम्रतापूर्वक अपने परिसर में घूमने की अनुमति दी। तब भिक्षु संघ (भाईचारे) उठे और माली के साथ परिसर में घूमने लगे। घूमते हुए उन्होंने एक खाली जगह देखी और माली से कहा, "हे शिष्य, बगीचे में अन्य जगहों पर तो भरपूर छाया है; लेकिन यहाँ न तो कोई पेड़ है और न ही कोई झाड़ी। ऐसा क्यों है?"

"महोदय," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "जब इस भूमि का निर्माण हो रहा था, तब सिंचाई का काम कर रहे एक गाँव के लड़के ने यहाँ के सभी छोटे पेड़ों को उखाड़ दिया और फिर उनकी जड़ों के आकार के अनुसार उन्हें कम या ज्यादा पानी दिया। परिणामस्वरूप, वे छोटे पेड़ सूखकर मर गए; और इसीलिए यह स्थान खाली पड़ा है।"

गुरु के पास आकर, भाइयों ने उन्हें यह बताया। "जी भाइयों," उन्होंने कहा, "यह पहली बार नहीं है जब उस गाँव के लड़के ने बगीचे को खराब किया है; उसने पहले भी ठीक ऐसा ही किया था।" और ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब शहर में एक उत्सव की घोषणा की गई; और उत्सव के ढोल की पहली आवाज सुनते ही शहरवासी उत्सव मनाने के लिए निकल पड़े।

उन दिनों राजा के बगीचे में बंदरों का एक झुंड रहता था। राजा के माली ने मन ही मन सोचा, "वे शहर में छुट्टियां मनाने गए हैं। मैं बंदरों से पौधों में पानी डलवा लूँगा और बाकी लोगों के साथ मौज-मस्ती करने चला जाऊँगा।" ऐसा कहकर वह बंदरों के सरदार के पास गया और पहले तो राजा और उनकी प्रजा को बगीचे में रहने से मिलने वाले फूलों, फलों और नई कोंपलों का आनंद लेते हुए, अंत में बोला, "आज शहर में छुट्टियां मनाने गए हैं, और मैं मौज-मस्ती करने जा रहा हूँ। क्या आप मेरे जाने के दौरान छोटे पेड़ों में पानी डाल देंगे?"

"ओह! हाँ," बंदर ने कहा।

"बस ध्यान रखना," माली ने कहा; और वह बंदरों को पानी की मशकें और लकड़ी के पानी के बर्तन काम करने के लिए देकर चला गया।

फिर बंदरों ने पानी की मशकें और पानी के घड़े लिए और छोटे पेड़ों को पानी देने लगे। उनके राजा ने कहा, "लेकिन हमें पानी बर्बाद नहीं करना चाहिए; पानी देते समय, पहले हर छोटे पेड़ को उखाड़कर उसकी जड़ों का आकार देखो। फिर उन पेड़ों को खूब पानी दो जिनकी जड़ें गहरी हैं, और जिनकी जड़ें छोटी हैं उन्हें थोड़ा ही पानी दो। जब सारा पानी खत्म हो जाएगा, तो हमें और पानी मिलना मुश्किल हो जाएगा।"

"ज़रूर," दूसरे बंदरों ने कहा और उन्होंने वैसा ही किया जैसा उसने उनसे करने को कहा था।

इसी समय एक बुद्धिमान व्यक्ति ने बंदरों को इस प्रकार काम करते हुए देखा और उनसे पूछा कि वे एक-एक करके पेड़ क्यों उखाड़ रहे हैं और उनकी जड़ों के आकार के अनुसार उन्हें पानी क्यों दे रहे हैं।

बंदरों ने उत्तर दिया, "क्योंकि हमारे राजा का यही आदेश है।"

उनके उत्तर ने उस बुद्धिमान व्यक्ति को सोचने पर मजबूर कर दिया कि कैसे भलाई करने की हर इच्छा के बावजूद, अज्ञानी और मूर्ख लोग केवल हानि ही पहुंचाते हैं। और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

ज्ञान ही कड़ी मेहनत को सफलता में तब्दील करता है।

मूर्ख अपनी मूर्खता के कारण ही रुक जाते हैं।
उस बंदर को देखो जिसने बगीचे के पेड़ों को काट डाला।
बंदरों के राजा को यह फटकार लगाकर, ज्ञानी व्यक्ति अपने अनुयायियों के साथ बगीचे से चला गया।

गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस गाँव के लड़के ने बागों को बर्बाद किया है; पहले भी वह ऐसा ही करता था।" अपना पाठ समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "जिस गाँव के लड़के ने इस बाग को बर्बाद किया, वह उन दिनों बंदरों का राजा था, और मैं स्वयं बुद्धिमान और नेक व्यक्ति था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वारुणी-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-47-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 47
वरुणी जातक

"यह ज्ञान है।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक ऐसे व्यक्ति के बारे में सुनाई थी जिसने शराब में मिलावट कर दी थी। परंपरा के अनुसार, अनाथपिंडिका का एक मित्र था जो एक शराबखाना चलाता था। उस मित्र ने खूब शराब तैयार रखी जिसे वह सोने-चांदी में बेचता था, और उसका शराबखाना खचाखच भरा रहता था। उसने अपने शागिर्द को केवल नकद में बेचने का आदेश दिया और स्वयं स्नान करने चला गया। शागिर्द अपने ग्राहकों को रम परोसते समय यह देख रहा था कि वे नमक और गुड़ मंगवाकर उसे खा रहे हैं। उसने मन ही मन सोचा, "हमारी शराब में नमक नहीं हो सकता; मैं थोड़ा नमक मिला देता हूँ।" तो उसने रम के एक कटोरे में एक पौंड नमक डाल दिया और ग्राहकों को परोस दिया। जैसे ही उन्होंने एक घूंट लिया, उन्होंने उसे थूक दिया और कहा, "तुमने क्या किया है?" "मैंने देखा कि आप हमारी शराब पीने के बाद नमक मंगवा रहे थे, इसलिए मैंने थोड़ा नमक मिला दिया।" "और इस तरह तुमने बढ़िया शराब खराब कर दी, बेवकूफ़!" ग्राहकों ने चिल्लाते हुए कहा और गाली-गलौज करते हुए एक-एक करके उठकर सराय से बाहर चले गए। जब सराय का मालिक घर लौटा और उसे एक भी ग्राहक नहीं दिखा, तो उसने पूछा कि वे सब कहाँ चले गए। तब शिष्य ने उसे सब कुछ बताया। उसे उसकी गलती के लिए फटकारते हुए, वह आदमी जाकर अनाथपिंडिका को सब कुछ बता दिया। और अनाथपिंडिका ने यह कहानी सुनाने लायक समझकर जेतवन मठ में जाकर, विधिवत प्रणाम करने के बाद, गुरु को सब कुछ बता दिया।

"यह पहली बार नहीं है, हे मनुष्य," गुरु ने कहा, "कि इस शिष्य ने आत्माओं को दूषित किया है। उसने पहले भी ठीक ऐसा ही किया था।" फिर अनाथपिंडिका के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व बनारस के कोषाध्यक्ष थे और उनकी देखरेख में एक शराबखाना चलाते थे। ब्रह्मदत्त ने कुछ तेज़ शराब तैयार करवाई और उसे अपने शिष्य को बेचने के लिए छोड़कर खुद नहाने चले गए। उनकी अनुपस्थिति में उनके शिष्य ने शराब में नमक मिला दिया और उसे उसी तरह खराब कर दिया। जब उनके गुरु और मार्गदर्शक को इस घटना का पता चला, तो उन्होंने कोषाध्यक्ष को सारी बात बताई। कोषाध्यक्ष ने कहा, 'सचमुच, अज्ञानी और मूर्ख लोग भलाई करने की हर इच्छा के बावजूद केवल हानि ही करते हैं।' और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:-

ज्ञान ही कड़ी मेहनत को सफलता में तब्दील करता है;
मूर्ख अपनी मूर्खता के कारण ही रुक जाते हैं।
कोंडन्ना का रम से भरा नमकीन कटोरा देखें।
इन पंक्तियों में बोधिसत्व ने सत्य का उपदेश दिया।

गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, यही व्यक्ति अतीत में भी आत्माओं को दूषित करता था, और अब भी करता है।" फिर उन्होंने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताई, "जिसने अब आत्माओं को दूषित किया है, वही अतीत में भी आत्माओं को दूषित करता था, और मैं स्वयं उस समय बनारस का कोषाध्यक्ष था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वेदभ-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-48-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 48
वेदब्भा-जातक

"गलत दिशा में किया गया प्रयास।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जिद्दी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। गुरु ने उस भिक्षु से कहा, "हे भिक्षु, यह पहली बार नहीं है जब तुम जिद्दी हुए हो; पहले भी तुम्हारा स्वभाव ऐसा ही था; और इसीलिए तुमने बुद्धिमानों और भले लोगों की सलाह नहीं मानी, तो तुम्हें एक तेज तलवार से काटकर सड़क पर फेंक दिया गया; और तुम्हारे कारण ही एक हजार लोगों की मृत्यु हुई।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था जिसे वेदब्भा नामक मंत्र का ज्ञान था। कहा जाता है कि यह मंत्र अनमोल था। ग्रहों की एक विशेष युति के समय इस मंत्र का जाप करने और आकाश की ओर दृष्टि उठाने से आकाश से सात अनमोल वस्तुएँ - सोना, चाँदी, मोती, मूंगा, खसखस, माणिक और हीरा - बरसने लगती थीं।

उन दिनों बोधिसत्व इस ब्राह्मण के शिष्य थे; और एक दिन उनके गुरु किसी काम से गाँव छोड़कर चले गए और बोधिसत्व के साथ चेति देश आ गए।

एक जंगल में पाँच सौ लुटेरे रहते थे, जिन्हें "भेजने वाले" के नाम से जाना जाता था। उन्होंने रास्ता दुर्गम बना दिया था। इन्हीं लुटेरों ने बोधिसत्व और वेदब्भ-ब्राह्मण को पकड़ लिया। (आप पूछेंगे कि उन्हें प्रेषक क्यों कहा जाता था? - दरअसल, वे हर दो कैदियों में से एक को फिरौती लाने के लिए भेजते थे; और इसीलिए उन्हें प्रेषक कहा जाता था। अगर वे पिता और पुत्र को पकड़ लेते थे, तो वे पिता को अपने बेटे को छुड़ाने के लिए फिरौती लाने को कहते थे; अगर वे माता और उसकी बेटी को पकड़ लेते थे, तो वे माता को पैसे लाने के लिए भेजते थे; अगर वे दो भाइयों को पकड़ लेते थे, तो वे बड़े भाई को छोड़ देते थे; और इसी तरह, अगर वे एक गुरु और उसके शिष्य को पकड़ लेते थे, तो वे शिष्य को ही मुक्त करते थे। इसलिए, इस मामले में, उन्होंने वेदब्भ-ब्राह्मण को रखा और बोधिसत्व को फिरौती लाने के लिए भेजा।) और बोधिसत्व ने अपने गुरु को प्रणाम करते हुए कहा, "एक-दो दिन में मैं अवश्य लौट आऊंगा; चिंता मत करो; बस मेरी बात मानो। आज ग्रहों का ऐसा संयोग होगा जिससे बहुमूल्य वस्तुओं की वर्षा होगी। सावधान रहो, अन्यथा इस विपत्ति के आगे झुककर तुम मंत्र दोहराओगे और बहुमूल्य वर्षा को आमंत्रित करोगे।" क्योंकि, यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम दोनों और लुटेरों के इस गिरोह पर निश्चित रूप से विपत्ति आएगी।" अपने गुरु को यह चेतावनी देकर बोधिसत्व फिरौती की तलाश में निकल पड़े।

सूर्यास्त के समय लुटेरों ने ब्राह्मण को बांधकर उसके पैरों से ज़मीन पर लिटा दिया। ठीक उसी क्षण पूर्वी क्षितिज पर पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हुआ, और ब्राह्मण ने आकाश का अध्ययन करते हुए जान लिया कि ग्रहों का महासंयोग हो रहा है। उसने सोचा, "मैं यह कष्ट क्यों सहूँ? मंत्र का जाप करके मैं बहुमूल्य वर्षा को आमंत्रित करूँगा, लुटेरों को फिरौती दूँगा और मुक्त हो जाऊँगा।" इसलिए उसने लुटेरों को पुकारा, "मित्रों, मुझे बंदी क्यों बनाया है?" उन्होंने कहा, "पुण्य के लिए, आदरणीय महोदय।" ब्राह्मण ने कहा, "ठीक है, यदि यही तुम्हारी इच्छा है, तो जल्दी करो और मुझे खोल दो; मेरे सिर को धो दो, मुझे नए वस्त्र पहना दो; मुझे सुगंधित कर दो और फूलों से सजा दो। फिर मुझे अकेला छोड़ दो।" लुटेरों ने वैसा ही किया जैसा उसने कहा था। और ब्राह्मण ने ग्रहों के संयोग को देखते हुए, आकाश की ओर आँखें उठाकर अपने मंत्र का जाप किया। तब आकाश से बहुमूल्य वस्तुएँ बरस उठीं! लुटेरों ने उन सबको उठा लिया और लूटे हुए माल को अपने लबादों में लपेटकर गठ्ठों में बांध लिया। फिर वे अपने साथियों के साथ चल पड़े; ब्राह्मण उनके पीछे-पीछे चल रहा था। लेकिन, किस्मत का खेल देखिए, तभी पांच सौ लुटेरों के दूसरे गिरोह ने उन्हें पकड़ लिया! पहले गिरोह ने दूसरे गिरोह से पूछा, "तुम हमें क्यों पकड़ रहे हो?" जवाब मिला, "लूट के लिए। अगर तुम्हें लूट ही चाहिए, तो उस ब्राह्मण को पकड़ लो, जिसने सिर्फ आकाश की ओर देखकर ही धन-दौलत बरसाती है। उसी ने हमें सब कुछ दिया है।" तो लुटेरों के दूसरे गिरोह ने पहले गिरोह को छोड़ दिया और ब्राह्मण को

पकड़कर चिल्लाने लगे, “हमें भी धन दे दो!” ब्राह्मण ने कहा, “मुझे बहुत खुशी होगी; लेकिन ग्रहों का ऐसा संयोग होने में अभी एक साल लगेगा। अगर तुम तब तक इंतजार करोगे, तो मैं तुम्हारे लिए धन-दौलत बरसा दूंगा।”

“दुष्ट ब्राह्मण!” क्रोधित डाकुओं ने चिल्लाकर कहा, “तूने दूसरे गिरोह को झटपट अमीर बना दिया, पर हमें पूरे एक साल तक इंतज़ार करवा रहा है!” उन्होंने उसे एक तेज़ तलवार से दो टुकड़ों में काट डाला और उसके शरीर को सड़क के बीचोंबीच फेंक दिया। फिर पहले गिरोह का पीछा करते हुए, उन्होंने उनके भी एक-एक आदमी को आमने-सामने की लड़ाई में मार डाला और लूटा हुआ माल छीन लिया। इसके बाद, वे दो टुकड़ियों में बँट गए और आपस में ही लड़ने लगे, एक टुकड़ी दूसरी टुकड़ी से, जब तक कि ढाई सौ आदमी मारे नहीं गए। इसी तरह वे एक-दूसरे को मारते रहे, जब तक कि केवल दो ही जीवित नहीं बचे। इस प्रकार उन हज़ार आदमियों का अंत हो गया।

अब, जब दोनों जीवित बचे लोग खजाने को ले जाने में कामयाब हो गए, तो उन्होंने उसे एक गांव के पास जंगल में छिपा दिया; और उनमें से एक तलवार हाथ में लेकर उसकी रखवाली करने के लिए वहीं बैठ गया, जबकि दूसरा गांव में चावल लाने और उसे रात के खाने के लिए पकाने के लिए चला गया।

"अधिकार की लालसा ही विनाश का मूल कारण है!" खजाने के पास रुके उस व्यक्ति ने कहा। "जब मेरा साथी वापस आएगा, तो वह इसका आधा हिस्सा चाहेगा। मान लो, उसके लौटते ही मैं उसे मार डालूँ।" इसलिए उसने अपनी तलवार निकाली और अपने साथी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

इसी बीच, दूसरे डाकू ने भी सोचा कि लूट का माल आधा-आधा बाँटना चाहिए, और मन ही मन सोचा, "मान लो मैं चावल में ज़हर मिला दूँ, उसे खिला दूँ और इस तरह उसे मार दूँ, और सारा खजाना खुद ले लूँ।" तदनुसार, जब चावल उबल गए, तो उसने पहले अपना हिस्सा खाया, फिर बाकी बचे चावल में ज़हर मिला दिया, जिसे वह अपने साथ जंगल ले गया। लेकिन जैसे ही उसने उसे नीचे रखा, दूसरे डाकू ने उसे अपनी तलवार से दो टुकड़ों में काट दिया, और शव को एक सुनसान जगह पर छिपा दिया। फिर उसने ज़हर मिले चावल खा लिए, और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, खजाने के लालच में न केवल ब्राह्मण, बल्कि सभी डाकू नष्ट हो गए।

हालांकि, एक-दो दिन बाद बोधिसत्व फिरौती लेकर लौट आए। अपने गुरु को उस स्थान पर न पाकर जहाँ उन्होंने उन्हें छोड़ा था, और चारों ओर बिखरा हुआ खजाना देखकर, उनके मन में यह आशंका हुई कि उनकी सलाह के बावजूद, उनके गुरु ने आकाश से खजाने की वर्षा कर दी होगी और परिणामस्वरूप सभी नष्ट हो गए होंगे; और वे आगे बढ़ गए। रास्ते में वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उनके गुरु का शरीर दो टुकड़ों में कटा हुआ पड़ा था। "हाय!" वे रोए, "मेरी चेतावनी न मानने के कारण उनकी मृत्यु हो गई।" फिर उन्होंने लकड़ियाँ इकट्ठा करके एक चिता बनाई और जंगली फूलों का अर्पण करते हुए अपने गुरु के शरीर को जला दिया। आगे चलकर वे पाँच सौ "प्रेषकों" के पास पहुँचे, फिर ढाई सौ के पास, और इसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए अंत में वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ केवल दो शव पड़े थे। यह देखकर कि हज़ार में से दो को छोड़कर सभी मर चुके थे, और यह विश्वास करते हुए कि दो जीवित बचे होंगे, और वे संघर्ष से बच नहीं सकते थे, वे यह देखने के लिए आगे बढ़े कि वे कहाँ गए हैं। तो वह तब तक चलता रहा जब तक उसे वह रास्ता नहीं मिल गया जिससे होकर वे खजाने के साथ जंगल में गए थे; और वहाँ उसे खजाने के गट्ठों का ढेर मिला, और एक डाकू मृत पड़ा हुआ था, जिसका चावल का कटोरा उसके बगल में उलटा पड़ा था। पूरी कहानी को एक नज़र में समझते हुए, बोधिसत्व लापता व्यक्ति की तलाश में जुट गए, और अंत में उसका शव उस गुप्त स्थान पर पाया जहाँ उसे फेंका गया था। "और इस प्रकार," बोधिसत्व ने चिंतन किया, "मेरे गुरु ने मेरी सलाह न मानकर अपनी मनमानी में न केवल स्वयं को बल्कि हजारों अन्य लोगों को भी नष्ट कर दिया है। सचमुच, जो लोग गलत और भ्रामक साधनों से अपना लाभ चाहते हैं, वे विनाश ही पाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे मेरे गुरु का हुआ।" और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:-

गलत दिशा में किया गया प्रयास लाभ नहीं, हानि की ओर ले जाता है;
चोरों ने वेदब्बा की हत्या कर दी और स्वयं भी मारे गए।
बोधिसत्व ने इस प्रकार कहा, और आगे बोला, “जिस प्रकार मेरे गुरु ने स्वर्ग से धन की वर्षा कराने के अपने गलत और भ्रामक प्रयास से स्वयं अपनी मृत्यु और दूसरों का विनाश किया, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य जो गलत साधनों से अपना लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है, वह भी नष्ट हो जाएगा और दूसरों को भी अपने विनाश में शामिल कर लेगा।” इन शब्दों से बोधिसत्व ने वन को गुंजायमान कर दिया; और इस श्लोक में उन्होंने सत्य का उपदेश दिया, जबकि वृक्ष-परियों ने जयजयकार की। उन्होंने उस धन को अपने घर ले जाने की योजना बनाई, जहाँ उन्होंने अपना जीवन दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत किया। और जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो वे अपने द्वारा जीते गए स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गए।

गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भाई (भिक्षु), जब तुम अपनी इच्छा के अनुसार चले हो; तुम अतीत में भी अपनी इच्छा के अनुसार चले थे; और अपनी इच्छा के कारण ही तुम्हारा पूर्ण विनाश हुआ।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "वह इच्छा के अनुसार चलने वाला भाई उस समय का वेदब्भ-ब्राह्मण था, और मैं स्वयं उसका शिष्य हूँ।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नक्खट्ट-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-49-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 49
नक्खत्त-जातक

"मूर्ख देखता रहे।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक नग्न तपस्वी के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती शहर के पास रहने वाले एक सज्जन ने अपने पुत्र के लिए श्रावस्ती शहर की एक युवती से विवाह का प्रस्ताव रखा, जो उनके ही समान दर्जे की थी। दुल्हन को लाने के लिए एक दिन तय करने के बाद, उन्होंने अपने परिवार के करीबी नग्न तपस्वी से यह जानने के लिए परामर्श लिया कि क्या उस दिन विवाह समारोह आयोजित करने के लिए सितारे अनुकूल हैं।

“उन्होंने मुझसे पहले पूछा तक नहीं,” क्रोधित तपस्वी ने मन ही मन सोचा, “लेकिन मुझसे सलाह लिए बिना ही दिन तय कर लिया, अब बस मेरा नाम लेकर दिखावा कर रहे हैं। बहुत खूब; मैं उन्हें सबक सिखाऊंगा।” इसलिए उन्होंने जवाब दिया कि उस दिन नक्षत्र अनुकूल नहीं थे; उस दिन विवाह नहीं होना चाहिए; और अगर हुआ भी तो बड़ी विपत्ति आएगी। और गाँव के परिवार ने अपने तपस्वी पर विश्वास रखते हुए उस दिन दुल्हन को लेने नहीं गए। अब शहर में दुल्हन की सहेलियों ने विवाह समारोह की सारी तैयारियाँ कर ली थीं, और जब उन्होंने देखा कि दूसरी तरफ के लोग नहीं आए, तो उन्होंने कहा, “आज का दिन तो इन्होंने ही तय किया था, फिर भी नहीं आए; और हमारा इतना खर्चा हो गया। ये लोग कौन हैं? चलो लड़की का विवाह किसी और से करवा देते हैं।” इसलिए उन्होंने दूसरा दूल्हा ढूँढा और पहले से तैयार किए गए सभी समारोहों के साथ लड़की का विवाह उससे करवा दिया।

अगले दिन गांव के लोग दुल्हन को लेने आए। लेकिन श्रावस्ती शहर के लोगों ने उनके बारे में कुछ इस तरह कहा: "तुम गांव वाले बड़े बुरे लोग हो; तुमने खुद ही शादी की तारीख तय की और फिर न आकर हमारा अपमान किया। हमने लड़की को किसी और को दे दिया है।" गांव के लोगों ने झगड़ा शुरू कर दिया, लेकिन अंत में वे उसी रास्ते से वापस चले गए जिससे आए थे।

अब भिक्षुओं को पता चला कि उस नग्न तपस्वी ने उत्सव क्यों रोका था, और वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा करने लगे। हॉल में प्रवेश करके और उनकी बातचीत का विषय जानने पर, गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इसी तपस्वी ने उस परिवार का उत्सव रोका है; उनसे नाराज़ होकर उसने पहले भी एक बार ऐसा ही किया था।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब कुछ नगरवासियों ने एक गाँव की लड़की से विवाह का प्रस्ताव रखा और शादी की तारीख तय कर ली। शादी की तारीख तय होने के बाद, उन्होंने अपने कुल साधु से पूछा कि क्या उस दिन विवाह समारोह के लिए सितारे अनुकूल हैं। साधु को यह देखकर गुस्सा आया कि उन्होंने बिना सलाह लिए अपनी सुविधा के अनुसार शादी की रस्में रद्द कर दीं। उन्होंने बताया कि उस दिन सितारे अनुकूल नहीं हैं और अगर वे शादी करते रहे तो गंभीर दुर्भाग्य होगा। इसलिए, साधु पर विश्वास रखते हुए वे घर पर ही रहे! जब गाँववासियों ने देखा कि गाँव के लोग नहीं आए, तो उन्होंने आपस में कहा, "इन्होंने ही आज शादी तय की थी और अब वे नहीं आए। ये कौन हैं?" और उन्होंने उस लड़की का विवाह किसी और से कर दिया।

अगले दिन नगरवासी आए और लड़की के बारे में पूछा; लेकिन गाँव वालों ने यह उत्तर दिया:- "तुम नगरवासियों में सामान्य शिष्टाचार की कमी है। तुमने खुद दिन तय किया और फिर भी दुल्हन को लेने नहीं आए। तुम्हारे चले जाने से हमने उसका विवाह किसी और से कर दिया।" "लेकिन हमने अपने तपस्वी से पूछा, और उन्होंने बताया कि सितारे अनुकूल नहीं थे। इसीलिए हम कल नहीं आए। हमें लड़की दे दो।" "तुम सही समय पर नहीं आए, और अब वह किसी और की हो गई है। हम उसका विवाह दो बार कैसे कर सकते हैं?" जब वे इस प्रकार आपस में झगड़ रहे थे, तभी शहर से एक ज्ञानी व्यक्ति काम से गाँव आया। नगरवासियों को यह बताते हुए सुनकर कि

उन्होंने अपने तपस्वी से सलाह ली थी और उनकी अनुपस्थिति सितारों के प्रतिकूल होने के कारण थी, वह चौंक गया, "क्या, सितारों का कोई महत्व है? क्या लड़की का मिलना ही सौभाग्य की बात नहीं है?" और ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:-

मूर्ख व्यक्ति 'भाग्यशाली दिनों' की प्रतीक्षा कर सकता है।
 फिर भी किस्मत कभी-कभी चूक जाती है;
भाग्य स्वयं ही भाग्य का सितारा है।
 साधारण सितारे क्या हासिल कर सकते हैं?
जहां तक कस्बेवासियों की बात है, उनके तमाम प्रयासों के बावजूद जब उन्हें वह लड़की नहीं मिली, तो उन्हें वापस घर लौटना पड़ा!

गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि इस नग्न तपस्वी ने उस परिवार के उत्सवों को रोका है; उसने अतीत में भी ऐसा ही किया था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह तपस्वी उन दिनों का भी तपस्वी था, और परिवार भी वही थे; मैं स्वयं वह बुद्धिमान और नेक व्यक्ति था जिसने श्लोक का उच्चारण किया था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुम्मेध-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-50-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 50
दुम्मेधा जातक

"हजारों दुष्ट।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो संसार की भलाई के लिए किए गए कार्यों के बारे में है, जैसा कि महा-कान्हा-जातक (*1) के बारहवें खंड में समझाया जाएगा।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का पुनर्जन्म उनकी पत्नी रानी के गर्भ में हुआ। जन्म के समय ही उनका नामकरण उनके जन्मदिवस पर राजकुमार ब्रह्मदत्त के नाम से किया गया। सोलह वर्ष की आयु तक उन्होंने तक्षशिला में उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी, तीनों वेदों को वे कंठस्थ कर चुके थे और ज्ञान की अठारह शाखाओं में पारंगत थे। उनके पिता ने उन्हें वायसराय नियुक्त किया।

उन दिनों बनारस के लोग 'देवताओं' के उत्सवों में बहुत मग्न रहते थे और उन्हें सम्मान देते थे। भेड़, बकरी, मुर्गी, सूअर और अन्य जीवित प्राणियों की बलि देना उनकी आदत थी, और वे अपने अनुष्ठान केवल फूलों और इत्रों से ही नहीं, बल्कि खून से लथपथ शवों से भी करते थे। दया के भावी भगवान ने मन ही मन सोचा, "अंधविश्वास के कारण मनुष्य अब मनमाने ढंग से जीवन की बलि दे रहे हैं; अधिकांश लोग अनैतिकता में लिप्त हैं: लेकिन जब मेरे पिता की मृत्यु के बाद मुझे मेरा उत्तराधिकार मिलेगा, तो मैं जीवन के इस विनाश को रोकने का उपाय खोजूंगा। मैं कोई ऐसी चतुर योजना बनाऊंगा जिससे किसी भी मनुष्य को हानि पहुंचाए बिना इस बुराई को रोका जा सके।" इसी भाव में राजकुमार एक दिन अपने रथ पर सवार होकर शहर से निकल पड़े। रास्ते में उन्होंने एक पवित्र बरगद के वृक्ष के पास भीड़ देखी, जो उस वृक्ष में पुनर्जन्म लेने वाली परी से प्रार्थना कर रही थी कि उन्हें पुत्र-पुत्रियां, मान-सम्मान और धन, प्रत्येक को उसकी इच्छा के अनुसार प्रदान करे। अपने रथ से उतरकर बोधिसत्व वृक्ष के पास आए और एक उपासक की तरह सुगंधित इत्र और फूल अर्पित किए, वृक्ष पर जल छिड़का और आदरपूर्वक उसके तने के चारों ओर परिक्रमा की। फिर अपने रथ पर सवार होकर वे वापस नगर की ओर चल दिए।

तब से राजकुमार समय-समय पर उस वृक्ष की यात्रा करने लगा और सच्चे 'देवताओं' में विश्वास रखने वाले की तरह उसकी पूजा करने लगा।

समय आने पर, जब उनके पिता का देहांत हुआ, तो बोधिसत्व ने उनके स्थान पर शासन संभाला। चार बुरे मार्गों से विमुख होकर और दस राजगुणों का पालन करते हुए, उन्होंने अपने प्रजाजनों पर धर्मपरायणता से शासन किया। अब जब उनकी इच्छा पूर्ण हो गई थी और

वे राजा बन गए थे, तो बोधिसत्व ने अपने पूर्व संकल्प को पूरा करने का निश्चय किया। इसलिए उन्होंने अपने मंत्रियों, ब्राह्मणों, कुलीन वर्ग और अन्य जनमानस को बुलाया और सभा से पूछा कि क्या वे जानते हैं कि उन्होंने स्वयं को राजा कैसे बनाया। परन्तु कोई भी इसका उत्तर नहीं दे सका।

"क्या आपने कभी मुझे बरगद के पेड़ की आदरपूर्वक पूजा करते हुए, इत्र आदि का प्रयोग करते हुए और उसके सामने सिर झुकाते हुए देखा है?"

उन्होंने कहा, "महाराज, हमारे पास है।"

"मैंने एक प्रतिज्ञा की थी; और प्रतिज्ञा यह थी कि यदि मैं कभी राजा बनूँ, तो उस वृक्ष को बलि चढ़ाऊँगा। और अब जब ईश्वर (देवदूत) की कृपा से मैं राजा बन गया हूँ, तो मैं अपनी प्रतिज्ञा की गई बलि चढ़ाऊँगा। इसलिए इसे शीघ्रता से तैयार करो।"

लेकिन हम इसका क्या मतलब निकालें?

राजा ने कहा, “मेरी प्रतिज्ञा यह थी: पाँच पापों में लिप्त, जीवित प्राणियों की हत्या करने वाले आदि सभी लोगों को, और अधर्म के दस मार्गों पर चलने वाले सभी लोगों को मैं मार डालूँगा, और उनके मांस, रक्त, अंतःस्रावी अंगों और प्राणों से उन्हें बलि चढ़ाऊँगा। ढोल बजाकर यह घोषणा करो कि हमारे स्वामी राजा ने अपने राज्याभिषेक के दिनों में प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह राजा बने तो वह अपने उन सभी प्रजाजनों को मार डालेंगे और बलि चढ़ाएँगे जो आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं। अब राजा पाँच पापों में लिप्त या अधर्म के दस मार्गों पर चलने वाले एक हजार लोगों को मारना चाहता है; उन हजार लोगों के हृदय और मांस से देवता (देवदूत) के सम्मान में बलि चढ़ाई जाएगी। यह घोषणा पूरे नगर में करो ताकि सभी को पता चले। राजा ने आगे कहा, “इस तिथि के बाद उल्लंघन करने वालों में से मैं एक हजार को मार डालूँगा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उन्हें देवता को बलि चढ़ाऊँगा।” और अपनी बात स्पष्ट करने के लिए राजा ने यह श्लोक कहा:-

मैंने एक बार हजार दुष्टों को मारने की कसम खाई थी।
  श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता के भाव से हत्या करना;
और दुष्टों की इतनी बड़ी भीड़ होती है,
  अब मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।

राजा के आदेशों का पालन करते हुए, मंत्रियों ने ढोल बजाकर बनारस के कोने-कोने में घोषणा करवाई। इस घोषणा का नगरवासियों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि किसी ने भी पुराने दुराचार को नहीं छोड़ा। बोधिसत्व के शासनकाल में किसी भी व्यक्ति को कुकर्म का दोषी नहीं ठहराया गया। इस प्रकार, अपनी किसी भी प्रजा को हानि पहुँचाए बिना, बोधिसत्व ने उन्हें आज्ञाओं का पालन करवाया। दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों से भरे जीवन के अंत में, वे अपने अनुयायियों के साथ देवों (देवदूतों) के नगर में विराजमान हो गए।

गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि बुद्ध ने जगत के कल्याण के लिए कार्य किया है; उन्होंने अतीत में भी इसी प्रकार कार्य किया था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "बुद्ध के शिष्य उस समय के मंत्री थे और मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1)सं. 469.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महासिलव-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-51-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 51
महासिलवा-जातक

"लगे रहो, मेरे भाई।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जिसने सभी गंभीर प्रयास छोड़ दिए थे। जब गुरु ने उससे पूछा कि क्या यह बात सच है कि वह पथभ्रष्ट हो गया है, तो भिक्षु ने कहा कि यह सच है। गुरु ने कहा, "भाई, तुम इतने असाधारण विश्वास में कैसे उदासीन हो सकते हो? यहाँ तक कि जब अतीत के बुद्धिमान और भले लोगों ने अपना राज्य खो दिया था, तब भी उनका संकल्प इतना दृढ़ था कि अंत में उन्होंने शासन करने की शक्ति वापस पा ली।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने रानी के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया; और उनके नामकरण के दिन उनका नाम राजकुमार सद्गुण रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में उनकी शिक्षा पूर्ण हुई; और बाद में अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और महान राजा सद्गुण की उपाधि से अपनी प्रजा पर विधिपूर्वक शासन किया। उन्होंने नगर के चारों द्वारों पर एक-एक भिक्षागृह बनवाया, एक नगर के मध्य में और एक अपने महल के द्वारों पर, कुल मिलाकर छह भिक्षागृह बनवाए; और प्रत्येक द्वार पर वे गरीबों, बेघरों और जरूरतमंदों को भिक्षा देते थे। वे आज्ञाओं का पालन करते थे और व्रत रखते थे; उनमें बहुत धैर्य, प्रेम और दया थी; और उन्होंने विधिपूर्वक देश पर शासन किया, सभी प्राणियों को एक पिता के अपने बच्चे के प्रति स्नेह से समान रूप से प्यार किया।

राजा के एक मंत्री ने राजा के हरम में छल किया था, और यह बात सब में फैल गई। मंत्रियों ने राजा को इसकी सूचना दी। राजा ने स्वयं मामले की जाँच की और पाया कि मंत्री दोषी नहीं है। इसलिए उन्होंने दोषी को बुलवाया और कहा, "हे पाप में अंधे! तूने पाप किया है और तू मेरे राज्य में रहने योग्य नहीं है; अपनी संपत्ति, अपनी पत्नी और परिवार को लेकर यहाँ से चला जा।" इस प्रकार राज्य से निकाले जाने पर, वह मंत्री काशी देश छोड़कर कोसल के राजा की सेवा में लग गया और धीरे-धीरे उसका विश्वासपात्र सलाहकार बन गया। एक दिन उसने कोसल के राजा से कहा, "महाराज, बनारस का राज्य मक्खियों से रहित एक बड़े मधुकोश के समान है; इसका राजा स्वयं दुर्बल है; और एक छोटी सी सेना पूरे देश को जीतने के लिए पर्याप्त होगी।"

इस पर कोसल के राजा ने सोचा कि बनारस का राज्य विशाल है, और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि एक छोटी सी सेना भी इसे जीत सकती है, उसे संदेह हुआ कि उसका सलाहकार रिश्वत लेकर उसे जाल में फंसाने के लिए भेजा गया है। "गद्दार!" वह चिल्लाया, "तुम्हें यह कहने के लिए पैसे दिए गए हैं!"

दूसरे ने उत्तर दिया, "बिल्कुल नहीं, मैं ऐसा नहीं हूँ; मैं तो बस सच बोल रहा हूँ। अगर तुम्हें मुझ पर शक है, तो उसके सीमा पार किसी गाँव में नरसंहार करने के लिए कुछ लोगों को भेजो और देखो कि जब वे पकड़े जाएँगे और उसके सामने लाए जाएँगे, तो क्या राजा उन्हें बिना किसी सजा के छोड़ नहीं देगा और उन्हें उपहारों से न नहला देगा।"

“वह अपनी बात मनवाने में बहुत ही धृष्टता दिखा रहा है,” राजा ने सोचा; “मैं बिना देर किए उसकी सलाह की परीक्षा लूँगा।” और तदनुसार उसने अपने कुछ सैनिकों को बनारस की सीमा के पार एक गाँव को परेशान करने के लिए भेजा। उन बदमाशों को पकड़कर बनारस के राजा के सामने लाया गया, जिसने उनसे पूछा, “मेरे बच्चों, तुमने मेरे गाँव वालों को क्यों मारा?”

उन्होंने कहा, "क्योंकि हम अपना गुजारा नहीं कर पा रहे थे।"

“तो फिर तुम मेरे पास क्यों नहीं आए?” राजा ने कहा। “ध्यान रखना कि तुम दोबारा ऐसा न करो।”

और उसने उन्हें उपहार देकर विदा कर दिया। वे वापस लौटे और कोसल के राजा को यह बात बताई। लेकिन यह सबूत उसे अभियान चलाने के लिए पर्याप्त नहीं लगा; और एक दूसरा दल दूसरे गाँव में नरसंहार करने के लिए भेजा गया, इस बार राज्य के मध्य में। इन्हें भी बनारस के राजा ने उपहार देकर विदा कर दिया। लेकिन यह सबूत भी पर्याप्त नहीं समझा गया; और एक तीसरा दल बनारस की गलियों को लूटने के लिए भेजा गया! और इन्हें भी, अपने पूर्ववर्तियों की तरह, उपहार देकर विदा कर दिया गया! अंततः यह जानकर कि बनारस का राजा पूरी तरह से अच्छा राजा है, कोसल के राजा ने उसके राज्य पर कब्जा करने का निश्चय किया और सेना और हाथियों के साथ उसके विरुद्ध निकल पड़ा।

उन दिनों बनारस के राजा के पास एक हजार वीर योद्धा थे, जो मदमस्त हाथी के आक्रमण का भी सामना कर सकते थे, जिन्हें इंद्र के वज्र से भी भयभीत नहीं किया जा सकता था। वे अद्वितीय, अजेय वीरों का एक दल थे, जो राजा के आदेश पर पूरे भारत को अपने अधीन करने के लिए तैयार थे! जब उन्हें पता चला कि कोसल का राजा बनारस पर कब्जा करने आ रहा है, तो वे अपने राजा के पास यह खबर लेकर आए और उनसे आक्रमणकारी के विरुद्ध भेजे जाने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "महाराज, हम उसे सीमा पार कदम रखने से पहले ही परास्त कर लेंगे और पकड़ लेंगे।"

“ऐसा नहीं, मेरे बच्चों,” राजा ने कहा। “मेरी वजह से किसी को कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। जो लोग राज्य पर अधिकार करना चाहते हैं, वे चाहें तो मेरा राज्य छीन लें।” और उन्होंने उन्हें आक्रमणकारी के विरुद्ध मार्च करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया।

फिर कोसल का राजा सीमा पार करके मध्य देश में आया; और मंत्री फिर से राजा के पास विनती लेकर गए। परन्तु राजा ने फिर भी इनकार कर दिया। अब कोसल का राजा नगर के बाहर प्रकट हुआ और राजा को संदेश भेजा कि या तो वह राज्य छोड़ दे या युद्ध करे। बनारस के राजा ने उत्तर में संदेश भेजा, “मैं युद्ध नहीं करूँगा; वह मेरा राज्य छीन ले।”

एक बार फिर राजा के मंत्री उनके पास आए और उनसे विनती की कि वे कोसल के राजा को शहर में प्रवेश न करने दें, बल्कि उन्हें शहर के सामने ही उसे पराजित करने और पकड़ने की अनुमति दें। फिर भी इनकार करते हुए, राजा ने शहर के द्वार खोलने का आदेश दिया और अपने हजार मंत्रियों के साथ अपने राजसी सिंहासन पर भव्य रूप से विराजमान हो गए।

शहर में प्रवेश करते ही, कोसल के राजा को कोई बाधा नहीं मिली, इसलिए वह अपनी सेना के साथ राजमहल की ओर बढ़ गया। महल के द्वार खुले हुए थे; और वहाँ अपने भव्य सिंहासन पर, अपने हज़ार मंत्रियों के साथ, महान राजा शुभांगना भव्यता से विराजमान थे। कोसल के राजा ने पुकारते हुए कहा, “इन सबको पकड़ लो; इनके हाथ पीछे की ओर कसकर बाँध दो, और इन्हें कब्रिस्तान ले जाओ! वहाँ गड्ढे खोदकर इन्हें गर्दन तक ज़िंदा दफ़ना दो, ताकि ये हाथ-पैर न हिला सकें। सियार रात में आकर इन्हें दफ़ना देंगे!”

उस दुष्ट राजा के आदेश पर, उसके अनुयायियों ने बनारस के राजा और उसके मंत्रियों को बांधकर घसीटते हुए ले गए। परन्तु उस घड़ी भी महान राजा बनारस ने उन दुष्टों के विरुद्ध जरा भी क्रोध नहीं किया; और कहा जाता है कि उसके अनुयायियों में अनुशासन इतना उत्तम था कि जब उसके मंत्रियों को जंजीरों में बांधकर ले जाया जा रहा था, तब भी उनमें से एक भी राजा की अवज्ञा नहीं कर सका।

तो राजा गुडनेस और उनके मंत्रियों को ले जाकर कब्रिस्तान में गड्ढों में गर्दन तक गाड़ दिया गया, राजा बीच में और बाकी लोग उनके दोनों ओर। ज़मीन को कुचलकर उन्हें वहीं छोड़ दिया गया। फिर भी विनम्र और अपने उत्पीड़क के प्रति क्रोध से मुक्त, राजा गुडनेस ने अपने साथियों को प्रोत्साहित करते हुए कहा, "मेरे बच्चों, अपने हृदयों को केवल प्रेम और दया से भर लो।"

आधी रात को सियार झुंड बनाकर इंसानी मांस की दावत के लिए आ गए; और उन जानवरों को देखते ही राजा और उसके साथियों ने एक साथ ज़ोर से चिल्लाकर सियारों को डरा दिया। रुककर झुंड ने पीछे मुड़कर देखा, और किसी को पीछा करते न देखकर फिर आगे बढ़ गए। दूसरी बार चिल्लाने पर वे फिर भाग गए, लेकिन फिर पहले की तरह लौट आए। लेकिन तीसरी बार, जब उन्होंने देखा कि उनमें से कोई भी उनका पीछा नहीं कर रहा है, तो सियारों ने मन ही मन सोचा, "ये ज़रूर मौत के मुंह में जाने वाले लोग हैं।" वे निडर होकर आगे बढ़े; यहाँ तक कि जब फिर से चिल्लाहट हुई, तब भी वे पीछे नहीं हटे। वे आगे बढ़ते गए, हर एक अपने शिकार को चुन रहा था, सरदार सियार राजा की ओर बढ़ा, और बाकी सियार उसके साथियों की ओर। चतुराई से काम लेते हुए, राजा ने जानवर को आते देखा, और काटने के लिए तैयार होकर अपना गला ऊपर उठाया, और अपने दांत सियार के गले में शिकंजे की तरह गड़ा दिए! राजा के जबड़ों की मजबूत पकड़ से अपना गला छुड़ाने में असमर्थ और मृत्यु के भय से सियार ने ज़ोर से दहाड़ मारी। उसकी चीख सुनकर झुंड ने समझ लिया कि उनके सरदार को किसी ने पकड़ लिया है। अपने शिकार के पास जाने की हिम्मत न होने के कारण, वे सब अपनी जान बचाने के लिए भाग गए।

राजा के चंगुल से खुद को छुड़ाने के लिए फंसा हुआ सियार पागलों की तरह इधर-उधर उछलने लगा, जिससे राजा के ऊपर की मिट्टी ढीली हो गई। इस पर राजा ने सियार को छोड़ दिया और अपनी पूरी ताकत लगाकर इधर-उधर उछलते हुए अपने हाथ छुड़ा लिए! फिर गड्ढे के किनारे को पकड़कर वह ऊपर आया और हवा के आगे बढ़ते बादल की तरह तेजी से आगे बढ़ा। अपने साथियों को हौसला देते हुए उसने उनके चारों ओर की मिट्टी को ढीला करने और उन्हें बाहर निकालने का काम शुरू किया, और अंत में अपने सभी सेवकों के साथ कब्रिस्तान में फिर से स्वतंत्र रूप से खड़ा हो गया।

अब संयोगवश, कब्रिस्तान के उस हिस्से में एक शव मिला था जो दो राक्षसों के संबंधित क्षेत्रों के बीच स्थित था; और राक्षस लूट के बंटवारे को लेकर आपस में झगड़ रहे थे।

उन्होंने कहा, “हम इसे स्वयं नहीं बाँट सकते; परन्तु यह राजा पुण्यात्मा है; वह इसे हमारे लिए बाँट देगा। चलो उसके पास चलते हैं।” इसलिए वे शव को पैर से घसीटते हुए राजा के पास ले गए और बोले, “महाराज, इस व्यक्ति को बाँट दीजिए और हममें से प्रत्येक को हमारा हिस्सा दे दीजिए।” राजा ने कहा, “निश्चित रूप से, मेरे मित्रों, मैं ऐसा करूँगा। परन्तु, क्योंकि मैं गंदा हूँ, मुझे पहले स्नान करना होगा।”

तुरंत ही, अपनी जादुई शक्ति से, राक्षस राजा के लिए वह सुगंधित जल ले आए जो गद्दी हड़पने वाले राजा के स्नान के लिए तैयार किया गया था। जब राजा ने स्नान कर लिया, तो वे उनके लिए वे वस्त्र ले आए जो गद्दी हड़पने वाले राजा के लिए रखे गए थे। जब राजा ने उन्हें

पहन लिया, तो वे उनके लिए चार प्रकार की सुगंधों से भरा एक डिब्बा ले आए। जब राजा ने खुद को सुगंधित कर लिया, तो वे रत्नजड़ित पंखों पर सजे हुए कई प्रकार के फूल सोने के एक डिब्बे में ले आए। जब राजा ने खुद को फूलों से सजाया, तो राक्षसों ने पूछा कि क्या वे कोई और सेवा कर सकते हैं। राजा ने उन्हें यह संकेत दिया कि उन्हें भूख लगी है। तो राक्षस चले गए और सबसे उत्तम स्वादों से सुगंधित चावल लेकर लौटे, जो गद्दी हड़पने वाले राजा की मेज के लिए तैयार किया गया था। अब राजा, स्नान करके, सुगंधित होकर, वस्त्र पहनकर, उस उत्तम भोजन का आनंद लेने लगे। इस पर राक्षस राजा के लिए सुगंधित जल उसी के सोने के कटोरे में लेकर आए, और सोने का प्याला लाना नहीं भूले। जब राजा ने जल पी लिया, मुँह धो लिया और हाथ धो रहे थे, तब वे उनके लिए सुगंधित पान लाए और पूछा कि क्या महाराज को कोई और आदेश चाहिए। राजा ने कहा, "अपनी जादुई शक्ति से राजा के तकिये के पास पड़ी राजसी तलवार लाओ।" और तुरंत तलवार राजा के पास लाई गई। फिर राजा ने शव को उठाया और सीधा खड़ा करके रीढ़ की हड्डी के बीच से दो हिस्सों में काट दिया, प्रत्येक राक्षस को आधा-आधा दे दिया। यह करने के बाद, राजा ने तलवार को धोया और अपनी कमर में बाँध लिया।

पेट भरकर भोजन करने के बाद राक्षस प्रसन्न हुए और कृतज्ञतापूर्वक राजा से पूछा कि वे उनके लिए और क्या कर सकते हैं। राजा ने कहा, "अपनी जादुई शक्ति से मुझे गद्दी हड़पने वाले राजा के कक्ष में नियुक्त कर दीजिए और मेरे सभी मंत्रियों को उनके अपने-अपने घर वापस भेज दीजिए।" राक्षसों ने कहा, "जी, अवश्य।" और ऐसा ही किया गया। उस समय गद्दी हड़पने वाला राजा अपने राजकक्ष में शाही पलंग पर सो रहा था। जब वह शांति से सो रहा था, तभी अच्छे राजा ने तलवार से उसके पेट पर प्रहार किया। भयभीत होकर जागते हुए, गद्दी हड़पने वाले राजा ने दीपक की रोशनी में देखा कि वह महान राजा अच्छाई थे। उन्होंने अपना सारा साहस जुटाकर पलंग से उठकर कहा, "महाराज, रात हो चुकी है; पहरा लगा हुआ है; दरवाजे बंद हैं; और कोई अंदर नहीं आ सकता। फिर आप मेरे पलंग के पास तलवार हाथ में लिए और शानदार वस्त्र पहने कैसे आ गए?" तब राजा ने उन्हें अपने भागने की पूरी कहानी विस्तार से सुनाई। तब उस धोखेबाज राजा का हृदय द्रवित हुआ और वह रोते हुए बोला, “हे महाराज, यद्यपि मुझे मानवीय स्वभाव प्राप्त है, फिर भी मैं आपकी अच्छाई को नहीं जानता था; परन्तु उस अच्छाई का ज्ञान तो उन क्रूर और निर्दयी राक्षसों को प्राप्त है, जिनका भोजन मांस और रक्त है। अब से, हे महाराज, मैं आपके इस असाधारण सद्गुण के विरुद्ध कोई षड्यंत्र नहीं रचूँगा।” ऐसा कहकर उसने अपनी तलवार पर मित्रता की शपथ ली और राजा से क्षमा माँगी। फिर उसने राजा को राजसी पलंग पर लिटाया और स्वयं एक छोटे पलंग पर लेट गया।

अगले दिन सुबह होते ही, जब सूरज निकल आया, तो उसने ढोल की थाप पर, धोखेबाज राजा के आदेश से, हर पद और ओहदे के सभी लोगों को इकट्ठा किया; उनके सामने उसने राजा गुडनेस की प्रशंसा की, मानो वह आकाश में पूर्णिमा के चाँद को ऊँचा उठा रहा हो; और उन सबके सामने उसने फिर से राजा से क्षमा माँगी और उसे उसका राज्य लौटाते हुए कहा, "अब से विद्रोहियों से निपटना मेरी जिम्मेदारी होगी; आप अपने राज्य पर शासन करें, मैं पहरा और सुरक्षा प्रदान करूँगा।" और ऐसा कहकर उसने उस निंदक गद्दार को सजा सुनाई और अपनी सेना और हाथियों के साथ अपने राज्य लौट गया।

राजसी शक्ति के श्वेत आवरण के नीचे, हिरण के समान पैरों वाले स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान महान राजा सत्कार ने अपनी महिमा को निहारते हुए मन ही मन कहा, "यदि मैंने अपने मार्ग पर दृढ़ निश्चय न किया होता, तो मैं इस वैभव का आनंद न ले पाता, और न ही मेरे हजार मंत्री जीवित होते। मार्ग पर दृढ़ निश्चय के कारण ही मैंने अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त किया और अपने हजार मंत्रियों के जीवन की रक्षा की। सचमुच, हमें दृढ़ हृदय से निरंतर परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि मार्ग पर दृढ़ निश्चय का फल अत्यंत उत्तम होता है।" और यह कहकर राजा ने अपने हृदय से यह भाव प्रकट किया:

मेहनत करते रहो, मेरे भाई; उम्मीद बनाए रखो;
  और न ही अपने साहस को कमजोर और थका हुआ होने दें।
मैं स्वयं को देखता हूँ, जिसने अपने अतीत के सभी कष्टों को सहा है।
  मैं अपने दिल की इच्छा का स्वामी हूँ।

बोधिसत्व ने अपने हृदय की पूर्णता से यही कहा कि यह कितना निश्चित है कि नेक कर्मों का फल अवश्य मिलता है। जीवन भर नेक कार्य करते हुए वे परलोक विदा हुए और अब उनके कर्मों के अनुसार ही उनका फल मिलेगा।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ और गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में पथभ्रष्ट भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म का वर्णन किया, "देवदत्त उस समय का विश्वासघाती मंत्री था, बुद्ध के शिष्य हजार मंत्री थे और मैं स्वयं महान राजा सद्गुण हूँ।"

पिछला <<<<-----||-52-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 52
चुला-जनक-जातक
"लगे रहो, मेरे भाई।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक अन्य पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। यहाँ बताई जाने वाली सभी घटनाएँ महाजनक-जातक (#539) में दी गई हैं।

शासन की शक्ति के श्वेत चंदवा के नीचे विराजमान राजा ने यह श्लोक पढ़ा:-

मेहनत करते रहो, मेरे भाई; उम्मीद बनाए रखो;
दर्द से पीड़ित होने पर भी बेहोश मत हो, न ही थको।
मैं स्वयं को देखता हूँ, जिसने अपने सभी कष्टों को पार कर लिया है।
मैंने अपनी हठधर्मिता से लड़ते हुए किनारे तक पहुँच गया हूँ।
यहां भी पथभ्रष्ट भाई ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। सर्वज्ञानी बुद्ध राजा जनक थे।

पिछला <<<<-----||-53-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 53
पुन्नपति-जातक

"क्या? इसे चखे बिना छोड़ दो।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें मादक पेय के बारे में बताया गया था।

एक समय की बात है, श्रावस्ती शहर के शराबी सलाह लेने के लिए इकट्ठा हुए और कहने लगे, "हमारे पास एक ड्रिंक का दाम भी नहीं बचा है; हम इसे कैसे जुटाएँ?"

"खुश हो जाओ!" एक बदमाश ने कहा; "मेरे पास एक छोटी सी योजना है।"

"यह क्या हो सकता है?" बाकी सब चिल्ला उठे।

"अनाथपिंडिका की यह प्रथा है," उस व्यक्ति ने कहा, "कि जब वह राजा से मिलने जाता है तो अपनी अंगूठियाँ और सबसे कीमती वस्त्र पहनता है। चलो, हम कुछ शराब में कोई नशीला पदार्थ मिलाकर एक शराबखाना तैयार कर लें, जिसमें हम सब बैठे होंगे जब अनाथपिंडिका वहाँ से गुजरेगा। हम चिल्लाएँगे, 'आओ और हमारे साथ शामिल हो जाओ, महाराज,' और उसे इतनी शराब पिला देंगे कि वह बेहोश हो जाएगा। फिर हम उसकी अंगूठियाँ और वस्त्र छीन लेंगे और एक पेय का दाम ले लेंगे।"

उसकी योजना से अन्य बदमाश बेहद प्रसन्न हुए और उसे विधिवत रूप से अंजाम दिया गया। जब अनाथपिंडिका लौट रहा था, तो वे उससे मिलने गए और उसे अपने साथ आने का निमंत्रण दिया; क्योंकि उन्हें कोई दुर्लभ शराब मिली थी, और जाने से पहले उसे उसका स्वाद चखना था।

"क्या?" उसने सोचा, "क्या मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त कर चुका कोई विश्वासी शराब को हाथ लगाएगा? हालाँकि मुझे शराब की कोई तलब नहीं है, फिर भी मैं इन बदमाशों का पर्दाफाश करूँगा।" इसलिए वह उनके ठेले में गया, जहाँ उनकी बातचीत से उसे जल्द ही पता चल गया कि उनकी शराब में नशीला पदार्थ मिला हुआ था; और उसने ठान लिया कि वह इन बदमाशों को भगा देगा। इसलिए उसने उन पर

आरोप लगाया कि वे पहले अजनबियों को नशीला पदार्थ पिलाकर फिर लूटने के इरादे से शराब में मिलावट कर रहे थे। “तुम लोग अपने ठेले में बैठे शराब की तारीफ कर रहे हो, लेकिन इसे पीने की हिम्मत मत करना। अगर यह सचमुच शुद्ध है, तो खुद ही पी लो।” इस तीखे खुलासे से गिरोह भाग निकला, और अनाथपिंडिका घर चला गया। यह सोचकर कि शायद उसे यह घटना बुद्ध को भी बता देनी चाहिए, वह जेतवन मठ गया और उन्हें सारी कहानी सुनाई।

“इस बार, हे मनुष्य,” गुरु ने कहा, “इन बदमाशों ने तुम्हें धोखा देने की कोशिश की है; पहले भी इन्होंने भले और बुद्धिमान लोगों को धोखा देने की कोशिश की थी।” ऐसा कहकर, अपने श्रोता के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व उस नगर के कोषाध्यक्ष थे। उसी तरह शराबियों का वही गिरोह, एक साथ मिलकर, शराब में मादक पदार्थ मिलाकर, ठीक उसी तरह उनसे मिलने आया और ठीक उसी तरह से शुरुआत की। कोषाध्यक्ष बिल्कुल भी शराब नहीं पीना चाहते थे, लेकिन फिर भी उनके साथ चले गए, सिर्फ उन्हें बेनकाब करने के लिए। उनकी हरकतों को देखकर और उनकी साजिश को भांपकर, वे उन्हें डराना चाहते थे और इसलिए उन्होंने कहा कि राजा के महल में जाने से ठीक पहले शराब पीना उनके लिए ठीक नहीं होगा। उन्होंने कहा, "आप यहीं बैठिए, जब तक मैं राजा से मिल कर वापस नहीं आ जाता; उसके बाद मैं इस बारे में सोचूंगा।"

उसके लौटने पर, उन बदमाशों ने उसे पुकारा, लेकिन कोषाध्यक्ष ने मादक प्यालों पर नज़र गड़ाते हुए उन्हें यह कहकर भ्रमित कर दिया, "मुझे तुम्हारा यह तरीका पसंद नहीं आया। ये प्याले आज भी उतने ही भरे हैं जितने मेरे जाने से पहले थे; तुम लोग शराब की इतनी तारीफ कर रहे हो, फिर भी एक बूँद भी अपने मुँह से नहीं पी रहे। अगर यह अच्छी शराब होती, तो तुम भी अपना हिस्सा ले लेते। इस शराब में मादक पदार्थ मिला हुआ है!" और उसने यह पंक्ति दोहराई:-

क्या? जिस पेय को आप इतना दुर्लभ बताते हैं, उसे बिना चखे ही छोड़ देंगे?
नहीं, यह इस बात का सबूत है कि वहां कोई असली शराब नहीं है।
अच्छे कर्मों से भरा जीवन जीने के बाद, बोधिसत्व अपने कर्मों के फल के अनुसार देह त्याग कर चले गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आज के बदमाश बीते दिनों के भी बदमाश थे; और मैं स्वयं उस समय बनारस का कोषाध्यक्ष था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **फल-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-54-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 54
फला-जातक

“जब किसी गाँव के पास हों।”—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ऐसे शिष्य के बारे में सुनाई थी जो फलों के ज्ञान में निपुण था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रावस्ती नगर के एक अधिकारी ने भिक्षुओं के समूह को, जिनके प्रमुख बुद्ध थे, अपने बगीचे में आमंत्रित किया था और उन्हें चावल की दलिया और रोटी खिलाई थी। बाद में उन्होंने अपने माली को भिक्षुओं के साथ घूमकर उन्हें आम और अन्य फल देने के लिए कहा। आदेश का पालन करते हुए, वह व्यक्ति भिक्षुओं के साथ बगीचे में घूमा और पेड़ पर एक नज़र डालकर बता सकता था कि कौन सा फल हरा है, कौन सा लगभग पका है, कौन सा पूरी तरह पका है, इत्यादि। और उसकी कही हुई बात हमेशा सच साबित होती थी। इसलिए भिक्षु बुद्ध के पास आए और माली की निपुणता का वर्णन किया और बताया कि कैसे वह स्वयं जमीन पर खड़े होकर ही लटके हुए फलों की स्थिति का सटीक अनुमान लगा सकता था। “भाइयों,” गुरु ने कहा, “यह माली अकेला नहीं है जिसे फलों का ज्ञान है। ऐसा ही ज्ञान पुराने समय के बुद्धिमान और भले लोगों में भी था।” और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब बोधिसत्व एक व्यापारी के रूप में पैदा हुए। बड़े होकर, जब वे पाँच सौ गाड़ियों का व्यापार कर रहे थे, एक दिन वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से होकर एक विशाल वन गुजरता था। वन के बाहरी किनारे पर रुककर, उन्होंने अपने काफिले को इकट्ठा किया और उनसे कहा, "इस वन में विषैले वृक्ष उगते हैं। कृपया ध्यान रखें कि मुझसे परामर्श किए बिना किसी भी अपरिचित पत्ते, फूल या फल का स्वाद न लें।" सभी ने पूरी सावधानी बरतने का वादा किया; और वन की यात्रा शुरू हुई। वन की सीमा के भीतर ही एक गाँव बसा हुआ है, और उस गाँव के ठीक बाहर एक व्हॉट-फल का वृक्ष उगता है। व्हॉट-फल का वृक्ष तना, शाखा, पत्ते, फूल और फल में बिल्कुल आम जैसा दिखता है। और न केवल दिखने में, बल्कि स्वाद और सुगंध में भी, पका हुआ हो या कच्चा, इसका फल आम जैसा ही होता है। यदि इसे खा लिया जाए, तो यह एक घातक विष है, और तुरंत मृत्यु का कारण बनता है।

कुछ लालची लोग, जो काफिले से आगे चल रहे थे, इस पेड़ के पास आए और इसे आम समझकर इसका फल खा लिया। लेकिन दूसरों ने कहा, "हमें खाने से पहले अपने नेता से पूछ लेना चाहिए"; और वे फल हाथ में लिए पेड़ के पास रुक गए, जब तक कि वह नहीं आ गया। यह देखकर कि यह आम नहीं है, उसने कहा, "यह 'आम' तो एक व्हट-फ्रूट का पेड़ है; इसके फल को मत छुओ।"

उन्हें भोजन करने से रोकने के बाद, बोधिसत्व ने अपना ध्यान उन लोगों की ओर मोड़ा जो पहले ही भोजन कर चुके थे। पहले उन्होंने उन्हें उल्टी कराने वाली दवा दी, और फिर उन्हें चार प्रकार के मीठे व्यंजन खाने को दिए; जिससे अंत में वे ठीक हो गए।

पहले भी कई बार कारवां इसी पेड़ के नीचे रुके थे और आम समझकर खाए गए ज़हरीले फल को खाकर मर गए थे। अगले दिन ग्रामीण आते और उन्हें मृत पड़ा देखकर उनकी एड़ियों से पकड़कर किसी गुप्त स्थान पर फेंक देते और कारवां का सारा सामान, गाड़ियाँ समेत, अपने साथ ले जाते।

और हमारी कहानी वाले दिन भी, ये ग्रामीण सुबह होते ही अपने अपेक्षित लाभ के लिए पेड़ की ओर दौड़ पड़े। कुछ ने कहा, "बैल तो हमारे ही होंगे।" कुछ ने कहा, "और गाड़ियाँ भी हमें ही मिलेंगी।" वहीं कुछ अन्य ने अपने हिस्से का सामान माँग लिया। लेकिन जब वे हाँफते-हाँफते पेड़ के पास पहुँचे, तो वहाँ पूरा काफिला ज़िंदा और सही-सलामत था!

निराश ग्रामीणों ने पूछा, "आपको कैसे पता चला कि यह आम का पेड़ नहीं है?" कारवां के बारे में उन्होंने कहा, "हमें नहीं पता था; हमारे नेता को पता था।"

तब गांव वाले बोधिसत्व के पास आए और बोले, "हे ज्ञानी पुरुष, आपने यह कैसे पता लगाया कि यह पेड़ आम का नहीं था?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मुझे दो बातें बताई गईं," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:-

जब किसी गाँव के पास पेड़ उगता है
मुझे तो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि इस पर चढ़ना कठिन नहीं है।
और मुझे यह जानने के लिए और अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।
उस पर कोई भी पौष्टिक फल नहीं उग सकता!
और एकत्रित लोगों को सत्य का उपदेश देने के बाद, उन्होंने सुरक्षित रूप से अपनी यात्रा पूरी की।

“इस प्रकार, हे भाइयों,” गुरु ने कहा, “पुराने समय में बुद्धिमान और भले लोग फलों के पारखी थे।” अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, “बुद्ध के अनुयायी उस समय कारवां के लोग थे, और मैं स्वयं कारवां का नेता था।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पंचवुध-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 55
पंचवुधा-जातक

"जब कोई आसक्ति न हो।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसने सभी गंभीर प्रयासों का त्याग कर दिया था।

गुरु ने उससे कहा, "भाई, क्या यह खबर सच है कि तुम पथभ्रष्ट हो गए हो?"

"जी हां, भगवान बुद्ध।"

"भाई, बीते दिनों में, बुद्धिमान और नेक लोगों ने संकट की घड़ी में अपने दृढ़ संकल्प और मार्ग पर अडिग रहकर सिंहासन प्राप्त किया था," गुरु ने कहा।

और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब उनकी रानी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व ने पुनः जन्म लिया। जिस दिन उनका नामकरण होना था, उस दिन माता-पिता ने आठ सौ ब्राह्मणों से अपने पुत्र के भाग्य के बारे में पूछा, जिन्हें उन्होंने अपनी सभी इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण तृप्त किया था। इन चतुर भविष्यवक्ता ब्राह्मणों ने उनके द्वारा बताए गए गौरवशाली भाग्य के वचन को सुनकर भविष्यवाणी की कि राजा की मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठने वाला यह पुत्र सभी गुणों से परिपूर्ण एक शक्तिशाली राजा होगा; पाँच शस्त्रों में अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध और विख्यात होगा, और समस्त जंबूद्वीप (भारत) में अद्वितीय स्थान रखेगा (*1)। ब्राह्मणों की इस भविष्यवाणी के कारण ही माता-पिता ने अपने पुत्र का नाम पंचशस्त्र राजकुमार रखा।

अब, जब राजकुमार समझदार हो गया और सोलह वर्ष का हो गया, तो राजा ने उसे अध्ययन करने के लिए कहीं दूर जाने को कहा।

"महाराज, मुझे किसके साथ अध्ययन करना चाहिए?" राजकुमार ने पूछा।

"गांधारा (अफगानिस्तान और पाकिस्तान के पास, कंधार सहित) क्षेत्र के तक्षशिला शहर में विश्वप्रसिद्ध शिक्षक के पास। यह उनकी फीस है," राजा ने अपने बेटे को एक हजार सिक्के देते हुए कहा।

अतः राजकुमार तक्षशिला गए और वहाँ शिक्षा प्राप्त की। जब वे वहाँ से विदा हो रहे थे, तो उनके गुरु ने उन्हें पाँच शस्त्रों का एक समूह दिया। अपने गुरु को विदाई देने के बाद, राजकुमार ने उन्हीं शस्त्रों से लैस होकर तक्षशिला से बनारस के लिए प्रस्थान किया।

अपने रास्ते में वह एक ऐसे जंगल में पहुँचा जहाँ 'बालों की पकड़' नामक एक राक्षस रहता था; और जंगल के प्रवेश द्वार पर, वहाँ मिले लोगों ने उसे रोकने की कोशिश करते हुए कहा: "हे युवा ब्राह्मण, उस जंगल से मत जाओ; वह राक्षस 'बालों की पकड़' का अड्डा है, और वह जिसे भी मिलता है उसे मार डालता है।" लेकिन, शेर की तरह साहसी, आत्मनिर्भर बोधिसत्व आगे बढ़ते रहे, और जंगल के मध्य में पहुँचकर उनका सामना उस राक्षस से हुआ। राक्षस ने अपना रूप एक ताड़ के पेड़ जितना लंबा, एक लता जितना बड़ा सिर और कटोरे जैसी विशाल आँखें, शलजम जैसे दो दाँत और बाज़ जैसी चोंच के साथ प्रकट किया; उसका पेट बैंगनी धब्बों से भरा था; और उसकी हथेलियाँ और पैरों के तलवे नीले-काले थे! "तुम कहाँ जा रहे हो?" राक्षस चिल्लाया। "रुको! तुम मेरे शिकार हो।" "राक्षस," बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "इस जंगल में प्रवेश करते समय मुझे पता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। मेरे पास आने की तुम्हारी इच्छा व्यर्थ होगी। क्योंकि मैं तुम्हें यहीं विषैले बाण से मार डालूँगा।" और इस चुनौती भरे स्वर में उन्होंने अपने धनुष पर सबसे घातक विष में डूबा हुआ बाण लगाया और राक्षस पर चलाया। परन्तु वह केवल राक्षस के घने बालों में ही अटक गया। फिर उन्होंने एक के बाद एक बाण चलाए, यहाँ तक कि पचास बाण समाप्त हो गए, और वे सभी राक्षस के घने बालों में ही अटक गए। इस पर राक्षस ने बाणों को झटक कर अपने पैरों पर गिरा दिया और बोधिसत्व पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा; और बोधिसत्व ने फिर से चुनौती देते हुए अपनी तलवार निकाली और राक्षस पर प्रहार किया। परन्तु बाणों की ही तरह, उनकी तैंतीस इंच लंबी तलवार भी उसके घने बालों में ही अटक गई। इसके बाद बोधिसत्व ने अपना भाला फेंका, और वह भी अटक गया। यह देखकर उन्होंने अपनी गदा से राक्षस पर प्रहार किया; लेकिन, उनके अन्य हथियारों की तरह, यह भी चिपक गया। इस पर बोधिसत्व ने गरजते हुए कहा, "राक्षस, हे पंच-शस्त्र राजकुमार, तूने अभी तक मेरा नाम नहीं सुना। जब मैं इस वन में आया, तो मैंने अपने धनुष और अन्य हथियारों पर नहीं, बल्कि स्वयं पर भरोसा किया! अब मैं तुझे ऐसा प्रहार करूँगा जिससे तू चूर-चूर हो जाएगा।" ऐसा कहते हुए, बोधिसत्व ने अपने दाहिने हाथ से राक्षस पर प्रहार किया; लेकिन हाथ उसके बालों में चिपक गया। फिर, बारी-बारी से, उन्होंने अपने बाएं हाथ और अपने दाएं और बाएं पैरों से राक्षस पर प्रहार किया, लेकिन हाथ

और पैर दोनों ही उसकी खाल में चिपक गए। फिर से गरजते हुए, "मैं तुझे चूर-चूर कर दूँगा!" उन्होंने अपने सिर से राक्षस को टक्कर मारी, और वह भी चिपक गया।

फिर भी, जब बोधिसत्व पंचम ज्ञान के जाल में फँस गए, तब भी वे राक्षस से लटके हुए निडर और अडिग थे। राक्षस ने मन ही मन सोचा, "यह तो मनुष्यों में सिंह समान है, अद्वितीय वीर है, कोई साधारण मनुष्य नहीं। मुझ जैसे राक्षस के चंगुल में फँसा होने के बावजूद, इसमें जरा भी कंपन नहीं है। जब से मैंने इस मार्ग पर यात्रियों को मारना शुरू किया है, तब से मैंने इसके बराबर का कोई मनुष्य नहीं देखा। यह भयभीत क्यों नहीं है?" बोधिसत्व को निर्दयता से निगलने का साहस न करते हुए, उसने कहा, "हे युवा ब्राह्मण, तुम्हें मृत्यु का भय क्यों नहीं है?"

"मुझे क्यों डरना चाहिए?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया। "प्रत्येक जीवन की अपनी नियत मृत्यु अवश्य है। इसके अलावा, मेरे शरीर में एक हीरा है, जिसे तुम मुझे खाने पर कभी पचा नहीं पाओगे। यह तुम्हारे भीतरी अंगों को चूर-चूर कर देगा, और मेरी मृत्यु के साथ तुम्हारी भी मृत्यु हो जाएगी। इसलिए मुझे कोई भय नहीं है।" (कहा जाता है कि इससे बोधिसत्व का तात्पर्य ज्ञान की तलवार से था, जो उनके भीतर विद्यमान थी।)

यह सुनकर राक्षस सोचने लगा, "यह युवा ब्राह्मण सत्य कह रहा है, और कुछ नहीं। ऐसे वीर का एक टुकड़ा भी मैं नहीं पचा सकता। मैं इसे जाने देता हूँ।" और इस प्रकार, अपने जीवन के भय से उसने बोधिसत्व को मुक्त कर दिया और कहा, "युवक ब्राह्मण, तुम पुरुषों में सिंह हो; मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। मेरे हाथ से ऐसे ही निकल जाओ जैसे चंद्रमा राहु (ग्रहण) के जबड़ों से निकल जाता है, और अपने परिवार, मित्रों और देश के हृदयों को प्रसन्न करो।"

"हे राक्षस," बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मैं तो जाऊँगा। और तुम, तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों के कारण ही एक हिंसक, हत्यारा, मांस खाने वाले राक्षस के रूप में पुनर्जन्म लिए हो; और यदि तुम इस जन्म में भी पाप करते रहे, तो अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ते जाओगे। परन्तु मुझे देखकर तुम अब से पाप नहीं कर पाओगे। जान लो कि जीवन का नाश करना नरक में, या पशु के रूप में, या प्रेत के रूप में, या पतित आत्माओं के बीच पुनर्जन्म को निश्चित करता है। या, यदि पुनर्जन्म मनुष्यों के संसार में हो, तो ऐसा पाप मनुष्य के जीवन को अल्प कर देता है।"

इस और अन्य तरीकों से बोधिसत्व ने पाँच बुरे मार्गों के बुरे परिणामों और पाँच अच्छे मार्गों के लाभों को दर्शाया; और इस प्रकार उस राक्षस के भय को अनेक तरीकों से दूर किया, जिससे उनके उपदेशों ने उसे परिवर्तित कर दिया, उसमें आत्म-त्याग का भाव भर दिया और उसे पंच आज्ञाओं में स्थापित कर दिया। फिर उस राक्षस को उस वन का परी बनाकर, उसे कर वसूलने का अधिकार देकर (*2), और उसे भक्तिमय रहने का आदेश देकर, बोधिसत्व अपने मार्ग पर चले गए, और वन से निकलते समय राक्षस के बदलते मनोभावों को प्रकट किया। अंत में, वे पाँच शस्त्रों से सुसज्जित होकर बनारस नगर पहुँचे और अपने माता-पिता के समक्ष उपस्थित हुए। बाद में, राजा बनने पर वे एक धर्मात्मा शासक थे; और दान और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन के बाद, वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक विदा हुए।

यह पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने बुद्ध के रूप में निम्नलिखित श्लोक का पाठ किया:-

जब कोई आसक्ति हृदय या मन को बाधित न करे,
जब धर्म का पालन किया जाता है तो शांति प्राप्त होती है।
जो इस मार्ग पर चलता है, उसे विजय प्राप्त होगी।
और सभी जंजीरें पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं।
जब उन्होंने अपने उपदेश को अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) तक पहुँचाया, जो कि शिखर बिंदु था, तब गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में उस भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "अंगुलिमाला (*3) उस समय का राक्षस था, और मैं स्वयं पंच-शस्त्र राजकुमार हूँ।"

फुटनोट:

(1) जामुन (जाम्बू) के पेड़ों की व्यापकता के कारण भारत को जाम्बू दीप कहा जाता था। यह उन चार द्वीपों या दीपों में से एक था जिनसे पृथ्वी बनी मानी जाती थी; इसमें भारत भी शामिल था।

(2)या, शायद, "जिनके लिए बलिदान चढ़ाए जाने चाहिए।" पाठ में दिया गया अनुवाद कर-संग्रहकर्ता के विकास के एक लोकप्रिय सिद्धांत का सुझाव देता है। क्रमांक 155 भी देखें।

(3) अंगुलिमाला, एक डाकू जो लोगों को मारता था और अपने पीड़ितों की उंगलियों की माला पहनता था, बुद्ध द्वारा परिवर्तित हुआ और बाद में अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गया। मज्झिमा निकाय संख्या 86 देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कांचनकखंड-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-56-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 56
कंचनक्खण्ड-जातक

"जब प्रसन्नता।" - यह कथा गुरु ने श्रावस्ती नगर में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, गुरु के उपदेश सुनकर श्रावस्ती नगर के एक युवक ने बुद्ध के धर्म को अपना लिया और भिक्षु बन गया। उसके गुरुओं और पादरियों ने उसे दस नैतिक नियमों का एक-एक करके उपदेश दिया, उसे लघु, मध्यम और दीर्घ नैतिक शिक्षा दी, पतिमोक्खा के अनुसार आत्मसंयम पर आधारित नैतिक शिक्षा, इंद्रियों पर आत्मसंयम पर आधारित नैतिक शिक्षा, निष्कलंक जीवन शैली पर आधारित नैतिक शिक्षा और भिक्षु द्वारा आवश्यक वस्तुओं के उपयोग से संबंधित नैतिक शिक्षा प्रदान की। उस नवोदित युवक ने मन ही मन सोचा, "इस नैतिकता का दायरा बहुत बड़ा है; और मैं निश्चित रूप से अपनी सभी प्रतिज्ञाओं को पूरा करने में असफल रहूँगा। फिर भी, यदि कोई नैतिकता के नियमों का पालन नहीं कर सकता, तो भिक्षु होने का क्या लाभ? मेरे लिए सबसे अच्छा यही है कि मैं संसार में लौट जाऊँ, विवाह करूँ और संतानोत्पत्ति करूँ, दान-पुण्य और अन्य अच्छे कर्मों का जीवन व्यतीत करूँ।" उसने अपने वरिष्ठों को अपने विचार बताए और कहा कि वह गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता है और अपना कुंड और वस्त्र वापस करना चाहता है। उन्होंने कहा, "ठीक है, यदि ऐसा है तो जाने से पहले बुद्ध से विदा ले लीजिए।" और वे उस युवक को सत्य के हॉल में गुरु के समक्ष ले आए।

गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, तुम इस भाई को उसकी इच्छा के विरुद्ध मेरे पास क्यों ला रहे हो?"

"महोदय, उन्होंने कहा कि नैतिकता उनके बस से बाहर है, और वे अपने वस्त्र और कटोरा वापस देना चाहते थे। इसलिए हम उन्हें ले आए और आपके पास लाए।"

"लेकिन भाइयों, तुमने उस पर इतना बोझ क्यों डाला? वह जितना कर सकता है, उतना कर सकता है, इससे अधिक नहीं। यह गलती दोबारा मत दोहराना, और इस मामले में क्या करना चाहिए, इसका फैसला मुझ पर छोड़ दो।"

फिर, युवा भाई की ओर मुड़कर, गुरु ने कहा, "आओ, भाई; सामूहिक नैतिकता से तुम्हारा क्या लेना-देना है? क्या तुम्हें लगता है कि तुम केवल तीन नैतिक नियमों का पालन कर सकते हो?"

"जी हां, महोदय।"

"अब, अपनी वाणी, मन और शरीर के तीन मार्गों पर ध्यान रखो और सावधान रहो; चाहे वचन से हो, विचार से हो या कर्म से, कोई बुराई मत करो। भाईचारा मत छोड़ो, बल्कि यहाँ से जाओ और इन्हीं तीन नियमों का पालन करो।"

"जी जी, मैं इनका पालन करूँगा," प्रसन्न होकर उस युवक ने कहा और अपने गुरुओं के साथ वापस चल दिया। अपने तीनों नियमों का पालन करते हुए उसने मन ही मन सोचा, "मेरे गुरुओं ने मुझे संपूर्ण नैतिकता का उपदेश दिया था, परन्तु वे बुद्ध न होते हुए भी मुझे इतना भी नहीं समझा सके। जबकि सर्वप्रबुद्ध बुद्ध ने अपने बुद्धत्व और सत्य के स्वामी होने के कारण, मार्ग संबंधी केवल तीन नियमों में ही इतनी नैतिकता का सार प्रकट कर दिया है और मुझे स्पष्ट रूप से समझा दिया है। सचमुच, गुरु मेरे लिए बहुत बड़े सहायक रहे हैं।" और उसने अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली और कुछ ही दिनों में अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। जब यह बात भाइयों के कानों तक पहुँची, तो उन्होंने सत्य के हॉल में एकत्रित होकर इस विषय पर चर्चा की। उन्होंने बताया कि कैसे एक भाई, जो नैतिकता का पालन न कर पाने के कारण संसार में लौट रहा था, उसे गुरु ने नैतिकता के संपूर्ण सार को समाहित करने वाले तीन नियम प्रदान किए, और उसे

उन तीन नियमों को समझने में सक्षम बनाया, जिससे गुरु ने उसे अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने में सहायता की। उन्होंने कहा, बुद्ध कितने अद्भुत थे!

इस समय हॉल में प्रवेश करते हुए और पूछताछ करने पर उनके प्रवचन का विषय जानने पर, गुरु ने कहा, "भाइयों, भारी बोझ भी टुकड़ों में उठाने पर हल्का हो जाता है; और इसी प्रकार पुराने समय के बुद्धिमान और भले लोगों ने जब सोने का एक विशाल ढेर पाया जो उठाने में असमर्थ था, तो उन्होंने पहले उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा और फिर धीरे-धीरे अपना खजाना ले गए।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व ने एक गाँव में किसान के रूप में जन्म लिया और एक दिन उस खेत में हल चला रहे थे जहाँ कभी एक गाँव हुआ करता था। अतीत में, एक धनी व्यापारी की मृत्यु हो गई थी और वह उस खेत में सोने की एक विशाल छड़ गाड़ कर गया था, जो एक आदमी की जांघ जितनी मोटी और चार भुजाओं जितनी लंबी थी। यह छड़ सीधे बोधिसत्व के हल से टकराई और वहीं अटक गई। उन्होंने इसे पेड़ की फैली हुई जड़ समझकर खोदकर निकाला; लेकिन जब उन्हें इसकी असलियत पता चली, तो वे सोने से मिट्टी साफ करने में जुट गए। दिन भर का काम खत्म होने पर, सूर्यास्त के समय उन्होंने अपना हल और औजार एक तरफ रख दिया और अपने खजाने को कंधे पर उठाकर चलने की कोशिश की। लेकिन जब वे उसे उठा भी नहीं सके, तो वे उसके सामने बैठ गए और सोचने लगे कि इसका क्या उपयोग किया जाए। “मेरे पास जीने के लिए बहुत कुछ होगा, खजाने के रूप में दफनाने के लिए बहुत कुछ होगा, व्यापार करने के लिए बहुत कुछ होगा, और दान और अच्छे कामों के लिए बहुत कुछ होगा,” उसने मन ही मन सोचा और उसी के अनुसार सोने को चार भागों में काट दिया। विभाजन से उसका बोझ हल्का हो गया; और वह सोने के टुकड़ों को घर ले गया। दान और अन्य अच्छे कामों से भरा जीवन जीने के बाद, वह इस दुनिया से विदा हो गया और उसके कर्मों के अनुसार ही उसका अंत हुआ।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ, तब गुरु ने बुद्ध के रूप में यह श्लोक सुनाया:-

जब हृदय और मन प्रसन्नता से भर जाते हैं,
जब धर्म का पालन किया जाता है तो शांति प्राप्त होती है।
जो इस मार्ग पर चलेगा, उसे विजय प्राप्त होगी।
और सभी जंजीरें पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं।
और जब गुरु ने इस प्रकार अपने उपदेश को अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञानोदय) तक पहुँचाकर चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया, तो उन्होंने संबंध को स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों मैं स्वयं वह व्यक्ति था जिसे सोने का टुकड़ा प्राप्त हुआ था।"

फुटनोट:

(1) तीन रत्नों (त्रिमूर्ति) से संबंधित शिक्षा, अर्थात् 1. बुद्ध, 2. धम्म निर्वाण का मार्ग और 3. संघ पवित्र व्यवस्था।

(2)पतिमोक्खा विनय (नियम) में है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वानरिंद-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-57-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 57
वानरिंद जातक

“हे वानर-राजा!”—यह कथा गुरु ने बाँस के वन में सुनाई थी, जब देवदत्त ने उन्हें जान से मारने का प्रयास किया था। देवदत्त के इस घातक इरादे की जानकारी मिलने पर गुरु ने कहा, “भाइयों (भिक्षुओं) यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने मुझे मारने का प्रयास किया है;

उसने पहले भी ऐसा ही किया था, परन्तु अपने इस दुष्ट इरादे को पूरा करने में असफल रहा।" और ऐसा कहकर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने बंदर के रूप में पुनर्जन्म लिया। पूर्ण विकसित होने पर वे घोड़ी के बच्चे जितने बड़े और अत्यंत बलवान थे। वे एक नदी के किनारे अकेले रहते थे, जिसके बीचोंबीच एक द्वीप था जिस पर आम, ब्रेडफ्रूट और अन्य फलदार वृक्ष उगते थे। नदी के मध्य में, द्वीप और नदी के किनारे के बीचोंबीच, पानी से एक अकेली चट्टान निकली हुई थी। हाथी के समान बलवान होने के कारण, बोधिसत्व नदी के किनारे से इस चट्टान पर और फिर वहाँ से द्वीप पर छलांग लगाते थे। वहाँ वे द्वीप पर उगने वाले फलों को भरपेट खाते थे और शाम को उसी रास्ते से लौट आते थे। इस प्रकार उनका दैनिक जीवन व्यतीत होता था।

उन दिनों उस नदी में एक मगरमच्छ और उसकी मादा रहती थी; वह गर्भवती थी और बोधिसत्व को आते-जाते देखकर उसके मन में बंदर का हृदय खाने की लालसा उत्पन्न हुई। इसलिए उसने अपने स्वामी से बंदर को पकड़ने की विनती की। मगरमच्छ ने उसकी इच्छा पूरी करने का वादा किया और एक चट्टान पर जाकर बैठ गया, ताकि शाम को घर लौटते समय बंदर को पकड़ सके।

दिनभर द्वीप पर घूमने के बाद, बोधिसत्व ने शाम को चट्टान की ओर देखा और सोचने लगे कि वह पानी से इतनी ऊपर क्यों उठी हुई है। कथा के अनुसार, बोधिसत्व नदी के पानी और चट्टान की ऊंचाई का सटीक माप लेते थे। इसलिए, जब उन्होंने देखा कि पानी का स्तर तो एक जैसा है, लेकिन चट्टान पानी से अधिक ऊपर उठी हुई प्रतीत हो रही है, तो उन्हें संदेह हुआ कि कोई मगरमच्छ उन्हें पकड़ने के लिए वहाँ घात लगाए बैठा है। सच्चाई जानने के लिए, उन्होंने चट्टान को संबोधित करते हुए पुकारा, "हाय! चट्टान!" और कोई उत्तर न मिलने पर, उन्होंने तीन बार फिर पुकारा, "हाय! चट्टान!" और चट्टान के चुप रहने पर, बंदर ने पुकारा, "हे मित्र चट्टान, आज तुम मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो?"

"ओह!" मगरमच्छ ने सोचा; "तो चट्टान को बंदर को जवाब देने की आदत है। आज मुझे चट्टान की तरफ से जवाब देना होगा।" इसलिए, वह चिल्लाया, "जी बंदर; क्या बात है?" "तुम कौन हो?" बोधिसत्व ने कहा। "मैं एक मगरमच्छ हूँ।" "तुम उस चट्टान पर क्यों बैठे हो?" "तुम्हें पकड़ने और तुम्हारा दिल खाने के लिए।" चूंकि पीछे हटने का कोई और रास्ता नहीं था, इसलिए मगरमच्छ को चकमा देने के अलावा कोई चारा नहीं था। इसलिए बोधिसत्व चिल्लाया, "अब तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण करने के अलावा कोई चारा नहीं है। अपना मुंह खोलो और जब मैं कूदूं तो मुझे पकड़ लो।"

अब आपको पता ही होगा कि जब मगरमच्छ अपना मुंह खोलते हैं, तो उनकी आंखें बंद हो जाती हैं (*1)। तो, जब इस मगरमच्छ ने बेखबर अपना मुंह खोला, तो उसकी आंखें बंद हो गईं। और वह बंद आंखों और खुले जबड़ों के साथ वहीं इंतजार करता रहा! यह देखकर चालाक बंदर मगरमच्छ के सिर पर कूद गया, और वहां से बिजली की तरह फुर्ती से किनारे पर पहुंच गया। जब मगरमच्छ को इस करतब की चतुराई का एहसास हुआ, तो उसने कहा, "बंदर, इस संसार में जिसके पास चारों गुण होते हैं, वही अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करता है। और मुझे लगता है कि तुम्हारे पास चारों गुण हैं।" और ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:-

हे वानर-राजा, जो आपकी ही तरह, संयोजन करता है
सत्य, दूरदर्शिता, दृढ़ संकल्प और निर्भीकता।
वह अपने पराजित प्रतिद्वंद्वियों को मुड़कर भागते हुए देखेगा।
और बोधिसत्व की इस प्रशंसा के साथ, मगरमच्छ अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ा।

गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त मुझे मारने के लिए निकला है; उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" और अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध स्पष्ट किया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का मगरमच्छ था, ब्राह्मण कन्या चिंचा (*2) मगरमच्छ की पत्नी थी, और मैं स्वयं वानर-राजा था।"

फुटनोट:

(1) यह दावा प्राकृतिक इतिहास के तथ्यों के अनुरूप नहीं है।

(2) यहाँ मगरमच्छ की दुष्ट पत्नी के रूप में उसकी पहचान इस तथ्य के कारण है कि चिंचा, जो "दुर्लभ सौंदर्य की महिला तपस्वी" थी, को गौतम (बुद्ध) के शत्रुओं द्वारा गर्भावस्था का नाटक करने और उसे पितृत्व का आरोप लगाने के लिए रिश्वत दी गई थी।

स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-58-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 58
तयोधम्म-जातक

"जो कोई भी, तुम्हारे जैसा।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में शिकार करने के विषय पर सुनाई थी।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, देवदत्त ने एक बंदर के रूप में पुनर्जन्म लिया और हिमालय के पास अपने ही वंशजों के एक कबीले के मुखिया के रूप में रहने लगे। उन्हें इस बात का डर सताता रहता था कि कहीं उनके नर वंशज बड़े होकर उन्हें उनके पद से न हटा दें, इसलिए वे अपने दाँतों से उन सभी को नपुंसक बना देते थे। अब बोधिसत्व का जन्म इसी बंदर से हुआ था; और उनकी माता ने अपने अजन्मे बच्चे को बचाने के लिए चुपके से पर्वत की तलहटी में स्थित एक जंगल में शरण ली, जहाँ उचित समय पर उन्होंने बोधिसत्व को जन्म दिया। जब वे वयस्क हुए और ज्ञान प्राप्त कर लिया, तो उन्हें अद्‌भुत शक्ति प्राप्त हुई।

एक दिन उसने अपनी माँ से पूछा, “मेरे पिता कहाँ हैं?” माँ ने उत्तर दिया, “वे एक पर्वत की तलहटी में रहते हैं, नहीं पुत्र, और बंदरों के एक कबीले के राजा हैं।” “माँ, मुझे उनसे मिलने ले चलो।” “नहीं पुत्र, क्योंकि तुम्हारे पिता को अपने पुत्रों द्वारा पदच्युत किए जाने का इतना भय है कि वे अपने दाँतों से उन सभी को नपुंसक बना देते हैं।” बोधिसत्व ने कहा, “कोई बात नहीं; मुझे वहाँ ले चलो, माँ; मुझे पता है क्या करना है।” तो वह उसे अपने साथ बूढ़े बंदर के पास ले गई। अपने पुत्र को देखते ही, बूढ़े बंदर को लगा कि बोधिसत्व उसे मार डालेंगे, इसलिए उसने गले लगाने का नाटक करते हुए बोधिसत्व का गला घोंटने का निश्चय किया। “आह! मेरे पुत्र!” वह चिल्लाया; “तुम इतने समय से कहाँ थे?” और, गले लगाने का नाटक करते हुए, उसने उन्हें शिकंजे की तरह जकड़ लिया। लेकिन हाथी के समान बलवान बोधिसत्व ने इतनी ताकत से गले लगाया कि उनके पिता की पसलियां मानो टूट ही गईं।

तब बूढ़े बंदर ने सोचा, "मेरा यह बेटा, अगर बड़ा हुआ तो मुझे ज़रूर मार डालेगा।" बोधिसत्व को मारने की योजना बनाते हुए, उसे पास ही एक झील का ख्याल आया, जहाँ एक राक्षस रहता था जो उसे खा सकता था। इसलिए उसने बोधिसत्व से कहा, "मेरे बेटे, मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ और अपना कुल तुम्हें सौंपना चाहता हूँ; आज तुम राजा बनोगे। पास ही एक झील है जिसमें दो प्रकार के कमल, तीन प्रकार के नीले कमल और पाँच प्रकार के सफेद कमल उगते हैं। जाओ और मेरे लिए कुछ तोड़ लाओ।" "जी पिता," बोधिसत्व ने उत्तर दिया; और वह चल पड़ा। सावधानी से झील के पास पहुँचकर, उसने उसके किनारों पर बने पदचिह्नों का अध्ययन किया और देखा कि वे सभी पानी की ओर जाते थे, लेकिन कोई भी वापस नहीं आता था। यह जानकर कि झील में एक राक्षस रहता है, उसने सोचा कि उसके पिता, स्वयं उसे मारने में असमर्थ होने के कारण, उसे उस राक्षस के हाथों मरवाना चाहते हैं। “पर मैं कमल तो ले ही आऊँगा,” उसने कहा, “बिना पानी में उतरे।” इसलिए वह एक सूखी जगह पर गया और दौड़कर किनारे से छलांग लगा दी। छलांग लगाते हुए, जैसे ही वह पानी से बाहर निकला, उसने पानी की सतह के ऊपर उगे दो फूल तोड़ लिए और उन्हें लेकर दूसरे किनारे पर उतर गया। लौटते समय, उसने इसी तरह छलांग लगाते हुए दो और फूल तोड़ लिए; और इस तरह झील के दोनों किनारों पर फूलों का ढेर लगा दिया, लेकिन हमेशा राक्षस के जल क्षेत्र से दूर रहा। जब उसने उतने फूल तोड़ लिए जितने वह दूसरी तरफ ले जा सकता था, और उन्हें एक किनारे पर इकट्ठा कर रहा था, तो चकित राक्षस ने कहा, “मैं इस झील में बहुत समय से रह रहा हूँ, लेकिन मैंने कभी किसी इंसान को इतना अद्‌भुत चतुर नहीं देखा! देखो, यह बंदर है जिसने अपने मनचाहे सारे फूल तोड़ लिए हैं, और फिर भी मेरी शक्ति की पहुँच से सुरक्षित बाहर रहा है।” और, जल को दो भागों में बाँटकर, राक्षस झील से निकलकर उस स्थान पर आया जहाँ बोधिसत्व खड़े थे, और उनसे इस प्रकार कहा, "हे वानरों के राजा, जिसमें तीन गुण होते हैं, वही शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है; और मुझे लगता है कि आपमें वे तीनों गुण हैं।" और ऐसा कहकर, उसने बोधिसत्व की प्रशंसा में यह श्लोक दोहराया:-

हे वानर-राजा, जो आपकी ही तरह संयोजन करता है
निपुणता, वीरता और संसाधन

वह अपने पराजित प्रतिद्वंद्वी को मुड़कर भागते हुए देखेगा।
उनकी प्रशंसा समाप्त होने पर, राक्षस ने बोधिसत्व से पूछा कि वह फूल क्यों इकट्ठा कर रहे हैं।

बोधिसत्व ने कहा, "मेरे पिता मुझे अपने कबीले का राजा बनाना चाहते हैं, और इसीलिए मैं उन्हें इकट्ठा कर रहा हूँ।"

"परन्तु आप जैसे असाधारण व्यक्ति को फूल नहीं ले जाने चाहिए," राक्षस ने कहा; "मैं आपके लिए फूल ले जाऊंगा।" और ऐसा कहकर उसने फूल तोड़े और बोधिसत्व के पीछे-पीछे चलने लगा।

दूर से यह देखकर बोधिसत्व के पिता समझ गए कि उनकी योजना विफल हो गई है। "मैंने अपने बेटे को राक्षस का शिकार बनने के लिए भेजा था, और देखो वह सुरक्षित लौट आया है, और राक्षस विनम्रतापूर्वक उसके लिए फूल लेकर आया है! मैं तो बर्बाद हो गया!" बूढ़े बंदर ने चीखते हुए कहा, और उसका हृदय सात टुकड़ों में फट गया, जिससे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। और सभी अन्य बंदर एक साथ एकत्रित हुए और बोधिसत्व को अपना राजा चुना।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उस समय देवदत्त बंदरों का राजा था, और मैं उसका पुत्र था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भेरीवाद-जातक**
स्रोत : *रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-59-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 59
भेरिवादा-जातक

"ज़्यादा दूर मत जाओ।"—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक ज़िद्दी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। जब गुरु ने उससे पूछा कि क्या यह बात सच है कि वह ज़िद्दी है, तो भिक्षु ने कहा कि हाँ। गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भिक्षु, कि तुमने ज़िद्दीपन दिखाया है; तुम पहले भी ऐसे ही थे।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व ने ढोल बजाने वाले के रूप में जन्म लिया और एक गाँव में रहने लगे। बनारस में एक उत्सव होने की खबर सुनकर और त्योहार मनाने आए लोगों के बीच ढोल बजाकर पैसे कमाने की उम्मीद में, वे अपने बेटे के साथ शहर की ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने ढोल बजाकर खूब पैसा कमाया। अपनी कमाई लेकर घर लौटते समय उन्हें एक ऐसे जंगल से गुजरना पड़ा जो लुटेरों से भरा हुआ था; और जब लड़का लगातार ढोल बजाता रहा, तो बोधिसत्व ने उसे रोकते हुए कहा, "ऐसा मत करो, बस कभी-कभी बजाओ, मानो कोई महान स्वामी यहाँ से गुजर रहा हो।"

लेकिन अपने पिता के मना करने के बावजूद, लड़के ने सोचा कि लुटेरों को डराने का सबसे अच्छा तरीका लगातार ढोल बजाते रहना है।

ढोल की पहली ध्वनि सुनते ही लुटेरे भाग गए, यह सोचकर कि कोई महान स्वामी गुजर रहा है। लेकिन शोर जारी रहने पर उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और वे यह पता लगाने के लिए वापस लौटे कि वास्तव में कौन है। वहाँ केवल दो व्यक्ति थे, जिन्हें उन्होंने पीट-पीट कर लूट लिया। "हाय!" बोधिसत्व ने पुकारते हुए कहा, "तुम्हारे निरंतर ढोल बजाने से हमारी सारी मेहनत की कमाई बर्बाद हो गई!" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

बहुत दूर मत जाओ, बल्कि अति से बचना सीखो;
अत्यधिक ढोल बजाने से वही नुकसान हुआ जो ढोल बजाने से हुआ।

उनका पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने संबंध की व्याख्या की और जन्म की पहचान करते हुए कहा, "यह स्वेच्छाचारी भाई (भिक्षु) उन दिनों का पुत्र था, और मैं स्वयं उसका पिता था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शंखधामन-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-60-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 60
संखधमना-जातक

"ज्यादा दूर मत जाओ।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक अन्य स्वेच्छाचारी व्यक्ति के बारे में सुनाई थी।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने शंख बजाने वाले का रूप धारण किया और अपने पिता के साथ बनारस में एक सार्वजनिक उत्सव में गए। वहाँ उन्होंने शंख बजाकर खूब धन कमाया और घर लौटने लगे। रास्ते में, लुटेरों से भरे एक जंगल से गुजरते हुए, उन्होंने अपने पिता को चेतावनी दी कि वे लगातार शंख न बजाएँ; लेकिन बूढ़े पिता को लगा कि लुटेरों को भगाने का तरीका उन्हें बेहतर पता है, और उन्होंने बिना रुके लगातार शंख बजाते रहे। परिणामस्वरूप, पिछली कहानी की तरह ही, लुटेरे वापस आए और दोनों को लूट लिया। और, जैसा कि ऊपर बताया गया है, बोधिसत्व ने इस श्लोक को दोहराया:

बहुत दूर मत जाओ, बल्कि अति से बचना सीखो;
अतिशयोक्ति करने से वही लाभ खो गया जो फूंक मारने से प्राप्त हुआ।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध की व्याख्या की और जन्म की पहचान करते हुए कहा, "यह स्वेच्छाचारी भाई (भिक्षु) उन दिनों का जनक था, और मैं स्वयं उसका पुत्र हूँ।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असतमंत-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-61-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 61
असतमान्त-जातक

"अनियंत्रित कामवासना में डूबा हुआ।" - यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में एक कामवासना से ग्रस्त भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इसका परिचयात्मक वर्णन उम्मदन्ती-जातक (*1) में किया जाएगा। गुरु ने उस भिक्षु से कहा, "हे भिक्षु, स्त्रियाँ कामवासना से भरी, फिजूलखर्ची करने वाली, नीच और पतित होती हैं। ऐसी नीच स्त्री के प्रति क्यों ग्रस्त हो रहे हो?" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म गांधार (अफगानिस्तान और पाकिस्तान के पास स्थित कंधार देश) के तक्षशिला शहर में एक ब्राह्मण के रूप में हुआ; और जब तक वे बड़े हुए, तब तक तीनों वेदों और सभी उपलब्धियों में उनकी निपुणता इतनी अधिक थी कि एक शिक्षक के रूप में उनकी ख्याति पूरे विश्व में फैल गई।

उन दिनों बनारस में एक ब्राह्मण परिवार रहता था, जिनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। उसके जन्म के दिन ही उन्होंने अग्नि जलाकर उसे सोलह वर्ष की आयु तक निरंतर प्रज्वलित रखा। फिर उसके माता-पिता ने उसे बताया कि जन्म के दिन प्रज्वलित की गई अग्नि को कभी बुझने नहीं दिया गया था। उन्होंने पुत्र से अपना निर्णय लेने को कहा। यदि उसका मन भविष्य में ब्रह्मालोक (स्वर्ग) में प्रवेश पाने का हो, तो वह अग्नि लेकर वन में जाकर अग्नि देव की निरंतर उपासना करके अपनी इच्छा पूरी करे। परन्तु यदि वह गृहस्थी सुखों को प्राथमिकता दे, तो उन्होंने पुत्र को तक्षशिला जाकर विश्वप्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त करने और बाद में संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए कहा। उस युवक ब्राह्मण ने कहा, "मैं अग्नि देव की उपासना में अवश्य ही असफल हो जाऊँगा; मैं तो एक अधिकारी ही बनूँगा।" अतः उसने अपने माता-पिता को विदा किया और गुरु की शिक्षा के लिए एक हजार सिक्के लेकर तक्षशिला के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी होने तक पढ़ाई की और फिर वापस घर चले गए।

अब उसके माता-पिता चाहते थे कि वह संसार त्यागकर वन में अग्निदेव की उपासना करे। इसलिए उसकी माता ने उसे स्त्रियों की बुराई से अवगत कराकर वन भेजने की इच्छा से आश्वस्त होकर यह सोचा कि उसका बुद्धिमान और विद्वान शिक्षक उसके पुत्र को स्त्रियों की बुराई से अवगत करा देगा, और उसने पूछा कि क्या उसकी शिक्षा पूरी हो गई है। "हाँ," युवक ने कहा।

"तो फिर तुमने शोकगीत तो नहीं छोड़े?" "मैंने उन्हें नहीं पढ़ा है, माँ।" "तो फिर तुम कैसे कह सकते हो कि तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गई है? मेरे बेटे, तुरंत अपने गुरु के पास वापस जाओ और उन्हें सीखकर हमारे पास लौट आओ," उसकी माँ ने कहा।

"बहुत बढ़िया," युवक ने कहा और एक बार फिर तक्षशिला के लिए रवाना हो गया।

अब उसके स्वामी की भी एक माता थी, जो एक सौ बीस वर्ष की वृद्धाश्रम थीं, जिनकी वह स्वयं नहलाता, भोजन कराता और देखभाल करता था। ऐसा करने के कारण उसके पड़ोसी उससे घृणा करते थे, यहाँ तक कि इतना अधिक कि उसने जंगल में जाकर अपनी माता के साथ रहने का निश्चय कर लिया। तदनुसार, जंगल के एकांत में, एक रमणीय स्थान पर, जहाँ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, उसने एक कुटिया बनवाई और घी, चावल और अन्य खाद्य सामग्री का भंडार जमा करने के बाद, वह अपनी माता को उनके नए घर ले गया और वहाँ उनकी वृद्धावस्था में स्नेहपूर्वक रहने लगा।

तक्षशिला में अपने गुरु को न पाकर, युवा ब्राह्मण ने पूछताछ की और जब उसे पता चला कि क्या हुआ है, तो वह जंगल की ओर चल पड़ा और अपने गुरु के समक्ष आदरपूर्वक उपस्थित हुआ। गुरु ने कहा, "मेरे बालक, इतनी जल्दी वापस क्यों आ गए?" युवक ने कहा, "गुरुजी, मुझे नहीं लगता कि मैंने आपके साथ रहते हुए शोक ग्रंथों का अध्ययन किया था।" "लेकिन तुम्हें शोक ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए किसने कहा था?" उत्तर था, "गुरुजी, मेरी माता ने।" इस पर बोधिसत्व ने सोचा कि ऐसे कोई ग्रंथ हैं ही नहीं, और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि उनके शिष्य की माता चाहती होंगी कि उनका पुत्र स्त्रियों के दुष्ट स्वभाव को सीखे। इसलिए उन्होंने युवक से कहा कि कोई बात नहीं, और उसे उचित समय पर इन ग्रंथों का अध्ययन कराया जाएगा। "आज से," उसने कहा, "तुम मेरी माँ के पास मेरी जगह लोगे, और अपने हाथों से उन्हें नहलाओगे, खिलाओगे और उनकी देखभाल करोगे। जब तुम उनके हाथ, पैर, सिर और पीठ सहलाओगे, तो ध्यान से कहना, 'आह, माँ! अगर आप इतनी उम्र में भी इतनी सुंदर हैं, तो जवानी में कितनी सुंदर रही होंगी!' और जब तुम उनके हाथ-पैर धोकर इत्र लगाओगे, तो उनकी सुंदरता की प्रशंसा करोगे। इसके अलावा, मेरी माँ तुमसे जो भी कहें, मुझे बिना किसी झिझक के बताना। मेरी बात मानो, तो तुम शोक ग्रंथों में पारंगत हो जाओगे; मेरी अवज्ञा करोगे, तो तुम हमेशा के लिए उनसे अनभिज्ञ रहोगे।"

अपने स्वामी के आदेशों का पालन करते हुए, युवक ने सब कुछ किया और बुढ़िया की सुंदरता की इतनी प्रशंसा की कि उसे लगा कि वह उससे प्रेम करने लगा है; और अंधी और थकी हुई होने के बावजूद, उसके भीतर वासना जागृत हो गई। इसलिए एक दिन उसने उसकी प्रशंसाओं को रोकते हुए पूछा, "क्या तुम्हारी इच्छा मेरे प्रति है?" "जी हाँ, महोदया," युवक ने उत्तर दिया; "लेकिन कोई स्वामी इतना कठोर नहीं होता।" "यदि तुम मुझे चाहते हो," उसने कहा, "मेरे बेटे को मार डालो!" "लेकिन मैं, जिसने उससे इतना कुछ सीखा है, वासना के कारण अपने स्वामी को कैसे मार सकता हूँ?" "ठीक है, यदि तुम मेरे प्रति वफादार रहोगे, तो मैं उसे स्वयं मार डालूँगा।"

(औरतें इतनी कामुक, नीच और पतित होती हैं कि वासना को बढ़ावा देते हुए, इस जैसी बदसूरत बूढ़ी औरत, इतनी बूढ़ी होने के बावजूद, एक आज्ञाकारी बेटे के खून की प्यासी हो गई!)

अब उस युवा ब्राह्मण ने यह सब बोधिसत्व को बताया। बोधिसत्व ने उसे यह बात बताने के लिए बधाई दी और यह जानने की कोशिश की कि उसकी माताजी कितने दिन जीवित रहेंगी। जब उन्हें पता चला कि उनकी माताजी का उसी दिन निधन होना तय है, तो उन्होंने कहा, "आओ, युवा ब्राह्मण; मैं उनकी परीक्षा लूँगा।" इसलिए उन्होंने एक अंजीर का पेड़ काटा और उसमें से अपने ही कद की एक लकड़ी की मूर्ति बनाई। उन्होंने उस मूर्ति को सिर समेत एक वस्त्र में लपेटकर अपने पलंग पर रख दिया और उसमें एक डोरी बाँध दी। उन्होंने कहा, "अब कुल्हाड़ी लेकर मेरी माताजी के पास जाओ और उन्हें यह डोरी दे दो ताकि वे राह देख सकें।"

तब वह युवक बूढ़ी औरत के पास गया और बोला, “महोदया, स्वामी जी घर के अंदर पलंग पर लेटे हैं; मैंने यह रस्सी आपको रास्ता दिखाने के लिए बाँधी है; यह कुल्हाड़ी लीजिए और अगर हो सके तो उन्हें मार डालिए।” “लेकिन आप मुझे नहीं छोड़ेंगे, है ना?” उसने कहा। “मैं क्यों छोड़ूँ?” उसने उत्तर दिया। तब उसने कुल्हाड़ी उठाई और काँपते हुए अंगों से उठकर रस्सी के सहारे आगे बढ़ने लगी, जब तक कि उसे लगा कि उसका बेटा उसके पास है। फिर उसने आकृति का सिर नंगा किया और—अपने बेटे को एक ही वार में मार डालने की सोचकर—कुल्हाड़ी सीधे आकृति के गले पर चला दी, लेकिन धड़ाम की आवाज़ से उसे पता चला कि वह लकड़ी का था! “माँ, तुम क्या कर रही हो?” बोधिसत्व ने कहा। धोखे का चीखते हुए बूढ़ी औरत ज़मीन पर गिर पड़ी। क्योंकि, परंपरा के अनुसार, यह नियति थी कि वह उसी क्षण और अपने ही घर में मर जाए।

जब उसने देखा कि उसकी माँ मर चुकी है, तो उसके बेटे ने उसके शरीर को जला दिया, और जब चिता की लपटें बुझ गईं, तो उसने उसकी राख पर जंगली फूल चढ़ा दिए। फिर वह युवक ब्राह्मण के साथ कुटिया के द्वार पर बैठा और बोला, "मेरे पुत्र, 'शोक ग्रंथ' जैसा कोई अलग पाठ नहीं है। स्त्रीएँ ही तो साक्षात पाप हैं। और जब तुम्हारी माँ ने तुम्हें शोक ग्रंथ सीखने के लिए मेरे पास वापस भेजा था, तो उसका उद्देश्य यही था कि तुम सीखो कि स्त्रियाँ कितनी दुष्ट होती हैं। अब तुमने अपनी आँखों से मेरी माँ का पाप देख लिया है, और इससे तुम जानोगे कि स्त्रियाँ कितनी कामुक और नीच होती हैं।" और यह शिक्षा देकर उसने युवक को जाने को कहा।

अपने गुरु को विदाई देकर वह युवक ब्राह्मण अपने माता-पिता के घर लौट गया। उसकी माता ने उससे पूछा, "क्या तुमने अब शोक ग्रंथ सीख लिए हैं?"

"हाँ माँ।"

“और,” उसने पूछा, “तुम्हारा अंतिम निर्णय क्या है? क्या तुम अग्निदेव की पूजा करने के लिए संसार त्याग दोगे, या वैवाहिक जीवन चुनोगे?” “नहीं,” युवा ब्राह्मण ने उत्तर दिया; “मैंने अपनी आँखों से स्त्री जाति की दुष्टता देखी है; मैं वैवाहिक जीवन से कोई संबंध नहीं रखूँगा। मैं संसार का त्याग करूँगा।” और उसके इस विश्वास को इस श्लोक में अभिव्यक्ति मिली:-

अनियंत्रित वासना में, भस्म कर देने वाली आग की तरह,
क्या महिलाएं अपने गुस्से में बेकाबू हो गई हैं?
कामवासना का त्याग करके, मैं खुशी-खुशी सेवानिवृत्त हो जाऊंगा।
आश्रम में शांति की तलाश करना।
स्त्री जाति के विरुद्ध इस निंदा के साथ, युवा ब्राह्मण ने अपने माता-पिता से विदा ली और संन्यासी जीवन के लिए संसार का त्याग कर दिया, जिसमें उसने अपनी इच्छित शांति प्राप्त की और उस जीवन के बाद ब्रह्मा के लोक (परम स्वर्ग) में प्रवेश पाने का आश्वासन प्राप्त किया।

“तो देखो, भाई,” गुरु ने कहा, “स्त्रियाँ कितनी कामुक, दुष्ट और कष्टदायी होती हैं।” स्त्रियों की दुष्टता बताने के बाद, उन्होंने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में उस भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। अंत में, गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताई।

"उन दिनों कपिलानी माता थीं, महा-कश्यप पिता थे, आनंद शिष्य थे और मैं स्वयं गुरु था।"

फुटनोट:

(1)सं. 527.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अंडभूत-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-62-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 62

अण्डभूत जातक

"आँखों पर पट्टी बाँधकर वीणा बजाना।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक अन्य भावुक व्यक्ति के बारे में सुनाई थी।

गुरु ने कहा, "क्या यह खबर सच है कि तुम वासना से ग्रस्त हो, भिक्षु भाई?" उत्तर मिला, "बिल्कुल सच है।"

"भाई, स्त्रियों को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता; पुराने समय में जो बुद्धिमान लोग जन्म से ही स्त्री की रक्षा करते थे, वे भी उसे सुरक्षित रखने में असफल रहे।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने उनकी पत्नी के पुत्र के रूप में जन्म लिया। बड़े होकर उन्होंने सभी गुणों में निपुणता प्राप्त की; और अपने पिता की मृत्यु के बाद जब वे राजा बने, तो उन्होंने एक धर्मनिष्ठ राजा होने का प्रमाण दिया। वे अपने पुरोहित के साथ पासा खेलते थे, और जब वे सोने के पासे को चांदी की मेज पर फेंकते थे, तो सौभाग्य के लिए यह मंत्र गाते थे:

यह प्रकृति का नियम है कि नदियाँ घुमावदार होती हैं;
वृक्ष अपनी प्रकृति के नियम के अनुसार लकड़ी से उगते हैं;
और, अवसर मिलने पर,
सभी स्त्रियाँ पाप करती हैं।
चूंकि इन पंक्तियों से राजा हमेशा खेल जीत जाता था, इसलिए पुजारी अपनी सारी संपत्ति खोने के कगार पर था। और, खुद को पूरी तरह बर्बाद होने से बचाने के लिए, उसने एक ऐसी युवती को ढूंढने का फैसला किया जिसने कभी किसी पुरुष को न देखा हो, और फिर उसे अपने घर में ताला लगाकर रखने का निश्चय किया। उसने सोचा, "मैं किसी ऐसी लड़की की देखभाल नहीं कर सकता जिसने किसी दूसरे पुरुष को देखा हो। इसलिए मुझे एक नवजात बच्ची को गोद लेना होगा, और उसे अपने पास रखना होगा, उसकी कड़ी निगरानी करनी होगी, ताकि कोई उसके पास न आ सके और वह एक ही पुरुष के प्रति वफादार रहे। तब मैं राजा को जीत लूंगा और अमीर हो जाऊंगा।" वह भविष्यवाणी करने में माहिर था; और एक गरीब महिला को देखकर जो माँ बनने वाली थी, और यह जानते हुए कि उसका बच्चा एक लड़की होगी, उसने उस महिला को अपने घर में प्रसव के लिए बुलाया और प्रसव के बाद उसे उपहार देकर विदा कर दिया। बच्ची का पालन-पोषण पूरी तरह से महिलाओं द्वारा किया गया, और उसके अलावा किसी भी पुरुष को उसे देखने की अनुमति नहीं थी। जब लड़की बड़ी हुई, तो वह उसके अधीन हो गई और वह उसका स्वामी बन गया।

जब तक लड़की बड़ी होती रही, पुजारी राजा के साथ खेलने से बचता रहा; लेकिन जब वह पूरी तरह से बड़ी हो गई और उसके नियंत्रण में आ गई, तो उसने राजा को खेल के लिए चुनौती दी। राजा ने चुनौती स्वीकार कर ली और खेल शुरू हो गया। लेकिन, जब राजा ने पासा फेंकते हुए अपनी जीत का गीत गाया, तो पुजारी ने कहा, "हमेशा मेरी लड़की को छोड़कर।" और फिर किस्मत पलट गई, और अब पुजारी जीत गया, जबकि राजा हार गया।

मामले पर विचार करने के बाद, बोधिसत्व को संदेह हुआ कि पुजारी ने अपने घर में एक नेक लड़की को छिपा रखा है; और पूछताछ से उनका संदेह सही साबित हुआ। फिर, उसे फंसाने के लिए, उन्होंने एक चालाक बदमाश को बुलवाया और पूछा कि क्या वह लड़की को बहका सकता है। "जी महाराज, बिल्कुल," उस बदमाश ने कहा। तो राजा ने उसे पैसे दिए और उसे आदेश दिया कि वह जल्द से जल्द काम पर लौट आए।

राजा के पैसों से उस आदमी ने तरह-तरह के इत्र, अगरबत्ती और सुगंधित पदार्थ खरीदे और पुजारी के घर के पास एक इत्र की दुकान खोल ली। पुजारी का घर सात मंजिला था और उसमें सात द्वार थे, जिनमें से प्रत्येक पर केवल महिलाओं का पहरा रहता था, और ब्राह्मण के अलावा किसी भी पुरुष को अंदर जाने की अनुमति नहीं थी। झाड़ू और गंदगी से भरी टोकरियों की भी अंदर ले जाने से पहले जांच की जाती थी। केवल पुजारी को ही लड़की से मिलने की अनुमति थी, और उसकी केवल एक ही दासी थी। इस दासी को अपनी मालकिन के लिए फूल और इत्र खरीदने के लिए पैसे दिए गए थे, और वह रास्ते में उस दुकान के पास से गुजरती थी जिसे उस बदमाश ने खोला था। एक दिन पुजारी, जो अच्छी तरह जानता था कि वह लड़की की दासी है, उसके आने का इंतजार करने लगा, और अपनी दुकान से बाहर दौड़कर उसके पैरों पर गिर पड़ा, उसके घुटनों को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया और रोते हुए बोला, "हे मेरी माँ! तुम इतने दिनों से कहाँ थीं?"

और उसके साथी, जो उसके बगल में खड़े थे, चिल्लाए, "कितनी समानता है! हाथ-पैर, चेहरा-शरीर, यहाँ तक कि पहनावा भी बिल्कुल एक जैसा है!" उस अद्भुत समानता को देखकर सब हैरान रह गए और बेचारी औरत का दिमाग खराब हो गया। यह कहते हुए कि यह

उसका बेटा ही होगा, वह भी फूट-फूटकर रोने लगी। और रोते-रोते दोनों एक-दूसरे को गले लगा लिया। तब उस आदमी ने पूछा, "माँ, तुम कहाँ रहती हो?"

“पुजारी के यहाँ, मेरे बेटे। उनकी एक जवान पत्नी है, जो बेहद खूबसूरत है, मानो देवी समान हो; और मैं उनकी सेविका हूँ।” “अब कहाँ जा रही हो, माँ?” “उनके लिए इत्र और फूल खरीदने।” “कहीं और क्यों जा रही हो? आगे से मेरे पास ही लाना,” उस आदमी ने कहा। और उसने उस स्त्री को पान, बडेलियम, और न जाने कितने तरह के फूल दिए, और कोई पैसा नहीं लिया। सेविका द्वारा लाए गए फूलों और इत्र की मात्रा देखकर लड़की हैरान रह गई और उसने पूछा कि ब्राह्मण उस दिन उससे इतना प्रसन्न क्यों था। “ऐसा क्यों कह रही हो, मेरी प्यारी?” बूढ़ी औरत ने पूछा। “क्योंकि तुम इतनी सारी चीजें घर लाई हो।” “नहीं, बात ये नहीं है कि ब्राह्मण ने पैसे लुटा दिए,” बूढ़ी औरत ने कहा; “क्योंकि मैंने ये सब अपने बेटे से लिए हैं।” और उस दिन से वह ब्राह्मण द्वारा दिए गए पैसे अपने पास रखती थी, और उस आदमी की दुकान से फूल और दूसरी चीजें मुफ्त में लेती थी।

कुछ दिनों बाद, वह बीमार पड़ गया और बिस्तर पर लेट गया। जब बुढ़िया दुकान पर आई और अपने बेटे के बारे में पूछा, तो उसे बताया गया कि वह बीमार है। उसके पास जाकर, उसने प्यार से उसके कंधे सहलाए और पूछा कि उसे क्या तकलीफ है। लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। "बेटा, तुम मुझे क्यों नहीं बताते?" "माँ, मैं मर भी जाऊँ तो भी आपको नहीं बता सकता।" "लेकिन अगर तुम मुझे नहीं बताओगे, तो किसे बताओगे?" "तो माँ, मेरी तकलीफ बस इतनी है कि आपकी युवती की सुंदरता की तारीफें सुनकर मुझे उससे प्यार हो गया है। अगर मैं उसे पा लेता हूँ, तो मैं जीवित रहूँगा; अगर नहीं, तो यही मेरी मृत्यु शैया होगी।" "यह मुझ पर छोड़ दो, मेरे बेटे," बुढ़िया ने प्रसन्नता से कहा; "और इस बारे में चिंता मत करो।" फिर वह अपने साथ इत्र और फूलों का भारी बोझ लेकर घर गई और ब्राह्मण की युवती से बोली, "हाय! मेरा बेटा तुमसे प्रेम करने लगा है, सिर्फ इसलिए कि मैंने उसे बताया कि तुम कितनी सुंदर हो! अब क्या किया जाए?"

"अगर आप उसे चुपके से यहाँ ला सकते हैं," लड़की ने जवाब दिया, "तो मेरी अनुमति है।"

इस पर बूढ़ी औरत ने घर की ऊपर से नीचे तक सारी धूल झाड़कर इकट्ठा करना शुरू कर दिया; उसने उस धूल को एक बड़ी टोकरी में भरकर बाहर निकलने की कोशिश की। जब हमेशा की तरह तलाशी ली गई, तो उसने पहरे पर खड़ी औरत पर धूल उड़ेल दी, जो इस तरह के दुर्व्यवहार से डरकर भाग गई। उसने बाकी सभी पहरेदारों के साथ भी ऐसा ही किया, जो भी उससे कुछ कहता, उसे बारी-बारी से धूल में डुबोकर मार डालती। और इस तरह उस समय से यह सिलसिला शुरू हो गया कि बूढ़ी औरत चाहे जो भी घर में लाए या बाहर ले जाए, किसी में भी उसकी तलाशी लेने की हिम्मत नहीं होती थी। अब समय आ गया था! बूढ़ी औरत उस बदमाश को टोकरी में छुपाकर घर में ले आई और उसे अपनी युवा मालकिन के पास ले गई। वह लड़की की इज्जत लूटने में कामयाब हो गया और एक-दो दिन ऊपरी कमरों में रहा, जब पुजारी घर पर होता था तो छिप जाता था और जब पुजारी घर से बाहर होता था तो अपनी मालकिन के साथ समय बिताता था। एक-दो दिन बीत गए और लड़की ने अपने प्रेमी से कहा, "प्रियतम, अब तुम्हें जाना होगा।" "बहुत खूब; बस पहले मुझे ब्राह्मण को थप्पड़ मारना होगा।" "ज़रूर," उसने कहा और उस बदमाश को छुपा दिया। फिर जब ब्राह्मण वापस आया, तो वह बोली, "ओह, मेरे प्यारे पति, अगर आप मेरे लिए वीणा बजाएँ तो मुझे नाचने का बहुत मन करेगा।" "नाचो, मेरी प्यारी," पुजारी ने कहा और वीणा बजानी शुरू कर दी। "लेकिन अगर आप देख रहे होंगे तो मुझे बहुत शर्म आएगी। पहले मैं आपका सुंदर चेहरा कपड़े से ढक दूँ; फिर मैं नाचूँगी।" "ठीक है," उसने कहा; "अगर आप इतनी शर्मीली हैं कि अन्यथा नाच नहीं सकतीं।" तो उसने एक मोटा कपड़ा लिया और उसे ब्राह्मण के चेहरे पर इस तरह बाँध दिया कि उसकी आँखें बंध गईं। और, आँखों पर पट्टी बाँधे हुए ब्राह्मण वीणा बजाने लगा। कुछ देर नाचने के बाद, वह चिल्लाई, "हे भगवान, मुझे आपके सिर पर एक बार मारने का बहुत मन कर रहा है।" "मारते रहो," उस भोले-भाले बूढ़े व्यक्ति ने कहा। फिर लड़की ने अपने प्रेमी को इशारा किया; और वह चुपके से ब्राह्मण के पीछे गया और उसके सिर पर वार किया।

प्रहार इतना ज़ोरदार था कि ब्राह्मण की आँखें मानो बाहर निकल आईं और उस जगह पर एक उभार आ गया। दर्द से तड़पते हुए उसने लड़की को हाथ देने के लिए कहा; और उसने अपना हाथ उसके हाथ में रख दिया। "अरे! यह तो कोमल हाथ है," उसने कहा; "पर चोट कितनी ज़ोरदार है!"

जैसे ही उस बदमाश ने ब्राह्मण पर हमला किया, वह छिप गया; और छिपते ही लड़की ने पुजारी की आँखों से पट्टी हटाई और उसके चोटिल सिर पर तेल मल दिया। ब्राह्मण के बाहर जाते ही, बूढ़ी औरत ने बदमाश को उसकी टोकरी में फिर से छिपा दिया और उसे घर से बाहर ले गई। तुरंत राजा के पास पहुँचकर उसने उन्हें सारी घटना सुनाई।

तदनुसार, जब ब्राह्मण अगली बार उपस्थित हुआ, तो राजा ने पासे का खेल प्रस्तावित किया; ब्राह्मण तैयार हो गया; और पासे की मेज बाहर लाई गई। जैसे ही राजा ने अपना पासा फेंका, उसने अपना पुराना गीत गाया, और ब्राह्मण—लड़की की शरारतों से अनभिज्ञ—ने अपना "हमेशा मेरी लड़की को छोड़कर" गीत जोड़ दिया—और इसके बावजूद हार गया!

तब राजा, जो सब कुछ जानता था, अपने पुजारी से बोला, "उसके अलावा और क्या? उसकी पवित्रता तो नष्ट हो गई। अरे, तुमने यह सपना देखा कि जन्म के समय ही किसी लड़की को ले जाकर और उसके चारों ओर सात वक्त की सुरक्षा लगाकर तुम उस पर भरोसा कर सकते हो? अरे, तुम तो किसी स्त्री पर भरोसा नहीं कर सकते, चाहे वह तुम्हारे गर्भ में हो और तुम हमेशा उसके साथ घूमते रहो। कोई भी स्त्री एक ही पुरुष के प्रति वफादार नहीं रहती। जहाँ तक तुम्हारी उस लड़की की बात है, उसने तुमसे कहा कि वह नाचना चाहती है, और पहले जब तुम उसके लिए वीणा बजा रहे थे, तब उसने तुम्हारी आँखों पर पट्टी बाँध दी, फिर अपने प्रेमी से तुम्हारे सिर पर प्रहार करवाया और फिर उसे चुपके से घर से बाहर निकाल दिया। तो फिर तुम्हारा अपवाद कहाँ है?" और ऐसा कहकर राजा ने यह श्लोक दोहराया:-

आंखों पर पट्टी बांधकर, वीणा बजाते हुए, पत्नी द्वारा धोखा दिया गया।
 ब्राह्मण बैठा है, जिसने पालन-पोषण करने का प्रयास किया था।
सदाचार का एक उत्तम उदाहरण!
 इसलिए लिंगभेद से डरना सीखो।
इस प्रकार बोधिसत्व ने ब्राह्मण को सत्य का उपदेश दिया। ब्राह्मण घर जाकर उस लड़की से उसके ऊपर लगाए गए आरोप के बारे में पूछताछ करने लगा। लड़की ने कहा, “मेरे प्रिय पति, मेरे बारे में ऐसा कौन कह सकता है?” ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “मैं निःसंदेह निर्दोष हूँ; वास्तव में, मैंने ही आपको मारा है, किसी और ने नहीं; और यदि आप मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो मैं अग्नि परीक्षा सहकर यह सिद्ध कर दूँगी कि मुझे आपके सिवा किसी और का हाथ नहीं लगा; और इस प्रकार मैं आपको विश्वास दिला दूँगी।” ब्राह्मण ने कहा, “ठीक है।” उसने लकड़ी मंगवाई और उसमें आग लगा दी। फिर लड़की को बुलाया गया। उसने कहा, “अब, यदि तुम अपनी कहानी पर विश्वास करती हो, तो इन लपटों का सामना करो!”

इससे पहले उस लड़की ने अपनी सेविका को निर्देश दिया था: “माँ, अपने बेटे से कहो कि वह वहाँ मौजूद रहे और जैसे ही मैं आग में जाने वाली हूँ, मेरा हाथ पकड़ ले।” बुढ़िया ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था; और वह आदमी आया और भीड़ के बीच खड़ा हो गया। फिर, ब्राह्मण को भ्रमित करने के लिए, लड़की सबके सामने खड़ी होकर ज़ोर से बोली, “हे ब्राह्मण, आपके सिवा किसी और का हाथ मुझे कभी नहीं छुआ; और मैं अपनी बात की सच्चाई की कसम खाकर इस आग से प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे नुकसान न पहुँचाए।” ऐसा कहकर वह जलते हुए ढेर की ओर बढ़ी, तभी उसका प्रेमी दौड़कर आया और उसका हाथ पकड़कर चिल्लाया, “उस ब्राह्मण पर शर्म है जो इतनी सुंदर कन्या को आग में जाने के लिए मजबूर कर सकता है!” अपना हाथ छुड़ाकर लड़की ने ब्राह्मण से कहा कि उसने जो कहा था वह अब व्यर्थ हो गया है, और वह अब आग की परीक्षा का सामना नहीं कर सकती। “क्यों नहीं?” ब्राह्मण ने कहा। “क्योंकि,” उसने उत्तर दिया, “मेरा दावा यह था कि आपके अलावा किसी और पुरुष का हाथ मुझे कभी नहीं छू पाया; और अब यहाँ एक पुरुष ने मेरा हाथ पकड़ लिया है!” लेकिन ब्राह्मण यह जानते हुए कि उसे धोखा दिया गया है, उसे मार-पीट कर दूर भगा दिया।

हम जानते हैं कि स्त्रियों की दुष्टता ऐसी ही होती है। वे क्या-क्या अपराध नहीं करतीं; और फिर अपने पतियों को धोखा देने के लिए दिन दहाड़े क्या-क्या कसमें नहीं खातीं कि उन्होंने ऐसा नहीं किया! वे कितनी धोखेबाज होती हैं! इसीलिए कहा गया है:-

एक ऐसा लिंग जो दुष्टता और छल से बना है।
अज्ञात; मार्ग की तरह अनिश्चित
पानी में मछलियों में से, नारी जाति
सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मान लो!
जिस प्रकार गायें नए चरागाहों की तलाश में लालच से निकलती हैं,
असंतुष्ट महिलाएं एक के बाद एक साथी की तलाश में रहती हैं।
रेत की तरह अस्थिर, सांप की तरह क्रूर,
महिलाओं को सब कुछ पता होता है; उनसे कुछ भी छिपा नहीं रहता!

“स्त्रियों से दूर रहना भी उतना ही असंभव है,” गुरु ने कहा। उनका प्रवचन समाप्त हुआ और उन्होंने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में भावुक भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। गुरु ने जन्म का संबंध बताते हुए कहा, “इन दिनों मैं बनारस का राजा था।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तक्का-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-63-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 63
तकका-जातक

"स्त्रियाँ क्रोध से भरी होती हैं।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक अन्य भावुक भिक्षु के बारे में सुनाई थी। जब भिक्षु से पूछताछ की गई और उसने स्वीकार किया कि वह भावुक है, तो गुरु ने कहा, "स्त्रियाँ कृतघ्न और कपटी होती हैं; तुम उनके कारण भावुक क्यों हो?" और उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब एक बोधिसत्व ने, जिन्होंने संन्यासी जीवन का मार्ग चुना था, गंगा नदी के किनारे अपना आश्रम बनाया और वहाँ उन्होंने सिद्धियाँ और उच्चतर ज्ञान प्राप्त किए और अंतर्दृष्टि के आनंद में लीन रहे। उन दिनों बनारस के प्रधान कोषाध्यक्ष की एक क्रूर और निर्दयी पुत्री थी, जिसे दुष्ट स्त्री के नाम से जाना जाता था। वह अपने नौकरों और दासों को गाली देती और पीटती थी। एक दिन वे अपनी युवती को गंगा में खेलने के लिए ले गए; लड़कियाँ पानी में खेल रही थीं, तभी सूर्यास्त हो गया और भयंकर तूफान आ गया। यह देखकर लोग भाग गए और उसकी दासियों ने, "अब इस प्राणी का अंत देखने का समय आ गया है!" कहते हुए, उसे नदी में फेंक दिया और जल्दी से वहाँ से चली गईं। मूसलाधार बारिश हुई, सूर्य अस्त हो गया और अंधेरा छा गया। जब परिचारिकाएँ अपनी युवती के बिना घर पहुँचीं और उनसे पूछा गया कि वह कहाँ है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह गंगा से बाहर तो निकल गई है, लेकिन उन्हें नहीं पता कि वह कहाँ गई है। उसके परिवार ने उसकी खोज की, लेकिन लापता लड़की का कोई सुराग नहीं मिला।

इसी बीच वह चीखती हुई उफनती धारा में बह गई और आधी रात को बोधिसत्व के आश्रम के पास पहुँची। उसकी चीखें सुनकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "यह तो किसी स्त्री की आवाज़ है। मुझे इसे पानी से बचाना होगा।" इसलिए उन्होंने घास की मशाल ली और उसकी रोशनी में उसे धारा में देखा। "डरो मत; डरो मत!" उन्होंने उत्साह से चिल्लाकर कहा और पानी में उतर गए, और अपनी अपार शक्ति, जैसे हाथी की शक्ति से, उसे सुरक्षित किनारे पर ले आए। फिर उन्होंने अपने आश्रम में उसके लिए आग जलाई और उसके सामने कई प्रकार के स्वादिष्ट फल रखे। जब तक उसने फल खा नहीं लिए, तब तक उन्होंने नहीं पूछा, "तुम्हारा घर कहाँ है, और तुम नदी में कैसे गिरीं?" तब उस लड़की ने उन्हें अपने साथ हुई सारी घटना बताई। "अभी यहीं रहो," उन्होंने कहा और उसे अपने आश्रम में ठहराया, जबकि अगले दो-तीन दिन वे स्वयं खुले में रहे। उस समय के अंत में उसने उसे जाने के लिए कहा, लेकिन वह तब तक रुकने पर अड़ी रही जब तक वह तपस्वी को अपने प्रेम में मोहित न कर ले; और जाने को तैयार नहीं थी। समय बीतने के साथ, उसने अपने स्त्रीत्व और चतुराई से उस पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसने अपना ज्ञान खो दिया। वह उसके साथ जंगल में ही रहने लगा। लेकिन उसे वह एकांत पसंद नहीं था और वह लोगों के बीच रहना चाहती थी। इसलिए उसकी बार-बार की विनती मानकर वह उसे अपने साथ एक सीमावर्ती गाँव ले गया, जहाँ वह ज्योतिष के माध्यम से शुभ तिथियाँ बताकर उसका भरण-पोषण करता था, और इसीलिए उसे तिथि-ऋषि (*1) कहा जाने लगा। गाँव वाले उसे शुभ और अशुभ ऋतुओं के बारे में सिखाने के लिए पैसे देते थे और उसे अपने गाँव के प्रवेश द्वार पर रहने के लिए एक झोपड़ी भी दे दी।

अब सीमावर्ती इलाकों में पहाड़ों से लुटेरे आतंक मचा रहे थे; एक दिन उन्होंने उस गाँव पर हमला किया जहाँ वे दोनों रहते थे और उसे लूट लिया। उन्होंने बेचारे ग्रामीणों को अपना सामान समेटने के लिए मजबूर किया और वे—कोषाध्यक्ष की बेटी समेत—अपने घरों की ओर चल दिए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बाकी सबको छोड़ दिया; लेकिन उस लड़की को, उसकी सुंदरता के कारण, लुटेरों के सरदार ने अपनी पत्नी बना लिया।

जब बोधिसत्व को यह पता चला, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "वह मुझसे दूर रहकर कष्ट नहीं सह पाएगी। वह भाग जाएगी और मेरे पास लौट आएगी।" और इस प्रकार वे उसके लौटने की प्रतीक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करते रहे। इस बीच वह लुटेरों के साथ बहुत प्रसन्न थी, और उसे केवल यही भय था कि ऋषि उसे फिर से अगवा करने न आ जाएँ। उसने सोचा, "अगर वह मर जाए तो मैं अधिक सुरक्षित महसूस करूँगी। मुझे प्रेम का झूठा ढोंग करते हुए उसे संदेश भेजना चाहिए और उसे यहाँ मृत्यु के लिए बुलाना चाहिए।" इसलिए उसने एक दूत को यह संदेश देकर भेजा कि वह दुखी है और चाहती है कि वह उसे अपने साथ ले जाए।

और उसने उस पर विश्वास रखते हुए तब प्रस्थान किया और डाकुओं के गाँव के प्रवेश द्वार पर पहुँचकर उसे संदेश भेजा। उसने कहा, "हे मेरे पति, अभी भागना तो डाकुओं के सरदार के हाथों में पड़ना होगा, जो हम दोनों को मार डालेगा। चलो रात तक अपना पलायन

टाल देते हैं।" इसलिए उसने उसे अपने साथ लिया और एक कमरे में छिपा दिया; और जब डाकू रात को घर लौटा और शराब के नशे में चूर था, तो उसने उससे कहा, "बताओ, प्रिय, अगर तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी तुम्हारे वश में होता तो तुम क्या करते?"

और उसने कहा कि वह उसके साथ यह और वह करेगा।

"शायद वह उतना दूर नहीं है जितना आप सोचते हैं," उसने कहा। "वह अगले कमरे में है।"

एक मशाल लेकर डाकू अंदर घुसा और बोधिसत्व को पकड़कर उनके सिर और शरीर पर जी भर कर प्रहार करने लगा। प्रहारों के बीच बोधिसत्व ने एक भी चीख नहीं निकाली, बस इतना ही बुदबुदाते रहे, "क्रूर, कृतघ्न! निंदक गद्दार!" और उन्होंने बस इतना ही कहा। इस प्रकार बोधिसत्व को पीट-पीटकर, बांधकर और पैरों से पकड़कर लिटाने के बाद डाकू ने अपना भोजन समाप्त किया और सोने के लिए लेट गया। सुबह, जब रात भर के नशे का असर कम हुआ, तो वह फिर से बोधिसत्व को पीटने लगा। बोधिसत्व अब भी एक चीख नहीं निकाले, बल्कि वही चार शब्द दोहराते रहे। डाकू यह देखकर चकित रह गया और उसने पूछा कि मार खाने के बाद भी वे ऐसा क्यों कह रहे हैं।

खजूर ऋषि ने कहा, "सुनो, और तुम्हें समझ आ जाएगा। एक समय मैं वन के एकांत में रहने वाला एक संन्यासी था, और वहीं मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने इस स्त्री को गंगा से बचाया और उसकी ज़रूरत में उसकी मदद की, और उसके आकर्षण के कारण मैं अपने उच्च पद से गिर गया। फिर मैंने वन छोड़ दिया और एक गाँव में उसका सहारा बना, जहाँ से उसे लुटेरे ले गए। उसने मुझे संदेश भेजा कि वह दुखी है, और मुझसे विनती की कि मैं आकर उसे ले जाऊँ। अब उसने मुझे तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है। इसीलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ।"

इससे लुटेरा फिर सोचने लगा, और उसने सोचा, "अगर वह उस व्यक्ति के लिए इतनी कम भावना रख सकती है जिसने उसके लिए इतना कुछ किया है, तो वह मुझे क्या नुकसान नहीं पहुँचाएगी? उसे मरना ही होगा।" इसलिए बोधिसत्व को आश्वस्त करके और स्त्री को जगाकर, वह हाथ में तलवार लेकर निकल पड़ा, और स्त्री से ऐसा दिखावा किया कि वह उसे गाँव के बाहर मारने जा रहा है। फिर उसने स्त्री से ऋषि को पकड़ने के लिए कहा और अपनी तलवार निकालकर, ऋषि को मारने का नाटक करते हुए, स्त्री के दो टुकड़े कर दिए। फिर उसने ऋषि को सिर से पैर तक स्नान कराया और कई दिनों तक उन्हें उनकी इच्छानुसार उत्तम भोजन कराया।

अंत में लुटेरे ने पूछा, "अब तुम कहाँ जाना चाहते हो?"

ऋषि ने उत्तर दिया, "संसार में मेरे लिए कोई सुख नहीं है। मैं एक बार फिर संन्यासी बन जाऊंगा और जंगल में अपने पुराने निवास स्थान पर रहूँगा।"

"और मैं भी संन्यासी बनूँगा," डाकू ने कहा। इस प्रकार दोनों एक साथ संन्यासी बन गए और जंगल में स्थित आश्रम में रहने लगे, जहाँ उन्होंने उच्च ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और जीवन के अंत में ब्रह्मलोक (स्वर्ग) में प्रवेश करने के योग्य हो गए।

इन दो कहानियों को सुनाने के बाद, गुरु ने बुद्ध के रूप में इस श्लोक का पाठ करके इनके बीच संबंध स्पष्ट किया:

क्रोध से भरी हुई हैं स्त्रियाँ, निंदा करने वाली, कृतघ्न।
फूट और विवाद बोने वाले!
तो फिर, हे भिक्षु, पवित्रता के मार्ग पर चलो।
और उसमें आपको परम आनंद अवश्य मिलेगा।
उनका प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में भावुक भाई ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। साथ ही, गुरु ने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "आनंद उन दिनों का डाकू सरदार था, और मैं स्वयं खजूर-ऋषि हूँ।"

फुटनोट:

(1) भारत में एक आम सड़क किनारे ज्योतिषी जो सितारों की गणना करता है और समारोहों और महत्वपूर्ण घटनाओं के लिए शुभ और अशुभ समय बताता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुर्जन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-64-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 64
दुराजन-जातक

"तुम्हें लगता है।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक गृहस्थ भिक्षु के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती नगर में एक गृहस्थ भिक्षु रहते थे, जो त्रिरत्न (तीन रत्नों - 1. बुद्ध, 2. धम्म (निर्वाण का मार्ग) और 3. संघ (पवित्र संघ)) और पंच आज्ञाओं में दृढ़ थे। वे बुद्ध, उनकी शिक्षाओं और भिक्षु संघ के सच्चे प्रेमी थे। लेकिन उनकी पत्नी पापी और दुष्ट थीं। जब वे कोई पाप करती थीं, तो सौ सिक्कों में खरीदी गई दासी की तरह विनम्र हो जाती थीं; जबकि जब वे कोई पाप नहीं करती थीं, तो वे क्रूर, निर्दयी और अत्याचारी बन जाती थीं। पति उन्हें समझ नहीं पाते थे। वे उन्हें इतना परेशान करती थीं कि वे बुद्ध की सेवा में नहीं जाते थे।

एक दिन वह इत्र और फूल लेकर गए और विधिपूर्वक प्रणाम करने के बाद बैठ गए, तभी गुरु ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, मुझे यह जानना है कि सात-आठ दिन बीत जाने के बाद भी आप बुद्ध से मिलने क्यों नहीं आए?" उन्होंने जवाब दिया, "हे गुरु, मेरी पत्नी एक दिन सौ सिक्कों में खरीदी गई दासी जैसी व्यवहार करती है, तो दूसरे दिन किसी क्रूर और अत्याचारी मालकिन की तरह। मैं उसे समझ नहीं पा रहा हूँ; और इसी वजह से उसने मुझे इतना परेशान किया है कि मैं बुद्ध से मिलने नहीं जा पाया।"

जब गुरु ने ये शब्द सुने, तो उन्होंने कहा, "हे गृहस्थ, तुम्हें बीते समय के बुद्धिमान और भले लोगों ने पहले ही बताया है कि स्त्रियों के स्वभाव को समझना कठिन है।" और उन्होंने आगे कहा, "परन्तु उसके पिछले जन्मों की बातें उसके मन में उलझ गई हैं, इसलिए उसे याद नहीं है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व विश्व प्रसिद्ध गुरु बन गए और उनके शिष्य पाँच सौ ब्राह्मण थे। इन्हीं शिष्यों में से एक विदेशी ब्राह्मण था, जिसे एक स्त्री से प्रेम हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। वह बनारस में ही रहता रहा, लेकिन दो-तीन बार गुरु के पास जाने में चूक गया। दरअसल, उसकी पत्नी पापी और दुष्ट थी, जो पाप करने पर दासी की तरह विनम्र रहती थी, परन्तु निर्दोष दिनों में क्रूर और अत्याचारी बन जाती थी। उसका पति उसे समझ ही नहीं पाता था; और उससे इतना परेशान और व्याकुल था कि गुरु के पास जाना छोड़ दिया। अब, लगभग सात-आठ दिन बाद वह गुरु के पास जाने लगा, और बोधिसत्व ने उससे पूछा कि वह इतने दिनों से क्यों नहीं दिखाई दिया।

"गुरुजी, मेरी पत्नी ही इसका कारण है," उसने कहा। और उसने बोधिसत्व को बताया कि कैसे वह एक दिन दासी की तरह विनम्र होती है, और अगले दिन अत्याचारी; कैसे वह उसे बिल्कुल समझ नहीं पाता था, और कैसे उसके बदलते मिजाज से वह इतना चिंतित और परेशान हो गया था कि वह उससे दूर ही रहता था।

"बिल्कुल सही, हे युवा ब्राह्मण," बोधिसत्व ने कहा; "जिन दिनों स्त्रियाँ पाप करती हैं, वे अपने पतियों के समक्ष विनम्र हो जाती हैं और दासी के समान नम्र और आज्ञाकारी बन जाती हैं; परन्तु जिन दिनों वे पाप नहीं करतीं, वे हठी और अपने स्वामियों के प्रति अवज्ञाकारी हो जाती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ पापी और दुष्ट होती हैं; और उनके स्वभाव को जानना कठिन है। उनकी पसंद-नापसंद पर ध्यान नहीं देना चाहिए।" और ऐसा कहकर, बोधिसत्व ने अपने शिष्य के ज्ञान के लिए इस श्लोक को दोहराया:-

क्या आपको लगता है कि कोई महिला आपसे प्यार करती है? तो खुश मत होइए।
क्या आपको लगता है कि वह आपसे प्यार नहीं करती? तो शोक मनाने से बचें।
अज्ञात, अनिश्चित, मार्ग की तरह
पानी में मछलियों की बात करें तो महिलाएं साबित करती हैं।
बोधिसत्व ने अपने शिष्य को यही निर्देश दिया, जिसके बाद शिष्य ने अपनी पत्नी की मनमानी पर ध्यान देना बंद कर दिया। और जब पत्नी को पता चला कि उसके दुराचार की बात बोधिसत्व तक पहुँच गई है, तो उसने भी उस समय से अपनी शरारतें छोड़ दीं।

इसी प्रकार उस गृहस्थ की पत्नी ने मन ही मन कहा, "लोग कहते हैं कि स्वयं पूर्ण बुद्ध भी मेरे दुराचार को जानते हैं," और उसके बाद उसने कभी पाप नहीं किया।

उनका पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में गृहस्थ भाई ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। तब गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताते हुए कहा—"यह पति-पत्नी उन दिनों के भी पति-पत्नी थे, और मैं स्वयं उनका गुरु हूँ।"

स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-65-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 65
अनाभिराति-जातक

"राजमार्गों की तरह।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, ठीक ऐसे ही एक और गृहस्थ (शिष्य) के बारे में, जैसा कि पिछली कहानी में बताया गया था। इस व्यक्ति ने जब अपनी पत्नी के दुराचार के बारे में पूछताछ की, तो उससे कहा-सुनी हो गई, जिसके परिणामस्वरूप वह इतना व्यथित हो गया कि सात-आठ दिनों तक मठ में नहीं आया। एक दिन वह मठ आया, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और बैठ गया। जब उससे पूछा गया कि वह सात-आठ दिनों से क्यों अनुपस्थित था, तो उसने उत्तर दिया, "हे प्रभु, मेरी पत्नी ने दुराचार किया है, और मैं उसके कारण इतना व्यथित था कि मैं नहीं आया।"

“हे गृहस्थ,” गुरु ने कहा, “बहुत समय पहले बुद्धिमान और भले लोगों ने तुम्हें बताया था कि स्त्रियों के दुराचार पर क्रोधित न हो, बल्कि अपना समभाव बनाए रखो। परन्तु पुनर्जन्म के कारण तुम यह बात भूल गए हो।” और ऐसा कहकर उन्होंने—उस गृहस्थ के अनुरोध पर—अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, बोधिसत्व विश्वव्यापी ख्यातिप्राप्त गुरु थे, जैसा कि पहले बताई गई कथा में वर्णित है। उनके एक शिष्य को जब पता चला कि उनकी पत्नी बेवफा है, तो वह इस बात से इतना आहत हुए कि कुछ दिनों तक अनुपस्थित रहे। लेकिन एक दिन जब उनके गुरु ने उनसे अनुपस्थिति का कारण पूछा, तो उन्होंने सब कुछ स्पष्ट-स्पष्ट बता दिया। तब उनके गुरु ने कहा, "मेरे पुत्र, स्त्रियों पर किसी का कोई अधिकार नहीं है: वे सभी की हैं। इसलिए बुद्धिमान लोग उनकी कमजोरी को जानते हुए भी उन पर क्रोधित नहीं होते।" और ऐसा कहकर उन्होंने अपने शिष्य को समझाने के लिए यह श्लोक दोहराया:-

राजमार्गों, नदियों, आंगनों, सराय की तरह,

या फिर सराय, जो सभी के लिए समान रूप से विस्तारित होती हैं
एक सार्वभौमिक आतिथ्य सत्कार,
स्त्री जाति ही स्त्रीत्व है; और बुद्धिमान पुरुष कभी झुकते नहीं।
इतनी नाजुक लिंग में कमजोरी पर क्रोध करना।
बोधिसत्व ने अपने शिष्य को यही शिक्षा दी, जिसके बाद से वह स्त्रियों के कार्यों के प्रति उदासीन हो गया। और जहाँ तक उनकी पत्नी की बात है, गुरु द्वारा उसके व्यक्तित्व की जानकारी मिलने से वह इतनी प्रभावित हुई कि उसने तब से अपनी शरारतें त्याग दीं।

इसी प्रकार, उस आम भाई की पत्नी ने भी जब सुना कि गुरुजी उसके बारे में सब कुछ जानते हैं, तो उसने भी तब से अपनी दुष्टता छोड़ दी।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में गृहस्थ भाई (शिष्य) ने प्रथम मार्ग का फल (सम्मोहन) प्राप्त किया। गुरु ने जन्म के संबंध को समझाते हुए कहा, "यह पति-पत्नी उन दिनों भी पति-पत्नी थे, और मैं स्वयं ब्राह्मण गुरु हूँ।"

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-66-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 66
मुदुलक्खना-जातक

"जब तक कोमल हृदय मेरी न हो जाए।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में कामुक भावनाओं के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती नगर के एक युवक ने गुरु द्वारा दिए गए सत्य उपदेश को सुनकर त्रिरत्न (तीन रत्नों) - बुद्ध, धम्म (निर्वाण का मार्ग) और संघ (पवित्र संघ) - की शिक्षाओं को अपना हृदय समर्पित कर दिया। संसार का त्याग करके भिक्षु जीवन व्यतीत करने के लिए, वह मार्ग पर चलने, ध्यान का अभ्यास करने और अपने चुने हुए विषय पर चिंतन में कभी ढिलाई न बरतने के लिए उठ खड़ा हुआ। एक दिन, जब वह श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के लिए घूम रहा था, तो उसने एक सुशोभित स्त्री को देखा और वासना के कारण उसने नैतिकता का उल्लंघन करते हुए उसे घूरना शुरू कर दिया! उसके भीतर वासना जागृत हुई, वह कुल्हाड़ी से काटे गए अंजीर के पेड़ के समान कठोर हो गया। उस दिन से, वासना के प्रभाव में आकर, उसके शरीर की तरह ही उसके मन की भी सारी ऊर्जा समाप्त हो गई; एक क्रूर जानवर की तरह, उसे अध्यापन में कोई आनंद नहीं आता था, और उसने अपने नाखून और बाल लंबे कर लिए तथा उसके वस्त्र मैले हो गए।

जब भिक्षुओं में से उनके मित्रों को उनकी व्याकुलता का पता चला, तो उन्होंने कहा, "हे महोदय, क्या आपकी नैतिक स्थिति पहले जैसी नहीं रही?" उन्होंने कहा, "मेरा आनंद समाप्त हो गया है।" तब वे उन्हें गुरु के पास ले गए, जिन्होंने उनसे पूछा कि वे उस भिक्षु को उसकी इच्छा के विरुद्ध यहाँ क्यों लाए हैं। "क्योंकि, महोदय, उसका आनंद समाप्त हो गया है।" "क्या सच है, भाई?" "जी हाँ, भगवान बुद्ध।" "किसने आपको परेशान किया है?" "महोदय, मैं भिक्षा मांगने गया था, तभी मैंने नैतिक नियमों का उल्लंघन करते हुए एक स्त्री को देखा; और मेरे भीतर वासना जागृत हो गई। इसलिए मैं व्याकुल हूँ।" तब गुरु ने कहा, "हे भाई, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जब तुमने नैतिकता का उल्लंघन करते हुए, वासना के कारण किसी वर्जित वस्तु को देखा, तो तुम वासना से ग्रस्त हो गए। क्यों, अतीत में, यहाँ तक कि जिन्होंने पाँच उच्च ज्ञान और आठ सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, जिन्होंने अंतर्दृष्टि की शक्ति से अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त की थी, जिनके हृदय शुद्ध थे और जिनके पैर आकाश तक जा सकते थे, हाँ, यहाँ तक कि बोधिसत्व भी, नैतिकता का उल्लंघन करते हुए किसी असाधारण वस्तु को देखने से अपनी अंतर्दृष्टि खो बैठे, वासना से ग्रस्त हो गए और बड़े दुःख में पड़ गए। वह हवा जो सिनेरु पर्वत को उखाड़ सकती है, हाथी से भी छोटी एक नंगी पहाड़ी को कुछ भी प्रभावित नहीं करती; वह हवा जो एक विशाल जामुन के पेड़ को उखाड़ सकती है, चट्टान पर उगी एक झाड़ी को कुछ भी प्रभावित नहीं करती; और वह हवा जो एक विशाल सागर को सुखा सकती है, एक छोटे से तालाब को कुछ भी प्रभावित नहीं करती। यदि वासना परम प्रबुद्ध और शुद्ध मन वाले बोधिसत्वों में भी कुकर्म उत्पन्न कर सकती है, तो क्या वासना तुम्हारे सामने पराजित होगी? क्यों, यहाँ तक कि शुद्ध "मनुष्य वासनाओं के कारण भटक जाते हैं, और सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करने वाले भी लज्जित हो जाते हैं।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी देश के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब वे बड़े हुए और अपनी शिक्षा पूरी कर ली, तो उन्होंने सभी कामवासनाओं का त्याग कर दिया और संसार को छोड़कर एकांतवास का मार्ग अपनाते हुए हिमालय के एकांत में रहने चले गए। वहाँ उन्होंने ध्यान की सभी प्रारंभिक विधियों का विधिवत पालन करके मन की शांति के ध्यान से उच्च ज्ञान और परमानंद की प्राप्ति की; और इस प्रकार उन्होंने अपना जीवन रहस्यवादी अंतर्दृष्टि के आनंद में व्यतीत किया।

नमक और सिरके की कमी के कारण एक दिन वह बनारस पहुँच गया, जहाँ उसने राजा के बगीचे में डेरा डाला। अगले दिन, अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बाद, उसने अपने सामान्य लाल छाल के वस्त्र को समेटा, एक कंधे पर काले हिरण की खाल डाली, अपने उलझे बालों को सिर के ऊपर एक कुंडल में बाँधा, और अपनी पीठ पर दो टोकरियाँ लटकाए हुए जुआ लेकर भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़ा। रास्ते में महल के द्वार पर पहुँचकर, उसका रूप-रंग राजा को इतना भाया कि महाराज ने उसे अंदर बुला लिया। इस प्रकार तपस्वी को एक भव्य पलंग पर बैठाया गया और उसे उत्तम भोजन से भरपूर तृप्ति दी गई। जब उसने राजा का धन्यवाद किया, तो उसे बगीचे में रहने का निमंत्रण दिया गया। तपस्वी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और सोलह वर्षों तक बगीचे में रहकर राजा के परिवार को सलाह देता रहा और राजा का मांस खाता रहा।

अब एक दिन ऐसा आया जब राजा को विद्रोह को दबाने के लिए सीमावर्ती क्षेत्र में जाना पड़ा। लेकिन जाने से पहले, उन्होंने अपनी रानी, जिसका नाम सौम्य हृदय था, को उस संत की ज़रूरतों का ध्यान रखने का आदेश दिया। अतः राजा के जाने के बाद, बोधिसत्व जब चाहें महल में आते-जाते रहे।

एक दिन रानी सौम्य हृदय ने बोधिसत्व के लिए भोजन तैयार किया; लेकिन उनके आने में देर हो जाने के कारण, वह अपने स्नानघर चली गईं। सुगंधित जल से स्नान करने के बाद, उन्होंने अपने पूरे वैभव से सज-धज कर विशाल कक्ष में एक छोटे से पलंग पर लेट गईं और उनके आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

अंतर्दृष्टि के परमानंद से जागकर और समय बीत जाने का अहसास करते हुए, बोधिसत्व वायु के माध्यम से महल में पहुँच गए। उनके वस्त्र की सरसराहट सुनकर रानी उन्हें लेने के लिए जल्दी से उठ खड़ी हुईं। जल्दी में उठने के कारण उनका वस्त्र नीचे खिसक गया, जिससे खिड़की से प्रवेश करते ही उनकी सुंदरता प्रकट हो गई; और इस दृश्य को देखकर, नैतिकता का उल्लंघन करते हुए, उन्होंने रानी की अद्‌भुत सुंदरता को निहारा। उनके भीतर कामवासना भड़क उठी; वे कुल्हाड़ी से काटे गए पेड़ के समान हो गए। पल भर में उनकी सारी अंतर्दृष्टि छिन गई, और वे पंख कटे कौवे के समान हो गए। अपना भोजन पकड़े, खड़े-खड़े ही खड़े रहे, उन्होंने खाया नहीं, बल्कि कामवासना से कांपते हुए महल से अपने बगीचे में स्थित कुटिया की ओर चल पड़े, उसे अपने लकड़ी के पलंग के नीचे रख दिया और उस पर सात दिनों तक भूख और प्यास से व्याकुल पड़े रहे, रानी की सुंदरता के गुलाम, उनका हृदय कामवासना की आग में जल रहा था।

सातवें दिन राजा सीमावर्ती क्षेत्र में शांति स्थापित करके वापस लौटे। नगर का जुलूस निकालने के बाद वे अपने महल में प्रवेश कर गए। तपस्वी से मिलने की इच्छा से वे उद्यान की ओर गए और वहाँ कुटिया में बोधिसत्व को पलंग पर लेटे हुए पाया। यह सोचकर कि संत बीमार पड़ गए हैं, राजा ने पहले कुटिया की सफाई करवाई और फिर उनके चरणों को सहलाते हुए पूछा कि उन्हें क्या कष्ट है। बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, मेरा हृदय कामवासना से जकड़ा हुआ है; यही मेरी एकमात्र पीड़ा है।" "किसकी कामवासना?" "महात्मा बोधिसत्व के लिए, महाराज।" "तो वह आपकी हैं; मैं उन्हें आपको सौंपता हूँ," राजा ने कहा। फिर वे तपस्वी के साथ महल गए और रानी से अपने पूरे वैभव को धारण करने का अनुरोध करके उन्हें बोधिसत्व को सौंप दिया। लेकिन, उन्हें सौंपते समय राजा ने चुपके से रानी से संत को बचाने के लिए हर संभव प्रयास करने का अनुरोध किया।

“महाराज, चिंता न करें, मैं उसे बचा लूँगी।” अतः तपस्वी रानी के साथ महल से बाहर निकल गया। परन्तु जब वह बड़े द्वार से गुजरा, तो रानी ने पुकार कर कहा कि उन्हें रहने के लिए एक घर चाहिए; और उसे राजा के पास जाकर एक घर माँगना होगा। अतः वह राजा के पास रहने के लिए घर माँगने गया, और राजा ने उन्हें एक जर्जर झोपड़ी दे दी जिसका उपयोग राहगीर खुले में शौच करने के लिए करते थे। तपस्वी रानी को उस झोपड़ी में ले गया; परन्तु रानी ने उसकी गंदगी के कारण उसमें प्रवेश करने से साफ इनकार कर दिया।

“मैं क्या करूँ?” वह चिल्लाया। “अरे, इसे साफ़ करो,” उसने कहा। और उसने उसे राजा के पास एक फावड़ा और एक टोकरी लाने के लिए भेजा, और उससे सारी गंदगी और मैल हटवाया, और दीवारों पर गोबर का लेप लगवाया, जो उसे लाना पड़ा था। यह हो जाने के बाद, उसने उसे एक पलंग, एक स्टूल, एक गलीचा, एक पानी का बर्तन और एक प्याला लाने के लिए कहा, और एक बार में केवल एक ही चीज़ लाने के लिए भेजा। फिर, उसने उसे पानी और हज़ारो अन्य चीज़ें लाने के लिए भेजा। तो वह पानी लेने के लिए चल पड़ा, और पानी का बर्तन भर दिया, स्नान के लिए पानी निकाला, और पलंग लगाया। और, जब वह उसके साथ पलंग पर बैठा था, तो उसने उसकी मूंछें पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया जब तक कि वे आमने-सामने नहीं आ गए, और कहा, “क्या तुम भूल गए हो कि तुम एक पवित्र पुरुष और एक ब्राह्मण हो?”

इस पर उसे अपने मूर्खतापूर्ण कुकर्मों के अंतराल के बाद होश आया।

(और यहाँ उस पाठ को दोहराया जाना चाहिए जो इस प्रकार शुरू होता है, "इस प्रकार कामवासना और लालसा की बाधाओं को बुराई कहा जाता है क्योंकि वे अज्ञान से उत्पन्न होती हैं, भाइयों; जो अज्ञान से उत्पन्न होता है वह अंधकार पैदा करता है।")

जब उसे होश आया, तो उसने सोचा कि कैसे यह घातक लालसा, जो दिन-ब-दिन प्रबल होती जा रही है, उसे आगे चलकर दंड के चार रूपों (*1) में ले जाएगी। "इसी दिन," वह चिल्लाया, "मैं इस स्त्री को राजा को लौटाकर पहाड़ों पर भाग जाऊंगा!" इसलिए वह रानी के साथ राजा के सामने खड़ा हुआ और बोला, "महाराज, मुझे अब आपकी रानी नहीं चाहिए; और केवल उन्हीं के लिए मेरे भीतर लालसा जागृत हुई थी।" और ऐसा कहते हुए, उसने इस श्लोक को दोहराया:-

जब तक कोमल हृदय मेरी थी, मेरी एक ही इच्छा थी
मुझे उसे जीतना ही था। जब उसकी खूबसूरती ने मुझे अपने वश में कर लिया।

हे प्रभु, एक के बाद एक इच्छाएँ उमड़ती चली आईं।
फिर उनकी खोई हुई अंतर्दृष्टि शक्ति उन्हें वापस मिल गई। धरती से उठकर वे हवा में विराजमान हो गए और राजा को सत्य का उपदेश दिया; और धरती को छुए बिना ही वे हवा में उड़ते हुए हिमालय पहुँच गए। वे फिर कभी मनुष्यों के मार्ग पर नहीं लौटे; बल्कि प्रेम और दान में इतने लीन हो गए कि अपनी अक्षुण्ण अंतर्दृष्टि के साथ वे ब्रह्मा के लोक (परम स्वर्ग) में पुनर्जन्म लेकर चले गए।

उनका प्रवचन समाप्त हुआ और गुरु ने सत्यों का उपदेश दिया, जिसके समापन पर उस भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। गुरु ने जन्म के संबंध को समझाते हुए कहा, "आनंद उस समय के राजा थे, उप्पला-वन्ना सौम्य हृदय वाले थे और मैं संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1)नरक, पशु-सृष्टि, प्रेतलोक, शैतानलोक।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उच्चांग-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-67-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 67
उच्चांग-जातक

"बेटा आसानी से मिल जाता है।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक ग्रामीण महिला के बारे में सुनाई थी।

कोसल में एक बार यह बात सामने आई कि तीन आदमी एक जंगल के बाहरी इलाके में हल चला रहे थे, और लुटेरों ने उस जंगल में लोगों को लूटा और भाग गए। लुटेरे जब व्यर्थ ही उन बदमाशों की तलाश कर रहे थे, तो पीड़ित उस जगह पर पहुंचे जहाँ वे तीनों आदमी हल चला रहे थे। उन्होंने चिल्लाकर कहा, "देखो, जंगल के लुटेरे किसान के वेश में हैं," और उन तीनों को कैदी बनाकर कोसल के राजा के पास ले गए। अब बार-बार राजा के महल में एक स्त्री आती और जोर-जोर से रोते हुए "ढकने के लिए कपड़े" माँगती। उसकी पुकार सुनकर राजा ने उसे एक कमीज देने का आदेश दिया; लेकिन उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि उसकी ज़रूरत कपड़े नहीं हैं। तब राजा के सेवक महाराज के पास वापस गए और कहा कि स्त्री को कपड़े नहीं, बल्कि पति चाहिए। तब राजा ने उस स्त्री को अपने सामने बुलवाया और उससे पूछा कि क्या वास्तव में उसकी ज़रूरत पति से है।

"जी महाराज," उसने उत्तर दिया; "क्योंकि पति ही स्त्री का असली आवरण है, और जिसके पास पति नहीं है—चाहे वह हजार रुपये के वस्त्र ही क्यों न पहने हो—वह वास्तव में नंगी और नग्न ही रहती है।"

(और इस सत्य को पुष्ट करने के लिए, यहाँ निम्नलिखित सूत्र का पाठ किया जाना चाहिए:-)
जैसे कोई राजाविहीन राज्य हो, जैसे कोई नदी सूख गई हो,
इस प्रकार स्त्री को नग्न अवस्था में देखा जाता है,
जिसके दस भाई हों, फिर भी उसका कोई साथी न हो।
महिला के उत्तर से प्रसन्न होकर राजा ने पूछा कि तीनों कैदी उससे क्या संबंध रखते हैं। उसने बताया कि एक उसका पति है, एक उसका भाई है और एक उसका पुत्र है। राजा ने कहा, “अच्छा, कृपा दिखाने के लिए मैं तुम्हें इन तीनों में से एक देता हूँ। तुम किसे चुनोगी?” महिला ने उत्तर दिया, “महाराज, यदि मैं जीवित रही तो मुझे दूसरा पति और दूसरा पुत्र मिल जाएगा; परन्तु मेरे माता-पिता मर चुके हैं, इसलिए मुझे दूसरा भाई कभी नहीं मिल सकता। इसलिए महाराज, मुझे मेरा भाई दे दीजिए।” महिला से प्रसन्न होकर राजा ने तीनों पुरुषों को मुक्त कर दिया; इस प्रकार एक महिला तीन व्यक्तियों को संकट से बचाने का माध्यम बनी।

जब यह बात भिक्षु समुदाय को पता चली, तो वे सत्य के हॉल में उस महिला की प्रशंसा कर रहे थे, तभी गुरुजी वहाँ आ गए। जब उन्होंने उनसे उनकी बातचीत का विषय पूछा, तो उन्होंने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि इस महिला ने उन तीनों को खतरे से बचाया है; उसने पहले भी ऐसा किया है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तीन आदमी जंगल के बाहरी इलाके में हल चला रहे थे, और फिर वही हुआ जैसा ऊपर बताया गया है।

राजा ने जब स्त्री से पूछा कि वह तीनों में से किसे लेना चाहेगी, तो उसने कहा, "महाराज, क्या आप मुझे तीनों नहीं दे सकते?" राजा ने कहा, "नहीं, मैं नहीं दे सकता।" स्त्री ने कहा, "अच्छा, अगर मैं तीनों नहीं ले सकती, तो मुझे मेरा भाई दे दीजिए।" राजा ने कहा, "अपने पति या अपने बेटे को ले लो। भाई से क्या लेना-देना?" स्त्री ने उत्तर दिया, "पहले दो को तो मैं आसानी से बदल सकती हूँ, लेकिन भाई को कभी नहीं।" और ऐसा कहते हुए उसने यह छंद दोहराया:-

बेटा तो आसानी से मिल जाता है; पति भी आसानी से मिल जाते हैं।
सार्वजनिक रास्तों पर विकल्पों की भरमार है। लेकिन कहाँ?
क्या मेरे सारे कष्टों का पता किसी और भाई को चल जाएगा?
"वह बिल्कुल सही कह रही है," राजा ने प्रसन्न होकर कहा। और उसने तीनों पुरुषों को जेल से बुलवाकर उस स्त्री को सौंपने का आदेश दिया। वह उन तीनों को लेकर अपने रास्ते चली गई।

"तो देखो, भिक्षुओं," गुरु ने कहा, "कि इसी स्त्री ने पहले भी इन्हीं तीन पुरुषों को खतरे से बचाया था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध स्थापित किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आज की स्त्री और तीनों पुरुष अतीत के भी स्त्री और पुरुष थे; और तब मैं राजा था।"

***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-68-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 68
सकेत-जातक

"जिस पुरुष पर तुम्हारा मन टिका है।"—यह कथा गुरु (बुद्ध) ने अंजनावन में एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, जब भगवान बुद्ध अपने शिष्यों के साथ साकेत नगर में प्रवेश कर रहे थे, तो वहाँ से बाहर जाते हुए एक वृद्ध ब्राह्मण ने द्वार पर उनसे मुलाकात की। बुद्ध के चरणों में गिरकर और उनके टखनों को पकड़कर वह वृद्ध व्यक्ति रोते हुए बोला, "पुत्र, क्या माता-पिता के वृद्धावस्था में उनका आदर करना पुत्रों का कर्तव्य नहीं है? आपने हमें इतने समय तक दर्शन क्यों नहीं कराए? अंततः मैंने आपको देख लिया; आइए, अपनी माता को भी आपको देखने दीजिए।" ऐसा कहकर वह गुरु को अपने घर ले गया; और वहाँ गुरु अपने शिष्यों के साथ अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। फिर ब्राह्मण की पत्नी आई और वह भी भगवान बुद्ध के चरणों में गिरकर रोते हुए बोली, "पुत्र, आप इतने समय तक कहाँ थे? क्या माता-पिता के वृद्धावस्था में उनका आदर करना पुत्रों का कर्तव्य नहीं है?" इस पर उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्रियों को पुकार कर बताया कि उनका भाई आ गया है, और उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने को कहा। प्रसन्न होकर वृद्ध दंपति ने अपने अतिथियों का बड़े ही सत्कारपूर्ण स्वागत किया। भोजन के बाद, गुरु ने वृद्धजनों को वृद्धावस्था से संबंधित सूत्र (*1) सुनाया; और जब उन्होंने सुनाना समाप्त किया, तो पति-पत्नी दोनों ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। फिर अपने आसन से उठकर गुरु अंजनावन लौट गए।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर भिक्षुओं ने इस विषय पर चर्चा शुरू की। उनका तर्क था कि ब्राह्मण को यह भलीभांति ज्ञात होगा कि शुद्धोदन (कपिलवस्तु के राजा) बुद्ध के पिता थे और महामाया बुद्ध की दिवंगत माता थीं; फिर भी उन्होंने और उनकी पत्नी ने गुरु की

सहमति से बुद्ध को अपना पुत्र माना था। इसका क्या अर्थ हो सकता है? उनकी बातें सुनकर गुरु ने कहा, "भाइयों, वृद्ध दंपति ने मुझे अपना पुत्र मानने में उचित ही किया था।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

भाइयों, बीते युगों में यह ब्राह्मण मेरे पिता 500 जन्मों तक, मेरे चाचा 500 जन्मों तक और मेरे दादा 500 जन्मों तक रहे। और उनकी पत्नी 1500 जन्मों तक क्रमशः मेरी माता, मेरी चाची और मेरी नानी रहीं। इस प्रकार, मेरा पालन-पोषण 1500 जन्मों तक इस ब्राह्मण द्वारा और 1500 जन्मों तक उनकी पत्नी द्वारा हुआ।

और इस प्रकार, इन 3000 जन्मों का वर्णन करने के बाद, गुरु ने बुद्ध के रूप में इस श्लोक का पाठ किया:-

वह व्यक्ति जिस पर तुम्हारा मन टिका है, जिसके साथ तुम्हारा दिल जुड़ा है
अगर वह पहली नजर में ही प्रसन्न हो जाए, तो उस पर भरोसा रखें।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह ब्राह्मण और उसकी पत्नी उन सभी जन्मों में पति-पत्नी थे, और मैं बच्चा था।"

[नोट. क्रमांक 237 भी देखें।]

फुटनोट:

(1) सुत्त-निपात का जरा-सुत्त।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विश्ववंत-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-69-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 69
विश्वान्त-जातक

"शर्मिंदगी हो!" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में धर्म के प्रमुख सारिपुत्र के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, जब वरिष्ठ भिक्षु रोटी खाते थे, तब लोग भिक्षुओं के लिए बड़ी मात्रा में रोटी लेकर मठ में आते थे। भिक्षुओं के भरपेट खाने के बाद भी बहुत रोटी बच जाती थी; तब रोटी देने वालों ने कहा, "महोदय, गाँव में रहने वालों के लिए भी कुछ रख लीजिए।"

उसी समय, एक युवक जो बड़े भिक्षु का सह-निवासी था, गाँव गया हुआ था। उसके लिए एक हिस्सा लिया गया; लेकिन, चूंकि वह वापस नहीं लौटा, और यह महसूस किया गया कि बहुत देर हो चुकी है (*1), यह हिस्सा बड़े भिक्षु को दे दिया गया। जब बड़े भिक्षु ने वह हिस्सा खा लिया, तो युवक अंदर आया। तब बड़े भिक्षु ने उसे समझाते हुए कहा, "महोदय, मैंने आपके लिए रखे हुए केक खा लिए हैं।" "अरे!" उसने जवाब दिया, "हम सभी को मीठा बहुत पसंद है।" बड़े भिक्षु बहुत परेशान हो गए।

“आज से,” उन्होंने कहा, “मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं फिर कभी रोटी नहीं खाऊँगा।” और परंपरा के अनुसार, उस दिन से वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने फिर कभी रोटी को हाथ नहीं लगाया! यह परहेज भिक्षु समुदाय में सर्वविदित हो गया, और भिक्षु सत्य के हॉल में बैठकर इस पर चर्चा करने लगे। गुरु ने कहा, “भाइयों, आप यहाँ बैठकर किस बारे में बात कर रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भाइयों, जब सारिपुत्र एक बार किसी चीज का त्याग कर देते हैं, तो वे फिर कभी उसकी ओर नहीं लौटते, चाहे उनके जीवन का भी खतरा हो।” और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म सांप के काटने के इलाज में कुशल चिकित्सकों के परिवार में हुआ था, और जब वे बड़े हुए, तो उन्होंने जीविका के लिए चिकित्सक के रूप में काम करना शुरू किया।

फिर एक घटना घटी कि एक ग्रामीण को सांप ने काट लिया; उसके रिश्तेदारों ने तुरंत डॉक्टर को बुलाया। बोधिसत्व ने कहा, "क्या मैं सामान्य औषधियों से विष निकाल दूं, या सांप को पकड़कर उसे घाव से अपना ही विष चूसने के लिए मजबूर करूं?" "सांप को पकड़कर उसे ही विष चूसने के लिए मजबूर करूं।" तो उन्होंने सांप को पकड़वाया और उससे पूछा, "क्या तुमने इस आदमी को काटा था?" "हां, मैंने काटा था," जवाब मिला। "तो फिर, घाव से अपना ही विष चूस लो।" "क्या? जो विष मैंने एक बार बहाया है, उसे वापस ले लूं!" सांप चिल्लाया; "मैंने कभी नहीं बहाया, और कभी नहीं बहाऊंगा।" तब डॉक्टर ने लकड़ी से आग जलाई और सांप से कहा, "या तो विष चूस लो, या आग में चले जाओ।"

“भले ही आग ही मेरा अंत हो, मैं एक बार बहाया हुआ जहर वापस नहीं लूंगा,” सांप ने कहा और फिर निम्नलिखित छंद दोहराया:-

उस जहर पर कलंक लगे, जो एक बार बह जाने पर...
अपनी जान बचाने के लिए, मैं फिर से निगल जाता हूँ!
कमजोरी से खरीदी गई जिंदगी से बेहतर तो मौत है!
ये शब्द सुनकर साँप आग की ओर बढ़ा! लेकिन वैद्य ने उसका रास्ता रोक दिया और औषधीय जड़ी-बूटियों और मंत्रों से विष निकाल दिया, जिससे वह व्यक्ति फिर से स्वस्थ हो गया। फिर उसने साँप को दस आज्ञाएँ समझाईं और उसे यह कहते हुए मुक्त कर दिया, "अब से किसी को हानि मत पहुँचाना।"

और गुरु ने आगे कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), जब सारिपुत्र एक बार कुछ दे देता है, तो वह उसे कभी वापस नहीं लेता, चाहे उसकी जान ही क्यों न खतरे में हो।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "सारिपुत्र उन दिनों का सर्प था, और मैं चिकित्सक।"

फुटनोट:

(1) यानी दोपहर के ठीक बाद, जिसके बाद भिक्षुओं के नियमों के अनुसार भोजन नहीं किया जा सकता था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुद्दुल-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-70-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 70
कुद्दला-जातक

"विजय।"--यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें चित्तहत्था-सारिपुत्र नामक एक वरिष्ठ भिक्षु का वर्णन है। कहा जाता है कि वे श्रावस्ती नगर के एक अच्छे परिवार के युवक थे; और एक दिन हल चलाकर घर लौटते समय वे मठ में रुके। वहाँ उन्हें एक वरिष्ठ भिक्षु के कटोरे से स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन प्राप्त हुआ, जिसे खाकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "दिन-रात मैं अनेक कार्यों में परिश्रम करता हूँ, फिर भी मुझे इतना मीठा भोजन कभी नहीं मिला। मुझे स्वयं भिक्षु बनना चाहिए!" अतः वे भिक्षु संघ में शामिल हो गए, परन्तु छह सप्ताह तक गहन चिंतन में लगे रहने के बाद वे कामवासनाओं के वश में आ गए और मठ छोड़ दिया। उनका पेट फिर से तृप्त हो गया, इसलिए वे वापस मठ में शामिल हो गए और अभिधम्म (*1) का अध्ययन करने लगे। इस प्रकार, वे छह बार मठ छोड़कर गए और फिर वापस आए; लेकिन जब वे सातवीं बार भिक्षु बने, तो उन्होंने अभिधम्म के सभी सात ग्रंथों में महारत हासिल कर ली, और भिक्षुओं की शिक्षाओं का बहुत अधिक जप करके विवेक प्राप्त किया और अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। अब उनके भिक्षु मित्रों ने उनका उपहास करते हुए कहा—"क्या ऐसा हो सकता है, महोदय, कि आपके हृदय में कामवासनाएँ उत्पन्न होना बंद हो गई हों?"

"महोदय," जवाब मिला, "अब मैं सांसारिक जीवन से परे जा चुका हूँ।"

इस प्रकार अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त करने के बाद, सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा हुई, जो इस प्रकार थी:- "महोदय, यद्यपि वे सर्वत्र अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) की समस्त महिमाओं के लिए नियत थे, फिर भी चित्तहत्था-सारिपुत्र ने छह बार बंधुत्व का त्याग किया; वास्तव में, अपरिवर्तित अवस्था अत्यंत कुटिल है।"

हॉल में लौटकर, गुरु ने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे थे। बताए जाने पर उन्होंने कहा, "भाइयों, सांसारिक व्यक्ति का हृदय हल्का और वश में करना कठिन होता है; भौतिक वस्तुएँ उसे आकर्षित करती हैं और जकड़ लेती हैं; एक बार जकड़ लेने पर, उसे जल्दी से छुड़ाना मुश्किल होता है। ऐसे हृदय पर वशीकरण उत्कृष्ट है; एक बार वशीकरण हो जाने पर, यह आनंद और खुशी लाता है।"

जिद्दी और कमजोर दिल को वश में करना अच्छा होता है।
भावनाओं के वश में आकर, हृदय वश में हो जाता है। एक बार वश में आ जाने पर, यह आनंद प्रदान करता है।
लेकिन हृदय के इसी हठी स्वभाव के कारण, अतीत के बुद्धिमान और भले लोग एक सुंदर कुदाल के लिए, जिसे वे फेंक नहीं सकते थे, केवल लालच के कारण छह बार संसार में लौट आए; परन्तु सातवीं बार उन्होंने अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अपने लालच को वश में कर लिया। और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ने एक माली के रूप में पुनर्जन्म लिया और बड़े हुए। उनका नाम 'कुदाल ऋषि' था। उन्होंने अपने कुदाल से ज़मीन का एक टुकड़ा साफ़ किया और उसमें जड़ी-बूटियाँ, कद्दू, लौकी, खीरे और अन्य सब्जियाँ उगाईं, जिन्हें बेचकर वे बड़ी मुश्किल से गुज़ारा करते थे। क्योंकि उस एक कुदाल के सिवा उनके पास संसार में कुछ भी नहीं था! एक दिन उन्होंने संसार त्यागकर संन्यासी जीवन जीने का निश्चय किया और अपना कुदाल छुपा कर संन्यासी बन गए। लेकिन उस कुदाल का ख्याल उनके मन में बार-बार आता रहा और लोभ उन पर हावी हो गया, जिससे वे अपने कुंद कुदाल के लिए संसार में लौट आए। ऐसा बार-बार होता रहा; छह बार उन्होंने कुदाल छुपा कर संन्यासी बने, लेकिन फिर से अपने व्रतों को त्याग दिया। लेकिन सातवीं बार उन्होंने सोचा कि कैसे उस कुंद कुदाल ने उन्हें बार-बार संसार से विमुख कर दिया था; और उसने निश्चय किया कि संन्यासी बनने से पहले वह उसे किसी बड़ी नदी में फेंक देगा। इसलिए वह फावड़ा लेकर नदी किनारे गया, और इस डर से कि कहीं वह उसे गिरते हुए न देख ले और फिर उसे वापस न निकाल ले, उसने फावड़े को हैंडल से पकड़कर तीन बार अपने सिर के चारों ओर घुमाया और हाथी जैसी ताकत से उसे नदी के बीचोंबीच फेंक दिया, ऐसा करते समय उसने अपनी आँखें कसकर बंद कर लीं। फिर उसकी खुशी की चीख गूंजी, शेर की दहाड़ जैसी चीख, "मैंने जीत हासिल कर ली! मैंने जीत हासिल कर ली!"

ठीक उसी समय, सीमा पर अशांति को शांत करने के बाद घर लौटते समय, बनारस का राजा उसी नदी में स्नान कर रहा था और अपने हाथी पर सवार होकर शान-शौकत से जा रहा था, तभी उसने बोधिसत्व की विजयघोषणा सुनी। राजा ने कहा, “देखो, एक आदमी है जो विजय का दावा कर रहा है। मुझे आश्चर्य है कि उसने किसे हराया है। जाओ, उसे मेरे सामने लाओ।”

तब बोधिसत्व को राजा के समक्ष लाया गया, जिसने उनसे कहा, "हे महाराज, मैं स्वयं एक विजेता हूँ; मैंने अभी-अभी एक युद्ध जीता है और विजयी होकर घर लौट रहा हूँ। मुझे बताइए कि आपने किसे परास्त किया है।" बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, आपकी हज़ार, हाँ, एक लाख, ऐसी विजयें व्यर्थ हैं, यदि आपने अपने भीतर की वासनाओं पर विजय प्राप्त नहीं की है। मैंने अपने भीतर के लोभ पर विजय प्राप्त करके ही अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त की है।" और बोलते हुए, उन्होंने महान नदी पर दृष्टि डाली, और जल के विचार पर अपना सारा ध्यान केंद्रित करके अंतर्दृष्टि प्राप्त की। फिर अपनी नवप्राप्त दिव्य शक्तियों के बल पर, वे वायु में उठे, और वहाँ बैठकर, राजा को इस श्लोक में सत्य का उपदेश दिया:-

आगे की विजयों के माध्यम से प्राप्त होने वाली विजय
इसका पालन करना ही होगा, अन्यथा अंततः हमारी ही हार होगी।
यह व्यर्थ है! सच्ची जीत तो सदा के लिए बनी रहती है!
सत्य की बातें सुनते ही राजा के अंधकार में प्रकाश आ गया और उसके हृदय की वासनाएँ शांत हो गईं; उसका मन संसार त्यागने पर दृढ़ हो गया; उसी क्षण राजसत्ता की लालसा उससे विलीन हो गई। राजा ने बोधिसत्व से पूछा, “अब आप कहाँ जाएँगे?” बोधिसत्व ने कहा, “हे महाराज, हिमालय जाऊँगा; वहाँ संन्यासी का जीवन व्यतीत करूँगा।” राजा ने कहा, “तो मैं भी संन्यासी बन जाऊँगा” और वह बोधिसत्व के साथ प्रस्थान कर गया। राजा के साथ ही समस्त सेना, सभी ब्राह्मण, गृहस्थ और सभी आम लोग, संक्षेप में, वहाँ एकत्रित समस्त सभा भी प्रस्थान कर गई।

बनारस में यह खबर पहुंची कि उनके राजा ने कुदाल ऋषि द्वारा दिए गए सत्य के उपदेश को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक संन्यासी जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया और अपने समस्त अनुयायियों के साथ प्रस्थान कर दिया। "अब हम यहाँ क्या करें?" बनारस के लोगों ने

पूछा। इस पर, बारह मील (4.23 किमी) के उस शहर से, सभी निवासी बारह मील (4.23 किमी) लंबे मार्ग पर बोधिसत्व के साथ हिमालय की ओर चल पड़े।

तब देवों (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) का सिंहासन उनके नीचे गर्म हो गया (*2)। बाहर देखते हुए उन्होंने पाया कि फावड़ा ऋषि महान वैराग्य में लीन थे (*3)। उनके अनुयायियों की संख्या देखकर इंद्र सोचने लगे कि उन सभी को कैसे ठहराया जाए। उन्होंने देवों (देवदूतों) के वास्तुकार विश्वकर्मा को बुलवाया और कहा, "फावड़ा ऋषि महान वैराग्य में लीन हैं, और उनके लिए आवास की व्यवस्था करनी होगी। आप हिमालय जाइए, और वहाँ समतल भूमि पर दिव्य शक्ति से तीस लीग (x 4.23 किमी) लंबी और पंद्रह किमी चौड़ी एक ऋषि की संपत्ति बनाइए।"

"महाराज," विश्वकर्मा ने कहा। और वह चला गया और उसने वही किया जो उसे करने के लिए कहा गया था।

(आगे का विवरण केवल सारांश है; पूर्ण विवरण हत्थिपाला-जातक (*4) में दिया जाएगा, जो इस कथा के साथ एक ही कथा का निर्माण करता है।) विश्वकर्मा ने ऋषि की संपत्ति में एक आश्रम बनवाया; सभी शोर मचाने वाले जानवरों, पक्षियों और परियों को भगा दिया; और प्रत्येक दिशा में एक ऐसा मार्ग बनाया जो एक समय में केवल एक व्यक्ति के चलने के लिए पर्याप्त चौड़ा था। यह करने के बाद, वे स्वयं अपने निवास स्थान पर चले गए। कुदाल ऋषि अपने अनुयायियों के साथ हिमालय आए और इंद्र द्वारा दी गई संपत्ति में प्रवेश किया तथा विश्वकर्मा द्वारा ऋषियों के लिए बनाए गए घर और साज-सामान पर अधिकार कर लिया। सबसे पहले, उन्होंने स्वयं संसार का त्याग किया, और बाद में लोगों को भी संसार का त्याग करवाया। फिर उन्होंने संपत्ति को उनके बीच बाँट दिया। उन्होंने शासन करने की अपनी समस्त शक्ति का त्याग कर दिया, जो स्वयं सक्का (इंद्र) की शक्ति के बराबर थी; और तीस मील (4.23 किमी) की पूरी संपत्ति भर गई। अन्य सभी (*5) अनुष्ठानों का विधिवत पालन करके, जो अंतर्दृष्टि की ओर ले जाते हैं, कुदाल ऋषि ने अपने भीतर पूर्ण सद्भावना विकसित की और लोगों को ध्यान करना सिखाया। इससे उन सभी ने सिद्धियाँ प्राप्त कीं और उसके बाद ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) में प्रवेश सुनिश्चित किया, जबकि उनकी सेवा करने वाले सभी लोग देवलोक (देवदूतों का लोक) में प्रवेश के योग्य हो गए।

"इस प्रकार, भिक्षुओं," गुरु ने कहा, "जब हृदय वासना से जकड़ा होता है, तो उसे मुक्त करना कठिन होता है। जब उसमें लोभ के गुण उत्पन्न होते हैं, तो उन्हें दूर करना कठिन होता है, और यहाँ तक कि उपर्युक्त जैसे बुद्धिमान और अच्छे व्यक्ति भी इससे बुद्धिहीन हो जाते हैं।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, उन्होंने सत्यों का प्रचार किया, जिसके अंत में कुछ ने प्रथम, कुछ ने द्वितीय और कुछ ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) प्राप्त किया, जबकि अन्य ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। आगे गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जन्म की पहचान बताई, "आनंद उस समय के राजा थे, बुद्ध के अनुयायी उनके अनुयायी थे, और मैं स्वयं कुदाल ऋषि हूँ।"

फुटनोट:

(1) पिटकों (बौद्ध शिक्षाओं) में तीसरा और अंतिम।

(2) केवल विपत्ति से जूझ रहे एक अच्छे व्यक्ति के गुण ही इस प्रकार देवताओं (देवदूतों) के राजा की दया-सिंहासन से अपील कर सकते हैं।

(3) भविष्य में जब कोई बुद्ध धार्मिक (सन्यासी) जीवन के लिए संसार का त्याग करता है, तभी उसके 'आगे बढ़ने' को महान त्याग कहा जाता है।

(4)सं. 509.

(5) जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, वह पानी के विचार के माध्यम से पहले ही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर चुका था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वारण-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-71-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 71
वारणा-जातक

"उनसे सीखो।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो एक अधिकारी के पुत्र, वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा के बारे में थी। परंपरा के अनुसार, एक दिन श्रावस्ती शहर के तीस युवक, जो आपस में मित्र थे, इत्र, फूल और वस्त्र लेकर अपने साथ कई सेवकों को लेकर गुरु का प्रवचन सुनने के लिए जेतवन मठ की ओर चल पड़े। जेतवन मठ पहुँचकर वे कुछ समय तक विभिन्न कक्षों में बैठे रहे - लौह-लकड़ी के वृक्षों के कक्ष में, साल के वृक्षों के कक्ष में, इत्यादि। शाम को गुरु अपने सुगंधित कक्ष से निकलकर सत्य के हॉल में गए और भव्य बुद्ध-आसन पर विराजमान हुए। फिर, अपने अनुयायियों के साथ, ये युवक सत्य के हॉल में गए, इत्र और फूल अर्पित किए, उनके चरणों में प्रणाम किया—उन पवित्र चरणों में जो खिले हुए कमल के समान तेजस्वी थे और तलवे पर चक्र की छाप थी!—और वहाँ बैठकर सत्य का प्रवचन सुना। तब उनके मन में विचार आया, "हमें भी गुरु द्वारा उपदेशित सत्य को समझकर प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।" तदनुसार, जब भगवान बुद्ध हॉल से चले गए, तो वे उनके पास गए और पूरे आदर के साथ भिक्षु संघ में प्रवेश की अनुमति मांगी; और गुरु ने उन्हें भिक्षु संघ में प्रवेश दे दिया। अपने गुरुओं और सलाहकारों का अनुग्रह प्राप्त करके उन्होंने पूर्ण भिक्षु संघ ग्रहण किया, और अपने गुरुओं और सलाहकारों के साथ पाँच वर्ष निवास करने के बाद, तब तक वे दोनों शिक्षाओं को अच्छी तरह से आत्मसात कर चुके थे, उचित और अनुचित का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, धन्यवाद व्यक्त करने के तीन तरीके सीख चुके थे, और वस्त्रों को सिलने और रंगने का अभ्यास कर चुके थे। इस अवस्था में, तपस्वी जीवन अपनाने की इच्छा से उन्होंने अपने गुरुओं और सलाहकारों की सहमति प्राप्त की और गुरु के पास पहुँचे। उनके समक्ष प्रणाम करते हुए वे बैठ गए और बोले, "हे प्रभु, हम जीवन के चक्र से व्याकुल हैं, जन्म, क्षय, रोग और मृत्यु से भयभीत हैं; हमें एक ऐसा विषय दीजिए, जिस पर चिंतन करके हम जीवन के इन तत्वों से मुक्त हो सकें।" गुरु ने अपने मन में अड़तीस विषयों का चिंतन किया और उनमें से एक उपयुक्त विषय का चयन किया, जिसका उन्होंने उन्हें अर्थ समझाया। गुरु से अपना विषय प्राप्त करने के बाद, उन्होंने प्रणाम किया और विधिपूर्वक विदाई लेकर अपनी कोठरियों की ओर प्रस्थान किया, और अपने गुरुओं और सलाहकारों को निहारने के बाद कुंड और वस्त्र धारण करके तपस्वी जीवन को अपना लिया।

उनमें से एक भिक्षु, बड़े भिक्षु तिस्सा, अधिकारी के पुत्र थे, जो दुर्बल और अनिश्चित स्वभाव के थे, और सांसारिक सुखों के गुलाम थे। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं कभी जंगल में नहीं रह पाऊंगा, कठिन परिश्रम नहीं कर पाऊंगा और भिक्षा पर जीवन यापन नहीं कर पाऊंगा। मेरे जाने का क्या लाभ? मैं वापस लौट जाऊंगा।" और इस प्रकार उन्होंने अपना इरादा बदल दिया, और कुछ दूर तक उन भिक्षुओं के साथ चलने के बाद वे वापस लौट गए। अन्य भिक्षुओं की बात करें तो, वे कोसल में भिक्षायात्रा के दौरान एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे, जिसके पास ही एक वन क्षेत्र में उन्होंने वर्षा ऋतु का समय बिताया, और तीन महीने के परिश्रम और संघर्ष से उन्होंने विवेक का बीज प्राप्त किया और अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया, जिससे पृथ्वी आनंद से झूम उठी। वर्षा ऋतु के अंत में, पवाराना उत्सव मनाने के बाद, वे वहाँ से अपने द्वारा प्राप्त उपलब्धियों के बारे में गुरु को बताने के लिए निकल पड़े। उचित समय पर जेतवन मठ पहुँचकर, उन्होंने अपने पान-पात्र और वस्त्र त्याग दिए, अपने गुरुओं और सलाहकारों से मुलाकात की, और भगवान बुद्ध के दर्शन की उत्सुकता से उनके पास जाकर आदरपूर्वक विराजमान हो गए। गुरु ने उनका स्नेहपूर्वक स्वागत किया और उन्होंने भगवान बुद्ध को अपनी प्राप्त उपलब्धियों के बारे में बताया, जिस पर भगवान बुद्ध ने उनकी प्रशंसा की। गुरु द्वारा उनकी प्रशंसा सुनकर, अधिकारी के पुत्र, वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा, एकांतवास में रहने की इच्छा से भर गए। अन्य भिक्षुओं ने भी गुरु से उसी वन क्षेत्र में वापस निवास करने की अनुमति मांगी और प्राप्त की। वे आदरपूर्वक अपने-अपने आश्रमों में लौट गए।

उसी रात अधिकारी के पुत्र, वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा, अपनी तपस्या तुरंत शुरू करने की तीव्र इच्छा से भर गए। वे अत्यंत उत्साह और ईमानदारी से एक संन्यासी के तरीकों का अभ्यास कर रहे थे और अपने तख्ते वाले पलंग के किनारे सीधे लेटे हुए थे। रात के मध्य पहर के कुछ ही समय बाद, वे घूमे और गिर पड़े, जिससे उनकी जांघ की हड्डी टूट गई; और उन्हें असहनीय पीड़ा होने लगी, जिसके कारण अन्य भिक्षुओं को उनकी देखभाल करनी पड़ी और उन्हें उनके साथ जाने से रोक दिया गया।

इसलिए, जब वे बुद्ध से मिलने के समय पर उपस्थित हुए, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कल उनसे आज जाने की अनुमति नहीं मांगी थी।

"जी हाँ, हमने ऐसा ही किया था; लेकिन हमारे मित्र, वरिष्ठ भिक्षु तिस्सा, जो अधिकारी के पुत्र हैं, ने तपस्वी विधि का बड़े उत्साह से अभ्यास किया, लेकिन अनुचित समय में, और इसी कारण वे सो गए और गिर पड़े, जिससे उनकी जांघ टूट गई; और इसी वजह से हमारा प्रस्थान रुक गया है।" "भाइयों (भिक्षुओं), गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है कि इस व्यक्ति के पथभ्रष्ट होने के कारण उसने अनुचित उत्साह से परिश्रम किया है, और इस वजह से आपका प्रस्थान विलंबित हुआ है; उसने पहले भी आपका प्रस्थान विलंबित किया था।" और इस पर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, गांधार राज्य के तक्षशिला (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) में, एक बोधिसत्व विश्वप्रसिद्ध गुरु थे, जिनके 500 युवा ब्राह्मण शिष्य थे। एक दिन ये शिष्य अपने गुरु के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करने जंगल गए और लकड़ियाँ इकट्ठा करने में जुट गए। उनमें से एक आलसी शिष्य एक विशाल वृक्ष पर पहुँचा, जिसे उसने सूखा और सड़ा हुआ समझा। उसने सोचा कि वह पहले आराम से झपकी ले ले और आखिरी क्षण में चढ़कर कुछ शाखाएँ तोड़कर घर ले जाए। उसने अपना वस्त्र बिछाया और खर्राटे लेते हुए सो गया। बाकी सभी युवा ब्राह्मण लकड़ियों के गट्ठे लेकर घर जा रहे थे, तभी उनकी नज़र उस सोते हुए शिष्य पर पड़ी। उन्होंने उसकी पीठ पर लात मारकर उसे जगाया और उसे वहीं छोड़कर अपने रास्ते चले गए। वह झट से उठा और कुछ देर तक अपनी आँखें मलता रहा। फिर, अभी भी आधी नींद में ही, वह वृक्ष पर चढ़ने लगा। लेकिन जिस शाखा को वह खींच रहा था, वह टूट गई; और जैसे ही वह ऊपर उठी, उसका सिरा उसकी आंख में जा लगा। एक हाथ से अपनी घायल आंख को ढककर, उसने दूसरे हाथ से हरी शाखाएं इकट्ठा कीं। फिर नीचे उतरकर, उसने लकड़ियों का अपना गट्ठा बांधा और उसे लेकर जल्दी से घर चला गया, और अपनी हरी लकड़ियों को दूसरों के लकड़ियों के गट्ठों के ऊपर फेंक दिया।

उसी दिन संयोगवश एक ग्रामीण परिवार ने गुरुजी को अगले दिन अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया, ताकि वे उन्हें ब्राह्मण भोज दे सकें। गुरुजी ने अपने शिष्यों को बुलाया और उन्हें अगले दिन गाँव की यात्रा के बारे में बताते हुए कहा कि वे उपवास नहीं कर सकते। उन्होंने कहा, “इसलिए सुबह जल्दी चावल का दलिया बना लेना और निकलने से पहले उसे खा लेना। वहाँ तुम्हें अपने लिए भोजन मिलेगा और मेरे लिए भी एक हिस्सा होगा। सब कुछ अपने साथ घर ले आना।”

इसलिए वे अगली सुबह जल्दी उठे और नौकरानी को नाश्ता तैयार करने के लिए कहा। फिर वह आग जलाने के लिए लकड़ी लेने चली गई। हरी लकड़ियाँ ढेर के ऊपर रखी थीं, और उसने उनसे आग जलाई। वह लगातार फूँकती रही, लेकिन आग नहीं जली, और अंत में सूरज निकल आया। उन्होंने कहा, "अब तो दिन का उजाला हो गया है, और अब आग जलाने का समय नहीं है।" और वे अपने मालिक के पास चले गए।

“क्या, अभी तक नहीं निकले मेरे बेटों?” उसने कहा। “जी नहीं, महाराज; हम अभी तक नहीं निकले हैं।” “क्यों?” “क्योंकि वह आलसी आदमी, जब हमारे साथ लकड़ी इकट्ठा करने गया था, तो एक जंगल के पेड़ के नीचे सो गया; और समय की भरपाई करने के लिए, वह इतनी जल्दी में पेड़ पर चढ़ गया कि उसकी आँख में चोट लग गई और वह बहुत सारी हरी लकड़ी घर ले आया, जिसे उसने हमारी लकड़ियों के गट्ठों के ऊपर फेंक दिया। इसलिए, जब हमारी चावल की दलिया पकाने वाली नौकरानी लकड़ियों के ढेर के पास गई, तो उसने उसकी लकड़ी ले ली, यह सोचकर कि वह सूखी होगी; और वह सूरज निकलने से पहले आग नहीं जला सकी। और इसी वजह से हमारा जाना रुक गया।”

उस युवा ब्राह्मण की करतूत सुनकर गुरु ने कहा कि एक मूर्ख के कर्मों से ही सारी गड़बड़ी हुई है, और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

जिसने हरी डालियों को तोड़ डाला, उससे सीखो।
अंततः टलते हुए कार्यों को पूरा करने पर आंसू आ जाते हैं।
बोधिसत्व ने अपने शिष्यों से इस विषय पर यही टिप्पणी की थी; और दान और अन्य अच्छे कार्यों से भरे जीवन के अंत में, वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि इस व्यक्ति ने आपको रोका है; इसने पहले भी ऐसा ही किया है।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए, उन्होंने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "जिस भिक्षु (भाइयों) की जांघ टूटी है, वह उन दिनों का युवा ब्राह्मण था जिसकी आँख में चोट लगी थी; बुद्ध के अनुयायी शेष युवा ब्राह्मण थे; और मैं स्वयं उनका गुरु ब्राह्मण था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिलवनाग-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-72-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 72
सिलवनगा-जातक

"कृतघ्नता की तो हद ही हो जाती है।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। भिक्षु (भाइयों) ने सत्य के हॉल में बैठकर कहा, "महोदय, देवदत्त कृतघ्न है और भगवान बुद्ध के गुणों को नहीं पहचानता।" हॉल में लौटकर गुरु ने पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, और उन्हें बताया गया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने कृतघ्नता दिखाई है; वह पहले भी ऐसा ही था, और उसने कभी मेरे गुणों को नहीं जाना।" और ऐसा कहकर, उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब हिमालय में एक हाथी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया। जन्म के समय, उनका पूरा शरीर सफेद था, मानो वे चांदी के एक विशाल पिंड हों। उनकी आंखें हीरे की तीलियों जैसी थीं, मानो पांचों ज्योतियों का साक्षात रूप हों; उनका मुख लाल था, मानो लाल वस्त्र जैसा; उनकी सूंड चांदी पर लाल सोने की तरह चमकीली थी; और उनके चारों पैर मानो लाख से पॉलिश किए हुए थे। इस प्रकार, दस गुणों से सुशोभित उनका शरीर अत्यंत सुंदर था। जब वे बड़े हुए, तो हिमालय के सभी हाथी एक साथ उनका नेतृत्व करने लगे। जब वे 80,000 हाथियों के दल के साथ हिमालय में रह रहे थे, तब उन्हें अपने समूह में पाप का ज्ञान हुआ। अतः, उन्होंने बाकियों से अलग होकर वन में एकांतवास किया, और उनके सदाचारी जीवन ने उन्हें 'अच्छे हाथी राजा' का नाम दिलाया।

बनारस का एक वनपाल हिमालय आया और अपने काम के औजारों की तलाश में जंगल में चला गया। रास्ता भटककर वह हताशा में हाथ फैलाए, मृत्यु के भय से रोता हुआ इधर-उधर भटकता रहा। उस आदमी की चीखें सुनकर बोधिसत्व को उस पर दया आ गई और उन्होंने उसकी मदद करने का निश्चय किया। इसलिए वे उस आदमी के पास गए। लेकिन हाथी को देखते ही वनपाल भयभीत होकर भाग गया (*1)। उसे भागते देख बोधिसत्व वहीं रुक गए, और इससे वह आदमी भी रुक गया। फिर बोधिसत्व आगे बढ़े, और वनपाल फिर भाग गया, और बोधिसत्व के रुकने पर एक बार फिर रुक गया। तब उस आदमी को यह बात समझ में आई कि हाथी तब रुकता है जब वह भागता है, और तभी आगे बढ़ता है जब वह खुद रुका रहता है। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि हाथी उसे नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता, बल्कि उसकी मदद करना चाहता है। अतः इस बार वह साहसपूर्वक वहीं डटा रहा। और बोधिसत्व पास आकर बोले, "हे मित्र, तुम यहाँ शोक मनाते हुए क्यों भटक रहे हो?"

वनपाल ने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी, मैं रास्ता भटक गया हूँ और मुझे मृत्यु का भय है।"

फिर हाथी उस आदमी को उसके निवास स्थान पर ले गया और वहाँ कुछ दिनों तक उसका सत्कार किया, उसे तरह-तरह के फल खिलाए। फिर, "दुखी मत हो, मैं तुम्हें मनुष्यों के स्थान पर वापस ले जाऊँगा," कहते हुए हाथी ने वनपाल को अपनी पीठ पर बिठाया और उसे मनुष्यों के निवास स्थान पर ले गया। परन्तु उस कृतघ्न ने मन ही मन सोचा कि यदि उससे प्रश्न किया जाए, तो वह सब कुछ बता देगा। इसलिए, हाथी की पीठ पर यात्रा करते हुए उसने वृक्षों और पहाड़ियों के चिन्हों को ध्यान से देखा। अंत में हाथी उसे जंगल से बाहर ले आया और बनारस जाने वाली मुख्य सड़क पर उतारते हुए कहा, "यही तुम्हारा मार्ग है, मित्र: चाहे तुमसे प्रश्न किया जाए या न किया जाए, मेरे निवास स्थान के बारे में किसी को मत बताना।" और इस प्रकार विदा लेकर बोधिसत्व अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ा।

बनारस पहुँचकर, वह व्यक्ति शहर में घूमते हुए हाथीदांत के कारीगरों के बाज़ार में पहुँचा, जहाँ उसने हाथीदांत को विभिन्न रूपों और आकारों में ढाला जाते देखा। उसने कारीगरों से पूछा कि क्या वे जीवित हाथी के दांत के बदले कुछ देंगे?

"तुम ऐसा सवाल क्यों पूछ रहे हो?" जवाब मिला। "जीवित हाथी का दांत मरे हुए हाथी के दांत से कहीं ज्यादा कीमती होता है।"

“अच्छा, तो मैं आपके लिए कुछ हाथीदांत लाता हूँ,” उसने कहा और यात्रा के लिए आवश्यक सामान और एक तेज़ आरी लेकर बोधिसत्व के निवास की ओर चल पड़ा। जब उससे पूछा गया कि वह वापस क्यों आया है, तो उसने रोते हुए कहा कि उसकी हालत इतनी दयनीय है कि वह किसी भी तरह से अपना गुजारा नहीं कर सकता। इसीलिए वह आपसे हाथी दांत का एक टुकड़ा माँगने आया है ताकि उसे बेचकर अपना गुजारा कर सके! “ज़रूर; मैं तुम्हें पूरा दांत दे दूँगा,” बोधिसत्व ने कहा, “अगर तुम्हारे पास उसे काटने के लिए आरी हो।” “अरे, मैं आरी तो लाया हूँ।” “तो मेरे दांत काट दो और अपने साथ ले जाओ,” बोधिसत्व ने कहा। और वह बैल की तरह घुटने टेककर ज़मीन पर लेट गया। फिर वनपाल ने बोधिसत्व के दोनों मुख्य दांत काट दिए! जब वे चले गए, तो बोधिसत्व ने उन्हें अपनी सूंड में उठाया और उस व्यक्ति से कहा, "हे मित्र, यह मत सोचो कि मैं इन दांतों को इसलिए दे रहा हूँ क्योंकि मैं इन्हें महत्व नहीं देता। परन्तु मुझे तो हजार गुना, एक लाख गुना, अनंत ज्ञान के दांत अधिक प्रिय हैं, जो सब कुछ समाहित कर सकते हैं। इसलिए, तुम्हें ये दांत भेंट करने से मुझे भी अनंत ज्ञान प्राप्त हो।" ये कहकर उन्होंने अनंत ज्ञान के मूल्य के रूप में वनपाल को दांतों का जोड़ा दे दिया।

उस आदमी ने उन्हें उतारकर बेच दिया। जब उसका पैसा खर्च हो गया, तो वह बोधिसत्व के पास वापस आया और कहने लगा कि उन दो दांतों से उसे केवल अपने पुराने कर्ज चुकाने लायक ही पैसे मिले हैं, और उसने बोधिसत्व के बाकी हाथी दांत मांगे। बोधिसत्व मान

गए और पहले की तरह तराशने के बाद उन्होंने बाकी हाथी दांत दे दिए। वनपाल चला गया और उसने इसे भी बेच दिया। वापस आकर उसने कहा, "हे स्वामी, कोई फायदा नहीं; मैं वैसे भी अपना गुजारा नहीं कर सकता। इसलिए मुझे अपने दांतों के ठूंठ दे दीजिए।"

“ऐसा ही हो,” बोधिसत्व ने उत्तर दिया; और वे पहले की तरह लेट गए। तब उस दुष्ट, दुष्ट ने बोधिसत्व की सूंड को रौंदते हुए, उस पवित्र सूंड को जो चांदी की गद्दी के समान थी, और भविष्य के बुद्ध के मंदिरों पर चढ़ते हुए, जो केलासा पर्वत की बर्फीली चोटी के समान थे, उनके दांतों की जड़ों को तब तक लात मारी जब तक कि मांस पूरी तरह से साफ न हो गया। फिर उसने ठूंठों को काट दिया और चला गया। लेकिन अभी वह दुष्ट बोधिसत्व की दृष्टि से ओझल ही हुआ था कि विशाल विस्तार में अकल्पनीय ठोस पृथ्वी, जो सिनेरु पर्वत और उसके चारों ओर की चोटियों के भारी भार को, संसार की सारी कुरूप गंदगी और गोबर को भी सहन कर सकती है, अब एक गहरी खाई में फट गई, मानो उस सारी दुष्टता का भार सहन करने में असमर्थ हो! और देखते ही देखते, सबसे गहरे नरक से निकली ज्वालाओं ने उस कृतघ्न को घेर लिया, मानो उसे विनाश के कफ़न में लपेटकर अपने साथ ले गईं। और जैसे ही वह दुखी प्राणी धरती की गहराई में समा गया, उस जंगल में रहने वाली वृक्ष-परी ने उस क्षेत्र में ये शब्द गूंजाए:- "विश्व साम्राज्य का उपहार भी कृतघ्न और कृतघ्न को संतुष्ट नहीं कर सकता!" और अगले श्लोक में परी ने सत्य का उपदेश दिया:-

कृतज्ञताहीनता को जितना अधिक मिलता है, उतनी ही उसकी कमी महसूस होती है।
पूरी दुनिया अपनी भूख मिटा नहीं सकती।
इन उपदेशों से वृक्ष-परी ने उस जंगल को गूंज से भर दिया। बोधिसत्व ने अपना जीवन व्यतीत किया और अंततः अपने कर्मों के फल के अनुसार इस दुनिया से विदा हो गए।

गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि देवदत्त ने कृतघ्नता का परिचय दिया है; वह पहले भी ऐसा ही था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का कृतघ्न पुरुष था, सारिपुत्र वृक्ष-परी था, और मैं स्वयं अच्छे हाथी राजा हूँ।"

फुटनोट:

(1) एक अकेला हाथी, या 'दुष्ट' हाथी, खतरनाक होता है।

***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-73-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 73
सच्चमकिरा-जातक

"वे संसार को जानते थे।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में हत्या करने की कोशिश के बारे में सुनाई थी। सत्य के हॉल में बैठे भिक्षु देवदत्त की दुष्टता के बारे में बात कर रहे थे और कह रहे थे, "महोदय, देवदत्त को गुरु की श्रेष्ठता का कोई ज्ञान नहीं है; वह तो उन्हें जान से मारने की कोशिश कर रहा है!" तभी गुरु हॉल में आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। 323] जब उन्हें बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त मुझे जान से मारने की कोशिश कर रहा है; उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था। उनका एक पुत्र था जिसका नाम दुष्ट राजकुमार था। वह क्रोधी सर्प के समान क्रूर और निर्दयी था; वह किसी से भी बिना गाली-गलौज या मार-पीट किए बात नहीं करता था। महल के भीतर और बाहर, सभी लोगों के लिए वह राजकुमार किसी भयानक राक्षस की तरह था, इतना खौफनाक और क्रूर कि लोग उससे डरते थे।

एक दिन, नदी में आनंद लेने की इच्छा से, वह अपने कई सेवकों के साथ नदी किनारे गया। तभी एक भयंकर तूफान आया और चारों ओर घना अंधेरा छा गया। उसने अपने सेवकों से कहा, "अरे! मुझे नदी के बीच में ले चलो, वहाँ नहलाओ और फिर वापस ले आओ।" तो वे उसे नदी के बीच में ले गए और वहाँ आपस में सलाह करने लगे, "राजा हमारा क्या करेगा? चलो इस दुष्ट को यहीं मार डालते हैं! तो जाओ, तू तो मुसीबत है!" यह कहते हुए उन्होंने उसे पानी में फेंक दिया। जब वे किनारे पर पहुँचे, तो उनसे पूछा गया कि राजकुमार कहाँ है, तो उन्होंने उत्तर दिया, "हमें वह दिखाई नहीं दे रहा; तूफान देखकर वह नदी से निकलकर हमसे पहले ही घर चला गया होगा।"

दरबारी राजा के समक्ष गए और राजा ने अपने पुत्र के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, "महाराज, हमें नहीं पता; तूफान आ गया था और हम यह सोचकर वापस आ गए थे कि वह आगे चला गया होगा।" राजा ने तुरंत द्वार खुलवा दिए; वे नदी किनारे गए और लापता राजकुमार की अच्छी तरह से खोज करने का आदेश दिया। लेकिन उसका कोई सुराग नहीं मिला। क्योंकि तूफान के अंधेरे में वह धारा में बह गया था और एक पेड़ के तने से टकराकर उस पर चढ़ गया था, और डूबने के डर से जोर-जोर से रोते हुए धारा में बहता चला गया था।

उन दिनों बनारस में एक धनी व्यापारी रहता था, जिसकी मृत्यु हो गई और उसने उसी नदी के किनारे चालीस करोड़ (10 मिलियन) का खजाना दफना दिया। धन के लालच में वह उसी स्थान पर सर्प के रूप में पुनर्जन्म लेकर आया जहाँ उसका बहुमूल्य खजाना था। ठीक उसी स्थान पर एक अन्य व्यक्ति ने तीस करोड़ (10 मिलियन) का खजाना छिपा रखा था, और धन के लालच में वह भी उसी स्थान पर चूहे के रूप में पुनर्जन्म लेकर आया। उनके निवास स्थान में पानी भर गया; और वे दोनों जीव पानी के तेज बहाव से बचते हुए नदी पार कर रहे थे, तभी संयोगवश वे उस वृक्ष के तने पर आ पहुँचे जिससे राजकुमार चिपका हुआ था। सर्प एक छोर से चढ़ा और चूहा दूसरे छोर से; इस प्रकार दोनों ने राजकुमार के साथ वृक्ष के तने पर पैर जमा लिया।

नदी के किनारे एक रेशमी कपास का पेड़ था, जिस पर एक छोटा तोता रहता था; उफनते पानी से वह पेड़ उखड़कर नदी में गिर गया। जब तोते ने उड़ने की कोशिश की तो भारी बारिश ने उसे बुरी तरह से पीट दिया और वह गिरते-गिरते उसी पेड़ के तने पर जा गिरा। इस तरह अब ये चारों तोते एक साथ पेड़ पर सवार होकर नदी में बह रहे थे।

उन दिनों बोधिसत्व का पुनर्जन्म उत्तर-पश्चिम देश में एक ब्राह्मण के रूप में हुआ था। युवावस्था में पहुँचकर उन्होंने संसार त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया और नदी के मोड़ पर अपना आश्रम बनाया। वे वहीं निवास कर रहे थे। आधी रात को टहलते हुए उन्हें राजकुमार की तेज़ पुकार सुनाई दी और उन्होंने मन ही मन सोचा, “यह प्राणी मेरे जैसे दयालु और करुणामय संन्यासी के सामने इस प्रकार न मर जाए। मैं इसे जल से बचाऊँगा और इसकी जान बचाऊँगा।” उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक पुकारा, “डरो मत! डरो मत!” और नदी में छलांग लगाकर उन्होंने वृक्ष को एक छोर से पकड़ लिया और हाथी के समान बलवान होकर उसे एक ही झटके में किनारे पर खींच लाए और राजकुमार को सुरक्षित किनारे पर उतार दिया। फिर जब उसे साँप, चूहा और तोते का आभास हुआ, तो वह उन्हें अपने आश्रम में ले गया और वहाँ आग जलाकर पहले जानवरों को, क्योंकि वे कमज़ोर थे, और फिर राजकुमार को, गर्म किया। इसके बाद, वह कई प्रकार के फल लाया और उन्हें अपने मेहमानों के सामने रखा, पहले जानवरों का ध्यान रखा और फिर राजकुमार का। इससे युवा राजकुमार क्रोधित हो गया और मन ही मन बोला, "यह दुष्ट साधु मेरे राजसी वंश का कोई सम्मान नहीं करता, बल्कि जानवरों को मुझसे ऊपर रखता है।" और उसके मन में बोधिसत्व के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई!

कुछ दिनों बाद, जब चारों ने अपनी शक्ति वापस पा ली और पानी कम हो गया, तो साँप ने इन शब्दों के साथ ऋषि को विदाई दी, “पिताजी, आपने मेरी बहुत बड़ी सेवा की है। मैं गरीब नहीं हूँ, क्योंकि मैंने एक विशेष स्थान पर चालीस करोड़ (10 मिलियन) सोना छिपा रखा है। यदि आपको कभी धन की आवश्यकता हो, तो मेरा सारा धन आपका होगा। आपको बस उस स्थान पर आकर 'साँप' कहना है।” इसके बाद चूहे ने भी ऋषि को अपने खजाने के समान ही वादा करते हुए विदाई दी और उनसे कहा कि आकर 'चूहा' कहें। फिर तोते ने विदाई देते हुए कहा, “पिताजी, मेरे पास चाँदी-सोना कुछ नहीं है; लेकिन यदि आपको कभी उत्तम चावल की आवश्यकता हो, तो मेरे निवास स्थान पर आकर 'तोता' कहें।” और मैं अपने परिवार की सहायता से आपको चावल से भरी कई गाड़ियाँ दूंगा।” अंत में राजकुमार आया। उसका हृदय कृतघ्नता से भरा हुआ था और उसने ठान लिया था कि यदि बोधिसत्व उससे मिलने आए तो वह अपने शुभचिंतक को मृत्युदंड दे देगा। परन्तु अपने इरादे को छुपाते हुए उसने कहा, “पिताजी, जब मैं राजा बन जाऊँगा, तब आप मेरे पास आइएगा, और मैं आपको चारों आवश्यक वस्तुएँ दूंगा।” इतना कहकर वह विदा हुआ और कुछ ही समय बाद सिंहासन पर आसीन हुआ।

बोधिसत्व के मन में उनकी बात को परखने की इच्छा जागी; और सबसे पहले वे साँप के पास गए और उसके निवास के पास खड़े होकर 'साँप' कहकर पुकारा। यह सुनकर साँप झपट्टा मारकर आया और अत्यंत आदरपूर्वक बोला, "हे पिता, इस स्थान पर चालीस करोड़ सोने के सिक्के हैं। इन्हें खोदकर निकाल लीजिए और सब ले आइए।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है; जब मुझे इनकी आवश्यकता होगी, मैं नहीं भूलूँगा।" फिर साँप को विदा करके वे चूहे के निवास स्थान पर गए और 'चूहा' कहकर पुकारा। चूहे ने भी साँप की तरह ही किया। इसके बाद वे तोते के पास गए और 'तोता' कहकर पुकारा, तोता तुरंत पेड़ की चोटी से नीचे उतर आया और आदरपूर्वक पूछा कि क्या

बोधिसत्व की इच्छा है कि वह अपने परिवार की सहायता से हिमालय के आसपास के क्षेत्र से उनके लिए धान इकट्ठा करे। बोधिसत्व ने तोते को भी यह वादा करके विदा कर दिया कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वे पक्षी के प्रस्ताव को नहीं भूलेंगे। अंत में, राजा की परीक्षा लेने के इरादे से, बोधिसत्व राजमहल में आए और अपने आगमन के अगले दिन, सलीके से वस्त्र धारण करके, भिक्षा मांगने के लिए शहर में निकल पड़े। ठीक उसी समय, कृतघ्न राजा, अपने राजसी वैभव में अपने राजसी हाथी पर विराजमान होकर, सेवकों के एक विशाल समूह के साथ शहर का जुलूस निकाल रहा था। दूर से बोधिसत्व को देखकर उसने मन ही मन सोचा, "देखो, यह दुष्ट संन्यासी मुझ पर अपना वासना और भोग लगाने आया है। इससे पहले कि वह दुनिया को अपने द्वारा किए गए उपकार का बखान कर सके, मुझे उसका सिर काट देना चाहिए।" इसी इरादे से उसने अपने सेवकों को इशारा किया और जब उन्होंने उसकी इच्छा पूछी, तो उसने कहा, "मुझे लगता है कि वह दुष्ट साधु मुझसे भीख मांगने आया है। ध्यान रखना कि वह मेरे पास न आए, बल्कि उसे पकड़कर बांध देना; हर गली के कोने पर उसे कोड़े मारना; और फिर उसे शहर से बाहर ले जाकर, फांसी के स्थान पर उसका सिर काट देना और उसके शरीर को खंभे पर टांग देना।"

अपने राजा के आदेश का पालन करते हुए, सेवकों ने निर्दोष महापुरुष को जंजीरों में बांध दिया और मृत्युदंड स्थल तक ले जाते समय हर गली के मोड़ पर उन्हें कोड़े मारे। लेकिन उनके कोड़े मारने से भी बोधिसत्व का कोई भाव नहीं बदला और न ही उनसे "हे मेरे माता-पिता!" की कोई पुकार निकली। उन्होंने केवल इस श्लोक को दोहराया:-

वे ही दुनिया को जानते थे, जिन्होंने इस कहावत को सत्य रूप में गढ़ा था--
'एक लकड़ी का लट्ठा कुछ आदमियों से बेहतर प्रतिफल देता है।'
ये पंक्तियाँ वह हर जगह दोहराता रहा जहाँ उसे कोड़े मारे जाते थे, जब तक कि अंत में वहाँ मौजूद बुद्धिमानों ने उस साधु से नहीं पूछा कि उसने उनके राजा की क्या सेवा की है। तब बोधिसत्व ने पूरी कहानी सुनाई और अंत में कहा, "तो ऐसा हुआ कि उसे यातना से बचाकर मैंने अपने ऊपर यह सारा कष्ट लाद लिया। और जब मैं सोचता हूँ कि मैंने पुराने समय के बुद्धिमानों के वचनों को कैसे अनसुना कर दिया, तो मैं वही कहता हूँ जो तुमने सुना है।"

इस कथन से क्रोधित होकर, सभी कुलीन, ब्राह्मण और सभी वर्गों के लोग एकमत होकर चिल्लाए, "यह कृतघ्न राजा उस भले आदमी की अच्छाई को भी नहीं मानता जिसने महाराज का जीवन बचाया। इस राजा से हमें क्या लाभ हो सकता है? अत्याचारी को पकड़ो!" और क्रोध में आकर वे चारों ओर से राजा पर टूट पड़े और जब वह अपने हाथी पर सवार था, तब उसे बाणों, भालों, पत्थरों, गदाओं और जो भी हथियार हाथ लगे, उनसे मार डाला। शव को वे एड़ियों से घसीटकर एक खाई में फेंक दिया। फिर उन्होंने बोधिसत्व राजा का राज्याभिषेक किया और उसे अपने ऊपर शासन करने के लिए नियुक्त किया।

जब राजा न्यायपूर्वक शासन कर रहे थे, एक दिन उन्हें फिर से साँप, चूहे और तोते की परीक्षा लेने की इच्छा हुई; और वे अपने साथ कई सेवकों को लेकर साँप के निवास स्थान पर पहुँचे। 'साँप' पुकारते ही साँप अपने बिल से बाहर आया और पूरे आदर के साथ बोला, "हे महाराज, यह रहा आपका खजाना; इसे ले लीजिए।" तब राजा ने चालीस करोड़ (10 मिलियन) सोना अपने सेवकों को सौंप दिया और चूहे के निवास स्थान पर जाकर 'चूहा' पुकारा। चूहा बाहर आया, राजा को प्रणाम किया और अपने तीस करोड़ (10 मिलियन) दे दिए। इस खजाने को भी अपने सेवकों को सौंपकर राजा तोते के निवास स्थान पर गए और 'तोता' पुकारा। तोता भी उसी प्रकार आया और राजा के चरणों में झुककर पूछा कि क्या वह महाराज के लिए चावल इकट्ठा कर सकता है। राजा ने कहा, "जब तक चावल की आवश्यकता नहीं होगी, हम आपको परेशान नहीं करेंगे। अब चलिए चलते हैं।" अतः राजा सत्तर करोड़ (10 मिलियन) सोने के साथ, चूहे, साँप और तोते को भी अपने साथ लेकर नगर लौट आया। वहाँ उसने एक भव्य महल में, जिसकी राजसी मंजिल पर वह सवार हुआ, खजाने को सुरक्षित रखा और उसकी रक्षा करवाई; उसने साँप के लिए सोने की नली, चूहे के लिए क्रिस्टल का संदूक और तोते के लिए सोने का पिंजरा बनवाया। राजा के आदेशानुसार प्रतिदिन तीनों प्राणियों को सोने के पात्रों में भोजन परोसा जाता था, तोते और साँप के लिए भुना हुआ मीठा अनाज और चूहे के लिए सुगंधित चावल। राजा दान और अच्छे कार्यों में लीन रहा। इस प्रकार, ये चारों एक-दूसरे के साथ सद्भाव और मेलजोल से अपना जीवन व्यतीत करते रहे; और जब उनका अंत आया, तो उन्हें उनके कर्मों के अनुसार दंड मिला।

गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने मुझे मारने का प्रयास किया है; उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों देवदत्त दुष्ट राजा था, सारिपुत्र नाग, मोग्गल्याण चूहा, आनंद तोता और मैं स्वयं धर्मात्मा राजा था जिसने एक राज्य जीता था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रुक्खधम्म-जातक**

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-74-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 74
रुक्खाधम्मा-जातक

"एकजुट, वन के समान।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें कपिलवस्तु के उनके कुल में जल को लेकर हुए एक विवाद का वर्णन था, जिसके कारण उन्हें कष्ट भोगना पड़ा था। यह जानकर वे वायु में विचरण करते हुए रोहिणी नदी के ऊपर पालथी मारकर बैठ गए और अंधकार की किरणें उत्सर्जित कीं, जिससे उनके कुल में दहशत फैल गई। फिर वे वायु से नीचे उतरकर नदी के किनारे बैठ गए और उस विवाद के संदर्भ में यह कथा सुनाई। (यहाँ केवल संक्षिप्त विवरण दिया गया है; संपूर्ण विवरण कुणाल जातक (*1) में दिया जाएगा।) इस अवसर पर गुरु ने अपने कुल को संबोधित करते हुए कहा, "हे महाराज, यह अच्छा है कि परिवार सद्भाव और एकता में एक साथ रहे। क्योंकि जब परिवार एकजुट होता है, तो शत्रुओं को कोई अवसर नहीं मिलता। मनुष्यों की तो बात ही छोड़िए, यहाँ तक कि बुद्धिहीन वृक्षों को भी एक साथ खड़ा रहना चाहिए। क्योंकि पुराने समय में हिमालय में एक साल के वन में तूफान आया; फिर भी, क्योंकि उस वन के वृक्ष, झाड़ियाँ, और लताएँ आपस में गुंथी हुई थीं, तूफान एक भी वृक्ष को नहीं गिरा सका, बल्कि उनके सिर के ऊपर से बिना किसी नुकसान के गुजर गया। परन्तु एक आँगन में अकेला एक विशाल वृक्ष खड़ा था; और यद्यपि उसके अनेक तने और शाखाएँ थीं, फिर भी, क्योंकि वह अन्य वृक्षों से जुड़ा हुआ नहीं था, तूफान ने उसे जड़ से उखाड़ दिया और गिरा दिया। इसीलिए, आपको भी सद्भाव और एकता में एक साथ रहना चाहिए।" और ऐसा कहकर, उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तब प्रथम राजा वेसवना (*2) का निधन हो गया और इंद्र ने उनके स्थान पर एक नए राजा को नियुक्त किया। इस परिवर्तन के बाद, नए राजा वेसवना ने सभी वृक्षों, झाड़ियों और पौधों को संदेश भेजा और वृक्ष आत्माओं से कहा कि वे अपने लिए सबसे उपयुक्त निवास स्थान चुनें। उन दिनों बोधिसत्व हिमालय के एक साल वन में वृक्ष आत्मा के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने अपने परिवार को निवास स्थान चुनते समय यह सलाह दी कि वे खुले में अकेले खड़े वृक्षों से दूर रहें और उस साल वन में उनके द्वारा चुने गए निवास स्थान के चारों ओर अपना निवास स्थान बना लें। इस पर बुद्धिमान वृक्ष आत्माओं ने बोधिसत्व की सलाह का पालन करते हुए उनके वृक्ष के चारों ओर अपना निवास स्थान बना लिया। लेकिन मूर्खों ने कहा, “हम जंगल में क्यों रहें? बल्कि हमें मनुष्यों के राज्य में जाकर गांवों, कस्बों या राजधानियों के बाहर निवास करना चाहिए। क्योंकि ऐसे स्थानों में रहने वाली आत्माओं को सबसे अधिक भेंट और सबसे बड़ी पूजा प्राप्त होती है।” इसलिए वे मनुष्यों के राज्य में चले गए और खुले मैदान में उगने वाले कुछ विशाल वृक्षों में निवास करने लगे।

एक दिन अचानक भयंकर तूफान देश भर में छा गया। वर्षों से मिट्टी में गहरी जड़ें जमाए खड़े और सबसे शक्तिशाली वृक्ष होने के बावजूद, उन अकेले वृक्षों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी शाखाएँ टूट गईं; उनके तने चकनाचूर हो गए; और वे स्वयं भी तूफान के कारण जड़ से उखड़कर धरती पर गिर पड़े। लेकिन जब यह तूफान आपस में गुंथे हुए साल के जंगल पर टूटा, तो इसका प्रकोप व्यर्थ हो गया; क्योंकि चाहे वह कितना भी हमला करे, एक भी वृक्ष को नहीं गिरा सका।

जिन दुखी आत्माओं का जीवन नष्ट हो गया था, वे अपने बच्चों को गोद में लेकर हिमालय की यात्रा पर निकल पड़ीं। वहाँ उन्होंने साल वन की आत्माओं को अपना दुःख सुनाया, जिन्होंने बदले में बोधिसत्व को उनके दुखद वापसी के बारे में बताया। उन्होंने कहा, "क्योंकि उन्होंने ज्ञान की बातों को नहीं सुना, इसलिए उन्हें इस स्थिति में लाया गया है।" और उन्होंने इस श्लोक में सत्य को समझाया:

परिवार को एकजुट होकर, जंगल की तरह खड़ा रहना चाहिए;
तूफान ने अकेले पेड़ को उखाड़ फेंका।
बोधिसत्व ने ऐसा कहा; और जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से चले गए।

और गुरु ने आगे कहा, "इसलिए, महाराज, सोचिए कि यह कितना अच्छा है कि परिवार कम से कम एकजुट रहे और प्रेमपूर्वक सद्भाव और एकता में एक साथ निवास करे।" अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "बुद्ध के अनुयायी उन दिनों की आत्माएँ थीं, और मैं स्वयं ज्ञानी आत्मा हूँ।"

फुटनोट:

(1) संख्या 536.

(2) कुबेर का एक नाम।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मच्छ-जातक2**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-75-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 75
मच्छा-जातक

"पज्जुन्ना, गरज!" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, उस बारिश के बारे में जो उन्होंने करवाई थी। कहा जाता है कि उन दिनों कोसल में बारिश नहीं हुई थी; फसलें सूख गईं थीं; और हर जगह तालाब, पोखर और झीलें सूख गई थीं। यहाँ तक कि जेतवन मठ के किलेबंद द्वार के पास स्थित तालाब भी सूख गया था; और मछलियाँ और कछुए कीचड़ में दब गए थे। तब कौवे और बाज अपनी भाले जैसी चोंचों के साथ आए और तड़पते-तड़पते हुए उन्हें चुन-चुनकर खा गए।

जब उन्होंने देखा कि मछलियाँ और कछुए नष्ट हो रहे हैं, तो गुरुजी करुणा से भर उठे और बोले, "आज मुझे वर्षा करानी होगी।" अतः, जब रात ढलकर दिन हुआ, तो अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, उन्होंने भिक्षा मांगने के लिए परिक्रमा करने का उचित समय आने का इंतजार किया, और फिर भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए, बुद्ध के समान परिपूर्ण होकर, वे भिक्षा मांगने के लिए श्रावस्ती नगर गए। श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद दोपहर में मठ लौटते समय, वे जेतवन मठ के तालाब की ओर जाने वाली सीढ़ियों पर रुके और वरिष्ठ भिक्षु आनंद से कहा, "आनंद, मेरे लिए स्नान वस्त्र लाओ; मैं जेतवन मठ के तालाब में स्नान करना चाहता हूँ।" "परन्तु, महोदय," वरिष्ठ भिक्षु ने उत्तर दिया, "जल तो पूरी तरह सूख गया है, केवल कीचड़ ही बचा है।" "आनंद, बुद्ध की शक्ति महान है। जाओ, मेरे लिए स्नान वस्त्र लाओ," गुरु ने कहा। तब वरिष्ठ भिक्षु गए और स्नान वस्त्र ले आए, जिसे गुरु ने पहन लिया। उन्होंने एक छोर कमर के चारों ओर लपेटा और दूसरे छोर से अपना शरीर ढक लिया। इस प्रकार वस्त्र धारण करके वे तालाब की सीढ़ियों पर खड़े हो गए और बोले, "मैं जेतवन मठ के तालाब में स्नान करना चाहता/चाहती हूँ।"

उसी क्षण इंद्र का पीला पत्थर का सिंहासन गर्म हो गया और वे इसका कारण जानने के लिए आगे बढ़े। जब उन्हें बात समझ में आई, तो उन्होंने बादलों के राजा को बुलाया और कहा, "गुरुजी जेतवन मठ के तालाब की सीढ़ियों पर खड़े हैं और स्नान करना चाहते हैं। जल्दी करो और कोसल राज्य पर एक ही बार में मूसलाधार वर्षा करो।" इंद्र के आदेश का पालन करते हुए, बादलों के राजा ने एक बादल को अंतर्वस्त्र और दूसरे बादल को बहिर्वस्त्र के रूप में धारण किया और वर्षागीत गाते हुए पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। और देखो! वे पूर्व में खलिहान के आकार के बादल के रूप में प्रकट हुए, जो बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि सौ-हजार खलिहानों के बराबर हो गया; और उन्होंने गरजते हुए और बिजली चमकाते हुए अपना मुख और मुख झुकाकर कोसल राज्य को मूसलाधार वर्षा से सराबोर कर दिया। लगातार बारिश हो रही थी, जिससे जेतवन मठ का तालाब जल्दी भर गया और तब तक नहीं रुका जब तक कि पानी सबसे ऊपरी सीढ़ी तक नहीं पहुँच गया। तब गुरु ने तालाब में स्नान किया और पानी से बाहर आकर अपने दो नारंगी रंग के वस्त्र और कमरबंद पहन लिए, और अपने बुद्ध वस्त्र को इस प्रकार लपेटा कि उनका एक कंधा खुला रह गया। इसी वेश में वे भिक्षुओं से घिरे हुए अपने सुगंधित कक्ष में गए, जो मधुर सुगंध से महक रहा था। वहाँ वे बुद्ध आसन पर बैठे और जब भिक्षुओं ने अपने कर्तव्य पूरे कर लिए, तो वे उठे और अपने सिंहासन की रत्नजड़ित सीढ़ियों से भिक्षुओं को प्रोत्साहित किया और उन्हें अपने समक्ष से विदा किया। अब अपने सुगंधित कक्ष में प्रवेश करते हुए, वे सिंह की तरह अपनी दाहिनी ओर लेट गए।

शाम को, भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और गुरु के संयम और प्रेममयी कृपा का अनुभव किया। "जब फसलें मुरझा रही थीं, तालाब सूख रहे थे और मछलियाँ और कछुए दयनीय स्थिति में थे, तब उन्होंने करुणापूर्वक उद्धारकर्ता के रूप में आगमन किया। स्नान

वस्त्र पहनकर, वे जेतवन मठ के तालाब की सीढ़ियों पर खड़े हुए और क्षण भर में आकाश से इतनी वर्षा कराई कि ऐसा लगा मानो कोसल पूरी तरह डूब जाएगा। और जब तक वे मठ लौटे, तब तक वे सभी को मन और शरीर के कष्टों से मुक्त कर चुके थे।"

उनकी बातें कुछ इस तरह चल रही थीं कि गुरुजी अपने सुगंधित कक्ष से निकलकर सत्य के हॉल में आए और उनसे पूछा कि वे किस विषय पर बात कर रहे हैं। गुरुजी ने कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि भगवान बुद्ध ने संकट के समय वर्षा कराई हो। उन्होंने ऐसा ही तब किया था जब वे पशु जगत में जन्मे थे और मत्स्यवंश के राजा थे।” और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई:-

---

बहुत समय पहले, इसी कोसल राज्य में और श्रावस्ती नगर में, जहाँ अब जेतवन मठ का तालाब है, वहाँ एक तालाब था, जो लताओं के घने जाल से घिरा हुआ था। उसी तालाब में बोधिसत्व रहते थे, जिन्होंने उन दिनों मछली का रूप धारण किया था। उस समय भी और आज भी, देश में सूखा पड़ा था; फसलें सूख गईं; तालाब और पोखर सूख गए; और मछलियाँ और कछुए कीचड़ में दब गए। ठीक उसी प्रकार, जब इस तालाब की मछलियाँ और कछुए कीचड़ में छिप गए, तो कौवे और अन्य पक्षी वहाँ झुंड बनाकर आ गए और उन्हें अपनी चोंच से नोच कर खा गए। अपने परिवार का यह हाल देखकर और यह जानकर कि संकट की घड़ी में उनके सिवा कोई उनकी रक्षा नहीं कर सकता, बोधिसत्व ने सच्चे मन से अच्छाई का वचन बोलने का निश्चय किया, और उसके प्रभाव से आकाश से वर्षा कराने का संकल्प लिया ताकि उनके परिवार को निश्चित मृत्यु से बचाया जा सके। काली मिट्टी को चीरते हुए, वह आगे बढ़ा, एक विशाल मछली, जो काजल से सने उत्तम चंदन के ताबूत की तरह मिट्टी से काली हो गई थी। धुले हुए माणिक के समान अपनी आँखें खोलकर, आकाश की ओर देखते हुए उसने देवों के राजा पज्जुन्न से कहा, "हे मेरे प्रिय पज्जुन्न, मेरे परिवार के कारण मेरा हृदय भारी है। मैं पूछता हूँ, ऐसा क्यों है कि जब मैं, जो धर्मात्मा हूँ, अपने परिवार के लिए दुखी हूँ, तो आप स्वर्ग से वर्षा नहीं भेजते? क्योंकि यद्यपि मेरा जन्म ऐसे स्थान पर हुआ है जहाँ परिवार को ही अपना शिकार बनाना प्रथा है, मैंने अपने बचपन से लेकर आज तक कभी भी चावल के दाने के आकार की मछली भी नहीं खाई; न ही मैंने कभी किसी जीव का प्राण छीना है। अपनी इस बात की सत्यता के कारण, मैं आपसे अपने परिवार पर वर्षा और राहत भेजने का आह्वान करता हूँ।" इसके साथ ही, उसने देवों के राजा पज्जुन्न को इस प्रकार पुकारा, जैसे कोई स्वामी अपने सेवक को पुकारता है, इस श्लोक में:-

पज्जुन्ना, गरज! चकमा दो, रुक जाओ, कौआ!
उसमें दुःख की पीड़ा उत्पन्न करो; मुझे कष्टों से मुक्ति दिलाओ!
जिस प्रकार स्वामी अपने सेवक को बुलाता है, उसी प्रकार बोधिसत्व ने पज्जुन को बुलाया और भारी वर्षा करवाकर अनेकों को मृत्यु के भय से मुक्त किया। और जब उनका जीवन समाप्त हुआ, तो वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक सिधार गए।

“तो यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं,” गुरु ने कहा, “कि भगवान बुद्ध ने वर्षा कराई है। उन्होंने अतीत में भी ऐसा ही किया था, जब वे मछली थे।” अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, “बुद्ध के शिष्य उन दिनों की मछलियाँ थे, आनंद देवों के राजा पज्जुन थे, और मैं स्वयं मछलियों का राजा हूँ।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असांकिया-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-76-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 76
असामकीय-जातक

"गांव से मुझे कोई डर नहीं लगता।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में श्रावस्ती शहर में रहने वाले एक गृहस्थ (शिष्य) के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, यह व्यक्ति, जिसने मार्ग का अनुसरण किया था और जो एक सच्चा अनुयायी था, एक बार किसी काम से एक कारवां के सरदार के साथ यात्रा कर रहा था; जंगल में गाड़ियों को अलग कर दिया गया और एक शिविर बनाया गया; और वह सज्जन सरदार के पास एक पेड़ के नीचे इधर-उधर टहलने लगा।

अब पांच सौ लुटेरे, जो मौके का इंतजार कर रहे थे, धनुष, लाठी और अन्य हथियारों से लैस होकर शिविर को लूटने के इरादे से उस स्थान को घेर चुके थे। फिर भी वह साधु लगातार इधर-उधर चहलकदमी कर रहा था। लुटेरों ने उसे देखकर कहा, "ज़रूर वह उनका पहरेदार होगा; हम उसके सो जाने का इंतजार करेंगे और फिर उन्हें लूट लेंगे।" इस प्रकार, शिविर पर अचानक हमला करने में असमर्थ होने के कारण, वे वहीं रुक गए। फिर भी वह साधु रात के पहले पहर, मध्य पहर और आखिरी पहर में लगातार इधर-उधर चहलकदमी करता रहा। जब सुबह हुई, तो लुटेरे, जिन्हें मौका ही नहीं मिला था, अपने साथ लाए पत्थर और लाठियां फेंक कर भाग गए।

अपना काम पूरा करके, वह गृहस्थ श्रावस्ती शहर लौट आया और गुरु के पास जाकर उनसे यह प्रश्न पूछा, "हे गुरु, क्या मनुष्य अपनी रक्षा करते हुए दूसरों के भी रक्षक सिद्ध होते हैं?"

"जी हां, भाई। अपनी रक्षा करने में मनुष्य दूसरों की रक्षा करता है; दूसरों की रक्षा करने में वह अपनी रक्षा करता है।"

"ओह, भगवान बुद्ध का यह कथन कितना सटीक है! जब मैं एक कारवां-नेता के साथ यात्रा कर रहा था, तो मैंने एक पेड़ की डाल पर इधर-उधर टहलकर अपनी रक्षा करने का संकल्प लिया, और ऐसा करके मैंने पूरे कारवां की रक्षा की।"

गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, पुराने समय में भी बुद्धिमान और भले लोग अपनी रक्षा करते हुए दूसरों की भी रक्षा करते थे।" और ऐसा कहकर, गृहस्थ के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ब्राह्मण के रूप में अवतरित हुए। परिपक्व होने पर, उन्हें कामवासनाओं से उत्पन्न होने वाली बुराइयों का ज्ञान हुआ और इसलिए उन्होंने संसार त्याग कर हिमालय के आसपास के क्षेत्र में एक संन्यासी के रूप में जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। नमक और सिरके की आवश्यकता ने उन्हें भिक्षा मांगने के लिए ग्रामीण इलाकों की यात्रा पर प्रेरित किया और वे एक व्यापारी के काफिले के साथ चल पड़े। जब काफिला जंगल में एक स्थान पर रुका, तो वे काफिले के पास ही एक वृक्ष की तलहटी में बैठकर अंतर्दृष्टि के आनंद में मग्न हो गए।

रात के खाने के बाद पाँच सौ लुटेरे शिविर को लूटने के लिए चारों ओर से घेर लिया; लेकिन तपस्वी को देखकर वे रुक गए और बोले, "अगर वह हमें देख लेगा तो शोर मचा देगा; उसके सो जाने का इंतज़ार करो, फिर हम तुम्हें लूट लेंगे।" लेकिन तपस्वी पूरी रात इधर-उधर टहलता रहा; और लुटेरों को ज़रा भी मौका नहीं मिला! इसलिए उन्होंने अपने डंडे और पत्थर फेंक दिए और कारवां वालों को पुकारा;--"अरे, कारवां वालों! अगर वह तपस्वी पेड़ के नीचे टहल न रहा होता, तो हम तुम सबको लूट लेते। कल उसका ध्यान रखना और दावत देना!" और ऐसा कहकर वे चले गए। जब रात ढलकर उजाला हुआ, तो लोगों ने लुटेरों द्वारा फेंके गए डंडे और पत्थर देखे, और डरते-डरते कांपते हुए बोधिसत्व से आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए पूछा कि क्या उन्होंने लुटेरों को देखा था। "जी हाँ, मैंने देखा था, महोदय," उन्होंने उत्तर दिया। "क्या इतने सारे लुटेरों को देखकर आप भयभीत या डरे नहीं?" "नहीं," बोधिसत्व ने कहा; "लुटेरों को देखकर भय केवल धनी लोगों को ही होता है। मैं तो निर्धन हूँ; मुझे क्यों डरना चाहिए? चाहे मैं गाँव में रहूँ या जंगल में, मुझे कभी कोई भय या डर नहीं होता।" और इस प्रकार, उन्हें सत्य सिखाने के लिए, उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

यह गांव मेरे मन में किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं करता;
  मुझे जंगलों से निराशा होती है।
मैंने प्रेम और दान के बल पर जीत हासिल की है।
  मुक्ति का उत्तम मार्ग।

जब बोधिसत्व ने इस श्लोक में वर्णित सत्य का उपदेश कारवां के लोगों को दिया, तो उनके हृदयों में शांति का संचार हुआ और उन्होंने उनका आदर और श्रद्धापूर्वक सम्मान किया। उन्होंने जीवन भर चार गुणों का विकास किया और फिर ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म लिया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध को स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "बुद्ध के अनुयायी उन दिनों के कारवां वाले लोग थे, और मैं तपस्वी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महासुपिन-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-77-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 77
महासुपीना-जातक

"पहले बैल, फिर पेड़।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सोलह अद्भुत सपनों के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, एक रात के अंतिम पहर में कोसल के राजा, जो पूरी रात सो रहे थे, ने सोलह बड़े सपने देखे और डर के मारे जाग उठे कि कहीं ये सपने उनके लिए क्या संकेत न दें। मृत्यु का भय उन पर इतना प्रबल था कि वे हिल भी नहीं सके और अपने पलंग पर दुबक कर पड़े रहे। जब रात का उजाला हुआ, तो उनके ब्राह्मण और पुरोहित उनके पास आए और आदरपूर्वक पूछा कि महाराज अच्छी नींद सोए थे या नहीं।

"हे सलाहकारों, मैं चैन से कैसे सो सका?" राजा ने उत्तर दिया। "भोर होते ही मैंने सोलह भयानक सपने देखे, और तब से मैं भयभीत हूँ! हे सलाहकारों, मुझे बताओ कि इन सबका क्या अर्थ है।"

हम उनकी बातें सुनकर निर्णय ले सकेंगे।

तब राजा ने उन्हें अपने सपने बताए और पूछा कि उन सपनों का उनके लिए क्या परिणाम होगा।

ब्राह्मण हाथ मलने लगे! राजा ने पूछा, “हे ब्राह्मणों, तुम हाथ क्यों मल रहे हो?” ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, “हे महाराज, ये बुरे सपने हैं।” राजा ने पूछा, “इनका क्या परिणाम होगा?” ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, “तीन विपत्तियों में से एक आएगी: आपके राज्य को हानि, आपके जीवन को हानि, या आपके धन को हानि।” ब्राह्मणों ने पूछा, “क्या इसका कोई उपाय है या नहीं?” ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, “निःसंदेह ये सपने इतने भयावह हैं कि इनका कोई उपाय नहीं है; फिर भी हम इनका उपाय अवश्य खोजेंगे। अन्यथा, हमारे इतने अध्ययन और ज्ञान का क्या लाभ?” ब्राह्मणों ने पूछा, “तो फिर इस विपत्ति को रोकने के लिए आप क्या करने का प्रस्ताव रखते हैं?” ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, “हे महाराज, जहाँ भी चारों मार्ग मिलते हैं, हम वहाँ यज्ञ करेंगे।” राजा भयभीत होकर चिल्लाया, “हे मेरे सलाहकारों, मेरा जीवन आपके हाथों में है; शीघ्रता से मेरी रक्षा करें।” ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर सोचा, “हमें बड़ी धनराशि और हर प्रकार का भोजन मिलेगा”; और राजा से भय न करने का अनुरोध करते हुए वे महल से चले गए। नगर के बाहर उन्होंने एक यज्ञ-कुंड खोदा और उसमें पूर्णतः दोषरहित चौपायों और अनेक पक्षियों का समूह एकत्र किया। परन्तु फिर भी उन्हें कुछ कमी महसूस हुई और वे बार-बार राजा के पास यह या वह माँगने आते रहे। अब उनकी गतिविधियों पर रानी मल्लिका की नजर थी, जो राजा के पास आईं और उनसे पूछा कि ये ब्राह्मण बार-बार उनके पास क्यों आते हैं।

“मुझे आप पर ईर्ष्या हो रही है,” राजा ने कहा; “आपके कान में साँप घुसा हो और आपको पता भी न चले!” “महाराज, आपका क्या तात्पर्य है?” “मैंने बहुत ही अशुभ सपने देखे हैं! ब्राह्मणों ने बताया है कि ये तीन विपत्तियों में से एक का संकेत हैं; और वे इस विपत्ति को रोकने के लिए यज्ञ करने को उत्सुक हैं। और इसी कारण वे अक्सर यहाँ आते हैं।” “लेकिन महाराज, क्या आपने इस लोक और देवलोक के प्रधान ब्राह्मण से परामर्श लिया है?” “हे प्रिय, वह कौन हैं?” राजा ने पूछा। “क्या आप उस सर्वज्ञानी, सर्वज्ञ और पवित्र, निष्कलंक ब्राह्मण को नहीं जानते? निश्चय ही, भगवान बुद्ध आपके सपनों को समझेंगे। जाइए, उनसे पूछिए।” “हाँ, मैं पूछूँगा, महारानी,” राजा ने कहा। और वह मठ की ओर चल पड़ा, गुरु को प्रणाम किया और बैठ गया। “महाराज, आप इतनी सुबह यहाँ क्यों आए हैं?” गुरु ने मधुर स्वर में पूछा। राजा ने कहा, "हे प्रभु, भोर होने से ठीक पहले मैंने सोलह अद्भुत सपने देखे, जिनसे मैं इतना भयभीत हो गया कि मैंने उन्हें ब्राह्मणों को बताया। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे सपने अशुभ संकेत हैं, और उस विपत्ति को रोकने के लिए उन्हें चारों दिशाओं के संगम पर यज्ञ करना होगा। इसलिए वे अपनी तैयारियों में लगे हुए हैं, और अनेक प्राणियों के मन में मृत्यु का भय मंडरा रहा है। परन्तु हे प्रभु, जो मनुष्य और देवों के संसार में सर्वोच्च हैं, जिनके दर्शन में भूतकाल, वर्तमान और भविष्य का समस्त ज्ञान है, हे भगवान बुद्ध, मैं आपसे अपने सपनों का परिणाम बताने का अनुरोध करता हूँ।"

"महाराज, यह सच है कि मेरे सिवा कोई और नहीं है जो आपके सपनों का अर्थ या उनके परिणाम बता सके। मैं आपको बताऊंगा। बस पहले मुझे अपने सपने वैसे ही बताइए जैसे वे आपको दिखाई दिए।"

“जी जनाब,” राजा ने कहा और तुरंत ही सपनों के प्रकट होने के क्रम के अनुसार यह सूची बनाना शुरू कर दिया:-

पहले बैल, फिर पेड़, फिर गायें, और फिर बछड़े।
घोड़ा, थाली, मादा सियार, पानी का बर्तन
एक तालाब, कच्चा चावल और चंदन।
और ऐसे लौकी जो डूब गए, और ऐसे पत्थर जो तैरने लगे,

उन मेंढकों के साथ जो काले सांपों को निगल जाते थे,
चमकीले पंखों वाले साथियों के समूह के साथ एक कौआ।
और भेड़िये बकरियों के डर से दहशत में हैं!
"महाराज, मुझे ये सपना कैसे आया? मुझे लगता है, काजल की तरह गहरे काले रंग के चार काले बैल चारों दिशाओं से राजमहल के प्रांगण में लड़ने के इरादे से आए; और लोग बैल-लड़ाई देखने के लिए उमड़ पड़े, यहाँ तक कि एक बड़ी भीड़ जमा हो गई। लेकिन बैलों ने सिर्फ दिखावटी लड़ाई की, दहाड़े और चिल्लाए, और अंत में बिना लड़े ही चले गए। ये मेरा पहला सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"महाराज, यह सपना आपके या मेरे दिनों में सार्थक नहीं होगा। परन्तु भविष्य में, जब राजा कंजूस और अधर्मी होंगे, और जब लोग अधर्मी होंगे, जब संसार भ्रष्ट हो जाएगा, जब अच्छाई कम होती जाएगी और बुराई तेजी से बढ़ती जाएगी, संसार के पतन के उन दिनों में आकाश से वर्षा नहीं होगी, आँधी के पैर लंगड़े हो जाएँगे, फसलें सूख जाएँगी, और देश में अकाल पड़ जाएगा। तब चारों दिशाओं से बादल वर्षा के लिए एकत्रित होंगे; पहले तो महिलाएं जल्दी से चावल और फसलें, जिन्हें उन्होंने धूप में सुखाने के लिए फैलाया था, घर के अंदर ले जाएँगी, कहीं फसल गीली न हो जाए; और फिर पुरुष फावड़ा और टोकरी लेकर तटबंधों को भरने में जुट जाएँगे। मानो आने वाली वर्षा का संकेत देते हुए, गरज उठेगी, बादलों से बिजली चमकेगी, परन्तु जैसे आपके सपने में बैल नहीं लड़े, वैसे ही बादल बिना वर्षा किए भाग जाएँगे। इस सपने का यही परिणाम होगा। परन्तु कोई हानि नहीं होगी।" इससे आपको यह पता चलेगा; क्योंकि आपने यह सपना भविष्य के बारे में ही देखा था। ब्राह्मणों ने आपको जो कुछ बताया, वह केवल अपनी जीविका कमाने के लिए कहा था।" और जब गुरु ने इस प्रकार इस सपने की पूर्ति बता दी, तो उन्होंने कहा, "हे महाराज, मुझे अपना दूसरा सपना बताइए।"

“महाराज,” राजा ने कहा, “मेरा दूसरा सपना कुछ इस प्रकार था:- मुझे लगता है कि छोटे-छोटे पेड़ और झाड़ियाँ मिट्टी से फूट निकले, और जब वे मुश्किल से एक या दो बिन्दु ऊँचे हुए, तो उनमें फूल और फल लग गए! यह मेरा दूसरा सपना था; इसका क्या परिणाम होगा?”

“महाराज,” गुरु ने कहा, “यह सपना उस समय पूरा होगा जब संसार का पतन हो जाएगा और मनुष्य अल्पायु होंगे। आने वाले समय में वासनाएँ प्रबल होंगी; कम उम्र की लड़कियाँ पुरुषों के साथ रहने लगेंगी और उनके साथ स्त्रियों के समान व्यवहार करेंगी, वे गर्भ धारण करेंगी और संतान उत्पन्न करेंगी। फूल उनकी संतानों का प्रतीक हैं, और फल उनके वंश का। परन्तु महाराज, आपको इससे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हे महान राजा, मुझे अपना तीसरा सपना बताइए।”

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने गायों को उसी दिन पैदा हुए बछड़ों का दूध पीते देखा। यह मेरा तीसरा सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी आने वाले दिनों में ही पूरा होगा, जब बुढ़ापे का आदर करना बंद हो जाएगा। क्योंकि भविष्य में लोग माता-पिता या सास-ससुर का आदर न करते हुए स्वयं पारिवारिक संपत्ति का प्रबंधन करेंगे, और यदि उनकी इच्छा होगी तो वे वृद्धों को भोजन और वस्त्र देंगे, परन्तु यदि उनकी इच्छा न हो तो उपहार देने से इनकार कर देंगे। तब वृद्ध, निर्धन और आश्रित होकर, अपने बच्चों की कृपा से जीवन यापन करेंगे, जैसे बड़ी गायें एक दिन के बछड़ों का दूध पीती हैं। परन्तु तुम्हें इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे अपना चौथा सपना बताओ।"

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने देखा कि कुछ लोग बलवान और मजबूत बैलों की जोड़ी को खोल रहे थे और उनकी जगह युवा बछड़ों को बोझ खींचने के लिए लगा रहे थे; लेकिन बछड़े इस काम को करने में असमर्थ साबित हुए, उन्होंने मना कर दिया और वहीं खड़े रह गए, जिससे गाड़ियाँ आगे नहीं बढ़ पाईं। यह मेरा चौथा सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यहाँ भी, यह सपना भविष्य में, अधर्मी राजाओं के दिनों में ही पूरा होगा। क्योंकि आने वाले दिनों में, अधर्मी और कंजूस राजा, न्याय के जानकार, अनेक तरीकों से कार्य करने में सक्षम और कुशल बुद्धिमान सरदारों का सम्मान नहीं करेंगे; न ही वे न्याय और विधान के न्यायालयों में कानून के ज्ञान और विद्वता से संपन्न वृद्ध सलाहकारों को नियुक्त करेंगे। नहीं, वे तो युवा और नासमझ लोगों का सम्मान करेंगे और उन्हें न्यायालयों का अध्यक्ष नियुक्त करेंगे। और ये बाद वाले, जो शासन-प्रबंधन और व्यावहारिक ज्ञान दोनों से अनभिज्ञ होंगे, अपने सम्मान का भार उठाने या शासन करने में असमर्थ होंगे, बल्कि अपनी अक्षमता के कारण पद का बोझ उतार फेंकेंगे। जिस पर वृद्ध और बुद्धिमान सरदार, यद्यपि सभी कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम होंगे, यह याद रखेंगे कि उन्हें कैसे नजरअंदाज किया गया था, और सहायता करने से इनकार कर देंगे, यह कहते हुए: 'यह हमारा काम नहीं है; हम बाहरी हैं; इसे आंतरिक मंडली के युवा ही संभाल लें।'" इसलिए वे अलग-थलग खड़े रहेंगे, और उन राजाओं पर चारों ओर से विनाश आ पड़ेगा। यह ठीक वैसा ही होगा जैसे जुआ उन युवा बछड़ों पर रखा गया था जो बोझ उठाने के लिए पर्याप्त मजबूत नहीं थे, न कि उन बलवान और मजबूत बैलों की जोड़ी पर, जो अकेले ही काम करने में सक्षम थे। हालांकि, आपको इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे अपना पाँचवाँ सपना बताओ।

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने एक घोड़ा देखा जिसके दोनों ओर मुंह थे, और दोनों ओर से उसे चारा दिया जा रहा था, और वह दोनों मुंह से खा रहा था। यह मेरा पांचवा सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा, अधर्मी और मूर्ख राजाओं के दिनों में, जो अधर्मी और लालची लोगों को न्यायाधीश नियुक्त करेंगे। ये नीच, मूर्ख, भले लोगों से घृणा करने वाले, न्याय की कुर्सी पर बैठते हुए दोनों पक्षों से रिश्वत लेंगे, और उस घोड़े की तरह दोहरी भ्रष्टता से भर जाएंगे जिसने एक साथ दो मुँह से चारा खाया था। लेकिन तुम्हें इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे अपना छठा सपना बताओ।"

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने लोगों को एक लाख सिक्कों के मूल्य का अच्छी तरह से साफ किया हुआ सोने का कटोरा पकड़े हुए देखा, और वे एक बूढ़े सियार से उसमें मल त्याग करने की विनती कर रहे थे। और मैंने उस जानवर को ऐसा करते हुए देखा। यह मेरा छठा सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा। आने वाले दिनों में, दुष्ट राजा, भले ही वे राजाओं के वंश से आए हों, अपने पुराने कुलीन वंश के वंशजों पर अविश्वास करेंगे और उन्हें सम्मान नहीं देंगे, बल्कि उनकी जगह नीच कुल के लोगों को ऊँचा उठाएंगे; जिससे कुलीन लोग नीचा गिरेंगे और नीच कुल के लोग प्रभुत्व प्राप्त करेंगे। तब बड़े परिवार मजबूरी में कुकर्मों से धनवान हुए लोगों पर निर्भर रहने को मजबूर होंगे और अपनी बेटियों का विवाह उन्हें सौंपेंगे। और कुलीन कन्याओं का नीच कुल के पुरुषों से विवाह सोने के कटोरे में बूढ़े सियार के मल के समान होगा। हालांकि, आपको इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे अपना सातवाँ सपना बताइए।"

"एक आदमी रस्सी बुन रहा था, महोदय, और बुनते-बुनते वह उसे अपने पैरों के पास फेंक देता था। उसकी बेंच के नीचे एक भूखी सियार लेटी थी, जो आदमी को पता चले बिना ही रस्सी खाती जा रही थी। यही मैंने देखा। यह मेरा सातवाँ सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा। क्योंकि आने वाले दिनों में स्त्रियाँ पुरुषों, शराब, कीमती वस्त्रों, घूमने-फिरने और संसार के सुखों की लालसा करेंगी। अपनी दुष्टता और व्यभिचार में डूबी ये स्त्रियाँ अपने प्रेमियों के साथ शराब पिएंगी; वे मालाओं, इत्रों और मलहमों से सज-धज कर इतराएंगी; और अपने घरेलू कर्तव्यों की परवाह किए बिना, वे अपने प्रेमियों की तलाश में घर की दीवारों की ऊँची दरारों में भी घात लगाए रहेंगी; हाँ, वे अगले दिन बोए जाने वाले अनाज को भी पीसकर रख देंगी ताकि उन्हें खुशी मिले; इन सभी तरीकों से वे अपने पतियों की मेहनत से खेतों और गौशालाओं में अर्जित धन को लूट लेंगी, उनकी संपत्ति को उसी प्रकार खा जाएँगी जैसे भूखा सियार रस्सियाँ बुनते समय रस्सियों को चट कर जाता है। लेकिन आपको इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे अपना आठवाँ सपना बताइए।"

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने महल के द्वार पर एक बड़ा घड़ा देखा जो पानी से लबालब भरा हुआ था और उसके आसपास कई खाली घड़े रखे थे। चारों दिशाओं से, और बीच की चारों दिशाओं से भी, चारों जातियों के लोग लगातार पानी से भरे घड़े में पानी भरते हुए आ रहे थे। पानी छलक कर बह रहा था। फिर भी वे लगातार पानी से लबालब भरे घड़े में पानी डालते रहे, किसी ने भी खाली घड़ों की तरफ देखा तक नहीं। यह मेरा आठवां सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा। क्योंकि आने वाले दिनों में संसार का पतन होगा; राज्य कमजोर हो जाएगा, उसके राजा गरीब और कंजूस हो जाएंगे; उनमें से सबसे श्रेष्ठ राजा के खजाने में 100,000 सिक्कों से अधिक नहीं होंगे। तब ये राजा अपनी आवश्यकता में समस्त देशवासियों को अपने लिए काम पर लगाएंगे; राजाओं के लिए परिश्रम करने वाले लोग अपना काम छोड़कर अनाज और दालें बोएंगे, पहरा देंगे, फसल काटेंगे, अनाज निकालेंगे और इकट्ठा करेंगे; राजाओं के लिए गन्ने बोएंगे, चीनी की चक्की बनाएंगे और चलाएंगे, और गुड़ को उबालेंगे; राजाओं के लिए फूलों के बाग और फलों के बाग लगाएंगे और फल इकट्ठा करेंगे। और जैसे ही वे तरह-तरह की उपज इकट्ठा करेंगे, वे शाही भंडारों को लबालब भर देंगे, अपने घर के खाली गोदामों की ओर जरा भी नहीं देखेंगे। इस प्रकार यह ऐसा होगा जैसे घड़े को भर देना, किसी की परवाह किए बिना। बिल्कुल खाली सपने। हालांकि, आपको इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे अपना नौवां सपना बताओ।

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने एक गहरा तालाब देखा जिसके चारों ओर ढलानदार किनारे थे और जो पाँचों प्रकार के कमलों से आच्छादित था। हर तरफ से दो पैरों वाले और चार पैरों वाले जीव वहाँ पानी पीने के लिए आते थे। बीच में गहराई में कीचड़ था, लेकिन किनारे पर जहाँ विभिन्न जीव तालाब में उतरते थे, वहाँ पानी साफ और चमकीला था। यह मेरा नौवाँ सपना था। इसका क्या अर्थ होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा। क्योंकि आने वाले दिनों में राजा अधर्मी हो जाएँगे; वे अपनी इच्छा और लालसा के अनुसार शासन करेंगे और न्याय के अनुसार निर्णय नहीं लेंगे। ये राजा धन के लोभी होंगे और रिश्वतखोरी में लिप्त हो जाएँगे; वे अपनी प्रजा के

प्रति दया, प्रेम और करुणा नहीं दिखाएँगे, बल्कि क्रूर और निर्दयी होंगे, अपनी प्रजा को चक्की में गन्ने की तरह कुचलकर और उन पर हर छोटी से छोटी चीज़ पर कर लगाकर धन इकट्ठा करेंगे। दमनकारी कर चुकाने में असमर्थ, लोग गाँव-नगर आदि छोड़कर राज्य की सीमाओं पर शरण लेंगे; देश का मध्य भाग वीरान हो जाएगा, जबकि सीमाएँ लोगों से भरी होंगी, जैसे तालाब के बीच का पानी मटमैला और किनारे का साफ होता है। लेकिन तुम्हें इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे अपना दसवाँ सपना बताओ।"

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने एक बर्तन में चावल उबलते हुए देखे, लेकिन वे पक नहीं रहे थे। न पकने से मेरा मतलब है कि ऐसा लग रहा था जैसे उन्हें अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर रखा गया हो, जिससे खाना पकाने की प्रक्रिया तीन अलग-अलग चरणों में चल रही हो। एक हिस्सा गीला था, एक हिस्सा सख्त और कच्चा था, और एक हिस्सा बस ठीक से पका हुआ था। यह मेरा दसवाँ सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा। क्योंकि आने वाले दिनों में राजा अधर्मी हो जाएँगे; राजाओं के आसपास के लोग भी अधर्मी हो जाएँगे, साथ ही ब्राह्मण, गृहस्थ, नगरवासी और गाँववासी भी; हाँ, सभी लोग समान रूप से अधर्मी हो जाएँगे, यहाँ तक कि ऋषि और ब्राह्मण भी। इसके बाद, उनके संरक्षक देवता—जिनकी वे पूजा करते हैं, वृक्षों की आत्माएँ और वायु की आत्माएँ—भी अधर्मी हो जाएँगे। इन अधर्मी राजाओं के राज्य में बहने वाली हवाएँ भी क्रूर और अराजक हो जाएँगी; वे आकाश के महलों को हिला देंगी और इस प्रकार वहाँ निवास करने वाली आत्माओं के क्रोध को भड़काएँगी, जिससे वे वर्षा नहीं होने देंगे—या, यदि वर्षा होती भी है, तो वह पूरे राज्य में एक साथ नहीं होगी, और न ही वह सुहावनी वर्षा सभी जोती या बोई गई भूमि पर समान रूप से बरसेगी ताकि उनकी आवश्यकता पूरी हो सके। और, जैसे पूरे राज्य में, वैसे ही प्रत्येक जिले और गाँव में और प्रत्येक अलग-अलग तालाब या झील पर भी। झील पर एक ही समय में पूरे क्षेत्र में बारिश नहीं होगी; अगर ऊपरी हिस्से में बारिश हो तो निचले हिस्से में नहीं होगी; कहीं तेज बारिश से फसलें बर्बाद हो जाएंगी, कहीं सूखे से सूख जाएंगी, और कहीं हल्की बारिश से सींचने पर तेज़ी से पनपेंगी। इसलिए एक ही राज्य की सीमाओं के भीतर बोई गई फसलें—जैसे एक ही बर्तन में चावल—एक समान नहीं होंगी। लेकिन आपको इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे अपना ग्यारहवाँ सपना बताओ।

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने खट्टी छाछ को 100,000 सिक्कों के बराबर कीमती चंदन के बदले में बिकते देखा। यह मेरा ग्यारहवाँ सपना था। इसका क्या परिणाम होगा?"

यह सपना भी भविष्य में ही पूरा होगा—जब मेरी शिक्षा का प्रभाव कम हो जाएगा। क्योंकि आने वाले दिनों में बहुत से लालची और निर्लज्ज भाई उठेंगे, जो अपने पेट के लिए उन्हीं शब्दों का प्रचार करेंगे जिनमें मैंने लालच की निंदा की थी! क्योंकि उन्होंने अपने पेट के कारण त्याग दिया है और दूसरे संप्रदायों (गलत विश्वासियों) का साथ दिया है, इसलिए वे अपने उपदेश से निर्वाण प्राप्त करने में असफल रहेंगे। नहीं, उपदेश देते समय उनका एकमात्र विचार मीठे शब्दों और मधुर आवाजों से लोगों को महंगे वस्त्र और इसी तरह की वस्तुएँ देने के लिए प्रेरित करना होगा। कुछ अन्य लोग सड़कों पर, गलियों के कोनों पर, राजाओं के महलों के द्वारों पर, आदि स्थानों पर बैठकर धन के लिए उपदेश देंगे, हाँ, केवल सिक्कों, आधे सिक्कों, पदों या मसकों के लिए! (*1) और इस प्रकार वे भोजन, वस्त्र या सिक्कों के बदले अपना लेन-देन करते रहेंगे। और मेरे उपदेश के आधे-अधूरे कथन, जिनका मूल्य निर्वाण है, वे उन लोगों के समान होंगे जिन्होंने एक लाख लाख की कीमत का कीमती चंदन छाछ के बदले बेच दिया। लेकिन आपको इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे अपना बारहवां सपना बताओ।

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने पानी में खाली कद्दू डूबते हुए देखे। इसका क्या परिणाम होगा?"

यह सपना भी भविष्य में, अधर्मी राजाओं के दिनों में, जब संसार भ्रष्ट हो जाएगा, तब ही पूरा होगा। क्योंकि उन दिनों में राजा कुलीन वर्ग के वंशजों पर नहीं, बल्कि केवल निम्न वर्ग के लोगों पर ही कृपा करेंगे; और ये निम्न वर्ग के लोग बड़े स्वामी बन जाएँगे, जबकि कुलीन लोग गरीबी में डूब जाएँगे। राजमहल में, महल के द्वारों पर, सभा कक्ष में और न्याय अदालतों में, केवल निम्न वर्ग के लोगों (जिनका प्रतीक खाली कद्दू हैं) के शब्द ही मान्य होंगे, मानो वे डूबकर तल पर टिक गए हों। इसी प्रकार भिक्षु संघ की सभाओं में, छोटी-बड़ी सभाओं में, और प्यालों, वस्त्रों, आवास आदि के बारे में पूछताछ में, केवल दुष्ट और नीच लोगों की सलाह को ही असाधारण महत्व दिया जाएगा, विनम्र भिक्षुओं की सलाह को नहीं। इस प्रकार हर जगह ऐसा ही होगा जैसे खाली कद्दू डूब गए हों। हालाँकि, आपको इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे अपना विचार बताइए। तेरहवां सपना।"

इस पर राजा ने कहा, "महाराज, मुझे लगता है कि मैंने घरों जितने बड़े ठोस चट्टान के विशालकाय टुकड़े पानी पर जहाजों की तरह तैरते हुए देखे। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी उन दिनों से पहले पूरा नहीं होगा जिनके बारे में मैंने बात की है। क्योंकि उन दिनों में अधर्मी राजा नीच कुल के लोगों का सम्मान करेंगे, जो महान स्वामी बन जाएंगे, जबकि कुलीन लोग गरीबी में डूब जाएंगे। कुलीनों को नहीं, बल्कि केवल कुकर्मों से शीघ्रता

से ऊपर उठे लोगों को ही सम्मान दिया जाएगा। राजमहल में, सभा कक्ष में, या न्याय अदालतों में, कानून के विद्वान कुलीनों (और ठोस चट्टानें उन्हीं का प्रतीक हैं) के शब्द व्यर्थ ही बह जाएंगे, और लोगों के दिलों में गहराई तक नहीं उतरेंगे; जब वे बोलेंगे, तो कुकर्मों से शीघ्रता से ऊपर उठे लोग केवल उनका उपहास करेंगे और कहेंगे, 'ये लोग क्या कह रहे हैं?'" जैसा कि पहले कहा गया है, भाइयों की सभाओं में भी लोग भाइयों में श्रेष्ठ लोगों को आदर के योग्य नहीं समझते; ऐसे लोगों के शब्द गहराई तक नहीं उतरते, बल्कि व्यर्थ ही बह जाते हैं, जैसे चट्टानें पानी पर तैरती हैं। लेकिन आपको इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे अपना चौदहवाँ सपना बताइए।

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने नन्हे-मुन्ने मेंढक देखे, जो नन्हे फूलों की कलियों से भी छोटे थे, वे तेज़ी से विशाल काले साँपों का पीछा कर रहे थे, उन्हें कमल की डंडियों की तरह काट रहे थे और निगल रहे थे। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी आने वाले उन दिनों तक पूरा नहीं होगा, जैसे दिनों की मैंने बात की है, जब दुनिया का पतन हो रहा होगा। तब पुरुषों के जुनून इतने प्रबल और उनकी वासना इतनी तीव्र होगी कि वे अपनी सबसे छोटी पत्नियों के गुलाम बन जाएंगे, जिनके अधीन केवल दास और नौकर, बैल, भैंस और सभी मवेशी, सोना-चांदी और घर का सारा सामान होगा। यदि बेचारा पति पूछे कि पैसा या वस्त्र कहाँ है, तो उसे तुरंत कहा जाएगा कि वह जहाँ है वहीं है, उसे अपने काम से मतलब रखना चाहिए और इस बात की जिज्ञासा नहीं करनी चाहिए कि उसके घर में क्या है और क्या नहीं है। और इस तरह पत्नियाँ गाली-गलौज और ताने मारकर कई तरीकों से अपने पतियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगी, जैसे वे दासों और बंधुआ नौकरों पर करती हैं। यह वैसा ही होगा जैसे नन्हे-मुन्ने मेंढक, जो फूलों की छोटी कलियों से भी छोटे होते हैं, बड़े काले साँपों को निगल जाते थे। लेकिन आपको इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे बताओ।" आपका पंद्रहवां सपना।"

"मुझे लगता है, महोदय, मैंने एक गाँव का कौआ देखा, जिसमें दसों बुराइयाँ निवास करती थीं, और उसके साथ उन पक्षियों का एक समूह था, जिन्हें उनकी सुनहरी चमक के कारण शाही स्वर्ण बत्तख कहा जाता है। इसका क्या परिणाम होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में, कमज़ोर राजाओं के शासनकाल तक पूरा नहीं होगा। आने वाले दिनों में ऐसे राजा उठेंगे जिन्हें हाथियों या अन्य कलाओं का कोई ज्ञान नहीं होगा और वे युद्ध के मैदान में डरपोक होंगे। अपने राज-पाट से बेदखल होने के डर से वे अपने समकक्षों को नहीं, बल्कि अपने नौकरों, स्नानागारों, नाइयों और ऐसे ही लोगों को सत्ता में बिठाएंगे। इस प्रकार, राज-कृपा से वंचित और अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ, ये कुलीन लोग कुकर्मों से धनवान हुए लोगों की सेवा में नाचने-गाने लगेंगे, ठीक वैसे ही जैसे कौवे के पास शाही सोने की बत्तखें सेवक के रूप में थीं। लेकिन आपको इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुझे अपना सोलहवाँ सपना बताइए।"

"पहले तो, साहब, बकरियों का शिकार हमेशा पैंथर ही करते थे; लेकिन मुझे लगता है मैंने बकरियों को पैंथरों का पीछा करते और उन्हें खाते हुए देखा—चबा-चबा!—और दूर से बकरियों को देखते ही डर से कांपते हुए भेड़िये भाग गए और घनी झाड़ियों में छिप गए। ऐसा ही मेरा सपना था। इसका क्या अंजाम होगा?"

"यह सपना भी भविष्य में, अधर्मी राजाओं के शासनकाल तक पूरा नहीं होगा। उन दिनों में नीच कुल के लोग सामंत बन जाएंगे और राजा के चहेते बन जाएंगे, जबकि कुलीन लोग गुमनामी और विपत्ति में डूब जाएंगे। राजा की कृपा से न्यायालयों में प्रभाव प्राप्त करके, कुकर्मों द्वारा तेजी से ऊपर उठे ये लोग पुश्तैनी जागीरों, वस्त्रों और पुराने कुलीनों की सारी संपत्ति पर दावा करेंगे। और जब ये बाद वाले न्यायालयों के समक्ष अपने अधिकारों की पैरवी करेंगे, तब राजा के चहेते उन्हें लाठियों से पिटवाएंगे, उनका गला पकड़ेंगे और अपमानजनक शब्दों से उनका अपमान करेंगे, जैसे: 'अपनी औकात जानो, मूर्खों! क्या? हमसे बहस करोगे? राजा को तुम्हारी धृष्टता का पता चल जाएगा, और हम तुम्हारे हाथ-पैर कटवा देंगे और अन्य दंडात्मक कार्रवाई करेंगे!'" इस पर भयभीत कुलीन लोग यह दावा करेंगे कि उनकी संपत्ति वास्तव में उन अभिमानी लोगों की है जो कुकर्मों से शीघ्र धनवान हुए हैं, और वे अपने प्रिय लोगों से उसे स्वीकार करने को कहेंगे। फिर वे उसे अपने घर ले जाकर भय से कांपने लगेंगे। साथ ही, दुष्ट भाई भले और नेक भाइयों को तब तक सताते रहेंगे, जब तक कि उन्हें कोई सहायता न मिले और वे जंगल में भाग न जाएं। नीच और दुष्ट भाइयों द्वारा कुलीनों और भले भाइयों पर किया गया यह अत्याचार बकरियों द्वारा भेड़ियों को डराने जैसा होगा। हालांकि, आपको इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह स्वप्न भी भविष्य की ही बात करता है। ब्राह्मणों को ऐसी भविष्यवाणी करने के लिए सत्य या प्रेम प्रेरित नहीं किया गया था। नहीं, यह लाभ का लालच और संपत्ति की लालसा से उत्पन्न अंतर्दृष्टि थी जिसने उनके सभी स्वार्थपूर्ण कथनों को आकार दिया।

इस प्रकार गुरु ने इन सोलह महान स्वप्नों का महत्व समझाते हुए कहा, “हे महाराज, आप इन स्वप्नों को देखने वाले पहले व्यक्ति नहीं हैं; ये स्वप्न अतीत के राजाओं ने भी देखे थे; और तब भी, और अब भी, ब्राह्मण इन्हें यज्ञों का बहाना मानते थे; जिस पर बुद्धिमान और भले लोगों के आग्रह पर बोधिसत्व से परामर्श लिया जाता था, और उन्होंने प्राचीन काल में इन स्वप्नों की व्याख्या ठीक उसी प्रकार की थी जैसे अब की गई है।” और ऐसा कहकर, राजा के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब उत्तर देश में एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। जब वे समझदार हुए, तो उन्होंने संसार त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया; उन्होंने उच्च ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और हिमालय देश में अंतर्दृष्टि से प्राप्त आनंद में निवास किया।

उन दिनों, ठीक इसी प्रकार, ब्रह्मदत्त ने बनारस में ये सपने देखे और ब्राह्मणों से इनके बारे में पूछा। ब्राह्मण, तब भी और अब भी, यज्ञों में जुट गए। उनमें एक विद्वान और बुद्धिमान युवक ब्राह्मण था, जो राजा के पुरोहित का शिष्य था। उसने अपने गुरु से कहा, “गुरुजी, आपने मुझे तीनों वेदों का ज्ञान दिया है। क्या उसमें यह वचन नहीं है कि ‘एक प्राणी को मारने से दूसरे को जीवन नहीं मिलता’?” “मेरे पुत्र, इससे हमें धन मिलेगा, बहुत सारा धन। तुम तो केवल राजा के खजाने को बचाने के लिए चिंतित दिखते हो!” “आपकी इच्छा के अनुसार,” युवक ब्राह्मण ने कहा; “जहाँ तक मेरी बात है, मैं यहाँ आपके साथ और क्यों प्रतीक्षा करूँ?” इतना कहकर वह उन्हें छोड़कर राज उद्यान चला गया।

उसी दिन बोधिसत्व ने यह सब जानकर मन ही मन सोचा, "यदि मैं आज मनुष्यों के लोक में जाऊँ, तो मैं असंख्य लोगों को उनके बंधनों से मुक्त कराऊँगा।" अतः वे वायु में विचरण करते हुए राजमहल में उतरे और स्वर्ण प्रतिमा के समान तेजस्वी होकर अनुष्ठानिक शिला पर विराजमान हो उठे। युवा ब्राह्मण उनके पास आया और आदरपूर्वक मित्रता भाव से बोधिसत्व के पास बैठ गया। मधुर चर्चाएँ हुईं; और बोधिसत्व ने युवा ब्राह्मण से पूछा कि क्या राजा न्यायपूर्ण शासन करते हैं। युवक ने उत्तर दिया, "महोदय, राजा स्वयं धर्मात्मा हैं; परन्तु ब्राह्मण उन्हें बुराई की ओर ले जाते हैं। राजा द्वारा अपने सोलह स्वप्नों के बारे में पूछे जाने पर, ब्राह्मणों ने यज्ञ करने का अवसर पाकर उस पर कार्य करना शुरू कर दिया। हे महाराज, क्या यह अच्छा नहीं होगा कि आप राजा को उनके स्वप्नों का वास्तविक अर्थ बताएँ और इस प्रकार असंख्य प्राणियों को उनके भय से मुक्त कराएँ?" "परन्तु, मेरे पुत्र, मैं राजा को नहीं जानता, न ही वह मुझे। फिर भी, यदि वह यहाँ आकर मुझसे पूछे, तो मैं उसे बता दूँगा।" "मैं राजा को ले आता हूँ, महाराज," युवा ब्राह्मण ने कहा; "यदि आप कृपा करके मेरे लौटने तक एक मिनट यहाँ प्रतीक्षा करें।" बोधिसत्व की सहमति प्राप्त करके, वह राजा के सामने गया और कहा कि राजमहल में एक वायु-यात्री तपस्वी अवतरित हुआ है, जिसने कहा है कि वह राजा के स्वप्नों की व्याख्या करेगा; क्या महाराज अपने स्वप्नों को इस तपस्वी को नहीं बताएँगे?

यह सुनकर राजा तुरंत अपने कई सेवकों के साथ उद्यान में गए। तपस्वी को प्रणाम करके वे उनके पास बैठ गए और उनसे पूछा कि क्या यह सच है कि वे उनके सपनों का परिणाम जानते हैं। बोधिसत्व ने कहा, "जी हाँ, महाराज; लेकिन पहले मुझे आपके सपने वैसे ही सुनने दीजिए जैसे आपने देखे थे।" राजा ने उत्तर दिया, "ज़रूर, महाराज;" और उन्होंने इस प्रकार सुनाना शुरू किया:-

पहले बैल, फिर पेड़, फिर गायें, और फिर बछड़े।
घोड़ा, थाली, मादा सियार, पानी का बर्तन
एक तालाब, कच्चा चावल और चंदन।
और ऐसे लौकी जो डूब गए, और ऐसे पत्थर जो तैरने लगे,
...और इसी तरह आगे बढ़ते हुए अंत में...
और भेड़िये बकरियों के डर से सहमे हुए थे।
और महाराज ने अपने सपनों का वर्णन ठीक उसी तरह किया जैसे राजा पसेनादि (प्रसेनजित) ने किया था।

“बस करो,” महान पुरुष ने कहा; “तुम्हें इन सब बातों से डरने या घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है।” इस प्रकार राजा को आश्वस्त करने और असंख्य लोगों को बंधन से मुक्त करने के बाद, बोधिसत्व ने फिर से आकाश में अपना स्थान ग्रहण किया, जहाँ से उन्होंने राजा को प्रोत्साहित किया और उन्हें पंच आज्ञाओं में स्थापित किया, और अंत में ये शब्द कहे: “हे राजा, अब से ब्राह्मणों के साथ यज्ञ के लिए पशुओं का वध न करो।” अपना उपदेश समाप्त करके, बोधिसत्व सीधे वायु में अपने निवास स्थान पर चले गए। और राजा, अपने द्वारा सुनी गई शिक्षा में दृढ़ रहते हुए, भिक्षावृत्ति और अन्य अच्छे कार्यों का जीवन व्यतीत करने के बाद अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इसलोक सिधार गए।

उनका उपदेश समाप्त हुआ और गुरु ने कहा, "तुम्हें इन सपनों से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है; यज्ञ को हटा दो!" यज्ञ को हटवाकर और अनेक प्राणियों के जीवन को बचाकर, उन्होंने संबंध स्पष्ट किया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "आनंद उस समय के राजा थे, सारिपुत्र युवा ब्राह्मण थे और मैं तपस्वी था।"

(पाली टिप्पणी: लेकिन भगवान बुद्ध के निधन के बाद, महान संपादन के संपादकों ने पहली तीन पंक्तियों को टीका में शामिल किया, और 'और डूबे हुए लौकी' से शुरू होने वाली पंक्तियों को एक श्लोक में मिलाकर (उसके बाद) पूरी कहानी को प्रथम पुस्तक में डाल दिया।)

फुटनोट:

(1) प्राचीन सिक्के

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **इलिसा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-78-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 78
इल्लिसा-जातक

"दोनों आँखें सिकोड़ते हैं।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक कंजूस कोषाध्यक्ष के बारे में सुनाई थी। हमें बताया जाता है कि राजगृह नगर के पास ही जगघरी नाम का एक कस्बा था, जहाँ एक कंजूस कोषाध्यक्ष रहता था, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी! घास के तिनके जितना तेल भी वह न तो दान करता था और न ही अपने उपभोग के लिए इस्तेमाल करता था। उसने अपनी सारी संपत्ति न तो अपने परिवार के लिए, न ही ऋषियों और ब्राह्मणों के लिए इस्तेमाल की: वह किसी भूत-प्रेत से ग्रस्त तालाब की तरह अनुपयोगी पड़ी रही। एक दिन गुरु जी भोर में अत्यंत करुणा से भर उठे और जब उन्होंने ब्रह्मांड भर में मोक्ष के योग्य लोगों का अवलोकन किया, तो उन्हें यह अहसास हुआ कि यह कोषाध्यक्ष अपनी पत्नी के साथ लगभग चार सौ मील दूर स्थित मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिए नियत है।

एक दिन पहले, प्रधान कोषाध्यक्ष राजा से मिलने महल गए थे और घर लौटते समय उन्होंने एक देहाती को देखा, जो अंदर से बिल्कुल खाली था, दलिया से भरा केक खा रहा था। यह देखकर उनके मन में भी दलिया खाने की तीव्र इच्छा जाग उठी! लेकिन घर पहुँचकर उन्होंने सोचा, "अगर मैं कहूँ कि मुझे दलिया खाने का मन है, तो बहुत सारे लोग मेरे साथ खाना खाने के लिए इकट्ठा हो जाएँगे; और इसका मतलब होगा कि मेरा सारा चावल, घी और चीनी खत्म हो जाएगी। मुझे किसी से एक शब्द भी नहीं कहना चाहिए।" इसलिए वे अपनी इस तीव्र इच्छा से जूझते हुए इधर-उधर भटकते रहे। जैसे-जैसे घंटे बीतते गए, उनका रंग पीला पड़ता गया और उनके दुबले-पतले शरीर पर नसें उभरने लगीं। अंत में और सहन न कर पाने पर वे अपने कमरे में गए और बिस्तर को गले लगाकर लेट गए। लेकिन फिर भी उन्होंने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं उनका सारा धन बर्बाद न हो जाए! फिर उसकी पत्नी उसके पास आई और उसकी पीठ सहलाते हुए बोली: "क्या बात है, मेरे पति?"

“कुछ नहीं,” उसने कहा। “शायद राजा आपसे नाराज़ हैं?” “नहीं, ऐसा नहीं है।” “क्या आपके बच्चों या नौकरों ने आपको परेशान करने के लिए कुछ किया है?” “ऐसा भी कुछ नहीं।” “तो फिर, क्या आपकी कोई इच्छा है?” लेकिन फिर भी वह एक शब्द भी नहीं बोला, क्योंकि उसे यह बेतुका डर था कि कहीं उसकी सारी संपत्ति बर्बाद न हो जाए; वह चुपचाप अपने बिस्तर पर लेटा रहा। “बोलो पतिदेव,” पत्नी ने कहा; “बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है।” “हाँ,” उसने घबराकर कहा, “मेरी एक इच्छा है।” “और वह क्या है, मेरे पतिदेव?” “मुझे भरवां केक खाने को चाहिए!” “अब पहले क्यों नहीं बताया? आप काफी अमीर हैं! मैं पूरे जगघरी कस्बे के लिए काफी केक बना दूँगी।” “उनकी चिंता क्यों? उन्हें अपना पेट भरने के लिए काम करना पड़ता है।” “तो फिर, मैं सिर्फ अपनी गली के लिए ही बनाऊँगा।” “आप कितने अमीर हैं!” “तो फिर, मैं सिर्फ अपने घर के लिए ही बनाऊँगा।” "तुम तो बहुत खर्चीली हो!" "बहुत खूब, मैं सिर्फ बच्चों के लिए ही खाना बनाऊंगी।" "उनकी चिंता क्यों?" "तो फिर, मैं सिर्फ हम दोनों के लिए ही खाना बनाऊंगी।" "तुम्हें इसमें दखल क्यों देना चाहिए?" "तो फिर, मैं सिर्फ तुम्हारे लिए ही खाना बनाऊंगी," पत्नी ने कहा।

“धीरे से,” प्रधान कोषाध्यक्ष ने कहा; “इस जगह पर खाना पकाने के संकेतों पर बहुत से लोग नज़र रख रहे हैं। टूटे हुए चावल चुन लो, साबुत चावल को ध्यान से छोड़ दो, और एक अंगीठी, खाना पकाने के बर्तन, थोड़ा सा दूध, घी, शहद और गुड़ ले लो; फिर घर की सातवीं मंजिल पर जाओ और वहाँ खाना पकाओ। मैं वहाँ अकेले और बिना किसी बाधा के बैठकर भोजन करूँगा।”

पति की इच्छा का पालन करते हुए, पत्नी ने सभी आवश्यक सामान ऊपर भिजवाए, स्वयं भी ऊपर तक चढ़ी, नौकरों को विदा किया और कोषाध्यक्ष को आने का संदेश भेजा। कोषाध्यक्ष ऊपर चढ़ते गए, एक-एक करके सभी दरवाजे बंद करते गए और कुंडी लगाते गए, अंत में वे सातवीं मंजिल पर पहुँचे, जहाँ का दरवाजा भी उन्होंने कसकर बंद कर दिया। फिर वे बैठ गए। पत्नी ने अंगीठी में आग जलाई, अपना बर्तन रखा और केक पकाने लगी।

अब सुबह तड़के, गुरु ने महान भिक्षु मोग्गल्याना से कहा, "मोग्गल्याना, राजगृह नगर के पास जगघेरी कस्बे में रहने वाला यह कंजूस करोड़पति स्वयं केक खाना चाहता है, और दूसरों को पता चलने से इतना डरता है कि उसने अपने लिए केक सातवीं मंजिल पर बनवाए हैं। तुम वहाँ जाओ; उस व्यक्ति को आत्म-त्याग का मार्ग दिखाओ, और दिव्य शक्ति से पति-पत्नी, केक, दूध, घी (स्पष्ट मक्खन) और सब कुछ लेकर यहाँ जेतवन मठ में आ जाओ। आज मैं और पाँच सौ भिक्षु घर पर ही रहेंगे, और मैं उनके लिए केक बनाऊँगा और उन्हें भोजन कराऊँगा।"

गुरु के आदेश का पालन करते हुए, वरिष्ठ भिक्षु अलौकिक शक्ति से जगघेरी नगर पहुँचे और अपने वस्त्रों में सजे-धजे, रत्नजड़ित मूर्ति की तरह चमकते हुए, कक्ष की खिड़की के सामने हवा में विश्राम करने लगे। वरिष्ठ भिक्षु के इस अप्रत्याशित दृश्य को देखकर प्रधान कोषाध्यक्ष भय से काँप उठे। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं ऐसे आगंतुकों से बचने के लिए ही यहाँ चढ़ा था: और अब उनमें से एक खिड़की पर खड़ा है!" और जो बात उन्हें समझनी ही थी, उसे न समझ पाने के कारण वे आग में फेंके गए चीनी-नमक की तरह क्रोध से भड़क उठे और बोले—"हे ऋषि, हवा में खड़े रहने से आपको क्या मिलेगा? आप चाहे हवा में इधर-उधर चक्कर लगाएँ, फिर भी आपको कुछ नहीं मिलेगा।"

बड़े भिक्षु हवा में अपनी जगह पर इधर-उधर टहलने लगे! कोषाध्यक्ष ने कहा, "इधर-उधर टहलने से क्या मिलेगा? तुम हवा में पालथी मारकर ध्यान कर सकते हो, लेकिन फिर भी कुछ नहीं मिलेगा।" बड़े भिक्षु पालथी मारकर बैठ गए! तब कोषाध्यक्ष ने कहा, "वहाँ बैठने से क्या मिलेगा? तुम आकर खिड़की की चौखट पर खड़े हो सकते हो; लेकिन उससे भी कुछ नहीं मिलेगा!" बड़े भिक्षु खिड़की की चौखट पर खड़े हो गए। कोषाध्यक्ष ने कहा, "खिड़की की चौखट पर खड़े होने से क्या मिलेगा? तुम धुआँ निकाल सकते हो, फिर भी कुछ नहीं मिलेगा!" तब बड़े भिक्षु ने इतना धुआँ निकाला कि पूरा महल धुएँ से भर गया। कोषाध्यक्ष की आँखों में सुई चुभने जैसा दर्द होने लगा; और अंत में अपने घर में आग लगने के डर से उसने यह कहने से खुद को रोक लिया—"अगर तुम जलकर राख भी हो जाओगे, तो भी कुछ नहीं मिलेगा।" उसने मन ही मन सोचा, "ये बुजुर्ग भिक्षु तो बड़े जिद्दी हैं! खाली हाथ जाने को तैयार ही नहीं! मुझे इन्हें कम से कम एक रोटी तो देनी ही पड़ेगी।" इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा, "मेरी प्यारी, एक छोटी सी रोटी बनाओ और उस ऋषि को दे दो ताकि वो चले जाएं।"

तो उसने एक बर्तन में थोड़ा सा आटा गूंथा। लेकिन आटा फूलता चला गया और इतना फूल गया कि पूरा बर्तन भर गया, और एक बड़ा सा केक बन गया! "तुमने कितना सारा आटा इस्तेमाल किया होगा!" कोषाध्यक्ष ने यह देखकर कहा। फिर उसने चम्मच के सिरे से थोड़ा सा आटा लिया और उसे पकाने के लिए ओवन में रख दिया। लेकिन आटे का वह छोटा सा टुकड़ा पहले वाले से भी बड़ा हो गया; और एक के बाद एक, आटे का हर टुकड़ा उतना ही बड़ा होता चला गया! तब वह निराश हो गया और अपनी पत्नी से बोला, "प्यारी, तुम उसे एक केक दे दो।" लेकिन जैसे ही उसने टोकरी से एक केक निकाला, बाकी सारे केक उससे चिपक गए। तो वह अपने पति से चिल्लाकर बोली कि सारे केक आपस में चिपक गए हैं और वह उन्हें अलग नहीं कर पा रही है।

"ओह, मैं इन्हें जल्दी ही अलग कर दूंगा," उसने कहा, लेकिन पाया कि वह ऐसा नहीं कर सकता!

फिर पति-पत्नी दोनों ने कोने में रखे केक के ढेर को पकड़ लिया और उन्हें अलग करने की कोशिश की। लेकिन लाख कोशिश करने पर भी, वे दोनों मिलकर भी उतना ही प्रभाव नहीं डाल पाए जितना अकेले-अकेले ढेर पर डाल रहे थे। अब जब कोषाध्यक्ष केक को खींच रहा था, तो उसे पसीना आने लगा और उसकी लालसा समाप्त हो गई। तब उसने अपनी पत्नी से कहा, "मुझे केक नहीं चाहिए; इन्हें टोकरी समेत इस तपस्वी को दे दो।" और वह टोकरी हाथ में लिए हुए उस वरिष्ठ भिक्षु के पास गई। तब वरिष्ठ भिक्षु ने दंपति को सत्य का उपदेश दिया और त्रिरत्न (तीन रत्नों) (1. बुद्ध, 2. धम्म (निर्वाण का मार्ग) और 3. संघ (पवित्र व्यवस्था)) की श्रेष्ठता का बखान किया। और यह सिखाते हुए कि दान ही सच्चा बलिदान है, उन्होंने दान और अन्य अच्छे कार्यों के फलों को आकाश में पूर्णिमा के चंद्रमा के समान चमकाया। बुजुर्ग भिक्षु के शब्दों से प्रभावित होकर कोषाध्यक्ष ने कहा, "महोदय, यहाँ आइए और इस सोफे पर बैठकर अपने केक खाइए।"

“महा कोषाध्यक्ष महोदय,” वरिष्ठ भिक्षु ने कहा, “सर्वज्ञानी बुद्ध अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ मठ में रोटी के भोज की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप अपनी पत्नी और रोटी साथ लेकर आएँ और हम गुरु के पास चलें।” “पर, महोदय, गुरु इस समय कहाँ हैं?” “पचास मील (4.23 किमी) दूर, जेतवन के मठ में।” “महोदय, हम इतनी दूर कैसे जाएँगे, बिना रास्ते में अधिक समय बर्बाद किए?” “महा कोषाध्यक्ष महोदय, यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं अपनी दिव्य शक्तियों से आपको वहाँ पहुँचा

दूँगा। आपके घर की सीढ़ी का शीर्ष भाग वहीं रहेगा, लेकिन निचला भाग जेतवन मठ के मुख्य द्वार पर होगा। इस प्रकार मैं आपको नीचे जाने में लगने वाले समय में ही गुरु के पास पहुँचा दूँगा।" "ठीक है, महोदय," कोषाध्यक्ष ने कहा।

तब वरिष्ठ भिक्षु ने सीढ़ी के शीर्ष को वहीं रोके रखते हुए आदेश दिया, "सीढ़ी का निचला सिरा जेतवन मठ के मुख्य द्वार पर हो।" और ऐसा ही हुआ! इस प्रकार वरिष्ठ भिक्षु ने कोषाध्यक्ष और उनकी पत्नी को इतनी जल्दी जेतवन मठ पहुँचा दिया कि वे सीढ़ियों से नीचे उतरने में भी देर कर सकते थे।

फिर पति-पत्नी गुरु के सामने आए और कहा कि भोजन का समय हो गया है। गुरु भोजन कक्ष में गए और अपने लिए तैयार किए गए बुद्ध आसन पर बैठ गए, उनके चारों ओर भिक्षु समुदाय एकत्रित था। तब प्रधान कोषाध्यक्ष ने बुद्ध की प्रतिमा वाले भिक्षु समुदाय के हाथों पर दान जल डाला, जबकि उनकी पत्नी ने भगवान बुद्ध के भिक्षापात्र में एक रोटी रखी। उन्होंने अपने जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त रोटी ली, जैसा कि पाँच सौ भिक्षुओं ने भी किया। इसके बाद कोषाध्यक्ष ने घी, शहद और गुड़ मिला हुआ दूध सबको दिया; और गुरु और भिक्षु समुदाय ने अपना भोजन समाप्त किया। अंत में कोषाध्यक्ष और उनकी पत्नी ने तृप्त भोजन किया, लेकिन फिर भी रोटियाँ कम नहीं हो रही थीं। यहाँ तक कि जब सभी भिक्षुओं और मठ के सभी भिक्षुओं ने रोटी खा ली, तब भी रोटी खत्म होने का कोई आसार नहीं था। तब उन्होंने गुरु से कहा, "महोदय, रोटियों की आपूर्ति कम नहीं हो रही है।"

"फिर उन्हें मठ के बड़े द्वार के पास फेंक दो।"

इसलिए वे उन्हें प्रवेश द्वार से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गुफा में फेंक देते हैं; और आज भी उस गुफा के अंतिम छोर पर 'द क्रॉक-केक' नामक एक स्थान दिखाया जाता है।

प्रधान कोषाध्यक्ष और उनकी पत्नी भगवान बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुए, जिन्होंने धन्यवाद का उत्तर दिया। धन्यवाद के बाद, दोनों ने मोक्ष के प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति कर निर्वाण प्राप्त किया। फिर, गुरु से विदा लेकर, वे दोनों विशाल द्वार की सीढ़ियों से ऊपर चढ़े और अपने घर में पुनः प्रवेश कर गए। इसके बाद, प्रधान कोषाध्यक्ष ने बुद्ध द्वारा सिखाई गई धर्म की शिक्षाओं पर अस्सी करोड़ (10 मिलियन) रुपये लुटा दिए।

अगले दिन, श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद, पूर्ण बुद्ध जेतवन मठ लौटकर, भिक्षुओं को बुद्ध-प्रवचन प्रदान करते हुए सुगंधित कक्ष के एकांतवास में चले गए। संध्याकाल में, भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और बोले, "वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना की शक्ति कितनी महान है! क्षण भर में उन्होंने एक कंजूस को दान की ओर परिवर्तित किया, उसे रोटी सहित जेतवन मठ में लाए, उसे पियास्टर के समक्ष स्थापित किया और उसे मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त कराया। वरिष्ठ भिक्षु की शक्ति कितनी महान है!" जब वे इस प्रकार भिक्षु के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे, तभी गुरु ने प्रवेश किया और पूछने पर उन्हें उनकी चर्चा का विषय बताया गया। उन्होंने कहा, "भाइयों, जो किसी गृहस्थी का धर्म परिवर्तन करते हैं, उन्हें उस गृहस्थी के पास बिना उसे कष्ट पहुँचाए उसी प्रकार जाना चाहिए जैसे मधुमक्खी फूल से रस चूसती है; इसी प्रकार उन्हें बुद्ध की श्रेष्ठता का वर्णन करने के लिए उनके पास जाना चाहिए।" और वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना की प्रशंसा में उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:-

मधुमक्खियों की तरह, जो किसी भी फूल की सुगंध या रंग को नुकसान नहीं पहुंचातीं।
लेकिन, शहद से लदी हुई, उड़ जाती है।
इसलिए, ऋषि, अपने गाँव के भीतर अपना रास्ता तय करो (*1)।
फिर, वरिष्ठ भिक्षु की अच्छाई को और अधिक उजागर करते हुए, उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि कंजूस कोषाध्यक्ष मोग्गल्याना द्वारा परिवर्तित हुआ है। पहले भी वरिष्ठ भिक्षु ने उसे परिवर्तित किया था और उसे सिखाया था कि कर्म और उनके परिणाम आपस में कैसे जुड़े होते हैं।" ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब इल्लिस नाम का एक कोषाध्यक्ष था, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी और उसमें मनुष्य के सारे दोष थे। वह लंगड़ा, कुबड़ा और भेंगा था; वह धर्मत्यागी और कंजूस था, कभी दूसरों को दान नहीं देता था और न ही स्वयं उसका उपयोग करता था; उसका घर राक्षसों से भरे तालाब जैसा था। फिर भी, सात पीढ़ियों से उसके पूर्वज उदार थे और अपनी सर्वोत्तम संपत्ति दान करते आ रहे थे; लेकिन जब वह कोषाध्यक्ष बना, तो उसने अपने परिवार की परंपराओं को तोड़ दिया। उसने दान-पुण्य स्थल को जला दिया और गरीबों को अपने द्वार से पीट-पीटकर भगा दिया और अपनी संपत्ति संचित कर ली।

एक दिन जब वह राजा की सेवा करके लौट रहा था, तो उसने एक देहाती को देखा, जो दूर यात्रा करके थका हुआ था, एक बेंच पर बैठा था और एक घड़े में रखी बदबूदार शराब से मग भरकर पी रहा था, साथ में बदबूदार सूखी मछली का एक टुकड़ा भी था। यह दृश्य देखकर कोषाध्यक्ष को भी शराब पीने की इच्छा हुई, लेकिन उसने मन ही मन सोचा, "अगर मैं पीऊंगा, तो दूसरे भी मेरे साथ पीना चाहेंगे, और इससे बहुत खर्चा होगा।" इसलिए वह अपनी प्यास को दबाए इधर-उधर घूमता रहा। लेकिन समय बीतने के साथ, वह ऐसा नहीं कर सका; उसका चेहरा पुराने रुई की तरह पीला पड़ गया; और उसके दुबले-पतले शरीर पर नसें उभरने लगीं। एक दिन, अपने कमरे में लौटकर वह बिस्तर पर लेट गया। उसकी पत्नी उसके पास आई और उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा, "महाराज, क्या हुआ है?"

(आगे की कहानी पिछली कहानी के शब्दों में ही बताई जाएगी।) लेकिन, जब उसने कहा, "तो मैं सिर्फ आपके लिए ही शराब बनाऊंगी," तो उसने कहा, "अगर तुम घर में शराब बनाओगी, तो बहुत से लोग पहरा देंगे; और शराब मंगवाकर यहाँ बैठकर पीना तो नामुमकिन है।" इसलिए उसने एक पैसा निकाला और एक गुलाम को शराबखाने से शराब का एक घड़ा लाने भेजा। जब गुलाम वापस आया, तो उसने उसे कस्बे से नदी किनारे भेजा और घड़ा एक सुनसान झाड़ी में रख दिया। "अब जाओ!" उसने कहा और गुलाम को कुछ दूरी पर इंतज़ार करवाया, जबकि उसने अपना प्याला भरा और सो गया।

कोषाध्यक्ष के पिता, जिन्होंने अपने दान और अन्य अच्छे कार्यों के कारण देवलोक में सक्का (इंद्र) के रूप में पुनर्जन्म लिया था, उस समय यह सोच रहे थे कि क्या उनकी उदारता अभी भी बरकरार है या नहीं, और उन्हें अपनी उदारता में कमी और अपने पुत्र के व्यवहार का एहसास हुआ। उन्होंने देखा कि उनके पुत्र ने अपने घर की परंपराओं को तोड़ते हुए भिक्षा देने के स्थान को जलाकर राख कर दिया था, गरीबों को अपने द्वार से पीट-पीटकर भगा दिया था, और कैसे अपनी कंजूसी में, दूसरों के साथ कुछ साझा करने से डरते हुए, वह अकेले ही एक झाड़ी में जाकर पानी पी रहा था। यह देखकर सक्का (इंद्र) रो पड़े, "मैं उसके पास जाऊंगा और उसे समझाऊंगा कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है; मैं उसका परिवर्तन करूंगा, और उसे दानशील बनाऊंगा और देवलोक में पुनर्जन्म के योग्य बनाऊंगा।" अतः वह पृथ्वी पर अवतरित हुआ और एक बार फिर मनुष्यों के मार्ग पर चलने लगा, कोषाध्यक्ष इल्लिसा का रूप धारण कर लिया, जिसमें इल्लिसा की लंगड़ाहट, कुबड़ापन और भेंगापन शामिल था। इसी वेश में वह राजगृह नगर में प्रवेश कर महल के द्वार तक पहुँचा और राजा को अपने आगमन की सूचना देने का अनुरोध किया। राजा ने कहा, "उसे अंदर आने दो।" वह अंदर आया और महाराज के समक्ष आदरपूर्वक खड़ा हो गया।

“हे महा कोषाध्यक्ष, आप इस असामान्य समय पर यहाँ क्यों आए हैं?” राजा ने पूछा। “महाराज, मैं इसलिए आया हूँ क्योंकि मेरे महल में अस्सी करोड़ (10 मिलियन) का खजाना है। कृपया इसे राजकोष में भरने के लिए ले जाने की व्यवस्था करें।” “नहीं, महाराज; मेरे महल में इससे भी अधिक खजाना है।” “यदि महाराज, आप इसे नहीं लेंगे, तो मैं इसे जिसे चाहूँ उसे दे दूँगा।” “ज़रूर दीजिए, कोषाध्यक्ष,” राजा ने कहा। “ठीक है, महाराज,” नकली इल्लिसा ने कहा और सम्मानपूर्वक कोषाध्यक्ष के घर की ओर चल पड़ा। सभी सेवक उसके चारों ओर जमा हो गए, लेकिन कोई भी यह नहीं पहचान सका कि वह उनका असली स्वामी नहीं है। अंदर प्रवेश करते ही वह दहलीज पर खड़ा हो गया और द्वारपाल को बुलवाया, जिसे उसने आदेश दिया कि यदि कोई उसके जैसा दिखने वाला व्यक्ति प्रकट हो और घर का स्वामी होने का दावा करे, तो उसे लाठियों से बुरी तरह पीटकर बाहर निकाल दिया जाए। फिर, ऊपरी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़कर, वह एक शानदार सोफे पर बैठ गया और इलिसा की पत्नी को बुलवाया। जब वह आई तो उसने मुस्कुराते हुए कहा, "मेरी प्यारी, चलो उदारता दिखाएँ।"

ये शब्द सुनकर पत्नी, बच्चे और नौकर सब सोचने लगे, “बड़े समय से उनका ऐसा स्वभाव नहीं रहा। आज इतने उदार और दयालु होने के लिए उन्होंने ज़रूर शराब पी होगी।” तब उनकी पत्नी ने उनसे कहा, “हे मेरे पति, आप जितना चाहें उतना उदार हो सकते हैं।” उन्होंने कहा, “घोषक को बुलाओ और उससे कहो कि ढोल बजाकर पूरे शहर में यह ऐलान करे कि जिसे भी सोना, चांदी, हीरे, मोती और ऐसी ही चीज़ें चाहिए, वह कोषाध्यक्ष इल्लिस के घर आए।” उनकी पत्नी ने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा था, और जल्द ही टोकरियाँ और बोरे लिए एक बड़ी भीड़ दरवाजे पर जमा हो गई। तब सक्का (इंद्र) ने खजाने के कमरे खुलवाए और पुकार कर कहा, “यह मेरा तुम्हें उपहार है; जो चाहो ले लो और अपने-अपने रास्ते जाओ।” तब भीड़ ने वहाँ जमा धन पर झपट्टा मारा, उसे ज़मीन पर ढेर लगा दिया और अपने साथ लाए थैलों और बर्तनों को भर दिया, और लूट का माल लेकर चले गए। उनमें से एक ग्रामीण ने इल्लिसा के बैलों को उसकी गाड़ी में जोता, उसमें सात बहुमूल्य वस्तुएँ भरीं और शहर से निकलकर मुख्य सड़क पर चल पड़ा। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ा, वह घनी वनस्पति के पास पहुँचा और कोषाध्यक्ष की प्रशंसा में ये शब्द कहे: "हे मेरे स्वामी इल्लिसा, आप सौ वर्ष तक जीवित रहें! आज आपने मेरे लिए जो किया है, उससे मैं बिना कोई काम किए जीवन यापन कर सकूँगा। ये बैल किसके थे? आपके। यह गाड़ी किसकी थी? आपकी। गाड़ी में जो धन है, वह भी आपका ही है। यह सब मुझे किसी माता-पिता ने नहीं दिया; नहीं, यह सब केवल आपसे ही मिला है, मेरे स्वामी।"

ये शब्द सुनकर प्रधान कोषाध्यक्ष भय और कंपकंपी से कांप उठा। उसने मन ही मन कहा, “अरे, ये तो अपनी बातों में मेरा नाम ले रहा है! क्या राजा मेरी संपत्ति जनता में बांट रहा है?” इस विचार मात्र से ही वह झाड़ी से उछल पड़ा और अपने बैलों और गाड़ी को पहचानकर,

बैलों की रस्सी पकड़कर चिल्लाया, “रुको, दोस्त; ये बैल और ये गाड़ी मेरी हैं।” गाड़ी से वह आदमी कूद पड़ा और क्रोधित होकर बोला, “अरे बदमाश! प्रधान कोषाध्यक्ष इलिसा अपनी संपत्ति पूरे शहर में बांट रहा है। तुझे क्या मिल गया?” और वह कोषाध्यक्ष पर झपटा और बिजली की तरह उसकी पीठ पर प्रहार किया और गाड़ी लेकर चला गया। इलिसा कांपते हुए उठा, कीचड़ पोंछा और अपनी गाड़ी के पीछे दौड़कर उसे पकड़ लिया। फिर वह देहाती नीचे उतरा और इलिसा के बाल पकड़कर उसे झुका दिया और कुछ देर तक उसके सिर पर घूंसे मारता रहा; फिर उसने उसका गला पकड़कर उसे उसी रास्ते वापस फेंक दिया जहाँ से वह आया था, और गाड़ी चलाकर चला गया। इस क्रूर व्यवहार से आहत होकर इलिसा जल्दी से घर की ओर चल पड़ा। वहाँ, लोगों को खजाना ले जाते देख, वह एक आदमी से दूसरे आदमी पर हाथ उठाने लगा और चिल्लाने लगा, "अरे! यह क्या है? क्या राजा मुझे लूट रहा है?" और जिस भी आदमी पर उसने हाथ उठाया, उसने उसे गिरा दिया। चोटिल और दर्द से कराहते हुए, उसने अपने घर में शरण लेने की कोशिश की, तभी द्वारपालों ने उसे रोकते हुए कहा, "अरे, बदमाश! कहाँ जा रहे हो?" पहले उसे बांसों से बुरी तरह पीटने के बाद, उन्होंने अपने स्वामी का गला पकड़कर उसे बाहर फेंक दिया। "मुझे न्याय दिलाने वाला राजा के सिवा कोई नहीं बचा है," इलिसा कराहते हुए बोला और महल की ओर चल पड़ा। "हे महाराज, आपने मुझे इस तरह क्यों लूटा?" वह रोते हुए बोला।

“नहीं, यह मैं नहीं था, महाराज कोषाध्यक्ष,” राजा ने कहा। “क्या आप स्वयं आकर यह नहीं बताया था कि यदि मैं आपकी संपत्ति स्वीकार नहीं करूंगा तो आप उसे दान कर देंगे? और क्या आपने फिर संदेशवाहक को भेजकर अपनी धमकी को अंजाम नहीं दिया?”
“हे महाराज, वास्तव में यह मैं नहीं था जो इस काम के लिए आपके पास आया था। महाराज, आप जानते हैं कि मैं कितना निकट और करीबी हूं, और मैं कभी भी तेल की एक बूंद तक दान नहीं करता, जिसे घास का एक तिनका भी सोख सकता है। महाराज, कृपया उस व्यक्ति को बुलवाएं जिसने मेरी संपत्ति दान की है, और उससे इस मामले में पूछताछ करें।”

तब राजा ने सक्का को बुलवाया। वे दोनों इतने एक जैसे दिखते थे कि न तो राजा और न ही उसका दरबार यह बता सका कि असली प्रधान कोषाध्यक्ष कौन है। कंजूस इल्लिसा ने कहा, "महाराज, यह कोषाध्यक्ष कौन है और क्या है? मैं ही कोषाध्यक्ष हूँ।"

“सच कहूँ तो, मैं नहीं कह सकता कि असली इल्लिस कौन है,” राजा ने कहा। “क्या कोई है जो निश्चित रूप से उनमें अंतर बता सके?”
“जी महाराज, मेरी पत्नी।” तो पत्नी को बुलवाया गया और पूछा गया कि दोनों में से उसका पति कौन है। उसने कहा कि सक्का (इंद्र) उसका पति है और वह उसके पास चली गई। फिर बारी-बारी से इल्लिस के बच्चों और नौकरों को लाया गया और उनसे भी यही सवाल पूछा गया; और सभी ने एकमत से कहा कि सक्का ही असली महाकोषाध्यक्ष है। तभी इल्लिस के मन में अचानक यह बात आई कि उसके सिर पर बालों के बीच एक मस्सा है, जिसके बारे में केवल उसके नाई को ही पता था। इसलिए, अंतिम उपाय के रूप में, उसने अपने नाई को बुलवाने का अनुरोध किया ताकि वह उसकी पहचान कर सके। उस समय बोधिसत्व ही उसका नाई था। तदनुसार, नाई को बुलवाया गया और उससे पूछा गया कि क्या वह असली और नकली इल्लिस में अंतर बता सकता है। “महाराज, मैं बता सकता हूँ,” उसने कहा, “यदि मैं उनके सिर देख लूँ।” “तो फिर इन दोनों के सिर देखो,” राजा ने कहा। उसी क्षण इंद्र ने अपने सिर पर एक मस्सा उगा लिया! दोनों की जांच करने के बाद, बोधिसत्व ने बताया कि चूंकि दोनों के सिर पर एक जैसे मस्से थे, इसलिए वे यह नहीं कह सकते कि असली पुरुष कौन है। और इसके साथ ही उन्होंने यह श्लोक कहा:-

दोनों की आंखें तिरछी हैं; दोनों रुक-रुक कर चलते हैं; दोनों ही कुबड़ वाले हैं;
और दोनों के शरीर पर एक जैसे मस्से हैं!
मैं यह नहीं बता सकता कि इन दोनों में से असली इलिसा कौन है।
अपनी अंतिम आशा को भी इस प्रकार विफल होते देख, महाकोषाध्यक्ष क्षक हो उठे; अपने प्रिय धन के खोने का उनका दुख इतना असहनीय था कि वे बेहोश होकर गिर पड़े। तभी इंद्र ने अपनी दिव्य शक्तियों का प्रयोग किया और वायु में उठकर राजा को इन शब्दों में संबोधित किया: "हे राजा, मैं इल्लिस नहीं, बल्कि इंद्र हूँ।" तब आसपास के लोगों ने इल्लिस का चेहरा पोंछा और उन पर जल छिड़का। संभलकर वे उठे और देवों के राजा इंद्र के समक्ष प्रणाम किया। तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "इलिसा, धन मेरा था, तुम्हारा नहीं; मैं तुम्हारा पिता हूँ और तुम मेरे पुत्र हो। अपने जीवनकाल में मैं गरीबों के प्रति उदार था और भलाई करने में प्रसन्न रहता था; इसी कारण मैं इस उच्च पद पर आसीन होकर सक्का (इंद्र) बना। परन्तु तुम मेरे पदचिह्नों पर न चलकर कंजूस और कंजूस हो गए हो; तुमने मेरे भिक्षागृह को जलाकर राख कर दिया, गरीबों को द्वार से भगा दिया और अपना धन संचित कर लिया। न तो तुम्हें स्वयं इसका आनंद मिलता है और न ही किसी अन्य मनुष्य को; परन्तु तुम्हारा भंडार राक्षसों से भरे तालाब के समान हो गया है, जहाँ से कोई भी अपनी प्यास नहीं बुझा सकता। यद्यपि, यदि तुम मेरे भिक्षागृह का पुनर्निर्माण करोगे और गरीबों के प्रति उदारता दिखाओगे, तो यह तुम्हारे लिए पुण्य का फल होगा। परन्तु, यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारा सब कुछ छीन लूँगा और इंद्र के वज्र से तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा, और तुम मर जाओगे।"

इस खतरे को सुनकर इल्लिस अपने जीवन के भय से कांप उठा और बोला, "अब से मैं उदार बनूंगा।" इंद्र ने उसका वचन स्वीकार कर लिया और आकाश में बैठे-बैठे ही अपने पुत्र को ईश्वरीय आज्ञाओं का ज्ञान दिया और उसे सत्य का उपदेश देकर अपने निवास स्थान

पर लौट गया। इल्लिस ने दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में लगन दिखाई और इस प्रकार स्वर्ग में अपने पुनर्जन्म को सुनिश्चित किया।

“भाइयों,” गुरु ने कहा, “यह पहली बार नहीं है कि मोग्गल्याना ने कंजूस कोषाध्यक्ष का धर्म परिवर्तन कराया है; पहले भी उसी व्यक्ति का धर्म परिवर्तन उनके द्वारा हुआ था।” अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने संबंध समझाया और जन्म का परिचय देते हुए कहा, “यह कंजूस कोषाध्यक्ष उन दिनों के इल्लिस थे, मोग्गल्याना देवों के राजा सक्का (इंद्र) थे, आनंद राजा थे और मैं स्वयं नाई था।”

फुटनोट:

(1) यह धम्मपद का श्लोक 49 है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खरसार-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-79-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 79
खरस्सारा-जातक

"उसने लुटेरों को समय दिया।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक मंत्री के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि उसने राजा का विश्वास जीत लिया और सीमावर्ती गाँव से राजकोषीय राजस्व इकट्ठा करने के बाद, लुटेरों के एक गिरोह से गुप्त रूप से यह समझौता किया कि वह उन्हें जंगल में ले जाएगा और गाँव को लुटेरों के लिए लूटने के लिए छोड़ देगा, इस शर्त पर कि वे उसे लूटे गए माल का आधा हिस्सा दे देंगे। तदनुसार, भोर होते ही जब गाँव असुरक्षित हो गया, तो लुटेरे आ गए, उन्होंने मवेशियों को मार डाला और खा लिया, गाँव को लूट लिया और उसके शाम को अपने साथियों के साथ लौटने से पहले ही अपना सारा माल लेकर भाग गए। लेकिन बहुत जल्द ही उसकी बेईमानी राजा के कानों तक पहुँच गई। राजा ने उसे बुलवाया और, क्योंकि उसका अपराध स्पष्ट था, उसे पदच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर एक अन्य मुखिया नियुक्त किया गया। तब राजा जेतवन मठ में गुरु के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई। भगवान बुद्ध ने कहा, "महाराज, इस व्यक्ति ने अब भी वही स्वभाव दिखाया है जो उसने अतीत में बताया था।" फिर राजा के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, उन्होंने एक मंत्री को सीमावर्ती गाँव का मुखिया नियुक्त किया; और ठीक वही हुआ जो ऊपर वर्णित है। उन दिनों बोधिसत्व व्यापार के सिलसिले में सीमावर्ती गाँवों का दौरा कर रहे थे और उसी गाँव में रहने लगे थे। जब मुखिया शाम को ढोल बजाते हुए अपने आदमियों के साथ वापस लौट रहे थे, तो उन्होंने कहा, "यह बदमाश, जिसने चुपके से लुटेरों को गाँव लूटने के लिए उकसाया था, उनके जंगल में वापस चले जाने का इंतज़ार करता रहा, और अब ढोल बजाते हुए वापस आ गया है, मानो उसे कुछ भी गलत होने का पता ही न हो।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

उसने लुटेरों को गाड़ी चलाने और हत्या करने का समय दे दिया।
मवेशियों को मारो, घरों को जला दो, लोगों को पकड़ लो;
और फिर ढोल की थाप के साथ, वह घर की ओर चल पड़ा।
अब वह पुत्र नहीं रहा, क्योंकि ऐसा पुत्र मर चुका है (*1)।
इस प्रकार बोधिसत्व ने मुखिया की निंदा की। कुछ ही समय बाद, इस दुष्टता का पता चल गया और राजा ने उसे उसके कर्मों के अनुसार दंडित किया।

“महाराज, यह पहली बार नहीं है कि उसका स्वभाव ऐसा है; बीते दिनों में भी वह ऐसा ही था।” अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध स्पष्ट किया और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, “आज का मुखिया उन दिनों का भी मुखिया था, और मैं स्वयं वह बुद्धिमान और नेक व्यक्ति हूँ जिसने यह श्लोक पढ़ा है।”

फुटनोट:

(1) इसका तात्पर्य ऐसे पुत्र से है जो सभी शालीनता और शर्म से इतना विमुख हो गया है कि वह पुत्र नहीं रह जाता, और उसकी माँ पुत्रहीन है जबकि उसका पुत्र अभी भी जीवित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भीमसेन-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-80-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 80
भीमसेन-जातक

“तुमने अपनी कुशलता का बखान किया।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में भिक्षुओं के एक घमंडी साथी के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, वह हर उम्र के भिक्षुओं को अपने चारों ओर इकट्ठा करता था और अपने कुलीन वंश के बारे में झूठे दावे करके सबको भ्रमित करता था। वह कहता था, “अरे, भिक्षुओं, मेरे जैसा कुलीन परिवार कोई नहीं, कोई असाधारण वंश नहीं। मैं सर्वोच्च राजसी वंश का वंशज हूँ; जन्म या पैतृक संपत्ति में कोई मेरे बराबर नहीं; हमारे पास सोने, चांदी और अन्य खजानों की कोई कमी नहीं है। हमारे दास और नौकर भी चावल और मांस का दलिया खाते हैं, और बनारस के उत्तम वस्त्र पहनते हैं, और बनारस के उत्तम इत्र लगाते हैं;—जबकि मैं भिक्षु संघ में शामिल होने के कारण इस घटिया भोजन और घटिया वस्त्र से ही संतोष करता हूँ।”

लेकिन एक अन्य भिक्षु ने अपने परिवार की संपत्ति की जाँच करने के बाद, भिक्षुओं के सामने इस दिखावे की खामोशी उजागर कर दी। तब भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और इस बात पर चर्चा शुरू हुई कि कैसे वह भिक्षु, सांसारिक चीजों को त्यागकर केवल असाधारण सत्य का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा के बावजूद, अपने झूठे दावों से भिक्षुओं को गुमराह कर रहा था। जब उस भिक्षु के पाप पर चर्चा हो रही थी, तभी गुरुजी प्रवेश कर गए और उन्होंने उनका विषय पूछा। भिक्षुओं ने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि वह शेखी बघार रहा है; पहले भी वह शेखी बघारता और लोगों को गुमराह करता रहा है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तर देश के एक बाजार नगर में ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में विश्वप्रसिद्ध गुरु के अधीन अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने तीनों वेदों और ज्ञान की अठारह शाखाओं का ज्ञान प्राप्त किया और अपनी शिक्षा पूर्ण की। वे लघु धनुर्धर के नाम से प्रसिद्ध हुए। तक्षशिला छोड़कर वे व्यावहारिक अनुभव की खोज में आंध्र प्रदेश आए। इस जन्म में बोधिसत्व कुछ हद तक टेढ़े-मेढ़े बौने थे, और उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मैं किसी राजा के समक्ष प्रकट होऊँ, तो वह अवश्य पूछेगा कि मुझ जैसे बौने का क्या लाभ; क्यों न मैं किसी लंबे-चौड़े व्यक्ति को अपना सहायक बना लूँ और उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व की आड़ में अपनी जीविका कमाऊँ?" अतः वे बुनकरों के क्षेत्र में गए और वहाँ भीमसेन नामक एक विशालकाय बुनकर को देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनका नाम पूछा। “मेरा नाम भीमसेन (*1) है,” बुनकर ने कहा। “आप जैसे तगड़े और तगड़े आदमी को इतना घटिया काम करने की क्या ज़रूरत है?” “क्योंकि मेरे पास गुज़ारा करने के लिए और कोई ज़रिया नहीं है।” “अब और बुनाई मत करो, मित्र। पूरे महाद्वीप में मेरे जैसा धनुर्धर कोई नहीं है; लेकिन राजा तो मुझे बौना समझकर तुच्छ समझेंगे। इसलिए, मित्र, तुम्हें ही धनुष चलाने में अपनी कुशलता का बखान करना होगा, और राजा तुम्हें वेतन देकर तुम्हारा काम नियमित रूप से करवाएगा। इस बीच मैं तुम्हारे पीछे रहकर तुम्हारे कर्तव्यों का पालन करूँगा, और इस तरह तुम्हारी छत्रछाया में रहकर अपनी जीविका कमाऊँगा। इस तरह हम दोनों तरक्की करेंगे और समृद्ध होंगे। बस मेरी बात मानो।” “बस, तुमसे काम हो गया,” दूसरे ने कहा।

तदनुसार, बोधिसत्व बुनकर को अपने साथ बनारस ले गए, उसे धनुष के छोटे सेवक के रूप में रखते हुए, और दूसरे को आगे रखते हुए; और जब वे महल के द्वार पर पहुँचे, तो उन्होंने उसे राजा को अपने आने की सूचना भेजने के लिए कहा। राजमहल में बुलाए जाने पर, दोनों एक साथ प्रवेश कर राजा के सामने प्रणाम करने के लिए खड़े हो गए। राजा ने पूछा, "आप यहाँ क्यों आए हैं?" भीमसेन ने कहा, "मैं एक महान धनुर्धर हूँ; पूरे महाद्वीप में मेरे जैसा कोई धनुर्धर नहीं है।" "मेरी सेवा में आने के लिए आप क्या वेतन चाहते हैं?" "महाराज, एक हजार सिक्के प्रति पखवाड़ा।" "आपका यह सेवक कौन है?" "महाराज, यह मेरा छोटा सेवक है।" "ठीक है, मेरी सेवा में आ जाइए।"

इस प्रकार भीमसेन ने राजा की सेवा में प्रवेश किया; परन्तु उनके सारे कार्य बोधिसत्व ही करते थे। उन दिनों काशी के एक जंगल में एक बाघ था जिसने व्यस्त सड़क को अवरुद्ध कर रखा था और अनेकों को खा चुका था। जब यह बात राजा को पता चली, तो उन्होंने भीमसेन को बुलवाया और पूछा कि क्या वे बाघ को पकड़ सकते हैं।

“हे महाराज, अगर मैं बाघ को नहीं पकड़ सकता, तो मैं खुद को धनुर्धर कैसे कह सकता हूँ?” राजा ने उसे उदारतापूर्वक दान दिया और काम पर भेज दिया। और भीमसेन यह खबर लेकर बोधिसत्व के घर लौट आया। “ठीक है,” बोधिसत्व ने कहा; “जाओ मेरे मित्र।” “पर तुम भी तो नहीं आ रहे?” “नहीं, मैं नहीं जाऊँगा; पर मैं तुम्हें एक छोटी सी योजना बताता हूँ।” “ज़रूर बताओगे मेरे मित्र।” "अचानक, आप अकेले बाघ की मांद के पास जाने की जल्दबाजी न करें। आप कुछ ग्रामीणों को इकट्ठा करें और उन्हें एक-दो हजार धनुषों के साथ उस स्थान पर भेजें। जब आपको पता चले कि बाघ उत्तेजित हो गया है, तो आप घनी झाड़ियों में घुसकर मुंह के बल लेट जाएं। ग्रामीण बाघ को पीट-पीटकर मार डालेंगे; और जैसे ही वह मर जाए, आप अपने दांतों से एक लता तोड़कर मृत बाघ के पास जाएं, लता को अपने हाथ में घसीटते हुए। उस जानवर के मृत शरीर को देखते ही आप चिल्ला उठें - 'बाघ को किसने मारा? मैं तो उसे बैल की तरह लता से बांधकर राजा के पास ले जाना चाहता था, और इसी इरादे से लता लेने के लिए घनी झाड़ियों में गया था। लता लेकर वापस आने से पहले मुझे जानना होगा कि बाघ को किसने मारा।' तब ग्रामीण बहुत डर जाएंगे और आपको राजा को उनकी सूचना न देने के लिए भारी रिश्वत देंगे; बाघ को मारने का श्रेय आपको मिलेगा; और राजा भी आपको खूब सारा पैसा देगा।"

“बहुत अच्छा,” भीमसेन ने कहा; और वह बोधिसत्व के बताए अनुसार बाघ को मारने चला गया। इस प्रकार मार्ग को यात्रियों के लिए सुरक्षित बनाकर, वह अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर बनारस लौटा और राजा से कहा, “हे महाराज, मैंने बाघ को मार डाला है; अब वन यात्रियों के लिए सुरक्षित है।” राजा प्रसन्न हुआ और उसने भीमसेन को उपहारों से भर दिया।

एक दिन खबर आई कि एक सड़क पर भैंसों का आतंक है, और राजा ने भीमसेन को उसे मारने के लिए भेजा। बोधिसत्व के निर्देशों का पालन करते हुए, उन्होंने भैंस को उसी तरह मार डाला जैसे बाघ को मारा था, और राजा के पास लौट आए, जिन्होंने उन्हें एक बार फिर बहुत सारा धन दिया। अब वे एक महान स्वामी बन गए थे। अपने नए सम्मानों के नशे में चूर होकर, उन्होंने बोधिसत्व का अपमान किया और उनकी सलाह मानने से इनकार करते हुए कहा, "मैं तुम्हारे बिना भी काम चला सकता हूँ। क्या तुम्हें लगता है कि तुम्हारे सिवा कोई और पुरुष नहीं है?" उन्होंने बोधिसत्व से ये और कई अन्य कठोर बातें कहीं।

कुछ दिनों बाद, एक शत्रु राजा बनारस पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा और उसे घेर लिया। राजा को संदेश भेजकर उसे या तो अपना राज्य सौंपने या युद्ध करने के लिए कहा गया। बनारस के राजा ने भीमसेन को युद्ध के लिए भेजा। भीमसेन ने सैनिक की तरह पूर्ण हथियार धारण किए और कवच से ढके एक हाथी पर सवार हुए। बोधिसत्व, जिन्हें भीमसेन के मारे जाने का गहरा भय था, उन्होंने भी पूर्ण हथियार धारण किए और विनम्रतापूर्वक भीमसेन के पीछे बैठ गए। सेना से घिरे हाथी ने शहर के द्वार से बाहर निकलकर युद्ध के मोर्चे पर पहुँच गया। युद्ध के ढोल की पहली ध्वनि सुनते ही भीमसेन भय से कांपने लगे। बोधिसत्व ने कहा, "अगर तुम अभी गिर गए, तो मारे जाओगे," और तदनुसार उन्होंने भीमसेन के चारों ओर एक रस्सी बाँध दी, जिसे उन्होंने कसकर पकड़ रखा था, ताकि वे हाथी से न गिरें। लेकिन युद्धक्षेत्र का दृश्य भीमसेन के लिए असहनीय हो गया, और मृत्यु का भय इतना प्रबल हो गया कि उसने हाथी की पीठ पर गंदगी फैला दी। बोधिसत्व ने कहा, "अरे, वर्तमान अतीत से मेल नहीं खाता। तब तो तुम योद्धा का रूप धारण करते थे; अब तुम्हारी कुशलता केवल उस हाथी को गंदा करने तक सीमित है जिस पर तुम सवार हो।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

आपने अपनी कुशलता का बखान किया, और आपका बखान बहुत जोर-शोर से था;
 तुमने दुश्मन पर विजय प्राप्त करने की शपथ ली थी!
लेकिन क्या यह उनकी सेना का सामना करने पर सुसंगत रहता है?
 महोदय, क्या आप अपनी भावनाओं को व्यक्त करना चाहते हैं?

जब बोधिसत्व ने ये उपहास समाप्त किए, तो उन्होंने कहा, "पर मेरे मित्र, डरो मत। क्या मैं तुम्हारी रक्षा के लिए यहाँ नहीं हूँ?" फिर उन्होंने भीमसेन को हाथी से उतारा और उन्हें स्नान करके घर जाने को कहा। "और अब आज यश प्राप्त करने का दिन है," बोधिसत्व ने युद्ध घोष करते हुए कहा और युद्ध में कूद पड़े। राजा के शिविर को भेदते हुए, उन्होंने राजा को बाहर निकाला और उन्हें जीवित ही बनारस ले

गए। उनकी कुशलता से प्रसन्न होकर, उनके स्वामी ने उन्हें कई सम्मान दिए, और उस दिन से सारा भारत लघु धनुर्धर ऋषि की प्रसिद्धि से भर गया। उन्होंने भीमसेन को दान दिया और उन्हें उनके घर वापस भेज दिया; जबकि स्वयं उन्होंने दान और सभी अच्छे कार्यों में उत्कृष्टता प्राप्त की, और अपनी मृत्यु पर अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चले गए।

"इसलिए, भिक्षुओं," गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है कि यह भिक्षु शेखी बघार रहा है; पहले भी वह ऐसा ही था।" अपना प्रवचन समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध समझाया और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "यह शेखी बघारने वाला भिक्षु उन दिनों का भीमसेन था, और मैं स्वयं ऋषि लघु धनुर्धर था।"

फुटनोट:

(1) इस नाम का अर्थ है "वह व्यक्ति जिसके पास या जो एक भयंकर सेना का नेतृत्व करता है;" यह दूसरे पांडव का नाम है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुरापान-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-81-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 81
सुरपना-जातक

"हमने शराब पी।" - यह कहानी गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु सगाता के बारे में सुनाई थी, जब वे कोसंबी के पास स्थित घोषिता उद्यान में रह रहे थे।

श्रावस्ती नगर में वर्षा ऋतु बिताने के बाद, गुरु बुद्ध भद्दावाटिका नामक एक बाज़ार नगर में भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर आए थे, जहाँ ग्वालों, बकरियों, किसानों और यात्रियों ने उनसे आदरपूर्वक विनती की कि वे आम घाट न जाएँ; क्योंकि उन्होंने कहा, "आम घाट में, नग्न तपस्वियों के निवास स्थान पर, आम घाट का नाग नामक एक विषैला और घातक नाग रहता है, जो भगवान बुद्ध को हानि पहुँचा सकता है।" उनकी चेतावनी को तीन बार दोहराने के बावजूद, भगवान बुद्ध ने अनसुना करने का नाटक किया और अपने मार्ग पर चलते रहे। जब भगवान बुद्ध भद्दावाटिका के पास एक उपवन में रह रहे थे, तब बुद्ध के सेवक, वरिष्ठ भिक्षु सगत, जिन्होंने सांसारिक मनुष्यों के समान अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं, उस स्थान पर गए, जहाँ नाग-राजा रहता था, वहाँ पत्तों का एक पलंग बनाया और उस पर पालथी मारकर बैठ गए। अपने दुष्ट स्वभाव को छिपाने में असमर्थ, नाग ने घना धुआँ उठाया। तो वरिष्ठ भिक्षु ने भी ऐसा ही किया। फिर नाग ने ज्वाला भेजी। वरिष्ठ भिक्षु ने भी ज्वाला भेजी। लेकिन, नाग की ज्वालाओं से वरिष्ठ भिक्षु को कोई हानि नहीं हुई, जबकि वरिष्ठ भिक्षु की ज्वालाओं ने नाग को हानि पहुँचाई, और इस प्रकार थोड़े ही समय में उन्होंने नाग-राजा को वश में कर लिया और उन्हें शरण और आज्ञाओं में स्थापित कर दिया, जिसके बाद वे गुरु के पास लौट गए। और गुरु, भद्दावाटिका में अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने के बाद, कोसंबी चले गए। अब नाग के सगत द्वारा धर्म परिवर्तन की कहानी पूरे क्षेत्र में फैल गई थी, और कोसंबी के नगरवासी भगवान बुद्ध से मिलने गए और उन्हें प्रणाम किया, जिसके बाद वे वरिष्ठ भिक्षु सगत के पास गए और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "हे प्रभु, हमें बताइए कि आपको किस चीज की कमी है और हम उसे पूरा करेंगे।" वरिष्ठ भिक्षु स्वयं मौन रहे; लेकिन दुष्ट छह के अनुयायियों ने इस प्रकार उत्तर दिया: "महोदय, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया है, उनके लिए श्वेत शराब उतनी ही दुर्लभ और स्वीकार्य है। क्या आप वरिष्ठ भिक्षु के लिए कुछ शुद्ध श्वेत शराब ला सकते हैं?" "ज़रूर ला सकते हैं," नगरवासियों ने कहा और गुरु को अगले दिन उनके साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। फिर वे अपने नगर लौट गए और व्यवस्था की कि प्रत्येक अपने घर में वरिष्ठ भिक्षु को शुद्ध श्वेत शराब अर्पित करे। तदनुसार, उन्होंने एक भंडार जमा किया और वरिष्ठ भिक्षु को घर-घर जाकर आमंत्रित किया और उन्हें शराब परोसी। वे इतने नशे में थे कि नगर से बाहर जाते समय, वरिष्ठ भिक्षु द्वार पर गिर पड़े और हिचकी लेते हुए बेसुध पड़े रहे। नगर में भोजन करके लौटते समय, गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु को इस अवस्था में पड़ा हुआ देखा और भिक्षुओं से सागाता को घर ले जाने का अनुरोध करके उद्यान की ओर चल दिए। भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षु को बुद्ध के चरणों में सिर रखकर लिटाया, लेकिन वे घूम गए और उनके पैर बुद्ध की ओर हो गए। तब गुरु ने उनसे पूछा, "भाइयों, क्या सगत अब भी मेरे प्रति वैसा ही आदर दिखाते हैं जैसा पहले दिखाते थे?" "नहीं, श्रीमान।" "बताइए, भाइयों,""आम की नाव के नाग-राजा को किसने पराजित किया था?" "वह सगत थे, महाराज।" "क्या आपको लगता है कि अपनी वर्तमान अवस्था में सगत एक हानिरहित जल-सांप को भी मार सकते थे?" "नहीं, महाराज।" "तो

अब, भाइयों, क्या वह पेय पीना उचित है जो पीने से मनुष्य की इंद्रियों को वश में कर लेता है?" "यह अनुचित है, महाराज।" अब, वरिष्ठ भिक्षु की आलोचना करते हुए भाइयों से चर्चा करने के बाद, भगवान बुद्ध ने यह नियम स्थापित किया कि मादक पदार्थों का सेवन एक अपराध है जिसके लिए पश्चाताप और क्षमा आवश्यक है; इसके बाद वे उठे और अपने सुगंधित कक्ष में चले गए।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर, भिक्षुओं ने शराब पीने के पाप पर चर्चा की और कहा, "महोदय, शराब पीना कितना बड़ा पाप है, क्योंकि इसने सगत जैसे बुद्धिमान और प्रतिभाशाली व्यक्ति को भी बुद्ध की श्रेष्ठता से अंधा कर दिया है।" इसी समय सत्य के हॉल में प्रवेश करते हुए, गुरु ने पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं; और उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि संसार का त्याग करने वालों ने शराब पीकर अपनी इंद्रियों को वश में किया है; ऐसा ही पहले भी होता रहा है।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व काशी में एक उत्तरी ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए। बड़े होकर उन्होंने संसार त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। उन्होंने ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और हिमालय में पाँच सौ शिष्यों के साथ अंतर्दृष्टि के आनंद में लीन रहे। एक बार जब वर्षा ऋतु आई, तो उनके शिष्यों ने उनसे कहा, "गुरुजी, क्या हम मनुष्यों के निवास स्थानों पर जाकर नमक और सिरका ला सकते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं तो यहीं रहूँगा; आप अपनी भलाई के लिए जा सकते हैं और वर्षा ऋतु समाप्त होने पर लौट आएँगे।"

“बहुत अच्छा,” उन्होंने कहा और अपने स्वामी से आदरपूर्वक विदा लेकर बनारस आ गए, जहाँ उन्होंने राजमहल में अपना निवास स्थान बनाया। अगले दिन वे भिक्षा मांगने के लिए शहर के द्वार के ठीक बाहर एक गाँव गए, जहाँ उन्हें भोजन की प्रचुरता मिली; और अगले दिन वे शहर में प्रवेश कर गए। दयालु नागरिकों ने उन्हें भिक्षा दी, और राजा को जल्द ही पता चला कि हिमालय से आए पाँच सौ संन्यासी राजमहल में निवास कर रहे हैं, और वे महान तपस्वी हैं, देह को वश में रखते हैं और महान सद्गुणों से परिपूर्ण हैं। उनके इस अच्छे चरित्र के बारे में सुनकर, राजा राजमहल गए और उन्हें चार महीने तक वहाँ रहने के लिए सहर्ष आमंत्रित किया। उन्होंने वादा किया, और तब से उन्हें राजमहल में भोजन और राजमहल में आवास दिया जाने लगा। लेकिन एक दिन शहर में एक शराब उत्सव आयोजित हुआ, और राजा ने पाँच सौ संन्यासियों को उत्तम शराब की प्रचुर मात्रा दी, यह जानते हुए कि संसार और उसके व्यर्थों का त्याग करने वालों के रास्ते में ऐसी चीजें शायद ही कभी आती हैं। तपस्वियों ने मदिरा पी और बगीचे में लौट गए। वहाँ, नशे में चूर होकर, कुछ नाचने लगे, कुछ गाने लगे, जबकि कुछ नाचते-गाते थककर अपने चावल के थैले और अन्य सामान इधर-उधर फेंकने लगे, और फिर सोने के लिए लेट गए। जब उनका नशा उतर गया और वे जागकर अपने उत्सव के निशान देखकर रोए और विलाप करने लगे, और बोले, "हमने वह किया जो हमें नहीं करना चाहिए था। हमने यह बुराई इसलिए की क्योंकि हम अपने गुरु से दूर हो गए थे।" फिर, वे बगीचे से निकलकर हिमालय लौट गए। अपने कुंड और अन्य सामान एक तरफ रखकर, उन्होंने अपने गुरु को प्रणाम किया और बैठ गए। "अच्छा, मेरे पुत्रों," उन्होंने कहा, "क्या तुम मनुष्यों के बीच आराम से रहे, और क्या तुम्हें भिक्षा मांगने के लिए थका देने वाली यात्राओं से मुक्ति मिली? क्या तुम एक दूसरे के साथ एकता में रहे?"

"जी, स्वामी जी, हम आराम से थे; लेकिन हमने वर्जित पेय पी लिया, जिससे हम होश खो बैठे और होश में न रहकर नाचने-गाने लगे।" और बात को आगे बढ़ाने के लिए, उन्होंने यह छंद रचा और दोहराया:-

हमने पिया, नाचा, गाया, रोया; सब ठीक था।
जब हमने वो पेय पिया जो हमें चुरा लेता है
हमारी इंद्रियां बंदरों में परिवर्तित नहीं हुईं।
“जो लोग गुरु की देखरेख में नहीं रहते, उनका यही हाल होता है,” बोधिसत्व ने उन तपस्वियों को फटकारते हुए कहा; और उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा, “अब से कभी ऐसा मत करना।” अपनी अंतर्दृष्टि को बरकरार रखते हुए, वे आगे ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म लेने के लिए नियत हुए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताई (और अब से हम 'संबंध की व्याख्या की' शब्दों को छोड़ देंगे), यह कहते हुए, "मेरे शिष्य उन दिनों के संन्यासियों का समूह थे, और मैं उनका गुरु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मित्तविंदा-जातक**

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-82-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 82
मित्तविन्द-जातक

"अब और चिंतन नहीं।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक स्वेच्छाचारी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। बुद्ध कश्यप के समय में घटी इस जन्म की घटनाओं का वर्णन महा-मित्तविन्दक जातक (*1) के दसवें खंड में किया जाएगा।

तब बोधिसत्व ने यह श्लोक कहा:-

अब द्वीपों के महलों में रहने की जरूरत नहीं
क्रिस्टल, चांदी या चमकीले रत्नों से बना हुआ,
आपके सिर पर जो कठोर टोपी है, उसके साथ;
और न ही इसकी कष्टदायक यातना कभी समाप्त होगी।
जब तक तुम्हारे सारे पाप धुल न जाएं और जीवन का अंत न हो जाए।
इतना कहकर बोधिसत्व देवों (स्वर्गदूतों) के बीच अपने निवास स्थान पर चले गए। और मित्तविन्दक, उस मुकुट को धारण किए हुए, अपने पाप के प्रायश्चित तक भीषण पीड़ा भोगते रहे और अपने कर्मों के फल के अनुसार उनका निधन हो गया।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "यह स्वेच्छाचारी भाई (भिक्षु) उन दिनों के मित्तविन्दक थे, और मैं स्वयं देवों (देवदूतों) का राजा था।"

फुटनोट:

(1)सं. 439.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कालकाणि-जातक**
स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-83-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 83
कलाकन्नी-जातक

“वह मेरा मित्र है।”—यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के एक मित्र के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, दोनों ने साथ में मिट्टी के खिलौने बनाए थे और एक ही विद्यालय में पढ़ते थे; लेकिन, वर्षों बीतने के साथ, 'शाप' नाम का वह मित्र बहुत कष्ट में डूब गया और किसी भी तरह से अपना जीवन यापन नहीं कर पा रहा था। इसलिए वह एक धनी व्यक्ति के पास आया, जो उस पर दयालु था और उसने उसे अपनी सारी संपत्ति की देखभाल करने के लिए भुगतान किया; और वह गरीब मित्र अनाथपिंडिका के अधीन काम करने लगा और उनके सारे काम करने लगा। धनी व्यक्ति के घर जाने के बाद, घर में अक्सर यह सुनने को मिलता था—"उठो, शाप," या "बैठो, शाप," या "खाना खाओ, शाप।"

एक दिन कोषाध्यक्ष के मित्र और परिचित उनसे मिलने आए और बोले, “महोदय कोषाध्यक्ष, अपने घर में इस तरह की बातें न होने दें। ‘उठो, श्राप दो’, ‘बैठो, श्राप दो’ या ‘खाना खाओ, श्राप दो’ जैसी अशुभ बातें सुनकर तो राक्षस भी डर जाएगा। वह व्यक्ति आपके बराबर का नहीं है; वह दुर्भाग्य से घिरा हुआ एक अभागा है। उससे कोई वास्ता क्यों रखना?” “ऐसा नहीं,” अनाथपिंडिका ने उत्तर दिया; “नाम तो केवल व्यक्ति की पहचान बताता है, और बुद्धिमान लोग किसी व्यक्ति को उसके नाम से नहीं आंकते; न ही केवल नाम के आधार पर अंधविश्वास करना उचित है। मैं कभी भी उसके नाम मात्र से उस मित्र को नहीं छोड़ूंगा जिसके साथ मैंने बचपन में मिट्टी के खिलौने बनाए थे।” और उन्होंने उनकी सलाह को अस्वीकार कर दिया।

एक दिन वह महान व्यक्ति अपने मुखिया गाँव का दौरा करने के लिए निकल गया और घर की ज़िम्मेदारी दूसरे को सौंप दी। उसके जाने की खबर सुनकर कुछ लुटेरों ने घर में सेंध लगाने का निश्चय किया; और हथियारों से लैस होकर वे रात के अंधेरे में घर को घेर लिया। लेकिन 'कर्स' को शक था कि चोर आ सकते हैं, और वह सतर्क था। जब उसे पता चला कि वे आ गए हैं, तो वह अपने लोगों को जगाने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगा, एक से शंख बजाने को कहा, दूसरे से ढोल बजाने को, और इस तरह पूरे घर में शोर मच गया, मानो वह नौकरों की पूरी सेना को जगा रहा हो। लुटेरों ने कहा, "घर उतना खाली नहीं है जितना हमें बताया गया था; मालिक घर पर ही होगा।" अपने पत्थर, लाठी और अन्य हथियार फेंककर वे जान बचाकर भाग गए। अगले दिन घर के चारों ओर बिखरे हुए हथियारों को देखकर अफरा-तफरी मच गई; और कर्स की इतनी प्रशंसा हुई कि मानो आसमान छू रही हो: "अगर इस घर की रखवाली इस जैसे बुद्धिमान व्यक्ति ने न की होती, तो लुटेरे अपनी मर्जी से अंदर घुस आते और घर लूट लेते। कोषाध्यक्ष को यह सौभाग्य अपने वफादार मित्र की वजह से मिला है।" और जैसे ही व्यापारी अपने गाँव से लौटा, वे तुरंत उसके पास आकर उसे पूरी कहानी सुनाने लगे। "आह," उसने कहा, "यह मेरे घर का भरोसेमंद रखवाला है जिसे आप मुझे हटाने के लिए कह रहे थे। अगर मैंने आपकी सलाह मानकर उसे हटा दिया होता, तो आज मैं भिखारी होता। नाम नहीं, दिल मायने रखता है इंसान को।" ऐसा कहकर उसने अपनी तनख्वाह बढ़ा ली। और यह सोचकर कि यह एक अच्छी कहानी है, वह मालिक के पास गया और उसे पूरी घटना विस्तार से बताई। "महाराज, यह पहली बार नहीं है कि कर्स नाम के किसी मित्र ने अपने मित्र की संपत्ति को लुटेरों से बचाया हो; पहले भी ऐसा हो चुका है।" फिर, अनाथपिंडिका के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व एक विख्यात कोषाध्यक्ष थे; उनका एक मित्र था जिसका नाम श्राप था, और इसी तरह आगे की कहानी पहले बताई गई है। जब बोधिसत्व अपनी जमींदारी से लौटे और उन्हें सब कुछ पता चला, तो उन्होंने अपने मित्रों से कहा, "अगर मैंने तुम्हारी सलाह मानकर अपने भरोसेमंद मित्र को त्याग दिया होता, तो आज मैं भिखारी होता।" और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:-

सच्चा मित्र वही है जो सात कदम तक साथ चलेगा।
हमारी मदद करने के लिए; बारह लोग इस बात की गवाही देते हैं कि साथी सच्चा है।
दो सप्ताह या एक महीने की परखी हुई वफादारी
वह अपने दयालु, लंबे समय को अपना दूसरा रूप बना लेता है।
तो मैं, जो इतने वर्षों से जानता आया हूँ, कैसे जानूँ?
मेरे मित्र, शाप को दूर भगाने में समझदारी बरतो?

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आनंद उन दिनों का अभिशाप था, और मैं स्वयं बनारस का कोषाध्यक्ष था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अट्ठस्सद्वार-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-84-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 84
अत्थसद्वारा-जातक

"स्वास्थ्य की तलाश करो।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ऐसे बालक की जो आध्यात्मिक कल्याण के मामलों में ऋषि समान था। जब वह केवल सात वर्ष का था, तब एक अत्यंत धनी कोषाध्यक्ष के पुत्र ने अपनी आध्यात्मिक भलाई के लिए असाधारण बुद्धि और चिंता प्रकट की; और एक दिन वह अपने पिता के पास आध्यात्मिक कल्याण के मार्ग पूछने आया। पिता उत्तर नहीं दे सके, परन्तु उन्होंने मन ही मन सोचा, "यह बहुत कठिन प्रश्न है; स्वर्ग से लेकर नरक तक कोई भी इसका उत्तर नहीं दे सकता, सिवाय सर्वज्ञानी बुद्ध के।" अतः वे उस बालक को अपने साथ बहुत सारे इत्र, फूल और मलहम लेकर जेतवन मठ ले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गुरु को प्रणाम किया, उनके सामने सिर झुकाया और एक तरफ बैठकर भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: "हे प्रभु, मेरा यह बालक, जो बुद्धिमान और आध्यात्मिक कल्याण के लिए उत्सुक है, मुझसे आध्यात्मिक कल्याण के मार्ग के बारे में पूछ रहा है; और क्योंकि मुझे इसका उत्तर नहीं पता था, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। हे भगवान बुद्ध, कृपा करके इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।" गुरु ने कहा, "भाई, यही प्रश्न मुझसे पहले इसी बालक ने पूछा था और मैंने उसका उत्तर दिया था। उसे पहले उत्तर पता था, लेकिन जन्म परिवर्तन के कारण अब वह भूल गया है।" फिर पिता के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक अत्यंत धनी कोषाध्यक्ष थे; उनका एक पुत्र था, जो मात्र सात वर्ष की आयु में ही अत्यंत बुद्धिमान और आध्यात्मिक कल्याण के प्रति सजग था। एक दिन वह बालक अपने पिता के पास आध्यात्मिक कल्याण के मार्ग पूछने आया। उसके पिता ने उसे इस श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

स्वास्थ्य की तलाश करो, जो सर्वोच्च अच्छाई है; सदाचारी बनो;
बड़ों की बात सुनो; शास्त्रों से सीखो;
सत्य के अनुरूप चलो; और आसक्ति के बंधनों को तोड़ दो।
मुख्यतः कल्याण के ये छह मार्ग ही हमें ले जाते हैं।
इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने पुत्र के आध्यात्मिक कल्याण के मार्ग के प्रश्न का उत्तर दिया; और पुत्र ने तब से उन छह नियमों का पालन करना शुरू कर दिया। दान और अन्य अच्छे कार्यों में जीवन व्यतीत करने के बाद, बोधिसत्व का निधन हो गया और उनके कर्मों के अनुसार ही उनका फल भोगा गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह बच्चा भी उन्हीं दिनों का बच्चा था, और मैं स्वयं प्रभु कोषाध्यक्ष हूँ।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **किम्पक्क-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-85-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 85
किम्पाक्का-जातक

"जैसे खाने वाले।"—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो वासना से ग्रस्त हो गया था। परंपरा के अनुसार, एक अच्छे परिवार का वंशज था जिसने बुद्ध की शिक्षाओं में अपना हृदय समर्पित कर दिया और भिक्षु संघ में शामिल हो गया। लेकिन एक दिन जब वह श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने जा रहा था, तो वहाँ एक सुंदर वस्त्रधारी स्त्री को देखकर वह वासना से भर गया। अपने गुरुओं और सलाहकारों द्वारा गुरु के समक्ष लाए जाने पर, उसने भगवान बुद्ध के प्रश्नों के उत्तर में स्वीकार किया कि उसके भीतर वासना उत्पन्न हो गई थी। तब गुरु ने कहा, "भाई, इंद्रियों की पाँचों वासनाएँ वास्तव में आनंद के समय मीठी लगती हैं; परन्तु इनका आनंद (क्योंकि यह नरक में पुनर्जन्म और अन्य बुरी अवस्थाओं के कष्टों के बाद आता है) उस फल को खाने के समान है। वह फल देखने में बहुत सुंदर, सुगंधित और मीठा होता है; परन्तु खाने पर वह आंतरिक अंगों पर आक्रमण करता है और मृत्यु लाता है। पुराने समय में, इसके बुरे स्वभाव से अनभिज्ञ होकर, बहुत से लोग उस फल की सुंदरता, सुगंध और मिठास से मोहित होकर उसे खा गए और उनकी मृत्यु हो गई।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक कारवां के नेता के रूप में अवतरित हुए। एक बार जब वे पूर्व से पश्चिम की ओर पाँच सौ रथों के साथ यात्रा कर रहे थे, तो वे एक जंगल के बाहरी इलाके में पहुँचे। अपने साथियों को इकट्ठा करके उन्होंने उनसे कहा, "इस जंगल में विषैले फल देने वाले वृक्ष उगते हैं। कोई भी व्यक्ति मुझसे पूछे बिना कोई भी अपरिचित फल न खाए।" जब वे जंगल पार कर गए, तो वे दूसरे किनारे पर एक ऐसे वृक्ष के पास पहुँचे जिसकी शाखाएँ फलों के भार से झुकी हुई थीं। आकार, गंध और स्वाद में उसका तना, शाखाएँ, पत्ते और फल आम के समान थे। वृक्ष को उसके भ्रामक रूप आदि के कारण आम समझकर, कुछ लोगों ने फल तोड़कर खा लिए; परन्तु अन्य ने कहा, "हमें खाने से पहले अपने नेता से बात कर लेनी चाहिए।" और ये लोग फल तोड़कर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। जब वे आए, तो उन्होंने उन्हें तोड़े हुए फल फेंकने का आदेश दिया, और जो लोग पहले ही खा चुके थे, उन्हें उल्टी कराने वाली दवा दी। इनमें से कुछ लोग ठीक हो गए; परन्तु जो सबसे पहले खाया, वही मर गया। बोधिसत्व सुरक्षित अपने गंतव्य तक पहुँच गए और अपना सामान लाभ पर बेचकर अपने घर लौट गए। दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में जीवन व्यतीत करने के बाद, वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक सिधार गए।

जब उन्होंने यह कहानी सुनाई, तब गुरु ने बुद्ध के रूप में यह श्लोक कहा:-

जिस प्रकार उस फल को खाने वाले मर जाते हैं, उसी प्रकार वासनाएं भी मर जाती हैं।
जब पक जाए, तो उसे मार डालो जो पीड़ा को नहीं जानता।
वे आगे चलकर संतान उत्पन्न करते हैं और वासनापूर्ण कृत्यों में लिप्त हो जाते हैं।
इस प्रकार यह सिद्ध करने के बाद कि कामवासनाएँ, जो फल प्राप्ति के समय अत्यंत मधुर प्रतीत होती हैं, अंततः अपने अनुयायियों का नाश कर देती हैं, गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके समापन पर कामवासना से ग्रस्त भिक्षु का रूपांतरण हुआ और उन्होंने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया। बुद्ध के शेष अनुयायियों में से कुछ ने प्रथम, कुछ ने द्वितीय और कुछ ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) प्राप्त किया, जबकि अन्य अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गए।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मेरे शिष्य उन दिनों कारवां के लोग थे, और मैं उनका नेता था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शीलावीमांसन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-86-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 86
सिलविमांसना-जातक

"तुलना किसी से नहीं की जा सकती।"—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ब्राह्मण के बारे में जिसने अपनी अच्छाई की प्रतिष्ठा की परीक्षा ली। कोसल के राजा द्वारा पोषित इस भिक्षु ने तीन शरणों का मार्ग अपनाया था; वे पंच वशीकरण का पालन करते थे और तीनों वेदों में पारंगत थे। राजा ने सोचा, "यह तो अच्छा व्यक्ति है," और उन्हें बहुत सम्मान दिया। लेकिन उस भिक्षु ने मन ही मन सोचा, "राजा मुझे अन्य ब्राह्मणों से अधिक सम्मान देते हैं और मुझे अपना गुरु बनाकर अपना आदर प्रकट करते हैं। लेकिन क्या उनका यह अनुग्रह मेरी अच्छाई के कारण है या केवल मेरे जन्म, वंश, परिवार, देश और उपलब्धियों के कारण? मुझे इसका उत्तर अवश्य जानना चाहिए।" तदनुसार, एक दिन जब वे महल से निकल रहे थे, तो उन्होंने बिना पूछे कोषाध्यक्ष के कुंड से एक सिक्का लिया और चले गए। कोषाध्यक्ष ब्राह्मण के प्रति इतना आदरपूर्ण था कि वह एकदम शांत बैठा रहा और एक शब्द भी नहीं बोला। अगले दिन ब्राह्मण ने दो सिक्के लिए; लेकिन फिर भी अधिकारी ने कोई आपत्ति नहीं जताई। तीसरे दिन ब्राह्मण ने मुट्ठी भर सिक्के चुरा लिए। कोषाध्यक्ष चिल्लाया, "यह तीसरा दिन है जब तुमने महाराज को लूटा है।" और उसने तीन बार ज़ोर से कहा, "मैंने खजाने को लूटने वाले चोर को पकड़ लिया है।" चारों ओर से लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी और चिल्लाने लगी, "अरे, तुम तो बड़े समय से अच्छे होने का ढोंग कर रहे हो।" और उसे दो-तीन लात मारकर राजा के सामने ले गए। राजा ने बड़े दुःख से उससे कहा, "हे ब्राह्मण, तुमने ऐसा दुष्ट काम क्यों किया?" और उसने आदेश दिया, "इसे दंड के लिए ले जाओ।" ब्राह्मण ने कहा, "मैं चोर नहीं हूँ, महाराज। फिर आपने खजाने से पैसे

क्यों चुराए?" "हे महाराज, आपने मुझे इतना बड़ा सम्मान समझाया, और मैंने यह जानने का निश्चय किया कि यह सम्मान मेरे जन्म और अन्य गुणों के कारण है या केवल मेरे अच्छे स्वभाव के कारण। यही मेरा उद्देश्य था, और अब मुझे निश्चित रूप से पता है (जहाँ तक आपने मुझे दंड देने का आदेश दिया है) कि यह मेरा अच्छा स्वभाव ही था, न कि मेरा जन्म और अन्य लाभ, जिसने मुझे महाराज की कृपा दिलाई। मैं जानता हूँ कि अच्छाई ही सर्वोपरि गुण है; मैं यह भी जानता हूँ कि इस जीवन में, जब तक मैं पापमय सुखों के बीच जीवन व्यतीत करते हुए एक गृहस्थ बना रहूँगा, तब तक मैं अच्छाई को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए, आज ही मैं जेतवन मठ में गुरु के पास जाकर सांसारिक जीवन त्याग कर भिक्षु संघ में शामिल होना चाहता हूँ। कृपया मुझे अनुमति दें।" राजा की सहमति से ब्राह्मण जेतवन मठ के लिए चल पड़ा। उसके मित्रों और रिश्तेदारों ने सामूहिक रूप से उसे उसके इरादे से रोकने का प्रयास किया, लेकिन जब उनके प्रयास व्यर्थ साबित हुए, तो उन्होंने उसे अकेला छोड़ दिया। वह गुरु के पास आया और भिक्षु संघ में प्रवेश करने का अनुरोध किया। शिष्यों के निम्न और उच्चतर पवित्र क्रम में प्रवेश के बाद, उन्होंने लगन से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गए, जिस पर वे गुरु के निकट आकर बोले, "हे गुरु, संघ में मेरा प्रवेश सर्वोच्च फल लेकर आया है।"“—इससे यह संकेत मिलता है कि उन्होंने अर्हत पद (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया था। यह सुनकर, सत्य के हॉल में एकत्रित भिक्षुओं ने राजा के उस पुजारी के गुणों के बारे में आपस में चर्चा की, जिसने अपनी अच्छाई की प्रतिष्ठा का परीक्षण किया और राजा को छोड़कर अब अर्हत (बुद्ध के समान ज्ञान प्राप्त) बन गया था। हॉल में प्रवेश करके, गुरु ने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, और उन्होंने उन्हें बताया। “भाइयों, इस ब्राह्मण का अपनी अच्छाई की प्रतिष्ठा का परीक्षण करना और संसार का त्याग करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करना कोई अनभिज्ञता नहीं है। ऐसा ही अतीत के बुद्धिमान और अच्छे भिक्षुओं ने भी किया था।” और ऐसा कहकर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके पुरोहित थे। वे दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में लीन रहते थे, उनका मन सदा धर्म में लगा रहता था और वे पंचमाताओं का निरंतर पालन करते थे। राजा ने उन्हें अन्य ब्राह्मणों से अधिक सम्मान दिया; और जैसा ऊपर बताया गया है, वैसा ही हुआ।

लेकिन, जब बोधिसत्व को जंजीरों में जकड़कर राजा के सामने लाया जा रहा था, तो वे वहाँ पहुँचे जहाँ कुछ सपेरे एक साँप का प्रदर्शन कर रहे थे। उन्होंने साँप की पूंछ और गला पकड़कर उसे अपने गले में बाँध लिया था। यह देखकर बोधिसत्व ने उन सपेरों से विनती की कि वे ऐसा करना बंद कर दें, क्योंकि साँप उन्हें काट सकता है और उनकी जान ले सकता है। सपेरों ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, यह एक अच्छा और सभ्य नाग है; यह तुम्हारी तरह दुष्ट नहीं है, जिसे उसके दुष्टता और दुराचार के कारण हिरासत में लाया जा रहा है।"

बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "नाग भी, अगर काटते या घाव नहीं करते, तो 'अच्छे' कहलाते हैं। तो मनुष्य रूप धारण करने वालों के साथ तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट होगी! वास्तव में, यही अच्छाई समस्त संसार में सबसे उत्तम है, इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है।" फिर उन्हें राजा के समक्ष लाया गया। राजा ने कहा, "यह क्या है, मेरे मित्रों?" बोधिसत्व ने कहा, "यह चोर महाराज के खजाने को लूट रहा है।" "इसे मृत्युदंड के लिए ले चलो।" ब्राह्मण ने कहा, "महाराज, मैं चोर नहीं हूँ।" "तो फिर तुमने धन कैसे चुराया?" इस पर बोधिसत्व ने ठीक ऊपर दिए गए उत्तर के समान ही उत्तर दिया और अंत में कहा:- "इसीलिए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि समस्त संसार में सबसे श्रेष्ठ और उत्तम गुण सत्त्व ही है। परन्तु चाहे जो भी हो, यह देखते हुए कि जब नाग काटता या घाव नहीं करता, तो उसे केवल 'सद्गुण' ही कहा जा सकता है, इससे अधिक कुछ नहीं, इसी कारण से भी केवल सत्त्व ही समस्त गुणों में सर्वोच्च और उत्तम है।" फिर सत्त्व की स्तुति में उन्होंने यह श्लोक कहा:-

अच्छाई की तुलना किसी से नहीं की जा सकती;
पूरी दुनिया इसकी बराबरी नहीं कर सकती। कोबरा गिर पड़ा।
यदि मनुष्य इसे 'अच्छा' मानता है, तो मृत्यु से मुक्ति मिल जाती है।
इस श्लोक में राजा को सत्य का उपदेश देने के बाद, बोधिसत्व ने सभी कामवासनाओं का त्याग करके और संसार को त्यागकर संन्यासी का जीवन व्यतीत करते हुए हिमालय चले गए, जहाँ उन्होंने पाँच ज्ञान और आठ सिद्धियाँ प्राप्त कीं, जिससे उन्हें ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में पुनर्जन्म की निश्चित आशा प्राप्त हुई।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों मेरे शिष्य राजा के अनुयायी थे, और मैं स्वयं राजा का पुजारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मंगल-जातक**

स्रोत : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-87-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 87
ममगल जातक

“जो कोई भी त्याग करता है।”—यह कथा गुरु ने बाँस के वन में एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी, जो वस्त्र के टुकड़ों से भविष्यवाणियाँ करने की कला में निपुण था। परंपरा के अनुसार, राजगृह नगर में एक ब्राह्मण रहता था जो अंधविश्वासी और भ्रामक विचारों वाला था, और त्रिरत्न (तीन रत्नों) (1. बुद्ध, 2. धम्म (निर्वाण का मार्ग) और 3. संघ (पवित्र व्यवस्था)) में विश्वास नहीं करता था। यह ब्राह्मण अत्यंत धनी और संपत्ति से परिपूर्ण था; और एक मादा चूहे ने उसके वस्त्रों का एक सूट कुतर दिया, जो एक संदूक में रखा था। एक दिन स्नान करने के बाद, उसने उस सूट को मंगवाया, और तब उसे चूहे द्वारा किए गए शरारत के बारे में बताया गया। “अगर ये कपड़े घर में ही रह गए,” उसने मन ही मन सोचा, “तो ये दुर्भाग्य लाएंगे; ऐसी अशुभ वस्तु श्राप अवश्य लाएगी। इन्हें अपने किसी बच्चे या नौकर को देना तो नामुमकिन है; क्योंकि जिसके पास भी ये होंगे, वह अपने आस-पास के सभी लोगों पर विपत्ति लाएगा। मुझे इन्हें कब्रिस्तान में फेंकवाना होगा (*1); लेकिन कैसे? मैं इन्हें नौकरों को नहीं दे सकता; क्योंकि वे इन्हें पाने और अपने पास रखने की लालसा करेंगे, जिससे मेरा घर बर्बाद हो जाएगा। मेरे बेटे को ही इन्हें ले जाना होगा।” इसलिए उसने अपने बेटे को बुलाया और उसे सारी बात बताकर कहा कि वह इन कपड़ों को एक डंडे पर उठाकर, बिना हाथ लगाए, कब्रिस्तान में फेंक दे। फिर बेटे को पूरे शरीर को धोकर लौटना था। उसी सुबह भोर होते ही गुरु ने यह देखने के लिए चारों ओर देखा कि किन लोगों को सत्य की ओर लाया जा सकता है, तब उन्हें पता चला कि पिता और पुत्र दोनों ही मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करने के लिए पूर्वनियोजित थे। अतः उसने शिकार पर जा रहे शिकारी का वेश धारण किया और श्मशान घाट पर प्रवेश द्वार पर बैठ गया, जहाँ से बुद्ध के चिन्ह स्वरूप छह रंगों की किरणें निकल रही थीं। कुछ ही देर में वह युवक ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा, अपने पिता के निर्देशानुसार वस्त्रों को अपनी छड़ी के सिरे पर सावधानीपूर्वक उठाए हुए, मानो वह किसी घर के साँप को ढो रहा हो।

"तुम क्या कर रहे हो, नन्हे ब्राह्मण?" गुरु ने पूछा।

“मेरे प्यारे गौतम (बुद्ध) (*2),” उत्तर आया, “चूहों द्वारा कुतरे गए ये वस्त्र दुर्भाग्य का साक्षात रूप हैं, और विष में डूबे हुए प्रतीत होते हैं; इसीलिए मेरे पिता ने, इस डर से कि कोई सेवक इन वस्त्रों को पाने और अपने पास रखने की लालसा न करे, मुझे इन्हें देकर भेजा है। मैंने वादा किया था कि मैं इन्हें फेंक दूंगा और बाद में स्नान कर लूंगा; और यही वह काम है जिसके लिए मैं यहाँ आया हूँ।” “तो फिर वस्त्र फेंक दो,” गुरु ने कहा; और युवा ब्राह्मण ने वैसा ही किया। “ये मुझ पर बिल्कुल ठीक रहेंगे,” गुरु ने कहा और युवक की आँखों के सामने ही, उसके बार-बार मना करने और न लेने की विनती को अनसुना करते हुए, दुर्भाग्य से भरे उन वस्त्रों को उठा लिया; और वे बाँस के वन की ओर चल दिए।

वह युवक बड़ी जल्दी से घर भागा, अपने पिता को यह बताने के लिए कि ऋषि गौतम (बुद्ध) ने कहा था कि वे वस्त्र उन पर बिल्कुल जँचेंगे, और तमाम चेतावनियों के बावजूद, वे उस वस्त्र को अपने साथ बाँस के वन में ले जाने पर अड़े रहे। ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, “वे वस्त्र जादू से ग्रसित और शापित हैं। ऋषि गौतम (बुद्ध) भी उन्हें पहने बिना विनाश के नहीं रह सकते; और इससे मेरी बदनामी होगी। मैं ऋषि को बहुत सारे दूसरे वस्त्र दूँगा और उनसे कहूँगा कि वे उस वस्त्र को फेंक दें।” अतः वह बहुत सारे वस्त्र लेकर अपने पुत्र के साथ बाँस के वन की ओर चल पड़ा। जब वह गुरु से मिला, तो वह आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हो गया और बोला, “क्या यह सचमुच सच है, जैसा मैंने सुना है, कि आपने, मेरे आदरणीय गौतम (बुद्ध), श्मशान से वस्त्र उठाए हैं?” “जी हाँ, ब्राह्मण।” "हे गौतम (बुद्ध), वह वस्त्र शापित है; यदि आप उसका उपयोग करेंगे, तो वह आपका नाश कर देगा। यदि आपको वस्त्रों की आवश्यकता हो, तो इन्हें धारण करें और उस वस्त्र को फेंक दें।" "ब्राह्मण," गुरु ने उत्तर दिया, "मैंने खुलेआम संसार का त्याग कर दिया है और सड़क किनारे या स्नानागारों में पड़े चिथड़ों से, या कूड़े के ढेरों या श्मशान घाटों में फेंके गए वस्त्रों से संतुष्ट हूँ। जबकि आपने अतीत में भी और वर्तमान में भी अंधविश्वासों को धारण किया है।" ऐसा कहकर, ब्राह्मण के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले मगध राज्य के राजगृह नगर में एक धर्मात्मा राजा का शासन था। उसी समय बोधिसत्व ने उत्तर-पश्चिम के ब्राह्मण के रूप में पुनर्जन्म लिया। बड़े होकर उन्होंने संसार त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया, ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त की और हिमालय में निवास करने चले गए। एक बार हिमालय से लौटकर राजा के उद्यान में रहने के बाद, वे दूसरे दिन भिक्षा मांगने के लिए नगर में गए।

उन्हें देखकर राजा ने उन्हें महल में बुलाया और वहाँ उन्हें आसन और भोजन प्रदान किया तथा उनसे यह वचन लिया कि वे उद्यान में ही निवास करेंगे। इस प्रकार बोधिसत्व महल में ही भोजन ग्रहण करते और उद्यान में ही निवास करते थे।

उन दिनों उस नगर में वस्त्र-शगुन के नाम से एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास एक संदूक में कपड़ों का एक सूट था जिसे चूहों ने कुतर दिया था, और ठीक वही हुआ जैसा कि पहले बताई गई कहानी में है। लेकिन जब पुत्र श्मशान घाट जा रहा था, तो बोधिसत्व पहले ही वहाँ पहुँच गए और द्वार पर बैठ गए; और युवा ब्राह्मण द्वारा फेंके गए सूट को उठाकर वे बगीचे में लौट आए। जब पुत्र ने यह बात बूढ़े ब्राह्मण को बताई, तो उन्होंने कहा, "यह राजा के तपस्वी की मृत्यु होगी"; और बोधिसत्व से विनती की कि वे उस सूट को फेंक दें, अन्यथा वे मर जाएँगे। लेकिन तपस्वी ने उत्तर दिया, "हमारे लिए श्मशान घाटों में फेंके गए चिथड़े ही काफी हैं। हम भाग्य से संबंधित अंधविश्वासों में विश्वास नहीं करते, जिन्हें बुद्धों, पच्चेक बुद्धों या बोधिसत्वों ने मान्यता नहीं दी है; इसलिए किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को भाग्य में विश्वास नहीं करना चाहिए।" सत्य की व्याख्या सुनकर ब्राह्मण ने अपने पापों का त्याग कर बोधिसत्व की शरण ली। बोधिसत्व ने अपनी अंतर्दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म प्राप्त किया।

यह कहानी सुनाने के बाद, गुरु ने बुद्ध के रूप में ब्राह्मण को इस श्लोक में सत्य का उपदेश दिया:

जो शकुनों, सपनों और संकेतों का त्याग करता है,
वह व्यक्ति, अंधविश्वास की गलतियों से मुक्त होकर,
हम दोनों दुष्टताओं पर विजय प्राप्त करेंगे।
और अंत समय तक आसक्तियों से परे।

जब गुरु ने ब्राह्मण को इस श्लोक के रूप में अपना उपदेश दिया, तो उन्होंने आगे बढ़कर चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में उस ब्राह्मण ने अपने पुत्र सहित प्रथम मार्ग (सम्मोहन) को प्राप्त किया। गुरु ने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा, "आज के पिता और पुत्र उन दिनों के भी पिता और पुत्र थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) एक खुला स्थान या उपवन जिसमें जंगली जानवरों के खाने के लिए शवों को रखा जाता था, ताकि पृथ्वी अपवित्र न हो।

(2) पाली में भो गौतम (बुद्ध), एक परिचित संबोधन का रूप। ब्राह्मणों को हमेशा बुद्ध को भो कहने का आशय जताते हुए दर्शाया जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सारंभ-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-88-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 88
सारम्भ-जातक

"कृपापूर्वक बोलो।"--यह कहानी गुरु ने श्रावस्ती नगर में अपशब्दों के प्रयोग से संबंधित नियम के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कहानी और अतीत की कहानी ऊपर दिए गए नंदीविसाला-जातक (*1) के समान ही हैं।

लेकिन इस मामले में अंतर यह है कि बोधिसत्व सरम्भा नामक एक बैल थे, और गांधार राज्य (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के तक्षशिला के एक ब्राह्मण के थे। अतीत की कहानी सुनाने के बाद, गुरु ने बुद्ध के रूप में यह श्लोक कहा:-

विनम्रता से बोलें, अपने साथी को गाली न दें;
प्रेम और दयालुता का भाव रखें; दुर्व्यवहार से दुख उत्पन्न होता है।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त किया तो उन्होंने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आनंद उस समय के ब्राह्मण थे, उप्पलावन्ना उनकी पत्नी थीं और मैं सरम्भा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 28.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुहाका-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-89-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 89
कुहाका-जातक

"कितना विश्वसनीय है!" यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक बेईमान व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। उसकी बेईमानी का विवरण उद्दल-जातक (*1) में दिया जाएगा।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब पास ही एक छोटे से गाँव में एक धूर्त और दुष्ट तपस्वी रहता था, जो लंबे, जटाधारी बालों वाला था। गाँव के अधिकारी ने उसके रहने के लिए जंगल में एक आश्रम बनवाया था और उसे अपने घर में उत्तम भोजन उपलब्ध कराता था। जटाधारी तपस्वी को सदाचार का आदर्श मानते हुए और लुटेरों के डर से, अधिकारी ने आश्रम में सौ सोने के सिक्के लाकर गाड़ दिए और तपस्वी से उनकी रक्षा करने को कहा। "महाराज, संसार त्याग चुके व्यक्ति से ऐसा कहने की कोई आवश्यकता नहीं है; हम तपस्वी कभी दूसरों की संपत्ति के लालच में नहीं पड़ते।" "ठीक है महाराज," अधिकारी ने कहा और अधिकारी की बात पर पूरा भरोसा करके चला गया। तब उस दुष्ट तपस्वी ने मन ही मन सोचा, "यहाँ इतना है कि किसी का जीवन भर का गुजारा हो जाएगा।" कुछ दिन बीतने का इंतज़ार करने के बाद, उन्होंने सोना निकाला और उसे सड़क किनारे गाड़ दिया, और पहले की तरह अपने आश्रम में रहने लौट गए। अगले दिन, अधिकारी के घर पर चावल का भोजन करने के बाद, तपस्वी ने कहा, "महाराज, बहुत समय हो गया है जब से आप मेरा भरण-पोषण कर रहे हैं; और एक ही स्थान पर लंबे समय तक रहना संसार में रहने के समान है, जो समर्पित तपस्वियों के लिए वर्जित है। इसलिए मुझे जाना ही होगा।" और यद्यपि अधिकारी ने उन्हें रुकने के लिए कहा, फिर भी उनका दृढ़ संकल्प नहीं डिगा।

“अच्छा, तो अगर ऐसा ही होना है, तो जाइए महोदय,” अधिकारी ने कहा; और उसने तपस्वी को शहर के बाहरी इलाके तक पहुँचाया और फिर उसे छोड़कर चला गया। थोड़ी दूर जाने के बाद तपस्वी ने सोचा कि अधिकारी को मनाना अच्छा रहेगा; इसलिए उसने अपनी जटाओं में एक तिनका फंसाकर वापस मुड़ गया। “वापस क्यों आए?” अधिकारी ने पूछा। “महोदय, आपकी छत से एक तिनका मेरी जटाओं में फंस गया था; और क्योंकि हम संन्यासी बिना दी हुई कोई भी चीज़ नहीं लेते, इसलिए मैं इसे आपके पास वापस ले आया हूँ।” “इसे नीचे फेंक दीजिए महोदय, और जाइए,” अधिकारी ने कहा, और मन ही मन सोचा, “अरे वाह, यह तो बिना मालिक का तिनका भी नहीं लेगा! कितना संवेदनशील स्वभाव है!” तपस्वी से अत्यंत प्रसन्न होकर अधिकारी ने उसे विदाई दी।

उस समय संयोगवश, व्यापार के उद्देश्य से सीमावर्ती जिले की ओर जा रहे बोधिसत्व ने उस गाँव में रात्रि विश्राम किया। तपस्वी की बातें सुनकर उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि उस दुष्ट तपस्वी ने अधिकारी से कुछ चुरा लिया होगा; और उन्होंने अधिकारी से पूछा कि क्या उन्होंने तपस्वी की देखरेख में कुछ रखा था।

"हां, सौ सोने के सिक्के।"

"ठीक है, जाकर देख लो कि सब कुछ सुरक्षित है या नहीं।"

अधिकारी आश्रम गया और वहाँ देखा तो पाया कि उसका पैसा गायब है। दौड़कर बोधिसत्व के पास लौटा और रोते हुए बोला, "पैसा नहीं है।" बोधिसत्व ने कहा, "चोर कोई और नहीं बल्कि वह लंबे बालों वाला बदमाश तपस्वी है; चलो उसका पीछा करके उसे पकड़ते हैं।" तो वे तेज़ी से उसका पीछा करने लगे। जब उन्होंने उस बदमाश को पकड़ा तो उसे तब तक लात-घूंसे मारे जब तक उसने उन्हें यह नहीं बता दिया कि उसने पैसा कहाँ छिपाया था। जब उसने सोना निकाला तो बोधिसत्व ने उसे देखकर तपस्वी से तिरस्कारपूर्वक कहा, "तो सौ सोने के सिक्कों ने तुम्हारे अंतरात्मा को उतना परेशान नहीं किया जितना उस तिनके ने!" और उन्होंने उसे इस श्लोक में फटकारा:-

उस बदमाश ने जो कहानी सुनाई, वह कितनी विश्वसनीय लग रही थी!
तिनके के प्रति कितना सजग! सोने के प्रति कितना लापरवाह!
जब बोधिसत्व ने उस व्यक्ति को इस प्रकार फटकारा, तो उन्होंने आगे कहा, "और अब सावधान रहो, हे पाखंडी, कहीं तुम फिर से ऐसी चाल न चलो।" अपने जीवन के अंत में, बोधिसत्व अपने कर्मों के फल के अनुसार आगे बढ़ने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए गुरु ने कहा, "इस प्रकार आप देखते हैं, भिक्षुओं, कि यह भिक्षु अतीत में भी उतना ही बेईमान था जितना आज है।" और उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "यह बेईमान भिक्षु उन दिनों का बेईमान तपस्वी था, और मैं बुद्धिमान और नेक इंसान हूँ।"

फुटनोट:

(1)सं. 487.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अकातान्नु-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-90-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 90
अकटन्नु-जातक

"वह कृतघ्न व्यक्ति।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के बारे में सुनाई थी।

कहा जाता है कि सीमावर्ती इलाके में एक व्यापारी रहता था, जो अनाथपिंडिका का पत्र-व्यवहार करने वाला और मित्र था, लेकिन उनकी कभी मुलाकात नहीं हुई थी। एक बार उस व्यापारी ने पाँच सौ गाड़ियों में स्थानीय उत्पाद लाद दिए और अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि वे महान व्यापारी अनाथपिंडिका के पास जाकर उनके पत्र-व्यवहार की दुकान में अपने सामान का मूल्य लेकर बदले में माल वापस ले आएं। वे श्रावस्ती नगर पहुंचे और अनाथपिंडिका से मिले। पहले उन्होंने उन्हें भेंट दी और फिर उन्हें अपने काम के बारे में बताया। महान व्यापारी ने कहा, "आपका स्वागत है," और उन्हें अपने यहाँ ठहराने और उनकी ज़रूरतों के लिए पैसे देने का आदेश दिया। उनके मालिक का हालचाल पूछने के बाद, उन्होंने उनके माल का आदान-प्रदान किया और बदले में उन्हें माल दे दिया। फिर वे अपने जिले लौट गए और सारी बात बताई।

कुछ समय बाद, अनाथपिंडिका ने भी उसी प्रकार पाँच सौ गाड़ियाँ माल से भरकर उसी क्षेत्र में भेजीं जहाँ वे रहते थे; और जब उनके लोग वहाँ पहुँचे, तो वे उपहार लेकर सीमावर्ती व्यापारी से मिलने गए। व्यापारी ने पूछा, “आप कहाँ से आए हैं?” उन्होंने उत्तर दिया, “श्रावस्ती नगर से; आपके पत्र-व्यवहारकर्ता, अनाथपिंडिका से।” अनाथपिंडिका ने उपहास करते हुए कहा, “कोई भी खुद को अनाथपिंडिका कह सकता है”; और उनका उपहार लेकर, उसने उन्हें न तो रहने की जगह दी और न ही पैसे। इसलिए उन्होंने अपना सामान अपने बदले में दिया और बदले में वह सामान श्रावस्ती नगर वापस ले आए, साथ ही उन्होंने वहाँ हुए स्वागत की कहानी भी सुनाई।

संयोगवश, इस सीमावर्ती व्यापारी ने श्रावस्ती नगर में पाँच सौ बैलगाड़ियों का एक और काफिला भेजा; और उसके लोग अनाथपिंडिका से मिलने के लिए उपहार लेकर आए। परन्तु जैसे ही अनाथपिंडिका के लोगों ने उन्हें देखा, उन्होंने कहा, “जी महोदय, हम देख लेंगे कि उनके रहने, खाने और ज़रूरतों के लिए धन की व्यवस्था हो।” और वे अजनबियों को नगर के बाहर ले गए और उन्हें एक उपयुक्त

स्थान पर अपनी बैलगाड़ियाँ खोलने को कहा, साथ ही यह भी कहा कि चावल और धन अनाथपिंडिका के घर से आएगा। रात के मध्याह्न के समय, उन्होंने कुछ नौकरों और दासों को इकट्ठा करके पूरे काफिले को लूट लिया, पुरुषों के सारे वस्त्र छीन लिए, उनके बैलों को भगा ले गए और बैलगाड़ियों के पहिए निकाल लिए। कुछ लोगों के पास एक भी कमीज़ नहीं थी, डरे हुए अजनबी भाग निकले और किसी तरह सीमावर्ती अपने घर पहुँच गए। तब अनाथपिंडिका के लोगों ने उन्हें सारी कहानी सुनाई। "यह अद्भुत कहानी," उसने कहा, "आज मैं गुरु को भेंट करूंगा;" और वह चला गया और गुरु को वह कहानी सुनाई।

"यह पहली बार नहीं है, महोदय, कि इस सीमावर्ती व्यापारी ने ऐसा व्यवहार दिखाया है; वह पहले भी ऐसा ही था।" फिर, अनाथपिंडिका के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की निम्नलिखित कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उस नगर के एक अत्यंत धनी व्यापारी थे। उनका एक सीमावर्ती व्यापारी से भी पत्राचार होता था, जिसे उन्होंने कभी नहीं देखा था, और फिर वही सब कुछ घटित हुआ जैसा कि ऊपर बताया गया है।

जब उसके लोगों ने उसे बताया कि उन्होंने क्या किया है, तो उसने कहा, "यह संकट उनके द्वारा दिखाई गई दया के प्रति उनकी कृतघ्नता का परिणाम है।" और फिर उसने एकत्रित भीड़ को इस श्लोक में उपदेश देना शुरू किया:-

वह व्यक्ति जो किसी के द्वारा किए गए उपकार के लिए कृतघ्न है,
इसके बाद उसे जरूरत के समय कोई मददगार नहीं मिलेगा।
इस श्लोक में बोधिसत्व ने इसी प्रकार सत्य का उपदेश दिया। दान और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन के बाद, वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक विदा हुए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आज का सीमावर्ती व्यापारी उन दिनों का भी सीमावर्ती व्यापारी था; और मैं बनारस का व्यापारी था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लित्त-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-91-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 91

लिट्टा-जातक

"वह पासे को कस देता है।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें चीजों का लापरवाही से उपयोग करने के बारे में बताया गया था।

परंपरा के अनुसार, उस समय के अधिकांश भिक्षु अपने वस्त्रों आदि का उपयोग लापरवाही से करते थे। उनका चार आवश्यक वस्तुओं का लापरवाही से उपयोग करना ही उनके लिए नरक और पशुलोक में पुनर्जन्म के दंड का कारण बना। यह जानकर गुरु ने सद्गुणों का उपदेश देना शुरू किया और वस्तुओं के इस लापरवाहीपूर्ण उपयोग के खतरे को समझाया। उन्होंने भिक्षुओं को चार आवश्यक वस्तुओं का सावधानीपूर्वक उपयोग करने की सलाह दी और यह नियम बताया, "विवेकी भिक्षु वस्त्र धारण करते समय एक निश्चित उद्देश्य रखता है, अर्थात् ठंड से बचाव।" अन्य आवश्यक वस्तुओं के लिए भी इसी प्रकार के नियम बताते हुए उन्होंने अंत में कहा, "चार आवश्यक वस्तुओं का विवेकपूर्ण उपयोग इसी प्रकार किया जाना चाहिए। लापरवाही से इनका उपयोग करना घातक विष ग्रहण करने के समान है; और अतीत में ऐसे लोग भी थे जिन्होंने लापरवाही के कारण अनजाने में विष ग्रहण कर लिया, जिससे उन्हें समय आने पर अत्यधिक पीड़ा हुई।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, बोधिसत्व एक समृद्ध परिवार में पैदा हुए और बड़े होकर पासा खेलने लगे। उनके साथ एक धूर्त खेलता था, जो जीतने तक खेलता रहता था, लेकिन जब किस्मत पलटती तो एक पासा मुंह में डालकर खेल रोक देता और फिर खो जाने का नाटक करता। बोधिसत्व को जब पता चला कि ऐसा हो रहा है, तो उन्होंने कहा, "बहुत खूब! हम इसकी जांच करेंगे।" इसलिए उन्होंने कुछ पासे लिए, उन्हें घर पर विष से लेपित किया, उन्हें अच्छी तरह सुखाया और फिर उन्हें अपने साथ धूर्त के पास ले गए, जिसे उन्होंने खेल के लिए चुनौती दी। दूसरा तैयार हो गया, पासे का बोर्ड तैयार किया गया और खेल शुरू हो गया। जैसे ही धूर्त हारने लगा, उसने एक पासा मुंह में डाल लिया। उसे ऐसा करते देख बोधिसत्व ने कहा, "निगल लो; थोड़ी देर में तुम्हें पता चल ही जाएगा कि यह वास्तव में क्या है।" और उन्होंने फटकार का यह श्लोक कहा:-

वह बड़ी बेधड़क होकर पासे को ठोक देता है, यह जाने बिना कि...
वह कौन सा ज्वलनशील जहर है जो अदृश्य रूप से छिपा हुआ है?
हाँ, इसे कस दो, और तेज़! जल्द ही तुम अंदर से जल उठोगे।
लेकिन जब बोधिसत्व बोल रहे थे, तभी उस दुष्ट पर विष का असर होने लगा; वह बेहोश हो गया, उसकी आँखें घूमने लगीं और दर्द से कराहते हुए वह ज़मीन पर गिर पड़ा। बोधिसत्व ने कहा, "अब मुझे इस दुष्ट की जान बचानी होगी।" इसलिए उन्होंने कुछ औषधीय जड़ी-बूटियाँ मिलाकर उसे उल्टी कराने वाली दवा पिलाई, जिससे उल्टी हो गई। फिर उन्होंने उसे घी, शहद, चीनी और अन्य सामग्री मिलाकर पिलाया और इस तरह वह ठीक हो गया। फिर उन्होंने उसे दोबारा ऐसा न करने की सलाह दी। दान और अन्य अच्छे कार्यों में जीवन व्यतीत करने के बाद, बोधिसत्व का निधन हो गया और उनके कर्मों के अनुसार ही उनका फल मिलेगा।

अपना प्रवचन समाप्त करते हुए गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), वस्तुओं का लापरवाही से उपयोग करना घातक विष को लापरवाही से ग्रहण करने के समान है।" ऐसा कहते हुए उन्होंने अपने जन्म को इन शब्दों में वर्णित किया, "मैं स्वयं उन दिनों का बुद्धिमान और कुशल जुआरी था।"

(पाली टिप्पणी: "तेज़ करने वाले का कोई उल्लेख नहीं है, इसका कारण यह है कि, यहाँ और अन्यत्र भी, उन व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है जिनका इस तिथि पर उल्लेख नहीं किया गया है।")

***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-92-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 92
महासार-जातक

"पुरुष युद्ध के लिए तरसते हैं।" - यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में आदरणीय आनंद के बारे में सुनाई थी।

एक बार कोसल के राजा की पत्नियों ने आपस में विचार किया, "बुद्ध का आना अत्यंत दुर्लभ है; और समस्त इंद्रियों की पूर्णता के साथ मनुष्य रूप में जन्म लेना भी अत्यंत दुर्लभ है। यद्यपि हमें संयोगवश बुद्ध के जीवनकाल में मनुष्य रूप प्राप्त हुआ है, फिर भी हम अपनी इच्छा से मठ जाकर उनके मुख से सत्य का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, उन्हें प्रणाम नहीं कर सकते और उन्हें भेंट नहीं चढ़ा सकते। हम यहाँ एक पिंजरे में बंद होकर रह रहे हैं। आइए हम राजा से प्रार्थना करें कि वे एक योग्य भिक्षु को यहाँ बुलाएँ और हमें सत्य का ज्ञान दें। आइए हम उनसे जितना हो सके उतना सीखें, और वे दान-पुण्य करें और अच्छे कार्य करें, ताकि इस शुभ अवसर पर जन्म लेने का हमें लाभ हो।" अतः वे सब एक साथ राजा के पास गईं और उन्हें अपने मन की बात बताई; और राजा ने अपनी सहमति दे दी।

एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि राजा राज उद्यान में कुछ समय बिताना चाहते थे, और उन्होंने आदेश दिया कि उनके आने की तैयारी में उद्यान को तैयार किया जाए। माली जब काम कर रहा था, तो उसने गुरु को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। इसलिए वह राजा के पास गया और बोला, "महाराज, उद्यान तो तैयार है; लेकिन भगवान बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठे हैं।" राजा ने कहा, "बहुत अच्छा, हम जाकर गुरु से मिलते हैं।" अपने राज रथ पर सवार होकर वह उद्यान में गुरु के पास गया।

उस समय गुरु के चरणों में बैठे हुए, चट्टपानी नामक एक गृहस्थ, जो तृतीय मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश कर चुके थे, उनके उपदेश सुन रहे थे। इस गृहस्थ को देखते ही राजा झिझके; परन्तु यह सोचकर कि यह अवश्य ही गुणी पुरुष होगा, अन्यथा वह गुरु के पास उपदेश सुनने नहीं बैठा होता, वे आगे बढ़े और गुरु के एक ओर प्रणाम करके बैठ गए। परम बुद्ध के प्रति श्रद्धावश, गृहस्थ ने न तो राजा के सम्मान में उठकर प्रणाम किया और न ही उन्हें प्रणाम किया; इससे राजा अत्यंत क्रोधित हो गए। राजा की नाराजगी देखकर, गुरु ने उस गृहस्थ के गुणों का गुणगान करते हुए कहा, “महाराज, यह गृहस्थ समस्त परंपराओं के ज्ञाता हैं; इन्हें शास्त्रों की पूर्ण जानकारी है; और इन्होंने अपने आप को वासना के बंधन से मुक्त कर लिया है।” राजा ने मन ही मन सोचा, “जिसकी प्रशंसा गुरु कर रहे हैं, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता।” और उसने उससे कहा, "हे गृहस्थ, यदि तुम्हें किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो मुझे बता देना।" "धन्यवाद," उस व्यक्ति ने कहा। तब राजा ने गुरु का उपदेश सुना, और उपदेश समाप्त होने पर उठकर विधिपूर्वक विदा हो गया।

एक दिन, उसी गृहस्थ से मुलाकात हुई जब वह नाश्ते के बाद छाता लिए जेतवन मठ जा रहा था। राजा ने उसे अपने समक्ष बुलाया और कहा, "मैंने सुना है, गृहस्थ, कि आप बहुत विद्वान हैं। मेरी पत्नियाँ सत्य को सुनने और सीखने के लिए बहुत उत्सुक हैं; यदि आप उन्हें सिखाएँ तो मुझे प्रसन्नता होगी।" "महाराज, यह उचित नहीं है कि एक गृहस्थ राजा के हरम में सत्य की व्याख्या करे या सिखाए; यह भिक्षुओं का विशेषाधिकार है।"

इस टिप्पणी के महत्व को समझते हुए, राजा ने उस आम आदमी को विदा करने के बाद अपनी पत्नियों को बुलाया और उन्हें बताया कि वे गुरु से अपने शिष्यों में से किसी एक को उनके शिक्षक के रूप में भेजने का इरादा रखते हैं। अस्सी प्रमुख शिष्यों में से वे किसे अपना शिक्षक बनाना चाहेंगे? आपस में विचार-विमर्श करने के बाद, सभी महिलाओं ने सर्वसम्मति से आनंद (*1) को चुना, जो एक वरिष्ठ भिक्षु थे और जिन्हें धर्म के कोषाध्यक्ष के रूप में जाना जाता था। इसलिए राजा गुरु के पास गए और विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन करते हुए उनके पास बैठ गए। इसके बाद उन्होंने अपनी पत्नियों की इच्छा और अपनी आशा व्यक्त की कि आनंद ही उनके शिक्षक बनें। गुरु द्वारा आनंद को भेजने की सहमति मिलने पर, राजा की पत्नियाँ अब नियमित रूप से वरिष्ठ भिक्षु से शिक्षा प्राप्त करने लगीं और उनसे सीखने लगीं।

एक दिन राजा की पगड़ी से रत्न गायब हो गया। राजा को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने मंत्रियों को बुलवाया और उनसे कहा कि वे महल में आने-जाने वाले हर व्यक्ति को पकड़ लें और रत्न ढूंढें। मंत्रियों ने हर किसी की, यहाँ तक कि महिलाओं की भी, तलाशी ली, यहाँ तक कि हर किसी को इतना परेशान कर दिया कि उनकी जान ही निकल गई; लेकिन रत्न का कोई सुराग नहीं मिला। उसी दिन आनंद महल में आए और उन्होंने देखा कि राजा की पत्नियाँ उतनी ही उदास थीं जितनी अब तक उनके उपदेश देने पर प्रसन्न होती थीं। "आज तुम सब इतनी उदास क्यों हो?" बड़े भिक्षु ने पूछा। "जी, महाराज," उन्होंने कहा, "राजा की पगड़ी से रत्न खो गया है; और उनके आदेश पर मंत्री हर किसी को, यहाँ तक कि महिलाओं को भी, परेशान कर रहे हैं ताकि रत्न मिल सके। हम नहीं जानते कि हममें से किसी के साथ क्या नहीं हो सकता; और इसीलिए हम इतने दुखी हैं।" "अब इसके बारे में और मत सोचो," बड़े भिक्षु ने प्रसन्नता से कहा और राजा को ढूंढने चले गए। अपने लिए रखी कुर्सी पर बैठते हुए, वृद्ध भिक्षु ने पूछा कि क्या महाराज का रत्न खो गया है? "जी हाँ, महाराज," राजा ने कहा। "और क्या वह नहीं मिल रहा?" "मैंने महल के सभी निवासियों को इतना परेशान कर दिया है कि उनकी जान निकल गई है, फिर भी वह नहीं मिल रहा है।" "महाराज, उसे खोजने का एक तरीका है, बिना लोगों को परेशान किए।" "वह क्या तरीका है, महाराज?" "भूसे का टुकड़ा देना, महाराज।" "भूसे का टुकड़ा देना? वह क्या है?" "महाराज, उन सभी लोगों को बुलाइए जिन पर आपको संदेह है, और उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग चुपके से भूसे का एक टुकड़ा या मिट्टी का एक ढेला दीजिए, और कहिए, 'इसे लीजिए और कल सुबह भोर में फलाँ स्थान पर रख दीजिए।'" जिस व्यक्ति ने रत्न लिया है, वह उसे भूसे या मिट्टी में रख देगा और फिर उसे वापस ले आएगा। यदि वह पहले ही दिन वापस आ जाए, तो बहुत अच्छा। यदि नहीं, तो यही प्रक्रिया दूसरी और तीसरी मिट्टी के साथ भी दोहराई जानी चाहिए। इस तरह, बहुत से लोग चिंता से बच जाएंगे और आपको आपका रत्न वापस मिल जाएगा।” ये कहकर वृद्ध भिक्षु विदा हो गए।

उपरोक्त सलाह का पालन करते हुए, राजा ने लगातार तीन दिनों तक भूसा और मिट्टी बाँटने का आदेश दिया; फिर भी रत्न नहीं मिला। तीसरे दिन, वरिष्ठ भिक्षु फिर आए और पूछा कि क्या रत्न वापस लाया गया है। राजा ने कहा, "जी नहीं।" "तो महाराज, आपको अपने आँगन के एक एकांत कोने में एक बड़ा पानी का बर्तन रखना होगा, उसे पानी से भरना होगा और उसके सामने एक पर्दा लगाना होगा। फिर आदेश दें कि परिसर में आने-जाने वाले सभी लोग, पुरुष और महिलाएँ, अपने बाहरी वस्त्र उतार दें, बारी-बारी से पर्दे के पीछे हाथ धोएँ और फिर वापस आएँ।" यह सलाह देकर वरिष्ठ भिक्षु चले गए। और राजा ने सलाह के अनुसार ही कार्य किया।

चोर ने सोचा, "आनंद ने मामले को गंभीरता से अपने हाथ में ले लिया है; और अगर उसे रत्न नहीं मिला, तो वह इसे यहीं नहीं छोड़ेगा। अब रत्न को बिना किसी परेशानी के सौंपने का समय आ गया है।" इसलिए उसने रत्न को अपने पास छिपा लिया और पर्दे के पीछे जाकर उसे पानी में डाल दिया। जब सब लोग चले गए, तो घड़ा खाली किया गया और रत्न मिल गया। राजा ने खुशी से कहा, "यह सब बड़े भिक्षु की कृपा से ही संभव हुआ है कि मुझे मेरा रत्न वापस मिल गया, और वह भी बिना किसी को परेशान किए।" परिसर में मौजूद

सभी लोग आनंद के आभारी थे क्योंकि उन्होंने उन्हें मुसीबतों से बचाया था। आनंद की अद्‌भुत शक्तियों से रत्न मिलने की कहानी पूरे शहर में फैल गई, यहाँ तक कि भिक्षु संघ तक भी पहुँच गई। भिक्षुओं ने कहा, "वरिष्ठ भिक्षु आनंद के महान ज्ञान, विद्या और चतुराई ने खोए हुए रत्न को पुनः प्राप्त करने और अनेक लोगों को संकट से उबरने में सहायक सिद्ध किया है।" जब वे सत्य के हॉल में बैठकर आनंद की स्तुति कर रहे थे, तभी गुरुजी प्रवेश कर गए और उनसे विषय पूछा। विषय सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि चोरी हुई वस्तु मिली है, और न ही आनंदजी अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने ऐसी खोज करवाई है। अतीत में भी बुद्धिमान और भले लोगों ने चोरी हुई वस्तुओं को खोज निकाला था और बहुत से लोगों को संकट से बचाया था, क्योंकि उन्हें पता चला था कि खोई हुई संपत्ति जानवरों के हाथों में पड़ गई थी।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद राजा के मंत्रियों में से एक बन गए। एक दिन राजा अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर अपने बगीचे में गए और जंगल में घूमने के बाद उन्हें पानी में डुबकी लगाने की इच्छा हुई। इसलिए वे राजसी तालाब में उतरे और अपनी हरम की स्त्रियों को बुलवाया। हरम की स्त्रियों ने अपने सिर और गले आदि से गहने उतारकर अपने ऊपरी वस्त्रों सहित दासियों की देखरेख में बक्सों में रख दिए और फिर पानी में उतर गईं। अब, जब रानी अपने गहने और आभूषण उतारकर अपने ऊपरी वस्त्र सहित एक बक्से में रख रही थीं, तो पास के एक पेड़ की शाखाओं में छिपी एक मादा बंदर उन्हें देख रही थी। रानी के मोतियों के हार को पहनने की लालसा में, यह बंदर दासी के लापरवाह होने का इंतजार कर रही थी। पहले तो लड़की गहनों की सुरक्षा के लिए चारों ओर देखती रही; लेकिन समय बीतने के साथ-साथ वह ऊंघने लगी। जैसे ही बंदरिया ने यह देखा, वह हवा की तरह तेज़ी से नीचे कूदी और उतनी ही तेज़ी से मोतियों को अपने गले में पहनकर फिर से पेड़ पर चढ़ गई। फिर, इस डर से कि कहीं दूसरे बंदर उसे देख न लें, उसने मोतियों की माला पेड़ के एक छेद में छिपा दी और ऐसे पहरा देने लगी जैसे कुछ हुआ ही न हो। कुछ समय बाद दास जागा और गहनों को गायब देखकर भयभीत हो गया, उसके पास चिल्लाने के अलावा कोई चारा नहीं था, "एक आदमी रानी का मोतियों का हार लेकर भाग गया है।" चारों ओर से पहरेदार दौड़ पड़े और यह कहानी सुनकर राजा को सुनाई। "चोर को पकड़ो," महाराज ने कहा; और पहरेदार बगीचे में चोर को ढूंढने के लिए निकल पड़े। शोर सुनकर एक बेचारा अंधविश्वासी देहाती घबराकर भाग गया। "देखो, वह जा रहा है," भागे हुए चोर को देखकर पहरेदार चिल्लाए; और वे उसका पीछा करते हुए उसे पकड़ने तक गए, और फिर मार-पीट करते हुए उससे पूछा कि उसने इतने कीमती गहने क्यों चुराए।

उसने सोचा, "अगर मैं आरोप से इनकार करूँ तो इन बदमाशों की मार से मर जाऊँगा। बेहतर यही होगा कि मैं कह दूँ कि मैंने ही इसे लिया है।" इसलिए उसने चोरी कबूल कर ली और उसे कैदी बनाकर राजा के पास ले जाया गया। राजा ने पूछा, "क्या तुमने वे कीमती गहने लिए थे?" "जी महाराज।" "वे अब कहाँ हैं?" "महोदय, मैं एक गरीब आदमी हूँ; मैंने अपने जीवन में कभी कोई कीमती चीज, यहाँ तक कि बिस्तर या कुर्सी भी नहीं खरीदी, गहनों की तो बात ही छोड़िए। कोषाध्यक्ष ने ही मुझसे वह कीमती हार लेने को कहा था; और मैंने उसे लेकर उसे दे दिया। वह सब कुछ जानता है।"

तब राजा ने कोषाध्यक्ष को बुलवाया और पूछा कि क्या उस देहाती ने हार उसे सौंपा था। उत्तर था, "जी महाराज।" राजा ने पूछा, "तो फिर वह कहाँ है?" "मैंने उसे महाराज के पुजारी को दे दिया।" तब पुजारी को बुलवाया गया और उससे भी उसी तरह पूछताछ की गई। उसने कहा कि उसने उसे मुख्य संगीतकार को दिया था, जिसने बदले में कहा कि उसने उसे एक शाही नर्तकी और वेश्या को उपहार में दिया था। लेकिन जब उसे राजा के सामने लाया गया, तो उसने हार मिलने से साफ इनकार कर दिया।

जब उन पाँचों से पूछताछ चल रही थी, तभी सूरज डूब गया। राजा ने कहा, "अब बहुत देर हो चुकी है; हम इस मामले को कल देखेंगे।" इस प्रकार उन्होंने उन पाँचों को अपने मंत्रियों के हवाले कर दिया और शहर लौट गए। यहीं पर बोधिसत्व चिंतन में लीन हो गए। "ये गहने," उसने सोचा, "जब देहाती बाहर था, तब परिसर के अंदर ही खो गए थे। द्वार पर कड़ी सुरक्षा थी, और अंदर से किसी के लिए भी हार चुराना नामुमकिन था। मुझे समझ नहीं आता कि अंदर हो या बाहर, कोई भी इसे कैसे हासिल कर सकता था। सच तो यह है कि इस बेचारे ने कोषाध्यक्ष को हार देने की बात सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए कही होगी; और कोषाध्यक्ष ने पुजारी को हार देने की बात इस उम्मीद में कही होगी कि अगर वह पुजारी को इस मामले में फंसा देगा तो वह बच जाएगा। इसके अलावा, पुजारी ने मुख्य संगीतकार को हार देने की बात इसलिए कही होगी क्योंकि उसने सोचा होगा कि वह जेल में समय को मज़ेदार तरीके से गुजार देगा; जबकि मुख्य संगीतकार का शाही नर्तकियों और वेश्या को फंसाने का मकसद सिर्फ जेल में उनके साथ रहकर खुद को तसल्ली देना था। इन पांचों में से किसी का भी चोरी से कोई लेना-देना नहीं है। दूसरी ओर, परिसर में बंदरों की भरमार है, और हार किसी मादा बंदर के हाथ लग गया होगा।"

इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद, बोधिसत्व राजा के पास गए और उनसे निवेदन किया कि संदिग्धों को उनके हवाले कर दिया जाए और उन्हें स्वयं मामले की जाँच करने की अनुमति दी जाए। राजा ने कहा, "ज़रूर, मेरे बुद्धिमान मित्र; आप इसकी जाँच कर सकते हैं।"

तब बोधिसत्व ने अपने सेवकों को बुलवाया और उन्हें पाँचों कैदियों को ठहराने का स्थान बताया, और कहा, "इन पर कड़ी नज़र रखना; ये जो कुछ भी कहें, ध्यान से सुनना और मुझे सब कुछ बताना।" और उनके सेवकों ने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा था। जब कैदी एक साथ बैठे थे, तब कोषाध्यक्ष ने देहाती से कहा, "बताओ, हे दुष्ट, आज से पहले हम कहाँ मिले थे; बताओ तुमने मुझे वह हार कब दिया था?" दूसरे ने कहा, "आदरणीय महोदय, मेरे पास कभी भी इतनी कीमती कोई चीज़ नहीं थी, यहाँ तक कि एक स्टूल या पलंग भी नहीं, जो खस्ताहाल न हो। मैंने सोचा था कि आपकी मदद से मैं इस मुसीबत से निकल जाऊँगा, और इसीलिए मैंने ऐसा कहा। हे स्वामी, मुझ पर क्रोधित न हों।" पुजारी ने कोषाध्यक्ष से पूछा, "तो फिर आपने मुझे वह चीज़ कैसे दे दी जो इस व्यक्ति ने आपको कभी दी ही नहीं थी?" "मैंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि मैंने सोचा था कि अगर हम दोनों, जो राज्य के उच्च अधिकारी हैं, एक साथ खड़े हों, तो हम जल्द ही इस मामले को सुलझा सकते हैं।" "ब्राह्मण," मुख्य संगीतकार ने पुजारी से कहा, "मैंने तुमसे पूछा, तुमने मुझे यह रत्न कब दिया था?" पुजारी ने उत्तर दिया, "मैंने तो बस इसलिए कहा कि दिया था, क्योंकि मुझे लगा कि तुम समय को थोड़ा सुखद बनाने में मदद करोगी।" अंत में राजसी नर्तकी और मदिरास्त्री ने कहा, "अरे, तुम बेचारे संगीतकार, तुम जानते हो कि तुम कभी मुझसे मिलने नहीं आए, न ही मैं तुमसे। तो फिर तुमने मुझे यह हार कब दिया होगा, जैसा कि तुम कहते हो?" संगीतकार ने कहा, "गुस्सा क्यों हो रही हो, मेरी प्यारी? हमें कुछ समय के लिए साथ रहना है; तो चलो खुश रहें और साथ में आनंद मनाएं।"

जब बोधिसत्व के दूतों ने यह बातचीत उन्हें बताई, तो उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि पाँचों बंदर चोरी के दोषी नहीं हैं और एक मादा बंदर ने हार चुराया है। उन्होंने मन ही मन कहा, "मुझे कोई ऐसा उपाय ढूंढना होगा जिससे वह हार गिरा दे।" इसलिए उन्होंने कई मोतियों के हार बनवाए। फिर उन्होंने कई बंदरों को पकड़ा और उनके गले, कलाई और टखनों में मोतियों की माला बांधकर उन्हें फिर से छोड़ दिया। इस बीच, दोषी बंदर पेड़ों पर बैठकर अपने खजाने को देखती रही। तब बोधिसत्व ने कई लोगों को आदेश दिया कि वे परिसर में मौजूद हर बंदर पर ध्यान से नज़र रखें, जब तक कि उन्हें कोई ऐसा बंदर न दिख जाए जिसने खोया हुआ मोतियों का हार पहना हो, और फिर उसे डराकर हार गिरा दें।

अपने नए वैभव में सजे-धजे अन्य बंदर इधर-उधर घूमते रहे जब तक कि वे असली चोर के पास नहीं पहुँच गए, जिसके सामने उन्होंने अपने कीमती वस्त्रों का प्रदर्शन किया। ईर्ष्या ने उसकी विवेकशीलता पर विजय प्राप्त कर ली और वह चिल्लाई, "ये तो केवल मोती हैं!" और उसने असली मोतियों का अपना हार पहन लिया। यह तुरंत देखने वालों की नज़र में आ गया, जिन्होंने उससे हार छुड़वा दिया और उसे उठाकर बोधिसत्व के पास ले आए। बोधिसत्व उसे राजा के पास ले गए और बोले, "हे महाराज, यह रहा हार। पाँचों कैदी निर्दोष हैं; इसे बगीचे की एक मादा बंदर ने चुराया था।" राजा ने पूछा, "आपको यह कैसे पता चला? और आपने इसे वापस कैसे प्राप्त किया?" तब बोधिसत्व ने पूरी कहानी सुनाई, और राजा ने बोधिसत्व को धन्यवाद देते हुए कहा, "आप सही जगह पर सही व्यक्ति हैं।" और उन्होंने बोधिसत्व की प्रशंसा में यह श्लोक कहा:-

युद्ध के लिए, पुरुष नायक की शक्ति की लालसा रखते हैं।
संयमित रहने के लिए समझदारी भरी सलाह के लिए,
उनके आनंदमय उत्सव के लिए साथीगण,
लेकिन खतरनाक स्थिति में ही निर्णय लेना चाहिए।
इन प्रशंसा और कृतज्ञता के शब्दों के अतिरिक्त, राजा ने बोधिसत्व पर आकाश से बरसते तूफ़ान की तरह धन-संपत्ति की वर्षा की। बोधिसत्व के उपदेशों का पालन करते हुए दान और अच्छे कार्यों में व्यतीत लंबा जीवन बिताने के बाद, राजा का निधन हो गया और उनके कर्मों के अनुसार ही उनका परलोक हुआ।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु के गुणों की प्रशंसा करने के बाद, जन्म की पहचान करते हुए कहा, "आनंद उन मिट्टी के राजा थे और मैं उनका बुद्धिमान सलाहकार था।"

फुटनोट:

(1)आनंद के 'महिला प्रश्न पर उन्नत विचार' थे। यह वही थे जिन्होंने अनिच्छुक बुद्ध को संघ में महिलाओं को (समान रूप से) स्वीकार करने के लिए राजी किया, जिसकी शुरुआत उनकी (बुद्ध की) पालक माता प्रजापति गौतमी से हुई।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विशासभोजन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-93-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 93
विस्साभोजना-जातक

"जिन पर भरोसा किया जाता है, उन पर भरोसा मत करो।" यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें भरोसे के आधार पर चीजों को स्वीकार करने के बारे में बताया गया था।

परंपरा के अनुसार, उन दिनों भिक्षु (भाईचारे के सदस्य) अधिकतर अपने माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा दी गई किसी भी वस्तु से संतुष्ट रहते थे। उनका तर्क था कि गृहस्थ जीवन में उन्हें ये सब चीजें उन्हीं के हाथों से मिलती थीं, इसलिए भिक्षु होने के नाते वे अपने रिश्तेदारों द्वारा दिए गए भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करने में कोई सावधानी नहीं बरतते थे। यह देखकर गुरु ने भिक्षुओं को सबक सिखाना आवश्यक समझा। अतः उन्होंने सबको बुलाया और कहा, "भाइयों, चाहे देने वाला रिश्तेदार हो या न हो, उसका उपयोग सावधानी से करें। जो भिक्षु बिना सावधानी के दी गई वस्तुओं का उपयोग करता है, वह अपने लिए परलोक में राक्षस या प्रेत का रूप धारण कर सकता है। बिना सावधानी के उपयोग करना विष लेने के समान है; और विष चाहे रिश्तेदार दे या अजनबी, एक समान ही मृत्यु का कारण बनता है। अतीत में ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपने प्रियजनों द्वारा दिए गए विष को ग्रहण किया और उसी से उनका अंत हुआ।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक अत्यंत धनी व्यापारी थे। उनका एक चरवाहा था, जो फसल अच्छी होने पर अपनी गायों को जंगल में ले जाकर एक झोपड़ी में रखता था और समय-समय पर व्यापारी के लिए दूध लाता था। उस झोपड़ी के पास ही जंगल में एक शेर रहता था; और गायें शेर से इतनी डरती थीं कि वे बहुत कम दूध देती थीं। एक दिन जब चरवाहा अपना घी लेकर आया, तो व्यापारी ने पूछा कि इतना कम घी क्यों है। तब चरवाहे ने कारण बताया। "क्या शेर को किसी चीज से लगाव हो गया है?" "जी महाराज; उसे एक हिरणी बहुत पसंद है।" "क्या आप उस हिरणी को पकड़ सकते हैं?" "जी महाराज।" "अच्छा, उसे पकड़ो और उस पर ज़हर और चीनी मल दो, फिर उसे सूखने दो। उसे एक-दो दिन अपने पास रखो, फिर उसे छोड़ दो। उसके प्रति प्रेम के कारण शेर उसे अपनी जीभ से चाटेगा और मर जाएगा। उसकी खाल, उसके पंजे, दांत और चर्बी सहित, मेरे पास ले आओ।" ऐसा कहकर उन्होंने चरवाहे को घातक ज़हर दिया और उसे भेज दिया। चरवाहे ने अपने बनाए जाल की सहायता से हिरणी को पकड़ा और बोधिसत्व के आदेश का पालन किया।

जैसे ही शेर ने हिरणी को दोबारा देखा, अपने प्रेम में उसने उसे जीभ से चाट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। चरवाहे ने शेर की खाल और बाकी सब कुछ बोधिसत्व के पास लाकर रख दिया, जिन्होंने कहा, "दूसरों के प्रति स्नेह से बचना चाहिए। देखो, अपनी सारी शक्ति के बावजूद, पशुओं का राजा शेर भी हिरणी के प्रति अपने पापी प्रेम के कारण उसे चाटकर खुद को विषैले पदार्थ से मार बैठा।" ऐसा कहकर उन्होंने आस-पास उपस्थित लोगों को उपदेश देने के लिए यह श्लोक कहा:-

न तो भरोसेमंद पर भरोसा करो, न ही अविश्वसनीय पर भरोसा करो;
विश्वास घातक होता है; विश्वास के कारण ही शेर की जान गई।
यही वह शिक्षा थी जो बोधिसत्व ने अपने आसपास के लोगों को दी। दान और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन बिताने के बाद, वे अपने कर्मों के फल के लिए परलोक सिधार गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों का व्यापारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लोमहंस-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-94-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 94
लोमहाम्सा-जातक

"अब झुलस गया है।" - यह कहानी गुरु ने वैशाली शहर के पास पतिकारमा में सुनाक्खत्ता के बारे में सुनाई थी।

उस समय सुनक्खत्ता, गुरु के अनुयायी बनकर, कुंड और वस्त्र धारण करके भिक्षु के रूप में देश भर में यात्रा कर रहे थे, तभी वे क्षत्रिय कोरा के सिद्धांतों से प्रभावित हो गए। अतः उन्होंने क्षत्रिय कोरा के कारण अपना कुंड और वस्त्र भगवान बुद्ध को लौटा दिया और गृहस्थ जीवन में लौट आए, लगभग उसी समय जब कोरा का पुनर्जन्म कालकंजक असुर के वंशज के रूप में हुआ था। वे वैशाली नगर की चारदीवारी के भीतर घूम-घूमकर गुरु की निंदा करते रहे और कहते रहे कि ऋषि गौतम (बुद्ध) में कोई अलौकिक बात नहीं है, क्योंकि वे किसी असाधारण धर्म का प्रचार करके अन्य मनुष्यों से भिन्न नहीं थे; कि ऋषि गौतम (बुद्ध) ने केवल एक ऐसी प्रणाली बनाई थी जो उनके व्यक्तिगत चिंतन और अध्ययन का परिणाम थी; और जिस आदर्श की प्राप्ति के लिए उनके उपदेश का प्रचार किया गया था, वह उसका अनुसरण करने वालों के दुःखों के नाश का कारण नहीं बनता (*1)।

पूज्य सारिपुत्र भिक्षा मांगने निकले थे, तभी उन्होंने सुनक्खत्त की निंदा सुनी। भिक्षा मांगने के बाद उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। गुरु ने कहा, "सारिपुत्र, सुनक्खत्त उग्र स्वभाव का है और व्यर्थ की बातें करता है। इसी उग्र स्वभाव के कारण उसने ऐसी बातें कीं और मेरे उपदेशों के उद्धार का खंडन किया। अनजाने में ही यह मूर्ख मेरी प्रशंसा कर रहा है; मैं अनजाने में इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि उसे मेरे ज्ञान का कोई ज्ञान नहीं है। सारिपुत्र, मुझमें छह ज्ञान निवास करते हैं और इस मामले में मैं मनुष्य से भी बढ़कर हूँ; दस शक्तियाँ और विश्वास के चार आधार मुझमें विद्यमान हैं। मैं पृथ्वी पर चार प्रकार के जन्मों और मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की पाँच अवस्थाओं की सीमाएँ जानता हूँ। यह भी मुझमें एक अलौकिक गुण है; और जो इसका खंडन करता है, उसे अपने वचन वापस लेने होंगे, अपना विश्वास बदलना होगा और अपने गलत विश्वास का त्याग करना होगा, अन्यथा उसे तुरंत नरक में डाल दिया जाएगा।" अपने भीतर विद्यमान अलौकिक स्वभाव और शक्ति का इस प्रकार वर्णन करते हुए गुरु ने आगे कहा, "सुनक्खत्त, मैंने सुना है, सारिपुत्र, क्षत्रिय कोरा की कुष्ठ साधना की भ्रामक आत्म-यातनाओं में आनंदित होता था; इसीलिए वह मुझमें प्रसन्न नहीं हो सका। इक्यावन युग पूर्व मैंने उच्च जीवन के सभी चार रूपों (*2) में जिया, उस झूठी कुष्ठ साधना की जाँच की ताकि उसमें निहित सत्य का पता लगा सकूँ। मैं एक तपस्वी था, तपस्वियों का श्रेष्ठ; मैं अन्य सभी से अधिक क्षीण और दुर्बल था; मुझे आराम से अत्यंत घृणा थी; मैं एकांत में रहता था, और एकांत के प्रति मेरी तीव्र लालसा थी।" फिर, वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, इक्यावन युग पहले, बोधिसत्व ने झूठी तपस्या का अध्ययन करने का निश्चय किया। इसलिए वे अजीविकों के अनुसार, नग्न तपस्वियों के रूप में एक संन्यासी बन गए; निर्वस्त्र, धूल से ढके हुए, एकांतवासी, मनुष्यों से हिरण की तरह भागते हुए; उनका भोजन छोटी मछलियाँ, गोबर और अन्य अपशिष्ट पदार्थ थे; और ताकि उनकी तपस्या में कोई खलल न डाले, उन्होंने घने जंगल में अपना निवास स्थान बनाया। शीत ऋतु की बर्फबारी में, वे रात में घने जंगल से निकलकर खुले में आ जाते और सूर्योदय के साथ ही वापस जंगल में लौट आते; और जैसे वे रात में तेज बर्फबारी से भीग जाते थे, वैसे ही दिन में भी वे जंगल की शाखाओं से टपकती बूंदा-बांदी से भीग जाते थे। इस प्रकार वे दिन-रात भीषण ठंड सहन करते रहे। ग्रीष्म ऋतु में, वह दिन में खुले आसमान के नीचे और रात में जंगल में रहता था—दिन में चिलचिलाती धूप से झुलसता था और रात में ठंडी हवा न चलने के कारण पसीना बहता था। तभी उसके मन में यह छंद आया, जो नया था और पहले कभी नहीं बोला गया था:-

कभी झुलसा हुआ, कभी बर्फीला, सुनसान जंगलों में अकेला,
बाहर कोई आग नहीं, लेकिन भीतर सब कुछ जल रहा है।
नग्न अवस्था में, संन्यासी सत्य के लिए संघर्ष करता है।
लेकिन जब इस कठोर तपस्या में व्यतीत जीवन के बाद, मरणासन्न अवस्था में बोधिसत्व के समक्ष नरक का दर्शन हुआ, तो उन्हें अपनी सभी तपस्याओं की निरर्थकता का अहसास हुआ, और उस परम क्षण में वे अपने भ्रमों से मुक्त हो गए, वास्तविक सत्य को ग्रहण किया, और देवों (देवदूतों) के स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों का नग्न तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) यह मज्झिमा निकया I. 68 का उद्धरण है।

(2) एक विद्यार्थी, गृहस्थ, गुणी और संन्यासी के रूप में।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महासुदासन-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-95-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 95
महासुदस्सना-जातक

"कितना क्षणभंगुर है।" - यह कहानी गुरु ने अपनी मृत्युशय्या पर लेटे हुए सुनाई थी, जिसमें आनंद के शब्दों का जिक्र था, "हे भगवान बुद्ध, इस दुखद छोटे से शहर में अपना अंत न होने दें।"

"जब बुद्ध जेतवन मठ में रह रहे थे," गुरु ने सोचा, "नाला गाँव में जन्मे वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र का वरक में कात्तिका माह में पूर्णिमा के दिन निधन हो गया; और उसी माह में, जब चंद्रमा ढल रहा था, महान मोग्गल्याण का भी निधन हो गया। मेरे दो प्रमुख शिष्यों के निधन के बाद, मैं भी कुशीनार में ही देह त्याग दूँगा।"—भगवान बुद्ध ने ऐसा सोचा; और कुशीनार की भिक्षायात्रा पर आकर, वहाँ उत्तर दिशा की ओर स्थित दो साल के वृक्षों के बीच स्थित एक समतल भूमि पर वे लेट गए और फिर कभी नहीं उठे। तब वरिष्ठ भिक्षु आनंद ने कहा, "हे भगवान बुद्ध, इस उजाड़ छोटे से कस्बे में, जंगल के इस उबड़-खाबड़ छोटे से कस्बे में, इस छोटे से उपनगरीय कस्बे में अपना अंत न होने दें। क्या राजगृह नगर या कोई अन्य बड़ा शहर बुद्ध का जन्मस्थान नहीं होना चाहिए?"

"नहीं, आनंद," गुरु ने कहा; "इसे एक दयनीय छोटा शहर, जंगल में बसा एक छोटा शहर, एक छोटा उपनगरीय शहर मत कहो। अतीत में, सुदस्सन के सर्वराज्य के दिनों में, इसी शहर में मेरा जीवन यापन होता था। तब यह बारह लीग (x 4.23 किमी) के घेरे में रत्नजड़ित दीवारों से घिरा एक विशाल नगर था।" इसके साथ ही, वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई और महा-सुदस्सन सूत्र (*1) का पाठ किया।

तब सुदस्सन की रानी सुभद्दा ने देखा कि सत्य महल से नीचे आने के बाद, उनके स्वामी खजूर के उस सुनहरे और रत्नजड़ित उद्यान में उनके लिए तैयार किए गए पलंग पर दाहिनी ओर लेटे हुए थे, जिस पलंग से वे फिर कभी नहीं उठेंगे। और उन्होंने कहा, "हे महाराज, चौरासी हजार नगर, जिनमें कुसावती का राजनगर प्रमुख है, आपके शासन के स्वामी हैं। इन पर अपना मन लगाइए।"

"ऐसा मत कहो, मेरी रानी," सुदस्सना ने कहा; "बल्कि मुझे सलाह दो, 'अपना मन इसी नगर पर टिकाए रखो, और उन दूसरे नगरों के लिए तरसना मत'।"

"ऐसा क्यों, महाराज?"

"क्योंकि आज मेरी मृत्यु होने वाली है," राजा ने उत्तर दिया।

आँखों में आँसू लिए, उन्हें पोंछते हुए, रानी ने किसी तरह राजा द्वारा कहे गए शब्दों को सिसकते हुए बोल दिया। फिर वह फूट-फूटकर रोने लगी; और हरम की चौरासी हज़ार अन्य स्त्रियाँ भी रोने और विलाप करने लगीं; दरबारियों में से कोई भी बच नहीं सका, वे सब एक साथ मिलकर रोने लगे।

"शांति!" बोधिसत्व ने कहा; और उनके शब्द सुनते ही उनका रोना थम गया। फिर, रानी की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "हे रानी, रोओ मत, विलाप मत करो। क्योंकि तिल के एक छोटे से बीज तक, सांसारिक वस्तु स्थायी नहीं होती; सब क्षणभंगुर हैं, सब नष्ट हो जाते हैं।" फिर, रानी के हित में, उन्होंने यह श्लोक कहा:-

ये सारी सांसारिक चीजें कितनी क्षणभंगुर हैं!
वृद्धि और क्षय उनका स्वभाव है:
वे उत्पन्न होते हैं, फिर से घुल जाते हैं:

और सबसे अच्छा समय तब होता है, जब वे आराम करने के लिए डूब जाते हैं।
इस प्रकार महान सुदासन ने अपने प्रवचन को अमृतमय निर्वाण की ओर अग्रसर किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अन्य लोगों को दान करने, आज्ञाओं का पालन करने और व्रत रखने की सलाह दी। उनका लक्ष्य देवलोक में पुनर्जन्म लेना था।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "राहुल की माता उस समय की रानी सुभद्दा थीं; राहुल राजा के सबसे बड़े पुत्र थे; बुद्ध के शिष्य उनके दरबारी थे; और मैं स्वयं महान सुदस्सन हूँ।"

[टिप्पणी। इस जातक के विकास के लिए, टिपिटका में महा-परिनिब्बान सुत्त और महा-सुदासन सुत्त देखें]

फुटनोट:

(1)दीघ निकाय का 17वाँ सुत्त।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तेलपट्ट-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-96-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 96
तेलपट्टा-जातक

"जैसे कोई चिंता से भरा हो।" - यह कथा गुरु ने शुम्भ देश के देसाका नगर के पास एक जंगल में रहते हुए जनपद-कल्याणी सूत्र के विषय में सुनाई थी। उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने कहा था: "हे भिक्षुओं, मानो एक विशाल जनसमूह एकत्रित होकर 'भूमि की सुंदरी को प्रणाम! भूमि की सुंदरी को प्रणाम!' का नारा लगा रहा हो।" और मान लीजिए कि उसी प्रकार एक बड़ी भीड़ इकट्ठा हो जाए और चिल्लाए, 'देश की सुंदरी गा रही है और नाच रही है'; और फिर मान लीजिए कि एक ऐसा व्यक्ति आए जो जीवन से प्रेम करता हो, मृत्यु से भयभीत हो, सुख का शौकीन हो और पीड़ा से विमुख हो, और मान लीजिए कि ऐसे व्यक्ति से इस प्रकार कहा जाए, 'अरे, तुम्हें तेल से लबालब भरे इस घड़े को भीड़ और देश की सुंदरी के बीच से ले जाना है; एक तलवार लिए हुए आदमी तुम्हारे पीछे आएगा; और अगर तुमने एक बूंद भी गिराई, तो वह तुम्हारा सिर काट देगा';--भाइयों, आप क्या सोचते हैं? क्या वह व्यक्ति इन परिस्थितियों में लापरवाह होगा और तेल के उस घड़े को ले जाने में कोई सावधानी नहीं बरतेगा?' 'बिल्कुल नहीं, महोदय।' "यह एक दृष्टांत है, जिसे मैंने अपने अर्थ को स्पष्ट करने के लिए गढ़ा है, हे भाइयों; और इसका अर्थ यह है: तेल से लबालब भरा हुआ घड़ा शरीर से संबंधित बातों के प्रति एकाग्र मन की अवस्था का प्रतीक है, और इससे सीखने योग्य पाठ यह है कि ऐसी जागरूकता का अभ्यास और उसमें निपुणता प्राप्त करनी चाहिए। हे भाइयों, इसमें असफल न हों।" ऐसा कहकर, गुरु ने भूमि की सुंदरी से संबंधित सूत्र का पाठ और व्याख्या दोनों प्रस्तुत की। फिर, व्यावहारिक रूप से, भगवान बुद्ध ने कहा, "शरीर के प्रति सही जागरूकता का अभ्यास करने के इच्छुक भिक्षु को अपनी जागरूकता को उसी प्रकार भंग नहीं होने देना चाहिए, जिस प्रकार दृष्टांत में वर्णित व्यक्ति को तेल का घड़ा गिरने नहीं देना चाहिए।"

जब उन्होंने सूत्र और उसका अर्थ सुना, तो भाइयों ने कहा: "महोदय, उस व्यक्ति के लिए तेल का घड़ा लेकर उस देश की सुंदरी को देखे बिना आगे बढ़ना कितना कठिन कार्य था।" "बिल्कुल नहीं, भाइयों; यह तो बहुत आसान कार्य था, आसान इसलिए क्योंकि उसके साथ एक ऐसा व्यक्ति था जो उसे खींची हुई तलवार से धमकाता था। परन्तु बीते समय के बुद्धिमान और भले लोगों के लिए सही चेतना बनाए रखना और अपनी भावनाओं को इस प्रकार नियंत्रित करना कि वे दिव्य सौंदर्य को उसकी संपूर्णता में न देखें, वास्तव में एक कठिन कार्य था। फिर भी वे विजयी हुए और आगे बढ़ते हुए एक राज्य जीत लिया।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व राजा के सौ पुत्रों में सबसे छोटे थे और वयस्क हो चुके थे। उन दिनों पच्चेक बुद्ध महल में भोजन करने आते थे और बोधिसत्व उनकी सेवा करते थे।

एक दिन अपने असंख्य भाइयों के बारे में सोचते हुए बोधिसत्व ने स्वयं से पूछा कि क्या उस नगर में उनके पूर्वजों के सिंहासन पर बैठने की कोई संभावना है, और उन्होंने पच्चेक बुद्धों से यह जानने का निश्चय किया कि आगे क्या होगा। अगले दिन बुद्ध आए, पवित्र उपयोग के लिए रखे गए जलपात्र को लिया, जल को छानकर अपने पैर धोए और सुखाए, और भोजन करने बैठ गए। जब वे बैठे ही थे, बोधिसत्व आए और उनके पास बैठकर विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया और अपना प्रश्न पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, "राजकुमार, आप इस शहर के राजा कभी नहीं बन पाएंगे। लेकिन गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) में, दो हजार मील (4.23 किमी) दूर, तक्षशिला शहर स्थित है। यदि आप उस शहर तक पहुँच सकें, तो सात दिनों में आप वहाँ के राजा बन जाएंगे। लेकिन वहाँ का रास्ता खतरनाक है, क्योंकि वहाँ एक घना जंगल है। जंगल के चारों ओर से होकर जाने की दूरी उससे दुगनी है। उस जंगल में राक्षस रहते हैं, और राक्षसनियाँ रास्ते में गाँव और घर बसाती हैं। तारों से सजे एक विशाल चंदवा के नीचे, उनका जादू एक कीमती पलंग को सुंदर रंगीन पर्दों से ढक देता है। दिव्य वैभव में सजी राक्षसनियाँ अपने घरों में बैठी रहती हैं, और मीठी बातों से यात्रियों को लुभाती हैं। वे कहती हैं, 'आप थके हुए प्रतीत होते हैं; यहाँ आइए, और आगे की यात्रा करने से पहले खा-पी लीजिए।'" जो लोग उनके कहने पर आते हैं, उन्हें बैठने की जगह दी जाती है और उनकी कामुक सुंदरता के आकर्षण से वे वासना से भर जाते हैं। लेकिन पाप करने से पहले ही राक्षसी उन्हें मार डालती हैं और उनका गर्म खून बहते हुए ही खा जाती हैं। वे पुरुषों की इंद्रियों को वश में कर लेती हैं; अपनी असीम सुंदरता से सौंदर्यबोध को, मधुर संगीत से कानों को, दिव्य सुगंध से नाक को, उत्तम स्वाद वाले स्वादिष्ट भोजन से स्वाद इंद्रियों को और दिव्य कोमलता से लाल गद्देदार पलंगों से स्पर्श इंद्रियों को मोहित कर लेती हैं। लेकिन यदि तुम अपनी इंद्रियों को वश में कर सको और उन्हें न देखने का दृढ़ निश्चय कर सको, तो सातवें दिन तुम तक्षशिला नगर के राजा बन जाओगे।

"हे प्रभु, आपकी सलाह के बाद मैं उन राक्षसी महिलाओं को कैसे देख सकता हूँ?" ऐसा कहते हुए बोधिसत्व ने पच्चेक बुद्धों से अपनी यात्रा में सुरक्षा के लिए कुछ देने की विनती की। उनसे एक जादुई धागा और कुछ जादुई रेत प्राप्त करके, उन्होंने पहले पच्चेक बुद्धों और अपने माता-पिता को विदाई दी; और फिर अपने निवास पर जाकर अपने घरवालों से कहा, "मैं तक्षशिला जाकर वहाँ का राजा बनूँगा। तुम सब यहीं रुक जाओ।" लेकिन उनमें से पाँच ने उत्तर दिया, "हम भी चलें।"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "आप मेरे साथ नहीं आ सकते; क्योंकि मुझे बताया गया है कि मार्ग में राक्षसी विपत्तियाँ हैं जो मनुष्यों की इंद्रियों को मोहित कर लेती हैं और जो उनके आकर्षण में आ जाते हैं उन्हें नष्ट कर देती हैं। खतरा बहुत बड़ा है, लेकिन मैं स्वयं पर भरोसा रखूंगा और जाऊंगा।"

"यदि हम आपके साथ चलें, राजकुमार, तो हम उनके खतरनाक आकर्षणों को नहीं देखेंगे। हम भी तक्षशिला जाएंगे।" "तो फिर अपनी भक्ति प्रकट करो," बोधिसत्व ने कहा और उन पाँचों को अपने साथ यात्रा पर ले गए।

राक्षसनियाँ अपने-अपने गाँवों में रास्ते के किनारे बैठी प्रतीक्षा कर रही थीं। पाँचों में से एक, सौंदर्य प्रेमी, उन राक्षसनियों को देख रहा था और उनकी सुंदरता पर मोहित होकर बाकियों से पीछे रह गया। बोधिसत्व ने पूछा, "तुम पीछे क्यों रह रहे हो?" राक्षसी ने जवाब दिया, "मेरे पैर दुख रहे हैं, राजकुमार। मैं थोड़ी देर के लिए इन मंडपों में से किसी एक में बैठ जाता हूँ, फिर तुम्हारे साथ आ जाता हूँ।" बोधिसत्व ने कहा, "हे भगवान, ये राक्षसनियाँ हैं; इन पर बुरी नज़र मत डालो।" बोधिसत्व ने आगे बढ़ते हुए कहा, "खैर, जल्द ही तुम्हें तुम्हारी असलियत का पता चल जाएगा।"

अपनी इंद्रियों के वश में आकर, सौंदर्य प्रेमी राक्षसी स्त्रियों के पास आया, जिन्होंने उसे पाप करने के लिए उकसाया और वहीं मार डाला। इसके बाद वे चली गईं और आगे जाकर जादुई कला से एक नया मंडप बनाया, जिसमें वे अनेक वाद्ययंत्रों की धुन पर गीत गाती हुई बैठी थीं। तभी संगीत प्रेमी पीछे छूट गया और उन्हें खा लिया गया। फिर राक्षसी स्त्रियाँ आगे बढ़ीं और एक बाज़ार में जाकर बैठ गईं, जो मीठी सुगंधों और इत्रों से भरा हुआ था। यहीं पर सुगंधित वस्तुओं का प्रेमी पीछे छूट गया। जब उन्होंने उसे खा लिया, तो वे आगे बढ़ीं और एक भोजन-भंडार में बैठ गईं, जहाँ उत्तम स्वाद वाले स्वादिष्ट व्यंजनों की भरमार थी। यहीं पर भोजन प्रेमी पीछे छूट गया। जब उन्होंने उसे खा लिया, तो वे आगे बढ़ीं और अपनी जादुई कला से लाए गए दिव्य शंखों पर बैठ गईं। यहीं पर सुख-सुविधाओं का प्रेमी पीछे छूट गया। और उसे भी उन्होंने खा लिया।

अब केवल बोधिसत्व ही बचे थे। और एक राक्षसी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी, मन ही मन यह निश्चय करते हुए कि उनके दृढ़ संकल्प के बावजूद, वह वापस लौटने से पहले उन्हें खा जाएगी। जंगल में आगे जाकर, लकड़हारों और अन्य लोगों ने उस राक्षसी को देखकर उससे पूछा कि आगे चल रहा वह आदमी कौन था।

"वह मेरे पति हैं, महोदय।"

"नमस्कार!" उन्होंने बोधिसत्व से कहा; "जब आपके पास फूलों जैसी सुंदर, प्यारी युवती है, जो अपना घर छोड़कर आप पर भरोसा करती है, तो आप उसके साथ क्यों नहीं चलते, बजाय इसके कि उसे अपने पीछे थके-हारे चलने दें?" "वह मेरी पत्नी नहीं, बल्कि एक

राक्षसी है। उसने मेरे पाँच साथियों को खा लिया है।” “अफ़सोस! सज्जनों,” उसने कहा, “क्रोध पुरुषों को अपनी पत्नियों को भी राक्षसी और प्रेत कहने पर मजबूर कर देता है।”

इसके बाद, उसने गर्भावस्था का अभिनय किया और फिर एक बच्चे को जन्म दे चुकी महिला का रूप धारण किया; बच्चे को गोद में लिए वह बोधिसत्व के पीछे-पीछे चलने लगी। रास्ते में मिलने वाले हर व्यक्ति ने उनसे वही सवाल पूछे, और बोधिसत्व ने भी वही जवाब देते हुए अपनी यात्रा जारी रखी।

अंततः वह तक्षशिला पहुंचे, जहां राक्षसी ने बच्चे को गायब कर दिया और अकेले ही उनके पीछे-पीछे चले गए। नगर के द्वार पर बोधिसत्व एक विश्रामगृह में प्रवेश कर बैठ गए। बोधिसत्व की ज्ञान प्राप्ति और शक्ति के कारण वह स्त्री भी अंदर नहीं जा सकी; इसलिए उसने दिव्य सौंदर्य का वस्त्र धारण किया और द्वार के बाहर खड़ी हो गई।

उस समय तक्षशिला का राजा अपने बगीचे की ओर जा रहा था और उसकी सुंदरता पर मोहित हो गया। उसने अपने सेवक से कहा, "जाओ, पता लगाओ कि क्या उसका पति उसके साथ है या नहीं।" जब दूत आया और उसने पूछा कि क्या उसका पति उसके साथ है, तो उसने कहा, "जी महाराज; मेरा पति कमरे में बैठा है।"

बोधिसत्व ने कहा, "वह मेरी पत्नी नहीं है। वह एक राक्षसी है और उसने मेरे पांच साथियों को खा लिया है।"

और, पहले की तरह, उसने कहा, "अफ़सोस! सज्जनों, क्रोध लोगों को कुछ भी कहने के लिए मजबूर कर देता है जो उनके दिमाग में आता है।"

फिर वह आदमी राजा के पास वापस गया और उसे बताया कि हर किसी ने क्या कहा था। राजा ने कहा, "खजाना तो राजसी विशेषाधिकार है।" और उसने राक्षसी को बुलवाया और उसे अपने हाथी की पीठ पर बिठाया। शहर का चक्कर लगाने के बाद, राजा अपने महल में वापस आया और राक्षसी को रानी-पत्नी के लिए आरक्षित कमरों में ठहराया। स्नान और इत्र लगाने के बाद, राजा ने अपना शाम का भोजन किया और फिर अपने राजसी पलंग पर लेट गया। राक्षसी ने भी अपने लिए भोजन तैयार किया और अपने पूरे वैभव से सजी। और जब वह प्रसन्न राजा के बगल में लेटी थी, तो वह करवट बदलकर फूट-फूट कर रोने लगी। उससे रोने का कारण पूछे जाने पर उसने कहा, "महाराज, आपने मुझे रास्ते में पाया था, और हरम की स्त्रियाँ बहुत हैं। यहाँ शत्रुओं के बीच रहकर मैं कुचल जाऊँगी जब वे कहेंगे 'कौन जानता है कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं, या तुम्हारे परिवार के बारे में कुछ भी? तुम्हें रास्ते में उठाया गया था।'" लेकिन यदि महाराज मुझे पूरे राज्य पर शक्ति और अधिकार दे दें, तो कोई भी मुझे इस तरह के ताने मारने की हिम्मत नहीं करेगा।"

"प्रिय, मेरे राज्य में रहने वालों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है; मैं उनका स्वामी या स्वामी नहीं हूँ। मेरा अधिकार केवल विद्रोह करने वालों या पाप करने वालों पर है। इसलिए मैं तुम्हें पूरे राज्य पर अधिकार और शक्ति नहीं दे सकता।"

"तो, महाराज, यदि आप मुझे राज्य या नगर पर अधिकार नहीं दे सकते, तो कम से कम मुझे महल के भीतर अधिकार दे दीजिए, ताकि मैं यहाँ महल में रहने वालों पर शासन कर सकूँ।"

उसके आकर्षण से इतना मोहित होकर कि राजा उसे मना नहीं कर सका, उसने महल में सभी को अपना अधिकार दे दिया और उसे उन पर शासन करने के लिए कहा। संतुष्ट होकर, उसने राजा के सो जाने का इंतजार किया और फिर राक्षसों के शहर की ओर जाकर अपने पूरे दल के साथ महल में लौट आई। उसने स्वयं राजा की हत्या कर दी और उसकी खाल, नसें और मांस सब खा गई, केवल हड्डियाँ ही बची रहीं। और बाकी राक्षस द्वार से अंदर आए और जो भी उनके रास्ते में आया, उसे खा गए, यहाँ तक कि एक पक्षी या कुत्ते को भी जीवित नहीं छोड़ा। अगले दिन जब लोग आए और द्वार बंद पाया, तो उन्होंने अधीरता से चिल्लाते हुए उस पर प्रहार किया और अंदर प्रवेश किया, लेकिन उन्होंने पाया कि पूरा महल हड्डियों से भरा पड़ा था। और वे चिल्लाए, "तो वह आदमी सही कह रहा था कि वह उसकी पत्नी नहीं बल्कि एक राक्षसी थी। अपनी नासमझी में राजा उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए घर ले आया, और निस्संदेह उसने अन्य राक्षसों को इकट्ठा किया, सबको खा डाला और फिर भाग गई।"

उस दिन बोधिसत्व अपने सिर पर मंत्रयुक्त रेत और माथे पर मंत्रयुक्त धागा लपेटे विश्रामगृह में तलवार हाथ में लिए भोर की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बीच, अन्य लोग महल की सफाई कर रहे थे, फर्शों को नए सिरे से सजा रहे थे, उन पर सुगंध छिड़क रहे थे, फूल बिखेर रहे थे, छत से फूलों के गुच्छे लटका रहे थे और दीवारों को मालाओं से सजा रहे थे, और वहां धूप जला रहे थे। फिर उन्होंने आपस में इस प्रकार चर्चा की:-

“जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों पर इतना नियंत्रण रख सके कि दिव्य सौंदर्य में उसका पीछा करती हुई राक्षसी की ओर देखे भी नहीं, वह एक महान और समर्पित, ज्ञान से परिपूर्ण पुरुष है। ऐसे व्यक्ति के राजा बनने से पूरे राज्य का भला होगा। आइए, हम उसे अपना राजा बनाएं।”

और राज्य के सभी दरबारी और सभी नागरिक इस मामले में एकमत थे। अतः बोधिसत्व को राजा चुना गया और उन्हें राजधानी ले जाया गया, जहाँ उन्हें आभूषणों से सुशोभित किया गया और तक्षशिला का राजा घोषित किया गया। चार बुरे मार्गों से विमुख होकर और राजसी कर्तव्य के दस मार्गों का अनुसरण करते हुए, उन्होंने अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन किया और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन व्यतीत करने के बाद अपने कर्मों के फल के अनुसार परलोक विदा हुए।

उनकी कहानी सुनाते हुए, गुरु ने बुद्ध के रूप में यह श्लोक कहा:-

जिस प्रकार एक बर्तन में तेल को सावधानीपूर्वक रखा जाता है,
 पूरी तरह भरा हुआ, ताकि कहीं से भी छलक न जाए।
अतः जो व्यक्ति विदेशी भूमि की यात्रा करता है
 अपने दिल पर भी उसी तरह संयम बरतें।
जब गुरु ने इस प्रकार शिक्षा के सर्वोच्च स्तर, यानी अर्हतत्व (बुद्ध के समतुल्य ज्ञानोदय) तक पहुँचाया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "बुद्ध के शिष्य उन दिनों राजा के दरबारी थे, और मैं वह राजकुमार हूँ जिसने एक राज्य जीता।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नामसिद्धि-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-97-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 97
नामासिद्धि-जातक

"क्विक को मृत देखना।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जो मानता था कि भाग्य का संबंध नामों से होता है। सुना है कि 'लो' नाम के एक अच्छे परिवार के युवक ने धर्म को अपना लिया और भिक्षु संघ में शामिल हो गया। भिक्षु उसे "लो भाई!" और "रुको, लो भाई!" कहकर पुकारते थे, जब तक कि उसने यह निश्चय नहीं कर लिया कि 'लो' नाम दुष्टता और दुर्भाग्य का प्रतीक है, इसलिए वह अपना नाम बदलकर कोई बेहतर अर्थ वाला नाम रख लेगा। उसने अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों से नया नाम रखने का अनुरोध किया। लेकिन उन्होंने कहा कि नाम केवल संकेत देता है, गुणों का सूचक नहीं होता; और उन्होंने उसे अपने वर्तमान नाम से संतुष्ट रहने को कहा। उसने बार-बार यह अनुरोध दोहराया, यहाँ तक कि पूरे भिक्षु संघ को पता चल गया कि वह नाम को कितना महत्व देता है। जब वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे, तब गुरु वहाँ आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने कहा, "यह पहली बार नहीं है जब इस भाई ने यह माना है कि भाग्य नाम से तय होता है; वे अतीत में अपने नाम से भी उतने ही असंतुष्ट थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, तक्षशिला में बोधिसत्व विश्वप्रसिद्ध गुरु थे और पाँच सौ युवा ब्राह्मण उनसे वेद सीखते थे। इन्हीं युवकों में से एक का नाम लो था। अपने साथियों को बार-बार "लो, जाओ" और "लो, आओ" कहते सुनकर, लो का मन हुआ कि वह अपना नाम बदल ले और कोई ऐसा नाम रख ले जो अशुभ न लगे। इसलिए वह अपने गुरु के पास गया और उनसे एक सम्मानजनक नाम देने का अनुरोध किया। गुरु ने कहा, "बेटा, जाओ और देश-विदेश घूमो, जब तक तुम्हें अपनी पसंद का नाम न मिल जाए। फिर वापस आना, मैं तुम्हारा नाम बदल दूँगा।"

उस युवक ने आदेश का पालन किया और यात्रा के लिए आवश्यक सामान लेकर वह गाँव-गाँव भटकता हुआ एक कस्बे में पहुँचा। वहाँ क्विक नाम के एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी, और उस युवक ब्राह्मण ने उसे कब्रिस्तान ले जाते हुए देखकर उसका नाम पूछा।

"क्विक," जवाब आया। "क्या, क्विक मर सकता है?" "हाँ, क्विक मर गया है; क्विक और मरे हुए दोनों एक ही तरह से मरते हैं। नाम तो बस यह बताने का ज़रिया है कि कौन क्या है। तुम मूर्ख लगते हो।"

यह सुनकर वह शहर की ओर चल पड़ा, उसे अपने नाम से न तो संतुष्टि महसूस हो रही थी और न ही असंतुष्टि।

एक दासी को घर के दरवाजे पर पटक दिया गया था, और उसके मालिक और मालकिन उसे रस्सियों से पीट रहे थे क्योंकि वह अपनी मजदूरी घर नहीं लाई थी। उस दासी का नाम रिच था। जब वह गली से गुजर रहा था, तो उसने दासी को पिटते हुए देखा और कारण पूछा। जवाब में उसे बताया गया कि दासी के पास दिखाने के लिए कोई मजदूरी नहीं थी।

"और उस लड़की का नाम क्या है?"

"अमीर," उन्होंने कहा। "और क्या अमीर एक मामूली दिन की कमाई भी नहीं कमा सकता?" "चाहे उसे अमीर कहा जाए या गरीब, अब पैसा नहीं आएगा। नाम तो बस एक पहचान है। तुम मूर्ख लगते हो।"

अपने नाम से कुछ हद तक संतुष्ट होकर, वह युवक ब्राह्मण शहर छोड़कर चला गया और रास्ते में उसे एक राहगीर मिला। यह जानकर कि वह राहगीर भटक गया है, युवक ने उससे उसका नाम पूछा। उत्तर मिला, "मार्गदर्शक।" "क्या मार्गदर्शक भी राहगीर भटक गया है?" "मार्गदर्शक हो या गुमराह करने वाला, राहगीर तो एक ही तरह से भटक सकते हैं। नाम तो बस यह बताता है कि कौन क्या है। तुम मूर्ख लगते हो।"

अपने नाम से पूरी तरह संतुष्ट होकर, युवा ब्राह्मण अपने गुरु के पास लौट आया।

"अच्छा, तुमने कौन सा नाम चुना है?" बोधिसत्व ने पूछा। "गुरुजी," उसने कहा, "मैंने पाया है कि मृत्यु 'जीवित' और 'मृत' दोनों को समान रूप से आती है, 'धनी' और 'गरीब' एक साथ गरीब हो सकते हैं, और 'मार्गदर्शक' और 'मार्गदर्शक' दोनों ही भटक जाते हैं। अब मैं जानता हूँ कि नाम केवल यह बताता है कि कौन क्या है, और यह उसके स्वामी के भाग्य को निर्धारित नहीं करता। इसलिए मैं अपने नाम से संतुष्ट हूँ, और इसे किसी और नाम से बदलना नहीं चाहता।"

तब बोधिसत्व ने युवा ब्राह्मण के कार्यों और उसके द्वारा देखे गए दृश्यों को मिलाकर यह श्लोक कहा:

क्विक को मरा हुआ देखकर, गाइड खो गया, अमीर गरीब हो गया,
कम ज्ञान और न ही अधिक यात्रा का अनुभव।

अपनी कहानी सुनाते हुए गुरु ने कहा, "तो आप देख सकते हैं, भिक्षुओं, कि पुराने समय में भी, जैसा कि अब है, इस भिक्षु ने नाम को बहुत महत्व दिया था।" और उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "यह भिक्षु, जो अपने नाम से असंतुष्ट है, उन दिनों का असंतुष्ट युवा ब्राह्मण था; बुद्ध के शिष्य उसके विद्यार्थी थे; और मैं स्वयं उनका गुरु हूँ।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुटवनिज-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-98-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 98
कुटवनिजा-जातक

"समझदारी से काम लेना, सबसे बुद्धिमानी से काम लेना" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक धोखेबाज व्यापारी के बारे में सुनाई थी। बताया जाता है कि श्रावस्ती शहर में दो व्यापारी साझेदार थे, जो अपना माल लेकर यात्रा करते थे और मुनाफा लेकर लौटते थे। धोखेबाज व्यापारी मन ही मन सोचता था, "मेरे साथी को पिछले कई दिनों से ठीक से खाना-पीना नहीं मिला और रहने की भी जगह नहीं मिली, अब घर आकर वह जी भर के स्वादिष्ट भोजन का आनंद ले सकता है और बदहजमी से मर जाएगा। मेरी योजना है कि हम जो

कमाएंगे उसे तीन हिस्सों में बाँट दूँ, एक हिस्सा उसके अनाथों को दूँ और दो हिस्से खुद रख लूँ।" और इसी उद्देश्य से वह लाभ के बंटवारे को टालने के लिए प्रतिदिन कोई न कोई बहाना बनाता रहता था।

बंटवारे के लिए ज़ोर देना व्यर्थ देखकर, ईमानदार साझेदार मठ में गुरु के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और उनका हार्दिक स्वागत किया गया। बुद्ध ने कहा, "बहुत समय हो गया है जब तुम पिछली बार मुझसे मिलने आए थे।" इस पर व्यापारी ने गुरु को अपने साथ हुई घटना के बारे में बताया।

“हे शिष्य, यह पहली बार नहीं है कि यह व्यक्ति एक धोखेबाज व्यापारी है; यह अतीत में भी उतना ही धोखेबाज रहा है। जिस प्रकार यह अब तुम्हें धोखा देने का प्रयास कर रहा है, उसी प्रकार इसने पुराने समय के बुद्धिमान और भले लोगों को धोखा देने का प्रयास किया था।” ऐसा कहकर, व्यापारी के अनुरोध पर, गुरु ने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व एक व्यापारी परिवार में पैदा हुए और नामकरण के दिन उनका नाम 'बुद्धिमान' रखा गया। बड़े होकर उन्होंने 'सर्वोच्च बुद्धि' नामक एक अन्य व्यापारी के साथ साझेदारी की और उनके साथ व्यापार करने लगे। ये दोनों बनारस से पाँच सौ गाड़ियाँ माल लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में गए, जहाँ उन्होंने अपना माल बेच दिया और बाद में लाभ लेकर शहर लौट आए। जब बंटवारे का समय आया, तो सर्वोत्तम बुद्धि ने कहा, "मुझे दुगुना हिस्सा चाहिए।" "ऐसा क्यों?" बुद्धिमान ने पूछा। "क्योंकि तुम तो केवल बुद्धिमान हो, मैं सर्वोच्च बुद्धि हूँ। और सर्वोत्तम बुद्धि को दुगुने हिस्से के मुकाबले केवल एक हिस्सा मिलना चाहिए।" "लेकिन हम दोनों का माल, बैल और गाड़ियों में बराबर हिस्सा था। तुम्हें दुगुने हिस्से क्यों मिलने चाहिए?" "क्योंकि मैं सर्वोच्च बुद्धि हूँ।" और इस तरह वे बहस करते-करते आपस में झगड़ने लगे।

“आह!” बुद्धिमान ने सोचा, “मेरे पास एक योजना है।” और उसने अपने पिता को एक खोखले पेड़ में छिपा दिया, और बूढ़े को आदेश दिया कि जब वे दोनों बाहर आएं, तो वे कहें, “बुद्धिमान को दुगुना हिस्सा मिलना चाहिए।” यह व्यवस्था करके, वह बोधिसत्व के पास गया और उनसे दुगुने हिस्से के दावे को वृक्ष-परी के विवेकाधिकार पर छोड़ने का प्रस्ताव रखा। फिर उसने इन शब्दों में अपनी विनती की: “हे वृक्ष-परी, हमारे मामले का फैसला कीजिए!” इस पर पेड़ में छिपे पिता ने बदली हुई आवाज में उनसे मामला बताने को कहा। बोधिसत्व ने पेड़ से इस प्रकार कहा: “हे प्रभु, यहाँ बुद्धिमान खड़ा है, और यहाँ मैं, बुद्धिमान, खड़ा हूँ। हम व्यापार में साझेदार रहे हैं। बताइए कि हममें से प्रत्येक को कितना हिस्सा मिलना चाहिए।”

"समझदार को एक हिस्सा मिलना चाहिए, और सबसे समझदार को दो," यह जवाब मिला।

यह निर्णय सुनकर बोधिसत्व ने यह पता लगाने का निश्चय किया कि क्या वास्तव में वह वृक्ष-परी थी या नहीं। इसलिए उन्होंने खोखले तने को भूसे से भरकर उसमें आग लगा दी। ज्ञानी के पिता जलती हुई लपटों से अधमरे हो गए और एक शाखा को पकड़कर ऊपर चढ़ गए। जमीन पर गिरते ही उन्होंने यह श्लोक कहा:-

बुद्धिमान व्यक्ति को सही ही यह नाम मिला, जबकि सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान व्यक्ति को गलत ही यह नाम मिला;
वाइजेस्ट के माध्यम से, मैं लगभग आग की लपटों में भुन रहा हूँ।
फिर दोनों व्यापारियों ने बराबर-बराबर बंटवारा किया और प्रत्येक ने आधा-आधा हिस्सा ले लिया, और अपनी मृत्यु के समय अपने कर्मों के अनुसार ही उनका अंत हुआ।

“इस प्रकार तुम देख सकते हो,” गुरु ने कहा, “कि तुम्हारा साथी अतीत में भी उतना ही बड़ा धोखेबाज था जितना अब है।” अपनी कहानी समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, “आज का धोखेबाज व्यापारी कहानी का धोखेबाज व्यापारी था, और मैं बुद्धिमान नामक ईमानदार व्यापारी था।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **परोसहसा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 99
परोसहस्सा-जातक

"हजारों मूर्खों से कहीं बेहतर।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में गैर-धर्मांतरित लोगों के प्रश्न के संबंध में सुनाई थी।

(इन घटनाओं का वर्णन सरभंग-जातक (*1) में किया जाएगा।)

एक बार भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में बैठक की और धर्म के प्रमुख सारिपुत्र की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की, जिन्होंने बुद्ध के सारगर्भित कथन का अर्थ समझाया था। हॉल में प्रवेश करते हुए, गुरु ने भिक्षुओं से पूछा और उन्हें बताया गया कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि सारिपुत्र ने मेरे किसी सारगर्भित कथन का अर्थ समझाया हो। उन्होंने अतीत में भी ऐसा ही किया था।" ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तरी ब्राह्मण परिवार में हुआ और उन्होंने तक्षशिला में अपनी शिक्षा पूर्ण की। कामवासनाओं का त्याग करके और संसार को त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हुए, उन्होंने पंच ज्ञान और अष्टम सिद्धियाँ प्राप्त कीं और हिमालय में निवास किया, जहाँ पाँच सौ संन्यासी उनके चारों ओर एकत्रित हुए। एक बरसात के मौसम में, उनके प्रमुख शिष्य आधे संन्यासियों के साथ नमक और सिरका लेने के लिए मनुष्यों के निवास स्थान पर गए। और यही वह समय था जब बोधिसत्व का निधन हो गया। उनके शिष्यों ने उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि जानने की इच्छा से उनसे पूछा, "आपने कौन सी श्रेष्ठता प्राप्त की है?"

“जीत गए?” उन्होंने कहा; “मैंने कुछ नहीं जीता (*2)।” ऐसा कहकर उनकी मृत्यु हो गई, लेकिन उनका पुनर्जन्म प्रधान देवदूतों के ब्रह्मलोक (ऊपरी स्वर्ग) में हुआ। (बोधिसत्व सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर लें, फिर भी वे निराकार लोक में पुनर्जन्म नहीं लेते, क्योंकि वे साकार लोक से परे जाने में असमर्थ हैं।) उनके कहने का अर्थ गलत समझकर उनके शिष्यों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वे कोई आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त करने में असफल रहे। इसलिए उन्होंने अंतिम संस्कार के समय प्रथागत सम्मान नहीं दिए।

वापस लौटने पर मुख्य शिष्य को पता चला कि गुरु का निधन हो गया है, और उसने पूछा कि क्या उन्होंने उनसे पूछा था कि उन्होंने क्या जीता था। शिष्यों ने कहा, "उन्होंने कहा कि उन्होंने कुछ नहीं जीता। इसलिए हमने अंतिम संस्कार के समय उन्हें पारंपरिक सम्मान नहीं दिया।"

“तुम उनका अर्थ नहीं समझ पाए,” उस प्रमुख शिष्य ने कहा। “हमारे गुरु का तात्पर्य था कि उन्होंने ‘वस्तुओं की शून्यता की अंतर्दृष्टि’ नामक ज्ञान प्राप्त कर लिया था।” लेकिन शिष्यों को बार-बार समझाने के बावजूद भी उन्होंने उनकी बात नहीं मानी।

उनके अविश्वास को जानकर बोधिसत्व ने पुकार कर कहा, "मूर्खों! वे मेरे प्रधान शिष्य पर विश्वास नहीं करते। मैं उन्हें यह बात स्पष्ट कर दूंगा।" और वे ब्रह्मलोक (परमलोक) से आए और अपनी अपार शक्तियों के बल पर आश्रम के ऊपर आकाश में विलीन हो गए और प्रधान शिष्य की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा में यह श्लोक कहा:-

हजार मूर्खों से कहीं बेहतर, हालांकि वे
सौ वर्षों तक निरंतर पुकारते रहो,
वह व्यक्ति जो सुनकर तुरंत समझ जाता है।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने आकाश से सत्य की घोषणा की और संन्यासियों के समूह को फटकारा। फिर वे ब्रह्मलोक (परमलोक) में लौट गए, और वे सभी संन्यासी भी उसी लोक में पुनर्जन्म के योग्य हो गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "सारिपुत्र उन दिनों के प्रमुख शिष्य थे, और मैं महा-ब्रह्मा हूं।"

फुटनोट:

(1)सं. 522.

(2) सर्वोच्च उपलब्धियों में से एक वस्तुओं की शून्यता (शून्यता) की अंतर्दृष्टि थी; सब कुछ भ्रम है। लेकिन यह समाधि की कुल 9 अवस्थाओं में से मध्यवर्ती 7वीं अवस्था है। 9वीं अवस्था में पारलौकिक अवस्था का अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है। त्रिपिटक में आर्यपरियेसन सूत्र (एमएन 26) और जातक 1 में टिप्पणी 12 देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असतरूप-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-100-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 100
असतरूपा-जातक

"आनंद के वेश में।" - यह कथा गुरु ने कुंदिया नगर के निकट कुंदधनवन में राजा कोलिया की पुत्री सुप्पवासा के बारे में सुनाई थी। उस समय वह सात वर्ष से गर्भ धारण किए हुए थी और सातवें दिन से पीड़ा से गुजर रही थी। इतनी पीड़ा के बावजूद उसने सोचा, "परमप्रबुद्ध भगवान बुद्ध हैं जो सत्य का उपदेश देते हैं ताकि ऐसी पीड़ा समाप्त हो जाए; भगवान बुद्ध के चुने हुए लोग धर्मात्मा हैं जो ऐसा मार्ग अपनाते हैं जिससे ऐसी पीड़ा समाप्त हो जाए; निर्वाण धन्य है जिसमें ऐसी पीड़ा समाप्त हो जाती है।" ये तीन विचार उसकी पीड़ा में उसके लिए सांत्वना थे। उसने अपने पति को बुद्ध के पास अपनी स्थिति बताने और उनका अभिवादन करने के लिए भेजा।

सुप्पवासा का संदेश भगवान बुद्ध तक पहुँचाया गया, जिन्होंने कहा, "कोलिय वंश के राजा की पुत्री सुप्पवासा शीघ्र स्वस्थ हो जाएँ और एक स्वस्थ संतान को जन्म दें।" भगवान बुद्ध के वचनानुसार, कोलिवंश के राजा की पुत्री सुप्पवासा स्वस्थ हो गईं और उन्होंने एक स्वस्थ संतान को जन्म दिया। जब पति वापस लौटे और देखा कि उनकी पत्नी ने सफलतापूर्वक बच्चे को जन्म दे दिया है, तो वे बुद्ध की महान शक्तियों पर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए। अब जब उनकी संतान का जन्म हो चुका था, सुप्पवासा बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ (ब्रह्मांड संघ) में सात दिनों तक उदारता दिखाने के लिए उत्सुक थीं और उन्होंने अपने पति को उन्हें आमंत्रित करने के लिए वापस भेजा। संयोगवश, उसी समय बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु संघ को उस गृहस्थ व्यक्ति से निमंत्रण मिला था जो महान भिक्षु मोग्गल्याना का समर्थक था; लेकिन गुरु ने सुप्पवासा की दानशीलता की इच्छा को पूरा करने के लिए महान भिक्षु को मामले को समझाने के लिए भेजा और भिक्षु संघ के साथ सात दिनों तक सुप्पवासा का आतिथ्य स्वीकार किया। सातवें दिन उसने अपने छोटे बेटे, जिसका नाम सिवली था, को सजाया-संवारा और उसे बुद्ध और भिक्षु समुदाय के सामने प्रणाम करवाया। जब उसे उचित समय पर सारिपुत्र के पास लाया गया, तो वरिष्ठ भिक्षु ने अत्यंत स्नेहपूर्वक शिशु का अभिवादन करते हुए कहा, "सिवली, क्या तुम ठीक हो?" शिशु ने कहा, "कैसे ठीक हो सकते हो, महाराज? सात लंबे वर्षों तक मुझे खून में लोटना पड़ा है।"

तब आनंद से भरे सुप्पावासा ने कहा, "मेरा बच्चा, जो केवल सात दिन का है, वास्तव में धर्म के सेनापति, वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र के साथ धर्म (धार्मिक मार्ग) पर चर्चा कर रहा है?"

“क्या आप ऐसा ही एक और बच्चा चाहेंगे?” गुरुजी ने पूछा। “जी महाराज; अगर मुझे उसके जैसे सात और बच्चे मिल सकें तो।” गुरुजी ने सप्पवासा के आतिथ्य के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया और विदा हो गए।

सात वर्ष की आयु में बालक सिवली ने अपना हृदय धर्म को समर्पित कर दिया और संसार का त्याग कर भिक्षु संघ में शामिल हो गए; बीस वर्ष की आयु में उन्हें पूर्ण भिक्षु के रूप में दीक्षा दी गई। वे धर्मपरायण थे और उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) का मुकुट प्राप्त किया, और पृथ्वी आनंद से प्रज्वलित हो उठी।

एक दिन, सभा में उपस्थित भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर आपस में चर्चा करते हुए कहा, "वरिष्ठ भिक्षु सिवली, जो अब प्रकाशमान हैं, अनेक प्रार्थनाओं के फलस्वरूप जन्मे थे; सात वर्ष गर्भ में और सात दिन जन्म के बाद। माता और शिशु को कितना कष्ट सहना पड़ा होगा! उनके ये कष्ट किन कर्मों का फल थे?"

हॉल में प्रवेश करते ही गुरु ने उनसे उनके प्रवचन का विषय पूछा। उन्होंने कहा, “भाइयों, धर्मात्मा सिवली अपने पिछले कर्मों के फलस्वरूप ही सात वर्ष गर्भ में और सात दिन जन्म के बाद जीवित रहे। इसी प्रकार सुप्पवासा का सात वर्ष का गर्भकाल और सात दिन प्रसव पीड़ा भी उनके पिछले कर्मों का ही परिणाम थी।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनकी रानी के पुत्र थे। उनका पालन-पोषण और शिक्षा तक्षशिला में हुई और अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और न्यायपूर्वक शासन किया। उसी समय कोसल के राजा ने एक विशाल सेना के साथ बनारस पर आक्रमण किया और राजा को मारकर उनकी रानी को अपने साथ ले गए।

जब राजा मारा गया, तो उसका पुत्र नाले के रास्ते भाग निकला। बाद में उसने एक विशाल सेना एकत्रित की और बनारस पहुँचा। पास ही डेरा डालकर उसने राजा को संदेश भेजा कि या तो वह राज्य को आत्मसमर्पण कर दे या युद्ध करे। राजा ने उत्तर दिया कि वह युद्ध करेगा। परन्तु राजकुमार की माता ने यह सुनकर अपने पुत्र को संदेश भेजा, "युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। शहर के चारों ओर हर मार्ग को हथियारों से लैस कर दो, जब तक कि लकड़ी, पानी और भोजन की कमी से लोग थक न जाएँ। तब शहर बिना किसी लड़ाई के तुम्हारे हाथों में आ जाएगा।" अपनी माता की सलाह मानकर राजकुमार ने सात दिनों तक शहर को इतनी कड़ी घेराबंदी से घेर लिया कि सातवें दिन नागरिकों ने अपने राजा का सिर काटकर राजकुमार के पास ला दिया। फिर वह शहर में प्रवेश कर गया और स्वयं को राजा घोषित कर दिया, और जब उसका जीवन समाप्त हुआ तो उसे उसके कर्मों का फल मिला।

सात दिनों तक नगर की घेराबंदी करने के उनके कार्यों का परिणाम यह हुआ कि वे सात वर्षों तक गर्भ में रहे और सात दिनों तक प्रसव पीड़ा से गुज़रे। परन्तु, क्योंकि उन्होंने बुद्ध पद्ममुत्तरा के चरणों में गिरकर अनेक दान देकर अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) की प्राप्ति की प्रार्थना की थी; और क्योंकि बुद्ध विपस्सी के समय में उन्होंने और उनके नगरवासियों ने बहुमूल्य दान देकर यही प्रार्थना की थी; अतः, अपने पुण्य कर्मों से उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया। और क्योंकि सुप्पवासा ने अपने पुत्र को नगर की घेराबंदी करने का संदेश भेजा था, इसलिए उन्हें सात वर्षों की गर्भावस्था और सात दिनों के प्रसव पीड़ा का सामना करना पड़ा।

उनकी कहानी समाप्त हुई, गुरु ने बुद्ध के रूप में इन श्लोकों को दोहराया:-

सुख और आशीर्वाद के वेश में दुख आता है
और यह आलस्यियों के दिलों को भी विचलित कर देता है।
और जब उन्होंने यह पाठ पढ़ा दिया, तो गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "सिवली वह राजकुमार था जिसने उन दिनों शहर की घेराबंदी की और राजा बना; सुप्पवास उसकी माता थी, और मैं उसका पिता, बनारस का राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **परोसता-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-101-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 101
परोसत-जातक
सौ मूर्खों से कहीं बेहतर, हालांकि वे
सौ वर्षों तक निरंतर गहन चिंतन करें।
वह व्यक्ति जो सुनकर तुरंत समझ जाता है।
यह कहानी हर तरह से परोसहस्स-जातक (नंबर 99) के समान है, केवल अंतर यह है कि यहां 'गहन विचार करो' पढ़ा जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पाणिक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-102-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 102

पन्निका-जातक "वही जो सिद्ध करे।"--यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। यह कथा श्रावस्ती नगर के एक गृहस्थ भिक्षु के बारे में है, जो फल-सब्जियाँ बेचता था और विभिन्न प्रकार की जड़ वाली सब्जियाँ, कद्दू आदि बेचकर अपना जीवन यापन करता था। उसकी एक सुंदर पुत्री थी, जो जितनी सुंदर थी उतनी ही गुणी और सदाचारी भी थी, पर वह हमेशा हँसती रहती थी। जब उसके अपने ही इलाके के एक परिवार ने उसका विवाह का प्रस्ताव रखा, तो उसने सोचा, "उसकी शादी तो हो जानी चाहिए, पर वह हमेशा हँसती रहती है; और एक बुरी लड़की का विवाह किसी परदेस में होना उसके माता-पिता के लिए शर्म की बात है। मुझे यह पता लगाना ही होगा कि वह अच्छी लड़की है या नहीं।"

एक दिन उसने अपनी बेटी को टोकरी देकर जंगल में जड़ी-बूटियाँ लाने के लिए कहा। फिर उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने प्रेम भरे शब्दों में उसका हाथ पकड़ा। लड़की तुरंत रोने लगी और कहने लगी कि ऐसा करना पानी से आग निकलने जितना भयानक होगा, और उसने उससे विनती की कि वह ऐसा करना बंद कर दे। तब उसने कहा कि उसका इरादा केवल उसकी परीक्षा लेना था, और पूछा कि क्या वह गुणी है। उसने कहा कि वह गुणी है और उसने कभी किसी पुरुष को प्रेम भरी दृष्टि से नहीं देखा। उसके भय को शांत करके और उसे घर वापस लाकर, उसने एक भोज दिया और उसका विवाह करा दिया। फिर गुरु को प्रणाम करने की इच्छा से वह अपने हाथों में इत्र और मालाएँ लेकर जेतवन मठ गया। प्रणाम और भेंट चढ़ाकर वह गुरु के पास बैठ गया, जिन्होंने देखा कि वे बहुत समय से यहाँ नहीं आए थे। तब उस व्यक्ति ने भगवान बुद्ध को पूरी कहानी सुनाई।

"वह हमेशा से अच्छी लड़की रही है," गुरु ने कहा। "तुमने अब उसकी परीक्षा ली है, ठीक वैसे ही जैसे तुमने पहले ली थी।" फिर सब्जीवाले के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व एक वन में वृक्ष-परी के रूप में विराजमान थे। बनारस के एक सब्जी विक्रेता, जो उनके एक गृहस्थ अनुयायी थे, को उनकी पुत्री के समान ही संदेह हुआ, और फिर वही सब कुछ हुआ जैसा कि प्रारंभिक कथा में वर्णित है। जब उनके पिता ने उनका हाथ पकड़ा, तो रोती हुई कन्या ने ये श्लोक दोहराए:-

जो मेरी ढाल की मजबूती साबित करे,
मेरे पिता मुझसे यह सब गलत तरीके से करवाते हैं।
घने जंगल में उदास होकर मैं रोता हूँ;
मेरा सहायक ही मेरा शत्रु साबित हुआ।
तब उसके पिता ने उसके डर को शांत किया और पूछा कि क्या वह कुंवारी है। जब उसने हाँ कहा, तो वह उसे घर ले आए और एक दावत दी और लड़की का विवाह कर दिया।

उनकी कहानी समाप्त हुई, गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में सब्जी विक्रेता मोक्ष (निर्वाण) के प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में स्थापित हो गया। तब व्रत करने वाले ने जन्म की पहचान करते हुए कहा, "आज के पिता और पुत्री कहानी के पिता और पुत्री थे, और मैं वह वृक्ष-परी थी जिसने यह दृश्य देखा।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वेरी-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-103-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 103
वेरी-जातक

"यदि बुद्धिमान हो तो यहाँ देर मत करो।"—यह कथा जेतवन मठ के गुरु ने अनाथपिंडिका के बारे में सुनाई थी। सुना है कि अनाथपिंडिका अपने गाँव के मुखिया थे और गाँव से लौट रहे थे, तभी उन्होंने रास्ते में लुटेरे देखे। उन्होंने सोचा, "रास्ते में देर करना ठीक नहीं है; मुझे श्रावस्ती नगर जल्दी पहुँचना चाहिए।" इसलिए उन्होंने अपने बैलों को तेज़ी से दौड़ाया और सुरक्षित रूप से श्रावस्ती नगर पहुँच गए। अगले दिन वे मठ गए और गुरु को अपने साथ हुई घटना बताई। गुरु ने कहा, "महोदय, पुराने समय में भी बुद्धिमान और भले

लोगों ने रास्ते में लुटेरे देखे और बिना देर किए अपने घरों की ओर चल दिए।" फिर व्यापारी के अनुरोध पर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व एक धनी व्यापारी थे, जो अपना बकाया वसूलने के लिए एक गाँव गए थे और घर लौट रहे थे, तभी उन्होंने रास्ते में लुटेरे देखे। उन्होंने तुरंत अपने बैलों को पूरी गति से दौड़ाया और सुरक्षित घर पहुँच गए। भोजन करने के बाद जब वे अपने आलीशान पलंग पर बैठे, तो उन्होंने कहा, "मैं लुटेरों के चंगुल से बचकर अपने घर आ गया हूँ, जहाँ भय का कोई स्थान नहीं है।" और कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

यदि बुद्धिमान हो तो शत्रुओं के बीच समय बर्बाद न करो;
ऐसे लोगों के साथ एक-दो रातें बिताना कष्टदायी होता है।
इसलिए, बोधिसत्व ने अपने हृदय की पूर्णता से कहा, और दान और अन्य अच्छे कर्मों का जीवन व्यतीत करने के बाद, वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

अपनी कहानी समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों का बनारस का व्यापारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मित्तविंदा-जातक2**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-104-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 104
मित्तविन्द-जातक

"चार से आठ तक।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक उद्दंड भिक्षु के बारे में सुनाई थी। घटनाएँ मित्तविन्दक (*1) की पिछली कहानी के समान हैं, लेकिन ये बुद्ध कश्यप के समय की हैं।

उस समय, मुकुट पहने हुए और नरक की यातनाएँ भोग रहे शापितों में से एक ने बोधिसत्व से पूछा, "हे प्रभु, मैंने क्या पाप किया है?" बोधिसत्व ने उस व्यक्ति के सभी बुरे कर्मों का विस्तृत वर्णन करते हुए यह श्लोक कहा:

चार से आठ तक, फिर वहां से सोलह तक, और इसी तरह
बत्तीस लोगों तक अतृप्त लालच पहुँच गया,
फिर भी अतृप्ति की स्थिति तक आगे बढ़ते रहना
आखिरकार, उस घेरे की घिसने-पिटने की मुसीबत से छुटकारा पा लिया।
ऐसा कहकर वह देवलोक (स्वर्गदूतों के लोक) लौट गया, परन्तु दूसरा अपने पापों के प्रायश्चित होने तक नरक में रहा। फिर वह वहाँ से अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए चला गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह उद्दंड भाई (भिक्षु) तब मित्तविन्दक थे और मैं देव (देवदूत) था।"

फुटनोट:

(1)सं. 41.

पिछला <<<<-----||-105-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 105
दुब्बलकत्था-जातक

“क्या तुम्हें हवा से डर लगता है?”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो हमेशा मानसिक रूप से भयभीत रहता था। हमें पता चलता है कि वह श्रावस्ती शहर के एक अच्छे परिवार से था और सत्य के उपदेश सुनकर उसने संसार त्याग दिया था। वह रात-दिन अपने जीवन के भय में डूबा रहता था। हवा की सरसराहट, पंखे की खड़खड़ाहट या किसी पक्षी या जानवर की आवाज से भी वह इतना भयभीत हो जाता था कि चीखकर भाग जाता था। उसे कभी यह विश्वास नहीं होता था कि मृत्यु निश्चित है; हालांकि, यदि वह मृत्यु की निश्चितता पर ध्यान करता, तो उसे डर नहीं लगता। क्योंकि मृत्यु से केवल वही भयभीत होते हैं जो इस पर ध्यान नहीं करते। अब उसकी मृत्यु के निरंतर भय के बारे में भिक्षुओं को पता चल गया और एक दिन वे सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और उसके भय और प्रत्येक भिक्षु के लिए मृत्यु को ध्यान का विषय बनाने की औचित्य पर चर्चा करने लगे। हॉल में प्रवेश करते ही गुरु ने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। तब उन्होंने उस भाई को बुलवाया और उससे पूछा कि क्या यह सच है कि वह मृत्यु के भय में जीता है। भाई ने स्वीकार किया कि वह जीता है। गुरु ने कहा, “भाइयों, इस भाई पर क्रोधित मत होइए। मृत्यु का भय जो अब उसके हृदय में व्याप्त है, पहले भी उतना ही प्रबल था।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व हिमालय के निकट एक वृक्ष-देवता के रूप में विराजमान थे। उस समय राजा ने अपने राजसी हाथी को दृढ़ निश्चय के साथ खड़े रहने का प्रशिक्षण देने के लिए हाथी प्रशिक्षकों के हाथों में सौंप दिया। उन्होंने हाथी को एक खंभे से कसकर बांध दिया और हाथों में डंडे लेकर उसे प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। दर्द सहन न कर पाने के कारण हाथी ने खंभा तोड़ दिया, प्रशिक्षकों को भगा दिया और हिमालय की ओर भाग गया। वे उसे पकड़ने में असमर्थ रहे और खाली हाथ लौट आए। हाथी हिमालय में मृत्यु के भय में जी रहा था। हवा का एक झोंका ही उसे भयभीत करने और पूरी गति से दौड़ने के लिए काफी था, वह अपनी सूंड को इधर-उधर हिलाता रहता था। ऐसा लगता था मानो वह अभी भी प्रशिक्षण के लिए खंभे से बंधा हुआ हो। मन और शरीर का सारा सुख खोकर वह निरंतर भय में इधर-उधर भटकता रहता था। यह देखकर वृक्ष-परी अपने वृक्ष की शाखाओं के बीच खड़ी हो गई और उसने यह श्लोक कहा:-

उस हवा से डरो जो लगातार चलती रहती है
क्या सड़ी हुई शाखाएँ हमेशा टूट जाती थीं?
ऐसा डर आपको पूरी तरह से बर्बाद कर देगा!
वृक्ष-परी के ये उत्साहवर्धक शब्द थे। और तब से हाथी को कोई भय नहीं रहा। --- अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया (जिसके समापन पर भाई ने मार्ग में प्रवेश किया), और जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "यह भाई (भिक्षु) उन दिनों का हाथी था और मैं वृक्ष-परी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उदानचनि-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-106-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 106
उदंचानी-जातक

"मेरा जीवन सुखमय था।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक मोटी लड़की द्वारा किए गए प्रलोभन का वर्णन है। इस घटना का वर्णन तेरहवें खंड में चुल्ला-नारद-कश्यप जातक (*1) में किया जाएगा।

जब गुरु ने भिक्षु से पूछा, तो उन्हें पता चला कि यह सच है कि वह प्रेम में हैं, और उस मोटी लड़की से प्रेम करते हैं। गुरु ने कहा, "भाइ, वह तुम्हें गुमराह कर रही है। अतीत में भी उसने तुम्हें बुराई की ओर ले जाया था, और उस समय के बुद्धिमान और भले लोगों ने ही तुम्हें सुख की ओर लौटाया था।" इतना कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब वे घटनाएँ घटीं जिनका वर्णन चुल्ला-नारद-कश्यप जातक में किया जाएगा। उस अवसर पर, बोधिसत्व शाम को आश्रम में फल लेकर आए और द्वार खोलकर अपने पुत्र से बोले, "तुम प्रतिदिन लकड़ी और भोजन लाते थे और अग्नि जलाते थे। आज तुमने इनमें से कुछ भी क्यों नहीं किया, बल्कि उदास होकर यहाँ बैठे-बैठे कमजोर हो रहे हो?"

“पिताजी,” युवक ने कहा, “जब आप फल तोड़ने गए थे, तब एक स्त्री आई और उसने मीठी-मीठी बातें करके मुझे बहलाने की कोशिश की। लेकिन मैंने आपकी अनुमति के बिना उसके साथ जाने से इनकार कर दिया और उसे वहीं बैठकर मेरा इंतज़ार करने के लिए छोड़ दिया। अब मेरी इच्छा है कि मैं चला जाऊं।”

यह देखकर कि वह युवक उससे इतना प्रेम करता है कि उसे छोड़ नहीं सकता, बोधिसत्व ने उसे जाने के लिए कहा, "पर जब उसे मांस, मछली, घी, नमक, सवारी या ऐसी ही कोई खाने की चीज चाहिए हो और वह तुम्हें अपने कामों के लिए इधर-उधर भेजती रहे, तो इस आश्रम को याद रखना और वापस मेरे पास आ जाना।"

इसलिए दूसरा व्यक्ति उस स्त्री के साथ पुरुषों के निवास स्थान पर चला गया; और जब वह उसके घर पहुँचा, तो उसने उससे अपनी हर मनचाही चीज़ लाने के लिए कहा।

"इसकी गुलामी करने से तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता," उसने सोचा और तुरंत अपने पिता के पास वापस भाग गया, और उन्हें प्रणाम करके खड़ा हो गया और इस छंद को दोहराया:-

उस स्त्री के आने से पहले तक मेरा जीवन सुखमय था।
उस चिंताजनक, थकाऊ घड़े ने मेरी पत्नी को...
मुझे उसकी मनमर्जी के काम करने का जिम्मा सौंप दो।
बोधिसत्व ने उस युवक की प्रशंसा की और उसे दयालुता और करुणा का भाव रखने के लिए प्रोत्साहित किया, साथ ही मनुष्यों के प्रति सही भाव के चार रूपों और अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के तरीकों का उपदेश दिया। कुछ ही समय में उस युवक ने ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं, अपने साथी प्राणियों के प्रति सही भाव विकसित कर लिया और अपने पिता के साथ ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म लिया।

उनका पाठ समाप्त हुआ, और चार सत्यों का उपदेश देने के बाद (जिसके समापन पर वह भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश कर गया), गुरु ने जन्म की पहचान करते हुए कहा, "आज की मोटी लड़की उन दिनों भी मोटी लड़की थी; यह जोड़ने वाला भाई पुत्र था; और मैं उन दिनों का पिता था।"

फुटनोट:

(1)सं. 477.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सालित्तक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 107
सालित्तक-जातक

"अद्भुत कौशल।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जिसने पत्थर फेंका और वह हंस को लगा। बताया जाता है कि श्रावस्ती शहर के एक अच्छे परिवार से आने वाले इस भिक्षु को पत्थर से चीजों को भेदने में महारत हासिल थी; और एक दिन सत्य का उपदेश सुनकर उन्होंने अपना पूरा मन उसमें लगा दिया और संसार त्यागकर पूर्ण भिक्षु संघ में प्रवेश लिया। लेकिन अध्ययन और अभ्यास दोनों में ही वे भिक्षु के रूप में श्रेष्ठ नहीं थे। एक दिन, एक युवा भिक्षु के साथ वे अचिरवती नदी (*1) गए और स्नान करने के बाद किनारे पर खड़े थे, तभी उन्होंने दो सफेद हंसों को उड़ते हुए देखा। उन्होंने छोटे भिक्षु से कहा, "मैं पिछले हंस की आंख में मारूंगा और उसे गिरा दूंगा।" "उसे गिराना ही है!" दूसरे ने कहा; "तुम उसे नहीं मार सकते।" "बस एक पल रुको। मैं उसकी आंख के इस तरफ से दूसरी आंख के आर-पार मारूंगा।" "अरे, बकवास।" "ठीक है; तुम देखते रहो।" फिर उसने हाथ में एक तिकोना पत्थर लिया और हंस पर फेंक दिया। पत्थर हवा में 'सरसराहट' की आवाज़ करते हुए गया और हंस को खतरे का आभास हुआ, इसलिए वह रुककर सुनने लगा। तुरंत ही उस भाई ने एक चिकना गोल पत्थर उठाया और जब आराम कर रहा हंस दूसरी दिशा में देख रहा था, तो उसने उसे सीधे हंस की आंख में मारा, जिससे पत्थर एक आंख से अंदर गया और दूसरी से बाहर निकल गया। हंस ज़ोर से चीखते हुए उनके पैरों के पास ज़मीन पर गिर पड़ा। दूसरे भाई ने कहा, "यह बहुत ही अनुचित कार्य है," और उसे गुरु के सामने ले जाकर पूरी घटना बताई। उस भाई को डांटने के बाद गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), उसके पास अतीत में भी वही कौशल था जो अब है।" और उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व राजा के दरबारियों में से एक थे। उस समय के राजपुजारी इतने बातूनी और वाचाल थे कि एक बार शुरू होने पर किसी और को बोलने का मौका ही नहीं मिलता था। इसलिए राजा ने पुजारी की बात काटने के लिए किसी को नियुक्त करने का सोचा और ऐसे व्यक्ति की तलाश में बहुत खोजबीन की। उस समय बनारस में एक लंगड़ा रहता था जो पत्थरों पर अद्भुत निशानेबाज़ था। लड़के उसे एक छोटी गाड़ी में बिठाकर बनारस के द्वार पर ले जाते थे, जहाँ पत्तों से ढका एक विशाल, शाखाओं वाला बरगद का पेड़ था। वहाँ वे उसके चारों ओर इकट्ठा होकर उसे आधा पैसा देते और कहते, 'हाथी बनाओ' या 'घोड़ा बनाओ'। लंगड़ा तब तक एक के बाद एक पत्थर फेंकता रहता जब तक कि वह पत्तों को मनचाहे आकार में न काट दे। ज़मीन गिरे हुए पत्तों से भर जाती थी।

अपने बगीचे की ओर जाते समय राजा उस स्थान पर रुके, और राजा के भय से सभी लड़के भाग गए, और लंगड़े को वहीं असहाय छोड़ दिया। पत्तों का ढेर देखकर राजा ने रथ पर सवार होकर पूछा कि ये पत्ते किसने काटे हैं। उन्हें बताया गया कि लंगड़े ने ही ऐसा किया है। यह सोचकर कि शायद पुजारी का मुंह बंद करने का कोई उपाय मिल जाए, राजा ने लंगड़े के बारे में पूछा, और उन्हें पेड़ के नीचे बैठे हुए दिखाया गया। फिर राजा ने उसे अपने पास बुलवाया और अपने सेवकों को एक तरफ खड़े होने का इशारा करते हुए लंगड़े से कहा, "मेरे पास एक बहुत बातूनी पुजारी है। क्या तुम उसका बोलना बंद करवा सकते हो?"

"जी महाराज, अगर मेरे पास सूखी बकरी के गोबर से भरी मटर की तोप होती," लंगड़े ने कहा। तब राजा ने उसे महल में बुलवाया और पुरोहित के आसन के सामने, एक परदे के पीछे सूखी बकरी के गोबर से भरी मटर की तोप के साथ बिठा दिया, जिसमें एक छेद था। जब ब्राह्मण राजा से मिलने आया और अपने लिए तैयार आसन पर बैठा, तो महाराज ने बातचीत शुरू की। तब पुरोहित ने सारी बातचीत पर अपना एकाधिकार जमा लिया और किसी और को बोलने का मौका नहीं मिला। इस पर लंगड़े ने बकरी के गोबर की गोलियां एक-एक करके, मक्खियों की तरह, पर्दे के छेद से सीधे पुरोहित के गले में मार दीं। ब्राह्मण ने गोलियों को तेल की तरह निगल लिया, जब तक कि वे पूरी तरह से गायब नहीं हो गईं। जब पुरोहित के पेट में मटर की तोप से भरी सारी गोलियां जमा हो गईं, तो वे फूलकर आधे पेक के आकार की हो गईं; और राजा को जब पता चला कि वे सब चले गए हैं, तो उसने ब्राह्मण से इन शब्दों में कहा, "आदरणीय महोदय, आप इतने बातूनी हैं कि आपने बिना ध्यान दिए मटर की तोप से भरकर बकरी का गोबर पी लिया है। एक बार में आप इससे ज़्यादा नहीं खा सकते। अब घर जाइए और उल्टी करने के लिए पानी और कुछ बीज मिलाकर पीजिए और फिर से ठीक हो जाइए।"

उस दिन से पुजारी चुप रहने लगा और बातचीत के दौरान ऐसे चुपचाप बैठता था मानो उसके होंठ सील बंद हों।

"खैर, इस राहत के लिए मैं उस अपंग व्यक्ति का आभारी हूं," राजा ने कहा और उसे चार गांव दे दिए, एक उत्तर में, एक दक्षिण में, एक पश्चिम में और एक पूर्व में, जिनसे प्रति वर्ष एक लाख की आय होती थी।

बोधिसत्व राजा के पास आकर बोले, "हे महाराज, इस संसार में बुद्धि का विकास बुद्धिमानों को ही करना चाहिए। केवल लक्ष्य साधने की कुशलता ने ही इस अपंग को यह सारी समृद्धि दिलाई है।" ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

कौशल को महत्व दें, और लंगड़े निशानेबाज पर ध्यान दें;
चार गांवों ने उनके लक्ष्य को पूरा करने में मदद की।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह भाई (भिक्षु) उन दिनों का अपंग, राजा आनंद था, और मैं बुद्धिमान दरबारी था।"

फुटनोट:

(1) आधुनिक राप्ती नदी, अवध में।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बाहिया-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-108-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 108
बाह्य जातक

"जल्दी सीख लो।" - यह कहानी गुरु ने वैशाली नगर के पास स्थित महान उपवन में बने एक गुंबददार कक्ष में रहते हुए सुनाई थी। यह कहानी एक लिच्छवी राजकुमार के बारे में है, जिसने सत्य का मार्ग अपनाया था। उसने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ को अपने घर आमंत्रित किया था और उनके प्रति बड़ी उदारता दिखाई थी। उसकी पत्नी बहुत मोटी थी, लगभग फूली हुई सी दिखती थी और उसके कपड़े भी ठीक से नहीं बने थे।

राजा के आतिथ्य सत्कार के लिए धन्यवाद देते हुए, गुरु मठ लौट आए और भिक्षुओं को प्रवचन देने के बाद अपने सुगंधित कक्ष में चले गए।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर, भाइयों ने आश्चर्य व्यक्त किया कि इस लिच्छवी राजकुमार जैसे व्यक्ति की पत्नी इतनी मोटी और भद्दी पोशाक वाली महिला थी, और वह उससे इतना प्रेम करता था। हॉल में प्रवेश करते हुए और उनकी चर्चा सुनकर, गुरु ने कहा, "भाइयों, जैसे अब है, वैसे ही पहले भी वह एक मोटी स्त्री से प्रेम करता था।" फिर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके दरबारियों में से एक थे। एक मोटी और फटे-पुराने कपड़े पहने देहाती महिला, जो मजदूरी करती थी, महल के प्रांगण के पास से गुजर रही थी, तभी उसे एक अवसर की तीव्र आवश्यकता महसूस हुई। उसने अपने वस्त्रों को सलीके से समेटते हुए झुककर अपना काम पूरा किया और थोड़ी ही देर में फिर से सीधी खड़ी हो गई।

उस समय राजा संयोगवश खिड़की से आंगन की ओर देख रहे थे और उन्होंने यह दृश्य देखा। उन्होंने सोचा, "जो स्त्री इतनी शालीनता से यह सब संभाल सकती है, वह अवश्य ही स्वस्थ होगी। वह अपने घर में स्वच्छ और सलीकेदार होगी; और स्वच्छ घर में जन्मा पुत्र भी स्वच्छ और गुणी होगा। मैं उसे अपनी रानी बनाऊंगा।" और राजा ने पहले यह सुनिश्चित कर लिया कि वह किसी और की नहीं है, फिर उसे बुलवाया और उसे अपनी रानी बना लिया। वह राजा के बहुत प्रिय हो गई। कुछ समय बाद ही उनके पुत्र का जन्म हुआ और वह सर्वशक्तिशाली सम्राट बने।

उनकी सौभाग्य की स्थिति देखकर बोधिसत्व ने राजा से कहा, "महाराज, जब इस उत्तम स्त्री ने अपनी विनम्रता और शालीनता से आपका अनुग्रह प्राप्त किया और इतनी समृद्धि हासिल की, तो सभी उचित अनुष्ठानों का विधिवत पालन करने का ध्यान क्यों न रखा जाए?" और उन्होंने आगे यह श्लोक कहा:-

चाहे कुछ लोग जिद्दी हों, जल्दी ही सीख लो;
उस ग्रामीण व्यक्ति ने अपनी विनम्रता से राजा को प्रसन्न किया।

इस प्रकार, ईश्वर ने उन लोगों के गुणों की प्रशंसा की जिन्होंने उचित अनुष्ठानों के अध्ययन में स्वयं को समर्पित किया।

उनकी कहानी का अंत इस प्रकार हुआ कि गुरु ने जन्म की पहचान करते हुए कहा, "आज के पति-पत्नी उस समय के भी पति-पत्नी थे, और मैं उस समय का बुद्धिमान दरबारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुंडकपूव-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-109-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 109
कुंडकपुवा-जातक

"उसके उपासक का क्या हाल हुआ?" - यह कहानी गुरु ने श्रावस्ती नगर में एक बहुत गरीब आदमी के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु संघ का आतिथ्य सत्कार कभी एक परिवार द्वारा, कभी तीन-चार परिवारों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता था। कभी-कभी लोगों का एक समूह या पूरी गली मिलकर उनका आतिथ्य सत्कार करती थी, या कभी-कभी पूरा नगर ही उनका आतिथ्य सत्कार करता था। परन्तु इस अवसर पर एक गली ने आतिथ्य सत्कार में ढील दी थी। और वहाँ के निवासियों ने चावल की दलिया और उसके बाद केक परोसने की व्यवस्था की थी।

उस गली में एक बहुत गरीब मजदूर रहता था, जिसे दलिया देने का कोई तरीका समझ नहीं आ रहा था, इसलिए उसने रोटी देने का निश्चय किया। उसने भूसे के छिलकों से लाल पाउडर निकाला और उसे पानी में मिलाकर गोल रोटी गूंथी। उसने इस रोटी को एक पत्ते में लपेटकर अंगारों पर पकाया। जब रोटी पक गई, तो उसने ठान लिया कि इसे केवल बुद्ध ही खाएंगे, और तुरंत गुरु के पास जाकर खड़ा हो गया। रोटी देने का आदेश मिलते ही, वह सबसे पहले आगे बढ़ा और अपनी रोटी गुरु के भिक्षापात्र में डाल दी। गुरु ने बाकी सभी रोटियों को ठुकरा दिया और उस गरीब की रोटी खा ली। तब पूरे शहर में यही चर्चा होने लगी कि सर्वज्ञानी बुद्ध ने उस गरीब की रोटी खाने से इनकार नहीं किया। और कुली से लेकर रईसों और राजा तक, सभी वर्गों के लोग उस स्थान पर उमड़ पड़े, गुरु को प्रणाम किया और उस गरीब आदमी के चारों ओर जमा हो गए, उसे भोजन की पेशकश की, या दो से पांच सौ सिक्के देने की पेशकश की, यदि वह अपने कार्य का पुण्य उन्हें सौंप दे।

उसने सोचा कि पहले गुरु से पूछ लेना बेहतर होगा, इसलिए वह उनके पास गया और अपनी बात रखी। गुरु ने कहा, "जो कुछ वे भेंट करें, उसे स्वीकार करो और अपनी धार्मिकता से सभी प्राणियों को आशीष दो।" तब वह व्यक्ति भेंट इकट्ठा करने में जुट गया। कुछ ने दूसरों से दुगुना, कुछ ने चार गुना, कुछ ने आठ गुना, और इसी तरह नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने का दान दिया।

आतिथ्य सत्कार के लिए धन्यवाद देते हुए, गुरु मठ लौट गए और भिक्षुओं को उपदेश देने और उन्हें अपनी पवित्र शिक्षा प्रदान करने के बाद, अपने सुगंधित कक्ष में चले गए।

शाम को राजा ने उस गरीब आदमी को बुलवाया और उसे कोषाध्यक्ष बना दिया।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर, भाइयों ने आपस में चर्चा की कि कैसे गुरु ने उस गरीब आदमी की भूसी की रोटी को मना नहीं किया, बल्कि उसे अमृत (देवताओं का भोजन) मानकर खाया, और कैसे उस गरीब आदमी को अपार समृद्धि प्राप्त हुई और वह अपने सौभाग्य से कोषाध्यक्ष बन गया। जब गुरु हॉल में आए और उन्होंने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि मैंने उस गरीब आदमी की भूसी की रोटी खाने से मना नहीं किया है। मैंने ऐसा तब भी किया था जब मैं वृक्ष-परी था, और तब भी यही उसके कोषाध्यक्ष बनने का कारण बना था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक वृक्ष-परी थे जो अरंडी के पेड़ में रहते थे। उस समय के ग्रामीण देवी-देवताओं (देवदूतों) के प्रति अंधविश्वासी थे। एक त्योहार आया और ग्रामीणों ने अपने-अपने वृक्ष-परियों को अर्पण किया। यह देखकर एक गरीब व्यक्ति ने अरंडी के पेड़ की पूजा के बारे में बताया। बाकी सभी लोग मालाएँ, सुगंध, इत्र और केक लेकर आए थे; लेकिन उस गरीब व्यक्ति के पास अपने पेड़ के लिए केवल नारियल के खोल में भूसी के पाउडर और पानी का केक था। पेड़ के सामने खड़े होकर उसने मन ही मन सोचा, "वृक्ष-परियाँ दिव्य भोजन की आदी होती हैं, और मेरी वृक्ष-परी इस भूसी के पाउडर का केक नहीं खाएगी। तो फिर मैं इसे यूँ ही क्यों खो दूँ? मैं इसे स्वयं खा लूँगा।" और जब वह जाने के लिए मुड़ा, तभी वृक्ष की शाखा में बैठे बोधिसत्व ने कहा, "हे मेरे भले मनुष्य, यदि तुम महान स्वामी होते तो मेरे लिए उत्तम रोटियाँ लाते; परन्तु तुम तो गरीब हो, इस रोटी के सिवा मुझे क्या मिलेगा? मेरा हिस्सा मत छीनो।" और उन्होंने यह श्लोक कहा:-

परी का भी वही हाल होता है जो उसके उपासक का होता है।
मुझे केक लाकर दो, मेरा हिस्सा मुझसे मत छीनो।
फिर वह व्यक्ति मुड़ा और बोधिसत्व को देखकर अपना अर्पण अर्पित किया। बोधिसत्व ने अर्पण का स्वाद ग्रहण किया और कहा, "तुम मेरी पूजा क्यों करते हो?" "हे स्वामी, मैं एक गरीब आदमी हूँ और मैं आपकी पूजा इसलिए करता हूँ ताकि मेरी दरिद्रता दूर हो जाए।" बोधिसत्व ने कहा, "इस बात की चिंता मत करो। तुमने एक ऐसे व्यक्ति को अर्पण किया है जो कृतज्ञ और दयालु कर्मों का ध्यान रखता है। इस वृक्ष के चारों ओर, एक दूसरे से सटाकर, खजाने से भरे घड़े दबे हुए हैं। जाओ राजा को बताओ और उस खजाने को गाड़ियों में भरकर राजा के प्रांगण में ले जाओ। वहाँ उसे ढेर लगा दो, और राजा इतना प्रसन्न होगा कि वह तुम्हें मुख्य कोषाध्यक्ष बना देगा।" इतना कहकर बोधिसत्व दृष्टि से ओझल हो गए। उस व्यक्ति ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था, और राजा ने उसे मुख्य कोषाध्यक्ष बना दिया। इस प्रकार बोधिसत्व की सहायता से उस गरीब आदमी को महान सौभाग्य प्राप्त हुआ; और जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसे अपने कर्मों के अनुसार ही फल मिला।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आज का गरीब आदमी उन दिनों का भी गरीब आदमी था, और मैं अरंडी के पेड़ में रहने वाली वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सब्बासंहारक-पन्हा**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-110-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 110
SABBASAMHARAKA-PANHA

"कोई सर्वव्यापी नहीं है।" - इस सर्वव्यापी प्रश्न पर उम्मग्ग जातक (546) में विस्तार से चर्चा की जाएगी। सर्वव्यापी प्रश्न यहीं समाप्त होता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गद्रभ-पन्हा**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-111-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 111
गद्रभा-पन्हा

"तुम स्वयं को हंस समझते हो।" - गधे से संबंधित इस प्रश्न का विस्तृत उत्तर उम्मग्ग जातक (546) में दिया जाएगा। गधे से संबंधित प्रश्न यहीं समाप्त होता है।

पिछला <<<<-----||-112-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 112
अमरादेवी-पन्हा

"केक और दलिया।"--यह प्रश्न भी उसी जातक में मिलेगा। यह रानी अमरा (*1) के प्रश्न का अंत है।

फुटनोट:

(1)अमारा राजा महोसधा की पत्नी थीं। बोधिसत्व महोसधा थे।

पिछला <<<<-----||-113-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 113
सिगाला-जातक

"शराबी सियार" - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित थे और बता रहे थे कि देवदत्त पाँच सौ अनुयायियों के साथ गयासिसा गया था, जिन्हें वह यह सिखाकर गुमराह कर रहा था कि सत्य उसी में प्रकट है "न कि तपस्वी गौतम (बुद्ध) में"; और कैसे वह अपने झूठ से भिक्षु संघ को तोड़ रहा था; और कैसे वह सप्ताह में दो दिन उपवास रखता था। जब वे वहाँ बैठकर देवदत्त की दुष्टता के बारे में बात कर रहे थे, तभी गुरु वहाँ आए और उन्हें उनकी बातचीत का विषय बताया गया। उन्होंने कहा, "भाइयों, देवदत्त अतीत में भी उतना ही बड़ा झूठा था जितना अब है।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व ब्रह्मदत्त एक श्मशान में वृक्ष-परी के रूप में पैदा हुए। उन दिनों बनारस में एक उत्सव मनाया जा रहा था और लोगों ने राक्षसों को बलि देने का निश्चय किया। उन्होंने आंगनों, गलियों और अन्य स्थानों पर मछली और मांस फैला दिया और शराब के बड़े-बड़े बर्तन रख दिए। आधी रात को एक सियार नाले के रास्ते शहर में आया और उसने मांस और शराब पीकर अपना पेट भरा। झाड़ियों में रेंगते हुए वह सुबह होने तक गहरी नींद में सोता रहा। जब वह जागा और देखा कि दिन का उजाला हो चुका है, तो उसे पता था कि इस समय वह सुरक्षित वापस नहीं जा सकता। इसलिए वह चुपचाप सड़क के किनारे ऐसी जगह लेट गया जहाँ उसे कोई देख न सके, जब तक कि अंत में उसने एक अकेले ब्राह्मण को तालाब में कुल्ला करते हुए नहीं देखा। तब सियार ने मन ही मन सोचा, "ब्राह्मण बड़े लालची होते हैं। मुझे उनके लालच का फायदा उठाकर उन्हें अपने वस्त्र के नीचे अपनी कमरबंद में ही मुझे शहर से बाहर ले जाने के लिए मजबूर करना चाहिए।" इसलिए, उसने मानवीय आवाज में "ब्राह्मण" कहकर पुकारा।

“मुझे कौन बुला रहा है?” ब्राह्मण ने मुड़कर कहा। “मैं, ब्राह्मण।” “किसलिए?” “मेरे पास दो सौ सोने के सिक्के हैं, ब्राह्मण; और यदि आप मुझे अपने बाहरी वस्त्र के नीचे अपनी कमरबंद में छिपाकर बिना किसी को दिखाई दिए शहर से बाहर निकाल देंगे, तो ये सभी सिक्के आपको मिल जाएंगे।”

प्रस्ताव समाप्त करते हुए, लालची ब्राह्मण ने सियार को छिपा दिया और उसे शहर से थोड़ा दूर ले गया। सियार ने पूछा, "यह कौन सी जगह है, ब्राह्मण?" ब्राह्मण ने कहा, "ओह, यह फलाँ जगह है।" सियार ने कहा, "थोड़ा और आगे चलो," और ब्राह्मण को थोड़ा-थोड़ा आगे चलने के लिए उकसाता रहा, जब तक कि अंत में श्मशान घाट नहीं आ गया। सियार ने कहा, "मुझे यहाँ उतार दो," और ब्राह्मण ने वैसा ही किया। "अपना वस्त्र ज़मीन पर बिछा दो, ब्राह्मण।" और लालची ब्राह्मण ने वैसा ही किया।

“अब इस वृक्ष को जड़ से उखाड़ दो,” उसने कहा, और जब ब्राह्मण काम कर रहा था, वह उस वस्त्र पर चढ़ गया और उस पर पाँच स्थानों पर, चारों कोनों और मध्य भाग में, गोबर और मल त्याग कर दिया। यह करके वह जंगल में चला गया।

इस पर बोधिसत्व ने वृक्ष की शाखाओं के बीच खड़े होकर यह श्लोक कहा:-

हे ब्राह्मण, शराबी सियार तुम्हारे भरोसे को धोखा देता है!
आपको यहां सौ कौड़ी भी नहीं मिलेंगी।
आपकी खोज तो दो सौ सोने के सिक्कों से कहीं कम है।
और जब उसने ये श्लोक दोहरा लिए, तो बोधिसत्व ने ब्राह्मण से कहा, "अब जाओ, अपने वस्त्र धो लो, स्नान करो और अपने काम पर जाओ।" इतना कहकर वह दृष्टि से ओझल हो गया, और ब्राह्मण ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था, और अपने साथ हुए धोखे से बहुत अपमानित होकर वहाँ से चला गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का सियार था, और मैं वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मितासिंति-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-114-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 114
मितासिंति-जातक

"वे दोनों मछुआरे के जाल में फँसे हुए थे।" - यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में दो वृद्ध भिक्षुओं के बारे में सुनाई थी। बरसात का मौसम देश के एक जंगल में बिताने के बाद, उन्होंने गुरुजी से मिलने का निश्चय किया और यात्रा के लिए भोजन सामग्री एकत्र की। लेकिन वे हर दिन अपनी यात्रा टालते रहे, यहाँ तक कि एक महीना बीत गया। फिर उन्होंने भोजन सामग्री का नया भंडार जुटाया और दूसरे महीने तक टालते रहे, फिर तीसरा महीना भी बीत गया। जब उनकी सुस्ती और आलस्य के कारण तीन महीने बीत गए, तब वे निकले और जेतवन मठ पहुँचे। उन्होंने अपने पान और वस्त्र सभा कक्ष में रख दिए और गुरुजी के समक्ष उपस्थित हुए। भिक्षुओं ने देखा कि कितने समय से वे गुरुजी से नहीं मिले थे और इसका कारण पूछा। तब उन्होंने अपनी कहानी सुनाई और सभी भिक्षुओं को इन आलसी भिक्षुओं के आलस्य के बारे में पता चल गया।

सत्य के हॉल में एकत्रित होकर भाई इस विषय पर आपस में चर्चा करने लगे। गुरुजी वहाँ आए और उन्हें बताया गया कि वे क्या बात कर रहे हैं। जब उनसे पूछा गया कि क्या वे सचमुच इतने आलसी हैं, तो उन भाईजी ने अपनी कमी स्वीकार की। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, पुराने समय में भी, आज की ही तरह, वे आलसी थे और अपने घर से बाहर निकलने को तैयार नहीं थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, बनारस नदी में तीन मछलियाँ रहती थीं, जिनके नाम थे अति-विचारशील, विचारशील और विचारहीन। वे जंगली इलाके से निकलकर मनुष्यलोक की ओर आ रही थीं। इस पर विचारशील मछली ने बाकी दोनों मछलियों से कहा, "यह इलाका खतरनाक और जोखिम भरा है, जहाँ मछुआरे जाल, टोकरीनुमा फंदों और इसी तरह के उपकरणों से मछलियाँ पकड़ते हैं। चलो हम भी जंगली इलाके में वापस चलते हैं।" लेकिन बाकी दोनों मछलियाँ इतनी आलसी और लालची थीं कि वे हर दिन अपना जाना टालती रहीं, यहाँ तक कि तीन महीने बीत गए। अब मछुआरों ने नदी में जाल डाले; अति-विचारशील और विचारहीन मछली भोजन की तलाश में आगे तैर रही थीं, तभी वे अंधाधुंध जाल में फँस गईं। पीछे रह गई विचारशील मछली ने जाल को देखा और बाकी दोनों मछलियों का हाल देखा।

“मुझे इन आलसी मूर्खों को मौत से बचाना ही होगा,” उसने सोचा। इसलिए पहले वह जाल के चारों ओर घूमा और उसके सामने पानी में ऐसे छपछपाया जैसे कोई मछली जाल तोड़कर ऊपर की ओर चली गई हो; फिर वापस मुड़कर, वह उसके पीछे ऐसे छपछपाया जैसे कोई

मछली जाल तोड़कर नीचे की ओर चली गई हो। यह देखकर मछुआरों को लगा कि मछली ने जाल तोड़ दिया है और सारी मछलियाँ भाग गई हैं; इसलिए उन्होंने जाल को एक कोने से खींचा और दोनों मछलियाँ जाल से निकलकर खुले पानी में वापस आ गईं। इस तरह उन्होंने विचारशील व्यक्ति की कृपा से अपनी जान बचाई।

अपनी कहानी सुनाते हुए, गुरु ने बुद्ध के रूप में यह श्लोक सुनाया:

> वे दोनों मछुआरों के जाल में फंसकर पकड़े गए;
> वे विचारशील होकर बचाते हैं और फिर से मुक्त कर देते हैं।

उनका पाठ समाप्त हुआ, और चारों सत्यों की व्याख्या करने के बाद (जिसके समापन पर वृद्ध भिक्षुओं ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की), गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "ये दोनों भिक्षु उस समय अतिविचारशील और विचारहीन थे, और मैं विचारशील था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अनुसासिका-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-115-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 115
अनुससिका-जातक

"लालच का धिक्कार करने वाली चिड़िया" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक साध्वी (नन) के बारे में जिसने दूसरों को चेतावनी दी थी। बताया जाता है कि वह श्रावस्ती शहर के एक अच्छे परिवार से थी, लेकिन संघ में प्रवेश करने के दिन से ही वह अपने कर्तव्य में विफल रही और लालच से भर गई; वह शहर के उन इलाकों में भिक्षा माँगती थी जहाँ दूसरी साध्वी (नन) नहीं जाती थीं। वहाँ उसे उत्तम भोजन दिया जाता था। अब उसके लालच ने उसे डरा दिया कि कहीं दूसरी साध्वी (नन) भी वहाँ न जाएँ और उसका हिस्सा छीन लें। उन्हें जाने से रोकने और सब कुछ अपने पास रखने का उपाय सोचते हुए, उसने दूसरी साध्वी (नन) को चेतावनी दी कि वह इलाका खतरनाक है, जहाँ एक खूंखार हाथी, एक खूंखार घोड़ा और एक खूंखार कुत्ता रहता है। उसने उनसे विनती की कि वे वहाँ भिक्षा लेने न जाएँ। इसके बाद एक भी साध्वी (नन) ने उस तरफ देखा तक नहीं।

एक दिन भिक्षा मांगने के लिए इस इलाके से गुजरते हुए, जब वह एक घर में जल्दी से प्रवेश कर रही थी, तभी एक खूंखार भेड़ ने उसे इतनी ज़ोर से टक्कर मारी कि उसका पैर टूट गया। लोग दौड़े और उसका पैर ठीक किया और उसे स्ट्रेचर पर उठाकर ननों के मठ में ले गए। और सभी ननों ने ताना मारते हुए कहा कि उसका पैर इसलिए टूटा क्योंकि वह उस जगह गई थी जहाँ उसने उन्हें जाने से मना किया था।

कुछ समय बाद भिक्षु संघ को इस बात का पता चला; और एक दिन सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने चर्चा की कि कैसे इस नन (नन) का पैर शहर के उस हिस्से में एक हिंसक भेड़ ने तोड़ दिया था, जिसके बारे में उसने अन्य ननों (ननों) को चेतावनी दी थी; और उन्होंने उसके इस कृत्य की निंदा की। उसी समय हॉल में प्रवेश करते हुए, गुरु ने पूछा, और उन्हें बताया गया कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। "भाइयों, जैसा कि अब है," उन्होंने कहा, "वैसे ही अतीत में भी उसने चेतावनियाँ दीं जिनका उसने स्वयं पालन नहीं किया; और तब भी, जैसा कि अब है, उसे हानि उठानी पड़ी।" ऐसा कहते हुए, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व पक्षी के रूप में जन्मे और बड़े होकर पक्षियों के राजा बने और हजारों पक्षियों के साथ हिमालय आए। वहाँ रहने के दौरान, एक उग्र पक्षी भोजन की तलाश में एक राजमार्ग पर जाया करती थी, जहाँ उसे गुजरते हुए रथों द्वारा गिराए गए चावल, सेम और अन्य अनाज मिलते थे। अन्य पक्षियों को भी वहाँ जाने से रोकने के सर्वोत्तम उपाय के बारे में सोचते हुए, उसने उन्हें इस प्रकार संबोधित किया: "यह राजमार्ग खतरों से भरा है। इस पर हाथी और घोड़े, क्रूर बैलों द्वारा खींचे जाने वाले रथ और ऐसी ही खतरनाक चीजें चलती हैं। और क्योंकि वहाँ तुरंत उड़ना असंभव है, इसलिए वहाँ बिल्कुल मत जाओ।" उसकी इस चेतावनी के कारण, अन्य पक्षियों ने उसे 'चेतावनी देने वाली' नाम दिया।

एक दिन जब वह राजमार्ग के किनारे चर रही थी, तो उसने सड़क पर तेज़ी से आती हुई एक गाड़ी की आवाज़ सुनी और उसे देखने के लिए अपना सिर घुमाया। "अरे, यह तो बहुत दूर है," उसने सोचा और पहले की तरह आगे बढ़ गई। तभी हवा की तरह तेज़ गति से गाड़ी आई और इससे पहले कि वह उठ पाती, पहिए ने उसे कुचल दिया और गाड़ी घूम कर आगे बढ़ गई। सभा में राजा ने उसकी अनुपस्थिति देखी और उसकी खोज का आदेश दिया। अंत में वह राजमार्ग पर दो टुकड़ों में कटी हुई मिली और यह खबर राजा तक पहुंचाई गई। "अन्य पक्षियों के प्रति अपनी सावधानी न बरतने के कारण वह दो टुकड़ों में कट गई है," राजा ने कहा और यह श्लोक बोला:-

लालच की निंदा करने वाला पक्षी, लालच को अपना शिकार बनाता है।
रथ के पहिए रास्ते में बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "चेतावनी देने वाली बहन उस समय की 'चेतावनी देने वाली' चिड़िया थी, और मैं पक्षियों का राजा था।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुब्बाका-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-116-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 116
दुब्बाका-जातक

"बहुत ज़्यादा।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक उद्दंड भाई (भिक्षु) के बारे में जिसकी कहानी गिज्झ-जातक (*1) के नौवें खंड में दी जाएगी।

गुरु ने उसे इन शब्दों में फटकारा: "भाई, तुम पहले भी ऐसे ही उद्दंड थे, बुद्धिमानों और भले लोगों की सलाहों की अवहेलना करते थे। इसी कारण भाले से तुम्हारी मृत्यु हुई।" इतना कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक कलाबाज के परिवार में हुआ। बड़े होकर वे अत्यंत बुद्धिमान और चतुर निकले। उन्होंने एक अन्य कलाबाज से भाला फेंक नृत्य सीखा और अपने गुरु के साथ यात्रा करके अपना कौशल प्रदर्शित करते थे। उनके गुरु को चार भाला फेंक नृत्य तो आता था, लेकिन पाँचवाँ नहीं। एक दिन एक गाँव में प्रदर्शन करते समय, शराब के नशे में उन्होंने पाँच भाले एक कतार में लगा दिए और घोषणा की कि वे उन सभी के बीच से नाचते हुए निकल जाएँगे।

बोधिसत्व ने कहा, "हे गुरु, आप पाँचों भाले एक साथ नहीं संभाल सकते। एक भाला हटा लीजिए। यदि आप पाँचों भाले एक साथ संभालने का प्रयास करेंगे, तो पाँचवाँ भाला आपको भेद देगा और आपकी मृत्यु हो जाएगी।"

“तो फिर आपको नहीं पता कि मैं कोशिश करने पर क्या कर सकता हूँ,” नशे में धुत उस व्यक्ति ने कहा; और बोधिसत्व के शब्दों पर ध्यान न देते हुए, वह चार भालों से बच निकला और पाँचवें भाले पर उसी प्रकार घायल हो गया जैसे बासिया का फूल अपनी डंठल पर घायल हो जाता है। और वहीं कराहता हुआ पड़ा रहा। बोधिसत्व ने कहा, “यह विपत्ति तुम्हारे बुद्धिमान और भले लोगों की सलाहों की अवहेलना करने के कारण आई है”; और उन्होंने यह श्लोक कहा:-

> आपने हद से ज्यादा कोशिश की—भले ही यह मेरी इच्छा के विरुद्ध दर्दनाक था;
> चारों को पार करने के बाद, पाँचवें पर आपकी मृत्यु हो गई।

ऐसा कहकर उसने अपने गुरु को भाले के स्थान से उठाया और विधिपूर्वक उनके शरीर का अंतिम संस्कार किया।

अपनी कहानी समाप्त करने के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह उद्दंड भाई (भिक्षु) उन दिनों का गुरु था, और मैं उसका शिष्य था।"

फुटनोट:

(1)सं. 427.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तित्तिर-जातक2**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-117-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 117
तित्तिरा-जातक

"जैसे तीतर पक्षी मर गया।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कोकालिका के बारे में सुनाई थी, जिसकी कहानी तकरिया जातक (*1) के तेरहवें खंड में मिलेगी।

गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, जैसे अब है, वैसे ही पहले भी कोकालिका की जीभ ने उसका विनाश किया था।"

ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब उत्तर देश में एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में पूर्ण शिक्षा प्राप्त की और कामवासनाओं का त्याग करके संसार छोड़कर संन्यासी बन गए। उन्होंने पंच ज्ञान और अष्टम सिद्धियाँ प्राप्त कीं और हिमालय के सभी पाँच सौ संन्यासी एकत्रित होकर उन्हें अपना गुरु मानकर उनका अनुसरण करने लगे।

हिमालय में अपने शिष्यों के बीच रहते हुए उन्हें गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई।

उन दिनों एक तपस्वी पीलिया से पीड़ित होकर कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहा था। तभी एक बातूनी भिक्षु आकर उसके पास बैठ गया और उसे निर्देश देने लगा, कभी यहाँ से कहीं वहाँ से काटने को कहता रहा, जिससे पीलिया से पीड़ित तपस्वी का क्रोध भड़क उठा। क्रोधित होकर वह चिल्लाया, "तुम कौन होते हो मुझे लकड़ी काटना सिखाने वाले?" और अपनी धारदार कुल्हाड़ी उठाकर एक ही वार में दूसरे को मार डाला। बोधिसत्व ने शव को दफना दिया।

अब आश्रम के पास ही एक चींटी के टीले पर एक तीतर रहता था, जो सुबह-शाम हमेशा टीले की चोटी पर चहचहाता रहता था। तीतर की आवाज़ पहचानकर एक शिकारी ने उसे मार डाला और अपने साथ ले गया। बोधिसत्व को तीतर की आवाज़ की कमी खल रही थी, इसलिए उन्होंने संन्यासियों से पूछा कि अब उन्हें अपने पड़ोसी तीतर की आवाज़ क्यों नहीं सुनाई दे रही है। तब संन्यासियों ने उन्हें सारी घटना बताई, और उन्होंने इन दोनों घटनाओं को इस श्लोक में जोड़ा:-

जैसे तेज चीखने के कारण तीतर पक्षी की मृत्यु हो गई,
इस प्रकार व्यर्थ की बातों और बकवास ने इस मूर्ख को मृत्यु के घाट उतार दिया।
अपने भीतर चारों सिद्ध अवस्थाओं को विकसित करने के कारण, बोधिसत्व ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में पुनर्जन्म के लिए नियत हो गए।

गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), जैसे आज है, वैसे ही पहले भी कोकालिका की वाणी ने उसका विनाश किया था।" और इस पाठ के अंत में उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों कोकालिका दखलंदाजी करने वाला तपस्वी था, मेरे अनुयायी संन्यासियों का समूह थे, और मैं उनका गुरु था।"

फुटनोट:

(1)सं. 481. कोकालिका देवदत्ता की साजिशकर्ताओं में से एक थी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वातक-जातक2**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-118-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 118
वट्टक-जातक

“लापरवाह पुरुष।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो मुख्य कोषाध्यक्ष के पुत्र के बारे में थी। कहा जाता है कि मुख्य कोषाध्यक्ष श्रावस्ती नगर के एक बहुत धनी व्यक्ति थे, और उनकी पत्नी ब्रह्मा लोक (परमलोक) के एक धर्मात्मा देवदूत की माता बनीं, जो ब्रह्मा (परमलोक) के समान सुंदर थे। एक दिन जब श्रावस्ती नगर में कट्टिका पर्व की घोषणा हुई, तो पूरा नगर उत्सव में डूब गया। उनके साथी, जो अन्य धनी पुरुषों के पुत्र थे, सभी की पत्नियाँ थीं, लेकिन मुख्य कोषाध्यक्ष का पुत्र ब्रह्मा लोक (परमलोक) में इतने लंबे समय तक रहा था कि वह वासना से मुक्त हो गया था। उसके साथियों ने मिलकर उसके लिए भी एक प्रेमिका ढूंढने और उसे अपने साथ उत्सव मनाने के लिए योजना बनाई। इसलिए वे उसके पास गए और बोले, “प्रिय मित्र, आज कट्टिका का महान पर्व है... क्या हम तुम्हारे लिए भी एक प्रेमिका नहीं ढूंढ सकते और साथ में आनंद नहीं मना सकते?” अंततः उसके दोस्तों ने एक सुंदर लड़की को चुना और उसे सजा-संवार कर उसके घर पर छोड़ दिया, साथ ही उसे अपने कमरे में आने का निर्देश भी दिया। लेकिन जब वह कमरे में दाखिल हुई, तो उस युवक व्यापारी ने न तो उसकी ओर देखा और न ही उससे एक शब्द कहा। अपनी सुंदरता के इस अपमान से नाराज़ होकर, उसने अपने सारे नज़ाकत और स्त्रीत्व के भावों को प्रदर्शित किया, और साथ ही इस तरह मुस्कुराई जैसे उसके सुंदर दाँत दिख रहे हों। उसके दाँतों को देखकर उसे लगा जैसे हड्डियाँ हों, और उसके मन में हड्डियों का ही ख्याल छा गया, यहाँ तक कि उसे लड़की का पूरा शरीर हड्डियों की एक श्रृंखला मात्र लगने लगा। फिर उसने उसे पैसे दिए और जाने के लिए कहा। लेकिन जैसे ही वह घर से बाहर निकली, एक रईस ने उसे सड़क पर देखा और उसे अपने साथ घर ले जाने के लिए उपहार दिया।

सात दिन बीतने पर त्योहार समाप्त हो गया, और लड़की की माँ ने देखा कि उसकी बेटी वापस नहीं आई है, तो वह उस युवक व्यापारी के दोस्तों के पास गई और उनसे पूछा कि वह कहाँ है। उन्होंने भी युवक व्यापारी से ही पूछा। व्यापारी ने बताया कि उसने लड़की को पैसे देकर देखते ही उसे विदा कर दिया था।

तब लड़की की माँ ने अपनी बेटी को वापस पाने की ज़िद की और उस युवक को राजा के सामने ले आई। राजा ने मामले की जाँच शुरू की। राजा के सवालों के जवाब में युवक ने स्वीकार किया कि लड़की उसे सौंपी गई थी, लेकिन उसने कहा कि उसे लड़की के ठिकाने का कोई पता नहीं है और न ही उसे पेश करने का कोई ज़रिया है। तब राजा ने कहा, "अगर वह लड़की को पेश नहीं कर पाता, तो उसे मार डालो।" इसके बाद युवक को हाथ बाँधकर फाँसी देने के लिए घसीटकर ले जाया गया और यह खबर सुनकर पूरे शहर में हंगामा मच गया। लोग सीने पर हाथ रखकर रोते हुए उसके पीछे-पीछे चल रहे थे और कह रहे थे, "महोदय, इसका क्या मतलब है? आप पर अन्याय हो रहा है।"

तब उस युवक ने सोचा, “यह सारा दुख मुझे इसलिए झेलना पड़ा क्योंकि मैं एक साधारण जीवन जी रहा था। अगर मैं किसी तरह इस खतरे से बच जाऊं, तो मैं संसार त्यागकर सर्वज्ञानी गौतम (बुद्ध) के भिक्षु संघ में शामिल हो जाऊंगा।”

अब उस लड़की ने खुद शोर सुना और पूछा कि इसका क्या मतलब है। जब उसे बताया गया, तो वह तेजी से बाहर भागी और चिल्लाई, "मुखिया, हट जाइए! मुझे जाने दीजिए! राजा के आदमियों को मुझे देखने दीजिए।" जैसे ही उसने खुद को दिखाया, राजा के आदमियों ने उसे उसकी माँ के हवाले कर दिया और उस युवक को छोड़कर अपने रास्ते चले गए।

अपने मित्रों से घिरे, कोषाध्यक्ष के पुत्र नदी में गए और स्नान किया। घर लौटकर उन्होंने नाश्ता किया और अपने माता-पिता को संसार त्यागने का अपना संकल्प बताया। फिर तपस्वी वस्त्र धारण करके, एक विशाल समूह के साथ, उन्होंने गुरु को ढूँढा और विधिपूर्वक प्रणाम करते हुए भिक्षु संघ में प्रवेश का निवेदन किया। पहले एक नौसिखिया और बाद में पूर्ण भिक्षु बनकर, उन्होंने बंधन के विचार पर

तब तक ध्यान किया जब तक उन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो गई, और कुछ ही समय बाद उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया।

एक दिन सत्य के हॉल में एकत्रित भिक्षुओं ने उनके गुणों का वर्णन किया और याद किया कि कैसे संकट की घड़ी में उन्होंने सत्य की श्रेष्ठता को पहचाना और बुद्धिमानी से संसार का त्याग करके अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) का सर्वोच्च फल प्राप्त किया। जब वे बातें कर रहे थे, तभी गुरुजी वहाँ आए और उनके पूछने पर उन्हें विषय बताया गया। इस पर उन्होंने बताया कि पूर्वकाल के ज्ञानी, जैसे कि महाकोष के पुत्र ने संकट की घड़ी में सूझबूझ से मृत्यु से मुक्ति पाई थी, वैसे ही उन्होंने भी मृत्यु से बच गए थे। ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म बटेर के रूप में हुआ। उस समय एक बटेर पकड़ने वाला था जो जंगल से बड़ी संख्या में बटेर पकड़कर उन्हें घर ले आता था और उन्हें मोटा करता था। जब वे मोटे हो जाते थे, तो वह उन्हें लोगों को बेचकर अपना जीवन यापन करता था। एक दिन उसने बोधिसत्व को पकड़ लिया और उन्हें कई अन्य बटेरों के साथ घर ले आया। बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "यदि मैं वह भोजन और पेय लूँगा जो वह मुझे देगा, तो मुझे बेच दिया जाएगा; और यदि मैं इसे नहीं खाऊँगा, तो मैं इतना पतला हो जाऊँगा कि लोग मुझे देखकर अनदेखा कर देंगे, और इस प्रकार मैं सुरक्षित रहूँगा। इसलिए मुझे यही करना चाहिए।" अतः उन्होंने उपवास किया और तब तक उपवास करते रहे जब तक कि वे इतने पतले नहीं हो गए कि वे केवल हड्डियों का ढाँचा रह गए, और कोई भी उन्हें किसी भी कीमत पर नहीं खरीदना चाहता था। बोधिसत्व को छोड़कर अपने सभी पक्षियों को मार डालने के बाद, पक्षी पकड़ने वाले ने बोधिसत्व को पिंजरे से बाहर निकाला और यह देखने के लिए कि पक्षी को क्या तकलीफ है, उसे अपनी हथेली पर रख दिया। जब वह व्यक्ति लापरवाह था, तो बोधिसत्व ने अपने पंख फैलाए और जंगल की ओर उड़ गया। उसे लौटते देख, अन्य बटेरों ने पूछा कि इतने समय तक वह कहाँ था और कहाँ गया था। तब उसने उन्हें बताया कि उसे एक शिकारी ने पकड़ लिया था, और जब उससे पूछा गया कि वह कैसे बच निकला, तो उसने उत्तर दिया कि उसने एक ऐसा तरीका सोचा था, यानी शिकारी द्वारा दिए गए भोजन और पानी को न लेना। ऐसा कहकर उसने यह श्लोक कहा:-

लापरवाह व्यक्ति को कोई लाभ नहीं मिलता। लेकिन देखो
मेरे भीतर विचार का फल है, जो मुझे मृत्यु और बंधन से मुक्त करता है।
इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन किया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों मृत्यु से बच निकलने वाली बटेर था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अकालरावी-जातक**
***स्रोत**: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-119-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 119
अकालरवी-जातक

“माता-पिता ने सही शिक्षा नहीं दी।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जो अक्सर बेवजह शोर मचाता था। कहा जाता है कि वह श्रावस्ती शहर के एक अच्छे परिवार से था और उसने संसार का त्याग करके सत्य का मार्ग अपनाया था, लेकिन उसने अपने कर्तव्यों की उपेक्षा की और शिक्षा का तिरस्कार किया। वह अपने कर्तव्यों, धर्मोपदेश या शास्त्र पाठ के लिए समय का हिसाब नहीं रखता था। रात के तीनों पहरों में, साथ ही जागते समय भी, वह कभी शांत नहीं रहता था;—जिससे अन्य भिक्षुओं को एक पल भी नींद नहीं आती थी। इसलिए, सत्य सभा में भिक्षुओं ने उसके इस व्यवहार की आलोचना की। सभा में प्रवेश करके और पूछताछ करने पर जब गुरु ने जाना कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा, “भाइयों, जैसा कि अब है, वैसे ही अतीत में भी, यह भिक्षु बेवजह शोर मचाता था, और इसी बेवजह व्यवहार के कारण उसका गला घोंट दिया गया था।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तरी ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने सर्वज्ञान प्राप्त किया और विश्व प्रसिद्ध गुरु बन गए, जिनके शिष्य पाँच सौ युवा ब्राह्मण थे। इन युवा ब्राह्मणों के पास एक मुर्गा था जो सुबह जल्दी बांग देता था और उन्हें पढ़ाई के लिए जगा देता था। लेकिन वह मुर्गा मर गया। उन्होंने दूसरे मुर्गे की तलाश की, और उनमें से एक ने श्मशान में लकड़ियाँ चुनते समय वहाँ एक मुर्गा देखा। वह उसे घर ले आया और एक बाड़े में रख दिया। लेकिन, क्योंकि यह दूसरा मुर्गा श्मशान में पला-बढ़ा था, इसलिए उसे समय और ऋतुओं का ज्ञान नहीं था और वह आधी रात से लेकर सुबह तक बेफिक्र होकर बांग देता था। आधी रात को उसकी बांग से जागकर युवा ब्राह्मण अपनी पढ़ाई में जुट जाते थे; भोर तक वे थक जाते थे और नींद के कारण विषय पर ध्यान नहीं लगा पाते थे; और जब वह दिन दहाड़ता था तो उन्हें पाठ दोहराने के लिए शांति का समय नहीं मिलता था। और चूंकि मुर्गे की बांग ने आधी रात और दिन दोनों समय उनकी पढ़ाई रोक दी थी, इसलिए उन्होंने पक्षी को पकड़ा और उसकी गर्दन मरोड़ दी। फिर उन्होंने अपने शिक्षक को बताया कि उन्होंने उस मुर्गे को मार डाला है जो हर मौसम में बांग देता है।

उनके शिक्षक ने उन्हें समझाने के लिए कहा, "उसकी बुरी परवरिश ही इस मुर्गे के अंत का कारण बनी।" इतना कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

इस पक्षी को न तो किसी माता-पिता ने प्रशिक्षित किया, न ही किसी शिक्षक ने इसे सिखाया:
सीजन के दौरान और सीजन के बाहर, दोनों ही समय उनकी आवाज सुनी जाती थी।
बोधिसत्व की इस विषय पर यही शिक्षा थी; और जब उन्होंने पृथ्वी पर अपना निर्धारित समय पूरा कर लिया, तो वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से चले गए।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया, "यह भाई (भिक्षु) उस समय का मुर्गा था, जो बांग देना नहीं जानता था; मेरे शिष्य युवा ब्राह्मण थे; और मैं उनका गुरु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बंधनमोक्ख-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-120-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 120
बंधनमोक्खा-जातक

"अनैतिक कर्म के वाणी के दौरान"—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में ब्राह्मण कन्या चिंचा के बारे में सुनाई थी, जिसका इतिहास महापदुम-जातक (*1) के बारहवें खंड में दिया जाएगा। इस अवसर पर गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब चिंचा ने मुझ पर झूठे आरोप लगाए हैं। उसने पहले भी ऐसा किया है।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक पुरोहित के परिवार में हुआ और अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने पुरोहिती का पदभार संभाला।

अब राजा ने अपनी रानी से वादा किया कि वह जो भी वरदान मांगेगी, वह उसे पूरा करेगा। रानी ने कहा, "मैं जो वरदान मांग रही हूँ, वह बहुत सरल है; आज से आप किसी और स्त्री को प्रेम भरी दृष्टि से न देखें।" पहले तो राजा ने मना कर दिया, लेकिन रानी के लगातार आग्रह से तंग आकर अंततः मान गया। और उस दिन से उसने अपनी सोलह हजार नर्तकियों में से किसी को भी प्रेम भरी दृष्टि से नहीं देखा।

अब उसके राज्य की सीमाओं पर अशांति फैल गई, और लुटेरों के साथ दो-तीन झड़पों के बाद, वहाँ की सेना ने राजा को पत्र भेजकर कहा कि वे इस मामले को आगे नहीं बढ़ा सकते। तब राजा स्वयं जाने के लिए उत्सुक हुआ और उसने एक विशाल सेना एकत्रित की।

उसने अपनी पत्नी से कहा, "प्रिय, मैं सीमा पर जा रहा हूँ, जहाँ भयंकर युद्ध होंगे, जिनमें या तो जीत होगी या हार। शिविर में स्त्री का कोई स्थान नहीं है, और तुम्हें यहीं रहना होगा।"

“हे स्वामी, यदि आप चले जाएँगे तो मैं रुक नहीं पाऊँगी,” उसने कहा। परन्तु राजा को अपने निर्णय पर अडिग देखकर उसने यह निवेदन किया, “प्रत्येक एक मील (x 4.23 किमी) पर एक दूत भेजकर मेरा हालचाल पूछिए।” राजा ने ऐसा करने का वचन दिया। तदनुसार, जब राजा अपनी सेना के साथ नगर में बोधिसत्व को छोड़कर निकला, तो उसने प्रत्येक मील (x 4.23 किमी) के अंत में एक दूत भेजा ताकि रानी को उसका हालचाल पता चल सके और वह कैसी है। प्रत्येक दूत के आने पर रानी उससे पूछती कि वह क्यों लौटा है। और जब उसे उत्तर मिलता कि वह उसका हालचाल पूछने आया है, तो रानी दूत को अपने पास बुलाती और उसके साथ संबंध बनाती। अब राजा ने बत्तीस मील (x 4.23 किमी) की यात्रा की और बत्तीस दूत भेजे, और रानी ने उन सभी के साथ संबंध बनाए। जब उसने सीमावर्ती क्षेत्र में शांति स्थापित कर ली, जिससे निवासियों को अपार प्रसन्नता हुई, तो वह अपने घर वापसी के लिए रवाना हुआ और बत्तीस दूतों का दूसरा दल भेजा। रानी ने पहले की तरह ही उनमें से प्रत्येक से संबंध स्थापित किए। अपनी विजयी सेना को शहर के पास रोककर, राजा ने बोधिसत्व को पत्र भेजा कि वे शहर को उसके प्रवेश के लिए तैयार करें। शहर में तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं और बोधिसत्व राजा के आगमन के लिए महल को सजा रहे थे, तभी वे रानी के कक्ष में पहुँचे। उनके भव्य रूप को देखकर रानी इतनी मोहित हो गई कि उसने अपनी वासना को शांत करने के लिए उन्हें बुलाया। परन्तु बोधिसत्व ने राजा के सम्मान का हवाला देते हुए उससे विनती की और कहा कि वे सभी पापों से विमुख हैं और उसकी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करेंगे। रानी ने कहा, “राजा के चौंसठ दूतों को भी राजा के विचार से भय नहीं लगा; तो क्या तुम राजा के खातिर मेरी इच्छा पूरी करने से डरोगे?”

बोधिसत्व ने कहा, "यदि इन दूतों ने मेरे साथ विचार किया होता, तो वे ऐसा न करते। जहाँ तक मेरा सवाल है, जो सत्य को जानता हूँ, मैं यह पाप नहीं करूँगा।"

"बकवास मत करो," उसने कहा। "अगर तुमने इनकार किया, तो मैं तुम्हारा सिर कटवा दूंगी।"

"ऐसा ही हो। इस जन्म में या लाखों जन्मों में मेरा सिर काट दो; फिर भी मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगा।"

“ठीक है; मैं देख लेती हूँ,” रानी ने धमकी भरे लहजे में कहा। और अपने कमरे में जाकर उसने खुद को खुजलाया, अपने अंगों पर तेल लगाया, गंदे कपड़े पहने और बीमार होने का नाटक किया। फिर उसने अपने दासों को बुलवाया और उनसे कहा कि जब राजा उसका हालचाल पूछे तो उसे बता दें कि वह बीमार है।

इसी बीच बोधिसत्व राजा से मिलने गए, जो शहर का जुलूस निकालने के बाद अपने महल में दाखिल हुए। रानी को न देखकर उन्होंने पूछा कि वह कहाँ हैं, तो उन्हें बताया गया कि वह बीमार हैं। राजशय के शयनकक्ष में प्रवेश करके राजा ने रानी को प्यार से सहलाया और पूछा कि उन्हें क्या तकलीफ है। वह चुप रहीं; लेकिन जब राजा ने तीसरी बार पूछा, तो उन्होंने राजा की ओर देखकर कहा, "यद्यपि मेरे स्वामी, राजा अभी जीवित हैं, फिर भी मुझ जैसी दीन स्त्रियों को स्वामी रखना ही पड़ता है।"

"आपका क्या मतलब है?"

"जिस पुजारी को आपने शहर की निगरानी के लिए छोड़ा था, वह महल की देखरेख करने के बहाने यहाँ आया; और क्योंकि मैंने उसकी इच्छा के आगे झुकने से इनकार कर दिया, उसने मुझे जी भर कर पीटा और चला गया।"

तब राजा आग में नमक या चीनी के चटकने जैसी भयंकर क्रोध से आग बबूला हो गया; और वह कमरे से बाहर भागा। उसने अपने सेवकों को बुलाया और उनसे कहा कि वे पुजारी के हाथ पीछे की ओर बांध दें, जैसे किसी को मृत्युदंड दिया गया हो, और उसे फांसी के स्थान पर ही काट दें। वे तुरंत गए और बोधिसत्व को बांध दिया। फिर फांसी की घोषणा के लिए ढोल बजाया गया।

बोधिसत्व ने सोचा, “निस्संदेह उस दुष्ट रानी ने राजा के मन में मेरे विरुद्ध द्वेष भर दिया है, और अब मुझे स्वयं को इस खतरे से बचाना होगा।” इसलिए उन्होंने अपने बंदी बनाने वालों से कहा, “मुझे मारने से पहले राजा के समक्ष ले आओ।” उन्होंने पूछा, “क्यों?” बोधिसत्व ने कहा, “क्योंकि राजा के सेवक के रूप में मैंने राजा के कार्यों में बहुत परिश्रम किया है, और मुझे उन बड़े खजानों का ज्ञान है जो मैंने खोजे हैं। यदि मुझे राजा के समक्ष नहीं लाया गया, तो यह सारा धन खो जाएगा। इसलिए मुझे उनके समक्ष ले चलो, और फिर अपना कर्तव्य निभाओ।”

तदनुसार, वे उसे राजा के समक्ष लाए, जिसने पूछा कि श्रद्धा ने उसे ऐसी दुष्टता करने से क्यों नहीं रोका।

“महाराज,” बोधिसत्व ने उत्तर दिया, “मैं ब्राह्मण के रूप में जन्मा हूँ और मैंने कभी किसी चींटी का भी प्राण नहीं लिया। मैंने कभी किसी और की वस्तु नहीं ली, यहाँ तक कि घास का एक तिनका भी नहीं। मैंने कभी किसी दूसरे पुरुष की पत्नी को वासना भरी दृष्टि से नहीं देखा। मैंने कभी मजाक में भी झूठ नहीं बोला और न ही कभी शराब का एक घूँट पिया है। मैं निर्दोष हूँ, महाराज; परन्तु उस दुष्ट स्त्री ने वासनावश मेरा हाथ पकड़ा और जब मैंने उसे मना किया तो उसने मुझे धमकाया और अपने कमरे में जाने से पहले मुझे अपने गुप्त अपराध के बारे में बता दिया। क्योंकि चौंसठ दूत आपके पत्र लेकर रानी के पास आए थे। इन पुरुषों को बुलवाएँ और प्रत्येक से पूछें कि क्या उन्होंने रानी के आदेश का पालन किया या नहीं।” तब राजा ने उन चौंसठ पुरुषों को बाँधवाकर रानी को बुलवाया। रानी ने उन पुरुषों के साथ यौन संबंध बनाने की बात स्वीकार की। तब राजा ने उन चौंसठ पुरुषों का सिर कलम करने का आदेश दिया।

लेकिन इस पर बोधिसत्व ने पुकार कर कहा, "नहीं, महाराज, पुरुषों का कोई दोष नहीं है; क्योंकि वे रानी के दबाव में थे। इसलिए उन्हें क्षमा कर दीजिए। और रानी का भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि स्त्रियों की वासनाएं अनियंत्रित होती हैं, और वह तो अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करती है। इसलिए, हे राजा, उन्हें भी क्षमा कर दीजिए।"

इस विनती पर राजा दयालु हो गए और बोधिसत्व ने रानी और चौंसठ पुरुषों के जीवन को बचा लिया और उन्हें रहने के लिए स्थान दिया। फिर बोधिसत्व राजा के पास आए और बोले, "महाराज, निराधार आरोप बुद्धिमानों को अनुचित बंधनों में जकड़ लेते हैं, परन्तु बुद्धिमानों के वचन मूर्खों को मुक्त कर देते हैं। इस प्रकार, कुकर्म गलत बंधन बनाता है और बुद्धि बंधनों से मुक्ति दिलाती है।" ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

यद्यपि कुकर्म के भाषण ने अन्यायपूर्ण ढंग से बाध्य किया,
बुद्धि के वचन से न्यायसंगत बंधनों से मुक्त हो जाते हैं।
जब उन्होंने राजा को इन श्लोकों में सत्य का उपदेश दिया, तो उन्होंने कहा, "यह सारी परेशानी मेरे गृहस्थ जीवन जीने के कारण उत्पन्न हुई है। मुझे अपना जीवन-मार्ग बदलना होगा, और हे महाराज, मैं आपसे सांसारिक जीवन त्यागने की अनुमति चाहता/चाहती हूँ।" राजा की अनुमति से उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया और अपने शोकग्रस्त रिश्तेदारों और अपार धन-संपत्ति को छोड़कर संन्यासी बन गए। उनका निवास हिमालय में था, और वहाँ उन्होंने उच्च ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और ब्रह्मलोक (परमलोक) में पुनर्जन्म के लिए नियत हुए।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "चिंचा उन दिनों की दुष्ट रानी थी, आनंद राजा थे और मैं उनका पुरोहित था।"

फुटनोट:

(1)सं. 472.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> कुसानादि - **जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-121-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 121
कुसानली-जातक

“बड़े-छोटे सभी का सम्मान हो।”—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के सच्चे मित्र के बारे में सुनाई थी। उनके परिचित, मित्र और रिश्तेदार उनके पास आए और एक विशेष व्यक्ति के साथ उनकी घनिष्ठता को रोकने का भरसक प्रयास किया, यह कहते हुए कि वह न तो जन्म से और न ही धन-दौलत से अनाथपिंडिका के बराबर है। परन्तु महान व्यापारी ने उत्तर दिया कि मित्रता बाहरी समानता या असमानता पर निर्भर नहीं होनी चाहिए। और जब वे अपनी जमींदारी पर लौटे, तो उन्होंने अपने मित्र को अपनी संपत्ति का प्रभार सौंप दिया। सब कुछ कालकन्नी जातक (*1) में वर्णित अनुसार हुआ। लेकिन, जब इस मामले में अनाथपिंडिका ने अपने घर पर मंडरा रहे खतरे के बारे में बताया, तो गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, सच्चा मित्र कभी हीन नहीं होता। मित्रता का मापदंड उसकी योग्यता है। सच्चा मित्र, चाहे वह स्वयं के बराबर या उससे कमतर ही क्यों न हो, उसे श्रेष्ठ मानना चाहिए, क्योंकि ऐसे सभी मित्र स्वयं पर आने वाली विपत्तियों

का सामना करने में कभी असफल नहीं होते। तुम्हारा सच्चा मित्र ही है जिसने आज तुम्हारी संपत्ति बचाई है। इसी प्रकार बीते समय में एक ऐसे ही सच्चे मित्र ने एक आत्मा के घर की रक्षा की थी।" फिर अनाथपिंडिका के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व राजा के उद्यान में एक आत्मा के रूप में जन्म लेकर कुश घास के एक झुंड में रहने लगे। उसी उद्यान में राजा के सिंहासन के पास एक सुंदर वरदान वृक्ष (जिसे मुखक वृक्ष भी कहा जाता है) उगता था, जिसका तना सीधा और शाखाएँ फैली हुई थीं, और जो राजा को अत्यंत प्रिय था। यहाँ एक शक्तिशाली देव-राजा का निवास था, जो वृक्ष-आत्मा के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए थे। बोधिसत्व का इस वृक्ष-आत्मा के साथ घनिष्ठ मित्रता का संबंध था।

अब राजा के निवास में छत को सहारा देने के लिए केवल एक ही खंभा था और वह खंभा हिलने लगा था। यह जानकर राजा ने बढ़ईयों को बुलवाया और उन्हें एक मजबूत खंभा लगाने और छत को सुरक्षित करने का आदेश दिया। बढ़ई एक उपयुक्त पेड़ की तलाश में इधर-उधर देखने लगे, लेकिन कहीं और न मिलने पर वे बगीचे में गए और उन्हें मुखक का पेड़ दिखाई दिया। फिर वे राजा के पास वापस आ गए। राजा ने कहा, "अच्छा, क्या तुम्हें कोई उपयुक्त पेड़ मिल गया?" उन्होंने कहा, "जी महाराज, लेकिन हम इसे काटना नहीं चाहते।" राजा ने कहा, "क्यों नहीं?" तब उन्होंने बताया कि कैसे उन्होंने व्यर्थ ही हर जगह पेड़ की तलाश की और पवित्र पेड़ को काटने की हिम्मत नहीं की। राजा ने कहा, "जाओ और इसे काट दो और छत को सुरक्षित कर दो। मैं दूसरा पेड़ ढूंढता हूँ।"

तो वे चले गए। और वे बगीचे में बलि लेकर गए और वृक्ष को अर्पित करते हुए आपस में कहने लगे कि वे कल आकर उसे काट डालेंगे। उनकी बातें सुनकर वृक्ष-परी को पता चल गया कि कल उसका घर नष्ट हो जाएगा, और वह अपने बच्चों को सीने से लगाकर फूट-फूट कर रोने लगी, यह न जानते हुए कि उन्हें लेकर कहाँ भागे। उसके मित्र, वन के प्रेत, आए और पूछा कि क्या हुआ है। लेकिन उनमें से कोई भी बढ़ई को रोकने का उपाय नहीं सोच सका, और सभी रोते-बिलखते उसे गले लगाने लगे। उसी क्षण बोधिसत्व वृक्ष-परी को पुकारने आए और उन्हें यह खबर सुनाई गई। बोधिसत्व ने प्रसन्नता से कहा, "डरो मत। मैं देखूंगा कि वृक्ष को काटा न जाए। बस कल देखो कि जब बढ़ई आएंगे तो मैं क्या करूंगा।"

अगले दिन जब लोग आए, तो बोधिसत्व गिरगिट का रूप धारण करके उनसे पहले ही वृक्ष पर पहुँच गए थे। वे जड़ से अंदर घुस गए और शाखाओं के बीच तक ऊपर चढ़ते हुए वृक्ष को छेदों से भर दिया। फिर बोधिसत्व शाखाओं के बीच आराम करने लगे और अपना सिर तेजी से इधर-उधर हिलाने लगे। बढ़ई उठ खड़े हुए; और गिरगिट को देखते ही उनके सरदार ने वृक्ष पर हाथ मारा और कहा कि वृक्ष सड़ा हुआ है और उन्होंने कल भेंट चढ़ाने से पहले ध्यान से नहीं देखा था। और वह उस विशाल और मजबूत वृक्ष के प्रति तिरस्कार से भर कर वहाँ से चले गए। इस प्रकार बोधिसत्व ने वृक्ष-आत्मा के घर को बचा लिया। और जब उसके सभी मित्र और परिचित उससे मिलने आए, तो उसने अपने घर के रक्षक के रूप में बोधिसत्व की स्तुति करते हुए हर्षोल्लास से कहा, "वृक्षों के प्राणों, अपनी अपार शक्ति के बावजूद हम नहीं जानते थे कि क्या करें; जबकि एक विनम्र कुश-प्राणी ने बुद्धि से मेरे घर की रक्षा की। सचमुच हमें अपने मित्रों का चुनाव इस बात पर विचार किए बिना करना चाहिए कि वे श्रेष्ठ हैं, समान हैं या हीन हैं, पद का कोई भेद नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार संकट की घड़ी में मित्र की सहायता कर सकता है।" और उसने मित्रता और उसके कर्तव्यों के बारे में यह श्लोक दोहराया:-

बड़े हों या छोटे, और बराबर हों, सभी को,
यदि कोई हानि हो तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी सर्वोत्तम कोशिश करे।
और मुसीबत में फंसे दोस्त की मदद करो।
मुझे कुसा-आत्मा से सहायता मिली।
इस प्रकार उन्होंने एकत्रित देवों (देवदूतों) को उपदेश देते हुए ये शब्द कहे, "इसी कारणवश, जो किसी बुरी स्थिति से बचना चाहते हैं, उन्हें केवल यह विचार नहीं करना चाहिए कि कोई व्यक्ति उनके बराबर है या उनसे श्रेष्ठ, बल्कि उन्हें बुद्धिमानों से मित्रता करनी चाहिए, चाहे जीवन में उनकी स्थिति कुछ भी हो।" और उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया और कुश आत्मा के साथ अंततः अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक विदा हो गईं।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आनंद तब वृक्ष-आत्मा थे, और मैं कुश-आत्मा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या (83)

पिछला <<<<-----||-122-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 122
दुम्मेधा जातक

"उच्च पद मूर्ख को भी महान कष्ट देता है।" - यह कथा गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए थे और इस बात पर चर्चा कर रहे थे कि बुद्ध की सिद्धियों और बुद्धत्व के सभी विशिष्ट लक्षणों (*1) को देखकर देवदत्त कैसे क्रोधित हो गया था; और ईर्ष्या के कारण वह बुद्ध के असीम ज्ञान की प्रशंसा सहन नहीं कर पा रहा था। हॉल में प्रवेश करते हुए, गुरु ने उनसे पूछा कि वे किस विषय पर बात कर रहे हैं। जब उन्होंने बताया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, जैसे अब, वैसे ही पहले भी देवदत्त मेरी प्रशंसा सुनकर क्रोधित हो जाता था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, मगध के राजगृह नगर में मगध राजा शासन कर रहे थे, तभी बोधिसत्व का जन्म हाथी के रूप में हुआ। वे पूर्णतः श्वेत थे और ऊपर वर्णित सभी सौंदर्यों से परिपूर्ण थे। उनकी सुंदरता के कारण राजा ने उन्हें अपना राज-हाथी बना लिया।

एक त्यौहार के दिन राजा ने शहर को देवों के नगर की तरह सजाया और अपने अलंकृत वस्त्रों में सजे हाथी पर सवार होकर, अपने विशाल दल के साथ शहर में जुलूस निकाला। पूरे रास्ते भर लोग उस असाधारण हाथी को देखकर मंत्रमुग्ध हो गए और कहने लगे, "वाह, क्या राजसी चाल है! क्या भव्यता है! क्या सुंदरता है! क्या आकर्षण है! ऐसा सफेद हाथी किसी सर्वोपरि सम्राट के योग्य है।" हाथी की इस प्रशंसा ने राजा को ईर्ष्या से भर दिया और उसने उसे खाई में फेंककर मार डालने का निश्चय किया। इसलिए उसने महावत को बुलाया और पूछा कि क्या वह इसे प्रशिक्षित हाथी कहता है।

“जी महाराज, यह तो बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षित है,” महावत ने कहा। “नहीं, यह तो बहुत बुरी तरह से प्रशिक्षित है।” “महाराज, यह अच्छी तरह से प्रशिक्षित है।” “अगर यह इतना अच्छा प्रशिक्षित है, तो क्या आप इसे वेपुल्ला पर्वत की चोटी तक चढ़ा सकते हैं?” “जी महाराज।” “तो जाओ फिर,” राजा ने कहा। और वह हाथी से उतर गए, महावत को अपने ऊपर बिठाया, और स्वयं पर्वत की तलहटी में चले गए, जबकि महावत हाथी की पीठ पर सवार होकर वेपुल्ला पर्वत की चोटी तक गया। राजा अपने दरबारियों के साथ पर्वत पर चढ़े, और हाथी को एक गहरी खाई के किनारे पर रोक दिया। “अब,” उन्होंने उस व्यक्ति से कहा, “अगर यह इतना अच्छा प्रशिक्षित है जैसा कि आप कहते हैं, तो इसे तीन पैरों पर खड़ा करो।”

हाथी की पीठ पर बैठे महावत ने इशारे से हाथी को हल्के से छुआ और पुकारा, "हे मेरे सुंदर हाथी, तीन पैरों पर खड़े हो जाओ।" राजा ने कहा, "अब इसे अपने दोनों अगले पैरों पर खड़ा करो।" और हाथी ने अपने पिछले पैर उठाए और केवल अगले पैरों पर खड़ा हो गया। राजा ने फिर कहा, "अब पिछले पैरों पर," और आज्ञाकारी हाथी ने अपने अगले पैर तब तक उठाए जब तक वह केवल पिछले पैरों पर खड़ा नहीं हो गया। राजा ने फिर कहा, "अब एक पैर पर," और हाथी एक पैर पर खड़ा हो गया।

यह देखकर कि हाथी खाई में नहीं गिरा, राजा चिल्लाया, "अब अगर हो सके तो उसे हवा में खड़ा कर दो।"

तब महावत ने मन ही मन सोचा, "प्रशिक्षण की उत्कृष्टता के मामले में पूरा भारत भी इस हाथी की बराबरी नहीं कर सकता। राजा ज़रूर इसे खाई में गिराकर मार डालना चाहता होगा।" इसलिए उसने हाथी के कान में फुसफुसाते हुए कहा, "मेरे पुत्र, राजा चाहता है कि तुम गिरकर मर जाओ। वह तुम्हारे लायक नहीं है। यदि तुममें हवा में उड़ने की शक्ति है, तो मुझे अपनी पीठ पर बिठाकर हवा में उड़ो और बनारस पहुँचो।"

और पुण्य से प्राप्त अद्भुत शक्तियों से संपन्न वह महान प्राणी तुरंत आकाश में विलीन हो गया। तब महावत ने कहा, "महाराज, पुण्य से प्राप्त अद्भुत शक्तियों से युक्त यह हाथी आप जैसे निकम्मे मूर्ख के लिए बहुत अच्छा है: केवल एक बुद्धिमान और नेक राजा ही इसका स्वामी बनने योग्य है। जब आप जैसे निकम्मे लोगों को ऐसा हाथी मिलता है, तो वे उसका मूल्य नहीं समझते, और इस प्रकार वे अपना हाथी और अपनी सारी शान-शौकत खो देते हैं।" ऐसा कहते हुए महावत हाथी की गर्दन पर बैठा और उसने यह श्लोक पढ़ा:-

उच्च पद मूर्ख को भी महान कष्ट भोगने पर मजबूर करता है;
वह स्वयं का और दूसरों का कट्टर शत्रु साबित होता है।
“अब, अलविदा,” उन्होंने राजा को फटकार लगाते हुए कहा; और हवा में उड़ते हुए, वे बनारस की ओर बढ़े और राजगृह के ऊपर हवा में ही रुक गए। शहर में हलचल मच गई और सब चिल्ला उठे, “देखो, हमारे राजा के लिए राज-हाथी हवा में आया है और राजगृह के ऊपर मंडरा रहा है।” और यह खबर राजा तक भी शीघ्रता से पहुंचाई गई, जो बाहर आए और बोले, “यदि तुम्हारा आना मेरे हित में है, तो पृथ्वी पर उतर आओ।” और बोधिसत्व हवा से नीचे उतरे। फिर महावत नीचे उतरे और राजा के सामने प्रणाम किया, और राजा के प्रश्नों के उत्तर में राजगृह से उनके जाने की पूरी कहानी सुनाई। “तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ,” राजा ने कहा; और प्रसन्नता में उन्होंने शहर को सजाया और हाथी को अपने राजगृह में स्थापित किया। फिर उन्होंने अपने राज्य को तीन भागों में बाँटा, एक भाग बोधिसत्व को, एक भाग महावत को और एक भाग स्वयं अपने पास रखा। बोधिसत्व के आगमन के दिन से ही उनकी शक्ति बढ़ती गई और समस्त भारत पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया। भारत के सम्राट के रूप में वे दानशील और अन्य अच्छे कार्य करते रहे, और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार उनका निधन हो गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों देवदत्त मगध के राजा थे, सारिपुत्र बनारस के राजा थे, आनंद महावत थे और मैं हाथी था।"

फुटनोट:

(1) सेला सुत्त (सुत्त निपाता की संख्या 33 और टिपिटका में मज्झिमा निकाय की संख्या 92)।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> नांगलीस - **जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-123-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 123
नांगलिसा-जातक

"सार्वभौमिक उपयोग के लिए।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें वरिष्ठ भिक्षु लालुदयी के बारे में बताया गया है, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्हें हमेशा गलत बात कहने की आदत थी। उन्हें कभी भी यह पता नहीं होता था कि विभिन्न उपदेशों के लिए उचित अवसर क्या है। उदाहरण के लिए, यदि कोई त्योहार होता, तो वे उदास स्वर में कहते, "दीवारों के बाहर वे घात लगाए बैठे हैं, और जहाँ चार चौराहे मिलते हैं।" यदि कोई अंत्येष्टि होती, तो वे अचानक बोल पड़ते, "देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के हृदय आनंद से भर गए," या "हे भगवान, ऐसे सौ नहीं, हज़ार दिन देखो!"

एक दिन सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने लालुदायी की विषय चुनने की विलक्षण अक्षमता और हमेशा गलत बात कहने की उसकी आदत पर टिप्पणी की। जब वे बातें कर रहे थे, तभी गुरुजी प्रवेश कर गए और उनके प्रश्न के उत्तर में उन्हें उनकी चर्चा का विषय बताया गया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि लालुदायी के कुकर्म ने उसे गलत बात कहने पर मजबूर किया है। वह हमेशा से ही इस तरह की अक्षमता से ग्रस्त रहा है।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था, और जब वे बड़े हुए, तो वे सभी ज्ञान में पारंगत हो गए और विश्व प्रसिद्ध शिक्षक बन गए, जिनके पास शिक्षा देने के लिए पाँच सौ युवा ब्राह्मण थे।

हमारी कहानी के समय, युवा ब्राह्मणों में से एक ऐसा था जिसके मन में हमेशा मूर्खतापूर्ण विचार रहते थे और वह हमेशा गलत बातें बोलता था; वह अन्य ब्राह्मणों की तरह शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था, लेकिन अपने इस दुराचार के कारण शास्त्रों में पारंगत नहीं हो सका। वह बोधिसत्व का समर्पित सेवक था और उनकी सेवा एक दास की तरह करता था।

एक दिन रात के भोजन के बाद बोधिसत्व अपने पलंग पर लेट गए और उस युवक ब्राह्मण ने उनके हाथ, पैर और पीठ धोकर इत्र लगाया। जब युवक जाने लगा, तो बोधिसत्व ने उससे कहा, "जाने से पहले मेरे पलंग के पैर उठा दो।" युवक ब्राह्मण ने पलंग के एक तरफ के पैर तो उठा लिए, लेकिन दूसरी तरफ उठाने के लिए उसे कुछ नहीं मिला। इसलिए उसने अपने पैर का सहारा लेकर रात गुजारी। सुबह जब बोधिसत्व उठे और युवक ब्राह्मण को देखा, तो उन्होंने पूछा कि वह यहाँ क्यों बैठा है। युवक ने कहा, "गुरुजी, मुझे पलंग का सहारा नहीं मिला; इसलिए मैंने अपना पैर नीचे रखकर पलंग को सहारा दिया है।"

इन शब्दों से प्रभावित होकर बोधिसत्व ने सोचा, “कितनी भक्ति है! और यह तो मेरे सबसे मंदबुद्धि शिष्य से आ रही है। मैं इसे ज्ञान कैसे दे सकता हूँ?” तभी उन्हें विचार आया कि सबसे अच्छा तरीका यह है कि जब वह युवा ब्राह्मण लकड़ी और पत्ते इकट्ठा करके लौटे, तो उससे उस दिन देखी या की गई किसी बात के बारे में पूछा जाए; और फिर पूछा जाए कि वह कैसी थी। “क्योंकि,” गुरु ने सोचा, “इससे वह तुलना करना और तर्क देना सीखेगा, और उसके द्वारा तुलना और तर्क करने का निरंतर अभ्यास मुझे उसे ज्ञान देने में सक्षम बनाएगा।”

इसलिए उन्होंने उस युवक को बुलवाया और उससे कहा कि जब भी वह लकड़ियाँ और पत्ते इकट्ठा करके लौटे, तो उसे बताना कि उसने क्या देखा, क्या खाया या क्या पिया। युवक ने वादा किया कि वह ऐसा ही करेगा। एक दिन जब वह अन्य शिष्यों के साथ जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठा कर रहा था, तो उसने एक साँप देखा और कहा, "गुरुजी, मैंने एक साँप देखा।" "वह कैसा दिखता था?" "ओह, हल के डंडे जैसा।" "यह तो बहुत अच्छी तुलना है। साँप हल के डंडों जैसे होते हैं," बोधिसत्व ने कहा, और उन्हें उम्मीद जगी कि शायद वे अपने शिष्य को समझाने में सफल हो जाएँगे।

एक दिन उस युवा ब्राह्मण ने जंगल में एक हाथी देखा और अपने गुरु से पूछा, “हाथी कैसा दिखता है?” “हल के डंडे जैसा।” उसके गुरु ने कुछ नहीं कहा, क्योंकि उन्हें लगा कि हाथी की सूंड और दांत हल के डंडे से मिलते-जुलते हैं, शायद अपने शिष्य की नासमझी के कारण उसने सामान्य रूप से ऐसा कहा हो (हालाँकि वह विशेष रूप से सूंड के बारे में सोच रहा था), क्योंकि वह सटीक विवरण देने में असमर्थ था। तीसरे दिन उसे गन्ना खाने का निमंत्रण मिला और उसने अपने गुरु से पूछा, “गन्ना कैसा दिखता है?” “हल के डंडे जैसा।” “यह तुलना ठीक नहीं है,” उनके गुरु ने सोचा, लेकिन कुछ नहीं कहा। एक और दिन, विद्यार्थियों को फिर से दही और दूध के साथ गुड़ खाने के लिए आमंत्रित किया गया, और इसकी भी उन्होंने ठीक से रिपोर्ट दी। “और दही और दूध कैसे दिखते हैं?” “ओह, हल के डंडे जैसे।” तब गुरु ने मन ही मन सोचा, “यह युवक सांप को हल के डंडे जैसा कहने में बिल्कुल सही था, और हाथी और गन्ने की समानता बताने में भी लगभग सही था, हालांकि पूरी तरह सटीक नहीं। लेकिन दूध और दही (जो हमेशा सफेद रंग के होते हैं) जिस भी बर्तन में रखे जाते हैं, उसका आकार ले लेते हैं; और यहाँ तो वह तुलना में पूरी तरह से चूक गया। यह मूर्ख कभी नहीं सीखेगा।” ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

सार्वभौमिक अनुप्रयोग के लिए वह
सीमित महत्व वाले शब्द का प्रयोग करता है।
हल का डंडा और दही, दोनों ही उसके लिए अपरिचित थे।
मूर्ख व्यक्ति का दावा है कि दोनों चीजें एक ही हैं।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "ललुदायी उन दिनों का मंदबुद्धि था, और मैं विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त शिक्षक हूँ।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अम्बा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-124-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 124
अम्बा-जातक

"लगे रहो, मेरे भाई।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें श्रावस्ती शहर के एक प्रतिष्ठित परिवार के एक अच्छे ब्राह्मण का वर्णन है, जिसने सत्य को अपना हृदय समर्पित कर दिया और भिक्षु संघ में शामिल होकर सभी कर्तव्यों का पालन करने लगा। वह

गुरुओं की सेवा में निर्मल था; भोजन और पेय के मामले में सावधान था; मठ, स्नानागार आदि के कर्तव्यों का पालन करने में उत्साही था; चौदह प्रमुख और अस्सी लघु नियमों का पालन करने में पूर्ण पाबंद था; वह मठ, कोठरियों, परिसर और मठ तक जाने वाले मार्ग की सफाई करता था और प्यासे लोगों को पानी पिलाता था। उसकी इस महान उदारता के कारण लोग प्रतिदिन भिक्षुओं को पाँच सौ भोजन देते थे; और इस प्रकार मठ को बहुत लाभ और सम्मान प्राप्त हुआ, अनेकों लोग उसके गुणों से समृद्ध हुए। एक दिन सत्य के हॉल में भिक्षु इस बात पर चर्चा करने लगे कि उस भिक्षु की उदारता ने उन्हें कितना लाभ और सम्मान दिलाया है और अनेकों के जीवन को आनंद से भर दिया है। हॉल में प्रवेश करते हुए गुरु ने पूछा और उन्हें बताया गया कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस भिक्षु ने अपने कर्तव्यों का नियमित रूप से पालन किया है। बीते दिनों में फल इकट्ठा करने निकले पाँच सौ संन्यासी उनकी उदारता से प्राप्त फलों से अपना भरण-पोषण करते थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तर भारत में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने संसार त्याग दिया और पर्वतों की तलहटी में पाँच सौ संन्यासियों के समूह का नेतृत्व करते हुए रहने लगे। उन दिनों हिमालयी क्षेत्र में भीषण सूखा पड़ा और हर जगह पानी सूख गया, जिससे सभी जीव-जंतुओं पर विकराल संकट छा गया। प्यास से पीड़ित जीवों को देखकर, एक संन्यासी ने एक पेड़ काटकर उसे खोखला करके एक कुंड बनाया और उसमें जितना पानी मिल सका, भर दिया। इस प्रकार उन्होंने जीवों को पानी पिलाया। जीव झुंड में आते रहे और इतना पानी पीते रहे कि संन्यासी के पास अपने लिए फल लाने का समय ही नहीं बचा। अपनी भूख की परवाह किए बिना, वे जीवों की प्यास बुझाने में लगे रहे। उन्होंने मन ही मन सोचा, “यह साधु हमारी जरूरतों को पूरा करने में इतना लीन है कि उसके पास फल लाने का समय ही नहीं बचता। वह बहुत भूखा होगा। चलो हम सब मिलकर तय करें कि जो भी यहाँ पानी पीने आए, वह साधु के लिए जितना फल ला सके, उतना लाए।” उन्होंने ऐसा करने का निश्चय किया और हर जानवर जो आता, वह आम, जामुन, ब्रेडफ्रूट या इसी तरह के फल लाता, यहाँ तक कि उनकी भेंट से ढाई सौ गाड़ियाँ भर गईं; और पाँच सौ साधुओं के लिए भोजन की पर्याप्त व्यवस्था हो गई और फिर भी भोजन बच गया। यह देखकर बोधिसत्व ने कहा, “इस प्रकार एक व्यक्ति के परोपकार से इन सभी साधुओं को भोजन मिल सका। सचमुच, हमें सदा धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिए।” ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

मेहनत करते रहो, मेरे भाई; उम्मीद बनाए रखो;
  और न ही अपने साहस को कमजोर और थका हुआ होने दें;
उसे मत भूलो, जिसने अपने दुखद अतीत से अपराध किए हैं।
  उसने अपनी उम्मीदों से कहीं अधिक फल प्राप्त किए।
यही वह शिक्षा थी जो उस महान सत्ता ने संन्यासियों के समूह को दी थी।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह भाई (भिक्षु) उन दिनों के अच्छे तपस्वी थे, और मैं तपस्वियों का गुरु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कटहाका-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-125-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 125
कटहक-जातक

"यदि वह अजनबियों के बीच हो।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक घमंडी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। उसके बारे में परिचयात्मक कहानी वैसी ही है जैसी पहले बताई जा चुकी है (*1)।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व एक धनी कोषाध्यक्ष थे और उनकी पत्नी ने उन्हें एक पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन उनके घर की एक दासी ने एक पुत्र को जन्म दिया और दोनों बच्चे साथ-साथ बड़े हुए। जब धनी व्यक्ति के पुत्र को लिखना सिखाया जा रहा था, तब वह युवा दासी अपने स्वामी की चिट्ठियाँ लेकर जाया करता था और इस प्रकार स्वयं भी लिखना सीख गया। इसके बाद उसने दो-तीन हस्तकलाएँ सीखीं और एक सुंदर और वाक्पटु युवक के रूप में बड़ा हुआ; उसका नाम काताहक था। जब वह स्वामी के निजी सचिव के रूप में कार्यरत था, तब उसने मन ही मन सोचा, "मैं हमेशा इस काम में नहीं रहूँगा। ज़रा सी भी गलती हुई तो मुझे पीटा जाएगा, कैद किया जाएगा, दागा लगाया जाएगा और दासों का भोजन खिलाया जाएगा। सीमा पर एक व्यापारी रहता है, जो मेरे स्वामी का मित्र है। क्यों न मैं अपने स्वामी का पत्र लेकर उसके पास जाऊँ और अपने स्वामी का पुत्र बताकर व्यापारी की पुत्री से विवाह कर लूँ और सुखमय जीवन व्यतीत करूँ?"

इसलिए उसने एक पत्र लिखा, जिसमें उसने कहा, "इस पत्र का वाहक मेरा पुत्र है। हमारे परिवारों का विवाह बंधन में बंधना अच्छा है, और मैं चाहता हूँ कि आप अपनी पुत्री का विवाह मेरे पुत्र से करें और इस नवविवाहित जोड़े को कुछ समय के लिए अपने पास रखें। जैसे ही मुझे समय मिलेगा, मैं आपके पास आऊँगा।" उसने अपने स्वामी की निजी मुहर से पत्र पर मुहर लगाई और एक भरे हुए पर्स, सुंदर वस्त्रों, इत्रों आदि के साथ सीमावर्ती व्यापारी के पास पहुँचा। और व्यापारी के सामने झुककर प्रणाम किया। व्यापारी ने पूछा, "आप कहाँ से आए हैं?" "बनारस से।" "आपके पिता कौन हैं?" "बनारस के कोषाध्यक्ष।" "और आप यहाँ क्यों आए हैं?" काताहाका ने पत्र देते हुए कहा, "यह पत्र आपको बताएगा।" व्यापारी ने पत्र पढ़ा और प्रसन्न होकर कहा, "इससे मुझे नया जीवन मिला है।" और अपनी प्रसन्नता में उसने अपनी पुत्री काताहाका को दे दी और नवविवाहित जोड़े का घर बसा दिया, जो बड़े ठाठ-बाठ से रहने लगे। लेकिन काताहाका को घमंड था और वह अपने लिए लाए गए भोजन और कपड़ों में कमियां निकालता रहता था, उन्हें "देहाती" कहता था। वह कहता था, "इन गुमराह देहातियों को पहनावे का कोई ज्ञान नहीं है। और सुगंध और मालाओं की तो इनमें कोई समझ ही नहीं है।"

अपने दास को याद करते हुए बोधिसत्व ने कहा, "मुझे काताहका दिखाई नहीं दे रहा। वह कहाँ चला गया है? उसे ढूँढ़ो।" और बोधिसत्व के अनुयायी उसकी खोज में निकल पड़े और दूर-दूर तक खोजते रहे जब तक कि वह मिल नहीं गया। फिर वे वापस आए, काताहका ने उन्हें पहचाना नहीं था, और उन्होंने बोधिसत्व को सब कुछ बताया।

यह खबर सुनकर बोधिसत्व ने कहा, "यह ठीक नहीं है। मैं जाकर उसे वापस लाऊंगा।" इसलिए उन्होंने राजा से अनुमति मांगी और अपने साथ बहुत से अनुयायियों को लेकर निकल पड़े। यह खबर हर जगह फैल गई कि कोषाध्यक्ष सीमा की ओर जा रहे हैं। यह खबर सुनकर काताहक अपने आगे के कदम के बारे में सोचने लगे। वे जानते थे कि कोषाध्यक्ष के आने का एकमात्र कारण वे ही थे, और उन्होंने देखा कि अब भाग जाना वापसी की सारी संभावना को नष्ट कर देगा। इसलिए उन्होंने कोषाध्यक्ष से मिलने और पुराने दिनों की तरह उनके प्रति दास की तरह व्यवहार करके उन्हें प्रसन्न करने का निश्चय किया। इस योजना पर अमल करते हुए, उन्होंने हर अवसर पर सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की कि वे माता-पिता के प्रति सम्मान में आई इस दुखद गिरावट का विरोध करते हैं, जिसका कारण बच्चों का अपने माता-पिता की सेवा करने के बजाय उनके साथ बैठकर भोजन करना था। काताहक ने कहा, "जब मेरे माता-पिता भोजन करते हैं, तो मैं थालियां और व्यंजन देता हूं, थूकदान लाता हूं और उनके लिए पंखे लाता हूं। यही मेरा अटल नियम है।" और उसने स्वामी के प्रति दास के कर्तव्यों को विस्तार से समझाया, जैसे कि पानी लाना और स्वामी के विश्राम के समय उनकी सेवा करना। आम लोगों को सामान्य शिक्षा देने के कारण, बोधिसत्व के आगमन से कुछ समय पहले उसने अपने ससुर से कहा, "मैंने सुना है कि मेरे पिता आपसे मिलने आ रहे हैं। आप उनके स्वागत की तैयारी कर लीजिए, मैं रास्ते में जाकर उन्हें उपहार दूंगा।" "ऐसा ही कीजिए, मेरे प्यारे बेटे," उसके ससुर ने कहा।

अतः काताहाका एक भव्य भेंट लेकर अपने कई सेवकों के साथ बोधिसत्व से मिलने गया और बड़े आदर के साथ भेंट उन्हें सौंपी। बोधिसत्व ने कृपापूर्वक भेंट ग्रहण की और नाश्ते के समय अपना विश्राम किया और शौच के लिए चले गए। अपने सेवकों को रोककर काताहाका ने जल लिया और बोधिसत्व के पास पहुँचा। तब वह युवक बोधिसत्व के चरणों में गिर पड़ा और रोते हुए बोला, "हे प्रभु, आप जो भी राशि माँगें, मैं अर्पित करूँगा; परन्तु मुझे निर्भीक मत कीजिए।"

"मेरे हाथों से अपमानित होने का डर मत रखो," बोधिसत्व ने उसके कर्तव्यपरायण आचरण से प्रसन्न होकर कहा और नगर में प्रवेश किया, जहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ। और कटाहका अब भी उसका दास बना रहा।

जब कोषाध्यक्ष आराम से बैठे थे, तभी सीमावर्ती व्यापारी ने कहा, "महाराज, आपका पत्र प्राप्त होते ही मैंने अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र से विधिवत कर दिया।" कोषाध्यक्ष ने 'अपने पुत्र' के बारे में इतने विनम्र ढंग से उचित उत्तर दिया कि व्यापारी अत्यंत प्रसन्न हो गया। परन्तु उस क्षण से बोधिसत्व कटाहका को देखना भी सहन नहीं कर सके।

एक दिन उस महान सत्ता ने व्यापारी की बेटी को बुलवाया और कहा, "मेरी प्यारी, कृपया मेरा हालचाल पूछ लो।" उसने ऐसा ही किया, और उन्होंने उसकी अत्यंत आवश्यक सेवाओं के लिए उसे धन्यवाद देते हुए कहा, "और अब मुझे बताओ, मेरी प्यारी, कि क्या मेरा बेटा सुख-दुख में एक समझदार व्यक्ति है, और क्या तुम उसके साथ अच्छे से रह पाती हो।"

"मेरे पति में सिर्फ एक ही कमी है। वह अपने खाने में भी कमी निकालेंगे।"

"मेरी प्रिय, उसमें हमेशा से कुछ कमियाँ रही हैं; लेकिन मैं तुम्हें बताऊँगा कि उसकी ज़बान कैसे बंद करनी है। मैं तुम्हें एक श्लोक बताऊँगा जिसे तुम्हें ध्यान से याद करना होगा और जब तुम्हारा पति फिर से खाने में कमी निकाले तो उसे सुनाना होगा।" और उसने उसे वे पंक्तियाँ सिखाईं और कुछ ही समय बाद बनारस के लिए निकल पड़ा। कटाहका कुछ दूर तक उसके साथ गया और कोषाध्यक्ष को बहुमूल्य उपहार देकर विदा हुआ। बोधिसत्व के जाने के बाद से कटाहका का अहंकार बढ़ता ही गया। एक दिन उसकी पत्नी ने बढ़िया खाना मंगवाया और चम्मच से उसे खाना परोसने लगी, लेकिन पहले ही निवाले में कटाहका बड़बड़ाने लगा। तब व्यापारी की बेटी को अपना सबक याद आया और उसने निम्नलिखित श्लोक दोहराया:-

अगर वह घर से दूर अजनबियों के बीच बड़ी-बड़ी बातें करता है,
उसका मेहमान वापस आकर सब कुछ बिगाड़ देता है।
आओ, फिर अपना रात का खाना खा लो, कटाहाका (*2)।
"हे भगवान," कटाहाका ने सोचा, "कोषाध्यक्ष ने उसे मेरा नाम बता दिया होगा और उसे सारी बात सुना दी होगी।" और उस दिन से उसने फिर कभी घमंड नहीं किया, बल्कि विनम्रता से वही खाया जो उसके सामने रखा गया था, और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार ही उसका निधन हो गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह अभिमानी भाई (भिक्षु) उन दिनों का काताहका था, और मैं बनारस का कोषाध्यक्ष था।"

फुटनोट:

(1) संख्या (80)

(2) ऐसा प्रतीत होता है कि पत्नी को आयत का अर्थ समझ नहीं आया, बल्कि उसने केवल वही शब्द दोहराए जो उसे सिखाए गए थे।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असिलक्खान-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-126-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 126
असिलक्खना-जातक

"हमारे अनेक भाग्य।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी। यह कहानी कोसल के राजा द्वारा नियुक्त एक ब्राह्मण के बारे में है, जो तलवारों के भाग्य का पता लगाने की क्षमता रखता था। बताया जाता है कि जब राजा के लोहार तलवार बनाते थे, तो यह ब्राह्मण केवल उसे सूंघकर ही बता देता था कि वह भाग्यशाली है या नहीं। उसने यह नियम बना लिया था कि वह केवल उन्हीं लोहारों के काम की प्रशंसा करेगा जो उसे उपहार देते थे, जबकि जो उसे रिश्वत नहीं देते थे, उनके काम को वह अस्वीकार कर देता था।

एक लोहार ने तलवार बनाई और उसमें बारीक पिसी हुई काली मिर्च डालकर उसे राजा के पास ले आया। राजा ने तुरंत तलवार ब्राह्मण को परीक्षण के लिए दे दी। ब्राह्मण ने तलवार को म्यान से बाहर निकाला और उसे सूंघा। काली मिर्च उसकी नाक में चली गई और उसे इतनी ज़ोर से छींक आई कि तलवार की धार से उसकी नाक कट गई।

ब्राह्मण के साथ हुई इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना की खबर भिक्षुओं तक पहुंची और एक दिन वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे, तभी गुरुजी वहां आए। उनकी बातचीत का विषय जानकर उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि इस ब्राह्मण ने तलवार सूंघते हुए अपनी नाक काट ली है। पहले भी उसके साथ ऐसा ही हुआ था।" इतना कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, उनके सेवकों में एक ब्राह्मण था जो तलवारों के शुभ होने या न होने का ज्ञान रखता था। कहानी की शुरुआत में जो बताया गया है, वही हुआ। राजा ने सर्जनों को बुलाया और उसकी नाक पर एक नकली नोक लगवा दी, जिसे बड़ी चालाकी से असली नाक की तरह रंगा गया था। इसके बाद ब्राह्मण ने राजा की सेवा में अपना काम फिर से शुरू कर दिया। ब्रह्मदत्त का कोई पुत्र नहीं था, केवल एक पुत्री और एक भतीजा था, जिनका पालन-पोषण उन्होंने स्वयं किया था। जब वे दोनों बड़े हुए, तो उन्हें एक-दूसरे से प्रेम हो गया। राजा ने अपने सलाहकारों को बुलवाया और उनसे कहा, "मेरा भतीजा सिंहासन का उत्तराधिकारी है। यदि मैं अपनी पुत्री का विवाह उससे करा दूं, तो उसका राज्याभिषेक हो जाएगा।"

लेकिन, पुनर्विचार करने पर उसने निर्णय लिया कि उसका भतीजा तो वैसे भी बेटे के समान था, इसलिए बेहतर यही होगा कि उसकी शादी किसी विदेशी राजकुमारी से कर दी जाए और अपनी बेटी का विवाह किसी दूसरे राजपरिवार के राजकुमार से कर दिया जाए। क्योंकि, उसने सोचा, इस योजना से उसे और अधिक पोते-पोतियाँ मिलेंगी और उसके वंश को दो अलग-अलग राज्यों की बागडोर मिल जाएगी। और, अपने सलाहकारों से परामर्श करने के बाद, उसने उन दोनों को अलग करने का निश्चय किया, और तदनुसार उन्हें एक-दूसरे से अलग रहने के लिए कहा गया। अब वे सोलह वर्ष के थे और एक-दूसरे से बहुत प्यार करते थे, और युवा राजकुमार केवल यही सोचता था कि राजकुमारी को उसके पिता के महल से कैसे ले जाया जाए। अंततः उसे एक बुद्धिमान महिला को बुलाने का विचार आया, जिसे उसने जेब भर धन दे दिया।

"और यह किसलिए है?" उसने कहा।

फिर उसने उसे अपने प्रेम के बारे में बताया और उस बुद्धिमान महिला से विनती की कि वह उसे उसकी प्रिय राजकुमारी के पास पहुंचा दे।

और उसने उसे सफलता का आश्वासन दिया, और कहा कि वह राजा को बताएगी कि उसकी बेटी जादू-टोने के प्रभाव में है, लेकिन चूंकि राक्षस ने उसे इतने लंबे समय तक अपने वश में रखा है कि राजा लापरवाह हो गया है, इसलिए वह एक दिन राजकुमारी को हथियारों से लैस मजबूत सुरक्षाकर्मियों के साथ एक रथ में कब्रिस्तान ले जाएगी, और वहां एक जादुई घेरे में राजकुमारी को एक बिस्तर पर लिटाएगी जिसके नीचे एक मृत व्यक्ति होगा, और एक सौ आठ सुगंधित जल की बौछारों से राक्षस को उसके अंदर से निकाल देगी। "और जब मैं इस बहाने राजकुमारी को कब्रिस्तान लाऊँ," बुद्धिमान स्त्री ने आगे कहा, "ध्यान रखना कि तुम अपने रथ में सशस्त्र अंगरक्षकों के साथ हमसे पहले कब्रिस्तान पहुँच जाओ, और अपने साथ कुछ पिसी हुई काली मिर्च ले जाना। कब्रिस्तान पहुँचकर, तुम अपना रथ प्रवेश द्वार पर छोड़ देना और अपने आदमियों को कब्रिस्तान के उपवन में भेज देना, जबकि तुम स्वयं टीले के ऊपर जाकर मृत होने का नाटक करते हुए लेट जाना। फिर मैं आकर तुम्हारे ऊपर एक पलंग बिछा दूँगी और उस पर राजकुमारी को लिटा दूँगी। फिर वह समय आएगा जब तुम्हें काली मिर्च को तब तक सूंघना होगा जब तक कि तुम्हें दो या तीन बार छींक न आ जाए, और जब तुम्हें छींक आ जाए तो हम राजकुमारी को वहीं छोड़कर भाग जाएँगे। उसके बाद तुम्हें और राजकुमारी को पूरी तरह से स्नान करना होगा और उसे अपने साथ घर ले जाना होगा।" "शानदार," राजकुमार ने कहा; "बहुत ही बढ़िया उपाय।"

तो वह बुद्धिमान स्त्री राजा के पास गई, और राजा को उसका विचार पसंद आया, राजकुमारी को भी जब उसे यह बात समझाई गई। जब वह दिन आया, तो उस बूढ़ी स्त्री ने राजकुमारी को उनका काम बताया, और सड़क पर तैनात पहरेदारों को डराने के लिए कहा, "सुनो। मैं जो पलंग लगाऊँगी, उसके नीचे एक मरा हुआ आदमी होगा; और वह मरा हुआ आदमी छींकेगा। और अच्छी तरह जान लो कि जैसे ही वह छींकेगा, वह पलंग के नीचे से बाहर आएगा और जो भी पहला व्यक्ति उसे मिलेगा, उसे पकड़ लेगा। इसलिए तुम सब तैयार रहो।"

राजकुमार उस स्थान पर पहुँच चुका था और योजना के अनुसार पलंग के नीचे छिप गया था।

फिर बूढ़ी औरत राजकुमारी को उठाकर ले गई और उसे पलंग पर लिटाते हुए फुसफुसाकर कहा कि डरना मत। राजकुमार ने तुरंत मिर्च की गंध सूंघी और छींकने लगा। छींक शुरू ही हुई थी कि वह बुद्धिमान स्त्री राजकुमारी को छोड़कर जोर से चीखते हुए भाग गई, जितनी तेजी से बाकी सब भागे थे। कोई भी अपनी जगह पर नहीं रुका; सबने अपने हथियार फेंक दिए और जान बचाकर भाग गए। तभी राजकुमार आया और राजकुमारी को अपने घर ले गया, जैसा कि पहले से तय था। और बूढ़ी औरत राजा के पास गई और उसे सारी घटना बताई।

“खैर,” राजा ने सोचा, “मैंने तो हमेशा से उसे उसी के लिए तय किया था, और वे चावल की दलिया में घी की तरह एक साथ पले-बढ़े हैं।” इसलिए उसने आवेश में आकर कोई फैसला नहीं लिया, बल्कि समय बीतने के साथ अपने भतीजे को देश का राजा बना दिया और अपनी बेटी को रानी बना दिया।

अब नए राजा ने तलवारों की तीव्रता बताने वाले ब्राह्मण को अपनी सेवा में रखा। एक दिन धूप में खड़े-खड़े ब्राह्मण की नाक का नकली सिरा ढीला होकर गिर गया। और वह शर्म से सिर झुकाए वहीं खड़ा रह गया। राजा हँसते हुए बोला, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। छींक आना कुछ लोगों के लिए अच्छा होता है, तो कुछ के लिए बुरा। एक छींक से तुम्हारी नाक चली गई; जबकि मुझे अपनी गद्दी और रानी दोनों के लिए छींक का शुक्रगुजार होना पड़ेगा।" ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक कहा:-

हमारी अनेक नियतियाँ इस नैतिक प्रदर्शन को दर्शाती हैं।
जो चीज मुझे लाभ पहुंचाती है, वह शायद आपको कष्ट पहुंचाए।
राजा ने ऐसा कहा, और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन बिताने के बाद, वह अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

इस प्रकार गुरु ने यह शिक्षा दी कि संसार का यह मानना गलत है कि हर स्थिति में चीजें निश्चित रूप से अच्छी या बुरी होती हैं। अंत में, उन्होंने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "वही व्यक्ति जो अब तलवारों के भाग्य का वर्णन करता है, उन दिनों भी यही कौशल रखता था; और मैं स्वयं वह राजकुमार था जिसने अपने चाचा का राज्य विरासत में प्राप्त किया था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कलन्दुक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-127-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 127
कलांडुक-जातक

"तुम घमंड करते हो।" - यह कहानी गुरु ने एक बार जेतवन मठ में एक घमंडी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। (इस मामले में परिचयात्मक कहानी और अतीत की कहानी ऊपर वर्णित काताहाका की कहानियों के समान हैं (*1)।)

इस मामले में कलांदुका बनारस के कोषाध्यक्ष के दास का नाम था। जब वह भाग गया और सीमावर्ती व्यापारी की बेटी के साथ विलासितापूर्ण जीवन जी रहा था, तब कोषाध्यक्ष को उसकी कमी खल रही थी और वह उसका पता नहीं लगा पा रहा था। इसलिए उसने एक युवा पालतू तोते को भगोड़े की तलाश में भेजा। तोता कलांदुका की खोज में उड़ गया और दूर-दूर तक उसकी तलाश करता रहा, अंततः वह उस कस्बे में आ पहुँचा जहाँ कलांदुका रहता था। ठीक उसी समय कलांदुका अपनी पत्नी के साथ नदी में एक नाव में आनंद ले रहा था, जो उत्तम भोजन, फूलों और इत्रों से सुसज्जित थी। उस क्षेत्र के रईस लोग जल भोज में तीखी औषधि मिला हुआ दूध पीते हैं, ताकि जलपान के बाद सर्दी-जुकाम से बच सकें। लेकिन जब कलांदुका ने इस दूध का स्वाद चखा, तो उसने उसे खांसकर थूक दिया; और ऐसा करते हुए उसने व्यापारी की बेटी के सिर पर थूक दिया। ठीक उसी क्षण तोता उड़कर आया और किनारे पर अंजीर के पेड़ की एक शाखा से यह सब देख रहा था। “आओ, आओ, दास कलांदुका,” पक्षी ने पुकारा; “याद रखो कि तुम कौन हो और क्या हो, और इस युवती के सिर पर थूको मत। अपनी औकात जानो, साथी।” इतना कहकर उसने निम्नलिखित छंद कहा:-

आप अपने उच्च वंश, अपनी उच्च उपाधि पर गर्व करते हैं।
झूठी ज़ुबान से। हालाँकि मैं एक पक्षी ही हूँ, मुझे पता है।
सच यही है। भगोड़े, तुम जल्द ही पकड़े जाओगे।
तो फिर दूध का तिरस्कार मत करो, दास कलांदुका।
तोते को पहचानते ही कलांदुका को पकड़े जाने का डर सताने लगा और वह चिल्लाई, "अरे! अच्छे स्वामी, आप कब आए?"

तोते ने सोचा, "यह मित्रता नहीं, बल्कि मेरा गला घोंटने की इच्छा है जो इस दयालुतापूर्ण रुचि को प्रेरित कर रही है।" इसलिए उसने उत्तर दिया कि उसे कलांदुका की सेवाओं की आवश्यकता नहीं है, और वह बनारस के लिए उड़ गया, जहाँ उसने कोषाध्यक्ष को वह सब कुछ बताया जो उसने देखा था।

"वह बदमाश!" कोषाध्यक्ष चिल्लाया और कलांदुका को वापस बनारस ले जाने का आदेश दिया, जहाँ उसे एक बार फिर गुलामों जैसा बर्ताव सहना पड़ा।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "कहानी में यह भाई (भिक्षु) कलांदुका था, और मैं बनारस का कोषाध्यक्ष था।"

फुटनोट:

(1)सं. (125).

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बिसार-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-128-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 128
बिलारा-जातक

“संतत्व कहाँ है?”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक पाखंडी के बारे में सुनाई थी। जब उस भिक्षु के पाखंड की सूचना उन्हें मिली, तो गुरु ने कहा, “यह पहली बार नहीं है जब उसने पाखंड दिखाया है; वह तो पहले समझदार हुआ करता था।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म चूहे के रूप में हुआ, वे बुद्धि में परिपूर्ण थे और एक युवा सूअर के समान विशाल थे।

वह जंगल में रहता था और सैकड़ों अन्य चूहे उसके प्रभुत्व में थे।

एक भटकता हुआ सियार चूहों के इस झुंड को देखकर उन्हें छल से खाने की योजना बनाने लगा। वह उनके घर के पास सूर्य की ओर मुख करके, एक पैर पर खड़ा हो गया, हवा सूंघता हुआ। भोजन की तलाश में निकले बोधिसत्व ने यह देखकर सियार को संत समझा और उसके पास जाकर उसका नाम पूछा।

“मेरा नाम ‘ईश्वरीय’ है,” सियार ने कहा। “तुम एक ही पैर पर क्यों खड़े हो?” “क्योंकि अगर मैं चारों पैरों पर एक साथ खड़ा हो जाऊं, तो धरती मेरा भार सहन नहीं कर पाएगी। इसीलिए मैं एक ही पैर पर खड़ा रहता हूं।” “और तुम अपना मुंह क्यों खुला रखते हो?” “हवा लेने के लिए। मैं हवा पर ही जीवित रहता हूं; यही मेरा एकमात्र भोजन है।” “और तुम सूर्य की ओर मुख क्यों करते हो?” “उसकी पूजा करने के लिए।” “कितनी पवित्रता!” बोधिसत्व ने सोचा, और तब से उन्होंने अन्य चूहों के साथ सुबह-शाम उस संत सियार को प्रणाम करने का नियम बना लिया। और जब चूहे जाने लगते, तो सियार उनमें से आखिरी चूहे को पकड़कर खा जाता, अपने होंठ पोंछता और ऐसे देखता जैसे कुछ हुआ ही न हो। इसके परिणामस्वरूप चूहों की संख्या धीरे-धीरे कम होती गई, यहां तक कि उन्होंने अपनी कतारों में खालीपन देखा, और यह जानकर कि ऐसा क्यों हो रहा है, उन्होंने बोधिसत्व से कारण पूछा। वह कारण नहीं बता सके, लेकिन सियार पर संदेह करते हुए, उन्होंने उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। अगले दिन उसने बाकी चूहों को पहले जाने दिया और खुद सबसे पीछे-पीछे आया। सियार ने बोधिसत्व पर छलांग लगाई, जिसे देखकर बोधिसत्व मुड़कर चिल्लाया, "तो यही है तुम्हारा संतत्व, हे पाखंडी और दुष्ट!" और उसने निम्नलिखित श्लोक दोहराया:-

जहां संतत्व महज एक आवरण है
जिससे भोले-भाले लोगों को धोखा दिया जा सके
और खलनायक के विश्वासघात को उजागर करना,
वहाँ हमें बिल्ली जैसा स्वभाव देखने को मिलता है
ऐसा कहते ही चूहों के सरदार ने सियार के गले पर झपट्टा मारा और जबड़े के ठीक नीचे से उसकी श्वास नली को चीर डाला, जिससे वह मर गया। बाकी चूहे भी दौड़कर आए और सियार के शरीर को 'चटक-चटक-चटक' की आवाज़ के साथ चट कर गए; यानी, उनमें से सबसे आगे वाले ने ऐसा किया, क्योंकि कहते हैं कि अंत में कुछ बचा ही नहीं था। और उसके बाद से चूहे शांति और सुकून से सुख-सुविधाओं से रहने लगे।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने यह कहकर बात को जोड़ा, "यह पाखंडी भाई (भिक्षु) उन दिनों का सियार था, और मैं चूहों का राजा था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अग्गिका-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-129-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 129
अग्गिका-जातक

"यह लालच था।"...यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक अन्य पाखंडी के बारे में सुनाई थी।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व चूहों के राजा थे और जंगल में रहते थे। अचानक जंगल में आग लग गई और एक सियार जो भाग नहीं सका, उसने अपना सिर एक पेड़ से टिका दिया और आग की लपटों को अपने ऊपर से गुजरने दिया। आग ने उसके पूरे शरीर के बाल जला दिए और वह पूरी तरह गंजा हो गया, सिवाय उस जगह के जहाँ उसके सिर का ऊपरी हिस्सा पेड़ से टिका हुआ था, एक गुच्छे के समान। एक दिन एक पथरीले तालाब में पानी पीते हुए, उसकी नज़र पानी में उस गुच्छे के प्रतिबिंब पर पड़ी। उसने सोचा, "आखिरकार मेरे पास बाजार जाने के लिए पैसे आ गए।" जंगल में भटकते हुए जब वह चूहों की गुफा के पास पहुँचा, तो उसने मन ही मन कहा, "मैं इन चूहों को धोखा देकर खा जाऊँगा;" और इसी इरादे से वह ठीक उसी जगह पर खड़ा हो गया, जैसा कि पहले बताई गई कहानी में है।

भोजन की तलाश में निकलते समय, बोधिसत्व ने सियार को देखा और उस जानवर को सद्गुण और अच्छाई से युक्त मानते हुए, उसके पास आए और उसका नाम पूछा।

"भारद्वाज (*1), अग्नि-देव के भक्त।"

आप यहां क्यों आए हैं?

"आपकी और आपके परिवार की रक्षा के लिए।"

"हमारी रक्षा के लिए आप क्या करेंगे?"

मैं उंगलियों पर गिनना जानता हूँ, और सुबह-शाम मैं तुम्हारी गिनती करूँगा, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि जितने लोग सुबह घर से बाहर गए, उतने ही लोग रात को घर लौटे। मैं इसी तरह तुम्हारी रक्षा करूँगा।

"तो फिर यहीं रुकिए, चाचा जी, और हमारी रक्षा कीजिए।"

और इसी प्रकार, जैसे ही चूहे सुबह निकलने लगे, वह उन्हें गिनने लगा, "एक, दो, तीन;" और फिर रात को लौटने पर भी यही करता रहा। और हर बार गिनने के बाद, वह आखिरी चूहे को पकड़कर खा जाता था। सब कुछ पहले बताई गई कहानी की तरह ही हुआ, सिवाय इसके कि यहाँ चूहों के राजा ने मुड़कर सियार से कहा, "हे भारद्वाज, अग्नि-देव के भक्त, यह पवित्रता नहीं, बल्कि लालच है जिसने तुम्हारे मुकुट को उस चोटी से सजाया है।" ऐसा कहकर उसने यह श्लोक कहा:-

यह लालच था, सद्गुण नहीं, जिसने आपको यह प्रतीक चिन्ह दिलाया।
हमारी घटती हुई जनसंख्या का हिसाब-किताब ठीक नहीं बैठ रहा है;
हे अग्नि-भक्त, हम तुमसे तंग आ चुके हैं।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "यह भाई (भिक्षु) उन दिनों का सियार था, और मैं चूहों का राजा था।"

फुटनोट:

(1) भारद्वाज ब्राह्मण पुरोहितों के एक कुल का नाम था, जिन्हें ऋग्वेद का छठा ग्रंथ समर्पित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोसीय-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-130-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 130
कोसिया-जातक (*1).

"तुम बीमार रहो या खाओ।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में श्रावस्ती नगर की एक स्त्री के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि वह एक अच्छे और गुणी ब्राह्मण की दुष्ट पत्नी थी, जो उनका गृहस्थ शिष्य था। वह रातें सुख-सुविधाओं में व्यतीत करती थी; दिन में वह कोई काम नहीं करती थी, बल्कि बीमार होने का बहाना बनाकर बिस्तर पर कराहती रहती थी।

"क्या बात है, मेरी प्रिय?" उसके पति ने कहा।

हवा मुझे परेशान करती है।

"मैं तुम्हारे लिए क्या ले सकता हूं?"

"मिठाई, बढ़िया स्वाद वाले, पौष्टिक भोजन, चावल की दलिया, उबले हुए चावल, तेल, इत्यादि।"

आज्ञाकारी पति उसकी इच्छा के अनुसार काम करता था और उसके लिए दास की तरह परिश्रम करता था। जब तक उसका पति घर में रहता था, वह बिस्तर पर लेटी रहती थी; लेकिन जैसे ही वह दरवाजा बंद होते देखती, वह अपने प्रेमी की बाहों में होती थी।

अंत में ब्राह्मण ने सोचा, "मेरी बेचारी पत्नी की ज़ुकाम में कोई कमी नहीं आई है," और वह इत्र, फूल आदि भेंट लेकर जेतवन मठ में गुरु के पास गया। अपनी श्रद्धा अर्पित करने के बाद वह भगवान बुद्ध के सामने खड़ा हुआ, जिन्होंने उससे पूछा कि वह इतने दिनों से अनुपस्थित क्यों था।

“महाराज,” ब्राह्मण ने कहा, “मुझे बताया गया है कि मेरी पत्नी को वात रोग है, और मैं उसकी हर संभव देखभाल करने में लगा हुआ हूँ। अब वह स्वस्थ और स्वस्थ है, फिर भी वात रोग पहले की तरह ही कष्टदायी है। पत्नी की देखभाल में व्यस्त रहने के कारण ही मुझे यहाँ आने का समय नहीं मिला, महाराज।”

गुरु, जो पत्नी के दुष्ट स्वभाव को जानते थे, बोले, "अरे! ब्राह्मण, बीते समय के बुद्धिमान और भले लोगों ने तुम्हें सिखाया था कि तुम्हारी पत्नी जैसी जिद्दी बीमारी से पीड़ित स्त्री का इलाज कैसे किया जाता है। लेकिन पुनर्जन्म ने तुम्हारी स्मृति को भ्रमित कर दिया है, जिससे तुम भूल गए हो।" इतना कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में जन्मे। तक्षशिला में अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद, वे बनारस में विश्व प्रसिद्ध गुरु बन गए। सभी रियासतों और धनी परिवारों के युवा कुलीन और ब्राह्मण उनके शिष्य बनने के लिए उमड़ पड़ते थे। अब एक ग्रामीण ब्राह्मण, जिसने बोधिसत्व से तीनों वेदों और अठारह विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया था, और जो अपनी जागीर की देखभाल के लिए बनारस में रुका था, प्रतिदिन दो या तीन बार बोधिसत्व के उपदेश सुनने आता था। इस ब्राह्मण की पत्नी दुष्ट और दुष्ट थी। और जैसा ऊपर बताया गया है, वैसा ही हुआ। जब ब्राह्मण ने बताया कि वह अपने गुरु के उपदेश सुनने के लिए क्यों नहीं जा पा रहा है, तो बोधिसत्व, जो जानते थे कि ब्राह्मण की पत्नी केवल बीमारी का बहाना कर रही है, ने मन ही मन सोचा, "मैं उसे वह औषधि बताऊँगा जिससे वह ठीक हो जाएगा।" तब उसने ब्राह्मण से कहा, “मेरे पुत्र, अब उसे उत्तम भोजन मत दो, बल्कि गाय का गोबर इकट्ठा करो और उसमें पाँच प्रकार के फल आदि मिलाओ, और उसे एक नए तांबे के बर्तन में तब तक पकाओ जब तक उसमें धातु की सारी सुगंध न आ जाए। फिर एक रस्सी या डोरी या डंडा लेकर अपनी पत्नी के पास जाओ और उससे साफ-साफ कहो कि या तो वह तुम्हारे द्वारा लाई गई औषधि को निगल ले, या फिर अपने भोजन के लिए काम करे। (और यहाँ तुम्हें कुछ पंक्तियाँ दोहरानी होंगी जो मैं तुम्हें बताऊँगा।) यदि वह औषधि लेने से इनकार करती है, तो उसे रस्सी या डंडे का स्वाद चखाने और उसके बाल पकड़कर उसे घसीटने की धमकी दो, साथ ही उसे मुक्कों से मारो। तुम देखोगे कि मात्र धमकी से ही वह उठकर अपने काम पर लग जाएगी।”

अतः ब्राह्मण चला गया और बोधिसत्व के निर्देशानुसार तैयार किया गया भोजन अपनी पत्नी के लिए ले आया।

"यह दवा किसने लिखी है?" उसने कहा।

"मालिक," उसके पति ने कहा।

"इसे ले जाओ, मैं इसे नहीं लूंगा।"

“तो तुम इसे नहीं मानोगे, है ना?” युवा ब्राह्मण ने रस्सी का सिरा उठाते हुए कहा; “ठीक है, तो या तो तुम इस सुरक्षित इलाज को निगल लो या फिर ईमानदारी से इलाज और भोजन के लिए काम करो।” ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक कहा:-

आप बीमार पड़ सकते हैं या खा सकते हैं; आप क्या चुनेंगे?
क्योंकि तुम दोनों काम एक साथ नहीं कर सकती, मेरी कोसिया।
इससे भयभीत होकर, कोसिया नाम की स्त्री को गुरु के हस्तक्षेप से ही यह अहसास हो गया कि उन्हें धोखा देना असंभव है, और वह उठकर अपने काम में लग गई। गुरु को अपनी दुष्टता का बोध होने से उसे पश्चाताप हुआ और वह पहले की तरह ही अच्छी बन गई।

(कहानी यहीं समाप्त हुई, और ब्राह्मण की पत्नी को यह एहसास हुआ कि सर्वज्ञानी बुद्ध उसे जानते हैं, और वह उनके प्रति इतनी श्रद्धा से भर गई कि उसने फिर कभी पाप नहीं किया।)

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "आज के पति-पत्नी कहानी के पति-पत्नी थे, और मैं गुरु था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 226 भी देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असंपादन-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 131
असंपदाना-जातक

"यदि कोई मित्र हो।"—यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। उस समय भिक्षु सत्य के हॉल में देवदत्त की कृतघ्नता और गुरु की अच्छाई को न पहचानने की उसकी अक्षमता पर चर्चा कर रहे थे, तभी स्वयं गुरु वहाँ आए और पूछने पर उन्हें उनकी चर्चा का विषय बताया गया। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने कृतघ्नता दिखाई है; वह पहले भी ऐसा ही कृतघ्न रहा है।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, मगध के राजगृह नगर में एक राजा राज कर रहे थे। उनके कोषाध्यक्ष बोधिसत्व, जिनकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी, 'करोड़पति' के नाम से प्रसिद्ध थे। बनारस में भी एक अन्य कोषाध्यक्ष रहते थे, जिनकी संपत्ति भी अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। उनका नाम पिलिया था और वे पिलिया के घनिष्ठ मित्र थे। किसी कारणवश बनारस के पिलिया विपत्ति में पड़ गए और अपनी सारी संपत्ति खो बैठे। वे भीख मांगने को विवश हो गए। हताशा में उन्होंने बनारस छोड़ दिया और अपनी पत्नी के साथ पैदल ही राजगृह नगर पहुंचे, ताकि वे उस करोड़पति से मिल सकें, जो उनकी आखिरी उम्मीद थी। करोड़पति ने अपने मित्र का आलिंगन किया और उनका सम्मानपूर्वक स्वागत करते हुए उनसे आने का कारण पूछा। पिलिया ने उत्तर दिया, "मैं व्यथित हो चुका हूं। मैंने सब कुछ खो दिया है और आपसे मदद मांगने आया हूं।"

"पूरे दिल से! इस बात की चिंता मत करो," करोड़पति ने कहा। उसने अपना तिजोरी खुलवाया और पिलिया को चालीस करोड़ (10 मिलियन) रुपये दिए। उसने अपनी सारी संपत्ति, पशुधन समेत, दो बराबर भागों में बाँट दी और पिलिया को अपनी पूरी दौलत का ठीक आधा हिस्सा दे दिया। अपनी संपत्ति लेकर पिलिया बनारस लौट गया और वहीं रहने लगा।

कुछ समय बाद ही करोड़पति पर भी वैसी ही विपत्ति आ पड़ी, और उसने अपना सारा धन खो दिया। संकट की घड़ी में मदद के लिए कहाँ जाए, यह सोचते हुए उसे याद आया कि उसने पिलिया से अपनी आधी संपत्ति साझा की थी, और वह बिना किसी डर के उससे मदद मांग सकता है। इसलिए वह अपनी पत्नी के साथ राजगृह शहर से निकल पड़ा और बनारस आ गया। शहर के प्रवेश द्वार पर उसने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, मेरे साथ सड़कों पर चलना तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। थोड़ी देर यहीं रुको, मैं एक गाड़ी और नौकर भेजकर तुम्हें ठीक से शहर ले आऊँगा।" इतना कहकर उसने अपनी पत्नी को वहाँ छोड़ दिया और अकेले शहर में आगे बढ़ गया, जब तक कि वह पिलिया के घर नहीं पहुँच गया, जहाँ उसने अपना परिचय राजगृह शहर के करोड़पति के रूप में देने को कहा, जो अपने मित्र से मिलने आया है।

"ठीक है, उसे अंदर आने दो," पिलिया ने कहा; लेकिन दूसरे की हालत देखकर वह न तो उसका स्वागत करने के लिए उठा और न ही अभिवादन के शब्दों से उसका अभिवादन किया, बल्कि उसने केवल यही पूछा कि वह यहाँ क्यों आया है।

"तुम्हें देखने के लिए," यह जवाब मिला।

आप कहाँ रुकेंगे?

"अभी तक कहीं नहीं। मैंने अपनी पत्नी को आश्रय में छोड़ दिया और सीधे आपके पास आ गया।"

"यहाँ तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। एक भिक्षा चावल लो, कहीं पकाकर खा लो, और फिर चले जाओ और फिर कभी मुझसे मिलने मत आना।" ऐसा कहकर धनी व्यक्ति ने एक सेवक को आदेश देकर भेजा कि वह अपने अभागे मित्र को एक गुच्छे में से आधा-चौथाई अनाज अपने कपड़े के कोने में बाँधकर ले जाने को दे; और यह तब, जब उसी दिन उसने एक हजार बैलगाड़ियों में उत्तम चावल की पिसाई करवाकर अपने भरे हुए भंडारों में जमा कर रखी थी। जी हाँ, वह धूर्त, जिसने बड़ी सहजता से चार सौ मिलियन ले लिए थे, अब अपने एक समय के सहायक को एक गुच्छे में से आधा-चौथाई अनाज भिक्षा में दे रहा था! तदनुसार, सेवक ने गुच्छे में से अनाज एक टोकरी में नापा और बोधिसत्व के पास लाया, जो मन ही मन दुविधा में थे कि उसे लेना चाहिए या नहीं। और उसने सोचा, "इस कृतघ्न ने मेरी दोस्ती इसलिए तोड़ दी क्योंकि मैं बर्बाद हो चुका हूँ। अब, अगर मैं उसका यह तुच्छ उपहार ठुकरा दूँ, तो मैं भी उसी के बराबर बुरा हो जाऊँगा। क्योंकि जो नीच लोग एक मामूली उपहार का भी तिरस्कार करते हैं, वे मित्रता के मूल सिद्धांत का ही उल्लंघन करते हैं। इसलिए, जहाँ तक हो सके, मुझे उसकी दी हुई अनाज की गठरी स्वीकार करके मित्रता निभानी चाहिए।" अतः उसने अनाज को अपने कपड़े के कोने में बाँधा और अपनी पत्नी के घर की ओर चल पड़ा।

"तुम्हारे पास क्या है, प्यारे?" उसने कहा।

"हमारा मित्र पिलिया हमें इतना अनाज देता है और फिर हमसे अपना पल्ला झाड़ लेता है।"

"अरे, तुमने इसे क्यों लिया? क्या चालीस करोड़ (x10 मिलियन) के बदले यह उचित प्रतिफल है?"

"रो मत, प्रिय पत्नी," बोधिसत्व ने कहा। "मैंने इसे केवल इसलिए लिया क्योंकि मैं मित्रता के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करना चाहता था। ये आँसू क्यों?" इतना कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

यदि कोई मित्र कंजूस की भूमिका निभाता है,
एक मूर्ख के दिल पर गहरा आघात लगता है;
मैं उसके अनाज का दान स्वीकार करूंगा।
और इस वजह से हमारी दोस्ती नहीं टूटेगी।
लेकिन पत्नी लगातार रोती रही।

उसी क्षण, करोड़पति द्वारा पिलिया को सौंपे गए एक खेत के नौकर वहाँ से गुजर रहे थे और अपनी पूर्व प्रेमिका के रोने की आवाज सुनकर पास आए। अपने स्वामी और प्रेमिका को पहचानकर वे उनके चरणों में गिर पड़े और आँसुओं और सिसकती हुई आवाज़ में उनके आने का कारण पूछा। बोधिसत्व ने उन्हें उनकी कहानी सुनाई।

"हिम्मत बनाए रखो," उस आदमी ने प्रसन्नता से कहा; और उन्हें अपने कमरे में ले जाकर, उनके लिए सुगंधित स्नान और भोजन की व्यवस्था की। फिर उसने अन्य दासों को बताया कि उनके पुराने स्वामी और स्वामिनी आ गए हैं, और कुछ दिनों बाद उन्हें एक साथ राजा के महल में ले गया, जहाँ उन्होंने खूब हंगामा किया।

राजा ने पूछा कि मामला क्या है, और उन्होंने उन्हें पूरी कहानी बता दी। तब उन्होंने उन दोनों को बुलवाया और करोड़पति से पूछा कि क्या यह खबर सच है कि उसने पिलिया को चार सौ मिलियन दिए थे।

"महोदय," उसने कहा, "जब संकट की घड़ी में कोई मित्र मुझ पर भरोसा नहीं कर रहा था और मेरी सहायता मांगने आया, तो मैंने उसे न केवल अपने धन का आधा हिस्सा, बल्कि अपने पशुधन और अपनी हर चीज का आधा हिस्सा दे दिया।"

"क्या यह सच है?" राजा ने पिलिया से कहा।

"जी महाराज," उसने कहा।

और जब, बदले में, जिसने पहले आपकी मदद की थी, उसने आप पर भरोसा किया और आपकी पोल खोल दी, तो क्या आपने उसे सम्मान और आतिथ्य दिखाया?

यहां पिलिया चुप थी।

"क्या आपने उसके कपड़े के कोने में आधा-चौथाई अनाज दान के रूप में दिया था?"

फिर भी पिलिया चुप रही।

तब राजा ने अपने मंत्रियों से सलाह ली कि क्या किया जाना चाहिए, और अंत में, पिलिया पर फैसला सुनाते हुए, उन्हें पिलिया के घर जाने और पिलिया की सारी संपत्ति करोड़पति को देने का आदेश दिया।

"नहीं, महाराज," बोधिसत्व ने कहा; "मुझे दूसरे की कोई चीज़ नहीं चाहिए। मुझे उससे अधिक कुछ भी न दिया जाए जो मैंने पहले उसे दिया था।"

तब राजा ने आदेश दिया कि बोधिसत्व को उनकी संपत्ति पुनः प्राप्त करने की अनुमति दी जाए; और बोधिसत्व, अपने साथ कई सेवकों और परिचारकों के एक बड़े समूह के साथ, अपनी पुनः प्राप्त संपत्ति लेकर राजगृह नगर लौट आए, जहाँ उन्होंने अपने मामलों को व्यवस्थित किया, और दान और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन बिताने के बाद, अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चले गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों के कोषाध्यक्ष पिलिया थे, और मैं स्वयं करोड़पति था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पंचगरु-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-132-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 132
पंचगरु-जातक

"बुद्धिमान सलाह"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, बकरियों के बरगद के पेड़ पर मारा की पुत्रियों द्वारा प्रलोभन (*1) से संबंधित सूत्र के बारे में सुनाई थी। गुरु ने सूत्र के शुरुआती शब्दों से उद्धृत किया:-

अपनी पूरी चकाचौंध भरी सुंदरता के साथ वे आगे बढ़ते गए,
लालसा, घृणा और वासना। रुई की तरह
हवा के सामने, गुरु ने उन्हें उड़ाया।
सूत्र का पूर्ण पाठ करने के बाद, भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और इस बात पर चर्चा करने लगे कि मारा की पुत्रियाँ अपने अनेक आकर्षणों के साथ उनके निकट आईं, फिर भी सर्वज्ञानी गुरु को मोहित करने में असफल रहीं। क्योंकि गुरु ने उन्हें देखने के लिए अपनी आँखें तक नहीं खोलीं, वे इतने अद्भुत थे! हॉल में प्रवेश करते हुए, गुरु ने पूछा और उन्हें बताया गया कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "भाइयों, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मैंने इस जीवन में मारा की पुत्रियों की ओर दृष्टि तक नहीं डाली, जबकि मैंने पाप को त्याग दिया है और ज्ञान प्राप्त कर लिया है। पूर्व दिनों में, जब मैं केवल ज्ञान की खोज में था, जब पाप अभी भी मेरे भीतर विद्यमान था, तब मैंने सद्गुणों का उल्लंघन करते हुए कामवासना के कारण दिव्य सौंदर्य को भी दृष्टि न डालने की शक्ति पाई; और उस संयम से मैंने एक राज्य प्राप्त किया।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज्याभिषेक कर रहे थे, बोधिसत्व सौ भाइयों में सबसे छोटे थे, और उनके कारनामों का विस्तृत वर्णन यहाँ उसी प्रकार किया जाएगा जैसा कि ऊपर तक्षशिला-जातक (*2) में वर्णित है। जब लोगों ने बोधिसत्व को राज्य भेंट किया, और जब उन्होंने इसे स्वीकार कर राजा के रूप में राज्याभिषेक किया, तो लोगों ने नगर को देवताओं के नगर की तरह और राजमहल को इंद्र के महल की तरह सजाया। नगर में प्रवेश करते ही बोधिसत्व महल के विशाल हॉल में गए और वहाँ अपने राजत्व के श्वेत छत्र के नीचे अपने रत्नजड़ित सिंहासन पर अपनी दिव्य सुंदरता के साथ विराजमान हुए। उनके चारों ओर उनके मंत्री, ब्राह्मण और सरदार तेजस्वी रूप में खड़े थे, जबकि सोलह हजार नर्तकियाँ, स्वर्ग की अप्सराओं के समान सुंदर, गाती, नाचती और संगीत बजाती रहीं, जिससे महल गर्जना से भरे आकाश के समान ध्वनि से गूंज उठा। अपने राजसी वैभव को निहारते हुए बोधिसत्व ने सोचा कि यदि उन्होंने उन राक्षसी स्त्रीयों के आकर्षण को देखा होता, तो उनका दुखद अंत हो जाता और वे कभी भी अपनी वर्तमान वैभवशाली स्थिति को नहीं देख पाते, जो उन्हें पच्चेक बुद्धों के उपदेशों का पालन करने के कारण प्राप्त हुई थी। और जैसे ही ये विचार उनके हृदय में भर गए, उनकी भावना इन श्लोकों में प्रकट हुई:-

इस संबंध में बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह, अपने संकल्प में दृढ़,
दृढ़ हृदय से अपने मार्ग पर अडिग रहते हुए,
मैंने सायरनों के जीवन और उनके जाल से परहेज किया।
और मैंने अपनी आवश्यकता में ही महान मुक्ति (निर्वाण) प्राप्त की।
इस प्रकार इन श्लोकों से मिलने वाला पाठ समाप्त हुआ। और उस महान सत्ता ने अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन किया, और दान और अन्य अच्छे कार्यों से परिपूर्ण होकर अंत तक अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं उन दिनों का राजकुमार था जो तक्षशिला गया और एक राज्य जीता।"

फुटनोट:

(1) मारा (शैतान), मृत्यु, पुनर्जन्म, रोग, प्रलोभन और भौतिक सुखों का देवता। इसे कामदेव के नाम से भी जाना जाता है। इसका उच्चारण मार होता है। माना जाता है कि मारा सभी लोकों पर शासन करता है, जिनमें नरक, स्वर्ग और परलोक भी शामिल हैं, जहाँ पुनर्जन्म होता है। केवल निर्वाण की परम आनंदमय अवस्था ही वह स्थान है जहाँ मारा का कोई नियंत्रण नहीं होता। बौद्ध धर्म का उद्देश्य सांसारिक मोह-माया को त्यागकर निर्वाण की इस परम अवस्था को प्राप्त करना है।

(2) स्पष्टतः संदर्भ क्रमांक (96) से है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **घटासन-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-133-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 133
घटसन-जातक

"देखो! तुम्हारे गढ़ में!" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी। यह कथा एक भिक्षु के बारे में है जिसे गुरु ने ध्यान के लिए एक विषय दिया था। भिक्षु सीमावर्ती क्षेत्र में जाकर एक गाँव के पास जंगल में रहने लगा। उसने वर्षा ऋतु यहीं बिताने की आशा की थी, लेकिन पहले ही महीने में जब वह गाँव में भिक्षा माँग रहा था, उसकी कुटिया जल गई। छत छिन जाने से दुखी होकर उसने अपने मित्रों को अपनी विपत्ति बताई और उन्होंने तुरंत उसके लिए दूसरी कुटिया बनाने का प्रबंध किया। परन्तु उनके बार-बार मना करने के बावजूद तीन महीने बीत गए और कुटिया का पुनर्निर्माण नहीं हुआ। छत न होने के कारण भिक्षु का ध्यान निर्भय हो गया। यहाँ तक कि सत्य के प्रकाश का प्रकाश भी उसे प्राप्त नहीं हुआ था, जब वर्षा ऋतु समाप्त होने पर वह जेतवन मठ लौट आया और गुरु के समक्ष आदरपूर्वक उपस्थित हुआ। वार्तालाप के दौरान गुरु ने उससे पूछा कि क्या उसका ध्यान सफल रहा। तब उस भिक्षु ने अपने साथ घटी अच्छी और बुरी घटनाओं का सजीव वर्णन किया। गुरु ने कहा, "पुराने समय में, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी अपने लिए अच्छे और बुरे में अंतर कर सकते थे और इसलिए खतरनाक साबित होने से पहले ही उन आवासों को छोड़ देते थे जहाँ वे सुखी दिनों में शरण पाते थे। और यदि पशु-पक्षी इतने विवेकशील थे, तो तुम ज्ञान में उनसे इतने पीछे कैसे रह गए?" ऐसा कहकर, उस भाई के अनुरोध पर, गुरु ने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व पक्षी के रूप में पैदा हुए। जब वे समझदार हुए, तो सौभाग्य से वे पक्षियों के राजा बन गए और अपने प्रजाजनों के साथ एक विशाल वृक्ष पर रहने लगे, जिसकी घनी शाखाएँ एक झील के ऊपर फैली हुई थीं। उन सभी पक्षियों ने शाखाओं पर बैठकर अपना मल नीचे के पानी में गिरा दिया। वह झील नागों के राजा चंद का निवास स्थान थी, जो अपने जल के दूषित होने से क्रोधित हो गए और उन्होंने पक्षियों से बदला लेने और उन्हें जलाकर नष्ट करने का निश्चय किया। एक रात जब सभी पक्षी शाखाओं पर बैठे थे, तो उन्होंने काम शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने झील के पानी को उबाला, फिर धुआँ उत्पन्न किया और अंत में ताड़ के पेड़ जितनी ऊँची लपटें उठाईं।

जल से उठती लपटों को देखकर बोधिसत्व ने पक्षियों से कहा, "जल का उपयोग आग बुझाने के लिए किया जाता है; लेकिन यहाँ तो जल ही जल रहा है। यह हमारे लिए उपयुक्त स्थान नहीं है; हमें कहीं और अपना घर खोजना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

देखो! तुम्हारे गढ़ में शत्रु खड़ा है।
  और आग ने पानी को जला दिया;
इसलिए अपने पेड़ से जल्दी जाओ,
  विश्वास को कांपते हुए मोड़ने दो।

और इस पर बोधिसत्व उन पक्षियों को लेकर उड़ गए जिन्होंने उनकी सलाह मानी थी; लेकिन अवज्ञाकारी पक्षी, जो पीछे रुक गए, वे सभी नष्ट हो गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया (जिसके समापन पर उस भिक्षु ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया) और जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों के वफादार और आज्ञाकारी पक्षी अब मेरे शिष्य बन गए हैं, और मैं स्वयं उस समय पक्षियों का राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **ज्ञानशोधन-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-134-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 134
ज्ञानशोधन-जातक

"सचेत भाव से।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। इसमें उन्होंने बताया कि समकस्सा नगर के द्वार पर धर्म के प्रमुख सारिपुत्र ने गुरु द्वारा संक्षेप में बताई गई एक समस्या का स्पष्टीकरण किया था। इसके बाद उन्होंने अतीत की जो कहानी सुनाई, वह इस प्रकार है।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, (और पहले जैसा ही) बोधिसत्व ने अपने वनवास में प्राण त्यागते हुए कहा, "न तो सजग, न ही अचेतन।" और संन्यासियों ने बोधिसत्व के प्रमुख शिष्य द्वारा गुरु के शब्दों की व्याख्या पर विश्वास नहीं किया। बोधिसत्व प्रकाशमान लोक से वापस आए और आकाश में ही यह श्लोक सुनाया:-

चेतन अवस्था में भी, अचेतन अवस्था में भी,
दु:ख का वास है। इससे बचना ही बेहतर है।
शुद्ध आनंद, हर तरह के भ्रष्टाचार से मुक्त।
लेकिन अंतर्दृष्टि के परमानंद (सम्मोहन) से उत्पन्न।
अपना प्रवचन समाप्त करने के बाद, बोधिसत्व ने अपने शिष्य की प्रशंसा की और ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) लौट गए। तब शेष संन्यासियों ने मुख्य शिष्य की बात पर विश्वास किया।

अपना उपदेश देने के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों सारिपुत्र प्रमुख शिष्य थे, और मैं महा-ब्रह्मा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चंदभ-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-135-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 135
चंदाभा जातक

"जो ऋषि भाव से ध्यान करते हैं।" - यह कहानी भी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें समकस्सा के द्वार पर वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र द्वारा एक समस्या की व्याख्या का वर्णन किया गया था।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ने अपने वनवास में प्राण त्यागते हुए अपने शिष्यों के प्रश्नों का उत्तर इन शब्दों में दिया—"चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश।" इन्हीं शब्दों के साथ उन्होंने प्राण त्याग दिए और प्रकाशमान लोक में प्रवेश कर गए।

जब मुख्य शिष्य ने गुरु के शब्दों का अर्थ समझाया तो उसके साथियों ने उस पर विश्वास नहीं किया। तब बोधिसत्व वापस आए और आकाश में से ही उन्होंने यह श्लोक सुनाया:-

जो सूर्य और चंद्रमा का गहन ध्यान करते हैं,
जीतने के बाद
(जब परमानंद (सम्मोहन) की अवस्था उत्पन्न होती है)
रेडिएंट रियल्म्स में उनका स्थान।
बोधिसत्व की यही शिक्षा थी, और अपने शिष्य की प्रशंसा करने के बाद वे ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) की ओर वापस चले गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "सारिपुत्र उन दिनों के प्रमुख शिष्य थे, और मैं महा-ब्रह्मा हूं।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुवनहंस-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-136-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 136
सुवन्नहंस-जातक

"संतोषी रहो।"--यह कहानी गुरु ने फैट नंदा नाम की एक नन (नन) के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में एक भिक्षुणी ने भिक्षुणियों को लहसुन भेंट किया और अपने सहायक को बुलवाकर आदेश दिया कि यदि वे आएं तो प्रत्येक भिक्षुणी को दो या तीन मुट्ठी लहसुन मिलेगा। इसके बाद भिक्षुणियां लहसुन लेने के लिए उनके घर या खेत में जाने लगीं। एक दिन छुट्टी के दिन घर में लहसुन खत्म हो गया और भिक्षुणी फात नंदा अपने साथ अन्य भिक्षुणियों के साथ घर आईं। जब उन्होंने लहसुन मांगा तो उन्हें बताया गया कि घर में लहसुन नहीं बचा है, सारा खत्म हो गया है और उन्हें खेत से लाना होगा। तो वे खेत गईं और बहुत सारा लहसुन ले आईं। सहायक क्रोधित हो गया और कहने लगा कि ये भिक्षुणियां कितनी लालची हैं! इससे विनम्र भिक्षुणियां नाराज हो गईं और भिक्षुणियों ने जब यह बात दोहराई तो वे भी नाराज हो गए और उन्होंने भगवान बुद्ध को बताया। मोटे नंदा के लालच की निंदा करते हुए गुरु ने कहा, "भाइयों, लालची व्यक्ति अपनी जन्मदात्री माँ के प्रति भी कठोर और निर्दयी होता है; लालची व्यक्ति न तो किसी को परिवर्तित कर सकता है, न ही परिवर्तितों को कृपा में वृद्धि दे सकता है, न ही दान प्राप्त करा सकता है, और न ही दान प्राप्त होने पर उन्हें बचा सकता है; जबकि विनम्र व्यक्ति ये सब कर सकता है।" इस प्रकार गुरु ने नैतिक शिक्षा देते हुए अंत में कहा, "भाइयों, जिस प्रकार मोटे नंदा अब लालची हैं, उसी प्रकार वे अतीत में भी लालची थीं।" और इस पर उन्होंने अतीत की निम्नलिखित कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व ब्राह्मण परिवार में जन्मे और बड़े होकर उनका विवाह उन्हीं के वंश की एक महिला से हुआ, जिनसे उन्हें नंदा, नंदा-वती और सुंदरी-नंदा नाम की तीन बेटियाँ हुईं। बोधिसत्व की मृत्यु हो जाने पर, उनकी बेटियाँ पड़ोसियों और मित्रों के पास रहीं, जबकि उनका पुनर्जन्म एक सुनहरे बत्तख के रूप में हुआ, जिसे अपने पिछले जन्मों की चेतना प्राप्त थी। बड़े होते हुए, पक्षी ने अपने विशाल आकार और सुनहरे पंखों को देखा और उसे याद आया कि वह पहले एक मनुष्य था। यह

जानकर कि उसकी पत्नी और बेटियाँ दूसरों की भिक्षा पर जी रही हैं, बत्तख ने अपने पंखों को पीटे हुए सोने के समान समझा और सोचा कि एक-एक करके उन्हें सुनहरा पंख देकर वह अपनी पत्नी और बेटियों को सुखमय जीवन जीने में सक्षम बना सकता है। इसलिए वह उनके घर की ओर उड़ गया और छत के बीचोंबीच स्थित बीम पर बैठ गया। बोधिसत्व को देखकर, पत्नी और बेटियों ने पूछा कि वह कहाँ से आए हैं; और उसने उन्हें बताया कि वह उनका पिता है, जिसकी मृत्यु हो गई थी और वह एक सुनहरी बत्तख के रूप में जन्म लिया था, और वह उनसे मिलने और मजदूरी करने की उनकी दयनीय स्थिति को समाप्त करने आया है। उसने कहा, "तुम्हें मेरे पंख एक-एक करके मिलेंगे, और उन्हें बेचकर तुम सब आराम से रह पाओगी।" ऐसा कहकर उसने उन्हें अपना एक पंख दिया और चला गया। और समय-समय पर वह उन्हें दूसरा पंख देने के लिए लौटता रहा, और उन पंखों की बिक्री से प्राप्त धन से ये ब्राह्मण स्त्रियाँ समृद्ध और संपन्न हो गईं। लेकिन एक दिन माँ ने अपनी बेटियों से कहा, "मेरे बच्चों, जानवरों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कौन जानता है कि तुम्हारे पिता एक दिन चले जाएँगे और फिर कभी वापस नहीं आएँगे? चलो, अगली बार जब वह आए तो हम समय का सदुपयोग करें और उसके सारे पंख नोच लें।" यह सोचकर कि इससे उसे दुख होगा, बेटियों ने मना कर दिया। लालच में आकर माँ ने एक दिन सुनहरी बत्तख को अपने पास बुलाया, जब वह आया, और फिर उसे दोनों हाथों से पकड़कर उसके सारे पंख नोच लिए। बोधिसत्व के पंखों में यह विशेषता थी कि यदि उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध नोच लिया जाता, तो वे सुनहरे रंग के बजाय सारस के पंखों जैसे हो जाते। अब बेचारा पक्षी, यद्यपि अपने पंख फैलाता, उड़ नहीं पाता था, इसलिए स्त्री ने उसे एक बर्तन में डाल दिया और वहाँ उसे भोजन दिया। समय बीतने पर उसके पंख फिर से उग आए (यद्यपि वे अब सादे सफेद रंग के थे), और वह अपने निवास स्थान पर उड़ गया और फिर कभी वापस नहीं आया।

इस कहानी के अंत में गुरु ने कहा, "इस प्रकार देखो, भिक्षुओं, मोटी नंदा अतीत में भी उतनी ही लालची थी जितनी अब है। और उसके लालच ने तब भी उससे सोना छीन लिया था, ठीक उसी तरह जैसे अब उसके लालच से उससे लहसुन छिन जाएगा। इसके अलावा, ध्यान दो कि उसके लालच ने पूरी नन-साधु को लहसुन से वंचित कर दिया है, और इससे सीख लो कि अपनी इच्छाओं में संयम बरतो और जो कुछ भी तुम्हें मिले, चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो, उसी से संतुष्ट रहो।" ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

संतुष्ट रहो, और अधिक धन की लालसा मत रखो।
उन्होंने हंस को तो पकड़ लिया, लेकिन उसका सोना उनके हाथ नहीं लगा।
ऐसा कहकर गुरु ने गलती करने वाली साध्वी को खूब फटकारा और यह नियम बनाया कि जो भी साध्वी लहसुन खाएगी उसे प्रायश्चित करना होगा। फिर उन्होंने तुलना करते हुए कहा, "फैट नंदा कहानी में ब्राह्मण की पत्नी थी, उसकी तीन बहनें ब्राह्मण की तीन बेटियाँ थीं, और मैं स्वयं सोने की बत्तख हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बब्बू-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-137-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 137
बब्बू जातक

“एक बिल्ली को खाना दो।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में काना की माता के बारे में सुनाई थी। श्रावस्ती नगर में रहने वाली काना की माता एक गृहस्थ थीं, जिन्हें केवल काना की माता के नाम से जाना जाता था। उन्होंने मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त कर लिया था और वे चुनी हुई साध्वियों में से थीं। उनकी पुत्री काना का विवाह उसी जाति के एक व्यक्ति से दूसरे गाँव में हुआ था, और किसी काम के चलते वह अपनी माता से मिलने गई। कुछ दिन बीत गए, और उनके पति ने एक दूत भेजा कि वह वापस आना चाहते हैं। काना ने अपनी माता से पूछा कि क्या उसे जाना चाहिए, और माता ने कहा कि इतने लंबे समय के बाद वह खाली हाथ नहीं लौट सकतीं, और उन्होंने केक बनाना शुरू कर दिया। तभी एक भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए वहाँ से गुजरे, और माता ने उन्हें अपने बनाए हुए केक के पास बैठा दिया। वह चले गए और दूसरे भिक्षु को बताया, जो ठीक समय पर आकर बेटी के लिए बनाया गया दूसरा केक ले आए ताकि वह उसे घर ले जा सके। उसने तीसरे को बताया, और तीसरे ने चौथे को, और इस तरह हर बार एक नया व्यक्ति नया केक लेकर चला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बेटी घर नहीं लौटी, और पति ने उसके पीछे दूसरा और तीसरा दूत भेजा। तीसरे दूत के द्वारा उसने यह संदेश भेजा कि यदि उसकी पत्नी वापस न आए, तो वह दूसरी पत्नी ले आए। और हर संदेश का परिणाम एक ही रहा। इसलिए पति ने दूसरी पत्नी ले ली,

और यह खबर सुनकर उसकी पहली पत्नी रोने लगी। यह सब जानकर गुरुजी सुबह जल्दी उठकर अपने वस्त्र धारण करके भिक्षापात्र लेकर काना की माता के घर गए और अपने लिए निर्धारित आसन पर बैठ गए। फिर उन्होंने पूछा कि बेटी क्यों रो रही है, और जब उन्हें पता चला, तो उन्होंने माता को सांत्वना दी, और उठकर मठ लौट गए।

अब भिक्षुओं को पता चला कि उन चार भिक्षुओं के कारण काना को तीन बार उसके पति के पास वापस जाने से रोका गया था; और एक दिन वे सत्य के हॉल में मिले और इस मामले पर चर्चा करने लगे। गुरु हॉल में आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, और उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह मत सोचो कि उन चार भिक्षुओं ने काना की माँ का भंडार खाकर उसे पहली बार दुख पहुँचाया है; उन्होंने पहले भी ऐसा ही किया था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, बोधिसत्व जन्म से ही पत्थर तराशने वाले थे और बड़े होकर पत्थर तराशने में निपुण हो गए। काशी देश में एक बहुत धनी व्यापारी रहता था, जिसने चालीस करोड़ (10 मिलियन) सोने का धन इकट्ठा कर लिया था। जब उसकी पत्नी की मृत्यु हुई, तो धन के प्रति उसके प्रेम ने उसे चूहा बना दिया और वह उस खजाने के ऊपर रहने लगी। धीरे-धीरे उसका पूरा परिवार, व्यापारी समेत, मर गया। गाँव भी वीरान और उदास हो गया। हमारी कहानी के समय, बोधिसत्व इस वीरान गाँव की जगह पर पत्थर तराश रहे थे और उन्हें आकार दे रहे थे; और चूहा अक्सर भोजन की तलाश में इधर-उधर भागते हुए उन्हें देखता था। अंततः उसे उनसे प्रेम हो गया; और यह सोचकर कि उसकी सारी संपत्ति का रहस्य उसके साथ ही मिट जाएगा, उसने उनके साथ इसका आनंद लेने का विचार किया। तो एक दिन वह अपने मुँह में एक सिक्का लेकर बोधिसत्व के पास आई। यह देखकर उन्होंने उससे प्रेमपूर्वक कहा, "माँ, आप यह सिक्का लेकर यहाँ क्यों आई हैं?" "यह आपके लिए है, और मेरे लिए भी इससे मांस खरीदना है, मेरे पुत्र।" बिना किसी संकोच के, उन्होंने पैसे लिए और उसमें से आधा पैसा मांस खरीदने में खर्च किया, जो उन्होंने चूहे को दिया। चूहा चला गया और उसने जी भरकर मांस खाया। और यह सिलसिला चलता रहा, चूहा प्रतिदिन बोधिसत्व को एक सिक्का देता रहा और बदले में वह उसे मांस देता रहा। लेकिन एक दिन संयोगवश चूहा एक बिल्ली के हाथों पकड़ा गया।

"मुझे मत मारो," चूहे ने कहा।

"क्यों नहीं?" बिल्ली ने कहा। "मुझे बहुत भूख लगी है, और भूख मिटाने के लिए मुझे तुम्हें मारना ही पड़ेगा।"

"पहले मुझे यह बताओ कि तुम्हें हमेशा भूख लगती है या सिर्फ आज ही भूख लगी है।"

"ओह, मुझे हर दिन फिर से भूख लग जाती है।"

"अच्छा, अगर ऐसा है तो मैं तुम्हें हमेशा मांस खाते हुए पाऊंगा; बस मुझे जाने दो।"

"ठीक है, ऐसा करना," बिल्ली ने कहा और चूहे को छोड़ दिया।

इसके परिणामस्वरूप चूहे को बोधिसत्व से प्राप्त मांस को दो भागों में बांटना पड़ा और उसने आधा हिस्सा बिल्ली को दे दिया, जबकि दूसरा हिस्सा उसने खुद रख लिया।

अब संयोगवश, उसी चूहे को एक दिन दूसरी बिल्ली ने पकड़ लिया और उसे उसी शर्तों पर छुड़ाना पड़ा। इस प्रकार, दैनिक भोजन को तीन भागों में बाँट दिया गया। और जब तीसरी बिल्ली ने चूहे को पकड़ा और वैसी ही व्यवस्था करनी पड़ी, तो भोजन को चार भागों में बाँट दिया गया। बाद में चौथी बिल्ली ने उसे पकड़ लिया, और भोजन को पाँच भागों में बाँटना पड़ा, जिससे चूहा, भोजन की कमी के कारण, इतना दुबला हो गया कि वह केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया। अपने मित्र को इतना कमजोर देखकर बोधिसत्व ने कारण पूछा। तब चूहे ने उन्हें अपने साथ घटी सारी घटना बता दी।

बोधिसत्व ने कहा, "तुमने मुझे ये सब पहले क्यों नहीं बताया?" "हिम्मत रखो, मैं तुम्हारी मुसीबतों से बाहर निकालूंगा।" फिर उन्होंने शुद्धतम क्रिस्टल का एक टुकड़ा लिया और उसमें एक खोखला छेद बनाकर चूहे को अंदर डाल दिया। उन्होंने कहा, "अब यहीं रुक जाओ, और जो भी तुम्हारे पास आए उसे बुरी तरह धमकाओ और गाली दो।"

चूहा क्रिस्टल के कक्ष में घुस गया और इंतज़ार करने लगा। तभी एक बिल्ली बाहर आई और अपना मांस माँगने लगी। चूहे ने कहा, "दूर हो जाओ, गंदी बिल्ली! मैं तुम्हें क्यों दूँ? घर जाओ और अपने बच्चों को खाओ!" इन शब्दों से क्रोधित होकर, और चूहे के क्रिस्टल के अंदर होने का ज़रा भी संदेह न करते हुए, बिल्ली चूहे पर झपटी; और उसका हमला इतना ज़ोरदार था कि उसकी छाती की दीवारें टूट गईं

और उसकी आँखें सिर से बाहर निकल आईं। इस प्रकार वह बिल्ली मर गई और उसका मृत शरीर आँखों से ओझल हो गया। और यही हाल बारी-बारी से चारों बिल्लियों का भी हुआ। और उसके बाद से कृतज्ञ चूहा बोधिसत्व को पहले की तरह एक के बजाय दो या तीन सिक्के देता रहा, और धीरे-धीरे उसने उन्हें सारा धन दे दिया। अटूट मित्रता में वे दोनों साथ रहे, जब तक कि उनका जीवन समाप्त नहीं हो गया और वे अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से चले गए।

कहानी के अनुसार, उस अभिमानी ने, बुद्ध के रूप में, यह श्लोक कहा:-

एक बिल्ली को खाना दो, दूसरी बिल्ली प्रकट होती है:
तीसरी और चौथी संतानें भी फलदायी क्रम में सफल होती हैं;
उन चारों को देखो जो क्रिस्टल के कारण मर गए।
अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "ये चार भिक्षु (भाई) उन दिनों की चार बिल्लियाँ थीं, काना की माँ चूहा थी, और मैं पत्थर तराशने वाला था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गोधा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-138-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 138
गोधा-जातक

"जूँके हुए बालों के साथ।"--यह कहानी जेतवन मठ में शेखी बघारने वाले ने एक पाखंडी के बारे में सुनाई थी। घटनाएँ ऊपर बताई गई घटनाओं के समान थीं (*1)।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, बोधिसत्व एक छिपकली के रूप में पैदा हुए; और पास ही सीमा पर स्थित एक गाँव में एक कठोर तपस्वी रहते थे, जिन्होंने पंच ज्ञान प्राप्त कर लिया था और गाँव वाले उनका बहुत सम्मान करते थे। जिस रास्ते पर तपस्वी टहलते थे, उसके अंत में एक चींटी के टीले में बोधिसत्व रहते थे, और दिन में दो-तीन बार वे तपस्वी के पास जाकर धर्म और पवित्रता के वचन सुनते थे। फिर उस साधु का आदर करते हुए बोधिसत्व अपने निवास स्थान पर लौट जाते थे। कुछ समय बाद तपस्वी ने गाँव वालों को विदाई दी और चले गए। उनके स्थान पर एक और तपस्वी, एक कुटिल व्यक्ति, आश्रम में रहने आया। नए तपस्वी की पवित्रता को अपनाकर, बोधिसत्व ने उसके साथ भी पहले तपस्वी जैसा ही व्यवहार किया। एक दिन सूखे मौसम में अचानक आए तूफान ने चींटियों को उनके टीलों पर ला दिया, और उन्हें खाने के लिए निकली छिपकलियों को गांव वालों ने बड़ी संख्या में पकड़ लिया; और उनमें से कुछ को सिरके और चीनी के साथ मिलाकर तपस्वी को खाने के लिए परोसा गया। इतना स्वादिष्ट व्यंजन देखकर वह प्रसन्न हुआ और उसने पूछा कि यह क्या है, और उसे पता चला कि यह छिपकलियों का व्यंजन है। यह सोचकर उसे याद आया कि उसका पड़ोसी एक अद्भुत छिपकली है, और उसने उसे खाने का निश्चय किया। तदनुसार उसने छिपकली पकाने का बर्तन और परोसने के लिए चटनी तैयार की, और अपनी पीली पोशाक के नीचे एक गदा छिपाकर अपनी कुटिया के दरवाजे पर बैठ गया, पूर्ण शांति का भाव लिए बोधिसत्व के आने की प्रतीक्षा करने लगा। शाम को बोधिसत्व आए, और पास आते ही उन्होंने देखा कि तपस्वी पहले जैसा नहीं लग रहा था, बल्कि उसके चेहरे पर एक अशुभ संकेत था। बोधिसत्व ने संन्यासी की कुटिया से आती हवा को सूंघते हुए छिपकली के मांस की गंध महसूस की और तुरंत समझ गए कि छिपकली का स्वाद चखने के कारण संन्यासी उन्हें गदा से मारकर खा जाना चाहता था। इसलिए वे संन्यासी से मिले बिना ही घर लौट गए। बोधिसत्व के न आने पर संन्यासी ने सोचा कि छिपकली को उनकी योजना का भनक लग गई होगी, लेकिन उन्हें आश्चर्य हुआ कि उसे यह कैसे पता चला। छिपकली को भागने न देने का निश्चय करके उन्होंने गदा निकाली और फेंकी, जो छिपकली की पूंछ के सिरे पर जाकर लगी। बोधिसत्व पलक झपकते ही अपनी कुटिया में घुस गए और जिस छेद से वे अंदर आए थे, उससे अलग छेद से अपना सिर बाहर निकालकर चिल्लाए, "दुष्ट पाखंडी, तेरे धार्मिक वस्त्रों ने मुझे तुझ पर विश्वास करने के लिए प्रेरित किया, लेकिन अब मैं तेरा कुटिल स्वभाव जान गया हूँ। तेरे जैसे चोर का संन्यासी के वस्त्रों से क्या लेना-देना है?" इस प्रकार झूठे तपस्वी को फटकारते हुए बोधिसत्व ने यह श्लोक पढ़ा:-

उलझे हुए बालों और त्वचा के आवरण के साथ
 तपस्वी की धार्मिकता का अनुसरण क्यों करें?
बाहर से संत, भीतर से हृदय।
 दुर्गंधयुक्त अशुद्धता से भरा हुआ है (*2)।
इस प्रकार बोधिसत्व ने दुष्ट तपस्वी का पर्दाफाश किया और फिर अपनी दीमक की बस्ती में लौट गए। और दुष्ट तपस्वी वहां से चले गए।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "पाखंडी उस समय का दुष्ट तपस्वी था, सारिपुत्र उससे पहले आश्रम में रहने वाला अच्छा तपस्वी था, और मैं स्वयं छिपकली था।"

फुटनोट:

(1)स्पष्टतः नहीं. (128).

(2)धम्मपद बनाम 394.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उभतोभट्ट-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-139-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 139
उभतोभट्ट-जातक

"उसकी आँखों में अंधापन और उसकी पिटाई।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। हमने सुना है कि सत्य के हॉल में एकत्रित भिक्षुओं ने आपस में कहा कि जिस प्रकार चिता से निकली मशाल, जो दोनों सिरों से झुलसी हुई और बीच में धब्बा लगी हो, न तो जंगल के पेड़ के काम आती है और न ही गाँव के चूल्हे के, उसी प्रकार देवदत्त ने संसार का त्याग करके इस असाधारण आस्था का पालन करके दोहरी कमी और विफलता ही पाई, क्योंकि उन्होंने गृहस्थ जीवन के सुखों को तो खो दिया, लेकिन भिक्षु के रूप में अपने ज्ञान में भी कमी रह गई।

हॉल में प्रवेश करते ही गुरु ने पूछा और उन्हें बताया गया कि भाई आपस में किस बारे में बात कर रहे थे। "जी भाइयों," उन्होंने कहा, "और इसी तरह बीते दिनों में देवदत्त को भी ठीक इसी तरह दो बार असफलता मिली थी।" इतना कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक वृक्ष-देवी के रूप में पैदा हुए। वहाँ एक गाँव था जहाँ उस समय मछुआरे रहते थे। उन्हीं मछुआरों में से एक अपने छोटे बेटे के साथ अपना सामान लेकर अपने साथी मछुआरों द्वारा ज्ञात सबसे उपयुक्त जलक्षेत्र में कांटा डालने गया। तभी एक झाड़ी में उसका कांटा फंस गया और मछुआरा उसे खींच नहीं पाया। "वाह, कितनी बढ़िया मछली है!" उसने सोचा। "मुझे अपने बेटे को घर अपनी पत्नी के पास भेज देना चाहिए और उससे कहना चाहिए कि वह झगड़ा करे और बाकी सबको घर पर ही रखे, ताकि कोई भी मेरे इनाम में हिस्सा न ले सके।" उसने बेटे से कहा कि वह घर जाकर अपनी माँ को बताए कि उसने कितनी बड़ी मछली पकड़ी है और कैसे वह पड़ोसियों का ध्यान आकर्षित करे। फिर, अपनी कांटा टूटने के डर से, उसने अपना कोट उतार दिया और अपना इनाम पाने के लिए पानी में कूद पड़ा। लेकिन जैसे ही वह मछली को टटोल रहा था, वह झाड़ी से टकरा गया और उसकी दोनों आँखें निकल गईं। इसके अलावा, एक लुटेरे ने बैंक से उसके कपड़े चुरा लिए। दर्द से कराहते हुए, अपनी अंधी आँखों पर हाथ रखे, वह कांपते हुए बाहर निकला और अपने कपड़े खोजने की कोशिश करने लगा।

इसी बीच, उसकी पत्नी ने पड़ोसियों को झगड़ा कराने के इरादे से अपने एक कान के पीछे ताड़ का पत्ता लगा लिया और बर्तन की कालिख से अपनी एक आंख काली कर ली। इसी वेश में, एक कुत्ते को सहलाते हुए, वह पड़ोसियों से मिलने निकली। एक औरत ने उससे कहा, "अरे, तुम पागल हो गई हो।" मछुआरे की पत्नी ने जवाब दिया, "बिल्कुल पागल नहीं; तुम बिना वजह अपनी गंदी जुबान से मुझे गालियां दे रही हो। मेरे साथ जमींदार के पास चलो, मैं तुम पर मानहानि का आठ पैसे (*1) का जुर्माना लगवा दूंगी।"

इसलिए वे क्रोधित होकर जमींदार के पास चले गए। लेकिन जब मामले की जांच हुई, तो पता चला कि मछुआरे की पत्नी पर जुर्माना लगाया गया था; और उसे बांधकर पीटा गया ताकि वह जुर्माना अदा करे। अब जब वृक्ष-परी ने देखा कि गांव में पत्नी और जंगल में पति दोनों के साथ क्या दुर्भाग्य हुआ है, तो वह अपने वृक्ष की शाखा पर खड़ा होकर बोला, "अरे मछुआरे, जल में और भूमि पर तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है, और तुम दो बार असफल हुए हो।" ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक कहा:-

उसकी आंखों की रोशनी छीनना और उसकी पिटाई करना स्पष्ट रूप से दर्शाता है
दो बार की विफलता और दो बार का कष्ट।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का मछुआरा था, और मैं वृक्ष-परी हूँ।"

फुटनोट:

(1) यहां पाली शब्द, जैसा कि क्रमांक (137) में है, कहपना है। लेकिन वहां संदर्भ से पता चलता है कि यह एक सोने का सिक्का था; जबकि यहां मछुआरों की गरीबी इस बात का समर्थन करती है कि सिक्का तांबे का था, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है। असल बात यह है कि कहपना शब्द, भारतीय सिक्कों के कुछ अन्य नामों की तरह, मुख्य रूप से किसी भी ढाले गए धातु, चाहे सोना, चांदी या तांबा हो, के वजन को दर्शाता था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काक-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-140-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 140
काका-जातक

"अथक भय में।"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक बुद्धिमान सलाहकार के बारे में सुनाई थी। इन घटनाओं का वर्णन बारहवीं पुस्तक में भद्दसला-जातक (*1) के संदर्भ में किया जाएगा।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व कौवे के रूप में पैदा हुए। एक दिन राजा का पुरोहित शहर से नदी पर गया, वहाँ स्नान किया, इत्र और मालाएँ लगाकर अपने सबसे उत्तम वस्त्र पहने और शहर लौट आया। शहर के द्वार के मेहराब पर दो कौवे बैठे थे; उनमें से एक ने अपने साथी से कहा, "मैं इस ब्राह्मण के सिर को गंदा करना चाहता हूँ।" "अरे, ऐसा मत करो," दूसरे ने कहा; "क्योंकि यह ब्राह्मण एक महान व्यक्ति है, और महान व्यक्ति के क्रोध को आमंत्रित करना बुरा होता है। यदि तुम उसे क्रोधित करोगे, तो वह हमारे पूरे वंश का नाश कर सकता है।" "मुझे करना ही होगा," पहले ने कहा। "ठीक है, तुम ज़रूर पकड़े जाओगे," दूसरे ने कहा और तेज़ी से उड़ गया। जैसे ही ब्राह्मण प्राचीर के नीचे पहुँचा, कौवे ने उस पर ऐसे गंदगी गिराई मानो कोई माला गिरा रहा हो। क्रोधित ब्राह्मण ने तब सभी कौवों के प्रति घृणा उत्पन्न कर ली।

अब संयोग से, एक अनाज भंडार की रखवाली करने वाली दासी ने भंडार के द्वार पर चावल धूप में फैला रखे थे और उसे देख रही थी, तभी उसे नींद आ गई। तभी एक ऊनी बकरी आई और चावल खाने लगी, जब तक कि लड़की की नींद नहीं खुली और उसने उसे भगा दिया। बकरी दो-तीन बार वापस आई, जैसे ही वह सो जाती, और चावल खा जाती। इसलिए जब उसने तीसरी बार उसे भगा दिया, तो उसने सोचा कि बकरी के बार-बार आने से उसका आधा चावल खत्म हो जाएगा और उसे हमेशा के लिए भगाने के लिए कुछ करना होगा ताकि उसे इतना बड़ा नुकसान न हो। इसलिए उसने एक जलती हुई मशाल ली और बैठ गई, हमेशा की तरह सोने का नाटक

किया। जब बकरी चावल खा रही थी, तो वह अचानक उठी और अपनी मशाल से उसकी ऊनी पीठ पर मारा। देखते ही देखते बकरी की ऊनी खाल में आग लग गई और दर्द कम करने के लिए वह हाथी के अस्तबल के पास बने एक घास के शेड में घुस गई और घास में लोटने लगी। इससे शेड में आग लग गई और लपटें अस्तबल तक फैल गईं। जैसे ही इन अस्तबलों में आग लगी, हाथी पीड़ित होने लगे और उनमें से कई बुरी तरह जल गए, जिनका इलाज हाथी चिकित्सकों के लिए भी संभव नहीं था। जब यह बात राजा को पता चली, तो उन्होंने अपने पुजारी से पूछा कि क्या उन्हें हाथियों के इलाज का तरीका पता है। पुजारी ने कहा, "जी महाराज, मुझे पता है," और जब उनसे और स्पष्टीकरण मांगा गया, तो उन्होंने बताया कि उनका नुस्खा कौवों की चर्बी है। तब राजा ने कौवों को मारने और उनकी चर्बी निकालने का आदेश दिया। फिर कौवों का बड़े पैमाने पर वध किया गया, लेकिन उनमें से किसी में भी चर्बी नहीं मिली, और वे तब तक मारते रहे जब तक कि हर जगह मरे हुए कौवों के ढेर नहीं लग गए। और सभी कौवों में बड़ा भय फैल गया।

उन दिनों बोधिसत्व एक विशाल कब्रिस्तान में, अस्सी हज़ार कौवों के झुंड के मुखिया के रूप में निवास करते थे। इनमें से एक कौवे ने उन्हें कौवों पर छाए भय की सूचना दी। बोधिसत्व ने महसूस किया कि इस कार्य को करने वाला उनके सिवा कोई और नहीं है, इसलिए उन्होंने अपने परिवार को इस भय से मुक्त करने का संकल्प लिया। दस सिद्धियों का अध्ययन करते हुए और दयालुता को अपना मार्गदर्शक मानते हुए, वे बिना रुके सीधे राजा के महल तक उड़ गए और खुली खिड़की से अंदर प्रवेश करके राजा के सिंहासन के नीचे उतर गए। तुरंत ही एक सेवक ने पक्षी को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन राजा ने कक्ष में प्रवेश करते ही उसे रोक दिया।

पल भर में संभलकर, उस महान सत्ता ने दयालुता को याद करते हुए राजा के सिंहासन के नीचे से आकर राजा से कहा, “महाराज, एक राजा को यह सिद्धांत याद रखना चाहिए कि राजाओं को अपने राज्य पर शासन करते समय वासना और अन्य बुरी भावनाओं के अनुसार नहीं चलना चाहिए। कोई भी कार्य करने से पहले, पहले पूरी बात की जांच-परख कर उसे जान लेना उचित है, और उसके बाद ही वह कार्य करना चाहिए जो लाभकारी हो। यदि राजा वह कार्य करते हैं जो लाभकारी नहीं है, तो वे हजारों लोगों में घोर भय, यहाँ तक कि मृत्यु का भय भी पैदा कर देते हैं। और कौवों की चर्बी का विधान करते समय, आपके पुजारी ने प्रतिशोध की भावना से झूठ बोला था; क्योंकि कौवों में चर्बी नहीं होती।”

इन शब्दों से राजा का हृदय प्रसन्न हो गया और उन्होंने बोधिसत्व को सोने के सिंहासन पर बैठने और वहाँ पंखों के नीचे उत्तम तेलों से अभिषेक करने तथा सोने के पात्रों में राजा के विशेष भोजन और पेय परोसने का अनुरोध किया। जब बोधिसत्व तृप्त और शांत हो गए, तो राजा ने कहा, "हे ऋषि, आप कहते हैं कि कौवों में वसा नहीं होती। ऐसा क्यों है?"

“इस प्रकार,” बोधिसत्व ने एक ऐसी वाणी से उत्तर दिया जिससे पूरा महल गूंज उठा, और उन्होंने इस श्लोक में सत्य की घोषणा की:-

निरंतर भय में, समस्त मानव जाति को शत्रु मानते हुए,
उनका जीवन बीत चुका है; इसलिए कौवों में चर्बी नहीं बची है।
यह स्पष्टीकरण देने के बाद, बोधिसत्व ने राजा को उपदेश देते हुए कहा, "महाराज, राजाओं को कभी भी पूरी बात की जांच-परख किए बिना कोई कार्य नहीं करना चाहिए।" राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना राज्य बोधिसत्व के चरणों में समर्पित कर दिया, लेकिन बोधिसत्व ने राजा को राज्य वापस सौंप दिया और उन्हें पंच नियमों में स्थापित करते हुए सभी जीवित प्राणियों को हानि से बचाने की विनती की। इन शब्दों से प्रभावित होकर राजा ने सभी जीवित प्राणियों को सुरक्षा प्रदान की, और विशेष रूप से कौवों के प्रति अत्यंत उदार रहे। वे प्रतिदिन उनके लिए छह बोरी चावल पकाते और उसे स्वादिष्ट बनाते थे, और यह कौवों को दिया जाता था। परन्तु बोधिसत्व को वही भोजन दिया जाता था जो केवल वे स्वयं खाते थे।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों आनंद बनारस के राजा थे, और मैं स्वयं कौवों का राजा था।"

फुटनोट:

(1)सं. 465.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गोधा-जातक2**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 141
गोधा-जातक

"बुरी संगति।"--यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में एक गद्दार भिक्षु (भाई) के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक घटना वही है जो महिला-मुख जातक (*1) में वर्णित है।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक इगुआना (बड़ी छिपकली) के रूप में हुआ। बड़े होकर वे नदी किनारे एक बड़े बिल में सैकड़ों अन्य इगुआनों के साथ रहने लगे। बोधिसत्व का एक पुत्र था, जो एक छोटा इगुआना था और एक गिरगिट से उनकी गहरी मित्रता थी। वे गिरगिट के बाल नोचते और उसे गले लगाते थे। जब इस घनिष्ठता की खबर इगुआनों के राजा को मिली, तो उन्होंने अपने पुत्र को बुलवाया और कहा कि ऐसी मित्रता उचित नहीं है, क्योंकि गिरगिट नीच प्राणी होते हैं, और यदि यह घनिष्ठता जारी रही, तो इगुआनों (बड़ी छिपकलियों) के पूरे कबीले पर विपत्ति आ जाएगी। उन्होंने अपने पुत्र से गिरगिट से कोई संबंध न रखने को कहा। लेकिन पुत्र ने अपनी घनिष्ठता जारी रखी। बोधिसत्व ने बार-बार अपने बेटे से बात की, लेकिन जब उनके शब्दों का कोई फायदा नहीं हुआ और उन्होंने गिरगिट से इगुआना (बड़ी छिपकलियों) को होने वाले खतरे को भांप लिया, तो उन्होंने उनके बिल के एक तरफ एक निकास द्वार कटवा दिया, ताकि जरूरत पड़ने पर भागने का एक रास्ता हो सके।

समय बीतने के साथ-साथ, नन्हा इगुआना बहुत बड़ा हो गया, जबकि गिरगिट का आकार बिल्कुल नहीं बढ़ा। जब उस नन्हे विशालकाय (इगुआना) के ये पर्वतीय आलिंगन असहनीय रूप से कष्टदायक हो गए, तो गिरगिट को आभास हुआ कि यदि ये कुछ दिनों तक और जारी रहे तो उसकी मृत्यु हो जाएगी। उसने एक शिकारी के साथ मिलकर इगुआनाओं (बड़ी छिपकलियों) के पूरे कबीले को नष्ट करने का निश्चय किया।

गर्मी के एक दिन, आंधी-तूफान के बाद चींटियाँ बाहर निकल आईं (*2), और इगुआना इधर-उधर दौड़कर उन्हें पकड़कर खाने लगे। तभी जंगल में एक इगुआना पकड़ने वाला फावड़ा और कुत्तों के साथ इगुआना खोदने आया; और गिरगिट ने सोचा कि वह उस शिकारी के रास्ते में कितना बड़ा झंझट खड़ा कर देगा। इसलिए वह उस आदमी के पास गया, और उसके सामने लेटकर पूछा कि वह जंगल में क्यों आया है। जवाब मिला, "इगुआना पकड़ने।" गिरगिट ने कहा, "अच्छा, मुझे पता है कि सैकड़ों इगुआना का बिल कहाँ है; आग और झाड़ियाँ लेकर मेरे पीछे आओ।" और वह शिकारी को उस जगह ले गया जहाँ इगुआना रहते थे। गिरगिट ने कहा, "अब, अपना ईंधन वहाँ डालो और इगुआना को धुएँ से बाहर निकालो। इस बीच अपने कुत्तों को चारों ओर रखो और अपने हाथ में एक बड़ी छड़ी ले लो। फिर जैसे ही इगुआना बाहर निकलें, उन्हें मार गिराओ और मारे गए इगुआना का ढेर बना दो।" ऐसा कहते हुए, धूर्त गिरगिट पास ही एक जगह पर गया, जहाँ वह सिर ऊपर करके लेट गया और मन ही मन कहने लगा, "आज मैं अपने शत्रु की पराजय देखूंगा।"

शिकारी ने इगुआनाओं को धुएं से बाहर निकालने का काम शुरू किया; और अपनी जान के डर से वे अपने बिलों से इधर-उधर भागने लगे। जैसे ही वे बाहर आए, शिकारी ने उनके सिर पर वार किया, और अगर वह चूक गया तो वे उसके कुत्तों का शिकार बन गए। इस तरह इगुआनाओं में भारी नरसंहार हुआ। यह जानकर कि यह गिरगिट का काम है, बोधिसत्व रोते हुए बोले, "दुष्टों से कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग अपने समूह में दुःख लाते हैं। एक दुष्ट गिरगिट ने इन सभी इगुआनाओं की कमजोरी साबित कर दी है।" ऐसा कहकर, वह अपने द्वारा बनाए गए निकास द्वार से भाग निकले और यह श्लोक बोला:-

बुरी संगति कभी अच्छी संगति में तब्दील नहीं होती।
एक इकलौते गिरगिट के साथ दोस्ती के माध्यम से
इगुआना की पूरी प्रजाति का अंत हो गया।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का गिरगिट था; यह गद्दार भाई (भिक्षु) अवज्ञाकारी युवा इगुआना था, बोधिसत्व का पुत्र; और मैं स्वयं इगुआनाओं का राजा हूँ।"

फुटनोट:

(1)सं. (26).

(2) मक्खिका से तात्पर्य उन पंखों से हो सकता है जो चींटियों (या दीमकों) को भारत में वर्षा ऋतु के आरंभ में मिलते हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> सिगला - **जातक2**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-142-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 142
सिगाला-जातक

"तुम्हारी बढ़ती पकड़" - यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा उन्हें जान से मारने की कोशिश का वर्णन था। सत्य के हॉल में भिक्षुओं को इस विषय पर चर्चा करते हुए सुनकर गुरु ने कहा कि देवदत्त ने जैसा अब किया, वैसा ही उसने अतीत में भी किया था, परन्तु अपने दुष्ट इरादे में असफल रहा - और इसका उसे घोर खेद हुआ। ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बेहावे में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व सियार के रूप में पैदा हुए और एक श्मशान वन में सियारों के एक बड़े समूह के साथ रहते थे, जिनके वे राजा थे। उस समय राजगृह नगर में एक उत्सव चल रहा था, जो बहुत ही उमस भरा था और जिसमें सभी लोग जमकर शराब पी रहे थे। कुछ बदमाशों ने खूब सारा खाना-पीना बटोर लिया और अपने सबसे अच्छे कपड़े पहनकर गाने गाते हुए खूब मौज-मस्ती की। आधी रात तक सारा मांस खत्म हो गया, हालांकि शराब अभी भी चल रही थी। तब उनमें से एक ने और मांस मांगा और उसे बताया गया कि मांस नहीं बचा है, तो उसने कहा, "जब तक मैं यहाँ हूँ, खाने की कमी नहीं होती। मैं श्मशान वन जाकर लाशें खाने वाले एक सियार को मारूंगा और कुछ मांस लेकर आऊंगा।" ऐसा कहकर उसने एक गदा उठाई और नाले के रास्ते शहर से बाहर निकल गया, जहाँ वह गदा हाथ में लिए लेट गया और मरने का नाटक करने लगा। तभी, अन्य सियारों के पीछे-पीछे बोधिसत्व आए और उन्होंने नकली शव को देखा। धोखे का संदेह होने पर उन्होंने मामले की छानबीन करने का निश्चय किया। इसलिए वे हवा की दिशा वाली ओर गए और गंध से जान गए कि वह व्यक्ति वास्तव में मरा नहीं है। उसे जाने से पहले उसे मूर्ख साबित करने का निश्चय करके, बोधिसत्व चुपके से पास गए और अपने दांतों से गदा को पकड़कर खींचने लगे। उस दुष्ट ने गदा नहीं छोड़ी: बोधिसत्व के आने का आभास न होने पर, उसने और कसकर पकड़ लिया। इस पर बोधिसत्व एक-दो कदम पीछे हट गए और बोले, "हे मेरे भले मनुष्य, यदि तुम मर चुके होते, तो जब मैं तुम्हारी गदा खींच रहा था, तब तुम उसे और कसकर नहीं पकड़ते, और इस प्रकार तुम स्वयं को धोखा दे देते।" ऐसा कहकर उन्होंने यह श्लोक कहा:-

क्लब पर आपकी मजबूत पकड़ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी।
तुम्हारा छल-कपट—मुझे लगता है तुम कोई लाश नहीं हो।
जब उसे पता चला कि वह पकड़ा गया है, तो वह बदमाश उछलकर खड़ा हो गया और बोधिसत्व पर अपना गदा फेंक दिया, लेकिन उसका निशाना चूक गया। उसने कहा, "दूर हट जा, जानू! इस बार मैं तुम्हें नहीं मार पाया।" बोधिसत्व ने मुड़कर कहा, "हाँ, तुम मुझे नहीं मार पाए, लेकिन निश्चिंत रहो, तुम महान नरक और सोलह छोटे नरकों की यातनाओं से नहीं बचोगे।"

खाली हाथ, वह बदमाश कब्रिस्तान से निकला और एक नाले में नहाने के बाद उसी रास्ते से वापस शहर में चला गया जिससे वह आया था।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उस समय का दुष्ट था, और मैं गीदड़ों का राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विरोचन-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-143-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 143

विरोचना-जातक

"तुम्हारा क्षत-विक्षत शव।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा गयासिसा (*1) में बुद्ध का रूप धारण करने के प्रयासों का वर्णन था। जब उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि उनसे विमुख हो गई और उन्होंने अपना वह मान-सम्मान और लाभ खो दिया जो कभी उनका था, तो उन्होंने व्याकुलता में गुरु से पंचसूत्रों को स्वीकार करने का अनुरोध किया। मना किए जाने पर, उन्होंने भिक्षु संघ में विभाजन कर दिया और बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों के पाँच सौ युवा भिक्षुओं को लेकर गयासिसा चले गए, जो अभी तक धर्ममार्ग और नियम से अनभिज्ञ थे। उनके साथ उन्होंने उसी परिसर में एकत्रित एक अलग भिक्षु संघ के कार्य किए। इन युवा भिक्षुओं के ज्ञान के परिपक्व होने के समय को भलीभांति जानते हुए, गुरु ने दो वरिष्ठ भिक्षुओं को उनके पास भेजा। उन्हें देखकर, देवदत्त ने (जैसा कि वह स्वयं को प्रसन्न करता था) बुद्ध की निपुणता से रात भर उन्हें समझाने का कार्य प्रसन्नतापूर्वक किया। फिर बुद्ध का रूप धारण करके उन्होंने कहा, “हे पूज्य सारिपुत्र, सभा अभी भी जागृत और अचेत है। क्या आप कृपा करके भाइयों को संबोधित करने के लिए कोई धार्मिक प्रवचन दे सकते हैं? परिश्रम से मेरी कमर दुख रही है, और मुझे कुछ देर आराम करना है।” इतना कहकर वे लेट गए। फिर उन दो प्रमुख शिष्यों ने भाइयों को उपदेश दिया, उन्हें पुण्य और मार्ग के बारे में ज्ञान दिया, और अंत में वे सभी को बांस के वन में वापस जाने के लिए राजी कर लिया।

मठ को भिक्षुओं से खाली पाकर, कोकालिका देवदत्त के पास गया और उसे बताया कि कैसे दोनों शिष्यों ने उसके अनुयायियों को तितर-बितर कर दिया और मठ को खाली छोड़ दिया; "और फिर भी तुम यहाँ सो रहे हो," उसने कहा। ऐसा कहते हुए उसने देवदत्त के बाहरी वस्त्र उतार दिए और इतनी निर्दयता से उसकी छाती पर लात मारी मानो वह मिट्टी की दीवार में छत की कील ठोक रहा हो। देवदत्त के मुँह से खून बह निकला, और उसके बाद से वह उस प्रहार के प्रभावों से पीड़ित रहा (*2)।

गुरु ने सारिपुत्र से पूछा, "जब तुम वहाँ पहुँचे, तो देवदत्त क्या कर रहा था?" सारिपुत्र ने उत्तर दिया कि बुद्ध का रूप धारण किए हुए भी उसके साथ कुछ बुरा हुआ था। गुरु ने कहा, "सारिपुत्र, जैसे अभी हो रहा है, वैसे ही पहले भी देवदत्त ने मेरा अनुकरण किया था, जिससे उसे ही हानि हुई।" फिर, वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब वे एक अयालदार सिंह के रूप में हिमालय की स्वर्ण गुफा में रहते थे। एक दिन वे अपनी गुफा से उछलते हुए उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व की ओर देखते हुए शिकार की तलाश में निकले और ज़ोर से दहाड़ते रहे। उन्होंने एक विशाल भैंसा मारकर उसके मांस का उत्तम भाग खाया और फिर एक तालाब में उतरकर निर्मल जल पीकर अपनी गुफा की ओर चल दिए। तभी एक भूखा सियार अचानक सिंह से मिला और भागने में असमर्थ होकर उसके चरणों में गिर पड़ा। जब सिंह ने उससे पूछा कि वह क्या चाहता है, तो सियार ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, मुझे अपना सेवक बना लीजिए।" "ठीक है," सिंह ने कहा; "मेरी सेवा करो और तुम्हें उत्तम मांस मिलेगा।" ऐसा कहकर वे सियार के साथ स्वर्ण गुफा चले गए। तब से सिंह का बचा हुआ मांस सियार को मिलता रहा और वह मोटा हो गया।

एक दिन अपनी मांद में लेटे हुए शेर ने सियार से कहा कि वह पहाड़ की चोटी से घाटियों का निरीक्षण करे और देखे कि क्या वहाँ कोई हाथी, घोड़ा या भैंस है, या कोई अन्य जानवर जिसे सियार पसंद करता है। यदि ऐसा कोई जानवर दिखाई दे, तो सियार को उसे बताना था और आदरपूर्वक कहना था, "हे प्रभु, अपनी शक्ति से हमें प्रसन्न करो।" तब शेर ने वादा किया कि वह उसे मारकर खाएगा और सियार को भी उसका एक हिस्सा देगा। इसलिए सियार पहाड़ों पर चढ़ जाता था और जब भी उसे नीचे अपनी पसंद के जानवर दिखाई देते, वह शेर को बताता और उसके चरणों में गिरकर कहता, "हे प्रभु, अपनी शक्ति से हमें प्रसन्न करो।" इस पर शेर फुर्ती से आगे बढ़ता और उस जानवर को मार डालता, चाहे वह मदमस्त हाथी ही क्यों न हो, और सियार के साथ उसके मांस का उत्तम भाग बाँट देता। भोजन से तृप्त होकर सियार अपनी मांद में लौट जाता और सो जाता।

समय बीतने के साथ-साथ सियार बड़ा होता गया, यहाँ तक कि वह घमंडी हो गया। उसने खुद से पूछा, "क्या मेरे भी चार पैर नहीं हैं? मैं दिन-प्रतिदिन दूसरों की उदारता का लाभ क्यों उठा रहा हूँ? अब से मैं अपने भोजन के लिए हाथियों और अन्य जानवरों को मारूंगा। जानवरों का राजा शेर तो उन्हें केवल 'हे प्रभु, अपनी शक्ति से चमक उठो' के मंत्र के कारण ही मारता है। मैं शेर को 'हे सियार, अपनी शक्ति से चमक उठो' कहने पर मजबूर करूँगा, और फिर मैं अपने लिए एक हाथी मारूंगा।" तदनुसार, वह शेर के पास गया और यह बताते हुए कि वह लंबे समय से शेर द्वारा मारे गए मांस पर ही जीवित रहा है, अपनी इच्छा व्यक्त की कि वह अपने द्वारा मारे गए हाथी को खाना चाहता है। अंत में, उसने शेर से निवेदन किया कि जब शेर पहाड़ पर हाथी की तलाश में जाए, तो उसे, सियार को, स्वर्ण गुफा में शेर के कोने में छिपने दे। जब उसे हाथी मिल गया, तो उसने शेर से कहा कि वह गुफा में आकर उससे कहे, 'हे सियार, अपनी शक्ति से चमक उठो।' उसने शेर से इतनी ईर्ष्या न करने की विनती की। शेर ने कहा, "सियार, हाथियों को केवल शेर ही मार सकते हैं, और दुनिया ने कभी किसी सियार को हाथियों का मुकाबला करते नहीं देखा। यह भ्रम छोड़ दो, और जो मैं मारता हूँ उसे खाते रहो।" लेकिन शेर चाहे

जो कह दे, सियार नहीं माना और अपनी विनती पर अड़ा रहा। अंततः शेर मान गया, और सियार को मांद में आराम करने के लिए कहकर, वह चोटी पर चढ़ गया और वहाँ से उसने एक मदमस्त हाथी को देखा। गुफा के मुँह पर लौटकर उसने कहा, "अपनी पूरी शक्ति से आगे बढ़ो, सियार।" तब सियार फुर्ती से सोने की मांद से बाहर निकला, चारों ओर देखा, और तीन बार जोर से दहाड़ते हुए हाथी पर झपटा, मानो उसकी गर्दन पकड़ने की कोशिश कर रहा हो। लेकिन निशाना चूकने पर वह हाथी के पैरों पर गिर पड़ा। क्रोधित हाथी ने अपना दाहिना पैर उठाया और सियार का सिर कुचल दिया, हड्डियों को चूर-चूर कर दिया। फिर हाथी ने शव को ढेर बनाकर उस पर गोबर फैला दिया और चिंघाड़ते हुए जंगल की ओर दौड़ पड़ा। यह सब देखकर बोधिसत्व ने कहा, "अब अपनी शक्ति से चमकते रहो, सियार," और यह श्लोक कहा:-

तुम्हारा क्षत-विक्षत शव, तुम्हारा मस्तिष्क मिट्टी में मिला हुआ,
आज आपने अपनी शक्ति से किस प्रकार चमक बिखेरी है, यह साबित करें।
बोधिसत्व ने ऐसा कहा और दीर्घायु होकर अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए समय रहते ही उनका देहांत हो गया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "देवदत्त उन दिनों का सियार था, और मैं शेर था।"

फुटनोट:

(1) जहाँ बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ।

(2) विनय वृत्तांत (कुल्लवग्ग 7:4) में लात मारने की घटना का उल्लेख नहीं है, बल्कि केवल इतना कहा गया है कि कोकालिका ने देवदत्त को "जगाया" और दलबदल की खबर सुनकर "देवदत्त के मुँह से गर्म खून बह निकला"। अन्य वृत्तांतों में कहा गया है कि देवदत्त की मृत्यु वहीं हो गई।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> नांगुठ - **जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-144-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 144
नांगुत्था-जातक

"घृणित जटावेद।" - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें उन्होंने आजीविकों, या नग्न तपस्वियों की झूठी तपस्या का वर्णन किया था। परंपरा के अनुसार, जेतवन मठ के पीछे वे झूठी तपस्या करते थे (*1)। कई भिक्षुओं ने उन्हें वहाँ कष्टपूर्वक एड़ियों पर बैठे, चमगादड़ की तरह हवा में झूलते, कांटों पर लेटते, पाँच अग्नियों से स्वयं को झुलसाते आदि झूठी तपस्या करते देखा और भगवान बुद्ध से पूछा कि क्या इससे कोई लाभ होता है? गुरु ने उत्तर दिया, "बिल्कुल नहीं।" "पुराने समय में, बुद्धिमान और भले लोग अपने जन्म-अग्नि को लेकर वन में जाते थे, यह सोचकर कि ऐसी तपस्याओं से उन्हें लाभ होगा; परन्तु अग्नि को अर्पित किए गए सभी बलिदानों और इसी प्रकार की अन्य प्रथाओं से भी जब उन्हें कोई लाभ नहीं मिला, तो उन्होंने तुरंत जन्म-अग्नि को जल से बुझा दिया। ध्यान के एक कार्य से उन्हें ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त हुईं और ब्रह्मलोक (परमलोक) का पद प्राप्त हुआ।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तर देश में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उनके जन्म के दिन उनके माता-पिता ने जन्म-अग्नि प्रज्वलित की।

सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने उससे कहा, "पुत्र, तुम्हारे जन्म के दिन हमने तुम्हारे लिए जन्म अग्नि प्रज्वलित की थी। अब तुम चुनाव करो। यदि तुम गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहते हो, तो तीनों वेदों का अध्ययन करो; परन्तु यदि तुम ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में प्रवेश

करना चाहते हो, तो अपनी अग्नि को वन में ले जाओ और वहाँ उसकी देखभाल करो, ताकि महाब्रह्म की कृपा प्राप्त हो और तुम ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में प्रवेश कर सको।"

अपने माता-पिता को यह कहकर कि पारिवारिक जीवन में उन्हें कोई आकर्षण नहीं है, वे जंगल में चले गए और एक आश्रम में अग्नि की देखभाल करते हुए रहने लगे। एक दिन सीमावर्ती गाँव में उन्हें एक बैल भेंट के रूप में दिया गया। जब वे उसे अपने आश्रम में लाए, तो उनके मन में अग्नि देव को गाय की बलि देने का विचार आया। लेकिन जब उन्हें पता चला कि उनके पास नमक नहीं है, और उन्हें लगा कि अग्नि देव बिना नमक के उनकी बलि नहीं खाएँगे, तो उन्होंने गाँव से नमक लाने के लिए वापस जाने का निश्चय किया। अतः उन्होंने बैल को बाँधा और गाँव की ओर चल पड़े।

जब वह चला गया, तो शिकारियों का एक समूह आया और बैल को देखकर उसे मार डाला और अपने लिए भोजन बनाया। जो उन्होंने नहीं खाया, उसे वे ले गए, केवल पूंछ, खाल और टांगें ही छोड़ गए। लौटकर केवल इन अवशेषों को देखकर ब्राह्मण ने कहा, "जब यह अग्नि देवता अपने लोगों की भी रक्षा नहीं कर सकता, तो वह मेरी रक्षा कैसे करेगा? उसकी सेवा करना व्यर्थ है, न इससे कोई लाभ होता है और न ही कोई लाभ।" इस प्रकार अग्नि की पूजा करने की सारी इच्छा खोकर उसने कहा, "हे अग्नि देवता, यदि आप स्वयं की रक्षा नहीं कर सकते, तो आप मेरी रक्षा कैसे करेंगे? मांस तो चला गया, अब आपको भीतरी अंगों से ही काम चलाना पड़ेगा।" ऐसा कहकर उसने पूंछ और लुटेरों के बचे हुए भाग को आग में फेंक दिया और यह श्लोक बोला:-

दुष्ट जटावेदा (*2), ये लो तुम्हारी पूंछ;
और इतना सब कुछ पाकर खुद को भाग्यशाली समझो!
बढ़िया मांस तो खत्म हो चुका है; आज पूंछ से ही काम चलाना पड़ेगा।
ऐसा कहकर उस महान पुरुष ने जल से आग बुझाई और संन्यासी बनने के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं और ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में अपने पुनर्जन्म को सुनिश्चित किया।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "मैं वह तपस्वी था जिसने उन दिनों अग्नि को बुझाया था।"

फुटनोट:

(1)अत्यधिक तपस्वी तपस्याओं की सूची के लिए मज्झिमा निकया देखें, जिसका प्रारंभिक बौद्ध धर्म ने दृढ़ता से विरोध किया और इसके बजाय मध्य मार्ग को अपनाया।

(2) क्रमांक (35) देखें

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **राधा-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-145-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 145
राधा जातक

"और कितने?"--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें सांसारिक जीवन की पत्नी के प्रति लालसा का वर्णन है। इस प्रारंभिक कहानी की घटनाओं का वर्णन इंद्रिय-जातक (*1) में किया जाएगा।

गुरु ने भिक्षु से कहा, "स्त्री की रक्षा करना असंभव है; कोई रक्षक स्त्री को सही मार्ग पर नहीं रख सकता। तुमने स्वयं अतीत में पाया कि तुम्हारे सारे उपाय व्यर्थ थे; तो अब तुम और अधिक सफलता की आशा कैसे कर सकते हो?"

और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व एक तोते के रूप में पैदा हुए। काशी देश के एक ब्राह्मण ने उन्हें और उनके छोटे भाई को पिता तुल्य माना और उनका पालन-पोषण अपने बच्चों की तरह किया। बोधिसत्व का नाम पोत्थपाद और उनके भाई का नाम राधा था।

ब्राह्मण की पत्नी बहुत ही उद्दंड और दुष्ट स्वभाव की थी। जब वह काम के सिलसिले में घर से निकल रहा था, तो उसने दोनों भाइयों से कहा, "अगर तुम्हारी माँ, मेरी पत्नी, कोई शरारत करने का मन बनाए, तो उसे रोकना।" बोधिसत्व ने कहा, "हम रोकेंगे, पापा, अगर हम रोक सकते हैं; लेकिन अगर नहीं रोक सकते, तो हम चुप रहेंगे।"

इस प्रकार अपनी पत्नी को तोतों के हवाले करके ब्राह्मण अपने काम पर निकल पड़ा। उसके बाद से प्रतिदिन उसकी पत्नी दुराचार करती रही; उसके प्रेमियों का आना-जाना लगा रहा। यह देखकर राधा बोधिसत्व से बोली, “भाई, हमारे पिता ने विदाई के समय यही आदेश दिया था कि पत्नी दुराचार न करे, और अब वह दुराचार के सिवा कुछ नहीं कर रही है। आइए हम उसे रोकें।”

“भाई,” बोधिसत्व ने कहा, “तुम्हारे शब्द कुकर्म के शब्द हैं। तुम किसी स्त्री को अपनी बाहों में उठा लो, फिर भी वह सुरक्षित नहीं रहेगी। इसलिए असंभव को संभव करने का प्रयास मत करो।” और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

आधी रात और कितने लोगों को लेकर आएगी? आपकी योजना
निष्क्रिय है। पत्नी के प्रेम के अलावा और कुछ भी उसे रोक नहीं सकता।
उसमें कामुकता और पत्नी का प्यार बिल्कुल गायब है।
और इन कारणों से बोधिसत्व ने अपने भाई को ब्राह्मण की पत्नी से बात करने की अनुमति नहीं दी, जो अपने पति की अनुपस्थिति में अपनी इच्छानुसार घूमती रही। लौटने पर ब्राह्मण ने पोत्थपाद से अपनी पत्नी के व्यवहार के बारे में पूछा, और बोधिसत्व ने ईमानदारी से सारी घटना का विवरण दिया।

“पिताजी,” उसने कहा, “आप इस दुष्ट स्त्री से और क्या वास्ता रखना चाहेंगे?” और उसने आगे कहा, “पिताजी, अब जब मैंने अपनी माता के दुष्ट स्वभाव का खुलासा कर दिया है, तो हम यहाँ और नहीं रह सकते।” इतना कहकर उसने ब्राह्मण के चरणों में प्रणाम किया और राधा के साथ वन की ओर उड़ गया।

उनका पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने चार सत्यों का उपदेश दिया, जिसके अंत में सांसारिक जीवन में पत्नी की लालसा रखने वाला भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गया।

गुरु ने कहा, "ये पति-पत्नी उस समय के ब्राह्मण और उनकी पत्नी थे; आनंद राधा थे और मैं स्वयं पोत्थपाद था।"

फुटनोट:

(1)सं. 423.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काक-जातक**2
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-146-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 146
काका-जातक

"हमारे गले थक गए हैं।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कई वृद्ध भिक्षुओं को सुनाई थी। जब वे संसार में थे, तब वे श्रावस्ती नगर के धनी और प्रभावशाली अधिकारी थे, और आपस में घनिष्ठ मित्र थे। परंपरा के अनुसार, जब वे अच्छे कार्यों में लगे हुए थे, तब उन्होंने गुरु का उपदेश सुना। वे तुरंत बोले, "हम बूढ़े हो गए हैं; हमारे लिए घर-बार का क्या महत्व है? आइए हम भिक्षु संघ में शामिल हों और बुद्ध की सुंदर शिक्षाओं का अनुसरण करके दुखों का अंत करें।"

अतः उन्होंने अपनी सारी संपत्ति अपने बच्चों और परिवार में बाँट ली, और अपने आँसू बहाते परिवार को छोड़कर, गुरु से उन्हें भाईचारे में शामिल करने का निवेदन करने आए। परन्तु जब उन्हें शामिल कर लिया गया, तो उन्होंने भाईचारे का जीवन नहीं जिया; और अपनी वृद्धावस्था के कारण वे सत्य (*1) को आत्मसात करने में असफल रहे। गृहस्थ जीवन की तरह ही, अब भी भाईचारे में वे एक साथ रहते थे, और मठ के किनारे पर उन्होंने अपने लिए कई झोपड़ियाँ बना ली थीं। यहाँ तक कि जब वे भिक्षा मांगने जाते थे, तब भी वे आम तौर पर अपनी पत्नियों और बच्चों के घर जाते और वहीं भोजन करते थे। विशेष रूप से, इन सभी वृद्ध पुरुषों का भरण-पोषण उनमें से एक की पत्नी की उदारता से होता था, जिसके घर प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्राप्त वस्तुएँ ले जाता और वहीं उसके द्वारा दिए गए चटनी और करी के साथ भोजन करता था। एक बार बीमारी के कारण वह अक्सर बीमार पड़ जाती थी; वृद्ध भाईचारे मठ लौट गए, और एक-दूसरे के गले लगकर अपनी उपकारिणी, चटनी देने वाली की मृत्यु पर विलाप करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। उनके रोने की आवाज़ सुनकर भाई लोग यह जानने के लिए वहाँ पहुँचे कि उन्हें क्या तकलीफ़ हुई है। बूढ़े लोगों ने बताया कि उनकी दयालु उपकारिणी का निधन हो गया है और वे उनके खोने के गम में रो रहे हैं, क्योंकि उन्हें अब उनके जैसी कोई और नहीं मिलेगी। इस अन्यायपूर्ण कृत्य से स्तब्ध होकर, भाई लोगों ने सत्य के हॉल में बूढ़े लोगों के दुःख का कारण जानने के लिए आपस में बातचीत की और जब गुरु हॉल में आए और उन्होंने पूछा कि वे क्या चर्चा कर रहे हैं, तो उन्होंने गुरु को भी बताया। गुरु ने कहा, "अरे, भाइयों, पहले भी इसी स्त्री की मृत्यु पर लोग रोते-बिलखते रहे थे; उस समय वह एक कौआ थी और समुद्र में डूब गई थी, और लोग उसे निकालने के लिए समुद्र का सारा पानी निकालने के लिए कड़ी मेहनत कर रहे थे, तभी उस समय के बुद्धिमान लोगों ने उनकी रक्षा की।"

और इस तरह उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक समुद्री परी थे। एक कौआ अपने साथी के साथ भोजन की तलाश में समुद्र तट पर आया, जहाँ कुछ समय पहले ही कुछ लोग नागों को दूध, चावल, मछली, मांस और मादक पेय आदि का अर्पण कर रहे थे। कौआ और उसका साथी ऊपर चढ़े और अर्पण की सामग्री को जी भरकर खाया और खूब मादक पेय पिया। इस प्रकार वे दोनों बहुत नशे में हो गए। फिर वे समुद्र में मस्ती करना चाहते थे और लहरों पर तैरने की कोशिश कर रहे थे, तभी एक लहर कौए को समुद्र में बहा ले गई और एक मछली आई और उसे निगल गई।

“ओह, मेरी बेचारी पत्नी मर गई!” कौआ फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी चीख सुनकर कौओं का एक झुंड वहाँ आ गया, यह जानने के लिए कि उसे क्या तकलीफ हुई है। जब उसने बताया कि उसकी पत्नी समुद्र में बह गई है, तो वे सब एक स्वर में रोने लगे। अचानक उन्हें ख्याल आया कि वे समुद्र से अधिक शक्तिशाली हैं और उन्हें बस इतना करना है कि उसे खाली करके अपने साथी को बचा लें! इसलिए वे अपनी चोंचों से मुंह भर-भरकर समुद्र का पानी निकालने लगे और जैसे ही उनके गले खारे पानी से जलने लगते, वे आराम करने के लिए सूखी ज़मीन पर आ जाते। वे तब तक मेहनत करते रहे जब तक उनके मुंह और जबड़े सूखकर सूज नहीं गए, उनकी आँखें लाल नहीं हो गईं और वे थकान से चूर होकर गिरने को तैयार हो गए। फिर निराशा में वे एक-दूसरे की ओर मुड़े और कहा कि समुद्र को खाली करने की उनकी मेहनत व्यर्थ है, क्योंकि जैसे ही वे एक जगह से पानी निकालते, और पानी आ जाता और उन्हें फिर से वही सारा काम करना पड़ता। वे समुद्र से पानी निकालने में कभी सफल नहीं होंगे। और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

हमारे गले थक गए हैं, हमारे मुंह में दर्द हो रहा है;
समुद्र हमेशा भरता रहता है।
तब सारे कौवे उसकी चोंच और आँखों की सुंदरता, उसके रंग-रूप, आकृति और मधुर आवाज की प्रशंसा करने लगे, और कहने लगे कि इन्हीं खूबियों के कारण समुद्र ने उसे उनसे चुराने की कोशिश की। लेकिन जब वे ये सब बकवास कर रहे थे, तभी समुद्र की परी ने समुद्र से एक राक्षस प्रकट किया और उन सबको भगा दिया। इस तरह वे बच गए।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "वृद्ध भाई की पत्नी उन दिनों की मुर्गी-कौवा थी, और उसका पति नर कौवा था; अन्य वृद्ध भाई (भिक्षु) शेष कौवे थे, और मैं समुद्री परी था।"

फुटनोट:

(1) बौद्ध धर्म ने वृद्धावस्था के प्रति आदर को वृद्ध नौसिखियों के प्रति हल्के तिरस्कार के साथ जोड़ा, जिन्होंने सांसारिक जीवन के बाद, अपने दिनों और क्षमताओं का छोटा सा हिस्सा एक ऐसे शिक्षण को समर्पित किया, जिसे केवल कठिन चिंतन और उत्साही लगन से ही प्राप्त किया जा सकता था।

पिछला <<<<-----||-147-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 147
पुप्परत्त-जातक

“मैं इसे पीड़ा नहीं मानता।”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो वासना से ग्रस्त था। गुरु द्वारा पूछे जाने पर, उसने अपनी कमजोरी स्वीकार करते हुए बताया कि वह अपने सांसारिक जीवन की पत्नी के लिए तरस रहा था, “हे प्रभु!” उसने कहा, “वह इतनी प्यारी स्त्री है कि मैं उसके बिना नहीं रह सकता।”

“भाई (भिक्षु),” गुरु ने कहा, “वह तुम्हारे लिए हानिकारक है। पुराने समय में उसी के कारण तुम्हें सूली पर चढ़ाया गया था; और अपनी मृत्यु पर उसके लिए विलाप करने के कारण ही तुम नरक में पुनर्जन्म पाए। तो फिर अब तुम उसके लिए क्यों तरस रहे हो?” और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तब बोधिसत्व का जन्म वायु देवता के रूप में हुआ। बनारस में कत्तिका का रात्रि उत्सव चल रहा था; शहर को देवताओं के नगर की तरह सजाया गया था और सभी लोग उत्सव मना रहे थे। एक गरीब आदमी के पास केवल दो मोटे कपड़े थे जिन्हें उसने धोकर और इस्त्री करके सौ नहीं, बल्कि हज़ार सिलवटें बना ली थीं। लेकिन उसकी पत्नी ने कहा, "मेरे पति, मुझे पहनने के लिए एक केसर के रंग का कपड़ा चाहिए, एक बाहर पहनने के लिए और एक अंदर पहनने के लिए, क्योंकि मैं उत्सव में आपके गले में लटकती रहूंगी।"

"हम जैसे गरीब लोगों को कुसुम कैसे मिलेंगे?" उसने कहा। "अपने साफ-सुथरे कपड़े पहनो और मेरे साथ आओ।"

"अगर मैं इन्हें कुसुम के रंग से नहीं रंगवा सकती, तो मैं बिल्कुल नहीं जाऊंगी," उसकी पत्नी ने कहा। "किसी और औरत को अपने साथ त्यौहार पर ले चलो।"

"अब मुझे इस तरह क्यों सता रहे हो? हमें कुसुम कैसे मिलेंगे?"

"जहां चाह होती है, वहां राह होती है," महिला ने पलटकर जवाब दिया। "क्या राजा के संग्रहालयों में कुसुम के फूल नहीं हैं?"

"पत्नी," उसने कहा, "राजा के कक्ष किसी राक्षस से प्रेतवाधित तालाब की तरह हैं। इतने मजबूत पहरेदार के रहते वहाँ प्रवेश करना असंभव है। इस कल्पना को त्याग दो और जो तुम्हारे पास है उसी में संतुष्ट रहो।"

"लेकिन जब रात का अंधेरा होता है," उसने कहा, "तो फिर किसी पुरुष को अपनी मर्जी से कहीं भी जाने से कौन रोक सकता है?"

जब वह अपनी विनती पर अड़ी रही, तो अंततः उसके प्रेम ने उसे झुकने पर मजबूर कर दिया और उसने उसकी इच्छा पूरी करने का वादा किया। अपनी जान जोखिम में डालकर, वह रात में तेज़ी से शहर से निकल गया और बाड़ तोड़कर मंदिर में घुस गया। बाड़ तोड़ने से हुए शोर से पहरेदार जाग गए और चोर को पकड़ने के लिए बाहर आ गए। उन्होंने उसे तुरंत पकड़ लिया और मार-पीट और गालियों के साथ जंजीरों में जकड़ दिया। सुबह उसे राजा के सामने लाया गया, जिसने तुरंत उसे ज़िंदा सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया। उसके हाथ पीछे बंधे हुए उसे घसीटकर शहर से बाहर ले जाया गया और फांसी के ढोल की आवाज़ के बीच उसे फांसी के लिए ले जाया गया, जहाँ उसे ज़िंदा सूली पर चढ़ा दिया गया। उसकी पीड़ा असहनीय थी; और तो और, कौवे उसके सिर पर बैठ गए और अपनी नुकीली चोंचों से उसकी आँखें नोचने लगे। फिर भी, अपने दर्द की परवाह किए बिना, और केवल अपनी पत्नी के बारे में सोचते हुए, वह व्यक्ति मन ही मन बुदबुदाया, "हाय, मैं तुम्हारे साथ केसरिया रंग के वस्त्र पहनकर, तुम्हारी बाहों में अपना हाथ डाले, त्योहार पर जाने को बहुत याद करूंगा।" ऐसा कहते हुए, उसने यह छंद कहा:-

मैं इसे पीड़ा नहीं मानता कि यहाँ सूली पर चढ़ाए जाने के बाद,

कौवों की वजह से मैं दुविधा में हूँ। मेरा गहरा दर्द यही है,
मेरी प्यारी पत्नी छुट्टी नहीं मनाएगी
चमकीले लाल रंग के वस्त्र पहने हुए।
और जब वह अपनी पत्नी के बारे में इस प्रकार बड़बड़ा रहा था, तभी उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में पुनर्जन्म लिया।

अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "ये पति-पत्नी उन दिनों भी पति-पत्नी थे, और मैं वायु की आत्मा थी जिसने उनकी कहानी को प्रकट किया।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> सिगला - **जातक**3
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-148-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 148
सिगाला-जातक

"एक बार धोखा खाने के बाद, दोबारा सावधान रहना चाहिए।" - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में इच्छाओं को वश में करने के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया गया है कि श्रावस्ती शहर के व्यापारियों के लगभग पाँच सौ धनी मित्रों ने गुरु की शिक्षाओं को सुनकर सत्य के प्रति अपना हृदय समर्पित कर दिया और भिक्षु संघ में शामिल होकर वे जेतवन मठ में उस भाग में रहने लगे जिसे अनाथपिंडिका ने सोने के टुकड़ों से सटाकर बनाया था (*1)।

एक रात के मध्य में उन पर कामवासना के विचार हावी हो गए, और अपनी व्याकुलता में वे उन कामवासनाओं को पुनः धारण करने के लिए तत्पर हो उठे जिन्हें उन्होंने त्याग दिया था। उसी क्षण गुरु ने अपने असीम ज्ञान का दीपक ऊँचा उठाया ताकि वे जान सकें कि जेतवन मठ में भिक्षुओं के मन में किस प्रकार की वासना उत्पन्न हुई है, और उनके हृदय को पढ़कर उन्होंने पाया कि उनके भीतर कामवासना और वासना जागृत हो गई है। जैसे एक माँ अपने इकलौते बच्चे की रक्षा करती है, या जैसे एक आँख वाला व्यक्ति अपनी बची हुई एक आँख का ध्यान रखता है, वैसे ही गुरु अपने शिष्यों की रक्षा करते हैं; सुबह हो या शाम, चाहे जिस भी वक्त उनकी वासनाएँ उन पर हावी हों, वे अपने शिष्यों को पराजित नहीं होने देते, बल्कि उसी वक्त उनकी प्रचंड कामवासनाओं को वश में कर लेते हैं। इसी कारण उनके मन में यह विचार आया, "यह ठीक वैसा ही है जैसे चोर किसी सम्राट के शहर में सेंध लगाते हैं; मैं इन भाइयों को सीधे सत्य का ज्ञान दूंगा, ताकि उनकी वासनाओं को वश में करके मैं उन्हें अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) तक पहुंचा सकूं।"

अतः वे अपने सुगंधित कक्ष से बाहर आए और मधुर स्वर में आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु आनंद, जो धर्म के कोषाध्यक्ष थे, का नाम लेकर उन्हें आमंत्रित किया। वरिष्ठ भिक्षु आए और विधिपूर्वक प्रणाम करते हुए गुरु के समक्ष खड़े होकर उनकी इच्छा जानने का प्रयास किया। तब गुरु ने उनसे जेतवन मठ के उस भाग में रहने वाले सभी भिक्षुओं को अपने सुगंधित कक्ष में एकत्रित करने का अनुरोध किया। परंपरा के अनुसार, गुरु का विचार था कि यदि वे केवल उन पाँच सौ भिक्षुओं को बुलाते, तो वे यह निष्कर्ष निकाल लेते कि गुरु उनकी कामुक मनोदशा से अवगत हैं और अपनी उत्तेजना के कारण सत्य को ग्रहण करने से विमुख हो जाते; अतः उन्होंने वहाँ रहने वाले सभी भिक्षुओं को बुलाया। वरिष्ठ भिक्षु ने एक चाबी ली और एक-एक कक्ष में जाकर भिक्षुओं को तब तक आमंत्रित करते रहे जब तक कि सभी सुगंधित कक्ष में एकत्रित नहीं हो गए। तब उन्होंने बुद्ध-आसन को तैयार किया। पृथ्वी पर विराजमान सिनेरु पर्वत की तरह गरिमामय भाव से, गुरु बुद्ध-आसन पर विराजमान हुए, और अपने चारों ओर छह रंगों के प्रकाश की दो-दो मालाओं का प्रकाश फैलाया, जो थाली के आकार, चंदवा के आकार और मीनार के आकार के पिंडों में विभाजित होकर, बिजली की किरणों की तरह आकाश तक पहुँच गया। यह ठीक वैसा ही था जैसे सूर्योदय के समय सागर की गहराई में हलचल मच जाती है।

श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए और आदरपूर्ण हृदय से, ब्रदरन ने प्रवेश किया और उनके चारों ओर अपनी सीटें ग्रहण कीं, मानो उन्हें एक नारंगी पर्दे के भीतर घेर लिया हो। फिर महाब्रह्म के स्वर में गुरु ने कहा, "भाइयों, एक भिक्षु को तीन बुरे विचारों - कामवासना, घृणा और क्रूरता - को अपने मन में नहीं रखना चाहिए। कभी यह मत सोचो कि बुरी इच्छाएँ तुच्छ होती हैं। क्योंकि ऐसी इच्छाएँ शत्रु के

समान होती हैं; और शत्रु कोई तुच्छ चीज़ नहीं है, बल्कि अवसर मिलने पर केवल विनाश ही करता है। ठीक उसी प्रकार, इच्छा चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो, उसे बढ़ने देने मात्र से पूर्ण विनाश हो जाता है। इच्छा भोजन में विष के समान, त्वचा की खुजली के समान, विषैले साँप के समान, इंद्र के वज्र के समान है, जिससे सदा बचना चाहिए, सदा भयभीत रहना चाहिए। जब भी कोई इच्छा उत्पन्न हो, तो उसे हृदय में एक क्षण भी स्थान दिए बिना, विचार और अंतर्दृष्टि से उसी प्रकार निकाल देना चाहिए, जैसे कमल के पत्ते से वर्षा की बूँद तुरंत लुढ़क जाती है। पुराने समय के ज्ञानी लोग एक छोटी सी इच्छा से भी इतनी घृणा करते थे कि उसे बढ़ने से पहले ही कुचल देते थे।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का पुनर्जन्म एक सियार के रूप में हुआ और वे नदी किनारे के जंगल में रहने लगे। गंगा नदी के किनारे एक बूढ़ा हाथी मर गया, और सियार ने उसका शव देखकर खुद को मांस का इतना बड़ा भंडार पाकर बहुत प्रसन्न किया। पहले उसने हाथी की सूंड को काटा, लेकिन वह हल के हैंडल को काटने जैसा था। सियार ने कहा, "यहाँ खाने को कुछ नहीं है," और उसने हाथी के दांत को काटने की कोशिश की। लेकिन वह भी हड्डियों को काटने जैसा था। फिर उसने कान को आजमाया, लेकिन वह भी सूप के किनारे को चबाने जैसा था। फिर उसने हाथी के पेट पर झपट्टा मारा, लेकिन वह भी अनाज की टोकरी जितना सख्त था। पैर भी कुछ बेहतर नहीं थे, वे भी ओखली जैसे थे। फिर उसने पूंछ को आजमाया, लेकिन वह भी मूसल जैसी थी। सियार ने कहा, "यह भी ठीक नहीं है।" और जब उसे कहीं और कोई स्वादिष्ट हिस्सा नहीं मिला, तो उसने हाथी का पिछला हिस्सा आजमाया और वह भी नरम केक खाने जैसा था। "आखिरकार," उसने कहा, "मुझे सही जगह मिल गई," और वह खाते हुए सीधे हाथी के पेट में घुस गया, जहाँ उसने गुर्दे, हृदय और बाकी सब कुछ खाकर अपनी प्यास बुझाई और खून से अपनी प्यास बुझाई। रात होने पर वह अंदर लेट गया। लेटे-लेटे उसके मन में यह विचार आया, "यह शव मेरे लिए मांस और घर दोनों है, तो मैं इसे क्यों छोड़ूँ?" इसलिए वह वहीं रुक गया और हाथी के भीतर रहने लगा, खाता रहा। समय बीतता गया, यहाँ तक कि गर्मी के सूरज और हवाओं ने हाथी की खाल को सुखाकर सिकोड़ दिया, यहाँ तक कि जिस रास्ते से सियार अंदर आया था वह बंद हो गया और अंदर घोर अंधेरा छा गया। इस प्रकार सियार मानो दुनिया से कट गया और दो दुनियाओं के बीच की जगह में कैद हो गया। खाल के बाद मांस सूख गया और खून भी खत्म हो गया। हताशा के उन्माद में, वह भागने की व्यर्थ कोशिश में अपनी कैद की दीवारों पर इधर-उधर दौड़ने लगा। लेकिन जैसे ही वह उबलते हुए तवे में चावल के गोले की तरह अंदर ऊपर-नीचे हो रहा था, तभी अचानक एक आंधी आ गई और मूसलाधार बारिश ने शव के खोल को गीला कर दिया और उसे उसकी पुरानी अवस्था में लौटा दिया, यहाँ तक कि उस रास्ते से एक तारे की तरह रोशनी चमक उठी जिससे सियार अंदर आया था। "बच गया! बच गया!" सियार चिल्लाया, और हाथी के सिर में पीछे हटकर, सिर के बल निकास द्वार की ओर झपटा। यह सच है कि वह अंदर तो चला गया, लेकिन अपने सारे बाल रास्ते में ही छोड़कर। पहले वह दौड़ा, फिर रुका, और फिर बैठ गया और अपने बाल रहित शरीर को देखा, जो अब ताड़ के तने की तरह चिकना था। "आह!" वह चिल्लाया, "यह दुर्भाग्य मेरे लालच के कारण ही हुआ है। अब से मैं न तो लालची होऊंगा और न ही कभी हाथी के शव में प्रवेश करूंगा।" और उसका भय इस श्लोक में व्यक्त हुआ:-

एक बार धोखा खाने के बाद, दोबारा सावधान रहना पड़ता है। ओह, मेरा डर कितना बड़ा था!
अब से मैं हाथियों के अंदरूनी अंगों से दूर रहूंगा।
और ये शब्द कहकर सियार भाग गया, और फिर कभी उसने न तो उस हाथी के शव की ओर देखा और न ही किसी अन्य हाथी के शव की ओर। और उसके बाद से वह कभी लालची नहीं हुआ।

अपना उपदेश समाप्त करते हुए गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), कभी भी इच्छाओं को हृदय में जड़ जमाने न दो, बल्कि जहाँ कहीं से भी वे उत्पन्न हों, उन्हें उखाड़ फेंको।" चार सत्यों का उपदेश देने के बाद (जिसके समापन पर उन पाँच सौ भिक्षुओं ने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया और शेषों ने मोक्ष (निर्वाण) की विभिन्न निम्न अवस्थाएँ प्राप्त कीं), गुरु ने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "मैं स्वयं उन दिनों का सियार था।"

फुटनोट:

(1)या 'करोड़ों (10 मिलियन) से पक्का किया गया।' जातक 92 भी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **एकापन्न-जातक**
स्रोत *: रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-149-॥---->>>> अगला

जातक क्रमांक 149
एकपन्न-जातक

"यदि विष घात लगाए बैठा हो।" - यह कहानी वैशाली नगर के दुष्ट लिच्छवी राजकुमार के बारे में गुरु ने तब सुनाई थी जब वे वैशाली नगर के निकट घने जंगल में स्थित एक गुंबददार घर में रह रहे थे। उन दिनों वैशाली नगर अत्यंत समृद्ध था। नगर के चारों ओर तिहरी दीवार थी, प्रत्येक दीवार दूसरी दीवार से एक लीग (4.23 किमी) की दूरी पर थी, और तीन द्वार थे जिन पर पहरेदार मीनारें बनी हुई थीं। उस नगर में राज्य का शासन चलाने के लिए सात हजार सात सौ सात राजा और उतने ही वायसराय, सेनापति और कोषाध्यक्ष होते थे। राजाओं के पुत्रों में एक लिच्छवी राजकुमार के नाम से प्रसिद्ध था, जो एक उग्र, आवेशपूर्ण और क्रूर युवक था, जो क्रोधित सर्प की तरह हमेशा दंड देता रहता था। उसका स्वभाव इतना आवेशपूर्ण था कि उसकी उपस्थिति में कोई दो-तीन शब्दों से अधिक नहीं बोल पाता था; और न ही माता-पिता, परिवार और न ही मित्र उसे सुधार सकते थे। अतः अंततः उसके माता-पिता ने उस उग्र युवक को सर्वज्ञानी बुद्ध के पास लाने का निश्चय किया, क्योंकि उन्हें यह अहसास हो गया था कि उनके पुत्र के उग्र स्वभाव को केवल वही शांत कर सकते हैं। अतः वे उसे गुरु के पास ले आए और विधिपूर्वक आदर करते हुए उनसे विनती की कि वे युवक को प्रवचन दें।

तब गुरु ने राजकुमार को संबोधित करते हुए कहा, "राजकुमार, मनुष्य को आवेशपूर्ण, क्रूर या हिंसक नहीं होना चाहिए। क्रूर वह है जो अपनी माँ, अपने पिता, बच्चे, भाई-बहनों, पत्नी, मित्रों और परिवार के प्रति समान रूप से कठोर और निर्दयी होता है; वह आगे बढ़कर काटने के लिए झपटने वाले विषैले साँप की तरह, जंगल में अपने शिकार पर झपटने वाले डाकू की तरह, निगलने के लिए आगे बढ़ने वाले राक्षस की तरह आतंक फैलाता है। क्रूर व्यक्ति इस जीवन के बाद सीधे नरक या किसी अन्य दंड स्थान में पुनर्जन्म लेगा; और इस जीवन में भी, चाहे वह कितना भी सुशोभित क्यों न हो, वह बदसूरत दिखता है। उसका चेहरा पूर्णिमा के चंद्रमा के समान सुंदर क्यों न हो, वह आग से झुलसे कमल के समान, गंदगी से सने सोने के टुकड़े के समान घृणित होता है। ऐसा क्रोध ही मनुष्यों को तलवार से आत्महत्या करने, विष खाने, फांसी लगाने और चट्टानों से कूदने के लिए प्रेरित करता है; और इस प्रकार, अपने ही क्रोध के कारण मृत्यु को प्राप्त करके, वे यातना में पुनर्जन्म लेते हैं। जो दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, वे इस जीवन में भी घृणा के पात्र होते हैं और अपने पापों के कारण शरीर की मृत्यु के बाद नरक और दंड भोगेंगे; और जब वे पुनः मनुष्य के रूप में जन्म लेंगे, तो जन्म से ही उन्हें आँख, कान और हर प्रकार की बीमारियाँ सताती रहेंगी। इसीलिए सभी मनुष्यों को दयालुता दिखानी चाहिए और अच्छे कर्म करने चाहिए, तब निश्चित रूप से नरक और दंड का कोई भय नहीं रहेगा।

उस एक प्रवचन का राजकुमार पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका अहंकार चूर-चूर हो गया; उसका घमंड और स्वार्थ दूर हो गया, और उसका हृदय दया और प्रेम से भर गया। उसने फिर कभी गाली-गलौज या मारपीट नहीं की, बल्कि वह दाँत निकाले हुए साँप की तरह, टूटे हुए पंजों वाले केकड़े की तरह, टूटे हुए सींगों वाले बैल की तरह कोमल हो गया।

इस मनोभाव परिवर्तन को देखकर भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में आपस में चर्चा की कि कैसे लिच्छवी राजकुमार दुष्ट, जिसे उसके माता-पिता की निरंतर सलाह भी वश में नहीं कर पाई थी, सर्वज्ञानी बुद्ध की एक ही सलाह से वश में हो गया और विनम्र हो गया, और यह एक साथ छह मदमस्त हाथियों को वश में करने के समान था। यह कहना बिल्कुल सही था कि, 'हे भिक्षुओं, हाथी को वश में करने वाला उसे अपनी इच्छा अनुसार दाएं या बाएं, पीछे या आगे ले जाता है; इसी प्रकार घोड़े को वश में करने वाला और पूर्व वश में करने वाला घोड़ों और बैलों को वश में करते हैं; और इसी प्रकार भगवान बुद्ध, सर्वज्ञानी बुद्ध, जिसे वे प्रशिक्षित करना चाहते हैं, उसे उचित मार्गदर्शन देते हैं, उसे आठों दिशाओं में से किसी भी दिशा में अपनी इच्छा अनुसार ले जाते हैं, और अपने शिष्य को अपने से परे आकृतियों को पहचानने में सक्षम बनाते हैं।' 'बुद्ध ऐसे ही हैं और केवल वही हैं,' और इसी तरह आगे बढ़ते हुए, 'वे जो मनुष्यों के प्रशिक्षकों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, सत्य के बंधन में मनुष्यों को झुकाने में सर्वोच्च हैं।' "क्योंकि, महोदय," भाइयों ने कहा, "सर्वोच्च बुद्ध के समान कोई भी मनुष्य प्रशिक्षक नहीं है।"

तभी गुरुजी सभागार में आए और उनसे पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। तब उन्होंने गुरुजी को बताया, और गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि मेरी एक सलाह ने राजकुमार को पराजित किया हो; ऐसा पहले भी हो चुका है।"

और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने उत्तर देश में एक ब्राह्मण के रूप में पुनर्जन्म लिया। बड़े होकर उन्होंने सबसे पहले तक्षशिला में तीनों वेदों और सभी विद्याओं का अध्ययन किया और कुछ समय तक सांसारिक जीवन व्यतीत किया। लेकिन जब उनके माता-पिता का देहांत हो गया, तो वे हिमालय में रहने लगे और एक संन्यासी बन गए, जहाँ उन्होंने रहस्यवादी ज्ञान और उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। वे वहाँ दीर्घकालीन जीवन व्यतीत करते रहे, जब तक कि नमक और जीवन की अन्य आवश्यकताओं ने उन्हें वापस मनुष्य मार्ग पर नहीं ला दिया। वे बनारस आए और राजमहल के उद्यान में अपना निवास स्थान बनाया। अगले दिन उन्होंने बड़ी सावधानी से वस्त्र धारण किए और एक संन्यासी के सर्वोत्तम वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए नगर में निकले और राजा के द्वार पर पहुँचे। राजा बैठे हुए थे और खिड़की से बोधिसत्व को देख रहे थे। उन्होंने मन ही मन गौर किया कि हृदय और आत्मा से ज्ञानी वह तपस्वी, अपनी निगाहें सीधे अपने सामने टिकाए, सिंह समान गरिमा के साथ आगे बढ़ रहे थे, मानो हर कदम पर वे हजार सिक्कों से भरा थैला रख रहे हों। राजा ने सोचा, "यदि कहीं अच्छाई का वास है, तो वह इसी व्यक्ति के हृदय में है।" इसलिए उन्होंने एक दरबारी को बुलाकर तपस्वी को अपने समक्ष लाने का आदेश दिया। दरबारी बोधिसत्व के पास गया और आदरपूर्वक उनके हाथ से भिक्षापात्र ग्रहण किया। बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, क्या कहते हैं?" दरबारी ने उत्तर दिया, "राजा ने आपको बुलवाया है।" बोधिसत्व ने कहा, "मेरा निवास हिमालय में है, और मुझे राजा की कृपा प्राप्त नहीं है।"

अतः दरबारी वापस गया और उसने राजा को यह सूचना दी। यह सोचकर कि उस समय राजा के पास कोई गोपनीय सलाहकार नहीं था, राजा ने बोधिसत्व को लाने का आदेश दिया और बोधिसत्व आने के लिए सहमत हो गए।

राजा ने उनके प्रवेश पर अत्यंत विनम्रतापूर्वक उनका स्वागत किया और उन्हें राजसी छत्र के नीचे स्थित स्वर्ण सिंहासन पर बैठने के लिए कहा। राजा के स्वयं के भोजन के लिए तैयार किए गए उत्तम भोजन से बोधिसत्व को भोजन कराया गया।

तब राजा ने तपस्वी के निवास स्थान के बारे में पूछा और उसे पता चला कि उसका घर हिमालय में है।

"और अब आप कहाँ जा रहे हैं?"

"हे महाराज, बरसात के मौसम के लिए आवास की तलाश में।"

“आप मेरे बगीचे में क्यों नहीं निवास करते?” राजा ने सुझाव दिया। बोधिसत्व की सहमति प्राप्त करने और स्वयं भोजन करने के बाद, वह अपने अतिथि के साथ बगीचे में गए और वहाँ दिन और रात के लिए अलग-अलग कुटियाओं वाला एक आश्रम बनवाया। इस कुटिया में तपस्वी की आठ आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध थीं। बोधिसत्व को इस प्रकार स्थापित करने के बाद, राजा ने उन्हें माली की देखरेख में सौंप दिया और महल लौट गए। तब से बोधिसत्व राजा के बगीचे में रहने लगे और राजा प्रतिदिन दो या तीन बार उनसे मिलने आते थे।

राजा का एक उग्र और आवेशपूर्ण पुत्र था, जिसे दुष्ट राजकुमार के नाम से जाना जाता था, जो अपने पिता और परिवार के नियंत्रण से परे था। सलाहकारों, ब्राह्मणों और नागरिकों ने उस युवक को उसकी गलतियों के बारे में समझाया, लेकिन व्यर्थ। उसने उनकी सलाहों पर कोई ध्यान नहीं दिया। राजा को लगा कि अपने पुत्र को सुधारने की एकमात्र आशा उस गुणी तपस्वी में ही है। इसलिए अंतिम उपाय के रूप में उन्होंने राजकुमार को बोधिसत्व के हवाले कर दिया। बोधिसत्व राजकुमार के साथ बगीचे में तब तक चलते रहे जब तक वे एक नीम के पौधे के पास नहीं पहुँच गए, जिस पर अभी तक केवल दो ही पत्ते थे, एक एक तरफ और एक दूसरी तरफ।

बोधिसत्व ने कहा, "हे राजकुमार, इस छोटे से पेड़ का एक पत्ता चखकर देखो, और फिर पता चलेगा कि यह कैसा लगता है।"

युवक ने ऐसा ही किया; लेकिन जैसे ही उसने पत्ता अपने मुंह में डाला, उसने उसे गुस्से में थूक दिया और मुंह से उसका स्वाद निकालने के लिए खांसने और थूकने लगा।

"राजकुमार, क्या बात है?" बोधिसत्व ने पूछा।

“महाराज, आज तो यह वृक्ष केवल घातक विष का संकेत दे रहा है; परन्तु यदि इसे बढ़ने दिया गया तो यह अनेक लोगों की मृत्यु का कारण बनेगा,” राजकुमार ने कहा और फिर उस नन्हे से पौधे को उठाकर अपने हाथों में मसलते हुए ये पंक्तियाँ बोलीं:-

यदि छोटे पेड़ में जहर छिपा हो,
इस पूर्ण विकास का परिणाम क्या होगा?
तब बोधिसत्व ने उससे कहा, “राजकुमार, विषैले पौधे के बढ़ने के भय से तुमने उसे उखाड़ फेंका और टुकड़े-टुकड़े कर दिया। जैसा तुमने उस वृक्ष के साथ किया, वैसे ही इस राज्य के लोग, ऐसे क्रूर और आवेशपूर्ण राजकुमार के राजा बनने पर उसके क्रोध से भयभीत

होकर, तुम्हें सिंहासन पर नहीं बिठाएँगे, बल्कि तुम्हें इस नीम के वृक्ष की तरह जड़ से उखाड़कर वनवास भेज देंगे। इसलिए इस वृक्ष से सीख लो और अब से दयालुता दिखाओ और प्रेम में परिपूर्ण हो जाओ।"

उस क्षण से राजकुमार का स्वभाव बदल गया। वह विनम्र और शांत हो गया, दयालु और करुणा से परिपूर्ण हो गया। बोधिसत्व की सलाह का पालन करते हुए, जब अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राजा बना, तो उसने दान और अन्य अच्छे कार्यों में अपना जीवन व्यतीत किया और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार ही उसका निधन हुआ।

अपना प्रवचन समाप्त करते हुए गुरु ने कहा, "तो, भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब मैंने दुष्ट राजकुमार को वश में किया है; मैंने अतीत में भी ऐसा ही किया था।" फिर उन्होंने जन्म का परिचय देते हुए कहा, "आज का लिच्छवी दुष्ट राजकुमार वही दुष्ट राजकुमार था जिसकी कहानी में आनंद राजा के रूप में वर्णित है, और मैं वह तपस्वी था जिसने राजकुमार को सद्गुण की ओर प्रेरित किया था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संजीव-जातक**
***स्रोत** : रॉबर्ट चाल्मर्स द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-150-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 150
संजीव-जातक

"एक दुष्ट से मित्रता करो।" - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में राजा अजातशत्रु के झूठे गुरुओं (देवदत्त) के प्रति आसक्ति के बारे में सुनाई थी (*1)। वह बुद्धों के कट्टर शत्रु, नीच और दुष्ट देवदत्त में विश्वास रखते थे और देवदत्त को सम्मान देने की इच्छा से उन्होंने गयासिसा में एक मठ बनवाने में भारी धन खर्च किया। देवदत्त की दुष्ट सलाहों का अनुसरण करते हुए उन्होंने अपने पिता, जो अच्छे और गुणी थे और आध्यात्मिक मार्ग पर चल रहे थे, की हत्या कर दी, जिससे उन्होंने स्वयं भी अच्छे और सद्गुणों को प्राप्त करने का अवसर खो दिया और अपने ऊपर घोर पीड़ा ला दी।

देवदत्त के धरती में समा जाने की खबर सुनकर, उसे अपने लिए भी वैसी ही नियति का भय सताने लगा। उसका भय इतना गहरा था कि उसने अपने राज्य की देखभाल नहीं की, अपने पलंग पर सोया नहीं, बल्कि दर्द से तड़पते हुए एक युवा हाथी की तरह शरीर के हर अंग कांपते हुए इधर-उधर भटकता रहा। उसे कल्पना में धरती अपने लिए मुंह फुलाती हुई और नरक की ज्वालाएं भड़कती हुई दिखाई दीं; वह स्वयं को जलते हुए धातु के पलंग पर जकड़ा हुआ और लोहे के भाले अपने शरीर में चुभते हुए देख सकता था। एक घायल मुर्गे की तरह, उसे एक पल भी शांति नहीं मिली। उसके मन में सर्वज्ञानी बुद्ध के दर्शन करने, उनसे मेल-मिलाप करने और उनका मार्गदर्शन मांगने की इच्छा हुई; परन्तु अपने घोर पापों के कारण वह बुद्ध के समक्ष आने से विमुख हो गया। जब कट्टिका पर्व आया और रात में राजगृह नगर देवताओं के नगर की तरह प्रकाशित और सजाया गया, तब राजा, जो सोने के सिंहासन पर बैठा था, ने जीवक कुमारभच्च को पास बैठे देखा। उनके मन में यह विचार आया कि वे जीवक के साथ बुद्ध के पास जाएँ, लेकिन वे यह स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते थे कि वे अकेले नहीं जाएँगे बल्कि जीवक को अपने साथ ले जाना चाहते हैं। नहीं; बेहतर तरीका यह होगा कि रात्रि की सुंदरता की प्रशंसा करने के बाद, किसी ऋषि या ब्राह्मण के चरणों में बैठने का प्रस्ताव रखें और दरबारियों से पूछें कि कौन सा गुरु हृदय को शांति प्रदान कर सकता है। बेशक, वे अपने गुरुओं की जमकर प्रशंसा करेंगे; लेकिन जीवक सर्वज्ञानी बुद्ध की प्रशंसा अवश्य करेंगे; और राजा जीवक के साथ बुद्ध के पास जाएँगे। इसलिए उन्होंने रात्रि की पाँच बार प्रशंसा करते हुए कहा—"हे सज्जनों, यह निर्मल, निर्मल रात्रि कितनी सुंदर है! कितनी खूबसूरत! कितनी मनमोहक! कितनी आनंददायक! कितनी प्यारी! हम किस ऋषि या ब्राह्मण से मिलें, ताकि संयोगवश वे हमारे हृदय को शांति प्रदान कर सकें?"

तब एक मंत्री ने पुराण कश्यप, दूसरे ने मक्खली गोसाला, और अन्य ने अजित केशकंबला, ककुधा कच्चयन, संजय बेलत्थिपुत्त या निगंथ नटपुत्त (महावीर, जैनों के गुरु) के नाम सुझाए। राजा ने इन सभी नामों को चुपचाप सुना, और अपने मुख्य मंत्री जीवक के बोलने की प्रतीक्षा करने लगे। लेकिन जीवक को संदेह हुआ कि राजा का असली उद्देश्य उन्हें बुलवाना है, इसलिए उन्होंने चुप रहना ही बेहतर समझा। अंत में राजा ने कहा, "अच्छा, मेरे प्यारे जीवक, तुम्हें कुछ कहना क्यों नहीं है?" यह सुनकर जीवक अपनी सीट से उठे और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर बोले, "महाराज, मेरे आम के बाग में सर्वज्ञानी बुद्ध तेरह सौ पचास भिक्षुओं के साथ निवास करते हैं। यही उनकी प्रसिद्धि है।" और फिर उन्होंने उन्हें दिए गए नौ सम्मानों का पाठ करना शुरू किया, जिसकी शुरुआत 'आदरणीय (*2)' से

हुई। जब उन्होंने आगे यह दिखाया कि बुद्ध की शक्तियां जन्म से ही सभी पूर्व भविष्यवाणियों और अपेक्षाओं से कहीं अधिक थीं, तो जीवक ने कहा, "हे भगवान बुद्ध, राजा को उनके पास जाने दो, ताकि वे सत्य सुन सकें और प्रश्न पूछ सकें।"

इस प्रकार अपना उद्देश्य पूरा होने पर, राजा ने जीवक को हाथियों को तैयार करने का आदेश दिया और शाही ठाठ-बाठ से जीवक के आम के बाग में गए, जहाँ उन्होंने सुगंधित मंडप में भिक्षुओं के बीच बुद्ध को देखा, जो सागर की तरह शांत और विश्राम कर रहे थे। राजा की दृष्टि जहाँ भी जाती, उन्हें भिक्षुओं की अंतहीन कतारें ही दिखाई देतीं, जिनकी संख्या उन्होंने अब तक देखे किसी भी अनुयायी समूह से कहीं अधिक थी। भिक्षुओं के व्यवहार से प्रसन्न होकर, राजा ने प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा की। फिर बुद्ध को प्रणाम करके वे बैठ गए और उनसे पूछा, 'धार्मिक (सन्यासी) जीवन (बुद्ध द्वारा उपदेशित मार्ग) का फल क्या है?' इस पर भगवान बुद्ध ने समन्नफल सूत्र का दो भागों में वर्णन किया (*3)। हृदय से प्रसन्न होकर, राजा ने सूत्र के अंत में बुद्ध से सुलह की और उचित आदर के साथ उठकर विदा हो गए। राजा के जाने के तुरंत बाद, गुरु ने भाइयों को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, इस राजा का वध हो चुका है; यदि इस राजा ने सत्ता के लालच में अपने पिता, जो एक धर्मात्मा शासक थे, की हत्या न की होती, तो सिंहासन से उठने से पहले ही उसे अर्हत का सत्य का स्पष्ट दर्शन (ज्ञानोदय) प्राप्त हो जाता। परन्तु देवदत्त के प्रति अपने पापपूर्ण पक्षपात के कारण वह प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल से वंचित रह गया।"

अगले दिन सभी भिक्षुओं ने आपस में इस सब पर चर्चा की और कहा कि अजातशत्रु द्वारा अपने पिता की हत्या का अपराध, जो उसने उस दुष्ट और पापी देवदत्त के कारण किया था जिसका उसने पक्ष लिया था, उसके कारण ही उसे मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त नहीं हुआ; और देवदत्त ही राजा के विनाश का कारण बना। इसी समय गुरु सत्य के हॉल में आए और उन्होंने उनसे चर्चा का विषय पूछा। विषय बताए जाने पर गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि अजातशत्रु को पापी का पक्ष लेने के कारण कष्ट भोगना पड़ा है; अतीत में इसी प्रकार के आचरण के कारण उसे अपनी जान गंवानी पड़ी थी।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ। वयस्क होने पर वे तक्षशिला में अध्ययन करने गए, जहाँ उन्होंने पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। बनारस में एक शिक्षक के रूप में उन्हें विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त थी और उनके पाँच सौ युवा ब्राह्मण शिष्य थे। इनमें से एक संजीव था, जिसे बोधिसत्व ने मृतकों को जीवित करने का मंत्र सिखाया। परन्तु इस मंत्र के पर उसे प्रति-मंत्र नहीं सिखाया गया। अपनी इस नई शक्ति पर घमंड करते हुए वह अपने साथी शिष्यों के साथ वन में लकड़ी इकट्ठा करने गया और वहाँ उसे एक मृत बाघ मिला।

"अब देखो मैं बाघ को फिर से जीवित कर देता हूँ," उसने कहा।

उन्होंने कहा, "तुम ऐसा नहीं कर सकते।"

"तुम देखोगे और तुम्हें मैं ऐसा करते हुए दिख जाऊंगा।"

"ठीक है, अगर आप कर सकते हैं, तो ऐसा करें," उन्होंने कहा और फिर एक पेड़ पर चढ़ गए।

फिर संजीव ने अपना जादू दोहराया और टूटे हुए मिट्टी के बर्तन से मरे हुए बाघ पर प्रहार किया। बाघ उछल पड़ा और बिजली की गति से संजीव पर झपटा तथा उनके गले पर काट कर उन्हें तुरंत मार डाला। बाघ वहीं गिर पड़ा और संजीव भी उसी स्थान पर मृत हो गए। इस प्रकार दोनों वहीं अगल-बगल मृत पड़े रहे।

युवा ब्राह्मण अपनी लकड़ी लेकर अपने गुरु के पास लौट आए और उन्हें सारी कहानी सुनाई। गुरु ने कहा, "मेरे प्रिय शिष्यों, इस विषय में जान लो कि पापी पर कृपा करने और जहाँ सम्मान देना उचित नहीं था, वहाँ सम्मान देने के कारण उसने अपने ऊपर यह विपत्ति बुला ली है।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:-

> किसी खलनायक से दोस्ती करो, जरूरत के समय उसकी मदद करो,
> और, ठीक उसी बाघ की तरह जिसे संजीव ने पाला था
> जीवन के प्रति, वह सीधे आपके कष्टों का बदला लेने के लिए आपको निगल जाता है।

बोधिसत्व ने युवा ब्राह्मणों को यही शिक्षा दी, और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कर्मों से भरा जीवन जीने के बाद वे अपने कर्मों के फल के लिए इस दुनिया से विदा हो गए।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "अजातशत्रु उस समय का वह युवा ब्राह्मण था जिसने मृत बाघ को जीवित किया था, और मैं विश्वप्रसिद्ध शिक्षक हूँ।"

फुटनोट:

(1) समन्नाफल सूत्र में, दीघा निकया इस परिचयात्मक कथा की घटनाओं का वर्णन करता है और राजा से अपने पिता की हत्या स्वीकार करवाता है। साथ ही, यह सब इसलिए हुआ क्योंकि अजातशत्रु ने अपने (झूठे) गुरु देवदत्त से सलाह ली थी।

(2) सूची के लिए दीघा निकाय के खंड I के पृष्ठ 49 देखें।

(3) दीघा निकाय में सूत्र को दो भागों में विभाजित नहीं किया गया है।

पुस्तक II. दुकानिपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **राजोवदा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-151-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 151
राजोवदा-जातक

"कठोर को कठोर," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, यह समझाने के लिए कि एक राजा को कैसे सबक सिखाया गया था।

इसे तेसाकुना जन्म (*1) में सेट किया जाएगा।

कहा जाता है कि एक दिन कोसल के राजा ने नैतिक दुराचार से जुड़े एक अत्यंत कठिन मामले में फैसला सुनाया था। भोजन करने के बाद, उनके हाथ अभी सूखे भी नहीं थे कि वे अपने भव्य रथ में सवार होकर गुरु से मिलने गए; और राजा ने खिले हुए कमल के समान सुंदर चरणों से उनका अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए।

तब गुरु ने उनसे इन शब्दों में कहा, "हे महाराज, इस समय आप यहाँ क्यों आए हैं?" उन्होंने कहा, "महाराज, मैं एक कठिन मामले पर विचार कर रहा था, जिसमें नैतिक दुराचार शामिल था; इसलिए मेरा समय निकल गया। अब मैंने वह मामला निपटा लिया है, भोजन कर लिया है, और अब मैं यहाँ हूँ, मेरे हाथ अभी सूखे ही हैं, आपकी सेवा करने के लिए।" गुरु ने उत्तर दिया, "हे महाराज, किसी भी मामले का न्याय और निष्पक्षता से निर्णय करना ही सही है; यही स्वर्ग का मार्ग है। अब जब आपको मुझ जैसे सर्वज्ञानी व्यक्ति की सलाह मिल रही है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आप अपने मामले का निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्णय लें; लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब राजाओं को केवल उन विद्वानों की सलाह मिली हो जो सर्वज्ञानी नहीं हैं, फिर भी उन्होंने निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्णय लिया है, दुष्टता के चार मार्गों से बचते हुए, और दस राजसी गुणों का पालन करते हुए, और न्यायपूर्ण शासन करने के बाद स्वर्ग गए हैं।" तब, राजा के अनुरोध पर, उन्होंने प्राचीन काल की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनकी रानी पत्नी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया; और उनके राज्य के अनुसार विधिवत समारोह संपन्न होने के बाद (*2), उन्होंने सुरक्षित प्रसव किया। उनके नामकरण दिवस पर, उन्हें राजकुमार ब्रह्मदत्त नाम दिया गया।

समय बीतने के साथ, वह बड़ा हुआ और सोलह वर्ष की आयु में शिक्षा के लिए तक्षशिला (*3) गया; जहाँ उसने विद्या की सभी शाखाओं में महारत हासिल की और अपने पिता की मृत्यु के बाद उनका स्थान लेकर राजा बना। उसने न्याय और निष्पक्षता से शासन

किया और अपनी इच्छा या सनक की परवाह किए बिना न्याय का संचालन किया। उसके न्यायपूर्ण शासन के कारण उसके मंत्री भी न्यायप्रिय थे; इस प्रकार, जब सब कुछ न्यायपूर्वक किया जा रहा था, तब भी कोई भी न्यायालय में झूठा मुकदमा लेकर नहीं आया। देखते ही देखते महल परिसर में सभी मुवक्किलों की गतिविधियाँ थम गईं; मंत्री दिन भर बेंच पर बैठे रहते और बिना किसी मुवक्किल को देखे चले जाते। न्यायालय सुनसान हो गए।

तब बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, “मेरे न्यायपूर्ण शासन के कारण अब कोई भी वर अपने बच्चे की संतान को लेकर अदालत में नहीं आता; पहले की चहल-पहल शांत है; अदालतें सुनसान हैं। अब मुझे यह देखना होगा कि मुझमें कोई दोष है या नहीं; यदि मुझे वह दोष मिला, तो मैं उसे त्याग दूँगा और आगे सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।” उस समय से उन्होंने निरंतर प्रयास किया कि कोई उन्हें कोई दोष बता दे; परन्तु दरबार में उपस्थित सभी लोगों में से उन्हें कोई ऐसा नहीं मिला; उन्हें अपने बारे में केवल प्रशंसा ही सुनने को मिली। उन्होंने सोचा, “शायद वे सब मुझसे इतना भयभीत हैं कि मेरे बारे में कोई बुराई नहीं, केवल अच्छाई ही कहते हैं,” और इसलिए वे अपने शहर की सीमा से बाहर रहने वालों से पूछताछ करने निकल पड़े। परन्तु उनके साथ भी यही स्थिति थी। फिर उन्होंने सभी नागरिकों से पूछताछ की, और शहर के बाहर, नगर के चारों द्वारों पर स्थित उपनगरों के निवासियों से भी पूछताछ की। फिर भी उन्हें कोई दोष नहीं मिला; उन्हें केवल प्रशंसा ही सुनने को मिली। अंत में, ग्रामीण इलाकों का अनुभव करने के इरादे से, उन्होंने शासन की सारी बागडोर अपने मंत्रियों को सौंप दी और अपने रथ में सवार होकर, केवल अपने सारथी को साथ लेकर, भेस बदलकर शहर से निकल गए। वे पूरे देश में, यहाँ तक कि सीमा तक भी गए; पर उन्हें कोई दोष निकालने वाला नहीं मिला; उन्हें केवल अपनी ही प्रशंसा सुनाई देती रही। इसलिए वे सीमावर्ती इलाकों से लौट आए और मुख्य मार्ग से अपने घर की ओर चल पड़े।

अब संयोगवश, ठीक उसी समय कोसल के राजा मल्लिका ने भी ठीक यही किया था। वह भी एक न्यायप्रिय राजा थे और अपनी कमियों की खोज कर रहे थे; लेकिन उनके आसपास के लोगों में कोई भी ऐसा नहीं था जिसमें कोई दोष निकाला जा सके; और केवल प्रशंसा सुनकर, उन्होंने पूरे देश में पूछताछ की और ठीक उसी स्थान पर पहुँचे।

ये दोनों एक ऐसी जगह पर मिले, जहाँ दो किनारों के बीच सड़क काफी गहरी थी और एक गाड़ी के दूसरी गाड़ी को पार करने की जगह नहीं थी।

"अपनी गाड़ी रास्ते से हटाओ!" मल्लिका राजा के सारथी ने बनारस के राजा के सारथी से कहा।

"नहीं, नहीं, ड्राइवर," उसने कहा, "अपनी गाड़ी हटाओ! जान लो कि इस रथ में बनारस राज्य के स्वामी, महान सम्राट ब्रह्मदत्त विराजमान हैं!"

“नहीं, स्वामी!” दूसरे ने उत्तर दिया, “इस रथ में कोसल राज्य के स्वामी महान राजा मल्लिका विराजमान हैं! आपको रास्ता देना होगा और हमारे राजा के रथ को जगह देनी होगी!”

“अरे, यहाँ तो एक राजा भी है,” बनारस के राजा के सारथी ने सोचा। “अब क्या किया जाए?” तभी उसके मन में एक विचार आया; उसने दोनों राजाओं की आयु जानने का प्रयास किया, ताकि छोटा राजा बड़े राजा को पदभार सौंप सके। उसने दूसरे सारथी से उसके राजा की आयु पूछी; पर उसे पता चला कि दोनों की आयु समान थी। इस पर उसने राजा की शक्ति, धन-संपत्ति, वैभव और जाति-वंश तथा परिवार से संबंधित सभी बातों के बारे में पूछा; उसे पता चला कि दोनों के पास 300 मील (4.23 किमी) लंबा राज्य था, और वे शक्ति, धन, वैभव तथा परिवार और वंश के मामले में एक समान थे। तब उसने सोचा कि बेहतर व्यक्ति को स्थान दिया जाना चाहिए; इसलिए उसने दूसरे सारथी से अपने स्वामी के गुणों का वर्णन करने का अनुरोध किया। उस व्यक्ति ने कविता की पहली पंक्ति सुनाकर उत्तर दिया, जिसमें उसने अपने राजा के दोषों को इस प्रकार वर्णित किया मानो वे अनेक गुण हों:

"कठोर से कठोर तक, सौम्य राजा मल्लिका सौम्यता से विवश होते हैं।"
अच्छाई से अच्छाई को प्राप्त करो, और बुराई से बुराई को प्राप्त करो।
"गायब करो, जगह दो, हे सारथी! इस सम्राट के यही तौर-तरीके हैं!"
“ओह,” बनारस के राजा के सेवक ने कहा, “क्या राजा के गुणों के बारे में बस इतना ही कहना है?” “हाँ,” दूसरे ने कहा। “यदि ये उनके गुण हैं, तो उनके अवगुण क्या होंगे?” “ठीक है, अवगुण ही सही,” उसने कहा, “लेकिन हमें यह भी सुनने दीजिए कि आपके राजा के गुण कैसे हैं!” “तो सुनिए,” पहले ने उत्तर दिया, और दूसरा श्लोक दोहराया:-

वह सौम्यता से क्रोध पर विजय प्राप्त करता है, अच्छाई से बुराई को वश में करता है।
उपहारों के द्वारा कंजूस विजय प्राप्त करता है और झूठ का बदला सत्य से चुकाता है।
जगह दो, जगह दो, हे स्वामी! इस सम्राट के तौर-तरीके ऐसे ही हैं (*4)!"

ये शब्द सुनकर राजा मल्लिका और उनके सारथी दोनों रथ से उतरे, घोड़ों को खोलकर रथ को रास्ते से हटा दिया ताकि बनारस के राजा को रास्ता मिल सके। तब बनारस के राजा ने राजा मल्लिका को अच्छी सलाह देते हुए कहा, "तुम्हें ऐसा और ऐसा करना चाहिए।" इसके बाद वे बनारस लौट गए और वहाँ जीवन भर दान-पुण्य करते रहे, अंत में स्वर्ग सिधार गए। राजा मल्लिका ने इस सीख को दिल से मान लिया और देश के कोने-कोने का भ्रमण करने के बाद, जहाँ उन्हें कोई दोष नहीं मिला, अपने नगर लौट आए; जहाँ उन्होंने जीवन भर दान-पुण्य किया और अंत में वे भी स्वर्ग सिधार गए।

जब गुरु ने कोसल के राजा को शिक्षा देने के उद्देश्य से शुरू किए गए इस प्रवचन को समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय मोग्गल्याना राजा मल्लिका के सारथी थे, आनंद राजा थे, सारिपुत्र बनारस के राजा के सारथी थे, लेकिन राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 521.

(2) शाब्दिक अर्थ "भ्रूण की सुरक्षा;" निःसंदेह कोई धार्मिक अनुष्ठान।

(3) प्राचीन भारत का महान विश्वविद्यालय नगर; यह अब पाकिस्तान में इस्लामाबाद (तक्षशिला) के पास है।

(4)धम्मपद, श्लोक 223.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> सिगला - **जातक**4
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-152-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 152
सिगाला-जातक

"जो जल्दबाजी में कोई काम हाथ में लेता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने अपने छज्जे वाले कमरे में रहते हुए सुनाई थी, जो वैशाली शहर में रहने वाले एक नाई के बारे में थी।

हमें बताया गया है कि यह व्यक्ति शाही परिवार, राजाओं, रानियों, राजकुमारों और राजकुमारियों के लिए दाढ़ी बनाने, बाल संवारने और चोटी बनाने का काम करता था; वास्तव में, वह हर तरह का काम करता था। वह एक सच्चा विश्वासी था, जो तीन शरणों - बुद्ध, धम्म (धर्म और पवित्र मार्ग) और संघ (प्रबुद्धों का पवित्र संघ) (*1) - में शरण लिए हुए था, पाँच नियमों का पालन करने के लिए दृढ़ संकल्पित था; और समय-समय पर वह गुरु के प्रवचन सुनता था।

एक दिन वह अपने बेटे को साथ लेकर महल में काम करने निकला। रास्ते में उस युवक ने एक लिच्छवी लड़की को अप्सरा की तरह सजे-धजे देखा और उस पर मोहित हो गया। महल से निकलते समय उसने अपने पिता से कहा, "वहाँ एक लड़की है - अगर मैं उसे पा लूँ तो मेरी जान बच जाएगी; लेकिन अगर नहीं तो मेरे लिए मौत के सिवा कुछ नहीं।" उसने खाने का एक निवाला भी नहीं खाया और पलंग को गले लगाकर लेट गया। उसके पिता ने उसे देखा और कहा, "बेटा, इस कुटिल इच्छा पर ध्यान मत दो। तुम तो कुछ भी नहीं हो - एक नाई के बेटे हो; यह लिच्छवी लड़की ऊँचे खानदान की औरत है। तुम उसके लायक नहीं हो। मैं तुम्हारे लिए कोई और ढूंढ लूँगा; तुम्हारे ही दर्जे और रुतबे की लड़की।" लेकिन लड़का नहीं माना। तब उसकी माँ, भाई, बहन, चाची और चाचा, पूरा परिवार, और सारे दोस्त और साथी उसे मनाने आए; पर वे उसे मना नहीं सके। इसलिए वह दिल टूटने से कमजोर होता चला गया और वहीं पड़ा रहा जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई।

तब पिता ने अंतिम संस्कार किया और मृत आत्मा के लिए जो भी प्रथा होती है, वह सब की। कुछ समय बाद, जब शोक का पहला दौर थोड़ा कम हुआ, तो उन्होंने गुरु से मिलने का मन बनाया। फूलों, सुगंधों और इत्रों का एक बड़ा उपहार लेकर वे महावन गए और गुरु को प्रणाम किया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने पूछा, “हे गृहस्थ, तुम इतने समय तक क्यों छिपे रहे?” तब उस व्यक्ति ने

उन्हें सब कुछ बताया। गुरु ने कहा, “अरे गृहस्थ, यह पहली बार नहीं है कि उसने किसी ऐसी चीज पर अपना दिल लगा लिया हो जो उसे नहीं मिलनी चाहिए थी; यह तो बस वही है जो उसने पहले भी किया है।” तब गृहस्थ के अनुरोध पर उन्होंने उसे पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब हिमालय क्षेत्र में एक युवा सिंह के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनके परिवार में कुछ छोटे भाई और एक बहन थी; और वे सभी एक स्वर्ण गुफा में रहते थे।

इस गुफा के पास ही एक चांदी की पहाड़ी पर क्रिस्टल की गुफा थी, जहाँ एक सियार रहता था। कुछ समय बाद शेरों के माता-पिता की मृत्यु हो गई। तब वे अपनी बहन शेरनी को गुफा में छोड़कर भोजन की तलाश में जाते थे; भोजन मिलने पर वे उसे शेरनी के लिए वापस लाते थे।

अब सियार की नज़र उस शेरनी पर पड़ी और वह उससे प्रेम करने लगा; परन्तु जब तक बूढ़ा शेर और शेरनी जीवित थे, तब तक वह उस तक नहीं पहुँच सकता था। अब, जब सातों भाई भोजन की तलाश में गए, तो वह अपनी क्रिस्टल गुफा से निकला और बड़ी जल्दी से सोने की गुफा की ओर भागा; वहाँ, उस युवती के सामने खड़ा होकर, उसने शरारती ढंग से उससे मोहक और लुभावने शब्दों में कहा:

"हे शेरनी, मैं चार पैरों वाला प्राणी हूँ, और तुम भी। इसलिए तुम मेरी साथी बनो, और मैं तुम्हारा पति बनूँगा! हम मित्रता और सौहार्द से साथ रहेंगे, और तुम मुझे सदा प्यार करोगी!"

यह सुनकर शेरनी मन ही मन सोचने लगी, “यह सियार तो जानवरों में भी नीच, घिनौना और नीच जाति का आदमी है। लेकिन मैं तो राजसी खानदान की हूं। इसका मेरे बारे में ऐसा बोलना अशोभनीय और बुरा है। ऐसी बातें सुनकर मैं कैसे जी सकती हूं? मैं मरने तक अपनी सांस रोक लूंगी।” फिर कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा, “नहीं, इस तरह मरना अच्छा नहीं लगेगा। मेरे भाई जल्द ही घर लौट आएंगे; मैं पहले उन्हें बताऊंगी, और फिर खुद को खत्म कर लूंगी।”

जब सियार को कोई जवाब नहीं मिला, तो उसे यकीन हो गया कि उसे उसकी कोई परवाह नहीं है; इसलिए वह वापस अपनी क्रिस्टल गुफा में चला गया और बहुत दुखी होकर लेट गया।

अब एक जवान शेर ने भैंस, हाथी या किसी और जानवर को मारकर उसका कुछ हिस्सा खुद खाया और अपनी बहन के लिए भी थोड़ा हिस्सा लाया। उसने उसे खाने के लिए कहा, "नहीं भाई, मैं एक निवाला भी नहीं खाऊंगी, क्योंकि मुझे मरना है!" शेर ने पूछा, "ऐसा क्यों?" तब उसने उसे सब कुछ बताया। शेर ने पूछा, "यह सियार अब कहाँ है?" उसने उसे क्रिस्टल गुफा में पड़ा देखा और यह सोचकर कि वह आकाश में है, बोली, "भाई, तुम उसे चांदी के पहाड़ पर आकाश में पड़ा हुआ क्यों नहीं देख सकते?" जवान शेर को पता नहीं था कि सियार क्रिस्टल गुफा में है और यह सोचकर कि वह सचमुच आकाश में है, उसने शेरों की तरह उस पर झपट्टा मारा और क्रिस्टल से टकरा गया। क्रिस्टल से उसका दिल फट गया और पहाड़ की तलहटी में गिरकर वह तुरंत मर गया।

फिर एक और शेर आया, जिसे शेरनी ने वही कहानी सुनाई। इस शेर ने भी पहले शेर की तरह ही किया और पहाड़ की तलहटी में गिरकर मर गया।

जब छह सिंह भाई इस प्रकार मर गए, तब अंत में बोधिसत्व ने प्रवेश किया। जब उसने अपनी कहानी सुना दी, तो उन्होंने पूछा कि सियार अब कहाँ है? "वह रहा," उसने कहा, "आकाश में, रजत पर्वत के ऊपर!" बोधिसत्व ने सोचा—"आकाश में पड़ा सियार? बकवास। मैं जानता हूँ कि क्या है: वह एक क्रिस्टल गुफा में पड़ा है।" इसलिए वे पर्वत की तलहटी में गए, और वहाँ उन्होंने अपने छह भाइयों को मृत पड़ा देखा। "मैं समझ गया," उन्होंने सोचा; "ये सब मूर्ख थे, और उनमें पूर्ण ज्ञान का अभाव था; यह न जानते हुए कि यह क्रिस्टल गुफा है, उन्होंने इसमें अपने दिल को फोड़ दिया, और मारे गए। बिना उचित समझ के जल्दबाजी में कार्य करने का यही परिणाम होता है;" और उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:-

जो जल्दबाजी में कोई उद्यम शुरू करता है,
  सभी संभावित समस्याओं को ध्यान में न रखते हुए,
जैसे कोई खाना खाते समय अपना मुंह जला लेता है
  वह उन्हीं योजनाओं का शिकार हो जाता है जो उसने खुद बनाई थीं।

इन पंक्तियों को दोहराने के बाद, शेर ने आगे कहा: "मेरे भाई इस सियार को मारना चाहते थे, लेकिन उन्हें अपनी योजना को चतुराई से अंजाम देना नहीं आता था; इसलिए वे उस पर बहुत तेज़ी से झपटे और इस तरह उनकी मृत्यु हो गई। मैं ऐसा नहीं करूँगा; बल्कि मैं इस

सियार को क्रिस्टल गुफा में पड़े-पड़े ही उसका दिल फोड़ दूँगा।" फिर उसने वह रास्ता देखा जिससे सियार ऊपर-नीचे जाया करता था, और उस ओर मुड़कर उसने शेर की दहाड़ से तीन गुना ज़ोर से दहाड़ा, जिससे धरती और आकाश एक साथ एक ज़ोरदार दहाड़ में बदल गए! क्रिस्टल गुफा में पड़ा सियार भयभीत और स्तब्ध रह गया, जिससे उसका दिल फट गया; और वह तुरंत वहीं मर गया।

गुरु ने आगे कहा, "इस प्रकार शेर की दहाड़ सुनकर यह सियार मर गया।" और पूर्णतः ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:-

दद्दारा पर शेर ने दहाड़ लगाई,
  और इससे माउंट दादरा एक बार फिर गूंज उठा।
पास ही में एक सियार रहता था; वह उससे बहुत डरता था।
  उस आवाज को सुनकर उसका दिल दो टुकड़ों में टूट गया।
इस प्रकार हमारे शेर ने उस सियार को मार डाला। फिर उसने उसके भाइयों को एक ही कब्र में दफनाया और उसकी बहन को बताया कि वे मर गए हैं, और उसे सांत्वना दी; और उसने अपने शेष दिन स्वर्ण गुफा में बिताए, जब तक कि वह उस स्थान पर नहीं चला गया जो उसके कर्मों के फलस्वरूप उसे मिला था।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों को प्रकट किया और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, गृहस्थ प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया: "आज का नाई का पुत्र तब सियार था; लिच्छवी कन्या युवा शेरनी थी; छह छोटे शेर अब छह बुजुर्ग हैं; और मैं स्वयं सबसे बड़ा शेर हूँ।"

फुटनोट:

(1)बुद्ध, धर्म मार्ग (धम्म), और भिक्षुओं का संघ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शूकर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-153-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 153
सुकरा-जातक (*1)

"तुम चौपाया हो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो एक वृद्ध भिक्षु के बारे में थी।

एक बार, जैसा कि हमें बताया गया है, रात्रि प्रार्थना सभा चल रही थी और गुरु ने अपने सुगंधित कक्ष के द्वार पर स्थित रत्नजड़ित सीढ़ी के एक शिलाखंड पर खड़े होकर उपदेश दिया। धन्य गुरु का प्रवचन देने के बाद, वे अपने सुगंधित कक्ष में चले गए; और धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने अपने गुरु को प्रणाम करके अपने कक्ष में वापस चले गए। महामोग्गल्याण भी अपने कक्ष में चले गए, और कुछ क्षण विश्राम करने के बाद वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र से एक प्रश्न पूछने के लिए वापस आए। जैसे-जैसे वे एक-एक प्रश्न पूछते गए, धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया, मानो वे आकाश में चंद्रमा को उदय कर रहे हों। वहाँ चारों श्रेणियों के शिष्य (*2) उपस्थित थे, जो बैठे-बैठे सब कुछ सुन रहे थे। तभी एक वृद्ध वरिष्ठ भिक्षु के मन में एक विचार आया। उन्होंने सोचा, "मान लीजिए, मैं इस सारी भीड़ के सामने सारिपुत्र को कोई प्रश्न पूछकर उलझन में डाल दूं? वे सब सोचेंगे, कितना चतुर व्यक्ति है! और मुझे बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।" तो वह भीड़ में से उठा और बड़े भिक्षु के पास जाकर एक तरफ खड़ा हो गया और बोला, "मित्र सारिपुत्र, मेरा भी आपसे एक प्रश्न है; क्या आप मुझे बोलने देंगे? मुझे विवेकपूर्ण या अविभेदपूर्ण, खंडन या स्वीकृति, भेद या प्रतिभेद के आधार पर निर्णय दीजिए।" बड़े भिक्षु ने उसकी ओर देखा। उन्होंने सोचा, "यह बूढ़ा अभी भी इच्छा के दायरे में है; यह खाली है और कुछ नहीं जानता।" शर्म के मारे उन्होंने उससे एक शब्द भी नहीं कहा; अपना पंखा नीचे रखकर वे अपनी सीट से उठे और अपनी कोठरी में लौट गए। बड़े भिक्षु मोग्गल्याना भी अपनी कोठरी में लौट गए। आस-पास खड़े लोग चिल्लाते हुए उठे, "इस दुष्ट बूढ़े को पकड़ो, जिसने हमें उपदेश के मधुर शब्द नहीं सुनने दिए!" और उन्होंने उस पर हमला कर दिया। वह भागा और मठ के ठीक बाहर एक गंदे नाले के कोने में बने एक छेद में गिर गया; जब वह उठा तो वह पूरी तरह गंदगी से सना हुआ था। जब लोगों ने उसे देखा, तो उन्हें उस पर दया आई और वे गुरु के पास चले गए। उन्होंने पूछा, "हे साधारण लोगों, तुम इस असमय क्यों आए हो?" उन्होंने गुरु को सारी घटना बताई। गुरु ने कहा, "हे

साधारण लोगों, यह पहली बार नहीं है जब इस बूढ़े को इस तरह से उखाड़ फेंका गया है और अपनी शक्ति को न जानते हुए बलवानों से भिड़ गया है, और अंत में वह पूरी तरह से गंदगी से लथपथ हो गया है। बहुत समय पहले, वह अपनी शक्तियों को न जानते हुए बलवानों से भिड़ गया था और उसी तरह गंदगी से लथपथ हो गया था जैसे अब है।" फिर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक सिंह थे जो हिमालय की एक पर्वतीय गुफा में रहते थे। पास ही एक झील के किनारे बहुत सारे सूअर रहते थे; और उसी झील के किनारे पेड़ों की पत्तियों और शाखाओं से बनी झोपड़ियों में संन्यासियों का एक समूह रहता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि शेर ने भैंसा, हाथी या ऐसा ही कोई शिकार मार गिराया; और अपनी पसंद का भोजन करने के बाद, वह इस झील पर पानी पीने गया। जैसे ही वह बाहर आया, एक बलवान सूअर पानी के किनारे चर रहा था। शेर ने सोचा, "किसी और दिन यह मुझे भोजन देगा।" लेकिन इस डर से कि अगर सूअर ने उसे देख लिया, तो वह फिर कभी यहाँ नहीं आएगा, शेर पानी से बाहर आते ही चुपके से किनारे की ओर खिसक गया। सूअर ने यह देख लिया; और तुरंत उसके मन में विचार आया, "यह इसलिए है क्योंकि इसने मुझे देख लिया है, और डर गया है! यह मेरे पास आने की हिम्मत नहीं कर रहा है, और डर के मारे भाग रहा है! आज मेरा और शेर का युद्ध होगा!" इसलिए उसने अपना सिर उठाया, और पहले छंद में शेर को चुनौती दी:

"तुम चार पैरों वाले हो - मैं भी: इसलिए, दोस्त, हम दोनों एक जैसे हैं, तुम देख रहे हो ना;
शेर, मुड़ो, मुड़ो; क्या तुम डर रहे हो? मुझसे क्यों भाग रहे हो?
शेर ने ध्यान से सुना। उसने कहा, "मित्र सूअर, आज तुम्हारे और मेरे बीच कोई लड़ाई नहीं होगी। लेकिन आज हम यहीं पर लड़ेंगे।" और इतना कहकर वह चला गया।

सूअर शेर से लड़ने की कल्पना करके बहुत खुश था; उसने अपने सभी मित्रों और परिवार को इसके बारे में बताया। लेकिन कहानी सुनकर वे डर गए। उन्होंने कहा, "तुम हम सबकी कमजोरी बन जाओगे, और खुद अपनी भी। तुम्हें अपनी क्षमता का अंदाजा नहीं है, वरना तुम शेर से लड़ने के लिए इतने उत्सुक क्यों होते? जब शेर आएगा, तो वह तुम्हारी और हम सबकी जान ले लेगा; इतना हिंसक मत बनो!" इन शब्दों ने सूअर को भयभीत कर दिया। उसने पूछा, "तो मैं क्या करूँ?" तब दूसरे सूअरों ने उसे सलाह दी कि वह अगले सात दिनों तक साधुओं के गोबर के ढेर में लोटता रहे और अपने शरीर पर लगे कीचड़ को सूखने दे; फिर सातवें दिन ओस की बूंदों से खुद को गीला करे और मिलन स्थल पर सबसे पहले पहुँचे; फिर हवा की दिशा का पता लगाए और हवा की दिशा में जाए; और शेर, जो एक पवित्र प्राणी है, उसकी गंध मिलते ही उसकी जान बख्श देगा।

तो उसने वैसा ही किया; और नियत दिन वह वहाँ पहुँच गया। शेर ने जैसे ही उसकी गंध पहचानी और गंदगी को सूंघा, उसने कहा, "मित्र सूअर, यह तो बड़ी चालाकी है! यदि तुम पूरी तरह गंदगी से सने न होते, तो मैं आज ही तुम्हारी जान ले लेता। लेकिन जैसा कि है, मैं तुम्हें काट नहीं सकता, न ही अपने पैर से छू सकता हूँ। इसलिए मैं तुम्हारी जान बख्श रहा हूँ।" और फिर उसने दूसरा छंद दोहराया:-

"हे गंदे सूअर, तेरी खाल बदबूदार है, तेरी दुर्गंध मुझे भयानक लगती है;
यदि तुम लड़ना चाहो तो मैं आत्मसमर्पण कर दूंगा और तुम्हारी जीत स्वीकार करूंगा।

फिर शेर मुड़कर चला गया और अपने दिन का भोजन जुटाया; और थोड़ी देर बाद झील से पानी पीकर वह पहाड़ पर स्थित अपनी गुफा में लौट गया। सूअर ने अपने परिवार को बताया कि उसने शेर को कैसे हराया! लेकिन वे डर गए क्योंकि उन्हें लगा कि शेर किसी और दिन फिर आ जाएगा और उन सबको मार डालेगा। इसलिए वे भाग गए और किसी दूसरी जगह चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उन दिनों का सूअर अब वृद्ध भिक्षु है, और मैं स्वयं शेर था।"

फुटनोट:

(1) सूअर

(2) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, गृहस्थ (शिष्य) और गृहस्थ बहनें।

पिछला <<<<-----||-154-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 154
उरगा-जातक

"पत्थर के भीतर छिपा हुआ," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सैनिकों के झगड़े के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, कोसल के राजा की सेवा में कार्यरत दो उच्च पदस्थ और दरबारी सैनिक, एक-दूसरे को देखते ही आपस में झगड़ने लगते थे। न तो राजा, न मित्र और न ही परिवार उन्हें सुलह करा सका।

एक दिन सुबह-सुबह गुरुजी अपने मित्रों में से यह देखने के लिए चारों ओर देख रहे थे कि कौन मोक्ष प्राप्त करने के लिए तैयार है। उन्होंने पाया कि ये दो मित्र प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं। अगले दिन वे अकेले श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने गए और उनमें से एक के घर के द्वार पर रुके। वह बाहर आया और गुरुजी का भिक्षापात्र लेकर उन्हें अंदर ले गया और बैठने के लिए आमंत्रित किया। गुरुजी बैठ गए और प्रेम भाव के लाभों का वर्णन किया। जब उन्होंने देखा कि उस व्यक्ति का मन तैयार है, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की। ऐसा होने पर, दूसरा व्यक्ति प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया। यह देखकर, गुरुजी ने उसे भिक्षापात्र ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया; फिर वे उठकर दूसरे के घर गए। दूसरा व्यक्ति बाहर आया और प्रणाम करने के बाद गुरुजी से अंदर आने का अनुरोध किया और उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित किया। उसने भी गुरुजी का भिक्षापात्र लिया और उनके साथ अंदर चला गया। गुरुजी ने उसे प्रेम भाव के ग्यारह आशीर्वादों का वर्णन किया; और यह देखकर कि उसका हृदय तैयार है, उन्होंने सत्यों की व्याख्या की। और ऐसा करने के बाद, वह भी प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया।

इस प्रकार दोनों का परिवर्तन हुआ; उन्होंने एक-दूसरे के सामने अपनी गलतियों को स्वीकार किया और क्षमा मांगी; शांति और सद्भाव से वे एक हो गए। उसी दिन उन्होंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में एक साथ भोजन किया।

भोजन समाप्त होने पर गुरुजी मठ लौट आए। वे दोनों उनके साथ फूलों, सुगंधों, घी, शहद और चीनी का एक अनमोल उपहार लेकर लौटे। भिक्षुओं के समक्ष कर्तव्य का उपदेश देने और बुद्ध की शिक्षा का प्रचार करने के बाद गुरुजी अपने सुगंधित कक्ष में चले गए।

अगली सुबह, भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस मामले पर चर्चा की। एक भिक्षु दूसरे से कहता, "मित्र, हमारे गुरु अजेय को भी वश में कर लेते हैं।"

"देखो, ये दो महान व्यक्ति, जो इतने समय से आपस में झगड़ रहे थे और राजा, उनके मित्र और परिवार भी उन्हें सुलह नहीं करा पाए थे, और गुरु ने उन्हें एक ही दिन में विनम्र कर दिया!" गुरु अंदर आए, "तुम लोग यहाँ बैठे-बैठे क्या बात कर रहे हो?" उन्होंने पूछा। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि मैंने इन दोनों को सुलह कराई है; बीते युगों में भी मैंने इन्हीं दो व्यक्तियों को सुलह कराई थी।" और उन्होंने पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बनारस में एक उत्सव मनाने के लिए बहुत सारे लोग एकत्रित हुए। मनुष्य, देवता, सर्प और गरुल (*1) की भीड़ उस सभा को देखने के लिए इकट्ठा हुई।

एक जगह पर एक सर्प और एक गरुला एक साथ सारी गतिविधियाँ देख रहे थे। सर्प को यह पता नहीं था कि उसके बगल में एक गरुला है, इसलिए उसने अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया। जब गरुला ने मुड़कर देखा कि किसके हाथ ने उसके कंधे पर हाथ रखा है, तो उसने सर्प को देखा। सर्प ने भी देखा और पाया कि यह एक गरुला है; और डर के मारे वह नदी के ऊपर उड़ गया। गरुला ने उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा किया।

बोधिसत्व एक तपस्वी थे और नदी किनारे पत्तों की कुटिया में रहते थे। उस समय वे सूर्य की गर्मी से बचने के लिए गीला कपड़ा ओढ़कर अपने छाल के वस्त्र उतार रहे थे और नदी में स्नान कर रहे थे। सर्प ने सोचा, "मैं इस तपस्वी को अपनी जान बचाने का जरिया

बनाऊंगा।" अपना वास्तविक रूप त्यागकर, उन्होंने एक अनमोल रत्न का रूप धारण कर छाल के वस्त्र पर अपना सिर जमा लिया। गरुला उनका पीछा करते हुए देख लिया कि वे कहाँ गए हैं; परन्तु आदर के कारण उन्होंने वस्त्र को छुआ तक नहीं; इसलिए उन्होंने बोधिसत्व से इस प्रकार कहा:

"महोदय, मुझे भूख लगी है। अपने छाल के वस्त्र को देखिए, उसमें एक सर्प है जिसे मैं खाना चाहता हूँ।" और बात को स्पष्ट करने के लिए, उसने पहला छंद दोहराया:

"पत्थर के भीतर छिपा हुआ यह बेचारा साँप"
सुरक्षा के लिए उसने शरण ली है।
और फिर भी, आपकी पवित्रता के प्रति श्रद्धा में,
हालांकि मुझे भूख लगी है, फिर भी मैं कुछ नहीं खाऊंगा।
जल में खड़े-खड़े ही बोधिसत्व ने गरुला राजा की स्तुति में दूसरा श्लोक कहा:

ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) द्वारा संरक्षित, दीर्घायु हो, चाहे तुम्हारा पीछा किया जाए।
और आपको कभी भी दिव्य भोजन की कमी न हो।
मेरी पवित्रता के प्रति श्रद्धा में, ऐसा न करें
भूख लगने पर भी उसे मत खाओ।
इन शब्दों में बोधिसत्व ने जल में खड़े-खड़े अपनी स्वीकृति व्यक्त की। फिर वे जल से बाहर आए, अपना वस्त्र धारण किया और दोनों प्राणियों को अपने साथ अपने आश्रम ले गए; जहाँ उन्होंने प्रेम और करुणा के आशीर्वाद का अभ्यास किया जब तक कि दोनों एकमत नहीं हो गए। तब से वे शांति और सद्भाव में सुखपूर्वक साथ रहने लगे।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताते हुए कहा, "उन दिनों, दो महान व्यक्तित्व सर्प और गरुला थे, और मैं स्वयं एक संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1) एक पौराणिक पक्षी, जिसे हम देखते हैं कि वह मानव रूप धारण करने में सक्षम है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गग्गा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-155-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 155
गग्गा-जातक

"गग्गा, सौ वर्ष जियो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने तब सुनाई थी जब वे जेतवन मठ के सामने राजा पसेनादि (प्रसेनजित) द्वारा निर्मित मठ में ठहरे हुए थे; यह कहानी उनके द्वारा मारी गई एक छींक के बारे में थी।

एक दिन, जैसा कि हमें बताया जाता है, जब गुरु अपने चारों ओर चार लोगों के साथ उपदेश दे रहे थे, तभी उन्हें छींक आ गई। "भगवान बुद्ध की जय हो, बुद्ध की जय हो!" सभी भिक्षुओं ने जोर से चिल्लाकर शोर मचा दिया।

शोरगुल से प्रवचन बाधित हो गया। तब गुरु ने भिक्षुओं से कहा, "भाइयों, छींक सुनकर 'दीर्घायु!' कहने से क्या मनुष्य का जीवन बदल जाता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, नहीं, महाराज।" गुरु ने आगे कहा, "भाइयों, छींक आने पर 'दीर्घायु!' मत कहो। जो भी ऐसा करेगा, वह नियम तोड़ने का दोषी होगा।"

कहा जाता है कि उस समय जब भिक्षु छींकते थे, तो लोग पुकारते थे, "आपकी आयु दीर्घायु हो, महोदय!" लेकिन भिक्षु झिझकते थे और कोई उत्तर नहीं देते थे। सभी लोग नाराज़ हो गए और पूछने लगे, "अरे, ऐसा क्यों है कि शाक्य वंश के राजकुमार बुद्ध के आसपास के भिक्षु छींकने पर कोई उत्तर नहीं देते, जबकि कोई न कोई उन्हें दीर्घायु की शुभकामना देता है?"

यह सब बातें भगवान बुद्ध को बताई गईं। उन्होंने कहा, "भाइयों, आम लोग अंधविश्वासी होते हैं। जब आप छींकते हैं और लोग कहते हैं, 'आपकी आयु लंबी हो, महाराज!' तो आप भी उत्तर दे सकते हैं, 'आपकी भी आयु लंबी हो'।" तब भाइयों ने उनसे पूछा, "हे महाराज, लोग 'आयु लंबी हो' का उत्तर 'आपकी भी आयु लंबी हो' कब से देने लगे?" गुरु ने कहा, "बहुत समय पहले की बात है;" और उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व काशी राज्य के एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में इस संसार में आए; उनके पिता पेशे से वकील थे। जब बालक लगभग सोलह वर्ष का था, तब उसके पिता ने उसे एक अनमोल रत्न सौंप दिया, और वे दोनों एक के बाद एक नगर-गाँव घूमते हुए बनारस पहुँचे। वहाँ उन्होंने द्वारपाल के घर में भोजन किया; और जब उन्हें रहने के लिए कोई जगह नहीं मिली, तो उन्होंने पूछा कि देर से आने वाले यात्रियों के लिए ठहरने की जगह कहाँ है? लोगों ने उन्हें बताया कि शहर के बाहर एक इमारत है, लेकिन वह भूतिया है; फिर भी यदि वे चाहें तो वहाँ ठहर सकते हैं। बालक ने अपने पिता से कहा, "पिताजी, किसी भूत से मत डरिए! मैं उसे वश में कर लूँगा और आपके चरणों में ले आऊँगा।" इस प्रकार उन्होंने अपने पिता को मना लिया, और वे दोनों साथ में उस स्थान पर गए।

पिता एक बेंच पर लेट गए और उनका बेटा उनके बगल में बैठकर उनके पैर छूने लगा।

उस स्थान पर विचरण करने वाले जिन्न को वेसवना (*1) की बारह वर्षों की सेवा के बदले यह स्थान प्राप्त हुआ था, इस शर्त पर कि यदि कोई व्यक्ति जो उसमें प्रवेश करे, छींक दे और उसे दीर्घायु की कामना की जाए, तो वह उत्तर दे, "आपको दीर्घायु हो!" या "आपको भी!" - इन दोनों को छोड़कर बाकी सभी बातें जिन्न को खाने का अधिकार था। जिन्न झोपड़ी के केंद्रीय शहतीर पर रहता था।

उसने बोधिसत्व के पिता को छींक दिलाने का निश्चय किया। तदनुसार, उसने अपनी जादुई शक्ति से बारीक धूल का एक बादल उठाया, जो उस व्यक्ति की नाक में घुस गया; और जब वह बेंच पर लेटा हुआ था, तो उसे छींक आ गई। पुत्र ने "दीर्घायु!" नहीं कहा और जिन्न अपने ठिकाने से नीचे उतर आया, अपने शिकार को खाने के लिए तैयार। लेकिन बोधिसत्व ने उसे नीचे उतरते देखा, और तब उनके मन में ये विचार आए। "निस्संदेह यही वह जिन्न है जिसने मेरे पिता को छींक दिलाई। यह अवश्य ही वह जिन्न है जो उन सभी को खा जाता है जो 'तुम्हें दीर्घायु हो' नहीं कहते।" और अपने पिता को संबोधित करते हुए, उन्होंने पहला श्लोक इस प्रकार दोहराया:-

"गग्गा, सौ साल जियो, हाँ, और बीस साल और जियो, मैं प्रार्थना करता हूँ!"
"कोई जिन्न तुम्हें खा न जाए; मेरी शुभकामना है, तुम सौ साल जियो!"

गोब्लिन ने सोचा, "मैं इसे नहीं खा सकता, क्योंकि इसने 'आपकी आयु लंबी हो' कहा है। लेकिन मैं इसके पिता को खाऊंगा;" और वह पिता के पास पहुंचा। लेकिन उस व्यक्ति ने मामले की सच्चाई को भांप लिया—"यह अवश्य ही एक गोब्लिन है," उसने सोचा, "जो उन सभी को खा जाता है जो जवाब में 'आपकी आयु लंबी हो' नहीं कहते!" और इसलिए अपने बेटे को संबोधित करते हुए, उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"तुम भी सौ साल जियो, हाँ, और बीस साल और, मैं पूछता हूँ;"
राक्षसों का भोजन जहर हो; मैं कहता हूँ, सौ साल जियो!

ये शब्द सुनकर गोब्लिन मुँह फेरकर सोचने लगा, "इनमें से कोई भी मेरे खाने के लिए नहीं है।" लेकिन बोधिसत्व ने उससे एक प्रश्न पूछा: "आओ, गोब्लिन, तुम इस भवन में प्रवेश करने वाले लोगों को कैसे खाते हो?"

"मैंने वेसवाना की बारह वर्षों की सेवा के लिए यह अधिकार अर्जित किया।"

"क्या, तुम्हें सबको खाने की इजाजत है?"

"उन सभी को छोड़कर जो किसी दूसरे के दीर्घायु की कामना करने पर 'आपको भी यही' कहते हैं।"

"गोब्लिन," लड़के ने कहा, "तुमने पिछले जन्मों में कुछ दुष्टताएँ की हैं, जिनके कारण तुम अब क्रूर, निर्दयी और दूसरों के लिए कमजोरी बनकर पैदा हुए हो। यदि तुम अब भी वही काम करोगे, तो अंधकार से अंधकार में ही गिरते जाओगे। इसलिए अब से किसी की जान

लेना छोड़ दो।" इन शब्दों से उसने गोब्लिन को विनम्र बनाया, उसे नरक के भय से भयभीत किया, उसे पाँच नियमों में स्थापित किया और उसे एक नौकर की तरह आज्ञाकारी बना दिया।

अगले दिन जब लोग आए और उन्होंने उस जिन्न को देखा और जाना कि बोधिसत्व ने उसे वश में कर लिया है, तो वे राजा के पास गए और कहा, "महाराज, किसी ने जिन्न को वश में कर लिया है और उसे नौकर की तरह आज्ञाकारी बना दिया है!" तब राजा ने उसे बुलवाया और उसे सेनापति बना दिया; साथ ही उसने पिता का भी खूब सम्मान किया। जिन्न को कर वसूलने वाला बनाकर और उसे बोधिसत्व के नियमों में स्थापित करके, दान-पुण्य और अच्छे कर्म करने के बाद वह स्वर्ग चला गया।

जब गुरु ने यह कहानी समाप्त की, जो उन्होंने 'दीर्घायु' के उत्तर में 'आपको भी दीर्घायु' कहने की प्रथा के उद्भव को समझाने के लिए सुनाई थी, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों, आनंद राजा थे, कश्यप पिता थे, और मैं स्वयं उनका बालक पुत्र था।"

फुटनोट:

(1) सफेद त्वचा, तीन पैर और आठ दांतों वाला एक राक्षस, रत्नों और कीमती धातुओं का रक्षक।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अलीनाचित्त-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-156-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 156
अलीनाचित्त-जातक

"एक समय की बात है, राजकुमार विनहार्ट," इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक दुर्बल भिक्षु के बारे में सुनाई थी। ग्यारहवें खंड (*1) में संवर जन्म के वर्णन में इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। जब गुरु ने उस भिक्षु से पूछा कि क्या वह सचमुच दुर्बल है, जैसा कि कहा जाता है, तो उसने उत्तर दिया, "जी, भगवान बुद्ध।" इस पर गुरु ने कहा, "क्या, भाई! पुराने समय में तुमने बनारस राज्य पर, जो बारह मील (4.23 किमी) तक फैला था, विजय प्राप्त की और उसे एक शिशु को, जो मांस के लोथ के समान था, सौंप दिया, और यह सब केवल निरंतर साधना से ही संभव हुआ! और अब जब तुमने इस महान मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त कर लिया है, तो क्या तुम हिम्मत हारकर विरक्त हो जाओगे?" और उन्होंने पुराने समय की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब शहर से कुछ ही दूरी पर बढ़ईयों का एक गाँव था, जिसमें पाँच सौ बढ़ई रहते थे। वे नाव में बैठकर नदी के ऊपर जंगल में जाते थे, जहाँ वे घर बनाने के लिए शहतीर और तख्ते तराशते थे और एक या दो मंजिला मकानों का ढाँचा तैयार करते थे। वे मुख्य खंभे से आगे के सभी टुकड़ों को गिनते थे; फिर उन्हें नदी के किनारे लाकर नाव में रखते थे; इसके बाद नाव से नदी के साथ-साथ वापस आते और आवश्यकतानुसार मकान बनाते थे; फिर जब उन्हें उनकी मजदूरी मिल जाती, तो वे निर्माण के लिए और सामग्री लाने के लिए वापस जाते और इस तरह अपनी आजीविका चलाते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि एक जगह जहाँ लकड़ी तराशने का काम चल रहा था, वहाँ एक हाथी बबूल की लकड़ी के एक टुकड़े पर चल पड़ा, जो उसके पैर में चुभ गया। इससे उसका पैर सूज गया और उसमें से मवाद निकलने लगा, जिससे उसे बहुत दर्द हुआ। दर्द से कराहते हुए उसने बढ़ईयों के लकड़ी काटने की आवाज़ सुनी। उसने सोचा, "कोई बढ़ई तो मेरा इलाज कर देगा।" और तीन पैरों पर लंगड़ाते हुए वह उनके सामने गया और पास ही लेट गया। बढ़ईयों ने उसके सूजे हुए पैर को देखकर पास जाकर देखा; उसमें लकड़ी का टुकड़ा फंसा हुआ था। उन्होंने एक तेज़ औज़ार से टुकड़े के चारों ओर चीरा लगाया और उसमें एक रस्सी बांधकर उसे बाहर निकाल दिया। फिर उन्होंने घाव को चीरा लगाकर गर्म पानी से धोया और उसका इलाज किया; और बहुत कम समय में घाव ठीक हो गया।

इस इलाज के लिए आभारी होकर हाथी ने सोचा: "इन बढ़ईयों की मदद से मेरी जान बच गई; अब मुझे इनके लिए कुछ उपयोगी करना चाहिए।" इसलिए, उसके बाद से वह उनके लिए पेड़ उखाड़ता था, या जब वे पेड़ काटते थे तो वह लट्ठों को लपेटकर लाता था; या उनके

लिए कुल्हाड़ी और अन्य औजार लाता था, सब कुछ अपनी सूंड में इस तरह दबाए रखता था जैसे कोई मरणासन्न हो। और जब बढ़ईयों को उसे खाना खिलाना होता था, तो वे उसे बारी-बारी से खाना देते थे, इस तरह कुल मिलाकर उसके पास पाँच सौ हिस्से हो जाते थे।

इस हाथी का एक बच्चा था, जो पूरी तरह सफेद, भव्य और उच्च कोटि का प्राणी था। हाथी ने सोचा कि अब वह बूढ़ा हो गया है, और बेहतर होगा कि वह अपने बच्चे को बढ़ईयों के काम में लगा दे और खुद आज़ाद हो जाए। इसलिए वह बढ़ईयों से बिना कुछ कहे जंगल में चला गया और अपने बेटे को उनके पास लाकर बोला, "यह छोटा हाथी मेरा बेटा है। तुमने मेरी जान बचाई है, और मैं इसे तुम्हारे काम के बदले तुम्हें देता हूँ; अब से यह तुम्हारे लिए काम करेगा।" उसने छोटे हाथी को समझाया कि उसका कर्तव्य वही काम करना है जो वह खुद करता आया है, और फिर उसे बढ़ईयों के पास छोड़कर जंगल में चला गया। उसके बाद से छोटा हाथी ईमानदारी और आज्ञाकारिता से उनका सारा काम करता रहा; और वे उसे भी, बाकी हाथियों की तरह, एक बार के भोजन में पाँच सौ भाग खिलाते थे।

अपना काम खत्म करने के बाद हाथी नदी में खेलने चला जाता और फिर लौट आता। बढ़ई के बच्चे उसे सूंड से खींचते और पानी में और पानी के बाहर उसके साथ तरह-तरह की शरारतें करते थे। वैसे तो हाथी, घोड़े या मनुष्य जैसे श्रेष्ठ प्राणी कभी पानी में गोबर या मल त्याग नहीं करते। इसलिए यह हाथी भी पानी में रहते हुए ऐसा कुछ नहीं करता था, बल्कि किनारे पर आने तक इंतजार करता था।

एक दिन, नदी के ऊपरी हिस्से में भारी बारिश हुई; और बाढ़ के साथ उसका आधा सूखा गोबर का टुकड़ा नदी में बह गया। यह बहता हुआ बनारस घाट तक पहुँचा, जहाँ यह एक झाड़ी में अटक गया। उसी समय राजा के हाथी पालक पाँच सौ हाथियों को नहलाने के लिए लाए थे। लेकिन हाथियों को उस पवित्र जानवर की मिट्टी की गंध आ गई, और एक भी हाथी पानी में नहीं उतरा; उनकी पूंछें ऊपर उठीं और वे सब भाग गए। पालकों ने यह बात हाथी प्रशिक्षकों को बताई; जिन्होंने कहा, "ज़रूर पानी में कुछ गड़बड़ है।" इसलिए पानी को शुद्ध करने का आदेश दिया गया; और झाड़ियों में यह टुकड़ा दिखाई दिया। "यही तो बात है!" वे चिल्लाए। तो वे एक घड़ा लाए, और उसे पानी से भर दिया; फिर उसमें गोबर का चूरा डालकर, उन्होंने पानी हाथियों पर छिड़का, जिससे उनके शरीर से सुगंध निकलने लगी। वे तुरंत नदी में उतर गए और नहाने लगे।

जब प्रशिक्षकों ने राजा को अपनी रिपोर्ट सौंपी, तो उन्होंने राजा को हाथी को अपने उपयोग और लाभ के लिए सुरक्षित रखने की सलाह दी। राजा तदनुसार एक बेड़ा पर सवार हुए और नदी के विपरीत दिशा में तब तक आगे बढ़ते रहे जब तक कि वे उस स्थान पर नहीं पहुँच गए जहाँ बढ़ई डेरा डाले हुए थे। युवा हाथी ने पानी में ढोल बजाते हुए ढोल की आवाज़ सुनी और बाहर आकर बढ़इयों के सामने उपस्थित हो गया, जो सभी राजा के आगमन का सम्मान करने के लिए आए थे, और उनसे कहा, "महाराज, यदि लकड़ी का काम चाहिए, तो यहाँ आने की क्या आवश्यकता है? क्यों न इसे मंगवा लिया जाए?"

"नहीं, नहीं, मेरे प्यारे दोस्तों," राजा ने उत्तर दिया, "मैं लकड़ी के लिए नहीं, बल्कि इस हाथी के लिए आया हूँ।"

"यह आपका है, महाराज!" - लेकिन हाथी टस से मस नहीं हुआ।

"हे हाथी, तुम मुझसे क्या करवाना चाहते हो?" राजा ने पूछा।

"महाराज, बढ़ईयों को मेरे ऊपर खर्च किए गए पैसे का भुगतान करने का आदेश दीजिए।"

"खुशी से, मित्र।" राजा ने आदेश दिया कि हाथी की पूंछ, सूंड और चारों पैरों के पास एक लाख सिक्के रखे जाएं। लेकिन यह भी हाथी के लिए काफी नहीं था; वह जाने को तैयार नहीं था। इसलिए हर बढ़ई को एक जोड़ी कपड़े और उनकी पत्नियों को पहनने के लिए वस्त्र दिए गए, और साथ ही इतना पैसा भी दिया गया जिससे उसके साथी बच्चों का पालन-पोषण हो सके; फिर बढ़इयों, स्त्रियों और बच्चों पर आखिरी नजर डालकर वह राजा के साथ चला गया।

राजा उसे अपनी राजधानी ले आया; और शहर और अस्तबल को पूरी शान-शौकत से सजाया गया। उसने हाथी को जुलूस के साथ शहर में घुमाया और वहाँ से अपने अस्तबल में ले गया, जो वैभव और शान से सजा हुआ था। वहाँ उसने विधिपूर्वक हाथी पर जल छिड़का और उसे अपनी सवारी के लिए नियुक्त किया; उसने उसके साथ एक साथी जैसा व्यवहार किया और उसे अपने राज्य का आधा हिस्सा दे दिया, और उसकी उतनी ही देखभाल की जितनी अपनी स्वयं की। इस हाथी के आने के बाद, राजा ने पूरे भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

कुछ समय बाद बोधिसत्व रानी की पत्नी के गर्भ में आ गए; और जब उनके प्रसव का समय निकट आया, तो राजा की मृत्यु हो गई। यदि हाथी को राजा की मृत्यु का समाचार मिलता, तो उसका हृदय टूट जाता; इसलिए पहले की तरह ही उसकी सेवा की गई और उससे एक शब्द भी नहीं कहा गया। परन्तु पड़ोसी, कोसल के राजा को राजा की मृत्यु का समाचार मिला। उसने सोचा, “अब तो यह राज्य मेरे अधीन है”; और एक विशाल सेना के साथ नगर की ओर अग्रसर हुआ और उसे घेर लिया। तुरंत ही द्वार बंद कर दिए गए और कोसल

के राजा को संदेश भेजा गया: “हमारी रानी का प्रसव निकट है; और ज्योतिषियों ने कहा है कि सात दिनों में वह पुत्र को जन्म देंगी। यदि पुत्र को जन्म होता है, तो हम राज्य नहीं छोड़ेंगे, परन्तु सातवें दिन हम आपसे युद्ध करेंगे। आपसे निवेदन है कि तब तक प्रतीक्षा करें!” और राजा इस पर सहमत हो गया।

सात दिनों के भीतर रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसके नामकरण दिवस पर उसका नाम प्रिंस विनहार्ट रखा गया, क्योंकि लोगों का मानना था कि वह जनता का दिल जीतने के लिए पैदा हुआ था।

जिस दिन उनका जन्म हुआ, उसी दिन नगरवासियों ने कोसल के राजा से युद्ध करना शुरू कर दिया। लेकिन उनका कोई नेता न होने के कारण, उनकी विशाल सेना धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगी। दरबारियों ने यह खबर रानी को सुनाई और कहा, "चूंकि हमारी सेना इस तरह पिछड़ रही है, हमें हार का डर है। लेकिन राजसी हाथी, जो हमारे राजा का प्रिय मित्र है, उसे यह नहीं बताया गया है कि राजा की मृत्यु हो गई है, उनका एक पुत्र जन्मा है, और कोसल का राजा हमसे युद्ध करने आया है। क्या हम उसे यह बात बता दें?"

“जी हां, ऐसा ही करो,” रानी ने कहा। फिर उसने अपने बेटे को कपड़े पहनाए और उसे एक बढ़िया सूती कपड़े में लपेट दिया; इसके बाद वह अपने पूरे दरबार के साथ महल से नीचे उतरी और हाथी के अस्तबल में गई। वहां उसने बच्चे को हाथी के चरणों में रखते हुए कहा, “महाराज, आपका साथी मर गया है, लेकिन हमने आपको बताने से डरते हुए कहा कि कहीं आपका दिल न टूट जाए। यह आपके साथी का बेटा है; कोसल के राजा ने शहर के चारों ओर घेरा बना लिया है और आपके बेटे पर हमला कर रहा है; सेना हार रही है; या तो आप स्वयं अपने बेटे को मार डालें, या उसके लिए राज्य वापस जीत लें!”

हाथी ने तुरंत अपनी सूंड से बच्चे को सहलाया और उसे अपने सिर पर उठा लिया; फिर विलाप करते और रोते हुए उसने उसे जल्दी से नीचे उतारा और उसकी माँ की बाहों में लिटा दिया, और ये कहते हुए—"मैं कोसल के राजा पर विजय प्राप्त करूँगा!" वह तेजी से आगे बढ़ गया।

तब दरबारियों ने उसे कवच और काठी पहनाई, नगर द्वार खोला और उसे वहाँ ले गए। हाथी ने तुरही बजाई और सारी सेना को इतना डरा दिया कि वे भाग गए और अपना शिविर तितर-बितर कर दिया; फिर उसने कोसल के राजा को उसकी चोटी से पकड़कर युवा राजकुमार के पास ले जाकर उसके चरणों में गिरा दिया। कुछ लोग उसे मारने के लिए उठे, लेकिन हाथी ने उन्हें रोक दिया; और उसने बंदी राजा को यह सलाह देकर जाने दिया: "भविष्य के लिए सावधान रहना, और हमारे राजकुमार की युवावस्था पर अत्यधिक आत्मविश्वास न रखना।"

उसके बाद, पूरे भारत की सत्ता बोधिसत्व के हाथों में आ गई और कोई भी प्रतिद्वंद्वी उनके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सका। सात वर्ष की आयु में बोधिसत्व को राजा विनहार्ट नियुक्त किया गया; उनका शासनकाल न्यायपूर्ण था और जीवन के अंत में वे स्वर्ग सिधार गए।

जब गुरु ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने इन दो श्लोकों को दोहराया:-

"राजकुमार विनहार्ट राजा कोसला से नाराज होकर उनके पास मौजूद सभी चीजों के साथ उन पर कब्जा कर लिया।"
लालची राजा को बंदी बनाकर उसने अपनी प्रजा को प्रसन्न किया।
इसलिए कोई भी भाई (भिक्षु), दृढ़ इच्छाशक्ति वाला, जो शरण लेता है,
जो सभी अच्छाइयों को महत्व देता है और निर्वाण के मार्ग पर चलता है,
धीरे-धीरे सभी बंधनों (पापों/लालसाओं) का नाश हो जाएगा।
और इस प्रकार, गुरु ने अपने उपदेश को शाश्वत निर्वाण में समाप्त करते हुए, सत्यों का उपदेश दिया और फिर जन्म का वर्णन किया: सत्यों के बाद, इस पथभ्रष्ट भाई को संतत्व प्राप्त हुआ: - "महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) तब माता थीं; यह पथभ्रष्ट वह हाथी था जिसने राज्य को ग्रहण करके बच्चे को सौंप दिया; सारिपुत्र पिता हाथी थे, और मैं स्वयं युवा राजकुमार था।"

फुटनोट:

(1)सं. 462.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गुण-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-157-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 157
गुण-जातक

"बलवानों की ही जीत होती है," इत्यादि — यह वर्णन गुरु ने जेतवन मठ में किया था, जहाँ वरिष्ठ भिक्षु आनंद को एक हजार वस्त्रों का उपहार मिला था। वरिष्ठ भिक्षु कोसल के राजा के महल की महिलाओं को उपदेश दे रहे थे, जैसा कि महासार जन्म (*1) में वर्णित है।

जब उन्होंने वहाँ वर्णित तरीके से उपदेश दिया, तो राजा के लिए एक हजार वस्त्र लाए गए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक हजार सिक्के थी। इनमें से राजा ने पाँच सौ वस्त्र अपनी पाँच सौ रानियों को दे दिए। रानियों ने इन्हें अलग रख दिया और हमारे वरिष्ठ भिक्षु को भेंट कर दिया, और फिर अगले दिन अपने पुराने वस्त्रों में उस महल में गईं जहाँ राजा नाश्ता कर रहे थे। राजा ने कहा, "मैंने तुम्हें एक हजार सिक्के कीमत के वस्त्र दिए थे। तुम उन्हें क्यों नहीं पहन रही हो?" उन्होंने कहा, "महाराज, हमने उन्हें वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया है।" राजा ने पूछा, "क्या वरिष्ठ भिक्षु आनंद को वे सभी मिल गए हैं?" उन्होंने कहा, हाँ, उन्हें मिल गए हैं। राजा ने कहा, "परम बुद्ध केवल तीन वस्त्रों की अनुमति देते हैं। मुझे लगता है कि आनंद वस्त्रों का थोड़ा-बहुत व्यापार कर रहे हैं!" राजा वरिष्ठ भिक्षु से क्रोधित हो गए; और नाश्ते के बाद, उनकी कुटिया में उनसे मिलने गए, और अभिवादन करने के बाद, इन शब्दों के साथ बैठ गए:-

मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, महोदय, क्या मेरी महिलाएं आपके उपदेशों को सुनती हैं या उनसे सीखती हैं?

"जी महाराज; वे वही सीखते हैं जो उन्हें सीखना चाहिए, और जो उन्हें सुनना चाहिए, वे सुनते हैं।"

"ओह, बिल्कुल। क्या वे सिर्फ सुनते ही नहीं, या फिर वे आपको ऊपरी या भीतरी वस्त्र उपहार में भी देते हैं?"

"आज, महाराज, उन्होंने मुझे एक हजार पीस मूल्य के पांच सौ वस्त्र दिए हैं।"

"और आपने उन्हें स्वीकार कर लिया, महोदय?"

"जी हां, महाराज, मैंने किया।"

"महाराज, गुरुजी ने तीन वस्त्रों के बारे में कोई नियम क्यों नहीं बनाया?"

"जी हां, महाराज, प्रत्येक भिक्षु के लिए तीन वस्त्र रखना नियम है, यह उनके स्वयं के उपयोग के लिए है। लेकिन किसी को भी भेंट स्वीकार करने से मना नहीं किया गया है; और इसीलिए मैंने इन्हें लिया है - ताकि मैं इन्हें उन भिक्षुओं को दे सकूं जिनके वस्त्र पुराने हो गए हैं।"

"लेकिन जब ये भाई आपसे ये चीजें ले लेते हैं, तो वे अपनी पुरानी चीजों का क्या करते हैं?"

"इन्हें एक लबादे में बदल दो।"

और उस पुराने लबादे का क्या हुआ?

"कि वे एक शर्ट में बदल जाएं।"

और वो पुरानी कमीज़...?

"यह चादर का काम चलाऊ है।"

"पुरानी चादर?" - "चटाई बन जाती है।" "पुरानी चटाई?" - "तौलिया बन जाती है।" "और पुराने तौलिये का क्या?"

"महाराज, विश्वासियों के दान को व्यर्थ करना उचित नहीं है; इसलिए वे पुराने तौलिये को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट देते हैं और उन टुकड़ों को मिट्टी में मिलाते हैं, जिसका उपयोग वे अपने घरों के निर्माण में गारे के रूप में करते हैं।"

"महोदय, उपहार को नष्ट नहीं किया जाना चाहिए, यहां तक कि एक तौलिया भी नहीं।"

"जी हां, महाराज, हम कोई भी उपहार नष्ट नहीं करते, बल्कि सभी का किसी न किसी तरह से उपयोग किया जाता है।"

इस बातचीत से राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने शेष बचे पाँच सौ वस्त्र मंगवाए और उन्हें वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया। फिर, धन्यवाद ग्रहण करने के बाद, उसने वरिष्ठ भिक्षु का हार्दिक अभिवादन किया और अपने मार्ग पर चल पड़ा।

वरिष्ठ भिक्षु ने पहले पाँच सौ वस्त्र उन भिक्षुओं को दिए जिनके वस्त्र पुराने हो चुके थे। परन्तु उनके साथी भिक्षुओं की संख्या मात्र पाँच सौ थी। इनमें से एक युवा भिक्षु वरिष्ठ भिक्षु के लिए अत्यंत उपयोगी था; वह उनकी कुटिया की सफाई करता, उन्हें भोजन और पेय पदार्थ परोसता, मुँह धोने के लिए टूथब्रश और पानी देता, स्नानघर, बैठक और शयनकक्ष की देखभाल करता, और हाथ-पैर या पीठ से संबंधित सभी आवश्यक कार्य करता। उनकी इस महान सेवा के फलस्वरूप, वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें वे सभी पाँच सौ वस्त्र दे दिए जो उन्हें बाद में प्राप्त हुए थे। युवा भिक्षु ने उन्हें अपने साथी शिष्यों में बाँट दिया। उन सभी ने उन्हें काटकर कनिकारा (*2) फूल के समान पीले रंग में रंगा; फिर उन्हें पहनकर वे गुरु के पास गए, उनका अभिवादन किया और एक ओर बैठ गए। उन्होंने पूछा, “महोदय, क्या प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश कर चुके किसी पवित्र शिष्य के लिए अपने गुणों में पक्षपात करना संभव है?” "नहीं, भाइयों, पवित्र शिष्यों के लिए उपहार देते समय किसी का पक्षपात करना संभव नहीं है।" "महोदय, हमारे आध्यात्मिक गुरु, धर्म के कोषाध्यक्ष ने एक युवा भाई को पाँच सौ वस्त्र दिए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक हजार सिक्के थी; और उन्होंने इन्हें हम सब में बाँट दिया है।" "भाइयों, इन्हें देते समय आनंद ने किसी का पक्षपात नहीं किया। वह युवक एक बहुत ही उपयोगी सेवक था; इसलिए उन्होंने अपने सेवक को सेवा भाव से, भलाई के भाव से और अधिकारवश यह उपहार दिया, यह सोचकर कि एक अच्छा काम दूसरे अच्छे काम को जन्म देता है, और कृतज्ञता का भाव रखते हुए। पुराने समय में भी, और आज भी, बुद्धिमान लोग इस सिद्धांत पर चलते थे कि एक अच्छा काम दूसरे अच्छे काम को जन्म देता है।" और फिर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक सिंह के रूप में पहाड़ियों पर एक गुफा में रहते थे। एक दिन वे अपनी गुफा से बाहर निकले और पर्वत की तलहटी की ओर देखा। उस पर्वत की तलहटी के चारों ओर एक विशाल जलक्षेत्र फैला हुआ था। उस जलक्षेत्र से थोड़ी दूर पर घनी मिट्टी में मुलायम हरी घास उग रही थी, और उस मिट्टी पर खरगोश, हिरण और ऐसे ही छोटे जानवर घास चर रहे थे। उस दिन, हमेशा की तरह, एक हिरण उस पर घास चर रहा था।

"मैं उस हिरण को पकड़ लूँगा!" शेर ने सोचा; और शेर जैसी छलांग लगाकर वह पहाड़ी से उसकी ओर दौड़ा। लेकिन हिरण डर के मारे गरजते हुए भाग गया। शेर उसे रोक नहीं सका; वह कीचड़ में गिर पड़ा और धंस गया, जिससे वह बाहर नहीं निकल सका; और सात दिन तक वहीं पड़ा रहा, उसके पैर चार खंभों की तरह जमे हुए थे, उसे खाने के लिए एक निवाला भी नहीं मिला।

तभी एक सियार, जो भोजन की तलाश में था, संयोग से उसे देख बैठा; और डर के मारे भागने लगा। लेकिन शेर ने उसे पुकारा— "सीखिए, सियार, भागो मत—मैं यहाँ कीचड़ में फँस गया हूँ। कृपया मुझे बचाओ!" सियार उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "मैं आपको बाहर निकाल सकता हूँ, लेकिन मुझे डर है कि बाहर निकलने के बाद आप मुझे खा जाएँगे।" शेर ने कहा, "डरने की कोई बात नहीं, मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। बल्कि, मैं तुम्हारी बहुत मदद करूँगा; बस मुझे किसी तरह बाहर निकाल दो।"

सियार ने यह वादा मान लिया और अपने चारों पैरों के आसपास की कीचड़ को हटाते हुए, जिन गड्ढों में उसके पैर गड़े थे, उन्हें पानी की ओर और खोदा; फिर पानी अंदर आया और कीचड़ को नरम कर दिया। फिर वह शेर के नीचे घुस गया और बोला—"अब, महाराज, एक ज़ोरदार प्रयास कीजिए," और ज़ोर से आवाज़ करते हुए अपने सिर से शेर के पेट पर प्रहार किया। शेर ने अपनी पूरी ताकत लगाकर कीचड़ से बाहर निकला; वह सूखी ज़मीन पर खड़ा हो गया। एक पल आराम करने के बाद, वह झील में कूद गया और अपने ऊपर से कीचड़ को धोकर साफ किया। फिर उसने एक भैंसा मारा और अपने दाँतों से उसका मांस नोच डाला, जिसमें से कुछ उसने सियार को देते हुए कहा, "खाओ, साथी!" और सियार के खाने के बाद उसने भी खा लिया। इसके बाद, सियार ने एक टुकड़ा अपने मुँह में लिया। "यह किसलिए है?" शेर ने पूछा। "आपके विनम्र सेवक, मेरी साथी के लिए, जो घर पर मेरा इंतज़ार कर रही है।" "ठीक है," शेर ने कहा और अपनी साथी के लिए एक टुकड़ा ले लिया। “चलो, साथी,” उसने फिर कहा, “कुछ देर पहाड़ की चोटी पर रुकते हैं, फिर उस महिला के घर चलते हैं।” तो वे वहाँ गए, और शेर ने मादा सियार को खाना खिलाया; और जब दोनों का पेट भर गया, तो उसने कहा, “अब मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा।” तो वह उन्हें अपने घर ले गया, और उन्हें अपने घर के प्रवेश द्वार के पास एक गुफा में ठहरा दिया।

उसके बाद से, वह और सियार अपने साथियों को पीछे छोड़कर एक साथ शिकार पर जाया करते थे; वे तरह-तरह के जीवों को मारते, जी भर के खाते और फिर उनमें से कुछ अपने बाकी दो साथियों के लिए भी ले आते थे।

और समय बीतने के साथ, सियार और शेरनी दोनों ने दो-दो शावकों को जन्म दिया, और वे सभी खुशी-खुशी एक साथ रहने लगे।

एक दिन अचानक शेरनी के मन में एक विचार आया। "मेरा शेर सियार और उसकी मादा और बच्चों को बहुत पसंद करता है। कहीं उनके बीच कुछ गड़बड़ तो नहीं है! शायद यही वजह है कि वह उन्हें इतना पसंद करता है। चलो, मैं उसे परेशान करूंगी, डराऊंगी और उसे इस जगह से भगा दूंगी।"

जब शेर और सियार शिकार पर गए हुए थे, तो सियार ने सियार की साथी को परेशान किया और डराया, उससे पूछा कि वह यहाँ क्यों रुकी है, भाग क्यों नहीं जाती? उसके शावकों ने भी उसी तरह से छोटे सियारों को डराया। सियार ने अपने साथी को बताया कि क्या कहा गया था। उसने कहा, "यह स्पष्ट है कि शेर ने हमारे बारे में कुछ इशारा किया होगा। हम यहाँ बहुत समय से हैं; और अब वह हमारी जान ले लेगा। चलो हम वापस उसी जगह चलते हैं जहाँ हम पहले रहते थे!"

यह सुनकर सियार शेर के पास आकर बोला, "स्वामी, हम यहाँ बहुत देर से हैं। जो बहुत देर तक रुकते हैं, वे अपनी सीमा पार कर जाते हैं। जब हम दूर होते हैं, तो आपकी शेरनी किसी साथी को डांटती या डराती नहीं है, न ही उससे पूछती है कि वह क्यों रुकी है और न ही उसे जाने के लिए कहती है; आपके बच्चे भी मेरे बच्चों के साथ ऐसा ही करते हैं। अगर किसी को अपना पड़ोसी पसंद नहीं है, तो उसे बस उसे जाने के लिए कह देना चाहिए और उसे उसके काम पर भेज देना चाहिए; इस सब झंझट का क्या फायदा?" ऐसा कहकर उसने पहला श्लोक दोहराया:-

"बलवानों की हमेशा अपनी मनमानी होती है; ऐसा करना उनका स्वभाव है।"
 तुम्हारा साथी जोर से दहाड़ता है; और अब मैं कहता हूँ कि मुझे उस चीज़ से डर लगता है जिस पर मैंने कभी भरोसा किया था।"
शेर ने सुना; फिर अपनी शेरनी की ओर मुड़कर, "पत्नी," उसने कहा, "तुम्हें याद है कैसे एक बार मैं एक हफ्ते के लिए शिकार पर गया था, और फिर इस सियार और उसकी साथी को अपने साथ वापस लाया था?" "हाँ, मुझे याद है।" "अच्छा, क्या तुम जानते हो कि मैं उस पूरे हफ्ते क्यों दूर रहा?" "नहीं, महाराज।" "मेरी पत्नी, हिरण पकड़ने की कोशिश में, मुझसे गलती हो गई, और मैं कीचड़ में फंस गया; मैं वहीं फंसा रहा—क्योंकि मैं बाहर नहीं निकल सका—पूरे एक हफ्ते बिना भोजन के। मेरी जान इस सियार ने बचाई। मेरे इस दोस्त ने मेरी जान बचाई! संकट में साथ देने वाला ही सच्चा दोस्त होता है, चाहे वह बड़ा हो या छोटा। फिर कभी मेरे साथी, उसकी पत्नी या उसके परिवार का अपमान मत करना।" और फिर शेर ने दूसरा छंद दोहराया:-

"एक मित्र जो मित्रतापूर्ण भूमिका निभाता है, चाहे वह कितनी भी छोटी और कमजोर क्यों न हो,"
 वह मेरा रिश्तेदार और मेरा खून का रिश्ता है, एक दोस्त और साथी है;
 मेरे नुकीले दांतों वाले साथी, उससे घृणा मत करो! इस सियार ने मेरी जान नहीं बचाई।

जब शेरनी ने यह कहानी सुनी, तो उसने सियार की मादा से सुलह कर ली और तब से वह उसके और उसके बच्चों के साथ सौहार्दपूर्ण जीवन व्यतीत करती रही। दोनों जोड़ियों के बच्चे बचपन में साथ खेलते रहे और जब उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई, तो उन्होंने मित्रता का बंधन नहीं तोड़ा, बल्कि बड़ों की तरह ही खुशी-खुशी साथ रहने लगे। वास्तव में, यह मित्रता सात पीढ़ियों तक अटूट बनी रही।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:-(सत्यों के अंत में कुछ प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करते हैं, कुछ द्वितीय में, कुछ तृतीय में और कुछ चतुर्थ में:)--"उन दिनों आनंद सियार था, और मैं स्वयं सिंह था।"

फुटनोट:

(1)सं. 92.

(2) टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुहानु-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 158
सुहानु-जातक

"एक जैसे स्वभाव वाले पक्षी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए दो गुस्सैल भिक्षुओं के बारे में सुनाई थी।

एक बार दो भिक्षु थे, जो बेहद जोशीले, क्रूर और हिंसक स्वभाव के थे। एक जेतवन मठ में रहता था और दूसरा गाँव में। एक बार गाँव वाला भिक्षु किसी काम से जेतवन मठ आया। नौसिखिए और युवा भिक्षु उसके उग्र स्वभाव को जानते थे, इसलिए वे उसे दूसरे भिक्षु की कुटिया में ले गए, और उन दोनों को लड़ते देखने के लिए बहुत उत्सुक थे। जैसे ही उन दोनों गुस्सैल भिक्षुओं ने एक-दूसरे को देखा, वे एक-दूसरे की बाहों में दौड़ पड़े और एक-दूसरे के हाथों, पैरों और पीठ को सहलाने और प्यार करने लगे!

सत्य के हॉल में भाई इस बारे में बात कर रहे थे। "मित्रों, ये जोशीले भाई दूसरों के प्रति तो चिड़चिड़े, निर्दयी और क्रोधित रहते हैं, लेकिन आपस में वे सबसे अच्छे मित्र, सौहार्दपूर्ण और सहानुभूतिशील हैं!" गुरुजी अंदर आए और पूछने लगे कि वे यहाँ बैठकर किस बारे में बात कर रहे हैं? उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह एकमात्र ऐसा समय नहीं है जब इन लोगों ने, जो दूसरों के प्रति चिड़चिड़े, निर्दयी और क्रोधित रहते हैं, आपस में सौहार्दपूर्ण, मित्रवत और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार दिखाया है। पुराने समय में भी ऐसा ही हुआ था"; और ऐसा कहते हुए उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके सर्वांगीण दरबारी थे, जो उन्हें सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों पर सलाह देते थे। यह राजा स्वभाव से कुछ लालची था; और उसके पास महासोना नामक एक विशालकाय घोड़ा था।

उत्तर देश से कुछ अश्व व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर आए; और राजा को इन घोड़ों के आने की सूचना भेजी गई। पहले बोधिसत्व हमेशा व्यापारियों से कीमत तय करने को कहते थे और फिर पूरी कीमत चुका देते थे। लेकिन अब राजा उनसे नाराज़ होकर अपने दरबार के एक अन्य व्यक्ति को बुलाया और उससे कहा,

"दोस्त, आदमियों से उनकी कीमत पूछो; फिर बिग चेस्टनट को छोड़ दो ताकि वह उनके बीच जाए; उसे उन्हें काटने दो, और जब वे कमजोर और घायल हो जाएं तो आदमियों से अपनी कीमत कम करवा लो।"

"ज़रूर," उस आदमी ने कहा; और उसने वैसा ही किया।

व्यापारियों ने बड़े आक्रोश के साथ बोधिसत्व को बताया कि उस घोड़े ने क्या किया था।

"क्या तुम्हारे शहर में भी ऐसा ही कोई क्रूर व्यक्ति नहीं है?" बोधिसत्व ने पूछा। उन्होंने कहा, हाँ, वहाँ सुहानु नाम का एक क्रूर व्यक्ति था, जिसका अर्थ है बलवान जबड़ा, और वह बहुत ही हिंसक और बर्बर था। "अगली बार जब तुम आओ तो उसे अपने साथ लाना," बोधिसत्व ने कहा; और उन्होंने ऐसा करने का वादा किया।

अगली बार जब वे आए तो यह क्रूर घोड़ा भी उनके साथ आया। राजा ने जब घोड़ों के व्यापारियों के आने की खबर सुनी तो उसने घोड़ों को देखने के लिए अपनी खिड़की खोली और चेस्टनट को खुला छोड़ दिया। फिर जैसे ही व्यापारियों ने चेस्टनट को आते देखा, उन्होंने स्ट्रॉन्गजॉ को भी खुला छोड़ दिया। दोनों मिलते ही एक-दूसरे को चाटने लगे!

राजा ने बोधिसत्व से पूछा कि यह कैसे हुआ? राजा ने कहा, "मित्र, जब ये दोनों बदमाश घोड़े दूसरों से मिलते हैं, तो वे उग्र, हिंसक और क्रूर हो जाते हैं, उन्हें काटते हैं और बीमार कर देते हैं। लेकिन जब वे एक-दूसरे के साथ होते हैं—तो वे एक-दूसरे के पूरे शरीर को चाटते हुए खड़े रहते हैं! इसका क्या कारण है?" बोधिसत्व ने कहा, "इसका कारण यह है कि वे एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं, बल्कि स्वभाव और चरित्र में एक समान हैं।" और उन्होंने ये दो श्लोक दोहराए:

एक जैसे पक्षी एक साथ रहते हैं: चेस्टनट और स्ट्रॉन्गजॉ दोनों सहमत हैं:
  उद्देश्य और लक्ष्य दोनों में समानता है—मुझे कोई अंतर नजर नहीं आता।"
"दोनों ही क्रूर और हिंसक हैं; दोनों ही हमेशा अपनी रस्सी को काटते हैं;"
  इसलिए पाप का पाप से और दुर्गुण का दुर्गुण से एकरूपता अवश्य होनी चाहिए।"

फिर बोधिसत्व ने राजा को अत्यधिक धन-संपत्ति के लालच और दूसरों की संपत्ति लूटने से बचने की चेतावनी दी; और मूल्य निर्धारित करके उनसे उचित कीमत वसूल की। व्यापारियों को उचित मूल्य प्राप्त हुआ और वे संतुष्ट होकर चले गए; और राजा ने बोधिसत्व की शिक्षाओं का पालन करते हुए अंततः अपने कर्मों के फल के अनुसार ही मृत्यु को प्राप्त किया।

जब गुरु (बुद्ध) ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "वे दुष्ट भाई (भिक्षु) तब ये दो घोड़े थे, आनंद राजा थे, और मैं बुद्धिमान सलाहकार था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मोरा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-159-॥---->>>> अगला

जातक क्रमांक 159
मोरा-जातक

"देखो, वह आरोहित हो रहा है, सर्वज्ञानी राजा," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कुछ भिक्षु उसे गुरु के समक्ष लाए और उन्होंने पूछा, "क्या सच है, जैसा मैंने सुना है, कि तुम पथभ्रष्ट हो गए हो?" "जी हाँ।" "ऐसा क्या देखा है जिससे तुमने ऐसा किया?" "एक स्त्री को भव्य वस्त्रों में सजे हुए।" तब गुरु ने कहा, "यह आश्चर्य की बात नहीं है कि स्त्री जाति तुम जैसे पुरुष के मन को विचलित कर दे! यहाँ तक कि ज्ञानी पुरुष, जिन्होंने सात सौ वर्षों तक कोई पाप नहीं किया, एक स्त्री की आवाज सुनकर क्षण भर में पाप कर बैठते हैं; पवित्र भी अपवित्र हो जाते हैं; यहाँ तक कि सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करने वाले भी इस प्रकार अपमानित हो जाते हैं - अपवित्रों का क्या होगा!" और उन्होंने प्राचीन काल की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व ने मोर के रूप में इस संसार में जन्म लिया। जिस अंडे में वे थे, उसका छिलका कनिकारा कली के समान पीला था; और जब उन्होंने छिलका तोड़ा, तो वे सुनहरे मोर बन गए, जो सुंदर और आकर्षक थे, और उनके पंखों के नीचे सुंदर लाल धारियाँ थीं। अपने जीवन की रक्षा के लिए, वे तीन पर्वत श्रृंखलाओं को पार करते हुए चौथी श्रृंखला में दंडक में एक सुनहरी पहाड़ी के पठार पर बस गए। जब सूर्योदय हुआ, तो वे पहाड़ी पर बैठकर सूर्योदय देख रहे थे, तभी उन्होंने अपने आप को अपने ही भोजन स्थल में सुरक्षित रखने के लिए ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का मंत्र रचा, जो इस प्रकार शुरू होता है:-

"वहाँ वह उदय होता है, सर्वज्ञानी राजा,
वह अपनी सुनहरी रोशनी से सब कुछ रोशन कर देता है।
हे महिमामयी, मैं आपकी पूजा करता हूँ।
अपनी सुनहरी रोशनी से सब कुछ रोशन करते हुए,
मेरी रक्षा करना, मैं प्रार्थना करता हूँ।
आने वाले दिन के दौरान।"

इस श्लोक के अनुसार सूर्य की पूजा करने के बाद, वह दिवंगत बुद्धों और उनके सभी गुणों की पूजा में एक और श्लोक दोहराता है:

सभी संत, धर्मी, पवित्र परंपरा में ज्ञानी,
मैं इनका आदर करता हूँ और इनसे सहायता की याचना करता हूँ:
बुद्धिमानों को सर्वोपरि सम्मान, ज्ञान को ही सम्मान मिले।
स्वतंत्रता के लिए, और उन सभी चीजों के लिए जिन्हें स्वतंत्रता ने स्वतंत्र बनाया है।"

स्वयं को हानि से बचाने के लिए यह मंत्र जपते हुए, मोर भोजन करने चला गया।

दिन भर उड़ने के बाद, वह शाम को वापस आया और सूर्यास्त देखने के लिए पहाड़ी की चोटी पर बैठ गया; फिर ध्यान करते हुए, उसने अपनी रक्षा करने और बुराई को दूर रखने के लिए एक और मंत्र का उच्चारण किया, जो "वहाँ वह अस्त हो रहा है" से शुरू होता है:-

"वहाँ वह सर्वज्ञानी राजा विराजमान बैठता है,"
वह जो अपने सुनहरे प्रकाश से सब कुछ रोशन कर देता है।
हे महिमामयी, मैं आपकी पूजा करता हूँ।
अपनी सुनहरी रोशनी से सब कुछ रोशन कर दो।
रात भर, दिन भर की तरह,
मेरी रक्षा करना, मैं प्रार्थना करता हूँ।
सभी संत, धर्मी, पवित्र परंपरा में ज्ञानी,
मैं इनका आदर करता हूँ और इनसे सहायता की याचना करता हूँ:
बुद्धिमानों को सर्वोपरि सम्मान, ज्ञान को ही सम्मान मिले।
स्वतंत्रता के लिए, और उन सभी चीजों के लिए जिन्हें स्वतंत्रता ने स्वतंत्र बनाया है।"
स्वयं को हानि से बचाने के लिए यह मंत्र जपते हुए मोर सो गया।

बनारस के पास जंगली शिकारियों के एक गाँव में एक असभ्य व्यक्ति रहता था। हिमालय की पहाड़ियों में घूमते हुए उसने दंडक की सुनहरी पहाड़ी पर विराजमान बोधिसत्व को देखा और यह बात अपने बेटे को बताई।

एक दिन बनारस के राजा की पत्नियों में से एक, खेमा नाम की, ने स्वप्न में एक स्वर्णिम मोर को धार्मिक प्रवचन देते हुए देखा। उसने यह बात राजा को बताई और कहा कि वह स्वर्णिम मोर का प्रवचन सुनने के लिए व्याकुल है। राजा ने अपने दरबारियों से इसके बारे में पूछा; और दरबारियों ने कहा, "ब्राह्मणों को अवश्य पता होगा।" ब्राह्मणों ने कहा, "जी हाँ, स्वर्णिम मोर होते हैं।" जब उनसे पूछा गया, कहाँ? तो उन्होंने उत्तर दिया, "शिकारियों को अवश्य पता होगा।" राजा ने शिकारियों को बुलाया और उनसे पूछा। तब एक शिकारी ने उत्तर दिया, "हे महाराज, दंडक में एक स्वर्णिम पर्वत है; और वहाँ एक स्वर्णिम मोर रहता है।" "तो उसे यहाँ ले आओ—उसे मारो मत, बल्कि उसे जीवित ही ले आओ।"

शिकारी ने मोर के चारागाह में फंदे लगाए। लेकिन जब मोर ने फंदे पर पैर रखा, तब भी फंदा बंद नहीं हुआ। शिकारी ने सात साल तक कोशिश की, लेकिन उसे पकड़ नहीं सका; और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। और रानी खेमा भी अपनी इच्छा पूरी किए बिना ही मर गईं।

राजा क्रोधित थे क्योंकि उनकी रानी एक मोर के कारण मर गई थीं। उन्होंने एक सोने की थाली पर यह लिखवाया: "हिमालय पर्वतमाला में दंडक में एक सोने की पहाड़ी है। वहाँ एक सोने का मोर रहता है; और जो कोई भी उसका मांस खाता है, वह सदा युवा और अमर हो जाता है।" उन्होंने इसे एक ताबूत में बंद करवा दिया।

उनकी मृत्यु के बाद, अगले राजा ने यह शिलालेख पढ़ा और सोचा, "मैं सदा युवा और अमर हो जाऊँगा;" इसलिए उन्होंने एक और शिकारी को भेजा। पहले शिकारी की तरह, यह शिकारी भी मोर को पकड़ने में असफल रहा और खोज में मारा गया। इसी प्रकार राज्य पर लगातार छह राजाओं ने शासन किया।

फिर एक सातवाँ व्यक्ति आया, जिसने एक शिकारी को भी भेजा। शिकारी ने देखा कि जब सुनहरा मोर फंदे में फँसता था, तो वह रुकता नहीं था, और यह भी कि वह भोजन की तलाश में निकलने से पहले एक मंत्र पढ़ता था। वह मैदान में गया और एक मोरनी को पकड़ लिया, जिसे उसने ताली बजाने पर नाचने और उंगली के इशारे पर अपनी आवाज निकालने का प्रशिक्षण दिया। फिर, उसे अपने साथ लेकर, उसने फंदा लगाया और मोर के मंत्र पढ़ने से पहले ही सुबह-सुबह उसके खंभों को जमीन में गाड़ दिया। फिर उसने मोरनी से आवाज निकलवाई। यह अपरिचित आवाज—मादा की आवाज—ने मोर के मन में वासना जगा दी; अपना मंत्र पढ़े बिना ही वह उसकी ओर बढ़ा; और फंदे में फँस गया। फिर शिकारी ने उसे पकड़ा और बनारस के राजा के पास ले गया।

राजा मोर की सुंदरता देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके लिए आसन लगाने का आदेश दिया। उस आसन पर बैठकर बोधिसत्व ने पूछा, "हे राजा, आपने मुझे क्यों पकड़वाया?"

"क्योंकि कहते हैं कि जो भी तुम्हें खाता है, वह अमर हो जाता है और उसे शाश्वत यौवन प्राप्त होता है। इसलिए मैं तुम्हें खाकर शाश्वत यौवन और अमरता प्राप्त करना चाहता हूँ," राजा ने कहा।

"ठीक है—मान लीजिए कि जो भी मुझे खाएगा वह अमर हो जाएगा और शाश्वत यौवन प्राप्त करेगा। लेकिन इसका मतलब यह होगा कि मुझे मरना होगा!"

"बिल्कुल," राजा ने कहा।

"अच्छा—और अगर मैं मर जाऊं, तो मेरा मांस खाने वालों को अमरता कैसे दे सकता है?"

"तुम्हारा रंग सुनहरा है; इसलिए (ऐसा कहा जाता है) जो तुम्हारा मांस खाते हैं वे जवान हो जाते हैं और हमेशा के लिए जीवित रहते हैं (*1)।"

"महाराज," पक्षी ने उत्तर दिया, "मेरे सुनहरे रंग का एक बहुत अच्छा कारण है। बहुत समय पहले, मैंने इस शहर में रहते हुए पूरे विश्व पर अपना प्रभुत्व जमाया था; मैंने पंच आज्ञाओं का पालन किया और संसार के सभी लोगों को भी उनका पालन करने के लिए प्रेरित किया। इसी कारण मृत्यु के बाद मेरा पुनर्जन्म तैंतीस प्रधान देवदूतों के लोक में हुआ; मैंने वहाँ अपना जीवन व्यतीत किया, लेकिन अगले जन्म में किसी पाप के कारण मैं मोर बन गया; फिर भी, मैं सुनहरा इसलिए हुआ क्योंकि मैंने पहले पंच आज्ञाओं का पालन किया था।"

"क्या? अविश्वसनीय! आप एक शाही शासक हैं, जिन्होंने आज्ञाओं का पालन किया! उन्हीं के फल स्वरूप स्वर्ण-रंग के रूप में जन्मे! कृपया प्रमाण दीजिए!"

"मेरे पास एक है, महाराज।"

"यह क्या है?"

"महाराज, जब मैं सम्राट था, तब मैं रत्नजड़ित रथ पर सवार होकर हवा में विचरण किया करता था, जो अब शाही झील के पानी के नीचे धरती में दबा हुआ है। इसे झील के नीचे से खोदकर निकालिए, और यही मेरा प्रमाण होगा।"

राजा ने योजना को मंजूरी दे दी; उसने झील का पानी सूखवा दिया, रथ को खोदकर निकाला और बोधिसत्व पर विश्वास किया। तब बोधिसत्व ने उससे इस प्रकार कहा:

"हे महाराज, निर्वाण को छोड़कर, जो शाश्वत है, बाकी सभी चीजें सांसारिक स्वभाव की होने के कारण सारहीन, क्षणभंगुर और जीवन-मृत्यु के अधीन हैं।" इस विषय पर उपदेश देते हुए उन्होंने राजा को बोधिसत्वों का पालन करना सिखाया। राजा के हृदय में शांति का संचार हुआ; उन्होंने अपना राज्य बोधिसत्व को सौंप दिया और उनका आदर किया। बोधिसत्व ने दान लौटा दिया; और कुछ दिनों के प्रवास के बाद, वे आकाश में विलीन हो गए और दंडक पर्वत की सुनहरी पहाड़ी पर लौट आए, और विदाई के समय यह सलाह दी - "हे राजा, सावधान रहें!" राजा ने बोधिसत्व की सलाह का पालन किया; और दान-पुण्य और अच्छे कर्म करने के बाद, अपने कर्मों के फल के लिए परलोक विदा हो गए।

यह प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया:- अब सत्यों के बाद पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) संत बन गया:- "आनंद उन दिनों का राजा था, और मैं स्वयं स्वर्णिम मोर था।"

फुटनोट:

(1) शायद इसलिए कि वे तब तक जीवित रहने वाले हैं जब तक सोना रहता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विनीलक-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-160-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 160
विनीलाका-जातक

"जैसे वहाँ राजा घोड़े दौड़ा रहा हो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने वेलुवाना में अपने प्रवास के दौरान सुनाई थी, कि कैसे देवदत्त ने बुद्ध का अनुकरण किया।

दो प्रमुख शिष्य (*1) गयासिसा (*2) के दर्शन करने गए, जहाँ देवदत्त ने बुद्ध का अनुकरण किया और मारा गया; तब दोनों वरिष्ठ भिक्षु प्रवचन देने के बाद अपने-अपने शिष्यों को साथ लेकर लौट आए। वेलुवन पहुँचने पर गुरु ने उनसे पूछा कि देवदत्त ने उन्हें देखकर क्या किया था? उन्होंने कहा, "गुरुजी, उसने बुद्ध का अनुकरण किया और बुरी तरह नष्ट हो गया।" गुरु ने उत्तर दिया, "सारिपुत्र, ऐसा केवल अभी ही नहीं हुआ है कि देवदत्त ने मेरा अनुकरण करके गंभीर विनाश का सामना किया हो; पहले भी ऐसा ही हुआ था।" तब वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब विदेह अपने राज्य मिथिला में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनकी रानी पत्नी के पुत्र बने। समय के साथ वे बड़े हुए और तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की; और अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने उनका राज्य विरासत में प्राप्त किया।

उस समय, सुनहरे हंसों के एक राजा ने चारागाह में एक कौवे के साथ जोड़ी बनाई और उन्हें एक पुत्र हुआ। वह न तो अपने माता-पिता जैसा था, न ही अपने पिता जैसा। वह पूरी तरह से मंद नीले-काले रंग का था, इसलिए उन्होंने उसका नाम 'मंद' रख दिया। हंसों का राजा अक्सर अपने पुत्र से मिलने जाता था; उसके दो और पुत्र थे, जो उसी की तरह हंस थे। उन्होंने देखा कि वह अक्सर उन क्षेत्रों में जाता था जहाँ मनुष्य आते-जाते थे, और उन्होंने उससे इसका कारण पूछा। "मेरे पुत्रों," उसने कहा, "वहाँ मेरी एक साथी है, एक कौवा, और उसने मुझे एक पुत्र दिया है, जिसका नाम 'मंद' है। मैं उसी से मिलने जाता हूँ।" "वे कहाँ रहते हैं?" उन्होंने पूछा। "विदेह राज्य में मिथिला के पास एक ताड़ के पेड़ पर," उसने उस स्थान का वर्णन किया। "पिताजी," उन्होंने कहा, "जहाँ मनुष्य होते हैं, वहाँ भय और खतरा होता है। आपको वहाँ नहीं जाना चाहिए; हम जाकर उसे आपके पास लाते हैं।"

इसलिए उन्होंने एक छड़ी ली और उस पर डल को बिठा दिया; फिर अपनी चोंचों में दोनों सिरों को पकड़कर वे मिथिला शहर के ऊपर उड़ गए।

उस समय संयोगवश राजा विदेह चार दूधिया सफेद नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचे जा रहे एक भव्य रथ में बैठे शहर का विजय जुलूस निकाल रहे थे। डल ने उन्हें देखा और मन ही मन सोचा—"मुझमें और राजा विदेह में क्या अंतर है? वे चार सफेद घोड़ों द्वारा खींचे जा रहे रथ में शान से अपनी राजधानी का चक्कर लगा रहे हैं; और मैं दो हंसों द्वारा खींचे जा रहे वाहन में बैठा हूँ।" इसलिए हवा में उड़ते हुए उन्होंने पहली पंक्ति दोहराई:

"वहाँ राजा अपने दूधिया सफेद चार घोड़ों के साथ सरपट दौड़ रहा है,
डल के पास ये दो हंस हैं, जो उसे ज़मीन पर ले जाएंगे!
इन शब्दों से हंस क्रोधित हो गए। उनका पहला विचार था, "चलो इसे यहीं छोड़ देते हैं!" लेकिन फिर उन्होंने सोचा—"हमारे पिता क्या कहेंगे!" इसलिए डांट के डर से वे उस प्राणी को अपने पिता के पास ले गए और उसे सब कुछ बताया जो उसने किया था। यह सुनकर पिता क्रोधित हो गए: "क्या!" उन्होंने कहा, "क्या तुम मेरे बेटों से श्रेष्ठ हो कि तुम उन पर अपना अधिकार जमाते हो और उनके साथ गाड़ी के घोड़ों जैसा व्यवहार करते हो? तुम्हें अपनी औकात का पता नहीं है। यह तुम्हारे लिए जगह नहीं है; अपनी माँ के पास वापस जाओ!" और इस आलोचना के साथ उन्होंने दूसरा छंद दोहराया:

"सुस्त, मेरी प्यारी, यहाँ खतरा है; यह तुम्हारे लिए जगह नहीं है;"
गांव के द्वार पर तुम्हारी मां इंतजार कर रही है—तुम्हें भी जल्दी से वहां जाना होगा।

इस आलोचना के साथ, उसने अपने बेटों को पक्षी को मिथिला शहर के बाहर कूड़े के ढेर तक ले जाने के लिए कहा; और उन्होंने ऐसा ही किया।

यह पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों देवदत्त सुस्त थे, दो बड़े दो छोटे हंस थे, आनंद हंस पिता थे, और मैं स्वयं राजा विदेह था।"

फुटनोट:

(1)सारिपुत्र और मोग्गल्याना.

(2) बिहार (भारत) में गया के पास एक पर्वत। इसे अब ब्रह्मयोनि कहा जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **इंदसामनगोट्टा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-161-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 161
इंदासमनगोट्टा-जातक

"बुराई से मित्रता," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक हठी व्यक्ति के बारे में सुनाई थी; और इसके घटनाक्रम नौवें खंड के गिद्ध जन्म (*1) में मिलेंगे। गुरु ने उस भिक्षु से कहा—"पुराने समय में, आज की ही तरह, तुम भी एक पागल हाथी के पैरों तले कुचलकर मर गए थे क्योंकि तुम बहुत हठी थे और बुद्धिमानों की सलाह नहीं मानते थे।" और उन्होंने वह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर उन्होंने सांसारिक घर त्याग दिया और संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगे। समय के साथ वे हिमालय क्षेत्र में एक साथ रहने वाले पाँच सौ संन्यासियों के समूह के नेता बन गए।

इन संन्यासियों में इंद्रसमनागोत्ता नाम का एक हठी और अशिक्षित व्यक्ति था। उसके पास एक पालतू हाथी था। बोधिसत्व को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने उसे बुलवाया और पूछा कि क्या वह सचमुच एक छोटा हाथी पालता है? उस व्यक्ति ने कहा, हाँ, उसके पास एक हाथी है जिसकी माँ मर चुकी है। बोधिसत्व ने कहा, "हाथी बड़े होने पर अपने पालने वालों को भी मार डालते हैं; इसलिए बेहतर होगा कि तुम उसे अब और न पालें।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "लेकिन मैं उसके बिना नहीं रह सकता, मेरे गुरु!" बोधिसत्व ने कहा, "अच्छा, तो तुम्हें इसका पछतावा होगा।"

हालांकि उसने फिर भी उस जीव का पालन-पोषण किया, और कुछ समय बाद वह विशाल आकार का हो गया।

एक बार ऐसा हुआ कि सभी साधु जंगल में जड़ और फल इकट्ठा करने के लिए दूर खेतों में गए थे और कई दिनों तक अनुपस्थित रहे। दक्षिण से आती हवा का पहला झोंका आते ही यह हाथी बेकाबू हो गया।

“इस झोपड़ी का नाश हो!” उसने सोचा, “मैं पानी का घड़ा तोड़ दूंगा! मैं पत्थर की बेंच उलट दूंगा! मैं पुआल का गद्दा फाड़ दूंगा! मैं साधु को मार डालूंगा, और फिर चला जाऊंगा!” इसलिए वह जंगल में भाग गया, और उनके लौटने का इंतजार करने लगा।

मालिक सबसे पहले आया, अपने पालतू जानवर के लिए भोजन लेकर। जैसे ही उसने उसे देखा, वह तेजी से आगे बढ़ा, यह सोचकर कि सब ठीक है (*2)। तभी हाथी घनी झाड़ियों से बाहर निकला और उसे अपनी सूंड में पकड़कर जमीन पर पटक दिया, फिर उसके सिर पर एक जोरदार प्रहार करके उसकी जान ले ली; और पागलों की तरह चिंघाड़ते हुए वह जंगल में भाग गया।

अन्य संन्यासियों ने यह समाचार बोधिसत्व को दिया। उन्होंने कहा, "हमें बुरे लोगों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए;" और फिर उन्होंने ये दो श्लोक दोहराए:-

"बुराई से मित्रता करने से अच्छाई को बचना चाहिए।"
  अच्छे लोग, जो जानते हैं कि उनका कर्तव्य उनसे क्या करवाना चाहता है:
वे गड़बड़ी जरूर करेंगे, चाहे जल्दी हो या देर से।
  यहां तक कि हाथी ने अपने स्वामी को मरवा दिया था।
लेकिन यदि तुम किसी परिचित आत्मा को देखो,
  आपके समान सद्गुण, ज्ञान और विद्या में।
ऐसे व्यक्ति को अपना सच्चा मित्र चुनें;
  अच्छे दोस्त और आशीर्वाद संगति में ही मिलते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने संन्यासियों के समूह को यह दिखाया कि विनम्र रहना ही सर्वोत्तम है, हठी नहीं। फिर उन्होंने इंद्रसमनगोत्त की अंत्येष्टि संपन्न की और श्रेष्ठ गुणों का अभ्यास करते हुए अंततः ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में प्रवेश किया।

इस प्रवचन के समापन के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "यह उद्दंड व्यक्ति तब इंद्रसमनागोत्ता था, और मैं स्वयं संन्यासियों के समूह का गुरु था।"

फुटनोट:

(1) गिज्जा-जातक, संख्या 427.

(2)या, "अपने सामान्य अभिवादन या संकेत के साथ।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संतव-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-162-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 162
संथाव-जातक

“इससे बुरा कुछ नहीं,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए पवित्र अग्नि को जल में जलाने के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ नांगुत्था जन्म (*1) जैसी ही हैं। भिक्षुओं ने अग्नि को जलाए रखने वालों को देखकर भगवान बुद्ध से कहा, “हे प्रभु, यहाँ तो चोटी वाले तपस्वी तरह-तरह की झूठी तपस्या कर रहे हैं। इसमें क्या लाभ है?” गुरु ने कहा, “इसमें कोई लाभ नहीं है। पहले भी ऐसा हुआ है कि ज्ञानी पुरुषों ने पवित्र अग्नि को जल में जलाने में कुछ लाभ समझा, परन्तु लंबे समय तक ऐसा करने के बाद उन्हें पता चला कि इसमें कोई लाभ नहीं है, और उन्होंने उसे पानी से बुझा दिया, लाठियों से पीटा, और फिर कभी उसकी ओर देखा तक नहीं।” फिर उन्होंने उन्हें एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब वे लगभग सोलह वर्ष के थे, तब उनके माता-पिता ने उनकी जन्म अग्नि (*2) लेकर उनसे कहा, “पुत्र, क्या तुम अपनी जन्म अग्नि लेकर वन में जाओगे और वहाँ अग्नि की पूजा करोगे; या तुम तीनों वेदों का अध्ययन करोगे, विवाह करके संसार में बस जाओगे?” उन्होंने कहा, “मुझे सांसारिक जीवन नहीं चाहिए: मैं वन में अपनी अग्नि की पूजा करूँगा और स्वर्ग की ओर चलूँगा।” अतः अपनी जन्म अग्नि लेकर उन्होंने अपने माता-पिता को विदा किया और वन में प्रवेश किया, जहाँ वे टहनियों और पत्तों से बनी एक कुटिया में रहने लगे और अग्नि की पूजा करने लगे।

एक दिन उन्हें किसी स्थान पर आमंत्रित किया गया जहाँ उन्हें चावल और घी का उपहार मिला। उन्होंने सोचा, "यह चावल मैं परम ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को अर्पित करूँगा।" अतः वे चावल घर ले आए और आग जलाई। फिर "इस चावल से मैं पवित्र अग्नि को प्रज्वलित करता हूँ" कहते हुए उन्होंने उसे आग में डाल दिया। वसा से भरपूर यह चावल जैसे ही आग में गिरा, एक भयंकर ज्वाला उठी जिसने उनके आश्रम को जला दिया। तब ब्राह्मण भयभीत होकर भागा और कुछ दूरी पर बैठ गया। उसने कहा, "दुष्टों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए; और इस प्रकार इस आग ने मेरी उस कुटिया को जला दिया जिसे मैंने इतनी मेहनत से बनाया था!" और उसने पहला श्लोक दोहराया:-

"बुरी संगति से बुरा कुछ नहीं होता;
मैंने अपनी आग में खूब सारा चावल और घी डाला;
और देखो! वही झोपड़ी जिसने मुझे इतनी परेशानी दी थी
इसे खड़ा करने के लिए, मेरे अंदर आग जलती रही है।"

"अब तुम्हारा काम तमाम हो गया, झूठे दोस्त!" उसने आगे कहा; और उसने आग पर पानी डाला, उसे डंडों से बुझाया, और फिर पहाड़ों में छिप गया। वहाँ उसे एक काला हिरण शेर, बाघ और तेंदुआ के चेहरे चाटते हुए दिखाई दिया। इससे उसके मन में यह बात बैठ गई कि अच्छे दोस्तों से बढ़कर कुछ नहीं होता; और उसके बाद उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:

अच्छी संगति से बेहतर कुछ नहीं है;
मुझे यहां मित्रता के अच्छे प्रयास दिखाई दे रहे हैं;
शेर, बाघ और तेंदुए को देखें--
काला हिरण तीनों के चेहरों को चाटता है।
इन्हीं विचारों के साथ बोधिसत्व पर्वतों की गहराई में उतर गए, और वहाँ उन्होंने नैतिकता के सच्चे जीवन को अपनाया, अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया, और अपने जीवन के अंत में ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में प्रवेश कर गए।

यह प्रवचन देने के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उन दिनों मैं कहानी का तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 144.

(2) विवाह के समय भी एक पवित्र अग्नि प्रज्वलित की जाती थी, जिसका उपयोग यज्ञ के लिए किया जाता था और जिसे निरंतर प्रज्वलित रखा जाता था। इसी प्रकार, कुमाऊं में अग्नि-होत्री अपने विवाह के दिन से अग्नि पूजा प्रारंभ करता है। विवाह वेदी की पवित्र अग्नि को तांबे के पात्र में उसकी अग्नि-कुंड तक ले जाया जाता है। यह अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है, और इसी से उसकी अंत्येष्टि की चिता प्रज्वलित की जाती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुसीमा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-163-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 163
सुसीमा जातक

"पचास काले हाथी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में भिक्षा देने के मनमाने तरीके के बारे में सुनाई थी।

हमने सुना है कि श्रावस्ती शहर में, एक परिवार कभी बुद्ध और उनके मित्रों को दान दिया करता था, कभी वे विधर्मियों (गलत विश्वासियों) को दान देते थे, या फिर दान देने वाले समूह बनाकर दान देते थे, या फिर एक ही गली के लोग मिलकर दान देते थे, या फिर पूरे निवासी स्वेच्छा से दान इकट्ठा करके उसे प्रस्तुत करते थे।

इस अवसर पर सभी निवासियों ने सभी आवश्यक वस्तुओं का संग्रह किया था; लेकिन विचार अलग-अलग थे, कुछ लोग इसे विधर्मियों (गलत विश्वासियों) को देने की मांग कर रहे थे, जबकि कुछ बुद्ध के अनुयायियों के पक्ष में बोल रहे थे। प्रत्येक पक्ष अपनी बात पर अड़ा रहा, विधर्मियों (गलत विश्वासियों) के शिष्यों ने विधर्मियों के पक्ष में मतदान किया, और बुद्ध के शिष्यों ने बुद्ध के अनुयायियों के पक्ष में। फिर इस प्रश्न पर विभाजन का प्रस्ताव रखा गया, और तदनुसार विभाजन हुआ; बुद्ध के पक्ष में रहने वाले बहुमत में थे।

इसलिए उनकी योजना का पालन किया गया, और गलत विश्वासियों के शिष्य बुद्ध और उनके अनुयायियों को भेंट किए जाने वाले उपहारों को रोक नहीं सके।

नागरिकों ने बुद्ध के साथ आने का निमंत्रण दिया; सात दिनों तक उन्होंने उनके सामने बहुमूल्य भेंट रखीं, और सातवें दिन उन्होंने अपनी सारी एकत्रित वस्तुएँ अर्पित कर दीं। गुरु ने धन्यवाद दिया, जिसके बाद उन्होंने बहुत से लोगों को मार्ग की सफलता के बारे में उपदेश

दिया। फिर वे जेतवन मठ लौट गए; और जब उनके अनुयायियों ने अपने कर्तव्य पूरे कर लिए, तो उन्होंने अपने सुगंधित कक्ष के सामने खड़े होकर बुद्ध का प्रवचन दिया, और फिर वे विश्राम करने चले गए।

शाम के समय भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में आपस में विचार-विमर्श किया: “मित्रों, कैसे कुटिल अनुयायियों के शिष्यों ने इसे संतों तक पहुँचने से रोकने का प्रयास किया! फिर भी वे ऐसा नहीं कर सके; सभी वस्तुएँ संतों के चरणों में ही अर्पित कर दी गईं। आह, बुद्ध की शक्ति कितनी महान है!” “अब तुम सब किस बारे में बात कर रहे हो?” गुरुजी ने अंदर आते हुए पूछा। उन्होंने उन्हें बताया। “भाइयों,” उन्होंने कहा, “यह पहली बार नहीं है कि कुटिल अनुयायियों के शिष्यों ने मुझे अर्पित की जाने वाली भेंट को रोकने का प्रयास किया है। उन्होंने पहले भी ऐसा ही किया था; लेकिन हमेशा ये वस्तुएँ अंततः मेरे चरणों में ही अर्पित की गईं।” ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें बहुत पुरानी एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में सुसीमा नाम का एक राजा रहता था; और बोधिसत्व उस राजा की पुरोहित पत्नी का पुत्र था। जब वह सोलह वर्ष का हुआ, तब उसके पिता का देहांत हो गया। अपने जीवनकाल में, उसके पिता राजा के हाथी उत्सवों के समारोहों के प्रमुख थे। उत्सव स्थल पर आने वाले हाथियों के सभी अलंकृत वस्त्रों और साज-सज्जा पर केवल उनका ही अधिकार था। इस प्रकार वे प्रत्येक उत्सव में दस मिलियन तक की आय अर्जित करते थे।

हमारी कहानी के समय हाथी उत्सव का समय आ गया था। सभी ब्राह्मण राजा के पास यह कहते हुए एकत्रित हुए: "हे महाराज! हाथी उत्सव का समय आ गया है, और उत्सव का आयोजन किया जाना चाहिए। लेकिन आपके इस पुरोहित का पुत्र बहुत छोटा है; वह न तो तीनों वेदों को जानता है और न ही हाथियों की परंपरा को। क्या हम यह समारोह संपन्न कराएँ?" इस पर राजा ने सहमति दे दी।

ब्राह्मण प्रसन्न होकर चले गए। उन्होंने कहा, "अहा! हमने इस लड़के को उत्सव में भाग लेने से रोक दिया है। हम स्वयं उत्सव मनाएंगे और सारा लाभ अपने पास रखेंगे!"

लेकिन बोधिसत्व की माताजी ने सुना कि चार दिन बाद हाथी उत्सव होने वाला है। उन्होंने सोचा, "सात पीढ़ियों से हम पिता से पुत्र तक हाथी उत्सव का आयोजन करते आ रहे हैं। यह पुरानी परंपरा हमसे छिन जाएगी और हमारी सारी संपत्ति नष्ट हो जाएगी!" वह रोने लगीं। उनके पुत्र ने पूछा, "आप क्यों रो रही हैं?" उन्होंने बताया। पुत्र ने कहा, "माँ, क्या मैं उत्सव का संचालन करूँ?" "क्या, पुत्र? तुम्हें न तो तीनों वेदों का ज्ञान है और न ही हाथी परंपरा का; तुम यह कैसे कर सकते हो?" "माँ, उत्सव कब है?" "चार दिन बाद, पुत्र।" "मुझे ऐसे गुरु कहाँ मिलेंगे जिन्हें तीनों वेद और हाथी परंपरा का ज्ञान हो?" "पुत्र, ऐसा ही एक प्रसिद्ध गुरु तक्षशिला में, गांधार राज्य (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) में, दो हजार मील (4.23 किमी) दूर रहते हैं।" “माँ,” उसने कहा, “हम अपना पुश्तैनी अधिकार नहीं खोएँगे। एक दिन मुझे तक्षशिला ले जाएगा; एक रात में मुझे तीनों वेद और हाथी की परंपरा सिखा दी जाएगी; अगले दिन मैं घर लौट आऊँगा; और चौथे दिन मैं हाथी उत्सव का आयोजन करूँगा। अब और मत रोओ!” इन शब्दों से उसने अपनी माँ को सांत्वना दी।

अगली सुबह उसने अपना व्रत तोड़ा और अकेले ही तक्षशिला के लिए निकल पड़ा, जहाँ वह एक ही दिन में पहुँच गया। फिर उसने गुरु को ढूँढ़कर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।

शिक्षक ने पूछा, "तुम कहाँ से आए हो?"

"बनारस से, शिक्षक।"

"किस सिरे पर?"

"आपसे तीनों वेदों और हाथी परंपरा के बारे में सीखने के लिए।"

"निश्चित रूप से, मेरे बेटे, तुम इसे सीख जाओगे।"

“परन्तु, महाराज,” हमारे बोधिसत्व ने कहा, “मेरा मामला अत्यंत आवश्यक है।” फिर उन्होंने पूरी बात बताते हुए कहा, “मैंने एक ही दिन में दो हजार मील (4.23 किमी) की यात्रा की है। कृपया मुझे केवल एक रात का समय दें। तीन दिन बाद हाथी उत्सव है; एक पाठ के बाद मैं सब कुछ सीख लूंगा।”

गुरुजी मान गए। तब बालक ने अपने गुरु के पैर धोए और उन्हें एक हजार सिक्के भेंट किए; वह एक तरफ बैठ गया और अपना पाठ याद करने लगा; जैसे ही सुबह हुई, ठीक सुबह होते ही उसने तीनों वेद और हाथी परंपरा को पूरा कर लिया। "क्या और कुछ है, गुरुजी?" उसने पूछा। "नहीं, मेरे पुत्र, तुमने सब कुछ जान लिया है।" "गुरुजी," वह आगे बोला, "इस पुस्तक में एक श्लोक देर से आता है, दूसरा श्लोक पढ़ते समय भटक गया है। भविष्य के लिए अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने का यही तरीका है," और फिर उसने अपने गुरुजी के ज्ञान को सुधार दिया।

सुबह का भोजन करने के बाद वह विदा हुआ और एक ही दिन में बनारस लौट आया और अपनी माँ से मिला। माँ ने पूछा, "क्या तुमने सबक सीख लिया, मेरे बेटे?" उसने उत्तर दिया, "हाँ," और यह सुनकर उसकी माँ अत्यंत प्रसन्न हुई।

अगले दिन, हाथियों के उत्सव की तैयारी की गई। सौ हाथियों को सोने के आभूषणों से सुसज्जित किया गया, उन पर सोने के झंडे लगाए गए और उन्हें बारीक सोने के जाल से सजाया गया; और महल का पूरा प्रांगण सजाया गया। वहाँ ब्राह्मण अपने उत्तम वस्त्रों में सजे खड़े थे, मन ही मन सोच रहे थे, "अब हम उत्सव मनाएंगे, हम इसे मनाएंगे!" तभी राजा अपने पूरे वैभव के साथ, आभूषणों और अन्य प्रयुक्त वस्तुओं के साथ वहाँ पहुँचे।

राजकुमार के वेश में, अपने दल के आगे-आगे चलते हुए बोधिसत्व इन शब्दों के साथ राजा के पास पहुंचे।

"हे महान राजा, क्या यह सचमुच सच है कि आप मेरा अधिकार छीनने जा रहे हैं? क्या आप इस समारोह के प्रबंधन का जिम्मा अन्य ब्राह्मणों को सौंपने जा रहे हैं? क्या आपने कहा है कि आप उन्हें विभिन्न आभूषण और बर्तन देने जा रहे हैं?" और उन्होंने पहले श्लोक को इस प्रकार दोहराया:

पचास (20) काले हाथी, जिनके सारे दांत सफेद हैं
क्या ये आपके हैं, सोने के कपड़े से सजे हुए?
'मैं इन्हें तुम्हें ही देता हूँ'—क्या तुम यही कहते हो?
क्या मुझे अपने पूर्वजों के पुराने अधिकार याद हैं?

इस प्रकार संबोधित किए जाने पर राजा सुसीमा ने फिर दूसरे श्लोक को दोहराया:-

"पचास (x20) काले हाथी, जिनके सारे दांत सफेद हैं,
ये मेरे हैं, सोने के कपड़े से सजे हुए।
'मैं इन्हें तुम्हें ही देता हूँ, और तुम्हें ही देता हूँ'—इसलिए मैं कहता हूँ,
मेरे बेटे, अपने पैतृक अधिकार को याद रखना।

तब बोधिसत्व के मन में एक विचार आया और उन्होंने कहा, "हे प्रभु, यदि आप मेरे पैतृक अधिकार और अपनी प्राचीन परंपरा को याद रखते हैं, तो आप मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं और अपने उत्सव का संचालन दूसरों को क्यों सौंपते हैं?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मुझे बताया गया था कि आप तीनों वेदों या हाथी परंपरा का ज्ञान नहीं रखते, इसलिए मैंने उत्सव का संचालन दूसरों को सौंप दिया है।" बोधिसत्व ने कहा, "अच्छी बात है, महाराज। यदि इन सभी ब्राह्मणों में से कोई एक भी मेरे विरुद्ध वेदों या हाथी परंपरा का एक अंश सुना सकता है, तो वह आगे आए! पूरे भारत में मेरे सिवा कोई भी ऐसा नहीं है जो तीनों वेदों और हाथी परंपरा का ज्ञान रखता हो और हाथी उत्सव का संचालन कर सके!" बोधिसत्व ने शेर की दहाड़ की तरह गर्व से उत्तर दिया! किसी भी ब्राह्मण ने उनका विरोध करने का साहस नहीं किया। अतः बोधिसत्व ने अपने पैतृक अधिकार का पालन किया और समारोह का संचालन किया; और धन-संपन्न होकर वे अपने घर लौट गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्मों की पहचान बताई:-कुछ प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करते हैं, कुछ द्वितीय (सम्मोहन) में, कुछ तृतीय (सम्मोहन) में और कुछ चतुर्थ (सम्मोहन) में:- "महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) उस समय मेरी माता थीं, राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) मेरे पिता थे, आनंद राजा सुसीमा थे, सारिपुत्र प्रसिद्ध गुरु थे और मैं स्वयं युवा ब्राह्मण था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गिज्जा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 164
गिज्जा जातक

"एक गिद्ध लाश को देखता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने एक भिक्षु के बारे में सुनाई, जिसे अपनी माता का भरण-पोषण करना था। इस घटना का वर्णन समा जन्म (*1) के अंतर्गत किया जाएगा। गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह, एक भिक्षु होकर, वास्तव में उन लोगों का भरण-पोषण कर रहा है जो अभी भी संसार में जीवित हैं। भिक्षु ने यह स्वीकार किया, "वे आपसे किस प्रकार संबंधित हैं?" गुरु ने आगे पूछा। "वे मेरे माता-पिता हैं, महोदय।" "बहुत खूब, बहुत खूब," गुरु ने कहा; और भिक्षुओं से इस भिक्षु पर क्रोधित न होने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "पुराने समय के बुद्धिमान लोगों ने तो उन लोगों की भी सेवा की है जो उनके परिवार के नहीं थे; परन्तु इस व्यक्ति का कार्य तो अपने माता-पिता का भरण-पोषण करना रहा है।" ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें बीते दिनों की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व ने गिद्ध पर्वत पर एक युवा गिद्ध के रूप में जन्म लिया और उनके माता-पिता ने उनका पालन-पोषण किया।

एक बार तेज हवा और बारिश हुई। गिद्ध उसका सामना नहीं कर सके; अधमरे होकर वे बनारस की ओर उड़ गए, और वहाँ दीवार और खाई के पास ठंड से कांपते हुए बैठ गए।

बनारस का एक व्यापारी स्नान करने के लिए शहर से बाहर जा रहा था, तभी उसने इन बेचारे गिद्धों को देखा। उसने उन्हें एक सूखी जगह पर इकट्ठा किया, आग जलाई, पशुओं के दफ़न स्थल से उनके लिए कुछ गोमांस मंगवाया और किसी को उनकी देखभाल के लिए नियुक्त किया।

जब तूफान आया, तो हमारे गिद्ध सुरक्षित थे और तुरंत पहाड़ों की ओर उड़ गए। बिना देर किए वे मिले और आपस में सलाह मशवरा किया। "बनारस के एक व्यापारी ने हमारा भला किया है; और कहावत है कि एक भला करने पर दूसरा भला मिलता है (*2): इसलिए अब से जब भी हममें से किसी को कोई वस्त्र या आभूषण मिले, तो उसे उस व्यापारी के आंगन में रख देना चाहिए।" तब से, जब भी वे किसी को धूप में अपने कपड़े या कीमती सामान सुखाते देखते, तो वे तुरंत उन्हें झपट्टा मार लेते, जैसे बाज मांस के टुकड़े पर झपट्टा मारता है, और व्यापारी के आंगन में रख देते। लेकिन व्यापारी, जब भी देखता कि वे उसके लिए कुछ ला रहे हैं, तो उसे अलग रखवा देता था।

उन्होंने राजा को बताया कि गिद्ध शहर को लूट रहे हैं। राजा ने कहा, "बस एक गिद्ध पकड़ लो, मैं उनसे सब कुछ वापस लाने को कहूँगा।" इसलिए हर जगह फंदे और जाल बिछाए गए; हमारा आज्ञाकारी गिद्ध पकड़ा गया। वे उसे राजा के पास लाने के इरादे से पकड़ रहे थे। उपर्युक्त व्यापारी, महाराज से मिलने जाते समय, इन लोगों को गिद्ध के साथ चलते हुए देखा। वह उनके साथ चला गया, इस डर से कि कहीं वे गिद्ध को नुकसान न पहुँचा दें।

उन्होंने गिद्ध को राजा को सौंप दिया, जिसने उसकी जांच की।

"तुमने हमारे शहर को लूटा और कपड़े और तरह-तरह की चीजें चुरा लीं," उसने कहना शुरू किया। "जी महाराज।" "किसे दी हैं ये?" "बनारस के एक व्यापारी को।" "क्यों?" "क्योंकि उसने हमारी जान बचाई, और कहते हैं कि एक अच्छा काम दूसरे अच्छे काम को जन्म देता है; इसलिए हमने उसे ये चीजें दे दीं।"

राजा ने कहा, "कहते हैं कि गिद्ध सौ मील (4.23 किमी) दूर से भी लाश देख सकते हैं; और क्या तुम अपने लिए बिछाए गए जाल को नहीं देख सकते?" और इन्हीं शब्दों के साथ उन्होंने पहला छंद दोहराया:-

"एक गिद्ध सौ मील (4.23 किमी) दूर पड़े शव को देखता है:
जब आप किसी जाल में फंस जाते हैं, तो क्या आप उसे नहीं देख पाते, मैं पूछता हूँ?
गिद्ध ने सुना, फिर दूसरे छंद को दोहराते हुए उत्तर दिया:-

जब जीवन का अंत निकट आ रहा हो, और मृत्यु का समय नजदीक आ रहा हो,

भले ही आप इसके करीब आ जाएं, लेकिन आपको न तो कोई जाल दिखाई देगा और न ही कोई फंदा।"
गिद्ध की इस प्रतिक्रिया के बाद, राजा ने हमारे व्यापारी की ओर रुख किया और पूछा, "क्या ये सारी चीज़ें सचमुच गिद्धों द्वारा ही तुम्हारे पास लाई गई हैं?"

"जी, महाराज।" "वे कहाँ हैं?" "महाराज, उन्हें सुरक्षित स्थान पर रखा गया है; प्रत्येक को उसका अपना सामान वापस मिल जाएगा: बस इस गिद्ध को जाने दीजिए!" उनकी इच्छा पूरी हुई; गिद्ध को मुक्त कर दिया गया, और व्यापारी ने सारा सामान उसके मालिकों को लौटा दिया।

यह पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, कर्तव्यनिष्ठ भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "आनंद उन दिनों का राजा था; सारिपुत्र व्यापारी था; और मैं स्वयं वह गिद्ध था जिसने उसके माता-पिता का सहारा दिया।"

फुटनोट:

(1) संख्या 532

(2) यह "कृतज्ञ पशु" घटना का एक और रूप प्रतीत होता है जो लोककथाओं में अक्सर घटित होती है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नकुल-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-165-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 165
नकुला-जातक

"हे प्राणी, तेरा अंडजनित शत्रु," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में प्रवास के दौरान सुनाई थी, जिसमें दो अधिकारियों के बीच झगड़ा हुआ था। परिस्थितियाँ ऊपर उराग जन्म (*1) में दी गई हैं। यहाँ, पहले की तरह, गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि मैंने इन दोनों कुलीनों का मेल कराया है; पहले भी मैंने उनका मेल कराया था।" फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की; फिर, संसार का त्याग करके वे एक संन्यासी बन गए, अपनी इंद्रियों और सिद्धियों को विकसित किया और हिमालय क्षेत्र में रहने लगे, जहाँ वे जंगली जड़ों और फलों को इकट्ठा करके अपना जीवन यापन करते थे।

अपने बाड़े के अंत में, चींटियों के ढेर में एक नेवला रहता था; और उससे कुछ ही दूरी पर, एक खोखले पेड़ में एक साँप रहता था। ये दोनों, साँप और नेवला, लगातार झगड़ते रहते थे। बोधिसत्व ने उन्हें झगड़ों के दुख और शांति के आशीर्वाद के बारे में उपदेश दिया, और दोनों का मेल कराते हुए कहा, "तुम्हें अपना झगड़ा बंद करके एक साथ रहना चाहिए।"

जब सर्प चला गया, तो रास्ते के अंत में स्थित नेवला अपने चींटी के टीले में बने छेद से सिर बाहर निकालकर, मुंह खोलकर सो गया, और हांफते-हांफते उसकी सांसें तेज चल रही थीं। बोधिसत्व ने उसे वहां सोते हुए देखा और उससे पूछा, "अरे, तुम्हें किस बात का डर है?" और फिर पहला श्लोक दोहराया:

"हे प्राणी, तेरे अंडों से उत्पन्न शत्रु का एक सच्चा मित्र बन गया है।"
तुम वहाँ बिना दाँत दिखाए क्यों सो रहे हो? तुम्हें किस बात का डर है?
"पिताजी," नेवले ने कहा, "अपने पुराने शत्रु को कभी तुच्छ मत समझो, बल्कि हमेशा उस पर संदेह करो": और उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:

"कभी भी शत्रु को तुच्छ न समझो और कभी भी मित्र पर भरोसा मत करो।"
जिन चीजों से डर नहीं लगता, उनसे उत्पन्न होने वाला भय सब कुछ उखाड़ फेंकता है और अंत कर देता है।
"भयभीत मत हो," बोधिसत्व ने उत्तर दिया। "मैंने सर्प को मना लिया है कि वह तुम्हें हानि न पहुँचाए; अब उस पर अविश्वास मत करो।" यह सलाह देकर वे चारों गुणों का साधना करने लगे और ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग की ओर मुख करके चल दिए। और अन्य लोग भी अपने कर्मों के फल के अनुसार परलोक चले गए।

फिर जब यह पाठ समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय वे दो कुलीन व्यक्ति सर्प और नेवला थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1)सं. (154).

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उपसाध-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-166-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 166
उपसल्हा-जातक

"चौदह हजार उपसल्हा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें उपसल्हा नामक एक ब्राह्मण का वर्णन था, जो कब्रिस्तानों के मामले में बहुत ही सावधानी बरतता था।

हमें पता चलता है कि यह व्यक्ति धनी और समृद्ध था; परन्तु यद्यपि वह मठ के ठीक सामने रहता था, फिर भी वह बुद्धों के प्रति कोई दया नहीं दिखाता था, क्योंकि वह गलत मान्यताओं में लिप्त था। उसका एक बुद्धिमान और समझदार पुत्र था। जब वह बूढ़ा हो रहा था, तो उसने अपने पुत्र से कहा, "मेरे शरीर को ऐसे कब्रिस्तान में मत जलाना जहाँ किसी भी अछूत को जलाया जाता हो, बल्कि मेरे लिए कोई पवित्र स्थान ढूँढ़ो।" "पिताजी," पुत्र ने कहा, "मुझे कोई ऐसा कब्रिस्तान नहीं पता जहाँ आपके शरीर को जलाया जा सके। हे मेरे पिताजी, आप स्वयं आगे बढ़ें और वह स्थान बताएँ जहाँ मैं आपको जलाना चाहता हूँ।" तब ब्राह्मण ने सहमति देकर अपने पुत्र को शहर से बाहर गिद्ध शिखर पर ले जाकर कहा, "यहाँ, मेरे पुत्र, किसी भी अछूत को कभी नहीं जलाया जाता; मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे यहीं जलाओ।" फिर वह अपने पुत्र के साथ पहाड़ी से नीचे उतरने लगा।

उस दिन शाम को गुरुजी यह देखने के लिए चारों ओर देख रहे थे कि उनके मित्रों में से कौन मोक्ष के लिए तैयार है, और उन्होंने पाया कि यह पिता और पुत्र प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं। इसलिए वे उनके मार्ग पर चल पड़े और पहाड़ी की तलहटी में आ गए, जैसे कोई शिकारी अपने शिकार की प्रतीक्षा कर रहा हो; वे वहाँ तब तक बैठे रहे जब तक वे ऊपर से नीचे न आ जाएँ। वे नीचे आए और गुरुजी को देखा। उन्होंने उनका अभिवादन किया और पूछा, "ब्राह्मणों, तुम कहाँ जा रहे हो?" युवक ने उन्हें अपना कार्य बताया। गुरुजी ने कहा, "चलो, मुझे वह स्थान दिखाओ जो तुम्हारे पिता ने बताया था।" इसलिए वे दोनों साथ मिलकर पर्वत पर चढ़ गए। "कौन सा स्थान?" उन्होंने पूछा। "गुरुजी," लड़के ने कहा, "इन तीन पहाड़ियों के बीच का स्थान ही वह स्थान है जो उन्होंने मुझे दिखाया था।" गुरुजी ने कहा, "मेरे पुत्र, यह पहली बार नहीं है कि तुम्हारे पिता श्मशान घाटों के मामले में इतने दयालु रहे हैं; वे पहले भी ऐसे ही थे। और यह केवल अब ही नहीं है कि उन्होंने तुम्हें अपने दाह संस्कार के लिए यह स्थान बताया है; बहुत समय पहले उन्होंने ठीक उसी जगह की ओर इशारा किया था।" और उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें बहुत समय पहले की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, इसी राजग्रह नगर में, उपासलहक नामक ब्राह्मण निवास करते थे, और उनका यही पुत्र था। उस समय बोधिसत्व का जन्म मगध देश के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था; और अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद, उन्होंने संन्यासी जीवन व्यतीत किया, अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को निखारा, और हिमालय क्षेत्र में दीर्घकालीन आध्यात्मिक साधना में लीन रहे।

एक बार वो गिद्ध शिखर पर स्थित अपने आश्रम से नमक और मसाले खरीदने गए। जब वो वापस आए, तो उस ब्राह्मण ने अपने बेटे से ठीक उसी तरह बात की, जैसे अभी कर रहे हैं। लड़के ने उनसे एक उचित स्थान बताने की विनती की, और वो आए और उन्होंने यही स्थान दिखाया। जब वो अपने बेटे के साथ नीचे उतर रहे थे, तो उन्होंने बोधिसत्व को देखा और उनके पास गए। बोधिसत्व ने उनसे वही प्रश्न पूछा जो मैंने अभी पूछा था, और बेटे का उत्तर सुना। "आह," उन्होंने कहा, "हम देखेंगे कि तुम्हारे पिता ने जो स्थान तुम्हें दिखाया है, वह अपवित्र है या नहीं," और उन्हें अपने साथ फिर से पहाड़ी पर ले गए। "इन तीनों पहाड़ियों के बीच का स्थान," लड़के ने कहा, "शुद्ध है।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मेरे बालक, इस स्थान पर अनगिनत लोगों को जलाया गया है। तुम्हारे पिता, जो आज राजगृह नगर में ब्राह्मण के रूप में जन्मे थे और जिनका नाम भी यही था, चौदह हजार जन्मों में इसी पर्वत पर जलाए गए हैं। पूरी पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ शव न जलाया गया हो, जो कब्रिस्तान न रहा हो, जो खोपड़ियों से ढका न हो।"

उन्होंने अपने सभी पूर्व जन्मों के ज्ञान से यह बात समझी; और फिर उन्होंने इन दो छंदों को दोहराया:-

"इस स्थान पर चौदह हजार उपसल जलाए जा चुके हैं।"
  और न ही ऐसी कोई जगह है जहाँ मृत्यु न हो।
"दया, सत्य, न्याय, संयम और आत्म-नियंत्रण कहाँ हैं?"
  वहां मृत्यु का कोई प्रवेश द्वार नहीं है; वहां प्रत्येक पवित्र आत्मा का सफर होता है।

जब बोधिसत्व ने पिता और पुत्र को इस प्रकार उपदेश दिया, तो उन्होंने चार गुणों का विकास किया और ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पिता और पुत्र प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) में स्थापित हो गए: "पिता और पुत्र तब भी वही थे जो अब हैं, और तपस्वी मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **समिद्धि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-167-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 167
समिद्धि-जातक

"भीख मांगने वाले भाई, क्या आप जानते हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने राजगृह शहर के पास तापोदा पार्क में रहते हुए सुनाई थी, यह कहानी वरिष्ठ भिक्षु समिद्धि या गुड लक के बारे में थी।

एक बार, वरिष्ठ भिक्षु गुड लक रात भर आध्यात्मिक साधना में लीन रहे। सूर्योदय होते ही उन्होंने स्नान किया; फिर वे अपने अंतर्वस्त्र को पहने हुए, दूसरे को हाथ में पकड़े हुए, अपने शरीर को सुखाते रहे, जो सोने के समान पीला था। वे किसी उत्कृष्ट कारीगरी की स्वर्ण प्रतिमा के समान थे, सौंदर्य की पराकाष्ठा; और इसीलिए उन्हें गुड लक कहा जाता था।

देवताओं की एक पुत्री ने वृद्ध भिक्षु की असाधारण सुंदरता देखकर उन पर मोहित हो गई और उनसे कहा, "हे भिक्षु, आप युवा, तरोताज़ा और जवान हैं, आपके बाल काले हैं, भगवान आपको आशीर्वाद दें! आप यौवनवान हैं, आप सुंदर और देखने में आकर्षक हैं। आप जैसे व्यक्ति को थोड़ा आनंद लिए बिना संन्यासी क्यों बनना चाहिए? पहले अपनी इच्छाओं का पालन करें, फिर संन्यासी बनें और संन्यासियों का मार्ग अपनाएँ!" उन्होंने उत्तर दिया, "हे अप्सरा, एक दिन मुझे मरना ही है, और मेरी मृत्यु का समय मुझे ज्ञात नहीं है; वह समय मुझसे छिपा हुआ है। इसलिए अपनी यौवन की ताजगी में मैं एकांत जीवन व्यतीत करूँगा और कष्टों का अंत करूँगा।"

जब देवी ने देखा कि उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है, तो वह तुरंत गायब हो गईं। बड़े भिक्षु ने जाकर अपने गुरु को इसके बारे में बताया। तब गुरु ने कहा, "हे सौभाग्य, तुम अकेले नहीं हो, एक अप्सरा तुम्हें लुभा रही है। पुराने समय में भी, आज की तरह, अप्सराएँ तपस्वियों को लुभाती थीं।" और फिर उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण के पुत्र बने। उम्र बढ़ने के साथ, उन्होंने अपने सभी अध्ययनों में पूर्णता प्राप्त की और धार्मिक (तपस्वी) जीवन को अपना लिया; और वे हिमालय में एक प्राकृतिक झील के किनारे रहने लगे, जहाँ वे अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों का अभ्यास करते रहे।

सारी रात वह मनन करता रहा (ध्यान लगाता रहा); और सूर्योदय होते ही उसने स्नान किया, और एक वस्त्र पहने और दूसरा हाथ में लिए खड़ा रहा, अपने शरीर से पानी सूखने देता रहा। उसी क्षण देवदूतों की एक पुत्री ने उसकी परिपूर्ण सुंदरता देखी और उससे प्रेम करने लगी। उसे लुभाने के लिए उसने यह पहला श्लोक दोहराया:-

"भिखारी भिक्षु, क्या तुम जानते हो?"
दुनिया किस प्रकार की खुशी दिखा सकती है?
अब यही सही समय है, इसके अलावा कोई और विकल्प नहीं है:
पहले सुख, फिर भिक्षा, भिक्षु!
बोधिसत्व ने अप्सरा का संबोधन सुना और फिर अपने निर्धारित उद्देश्य को बताते हुए दूसरे श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

समय अज्ञात है, मुझे पता नहीं है
मुझे कब जाना होगा?
अब समय आ गया है: इसके अलावा कोई और समय नहीं है:
अतः अब मैं एक भिखारी भिक्षु हूँ (*1)।"
जब अप्सरा ने बोधिसत्व के शब्द सुने, तो वह तुरंत गायब हो गई।

इस प्रवचन के बाद गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "दोनों कथाओं में अप्सरा एक ही है, और उस समय जो संन्यासी था वह मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) टीकाकार इस अंश की व्याख्या करते हुए एक और दोहा जोड़ता है:

जीवन, बीमारी, मृत्यु, शरीर का त्याग,
पुनर्जन्म—ये पाँच इस संसार में छिपे हुए हैं।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सकुनागघी-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-168-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 168
सकुनाग्घी-जातक

"उसके चारागाह में एक बटेर थी," इत्यादि -- यह कहानी मास्टर ने जेतवन मठ में पक्षी शिक्षा (*1) में अपने अर्थ के बारे में बताई थी।

एक दिन गुरु ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा, "भिक्षुओं, जब तुम भिक्षा मांगो, तो अपने-अपने क्षेत्र में रहो।" और उस अवसर के अनुकूल महावग्ग के उस सूत्र को दोहराते हुए उन्होंने आगे कहा, "परन्तु एक क्षण रुकिए: पहले तो यहाँ तक कि पशु रूपी प्राणी भी अपने-अपने क्षेत्रों में रहने से इनकार कर देते थे और दूसरों के क्षेत्रों में शिकार करके अपने शत्रुओं के जाल में फंस जाते थे, फिर अपनी बुद्धि और सूझबूझ से अपने शत्रुओं के चंगुल से मुक्त हो जाते थे।" इन शब्दों के साथ उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व ने एक छोटे बटेर के रूप में जन्म लिया। वे खेत जोतने के बाद बचे हुए मिट्टी के ढेलों पर कूद-कूद कर अपना भोजन प्राप्त करते थे।

एक दिन उसने सोचा कि वह अपने भोजन क्षेत्र को छोड़कर किसी दूसरे क्षेत्र में जाकर भोजन की तलाश करेगा; इसलिए वह उड़कर जंगल के किनारे पहुँच गया। जैसे ही उसने वहाँ अपना भोजन उठाया, एक बाज़ ने उसे देख लिया और उस पर ज़ोरदार हमला करते हुए उसे पकड़ लिया।

इस बाज़ द्वारा बंदी बनाए जाने पर, हमारी बटेर कराह उठी: "आह! मैं कितना बदनसीब हूँ! मुझमें कितनी अक्ल नहीं है! मैं किसी और के इलाके में शिकार कर रहा हूँ! काश मैं अपने ही स्थान पर रहता, जहाँ मेरे पूर्वज रहते थे! तब यह बाज़ मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाता, मतलब अगर वह लड़ने आता तो!"

"क्यों, बटेर," बाज़ ने कहा, "तुम्हारी अपनी ज़मीन क्या है, जहाँ तुम्हारे पूर्वज तुमसे पहले चरते थे?"

"एक जोता हुआ खेत जो पूरी तरह से टीलों से ढका हुआ है!"

इस पर बाज़ ने अपनी शक्ति ढीली करते हुए उसे छोड़ दिया। "चले जाओ, मैं तुम्हें यहीं छोड़ रहा हूँ, बटेर! लेकिन तुम मुझसे बच नहीं पाओगे, यहाँ तक कि वहाँ भी नहीं!"

बटेर वापस उड़कर एक विशाल टीले पर बैठ गई और वहीं खड़ी होकर पुकारने लगी—"चलो अब, बाज़!"

अपनी पूरी ताकत और दोनों पंखों को झोंकते हुए बाज़ ने हमारी बटेर पर ज़ोरदार हमला किया। बटेर ने सोचा, "देखो, यह तो बदला लेने आ रहा है!" और जैसे ही उसने उसे पूरी गति से आते देखा, वह थोड़ा हट गया और उसे मिट्टी के टीले पर ज़ोर से टकराने दिया। बाज़ खुद को रोक नहीं पाया और उसका सीना ज़मीन से टकरा गया; इससे उसका दिल टूट गया और वह आँखें बाहर निकलते हुए वहीं गिर पड़ा।

यह कथा सुनाए जाने के बाद, गुरु ने आगे कहा, "इस प्रकार आप देखते हैं, भिक्षुओं, कि कैसे पशु भी अपना स्थान छोड़कर अपने शत्रुओं के हाथों में पड़ जाते हैं; परन्तु जब वे अपना स्थान बनाए रखते हैं, तो वे अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। इसलिए सावधान रहें कि अपना स्थान न छोड़ें और दूसरों के स्थान में अतिक्रमण न करें। (फिर वे छुपे अर्थ की व्याख्या करते हैं) हे भिक्षुओं, जो अपनी आनंदमयी आंतरिक आत्म-जागरूकता (समाधि में परमानंदमयी अवस्था) को छोड़ देते हैं, उन्हें मारा (मृत्यु का देवता, जो सभी प्राणियों को जन्म-मृत्यु-पुनर्जन्म के चक्र में घुमाता है) (*2) को एक द्वार मिल जाता है, मारा को पैर जमाने का स्थान मिल जाता है। भिक्षुओं, परायापन क्या है, और भिक्षु के लिए अनुचित निवास क्या है? मेरा तात्पर्य शरीर की इंद्रियों के सुखों में निवास करने से है। ये क्या हैं? आँख की वासना, कान की वासना, नाक की वासना, जीभ की वासना, स्पर्श की वासना और मन की वासना (विचार/अवधारणाएँ)। भिक्षुओं, यही भिक्षु के लिए अनुचित निवास है।" फिर पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने प्रथम श्लोक को दोहराया:-

"एक बटेर अपने चारागाह में थी, तभी ऊपर से झपट्टा मारा।"
एक बाज़ आया; लेकिन वह इस तरह गिरा कि उसी से उसकी मृत्यु हो गई।

जब उसकी इस प्रकार मृत्यु हो गई, तो बटेर बाहर निकली और चिल्लाई, "मैंने अपने शत्रु की पीठ देख ली है!" और अपने शत्रु की छाती पर बैठकर उसने दूसरे छंद के शब्दों में अपनी खुशी व्यक्त की:-

"अब मैं अपनी सफलता पर प्रसन्न हूं: मुझे एक चतुर योजना मिल गई है।"
अपने मोर्चे पर डटे रहकर अपने दुश्मन से छुटकारा पाना।"

यह प्रवचन समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के समापन पर कई भिक्षुओं ने मार्ग में या उनकी सफलता में विराजमान हुए:- "देवदत्त उन दिनों का बाज़ था, और बटेर मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) शकुनग्गी सूत्र, संयुक्त निकाय 47.6 टिपिटका में

(2) मारा मृत्यु का स्वामी है, और इस शब्द का प्रयोग बुद्ध ने दुष्ट (शैतान/शैतान) के लिए किया है।

पिछला <<<<-----||-169-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 169
अरका-जातक

"वह हृदय जो असीम करुणा महसूस करता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में प्रेम और करुणा पर आधारित धर्मग्रंथ के बारे में सुनाई थी।

एक अवसर पर गुरु ने भिक्षुओं के समूह को इस प्रकार संबोधित किया: "भाइयों, पूर्ण मनन से किया गया दान, जिस पर ध्यान लगाया जाए, जिसे बढ़ाया जाए, प्रगति का साधन बनाया जाए, जिसे अपना एकमात्र लक्ष्य बनाया जाए, जिसका अभ्यास अच्छी तरह से शुरू किया गया हो, उससे ग्यारह आशीर्वाद प्राप्त होने की उम्मीद की जा सकती है (*1)। ये ग्यारह क्या हैं? वह सुखी सोता है और सुखी जागता है; उसे बुरे सपने नहीं आते; मनुष्य उससे प्रेम करते हैं; आत्माएं उसकी रक्षा करती हैं; अग्नि, विष और तलवार उसके पास नहीं आते; वह शीघ्र ही मन में लीन हो जाता है; उसकी दृष्टि शांत हो जाती है; वह निर्भय होकर मृत्यु को प्राप्त होता है; आगे किसी ज्ञान की आवश्यकता के बिना वह ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में जाता है। हे भाइयों, अपनी इच्छाओं का त्याग करके किया गया दान"—और इसी प्रकार—"इन ग्यारह आशीर्वादों को प्राप्त करने की उम्मीद की जा सकती है। हे भाइयों, इन ग्यारह आशीर्वादों को धारण करने वाले दान की प्रशंसा करते हुए, एक भिक्षु को सभी प्राणियों के प्रति दयालुता दिखानी चाहिए, चाहे स्पष्ट रूप से आज्ञा दी गई हो या नहीं, उसे मित्रवतों का मित्र होना चाहिए, हाँ, शत्रुओं का भी मित्र होना चाहिए, और एक उदासीनों का मित्र: इस प्रकार, बिना किसी भेदभाव के, चाहे स्पष्ट रूप से निवेदन किया जाए या न किया जाए, उसे सभी के प्रति दान भाव रखना चाहिए; उसे सुख-दुख में सहानुभूति दिखानी चाहिए और समभाव का अभ्यास करना चाहिए; उसे चारों गुणों के माध्यम से अपना कार्य करना चाहिए। ऐसा करने से वह बिना किसी मार्ग या फल के भी ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में प्रवेश करेगा। प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने सात वर्षों तक दान भाव का अभ्यास करके ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में सात युगों तक निवास किया है, प्रत्येक युग में एक विकास काल और एक पतन काल होता है।" और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर उन्होंने अपनी वासनाओं का त्याग कर तपस्वी जीवन व्यतीत किया और चार गुणों को प्राप्त किया। उनका नाम अरका था, वे गुरु बन गए और हिमालय क्षेत्र में अपने अनेक अनुयायियों के साथ रहने लगे। अपने ऋषियों के समूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "सन्यासी को दानशीलता दिखानी चाहिए, सुख-दुख दोनों में सहानुभूति रखनी चाहिए और समभाव धारण करना चाहिए; क्योंकि संकल्प से प्राप्त यह दानशीलता का भाव उन्हें ब्रह्म के उच्च स्वर्ग के लिए तैयार करता है।" दानशीलता के आशीर्वाद को समझाते हुए उन्होंने इन श्लोकों को दोहराया:-

"वह हृदय जो जन्म लेने वाली हर चीज के लिए असीम दया महसूस करता है,"
ऊपर स्वर्ग में, नीचे के लोकों में, और इस मध्य पृथ्वी पर,
असीम दया और अपार परोपकार से परिपूर्ण।
ऐसे हृदय में कोई भी चीज संकीर्ण या सीमित नहीं हो सकती।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने शिष्यों को दान के अभ्यास और उसके लाभों के बारे में उपदेश दिया। और अपनी रहस्यमय समाधि में क्षण भर भी व्यवधान डाले बिना, उनका ब्रह्मा के स्वर्ग में जन्म हुआ, और सात युगों तक, प्रत्येक युग में विकास और पतन के अपने समय के साथ, वे इस संसार में फिर कभी नहीं आए।

इस प्रवचन को समाप्त करने के बाद, गुरु ने जन्म का परिचय देते हुए कहा: "उस समय के ऋषियों का समूह अब बुद्ध के अनुयायी हैं; और मैं स्वयं वही हूं जो गुरु अरका थे।"

फुटनोट:

(1) ग्यारह आशीर्वादों पर मिलिंदा के प्रश्न में चर्चा की गई है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काकान्तक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 170
काकंताका-जातक

इस काकंतक जन्म का विवरण नीचे महा-उम्मग्ग जन्म, जातक 546 में दिया जाएगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कल्याण-धम्म-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-171-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 171
कल्याण-धम्म-जातक

"हे राजा, जब लोग हमारा अभिवादन करते हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक बहरी सास के बारे में सुनाई थी।

कहा जाता है कि श्रावस्ती नगर में एक अधिकारी थे, जो धर्म के सच्चे अनुयायी थे और पंच गुणों से संपन्न थे। वे तीन शरणस्थलों में शरण लिए हुए थे। एक दिन वे जेतवन मठ में गुरु के प्रवचन सुनने के लिए निकले। वे अपने साथ बहुत सारा घी, तरह-तरह की मिठाइयाँ, फूल, इत्र आदि ले गए थे। उसी समय उनकी पत्नी की माँ अपनी बेटी से मिलने आई थीं और अपने साथ पौष्टिक भोजन और दलिया लेकर आई थीं। उन्हें थोड़ा कम सुनाई देता था।

खाना खाने के बाद—खाने के बाद थोड़ी नींद आने लगती है—उसने खुद को जगाए रखने के लिए कहा—"अच्छा, और क्या आपके पति आपके साथ खुशी से रहते हैं? क्या आप दोनों में सहमति है?" "अरे माँ, ये कैसी बात पूछ रही हो! उनके जैसा नेक और गुणी साधु तो मुश्किल से ही मिलेगा!" उस भली महिला को अपनी बेटी की बात पूरी तरह समझ नहीं आई, लेकिन उसने "साधु" शब्द सुन लिया और चिल्लाई—"अरे बाप रे, आपके पति साधु क्यों बन गए!" और उसने खूब हंगामा किया। उस घर में रहने वाले सभी लोगों ने यह सुना और चिल्लाए, "अधिकारी साधु बन गए!" लोगों ने शोर सुना और यह जानने के लिए दरवाजे पर भीड़ जमा हो गई कि क्या हुआ है। "यहाँ रहने वाला अधिकारी साधु बन गया है!" बस यही उन्होंने सुना।

हमारे अधिकारी ने बुद्ध का उपदेश सुना और फिर शहर लौटने के लिए मठ से निकल पड़े। रास्ते में एक व्यक्ति उनसे मिला और बोला, “हे गुरुजी, लोग कहते हैं कि आपने संन्यासी बन गए हैं और आपके सभी परिवार और नौकर घर पर रो रहे हैं!” तब उनके मन में ये विचार आए, “लोग कहते हैं कि मैंने संन्यासी बन गया हूँ जबकि मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है। शुभ वाणी को अनदेखा नहीं करना चाहिए; आज मुझे संन्यासी बनना ही होगा।” तभी वे तुरंत मुड़े और गुरुजी के पास लौट आए। गुरुजी ने कहा, “तुम बुद्ध के दर्शन करके चले गए। फिर यहाँ वापस क्यों आए हो?” उस व्यक्ति ने उन्हें सब कुछ बताया और कहा, “हे गुरुजी, शुभ वाणी को अनदेखा नहीं करना चाहिए। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ और संन्यासी बनना चाहता हूँ।” फिर उन्होंने शिष्यों की दीक्षा ली और पुण्य जीवन व्यतीत किया; और शीघ्र ही वे संत बन गए।

यह कहानी समुदाय में फैल गई। एक दिन वे सब मिलकर सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे, और उनका कहना था: "मेरे मित्र, फलां अधिकारी ने शिष्यों का दीक्षा संस्कार इसलिए ग्रहण किया क्योंकि उन्होंने कहा था कि 'महान वाणी को कभी उपेक्षित नहीं करना चाहिए,' और अब वे संत बन गए हैं!" गुरुजी अंदर आए और जानना चाहते थे कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), पुराने समय में ज्ञानी पुरुष भी भिक्षु संघ में इसलिए शामिल हुए थे क्योंकि उन्होंने कहा था कि शुभ वाणी को कभी उपेक्षित नहीं करना चाहिए;" और फिर उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक धनी व्यापारी के पुत्र के रूप में संसार में आए; और जब वे बड़े हुए और उनके पिता की मृत्यु हो गई, तो उन्होंने अपने पिता का स्थान ग्रहण कर लिया।

एक बार वह राजा को प्रणाम करने गए थे, तभी उनकी सास अपनी बेटी से मिलने आईं। उन्हें थोड़ा कम सुनाई देता था, और सब कुछ ठीक वैसे ही हुआ जैसे अब हुआ है। पति राजा को प्रणाम करके लौट रहे थे, तभी उन्हें एक आदमी मिला, जिसने कहा, "लोग कहते हैं कि आप संन्यासी बन गए हैं, और आपके घर में इतना शोरगुल है!" बोधिसत्व ने यह सोचकर कि शुभ शब्दों को कभी अनदेखा नहीं करना चाहिए, तुरंत मुड़कर राजा के पास वापस चले गए। राजा ने पूछा कि उन्हें वापस आने का क्या कारण है। उन्होंने कहा, "महाराज, मुझे बताया गया है कि मेरे सभी लोग मेरे संन्यासी बनने पर शोक मना रहे हैं, जबकि मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है। लेकिन शुभ शब्दों को अनदेखा नहीं करना चाहिए, और मैं संन्यासी बनूंगा। मैं संन्यासी बनने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूं!" और उन्होंने निम्नलिखित श्लोकों में स्थिति का वर्णन किया:

"हे राजा, जब लोग हमें नाम से पुकारते हैं
हमें अपने कार्यों को भी पवित्र बनाना चाहिए:
हमें न तो विचलित होना चाहिए और न ही इसमें कमी करनी चाहिए;
हमें इस शर्मिंदगी का बोझ खुद उठाना होगा।
"हे राजा, मुझे यह नाम दिया गया है:
आज वे चिल्लाते हैं कि मुझे कितना पवित्र होना चाहिए:
इसलिए मैं एक संन्यासी के रूप में जीना और मरना पसंद करूंगा;
मुझे खुशी और मौज-मस्ती में कोई रुचि नहीं है।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा से धार्मिक (तपस्वी) जीवन अपनाने की अनुमति मांगी। फिर वे हिमालय चले गए और तपस्वी बनकर उन्होंने अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को विकसित किया और अंत में ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग में पहुंचे।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए जन्म का विवरण दिया: "उन दिनों आनंद राजा थे, और मैं स्वयं बनारस का धनी व्यापारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दद्दारा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-172-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 172
दद्दरा-जातक

"वह कौन है जो इतनी ज़ोर से चिल्लाता है, इत्यादि।"—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कोकालिका के बारे में सुनाई थी। उस समय हमें पता चला कि मनोशिला जिले में कई विद्वान भिक्षु थे, जो समुदाय के सामने शास्त्रों का पाठ करते समय युवा शेरों की तरह ज़ोर से बोलते थे, मानो स्वर्ग की गंगा नदी को भी नीचे ला सकते हों (*1)। जब वे अपने ग्रंथों का पाठ कर रहे थे, तो कोकालिका (यह जाने बिना कि वह कितना मूर्ख साबित हो रहा है) ने सोचा कि वह भी ऐसा ही करना चाहेगा। इसलिए वह भिक्षुओं के बीच गया, हालाँकि उसने भिक्षुओं का नाम नहीं लिया, बल्कि कहा, "वे मुझसे शास्त्र का कोई अंश पढ़ने के लिए नहीं कहते। यदि वे मुझसे कहें, तो मैं पढ़ दूँगा।" पूरे समुदाय को इसकी जानकारी हो गई और उन्होंने सोचा कि वे उसकी परीक्षा लेंगे। उन्होंने कहा, "मित्र कोकालिका, आज समुदाय को कुछ शास्त्र सुनाओ।" वह अपनी गलती को जाने बिना इस पर सहमत हो गया; उस दिन वह समुदाय के सामने पाठ करेगा।

सबसे पहले उन्होंने अपनी पसंद का दलिया खाया, कुछ और भोजन किया और अपना पसंदीदा सूप पिया। सूर्यास्त के समय प्रवचन का घंटा बजा; सारा समुदाय इकट्ठा हो गया। उन्होंने जो 'पीला वस्त्र' पहना था, वह नीले रंग का था; उनका बाहरी वस्त्र शुद्ध सफेद था। इस प्रकार वस्त्र पहनकर वे सभा में प्रवेश किया, बड़ों को प्रणाम किया, एक भव्य रत्नजड़ित मंडप के नीचे बने प्रवचन आसन पर चढ़े, हाथ में एक सुंदर नक्काशीदार पंखा लिए हुए, और बैठ गए, अपने पाठ को शुरू करने के लिए तैयार। लेकिन ठीक उसी क्षण उनके पूरे शरीर पर पसीने की बूंदें आने लगीं और उन्हें शर्म महसूस हुई। उन्होंने पहले श्लोक का पहला भाग दोहराया; लेकिन आगे क्या आएगा, वे

सोच नहीं पाए। इसलिए घबराकर आसन से उठकर वे सभा से बाहर निकल गए और अपनी कोठरी खोजने लगे। किसी और ने, जो वास्तव में एक विद्वान थे, धर्मग्रंथ का पाठ किया। उसके बाद सभी भाइयों को पता चल गया कि वे कितने खाली थे।

एक दिन सत्य के हॉल में भाई लोग इस विषय पर चर्चा करने लगे: "मित्र, पहले यह देखना आसान नहीं था कि कोकालिका कितना खोखला है; परन्तु अब उसने अपनी वाणी से यह प्रकट कर दिया है।" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को सब कुछ बताया। गुरुजी ने कहा—"भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब कोकालिका ने अपनी वाणी से स्वयं को प्रकट किया है; ठीक ऐसा ही पहले भी हो चुका है;" और फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक युवा सिंह के रूप में हुआ और वे कई सिंहों के राजा थे। वे अपने सिंहों के दल के साथ चांदी की गुफा में रहते थे। पास ही एक सियार दूसरी गुफा में रहता था।

एक दिन, बारिश के बाद, सभी शेर अपने सरदार की गुफा के प्रवेश द्वार पर इकट्ठा होकर ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ रहे थे और शेरों की तरह उछल-कूद कर रहे थे। जब वे दहाड़ रहे थे और खेल रहे थे, तभी सियार ने भी अपनी आवाज़ उठाई। "देखो, यह सियार भी हमारे साथ दहाड़ रहा है!" शेरों ने कहा; उन्हें शर्म महसूस हुई और वे चुप हो गए। जब वे सब चुप हो गए, तो बोधिसत्व के शावक ने उनसे यह प्रश्न पूछा। "पिताजी, ये सभी शेर जो दहाड़ रहे थे और खेल रहे थे, एक प्राणी की आवाज़ सुनकर शर्म से चुप हो गए हैं। यह कौन सा प्राणी है जो अपनी आवाज़ से इस तरह अपनी पहचान उजागर कर देता है?" और उसने पहला श्लोक दोहराया:

"कौन है वो जोरदार चीख जिससे दद्दारा गूंज उठता है?"
हे पशुओं के स्वामी, यह कौन है? और उसका स्वागत क्यों नहीं हुआ?
अपने बेटे के शब्दों पर बूढ़े शेर ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

"सभी जानवरों में सबसे घिनौना सियार ही वह आवाज निकालता है।"
शेर उसकी दीनता को नापसंद करते हैं, इसलिए वे चुपचाप उसके चारों ओर बैठे रहते हैं।

"भाइयों," गुरु ने आगे कहा, "यह पहली बार नहीं है जब कोकालिका ने अपनी वाणी से स्वयं को प्रकट किया है; पहले भी ऐसा ही हुआ था;" और अपने प्रवचन को समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय कोकालिका सियार था, राहुल युवा शेर था, और मैं स्वयं सिंहराज था।"

फुटनोट:

(1) आकाशगंगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मक्कट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-173-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 173
मक्काता-जातक

"पिताजी, देखिए! बेचारा बूढ़ा!" इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक बदमाश के बारे में सुनाई थी। इसके घटनाक्रम उद्दल जन्म (*1) के चौदहवें खंड में वर्णित हैं। यहाँ भी गुरु ने कहा, "भाइयों, यह बदमाश केवल एक बार ही नहीं निकला है; पुराने दिनों में, जब यह बंदर था, तब भी इसने आग जलाने के लिए शरारतें की थीं।" और उन्होंने बहुत पुराने दिनों की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब वे बड़े हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की और वहीं बस गए।

कुछ समय बाद उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया; और जब बच्चा दौड़-भाग कर ही सकता था, तभी उनकी पत्नी का निधन हो गया। पति ने उनकी अंतिम संस्कार की रस्में पूरी कीं और फिर कहा, "अब मेरे लिए घर क्या है? मैं और मेरा पुत्र संन्यासी का जीवन व्यतीत करेंगे।" अपने मित्रों और परिवार को आँसुओं में डूबा छोड़कर, वह पुत्र को लेकर हिमालय चले गए, एक धार्मिक संन्यासी बन गए और जंगल से मिलने वाले फलों और जड़ों पर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

बरसात के मौसम में एक दिन, जब ज़ोरदार बारिश हुई थी, उसने कुछ लकड़ियाँ जलाईं और पुआल के गद्दे पर लेटकर आग से खुद को गर्म करने लगा। उसका बेटा उसके बगल में बैठकर उसके पैर छू रहा था।

अब एक जंगली बंदर, ठंड से बेहाल होकर, हमारे साधु की पत्तों की कुटिया में आग जलती हुई देखी। उसने सोचा, "मान लो मैं अंदर चला जाऊं: वे चिल्लाएंगे बंदर! बंदर! और मुझे भगा देंगे: मुझे खुद को गर्म करने का मौका ही नहीं मिलेगा। — मुझे एक उपाय सूझा!" वह चिल्लाया। "मैं एक साधु का वस्त्र पहनूंगा, और एक तरकीब से अंदर चला जाऊंगा!" तो उसने एक मरे हुए साधु का छाल का वस्त्र पहना, अपनी टोकरी और टेढ़ी छड़ी उठाई, और कुटिया के दरवाजे के पास खड़ा हो गया, जहाँ वह एक ताड़ के पेड़ के पास बैठ गया। लड़के ने उसे देखा, और अपने पिता को पुकारा (यह जाने बिना कि वह एक बंदर है) "देखो, एक बूढ़ा साधु है, सचमुच, ठंड से बेहाल होकर आग के पास खुद को गर्म करने आया है।" फिर उसने अपने पिता से पहले श्लोक के शब्दों में विनती की, कि बेचारे को अंदर आने दें ताकि वह खुद को गर्म कर सके।

"पिताजी, देखिए! एक बेचारा बूढ़ा आदमी वहाँ ताड़ के पेड़ के पास दुबका हुआ है!"
हमारे पास रहने के लिए एक झोपड़ी है; आइए उस आदमी को भी उसमें से एक हिस्सा दे दें।"

जब बोधिसत्व ने यह सुना, तो वे उठे और द्वार की ओर गए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वह प्राणी केवल एक बंदर है, तो उन्होंने कहा, "हे मेरे पुत्र, मनुष्य का ऐसा चेहरा नहीं होता; यह एक बंदर है, और इसे यहाँ अंदर नहीं आने देना चाहिए।" फिर उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

"यदि वह दरवाजे के अंदर आ गया तो वह हमारे जीवन को अपवित्र कर देगा।"
ऐसा चेहरा देखकर आसानी से पता चल जाता है कि किसी अच्छे ब्राह्मण का चेहरा ऐसा कभी नहीं रहा होगा।

बोधिसत्व ने जलता हुआ एक टुकड़ा उठाया और चिल्लाते हुए कहा, "तुम्हें यहाँ क्या चाहिए?" और उसे उस पर फेंक दिया, और उसे भगा दिया। बंदर ने अपने छाल के वस्त्र उतार दिए, एक पेड़ पर चढ़ गया और जंगल में छिप गया।

तब बोधिसत्व ने चारों गुणों का अभ्यास करते हुए ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग तक पहुँच गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "यह चालाक भाई (भिक्षु) उन दिनों का बंदर था; राहुल उस ऋषि का पुत्र था, और मैं स्वयं वह ऋषि था।"

फुटनोट:

(1)सं. 487.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुभिया-मक्कट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-174-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 174
दुभिया-मक्कता-जातक

"भरपूर पानी," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने वेलुवाना में अपने प्रवास के दौरान देवदत्त के बारे में सुनाई थी। एक दिन ऐसा हुआ कि भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में देवदत्त की कृतघ्नता और अपने मित्रों के प्रति विश्वासघात के बारे में बात कर रहे थे, तभी गुरु ने बीच में टोकते हुए कहा, "भाइयों, देवदत्त ने केवल एक बार ही अपने मित्रों के प्रति कृतघ्नता और विश्वासघात नहीं किया है। वह पहले भी ऐसा ही था।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण (पुजारी) परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने विवाह किया और वहीं बस गए। उस गाँव में, काशी राज्य के राजमार्ग के किनारे एक गहरा कुआँ था, जिसमें उतरने का कोई रास्ता नहीं था। वहाँ से गुजरने वाले लोग पुण्य कमाने के लिए एक लंबी रस्सी और बाल्टी से पानी खींचकर पशुओं के लिए एक कुंड भरते थे; इस प्रकार वे पशुओं को पानी पिलाते थे। चारों ओर घना जंगल था, जिसमें बंदरों के झुंड रहते थे।

संयोगवश दो-तीन दिनों तक पानी का स्रोत बंद हो गया, जहाँ से यात्री पानी भरते थे; और जीवों को पीने के लिए कुछ नहीं मिला। प्यास से व्याकुल एक बंदर पानी की तलाश में कुएँ के पास इधर-उधर भटकता रहा।

अब बोधिसत्व किसी काम से उस रास्ते से गुजरे, अपने लिए पानी लाए, उसे पिया और हाथ धोए; फिर उनकी नज़र हमारे बंदर पर पड़ी। उसे प्यासा देखकर यात्री कुएँ से पानी लाए और उसके लिए प्याला भर दिया। फिर वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए, यह देखने के लिए कि वह प्राणी क्या करता है।

बंदर ने पानी पिया, पास में बैठ गया और बोधिसत्व को डराने के लिए बंदर जैसा मुंह बनाया। "अरे, बदमाश बंदर!" बोधिसत्व ने इस पर कहा—"जब तुम प्यासे और दुखी थे, तब मैंने तुम्हें खूब पानी पिलाया; और अब तुम मेरे सामने बंदर जैसे मुंह बना रहे हो। वाह वाह, बदमाश की मदद करके तुमने अपनी मेहनत बर्बाद कर दी।" और उन्होंने पहली पंक्ति दोहराई:

मैंने तुम्हें खूब पानी दिया था
जब आपको गर्मी और प्यास दोनों लग रही थी:
अब तुम शरारतों से भरे हुए बकबक करते बैठे हो,
दुष्ट लोगों से कोई वास्ता न रखना ही बेहतर है।

तब उस चिड़चिड़े बंदर ने जवाब दिया, "मुझे लगता है कि तुम सोचते हो कि मैं बस इतना ही कर सकता हूँ। अब जाने से पहले मैं तुम्हारे सिर पर कुछ गिरा दूँगा।" फिर, दूसरी पंक्ति को दोहराते हुए, वह आगे बढ़ा--

"एक सुशासित बंदर जिसने कभी सुना या देखा हो"
मैं तुम्हारे सिर पर अपना मल त्याग देता हूँ; क्योंकि यही हमारा व्यवहार है।

यह सुनकर बोधिसत्व उठकर जाने लगे। लेकिन ठीक उसी क्षण, जिस डाल पर वे बैठे थे, वहाँ से एक बंदर ने उसे माला की तरह उनके सिर पर गिरा दिया और चीखता हुआ जंगल की ओर भाग गया। बोधिसत्व ने स्नान किया और अपने रास्ते चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "ऐसा केवल अब ही नहीं है कि देवदत्त ऐसा है, बल्कि पहले भी उसने मेरे द्वारा दिखाई गई कृपा को स्वीकार नहीं किया था," तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त बंदर था, और ब्राह्मण मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अदिक्कुपत्थान-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-175-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 175
आदिकुपट्टाना-जातक

"कोई जनजाति नहीं है," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ में गुरु द्वारा एक बदमाश के बारे में सुनाई गई थी।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर वे तक्षशिला गए और वहाँ अपनी शिक्षा पूरी की। फिर उन्होंने धार्मिक जीवन अपनाया, अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को निखारा और कई शिष्यों के गुरु बनकर हिमालय में अपना जीवन व्यतीत किया।

वह वहां लंबे समय तक रहे; एक बार नमक और मसाले खरीदने के लिए उन्हें ऊंचे पहाड़ों से नीचे एक सीमावर्ती गांव में आना पड़ा, जहां वे पत्तों की झोपड़ी में रहने लगे। जब वे भिक्षा मांगने के लिए बाहर गए होते थे, तो एक शरारती बंदर कुटिया में घुस आता था और सब कुछ उलट-पुलट कर देता था, घड़ों से पानी गिरा देता था, जग तोड़ देता था और अंत में उस कोठरी में गंदगी फैला देता था जहां आग जल रही होती थी।

बरसात खत्म होने पर, संन्यासियों ने लौटने का सोचा और ग्रामीणों से विदा ली; उन्होंने सोचा, "अभी पहाड़ों पर फूल और फल पक रहे हैं।" उत्तर मिला, "कल हम आपके निवास पर भिक्षा लेकर आएंगे; जाने से पहले आप भोजन कर लेना।" इसलिए अगले दिन वे वहाँ भरपूर भोजन, ठोस और तरल, लेकर आए। बंदर ने मन ही मन सोचा, "मैं इन लोगों को छल से वश में कर लूँगा और उनसे कुछ भोजन ले लूँगा।" इसलिए उसने भिक्षा मांगने वाले एक पवित्र व्यक्ति का रूप धारण किया और संन्यासियों के पास ही खड़ा होकर सूर्य की पूजा करने लगा। जब लोगों ने उसे देखा, तो उन्होंने सोचा, "पवित्र हैं वे जो पवित्रों के साथ रहते हैं," और पहली पंक्ति दोहराई:

"पशुओं की ऐसी कोई प्रजाति नहीं है जो अपने गुणी स्वरूप को न नकारती हो।"
देखो, यह बेचारा बंदर यहाँ सूर्य की पूजा कर रहा है!

इस प्रकार लोगों ने हमारे बंदर के गुणों की प्रशंसा की। लेकिन बोधिसत्व ने यह देखकर उत्तर दिया, "तुम शरारती बंदर के तौर-तरीकों को नहीं जानते, वरना तुम उसकी प्रशंसा नहीं करते जो प्रशंसा के योग्य नहीं है;" और फिर उन्होंने दूसरा श्लोक जोड़ा:

"आप इस प्राणी के चरित्र की प्रशंसा इसलिए करते हैं क्योंकि आप उसे जानते नहीं हैं;
उसने पवित्र अग्नि को अपवित्र किया है और हर एक जलपात्र को तोड़ दिया है।

जब लोगों ने सुना कि वह बंदर कितना शरारती है, तो उन्होंने लाठी-पत्थर उठाकर उस पर प्रहार किया और भिक्षुओं को दान दिया। ऋषि हिमालय लौट गए; और अपनी रहस्यमय समाधि (सम्मोहन) को भंग किए बिना अंततः ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में पहुँच गए।

इस प्रवचन के अंत में, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों यह पाखंडी बंदर था; बुद्ध के अनुयायी ऋषियों का समूह थे; और उनका नेता मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कालया-मुथि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-176-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 176
कलाय-मुक्ति-जातक

"एक मूर्ख बंदर," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कोसल के एक राजा के बारे में सुनाई थी।

एक बरसात के मौसम में, उसकी सीमा पर असंतोष फैल गया। वहाँ तैनात सैनिकों ने दो-तीन लड़ाइयों में अपने शत्रुओं को हराने में असफल रहने के बाद राजा को संदेश भेजा। मौसम और बारिश की परवाह किए बिना, राजा युद्ध के मैदान में उतरा और जेतवन मठ के प्रांगण में डेरा डाला। फिर वह सोचने लगा, "यह अभियान के लिए अच्छा मौसम नहीं है; हर दरार और गड्ढा पानी से भरा है; रास्ता दुर्गम है: मैं गुरु से मिलने जाऊँगा। वे अवश्य पूछेंगे, 'तुम कहाँ जा रहे हो?'; तब मैं उन्हें बता दूँगा। गुरु केवल भविष्य के मामलों में ही मेरी रक्षा नहीं करते, बल्कि वर्तमान में हम जो देखते हैं, उसमें भी मेरी रक्षा करते हैं। इसलिए यदि मेरा जाना सफल नहीं होगा, तो वे कहेंगे,

'महाराज, यह जाने का अच्छा समय नहीं है'; लेकिन यदि मैं सफल होऊंगा, तो वे कुछ नहीं कहेंगे।" इस प्रकार वह प्रांगण में आया और गुरु को प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गया।

"हे महाराज, आप इस असमय कहाँ से आए हैं?" गुरु ने पूछा। "महाराज," उसने उत्तर दिया, "मैं सीमा पर हो रहे विद्रोह को दबाने जा रहा हूँ; और सबसे पहले आपसे विदाई लेने आया हूँ।" इस पर गुरु ने कहा, "ऐसा पहले भी हुआ है कि शक्तिशाली सम्राट युद्ध पर निकलने से पहले बुद्धिमानों की सलाह मानकर असमय अभियान से लौट जाते हैं।" फिर, राजा के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, उनका एक सलाहकार था जो उनका विशेष विश्वासपात्र था और उन्हें आध्यात्मिक और सांसारिक मामलों में सलाह देता था। सीमा पर विद्रोह हुआ और वहाँ तैनात सैनिकों ने राजा को पत्र भेजा। राजा तुरंत, बरसात के मौसम में भी, अपने उद्यान में डेरा डालकर निकल पड़े। बोधिसत्व राजा के सामने उपस्थित हुए। उसी समय लोगों ने घोड़ों के लिए मटर उबाली और उन्हें एक नांद में डाल दिया। उद्यान में रहने वाले बंदरों में से एक पेड़ से नीचे कूदा, अपने मुँह और हाथों में मटर भर ली, फिर वापस ऊपर चढ़ गया और पेड़ पर बैठकर खाने लगा। खाते समय, एक मटर उसके हाथ से ज़मीन पर गिर गई। उसके हाथों और मुँह से सारी मटर तुरंत नीचे गिर गईं और वह पेड़ से नीचे उतरकर खोई हुई मटर को खोजने लगा। लेकिन वह मटर उसे नहीं मिली; इसलिए वह फिर से अपने पेड़ पर चढ़ गया और उदास होकर बैठ गया, मानो किसी मुकदमे में हज़ारों रुपये हार गया हो।

राजा ने बंदर की हरकत देखी और बोधिसत्व को उसकी ओर इशारा करते हुए पूछा, "मित्र, इस बारे में तुम्हारा क्या विचार है?" इस पर बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "महाराज, मूर्ख लोग अक्सर यही करते हैं; वे एक पैसा कमाने के लिए एक पाउंड खर्च कर देते हैं;" और उन्होंने पहली पंक्ति को दोहराया।

"एक मूर्ख बंदर, जो पेड़ों पर रहता है,"
हे राजा, जब उनके दोनों हाथ मटर से भरे हुए थे,
उसने एक की तलाश में उन सभी को फेंक दिया है:
हे महाराज, ऐसे लोगों में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।
तब बोधिसत्व राजा के पास गए और उनसे दोबारा बात करते हुए दूसरी पंक्ति दोहराई:

"हे महामहिम सम्राट, हम ऐसे ही हैं, लालची लोग भी ऐसे ही हैं।"
थोड़ा पाने के लिए बहुत कुछ खोना, बिल्कुल बंदर और मटर की कहानी की तरह।
यह भाषण सुनकर राजा मुड़ा और सीधे बनारस लौट गया। और जब डाकुओं ने सुना कि राजा अपनी राजधानी से अपने शत्रुओं को कुचलने के लिए निकल पड़ा है, तो वे भी सीमा से भाग निकले।

जिस समय यह कहानी सुनाई गई, उस समय भगोड़े ठीक उसी तरह भाग निकले। गुरु की बातें सुनकर राजा उठे और विदा लेकर श्रावस्ती नगर लौट गए।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों आनंद राजा थे, और बुद्धिमान सलाहकार मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तिन्दुक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-177-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 177
तिन्दुका-जातक

"हमारे चारों ओर उन्हें खड़े देखो," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए पूर्ण ज्ञान के बारे में सुनाई थी। महाबोधि जन्म (*1) और उम्मग्ग जन्म (*2) की तरह, अपने ज्ञान की प्रशंसा सुनकर उन्होंने कहा, "बुद्ध केवल आज ही ज्ञानी नहीं हैं, बल्कि वे पहले भी ज्ञानी और सभी संसाधनों से परिपूर्ण थे;" और उन्होंने निम्नलिखित पुरानी कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक बंदर के रूप में हुआ और वे अस्सी हजार बंदरों के झुंड के साथ हिमालय में रहते थे। पास ही एक गाँव था, जो कभी आबाद होता था और कभी खाली। उस गाँव के बीच में एक तिन्दुका (*3) का पेड़ था, जिस पर मीठे फल लगते थे और वह टहनियों और शाखाओं से ढका हुआ था। जब वह जगह खाली होती थी, तो सभी बंदर वहाँ जाकर फल खाते थे।

एक बार, फलों के मौसम में, गाँव लोगों से भरा हुआ था, उसके चारों ओर बाँस की बाड़ लगी थी और द्वार पहरेदार थे। और एक पेड़ फलों के भार से झुकी हुई अपनी सभी शाखाओं के साथ खड़ा था। बंदर सोचने लगे: "एक ऐसा गाँव है, जहाँ से हम फल खाते थे। पता नहीं उस पेड़ पर फल हैं या नहीं; क्या वहाँ लोग हैं या नहीं?" अंत में उन्होंने एक जासूस बंदर को भेजा। उसने पाया कि पेड़ पर फल थे और गाँव लोगों से भरा हुआ था। जब बंदरों ने सुना कि पेड़ पर फल हैं, तो उन्होंने उस मीठे फल को खाने का निश्चय किया; और हिम्मत जुटाकर, उनमें से एक झुंड अपने मुखिया के पास गया और उसे बताया। मुखिया ने पूछा कि गाँव भरा हुआ है या खाली; उन्होंने कहा, भरा हुआ है। "तो तुम्हें नहीं जाना चाहिए," उसने कहा, "क्योंकि मनुष्य बहुत धोखेबाज होते हैं।" "लेकिन, महाराज, हम आधी रात को जाएँगे, जब सब गहरी नींद में सो रहे होंगे, और तब खाएँगे!" अत: इस विशाल दल ने अपने सरदार से अनुमति प्राप्त की और पहाड़ों से नीचे उतरकर एक किनारे पर तब तक प्रतीक्षा की जब तक लोग विश्राम करने के लिए नहीं चले गए; मध्य पहर में, जब लोग सो रहे थे, वे पेड़ पर चढ़ गए और फल खाने लगे।

एक आदमी को रात में किसी ज़रूरी काम से उठना पड़ा; वह गाँव गया और वहाँ उसने बंदरों को देखा। उसने तुरंत शोर मचाया; लोग धनुष-बाण लेकर या जो भी हथियार हाथ लगे, लाठी या मिट्टी के ढेले लेकर बाहर आए और पेड़ को घेर लिया; उन्होंने सोचा, "भोर होते ही, हमने उन्हें पकड़ लिया है!"

अस्सी हजार बंदरों ने इन लोगों को देखा और बुरी तरह डर गए। उन्होंने सोचा, "हमारे सरदार के सिवा हमारी कोई मदद नहीं है;" इसलिए वे उसके पास गए और पहला श्लोक सुनाया:

"हमारे चारों ओर वे खड़े दिखाई देते हैं, धनुष और बाण से लैस योद्धा।"
हमारे चारों ओर, हाथों में तलवार लिए: ऐसा कौन है जो हमें बचा सकता है?

इस पर बंदरों के सरदार ने उत्तर दिया: "डरिए मत; मनुष्यों के पास करने के लिए बहुत काम है। अभी दोपहर का समय है; वे वहाँ खड़े सोच रहे हैं—'हम उन्हें मार डालेंगे!' लेकिन हम उनके इस काम में बाधा डालने के लिए कोई और काम ढूंढ लेंगे।" और बंदरों को सांत्वना देने के लिए उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

"लोगों के पास करने के लिए बहुत सी चीजें हैं; किसी न किसी कारण से सभा भंग हो जाएगी।"
देखो तुम्हारे लिए अभी क्या बचा है; जब तक खाने के लिए फल बचे हैं, खा लो।

उस महान प्राणी ने बंदरों के झुंड को दिलासा दिया। अगर उन्हें यह थोड़ी सी भी तसल्ली न मिलती तो वे टूट जाते और मर जाते। जब उस महान प्राणी ने बंदरों को सांत्वना दी, तो उसने पुकार कर कहा, "सभी बंदरों को इकट्ठा करो!" लेकिन जब उन्होंने उन्हें इकट्ठा किया, तो उन्हें एक बंदर नहीं मिला, उसका भतीजा, सेनाका नाम का बंदर। इसलिए उन्होंने उसे बताया कि सेनाका झुंड में नहीं है। उसने कहा, "अगर सेनाका यहाँ नहीं है, तो चिंता मत करो; वह तुम्हारी मदद करने का कोई न कोई रास्ता ज़रूर निकालेगा।"

जिस समय सैनिकों का दल तेज़ी से आगे बढ़ा, सेनाका सो रहा था। बाद में जब वह जागा, तो उसे आसपास कोई दिखाई नहीं दिया। इसलिए उसने उनके पदचिह्नों का पीछा किया और थोड़ी देर में उसने सभी लोगों को तेज़ी से भागते हुए देखा। "हमारे दल के लिए कोई खतरा है," उसने सोचा। तभी उसने गाँव के बाहरी इलाके में एक झोपड़ी में एक बूढ़ी औरत को जलती हुई आग के सामने गहरी नींद में सोते हुए देखा। और जैसे कोई गाँव का बच्चा खेतों में जा रहा हो, सेनाका ने एक जलती हुई लकड़ी उठाई और हवा की दिशा में खड़े होकर गाँव में आग लगा दी। फिर सभी लोग बंदरों को छोड़कर आग बुझाने के लिए दौड़ पड़े। इस पर बंदर भाग गए और हर एक सेनाका के लिए एक फल लेकर आया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "महानामा शाक्य उन दिनों के सेनाक के भतीजे थे; बुद्ध के अनुयायी वानरों का समूह थे; और मैं स्वयं उनका मुखिया था।"

फुटनोट:

(1)सं. 528.

(2) संख्या 538.

(3)डायोस्पायरोस एम्ब्रियोप्टेरिस.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कच्छप-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-178-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 178
कच्छपा-जातक

"यहाँ मेरा जन्म हुआ था," इत्यादि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, कि कैसे एक आदमी मलेरिया से छुटकारा पा गया (*1)।

कहा जाता है कि एक बार श्रावस्ती नगर के एक परिवार में मलेरिया फैल गया। माता-पिता ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, इस घर में मत रहो; दीवार में छेद करके कहीं भाग जाओ और अपनी जान बचा लो (*2)। फिर वापस आना—इस जगह पर बहुत धन दबा हुआ है; उसे खोदकर निकालो और परिवार का धन और अपना सुखमय जीवन फिर से संवार लो!" युवक ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था; उसने दीवार तोड़ दी और भाग निकला। जब उसकी बीमारी ठीक हो गई, तो वह लौटा और खजाना खोदकर निकाला, जिससे उसने अपना घर बसाया।

एक दिन, तेल, घी, वस्त्र और अन्य भेंटों से लदे हुए, वे जेतवन मठ गए, गुरु को प्रणाम किया और आसन ग्रहण किया। गुरु ने उनसे बातचीत शुरू की। उन्होंने कहा, "हमने सुना है कि आपके घर में हैजा फैल गया था। आप इससे कैसे बच गए?" उन्होंने गुरु को सारी बात बताई। गुरु ने कहा, "पुराने समय में भी, और आज भी, हे मेरे मित्र, जब कोई संकट आता था, तो कुछ लोग घर से इतना लगाव रखते थे कि उसे छोड़ना नहीं चाहते थे, और इसी कारण वे मर जाते थे; जबकि जो लोग घर से इतना लगाव नहीं रखते थे, और कहीं और चले जाते थे, वे बच जाते थे।" फिर उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक गाँव में कुम्हार के पुत्र के रूप में हुआ था। वे कुम्हार का काम करते थे और उन्हें अपनी पत्नी और परिवार का भरण-पोषण करना था।

उस समय बनारस की महान नदी के पास एक विशाल प्राकृतिक झील थी। जब उसमें भरपूर पानी होता था, तो नदी और झील एक हो जाते थे; लेकिन जब पानी कम हो जाता था, तो वे अलग हो जाते थे। मछलियाँ और कछुए सहज ज्ञान से जानते हैं कि साल में कब बारिश होगी और कब सूखा पड़ेगा। इसलिए हमारी कहानी के समय, उस झील में रहने वाली मछलियाँ और कछुए जानते थे कि सूखा पड़ने वाला है; और जब दोनों झील में पानी एक हो गया, तो वे झील से निकलकर नदी में तैर गए। लेकिन एक कछुआ ऐसा था जो नदी में नहीं गया, क्योंकि उसने कहा, "मैं यहीं पैदा हुआ हूँ, यहीं पला-बढ़ा हूँ, और यहीं मेरे माता-पिता का घर है: मैं इसे छोड़ नहीं सकता!"

फिर गर्मी के मौसम में सारा पानी सूख गया। उसने एक गड्ढा खोदा और खुद को उसमें गाड़ दिया, ठीक उसी जगह पर जहाँ बोधिसत्व मिट्टी लेने आते थे। वहीं बोधिसत्व मिट्टी लेने आते थे; उन्होंने एक बड़े फावड़े से इतना खोदा कि कछुए का खोल टूट गया और वह मिट्टी के एक बड़े टुकड़े की तरह ज़मीन पर गिर पड़ा। पीड़ा में वह प्राणी सोचने लगा, "देखो, मैं मर रहा हूँ, सिर्फ इसलिए कि मुझे अपने घर से इतना लगाव था कि मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता था!" और इन छंदों में उसने विलाप किया:

"मैं यहीं पैदा हुआ था, और यहीं रहता था; मिट्टी ही मेरी शरणस्थली थी।"

और अब मिट्टी ने मेरे साथ बेहद दुखद तरीके से धोखा किया है;
हे भगगवा (*3) मैं तुम्हें पुकारता हूँ; सुनो, मुझे क्या कहना है!
"जहाँ आपको खुशी मिल सके, वहाँ जाओ, चाहे वह जगह कोई भी हो।"
चाहे जंगल हो या गांव, बुद्धिमान व्यक्ति वहां अपना घर और जन्मस्थान दोनों देखता है;
वहां जाओ जहां जीवन हो; और घर पर मत रहो जहां मृत्यु तुम पर हावी हो जाए।

इसलिए वह बोधिसत्व से लगातार बात करता रहा, जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई। बोधिसत्व ने उसे उठाया और सभी ग्रामीणों को इकट्ठा करके उनसे कहा, "इस कछुए को देखो। जब दूसरी मछलियाँ और कछुए बड़ी नदी में चले गए, तो यह अपने घर से इतना मोहित था कि उनके साथ नहीं गया और उस जगह पर खुद को गाड़ लिया जहाँ से मैं मिट्टी निकालता हूँ। फिर जब मैं मिट्टी खोद रहा था, तो मैंने अपने बड़े फावड़े से उसका खोल तोड़ दिया और उसे मिट्टी का एक बड़ा ढेला समझकर ज़मीन पर फेंक दिया। तब उसे अपने किए का पछतावा हुआ, उसने दो छंदों में अपने भाग्य पर शोक व्यक्त किया और मर गया। तो तुम देख सकते हो कि उसका अंत इसलिए हुआ क्योंकि वह अपने घर से बहुत मोहित था। सावधान रहो कि इस कछुए की तरह मत बनो। अपने आप से यह मत कहो, 'मेरे पास दृष्टि है, मेरे पास श्रवण शक्ति है, मेरे पास गंध है, मेरे पास स्वाद है, मेरे पास स्पर्श शक्ति है, मेरे पास एक पुत्र है, मेरे पास एक पुत्री है, मेरे पास सेवा के लिए बहुत से पुरुष और कन्याएँ हैं, मेरे पास कीमती सोना है'; लालसा और इच्छा से इन चीजों से चिपके मत रहो। प्रत्येक प्राणी अस्तित्व के तीन चरणों से गुजरता है (*4)।" इस प्रकार उन्होंने बुद्ध की कुशलता से भीड़ को उपदेश दिया। यह उपदेश पूरे भारत में फैल गया और पूरे सात हजार वर्षों तक इसे याद रखा गया। सारी भीड़ ने उनके उपदेश का पालन किया और दान-पुण्य एवं अच्छे कार्य करते हुए अंततः स्वर्ग को प्राप्त हुए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर युवक प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) में स्थापित हो गया: और कहा, "आनंद तब कछुआ था, और कुम्हार मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) अहिवातारोगो। इस शब्द का अर्थ "सांप की हवा से होने वाली बीमारी" होना चाहिए, संभवतः मलेरिया बुखार, जिसे तराई क्षेत्र में सांप की सांस के कारण माना जाता है। या क्या यह संभव है कि अहि, जिसका अर्थ नाभि हो सकता है, यहाँ आंतें हों, और हैजा जैसी कोई बीमारी हो?

(2) यह उल्लेखनीय है कि यहाँ बीमारी की आत्मा को मात देने के लिए वही साधन इस्तेमाल किया जाता है जो अक्सर मृतकों के भूतों को मात देने के लिए इस्तेमाल किया जाता है; जिनके बारे में माना जा सकता है कि वे दरवाजे की रखवाली करते हैं, लेकिन घर के उन हिस्सों की नहीं जहाँ से कोई निकास नहीं होता।

(3) "कुम्हार को संबोधित करते हुए."

(4)इंद्रिय जगत, रूप जगत, निराकार अस्तित्व जगत।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शतधम्म-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-179-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 179
सतधम्म-जातक

"कितना नीच तरीका है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें जीविका कमाने के इक्कीस गैरकानूनी तरीकों का वर्णन था।

एक समय में बहुत से भिक्षु चिकित्सक बनकर, संदेशवाहक बनकर, पैदल काम करके, भिक्षा लेकर (*1), और इसी प्रकार के इक्कीस अवैध कामों से अपना जीवन यापन करते थे। साकेत जन्म (*2) में इन सभी बातों का वर्णन किया जाएगा। जब गुरु को पता चला कि वे

इस प्रकार अपना जीवन यापन करते हैं, तो उन्होंने कहा, "अब बहुत से भिक्षु हैं जो अवैध तरीकों से अपना जीवन यापन करते हैं। जो इस प्रकार अपना जीवन यापन करते हैं, वे प्रेत या निराकार आत्माओं के रूप में जन्म लेने से नहीं बचेंगे; वे बोझ ढोने वाले जानवर बनेंगे; वे नरक में जन्म लेंगे; उनके कल्याण और आशीर्वाद के लिए एक ऐसा प्रवचन देना आवश्यक है जो अपने नैतिक संदेश को स्पष्ट और सरल शब्दों में व्यक्त करे।" अतः उन्होंने समुदाय को एकत्रित किया और कहा, "भाइयों, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इक्कीस अवैध तरीकों का प्रयोग न करें। अवैध रूप से प्राप्त भोजन धधकते लोहे के समान है, घातक विष के समान है। सभी बुद्धों और पच्चेक-बुद्धों के शिष्य इन अवैध तरीकों की निंदा और खंडन करते हैं। अवैध साधनों से प्राप्त भोजन खाने वालों को न तो हँसी आती है और न ही आनंद। मेरे धर्म (मार्ग) में इस प्रकार प्राप्त भोजन निम्नतम जाति के व्यक्ति के बचे हुए भोजन के समान है। धर्म (मार्ग) के अनुयायी के लिए इसे खाना, मनुष्य जाति के सबसे नीच व्यक्ति के बचे हुए भोजन को खाने के समान है।" और इन शब्दों के साथ उन्होंने प्राचीन काल की सारी कहानी सुना दी।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म निम्नतम जाति के एक व्यक्ति के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर वे किसी उद्देश्य से यात्रा पर निकल पड़े, और अपने भोजन के लिए टोकरी में कुछ चावल के दाने ले गए।

उस समय बनारस में सतधम्म नाम का एक युवक रहता था। वह एक महान ब्राह्मण का पुत्र था। वह भी किसी उद्देश्य से यात्रा पर निकला था, लेकिन उसके पास न तो चावल थे और न ही टोकरी। दोनों की मुलाकात राजमार्ग पर हुई। युवक ब्राह्मण ने दूसरे से पूछा, "तुम किस जाति के हो?" उसने उत्तर दिया, "सबसे नीच जाति का। और तुम कौन हो?" "ओह, मैं एक उत्तरी ब्राह्मण हूँ।" "ठीक है, चलो साथ चलें;" और वे साथ चलने लगे। नाश्ते का समय आया: बोधिसत्व एक स्वच्छ जल के पास बैठ गया, अपने हाथ धोए और अपनी टोकरी खोली। "क्या तुम कुछ लोगे?" उसने पूछा। "अरे, अरे," दूसरे ने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए, तुम नीच।" "ठीक है," बोधिसत्व ने कहा। कुछ भी बर्बाद न करते हुए, उसने अपनी इच्छा अनुसार चावल एक पत्ते में अलग रख दिए, अपनी टोकरी बंद की और भोजन किया। फिर उसने पानी पिया, हाथ-पैर धोए और बचा हुआ चावल और खाना उठाया। "चलिए, महाराज," उसने कहा और वे फिर से अपनी यात्रा पर चल पड़े।

सारा दिन वे चलते रहे; और शाम को दोनों ने उत्तम जल में स्नान किया। स्नान करने के बाद, बोधिसत्व एक अच्छी जगह पर बैठ गए, अपना थैला खोला और खाने लगे। इस बार उन्होंने दूसरे को हिस्सा नहीं दिया। वह युवक सारा दिन चलने से थक गया था और भूख से बेहाल था; वह वहीं खड़ा देखता रहा और सोचता रहा, "अगर वह मुझे कुछ देगा, तो मैं ले लूँगा।" लेकिन दूसरा चुपचाप खाता रहा। "यह नीच आदमी," युवक ने सोचा, "बिना कुछ बोले एक-एक टुकड़ा खा जाता है। चलो, मैं भी एक टुकड़ा माँग लेता हूँ; मैं बाहरी, जो अपवित्र है, उसे फेंक दूँगा और बाकी खा लूँगा।" और उसने ऐसा ही किया; उसने बचा हुआ खाना खा लिया। खाते ही उसने सोचा— "मैंने अपने कुल, अपने परिवार, अपने खानदान को कितना कलंकित किया है! मैंने एक नीच कुल के देहाती का बचा हुआ खाना खा लिया!" उसे बहुत पछतावा हुआ; उसने भोजन उल्टी कर दिया, और उसके साथ खून भी निकला। "ओह, मैंने कितना बुरा काम किया है," वह रोते हुए बोला, "एक नीच व्यक्ति के लिए!" और उसने पहले छंद के शब्दों में अपनी बात जारी रखी:

"कितना नीच आदमी है! और उसका बचा हुआ खाना भी! उसकी मर्जी के खिलाफ दिया गया!"
  और मैं उच्च कुल का ब्राह्मण हूँ! और उस पदार्थ ने मुझे बीमार कर दिया है!
इस प्रकार उस युवक ने रोते हुए कहा, "मैंने जीवन बचाने के लिए इतना बुरा काम क्यों किया?" वह जंगल में कूद गया और फिर कभी किसी की नजरों में नहीं आया, वहीं उसकी दुखद मृत्यु हो गई।

जब यह कथा समाप्त हुई, तो गुरु ने दोहराया, "हे भिक्षुओं, जिस प्रकार एक युवा ब्राह्मण ने नीच जाति के व्यक्ति का बचा हुआ भोजन खाने के बाद पाया कि उसे न तो हंसी आई और न ही आनंद, क्योंकि उसने अनुचित भोजन किया था; उसी प्रकार जिसने भी इस मोक्ष (निर्वाण) को ग्रहण किया है और अवैध साधनों से जीविका कमाता है, जब वह बुद्ध द्वारा निंदनीय और अस्वीकृत किसी भी तरीके से भोजन करता है और अपना जीवन यापन करता है, तो उसे पता चलेगा कि उसे न तो हंसी आई और न ही आनंद।" फिर, पूर्णतः प्रबुद्ध होकर, उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

जो दुष्टता से जीवन यापन करता है, जो अपने पापों की परवाह नहीं करता,
  कहानी के ब्राह्मण की तरह, उसे अपनी जीत का कोई आनंद नहीं मिलता।
जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर कई भाइयों ने मार्ग का अनुसरण किया और उसका फल प्राप्त किया: "कहानी के समय मैं निम्न जाति का व्यक्ति था।"

फुटनोट:

(1) अपराध का तात्पर्य एक दिन भीख में हिस्सा देना और अगले दिन भीख मांगते समय उसी के बराबर हिस्सा लेना है, ताकि प्रतिदिन भीख मांगने की परेशानी से बचा जा सके।

(2) संख्या 237, जो हालांकि केवल संख्या 68 को संदर्भित करता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुद्ददा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-180-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 180
दुद्दादा-जातक

"नेक लोगों की तरह करना कठिन है," इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सामूहिक दान के बारे में सुनाई थी। श्रावस्ती नगर में दो प्रतिष्ठित युवक मित्रों ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को देने के लिए आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित कीं। उन्होंने सभी को आमंत्रित किया, सात दिनों तक उदारतापूर्वक दान दिया और सातवें दिन उन्हें उनकी सभी आवश्यक वस्तुएँ भेंट कीं। उनमें से बड़े ने गुरु को प्रणाम किया और उनके पास बैठकर कहा, "हे प्रभु, दान देने वालों में से कुछ ने अधिक दिया और कुछ ने कम; परन्तु यह सबके लिए समान रूप से फलदायी हो।" फिर उन्होंने दान भेंट किया। गुरु ने उत्तर दिया, "बुद्ध और उनके अनुयायियों को ये वस्तुएँ देकर, मेरे मित्रों, आपने महान कर्म किया है। पुराने समय में बुद्धिमान लोग इसी प्रकार उदारतापूर्वक दान देते थे और इसी प्रकार भेंट करते थे।" फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में पूर्ण शिक्षा प्राप्त की; जिसके बाद उन्होंने संसार त्याग दिया और संन्यासी जीवन व्यतीत करते हुए अपने कुछ शिष्यों के साथ हिमालय में निवास करने चले गए। वहाँ वे दीर्घकाल तक रहे।

एक बार नमक और मसालों की आवश्यकता होने पर वे ग्रामीण इलाकों की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े और रास्ते में बनारस पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजा के उद्यान में विश्राम किया; और अगली सुबह वे अपने साथियों के साथ शहर के द्वार के बाहर एक गाँव में भिक्षा मांगने गए। लोगों ने उन्हें दान दिया। अगले दिन उन्होंने शहर में भिक्षा की तलाश की। सभी लोग उन्हें दान देने के लिए प्रसन्न थे। उन्होंने मिलकर चंदा इकट्ठा किया और संन्यासियों के समूह के लिए पर्याप्त दान दिया। दान के बाद उनके प्रवक्ता ने ऊपर दिए गए शब्दों में अपना दान दिया। बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मित्र, जहाँ आस्था (*1) होती है, वहाँ कोई दान छोटा नहीं होता।" और उन्होंने निम्नलिखित श्लोकों में अपना धन्यवाद व्यक्त किया:

"अच्छे लोगों की तरह करना, उनकी क्षमता के अनुसार देना कठिन है।"
  बुरे लोग अच्छे लोगों के जीवन की नकल शायद ही कर सकते हैं।
और इसलिए, जब अच्छाई और बुराई पृथ्वी से मिट जाएंगी,
  बुरे लोग नरक में जन्म लेते हैं, अच्छे लोग स्वर्ग में जन्म लेते हैं।
यह उनका धन्यवाद था। वे वर्षा ऋतु के चार महीनों तक उस स्थान पर रहे और फिर हिमालय लौट आए; जहाँ उन्होंने पवित्र ध्यान की सभी विधियों का अभ्यास किया और बिना किसी रुकावट के स्वर्गारोहण तक उनका अभ्यास जारी रखा।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय," उन्होंने कहा, "बुद्ध का समूह तपस्वियों का समूह था, और मैं स्वयं उनका नेता था।"

फुटनोट:

(1)चित्त-पासदो.

पिछला <<<<-----||-181-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 181
असादिसा-जातक

“असाधारण राजकुमार, धनुर्धरी में निपुण,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में महान त्याग के बारे में सुनाई। गुरु ने कहा, “हे भिक्षुओं, केवल आज ही नहीं, तथागत (बुद्ध) ने महान त्याग किया है: पहले भी उन्होंने राजसी वस्त्रों का त्याग किया था और ऐसा ही किया था।” और उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनकी पत्नी रानी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया। रानी का जन्म स्वस्थ हुआ और उनके नामकरण के दिन उनका नाम असादिस-कुमार रखा गया, जिसका अर्थ है असाधारण राजकुमार। जब वे चलना सीख रहे थे, तभी रानी ने एक बुद्धिमान बच्चे को गर्भ धारण कराया। रानी का जन्म भी स्वस्थ हुआ और नामकरण के दिन उनका नाम ब्रह्मदत्त-कुमार रखा गया, जिसका अर्थ है स्वर्ग से भेजा गया राजकुमार।

जब असाधारण राजकुमार सोलह वर्ष के हुए, तो वे अपनी शिक्षा के लिए तक्षशिला गए। वहाँ उन्होंने विश्वप्रसिद्ध शिक्षक के चरणों में तीन वेद और अठारह सिद्धियाँ सीखीं; धनुर्विद्या में वे असाधारण थे; फिर वे बनारस लौट आए।

जब राजा अपनी मृत्युशय्या पर थे, तब उन्होंने आदेश दिया कि असाधारण राजकुमार उनके स्थान पर राजा बनें और राजकुमार ब्रह्मदत्त उत्तराधिकारी घोषित हों। फिर उनकी मृत्यु हो गई; जिसके बाद असाधारण राजकुमार को राजसत्ता की पेशकश की गई, लेकिन उन्होंने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि उन्हें इसकी परवाह नहीं है। इसलिए उन्होंने ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक करके उन्हें राजा नियुक्त किया। असाधारण राजकुमार को यश-यद्यपि की कोई परवाह नहीं थी और उन्हें किसी चीज की चाह नहीं थी।

जब छोटा भाई शासन कर रहा था, तब असाधारण राजकुमार राजसी ठाठ-बाठ से रह रहा था। दास आए और उन्होंने उसके भाई से उसकी निंदा की; उन्होंने कहा, "असाधारण राजकुमार राजा बनना चाहता है!" ब्रह्मदत्त ने उनकी बात मान ली और धोखे में आ गया; उसने कुछ लोगों को असाधारण राजकुमार को बंदी बनाने के लिए भेजा।

राजकुमार के एक विशेष सेवक ने उसे सारी बात बता दी। वह अपने भाई पर क्रोधित हो गया और दूसरे देश चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने राजा को संदेश भेजा कि एक धनुर्धारी आया है और उसका इंतज़ार कर रहा है। राजा ने पूछा, "वह कितना वेतन माँगता है?" राजकुमार ने जवाब दिया, "एक लाख प्रति वर्ष।" राजा ने कहा, "अच्छा, उसे अंदर आने दो।" राजकुमार राजा के समक्ष आया और प्रतीक्षा करने लगा। राजा ने पूछा, "क्या तुम वही धनुर्धारी हो?" राजकुमार ने जवाब दिया, "जी महाराज।" राजा ने कहा, "बहुत अच्छा, मैं तुम्हें अपनी सेवा में ले लेता हूँ।" इसके बाद राजकुमार राजा की सेवा में ही रहा। परन्तु पुराने धनुर्धारी उसे दिए गए वेतन से नाराज़ थे; वे बड़बड़ाए, "बहुत ज़्यादा है।"

एक दिन संयोगवश राजा अपने उद्यान में गए। वहाँ, एक आम के पेड़ के नीचे, जहाँ एक विशेष पत्थर की आसन के सामने पर्दा लगा हुआ था, वे एक भव्य पलंग पर आराम कर रहे थे। उनकी नज़र ऊपर उठी और पेड़ की चोटी पर उन्हें आमों का एक गुच्छा दिखाई दिया। उन्होंने सोचा, "यह तो चढ़ने के लिए बहुत ऊँचा है।" इसलिए उन्होंने अपने तीरंदाजों को बुलाया और उनसे पूछा कि क्या वे तीर से एक गुच्छा तोड़कर उनके लिए नीचे ला सकते हैं। उन्होंने कहा, "अरे, यह हमारे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन महाराज, आपने हमारी कुशलता कई बार देखी है। नया सैनिक हमसे कहीं अधिक वेतन पाता है, इसलिए शायद आप उसे फल नीचे लाने के लिए कह दें।"

तब राजा ने विशेष दूत को बुलवाया और उससे पूछा कि क्या वह यह कार्य कर सकता है। "जी हां, महाराज, यदि मुझे अपना स्थान चुनने की अनुमति हो।" "तुम्हें कौन सा स्थान चाहिए?" "वह स्थान जहां आपका पलंग रखा है।" राजा ने पलंग हटवा दिया और स्थान दे दिया।

असाधारण धनुर्धारी के हाथ में धनुष नहीं था; वह उसे अपने शरीर के वस्त्र के नीचे रखता था; इसलिए उसे परदे की आवश्यकता अवश्य रही होगी। राजा ने उसके लिए परदा मंगवाने का आदेश दिया और उसे बिछाया, और हमारा धनुर्धारी अंदर गया। उसने अपने ऊपर ओढ़ा हुआ सफेद वस्त्र उतार दिया और अपनी त्वचा के पास लाल वस्त्र ओढ़ लिया; फिर उसने अपनी कमरबंद कसी और लाल कमरबंद पहन ली। उसने एक थैली से टुकड़ों में बंटी तलवार निकाली, जिसे उसने जोड़कर अपनी कमर के बाईं ओर बांध लिया। फिर उसने सोने का कवच पहना, अपने धनुष का थैला पीठ पर बांधा और अपने कई टुकड़ों में बने विशाल मेढ़े के सींग से बने धनुष को निकाला, जिसे उसने जोड़कर मूंगे के समान लाल डोरी लगाई; अपने सिर पर पगड़ी बांधी; अपने नाखूनों से तीर घुमाते हुए, उसने परदा खोल दिया और बाहर आ गया, मानो फटी हुई जमीन से निकला हुआ कोई सर्प राजकुमार हो। वह तीरंदाजी स्थल पर गया, धनुष पर तीर चढ़ाया और फिर राजा से यह प्रश्न पूछा। "महाराज," उसने कहा, "क्या मुझे इस फल को ऊपर की ओर तीर मारकर गिराना है, या तीर को इस पर गिराकर?"

राजा ने कहा, "मेरे पुत्र, मैंने अक्सर ऊपर की ओर दागे गए तीर से लक्ष्य को गिरते देखा है, लेकिन गिरते हुए लक्ष्य पर लगते कभी नहीं देखा। बेहतर होगा कि तुम तीर को लक्ष्य पर ही गिराओ।"

“महाराज,” धनुर्धर ने कहा, “यह तीर बहुत ऊँचा उड़ेगा। यह चारों महान राजाओं के स्वर्ग तक जाएगा और फिर स्वतः लौट आएगा। कृपया इसके लौटने तक धैर्य रखें।” राजा ने आज्ञा का पालन किया। तब धनुर्धर ने फिर कहा, “महाराज, यह तीर ऊपर जाते ही आम के डंठल को ठीक बीचोंबीच भेद देगा; और नीचे आते समय यह एक बाल बराबर भी इधर-उधर नहीं भटकेगा, बल्कि ठीक उसी स्थान पर लगेगा और गुच्छे को भी अपने साथ गिरा देगा।” फिर उसने तेजी से तीर चलाया। तीर ऊपर जाते ही आम के डंठल के ठीक बीचोंबीच जा लगा। जब धनुर्धर को पता चला कि उसका तीर चारों महान राजाओं के स्थान पर पहुँच गया है, तब उसने पहले तीर से भी अधिक गति से एक और तीर चलाया। इस तीर ने पहले तीर के पंख को टक्कर मारी और उसे वापस मोड़ दिया; फिर वह स्वयं तैंतीस प्रधान देवदूतों के स्वर्ग तक पहुँच गया। वहाँ देवताओं ने उसे पकड़ लिया और अपने पास रख लिया।

तीर के हवा को चीरते हुए गिरने की आवाज़ बिजली की कड़क जैसी थी। हर कोई पूछ रहा था, "यह कैसी आवाज़ है?" हमारे धनुर्धर ने जवाब दिया, "यह तीर गिरने की आवाज़ है।" आस-पास खड़े लोग डर के मारे कांप रहे थे, कहीं तीर उन पर न गिर जाए; लेकिन असाधारण धनुर्धर ने उन्हें दिलासा दिया। उसने कहा, "डरने की कोई बात नहीं, मैं देखूंगा कि यह ज़मीन पर न गिरे।" तीर ज़रा सा भी इधर-उधर नहीं हुआ, बल्कि आम के गुच्छे के डंठल को साफ-साफ चीरता हुआ नीचे आया। धनुर्धर ने तीर को एक हाथ में और आम को दूसरे हाथ में पकड़ लिया, ताकि वे ज़मीन पर न गिरें। इस चमत्कार को देखकर दर्शक चिल्ला उठे, "हमने ऐसा पहले कभी नहीं देखा!" उन्होंने उस महान व्यक्ति की कितनी प्रशंसा की! उन्होंने कितना जयकारा लगाया, तालियाँ बजाईं और उंगलियां चटकाईं, हज़ारों रुमाल हवा में लहरा रहे थे! अपनी खुशी और प्रसन्नता में दरबारियों ने असाधारण धनुर्धर को करोड़ों रुपये के उपहार दिए। और राजा ने भी उस पर उपहारों और सम्मानों की वर्षा की तरह बरसाई।

जब बोधिसत्व इस राजा के हाथों इतना यश और सम्मान प्राप्त कर रहे थे, तभी सात राजा, जो जानते थे कि बनारस में कोई असाधारण राजकुमार नहीं है, शहर के चारों ओर एक मील (4.23 किमी) की दूरी तक आए और राजा को युद्ध करने या आत्मसमर्पण करने की चुनौती दी। राजा भयभीत हो गया। उसने पूछा, "मेरा भाई कहाँ है?" उत्तर मिला, "वह एक पड़ोसी राजा की सेवा में है।" उसने कहा, "यदि मेरा प्रिय भाई नहीं आया, तो मैं मर जाऊँगा। जाओ, मेरे नाम पर उसके चरणों में गिरो, उसे प्रसन्न करो, उसे यहाँ लाओ!" उसके दूत आए और अपना काम किया। असाधारण राजकुमार ने अपने स्वामी से विदा ली और बनारस लौट आया। उसने अपने भाई को सांत्वना दी और उससे कहा कि वह किसी भी बात से न डरे; फिर उसने एक तीर पर यह संदेश उकेरा (या लपेटा) कि "मैं, असाधारण राजकुमार, लौट आया हूँ। मैं तुम सबको एक ही तीर से मार डालूँगा जो मैं तुम पर चलाऊँगा। जो लोग अपनी जान की परवाह करते हैं, वे भाग जाएँ।" उसने तीर इस तरह चलाया कि वह सोने की थाली के ठीक बीचोंबीच जा गिरा, जिस पर सातों राजा एक साथ भोजन कर रहे थे। जब उन्होंने लेख पढ़ा तो वे सब भय से अधमरे होकर भाग गए।

इस प्रकार हमारे राजकुमार ने सात राजाओं को बिना एक मक्खी जितना भी रक्त बहाए भगा दिया; फिर अपने छोटे भाई को देखकर उन्होंने अपनी वासनाओं का त्याग कर संसार को छोड़ दिया, अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को संजोया और अपने जीवन के अंत में ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में प्रवेश किया।

“और यही वह तरीका है,” गुरु ने कहा, “जिससे उस असाधारण राजकुमार ने सात राजाओं को परास्त किया और युद्ध जीता; जिसके बाद उसने संन्यासी जीवन व्यतीत किया।” फिर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसने ये दो श्लोक कहे:

"वह एक असाधारण राजकुमार थे, तीरंदाजी में निपुण थे, और एक बहादुर सरदार थे।"
बिजली की तरह तेज गति से चलने वाला उसका बाण महान योद्धाओं की कमजोरी साबित हुआ।
"उसने अपने प्रतिद्वंद्वियों के बीच क्या तबाही मचाई! फिर भी उसने किसी को चोट नहीं पहुंचाई;"
उसने अपने भाई को बचाया; और उसने आत्म-संयम की कृपा प्राप्त की।"

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "आनंद तब छोटा भाई था, और मैं स्वयं बड़ा भिक्षु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संगमावचरा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-182-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 182
सम्गमवाचारा-जातक

"हे हाथी, तुम तो एक वीर हो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए वरिष्ठ भिक्षु नंदा के बारे में सुनाई थी।

गुरुदेव जब पहली बार कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) लौटे, तो उन्होंने अपने छोटे भाई राजकुमार नंदा को अपने समुदाय में शामिल कर लिया और फिर श्रावस्ती नगर लौटकर वहीं रहने लगे। अब पिता नंदा को याद आया कि जब वे गुरुदेव के साथ प्याला लेकर घर से निकल रहे थे, तो जनपदकल्याणी खिड़की से बाहर देख रही थीं, उनके बाल आधे सँवारे हुए थे, और उन्होंने कहा था - "अरे, राजकुमार नंदा गुरुदेव के साथ चले गए! - हे प्रभु, जल्दी लौट आइए!" - यह याद करके वे उदास और निराश हो गए, उनका रंग पीला पड़ता गया और उनकी नसें तनकर उभर आईं।

जब गुरुजी को इस बात का पता चला, तो उन्होंने सोचा, "अगर मैं नंदा को संत का दर्जा दिला सकूँ तो कितना अच्छा होगा!" वे नंदा की कुटिया में गए और उन्हें दिए गए आसन पर बैठ गए। उन्होंने पूछा, "नंदा, क्या तुम हमारी शिक्षा से संतुष्ट हो?" नंदा ने उत्तर दिया, "गुरुजी, मैं जनपदकल्याणी से प्रेम करता हूँ, और मैं संतुष्ट नहीं हूँ।" "क्या तुम हिमालय की तीर्थयात्रा पर गए हो, नंदा?" "नहीं, गुरुजी, अभी तक नहीं।" "तो हम चलेंगे।" "पर, गुरुजी, मेरे पास कोई चमत्कारिक शक्ति नहीं है; मैं कैसे जा सकता हूँ?" "मैं तुम्हें ले चलूँगा, नंदा।" ऐसा कहकर गुरुजी ने उनका हाथ पकड़ा और वे हवा में उड़ गए।

रास्ते में वे एक जले हुए खेत से गुज़रे। वहाँ, एक पेड़ के जले हुए ठूंठ पर, जिसकी नाक और पूंछ आधी गायब थी, बाल झुलसे हुए थे, खाल राख हो चुकी थी, केवल चमड़ी बची थी, जो खून से लथपथ थी, एक मादा बंदरिया बैठी थी। "क्या तुम उस बंदरिया को देख रहे हो, नंदा?" गुरुजी ने पूछा। "जी हाँ।" "उसे ध्यान से देखो," उन्होंने कहा। फिर उन्होंने साठ मील (4.23 किमी) तक फैले मनोशिला के ऊंचे इलाकों, सात बड़ी झीलों, अनोत्ता और बाकी झीलों, पांच बड़ी नदियों, पूरे हिमालय के ऊंचे इलाकों, सोने, चांदी और रत्नों के नाम से मशहूर शानदार पहाड़ियों और सैकड़ों अन्य सुंदर स्थानों की ओर इशारा किया। फिर उन्होंने पूछा, "नंदा, क्या तुमने कभी तैंतीस प्रधान देवदूतों का निवास देखा है?" "नहीं, गुरुजी, कभी नहीं," उत्तर मिला। "चलो, नंदा," उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें तैंतीस का निवास दिखाता हूँ।" उसके बाद वह उसे येलोस्टोन सिंहासन (*1) पर ले आया और उसे उस पर बैठा दिया। दो स्वर्गों के देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) अपने देवताओं (देवदूतों) के समूह के साथ आए, अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। उनकी पच्चीस मिलियन दासियाँ और कबूतरों के चरणों वाली पाँच सौ अप्सराएँ आईं और अभिवादन करके एक तरफ बैठ गईं। स्वामी ने नंदा को बार-बार उन पाँच सौ अप्सराओं को देखने के लिए कहा, जिनके प्रति वह लालसा से भरा हुआ था। "नंदा," उन्होंने कहा, "क्या तुम इन कबूतरों के चरणों वाली अप्सराओं को देख रहे हो?" "जी हाँ।" "अच्छा, कौन सी सुंदर है - वे या जनपदकल्याणी?" "ओह, स्वामी!" जिस प्रकार वह दयनीय बंदर जनपदकल्याणी के सामने तुच्छ था, उसी प्रकार वह इनके सामने तुच्छ है!" "अच्छा, नंदा, तुम क्या करने जा रहे हो?" "हे गुरु, इन अप्सराओं को कैसे जीता जा सकता है?" "हे गुरु, तपस्वी जीवन जीकर," गुरु ने कहा, "इन अप्सराओं को जीता जा सकता है।" बालक ने कहा, "यदि भगवान बुद्ध वचन देते हैं कि तपस्वी जीवन जीने से ये अप्सराएँ प्राप्त हो जाएँगी, तो मैं तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगा।" "ठीक है, नंदा, मैं वचन देता हूँ। अच्छा, हे गुरु," उन्होंने कहा, "इसे लंबा न खींचें। चलिए चलते हैं, और मैं तपस्वी बन जाता हूँ।"

गुरु उन्हें वापस जेतवन मठ ले आए। वरिष्ठ भिक्षु ने तपस्वी जीवन का अनुसरण करना शुरू कर दिया।

गुरु ने धर्म के प्रमुख सारिपुत्र को बताया कि कैसे उनके छोटे भाई ने उन्हें तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में अप्सराओं के बारे में देवताओं (देवदूतों) के बीच प्रतिज्ञा दिलाई थी। इसी प्रकार, उन्होंने यह कहानी वरिष्ठ भिक्षु महामोग्गल्याना, वरिष्ठ भिक्षु महाकश्यप, वरिष्ठ भिक्षु अनुरुद्ध और धर्म के कोषाध्यक्ष वरिष्ठ भिक्षु आनंद सहित कुल अस्सी महान शिष्यों को सुनाई; और फिर एक-एक करके उन्होंने इसे अन्य भिक्षुओं को भी सुनाया। धर्म के प्रमुख, वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने वरिष्ठ भिक्षु नंदा से पूछा, "क्या यह सच है, जैसा मैंने सुना है, मित्र, कि आपको बुद्ध का वचन मिला है कि आप तपस्वी जीवन व्यतीत करके तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में देवदूतों को प्राप्त करेंगे? फिर," उन्होंने आगे कहा, "क्या आपका पवित्र जीवन स्त्रीत्व और कामवासना से ही जुड़ा हुआ नहीं है? यदि आप केवल स्त्रियों के लिए ही पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, तो आपमें और मजदूरी करने वाले मजदूर में क्या अंतर है?" इस कथन ने उनके भीतर की सारी अग्नि बुझा दी और उन्हें अपने आप पर लज्जा हुई। इसी प्रकार, सभी अस्सी प्रमुख शिष्यों और शेष सभी भिक्षुओं ने इस आदरणीय भिक्षु को लज्जित किया। "मैं गलत था," उन्होंने सोचा; अत्यंत लज्जा और पश्चाताप से भरे हुए, उन्होंने साहस जुटाया और अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए परिश्रम किया। शीघ्र ही उन्होंने संतत्व प्राप्त कर लिया। वे गुरु के पास आए और बोले, "महोदय, मैं भगवान बुद्ध को उनके वचन से मुक्त करता हूँ।" गुरु ने कहा, "नंदा, यदि तुमने संतत्व प्राप्त कर लिया है, तो मैं अपने वचन से मुक्त हो जाता हूँ।"

जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो वे अपने सत्य कक्ष में इस पर चर्चा करने लगे। "वरिष्ठ भिक्षु नंदा कितने विनम्र हैं! अरे मित्र, एक सलाह ने ही उनमें लज्जा जगा दी; वे तुरंत एक तपस्वी की तरह रहने लगे और अब वे संत हैं!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। "भाइयों," उन्होंने कहा, "नंदा पहले भी उतने ही विनम्र थे जितने अब हैं;" और फिर उन्होंने उन्हें एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक हाथी प्रशिक्षक के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर उन्हें हाथियों के प्रशिक्षण से संबंधित सभी बातें सावधानीपूर्वक सिखाई गईं। वे एक ऐसे राजा की सेवा में थे जो बनारस के राजा का शत्रु था। उन्होंने उस राजा के राजसी हाथी को पूर्णतया प्रशिक्षित किया।

राजा ने बनारस पर कब्जा करने का निश्चय किया। अपने राजसी हाथी पर सवार होकर, वह एक विशाल सेना लेकर बनारस के विरुद्ध निकल पड़ा और उसे घेर लिया। फिर उसने नगर के राजा को पत्र भेजा: "लड़ो, या आत्मसमर्पण करो।" राजा ने लड़ने का विकल्प चुना। उसने दीवारों, फाटकों, मीनारों और प्राचीरों को एक विशाल सेना से सुसज्जित किया और शत्रु को चुनौती दी।

शत्रु राजा ने अपने राजसी हाथी को हथियारबंद किया, कवच पहना, हाथ में एक नुकीला डंडा लिया और अपने जानवर को शहर की ओर दौड़ाया; उसने कहा, "अब मैं इस शहर पर हमला करूँगा, अपने शत्रु को मार डालूँगा और उसके राज्य को अपने कब्जे में ले लूँगा।" लेकिन खौलती मिट्टी, गुलेल से पत्थर और हर तरह के गोला-बारूद फेंकने वाले रक्षकों को देखते ही हाथी बुरी तरह डर गया और उस जगह के पास भी नहीं आया। तभी उसका प्रशिक्षक चिल्लाते हुए आया, "पुत्र, तुम्हारे जैसा वीर युद्ध के मैदान में ही सहज महसूस करता है! ऐसी जगह पर दुम दबाकर भागना शर्मनाक है!" और अपने हाथी का हौसला बढ़ाने के लिए उसने ये दो श्लोक कहे:

"हे हाथी, तुम तो एक वीर हो, जिसका घर मैदान में है:
अब आपके सामने द्वार खड़ा है: आप क्यों मुड़कर हार मान लेते हैं?
जल्दी करो! लोहे की सलाखों को तोड़ दो, और खंभों को गिरा दो!
युद्ध के लिए तैयार किए गए फाटकों को तोड़कर शहर में प्रवेश करो!
हाथी ने बात मान ली; सलाह का एक शब्द ही उसके लिए काफी था। उसने अपनी सूंड को खंभों के डंडों पर लपेटकर उन्हें मशरूम की तरह उखाड़ फेंका: उसने द्वार पर प्रहार किया, सलाखों को तोड़ दिया और जबरदस्ती अंदर घुसकर शहर में प्रवेश किया और उसे अपने राजा के लिए जीत लिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों नंदा हाथी थे, आनंद राजा थे, और प्रशिक्षक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) का सिंहासन।

***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-183-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 183
वलोदक-जातक(*1)

"यह दुखद हिस्सा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाते समय बताई थी, जिसमें लगभग पाँच सौ लोगों ने टूटा हुआ मांस खाया था।

श्रावस्ती नगर में, जैसा कि हमें पता चला है, पाँच सौ लोग थे जिन्होंने सांसारिक जीवन के बंधनों को अपने पुत्र-पुत्रियों के लिए त्याग दिया था और गुरु के उपदेशों को सुनने के लिए एक साथ बैठे रहते थे। इनमें से कुछ प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में थे, कुछ द्वितीय मार्ग में, कुछ तृतीय मार्ग में: एक भी ऐसा नहीं था जिसने मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त न किया हो। जिन्होंने गुरु को आमंत्रित किया था, उन्होंने इन्हें भी आमंत्रित किया था। लेकिन उनके पास पाँच सौ सेवक थे जो उनकी सेवा में टूथब्रश, माउथवॉश और फूलों की माला लाते थे; ये लड़के अपना टूटा हुआ मांस खाते थे। भोजन और थोड़ी देर आराम करने के बाद, वे अचिरावती नदी की ओर दौड़ते थे और नदी के किनारे मल्लियन (*2) की तरह कुश्ती करते थे, लगातार चिल्लाते रहते थे। लेकिन पाँच सौ गृहस्थ भाई शांत रहते थे, बहुत कम शोर करते थे और एकांत पसंद करते थे।

गुरुजी ने संयोगवश सेवकों के चिल्लाने की आवाज़ सुनी। उन्होंने पूछा, "आनंद, यह कैसी आवाज़ है?" उत्तर मिला, "ये सेवक टूटे हुए मांस खा रहे हैं।" गुरुजी ने कहा, "आनंद, ये सेवक टूटे हुए मांस को खाकर इतना शोर मचाने का पहला मौका नहीं है; पुराने समय में भी ये ऐसा ही करते थे; और तब भी ये गृहस्थ भाई आज की तरह ही शांत रहते थे।" ऐसा कहकर, आनंदजी के अनुरोध पर, गुरुजी ने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके दरबारियों में से एक के पुत्र के रूप में पैदा हुए और सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों में राजा के सलाहकार बन गए। राजा को सीमा पर विद्रोह की सूचना मिली। उन्होंने पाँच सौ बलवान घोड़ों को तैयार करने और चारों भागों में पूर्ण सेना (*3) बनाने का आदेश दिया। इसके साथ वे निकले और विद्रोह को कुचलकर बनारस लौट आए।

जब वह घर लौटा, तो उसने आदेश दिया, "घोड़े थक गए हैं, इसलिए उन्हें कुछ रसीला भोजन और पीने के लिए अंगूर का रस दो।" घोड़ों ने यह स्वादिष्ट पेय पिया, फिर अपने-अपने अस्तबलों में चले गए और चुपचाप अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गए।

लेकिन बहुत सारा बचा हुआ भोजन था, जिसमें से लगभग सारा पोषण निचोड़ लिया गया था। रखवालों ने राजा से पूछा कि इसका क्या किया जाए। राजा ने आदेश दिया, "इसे पानी में मिलाकर गूँथ लो, तौलिये से छान लो और घोड़ों का चारा ढोने वाले गधों को दे दो।" गधों ने वह बेस्वाद भोजन पी लिया। इससे वे पागल हो गए और महल के प्रांगण में जोर-जोर से रेंकते हुए दौड़ने लगे।

खुली खिड़की से राजा ने बोधिसत्व को देखा और उन्हें पुकारा, "देखो वहाँ! ये गधे उस कड़वे पेय से कितने पागल हो गए हैं! कैसे रेंक रहे हैं, कैसे उछल-कूद कर रहे हैं! लेकिन वे उत्तम नस्ल के गधे जिन्होंने तेज़ शराब पी है, वे तो बिलकुल भी शोर नहीं कर रहे; वे एकदम शांत हैं और बिल्कुल भी नहीं उछल रहे। इसका क्या अर्थ है?" और उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

"यह दुखद हिस्सा, जिसमें से सारी अच्छाई छन कर निकल गई है,"
 नशे में धुत होकर इन सभी बेवकूफों को भगा देता है:
 वे शुद्ध नस्ल के घोड़े, जिन्होंने शक्तिशाली रस पिया,
 चुपचाप खड़े रहो, न ही उछल-कूद करते हुए इधर-उधर भागो।
और बोधिसत्व ने दूसरे श्लोक में इस विषय को समझाया:-

निम्न कुल का देहाती व्यक्ति, भले ही वह केवल चखे और आजमाए,

  समय बीतने के साथ ही वह आनंदित और मदहोश हो जाता है:
  जो सौम्य होता है, उसका मन स्थिर रहता है।
  भले ही वह सबसे शक्तिशाली शराब को भी पूरी तरह से पी जाए।"
जब राजा ने बोधिसत्व का उत्तर सुन लिया, तो उसने अपने आंगन से गधों को बाहर निकलवा दिया। फिर, बोधिसत्व की सलाह का पालन करते हुए, उसने दान दिया और अच्छे कार्य किए, और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से चला गया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया:- "उस समय ये सेवक पाँच सौ गधे थे, ये गृहस्थ भाई पाँच सौ उत्तम नस्ल के घोड़े थे, आनंद राजा थे, और बुद्धिमान दरबारी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) धम्मपद में परिचयात्मक कथा भिन्न है।

(2) मल्लियन पेशेवर पहलवानों की एक जनजाति थी।

(3) हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गिरिदंत-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-184-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 184
गिरिदांत-जातक

"दूल्हे का शुक्रिया," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने वेलुवाना पार्क में रहते हुए बुरी संगति के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ पहले ही महिलामुख जातक (*1) में वर्णित हैं। फिर, पहले की तरह, गुरु ने कहा: "पुराने दिनों में यह भाई (भिक्षु) बुरी संगति में रहता था, ठीक वैसे ही जैसे अब रहता है।" फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस में समा नामक एक राजा का शासन था। उस समय बोधिसत्व एक दरबारी परिवार से थे और बड़े होकर राजा के सांसारिक और आध्यात्मिक सलाहकार बने। राजा के पास पांडव नाम का एक राजकीय अश्व था और उसका प्रशिक्षक गिरिदांत था, जो लंगड़ा था। अश्व उसे लंगड़ाते हुए आगे-आगे चलते देखता था, लगाम (पट्टा) पकड़े हुए; और उसे अपना प्रशिक्षक जानकर, उसकी नकल करते हुए वह भी लंगड़ाने लगा।

किसी ने राजा को बताया कि घोड़ा लंगड़ा रहा है। राजा ने सर्जनों को भेजा। उन्होंने घोड़े की जांच की, लेकिन उसे पूरी तरह स्वस्थ पाया; और तदनुसार रिपोर्ट दी। फिर राजा ने बोधिसत्व को भेजा। उन्होंने कहा, "जाओ, मित्र, और इसके बारे में पूरी जानकारी जुटाओ।" उन्हें जल्द ही पता चल गया कि घोड़ा लंगड़ा इसलिए था क्योंकि वह एक लंगड़े प्रशिक्षक के साथ घूमता था। इसलिए उन्होंने राजा को बताया कि मामला क्या था। उन्होंने कहा, "यह बुरी संगति का मामला है," और पहले श्लोक को दोहराया:-

"दूल्हे की वजह से बेचारे पांडव की हालत बहुत खराब है।"
  वह अब अपने पुराने तौर-तरीकों का प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि मजबूरीवश उनका अनुकरण करना पड़ता है।
"तो अब, मेरे मित्र," राजा ने कहा, "क्या किया जाए?" "एक अच्छा घोड़ा रख लो," बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "और घोड़ा पहले की तरह ही अच्छा हो जाएगा।" फिर उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:-

"एक योग्य और उपयुक्त दूल्हा ढूंढो, जिस पर तुम भरोसा कर सको।"

उसे लगाम लगाकर व्यायाम कराने से घोड़ा जल्दी ठीक हो जाएगा;
उसकी दयनीय स्थिति सुधर जाएगी; वह अपने दोस्त का अनुकरण करता है।"

राजा ने वैसा ही किया। घोड़ा पहले जैसा ही अच्छा हो गया। राजा ने बोधिसत्व का बहुत सम्मान किया, क्योंकि वह इस बात से प्रसन्न था कि उन्हें पशुओं के स्वभाव का भी ज्ञान था।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों देवदत्त गिरिदांत थे; बुरी संगत में रहने वाला भाई (भिक्षु) घोड़ा था; और बुद्धिमान सलाहकार मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 26.

***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 185
अनाभिराति-जातक

"गाढ़ा, मैला पानी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, और यह एक युवा ब्राह्मण के बारे में थी।

श्रावस्ती नगर के एक युवक ब्राह्मण ने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी और वे कई युवा ब्राह्मणों और क्षत्रियों को पवित्र श्लोक सिखाते थे। समय के साथ उनका विवाह हो गया। धन-दौलत, आभूषण, स्त्री-पुरुषों की सेवा, भूमि-संपत्ति, गाय-भैंस, पुत्र-पुत्रियों के आशय में लीन होकर वे वासना, त्रुटि और कुकर्म के वश में हो गए। इससे उनकी बुद्धि क्षीण हो गई और वे मंत्रों का सही क्रम भूल गए, और कभी-कभी मंत्र उनके मन में स्पष्ट नहीं होते थे। एक दिन उन्होंने कुछ फूल और सुगंधित पदार्थ एकत्र किए और उन्हें जेतवन मठ के उद्यान में स्थित गुरु के पास ले गए। अभिवादन करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनसे मधुरता से बातें कीं। "हे युवक, आप पवित्र श्लोकों के शिक्षक हैं। क्या आपको वे सभी श्लोक कंठस्थ हैं?" "जी महाराज, मैं पहले तो इन्हें भली-भांति जानता था, परन्तु विवाह के बाद मेरा मन अंधकारमय हो गया है, और अब मैं इन्हें नहीं जानता।" "अरे, नौजवान," गुरु ने कहा, "ऐसा ही पहले भी हुआ था; पहले तुम्हारा मन निर्मल था, और तुम सभी श्लोकों को भली-भांति जानते थे, परन्तु जब तुम्हारा मन वासनाओं और व्यथाओं से ग्रस्त हो गया, तो तुम उन्हें स्पष्ट रूप से नहीं देख पाते थे।" तब उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक महान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला के एक प्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की, जहाँ उन्होंने सभी मंत्रों का ज्ञान प्राप्त किया। बनारस लौटने पर उन्होंने इन मंत्रों का प्रशिक्षण अनेक ब्राह्मण और क्षत्रिय युवकों को दिया।

इन युवकों में एक ब्राह्मण युवक ऐसा भी था जिसने तीनों वेदों को कंठस्थ कर लिया था; वह विधि-विधान में निपुण हो गया और बिना एक भी पंक्ति में अटके संपूर्ण पवित्र ग्रंथों को दोहरा सकता था। समय आने पर उसका विवाह हो गया और वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगा। फिर गृहस्थी की जिम्मेदारियों ने उसके मन को इतना विचलित कर दिया कि वह पवित्र श्लोकों को दोहराने में असमर्थ हो गया।

एक दिन उनके शिक्षक उनसे मिलने आए। उन्होंने पूछा, “हे बालक, क्या तुम्हें सारे श्लोक कंठस्थ हैं?” उत्तर मिला, “जब से मैं गृहस्थ बना हूँ, मेरा मन विचलित हो गया है और मैं उन्हें दोहरा नहीं सकता।” शिक्षक ने कहा, “पुत्र, जब मन विचलित होता है, तो शास्त्रों का कितना भी पूर्ण ज्ञान क्यों न हो, वे स्पष्ट रूप से याद नहीं रहते। परन्तु जब मन शांत होता है, तो उन्हें भूलना असंभव है।” और इस पर उन्होंने निम्नलिखित दो श्लोक दोहराए:

"गाढ़ा, मैला पानी दिखाई नहीं देगा"
मछली, सीप, रेत या बजरी जो नीचे दबी हो सकती है:
इसलिए अस्पष्ट बुद्धि के साथ:
इसमें न तो आपका और न ही दूसरों का भला देखा जाता है।
"स्वच्छ, शांत जल सदा दिखाई देता है"
चाहे वह मछली हो या शंख, जो कुछ भी नीचे पड़ा है;
अतः स्पष्ट बुद्धि के साथ:
इसमें आपकी और दूसरों की अच्छाई दोनों स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।"

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त कर लिया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर युवा ब्राह्मण ने प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) में प्रवेश किया: "उन दिनों, यह युवक युवा ब्राह्मण था, और मैं उसका गुरु था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दधि-वाहन-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-186-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 186
दधी-वाहन-जातक

“एक समय आम का स्वाद मीठा हुआ करता था,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए बुरी संगति के विषय पर सुनाई थी। परिस्थितियाँ ऊपर बताई गई घटनाओं के समान थीं। गुरु ने फिर कहा: “भाइयों, बुरी संगति हानिकारक और नुकसानदायक होती है; मनुष्यों पर बुरी संगति के बुरे प्रभावों की बात क्यों करें? बहुत समय पहले, एक सब्जी, एक आम का पेड़, जिसका मीठा फल देवताओं (देवदूतों) के लिए उपयुक्त व्यंजन था, एक हानिकारक और कड़वे नीम के पेड़ के प्रभाव से खट्टा और कड़वा हो गया था।” फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, काशी देश के चार ब्राह्मण भाई सांसारिक जीवन त्यागकर संन्यासी बन गए; उन्होंने हिमालय की ऊँची पहाड़ियों में एक कतार में चार कुटियाएँ बनाईं और वहीं रहने लगे।

सबसे बड़े भाई की मृत्यु हो गई और उनका जन्म सक्का (इंद्र) के रूप में हुआ। अपने अतीत को जानते हुए, वे हर सात-आठ दिन में दूसरों से मिलने जाते थे और उनकी सहायता करते थे।

एक दिन, वह सबसे बड़े ऋषि के पास गए और औपचारिक अभिवादन के बाद एक तरफ बैठ गए। उन्होंने पूछा, "हे महाराज, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" पीलिया से पीड़ित ऋषि ने उत्तर दिया, "मुझे आग चाहिए।" सक्का (इंद्र) ने उन्हें एक तेज धार वाली कुल्हाड़ी दी। (इस कुल्हाड़ी को तेज धार वाली कुल्हाड़ी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे हैंडल में फिट करने के अनुसार यह तेज धार या कुल्हाड़ी दोनों का काम करती है।) ऋषि ने कहा, "इससे मुझे जलाने के लिए लकड़ी कौन लाएगा?" सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "यदि आपको आग चाहिए, तो आपको बस कुल्हाड़ी पर हाथ मारना है और कहना है - 'लकड़ी लाओ और आग जलाओ!' कुल्हाड़ी लकड़ी लाएगी और आपके लिए आग जला देगी।"

उसे यह तेज धार वाली कुल्हाड़ी देने के बाद, वह दूसरे भाई के पास गया और उससे भी वही सवाल पूछा—"हे भगवान, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" उसकी कुटिया के पास हाथियों का रास्ता था और वे उसे परेशान करते थे। इसलिए उसने सक्का (इंद्र) से कहा कि वह हाथियों से तंग आ गया है और उन्हें भगाना चाहता है। सक्का (इंद्र) ने उसे एक ढोल दिया। उसने समझाया, "हे भगवान, अगर आप इस तरफ बजाएंगे, तो आपके दुश्मन भाग जाएंगे; लेकिन अगर आप दूसरी तरफ बजाएंगे, तो वे आपके पक्के दोस्त बन जाएंगे और आपको चार गुना सेना से घेर लेंगे।" फिर उसने उसे ढोल सौंप दिया।

अंत में, उन्होंने सबसे छोटे पुत्र से मुलाकात की और पहले की तरह पूछा कि वे उसकी कैसे सेवा कर सकते हैं। उसे भी पीलिया था, और उसने कहा—"कृपया मुझे कुछ दही दीजिए।" सक्का (इंद्र) ने उसे दूध का कटोरा देते हुए कहा, "यदि तुम्हें कुछ चाहिए, तो इसे उलट दो, और इसमें से एक बड़ी नदी बह निकलेगी, जो पूरे क्षेत्र में बाढ़ ला देगी, और यह तुम्हारे लिए एक राज्य भी जीत लेगी।" इतना कहकर वे चले गए।

इसके बाद कुल्हाड़ी से बड़े भाई के लिए आग जलाई जाती थी, दूसरा भाई अपने ढोल के एक तरफ पीटकर हाथियों को भगाता था, और छोटा भाई दही खाता था।

लगभग इसी समय, एक खंडहर गाँव में रहने वाले एक जंगली सूअर को जादुई शक्ति से युक्त एक रत्न मिला। उसने रत्न को अपने मुँह में उठाया और उसकी जादुई शक्ति से हवा में उड़ गया। दूर से उसे समुद्र के बीचोंबीच एक छोटा सा द्वीप दिखाई दिया और उसने वहीं रहने का निश्चय किया। इसलिए वह नीचे उतरा और एक आम के पेड़ के नीचे एक सुंदर स्थान चुना और वहीं अपना घर बना लिया।

एक दिन वह पेड़ के नीचे सो गया, उसके सामने ही वह रत्न पड़ा था। काशी देश का एक आदमी, जिसे उसके माता-पिता ने निकम्मा समझकर घर से निकाल दिया था, किसी तरह एक बंदरगाह पर पहुँचा, जहाँ उसने नाविकों के नौकर के रूप में काम करना शुरू कर दिया। समुद्र के बीच में जहाज टूट गया, और वह एक तख्ते पर तैरता हुआ इस द्वीप पर आ पहुँचा। फल की तलाश में भटकते हुए उसने हमारे सूअर को गहरी नींद में सोते देखा। चुपके से वह उसके पास गया, रत्न उठाया, और जादू से हवा में उड़ने लगा! वह आम के पेड़ पर उतरा और सोचने लगा, "इस रत्न के जादू ने सूअर को आकाश में उड़ने की शक्ति दी है; शायद इसीलिए वह यहाँ आया है। अच्छा! मुझे पहले उसे मारकर उसका मांस खाना चाहिए; और फिर मैं चला जाऊँगा।" तो उसने एक टहनी तोड़ी और उसे सूअर के सिर पर गिरा दिया। सूअर जाग गया, और रत्न न देखकर काँपते हुए इधर-उधर भागने लगा। पेड़ पर बैठा आदमी हँसा। सूअर ने ऊपर देखा और उसे देखकर अपना सिर पेड़ से टकराकर खुद को मार डाला।

वह आदमी नीचे आया, आग जलाई, सूअर को पकाया और भोजन किया। फिर वह आकाश में ऊपर उठा और अपनी यात्रा पर निकल पड़ा।

हिमालय पार करते समय, उसने संन्यासियों की बस्ती देखी। इसलिए वह नीचे उतरा और बड़े भाई की कुटिया में दो-तीन दिन बिताए, उनका आतिथ्य सत्कार किया और इस दौरान उसे कुल्हाड़ी के गुणों का पता चला। उसने उसे अपने लिए प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। इसलिए उसने संन्यासी को अपने रत्न के गुण दिखाए और कुल्हाड़ी के बदले उसे देने का प्रस्ताव रखा। संन्यासी हवा में उड़ने की क्षमता (*1) पाने के लिए तरस रहा था, इसलिए उसने सौदा मान लिया। उस व्यक्ति ने कुल्हाड़ी ली और चला गया; लेकिन बहुत दूर जाने से पहले ही, उसने कुल्हाड़ी पर प्रहार किया और कहा—"कुल्हाड़ी! उस संन्यासी की खोपड़ी तोड़ दो और रत्न मेरे पास ले आओ!" कुल्हाड़ी चली, संन्यासी की खोपड़ी चीर दी और रत्न वापस ले आई।

फिर उस व्यक्ति ने कुल्हाड़ी छिपा दी और दूसरे भाई से मिलने गया। वह कुछ दिन उसके साथ रहा और जल्द ही उसे उसके ढोल की शक्ति का पता चल गया। फिर उसने पहले की तरह अपना रत्न ढोल के बदले दे दिया और पहले की तरह कुल्हाड़ी से मालिक की खोपड़ी चीर दी। इसके बाद वह तीनों संन्यासियों में सबसे छोटे के पास गया, दूध के कटोरे की शक्ति का पता लगाया, अपना रत्न उसके बदले दे दिया और पहले की तरह कुल्हाड़ी से उस व्यक्ति की खोपड़ी चीर दी। इस प्रकार अब वह रत्न, कुल्हाड़ी, ढोल और दूध के कटोरे, चारों का स्वामी बन गया।

वह ऊपर उठा और हवा में उड़ गया। बनारस के पास रुककर उसने एक पत्र लिखा और उसे दूत के द्वारा भिजवा दिया, जिसमें राजा को या तो उससे लड़ना होगा या आत्मसमर्पण करना होगा। यह संदेश मिलते ही राजा उस दुष्ट को पकड़ने के लिए तुरंत आगे बढ़ा। लेकिन उसने अपने ढोल के एक तरफ प्रहार किया और तुरंत ही चारों ओर से सेना ने उसे घेर लिया। जब उसने देखा कि राजा ने अपनी सेना तैनात कर दी है, तो उसने दूध का प्याला उलट दिया और दूध की एक बड़ी नदी बह निकली; दही की नदी में बहुत से लोग डूब गए। फिर उसने अपनी कुल्हाड़ी पर प्रहार किया। "मुझे राजा का सिर लाओ!" वह चिल्लाया; कुल्हाड़ी चली गई और वापस आकर उसके पैरों पर सिर गिरा दिया। कोई भी उसके विरुद्ध हाथ नहीं उठा सका।

इस प्रकार एक विशाल सेना से घिरे हुए, उन्होंने शहर में प्रवेश किया, और स्वयं को दधि-वाहन राजा, या दही पर सवार राजा की उपाधि से राजा के रूप में अभिषेक कराया, और धार्मिकता से शासन किया।

एक दिन राजा नदी में जाल डालकर अपना मनोरंजन कर रहे थे, तभी उन्हें कन्नामुंडा झील से बहकर आया एक ऐसा आम मिला जो देवताओं (देवदूतों) के योग्य था। जाल खींचने पर राजा को वह आम मिला। वह एक विशाल फल था, एक बर्तन जितना बड़ा, गोल और

सुनहरे रंग का। राजा ने पूछा कि यह कौन सा फल है: वनपालों ने बताया, आम। उन्होंने उसे खाया और उसकी गुठली को अपने बगीचे में लगा दिया और उसमें दूध का पानी डाल दिया।

वह वृक्ष अंकुरित हुआ और तीन वर्षों में उस पर फल लग गए। इस वृक्ष की बहुत पूजा-अर्चना की जाती थी; उस पर दूध-जल चढ़ाया जाता था; पाँच गुच्छों वाली सुगंधित मालाएँ (*2) उस पर चढ़ाई जाती थीं; पुष्पांजलिओं से उसे सजाया जाता था; एक दीपक जलता रहता था और उसमें सुगंधित तेल डाला जाता था; और उसके चारों ओर कपड़े का पर्दा लगा रहता था। फल मीठे और शुद्ध सोने के रंग के थे। राजा दधि-वाहन अन्य राजाओं को इन आमों का उपहार भेजने से पहले, उस गुठली में काँटा चुभो देते थे जहाँ से अंकुर निकलता था, इस डर से कि कहीं वे उसे रोपकर वैसा ही न उगा लें। जब वे फल खाते थे, तो वे गुठली को रोप देते थे; लेकिन वह जड़ नहीं पकड़ पाती थी। उन्होंने कारण पूछा और उन्हें पता चला कि मामला क्या था।

एक राजा ने अपने माली से पूछा कि क्या वह इस फल का स्वाद बिगाड़ सकता है और इसे पेड़ पर ही कड़वा बना सकता है। माली ने कहा, हाँ, वह ऐसा कर सकता है; इसलिए राजा ने उसे एक हजार फल दिए और उसे काम पर भेज दिया।

बनारस पहुँचते ही उस व्यक्ति ने राजा को संदेश भेजा कि एक माली आया है। राजा ने उसे अपने दरबार में आने की अनुमति दी। उस व्यक्ति के अभिवादन करने के बाद राजा ने पूछा, "तुम माली हो?" "जी महाराज," उस व्यक्ति ने कहा और अपनी प्रशंसा करने लगा। राजा ने कहा, "बहुत खूब, तुम जाओ और मेरे उद्यान के रखवाले की सहायता करो।" इसके बाद से वे दोनों राजमहल की देखभाल करने लगे।

नए माली ने मौसम से पहले ही फूल और फल उगाकर पार्क को और भी सुंदर बना दिया। इससे राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने पुराने माली को बर्खास्त कर दिया और पार्क की पूरी ज़िम्मेदारी नए माली को सौंप दी। पार्क का ज़िम्मा लेते ही उन्होंने उत्तम आम के पेड़ के चारों ओर नीम के पेड़ और लताएँ लगा दीं। कुछ समय बाद नीम के पेड़ उग आए। ऊपर से नीचे तक, जड़ से जड़ और शाखा से शाखा, ये सभी आम के पेड़ से लिपट गए। इस प्रकार, मीठे फलों वाला यह पेड़, इस हानिकारक और खट्टे पौधे की संगति में कड़वे पत्तों वाले नीम के पेड़ की तरह कड़वा हो गया। जैसे ही माली को पता चला कि फल कड़वे हो गए हैं, वह तुरंत भाग गया।

राजा दधि-वाहन अपने बगीचे में टहलने गए और उन्होंने आम का एक टुकड़ा खाया। उनके मुंह में आम का रस नीम के रस जैसा कड़वा लगा; वे उसे निगल नहीं सके और खांसते हुए थूक दिया। उस समय बोधिसत्व उनके सांसारिक और आध्यात्मिक सलाहकार थे। राजा ने उनकी ओर मुड़कर कहा, "हे ज्ञानी, इस वृक्ष की इतनी अच्छी देखभाल की जाती है, फिर भी इसका फल कड़वा हो गया है। इसका क्या अर्थ है?" यह प्रश्न पूछते हुए उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

एक समय था जब आम का स्वाद मीठा होता था, उसकी सुगंध मीठी होती थी, उसका रंग सुनहरा होता था।
इस कड़वे स्वाद का कारण क्या है? क्योंकि हम इसकी देखभाल तो पुराने समय से ही करते आ रहे हैं।
बोधिसत्व ने दूसरे श्लोक में इसका कारण समझाया:-

"तना के चारों ओर शाखा से शाखा और जड़ से जड़ लिपटी हुई है,"
देखो, यह कड़वी लता चढ़ रही है; इसी ने तुम्हारे फल खराब कर दिए हैं;
और इसलिए आप देख सकते हैं कि बुरी संगति अच्छे लोगों को भी उसी राह पर चलने के लिए मजबूर कर देती है।"
यह सुनकर बोधिसत्व ने सभी नीम के वृक्षों और लताओं को उखाड़कर उनकी जड़ें निकलवा दीं; सारी हानिकारक मिट्टी हटाकर उसकी जगह मीठी मिट्टी डाल दी गई; और वृक्ष को मीठे जल, दूध-जल और सुगंधित जल से अच्छी तरह सींचा गया। तब उस सारी मिठास को सोखकर उसके फल फिर से मीठे हो गए। राजा ने अपने पूर्व माली को उद्यान का कार्यभार सौंप दिया, और अपने जीवन के अंत में वह अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चला गया।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों मैं बुद्धिमान सलाहकार था।"

फुटनोट:

(1) यह बौद्धों द्वारा अत्यधिक प्रशंसित अलौकिक शक्तियों में से एक थी।

(2) गंध-पंच-अंगुलिकम का अर्थ अनिश्चित है। शायद एक माला जिसमें अंकुर या टहनियाँ हाथ की उंगलियों की तरह फैली हुई हों।

पिछला <<<<-----||-187-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 187
चतुमत्त-जातक

“बैठो और गाओ,” इत्यादि – यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई थी। बताया जाता है कि एक बार दो प्रमुख शिष्य एक साथ बैठे प्रश्नोत्तर कर रहे थे; तभी वृद्ध भिक्षु उठे और तीसरे को भी साथ ले आए। बैठते हुए उन्होंने कहा, “महोदय, मेरा भी एक प्रश्न है, जो मैं आपसे पूछना चाहता हूँ; और यदि आपको कोई कठिनाई हो, तो आप मुझसे पूछ सकते हैं।” वृद्ध भिक्षु उनसे नाराज़ हो गए; वे उठकर चले गए। भिक्षुओं का प्रवचन सुनने वाले शिष्य सभा समाप्त होने के बाद गुरु के पास आए; उन्होंने पूछा कि वे यहाँ समय से पहले क्यों आए हैं और उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई। उन्होंने उत्तर दिया, “यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि सारिपुत्र और मोग्गल्याण इस व्यक्ति से नाराज़ होकर बिना कुछ कहे चले गए हों; पुराने समय में भी ऐसा ही होता था।” और फिर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक वृक्ष-परी बन गए और जंगल में रहने लगे। चित्तकूट पर्वत से दो युवा हंस नीचे आए और उस वृक्ष पर बैठ गए। वे भोजन की तलाश में इधर-उधर उड़ते रहे, फिर वापस वहीं लौट आए और विश्राम करने के बाद अपने पर्वतीय घर लौट गए। समय बीतने के साथ-साथ परी ने उनसे मित्रता कर ली। वे आते-जाते घनिष्ठ मित्र बन गए और विदा होने से पहले एक-दूसरे से धर्म की बातें किया करते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि जब पक्षी वृक्ष की चोटी पर बैठकर बोधिसत्व से बातें कर रहे थे, तभी एक सियार वृक्ष के नीचे आकर रुका और उसने युवा हंसों से निम्नलिखित श्लोक में कुछ कहा:

पेड़ पर बैठकर गाओ
अगर आप निजी तौर पर होते तो ऐसा होता।
जमीन पर बैठो और गाओ
"जानवरों के अपने राजा के लिए छंद!"

घृणा से भर कर, युवा हंस पंख फैलाकर चित्तकुटा लौट गए। उनके चले जाने पर, बोधिसत्व ने सियार को समझाने के लिए दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"फेयरविंग यहाँ फेयरविंग के लिए गाता है,"
मीठी बातों से भगवान भी प्रभावित होते हैं;
परिपूर्ण सौंदर्य (*1), आपको तब अवश्य
वापस अपने बिल में जाओ!

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों में बूढ़ा व्यक्ति सियार था, सारिपुत्र और मोग्गल्याना दो युवा हंस थे, और मैं स्वयं वृक्ष-परी था।"

फुटनोट:

(1) शाब्दिक अर्थ 'चार बिंदुओं में सुंदर', अर्थात् 'रूप में, जन्म में, आवाज में, गुणवत्ता में' व्यंग्यात्मक रूप से।

पिछला <<<<-----||-188-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 188
सिहाकोत्थुक-जातक

"शेर के पंजे और शेर के पैर," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में कोकालिका के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि एक दिन कई ज्ञानी भिक्षुओं को उपदेश देते हुए सुनकर कोकालिका ने स्वयं उपदेश देने की इच्छा की; बाकी की घटना पिछली कथा के समान है। इस बार भी गुरु ने यह सुनकर कहा, "कोकालिका को उसकी वाणी से ही उसकी असलियत का पता नहीं चला है; ऐसा पहले भी हो चुका है।" और उन्होंने एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हिमालय पर्वत में एक सिंह के रूप में विराजमान थे। उनका एक शावक था, जो एक सियार के साथ संभोग करने से पैदा हुआ था। वह शावक अपने पिता की तरह ही था - पैर की उंगलियों, पंजे, अयाल, रंग, शरीर - सब कुछ; लेकिन उसकी आवाज अपनी माँ जैसी थी।

एक दिन, बारिश के बाद, सभी शेर एक साथ उछल-कूद कर रहे थे और दहाड़ रहे थे; शावक ने सोचा कि वह भी दहाड़ना चाहेगा, और सियार की तरह चिल्लाया। यह सुनकर सभी शेर एकदम चुप हो गए! उसी शावक का एक और भाई, जो उसका सगा भाई था, ने यह आवाज़ सुनी और बोला, "पिताजी, शेर रंग और हर चीज़ में हम जैसा है, बस आवाज़ अलग है। वह कौन है?" यह सवाल पूछते हुए उसने पहली पंक्ति दोहराई:

शेर के पंजे और शेर के पैर,
शेर के पैरों पर खड़े होने के लिए;
लेकिन इस आदमी की दहाड़
यह तो शेर के बेटे जैसा नहीं लगता!

उत्तर में बोधिसत्व ने कहा, "यह तुम्हारा भाई है, सियार का बच्चा; रूप में मेरे जैसा, लेकिन आवाज में अपनी माँ जैसी।" फिर उन्होंने दूसरे बच्चे को सलाह दी—"मेरे प्यारे बेटे, जब तक तुम यहाँ रहो, अपनी ज़बान पर लगाम रखो। अगर तुमने फिर से ज़बान चलाई, तो सबको पता चल जाएगा कि तुम सियार हो।" सलाह को और अच्छे से समझाने के लिए उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:-

सब देखेंगे कि तुम किस तरह के इंसान हो।
अगर आप पहले की तरह चीखते हैं;
इसलिए इसे आजमाने की कोशिश न करें, बल्कि चुप रहें:
तुम्हारी दहाड़ शेर की दहाड़ जैसी नहीं है।

इस सलाह के बाद उस प्राणी ने फिर कभी दहाड़ने की कोशिश तक नहीं की।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों कोकालिका सियार थी, राहुल उसका भाई शावक था, और पशुओं का राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) वह देवदत्त के साथ था, दोनों विधर्मी थे।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिहचम्मा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-189-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 189
सिहाचम्मा-जातक (*1)

"न शेर, न बाघ, मुझे दिखाई देता है," इत्यादि। यह कहानी, पिछली कहानी की तरह, कोकालिका के बारे में थी, जिसे गुरु ने जेतवन मठ में सुनाया था। इस बार वह मंत्रोच्चार करना चाहते थे। गुरु ने यह सुनकर निम्नलिखित कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक किसान परिवार में हुआ था, और बड़े होकर उन्होंने खेती करके अपना जीवन यापन किया।

उसी समय एक व्यापारी था जो सामान ढोने के लिए गधे का इस्तेमाल करता था। वह जहाँ भी जाता, गधे से सामान उतारकर उस पर शेर की खाल डाल देता और उसे धान और जौ के खेतों में छोड़ देता। पहरेदार जब उसे देखते, तो उसे शेर समझ लेते और उसके पास जाने की हिम्मत नहीं करते।

एक दिन एक फेरीवाला एक गाँव में रुका और जब वह अपना नाश्ता बना रहा था, तो उसने शेर की खाल ओढ़े गधे को जौ के खेत में छोड़ दिया। पहरेदारों ने सोचा कि यह शेर है और पास आने की हिम्मत नहीं की, बल्कि घर भाग गए और शोर मचाया। सभी ग्रामीणों ने हथियार उठा लिए और चिल्लाते, शंख बजाते और ढोल पीटते हुए खेत की ओर दौड़े। गधा बुरी तरह डर गया और ही-ही की आवाज़ निकाली! तब बोधिसत्व ने देखा कि यह एक गधा है और उन्होंने पहली पंक्ति दोहराई:

मुझे न तो शेर दिख रहा है, न ही बाघ।
वह तो तेंदुआ भी नहीं है:
लेकिन एक गधा—वह बेचारा बूढ़ा!
उसकी पीठ पर शेर की खाल थी!
जैसे ही ग्रामीणों को पता चला कि यह केवल एक गधा था, उन्होंने उसे लाठियों से तब तक पीटा जब तक उसकी हड्डियाँ टूट नहीं गईं, और फिर शेर की खाल लेकर चले गए। जब व्यापारी आया और उसने देखा कि उसके गधे को कष्ट हुआ है, तो उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"अगर गधा समझदार होता,
हरी जौ को काफी समय तक खाया जा सकता था;
उसने शेर की खाल को अपने वेश में इस्तेमाल किया था:
लेकिन उसने जोर से आवाज निकाली और पिट गया!
ये शब्द बोलते ही गधा मर गया। व्यापारी उसे वहीं छोड़कर अपने रास्ते चला गया।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय कोकालिका गधा था, और बुद्धिमान किसान मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) शेर की खाल में गधा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिलानीसांस-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-190-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 190
सिलानिसम्सा-जातक

"बलिदान का फल देखो," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक विश्वासी गृहस्थ के बारे में सुनाई थी। वह एक निष्ठावान, धर्मनिष्ठ आत्मा और एक निर्वाचित शिष्य थे। एक शाम, जेतवन मठ जाते समय, वे अचिरवती नदी के किनारे पहुँचे, जब नाविक पूजा-अर्चना के लिए अपनी नाव किनारे पर खड़ी कर चुके थे; घाट पर कोई नाव दिखाई नहीं दे रही थी, और हमारे मित्र का मन बुद्ध के आनंदमय विचारों से भरा हुआ था, इसलिए वे नदी पर चलने लगे। उनके पैर पानी में नहीं डूबे। वे नदी के मध्य तक ऐसे चले जैसे सूखी भूमि पर चल रहे हों; लेकिन वहाँ उन्होंने लहरें देखीं। तब उनकी समाधि (तल्ली) भंग हो गई, और उनके पैर डूबने लगे। उन्होंने फिर से अपने शरीर को तनाव से जकड़ा, और पानी पर चलने लगे। इस प्रकार वे जेतवन मठ पहुँचे, गुरु को प्रणाम किया, और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप किया। “आशा है, हे मित्र,” उन्होंने कहा, “रास्ते में आपके साथ कोई दुर्घटना न हुई हो।” “ओह, महाराज,” उन्होंने उत्तर दिया, “रास्ते में मैं बुद्ध के चिंतन में इतना लीन था कि नदी पर पैर रख दिया; लेकिन मैं उस पर ऐसे चला जैसे वह सूखी ज़मीन हो!” “अरे, मित्र,” गुरु ने कहा, “बुद्ध के गुणों को याद करके सुरक्षित रहने वाले आप अकेले नहीं हैं। पुराने समय में भी धर्मनिष्ठ गृहस्थ समुद्र में जहाज़ दुर्घटना का शिकार हुए हैं और बुद्ध के गुणों को याद करके अपनी जान बचाई है।” फिर, उस व्यक्ति के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब कश्यप परम बुद्ध थे, तब एक शिष्य, जिसने आध्यात्मिक मार्ग का मार्ग अपनाया था, एक धनी नाई के साथ जहाज पर सवार हुआ। नाई की पत्नी ने उसे हमारे मित्र की देखरेख में सौंपा था, ताकि वह सुख-दुख में उसकी देखभाल करे।

एक सप्ताह बाद, जहाज समुद्र के बीचोंबीच टूट गया। एक तख्ते से चिपके हुए ये दो लोग एक द्वीप पर जा गिरे। वहाँ नाई ने कुछ पक्षियों को मारकर पकाया और अपने भोजन का एक हिस्सा उस शिष्य को दिया। "नहीं, धन्यवाद," उसने कहा, "मेरा पेट भर गया है।" वह मन ही मन सोच रहा था, "इस जगह पर हमारे लिए तीन रत्नों (*1) के सिवा कोई सहारा नहीं है," और इसलिए उसने तीन रत्नों के आशीर्वाद के बारे में सोचा। जैसे-जैसे वह सोचता रहा, उसी छोटे से द्वीप में जन्मा एक सर्प-राजा ने अपना शरीर एक विशाल जहाज के रूप में बदल लिया। जहाज सात प्रकार की कीमती वस्तुओं से भरा हुआ था। समुद्र का एक देवता उसका नाविक था। तीनों मस्तूल नीलम के, लंगर सोने का, रस्सियाँ चाँदी की और तख्ते सोने के बने थे।

समुद्र-देवता जहाज पर खड़े होकर पुकार रहे थे—"भारत जाने वाले कोई यात्री हैं?" शिष्य ने कहा, "हाँ, हम वहीं जा रहे हैं।" "तो फिर, जहाज पर चढ़िए!" वह जहाज पर चढ़ गए और अपने मित्र नाई को बुलाना चाहते थे। नाविक ने कहा, "तुम आ सकते हो, लेकिन वह नहीं।" "क्यों नहीं?" दूसरे ने कहा, "वह पवित्र जीवन जीने वाला व्यक्ति नहीं है; मैंने यह जहाज तुम्हारे लिए लाया है, उसके लिए नहीं।" "बहुत खूब—जो वरदान मैंने दिए हैं, जो सद्गुण मैंने अपनाए हैं, जो शक्तियाँ मैंने विकसित की हैं—उन सबका फल मैं उसे देता हूँ!" नाई ने कहा, "धन्यवाद, गुरुजी!" समुद्र-देवता ने कहा, "अब, मैं तुम्हें जहाज पर ले जा सकता हूँ।" इस प्रकार उन्होंने उन दोनों को समुद्र पार पहुँचाया और बनारस की ओर नदी के विपरीत दिशा में रवाना हुए। वहाँ, अपनी शक्ति से, उन्होंने उन दोनों के लिए धन का भंडार बनाया और उनसे इस प्रकार कहा।

"बुद्धिमान और भले लोगों की संगति में रहो। यदि यह नाई इस धर्मनिष्ठ गृहस्थ की संगति में न होता, तो वह गहरे समुद्र में डूबकर मर जाता।" फिर उसने अच्छी संगति की प्रशंसा में ये छंद कहे:

"त्याग, सद्गुण और धर्मपरायणता का फल देखो:
  एक जहाज के आकार का सर्प उस भले आदमी को समुद्र के पार ले जाता है।
"केवल अच्छे लोगों से ही मित्रता करो और अच्छी संगति रखो।"
  अच्छे लोगों से दोस्ती होने के कारण, यह नाई अपने घर में सुरक्षित रह सकता था।
इस प्रकार सागर का देवता हवा में स्थिर रहा। अंत में वह सर्पराज को अपने साथ लेकर अपने निवास स्थान पर चला गया।

इस प्रवचन के समापन पर गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया। सत्यों के समापन पर उस धर्मनिष्ठ गृहस्थ ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) के फल को प्राप्त किया:- "उस अवसर पर परिवर्तित गृहस्थ शिष्य ने निर्वाण प्राप्त किया; सारिपुत्र सर्प-राज थे और सागर-आत्मा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)तीन रत्न हैं बुद्ध, धर्म मार्ग (निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग), पवित्र आदेश।

पिछला <<<<-----II-191-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 191
रूहका-जातक

"टूटी हुई धनुष की डोरी भी," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो उनकी पूर्व पत्नी के कारण उत्पन्न प्रलोभन से संबंधित थी। इन परिस्थितियों का वर्णन इंद्रिय-जातक (*1) के आठवें खंड में किया जाएगा। तब गुरु ने अपने भिक्षु भाई से कहा, "वह स्त्री तुम्हें हानि पहुँचाती है। पुराने समय में भी उसने तुम्हें राजा और उसके पूरे दरबार के सामने लज्जित किया था और तुम्हें अपना घर छोड़ने का उचित कारण दिया था।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा का शासन था, तब उनकी प्रमुख रानी से बोधिसत्व का जन्म हुआ। जब वे वयस्क हुए, तो उनके पिता का देहांत हो गया; और फिर वे राजा बने और धर्मपरायणता से शासन किया।

बोधिसत्व का एक पुजारी था जिसका नाम रुहका था, और इस रुहका ने एक वृद्ध ब्राह्मण महिला से शादी की थी।

राजा ने ब्राह्मण को सभी अलंकृत वस्त्रों से सुसज्जित एक घोड़ा भेंट किया, और वह घोड़े पर सवार होकर राजा की सेवा में चल पड़ा। जब वह अपने उत्तम साज-सज्जा वाले घोड़े पर सवार होकर जा रहा था, तो इधर-उधर के लोग उसकी प्रशंसा में जोर-जोर से चिल्ला रहे थे: "देखो वह सुंदर घोड़ा!" वे चिल्लाए; "क्या ही सुंदर है!"

जब वह घर लौटा, तो वह अपने आलीशान घर में गया और अपनी पत्नी को सब कुछ बताया।

"गुडवाइफ," उसने कहा, "हमारा घोड़ा बहुत अच्छा चल रहा है! हर तरफ लोग उसकी तारीफ कर रहे हैं।"

अब उसकी पत्नी वैसी नहीं थी जैसी उसे होनी चाहिए थी, और वह छल से भरी हुई थी; इसलिए उसने उसे इस प्रकार उत्तर दिया।

"अरे पतिदेव, आप नहीं जानते कि इस घोड़े की सुंदरता किसमें निहित है। यह सब इसके सुंदर अलंकृत वस्त्रों में है। अब यदि आप स्वयं को घोड़े के समान सुंदर बनाना चाहते हैं, तो इसके अलंकृत वस्त्र पहनें और घोड़े की तरह इतराते हुए सड़क पर निकलें। आप राजा को देखेंगे, और वह आपकी प्रशंसा करेगा, और सभी लोग आपकी प्रशंसा करेंगे।"

उस मूर्ख ब्राह्मण ने सब कुछ सुना, पर वह स्त्री का इरादा नहीं समझ पाया। इसलिए उसने उसकी बात मान ली और वैसा ही किया जैसा उसने कहा था। उसे देखकर सब ज़ोर से हँस पड़े: "वाह, क्या गुरु है!" सबने कहा। और राजा ने उस पर लज्जा जताई। "हे गुरु, क्या आप ठीक हैं? क्या आप पागल हो गए हैं?" यह सुनकर ब्राह्मण को लगा कि उसने कुछ गलत किया है और उसे शर्म आ गई। वह अपनी पत्नी पर क्रोधित हुआ और जल्दी से घर लौटते हुए मन ही मन कहने लगा, "इस स्त्री ने मुझे राजा और उसकी सारी सेना के सामने शर्मिंदा कर दिया है: मैं इसे दंड दूंगा और घर से निकाल दूंगा!"

लेकिन उस धूर्त स्त्री को पता चल गया कि वह क्रोधित होकर घर लौटा है; वह उससे पहले ही निकल गई और एक तरफ के दरवाजे से महल की ओर चल पड़ी, जहाँ वह चार-पाँच दिन रही। जब राजा को इस बात का पता चला, तो उसने अपने पुजारी को बुलवाया और उससे कहा, "हे गुरु, समस्त स्त्रीयाँ दोषों से भरी होती हैं; आपको इस स्त्री को क्षमा कर देना चाहिए;" और उसे क्षमा करने के लिए प्रेरित करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:-

"टूटी हुई धनुष की डोरी को भी ठीक किया जा सकता है और उसे पूरा बनाया जा सकता है।"
अपनी पत्नी को क्षमा कर दो, और अपने मन में इस क्रोध को मत पालो।"
यह सुनकर रुहाका ने दूसरा वाक्य कहा:-

"जबकि छाल और मजदूर भी मौजूद हैं

धनुष की डोरी नई खरीदना आसान है।
मैं एक और पत्नी का इंतजाम कर लूंगा;
मैं इससे तंग आ चुका हूँ, बस।
ऐसा कहकर उसने उसे विदा कर दिया और दूसरी ब्राह्मण स्त्री से विवाह कर लिया।

इस प्रवचन को समाप्त करने के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर प्रलोभित भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) के फल में स्थापित हो गया: "उस अवसर पर पूर्व पत्नी वही थी, रुहका प्रलोभित भाई थी, और मैं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1) जातक संख्या 423.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिरी-काडकानि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 192
सिरी-कलाकन्नी-जातक

"यद्यपि स्त्रियाँ सुंदर हों," इत्यादि—यह कथा महा-उम्मग्ग-जातक क्रमांक 546 में दी जाएगी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्ल-पदुम-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-193-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 193
CULLA-PADUMA-JATAKA

"मैं ही हूँ—कोई और नहीं," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इसके घटनाक्रम का वर्णन उम्मदंती जन्म (*1) में किया जाएगा। जब गुरु ने उस भिक्षु से पूछा कि क्या वह सचमुच पथभ्रष्ट है, तो उसने कहा कि वह है। गुरु ने कहा, "किसने तुम्हें पथभ्रष्ट किया है?" उसने उत्तर दिया कि उसने एक सुंदर वस्त्रधारी स्त्री को देखा था और वासना में बहककर वह पथभ्रष्ट हो गया था। तब गुरु ने कहा, "भाई, स्त्री जाति कृतघ्न और कपटी होती है; पुराने समय के बुद्धिमान पुरुष भी इतने मूर्ख थे कि उन्होंने अपने दाहिने घुटने का खून भी उन्हें पिलाया, जीवन भर उन्हें उपहार देते रहे, फिर भी उनका दिल नहीं जीत सके।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब राजा ब्रह्मदत्त बनारस पर शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उनकी प्रमुख रानी के पुत्र के रूप में हुआ। उनके नामकरण के दिन, उन्हें राजकुमार पद्म, यानी कमल राजकुमार कहा गया। उनके बाद उनके छह छोटे भाई हुए। एक-एक करके ये सातों बड़े हुए, विवाह किए और राजा के साथी बनकर बस गए।

एक दिन राजा ने महल के प्रांगण में देखा, और उसे कुछ लोग अपने साथ बड़ी संख्या में अनुयायियों को लेकर उससे मिलने आते हुए दिखाई दिए। उसे संदेह हुआ कि वे उसे मारना चाहते हैं और उसका राज्य छीनना चाहते हैं। इसलिए उसने उन्हें बुलवाया और उनसे इस प्रकार बात की।

"मेरे पुत्रों, तुम इस नगर में नहीं रह सकते। इसलिए कहीं और चले जाओ, और मेरे मरने के बाद तुम लौटकर उस राज्य को ले लेना जो हमारे परिवार का है।"

उन्होंने अपने पिता की बात मान ली और रोते-बिलखते घर लौट आए। “हमें कहीं भी जाने की परवाह नहीं!” वे चिल्लाए और अपनी पत्नियों को साथ लेकर शहर छोड़कर सड़क पर चल पड़े। कुछ समय बाद वे एक जंगल में पहुँचे, जहाँ उन्हें न तो भोजन मिला और न ही पानी। भूख की पीड़ा सहन न कर पाने के कारण उन्होंने महिलाओं की जान की कीमत पर अपनी जान बचाने का निश्चय किया। उन्होंने सबसे छोटे भाई की पत्नी को पकड़ लिया और उसकी हत्या कर दी; उन्होंने उसके शरीर के तेरह टुकड़े कर दिए और उसे खा लिया। लेकिन बोधिसत्व और उनकी पत्नी ने एक हिस्सा अलग रख दिया और बाकी को आपस में बाँट लिया।

इस प्रकार उन्होंने छह दिन तक ऐसा किया और छह स्त्रियों को मारकर खा लिया; और प्रत्येक दिन बोधिसत्व ने एक भाग अलग रख दिया, जिससे उनके पास छह भाग सुरक्षित रह गए।

सातवें दिन बाकी लोग बोधिसत्व की पत्नी को मारने के लिए ले जाना चाहते थे; लेकिन इसके बजाय उन्होंने उन्हें अपने पास रखे हुए छह भाग दे दिए। उन्होंने कहा, "इन्हें खा लो; कल मैं संभाल लूंगा।" उन सभी ने मांस खाया; और जब सोने का समय आया, तो बोधिसत्व और उनकी पत्नी एक साथ चले गए।

थोड़ी दूर चलने पर स्त्री ने कहा, "पतिदेव, मैं और आगे नहीं जा सकती।" तब बोधिसत्व ने उसे अपने कंधों पर उठा लिया और सूर्योदय के समय जंगल से बाहर आ गए। सूर्य उदय होते ही उसने कहा, "पतिदेव, मुझे प्यास लगी है!"

"पानी नहीं है, प्रिय पत्नी!" उसने कहा।

लेकिन वह उससे बार-बार विनती करती रही, जब तक कि उसने अपनी तलवार से अपने दाहिने घुटने पर प्रहार नहीं किया और कहा,

"यहाँ पानी नहीं है; लेकिन तुम बैठ जाओ और मेरे घुटने से निकला खून पी लो।" और उसने वैसा ही किया।

कुछ समय बाद वे विशाल गंगा नदी के पास पहुँचे। उन्होंने पानी पिया, स्नान किया, तरह-तरह के फल खाए और एक रमणीय स्थान पर विश्राम किया। नदी के मोड़ पर उन्होंने एक कुटिया बनाई और उसमें रहने लगे।

अब हुआ यूं कि ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक डाकू राजद्रोह का दोषी पाया गया। उसके हाथ-पैर, नाक-कान काट दिए गए और उसे एक डोंगी में लिटाकर नदी में बहने के लिए छोड़ दिया गया। दर्द से कराहते हुए वह बहता हुआ इस स्थान पर पहुंचा। बोधिसत्व ने उसकी व्यथित कराह सुनी।

“जब तक मैं जीवित हूँ,” उसने कहा, “कोई भी बेचारा प्राणी मेरे लिए नहीं मरेगा!” और वह नदी किनारे गया और उस आदमी को बचा लिया। वह उसे झोपड़ी में ले आया और कसैली क्रीम और मलहम से उसके घावों की देखभाल की।

लेकिन उसकी पत्नी ने मन ही मन कहा, "देखो, यह तो गंगा से एक अच्छा आलसी साथी लेकर आया है, जिसकी देखभाल करने के लिए!" और वह उस साथी को देखकर घृणा से थूकने लगी।

जब उस आदमी के घाव भरने लगे, तो बोधिसत्व ने उसे और उसकी पत्नी को अपनी कुटिया में रहने के लिए कहा और जंगल से तरह-तरह के फल लाकर उसे और उसकी पत्नी को खिलाना शुरू किया। इस तरह साथ रहते हुए, पत्नी को उस आदमी से प्रेम हो गया और उसने पाप किया। फिर उसने बोधिसत्व को जान से मारने की इच्छा जताई और उससे कहा, "पतिदेव, जब मैं जंगल से लौटते समय आपके कंधे पर बैठी थी, तो मैंने उस पहाड़ी को देखा था और मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि हम दोनों बच जाएं और हमें कोई हानि न हो, तो मैं उस पहाड़ी की पवित्र आत्मा को भेंट चढ़ाऊंगी। अब वह आत्मा मुझे सता रही है और मैं अपनी भेंट चढ़ाना चाहती हूं!"

“बहुत अच्छा,” बोधिसत्व ने कहा, क्योंकि उन्हें उसकी छल का पता नहीं था। उन्होंने प्रसाद तैयार किया और प्रसाद का पात्र उसे देकर पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गए। तब उनकी पत्नी ने उनसे कहा,

"पतिदेव, पर्वत की आत्मा नहीं, बल्कि आप मेरे सर्वोच्च देवता (देवदूत) हैं! इसलिए सबसे पहले मैं आपके सम्मान में जंगली फूल अर्पित करूंगी, और आपके दाहिनी ओर रहते हुए आदरपूर्वक आपके चारों ओर परिक्रमा कर आपको प्रणाम करूंगी; और उसके बाद मैं पर्वत की आत्मा को अपना अर्पण दूंगी।" ऐसा कहकर उसने उसे एक खाई के सामने खड़ा कर दिया और आदरपूर्वक प्रणाम करने का नाटक किया। इस प्रकार उसके पीछे आकर उसने उसकी पीठ पर प्रहार किया और उसे खाई में धकेल दिया। फिर वह खुशी से चिल्लाई, "मैंने अपने शत्रु की पीठ देख ली!" और वह पर्वत से नीचे उतरकर अपने प्रेमी के समक्ष चली गई।

अब बोधिसत्व चट्टान से नीचे लुढ़क गए; लेकिन वे अंजीर के पेड़ की चोटी पर पत्तों के एक गुच्छे में फंस गए जहाँ कांटे नहीं थे। फिर भी वे पहाड़ी से नीचे नहीं उतर सके, इसलिए वे वहीं शाखाओं के बीच बैठकर अंजीर खाने लगे। संयोग से एक विशाल इगुआना (बड़ी छिपकली) पहाड़ी की तलहटी से ऊपर चढ़ती थी और इस अंजीर के पेड़ के फल खाती थी। उस दिन उसने बोधिसत्व को देखा और भाग गई। अगले दिन, वह आई और पेड़ के एक किनारे पर कुछ फल खाए। वह बार-बार आती रही, अंततः बोधिसत्व से उसकी मित्रता हो गई।

"आप इस स्थान पर कैसे पहुंचे?" उसने पूछा; और बोधिसत्व ने उसे बताया कि कैसे।

“डरिए मत,” इगुआना (बड़ी छिपकली) ने कहा; और उसे अपनी पीठ पर लादकर पहाड़ी से नीचे उतरा और जंगल से बाहर ले आया। वहाँ उसने उसे मुख्य सड़क पर रख दिया, उसे रास्ता दिखाया और स्वयं जंगल में लौट गया।

दूसरा व्यक्ति एक गाँव में गया और वहाँ अपने पिता की मृत्यु की खबर मिलने तक रहा। इसके बाद वह बनारस के लिए रवाना हुआ। वहाँ उसने अपने खानदानी राज्य का उत्तराधिकार ग्रहण किया और राजा कमल का नाम धारण किया; उसने राजाओं के लिए निर्धारित दस नियमों का उल्लंघन नहीं किया और सत्यनिष्ठा से शासन किया। उसने छह दान-पुण्य कक्ष बनवाए, एक चारों द्वारों पर, एक नगर के मध्य में और एक महल के सामने; और प्रतिदिन वह दान में छह लाख सिक्के वितरित करता था।

उस दुष्ट पत्नी ने अपने प्रेमी को अपने कंधों पर उठाया और जंगल से बाहर आ गई; वह लोगों के बीच भीख मांगने गई और उसके लिए चावल और दलिया इकट्ठा करती थी। अगर उससे पूछा जाता कि वह आदमी उसका क्या है, तो वह जवाब देती, "उसकी माँ मेरे पिता की बहन थी, वह मेरा चचेरा भाई है; मुझे उसी ने दिया है। अगर उसे मौत की सजा भी दी जाए, तो भी मैं अपने पति को अपने कंधों पर उठा लूंगी, उसकी देखभाल करूंगी और उसके लिए भोजन की भीख मांगूंगी!"

“कितनी समर्पित पत्नी!” सभी लोग कहने लगे। और तब से वे उसे पहले से कहीं अधिक भोजन देने लगे। उनमें से कुछ ने सलाह भी दी, “इस तरह मत रहो। बनारस के स्वामी कमल राजा हैं; उन्होंने अपनी उदारता से पूरे भारत में हलचल मचा दी है। तुम्हें देखकर उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी; वे इतने प्रसन्न होंगे कि तुम्हें बहुमूल्य उपहार देंगे। अपने पति को इस टोकरी में रखो और उनके पास जाओ।” ऐसा कहकर उन्होंने उसे मना लिया और उसे सीपियों से भरी एक टोकरी दे दी।

उस दुष्ट स्त्री ने अपने प्रेमी को टोकरी में रखा और उसे लेकर बनारस चली गई, जहाँ वह दान-पुण्य के आश्रमों से जो कुछ प्राप्त करती, उसी से अपना जीवन यापन करती थी। बोधिसत्व भव्य, अलंकृत हाथी पर सवार होकर भिक्षागृह जाया करते थे; और आठ-दस लोगों को दान देने के बाद वे अपने घर के लिए निकल पड़ते थे। तभी उस दुष्ट स्त्री ने अपने प्रेमी को टोकरी में रखा और उसे लेकर उस स्थान पर खड़ी हो गई जहाँ से राजा अक्सर गुजरते थे। राजा ने उसे देखा। उन्होंने पूछा, “यह कौन है?” उत्तर मिला, “एक समर्पित पत्नी।” उन्होंने उसे बुलवाया और पहचान लिया कि वह कौन है। उन्होंने उस व्यक्ति को टोकरी से नीचे उतारा और उससे पूछा, “यह व्यक्ति तुम्हारा क्या है?” उसने उत्तर दिया, “यह मेरे पिता की बहन का पुत्र है, मेरे परिवार ने मुझे दिया है, मेरा अपना पति है।”

"वाह, कितनी समर्पित पत्नी है!" वे सब चिल्लाए; क्योंकि वे इसके बारे में पूरी तरह से नहीं जानते थे; और उन्होंने उस दुष्ट स्त्री की प्रशंसा की।

"क्या—क्या वह बदमाश तुम्हारा चचेरा भाई है? क्या तुम्हारे परिवार ने उसे तुम्हें सौंपा है?" राजा ने पूछा; "क्या वह तुम्हारा पति है?"

उसने राजा को नहीं पहचाना; और "जी, मेरे स्वामी!" उसने बड़े ही मुखर अंदाज में कहा।

"क्या यह बनारस के राजा का पुत्र है? क्या तुम राजकुमार कमल की पत्नी नहीं हो, फलाँ राजा की पुत्री नहीं हो, तुम्हारा नाम फलाँ है? क्या तुमने मेरे घुटने का खून नहीं पिया था? क्या तुम इस दुष्ट से प्रेम नहीं कर बैठी थीं और मुझे खाई में नहीं फेंक दिया था? आह, तुमने सोचा था कि मैं मर गया हूँ, और देखो तुम्हारे माथे पर मृत्यु लिखी है—और देखो मैं जीवित हूँ!" फिर वह अपने दरबारियों की ओर मुड़ा। "क्या तुम्हें याद है मैंने तुम्हें क्या बताया था, जब तुमने मुझसे सवाल किए थे? मेरे छह छोटे भाइयों ने अपनी छह पत्नियों को मार डाला और उन्हें खा लिया; लेकिन मैंने अपनी पत्नी को सुरक्षित रखा और उसे गंगा के किनारे ले आया, जहाँ मैं एक साधु की कुटिया में रहता था: मैंने एक दोषी अपराधी को नदी से बाहर निकाला और उसकी देखभाल की; इस स्त्री को उससे प्रेम हो गया और उसने मुझे खाई में फेंक दिया, लेकिन मैंने दया दिखाकर अपनी जान बचाई। यह वही दुष्ट स्त्री है जिसने मुझे खाई में फेंका था: यही है, और कोई नहीं, वह दोषी!" फिर उन्होंने निम्नलिखित छंद कहे:

"यह मैं ही हूँ—कोई और नहीं, और यह रानी वही है।"
हाथविहीन बेईमान, और कोई नहीं, बस यही है जो आपको दिख रहा है;

उसने कहा—'यह मेरे यौवन का पति है।'
महिलाओं को मरना ही चाहिए; उनमें कोई सच्चाई नहीं होती।
"एक बड़े डंडे से उस बदमाश की जान ले लो।"
जो अपने पड़ोसी की पत्नी को चुराने के लिए घात लगाकर बैठा है।
फिर वेश्या को पकड़ो,
और मरने से पहले उसकी नाक और कान काट दो।"

लेकिन यद्यपि बोधिसत्व अपना क्रोध नहीं रोक सके और उन्होंने उनके लिए यह दंड निर्धारित किया, फिर भी उन्होंने उस पर अमल नहीं किया; बल्कि उन्होंने अपने क्रोध को दबाकर टोकरी को उसके सिर पर इतनी मजबूती से रख दिया कि वह उसे उतार न सके; उन्होंने उस दुष्ट को भी उसी टोकरी में डाल दिया और उन्हें अपने राज्य से निकाल दिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग के फल (समाधि) में प्रवेश किया: "उन दिनों कुछ बुजुर्ग छह भाई थे, युवती चिंचा पत्नी थी, देवदत्त अपराधी था, आनंद इगुआना था, और राजा कमल मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 527.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मणिकोरा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-194-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 194
मणिकोरा-जातक

“देवदूत यहाँ हैं,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने वेलुवन में अपने प्रवास के दौरान सुनाई थी, जिसमें उन्होंने बताया था कि देवदत्त ने उन्हें मारने का प्रयास किया था। देवदत्त द्वारा उन्हें जान से मारने की बात सुनकर उन्होंने कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब देवदत्त ने मुझे मारने का प्रयास किया है; उसने पहले भी ऐसा करने की कोशिश की थी, लेकिन असफल रहा।” फिर उन्होंने उन्हें यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तभी बोधिसत्व ने शहर से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गांव में रहने वाले एक गृहस्थ के पुत्र के रूप में जन्म लिया।

जब वे वयस्क हुए, तो उनके परिवार ने बनारस से एक युवती को उनके विवाह के लिए बुलाया। वह एक सुंदर और आकर्षक कन्या थी, अप्सरा के समान सुंदर, कोमल लता के समान नाजुक और परी के समान मोहक। उसका नाम सुजाता था; वह निष्ठावान, गुणी और कर्तव्यनिष्ठ थी। वह हमेशा अपने स्वामी और उनके माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्ण निर्वाह करती थी। यह कन्या बोधिसत्व को अत्यंत प्रिय और अनमोल थी। इस प्रकार वे दोनों आनंद, एकता और एकरूपता के साथ जीवन व्यतीत करते रहे।

एक दिन सुजाता ने अपने पति से कहा, "मेरी इच्छा है कि मैं अपने माता-पिता को देखूं।"

“बहुत अच्छा, मेरी पत्नी,” उन्होंने उत्तर दिया; “यात्रा के लिए पर्याप्त भोजन तैयार करो।” उन्होंने हर तरह का भोजन पकवाया और उसे एक गाड़ी में रख दिया; क्योंकि वे गाड़ी चला रहे थे, इसलिए वे आगे बैठे और उनकी पत्नी पीछे। वे बनारस के लिए रवाना हुए; वहाँ उन्होंने गाड़ी खोली, स्नान किया और भोजन किया। फिर बोधिसत्व ने बैलों को फिर से जोता और आगे बैठ गए; और सुजाता, जिन्होंने अपने वस्त्र बदल लिए थे और खुद को सजाया था, पीछे बैठ गईं।

जैसे ही रथ शहर में दाखिल हुआ, बनारस का राजा एक भव्य हाथी पर सवार होकर शहर का चक्कर लगा रहा था; और वह उस जगह से गुज़रा। सुजाता रथ से उतरकर पैदल पीछे-पीछे चल रही थी। राजा ने उसे देखा: उसकी सुंदरता ने राजा का ध्यान इतना आकर्षित किया कि वह उस पर मोहित हो गया। उसने अपने एक साथी को बुलाया। "जाओ, पता लगाओ कि उस स्त्री का पति है या नहीं।" उस व्यक्ति ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था और राजा को बताने के लिए वापस आया। "मुझे बताया गया है कि उसका पति है," राजा ने कहा; "क्या आप उस रथ में बैठे उस आदमी को देख रहे हैं? वही उसका पति है।"

राजा अपनी वासना को दबा नहीं सका और उसके मन में पाप का विचार आया। उसने सोचा, "मैं किसी तरह इस आदमी से छुटकारा पाऊंगा और फिर मैं खुद उसकी पत्नी बन जाऊंगा।" उसने एक आदमी को बुलाया और कहा, "लो, मेरे भले आदमी, यह रत्नजड़ित मुकुट ले लो और ऐसे दिखावा करो जैसे तुम गली से जा रहे हो। जाते समय इसे उस आदमी की गाड़ी में डाल देना।" इतना कहकर उसने उसे रत्नजड़ित मुकुट दिया और उसे जाने दिया। उस आदमी ने मुकुट लिया और चला गया; गाड़ी के पास से गुजरते ही उसने मुकुट उसमें डाल दिया; फिर वह लौटा और राजा को बताया कि काम हो गया है।

"मेरा रत्नजड़ित मुकुट खो गया है!" राजा चिल्लाया: पूरा स्थान कोलाहल से भर गया।

“सभी द्वार बंद करो!” राजा ने आदेश दिया; “सभी रास्ते बंद करो! चोर को पकड़ो!” राजा के अनुयायियों ने आज्ञा का पालन किया। शहर में अफरा-तफरी मच गई! दूसरा व्यक्ति, कुछ अन्य लोगों को साथ लेकर, बोधिसत्व के पास गया और चिल्लाया—“नमस्कार! अपनी गाड़ी रोको! राजा का रत्नजड़ित मुकुट खो गया है; हमें आपकी गाड़ी की तलाशी लेनी होगी!” और उसने तलाशी ली, जब तक कि उसे वह रत्न नहीं मिल गया जिसे उसने स्वयं वहाँ रखा था। “चोर!” चिल्लाते हुए उसने बोधिसत्व को पकड़ लिया; उन्होंने उसे पीटा और लात मारी; फिर उसके हाथ पीछे बाँधकर उसे राजा के सामने घसीटते हुए चिल्लाए—“देखो, वह चोर जिसने तुम्हारा रत्न चुराया!” “उसका सिर काट दो!” राजा का आदेश था। उन्होंने उसे कोड़ों से पीटा, हर गली के कोने पर उसे तड़पाया और दक्षिणी द्वार से शहर से बाहर फेंक दिया।

सुजाता गाड़ी से उतरी और बाहें फैलाकर विलाप करते हुए उसके पीछे दौड़ी—"हे मेरे पति, मैंने ही तुम्हें इस दयनीय स्थिति में पहुँचाया है!" राजा के सेवकों ने बोधिसत्व को पीठ पर लादकर उसका सिर काटने का इरादा किया। यह देखकर सुजाता ने अपने सद्गुणों और अच्छाई पर विचार किया और मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि यहाँ कोई ऐसी आत्मा नहीं है जो क्रूर और दुष्ट पुरुषों के हाथों को रोक सके, जो सद्गुणी लोगों को हानि पहुँचाते हैं"; और रोते-बिलखते उसने पहली पंक्ति दोहराई:-

"यहाँ कोई देवता (देवदूत) नहीं हैं: वे बहुत दूर होंगे;--"
कोई देवता (देवदूत) नहीं, जो समस्त संसार पर अपना प्रभुत्व रखते हों:
अब उग्र और हिंसक लोग अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकते हैं।
क्योंकि यहां कोई ऐसा नहीं है जो उन्हें मना कर सके।

जब यह पुण्यी स्त्री इस प्रकार शोक मना रही थी, तब देवताओं के राजा (इंद्र) सक्का (इंद्र) का सिंहासन, जिस पर वे बैठे थे, गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने सोचा, "कौन है जो मुझे मेरे देवत्व से गिराना चाहता है?" फिर उन्हें कुछ समझ में आया। उन्होंने सोचा, "बनारस का राजा बहुत क्रूर काम कर रहा है। वह पुण्यी सुजाता को दुखी कर रहा है; अब मुझे वहाँ जाना ही होगा!" अतः देवलोक से उतरकर, उन्होंने अपनी शक्ति से दुष्ट राजा को उस हाथी से नीचे उतारा जिस पर वह सवार था, और उसे मृत्युदंड स्थल पर अपनी पीठ पर लिटा दिया। लेकिन बोधिसत्व को उन्होंने उठा लिया, उसे सभी प्रकार के आभूषणों से सजाया, राजा के वस्त्र पहनाए, और उसे राजा के हाथी की पीठ पर बिठा दिया। सेवकों ने कुल्हाड़ी उठाई और एक सिर काट दिया - लेकिन वह राजा का ही सिर था; और जब वह अलग हुआ, तो वे जान गए कि वह राजा का ही सिर था।

सक्का (इंद्र) ने प्रत्यक्ष रूप धारण किया और बोधिसत्व के सामने आकर उन्हें राजा नियुक्त किया; और सुजाता को प्रधान रानी का पद दिया। जब दरबारी, ब्राह्मण, गृहस्थ और अन्य सभी ने देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) को देखा, तो वे प्रसन्न हुए और कहने लगे, “अधर्मी राजा मारा गया! अब हमें सक्का (इंद्र) के हाथों से एक धर्मी राजा प्राप्त हुआ है!” सक्का (इंद्र) वायु में स्थिर खड़े होकर बोले, “तुम्हारा यह धर्मी राजा अब से धर्म के मार्ग पर चलेगा। यदि राजा अधर्मी हो, तो ईश्वर असमय वर्षा भेजता है और समय पर वर्षा नहीं भेजता; और उसके कारण मनुष्यों पर अकाल, महामारी और तलवार का भय आ पड़ता है।” इस प्रकार उन्होंने उन्हें उपदेश दिया और यह दूसरा श्लोक कहा:-

"उसके लिए बारिश के समय बारिश नहीं होती।"
लेकिन ऑफ-सीजन में बहुत अधिक बारिश होती है।
एक राजा स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित होता है।
देखिए इस आदमी की हत्या का कारण क्या था।

इस प्रकार इंद्र ने जनसमूह को संबोधित किया और फिर सीधे अपने दिव्य निवास स्थान पर चले गए। बोधिसत्व ने धार्मिकता का मार्ग अपनाया और फिर स्वर्ग चले गए।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए गुरु ने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया:- "उस समय देवदत्त दुष्ट राजा थे; अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे; सुजाता राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) थीं; परन्तु सक्का (इंद्र) के वरदान से राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पब्बतुपत्थर-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-195-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 195
पब्बतुपत्थारा-जातक

"एक खुशहाल झील," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि एक दरबारी ने राजमहल में षड्यंत्र रचा। राजा ने इस मामले की छानबीन की और जब उन्हें सारी सच्चाई पता चली तो उन्होंने गुरु को बताने का निश्चय किया। इसलिए वे जेतवन मठ आए और गुरु को प्रणाम किया; उन्हें बताया कि कैसे एक दरबारी ने षड्यंत्र रचा था और पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए। गुरु ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें वह दरबारी उपयोगी लगता है और क्या वे अपनी पत्नी से प्रेम करते हैं। उत्तर था, "हाँ, वह व्यक्ति बहुत उपयोगी है; वह मेरे दरबार का आधार है; और मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ।" गुरु ने उत्तर दिया, "महाराज, जब सेवक उपयोगी हों और स्त्रियाँ प्रिय हों, तो उनमें कोई हानि नहीं है। पुराने समय में भी राजा बुद्धिमानों की बातें सुनते थे और ऐसी बातों से उदासीन रहते थे।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक दरबारी परिवार में हुआ था। जब वे वयस्क हुए, तो वे राजा के सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार बन गए।

अब राजा के दरबार के एक सेवक ने हरम में साजिश रची और राजा को इसकी भनक लग गई। उसने सोचा, “वह तो बहुत ही उपयोगी सेवक है, और वह स्त्री मुझे प्रिय है। मैं इन दोनों को नष्ट नहीं कर सकता। मैं अपने दरबार के किसी बुद्धिमान व्यक्ति से इस बारे में पूछूंगा; और यदि आवश्यक हुआ तो सहन कर लूंगा; यदि नहीं, तो नहीं।”

उन्होंने बोधिसत्व को बुलवाया और उन्हें बैठने के लिए कहा। उन्होंने कहा, "हे ज्ञानी महोदय, मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है।"

“हे महाराज, पूछिए! मैं उत्तर दूंगा,” दूसरे ने उत्तर दिया। तब राजा ने प्रथम दोहे के शब्दों में अपना प्रश्न पूछा:-

एक सुंदर पहाड़ी की तलहटी में एक रमणीय झील स्थित थी।
लेकिन एक सियार ने इसका इस्तेमाल किया, यह जानते हुए कि एक शेर अभी भी उसे देख रहा है।
बोधिसत्व ने सोचा, "निश्चित रूप से उसके दरबारियों में से किसी ने हरम में षड्यंत्र रचा होगा"; और उन्होंने दूसरा दोहा पढ़ा:-

"विशाल नदी से सभी प्राणी इच्छानुसार जल पीते हैं।"
अगर वह आपको प्रिय है, तो धैर्य रखें—नदी तो नदी ही है।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने राजा को सलाह दी।

राजा ने उनकी सलाह मानकर उन्हें क्षमा कर दिया और उनसे कहा कि वे फिर कभी पाप न करें। और तब से उन्होंने पाप करना छोड़ दिया। राजा ने दान दिया और भलाई के कार्य किए, और अपने जीवन के अंत में स्वर्ग सिधार गए।

और कोसल के राजा ने भी यह प्रवचन सुनकर इन दोनों लोगों को क्षमा कर दिया और उदासीन बना रहा।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद राजा थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान सलाहकार था।"

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-196-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 196
वलहस्सा-जातक

"जो लोग उपेक्षा करेंगे," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो पथभ्रष्ट हो गया था।

जब गुरु ने उससे पूछा कि क्या सचमुच वह पथभ्रष्ट हो गया है, तो भाई ने कहा कि हाँ, यह सच है। कारण पूछे जाने पर उसने कहा कि एक सुंदर वस्त्रधारी स्त्री को देखकर उसकी वासना जागृत हो गई थी। तब गुरु ने उससे इस प्रकार कहा:

"भाई (भिक्षु), ये स्त्रियाँ अपने रूप, आवाज़, सुगंध, इत्र, स्पर्श और चालबाज़ी से पुरुषों को लुभाती हैं; इस प्रकार वे पुरुषों को अपने वश में कर लेती हैं; और जैसे ही उन्हें पता चलता है कि ऐसा हो गया है, वे अपने बुरे तरीकों से उनका चरित्र, धन-दौलत सब कुछ बर्बाद कर देती हैं। इसी कारण इन्हें स्त्री-स्त्री कहा जाता है। पुराने समय में भी स्त्री-स्त्रियों के एक समूह ने व्यापारियों के एक कारवां को लुभाया और उन पर अपना अधिकार जमा लिया; और बाद में, जब उन्होंने दूसरे पुरुषों को देखा, तो उन्होंने पहले वाले सभी को मार डाला और फिर उन्हें अपने दाँतों में चबाते हुए खा गईं, जबकि खून उनके दोनों गालों पर बह रहा था।" और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, श्रीलंका द्वीप में सिरिसावत्थु नाम का एक जिन्न नगर था, जिसमें मादा जिन्न रहती थीं। जब कोई जहाज़ डूब जाता था, तो ये जिन्नें खुद को सजाती-संवारती थीं और चावल-दलिया लेकर, दासों के काफिले और अपने बच्चों को गोद में लिए व्यापारियों के पास आती थीं। उन्हें यह भ्रम दिलाने के लिए कि उनका नगर मनुष्यों का नगर है, वे उन्हें जगह-जगह हल चलाते और गायों, मवेशियों, कुत्तों आदि की देखभाल करते हुए पुरुषों को दिखाती थीं। फिर व्यापारियों के पास जाकर वे उन्हें अपने द्वारा लाया गया दलिया, चावल और अन्य भोजन खाने के लिए आमंत्रित करती थीं। व्यापारी, बिना जाने-समझे, जो कुछ भी परोसा जाता था, खा लेते थे। जब वे खा-पी कर आराम कर रहे होते थे, तब ये जिन्नें उनसे पूछती थीं: "आप कहाँ रहते हैं? आप कहाँ से आए हैं? आप कहाँ जा रहे हैं, और आपको यहाँ क्या काम आया है?" वे उत्तर देते थे, "हम जहाज़ डूबने के कारण यहाँ आ गए हैं।" "बहुत अच्छा, महोदय," अन्य जिन्नें उत्तर देती थीं; "हमारे पतियों को जहाज पर गए तीन साल हो गए हैं; वे अवश्य ही मर गए होंगे। आप भी व्यापारी हैं; हम आपकी पत्नियाँ बनेंगी।" इस प्रकार वे स्त्रियों के प्रलोभन, छल और इश्कबाज़ी से उन्हें बहकाते हुए पिशाचों के शहर में ले जाते हैं; फिर, यदि उनके पास पहले से ही कोई और पकड़ा हुआ हो, तो वे उन्हें जादुई जंजीरों से बांधकर यातनागृह में फेंक देते हैं। और यदि उन्हें अपने निवास स्थान पर कोई जहाज़ दुर्घटना में बचा हुआ व्यक्ति नहीं मिलता, तो वे एक ओर कल्याणी नदी और दूसरी ओर नागदीपा द्वीप तक तट की छानबीन करते हैं। यही उनका तरीका है।

एक बार ऐसा हुआ कि जहाज़ टूटने से बचे पाँच सौ व्यापारी उन जिन्नों के शहर के पास किनारे पर आ गिरे। जिन्नें उनके पास आईं और उन्हें बहला-फुसलाकर अपने शहर ले गईं; जिन्हें उन्होंने पहले पकड़ा था, उन्हें उन्होंने जादुई जंजीरों से बांधकर यातनागृह में डाल दिया। फिर मुख्य जिन्न ने मुख्य व्यापारी को पकड़ा, और बाकी को बाकी के, इस तरह पाँच सौ व्यापारी हो गए; और उन्होंने उन पुरुषों को अपना पति बना लिया। फिर रात के समय, जब उसका साथी सो रहा था, मुख्य जिन्न उठी और मृत्युगृह की ओर चल पड़ी, कुछ पुरुषों को मारकर खा गई। बाकी ने भी ऐसा ही किया। जब सबसे बड़ी जिन्न पुरुषों का मांस खाकर लौटी, तो उसका शरीर ठंडा था। सबसे बड़े व्यापारी ने उसे गले लगाया और पहचान लिया कि वह एक जिन्न है। "ये सभी पाँच सौ जिन्न जरूर जिन्न हैं!" उसने मन ही मन सोचा: "हमें यहाँ से भागना होगा!"

तो सुबह-सुबह जब वह चेहरा धोने गया, तो उसने दूसरे व्यापारियों से इन शब्दों में कहा, “ये तो जिन्न हैं, इंसान नहीं! जैसे ही जहाज़ टूटने से बचे हुए दूसरे लोग मिलेंगे, वे उन्हें अपना पति बना लेंगे और हमें खा जाएंगे; चलो—हम भाग निकलें!”

उनमें से ढाई सौ लोगों ने जवाब दिया, "हम उन्हें नहीं छोड़ सकते: आप जा सकते हैं, लेकिन हम भागेंगे नहीं।"

फिर मुख्य व्यापारी अपने ढाई सौ साथियों के साथ, जो उसकी बात मानने को तैयार थे, भूतों के डर से भाग गया।

उस समय बोधिसत्व एक उड़ते हुए घोड़े के रूप में संसार में प्रकट हुए, जो पूर्णतः श्वेत थे, कौवे जैसी चोंच वाले थे, और उनके बाल मुंजा घास (*1) के समान थे। वे अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण थे और वायु में उड़ने में सक्षम थे। वे हिमालय से वायु में उड़ते हुए श्रीलंका पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीलंका के तालाबों और पोखरों को पार किया और वहाँ उगने वाले जंगली धान को खाया। इस प्रकार आगे बढ़ते हुए उन्होंने तीन बार करुणा से भरे मानवीय शब्दों में कहा—"कौन घर जाना चाहता है? कौन घर जाना चाहता है?" व्यापारियों ने उनकी यह बात सुनी और चिल्लाए—"हम घर जा रहे हैं, गुरुजी!" उन्होंने अपने हाथ जोड़कर आदरपूर्वक अपने माथे तक उठाए। बोधिसत्व ने कहा, "तो मेरी पीठ पर चढ़ जाओ।" यह सुनकर उनमें से कुछ चढ़ गए, कुछ ने उनकी पूंछ पकड़ ली और कुछ आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए खड़े रहे। फिर बोधिसत्व ने उन लोगों को भी उठा लिया जो उन्हें प्रणाम करते हुए स्थिर खड़े थे, और उन सभी को, यानी ढाई सौ लोगों को, उनके अपने देश ले गए, और प्रत्येक को उसके अपने स्थान पर बिठा दिया; फिर वे अपने निवास स्थान पर लौट गए।

और जब दूसरे पुरुष उस स्थान पर आए, तो उन मादा जिन्नों ने बचे हुए ढाई सौ लोगों को मार डाला और उन्हें खा गईं।

गुरु ने अब भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “हे भिक्षुओं, जिस प्रकार ये व्यापारी राक्षसी स्त्रियों के हाथों मारे गए, परन्तु अन्य सभी उस अद्भुत घोड़े की आज्ञा मानकर सुरक्षित अपने घर लौट आए; उसी प्रकार, जो बुद्धों की सलाह की अवहेलना करते हैं, चाहे भिक्षु हों या भिक्षुणियाँ, गृहस्थ भिक्षु हों या भिक्षुणियाँ, वे चारों नरकों में घोर कष्ट भोगते हैं, जहाँ उन्हें पाँच कोड़ों से बांधकर दंडित किया जाता है, इत्यादि। परन्तु जो इस सलाह का पालन करते हैं, वे तीन प्रकार के सौभाग्यशाली जन्म, छह इंद्रिय लोकों, बीस ब्रह्म लोकों में प्रवेश करते हैं और अविनाशी निर्वाण की अवस्था प्राप्त करके परम आनंद प्राप्त करते हैं।” फिर पूर्णतः प्रबुद्ध होकर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक पढ़े:

"जो लोग बुद्ध द्वारा बताए गए निर्देशों की अवहेलना करेंगे,"
  जिस प्रकार पिशाचों ने व्यापारियों को खाया, उसी प्रकार वे भी नष्ट हो जाएंगे।
जो लोग बुद्ध की बात सुनते हैं जब वे उन्हें करने के लिए निर्देश देते हैं,
  जिस प्रकार पक्षी-घोड़े ने व्यापारियों को बचाया, उसी प्रकार उन्हें भी मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त होगा।
जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (समाधि) का फल प्राप्त किया, और कई अन्य लोगों ने प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ मार्ग का फल प्राप्त किया: "बुद्ध के अनुयायी वे ढाई सौ लोग थे जिन्होंने घोड़े की सलाह का पालन किया, और मैं स्वयं घोड़ा था।"

फुटनोट:

(1)सैकरम मुंजा

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मित्तमित्त-जातक**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-197-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 197
मित्तमित्त-जातक

"वह मुस्कुराता नहीं है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने श्रावस्ती शहर में रहते हुए एक भिक्षु (भाई) के बारे में सुनाई थी।

उस भाई ने अपने गुरु द्वारा रखा हुआ एक कपड़ा उठा लिया, उसे पूरा भरोसा था कि अगर वह उसे ले लेगा तो गुरु क्रोधित नहीं होंगे। फिर उसने उस कपड़े को जूतों के थैले में भरकर रख दिया और विदा लेने चला गया। जब गुरु ने उससे पूछा कि उसने कपड़ा क्यों लिया, तो उसने उत्तर दिया कि उसे पूरा भरोसा था कि अगर वह ले लेगा तो गुरु क्रोधित नहीं होंगे। गुरु क्रोधित हो उठे, उठे और उसे एक घूंसा मारा। उन्होंने पूछा, "तुम्हारे और मेरे बीच क्या विश्वास है?"

यह बात भिक्षुओं के बीच फैल गई। एक दिन सभी भिक्षु सत्य के हॉल में इकट्ठा होकर इस विषय पर चर्चा कर रहे थे। "मित्र, फलां भिक्षु को अपने गुरु की मित्रता पर इतना भरोसा था कि उसने कपड़े का एक टुकड़ा लेकर उसे जूतों की थैली बना लिया। तब गुरु ने उससे पूछा कि उनके बीच किस बात का भरोसा है, तो गुरु क्रोधित हो गए, उछल पड़े और उन्हें एक घूंसा मार दिया।" गुरुजी अंदर आए और जब वे सब वहाँ बैठे थे, तो उन्होंने उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। तब गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस व्यक्ति ने अपने साथी के भरोसे को तोड़ा है। उसने पहले भी ऐसा ही किया है।" और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व काशी राज्य में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्मे। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने संसार त्याग दिया; उन्होंने अपने भीतर अलौकिक शक्तियों और उपलब्धियों को विकसित किया और अपने शिष्यों के साथ हिमालय क्षेत्र में निवास करने लगे। इस तपस्वी समूह में से एक ने बोधिसत्व की बात नहीं मानी और एक ऐसे हाथी के बच्चे को अपने पास रख लिया जिसकी माँ मर चुकी थी। समय बीतने पर वह हाथी बड़ा हो गया, फिर उसने अपने स्वामी को मार डाला और जंगल में भाग गया। तपस्वियों ने उसका अंतिम संस्कार किया; और फिर बोधिसत्व से मिलकर उन्होंने उनसे यह प्रश्न पूछा।

"महोदय, हम कैसे जान सकते हैं कि कोई मित्र है या शत्रु?"

बोधिसत्व ने उन्हें निम्नलिखित श्लोकों में इसका स्पष्टीकरण दिया:-

"वह उसे देखकर मुस्कुराता भी नहीं, न ही उसका स्वागत करता है।"
 वह उस तरफ अपनी नज़रें नहीं घुमाएगा और उसे 'नहीं' में जवाब देगा।
"ये वे चिह्न और संकेत हैं जिनसे तुम अपने शत्रु को पहचानोगे:
 एक बुद्धिमान व्यक्ति इन्हें देखकर और सुनकर अपने शत्रु को पहचान लेता है।
इन शब्दों में बोधिसत्व ने मित्र और शत्रु के लक्षण बताए। इसके बाद उन्होंने श्रेष्ठ गुणों का अभ्यास किया और ब्रह्मा के स्वर्ग में प्रवेश किया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "जिस भाई (भिक्षु) की बात हो रही है, वह वही था जिसने पालतू हाथी रखा था, उसका गुरु हाथी था, बुद्ध के अनुयायी संन्यासियों का समूह थे, और मैं स्वयं उनका मुखिया था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अनाम-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-198-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 198

"मैं आता हूँ, मेरे पुत्र," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ऐसे भिक्षु के बारे में सुनाई थी जो पथभ्रष्ट हो गया था।

हमने सुना है कि गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह सचमुच पथभ्रष्ट है; और उसने उत्तर दिया, हाँ, वह है। कारण पूछे जाने पर उसने कहा, "क्योंकि एक स्त्री को उसके सुंदर वस्त्रों में देखकर मेरी वासना जागृत हो गई।" तब गुरु ने कहा, "भाई, स्त्रियों पर नज़र रखना व्यर्थ है। पुराने समय में द्वारों की रक्षा के लिए पहरेदार रखे जाते थे, फिर भी वे उन्हें सुरक्षित नहीं रख पाते थे; यहाँ तक कि जब तुम उन्हें पा भी लो, तो भी तुम उन्हें अपने पास नहीं रख सकते।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक नन्हे तोते के रूप में संसार में आए। उनका नाम राधा था और उनके सबसे छोटे भाई का नाम पोत्थपाद था। जब वे बहुत छोटे थे, तभी एक शिकारी ने उन्हें पकड़ लिया और बनारस के एक ब्राह्मण को सौंप दिया। ब्राह्मण ने उनकी देखभाल अपने बच्चों की तरह की। लेकिन ब्राह्मण की पत्नी दुष्ट थी; उस पर नज़र रखना संभव नहीं था।

पति को व्यापारिक यात्रा पर जाना पड़ा और उसने अपने नन्हे तोतों से कहा, "मेरे प्यारे बच्चों, मैं व्यापारिक यात्रा पर जा रहा हूँ। मौसम हो या न हो, अपनी माँ का ध्यान रखना; देखना कि कोई पुरुष उससे मिलने तो नहीं आता।" इस प्रकार वह अपनी पत्नी को नन्हे तोतों की देखभाल का जिम्मा सौंपकर चला गया।

उसके जाते ही वह स्त्री कुकर्म करने लगी; दिन-रात आगंतुकों का तांता लगा रहा। यह देखकर पोत्थपाद ने राधा से कहा, "हमारे स्वामी ने इस स्त्री को हमारे हवाले किया था, और यह कुकर्म कर रही है। मैं इससे बात करूंगा।"

"नहीं," राधा ने कहा। लेकिन दूसरा नहीं माना। "माँ," उसने कहा, "आप पाप क्यों करती हैं?"

वह उसे जान से मार डालने के लिए कितनी तरसी जा रही थी! लेकिन उसे प्यार से सहलाने का नाटक करते हुए उसने उसे अपने पास बुलाया।

"मेरे प्यारे बेटे, तुम मेरे बेटे हो! मैं ऐसा दोबारा कभी नहीं करूंगी! लो, मेरे प्यारे!" तो वह बाहर आया; फिर उसने रोते हुए उसे पकड़ लिया।

"क्या! तुम मुझे उपदेश दे रहे हो! तुम्हें अपनी हद का पता नहीं है!" और उसने उसका गला दबा दिया और उसे भट्टी में फेंक दिया।

ब्राह्मण लौट आया। विश्राम करने के बाद उसने बोधिसत्व से पूछा:

"अच्छा, मेरी प्यारी, तुम्हारी माँ के बारे में क्या? क्या वह कुछ गलत करती है या नहीं?" और जैसे ही उसने यह प्रश्न पूछा, उसने पहली पंक्ति दोहराई:-

"मैं आ गया हूँ, मेरे बेटे, यात्रा पूरी हो गई है, और अब मैं फिर से घर आ गया हूँ:
मुझे बताओ; क्या तुम्हारी माँ सच्ची है? क्या वह दूसरे पुरुषों के साथ प्रेम संबंध बनाती है?
राधा ने उत्तर दिया, "प्रिय पिता, बुद्धिमान लोग उन चीजों के बारे में बात नहीं करते जो आशीर्वाद की ओर नहीं ले जातीं, चाहे वे घटित हुई हों या नहीं"; और उन्होंने दूसरे दोहे को दोहराकर इसे समझाया:

"उसने जो कहा, उसी के कारण अब वह राख के नीचे दबकर मर चुका है।"
सच बताना ठीक नहीं है, वरना पोत्थापाड़ा का ही हश्र मेरा भी हो जाएगा।
इस प्रकार बोधिसत्व ने ब्राह्मण को पकड़ लिया और आगे कहा—"यह जगह भी मेरे रहने लायक नहीं है"; फिर ब्राह्मण को विदाई देकर वह जंगल की ओर उड़ गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) तक पहुँचे: "आनंद पोत्थपाद थे, और मैं स्वयं राधा थी।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गहपति-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-199-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 199
गहापति-जातक

"मुझे यह पसंद नहीं है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में प्रवास के दौरान एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। अपने संबोधन में उन्होंने कहा, "स्त्रियों को कभी भी सही राह पर नहीं रखा जा सकता; वे किसी न किसी तरह पाप करेंगी और अपने पतियों को धोखा देंगी।" और फिर उन्होंने निम्नलिखित कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य में एक गृहस्थ के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर उन्होंने विवाह किया और घर बसा लिया। उनकी पत्नी दुष्ट थी और वह ग्राम प्रधान के साथ षड्यंत्र रचती थी। बोधिसत्व को इसकी भनक लग गई और उन्होंने सोचा कि कैसे उसकी परीक्षा ली जाए।

उस समय बरसात के मौसम में सारा अनाज बह गया था और अकाल पड़ा हुआ था। लेकिन यह वह समय था जब अनाज अंकुरित ही हुआ था; और सभी ग्रामीण एक साथ आए और अपने मुखिया से मदद की गुहार लगाते हुए कहा, "दो महीने बाद, जब हम अनाज की कटाई कर लेंगे, तो हम आपको बदले में कुछ देंगे"; इसलिए उन्होंने उससे एक बूढ़ा बैल लिया और उसे खा लिया।

एक दिन मुखिया ने मौके का फायदा उठाया और जब बोधिसत्व बाहर गए हुए थे, तब वह उनके घर गया। जब दोनों साथ में खुश थे, तभी बोधिसत्व गांव के द्वार से अंदर आए और घर की ओर मुड़ गए। महिला भी द्वार की ओर देख रही थी और उसने उन्हें देख लिया। "अरे, ये कौन है?" उसने हैरानी से उन्हें दहलीज पर खड़े देखा। "ये वही हैं!" वह उन्हें पहचानती थी और उसने मुखिया को बताया। मुखिया डर से कांप उठा।

“डरो मत,” महिला ने कहा, “मेरे पास एक योजना है। तुम जानते हो कि हमने तुमसे मांस लिया है: ऐसा दिखावा करो जैसे तुम मांस की कीमत मांग रहे हो; मैं अनाज भंडार में चढ़ जाऊंगी; और उसके दरवाजे पर खड़ी होकर चिल्लाऊंगी, 'यहाँ चावल नहीं है!' जबकि तुम कमरे के बीच में खड़े होकर बार-बार विनती करते हुए कहो, 'मेरे घर पर बच्चे हैं; मुझे मांस की कीमत दो!'”

इतना कहकर वह अनाज भंडार पर चढ़ गई और उसके दरवाजे पर बैठ गई। दूसरी महिला घर के बीच में खड़ी होकर चिल्लाई, "मुझे मांस का दाम दो" जबकि वह अनाज भंडार के दरवाजे पर बैठी ही बोली, "अनाज भंडार में चावल नहीं है; फसल तैयार होने पर मैं दूंगी: अभी मुझे अकेला छोड़ दो!"

वह सज्जन घर में दाखिल हुए और उन्होंने देखा कि वे क्या कर रहे थे।

"यह उस दुष्ट स्त्री की योजना अवश्य होगी," उसने सोचा, और उसने मुखिया को बुलाया।

"मुखिया महोदय, जब हमें आपके पुराने बैल का मांस खाने को मिला, तो हमने आपसे वादा किया था कि दो महीने बाद हम आपको उसके बदले चावल देंगे। आधा महीना भी नहीं बीता है; तो अब आप हमसे पैसे क्यों मांग रहे हैं? आप यहाँ इस कारण से नहीं आए हैं: आप किसी और काम से आए होंगे। मुझे आपका व्यवहार पसंद नहीं है। वह दुष्ट और पापी स्त्री जानती है कि भंडार में चावल नहीं है, फिर भी वह ऊपर चढ़ गई है और वहाँ बैठकर चिल्ला रही है, 'यहाँ चावल नहीं है!' और आप चिल्ला रहे हैं, 'दे दो!' मुझे आप दोनों का व्यवहार पसंद नहीं है!" और अपनी बात स्पष्ट करने के लिए उन्होंने ये पंक्तियाँ कहीं:-

"मुझे यह पसंद नहीं, मुझे वह पसंद नहीं; मुझे वह पसंद नहीं, मैं कहता हूँ।"
  कौन अनाज भंडार के पास खड़ा होकर चिल्लाता है, 'मैं भुगतान नहीं कर सकता!'
"न आप, न आप, महोदय! अब सुनिए:- मेरे पास साधन और भंडार सीमित हैं;
  आपने मुझे एक बार एक दुबली-पतली गाय दी थी, और साथ ही दो महीने की मोहलत भी दी थी;
  अब, तय दिन से पहले ही आप मुझसे भुगतान करने को कह रहे हैं! मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं है।"
ऐसा कहते हुए उसने मुखिया के सिर के बालों की लट पकड़ ली, उसे आंगन में घसीटकर ले गया, नीचे पटक दिया और जब मुखिया चिल्लाया, "मैं मुखिया हूँ!" तो उसका मज़ाक उड़ाते हुए बोला—"दूसरे की देखरेख में रखी संपत्ति को हुए नुकसान के लिए हर्जाना दीजिए!" और उसे तब तक पीटता रहा जब तक वह बेहोश नहीं हो गया। फिर उसने उसकी गर्दन पकड़कर उसे घर से बाहर फेंक दिया। उस दुष्ट स्त्री के बाल पकड़कर उसने उसे भंडारगृह से दूर खींचा, उसे नीचे गिरा दिया और धमकी दी—"अगर तुमने दोबारा कभी ऐसा किया, तो मैं तुम्हें सबक सिखाऊँगा!"

उस दिन के बाद से मुखिया उस घर की ओर देखने की भी हिम्मत नहीं करता था, और वह महिला तो विचार में भी उस घर में जाने की हिम्मत नहीं करती थी।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की, जिसके समापन पर पथभ्रष्ट भिक्षु (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) तक पहुँच गया: "उस मुखिया को दंडित करने वाला भले आदमी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **साधुशिला-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-200-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 200
साधुशील जातक

"एक अच्छा है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि इस व्यक्ति की चार बेटियाँ थीं। चार दूल्हों ने उनसे प्रेम किया; एक सुंदर और आकर्षक था, एक वृद्ध और उम्रदराज था, तीसरा परिवार वाला था और चौथा गुणी था। उसने मन ही मन सोचा, "जब कोई व्यक्ति अपनी बेटियों का विवाह तय करता है, तो उसे किसे देना चाहिए? सुंदर पुरुष को या वृद्ध पुरुष को, या अन्य दो में से किसी एक को, उच्च कुल वाले को या गुणी पुरुष को?" वह चाहे जितना भी सोचे, निर्णय नहीं कर सका। इसलिए उसने सोचा कि वह यह बात परम बुद्ध को बताएगा, जिन्हें इसका उत्तर अवश्य पता होगा; और फिर वह अपनी बेटियों को सबसे उपयुक्त दूल्हे को देगा। इसलिए उसने बहुत सारे इत्र और मालाएँ तैयार करवाईं और मठ गया। गुरु को प्रणाम करके वह एक तरफ बैठ गया और उन्हें सब कुछ शुरू से अंत तक बताया; फिर उसने पूछा, "इन चारों में से किसे अपनी बेटियाँ दूँ?" इस पर गुरु ने उत्तर दिया, "पुराने समय में, आज की तरह, बुद्धिमान लोग यह प्रश्न पूछते थे; लेकिन अब पुनर्जन्म ने तुम्हारी स्मृति को भ्रमित कर दिया है, इसलिए तुम्हें यह मामला याद नहीं है।" और फिर उनके अनुरोध पर गुरु ने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ। वे वयस्क हुए और तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की; फिर लौटकर वे एक प्रसिद्ध शिक्षक बन गए।

एक ब्राह्मण की चार पुत्रियाँ थीं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इन चारों पुत्रियों को चार पुरुष शादी का प्रस्ताव दे रहे थे। ब्राह्मण यह तय नहीं कर पा रहा था कि उन्हें किसे सौंपे। उसने सोचा, "मैं गुरु से पूछूंगा, और फिर उन्हें पता चल जाएगा कि उन्हें किसे सौंपना चाहिए।" इसलिए वह गुरु के पास गया और पहला दोहा दोहराया:

एक अच्छा है, और एक महान है; एक सुंदर है, एक अनुभवी है।
हे ब्राह्मण, इस प्रश्न का उत्तर दो; इन चारों में से कौन सा सबसे अच्छा प्रतीत होता है?
यह सुनकर शिक्षक ने उत्तर दिया, "सौंदर्य और ऐसे ही अन्य गुण होने पर भी, यदि कोई व्यक्ति सद्गुणों में विलीन हो जाता है, तो वह तिरस्कृत ही होता है। अत: सौंदर्य किसी व्यक्ति का मापदंड नहीं है; मुझे तो सद्गुणी लोग ही पसंद हैं।" और इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने दूसरा दोहा दोहराया:

"अच्छाई सुंदरता है: वृद्धों का सम्मान करो, क्योंकि यही उचित है।"
उच्च कुल में जन्म लेना अच्छा है; लेकिन सद्गुण—सद्गुण ही तो मेरा आनंद है।"
जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसने अपनी सभी पुत्रियों को उस गुणी प्रेमी को दे दिया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर ब्राह्मण ने प्रथम मार्ग का फल (सम्मोहन) प्राप्त किया: "यह ब्राह्मण तब ब्राह्मण था, और प्रसिद्ध शिक्षक मैं स्वयं था।"

***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-201-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 201
बंधनागर जातक

"लोहे की जंजीरें नहीं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, कारागार के बारे में सुनाई थी।

इस कथा के समय, हमें पता चलता है कि चोरों, लुटेरों और हत्यारों के एक गिरोह को पकड़ा गया और कोसल के राजा के सामने लाया गया। राजा ने उन्हें जंजीरों, रस्सियों और जंजीरों से जकड़ने का आदेश दिया। तीस भिक्षु (साधु), गुरु के दर्शन की इच्छा से, उनसे मिलने आए और उन्हें प्रणाम किया। अगले दिन, भिक्षा मांगते समय, वे कारागार के पास से गुजरे और उन्होंने इन बदमाशों को देखा। शाम को, दिनभर के भ्रमण से लौटने के बाद, वे बुद्ध के पास पहुँचे और बोले, "हे प्रभु, आज, भिक्षा मांगते समय, हमने कारागार में कई अपराधियों को जंजीरों और बेड़ियों में जकड़ा हुआ, अत्यंत दयनीय स्थिति में देखा। वे इन बेड़ियों को तोड़कर भाग नहीं सकते थे। क्या इन जंजीरों से भी अधिक मजबूत कोई जंजीर है?"

गुरु ने उत्तर दिया, "भाइयों (भिक्षुओं), ये जंजीरें तो सच हैं; लेकिन धन, अनाज, पुत्र, पत्नियाँ और संतान की लालसा से बनी जंजीरें इनसे सौ गुना, बल्कि हज़ार गुना अधिक मजबूत होती हैं। फिर भी, ये जंजीरें, जो तोड़ना कितना भी कठिन क्यों न हो, प्राचीन काल के उन बुद्धिमान पुरुषों ने तोड़ दी थीं, जो हिमालय गए और संन्यासी बन गए।" फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ। जब वे बड़े हुए, तो उनके पिता का देहांत हो गया। वे मजदूरी करके अपनी माता का भरण-पोषण करते थे। उनकी माता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके लिए एक पत्नी को घर लाया और कुछ समय बाद ही उनका भी देहांत हो गया। अब उनकी पत्नी गर्भवती हो गई। उन्हें अपनी गर्भावस्था का पता नहीं था, इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "पत्नी, तुम्हें अपनी जीविका कमानी होगी; मैं संसार त्याग दूंगा।" तब उन्होंने कहा, "नहीं, क्योंकि मैं गर्भवती हूं। आप मेरे बच्चे को देखिए और फिर संन्यासी बन जाइए।" वे इस बात पर सहमत हो गए। जब उनकी पत्नी का प्रसव हुआ, तो उन्होंने कहा, "अब पत्नी, तुम्हारा प्रसव सुरक्षित हो गया है, और मुझे संन्यासी बनना चाहिए।" उन्होंने कहा, "बच्चे के दूध छुड़ाने तक प्रतीक्षा कीजिए।" और उसके बाद वे फिर से गर्भवती हो गईं।

बोधिसत्व ने सोचा, "अगर मैं उसकी विनती मान लेता हूँ, तो मैं कभी बच नहीं पाऊँगा। मैं उससे एक शब्द भी कहे बिना भाग जाऊँगा और संन्यासी बन जाऊँगा।" इसलिए उन्होंने उससे कुछ नहीं कहा, बल्कि रात में उठे और भाग गए।

शहर के पहरेदारों ने उसे पकड़ लिया। उसने कहा, "मुझे अपनी माँ का पालन-पोषण करना है, मुझे जाने दो!" इस प्रकार उसने उन्हें मुक्त कर दिया, और कुछ समय रहने के बाद, वह मुख्य द्वार से निकलकर हिमालय की ओर चल पड़ा, जहाँ वह एक संन्यासी के रूप में रहने लगा; और ध्यान की अवस्था में रहते हुए उसने अपने भीतर अलौकिक शक्तियों और उपलब्धियों को उत्पन्न किया। वहाँ रहते हुए वह प्रसन्न हुआ और बोला, "पत्नी और बच्चे का बंधन, वासना का बंधन, जिसे तोड़ना इतना कठिन था, टूट गया!" और उसने ये पंक्तियाँ कहीं:-

"लोहे की जंजीरें नहीं—जैसा कि बुद्धिमानों ने बताया है—"
 रस्सियाँ या लकड़ी के डंडे इतनी तेज़ी से पकड़ नहीं सकते।
 जैसे जुनून, और बच्चे या पत्नी के प्रति प्रेम,
 बहुमूल्य रत्नों और उत्तम सोने की बालियों से युक्त।
"ये भारी जंजीरें—वहाँ कौन है जो इन्हें ढूंढ सकता है"
 इनसे मुक्ति?--ये वे बंधन हैं जो हमें बांधते हैं:
 यदि बुद्धिमान लोग इन्हें भेद सकें, तो वे मुक्त हो जाते हैं।
 सभी प्रेम और सभी इच्छाओं को पीछे छोड़ते हुए!

और बोधिसत्व ने इस आकांक्षा को व्यक्त करने के बाद, अपनी समाधि (तल्ली) के आकर्षण को भंग किए बिना, ब्रह्मा के लोक को प्राप्त किया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: सत्यों के समापन पर, कुछ ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया, कुछ ने द्वितीय (सम्मोहन) में, कुछ ने तृतीय (सम्मोहन) में और कुछ ने चतुर्थ (सम्मोहन) में:- "कहानी में, महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) माता थीं, राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) पिता थे, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) पत्नी थीं, राहुल (बुद्ध के पुत्र) स्वयं पुत्र थे, और मैं वह व्यक्ति था जिसने अपने परिवार को छोड़कर संन्यासी बन गया।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **केशि-शील-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-202-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 202
केली-शिला-जातक

"हंस, बगुले, हाथी," आदि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, आदरणीय और अच्छे लकुंतक के बारे में सुनाई थी।

अब हमें पता चलता है कि यह आदरणीय लकुंतका बुद्ध के अनुयायियों में सुप्रसिद्ध थे, एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे, मधुर वाणी बोलने वाले, एक तीक्ष्ण उपदेशक, तीक्ष्ण विवेक वाले, अपनी भावनाओं पर पूर्णतः नियंत्रण रखने वाले, लेकिन कद में अस्सी वरिष्ठों में सबसे छोटे, एक नौसिखिए से भी छोटे, मानो मनोरंजन के लिए रखे गए बौने हों।

एक दिन, वे जेतवन मठ के द्वार पर बुद्ध को प्रणाम करने गए थे, तभी देश से तीस भिक्षु भी उन्हें प्रणाम करने के लिए द्वार पर आ पहुँचे। जब उन्होंने उस वरिष्ठ भिक्षु को देखा, तो उन्हें लगा कि वे कोई नौसिखिया हैं; उन्होंने उनके वस्त्र का कोना खींचा, उनके हाथ पकड़े, उनका सिर थामा, उनकी नाक मरोड़ी, उनके कान पकड़कर उन्हें हिलाया और उनके साथ बहुत अभद्र व्यवहार किया; फिर अपना भिक्षापात्र और वस्त्र एक तरफ रखकर वे गुरु के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने उनसे पूछा, “महोदय, हमें पता चला है कि आपके यहाँ लकुंतका नामक एक वरिष्ठ भिक्षु हैं, जो मधुर उपदेशक हैं। वे कहाँ हैं?” “क्या आप उनसे मिलना चाहते हैं?” गुरु ने पूछा। “जी हाँ।” “वही व्यक्ति हैं जिन्हें आपने द्वार पर देखा था और यहाँ आने से पहले उनके वस्त्र को खींचकर उनके साथ बहुत अभद्र व्यवहार किया था।” “महोदय,” उन्होंने पूछा, “प्रार्थना में लीन, उच्च आकांक्षाओं से परिपूर्ण, एक सच्चे शिष्य—वे इतने महत्वहीन कैसे हो सकते हैं?” "उसके अपने पापों के कारण," गुरु ने उत्तर दिया; और उनके अनुरोध पर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व इंद्र कहलाए, जो देवताओं (देवदूतों) के राजा थे। ब्रह्मदत्त को कोई भी पुरानी या जर्जर चीज देखना पसंद नहीं था, चाहे वह हाथी हो, घोड़ा हो, बैल हो या कुछ और। वे शरारतों से भरे हुए थे और जब भी उन्हें ऐसी कोई चीज दिखती, वे उसे भगा देते; पुरानी गाड़ियों को वे तोड़ देते; किसी भी बूढ़ी औरत को वे बुलाकर उसके पेट पर मारते, फिर उसे खड़ा करके डराते; वे बूढ़े पुरुषों को जमीन पर लोट-पोट कर कलाबाजों की तरह खिलाते थे। अगर उन्हें कोई बूढ़ा आदमी नहीं दिखता, बल्कि सिर्फ इतना पता चलता कि फलां कस्बे में कोई बूढ़ा आदमी है, तो वे उसे वहीं से बुलाकर उसके साथ मस्ती करते थे।

इस पर लोगों ने शर्म के मारे अपने माता-पिता को राज्य की सीमाओं से बाहर भेज दिया। अब पुरुष अपने माता-पिता की देखभाल या सेवा नहीं करते थे। राजा के मित्र भी उसके जैसे ही बुरे थे। जैसे-जैसे लोग मरते गए, वे चारों (*1) दुख के लोकों (नरक) को भरते गए; देवताओं (देवदूतों) का लोक धीरे-धीरे कम होता गया।

सक्का (इंद्र) ने देखा कि देवताओं (देवदूतों) में कोई नया सदस्य नहीं है; और वह सोचने लगा कि क्या किया जाए। अंत में उसे एक योजना सूझी। "मैं उसे नीचा दिखाऊंगा!" सक्का (इंद्र) ने सोचा; और उसने एक बूढ़े व्यक्ति का रूप धारण कर लिया, और एक पुरानी खस्ताहाल गाड़ी में छाछ के दो घड़े रखकर, उसमें दो पुराने बैल जोते, और एक उत्सव के दिन निकल पड़ा। ब्रह्मदत्त, एक सजे-धजे हाथी पर सवार होकर, शहर में जुलूस निकाल रहा था, जो पूरी तरह से सजा हुआ था; और सक्का (इंद्र), फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए, उस गाड़ी

को चलाते हुए, राजा से मिलने आया। जब राजा ने पुरानी गाड़ी देखी, तो वह चिल्लाया, "इस गाड़ी को हटाओ!" लेकिन उसके लोगों ने उत्तर दिया, "यह कहाँ है, महाराज? हमें कोई गाड़ी दिखाई नहीं दे रही है!" (क्योंकि सक्का (इंद्र) ने अपनी शक्ति से इसे राजा के अलावा किसी को भी दिखाई नहीं देने दिया था)। बार-बार राजा के पास आकर, अंत में सक्का (इंद्र), जो अभी भी अपनी गाड़ी चला रहा था, ने एक घड़ा राजा के सिर पर तोड़ दिया, जिससे वह घूम गया; फिर उसने दूसरा घड़ा भी उसी तरह तोड़ दिया। और छाछ उसके सिर के दोनों ओर बहने लगी। इस प्रकार राजा सक्का (इंद्र) के कृत्यों से पीड़ित, दुखी और व्यथित हो गया।

जब इंद्र ने उसकी पीड़ा देखी, तो उन्होंने रथ को गायब कर दिया और अपना वास्तविक रूप फिर से धारण कर लिया। वायु में स्थिर होकर, हाथ में वज्र लिए, उन्होंने उसे फटकारा—"हे दुष्ट और अधर्मी राजा! क्या तुम स्वयं कभी बूढ़े नहीं होगे? क्या बुढ़ापा तुम्हें नहीं सताएगा? फिर भी तुम क्रीड़ा करते हो, उपहास करते हो और बूढ़ों का अपमान करते हो! तुम्हारे और तुम्हारे इन कर्मों के कारण ही मनुष्य हर ओर मर रहे हैं, चारों लोक दुख से भरे हुए हैं, और मनुष्य अपने माता-पिता के कल्याण की परवाह नहीं कर सकते! यदि तुम यह सब नहीं छोड़ोगे, तो मैं तुम्हारा सिर अपने वज्र से चीर दूंगा। जाओ, और ऐसा फिर कभी मत करना।"

इस फटकार के साथ, उन्होंने माता-पिता के महत्व को समझाया और वृद्धावस्था का आदर करने के लाभ को बताया; इस प्रवचन के बाद वे अपने स्थान पर चले गए। उस समय से राजा ने कभी भी पहले जैसा कुछ करने के बारे में सोचा तक नहीं।

यह कहानी यहीं समाप्त हुई, और पूर्णतः प्रबुद्ध गुरु ने ये दो दोहे सुनाए:-

हंस, बगुले, हाथी और चित्तीदार हिरण
  हालांकि सभी एक दूसरे से भिन्न हैं, शेर एक समान रूप से भयभीत होता है।
फिर भी, यदि बच्चा होशियार हो तो वह महान होता है;
  मूर्ख भले ही बड़े हों, लेकिन वे कभी महान नहीं हो सकते।
जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, कुछ भिक्षुओं ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया, कुछ ने द्वितीय में और कुछ ने चतुर्थ में: "कहानी में उत्कृष्ट लकुंतक राजा थे, जिन्होंने लोगों को अपने उपहास का पात्र बनाया और फिर स्वयं उपहास का पात्र बन गए, जबकि मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1)चार अपाये = नरक (दंड के लिए), पशु के रूप में जन्म, पेटा (भूखे प्रेत, लालसा रखने वालों के लिए) के रूप में जन्म, असुरों (हिंसा और रक्तपात की लालसा रखने वालों के लिए टाइटन्स) के बीच जन्म।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खंड-वत्त-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-203-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 203
खंड-वट्टा-जातक

"मुझे विरुपाक्खा नाग बहुत प्रिय हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि जब वह अपने बैठक कक्ष के दरवाजे पर बैठकर लकड़ियाँ काट रहे थे, तभी एक सड़े हुए लट्ठे से एक साँप निकला और उनके पैर के अंगूठे पर काट लिया; उनकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। मठ के सभी लोगों को उनकी अचानक मृत्यु के बारे में पता चल गया। सत्य के हॉल में सब लोग इस बारे में बातें करने लगे; कहने लगे कि फलाँ भाई अपने दरवाजे पर बैठकर लकड़ी काट रहे थे, तभी एक साँप ने उन्हें काट लिया और उनकी तुरंत मृत्यु हो गई।

गुरुजी अंदर आए और जानना चाहते थे कि वे सब वहाँ बैठकर क्या चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यदि हमारे भाई ने चारों वंशों के सर्पों के प्रति दयालुता का अभ्यास किया होता, तो वह सर्प उन्हें न काटता: बुद्ध के जन्म से पहले, बीते समय

में बुद्धिमान संन्यासियों ने इन चारों वंशों के प्रति दयालुता का अभ्यास करके इन सर्पों से उत्पन्न भय से मुक्ति पाई थी।" फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व काशी के एक युवा ब्राह्मण के रूप में इस संसार में आए। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने अपनी वासनाओं को वश में किया और एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया; उन्होंने अलौकिक शक्तियों और उपलब्धियों को विकसित किया; उन्होंने हिमालय की तलहटी के निकट गंगा के मोड़ पर एक आश्रम बनाया और वहाँ वे तपस्वियों के एक समूह से घिरे हुए, ध्यान की अवस्था में लीन रहते थे।

उस समय गंगा तट पर अनेक प्रकार के सर्प पाए जाते थे, जो तपस्वियों को कष्ट पहुँचाते थे और उनमें से अनेक सर्पों के काटने से मर जाते थे। तपस्वियों ने यह बात बोधिसत्व को बताई। उन्होंने सभी तपस्वियों को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "यदि तुम सर्पों की चारों वंशों के प्रति सद्भावना रखोगे, तो कोई सर्प तुम्हें नहीं काटेगा। इसलिए अब से तुम चारों वंशों के प्रति सद्भावना रखो।" फिर उन्होंने यह श्लोक जोड़ा:-

मुझे विरुपाक्खा सांप बहुत पसंद हैं।
  मुझे एरापाथा सांप बहुत पसंद हैं।
  मुझे चब्बीपुट्टा सांप बहुत पसंद हैं।
  मुझे कन्हागोटामास बहुत पसंद हैं।
इस प्रकार नागों के चार राजपरिवारों का नाम लेने के बाद उन्होंने आगे कहा: "यदि तुम इनके प्रति सद्भावना रखोगे, तो कोई भी नाग तुम्हें काटेगा नहीं या हानि नहीं पहुँचाएगा।" फिर उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:-

सूर्य के नीचे रहने वाले सभी जीव,
  दो फीट, चार फीट, इससे अधिक, या बिल्कुल नहीं--
  मैं आप सभी से कितना प्यार करता हूँ!
अपने भीतर के प्रेम के स्वरूप को व्यक्त करने के बाद, उन्होंने प्रार्थना के रूप में एक और श्लोक कहा:

सभी प्राणी, चाहे दो पैर के हों या चार पैर के,
  तुम्हारे पास कुछ नहीं है, और तुम्हारे पास बहुत कुछ है।
  कृपया मुझे चोट न पहुँचाएँ, मैं आपसे विनती करता हूँ!
फिर, सामान्य शब्दों में, उन्होंने एक श्लोक और दोहराया:-

"हे सभी प्राणियों, जो जन्म लेते हैं,
  सांस लो और धरती पर चलो-फिरो।
  आप सभी को ढेर सारी खुशियाँ मिलें।
  कभी भी शरारत में मत पड़ो।
इस प्रकार उन्होंने बताया कि सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी भेदभाव के प्रेम और सद्भावना कैसे दिखानी चाहिए; उन्होंने अपने श्रोताओं को तीन रत्नों के गुणों की याद दिलाते हुए कहा—"बुद्ध अनंत हैं, धर्ममार्ग अनंत है, और व्यवस्था अनंत है।" उन्होंने कहा, "तीन रत्नों के गुणों को याद रखो;" और इस प्रकार उन्हें तीन रत्नों की अनंतता दिखाकर, और यह दर्शाते हुए कि सभी प्राणी सीमित हैं, उन्होंने आगे कहा, "रेंगने वाले जीव, सांप, बिच्छू, कनखजूरे, मकड़ी, छिपकली, चूहे सीमित और मापनीय हैं।" फिर उन्होंने कहा, "चूंकि इन जीवों में वासना और कामवासनाएं ही वे गुण हैं जो उन्हें सीमित और परिमित बनाते हैं, इसलिए हमें अनंत तीन रत्नों की शक्ति से इन सीमित चीजों से दिन-रात सुरक्षित रहना चाहिए: इसीलिए तीन रत्नों के महत्व को याद रखो।" फिर उन्होंने यह श्लोक सुनाया:-

अब मैं सुरक्षित हूं और मेरे चारों ओर बाड़ लगी हुई है;
  अब सभी प्राणी मुझे मेरी जमीन पर अकेला छोड़ दें।
  मैं भगवान बुद्ध को सभी प्रकार का सम्मान अर्पित करता हूँ।
  और वे सात बुद्ध जो इस दुनिया से चले गए हैं।"
और उनसे यह भी अनुरोध करते हुए कि वे सम्मान करते समय सात बुद्धों को भी याद रखें, बोधिसत्व ने इस सुरक्षा मंत्र की रचना की और इसे अपने ऋषियों के समूह को सौंप दिया। तब से ऋषियों ने बोधिसत्व की सलाह को मन में रखा, प्रेम और सद्भावना का भाव

रखा और बुद्ध के गुणों को याद किया। ऐसा करने पर सभी सर्प उनसे दूर चले गए। और बोधिसत्व ने श्रेष्ठता का अभ्यास किया और ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) को प्राप्त किया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "बुद्ध के अनुयायी उस ऋषि के अनुयायी थे; और उनके गुरु मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> विरक - **जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-204-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 204
विराका-जातक

"ओह, क्या तुमने देखा है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए बुद्ध का अनुकरण करने के बारे में सुनाई थी।

जब वरिष्ठ भिक्षु अपने अनुयायियों के साथ देवदत्त (*1) से मिलने गए, तो गुरु ने सारिपुत्र से पूछा कि देवदत्त ने उन्हें देखकर क्या किया। सारिपुत्र ने उत्तर दिया कि उसने बुद्ध का अनुकरण किया था। गुरु ने कहा, "देवदत्त ने न केवल अब मेरा अनुकरण करके अपना विनाश किया है, बल्कि उसने पहले भी ठीक ऐसा ही किया था।" फिर, वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर, उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब एक बोधिसत्व दलदली कौवे के रूप में एक तालाब के किनारे रहने लगे। उनका नाम वीरक था, जिसका अर्थ है बलवान।

काशी में अकाल पड़ गया। लोग कौवों के लिए भोजन नहीं बचा पा रहे थे, न ही भूतों और साँपों को भेंट चढ़ा पा रहे थे। एक-एक करके कौवे अकालग्रस्त भूमि को छोड़कर जंगलों की ओर चले गए।

बनारस में रहने वाला सवित्थका नामक एक कौआ अपनी मादा कौए को साथ लेकर उस स्थान पर गया जहाँ वीरका रहता था और उसी तालाब के किनारे अपना निवास स्थान बनाया।

एक दिन, यह कौआ तालाब के आसपास भोजन की तलाश कर रहा था। उसने देखा कि वीरका तालाब में उतरा और कुछ मछलियाँ खाकर भोजन किया; फिर पानी से बाहर आकर अपने पंख सुखाने लगा। उसने सोचा, "उस कौए की शरण में तो बहुत सारी मछलियाँ मिलेंगी। मैं उसका सेवक बन जाऊँगा।" इसलिए वह उसके पास गया।

"क्या बात है, श्रीमान?" विराका ने पूछा।

"मैं आपका सेवक बनना चाहता हूँ, मेरे स्वामी!" यह उत्तर मिला।

वीरका मान गया, और तब से दूसरा उसकी सेवा करने लगा। तब से वीरका अपनी जीविका चलाने के लिए पर्याप्त मछली खाता था, और बची हुई मछलियाँ पकड़ते ही सावित्थक को दे देता था; और जब सावित्थक भी पर्याप्त मछली खा लेता था, तो बची हुई मछली अपनी पत्नी को दे देता था।

कुछ देर बाद उसके मन में घमंड आ गया। उसने कहा, "यह कौआ काला है, और मैं भी: आँखों, चोंच और पैरों में भी हम दोनों में कोई अंतर नहीं है। मुझे इसकी मछली नहीं चाहिए; मैं अपनी मछली खुद पकड़ूँगा!" इस प्रकार उसने वीरका से कहा कि भविष्य में वह पानी में जाकर खुद मछली पकड़ेगा। तब वीरका ने कहा, "हे मित्र, तुम उन कौओं की जाति के नहीं हो जो पानी में जाकर मछली पकड़ने के लिए पैदा होते हैं। अपना आपा मत खोओ!"

लेकिन समझाने-बुझाने के बावजूद सवित्थक ने चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया। वह तालाब में उतर गया, पानी में चला गया; लेकिन वह खरपतवारों से होकर बाहर नहीं निकल सका—वह खरपतवारों में उलझ गया, उसकी चोंच का केवल सिरा ही पानी के ऊपर दिखाई दे रहा था। सांस न ले पाने के कारण वह पानी के नीचे ही मर गया।

उसकी साथी ने देखा कि वह वापस नहीं लौटा, और उसके बारे में जानने के लिए वीरका के पास गई। उसने पूछा, "मेरे स्वामी, सवित्थक कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं: वे कहाँ हैं?" और यह पूछते हुए उसने पहला श्लोक दोहराया:

"हे वीरक, क्या तुमने सावित्थक को देखा है?
मेरी मधुर आवाज वाली साथी, जिसकी गर्दन मोर की तरह चमकती है?
जब वीरक ने यह सुना, तो उसने उत्तर दिया, "हाँ, मुझे पता है कि वह कहाँ गया है," और दूसरा श्लोक सुनाया:-

"वह लहरों के नीचे गोता लगाने के लिए पैदा नहीं हुआ था।"
लेकिन जो काम वह नहीं कर सका, उसे करने की कोशिश जरूर करनी चाहिए;
तो बेचारे पक्षी को जल समाधि मिल गई।
झाड़ियों में उलझा हुआ, और मरने के लिए छोड़ दिया गया।"
जब कौवे ने यह सुना तो वह रोते हुए बनारस लौट गई।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त ने तब सवित्थक के रूप में अवतार लिया, और मैं स्वयं वीरक था।"

फुटनोट:

(1) सारिपुत्र और मोग्गल्याना ने कट्टर विधर्मी (गलत विश्वासी) और विरोधी से मुलाकात की ताकि वे उसके अनुयायियों को गुरु के पास वापस ला सकें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गंगेय्या-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-205-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 205
गंगेय्या जातक

"मछलियाँ बढ़िया हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए दो युवा भिक्षुओं के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया गया है कि ये दोनों युवक श्रावस्ती नगर के एक अच्छे परिवार से थे और उन्होंने ईसाई धर्म अपना लिया था। परन्तु वे शरीर की अपवित्रता को न समझते हुए अपनी सुंदरता की प्रशंसा करते और उस पर गर्व करते फिरते थे।

एक दिन वे इस बात पर बहस करने लगे: "तुम सुंदर हो, लेकिन मैं भी सुंदर हूँ," दोनों ने कहा; फिर पास ही बैठे एक बुजुर्ग को देखकर वे इस बात पर सहमत हुए कि शायद उन्हें पता होगा कि वे सुंदर हैं या नहीं। तब वे उनके पास गए और पूछा, "महोदय, हम में से कौन सुंदर है?" बुजुर्ग ने उत्तर दिया, "दोस्तों, मैं तुम दोनों से अधिक सुंदर हूँ।" इस पर युवकों ने उन्हें बुरा-भला कहा और बड़बड़ाते हुए चले गए कि उन्होंने उन्हें वह बात बता दी जो उन्होंने नहीं पूछी थी, लेकिन यह नहीं बताया कि उन्होंने क्या पूछा था।

भिक्षु संघ को इस घटना की जानकारी मिली; और एक दिन, जब वे सभी सत्य के हॉल में एकत्रित थे, तो वे इस विषय पर चर्चा करने लगे। "मित्रों, उस वृद्ध भिक्षु ने उन दो युवकों को कैसे लज्जित किया जो अपनी सुंदरता के घमंड में चूर थे!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे सब किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह एकमात्र ऐसा समय नहीं है जब

हमारे मित्र अपनी सुंदरता की प्रशंसा में लबरेज हुए हों। पुराने समय में भी वे इसी तरह अपनी सुंदरता का बखान करते थे।" और फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व गंगा नदी के किनारे एक वृक्ष देवदूत बन गए। गंगा और यमुना के संगम पर दो मछलियाँ मिलीं, एक गंगा की और एक यमुना की। एक ने कहा, "मैं सुंदर हूँ! और तुम भी!" और फिर वे अपनी सुंदरता को लेकर झगड़ने लगीं। गंगा से कुछ दूर उन्होंने किनारे पर एक कछुआ लेटा हुआ देखा। उन्होंने कहा, "यह कछुआ ही तय करेगा कि हम सुंदर हैं या नहीं!" और वे उसके पास गईं। उन्होंने पूछा, "हे मित्र कछुए, हम में से कौन सुंदर है, गंगा की मछली या यमुना की मछली?" कछुए ने उत्तर दिया, "गंगा की मछली सुंदर है, और यमुना की मछली भी सुंदर है: लेकिन मैं तुम दोनों से अधिक सुंदर हूँ।" और इसे समझाने के लिए, उसने पहला श्लोक कहा:-

यमुना नदी की मछलियाँ उत्तम हैं, गंगा की मछलियाँ उत्तम हैं।
लेकिन एक चार पैरों वाला प्राणी, जिसकी गर्दन मेरी तरह पतली होती है,
एक फैले हुए बरगद के पेड़ की तरह, उन सभी को उत्कृष्ट प्रदर्शन करना होगा।"
जब मछलियों ने यह सुना, तो वे चिल्लाईं, "अरे, बदमाश कछुए! तुम हमारे सवाल का जवाब नहीं देते, बल्कि दूसरे सवाल का जवाब देते हो!" और उन्होंने दूसरी पंक्ति दोहराई:

"हम उनसे यह पूछते हैं, वे वह जवाब देते हैं: वाकई एक अजीब जवाब!"
उनकी अपनी ज़ुबान से उनकी प्रशंसा गाई जाती है:-1 मुझे यह पसंद नहीं, मुझे नहीं!

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों युवा भिक्षु दो मछलियाँ थे, बूढ़ा व्यक्ति कछुआ था, और मैं गंगा तट से सब कुछ देखने वाली वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुरुंग-मिगा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-206-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 206
कुरुंगा-मिगा-जातक

"आओ, कछुआ," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने वेलुवाना में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। गुरु को खबर मिली कि देवदत्त उनकी हत्या की साजिश रच रहा है। "अहा, भिक्षुओं," उन्होंने कहा, "बहुत समय पहले भी ऐसा ही हुआ था; देवदत्त ने तब भी मुझे मारने की कोशिश की थी, जैसे वह अब कर रहा है।" और उन्होंने उन्हें यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हिरण बनकर एक झील के पास घने जंगल में रहने लगे। उसी झील से कुछ ही दूरी पर एक पेड़ की चोटी पर कठफोड़वा बैठा रहता था; और झील में एक कछुआ रहता था। तीनों मित्र बन गए और सौहार्दपूर्वक एक साथ रहने लगे।

जंगल में घूमते हुए एक शिकारी ने पानी में उतरते हुए बोधिसत्व (हिरण) के पदचिह्न देखे; उसने लोहे की जंजीर की तरह मजबूत चमड़े का फंदा लगाया और चला गया। रात के पहले पहर में बोधिसत्व पानी पीने के लिए नीचे उतरे और फंदे में फंस गए: जिससे वे जोर-जोर से रोने लगे। तभी कठफोड़वा अपने पेड़ की चोटी से नीचे उड़कर आई और कछुआ पानी से बाहर आया और आपस में विचार करने लगे कि क्या किया जाए।

कठफोड़वा ने कछुए से कहा, "मित्र, तुम्हारे पास दांत हैं—इस जाल को काट डालो; मैं जाकर देखूंगा कि शिकारी दूर रहे; और अगर हम दोनों अपनी पूरी कोशिश करें, तो हमारा मित्र अपनी जान नहीं गंवाएगा।" इसे स्पष्ट करने के लिए उसने पहला छंद कहा:

"आओ, कछुए, चमड़े के फंदे को फाड़ दो, और उसे पूरी तरह से काट डालो,"
और मैं शिकारी का ध्यान रखूंगा और उसे तुमसे दूर रखूंगा।"
कछुआ चमड़े की डोरी कुतरने लगा: कठफोड़वा शिकारी के घर की ओर चल पड़ा। भोर होते ही शिकारी हाथ में चाकू लेकर बाहर निकला। जैसे ही पक्षी ने उसे निकलते देखा, वह चिल्लाया, अपने पंख फड़फड़ाए और जैसे ही वह सामने के दरवाजे से निकला, उसने शिकारी के चेहरे पर वार कर दिया। "किसी अपशगुन पक्षी ने मुझे मारा है!" शिकारी ने सोचा; वह वापस मुड़ा और थोड़ी देर के लिए लेट गया। फिर वह उठा और अपना चाकू उठाया। पक्षी ने मन ही मन सोचा, "पहली बार तो वह सामने के दरवाजे से निकला था, अब वह पीछे के दरवाजे से निकलेगा" और वह घर के पीछे बैठ गया। शिकारी ने भी यही सोचा: "जब मैं सामने के दरवाजे से निकला था, तो मुझे अपशगुन दिखा था, अब मैं पीछे के दरवाजे से निकलूंगा!" और उसने वैसा ही किया। लेकिन पक्षी फिर चिल्लाया और उसके चेहरे पर वार कर दिया। यह देखकर कि उसे फिर से किसी अपशगुन पक्षी ने मारा है, शिकारी चिल्लाया, "यह प्राणी मुझे जाने नहीं दे रहा!" और वापस मुड़कर वह सूर्योदय तक लेट गया, और जब सूरज निकल आया, तो उसने अपना चाकू उठाया और काम शुरू कर दिया।

कठफोड़वा पूरी तेज़ी से अपने दोस्तों के पास लौटा। "देखो, शिकारी आ रहा है!" वह चिल्लाया। तब तक कछुए ने सारी रस्सियाँ कुतर दी थीं, बस एक मज़बूत रस्सी बची थी: उसके दाँत मानो गिर ही जाएँगे, और उसका मुँह खून से सना हुआ था। बोधिसत्व (हिरण) ने युवा शिकारी को बिजली की गति से हाथ में चाकू लिए आते देखा: उसने रस्सी तोड़ दी और जंगल में भाग गया। कठफोड़वा अपने पेड़ की चोटी पर बैठ गया। लेकिन कछुआ इतना कमज़ोर था कि वह वहीं पड़ा रहा। शिकारी ने उसे एक थैले में डाला और उसे एक पेड़ से बाँध दिया।

बोधिसत्व (हिरण) ने देखा कि कछुआ पकड़ा गया है, और उसने अपने मित्र का जीवन बचाने का निश्चय किया। इसलिए उसने शिकारी को अपने सामने आने दिया और ऐसा दिखाया जैसे वह कमजोर हो। शिकारी ने उसे देख लिया और उसे कमजोर समझकर अपना चाकू उठाया और उसका पीछा करने लगा। बोधिसत्व उसकी पहुँच से थोड़ा दूर रहकर उसे जंगल में ले गया; और जब उसने देखा कि वे काफी दूर आ गए हैं, तो वह उसे चकमा देकर हवा की तरह तेज दूसरे रास्ते से लौट आया। उसने अपने सींगों से थैला उठाया, उसे जमीन पर फेंका, फाड़ दिया और कछुए को बाहर निकाल दिया। और कठफोड़वा पेड़ से नीचे आ गया।

तब बोधिसत्व (हिरण) ने उन दोनों से कहा, "तुमने मेरी जान बचाई है और मेरे प्रति मित्रवत व्यवहार किया है। अब शिकारी आएगा और तुम्हें ले जाएगा; इसलिए हे मित्र कठफोड़वा, तुम अपने बच्चों के साथ कहीं और चले जाओ, और हे मित्र कछुआ, तुम पानी में गोता लगा लो।" उन्होंने वैसा ही किया।

पूर्णतः प्रबुद्ध गुरु ने द्वितीय श्लोक कहा:-

कछुआ तालाब में चला गया, हिरण जंगल में चला गया।
और कठफोड़वा पेड़ से अपने बच्चे को ले गया।
शिकारी लौटा, और उन्हें वहाँ नहीं पाया। उसने देखा कि उसका थैला फटा हुआ है; उसने उसे उठाया और दुखी मन से घर चला गया। और तीनों मित्र जीवन भर अटूट मित्रता में रहे, और अंत में अपने कर्मों के फल के अनुसार इस दुनिया से चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त शिकारी थे, सारिपुत्र कठफोड़वा थे, मोग्गल्याना कछुआ थे, और मैं हिरण था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अस्सक-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-207-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 207
अस्सक-जातक

“एक बार महान राजा अस्सका के साथ,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। यह कथा एक ऐसे व्यक्ति के बारे में थी जो अपनी पूर्व पत्नी की यादों में खोया हुआ था। उसने भिक्षु से पूछा कि क्या वह सचमुच प्रेम में व्याकुल है? उस व्यक्ति ने कहा, “हाँ।” गुरु ने आगे पूछा, “तुम किससे प्रेम करते हो?” उत्तर मिला, “मेरी दिवंगत पत्नी से।” तब गुरु ने कहा, “भाई, तुम केवल एक बार ही इस स्त्री के लिए इतने अभिलाषा से ग्रस्त नहीं रहे हो; पुराने समय में उसके प्रेम ने तुम्हें बहुत कष्ट दिया था।” और फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, काशी राज्य के एक नगर पोटाली में अस्सका नाम का एक राजा रहता था। उसकी रानी पत्नी, उब्बारी, उसे बहुत प्रिय थी; वह आकर्षक, सुंदर और स्त्रीत्व की दृष्टि से असाधारण थी, यद्यपि किसी देवी के समान सुंदर नहीं थी। उसकी मृत्यु हो गई और राजा गहरे शोक में डूब गया। उसने शव को ताबूत में रखवाया, तेल और मरहम से लेप लगाया और पलंग के नीचे रख दिया; वह वहाँ बिना भोजन किए रोता-बिलखता रहा। उसके माता-पिता, परिवार, मित्र, दरबारी, पुजारी और आम लोग सभी ने उससे शोक न करने का आग्रह किया, क्योंकि सब कुछ क्षणभंगुर होता है; लेकिन वे उसे विचलित नहीं कर सके। शोक में डूबे हुए सात दिन बीत गए।

उस समय बोधिसत्व एक तपस्वी थे, जिन्होंने पंच अलौकिक शक्तियों और अष्टम सिद्धियों को प्राप्त कर लिया था; वे हिमालय की तलहटी में रहते थे। उन्हें पूर्ण अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त थी, और जब उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से भारत का अवलोकन किया, तो उन्होंने इस राजा को शोक में डूबा हुआ देखा और तुरंत उसकी सहायता करने का निश्चय किया। अपनी चमत्कारिक शक्ति से वे आकाश में उठे और राजा के उद्यान में उतरे, और एक स्वर्ण प्रतिमा की तरह अनुष्ठानिक पत्थर पर बैठ गए।

पोटाली नगर का एक युवक उद्यान में आया और बोधिसत्व को देखकर उसने उनका अभिवादन किया और बैठ गया। बोधिसत्व ने उससे मधुरतापूर्वक बातचीत शुरू की। उसने पूछा, "क्या राजा न्यायप्रिय शासक है?"

“जी महाराज, राजा न्यायप्रिय हैं,” युवक ने उत्तर दिया; “परन्तु उनकी रानी का निधन हो गया है; उन्होंने उनके शरीर को ताबूत में रखा है और शोक मना रहे हैं; और आज से सात दिन हो गए हैं। आप राजा को इस गहरे दुःख से मुक्ति क्यों नहीं दिलाते? आप जैसे गुणी व्यक्ति राजा के दुःख को दूर कर सकते हैं।”

"मैं राजा को नहीं जानता, हे युवक," बोधिसत्व ने कहा; "परन्तु यदि वह आकर मुझसे पूछे, तो मैं उसे वह स्थान बता दूंगा जहाँ वह अब पुनः जीवित हो उठी है, और उससे स्वयं बुलवा लूँगा।"

“तो, हे पूज्यवर, जब तक मैं राजा को आपके पास न ले आऊं, तब तक आप यहीं ठहरिए,” युवक ने कहा। बोधिसत्व मान गए और तेज़ी से राजा के पास जाकर उन्हें इसके बारे में बताया। “आपको इस दिव्य अंतर्दृष्टि वाले व्यक्ति से अवश्य मिलना चाहिए!” उन्होंने राजा से कहा।

उब्बारी को देखने की कल्पना से राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ; और वह अपने रथ में सवार होकर उस स्थान की ओर चल पड़ा। बोधिसत्व को प्रणाम करके वह एक तरफ बैठ गया और पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि मुझे बताया गया है, कि आप जानते हैं कि मेरी रानी का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है?"

"जी हां, महाराज," उसने उत्तर दिया।

तब राजा ने पूछा कि वह कहाँ है।

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे राजा, वह अपनी सुंदरता के नशे में चूर हो गई थी, और इस कारण लापरवाही बरतते हुए उसने उचित और सद्गुणपूर्ण कर्म नहीं किए; इसलिए अब वह इसी उद्यान में एक छोटा सा कीड़ा बन गई है।"

"मुझे विश्वास नहीं हो रहा!" राजा ने कहा।

"तब मैं उसे तुम्हें दिखाऊंगा और उससे बुलवाऊंगा," बोधिसत्व ने उत्तर दिया।

"कृपया उसे बुलवाओ!" राजा ने कहा।

बोधिसत्व ने आज्ञा दी—"गोबर के ढेर को लुढ़काने में व्यस्त दो लोगों को राजा के सामने आने दो।" और उन्होंने अपनी शक्ति से उन्हें ऐसा करने को कहा, और वे आ गए। बोधिसत्व ने राजा को उनमें से एक की ओर इशारा करते हुए कहा, "हे राजा! यह आपकी रानी उब्बारी है! वह अभी-अभी इस ढेर से अपने पति, गोबर के कीड़े के पीछे-पीछे निकली है। देखो तो सही।"

"क्या! मेरी रानी उब्बारी एक गोबर का कीड़ा? मुझे विश्वास नहीं हो रहा!" राजा चिल्लाया।

मैं उसे बुलवाऊंगा, हे राजा!

"मैं आपसे विनती करता हूँ, हे प्रभु!" उसने कहा।

बोधिसत्व ने अपनी शक्ति से उसे वाणी प्रदान की। "उब्बारी!" उसने कहा।

"क्या बात है, हे प्रभु?" उसने मानवीय स्वर में पूछा।

बोधिसत्व ने उससे पूछा, "अपने पूर्व रूप में तुम्हारा नाम क्या था?"

"मेरा नाम उब्बारी था, महाराज," उसने उत्तर दिया, "मैं राजा अस्सका की पत्नी थी।"

बोधिसत्व ने आगे कहा, "मुझे बताओ, अब तुम सबसे ज्यादा किसे प्यार करते हो—राजा अस्सका को, या इस गोबर के कीड़े को?"

"हे महाराज, वह मेरा पिछला जन्म था," उसने कहा। "तब मैं उसके साथ इस उद्यान में रहती थी, आकार, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्श का आनंद लेती थी; परन्तु अब पुनर्जन्म के कारण मेरी स्मृति धुंधली हो गई है, वह कौन है? अब तो मैं राजा अस्सका को मार डालूँगी और अपने पति, जो एक कीड़े के समान है, के पैरों पर उसके गले से बहने वाला रक्त मल दूँगी!" और राजा के समूह के बीच उसने मनुष्य की आवाज़ में ये शब्द कहे:

"एक बार महान राजा असाका के साथ, जो मेरे प्रिय पति थे,
प्रियतम और प्रियतम, मैं इस बगीचे में घूम रहा था।
लेकिन अब नए दुखों और नई खुशियों ने पुराने दुखों को भगा दिया है।
और अब मेरा कीड़ा असाका से कहीं अधिक प्रिय है।"
जब राजा अस्सका ने यह सुना, तो उन्हें तुरंत पश्चाताप हुआ; उन्होंने रानी के शव को हटवाकर अपना सिर धोया। उन्होंने बोधिसत्व को प्रणाम किया और नगर लौट गए; जहाँ उन्होंने दूसरी रानी से विवाह किया और धर्मपरायणता से शासन किया। बोधिसत्व ने राजा को उपदेश देकर और उन्हें दुःख से मुक्त करके हिमालय लौट गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) तक पहुँचे: "आपकी दिवंगत पत्नी उब्बारी थीं; आप, प्रेम में व्याकुल भाई, राजा अस्सका थे; सारिपुत्र युवा ब्राह्मण थे; और वह तपस्वी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुमसुमर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-208-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 208
संसुमारा-जातक (*1)

"गुलाब, कटहल," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा उनकी हत्या के प्रयासों का वर्णन था। इन प्रयासों के बारे में सुनकर गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है जब देवदत्त ने मेरी हत्या करने का प्रयास किया है; उसने पहले भी ऐसा किया था, लेकिन फिर भी वह मुझे ज़रा भी भयभीत नहीं कर सका।" फिर उन्होंने यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब हिमालय की तलहटी में बोधिसत्व ने एक बंदर के रूप में जन्म लिया। वे बलवान और हष्ट-पुष्ट हुए, विशाल शरीर वाले, समृद्ध हुए और गंगा नदी के मोड़ के पास एक वन में निवास करने लगे।

उस समय गंगा में एक मगरमच्छ रहता था। मगरमच्छ की मादा ने बंदर के विशाल शरीर को देखा और उसके हृदय को खाने की तीव्र इच्छा हुई। उसने अपने स्वामी से कहा, "हे प्रभु, मैं उस महान बंदर राजा का हृदय खाना चाहती हूँ!"

मगरमच्छ ने कहा, "अच्छी पत्नी, मैं पानी में रहता हूँ और वह सूखी ज़मीन पर रहता है: हम उसे कैसे पकड़ सकते हैं?"

"चाहे जैसे भी हो जाए, उसे पकड़ना ही होगा। अगर मैं उसे नहीं पकड़ पाई, तो मैं मर जाऊंगी।" उसने जवाब दिया।

"कोई बात नहीं," मगरमच्छ ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "चिंता मत करो। मेरे पास एक योजना है; मैं तुम्हें उसका दिल खाने को दूंगा।"

जब बोधिसत्व गंगा के किनारे बैठे थे और जल पी चुके थे, तब मगरमच्छ उनके पास आया और बोला:

"हे बंदर, तुम इस पुरानी परिचित जगह पर सूखे फलों पर ही क्यों जी रहे हो? गंगा के उस पार आम और लाबुजा के पेड़ों की कोई कमी नहीं है, जिनके फल शहद जैसे मीठे हैं! क्या पार जाकर तरह-तरह के जंगली फल खाना बेहतर नहीं है?"

"मगरमच्छ स्वामी," बंदर ने उत्तर दिया, "गंगा कितनी गहरी और चौड़ी है: मैं इसे कैसे पार करूँ?"

"अगर तुम जाओगे, तो मैं तुम्हें अपनी पीठ पर बिठाकर पार ले जाऊंगा।"

बंदर ने उस पर भरोसा किया और मान गया। दूसरे ने कहा, "तो इधर आओ, मेरी पीठ पर चढ़ जाओ!" और बंदर चढ़ गया। लेकिन जैसे ही मगरमच्छ थोड़ा आगे तैरा, उसने बंदर को पानी में डुबो दिया।

"मेरे प्यारे दोस्त, तुम मुझे डूबने दे रहे हो!" बंदर चिल्लाया। "ऐसा क्यों?"

मगरमच्छ ने कहा, "तुम्हें लगता है कि मैं तुम्हें सिर्फ अच्छे स्वभाव के कारण ले जा रहा हूँ? बिलकुल नहीं! मेरी पत्नी को तुम्हारा दिल चाहिए और मैं उसे खाने के लिए देना चाहता हूँ।"

“मित्र,” बंदर ने कहा, “मुझे बताने के लिए आपका धन्यवाद। अगर पेड़ों की चोटियों पर कूदते समय हमारा दिल हमारे अंदर होता, तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता।”

"अच्छा, तो तुम इसे कहाँ रखते हो?" दूसरे ने पूछा।

बोधिसत्व ने पास ही खड़े पके फलों के गुच्छों से लदे अंजीर के पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, अंजीर के पेड़ पर हमारे हृदय लटके हुए हैं।"

मगरमच्छ ने कहा, "अगर तुम मुझे अपना दिल दिखाओगे, तो मैं तुम्हें नहीं मारूंगा।"

"तो मुझे उस पेड़ के पास ले चलो, और मैं तुम्हें दिखा दूंगा कि वह उस पर लटका हुआ है।"

मगरमच्छ उसे उस स्थान पर ले आया। बंदर उसकी पीठ से कूदकर अंजीर के पेड़ पर चढ़ गया और उस पर बैठ गया। "ओ मूर्ख मगरमच्छ!" उसने कहा, "तुमने सोचा था कि ऐसे प्राणी भी होते हैं जिनका दिल पेड़ की चोटी पर होता है! तुम मूर्ख हो, और मैंने तुम्हें मात दे दी है! तुम अपने फल अपने पास ही रखो। तुम्हारा शरीर तो विशाल है, पर अक्ल नहीं है।" और फिर इस विचार को समझाने के लिए उसने निम्नलिखित छंद कहे:-

"पानी के उस पार मुझे गुलाब सेब, कटहल और आम भी दिखाई दे रहे हैं;
बस बहुत हो गया, मुझे इनकी ज़रूरत नहीं है; मेरा अंजीर ही मेरे लिए काफी है!
"तुम्हारा शरीर तो वाकई महान है, लेकिन तुम्हारी बुद्धि कितनी छोटी है!"
अब आप अपने रास्ते जाइए, श्रीमान मगरमच्छ, क्योंकि मैंने इसका भरपूर आनंद ले लिया है।

मगरमच्छ को ऐसा दुख और निराशा महसूस हो रही थी मानो उसने हजार सिक्के खो दिए हों, और वह उदास होकर अपने निवास स्थान पर लौट गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों देवदत्त मगरमच्छ था, चिंचा उसकी साथी थी, और मैं बंदर था।"

फुटनोट:

(1) मार्कट-जातक। ऊपर क्रमांक 57 में एक बंदर मगरमच्छ को मात देता है।

(2)आर्टोकार्पस लाकुचा .

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **ककर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-209-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 209
कक्करा-जातक

"मैंने बहुत सारे पेड़ देखे हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो एक भिक्षु के बारे में थी, जो धर्म के प्रमुख भिक्षु सारिपुत्र के सहपाठियों में से एक थे।

हमें पता चला है कि यह व्यक्ति अपनी सेहत का बहुत ध्यान रखता था। वह न तो बहुत गर्म और न ही बहुत ठंडा खाना खाता था, क्योंकि उसे डर था कि इससे उसे नुकसान हो सकता है। वह ठंड या गर्मी से चोट लगने के डर से कभी बाहर नहीं जाता था; और वह बहुत ज्यादा उबले या बहुत सख्त चावल नहीं खाता था।

भिक्षु संघ को पता चला कि वह अपना कितना ख्याल रखता है। सत्य के हॉल में, वे सब इस पर चर्चा कर रहे थे। "मित्र, फलां-फलां भाई कितना होशियार है, जो जानता है कि उसके लिए क्या अच्छा है!" गुरुजी अंदर आए और जब वे सब वहाँ बैठे थे, तो उन्होंने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। तब उन्होंने उत्तर दिया,

"हमारा यह नौजवान दोस्त न सिर्फ अब अपनी निजी सुख-सुविधाओं का ख्याल रखता है, बल्कि पुराने जमाने में भी वह ऐसा ही था।" और उसने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व एक वनभूमि में वृक्ष-आत्मा बन गए। एक शिकारी, एक नकली पक्षी, बालों का फंदा और एक छड़ी लेकर, पक्षियों की तलाश में जंगल में गया। वह एक बूढ़े पक्षी का पीछा करने लगा जो जंगल में उड़कर भागने की कोशिश कर रहा था। पक्षी उसे अपने फंदे में पकड़ने का मौका नहीं दे रहा था, बल्कि बार-बार ऊपर-नीचे उड़ता रहा। इसलिए शिकारी ने खुद को टहनियों और शाखाओं से ढक लिया और बार-बार अपना फंदा और छड़ी लगाई। लेकिन पक्षी ने उसे शर्मिंदा करने की इच्छा से एक मानवीय आवाज भेजी और पहली पंक्ति दोहराई:

मैंने बहुत सारे पेड़ देखे हैं
वन की हरियाली में उगना:
लेकिन, हे वृक्ष, वे ऐसा नहीं कर सके।
तुम्हारे जैसी कोई भी अजीबोगरीब चीज़!
इतना कहकर चिड़िया उड़ गई और कहीं और चली गई। उसके चले जाने पर शिकारी ने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"यह बूढ़ा पक्षी, जो जाल को पहचानता है,"
ऑफ हवा में उड़ गया है;
उसका पिंजरा टूट गया है,
और उसने मानवीय आवाज में बात की है!
शिकारी ने ऐसा कहा; और जंगल में शिकार करने के बाद, जो कुछ वह पकड़ सका, उसे लेकर घर लौट गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त तब शिकारी थे, वह युवा सजग व्यक्ति पक्षी था, और वह वृक्ष-परी जिसने यह सब देखा, वह मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कंदगलक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-210-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 210
कंदगलक-जातक।

“हे मित्र,” इत्यादि—यह बात गुरु ने वेलुवन में अपने प्रवास के दौरान देवदत्त द्वारा उनकी नकल करने के प्रयासों के बारे में कही थी। जब गुरु ने इन प्रयासों के बारे में सुना, तो उन्होंने कहा, “देवदत्त ने मेरी नकल करके पहली बार अपना विनाश नहीं किया है; पहले भी ऐसा ही हो चुका है।” फिर उन्होंने यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व ने कठफोड़वा का रूप धारण किया। वे बबूल के वन में रहते थे और उनका नाम खदिरावनीय था, यानी बबूल के वन का पक्षी। उनका एक साथी था जिसका नाम कंदगलक था, जो फलों से भरे वन में भोजन प्राप्त करता था।

एक दिन दोस्त खदिरावनिया से मिलने गया। खदिरावनिया ने सोचा, "मेरा दोस्त आ गया!" और वह उसे बबूल के जंगल में ले गया और पेड़ों के तनों पर तब तक चोंच मारता रहा जब तक कि कीड़े बाहर नहीं आ गए, जिन्हें उसने अपने दोस्त को दे दिया। जैसे ही उसे एक कीड़ा दिया गया, दोस्त ने उसे चोंच मारकर ऐसे खाया जैसे वह शहद की रोटी हो। खाते-खाते उसके मन में घमंड जागा। उसने सोचा, "यह पक्षी कठफोड़वा है, और मैं भी कठफोड़वा ही हूँ। मुझे इससे भोजन की क्या आवश्यकता है? मैं इस बबूल के जंगल में अपना भोजन खुद नहीं जुटा पाऊँगा!" इसलिए उसने खदिरावनिया से कहा,

"मित्र, तुम चिंता मत करो, मैं बबूल के जंगल में अपना भोजन स्वयं प्राप्त कर लूंगा।"

तब दूसरे ने कहा, "तुम पक्षियों की उस प्रजाति से हो जो अपना भोजन रेशम-कपास के पेड़ों और भरपूर फल देने वाले पेड़ों के जंगल में पाती है; परन्तु बबूल का पेड़ गूदे से भरा और कठोर होता है। कृपया ऐसा मत करो!"

"क्या!" कंदगलक ने कहा—"क्या मैं कठफोड़वा नहीं हूँ?" और उसने किसी की बात नहीं सुनी, बल्कि बबूल के तने पर चोंच मारी। पल भर में उसकी चोंच टूट गई, उसकी आँखें सिर से बाहर निकल आईं और उसका सिर फट गया। पेड़ को कसकर पकड़ न पाने के कारण वह ज़मीन पर गिर पड़ा और पहली पंक्ति दोहराई:

"हे मित्र, यह काँटेदार, ठंडी पत्तियों वाला वृक्ष क्या है?"
जिसने एक ही झटके में मेरी चोंच तोड़ दी?
यह सुनकर खदिरावनिया ने दूसरा श्लोक पढ़ा:

"यह पक्षी सड़ी हुई लकड़ी के लिए अच्छा था।"

और कोमल; लेकिन एक बार उसने कोशिश की,
किसी दुर्भाग्यवश, कुछ पेड़ों से रस निकालना कठिन होता है;
और उसकी खोपड़ी टूट गई, और उसकी मौत हो गई।"

खदिरावनिया ने ऐसा कहा और आगे बोला, "हे कंदगलक, जिस वृक्ष पर तुमने अपना सिर फोड़ा है, वह बहुत कठोर और मजबूत है!" लेकिन दूसरा वहीं मर गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त कंदगलक थे, लेकिन खदिरवनीय मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सोमदत्त-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-211-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 211
सोमदत्त-जातक

"पूरे साल भर, कभी न रुकने वाला," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो वरिष्ठ भिक्षु लालुदायी या उदयी नामक सीधे-सादे व्यक्ति के बारे में थी।

हमें पता चला कि यह आदमी दो-तीन लोगों की मौजूदगी में एक शब्द भी नहीं बोल पाता था। वह इतना घबराया हुआ था कि जब कुछ कहता तो उसका मतलब कुछ और होता था। संयोग से, भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में एक साथ बैठे हुए इस बारे में बात कर रहे थे। गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि लालुदायी इतना घबराया हुआ है। पहले भी ऐसा ही था।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व काशी राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। जब वे वयस्क हुए, तो वे तक्षशिला में अध्ययन करने गए। लौटने पर उन्होंने अपने परिवार को गरीब पाया; और उन्होंने अपने माता-पिता को विदाई दी और बनारस के लिए निकल पड़े, मन ही मन सोचते हुए, "मैं अपने पतित परिवार को फिर से स्थापित करूँगा!"

बनारस में वह राजा का सेवक बन गया; और वह राजा का बहुत प्रिय हो गया और उसका पसंदीदा बन गया।

उसके पिता खेत जोतकर अपना जीवन यापन करते थे, लेकिन उनके पास केवल एक जोड़ी बैल थे; और उनमें से एक मर गया। वह बोधिसत्व के सामने आया और उनसे कहा, "पुत्र, मेरा एक बैल मर गया है, और खेत जोतने का काम रुक गया है। राजा से एक बैल देने का अनुरोध कीजिए!"

"नहीं, पिताजी," उसने उत्तर दिया, "मैंने अभी-अभी राजा को देखा है; मुझे अभी उनसे बैल नहीं माँगने चाहिए: आप उनसे माँगिए।"

"मेरे बेटे," उसके पिता ने कहा, "तुम्हें नहीं पता कि मैं कितना शर्मीला हूँ। अगर दो-तीन लोग भी मौजूद हों तो मैं एक शब्द भी नहीं बोल पाता। अगर मैं राजा से बैल माँगने जाऊँ, तो अंत में उसे यही बैल दे दूँगा!"

"पिताजी," बोधिसत्व ने कहा, "जो होना है, सो होकर रहेगा। मैं राजा से नहीं पूछ सकता; लेकिन मैं आपको सिखाऊंगा कि यह कैसे करना है।" इसलिए वे अपने पिता को एक श्मशान में ले गए जहाँ मीठी घास के गुच्छे थे; और उन्होंने घास के गुच्छे बाँधकर उन्हें इधर-उधर बिखेर दिया और एक-एक करके उनके नाम बताते हुए अपने पिता को बताया: "वह राजा है, वह वायसराय है, वह मुख्य सेनापति है। अब, पिताजी, जब आप राजा के सामने आएँ, तो सबसे पहले कहें—'राजा की जय हो!' और फिर बैल माँगने के लिए इस श्लोक को दोहराएँ;" और यही वह श्लोक था जो उन्होंने उन्हें सिखाया:

"मेरे हल में दो बैल लगे थे, जिनसे मेरा काम पूरा हो गया था, लेकिन एक मर गया है! हे शक्तिशाली राजकुमार, कृपया मुझे एक और बैल दे दीजिए!"

उस व्यक्ति ने पूरे एक वर्ष तक इस दोहे को याद किया; और फिर उसने अपने पुत्र से कहा—"प्रिय सोमदत्त, मैंने पंक्तियाँ याद कर ली हैं! अब मैं इसे किसी के भी सामने कह सकता हूँ! मुझे राजा के पास ले चलो।"

अतः बोधिसत्व ने एक उपयुक्त भेंट लेकर अपने पिता को राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। "राजा की जय हो!" ब्राह्मण ने अपनी भेंट अर्पित करते हुए कहा।

"यह सोमदत्त ब्राह्मण कौन है?" राजा ने पूछा।

"महाराज, ये मेरे पिता हैं," उसने उत्तर दिया।

“वह यहाँ क्यों आया है?” राजा ने पूछा। तब ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए अपना दोहा दोहराया:-

"मेरे हल में दो बैल लगे थे, जिनसे मेरा काम पूरा हो गया था, लेकिन एक मर गया है! हे शक्तिशाली राजकुमार, कृपया दूसरे को ले लीजिए!"

राजा ने देखा कि कुछ गलती हुई है। "सोमदत्ता," उसने मुस्कुराते हुए कहा, "मुझे लगता है कि तुम्हारे घर में बहुत सारे बैल हैं?"

"यदि ऐसा है, तो हे महान राजा, ये आपके लिए उपहार हैं!"

यह उत्तर सुनकर राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मण को भेंट के रूप में सोलह बैल, उत्तम काठी के वस्त्र सहित, और रहने के लिए एक गाँव दिया और उन्हें बड़े सम्मान के साथ विदा किया। ब्राह्मण शुद्ध सफेद रंग के सिंधी घोड़ों द्वारा खींचे गए रथ पर सवार होकर बड़े ठाठ-बाठ से अपने निवास स्थान की ओर चल पड़े।

जब बोधिसत्व रथ में अपने पिता के बगल में बैठे थे, तब उन्होंने कहा, "पिताजी, मैंने आपको पूरे वर्ष शिक्षा दी, और फिर भी जब समय आया तो आपने अपना बैल राजा को दे दिया!" और उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

"पूरे वर्ष भर अथक परिश्रम के साथ निरंतर प्रयास करते हुए।"
जहां मीठी घास गुच्छों में उगती है, वहां वह दिन-प्रतिदिन इसका अभ्यास करता था:
जब वह अचानक दरबारियों के बीच आया तो उसने अर्थ ही बदल दिया;
यदि किसी व्यक्ति में बुद्धि की कमी हो तो अभ्यास का कोई लाभ नहीं होता।
यह सुनकर ब्राह्मण ने दूसरा श्लोक कहा:

"जो पूछता है, प्रिय सोमदत्त, वह इन दोनों में से किसी एक को चुनने का जोखिम उठाता है--"
आपको अधिक मिल भी सकता है, या कुछ भी नहीं मिल सकता: जब आप पूछते हैं, तो ऐसा ही होता है।"

जब गुरु ने इस कहानी के माध्यम से यह दिखाया कि भोला-भाला उदयि पहले भी उतना ही शर्मीला था जितना कि वह अब है, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "लालदयी सोमदत्त के पिता थे, और मैं स्वयं सोमदत्त था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उच्छिष्ठ-भट्ट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-212-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 212
उच्छित्त-भट्ट-जातक

"ऊपर से गर्म," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ऐसे भिक्षु के बारे में जो अपनी खोई हुई पत्नी के लिए तड़प रहा था। गुरु ने उस भिक्षु से पूछा कि क्या वह सचमुच प्रेम में व्याकुल है? उसने कहा, हाँ, वह प्रेम में व्याकुल है। अगला प्रश्न था, "किसके लिए?" उसने कहा, "अपनी दिवंगत पत्नी के लिए।" गुरु ने कहा, "भिक्षु, यही स्त्री पहले दुष्ट थी और तुम्हें अपने प्रेमी का बचा हुआ मांस खिलाती थी।" फिर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ, जो भीख मांगकर जीवन यापन करता था। इसलिए जब वे बड़े हुए, तो वे जरूरतमंद और दयनीय स्थिति में थे, और भीख मांगकर ही उनका जीवन यापन होता था।

उस समय काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था जिसकी पत्नी दुष्ट और कुटिल थी। एक दिन पति किसी काम से बाहर चला गया, और उसका प्रेमी समय देखकर घर आया। पत्नी ने उससे मिलने के बाद कहा, "जाने से पहले थोड़ा खा लूँ।" पत्नी ने भोजन तैयार किया और गरमागरम चावल, चटनी और करी परोसकर उसे दिया और खाने के लिए कहा। वह स्वयं दरवाजे पर खड़ी ब्राह्मण के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रेमी भोजन कर रहा था, और बोधिसत्व भी भोजन के एक निवाले की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उसी क्षण ब्राह्मण घर की ओर चल पड़ा। उसकी पत्नी ने उसे आते देखा और झट से दौड़कर अंदर आई—"उठो, मेरे पति आ रहे हैं!" और उसने अपने प्रेमी को भंडारगृह में नीचे भेजा। पति अंदर आया; पत्नी ने उसे बैठने के लिए जगह दी और हाथ धोने के लिए पानी दिया; और दूसरे के छोड़े हुए ठंडे चावलों पर उसने कुछ गर्म चावल निकाले और उसके सामने रख दिए। उसने चावलों में हाथ डाला और महसूस किया कि वे ऊपर से गर्म और नीचे से ठंडे हैं। "यह किसी और का बचा हुआ होगा," उसने सोचा; और इसलिए उसने स्त्री से इसके बारे में पहले श्लोक के शब्दों में पूछा:

"ऊपर से गर्म और नीचे से ठंडा, ऐसा लगता है कि ये दोनों चीजें एक जैसी नहीं हैं।"
मैं आपसे इसका कारण पूछना चाहता हूँ: आइए, मेरी महिला, मुझे उत्तर दीजिए!
उसने बार-बार पूछा, लेकिन वह, अपने किए का भेद खुल जाने के डर से, चुप रही। तभी हमारे जादूगर के मन में एक विचार आया। "भंडारघर में छिपा हुआ आदमी ज़रूर कोई प्रेमी होगा, और यह घर का मुखिया है: पत्नी अपने किए के भेद खुलने के डर से कुछ नहीं कह रही है। सोहो! मैं सारा मामला बताऊँगा, और ब्राह्मण को दिखाऊँगा कि उसके भंडारघर में एक आदमी छिपा हुआ है!" और उसने उसे सारा मामला बताया: कि कैसे जब वह अपने घर से बाहर गया था, तो कोई दूसरा अंदर आया और उसने बुराई की; कैसे उसने पहला चावल खाया, और पत्नी सड़क पर नज़र रखने के लिए दरवाजे पर खड़ी रही; और कैसे दूसरा आदमी भंडारघर में छिपा हुआ था। और ऐसा कहते हुए, उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

"मैं एक कलाबाज हूँ, महोदय: मैं यहाँ भीख मांगने आया हूँ;
जिसे तुम ढूंढ रहे हो, वह भंडारगृह में छिपा हुआ है, जहाँ वह गया है!
उसने उस आदमी को चोटी से पकड़कर भंडारगृह से बाहर निकाला और चेतावनी दी कि वह दोबारा ऐसी गलती न करे; फिर वह चला गया। ब्राह्मण ने उन दोनों को खूब डांटा और पीटा, और उन्हें ऐसा सबक सिखाया कि वे दोबारा ऐसी गलती न करें। इसके बाद वह अपने कर्मों के फल के लिए इस दुनिया से विदा हो गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) तक पहुँचे: "तुम्हारी दिवंगत पत्नी उस समय ब्राह्मण की स्वामिनी थीं; तुम, प्रेम में व्याकुल भाई, स्वयं ब्राह्मण थे; और मैं तराशने वाला था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भरु-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-213-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 213

भारु-जातक

"भारू का राजा," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा के बारे में सुनाई थी।

अब हम पढ़ते हैं कि भगवान बुद्ध और उनके साथियों को भव्य उपहार दिए गए और उनका बहुत सम्मान किया गया, जैसा कि लिखा है: 'उस समय भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान किया जाता था, उन्हें बहुमूल्य उपहार - वस्त्र, भोजन, आवास, औषधियाँ और भोजन सामग्री - प्राप्त होते थे; और भिक्षु संघ का भी सम्मान किया जाता था, इत्यादि (पहले की तरह); लेकिन विधर्मी संप्रदायों के तीर्थयात्रियों का सम्मान नहीं किया जाता था, इत्यादि।' खैर, अन्य संप्रदायों (गलत विश्वासियों) ने यह देखकर कि सम्मान और उपहार कम हो गए हैं, विचार-विमर्श के लिए एक गुप्त बैठक बुलाई। उन्होंने कहा, "वरिष्ठ भिक्षु गौतम (बुद्ध) के प्रकट होने के बाद से, हमें सम्मान और उपहार नहीं मिलते, लेकिन उन्हें दोनों का सर्वोत्तम लाभ प्राप्त हुआ है।" उनकी इस सौभाग्य का कारण क्या हो सकता है?” तब उनमें से एक ने कहा, “वरिष्ठ भिक्षु गौतम (बुद्ध) पूरे भारत में सबसे उत्तम और सर्वोच्च स्थान पर निवास करते हैं, और यही उनकी सफलता का कारण है।” तब अन्य भिक्षुओं ने कहा, “यदि यही कारण है, तो हम जेतवन मठ के ऊपर एक प्रतिद्वंद्वी बस्ती बसाएंगे, और फिर हमें उपहार प्राप्त होंगे।” वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे।

लेकिन, उन्होंने सोचा, "अगर हम राजा को अपनी बस्ती के बारे में नहीं बताएंगे, तो भिक्षु हमें रोक देंगे। अगर वह कोई उपहार स्वीकार कर लेता है, तो वह उनकी बस्ती को तोड़ने से नहीं हिचकेगा। इसलिए बेहतर यही होगा कि हम उसे रिश्वत देकर अपनी बस्ती के लिए जगह प्राप्त कर लें।"

अतः दरबारियों के हस्तक्षेप से उन्होंने राजा को एक लाख सिक्के भेंट किए और साथ में यह संदेश भी दिया: "महाराज, हम जेतवन मठ में एक प्रतिद्वंद्वी बस्ती बसाना चाहते हैं। यदि भिक्षु आपसे कहें कि वे इसकी अनुमति नहीं देंगे, तो कृपया उन्हें कोई उत्तर न दें।" राजा रिश्वत के लालच में इस बात पर सहमत हो गए।

इस प्रकार राजा को प्रसन्न करने के बाद, योजनाकारों ने एक वास्तुकार को बुलाया और काम शुरू कर दिया। इस बात को लेकर काफी शोर-शराबा हुआ।

“आनंद, यह सब शोर-शराबा किस बात का है?” गुरु ने पूछा। “शोर,” उसने कहा, “दूसरे संप्रदायों (गलत विश्वासियों) के कुछ लोग कर रहे हैं जो एक नई बस्ती बनवा रहे हैं।” “वह जगह उनके रहने के लिए ठीक नहीं है,” उसने उत्तर दिया। “दूसरे संप्रदायों (गलत विश्वासियों) के ये लोग शोर-शराबा पसंद करते हैं; उनके साथ रहना संभव नहीं है।” फिर उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाया और उनसे राजा को सूचित करने और निर्माण कार्य रुकवाने के लिए कहा।

भाई लोग महल के द्वार पर जाकर खड़े हो गए। राजा ने जैसे ही उनके आने की खबर सुनी, वह समझ गया कि वे नई बस्ती को रोकने के लिए आए होंगे। लेकिन उसे रिश्वत दी गई थी, इसलिए उसने अपने सेवकों को आदेश दिया कि वे कहें कि राजा घर पर नहीं है। भाई लोग वापस गए और गुरु को बताया। गुरु को समझ आ गया कि रिश्वत दी गई है, और उन्होंने अपने दो प्रमुख शिष्यों (*1) को भेजा। लेकिन राजा ने जैसे ही उनके आने की खबर सुनी, उसने पहले जैसा ही आदेश दिया; और वे भी वापस लौट आए और गुरु को बताया। गुरु ने कहा, "निस्संदेह राजा आज घर पर नहीं रह सकता; वह बाहर गया होगा।"

अगले दिन सुबह, उन्होंने वस्त्र धारण किए, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया, और पाँच सौ साथियों के साथ महल के द्वार तक गए। राजा ने उनके आने की आहट सुनी; वे ऊपरी मंजिल से नीचे उतरे, और बुद्ध से उनका भिक्षापात्र ले लिया। फिर उन्होंने उन्हें और उनके अनुयायियों को चावल और दलिया दिया, और प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए।

गुरु ने राजा के लाभार्थ इन शब्दों से प्रवचन देना शुरू किया: “महाराज, बीते समय में अन्य राजाओं ने रिश्वत ली और फिर नेक लोगों को आपस में झगड़वाकर अपने राज्य से वंचित कर दिया और पूरी तरह से नष्ट हो गए।” और फिर, राजा के अनुरोध पर, गुरु ने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, राजा भारु अपने राज्य भारु पर शासन कर रहे थे। उसी समय बोधिसत्व भिक्षुओं के एक समूह के गुरु थे। वे पंच अलौकिक शक्तियों और अष्टम सिद्धियों से संपन्न एक तपस्वी थे; और वे हिमालय क्षेत्र में दीर्घकाल व्यतीत करते रहे।

वह हिमालय से नमक और मसाले खरीदने के लिए नीचे आए, उनके पीछे पाँच सौ तपस्वी थे; और वे धीरे-धीरे भारू नगर पहुँचे। उन्होंने नगर में भिक्षा माँगी; और फिर नगर से निकलकर उत्तरी द्वार के पास, टहनियों और शाखाओं से ढके एक बरगद के वृक्ष की जड़ में बैठ गए। वहीं उन्होंने भोजन किया और वहीं निवास किया।

अब जब संन्यासियों का वह समूह वहाँ आधे महीने तक रहा, तो एक और गुरु पाँच सौ अन्य लोगों के साथ आए, जो नगर में भिक्षा माँगते फिर निकले और दक्षिणी द्वार के पास एक और बरगद के वृक्ष के नीचे बैठकर भोजन किया और वहीं रहने लगे। दोनों समूह वहाँ अपनी इच्छा अनुसार रहे और फिर हिमालय लौट गए।

उनके जाने के बाद, दक्षिणी द्वार के पास का पेड़ सूख गया। अगली बार, जो लोग उस पेड़ के नीचे रहते थे, वे पहले आए और यह देखकर कि उनका पेड़ सूख गया है, वे पहले पूरे शहर में भिक्षा मांगने के लिए घूमे और फिर उत्तरी द्वार से निकलकर उस द्वार के पास स्थित बरगद के पेड़ के नीचे भोजन किया और वहीं ठहरे। फिर दूसरा समूह बाद में आया और शहर में घूमकर अपना भोजन तैयार किया और अपने पेड़ के पास ही रहने लगा। "यह पेड़ तुम्हारा नहीं, हमारा है!" वे चिल्लाए और पेड़ को लेकर आपस में झगड़ने लगे। झगड़ा बढ़ गया: एक ने कहा - "वह जगह मत लो जहाँ हम पहले रहते थे!" और दूसरे ने कहा - "इस बार हम पहले आए हैं; तुम इसे मत लो!" इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए कि वह पेड़ उनका है, वे सब राजा के महल की ओर चल पड़े।

राजा ने आदेश दिया कि जो लोग पहले वहाँ रहे थे, वे ही उस वृक्ष के स्वामी रहेंगे। तब अन्य संन्यासियों ने सोचा—"हम यह नहीं कहेंगे कि हम इनसे पराजित हुए हैं!" तब उन्होंने दिव्य दृष्टि (*2) से चारों ओर देखा और सम्राट के उपयोग के योग्य रथ का ढाँचा देखकर उसे उठा लिया और राजा को भेंट करते हुए उनसे उस वृक्ष का अधिकार उन्हें भी देने की विनती की। राजा ने उनकी भेंट स्वीकार कर ली और आदेश दिया कि वे सभी उस वृक्ष के नीचे निवास करेंगे; और इस प्रकार वे सभी वहाँ एक साथ स्वामी बनकर रहे। तब अन्य संन्यासियों ने उसी रथ के रत्नजड़ित पहिए लाकर राजा को भेंट किए और उनसे प्रार्थना की, "हे महामहिम, इस वृक्ष का अधिकार केवल हमें ही दें!" और राजा ने ऐसा ही किया। तब संन्यासियों को पश्चाताप हुआ और उन्होंने कहा, "यह सोचना कितना बुरा है कि हम, जिन्होंने धन के लोभ और देह की वासना पर विजय प्राप्त कर ली है और संसार का त्याग कर दिया है, एक वृक्ष के कारण झगड़ा कर रहे हैं और उसके लिए रिश्वत दे रहे हैं! यह उचित नहीं है।" और वे शीघ्रता से हिमालय की ओर चल पड़े। भारु राज्य में रहने वाले सभी प्रेत, जिनमें एक खनिक भी शामिल था, राजा से क्रोधित हो गए और उन्होंने समुद्र को ऊपर उठा दिया, और तीन सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तक भारु राज्य को मानो अस्तित्वहीन बना दिया। इस प्रकार भारु के राजा के कारण ही राज्य के सभी निवासी नष्ट हो गए।

जब गुरु ने यह कहानी समाप्त कर ली, तो अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:-

"पुरानी कथाओं के अनुसार, भारू का राजा,
एक दिन पवित्र संन्यासियों में झगड़ा हो गया:
इसी पाप के कारण वह मर गया।
और उसके साथ ही उसका सारा राज्य नष्ट हो गया।
"इसी कारण बुद्धिमान लोग इसे बिलकुल भी स्वीकार नहीं करते।"
जब वह इच्छा हृदय में उत्पन्न हुई।
जो छल से मुक्त है, जिसका हृदय शुद्ध है,
वह जो कुछ भी कहता है, वह सदा सत्य और निश्चित होता है।
जब गुरु ने यह कथा समाप्त की, तो उन्होंने आगे कहा, "महाराज, किसी को भी इच्छा के वश में नहीं होना चाहिए। दो धार्मिक व्यक्तियों को आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिए।" फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन करते हुए कहा, "उन दिनों मैं ऋषियों का नेता था।"

जब राजा ने बुद्ध का सत्कार कर उनके प्रस्थान कर दिया, तो राजा ने कुछ लोगों को भेजकर प्रतिद्वंद्वी बस्ती को नष्ट करवा दिया, और अन्य संप्रदायों (गलत विश्वासियों) के लोग तपस्वी बन गए।

फुटनोट:

(1)सारिपुत्र और मोग्गल्याना.

(2) अलौकिक शक्तियों में से एक

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पूना-नदी-जातक**

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----II-214-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 214
पुन्ना-नाड़ी-जातक

"जो पी सकता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए पूर्ण ज्ञान के बारे में सुनाई थी।

एक बार भिक्षु (भाईचारे के सदस्य) सत्य के हॉल में एकत्रित होकर बुद्ध की बुद्धिमत्ता पर चर्चा कर रहे थे। "मित्र, परम बुद्ध की बुद्धिमत्ता महान, व्यापक, तीक्ष्ण, तीव्र, पारगम्य और संसाधनों से परिपूर्ण है।" गुरुजी अंदर आए और उन्होंने पूछा कि वे सब किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। गुरुजी ने कहा, "बुद्ध केवल आज ही बुद्धिमान और संसाधन संपन्न नहीं हैं; वे अतीत में भी ऐसे ही थे।" फिर उन्होंने उन्हें एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व दरबारी पुजारी के पुत्र के रूप में इस संसार में आए। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में अध्ययन किया; और अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्हें पुजारी का पद प्राप्त हुआ, और वे राजा के मानवीय और दैवीय मामलों के सलाहकार थे।

इसके बाद राजा ने कुछ षड्यंत्रकारियों की बातें सुनीं और क्रोधित होकर बोधिसत्व को अपने सामने फिर कभी न रहने का आदेश दिया और उन्हें बनारस से विदा कर दिया। तब वे अपनी पत्नी और परिवार को साथ लेकर काशी के एक गाँव में रहने लगे। बाद में राजा को अपने इस अच्छे कार्य का स्मरण हुआ और उन्होंने मन ही मन कहा:

"यह उचित नहीं है कि मैं अपने गुरु को बुलाने के लिए किसी दूत को भेजूँ। मैं एक कविता लिखूँगा और उसे एक पत्ते पर लिखूँगा; मैं कौवे का मांस पकाऊँगा; और पत्र और मांस को एक सफेद कपड़े में बाँधकर, उस पर राजा की मुहर लगाऊँगा और उसे उनके पास भेज दूँगा। यदि वह बुद्धिमान हैं, तो पत्र पढ़कर और यह देखकर कि यह कौवे का मांस है, वे आएँगे; यदि नहीं, तो वे नहीं आएँगे।" और इस प्रकार उन्होंने पत्ते पर यह छंद लिखा:

जो नदियों में बाढ़ आने पर भी पानी पी सकता है;
वह चीज जिसे अनाज ढककर आंखों से ओझल कर देगा;
वह जो राहगीर के लिए भविष्य की भविष्यवाणी करता है
हे ज्ञानी, खाओ! मेरी पहेली सही ढंग से पढ़ी गई है।

राजा ने यह श्लोक एक पत्ते पर लिखा और बोधिसत्व को भेज दिया। उन्होंने पत्र पढ़ा और यह सोचकर कि "राजा मुझसे मिलना चाहते हैं", उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

"राजा मुझे कौआ भेजना नहीं भूलता।"
वहां हंस, बगुले, मोर और अन्य पक्षी भी पाए जाते हैं:
अगर वह एक देगा तो बाकी भी दे देगा, मुझे पता है;
अगर उसने किसी को भी नहीं भेजा तो स्थिति कहीं ज्यादा खराब थी।

फिर उसने अपना वाहन तैयार करवाया और जाकर राजा से मिला। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे फिर से राजा के पुरोहित के पद पर नियुक्त कर दिया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों आनंद राजा थे, और मैं उनका पुरोहित था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कच्छप-जातक2**

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-215-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 215
कच्छपा-जातक

"कछुए को बोलना ही पड़ता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोकालिका के बारे में सुनाई थी। इस कहानी के घटित होने की परिस्थितियों का वर्णन महातक्कारी जन्म (*1) के अंतर्गत किया जाएगा। यहाँ गुरु ने फिर कहा: "हे भिक्षुओं, यह एकमात्र समय नहीं है जब कोकालिका बोलने के कारण बर्बाद हुई है; पहले भी ऐसा ही हुआ था।" और फिर उन्होंने कहानी इस प्रकार सुनाई।

एक समय की बात है, ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे। बोधिसत्व राजा के दरबार में जन्मे थे और बड़े होकर राजा के सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार बन गए। लेकिन राजा बहुत बातूनी थे; और जब वे बोलते थे तो किसी और को बोलने का मौका ही नहीं मिलता था। बोधिसत्व उनकी इस अत्यधिक बोलने की आदत को रोकने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करते रहे।

हिमालय क्षेत्र में एक तालाब में एक कछुआ रहता था।

भोजन की तलाश में निकले दो जंगली हंसों की उससे मुलाकात हुई और धीरे-धीरे वे घनिष्ठ मित्र बन गए। एक दिन उन दोनों ने उससे कहा: "मित्र कछुए, हिमालय में, चित्तकुटा पर्वत के पठार पर, सोने की गुफा में हमारा एक सुंदर घर है! क्या तुम हमारे साथ चलोगे?"

उसने कहा, "क्यों, मैं वहां कैसे पहुंच सकता हूँ?"

"ओह, हम तुम्हें ले जाएंगे, बस शर्त यह है कि तुम अपना मुंह बंद रखो और किसी से एक शब्द भी मत बोलो।"

"हाँ, मैं यह कर सकता हूँ," वह कहता है; "मुझे भी साथ ले चलो!"

इसलिए उन्होंने कछुए को अपने दांतों के बीच एक छड़ी पकड़ने के लिए कहा; और स्वयं छड़ी के दोनों सिरों को पकड़कर वे हवा में उछल पड़े।

गांव के बच्चों ने यह देखा और हैरानी से बोले—"दो हंस एक कछुए को छड़ी से उठाकर ले जा रहे हैं!"

(तब तक हंस तेजी से उड़ते हुए बनारस में राजा के महल के ऊपर पहुँच चुके थे।) कछुआ चीखना चाहता था--

“अच्छा, और अगर मेरे दोस्त मुझे उठा ले जाएं, तो इससे तुम्हें क्या लेना-देना, बेवकूफों?”—और उसने अपने दांतों के बीच से छड़ी छोड़ दी, और खुले आंगन में गिरकर दो टुकड़ों में बंट गया। कितना शोर मच गया! “एक कछुआ आंगन में गिर गया है, और दो टुकड़ों में टूट गया है!” वे चिल्लाए। राजा, बोधिसत्व और अपने सभी दरबारियों के साथ वहां पहुंचे, और कछुए को देखकर बोधिसत्व से एक प्रश्न पूछा। “हे ज्ञानी, यह प्राणी कैसे गिरा?”

“अब मेरा समय आ गया है!” उसने सोचा। “काफी समय से मैं राजा को सलाह देना चाहता था और अवसर की तलाश में घूमता रहा। निस्संदेह सच्चाई यह है: कछुआ और हंस मित्र बन गए; हंस उसे हिमालय ले जाना चाहते होंगे, इसलिए उन्होंने उसके दांतों के बीच एक छड़ी पकड़वाई और उसे हवा में उठा लिया; फिर उसने कोई बात सुनी होगी और जवाब देना चाहा होगा; और अपना मुंह बंद न रख पाने के कारण उसने खुद को छोड़ दिया होगा; और इस तरह वह आकाश से गिर गया और उसकी मृत्यु हो गई।” उसने ऐसा सोचा; और राजा को संबोधित करते हुए कहा: “हे राजा, जो लोग बहुत अधिक बोलते हैं, जो अपनी बातों पर कोई सीमा नहीं रखते, उनका हमेशा ऐसा ही दुर्भाग्य होता है;” और उसने निम्नलिखित छंद कहे:-

कछुए को जोर से बोलना ही होगा।
हालाँकि उसके दांतों के बीच
उसने एक छड़ी को काटा: फिर भी, इसके बावजूद,

उसने बात की और नीचे गिर गया।
और अब, हे सर्वशक्तिमान स्वामी, इसे अच्छी तरह जान लो।
आप समझदारी से बोलें, समय रहते बोलें।
कछुआ गिरकर मर गया:
वह बहुत ज्यादा बोलता था: यही वजह थी।
"वह मेरे बारे में बात कर रहा है!" राजा ने मन ही मन सोचा; और बोधिसत्व से पूछा कि क्या ऐसा ही है।

“हे महान राजा, चाहे आप हों या कोई और,” उसने उत्तर दिया, “जो भी हद से ज्यादा बोलता है, उसे इस तरह की किसी न किसी विपत्ति का सामना करना पड़ता है।” और इस प्रकार उसने बात स्पष्ट कर दी। तब से राजा ने बोलना बंद कर दिया और कम बोलने वाला बन गया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय कोकालिका कछुआ थीं, दो प्रसिद्ध बुजुर्ग दो जंगली हंस थे, आनंद राजा थे, और मैं उनका बुद्धिमान सलाहकार था।"

फुटनोट:

(1)तकरिया-जातक, संख्या 481.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मच्छ-जातक**3
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-216-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 216
मच्छा-जातक

“यह आग नहीं है,” इत्यादि – यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में प्रवास के दौरान सुनाई थी, एक ऐसे भिक्षु के बारे में जो अपनी पूर्व पत्नी के लिए तड़प रहा था। गुरु ने उस भिक्षु से पूछा, “भाई, क्या यह सच है जो मैंने सुना है कि तुम प्रेम में व्याकुल हो?” “जी हाँ।” “किसके लिए?” “अपनी दिवंगत पत्नी के लिए।” तब गुरु ने उससे कहा, “भाई, यही पत्नी तुम्हारे लिए मुसीबत का सबब बनी है। बहुत समय पहले उसी के कारण तुम लगभग भूनकर खाए जाने वाले थे, लेकिन बुद्धिमान लोगों ने तुम्हारी जान बचाई।” फिर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके पुरोहित थे। कुछ मछुआरे अपने जाल में फंसी एक मछली को निकालकर गर्म रेत पर फेंकते हुए बोले, "हम इसे अंगारों में पकाकर खाएंगे।" तो उन्होंने एक सींक को तेज किया। और मछली अपने साथी को देखकर रोने लगी और ये दो श्लोक कहे:

"मुझे आग नहीं जलाती, न ही सींक मुझे पीड़ा देती है;
लेकिन मुझे यह सोचकर डर लगता है कि कहीं मेरा साथी मुझे बेवफा प्रेमी न कह दे।
"यह प्रेम की लौ है जो मुझे जलाती है, और मेरे दिल को दर्द से भर देती है।"
प्रेम करने का फल मृत्यु नहीं है; हे मछुआरों, मुझे फिर से मुक्त करो!
उसी क्षण बोधिसत्व नदी के किनारे पहुंचे; और मछली की आवाज सुनकर वे मछुआरों के पास गए और उनसे मछली को मुक्त करने के लिए कहा।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) के फल तक पहुँच गया: "उन दिनों पत्नी मछली की साथी थी, प्रेम में व्याकुल भाई मछली था, और मैं स्वयं पुजारी था।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सेग्गु-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-217-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 217
सेगु-जातक

"सारा संसार सुख-सुविधाओं में लिप्त है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक सब्जी विक्रेता के बारे में सुनाई थी, जो उनका गृहस्थ (शिष्य) था।

ये घटनाएँ प्रथम पुस्तक (*1) में पहले ही बताई जा चुकी हैं। यहाँ गुरु ने उससे फिर पूछा कि वह इतने दिनों से कहाँ था; और उसने उत्तर दिया, "मेरी बेटी, महोदय, हमेशा मुस्कुराती रहती है। उसकी परीक्षा लेने के बाद, मैंने उसका विवाह एक युवक से कर दिया। ऐसा करना आवश्यक था, इसलिए मुझे आपसे मिलने का अवसर नहीं मिला।" इस पर गुरु ने उत्तर दिया, "तुम्हारी बेटी न केवल अब गुणी है, बल्कि अतीत में भी गुणी थी; और जिस प्रकार तुमने अब उसकी परीक्षा ली है, उसी प्रकार तुमने उन दिनों में भी उसकी परीक्षा ली थी।" और उस व्यक्ति के अनुरोध पर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक वृक्ष-आत्मा थे।

इसी धर्मनिष्ठ सब्जी विक्रेता ने अपनी बेटी की परीक्षा लेने का निश्चय किया। वह उसे जंगल में ले गया और उसका हाथ पकड़ लिया, मानो उसे उससे प्रेम हो गया हो। जब वह दर्द से कराह उठी, तो उसने उससे पहले श्लोक के शब्दों में कहा:-

"सारा संसार सुख-सुविधाओं में डूबा हुआ है;"
आह, मेरा नन्हा-सा मासूम बच्चा!
अब मैंने तुम्हें पकड़ लिया है, मेरी विनती है, रोना मत;
शहर जैसा करता है, मैं भी वैसा ही करता हूं।
यह सुनकर उसने उत्तर दिया, "प्रिय पिता, मैं कुंवारी हूँ, और मुझे पाप के मार्ग नहीं पता हैं," और रोते हुए उसने दूसरा छंद कहा:-

जो मुझे हर तरह के कष्ट से सुरक्षित रखेगा,
यही बात मुझे मेरे अकेलेपन में धोखा देती है;
मेरे पिता, जो मेरे सबसे बड़े रक्षक होने चाहिए,
यहां जंगल में हिंसा का माहौल है।"
और फल-सब्जी बेचने वाले ने अपनी बेटी की इस प्रकार परीक्षा लेने के बाद उसे घर ले जाकर एक युवक से उसका विवाह करा दिया। बाद में अपने कर्मों के फलस्वरूप ही उसका निधन हो गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के अंत में सब्जी विक्रेता प्रथम मार्ग के फल (समाधि) में प्रवेश कर गया: "उन दिनों, पिता और पुत्री अब की तरह खर्राटे ले रहे थे, और वह वृक्ष-आत्मा जिसने यह सब देखा, वह मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 102, पन्निका-जातक.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कूट-वणिज-जातक**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-218-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 218
कुटा-वनिजा-जातक

"वाह, क्या बढ़िया योजना थी!" इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक बेईमान व्यापारी के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में दो व्यापारी थे, एक धर्मनिष्ठ और दूसरा बेईमान। इन दोनों ने साझेदारी की और पाँच सौ वैगनों में माल भरकर पूर्व से पश्चिम की ओर व्यापार यात्रा की; और भारी लाभ कमाकर श्रावस्ती नगर लौट आए।

धर्मनिष्ठ व्यापारी ने अपने साथी को सुझाव दिया कि वे अपना भंडार आपस में बाँट लें। धूर्त व्यापारी ने मन ही मन सोचा, "यह आदमी तो बहुत दिनों से खराब खान-पान और रहने की जगह में जी रहा है। अब जब वह घर वापस आ गया है, तो वह तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन खाएगा और अधिक खाने से मर जाएगा। तब सारा भंडार मेरा हो जाएगा।" उसने कहा, "न तो सितारे अनुकूल हैं और न ही दिन; कल या परसों देखेंगे।" वह बार-बार यही कहता रहा। हालाँकि, धर्मनिष्ठ व्यापारी ने उस पर दबाव डाला और अंततः भंडार बाँट लिया गया। फिर वह सुगंध और मालाएँ लेकर गुरु से मिलने गया; और आदरपूर्वक प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया। गुरु ने पूछा कि वह कब लौटा। "महोदय, बस दो सप्ताह पहले।" व्यापारी ने बताया, "तो फिर बुद्ध से मिलने में इतनी देर क्यों कर दी?" तब गुरु ने कहा, "तुम्हारा साथी अब ही धूर्त नहीं है; वह पहले भी ऐसा ही था।" और उसके अनुरोध पर उन्होंने उसे एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व राजा के दरबार में एक व्यक्ति के पुत्र के रूप में इस दुनिया में आए। बड़े होकर उन्हें न्यायधीश बनाया गया।

उस समय, दो व्यापारी, एक गाँव का और एक शहर का, आपस में मित्र थे। गाँव वाले ने शहर वाले के पास पाँच सौ हल के फाल जमा कर दिए। दूसरे ने उन्हें बेच दिया और कीमत अपने पास रख ली, और जहाँ फाल रखे थे, वहाँ उसने चूहे चिपका दिए। कुछ समय बाद गाँव वाला आया और अपना फाल माँगने लगा। "चूहों ने उन्हें खा लिया है!" धोखेबाज ने कहा और अपने ऊपर चिपके चूहे की ओर इशारा किया।

"अच्छा, अच्छा, तो ठीक है," दूसरे ने जवाब दिया: "चूहों द्वारा खाई गई चीजों का क्या किया जा सकता है?"

स्नान करते समय उसने दूसरे व्यापारी के बेटे को अपने मित्र के घर के भीतरी कमरे में बिठाया और उनसे विनती की कि उसे कहीं बाहर न जाने दें। स्नान करने के बाद वह अपने मित्र के घर लौट गया।

"मेरा बेटा कहाँ है?" धोखेबाज ने पूछा।

“प्रिय मित्र,” उसने उत्तर दिया, “मैं उसे अपने साथ ले गया और नदी किनारे छोड़ दिया; और जब मैं पानी में उतर गया, तभी एक बाज़ आया और उसने अपने फैले हुए पंजों में तुम्हारे बेटे को पकड़ लिया और हवा में उड़ गया। मैंने पानी में हाथ-पैर मारे, चिल्लाया, संघर्ष किया—पर उसे छुड़ा नहीं सका।”

"झूठ!" बदमाश चिल्लाया। "कोई बाज किसी लड़के को उठाकर नहीं ले जा सकता।"

"रहने दो, प्रिय मित्र: अगर कुछ ऐसा हो जाए जो नहीं होना चाहिए, तो मैं क्या कर सकता हूँ? जैसा कि मैंने कहा, तुम्हारे बेटे को एक बाज उठा ले गया है।"

दूसरे ने उसे अपशब्द कहे। "अरे, बदमाश! हत्यारे! अब मैं तुम्हें न्यायाधीश के पास ले जाऊँगा और उसके सामने घसीटकर ले जाऊँगा!" और वह चला गया। ग्रामीण ने कहा, "जैसी आपकी मर्ज़ी," और न्याय अदालत की ओर चल पड़ा। उस बदमाश ने बोधिसत्व को इस प्रकार संबोधित किया-

"महोदया, इस व्यक्ति ने मेरे बेटे को अपने साथ स्नान कराने के लिए ले गया, और जब मैंने उससे पूछा कि वह कहाँ है, तो उसने उत्तर दिया कि एक बाज़ उसे उड़ा ले गया है। कृपया मेरे मामले का न्याय करें!"

"सच बताओ," बोधिसत्व ने दूसरे से पूछा।

"जी हां, मेरे स्वामी," उसने उत्तर दिया, "मैं उसे अपने साथ ले गया था, और एक बाज़ उसे उड़ा ले गया है।"

"लेकिन दुनिया में ऐसे बाज कहां हैं जो लड़कों को उठाकर ले जाते हैं?"

“मेरे स्वामी,” उसने उत्तर दिया, “मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। यदि बाज़ लड़कों को हवा में नहीं उड़ा सकते, तो क्या चूहे लोहे के हल खा सकते हैं?”

"तुम्हारा इससे क्या मतलब है?"

"महामहिम, मैंने इस आदमी के घर में पाँच सौ हल रखे थे। उस आदमी ने मुझे बताया कि चूहों ने उन्हें खा लिया है, और उसने मुझे उन चूहों की बीट भी दिखाई जिन्होंने ऐसा किया था। महाराज, अगर चूहे हल खा सकते हैं, तो बाज़ लड़कों को उठा ले जाते हैं: लेकिन अगर चूहे ऐसा नहीं कर सकते, तो बाज़ लड़के को भी नहीं उठा ले जाएँगे। यह आदमी कहता है कि चूहों ने मेरे हल खा लिए हैं। फैसला सुनाइए कि क्या उन्हें खाया गया है या मेरे मामले का फैसला कीजिए!"

बोधिसत्व ने सोचा, "उसका इरादा धोखेबाज से उसी के हथियारों से लड़ने का रहा होगा। - बढ़िया योजना!" उसने कहा, और फिर उसने ये दो श्लोक कहे:-

"बेहद सुनियोजित! काटने वाले ने काट लिया।"
चालबाज ने ही चालबाजी कर दी—काफी सफल रहा!
अगर चूहे हल खा जाएं तो बाज उड़ सकते हैं।
लड़के आसमान में उड़ गए!
"जैसे को तैसा करके बदमाश को मात दी गई!"
हल वापस कर दो, और उसके बाद
शायद वह आदमी जिसने हल खो दिया
मैं अब आपके बेटे को आपको वापस दे सकता हूँ!
इस प्रकार जिसने अपना पुत्र खो दिया था, उसे वह फिर से मिल गया, और उसने अपना खोया हुआ हल भी वापस पा लिया; और उसके बाद दोनों अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से चले गए।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "दोनों मामलों में धोखेबाज एक ही था, और चालाक आदमी भी एक ही था; मैं स्वयं मुख्य न्यायाधीश था।"

फुटनोट:

(1) चूहों या गिलहरियों द्वारा कुतरी गई वस्तुएँ अशुभ मानी जाती थीं; तुलना करें खंड 1, पृष्ठ 372 (पाली), तेविज्जा-सुत्त महाशिलम i (एसबीई, बौद्ध सुत्त, पृष्ठ 196 में अनुवादित)। यहाँ व्यक्ति आवश्यकता से अधिक विस्तार से बता रहा है; यदि चूहों ने हल के फालों को केवल कुतरा होता तो शायद वह उन्हें फेंक देता।--हमें ग्रीक और लैटिन दोनों में पाई जाने वाली एक पुरानी कहावत का भी संदर्भ मिल सकता है: "जहाँ चूहे लोहा खाते हैं" का अर्थ "कहीं नहीं" था। हेरोडास 3. 76 oyd' okoy xures oi mus omoius ton sideron trugoysin. सेनेका, अपोकोलोसिंटोसिस अध्याय 7 (स्वर्ग में क्लॉडियस को) venisti huc ubi mures ferrum rodunt.

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-219-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 219
गरहिता-जातक

"सोना मेरा है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक ऐसे भिक्षु के बारे में सुनाई थी जो उदास और असंतुष्ट था।

यह व्यक्ति किसी एक वस्तु पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता था, उसका जीवन पूरी तरह असंतोष से भरा हुआ था; और यह बात उसने गुरु को बताई। जब गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह सचमुच असंतुष्ट है, तो उसने हाँ कहा; जब उससे पूछा गया कि क्यों, तो उसने उत्तर दिया! "हे भाई!" गुरु ने कहा, "इस वासना को तो निम्न स्तर के प्राणी भी तुच्छ समझते हैं; और क्या तुम, ऐसे उपदेशों के ज्ञाता, उस वासना से उत्पन्न असंतोष के आगे झुक सकते हो जिसे पशु भी तुच्छ समझते हैं?" तब उन्होंने उसे एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब हिमालय क्षेत्र में बोधिसत्व बंदर के रूप में पैदा हुए। एक वनवासी ने उन्हें पकड़ लिया, घर ले आया और राजा को सौंप दिया। वे लंबे समय तक राजा के साथ रहे, उनकी निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे और उन्होंने मनुष्य जगत के रीति-रिवाजों के बारे में बहुत कुछ सीखा। राजा उनकी निष्ठा से प्रसन्न हुए। उन्होंने वनवासी को बुलवाया और उनसे कहा कि वे बंदर को उसी स्थान पर मुक्त कर दें जहाँ से उन्हें पकड़ा गया था; और उन्होंने ऐसा ही किया।

सभी वानर एक विशाल चट्टान पर एकत्रित हो गए, ताकि बोधिसत्व को देख सकें क्योंकि वह उनके पास लौट आए थे; और उन्होंने उनसे प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं।

"सर, आप इतने लंबे समय से कहाँ रह रहे थे?"

"बनारस में राजा के महल में।"

"तो फिर तुम आज़ाद कैसे हुए?"

"राजा ने मुझे अपना पालतू बंदर बना लिया, और मेरी करतूतों से प्रसन्न होकर उसने मुझे जाने दिया।"

बंदरों ने आगे कहा—"तुम्हें तो मनुष्यों की दुनिया में रहने का तरीका पता ही होगा: हमें भी इसके बारे में बताओ—हम सुनना चाहते हैं!"

बोधिसत्व ने कहा, "मुझसे मनुष्यों के रहन-सहन के बारे में मत पूछो।" उन्होंने फिर कहा, "बताओ—हम सुनना चाहते हैं!"

उन्होंने कहा, “मनुष्य, चाहे राजकुमार हों या ब्राह्मण, पुकारते हैं—'मेरा! मेरा!' वे अनित्यता को नहीं जानते, जिसके कारण ये वस्तुएँ अस्तित्वहीन हैं। अब इन अंधे मूर्खों का मार्ग सुनो;” और उन्होंने ये श्लोक कहे:

"यह सोना मेरा है, यह कीमती सोना मेरा है!" वे दिन-रात यही चिल्लाते रहते हैं:
ये मूर्ख लोग पवित्र मार्ग की ओर कभी दृष्टि भी नहीं डालते।
"घर में दो मालिक हैं; एक की दाढ़ी नहीं है।"
लेकिन उसके स्तन लंबे हैं, कान छिदे हुए हैं और वह गुंथे हुए बालों के साथ रहती है;
उसकी कीमत अनगिनत सोने में बताई जाती है; वह वहां के सभी लोगों को परेशान करता है।"
यह सुनकर सभी बंदर चिल्ला उठे—"रुको, रुको! हमने कुछ ऐसा सुन लिया है जो सुनना ठीक नहीं है!" और उन्होंने अपने दोनों हाथों से अपने कान कसकर बंद कर लिए। उन्हें वह जगह पसंद नहीं आई, क्योंकि उन्होंने कहा, "हमने यहाँ कुछ ऐसा सुना है जो उचित नहीं है;" इसलिए वे दूसरी जगह चले गए। और इस चट्टान का नाम गराहितपित्थी चट्टान या निंदा की चट्टान पड़ गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर इस भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया: "बुद्ध के वर्तमान अनुयायी बंदरों का वह झुंड थे, और उनका मुखिया मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धम्मद्धाज-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-220-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 220 (*1)
धम्मद्धज-जातक

“तुम ऐसे दिखते हो जैसे,” इत्यादि—यह बात गुरु ने बाँस के जंगल में रहते हुए अपने ऊपर हुए जानलेवा हमलों के बारे में कही थी। इस बार भी, पहले की तरह, गुरु ने कहा, “देवदत्त ने मुझे जान से मारने की कोशिश की है और मुझे ज़रा भी डराया नहीं है। उसने पहले भी ऐसा ही किया था।” और उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में यशपानी नामक एक महान राजा का शासन था। उनके मुख्य सेनापति का नाम कालका था। उस समय बोधिसत्व उनके पुरोहित थे, जिनका नाम धम्मद्धजा था, यानी धर्म का ध्वजवाहक। राजा के आभूषण बनाने वाला एक व्यक्ति चट्टापानी भी था। राजा एक कुशल राजा थे, लेकिन उनके मुख्य सेनापति मुकदमों के निपटारे में रिश्वत लेते थे; वे चुगली करते थे; रिश्वत लेकर वे वास्तविक मालिकों को धोखा देते थे।

एक दिन, एक व्यक्ति जो अपना मुकदमा हार गया था, दरबार से रोते हुए और बाहें फैलाते हुए जा रहा था, तभी उसकी मुलाकात बोधिसत्व से हुई जो राजा को अपनी सेवा अर्पित करने जा रहे थे। उनके चरणों में गिरकर, उस व्यक्ति ने रोते हुए बताया कि कैसे वह अपने मामले में पराजित हुआ: "हे स्वामी, यद्यपि आप जैसे लोग राजा को इस लोक और परलोक के नियमों का ज्ञान देते हैं, फिर भी सेनापति रिश्वत लेता है और वास्तविक मालिकों को धोखा देता है!"

बोधिसत्व को उस पर दया आ गई। उन्होंने कहा, "आओ, मेरे भले, मैं तुम्हारे मामले का फैसला तुम्हारे लिए करूँगा!" और वह अदालत की ओर चल पड़ा। वहाँ एक बड़ी भीड़ जमा थी। बोधिसत्व ने फैसला पलट दिया और न्यायसंगत व्यक्ति के पक्ष में निर्णय सुनाया। दर्शकों ने तालियाँ बजाईं। शोर बहुत तेज़ था। राजा ने यह सुना और पूछा, "यह कैसी आवाज़ है जो मैं सुन रहा हूँ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी राजा, यह एक ऐसा मामला था जिसका गलत मूल्यांकन किया गया था, लेकिन बुद्धिमान धम्मद्धजा ने इसका सही मूल्यांकन किया है; इसीलिए तालियों की यह गड़गड़ाहट हो रही है।"

राजा प्रसन्न हुए और बोधिसत्व को बुलवाया। उन्होंने कहना शुरू किया, "मुझे बताया गया है कि आपने एक मामले का फैसला किया है?"

"जी हां, महाराज, मैंने उस बात का फैसला कर लिया है जिसका फैसला कालका ने ठीक से नहीं किया था।"

राजा ने कहा, "आज से आप ही न्याय करें; यह मेरे लिए आनंददायक होगा और संसार के लिए समृद्धि लाएगा!" वह अनिच्छुक था, लेकिन राजा ने उससे विनती की—"सभी प्राणियों पर दया करते हुए, आप ही न्याय करें!" और इस प्रकार राजा ने उसकी सहमति प्राप्त कर ली।

उस समय से कालका को कोई उपहार नहीं मिला; और अपनी सारी संपत्ति खोकर उसने राजा के सामने बोधिसत्व की निंदा करते हुए कहा, "हे महामहिम, बुद्धिमान धम्मद्धजा आपके राज्य पर अधिकार करना चाहते हैं!" लेकिन राजा ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और उसे ऐसा न कहने के लिए कहा।

"अगर तुम्हें मेरी बात पर यकीन नहीं है," कलाका ने कहा, "उसके आने के समय खिड़की से बाहर देखो। तब तुम्हें पता चलेगा कि उसने पूरे शहर को अपने कब्जे में ले लिया है।"

राजा ने अपने न्याय कक्ष में अपने चारों ओर जमा भीड़ को देखा। उसने सोचा, "ये रहे उसके सेवकों का दल।" उसने रास्ता देते हुए पूछा, "सेनापति, अब हम क्या करें?"

"मेरे स्वामी, उसे मृत्युदंड दिया जाना चाहिए।"

"बिना किसी गंभीर अपराध में लिप्त पाए जाने के हम उसे मौत की सजा कैसे दे सकते हैं?"

"एक रास्ता है," दूसरे ने कहा।

"क्या तरीका है?"

"उसे वह करने को कहो जो असंभव है, और यदि वह ऐसा नहीं कर सकता, तो उसे इसके लिए मौत की सजा दे दो।"

लेकिन उसके लिए क्या असंभव है?

"महाराज," उसने उत्तर दिया, "अच्छी मिट्टी वाले बगीचे को फल देने में दो या दो साल लगते हैं, जब उसमें पौधे लगाए जाते हैं और उनकी देखभाल की जाती है। आप उसे बुलवाएं और कहें—'हमें कल मौज-मस्ती करने के लिए एक बगीचा चाहिए। हमारे लिए एक बगीचा बना दीजिए!' वह ऐसा नहीं कर पाएगा; और हम इस गलती के लिए उसे मार डालेंगे।"

राजा ने बोधिसत्व से कहा, "हे ज्ञानी महोदय, हम अपने पुराने उद्यान में बहुत समय बिता चुके हैं; अब हम एक नए उद्यान में आनंद लेना चाहते हैं। हमारे लिए एक उद्यान बना दीजिए! यदि आप इसे नहीं बना सकते, तो आपको मरना होगा।"

बोधिसत्व ने सोचा, "ज़रूर कालका ने राजा को मेरे विरुद्ध भड़काया होगा, क्योंकि उसे कोई उपहार नहीं मिल रहा है। अगर मैं कर सकूँ," उन्होंने राजा से कहा, "हे महामहिम, मैं इसका ध्यान रखूँगा।" और वे घर चले गए। भरपेट भोजन करने के बाद वे अपने पलंग पर लेटकर सोचने लगे। सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया (*2)। सक्का (इंद्र) ने दूरदर्शिता से बोधिसत्व की परेशानी को भाँप लिया। वे शीघ्रता से उनके पास पहुँचे, उनके कक्ष में प्रवेश किया और उनसे पूछा, "हे ज्ञानी, आप क्या सोच रहे हैं?" - वे दोनों हवा में ही खड़े रहे।

बोधिसत्व ने पूछा, "तुम कौन हो?"

मैं सक्का (इंद्र) हूँ।

"राजा ने मुझे एक बगीचा बनाने के लिए कहा है: मैं इसी बारे में सोच रहा हूँ।"

"हे ज्ञानी महोदय, चिंता न करें: मैं आपके लिए नंदना और चित्तलता के उपवनों के समान एक उद्यान बनाऊंगा! मैं इसे किस स्थान पर बनाऊं?"

"फलां-फलां स्थान पर," उसने उसे बताया। सक्का (इंद्र) ने उसे बनाया और देवताओं (देवदूतों) के नगर में लौट आया।

अगले दिन, बोधिसत्व ने वहाँ सचमुच में बगीचा देखा और राजा की उपस्थिति की प्रतीक्षा की। "हे राजा, बगीचा तैयार है: आप अपने खेल का आनंद लें!"

राजा उस स्थान पर आया और उसने अठारह भुजाओं की लाल रंग की बाड़ से घिरा एक बगीचा देखा, जिसमें द्वार और तालाब थे, और वह बगीचा फूलों और फलों से लदे विभिन्न प्रकार के वृक्षों से सुशोभित था! उसने कालका से कहा, "ऋषि ने मेरा अनुरोध पूरा कर दिया है: अब हम क्या करें?"

"हे शक्तिशाली राजा!" उसने उत्तर दिया, "यदि वह एक रात में बाग बना सकता है, तो क्या वह आपके राज्य पर कब्जा नहीं कर सकता?"

"तो अब हम क्या करें?"

"हम उससे एक और असंभव काम करवाएंगे।"

"यह क्या है?" राजा ने पूछा।

हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे सात अनमोल रत्नों से युक्त एक झील का निर्माण करें!

राजा सहमत हो गया और उसने बोधिसत्व को संबोधित किया:

"गुरुजी, आपने एक उद्यान बनाया है। अब इसके अनुरूप सात अनमोल रत्नों से सुसज्जित एक झील बनाइए। यदि आप इसे नहीं बना सकते, तो आप जीवित नहीं रहेंगे!"

"बहुत अच्छा, महान राजा," बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "यदि संभव हुआ तो मैं अवश्य आऊंगा।"

तब इंद्र ने एक अत्यंत भव्य झील का निर्माण किया, जिसमें सौ घाटियाँ और एक हजार खाड़ियाँ थीं, और वह पाँच अलग-अलग रंगों के कमलों से ढकी हुई थी, ठीक नंदन की झील की तरह।

फिर मिट्टी देखकर बोधिसत्व ने यह भी देखा और राजा से कहा, "देखो, झील बन गई है!" राजा ने इसे देखकर कालका से पूछा कि क्या किया जाए।

"हे मेरे स्वामी, उनसे कहिए कि वे इसके अनुरूप एक घर बनवाएं," उन्होंने कहा।

राजा ने बोधिसत्व से कहा, "हे गुरु, हाथीदांत का एक घर बनाइए, जो उद्यान और झील के अनुरूप हो; यदि आप इसे नहीं बनाएँगे, तो आपको मरना होगा!"

फिर इंद्र ने उनके लिए एक घर भी बनाया। बोधिसत्व ने अगले दिन उसे देखा और राजा को बताया। राजा ने उसे देखकर फिर कालका से पूछा कि क्या करना चाहिए। कालका ने उनसे कहा कि वे बोधिसत्व से घर के अनुरूप एक रत्न बनाने के लिए कहें। राजा ने उनसे कहा, "हे ज्ञानी, इस हाथीदांत के घर के अनुरूप एक रत्न बनाइए; मैं रत्न के प्रकाश में इसका दर्शन करूंगा: यदि आप ऐसा रत्न नहीं बना सकते, तो आपको मरना होगा!" तब इंद्र ने उनके लिए भी एक रत्न बनाया। अगले दिन बोधिसत्व ने उसे देखा और राजा को बताया। राजा ने उसे देखकर फिर कालका से पूछा कि क्या करना चाहिए।

“हे महामहिम!” उसने उत्तर दिया, “मुझे लगता है कि कोई परी है जो ब्राह्मण धम्मद्धजा की हर इच्छा पूरी करती है। अब उससे ऐसी वस्तु बनाने को कहिए जो देवता भी न बना सकें। देवता भी चारों गुणों से युक्त मनुष्य का निर्माण नहीं कर सकते (*3); इसलिए उससे इन चारों गुणों से युक्त रक्षक बनाने को कहिए।” तब राजा ने कहा, “गुरुजी, आपने उद्यान, झील, महल और प्रकाश देने वाला रत्न बनाया है। अब मेरे लिए भी चारों गुणों से युक्त रक्षक बनाइए, जो उद्यान की रखवाली करे; यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो आपको मरना होगा।”

“ऐसा ही हो,” उन्होंने उत्तर दिया, “यदि संभव हो तो मैं इसका प्रबंध करूँगा।” वे घर गए, भरपेट भोजन किया और लेट गए। सुबह जब वे उठे, तो अपने पलंग पर बैठे और सोचने लगे, “महान राजा सक्का (इंद्र) अपनी शक्ति से जो कुछ बना सकते थे, वह बना चुके हैं। वे चार गुणों वाले एक वनपाल को भी नहीं बना सकते। ऐसा होने पर, अन्य मनुष्यों के हाथों मरने से बेहतर है कि जंगल में दुखी होकर मर जाऊँ।” इसलिए किसी से कुछ कहे बिना, वे अपने निवास से नीचे उतरे और मुख्य द्वार से शहर से बाहर निकलकर जंगल में प्रवेश कर गए, जहाँ वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए और अच्छे लोगों के धर्मपरायणता पर विचार करने लगे। सक्का (इंद्र) ने यह देखा; और एक वनपाल के वेश में वे बोधिसत्व के पास आए और बोले,

"ब्राह्मण, तुम तो अभी युवा और कोमल हो: फिर भी इस जंगल में क्यों बैठे हो, मानो तुमने कभी दर्द देखा ही न हो?" यह पूछते हुए उसने पहली पंक्ति दोहराई:-

"ऐसा लगता है जैसे आपका जीवन सुखमय होगा।"
फिर भी तुम तपस्वी होकर घने जंगलों में जाओगे,
किसी बेचारे दुखी व्यक्ति की तरह जिसका जीवन दुखमय था,
और इस वृक्ष के नीचे अकेलेपन और पीड़ा में तड़पते हुए मेरा अंत हो जाए।"
इस पर बोधिसत्व ने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:-

मुझे ऐसा लगता है कि मेरा जीवन सुखमय होगा;
फिर भी मैं निर्धन होकर घने जंगलों में जाऊंगा,
किसी बेचारे दुखी व्यक्ति की तरह जिसका जीवन दुखमय था,
और इस वृक्ष के नीचे एकांत पीड़ा में जीर्ण-शीर्ण हो जाए,

यह सोचकर कि सभी संत इस सत्य को जानते हैं।
तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "यदि ऐसा है, तो फिर, ब्राह्मण, तुम यहाँ क्यों बैठे हो?"

उसने उत्तर दिया, “राजा को चार अच्छे गुणों वाला एक उद्यान रक्षक चाहिए; ऐसा कोई मिल नहीं सकता; इसलिए मैंने सोचा—मनुष्य के हाथों क्यों मरना? मैं जंगल में जाकर अकेले ही मर जाऊंगा। इसलिए मैं यहाँ आया और यहीं बैठा हूँ।”

तब दूसरे ने उत्तर दिया, “ब्राह्मण, मैं सक्का (इंद्र), देवदूतों का राजा हूँ। मैंने ही तुम्हारा उद्यान और अन्य वस्तुएँ बनवाई हैं। चार गुणों से युक्त उद्यान रक्षक नहीं बनाया जा सकता; परन्तु तुम्हारे देश में एक छत्तपाणि है, जो सिर के आभूषण बनाता है, और वही ऐसा व्यक्ति है। यदि किसी उद्यान रक्षक की आवश्यकता हो, तो जाकर इस कारीगर को ही रक्षक बना दो।” ये कहकर सक्का (इंद्र) उसे सांत्वना देकर और भय न करने का आग्रह करके अपने दिव्य नगर की ओर प्रस्थान कर गए।

बोधिसत्व घर लौटे और उपवास तोड़कर महल के द्वार पर गए, जहाँ उन्होंने चट्टपाणि को देखा। उन्होंने चट्टपाणि का हाथ पकड़कर पूछा, "क्या यह सच है, जैसा मैंने सुना है, चट्टपाणि, कि तुम चारों सद्गुणों से संपन्न हो?"

"तुम्हें किसने बताया?" दूसरे ने पूछा।

"सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) के राजा।"

"उसने तुम्हें क्यों बताया?" उसने सब कुछ बता दिया, और कारण भी बता दिया। दूसरे ने कहा,

"जी हां, मैं चारों गुणों से संपन्न हूं।" बोधिसत्व ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें राजा के समक्ष ले गए। "हे महामहिम, मैं छत्तपाणि हूं, जो चारों गुणों से संपन्न है। यदि उद्यान के रखवाले की आवश्यकता हो, तो उसे रखवाला बना दीजिए।"

राजा ने उससे पूछा, "क्या यह सच है, जैसा मैंने सुना है, कि तुममें चार गुण हैं?"

"जी हां, महामहिम राजा।"

"ये क्या हैं?" उसने पूछा।

मैं ईर्ष्या नहीं करता और शराब नहीं पीता;
मुझमें न तो कोई तीव्र इच्छा है, न ही कोई क्रोध।
उन्होंने कहा।

"छत्तपानी," राजा चिल्लाया, "क्या तुमने कहा था कि तुममें ईर्ष्या नहीं है?"

"जी हां, हे राजा, मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है।"

"ऐसी कौन सी चीजें हैं जिनसे आपको ईर्ष्या नहीं होती?"

"सुनिए, मेरे स्वामी!" उसने कहा; और फिर उसने निम्नलिखित पंक्तियों में बताया कि उसे किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं थी (*4):-

"एक पुजारी जिसे कभी बंधनों में जकड़ा गया था, मैं उसे मुक्त करता हूँ--"
वह काम जो एक महिला ने मुझसे करवाया:
उन्होंने मुझे पवित्र परंपराओं में दीक्षित किया;
मुझे इससे पहले कभी इतनी ईर्ष्या नहीं हुई थी।
तब राजा ने कहा, "प्रिय चट्टपानी, तुम मादक पेय से परहेज क्यों करते हो?" और दूसरे ने निम्नलिखित श्लोक (*5) में उत्तर दिया--

एक बार मैं नशे में था, और मैंने खाया
मेरे अपने बेटे का मांस मेरी थाली में;
फिर, दु:ख और पीड़ा से व्याकुल होकर,
मैंने कसम खाई कि मैं फिर कभी शराब को हाथ नहीं लगाऊंगा।"
तब राजा ने कहा, "परन्तु, हे महोदय, ऐसी कौन सी बात है जो आपको प्रेमहीन बना देती है?" उस व्यक्ति ने इसे इन शब्दों में समझाया (*6):-

"मेरा नाम राजा कितावासा था;"
मैं एक शक्तिशाली राजा था;
मेरे बेटे ने बुद्ध का पात्र तोड़ दिया
और इसलिए उसे मरना पड़ा।
तब राजा ने कहा, "हे मित्र, ऐसी क्या बात थी जिसने तुम्हें क्रोधहीन बना दिया?" और दूसरे ने इन पंक्तियों में बात स्पष्ट कर दी:

"अराका के रूप में, सात वर्षों के लिए
मैंने दान-पुण्य का कार्य किया;
और फिर सात युगों तक वे जीवित रहे।
ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में।"
जब चट्टापानी ने अपने चारों गुणों का इस प्रकार वर्णन किया, तो राजा ने अपने सेवकों को संकेत दिया। पल भर में सारा दरबार, पुजारी और आम लोग, सब उठ खड़े हुए और कालका पर चिल्लाए—"अरे, दुष्ट, रिश्वतखोर चोर और बदमाश! रिश्वत न मिलने पर तूने इस ज्ञानी पुरुष की निंदा करके उसकी हत्या कर दी!" उन्होंने उसे हाथ-पैर से पकड़कर महल से बाहर घसीटा; और जो कुछ भी उनके हाथ लगा, कभी पत्थर, कभी लाठी, उससे उसका सिर फोड़ दिया और उसकी हत्या कर दी; और उसके पैरों को घसीटते हुए उसे गोबर के ढेर पर फेंक दिया।

तब से राजा ने अपने कर्मों के अनुसार मृत्यु तक न्यायपूर्वक शासन किया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त सेनापति कालका थे, सारिपुत्र शिल्पकार चट्टपाणि थे, और मैं धम्मद्धजा था।"

फुटनोट:

(1) यहाँ हमारे पास "हीरो के कार्य" एक नए रूप में हैं।

(2) ऐसा तब होना चाहिए था जब कोई भला आदमी संकट में हो। कुछ आधुनिक अंधविश्वास, पीड़ा में पड़े प्राणियों के प्रति देवता की दया पर आधारित हैं।

(3) चतुर्चंग-समन्नगतम्;

(4)निम्नलिखित इन पंक्तियों की व्याख्या है। कहानी क्रमांक 120 की है, जहाँ निम्नलिखित छंदों का पहला छंद दिया गया है। "इसका अर्थ यह है। पुराने समय में, मैं बनारस का ऐसा ही राजा था, और एक स्त्री के कारण मैंने एक पुजारी को कैद कर लिया था।

जब कुकर्म अपना प्रभाव दिखाता है, तो स्वतंत्र लोग भी बाध्य हो जाते हैं;

जब ज्ञान बोलता है, तो बंधन टूटकर मुक्त हो जाते हैं।
जैसा कि अब वर्णित जन्म में बताया गया है, यह चट्टापाणि राजा बना। रानी ने चौंसठ दासों के साथ षड्यंत्र रचा। उसने बोधिसत्व को भी बहकाया, और जब उन्होंने मना कर दिया तो उसने उनके बारे में झूठे आरोप लगाकर उन्हें बर्बाद करने की कोशिश की; तब राजा ने उन्हें कैद कर लिया। बोधिसत्व को बंधन में बांधकर राजा के सामने लाया गया, और उन्होंने मामले की वास्तविक स्थिति बताई। तब उन्हें स्वयं रिहा कर दिया गया; और फिर उन्होंने राजा से उन सभी दासों को रिहा करवाया जिन्हें कैद किया गया था, और उन्हें रानी और उन दोनों को क्षमा करने की सलाह दी। शेष सभी को ठीक उसी तरह समझा जाना चाहिए जैसा ऊपर बताया गया है। इसी के संदर्भ में उन्होंने कहा-

"एक पुजारी जिसे कभी बंधनों में जकड़ा गया था, मैं उसे मुक्त करता हूँ--"

वह काम जो एक महिला ने मुझसे करवाया:
उन्होंने मुझे पवित्र परंपराओं में दीक्षित किया;
मुझे इससे पहले कभी इतनी ईर्ष्या नहीं हुई थी।

लेकिन फिर मैंने सोचा, 'मैंने सोलह हज़ार स्त्रियों से दूरी बनाए रखी है, और मैं इस एक स्त्री को अपनी वासनाओं से संतुष्ट नहीं कर सकता। स्त्रियों की वासनाएँ ऐसी ही होती हैं, जिन्हें संतुष्ट करना कठिन होता है। यह वैसा ही है जैसे कोई पुराना कपड़ा गंदा देखकर क्रोधित हो और कहे, 'यह गंदा क्यों है?' यह वैसा ही है जैसे भोजन के बाद कुछ बचा हुआ हिस्सा खाने से गिर जाए तो क्रोधित हो और कहे, 'यह ऐसा क्यों हो गया?' मैंने निश्चय किया कि अब से मेरे भीतर वासनाओं के कारण कोई ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होनी चाहिए, अन्यथा मैं संत बनने से वंचित रह जाऊँगा। उस समय से मैं ईर्ष्या से मुक्त हूँ। यही कहने का सार है, 'उस समय से मैंने कभी ईर्ष्या नहीं की।'

(5) इस श्लोक की व्याख्या करते हुए--वक्ता कहते हैं, "एक समय मैं बनारस का राजा था; मैं शराब और मांस के बिना नहीं रह सकता था। उस नगर में व्रत के दिन (उपोसथादिवसेसु) पशुओं का वध करना मना था; इसलिए रसोइए ने मेरे व्रत के भोजन के लिए एक दिन पहले (चंद्र पखवाड़े की तेरहवीं तिथि को) कुछ मांस तैयार किया था। यह ठीक से रखा नहीं गया था, इसलिए कुत्तों ने खा लिया। रसोइए व्रत के दिन राजा के सामने बिना मांस के ऊपरी कक्ष में उनका स्वादिष्ट और विविध भोजन परोसने की हिम्मत नहीं कर सका, इसलिए उसने रानी से सलाह मांगी। "महारानी, आज मेरे पास मांस नहीं है; और इसके बिना मैं उन्हें भोजन देने की हिम्मत नहीं कर सकता, मैं क्या करूँ?" रानी ने कहा, "राजा मेरे पुत्र को बहुत प्यार करते हैं। जब वे उसे दुलारते हैं, तो उन्हें शायद ही पता चलता है कि वह है या नहीं। मैं अपने पुत्र को सजाकर राजा को सौंप दूँगी, और जब वह उसके साथ खेलेंगे, तब आप उसे भोजन परोसेंगे; उसे पता भी नहीं चलेगा।" इसलिए उसने अपने प्यारे बेटे को सजाया-संवारा और राजा की गोद में सौंप दिया। जब राजा लड़के के साथ खेल रहा था, रसोइए ने खाना परोसा। राजा, शराब के नशे में चूर था, और थाली में मांस न देखकर उसने पूछा कि मांस कहाँ है। जवाब मिला कि उस दिन मांस नहीं मिलेगा क्योंकि उपवास के दिन किसी को मारना मना था। "मेरे लिए मांस मिलना मुश्किल है, है ना?" उसने कहा; और फिर उसने अपने प्यारे बेटे का गला घोंट दिया, जब वह उसकी बाहों में बैठा था, और उसे मार डाला; उसे रसोइए के सामने फेंक दिया, और उसे जल्दी से पकाने के लिए कहा। रसोइए ने आज्ञा मानी, और राजा ने अपने ही बेटे का मांस खाया। राजा के डर से किसी ने रोने, विलाप करने या एक शब्द भी कहने की हिम्मत नहीं की। राजा ने खाया और सो गया। अगली सुबह, नशा उतरने के बाद, उसने अपने बेटे को माँगा। तब रानी उसके चरणों में गिर पड़ी और रोने लगी, और बोली, "हे महाराज, कल आपने अपने बेटे को मारकर उसका मांस खाया!" राजा शोक से रोया और विलाप किया, और सोचने लगा, "यह शराब पीने की वजह से हुआ!" फिर, शराब के बुरे प्रभावों को देखकर मैंने यह संकल्प लिया कि अन्यथा मैं कभी संत नहीं बन पाऊंगा, मैं इस घातक पेय को कभी हाथ नहीं लगाऊंगा; मैंने धूल लेकर उसे अपने मुंह पर मल लिया। तब से मैंने कोई शराब नहीं पी है। यही इन पंक्तियों का सार है, "एक बार मैं नशे में था।"

(6) "इसका अर्थ यह है कि एक समय की बात है, मैं किटवासा नाम का राजा था, और मेरा एक पुत्र हुआ। ज्योतिषियों ने कहा कि वह बालक पानी की कमी से मर जाएगा। इसलिए उसका नाम दुत्थकुमार रखा गया। जब वह बड़ा हुआ, तो वह वायसराय बन गया। राजा अपने पुत्र को हमेशा अपने पास, आगे-पीछे रखता था; और भविष्यवाणी को गलत साबित करने के लिए उसने शहर के चारों द्वारों पर और शहर के अंदर जगह-जगह तालाब बनवाए; उसने चौकों और चौराहों में हॉल बनवाए और उनमें पानी के घड़े रखवाए। एक दिन वह युवक, अच्छे वस्त्र पहनकर, अकेले पार्क गया। रास्ते में उसने सड़क पर पच्चेक-बुद्ध की एक मूर्ति देखी, और बहुत से लोग उनसे बात कर रहे थे, उनकी प्रशंसा कर रहे थे, उनके सामने प्रणाम कर रहे थे। 'क्या!' राजकुमार ने सोचा, 'जब मुझ जैसा कोई यहाँ से गुजर रहा होता है, तो लोग उस मुंडे हुए सिर वाले को इतना सम्मान क्यों दिखाते हैं?'" क्रोधित होकर वह हाथी से उतरा और बुद्ध से पूछा कि क्या उसे भोजन मिल गया है। उत्तर था, 'हाँ।' राजकुमार ने उनसे भोजन छीन लिया, चावल और कटोरा दोनों ज़मीन पर फेंक दिए और पैरों से कुचलकर चूर-चूर कर दिए। बुद्ध ने कहा, 'यह तो सचमुच बर्बाद हो गया!' और उसके चेहरे की ओर देखा। राजकुमार ने कहा, 'मैं राजा किटावसा का पुत्र राजकुमार दुत्था हूँ! आप मुझे क्रोधित दृष्टि से देखकर और आँखें खोलकर क्या हानि पहुँचाएँगे?' बुद्ध भोजन खोकर हवा में उड़ गए और उत्तरी हिमालय में नंदा पर्वत की तलहटी में स्थित एक गुफा में चले गए। ठीक उसी क्षण राजकुमार के बुरे कर्मों का फल मिलने लगा और वह चिल्लाया, 'मैं जल रहा हूँ! मैं जल रहा हूँ!' उसका शरीर आग की लपटों में घिर गया और वह सड़क पर ही गिर पड़ा; आसपास का सारा पानी गायब हो गया, नालियाँ सूख गईं, और उसी क्षण उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में चला गया। राजा ने यह सुना और वह शोक से व्याकुल हो गया। फिर उसने सोचा—"यह शोक मुझ पर इसलिए आया है क्योंकि मेरा पुत्र मुझे प्रिय था। यदि मुझे उससे कोई स्नेह न होता, तो मुझे कोई पीड़ा न होती। अब से मैं संकल्प लेता हूँ कि मैं किसी भी सजीव या निर्जीव वस्तु से अपना स्नेह नहीं रखूँगा।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कसाव-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-221-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 221

कासव-जातक

"यदि कोई मनुष्य," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने देवदत्त के बारे में जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी।

यह घटना राजगृह नगर में घटी एक घटना के कारण हुई थी। एक समय सारिपुत्र धर्माध्यक्ष अपने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ बाँस के वन में निवास कर रहे थे। वहीं देवदत्त अपने जैसे दुष्ट लोगों के एक समूह के साथ गयासिसा में रहता था।

उस समय राजगृह नगर के नागरिक दान-पुण्य के लिए एकत्रित होते थे। एक व्यापारी, जो व्यापार के सिलसिले में वहाँ आया था, एक सुंदर सुगंधित पीला वस्त्र लेकर आया और उसने निवेदन किया कि वह भी इस वस्त्र को दान में दे दे। नगरवासियों ने भी बहुत से उपहार दिए। एकत्रित लोगों द्वारा दिया गया सारा दान नकद था। यह वस्त्र बच गया। एकत्रित भीड़ ने कहा, "यह सुंदर सुगंधित वस्त्र बच गया है। इसे कौन लेगा - सारिपुत्र भिक्षु या देवदत्त?" कुछ लोग सारिपुत्र के पक्ष में थे; अन्य ने कहा, "सारिपुत्र भिक्षु कुछ दिन यहाँ रहेंगे और फिर अपनी इच्छा से यात्रा पर चले जाएँगे; लेकिन देवदत्त हमेशा हमारे नगर के पास रहते हैं; वे सुख-दुख में हमारे आश्रयदाता हैं। देवदत्त को ही यह वस्त्र मिलना चाहिए!" उन्होंने मतपत्र का प्रयोग किया और देवदत्त के पक्ष में मत देने वाले बहुमत में थे। अतः उन्होंने देवदत्त को ही वस्त्र दे दिया। उसने उसे पट्टियों में कटवाया, फिर उन्हें आपस में सिलवाया और सोने की तरह रंगवाया, और इस तरह उसने उसे पहन लिया।

उसी समय, श्रावस्ती शहर से तीस भिक्षु गुरु को प्रणाम करने आए। अभिवादन के बाद, उन्होंने गुरु को सारी बात बताई और कहा, "हे गुरु, देवदत्त ने संत का यह चिन्ह धारण किया हुआ है, जो उसे बिल्कुल शोभा नहीं देता।" गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने संत का यह वस्त्र धारण किया है, जो बिल्कुल अनुपयुक्त है। उसने पहले भी यही वस्त्र धारण किया था।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हिमालय क्षेत्र में हाथी के रूप में इस दुनिया में आए। अस्सी हजार जंगली हाथियों के झुंड के स्वामी, वे वन क्षेत्र में रहते थे।

बनारस में रहने वाले एक गरीब आदमी ने हाथी दांत के बाज़ार में कारीगरों को चूड़ियाँ और तरह-तरह के हाथी दांत के गहने बनाते देखा और उनसे पूछा कि अगर उसे हाथी दांत मिलें तो क्या वे उन्हें खरीदेंगे? उन्होंने जवाब दिया, हाँ।

अतः उसने एक शस्त्र उठाया और पीले वस्त्र पहनकर पच्चेक-बुद्ध (*1) का वेश धारण किया, सिर पर एक पट्टी बाँधी। हाथियों के मार्ग में खड़ा होकर उसने अपने शस्त्र से एक हाथी को मार डाला और उसके दाँत बनारस में बेच दिए; इस प्रकार वह अपना जीवन यापन करता था। इसके बाद वह बोधिसत्वों के दल के अंतिम हाथी को ही मारने लगा। दिन-प्रतिदिन हाथियों की संख्या घटती गई। तब वे बोधिसत्व के पास गए और उनसे पूछा कि उनकी संख्या क्यों कम हो रही है। बोधिसत्व को कारण समझ आ गया। उन्होंने सोचा, "हाथियों के मार्ग में कोई व्यक्ति पच्चेक-बुद्ध के वेश में खड़ा है। क्या वही हाथियों को मार रहा है? मैं उसे ढूँढूँगा।" एक दिन उसने अन्य हाथियों को आगे भेज दिया और स्वयं उनके पीछे चल दिया। उस व्यक्ति ने बोधिसत्व को देखा और अपने शस्त्र से उन पर आक्रमण कर दिया। बोधिसत्व मुड़े और खड़े हो गए। उन्होंने सोचा, "मैं इसे ज़मीन पर पटक कर मार डालूँगा!" और जब उन्होंने उस व्यक्ति के पीले वस्त्र देखे तो उन्होंने अपनी सूंड आगे बढ़ाई। उन्होंने कहा, "मुझे इन पवित्र वस्त्रों का सम्मान करना चाहिए!" फिर अपनी सूंड वापस लाते हुए वे चिल्लाए—"हे मनुष्य! क्या यह वस्त्र, जो संतत्व का प्रतीक है, तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है? तुम इसे क्यों पहनते हो?" और उन्होंने ये पंक्तियाँ दोहराईं:

"यदि कोई व्यक्ति, जो अभी भी पापों से भरा हुआ है, साहस करे"
पीले वस्त्र धारण करने के लिए, जिसमें कोई परवाह नहीं है
संयम पाया जाता है, या सत्य के प्रति प्रेम।
वह इस प्रकार का वस्त्र पहनने के योग्य नहीं है।
जिसने पाप को दूर भगाया है, जिसने हर जगह
वह सद्गुणों में दृढ़ है, और जिसकी सर्वोच्च देखभाल है
उसे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए और सच्चा होना चाहिए।
वह पीले रंग का वस्त्र पहनने के पूरी तरह हकदार हैं।
इन शब्दों के साथ, बोधिसत्व ने उस व्यक्ति को फटकारा और कहा कि वह फिर कभी वहां न आए, अन्यथा उसे मृत्युदंड भुगतना पड़ेगा। इस प्रकार उन्होंने उसे वहां से भगा दिया।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त वह व्यक्ति था जिसने हाथियों को मारा था, और झुंड का मुखिया मैं था।"

फुटनोट:

(1) वह व्यक्ति जिसने निर्वाण का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, परन्तु वह मनुष्यों को इसका उपदेश नहीं देता।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल-नंदिया-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-222-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 222
चुला-नंदिया-जातक

"मुझे याद आता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बांस के जंगल में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी।

एक दिन भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में बातचीत शुरू की: "मित्र, वह देवदत्त कठोर, क्रूर और अत्याचारी है, और परम बुद्ध के प्रति उसके मन में घोर द्वेष है। उसने पत्थर फेंका, यहाँ तक कि उसने नलगिरि (*1) की सहायता भी ली; तथागत (बुद्ध) के प्रति उसके मन में दया और करुणा का कोई अंश नहीं है।"

गुरुजी अंदर आए और उनसे पूछा कि वे सब आपस में क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को सब कुछ बताया। तब गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त इतना कठोर, निर्दयी और बेरहम रहा है। वह पहले भी ऐसा कर चुका है।" और फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व नंदीय या जॉली नामक बंदर बन गए और हिमालय क्षेत्र में रहने लगे। उनके सबसे छोटे भाई का नाम जॉलिकिन था। वे दोनों अस्सी हजार बंदरों के झुंड के मुखिया थे और उनकी देखभाल के लिए उनके घर में एक अंधी माँ भी थी।

उन्होंने अपनी माता को झाड़ियों में बने उनके ठिकाने पर छोड़ दिया और तरह-तरह के मीठे जंगली फल लाने के लिए पेड़ों के बीच चले गए, जिन्हें वे उनके लिए घर वापस भेज रहे थे। दूत फल नहीं पहुँचा पाए; और भूख से पीड़ित होकर वह दुबली-पतली हो गईं। बोधिसत्व ने उनसे कहा, "माता, हमने आपको बहुत सारे मीठे फल भेजे हैं: फिर भी आप इतनी दुबली क्यों हैं?"

"मेरे बेटे, मुझे यह कभी समझ नहीं आता!"

बोधिसत्व ने सोचा, “जब तक मैं अपने पशुओं की देखभाल करूँगा, मेरी माता मर जाएँगी! मैं पशुओं को छोड़कर अकेले अपनी माता की देखभाल करूँगा।” इसलिए उन्होंने अपने भाई को पुकारते हुए कहा, “भाई, तुम पशुओं की देखभाल करो, मैं हमारी माता की देखभाल करूँगा।”

“नहीं भाई,” उसने उत्तर दिया, “मुझे भेड़-बकरियों के झुंड पर राज करने की क्या परवाह? मैं तो बस अपनी माँ की ही देखभाल करूँगा!” इस प्रकार दोनों एकमत हुए और भेड़-बकरियों के झुंड को छोड़कर अपनी माँ को हिमालय से नीचे ले आए और सीमावर्ती क्षेत्र के एक बरगद के वृक्ष में अपना निवास स्थान बना लिया, जहाँ उन्होंने उसकी देखभाल की।

तक्षशिला में रहने वाले एक ब्राह्मण ने एक प्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी और बाद में उनसे विदा लेते हुए चले गए। गुरु को मनुष्य के शारीरिक संकेतों से भविष्य जानने की शक्ति प्राप्त थी; और इस प्रकार उन्होंने जान लिया कि उनका शिष्य कठोर, निर्दयी और हिंसक है। गुरु ने कहा, “मेरे पुत्र, तुम कठोर, निर्दयी और हिंसक हो। ऐसे लोग हर मौसम में एक समान रूप से सफल नहीं होते; उन्हें गंभीर

कष्ट और गंभीर विनाश का सामना करना पड़ता है। कठोर मत बनो, और ऐसा कोई काम मत करो जिसका तुम्हें बाद में पछतावा हो।" यह सलाह देकर उन्होंने उसे जाने दिया।

युवक ने अपने गुरु से विदा ली और बनारस के लिए रवाना हो गया। वहाँ उसने विवाह किया और बस गया; अपनी अन्य कलाओं से जीविका कमाने में असमर्थ होने के कारण उसने धनुष-बाण से ही जीविका चलाने का निश्चय किया। अतः उसने शिकारी के रूप में काम शुरू किया और जीविका कमाने के लिए बनारस छोड़ दिया। सीमावर्ती गाँव में रहते हुए वह धनुष और बाण लेकर जंगलों में जाता और शिकार किए गए विभिन्न प्रकार के पशुओं का मांस बेचकर अपना जीवन यापन करता था।

एक दिन, जब वह जंगल में कुछ भी न मिलने के बाद घर लौट रहा था, तो उसने एक खुले मैदान के किनारे एक बरगद का पेड़ देखा। उसने सोचा, "शायद यहाँ कुछ हो।" और उसने अपना चेहरा बरगद के पेड़ की ओर कर लिया। दोनों भाई अपनी माँ को फल खिलाकर पेड़ पर उसके पीछे बैठे थे, तभी उन्होंने उस आदमी को आते देखा। उन्होंने कहा, "अगर वह हमारी माँ को देख भी ले, तो क्या करेगा?" और वे डालियों के बीच छिप गए। तभी वह क्रूर आदमी पेड़ के पास आया और उसने बूढ़ी और अंधी माँ बंदरिया को देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैं खाली हाथ क्यों लौटूँ? मैं पहले इस बंदरिया को मारूंगा!" और उसे मारने के लिए उसने अपना धनुष उठा लिया। यह देखकर बोधिसत्व ने अपने भाई से कहा, "जोलिकिन, मेरे प्यारे, यह आदमी हमारी माँ को मारना चाहता है! मैं उसकी जान बचाऊंगा। मेरे मरने के बाद, तुम उसका ध्यान रखना।" ऐसा कहकर वह पेड़ से नीचे उतरा और पुकारा,

"हे मनुष्य, मेरी माता को मत मारो! वह अंधी और वृद्धावस्था से कमजोर है। मैं उसकी जान बचाऊँगा; उसे मत मारो, बल्कि मुझे मार डालो!" और जब दूसरे ने वादा कर दिया, तो वह धनुष की मार की दूरी के भीतर एक स्थान पर बैठ गया। शिकारी ने निर्दयतापूर्वक बोधिसत्व को तीर मारा; जब वह गिर पड़ा, तो उस व्यक्ति ने माता बंदर को तीर मारने के लिए अपना धनुष तैयार किया। जोलिकिन ने यह देखा और मन ही मन सोचा, "शिकारी मेरी माता को मारना चाहता है। भले ही वह केवल एक दिन जीवित रहे, उसे जीवन का वरदान प्राप्त होगा; मैं उसके लिए अपना जीवन दे दूँगा।" तदनुसार, वह पेड़ से नीचे उतरा और बोला,

"हे मनुष्य, मेरी माँ को मत मारो! मैं अपनी जान उसकी जान के बदले दे दूँगा। मुझे मार डालो—हम दोनों भाइयों को मार डालो, और हमारी माँ की जान बख्श दो!" शिकारी मान गया, और जोलिकिन तीर की मारक दूरी के भीतर बैठ गया। शिकारी ने उसे भी मार डाला—"घर पर मेरे बच्चों के लिए इतना काफी है," उसने सोचा—और उसने माँ को भी मार डाला; उन तीनों को अपने डंडे पर लटका दिया, और घर की ओर चल पड़ा। उसी क्षण उस दुष्ट व्यक्ति के घर पर बिजली गिरी, और उसकी पत्नी और दो बच्चों को घर समेत जलाकर राख कर दिया: छत और बांस के खंभों के अलावा कुछ भी नहीं बचा।

गाँव के प्रवेश द्वार पर एक व्यक्ति उससे मिला और उसे यह बात बताई। अपनी पत्नी और बच्चों के शोक से वह इतना दुखी हुआ कि वहीं गिर पड़ा, उसने अपना शिकार और धनुष वहीं छोड़ दिया, अपने वस्त्र उतार फेंके और नग्न अवस्था में हाथ फैलाकर विलाप करते हुए घर की ओर चल पड़ा। तभी बाँस के खंभे टूटकर उसके सिर पर गिर पड़े और उसे कुचल दिया। धरती फट पड़ी, नरक से आग की लपटें उठने लगीं। जब वह धरती में समा रहा था, तब उसे अपने गुरु की चेतावनी याद आई: "तो यही वह शिक्षा थी जो ब्राह्मण परासरिया ने मुझे दी थी!" और विलाप करते हुए उसने ये श्लोक कहे:

मुझे अपने शिक्षक के शब्द याद आ रहे हैं: तो उनका यही मतलब था!
सावधान रहें, ऐसा कुछ भी न करें जिसका आपको बाद में पछतावा हो।
मनुष्य जो कुछ भी करता है, वही उसे अपने भीतर प्राप्त होता है;
अच्छा व्यक्ति अच्छा होता है; और बुराई की योजना बनाने वाला बुरा होता है;
और इसलिए हमारे सभी कर्म बीज के समान हैं, और उनसे उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है।"

इस प्रकार शोक मनाते हुए वह पृथ्वी में समा गया और नरक की गहराइयों में पुनर्जीवित हुआ।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, जिसमें उन्होंने दिखाया कि कैसे अन्य दिनों में भी, उस समय की तरह, देवदत्त कठोर, क्रूर और निर्दयी था, तो उन्होंने जन्म का वर्णन इन शब्दों में किया: "उन दिनों देवदत्त शिकारी था, सारिपुत्र प्रसिद्ध शिक्षक था, आनंद जोलिकिन था, परम पूज्य देवी गौतमी (बुद्ध की पालक माता, दिवंगत जन्मदाता महामाया की बहन, कपिलवस्तु की रानी और अब एक भिक्षुणी) माता थी, और मैं बंदर जोली था।"

फुटनोट:

(1) देवदत्त के अनुरोध पर बुद्ध को मारने के लिए छोड़ा गया एक भयंकर हाथी।

पिछला <<<<-----||-223-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 223
पुता-भट्ट-जातक

"सम्मान के बदले सम्मान," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जमींदार के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, एक बार श्रावस्ती नगर के एक जमींदार का ग्रामीण इलाके के एक जमींदार से व्यापार था। वह अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने कर्जदार से मिलने गया, लेकिन कर्जदार ने पाया कि वह कर्ज चुकाने में असमर्थ है। यह सुनकर वह क्रोधित हो गया और उपवास तोड़े बिना ही घर के लिए निकल पड़ा। रास्ते में कुछ लोग उससे मिले और उसकी भूख देखकर उसे भोजन दिया और कहा कि वह अपनी पत्नी के साथ भी बाँट ले।

जब उसे यह मिला, तो उसने अपनी पत्नी को हिस्सा देने में कंजूसी की। इसलिए उसने उससे कहा, "पत्नी, यह चोरों का अड्डा है, इसलिए बेहतर होगा कि तुम आगे जाओ।" इस तरह उसे वहाँ से हटाकर, उसने सारा खाना खा लिया और फिर उसे खाली बर्तन दिखाते हुए कहा—"देखो पत्नी! मुझे तो खाली बर्तन मिला है!" पत्नी समझ गई कि उसने सारा खाना खुद ही खा लिया है और उसे बहुत गुस्सा आया।

जेतवन मठ के पास से गुजरते हुए, उन्होंने सोचा कि वे पार्क में जाकर पानी पी लें। वहाँ गुरुजी, किसी शिकारी की तरह, अपने सुगंधित कक्ष की छाया में, उनका इंतज़ार कर रहे थे। उन्होंने उनका स्नेहपूर्वक अभिवादन किया और कहा, "श्रीमती, क्या आपके पति दयालु और प्रेममय हैं?" "मैं उनसे प्रेम करती हूँ, श्रीमान," उन्होंने उत्तर दिया, "परन्तु वे मुझसे प्रेम नहीं करते; अन्य दिनों की तो बात ही छोड़िए, आज ही उन्हें रास्ते में भोजन का एक बर्तन दिया गया, और उन्होंने मुझे एक निवाला भी नहीं दिया, बल्कि सारा खुद ही खा लिया।" "श्रीमती, ऐसा ही हमेशा से रहा है - आप प्रेममय और दयालु हैं, और वे प्रेमहीन; परन्तु जब ज्ञानी लोगों की सहायता से वे आपका गुण जान लेंगे, तो वे आपका पूरा सम्मान करेंगे।" फिर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व राजा के दरबारियों में से एक के पुत्र थे। वयस्क होने पर वे राजा के सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार बन गए। राजा को अपने पुत्र से डर लगता था, कहीं वे उन्हें हानि न पहुँचा दें, इसलिए उन्होंने उन्हें विदा कर दिया। पुत्र अपनी पत्नी को साथ लेकर उस नगर से निकलकर काशी गाँव में आ गए, जहाँ वे रहने लगे। कुछ समय बाद जब पिता का देहांत हो गया, तो पुत्र ने यह सुनकर बनारस लौटने का निश्चय किया; उन्होंने कहा, "ताकि मुझे वह राज्य प्राप्त हो जो मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" रास्ते में किसी ने उन्हें सूप का एक भाग देते हुए कहा, "खाओ और अपनी पत्नी को भी दो।" परन्तु उन्होंने अपनी पत्नी को कुछ नहीं दिया और सारा सूप स्वयं खा लिया। उनकी पत्नी ने सोचा, "यह तो बड़ा निर्दयी है!" और वे व्यथित हो गईं।

जब वह बनारस आया और उसे अपना राज्य प्राप्त हुआ, तो उसने उसे अपनी पत्नी रानी बना लिया; लेकिन यह सोचकर कि "उसके लिए थोड़ा ही काफी है," उसने उसके प्रति कोई और सम्मान या आदर नहीं दिखाया, यहाँ तक कि उससे यह भी नहीं पूछा कि वह कैसी है।

बोधिसत्व ने सोचा, "यह रानी राजा की अच्छी सेवा करती है और उससे प्रेम करती है; लेकिन राजा उसके बारे में जरा भी नहीं सोचता। मैं उसे रानी का आदर और सम्मान करने के लिए मजबूर करूँगा।"

तो वह रानी के पास आया, प्रणाम किया और एक तरफ हट गया। "क्या बात है, महोदय?" रानी ने पूछा।

"महाराज," उसने पूछा, "हम आपकी सेवा कैसे कर सकते हैं? क्या आप वृद्ध पिताओं को एक कपड़ा या चावल की एक थाली नहीं देंगी?"

"महोदय, मुझे स्वयं कभी कुछ नहीं मिलता; मैं आपको क्या दूँ? जब मुझे मिलता था, तो क्या मैं कुछ नहीं देता था? लेकिन अब राजा मुझे कुछ भी नहीं देते: कुछ और देने की तो बात ही छोड़िए, जब वे रास्ते से जा रहे थे तो उन्हें चावल का एक कटोरा मिला, और उन्होंने मुझे एक निवाला भी नहीं दिया—उन्होंने सारा खुद ही खा लिया।"

"महोदया, क्या आप राजा की उपस्थिति में यह बात कह पाएंगी?"

"हां," उसने उत्तर दिया।

"ठीक है। आज जब मैं राजा के सामने खड़ी होकर अपना प्रश्न पूछूँ, तो क्या आप मुझे वही उत्तर देंगे: आज ही मैं आपकी अच्छाई का बखान करूँगी।" इस प्रकार बोधिसत्व आगे बढ़े और राजा के समक्ष खड़े हो गए। और वह भी जाकर राजा के पास खड़ी हो गईं।

तब बोधिसत्व ने कहा, "महोदया, आप बहुत निर्दयी हैं। क्या आपको पिताओं को एक कपड़ा या एक थाली भोजन भी नहीं देना चाहिए?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "हे प्रभु, मुझे स्वयं राजा से कुछ नहीं मिलता: मैं आपको क्या दे सकती हूँ?"

"क्या तुम रानी की पत्नी नहीं हो?" उसने कहा।

“हे महाराज,” उसने कहा, “जब सम्मान ही न मिले तो रानी पत्नी होने का क्या लाभ? राजा अब मुझे क्या देंगे? रास्ते में जब उन्हें चावल की थाली मिली, तो उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया, बल्कि सारा खुद ही खा लिया।” बोधिसत्व ने उनसे पूछा, “क्या सच में, हे राजा?” राजा ने हाँ में जवाब दिया। जब बोधिसत्व ने देखा कि राजा मान गए हैं, तो उन्होंने कहा, “हे देवी, जब राजा निर्दयी हो गए हैं, तो आप उनके साथ यहाँ क्यों रह रही हैं? संसार में प्रेम के बिना संबंध कष्टदायी होता है। जब तक आप यहाँ रहेंगी, राजा के साथ प्रेमहीन संबंध आपको दुख देगा। ये लोग सम्मान देने वाले का सम्मान करते हैं, और जब कोई सम्मान नहीं करता—तो जैसे ही आपको यह दिखाई दे, आपको कहीं और चले जाना चाहिए; संसार में रहने वाले बहुत हैं।” और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक दोहराए:

"सम्मान के बदले सम्मान, प्रेम के बदले प्रेम उचित है।"
जो तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करे, तुम भी उसके साथ अच्छा व्यवहार करो:
पालन से पालन उत्पन्न होता है; लेकिन यह स्पष्ट है
जो व्यक्ति बदले में किसी की मदद नहीं करेगा, उसे किसी की मदद की जरूरत नहीं है।
लापरवाही के बदले लापरवाही न लौटाएं, न ही रुकें
जिसका प्यार अब इस दुनिया में नहीं है, उसे सांत्वना देने के लिए।
दुनिया विशाल है; और जब पक्षी यह पता लगा लेते हैं
जिन पेड़ों से फल झड़ गए हैं, वे उड़ गए हैं।
यह सुनकर राजा ने अपनी रानी को पूरा सम्मान दिया; और तब से वे मित्रता और सद्भाव से एक साथ रहने लगे।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पति-पत्नी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में प्रवेश किया: "दोनों ही मामलों में पति-पत्नी एक ही हैं, और बुद्धिमान सलाहकार मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुम्भिला-जातक**
स्रोत : *https://ancient-buddhist-texts.net*

पिछला <<<<-----||-224-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 224
कुंभिला जातक

वर्तमान समय में देवदत्त बुद्ध को मारने के लिए निकलता है, जिस पर बुद्ध जवाब देते हैं कि उन्होंने अतीत में भी ऐसा किया था, और एक कहानी सुनाते हैं कि कैसे, जब वे एक बंदर थे, तो उन्होंने एक मगरमच्छ को चकमा दिया और खाए जाने से बच गए।

बोधिसत्व = बंदरों के स्वामी (वाणरिन्द),

देवदत्त = मगरमच्छ (कुम्भिला),

सिन्चामानविका = (मगरमच्छ की) पत्नी (भरिया)।

वर्तमान स्रोत: जा 57 वानरिंदा,

उद्धृत: जा 224 कुंभीला,

अतीत की तुलना करें: जा 57 वानरिंद, जा 208 सुमसुमरा, जा 224 कुंभिला, जा 342 वानर, सीपी 27 कपिराजकारिया, मवु iii पृष्ठ 40 वानर (द्वितीय)।

मुख्य शब्द: छल, जानवर।

"ओ बंदर।" [2.145] यह कहानी शिक्षक ने बांस के जंगल में देवदत्त के बारे में सुनाई।

देवदत्त के हत्या के इरादे के बारे में जानकर गुरु ने कहा: "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने मुझे मारने का प्रयास किया है; उसने पहले भी ऐसा ही किया था, परन्तु अपने दुष्ट इरादे को पूरा करने में असफल रहा।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की यह कहानी सुनाई।

पुराने समय में जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने बंदर के रूप में पुनर्जन्म लिया। पूर्ण विकसित होने पर वे घोड़ी के बच्चे जितने बड़े और अत्यंत बलवान थे। वे एक नदी के किनारे अकेले रहते थे, जिसके बीचोंबीच एक द्वीप था जिस पर आम, ब्रेडफ्रूट और अन्य फलदार वृक्ष उगते थे। नदी के मध्य में, द्वीप और नदी के किनारे के बीचोंबीच, पानी से एक अकेली चट्टान उभरी हुई थी। हाथी के समान बलवान होने के कारण, बोधिसत्व नदी के किनारे से इस चट्टान पर और फिर द्वीप पर छलांग लगाते थे। वहाँ वे द्वीप पर उगने वाले फलों को भरपेट खाते थे और शाम को उसी रास्ते से लौट आते थे। इस प्रकार उनका दैनिक जीवन व्यतीत होता था।

उन दिनों उस नदी में एक मगरमच्छ और उसकी मादा रहती थी; वह गर्भवती थी और बोधिसत्व को आते-जाते देखकर उसके मन में बंदर का हृदय खाने की लालसा उत्पन्न हुई। इसलिए उसने अपने स्वामी से उसके लिए बंदर को पकड़ने की विनती की। मगरमच्छ ने उसकी इच्छा पूरी करने का वादा किया और एक चट्टान पर जाकर बैठ गया, ताकि शाम को घर लौटते समय बंदर को पकड़ सके।

दिनभर द्वीप पर घूमने के बाद, बोधिसत्व ने शाम को चट्टान की ओर देखा और सोचा कि वह पानी से इतनी ऊपर क्यों उठी हुई है। कथा के अनुसार, बोधिसत्व नदी के पानी और चट्टान की ऊंचाई का सटीक माप लेते थे। इसलिए, जब उन्होंने देखा कि पानी का स्तर तो एक जैसा है, लेकिन चट्टान पानी से अधिक ऊपर उठी हुई प्रतीत हो रही है, तो उन्हें संदेह हुआ कि कोई मगरमच्छ उन्हें पकड़ने के लिए वहां घात लगाए बैठा है। सच्चाई जानने के लिए, उन्होंने चट्टान को संबोधित करते हुए पुकारा, "हाय! चट्टान!" और कोई उत्तर न मिलने पर, उन्होंने तीन बार फिर पुकारा, "हाय! चट्टान!" और चट्टान के चुप रहने पर, बंदर ने कहा, "हे मित्र चट्टान, आज तुम मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो?"

"ओह!" मगरमच्छ ने सोचा, "तो चट्टान को बंदर को जवाब देने की आदत है। आज मुझे चट्टान की तरफ से जवाब देना होगा।" इसलिए, वह चिल्लाया, "जी बंदर; क्या बात है?" "तुम कौन हो?" बोधिसत्व ने कहा। "मैं मगरमच्छ हूँ।" "तुम उस चट्टान पर क्यों बैठे हो?" "तुम्हें पकड़ने और तुम्हारा दिल खाने के लिए।" चूंकि पीछे हटने का कोई और रास्ता नहीं था, इसलिए मगरमच्छ को चकमा देने के अलावा कोई चारा नहीं था। इसलिए बोधिसत्व चिल्लाए, "अब तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण करने के अलावा कोई चारा नहीं है। अपना मुँह खोलो और जब मैं कूदूँ तो मुझे पकड़ लो।"

अब आपको पता ही होगा कि मगरमच्छ जब अपना मुंह खोलते हैं, तो उनकी आंखें बंद हो जाती हैं। तो, जब इस मगरमच्छ ने बेखबर होकर अपना मुंह खोला, तो उसकी आंखें बंद हो गईं। और वह बंद आंखों और खुले जबड़ों के साथ वहीं इंतजार करता रहा! यह देखकर चालाक बंदर मगरमच्छ के सिर पर कूद गया, और वहां से बिजली की तरह फुर्ती से किनारे पर पहुंच गया। जब मगरमच्छ को इस करतब की चतुराई का एहसास हुआ, तो उसने कहा: "बंदर, इस संसार में जिसके पास चारों गुण होते हैं, वही शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। और मुझे लगता है कि तुम्हारे पास चारों गुण हैं।" और ऐसा कहते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:

1. यस्सेते चतुरो धम्म, वानरिंद, यथा तव:

सच्चं धम्मो धीति कागो, दिट्ठं सो अतिवत्तति।

हे वानरराज, जो तुम्हारे समान इन चार गुणों से युक्त है: सत्य, ज्ञान, साहस और दान, वही अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करेगा।

2. यस्सा चेते न विज्जन्ति गुण परमभद्दका,

सच्चं धम्मो धीति कागो, दिट्ठं सो नातिवत्तति ।

जिसके भीतर ये अत्यंत शुभ गुण नहीं पाए जाते, उसके शत्रु पर सत्य, ज्ञान, साहस और दान का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इस संदर्भ में, *'वह जो'* का अर्थ है कोई भी व्यक्ति।
इससे यह संकेत मिलता है कि अब जो कुछ भी कहा जाएगा वह व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित होगा।
चार चीजों का अर्थ है चार सद्गुण।
सत्य का अर्थ है सच्ची वाणी, यह कहना कि: "मैं निकट आऊंगा," न कि झूठी वाणी बोलना, और फिर निश्चय ही आना, यही तुम्हारी सच्ची वाणी है।
बुद्धिमत्ता का अर्थ है खोजी बुद्धिमत्ता: "ऐसा करने के कारण निश्चित रूप से ऐसा ही होगा," यही आपकी खोजी बुद्धिमत्ता है।
साहस, इसे ही आपका निरंतर प्रयास कहा जाता है, यह आपका ही है।
दान का अर्थ है आत्म-बलिदान, स्वयं को त्यागकर मेरी उपस्थिति में आओ। लेकिन उसे पकड़ न पाने की गलती मेरी है।
शत्रु का अर्थ है विरोधी।
तुम्हारे जैसे व्यक्ति के पास ये चार गुण होने से, वह विजय प्राप्त करेगा, जैसे आज तुमने मुझे परास्त किया, वैसे ही वह अपने शत्रु को परास्त करेगा, उसे जीत लेगा।

और बोधिसत्व की इस प्रशंसा के साथ, मगरमच्छ अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ा।

गुरु ने कहा, "तो यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि देवदत्त मुझे मारने के लिए निकला है; उसने अतीत में भी ठीक ऐसा ही किया था।" और अपना पाठ समाप्त करते हुए, गुरु ने संबंध स्पष्ट करते हुए जातक की पहचान बताई: "देवदत्त उन दिनों का मगरमच्छ था, ब्राह्मण कन्या चिंचा मगरमच्छ की पत्नी थी, और मैं स्वयं वानर-राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खांति-वाणान-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-225-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 225
खांटी-वन्नाना-जातक

"एक आदमी है," इत्यादि – यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कोसल के राजा के बारे में सुनाई थी। राजा का एक बहुत ही उपयोगी अधीनस्थ हरम में षड्यंत्र रच रहा था। यद्यपि राजा अपराधी को जानता था, फिर भी उसने अपमान को सहन कर लिया, क्योंकि वह व्यक्ति उपयोगी था, और उसने गुरु को इसके बारे में बताया। गुरु ने कहा, "बहुत समय पहले अन्य राजाओं ने भी ऐसा ही किया था;" और उनके अनुरोध पर, उन्होंने आगे की कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उनके दरबार का एक सेवक राजा के हरम में षड्यंत्र रचने में सफल हो गया, और उसी दरबारी के एक सेवक ने उसके घर में वही काम किया। राजा को यह अपमान सहन नहीं हुआ। इसलिए उसने दूसरे सेवक को राजा के सामने लाकर कहा, "महाराज, मेरा एक सेवक है जो हर तरह का काम करता है, और उसने मुझे व्यभिचारी पत्नी का पति बताकर उपहास का पात्र बना दिया है: मुझे उसके साथ क्या करना चाहिए?" और इस प्रश्न के साथ उसने निम्नलिखित पहला श्लोक कहा-

मेरे घर में एक आदमी है, जो एक उत्साही सेवक भी है;

हे राजा! उसने मेरे विश्वास को धोखा दिया है! बताइए—मैं क्या करूँ?
यह सुनकर राजा ने दूसरा श्लोक कहा:-

"मेरे पास भी एक उत्साही सेवक है; और वह सचमुच यहाँ खड़ा है!"
मुझे लगता है कि अच्छे लोग बहुत कम मिलते हैं, इसलिए मेरी सलाह है कि धैर्य रखें।
दरबारी समझ गया कि राजा के ये शब्द उसी के लिए थे; और उसने भविष्य में राजा के घर में कोई कुकर्म करने का साहस नहीं किया। और सेवक को भी जब पता चला कि यह बात राजा को बता दी गई है, तो उसने भी भविष्य में ऐसा करने का साहस नहीं किया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने अपने जन्म का वर्णन किया: "मैं बनारस का राजा था।" इस अवसर पर दरबारी को पता चला कि राजा ने उसके बारे में गुरु को बताया था, और उसने फिर कभी ऐसा नहीं किया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोसीय-जातक2**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-226-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 226
कोसिया-जातक

"एक समय होता है," इत्यादि - जेतवन मठ में गुरु द्वारा कोसल के राजा के बारे में सुनाई गई एक कहानी। इस राजा ने वर्ष के एक बुरे मौसम में सीमा पर उठ रहे विद्रोह को दबाना शुरू किया। परिस्थितियाँ पहले ही वर्णित की जा चुकी हैं (*1)। गुरु ने पहले की तरह राजा को एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा युद्ध के मैदान के लिए असमय ही निकल पड़े और उन्होंने अपने उद्यान में डेरा डाला। उसी समय एक उल्लू बांस के घने जंगल में घुस गया और उसमें छिप गया। कौवों का एक झुंड आया और बोला, "जैसे ही वह बाहर आएगा, हम उसे पकड़ लेंगे।" और उन्होंने उल्लू को चारों ओर से घेर लिया। वह समय से पहले ही बाहर आ गया, उसने सूर्यास्त का इंतजार भी नहीं किया; और भागने की कोशिश करने लगा। कौवों ने उसे घेर लिया और अपनी चोंचों से तब तक चोंच मारी जब तक वह जमीन पर गिर नहीं गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा, "हे ज्ञानी, मुझे बताइए, कौवे इस उल्लू पर हमला क्यों कर रहे हैं?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे महाराज, जो लोग समय से पहले अपना निवास स्थान छोड़ देते हैं, वे ठीक इसी तरह के कष्ट भोगते हैं। इसलिए समय से पहले किसी को भी अपना निवास स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।" और बात स्पष्ट करने के लिए उन्होंने ये दो श्लोक कहे:

हर चीज़ का एक समय होता है: घर से कौन आगे जाएगा?
समय से परे, एक या अनेक व्यक्ति निश्चित रूप से किसी न किसी कष्ट का सामना करेंगे;
उल्लू का भी यही हाल हुआ, बेचारा पक्षी! कई कौवों ने उसे चोंच मारकर मार डाला।
जो प्रत्येक नियम और रीति-रिवाज में पूर्णतः पारंगत हो; जो दूसरों की कमजोरी को जानता हो;
बुद्धिमान उल्लुओं की तरह, वह प्रसन्न रहेगा और अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करेगा।
जब राजा ने यह सुना, तो वह वापस घर की ओर चल पड़ा।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा थे, और बुद्धिमान दरबारी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)संख्या (176) देखें

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 227
गुथा-पाना-जातक

"अच्छी तरह से मेल खाते थे," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अपने एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

उस समय, जेतवन मठ से लगभग तीन-चौथाई (*1) मील (x 4.23 किमी) दूर एक बाज़ार कस्बा था, जहाँ टिकट के ज़रिए बड़ी मात्रा में चावल बाँटा जाता था और विशेष भोजन दिया जाता था। यहाँ एक जिज्ञासु और उतावला व्यक्ति रहता था, जो दान में हिस्सा लेने आए युवकों और नौसिखियों को परेशान करता था—"ठोस भोजन कौन लेगा? पेय कौन लेगा? गीला भोजन कौन लेगा?" और जो लोग जवाब नहीं दे पाते थे, उन्हें वह शर्मिंदा कर देता था, और वे उससे इतना डरते थे कि उस गाँव में जाना भी नहीं चाहते थे।

एक दिन एक भिक्षु टिकट काउंटर पर आया और पूछा, "महोदय, फलाँ गाँव में बाँटने के लिए कोई भोजन है क्या?" उत्तर मिला, "जी हाँ, मित्र, लेकिन यहाँ एक बदतमीज़ आदमी सवाल पूछता रहता है; अगर आप उसका जवाब नहीं देते, तो वह गाली-गलौज और अपमान करता है। वह इतना उपद्रवी है कि कोई भी उस जगह के पास नहीं जाता।" दूसरे भिक्षु ने कहा, "महोदय, मुझे उस जगह का आदेश दीजिए, मैं उसे सबक सिखाऊँगा, उसे विनम्र बनाऊँगा और उस पर ऐसा प्रभाव डालूँगा कि इसके बाद जब भी वह आपको देखेगा, तो भाग जाने का मन करेगा।"

भिक्षुओं ने सहमति जताई और आवश्यक आदेश दिया। वह व्यक्ति हमारे गाँव की ओर चल पड़ा और गाँव के द्वार पर उसने अपना वस्त्र धारण किया। आवारा भिक्षु उसे देखता रहा—पागल मेढ़े की तरह उस पर झपट पड़ा और बोला, "हे भिक्षु जी, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए!" "हे भिक्षु, मुझे पहले गाँव में जाकर अपना शोरबा लाने दीजिए, फिर उसे लेकर प्रतीक्षा कक्ष में लौट आऊँगा।"

जब वह अपना भोजन लेकर लौटा, तो उस व्यक्ति ने अपना प्रश्न दोहराया। भाई ने उत्तर दिया, "मुझे अपना सूप खत्म करने दो, कमरा साफ करने दो और अपने टिकट के पैसे चावल लाने दो।" तो वह चावल ले आया; फिर अपना कटोरा उसी व्यक्ति के हाथों में रखते हुए उसने कहा, "आइए, अब मैं आपके प्रश्न का उत्तर देता हूँ।"

फिर वह उसे गाँव के बाहर ले गया, अपना बाहरी वस्त्र मोड़कर उसके कंधे पर रख दिया और दूसरे हाथ से कटोरा लेकर उसके आरंभ की प्रतीक्षा करने लगा। उस व्यक्ति ने कहा, "वरिष्ठ भिक्षु, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए।" "ठीक है, मैं उत्तर दूंगा," भिक्षु ने कहा; और एक ही प्रहार में उसे ज़मीन पर गिरा दिया, उसकी आँखों पर चोट पहुँचाई, उसे पीटा, उसके चेहरे पर गंदगी फेंकी और उसे डराने के लिए ये अंतिम शब्द कहकर चला गया, "यदि तुमने कभी फिर से इस गाँव में आने वाले किसी भी भिक्षु से कोई प्रश्न पूछा, तो मैं देख लूंगा!"

इसके बाद, वह किसी भाई को देखते ही भागने लगा।

कुछ समय बाद यह बात भिक्षुओं के बीच फैल गई। एक दिन वे सत्य के हॉल में इस बारे में बात कर रहे थे: "मित्र, मैंने सुना है कि फलां भिक्षु ने उस आवारा के चेहरे पर गंदगी फेंक दी और उसे वहीं छोड़ दिया!" गुरुजी अंदर आए और जानना चाहते थे कि वे सब किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब इस भिक्षु ने उस आदमी पर गंदगी फेंकी है, बल्कि उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, अंग और मगध राज्यों के वे नागरिक जो एक राज्य से दूसरे राज्य की यात्रा कर रहे थे, दोनों राज्यों की सीमाओं पर स्थित एक घर में ठहरते थे। वहाँ वे शराब पीते और मछली खाते थे, और सुबह सवेरे अपने रथों को जोतकर निकल जाते थे। उसी समय, गोबर की गंध से आकर्षित होकर एक गोबर का कीड़ा उस स्थान पर आया जहाँ उन्होंने शराब पी थी। उसने देखा कि कुछ शराब ज़मीन पर गिरी हुई है, और प्यास बुझाने के लिए उसने उसे पी लिया। फिर वह नशे में चूर होकर अपने गोबर के ढेर पर लौट आया। जब वह उस पर चढ़ा तो गीला गोबर थोड़ा सा धंस गया। "दुनिया मेरे भार को नहीं सुन सकती!" वह चिल्लाया। उसी क्षण एक क्रोधित हाथी

वहाँ आया, और गोबर की गंध से घृणा से वापस चला गया। कीड़े ने यह देखा। उसने सोचा, "एक प्राणी मुझसे डर रहा है, और देखो कैसे भाग रहा है! मुझे उससे लड़ना ही होगा!" और इसलिए उसने पहले श्लोक में उसे चुनौती दी:-

"बिल्कुल सही मुकाबला! क्योंकि हम दोनों ही नायक हैं: आइए यहाँ कोशिश करें:"
वापस मुड़ो, वापस मुड़ो, मेरे मित्र हाथी! तुम क्यों डरकर भाग रहे हो?
मगध और अंग (*2) देखें कि हमारी वीरता कितनी महान है!
हाथी ने सुना और आवाज़ सुनी; वह भृंग की ओर मुड़ा और फटकार के रूप में दूसरी पंक्ति बोली:-

मैं न तो पैर, न सूंड और न ही दांत का इस्तेमाल करूंगा।
तुम्हारे लिए तो सिर्फ मेरा गोबर और पेशाब ही काफी है।"
और फिर, उसने उस पर गोबर का एक बड़ा टुकड़ा गिराकर और पेशाब करके उसे वहीं मार डाला; और चिंघाड़ते हुए जंगल में भाग गया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म की पहचान बताई:- "उन दिनों, यह मूर्ख गोबर का कीड़ा था, प्रश्न में उल्लिखित भाई (भिक्षु) हाथी था, और मैं वृक्ष-परी थी जिसने वृक्षों के उस समूह से यह सब देखा।"

फुटनोट:

(1) गवुतद्धयोजनमत्ते। इसका संभवतः अर्थ 'आठवां' हो सकता है। (2) मगध और अंग - प्राचीन भारतीय राज्यों के नाम।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कामनिता-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-228-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 228
कामनिता-जातक

"तीन किले," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में कामनिता नामक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियों का वर्णन बारहवें ग्रंथ और काम-जातक (*1) में किया जाएगा।

बनारस के राजा के दो पुत्र थे। इन दोनों पुत्रों में से बड़ा पुत्र बनारस गया और राजा बन गया; छोटा पुत्र उपसराय बना। राजा धन-दौलत की लालसा, देह-वास और लाभ के लोभ में लिप्त हो गया।

उस समय बोधिसत्व, सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) के राजा थे। जब उन्होंने भारत पर नज़र डाली और देखा कि यहाँ का राजा वासनाओं में लिप्त है, तो उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं उस राजा को दंडित करूँगा और उसे लज्जित करूँगा।" अतः एक युवा ब्राह्मण का रूप धारण करके वे राजा के पास गए और उन्हें देखा।

"इस नौजवान को क्या चाहिए?" राजा ने पूछा।

उसने कहा, "महाराज, मुझे तीन नगर दिखाई दे रहे हैं, समृद्ध, उपजाऊ, जिनमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना बहुतायत में हैं, और जो सोने और शुद्ध सोने के आभूषणों से लदे हुए हैं। इन्हें एक छोटी सी सेना से भी जीता जा सकता है। मैं इन्हें आपके लिए प्राप्त करने का प्रस्ताव लेकर आया हूँ!"

"हम कब चलेंगे, हे युवक?" राजा ने पूछा।

"कल, महाराज।"

"तो अब मुझे छोड़ दो; कल सुबह जल्दी चले जाना।"

"अच्छा, महाराज: जल्दी से जाइए और सेना तैयार कीजिए!" इतना कहकर सक्का (इंद्र) अपने स्थान पर लौट गए।

अगले दिन राजा ने ढोल बजवाया और सेना तैयार करवाई; और अपने दरबारियों को बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा:-

"कल एक युवक ब्राह्मण आया और उसने कहा कि वह मेरे लिए तीन नगरों - उत्तरा पंचाल, इंद्रप्रस्थ और केकका - को जीत लेगा। इसीलिए अब हम उस व्यक्ति के साथ चलेंगे और उन नगरों को जीत लेंगे। उसे शीघ्र बुलाओ!"

"हे स्वामी, आपने उसे रहने के लिए कौन सा स्थान दिया था?"

राजा ने कहा, "मैंने उसे रहने के लिए कोई जगह नहीं दी।"

"लेकिन आपने ही तो उसे रहने की जगह का किराया चुकाने के लिए पैसे दिए थे!"

"नहीं, वो भी नहीं।"

"तो फिर हम उसे कैसे ढूंढेंगे?"

राजा ने कहा, "उसे शहर की गलियों में ढूंढो।"

उन्होंने उसे ढूंढा, लेकिन वह नहीं मिला। इसलिए वे राजा के सामने आए और उससे कहा, "हे राजा, हमें वह दिखाई नहीं दे रहा है।"

राजा पर गहरा शोक छा गया। "मुझसे कितनी महिमा छीन ली गई है!" वह विलाप करने लगा; उसका हृदय प्रचंड हो गया, उसका रक्त संक्षारण करने लगा, उसे पेचिश हो गई, चिकित्सक उसका इलाज नहीं कर सके।

तीन-चार दिन बीतने के बाद, सक्का (इंद्र) ने ध्यान किया और उनकी बीमारी के बारे में चिंतित हुए। उन्होंने कहा, "मैं इसे ठीक कर दूंगा," और एक ब्राह्मण के वेश में जाकर उनके दरवाजे पर खड़े हो गए। उन्होंने राजा से कहा, "एक ब्राह्मण चिकित्सक आपका इलाज करने आया है।"

यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया, "राज दरबार के सभी महान चिकित्सक मुझे ठीक नहीं कर पाए हैं। इसे शुल्क दीजिए और इसे जाने दीजिए।" सक्का (इंद्र) ने सुना और उत्तर दिया, "मुझे अपने रहने के लिए भी पैसे नहीं चाहिए, न ही मैं अपने उपचार के लिए कोई शुल्क लूँगा। मैं इसे ठीक कर दूँगा: राजा मुझे देख लें!"

“तो उसे अंदर आने दो,” राजा ने यह संदेश पाकर कहा। तब इंद्र अंदर गए और राजा की विजय की कामना करते हुए एक तरफ बैठ गए। राजा ने पूछा, “क्या तुम मेरा इलाज करोगे?”

उन्होंने उत्तर दिया, "जी हां, मेरे स्वामी।"

"तो फिर मेरा इलाज करो!" राजा ने कहा।

"बहुत अच्छा, महाराज। मुझे अपनी बीमारी के लक्षण बताइए, और यह कैसे शुरू हुई, आपने ऐसा क्या खाया या पिया है जिससे यह बीमारी हुई हो, या आपने क्या सुना या देखा हो।"

"प्रिय मित्र, मेरी बीमारी मुझे किसी सुनी हुई बात के कारण हुई है।"

फिर दूसरे ने पूछा, "यह क्या था?"

"प्रिय महोदय, एक युवक ब्राह्मण आया और उसने मुझे तीन नगरों पर अधिकार दिलाने का प्रस्ताव दिया; मैंने उसे न तो रहने की जगह दी और न ही किसी नगर के लिए धन। वह मुझसे क्रोधित होकर किसी दूसरे राजा के पास चला गया होगा। इसलिए जब मैंने सोचा कि मुझसे कितना बड़ा गौरव छीन लिया गया है, तो मुझे यह रोग लग गया; यदि आप कर सकते हैं, तो इस रोग, अधिकार की लालसा, का निवारण कीजिए।" और बात स्पष्ट करने के लिए उसने पहला श्लोक कहा:-

"तीन किले, जिनमें से प्रत्येक एक ऊंचे पर्वत पर बना हुआ है,"
मैं लेना चाहता हूँ, जिनके नामों का वर्णन मैं यहाँ करता हूँ (*2):
और मुझे एक और चीज की जरूरत है--
हे ब्राह्मण, मुझे लोभ के गुलाम से मुक्ति दिलाओ!
तब इंद्र ने कहा, "हे राजा, जड़ों से बनी औषधियों से आपका इलाज नहीं हो सकता, बल्कि सरल ज्ञान से ही आपका इलाज हो सकता है।" और उन्होंने दूसरा श्लोक इस प्रकार कहा:

"ऐसे लोग भी हैं जो काले सांप के काटने का इलाज करते हैं।"
बुद्धिमान लोग राक्षसों द्वारा किए गए घावों को भर सकते हैं।
लोभ के गुलाम को कोई डॉक्टर ठीक नहीं कर सकता;
भटकती आत्मा का क्या इलाज है?
इस प्रकार महान सत्ता ने अपने विचार को स्पष्ट करते हुए कहा, और आगे यह भी कहा: "हे राजा, यदि आपको वे तीन नगर प्राप्त हो जाएँ, तो क्या आप इन चार नगरों पर शासन करते हुए एक साथ चार वस्त्र धारण कर सकते हैं, चार स्वर्णमय थालियों में भोजन कर सकते हैं और चार राजसी पलंगों पर लेट सकते हैं? हे राजा, मनुष्य को कामवासना के वश में नहीं होना चाहिए। कामवासना समस्त बुराई की जड़ है; जब कामवासना बढ़ जाती है, तो उसे पालने वाला आठ महान नरकों, सोलह निम्नतम नरकों और सर्वथा प्रकार के दुखों में डाल दिया जाता है।" इस प्रकार महान सत्ता ने राजा को नरक और दुख के भय से भयभीत किया और उन्हें उपदेश दिया। उनके उपदेशों को सुनकर राजा का हृदयविदारक विदारक हो गया और क्षण भर में ही वह रोगमुक्त हो गया। सक्का (इंद्र) ने उन्हें शिक्षा देकर और उन्हें सद्‌गुणों में स्थापित करके देवदूतों के लोक में प्रस्थान किया। तब से राजा ने दान-पुण्य किया और अच्छे कार्य किए, और अपने कर्मों के फल के अनुसार ही उनका निधन हुआ।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "वह भाई (भिक्षु) जो अपनी इच्छाओं का गुलाम था, उस समय राजा था; और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1)सं. 467.

(2) पांचाल, कुरु और केकक के नाम दिए गए हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> पलयी - **जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-229-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 229
पालयी-जातक

"देखो, मेरे हाथी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो घूमने-फिरने और सुख-सुविधाओं की तलाश में रहता था।

वे तर्क-वितर्क करने के उद्देश्य से पूरे भारत में विचरण करते रहे, लेकिन उन्हें कोई भी विरोध करने वाला नहीं मिला। अंत में वे श्रावस्ती नगर पहुँचे और पूछा कि क्या यहाँ कोई ऐसा है जो उनसे तर्क कर सके? लोगों ने कहा, "एक ऐसा है जो हज़ारों लोगों से भी तर्क कर सकता है - सर्वज्ञानी, पुरुषों के श्रेष्ठ, शक्तिशाली गौतम (बुद्ध), धर्म के स्वामी, जो सभी विरोधों को कुचल देते हैं, पूरे भारत में कोई भी ऐसा विरोधी नहीं है जो उनसे बहस कर सके। जैसे लहरें तट से टकराती हैं, वैसे ही सभी तर्क उनके चरणों में आकर चूर-चूर हो जाते हैं।" इस प्रकार उन्होंने बुद्ध के गुणों का वर्णन किया।

“वह अब कहाँ हैं?” भिक्षु ने पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि वे जेतवन मठ में हैं। “अब मैं उनसे बहस करूँगा!” भिक्षु ने कहा। इस प्रकार, एक विशाल जनसमूह के साथ वे जेतवन मठ की ओर चल पड़े। राजकुमार जेत द्वारा 90 करोड़ रुपये की लागत से निर्मित जेतवन मठ के द्वार-शिलाओं को देखकर उन्होंने पूछा कि क्या यह वही महल है जहाँ वरिष्ठ भिक्षु गौतम (बुद्ध) निवास करते थे? उन्होंने कहा, “यह उसका प्रवेश द्वार है।” “यदि यह प्रवेश द्वार है, तो वहाँ का जीवन कैसा होगा!” वे चिल्लाए। “सुगंधित कक्षों का तो कोई अंत ही नहीं है!” लोगों ने कहा। “ऐसे वरिष्ठ भिक्षु से भला कौन बहस कर सकता है?” उन्होंने पूछा; और तुरंत वहाँ से चले गए।

भीड़ खुशी से चिल्ला उठी और पार्क में उमड़ पड़ी। गुरु ने पूछा, "तुम लोग समय से पहले यहाँ क्यों आ गए हो?" उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई। गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, हे मनुष्यों, कि वह मेरे जीवन के द्वार को देखते ही भाग गया। उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" और उनके अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, गांधार राज्य (अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट, कंधार सहित) के तक्षशिला में बोधिसत्व राजा थे, और बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे। ब्रह्मदत्त ने तक्षशिला पर कब्जा करने का निश्चय किया; इसी कारण वे एक विशाल सेना लेकर निकले और शहर से कुछ दूरी पर एक स्थान पर तैनात होकर अपनी सेना को व्यवस्थित किया: "यहाँ हाथी, यहाँ घोड़े, यहाँ रथ और यहाँ पैदल सैनिक: इस प्रकार आक्रमण करो और अपने हथियारों से प्रहार करो; जैसे बादल वर्षा बरसाते हैं, वैसे ही तुम बाणों की वर्षा करो!" और उन्होंने ये दो श्लोक कहे:-

"देखो, मेरे हाथी और घोड़े, आकाश में तूफानी बादल की तरह!"
देखो, मेरे रथों का विशाल सागर आसमान में तीरों की बौछार कर रहा है!
देखो, मेरे योद्धाओं की सेना, हाथों में तलवार लिए, प्रहार और प्रहार करते हुए,
शहर की ओर बढ़ते हुए, जब तक उनके प्रतिद्वंद्वी धूल चाट न लें!
"उन पर टूट पड़ो—उन पर टूट पड़ो! युद्धघोष करो—जोर से गाओ!"
जब हाथी एक साथ मिलकर कर्कश आवाज में चिंघाड़ते हैं!
जैसे ही आकाश में बिजली और गरज चमकती है और गड़गड़ाहट होती है,
तो अब अपनी आवाज बुलंद करो और एक बुलंद, लंबी युद्धघोषणा करो!
राजा ने पुकार लगाई। उसने अपनी सेना को आगे बढ़ाया और नगर के द्वार पर पहुँचा। जब उसने द्वार पर बने बुर्ज देखे, तो उसने पूछा कि क्या राजा का निवास स्थान वही है? उन्होंने कहा, "वह द्वार बुर्ज है।" राजा ने पूछा, "यदि द्वार बुर्ज ऐसा है, तो राजा का महल कैसा होगा?" उन्होंने उत्तर दिया, "सक्का (इंद्र) के महल वेजयंत जैसा!" यह सुनकर राजा ने कहा, "इतने महान राजा से हम कभी लड़ नहीं पाएँगे!" और द्वार पर बने बुर्ज को देखे बिना ही वह मुड़कर भाग गया और बनारस लौट आया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "हमारा भिक्षु सुख-साधक उस समय बनारस का राजा था, और मैं स्वयं तक्षशिला का राजा था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दुतिया-पालयी-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-230-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 230
दुतिया-पालयी-जातक

"मेरे अनगिनत ध्वज हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए इसी सुख-साधक भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

उस समय, गुरु बुद्ध अपने चारों ओर एक विशाल मंडली के साथ, लाल मंच पर बने सत्य के सुंदर सिंहासन पर विराजमान थे और एक युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए प्रवचन दे रहे थे। भिक्षु ने बुद्ध के ब्रह्मा स्वरूप, पूर्णिमा के चंद्रमा की चमकीली ज्योति और सोने की थाली

जैसे माथे को देखकर, जहाँ से वे आए थे वहीं से मुड़कर भीड़ के बीच से भागते हुए कहा, "इस तरह के व्यक्ति को कौन पराजित कर सकता है?"

भीड़ उसका पीछा करने लगी, फिर लौटकर गुरु को बताया। उन्होंने कहा, "यह भिक्षु न केवल मेरे सुनहरे चेहरे को देखते ही भाग गया, बल्कि पहले भी ऐसा ही कर चुका है।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व बनारस के राजा थे, और तक्षशिला में गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) का एक राजा शासन करता था। बनारस पर कब्जा करने की इच्छा से, वह चार टुकड़ियों की पूरी सेना के साथ शहर को घेरने गया। शहर के द्वार पर खड़े होकर, उसने अपनी सेना को देखा और कहा, "इतनी बड़ी सेना को कौन जीत सकता है?" और अपनी सेना का वर्णन करते हुए, उसने पहला श्लोक कहा:-

मेरे झंडे अनगिनत हैं, लेकिन उनका कोई मुकाबला नहीं है।
कौवों के झुंड कभी भी उमड़ते समुद्र को रोक नहीं सकते--
तूफान की तेज हवा कभी पहाड़ को नहीं गिरा सकती:-
इसलिए, जीवित प्राणियों में से कोई भी मुझे पराजित नहीं कर सकता!
तब बोधिसत्व ने पूर्णिमा के चंद्रमा के समान अपनी शानदार शांति प्रकट की; और उसे धमकाते हुए कहा, "मूर्ख, व्यर्थ की बातें मत करो! अब मैं तुम्हारी सेना को उसी प्रकार नष्ट कर दूंगा, जैसे एक क्रोधित हाथी सरकंडों की घनी वनस्पति को कुचल देता है!" और उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

"मूर्ख! क्या तुम्हें अभी तक कोई प्रतिद्वंदी नहीं मिला?"
अगर तुम चोट पहुँचाने की कोशिश करोगे तो तुम बुखार से तड़प रहे हो।
मुझ जैसे एकाकी, जंगली हाथी!
जैसे वे सरकंडे को कुचलते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें कुचल दूंगा!
जब गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा ने उसे इस प्रकार धमकी देते हुए सुना, तो उसने ऊपर देखा, और उसके चौड़े माथे को सोने की थाली के समान देखकर, स्वयं पकड़े जाने के भय से वह मुड़कर भाग गया, और वापस अपने नगर में आ गया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद की तलाश में भटकने वाला व्यक्ति गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) का राजा था, और बनारस का राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उपाहण-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-231-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 231
उपाहना-जातक

"जैसे जूतों का जोड़ा," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई। भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और इस विषय पर चर्चा करने लगे। "मित्र, देवदत्त ने अपने गुरु का खंडन करके तथागत (बुद्ध) का प्रतिद्वंद्वी और शत्रु बनकर पूर्णतः विनाश को प्राप्त हुआ है।" गुरु अंदर आए और बैठे-बैठे उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरु को बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने अपने गुरु का खंडन करके मेरा शत्रु बनकर पूर्णतः विनाश को प्राप्त किया है। ऐसा पहले भी हो चुका है।" फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक हाथी प्रशिक्षक के पुत्र के रूप में पैदा हुए। बड़े होकर उन्हें हाथी पालन की सारी कला सिखाई गई। तभी काशी से एक युवक आया और उसने भी उनसे शिक्षा प्राप्त की। भविष्य के बुद्ध जब किसी को शिक्षा देते हैं, तो वे ज्ञान में कंजूसी नहीं करते; बल्कि अपने ज्ञान के अनुसार ही सिखाते हैं, कुछ भी नहीं छिपाते। इस प्रकार उस युवक ने बोधिसत्व से ज्ञान की सभी शाखाएँ बिना किसी चूक के सीखीं; और जब उसने सब कुछ सीख लिया, तो उसने अपने गुरु से कहा:

"गुरुजी, मैं जाकर राजा की सेवा करूंगा।"

“अच्छा, मेरे पुत्र,” उन्होंने कहा और राजा के सामने जाकर उन्हें बताया कि उनका एक शिष्य राजा की सेवा करेगा। राजा ने कहा, “अच्छा, उसे मेरी सेवा करने दो।” “तो क्या तुम जानते हो कि कितना शुल्क देना है?” बोधिसत्व ने पूछा।

“तुम्हारे शिष्य को उतना नहीं मिलेगा जितना तुम्हें; यदि तुम सौ दो दो दो दो दो, तो उसे एक ही दोगे।” अतः बोधिसत्व घर गए और अपने शिष्य को यह सब बताया।

“गुरुजी,” युवक ने कहा, “मैं आपका सारा ज्ञान, एक-एक करके जानता हूँ। यदि मुझे उतना ही वेतन मिले, तो मैं राजा की सेवा करूँगा; परन्तु यदि नहीं, तो मैं उनकी सेवा नहीं करूँगा।” यह बात बोधिसत्व ने राजा को बताई। राजा ने कहा,

“यदि वह युवक आपके समान ही कौशल प्रदर्शित कर सके—यदि वह आपके साथ कौशल में निपुण हो, तो उसे भी वैसा ही सम्मान प्राप्त होगा।” बोधिसत्व ने यह बात अपने शिष्य से कही, और शिष्य ने उत्तर दिया, “बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।” राजा ने कहा, “कल तुम अपने कौशल का प्रदर्शन करना।” “अच्छा, मैं करूँगा; ढोल बजाकर घोषणा करवाओ।” और राजा ने घोषणा करवाई, “कल गुरु और शिष्य हाथी को संभालने में अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे। कल जो भी देखना चाहें, महल के प्रांगण में एकत्रित हों और इसे देखें।”

शिक्षक ने मन ही मन सोचा, "मेरा शिष्य मेरे सारे ज्ञान का उपयोग नहीं करता।" इसलिए उसने एक हाथी को चुना और एक ही रात में उसे सब कुछ उल्टा-पुल्टा करना सिखा दिया। उसने उसे आगे बढ़ने को कहने पर पीछे हटना और पीछे हटने को कहने पर आगे बढ़ना सिखाया; उठने को कहने पर लेटना और लेटने को कहने पर उठना सिखाया; उठाने को कहने पर गिराना और गिराने को कहने पर उठाना सिखाया।

अगले दिन, अपने हाथी पर सवार होकर वह महल के प्रांगण में आया। उसका शिष्य भी वहाँ एक सुंदर हाथी पर सवार था। वहाँ लोगों की एक बड़ी सभा थी। दोनों ने अपनी-अपनी कुशलता का प्रदर्शन किया। परन्तु बोधिसत्व ने अपने हाथी को उलटा आदेश दिया; "आगे बढ़ो!" उसने कहा, और वह पीछे हट गया; "पीछे हटो!" और वह आगे दौड़ा; "खड़े हो जाओ!" और वह लेट गया; "लेट जाओ!" और वह खड़ा हो गया; "उठाओ!" और उस प्राणी ने उसे गिरा दिया; "छोड़ दो!" और उसने उसे उठा लिया। और भीड़ चिल्लाई, "चले जाओ, बदमाश! अपने गुरु के विरुद्ध आवाज़ मत उठाओ! तुम अपनी औकात नहीं जानते, और सोचते हो कि तुम उससे मुकाबला कर सकते हो!" और उन्होंने उस पर पत्थर और लाठियों से हमला किया, जिससे उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई। और बोधिसत्व अपने हाथी से नीचे उतरे, और राजा के पास जाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे महान राजा! लोगों को उनकी भलाई के लिए ही शिक्षा दी जानी चाहिए; परन्तु एक ऐसा भी था जिसके लिए उसका ज्ञान कष्ट लेकर आया, जैसे कोई खराब बना जूता;" और उसने ये दो पंक्तियाँ कहीं:-

जैसे कि जब कोई व्यक्ति जूते का एक जोड़ा खरीदता है
क्योंकि सहायता और सांत्वना तो केवल दुख ही लाती हैं।
पैरों को तब तक खुजलाना जब तक वे बहुत गर्म न हो जाएं
और समय आने पर उनसे स्राव निकलने लगता है:
फिर भी एक नीच, घृणित व्यक्ति,
आपसे वह सब कुछ सीख लेने के बाद जो वह सीख सकता है,
आपकी स्वयं की शिक्षा ही आपकी कमजोरी को सिद्ध करती है।
नीच जाति का देहाती आदमी खराब ढंग से बने जूते के समान होता है।
राजा प्रसन्न हुआ और उसने बोधिसत्व का भरपूर सम्मान किया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने इस जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "देवदत्त शिष्य थे, और मैं स्वयं गुरु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विण-थुन-जातक**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-232-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 232
वीना-थुना-जातक

"तुम्हारा अपना विचार," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक युवती के बारे में सुनाई थी।

वह श्रावस्ती नगर के एक धनी व्यापारी की इकलौती पुत्री थी। उसने देखा कि उसके पिता के घर में एक उत्तम बैल को लेकर बहुत धूमधाम हो रही है, और उसने अपनी दाई से पूछा कि इसका क्या अर्थ है। "दाई, यह कौन सा बैल है जिसका इतना सम्मान किया जा रहा है?" दाई ने उत्तर दिया कि यह सचमुच एक शाही बैल है।

एक दिन वह ऊपरी मंजिल से सड़क पर देख रही थी, तभी अचानक उसकी नज़र एक कुबड़ा आदमी पर पड़ी। उसने सोचा, "गाय-गाय के झुंड में मुखिया का कुबड़ा होता है। शायद पुरुषों में भी ऐसा ही होता है। वह ज़रूर कोई महान और रईस आदमी होगा, और मुझे जाकर उसकी विनम्र अनुयायी बनना चाहिए।" इसलिए उसने अपनी दासी को यह बताने के लिए भेजा कि व्यापारी की बेटी उससे जुड़ना चाहती है, और उसे एक निश्चित स्थान पर उसका इंतज़ार करना है। उसने अपना सारा सामान इकट्ठा किया और भेष बदलकर महल से निकलकर उस कुबड़े आदमी के साथ चली गई।

कुछ समय बाद यह बात कस्बे में और भिक्षु समुदाय में फैल गई। सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने इसके अर्थों पर चर्चा की: "मित्र, एक व्यापारी की बेटी एक कुबड़ा आदमी के साथ भाग गई है!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे सब आपस में क्या बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि वह किसी कुबड़ा आदमी के प्यार में पड़ी है। उसने पहले भी ऐसा किया था।" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब एक बाज़ार कस्बे में एक धनी परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया और पुत्र-पुत्रियों की संतान प्राप्ति हुई। अपने पुत्र की पत्नी के रूप में उन्होंने बनारस के एक धनी नागरिक की पुत्री का चयन किया और विवाह का दिन निर्धारित किया।

फिर उस लड़की ने अपने घर में एक बैल को सम्मान और श्रद्धा अर्पित करते देखा। उसने अपनी दाई से पूछा, "यह क्या है?" दाई ने कहा, "एक शाही बैल।" इसके बाद लड़की ने गली से एक कुबड़ा आदमी जाते देखा। उसने सोचा, "यह तो ज़रूर कोई शाही आदमी होगा!" और अपने कीमती सामान का एक गट्ठा लेकर वह उसके साथ चली गई।

बोधिसत्व भी उस लड़की को घर लाने की इच्छा से एक बड़े समूह के साथ बनारस के लिए निकल पड़े; और उन्होंने उसी रास्ते से यात्रा की।

दोनों रात भर सड़क पर चलते रहे। रात भर कुबड़ा प्यास से बेहाल रहा; और सूर्योदय होते ही उसे पेट में तेज दर्द होने लगा। दर्द से बेहाल होकर वह सड़क से उतर गया और टूटे हुए वीणा के डंडे की तरह सिकुड़कर गिर पड़ा; लड़की भी उसके चरणों में बैठ गई। बोधिसत्व ने उसे कुबड़े के चरणों में बैठे देखा और पहचान लिया। पास आकर उन्होंने उससे बात की और पहला श्लोक दोहराया:

"यह तुम्हारा ही विचार है! यह मूर्ख व्यक्ति बिना मार्गदर्शक के हिल भी नहीं सकता।"
यह मूर्ख कुबड़ा! तुम्हारे लिए इसके साथ रहना उचित नहीं है।"
और उसकी आवाज सुनकर लड़की ने दूसरे छंद में उत्तर दिया:-

"मैंने कुबड़ा आदमी को पुरुषों का राजा समझा और उसकी खूबियों के कारण उससे प्यार किया।"

जो टूटे तारों वाले वीणा की तरह धरती पर दुबका पड़ा है।
और जब बोधिसत्व को पता चला कि वह केवल भेस बदलकर उनके पीछे आई है, तो उन्होंने उसे स्नान कराया, उसे सजाया-संवारा और उसे अपने रथ में बिठाकर अपने घर ले गए।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "दोनों ही मामलों में लड़की एक ही है; और बनारस का व्यापारी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विकांकक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-233-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 233
विकननाका-जातक

"तुम्हारी पीठ में कांटा चुभा हुआ है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

उन्हें सत्य के हॉल में लाया गया और पूछा गया कि क्या वे सचमुच पथभ्रष्ट हो रहे हैं; उन्होंने हाँ में उत्तर दिया। जब उनसे कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा, "इच्छा के गुण के कारण।" गुरु ने कहा, "इच्छा हृदय में प्रवेश करने के लिए दो नुकीले तीरों के समान है; एक बार वहाँ पहुँच जाने पर, वे मार डालते हैं, जैसे नुकीले तीरों ने मगरमच्छ को मार डाला।" फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व बनारस के राजा थे, और वे एक अच्छे राजा थे। एक दिन वे अपने उद्यान में गए और एक झील के किनारे पहुँचे। वहाँ नृत्य और गायन में निपुण लोग नाचने-गाने लगे। मछलियाँ और कछुए गीत की ध्वनि सुनने के लिए उत्सुक होकर झुंड बनाकर राजा के साथ चलने लगे। राजा ने ताड़ के तने के बराबर मछलियों का एक बड़ा समूह देखकर अपने दरबारियों से पूछा,

"अब ये मछलियाँ मेरा पीछा क्यों कर रही हैं?"

दरबारियों ने कहा, "वे अपने स्वामी को अपनी सेवाएं अर्पित करने आ रहे हैं।"

यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ कि वे उसकी सेवा करने आए हैं, और उसने उन्हें नियमित रूप से चावल देने का आदेश दिया। भोजन के समय कुछ मछलियाँ आईं और कुछ नहीं आईं; इस प्रकार चावल बर्बाद हो गया। उन्होंने राजा को यह बात बताई। राजा ने कहा, “अब से, चावल देने के समय ढोल बजाया जाए; और ढोल की ध्वनि पर, जब मछलियाँ इकट्ठा हों, तो उन्हें भोजन दिया जाए।” तब से, भोजन देने वाला ढोल बजाता था, और जब मछलियाँ इकट्ठा होती थीं, तो उन्हें चावल देता था। जब वे इस प्रकार भोजन कर रही थीं, तभी एक मगरमच्छ आया और कुछ मछलियों को खा गया। भोजन देने वाले ने राजा को यह बात बताई। राजा ने सुना। उसने कहा, “जब मगरमच्छ मछलियाँ खा रहा हो, तो उसे भाले से मार कर पकड़ लेना।”

“अच्छा,” उस आदमी ने कहा। और वह एक नाव पर सवार हो गया, और जैसे ही मगरमच्छ मछली खाने आया, उसने उसे भाले से घायल कर दिया। भाला उसकी पीठ में जा लगा। दर्द से पागल होकर मगरमच्छ भाला लेकर भाग गया। उसे घायल देखकर, मछली खिलाने वाले ने उससे इस प्रकार कहा:

"तुम्हारी पीठ में कांटा चुभा हुआ है, अब तुम जहां चाहो जा सकते हो।"
ढोल की थाप, मेरी मछलियों को भोजन के लिए बुला रही है,
तुम्हें लाया, पीछा करते हुए, लालची, रास्ते में
जिसकी वजह से आप भी अपनी सबसे बड़ी जरूरत की स्थिति में आ गए।
जब मगरमच्छ अपने ठिकाने पर पहुंचा तो उसकी मौत हो गई।

इस विषय को समझाने के लिए, पूर्णतः प्रबुद्ध गुरु ने दूसरा श्लोक इस प्रकार कहा:

इसलिए, जब दुनिया किसी भी व्यक्ति को पाप करने के लिए लुभाती है
जो अपने विवेक और इच्छा के सिवा कोई कानून नहीं जानता,
वह अपने दोस्तों और परिवार के बीच ही अंतिम सांस लेता है।
ठीक वैसे ही जैसे मगरमच्छ ने मछली को खा लिया था।
जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (समाधि) तक पहुँच गया: "उन दिनों मैं बनारस का राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> असिताभू - **जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-234-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 234
असिताभु-जातक

"अब इच्छा समाप्त हो गई है," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक युवती के बारे में सुनाई थी।

परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती नगर में गुरु के दो प्रमुख शिष्यों के सेवक एक व्यक्ति की एक सुंदर और सुखी पुत्री थी। जब वह बड़ी हुई, तो उसका विवाह एक ऐसे परिवार में हुआ जो उसके अपने परिवार के समान ही था। उसका पति बिना किसी से सलाह लिए अपनी इच्छा से कहीं और मौज-मस्ती करता था। उसने उसके इस अनादर पर ध्यान नहीं दिया; बल्कि उसने दो प्रमुख शिष्यों को आमंत्रित किया, उन्हें उपहार दिए और उनके उपदेश सुने, यहाँ तक कि उसने प्रथम मार्ग का फल (सम्मोहन) प्राप्त कर लिया। इसके बाद उसने अपना सारा समय मार्ग और फल के आनंद में व्यतीत किया; अंत में, यह सोचकर कि उसके पति को उसकी आवश्यकता नहीं है, उसे गृहस्थ जीवन में रहने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसने धार्मिक जीवन अपनाने का निश्चय किया। उसने अपने माता-पिता को अपनी योजना के बारे में बताया, उसे पूरा किया और एक संत बन गई।

उसकी कहानी भिक्षुओं के बीच फैल गई; और एक दिन वे सत्य के हॉल में इस पर चर्चा कर रहे थे। "मित्र, फलाँ परिवार की पुत्री ने सर्वोच्च कल्याण प्राप्त करने का प्रयास किया। जब उसने देखा कि उसका पति उसकी परवाह नहीं करता, तो उसने प्रमुख शिष्यों को बहुमूल्य उपहार दिए, उनके उपदेश सुने और प्रथम मार्ग का फल (सन्यास) प्राप्त किया; उसने अपने माता-पिता से विदा ली, एक तपस्वी बन गई और फिर एक संत बन गई। अतः, मित्र, उस कन्या ने सर्वोच्च कल्याण की खोज की।"

जब वे बातें कर रहे थे, तभी गुरुजी अंदर आए और पूछा कि आखिर बात क्या है। उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं) यह पहली बार नहीं है कि वह सर्वोच्च लक्ष्य की खोज कर रही है; पुराने समय में भी वह ऐसा ही करती थी।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हिमालय क्षेत्र में एक तपस्वी के रूप में रह रहे थे और उन्होंने अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को संजोया था। तब बनारस के राजा ने अपने पुत्र राजकुमार ब्रह्मदत्त की भव्यता को देखकर संदेह किया और अपने पुत्र को राज्य से निर्वासित कर दिया।

वह युवक अपनी पत्नी असितभु के साथ हिमालय की ओर चल पड़ा और पत्तों की झोपड़ी में रहने लगा। वहाँ खाने के लिए मछली और तरह-तरह के जंगली फल थे। उसने एक वन परी को देखा और उस पर मोहित हो गया। उसने कहा, "मैं उसे अपनी पत्नी बनाऊँगा!" और असितभु के बारे में सोचे बिना, वह उसके पीछे चल पड़ा। उसकी पत्नी ने उसे परी के पीछे जाते देखकर क्रोधित हो गई। उसने सोचा, "यह आदमी मेरी परवाह नहीं करता; मुझे इससे क्या लेना-देना है?" इसलिए वह बोधिसत्व के पास आई और उन्हें प्रणाम किया।

उसने दीक्षा प्राप्त करने के लिए आवश्यक बातें सीखीं और उस रहस्यमय वस्तु को निहारते हुए अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को विकसित किया। उसने बोधिसत्व को विदाई दी और लौटकर अपनी पत्तों की झोपड़ी के द्वार पर खड़ी हो गई।

ब्रह्मदत्त परी के पीछे-पीछे गया, पर वह यह नहीं देख पाया कि वह किस रास्ते से जा रही है; और अपनी इच्छा को दबाते हुए उसने फिर से कुटिया की ओर रुख किया। असितभु ने उसे आते देखा और हवा में ऊपर उठी; और एक कीमती पत्थर के रंग के समतल पर स्थिर होकर उसने उससे कहा—"मेरे युवा स्वामी! आपके कारण ही मुझे यह परमानंद प्राप्त हुआ है!" और उसने पहला श्लोक कहा:-

अब इच्छा समाप्त हो गई है,
आपकी बदौलत, मुझे इसका अंत मिल गया:
जैसे हाथीदांत को एक बार काट देने पर,
इसे मरम्मत करके कोई भी इसे एक नहीं बना सकता।
ऐसा कहते हुए, उसने देखा और वह उठकर दूसरी जगह चली गई। और उसके जाने के बाद, उसने शोक व्यक्त करते हुए दूसरा छंद कहा:

"लालच जिसकी कोई सीमा नहीं होती,"
वासना, सारी इंद्रियों को भ्रमित कर देती है,
हमारी अच्छी चीजें चुरा लेता है,
अब तो मैं अपनी पत्नी को भी खो रहा हूँ।"
और इस श्लोक में अपना विलाप करने के बाद, वह जंगल में अकेले रहने लगा, और अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे शासन करने की शक्ति प्राप्त हुई।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "ये दोनों व्यक्ति राजकुमार और राजकुमारी थे, और मैं संन्यासी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वाचा-नख-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-235-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 235
वच्च-नख-जातक

"संसार में घर प्यारे होते हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रोजा मल्लियन के बारे में सुनाई थी।

हमें पता चलता है कि आनंद के एक गृहस्थ मित्र ने, जो स्वयं भी आनंद का मित्र था, वरिष्ठ भिक्षु को संदेश भेजा कि वह उसके पास आए। वरिष्ठ भिक्षु ने गुरु से विदा ली और चले गए। उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु को तरह-तरह के भोजन परोसे और एक तरफ बैठकर उनसे सुखद वार्तालाप किया। फिर उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु को अपने घर में रहने का प्रस्ताव दिया और उन्हें पांच प्रकार की इच्छाओं का प्रलोभन दिया। "आनंद, मेरे घर में बहुत से जीवित और मृत पशु हैं। मैं उन्हें बाँटकर आधा आपको दे दूँगा; आइए हम एक ही घर में साथ रहें!" वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें इच्छाओं से उत्पन्न कष्टों के बारे में समझाया; फिर वे अपनी जगह से उठे और मठ लौट गए।

जब गुरु ने पूछा कि क्या उसने रोजा को देखा है, तो उसने कहा कि उसने देखा है। "उसने तुमसे क्या कहा?" "गुरु, रोजा ने मुझे संसार में लौटने का निमंत्रण दिया; तब मैंने उसे इच्छाओं और सांसारिक जीवन में निहित कष्टों के बारे में बताया।" गुरु ने कहा, "आनंद, यह पहली बार नहीं है कि रोजा मल्लियन ने संन्यासियों को संसार में लौटने का निमंत्रण दिया है; उसने पहले भी ऐसा किया था;" और फिर, उसके अनुरोध पर, उन्होंने प्राचीन काल की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक ब्राह्मण परिवार के सदस्य थे जो एक कस्बे में रहते थे। वृद्ध होने पर उन्होंने संन्यासी जीवन व्यतीत किया और हिमालय की गोद में लंबे समय तक रहे।

वह नमक और मसाले खरीदने के लिए बनारस गया और राजा के महल में ठहरा; अगले दिन वह बनारस में प्रवेश कर गया।

फिर उस इलाके के एक धनी व्यक्ति को उसका व्यवहार पसंद आया और वह उसे अपने घर ले गया, उसे खाना खिलाया और उसके साथ रहने का वादा लेकर उसे बगीचे में ठहराया और उसकी जरूरतों का ख्याल रखा। इस तरह उन दोनों के बीच दोस्ती हो गई।

एक दिन, धनी व्यक्ति ने बोधिसत्व के प्रति अपने प्रेम और मित्रता के कारण मन ही मन सोचा: "सन्यासी का जीवन दुखमय होता है। मैं अपने मित्र वचनखा को संन्यास लेने के लिए मनाऊंगा; मैं अपनी संपत्ति को दो भागों में बांटकर आधा उसे दे दूंगा, और हम दोनों साथ रहेंगे।" अतः एक दिन, भोजन समाप्त होने के बाद, उसने अपने मित्र से मधुरता से कहा-

"हे वचनखा, संन्यासी का जीवन दुखी है; घर में रहना सुखदायक है। आओ, हम दोनों साथ मिलकर अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करें।" ऐसा कहकर उन्होंने पहला श्लोक बोला:-

दुनिया में घर प्यारे होते हैं,
  भोजन से भरपूर, और खजाने से भी भरपूर;
 वहाँ आपको भरपूर मांस मिलेगा।
  अपनी इच्छानुसार खाएं-पिएं।
बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर उत्तर दिया: "हे प्रभु, अज्ञानवश तुम इच्छाओं के लोभी हो गए हो और गृहस्थ जीवन को अच्छा तथा तपस्वी जीवन को बुरा कहते हो; अब सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि गृहस्थ जीवन कितना बुरा है;" और उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:

"जिसके पास घर हैं, उसे कभी शांति का अनुभव नहीं हो सकता।"
  वह झूठ बोलता है और धोखा देता है, उसे कई वार करने होंगे।
 दूसरों के कंधों पर: इस गलती का कोई इलाज नहीं है:
  फिर भला कौन स्वेच्छा से घर में जाना चाहेगा?
इन शब्दों के साथ महान बुद्ध ने गृहस्थ जीवन की कमियों का वर्णन किया और फिर बगीचे में चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "रोजा मल्लियन बनारस का व्यापारी था, और मैं वचनखा भिक्षु था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बका-जातक**2
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-236-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 236
बका-जातक

"देखो, वह द्विज पक्षी," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पाखंडी के बारे में सुनाई थी। जब उसे गुरु के समक्ष लाया गया, तो गुरु ने कहा, "भाइयों, वह पुराने समय से ही पाखंडी था, जैसा कि वह अब है," और फिर निम्नलिखित कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हिमालय क्षेत्र के एक तालाब में मछली बन गए और उनके साथ मछलियों का एक बड़ा झुंड भी था। अब एक सारस उस मछली को खाना चाहता था। इसलिए उसने तालाब के पास एक जगह पर अपना सिर झुकाया, अपने पंख फैलाए और मछलियों को खाली निगाहों से देखता रहा, उनके लापरवाह होने का इंतजार करता रहा

(*1)। उसी क्षण बोधिसत्व अपने झुंड के साथ भोजन की तलाश में उस स्थान पर आए। और मछलियों के झुंड ने सारस को देखकर पहला श्लोक बोला:-

"उस द्विज (dijo) (*2) पक्षी को देखो, कितना सफेद है--
  कमल के फूल की तरह प्रतीत होता है;
 पंख बाएँ और दाएँ फैले हुए--
  ओह, कितना पवित्र! सपने देख रहा है, सपने देख रहा है!
तब बोधिसत्व ने देखा और दूसरा श्लोक बोला:

वह क्या है, यह तुम नहीं जानते।
  वरना तुम उसकी प्रशंसा नहीं करते।
 वह हमारा सबसे कपटी प्रतिद्वंद्वी है;
  इसीलिए वह कोई पंख नहीं उठाता।
इस पर मछली पानी में उछली और सारस को भगा दिया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "यह पाखंडी सारस था, और मैं मछलियों के झुंड का मुखिया था।"

फुटनोट:

(1) सारस की नींद" छल के लिए एक भारतीय कहावत है।

(2) दिजो (या द्विज) शब्द पक्षी के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है अंडे में जन्म लेना और अंडे से उत्पन्न होना। यह ब्राह्मणों (उच्चतम पुरोहित जाति) के लिए भी प्रयोग किया जाता है, जिससे पवित्रता का एक अतिरिक्त भाव भी व्यक्त होता है। भारत में उच्च जाति के लोग मूल रूप से गोरे (सफेद) थे, जो यूरोप से आए थे और फिर हजारों साल पहले प्रवास कर गए थे। 'द्विज' शब्द का प्रयोग इन उच्च जाति के लोगों के लिए किया जाता है, क्योंकि जनेऊ संस्कार के बाद उन्हें पवित्रता में पुनर्जन्म प्राप्त हुआ माना जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **साकेत-जातक2**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-237-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 237
सकेत-जातक

"दिल ठंडे क्यों होते हैं?", इत्यादि - यह कहानी गुरु ने साकेत के पास प्रवास के दौरान साकेत नामक एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी। कहानी की प्रेरणा देने वाली परिस्थितियाँ और कहानी दोनों पहले ही दी जा चुकी हैं (*1)।

...और जब तथागत (बुद्ध) मठ में चले गए, तो भिक्षु ने पूछा, "हे प्रभु, प्रेम की शुरुआत कैसे हुई?" और पहली पंक्ति दोहराई:-

हे बुद्ध, बताइए, हृदय एक-दूसरे के प्रति उदासीन क्यों हो जाते हैं!
और किसी दूसरे से इतना अधिक प्रेम करना?

गुरु ने दूसरे श्लोक में प्रेम के स्वरूप की व्याख्या की:

"वे लोग जिनसे प्यार करते हैं, जो पिछले जन्मों में प्रिय थे,"
 जैसे झील में कमल अवश्य उगता है, वैसे ही निश्चित है।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "ये दोनों व्यक्ति कथा में वर्णित ब्राह्मण और उनकी पत्नी थे; और मैं उनका पुत्र था।"

फुटनोट:

(1)सं. 68.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **एकपाद-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-238-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 238
एकपाद-जातक

"मुझे एक शब्द बताओ," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जमींदार के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि श्रावस्ती नगर में एक जमींदार रहता था। एक दिन, उसका बेटा उसकी गोद में बैठा उससे वह प्रश्न पूछने लगा जिसे "द्वार" (*1) कहा जाता है। उसने उत्तर दिया, "इस प्रश्न का उत्तर बुद्ध ही दे सकते हैं; कोई और नहीं।" इसलिए वह अपने बेटे को जेतवन मठ ले गया और गुरु को प्रणाम किया। उसने कहा, "हे गुरु, जब मेरा बेटा मेरी गोद में बैठा था, उसने मुझसे 'द्वार' नामक प्रश्न पूछा। मुझे इसका उत्तर नहीं पता था, इसलिए मैं आपसे उत्तर माँगने आया हूँ।" गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, यह पहली बार नहीं है कि इस बालक ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग खोजते हुए ज्ञानी पुरुषों से यह प्रश्न पूछा है; उसने पहले भी ऐसा किया था, और पुराने समय के ज्ञानी पुरुषों ने उसे उत्तर दिया था; लेकिन पुनर्जन्म के कारण उसकी स्मृति धुंधली हो गई है, इसलिए वह उसे भूल गया है।" और उसके अनुरोध पर गुरु ने उसे पुराने समय की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक धनी व्यापारी के पुत्र के रूप में इस संसार में आए। वे बड़े हुए और समय बीतने पर जब उनके पिता का देहांत हुआ, तो उन्होंने व्यापारी के रूप में अपने पिता का स्थान ग्रहण कर लिया।

और उसका छोटा बेटा, जो उसकी गोद में बैठा था, ने उससे एक सवाल पूछा, "पिताजी," उसने कहा, "मुझे एक ऐसी बात एक शब्द में बताइए जिसमें अर्थों की व्यापक श्रृंखला समाहित हो;" और उसने पहला छंद दोहराया:-

मुझे एक ऐसा शब्द बताओ जिसे सभी चीजें समाहित कर सकें:
संक्षेप में कहें तो, हम अपने लक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं?
उसके पिता ने दूसरे वाक्य से उत्तर दिया:-

"सभी अनमोल चीजों में एक चीज महत्वपूर्ण है - वह है कौशल।"
सद्गुण और धैर्य को अपनाएं, और आप सफल होंगे।
अपने मित्रों के साथ भलाई करो और अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ बुरा व्यवहार करो।
इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने पुत्र के प्रश्न का उत्तर दिया। पुत्र ने अपने पिता द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने उद्देश्यों की पूर्ति की और समय आने पर अपने कर्मों के फल के लिए परलोक विदा हो गया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पिता और पुत्र प्रथम मार्ग (समाधि) के फल तक पहुँचे: "यह व्यक्ति तब पुत्र था, और मैं स्वयं बनारस का व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1) यह प्रश्न पथों पर प्रवेश करने के साधनों से संबंधित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हरिता-माता-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-239-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 239
हरिता-माता-जातक

"जब मैं उनके पिंजरे में था," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में रहते हुए अजातशत्रु के बारे में सुनाई थी।

कोसल के राजा महा-कोसल के पिता ने जब अपनी पुत्री का विवाह राजा बिम्बिसार से किया, तो उन्होंने उसे स्नान के बदले काशी में एक गाँव दे दिया। अजातशत्रु द्वारा अपने पिता बिम्बिसार की हत्या करने के बाद, रानी बिम्बिसार के प्रेम में शीघ्र ही मर गई। माता की मृत्यु के बाद भी अजातशत्रु को उस गाँव से आय प्राप्त होती रही। परन्तु कोसल के राजा ने निश्चय किया कि पिता के हत्यारे को वह गाँव नहीं मिलना चाहिए जो उत्तराधिकार के अधिकार से उसका है, और उसने अजातशत्रु पर युद्ध छेड़ दिया। कभी मामा की जीत होती, कभी भतीजे की। जब अजातशत्रु विजयी होता, तो वह अपना ध्वज फहराकर विजयोत्सव मनाते हुए राजधानी लौट जाता; परन्तु जब वह हार जाता, तो निराश होकर बिना किसी को बताए वापस लौट आता।

यह उस दिन की बात है जब भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में बैठकर इस विषय पर चर्चा कर रहे थे। “मित्र”—जैसा कि कोई कहता—“अजातशत्रु अपने मामा को हराने पर प्रसन्न होता है, और हारने पर निराश हो जाता है।” गुरुजी हॉल में प्रवेश करते हुए बोले, “वे इस बार किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” और उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि कोई व्यक्ति जीतने पर प्रसन्न होता है और हारने पर दुखी।” और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व हरे मेंढक बन गए। उस समय लोग नदियों के सभी गड्ढों और छेदों में मछली पकड़ने के लिए बुने हुए पिंजरे लगाते थे। एक पिंजरे में बहुत सारी मछलियाँ थीं। एक जल-सांप मछली खाते हुए खुद उस पिंजरे में घुस गया। कई मछलियाँ उस पर टूट पड़ीं और उसे काटने लगीं, जिससे वह खून से लथपथ हो गया। अपनी जान के डर से, उसने पिंजरे के मुँह से फिसलकर पानी के किनारे दर्द से कराहते हुए लेट गया। उसी क्षण, हरा मेंढक उछला और पिंजरे के मुँह में गिर गया। सांप को समझ नहीं आ रहा था कि वह किससे मदद मांगे, इसलिए उसने वहाँ फंसे मेंढक से पूछा, "मित्र मेंढक, क्या तुम मछलियों के इस व्यवहार से प्रसन्न हो?" और उसने पहला श्लोक कहा:-

"जब मैं उनके पिंजरे में था, तो मछलियों ने मुझे काट लिया।"
मैं, हालांकि एक सांप। हरा मेंढक, क्या यह सही लगता है?
तब मेंढक ने उसे उत्तर दिया, "हाँ, मित्र साँप, ऐसा ही होता है: क्यों नहीं? यदि तुम अपने क्षेत्र में आने वाली मछलियों को खाओगे, तो मछलियाँ अपने क्षेत्र में आने पर तुम्हें खा जाएँगी। अपने स्थान, अपने क्षेत्र और अपने भोजन क्षेत्र में कोई भी कमज़ोर नहीं होता।" ऐसा कहकर उसने दूसरा छंद कहा:

"लोग तब तक लूटपाट करते रहते हैं जब तक वे ऐसा कर सकते हैं।"
और जब वे ऐसा नहीं कर पाते—तो काटने वाले को ही काट दिया जाता है!
बोधिसत्व द्वारा अपना मत व्यक्त करने के बाद, सभी मछलियों ने सर्प की कमजोरी को देखकर कहा, "चलो हम अपने प्रतिद्वंद्वी को पकड़ लें!" और पिंजरे से बाहर आकर उसे वहीं मार डाला और फिर वहां से चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "अजातशत्रु जल सर्प था, और हरा मेंढक मैं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महापिंगल-जातक**

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-240-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 240
महापिंगला-जातक

"पीला राजा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ के उद्यान में विधर्मी (गलत विश्वास रखने वाले) देवदत्त के बारे में सुनाई थी।

देवदत्त ने नौ महीने तक भावी बुद्ध के विनाश की योजना बनाई थी और जेतवन मठ के द्वार के पास धरती में समा गया था।

तब जेतवन मठ और आसपास के सभी क्षेत्रों में रहने वाले लोग प्रसन्न होकर कहने लगे, "बुद्ध के शत्रु देवदत्त पृथ्वी में समा गए हैं: शत्रु का नाश हो गया है, और गुरु पूर्णतः प्रबुद्ध हो गए हैं!" ये शब्द बार-बार सुनकर भारत महाद्वीप के सभी लोग, सभी प्रेत, जीव-जंतु और देवता भी प्रसन्न हो गए। एक दिन, सभी भिक्षु सत्य के हॉल में आपस में बातें कर रहे थे, और वे इस प्रकार कहते थे: "भाई, जब से देवदत्त पृथ्वी में समा गए हैं, कितने लोग प्रसन्न होकर कह रहे हैं, देवदत्त पृथ्वी में समा गए हैं!" गुरु ने प्रवेश किया और पूछा, "भाइयों, तुम सब यहाँ किस बारे में बात कर रहे हो?" उन्होंने उन्हें बताया। तब उन्होंने कहा, "हे भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि बहुत से लोगों ने देवदत्त की मृत्यु पर प्रसन्नता मनाई है और जोर-जोर से हँसे हैं। बहुत पहले भी उन्होंने इसी तरह प्रसन्नता मनाई थी और हँसे थे।" और उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय बनारस में महापिंगला नामक एक दुष्ट और अन्यायी राजा का राज था, जिसे महान पीतराज भी कहा जाता था। वह अपनी मनमानी और इच्छा के अनुसार पाप करता था। करों, जुर्माने, अनेक अंग-भंग (*1) और लूटपाट से वह जनता को गन्ने की चक्की में कुचलने के समान निर्दयी, क्रूर और हिंसक था। उसे अन्य लोगों के लिए जरा भी दया नहीं थी; घर पर वह अपनी पत्नियों, पुत्रों और पुत्रियों, ब्राह्मण दरबारियों और गृहस्थों के प्रति कठोर और असंतुष्ट रहता था। वह आँख में गिरने वाले धूल के कण के समान, शोरबे में कंकड़ के समान, एड़ी में चुभने वाले कांटे के समान था।

बोधिसत्व महापिंगला राजा के पुत्र थे। दीर्घकाल तक शासन करने के बाद उनका निधन हो गया। उनके निधन पर बनारस के सभी नागरिक अत्यंत प्रसन्न हुए और खूब हँसे। उन्होंने उनके शरीर को हज़ारों बैलगाड़ियों में लट्ठों के साथ जलाया और हज़ारों घड़े जल से आग बुझाई तथा बोधिसत्व को राजा नियुक्त किया। उन्होंने अपने राज्य में धर्मात्मा राजा की प्राप्ति की खुशी में सड़कों पर ढोल बजवाए। उन्होंने झंडे और ध्वज फहराए और शहर को सजाया। प्रत्येक द्वार पर मंडप लगाया गया और भुने हुए अनाज और फूल बिखेरकर, उन्होंने सुंदर छतरियों के नीचे सजे हुए चबूतरों पर बैठकर भोजन और पेय का आनंद लिया। बोधिसत्व स्वयं एक भव्य ऊंचे चबूतरे पर रखे सुंदर दीवान पर अत्यंत वैभव के साथ विराजमान थे, उनके ऊपर एक सफेद छत्र फैला हुआ था। दरबारी, गृहस्थ, नागरिक और द्वारपाल अपने राजा के चारों ओर खड़े थे।

लेकिन राजा से कुछ ही दूरी पर खड़ा एक द्वारपाल आहें भर रहा था और सिसक रहा था। बोधिसत्व ने उसे देखकर कहा, "हे द्वारपाल, मेरे पिता की मृत्यु पर सब लोग आनंद मना रहे हैं, पर तुम रो रहे हो। बताओ, क्या मेरे पिता तुम्हारे प्रति दयालु और भले थे?" और इस प्रश्न के साथ उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

"पीला राजा सभी मनुष्यों के प्रति क्रूर था;
अब वह मर चुका है, सब फिर से खुलकर सांस ले सकते हैं।
क्या पीली आंखों वाला वह व्यक्ति इतना प्यारा था?
या फिर, पोर्टर, तुम यहाँ खड़े होकर क्यों रो रहे हो?
उस आदमी ने सुना और उत्तर दिया: "मैं पिंगला की मृत्यु पर शोक नहीं कर रहा हूँ। मेरा सिर तो प्रसन्न ही हो जाएगा। क्योंकि राजा पिंगला जब भी महल से नीचे आते या ऊपर जाते, तो मुझे अपनी मुट्ठी से आठ प्रहार करते, मानो कोई लोहार हथौड़े से प्रहार कर रहा हो। इसलिए जब वे परलोक जाएँगे, तो वे नरक के द्वारपाल यम के सिर पर आठ प्रहार करेंगे, मानो मुझे ही मार रहे हों। तब वहाँ के लोग चिल्लाएँगे - 'वह हमारे लिए बहुत क्रूर है!' और उसे वापस भेज देंगे। और मुझे डर है कि वह फिर आकर मेरे सिर पर प्रहार करेगा, और इसीलिए मैं रो रहा हूँ।" बात समझाने के लिए उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:-

"पीला राजा किसी भी तरह से प्रिय नहीं था:
मुझे डर है कि वह फिर से वापस आ जाएगा।
क्या होगा अगर वह मृत्यु के राजा को हरा दे, और फिर
क्या मृत्यु के राजा को उसे वापस भेज देना चाहिए?
तब बोधिसत्व ने कहा: "उस राजा को हज़ार रथों में भरी लकड़ियों से जला दिया गया है; उसके जलने के स्थान को हज़ारों घड़ों के जल से भिगो दिया गया है, और चारों ओर की ज़मीन खोद दी गई है; भाग्य के बल (*2) के अलावा जो प्राणी परलोक चले गए हैं, वे अपने पहले वाले शारीरिक रूप में वापस नहीं आते; डरो मत!" और उसे सांत्वना देने के लिए, उन्होंने निम्नलिखित श्लोक दोहराया-

"हजारों बोरी लकड़ी से वह बुरी तरह जल गया है।"
हजारों घड़ों ने उस आग को बुझाया जो अब भी जल रही थी;
जमीन को बाएँ और दाएँ ओर खोदा जाता है।
डरो मत—राजा अब कभी वापस नहीं आएगा।
उसके बाद कुली को तसल्ली मिली। बोधिसत्व ने धर्मपरायणता से शासन किया; और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कर्म करने के बाद, वे अपने कर्मों के फल के अनुसार निर्वाण हो गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "देवदत्त पिंगला थे; और उनका पुत्र मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)-jamghakahapanadigahanena का अर्थ है 'पैर, धन आदि छीन लेना'

(2) अन्नत्र गतिवासा का पाठ, 'पुनर्जन्म की शक्ति के अलावा।'

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सब्बादथ-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-241-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 241
सब्बदथा-जातक।

"सियार की तरह," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने बांस के जंगल में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी।

देवदत्त ने अजातशत्रु की कृपा तो प्राप्त कर ली थी, लेकिन वह अपनी प्रतिष्ठा और समर्थन को लंबे समय तक कायम नहीं रख सका। जब से उन्होंने नलगिरि हाथी को उसके विरुद्ध भेजे जाने पर हुए चमत्कार (*1) को देखा, तब से देवदत्त की प्रतिष्ठा और आय में गिरावट आने लगी।

एक दिन, सभी भिक्षु सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे: "मित्र, देवदत्त ने प्रतिष्ठा और समर्थन तो प्राप्त कर लिया, पर उसे बनाए नहीं रख सका। पुराने समय में भी ठीक ऐसा ही हुआ था।" और फिर उसने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे और बोधिसत्व उनके पुरोहित थे। उन्होंने तीनों वेदों और ज्ञान की अठारह शाखाओं में महारत हासिल कर ली थी। उन्हें 'संसार को वश में करने का मंत्र' ज्ञात था। (यह मंत्र धार्मिक ध्यान से संबंधित है।)

एक दिन बोधिसत्व ने इस मंत्र का जाप करने का मन बनाया; इसलिए वे एकांत स्थान पर एक समतल पत्थर पर बैठ गए और वहीं इसका जाप करने लगे। कहा जाता है कि इस मंत्र को विशेष विधि के बिना किसी को सिखाया नहीं जा सकता था; इसीलिए उन्होंने

वर्णित स्थान पर इसका जाप किया। संयोगवश, एक सियार जो एक बिल में लेटा हुआ था, उसी समय मंत्र का जाप सुन रहा था और उसे कंठस्थ कर लिया। कहा जाता है कि यह सियार अपने पिछले जन्म में कोई ब्राह्मण था जिसने 'संसार को वश में करने का मंत्र' सीखा था।

बोधिसत्व ने अपना पाठ समाप्त किया और उठ खड़े हुए बोले—"मुझे यह मंत्र अब पूरी तरह से याद हो गया है।" तभी सियार अपने बिल से निकला और चिल्लाया—"हे ब्राह्मण! मैंने यह मंत्र तुमसे भी बेहतर सीख लिया है!" और भाग गया। बोधिसत्व उसका पीछा करने लगे और कुछ दूर तक चिल्लाते रहे—"सियार बहुत बड़ा उत्पात मचाएगा—उसे पकड़ो, उसे पकड़ो!" लेकिन सियार जंगल में आसानी से निकल गया।

सियार को एक मादा सियार मिली और उसने उसके शरीर पर हल्का सा काटा। "क्या बात है, स्वामी?" उसने पूछा। "क्या तुम मुझे जानती हो?" उसने पूछा, "या नहीं?" "(*2)मैं तुम्हें नहीं जानती।" उसने मंत्र दोहराया और इस प्रकार सैकड़ों सियारों को अपने वश में कर लिया, और अपने चारों ओर सभी हाथियों, घोड़ों, शेरों, बाघों, सूअरों, हिरणों और अन्य सभी चार पैरों वाले प्राणियों को इकट्ठा कर लिया; और वह सब्बदथा या ऑलटस्क की उपाधि से उनका राजा बन गया, और उसने एक मादा सियार को अपनी पत्नी बना लिया। दो हाथियों की पीठ पर एक शेर खड़ा था, और शेर की पीठ पर सियार राजा सब्बदथा अपनी पत्नी सियार के साथ बैठा था; और उनका बहुत सम्मान किया गया।

अब सियार अपने गौरव के लालच में आकर घमंड से भर गया और उसने बनारस राज्य पर कब्जा करने का निश्चय कर लिया। इसलिए वह अपने सभी चार पैरों वाले साथियों के साथ बनारस के निकट एक स्थान पर पहुंचा। उसकी सेना ने बारह मील (4.23 किमी) का क्षेत्र घेर लिया। वहां से उसने राजा को संदेश भेजा, "अपना राज्य छोड़ दो, या उसके लिए लड़ो।" बनारस के नागरिक भय से कांपते हुए अपने द्वार बंद करके अंदर ही रहे।

तब बोधिसत्व राजा के पास आए और उनसे बोले, “हे महामहिम, भयभीत न हों! सियार राजा सब्बदथा से युद्ध करने का कार्य मुझे सौंप दीजिए। मेरे सिवा कोई भी उससे युद्ध करने में सक्षम नहीं है।” इस प्रकार उन्होंने राजा और नागरिकों को हिम्मत दी। उन्होंने आगे कहा, “मैं उससे तुरंत पूछूंगा कि वह नगर पर अधिकार करने के लिए क्या करेगा।” अतः वे एक द्वार के ऊपर बने बुर्ज पर चढ़ गए और पुकार कर बोले—“सब्बदथा, इस राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए तुम क्या करोगे?”

मैं शेरों को दहाड़ने पर मजबूर करूँगा, और उनकी दहाड़ से सबको डरा दूँगा: इस प्रकार मैं उन्हें ले लूँगा!

“ओह, बस यही है,” बोधिसत्व ने सोचा और वे मीनार से नीचे उतर आए। उन्होंने ढोल बजाकर घोषणा की कि बनारस के विशाल नगर में, उसके बारह मील (4.23 किमी) के दायरे में रहने वाले सभी निवासियों को अपने कान आटे से बंद कर लेने चाहिए। सभी ने आदेश सुना; उन्होंने अपने कान आटे से बंद कर लिए, जिससे वे एक-दूसरे की बात भी नहीं सुन सके – यहाँ तक कि उन्होंने अपनी बिल्लियों और अन्य जानवरों के साथ भी ऐसा ही किया।

फिर बोधिसत्व दूसरी बार मीनार में चढ़े और "सब्बदथा!" कहकर पुकारे।

"क्या बात है, ब्राह्मण?" उसने कहा।

"तुम इस राज्य पर कैसे अधिकार करोगे?" उसने पूछा।

"मैं शेरों को दहाड़ने पर मजबूर करूँगा, मैं लोगों को डराऊँगा और उन्हें नष्ट कर दूँगा; इस प्रकार मैं इसे ले लूँगा!" उसने कहा।

"तुम शेरों को दहाड़ने पर मजबूर नहीं कर पाओगे; ये महान शेर, अपने भूरे पंजों और घने बालों वाले, तुम्हारे जैसे बूढ़े सियार की बात कभी नहीं मानेंगे!" अभिमान से भरे सियार ने उत्तर दिया, "न केवल दूसरे शेर मेरी बात मानेंगे, बल्कि मैं तो इस शेर को भी, जिसकी पीठ पर मैं बैठा हूँ, अकेले दहाड़ने पर मजबूर कर दूँगा!"

बोधिसत्व ने कहा, "बहुत अच्छा, अगर आप कर सकते हैं तो करें।"

इसलिए उसने जिस शेर पर वह बैठा था, उस पर पैर से थपथपाकर दहाड़ मारी।

और शेर ने हाथी की कनपटी पर अपना मुँह रखकर निडरता से तीन बार दहाड़ा। हाथी भयभीत हो गए और सियार को अपने पैरों के पास गिरा दिया; उन्होंने उसके सिर को कुचलकर चूर-चूर कर दिया। वहीं सब्बदथा की मृत्यु हो गई। शेर की दहाड़ सुनकर हाथी भी भयभीत हो गए और एक-दूसरे को घायल करते हुए वहीं मर गए। बाकी सभी जीव, हिरण, सूअर, खरगोश और बिल्लियाँ, शेरों को छोड़कर, वहीं मर गए; शेर भागकर जंगल में चले गए। बारह मील (4.23 किमी) तक ज़मीन पर लाशों का ढेर लगा हुआ था।

बोधिसत्व मीनार से नीचे उतरे और नगर के द्वार खुलवा दिए। ढोल बजाकर उन्होंने पूरे नगर में यह घोषणा करवाई: "सभी लोग अपने कानों से आटा निकाल लें, और जिन्हें मांस खाने की इच्छा हो, वे खा लें!" लोगों ने जितना मांस ताजा मिल सका, उतना खाया और बाकी को सुखाकर सुरक्षित रख लिया।

परंपरा के अनुसार, इसी समय लोगों ने पहली बार मांस को सुखाना शुरू किया था।

गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त करने के बाद, दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण निम्नलिखित श्लोकों द्वारा जन्म का वर्णन किया:

"यहाँ तक कि सियार भी, अभिमान से अकड़ा हुआ,
चारों ओर एक विशाल जनसमूह की लालसा थी,
और सभी दांत वाले प्राणी आए
जब तक उन्हें अपार प्रसिद्धि नहीं मिली, तब तक वे उनके चारों ओर मंडराते रहे:
फिर भी जिस व्यक्ति को आपूर्ति की जाती है
चारों ओर भारी संख्या में पुरुषों की भीड़ के साथ,
उन्हें बहुत प्रसिद्धि प्राप्त है।
जैसे सियार ने अपनी संप्रभुता में किया था।"
"उन दिनों देवदत्त सियार था, आनंद राजा था और मैं पुजारी था।"

फुटनोट:

(1) बुद्ध को नष्ट करने के उद्देश्य से एक विशाल हाथी को छोड़ा गया था, लेकिन उसने केवल उनका आदर किया।

(2)शायद ajanami "मैं तुम्हें जानता हूँ।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुनक-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-242-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 242
सुनाख-जातक

"मूर्ख कुत्ता," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक कुत्ते के बारे में बताया गया था जिसे अंबाला टावर के पास स्थित विश्राम कक्ष में खाना खिलाया जाता था।

कहा जाता है कि इस कुत्ते को बचपन से ही वहाँ कुछ पानी ढोने वालों ने रखा था और उसे खाना खिलाया था। समय बीतने के साथ-साथ वह वहाँ बड़ा होकर एक विशाल कुत्ता बन गया। एक बार एक ग्रामीण की नज़र उस पर पड़ी और उसने पानी ढोने वालों से एक ऊपरी वस्त्र और एक रुपया देकर उसे खरीद लिया; फिर उसे जंजीर से बाँधकर अपने साथ ले गया। कुत्ता बिना किसी विरोध के, बिना कोई आवाज़ किए, अपने नए मालिक के पीछे-पीछे चलता रहा और जो कुछ भी दिया जाता, खा लेता था। "यह मुझे ज़रूर पसंद करता होगा," उस व्यक्ति ने सोचा; और उसे जंजीर से खोल दिया। जैसे ही कुत्ते ने खुद को आज़ाद पाया, वह दौड़ पड़ा और तब तक नहीं रुका जब तक कि वह वापस उसी जगह पर नहीं आ गया जहाँ से वह चला था।

उसे देखकर भाइयों ने समझ लिया कि क्या हुआ होगा; और शाम को जब वे सत्य के हॉल में इकट्ठा हुए, तो वे इस बारे में बातें करने लगे। "मित्र—देखो, हमारा कुत्ता फिर से हमारे विश्राम कक्ष में आ गया! कितना चालाक रहा होगा, अपनी जंजीर तोड़कर भाग गया! जंजीर से छूटते ही वापस भाग गया!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे सब आपस में बैठकर किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब हमारा कुत्ता अपनी जंजीर तोड़ने में इतना चालाक रहा है; पहले भी वह ऐसा ही करता था।" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, बोधिसत्व काशी राज्य के एक समृद्ध परिवार में पैदा हुए थे; और बड़े होकर उन्होंने अपना घर बसाया। बनारस में एक आदमी के पास एक कुत्ता था जिसे चावल खिला-खिलाकर मोटा कर दिया गया था। बनारस आए एक ग्रामीण ने उस कुत्ते को देखा; और उसने कुत्ते के मालिक को एक उत्तम वस्त्र और एक सिक्का देकर उसे अपने साथ ले गया। जंगल के बाहरी इलाके में पहुँचकर, वह एक झोपड़ी में गया, कुत्ते को बाँधा और सोने के लिए लेट गया। उसी क्षण बोधिसत्व किसी काम से जंगल में गए और उन्होंने कुत्ते को एक डोरी से बंधा हुआ देखा; यह देखकर उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

"बेवकूफ कुत्ते! तुम काटते क्यों नहीं?"
उस पट्टे के ज़रिए जो तुम्हें कसकर पकड़े हुए है?
कुछ ही समय में आप मुक्त हो जाएंगे।
खुशी-खुशी भागते हुए!
इस श्लोक को सुनकर कुत्ते ने दूसरा श्लोक बोला:-

दृढ़ संकल्पित, मैं
मेरे अवसर की प्रतीक्षा करें:
मैं सावधानीपूर्वक निगरानी रखता हूँ।
जब तक लोग सो रहे हों।"
उसने ऐसा कहा; और जब सभी लोग सो गए, तो उसने पट्टा कुतर दिया और बड़े हर्षोल्लास के साथ अपने मालिक के घर लौट आया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का कारण बताया: "कुत्ते एक ही हैं, और मैं ही वह ज्ञानी व्यक्ति था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गुत्तिला-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-243-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 243
गुट्टिला-जातक

"एक समय मेरा एक शिष्य था," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बांस के जंगल में देवदत्त के बारे में सुनाई थी।

इस अवसर पर भिक्षुओं ने देवदत्त से कहा, "मित्र देवदत्त, परम बुद्ध आपके गुरु हैं; आपने उनसे ही तीन पिटक और चार प्रकार की समाधि (सम्मोहन) प्राप्त करने का तरीका सीखा है; आपको अपने गुरु का शत्रु नहीं बनना चाहिए!" देवदत्त ने उत्तर दिया, "मित्रों, गौतम (बुद्ध) मेरे गुरु क्यों? बिलकुल नहीं: क्या यह मेरी अपनी शक्ति से नहीं था कि मैंने तीन पिटक सीखे और चार प्रकार की समाधि प्राप्त की?" उन्होंने अपने गुरु को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

सत्य के हॉल में भिक्षु इस विषय पर चर्चा करने लगे। "मित्र! देवदत्त ने अपने गुरु का खंडन किया! वह परम बुद्ध का शत्रु बन गया! और उसका कितना बुरा हाल हुआ!" गुरुजी वहाँ आए और उन्होंने पूछा कि वे सब किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। "अरे, भिक्षुजी," गुरुजी ने कहा, "यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने अपने गुरु का खंडन किया है, स्वयं को मेरा शत्रु साबित किया है और उसका ऐसा बुरा अंत हुआ है। पहले भी ऐसा ही हुआ था।" और फिर उन्होंने आगे की कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक संगीतकार परिवार में हुआ। उनका नाम गुरु गुट्टिला था। बड़े होकर उन्होंने संगीत की सभी विधाओं में महारत हासिल की और गुट्टिला संगीतकार के नाम से वे पूरे भारत में अपने क्षेत्र के प्रमुख बन गए। उन्होंने विवाह नहीं किया, बल्कि अपने अंधे माता-पिता का भरण-पोषण किया (*1)।

उस समय बनारस के कुछ व्यापारी व्यापार के लिए उज्जैनी गए। छुट्टी का दिन घोषित किया गया; वे सब एक साथ जमा हुए; उन्होंने सुगंधित पदार्थ, इत्र, मलहम और तरह-तरह के खाद्य पदार्थ और मांस खरीदे। “किराया चुकाओ, और एक संगीतकार लाओ!”

उस समय उज्जैनी में मुसिला नाम का एक व्यक्ति प्रमुख संगीतकार था। उन्होंने उसे बुलवाया और उसे अपना संगीतकार बना लिया। मुसिला वीणा बजाता था; और उसने अपनी वीणा को सबसे ऊँचे सुर में तौलकर बजाना शुरू किया। लेकिन वे संगीतकार गुटिला की वादन शैली से परिचित थे, और उसका संगीत उन्हें चटाई पर खरोंचने जैसा लगता था। इसलिए उनमें से किसी ने भी खुशी नहीं दिखाई। जब मुसिला ने देखा कि वे खुश नहीं हैं, तो उसने मन ही मन कहा—"शायद बहुत तेज़ है," और अपनी वीणा को मध्यम सुर में तौलकर उसी तरह बजाने लगा। फिर भी वे उदासीन बैठे रहे। तब उसने सोचा, "शायद इन्हें इसके बारे में कुछ पता ही नहीं है;" और जैसे वह भी अनजान हो, उसने तारों को ढीला करके बजाना शुरू कर दिया। पहले की तरह, उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। तब मुसिला ने उनसे पूछा, "भले व्यापारियों, आपको मेरा वादन क्यों पसंद नहीं आया?"

"क्या! आप बजा रहे हैं?" वे चिल्लाए। "हमने सोचा था कि आप अपने वाद्य यंत्रों को ठीक कर रहे होंगे।"

"क्या आप मुझसे बेहतर किसी संगीतकार को जानते हैं?" उसने पूछा, "या आप इतने अज्ञानी हैं कि आपको मेरा वादन पसंद नहीं आएगा?"

व्यापारियों ने कहा, "हमने बनारस के संगीतकार गुटिला का संगीत सुना है; और आपका संगीत तो ऐसा लगता है जैसे महिलाएं अपने बच्चों को शांत करने के लिए गा रही हों।"

"लो, अपने पैसे वापस ले लो," उसने कहा, "मुझे इनकी ज़रूरत नहीं है। बस जब आप बनारस जाएं, तो कृपया मुझे अपने साथ ले जाएं।"

वे मान गए और उसे अपने साथ बनारस ले गए; उन्होंने गुटिला के जीवन के बारे में बताया और फिर सब अपने-अपने घर चले गए।

मुसिला बोधिसत्व के कमरे में दाखिल हुआ; उसने देखा कि उनका सुंदर वीणा बंधा हुआ रखा है: उसने उसे नीचे उतारा और बजाने लगा। यह देखकर बूढ़े माता-पिता, जो अंधे होने के कारण उसे देख नहीं सकते थे, चिल्ला उठे।

"चूहे वीणा को कुतर रहे हैं! भागो! भागो! चूहे वीणा के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं!"

मुसिला ने तुरंत वीणा नीचे रख दी और बुजुर्गों को प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, "आप कहाँ से आए हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मैं उज्नेनी से गुरु के चरणों में शिक्षा प्राप्त करने आया हूँ।"

"अच्छा, ठीक है," उन्होंने कहा। उसने पूछा कि शिक्षक कहाँ है।

“पिताजी, वह बाहर गए हैं; लेकिन आज लौट आएंगे,” उत्तर आया। मुसिला बैठ गया और उनके आने का इंतज़ार करने लगा; फिर कुछ दोस्ताना बातें करने के बाद उसने अपना काम बताया। बोधिसत्व शरीर की विशेषताओं से भविष्यवाणी करने में निपुण थे। उन्होंने महसूस किया कि यह व्यक्ति अच्छा नहीं है; इसलिए उन्होंने मना कर दिया। “जाओ, मेरे बेटे, यह क्षेत्र तुम्हारे लिए नहीं है।” मुसिला ने बोधिसत्व के माता-पिता के पैर पकड़कर उनसे विनती की—“उन्हें मुझे सिखाने के लिए कहिए!” उनके माता-पिता ने बार-बार बोधिसत्व से ऐसा करने की विनती की; जब तक कि वे और सहन नहीं कर सके, और उन्होंने वैसा ही किया जैसा उनसे कहा गया था। और मुसिला बोधिसत्व के साथ राजा के महल में चला गया।

"यह कौन है, स्वामी?" राजा ने उसे देखकर पूछा।

"मेरा शिष्य, महान महाराज!" यह उत्तर मिला।

समय बीतने के साथ ही वह राजा का विश्वास जीतने में सफल हो गया।

अब बोधिसत्व ने अपना ज्ञान छिपाया नहीं, बल्कि अपने शिष्य को वह सब कुछ सिखाया जो वे स्वयं जानते थे। यह कहकर उन्होंने कहा, "अब तुम्हारा ज्ञान परिपूर्ण है।"

मुसिला ने मन ही मन सोचा, “मैंने अब अपनी कला में महारत हासिल कर ली है। बनारस नगर पूरे भारत का प्रमुख नगर है। मेरे गुरु वृद्ध हैं, इसलिए मुझे यहीं रहना चाहिए।” उसने अपने गुरु से कहा, “महोदय, मैं राजा की सेवा करना चाहता हूँ।” गुरु ने उत्तर दिया, “अच्छा पुत्र, मैं राजा को इसके बारे में बता दूँगा।”

वह राजा के सामने आया और बोला, "मेरा शिष्य महाराज की सेवा करने का इच्छुक है। कृपया उसकी फीस तय कर दीजिए।"

राजा ने उत्तर दिया, "उसकी तनख्वाह तुम्हारी तनख्वाह की आधी होगी।" फिर वह आया और उसने यह बात मुसिला को बताई। मुसिला ने कहा, "यदि मुझे भी तुम्हारे बराबर तनख्वाह मिले तो मैं उसकी सेवा करूँगा; परन्तु यदि नहीं तो मैं उसकी सेवा नहीं करूँगा।"

"क्यों?" "क्या मैं वह सब नहीं जानता जो तुम जानते हो?" "हाँ, तुम जानते हो।" "तो फिर वह मुझे आधा हिस्सा क्यों दे रहा है?"

बोधिसत्व ने राजा को सारी घटना बताई। राजा ने कहा,

“यदि वह तुम्हारे समान निपुण हो, तो उसे भी वही फल मिलेगा जो तुम्हें मिलता है।” राजा का यह वचन बोधिसत्व ने अपने शिष्य को सुनाया। शिष्य ने यह बात मान ली; और जब राजा को यह पता चला, तो उसने कहा—“बहुत अच्छा। तुम दोनों किस दिन प्रतियोगिता करोगे?” “हे महाराज, आज से सातवें दिन।”

राजा ने मुसिला को बुलवाया। "मुझे पता चला है कि तुम अपने स्वामी से इस मामले को सुलझाने के लिए तैयार हो?"

"जी महाराज," यह उत्तर मिला।

राजा ने उसे ऐसा करने से मना किया होगा। उन्होंने कहा, "ऐसा मत करो, गुरु और शिष्य के बीच कभी कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं होनी चाहिए।"

"हे राजा, रुकिए!" वह चिल्लाया—"हाँ, सातवें दिन मेरे और मेरे गुरु के बीच मुलाकात होनी चाहिए; हम जानेंगे कि हम में से कौन अपनी कला में निपुण है।"

अतः राजा मान गया; और उसने शहर में ढोल बजवाते हुए यह सूचना भेजी:- "चुप रहो और सुनो! सातवें दिन गुरु गुटिला और शिष्य मुसिला राजमहल के द्वार पर मिलेंगे और अपना कौशल दिखाएंगे। शहर के सभी लोग इकट्ठा हों और उनका कौशल देखें!"

बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "यह मुसिला तो जवान और तरोताज़ा है, मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। बूढ़े का कर्म फलदायी नहीं होता। अगर मेरे शिष्य की पिटाई हो (*2), तो उसमें कोई बड़ा यश नहीं। अगर वह मुझे पीटता है, तो जंगल में मरना उस अपमान से बेहतर है जो मुझे भुगतना पड़ेगा।" अतः वह जंगल की ओर चल पड़ा, परन्तु मृत्यु के भय से बार-बार लौटता रहा और अपमान के भय से वापस जंगल की ओर। इस प्रकार छह दिन बीत गए। चलते-चलते घास सूखती गई और उसके पैरों के निशान से एक रास्ता बन गया।

उस समय, सक्का (इंद्र) का सिंहासन गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने ध्यान किया और जो कुछ हुआ था उसे समझा। "अपने शिष्य के कारण संगीतज्ञ गुट्टिला वन में बहुत दुखी है। मुझे उसकी सहायता करनी चाहिए!" इसलिए वह शीघ्रता से गया और बोधिसत्व के समक्ष खड़ा हो गया। "गुरुजी," उसने कहा, "आप वन में क्यों गए हैं?"

"तुम कौन हो?" दूसरे ने पूछा।

मैं सक्का (इंद्र) हूँ।

तब बोधिसत्व ने कहा, "हे देवदूतों के राजा, मुझे अपने शिष्य से पराजित होने का भय था; इसलिए मैं वनों में भाग गया।" और उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

"एक बार मेरा एक छात्र था, जिसने मेरे बारे में जाना।"
सात तारों वाले वीणा का मधुर संगीत;
अब वह अपने शिक्षक की कुशलता को पार करने के लिए उत्सुक रहेगा।
हे कोसिया (*3)! क्या तुम मेरी सहायक बनोगी!
“डरो मत,” सक्का (इंद्र) ने कहा, “मैं तुम्हारा रक्षक और शरणस्थल हूँ,” और उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:-

"डरो मत, मैं तुम्हारी जरूरत के समय तुम्हारी सहायता करूंगा;"
शिक्षक का उचित वेतन सम्मान ही होता है।
डरो मत! तुम्हारा शिष्य तुम्हारा प्रतिद्वंदी नहीं होगा।
लेकिन तुम वास्तव में बेहतर इंसान साबित होगे।
"जब तुम वीणा बजा रहे हो, तो तुम अपने वीणा के एक तार को तोड़ देना और छह तारों पर बजाना; और संगीत पहले जैसा ही मधुर होगा। मुसिला भी एक तार तोड़ देगा, और वह अपनी वीणा से संगीत नहीं बजा पाएगा; तब वह पराजित हो जाएगा। और जब तुम देखोगे कि वह पराजित हो गया है, तो तुम अपनी वीणा का दूसरा तार, फिर तीसरा, और इसी तरह सातवें तार तक तोड़ देना, और केवल वीणा के शरीर से बजाते रहना; और टूटे हुए तारों के सिरों से ध्वनि निकलेगी, और बारह मील (x 4.23 किमी) की दूरी तक बनारस की सारी भूमि को भर देगी।" ये कहकर उन्होंने बोधिसत्व को तीन पासे दिए और आगे कहा, "जब वीणा की ध्वनि पूरे शहर में गूंज उठे, तो आपको इनमें से एक पासा हवा में उछालना है; और तीन सौ अप्सराएँ उतरकर आपके सामने नृत्य करेंगी। जब वे नृत्य कर रही हों, तो दूसरा पासा उछालें, और तीन सौ अप्सराएँ आपकी वीणा के सामने नृत्य करेंगी; फिर तीसरा पासा उछालें, और फिर तीन सौ और अप्सराएँ उतरकर अखाड़े के भीतर नृत्य करेंगी। मैं भी उनके साथ आऊंगा; आगे बढ़ो, और डरो मत!"

सुबह बोधिसत्व घर लौटे। महल के द्वार पर एक मंडप बना हुआ था और राजा के लिए एक सिंहासन अलग रखा गया था। वे महल से नीचे उतरे और रंग-बिरंगे मंडप में बने दीवान पर विराजमान हुए। उनके चारों ओर हजारों दास, सुंदर वस्त्रों में सजी स्त्रियाँ, दरबारी, ब्राह्मण और नागरिक उपस्थित थे। नगर के सभी लोग एकत्रित हुए थे। आँगन में वे एक के ऊपर एक, पंक्तिबद्ध रूप से आसन लगा रहे थे। बोधिसत्व ने स्नान और अभिषेक किया था और उत्तम मांस का सेवन किया था; वे हाथ में वीणा लिए अपने नियत स्थान पर प्रतीक्षा कर रहे थे। सक्का (इंद्र) वहाँ अदृश्य रूप से, वायु में स्थिर, एक विशाल समूह से घिरे हुए थे। फिर भी, बोधिसत्व ने उन्हें देखा। मुसिला भी वहाँ थे और अपने आसन पर बैठे थे। चारों ओर लोगों की एक विशाल सभा थी।

पहले दोनों ने एक ही धुन बजाई। जब दोनों ने एक ही धुन बजाई, तो सभी प्रसन्न हुए और खूब तालियाँ बजाईं। सक्का (इंद्र) ने आकाश में स्थित बोधिसत्व से कहा, "एक डोर तोड़ दो!" तब बोधिसत्व ने मधुमक्खी की डोर तोड़ दी; और टूटी हुई डोर से भी एक ध्वनि निकली; ऐसा लगा जैसे दिव्य संगीत हो। मुसिला ने भी एक डोर तोड़ी; लेकिन उसके बाद कोई ध्वनि नहीं निकली। उनके गुरु ने दूसरी डोर तोड़ी, और इसी तरह सातवीं डोर तोड़ी: उन्होंने केवल शरीर पर ही बजाया, और ध्वनि निरंतर निकलती रही और पूरे शहर में गूंज उठी: हजारों लोग अपने रुमाल हवा में लहराते रहे, हजारों तालियाँ बजाते रहे। बोधिसत्व ने एक पासा हवा में उछाला, और तीन सौ अप्सराएँ उतरीं और नृत्य करने लगीं। और जब उन्होंने दूसरा और तीसरा पासा भी इसी तरह उछाला, तो सक्का (इंद्र) के कहे अनुसार नौ सौ अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। तब राजा ने लोगों को इशारा किया; लोग उठ खड़े हुए और चिल्लाए—"तुमने अपने गुरु से मुकाबला करके बड़ी गलती की है! तुम्हें अपनी औकात का पता नहीं है!" इस प्रकार वे मुसिला के विरुद्ध चिल्लाए; और पत्थरों, लाठियों और जो कुछ भी हाथ लगा, उससे उन्होंने उसे पीट-पीटकर मार डाला, और उसके पैर पकड़कर उसे कूड़े के ढेर पर फेंक दिया।

राजा प्रसन्न होकर बोधिसत्व पर उपहारों की वर्षा करने लगा, और नगरवासियों ने भी ऐसा ही किया। इंद्र ने भी उनसे मधुरता से कहा, "हे ज्ञानी, मैं शीघ्र ही अपने सारथी मतली को एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों द्वारा खींचे गए रथ के साथ भेजूँगा; और आप मेरे एक हजार घोड़ों द्वारा खींचे गए दिव्य रथ पर सवार होकर स्वर्ग की यात्रा करेंगे"; और वह प्रस्थान कर गया।

जब सक्का (इंद्र) लौटकर अपने बहुमूल्य पत्थर से बने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो देवदूतों की पुत्रियों ने उनसे पूछा, "हे राजा, आप कहाँ थे?" सक्का (इंद्र) ने उन्हें सारी घटना विस्तार से बताई और बोधिसत्व के गुणों और अच्छाइयों की प्रशंसा की। तब देवदूतों की पुत्रियों ने कहा,

"हे राजा, हम इस शिक्षक के दर्शन के लिए तरस रहे हैं; उन्हें यहाँ बुलाइए!"

सक्का (इंद्र) ने मतली को बुलाया। उन्होंने कहा, "स्वर्ग की अप्सराएँ बोधिसत्व गुट्टिला के दर्शन करना चाहती हैं। जाओ, उन्हें मेरे दिव्य रथ में बिठाओ और यहाँ ले आओ।" सारथी गया और बोधिसत्व को ले आया। सक्का (इंद्र) ने उनका सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया। उन्होंने कहा, "देवताओं की अप्सराएँ आपका संगीत सुनना चाहती हैं, हे गुरु।"

"हे महान राजा, हम संगीतकार अपनी कला के अभ्यास से ही अपना जीवन यापन करते हैं। बदले में मैं संगीत बजाऊंगा," उसने कहा।

"खेलते रहो, मैं तुम्हें मुआवजा दूंगा।"

"मुझे इसके सिवा कोई और प्रतिफल नहीं चाहिए। देवदूतों की ये पुत्रियाँ मुझे बताएँ कि किन पुण्य कर्मों के कारण वे यहाँ आई हैं; तभी मैं खेलूँगा।"

तब देवदूतों की पुत्रियों ने कहा, "हम आपको अपने द्वारा अपनाए गए गुणों के बारे में सहर्ष बताएंगे; लेकिन पहले आप हमारे लिए खेलिए, हे स्वामी।"

एक सप्ताह तक बोधिसत्व ने उनके लिए संगीत बजाया, और उनका संगीत स्वर्ग के संगीत से भी श्रेष्ठ था। सातवें दिन उन्होंने देवदूतों की पुत्रियों से उनके पुण्यमय जीवन के बारे में, पहले से शुरू करते हुए, पूछा। उनमें से एक ने, बुद्ध कश्यप के समय में, एक भाई को एक वस्त्र भेंट किया था; और सक्का (इंद्र) की परिचारिका के रूप में पुनर्जन्म लेकर, वह देवदूतों की पुत्रियों में प्रमुख बन गई थी, जिसके साथ एक हजार अप्सराओं का समूह था। बोधिसत्व ने उससे पूछा—"तुमने पिछले जन्म में ऐसा क्या किया था, जिसके कारण तुम यहाँ आई हो?" उनके प्रश्न का तरीका और उसने जो भेंट दी थी, उसका वर्णन विमान कथा में किया गया है: उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया:-

हे तेजस्वी देवी, भोर के तारे के समान,
अपनी सुंदरता की रोशनी दूर-दूर तक बिखेरते हुए,
इस सुंदरता का स्रोत क्या है? इस खुशी का स्रोत क्या है?
वे सभी आशीर्वाद कहाँ से आते हैं जिनसे हृदय आशीर्वाद दे सकता है?
हे शक्तिवान देवी, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ,
यह सर्वव्यापी अद्‌भुत प्रकाश कहाँ से आता है?
जब तुम नश्वर स्त्री थीं, तब तुमने क्या किया था?
"क्या आप उस प्रसिद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं जो अब आपके चारों ओर मौजूद है?"
वह पुरुषों में श्रेष्ठ और महिलाओं में भी श्रेष्ठ थी।
कौन दान में अपना वस्त्र देता है?
जो प्रसन्नतादायक वस्तुएँ देती है, वह अवश्य ही जीतती है।
एक दिव्य और सुंदर घर जिसमें प्रवेश करना सुखद है।
इस निवास को देखो, कितना दिव्य है!
मेरे अच्छे कर्मों के फल स्वरूप यह घर मेरा है।
मेरी पुकार पर हजारों अप्सराएं तैयार खड़ी रहती हैं;
सुंदर अप्सराओं—और मैं उन सब में सबसे सुंदर हूँ।
और इसलिए मैं सामर्थ्य में श्रेष्ठ हूँ;
इसीलिए यह सर्वव्यापी अद्‌भुत प्रकाश आता है!

एक अन्य ने भिक्षा की भीख मांगने वाले एक भाई को पूजा के लिए फूल दिए थे। एक अन्य से मंदिर के लिए सुगंधित फूलों की पाँच मालाएँ माँगी गईं और उसने उन्हें दे दीं। एक अन्य ने मीठे फल दिए थे। एक अन्य ने उत्तम सुगंध दी थीं। एक अन्य ने बुद्ध कश्यप के मंदिर में सुगंधित फूलों की पाँच मालाएँ भेंट की थीं। एक अन्य ने यात्रा में या किसी परिवार के घर में निवास करने वाले भाई-बहनों (नन) के प्रवचन सुने थे। एक अन्य जल में खड़ी होकर नाव पर भोजन कर रहे एक भाई को जल पिलाया था। संसार में रहने वाली एक अन्य ने सास-ससुर के प्रति अपना कर्तव्य निभाया और कभी क्रोधित नहीं हुई। एक अन्य ने अपने हिस्से का भोजन भी बाँटकर खाया और सदाचारी रही। एक अन्य, जो किसी घर में दासी थी, ने क्रोध और अहंकार रहित होकर अपने हिस्से का एक भाग दान कर दिया और देवदूतों के राजा के परिचारिका के रूप में पुनर्जन्म लिया। इसी प्रकार, गुट्टिला-विमान की कथा में वर्णित सभी देवदूतों (पैतृकों) की सैंतीस पुत्रियों से भी बोधिसत्व ने पूछा कि उनमें से प्रत्येक ने वहां आने के लिए क्या किया था, और उन्होंने भी उसी प्रकार श्लोकों के माध्यम से अपने कर्मों का वर्णन किया।

यह सब सुनकर बोधिसत्व ने कहा, "सचमुच, मेरे लिए यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं यहाँ आया और सुना कि एक छोटे से पुण्य से कितनी बड़ी महिमा प्राप्त की जा सकती है। अब से जब मैं मनुष्यों के संसार में लौटूँगा, तो मैं सभी प्रकार के दान दूँगा और अच्छे कर्म करूँगा।" और उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की।

"ओह, शुभ सुबह! मुझे कितना प्रसन्न होना चाहिए!"
हे सुखद तीर्थयात्रा, जिसके द्वारा मैं देखता हूँ
ये देवदूतों की पुत्रियाँ हैं, जो दिव्य रूप से सुंदर हैं।
और उनकी मधुर बातें सुनो! मैं अब से कसम खाता हूँ।
मधुर शांति और उदारता से परिपूर्ण,
मैं संयम और सत्य के मार्ग पर अपना जीवन व्यतीत करूंगा।
जब तक मैं वहां न पहुंच जाऊं जहां कोई दुख नहीं है।"

सात दिन बीत जाने के बाद, स्वर्ग के राजा ने सारथी मताली को आदेश दिया, और उसने गुटिला को रथ में बिठाकर बनारस भेज दिया। बनारस पहुँचकर उसने लोगों को स्वर्ग में अपनी आँखों से देखा हुआ दृश्य बताया। उस समय से लोगों ने पूरी लगन से अच्छे कर्म करने का निश्चय किया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों देवदत्त मुसिला थे, अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, अमांडा राजा थे, और मैं गुट्टिला संगीतकार था।"

फुटनोट:

(1) गुटिला उन चार पुरुषों में से एक है जिन्होंने "अपने पार्थिव शरीरों में भी देवताओं (देवदूतों) के नगर में महिमा प्राप्त की।"

(2)रीडिंग antevasike.

(3) इंद्र की एक उपाधि; इस शब्द का अर्थ उल्लू (कौचिका) है: यह कई भारतीय कुल नामों में से एक है जो जानवरों के नाम भी हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वितिच्च-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-244-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 244
विच्चा जातक

"वह जो देखता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ऐसे घुमक्कड़ के बारे में जो देश भर में घूमता रहता था।

कहा जाता है कि इस व्यक्ति को पूरे भारत में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उससे बहस कर सके; जब तक कि वह श्रावस्ती नगर नहीं आया और वहाँ उसने पूछा कि क्या कोई उससे बहस कर सकता है। उसे बताया गया, जी हाँ—परम बुद्ध। यह सुनकर वह और उसके कुछ साथी जेतवन मठ गए और जब गुरु चारों प्रकार के शिष्यों के बीच प्रवचन दे रहे थे, तब उन्होंने उनसे एक प्रश्न पूछा। गुरु ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया और फिर उनसे एक प्रश्न पूछा। वह व्यक्ति इसका उत्तर नहीं दे सका, उठा और भाग गया। चारों ओर बैठे लोगों ने कहा, "हे गुरु, एक शब्द से ही तो भटकने वाला शांत हो गया!" गुरु ने कहा, "जी हाँ, भिक्षुओं, और जिस प्रकार मैंने उसे अभी एक शब्द से शांत किया है, वैसे ही पहले भी किया था।" फिर उन्होंने पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे बड़े हुए और अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त की; और धार्मिक (सन्यासी) जीवन अपनाकर उन्होंने हिमालय में दीर्घकालीन निवास किया।

वह ऊंचे पहाड़ों से नीचे आया और गंगा नदी के मोड़ के किनारे पत्तों से बनी एक झोपड़ी में रहने लगा, जो एक बड़े कस्बे के पास थी। एक तीर्थयात्री, जिसे पूरे भारत में कोई भी जवाब देने वाला नहीं मिला, उस कस्बे में आया। उसने पूछा, "क्या कोई ऐसा है जो मुझसे बहस कर सके?"

जी हां, उन्होंने कहा और उन्हें बोधिसत्व की शक्ति के बारे में बताया। इसलिए, बहुत से लोगों के साथ, वह उस स्थान पर गए जहाँ बोधिसत्व रहते थे, और उन्हें प्रणाम करने के बाद, बैठ गए।

उन्होंने पूछा, "क्या तुम जंगली लकड़ी की सुगंध से सराबोर गंगाजल पियोगे?"

तीर्थयात्री ने उसे शब्दों में फंसाने की कोशिश की। "गंगा क्या है? गंगा रेत हो सकती है, गंगा पानी हो सकती है, गंगा पास का किनारा हो सकती है, गंगा दूर का किनारा हो सकती है!"

बोधिसत्व ने तीर्थयात्री से कहा, "रेत, जल, निकट और दूर के किनारों के अलावा, गंगा के अलावा और क्या हो सकता है?" तीर्थयात्री के पास इसका कोई उत्तर नहीं था; वह उठा और चला गया। उसके जाने के बाद बोधिसत्व ने वहाँ उपस्थित लोगों को प्रवचन देते हुए ये श्लोक कहे:-

जो वह देखेगा, वह उसे नहीं मिलेगा;
जो चीज उसे दिखाई नहीं देगी, उसकी वह लालसा करेगा।
वह अभी बहुत आगे जा सकता है--
उसे वह नहीं मिलेगा जो वह चाहता है।
वह अपने पास जो कुछ है, उससे घृणा करता है;
एक बार मिल जाने पर, वह इसे नहीं चाहता।
उसे हमेशा हर चीज की लालसा रहती है:
जो किसी चीज की लालसा नहीं करता, वही हमारी प्रशंसा का पात्र है।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "दोनों ही मामलों में यात्री एक ही है, और मैं स्वयं उस समय तपस्वी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मूल-परिय-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-245-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 245
मूला-परियया-जातक

"समय सब कुछ खा जाता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने उक्कत्था के पास, सुभगवन उद्यान में रहते हुए, कारणों के क्रम पर अध्याय के संबंध में सुनाई थी।

उस समय, ऐसा कहा जाता है, पाँच सौ ब्राह्मण, जिन्होंने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी और मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त कर लिया था, ने तीनों पिटकों का अध्ययन किया। ज्ञान प्राप्त करने के बाद, वे अहंकार से भर गए और सोचने लगे—"परमेश्वर बुद्ध को केवल तीनों पिटकों का ज्ञान है, और हमें भी है। तो फिर हम दोनों में क्या अंतर है?" उन्होंने बुद्ध की सेवा करना छोड़ दिया और अपने अनुयायियों का समूह बनाकर घूमने लगे।

एक दिन जब ये लोग गुरु के सामने बैठे थे, तब उन्होंने कारण-क्रम का अध्याय दोहराया और उसमें ज्ञान की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया। उन्हें एक शब्द भी समझ नहीं आया। उनके मन में यह विचार आया—"हम तो अब तक यही मानते आए हैं कि हमारे समान बुद्धिमान कोई नहीं है, और इस बात को भी हम नहीं समझते। बुद्धों के समान बुद्धिमान कोई नहीं है: हे बुद्धों की श्रेष्ठता!" इसके बाद वे नम्र हो उठे, मानो दांत निकलवाने के बाद सांप शांत हो गया हो।

जब गुरुजी उक्कत्था में अपनी इच्छा अनुसार ठहर गए, तो वे वैशाली नगर के लिए प्रस्थान कर गए; और गौतम (बुद्ध) के मंदिर में उन्होंने गौतम (बुद्ध) पर आधारित अध्याय का पुनरावलोकन किया। यह सुनकर हजार लोक कांप उठे! ये भिक्षु (भाई) संत बन गए।

लेकिन, जब गुरु ने कारणों के क्रम पर अध्याय को दोहराना समाप्त कर दिया, तो उक्कत्था की अपनी यात्रा के दौरान भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस पूरे मामले पर चर्चा की। "हे मित्र, बुद्धों की शक्ति कितनी महान है! ये ब्राह्मण भिक्षु, जो अहंकार से इतने चूर रहते थे, कारणों के क्रम पर दिए गए उपदेश से कितने विनम्र हो गए!" गुरु अंदर आए और उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि मैंने इन लोगों को विनम्र किया है, जो अहंकार से इतने ऊंचे सिर रखते थे; मैंने पहले भी ऐसा किया है।" और फिर उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब एक बोधिसत्व ब्राह्मण के रूप में पैदा हुए; बड़े होकर उन्होंने तीनों वेदों में महारत हासिल की और एक प्रसिद्ध शिक्षक बन गए, और उन्होंने पाँच सौ शिष्यों को पवित्र श्लोकों का ज्ञान दिया। इन पाँच सौ शिष्यों ने अपने कार्य में पूरी ऊर्जा लगाकर और अपनी विद्या को परिपूर्ण करके मन ही मन कहा,

"हम अपने शिक्षक के बराबर ही जानते हैं: इसमें कोई अंतर नहीं है।"

वे अभिमानी और जिद्दी थे, न तो वे अपने शिक्षक के सामने आते थे और न ही अपना कर्तव्य निभाते थे।

एक दिन उन्होंने अपने स्वामी को बेर के पेड़ के नीचे बैठे देखा; और उनका उपहास करने के लिए, उन्होंने अपनी उंगलियों से पेड़ पर थपथपाया। "एक बेकार पेड़!" उन्होंने कहा।

बोधिसत्व ने देखा कि वे उनका उपहास कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "मेरे शिष्यों, मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूंगा।"

वे बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "बोलते रहिए, हम जवाब देंगे।"

उनके शिक्षक ने पहले श्लोक को दोहराते हुए प्रश्न पूछा:-

समय सब कुछ नष्ट कर देता है, यहां तक कि स्वयं समय भी।
सर्व-उपभोक्ता का उपभोग कौन करता है?--बताओ (*1)!"
युवकों ने समस्या सुनी; लेकिन उनमें से कोई भी इसका उत्तर नहीं दे सका। तब बोधिसत्व ने कहा,

"यह मत समझो कि यह प्रश्न तीनों वेदों में है। तुम सोचते हो कि तुम सब कुछ जानते हो जो मैं जानता हूँ, और इसलिए तुम बेर के पेड़ (*2) की तरह व्यवहार करते हो। तुम नहीं जानते कि मैं बहुत कुछ जानता हूँ जो तुम्हें नहीं पता। अब मुझे छोड़ दो: मैं तुम्हें सात दिन देता हूँ—इस प्रश्न पर इतने समय तक विचार करो।"

अतः उन्होंने अभिवादन किया और अपने-अपने घर चले गए। वहाँ एक सप्ताह तक वे विचार करते रहे, परन्तु समस्या का हल नहीं निकाल पाए। सातवें दिन वे अपने गुरु के पास आए और बैठकर उन्हें प्रणाम किया।

"अच्छा, हे शुभ वाणी वाले, क्या आपने प्रश्न का हल निकाल लिया?"

उन्होंने कहा, "नहीं, हमने ऐसा नहीं किया है।"

फिर बोधिसत्व ने फटकार लगाते हुए दूसरा श्लोक कहा:-

"गर्दन पर सिर उगते हैं, और सिर पर बाल उगते हैं।"
मैं जानना चाहता हूँ, कितने सिरों के कान होते हैं?
“तुम मूर्ख हो,” उन्होंने युवकों को फटकारते हुए कहा, “तुम्हारे कान तो छेद वाले हैं, लेकिन बुद्धि नहीं है;” और उन्होंने समस्या का समाधान कर दिया। उन्होंने उनकी बात सुनी। “आह,” उन्होंने कहा, “हमारे गुरु कितने महान हैं!” और उन्होंने उनसे क्षमा मांगी, और अपने अहंकार को त्यागकर बोधिसत्व की सेवा में बैठ गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय ये भिक्षु पाँच सौ शिष्य थे; और मैं स्वयं उनका गुरु था।"

फुटनोट:

(1) कालाघासो, 'समय का उपभोग करने वाला', वह है जो अस्तित्व की प्यास को नष्ट करके इस प्रकार जीता है कि उसे फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता।

(2) बेर फल की तुलना अक्सर नारियल से की जाती है, क्योंकि यह केवल बाहरी रूप से ही आकर्षक होता है।

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-246-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 246
TELOVADA-JATAKA

"दुष्ट हत्या करता है," इत्यादि - यह एक कहानी है जो गुरु ने वैशाली शहर के पास अपने छज्जे वाले कक्ष में रहते हुए सिंहासनपति के बारे में सुनाई थी।

कहा जाता है कि यह व्यक्ति शरणस्थल पर आने के बाद वहां आतिथ्य सत्कार करने लगा और फिर मांस युक्त भोजन परोसा। यह सुनकर नग्न तपस्वी क्रोधित और असंतुष्ट हो गए; वे बुद्ध को हानि पहुँचाना चाहते थे; उन्होंने उपहास करते हुए कहा, "वरिष्ठ भिक्षु गौतम (बुद्ध) आँखें खोलकर अपने लिए विशेष रूप से तैयार किया गया मांस खा रहे हैं।"

भिक्षुओं ने अपने सत्य कक्ष में इस विषय पर चर्चा की: "मित्र, तपस्वी निगंथ नटपुत्त (महावीर, जैन गुरु) (*1) उपहास उड़ाते फिरते हैं, क्योंकि उनका कहना है, 'भिक्षु गौतम (बुद्ध) अपने लिए विशेष रूप से तैयार किया गया मांस आँखें खोलकर खाते हैं'।" यह सुनकर गुरु ने उत्तर दिया: "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि निगंथ नटपुत्त (महावीर, जैन गुरु) मेरे लिए विशेष रूप से तैयार किया गया मांस खाने पर मेरा उपहास उड़ा रहे हैं; उन्होंने पहले भी ऐसा ही किया था। और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।"

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वयस्क होने पर उन्होंने संन्यासी जीवन अपना लिया।

वह हिमालय से नमक और मसाले लेने आया था, और अगले दिन शहर में घूम-घूम कर भीख मांगने लगा। एक धनी व्यक्ति ने उस तपस्वी को परेशान करने की योजना बनाई। इसलिए वह उसे अपने घर ले गया, बैठने के लिए जगह दिखाई, और फिर उसे मछली परोसी। भोजन के बाद, वह व्यक्ति एक तरफ बैठ गया और बोला,

"यह भोजन तुम्हारे लिए ही जीवित प्राणियों को मारकर तैयार किया गया है। इसका दोष मेरा नहीं, बल्कि तुम्हारा है!" और उसने पहली पंक्ति दोहराई:-

दुष्ट लोग हत्या करते हैं, पकाते हैं और खाने के लिए देते हैं।
जो इस तरह का मांस खाता है वह पाप से दूषित हो जाता है।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक सुनाया:-

दुष्ट लोग उपहार के रूप में पत्नी या बेटे की हत्या भी कर सकते हैं।
फिर भी, यदि पवित्र लोग भोजन करते हैं, तो कोई पाप नहीं होता (*2)।"
और बोधिसत्व ने ये उपदेश देकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "निगंथ नटपुत्त (महावीर, जैनों के गुरु), नग्न तपस्वी यह धनी व्यक्ति थे, और मैं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) वह छह गलत विश्वासियों में से एक है, और सामान्यतः नटपुत्त कहलाता है (जिसे निगंथ नटपुत्त या जैन धर्म के गुरु महावीर भी कहा जाता है)। 'नग्न तपस्वी' संभवतः जैन थे।

(2) "जीवन लेने वाले दोषी हैं, परन्तु मांस खाने वाले नहीं; मेरे भिक्षुओं को किसी भी स्थान या देश में प्रचलित भोजन खाने की अनुमति है, बशर्ते कि वह भूख या बुरी इच्छा के भोग के बिना खाया जाए।" बुद्ध

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पादांजलि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-247-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 247
पदांजलि-जातक

"निश्चित रूप से यह लड़का," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, वरिष्ठ भिक्षु लालुदायी के बारे में सुनाई थी।

एक दिन, ऐसा कहा जाता है, दो प्रमुख शिष्य एक प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। चर्चा सुनने वाले भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षुओं की प्रशंसा की। भिक्षुओं के बीच बैठे वरिष्ठ भिक्षु लालुदयी ने मन ही मन सोचा, "इनका ज्ञान मेरे ज्ञान के सामने क्या है?" जब भिक्षुओं ने यह देखा, तो वे उन्हें छोड़कर चले गए। भिक्षुओं का समूह तितर-बितर हो गया।

सत्य के हॉल में भाई लोग इस बारे में बात कर रहे थे। "मित्र, क्या तुमने देखा कि लालुदयी ने दो प्रमुख शिष्यों के प्रति तिरस्कार में अपने होंठ कैसे सिकोड़े?" यह सुनकर गुरु ने कहा, "भाइयों, पुराने समय में भी, आज की तरह, लालुदयी के पास होंठ सिकोड़ने के अलावा कोई और जवाब नहीं होता था।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके आध्यात्मिक और सांसारिक मामलों के सलाहकार थे। राजा का एक पुत्र था, जिसका नाम पदांजलि था, जो आलसी और निकम्मा था। कुछ समय बाद राजा की मृत्यु हो गई। उनके अंतिम संस्कार के बाद, दरबारी उनके पुत्र पदांजलि को राजा नियुक्त करने की बात करने लगे। लेकिन बोधिसत्व ने कहा,

"यह एक आलसी आदमी है, एक निकम्मा आवारा है, क्या हम इसे पकड़कर राजा नियुक्त कर दें?"

दरबारियों ने एक मुकदमा चलाया। उन्होंने युवक को अपने सामने बैठाया और एक गलत फैसला सुनाया। उन्होंने किसी चीज़ का दोष गलत मालिक पर डाल दिया और उससे पूछा, "युवक, क्या हमने सही फैसला किया है?"

लड़के ने अपने होंठ सिकोड़ लिए।

बोधिसत्व ने सोचा, "मुझे लगता है कि वह एक बुद्धिमान बालक है; उसे अवश्य ही पता होगा कि हमने गलत निर्णय लिया है।" और उन्होंने पहला श्लोक पढ़ा:

"निस्संदेह वह लड़का सभी मनुष्यों से कहीं अधिक बुद्धिमान है।"
वह अपने होंठ सिकोड़ता है—वह हमें पूरी तरह से समझ गया होगा!
अगले दिन, पहले की तरह, उन्होंने एक सुनवाई का आयोजन किया, लेकिन इस बार उन्होंने निष्पक्ष रूप से निर्णय लिया। उन्होंने फिर से उनसे पूछा कि वे इसके बारे में क्या सोचते हैं।

उसने फिर से अपने होंठ सिकोड़े। तब बोधिसत्व ने महसूस किया कि वह अंधा मूर्ख है, और उसने दूसरा श्लोक दोहराया:-

"उसे न तो सही और न ही गलत का ज्ञान है।"
वह अपने होंठ सिकोड़ता है—लेकिन इससे ज्यादा समझदारी नहीं दिखाता।
दरबारियों को पता चला कि युवक पदांजलि मूर्ख था, और उन्होंने बोधिसत्व को राजा बना दिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "लालुदयी पदांजलि थीं, और मैं बुद्धिमान दरबारी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **किशुकोपमा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-248-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 248
किमसुकोपामा-जातक

"सभी ने देखा है," इत्यादि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, यहूदा वृक्ष (*1) के अध्याय पर सुनाई थी।

चार भिक्षुओं ने तथागत (बुद्ध) के पास जाकर उनसे समाधि की अवस्था प्राप्त करने का तरीका पूछा। तथागत ने उन्हें समझाया। इसके बाद वे अपने-अपने स्थानों पर चले गए जहाँ वे रातें और दिन बिताते थे। उनमें से एक ने स्पर्श के छह क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त कर संत का पद प्राप्त किया; दूसरे ने पाँच तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर, तीसरे ने चार मुख्य तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर और चौथे ने अठारह तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर संत का पद प्राप्त किया। प्रत्येक ने गुरु को अपनी-अपनी विशेष उपलब्धि के बारे में बताया। उनमें से एक के मन में एक विचार आया और उसने गुरु से पूछा, "इन सभी ध्यान विधियों का केवल एक ही निर्वाण है; ये सभी विधियाँ संतत्व की ओर कैसे ले जाती हैं?" तब गुरु ने पूछा, "क्या यह उस घटना के समान नहीं है जिसमें लोगों ने यहूदा वृक्ष देखा था?" जब उन्होंने गुरु से इसके बारे में बताने का अनुरोध किया, तो उन्होंने बीते दिनों की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के चार पुत्र थे। एक दिन उन्होंने सारथी को बुलवाया और उससे कहा,

"हम एक यहूदा वृक्ष देखना चाहते हैं; हमें एक दिखाओ!"

“ठीक है, मैं दिखाऊंगा,” सारथी ने उत्तर दिया। लेकिन उसने सबको एक साथ पेड़ नहीं दिखाया। वह सबसे बड़े को रथ में बिठाकर जंगल ले गया और उसे उस समय पेड़ दिखाया जब उसमें कलियाँ निकलनी शुरू हुई थीं। दूसरे को उसने पत्तियाँ हरी होने पर, तीसरे को फूल खिलने पर और चौथे को फल लगने पर पेड़ दिखाया।

इसके बाद ऐसा हुआ कि चारों भाई एक साथ बैठे थे, और किसी ने पूछा, "यहूदा का वृक्ष किस प्रकार का वृक्ष है?" तब पहले भाई ने उत्तर दिया,

"जले हुए ठूंठ की तरह!"

और दूसरे ने चिल्लाकर कहा, "बरगद के पेड़ की तरह!"

और तीसरा--"मांस के टुकड़े की तरह (*2)!"

और चौथे ने कहा, "बबूल की तरह!"

वे एक-दूसरे के जवाबों से नाराज़ हो गए और अपने पिता को ढूंढने दौड़ पड़े। उन्होंने पूछा, "मेरे स्वामी, यह जुडास का पेड़ किस प्रकार का पेड़ है?"

“तुमने इस पर क्या कहा?” उसने पूछा। उन्होंने उसे अपने उत्तरों का तरीका बताया। राजा ने कहा,

"तुम चारों ने वह वृक्ष देखा है। केवल जब सारथी ने तुम्हें वृक्ष दिखाया, तो तुमने उससे यह नहीं पूछा कि 'वृक्ष ऐसे समय में कैसा दिखता है?' या 'दूसरे समय में कैसा दिखता है?' तुमने कोई भेद नहीं किया, और यही तुम्हारी गलती है।" और उसने पहला श्लोक दोहराया:-

"सभी ने यहूदा का पेड़ देखा है--"
आपकी उलझन क्या है?

किसी ने सारथी से नहीं पूछा
इसका स्वरूप पूरे वर्ष कैसा रहता है!

गुरु ने मामले को समझाने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "जिस प्रकार वे चारों भिक्षु भेद न कर पूछने के कारण वृक्ष के विषय में संशय में पड़ गए, उसी प्रकार तुम भी सही के विषय में संशय में पड़ गए हो": और अपनी पूर्ण बुद्धि से उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:

"जो सही को कुछ कमी के साथ जानते हैं"
उन चार भाइयों की तरह, जिनके पास वह पेड़ था, संदेह महसूस करो।
जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय मैं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1) किम्सुका = ब्यूटिया फ्रोंडोसा.

(2) इसमें गुलाबी फूल हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सालक-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-249-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 249
सलाका-जातक

"मेरे अपने बेटे की तरह," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक प्रतिष्ठित वरिष्ठ भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

कहा जाता है कि उन्होंने एक युवक को दीक्षा दी थी, जिसके साथ उन्होंने बुरा बर्ताव किया। नौसिखिए युवक अंततः इसे सहन नहीं कर सका और संसार में लौट आया। तब वरिष्ठ भिक्षु ने उसे मनाने की कोशिश की। उन्होंने कहा, "देखो, बालक, तुम्हारा वस्त्र और तुम्हारा कुंड तुम्हारा ही रहेगा; मेरे पास एक और कुंड और वस्त्र है जो मैं तुम्हें दे दूंगा। फिर से हमारे साथ जुड़ जाओ!" पहले तो उसने मना कर दिया, लेकिन बहुत मिन्नतें करने के बाद वह मान गया। जिस दिन से वह भिक्षु संघ में शामिल हुआ, वरिष्ठ भिक्षु ने उसके साथ पहले जैसा ही बुरा बर्ताव किया। फिर से उस लड़के को यह असहनीय लगा और उसने संघ छोड़ दिया। जब वरिष्ठ भिक्षु ने उससे कई बार फिर से जुड़ने की विनती की, तो लड़के ने उत्तर दिया, "न तो तुम मेरे साथ रह सकते हो और न ही मेरे बिना; मुझे अकेला छोड़ दो - मैं शामिल नहीं होऊंगा!"

सत्य के हॉल में भिक्षु इस विषय पर चर्चा करने लगे। उन्होंने कहा, "मित्र, वह लड़का कितना संवेदनशील है! वह बड़े भिक्षु को इतनी अच्छी तरह जानता था कि हमारे साथ शामिल नहीं होना चाहता था।" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, वह लड़का न केवल अब संवेदनशील है, बल्कि पहले भी ऐसा ही था; एक बार जब उसने उस व्यक्ति की कमियाँ देख लीं, तो उसने उसे फिर कभी स्वीकार नहीं किया।" और उन्होंने पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व एक जमींदार परिवार में पैदा हुए और अनाज बेचकर अपना जीवन यापन करते थे। एक अन्य व्यक्ति, जो सपेरा था, ने एक बंदर को प्रशिक्षित किया, उसे विषनाशक दवा पिलाई और सांप को बंदर के साथ खेलने के लिए कहकर अपनी आजीविका चलाता था।

एक उत्सव का ऐलान हो चुका था; वह आदमी भी उस उत्सव में शामिल होना चाहता था, इसलिए उसने अपना बंदर उस व्यापारी को सौंप दिया और उससे विनती की कि वह उसकी उपेक्षा न करे। सात दिन बाद वह व्यापारी के पास आया और अपना बंदर मांगा। बंदर ने अपने मालिक की आवाज़ सुनी और अनाज की दुकान से झट से बाहर आ गया। तुरंत ही उस आदमी ने बाँस के एक टुकड़े से उसकी पीठ पर मारा; फिर वह उसे जंगल में ले गया, बाँध दिया और सो गया। जैसे ही बंदर ने देखा कि वह सो रहा है, उसने अपने बंधन खोल दिए, भाग गया और एक आम के पेड़ पर चढ़ गया। उसने एक आम खाया और उसकी गुठली सपेरे के सिर पर गिरा दी। वह आदमी जागा और ऊपर देखा: वहाँ बंदर था। "मैं उसकी चापलूसी करूँगा!" उसने सोचा, "और जब वह पेड़ से नीचे आएगा, तो मैं उसे पकड़ लूँगा!" इसलिए उसकी चापलूसी करने के लिए, उसने पहला श्लोक दोहराया:-

"तुम मेरे अपने बेटे के समान होगे।"
हमारे परिवार में मुखिया:
नीचे उतर आओ, चाचा जी (*1) पेड़ से--
मेरे साथ जल्दी घर चलो?
बंदर ने सुना और दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"तुम मन ही मन हंस रहे हो!"
क्या तुम उस पिटाई को पूरी तरह से भूल गए हो?
मैं यहाँ रहकर संतुष्ट हूँ।
(तो अलविदा) पके आम खाना।
वह उठा और जल्द ही जंगल में गायब हो गया; जबकि सपेरा बहुत क्रोधित होकर अपने घर लौट गया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "हमारा नवोदित भिक्षु बंदर था। वरिष्ठ भिक्षु सपेरा था, और मैं स्वयं अनाज व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1)सलका, शाब्दिक अर्थ 'साला', जिसका प्रयोग अक्सर गाली के रूप में किया जाता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कपि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-250-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 250
कपि-जातक

"एक पवित्र ऋषि," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पाखंडी भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

भिक्षु संघ को उसके पाखंड का पता चल गया। सत्य के हॉल में वे आपस में चर्चा कर रहे थे: "मित्र, फलां भिक्षु, बुद्ध के धर्म (मुक्ति) के मार्ग को अपनाने के बाद भी पाखंड करते हैं।" गुरुजी ने आकर पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब यह भिक्षु पाखंडी हुआ है; वह पहले भी पाखंडी था, जब उसने केवल आग से खुद को गर्म करने के लिए पाखंड किया था।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब वे बड़े हुए और उनका बेटा इतना बड़ा हो गया कि खेलने-कूदने लगा, तब उनकी पत्नी का देहांत हो गया; उन्होंने बच्चे को गोद में उठाया और हिमालय चले गए, जहाँ वे तपस्वी बन गए और अपने बेटे का भी उसी तरह पालन-पोषण किया। वे पत्तों की कुटिया में रहते थे।

बरसात का मौसम था और आसमान से लगातार मूसलाधार बारिश हो रही थी: एक बंदर ठंड से बेहाल होकर इधर-उधर भटक रहा था, अपने दांत किटकिटा रहा था। बोधिसत्व एक बड़ी लकड़ी लाए, आग जलाई और अपने पुआल के गद्दे पर लेट गए। उनका बेटा उनके पास बैठा उनके पैर खुजला रहा था।

अब बंदर को किसी मृत साधु का वस्त्र मिला। उसने उस वस्त्र को पहन लिया और एक कंधे पर खाल डाल ली; उसने डंडा और पानी का घड़ा लिया और उस साधु के वस्त्र में ही आग जलाने के लिए पत्तों की कुटिया में आ गया; और वहाँ वह अपने उधार लिए हुए पंखों के साथ खड़ा हो गया।

लड़के ने उसे देखा और अपने पिता से पुकार कर कहा, "देखिए पिताजी—वहाँ एक तपस्वी ठंड से काँप रहा है! उसे पास बुलाइए; वह स्वयं को गर्म कर लेगा।" इस प्रकार अपने पिता को संबोधित करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:

"एक पवित्र संत हमारे द्वार पर कांपते हुए खड़े हैं,"
एक ऋषि, जो शांति और अच्छाई में स्थापित हैं।
हे पिता! उस पवित्र व्यक्ति को अंदर आने के लिए कहिए।
ताकि उसकी सारी सर्दी और तकलीफ दूर हो जाए।

बोधिसत्व ने अपने पुत्र की बात सुनी; वे उठे और देखा; तब उन्हें पता चला कि यह एक बंदर है, और उन्होंने दूसरी पंक्ति दोहराई:

वह कोई पवित्र ऋषि नहीं है: वह एक घिनौना व्यक्ति है।
और घृणित बंदर, जो सब कुछ बर्बाद करने के लिए लालची है।
जिसे वह स्पर्श कहता है, जो वृक्षों के बीच निवास करता है;
एक बार उसे अंदर आने दिया तो वह हमारे घर को अपवित्र कर देगा।"

इन शब्दों के साथ, बोधिसत्व ने एक जलती हुई लकड़ी उठाई और बंदर को भगा दिया; और वह उछल पड़ा, और चाहे उसे लकड़ी पसंद आई हो या न आई हो, वह फिर कभी उस स्थान पर नहीं लौटा। बोधिसत्व ने अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों का विकास किया, और युवा तपस्वी को उन्होंने रहस्यमय समाधि की प्रक्रिया समझाई; और उसने भी अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को अपने भीतर विकसित होने दिया। और वे दोनों, अपनी समाधि (समाधि) में बिना किसी रुकावट के, ब्रह्मा के लोक के लिए नियत हो गए।

इस प्रकार गुरु ने प्रवचन देते हुए समझाया कि यह व्यक्ति न केवल उस समय, बल्कि हमेशा से ही पाखंडी था। प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर कुछ लोग प्रथम मार्ग (सम्मोहन) पर पहुँचे, कुछ द्वितीय मार्ग पर और कुछ तृतीय मार्ग पर। "पाखंडी भाई (भिक्षु) बंदर था, राहुल पुत्र था और मैं स्वयं संन्यासी था।"

पुस्तक III. टीका-निपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सनकप्पा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-251-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 251
समकप्पा-जातक

"कोई धनुर्धारी नहीं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में रहने वाले एक युवक ने तीन रत्नों (*1) की शिक्षाओं में अपना हृदय समर्पित कर दिया और संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगा। परन्तु एक दिन श्रावस्ती नगर में भ्रमण करते समय उसकी दृष्टि एक स्त्री पर पड़ी जो चमकीले रंग के वस्त्र पहने थी। उसके हृदय में वासना उत्पन्न हुई; वह व्याकुल हो गया। जब उसके गुरुओं, सलाहकारों और मित्रों ने उसे इस प्रकार देखा, तो उन्होंने तुरंत उससे कारण पूछा। यह देखकर कि वह संसार में लौटने के लिए व्याकुल है, उन्होंने आपस में कहा, "हे मेरे मित्र, गुरु उन लोगों के पापों को दूर कर सकते हैं जो कामवासना और इसी प्रकार के पापों से ग्रस्त हैं, और सत्यों की शिक्षा देकर उन्हें पुण्य का फल भोगने के लिए प्रेरित

करते हैं। आओ, हम उसे गुरु के पास ले चलें।" अतः वे उसे गुरु के पास ले गए। उन्होंने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं) आप इस युवक को उसकी इच्छा के विरुद्ध मेरे पास क्यों लाए हैं?" उन्होंने कारण बताया। उन्होंने पूछा, "क्या यह सच है कि आप पथभ्रष्ट हैं, जैसा कि लोग कहते हैं?" उन्होंने स्वीकार किया। गुरु ने कारण पूछा, और उन्होंने घटना का वर्णन किया। उन्होंने कहा, "हे भिक्षु (भाइयों), पहले भी ऐसा हुआ है कि इन स्त्रियों ने उन शुद्ध प्राणियों में भी अशुद्धता उत्पन्न कर दी है जिनके पाप समाधि की शक्ति से शांत हो गए थे। जब शुद्ध लोगों में भी अशुद्धता आ जाती है, तो आप जैसे व्यर्थ पुरुषों को क्यों न अशुद्ध होना चाहिए? उच्च प्रतिष्ठा वाले पुरुष भी अपमानित हो जाते हैं; तो अशुद्ध लोगों का क्या होगा! क्या सिनेरु पर्वत को हिलाने वाली हवा पुराने पत्तों के ढेर को नहीं हिलाएगी? इस पाप ने स्वयं सिंहासन पर बैठे प्रबुद्ध बुद्ध को भी विचलित किया है, तो क्या यह आप जैसे व्यक्ति को विचलित नहीं करेगा?" और उनके अनुरोध पर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक महान ब्राह्मण परिवार में हुआ, जिसके पास आठ सौ मिलियन की संपत्ति थी। उनका पालन-पोषण तक्षशिला में हुआ और उन्होंने वहीं शिक्षा प्राप्त की, फिर वे बनारस लौट आए। वहाँ उनका विवाह हुआ और अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने उनके अंतिम संस्कार किए।

फिर, जब वह अपने खजाने का निरीक्षण कर रहा था, तो उसने सोचा—"खजाना तो अभी भी यहीं है, लेकिन इसे इकट्ठा करने वाले अब यहां नहीं हैं!" वह शोक से व्याकुल हो गया, और उसके शरीर से पसीना बहने लगा।

उन्होंने दीर्घकाल घर पर बिताया और दान-पुण्य में बहुत कुछ दिया; उन्होंने अपनी भावनाओं पर विजय प्राप्त की; फिर वे अपने शोकग्रस्त मित्रों को छोड़कर हिमालय चले गए, जहाँ उन्होंने एक रमणीय स्थान पर एक कुटिया बनाई और जंगल के जंगली फलों और जड़ों को खाकर अपना जीवन व्यतीत किया, जो उन्हें आने-जाने के दौरान मिलते थे। शीघ्र ही उन्होंने अपनी इंद्रियों और ज्ञान को विकसित किया और कुछ समय तक आनंदमय ध्यान में व्यतीत किया।

फिर उनके मन में एक विचार आया। वे मनुष्यों के बीच जाकर नमक और मसाले खरीदेंगे; इससे उनका शरीर बलवान होगा और वे पैदल ही विचरण करेंगे। उन्होंने सोचा, "जो भी मुझ जैसे पुण्य पुरुष को दान देगा और आदरपूर्वक मेरा अभिवादन करेगा, वह स्वर्ग को भर देगा।" अतः वे हिमालय से नीचे उतरे और कुछ समय बाद आगे बढ़ते हुए सूर्यास्त के समय बनारस पहुँचे। उन्होंने रहने के लिए जगह ढूँढी और राजमहल देखा। उन्होंने कहा, "यह विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान है; मैं यहीं निवास करूँगा।" अतः वे उद्यान में प्रवेश कर गए और एक वृक्ष की छाया में बैठ गए तथा पूरी रात ध्यान की अवस्था में व्यतीत की।

अगले दिन दोपहर होते-होते, अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने और अपने उलझे हुए बालों, त्वचा और छाल से बने वस्त्रों को ठीक करने के बाद, उसने अपना भिक्षापात्र उठाया; उसकी सभी इंद्रियाँ शांत थीं, उसका अहंकार शांत हो चुका था, उसका आचरण गरिमामय था, वह बस अपने सामने हल की लंबाई जितनी दूरी तक ही देख रहा था; अपने हर तरह से परिपूर्ण रूप की भव्यता से उसने संसार की निगाहें अपनी ओर खींच लीं। इस प्रकार वह नगर में प्रवेश किया और घर-घर जाकर भीख माँगता रहा, जब तक कि वह राजा के महल तक नहीं पहुँच गया।

राजा अपनी छत पर टहल रहे थे। उन्होंने खिड़की से बोधिसत्व को देखा। वे उनके रूप से प्रसन्न हुए; उन्होंने सोचा, "यदि पूर्ण शांति जैसी कोई चीज है, तो वह निश्चित रूप से इसी व्यक्ति में पाई जाएगी।" इसलिए उन्होंने अपने एक दरबारी को भेजा और तपस्वी को लाने को कहा। दरबारी ने अभिवादन किया और भिक्षापात्र लेकर कहा, "महाराज ने आपको बुलवाया है, महोदय।"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे महान मित्र, राजा मुझे नहीं जानते!"

"तो महाराज, कृपया मेरे लौटने तक यहीं ठहरिए।" उसने राजा को भिखारी की कही बात बताई। तब राजा ने कहा,

"हमारे पास कोई गोपनीय पुजारी नहीं है: जाओ, उसे बुला लाओ;" और उसी समय उसने खिड़की से बाहर इशारा करते हुए उसे पुकारा—"यहाँ, अंदर आइए, महोदय!"

बोधिसत्व ने अपना भिक्षापात्र दरबारी को दे दिया और चबूतरे पर चढ़ गए। राजा ने उनका अभिवादन किया और उन्हें अपने पलंग पर बैठाकर अपने लिए तैयार किए गए सभी भोजन और मांस उन्हें अर्पित किए। भोजन करने के बाद, उन्होंने उनसे कुछ प्रश्न पूछे; और उनके उत्तरों से वे अत्यंत प्रसन्न हुए, इसलिए आदरपूर्वक उन्होंने पूछा,

"महोदय, आप कहाँ रहते हैं? आप यहाँ कहाँ से आए हैं?"

"मैं हिमालय में निवास करता हूँ, हे पराक्रमी राजा, और मैं हिमालय से आया हूँ।"

राजा ने पूछा, "क्यों?"

"हे राजा, वर्षा ऋतु में हमें एक स्थायी निवास की तलाश करनी चाहिए।"

तब राजा ने कहा, "मेरे शाही उद्यान में यहीं ठहरो, तुम्हें चारों आवश्यक चीजों की कमी नहीं होगी; मैं वह पुण्य अर्जित करूंगा जो स्वर्ग की ओर ले जाता है।"

प्रतिज्ञा ली गई; और अपना उपवास तोड़कर वह बोधिसत्व के साथ परिसर में गया और वहाँ पत्तों की एक कुटिया बनवाई। उसने एक ढका हुआ मार्ग बनवाया और रात-दिन रहने के लिए सभी स्थान तैयार किए। वह संन्यासी के जीवन के लिए सभी आवश्यक साज-सामान और सामान लाया और उसे आराम से रहने के लिए कहकर उद्यान के रखवाले को सौंप दिया।

इसके बाद बारह वर्षों तक बोधिसत्व उसी स्थान पर रहे।

एक बार ऐसा हुआ कि सीमावर्ती जिले में विद्रोह भड़क उठा। राजा स्वयं जाकर उसे शांत करना चाहता था। उसने अपनी रानी को बुलाकर कहा—"महारानी, या तो आप या मैं यहीं रुकेंगे।"

"आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, महाराज?" उसने पूछा।

"अच्छे तपस्वी के हित में।"

"मैं उनकी उपेक्षा नहीं करूंगी," उसने कहा। "मेरा कर्तव्य है पवित्र पिता की सेवा करना; आप निश्चिंत होकर चले जाइए।"

अत: राजा चले गए; और फिर रानी ने बोधिसत्व की ध्यानपूर्वक सेवा की।

अब राजा जा चुका था; नियत समय पर बोधिसत्व आए।

जब उनका मन करता, वे महल में आते और वहीं भोजन करते। एक दिन, वे बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे। रानी ने उनका सारा भोजन तैयार कर दिया था; उन्होंने स्नान किया, सज-धज कर एक नीची आसन तैयार की; अपने ऊपर एक साफ वस्त्र ओढ़े, वे बोधिसत्व के आने की प्रतीक्षा में लेटी रहीं। तभी बोधिसत्व ने समय देखा; उन्होंने अपना भिक्षापात्र उठाया और वायु में से होकर बड़ी खिड़की तक आए। रानी ने उनके वस्त्रों की सरसराहट सुनी और जैसे ही वे जल्दी से उठीं, उनका पीला वस्त्र फिसल गया। बोधिसत्व ने इस असामान्य दृश्य को अपने मन में बसने दिया और उन्हें वासना भरी निगाहों से देखा। फिर उनकी समाधि (सम्मोहन) की शक्ति से शांत हुई बुरी वासना, उस टोकरी से फन फैलाते हुए नाग की तरह उठ खड़ी हुई जिसमें उन्हें रखा गया था: वे कुल्हाड़ी से कटे हुए दूध के पेड़ के समान थे। जैसे-जैसे उनकी वासना प्रबल होती गई, उनकी समाधि की शांति भंग होती गई, उनकी इंद्रियों ने अपनी पवित्रता खो दी; वह मानो टूटे पंख वाले कौवे जैसा था। वह पहले की तरह बैठकर भोजन नहीं कर सकता था; रानी के बार-बार बैठने की विनती करने पर भी वह नहीं बैठता था। इसलिए रानी ने सारा भोजन उसके भिक्षापात्र में रख दिया; परन्तु उस दिन वह भोजन के बाद पहले की तरह खिड़की से बाहर नहीं जा सका; भोजन लेकर वह बड़ी सीढ़ी से नीचे उतरकर उपवन में चला गया।

जब वह वहाँ पहुँचा, तो कुछ खा नहीं सका। उसने अपना खाना अपनी बेंच के नीचे रख दिया और बुदबुदाते हुए बोला, "क्या औरत है! सुंदर हाथ, सुंदर पैर! क्या कमर है, क्या जांघें हैं!" और इसी तरह वह सात दिन तक पड़ा रहा। सारा खाना सड़ गया और उस पर काली मक्खियों का झुंड मंडरा रहा था।

फिर राजा सीमा व्यवस्था बहाल करके लौट आया। शहर पूरी तरह सजा हुआ था; उसने जुलूस निकालते हुए शहर का चक्कर लगाया, हमेशा शहर को दाहिनी ओर रखते हुए, और फिर महल की ओर बढ़ा। इसके बाद वह बोधिसत्व के दर्शन की इच्छा से उपवन में प्रवेश किया। उसने आश्रम के आसपास गंदगी और कूड़ा-करकट देखा, और यह सोचकर कि वह चला गया होगा, उसने कुटिया का दरवाजा धक्का देकर खोला और अंदर चला गया। वहाँ बोधिसत्व लेटा हुआ था। राजा ने सोचा, "वह बीमार होगा।" इसलिए उसने सड़ा हुआ भोजन फेंकवा दिया, कुटिया को साफ करवाया, और फिर पूछा,

"क्या बात है सर?"

"महाराज, मैं घायल हूँ!"

तब राजा ने सोचा, "मुझे लगता है कि यह मेरे दुश्मनों ने ही किया होगा। उन्हें मुझ पर हमला करने का मौका नहीं मिला, इसलिए उन्होंने मेरी प्रिय चीज़ को नुकसान पहुँचाने का निश्चय किया।" इसलिए उसने उसे पलटकर घाव की तलाश की; पर उसे कोई घाव नहीं दिखा। फिर उसने पूछा, "महाराज, घाव कहाँ है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, “मुझे किसी ने चोट नहीं पहुँचाई, मैंने स्वयं अपने हृदय को ही चोट पहुँचाई है।” फिर वे उठे और आसन पर बैठ गए तथा निम्नलिखित श्लोक दोहराए:

किसी भी तीरंदाज ने अपने कान तक तीर नहीं पहुंचाया।
इस घाव को भरने के लिए, यहाँ कोई पंखों वाला बाण नहीं है।
मोर के पंख से तोड़ा गया, और बारीक ढंग से सजाया गया
कुशल तीर बनाने वालों द्वारा:-यह मेरा हृदय है,
"एक बार अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से वासनाओं से मुक्त हो जाने पर,
और तीव्र बुद्धि, जो इच्छा के माध्यम से
उसने मुझे ऐसा घाव दिया है जिससे मेरी मृत्यु निश्चित हो गई है।
और यह आग की तरह मेरे सभी अंगों को जला देता है।
मुझे ऐसा कोई घाव नहीं दिख रहा जिससे खून बह सके:
मेरे अपने दिल की गलती ही है जो मुझे इतना भेद रही है।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन श्लोकों के द्वारा राजा को विषयवस्तु समझाई। फिर उन्होंने राजा को कुटिया से बाहर बुलाया और उन्हें रहस्यमयी समाधि की अवस्था में ले गए; जिससे राजा की बाधित समाधि (समाधि) पुनः प्राप्त हो गई। फिर वे कुटिया से बाहर निकले और वायु में बैठकर राजा को प्रोत्साहित किया। इसके बाद उन्होंने कहा कि वे हिमालय जाएंगे। राजा उन्हें मना करना चाहते थे, लेकिन उन्होंने कहा,

"हे राजा, देखिए यहाँ रहते हुए मुझ पर कितना अपमान आया है! मैं यहाँ नहीं रह सकता।" राजा के बार-बार विनती करने पर भी वह आकाश में उड़ गया और हिमालय चला गया, जहाँ वह जीवन भर रहा और फिर ब्रह्मा के लोक में चला गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) संत बन गए, और कुछ ने प्रथम मार्ग (समाधि), कुछ ने द्वितीय (समाधि), और कुछ ने तृतीय (समाधि) में प्रवेश किया: - "अमंदा राजा थे, और मैं संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1) त्रिरत्न/त्रिमूर्ति : बुद्ध, निर्वाण का धर्मी मार्ग (धम्म), भिक्षुओं का पवित्र संघ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तिल-मुथि-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-252-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 252
तिला-मुत्थी-जातक

“अब मैं सोचता हूँ,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भावुक व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। हमें पता चलता है कि एक भिक्षु था जो कड़वाहट से भरा हुआ था। चाहे उससे कितना भी कम कहा जाए, वह क्रोधित हो जाता और कठोर शब्दों में बोलता; क्रोध, घृणा और अविश्वास प्रकट करता था। सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने इस विषय पर चर्चा की। “मित्र, फलां भिक्षु कितना क्रोधित और कड़वा है! वह आग में नमक की तरह भड़कता रहता है। यद्यपि उसने इस शांतिपूर्ण धर्म (मार्ग) को अपनाया है, फिर भी वह अपने क्रोध को भी नियंत्रित नहीं कर सकता।” गुरु ने यह सुना और एक भिक्षु को उस व्यक्ति को लाने के लिए भेजा। “क्या तुम सचमुच उतने ही भावुक हो

जितना लोग कहते हैं?” उन्होंने पूछा। उस व्यक्ति ने कहा कि वह है। तब गुरु ने आगे कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि यह व्यक्ति भावुक हुआ है। वह पहले इतना ही शांत था;” और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त का एक पुत्र था जिसका नाम राजकुमार ब्रह्मदत्त था। पुराने समय के राजा, भले ही उनके शहर में कोई प्रसिद्ध शिक्षक रहता हो, अक्सर अपने पुत्रों को दूर-दराज के देशों में शिक्षा पूरी करने के लिए भेजते थे, ताकि वे अपने अहंकार और घमंड को वश में करना सीख सकें, सर्दी-जुकाम सहन करना सीख सकें और संसार के रीति-रिवाजों से परिचित हो सकें। राजा ने भी ऐसा ही किया। अपने पुत्र को अपने पास बुलाकर—जो अब सोलह वर्ष का था—उन्होंने उसे एक तले की चप्पल, पत्तों की बनी एक छाता और एक हजार सिक्के देते हुए ये शब्द कहे:

"मेरे बेटे, मैं तुम्हें तक्षशिला ले जाऊंगा और तुम वहां पढ़ाई करोगे।"

लड़के ने आज्ञा का पालन किया। उसने अपने माता-पिता को विदाई दी और कुछ देर बाद तक्षशिला पहुँच गया। वहाँ उसने शिक्षक के निवास के बारे में पूछा और उस समय पहुँचा जब शिक्षक अपना व्याख्यान समाप्त कर चुके थे और घर के द्वार पर इधर-उधर टहल रहे थे। जैसे ही लड़के की नज़र शिक्षक पर पड़ी, उसने अपने जूते के फीते खोले, अपनी धूप से बचने वाली छतरी को बंद किया और आदरपूर्वक अभिवादन करते हुए वहीं खड़ा हो गया। शिक्षक ने देखा कि वह थका हुआ है और नए साथी का स्वागत किया। लड़के ने भोजन किया और थोड़ा आराम किया। फिर वह शिक्षक के पास लौटा और आदरपूर्वक उनके पास खड़ा हो गया।

"तुम कहाँ से आए हो?" उसने पूछा।

"बनारस से।"

तुम किसके बेटे हो?

मैं बनारस के राजा का पुत्र हूँ।

"आप यहाँ क्या लेकर आये हो?"

लड़के ने जवाब दिया, "मैं सीखने आया हूँ।"

"अच्छा, क्या आप शिक्षक की फीस लाए हैं? या आप मुझे पढ़ाने के बदले में मेरी सेवा करना चाहते हैं?"

"मैं अपने साथ फीस लाया हूँ," और यह कहकर उसने शिक्षक के चरणों में अपने हजार सिक्कों से भरा पर्स रख दिया।

विद्यालय में रहने वाले विद्यार्थी दिन में अपने शिक्षक की सेवा करते हैं और रात में उनसे सीखते हैं; परन्तु जो विद्यार्थी शुल्क लेकर आते हैं, उन्हें शिक्षक के घर में सबसे बड़े पुत्रों के समान माना जाता है और वे इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करते हैं। और यह शिक्षक, अन्य शिक्षकों की तरह, प्रत्येक शुभ और शुभ दिन राजकुमार को शिक्षा देता था (*1)। इस प्रकार युवा राजकुमार को शिक्षा प्राप्त हुई।

एक दिन वह अपने गुरु के साथ स्नान करने गया। वहाँ एक बूढ़ी औरत थी जिसने कुछ सफेद बीज तैयार करके अपने सामने फैला रखे थे; वह वहीं बैठकर उन्हें देख रही थी। युवक ने उन सफेद बीजों को देखा और उसे खाने की इच्छा हुई; उसने मुट्ठी भर बीज उठाए और खा लिए।

"वह आदमी भूखा होगा," उसने सोचा; लेकिन उसने कुछ नहीं कहा और चुपचाप बैठी रही।

अगले दिन भी ठीक उसी समय वही घटना घटी। फिर भी उस महिला ने उससे कुछ नहीं कहा। तीसरे दिन उसने फिर वही किया; तब बूढ़ी औरत चिल्ला उठी और बोली,

"महान गुरु अपने शिष्यों को मुझे लूटने दे रहे हैं!" और उसने अपनी बाहें ऊपर उठाते हुए रोते हुए कहा।

शिक्षक ने पीछे मुड़कर पूछा, "क्या बात है, माँ?"

"गुरुजी, मैं कुछ बीज भून रहा था, और आपके शिष्य ने मुट्ठी भर बीज निकालकर खा लिए! उसने आज भी ऐसा किया, कल भी किया और परसों भी किया! वह निश्चित रूप से मेरा सारा पैसा खा जाएगा!"

"मां, रोओ मत: मैं देखूंगा कि तुम्हें भुगतान मिल जाए।"

"हे गुरुजी, मुझे कोई भुगतान नहीं चाहिए: बस अपने शिष्य को यह सिखा दीजिए कि वह दोबारा ऐसा न करे।"

"देखो, माँ," उसने कहा; और उसने दो लड़कों को उस युवक के दोनों हाथ पकड़ने का आदेश दिया, और उसे बाँस की छड़ी से उसकी पीठ पर तीन बार मारा, और उससे कहा कि वह फिर कभी ऐसा न करे।

राजकुमार अपने गुरु पर बहुत क्रोधित था। उसने गुस्से से लाल आँखों से उन्हें सिर से पैर तक घूरा। गुरु ने देखा कि वह कितना क्रोधित था और किस तरह से उन्हें घूर रहा था।

युवक ने मन लगाकर पढ़ाई की और अपना पाठ्यक्रम पूरा किया। लेकिन उसने अपने मन में अपराधबोध छिपाए रखा और अपने शिक्षक की हत्या करने का निश्चय कर लिया। जब उसके जाने का समय आया, तो उसने अपने शिक्षक से कहा,

"हे मेरे गुरु, जब मुझे बनारस का राज्य प्राप्त होगा, तो मैं आपको बुलवाऊंगा। तब आप मेरे पास आइएगा, मैं आपसे विनती करता हूं।" और इस प्रकार उन्हें अत्यंत स्नेहपूर्वक यह वादा प्राप्त हुआ।

वह बनारस लौट आया, अपने माता-पिता से मिला और उसने अपने ज्ञान का प्रमाण प्रस्तुत किया। राजा ने कहा, "मैं अपने पुत्र को पुनः देखकर प्रसन्न हुआ हूँ, और जब तक मैं जीवित हूँ, मैं उसके शासन की भव्यता देखूँगा।" अतः उसने अपने पुत्र को अपने स्थान पर राजा बना दिया।

जब राजकुमार राजसी वैभव का आनंद ले रहा था, तो उसे अपनी पुरानी दुश्मनी याद आ गई और उसके भीतर क्रोध उमड़ पड़ा। "मैं उस आदमी को मौत के घाट उतार दूंगा!" उसने मन ही मन सोचा और अपने शिक्षक को बुलाने के लिए एक दूत भेजा।

"जब तक वह जवान है, मैं उसे कभी शांत नहीं कर पाऊंगा," गुरु ने सोचा; इसलिए वह नहीं आया। लेकिन जब राजकुमार का शासनकाल आधा बीत चुका था, तब उसने सोचा कि वह उसे शांत कर सकता है; और वह आया, राजा के द्वार पर खड़ा हुआ, और यह संदेश भेजा कि तक्षशिला से गुरु आ गए हैं। राजा प्रसन्न हुआ, और ब्राह्मण को अंदर लाने का आदेश दिया। फिर उसका क्रोध भड़क उठा, और उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने अपने आस-पास के लोगों को इशारा करते हुए कहा, "हा, जिस स्थान पर मेरे गुरु ने प्रहार किया था, वह आज भी मुझे पीड़ा देता है! वह यहाँ मृत्यु को अपने माथे पर लिखा हुआ लेकर मरने आया है! आज उसका जीवन समाप्त होना ही है!" और उसने पहले दो श्लोक दोहराए:-

"अब मुझे लगता है, बीते दिनों में कुछ बेचारे बीजों के लिए,
तुमने मुझे बांह से पकड़ा और मुझे एक छड़ी से इतनी दर्दनाक पिटाई की।
ब्राह्मण, क्या तुम्हें मृत्यु से प्रेम है और क्या तुम्हें जरा भी भय नहीं है?
मुझे पकड़ने और पीटने के बाद, अब तुम यहाँ आने की हिम्मत कैसे कर रहे हो?
इस प्रकार उसने उसे मृत्युदंड की धमकी दी। यह सुनकर शिक्षक ने तीसरा श्लोक कहा:

"कुलीन कुल में जन्मा (*2) जो वश में करने के लिए क्रूरता का प्रयोग करता है
यही सही अनुशासन है, क्रोध नहीं: बुद्धिमान लोग इसे भली-भांति जानते हैं।

"इसलिए, हे महाराज, इसे स्वयं समझ लीजिए। जान लीजिए कि यह क्रोध का कोई उचित कारण नहीं है। वास्तव में, यदि मैंने आपको यह शिक्षा न दी होती, तो आप केक, मिठाई, फल और इसी प्रकार की वस्तुएँ चुराते रहते, जब तक कि चोरी के इन कृत्यों से आप लालची न हो जाते; फिर धीरे-धीरे आप घरों में सेंधमारी, राजमार्गों पर डकैती और गाँवों में हत्या करने के लिए प्रेरित होते; अंत में, आपको रंगे हाथों पकड़ा जाता और राजा के समक्ष एक सार्वजनिक शत्रु और लुटेरे के रूप में पेश किया जाता; और आप सार्वजनिक दंड के भय में आते, जब राजा कहता, 'इस आदमी को ले जाओ और इसके अपराधों के अनुसार इसे दंडित करो।' यह सारी समृद्धि, जिसका आप अब आनंद ले रहे हैं, कहाँ से आती? क्या यह मेरी ही कृपा से नहीं है कि आपने यह वैभव प्राप्त किया है?"

इस प्रकार उनके शिक्षक ने राजा के ऊपर भाषण दिया। और चारों ओर खड़े दरबारी, जब उन्होंने उनका भाषण सुना, तो बोले, "सचमुच, महाराज, आपकी सारी शान-शौकत वास्तव में आपके शिक्षक की ही है!"

राजा ने तुरंत अपने गुरु की अच्छाई को पहचान लिया और उनसे कहा,

"हे मेरे गुरु, मैं अपनी सारी शक्ति आपको समर्पित करता हूँ! राज्य ग्रहण कीजिए!" लेकिन दूसरे ने इनकार करते हुए कहा, "नहीं, मेरे स्वामी, मुझे राज्य की कोई इच्छा नहीं है।"

और राजा ने तक्षशिला से शिक्षक की पत्नी और परिवार को बुलवाया; उसने उन्हें बहुत अधिकार दिए और उन्हें राजपुजारी बना दिया; उसने उनके साथ पिता के समान व्यवहार किया और उनकी सलाहों का पालन किया; और उपहार देने और अच्छे कर्म करने के बाद वे स्वर्ग के लिए नियत हो गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: सत्यों के समापन पर भावुक भाई (भिक्षु) ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया, और कई अन्य प्रथम, द्वितीय या तृतीय मार्ग में प्रवेश कर गए: "उस समय भावुक भाई राजा थे; परन्तु गुरु मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) चार नक्खत्त हैं जिन्हें लकु, 'प्रकाश' कहा जाता है; एक और पाठ सुभनाक्खत्तेना है, 'हर सुंदर दिन'।

(2) उच्च कुल में जन्मा, कुलीन परवरिश वाला

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मणि-कंठ-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-253-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 253
मणि-कंठ-जातक

"भरपूर भोजन और पेय," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने अलवी के पास अग्गलावा के मंदिर में रहते हुए, कोठरियों के निर्माण के नियमों के बारे में सुनाई थी।

अलावी (*1) में रहने वाले कुछ भिक्षु (भाई) अपने लिए घर बनवाने के लिए हर तरफ से सामग्री की भीख मांग रहे थे (*2)। वे लगातार चिल्लाते रहते थे, "हमें एक आदमी दे दो, हमें नौकर का काम करने के लिए कोई दे दो," इत्यादि। हर कोई उनकी इस भीख और याचना से परेशान था। वे इतने परेशान थे कि इन भिक्षुओं को देखते ही चौंककर भाग जाते थे।

ऐसा हुआ कि वरिष्ठ भिक्षु महाकश्यप अलावी में प्रवेश कर भिक्षा मांगने के लिए इधर-उधर घूमने लगे। लोग, वरिष्ठ भिक्षु को देखते ही पहले की तरह भाग गए (*3)। भोजन के बाद, अपने भ्रमण से लौटने पर, उन्होंने भिक्षुओं को बुलाया और उनसे कहा, "एक समय अलावी भिक्षा का प्रमुख केंद्र था; अब यह इतना गरीब क्यों है?" उन्होंने उन्हें कारण बताया।

उस समय भगवान बुद्ध अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। एक वरिष्ठ भिक्षु उनके पास आए और उन्होंने उन्हें सारी बात बताई। गुरु ने इस विषय पर भिक्षुओं को बुलाया। उन्होंने कहा, "मैंने सुना है कि आप लोग घर बनवा रहे हैं और मदद के लिए सबसे परेशान हो रहे हैं। क्या यह सच है?" भिक्षुओं ने कहा कि यह सच है। तब गुरु ने उन्हें फटकारा और कहा, "हे भिक्षुओं, सर्प लोक में भी, जो सात अनमोल पत्थरों से भरा है, इस प्रकार की भीख मांगना सर्पों को भी अप्रिय लगता है। तो मनुष्यों को कितना अधिक अप्रिय होगा, जिनसे एक रुपया प्राप्त करना उतना ही कठिन है जितना कि पत्थर की खाल उतारना!" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक धनी ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पैदा हुए। जब वे बड़े हुए और खेलने-कूदने लगे, तब उनकी माता ने एक और बुद्धिमान व्यक्ति को जन्म दिया। दोनों भाई बड़े होकर अपने माता-पिता की मृत्यु से इतने

दुखी हुए कि वे संन्यासी बन गए और गंगा नदी के मोड़ पर पत्तों से बनी कुटियाओं में रहने लगे। बड़े भाई की कुटिया ऊपरी गंगा के किनारे थी और छोटे भाई की निचली गंगा के किनारे।

एक दिन, एक नागराज (उसका नाम मणिकांत या रत्न-गले वाला था) अपना निवास स्थान छोड़कर मनुष्य का रूप धारण करके नदी के किनारे-किनारे चलते हुए अपने छोटे भाई के आश्रम तक पहुँचा। उसने स्वामी को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। वे आपस में मधुर बातें करने लगे और इतने घनिष्ठ मित्र बन गए कि उनके लिए अलग रहना असंभव हो गया। रत्न-गले वाला अक्सर छोटे संन्यासी से मिलने आता और बैठकर बातें करता रहता। जब वह विदा लेता, तो वह उस व्यक्ति से इतना प्रेम करता कि अपना रूप त्यागकर तपस्वी को नाग की खाल में लपेट लेता और अपने बड़े फन से उसे गले लगा लेता। वह कुछ देर वहीं लेटा रहा, जब तक उसका प्रेम शांत नहीं हो गया। फिर उसने अपने मित्र के शरीर को त्याग दिया और विदाई लेकर अपने स्थान पर लौट गया। उसके भय से संन्यासी दुबला-पतला हो गया; वह बदसूरत हो गया, उसका रंग फीका पड़ गया, वह पीला पड़ता गया और उसकी त्वचा पर नसें उभरने लगीं।

एक दिन वह अपने भाई से मिलने गया। उसने कहा, "भाई, तुम इतने पतले क्यों हो गए हो? तुम्हारा रंग कैसे उड़ गया? तुम इतने पीले क्यों हो गए हो, और तुम्हारी नसें त्वचा पर इस तरह उभरी हुई क्यों हैं?"

दूसरे ने उसे इसके बारे में सब कुछ बता दिया।

पहले वाले ने कहा, "मुझे बताओ, क्या तुम चाहते हो कि वह आए या नहीं?" "नहीं, मैं नहीं चाहता।"

"अच्छा, जब नागराज तुमसे मिलने आता है तो वह कौन सा आभूषण पहनता है?"

"एक अनमोल रत्न!"

"बहुत खूब। जब वह दोबारा आए, तो बैठने से पहले ही उससे गहना मांग लेना। फिर वह तुम्हें गले लगाए बिना ही चला जाएगा। अगले दिन अपने दरवाजे पर खड़े होकर उससे गहना मांग लेना; और तीसरे दिन जैसे ही वह नदी से निकले, उससे गहना मांग लेना। वह फिर कभी तुम्हारे पास नहीं आएगा।"

छोटे साधु ने ऐसा करने का वादा किया और अपनी कुटिया में लौट गया। अगले दिन, जब सर्प आया, तो वहाँ खड़े-खड़े साधु ने पुकार कर कहा, "मुझे अपना सुंदर रत्न दे दो!" सर्प बिना बैठे ही जल्दी से चला गया। उसके अगले दिन, साधु अपने द्वार पर खड़ा रहा और सर्प के आते ही पुकार कर बोला—"कल तुमने मुझे अपना रत्न नहीं दिया! आज तो दे ही दो!" और सर्प कुटिया में प्रवेश किए बिना ही निकल गया। तीसरे दिन, जैसे ही सर्प पानी से बाहर निकला, साधु ने पुकार कर कहा—"यह तीसरा दिन है जब मैं तुमसे यह रत्न माँग रहा हूँ: आओ, मुझे यह रत्न दे दो!" और सर्प ने पानी में अपने स्थान से ही इन दो पंक्तियों में कहा:

मुझे भरपूर मात्रा में पौष्टिक भोजन और पेय मिल सकता है।
जिस अनमोल रत्न की आपको लालसा है, उसके माध्यम से:
तुम बहुत अधिक मांग रहे हो; मैं वह रत्न नहीं दूंगा;
और जब तक मैं जीवित रहूंगा, तब तक आपसे दोबारा मिलने नहीं आऊंगा।
"जैसे जवान लोग हाथ में धारदार तलवार लिए प्रतीक्षा करते हैं,"
तुम मुझे डराते हो, जैसे तुम मेरे गहने मांगते हो।
तुम बहुत ज्यादा मांग रहे हो—मैं वह अनमोल रत्न नहीं दूंगा।
और मैं अपने जीवनकाल में कभी तुमसे मिलने नहीं आऊंगा!
इन शब्दों के साथ, नागों का राजा पानी के नीचे गोता लगा गया और अपने स्थान पर चला गया, फिर कभी वापस नहीं लौटा।

फिर, अपने सुंदर सर्प-राजा को दोबारा न देखकर, तपस्वी और भी दुबला होता चला गया; वह और भी बदसूरत हो गया, उसका रंग पहले से भी ज्यादा फीका पड़ गया, वह और भी पीला पड़ गया, और उसकी त्वचा पर नसें और भी मोटी हो गईं!

बड़े भाई ने सोचा कि वह जाकर देख ले कि उसका भाई कैसा है। वह उससे मिलने गया और पाया कि वह पहले से भी ज्यादा पीला पड़ गया था।

"ये क्या हो रहा है? ये तो पहले से भी बदतर है!" उसने कहा।

उसके भाई ने जवाब दिया, "ऐसा इसलिए है क्योंकि मैं सुंदर नागों के राजा को कभी नहीं देखता!"

“यह संन्यासी,” बड़े साधु ने उसका उत्तर सुनकर कहा, “अपने सर्प-राजा के बिना नहीं रह सकता; और उसने तीसरा श्लोक दोहराया:-

"जिस व्यक्ति के प्रेम को तुम महत्व देते हो, उससे भीख मत मांगो।"
भीख मांगने से तुम उसकी नजरों में घृणित हो जाते हो।
ब्राह्मण ने सर्प के रत्न के लिए इतनी विनती की
वह गायब हो गया और फिर कभी वापस नहीं आया।"
तब उन्होंने अपने भाई को शोक न करने की सलाह दी और यह दिलासा देकर उन्हें छोड़कर अपने आश्रम लौट गए। इसके बाद दोनों भाइयों ने अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का विकास किया और ब्रह्मा के स्वर्ग के लिए नियत हो गए।

गुरु ने आगे कहा, "हे भाइयों, सर्पों के संसार में भी, जहाँ सात अनमोल रत्न बहुतायत में हैं, भीख माँगना सर्पों को भी नापसंद है, तो मनुष्यों को कितना अधिक नापसंद होगा!" और यह शिक्षा देने के बाद उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद छोटा भाई था, परन्तु बड़ा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) परिचयात्मक कथा विनय, सुत्तविभंग, संघुदिशेष, 6 में आती है। 1. पाप आग्रह था।

(2)साम्यचिकाय पढ़ना (जैसा कि सुत्तविभंग में है)।

(3) पतिपज्जिसु पढ़ना।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुंडक-कुच्चि-सिंधव-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-254-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 254
कुंडक-कुच्ची-सिंधव-जातक

"घास और दलिया की मैल," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र के बारे में सुनाई थी।

एक बार संयोगवश बुद्ध वर्षा ऋतु में श्रावस्ती नगर में रहे और उसके बाद भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर गए। उनके लौटने पर नगरवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत करने का निश्चय किया और बुद्ध एवं उनके अनुयायियों को भेंटें दीं। उन्होंने उपदेश देने वाले उद्घोषक को नियुक्त किया कि वह भिक्षुओं को उनकी इच्छानुसार आने-जाने वालों में बाँट दे।

एक गरीब बूढ़ी औरत थी, जिसने एक हिस्सा तैयार किया था। भिक्षुओं को अलग-अलग काम सौंपे गए थे, कुछ को एक को, कुछ को दूसरे को। सूर्योदय के समय, वह गरीब औरत क्लर्क के पास आई और बोली, "मुझे भी एक भिक्षु दे दीजिए (भोजन कराने के लिए)!" उसने उत्तर दिया, "मैंने तो सबको बाँट दिया है; लेकिन वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र अभी भी मठ में हैं, आप अपना हिस्सा उन्हें दे सकती हैं।" यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और जेतवन मठ के द्वार पर तब तक प्रतीक्षा करती रही जब तक कि वरिष्ठ भिक्षु बाहर नहीं आ गए। उसने उनका अभिवादन किया, उनके हाथ से कटोरा लिया और उन्हें अपने घर ले जाकर बैठने के लिए आमंत्रित किया।

कई धर्मनिष्ठ परिवारों ने यह अफवाह सुनी कि किसी वृद्ध स्त्री ने सारिपुत्र को अपने दरवाजे पर बैठा लिया है। यह अफवाह सुनने वालों में कोसल वंश के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भी थे। उन्होंने तुरंत उस वृद्ध स्त्री को तरह-तरह का भोजन, एक वस्त्र और एक हजार सिक्कों से भरा थैला भेजा और उनसे निवेदन किया, "जो भी इस वृद्ध भिक्षु का सत्कार कर रही हैं, वे यह वस्त्र धारण करें, यह धन खर्च करें और इस प्रकार उनका सत्कार करें।" राजा की तरह ही, अनाथपिंडिका, छोटी अनाथपिंडिका, गृहस्थ बहन विशाखा (एक महान महिला), सभी ने ऐसा ही किया; अन्य परिवारों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार सौ-दो सौ सिक्के भेजे। इस प्रकार एक ही दिन में उस वृद्ध स्त्री को एक लाख सिक्के प्राप्त हो गए।

हमारे भिक्षु ने उसके द्वारा दिया गया शोरबा पिया, उसका भोजन खाया और उसके द्वारा पकाए गए चावल भी खाए; फिर उन्होंने उसे धन्यवाद दिया और उसे ऐसा उपदेश दिया कि वह परिवर्तित हो गई। फिर वे मठ लौट गए।

सत्य के हॉल में, भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षु की अच्छाई पर चर्चा की। "मित्र, धर्म के सेनापति (सारिपुत्र) ने एक बूढ़ी गृहिणी को गरीबी से बचाया है। वे उसके सहारा बने रहे हैं। उसने जो भोजन उन्हें दिया, उन्होंने उसे खाने से मना नहीं किया।"

गुरुजी अंदर आए और जब वे सब साथ बैठे थे, तो उन्होंने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को सब कुछ बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि सारिपुत्र इस बूढ़ी औरत की शरण में आया है; और न ही यह पहली बार है कि उसने उसके द्वारा दिए गए भोजन को अस्वीकार किया है। उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तरी प्रांत के एक व्यापारी परिवार में हुआ था। उस देश के पाँच सौ लोग, जो घोड़ों के व्यापारी थे, बनारस में घोड़े ले जाया करते थे और उन्हें वहाँ बेचते थे।

अब एक व्यापारी पाँच सौ घोड़े बेचने के लिए बनारस की ओर चल पड़ा। इस मार्ग पर, बनारस से कुछ ही दूरी पर एक कस्बा है, जहाँ पहले एक धनी व्यापारी रहता था। उसकी संपत्ति कभी बहुत अधिक थी; लेकिन उसका परिवार धीरे-धीरे क्षीण हो गया, और अब केवल एक बूढ़ी औरत ही बची थी, जो पैतृक घर में रहती थी। व्यापारी ने उस घर में कुछ किराया देकर अपना ठिकाना बनाया और अपने घोड़ों को पास ही रखा।

संयोगवश उसी दिन उसकी एक बेहतरीन नस्ल की घोड़ी ने बच्चे को जन्म दिया। उसने दो-तीन दिन प्रतीक्षा की और फिर अपने घोड़ों को साथ लेकर राजा से मिलने चला गया। इसी कारण उस बूढ़ी औरत ने उससे घर का किराया मांगा।

"ठीक है माँ, मैं आपको पैसे दे दूंगा," उसने कहा।

"बेटे, जब तुम मुझे पैसे दोगे, तो मुझे यह छोटा जानवर दे देना, और इसकी कीमत किराए में से काट लेना," उसने कहा। व्यापारी ने उसकी बात मान ली और चला गया। वह स्त्री उस छोटे जानवर को अपने बेटे की तरह प्यार करती थी; और उसे भुने हुए चावल का तेल, टूटे हुए मांस और घास खिलाती थी।

कुछ समय बाद, बोधिसत्व पाँच सौ घोड़ों के साथ यात्रा करते हुए इस घर में ठहरे। परन्तु घोड़ों ने लाल चावल के चूर्ण खाने वाले इस उच्च नस्ल के युवा घोड़े की गंध पहचान ली और उनमें से एक भी घोड़ा अंदर नहीं आया। तब बोधिसत्व ने उस स्त्री से कहा,

"लगता है यहाँ कोई घोड़ा है, माँ?"

"ओह, मेरे बेटे, यहाँ एकमात्र घोड़ा एक छोटा जानवर है जिसे मैं यहाँ इतनी कोमलता से रखता हूँ जैसे वह मेरा बेटा हो!"

"वह कहाँ है, माँ?"

चरने के लिए बाहर गया है।

वह कब लौटेगा?

"ओह, वह जल्द ही वापस आ जाएगा।"

बोधिसत्व ने घोड़ों को बाहर ही रखा और युवा पशु के आने का इंतज़ार करने के लिए बैठ गए; और जल्द ही युवा पशु अपनी सैर से लौट आया। जब उन्होंने चावल के चूर्ण से भरे पेट वाले उस सुंदर युवा पशु को देखा, तो बोधिसत्व ने उसके हाव-भाव पर ध्यान दिया और सोचा, "यह तो अनमोल नस्ल का पशु है; मुझे इसे उस बुढ़िया से खरीद लेना चाहिए।"

तब तक वह छोटा जानवर घर में घुसकर अपने अस्तबल में चला गया था। तुरंत ही सभी घोड़े भी अंदर जा सके।

वहाँ बोधिसत्व कुछ दिनों तक रहे और अपने घोड़ों की देखभाल की। फिर जब वे जाने लगे, तो उन्होंने उस बूढ़ी औरत से कहा, "माँ, मुझे आपसे यह जवान घोड़ा खरीदने दीजिए।"

"तुम क्या कह रहे हो! किसी को अपने पाले-पोसे बच्चे को नहीं बेचना चाहिए!"

"माँ, आप उसे खाने में क्या देती हैं?"

"उबले हुए चावल, चावल की दलिया, और भुने हुए चावल; टूटा हुआ मांस और घास; और पीने के लिए चावल का शोरबा।"

"अच्छा, माँ, अगर मुझे वह मिल गया, तो मैं उसे सबसे उत्तम भोजन खिलाऊँगा; जब वह खड़ा होगा, तो उसके ऊपर कपड़े का शामियाना बिछा दूँगा; मैं उसे खड़े होने के लिए एक कालीन दूँगा।"

"क्या तुम ऐसा करोगे, मेरे बेटे? तो मेरे इस बच्चे को ले जाओ, और जाओ, और वह खुश रहे!"

और बोधिसत्व ने उस बालक पशु के चारों पैरों, पूंछ और सिर के लिए अलग-अलग कीमत अदा की; उन्होंने प्रत्येक के लिए एक-एक हजार सिक्कों से भरे छह थैले रखे; और उन्होंने उस महिला को नए वस्त्र पहनाए, उसे आभूषणों से सजाया और उसे बालक पशु के सामने बिठा दिया। बालक पशु ने अपनी आँखें खोलीं और अपनी माँ को देखकर आँसू बहाए। माँ ने उसकी पीठ सहलाई और कहा, "मैंने तुम्हारे लिए जो किया है, उसका प्रतिफल मुझे मिल गया है; जाओ, मेरे बेटे!" और फिर वह चला गया।

अगले दिन बोधिसत्व ने सोचा कि वे उस युवा पशु की परीक्षा लेंगे, यह देखने के लिए कि क्या वह अपनी शक्ति को जानता है या नहीं। इसलिए साधारण भोजन तैयार करने के बाद, उन्होंने बाल्टी में लाल चावल का दलिया निकलवाया और उसे परोसा। लेकिन वह इसे निगल नहीं सका; और उसने ऐसे किसी भी भोजन को छूने से इनकार कर दिया। तब बोधिसत्व ने उसकी परीक्षा लेने के लिए पहला श्लोक बोला:

"घास और दलिया का मैल जिसे तुम अच्छा समझते थे"
  पुराने जमाने में: तुम अपना खाना क्यों नहीं खाते?
यह सुनकर उस युवा जानवर ने निम्नलिखित दो अन्य दोहे कहे:-

"जब लोगों को किसी व्यक्ति के जन्म और वंश के बारे में पता नहीं होता,
  चावल की मैल किसी की जरूरत पूरी करने के लिए काफी है।
"लेकिन जैसा कि आप जानते हैं, मैं घोड़ों का मुखिया हूं;"
  इसलिए मैं तुमसे यह भोजन नहीं लूंगा।
तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मैंने यह आपकी परीक्षा लेने के लिए किया था; क्रोधित न हों"; और उन्होंने उत्तम भोजन पकाया और उन्हें अर्पित किया। जब वे राजा के प्रांगण में पहुँचे, तो उन्होंने पाँच सौ घोड़ों को एक तरफ़ खड़ा किया और दूसरी तरफ़ कढ़ाईदार चंदवा लगाया, जिसके नीचे उन्होंने एक कालीन बिछाया और उसके ऊपर कपड़े का एक तंबू लगाया; और यहीं उन्होंने उस युवा पशु को ठहराया।

घोड़ों का निरीक्षण करने आए राजा ने पूछा कि इस घोड़े को अलग क्यों रखा गया है।

"हे राजा," उत्तर आया, "यदि इस घोड़े को अलग नहीं रखा गया, तो यह इन अन्य घोड़ों को भी छोड़ देगा।"

"क्या वह एक सुंदर घोड़ा है?" राजा ने पूछा।

"जी हां, हे राजा।"

"तो मुझे उसके कदम देखने दो।"

मालिक ने घोड़े पर काठी कसी और उसकी पीठ पर सवार हो गया। फिर उसने आंगन से सभी लोगों को बाहर निकाल दिया और घोड़े को उसमें दौड़ाया। ऐसा लग रहा था मानो पूरा स्थान घोड़ों की कतारों से घिरा हुआ हो, बिना किसी रुकावट के!

तब बोधिसत्व ने कहा, "हे राजा, मेरे घोड़े की गति देखो!" और उसे अपना सिर काटने दिया। उसे कोई देख भी नहीं सका! फिर उन्होंने घोड़े के पार्श्व भाग पर एक लाल पत्ता बाँध दिया; और केवल पत्ता ही दिखाई दिया। फिर उन्होंने घोड़े को शहर के एक बगीचे में स्थित एक तालाब की सतह पर दौड़ाया। वे ऊपर से गुजरे, और उनके खुरों के सिरे तक गीले नहीं हुए। फिर वे कमल के पत्तों पर सरपट दौड़े, और एक भी पत्ता पानी में नहीं डूबा।

जब स्वामी ने घोड़े की शानदार चाल का प्रदर्शन किया, तो वे घोड़े से उतरे, ताली बजाई और एक हाथ ऊपर की ओर करके फैला दिया। घोड़ा उस पर चढ़ गया और अपने स्वामी की हथेली पर चारों पैर सटाकर खड़ा हो गया। बोधिसत्व ने कहा, "हे महामहिम! इस घोड़े के सारे कौशल दिखाने के लिए समुद्र का पूरा घेरा भी पर्याप्त नहीं होगा।" राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे अपने राज्य का आधा हिस्सा दे दिया: उसने घोड़े को अपना राजसी घोड़ा बनाकर उस पर औपचारिक जल छिड़का। वह राजा को प्रिय और अनमोल था, और उसका बहुत सम्मान किया जाता था; और उसका निवास स्थान राजा के निवास कक्ष के समान सुंदर बनाया गया था: फर्श पर चारों प्रकार के सुगंध छिड़के गए थे, दीवारों पर फूलों की मालाएँ और कई हार लटके हुए थे; छत पर सोने के तारों से ढका हुआ कपड़ा था; चारों ओर एक सुंदर मंडप जैसा था। सुगंधित तेल का दीपक सदा जलता रहता था; और विश्राम कक्ष में एक सोने का कलश रखा हुआ था। उनका भोजन हमेशा राजा के योग्य होता था। उनके वहाँ आने के बाद, पूरे भारत पर प्रभुत्व उस राजा के हाथ में आ गया। राजा ने बोधिसत्व की सलाह के अनुसार अच्छे कर्म और दान किए, और स्वर्ग के लिए नियत हो गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर कई लोग प्रथम मार्ग (सम्मोहन), द्वितीय या तृतीय मार्ग में प्रवेश कर गए:) "उस समय वह बूढ़ी औरत वही थी, सारिपुत्र वह श्रेष्ठ घोड़ा था, आनंद राजा था, और घोड़े का व्यापारी मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शुक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-255-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 255
सुका-जातक

"पक्षी किस समय आया," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जिसकी मृत्यु अधिक खाने से हो गई थी।

उनकी मृत्यु पर, भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में एकत्रित होकर उनके दोषों पर इस प्रकार चर्चा की: "मित्र, फलां भाई को यह ज्ञान नहीं था कि वह कितना खा सकते हैं। इसलिए उन्होंने अपनी क्षमता से अधिक खा लिया और फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई।" गुरुजी प्रवेश कर गए और पूछा कि वे सब किस बारे में बात कर रहे हैं; और उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब हमारे मित्र की मृत्यु अधिक खाने से हुई है; ऐसा पहले भी हो चुका है।" फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस पर ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ने तोते का रूप धारण किया और हिमालय क्षेत्र में रहने लगे। वे हिमालय के समुद्र की ओर स्थित अपने जैसे कई हज़ार तोतों के राजा थे; उनका एक पुत्र था। जब उनका पुत्र बलवान हुआ, तो तोते की आँखें कमजोर हो गईं। दरअसल, तोते बहुत तेज़ी से उड़ते हैं; इसी कारण बुढ़ापे में सबसे पहले उनकी आँखें कमजोर होती हैं। पुत्र अपने माता-पिता को घोंसले में रखता था और उनके लिए भोजन लाता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि हमारा छोटा तोता अपने भोजन के स्थान पर गया और एक पर्वत की चोटी पर उतर गया। वहाँ से उसने समुद्र की ओर देखा और उसे एक द्वीप दिखाई दिया, जिस पर मीठे सुनहरे फलों से लदा आमों का बाग था। अगले दिन, भोजन लाने के समय, वह हवा में उड़कर उस आमों के बाग में गया, जहाँ उसने आम का रस चूसा और एक फल लेकर अपने माता-पिता के पास घर ले गया। जब बोधिसत्व ने उसे खाया, तो उन्हें उसका स्वाद पता चल गया।

उन्होंने कहा, "मेरे बेटे, यह फलां द्वीप का आम है," और फिर उन्होंने उस द्वीप का नाम बताया।

"फिर भी, पिताजी!" नन्हे तोते ने उत्तर दिया।

“बेटे, जो तोते वहाँ जाते हैं, उनकी उम्र लंबी नहीं होती,” उन्होंने कहा। “फिर कभी उस द्वीप पर मत जाना!”—पर पुत्र ने उनकी बात नहीं मानी और फिर से चला गया।

फिर एक दिन ऐसा हुआ कि वह हमेशा की तरह गया और खूब आम का रस पिया। चोंच में आम लिए वह समुद्र के ऊपर से जा रहा था, तभी लंबे समय तक आम ढोने से वह थक गया और उसे नींद आ गई; नींद में ही वह उड़ता रहा और उसके हाथ में रखा आम उसकी चोंच से गिर गया। धीरे-धीरे वह अपने रास्ते से भटक गया और पानी की सतह पर तैरता हुआ नीचे चला गया, अंत में वह पानी में गिर गया। फिर एक मछली ने उसे पकड़ लिया और निगल लिया। जब उसे वापस लौटना चाहिए था, वह नहीं लौटा, और बोधिसत्व समझ गया कि वह पानी में गिर गया होगा। फिर उसके माता-पिता, भोजन न मिलने के कारण, दुखी होकर कमजोर पड़ गए और मर गए।

गुरु ने यह कहानी सुनाने के बाद, अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से, निम्नलिखित छंद कहे:

"जिस समय पक्षी ने बिना अधिक खाए भोजन किया,
उसने रास्ता ढूंढ लिया और अपनी माँ के लिए मांस ले आया।
लेकिन एक बार उसने जरूरत से ज्यादा खा लिया, और संतुलन भूल गया,
वह गिर पड़ा; और उसके बाद फिर कभी दिखाई नहीं दिया।
अतः लालची मत बनो; हर बात में विनम्र रहो।
बचाना सुरक्षित है; लालच पतन से पहले आता है (*1)।"
जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की (जिसके समापन पर कई व्यक्ति प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ मार्ग में प्रवेश कर गए), और जन्म की पहचान बताई: "उस समय, अधिक भोजन करने वाला भाई (भिक्षु) छोटा तोता था, और तोतों का राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) विद्वान निम्नलिखित पंक्तियाँ जोड़ते हैं:

"सूखे या गीले भोजन का सेवन संयम से करें।"
और इससे आपकी भूख की समस्या हल हो जाएगी।
जो सावधानीपूर्वक खाता है, जिसका पेट बड़ा नहीं होता,
वे जल्द ही या देर से एक पवित्र संन्यासी बन जाएंगे।
चार-पांच घूंट, फिर एक पेय लेना उचित है;
किसी भी गंभीर संन्यासी के लिए इतना ही काफी है।
संयमित और सावधानीपूर्वक भोजन करने वाले व्यक्ति को कम दर्द होता है।
धीरे-धीरे बूढ़ा होता है, और उससे दुगनी लंबी उम्र जीता है।"
और ये:

जब बेटे जंगल में अपने पिता के लिए मांस लाते हैं,
यह आंखों में लगाने वाली मरहम की तरह बहुत अच्छा है।
इस प्रकार, थकावट से भरी हुई, नश्वर जिंदगी के लिए,
उन्होंने उसे इसी प्रकार का पोषण दिया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जारुदापन-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-256-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 256

जरुदपना-जातक

"कुछ व्यापारी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें कुछ व्यापारियों का जिक्र था जिनका घर श्रावस्ती शहर में था।

परंपरा के अनुसार, इन लोगों ने श्रावस्ती नगर से सामान खरीदा और उसे गाड़ियों पर लाद लिया। जब उनके काम पर जाने का समय आया, तो उन्होंने भगवान बुद्ध को आमंत्रित किया और उन्हें भरपूर दान दिया; उन्होंने शरण ली, नियमों में सुदृढ़ हुए और गुरु से विदा लेते हुए कहा, "हे प्रभु, हम बहुत दूर जा रहे हैं। जब हम अपना सामान बेच देंगे और सौभाग्य से सुरक्षित लौट आएंगे, तो हम फिर आकर आपसे मिलेंगे।" फिर वे अपनी यात्रा पर निकल पड़े।

अपने कठिन मार्ग पर चलते हुए उन्हें एक परित्यक्त कुआँ दिखाई दिया। उसमें पानी नहीं था, और वे प्यासे थे; इसलिए उन्होंने और गहरा खोदने का निश्चय किया। खोदते-खोदते उन्हें लोहे से लेकर नीलमणि तक, हर प्रकार के खनिजों की परतें मिलीं। इस खोज से वे संतुष्ट हो गए; उन्होंने अपनी गाड़ियों को इन खजानों से भर लिया और श्रावस्ती नगर सुरक्षित लौट आए। उन्होंने अपने द्वारा लाए गए खजाने को छिपा दिया; और फिर सोचा कि इतनी सौभाग्यशाली होने के कारण वे भिक्षु समुदाय को भोजन देंगे। इसलिए उन्होंने भगवान बुद्ध को आमंत्रित किया और उन्हें भेंट दी; और जब उन्होंने आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए, तो उन्होंने बताया कि उन्हें अपना खजाना कैसे मिला। उन्होंने कहा, "हे गृहस्थों, आप अपनी खोज से संतुष्ट हैं और अपने धन और जीविका को पूर्ण संयम से स्वीकार करते हैं। परन्तु पुराने समय में ऐसे लोग भी थे जो संतुष्ट नहीं थे, जिनमें आत्मसंयम की कमी थी, जिन्होंने बुद्धिमानों की सलाह नहीं मानी और इस प्रकार अपना प्राण खो दिया।" और उनके अनुरोध पर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक व्यापारी के परिवार में पैदा हुए और बड़े होकर एक महान व्यापारी बने। एक बार उन्होंने अपने रथों को माल से भर लिया और एक बड़े काफिले के साथ इसी जंगल में आए और इसी कुएँ को देखा। व्यापारियों ने कुएँ को देखते ही पानी पीने की इच्छा की और खोदना शुरू कर दिया। खोदते-खोदते उन्हें बहुत सारा धातु और रत्न मिला। इतना खजाना मिलने के बावजूद वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सोचा, "यहाँ इससे भी बेहतर कोई खजाना जरूर होगा!" और वे खोदते रहे।

तब बोधिसत्व ने उनसे कहा, "हे व्यापारियों, लोभ विनाश का मूल कारण है। तुमने बहुत धन अर्जित कर लिया है; इसी से संतुष्ट रहो और आगे मत खोदो।" परन्तु वे फिर भी और अधिक खोदते रहे।

यह कुआँ सर्पों से आबाद था। मिट्टी और ढेलों के गिरने से क्रोधित होकर सर्पराज ने अपनी नासिका श्वास से सभी सर्पों को मार डाला (*1), बोधिसत्व को छोड़कर, और उन्हें नष्ट कर दिया; फिर वह सर्पलोक से ऊपर आया, बैलों को रथों में लगाया, उन्हें रत्नों से भर दिया, और बोधिसत्व को एक सुंदर रथ पर बैठाकर, कुछ युवा सर्पों से रथ चलवाए, और उन्हें बनारस ले आया। वह उन्हें अपने घर ले गया, खजाने को व्यवस्थित किया, और सर्पलोक में अपने स्थान पर वापस चला गया। बोधिसत्व ने अपना सारा खजाना खर्च कर दिया, जिससे उनके दान से पूरे भारत में हलचल मच गई, और पुण्य कर्मों का पालन करते हुए, और पवित्र दिन का पालन करते हुए, अपने जीवन के अंत में वे स्वर्ग पहुँचे।

गुरु ने यह कहानी सुनाने के बाद, अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से, निम्नलिखित पंक्तियाँ कहीं:

कुछ व्यापारियों को पानी की आवश्यकता थी, इसलिए उन्होंने जमीन खोदी।
एक पुराने कुएं में खजाना मिला:-
टिन, लोहा, तांबा, सीसा, चांदी और सोना,
कई बार बेरिल, मोती और रत्न।
लेकिन वे संतुष्ट नहीं थे, उन्हें और भी अधिक की इच्छा थी।
और भयंकर सर्पों ने उन सबको आग से मार डाला।
आप चाहें तो खुदाई कर सकते हैं, लेकिन अत्यधिक खुदाई न करें;
अत्यधिक खुदाई करना एक प्रकार का पाप है।
"खुदाई से इन लोगों को खजाना मिला।"
लेकिन ज्यादा खुदाई करने से सब कुछ फिर से खो गया।"

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया:- "उस समय, सारिपुत्र सर्प-राजा थे, और कारवां का स्वामी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)नासिकवातेना। शायद इससे अहिवातारोगो रोग पर प्रकाश पड़ता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गामणी-चण्ड-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-257-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 257
गामणि-चंदा-जातक

“यह कोई चतुर निर्माता नहीं है,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए ज्ञान की प्रशंसा करते हुए सुनाई थी। सत्य के हॉल में भिक्षु बैठे थे और बुद्ध के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे थे: “भगवान बुद्ध का ज्ञान विशाल और व्यापक है, उनका ज्ञान बुद्धिपूर्ण और तीव्र है, उनका ज्ञान तीक्ष्ण और मर्मस्पर्शी है। वे ज्ञान में इस संसार और देवदूतों के लोक से श्रेष्ठ हैं।”

गुरुजी अंदर आए और उनसे पूछा कि वे सब यहाँ बैठे-बैठे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि भगवान बुद्ध ज्ञानी हुए हैं; वे पहले भी ऐसे ही थे।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

हे भाइयों, एक समय की बात है, जब बनारस में जनसंध राज कर रहे थे, तब उनकी प्रधान रानी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका चेहरा तेजस्वी था, मानो किसी तराशे हुए सुनहरे दर्पण की तरह शुभ सौंदर्य से परिपूर्ण। उनके नामकरण के दिन उनका नाम अदसमुख रखा गया, अर्थात् दर्पण-चेहरे वाले राजकुमार।

सात वर्षों के भीतर ही उनके पिता ने उन्हें तीनों वेदों और संसार के सभी कर्तव्यों की शिक्षा दी; और फिर सात वर्ष की आयु में ही उनका देहांत हो गया। दरबारियों ने राजा का अंतिम संस्कार बड़े धूमधाम से किया और मृतक के लिए भेंट चढ़ाई; और सातवें दिन वे सब महल के प्रांगण में एकत्रित हुए और आपस में बातचीत की। उन्होंने सोचा कि राजकुमार बहुत छोटा है, और उसे राजा नहीं बनाया जा सकता।

उन्हें राजा बनाने से पहले, वे उनकी परीक्षा लेना चाहते थे। इसलिए उन्होंने एक न्याय अदालत तैयार की और एक सोफा लगाया। फिर वे राजकुमार के सामने आए और कहा, "हे स्वामी, आपको न्याय अदालत में आना होगा।" राजकुमार मान गए; और एक बड़े दल के साथ वे वहाँ गए और चबूतरे पर बैठ गए।

जब राजा न्याय के लिए बैठे, तो दरबारियों ने एक बंदर को ऐसे व्यक्ति के वेश में तैयार किया जो भवन निर्माण के लिए उपयुक्त स्थानों के बारे में जानकारी देने वाली परंपराओं में पारंगत था। उन्होंने उसे दो पैरों पर खड़ा किया और न्याय कक्ष में ले आए।

“महाराज,” उन्होंने कहा, “आपके पिता राजा के समय में यह व्यक्ति जादुई भविष्यवाणी करके उपयुक्त स्थानों का पता लगाता था और अपने इस हुनर में माहिर था। वह धरती में सात भुजाओं की गहराई तक दरार देख सकता था। उसकी सहायता से राजा के महल के लिए एक स्थान चुना गया था; राजा कृपया उसके लिए व्यवस्था करें और उसे पद प्रदान करें।”

राजकुमार ने उसे सिर से पैर तक देखा। "यह कोई मनुष्य नहीं, बल्कि एक बंदर है," उसने सोचा; "बंदर दूसरों की बनाई हुई चीजों को नष्ट कर सकते हैं, लेकिन स्वयं न तो कुछ बना सकते हैं और न ही उसे पूरा कर सकते हैं।" और इसलिए उसने अपने दरबार में पहली पंक्ति दोहराई:-

"यह कोई चतुर निर्माता नहीं है, बल्कि झुर्रियों वाले चेहरे वाला एक बंदर है।"
वह दूसरों की बनाई हुई चीजों को नष्ट कर सकता है; यही उसकी जाति का स्वभाव है।"

“ऐसा ही होना चाहिए, महाराज!” दरबारियों ने कहा और उसे अपने साथ ले गए। लेकिन एक-दो दिन बाद उन्होंने उसी व्यक्ति को भव्य वस्त्र पहनाए और न्याय कक्ष में वापस ले आए। “महाराज, आपके पिता के समय में, यह एक न्यायाधीश था जो न्याय करता था। न्याय दिलाने में सहायता के लिए आपको इसी की मदद लेनी चाहिए।”

राजकुमार ने उसकी ओर देखा। उसने सोचा, "बुद्धि और विवेक वाला मनुष्य इतना मूर्ख नहीं होता। यह मूर्ख बंदर न्याय नहीं कर सकता;" और उसने दूसरा श्लोक दोहराया:-

"इस बालदार प्राणी में कोई बुद्धि नहीं है; यह आत्मविश्वास पैदा नहीं करता।"
उसे कुछ नहीं पता, जैसा कि मेरे पिता ने सिखाया था: जानवर में कोई समझ नहीं होती!
“तो ऐसा ही होगा, महाराज!” दरबारियों ने कहा और उसे अपने साथ ले गए। फिर उन्होंने उसी बंदर को दोबारा सजाया और न्याय कक्ष में ले आए। “महाराज,” उन्होंने कहा, “आपके पिता राजा के समय में इस बंदर ने अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य निभाया और अपने परिवार में वृद्धों का आदर किया। आप इसे अपने पास रखें।”

राजकुमार ने फिर उसकी ओर देखा और सोचा—"बंदर तो बुद्धिहीन होते हैं; ऐसा काम वे नहीं कर सकते।" और फिर उसने तीसरा श्लोक दोहराया:-

"दशरथ (*1) ने मुझे एक बात सिखाई है: ऐसा प्राणी कभी सहायता नहीं भेजेगा।"
पिता या माता को, बहन या भाई को, या किसी को भी जो उसे मित्र कहता हो!
“ऐसा ही होना चाहिए, महाराज!” उन्होंने उत्तर दिया और उसे वापस ले गए। और उन्होंने आपस में कहा, “यह एक बुद्धिमान राजकुमार है; यह शासन करने में सक्षम होगा”; और उन्होंने बोधिसत्व को राजा बना दिया; और पूरे शहर में ढोल बजाकर उन्होंने घोषणा की, “राजा दर्पण-चेहरे का फरमान!”

उस समय से बोधिसत्व ने धार्मिक शासन किया; और उनकी बुद्धिमत्ता पूरे भारत में फैल गई। उनकी इस बुद्धिमत्ता को दर्शाने के लिए, उनके समक्ष ये चौदह प्रश्न निर्णय हेतु प्रस्तुत किए गए:-

"एक बैल, एक लड़का, एक घोड़ा, एक टोकरी-शूरवीर,
एक अधिकारी, प्रेम की एक ज्योति और एक युवती,
एक सांप, एक हिरण, एक तीतर पक्षी और एक परी,
मैं एक सांप, तपस्वियों और एक युवा पुजारी का नाम लेता हूँ।"
यह घटना इस प्रकार घटी: जब बोधिसत्व का राज्याभिषेक हुआ, तो राजा जनसंध के एक सेवक, गमनी-चंदा ने मन ही मन सोचा, “यह राज्य तभी गौरवशाली होगा जब इस पर राजा के समान आयु के लोगों का शासन हो। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और एक युवा राजकुमार की सेवा नहीं कर सकता, इसलिए मैं गाँव में खेती करके अपना जीवन यापन करूँगा।” अतः वह नगर से तीन मील (4.23 किमी) दूर एक गाँव में जाकर बस गया। उसके पास खेती के लिए बैल नहीं थे। इसलिए, बारिश होने के बाद, उसने एक मित्र से दो बैल उधार लिए; उसने दिन भर उनसे खेत जोता, फिर उन्हें घास खिलाई और मालिक के घर उन्हें वापस देने चला गया। उसी समय मालिक अपनी पत्नी के साथ भोजन कर रहा था; और बैल घर में ऐसे प्रवेश कर गए जैसे वे अपने घर में ही हों। उनके प्रवेश करते ही, मालिक अपनी थाली उठा रहा था और पत्नी अपनी थाली नीचे रख रही थी। यह देखकर कि उन्होंने उसे भोजन में शामिल होने के लिए आमंत्रित नहीं किया, गमानी-चंदा ने औपचारिक रूप से बैल सौंपे बिना ही प्रस्थान कर दिया। रात में चोर गौशाला में घुस आए और बैलों को चुरा ले गए।

अगले दिन सुबह तड़के, इन बैलों का मालिक गौशाला में गया, लेकिन वहाँ कोई मवेशी नहीं था; उसे समझ आ गया कि चोर उन्हें चुरा ले गए हैं। "मैं गमानी से इसका बदला लूँगा!" उसने सोचा और गमानी के पास चल पड़ा।

"मैं कहता हूँ, मेरे बैल मुझे लौटा दो!" वह चिल्लाया।

"क्या वे अपने बाड़े में नहीं हैं?"

"क्या आपने उन्हें मुझे लौटा दिया?"

"नहीं, मैंने नहीं किया।"

"ये रहा राजा का अधिकारी: मेरे साथ आइए।"

अब इस जनजाति की एक प्रथा है कि वे पत्थर का एक टुकड़ा या टूटा हुआ मिट्टी का बर्तन उठाते हैं और कहते हैं—"देखो, राजा का अधिकारी है; मेरे साथ चलो!" यदि कोई व्यक्ति जाने से इनकार करता है, तो उसे दंडित किया जाता है। इसलिए जब गमानी ने "अधिकारी" शब्द सुना, तो वह उनके साथ चला गया।

तो वे दोनों राजा के दरबार की ओर चल पड़े। रास्ते में वे एक गाँव में पहुँचे जहाँ गमानी का एक मित्र रहता था। उसने दूसरे से कहा,

"मैंने कहा, मुझे बहुत भूख लगी है। जब तक मैं अंदर जाकर कुछ खाने को न ले आऊं, यहीं रुको!" और वह अपने दोस्त के घर में घुस गया।

लेकिन उसका दोस्त घर पर नहीं था। पत्नी ने कहा,

"महोदय, अभी कुछ पका नहीं है। एक पल रुकिए; मैं अभी पकाकर आपके सामने परोस देती हूँ।"

वह अनाज भंडार तक जाने वाली सीढ़ी पर चढ़ी और जल्दबाजी में जमीन पर गिर पड़ी। और चूंकि वह सात महीने की गर्भवती थी, इसलिए उसका गर्भपात हो गया।

उसी क्षण पति अंदर आया और उसने सब कुछ देखा। “तुमने मेरी पत्नी को मारा है और उसे असमय प्रसव पीड़ा दे दी है! ये लो, राजा का एक अधिकारी तुम्हारे लिए हाज़िर है—चलो!” और वह उसे उठाकर ले गया। इसके बाद वे दोनों आगे बढ़ गए, उनके बीच में गमानी था।

जैसे ही वे आगे बढ़े, गाँव के द्वार पर एक घोड़ा खड़ा था; और उसका रखवाला उसे रोक नहीं सका, फिर भी वह उनके साथ-साथ दौड़ने लगा। घोड़े के रखवाले ने गमानी को पुकारा--

"चाचा (*2) चंदगामणि, घोड़े को किसी चीज़ से मारो और उसे पीछे धकेल दो!" गैलार्ड ने एक पत्थर उठाया और घोड़े पर फेंक दिया। पत्थर उसके पैर पर लगा और उसे अरंडी के पौधे के डंठल की तरह तोड़ दिया। तब वह आदमी चिल्लाया,

"ओह, तुमने मेरे घोड़े का पैर तोड़ दिया! ये लो, राजा का एक अधिकारी तुम्हारे लिए!" और उसने उसे पकड़ लिया।

इस प्रकार गमानी तीन आदमियों का कैदी बन गया। जब वे उसे ले जा रहे थे, तो उसने सोचा: "ये लोग राजा के सामने मेरी शिकायत कर देंगे; मैं बैलों का पैसा भी नहीं दे सकता; असमय प्रसव कराने के जुर्माने का तो सवाल ही नहीं उठता; और फिर घोड़े का दाम कहाँ से आएगा? मर जाना ही बेहतर है।" तो, जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गए, उसने सड़क के किनारे एक जंगल देखा, और उसमें एक पहाड़ी थी जिसके एक तरफ गहरी खाई थी। उसकी छाया में दो टोकरी बनाने वाले, पिता और पुत्र, एक चटाई बुन रहे थे। गमानी ने कहा,

“मैं कहता हूँ, मैं थोड़ी देर के लिए आराम करना चाहता हूँ: तुम यहीं रुको, मैं एक तरफ जाता हूँ”; और ये कहते हुए वह पहाड़ी पर चढ़ गया और खाई में कूद गया। वह टोकरी बनाने वाले बूढ़े व्यक्ति की पीठ पर गिरा और उसे वहीं मार डाला। गमानी उठा और वहीं खड़ा रहा।

"अरे, तुम दुष्ट! तुमने मेरे पिता की हत्या कर दी!" छोटे टोकरी बनाने वाले ने चिल्लाते हुए कहा; "ये रहा राजा का अधिकारी!" उसने गमानी के हाथ पकड़े और घनी झाड़ियों से बाहर आ गया।

"यह क्या है?" बाकी लोगों ने पूछा।

"खलनायक ने मेरे पिता की हत्या कर दी!"

तो वे चारों आगे बढ़ गए, और गामानी बीच में था।

वे दूसरे गाँव के द्वार पर पहुँचे। वहाँ मुखिया मौजूद था, जिसने गमानी को पुकारा: "चाचा (*2) चंदा, आप कहाँ जा रहे हैं?"

"राजा को देखने के लिए," गामानी कहते हैं।

"ओह, राजा से मिलना तो बहुत अच्छा होगा। मैं उन्हें एक संदेश भेजना चाहता हूँ; क्या आप इसे ले जाएँगे?"

"हां, मैं ऐसा करूंगा।"

"वैसे तो मैं आमतौर पर सुंदर, धनी, सम्मानित और स्वस्थ रहता हूँ; लेकिन अब मैं दुखी हूँ और मुझे पीलिया भी हो गया है। राजा से पूछो कि ऐसा क्यों हुआ है।"

लोग कहते हैं कि वह एक बुद्धिमान व्यक्ति है; वह आपको बताएगा, और आप उसका संदेश मुझे वापस ला सकते हैं।"

इस पर दूसरे ने सहमति जताई।

दूसरे गाँव में प्रेम की एक ज्योति ने उसे पुकारा—"कहाँ जा रहे हो, चाचा (*2) चंदा 4"

"राजा से मिलने के लिए," वह कहता है।

"लोग कहते हैं कि राजा एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं; मेरी ओर से उन्हें संदेश पहुंचा दीजिए," स्त्री ने कहा। "पहले मैं खूब धन कमाती थी; अब मुझे पान के बराबर भी कमाई नहीं होती, और कोई मुझसे प्रेम नहीं करता। राजा से पूछिए कि ऐसा क्यों है, फिर आप मुझे बता दीजिएगा।"

एक तीसरे गाँव में एक युवती थी जिसने गमानी से कहा, "मैं न तो अपने पति के साथ रह सकती हूँ और न ही अपने परिवार के साथ। राजा से पूछिए कि ऐसा क्यों है, और फिर मुझे बताइए।"

थोड़ी दूर आगे सड़क के पास एक चींटी के टीले में एक सांप रहता था। उसने गमानी को देखा और पुकारा,

"तुम कहाँ जा रही हो, चंदा?"

"राजा को देखने के लिए।"

"राजा बुद्धिमान हैं; मेरी ओर से उन्हें संदेश पहुंचा दीजिए। जब मैं भोजन लेने बाहर जाता हूँ, तो इस चींटी के टीले से बेहाल और भूखा निकलता हूँ, फिर भी मैं अपने शरीर से प्रवेश द्वार को भर देता हूँ और बड़ी मुश्किल से घिसटते हुए बाहर निकलता हूँ। लेकिन जब मैं वापस अंदर आता हूँ, तो मैं तृप्त और मोटा महसूस करता हूँ, फिर भी मैं बिना किनारों को छुए तेज़ी से छेद से निकल जाता हूँ। यह कैसे होता है? राजा से पूछिए और मुझे उनका उत्तर बताइए।"

और आगे चलकर एक हिरण ने उसे देखा और कहा—"मैं इस पेड़ के नीचे के अलावा कहीं और घास नहीं खा सकता। राजा से इसका कारण पूछो।" फिर एक तीतर ने कहा, "जब मैं इस चींटी के ढेर के नीचे बैठता हूँ और अपना सुर निकालता हूँ, तो मैं मधुरता से गा सकता हूँ; लेकिन कहीं और नहीं। राजा से इसका कारण पूछो।" और फिर एक वृक्ष आत्मा ने उसे देखा और कहा,

"तुम कहाँ जा रही हो, चंदा?"

"राजा को।"

"लोग कहते हैं कि राजा एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं। पुराने समय में मेरा बहुत सम्मान होता था; अब मुझे मुट्ठी भर टहनियाँ भी नहीं मिलतीं। राजा से पूछो कि इसका कारण क्या है।"

आगे चलकर उसे एक सर्प-राजा ने देखा और उससे कहा, "राजा को बुद्धिमान कहा जाता है; तो उससे यह प्रश्न पूछो। पहले इस तालाब का पानी क्रिस्टल की तरह साफ था। अब यह गंदा क्यों हो गया है और इस पर मैल क्यों जम गया है?"

आगे चलकर, एक कस्बे से कुछ ही दूरी पर, एक उद्यान में रहने वाले कुछ तपस्वियों ने उन्हें देखा और उसी तरह कहा, "लोग कहते हैं कि राजा बुद्धिमान हैं। पहले इस उद्यान में मीठे फल बहुतायत में होते थे, अब वे बेस्वाद और सूख गए हैं। उनसे इसका कारण पूछिए।" आगे चलकर, कस्बे के द्वार पर स्थित एक सभागार में कुछ ब्राह्मण छात्र उनके पास आए। उन्होंने उनसे कहा,

"तुम कहाँ जा रही हो, चंदा?"

चंदा कहती है, "राजा को।"

"तो हमारे लिए एक संदेश ले चलो। अब तक हमने जो भी पाठ पढ़ा था, वह स्पष्ट और सुस्पष्ट था; अब वह हमारे साथ नहीं रहता, समझ में नहीं आता, बल्कि चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है, जैसे किसी टूटे हुए घड़े में पानी भरा हो। राजा से पूछो कि इसका कारण क्या है।"

गमानी-चंदा अपने चौदह प्रश्न लेकर राजा के समक्ष आया। राजा ने उसे देखते ही पहचान लिया। "यह मेरे पिता का सेवक है, जो मुझे गोद में झुलाता था। इतने समय से कहाँ रह रहा था?" राजा ने कहा, "चंदा, तुम इतने समय से कहाँ रह रहे थे? हमने तुम्हें बहुत दिनों से नहीं देखा; यहाँ क्यों आए हो?"

"हे मेरे स्वामी, जब मेरे दिवंगत राजा स्वर्ग सिधार गए, तो मैं गाँव चला गया और खेती करके अपना जीवन यापन करने लगा। फिर इस व्यक्ति ने मुझे अपने पशुओं के संबंध में एक मामले के लिए बुलाया, और वह मुझे यहाँ ले आया है।"

"अगर तुम्हें यहाँ न लाया जाता, तो तुम कभी नहीं आते; लेकिन मुझे खुशी है कि तुम्हें लाया गया। अब मैं तुम्हें देख सकता हूँ। वह आदमी कहाँ है?"

"यहाँ, मेरे स्वामी।"

"क्या तुमने ही हमारी दोस्त चंदा को बुलाया था?"

"जी महाराज।"

"क्यों?"

"वह मेरे बैलों की जोड़ी वापस देने से इनकार कर रहा है!"

"क्या सच में ऐसा है, चंदा?"

"हे स्वामी, मेरी कहानी भी सुनिए!" चंदा ने कहा और उसे पूरी कहानी सुनाई। कहानी सुनकर राजा ने बैलों के मालिक से पूछा, "क्या तुमने बैलों को अस्तबल में जाते देखा?"

"नहीं, महाराज," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"अरे यार, तुमने मेरा नाम कभी सुना ही क्यों नहीं? लोग मुझे 'किंग मिरर-फेस' कहते हैं। सच बोलो।"

"मैंने उन्हें देखा, महाराज!" उसने कहा।

"चंदा," राजा ने कहा, "तुमने बैल लौटाए नहीं, इसलिए तुम उसके ऋणी हो। परन्तु इस व्यक्ति ने बैलों को न देखने का बहाना करके सरासर झूठ बोला है। अतः तुम अपने हाथों से उसकी आँखें निकाल लो और स्वयं उसे बैलों की कीमत के रूप में चौबीस सिक्के अदा करो।" फिर वे बैलों के मालिक को बाहर ले गए।

"अगर मेरी आंखें चली जाएं तो मुझे पैसों की क्या परवाह?" उसने सोचा। और वह गमानी के चरणों में गिर पड़ा और उनसे विनती की—"हे स्वामी चंदा, ये चौबीस सिक्के रख लीजिए, और ये भी ले लीजिए!" और गमानी ने उसे बाकी सिक्के दे दिए और भाग गए।

दूसरे व्यक्ति ने कहा, "महाराज, इस आदमी ने मेरी पत्नी को मारा और उसका गर्भपात हो गया।" राजा ने पूछा, "क्या यह सच है, चंदा?" चंदा ने सुनवाई की गुहार लगाई और पूरी कहानी सुनाई।

राजा ने पूछा, "क्या तुमने सचमुच उसे मारा और उसका गर्भपात करवा दिया?"

"नहीं, महाराज! मैंने ऐसा कुछ नहीं किया।"

"अब, क्या तुम"—दूसरे से—"क्या तुम उस गर्भपात को ठीक कर सकते हो जो उसने किया है?"

"नहीं, महाराज, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

अब आप क्या करना चाहते हैं?

"मुझे एक बेटा चाहिए, महाराज।"

"तो फिर, चंदा—तुम उस आदमी की पत्नी को अपने घर ले आओ; और जब तुम्हें बेटा हो जाए, तो उसे उसके पति को सौंप देना।"

तब वह आदमी भी चंदा के पैरों पर गिर पड़ा और रोते हुए बोला, "मालिक, मेरा घर मत तोड़ो!" उसने कुछ पैसे फेंके और भाग गया।

फिर तीसरे व्यक्ति ने चंदा पर अपने घोड़े का पैर लंगड़ा करने का आरोप लगाया। चंदा ने पहले की तरह ही सारी बात बताई। तब राजा ने मालिक से पूछा, "क्या तुमने सचमुच चंदा को घोड़े को मारने और उसे वापस मोड़ने के लिए कहा था?"

"नहीं, महाराज, मैंने ऐसा नहीं कहा।" लेकिन बार-बार पूछे जाने पर उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने ऐसा कहा था।

“इस आदमी ने सरासर झूठ बोला है, यह कहकर कि उसने तुम्हें घोड़े को वापस लाने के लिए नहीं कहा था। तुम इसकी जीभ काट दो; और फिर घोड़े की कीमत के तौर पर इसे एक हजार सिक्के दो, जो मैं तुम्हें दूंगा।” लेकिन उस आदमी ने उसे एक और रकम दी और चला गया।

तब टोकरी बनाने वाले के बेटे ने कहा,

"यह आदमी हत्यारा है, और इसने मेरे पिता की हत्या की है!"

"क्या सच में, चंदा?" आइसिंग ने पूछा। "मेरी बात सुनिए, महाराज," चंदा ने कहा और उसे इसके बारे में बताया।

"अब तुम क्या चाहते हो?" राजा ने पूछा।

"मेरे स्वामी, मुझे मेरे पिता चाहिए।"

राजा ने चंदा से कहा, “इस आदमी का कोई पिता तो होगा ही। लेकिन तुम इसे मृत्यु से वापस नहीं ला सकते। इसलिए इसकी माँ को अपने घर ले आओ और तुम ही इसके पिता बनो।”

"ओह, मालिक!" उस आदमी ने चिल्लाकर कहा, "मेरे मृत पिता के घर को मत तोड़ो!" उसने गमानी को कुछ पैसे दिए और जल्दी से चला गया।

इस प्रकार गमानी ने अपनी बात मनवा ली, और अत्यंत प्रसन्न होकर उसने राजा से कहा, "महाराज, मेरे पास कई व्यक्तियों से आपके लिए कई प्रश्न हैं; क्या मैं उन्हें आपको बता सकता हूँ?"

"बोलते रहो," राजा ने कहा।

तो गमानी ने उन सभी को उल्टे क्रम में बताया, सबसे पहले युवा ब्राह्मणों से शुरू किया। राजा ने बारी-बारी से उनके उत्तर दिए। पहले प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा: "जिस स्थान पर वे रहते थे, वहाँ एक मुर्गा हुआ करता था जो समय जानता था। जब वे उसकी बांग सुनते थे, तो वे उठ जाते थे और सूर्योदय तक अपने पाठ दोहराते रहते थे, और इस प्रकार वे जो कुछ सीखते थे उसे नहीं भूलते थे। लेकिन अब एक ऐसा मुर्गा है जो बेमौसम बांग देता है; वह आधी रात को या दिन के उजाले में बांग देता है। जब वह आधी रात को बांग देता है, तो वे उठ जाते हैं, लेकिन वे इतने नींद में होते हैं कि पाठ दोहरा नहीं पाते। जब वह दिन के उजाले में बांग देता है, तो वे उठ जाते हैं, लेकिन उन्हें अपने पाठ दोहराने का मौका नहीं मिलता। इस प्रकार, वे जो कुछ भी सीखते हैं, उसे शीघ्र ही भूल जाते हैं।"

दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा: “पहले ये लोग तपस्वी के सभी कर्तव्यों का पालन करते थे और रहस्यमय समाधि की अवस्था में पहुँच जाते थे। अब इन्होंने तपस्वी के कर्तव्यों की उपेक्षा कर दी है और वे ऐसे काम करते हैं जो उन्हें नहीं करने चाहिए; उद्यान में उगने वाले फल वे अपने सेवकों को दे देते हैं; वे पापमय जीवन जीते हैं और भिक्षा का आदान-प्रदान करते हैं (*3)। इसीलिए यह फल मीठा नहीं होता। यदि वे एक बार फिर एकमत होकर तपस्वी के रूप में अपने कर्तव्य का पालन करें, तो यह फल उनके लिए फिर से मीठा हो जाएगा। ये संन्यासी राजाओं की बुद्धिमत्ता नहीं जानते; उन्हें तपस्वी जीवन जीने के लिए कहिए।”

उसने तीसरा प्रश्न सुना और उत्तर दिया, "वे सर्प सरदार आपस में झगड़ते रहते हैं, और इसी कारण जल मटमैला हो जाता है। यदि वे पहले की तरह मित्र हो जाएँ, तो जल फिर से स्वच्छ हो जाएगा।" चौथा प्रश्न सुनने के बाद, उसने कहा, "वृक्ष की आत्मा पहले वन से गुजरने वाले मनुष्यों की रक्षा करती थी, और इसलिए उसे अनेक भेंटें प्राप्त होती थीं। अब वह उनकी रक्षा नहीं करती, और इसलिए उसे कोई भेंट नहीं मिलती। यदि वह पहले की तरह उनकी रक्षा करे, तो उसे फिर से उत्तम भेंटें प्राप्त होंगी। वह नहीं जानती कि संसार में राजा

भी हैं। इसलिए उससे कहो कि वह उस वन में जाने वाले मनुष्यों की रक्षा करे।" और पाँचवाँ प्रश्न सुनने पर, उसने कहा, "चींटियों के टीले के नीचे, जहाँ तीतर मधुर आवाज निकाल पाता है, खजाने से भरा एक घड़ा है; उसे खोदकर निकाल लो।" छठे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, "जिस वृक्ष के नीचे हिरण को घास खाने को मिली, उस पर एक बड़ा छत्ता है। उसे उस घास की लालसा है जिस पर यह शहद गिरा है, इसलिए वह दूसरी घास नहीं खा सकता। तुम छत्ता ले आओ, उसमें से सबसे अच्छा हिस्सा मुझे भेज दो, और बाकी तुम खुद खा लो।" फिर सातवें प्रश्न को सुनकर उन्होंने कहा, "सांप के चींटियों के टीले के नीचे एक बड़ा खजाना है, और वह वहीं उसकी रखवाली करता रहता है। इसलिए जब वह बाहर निकलता है, तो इस खजाने के लालच से उसका शरीर चिपक जाता है; लेकिन भोजन करने के बाद, खजाने की लालसा उसके शरीर को चिपकने नहीं देती, और वह जल्दी और आसानी से अंदर चला जाता है। खजाना खोदकर निकाल लो, और उसे अपने पास रख लो।" फिर उसने आठवें प्रश्न का उत्तर दिया, "जिस गाँव में युवती का पति और माता-पिता रहते हैं, उनके बीच एक घर में उसका प्रेमी रहता है। युवती को उसकी याद आती है और उसके प्रति उसकी इच्छा जागृत होती है; इसलिए वह अपने पति के घर में नहीं रह सकती, बल्कि अपने माता-पिता से मिलने जाने का बहाना करती है और रास्ते में कुछ दिन अपने प्रेमी के साथ बिताती है। कुछ दिन घर लौटने पर उसे फिर उसकी याद आती है और अपने पति के पास लौटने का बहाना करके वह फिर अपने प्रेमी के पास चली जाती है। जाओ, उससे कहो कि उस देश में राजा हैं; कहो कि उसे अपने पति के साथ रहना होगा, और यदि वह नहीं रहेगी, तो उसे सावधान कर दो, राजा उसे पकड़वा देगा और वह मर जाएगी।" नौवीं बात सुनकर उसने कहा, "वह स्त्री पहले एक से पैसे लेकर दूसरे के पास तब तक नहीं जाती थी जब तक कि उसका काम पूरा न हो जाए (*4), और इसी तरह वह बहुत कुछ कमाती थी। अब उसने अपना तरीका बदल लिया है, और पहले की अनुमति के बिना ही वह आखिरी के साथ चली जाती है, इसलिए उसे कुछ नहीं मिलता और कोई उसकी तलाश नहीं करता। अगर वह अपनी पुरानी प्रथा पर चलती रही, तो सब कुछ पहले जैसा ही हो जाएगा। उसे कहो कि वह ऐसा ही करे।" दसवीं बात सुनकर उसने उत्तर दिया, "वह ग्राम प्रधान पहले निष्पक्ष रूप से न्याय करता था, जिससे लोग उससे प्रसन्न और खुश रहते थे; और अपनी प्रसन्नता में उसे कई उपहार देते थे। इसी वजह से वह सुंदर, धनी और सम्मानित हुआ। अब उसे रिश्वत लेना पसंद है, और उसका न्याय निष्पक्ष नहीं है; इसलिए वह गरीब, दुखी और पीलियाग्रस्त है। अगर वह फिर से न्याय से न्याय करे,वह फिर से पहले जैसा हो जाएगा। उसे पता नहीं है कि इस देश में राजा भी हैं। उसे बता दो कि उसे न्याय करते समय निष्पक्षता बरतनी चाहिए।

और गमानी-चंदा ने ये सभी संदेश, जैसे-जैसे उन्हें बताए गए थे, सबको बता दिए। राजा ने, बुद्ध की तरह असीम ज्ञान से, इन सभी प्रश्नों का हल निकाल लिया और गमानी-चंदा को बहुमूल्य उपहार दिए; और चंदा जिस गाँव में रहता था, उसे भी ब्राह्मण के उपहार के रूप में दे दिया और उसे जाने दिया। चंदा नगर से बाहर गया और राजा का उत्तर ब्राह्मण युवकों, तपस्वियों, सर्प और वृक्ष-देवता को बताया; उसने तीतर के बैठने की जगह से खजाना लिया और जिस वृक्ष के नीचे हिरण चरता था, वहाँ से मधुकोश लिया और राजा को शहद भेजा; उसने सर्प के टीले को तोड़कर उसमें से खजाना निकाला; और युवती, प्रेम की ज्योति और ग्राम प्रधान को भी वही बताया जो राजा ने उसे बताया था। फिर वह अपने गाँव लौट आया और जीवन भर वहीं रहा और उसके बाद अपने कर्मों के फल के अनुसार उसका निधन हो गया। और राजा दर्पण-चेहरे ने भी दान दिया, भलाई फैलाई और अंत में अपनी मृत्यु के बाद स्वर्ग चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो यह दर्शाने के लिए कि भगवान बुद्ध न केवल अब बल्कि पहले भी बुद्धिमान थे, उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर अनेक व्यक्ति प्रथम मार्ग (सम्मोहन), द्वितीय मार्ग (सम्मोहन), तृतीय मार्ग (सम्मोहन) या चतुर्थ मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश कर गए): "उस समय आनंद गमनी-चंदा थे; परन्तु राजा दर्पण-मुख मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)दशरथ उनके पिता का दूसरा नाम है।

(2) यह ध्यान देने योग्य है कि स्नेह का यह शब्द माँ के भाई को दर्शाता है।

(3)कुछ लोग घर पर ही रहते हैं, जबकि अन्य सभी से भीख मांगते हैं, ताकि परेशानी से बचा जा सके।

(4) शाब्दिक रूप से, "जब तक उसने उसे उसके पैसे का पूरा आनंद नहीं दिलाया," ajirapetva.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मांधातु-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-258-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 258
मंधातु-जातक

"जहाँ सूर्य और चंद्रमा हों," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में प्रवास के दौरान एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि यह भाई श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के दौरान एक सुंदर वस्त्रधारी स्त्री को देखकर मोहित हो गया। तब भिक्षुओं ने उसे सत्य के हॉल में ले जाकर भगवान बुद्ध को बताया कि वह पथभ्रष्ट हो गया है। भगवान बुद्ध ने पूछा कि क्या यह सच है; और उत्तर मिला, हाँ, यह सच है।

“भाई (भिक्षु),” गुरु ने कहा, “गृहस्थ रहते हुए भी तुम इस कामवासना को कब तृप्त कर पाओगे? ऐसी कामवासना सागर जितनी गहरी है, इसे कोई भी चीज़ तृप्त नहीं कर सकती। पुराने समय में ऐसे सर्वोच्च सम्राट हुए हैं, जो अपने सेवकों के साथ दो हज़ार द्वीपों से घिरे चार महान महाद्वीपों पर शासन करते थे, यहाँ तक कि चार महान राजाओं के स्वर्ग में भी, यहाँ तक कि जब वे तैंतीस देवदूतों के स्वर्ग में देवताओं के राजा थे, यहाँ तक कि छत्तीस इंद्रों के निवास में भी, फिर भी वे अपनी कामवासना को तृप्त नहीं कर पाए और ऐसा करने से पहले ही मर गए; तुम इसे कब तृप्त कर पाओगे?” और उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, संसार के आरंभिक युग में, महासम्मत नामक एक राजा रहते थे। उनके पुत्र रोजा थे, जिनके पुत्र वरारोजा, वरारोजा के पुत्र कल्याणा, वराकल्याण, उपोसथ के पुत्र वरकल्याण और उपोसथ के पुत्र मंधात थे। मंधात सात रत्नों और चार अलौकिक शक्तियों से संपन्न थे; और वे एक महान सम्राट थे। जब वे अपनी बाईं मुट्ठी बंद करके उसे अपने दाहिने हाथ से छूते थे, तो घुटनों तक सात प्रकार के रत्नों की वर्षा होती थी, मानो आकाश में दिव्य वर्षा का बादल उठ खड़ा हुआ हो; वे इतने अद्भुत थे। चौरासी हजार वर्षों तक वे राजकुमार रहे, इतने ही वर्षों तक उन्होंने राज्य के शासन में भाग लिया और इतने ही वर्षों तक सर्वोच्च राजा के रूप में शासन किया; उनका जीवन अनगिनत युगों तक चला।

एक दिन, वह अपनी किसी इच्छा को पूरा नहीं कर सका, इसलिए उसने असंतोष के लक्षण दिखाए।

"महाराज, आप नीचे क्यों देख रहे हैं?" दरबारियों ने उनसे पूछा।

"जब मेरी योग्यता की शक्ति पर विचार किया जाता है, तो यह राज्य क्या है? कौन सा स्थान वांछनीय प्रतीत होता है?"

हे भगवान!

इस प्रकार साम्राज्य के चक्र (1) पर सवार होकर, वह अपने दल के साथ चार महान राजाओं (2) के स्वर्ग में गया। चारों राजा, देवताओं (देवदूतों) की एक बड़ी भीड़ के साथ, भव्यता से उसका स्वागत करने आए, दिव्य फूल और सुगंध लिए हुए; और उसे अपने स्वर्ग में ले जाकर, उसे शासन सौंप दिया। वहाँ उसने शान से शासन किया, और एक लंबा समय बीत गया। परन्तु वहाँ भी वह अपनी लालसा को संतुष्ट नहीं कर सका; और इसलिए वह असंतोष से बीमार दिखने लगा।

चारों सम्राटों ने कहा, “हे महामहिम, क्या आप असंतुष्ट हैं?” राजा ने उत्तर दिया,

"इस स्वर्ग से अधिक सुंदर स्थान और कौन सा हो सकता है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी, हम सेवकों के समान हैं। तैंतीस(3) का स्वर्ग इससे कहीं अधिक सुंदर है!"

मंधाता ने साम्राज्य का चक्र चलाया और अपने दरबारियों को अपने चारों ओर समेटे हुए तैंतीस देवताओं के स्वर्ग की ओर मुख किया। देवताओं के राजा सक्का (इंद्र), दिव्य पुष्प और सुगंध लिए हुए, देवताओं की एक विशाल भीड़ के बीच भव्य रूप से उनसे मिलने आए और उनका मार्गदर्शन करते हुए उन्हें मार्ग दिखाया। जब राजा देवताओं की भीड़ के बीच से गुजर रहे थे, तभी उनके बड़े पुत्र ने साम्राज्य का चक्र संभाला और मनुष्यों के मार्ग पर उतरकर अपने नगर में आ गए। सक्का (इंद्र) मंधाता को तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में ले गए और उन्हें अपने राज्य का आधा भाग दे दिया। इसके बाद दोनों ने मिलकर शासन किया। समय बीतता गया, जब तक कि सक्का (इंद्र) साठ लाख वर्षों और तीस करोड़ वर्षों तक जीवित रहे, तब उनका पुन: जन्म हुआ; एक और सक्का (इंद्र) का जन्म हुआ, उन्होंने भी

शासन किया, अपना जीवन व्यतीत किया और उनका पुन: जन्म हुआ। इस प्रकार छत्तीस इंद्रों का एक के बाद एक आगमन हुआ। फिर भी मंधाता अपने दरबारियों की भीड़ के साथ शासन करता रहा। समय बीतने के साथ-साथ उसकी वासना और इच्छा की शक्ति और भी प्रबल होती गई।

“मेरे लिए आधा राज्य क्या है?” उसने मन ही मन कहा; “मैं सक्का (इंद्र) को मार डालूँगा और अकेले राज करूँगा!” लेकिन वह सक्का (इंद्र) को मार नहीं सका। उसकी यही इच्छा और लोभ उसके दुर्भाग्य का कारण बना। उसकी शक्ति क्षीण होने लगी; बुढ़ापा उसे जकड़ने लगा; लेकिन मनुष्य का शरीर स्वर्ग में नष्ट नहीं होता। इसलिए वह स्वर्ग से गिर पड़ा और एक उद्यान में जा पहुँचा। माली ने उसके आने की सूचना राजपरिवार को दी; वे आए और उद्यान में उसके लिए विश्राम स्थल नियुक्त किया; वहाँ राजा सुस्ती और थकान में पड़ा रहा। दरबारियों ने उससे पूछा,

"मेरे स्वामी, हम आपसे क्या वचन लें?"

“मेरी ओर से लोगों को यह संदेश दो: राजाओं के राजा मंधाता, जिन्होंने पृथ्वी के चारों दिशाओं पर, चारों ओर फैले दो हजार द्वीपों पर, लंबे समय तक शासन किया, चार महान राजाओं की प्रजा पर राज किया, छत्तीस इंद्रों के जीवनकाल में स्वर्ग के राजा रहे, अब मृत हो गए हैं।” इन्हीं शब्दों के साथ उनका निधन हो गया और वे अपने कर्मों के फल के लिए विदा हो गए।

यह कथा समाप्त होने पर, गुरुजी पूर्णतः ज्ञानी हो गए और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:-

"जहां कहीं भी सूर्य और चंद्रमा अपने मार्ग पर चलते हैं"
सभी मंधाता के सेवक हैं, हर एक:
पृथ्वी के जहाँ कहीं भी दिन का प्रकाश पड़ता है,
वहां राजा मान्धाता का शाही प्रभुत्व था।
"भले ही आकाश से सिक्कों की बारिश हो (*4)
क्या संतुष्टि देने वाली कोई चीज मिल सकती है?
दर्द इच्छा है, और दु:ख बेचैनी है:
जो इस बात को जानता है, वह बुद्धिमान है और वह धन्य है।
जहां लालसा होती है, वहां आनंद को पंख लग जाते हैं।
भले ही इच्छा स्वर्गीय चीजों की ओर उन्मुख हो।
स्वयं बुद्ध के शिष्य प्रयास करते हैं
सभी इच्छाओं को शाश्वत रूप से कुचल देने के लिए।"
जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने चार सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) और कई अन्य लोगों ने प्रथम मार्ग का फल (सोतापना की समाधि अवस्था) प्राप्त किया: "उस समय, मैं महान राजा मंधाता था।"

फुटनोट: (1) उस प्रकार के कृत्यों द्वारा आधिपत्य की मांग करना।

(2) स्वर्ग की चार दिशाओं की रक्षा करने वाले चार प्रकार के स्वर्गीय प्राणियों के चार राजा। ये प्राणी स्वर्ग के पूर्वी भाग में संगीत के शौकीन गंधर्व हैं, दक्षिण में बड़े-बड़े घड़े जैसे गोले लिए बैठे कुम्भंड हैं, पश्चिम में नाग (सांप) हैं और उत्तर में मानव रूप वाले यक्ष (स्वर्गीय योद्धा) हैं।

(3) 33 करोड़ देवी-देवताओं (देवदूतों) का स्वर्ग, स्वर्ग का प्रारंभिक स्तर जहाँ जीवनकाल 36.5 मिलियन वर्ष है।

(4) धम्मपद के श्लोक 186 और 187 देखें, जो इन श्लोकों के अंतिम दो हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तिरीता-वाचा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 259
तिरिता-वच्छ-जातक

"जब बिल्कुल अकेले थे," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें हजार वस्त्रों के उपहार का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि पूज्य आनंद को कोसल के राजा के घर की स्त्रियों से पाँच सौ वस्त्र और स्वयं राजा से पाँच सौ वस्त्र प्राप्त हुए थे। इन परिस्थितियों का वर्णन सिगला जन्म में ऊपर किया जा चुका है।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ। उनके नामकरण के दिन उनका नाम गुरु तिरितवचेह रखा गया। समय आने पर वे बड़े हुए और तक्षशिला में अध्ययन किया। उन्होंने विवाह किया और बस गए, लेकिन अपने माता-पिता की मृत्यु से वे इतने दुखी हुए कि उन्होंने संन्यासी बनने का निश्चय किया और वन में रहने लगे, जहाँ वे वन की जड़ों और फलों को खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे।

जब वह वहाँ रह रहा था, बनारस की सीमा पर अशांति फैल गई। राजा वहाँ गया, लेकिन लड़ाई में हार गया; अपनी जान के डर से वह हाथी पर सवार होकर जंगल के रास्ते छिपकर भाग गया। सुबह तिरितवाचेहा जंगली फल इकट्ठा करने के लिए बाहर गया था, और इसी बीच राजा उसकी कुटिया के पास पहुँचा। "एक साधु की कुटिया!" उसने कहा; वह अपने हाथी से नीचे उतरा, हवा और धूप से थका हुआ और प्यासा; उसने पानी का घड़ा ढूँढा, लेकिन उसे कोई नहीं मिला। ढके हुए रास्ते के अंत में उसे एक कुआँ दिखाई दिया, लेकिन उसे पानी निकालने के लिए कोई रस्सी या बाल्टी नहीं दिखी। उसकी प्यास असहनीय थी; उसने हाथी के पेट के नीचे से जाने वाली कमरबंद उतारी, उसे किनारे पर बाँधा, और खुद को कुएँ में उतारा। लेकिन वह बहुत छोटी थी; इसलिए उसने अपने निचले वस्त्र के सिरे को उससे बाँधा, और फिर से नीचे उतरा। फिर भी वह पानी तक नहीं पहुँच सका। वह बस अपने पैरों से उसे छू सका: वह बहुत प्यासा था! “अगर मेरी प्यास बुझ जाए तो मृत्यु भी मीठी लगेगी!” उसने सोचा। फिर वह कुएँ में कूद गया और जी भरकर पानी पिया; पर वह उठ नहीं सका, इसलिए वहीं कुएँ में खड़ा रहा। और हाथी, जो इतना प्रशिक्षित था, राजा की प्रतीक्षा में स्थिर खड़ा रहा।

शाम को बोधिसत्व जंगली फलों से लदे हुए लौटे और उन्होंने हाथी को देखा। उन्होंने सोचा, "शायद राजा आ गए हैं; लेकिन यहाँ तो सशस्त्र हाथी के सिवा कुछ दिखाई नहीं दे रहा। अब क्या करें?" वे हाथी के पास गए, जो वहीं खड़ा उनका इंतज़ार कर रहा था। वे कुएँ के किनारे गए और नीचे राजा को देखा। उन्होंने पुकारा, "हे राजा, डरिए मत!" फिर उन्होंने एक सीढ़ी लगाई और राजा को बाहर निकाला; उन्होंने राजा के शरीर की मालिश की और तेल से उनका अभिषेक किया; इसके बाद उन्होंने उन्हें फल खाने को दिए और हाथी के कवच को खोल दिया। राजा ने वहाँ दो-तीन दिन विश्राम किया; फिर वे बोधिसत्व से मिलने आने का वादा लेकर चले गए।

राजसी सेना शहर के ठीक पास डेरा डाले हुए थी; और जब राजा के आने का आभास हुआ, तो वे उसके चारों ओर जमा हो गए।

डेढ़ महीने बाद, बोधिसत्व बनारस लौट आए और उद्यान में रहने लगे। अगले दिन वे भोजन मांगने महल आए। राजा ने एक बड़ी खिड़की खोली हुई थी और वे आंगन की ओर देख रहे थे। बोधिसत्व को देखकर और उन्हें पहचानकर, राजा नीचे उतरे और उनका अभिवादन किया। वे उन्हें एक चबूतरे पर ले गए और सफेद छतरी के नीचे सिंहासन पर बिठाया। राजा ने उन्हें अपना भोजन दिया और स्वयं भी खाया। फिर वे उन्हें बगीचे में ले गए और उनके लिए एक ढका हुआ रास्ता और रहने का स्थान बनवाया, और उन्हें एक तपस्वी की सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। इसके बाद, राजा ने उन्हें एक माली के हवाले करके विदाई ली और चले गए। इसके बाद, बोधिसत्व ने राजा के रहने के स्थान पर भोजन किया: उन्हें बहुत आदर और सम्मान दिया गया।

लेकिन दरबारी इसे सहन नहीं कर सके। उन्होंने कहा, "अगर किसी सैनिक को ऐसा सम्मान मिले, तो वह कैसा व्यवहार करेगा!" वे उन्हें वायसराय के पास ले गए: "महाराज, हमारे राजा एक तपस्वी को बहुत महत्व दे रहे हैं! उन्होंने उस व्यक्ति में क्या देखा है? आप इस बारे में राजा से बात कीजिए।" वायसराय मान गए, और वे सब एक साथ राजा के सामने गए। वायसराय ने राजा को प्रणाम किया और पहला श्लोक पढ़ा:

मुझे उसमें जरा भी बुद्धि नजर नहीं आती;
वह न तो आपका रिश्तेदार है और न ही आपका मित्र;
लकड़ी के तीन टुकड़ों (*1) वाले इस साधु को ऐसा क्यों करना चाहिए?
क्या तिरितवाचेहा के पास इतना शानदार भोजन है?
राजा ने सुना। फिर उसने अपने पुत्र से कहा,

"मेरे बेटे, तुम्हें याद है कि एक बार मैं सीमावर्ती इलाकों में गया था, और कैसे युद्ध में मेरी हार हुई थी, और मैं कुछ दिनों तक वापस नहीं आ सका था?"

"मुझे याद है," उसने कहा।

"इस आदमी ने मेरी जान बचाई," राजा ने कहा; और उसने उसे सारी घटना बताई। "मेरे पुत्र, अब जब मेरा यह रक्षक मेरे साथ है, तो मैं उसके इस कार्य के लिए उसका एहसान नहीं चुका सकता, चाहे मैं उसे अपना राज्य ही क्यों न दे दूं।" और उसने निम्नलिखित दो श्लोक पढ़े:-

"जब मैं बिल्कुल अकेला, एक भयानक प्यासे जंगल में था,
केवल उसी ने, और किसी ने नहीं, मेरा भला करने की कोशिश की;
मेरी परेशानी के समय उन्होंने मेरी मदद की;
लगभग अधमरी हालत में उसने मुझे उठाया और खड़ा किया।
"केवल उन्हीं के प्रयासों से मैं पुनः लौट आया।"
मृत्यु के चंगुल से निकलकर मनुष्यों की दुनिया में वापसी।
इस प्रकार की दयालुता का प्रतिफल देना उचित ही है;
भरपूर भेंट दो, उसका हिस्सा मत रोको।

राजा ने इस प्रकार कहा, मानो वह आकाश में चंद्रमा को उदय कर रहा हो; और जैसे-जैसे बोधिसत्व के गुणों का वर्णन होता गया, वैसे-वैसे उनके स्वयं के गुणों का भी सर्वत्र वर्णन होता गया; और उनकी आय और सम्मान में वृद्धि होती गई। उसके बाद न तो उनके प्रतिनिधि, न उनके दरबारी, और न ही किसी और ने राजा के समक्ष उनके विरुद्ध कुछ कहने का साहस किया। राजा बोधिसत्व की सलाह का पालन करते हुए दान-पुण्य करते रहे और अंत में स्वर्ग को प्राप्त हुए। बोधिसत्व ने सभी सिद्धियों और उपलब्धियों को प्राप्त कर ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियतिबद्ध हो गए।

फिर गुरु ने आगे कहा, "पुराने समय के बुद्धिमान लोगों ने भी सहायता की थी;" और इस प्रकार अपना प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने जन्म का विवरण इस प्रकार दिया: "आनंद राजा थे और मैं संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1) अपने पानी के बर्तन को लटकाने के लिए।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दूत-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-260-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 260
दूता-जातक

"हे राजा, पेट का दूत," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जो भोग-विलास में लिप्त था। इस घटना का विस्तृत वर्णन नौवें खंड में काका जन्म के अंतर्गत दिया जाएगा। यहाँ गुरु ने भिक्षु से फिर कहा, "हे भिक्षु, तुम पहले भी लालची थे, जैसे अब हो; और पुराने समय में तुम्हारे लालच के कारण तुम्हारा सिर तलवार से काट दिया गया था।" फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके पुत्र के रूप में पैदा हुए। उनका पालन-पोषण तक्षशिला में हुआ और उन्होंने वहीं अपनी शिक्षा पूरी की। अपने पिता की मृत्यु के बाद, उन्हें राज्य विरासत में मिला और वे अपने खान-पान में बहुत

ही सुरुचिपूर्ण थे; इसी कारण उन्हें सुरुचिपूर्ण राजा की उपाधि प्राप्त हुई। उनका खान-पान इतना भव्य था कि एक ही थाली पर वे एक लाख सिक्के खर्च कर देते थे। वे भोजन करते समय घर के अंदर नहीं खाते थे; बल्कि वे अपने महंगे भोजन का प्रदर्शन करके अनेक लोगों को पुण्य प्रदान करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने द्वार पर रत्नों से सजा एक मंडप बनवाया और भोजन करते समय उसे सजाकर, वे सोने से बने एक राजसी चबूतरे पर, सफेद छतरी के नीचे, राजकुमारियों से घिरे हुए, एक लाख सिक्कों की कीमत वाली थाली में सौ प्रकार के लजीज व्यंजनों का आनंद लेते थे।

अब एक लालची व्यक्ति ने राजा के भोजन करने का तरीका देखा और उसका भी भोजन चखने का मन हुआ। अपनी लालसा पर काबू न रख पाने के कारण उसने अपनी कमर कसकर बांधी और राजा की ओर दौड़ते हुए जोर से पुकारा—"संदेशवाहक! दूत! हे राजा!"—अपने हाथ ऊपर उठाकर। (उस समय और उस राज्य में, यदि कोई व्यक्ति "संदेशवाहक!" पुकारता था, तो उसे कोई नहीं रोकता था; और इसी प्रकार पर्ची निकाली गई और उसे आगे जाने दिया गया।)

वह आदमी तेज़ी से दौड़ा और राजा की थाली से चावल का एक दाना उठाकर अपने मुँह में डाल लिया। तलवारबाज़ ने उस आदमी का सिर काटने के लिए अपनी तलवार निकाली। लेकिन राजा ने उसे रोक दिया। "वार मत करो," उसने कहा; फिर उस आदमी से कहा, "डरना मत, खाते रहो!" उसने अपने हाथ धोए और बैठ गया।

भोजन के बाद, राजा ने अपना पीने का पानी और पान उस आदमी को दिलवाया और फिर कहा--

"अब मेरे दोस्त, तुमने कहा था कि तुम्हारे पास खबर है। तुम्हारी खबर क्या है?"

"हे राजा, मैं कामवासना और भोग-विलास का दूत हूँ। कामवासना ने मुझसे कहा, जाओ! और मुझे यहाँ अपना दूत बनाकर भेजा है;" और इन्हीं शब्दों के साथ उन्होंने पहले दो छंद कहे:-

"हे राजा, आप बेली के दूत को देख रहे हैं:
हे रथों के स्वामी, क्रोधित न हों!
बेली के लिए लोग बहुत दूर तक चले जाते हैं।
यहां तक कि प्रतिद्वंद्वी से मदद मांगने के लिए भी।
"हे राजा, आप बेली के दूत को देख रहे हैं;
हे रथों के स्वामी, क्रोधित न हों!
पेट उसके शक्तिशाली प्रभाव के नीचे दबा हुआ है
पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्य, दिन-रात।

जब राजा ने यह सुना, तो उसने कहा, "यह सच है; ये तो वृषण-संदेशवाहक हैं; कामवासना से प्रेरित होकर ये इधर-उधर भटकते हैं, और कामवासना ही इन्हें चलाती है। इस व्यक्ति ने कितनी खूबसूरती से इसे व्यक्त किया है!" वह उससे प्रसन्न हुआ, और उसने तीसरा श्लोक कहा:-

"ब्राह्मण, मैं एक हजार लाल गायें भेंट करता हूँ।"
आपको; उस बैल को, पूरक के रूप में।
एक संदेशवाहक दूसरे को जानकारी दे सकता है;
बेली के दूत ही सब कुछ हैं जो जीवित हैं।

राजा ने ऐसा कहा और आगे बोला, "मैंने इस महान व्यक्ति से कुछ ऐसा सुना है जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था, न ही कभी सोचा था।" और वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उस पर सम्मानों की वर्षा कर दी।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर लालची भाई (भिक्षु) ने तीसरे मार्ग (समाधि) का फल प्राप्त किया, और कई अन्य लोगों ने अन्य मार्गों में प्रवेश किया: "दोनों कहानियों में लालची व्यक्ति एक ही है, और मैं सुरुचिपूर्ण राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पदुम-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-261-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 261
पद्मुमा-जातक

"काटो, फिर काटो, फिर से काटो," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें कुछ भिक्षुओं ने आनंद के वृक्ष के नीचे पुष्पमालाएं अर्पित की थीं। इसका विस्तृत वर्णन कलिंग-बोधि जन्म (*1) में दिया गया है। इस वृक्ष को आनंद का वृक्ष इसलिए कहा जाता था क्योंकि इसे आनंद ने ही लगाया था। पूरे भारत में यह कथा प्रचलित है कि कैसे एक वरिष्ठ भिक्षु ने जेतवन मठ के द्वार पर इस वृक्ष को लगाया था।

कुछ भिक्षु जो ग्रामीण इलाके में रहते थे, उन्होंने आनंद के वृक्ष को भेंट चढ़ाने का निश्चय किया। वे जेतवन मठ गए, गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की और अगले दिन धीरे-धीरे श्रावस्ती नगर में कमल मार्ग की ओर चल पड़े; परन्तु उन्हें एक भी माला नहीं मिली। तब उन्होंने आनंद को बताया कि वे वृक्ष को भेंट चढ़ाना चाहते थे, परन्तु कमल मार्ग में कहीं भी एक भी माला नहीं मिली। वरिष्ठ भिक्षु ने कुछ माला लाने का वादा किया; अतः वे कमल मार्ग गए और मुट्ठी भर नीले कमल लेकर लौटे, जो उन्होंने उन्हें दिए। इन फूलों से उन्होंने वृक्ष को अपनी भेंट चढ़ाई।

जब भिक्षुओं को इस बात का पता चला, तो वे सत्य के हॉल में उस वरिष्ठ भिक्षु के गुणों पर चर्चा करने लगे: "मित्र, देश के कुछ कम गुणवान भिक्षुओं को कमल बाजार में फूलों का एक गुच्छा भी नहीं मिला; लेकिन वरिष्ठ भिक्षु उनके लिए फूल ले आए।" गुरुजी अंदर आए और उनसे पूछा कि वे क्या बात कर रहे हैं; और उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि चतुर वाणी को प्रशंसा मिली हो; पहले भी ऐसा ही होता था।" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक धनी व्यापारी के पुत्र थे। शहर में एक तालाब था, जिसमें कमल खिलता था। एक व्यक्ति जिसकी नाक कटी हुई थी, उस तालाब की देखभाल करता था।

एक दिन बनारस में छुट्टी का दिन घोषित हुआ; और उस धनी व्यक्ति के तीन बेटों ने सोचा कि वे अपने ऊपर फूलों की मालाएँ सजाएँगे और मौज-मस्ती करने निकलेंगे। "हम उस बूढ़े धूर्त को खुश करेंगे और उससे कुछ फूल माँगेंगे।" तो जिस समय वह कमल के फूल तोड़ता था, वे तालाब के पास गए और प्रतीक्षा करने लगे। और उनमें से एक ने पहला छंद कहा:

काटो, फिर काटो, फिर से काटो।
बाल और मूंछें काफी बढ़ जाती हैं;
और तुम्हारी नाक ऐसी हो जाएगी,
मुझे बस एक कमल दे दीजिए, कृपया!
लेकिन वह व्यक्ति क्रोधित था और उसने कुछ नहीं दिया। तब दूसरे ने दूसरा छंद कहा:

शरद ऋतु में बीज बोए जाते हैं
जो शीघ्र ही पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं;
काश तुम्हारी नाक भी ऐसी ही उग आए।
मुझे बस एक कमल दे दीजिए, कृपया!
फिर वह व्यक्ति क्रोधित हो गया और उसने कमल नहीं दिया। तब उनमें से तीसरे ने तीसरा श्लोक दोहराया:

"बेवकूफों की बकवास! यह सोचना कि वे
इस तरह से कमल प्राप्त किया जा सकता है।
वे हाँ कहें या ना कहें,
जिन नाकों को काटा गया है, वे अब और नहीं उगेंगी।
देखिए, मैं आपसे ईमानदारी से पूछता हूँ:
मुझे कमल और हवा दो!
यह सुनकर झील के रखवाले ने कहा, "बाकी दोनों ने झूठ बोला, लेकिन तुमने सच कहा है। तुम कमलों के हकदार हो।" इसलिए उसने उसे कमलों का एक बड़ा गुच्छा दिया और अपनी झील पर लौट गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "कमल प्राप्त करने वाला बालक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 479.

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-262-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 262
मुदु-पाणि-जातक

"कोमल हाथ," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई। उसे सत्य के हॉल में लाया गया और गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह सचमुच पथभ्रष्ट है? उसने उत्तर दिया, हाँ, वह है। तब गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं! स्त्रियों को उनकी इच्छाओं के पीछे जाने से रोकना असंभव है। पुराने समय में तो बुद्धिमान पुरुष भी अपनी पुत्रियों की रक्षा नहीं कर पाते थे; वे अपने पिता का हाथ थामे खड़ी रहती थीं और बिना उनकी जानकारी के किसी प्रेमी के साथ दुराचार कर बैठती थीं"; और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में राजा ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व उनकी रानी पत्नी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने के बाद, अपने पिता की मृत्यु पर वे उनके स्थान पर राजा बने और न्यायपूर्वक शासन किया।

उसके घर में उसकी बेटी और भतीजा एक साथ रहते थे। एक दिन जब वह अपनी अदालत में बैठा था, उसने कहा,

"मेरे मरने के बाद मेरा भतीजा राजा बनेगा और मेरी बेटी उसकी मुख्य रानी होगी।"

बाद में, जब वे बड़े हो गए, तो राजा अपने दरबार में फिर से बैठे थे; और उन्होंने उनसे कहा, "मैं अपने भतीजे के लिए किसी दूसरे आदमी की बेटी लाऊंगा, और अपनी बेटी का विवाह किसी दूसरे राजा के परिवार में करूंगा। इस तरह मेरे कई रिश्तेदार हो जाएंगे।" दरबारी सहमत हो गए। तब राजा ने भतीजे को महल के बाहर एक घर दे दिया, और उसका महल में आना बंद कर दिया।

लेकिन ये दोनों एक-दूसरे से प्यार करते थे। युवक ने सोचा, "मैं राजा की बेटी को घर से बाहर कैसे लाऊँगा? आहा, मुझे एक उपाय मिल गया।" उसने दाई को एक उपहार दिया।

"इसके बदले मुझे क्या करना होगा, स्वामीजी?" उसने पूछा।

"माँ, मैं राजकुमारी को घर से बाहर लाने का मौका चाहता हूँ।"

“मैं राजकुमारी से इस बारे में बात कर लूंगी,” उसने कहा, “और फिर तुम्हें बताऊंगी।” “बहुत अच्छा, माँ,” उसने जवाब दिया।

वह राजकुमारी के पास आई। उसने कहा, "मुझे तुम्हारे सिर से कीड़े निकालने दो।"

उसने राजकुमारी को एक छोटी सी चौकी पर बिठाया और खुद एक ऊँची चौकी पर बैठकर राजकुमारी का सिर अपनी गोद में रख लिया, और कीड़े-मकोड़े ढूंढते हुए उसने राजकुमारी के सिर को खुजलाया। राजकुमारी समझ गई। उसने सोचा, "उसने मुझे मेरे चचेरे भाई राजकुमार के नाखून से खुजलाया है, अपने नाखून से नहीं।" माँ, उसने पूछा, "क्या आप राजकुमार के साथ थीं?"

"हां, मेरी बेटी।"

और उसने क्या कहा?

"उसने पूछा कि वह तुम्हें घर से बाहर निकालने का कोई तरीका कैसे ढूंढ सकता है।"

“यदि वह बुद्धिमान है, तो वह जान जाएगा,” राजकुमारी ने कहा; और उसने पहला श्लोक सुनाया, और बूढ़ी औरत से इसे याद करने और राजकुमार को दोहराने के लिए कहा:

"एक कोमल हाथ, और एक अच्छी तरह से प्रशिक्षित हाथी,"
  और एक काला बारिश का बादल, आपको वही देता है जो आप चाहते हैं।"
उस महिला को यह बात पता चली और वह राजकुमार के पास लौट आई।

"तो माँ, राजकुमारी ने क्या कहा?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं, बस मैंने आपको यह छंद भेजा है," उसने उत्तर दिया; और उसने इसे दोहराया। राजकुमार ने इसे सुना और उसे विदा कर दिया।

राजकुमार को ठीक-ठीक समझ आ गया कि क्या कहना है। उसने एक सुंदर और कोमल हाथों वाला सेवक ढूंढा और उसे तैयार किया। उसने राजसी हाथी के रखवाले को रिश्वत दी और हाथी को भावहीन होने का प्रशिक्षण देकर उचित समय की प्रतीक्षा की। फिर, कृष्ण पक्ष के एक व्रत के दिन, मध्य पहर के ठीक बाद, एक घने काले बादल से बारिश होने लगी। "यही वह दिन है जिसके बारे में राजकुमारी ने कहा था," उसने सोचा; वह हाथी पर सवार हुआ और कोमल हाथों वाले लड़के को उसकी पीठ पर बिठाकर चल पड़ा। महल के सामने एक खुले आंगन की बड़ी दीवार से उसने हाथी को बांध दिया और एक खिड़की के सामने भीगते हुए खड़ा हो गया।

अब राजा अपनी बेटी पर नज़र रखे हुए था और उसे अपने सामने एक छोटे से पलंग पर ही आराम करने देता था। बेटी मन ही मन सोच रही थी, "आज राजकुमार आएगा!" और बिना सोए ही लेट गई।

"पिताजी," उसने कहा, "मैं नहाना चाहती हूँ।"

“चलो, मेरी बेटी,” राजा ने कहा। उसके हाथ पकड़कर वह उसे खिड़की तक ले गया; उसने उसे उठाया और एक हाथ से पकड़े हुए उसे खिड़की के बाहर कमल के आकार के आभूषण पर बिठा दिया। स्नान करते समय उसने राजकुमार की ओर हाथ बढ़ाया। राजकुमार ने उसके हाथ से चूड़ियाँ खोलकर अपने सेवक के हाथ में बाँध दीं; फिर उसने लड़के को उठाया और राजकुमारी के बगल में कमल पर बिठा दिया। राजकुमारी ने उसका हाथ पकड़ा और अपने पिता के हाथ में रख दिया, जिन्होंने उसका हाथ पकड़कर बेटी का हाथ छोड़ दिया। फिर उसने अपने दूसरे हाथ से आभूषण खोलकर लड़के के दूसरे हाथ में बाँध दिए, जिसे उसने अपने पिता के हाथ में रख दिया और राजकुमार के साथ चली गई। राजा ने लड़के को अपनी ही बेटी समझा; और स्नान समाप्त होने पर उसने उसे राजकक्ष में सुला दिया, दरवाजा बंद कर दिया और उस पर अपनी मुहर लगा दी; फिर पहरा लगाकर वह अपने कमरे में चला गया और आराम करने लगा।

जब सुबह हुई, तो उसने दरवाजा खोला और वहाँ उसे वह लड़का दिखाई दिया। "यह क्या है?" वह चिल्लाया। लड़के ने बताया कि वह राजकुमार के साथ भाग गई थी। राजा निराश हो गया। "हाथ पकड़कर भी कोई स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता। इसलिए स्त्री की रक्षा करना असंभव है;" और उसने ये दो पंक्तियाँ कहीं:-

"यद्यपि बोलने में मृदुभाषी, नदियों की तरह जिन्हें भरना कठिन है,"
 उनकी अतृप्त इच्छा को कोई भी चीज संतुष्ट नहीं कर सकती:
 वे नीचे, नीचे धंसते जा रहे हैं: मनुष्य को दूर भाग जाना चाहिए
 महिलाओं से, जब वह जानता है कि वे किस प्रकार की हैं।
 वे चाहे सोने के लिए या अपनी इच्छाओं के लिए जिसकी भी सेवा करें,
 वे उसे आग में ईंधन की तरह जला देते हैं।
इतना कहकर उस महान सत्ता ने आगे कहा, "मुझे अपने भतीजे का भरण-पोषण करना ही होगा;" अतः उन्होंने बड़े आदर के साथ अपनी पुत्री उसी व्यक्ति को सौंप दी और उसे अपना प्रतिनिधि बना दिया। और अपने चाचा की मृत्यु के बाद भतीजा स्वयं राजा बन गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग के फल (समाधि) में दृढ़ता से स्थापित हो गया: "उन दिनों, मैं राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्ल-पलोभन-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-263-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 263
CULLA-PALOBHANA-JATAKA

"समुद्र के रास्ते नहीं," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में थी। गुरु ने उसे सत्य के हॉल में बुलवाया और पूछा कि क्या वह सच में पथभ्रष्ट है। उसने कहा, हाँ, वह सच में पथभ्रष्ट है। गुरु ने कहा, "पुराने समय में स्त्रियाँ विश्वासियों को भी पाप करने के लिए प्रेरित करती थीं।" फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त निःसंतान थे। उन्होंने अपनी रानी से कहा, "आइए पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करें।" उन्होंने प्रार्थना की। बहुत समय बाद, बोधिसत्व ब्रह्मलोक (परमलोक) से अवतरित हुए और उनकी माता का गर्भ धारण हुआ। जन्म लेते ही उन्हें स्नान कराया गया और एक सेविका को दूध पिलाने के लिए दे दिया गया। जैसे ही उन्होंने स्तनपान किया, वे रोने लगे। उन्हें दूसरी सेविका को दिया गया; लेकिन जब कोई स्त्री उन्हें गोद में लेती थी, तो वे शांत नहीं होते थे। इसलिए उन्हें एक पुरुष सेवक को दिया गया; और जैसे ही पुरुष ने उन्हें गोद में लिया, वे शांत हो गए। उसके बाद पुरुष उन्हें गोद में लेकर घूमने लगे। जब वे उन्हें दूध पिलाते थे, तो वे उनके लिए स्तन का दूध निकालते थे, या पर्दे के पीछे से उन्हें स्तनपान कराते थे। यहां तक कि जब वे बड़े हो गए, तब भी वे उन्हें किसी स्त्री से नहीं मिलवा सकते थे। राजा ने उनके लिए बैठने और ध्यान करने के लिए एक अलग स्थान और एक अलग कमरा बनवाया।

जब लड़का सोलह वर्ष का हुआ, तो राजा ने मन ही मन सोचा, "मेरा कोई दूसरा पुत्र नहीं है, और यह पुत्र किसी सुख का आनंद नहीं लेता। यह तो राज्य की कामना भी नहीं करेगा। ऐसे पुत्र का क्या लाभ?"

और एक नर्तकी थी, जो नृत्य, गीत और संगीत में निपुण, युवा और इतनी कुशल कि वह अपने सामने आने वाले किसी भी पुरुष को मोहित कर लेती थी। वह राजा के पास गई और उससे पूछा कि वह क्या सोच रहा है; राजा ने उसे अपने विचार बता दिए।

"रहने दीजिए, मेरे स्वामी," उसने कहा: "मैं उसे मोहित कर लूंगी, मैं उसे मुझसे प्यार करने पर मजबूर कर दूंगी।"

"अच्छा, अगर तुम मेरे बेटे को, जिसका महिलाओं से कभी कोई वास्ता नहीं रहा, बहला-फुसला सकती हो, तो वह राजा बनेगा और तुम उसकी मुख्य रानी बनोगी!"

"हे स्वामी, यह मुझ पर छोड़ दीजिए," उसने कहा; "आप चिंता न कीजिए।" फिर वह पहरेदारों के पास गई और बोली, "भोर होते ही मैं राजकुमार के विश्राम कक्ष में जाऊंगी और उस कमरे के बाहर जहाँ वे एकांत में ध्यान करते हैं, गीत गाऊंगी। यदि वे क्रोधित हों, तो मुझे बता दीजिएगा और मैं चली जाऊंगी; परन्तु यदि वे सुनें, तो मेरी प्रशंसा कीजिएगा।" वे ऐसा करने के लिए सहमत हो गए।

तो सुबह के समय वह उस स्थान पर खड़ी हो गई और मधुर स्वर में गाने लगी, जिससे संगीत गीत के समान मधुर और गीत संगीत के समान मधुर हो गया। राजकुमार सुनता रहा। अगले दिन उसने उसे पास खड़े होकर गाने का आदेश दिया। उसके अगले दिन उसने उसे अपने निजी कक्ष में खड़े होने का आदेश दिया, और उसके अगले दिन अपने सामने; और इस प्रकार समय के साथ उसके मन में वासना जागृत हुई; वह संसार के मार्ग पर चल पड़ा और प्रेम का आनंद प्राप्त किया। उसने निश्चय किया, "मैं इस स्त्री को किसी और को नहीं लेने दूँगा"; और अपनी तलवार लेकर वह पागलों की तरह गलियों में लोगों का पीछा करते हुए दौड़ पड़ा। राजा ने उसे पकड़ लिया और लड़की सहित शहर से निर्वासित कर दिया।

वे दोनों गंगा नदी के किनारे जंगल की ओर चल पड़े। वहाँ, एक ओर नदी और दूसरी ओर समुद्र के बीच, उन्होंने एक झोपड़ी बनाई और वहीं रहने लगे। वह अंदर बैठकर जड़ और कंद पकाती थी; बोधिसत्व जंगल से जंगली फल लाते थे।

एक दिन, जब वह फलों की तलाश में बाहर गया हुआ था, समुद्र में स्थित एक द्वीप का एक साधु, जो भोजन की तलाश में चक्कर लगा रहा था, हवा में उड़ते हुए धुआं देखा और इस झोपड़ी के पास उतर आया।

“पकने तक बैठो,” स्त्री ने कहा; फिर उसके मोहक आकर्षण ने उसकी आत्मा को मोहित कर लिया और उसे उसकी सम्मोहन अवस्था से बाहर निकाल दिया, जिससे उसकी पवित्रता भंग हो गई। और वह टूटे पंख वाले कौवे की तरह, उसे छोड़कर जाने में असमर्थ, पूरे दिन वहीं बैठा रहा जब तक कि उसने बोधिसत्व को आते नहीं देखा, और फिर तेजी से समुद्र की दिशा में भाग गया। “यह अवश्य ही कोई शत्रु होगा,” उसने सोचा, और अपनी तलवार निकालकर उसका पीछा करने चल पड़ा।

लेकिन तपस्वी ने मानो हवा में उठने का नाटक किया, और फिर समुद्र में गिर पड़ा। तब बोधिसत्व ने सोचा,

“निःसंदेह यह व्यक्ति एक तपस्वी है जो हवा के रास्ते यहाँ आया है; और अब जब उसकी समाधि टूट गई है, तो वह समुद्र में गिर गया है। मुझे उसकी मदद के लिए जाना होगा।” और किनारे पर खड़े होकर उसने ये छंद कहे:

"समुद्र के रास्ते नहीं, बल्कि आपकी जादुई शक्ति से।"
आप यहाँ पहले ही आ चुके थे;
अब एक स्त्री की बुरी संगति से
आपको समुद्र की गहराई में धकेल दिया गया है।
मोहक प्रलोभनों से भरा, पूरी तरह से कपटी।
वे सबसे पवित्र हृदय वाले व्यक्ति को भी पतन की ओर ले जाते हैं।
वे नीचे धंसते जा रहे हैं: मनुष्य को दूर भाग जाना चाहिए
महिलाओं से, जब वह जानता है कि वे किस प्रकार की हैं।
वे जिसकी भी सेवा करते हैं, चाहे सोने के लिए हो या इच्छा के लिए,
वे उसे आग में ईंधन की तरह जला देते हैं।

जब तपस्वी ने बोधिसत्व के ये शब्द सुने, तो वह समुद्र के बीचोंबीच खड़ा हो गया और अपनी बाधित समाधि में लौटकर वायु में ऊपर उठ गया और अपने निवास स्थान की ओर चल दिया। बोधिसत्व ने सोचा, "इतने भारी बोझ के साथ तपस्वी रुई के कण की तरह वायु में उड़ जाता है। मैं भी उसकी तरह समाधि क्यों न धारण करूँ और वायु में उड़ जाऊँ!" अतः वह अपनी कुटिया में लौटा और उस स्त्री को फिर से मनुष्यों के बीच ले गया; फिर उसने उसे जाने के लिए कहा और स्वयं जंगल में चला गया, जहाँ उसने एक रमणीय स्थान पर अपनी कुटिया बनाई और तपस्वी बन गया; उसने रहस्यमय समाधि की तैयारी की, अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों को विकसित किया और ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियत हो गया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया): "उस समय," उसने कहा, "मैं स्वयं वह युवक था जिसका महिलाओं से कभी कोई संबंध नहीं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-पणद-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-264-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 264
महा-पानाद-जातक (*1)

"यह राजा पनादा थे," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने गंगा के किनारे बसने के दौरान सुनाई थी, जिसमें उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु भद्दाजी की चमत्कारी शक्ति का वर्णन किया था।

एक बार जब गुरुजी श्रावस्ती नगर में वर्षा ऋतु बिता रहे थे, तो उन्होंने भद्दाजी नामक एक युवक पर कृपा करने का विचार किया। अतः अपने सभी भिक्षुओं के साथ वे भद्दिया नगर की ओर चल पड़े और तीन माह जातीय वन में रहे, इस प्रतीक्षा में कि वह युवक परिपक्व होकर अपने ज्ञान में निपुण हो जाए। भद्दाजी एक महान व्यक्तित्व के धनी थे, जो भद्दिया के एक धनी व्यापारी के इकलौते पुत्र थे और जिनकी संपत्ति आठ सौ मिलियन थी। उनके पास तीन ऋतुओं के लिए तीन घर थे, जिनमें से प्रत्येक में वे चार माह निवास करते थे; और एक घर में यह अवधि बिताने के बाद, वे अपने सभी मित्रों और परिवार के साथ बड़े धूमधाम से दूसरे घर में चले जाते थे। इन अवसरों पर सारा नगर उस युवक की भव्यता को देखने के लिए प्रचंड हो जाता था; और इन घरों के बीच गोल-गोल और कई स्तरों पर आसन बने होते थे।

जब गुरुजी वहाँ तीन महीने रहे, तो उन्होंने नगरवासियों को अपने प्रस्थान की सूचना दी। नगरवासियों ने उनसे अगले दिन तक प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया और अगले दिन बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए भव्य उपहार एकत्र किए; और नगर के मध्य में एक मंडप स्थापित किया, उसे सजाया और बैठने की व्यवस्था की; फिर उन्होंने घोषणा की कि समय आ गया है। गुरुजी अपने साथियों के साथ वहाँ गए और बैठ गए। सभी ने उदारतापूर्वक उन्हें दान दिया। भोजन समाप्त होने के बाद, गुरुजी ने मधुर स्वर में सभी को धन्यवाद दिया।

उस समय युवा भद्दाजी अपने एक निवास से दूसरे निवास की ओर जा रहे थे। परन्तु उस दिन उनकी शोभा देखने कोई नहीं आया; उनके आस-पास केवल उनके अपने लोग ही थे। इसलिए उन्होंने अपने लोगों से पूछा कि ऐसा क्यों है? आमतौर पर सारा शहर उन्हें घर-घर जाते देखने के लिए उमड़ पड़ता था; उनके लिए ऊंचे-ऊंचे आसन बने होते थे; परन्तु उस दिन उनके अनुयायियों के सिवा कोई नहीं था! इसका क्या कारण हो सकता है?

उत्तर मिला, "हे प्रभु, परम बुद्ध तीन महीने से इस नगर के पास ही निवास कर रहे हैं और आज वे यहाँ से जा रहे हैं। उन्होंने अभी-अभी भोजन किया है और प्रवचन दे रहे हैं। सारा नगर उनके वचन सुनने के लिए वहाँ उपस्थित है।"

"अच्छा, हम भी जाकर उन्हें सुनेंगे," युवक ने कहा। फिर, गहनों से सजे-धजे, अपने अनुयायियों की भीड़ के साथ, वह भीड़ के किनारे जाकर खड़ा हो गया; जैसे ही उसने प्रवचन सुना, उसने अपने सभी पापों को त्याग दिया और परम ज्ञान और संतत्व को प्राप्त कर लिया।

गुरु ने भद्दिया के व्यापारी को संबोधित करते हुए कहा, "महोदय, आपका पुत्र, अपने पूरे वैभव के साथ, मेरे प्रवचन को सुनकर संत बन गया है; आज ही उसे या तो संन्यासी जीवन अपना लेना चाहिए या निर्वाण प्राप्त कर लेना चाहिए।"

"महोदय," उसने उत्तर दिया, "मैं नहीं चाहता कि मेरा पुत्र निर्वाण प्राप्त करे। उसे संन्यासी दीक्षा में प्रवेश दे दीजिए; ऐसा करने के बाद, कल उसे मेरे घर ले आइए।"

भगवान बुद्ध ने यह निमंत्रण स्वीकार किया; वे उस युवक को मठ ले गए, उसे भिक्षु संघ में शामिल किया, और बाद में शिष्यों के निम्न और उच्चतर पवित्र संघ में भी प्रवेश दिलाया। एक सप्ताह तक युवक के माता-पिता ने उसका उदारतापूर्वक आतिथ्य सत्कार किया।

सात दिन वहाँ रहने के बाद, गुरुजी उस युवक को साथ लेकर भिक्षायात्रा पर निकल पड़े और कोटि नामक गाँव पहुँचे। कोटि गाँव के लोगों ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को उदारतापूर्वक दान दिया। भोजन के बाद, गुरुजी ने धन्यवाद देना शुरू किया। इसी बीच, वह युवक गाँव से बाहर गया और गंगा के किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और समाधि में लीन हो गया, यह सोचकर कि गुरुजी के आते ही वह उठ जाएगा। जब सबसे वृद्ध भिक्षु उसके पास आए, तो वह नहीं उठा, लेकिन गुरुजी के आते ही वह उठ गया। जो लोग धर्म परिवर्तन नहीं कर रहे थे, वे क्रोधित हो गए क्योंकि उसने ऐसा व्यवहार किया जैसे वह कोई वृद्ध भिक्षु हो, और सबसे वृद्ध भिक्षुओं को आते देख भी नहीं उठा।

ग्रामीणों ने बेड़े बनाए। यह हो जाने पर, गुरु ने पूछा कि भद्दाजी कहाँ हैं। "वह रहे, महाराज।" "आइए, भद्दाजी, मेरे बेड़े पर आ जाइए।" बड़े भिक्षु उठे और उनके पीछे-पीछे उनके बेड़े पर चल दिए। जब वे नदी के बीच में पहुँचे, तो गुरु ने उनसे एक प्रश्न पूछा।

"भद्दाजी, जब महान पांडा राजा थे तब आप जिस महल में रहते थे वह कहाँ है?" उत्तर मिला, "यहाँ, पानी के नीचे।" जो शिष्य परिवर्तित नहीं हुए थे, उन्होंने आपस में कहा, "वरिष्ठ भिक्षु भद्दाजी तो संत होने का प्रमाण दे रहे हैं!" तब गुरु ने उनसे अपने साथी छात्रों के संदेह को दूर करने को कहा।

क्षण भर में, गुरुदेव ने अपने गुरु को प्रणाम करते हुए, अपनी रहस्यमयी शक्ति से प्रेरित होकर, महल के पूरे ढांचे को अपनी उंगली पर उठा लिया और महल को अपने साथ हवा में ऊपर उठा लिया (महल का क्षेत्रफल पच्चीस लीग (4.23 किमी) था); फिर उन्होंने उसमें एक छेद किया और नीचे महल में मौजूद लोगों को दर्शन दिए, और इमारत को पानी के ऊपर पहले एक लीग (4.23 किमी), फिर दो,

फिर तीन लीग उछाल दिया। फिर जो लोग पिछले जन्म में उनके परिवार का हिस्सा थे, जो महल से अत्यधिक प्रेम के कारण अब मछली, कछुए, जल-सांप या मेंढक बन गए थे और उसी स्थान पर पुनर्जीवित हुए थे, महल के ऊपर उठते ही उससे बाहर निकल आए और बार-बार पानी में गिरते रहे। गुरुदेव ने यह देखकर कहा, "भद्दाजी, आपके रिश्तेदार मुसीबत में हैं।" गुरुदेव की बात सुनकर गुरुदेव ने महल को छोड़ दिया और वह उसी स्थान पर डूब गया जहाँ वह पहले था।

गुरुदेव गंगा के उस पार चले गए। फिर नदी के किनारे उनके लिए एक आसन तैयार किया गया। बुद्ध के लिए तैयार किए गए आसन पर वे ऐसे बैठे जैसे उगता हुआ सूरज अपनी किरणें बिखेर रहा हो। तब भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वरिष्ठ भिक्षु भद्दाजी उस महल में कब रहते थे। गुरुदेव ने उत्तर दिया, "महा पांडा राजा के समय में," और फिर उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, विदेह राज्य के एक नगर मिथिला में सुरुचि नाम का एक राजा था। उसका एक पुत्र था, जिसका नाम भी सुरुचि था, और उसका एक और पुत्र था, जिसका नाम महान पांडा था। उन्होंने उस महल पर अधिकार प्राप्त किया। उन्होंने इसे पिछले जन्म में किए गए एक कर्म के फलस्वरूप प्राप्त किया था। एक पिता और पुत्र ने पच्चेकबुद्ध के रहने के लिए अंजीर के पेड़ की शाखाओं और बेंत से पत्तों की एक झोपड़ी बनाई थी।

शेष कहानी सुरुचि जन्म, खंड 14 में बताई जाएगी। (*2)

गुरु ने यह कहानी समाप्त करने के बाद, अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से निम्नलिखित छंद कहे:-

"यह महल राजा पनाड का था।"
एक हजार तीरों की दूरी जितनी ऊँचाई पर, चौड़ाई में सोलह।
हजारों तीरों की दूरी पर ऊँचाई पर, झंडों से सजे हुए;
सौ मंजिलें, सभी पन्ना हरे रंग की।
छह हजार संगीतकार इधर-उधर आते-जाते रहे।
उन्होंने सात कंपनियों में नृत्य किया।
जैसा कि भद्दाजी ने कहा है, बात यहाँ तक थी:
मैं, सक्का (इंद्र), आपका दास था, आपके हर आदेश का पालन करता था।
उस समय, जिन लोगों ने धर्म परिवर्तन नहीं किया था, उनका संदेह दूर हो गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "भद्दाजी महान पांडा थे, और मैं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) दिव्यावदना

(2)सं. 489.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खुरप्पा-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-265-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 265
खुरप्पा जातक

"कई बार प्रणाम करने पर," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई, जिसने अपनी सारी ऊर्जा खो दी थी। गुरु ने पूछा, क्या सच में उस भिक्षु ने अपनी ऊर्जा खो दी थी? उसने उत्तर दिया, हाँ। गुरु ने फिर पूछा, "मुक्ति (निर्वाण) की इस शिक्षा को

अपनाने के बाद तुम्हारी ऊर्जा क्यों कम हो गई? पुराने समय में तो ज्ञानी पुरुष उन कार्यों में भी ऊर्जावान रहते थे जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर नहीं ले जाते थे।" ऐसा कहकर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक वनपाल के परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने पाँच सौ वनपालों के एक दल का नेतृत्व संभाला और जंगल के प्रवेश द्वार पर स्थित एक गाँव में रहने लगे। वे लोगों को जंगल में रास्ता दिखाने का काम करते थे।

एक दिन बनारस का एक व्यक्ति, जो एक व्यापारी का पुत्र था, पाँच सौ गाड़ियों के काफिले के साथ उस गाँव में पहुँचा। उसने बोधिसत्व को बुलवाकर जंगल में मार्गदर्शक बनने के लिए एक हजार सिक्के देने की पेशकश की। बोधिसत्व मान गए और व्यापारी के हाथ से पैसे लेकर उन्होंने मन ही मन व्यापारी की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया। फिर उन्होंने व्यापारी को जंगल में मार्गदर्शन दिया।

जंगल के बीचोंबीच पाँच सौ डाकू उठ खड़े हुए। बाकी साथियों ने जैसे ही इन डाकुओं को देखा, वे पेट के बल रेंगने लगे। केवल मुख्य वनपाल ने चिल्लाते, उछलते और मारते हुए सभी पाँच सौ डाकुओं को भगा दिया और व्यापारी को सुरक्षित जंगल पार करा दिया। जंगल पार करने के बाद व्यापारी ने अपने काफिले का डेरा डाला; उसने मुख्य वनपाल को हर तरह का उत्तम मांस दिया और स्वयं उपवास तोड़कर उसके पास आराम से बैठ गया और उससे इस प्रकार बातें कीं: "बताइए," उसने कहा, "कि जब पाँच सौ डाकू, हाथों में हथियार लिए, चारों ओर फैले हुए थे, तब भी आपके मन में जरा भी डर क्यों नहीं आया?" और उसने पहला छंद कहा:

"जब कई धनुषों का तीर तेज गति से चलता है--"
कठोर लोहे की धारियों को पकड़े हुए हाथ पास ही थे--
जब मृत्यु ने अपने सारे भय को एकत्रित कर लिया था—
इतने भयानक माहौल में भी आपको घबराहट क्यों नहीं हुई?
यह सुनकर वनपाल ने निम्नलिखित दो छंद दोहराए:

"जब कई धनुषों का तीर तेज गति से चलता है--"
कठोर लोहे की धारियों को पकड़े हुए हाथ पास ही थे--
जब मृत्यु ने अपने सारे भय को एकत्रित कर लिया था—
मुझे उस दिन बहुत ही गहरा और जबरदस्त आनंद महसूस हुआ।
और इसी खुशी ने मुझे विजय दिलाई;
मैंने जरूरत पड़ने पर मरने का भी निश्चय कर लिया था;
उसे अपने जीवन से घृणा करनी चाहिए, जो इसे पूरा करना चाहेगा।
वीरतापूर्ण कार्य करो और आज भी हीरो बने रहो।"
इस प्रकार उसने अपने शब्दों को तीरों की बौछार की तरह बरसाया; और यह समझाते हुए कि उसने जीने की इच्छा से मुक्त होकर किस प्रकार वीरतापूर्ण कार्य किया, वह उस युवक व्यापारी से विदा होकर अपने गाँव लौट गया; जहाँ दान-पुण्य और भलाई करने के बाद वह अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए इस दुनिया से विदा हो गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर निराश भाई (भिक्षु) ने संतत्व प्राप्त किया: "उस समय मैं वनपालों का प्रमुख था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वातग्गा-सिंधव-जातक**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-266-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 266
वटग्ग-सिंधव-जातक

"जिसके लिए," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जमींदार के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में, हमें पता चलता है कि एक सुंदर स्त्री ने एक सुंदर पुरुष को देखा और उससे प्रेम करने लगी। उसके भीतर का प्रेम आग की तरह उसके शरीर को जला रहा था। उसने अपने शरीर और मन दोनों को खो दिया; उसे भोजन की कोई परवाह नहीं थी; वह केवल पलंग के किनारे को गले लगाकर लेटी रहती थी।

उसकी सहेलियों और नौकरानियों ने उससे पूछा कि उसे क्या बात परेशान कर रही है कि वह पलंग को गले लगाकर लेटी है; वे जानना चाहती थीं कि आखिर क्या बात है। शुरू में तो उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन जब उन्होंने उससे बार-बार पूछा तो उसने उन्हें सब कुछ बता दिया।

उन्होंने कहा, "चिंता मत करो, हम उसे तुम्हारे पास ले आएंगे।" फिर वे जाकर उस आदमी से बात करने लगे। पहले तो उसने मना कर दिया, लेकिन बार-बार कहने पर वह मान गया। उन्होंने उससे वादा लिया कि वह तय दिन पर तय समय पर आएगा और उन्होंने यह बात उस औरत को बता दी।

उसने अपना कमरा सजाया, सुंदर वस्त्र पहने और बिस्तर पर बैठकर उसके आने का इंतज़ार करने लगी। वह उसके बगल में बैठ गया। तभी उसके मन में एक विचार आया। "अगर मैं उसकी बातों को तुरंत मान लूँ और खुद को उसके सामने कमतर साबित कर दूँ, तो मेरा स्वाभिमान चूर-चूर हो जाएगा। उसके आते ही पहले दिन उसकी मर्ज़ी मान लेना ठीक नहीं होगा। मैं आज नखरे दिखाऊँगी, और बाद में मान जाऊँगी।" जैसे ही उसने उसे छुआ और उससे छेड़छाड़ शुरू की, उसने उसके हाथ पकड़ लिए और उसे सख्ती से कहा कि वह उसे नहीं चाहती, इसलिए चली जाए। वह गुस्से से पीछे हट गया और घर चला गया।

जब महिलाओं को पता चला कि उसने क्या किया है और वह आदमी चला गया है, तो उन्होंने उसे फटकारा। उन्होंने कहा, "देखो, तुम किसी से प्यार करती हो और खाना खाने से इनकार करते हुए लेटी रहती हो; उस आदमी को मनाने में हमें बहुत मुश्किल हुई, लेकिन आखिरकार हम उसे ले आए; और फिर तुम्हारे पास उससे कहने के लिए कुछ नहीं होगा!" उसने उन्हें वजह बताई, और वे चली गईं; उसे चेतावनी देते हुए कि उसके बारे में बातें फैलेंगी।

वह आदमी फिर कभी उसकी तरफ देखने तक नहीं आया। जब उसे पता चला कि वह उसे खो चुका है, तो उसने कुछ भी नहीं खाया और जल्द ही उसकी मृत्यु हो गई। जब उस आदमी को उसकी मृत्यु की खबर मिली, तो वह ढेर सारे फूल, सुगंध और इत्र लेकर जेतवन मठ गया, जहाँ उसने गुरु को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।

गुरु ने उससे पूछा, "हे शिष्य, ऐसा क्यों है कि तुम यहाँ कभी दिखाई नहीं देते?" उसने पूरी कहानी सुनाई और बताया कि वह शर्म के मारे इतने समय से बुद्ध की सेवा करने से बचता रहा। गुरु ने कहा, "हे शिष्य, इस बार उस स्त्री ने तुम्हें अपने आवेश में बुलाया, फिर तुमसे कोई वास्ता नहीं रखा और तुम्हें क्रोधित होकर वापस भेज दिया; ठीक वैसे ही पुराने समय में, स्त्री को किसी बुद्धिमान व्यक्ति से प्रेम हो जाता था, वह उन्हें बुलाती थी, और जब वे आते थे तो उनसे कोई वास्ता नहीं रखती थी, और इस प्रकार उन्हें सताती थी और उन्हें भटका देती थी।" फिर उसके अनुरोध पर गुरु ने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक सिंधी अश्व था, जिसे वे पवनप्रबल कहते थे; और वह राजा का विशेष अश्व था। अश्वपाल उसे गंगा में स्नान कराने ले जाया करते थे। वहीं एक गधी ने उसे देखा और उससे प्रेम करने लगी।

वह आवेश से कांप रही थी, न घास खा रही थी और न पानी पी रही थी; बल्कि कमजोर और दुबली होती जा रही थी, यहाँ तक कि वह सिर्फ हड्डियों का ढाँचा रह गई थी। तब उसके एक छोटे जानवर ने उसे कमजोर होते देख कहा, "माँ, तुम घास क्यों नहीं खा रही हो और पानी क्यों नहीं पी रही हो; और क्यों मुरझा रही हो और इधर-उधर कांपती पड़ी हो? क्या बात है?" उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन बार-बार पूछने पर उसने उसे सब कुछ बता दिया। तब उसके छोटे जानवर ने उसे दिलासा देते हुए कहा,

"माँ, चिंता मत करो; मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगा।"

जब स्विफ्ट-एज़-द-विंड नहाने के लिए नीचे गया, तो वह युवा जानवर उसके पास आकर बोला,

"हे प्रभु, मेरी माँ आपसे प्रेम करती है: वह खाना नहीं खाती और मृत्यु के कगार पर पहुँच गई है। उसे जीवनदान दीजिए!"

"अच्छा, मेरे बच्चे, मैं ले आऊंगा," घोड़े ने कहा। "जब मेरा स्नान हो जाएगा, तो रखवाले मुझे नदी किनारे थोड़ी देर व्यायाम करने के लिए छोड़ देंगे। क्या तुम अपनी माँ को भी वहाँ ले आओगे?"

इसलिए उस युवा जानवर ने अपनी माँ को बुलाया और उसे उस जगह पर छोड़ दिया; फिर वह खुद पास ही कहीं छिप गया।

दूल्हे ने स्विफ्ट-एज़-द-विंड को दौड़ने के लिए छोड़ दिया; उसने मादा गधे को देखा और उसके पास आया।

जब घोड़ा पास आकर उसे सूंघने लगा, तो गधे ने मन ही मन सोचा, "अगर मैं खुद को सस्ता बना लूं और आते ही उसे अपनी मनमानी करने दूं, तो मेरी इज्जत और स्वाभिमान मिट्टी में मिल जाएंगे। मुझे ऐसा दिखाना होगा जैसे मैं यह नहीं चाहती।" इसलिए उसने घोड़े के निचले जबड़े पर एक लात मारी और भाग गई। इससे उसका जबड़ा टूट गया और वह अधमरा हो गया। "मुझे इससे क्या लेना-देना?" स्विफ्ट-एज़-द-विंड ने सोचा; उसे शर्म महसूस हुई और वह भाग गया।

तब गधी को पश्चाताप हुआ और वह दुःख से वहीं लेट गई। उसका बेटा, जो एक छोटा जानवर था, उसके पास आया और उससे निम्नलिखित प्रश्न पूछा:

"जिसकी खातिर तुम दुबले-पतले और पीले पड़ गए,"
 और उसने एक निवाला भी नहीं खाया।
 वह प्रियतम तुम्हारे पास आया है;
 आप उड़ान क्यों भरते हैं?
अपने बेटे की आवाज सुनकर गधे ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

"अगर बिल्कुल शुरुआत में ही, जब मैं उसके साथ था
 वह बिना देरी किए खड़ा हो जाता है
 जब एक स्त्री झुक जाती है, तो उसका सारा अहंकार चूर-चूर हो जाता है:
 इसलिए मैं भाग गया।
इन्हीं शब्दों में उन्होंने अपने बेटे को स्त्री स्वभाव के बारे में समझाया।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से तीसरे श्लोक को दोहराया:

"यदि वह कुलीन परिवार में जन्मे किसी दूल्हे को अस्वीकार कर दे"
 कौन उसके साथ रहेगा?
 कुंडलि विंडस्विफ्ट के लिए शोक मना रही थी, उसे शोक मनाना ही होगा।
 कई लंबे दिनों के लिए।"
जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, इस भूस्वामी ने प्रथम मार्ग (समाधि) के फल में प्रवेश किया: "यह स्त्री गधी थी, और मैं हवा के समान तीव्र था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कक्कट-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-267-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 267
कक्कटा-जातक

"सोने के पंजे वाली प्राणी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक स्त्री के बारे में सुनाई थी।

हमें बताया जाता है कि श्रावस्ती नगर का एक जमींदार अपनी पत्नी के साथ कर्ज वसूलने के उद्देश्य से देश की यात्रा पर था, तभी वह लुटेरों के चंगुल में आ गया। पत्नी अत्यंत सुंदर और आकर्षक थी। लुटेरों का सरदार उस पर इतना मोहित हो गया कि उसने उसे पाने के लिए पति की हत्या करने का निश्चय किया। लेकिन पत्नी नेक और गुणी थी, एक समर्पित पत्नी थी। वह लुटेरे के चरणों में गिर पड़ी और रोते हुए बोली, "हे स्वामी, यदि आप मेरे प्रेम के कारण मेरे पति को मार डालेंगे, तो मैं विष खा लूंगी या अपनी सांस रोक लूंगी और स्वयं को भी मार डालूंगी! मैं आपके साथ नहीं जाऊंगी। मेरे पति को व्यर्थ में मत मारिए!" इस प्रकार उसने लुटेरे से विनती की।

वे दोनों श्रावस्ती नगर सुरक्षित लौट आए। फिर जेतवन मठ के पास से गुजरते हुए उनके मन में यह विचार आया कि वे वहाँ जाकर गुरु को प्रणाम करें। अतः वे सुगंधित कुटिया में गए और प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनसे पूछा कि वे कहाँ गए थे। उन्होंने उत्तर दिया, "अपना ऋण वसूलने।" गुरु ने आगे पूछा, "क्या आपकी यात्रा बिना किसी दुर्घटना के संपन्न हुई?" पति ने कहा, "रास्ते में हमें डाकुओं ने पकड़ लिया था और उनका सरदार मुझे मारना चाहता था; लेकिन मेरी पत्नी ने मेरी जान बचाई और मैं उसका ऋणी हूँ।" तब गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ, तुम अकेले नहीं हो जिसकी जान उसने बचाई है। अतीत में उसने अन्य ज्ञानी पुरुषों की भी जान बचाई है।" और फिर उनके अनुरोध पर गुरु ने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, हिमालय में एक विशाल झील थी, जिसमें एक बड़ा सुनहरा केकड़ा रहता था। उनके वहाँ रहने के कारण उस स्थान को केकड़ा झील के नाम से जाना जाता था। केकड़ा बहुत बड़ा था, खलिहान जितना गोल; वह हाथियों को पकड़कर मार डालता और खा जाता था; और उसके डर से हाथी वहाँ चरने की हिम्मत नहीं करते थे।

अब बोधिसत्व का गर्भाधान एक हाथी की मादा से हुआ, जो इस केकड़ा झील के पास ही रहने वाले हाथियों के झुंड का मुखिया था। प्रसव तक सुरक्षित रहने के लिए माँ ने एक पहाड़ पर दूसरी जगह ढूंढी और वहीं उसने एक पुत्र को जन्म दिया; जो समय आने पर ज्ञानवान हुआ, महान और शक्तिशाली बना, समृद्ध हुआ और वह काजल के बैंगनी पर्वत के समान था।

उसने अपने साथी के रूप में एक और हाथी चुना और उसने उस केकड़े को पकड़ने का निश्चय किया। इसलिए, अपने साथी और अपनी माँ के साथ, वह हाथियों के झुंड की तलाश में निकला और अपने पिता को पाकर, केकड़े को पकड़ने जाने का प्रस्ताव रखा।

"तुम ऐसा नहीं कर पाओगे, मेरे बेटे," उसने कहा।

लेकिन उसने पिता से बार-बार छुट्टी देने की विनती की, आखिरकार उन्होंने कहा, "ठीक है, तुम कोशिश कर सकते हो।"

तो उस युवा हाथी ने केकड़ा झील के किनारे सभी हाथियों को इकट्ठा किया और उन्हें झील के पास ले गया। "क्या केकड़ा उन्हें तब पकड़ लेता है जब वे नीचे जाते हैं, या जब वे भोजन कर रहे होते हैं, या जब वे फिर से ऊपर आते हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "जब जानवर फिर से प्रकट होंगे।"

"तो फिर," उसने कहा, "तुम सब झील पर जाओ और जो कुछ भी दिखे खा लो, और सबसे पहले वापस आ जाओ; मैं तुम्हारे पीछे सबसे आखिर में आऊँगा।" और उन्होंने वैसा ही किया। फिर केकड़े ने बोधिसत्व को सबसे आखिर में आते देख, उसके पैरों को अपने पंजे में कसकर पकड़ लिया, जैसे कोई लोहार लोहे के बड़े टुकड़े को चिमटे से पकड़ लेता है। बोधिसत्व की साथी ने उसे नहीं छोड़ा, बल्कि उसके पास ही खड़ी रही। बोधिसत्व ने केकड़े को खींचा, लेकिन उसे हिला नहीं सके। तब केकड़े ने खींचा और उसे अपनी ओर खींच लिया। यह देखकर हाथी डर के मारे ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ा; यह सुनकर बाकी सभी हाथी डर के मारे चिंघाड़ते और मल त्यागते हुए भाग गए। उसकी साथी भी खड़ी नहीं रह सकी, और भागने लगी। फिर उसे यह बताने के लिए कि उसे कैसे बंदी बनाया गया है, उसने पहला श्लोक बोला, इस उम्मीद में कि वह भाग न जाए:

"सुनहरे पंजों वाला (*1) प्राणी जिसकी आंखें उभरी हुई हैं,
झील में पला-बढ़ा, बाल रहित, हड्डीदार खोल से ढका हुआ,
उसने मुझे पकड़ लिया है! मेरी दर्द भरी चीखें सुनो!
दोस्त! मुझे छोड़कर मत जाओ—क्योंकि तुम मुझसे बहुत प्यार करते हो!
फिर उसके साथी ने मुड़कर उसे दिलासा देने के लिए दूसरी पंक्ति दोहराई:

"तुम्हें छोड़ दूं? कभी नहीं! मैं कभी नहीं जाऊंगी--"
हे महान पति, आपकी आयु साठ (x20) वर्ष है।

पृथ्वी के चारों कोने दिखाई दे सकते हैं
अतीत में आप जितने प्रिय रहे हैं, उतने प्रिय कोई और नहीं रहा।
इस तरह उसने उसे प्रोत्साहित किया; और तीसरे छंद में उसने केकड़े से कहा, "महोदय, अब मैं केकड़े से थोड़ी देर बात करूंगी ताकि वह आपको जाने दे।"

समुद्र में पाए जाने वाले सभी केकड़ों में से,
गंगा, या नर्मदा,
मुझे पता है, आप सर्वश्रेष्ठ और प्रमुख हैं:
मेरी बात सुनो—मेरे पति को जाने दो!
जब वह इस प्रकार बोल रही थी, तो केकड़े का मन उस स्त्री की आवाज़ से मोहित हो गया, और सारा भय भूलकर उसने अपने पंजे हाथी के पैर से खोल लिए, और उसे ज़रा भी आभास नहीं था कि आज़ाद होने पर वह क्या करेगा। तभी हाथी ने अपना पैर उठाया और केकड़े की पीठ पर चढ़ गया; और देखते ही देखते उसकी आँखें फटी रह गईं। हाथी ने खुशी से चिल्लाया। बाकी सभी हाथी दौड़े आए, केकड़े को घसीटकर ज़मीन पर रख दिया और उसे कुचलकर चूर-चूर कर दिया। उसके शरीर से टूटे हुए दोनों पंजे अलग-अलग पड़े थे। और यह केकड़ा झील, गंगा के पास होने के कारण, जब गंगा में बाढ़ आती थी, तो गंगा के पानी से भर जाती थी; जब पानी उतरता था तो वह झील से गंगा में बह जाता था। तब ये दोनों पंजे उठकर गंगा में बहने लगे। उनमें से एक समुद्र तक पहुँच गया, दूसरा दस राजभाईयों को पानी में खेलते समय मिला, और उन्होंने उसे लेकर अनाका नामक छोटा ढोल बनाया। टाइटनों ने समुद्र तक पहुँचने वाली वस्तु को पाया और उसे अलंबरा नामक ढोल का रूप दिया। बाद में, सक्का (इंद्र) से युद्ध में पराजित होने पर, वे भाग गए और उसे वहीं छोड़ गए। तब सक्का (इंद्र) ने उसे अपने उपयोग के लिए रख लिया; और इसी के बारे में कहा जाता है, "अलंबरा बादल जैसी गर्जना होती है!"

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पति और पत्नी दोनों ने 'प्रथम मार्ग का फल' (समाधि) प्राप्त किया: "उन दिनों, यह गृहस्थ बहन हथिनी थी, और मैं स्वयं उसका साथी था।"

फुटनोट:

(1) सिंगी का अर्थ या तो 'सींग वाला' या 'सोना' होता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अराम-दुष-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-268-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 268 (*1)
आराम-दुसा-जातक

"सबसे उत्तम," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने दक्षिणागिरि के निकट ग्रामीण इलाके में रहते हुए एक माली के बेटे के बारे में सुनाई थी।

वर्षा के बाद, गुरु बुद्ध जेतवन मठ छोड़कर दक्षिणागिरि के आसपास के क्षेत्र में भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। एक गृहस्थ ने बुद्ध और उनके साथियों को आमंत्रित किया और उन्हें अपने परिसर में बैठाकर चावल और रोटी खिलाई। फिर उन्होंने कहा, "यदि कोई संत इस परिसर का निरीक्षण करना चाहें, तो वे माली के साथ जा सकते हैं।" और उन्होंने माली को आदेश दिया कि वे उन्हें उनकी पसंद के फल उपलब्ध कराएं।

कुछ समय बाद वे एक बंजर जगह पर पहुँचे। उन्होंने पूछा, "यह जगह बंजर और वृक्षहीन क्यों है?" माली ने उत्तर दिया, "कारण यह है कि एक माली के बेटे को पौधों को पानी देना था, और उसने सोचा कि जड़ों की लंबाई के अनुपात में पानी देना बेहतर होगा; इसलिए उसने सभी पौधों को उखाड़कर देखा और उसी अनुपात में पानी दिया। परिणामस्वरूप वह जगह बंजर हो गई।"

भिक्षु लौट आए और उन्होंने यह बात अपने गुरु को बताई। गुरु ने कहा, "लड़के ने अभी-अभी एक बागान नष्ट नहीं किया है; उसने पहले भी ठीक ऐसा ही किया था;" और फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस पर विस्सेना नाम का एक राजा राज कर रहा था, तब एक छुट्टी की घोषणा की गई। उद्यान के रखवाले ने सोचा कि वह भी छुट्टी मनाने जाएगा; इसलिए उसने उद्यान में रहने वाले बंदरों को बुलाया और कहा:

"यह उद्यान आपके लिए एक बड़ा आशीर्वाद है। मैं एक सप्ताह की छुट्टी लेना चाहता हूँ। क्या आप सातवें दिन पौधों को पानी देंगे?" "जी हाँ," उन्होंने कहा; उन्होंने उन्हें पानी देने वाली मशकें दीं और चले गए।

बंदर पानी लेकर आए और जड़ों को पानी देने लगे।

सबसे बड़े बंदर ने चिल्लाकर कहा, "रुको! पानी हमेशा आसानी से नहीं मिलता। हमें इसे बचाकर इस्तेमाल करना चाहिए। चलो पौधों को उखाड़कर उनकी जड़ों की लंबाई देखते हैं; अगर उनकी जड़ें लंबी हैं, तो उन्हें खूब पानी चाहिए; लेकिन छोटी जड़ों को कम पानी चाहिए।" "सही कहा, सही कहा," वे सब सहमत हुए; फिर उनमें से कुछ ने पौधों को उखाड़ा; फिर दूसरों ने उन्हें वापस लगाया और पानी दिया।

उस समय बोधिसत्व बनारस में रहने वाले एक युवक थे। किसी कारणवश वे इस उद्यान में आए और उन्होंने देखा कि बंदर क्या कर रहे थे।

"तुम्हें ऐसा करने के लिए कौन मजबूर करता है?" उसने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, "हमारे मुखिया।"

"यदि मुखिया की बुद्धिमत्ता ऐसी है, तो तुम सब कैसे होगे!" उसने कहा; और इस बात को समझाने के लिए उसने पहला श्लोक सुनाया:

"इस टुकड़ी में सबसे अच्छी बात यह है:
वह कितना बुद्धिमान है!
अगर उन्हें सर्वश्रेष्ठ चुना जाता,
बाकी किस तरह के जीव हैं!
यह सुनकर बंदरों ने दूसरी पंक्ति में उत्तर दिया:

"ब्राह्मण, तुम नहीं जानते कि तुम क्या कह रहे हो।"
इस तरह से हमें दोषी ठहराना!
यदि हमें मूल का पता नहीं है,
हम यह कैसे बता सकते हैं कि कौन से पेड़ उगते हैं?
जिस पर बोधिसत्व ने तीसरे सूत्र से इस प्रकार उत्तर दिया:

"बंदरों, मुझे तुम पर कोई दोष नहीं है,"
न ही वे लोग जो जंगल में घूमते हैं।
सम्राट का ऐसा कहना मूर्खता है।
कृपया मेरे अनुपस्थित रहने के दौरान मेरे पेड़ों की देखभाल करना।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने जन्म का कारण बताया: "जिस लड़के ने उद्यान को नष्ट किया वह बंदरों का सरदार था, और मैं ज्ञानी व्यक्ति था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 46

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुजाता-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 269
सुजाता-जातक

"जो लोग प्रतिभाशाली हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो अनाथपिंडिका की बहू, महान व्यापारी धनंजय की पुत्री और विशाखा की सबसे छोटी बहन सुजाता के बारे में थी।

हमें बताया जाता है कि वह अपने महान परिवार के बारे में सोचकर अहंकार से भरी हुई अनाथपिंडिका के घर में दाखिल हुई और वह हठी, हिंसक, भावुक और क्रूर थी; उसने अपने नए माता-पिता या अपने पति के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने से इनकार कर दिया; और घर में सबके लिए कठोर शब्दों और मारपीट के साथ घूमती रही।

एक दिन, गुरु और पाँच सौ भिक्षु अनाथपिंडिका के घर आए और बैठ गए। महान व्यापारी भगवान बुद्ध के बगल में बैठकर उनका प्रवचन सुनने लगे। उसी समय सुजाता नौकरों को डांट रही थीं।

गुरुजी ने बोलना बंद कर दिया और पूछा कि यह कैसी आवाज़ है। व्यापारी ने बताया कि यह उसकी बदतमीज़ बहू की आवाज़ है; वह अपने पति और माता-पिता के प्रति उचित व्यवहार नहीं करती, दान नहीं देती, और उसमें कोई अच्छा गुण नहीं है; वह विश्वासहीन और नास्तिक है, और दिन-रात घर में ताने मारती फिरती रहती है। गुरुजी ने उसे भेजने का आदेश दिया।

वह स्त्री आई और गुरु को प्रणाम करने के बाद एक तरफ खड़ी हो गई। तब गुरु ने उससे इस प्रकार कहा:

"सुजाता, एक पुरुष सात प्रकार की पत्नियाँ रख सकता है; तुम किस प्रकार की हो?" उसने उत्तर दिया, "महोदय, आप बहुत संक्षिप्त में बोल रहे हैं, मुझे समझ नहीं आ रहा; कृपया समझाएँ।" "अच्छा," गुरु ने कहा, "ध्यान से सुनो," और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:

एक व्यक्ति न तो निर्दयी है और न ही दयालु।
वह अच्छी है; दूसरों से प्यार करती है, लेकिन अपने स्वामी से घृणा करती है।
अपने स्वामी की सारी संपत्ति नष्ट करते हुए,
इस पत्नी को विनाशक की उपाधि प्राप्त होती है।
"पति को उसके बदले में जो कुछ भी मिले,
या कुशल पेशा, या किसान का फावड़ा,
वह उसमें से थोड़ा-बहुत चुराने की कोशिश करती है।
ऐसी पत्नी के लिए चोर की उपाधि बिल्कुल उपयुक्त है।
कर्तव्य के प्रति लापरवाह, आलसी, भावुक
लालची, बदज़ुबान और क्रोध एवं घृणा से भरा हुआ,
वह अपने सभी अधीनस्थों के प्रति अत्याचारी थी।
ये सब कुछ हाई एंड माइटी शीर्षक के साथ आता है।
जो सदा भले लोगों पर दया करता है,
वह अपने पति की देखभाल एक माँ की तरह करती है।
वह अपने पति द्वारा अर्जित सभी संपत्ति की रक्षा करती है।
यह पत्नी मातृत्व की उपाधि प्राप्त करेगी।
जो स्त्री अपने पति का सम्मान करती है
छोटी बहनें बड़ों का आदर करती हैं।
विनम्र, अपने पति की इच्छा का पालन करने वाली,
बहन जैसी पत्नी का खिताब आज भी इस पत्नी के लिए इस्तेमाल होता है।
वह स्त्री जिसे उसके पति की दृष्टि सदा प्रसन्न करती है
जैसे कोई दोस्त लंबे समय बाद मिलता है,
उच्च नस्ल और सदाचारी, मुर्गी जीवन का त्याग करने वाली
वह इसे 'मिलनसार पत्नी' कहते हैं।
दुर्व्यवहार सहने पर शांत रहना, हिंसा से डरना,

कोई जुनून नहीं, बल्कि अटूट धैर्य।
सच्चे दिल वाली, अपने पति की इच्छा के आगे झुकने वाली,
आज भी उसे गुलाम की उपाधि से पुकारा जाता है।
"सुजाता, ये सात पत्नियाँ हैं जो एक पुरुष रख सकता है। इनमें से तीन, विनाशकारी पत्नी, बेईमान पत्नी और अहंकारी महिला, नरक में पुनर्जन्म लेती हैं; बाकी चार पाँचवें स्वर्ग में।"

"जो इस जीवन में विनाशक कहलाते हैं,
उच्च और शक्तिशाली, या फिर चोरी करने वाली पत्नी,
क्रोधित होना, दुष्ट होना, अनादर करना, जाना
शरीर से निकलकर नीचे नरक में।
"जो इस जीवन में मित्रवत कहलाते हैं,
मातृत्वपूर्ण, बहनत्वपूर्ण या दासी पत्नी
अपने सद्गुण और लंबे आत्म-नियंत्रण के कारण
जब उनके शरीर का अंत होता है, तो वे स्वर्ग में प्रवेश करते हैं।"
जब गुरु इन सात प्रकार की पत्नियों के बारे में बता रहे थे, तब सुजाता ने प्रथम मार्ग का फल (सम्मोहन) प्राप्त कर लिया; और जब गुरु ने उनसे पूछा कि वह किस श्रेणी में आती हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं दासी हूँ, श्रीमान!" और बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम करके उनसे क्षमा प्राप्त कर ली।

इस प्रकार एक ही उपदेश से गुरु ने उस गुस्सैल स्त्री को शांत कर दिया; और भोजन के बाद, जब उन्होंने भिक्षुओं के बीच उनके कर्तव्यों का वर्णन कर दिया, तो वे अपने सुगंधित कक्ष में प्रवेश कर गए।

अब सभी भाई सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और गुरु की स्तुति करने लगे। "मित्र, गुरु ने एक ही उपदेश से गुस्सैल स्त्री को वश में कर लिया और उसे प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि तक पहुँचा दिया!" गुरु प्रवेश कर गए और जब वे सब एक साथ बैठे थे, तो उन्होंने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि मैंने सुजाता को एक ही उपदेश से वश में किया है।" और फिर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर शासन कर रहे थे, तब उनकी रानी पत्नी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की और अपने पिता की मृत्यु के बाद राजा बनकर धर्मपरायणता से शासन किया।

उसकी माँ एक गुस्सैल, क्रूर, कठोर, चिड़चिड़ी और बदज़ुबान महिला थी। बेटा अपनी माँ को समझाना चाहता था, लेकिन उसे लगा कि उसे कुछ भी अपमानजनक नहीं करना चाहिए; इसलिए वह इशारे करने का मौका ढूंढता रहा।

एक दिन वह नीचे मैदान में गया, और उसकी माँ उसके साथ गई। सड़क पर एक नीलकंठ चिड़िया चीखी। यह सुनकर सभी दरबारी अपने कान बंद करके रोने लगे--

"कितनी कर्कश आवाज है, कितनी चीख है!—ऐसी आवाज मत करो!"

जब बोधिसत्व अपनी माता और कुछ संगीतकारों के साथ उद्यान में टहल रहे थे, तभी साल (*1) के पेड़ की घनी पत्तियों के बीच बैठी एक कोयल ने मधुर स्वर में गाना शुरू किया। वहाँ खड़े सभी लोग उसकी आवाज़ से प्रसन्न हो गए; हाथ जोड़कर और फैलाकर उन्होंने विनती की, "ओह, कितनी कोमल आवाज़ है, कितनी प्यारी आवाज़ है, कितनी मधुर आवाज़ है! गाती रहो, प्यारी चिड़िया, गाती रहो!" और वे सब गर्दनें फैलाकर उत्सुकता से सुनने लगे।

इन दो बातों को ध्यान में रखते हुए, बोधिसत्व ने सोचा कि महारानी को संकेत देने का यही एक अवसर है। उन्होंने कहा, "माँ, जब सड़क पर नीलकंठ पक्षी की आवाज़ सुनाई दी, तो सबने अपने कान बंद कर लिए और पुकार कर कहा—यह शोर मत करो! यह शोर मत करो! और अपने कान बंद कर लिए: क्योंकि कर्कश आवाज़ें किसी को पसंद नहीं आतीं।" और उन्होंने निम्नलिखित श्लोक दोहराए:

"जिन लोगों को सुंदर रंग का वरदान प्राप्त है,
हालांकि देखने में बहुत ही सुंदर और मनमोहक है,
लेकिन अगर उनकी आवाज सुनने में बहुत कर्कश हो

न तो इस दुनिया में और न ही अगली दुनिया में कोई प्रिय है।
"एक पक्षी ऐसा है जिसे आप अक्सर देख सकते हैं;
भले ही वह बदसूरत, काला और धब्बेदार हो,
फिर भी उसकी मधुर आवाज कानों को सुहावनी लगती है:
कितने जीव कोयल को प्रिय मानते हैं!
इसलिए तुम्हारी आवाज कोमल और मधुर होनी चाहिए।
बुद्धिमानी से बोलना, अहंकार से भरा हुआ नहीं।
और ऐसी आवाज—कितनी मधुर है!
पवित्र ग्रंथ (*2) के अर्थ की व्याख्या करता है।"

जब बोधिसत्व ने इन तीन श्लोकों से अपनी माता को उपदेश दिया, तो उन्होंने उन्हें अपने विचारों की ओर आकर्षित कर लिया; और उसके बाद से गलत राह पर चलने वाले ने सही राह अपना ली। और एक ही शब्द से अपनी माता को त्यागी स्त्री बनाकर, वे अपने कर्मों के फल के अनुसार फल भोगने के लिए परलोक चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने इस प्रकार जन्म का वर्णन किया: "सुजाता बनारस के राजा की माता थीं, और मैं स्वयं राजा था।"

फुटनोट:

(1)शोरिया रोबस्टा.

(2)धम्मपद, खंड 363.

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-270-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 270
उलुका-जातक

"उल्लू राजा है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें कौवे और उल्लू के बीच झगड़े का वर्णन है।

उस समय, कौवे दिन में उल्लुओं को खाते थे और रात में उल्लू उड़ते हुए सोते हुए कौवों के सिर नोचकर उन्हें मार डालते थे। जेतवन मठ के बाहरी इलाके में एक कुटिया में एक भिक्षु रहते थे। जब सफाई का समय आता था, तो पेड़ से गिरे हुए कौवों के इतने सिर होते थे कि उन्हें फेंकना पड़ता था, इतने कि सात-आठ कुटियाएँ भर जाती थीं। उन्होंने यह बात भिक्षुओं को बताई। भिक्षु सभा में भिक्षु इस बारे में बातें करने लगे। “मित्र, फलां भिक्षु को तो अपने घर में प्रतिदिन इतने सारे कौवों के सिर फेंकने पड़ते हैं!” गुरुजी अंदर आए और बैठे-बैठे उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। फिर उन्होंने पूछा कि कौवों और उल्लुओं के बीच झगड़ा कब से नहीं हुआ है। गुरुजी ने उत्तर दिया, “संसार के पहले युग से ही;” और फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, संसार के पहले चक्र में रहने वाले लोग एकत्रित हुए और उन्होंने एक सुंदर, शुभ, शक्तिशाली और सर्वगुण संपन्न पुरुष को अपना राजा चुना। चौपाये भी एकत्रित हुए और उन्होंने सिंह को अपना राजा चुना; और समुद्र की मछलियों ने आनंद नामक मछली को अपना राजा चुना। फिर हिमालय के सभी पक्षी एक समतल चट्टान पर एकत्रित हुए और चिल्लाने लगे,

"मनुष्यों में राजा होता है, जानवरों में भी, और मछलियों में भी; लेकिन हम पक्षियों में कोई राजा नहीं है। हमें अराजकता में नहीं रहना चाहिए; हमें भी एक राजा चुनना चाहिए। किसी ऐसे व्यक्ति का चुनाव करो जो राजा के पद के लिए उपयुक्त हो!"

उन्होंने ऐसे पक्षी की तलाश की और उल्लू को चुना; उन्होंने कहा, "यही वह पक्षी है जो हमें पसंद है।" और एक पक्षी ने तीन बार सबको बताया कि इस मामले पर मतदान होगा। इस घोषणा को दो बार धैर्यपूर्वक सुनने के बाद, तीसरी बार एक कौआ उठा और चिल्लाया,

"बस यहीं रुको! अगर राजा नियुक्त होते समय उसका चेहरा ऐसा है, तो क्रोधित होने पर कैसा होगा? अगर वह केवल क्रोध से ही हमारी ओर देखेगा, तो हम गर्म तवे पर बिखरे तिल की तरह बिखर जाएँगे। मैं इस आदमी को राजा नहीं बनाना चाहता!" और यह समझाते हुए उसने पहला श्लोक कहा:-

"तुम कहते हो कि उल्लू सभी पक्षियों का राजा है:
आपकी अनुमति से, क्या मैं अपने विचार व्यक्त कर सकता हूँ?
पक्षियों ने दूसरी बात दोहराई और उन्हें बोलने की अनुमति दी:-

"आपको हमारी अनुमति है, महोदय, इसलिए यह उचित और सही होगा।"
क्योंकि दूसरे पक्षी जवान, बुद्धिमान और प्रतिभाशाली हैं।"
इस प्रकार अनुमति मिलने पर, उन्होंने तीसरी बात दोहराई:-

"मुझे यह पसंद नहीं है (यहाँ तक कि मैं सम्मानपूर्वक कहना चाहता हूँ)"
उल्लू को हमारे मुखिया के रूप में अभिषेक करना।
उसके चेहरे को देखो! अगर यह अच्छा हास्य है,
जब वह गुस्से से देखेगा तो क्या करेगा?
फिर वह हवा में उड़ गया और कांव-कांव करते हुए बोला, "मुझे यह पसंद नहीं! मुझे यह पसंद नहीं!" उल्लू उठा और उसका पीछा करने लगा। तब से उन दोनों के बीच शत्रुता पनप गई। और पक्षियों ने एक सुनहरे हंस को अपना राजा चुना और तितर-बितर हो गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय, राजा के रूप में चुना गया जंगली हंस मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उदपान-दुष्का-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-271-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 271
उदपना-दुसाका-जातक

"इस कुएं में एक वनवासी साधु रहता था," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने इसिपताना में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक सियार ने एक कुएं को गंदा कर दिया था।

हमें पता चला है कि एक सियार उस कुएँ को गंदा कर देता था जहाँ भिक्षु पानी भरते थे, और फिर भाग जाता था। एक दिन नौसिखियों ने उस पर मिट्टी के ढेले फेंके और उसे परेशान कर दिया। उसके बाद वह फिर कभी उस जगह पर नहीं आया।

यह सुनकर सभी भाई-बंधु सत्य के हॉल में इस पर चर्चा करने लगे। "मित्र, वह सियार जो हमारे कुएँ को गंदा करता था, जब से नौसिखियों ने उसे मिट्टी के ढेलों से भगाया है, तब से वह कुएँ के पास नहीं आया है!" गुरुजी अंदर आए और जब वे सब एक साथ बैठे थे, तो उन्होंने पूछा कि वे अब किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। तब गुरुजी ने उत्तर दिया, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस सियार ने कुएँ को गंदा किया है। उसने पहले भी ऐसा ही किया था;" और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के पास इसिपताना नामक स्थान पर एक कुआँ था। उसी समय बोधिसत्व का जन्म एक अच्छे परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने संन्यासी जीवन अपना लिया और अपने अनुयायियों के साथ इसिपताना में रहने लगे। जैसा कि वर्णन किया गया है, एक सियार ने कुएँ को गंदा कर दिया और भाग गया। एक दिन, संन्यासियों ने उसे घेर लिया और किसी तरह उसे पकड़कर बोधिसत्व के सामने ले आए। उन्होंने सियार को पहले श्लोक की पंक्तियों में संबोधित किया:

"यह कुआँ एक वनवासी संन्यासी ने बनाया है।"
जो लंबे समय से जंगल में एकांतवासी के रूप में रहता आया है।
और अपनी सारी परेशानियों और मेहनत के बाद
मेरे दोस्त, तुमने कुएं को खराब करने की कोशिश क्यों की?
यह सुनकर सियार ने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

"यह सियार जाति का सर्वमान्य नियम है।"
किसी स्थान पर शराब पीने के बाद गंदगी फैलाना:
मेरे पिता और दादाजी हमेशा ऐसा ही करते थे;
इसलिए आपके दोषारोपण का कोई उचित कारण नहीं है।"
तब बोधिसत्व ने तीसरे कथन से उत्तर दिया:

"अगर सियार की दुनिया में यही 'कानून' है तो..."
मुझे आश्चर्य है कि उनकी 'अराजकता' किस हद तक हो सकती है!
मुझे उम्मीद है कि मैंने तुम्हें आखिरी बार देखा है।
आपके सभी कार्य, चाहे वे वैध हों या अवैध।
तब उस महान सत्ता ने उसे चेतावनी दी और कहा, "फिर कभी वहाँ मत जाना।" उसके बाद से उसने कभी उस ओर देखा तक नहीं।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का कारण बताया: "कुएँ को गंदा करने वाला सियार दोनों ही मामलों में एक ही है; और मैं तपस्वियों के समूह का मुखिया था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **व्याघ्-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-272-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 272
व्याग्घ-जातक

"निकटता का समय क्या है," इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोकालिका (*1) के बारे में सुनाई थी। इस कथा की परिस्थितियाँ तेरहवें ग्रंथ और तक्करिया-जातक (*2) में दी जाएँगी। यहाँ फिर कोकालिका ने कहा, "मैं सारिपुत्र और मोग्गल्याण को अपने साथ ले जाऊँगा।" अतः कोकालिका के देश से निकलकर वे जेतवन मठ गए, गुरु को प्रणाम किया और फिर अन्य गुरुओं के पास गए। उन्होंने कहा, "मित्रों, कोकालिका के देश के लोग आपको बुला रहे हैं। चलिए वहाँ चलें!!" उत्तर मिला, "आप स्वयं जाइए, मित्र, हम नहीं जाएँगे।" इस इनकार के बाद वे स्वयं चले गए।

भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा शुरू की। "मित्र! कोकालिका न तो सारिपुत्र और मोग्गल्याण के साथ रह सकता है, न उनके बिना! वह न तो उनके कमरे में रह सकता है और न ही उनकी संगति में!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे सब किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "पुराने समय में भी, ठीक आज की तरह, कोकालिका न तो सारिपुत्र और मोग्गल्याण के साथ रह सकता था, न उनके बिना।" और उन्होंने एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब एक बोधिसत्व वन में वृक्ष-आत्मा के रूप में निवास करते थे। उनके निवास से कुछ ही दूरी पर एक अन्य वृक्ष-आत्मा, वन के एक महान सम्राट के रूप में निवास करती थी। उसी वन में एक शेर और एक बाघ रहते थे। उनके भय से कोई भी भूमि जोतने या वृक्ष काटने का साहस नहीं करता था, यहाँ तक कि कोई भी वृक्ष की ओर देखने के लिए भी नहीं रुकता था। शेर और बाघ सभी प्रकार के प्राणियों को मारकर खा जाते थे; और खाने के बाद जो कुछ बचता था, उसे वे वहीं छोड़ देते थे और चले जाते थे, जिससे वन दुर्गंध से भर गया था।

दूसरा प्रेत, जो मूर्ख था और न तो तर्क जानता था और न ही अतर्क, एक दिन बोधिसत्व से इस प्रकार बोला: "हे मित्र, इस शेर और बाघ के कारण जंगल में दुर्गंध फैली हुई है। मैं इन्हें भगा दूंगा।"

उन्होंने कहा, “मेरे प्रिय मित्र, ये दो ही प्राणी हमारे घरों की रक्षा करते हैं। एक बार इन्हें भगा दिया गया, तो हमारे घर उजाड़ हो जाएँगे। यदि मनुष्य शेर और बाघ के पदचिह्नों को नहीं देखेंगे, तो वे सारा जंगल काट डालेंगे, उसे एक खुला मैदान बना देंगे और उस पर खेती करने लगेंगे। कृपया ऐसा मत करो!” और फिर उन्होंने पहले दो छंद कहे:

किसी घनिष्ठ मित्र की निकटता का क्या समय होता है?
 यह आपकी शांति को भंग करने की धमकी देता है।
यदि आप बुद्धिमान हैं, तो अपनी सर्वोच्चता की रक्षा करें।
 जैसे तुम्हारी आंखों का तारा।
लेकिन जब आपकी जिगरी दोस्त और भी ज्यादा बढ़ जाती है
 आपकी शांति का पैमाना,
अपने दोस्त के जीवन में हर चीज को सही ढंग से शामिल होने दें।
 ये आपके लिए उतने ही प्यारे होंगे जितने आपके अपने।

जब बोधिसत्व ने इस प्रकार मामला समझाया, तब भी मूर्ख परी ने इसे गंभीरता से नहीं लिया, बल्कि एक दिन उसने भयानक रूप धारण कर लिया और शेर और बाघ को भगा दिया। लोगों ने उनके पदचिह्न न देखकर अनुमान लगाया कि शेर और बाघ किसी दूसरे जंगल में गए होंगे और उस जंगल के एक हिस्से को काट डाला होगा। तब परी बोधिसत्व के पास आई और उनसे बोली,

"हे मित्र, मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी, बल्कि उन जीवों को भगा दिया; और अब मनुष्यों को पता चल गया है कि वे चले गए हैं, और वे जंगल काट रहे हैं! अब क्या किया जाए?" उत्तर मिला कि वे फलाँ जंगल में रहने चले गए हैं; परी को जाकर उन्हें वापस लाना होगा। परी ने ऐसा ही किया; और उनके सामने खड़े होकर, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, तीसरे श्लोक को दोहराया:

"वापस आओ, हे बाघों! जंगल में फिर से।"
और इसे मैदान के बराबर न होने दिया जाए;
क्योंकि तुम्हारे बिना, कुल्हाड़ी इसे नष्ट कर देगी;
इसके बिना तुम सदा के लिए तपस्वी बन जाओगे।

उन्होंने यह अनुरोध ठुकरा दिया और कहा, "चले जाओ! हम नहीं आएंगे।" परी अकेले ही जंगल लौट गई। और कुछ ही दिनों बाद उन आदमियों ने सारी लकड़ियाँ काट डालीं, खेत बनाए और उनमें खेती शुरू कर दी।

जब बुद्ध ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "कोकालिका मूर्ख परी थी, सारिपुत्र सिंह थे, मोग्गल्याना बाघ थे, और बुद्धिमान परी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) कोकालिका बुद्ध के विरोधी देवदत्त की अनुयायी थी।

(2)सं. 481.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कच्छप-जातक3**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-273-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 273
कच्छपा-जातक3

“तुम भीख क्यों मांग रहे हो,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में अपने प्रवास के दौरान सुनाई थी, जिसमें बताया गया था कि कोसल (*1) में राजा के दरबार के दो उच्च अधिकारियों के बीच हुए झगड़े का समाधान कैसे हुआ। इन घटनाओं का वर्णन द्वितीय पुस्तक में किया गया है।

एक समय ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे। बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य में एक पुरोहित परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे अध्ययन के लिए तक्षशिला नगर आए। अध्ययन पूर्ण करने के बाद, अपनी इंद्रियों को वश में रखते हुए, वे हिमालय क्षेत्र में गंगा नदी के किनारे वृक्षों की शाखाओं से बनी एक कुटिया में एकांतवास में रहने लगे। ध्यान के अभ्यास से वे समाधि की अवस्थाओं का आनंद लेते थे। इस प्रकार वे शांति, एकाग्रमरण और धैर्य से निवास करते थे।

वे लंबे समय तक शांति से ध्यान में बैठे रहते थे। एक शरारती बंदर उस स्थान पर आता था और अपनी हरकतों से बोधिसत्व के कान में (अनजाने में) अपना वीर्य गिराकर उपद्रव करता था, लेकिन बोधिसत्व कभी भी अपनी मन की शांति नहीं खोते थे और अविचलित रहते थे। एक कछुआ वहाँ पानी से बाहर आता था और धूप सेंकने के लिए मुँह खोलकर सोता था। एक बार उस उद्दंड बंदर ने आनंद के लिए अपना जननांग कछुए के मुँह में डालने की कोशिश की। लेकिन तब कछुए ने अपना मुंह बंद कर लिया और उसे कसकर पकड़ लिया। दर्द से कराहते हुए बंदर ने कछुए को अपने हाथों से जकड़ लिया। बंदर को इतना दर्द हो रहा था कि उसे लगा जैसे उसका जननांग दो टुकड़ों में कट जाएगा। बंदर ने दर्द से मुक्ति पाने के लिए कछुए से उसे छोड़ने की विनती की, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। बंदर ने कछुए के खोल को भिक्षापात्र की तरह पकड़ रखा था।

जब बोधिसत्व वहां पहुंचे, तो बंदर ने उनसे मदद मांगी।

बोधिसत्व ने पूछा:

अब भीख क्यों मांग रहे हो?

बंदर ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मैं अपना मनोरंजन करना चाहता था, लेकिन यह गलत था, मैंने अपने पागलपन में यह सब किया, कृपया मुझे बचा लें।"

तब बोधिसत्व ने उनसे कहा:

"ओह, बंदर, कछुए की प्रजाति अलग होती है;"
कछुए को कछुए के साथ संभोग करना चाहिए।
और बंदरों का संभोग केवल बंदरों से ही हो।
यही प्रकृति का उचित तरीका है।
हानि से बचने के लिए धर्म का अनुसरण करो।
ये शब्द सुनकर कछुआ प्रसन्न हो गया। कछुए ने बंदर को छोड़ दिया और बंदर ने कछुए को छोड़ दिया और दोनों अपने-अपने रास्ते चले गए। उसके बाद बंदर ने कभी किसी को परेशान नहीं किया। बाद में बोधिसत्व, जिन्होंने अपना जीवन एक तपस्वी के रूप में व्यतीत किया, अंत में परलोक चले गए और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के लोक में जन्म लिया।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "दो उच्च अधिकारी बंदर और कछुआ थे, और मैं संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 154, 165 की तुलना करें।

(2) कछुआ भीख मांगने वाले कटोरे जैसा दिखता था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लोल-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-274-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 274
लोला-जातक

“यह गुच्छेदार सारस कौन है?” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। उसे भी सभा-महल में लाया गया, जहाँ गुरु ने कहा — “यह केवल अब ही लालची नहीं है; यह पहले भी लालची था, और इसी लालच के कारण इसने अपनी जान गंवाई; और इसी के कारण प्राचीन काल के बुद्धिमान लोग बेघर हो गए थे।” फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उस नगर के एक धनी व्यापारी के रसोइए ने पुण्य कमाने के लिए रसोई में एक टोकरी टांग दी। उस समय बोधिसत्व एक कबूतर थे; और वे आकर उसमें रहने लगे।

रसोई के ऊपर से उड़ता हुआ एक लालची कौआ वहाँ रखी तरह-तरह की मछलियों को देखकर आकर्षित हो गया। उसे उन्हें खाने की तीव्र इच्छा हुई। उसने सोचा, "मैं इन्हें कैसे पाऊँगा?" तभी उसकी नज़र बोधिसत्व पर पड़ी। उसने सोचा, "मुझे मिल गया! मैं इस प्राणी को अपना मोहरा बना लूँगा।" और इस तरह उसने अपना संकल्प पूरा किया।

जब कबूतर अपने दिन का भोजन खोजने निकला, तो उसके पीछे-पीछे कौआ भी आ रहा था।

"मुझसे क्या चाहते हो, श्रीमान कौआ?" कबूतर ने कहा। "तुम और मैं एक जैसे नहीं खाते।"

"आह, लेकिन मुझे तुम पसंद हो," कौआ कहता है। "मुझे तुम्हारा विनम्र सेवक बनने दो, और तुम्हारे साथ भोजन करने दो।"

कबूतर मान गया। लेकिन जब वे साथ में खाना खाने गए, तो कौआ सिर्फ खाने का नाटक करता; थोड़ी देर में ही सही, वह वापस मुड़ जाता, गोबर के किसी ढेर को चोंच मारकर टुकड़े-टुकड़े कर देता और एक-दो कीड़े खा लेता। पेट भर जाने पर वह उड़ जाता—"अरे, श्रीमान कबूतर! खाना खाने का समय निकालने का क्या तरीका है! तुम्हें कभी पता नहीं चलता कि हद कहाँ तक है। चलो, इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, वापस चलते हैं।" और वे चले गए। जब वे वापस मिले, तो रसोइए ने देखा कि उनका कबूतर एक दोस्त को साथ लाया है, तो उसने एक और टोकरी टांग दी।

इस तरह चार-पाँच दिन तक चलता रहा। फिर धनी व्यक्ति के रसोईघर में मछलियों का ढेर लग गया। कौआ उन्हें पाने के लिए कितना तरस रहा था! वह सुबह से ही वहाँ पड़ा कराह रहा था और ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें निकाल रहा था। सुबह कबूतर ने कौए से कहा:

"चलो, दोस्त, नाश्ता करो!"

"तुम जा सकते हो," उसने कहा, "मुझे बदहजमी का दौरा पड़ गया है!"

"बदहजमी से पीड़ित कौआ? बकवास!" कबूतर बोला। "तुम्हारे पेट में दीपक की बाती भी मुश्किल से टिकती है; और बाकी सब तो खाते ही थोड़ी देर में पच जाता है। अब मेरी बात मानो। एक छोटी मछली को देखकर इस तरह का व्यवहार मत करो!"

"अरे, महोदय, आप क्या कह रहे हैं? मैं आपको बता रहा हूँ, मुझे अंदर बहुत दर्द हो रहा है!"

"ठीक है, ठीक है," कबूतर बोला; "बस ध्यान रखना।" और वह उड़ गया।

रसोइए ने सारे व्यंजन तैयार कर लिए और फिर रसोई के दरवाजे पर खड़े होकर अपने पसीने को पोंछने लगा। "अब मेरी बारी है!" कौए ने सोचा और एक स्वादिष्ट भोजन से भरी थाली पर झपटा। क्लिक! रसोइए ने आवाज़ सुनी और पीछे मुड़कर देखा। आह! पलक झपकते ही उसने कौए को पकड़ लिया और उसके सिर के ऊपर के एक गुच्छे को छोड़कर उसके सारे पंख नोच लिए; फिर उसने अदरक और दालचीनी को पीसकर छाछ में मिलाया और पक्षी के पूरे शरीर पर अच्छी तरह मल दिया। "यह मेरे मालिक का खाना खराब करने और मुझे उसे फेंकने पर मजबूर करने का बदला है!" उसने कहा और उसे टोकरी में फेंक दिया। ओह, कितना दर्द हुआ!

कुछ समय बाद, कबूतर शिकार से लौट आया। सबसे पहले उसने हमारे कौए को देखा, जो खूब शोर मचा रहा था। उसने उसका खूब मज़ाक उड़ाया! फिर वह कविता की तरह बोलने लगा:-

"यह गुच्छेदार सारस (*1) कौन है जिसे मैं देख रहा हूँ?"
जहां उसे रहने का कोई अधिकार नहीं है?
बाहर आओ! मेरा दोस्त कौआ पास ही है।
मुझे डर है कि कौन तुम्हें नुकसान पहुंचाएगा!
इस पर कौवे ने एक और छंद में उत्तर दिया:-

मैं कोई गुच्छेदार सारस नहीं हूँ—नहीं, नहीं!
एक लालची कौवे के अलावा और कुछ नहीं।
मैं वैसा नहीं करूंगा जैसा मुझे कहा गया था
तो जैसा कि आप देख सकते हैं, मुझे चुन लिया गया है।
और कबूतर ने तीसरी बात कहकर जवाब दिया:-

मुझे पता है, तुम्हें फिर दुख सहना पड़ेगा--
ऐसा करना आपकी प्रकृति है।
अगर लोग मांस का कोई व्यंजन बनाते हैं,
यह छोटी चिड़ियों के लिए नहीं है।
फिर कबूतर यह कहते हुए उड़ गया—"मैं इस प्राणी के साथ नहीं रह सकता।" और कौआ वहीं कराहता रहा जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर लालची भाई (भिक्षु) ने तीसरे मार्ग (समाधि) का फल प्राप्त किया: "उन दिनों लालची भाई लालची कौआ था; और मैं कबूतर था।"

फुटनोट:

(1) "जिसका दादा बादल है (शाब्दिक अर्थ: तेज चलने वाला)" जोड़ा गया है। अंधविश्वास:- सारस गरज की आवाज से गर्भ धारण करते हैं। इसलिए गरज को उनका पिता और गरजने वाले बादल को उनका दादा कहा जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अनाम-जातक2**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-275-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 275

“यह सुंदर सारस कौन है?” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। ये दोनों कहानियाँ बिल्कुल एक जैसी हैं। और ये हैं वो श्लोक:-

"यह खूबसूरत सारस कौन है, और क्यों?"
क्या वो मेरे कौवे की टोकरी में लेटा है?
एक गुस्सैल पक्षी, मेरा दोस्त कौआ!
आपको बता दूं, यह उसका घोंसला है!
"क्या तुम मुझे नहीं जानते, मेरे मित्र?"
हम सब मिलकर खाना खिलाते थे!
मैं वैसा नहीं करूंगा जैसा मुझे कहा गया था।
तो अब मुझे निकाल लिया गया है, जैसा कि आप देख सकते हैं।
मुझे पता है, तुम्हें फिर दुख सहना पड़ेगा--
ऐसा करना आपकी प्रकृति है।
जब लोग मांस का व्यंजन बनाते हैं
यह छोटे पक्षियों के खाने के लिए नहीं है।
पहले की तरह ही, बोधिसत्व ने कहा—"मैं अब यहाँ और नहीं रह सकता," और कहीं उड़ गए।

जब यह प्रवचन समाप्त हुआ, तो गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, लालची भाई (भिक्षु) ने तीसरे मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया: "लालची भाई कौआ था, और मैं कबूतर था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुरुधम्म-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-276-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 276
कुरुधम्म-जातक

"अपने धर्म को जानना," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु ने जंगली हंस को मार डाला था। श्रावस्ती शहर से आए दो घनिष्ठ मित्र भिक्षुओं ने दीक्षा लेकर संन्यासी जीवन अपना लिया था और वे अक्सर साथ-साथ घूमते थे। एक दिन वे अचिरवती नदी पर पहुँचे। स्नान करने के बाद वे रेत पर खड़े होकर धूप सेंक रहे थे और आपस में सुखद बातें कर रहे थे। तभी दो जंगली हंस उनके सिर के ऊपर से उड़ गए। उनमें से एक ने पत्थर उठाया। उसने कहा, "मैं इस हंस की आँख में मारूंगा!" दूसरे ने कहा, "तुम नहीं मार सकते।" पहले ने कहा, "हाँ, मैं मार सकता हूँ, और इतना ही नहीं - मैं अपनी इच्छा अनुसार इस आँख या उस आँख में मार सकता हूँ।" दूसरे ने कहा, "तुम नहीं!" पहले ने कहा, "तो देखो!" और एक तिकोना पत्थर उठाकर उसने हंस पर फेंक दिया। कंकड़ की सरसराहट सुनकर पक्षी ने अपना सिर घुमाया। तभी दूसरे पक्षी ने एक गोल कंकड़ उठाया और उसे इस तरह फेंका कि वह पास वाली आंख पर लगा और दूसरी आंख से निकल गया। हंस जोर से चिल्लाते हुए बार-बार पलटा और उनके पैरों के पास गिर पड़ा।

वहाँ खड़े भिक्षुओं ने जो कुछ हुआ देखा, वे दौड़कर आए और उसे फटकारने लगे। उन्होंने कहा, “कितनी शर्म की बात है कि तुमने, जिसने हमारे जैसे महान उपदेश को अपनाया है, किसी जीवित प्राणी का प्राण ले लिया!” वे उसे अपने साथ तथागत (बुद्ध) के समक्ष ले गए। गुरु ने पूछा, “क्या वे जो कह रहे हैं वह सच है? क्या तुमने सचमुच किसी जीवित प्राणी का प्राण लिया है?” भिक्षु ने उत्तर दिया, “जी, श्रीमान।” गुरु ने कहा, “भाई, तुमने इतने महान मोक्ष (निर्वाण) के मार्ग को अपनाकर यह काम कैसे कर दिया? बुद्ध के प्रकट होने से पहले के ज्ञानी पुरुष, यद्यपि वे संसार में रहते थे और सांसारिक जीवन अपवित्र है, फिर भी वे केवल छोटे-मोटे पापों के लिए पश्चाताप करते थे; परन्तु तुमने, जिसने इस महान उपदेश को अपनाया है, कोई संदेह नहीं किया। एक भिक्षु को अपने कर्म, वचन और विचार पर नियंत्रण रखना चाहिए।” फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में धनंजय राजा थे, तब उनकी रानी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। समय बीतने पर वे तक्षशिला में पले-बढ़े और शिक्षा प्राप्त की। उनके पिता ने उन्हें उपसराय बनाया और बाद में अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और कुरु धर्म के मार्ग पर चलते हुए दस राजसी कर्तव्यों का पालन किया। कुरु धर्म का अर्थ है पांच सद्गुण; बोधिसत्व ने इन सद्गुणों का पालन किया और इन्हें पवित्र रखा; बोधिसत्व की तरह ही उनकी रानी, पत्नी, लघु भाई, उपसराय, कुलपुजारी, ब्राह्मण, सारथी, दरबारी, सारथी, कोषाध्यक्ष, अन्न भंडार के स्वामी, कुलीन व्यक्ति, कुली, राजनित्मी और दासी—सभी ने इनका पालन किया।

राजा, माता, पत्नी, वायसराय, पुजारी भी,
सारथी, रथ चालक और कोषाध्यक्ष
और जो राजा के अन्न भंडारों का प्रबंधन करता था,
कुली, शाही नर्तकी और मनोरंजन करने वाली महिला, कुल मिलाकर ग्यारह।
कुरु धर्म के नियमों का पालन किया।
इस प्रकार इन सभी ने पंच सद्गुणों का पालन किया और उन्हें निष्कलंक बनाए रखा। राजा ने छह दान-पुण्य केंद्र बनवाए, एक-एक शहर के चारों द्वारों पर, एक शहर के मध्य में और एक अपने घर के द्वार पर; वह प्रतिदिन 6 लाख सिक्के दान में वितरित करता था, जिससे पूरे भारत में उत्साह का संचार हुआ। पूरे भारत में दान के प्रति उसका प्रेम और प्रसन्नता व्याप्त हो गई।

उस समय कलिंग राज्य के दंतपुरा नगर में कलिंग नाम का एक राजा रहता था। उसके राज्य में बारिश नहीं हुई और सूखे के कारण अकाल पड़ गया। लोगों को लगा कि भोजन की कमी से महामारी फैल सकती है; और उन्हें सूखे और अकाल का डर सता रहा था। लोग बेसहारा होकर इधर-उधर भटक रहे थे, अपने बच्चों का हाथ थामे हुए। राज्य के सभी लोग दंतपुरा में एकत्रित हुए और राजा के द्वार पर जाकर उन्होंने गुहार लगाई।

जब राजा खिड़की के पास खड़ा था, तो उसने शोर सुना और पूछा कि लोग इतना शोर क्यों मचा रहे हैं।

"हे महाराज," उत्तर आया, "आपके पूरे राज्य में तीन भय छाए हुए हैं: बारिश नहीं हो रही, फसलें बर्बाद हो रही हैं, अकाल पड़ा है। लोग भूखे, बीमार और दरिद्र होकर अपने छोटे बच्चों को हाथ में लेकर इधर-उधर भटक रहे हैं। हे राजा, हमारे लिए बारिश कीजिए!"

राजा ने कहा, "यदि वर्षा न होती तो पूर्व के सम्राट क्या करते थे?"

"हे राजा, पूर्व के सम्राट, यदि वर्षा न हो तो दान देते थे, पवित्र दिन मनाते थे, सद्गुणों की प्रतिज्ञा करते थे और सात दिन तक अपने कक्ष में घास के गद्दे पर लेटते थे: तब वर्षा होती थी।"

“बहुत अच्छा,” राजा ने कहा; और उसने वैसा ही किया। फिर भी बारिश नहीं हुई। राजा ने अपने दरबारियों से कहा,

"जैसा आपने कहा था, मैंने वैसा ही किया है; लेकिन बारिश नहीं हो रही है। मैं क्या करूँ?"

"हे राजा, इंद्रप्रस्थ नगर में अंजना-वासभो नामक एक राजकीय हाथी है, जिसे काला बैल भी कहा जाता है। यह कुरु राजा धनंजय का है। हम इसे ले आएं; तब वर्षा होगी।"

"लेकिन हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? राजा और उसकी सेना को हराना आसान नहीं है।"

"हे राजा, उससे लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। राजा दान देने का शौकीन है, वह दान से प्रेम करता है: यदि उससे विनती की जाए, तो वह अपना सिर भी काट देगा, या अपनी सुंदर आँखें निकाल लेगा, या अपना राज्य तक त्याग देगा। हाथी के लिए भी विनती करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। वह उसे निःसंकोच दे देगा।"

"पर उनसे पूछने की हिम्मत कौन कर सकता है?" राजा ने कहा।

"ब्राह्मण, महान राजा!"

राजा ने ब्राह्मणों के एक गाँव से आठ ब्राह्मणों को बुलाया और पूरे आदर के साथ उन्हें हाथी माँगने के लिए भेजा। उन्होंने यात्रा के लिए पैसे लिए, यात्रा के वस्त्र पहने और एक रात से ज़्यादा विश्राम किए बिना तेज़ी से यात्रा करते हुए कुछ दिनों बाद शहर के द्वार पर स्थित भिक्षागृह में भोजन किया। जब उनकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी हो गईं, तो उन्होंने पूछा, "राजा भिक्षागृह में कब आएँगे?"

उत्तर था, "पखवाड़े में तीन दिन - चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें; लेकिन कल पूर्णिमा है, इसलिए वह कल भी आएगा।"

अगले दिन सुबह सवेरे ब्राह्मण पूर्वी द्वार से प्रवेश कर गए। बोधिसत्व भी स्नान और अभिषेक करके, उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित होकर, एक सुंदर हाथी पर सवार होकर, एक विशाल समूह के साथ पूर्वी द्वार पर स्थित भिक्षागृह में आए। वहाँ वे हाथी से उतरे और अपने हाथों से सात-आठ लोगों को भोजन कराया। "इस प्रकार देते रहिए," उन्होंने कहा और हाथी पर सवार होकर दक्षिणी द्वार की ओर चल दिए। पूर्वी द्वार पर राजरक्षक बल की भारी संख्या के कारण ब्राह्मणों को कोई अवसर नहीं मिला; इसलिए वे दक्षिण की ओर चले गए और राजा के आने की प्रतीक्षा करने लगे। जब राजा द्वार से कुछ ही दूरी पर स्थित एक ऊँची जगह पर पहुँचे, तो उन्होंने अपने हाथ उठाकर राजा को विजयी घोषित किया। राजा ने अपने हाथी को तीखे डंडे से उस स्थान तक निर्देशित किया जहाँ वे थे। "हे ब्राह्मणों, आपकी क्या इच्छा है?" उन्होंने पूछा। तब ब्राह्मणों ने प्रथम श्लोक में बोधिसत्व के गुणों का वर्णन किया।

"हे प्रभु, हम आपके विश्वास और सद्गुणों को जानते हुए आपके पास आते हैं;
इस जानवर के खातिर हमने घर पर अपनी सारी संपत्ति खर्च कर दी (*1)।
इस पर बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "ब्राह्मणों, यदि इस हाथी को प्राप्त करने में तुम्हारा सारा धन खर्च हो गया हो, तो चिंता मत करो—मैं इसे इसके समस्त वैभव सहित तुम्हें देता हूँ।" इस प्रकार उन्हें सांत्वना देते हुए उन्होंने ये दो श्लोक दोहराए:

चाहे आप वर्दी के लिए सेवा करें या न करें,
जो भी प्राणी मेरे पास यहाँ आएगा,
जैसा कि मेरे प्रशिक्षकों ने मुझे बहुत पहले सिखाया था,
यहां आने वाले सभी लोगों का हमेशा स्वागत किया जाएगा।
"मैं यह हाथी आपको उपहार में लाया हूँ।"
यह राजा का हिस्सा है, राजा के योग्य है!
उसे ले जाओ, उसके सभी अलंकृत वस्त्रों और सोने की चेन सहित।
ड्राइवर समेत सभी लोग अपने-अपने रास्ते चले जाओ।"
इस प्रकार महान पुरुष ने अपने हाथी पर सवार होकर कहा; फिर उतरकर उन्होंने उनसे कहा—"यदि इस पर कोई भी स्थान अलंकृत न हो, तो मैं उसे अलंकृत करके तुम्हें सौंप दूँगा।" उन्होंने तीन बार दाहिनी ओर मुड़कर उस प्राणी की जाँच की; परन्तु उन्हें उस पर कोई भी स्थान अलंकृत नहीं मिला। तब उन्होंने सूंड ब्राह्मणों के हाथों में सौंप दी; उन्होंने एक उत्तम स्वर्ण कलश से सुगंधित जल छिड़ककर उसे उनके हवाले कर दिया। ब्राह्मणों ने हाथी और उसके सामान को स्वीकार कर लिया और उसकी पीठ पर बैठकर दंतपुरा गए तथा उसे अपने राजा को सौंप दिया। परन्तु हाथी के आने के बावजूद अभी तक वर्षा नहीं हुई थी।

तब राजा ने दोबारा पूछा—"इसका कारण क्या हो सकता है?"

उन्होंने कहा, “कुरु राजा धनंजय कुरु धर्म का पालन करते हैं; इसीलिए उनके राज्य में हर दस-पंद्रह दिन में वर्षा होती है। यही राजा के अच्छे गुणों का प्रभाव है। यदि इस जानवर में कोई अच्छाई है भी, तो वह कितनी कम होगी!” तब राजा ने कहा, “इस हाथी को, इसके काठी समेत, इसके सभी सामान सहित, राजा को वापस दे दो। उनके द्वारा पालन किए जाने वाले कुरु धर्म के नियमों को एक स्वर्ण पट्टिका पर लिखो और उसे यहाँ ले आओ।” ये कहकर उन्होंने ब्राह्मणों और दरबारियों को विदा किया।

ये लोग राजा के सामने आए और उनका हाथी लौटाते हुए बोले, “महाराज, आपके हाथी के आने के बाद भी हमारे देश में बारिश नहीं हुई। लोग कहते हैं कि आप कुरु धर्म का पालन करते हैं। हमारे राजा स्वयं भी इसका पालन करना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने हमें भेजा है और हमसे कहा है कि हम इसे एक सोने की थाली पर लिखकर उनके पास लाएँ। हमें इस धर्म के बारे में बताइए!”

“मित्रों,” राजा ने कहा, “मैंने एक समय इस धार्मिकता का पालन किया था; परन्तु अब मुझे इसी बात पर संदेह है। यह धार्मिकता अब मेरे हृदय को प्रसन्न नहीं करती, इसलिए मैं इसे तुम्हें नहीं दे सकता।”

आप शायद पूछेंगे कि राजा को अब पुण्य क्यों नहीं मिल रहा था? दरअसल, हर तीसरे वर्ष, कत्तिका (*2) माह में राजा कत्तिका पर्व मनाते थे। इस पर्व के दौरान राजा बड़े वैभव से सजते-संवरते थे और देवदूतों की तरह वस्त्र धारण करते थे। वे चित्तराज नामक एक राक्षस, जो अनेक रंगों के राजा थे, के समक्ष खड़े होते थे और फूलों से लिपटे और रंग-बिरंगे तीर चारों दिशाओं में चलाते थे। इस बार राजा, पर्व के दौरान, एक झील के किनारे चित्तराज के समक्ष खड़े होकर चारों दिशाओं में तीर चला रहे थे। उन्हें तीन तीर तो दिख गए, लेकिन चौथा तीर, जो पानी के ऊपर से गया, उन्हें नहीं दिखा। राजा ने सोचा, "शायद जो तीर मैंने चलाया है, वह किसी मछली पर गिरा हो!" जैसे ही यह संदेह उत्पन्न हुआ, जीवना के पाप ने उनके पुण्य में दोष उत्पन्न कर दिया; इसीलिए उनके पुण्य ने उन्हें पहले की तरह आशीर्वाद नहीं दिया। राजा ने उनसे यह कहा और आगे बोला, "मित्रों, मुझे स्वयं पर संदेह है कि मैं कुरु धर्म के नियमों का पालन करता हूँ या नहीं; परन्तु मेरी माता उनका भला करती है। तुम उनसे यह नियम सीख सकते हो।"

“परन्तु, हे राजा,” उन्होंने कहा, “आपका किसी की जान लेने का कोई इरादा नहीं था। हृदय के इरादे के बिना किसी की जान नहीं ली जा सकती। हमें वह कुरु धर्म प्रदान कीजिए जिसका आपने पालन किया है!”

“तो लिखो,” उसने कहा। और उसने उन्हें सोने की थाली पर लिखने को कहा: “जीवितों की हत्या मत करो; जो न दिया गया हो उसे मत लो; वासना में बुराई के मार्ग पर मत चलो; झूठ मत बोलो; मादक पेय मत पियो।” फिर उसने आगे लिखा,

"फिर भी, इससे मुझे कोई आशीर्वाद नहीं मिलता; बेहतर होगा कि आप इसे मेरी माँ से सीख लें।"

दूतों ने राजा को प्रणाम किया और महारानी माँ से मिलने गए। उन्होंने कहा, "महारानी, लोग कहते हैं कि आप कुरु धर्म के नियमों का पालन करती हैं: कृपया हमें भी इसके बारे में बताएँ!"

महारानी ने कहा, "मेरे पुत्रों, मैंने एक समय इस धर्म का पालन किया था, परन्तु अब मुझे संदेह है। यह धर्म मुझे प्रसन्न नहीं करता, इसलिए मैं इसे तुम्हें नहीं दे सकती।" अब हमें बताया जाता है कि उनके दो पुत्र थे, बड़ा पुत्र राजा और छोटा पुत्र उपसराय। एक राजा ने बोधिसत्व को एक लाख मूल्य के उत्तम चंदन के इत्र और एक लाख मूल्य का सोने का हार भेजा। उसने अपनी माता का आदर करने के लिए ये सब उन्हें ही भेज दिया। उन्होंने सोचा, "मैं चंदन का इत्र नहीं लगाती, मैं हार नहीं पहनती। मैं इन्हें अपने पुत्रों की पत्नियों को दे दूंगी।" फिर उनके मन में विचार आया - "मेरे बड़े पुत्र की पत्नी मेरी प्रिय है; वह प्रधान रानी है: मैं उसे सोने का हार दूंगी; परन्तु छोटे पुत्र की पत्नी एक निर्धन प्राणी है, उसे मैं चंदन का इत्र दूंगी।" और इस प्रकार उन्होंने एक को हार दिया और दूसरे को इत्र। बाद में उसने सोचा, "मैं कुरु धर्म के नियमों का पालन करती हूँ; चाहे वे गरीब हों या न हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ों की चापलूसी करना उचित नहीं है। शायद ऐसा न करके मैंने अपने सद्गुण में कोई कमी कर दी है!" और उसे संदेह होने लगा; इसीलिए फिसलते हुए वह बोली।

दूतों ने कहा, "जब यह तुम्हारे हाथों में है, तो जो चाहो वह तुम्हें मिल जाएगा। अगर तुम्हें इतनी छोटी सी बात पर संदेह है, तो तुम और कौन सा पाप करोगे? इस तरह की बात से पुण्य नहीं टूटता। हमें कुरु धर्म का वचन दो!" और उन्होंने उससे वह वचन प्राप्त किया और उसे सोने की थाली पर लिख दिया।

"फिर भी, मेरे बेटों," महारानी ने कहा, "मैं इस धार्मिकता से प्रसन्न नहीं हूँ। लेकिन मेरी बहू इसका अच्छी तरह पालन करती है। उससे इसके बारे में पूछो।"

अतः उन्होंने आदरपूर्वक विदा ली और पुत्री से पहले की ही तरह पूछा। और पहले की ही तरह उसने उत्तर दिया, "मैं नहीं कर सकती, क्योंकि मैं स्वयं अब इसका पालन नहीं करती!" एक दिन जब वह जाली पर बैठी नीचे देख रही थी, तो उसने राजा को नगर में जुलूस निकालते हुए देखा; और उसके पीछे हाथी की पीठ पर वायसराय बैठा था। उसे वायसराय से प्रेम हो गया और उसने सोचा, "क्या होगा यदि मैं उससे मित्रता कर लूँ, और उसका भाई मर जाए, और फिर वह राजा बन जाए, और मुझसे विवाह कर ले!" तभी उसके मन में यह विचार कौंधा - "मैं, जो कुरु धर्म का पालन करती हूँ, जिसका विवाह हो चुका है, मैंने किसी दूसरे पुरुष को प्रेम दृष्टि से देखा! मेरे सद्गुण में यही दोष है!" उसे पश्चाताप सताने लगा। उसने यह बात दूतों को बताई।

तब उन्होंने कहा, “पाप मात्र एक विचार का उदय नहीं है। यदि तुम इतनी छोटी सी बात पर पश्चाताप करती हो, तो भला तुम कौन सा पाप कर सकती हो? इतनी छोटी सी बात से सद्गुण भंग नहीं होता; हमें भी यह धार्मिकता प्रदान करो!” और उसने उन्हें यह बात बताई, और उन्होंने इसे एक सोने की थाली पर लिख लिया। परन्तु उसने कहा, “परन्तु मेरे पुत्रों, मेरा सद्गुण परिपूर्ण नहीं है। परन्तु वायसराय इन नियमों का भली-भांति पालन करते हैं; तुम जाओ और उनसे ये नियम प्राप्त करो।”

फिर वे वायसराय के पास गए और पहले की तरह उनसे कुरु धर्म की जानकारी मांगी। वायसराय शाम को राजा से मिलने जाते थे और जब वे रथ में महल के प्रांगण में आते थे, तो यदि वे राजा के साथ भोजन करना चाहते थे और रात वहीं बिताना चाहते थे, तो वे लगाम और छड़ी रथ के जुए पर छोड़ देते थे; यह लोगों के लिए जाने का संकेत होता था; और अगली सुबह वे जल्दी वापस आते और वायसराय के जाने की प्रतीक्षा करते। सारथी रथ की देखभाल करता और सुबह जल्दी वापस आकर राजा के द्वार पर प्रतीक्षा करता। लेकिन यदि वायसराय उसी समय प्रस्थान करते, तो वे लगाम और छड़ी रथ में ही छोड़ देते और राजा से मिलने अंदर चले जाते। तब लोग इसे उनके शीघ्र प्रस्थान का संकेत समझकर महल के द्वार पर प्रतीक्षा करने लगते। एक दिन उन्होंने ऐसा ही किया और राजा से मिलने अंदर चले गए। लेकिन जैसे ही वे अंदर गए, बारिश शुरू हो गई; राजा ने यह देखकर उसे जाने नहीं दिया, इसलिए उसने भोजन किया और वहीं सो गया। लेकिन लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके बाहर आने की प्रतीक्षा में खड़ी थी, और वे पूरी रात भीगते रहे। अगले दिन वायसराय बाहर आया और भीगी हुई भीड़ को देखकर मन ही मन सोचने लगा—"मैं, जो कुरु धर्म का पालन करता हूँ, मैंने इस पूरी भीड़ को असुविधा में डाल दिया! अवश्य ही मेरे सद्गुण में कोई कमी है!" और उसे पश्चाताप हुआ। इसलिए उसने दूतों से कहा: "अब

मुझे संदेह हो गया है कि क्या मैं वास्तव में इस धर्म का पालन करता हूँ; इसलिए मैं इसे आपको नहीं दे सकता;" और उसने उन्हें सारी बात बता दी।

"परन्तु," उन्होंने कहा, "तुम्हें उन लोगों को सताने की कभी इच्छा नहीं हुई। जो अनचाहा हो, उसका हिसाब नहीं होता। अगर तुम्हें इतनी छोटी सी बात पर पछतावा हो, तो भला तुम किस गुनाह में लिप्त होगे?" इस प्रकार उन्होंने उससे इस धार्मिकता का ज्ञान भी प्राप्त किया और उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। "परन्तु," उसने कहा, "यह धार्मिकता मुझमें पूर्ण नहीं हुई है। परन्तु मेरा पुजारी इसका भला करता है; जाओ, उससे इसके बारे में पूछो।" फिर वे पुजारी के पास चले गए।

एक दिन पुजारी राजा से मिलने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक रथ देखा; जो किसी दूसरे राजा ने भेजा था, और उसका रंग उगते सूरज जैसा था। उन्होंने पूछा, "किसका रथ?" उन्होंने कहा, "राजा के लिए भेजा गया है।" तब उन्होंने सोचा, "मैं बूढ़ा हो गया हूँ; अगर राजा मुझे यह रथ दे दें, तो इसमें सवारी करने का कितना आनंद आएगा!" जब वे राजा के सामने पहुँचे और समृद्धि की प्रार्थना के साथ उनका अभिवादन करने के बाद खड़े हुए, तो उन्होंने राजा को रथ दिखाया। राजा ने कहा, "यह तो बहुत सुंदर रथ है; इसे मेरे गुरु को दे दीजिए।" लेकिन पुजारी को इसे लेने में रुचि नहीं थी; बार-बार विनती करने पर भी नहीं। ऐसा क्यों था? क्योंकि उनके मन में यह विचार आया— "मैं, जो कुरु धर्म का पालन करता हूँ, दूसरों की संपत्ति पाने की लालसा रखता हूँ। यह तो मेरे सद्‌गुण में एक दोष है!" इसलिए उन्होंने इन दूतों को यह कहानी सुनाते हुए कहा, "मेरे पुत्रों, मुझे कुरु धर्म के बारे में संदेह है; यह धर्म अब मुझे आशीर्वाद नहीं देता; इसलिए मैं इसे तुम्हें नहीं सिखा सकता।"

लेकिन दूतों ने कहा, "केवल धन-संपत्ति की लालसा से पुण्य नष्ट नहीं होता। यदि तुम इतनी छोटी सी बात पर संदेह करते हो, तो वास्तव में तुम कौन सा पाप करोगे?" और उनसे भी उन्होंने पुण्य प्राप्त किया और उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। उन्होंने कहा, "फिर भी, यह पुण्य अभी मुझे लाभ नहीं देता; परन्तु राजसी सारथी इसका सावधानीपूर्वक अभ्यास करता है। जाओ और उससे पूछो।" तो उन्होंने राजसी सारथी को ढूँढ़ा और उससे पूछा।

एक दिन सारथी खेत नाप रहा था। उसने एक डंडी में रस्सी बाँधी और उसका एक सिरा खेत के मालिक को पकड़ने के लिए दे दिया, और दूसरा सिरा खुद पकड़ लिया। रस्सी के जिस सिरे को उसने पकड़ा था, उससे बंधी हुई डंडी एक केकड़े के बिल तक पहुँच गई। उसने सोचा, "अगर मैं डंडी को बिल में डाल दूँ, तो बिल में बैठा केकड़ा घायल हो जाएगा; अगर मैं उसे दूसरी तरफ डाल दूँ, तो राजा की संपत्ति का नुकसान होगा; और अगर मैं उसे इस तरफ डाल दूँ, तो किसान का नुकसान होगा। अब क्या करूँ?" फिर उसने दोबारा सोचा—"केकड़ा अपने बिल में होना चाहिए; लेकिन अगर वह होता, तो वह खुद को दिखा देता;" इसलिए उसने डंडी को बिल में डाल दिया। केकड़े ने अंदर से 'क्लिक' की आवाज़ निकाली! फिर उसने सोचा, "डंडी केकड़े पर लगी होगी, और उसने उसे मार डाला होगा! मैं कुरु धर्म के नियमों का पालन करता हूँ, और अब इसमें एक खामी है!" तो उसने उन्हें यह बताया, और कहा, "इसलिए अब मुझे इस पर संदेह है, और मैं इसे आपको नहीं दे सकता।"

दूतों ने कहा, "तुम्हारी केकड़े को मारने की कोई इच्छा नहीं थी। बिना इरादे के किया गया काम मायने नहीं रखता; अगर तुम्हें इतनी छोटी सी बात पर संदेह है, तो तुम भला कौन सा बड़ा गुनाह करोगे?" और उन्होंने उसके मुख से यह नेकी की बात भी ले ली और उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। "परन्तु," उसने कहा, "यद्यपि इससे मुझे कोई लाभ नहीं मिलता, पर सारथी इसका सावधानीपूर्वक पालन करता है; जाओ और उससे पूछ लो।"

अतः वे विदा लेकर सारथी की खोज में निकल पड़े। एक दिन सारथी राजा को रथ में बिठाकर उसके उद्यान में ले गया। राजा ने दिन भर वहाँ आनंद लिया और शाम को लौटकर रथ में बैठ गया। परन्तु शहर पहुँचने से पहले ही सूर्यास्त के समय तूफ़ानी बादल छा गए। सारथी को राजा के भीग जाने का डर सताने लगा, इसलिए उसने चाबुक से घोड़ों को तेज़ी से दौड़ाया: घोड़े तुरंत घर की ओर भागे।

तब से, पार्क जाते या वहाँ से आते समय, वे उस स्थान से तेज़ी से जाते थे। ऐसा क्यों था? क्योंकि उन्हें लगता था कि उस स्थान पर कोई खतरा है, और इसीलिए सारथी ने उन्हें कोड़े मारे थे। सारथी ने सोचा, "राजा गीले हों या सूखे, इसमें मेरी कोई गलती नहीं है; लेकिन मैंने इन प्रशिक्षित घोड़ों को समय से पहले कोड़े मार दिए, और इसलिए वे बार-बार तब तक तेज़ी से दौड़ते हैं जब तक कि वे थक न जाएँ, यह सब मेरी ही देन है। और मैं कुरु धर्म का पालन करता हूँ! इसमें ज़रूर कोई कमी है!" उसने यह बात दूतों से कही और बोला, "इसी कारण मुझे इस पर संदेह है, और मैं इसे तुम्हें नहीं दे सकता।" "लेकिन," उन्होंने कहा, "आपका इरादा घोड़ों को थकाने का नहीं था, और जो अनजाने में किया जाता है उसे हिसाब में नहीं लिया जाता। अगर आपको इतनी छोटी सी बात पर संदेह है, तो आप वास्तव में कौन सा गुनाह कर सकते हैं?" और उन्होंने उससे धर्म का ज्ञान भी प्राप्त किया और उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। लेकिन सारथी ने उन्हें एक धनी व्यक्ति की खोज में भेजते हुए कहा, "यद्यपि यह धार्मिकता मुझे आशीर्वाद नहीं देती, फिर भी वह इसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करता है।"

तो वे उस धनी व्यक्ति के पास गए और उससे पूछा। एक दिन वह अपने धान के खेत में गया और उसने देखा कि धान की एक बाली छिलका तोड़ रही है। उसने उसे धान की एक छोटी सी बाली से बांधना शुरू किया और मुट्ठी भर धान लेकर उसे एक खंभे से बांध दिया। तभी उसके मन में यह बात आई—"इस खेत से मुझे अभी राजा को उसका हक देना है, और मैंने तो एक ऐसे खेत से मुट्ठी भर धान ले लिया है जिसका कोई हिसाब नहीं है! मैं, जो कुरु धर्म के नियमों का पालन करता हूँ, मैंने तो ज़रूर उनका उल्लंघन किया है!" और उसने यह बात दूतों को बताते हुए कहा, "अब मुझे अपने इस धर्म पर संदेह हो रहा है, इसलिए मैं तुम्हें यह धान नहीं दे सकता।"

"परन्तु," उन्होंने कहा, "तुम्हारे मन में चोरी का विचार ही नहीं था; इसके बिना किसी को चोरी का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि तुम्हें इतनी छोटी सी बात पर संदेह है, तो तुम भला किसी दूसरे की वस्तु कब लोगे?" और उनसे भी उन्हें धार्मिकता का ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। उन्होंने आगे कहा, "फिर भी, यद्यपि मैं इस मामले में संतुष्ट नहीं हूँ, राजकोषीय अन्न भंडार का स्वामी इन नियमों का भली-भांति पालन करता है। जाओ, उनसे ये नियम और शर्तें मांग लो।" अतः वे उन्हें अन्न भंडार के स्वामी के पास ले गए।

एक दिन एक व्यक्ति अन्न भंडार के द्वार पर बैठा राजा के कर के चावल नाप रहा था। उसने बिना नापे हुए ढेर में से एक दाना उठाकर उसे निशान के तौर पर रख दिया। उसी क्षण बारिश होने लगी। अधिकारी ने सभी निशानों को गिना, और उन्हें इकट्ठा करके नापे हुए ढेर पर डाल दिया। फिर वह जल्दी से अंदर भागा और द्वार-गृह में बैठ गया। "क्या मैंने निशान नापे हुए ढेर पर डाले या बिना नापे हुए ढेर पर?" वह सोचने लगा; और उसके मन में यह विचार आया— "अगर मैं उन्हें नापे हुए ढेर पर डालूँ, तो राजा की संपत्ति बढ़ जाएगी और मालिकों को नुकसान होगा; मैं कुरु धर्म का पालन कर रहा हूँ; और अब यहाँ गलती हो गई!" उसने यह बात दूतों को बताई और कहा कि इसलिए उसे इस पर संदेह है और वह उन्हें यह बात नहीं बता सकता। लेकिन दूतों ने कहा, "तुम्हारे मन में चोरी का कोई विचार नहीं था, और इसके बिना कोई बेईमानी का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अगर तुम्हें इस छोटी सी बात पर संदेह होता है, तो तुम भला किसी दूसरे की कोई चीज़ क्यों चुराओगे?" और उनसे भी उन्होंने यह नेकी सीख ली और उसे अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। "पर," उन्होंने आगे कहा, "यद्यपि यह सद्गुण मुझमें पूर्ण नहीं है, तो द्वारपाल है, जो इसका भला पालन करता है: जाओ और उससे यह सीख ले आओ।" तो वे चले गए और द्वारपाल से यह सद्गुण मांगा।

एक दिन, शहर का द्वार बंद होने के समय, उसने तीन बार ज़ोर से पुकारा। एक गरीब आदमी, जो अपनी सबसे छोटी बहन के साथ जंगल में लकड़ियाँ और पत्ते इकट्ठा करने गया था, आवाज़ सुनकर दौड़ता हुआ आया। द्वारपाल ने कहा, "क्या! क्या तुम्हें नहीं पता कि राजा शहर में है? क्या तुम्हें नहीं पता कि इस शहर का द्वार जल्दी बंद हो जाता है? क्या इसीलिए तुम जंगल में जाकर प्रेम करते हो?" दूसरे ने कहा, "नहीं, स्वामी, यह मेरी पत्नी नहीं, बल्कि मेरी बहन है।" तब द्वारपाल ने सोचा, "बहन को पत्नी कहना कितना अनुचित है! और मैं कुरु धर्म के नियमों का पालन करता हूँ; ज़रूर मैंने उन्हें तोड़ दिया होगा!" उसने दूतों से यह कहते हुए आगे कहा, "इस तरह मुझे संदेह है कि क्या मैं वास्तव में कुरु धर्म का पालन कर रहा हूँ, इसलिए मैं इसे तुम्हें नहीं दे सकता।" लेकिन उन्होंने कहा, "तुमने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि तुम्हें ऐसा लगा; इससे तुम्हारा सद्गुण भंग नहीं होता। अगर तुम इतने मामूली कारण पर पश्चाताप करते हो, तो तुम जानबूझकर झूठ कैसे बोल सकते हो?" और इसलिए उन्होंने उससे वे सद्गुण भी ले लिए और उन्हें अपनी सोने की थाली पर लिख लिया।

फिर उन्होंने कहा, "परन्तु यह पुण्य मुझे प्राप्त न होने के बावजूद, एक राजसी नर्तकी और मदिरा कन्या है जो इसे भली-भांति धारण करती है; जाओ और उससे पूछो।" और उन्होंने वैसा ही किया। उसने भी अन्य लोगों की तरह ही इनकार कर दिया, जिसका कारण यह था। देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने उसकी अच्छाई की परीक्षा लेने का निश्चय किया; इसलिए एक युवक का रूप धारण करके उन्होंने उसे एक हजार पान के टुकड़े देते हुए कहा, "मैं उचित समय पर आऊंगा।" फिर वे स्वर्ग लौट गए और तीन वर्षों तक उससे मिलने नहीं आए। और उसने सम्मान के लिए तीन वर्षों तक किसी अन्य पुरुष से पान का एक टुकड़ा भी नहीं लिया। धीरे-धीरे वह गरीब हो गई; और फिर उसने सोचा—"जिस व्यक्ति ने मुझे एक हजार पान के टुकड़े दिए थे, वह इन तीन वर्षों में नहीं आया; और अब मैं गरीब हो गई हूँ। मेरा पेट भरना मुश्किल है। अब मुझे मुख्य न्यायाधीशों को बताना होगा और पहले की तरह अपना वेतन लेना होगा।" तो वह दरबार में आई और बोली, "तीन साल पहले एक आदमी ने मुझे एक हजार सिक्के दिए थे, और फिर कभी वापस नहीं आया; पता नहीं वह मर गया है या नहीं। मेरा पेट नहीं भर रहा; मैं क्या करूँ, महाराज?" उसने कहा, "अगर वह तीन साल तक वापस नहीं आता, तो तुम क्या करोगी? पहले की तरह अपनी मजदूरी कमाओ।" इस फैसले के बाद जैसे ही वह दरबार से निकली, एक आदमी आया और उसने उसे एक हजार सिक्के देने की पेशकश की। जैसे ही उसने सिक्के लेने के लिए हाथ बढ़ाया, इंद्र प्रकट हुए। उसने कहा, "यह वही आदमी है जिसने मुझे तीन साल पहले एक हजार सिक्के दिए थे: मुझे तुम्हारा पैसा नहीं लेना चाहिए;" और उसने अपना हाथ पीछे खींच लिया। तब इंद्र प्रकट हुए और हवा में मंडराते हुए, उगते सूरज की तरह चमकने लगे, और सारे शहर को इकट्ठा कर लिया। इंद्र ने भीड़ के बीच में कहा, "उसकी अच्छाई की परीक्षा लेने के लिए मैंने उसे तीन साल पहले एक हजार सिक्के दिए थे। उसी की तरह बनो, और उसी की तरह अपनी इज्जत बचाओ;" और इस सलाह के साथ, उसने उसके कक्ष को सात प्रकार के रत्नों से भर दिया, और यह कहते हुए, "अब से सावधान रहना," उसने उसे सांत्वना दी और स्वर्ग चला गया। इस कारण उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "क्योंकि एक मजदूरी कमाने से पहले ही मैंने दूसरी के लिए हाथ बढ़ाया, इसलिए मेरा सद्गुण पूर्ण नहीं है, और इसलिए मैं इसे आपको नहीं दे

सकती।" इस पर दूतों ने उत्तर दिया, "केवल हाथ बढ़ाना सद्‌गुण का उल्लंघन नहीं है: तुम्हारा वह सद्‌गुण तो सर्वोच्च पूर्णता है!" और उससे, और बाकी सभी से, उन्होंने सद्‌गुण के नियम प्राप्त किए, और उन्हें अपनी सोने की थाली पर लिख लिया। वे उसे अपने साथ दंतपुरा ले गए, और राजा को अपने अनुभव बताए।

तब उनके राजा ने कुरु नियमों का पालन किया और पंच सद्‌गुणों को परिपूर्ण किया। तब कलिंग राज्य में भरसक वर्षा हुई; तीनों भय दूर हुए; भूमि समृद्ध और उपजाऊ हो गई। बोधिसत्व ने जीवन भर दान-पुण्य किया और भलाई के कार्य किए, और फिर अपनी प्रजा के साथ स्वर्ग में चले गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म-कथा का वर्णन किया। सत्यों की व्याख्या के बाद, कुछ ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया, कुछ ने द्वितीय मार्ग में, कुछ ने तृतीय मार्ग में, और कुछ संत बन गए। और जन्म-कथा की व्याख्या इस प्रकार है:-

"उप्पलावन्ना राजसी नर्तकी और आनंद कन्या थीं, पुन्ना कुली थीं, और सारथी कुच्चना थे; कोलिता मापक थे; धनी व्यक्ति सारिपुत्र थे; रथ चालक अनुरुद्ध थे; और पुरोहित वरिष्ठ भिक्षु कश्यप थे; जो वायसराय थे, वे अब नंदपांडित हैं; राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) रानी-पत्नी थीं, रानी-माता माया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) थीं; और राजा बोधिसत्व थे - इस प्रकार जन्म स्पष्ट है।"

फुटनोट:

(1) यानी हमने अपना सारा पैसा खाने पर खर्च कर दिया, इस भरोसे के साथ कि जब हम हाथी मांगेंगे तो आप हमें दे देंगे।

(2) अक्टूबर-नवंबर.

(3)अर्थात् संघ में (नत्ती एक 'संकल्प' है)।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रोमक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-277-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 277
रोमाका-जातक

"यहाँ पहाड़ियों में," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में हत्या के प्रयास के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ स्वयं ही सब कुछ स्पष्ट कर देती हैं।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व कबूतर बन गए और कबूतरों के एक बड़े झुंड के साथ पहाड़ियों की एक गुफा में जंगल के बीचोंबीच रहने लगे। एक तपस्वी, एक गुणी व्यक्ति, ने कबूतरों के रहने के स्थान से कुछ ही दूरी पर स्थित एक सीमावर्ती गाँव के पास उनके लिए एक कुटिया बनाई थी और वे उसी गुफा में रहने लगे। बोधिसत्व समय-समय पर उनसे मिलने जाते और उनसे ज्ञानवर्धक बातें सुनते।

वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद, वह तपस्वी चला गया; और वहाँ एक छद्म तपस्वी आकर रहने लगा। बोधिसत्व अपने कबूतरों के झुंड के साथ उससे मिलने गए और आदरपूर्वक उसका अभिवादन किया; उन्होंने दिन भर तपस्वी के निवास स्थान के आसपास फुदकते हुए और गुफा के सामने से भोजन इकट्ठा करते हुए बिताया और शाम को घर लौट गए। वहाँ वह छद्म तपस्वी पचास वर्षों से अधिक समय तक रहा।

एक दिन ग्रामीणों ने उसे कबूतर का मांस दिया, जिसे उन्होंने पकाया था। उसे स्वाद बहुत अच्छा लगा और उसने पूछा कि यह क्या है। उन्होंने कहा, "कबूतर का मांस।" उसने सोचा, "मेरे आश्रम में कबूतरों के झुंड आते हैं; मुझे उनमें से कुछ को मारकर खाना चाहिए।"

इसलिए उसने चावल, घी, दूध, जीरा और काली मिर्च ली और सब कुछ तैयार करके रख दिया; उसने अपने वस्त्र के एक कोने में एक लाठी छिपा ली और कबूतरों के आने का इंतजार करते हुए झोपड़ी के दरवाजे पर बैठ गया।

बोधिसत्व अपने अनुयायियों के साथ आए और यह पता लगाने लगे कि यह पाखंडी तपस्वी क्या दुष्ट कार्य कर रहा है। "वहाँ बैठा दुष्ट तपस्वी छल-कपट कर रहा है! शायद वह हमारे ही किसी व्यक्ति का खून पी रहा है; मैं उसका पर्दाफाश करूँगा!"

इसलिए वह हवा की दिशा में नीचे उतरा और उसे सूंघा। उसने कहा, "हाँ, वह आदमी हमें मारना और खाना चाहता है; हमें उसके पास नहीं जाना चाहिए;" और वह अपने झुंड के साथ उड़ गया। उसे दूर रहते देखकर साधु ने सोचा, "मैं उससे मीठी बातें करूँगा, उससे दोस्ती करूँगा, और फिर उसे मारकर खा जाऊँगा!" और उसने पहले दो श्लोक कहे:-

"यहाँ पहाड़ियों में, इक्यावन वर्षों से,
हे पंख वाले पक्षी! पक्षी मुझसे मिलने आते थे।
किसी भी बात पर संदेह नहीं, किसी भी भय से अनजान।
पूरी तरह सुरक्षित!
"अंडों से निकले ये बच्चे अब प्रतीत होते हैं
संदिग्ध रूप से किसी दूसरी पहाड़ी की ओर उड़ान भरना।
क्या वे अपना सारा पुराना सम्मान भूल गए हैं?
क्या वे अभी भी वही पक्षी हैं?
फिर बोधिसत्व पीछे हट गए और तीसरी बार दोहराया:

हम मूर्ख नहीं हैं, और हम आपको जानते हैं;
हम सब एक जैसे हैं, और आप भी एक जैसे हैं:
आप हमारी भलाई के खिलाफ साजिश रच रहे हैं।
तो, गलत विश्वास रखने वाले, यह डर हम महसूस करते हैं।"
"उन्होंने मुझे पहचान लिया!" झूठे तपस्वी ने सोचा। उसने अपनी लाठी पक्षी पर फेंकी, लेकिन निशाना चूक गया। "दूर हटो!" पक्षी बोला—"मेरा निशाना चूक गया!"

“तुम हमें याद कर रहे हो,” बोधिसत्व ने कहा, “परन्तु तुम चारों नरकों को नहीं भूलोगे! अगर तुम यहाँ रुके तो मैं गाँव वालों को बुलाकर तुम्हें चोर समझकर पकड़वा दूँगा। जल्दी भागो!” इस प्रकार उन्होंने उस व्यक्ति को धमकी दी और उड़ गए। साधु वहाँ और नहीं रह सका।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए शिक्षक ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त तपस्वी थे; प्रथम तपस्वी, श्रेष्ठ तपस्वी, सारिपुत्र थे; और कबूतरों के मुखिया मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महिसा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-278-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 278
महिषा जातक

“तुम धैर्यपूर्वक क्यों सहन करते हो?” इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक उद्दंड बंदर के बारे में सुनाई थी। श्रावस्ती नगर में, हमें बताया जाता है कि एक परिवार में एक पालतू बंदर था; वह हाथी के अस्तबल में घुस गया और एक गुणी हाथी की पीठ पर बैठकर

मल त्याग कर इधर-उधर चलने लगा। हाथी गुणी और धैर्यवान होने के कारण कुछ नहीं किया। लेकिन एक दिन उस हाथी की जगह एक दुष्ट बच्चा खड़ा हो गया। बंदर ने उसे वही समझकर उसकी पीठ पर चढ़ गया। हाथी ने उसे अपनी सूंड से पकड़ लिया और ज़मीन पर पटक कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। यह बात भिक्षुओं की सभा में फैल गई; और एक दिन वे सब इस बारे में बात करने लगे। "भाई (भिक्षु), क्या आपने सुना है कि कैसे उस उद्दंड बंदर ने एक दुष्ट हाथी को अच्छा समझकर उसकी पीठ पर चढ़ गया और कैसे उसने अपनी जान गंवा दी?" गुरुजी अंदर आए और पूछा, "भाइयों (भिक्षुओं), आप यहाँ बैठकर किस बारे में बात कर रहे हैं?" और जब उन्होंने उन्हें बताया, "यह पहली बार नहीं है कि इस बदतमीज़ बंदर ने ऐसा व्यवहार किया है; इसने पहले भी ऐसा ही किया था:" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब हिमालय क्षेत्र में एक भैंस के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। वे बलवान और विशालकाय होकर पहाड़ियों, पहाड़ों, चोटियों, गुफाओं और घने जंगलों में विचरण करते थे।

एक बार जब वह जा रहा था, तो उसे एक सुंदर वृक्ष दिखाई दिया और उसने उसके नीचे खड़े होकर भोजन किया।

फिर एक उद्दंड बंदर पेड़ से नीचे उतरा और अपनी पीठ पर चढ़कर मल त्याग किया; फिर उसने भैंस के एक सींग को पकड़ लिया और उसकी पूंछ से झूलते हुए खूब मस्ती करने लगा। बोधिसत्व, जो धैर्य, दया और करुणा से परिपूर्ण थे, ने उसके इस दुराचार पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। बंदर ने यह क्रिया बार-बार दोहराई।

लेकिन एक दिन, उस पेड़ की आत्मा, पेड़ के तने पर खड़ी होकर, उससे बोली, "मेरे प्रभु भैंस, आप इस दुष्ट बंदर की बदतमीज़ी क्यों सहन कर रहे हैं? इसे रोकिए!" और इस विषय को समझाते हुए उसने पहले दो छंदों को इस प्रकार दोहराया:

"तुम हर विचित्र घटना को धैर्यपूर्वक क्यों सहन करते हो?"
यह शरारती और स्वार्थी बंदर तबाही मचा सकता है?
"उसे पैरों तले कुचल दो, अपने सींग से उसे भेद दो!"
उसे रोको वरना बच्चे भी उसका अपमान करेंगे।"

यह सुनकर बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे वृक्ष-परी, यदि मैं इस बंदर के दुर्व्यवहार को उसकी जन्म, वंश और शक्तियों का अपमान किए बिना सहन नहीं कर सकता, तो मेरी इच्छा कैसे पूरी हो सकती है? परन्तु यह बंदर किसी और के साथ भी ऐसा ही करेगा, उसे मेरे समान समझकर। और यदि वह किसी भयंकर भैंस के साथ ऐसा करे, तो वे उसे निश्चित रूप से मार डालेंगे। जब कोई और उसे मार डालेगा, तो मैं पीड़ा और रक्तपात के दोष से मुक्त हो जाऊंगा।" और यह कहकर उन्होंने तीसरा श्लोक दोहराया:

"अगर वह दूसरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह अभी मेरे साथ कर रहा है,
वे उसे नष्ट कर देंगे; तब मैं मुक्त हो जाऊंगा।"

कुछ दिनों बाद, बोधिसत्व कहीं और चले गए, और उनकी जगह एक दूसरा भैंसा, एक खूंखार जानवर, आकर खड़ा हो गया। दुष्ट बंदर ने उसे पुराना भैंसा समझकर उसकी पीठ पर चढ़ गया और पहले जैसा ही करने लगा। भैंसे ने उसे ज़मीन पर पटक दिया, अपना सींग बंदर के दिल में गाड़ दिया और उसे अपने खुरों से कुचल कर चूर-चूर कर दिया।

जब गुरु ने यह उपदेश समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय दुष्ट भैंसा वही था जो अब दुष्ट हाथी है, दुष्ट बंदर भी वही था, लेकिन गुणी और श्रेष्ठ भैंसा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शतपट्ट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-279-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 279
शतपत्त-जातक

“जैसे वह युवक अपने रास्ते पर था,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में पांडुका और लोहिता के बारे में सुनाई थी। छह पथभ्रष्ट भिक्षुओं में से दो—मैत्तिया और भूमजा—राजगृह नगर के पास रहते थे; दो, असजी और पुनाबसु, कितागिरि के पास, और बाकी दो, पांडुका और लोहिता, श्रावस्ती नगर के पास जेतवन मठ में रहते थे। वे शिक्षा में निर्धारित बातों पर प्रश्न उठाते थे; वे अपने मित्रों और घनिष्ठ मित्रों को यह कहकर प्रोत्साहित करते थे, “हे भिक्षु, तुम जन्म, वंश या चरित्र में इनसे कमतर नहीं हो; यदि तुम अपने मतों को त्याग दोगे, तो ये तुम पर बहुत श्रेष्ठ हो जाएँगे।” इस प्रकार की बातें कहकर वे उन्हें अपने मतों को त्यागने से रोकते थे, और इस प्रकार संघर्ष, झगड़े और विवाद उत्पन्न हो गए। भिक्षुओं ने यह बात भगवान बुद्ध को बताई। भगवान बुद्ध ने इस कारण से भिक्षुओं को एकत्रित किया, ताकि वे स्पष्टीकरण दे सकें। पांडुका और लोहिता को बुलाकर उन्होंने उनसे कहा, "भाइयों, क्या यह सच है कि आप स्वयं कुछ मामलों पर सवाल उठाते हैं और लोगों को अपनी राय देने से रोकते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ।" तब उन्होंने कहा, "तो फिर आपका व्यवहार उस मनुष्य और सारस की कहानी जैसा है;" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब काशी के एक गाँव में एक परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर, उन्होंने खेती या व्यापार से जीविका कमाने के बजाय, पाँच सौ डाकुओं को इकट्ठा किया और उनके सरदार बन गए, और सड़कों पर लूटपाट और घरों में सेंध लगाकर अपना जीवन यापन करने लगे।

अब ऐसा हुआ कि एक जमींदार ने किसी को एक हजार सिक्के दिए और उन्हें वापस मिलने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। कुछ समय बाद, उसकी पत्नी अपनी मृत्युशय्या पर पड़ी थी और अपने बेटे से बोली,

"बेटा, तुम्हारे पिता ने एक आदमी को हज़ार सिक्के दिए और उन्हें वापस लिए बिना ही उनकी मृत्यु हो गई; अगर मैं भी मर जाऊं, तो वह तुम्हें वह नहीं देंगे। जाओ, जब तक मैं जीवित हूं, उससे कहो कि वह उसे वापस लाए और तुम्हें दे दे।"

तो बेटा गया और पैसे ले आया।

माँ की मृत्यु हो गई; लेकिन वह अपने बेटे से इतना प्यार करती थी कि वह अचानक (*1) एक सियार के रूप में उस रास्ते पर प्रकट हुई जिससे वह आ रहा था। उस समय, लुटेरों का सरदार अपने गिरोह के साथ यात्रियों को लूटने के लिए सड़क के किनारे घात लगाए बैठा था। और जब उसका बेटा जंगल के प्रवेश द्वार पर पहुँचा, तो सियार बार-बार लौटकर उसे रोकने की कोशिश करता रहा; यह कहते हुए, "मेरे बेटे, जंगल में मत जाओ! वहाँ लुटेरे हैं, जो तुम्हें मार डालेंगे और तुम्हारा सारा पैसा छीन लेंगे!"

लेकिन वह आदमी उसकी बात समझ नहीं पाया। "बदकिस्मती!" उसने कहा, "यहाँ एक सियार मेरा रास्ता रोकने की कोशिश कर रही है!" और उसने लाठियों और पत्थरों से उसे भगा दिया और जंगल में चला गया।

और एक सारस लुटेरों की ओर उड़ता हुआ चिल्लाया—"देखो, एक आदमी के हाथ में हज़ार सिक्के हैं! उसे मार डालो और सिक्के ले लो!" उस युवक को समझ नहीं आया कि वह क्या कर रहा है, इसलिए उसने सोचा, "वाह! यह तो एक शुभ पक्षी है! अब मेरे लिए एक अच्छा शगुन है!" उसने आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा, "आवाज उठाओ, आवाज उठाओ, मेरे स्वामी!"

सभी ध्वनियों का अर्थ जानने वाले बोधिसत्व ने इन दोनों के कार्यों को देखा और सोचा: "सियार उस आदमी की माँ होगी; इसलिए वह उसे रोकने की कोशिश कर रही है और उसे बता रही है कि उसे मार डाला जाएगा और लूट लिया जाएगा; लेकिन सारस उसका कोई शत्रु होगा, इसलिए वह कह रहा है 'उसे मार डालो और धन ले लो;' और वह आदमी समझ नहीं पा रहा है कि क्या हो रहा है, और अपनी माँ को, जो उसका भला चाहती है, भगा देता है, जबकि सारस, जो उसका बुरा चाहता है, उसकी पूजा इस विश्वास में करता है कि वह उसका शुभचिंतक है। वह आदमी मूर्ख है।"

(बोधिसत्व, यद्यपि वे महान प्राणी हैं, कभी-कभी दुष्ट पुरुषों के रूप में जन्म लेकर दूसरों की संपत्ति हड़प लेते हैं; उनका कहना है कि यह कुंडली दोष के कारण होता है।)

तो वह युवक आगे बढ़ता गया और कुछ समय बाद डाकुओं के समूह में शामिल हो गया। बोधिसत्व ने उसे पकड़ लिया और पूछा, "तुम कहाँ रहते हो?"

"बनारस में।"

"आप कहां थे?"

"एक खास गांव में मुझे एक हजार चीजें मिलनी थीं; और मैं वहीं था।"

"क्या आपको मिला?"

"हाँ मैंने किया।"

"तुम्हें किसने भेजा?"

"गुरुजी, मेरे पिता की मृत्यु हो गई है और मेरी माता बीमार हैं; उन्होंने ही मुझे भेजा है, क्योंकि उन्हें लगा कि उनकी मृत्यु के बाद मुझे यह नहीं मिलेगा।"

"और क्या आपको पता है कि अब आपकी माँ के साथ क्या हुआ है?"

"नहीं, स्वामी।"

"तुम्हारे जाने के बाद उसकी मृत्यु हो गई; और वह तुमसे इतना प्यार करती थी कि वह तुरंत सियार बन गई और तुम्हें मारे जाने के डर से रोकने की कोशिश करती रही। तुमने उसी को डराकर भगा दिया। लेकिन सारस हमारा दुश्मन था, जो आया और उसने हमें तुम्हें मारने और तुम्हारा पैसा लेने को कहा। तुम इतने मूर्ख हो कि तुमने अपनी माँ को तुम्हारा भला चाहने वाली समझा, जबकि वह तुम्हारा भला चाहती थी, और सारस को तुम्हारा भला चाहने वाली समझा। उसने तुम्हारा कोई भला नहीं किया, लेकिन तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए बहुत अच्छी थी। अपना पैसा रखो और चले जाओ!" और उसने उसे जाने दिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त कर लिया, तो उन्होंने निम्नलिखित छंदों को दोहराया:

"जैसे ही युवक अपने रास्ते पर
जंगल के सियार ने सोचा
वह प्रतिद्वंद्वी था, उसके बने रहने का रास्ता,
हालांकि उसने उसका भला करने की कोशिश की:
वह झूठा सारस अपने सच्चे मित्र को समझ रहा है
उसे बर्बाद करने की साजिश रची जा रही थी:
"ऐसा ही एक और व्यक्ति, जो यहाँ है,
क्या उसके दोस्तों ने गलत समझा है?
वे कभी भी उनका विश्वास नहीं जीत सकते।
जो उसे उसके भले के लिए सलाह देते हैं।
"उनका मानना है कि जब दूसरे प्रशंसा करते हैं--"
भयानक भय की भविष्यवाणी:
पुराने जमाने के युवाओं की तरह
मुझे उसके ऊपर उड़ता हुआ सारस बहुत पसंद आया (*2)।"
जब गुरु ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय डाकुओं का सरदार मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) इस शब्द का तात्पर्य ऐसे प्राणी से है जो प्राकृतिक रूप से जन्म नहीं लेता, बल्कि माता-पिता की आवश्यकता के बिना आकार लेता है।

(2) वह मित्र जो लगातार दूसरे को लूटता रहता है; वह जो निरंतर विरोध करता रहता है; वह मित्र जो प्रसन्न करने के लिए चापलूसी करता है; व्यभिचार में साथ देने वाला मित्र; ये चारों बुद्धिमान हैं, जिनसे शत्रुओं की तरह भयभीत होना चाहिए, और निकट खतरे की स्थिति में इनसे दूर रहना चाहिए।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पूत-दुष्का-जातक**

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-280-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 280
पुता-दुसाका-जातक

“निःसंदेह राजा,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसने मटके तोड़ दिए थे। श्रावस्ती नगर में, हमें पता चलता है, एक दरबारी ने बुद्ध और उनके साथियों को आमंत्रित किया और उन्हें अपने उद्यान में बैठाया। भोजन परोसते समय, उसने कहा, “जो लोग उद्यान में घूमना चाहते हैं, वे घूम सकते हैं।” भिक्षु उद्यान में घूमने लगे। उसी समय माली पत्तों से लदे एक पेड़ पर चढ़ गया और कुछ बड़े पत्ते पकड़कर बोला, “यह फूलों के लिए ठीक रहेगा, यह फल के लिए,” और उनसे मटके बनाकर पेड़ की जड़ में गिरा दिए। उसके छोटे बेटे ने गिरते ही हर एक को तोड़ दिया। भिक्षुओं ने यह बात गुरु को बताई। गुरु ने कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस लड़के ने मटके तोड़े हैं: उसने पहले भी ऐसा किया है।” और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म बनारस के एक परिवार में हुआ था। जब वे बड़े हुए और गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब किसी कारणवश वे एक उद्यान में गए, जहाँ कई बंदर रहते थे। माली अपने बर्तनों को, जैसा कि हमने वर्णन किया है, नीचे फेंक रहा था और बंदरों का सरदार उन्हें गिरते ही तोड़ रहा था। बोधिसत्व ने उससे कहा, "जैसे ही माली अपने बर्तन गिराता है, बंदर सोचता है कि माली उन्हें तोड़कर उसे प्रसन्न करने का प्रयास कर रहा है," और उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

"निस्संदेह जानवरों का राजा चतुर है।"
मिट्टी के बर्तन बनाने में; वह कभी नहीं
जिस चीज को इतनी मेहनत से बनाया गया है, उसे नष्ट कर दो।
जब तक कि उसका इरादा दूसरा बनाने का न हो।"
यह सुनकर बंदर ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

न तो मेरे पिता और न ही मेरी माँ
और न ही मैं खुद दूसरा बना सकता था।
जो दूसरे बनाते हैं, हम उसे टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं:
बंदरों का यही सही तरीका है!
और बोधिसत्व ने तीसरे उत्तर के साथ जवाब दिया:

"अगर यह बंदरों का उचित स्वभाव है,
ऐसे प्राणी के लिए अनुचित तरीका क्या है!
चले जाओ—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि
आप या तो सही हैं या गलत—दोनों एक साथ!
और निंदा भरे इन शब्दों के साथ वह चला गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय बंदर वह लड़का था जो बर्तन तोड़ रहा था; लेकिन ज्ञानी व्यक्ति मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अब्भनतार-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-281-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 281
अब्भंतरा-जातक

"वहाँ एक वृक्ष उगता है," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने भिक्षुणी बिम्बादेवी (जो बुद्ध की पत्नी यशोदरा के नाम से भी जानी जाती हैं) को आम का रस पिलाया था। जब परम बुद्ध ने अपने निर्वाणिक मार्ग का सार्वभौमिक प्रसार किया, तब वैशाली नगर के एक कमरे में निवास करते हुए, गौतम बुद्ध की प्रमुख पत्नी (यशोदरा) ने शाक्य वंश (बुद्ध का वंश) की पाँच सौ स्त्रियों के साथ दीक्षा ली और दीक्षा तथा शिष्यों के पूर्ण पवित्र क्रम को प्राप्त किया। इसके बाद, पाँच सौ भिक्षुणियाँ नंदका के उपदेश सुनकर संत बन गईं। लेकिन जब गुरुजी श्रावस्ती नगर के पास रह रहे थे, तब राहुल की माता (गौतम बुद्ध की पत्नी यशोदरा) ने मन ही मन सोचा, “मेरे पति ने संन्यासी जीवन अपनाकर असीम ज्ञान प्राप्त कर लिया है; मेरा पुत्र भी संन्यासी बन गया है (बुद्ध के पुत्र राहुल ने सात वर्ष की आयु में संन्यासी बन गए थे) और उनके साथ रहता है। मैं घर के बीच में क्या करूँ? मैं भी यही जीवन अपनाऊँगी, श्रावस्ती नगर जाऊँगी और वहाँ निरंतर बुद्ध और अपने पुत्र के दर्शन करती रहूँगी।” अतः उन्होंने एक मठ में शरण ली और संन्यासी संघ में प्रवेश कर लिया। वे श्रावस्ती नगर में अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों के साथ एक कुटिया में रहने लगीं, जहाँ वे गुरुजी और अपने प्रिय पुत्र के दर्शन करती थीं। तभी नौसिखिए राहुल अपनी माताजी से मिलने आए।

एक दिन, बुद्ध की पत्नी (बहन) को पेट में तेज दर्द हुआ; जब उनका बेटा उनसे मिलने आया, तो वे उससे मिल नहीं पाईं, बल्कि कुछ अन्य लोगों ने आकर उन्हें बताया कि वह बीमार हैं। तब वह अंदर गए और अपनी माँ से पूछा, "क्या दवा लें?" माँ ने कहा, "बेटा, घर पर तो यह दर्द चीनी मिले आम के रस से ठीक हो जाता था; लेकिन अब हम भीख मांगकर गुजारा करते हैं, और वह रस हमें कहाँ मिलेगा?" नवोदित बेटे (राहुल) ने कहा, "मैं आपके लिए ले आता हूँ," और चले गए। अब, पूज्य राहुल के गुरु धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) थे, उनके गुरु महान मोग्गल्याण थे, उनके चाचा वरिष्ठ भिक्षु आनंद (बुद्ध के चचेरे भाई) थे, और उनके पिता परम बुद्ध थे: इस प्रकार वे सौभाग्यशाली थे। फिर भी, वे किसी और के पास नहीं गए, केवल अपने गुरु के पास गए; और उन्हें प्रणाम करने के बाद, उदास चेहरे के साथ उनके सामने खड़े हो गए। वरिष्ठ भिक्षु ने पूछा, "राहुल, तुम उदास क्यों लग रहे हो?" “महाराज,” उसने उत्तर दिया, “मेरी माताजी को पेट में दर्द है।” “उन्हें क्या लेना चाहिए?” “आम का रस और चीनी से उन्हें आराम मिलता है।” “ठीक है, मैं लाता हूँ; चिंता मत कीजिए।” अगले दिन वह लड़के को श्रावस्ती नगर ले गया और उसे प्रतीक्षालय में बैठाकर महल चला गया। कोसल के राजा ने वरिष्ठ भिक्षु को बैठने के लिए कहा। उसी क्षण माली पके हुए मीठे आमों की टोकरी ले आया। राजा ने छिलका उतारा, चीनी छिड़की, आमों को खुद मसला और वरिष्ठ भिक्षु के कटोरे में भर दिया। वरिष्ठ भिक्षु प्रतीक्षालय में वापस गए और आमों को नौसिखिए (राहुल) को देते हुए कहा कि वह उन्हें अपनी माताजी (बुद्ध की पत्नी) को दे दे; और उसने ऐसा ही किया। भिक्षुणी के खाते ही उसका दर्द ठीक हो गया। राजा ने दूत भी भेजे और कहा, “वरिष्ठ भिक्षु यहाँ आम का रस पीने के लिए नहीं बैठे हैं। जाकर पता लगाइए कि क्या उन्होंने इसे किसी को दिया है।” दूत बड़े भिक्षु के साथ गया और पता लगाकर राजा को बताने लौटा। राजा ने सोचा, "यदि गुरु (बुद्ध) सांसारिक जीवन में लौट आएं, तो वे सर्वशक्तिमान सम्राट होंगे; नवोदित राहुल उनके खजाने, युवराज (*1) होंगे, पवित्र नन (भिक्षुणी) उनकी खजाने, साम्राज्ञी होंगी, और सारा ब्रह्मांड उन्हीं का होगा। मुझे जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। अब वे पास में ही रहते हैं, समय बर्बाद करने का कोई समय नहीं है।" इसलिए उस दिन से वह लगातार पवित्र नन (बुद्ध की पत्नी) को आम का सिरप पिलाने लगा।

भिक्षुओं के बीच यह बात फैल गई कि कैसे वरिष्ठ भिक्षु ने पवित्र भिक्षुणी को आम का सिरप पिलाया। एक दिन वे सत्य के हॉल में बातें करने लगे: "मित्रों, मैंने सुना है कि वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने भिक्षुणी बिम्बादेवी (यशोदरा, राहुल की माता और बुद्ध की पत्नी) को आम के सिरप से सांत्वना दी।" गुरुजी अंदर आए और पूछा, "अब तुम लोग क्या बात कर रहे हो?" जब उन्होंने बताया—"भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) को वरिष्ठ भिक्षु ने आम के सिरप से सांत्वना दी हो; ऐसा पहले भी हो चुका है;" तो उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव में रहने वाले एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की, पारिवारिक जीवन में रम गए और माता-पिता के देहांत के बाद संन्यासी जीवन अपना लिया। इसके बाद वे हिमालय क्षेत्र में रहकर साधना और ज्ञान प्राप्ति के साधना-प्रसार में लगे रहे। कई ऋषि उनके चारों ओर एकत्रित हुए और वे उनके गुरु बन गए।

लंबी यात्रा के अंत में, वह नमक और मसाले लेने के लिए पहाड़ियों से नीचे आया और अपनी यात्रा के दौरान बनारस पहुँचा, जहाँ उसने एक उद्यान में अपना निवास स्थान बनाया। और इन पवित्र पुरुषों के समूह के पुण्य की महिमा से सक्का (इंद्र) का महल काँप उठा। सक्का (इंद्र) ने सोचा और समझा कि क्या हो रहा है। उसने सोचा, "मैं उनके जीवन को हानि पहुँचाऊँगा; फिर उनका विश्राम भंग होगा;

वे इतने व्याकुल होंगे कि उन्हें मन की शांति नहीं मिलेगी। तब मैं फिर से आराम पाऊँगा।" जब वह यह सोच रहा था कि यह कैसे किया जाए, तो उसे एक योजना सूझी। "मैं रात के मध्य पहर में मुख्य रानी के कक्ष में प्रवेश करूँगा और हवा में मंडराते हुए कहूँगा - 'हे देवी, यदि आप एक मध्यम आम खाएँगी, तो आप एक पुत्र को जन्म देंगी, जो सर्वशक्तिमान सम्राट बनेगा।'" वह राजा को बताएगी, और वह बाग से आम मंगवाएगा: मैं सारे फल गायब कर दूंगा। वे राजा से कहेंगे कि कोई आम नहीं है, और जब वह पूछेगा कि इसे कौन खाता है, तो वे कहेंगे 'तपस्वी'। तो ठीक मध्य पहर में, वह रानी के कक्ष में प्रकट हुआ, और हवा में मंडराते हुए, उसने अपने देवत्व को प्रकट किया, और उससे बातचीत करते हुए, पहले दो श्लोकों को दोहराया:-

"वहाँ एक वृक्ष उगता है, जिस पर दिव्य फल लगते हैं;
पुरुष इसे मध्यस्थ कहते हैं: और यदि कोई हो
वह गर्भवती होगी और उसका मांस खाएगी, वह जल्द ही
एक ऐसा व्यक्ति हो जो पूरी पृथ्वी पर शासन कर सके।
"महामहिम, आप वास्तव में एक शक्तिशाली रानी हैं;"
आपके पति, राजा, आपको बहुत प्यार करते हैं और आपसे प्रेम करते हैं।
उससे कहो कि वह तुम्हारी जरूरत के लिए आम ले आए।
और वही मध्य फल तुम्हें यहाँ लाएगा।
ये श्लोक सक्का (इंद्र) ने रानी को सुनाए; और फिर उनसे सावधान रहने और देरी न करने बल्कि स्वयं राजा को यह बात बताने के लिए कहकर, उन्हें प्रोत्साहित किया और अपने स्थान पर लौट गए।

अगले दिन, रानी बीमार होने का आभास देते हुए लेट गईं और अपनी दासियों को निर्देश देने लगीं। राजा सफेद छतरी के नीचे अपने सिंहासन पर बैठे नृत्य देख रहे थे। अपनी रानी को न देखकर उन्होंने एक दासी से पूछा कि वह कहाँ हैं।

"रानी बीमार हैं," लड़की ने उत्तर दिया।

इसलिए राजा उससे मिलने गया; और उसके पास बैठकर, उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा, "क्या बात है, देवी?"

"कुछ नहीं," उसने कहा, "बस मुझे किसी चीज की तीव्र इच्छा हो रही है।"

"आप क्या चाहती हैं, महोदया?" उसने फिर पूछा।

"एक मध्यम आकार का आम, मेरे स्वामी।"

"बीच का आम जैसी कोई चीज कहाँ होती है?"

"मुझे नहीं पता कि बीच वाला आम क्या होता है; लेकिन मुझे पता है कि अगर मुझे एक भी आम नहीं मिला तो मैं मर जाऊंगा।"

"ठीक है, हम आपको एक दिलवा देंगे; आप चिंता न करें।"

तो राजा ने उसे सांत्वना दी और चले गए। वे शाही सोफे पर बैठ गए और अपने दरबारियों को बुलवाया। उन्होंने कहा, "मेरी रानी को मध्यम आकार का आम खाने की बहुत इच्छा हो रही है। क्या किया जाए?"

किसी ने उनसे कहा, "मध्यम आम वह होता है जो दो आमों के बीच उगता है। अपने उद्यान में लोगों को भेजिए और दो आमों के बीच उगने वाला एक आम ढूंढिए; उसका फल तोड़िए और हम उसे रानी को दे देंगे।" इसलिए राजा ने ऐसा करने के लिए लोगों को भेजा।

लेकिन इंद्र ने अपनी शक्ति से सारे फल ऐसे गायब कर दिए मानो उन्हें खा लिया गया हो। आम लेने आए लोगों ने पूरे उद्यान में खोजबीन की, लेकिन उन्हें एक भी आम नहीं मिला; इसलिए वे राजा के पास वापस गए और उन्हें बताया कि यहाँ आम नहीं हैं।

राजा ने पूछा, "आम कौन खाता है?"

"तपस्वी, मेरे स्वामी।"

“इन तपस्वियों को खूब मारो और उन्हें पार्क से बाहर निकाल दो!” उसने आदेश दिया। लोगों ने सुना और आज्ञा का पालन किया: इंद्र की इच्छा पूरी हुई। रानी आम के लिए तड़पती हुई लेटी रही।

राजा को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। उन्होंने अपने दरबारियों और ब्राह्मणों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा, "क्या आप जानते हैं कि बीच का आम क्या होता है?"

ब्राह्मणों ने कहा, "हे प्रभु, मध्यम आकार का आम देवताओं (देवदूतों) का हिस्सा है। यह हिमालय में, स्वर्ण गुफा में उगता है। हमने सदियों पुरानी परंपरा से यही सुना है।"

"अच्छा, इसे कौन जाकर ला सकता है?"

"कोई इंसान नहीं जा सकता; हमें एक छोटा तोता भेजना होगा।"

उस समय राजा के परिवार में एक सुंदर युवा तोता था, जो राजकुमारों की गाड़ी के पहिये जितना बड़ा, बलवान, चतुर और धूर्तता से परिपूर्ण था। राजा ने उस तोते को बुलवाया और उससे कहा, "प्रिय तोते, मैंने तुम्हारे लिए बहुत कुछ किया है: तुम सोने के पिंजरे में रहते हो; सोने की थाली में मीठा अनाज खाते हो; मीठा पानी पीते हो। मैं तुमसे एक काम करवाना चाहता हूँ।"

"आप बोलते रहिए, मेरे स्वामी," तोते ने कहा।

"पुत्र, मेरी रानी को एक मध्य भाग वाले आम की बहुत इच्छा है; यह आम हिमालय में, स्वर्ण पर्वत पर उगता है; यह देवताओं (देवदूतों) का हिस्सा है, कोई मनुष्य वहां नहीं जा सकता। तुम्हें वहां से यह फल लाना होगा।"

“बहुत अच्छा, महाराज, मैं ऐसा ही करूँगा,” तोते ने कहा। तब राजा ने उसे सोने की थाली में मीठा अनाज खाने को दिया और चीनी का पानी पीने को दिया; फिर उसके पंखों के नीचे सौ गुना शुद्ध तेल लगाया; उसके बाद उसे दोनों हाथों में उठाया और खिड़की पर खड़े होकर उसे उड़ा ले गया।

राजा के आदेश पर, तोता मनुष्यों के मार्ग से परे, आकाश में उड़ता हुआ हिमालय के प्रथम पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले कुछ तोतों के पास पहुँचा। उसने उनसे पूछा, "मध्यम आम कहाँ है? मुझे उसका स्थान बताइए।"

उन्होंने कहा, "हमें नहीं पता, लेकिन पहाड़ियों की दूसरी श्रृंखला में रहने वाले तोते जरूर जानते होंगे।"

तोते ने बात सुनी और दूसरे क्षेत्र की ओर उड़ गया। उसके बाद वह तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे क्षेत्र में गया। वहाँ भी तोतों ने कहा, "हमें नहीं पता, लेकिन सातवें क्षेत्र में रहने वालों को पता होगा।" इसलिए वह वहाँ गया और पूछा कि बीच वाला आम का पेड़ कहाँ उगता है।

उन्होंने कहा, "गोल्डन हिल पर फलां जगह पर।"

उसने कहा, "मैं इसका फल लेने आया हूँ, मुझे वहाँ ले चलो और मेरे लिए फल ला दो।"

"यह राजा वेसवना का हिस्सा है। इसके पास जाना नामुमकिन है। जड़ से ऊपर तक पूरा पेड़ सात लोहे के जालों से घिरा हुआ है; इसकी रखवाली लाखों-करोड़ों कुम्भंडा राक्षस करते हैं; अगर वे किसी को देख लेते हैं, तो उसका अंत निश्चित है। यह जगह प्रलय की आग और नरक की आग जैसी है। ऐसी कोई बात मत पूछो!"

"अगर तुम मेरे साथ नहीं चलोगे, तो मुझे उस जगह का वर्णन करो," उसने कहा।

तो उन्होंने उसे फलां रास्ते से जाने को कहा। उसने उनकी बात ध्यान से सुनी। वह दिन में दिखाई नहीं दिया; लेकिन आधी रात को, जब जिन्न सो रहे थे, वह पेड़ के पास पहुँचा और धीरे से उसकी एक जड़ पर चढ़ने लगा, तभी लोहे का जाल खनखना उठा - जिन्न जाग गए - उन्होंने तोते को देखा और उसे पकड़कर चिल्लाए, "चोर!" फिर उन्होंने आपस में चर्चा की कि उसके साथ क्या किया जाए।

एक कहता है, "मैं उसे अपने मुंह में डालूंगा और निगल जाऊंगा!"

एक अन्य व्यक्ति कहता है, "मैं उसे कुचल दूंगा, अपने हाथों में मसल दूंगा और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा!"

एक तीसरे व्यक्ति ने कहा, "मैं उसे दो टुकड़ों में काटूंगा, फिर उसे कोयलों पर पकाकर खा जाऊंगा!"

तोते ने उनकी बातचीत सुनी। बिना किसी डर के उसने उनसे कहा, "मैं कहता हूँ, तुम जिन्न हो, किसके आदमी हो?"

"हम राजा वेसवना के हैं।"

"अच्छा, तुम्हारा स्वामी एक राजा है, और मेरा स्वामी दूसरा है। बनारस के राजा ने मुझे यहाँ मध्य आम के वृक्ष का फल लाने भेजा था। मैंने वहीं अपने राजा के लिए प्राण त्याग दिए, और मैं यहाँ हूँ। जो अपने माता-पिता या स्वामी के लिए प्राण त्याग देता है, वह तुरंत स्वर्ग में जन्म लेता है। इसलिए मैं तुरंत इस पशु रूप से देवदूतों के लोक में चला जाऊँगा!" और उसने तीसरा श्लोक दोहराया:

वे चाहे जो भी स्थान प्राप्त करें
  जो, वीरतापूर्ण आत्म-विस्मृति द्वारा,
किसी स्वामी के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करो।
  मुझे भी जल्द ही उसी स्थान तक पहुँच प्राप्त हो जाएगी।"

इसी तरह वह इस श्लोक को दोहराते हुए प्रवचन देता रहा। जिन्नों ने सुना और मन ही मन प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "यह एक नेक प्राणी है, हमें इसे मारना नहीं चाहिए—इसे जाने दो!" इसलिए उन्होंने उसे जाने दिया और कहा, "तोते, तुम आज़ाद हो! हमारे हाथों से निश्चिंत होकर जाओ!"

तोते ने कहा, "मुझे खाली हाथ मत लौटने दो, मुझे पेड़ से एक फल तोड़कर दो!"

“तोते,” उन्होंने कहा, “इस पेड़ से फल देना हमारा काम नहीं है। इस पेड़ के सारे फल चिह्नित हैं। अगर एक भी फल गलत हुआ तो हमारी जान चली जाएगी। अगर वेसवना क्रोधित हो जाए और एक बार भी देख ले, तो हज़ारों जिन्न चूर-चूर होकर ऐसे बिखर जाएंगे जैसे गर्म तवे पर भुने मटर उछल रहे हों। इसलिए हम तुम्हें कोई फल नहीं दे सकते। लेकिन हम तुम्हें एक ऐसी जगह बता देंगे जहाँ से तुम फल ले सकते हो।”

तोते ने कहा, "मुझे परवाह नहीं कि कौन देता है, मुझे फल चाहिए। मुझे बताओ कि मैं इसे कहाँ से प्राप्त कर सकता हूँ।"

"स्वर्ण पर्वत के घुमावदार रास्तों में से एक में जोतिरासा नाम का एक तपस्वी रहता है, जो वेसवना की प्रिय, कंचना-पत्ती या स्वर्णपत्ती नामक पत्तों की झोपड़ी में पवित्र अग्नि की रखवाली करता है; और उसे पेड़ से लगातार चार फल भेजता है; उसके पास जाओ।"

तोता विदा लेकर तपस्वी के पास आया; उसने तपस्वी को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। तपस्वी ने उससे पूछा,

"तुम कहाँ से आए हो?" "बनारस के राजा से।" "तुम क्यों आए हो?"

"स्वामी, हमारी रानी को बीच वाले आम का फल खाने की बहुत इच्छा है, इसीलिए मैं आया हूं। लेकिन जिन्नों ने मुझे स्वयं आम नहीं दिया, इसलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेज दिया।"

“तो बैठ जाओ, तुम्हें एक मिलेगा,” तपस्वी ने कहा। फिर वे चार आए जो वेसवना भेजा करता था। तपस्वी ने उनमें से दो खा लिए, एक तोते को खाने को दिया, और जब तोते ने उसे खा लिया तो उसने चौथा एक धागे से तोते के गले में बांध दिया और उसे छोड़ दिया— “अब जाओ!” तोता वापस उड़कर आया और उसे रानी को दे दिया। रानी ने उसे खा लिया और अपनी इच्छा पूरी कर ली, लेकिन फिर भी उसे कोई पुत्र नहीं हुआ।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने इन शब्दों में जन्म की पहचान बताई: "उस समय राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) रानी थीं, आनंद तोता थे, सारिपुत्र आम देने वाले तपस्वी थे, लेकिन उद्यान में रहने वाले तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) एक सार्वभौमिक सम्राट के साम्राज्य के सात रत्नों या खजानों में से दो।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सेय-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 282
सेय्या-जातक

“यह अच्छा है कि तुम जान लो,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में कोसल के राजा के एक दरबारी के बारे में सुनाई थी। बताया जाता है कि वह व्यक्ति राजा के लिए बहुत उपयोगी था और राजा के सभी कार्यों को करता था। उसकी उपयोगिता के कारण राजा ने उसे बहुत सम्मान दिया। अन्य लोग उससे ईर्ष्या करते थे और उन्होंने उसके बारे में झूठी अफवाहें फैलाईं और उसे बदनाम किया। राजा ने उनकी बातों पर विश्वास कर लिया और बिना उसकी गलती जाने, उसे जंजीरों में बांधकर, जबकि वह गुणी और निर्दोष था, जेल में डाल दिया। वहाँ वह एकांत में रहा; परन्तु अपने सद्‌गुणों के कारण उसे मन की शांति प्राप्त हुई और मन की शांति से उसने जीवन के नियमों को समझा और प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की। कुछ समय बाद राजा को पता चला कि वह निर्दोष है और उसने उसकी जंजीरें तोड़ दीं तथा उसे पहले से भी अधिक सम्मान दिया। वह व्यक्ति गुरु को प्रणाम करना चाहता था; और फूल और इत्र लेकर वह मठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गया। गुरु ने उनसे बड़े आदर से बात की। उन्होंने कहा, "हमने सुना है कि आप पर विपत्ति आई है।" गुरु ने कहा, "जी हाँ, लेकिन मैंने अपनी विपत्ति को ही लाभ में बदल दिया; और जब मैं कारागार में था, तब मैंने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की।" गुरु ने कहा, "मित्र, तुम अकेले नहीं हो जिसने बुराई को भलाई में बदला है; क्योंकि प्राचीन काल के बुद्धिमान लोगों ने भी तुम्हारी ही तरह बुराई को भलाई में बदला था।" और उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनकी रानी पत्नी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका पालन-पोषण और शिक्षा तक्षशिला में हुई; और अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और दस राजसी नियमों का पालन किया: उन्होंने दान दिया, सद्‌गुणों का अभ्यास किया और पवित्र दिनों का पालन किया।

अब उसके दरबारियों में से एक राजा की पत्नियों के बीच षड्यंत्र रचने लगा। नौकरों ने यह देखा और राजा को बताया कि फलां व्यक्ति षड्यंत्र कर रहा है। राजा को मामले की सच्चाई पता चली और उसने उसे बुलवाया। "फिर कभी मेरे सामने मत आना," उसने कहा और उसे निर्वासित कर दिया। वह व्यक्ति एक पड़ोसी राजा के दरबार में चला गया, और फिर वही हुआ जैसा कि ऊपर महासिलाव जन्म (*1) में वर्णित है। यहाँ भी इस राजा ने तीन बार उसकी परीक्षा ली, और दरबारी की बात पर विश्वास करके बनारस पर कब्जा करने के इरादे से एक बड़ी सेना लेकर बनारस के सामने आया। जब बनारस के राजा के पांच सौ प्रमुख योद्धाओं को यह बात पता चली, तो उन्होंने राजा से कहा,

"फलां-फलां राजा यहाँ आया है, देश को तबाह कर रहा है, बनारस पर कब्जा करने के इरादे से—चलो, हम उसे पकड़ लेते हैं!"

राजा ने कहा, "मुझे ऐसा कोई राज्य नहीं चाहिए जिसे हानि पहुँचाकर ही कायम रखा जा सके। कुछ भी न करो।"

लूटपाट करने वाले राजा ने शहर को घेर लिया। दरबारी फिर राजा के पास गए और बोले,

"मेरे स्वामी, कृपया ध्यान दें—आइए हम उसे पकड़ लें!"

“कुछ नहीं किया जा सकता,” राजा ने कहा। “नगर के द्वार खोल दो।” फिर, अपने दरबारियों से घिरे हुए, वह भव्य मंच पर राजसी ढंग से बैठ गए।

लुटेरा शहर में घुस गया, चारों द्वारों पर खड़े लोगों को मार गिराया और चबूतरे पर चढ़ गया। वहाँ उसने राजा और उसके पूरे दरबार को बंदी बना लिया, उन पर जंजीरें डालीं और उन्हें जेल में डाल दिया। जेल में बैठे राजा को लुटेरे पर दया आ गई और उसके मन में दया की भावना जागृत हुई। इसी दया के कारण दूसरे राजा को अपने शरीर में असहनीय पीड़ा हुई; वह मानो दो लपटों में जल रहा था; और अत्यधिक पीड़ा से व्याकुल होकर उसने पूछा कि क्या बात है।

उन्होंने उत्तर दिया, "तुमने एक धर्मी राजा को कैद में डाल दिया है, इसीलिए तुम पर यह विपत्ति आई है।"

वह बोधिसत्व के पास गया और उनसे क्षमा मांगी, और उनका राज्य वापस पाकर बोला, "तुम्हारा राज्य तुम्हारा ही रहे। अब से अपने शत्रुओं से निपटने का काम मुझ पर छोड़ दो।" उसने दुष्ट सलाहकार को दंडित किया और अपने नगर लौट आया।

बोधिसत्व अपने ऊंचे मंच पर भव्य वस्त्रों में, अपने दरबारियों से घिरे हुए, शान से विराजमान थे; और उन्हें संबोधित करते हुए उन्होंने प्रथम दो श्लोकों को दोहराया:

"यह बेहतर होगा कि आप जान लें, बेहतर हिस्सा"
यही करना हमेशा बेहतर होता है।
किसी के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार करके,
मैंने सौ लोगों को उनकी नियति की मौत से बचाया।
इसलिए मैं तुम सबको बताता हूँ कि तुम सबको दिखाओ
दयालुता और मित्रता की कृपा प्रिय है;
और फिर तुम अकेले स्वर्ग नहीं जा पाओगे।
हे कासी देश के लोगों, सुनो!
इस प्रकार उस महान सत्ता ने दया भाव से भरे लोगों के प्रति सद्गुण की प्रशंसा की; और बारह मील (4.23 किमी) के विशाल शहर बनारस में सफेद छत्र छोड़कर हिमालय में एकांतवास किया और धार्मिक (सन्यासी) जीवन व्यतीत किया।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से तीसरे श्लोक को दोहराया:

"ये वे शब्द हैं जो मैंने, राजा कंस ने कहे थे।"
मैं, बनारस नगर का महान शासक।
मैंने अपना धनुष नीचे रख दिया, मैंने अपना तीर का थैला नीचे रख दिया।
और मैंने आत्म-नियंत्रण में महारत हासिल कर ली।"

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद लूटपाट करने वाला राजा था, लेकिन बनारस का राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 51

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वधकि-सूकर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-283-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 283
वद्धकी-सुकरा-जातक

“सर्वोत्तम, आप सदा सर्वश्रेष्ठ रहें,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में वरिष्ठ भिक्षु धनुगहतिसा के बारे में सुनाई थी। राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के पिता महाकोसला ने जब अपनी पुत्री कोसला का विवाह राजा बिम्बिसार से किया, तो उन्होंने स्नान और इत्र के बदले एक लाख की आय देने वाला काशी गाँव दे दिया। जब अजातशत्रु ने उनके पिता राजा की हत्या कर दी, तो कोसला शोक से मर गईं। तब राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने सोचा, “अजताशत्रु ने अपने पिता को मार डाला है, मेरी बहन अपने पति के दुर्भाग्य के कारण शोक से मर गई है; मैं काशी गाँव पिता के हत्यारे को नहीं दूँगा।” अतः उन्होंने अजातशत्रु को गाँव देने से इनकार कर दिया। इस गाँव को लेकर इन दोनों के बीच समय-समय पर युद्ध होते रहे। अजातशत्रु क्रूर और बलवान था, और पसेनदी (प्रसेनजित) बहुत वृद्ध थे, इसलिए अजातशत्रु बार-बार पराजित होता रहा, और महाकोसला गाँव के लोग आम तौर पर हारते रहे। तब राजा ने अपने दरबारियों से पूछा, “हम लगातार हार रहे हैं; क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, वरिष्ठ भिक्षु मंत्रों में निपुण हैं। हमें जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं की बात सुननी चाहिए।” तब राजा ने दूतों को भेजा और उनसे उचित समय पर भिक्षुओं की बात सुनने को कहा। उस समय मठ के पास ही पत्तों की झोपड़ी में दो वरिष्ठ भिक्षु रहते थे, जिनके नाम थे वरिष्ठ भिक्षु उत्त और वरिष्ठ भिक्षु धनुगहतिसा। धनुगहतिसा रात के पहले और दूसरे पहर सोए रहे; और अंतिम पहर में जागकर उन्होंने कुछ लकड़ियाँ तोड़ीं, आग जलाई और बैठ कर बोले, “उत्त, मेरे मित्र!”

“क्या बात है, मित्र तिस्सा?” “क्या तुम सो नहीं रहे हो?” “अब हम जाग गए हैं, क्या करें?” “उठो और मेरे पास बैठो।” ऐसा ही हुआ और उन्होंने उनसे बातें करना शुरू कर दिया। “वह मूर्ख, तोंददार कोसला, उबले हुए चावल से भरा कोई भी बर्तन बिना खराब हुए नहीं रख पाता; उसे युद्ध की योजना बनाना बिल्कुल नहीं आता। वह हमेशा पिटता रहता है और उससे हर्जाना वसूला जाता है।” “पर वह क्या करे?” तभी दूत उनकी बातें सुनने के लिए खड़े हो गए। वरिष्ठ भिक्षु धनुगहतिसा ने युद्ध के स्वरूप पर चर्चा की। “महाराज,” उन्होंने कहा, “युद्ध तीन प्रकार का होता है: कमल सेना, चक्र सेना और रथ सेना (*1)। यदि अजातशत्रु को पकड़ने की इच्छा रखने वाले लोग पहाड़ियों में दो पहाड़ी किलों में तुरंत सेना तैनात कर दें, और अपनी कमजोरी का दिखावा करें, और तब तक प्रतीक्षा करें जब तक कि वे उसे पहाड़ियों के बीच न पकड़ लें, और उसका मार्ग रोक दें, फिर दोनों किलों से निकलकर उसे आगे और पीछे से घेर लें और जोर से चिल्लाएं, तो वे उसे तुरंत पकड़ लेंगे, जैसे कोई मछली मुट्ठी में पकड़ी हो; और इस प्रकार वे उसे सुरक्षित कर लेंगे।” यह सब दूतों ने अपने राजा को बताया। राजा ने आक्रमण के लिए ढोल बजवाया, अपनी सेना को रथों के अनुसार व्यवस्थित किया, अजातशत्रु को जीवित पकड़ लिया; उसकी पुत्री, राजकुमारी वजिरा का विवाह उसने अपनी बहन के पुत्र से कर दिया और स्नान के धन के बदले उसे काशी गाँव के साथ विदा कर दिया।

यह घटना भिक्षुओं के बीच प्रसिद्ध हो गई। एक दिन, वे सभी सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे; "मित्रों, मैंने सुना है कि कोसल के राजा ने धनुग्गहतिसा के निर्देशों से अजातशत्रु को परास्त कर दिया।" गुरुजी अंदर आए; "भाइयों, तुम यहाँ बैठकर किस बारे में बात कर रहे हो?" उन्होंने पूछा। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "धनुग्गहतिसा ने युद्ध की चर्चा में जो चतुराई दिखाई है, वह पहली बार नहीं है" और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व वृक्ष-आत्मा के रूप में अवतरित हुए। उस समय बनारस के पास एक गाँव में कुछ बढ़ई रहते थे। उनमें से एक बढ़ई जंगल में लकड़ी लेने गया, तो उसे एक गड्ढे में गिरा हुआ एक छोटा सूअर मिला, जिसे वह घर ले आया और अपने पास रख लिया। वह बड़ा हो गया, उसके नुकीले दांत निकल आए और वह एक सभ्य प्राणी था। क्योंकि बढ़ई ने उसे अपने पास रखा था, इसलिए उसका नाम बढ़ई का सूअर पड़ गया। जब बढ़ई पेड़ काट रहा होता था, तो सूअर अपनी थूथन से पेड़ को पलट देता था और अपने दांतों से कुल्हाड़ी, छेनी और हथौड़ा निकालता था और नापने वाली रेखा को उसके सिरे से खींचता था। बढ़ई को डर था कि कहीं कोई उसे खा न जाए; इसलिए उसने उसे उठाया और जंगल में छोड़ दिया। सूअर जंगल में भाग गया, रहने के लिए एक सुरक्षित और सुखद जगह की तलाश में; अंत में उसने पहाड़ की ढलान पर एक बड़ी गुफा देखी, जिसमें बहुत सारे कंद, जड़ें और फल थे, जो रहने के लिए एक सुखद स्थान था। सैकड़ों अन्य जंगली सूअरों ने उसे देखा और उसके पास आ गए।

उसने उनसे कहा, "तुम ही हो जिसकी मुझे तलाश थी, और मुझे तुम मिल गए। यह जगह अच्छी लग रही है; और अब मैं यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूँ।"

उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से एक अच्छी जगह है, लेकिन खतरनाक है।"

“अरे,” उसने कहा, “तुम्हें देखते ही मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने समृद्ध स्थान में रहने वाले लोग शरीर और रक्त में इतने विरल कैसे हो सकते हैं। तुम्हें किस बात का डर है?”

"सुबह-सुबह एक बाघ आता है और जिसे भी देखता है उसे पकड़कर ले जाता है।"

क्या ऐसा हमेशा होता है, या कभी-कभार ही होता है?

"हमेशा।"

"वहाँ कितने बाघ हैं?"

"केवल एक।"

"क्या—तुम सबके लिए तो एक ही काफी है!"

"जी श्रीमान।"

"मैं उसे पकड़ लूंगा, बस तुम मेरी बात मानो। यह बाघ कहाँ रहता है?"

"उस पहाड़ी पर।"

अतः रात में उसने सूअरों को प्रशिक्षण दिया और उन्हें युद्ध के लिए तैयार किया; उन्हें युद्ध का विज्ञान समझाया। "युद्ध तीन प्रकार के होते हैं—कमल सेना, चक्र सेना और रथ सेना" और उसने उन्हें कमल के आकार में व्यवस्थित किया। वह लाभप्रद स्थान जानता था; इसलिए उसने कहा, "यहाँ हमें अपना युद्ध स्थापित करना चाहिए।" उसने माताओं और उनके दूध पीते बच्चों को मध्य में रखा; इनके चारों ओर उसने बिना बच्चों वाली मादा सूअरों को रखा; इनके चारों ओर छोटे सूअरों को; इनके चारों ओर अपेक्षाकृत छोटे सूअरों को; इनके चारों ओर उन सभी सूअरों को जिनके दांत विकसित हो चुके थे; इनके चारों ओर युद्ध के लिए तैयार, बलवान और शक्तिशाली सूअरों को दस-बीस की संख्या में रखा; इस प्रकार उसने उन्हें सधी हुई पंक्तियों में रखा। अपनी स्थिति के सामने उसने एक गोल गड्ढा खुदवाया; उसके पीछे, एक गड्ढा धीरे-धीरे गहरा होता गया, जो सूप (अनाज फटकने वाली टोकरी) के आकार का था (*2)। जैसे ही वह साठ-सत्तर सूअरों के साथ उनके बीच घूम रहा था और उन्हें साहस बनाए रखने के लिए कह रहा था, भोर हो गई।

बाघ जाग उठा। "अब समय आ गया है!" उसने सोचा। वह दौड़ता हुआ तब तक आगे बढ़ा जब तक उसे वे दिखाई नहीं दिए; फिर पठार पर रुक गया और सूअरों के झुंड को घूरने लगा। "तुम्हें भी घूरो!" बढ़ई के सूअर ने बाकी सूअरों को इशारा करते हुए कहा। सभी सूअरों ने उसे घूरा। बाघ ने अपना मुंह खोला और एक लंबी सांस ली: सभी सूअरों ने भी ऐसा ही किया। बाघ ने शौच किया: सूअरों ने भी। इस प्रकार बाघ जो भी करता, सूअर भी उसके पीछे वही करते।

"अरे, ये क्या हो रहा है!" बाघ ने हैरानी से कहा। "पहले तो ये मुझे देखते ही भाग जाते थे—दरअसल, इतना डरते थे कि दौड़ भी नहीं पाते थे। अब तो भागने की बजाय, ये मेरे सामने डटकर खड़े हो जाते हैं! मैं जो भी करता हूँ, ये उसकी नकल करते हैं। वहाँ एक आदमी ऊँची जगह पर बैठा है: उसी ने इस भीड़ को संगठित किया है। खैर, मुझे समझ नहीं आ रहा कि इनसे कैसे निपटूँ।" और वह मुड़कर अपनी मांद में वापस चला गया।

अब एक पाखंडी साधु था, जिसे बाघ के शिकार का हिस्सा मिलता था। इस बार बाघ खाली हाथ लौट आया। यह देखकर साधु ने निम्नलिखित श्लोक दोहराया।

"सर्वश्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ जो आप हमेशा पहले लाते थे"
जब आप जंगली सूअर का शिकार करने गए थे।
अब तुम खाली हाथ होकर दुःख से व्याकुल हो रहे हो।
आज आपके भीतर अतीत की वो ताकत कहां है?
इस संबोधन पर, टाइगर ने एक और छंद दोहराया:

एक समय था जब वे चारों ओर हड़बड़ी मचाते थे।
उनकी कमियों को ढूंढने के लिए, एक भयभीत हार।
लेकिन अब वे घनी पंक्तियों में एकजुट होकर गुर्राते हैं:
वे अजेय हैं, डटकर मेरा सामना कर रहे हैं।"
"अरे, उनसे डरो मत!" साधु ने आग्रह किया। "एक दहाड़ और एक छलांग ही उन्हें बुरी तरह डरा देगी और वे घबराकर जल्दबाजी में भागने लगेंगे।" बाघ ने उनकी बात मान ली। हिम्मत जुटाकर वह वापस पठार पर खड़ा हो गया।

बढ़ई का सूअर दोनों गड्ढों के बीच खड़ा था। "देखो मालिक! वह बदमाश फिर आ गया!" सूअरों ने चिल्लाकर कहा। "अरे, डरो मत, अब वह हमारे हाथ में है।"

एक ज़ोरदार दहाड़ के साथ बाघ बढ़ई के सूअर पर झपटा। जैसे ही वह कूदा, सूअर चकमा खाकर सीधे गोल गड्ढे में गिर गया। बाघ रुक नहीं सका, बल्कि लुढ़कता हुआ दूसरे गड्ढे के जबड़ों में जा गिरा, जहाँ गड्ढा बहुत संकरा था। सूअर अपने गड्ढे से उछलकर बाहर आया और बिजली की तेज़ी से अपने दांत बाघ की जांघों में घुसा दिए, उसकी वृहनियों को चीर डाला, अपने नुकीले दांत उसके मीठे मांस में गाड़ दिए और उसके सिर को घायल कर दिया। फिर उसने उसे गड्ढे से बाहर फेंक दिया और ज़ोर से चिल्लाया—"ये रहा तुम्हारा दुश्मन!" जो पहले आए थे उन्हें बाघ खाने को मिला; लेकिन जो बाद में आए वे एक-दूसरे के मुंह सूंघते रहे और पूछते रहे कि बाघ का मांस कैसा होता है!

लेकिन सूअर अब भी बेचैन थे। "अब क्या बात है?" हमारे सूअर ने पूछा, जिसने उनकी हलचल पर ध्यान दिया था।

उन्होंने कहा, "गुरुजी, एक बाघ को मारना तो ठीक है, लेकिन वह पाखंडी साधु दस और बाघ ला सकता है!"

"कौन है ये?"

"एक दुष्ट तपस्वी।"

"मैंने बाघ को मार डाला है; क्या तुम्हें लगता है कि कोई आदमी मुझे नुकसान पहुंचा सकता है? चलो, हम उसे पकड़ लेते हैं।" यह कहकर वे सब चल पड़े।

अब वह आदमी सोच रहा था कि बाघ को आने में इतनी देर क्यों लग रही है। क्या उसे सूअरों ने पकड़ लिया होगा? उसने सोचा। आखिरकार वह रास्ते में उससे मिलने के लिए चल पड़ा; और जैसे ही वह चला, सूअर आ गए! उसने अपना सामान उठाया और भाग निकला। सूअर उसके पीछे दौड़े। उसने अपना बोझ फेंक दिया और पूरी तेज़ी से एक अंजीर के पेड़ पर चढ़ गया।

"अब तो मालिक, सब कुछ गड़बड़ हो गया!" झुंड चिल्लाया। "वह आदमी पेड़ पर चढ़ गया है!"

"कौन सा पेड़?" उनके नेता ने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, "एक अंजीर का पेड़।"

“अच्छा, ठीक है,” सरदार ने कहा। “मादा सूअर पानी लाएँगी, बच्चे पेड़ के चारों ओर खुदाई करेंगे, नर सूअर जड़ों को नोचेंगे, और बाकी सब पेड़ को घेरकर पहरा देंगे।” उन्होंने उसके कहे अनुसार अपने-अपने काम किए; इसी बीच उसने एक मोटी जड़ पर पूरी ताकत से हमला किया, मानो कुल्हाड़ी से वार किया हो; और एक ही वार में उसने पेड़ को गिरा दिया। जो नर सूअर उस आदमी का इंतज़ार कर रहे थे, उन्होंने उसे नीचे गिरा दिया, उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए, और पल भर में उसकी हड्डियाँ कुतर कर साफ कर दीं!

अब उन्होंने बढ़ई के सूअर को पेड़ के तने पर बिठाया। उन्होंने मरे हुए आदमी के खोल को पानी से भर दिया और सूअर का अभिषेक करके उसे अपना राजा नियुक्त किया; एक युवा मादा सूअर को उन्होंने उसकी पत्नी नियुक्त किया।

ऐसा कहा जाता है कि यही उस प्रथा की उत्पत्ति है जिसका पालन आज भी किया जाता है। आजकल जब लोग किसी को राजा बनाते हैं, तो उसे अंजीर की लकड़ी की एक सुंदर कुर्सी पर बिठाया जाता है और उस पर तीन सीपियाँ छिड़की जाती हैं।

उस जंगल में रहने वाली एक परी ने यह अद्‌भुत दृश्य देखा। पेड़ के तने की एक दरार में प्रकट होकर, उसने सूअरों के सामने तीसरी पंक्ति दोहराई:

"यहां एकत्रित सभी जनजातियों को सम्मान मिले!"
मैंने स्वयं एक अद्‌भुत मिलन देखा!
हाथियों ने एक बाघ पर कैसे विजय प्राप्त की
संघीय शक्ति और एकता के बल पर!

इस प्रवचन के बाद गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "वृद्ध भिक्षु धनुग्गहा बढ़ई का सूअर थे, और मैं वृक्ष-परी थी।"

फुटनोट:

(1) ये संस्कृत में भी तकनीकी शब्द हैं (पद्मव्यूहो, चकत डिग्री, चक्र डिग्री); देखें मनु 7. 188, 7. 187, और बीआर डाइट. एसवी। 'पहिया' स्वयं स्पष्ट है: 'गाड़ी' एक कील के आकार की पंक्ति थी; 'कमल', जैसा कि बुहलर (एसबीई पृष्ठ 246 में मनु का अनुवाद) ने उल्लेख किया है, "सभी तरफ समान रूप से फैला हुआ और पूरी तरह से गोलाकार है, जिसका केंद्र राजा द्वारा अधिग्रहित है।"

(2) फटकने (छानने) की टोकरी की तीन तरफ नीची दीवारें होती हैं, जिनमें से दो खुली तरफ ढलान वाली होती हैं। इसे हिंदी में 'सूप' भी कहते हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिरी-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----ll-284-ll----->>>> अगला

जातक क्रमांक 284
सिरी-जातक

“कठिन परिश्रम करने वालों को ही धन प्राप्त होता है,” इत्यादि — यह कथा गुरु (बुद्ध) ने एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई जिसने सौभाग्य चुरा लिया था। इस जन्म-कथा की परिस्थितियाँ खदिरंगा जन्म (*1) में ऊपर दी गई हैं। पहले की तरह, अनाथपिंडिका के घर के द्वार पर तपस्या कर रही एक दुष्ट आत्मा चौवन करोड़ (10 मिलियन) सोना लाकर भंडारगृहों में भर लाई और उस महान व्यक्ति की मित्र बन गई। वह उसे गुरु के समक्ष ले आई। गुरु ने उसे प्रवचन दिया। उसने सुना और धर्म परिवर्तन के मार्ग पर चल पड़ी। तब से उस महान व्यक्ति का मान-सम्मान पहले की तरह ही बढ़ गया। अब श्रावस्ती नगर में एक ब्राह्मण रहता था, जो शुभ संकेतों का ज्ञाता था, उसने इस प्रकार सोचा, “अनाथपिंडिका गरीब था, फिर प्रसिद्ध हो गया। क्या होगा यदि मैं ऐसा दिखावा करूँ कि मैं उससे मिलने गया था और उसका सौभाग्य चुरा लूँ?” अतः वह उसके घर गया और उसका आतिथ्य सत्कार किया गया। शिष्टाचार के बाद, मेज़बान ने उससे पूछा कि वह क्यों आया है। ब्राह्मण यह देखने के लिए इधर-उधर देख रहा था कि उस व्यक्ति का भाग्य कहाँ छिपा है। अनाथपिंडिका के पास एक सफेद मुर्गा था, बिल्कुल साफ सफेद, जिसे वह सोने के पिंजरे में रखता था, और उस मुर्गे की कलगी में उस महान व्यक्ति का भाग्य छिपा था। ब्राह्मण ने चारों ओर देखा, जहाँ भाग्य छिपा था। "महाराज," उसने कहा, "मैं पाँच सौ युवकों को जादू-टोना सिखाता हूँ। हम एक ऐसे मुर्गे से परेशान हैं जो गलत समय पर बांग देता है। आपका मुर्गा सही समय पर बांग देता है। मैं उसी के लिए आया हूँ; क्या आप उसे मुझे दे देंगे?" "जी हाँ," दूसरे ने कहा: और जैसे ही यह शब्द बोला गया, वह देहाती मुर्गे की कलगी छोड़कर तकिये में रखे एक रत्न में जा बैठा। ब्राह्मण ने देखा कि भाग्य उस रत्न में चला गया है, और उसने उसे भी माँग लिया। जैसे ही मालिक उसे देने के लिए राजी हुआ, भाग्य रत्न छोड़कर तकिये पर रखे आत्मरक्षा के डंडे में जा बैठा। ब्राह्मण ने उसे देखा और फिर से माँग लिया। “इसे ले लो, और अब तुम जाओ,” मालिक ने कहा; और पल भर में भाग्य गदा से निकलकर मालिक की मुख्य पत्नी, जिसका नाम लेडी पुन्नलक्खना था, के सिर पर जा गिरा। यह देखकर चोरी करने वाले ब्राह्मण ने सोचा, “यह एक ऐसी वस्तु है जिसे मैं मांग नहीं सकता।” फिर उसने उस महान व्यक्ति से कहा, “महाराज,” उसने कहा, “मैं आपके घर आपका भाग्य चुराने आया था। भाग्य आपके मुर्गे की कलगी में था। लेकिन जब आपने मुझे मुर्गा दिया, तो भाग्य इस रत्न में चला गया; जब आपने मुझे रत्न दिया, तो वह आपकी छड़ी में चला गया; जब आपने मुझे छड़ी दी, तो वह उससे निकलकर लेडी पुन्नलक्खना के सिर पर चला गया। निश्चय ही यह ऐसी वस्तु है जिसे मैं कभी नहीं पा सकता। आपका भाग्य चुराना असंभव है—तो इसे अपने पास ही रखो!” और अपनी सीट से उठकर वह चला गया। अनाथपिंडिका ने गुरु को बताने का निश्चय किया; अतः वह मठ में आया, और आदरपूर्वक उनका अभिवादन करने के बाद एक तरफ बैठ गया, और बुद्ध को सारी बात बताई। गुरु ने सुना और कहा, "भले आदमी, आजकल एक आदमी का भाग्य दूसरे को नहीं मिलता।"लेकिन पहले जो भाग्य कम बुद्धि वालों का होता था, वह बुद्धिमानों को मिलता था;" और उसने उसे एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की और अपने परिवार के साथ रहे; लेकिन जब उनके माता-पिता का देहांत हो गया, तो वे बहुत दुखी हुए और हिमालय में एक संन्यासी का जीवन व्यतीत करने चले गए, और वहाँ उन्होंने अपनी क्षमताओं और सिद्धियों को विकसित किया।

काफी समय बीत गया और वह नमक और भोजन की तलाश में आबादी वाले इलाकों में आया और बनारस के राजा के बागों में रहने लगा। अगले दिन, भीख मांगते हुए वह एक हाथी प्रशिक्षक के दरवाजे पर पहुँचा। उस व्यक्ति को उसका व्यवहार और तौर-तरीका पसंद आया, उसने उसे भोजन कराया और अपने घर में रहने की जगह दी, और लगातार उसकी सेवा करता रहा।

तभी एक आदमी, जिसका काम लकड़ियाँ इकट्ठा करना था, जंगल से समय पर शहर नहीं लौट पाया। उसने रात एक मंदिर में बिताई और सिर के नीचे लकड़ियों का गट्ठा रखकर तकिया बनाया। उस मंदिर में कई मुर्गे खुले में थे, जो पास ही एक पेड़ पर बैठे थे। सुबह होते-होते, उनमें से एक जो ऊँची जगह पर बैठा था, उसने नीचे बैठे एक पक्षी की पीठ पर बीट कर दी। "किसने मेरे ऊपर बीट की?" दूसरे ने चिल्लाकर कहा। "मैंने की," पहले ने कहा। "और क्यों?" "सोचा नहीं," दूसरे ने कहा; और फिर से बीट कर दी। इस पर दोनों एक-दूसरे को गाली देने लगे और चिल्लाने लगे—"तुम्हें क्या शक्ति मिली है? तुम्हें क्या शक्ति मिली है?" आखिर में नीचे वाले ने कहा, "जो कोई मुझे मारेगा और कोयले पर भूनकर मेरा मांस खाएगा, उसे सुबह एक हजार सिक्के मिलेंगे!" और ऊपर वाले ने उत्तर दिया—"छी, छी, ऐसी छोटी सी बात पर घमंड मत करो! जो कोई मेरे मांसल भाग खाएगा, वह राजा बनेगा; यदि वह मेरा बाहरी भाग खाएगा, तो वह

सेनापति या रानी बनेगा, इस बात पर निर्भर करते हुए कि वह पुरुष है या स्त्री; यदि वह मेरी हड्डियों के पास का मांस खाएगा, तो उसे शाही कोषाध्यक्ष का पद मिलेगा, यदि वह गृहस्थ है; या, यदि वह पवित्र पुरुष है, तो वह राजा का प्रिय बनेगा!"

लकड़ी बीनने वाले ने यह सब सुना और सोचा, "अब अगर मैं राजा बन जाऊँ, तो हज़ार सिक्कों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।" चुपके से वह पेड़ पर चढ़ा, सबसे ऊपर वाले मुर्गे को पकड़ा और उसे मार डाला। उसने मुर्गे को अपने कपड़े की तह में बाँध लिया और मन ही मन कहा, "अब मैं राजा बनूँगा!" जैसे ही द्वार खुले, वह अंदर चला गया। उसने मुर्गे के पंख नोचे, उसे साफ़ किया और अपनी पत्नी को देते हुए कहा कि वह मांस को स्वादिष्ट बनाए। पत्नी ने चावल के साथ मांस तैयार किया और उसे अपने स्वामी के सामने रखते हुए कहा, "खाओ।"

“हे पत्नी,” उसने कहा, “इस मांस में बहुत पुण्य है। इसे खाने से मैं राजा बन जाऊँगा और तुम मेरी रानी!” इसलिए वे मांस और चावल लेकर गंगा किनारे गए, खाने से पहले स्नान करने के इरादे से। फिर, मांस और चावल किनारे पर रखकर वे स्नान करने चले गए।

तभी एक हवा चली और पानी में हलचल मच गई, जिससे मांस बह गया। वह नदी में बहता हुआ एक हाथी प्रशिक्षक की नज़र में आ गया, जो एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था और नीचे अपने हाथियों को नहला रहा था। उसने पूछा, "यह क्या है?" और उसे उठा लिया। जवाब मिला, "यह पक्षी और चावल है, महाराज।" उसने उसे लपेटकर सील कर दिया और अपनी पत्नी को घर भेज दिया, साथ ही यह संदेश भी दिया कि जब वह वापस आए तो इसे खोल दे। लकड़ी बीनने वाला भी भाग गया, उसका पेट रेत और पानी से फूला हुआ था, जिसे उसने निगल लिया था।

अब एक तपस्वी, जिसे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, जो हाथी प्रशिक्षक का प्रिय पुजारी था, मन ही मन सोच रहा था, "मेरा मित्र, जो मेरा संरक्षक है, हाथियों के साथ अपना पद नहीं छोड़ता। उसे पदोन्नति कब मिलेगी?" ऐसा सोचते हुए, उसने अपनी दिव्य दृष्टि से उस व्यक्ति को देखा और उसके कार्यों को समझ लिया। वह आगे बढ़ा और संरक्षक के घर में बैठ गया।

जब गुरुजी लौटे, तो उन्होंने आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। फिर उन्होंने पार्सल मंगवाकर तपस्वी के लिए भोजन और पानी लाने का आदेश दिया। तपस्वी ने भोजन ग्रहण नहीं किया, बल्कि कहा, "मैं इसे बाँट लूँगा।" गुरुजी ने उन्हें अनुमति दे दी। फिर उन्होंने मांस को अलग-अलग हिस्सों में बाँटा और हाथी-प्रशिक्षक को मांसल भाग, उसकी पत्नी को बाहरी भाग और हड्डियों के आसपास का मांस अपने हिस्से के लिए दे दिया। भोजन समाप्त होने के बाद उन्होंने कहा, "आज से तीसरे दिन तुम राजा बनोगे। अपने कार्यों का ध्यान रखना!" और वे चले गए।

तीसरे दिन एक पड़ोसी राजा आया और उसने बनारस को घेर लिया। राजा ने अपने हाथी प्रशिक्षक को राजसी वस्त्र धारण करने का आदेश दिया और उसे अपने हाथी पर सवार होकर युद्ध करने के लिए कहा। उसने स्वयं भी वेश बदलकर सेना में शामिल हो गया; तभी एक तीर आया और उसे लग गया, जिससे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। प्रशिक्षक को राजा की मृत्यु की सूचना मिली तो उसने बड़ी मात्रा में धन मंगवाया और ढोल बजाकर घोषणा की, "जिनके पास धन नहीं है, वे आगे बढ़ें और युद्ध करें!" योद्धाओं के समूह ने पलक झपकते ही शत्रु राजा को मार डाला।

राजा के अंतिम संस्कार के बाद दरबारी इस बात पर विचार-विमर्श करने लगे कि किसे राजा बनाया जाए। उन्होंने कहा, "जब हमारे राजा जीवित थे, तब उन्होंने अपने राजसी वस्त्र हाथी प्रशिक्षक को पहना दिए थे। इसी व्यक्ति ने युद्ध लड़कर राज्य जीता है। राज्य इसी को दिया जाना चाहिए!" और उन्होंने उसे राजा नियुक्त किया और उसकी पत्नी को प्रधान रानी बनाया। बोधिसत्व उनके विश्वासपात्र बने।

इस प्रवचन के बाद, गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से, निम्नलिखित दो श्लोक कहे:

जो लोग कड़ी मेहनत करते हैं, उनके पास चाहे कितनी भी दौलत हो।
भाग्य की सहायता के बिना कभी भी कुछ हासिल नहीं किया जा सकता।
यह सब भाग्य की देवी की कृपा से हुआ।
कुशल और अकुशल दोनों को समान रूप से लाभ प्राप्त होता है।
"पूरी दुनिया में बहुत से लोग हमारी नजरों के सामने आते हैं,"
न केवल अच्छे, बल्कि बिल्कुल अलग तरह के जीव।
जिसका यह सौभाग्य है कि वह इसे प्राप्त करे
"संग्रहित धन जो उनका अधिकार नहीं है।"

इसके बाद गुरु ने कहा, "हे ईश्वर, इन प्राणियों के पास पिछले जन्मों में अर्जित पुण्य के सिवा कोई और साधन नहीं है; इसी कारण तुम उन स्थानों पर भी खजाने प्राप्त कर सकते हो जहाँ कोई खान नहीं है।" फिर उन्होंने निम्नलिखित शास्त्र का पाठ किया:

सभी अच्छी चीजों का खजाना मौजूद है
जो देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों दोनों की मनोकामनाएं पूरी करता है।
सुंदर रूप, आवाज, कद-काठी, आकार और संप्रभुता
अपनी पूरी शान-शौकत के साथ, वह खजाना उसी खजाने में समाहित है।
प्रभुत्व और शासन, शाही सुख,
उस खजाने के भीतर स्वर्ग का मुकुट है।
सभी मानवीय सुख, स्वर्ग के आनंद,
निर्वाण का स्वरूप, उस भंडार से दिया जाता है।
सच्ची मित्रता के बंधन, ज्ञान की स्वतंत्रता,
दृढ़ आत्मसंयम, उसी खजाने में निहित है।
मोक्ष (निर्वाण), समझ, प्रशिक्षण, उपयुक्तता
इससे पच्चेका बुद्धों की प्रतिमाएं उत्पन्न की जा सकें।
इस प्रकार इस गुण में एक जादुई सद्गुण निहित है;
बुद्धिमान और दृढ़ निश्चयी सभी लोग इसकी प्रशंसा करते हैं।
अंत में पक्षी ने तीसरे श्लोक को दोहराया, जिसमें अनाथपिंडिका के भाग्य में छिपे खजानों का वर्णन किया गया था।

"एक पक्षी, एक रत्न, एक गदा, एक पत्नी--"
शुभ चिह्नों वाले ये सभी लोग प्रचलित थे।
इन सभी खजानों के लिए, यह ज्ञात हो कि
एक नेक और निष्कलंक व्यक्ति ने यह बात स्वीकार की।
फिर उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "वरिष्ठ भिक्षु आनंद राजा थे, और कुलपुजारी स्वयं बुद्ध थे।"

फुटनोट:

(1)सं. 40

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मणिसुकर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-285-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 285
मानिसुकरा-जातक

“वह नरक में जाएगा” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुंदरी की हत्या के बारे में सुनाई थी। उस समय हमें पता चलता है कि बोधिसत्व को बहुत सम्मान प्राप्त था। परिस्थितियाँ कंधक (*1) में वर्णित परिस्थितियों के समान थीं; यह उनका संक्षिप्त विवरण है। भगवान बुद्ध के पवित्र संघ को पाँच नदियों की बाढ़ की तरह लाभ और सम्मान प्राप्त हुआ था; गलत अनुयायियों ने पाया कि अब उन्हें लाभ और सम्मान नहीं मिल रहा है, वे सूर्योदय के समय जुगनू की तरह धुंधले हो गए थे। वे एकत्रित हुए और सलाह ली: “जब से गौतम (बुद्ध) प्रकट हुए हैं, हमारा लाभ और यश हमसे दूर हो गया है। कोई भी हमारे अस्तित्व को नहीं जानता। कौन हमारी मदद करेगा गौतम (बुद्ध) को बदनाम करने में, और उन्हें यह सब प्राप्त करने से रोकने में?” तब उन्हें एक विचार आया। “सुंदरी हमें ऐसा करने में सक्षम बनाएगी।” इसलिए जब एक दिन सुंदरी गलत अनुयायियों के उपवन में गईं, तो उन्होंने उनका अभिवादन किया, लेकिन और कुछ नहीं कहा। उन्होंने बार-बार उनसे बात की, लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। “क्या किसी बात से साधु-संतों को ठेस पहुंची है?” उसने पूछा। “बहनो, क्या तुम नहीं देखतीं कि गुरु गौतम (बुद्ध) हमें कितना परेशान करते हैं, हमें दान और सम्मान से वंचित करते हैं?” “मैं क्या कर सकती हूँ?” उसने कहा। “बहनो, तुम सुंदर और आकर्षक हो। तुम गौतम (बुद्ध) को अपमानित कर सकती हो, और तुम्हारे शब्द बहुतों को प्रभावित करेंगे, और इस प्रकार तुम हमारे लाभ और प्रतिष्ठा को वापस दिला सकती हो।” वह मान गई और विदा हो गई। इसके बाद

वह फूल, सुगंध, कपूर, मिठाई और फल लेकर शाम को, जब गुरु के प्रवचन सुनकर बड़ी भीड़ शहर में प्रवेश कर जाती थी, तो वह जेतवन मठ की ओर मुख करके जाती थी। यदि कोई पूछता कि वह कहाँ जा रही है, तो वह कहती, "गुरु गौतम (बुद्ध) के पास; मैं उनके साथ एक सुगंधित कक्ष में रहती हूँ।" फिर वह रात किसी धर्मभ्रष्ट भिक्षुओं की बस्ती में बिताती और सुबह जेतवन मठ से शहर की ओर जाने वाली सड़क पर निकल पड़ती। जब कोई उससे पूछता कि वह कहाँ जा रही है, तो वह उत्तर देती, "मैं वरिष्ठ भिक्षु गौतम (बुद्ध) के साथ एक सुगंधित कक्ष में थी, और उन्होंने मेरे साथ प्रेम किया।" कुछ दिनों बाद उन्होंने कुछ गुंडों को गौतम (बुद्ध) के कक्ष के सामने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को कूड़े के ढेर में फेंकने के लिए भेजा। और उन्होंने ऐसा ही किया। तब उन अनुयायियों ने सुंदरी के पीछे शोर मचाया और राजा को सूचित किया। राजा ने पूछा कि उन्हें किस बात का संदेह है। उन्होंने उत्तर दिया कि वह पिछले कुछ दिनों से जेतवन मठ में थी, लेकिन उसके बाद क्या हुआ, यह उन्हें नहीं पता। राजा ने उन्हें उसकी खोज के लिए भेजा। इस अनुमति पर अमल करते हुए, वे अपने नौकरों को लेकर जेतवन मठ गए, जहाँ उन्होंने खोजबीन करते-करते उसे कूड़े के ढेर में पाया। वे शव को नगर में लाए और राजा को बताया कि गौतम (बुद्ध) के शिष्यों ने अपने गुरु के पाप को छिपाने के लिए सुंदरी की हत्या कर उसे कूड़े के ढेर में फेंक दिया है। राजा ने उन्हें पूरे शहर में खोजबीन करने का आदेश दिया।वे गलियों में चिल्लाते हुए गए, "देखो, शाक्य राजकुमार के वरिष्ठ भिक्षुओं ने क्या किया है!" और महल के द्वार पर लौट आए। राजा ने सुंदरी के शव को एक चबूतरे पर रखा था और उसे श्मशान में पहरा देने के लिए रखा था। पवित्र शिष्यों को छोड़कर सभी लोग शहर के अंदर, शहर के बाहर, उद्यानों और जंगलों में घूम-घूम कर भिक्षुओं को गालियां दे रहे थे और चिल्ला रहे थे, "देखो, शाक्य राजकुमार के वरिष्ठ भिक्षुओं ने क्या किया है!" भिक्षुओं ने यह सब बुद्ध को बताया। गुरु ने कहा, "अच्छा, जाओ और इन लोगों को इन शब्दों में फटकारो:-"

झूठ में आनंद लेने वाला नरक में जाएगा।
और जो किसी काम को करने के बाद उसका खंडन करता है:
जब मृत्यु उन्हें हमसे छीन लेगी, तब ये दोनों
जैसे अन्यत्र बुरे कर्म करने वाले लोग उठ खड़े होंगे (*2)

राजा ने कुछ लोगों को यह पता लगाने का आदेश दिया कि क्या सुंदरी की हत्या किसी और ने की थी। अब वे बदमाश खून का पैसा पी चुके थे और आपस में झगड़ रहे थे। एक ने दूसरे से कहा, "तुमने सुंदरी को एक ही वार में मार डाला, फिर उसे कूड़े के ढेर में फेंक दिया, और देखो, तुम खून के पैसे से शराब खरीद रहे हो!" "ठीक है, ठीक है," राजा के दूतों ने कहा; और उन्होंने बदमाशों को पकड़कर राजा के सामने घसीट कर लाया। "क्या तुमने उसकी हत्या की?" राजा ने पूछा। उन्होंने कहा, हाँ, उन्होंने की। "किसने पूछा?" "गलत मानने वालों ने, महाराज।" राजा ने गलत मानने वालों को बुलवाया। "सुंदरी को उठाओ," उसने कहा, "और उसे पूरे शहर में घुमाओ, और चिल्लाते हुए जाओ: 'इस स्त्री सुंदरी ने संत गौतम (बुद्ध) को बदनाम करना चाहा; हमने उसकी हत्या करवाई; दोष गौतम (बुद्ध) का नहीं है, न ही उनके शिष्यों का; दोष हमारा है!'" उन्होंने वैसा ही किया। बहुत से गैर-धर्मांतरित लोगों ने विश्वास कर लिया, और गलत विश्वासियों को हत्या के दंड से मुक्त कर दिया गया। तब से बुद्ध की प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई। फिर एक दिन सत्य के हॉल में कानाफूसी शुरू हो गई: "मित्र, गलत विश्वासियों ने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने की सोची, और उन्होंने केवल खुद को ही धूमिल किया: तब से, हमारी उन्नति और यश बढ़ता ही जा रहा है!" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं? उन्होंने उन्हें बताया। "भाइयों," उन्होंने कहा, "बुद्ध को अपवित्र करना असंभव है। बुद्ध को कलंकित करने का प्रयास करना, एक उत्तम रत्न को कलंकित करने के प्रयास के समान है। बीते युगों में लोगों ने एक उत्तम रत्न को कलंकित करने की इच्छा की, और चाहे उन्होंने कितना भी प्रयास किया, वे असफल रहे।" और उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर, उन्होंने इच्छाओं से उत्पन्न होने वाले कष्ट को भलीभांति समझा और हिमालय की तीन पर्वत श्रृंखलाओं को पार करते हुए एकांतवास में चले गए, जहाँ वे पत्तों की कुटिया में रहने लगे।

उसकी झोपड़ी के पास एक क्रिस्टल की गुफा थी, जिसमें तीस जंगली सूअर रहते थे। गुफा के पास एक शेर घूमता रहता था। उसकी परछाईं क्रिस्टल में दिखाई देती थी। जंगली सूअर इस परछाईं को देखकर डर जाते थे और दुबले-पतले हो जाते थे। उन्होंने सोचा, "हमें परछाईं इसलिए दिख रही है क्योंकि यह क्रिस्टल साफ है। हम इसे गंदा करके इसका रंग बदल देंगे।" इसलिए वे पास के एक तालाब से थोड़ी मिट्टी लाए और उससे क्रिस्टल को खूब रगड़ा। लेकिन जंगली सूअरों के बालों से लगातार रगड़ने के कारण क्रिस्टल पहले से भी ज्यादा चमकदार हो गया।

उन्हें इसका प्रबंधन करना नहीं आता था; इसलिए उन्होंने तपस्वी से पूछने का निश्चय किया कि वे क्रिस्टल को कैसे अपवित्र कर सकते हैं। इसलिए वे उनके पास गए, और आदरपूर्वक अभिवादन करने के बाद, उनके पास बैठ गए, और इन दो श्लोकों का उच्चारण किया:

"हम सात गर्मियों से यहाँ हैं
 क्रिस्टल की गुफा में तीस लोग।
अब हम इसकी चमक को कम करने के लिए उत्सुक हैं।
 लेकिन हम इसे सुस्त नहीं कर सकते।
यद्यपि हम अपनी पूरी ताकत से प्रयास करते हैं
 इसकी चमक को धूमिल करने के लिए,
प्रकाश की चमक और भी तेज होती जा रही है।
 इसका कारण क्या हो सकता है?
बोधिसत्व ने सुना। फिर उन्होंने तीसरा श्लोक दोहराया:

"यह अनमोल क्रिस्टल है, बेदाग, चमकदार और शुद्ध है;
 कांच नहीं—इसकी चमक सदा बनी रहेगी।
पृथ्वी पर ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे इसकी चमक नुकसान पहुंचा सके।
 जंगली सूअरों, बेहतर होगा कि तुम कहीं और चले जाओ।
और उन्होंने ऐसा ही किया, यह उत्तर सुनकर। बोधिसत्व परमानंद (सम्मोहन) में लीन हो गए और ब्रह्मा के लोक में जाने के लिए नियत हो गए।

इस प्रवचन के समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, मैं एक संन्यासी था।"

फुटनोट:

(1) यह कहानी उदनम, iv. 8 में दी गई है।

(2)धम्मपद, वि. 306; सुत्ता निपाता, वी. 661.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> शालूक - **जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-286-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 286
सालुका-जातक (*1)

"अजवाइन क्या खाती है, उससे ईर्ष्या मत करो" इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें एक मोटी लड़की से प्रेम के प्रलोभन का वर्णन है। परिस्थितियों का वर्णन कुल्लनारद कश्यप (*2) की कहानी में किया जाएगा। गुरु ने अपने एक भिक्षु से पूछा कि क्या सच में उसे प्रेम हो गया है? उसने कहा, हाँ। गुरु ने पूछा, "किससे?" उसने कहा, "एक मोटी लड़की से।" गुरु ने कहा, "वह स्त्री, भाई, तुम्हारी कमजोरी है; बहुत पहले, और अब भी, तुम उससे विवाह करने की इच्छा के कारण भीड़ का भोजन बन चुके हो।" फिर भिक्षुओं के अनुरोध पर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक बैल थे जिनका नाम बिग रेडकोट था, और उनका एक छोटा भाई था जिसका नाम लिटिल रेडकोट था। दोनों किसी गाँव में एक परिवार के लिए काम करते थे।

इस परिवार में एक वयस्क लड़की थी, जिसे दूसरे परिवार ने शादी के लिए बुलाया था। अब पहले परिवार में सलुका या अजवाइन (*3) नाम का एक सूअर पाला जा रहा था, जिसका उद्देश्य शादी के दिन दावत के लिए परोसना था; वह एक सूअरबाड़े (*4) में सोता था।

एक दिन, लिटिल रेडकोट ने अपने भाई से कहा, "भाई, हम इस परिवार के लिए काम करते हैं और उनकी आजीविका कमाने में मदद करते हैं। फिर भी वे हमें केवल घास और भूसा देते हैं, जबकि वे तुम्हें सूअर को चावल की खिचड़ी खिलाकर सूअर के बाड़े में सुला देते हैं; और वह उनके लिए क्या कर सकता है?"

“भाई,” बिग रेडकोट ने कहा, “उसके दलिया की लालसा मत करो। वे हमारी युवती की शादी के दिन उसका भोज बनाना चाहते हैं, इसीलिए उसे मोटा कर रहे हैं। कुछ दिन रुको, और तुम देखोगे कि उसे उसके बाड़े से घसीटकर निकाला जाएगा, मार डाला जाएगा, टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएंगे और आगंतुक उसे खा जाएंगे।” ऐसा कहकर उसने पहले दो छंद रचे:

"सेलेरी जो खाती है उससे ईर्ष्या मत करो;"
उसे जो खाना मिलता है वह जानलेवा होता है।
संतुष्ट रहो और अपनी बची हुई भूसी खा लो:
इसका अर्थ है आपकी लंबी आयु।
उचित समय आने पर अतिथि आएगा।
उसकी हर तरह की गपशप से।
बेचारे अजवाइन को काट डाला
वह अपनी बड़ी चपटी थूथन के साथ लेटा रहेगा।"
कुछ दिनों बाद, शादी के मेहमान आए और सलुका को मारकर उसका मांस खा लिया गया। दोनों बैलों ने उसकी हालत देखकर सोचा कि उनका अपना भूसा ही सबसे अच्छा था।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से तीसरे श्लोक को स्पष्टीकरण के रूप में दोहराया:

"जब उन्होंने चपटे थूथन को लेटे हुए देखा
बेचारी अजवाइन पूरी तरह से कट गई।
बैलों ने कहा, आधा दाम बेहतर है
"निश्चित रूप से यह हमारा तुच्छ नमूना है!"
जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, संबंधित भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय, वह हष्ट-पुष्ट लड़की वही थी, प्रेम में व्याकुल भाई सलुका था, आनंद छोटा लाल वस्त्रधारी था, और मैं स्वयं बड़ा लाल वस्त्रधारी था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 30 और क्रमांक 477 की तुलना करें;

(2)सं. 477.

(3) शाब्दिक अर्थ: खाने योग्य कमल की जड़।

(4) हेत्थामंचा, शायद छज्जे के नीचे घर के बाहर का चबूतरा, एक पसंदीदा रिसॉर्ट।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लाभ-गृह-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-287-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 287
लाभ-गरह-जातक

“जिस पर पागलपन सवार हो,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो सारिपुत्र भिक्षुओं के एक साथी भिक्षु के बारे में थी। यह भिक्षु आया और सारिपुत्र के एक तरफ बैठकर उसने उनसे धन प्राप्ति का तरीका, वस्त्र और अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने का तरीका पूछा। सारिपुत्र ने उत्तर दिया, “मित्र, धन प्राप्ति में सफल होने के लिए चार गुण आवश्यक हैं। उसे अपने हृदय से लज्जा का त्याग करना होगा, शिष्यों के पवित्र संघ को छोड़ना होगा, पागल न होते हुए भी पागल होने का दिखावा करना होगा; निंदा करनी होगी; नर्तक की तरह व्यवहार करना होगा; और हर जगह कठोर शब्दों का प्रयोग करना होगा।” इस प्रकार उन्होंने समझाया कि कैसे व्यक्ति धन-संपत्ति प्राप्त करता है। भिक्षु ने इस विधि पर आपत्ति जताई और चला गया। सारिपुत्र अपने गुरु के पास गया और उन्हें इसके बारे में बताया। गुरु ने कहा, “यह पहली बार नहीं है जब इस भिक्षु ने धन की आलोचना की है; उसने पहले भी ऐसा किया है;” और फिर, सारिपुत्र के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सोलह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने तीनों वेदों और अठारह गुणों में महारत हासिल कर ली थी; और वे एक प्रसिद्ध शिक्षक बन गए, जिन्होंने पाँच सौ युवकों को शिक्षा दी। एक दिन एक सदाचारी युवक अपने गुरु के पास यह प्रश्न लेकर आया, "ये लोग लाभ कैसे प्राप्त करते हैं?"

शिक्षक ने उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, चार गुण हैं जो उन लोगों को लाभ दिलाते हैं;" और उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:-

जो पागल हो, जो निंदा करने में माहिर हो,
इसमें अभिनेता की तरकीबें हैं, बुरी कहानियाँ सुनाई जाती हैं,
ऐसा ही व्यक्ति समृद्धि प्राप्त करता है।
जहां सब मूर्ख हों, वहीं तुम्हारा यही सिद्धांत होना चाहिए।
गुरु की बातें सुनकर शिष्य ने लाभ कमाने के प्रति अपनी असहमति निम्नलिखित दो पंक्तियों में व्यक्त की:-

"जो लाभ या यश को जीतता है, उस पर शर्म आती है।"
भयंकर विनाश और जघन्य पापों के द्वारा।
"मैं हाथ में कटोरा लेकर एकांतवासी जीवन व्यतीत करूँगा।"
दुष्टता और लोभ में जीने के बजाय।"
इस प्रकार उस युवक ने तपस्वी जीवन के गुणों की प्रशंसा की; और तुरंत एक संन्यासी बन गया, और धर्मपरायणता के साथ भिक्षा मांगते हुए, सिद्धियों को प्राप्त करता रहा, जब तक कि वह ब्रह्मा के लोक में जाने के लिए नियत नहीं हो गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया तो उन्होंने इस प्रकार जन्म की पहचान की:- "उस समय लाभ का विरोध करने वाला भाई (भिक्षु) वह युवक था, लेकिन उसका गुरु मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मच्छ-उददान-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-288-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 288
मच्छ-उद्दना-जातक

“कौन इस कहानी पर विश्वास कर सकता है,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक बेईमान व्यापारी के बारे में सुनाई थी। घटनाक्रम का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक जमींदार के परिवार में हुआ था।

जब वे बड़े हुए, तो वे धनी व्यक्ति बन गए। उनका एक छोटा भाई था। बाद में उनके पिता का देहांत हो गया। उन्होंने अपने पिता के कुछ काम निपटाने का निश्चय किया। इसके लिए वे एक गाँव गए, जहाँ उन्हें एक हज़ार सिक्के मिले। लौटते समय, जब वे नदी के किनारे नाव का इंतज़ार कर रहे थे, तो उन्होंने पत्तों के बर्तन में भोजन किया। बोधिसत्व ने बचा हुआ भोजन गंगा में मछलियों के लिए बहा दिया, जिससे नदी की देवी को पुण्य प्राप्त हुआ। देवी ने इसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया, जिससे उनकी दिव्य शक्ति में वृद्धि हुई, और अपनी इस बढ़ी हुई शक्ति पर विचार करते हुए उन्हें पता चला कि क्या हुआ था। बोधिसत्व ने अपना ऊपरी वस्त्र रेत पर रखा और वहीं लेटकर सो गए।

छोटा भाई स्वभाव से ही चोरी करने वाला था। वह बोधिसत्व से पैसे चुराकर खुद रखना चाहता था; इसलिए उसने पैसे की थैली की तरह दिखने वाली बजरी की एक थैली बनाई और उन दोनों को कहीं छिपा दिया।

जब वे नाव पर सवार हो गए और नदी के मध्य में आ गए, तो छोटा लड़का नाव के किनारे से टकरा गया और उसने बजरी का वह पैकेट पानी में गिरा दिया, जिसे वह बजरी समझ रहा था, लेकिन वास्तव में वह पैसा था।

“भाई, पैसा तो जहाज से गिर गया!” वह चिल्लाया। “अब क्या करें?”

"हम क्या कर सकते हैं? जो हो गया सो हो गया। इसके बारे में चिंता मत करो," दूसरे ने जवाब दिया।

लेकिन नदी की देवी ने सोचा कि उसे जो पुण्य प्राप्त हुआ है उससे वह कितनी प्रसन्न हुई है, और उसकी दिव्य शक्ति कितनी बढ़ गई है, और उसने उसकी संपत्ति की देखभाल करने का निश्चय किया। इसलिए उसने अपनी शक्ति से एक बड़ी मुंह वाली मछली को पार्सल निगलवा दिया, और स्वयं उसकी देखभाल की।

जब चोर घर पहुँचा, तो उसने अपने भाई के साथ किए गए धोखे पर ठहाका लगाया और पार्सल का बचा हुआ हिस्सा खोला। अंदर कंकड़ के सिवा कुछ नहीं था! उसका दिल बैठ गया; वह अपने बिस्तर पर गिर पड़ा और पलंग को कसकर पकड़ लिया।

तभी कुछ मछुआरों ने मछली पकड़ने के लिए जाल डाला। नदी की शक्ति से, एक मछली उनके जाल में आ गिरी। मछुआरे उसे बेचने के लिए शहर ले गए। लोगों ने कीमत पूछी।

मछुआरों ने कहा, "एक हजार सिक्के और सात आने।"

सबने उनका मजाक उड़ाया। "हमने तो एक मछली को हज़ार टुकड़ों में बिकते देखा है!" वे हँसे।

मछुआरे अपनी मछलियाँ बोधिसत्व के द्वार पर लाए और उनसे उन्हें खरीदने का अनुरोध किया।

"कीमत क्या है?" उसने पूछा।

उन्होंने कहा, "आप इसे सात आने में ले सकते हैं।"

"आपने इसके लिए दूसरे लोगों से क्या मांगा?"

उन्होंने कहा, "हमने दूसरे लोगों से एक हजार रुपये और सात दान मांगे थे; लेकिन आप इसे सात अखाड़ों के बदले ले सकते हैं।"

उसने इसके लिए सात एरीना दिए और अपनी पत्नी को भेज दिए। उसने उसे खोला और उसमें पैसों का पार्सल था! उसने बोधिसत्व को बुलाया। उन्होंने एक नज़र डाली और अपना चिह्न पहचानकर जान लिया कि यह उनका ही है। उन्होंने सोचा, "इन मछुआरों ने दूसरे लोगों से एक हजार रुपये और सात आना मांगे थे, लेकिन क्योंकि हजार रुपये मेरे थे, इसलिए उन्होंने मुझे केवल सात आना में दे दिए! यदि कोई व्यक्ति इसका अर्थ नहीं समझता, तो कोई भी चीज़ उसे कभी विश्वास नहीं दिला पाएगी।" और फिर उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

"अगर उसे यह कहानी बताई जाए तो कौन इस पर विश्वास करेगा?"
क्या हजार में बिकने वाली मछलियों को बेच देना चाहिए?
मेरे लिए तो ये सात पेंस के बराबर हैं: काश ऐसा होता!
इस तरह की मछलियों की पूरी माला खरीदना!

यह कहने के बाद, वह सोचने लगा कि उसे अपना पैसा कैसे वापस मिल गया। उसी क्षण नदी की आत्मा अदृश्य रूप से हवा में मंडराने लगी और बोली—

"मैं गंगा की आत्मा हूँ। आपने अपने भोजन का बचा हुआ भाग मछलियों को खिला दिया, और मुझे पुण्य का फल दिया। इसलिए मैंने आपकी संपत्ति की देखभाल की है;" और उसने एक श्लोक दोहराया:-

"तुमने मछलियों को खाना खिलाया और मुझे उपहार दिया।"
मुझे यह और आपकी धर्मपरायणता याद है।
फिर आत्मा ने छोटे भाई की उस नीच चाल के बारे में बताया। फिर उसने कहा, "वह वहीं पड़ा है, उसका दिल अंदर से सूख चुका है। धोखेबाज के लिए कोई समृद्धि नहीं है। लेकिन मैं तुम्हारे लिए तुम्हारा ही लाई हूँ, और मैं तुम्हें चेतावनी देती हूँ कि इसे खोना मत। इसे अपने चोर भाई को मत देना, बल्कि इसे अपने पास ही रखना।" फिर उसने तीसरा श्लोक दोहराया:-

दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति का कोई सौभाग्य नहीं होता।
और परियों के मामले में उसका कोई स्थान नहीं है;
जो अपने भाई को पैतृक संपत्ति से वंचित करता है
और वह छल और चोरी-छिपे तरीके से बुरे काम करता है।
आत्मा ने ऐसा कहा, वह नहीं चाहती थी कि वह कपटी व्यक्ति धन प्राप्त करे। परन्तु बोधिसत्व ने कहा, "यह असंभव है," और फिर भी उन्होंने भाई को पाँच सौ रुपये भेज दिए।

इस प्रवचन के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की, जिसके समापन पर व्यापारी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की और अपने जन्म की पहचान बताई: "उस समय छोटा भाई (भिक्षु) बेईमान व्यापारी था, लेकिन बड़ा भाई मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नाना-चंड-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-289-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 289
नाना-छन्द-जातक

“हम एक ही घर में रहते हैं,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें पूज्य आनंद द्वारा एक मूल्यवान वस्तु ले जाने का वर्णन है। इन परिस्थितियों का वर्णन जून्ह जन्म (*1) में किया जाएगा।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनकी रानी पत्नी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। उनका पालन-पोषण तक्षशिला में हुआ और उन्होंने वहीं शिक्षा प्राप्त की; और अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने। उनके पिता के परिवार में एक पुरोहित थे जिन्हें पद से हटा दिया गया था और वे बहुत गरीब होने के कारण एक पुराने घर में रहते थे।

एक रात राजा भेस बदलकर शहर का भ्रमण कर रहे थे। कुछ चोर अपना काम निपटाकर एक शराबखाने में शराब पी रहे थे और एक घड़े में और शराब भरकर घर ले जा रहे थे। उन्होंने राजा को सड़क पर देखा और "अरे, कौन हो?" चिल्लाते हुए उन्हें धक्का देकर गिरा दिया और उनका ऊपरी वस्त्र छीन लिया; फिर उन्होंने अपना घड़ा उठाया और राजा को डराते हुए वहां से चले गए।

उस समय संयोगवश वही ब्राह्मण सड़क पर नक्षत्रों का अवलोकन कर रहा था। उसने देखा कि राजा शत्रुओं के चंगुल में फंस गया है, और उसने अपनी पत्नी को पुकारा; वह तुरंत आई और पूछने लगी कि क्या हुआ है। उसने कहा, "पत्नी, हमारे राजा अपने शत्रुओं के हाथों में पड़ गए हैं!" "हे महाराज, आपका राजा से क्या संबंध है? उनके ब्राह्मण देख लेंगे।" राजा ने यह सुना और थोड़ा आगे जाकर उन

दुष्टों को पुकारा, "हे स्वामियों, मैं गरीब हूँ - मेरा वस्त्र ले लो और मुझे जाने दो!" बार-बार ऐसा कहने पर उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया। उसने उनके निवास स्थान को देखा और वापस लौट आया।

ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, हमारे राजा अपने शत्रुओं के चंगुल से बच निकले हैं!" राजा ने यह बात पहले की तरह सुनी और अपने महल में प्रवेश किया।

जब भोर हुई तो राजा ने अपने ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे एक प्रश्न पूछा।

"क्या आप अवलोकन कर रहे हैं?"

"जी महाराज।"

"क्या यह सौभाग्य था या दुर्भाग्य?"

"आप भाग्यशाली हैं, मेरे स्वामी।"

"ग्रहण नहीं होगा?"

"नहीं, मेरे स्वामी, कोई नहीं।"

राजा ने उन्हें निर्देश देते हुए कहा, "जाओ और फलाँ घर से ब्राह्मण को मेरे लिए ले आओ।"

इसलिए वे बूढ़े पुजारी को ले आए, और राजा ने उससे पूछताछ शुरू कर दी।

"क्या आपने कल रात अवलोकन किया था, गुरुजी?"

"जी हां, मेरे स्वामी, मैंने किया।"

"क्या ग्रहण था?"

"जी हां, मेरे स्वामी: कल रात आप अपने शत्रुओं के हाथों में पड़ गए थे, और पल भर में आप फिर से मुक्त हो गए।"

राजा ने कहा, "यही तो ज्योतिषी का स्वभाव है।" उन्होंने अन्य ब्राह्मणों को विदा कर दिया; उन्होंने उस वृद्ध ब्राह्मण से कहा कि वे उससे प्रसन्न हैं और उसे वरदान मांगने को कहा। उस व्यक्ति ने अपने परिवार से परामर्श करने के लिए अनुमति मांगी, और राजा ने उसे अनुमति दे दी।

उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी, पुत्र, बहू और नौकरानी को बुलाया और उनके सामने मामला रखा। "राजा ने मुझे वरदान दिया है; मैं क्या मांगूं?"

पत्नी ने कहा, "मुझे सौ दुधारू गायें ला दो।"

चट्टा नाम के बेटे ने कहा, "मेरे लिए, एक रथ जो उत्तम नस्ल के सुंदर, सफेद घोड़ों द्वारा खींचा जाए।"

तब बहू ने कहा, "मेरे लिए तो हर तरह के गहने, रत्नों से जड़ी बालियां, और इसी तरह की और भी चीजें!"

और नौकरानी (जिसका नाम पुन्ना था) ने कहा, "मेरे लिए एक मूसल, ओखली और एक छलनी टोकरी लाद दो।"

ब्राह्मण स्वयं एक गाँव का राजस्व वरदान के रूप में चाहता था। इसलिए जब वह राजा के पास लौटा और राजा ने जानना चाहा कि क्या उसकी पत्नी से भी पूछा गया था, तो ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "जी हाँ, महाराज; परन्तु जिनसे पूछा गया है वे सब एकमत नहीं हैं"; और उसने दो श्लोक दोहराए:-

"हम एक ही घर में रहते हैं, हे राजा,
लेकिन हम सभी एक ही चीज नहीं चाहते।
मेरी पत्नी की इच्छा थी—सौ गायें;

मेरा गांव समृद्ध है;
छात्र का पाठ्यक्रम एक जटिल प्रक्रिया है।
हमारी लड़की को कान की बाली चाहिए।
बेचारी छोटी पुन्ना, जो नौकरानी थी,
उसने कहा, "मुझे मूसल और ओखली चाहिए!"
“ठीक है,” राजा ने कहा, “उन्हें जो चाहिए वह सब मिल जाएगा”; और शेष पंक्तियाँ दोहराईं:-

पत्नी को सौ गायें दे दो।
भले आदमी के लिए जीवन भर के लिए एक गाँव।
और बेटी के लिए एक रत्नजड़ित झुमका:
छात्र को एक गाड़ी और एक जोड़ी मिलेगी।
और नौकरानी अपना मूसल और ओखली ले आती है।
इस प्रकार राजा ने ब्राह्मण को उसकी इच्छा के अनुसार सब कुछ दिया और साथ ही उसे बहुत सम्मान भी दिया; और उससे कहा कि वह तब से राजा के कामों में व्यस्त रहे, और उसने ब्राह्मण को अपनी सेवा में बनाए रखा।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय ब्राह्मण आनंद थे, लेकिन राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 456.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शील-विमांसा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-290-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 290
शिला-विमांसा-जातक (*1)

"सद्गुण सुंदर है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ब्राह्मण के बारे में जिसने अपनी प्रतिष्ठा की परीक्षा ली थी। इस कहानी के उत्पन्न होने की परिस्थितियाँ और स्वयं कहानी, दोनों प्रथम खंड के सिलविमांसा जन्म-कथा में दी गई हैं। यहाँ, पहले की तरह ही।

जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनके पुरोहित ने अपने सद्गुणों की परीक्षा लेने का निश्चय किया और दो दिन तक कोषाध्यक्ष के कुंड से एक-एक सिक्का चुराया। तीसरे दिन उन्हें राजा के पास घसीटकर ले जाया गया और उन पर चोरी का आरोप लगाया गया। रास्ते में उन्होंने कुछ सपेरों को सांप को नचाते हुए देखा। राजा ने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "अपने सद्गुणों की परीक्षा लेने के लिए" और आगे बढ़ गए।

"सद्गुण सुंदर है, इसलिए लोग इसे ऐसा मानते हैं।"
विश्व में सदाचार को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है।
देखो! इस घातक सांप को वे नहीं मारते।
    वे कहते हैं, 'वह अच्छा है।'
मैं यहाँ यह घोषणा करता हूँ कि सद्गुण सर्वोपरि है।
और संसार में सुंदर: जिसके पास है
जो सदाचारी होता है, उसके बारे में हमेशा यही कहा जाता है।

पूर्णता की राह पर चलना।
"परिवार के प्रिय लोगों के बीच वह सबसे ज्यादा चमकता है;"
और जब शरीर के साथ उसका संबंध समाप्त हो जाता है,
जिसने सद्गुणों का अभ्यास करने में खुशी पाई है
स्वर्ग में पुनर्जन्म होता है।"

इस प्रकार तीन श्लोकों में सद्गुणों की सुंदरता का वर्णन और उनके प्रति प्रवचन देने के बाद, बोधिसत्व ने आगे कहा—"महाराज, मेरे परिवार, मेरे पिता की संपत्ति, मेरी माता की संपत्ति और मैंने स्वयं जो कुछ अर्जित किया है, उससे आपको बहुत कुछ प्राप्त हुआ है; इसकी कोई सीमा नहीं है। लेकिन मैंने अपने मूल्य को परखने के लिए खजाने से ये सिक्के लिए। अब मैं देखता हूँ कि इस संसार में जन्म, वंश, रक्त और परिवार कितना महत्वहीन है, और सद्गुण कितना श्रेष्ठ है। मैं संन्यासी जीवन अपनाऊँगा; मुझे ऐसा करने की अनुमति दें!" अनेक निवेदनों के बाद, अंततः राजा ने सहमति दी। उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया और हिमालय में शरण ली, जहाँ उन्होंने संन्यासी जीवन अपनाया और ब्रह्मलोक में आने तक अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों का विकास किया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय, अपने सद्गुणों के लिए अपनी प्रतिष्ठा आजमाने वाला ब्राह्मण पुजारी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 86, 290, 305, 330, 362 की तुलना करें।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भद्र-घट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-291-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 291
भद्र-घट-जातक

“एक निकम्मे ने एक बार,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के भतीजे के बारे में सुनाई थी। इस व्यक्ति ने चालीस करोड़ (10 मिलियन) सोने की विरासत लुटा दी थी। फिर वह अपने चाचा के पास गया, जिन्होंने उसे एक हजार दिए और उसे व्यापार करने को कहा। उस व्यक्ति ने इसे भी लुटा दिया और फिर दोबारा आया; और उसे फिर से पाँच सौ दिए गए। उसने इसे भी बाकी की तरह लुटा दिया, तो अगली बार उसके चाचा ने उसे दो मोटे वस्त्र दिए; और जब उसने इन्हें भी घिसकर खराब कर दिया और फिर से विनती की, तो उसके चाचा ने उसे गर्दन से पकड़कर बाहर निकाल दिया। वह असहाय था और एक दीवार के पास गिरकर मर गया। वे उसे घसीटकर बाहर ले गए और वहीं फेंक दिया। अनाथपिंडिका ने जाकर बुद्ध को अपने भतीजे के साथ हुई घटना के बारे में बताया। गुरु ने कहा, “तुम उस व्यक्ति को कैसे संतुष्ट करने की उम्मीद कर सकते हो जिसे मैं बहुत पहले संतुष्ट नहीं कर पाया था, यहाँ तक कि जब मैंने उसे मनोकामना का प्याला दिया था?” और उसके अनुरोध पर, उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक धनी व्यापारी के पुत्र के रूप में पैदा हुए और अपने पिता की मृत्यु के बाद उनका स्थान ग्रहण किया। उनके घर में चार सौ मिलियन का खजाना छिपा हुआ था। उनका एक ही पुत्र था। बोधिसत्व ने अपनी मृत्यु तक दान-पुण्य किया और अच्छे कार्य किए, फिर वे देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए। उनके पुत्र ने सड़क के उस पार एक मंडप बनवाया और अपने कई मित्रों के साथ बैठकर शराब पीने लगे। उन्होंने गायकों और नर्तकों को एक हजार सिक्के दिए और अपना समय शराब पीने, भोग-विलास और अय्याशी में व्यतीत किया; वे इधर-उधर भटकते रहे, केवल गीत, संगीत और नृत्य की ही माँग करते रहे, अपने शुभचिंतकों के प्रति समर्पित रहे और आलस्य में डूबे रहे। इसलिए थोड़े ही समय में उसने अपने चार सौ मिलियन के सारे खजाने, अपनी सारी संपत्ति, सामान और फर्नीचर को लुटा दिया और इतना गरीब और दुखी हो गया कि उसे फटे-पुराने कपड़ों में घूमना पड़ा।

सक्का (इंद्र) ध्यान करते हुए अपने दरिद्रता के ज्ञान से अभिभूत हो गए। पुत्र के प्रेम से अभिभूत होकर उन्होंने उसे एक वरदान पात्र देते हुए कहा, "पुत्र, इस पात्र को टूटने न देना। जब तक तुम इसे अपने पास रखोगे, तुम्हारा धन कभी समाप्त नहीं होगा। इसलिए इसका ध्यान रखना!" और फिर वे स्वर्ग लौट गए।

उसके बाद वह आदमी बस उसी प्याले से पीता रहा। एक दिन, वह नशे में धुत था और उसने प्याला हवा में उछाला, गिरते ही उसे पकड़ लिया। लेकिन एक बार वह चूक गया। प्याला ज़मीन पर गिरा और चकनाचूर हो गया! फिर वह दोबारा गरीब हो गया और फटे-पुराने कपड़ों में, हाथ में कटोरा लिए भीख माँगता फिरने लगा, अंत में एक दीवार के पास लेटकर उसकी मृत्यु हो गई।

जब गुरु ने यह कहानी समाप्त कर ली, तो उन्होंने आगे कहा:-

"एक निकम्मे व्यक्ति ने एक बार बाउल हासिल कर लिया था,"
एक ऐसा कटोरा जिसने उसकी सारी मनोकामनाएं पूरी कर दीं।
और जब तक वह इस कटोरे का ध्यान रखता रहा,
    उसका भाग्य हर तरह से अनुकूल था।
"जब, घमंड और नशे में, एक लापरवाह क्षण में,
उसने उस कटोरे को तोड़ दिया जिससे उसे यह सारी शक्ति प्राप्त होती थी।
नंगा, बेचारा मूर्ख! चिथड़े-चिथड़े कपड़ों में, वह
    बहुत कष्ट में पड़ गया।
"ऐसा नहीं है कि चाहे कोई भी व्यक्ति कितना भी धनी क्यों न हो,
लेकिन इसका आनंद लेने की कोई सीमा नहीं है।
बेईमान की तरह ही वह भी जल्द ही झुलस जाएगा—बेचारा!
    इससे उसका मनोकामना पात्र टूट गया।
अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से इन श्लोकों को दोहराते हुए, उन्होंने जन्म की पहचान की: "उस समय अनाथपिंडिका का भतीजा वह दुष्ट था जिसने शुभ प्याला तोड़ा था, लेकिन मैं

स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुपट्ट-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-292-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 292
सुपत्त-जातक

“यहाँ, बनारस नगर में,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें कच्चे घी में मिला हुआ चावल और स्वाद के लिए लाल मछली का भोजन था, जो वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने बिम्बादेवी (बुद्ध की पत्नी, जिन्हें यशोदरा के नाम से भी जाना जाता है) को दिया था। परिस्थितियाँ ऊपर अभंतर जन्म-कथा (*1) में वर्णित परिस्थितियों के समान हैं। यहाँ भी पवित्र भिक्षुणी (भिक्षुणी) के पेट में दर्द था। श्रेष्ठ राहुल (बुद्ध के पुत्र) ने वरिष्ठ भिक्षु को यह बात बताई। उन्होंने राहुल को अपने प्रतीक्षालय में बैठाया और राजा के पास चावल, लाल मछली और कच्चा घी लेने गए। बालक ने यह भोजन अपनी माता, पवित्र भिक्षुणी (भिक्षुणी) को दिया। भोजन करते ही उनका दर्द शांत हो गया। राजा ने पूछताछ के लिए दूत भेजे और उसके बाद से वे हमेशा उन्हें इसी प्रकार का भोजन भेजते रहे। एक दिन वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा करने लगे: “मित्र, धर्म के सरदार (सारिपुत्र) ने भिक्षुणी (भिक्षुणी) को ऐसा भोजन देकर तृप्त किया।” गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं: उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भाई (भिक्षु), कि

सारिपुत्र ने राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) को उनकी इच्छा पूरी की है; उन्होंने पहले भी ऐसा किया था।" इतना कहकर उन्होंने अपने पिछले जन्म की एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व कौवे के रूप में पैदा हुए। वे बड़े हुए और अस्सी हजार कौवों के मुखिया बने, जिनका नाम सुपत्त या सुंदर पंख था; उनके साथी का नाम सुफस्सा या कोमल था, और उनके सेनापति का नाम सुमुखो था। वे अपने अस्सी हजार प्रजाजनों के साथ बनारस के पास ही रहते थे।

एक दिन वह और उसका साथी भोजन की तलाश में राजा के रसोईघर के पास से गुज़रे। राजा का रसोइया तरह-तरह की मछलियों के कई व्यंजन बना रहा था और उसने उन्हें थोड़ी देर के लिए ठंडा होने के लिए खुला छोड़ दिया था। रानी कौवे को खाने की खुशबू आई और उसे खाने की तीव्र इच्छा हुई। लेकिन उस दिन उसने कुछ नहीं कहा।

लेकिन अगले दिन, जब किंग क्रो ने उन्हें भोजन के लिए जाने का प्रस्ताव रखा, तो उसने कहा, "तुम अकेले जाओ: मुझे कुछ बहुत चाहिए!"

"यह क्या है?" उसने पूछा।

"मुझे राजा का कुछ भोजन चाहिए; और चूंकि मुझे वह नहीं मिल सकता, इसलिए मैं मरने जा रहा हूँ।"

कौआ सोचने के लिए बैठ गया। प्रिटीबीक उसके पास आया और पूछा कि क्या उसे किसी बात से आपत्ति है। किंग क्रो ने उसे सब कुछ बता दिया। "ओह, कोई बात नहीं," कैप्टन ने कहा; और उन दोनों को दिलासा देते हुए आगे कहा, "तुम आज यहीं रहो, मैं मांस ले आता हूँ।"

इसलिए उसने कौवों को इकट्ठा किया और उन्हें सारी बात बताई। "चलो, इसे हासिल करें!" उसने कहा; और वे सब एक साथ बनारस के लिए उड़ गए। उसने उन्हें रसोई के पास इधर-उधर टुकड़ियों में बिठा दिया ताकि वे पहरा दें; और वह अपने आठ योद्धाओं के साथ रसोई की छत पर बैठ गया। राजा के भोजन परोसे जाने की प्रतीक्षा करते हुए उसने उन्हें निर्देश दिए: "जब भोजन परोसा जाएगा, तो मैं उस आदमी से थालियाँ छुड़वा दूँगा। एक बार ऐसा हो जाए तो मेरा अंत हो जाएगा। इसलिए तुममें से चार लोग चावल से अपना मुँह भर लो, और चार लोग मछली से, और हमारे शाही जोड़े को भी खिलाओ; और अगर वे पूछें कि मैं कहाँ हूँ, तो कहना कि मैं आ रहा हूँ।"

खैर, रसोइए ने अपने सारे पकवान तैयार कर लिए, उन्हें तराजू पर टांगा और राजा के कमरों की ओर चल पड़ा। जैसे ही वह दरबार से गुज़रा, कौवे के सरदार ने अपने साथियों को इशारा किया और उड़कर उस वाहक की छाती पर बैठ गया, अपने फैले हुए पंजों से उस पर वार किया, भाले की नोक जैसी नुकीली चोंच से उसकी नाक पर चोंच मारी और अपने दोनों पैरों से उसके जबड़े बंद कर दिए।

राजा ऊपरी मंजिल पर इधर-उधर टहल रहे थे, तभी उन्होंने एक बड़ी खिड़की से बाहर देखा कि कौआ क्या कर रहा है। उन्होंने भोजनवाहक को आवाज़ दी: "अरे, बर्तन नीचे रखो और कौए को पकड़ो!" तो भोजनवाहक ने बर्तन नीचे रख दिए और कौए को कसकर पकड़ लिया।

"इधर आओ!" राजा चिल्लाया।

फिर कौवों ने जी भरकर खाया और निर्देशानुसार बचा हुआ भोजन नोच कर ले गए। इसके बाद बाकी कौवे भी झुंड बनाकर आए और बचा हुआ भोजन खा लिया। आठों योद्धाओं ने वह भोजन अपने राजा और रानी को खाने के लिए दे दिया। इस तरह सॉफ्टी की भूख शांत हो गई।

भोजन लेकर आया सेवक राजा के लिए अपना कौआ लेकर आया।

"ओ कौवे!" उसने कहा, "तुमने मेरा ज़रा भी आदर नहीं किया! तुमने मेरे नौकर की नाक तोड़ दी! तुमने मेरे बर्तन चकनाचूर कर दिए! तुमने लापरवाही से अपनी जान गंवा दी! तुम्हें ऐसा करने के लिए किसने उकसाया?"

कौवे ने उत्तर दिया, "हे महान राजा! हमारे राजा बनारस के पास रहते हैं और मैं उनकी सेना का सेनापति हूँ। उनकी पत्नी (जिनका नाम सॉफ्टी है) को आपके भोजन की तीव्र इच्छा हुई और वे उसे चखना चाहती थीं। हमारे राजा ने मुझे उनकी इच्छा बताई। मैंने तुरंत अपना

प्राण लगा दिए। अब मैंने उन्हें भोजन भेज दिया है; मेरी इच्छा पूरी हो गई है। यही कारण है कि मैंने ऐसा किया।" और बात समझाते हुए उन्होंने कहा:-

"हे महान राजा, बनारस नगर में,
वहाँ कौवों का एक राजा रहता है, उस रात की परी पंख वाली चिड़िया;
जिसके साथ निम्नलिखित लोग उपस्थित थे
अस्सी हजार कौवों का।
"उसके साथी, सॉफ्टी की एक ही दिली इच्छा थी:
उसे राजा की खुद की पकड़ी हुई मछली का भोजन करने की तीव्र इच्छा थी।
ताजा पकड़ी गई मछली को उनकी रसोई में पकाया गया, ऐसा व्यंजन
जहां तक राजाओं की मेजों का सवाल है।
"अब आप मुझे उनके दूत के रूप में देखते हैं;"
मेरे स्वामी ने ही मुझे यहाँ भेजा है;
और इसीलिए मैं अपने सम्राट का आदर करता हूँ।
मैंने उस आदमी की नाक पर चोट पहुँचाई।

जब राजा ने यह सुना, तो उन्होंने कहा, "हम मनुष्यों का बहुत सम्मान करते हैं, फिर भी उन्हें मित्र नहीं बना पाते। चाहे हम पूरे गाँव के बराबर उपहार दें, कोई भी हमारे लिए अपना प्राण देने को तैयार नहीं होता। परन्तु यह प्राणी, कौआ, अपने राजा के लिए प्राणत्याग कर देता है। वह बहुत ही नेक, मधुर वाणी वाला और भला है।" राजा कौए के अच्छे गुणों से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे एक सफेद छतरी भेंट करके सम्मानित किया। लेकिन कौए ने राजा को अपनी ही भेंट से प्रणाम किया और सुंदर कौए के गुणों पर विस्तार से चर्चा की। राजा ने उसे बुलवाया, उसकी शिक्षाएँ सुनीं और उन दोनों के लिए उसी प्रकार का भोजन भेजा जैसा वह स्वयं खाता था; और बाकी कौओं के लिए उन्होंने प्रतिदिन बड़ी मात्रा में चावल पकाया। उन्होंने स्वयं बोधिसत्व के उपदेशों का अनुसरण किया और सभी प्राणियों की रक्षा करते हुए सद्गुणों का पालन किया। सुंदर कौए के उपदेश सात सौ वर्षों तक याद रखे गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय राजा आनंद थे, सेनापति सारिपुत्र थे, लेकिन सुपत्ता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक (281), ऊपर।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काया-विच्छिन्द-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-293-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 293
काया-विच्चिंडा-जातक

"भयानक बीमारी से ग्रस्त," इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। हमें पता चलता है कि श्रावस्ती नगर में एक व्यक्ति पीलिया से पीड़ित था, जिसे डॉक्टरों ने लाइलाज बताकर छोड़ दिया था। उसकी पत्नी और पुत्र चिंतित थे कि उसका इलाज कौन करेगा। उस व्यक्ति ने सोचा, "यदि मैं इस बीमारी से छुटकारा पा लूँ, तो मैं संन्यासी जीवन अपना लूँगा।" कुछ दिनों बाद उसने कुछ ऐसा खाया जिससे उसे लाभ हुआ और वह ठीक हो गया। फिर वह जेतवन मठ गया और संघ में प्रवेश का अनुरोध किया। उसने गुरु से शिष्यों के छोटे और बड़े दीक्षा संस्कार प्राप्त किए और शीघ्र ही संतत्व प्राप्त कर लिया। इसके एक दिन बाद भिक्षु सत्य के हॉल में आपस में बातचीत कर रहे थे: "मित्र, फलाँ व्यक्ति को पीलिया हो गया था और उसने प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह ठीक हो जाएगा तो संन्यासी जीवन अपना लेगा; उसने ऐसा ही किया और अब वह संतत्व प्राप्त कर चुका है।" गुरु अंदर आए और पूछा कि वे सब आपस में क्या बात कर रहे थे। उन्होंने उसे बताया। तब उसने कहा: "भाइयों (भिक्षुओं), ऐसा करने वाला यह अकेला व्यक्ति नहीं है।

बहुत समय पहले, बीमारी से उबर रहे ज्ञानी पुरुषों ने एकांतवासी जीवन अपना लिया और अपना लाभ सुनिश्चित किया।" और उसने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे बड़े हुए और धन-संपत्ति अर्जित करने लगे, लेकिन उन्हें पीलिया हो गया। चिकित्सक भी उनका कुछ नहीं कर सके और उनकी पत्नी और परिवार हताश हो गए। उन्होंने निश्चय किया कि यदि वे कभी ठीक हो गए, तो वे संन्यासी जीवन अपना लेंगे; और कुछ ऐसा ग्रहण करने के बाद जो उनके लिए लाभकारी था, वे ठीक हो गए, जिसके बाद वे हिमालय चले गए और संन्यासी बन गए। उन्होंने अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों का विकास किया और परमानंद में रहने लगे। उन्होंने सोचा, "इतने समय तक मैं इस महान सुख से वंचित रहा!" और उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की:

"एक भयंकर बीमारी से त्रस्त होकर, मैं
अत्यंत पीड़ा और बीमारी में पड़े हुए,
   मेरा शरीर फूल की तरह जल्दी मुरझा जाता है।
सूखने के लिए धूल भरी जगह पर धूप में रख दिया गया।
"जो श्रेष्ठ है वह नीच प्रतीत होता है, और जो शुद्ध है वह अशुद्ध प्रतीत होता है।"
जो अंधा है, वह हर खूबसूरत चीज को गंदगी का गड्ढा समझता है।
"उस बीमार शरीर पर शर्म आती है, शर्म आती है, मैं कहता हूँ।"
घृणास्पद, अपवित्र और घिनौनी सड़न से भरा हुआ!
   जब मूर्ख आलसी होते हैं, तो वे जीतने में असफल हो जाते हैं।
स्वर्ग में नया जन्म, और मार्ग से भटकना।"
इस प्रकार उस महान प्राणी ने अशुद्धता और निरंतर रोग के स्वरूप का विभिन्न तरीकों से वर्णन किया, और शरीर और उसके सभी अंगों से विरक्त होकर, अपने पूरे जीवन में जीवन की चार उत्कृष्ट अवस्थाओं का अभ्यास किया, जब तक कि वह ब्रह्मा के लोक में नहीं चले गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की घोषणा की और जन्म की पहचान बताई—कई लोग प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सफलता प्राप्त कर चुके थे, इत्यादि—"उस समय मैं स्वयं तपस्वी था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जम्बू-खड़क-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-294-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 294
जंबू-खडाका-जातक

“यह कौन बैठा है,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त और कोकालिका के बारे में सुनाई थी। जब देवदत्त को दान और ख्याति दोनों ही क्षीण होने लगे, तब कोकालिका घर-घर जाकर कहने लगे, “वरिष्ठ भिक्षु देवदत्त प्रथम महान राजा के वंश में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) (*1) के शाही कुल से, निरंतर कुलीन वंश से, समस्त शास्त्रों के ज्ञाता, परमानंदमय पवित्रता से परिपूर्ण, मधुर वाणी वाले और धर्म के प्रचारक हैं। वरिष्ठ भिक्षु की सहायता कीजिए, उनकी मदद कीजिए!” इन शब्दों में उन्होंने देवदत्त की प्रशंसा की। वहीं दूसरी ओर, देवदत्त ने कोकालिका की प्रशंसा करते हुए कहा, “कोकालिका उत्तरी ब्राह्मण परिवार से हैं; वे धार्मिक (सन्यासी) जीवन व्यतीत करते हैं; वे विद्वतापूर्ण शिक्षाओं में निपुण और धर्म के प्रचारक हैं। कोकालिका की सहायता कीजिए, उनकी मदद कीजिए!” इस प्रकार वे एक-दूसरे की प्रशंसा करते हुए और अलग-अलग घरों में भोजन करते हुए घूमते रहे। एक दिन भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा शुरू की। “मित्र, देवदत्त और कोकालिका एक-दूसरे के गुणों की प्रशंसा करते फिरते हैं, जबकि उनमें ये गुण होते ही नहीं, और इस तरह भोजन प्राप्त करते हैं।” गुरुजी अंदर आए और बैठे-बैठे उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। गुरुजी

ने कहा, “भाइयों, ये पहली बार नहीं है कि इन लोगों ने एक-दूसरे की प्रशंसा करके भोजन प्राप्त किया है। बहुत समय पहले भी उन्होंने ऐसा ही किया था,” और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक गुलाब-सेब के बाग में वृक्ष-परी बन गए। 9 एक कौआ उनके वृक्ष की एक शाखा पर बैठा और फल खाने लगा। तभी एक सियार आया और उसने ऊपर देखा तो कौआ दिखाई दिया। उसने सोचा, "अगर मैं इस प्राणी की चापलूसी करूँ, तो शायद मुझे भी कुछ फल खाने को मिल जाएँ!" इसलिए चापलूसी में उसने पहला श्लोक दोहराया:

"वह कौन है जो गुलाब के पेड़ पर बैठा है--"
मधुर गायिका! जिसकी मधुर आवाज मुझ तक पहुंचती है?
वह एक नन्हे मोर की तरह कोमल और मधुर स्वर में कूकती है।
और वह हमेशा अपनी जगह पर स्थिर बैठी रहती है।
कौवे ने प्रशंसा करते हुए दूसरा उत्तर दिया:

जो व्यक्ति जन्म और पालन-पोषण से श्रेष्ठ हो
दूसरों के पालन-पोषण की प्रशंसा कर सकता है, उनकी अहमियत जानता है।
आप एक युवा बाघ की तरह प्रतीत होते हैं:
आइए, खाइए, महोदय, जो मैं आपको देता हूँ!
ये कहते हुए उसने डाल को हिलाया और कुछ फल नीचे गिर गए।

फिर वृक्ष की आत्मा ने इन दोनों को खाते हुए देखकर, एक-दूसरे की चापलूसी करने के बाद, तीसरे छंद को दोहराया:

"झूठे लोग इकट्ठा होते हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"
उदाहरण के लिए, यहाँ एक सड़ा हुआ मांस खाने वाला कौआ है।
और लाश खाने वाला सियार, बचकानी खड़खड़ाहट के साथ
एक दूसरे की चापलूसी करने में आगे बढ़ो!
इस छंद को दोहराने के बाद, वृक्ष-परी ने एक भयानक रूप धारण कर लिया और उन दोनों को डराकर भगा दिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म-कथा का सारांश प्रस्तुत किया; "उस समय सियार देवदत्त था, कौआ कोकालिका था, लेकिन वृक्ष की आत्मा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) एक शानदार राजा, इक्ष्वाकु, बुद्ध और राम के पूर्वज।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अंत-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-295-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 295
अंताजातक (*1)

"बैल की तरह," इत्यादि - यह एक और कहानी है जो गुरु ने उसी स्थान पर और उन्हीं लोगों के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ पहले जैसी ही हैं।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक गाँव के प्रवेश द्वार पर स्थित अरंडी के वृक्ष की आत्मा बन गए। एक गाँव में एक बूढ़ा बैल मर गया; और उन्होंने उसके शव को घसीटकर गाँव के द्वार के पास पेड़ों के झुरमुट में फेंक दिया। एक सियार आया और उसका मांस खाने लगा। तभी एक कौआ आया और पेड़ पर बैठ गया। सियार को देखकर उसने सोचा कि क्या वह चापलूसी करके उस मांस का कुछ हिस्सा खा सकती है। और इस प्रकार उसने पहली पंक्ति दोहराई:

"तुम्हारा शरीर बैल की तरह लगता है।"
शेर की तरह अपनी गतिविधि करें।
हे पशुओं के राजा! आपकी ही महिमा हो!
कृपया आय के लिए कुछ पैसे छोड़ना न भूलें।
यह सुनकर सियार ने दूसरी बात दोहराई:

"जो लोग सभ्य जन्म और परवरिश के हों
सज्जनों की उचित प्रशंसा करना सीखें।
हे कौवे, जिसकी गर्दन मोर की गर्दन के समान है,
पेड़ से नीचे उतरो और एक चोंच खा लो!
यह देखकर वृक्ष-आत्मा ने तीसरी बात दोहराई:

सियार सभी जानवरों में सबसे नीच होता है।
कौआ सभी पक्षियों में सबसे नीचा होता है, यह बात सर्वविदित है।
अरंडी के पेड़ों का सबसे छोटा पेड़:
और अब ये तीनों ही सबसे नीच चीजें यहाँ मौजूद हैं!

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त सियार था, कोकालिका कौआ थी, लेकिन वृक्ष-आत्मा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 294 की तुलना करें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **समुद्द-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-296-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 296
समुद्दा-जातक

"खारे समुद्र की लहरों पर," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में वरिष्ठ भिक्षु उपनंद के बारे में सुनाई थी। यह व्यक्ति बहुत खाने-पीने वाला था; भोजन से भरी बैलगाड़ियाँ भी उसे तृप्त नहीं कर पाती थीं। बरसात के मौसम में वह दो-तीन अलग-अलग बस्तियों में समय बिताता था, एक में अपने जूते, दूसरी में अपनी छड़ी, तीसरी में अपना पानी का घड़ा छोड़ देता था, और एक में वह स्वयं रहता था। जब वह एक ग्रामीण मठ में गया और वहाँ के भिक्षुओं को अपनी सभी आवश्यक वस्तुओं के साथ तैयार देखा, तो उसने संतुष्ट तपस्वियों के चार वर्गों (*1) के बारे में बात करना शुरू कर दिया; उनके वस्त्र छीन लिए और उन्हें कूड़े के ढेर से चिथड़े उठाने को कहा; उनसे मिट्टी के बर्तन लेने को कहा और उन्हें अपनी पसंद के बर्तन और धातु के बर्तन देने को कहा; फिर उसने एक गाड़ी भरकर उन्हें जेतवन मठ ले गया। एक दिन सत्य के हॉल में लोग बातें करने लगे। "मित्र, सक्का कुल का उपनंद, जो बहुत खाने वाला और लालची है, दूसरों को धर्म का उपदेश दे रहा है, और देखो, वह तो बड़े भिक्षुओं की संपत्ति से भरी गाड़ी लेकर आ गया है!" गुरुजी अंदर आए और यह जानने की इच्छा जताई कि वे क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। "भाइयों," गुरुजी ने कहा, "उपनंद ने पहले भी संतोष

की बात करके गलती की है। लेकिन मनुष्य को दूसरों के अच्छे व्यवहार की प्रशंसा करने से पहले अपनी इच्छाओं में संयमी होना चाहिए।"

"पहले स्वयं को धार्मिकता में स्थापित करो,
फिर सिखाओ; बुद्धिमानों को स्वार्थी नहीं होना चाहिए।
धम्मपद (*2) के इस श्लोक का हवाला देते हुए और उपनंद को दोषी ठहराते हुए उन्होंने आगे कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि उपनंद लालची हुआ है। बहुत पहले, उसने सोचा था कि समुद्र का पानी भी बचाया जाना चाहिए।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व समुद्र-देवता बन गए। फिर एक कौआ समुद्र के ऊपर से उड़ रहा था। वह उड़ता हुआ मछलियों के झुंड और पक्षियों के समूह को देखकर चिल्लाने लगा,

"समुद्री जल का अधिक सेवन मत करो! सावधान रहो!" उसे देखकर, समुद्र-देवता ने पहली पंक्ति दोहराई:

"खारे समुद्र की लहरों के ऊपर कौन उड़ता है?"
मछलियों के झुंड की जाँच कौन करता है, और कोशिश कौन करता है
गहरे समुद्र के राक्षस यहीं रहेंगे
अन्यथा सारा समुद्र ही बह जाएगा?
जलकौवे ने यह सुना और दूसरे छंद में उत्तर दिया:

"एक शराबी कभी संतुष्ट नहीं होता"
इसलिए लोग मुझे दुनिया भर में इसी नाम से पुकारते हैं।
मैं समुद्र का पानी पीने की कोशिश खुशी-खुशी करूंगा।
और नदियों के स्वामी को सुखा दो।
यह सुनकर सागर-आत्मा ने तीसरी बात दोहराई:

सागर का जलस्तर निरंतर घटता रहता है।
और उसी दिन फिर से भर जाता है।
भला किसने सोचा था कि समुद्र भी हार सकता है?
इसे पी लेने से कोई फायदा नहीं होगा!
इन शब्दों के साथ ही उस आत्मा ने एक भयानक रूप धारण कर लिया और जल-कौवे को डराकर भगा दिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय उपनंद जल-कौवा था, लेकिन आत्मा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) वह संन्यासी जो उसे दिए गए वस्त्रों, भोजन, बिस्तर से संतुष्ट रहता है, और जो ध्यान में आनंदित रहता है।

(2)श्लोक 158.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काम-विलाप-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-297-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 297
काम-विलप-जातक

"हे पक्षी, जो उड़ता है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ऐसे व्यक्ति के बारे में जो अपनी पूर्व पत्नी के लिए तरसता था। जिन परिस्थितियों ने उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया, उनका वर्णन (*1) पुप्परत्ता जन्म-कथा (*2) में और अतीत की कहानी का वर्णन इंद्रिय जन्म-कथा (*3) में किया गया है।

इस प्रकार उस व्यक्ति को जिंदा ही सूली पर चढ़ा दिया गया। जब वह वहाँ लटका हुआ था, उसने ऊपर देखा और एक कौआ हवा में उड़ता हुआ दिखाई दिया; और, असहनीय दर्द की परवाह किए बिना, उसने कौए को अपनी प्रिय पत्नी को संदेश भेजने के लिए पुकारा, और निम्नलिखित छंद दोहराए:

"हे पक्षी, आकाश में उड़ने वाले!"
हे पंखों वाले पक्षी, जो ऊँची उड़ान भरते हो!
मेरी पत्नी को बताओ, जिसकी जांघें इतनी सुंदर हैं:
उसे यह समय लंबा लगेगा।
उसे पता नहीं है कि तलवार और भाला तैयार हैं:
दर्द से भरी और गुस्से में वह परेशान होगी।
यही मेरी पीड़ा और मेरा भय है।
और ऐसा नहीं है कि मैं यहाँ लटका हुआ हूँ।
मैंने अपना कमल-कवच त्याग दिया है।
और मेरे तकिए में गहने पड़े हैं,
और साथ में बनारस का मुलायम कपड़ा भी।
धन-संपत्ति से ही वह संतुष्ट रहे।
इन्हीं चीखों के साथ उसकी मृत्यु हो गई।

जब उस गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई (सत्यों के समापन पर, प्रेम में व्याकुल भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की): "वह पत्नी तब भी वही पत्नी थी जो अब है; परन्तु जिसने यह देखा, वह आत्मा मैं ही था।"

फुटनोट:

(1)कथितम पढ़ना.

(2) संख्या 147

(3)सं. 423.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उडुंबर-जातक**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-298-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 298
उदंबर जातक

"अंजीर पक गए हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में, जिसने सीमावर्ती गाँव में एक आश्रम बनाया था। यह रमणीय आश्रम एक समतल चट्टान पर बना था; एक छोटा, साफ-सुथरा स्थान, जहाँ पर्याप्त पानी था, जिससे वह सुखद लगता था, पास में ही एक गाँव था जहाँ लोग परिक्रमा करते थे, और मित्रवत लोग थे जो भोजन देते थे। एक भिक्षु अपनी परिक्रमा के दौरान इस स्थान पर पहुँचा। वहाँ रहने वाले वरिष्ठ भिक्षु ने नए भिक्षु का आतिथ्य सत्कार किया और अगले दिन उसे अपने साथ परिक्रमा पर ले गए। लोगों ने उसे भोजन दिया और अगले दिन फिर आने का निमंत्रण दिया। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद, भिक्षु ने दूसरे भिक्षु को वहाँ से हटाने और आश्रम पर कब्ज़ा करने की योजना बनाई। एक बार जब वह वरिष्ठ भिक्षु से मिलने आया, तो उसने पूछा, "क्या आपने कभी बुद्ध के दर्शन किए हैं, मित्र?" भिक्षु ने जवाब दिया, "नहीं, महोदय; यहाँ मेरी कुटिया की देखभाल करने वाला कोई नहीं है, वरना मैं पहले ही चला गया होता।" "ओह, जब आप बुद्ध के दर्शन करने जाएँगे, मैं इसकी देखभाल करूँगा," नए आए व्यक्ति ने कहा; और इस प्रकार स्वामी ने गाँव वालों को यह आदेश देकर प्रस्थान किया कि वे उसके लौटने तक पवित्र भिक्षु की देखभाल करें। नए आए व्यक्ति ने अपने मेज़बान की बुराई करना शुरू कर दिया और गाँव वालों के सामने उसकी हर तरह की कमियाँ गिनाईं। दूसरा व्यक्ति अपने गुरु से मिलने गया और लौट आया; लेकिन नए आए व्यक्ति ने उसे आश्रय देने से इनकार कर दिया। उसने रहने के लिए एक जगह ढूँढी और अगले दिन गाँव में अपने चक्कर लगाने निकल गया। लेकिन गाँव वाले वेतन लेकर अपना कर्तव्य निभाने को तैयार नहीं थे। वह बहुत निराश हुआ और जेतवन मठ लौट आया, जहाँ उसने भिक्षुओं को सारी बात बताई। वे अपने सत्य के मंथन में इस मामले पर चर्चा करने लगे: "मित्र, फलाँ भिक्षु ने फलाँ भिक्षु को उसके आश्रम से निकाल दिया है और उस पर कब्ज़ा कर लिया है!" गुरुजी अंदर आए और जानना चाहते थे कि वे वहाँ बैठकर क्या चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें सब कुछ बता दिया। उसने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस आदमी ने दूसरे को उसकी रोजी-रोटी से बेदखल किया है;" और उसने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व वन में वृक्ष-आत्मा बन गए। उस समय वर्षा ऋतु में लगातार सात दिनों तक भारी बारिश होती थी। एक छोटा लाल मुख वाला बंदर बारिश से सुरक्षित एक चट्टानी गुफा में रहता था। एक दिन वह गुफा के मुहाने पर सूखे में, बड़े सुख से बैठा था। तभी एक बड़ा काला मुख वाला बंदर, जो ठंड से कांप रहा था, उसे देखकर रुका। उसने सोचा, "मैं इसे गुफा से कैसे निकालूँ और इसकी गुफा में कैसे रहूँ?" उसने अपना पेट फुलाकर और ऐसा जताते हुए जैसे उसने भरपेट भोजन किया हो, दूसरे बंदर के सामने रुककर पहली पंक्ति दोहराई:

अंजीर पक गए हैं, बरगद के पेड़ अच्छे हैं।
और बंदर के भोजन के लिए तैयार।
मेरे साथ आइए और खाना खाइए!
भूख से परेशान क्यों होना चाहिए?
रेडफेस ने इन सब बातों पर विश्वास किया और इन सभी फलों को खाने की तीव्र इच्छा रखने लगा। इसलिए वह निकल पड़ा, यहाँ-वहाँ शिकार किया, पर उसे कोई फल नहीं मिला। फिर वह वापस लौटा; और देखा कि ब्लैकफेस अपनी गुफा में बैठा है! उसने उसे मात देने का निश्चय किया; इसलिए उसके सामने रुककर उसने दूसरा छंद दोहराया:

"वह धन्य है जो सम्मान का फल देता है।"
अपने उन बड़ों के लिए जो पूर्ण आयु में थे;
मुझे अभी भी उतनी ही खुशी महसूस हो रही है।
इतने सारे फल खाने के बाद, मैं कसम खाता हूँ!
बड़े बंदर ने सुना और तीसरी बात दोहराई:

"जब यूनानी का सामना यूनानी से होता है, तब रस्साकशी शुरू होती है।"
एक बंदर दूसरे बंदर की शरारतों को दूर से ही भांप लेता है।
यहां तक कि एक युवा भी जरूरत से ज्यादा तेज था;
लेकिन बूढ़े पक्षियों को भूसे से नहीं पकड़ा जा सकता।
दूसरा भाग गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म-कथा का सारांश इस प्रकार दिया: "उस समय झोपड़ी का स्वामी छोटा बंदर था, घुसपैठिया बड़ा काला बंदर था, लेकिन वृक्ष-आत्मा मैं स्वयं था।"

पिछला <<<<-----||-299-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 299
कोमया-पुत्त-जातक

“पहले तुम इस्तेमाल होते थे,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने पुब्बाराम में सुनाई थी, कुछ भिक्षुओं के बारे में जो अपने व्यवहार में असभ्य और बदतमीज़ थे। ये भिक्षु, जो गुरु के नीचे वाली मंजिल पर रहते थे, अपने देखे-सुने किस्से सुनाते थे और झगड़ालू व गाली-गलौज करने वाले थे। गुरु ने महामोग्गल्याना को अपने पास बुलाया और उन्हें डराने के लिए कहा। वरिष्ठ भिक्षु हवा में उठे और अपने अंगूठे से घर की नींव को छू लिया। नींव समुद्र के सबसे दूर के किनारे तक हिल गई! भिक्षु बुरी तरह डर गए और बाहर आकर खड़े हो गए। उनके इस असभ्य व्यवहार के बारे में भिक्षुओं के बीच चर्चा होने लगी। एक दिन वे सत्य के हॉल में इस बारे में बात करने लगे। “मित्र, कुछ भिक्षु इस मोक्ष (निर्वाण) के घर में आए हैं, जो असभ्य और बदतमीज़ हैं; वे संसार की अनित्यता, दुःख और असभ्यता को नहीं देखते और न ही अपना कर्तव्य निभाते हैं।” गुरु अंदर आए और उनसे पूछा कि वे वहाँ बैठे-बैठे किस बारे में चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने उससे कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि वे कठोर और असभ्य व्यवहार कर रहे हैं। वे पहले भी ऐसे ही थे।” और उसने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में एक गाँव में हुआ। उनका नाम कोमयपुत्त रखा गया। समय बीतने पर वे हिमालय क्षेत्र में जाकर संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ कुछ आनंदमय तपस्वी रहते थे, जिन्होंने एक आश्रम बनाया हुआ था। वे ध्यान की अवस्था (सम्मोहन) प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करते थे। वे जंगल से फल लाकर खाते थे और फिर आपस में हँसते-हँसते समय बिताते थे। उनके पास एक बंदर था, जो उन्हीं की तरह असभ्य स्वभाव का था और अपनी विचित्र हरकतों और शरारतों से उनका खूब मनोरंजन करता था।

वे काफी समय तक उसी स्थान पर रहे, जब तक कि उन्हें नमक और मिठाई लेने के लिए फिर से मनुष्यों के बीच नहीं जाना पड़ा। उनके चले जाने के बाद, बोधिसत्व उनके निवास स्थान में रहने लगे। बंदर ने उनके लिए भी वही शरारतें कीं जो वह दूसरों के लिए करता था। बोधिसत्व ने अपनी उंगली उसकी ओर इशारा करते हुए उसे उपदेश दिया, "जो व्यक्ति सुशिक्षित तपस्वियों के साथ रहता है, उसे उचित व्यवहार करना चाहिए, अपने कार्यों में विवेकशील होना चाहिए और ध्यान में लीन रहना चाहिए।" उसके बाद से, बंदर हमेशा गुणी और अच्छे व्यवहार वाला रहा।

इसके बाद बोधिसत्व चले गए। अन्य तपस्वी अपना नमक और मिठाई लेकर लौट आए। लेकिन बंदर ने उनके साथ शरारतें करना बंद कर दिया। उन्होंने पूछा, "यह क्या है, मेरे मित्र? तुम पहले की तरह खेल क्यों नहीं खेलते?" उनमें से एक ने पहली पंक्ति दोहराई:

"पहले आप खेला करते थे
हम संन्यासी इसी झोपड़ी में निवास करते हैं।
ओ बंदर! बंदर की तरह करो;
जब तुम अच्छे होते हो तो हम तुमसे प्यार नहीं करते।
यह सुनकर बंदर ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

शब्द द्वारा संपूर्ण ज्ञान
मैंने बुद्धिमान कोमाया के बारे में सुना है।
अब मुझे मत समझो क्योंकि मुझे देर हो गई थी
अब मुझे ध्यान करना पसंद है।"
इस पर साधु ने तीसरी बात दोहराई:

"यदि तुम चट्टान पर बीज बोते हो,

बारिश होने पर भी फसल नहीं उगेगी।
आपको अभी भी पूर्ण ज्ञान सुनने को मिल सकता है;
लेकिन तुम कभी ध्यान नहीं कर पाओगे।"

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय ये भाई (भिक्षु) तुच्छ संन्यासी थे, लेकिन कोमयपुत्त मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वाका-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-300-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 300
वाका-जातक

“भेड़िया जो ले जाता है,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में पुरानी मित्रता के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ विस्तार से विनय में वर्णित घटनाओं के समान थीं; यह उनका संक्षिप्त विवरण है। पूज्य उपसेना, जो दो वर्ष के विद्यार्थी थे, अपने साथ एक प्रथम वर्ष के विद्यार्थी को लेकर गुरु से मिलने आए, जो उसी मठ में रहते थे। गुरु ने उन्हें फटकारा और वे एकांतवास में चले गए। आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने और संतत्व प्राप्त करने के बाद, संतोष और पारिवारिक सद्गुणों को अपनाकर, एक संन्यासी के तेरह साधनाओं का पालन करते हुए और उन्हें अपने साथियों को सिखाते हुए, जब भगवान बुद्ध तीन महीने के लिए एकांतवास में थे, उन्होंने अपने भिक्षुओं के साथ, पहले गलत वाणी और असामंजस्य के लिए दिए गए दोष को स्वीकार किया, और दूसरी बार इस प्रकार स्वीकृति प्राप्त की, “अब से, कोई भी भिक्षु जब चाहे मुझसे मिलने आ सकता है, बशर्ते कि वे एक संन्यासी के तेरह साधनाओं का पालन करें।” इससे प्रोत्साहित होकर, वे वापस लौटे और उन्होंने यह कहानी अपने भिक्षुओं को सुनाई। उसके बाद, भाई लोग गुरु से मिलने आने से पहले इन प्रथाओं का पालन करते थे; फिर, जब गुरु अपने एकांतवास से बाहर आते, तो वे अपने पुराने चिथड़े फेंक देते और साफ वस्त्र पहन लेते। जब गुरु अपने सभी भाइयों के साथ कमरों का निरीक्षण करने गए, तो उन्होंने वहाँ पड़े इन चिथड़ों को देखा और पूछा कि ये क्या हैं। जब उन्होंने बताया, तो गुरु ने कहा, "भाइयों, इन भाइयों द्वारा अपनाई गई यह प्रथा क्षणभंगुर है, भेड़िये की पवित्र दिन की सेवा की तरह"; और उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व ने देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) के रूप में जन्म लिया। उस समय गंगा के किनारे एक चट्टान पर एक भेड़िया रहता था। सर्दियों में बाढ़ आई और चट्टान को घेर लिया। वह चट्टान पर पड़ा रहा, उसके पास न तो भोजन था और न ही उसे प्राप्त करने का कोई साधन। पानी बढ़ता ही गया, और भेड़िये ने सोचा, "यहाँ न तो भोजन है और न ही उसे प्राप्त करने का कोई साधन। मैं यहाँ पड़ा हूँ, कुछ करने को नहीं है। क्यों न मैं उपवास रख लूँ?" इस प्रकार उपवास रखने का संकल्प लेते हुए, वह लेटे-लेटे धार्मिक नियमों का पालन करने के लिए दृढ़ निश्चय कर रहा था। सक्का (इंद्र) ने ध्यान में भेड़िये के कमजोर संकल्प को देखा। उन्होंने सोचा, "मैं इस भेड़िये को दंडित करूँगा"; और एक जंगली बकरी का रूप धारण करके, वे उसके पास खड़े हो गए और भेड़िये को अपना दर्शन कराया।

"मैं आज का व्रत एक और दिन रख लूँगा!" भेड़िये ने उसे देखते ही सोचा; वह उठा और उस पर झपटा। लेकिन बकरी इधर-उधर उछली जिससे भेड़िया उसे पकड़ नहीं पाया। जब भेड़िये ने देखा कि वह उसे पकड़ नहीं पा रहा है, तो वह रुक गया और वापस चला गया, और लेटते हुए मन ही मन सोचने लगा, "अच्छा हुआ, मेरा व्रत तो टूटा नहीं।"

तब सक्का (इंद्र) अपनी दिव्य शक्ति से आकाश में मंडराते हुए बोले, "तुम जैसे अस्थिर लोगों का उपवास रखने से क्या लेना-देना? तुम्हें पता नहीं था कि मैं सक्का (इंद्र) हूँ और बकरे का मांस खाना चाहता था!" और इस प्रकार उसे प्रताड़ित और फटकारते हुए, वे देवदूतों के लोक में लौट गए।

"भेड़िया, जो जीवित प्राणियों को अपने भोजन के रूप में लेता है,"

और उनके मांस और रक्त को खाकर अपना भोजन बनाता है।
एक बार भुगतान करने की पवित्र प्रतिज्ञा ली थी,
उसने व्रत रखने का निश्चय कर लिया था।
"जब सक्का (इंद्र) को पता चला कि उसने क्या करने का संकल्प लिया है,
उसने स्वयं को बाहरी नजरों के लिए एक बकरे के समान बना लिया।
फिर खून पीने वाला अपने शिकार को पकड़ने के लिए झपटा।
उसने अपना वचन भुला दिया, अपने सद्गुणों को त्याग दिया।
फिर भी, इस दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं,
जो ऐसे संकल्प लेते हैं जो उनकी क्षमता से परे होते हैं।
अपने उद्देश्य से भटक जाना, जैसा कि भेड़िये ने यहाँ किया।
जैसे ही उसने बकरी को आते देखा।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

पुस्तक IV. चतुक्कनिपाटा:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्लकलिंग-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-301-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 301
CULLAKALINGA-JATAKA

"द्वार खोलो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें चार महिला तपस्वियों को धार्मिक (तपस्वी) जीवन में प्रवेश देने की बात कही गई थी।

परंपरा के अनुसार, वैशाली नगर में शासक परिवार के सात हजार सात सौ सात लिच्छवी रहते थे। वे सभी वाद-विवाद में लीन रहते थे।

अब पाँच सौ विभिन्न शिक्षाओं का ज्ञान रखने वाला एक जैन वैशाली नगर में आया और वहाँ उसका हार्दिक स्वागत हुआ। उसी प्रकार की एक जैन स्त्री भी वैशाली नगर में आई और लिच्छवी सरदारों ने उन दोनों के बीच वाद-विवाद करवाया। जब वे वाद-विवाद में एक-दूसरे के बराबर सिद्ध हुए, तो लिच्छवियों को यह विचार आया कि ऐसे जोड़े के बच्चे अवश्य बुद्धिमान होंगे। अतः उन्होंने उनका विवाह करवा दिया और समय आने पर इस विवाह से चार पुत्रियाँ और एक पुत्र उत्पन्न हुए। पुत्रियों के नाम सच्चा, लोला, अववादका और पताकरा रखे गए, और पुत्र का नाम सच्चका रखा गया। ये पाँचों संतानें जब वयस्क हुईं, तो उन्होंने एक हजार विभिन्न शिक्षाएँ प्राप्त कीं, पाँच सौ माता से और पाँच सौ पिता से। माता-पिता ने अपनी पुत्रियों को इस प्रकार शिक्षा दी: "यदि कोई गृहस्थ तुम्हारी शिक्षा का खंडन करे, तो तुम उसकी पत्नियाँ बन जाओ, परन्तु यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु तुम्हारा खंडन करे, तो तुम्हें उसके हाथों से शिष्यत्व ग्रहण करना होगा।"

कुछ समय बाद उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनके मरने के बाद जैन सच्चक वैशाली नगर में ही रहने लगे और लिच्छवियों की परंपरा का अध्ययन करने लगे। उनकी बहनें गुलाब-खलिहान की एक शाखा लेकर शहर-शहर विमर्श करते हुए अंततः श्रावस्ती नगर पहुँचीं। वहाँ उन्होंने नगर के द्वार पर गुलाब-खलिहान की शाखा लगाई और वहाँ मौजूद कुछ लड़कों से कहा, "यदि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ हो या वरिष्ठ भिक्षु, हमारे विरुद्ध कोई उपदेश देने का साहस करे, तो वह इस धूल के ढेर को अपने पैरों से रौंद डाले और इस शाखा को कुचल दे।" ये कहकर वे भिक्षा मांगने नगर में चली गईं।

अब पूज्य सारिपुत्र ने जहाँ-जहाँ आवश्यक था वहाँ सफाई की, खाली घड़ों में पानी भरा और बीमारों की सेवा की। इसके बाद वे दिन में भिक्षा मांगने के लिए श्रावस्ती नगर गए। जब उन्होंने उस शाखा को देखा और उसके बारे में सुना, तो उन्होंने लड़कों को उसे नीचे

गिराकर कुचलने का आदेश दिया। उन्होंने कहा, “जिन लोगों ने इस वृक्ष शाखा को रोपा है, वे भोजन समाप्त होते ही जेतवन मठ के द्वार के ऊपर बने चबूतरे में आकर मुझसे मिलें।”

अतः वह नगर में गया और भोजन करने के बाद मठ के द्वार के ऊपर बने कक्ष में बैठ गया। स्त्री तपस्वियों ने भी भिक्षा मांगने के बाद लौटकर देखा कि शाखा कुचली हुई थी। जब उन्होंने पूछा कि यह किसने किया, तो लड़कों ने बताया कि यह सारिपुत्र ने किया है, और यदि वे इस पर चर्चा करना चाहती हैं, तो वे मठ के द्वार के ऊपर बने कक्ष में आ सकती हैं।

अतः वे शहर लौट आए और एक विशाल जनसमूह के साथ मठ के द्वार-शिखर पर गए तथा वरिष्ठ भिक्षु से हज़ारो अलग-अलग प्रश्न पूछे। वरिष्ठ भिक्षु ने उनकी सभी समस्याओं का समाधान किया और फिर उनसे पूछा कि क्या उन्हें और कुछ पता है।

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, महाराज।"

"तब मैं आपसे कुछ पूछूंगा," उसने कहा।

उन्होंने कहा, "पूछिए, मेरे प्रभु, और यदि हमें इसका उत्तर पता होगा, तो हम आपको उत्तर देंगे।"

इसलिए, वरिष्ठ भिक्षु ने उनसे केवल एक प्रश्न पूछा, और जब उन्हें प्रश्न का उत्तर देना पड़ा, तो वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें उत्तर बता दिया।

तब उन्होंने कहा, "हम हार गए हैं, जीत आपकी है।"

"अब तुम क्या करोगे?" उसने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, “हमारे माता-पिता ने हमें यह सलाह दी थी: यदि किसी गृहस्थ से वाद-विवाद में हार जाओ, तो उसकी पत्नियाँ बन जाओ, परन्तु यदि किसी वरिष्ठ भिक्षु से हार जाओ, तो उसके हाथों से शिष्यों का दीक्षा संस्कार ग्रहण करो।” अतः उन्होंने कहा, “हमें धार्मिक (तपस्वी) जीवन में प्रवेश दे दीजिए।”

वरिष्ठ भिक्षु ने सहर्ष सहमति दी और उन्हें उप्पलावन्ना नामक भिक्षुणी के घर में दीक्षा दी। और वे सभी शीघ्र ही संत बन गए।

फिर एक दिन उन्होंने सत्य के हॉल में यह विषय शुरू किया कि कैसे सारिपुत्र ने चार महिला तपस्वियों को शरण दी और उनके द्वारा ही वे सभी संतत्व प्राप्त कर सकीं। जब गुरुजी आए और उन्होंने उनकी चर्चा सुनी, तो उन्होंने कहा, "न केवल अभी, बल्कि पहले भी सारिपुत्र ने इन महिलाओं को शरण दी थी। (3) इस अवसर पर उन्होंने उन्हें धार्मिक (तपस्वी) जीवन के लिए समर्पित किया, लेकिन पहले उन्होंने उन्हें रानी पत्नी का दर्जा दिया था।" फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब कलिंग अपने राज्य के दंतपुरा नगर में शासन कर रहे थे, तब अस्सक, अस्सक देश के पोटाली नगर में राजा थे। कलिंग के पास एक बड़ी सेना थी और वे स्वयं हाथी के समान बलवान थे, परन्तु उन्हें युद्ध करने वाला कोई नहीं मिला। युद्ध के लिए उत्सुक होकर उन्होंने अपने मंत्रियों से कहा, "मैं युद्ध करने के लिए तरस रहा हूँ, परन्तु मुझे युद्ध करने वाला कोई नहीं मिल रहा।"

उनके मंत्रियों ने कहा, "महाराज, आपके लिए एक ही रास्ता खुला है। आपकी चार अत्यंत सुंदर पुत्रियाँ हैं। उनसे कहिए कि वे गहनों से सजें, और फिर उन्हें एक ढकी हुई गाड़ी में बिठाकर सशस्त्र सुरक्षाकर्मियों के साथ हर गाँव, कस्बे और राजमहल में ले जाया जाए। और यदि कोई राजा उन्हें अपने हरम में ले जाने की इच्छा रखे, तो हम उससे युद्ध करेंगे।"

राजा ने उनकी सलाह मान ली। परन्तु जहाँ कहीं भी वे गए, विभिन्न देशों के राजा उन्हें अपने नगरों में प्रवेश देने से डरते रहे, परन्तु उन्हें उपहार भेजे और नगर की दीवारों के बाहर आवास प्रदान किया। इस प्रकार वे भारत के कोने-कोने में यात्रा करते हुए अस्सक देश के पोटाली पहुँचे। परन्तु अस्सक ने भी अपने द्वार उनके लिए बंद कर दिए और केवल उपहार भेजा। अब इस राजा का नंदीसेना नाम का एक बुद्धिमान और योग्य मंत्री था, जो अनेक विद्याओं में निपुण था। उसने मन ही मन सोचा, “लोग कहते हैं कि ये राजकुमारियाँ भारत भर में घूम चुकी हैं, लेकिन उन्हें कोई ऐसा नहीं मिला जो उनके अधिकार के लिए युद्ध करे। यदि ऐसा है, तो भारत तो बस एक खोखला नाम है। मैं स्वयं कलिंग से युद्ध करूँगा।”

फिर वह गया और पहरेदारों से शहर का द्वार उनके लिए खोलने को कहा, और उसने पहला श्लोक बोला:

नंदीसेना की शक्ति से इन लड़कियों के लिए द्वार खोल दो।

राजा अरुणा (*2) के ऋषि सिंह, हमारे शहर की ठीक से रक्षा की जाती है।
इन शब्दों के साथ उसने द्वार खोल दिया और कन्याओं को राजा अस्सक के समक्ष ले आया तथा उससे कहा, “भयभीत न हों। यदि युद्ध होना हो, तो मैं उसका प्रबंध करूँगा। इन सुंदर राजकुमारियों को अपनी प्रधान रानियाँ बनाइए।” फिर उसने पवित्र जल छिड़ककर उन्हें रानियाँ बनाया और उनके सेवकों को यह कहकर विदा कर दिया कि वे जाकर कलिंग को बताएँ कि उनकी पुत्रियों को रानी-पत्नी का दर्जा दिया गया है। वे जाकर कलिंग को यह सूचना दी, और कलिंग ने कहा, “मुझे लगता है कि वह नहीं जानता कि मैं कितना शक्तिशाली हूँ,” और तुरंत एक विशाल सेना के साथ निकल पड़ा। नंदीसेना ने उसके आगमन की सूचना पाकर यह संदेश भेजा; “कलिंग अपनी सीमाओं में ही रहे, हमारी सीमाओं में अतिक्रमण न करे, और युद्ध दोनों देशों की सीमाओं पर लड़ा जाएगा।” यह संदेश प्राप्त करके कलिंग अपने क्षेत्र की सीमा में ही रुक गया और अस्सक भी अपनी सीमा में ही रहा।

उस समय बोधिसत्व तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे और दो राज्यों के बीच स्थित एक आश्रम में रह रहे थे। कलिंग ने कहा, "ये भिक्षु ज्ञानी हैं। कौन बता सकता है कि हममें से कौन विजयी होगा और कौन पराजित? मैं इस तपस्वी से पूछूंगा।" इसलिए वे भेस बदलकर बोधिसत्व के पास आए और एक तरफ आदरपूर्वक बैठते हुए, सामान्य अभिवादन के बाद बोले, "आदरणीय, कलिंग और अस्सका ने अपने-अपने क्षेत्र में तीन-तीन भुजाएँ खींच रखी हैं, वे युद्ध के लिए उत्सुक हैं। इनमें से कौन विजयी होगा और कौन पराजित होगा?"

“महामहिम,” उन्होंने उत्तर दिया, “एक विजयी होगा, दूसरा पराजित होगा। मैं इससे अधिक कुछ नहीं बता सकता। लेकिन स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) यहाँ आ रहे हैं। मैं उनसे पूछकर आपको बता दूंगा, यदि आप कल फिर लौटें।”

जब सक्का (इंद्र) बोधिसत्व को प्रणाम करने आए, तो उन्होंने उनसे यह प्रश्न पूछा, और सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय, कलिंग की विजय होगी, अस्साक पराजित होगा, और फलां-फलां शगुन दिखाई देंगे।" अगले दिन कलिंग फिर आए और अपना प्रश्न दोहराया, और बोधिसत्व ने सक्का (इंद्र) का उत्तर दिया। कलिंग ने शगुन के बारे में पूछे बिना ही मन ही मन सोचा, "वे कहते हैं कि मेरी विजय होगी," और पूर्णतः संतुष्ट होकर चले गए। यह खबर दूर-दूर तक फैल गई। और जब अस्साक ने इसे सुना, तो उन्होंने नंदीसेना को बुलाया और कहा, "कहते हैं कि कलिंग विजयी होगा और हम पराजित होंगे। अब क्या किया जाए?"

"महाराज," उसने उत्तर दिया, "यह कौन जानता है? आप इस बात की चिंता न करें कि किसे विजय मिलेगी और किसे हार का सामना करना पड़ेगा।"

इन शब्दों से उन्होंने राजा को सांत्वना दी। फिर वे गए और बोधिसत्व को प्रणाम किया, और आदरपूर्वक एक तरफ बैठकर पूछा, "हे पूज्यवर, कौन विजय प्राप्त करेगा और कौन पराजित होगा?"

“कलिंगा की जीत होगी,” उसने उत्तर दिया। “और हे पूज्यवर, जीतने वाले के लिए क्या शगुन होगा और हारने वाले के लिए क्या होगा?” उसने पूछा।

"महामहिम," उसने उत्तर दिया, "विजेता का संरक्षक देवता एक बेदाग सफेद बैल होगा, और दूसरे राजा का संरक्षक देवता एक पूर्णतः काला बैल होगा, और दोनों राजाओं के संरक्षक देवता (देवदूत) स्वयं लड़ेंगे और बलपूर्वक विजयी या पराजित होंगे।"

यह सुनकर नंदीसेना उठे और राजा के सहयोगियों को अपने साथ ले गए—वे लगभग एक हजार थे और सभी महान योद्धा थे—और उन्हें पास के एक पहाड़ पर ले गए और उनसे पूछा, "क्या तुम हमारे राजा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करोगे?"

"जी सर, हम करेंगे," उन्होंने उत्तर दिया।

"तो फिर इस खाई से कूद जाओ," उसने कहा।

उन्होंने ऐसा करने की कोशिश की, लेकिन तभी उसने उन्हें रोकते हुए कहा, "बस करो। हमारे राजा के सच्चे मित्र बनो और उनके लिए वीरतापूर्वक युद्ध लड़ो।"

उन सभी ने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की। और जब युद्ध निकट आ गया, तो कलिंग ने मन ही मन यह निष्कर्ष निकाल लिया कि उसकी विजय होगी, और उसकी सेना ने भी यही सोचा, "जीत हमारी ही होगी।" अतः उन्होंने अपने कवच पहन लिए और अलग-अलग टुकड़ियों में संगठित होकर, अपनी इच्छानुसार आगे बढ़े, और जब बल प्रयोग करने का समय आया, तो वे असफल रहे।

लेकिन दोनों राजा, घोड़ों पर सवार होकर, युद्ध करने के इरादे से एक-दूसरे के निकट आ गए। उनके दो संरक्षक देवता (देवदूत) उनके आगे-आगे चलने लगे, कलिंग का देवता सफेद बैल के रूप में और दूसरे राजा का देवता काले बैल के रूप में। जैसे ही वे एक-दूसरे के

निकट आए, उन्होंने भी युद्ध का पूरा प्रदर्शन किया। लेकिन ये दोनों बैल केवल दोनों राजाओं को ही दिखाई दिए, किसी और को नहीं। तब नंदीसेन ने अस्सक से पूछा, "महाराज, क्या आपको संरक्षक देवता (देवदूत) दिखाई दे रहे हैं?"

"हां," उसने उत्तर दिया, "वे हैं।"

"किस वेश में?" उसने पूछा।

"कलिंग के संरक्षक देवता (देवदूत) सफेद बैल के रूप में प्रकट होते हैं, जबकि हमारे संरक्षक देवता काले बैल के रूप में प्रकट होते हैं और व्यथित प्रतीत होते हैं।"

"महाराज, भयभीत न हों, हम विजय प्राप्त करेंगे और कलिंग पराजित होगा। बस अपने सुप्रशिक्षित सिंधी घोड़े से उतरें और इस भाले को अपने बाएं हाथ से पकड़कर उसके पार्श्व पर प्रहार करें, फिर हजार सैनिकों के इस दल के साथ तेजी से आगे बढ़ें और अपने हथियार के एक ही प्रहार से कलिंग के इस देवता (देवदूत) को जमीन पर गिरा दें, जबकि हम हजार भालों से उस पर प्रहार करेंगे और इस प्रकार कलिंग के संरक्षक देवता का नाश होगा, और तब कलिंग पराजित होगा और हम विजयी होंगे।"

"अच्छा," राजा ने कहा, और नंदीसेना के संकेत पर उसने अपने भाले से प्रहार किया और उसके दरबारियों ने भी अपने हजार भालों से प्रहार किया, और कलिंग के संरक्षक देवता (देवदूत) की वहीं मृत्यु हो गई।

इस बीच कलिंग पराजित होकर भाग गया। यह देखकर उन सभी हजार सलाहकारों ने जोर से चिल्लाकर कहा, "कलिंग भाग गया है।" तब मृत्यु के भय से ग्रस्त कलिंग ने भागते हुए उस तपस्वी को फटकारा और दूसरा श्लोक कहा:

"कलिंगों का साहस विजय का दावा करेगा।"
इस हार ने अस्साक परिवार को शर्म से भर दिया है।
इस प्रकार आपके आदरणीय ने भविष्यवाणी की थी।
और ईमानदार लोगों को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

इस प्रकार कलिंग ने भागते समय उस तपस्वी का अपमान किया। और अपने नगर लौटते समय उसने एक बार भी पीछे मुड़कर देखने का साहस नहीं किया। कुछ दिनों बाद इंद्र उस तपस्वी से मिलने आए। और तपस्वी ने उनसे बातचीत करते हुए तीसरा श्लोक कहा:

झूठे शब्दों से देवता (देवदूत) मुक्त हैं।
सत्य ही उनका सबसे बड़ा खजाना होना चाहिए।
हे महान सक्का (इंद्र), इसमें आपने झूठ बोला था;
मैंने पूछा, मुझे कारण बताओ।

यह सुनकर इंद्र ने चौथा श्लोक बोला:

हे ब्राह्मण, क्या तुम्हें कभी नहीं बताया गया?
क्या देवता (देवदूत) साहसी नायक से ईर्ष्या नहीं करते?
वह दृढ़ संकल्प जो कभी नहीं झुकेगा,
इस क्षेत्र में साहसी कौशल,
उच्च साहस और साहसिक शक्ति
क्योंकि असाका ने यह मुकाबला जीत लिया है।

कलिंग के भाग जाने पर, राजा अस्सक लूट का माल लेकर अपने नगर लौट आया। नंदीसेन ने कलिंग को संदेश भेजा कि वह इन चारों कन्याओं के दहेज के लिए कुछ हिस्सा भेजे। उसने आगे कहा, "नहीं तो मैं उससे निपटने का तरीका जान लूंगा।" यह संदेश सुनकर कलिंग इतना भयभीत हुआ कि उसने उनके लिए उचित हिस्सा भेजा। और उस दिन से दोनों राजा सौहार्दपूर्ण ढंग से एक साथ रहने लगे।

अपने प्रवचन के अंत में, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों ये युवतियाँ कलिंग राजा की पुत्रियाँ थीं, सारिपुत्र नंदीसेना थे और मैं स्वयं वह ऋषि था।"

फुटनोट:

(1) आधुनिक उड़ीसा.

(2)अरुणा असाका राजा का असली नाम था।

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-302-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 302
महासरोह-जातक

“आपके दिए हुए उपहार,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, वरिष्ठ भिक्षु आनंद के बारे में सुनाई थी। कहानी के स्रोत का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। गुरु ने कहा, “पुराने समय में भी, बुद्धिमान लोग इस सिद्धांत पर चलते थे कि एक अच्छे कर्म का फल अच्छा कर्म ही होता है।” और इसी पर उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व बनारस के राजा थे, और उन्होंने न्याय और निष्पक्षता के साथ शासन करते हुए दान दिया और नैतिक नियमों का पालन किया।

सीमा पर किसी गड़बड़ी को दबाने के इरादे से वह एक बड़ी सेना लेकर निकला, लेकिन पराजित होकर वह अपने घोड़े पर सवार होकर भागता रहा और एक सीमावर्ती गाँव तक पहुँच गया। वहाँ तीस वफादार प्रजा रहती थी और वे गाँव के बीचोंबीच सुबह-सुबह कुछ काम निपटाने के लिए इकट्ठा हुए थे। तभी राजा अपने कवचधारी घोड़े पर सवार होकर, शानदार ढंग से सुसज्जित होकर, गाँव के द्वार से अंदर आया। लोग भयभीत हो गए और "यह क्या हो सकता है?" कहते हुए अपने-अपने घर भाग गए। लेकिन एक व्यक्ति ऐसा था जो अपने घर जाए बिना ही राजा का स्वागत करने आ गया। उसने अजनबी को बताया कि उसने सुना है कि राजा सीमा पर आया है, और उससे पूछा कि वह कौन है और क्या वह राजभक्त है या विद्रोही। "मैं राजा का समर्थक हूँ, महाराज," उसने कहा। "तो मेरे साथ आइए," उसने उत्तर दिया और राजा को अपने घर ले जाकर अपनी कुर्सी पर बैठा दिया। फिर उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा, "मेरी प्रिय, हमारे मित्र के पैर धो दो;" जब उसने यह कर लिया, तो उसने राजा को सर्वोत्तम भोजन परोसा और उसके लिए बिस्तर तैयार करवाया, तथा उसे कुछ देर आराम करने के लिए कहा। राजा लेट गया। फिर उसके मेज़बान ने घोड़े का कवच उतार दिया, उसे खुला छोड़ दिया, उसे पानी पिलाया और घास खिलाई तथा तेल से मालिश की। इस प्रकार उसने तीन-चार दिन तक राजा की सेवा की, और राजा ने कहा, "मित्र, अब मैं चलता हूँ," और उसने फिर से राजा और उसके घोड़े दोनों की पूरी सेवा की। भोजन करने के बाद, राजा ने जाते समय कहा, "मुझे महान घुड़सवार कहा जाता है। हमारा घर शहर के केंद्र में है। यदि आप किसी काम से वहाँ आएँ, तो दाहिनी ओर के द्वार पर खड़े होकर द्वारपाल से पूछें कि महान घुड़सवार कहाँ रहता है, और उसे अपने साथ हमारे घर ले आएँ।" ये कहकर वह चला गया।

सेना ने राजा को न देखकर शहर के बाहर डेरा डाला, लेकिन जब उन्होंने राजा को देखा, तो वे उनसे मिलने के लिए बाहर आए और उन्हें उनके घर तक ले गए। शहर में प्रवेश करते ही राजा द्वार पर खड़े हो गए और द्वारपाल को बुलाकर भीड़ को पीछे हटने का आदेश दिया और कहा, "मित्र, सीमावर्ती गाँव में रहने वाला एक व्यक्ति हमसे मिलने के लिए उत्सुक होकर यहाँ आएगा और पूछेगा कि महान घुड़सवार का घर कहाँ है। उसका हाथ पकड़कर उसे हमारे सामने ले आओ, और तब तुम्हें एक हजार सिक्के मिलेंगे।"

लेकिन जब वह आदमी नहीं आया, तो राजा ने उसके गाँव पर कर बढ़ा दिया। फिर भी कर बढ़ने पर भी वह नहीं आया। इसलिए राजा ने दूसरी और तीसरी बार कर बढ़ाया, फिर भी वह नहीं आया। तब गाँव के निवासी इकट्ठा हुए और उस आदमी से बोले, “महाराज, जब से घुड़सवार आपके पास आया है, हम कर के बोझ तले दबे हुए हैं, इतना कि सिर भी नहीं उठा सकते। जाइए और उस महान घुड़सवार से मिलिए और उनसे हमारा बोझ हल्का करने का आग्रह कीजिए।”

“ठीक है, मैं जाऊंगा,” उसने उत्तर दिया, “लेकिन मैं खाली हाथ नहीं जा सकता। मेरे मित्र के दो बेटे हैं: इसलिए उनके लिए, उनकी पत्नी के लिए और स्वयं मेरे मित्र के लिए गहने और कपड़े तैयार कर लेना।”

"बहुत अच्छा," उन्होंने कहा और उपहार के लिए सारी तैयारी कर ली।

अतः वह यह उपहार और अपने घर में तली हुई एक रोटी लेकर गया। जब वह दाहिनी ओर के द्वार पर पहुँचा, तो उसने द्वारपाल से पूछा कि महान घुड़सवार का घर कहाँ है। द्वारपाल ने उत्तर दिया, "मेरे साथ आइए, मैं आपको दिखाता हूँ," और उसका हाथ पकड़कर राजा के द्वार पर पहुँचकर उसने संदेश भेजा, "द्वारपाल आ गया है और अपने साथ सीमावर्ती गाँव में रहने वाले व्यक्ति को लाया है।" यह सुनकर राजा अपने आसन से उठा और बोला, "मेरे मित्र और उनके साथ आए सभी लोगों को अंदर आने दीजिए।" फिर वह उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा और उन्हें गले लगाया। अपने मित्र की पत्नी और बच्चों का हालचाल पूछने के बाद, उसने उनका हाथ पकड़ा, चबूतरे पर चढ़ाया और उन्हें सफेद छतरी के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया। उसने अपनी मुख्य पत्नी को बुलाया और कहा, "मेरे मित्र के पैर धो दो।" अतः उसने उनके पैर धोए। राजा ने सोने के कटोरे से जल छिड़का, जबकि रानी ने उनके पैर धोए और सुगंधित तेल से उनकी मालिश की। तब राजा ने पूछा, “क्या हमारे लिए कुछ खाने को है?” उसने कहा, “जी महाराज,” और एक थैली में केक लेकर आया। राजा ने उन्हें सोने की थाली में ग्रहण किया, और उस पर विशेष कृपा दिखाते हुए कहा, “मेरे मित्र जो लाए हैं, उसे खाइए,” और अपनी रानी और मंत्रियों को भी कुछ केक दिए, और स्वयं भी खाए। तब उस अजनबी ने अपना दूसरा उपहार निकाला। राजा ने यह दिखाने के लिए कि उसने इसे स्वीकार कर लिया है, अपने रेशमी वस्त्र उतार दिए और वह वस्त्र पहन लिया जो वह उसके लिए लाया था। रानी ने भी अपने रेशमी वस्त्र और आभूषण उतार दिए और वह वस्त्र और आभूषण पहन लिए जो वह उसके लिए लाया था। तब राजा ने उसे राजाओं के योग्य भोजन परोसा और अपने एक सलाहकार से कहा, “जाओ और देखो कि उसकी दाढ़ी मेरी तरह संवारी जाए, और उसे सुगंधित जल से स्नान कराओ। फिर उसे एक लाख सिक्कों के मूल्य का रेशमी वस्त्र पहनाओ, और उसे राजसी ढंग से सजाकर यहाँ लाओ।” ऐसा ही किया गया। और राजा ने ढोल बजाते हुए नगर में अपने सलाहकारों को इकट्ठा किया, और सफेद छतरी पर शुद्ध लाल रंग का धागा डालकर उसे अपने राज्य का आधा हिस्सा दे दिया। उस दिन से वे साथ खाने-पीने और रहने लगे और पक्के और अटूट मित्र बन गए।

तब राजा ने उस व्यक्ति की पत्नी और परिवार को बुलवाया और उनके लिए नगर में एक घर बनवाया, और वे पूर्ण सामंजस्य के साथ राज्य पर शासन करने लगे। इससे दरबारी क्रोधित हो गए और राजा के पुत्र से कहने लगे, “हे राजकुमार, राजा ने अपने राज्य का आधा हिस्सा एक गृहस्थ को दे दिया है। वह उनके साथ खाता-पीता और रहता है, और हमें उनके बच्चों को प्रणाम करने का आदेश देता है। उसने राजा की क्या सेवा की है, यह हम नहीं जानते। राजा का क्या इरादा है? हमें शर्म आ रही है। क्या आप राजा से बात करेंगे?” वह तुरंत तैयार हो गया और उसने राजा को सारी बात बताई और कहा, “हे महाराज, ऐसा न करें।”

“मेरे बेटे,” उसने उत्तर दिया, “क्या तुम जानते हो कि युद्ध में पराजित होने के बाद मैं कहाँ रहा?” (*1)

"मुझे नहीं पता, महाराज," उसने कहा।

राजा ने कहा, "मैं इस व्यक्ति के घर में रह रहा था, और जब मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया तो मैं वापस आया और फिर से शासन करने लगा। तो फिर मैं उस व्यक्ति को सम्मान क्यों न दूं जिसने मेरी सहायता की?"

फिर बोधिसत्व ने आगे कहा, "मेरे पुत्र, जो कोई अयोग्य को दान देता है और योग्य को कुछ नहीं देता, विपत्ति आने पर उसे कोई सहायता देने वाला नहीं मिलता।" और इस उपदेश को समझाने के लिए उन्होंने ये श्लोक कहे:

आपके द्वारा मूर्ख या बेईमान व्यक्ति को दिए गए उपहार,
घोर संकट की स्थिति में कोई मित्र भी बचाव के लिए नहीं आएगा:
लेकिन अच्छे लोगों के प्रति दिखाई गई कृपा या दया
अत्यंत आवश्यकता होने पर हम आपको समय पर सहायता प्रदान करेंगे।
अयोग्य आत्माओं को दिए गए वरदान व्यर्थ ही खर्च हो जाते हैं।
भलाई के लिए आपकी छोटी सी सेवा भी लाभ है:
हालांकि यह एक अनूठा और सराहनीय कार्य है,
इससे कर्ता सिंहासन के योग्य हो जाता है:
छोटे बीज से भरपूर फल प्राप्त होते हैं,
शाश्वत प्रसिद्धि किसी नेक कर्म से ही प्राप्त होती है।
यह सुनकर न तो पार्षदों और न ही युवा राजकुमार के पास जवाब में कहने के लिए कुछ था।

अपने प्रवचन के अंत में गुरु ने इस प्रकार जन्म का वर्णन किया: "उस समय सीमावर्ती गाँव में आनंद रहते थे, जबकि मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 157 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **एकराज-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-303-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 303
एकराज-जातक

"हे महाराज, पूर्व में," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा के एक दरबारी के बारे में सुनाई थी। इस कथा के सूत्रधार बनने की परिस्थितियाँ पहले ही सेय्याम्सा (*1) जन्म में वर्णित हैं। इस अवसर पर गुरु ने कहा, "बुराई से भलाई प्राप्त करने वाले तुम अकेले नहीं हो: प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने भी बुराई से भलाई प्राप्त की थी।" और उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा के एक सेवक ने राजमहल में दुराचार किया। राजा ने अपनी आँखों से उसका अपराध देखकर उसे राज्य से निकाल दिया। उसके द्वारा कोसल के राजा दब्बासेना की सेवा में आने की पूरी कहानी महासिलाव (*2) जन्म में वर्णित है।

लेकिन इस कथा में, दब्बासेना ने बनारस के राजा को उनके सलाहकारों के बीच मंच पर बैठे हुए पकड़ लिया और उन्हें रस्सी से दरवाजे के चौखट पर बांधकर सिर नीचे की ओर लटका दिया। राजा ने विद्रोही राजकुमार के प्रति दया भाव विकसित किया और पूर्ण तल्लीनता से एक रहस्यमय ध्यान अवस्था में प्रवेश किया, और अपने बंधन तोड़कर हवा में पालथी मारकर बैठ गए। विद्रोही राजकुमार को शरीर में तेज जलन हुई और "मैं जल रहा हूँ, मैं जल रहा हूँ" चिल्लाते हुए वह जमीन पर लोटने लगे। जब उन्होंने इसका कारण पूछा, तो उनके दरबारियों ने उत्तर दिया, "क्योंकि जिस राजा को आपने दरवाजे के चौखट पर सिर नीचे की ओर लटकाया है, वह इतना निर्दोष और पवित्र व्यक्ति है।" तब उन्होंने कहा, "जल्दी जाओ और उसे छुड़ाओ।" उनके सेवक गए और राजा को हवा में पालथी मारकर बैठे हुए पाया और वापस आकर दब्बासेना को बताया। इसलिए वह पूरी तेजी से गए और उनके सामने झुककर क्षमा मांगी और पहली पंक्ति दोहराई:

हे सम्राट, जो पहले अपने राज्य में निवास करते थे,
   ऐसे आनंद का अनुभव करना जैसा बहुत कम मनुष्यों ने देखा है।
नरक की यातनाओं के बीच लेटना कैसे संभव है?
   आप अब भी इतने शांत और विनम्र स्वभाव के हैं?
यह सुनकर बोधिसत्व ने शेष श्लोकों को दोहराया:

अतीत में स्वर्ग से मेरी यही एक सच्ची प्रार्थना थी।
   तपस्वियों की श्रेणी से अब किसी को भी बाहर नहीं रखा जाएगा।
लेकिन अब जब मुझे ऐसी महिमा प्रदान की गई है,
   हे मेरे चेहरे की सुंदरता क्यों विकृत होनी चाहिए?

अंत हो गया, मेरा काम पूरा हो गया।
   जो राजकुमार कभी मेरा प्रतिद्वंद्वी था, वह अब मुझसे विमुख नहीं है।
लेकिन अब जब मुझे वह प्रसिद्धि मिल गई है जिसकी मुझे इतनी लालसा थी,
   हे मेरे चेहरे का रूप क्यों बदला जाना चाहिए?
जब आनंद दुःख में बदल जाता है, और कल्याण कष्ट में बदल जाता है,
   धैर्यवान आत्माएं अपने दर्द से भी सुख प्राप्त कर सकती हैं।
लेकिन वे भावनाओं के ऐसे किसी भेद को नहीं जानते।

जब निर्वाण की शांति को बेचारे मनुष्य प्राप्त करते हैं।
यह सुनकर दब्बासेना ने बोधिसत्व से क्षमा मांगी और कहा, "आप अपनी प्रजा पर शासन कीजिए और मैं आप में से विद्रोहियों को निकाल दूंगा।" उस दुष्ट सलाहकार को दंडित करने के बाद वह अपने मार्ग चला गया। परन्तु बोधिसत्व ने राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया और ऋषि का तपस्वी जीवन अपनाकर ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में जन्म लेने के लिए नियत हो गए।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद दब्बासेना थे, और मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 282

(2) संख्या 51

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दद्दारा-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-304-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 304
दद्दरा-जातक

“हे दद्दरा, कौन,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक गुस्सैल व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। घटना का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। उस अवसर पर जब सत्य के हॉल में उस व्यक्ति के उग्र स्वभाव पर चर्चा हुई, तो गुरु वहाँ आए और जब उनके प्रश्न के उत्तर में भिक्षुओं ने उन्हें अपने विषय के बारे में बताया, तो उन्होंने उस व्यक्ति को बुलवाया और पूछा, “क्या यह सच है, हे भिक्षु, कि आप उग्र स्वभाव के हैं?” “जी, हे प्रभु, यह सच है,” उसने उत्तर दिया। तब गुरु ने कहा, “केवल अभी ही नहीं, हे भिक्षुओं, बल्कि पुराने समय में भी यह व्यक्ति बहुत उग्र स्वभाव का था और उसके उग्र स्वभाव के कारण पुराने समय के बुद्धिमान लोग नाग राजकुमारों के रूप में पूर्णतः निर्दोष जीवन व्यतीत करते हुए भी तीन वर्ष तक एक गंदे गोबर के ढेर पर निवास करना पड़ा था।” और इसके साथ ही उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, हिमालय क्षेत्र में दद्दरा पर्वत की तलहटी में दद्दरा नाग रहते थे। वहीं बोधिसत्व महादद्दरा के रूप में अवतरित हुए, जो उस देश के राजा सुरदद्दरा के पुत्र थे। उनका एक छोटा भाई था जिसका नाम कुल्दद्दरा था। कुल्दद्दरा क्रोधी और क्रूर था और नाग कन्याओं के साथ दुर्व्यवहार और मारपीट करता था। नाग राजा ने उसकी क्रूरता के बारे में सुनकर उसे नाग लोक से निष्कासित करने का आदेश दिया। लेकिन महादद्दरा ने अपने पिता को क्षमा कर दिया और अपने भाई को निष्कासन से बचा लिया। दूसरी बार राजा उससे क्रोधित हुए, लेकिन फिर से क्षमा कर बैठे। लेकिन तीसरी बार राजा ने कहा, "तुमने मुझे इस निकम्मे को निष्कासित करने से रोक दिया; अब तुम दोनों इस नाग लोक से चले जाओ और तीन साल तक बनारस में एक गोबर के ढेर पर रहो।"

इसलिए उन्होंने उन्हें नाग देश से भगा दिया और वे बनारस जाकर बस गए। जब गाँव के लड़कों ने उन्हें गोबर के ढेर के किनारे बनी खाई में खाना ढूंढते देखा, तो उन्होंने उन पर पत्थर, लाठी और अन्य चीजें फेंकीं और चिल्लाते हुए कहा, "ये क्या हैं - बड़े सिर और सुई जैसी पूंछ वाली पानी की छिपकलियाँ?" और अपशब्द भी कहे। लेकिन कुल्लादद्दारा, अपने उग्र और जोशीले स्वभाव के कारण, इस तरह के अपमान को सहन न कर पाने के कारण बोले, "भाई, ये लड़के हमारा मजाक उड़ा रहे हैं। इन्हें नहीं पता कि हम विषैले सर्प हैं। मैं इनका तिरस्कार सहन नहीं कर सकता। मैं इन्हें अपनी नाक की साँस से नष्ट कर दूँगा।" और फिर अपने भाई को संबोधित करते हुए, उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

हे दादरा, ऐसा अपमान कौन सहन कर सकता है?
"अरे! मेंढक खाने वाले अड़ियल!" वे चिल्लाते हैं:
यह सोचना भी भयानक है कि ये बेचारे निर्दोष जीव ऐसा करने की हिम्मत करेंगे।
विषैले दांतों वाले सर्प को चुनौती देना!
उनकी बात सुनकर महादद्दारा ने शेष श्लोक कहे:

एक निर्वासित जिसे एक विदेशी धरती पर धकेल दिया गया
दुर्व्यवहार से बड़ी मात्रा में धन जमा हो जाता है;
क्योंकि उनके पद और गुणों को कोई नहीं जान सकता।
केवल मूर्ख ही अपना अहंकार दिखाना चाहेगा।
जो घर पर "चमकदार व्यक्तित्व" हो,
विदेश में निम्न स्तर के लोगों को सहन करना पड़ता है।
तो वे वहाँ तीन साल तक रहे। फिर उनके पिता ने उन्हें वापस घर बुला लिया। और उस दिन से उनका स्वाभिमान कम हो गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की घोषणा की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, उग्र स्वभाव वाले भिक्षु ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय उग्र स्वभाव वाले भिक्षु कुल्लदद्दारा थे, और मैं स्वयं महादद्दारा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शीलावीमांसन-जातक2**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-305-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 305
सिलविमांसना-जातक

"सचमुच है," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए पाप के निवारण के बारे में सुनाई थी। ग्यारहवें खंड में पाणिय जन्म (*1) में इसके घटनाक्रम का विस्तार से वर्णन किया जाएगा। इसका संक्षिप्त सारांश निम्नलिखित है।

जेतवन मठ में रहने वाले पाँच सौ भिक्षु, रात के मध्य पहर के अंत में, इंद्रिय सुखों पर बहस करने लगे। गुरुजन दिन-रात छहों पहरों में भिक्षुओं की निरंतर निगरानी रखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक आँख वाला व्यक्ति अपनी आँख की, एक पिता अपने इकलौते बेटे की, या एक याक अपनी पूंछ की रक्षा करता है। रात के समय, जेतवन मठ के ऊपर अपनी अलौकिक दृष्टि से, उन्होंने इन भिक्षुओं को मानो किसी महान राजा के महल में घुसपैठ करने वाले लुटेरों की तरह देखा। और अपने सुगंधित कक्ष का द्वार खोलकर उन्होंने आनंद को बुलाया और उनसे स्वर्णमयी वेदी पर भिक्षुओं को एकत्रित करने और सुगंधित कक्ष के द्वार पर उनके लिए एक आसन तैयार करने को कहा। आनंद ने आज्ञा का पालन किया और गुरुजन को बताया। फिर गुरुजी अपने लिए तैयार की गई सीट पर बैठ गए और सभी भाइयों को संबोधित करते हुए बोले, "भाइयों, पुराने समय के बुद्धिमान लोगों का मानना था कि गलत काम में गोपनीयता जैसी कोई बात नहीं होती, इसलिए वे उससे दूर रहते थे," और उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए। जब वे वयस्क हुए, तो उन्हें उस शहर के एक विश्वप्रसिद्ध शिक्षक से विज्ञान की शिक्षा मिली। वे पाँच सौ छात्रों की कक्षा के प्रमुख थे। उनके शिक्षक की एक वयस्क पुत्री थी। उन्होंने सोचा, "मैं इन युवकों के गुणों की परीक्षा लूँगा और जो सबसे गुणवान होगा, उसी से उसका विवाह करूँगा।"

एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "मेरे मित्रों, मेरी एक वयस्क पुत्री है और मैं उसका विवाह करना चाहता हूँ, लेकिन मुझे उसके लिए उचित वस्त्र और आभूषण चाहिए। तुम अपने मित्रों को बिना बताए कुछ चुराकर मुझे दे दो। जो कुछ भी तुमने चुराया है और किसी ने तुम्हें चुराते हुए नहीं देखा है, मैं उसे स्वीकार करूँगा, लेकिन यदि तुम जो कुछ भी लाते हो, उसे किसी को देखने देते हो, तो मैं उसे अस्वीकार कर दूँगा।" वे सहमत हो गए और बोले, "ठीक है," और उस दिन से वे अपने मित्रों की जानकारी के बिना वस्त्र और आभूषण

चुराकर उन्हें देने लगे। गुरु ने प्रत्येक शिष्य द्वारा लाए गए वस्त्रों को अलग-अलग स्थानों पर रखा। लेकिन बोधिसत्व ने कुछ भी नहीं चुराया।

तब शिक्षक ने कहा, "परन्तु तुम, मेरे मित्र, मुझे कुछ नहीं लाते।" "जी हाँ, गुरुजी," उसने उत्तर दिया। "ऐसा क्यों है, मेरे मित्र?" उसने पूछा। "आप कुछ भी स्वीकार नहीं करते," उसने उत्तर दिया, "जब तक वह गुप्त रूप से न लिया गया हो। परन्तु मुझे लगता है कि कुकर्म में कोई गोपनीयता नहीं होती।"

और इस सत्य को समझाने के लिए उन्होंने इन दो छंदों को दोहराया:

वास्तव में, इस संसार में ऐसा कोई पाप नहीं है जो छिपा रह सके।
जिसे मूर्ख रहस्य समझता है, जंगल की आत्माएं उसे जानती हैं।
कहीं भी छिपाव नहीं पाया जा सकता, न ही मेरे लिए कोई शून्य अस्तित्व में हो सकता है।
जहां कोई प्राणी नजर नहीं आता, वहां भी जब तक मैं वहां मौजूद हूं, कोई शून्य नहीं हो सकता।

गुरु उसकी बातों से प्रसन्न होकर बोले, “मित्र, मेरे घर में धन की कोई कमी नहीं है, परन्तु मैं अपनी पुत्री का विवाह एक गुणी पुरुष से करना चाहता था, और मैंने इन युवकों की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। परन्तु मेरी पुत्री के योग्य केवल तुम ही हो।” फिर उन्होंने अपनी पुत्री को सजाया-संवारा और उसका विवाह बोधिसत्व से कर दिया, परन्तु अपने अन्य शिष्यों से कहा, “जो कुछ तुम मेरे लिए लाए हो, उसे अपने-अपने घर वापस ले जाओ।”

तब गुरु ने कहा, "हे भाइयों, इस प्रकार दुष्ट शिष्यों ने अपनी बेईमानी से इस स्त्री को पाने में असफल रहे, जबकि इस बुद्धिमान युवक ने अपने सदाचारी आचरण से उसे अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त कर लिया।" और अपनी पूर्ण बुद्धि से उन्होंने दो और छंद कहे:

स्वामी बुरे, नीच, आसान और आनंद में लिप्त होते हैं,
और कमजोर होने के कारण, पत्नी के लिए भटक गई;
लेकिन हमारे ब्राह्मण, जो बचपन से ही विधि में निपुण थे,
सत्य को थामे रखने के अपने साहस से उसने एक दुल्हन को जीता।

गुरु ने इस गंभीर पाठ को समाप्त करते हुए सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया:- सत्यों के समापन पर इन पाँच सौ भिक्षुओं ने संतत्व प्राप्त किया:- "उस समय सारिपुत्र गुरु थे, और मैं स्वयं ज्ञानी युवक था।"

फुटनोट:

(1)सं. 459

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुजाता-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-306-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 306
सुजाता-जातक

“यह अंडाकार फल क्या है?” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए रानी मल्लिका के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि एक दिन दरबार में उनका और राजा का विवाद हो गया। (*1) राजा इतना क्रोधित था कि उसने मल्लिका के अस्तित्व को ही नकार दिया। मल्लिका ने सोचा, “मुझे लगता है कि गुरुजी को पता ही नहीं है कि राजा मुझसे कितना क्रोधित है।” लेकिन गुरुजी को सब पता था और उन्होंने उनके बीच सुलह कराने का निश्चय किया। इसलिए सुबह सवेरे उन्होंने अपने भीतरी वस्त्र पहने और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर पाँच सौ भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती नगर में प्रवेश किया और महल के द्वार पर पहुँचे। राजा ने उनसे भिक्षापात्र ले लिया, उन्हें महल में ले गए और उनके लिए तैयार की गई आसन पर बिठाकर, बुद्ध की मूर्ति के साथ भिक्षुओं के हाथों पर दान जल डाला और उन्हें खाने के लिए चावल और रोटी दी। लेकिन गुरुजी ने अपने भिक्षापात्र को हाथ से ढक लिया और कहा, “महाराज, रानी कहाँ हैं?”

"आपका उससे क्या लेना-देना है, आदरणीय महोदय?" उसने उत्तर दिया। "उसका दिमाग खराब हो गया है, वह अपने सम्मान के नशे में चूर है।"

"महाराज," उसने कहा, "जब आपने स्वयं इस स्त्री को यह सम्मान दिया है, तो अब उससे छुटकारा पाना और उसके द्वारा आपके विरुद्ध किए गए अपराध को सहन न करना आपके लिए अनुचित है।"

राजा ने गुरु की बात सुनी और रानी को बुलवाया।

और उसने स्वामी की सेवा की। स्वामी ने कहा, "तुम्हें शांति से साथ रहना चाहिए," और सद्भाव की मधुरता का गुणगान करते हुए वह अपने मार्ग पर चल पड़ा। और उस दिन से वे सुखपूर्वक साथ रहने लगे।

सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने इस बात पर चर्चा शुरू कर दी कि गुरु ने एक ही शब्द से राजा और रानी का मेल करा दिया था। गुरु जब वहाँ आए, तो उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, और जब उन्हें बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी मैंने एक ही सलाह के शब्द से उनका मेल कराया था।" और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके मंत्री और उनके सांसारिक और आध्यात्मिक सलाहकार थे।

एक दिन राजा महल के प्रांगण में झांकती एक खुली खिड़की पर खड़े थे। तभी एक फल विक्रेता की बेटी, जो अपनी जवानी के यौवन में एक सुंदर युवती थी, सिर पर बेरों की टोकरी लिए रोते हुए बोली, "बेर, पके बेर, मेरे बेर कौन खरीदेगा?" लेकिन वह राजमहल में प्रवेश करने की हिम्मत नहीं कर पाई।

और राजा ने उसकी आवाज़ सुनते ही उस पर मोहित हो गया, और जब उसे पता चला कि वह अविवाहित है, तो उसने उसे बुलवाया और उसे मुख्य रानी के पद पर पदोन्नत किया और उसका बहुत सम्मान किया। अब वह राजा की प्रिय और मनभावन थी। एक दिन राजा सोने की थाली में बेर खा रहा था। रानी सुजाता ने जब राजा को बेर खाते देखा, तो उससे पूछा, "हे स्वामी, आप यह क्या खा रहे हैं?" और उसने पहला श्लोक कहा:

हे प्रभु, यह अंडाकार फल क्या है, जो इतना सुंदर और लाल रंग का है?
क्या ये सोने की थाली में आपके सामने रखे हैं? मैं आपसे निवेदन करता हूँ, मुझे बताइए, ये कहाँ उगे थे?
और राजा क्रोधित होकर बोला, "हे सब्जी विक्रेता की पुत्री, पके बेरों की व्यापारी, क्या तुम अपने ही परिवार के विशेष फल बेरों को नहीं पहचानती?" और उसने दो छंद दोहराए:

हे मेरी रानी, बिना सिर ढके और साधारण वस्त्र पहने, एक समय था जब तुम्हें शर्म नहीं आती थी।
अपनी गोद को बेर से भरने के लिए, और अब आप उसका नाम पूछते हैं;
हे मेरी रानी, तुम अहंकार से भरी हुई हो, तुम्हें जीवन में कोई आनंद नहीं मिलता।
जाओ और अपने बेर वापस ले आओ। अब तुम मेरी पत्नी नहीं रहोगी।
तब बोधिसत्व ने सोचा, "मेरे सिवा कोई भी इस जोड़े का मेल नहीं करा पाएगा। मैं राजा के क्रोध को शांत करूँगा और उसे उसे घर से बाहर निकालने से रोकूँगा।" फिर उन्होंने चौथा श्लोक दोहराया:

हे प्रभु, उच्च पद पर आसीन स्त्री के ये पाप हैं:
हे राजा, उसे क्षमा कर दो और अपना क्रोध छोड़ दो, क्योंकि तुमने ही उसे महान बनाया है।
अतः राजा ने रानी के वचन का पालन करते हुए उसकी नाराजगी को सहन किया और उसे उसके पूर्व पद पर बहाल कर दिया। और तब से वे सौहार्दपूर्ण ढंग से एक साथ रहने लगे।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय कोसल का राजा बनारस का राजा था, मल्लिका सुजाता थी और मैं स्वयं मंत्री था।"

फुटनोट:

(1) पसेनदी (प्रसेनजित), कोसल के राजा

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पलास-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-307-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 307
पलासा-जातक

"अरे ब्राह्मण, ऐसा क्यों?" इत्यादि--मृत्युशय्या पर लेटे हुए गुरु ने यह कहानी वरिष्ठ भिक्षु आनंद को सुनाई।

आदरणीय व्यक्ति यह जानते हुए कि गुरुजी आज शाम को परास्त हो जाएंगे, मन ही मन सोचने लगे, "मैं अभी भी अनुशासन में हूँ और मुझे अपने कर्तव्य निभाने हैं, और मेरे गुरुजी निश्चित रूप से परास्त होने वाले हैं, और तब पच्चीस वर्षों तक मैंने उनकी जो सेवा की है वह व्यर्थ हो जाएगी।" और इस प्रकार व्याकुल होकर वे बगीचे के भंडारगृह के कुंडी के रूप में बने बंदर के सिर पर झुक गए और फूट-फूटकर रोने लगे।

और गुरुजी, आनंद को न पाकर, भिक्षुओं से पूछने लगे कि वह कहाँ है। जब उन्हें बात समझ में आई, तो उन्होंने आनंद को बुलवाया और उससे कहा, "आनंद, तुमने पुण्य का भंडार जमा कर लिया है। लगन से परिश्रम करते रहो, और तुम शीघ्र ही सांसारिक वासनाओं से मुक्त हो जाओगे। दुखी मत हो। भला तुमने जो सेवा मुझे दी है, वह अब व्यर्थ क्यों हो, जबकि पापमय दिनों में भी तुम्हारी सेवा व्यर्थ नहीं गई थी?" फिर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ने एक चिड़िया के रूप में जन्म लिया। उस समय बनारस के सभी निवासी ऐसे देवताओं की पूजा में लीन थे और निरंतर धार्मिक अनुष्ठानों में लगे रहते थे।

एक गरीब ब्राह्मण ने सोचा, "मैं भी किसी देवता की रक्षा करूँगा।" इसलिए उसने ऊँची जगह पर उगने वाला एक बड़ा यहूदा वृक्ष ढूँढा और उसके चारों ओर कंकड़ छिड़ककर और झाड़ू लगाकर उसकी जड़ों को घास से मुक्त रखा। फिर उसने उसे पाँच गुच्छों का सुगंधित हार भेंट किया और दीपक जलाकर फूल, इत्र और धूप अर्पित की। आदरपूर्वक प्रणाम करने के बाद उसने कहा, "आपको शांति मिले," और फिर चला गया। अगले दिन वह सुबह जल्दी आया और वृक्ष का हालचाल पूछा। एक दिन वृक्ष-परी के मन में विचार आया, "यह ब्राह्मण मेरी बहुत परवाह करता है। मैं इसकी परीक्षा लूँ और पता लगाऊँ कि यह मेरी इतनी पूजा क्यों करता है, और इसकी इच्छा पूरी करूँ।" इसलिए जब ब्राह्मण आया और वृक्ष की जड़ों के चारों ओर झाड़ू लगा रहा था, तो परी एक बूढ़े ब्राह्मण के वेश में उसके पास खड़ी हो गई और पहली पंक्ति दोहराई:

हे ब्राह्मण, बुद्धि से संपन्न होते हुए भी
तुमने इस बुद्धिहीन वृक्ष को क्यों संबोधित किया है?
तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ है, तुम्हारा विनम्र अभिवादन व्यर्थ है,
इस उजाड़ वृक्ष से तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिलेगा।
यह सुनकर ब्राह्मण ने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:

इस स्थान पर बहुत समय से एक प्रसिद्ध वृक्ष खड़ा है, जो
वन की आत्माओं के लिए उपयुक्त निवास स्थान है;
मैं ऐसे प्राणियों का अत्यंत श्रद्धापूर्वक आदर करता हूँ,
मुझे लगता है कि वे यहाँ किसी पवित्र खजाने की रक्षा करते हैं।
ये शब्द सुनकर वृक्ष-परी ब्राह्मण से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने कहा, "हे ब्राह्मण, मैं इसी वृक्ष के देवता के रूप में जन्मा हूँ। भयभीत न हो। मैं तुम्हें यह खजाना प्रदान करूँगा।" और उसे आश्वस्त करने के लिए, दिव्य शक्ति के एक महान प्रदर्शन द्वारा, वह अपने स्वर्गलोक के प्रवेश द्वार पर हवा में लटका रहा, और उसने दो और श्लोक पढ़े:

हे ब्राह्मण, मैंने तुम्हारा प्रेम देखा है;
पुण्य कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता।
देखो! जहाँ अंजीर का वृक्ष अपनी घनी छाया देता है, वहाँ
प्राचीन काल में विधिवत यज्ञ और दान अर्पित किए गए थे।
इस अंजीर के नीचे छिपा खजाना है,
उसे खोज निकालो और उसे अपना पुरस्कार बना लो।
उस अपरा ने आगे ये शब्द भी कहे: “हे ब्राह्मण, यदि तुम्हें खजाना खोदकर ले जाना पड़े तो तुम थक जाओगे। इसलिए तुम जाओ, मैं उसे तुम्हारे घर लाकर फलाँ स्थान पर रख दूँगी। फिर तुम जीवन भर उसका आनंद लो, दान दो और नैतिक नियमों का पालन करो।” ब्राह्मण से ऐसा कहने के बाद, वृक्ष-परी ने अपनी दिव्य शक्ति से खजाना ब्राह्मण के घर में पहुँचा दिया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद ब्राह्मण थे, और मैं स्वयं वृक्ष-परी थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जावासाकुण-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-308-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 308
जावसाकुना-जातक

"इतनी ही दयालुता," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त की कृतघ्नता के बारे में सुनाई थी।

उन्होंने यह कहते हुए अपनी बात समाप्त की, "देवदत्त ने न केवल आज, बल्कि पहले भी कृतघ्नता दिखाई थी," और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व ने हिमालय देश में एक कठफोड़वा के रूप में जन्म लिया।

एक शेर अपने शिकार को खा रहा था, तभी उसके गले में हड्डी फंस गई। उसका गला इतना सूज गया कि वह कुछ खा नहीं पा रहा था और उसे बहुत दर्द हो रहा था। तभी एक कठफोड़वा, जो अपना भोजन ढूंढ रहा था, एक डाल पर बैठा हुआ था। उसने शेर को देखा और उससे पूछा, "मित्र, क्या हुआ?" शेर ने उसे सब बताया, तो पक्षी ने कहा, "मित्र, मैं तुम्हारे गले से हड्डी निकाल देता, लेकिन मैं अपना सिर तुम्हारे मुंह में डालने की हिम्मत नहीं कर सकता, कहीं तुम मुझे खा न जाओ।"

"डरो मत, मित्र; मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा। बस मेरी जान बचा लो।"

“ठीक है,” चिड़िया ने कहा और शेर को करवट लेकर लेट जाने का आदेश दिया। फिर उसने सोचा: “पता नहीं ये क्या करेगा?” और उसका मुँह बंद होने से रोकने के लिए, उसने उसके जबड़े के ऊपरी और निचले हिस्से में एक छड़ी फंसा दी, और फिर अपना सिर शेर के मुँह में डालकर, हड्डी के सिरे पर अपनी चोंच से प्रहार किया। हड्डी गिर गई और गायब हो गई। फिर कठफोड़वा ने अपना सिर शेर के मुँह से बाहर निकाला, और अपनी चोंच से एक प्रहार करके छड़ी को तोड़ दिया, और उछलकर एक डाल पर बैठ गया।

शेर अपनी बीमारी से ठीक हो गया, और एक दिन वह एक जंगली भैंसा को खा रहा था जिसे उसने मार डाला था। कठफोड़वा ने सोचा: "अब मैं इसकी परीक्षा लूँगा," और शेर के सिर के ऊपर एक पेड़ की शाखा पर बैठकर, वह उससे बातचीत करने लगा और उसने पहला छंद बोला:

हममें जितनी दयालुता हो सकती है, उतनी दयालुता बरतें।
हे मेरे स्वामी, हमने एक बार आपको यह दिखाया था:

हम भी आपसे विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं,
  आप एक छोटा सा वरदान तो देते ही हैं।
यह सुनकर शेर ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

अपना सिर शेर के जबड़े के हवाले कर देना।
एक ऐसा प्राणी जो अपने दांत और पंजे खून से लथपथ रखता है,
इतना बड़ा काम करने का साहस करके भी जीवित रहना,
यह मेरी सद्भावना का पर्याप्त प्रतीक है।
यह सुनकर कठफोड़वा ने दो और पंक्तियाँ बोलीं।

नीच कृतघ्न से यह आशा न करने की कि कुछ प्राप्त न हो।
  किए गए अच्छे कार्य के लिए उचित भुगतान;
कड़वे विचारों और क्रोधपूर्ण शब्दों से दूर रहो।
  लेकिन दुखियों की उपस्थिति से बचने के लिए जल्दी करो।
ये शब्द कहकर कठफोड़वा उड़ गया।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय देवदत्त सिंह थे और मैं स्वयं कठफोड़वा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चावक-जातक**
स्रोत : *एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-309-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 309
चावक-जातक

"पवित्र गुरु" आदि-- जेतवन मठ में निवास करते समय गुरु ने छह वरिष्ठ भिक्षुओं के संघ के बारे में यह कथा सुनाई थी। इसका विस्तृत वर्णन विनय ग्रंथ में मिलता है। यहाँ इसका संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

गुरु ने छह वरिष्ठ भिक्षुओं को बुलवाया और पूछा कि क्या यह सच है कि वे अपने शिष्यों के ऊँची आसन पर बैठने के बावजूद, नीची आसन (*1) से धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि ऐसा ही है, और गुरु ने अपने धर्ममार्ग के प्रति अनादर दिखाने के लिए इन भिक्षुओं को फटकारा और कहा कि पुराने समय के बुद्धिमानों को भी नीची आसन पर बैठकर दूसरों को उपदेश देने के लिए फटकार लगानी पड़ती थी। फिर उन्होंने उन्हें एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व एक बहिष्कृत स्त्री के पुत्र के रूप में जन्म लेकर बड़े हुए और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी पत्नी गर्भवती थी और उसे आम खाने की तीव्र इच्छा हुई। उसने अपने पति से कहा, "हे स्वामी, मुझे आम खाने की बहुत इच्छा हो रही है।"

"मेरी प्यारी," उसने कहा, "इस मौसम में आम नहीं हैं, मैं तुम्हारे लिए कोई दूसरा खट्टा फल लाऊंगा।"

"मेरे स्वामी," उसने कहा, "यदि मुझे एक आम मिल जाए तो मैं जीवित रहूंगी। अन्यथा मैं मर जाऊंगी।"

अपनी पत्नी के प्रति आसक्त होकर वह सोचने लगा, "मुझे आम कहाँ से मिलेगा?" उस समय बनारस के राजा के बगीचे में एक आम का पेड़ था, जिस पर साल भर फल लगते थे। उसने सोचा, "मैं वहाँ से एक पका हुआ आम लाकर उसकी इच्छा पूरी करूँगा।" रात में बगीचे में जाकर वह पेड़ पर चढ़ गया और फल की तलाश में एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाने लगा। इसी दौरान सुबह होने लगी।

उसने सोचा, "अगर मैं अभी नीचे उतर कर चला गया, तो मुझे चोर समझकर पकड़ लिया जाएगा। मैं अंधेरा होने तक इंतजार करूँगा।" इसलिए वह पेड़ की एक शाखा पर चढ़ गया और वहीं बैठा रहा।

उस समय बनारस के राजा अपने पुरोहित से पवित्र ग्रंथों का अध्ययन कर रहे थे। वे उद्यान में आए और आम के वृक्ष की तलहटी में एक ऊँचे आसन पर बैठ गए, तथा अपने गुरु को नीचे आसन पर बैठाकर उनसे शिक्षा प्राप्त करने लगे। उनके ऊपर बैठे बोधिसत्व ने सोचा, "यह राजा कितना दुष्ट है। वह ऊँचे आसन पर बैठकर पवित्र ग्रंथों का अध्ययन कर रहा है। ब्राह्मण भी उतना ही दुष्ट है, जो नीचे आसन पर बैठकर उसे शिक्षा दे रहा है। मैं भी दुष्ट हूँ, क्योंकि मैं स्त्री के वश में आ गया हूँ, और अपने जीवन को तुच्छ समझकर आम चुरा रहा हूँ।" फिर एक लटकती शाखा को पकड़कर वे वृक्ष से नीचे उतर आए और इन दोनों पुरुषों के सामने खड़े होकर बोले, "हे महाराज, मैं एक पथभ्रष्ट व्यक्ति हूँ, आप एक मूर्ख हैं, और यह पुरोहित तो मानो मृत समान है।" राजा द्वारा इन शब्दों का अर्थ पूछे जाने पर उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

हे पवित्र गुरु, हे महान विद्वान, देखो! मैंने पापपूर्ण कर्म देखा।
दोनों ही ईश्वर की कृपा से वंचित होकर पतित हुए, दोनों ने ही कानून का उल्लंघन किया। (*2)
यह सुनकर ब्राह्मण ने दूसरा श्लोक दोहराया:-

मेरा भोजन पहाड़ी क्षेत्र का शुद्ध चावल है।
  मांस के नाजुक स्वाद के साथ,
एक पापी को ऐसा क्यों करना चाहिए?
  क्या यह नियम संतों के लिए है, जब वे भोजन करते हैं?
यह सुनकर बोधिसत्व ने दो और श्लोक पढ़े:-

ब्राह्मण, जाओ और पृथ्वी के कोने-कोने में घूम जाओ;
  देखो! दुख तो सबका हिस्सा है।
यहां पाप से कलंकित तुम्हारा बर्बाद जीवन ही मायने रखता है।
  टूटे हुए बर्तन के टुकड़ों से भी कम।
महत्वाकांक्षा से सावधान रहें और लोभ पर काबू पाएं:
  इस तरह की बुराइयाँ "दुखों के संसार" की ओर ले जाती हैं।
तब राजा उसके विधि-विवेचना से प्रसन्न होकर उससे पूछा कि वह किस जाति का है। उसने कहा, "महाराज, मैं एक बहिष्कृत हूँ।" राजा ने उत्तर दिया, "मित्र, यदि तुम उच्च जाति के होते, तो मैं तुम्हें एकमात्र राजा बना देता। परन्तु अब से मैं दिन में राजा रहूँगा और तुम रात में राजा रहोगे।" और ये कहकर उसने अपने द्वारा सुशोभित फूलों की माला उसके गले में डाल दी और उसे नगर का संरक्षक नियुक्त कर दिया। यहीं से नगर के स्वामियों के गले में लाल फूलों की माला धारण करने की प्रथा शुरू हुई। और उस दिन से राजा ने अपने गुरु की सलाह मानकर उनका आदर किया और उनसे नीची चौकी पर बैठकर पवित्र ग्रंथों का अध्ययन किया।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद राजा थे और मैं स्वयं बहिष्कृत था।"

फुटनोट:

(1) यह नियम कि शिष्य को अपने गुरु (शिक्षक) से नीची सीट पर बैठना चाहिए।

(2) विद्वान अपनी व्याख्या में यह आयत जोड़ते हैं:

अतीत की सच्ची आस्था पृथ्वी पर कायम रही।
झूठी शिक्षा बाद में उत्पन्न हुई।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सायहा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-310-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 310
सया-जातक

“धरती पर कोई सिंहासन नहीं,” इत्यादि — गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते समय एक पथभ्रष्ट भिक्षु की कहानी सुनाई, जो श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के दौरान एक सुंदर स्त्री को देखकर विचलित हो गया और तब से उसका मन असंतुष्ट हो गया तथा उसने धर्म के मार्ग से विमुख होकर विमुख हो गया। इसलिए भिक्षुओं ने उसे भगवान बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत किया। भगवान बुद्ध ने कहा, “भाई, क्या यह सच है कि तुम असंतुष्ट हो?” उसने स्वीकार किया कि वह असंतुष्ट है। गुरु ने उसकी असंतुष्टि का कारण जानकर कहा, “भाई, मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले मार्ग पर शिष्य बनने के बाद भी तुम संसार की लालसा क्यों कर रहे हो? प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने जब कुलपुजारी का पद दिया गया तो उसे अस्वीकार कर दिया और तपस्वी जीवन अपना लिया।” और उन्होंने उन्हें प्राचीन काल की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज्य कर रहे थे, तब बोधिसत्व राजा के पुरोहित की ब्राह्मण पत्नी के गर्भ में गर्भ धारण किए और राजा के पुत्र के साथ ही उनका जन्म हुआ। जब राजा ने अपने मंत्रियों से पूछा कि क्या उनके पुत्र के साथ ही किसी और का भी जन्म हुआ है, तो उन्होंने कहा, "जी महाराज, आपके कुल पुरोहित का पुत्र।" इसलिए राजा ने उसे बुलवाया और उसे और राजकुमार की देखभाल के लिए दाइयों के हवाले कर दिया। दोनों को एक जैसे आभूषण पहनाए गए और वे एक ही तरह का भोजन और पेय पदार्थ ग्रहण करते थे।

और जब वे बड़े हो गए, तो वे सब मिलकर तक्षशिला गए और जैसे ही उन्होंने सभी विज्ञानों में दक्षता प्राप्त कर ली, वे घर लौट आए।

राजा ने अपने पुत्र को उपसराय बनाया और उसे बहुत सम्मान दिया। उस समय से बोधिसत्व राजकुमार के साथ खाते-पीते और रहते थे, और उनके बीच गहरी मित्रता स्थापित हो गई। कुछ समय बाद, अपने पिता की मृत्यु के बाद, युवा राजकुमार सिंहासन पर आसीन हुए और उन्होंने अपार समृद्धि प्राप्त की। बोधिसत्व ने सोचा, "मेरा मित्र अब राज्य पर शासन कर रहा है; जब उसे उचित अवसर मिलेगा, तो वह मुझे अवश्य ही अपने कुलपुजारी का पद देगा। गृहस्थ जीवन से मेरा क्या लेना-देना? मैं संन्यासी बन जाऊंगा और एकांतवास में व्यतीत करूंगा।"

अतः उन्होंने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और शिष्य बनने की अनुमति लेकर सांसारिक संपत्ति त्याग दी तथा एकाकी होकर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। वहाँ एक रमणीय स्थान पर उन्होंने अपना आश्रम बनाया और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए सभी क्षमताओं और योग्यताओं का विकास किया तथा रहस्यवादी जीवन के आनंद में लीन रहे।

इस समय राजा को उनकी याद आई और उन्होंने कहा, “मेरे मित्र का क्या हुआ? वे कहीं दिखाई नहीं दे रहे।” उनके मंत्रियों ने बताया कि उन्होंने शिष्यों का मार्ग अपना लिया है और सुना है कि वे किसी रमणीय वन में रह रहे हैं। राजा ने उनके निवास स्थान के बारे में पूछा और सायहा नामक एक सलाहकार से कहा, “जाओ और मेरे मित्र को वापस ले आओ। मैं उन्हें अपना पुरोहित बनाऊंगा।” सायहा तुरंत सहमत हो गए और कुछ समय बाद बनारस से आगे बढ़ते हुए एक सीमावर्ती गाँव पहुँचे और वहाँ अपना निवास स्थान बनाकर कुछ वनपालों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ बोधिसत्व रहते थे। उन्होंने उन्हें अपनी कुटिया के द्वार पर एक सुनहरी मूर्ति की तरह बैठे हुए पाया। सामान्य अभिवादन करने के बाद वे कुछ दूरी पर आदरपूर्वक बैठ गए और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, राजा आपका स्वागत चाहते हैं, क्योंकि वे आपको अपने कुल पुरोहित के पद पर पदोन्नत करना चाहते हैं।” बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "यदि मुझे केवल पुरोहित का पद ही नहीं, बल्कि समस्त काशी और कोसल, भारत राज्य और एक सार्वभौमिक साम्राज्य की महिमा भी प्राप्त हो जाए, तो भी मैं जाने से इनकार कर दूंगा। ज्ञानी व्यक्ति एक बार त्यागे हुए पापों को पुनः नहीं अपनाते, ठीक वैसे ही जैसे वे एक बार निकाले हुए कफ को नहीं निगलते।" ऐसा कहकर उन्होंने ये श्लोक दोहराए:-

(*1) पृथ्वी पर कोई भी सिंहासन मुझे शर्मिंदा करने के लिए प्रलोभित न करे,
समुद्र से घिरा हुआ कोई राज्य नहीं, गहरे पानी में सुरक्षित;
धन और प्रसिद्धि की लालसा पर लानत हो।
इससे "दुख भरे संसार" में बेचारा मनुष्य रोने के लिए अभिशप्त हो जाता है।
धरती पर एक संन्यासी के रूप में भटकना बेहतर है।
और हाथ में कटोरा लेकर घर-घर भीख मांगने लगे।
फिर राजा की तरह, वह भी पापी वासनाओं का शिकार बन जाता है।
दमनकारी शासन को सहन करना और गरीबों को सताना।

इस प्रकार बोधिसत्व ने बार-बार विनती करने के बावजूद भी उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। सयाह उसे मनाने में असमर्थ रहा और उसने उसे प्रणाम किया, और लौटकर राजा को अपने आने से इनकार करने की सूचना दी।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों का खुलासा किया और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की। कई अन्य लोगों ने भी रूपांतरण के समान फल का अनुभव किया: "उस समय आनंद राजा थे, सारिपुत्र सयाह थे, और मैं स्वयं कुलपुजारी था।"

फुटनोट:

(1) जातक 433 में दोहराया गया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पुसीमांडा-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-311-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 311
पुचिमांडा जातक

"लुटेरे, उठो," इत्यादि--बांस के जंगल में रहते हुए गुरु ने आदरणीय मोग्गल्याना के बारे में यह कहानी सुनाई।

जब वह संत राजगृह नगर के पास एक वन कुटिया में रह रहे थे, तब एक डाकू ने उपनगरीय गाँव में एक घर में सेंध लगाकर लूट का माल लेकर भागते हुए संत की कुटिया तक पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर संत ने सोचा कि वह सुरक्षित रहेगा और कुटिया के द्वार पर लेट गया। संत ने उसे वहाँ लेटे हुए देखा और उसके चरित्र पर संदेह करते हुए मन ही मन कहा, "डाकू से कोई वास्ता रखना मेरे लिए उचित नहीं होगा।" इसलिए कुटिया से बाहर आकर उन्होंने उसे वहाँ न लेटने को कहा और उसे भगा दिया।

लुटेरा बड़ी तेज़ी से भाग निकला। मशालें लिए हुए कुछ लोग लुटेरे के पदचिह्नों का पीछा करते हुए वहाँ पहुँचे और लुटेरे की मौजूदगी के विभिन्न निशान देखकर बोले, "लुटेरा इस रास्ते से आया था। यहाँ खड़ा हुआ, वहाँ बैठा और उस रास्ते से भाग गया। अब वह यहाँ नहीं दिख रहा।" इसलिए वे सब इधर-उधर खोजबीन करते रहे, लेकिन अंत में उसे न पाकर लौट आए। अगले दिन सुबह-सुबह, वरिष्ठ भिक्षु राजगृह नगर में भिक्षा मांगने गए और तीर्थयात्रा से लौटकर बाँस के वन में गए और गुरु को सारी घटना बताई। गुरु ने कहा, "हे मोग्गल्याण, तुम अकेले नहीं हो जो ऐसे मामले में संदेह कर रहे हो जिसमें संदेह जायज़ है। पुराने समय के बुद्धिमान लोग भी इसी तरह संदेह करते थे।" और वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने शहर के एक श्मशान में नीम के वृक्ष के रूप में जन्म लिया। एक दिन शहर के बाहरी गाँव में चोरी करने वाला एक लुटेरा श्मशान में आया। उस समय वहाँ दो पुराने पेड़ खड़े थे, एक नीम का और एक बोधि-पीपल का। लुटेरे ने अपना चुराया हुआ सामान नीम के पेड़ की जड़ों में रख दिया और वहीं लेट गया।

उन दिनों पकड़े गए लुटेरों को नीम के पेड़ की एक डंडी पर लटकाकर यातना दी जाती थी। इसलिए नीम के पेड़ की आत्मा ने सोचा: "अगर लोग आकर इस लुटेरे को पकड़ लें, तो वे इस नीम के पेड़ की एक शाखा काटकर उससे एक डंडी बनाएंगे और उसे उस पर लटका देंगे। और उस स्थिति में पेड़ नष्ट हो जाएगा। इसलिए मैं इसे भगा दूंगा।" फिर उसे संबोधित करते हुए उसने पहली पंक्ति दोहराई:-

हे लुटेरे, उठो! क्यों सो रहे हो? सोने का समय नहीं है।
राजा के आदमी तुम पर टूट पड़े हैं, वे तुम्हारे अपराध का बदला लेने आए हैं।

इसके अलावा उन्होंने ये शब्द भी कहे, "राजा के आदमियों के तुम्हें पकड़ने से पहले यहाँ से चले जाओ।" इस प्रकार उन्होंने डाकू को डराकर भगा दिया। और उसके भागते ही बोधि वृक्ष के देवता ने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

और अगर यह लुटेरा रंगे हाथों पकड़ा भी जाए तो भी उन्हें उसे पकड़ लेना चाहिए,
हे नीम के वृक्ष, वन की परी, तुम्हें इससे क्या फर्क पड़ेगा?
यह सुनकर नीम के वृक्ष के देवता ने तीसरा श्लोक कहा:-

हे बोपड़ी के वृक्ष, मुझे यकीन है कि तुम मेरे भय का रहस्य नहीं जानते;
मैं नहीं चाहता कि राजा के आदमी उस दुष्ट डाकू को यहाँ ढूंढें।
मुझे पता है, वे मेरे पवित्र वृक्ष से तुरंत एक शाखा ले लेंगे।
और उस दोषी दुष्ट से बदला लेने के लिए, उसे एक खंभे पर लटका दो।
जब दोनों वन देवता इस प्रकार आपस में बातचीत कर रहे थे, तभी संपत्ति के मालिक मशालें लिए लुटेरे का पीछा करते हुए उस स्थान को देखकर, जहाँ वह लेटा हुआ था, बोले, "देखो! लुटेरा अभी-अभी उठकर यहाँ से भाग गया है। हमने उसे अभी तक पकड़ा नहीं है, लेकिन अगर पकड़ लिया तो वापस आकर या तो उसे इस नीम के पेड़ के नीचे सूली पर चढ़ा देंगे या इसकी किसी शाखा से लटका देंगे।"

और ये शब्द इधर-उधर भटकते हुए, जब उन्हें लुटेरा नहीं मिला, तो वे भाग गए। और उनकी बातें सुनकर बोपड़ी के वृक्ष की आत्मा ने चौथा श्लोक बोला:-

एक अनदेखे खतरे से सावधान रहें: बहुत देर होने से पहले ही संदेह करें।
इस वर्तमान संसार में भी बुद्धिमान लोग भविष्य की स्थिति की ओर देखते हैं।

जब गुरु ने यह पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन किया:

"उस समय सारिपुत्र बोधिवृक्ष (पीपल) के प्राण थे। मैं स्वयं नीम वृक्ष का प्राण था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कस्सपमंडिया-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-312-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 312
कस्सपमंडीय-जातक

“नासमझ युवक,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई थी। परंपरा के अनुसार, श्रावस्ती नगर के एक युवा कुलीन व्यक्ति ने पापी इच्छाओं के बुरे परिणामों को भांपकर गुरु से दीक्षा ली और समाधि की विधि का पालन करते हुए अल्पकाल में ही संतत्व प्राप्त कर लिया। समय बीतने पर माता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने पिता और छोटे भाई को भी शिष्यों के समूह में शामिल कर लिया और वे जेतवन मठ में रहने लगे।

बरसाती ऋतु के आरंभ में, एक ऐसे गाँव के बारे में सुनकर जहाँ आवश्यक वस्त्र आसानी से मिल जाते थे, वे तीनों वहाँ बरसाती ऋतु के निवास में चले गए, और बरसाती ऋतु समाप्त होने पर सीधे जेतवन मठ लौट आए। जब वे जेतवन मठ से कुछ ही दूरी पर एक स्थान पर पहुँचे, तो युवा भिक्षु ने नौसिखिए लड़के से कहा कि वह बूढ़े भिक्षु को चुपचाप ले आए, जबकि वह स्वयं जेतवन मठ की ओर आगे बढ़ गया ताकि उनकी कुटिया तैयार कर सके। बूढ़ा भिक्षु धीरे-धीरे चलता रहा। नौसिखिए ने बार-बार मानो अपने सिर से उसे धक्का दिया और उसे ज़बरदस्ती खींचते हुए चिल्लाया, "चलो, गुरुजी।" बूढ़े भिक्षु ने कहा, "तुम मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध खींच रहे हो," और मुड़कर उसने फिर से शुरुआत की। जब वे इस प्रकार झगड़ रहे थे, सूर्य अस्त हो गया और अंधेरा छा गया। इस बीच युवा भिक्षु ने अपनी कुटिया साफ की, बर्तनों में पानी भर दिया, और उन्हें आते हुए न देखकर, वह एक मशाल लेकर उनसे मिलने चला गया। जब उसने उन्हें आते देखा, तो उसने पूछा कि उन्हें इतनी देर क्यों हो गई। बूढ़े भिक्षु ने कारण बताया। अतः उन्होंने उन्हें विश्राम कराया और धीरे-धीरे उनके मार्ग पर विदा किया। उस दिन उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने का समय नहीं मिला। इसलिए अगले दिन जब वे बुद्ध को प्रणाम करने आए, तो

प्रणाम करने और आसन ग्रहण करने के बाद गुरु ने पूछा, "तुम कब आए?" "कल, महाराज।" "तुम कल आए थे और आज ही मुझे प्रणाम कर रहे हो?" "जी महाराज," उन्होंने उत्तर दिया और कारण बताया। गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु को फटकारा: "यह केवल अब ही ऐसा नहीं करता। पुराने समय में भी वह ऐसा ही करता था। अब तुम उससे नाराज़ हो। पहले वह बुद्धिमानों को नाराज़ करता था।" और भाई के अनुरोध पर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी प्रदेश के एक कस्बे में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब वे बड़े हुए, तो उनकी माता का देहांत हो गया। उनकी अंतिम संस्कार की रस्में पूरी करने के बाद, छह सप्ताह बाद उन्होंने घर का सारा धन दान कर दिया और अपने पिता और छोटे भाई को साथ लेकर किसी के वस्त्र धारण करके हिमालय प्रदेश में एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करने चले गए। वहाँ वे एक रमणीय उपवन में रहते थे, खेतों में बचे हुए अनाज से अपना जीवन यापन करते थे और जंगली फल और जड़ वाली लकड़ियाँ खाते थे।

हिमालय में, बरसाती ऋतु में, जब लगातार बारिश होती है, और किसी भी प्रकार का कंद या जड़ खोदना या जंगली फल प्राप्त करना असंभव हो जाता है, और पत्ते गिरने लगते हैं, तो अधिकांश तपस्वी हिमालय से नीचे उतर आते हैं और मनुष्यों के बीच निवास करने लगते हैं। इसी समय, बोधिसत्व, अपने पिता और छोटे भाई के साथ यहाँ रहने के बाद, जैसे ही हिमालयी क्षेत्र फिर से हरा-भरा होने लगा और फल देने लगा, अपने दोनों साथियों को लेकर हिमालय में स्थित अपने आश्रम लौट आए। सूर्यास्त के समय, जब वे अपनी कुटिया से कुछ ही दूर थे, उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया, "आप धीरे-धीरे आ सकते हैं, मैं आगे जाकर आश्रम को व्यवस्थित करता हूँ।"

अब युवा तपस्वी अपने पिता के साथ धीरे-धीरे आ रहा था और बार-बार अपने सिर से उनकी कमर पर धक्का मार रहा था। बूढ़े ने कहा, "मुझे आपका घर ले जाने का तरीका पसंद नहीं आया।" इसलिए वह वापस मुड़ गया और उसी जगह से फिर से चलने लगा। जब वे इस तरह झगड़ रहे थे, अंधेरा छा गया। लेकिन बोधिसत्व ने जैसे ही अपनी कुटिया से पत्ते साफ किए और पानी तैयार किया, एक मशाल ली और वापस रास्ते पर चल पड़े। जब वे उनसे मिले, तो उन्होंने पूछा कि उन्हें इतना समय क्यों लग गया। तब उस तपस्वी बालक ने उन्हें बताया कि उसके पिता ने क्या किया था। लेकिन बोधिसत्व उन्हें चुपचाप घर ले आए और बौद्ध धर्म की सभी आवश्यक वस्तुओं को सुरक्षित रखने के बाद, उन्होंने अपने पिता को स्नान कराया, उनके पैर धोए और मालिश की और उनकी पीठ पर शैम्पू लगाया। फिर उसने कोयले का एक बर्तन रखा और जब उसके पिता थकान से उबर गए, तो वह उनके पास बैठ गया और बोला, "पिताजी, छोटे लड़के मिट्टी के बर्तनों के समान होते हैं: वे पल भर में टूट जाते हैं, और एक बार टूट जाने पर उन्हें फिर से जोड़ना असंभव होता है। जब वे दुर्व्यवहार करें तो बूढ़े लोगों को धैर्यपूर्वक उन्हें सहन करना चाहिए।" और अपने पिता कश्यप को सलाह देने के लिए, उसने ये श्लोक दोहराए:-

यदि नासमझ युवक अपने शब्दों या कार्यों से अपराध करे,
   धैर्य का प्रदर्शन करना बुद्धिमत्ता का ही गुण है;
अच्छे लोगों के झगड़े शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं।
   मूर्ख लोग अधपकी मिट्टी की तरह अलग हो जाते हैं।
ज्ञान प्राप्त करने में बुद्धिमान पुरुष, अपने पापों से अवगत
   मित्रता इस बात का प्रमाण है कि वह कभी क्षीण नहीं होती;
भाई के लिए ऐसे बोझ सहना बहुत कठिन होता है।
   और पड़ोसियों के झगड़ों को सुलझाने में कुशल।
इस प्रकार बोधिसत्व ने अपने पिता को सलाह दी। और तब से उन्होंने आत्मसंयम का पालन करना शुरू कर दिया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय वृद्ध पुजारी पिता संन्यासी थे, नौसिखिया बालक संन्यासी थे, और मैं स्वयं वह पुत्र था जो अपने पिता को सलाह देता था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खांतिवादी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 313
खांतिवादी-जातक

“जो कोई काट डाले,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक क्रोधी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इस कथा की उत्पत्ति का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। गुरु ने उस भिक्षु से पूछा, “बुद्ध के मार्ग पर चलकर शिष्य बनने के बाद भी, जो क्रोध को नहीं जानते, तुम क्रोध क्यों दिखाते हो? पुराने समय के ज्ञानी पुरुष, चाहे उन्हें हज़ार कोड़े पड़े हों, उनके हाथ-पैर, कान और नाक काट दिए गए हों, फिर भी उन्होंने किसी पर क्रोध नहीं दिखाया।” और फिर उन्होंने पुराने समय की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, काशी के राजा कलाबु बनारस में शासन करते थे। उसी समय, बोधिसत्व ने कुंडककुमार नामक एक युवक के रूप में अस्सी करोड़ (10 मिलियन) धन-संपत्ति से संपन्न ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और बाद में गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे।

अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद, अपने संचित धन को देखकर उन्होंने सोचा, "मेरे वे रिश्तेदार जिन्होंने यह धन इकट्ठा किया था, इसे अपने साथ लिए बिना ही चले गए; अब यह मेरा कर्तव्य है कि मैं इसे अपना बनाऊं और फिर इस दुनिया से विदा हो जाऊं।" तब उन्होंने सावधानीपूर्वक उन लोगों का चयन किया जो अपने दान के कारण इसके पात्र थे, और अपना सारा धन उन्हें दे दिया। फिर वे हिमालयी क्षेत्र में प्रवेश कर तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। वहां उन्होंने लंबे समय तक जंगली फलों का सेवन किया। नमक और सिरका प्राप्त करने के लिए वे आबादी वाले क्षेत्रों में गए और धीरे-धीरे बनारस पहुंचे, जहां उन्होंने राजमहल में अपना निवास स्थान बनाया। अगले दिन वे शहर में भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते रहे, जब तक कि वे सेनापति के द्वार पर नहीं पहुंच गए। सेनापति उनके आचरण की धार्मिकता से प्रसन्न हुए और उन्हें अपने घर में ले आए और अपने लिए तैयार किया हुआ भोजन उन्हें खिलाया। सेनापति की सहमति प्राप्त करने के बाद, उन्होंने उन्हें राजमहल में निवास करने के लिए राजी किया।

एक दिन राजा कलाबु शराब के नशे में चूर होकर बड़े ठाठ-बाठ से नर्तकियों के समूह से घिरे हुए उद्यान में आए। उन्होंने पत्थर के राजसी आसन पर पलंग बिछाया और हरम की एक प्रिय स्त्री की गोद में सिर रखकर लेट गए। वहीं, गायन, वाद्य संगीत और नृत्य में निपुण नर्तकियों ने संगीतमय मनोरंजन प्रदान किया। उनका वैभव इतना महान था कि मानो स्वर्ग के स्वामी इंद्र के समान था। और राजा सो गए। तब स्त्रीयों ने कहा, “जिसके लिए हम संगीत प्रस्तुत कर रही हैं, वह तो सो गया है। अब हमें गाने की क्या आवश्यकता है?” तब उन्होंने अपने वीणा और अन्य वाद्य यंत्र इधर-उधर फेंक दिए और उद्यान की ओर चल पड़ीं, जहाँ फूलों और फलदार झाड़ियों से आकर्षित होकर वे शीघ्र ही आनंदमय नृत्य करने लगीं।

उस समय बोधिसत्व इस उद्यान में, एक राजसी हाथी की तरह, अपनी शक्ति के बल पर गर्व करते हुए, एक पुष्पित साल वृक्ष के चरणों में विराजमान थे और संसार से विरक्ति के आनंद में डूबे हुए थे। तभी कुछ स्त्रियाँ घूमते-घूमते उनके पास आईं और बोलीं, "हे देवियों, आइए हम बैठें और इस वृक्ष के चरणों में विश्राम कर रहे पुरोहित से कुछ सुनें, जब तक राजा जाग न जाएँ।" तब वे उनके पास गईं और उन्हें प्रणाम किया और उनके चारों ओर घेरा बनाकर बैठ गईं और बोलीं, "हमें कुछ ऐसा बताइए जो सुनने योग्य हो।" तब बोधिसत्व ने उन्हें उपदेश दिया।

इसी बीच राजसी प्रिय स्त्री ने अपने शरीर की एक हरकत से राजा को जगा दिया। जागने पर राजा ने स्त्री को न देखकर पूछा, "ये दुष्ट कहाँ चली गईं?" स्त्री ने कहा, "महाराज, वे चली गई हैं और किसी तपस्वी की सेवा में बैठी हैं।" राजा क्रोधित होकर अपनी तलवार उठाकर जल्दी से चला गया और बोला, "मैं इस झूठे तपस्वी को सबक सिखाऊंगा।" तब जो स्त्री राजा की सबसे प्रिय थीं, उन्होंने राजा को क्रोधित आते देख उनके हाथ से तलवार छीन ली और उन्हें शांत किया। फिर राजा आकर बोधिसत्व के पास खड़ा हो गया और पूछा, "भिक्षु, आप किस शिक्षा का उपदेश दे रहे हैं?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं धैर्य की शिक्षा दे रहा हूँ।" राजा ने पूछा, "यह धैर्य क्या है?" बोधिसत्व ने कहा, "जब लोग आपको गाली दें, मारें-पीटें और अपशब्द कहें, तब क्रोधित न होना।" राजा ने कहा, "अब मैं आपके धैर्य का वास्तविक रूप देखूंगा," और उसने अपने जल्लाद को बुलाया। और उसने अपने कर्तव्य के अनुसार एक कुल्हाड़ी और कांटों का कोड़ा लिया, और पीले वस्त्र और लाल माला धारण करके राजा के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और कहा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "इस दुष्ट तपस्वी को घसीटकर ले जाओ, और उसे जमीन पर पटककर, कांटों के कोड़े से आगे-पीछे और दोनों तरफ मारो, और उसे दो हजार कोड़े मारो।" ऐसा ही किया गया। बोधिसत्व की बाहरी और भीतरी त्वचा मांस तक कट गई, और खून बहने लगा। राजा ने फिर पूछा, "भिक्षु, तुम किस शिक्षा का प्रचार करते हो?" उसने उत्तर दिया, "महाराज, धैर्य की शिक्षा। आपको लगता है कि मेरा धैर्य केवल ऊपरी है। यह ऊपरी नहीं है, बल्कि मेरे हृदय में गहराई से समाया हुआ है, जहाँ आप इसे देख नहीं सकते,

महाराज।" जल्लाद ने फिर पूछा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "इस झूठे तपस्वी के दोनों हाथ काट दो।" तो उसने अपनी कुल्हाड़ी उठाई और पीड़ित को घातक घेरे में रखकर उसके दोनों हाथ काट दिए। फिर राजा ने कहा, "इसके पैर भी काट दो," और उसके पैर काट दिए गए। उसके हाथों और पैरों से खून ऐसे बह रहा था जैसे किसी छलकते घड़े से लाख का रस बहता है। राजा ने फिर पूछा कि वह क्या उपदेश देता है। उसने उत्तर दिया, "महाराज, धैर्य का उपदेश।" "महाराज, आप सोचते हैं कि मेरा धैर्य मेरे हाथों और पैरों में बसता है। ऐसा नहीं है, बल्कि यह कहीं और गहराई में स्थित है।" राजा ने कहा, "इसकी नाक और कान भी काट दो।" जल्लाद ने ऐसा ही किया। उसका पूरा शरीर अब खून से लथपथ था। राजा ने फिर उससे उसके उपदेश के बारे में पूछा। और तपस्वी ने कहा, "यह मत सोचो कि मेरा धैर्य मेरी नाक और कानों की नोकों में बसता है: मेरा धैर्य मेरे हृदय में गहराई में बसा है।" राजा ने कहा, "लेट जाओ, हे झूठे भिक्षु, और वहीं से अपने धैर्य को बढ़ाओ।" और ऐसा कहते हुए, उसने बोधिसत्व के हृदय के ऊपर अपने पैर से प्रहार किया और वहां से चला गया।

जब वह चला गया, तो सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर से खून पोंछा, उनके हाथों, पैरों, कानों और नाक पर पट्टियाँ बाँधीं, और फिर उन्हें धीरे से आसन पर बिठाकर, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर कहा, "हे पूज्यवर, यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति पर क्रोधित हों जिसने आपके विरुद्ध पाप किया है, तो राजा पर क्रोधित हों, किसी और पर नहीं।" और यह निवेदन करते हुए, उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:-

जिसने भी तुम्हारी नाक और कान काट डाले, और तुम्हारा पैर और हाथ काट डाले,
हे वीर आत्मा, उसके साथ क्रोधित रहो, लेकिन हम आपसे विनती करते हैं कि इस भूमि को बख्श दो।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक कहा:-

राजा अमर रहें, जिनके क्रूर हाथों ने मेरे शरीर को इस प्रकार विकृत कर दिया है।
मुझ जैसे पवित्र आत्माएं ऐसे कर्मों को क्रोध से नहीं देखतीं।
जैसे ही राजा उद्यान से निकल रहे थे और ठीक उसी क्षण जब वे बोधिसत्व की दृष्टि से ओझल हो गए, दो लाख चालीस हजार मील (4.23 किमी) मोटी विशाल पृथ्वी दो भागों में फट गई, मानो कोई मजबूत कपड़ा फट गया हो, और अविची से निकलती हुई ज्वाला ने राजा को जकड़ लिया, मानो उन्हें लाल ऊन के शाही वस्त्र में लपेट लिया हो। इस प्रकार राजा उद्यान के द्वार के पास ही पृथ्वी में समा गए और अविची के महान नरक में स्थिर हो गए। उसी दिन बोधिसत्व का निधन हो गया। राजा के सेवक और नागरिक अपने हाथों में इत्र, पुष्पमालाएँ और धूप लेकर आए और बोधिसत्व के अंतिम संस्कार किए। कुछ लोगों ने कहा कि बोधिसत्व सीधे हिमालय लौट गए। परन्तु उन्होंने यह बात असत्य कही।

प्राचीन काल के एक संत, जैसा कि लोगों ने बताया है,
  उन्होंने असाधारण साहस का प्रदर्शन किया:
वह संत अन्याय सहने में इतना शक्तिशाली था
  काशी के राजा ने हत्या कर दी थी।
हाय! व्यर्थ पछतावे का कर्ज
  उस राजा को कीमत चुकानी होगी;
जब उन्हें सबसे निचले नरक में रहने के लिए अभिशप्त किया जाता है,
  उसे उस दिन का लंबे समय तक पछतावा रहेगा।
ये दोनों छंद परिपूर्ण ज्ञान से प्रेरित हैं।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों का खुलासा किया और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, उग्र स्वभाव वाले भिक्षु ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की, जबकि अन्य कई लोगों ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की: "उस समय देवदत्त काशी के कलाबु राजा थे, सारिपुत्र सेनापति थे, और मैं स्वयं तपस्वी, धैर्य का उपदेशक था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लोहकुंभी-जातक**

स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 314
लोहाकुंभी-जातक। (*1)

“धन का उचित हिस्सा,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के एक राजा के विषय में सुनाई थी। कहते हैं कि उस समय के कोसल के राजा ने एक रात नरक के चार निवासियों की चीख सुनी—चारों में से प्रत्येक ने ‘दु’, ‘सा’, ‘ना’ और ‘सो’ कहा। परंपरा के अनुसार, पिछले जन्म में वे श्रावस्ती नगर के राजकुमार थे और व्यभिचार के दोषी थे। अपने पड़ोसियों की पत्नियों के साथ यौन दुराचार करने और अपनी कामुक प्रवृत्तियों में लिप्त होने के कारण, श्रावस्ती नगर के पास मृत्यु चक्र में उनका जीवन समाप्त हो गया। वे चार लोहे के कुंडों में पुनर्जीवित हुए। साठ हजार वर्षों तक यातना सहने के बाद वे कुंड के शीर्ष पर पहुँचे और कुंड के मुख को देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, “हम इस कष्ट से कब मुक्ति पाएँगे?” और फिर चारों ने एक के बाद एक ज़ोर से चीख मारी। शोर सुनकर राजा बुरी तरह भयभीत हो गया और सुबह होने का इंतजार करता रहा, हिलने-डुलने में असमर्थ।

भोर होते ही ब्राह्मण आए और राजा का हालचाल पूछा। राजा ने उत्तर दिया, “हे मेरे स्वामियों, मैं कैसे स्वस्थ हो सकता हूँ, जिसने आज ऐसी चार भयानक चीखें सुनी हैं?” ब्राह्मणों ने हाथ हिलाए। (*2) “हे मेरे स्वामियों, यह क्या है?” राजा ने कहा। ब्राह्मणों ने उन्हें आश्वासन दिया कि ये आवाजें भीषण हिंसा का संकेत हैं। “क्या इनका कोई उपाय है या नहीं?” राजा ने कहा। “आप कह सकते हैं कि नहीं,” ब्राह्मणों ने कहा, “परन्तु हम इन मामलों में भली-भांति प्रशिक्षित हैं, महाराज।” “आप इन बुराइयों को कैसे रोकेंगे?” राजा ने उत्तर दिया, “महाराज, हमारे पास एक महान उपाय है, और सभी जीवित प्राणियों का चार बार यज्ञ करके हम सभी बुराइयों को रोक सकते हैं।” “तो जल्दी कीजिए,” राजा ने कहा, “और सभी जीवित प्राणियों को चार-चार करके ले जाइए—मनुष्यों, बैलों, घोड़ों, हाथियों से लेकर बटेरों और अन्य पक्षियों तक—और इस चार बार के यज्ञ से मेरी मन की शांति बहाल कीजिए।” ब्राह्मणों ने सहमति दे दी और अपनी आवश्यकतानुसार सामान लेकर उन्होंने एक यज्ञ कुंड खोदा और अपने असंख्य बलिदानों को खूंटों से बांध दिया। वे उत्तम भोजन और प्राप्त होने वाले धन के विचार से अत्यधिक उत्साहित थे और इधर-उधर घूमते हुए कह रहे थे, "हे प्रभु, मुझे फलां-फलां वस्तु चाहिए।"

रानी मल्लिका आईं और राजा से पूछा कि ब्राह्मण इतने प्रसन्न और मुस्कुराते हुए क्यों घूम रहे हैं। राजा ने कहा, "महारानी, तुम्हारा इससे क्या लेना-देना? तुम अपने ही गौरव में चूर हो और तुम्हें पता नहीं कि मैं कितना दुखी हूँ।" "महाराज?" रानी ने उत्तर दिया। "महारानी, मैंने ऐसी भयानक आवाजें सुनी हैं और जब मैंने ब्राह्मणों से पूछा कि इन चीखों को सुनने का क्या परिणाम होगा, तो उन्होंने मुझे बताया कि मेरे राज्य, मेरी संपत्ति या मेरे जीवन को खतरा है, लेकिन चार वक्त का यज्ञ करने से मुझे शांति मिलेगी, और अब मेरे आदेश का पालन करते हुए, उन्होंने एक यज्ञकुंड खोदा है और वे अपनी जरूरत के बलि लाने गए हैं।" रानी ने कहा, "महाराज, क्या आपने इन चीखों के स्रोत के बारे में देवलोक के प्रमुख ब्राह्मण से परामर्श लिया है?" राजा ने कहा, "देवी, देवलोक का प्रमुख ब्राह्मण कौन है?" “महान गौतम (बुद्ध),” उसने उत्तर दिया, “सर्वोच्च बुद्ध।” “देवी,” उसने कहा, “मैंने सर्वोच्च बुद्ध से परामर्श नहीं लिया है।” “तो जाइए,” उसने उत्तर दिया, “और उनसे परामर्श लीजिए।”

राजा ने रानी की बातें सुनीं और सुबह का भोजन करने के बाद वे अपने राज रथ पर सवार होकर जेतवन मठ के लिए रवाना हुए। वहाँ उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, रात्रि के समय मैंने चार प्रकार की आवाजें सुनीं और इस विषय में ब्राह्मणों से परामर्श किया। उन्होंने मेरी मन की शांति के लिए प्रत्येक प्रकार के बलिदान के चार वक्त अर्पित करने का वचन दिया है और वे अब यज्ञकुंड तैयार करने में लगे हैं। इन आवाजों का मेरे लिए क्या अर्थ है?”

“कुछ नहीं,” गुरु ने कहा। “नरक में कुछ प्राणी असहनीय पीड़ा के कारण ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। ये चीखें केवल आपने ही नहीं सुनी हैं,” उन्होंने आगे कहा। “पुराने समय के राजाओं ने भी इन्हें सुना था। और जब वे भी अपने ब्राह्मणों से परामर्श करने के बाद बलि चढ़ाने के लिए उत्सुक हुए, तो ज्ञानियों की बातें सुनकर उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। ज्ञानियों ने उन्हें इन चीखों का कारण समझाया और बलि चढ़ाने के लिए कहा, जिससे उन्हें शांति मिली।” और राजा के अनुरोध पर उन्होंने बीते समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जब वे परिपक्व हुए, तो उन्होंने इंद्रिय सुखों का त्याग कर तपस्वी जीवन व्यतीत किया और रहस्यमयी ध्यान की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं। चिंतन के आनंद में लीन होकर वे हिमालय की एक रमणीय वनभूमि में निवास करने लगे।

उस समय बनारस के राजा नरक में रहने वाले चार प्राणियों द्वारा उच्चारित उन चार ध्वनियों को सुनकर भयभीत हो गए। जब ब्राह्मणों ने उन्हें ठीक उसी प्रकार समझाया कि उन पर तीन में से एक विपत्ति अवश्य आएगी, तो उन्होंने चार बार यज्ञ करके इस विपत्ति को रोकने के उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कुल पुरोहित ने ब्राह्मणों की सहायता से एक यज्ञकुंड तैयार करवाया और बड़ी संख्या में बलि के प्राणियों को लाकर खंभों से बांध दिया। तब बोधिसत्व ने प्रेम भाव से प्रेरित होकर, अपनी दिव्य दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, जो कुछ हो रहा था उसे देखकर कहा, "मुझे तुरंत जाकर इन सभी प्राणियों का कल्याण करना चाहिए।" फिर अपनी जादुई शक्ति से वायु में उड़कर वे बनारस के राजा के उद्यान में उतरे और सोने की प्रतिमा के समान राजसी शिला पर बैठ गए। कुल पुरोहित के मुख्य शिष्य ने अपने गुरु के पास जाकर पूछा, "हे गुरु, क्या हमारे वेदों में यह नहीं लिखा है कि किसी भी प्राणी का प्राण लेने वाले को सुख नहीं मिलता?" पुजारी ने उत्तर दिया, “तुम्हें राजा की संपत्ति यहाँ लानी है, और हमें खाने के लिए भरपूर उत्तम भोजन मिलेगा। बस चुप रहो।” और इतना कहकर उसने अपने शिष्य को विदा कर दिया। परन्तु युवक ने सोचा, “मैं इस मामले में दखल नहीं दूंगा,” और जाकर राजा के उद्यान में बोधिसत्व से मिला। उन्हें मैत्रीपूर्ण प्रणाम करने के बाद वह आदरपूर्वक दूरी पर बैठ गया। बोधिसत्व ने उससे पूछा, “युवक, क्या राजा अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करता है?” “जी, पूज्यवर, राजा को शांति मिली है,” युवक ने उत्तर दिया। “लेकिन उन्होंने रात में चार चीखें सुनी हैं, और ब्राह्मणों से पूछने पर उन्होंने आश्वासन दिया है कि वे चार वक्त का यज्ञ करके उनकी शांति बहाल कर देंगे। इसलिए राजा अपनी खुशी वापस पाने के लिए चिंतित हैं और पशु यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं। बड़ी संख्या में पशुओं को लाकर यज्ञ के खंभों पर बांध दिया गया है। क्या आप जैसे पवित्र पुरुषों का यह कर्तव्य नहीं है कि आप इन आवाजों का कारण बताएं और इन असंख्य पशुओं को मृत्यु के मुंह से बचाएं?” “युवक,” उन्होंने उत्तर दिया, “राजा हमें नहीं जानते, न ही हम राजा को जानते हैं, लेकिन हम इन चीखों का स्रोत जानते हैं, और यदि राजा आकर हमसे कारण पूछें, तो हम उनके संदेह दूर कर देंगे।” “तो,” युवक ने कहा, “कृज्यवर, कृपया एक क्षण यहीं रुकिए, मैं राजा को आपके पास ले आता हूँ।”

बोधिसत्व मान गए, और युवक राजा के पास गया और उन्हें सारी बात बताकर वापस ले आया। राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर उनसे पूछा कि क्या यह सच है कि वे इन आवाज़ों का स्रोत जानते हैं। "जी महाराज," उन्होंने कहा। "तो मुझे बताइए, पूज्यवर।" “महाराज,” उसने उत्तर दिया, “ये पुरुष अपने पूर्व जन्म में बनारस के निकट अपने पड़ोसियों की सावधानीपूर्वक संरक्षित पत्नियों के साथ दुराचार के दोषी थे, और इसलिए चार लोहे के कड़ाहदानों में पुनर्जन्म हुए। जहाँ तीस हज़ार वर्षों तक उबलते हुए गाढ़े संक्षारक द्रव में यातना सहने के बाद, वे कभी कड़ाहे की तलहटी तक डूब जाते थे, और कभी झाग के बुलबुले की तरह ऊपर उठ आते थे (*3), लेकिन उन वर्षों के बाद उन्हें कड़ाहे का मुँह मिल गया, और किनारे से झाँकते हुए वे चारों चार पूर्ण श्लोक बोलना चाहते थे, लेकिन असफल रहे। और प्रत्येक केवल एक अक्षर बोलकर, वे फिर से लोहे के कड़ाहे में डूब गए। अब उनमें से जो “दु” अक्षर का उच्चारण करने के बाद डूब गया था, वह इस प्रकार बोलना चाहता था:-

हमने धन का उचित हिस्सा नहीं दिया; हमने एक दुष्ट जीवन व्यतीत किया।
जो सुख अब हमसे बिछड़ गए हैं, उनमें हमें कोई निश्चित मोक्ष (निर्वाण) नहीं मिला।
और जब वह इसे बोलने में असफल रहा, तो बोधिसत्व ने अपने ज्ञान से संपूर्ण श्लोक दोहराया। और इसी प्रकार बाकी लोगों के साथ भी हुआ। जिसने केवल "स" अक्षर का उच्चारण किया, वह निम्नलिखित श्लोक दोहराना चाहता था:-

दुख भोगने वालों का कितना दुखद भाग्य है! आह! मुक्ति कब आएगी?
असंख्य युगों के बाद भी, नरक की यातनाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं।
और फिर से, जिसने "ना" अक्षर का उच्चारण किया, उसके मामले में, वह इस छंद को दोहराना चाहता था:-

भाग्य द्वारा निर्धारित हमारे लिए क्षुद्रता के कोई अनंत दुख नहीं हैं;
हमने पृथ्वी पर जो बुराइयां पैदा की हैं, उन्हें दूर करना हमारी ही जिम्मेदारी है।
और जिसने "सो" शब्द का उच्चारण किया, वह निम्नलिखित को दोहराने के लिए उत्सुक था:-

मैं शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करके मनुष्य जन्म ग्रहण करूँगा।
और सद्गुणों से परिपूर्ण होकर वे अनेक सराहनीय कार्य करते हैं।
बोधिसत्व ने एक-एक करके इन श्लोकों का पाठ करने के बाद कहा, “हे महाराज, नरक में रहने वाला जब पूर्ण श्लोक बोलना चाहता था, तो अपने पाप की तीव्रता के कारण वह ऐसा करने में असमर्थ रहा। जब उसने अपने इस कुकर्म का फल भोगा, तो वह जोर से रोया। परन्तु भयभीत न हो; इस पुकार के कारण कोई खतरा तुम्हारे निकट नहीं आएगा।” इस प्रकार उन्होंने राजा को आश्वस्त किया। राजा ने अपने स्वर्ण ढोल की थाप से घोषणा की कि असंख्य पीड़ितों को मुक्त किया जाए और यज्ञकुंड को नष्ट किया जाए। बोधिसत्व ने इस प्रकार असंख्य पीड़ितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के बाद वहाँ कुछ दिनों तक निवास किया और फिर उसी स्थान पर लौटकर, अपनी समाधि (सम्मोहन) में बिना किसी व्यवधान के, ब्रह्मलोक (परमलोक) में जन्म लिया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का विवरण दिया: "उस समय सारिपुत्र युवा पुजारी थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

पेटा कहानी#50: पेटावत्थु(भूत_कहानियां)50 भी देखें
फुटनोट:

(1) एक राजा सपने में खुद को लोहाकुंभी नरक में फेंका हुआ देखता है।

(2)संभवतः अशुभ संकेत को रोकने के लिए।

(3) मिलिंदपन्हा, 357 देखें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मानस-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-315-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 315
मांसा-जातक

"माँगने वाले के लिए," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, कि कैसे वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने कुछ बीमार भिक्षुओं के लिए उत्तम भोजन की व्यवस्था की। कथा यह है कि जेतवन मठ में उस समय के कुछ भिक्षुओं ने तेल से पेट साफ करने के बाद उत्तम भोजन की इच्छा की। उनकी सेवा करने वाले भिक्षु उत्तम भोजन लाने के लिए श्रावस्ती नगर गए, लेकिन रसोइयों के क्वार्टर की एक गली में भिक्षा मांगने के बाद उन्हें मनचाहा भोजन नहीं मिला। बाद में उसी दिन वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने नगर गए और इन भिक्षुओं से मिले। उन्होंने उनसे पूछा कि वे इतनी जल्दी क्यों लौट आए। भिक्षुओं ने उन्हें सारी बात बताई। वरिष्ठ भिक्षु ने कहा, "तो मेरे साथ आइए," और उन्हें उसी गली में ले गए। वहाँ के लोगों ने उन्हें भरपूर उत्तम भोजन दिया। सेवकों ने भोजन बीमार भिक्षुओं के पास पहुँचाया और उन्होंने उसे खाया। एक दिन सत्य के सभागार में चर्चा शुरू हुई कि जब कुछ सेवक अपने बीमार स्वामियों के लिए उत्तम भोजन का इंतजाम न कर पाने के कारण एक कस्बे से जा रहे थे, तो एक वरिष्ठ भिक्षु उन्हें अपने साथ रसोइयों के क्वार्टर की एक गली में भिक्षा मांगने के लिए ले गए और उन्हें भरपूर उत्तम भोजन देकर घर भेजा। गुरुजी वहाँ आए और उनकी चर्चा का विषय पूछा, और जब उन्हें बताया गया कि चर्चा किस बारे में है, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, अब केवल सारिपुत्र को ही भोजन नहीं मिला। पहले भी मधुर वाणी वाले और मधुर बोलने वाले बुद्धिमान लोगों को भोजन मिलता था।" और फिर उन्होंने पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक धनी व्यापारी के पुत्र के रूप में हुआ था।

एक दिन एक हिरण शिकारी ने हिरण का मांस पकड़ा और अपनी गाड़ी में मांस भरकर उसे बेचने के इरादे से शहर लौट आया। उसी समय बनारस में रहने वाले धनी व्यापारियों के चार बेटे शहर से तेज़ी से निकले और एक चौराहे पर मिलकर बैठ गए और जो कुछ उन्होंने देखा या सुना था, उस पर बातें करने लगे। मांस से भरी गाड़ी देखकर उनमें से एक युवक ने शिकारी से हिरण का मांस लेने का प्रस्ताव रखा। बाकी युवकों ने भी उसे कोशिश करने को कहा। तो वह शिकारी के पास गया और बोला, "हे श्रीमान, मुझे मांस का एक टुकड़ा दे दीजिए।" शिकारी ने उत्तर दिया, "जो व्यक्ति किसी से कुछ मांगता है, उसे विनम्र स्वर में बोलना चाहिए: तुम्हें तुम्हारे बोलने के तरीके के अनुसार मांस का टुकड़ा मिलेगा।" फिर उसने पहला श्लोक कहा:-

मेरे मित्र, जो आपसे मदद मांग रहा है, उसके लिए आपकी भाषा का लहजा काफी असभ्य है।
ऐसी भाषा के बदले में कठोर व्यवहार ही उचित है, इसलिए मैं तुम्हें केवल हड्डियाँ और चमड़ी ही भेंट करता हूँ।

फिर उसके एक साथी ने उससे पूछा कि उसने मांस का टुकड़ा माँगते समय किस भाषा का प्रयोग किया था। उसने उत्तर दिया, "मैंने कहा, 'हाय, महोदय!'" दूसरे ने कहा, "मैं भी उससे भीख माँगूँगा।" फिर वह शिकारी के पास गया और बोला, "हे बड़े भाई, मुझे हिरण का मांस दे दीजिए।" शिकारी ने उत्तर दिया, "तुम्हें तुम्हारे शब्दों के अनुरूप ही मांस का टुकड़ा मिलेगा," और उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:-

भाई का नाम एक मजबूत कड़ी का पता लगाता है, जो एक दूसरे से मिलते-जुलते लोगों को जोड़ता है।
आपके मधुर शब्दों से मुझे जो उपहार देने का सुझाव मिला, वही उपहार मैं अपने भाई को भेंट करता हूँ।
और इन शब्दों के साथ उसने हिरण के मांस का एक टुकड़ा उठाया और उसे फेंक दिया। तब एक तीसरे युवक ने पूछा कि पहले वाले ने किन शब्दों में मांस माँगा था। उसने उत्तर दिया, "मैंने उसे भाई कहकर पुकारा था।" "तो मैं भी उससे माँगूँगा," उसने कहा। इसलिए वह शिकारी के पास गया और रोते हुए बोला, "प्रिय पिता, मुझे हिरण के मांस का एक टुकड़ा दे दीजिए।" शिकारी ने उत्तर दिया, "तुम्हें तुम्हारे कहे शब्दों के अनुरूप एक टुकड़ा मिलेगा," और उसने तीसरा छंद दोहराया:-

जब माता-पिता का स्नेही हृदय दया से भर जाता है, और "प्रिय पिता" की पुकार सुनाई देती है,
अतः मैं भी आपकी प्रेमपूर्ण अपील का उत्तर देता हूँ और आपको हिरण का हृदय अर्पित करता हूँ।
और इन शब्दों के साथ उसने मांस का एक स्वादिष्ट टुकड़ा उठाया और उसे दे दिया, जिसमें दिल भी शामिल था। फिर चौथे युवक ने तीसरे युवक से पूछा कि उसने हिरण का मांस किन शब्दों में माँगा था। "ओह, मैंने उसे 'प्रिय पिता' कहकर पुकारा था," उसने उत्तर दिया। "तो मैं भी एक टुकड़ा माँगूँगा," दूसरे ने कहा, और वह शिकारी के पास गया और बोला, "मेरे मित्र, मुझे मांस का एक टुकड़ा दे दो।" शिकारी ने कहा, "तुम्हारे कहे शब्दों के अनुसार ही तुम्हें मिलेगा।" और उसने चौथा श्लोक दोहराया:-

मेरे विचार से, बिना दोस्तों की दुनिया निश्चित रूप से एक वीरान जगह होगी।
मित्र की उपाधि में ही सब कुछ प्रिय निहित है, इसलिए मैं अपने सारे प्रियतम तुम्हें अर्पित करता हूँ।
फिर उसने कहा, "आओ मित्र, मैं यह सारा मांस से भरा बैलगाड़ी तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।" तो उस व्यापारी के बेटे ने बैलगाड़ी को अपने घर तक मँगवाया और जाकर मांस उतारा। उसने शिकारी का बड़े आदर और सत्कार से स्वागत किया और उसकी पत्नी और बेटे को बुलवाकर उसे उसके क्रूर काम से दूर ले गया और उसे अपनी जागीर में बसा दिया। वे दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए और जीवन भर सौहार्दपूर्ण ढंग से साथ रहे।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का विवरण दिया: "उस समय सारिपुत्र शिकारी थे, और मैं स्वयं व्यापारी का पुत्र था जिसे हिरण का सारा मांस दिया जाता था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शश-जातक**
स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-316-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 316
ससा-जातक

"सात लाल मछलियाँ," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें बौद्ध धर्म की सभी आवश्यक वस्तुओं के दान का वर्णन है। कहते हैं कि श्रावस्ती नगर के एक जमींदार ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराईं। उन्होंने अपने घर के द्वार पर एक मंडप बनाकर सभी वरिष्ठ भिक्षुओं और उनके मुखिया बुद्ध को आमंत्रित किया, उनके लिए तैयार की गई सुंदर कुर्सियों पर उन्हें बैठाया और उन्हें विभिन्न प्रकार के उत्तम और स्वादिष्ट भोजन परोसे। "कल फिर आइएगा" कहकर उन्होंने एक सप्ताह तक उनका सत्कार किया और सातवें दिन बुद्ध और उनके अधीन पाँच सौ वरिष्ठ भिक्षुओं को सभी आवश्यक वस्तुएँ भेंट कीं। भोज के अंत में गुरु ने धन्यवाद देते हुए कहा, "हे शिष्य, इस दान से सद्भावना और संतुष्टि प्रदान करना तुम्हारा उचित कार्य है। क्योंकि यह प्राचीन काल के बुद्धिमानों की परंपरा है, जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी और यहाँ तक कि अपना मांस भी उन्हें खाने को दिया।" और अपने मेज़बान के अनुरोध पर उन्होंने यह प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक युवा खरगोश का रूप धारण किया और एक जंगल में रहने लगे। जंगल के एक ओर पर्वत की तलहटी थी, दूसरी ओर एक नदी और तीसरी ओर एक सीमावर्ती गाँव था। खरगोश के तीन मित्र थे - एक बंदर, एक सियार और एक ऊदबिलाव। ये चारों बुद्धिमान प्राणी एक साथ रहते थे और प्रत्येक अपने-अपने शिकार क्षेत्र से भोजन प्राप्त करते थे, और शाम को फिर से एक साथ इकट्ठा होते थे। खरगोश ने अपनी बुद्धिमत्ता से अपने तीनों साथियों को सत्य का उपदेश दिया, उन्हें सिखाया कि दान देना चाहिए, नैतिक नियमों का पालन करना चाहिए और पवित्र दिनों का पालन करना चाहिए। उन्होंने उनकी सलाह मान ली और जंगल के अपने-अपने हिस्से में जाकर रहने लगे।

समय बीतने के साथ, एक दिन बोधिसत्व ने आकाश का अवलोकन करते हुए और चंद्रमा को देखकर जाना कि कल उपवास का दिन है। उन्होंने अपने तीनों साथियों से कहा, "कल उपवास का दिन है। तुम तीनों नैतिक नियमों का पालन करो और इस पवित्र दिन का पालन करो। जो नैतिक आचरण में दृढ़ रहता है, उसे दान देने से बड़ा प्रतिफल मिलता है। इसलिए, जो भी भिखारी तुम्हारे पास आए, उसे अपने भोजन में से खिलाओ।" वे सहर्ष सहमत हो गए और अपने-अपने निवास स्थान पर रहने लगे।

अगले दिन सुबह तड़के ही ऊदबिलाव अपने शिकार की तलाश में तेज़ी से आगे बढ़ा और गंगा के किनारे चला गया। तभी एक मछुआरे ने सात लाल मछलियाँ पकड़ी थीं और उन्हें एक टहनी पर पिरोकर नदी के किनारे रेत में दबा दिया था। फिर वह और मछलियाँ पकड़ने के लिए नदी में उतर गया। दबी हुई मछलियों की गंध से ऊदबिलाव रेत खोदता हुआ उन तक पहुँचा और उन्हें निकालते हुए तीन बार ज़ोर से बोला, "क्या इन मछलियों का कोई मालिक है?" कोई मालिक न देखकर उसने टहनी को अपने दाँतों से पकड़ा और मछलियों को अपने घर के जंगल में रख दिया, उचित समय आने पर उन्हें खाने का इरादा रखते हुए। फिर वह लेट गया और सोचने लगा कि उसने कितना पुण्य किया है! सियार भी भोजन की तलाश में तेज़ी से आगे बढ़ा और एक खेत-चौकीदार की झोपड़ी में उसे मांस के दो भुने हुए टुकड़े, एक छिपकली और दूध-दही का एक बर्तन मिला। और तीन बार ज़ोर से चिल्लाने के बाद, "ये किसके हैं?" और जब उसे कोई मालिक नहीं मिला, तो उसने बर्तन उठाने वाली रस्सी को अपने गले में डाल लिया, और भुने हुए मांस के टुकड़ों और छिपकली को अपने दांतों से पकड़कर, उन्हें अपने मांद में ले आया और यह सोचते हुए रख दिया, "उचित समय आने पर मैं इन्हें खा जाऊंगा," और फिर लेट गया, यह सोचते हुए कि उसने कितना नेक काम किया है।

बंदर भी पेड़ों के झुंड में घुस गया और आमों का एक गुच्छा इकट्ठा करके उन्हें जंगल के अपने हिस्से में रख दिया, यह सोचकर कि उचित समय आने पर उन्हें खाएगा, और फिर लेट गया, यह सोचकर कि वह कितना पुण्यशील है। लेकिन बोधिसत्व उचित समय पर बाहर आए, कुश घास खाने के इरादे से, और जब वे जंगल में लेटे थे, तो उनके मन में यह विचार आया, "मेरे लिए किसी भी भिखारी को घास देना असंभव है जो संयोगवश प्रकट हो जाए, और मेरे पास तेल या चावल जैसी कोई वस्तु भी नहीं है। यदि कोई भिखारी मुझसे विनती करे, तो मुझे उसे अपना मांस खिलाना पड़ेगा।" पुण्य के इस शानदार प्रदर्शन को देखकर, सक्का (इंद्र) के सफेद संगमरमर के सिंहासन में गर्मी के लक्षण दिखाई देने लगे। सक्का (इंद्र) ने अंतर्दृष्टि से कारण का पता लगाया और इस शाही खरगोश की परीक्षा लेने का निश्चय किया। सबसे पहले वह ब्राह्मण का वेश धारण करके ऊदबिलाव के निवास स्थान के पास जाकर खड़ा हो गया, और जब उससे पूछा गया कि वह वहाँ क्यों खड़ा है, तो उसने उत्तर दिया, "हे ज्ञानी महोदय, यदि मुझे उपवास के बाद कुछ खाने को मिल जाए, तो मैं अपने सभी पुरोहितीय कर्तव्यों का पालन करूँगा।" ऊदबिलाव ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं तुम्हें कुछ भोजन दूँगा," और उससे बात करते हुए उसने पहला श्लोक दोहराया:-

मैं गंगा की बाढ़ से सात लाल मछलियों को सुरक्षित रूप से किनारे पर ले आया।
हे ब्राह्मण, मेरी विनती है कि आप भरपेट भोजन करें और इसी जंगल में रहें।
ब्राह्मण ने कहा, "कल तक रहने दो। मैं उचित समय पर देख लूंगा।" फिर वह सियार के पास गया, और जब सियार ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों खड़ा है, तो उसने वही उत्तर दिया। सियार ने भी उसे भोजन देने का वादा किया, और उससे बात करते हुए दूसरी पंक्ति दोहराई:-

एक छिपकली और दही का एक जार, रखवाले का शाम का भोजन।
इसके अतिरिक्त मैंने दो भुने हुए मांस के टुकड़े भी अवैध रूप से चुरा लिए:
मेरे पास जो कुछ है, वही मैं तुम्हें देता हूँ: हे ब्राह्मण, कृपया ग्रहण करो।
यदि आप कृपा करके कुछ समय के लिए हमारे साथ इस जंगल में ठहरना चाहें।
ब्राह्मण ने कहा, "कल तक रहने दो। मैं उचित समय पर देख लूंगा।" फिर वह बंदर के पास गया, और जब उससे पूछा गया कि वह वहाँ क्यों खड़ा है, तो उसने पहले की तरह ही उत्तर दिया। बंदर ने सहर्ष उसे कुछ भोजन दिया, और उससे बातचीत करते हुए तीसरे श्लोक का उच्चारण किया:-

एक बर्फीली धारा, एक पका हुआ आम और हरे-भरे जंगल की सुखद छाया।
यदि आप वन के खुले मैदान में संतुष्ट होकर रह सकते हैं, तो इसका आनंद आप स्वयं ले सकते हैं।
ब्राह्मण ने कहा, "कल तक रहने दो। मैं उचित समय पर देख लूँगा।" और वह बुद्धिमान खरगोश के पास गया, और जब खरगोश ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों खड़ा है, तो उसने वही उत्तर दिया। बोधिसत्व ने उसकी इच्छा सुनकर अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और कहा, "ब्राह्मण, मेरे पास भोजन के लिए आकर तुमने अच्छा किया है। आज मैं तुम्हें एक ऐसा वरदान दूँगा जो मैंने पहले कभी नहीं दिया, लेकिन तुम पशु का वध करके नैतिक नियम का उल्लंघन नहीं करोगे। जाओ, मित्र, और जब तुम लकड़ियाँ इकट्ठा करके आग जला लो, तो आकर मुझे सूचित करना, और मैं लपटों के बीच गिरकर स्वयं को बलिदान कर दूँगा, और जब मेरा शरीर भुन जाएगा, तो तुम मेरा मांस खाकर अपने सभी पुरोहितीय कर्तव्यों को पूरा करोगे।" और इस प्रकार उनसे बात करते हुए खरगोश ने चौथा श्लोक कहा:-

मेरे पास न तो तिल हैं, न ही सेम हैं, न ही चावल हैं जो मैं भोजन के रूप में दे सकूँ।
लेकिन यदि तुम हमारे साथ रहना चाहते हो, तो मैं अपना शरीर आग में भूनने के लिए तैयार हूँ।
सक्का (इंद्र) ने उनकी बात सुनकर अपनी चमत्कारिक शक्ति से जलते हुए अंगारों का ढेर प्रकट किया और आकर बोधिसत्व को बताया। कुश घास के बिस्तर से उठकर वे वहाँ पहुँचे और तीन बार शरीर को झटककर अपने शरीर को इस तरह हिलाया कि यदि उनके वस्त्र में कोई कीड़े हों तो वे मृत्यु से बच जाएँ। फिर उन्होंने अपना पूरा शरीर निःस्वार्थ दान करते हुए उछल पड़े और कमलों के समूह पर उतरते हुए राजसी हंस की तरह आनंद की अवस्था में जलते हुए अंगारों के ढेर पर गिर पड़े। परन्तु लौ बोधिसत्व के शरीर के रोमछिद्रों को भी गर्म नहीं कर पाई, ऐसा लगा मानो वे हिमपात के क्षेत्र में प्रवेश कर गए हों। तब उन्होंने सक्का (इंद्र) से इन शब्दों में कहा, "ब्राह्मण, आपने जो अग्नि प्रज्वलित की है वह बर्फीली है: यह मेरे शरीर के रोमछिद्रों को भी गर्म नहीं कर पा रही है। इसका क्या अर्थ है?" "हे ज्ञानी," उसने उत्तर दिया, "मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं सक्का (इंद्र) हूँ, और मैं आपके सद्गुणों की परीक्षा लेने आया हूँ।" बोधिसत्व ने कहा, "यदि केवल आप ही नहीं, सक्का (इंद्र), बल्कि संसार के सभी निवासी मुझे दान देने के मामले में परखें, तो उन्हें मुझमें दान देने की अनिच्छा नहीं मिलेगी," और यह कहकर बोधिसत्व ने सिंह की दहाड़ जैसी प्रसन्नता का स्वर निकाला। तब सक्का (इंद्र) ने बोधिसत्व से कहा, "हे ज्ञानी खरगोश, जिसने अपने सद्गुणों का प्रचार-प्रसार किया है, वह विजय प्राप्त कर चुका है।" और पर्वत को निचोड़कर, उससे निकाले गए सार से, उन्होंने चंद्रमा के चेहरे पर खरगोश का चिन्ह बनाया। और उसी वन क्षेत्र में, युवा कुश घास के बिस्तर पर खरगोश को रखकर, सक्का (इंद्र) स्वर्ग में अपने स्थान पर लौट गए। और ये चारों बुद्धिमान प्राणी सुखपूर्वक और सद्भाव से एक साथ रहते थे, नैतिक नियमों का पालन करते थे और पवित्र दिनों का स्मरण करते थे, जब तक कि वे अपने कर्मों के अनुसार विदा नहीं हो गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करने के बाद सत्यों का प्रकटीकरण किया और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, गृहस्थ, जिसने बौद्ध धर्म की सभी आवश्यक वस्तुएँ निःशुल्क दान कर दीं, ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की: "उस समय आनंद ऊदबिलाव थे, मोग्गल्याण सियार थे, सारिपुत्र बंदर थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान खरगोश था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मातारोधन-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-317-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 317
मातारोदन-जातक

"जीवितों के लिए विलाप करो," इत्यादि-- जेतवन मठ में निवास करते समय गुरु ने श्रावस्ती शहर में रहने वाले एक जमींदार की यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि अपने भाई की मृत्यु पर वह इतना गहरे शोक में डूब गया था कि उसने न तो भोजन किया, न स्नान किया और न ही अभिषेक किया, बल्कि गहरे शोक में वह भोर होते ही कब्रिस्तान जाकर रोने लगता था। गुरु ने सुबह सवेरे संसार पर दृष्टि डाली और उस व्यक्ति में प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की क्षमता देखकर सोचा, "मेरे सिवा कोई और नहीं है जो उसे बहुत पहले घटी घटना के बारे में बताकर उसके शोक को दूर कर सके और उसे प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति करा सके। मुझे ही उसका आश्रय बनना चाहिए।" अतः अगले दिन दोपहर में भिक्षा मांगने के बाद लौटकर वह एक कनिष्ठ भिक्षु को अपने साथ लेकर उसके घर गया। गुरु के

आगमन की सूचना पाकर जमींदार ने एक आसन तैयार करवाया और उन्हें बैठने के लिए कहा। गुरु ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गुरु ने उनसे शोक का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि वे अपने भाई की मृत्यु के बाद से ही दुखी हैं। गुरु ने कहा, "सभी सांसारिक अस्तित्व क्षणभंगुर हैं, और जो टूटना तय है वह टूट जाता है। इस बात को लेकर परेशान नहीं होना चाहिए। पुराने समय के बुद्धिमान लोग यह जानते हुए भी अपने भाई की मृत्यु पर शोक नहीं करते थे।" और उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें अतीत की यह कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का पुनर्जन्म एक धनी व्यापारी के परिवार में हुआ, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। जब वे वयस्क हुए, तो उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनकी मृत्यु के बाद, बोधिसत्व के भाई ने पारिवारिक संपत्ति का प्रबंधन संभाला। बोधिसत्व उन पर आश्रित होकर जीवन व्यतीत करते थे। कुछ समय बाद, उनके भाई की भी एक घातक बीमारी से मृत्यु हो गई। उनके रिश्तेदार, मित्र और साथी एकत्रित हुए और हाथ जोड़कर रोने-धोने लगे, कोई भी अपने आंसुओं को वश में नहीं कर पा रहा था। परन्तु बोधिसत्व ने न तो शोक किया और न ही रोए। लोगों ने कहा, "देखो, यद्यपि उसका भाई मर गया है, तो भी वह जरा भी विचलित नहीं है: वह तो बहुत ही निर्दयी है। मुझे लगता है कि उसने अपने भाई की मृत्यु की कामना की थी, ताकि उसे दुगुना लाभ मिल सके।" इस प्रकार उन्होंने बोधिसत्व पर दोषारोपण किया। उनके परिवार ने भी उन्हें फटकारा और कहा, "यद्यपि तुम्हारा भाई मर गया है, तो भी तुम एक आंसू नहीं बहाते।" उनकी बातें सुनकर उन्होंने कहा: "अपने अज्ञानवश, अष्टम सांसारिक अवस्थाओं को न जानते हुए, तुम रोते-बिलखते हो, 'हाय! मेरा भाई मर गया,' लेकिन मुझे भी, और तुम्हें भी, मरना होगा। तो फिर तुम अपनी मृत्यु के विचार से क्यों नहीं रोते? सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, और इसलिए कोई भी पदार्थ अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं रह सकता। हे अज्ञानवश, तुम अंधों, अष्टम सांसारिक अवस्थाओं को न जानते हुए रोते-बिलखते हो, तो मैं क्यों रोऊँ?" और ऐसा कहकर उन्होंने ये श्लोक दोहराए:-

मृतकों के लिए शोक करने की बजाय जीवितों के लिए शोक करो!
  वे सभी प्राणी जो नश्वर रूप धारण करते हैं,
  चौपाया जानवर, पक्षी और फनदार सांप,
जी हां, इंसान और फरिश्ते सभी एक ही रास्ते पर चलते हैं।
भाग्य से निपटने में असमर्थ, मृत्यु से प्रसन्न,
  सुख और दुख के दुखद उतार-चढ़ाव के बीच,
  व्यर्थ आंसू बहाने पर मनुष्य को शिकायत क्यों करनी चाहिए?
और भाई के लिए शोक में डूबी आह भरी?
धोखाधड़ी और फिजूलखर्ची में माहिर पुरुष बूढ़े हो चुके हैं,
  अशिक्षित मूर्ख, यहाँ तक कि पराक्रमी वीर पुरुष भी,
  यदि कोई सांसारिक मामलों में तो बुद्धिमान हो लेकिन सही-गलत से अनभिज्ञ हो,
बुद्धिमत्ता स्वयं मूर्खता के समान हो सकती है।
इस प्रकार बोधिसत्व ने इन लोगों को सत्य का उपदेश दिया और उन सभी को उनके दुखों से मुक्ति दिलाई।

गुरु ने अपने धार्मिक (धार्मिक मार्ग के) प्रवचन को समाप्त करने के बाद सत्यों को प्रकट किया और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर भूस्वामी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: - "उस समय, धार्मिक प्रवचन (मार्ग के) द्वारा लोगों को उनके दुःखों से मुक्त करने वाला ज्ञानी व्यक्ति मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कणवेरा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-318-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 318
कानावेरा-जातक

"वह आनंदमय समय था," इत्यादि। यह कहानी जेतवन मठ में गुरु द्वारा सुनाई गई थी, एक भिक्षु के बारे में जो अपनी परित्यक्त पत्नी के विचारों से प्रलोभित था। इस कहानी की पृष्ठभूमि इंद्रिय जन्म (*1) में विस्तार से बताई जाएगी। गुरु ने उस भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा, "एक बार पहले, उसी के कारण तुम्हारा सिर काट दिया गया था।" और फिर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व का जन्म काशी गाँव के एक गृहस्थ के घर में एक डाकू के नक्षत्र में हुआ था। जब वे बड़े हुए, तो उन्होंने लूटपाट करके अपना जीवन यापन करना शुरू किया और एक साहसी और हाथी के समान बलवान व्यक्ति के रूप में उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उन्हें कोई पकड़ नहीं सका। एक दिन उन्होंने एक धनी व्यापारी के घर में सेंध लगाई और बहुत सारा खजाना लूट लिया। नगरवासियों ने राजा के पास आकर कहा, "महाराज, एक शक्तिशाली डाकू नगर को लूट रहा है: उसे गिरफ्तार करवाइए।" राजा ने नगर के राज्यपाल को उसे पकड़ने का आदेश दिया। रात में राज्यपाल ने टुकड़ियों में जगह-जगह अपने सैनिक तैनात किए और जब उन्होंने उसे धन सहित पकड़ लिया, तो उन्होंने राजा को सूचना दी। राजा ने राज्यपाल को उसका सिर कलम करने का आदेश दिया। फिर राज्यपाल ने उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बांध दिए, उसके गले में लाल कनवेरा के फूलों का हार बांध दिया और उसके सिर पर ईंटों का चूरा छिड़क दिया। फिर उसे चारों ओर कोड़ों से पीटा गया और कर्कश ढोल की थाप पर फांसी के स्थान पर ले जाया गया। लोगों ने कहा, "हमारे शहर को लूटने वाला यह लालची लुटेरा पकड़ा गया है," और पूरा शहर बहुत भावुक हो गया।

उस समय बनारस में समा नाम की एक शाही नर्तकी और वेश्या रहती थी, जिसकी कीमत एक हजार सिक्के थी। वह राजा की प्रिय थी और उसके साथ पाँच सौ दासियों का दल रहता था। महल की ऊपरी मंजिल पर एक खुली खिड़की पर खड़ी समा ने एक डाकू को आते हुए देखा। वह देखने में सुंदर और आकर्षक था, और सभी पुरुषों से लंबा, अत्यंत तेजस्वी और देवदूत जैसा दिखता था। उसे इस प्रकार आते देख समा को उससे प्रेम हो गया और उसने मन ही मन सोचा, "मैं इस पुरुष को अपना पति कैसे बना सकती हूँ?" समा ने कहा, "यही तरीका है," और अपनी एक दासी के द्वारा राज्यपाल को एक हजार सिक्के भिजवाए। उसने कहा, "उसे बताओ कि यह डाकू समा का भाई है, और समा के सिवा उसका कोई सहारा नहीं है। उससे कहो कि वह पैसे स्वीकार कर ले और अपने कैदी को छोड़ दे।" दासी ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। लेकिन राज्यपाल ने कहा, "यह एक कुख्यात डाकू है, मैं इस तरह के अपराध के बाद इसे आज़ाद नहीं छोड़ सकता। लेकिन अगर मुझे इसके बदले कोई दूसरा आदमी मिल जाए, तो मैं इस डाकू को एक ढकी हुई गाड़ी में बिठाकर तुम्हारे पास भेज सकता हूँ।" दासी ने आकर यह बात अपनी मालकिन को बताई।

उस समय एक धनी युवक समा पर मोहित हो गया और उसे प्रतिदिन एक हजार सिक्के भेंट करता था। उसी दिन सूर्यास्त के समय उसका प्रेमी हमेशा की तरह उसके घर सिक्के लेकर आया। समा ने सिक्के लेकर अपनी गोद में रख लिए और रोने लगी। जब उससे उसके दुःख का कारण पूछा गया, तो उसने कहा, "मेरे स्वामी, यह डाकू मेरा भाई है, हालाँकि वह मुझसे मिलने कभी नहीं आया, क्योंकि लोग कहते हैं कि मैं कोई बुरा धंधा करती हूँ। जब मैंने राज्यपाल को संदेश भेजा, तो उसने कहा कि यदि उसे एक हजार सिक्के मिल जाएँ, तो वह अपने कैदी को रिहा कर देगा। अब मुझे कोई ऐसा नहीं मिल रहा जो जाकर ये सिक्के राज्यपाल तक पहुँचा सके।" युवक ने समा के प्रेम में कहा, "मैं जाता हूँ।" समा ने कहा, "तो जाओ, और जो सिक्के तुम मेरे लिए लाए हो, उन्हें भी साथ ले जाओ।" इसलिए वह सिक्के लेकर राज्यपाल के घर चला गया।

राज्यपाल ने युवक व्यापारी को एक गुप्त स्थान पर छिपा दिया और डाकू को एक तंग गाड़ी में समा ले जाने का आदेश दिया। फिर उसने सोचा, "यह डाकू तो पूरे इलाके में जाना-पहचाना है। पहले तो पूरी तरह अंधेरा होना चाहिए। और फिर, जब सब लोग सोने चले जाएँगे, तो मैं इसे फाँसी दे दूँगा।" इसलिए कुछ समय के लिए फाँसी को टालने का बहाना बनाकर, जब लोग सोने चले गए, तो उसने युवक व्यापारी को भारी सुरक्षा दल के साथ फाँसी के स्थान पर भेजा, और तलवार से उसका सिर काटकर उसके शरीर को भाले पर टांग दिया, और वापस शहर लौट आया।

उसके बाद समा ने किसी और पुरुष से कुछ भी स्वीकार नहीं किया, बल्कि अपना सारा समय इसी डाकू के साथ सुख भोगने में बिताया। डाकू के मन में यह विचार आया: "अगर यह स्त्री किसी और से प्रेम कर बैठी, तो वह मुझे भी मरवा देगी और उसके साथ सुख भोगेगी। यह अपने मित्रों के प्रति बहुत विश्वासघाती है। मुझे अब यहाँ नहीं रहना चाहिए, बल्कि जल्दी से भाग जाना चाहिए।" जाते समय उसने सोचा, "मैं खाली हाथ नहीं जाऊँगा, बल्कि इसके कुछ गहने ले जाऊँगा।" इसलिए एक दिन उसने उससे कहा, "मेरी प्रिय, हम हमेशा पिंजरे में बंद पालतू तोतों की तरह घर के अंदर ही रहेंगे। किसी दिन हम बगीचे में खूब मस्ती करेंगे।" वह तुरंत मान गई और उसने हर तरह का खाना, सख्त और नरम, तैयार किया, अपने सारे गहने पहने और उसे एक बंद गाड़ी में बिठाकर बगीचे की ओर चल पड़ी। जब वह उसके साथ मस्ती कर रहा था, तब उसने सोचा, "अब मेरे भागने का समय आ गया है।" इसलिए, उसके प्रति अत्यधिक स्नेह का दिखावा करते हुए, वह कनवेरा की घनी झाड़ियों में घुस गया और उसे गले लगाने का नाटक करते हुए, उसे तब तक दबाया जब तक

वह बेहोश नहीं हो गई। फिर उसे नीचे फेंककर उसने उसके सारे गहने छीन लिए और उन्हें उसके बाहरी वस्त्र में बांधकर, उस गठरी को अपने कंधे पर रखा और बगीचे की दीवार फांदकर भाग गया।

जब उसे होश आया, तो वह उठकर अपने सेवकों के पास गई और उनसे पूछा कि उसके प्रेमी का क्या हुआ। "हमें नहीं पता, महोदया।" उसने कहा, "उसे लगता है कि मैं मर गई हूँ और शायद डर के मारे भाग गया होगा।" यह सोचकर वह बहुत दुखी हुई और वहाँ से अपने घर लौट आई। उसने कहा, "जब तक मैं अपने प्रिय प्रेमी को देख नहीं लेती, तब तक मैं आराम नहीं करूँगी।" और वह ज़मीन पर लेट गई। उस दिन से उसने न तो सुंदर वस्त्र पहने, न एक से अधिक बार भोजन किया, न ही इत्र, फूलों की माला आदि का प्रयोग किया। अपने प्रेमी को हर संभव तरीके से ढूंढने और वापस लाने का निश्चय करके उसने कुछ अभिनेताओं को बुलवाया और उन्हें एक हज़ार सिक्के दिए। जब उन्होंने पूछा, "इसके बदले हमें क्या करना चाहिए, महोदया?" उसने कहा, "ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ तुम न जाओ। इसलिए हर गाँव, कस्बे और शहर में जाओ, और अपने चारों ओर भीड़ इकट्ठा करके, सबसे पहले लोगों के बीच यह गीत गाओ," - अभिनेताओं को पहला छंद सिखाते हुए, "और अगर," उसने कहा, "जब तुम यह गीत गाओगे, तो मेरा पति भीड़ में से एक हो, तो वह तुमसे बात करेगा। तब तुम उसे बता देना कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ, और उसे अपने साथ वापस ले आना। और अगर वह आने से इनकार कर दे, तो मुझे संदेश भेज देना।"

और उन्हें यात्रा का खर्च देकर उसने उन्हें विदा कर दिया। वे बनारस से चले और जगह-जगह लोगों को इकट्ठा करते हुए अंत में एक सीमावर्ती गाँव पहुँचे। अब डाकू, भागने के बाद से यहीं रह रहा था। और अभिनेताओं ने अपने चारों ओर भीड़ इकट्ठा की और पहला छंद गाया:-

यह वसंत ऋतु का आनंदमय समय था।
 प्रत्येक झाड़ी और पेड़ फूलों से लदे हुए हैं।
उसकी बेहोशी से जागने पर
 समा जीवित है, और आपके लिए जीवित है।
यह सुनकर लुटेरा अभिनेता के पास आया और बोला, "तुम कहते हो कि समा जीवित है, लेकिन मुझे इस पर विश्वास नहीं है।" और उसे संबोधित करते हुए उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:

क्या तेज हवाएं पहाड़ों को हिला सकती हैं?
क्या वे स्थिर पृथ्वी को भी हिला सकते हैं?
लेकिन मृतकों को जीवित देखना
इससे भी कहीं अधिक अद्भुत और अजीब होगा!
ये शब्द सुनकर अभिनेता ने तीसरा छंद बोला:

समा निश्चित रूप से मरी नहीं है।
और न ही कोई दूसरा स्वामी विवाह करेगा।
एक भोजन को छोड़कर बाकी सभी भोजन से परहेज करना,
वह तुमसे प्यार करती है और सिर्फ तुमसे ही।
यह सुनकर लुटेरे ने कहा, "चाहे वह जीवित हो या मृत, मुझे उसकी कोई ज़रूरत नहीं है," और इन शब्दों के साथ उसने चौथे छंद को दोहराया:

समा की कल्पना हमेशा भटकती रहती है
दृढ़ विश्वास से लेकर हल्के-फुल्के प्रेम तक:
मैं भी समा को धोखा दे दूंगा।
अगर मैं भाग न जाता।
अभिनेताओं ने आकर समा को बताया कि उसने उनके साथ कैसा व्यवहार किया था। और वह, पछतावे से भरी हुई, एक बार फिर अपने पुराने जीवन पथ पर लौट आई।

जब गुरु ने अपना उपदेश समाप्त किया, तो उन्होंने सत्य प्रकट किए और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर सांसारिक मन वाले भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय यह भिक्षु धनी व्यापारी का पुत्र था, उसकी परित्यक्त पत्नी समा थी, और मैं स्वयं डाकू था।"

फुटनोट:

(1)सं. 423.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तित्तिर-जातक3**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-320-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 319
तित्तिरा-जातक

"सुखद जीवन," इत्यादि - यह कथा गुरु ने कोसंबी के निकट बदरिका मठ में रहते हुए वरिष्ठ भिक्षु राहुल के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कथा का पूर्ण वर्णन तिपल्लत्था जन्म में पहले ही हो चुका है। (*1) जब सत्य के हॉल में भिक्षु पूज्य राहुल की प्रशंसा कर रहे थे और उन्हें शिक्षा के शौकीन, ईमानदार और फटकार सहने वाले बता रहे थे, तब गुरु वहाँ आए और उनकी बातों का विषय सुनकर बोले, "न केवल अब, बल्कि पहले भी राहुल में ये सभी गुण थे।" फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में समस्त विद्याओं का अध्ययन किया और संसार का त्याग करके हिमालयी क्षेत्र में तपस्वी जीवन व्यतीत किया तथा समस्त ज्ञान और सिद्धियों का विकास किया। वहाँ वे समाधि की अवस्था में आनंद भोगते हुए एक रमणीय उपवन में निवास करते थे, जहाँ से वे नमक और सिरका लेने के लिए एक सीमावर्ती गाँव गए। उन्हें देखकर गाँव के लोग उनके अनुयायी बन गए और उन्होंने जंगल में उनके लिए पत्तों की एक कुटिया बनाई तथा उन्हें बौद्ध धर्म की सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करके वहाँ उनका निवास स्थान बनाया।

उस समय इस गाँव के एक शिकारी ने एक तीतर पकड़ा और उसे पिंजरे में रखकर बड़े ध्यान से प्रशिक्षित किया और उसकी देखभाल की। फिर वह उसे जंगल में ले गया और उसकी आवाज़ से आस-पास आने वाले सभी तीतरों को आकर्षित किया। तीतर ने सोचा, "मेरे कारण मेरे परिवार के कई लोग मर जाते हैं। यह मेरा एक बुरा काम है।" इसलिए वह चुप रहा। जब उसके मालिक ने देखा कि वह चुप है, तो उसने बाँस के एक टुकड़े से उसके सिर पर प्रहार किया। दर्द से तीतर चीख उठा। और शिकारी ने उसके द्वारा अन्य तीतरों को आकर्षित करके अपनी जीविका चलाई। तब तीतर ने सोचा, "अच्छा, मान लो वे मर जाते हैं। मेरी ओर से कोई बुरी मंशा नहीं है। क्या मेरे कर्मों के बुरे परिणाम मुझ पर असर डालते हैं? जब मैं चुप रहता हूँ, तो वे नहीं आते, लेकिन जब मैं चीखता हूँ, तो वे आते हैं। और जो भी आते हैं, यह आदमी उन्हें पकड़कर मार डालता है। क्या इसमें मेरी ओर से कोई पाप है, या नहीं?" तब से तीतर पक्षी के मन में बस एक ही विचार रह गया, "सचमुच मेरे संदेह का समाधान कौन कर सकता है?" और वह ऐसे ही किसी ज्ञानी व्यक्ति की तलाश में निकल पड़ा। एक दिन शिकारी ने बहुत सारे तीतर पकड़े और अपनी टोकरी भरकर बोधिसत्व के आश्रम में पानी मांगने आया। बोधिसत्व के पास पिंजरा रखकर उसने थोड़ा पानी पिया और रेत पर लेटकर सो गया। बोधिसत्व को सोते देख तीतर पक्षी ने सोचा, "मैं इस तपस्वी से अपने संदेह का उत्तर पूछूंगा, और यदि वह जानता है तो मेरी समस्या का समाधान कर देगा।" और पिंजरे में लेटे-लेटे उसने पहले श्लोक को प्रश्न के रूप में दोहराया:

मैं दिन भर सुखमय जीवन जीता हूँ।
   मुझे भरपूर भोजन प्राप्त होता है:
फिर भी मैं एक खतरनाक स्थिति में हूँ।
   मेरी भविष्य की स्थिति क्या होगी?
इस प्रश्न का हल निकालते हुए बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक कहा:

यदि आपके हृदय में कोई बुराई नहीं है
   दुष्टतापूर्ण कृत्यों के लिए उकसाने वाले कारक,
यदि आप निष्क्रिय भूमिका निभाते हैं,
   दोष आप पर नहीं लगता।

यह सुनकर तीतर पक्षी ने तीसरा छंद बोला:

"देखो! हमारा रिश्तेदार": वे इस प्रकार पुकारते हैं,
  और लोग बड़ी संख्या में उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़ते हैं।
क्या मैं दोषी हूँ, क्या उन्हें मर जाना चाहिए?
  कृपया मेरी इस शंका का समाधान करें।
यह सुनकर बोधिसत्व ने चौथा श्लोक दोहराया:

यदि हृदय में कोई पाप न छिपा हो,
  यह कृत्य निर्दोष साबित होगा।
जो निष्क्रिय भूमिका निभाता है
  सभी दोषों से मुक्त माना जाता है।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने तीतर को सांत्वना दी। और उनके द्वारा पक्षी पश्चाताप से मुक्त हो गया। तब शिकारी जागकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और अपना पिंजरा उठाकर चला गया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय राहुल तीतर पक्षी थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 16

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुक्कजा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 320
सुच्चजा-जातक

“वह शायद दे दे,” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में निवास करते समय एक जमींदार के बारे में सुनाई थी। कथा के अनुसार, वह अपनी पत्नी के साथ एक गाँव में कर्ज लेने गया और बकाया राशि के बदले एक गाड़ी जब्त करके उसे एक परिवार के पास यह सोचकर रख दिया कि बाद में उसे वापस ले लेगा। श्रावस्ती नगरी जाते समय उन्हें एक पर्वत दिखाई दिया। पत्नी ने उससे पूछा, “मान लो यह पर्वत पूरा सोना बन जाए, तो क्या तुम मुझे थोड़ा सा सोना दोगे?” उसने उत्तर दिया, “तुम कौन हो? मैं तुम्हें एक कण भी नहीं दूँगा।” “हाय!” वह रो पड़ी, “यह तो बड़े निर्दयी हैं। चाहे पर्वत शुद्ध सोना बन जाए, फिर भी वे मुझे एक कण भी नहीं देंगे।” और वह बहुत क्रोधित हुई।

जब वे जेतवन मठ के पास पहुँचे, तो प्यास लगने पर वे मठ में गए और पानी पिया। भोर होते ही गुरु ने उनमें मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करने की क्षमता देखकर, अपने सुगंधित कक्ष की एक कोठरी में बैठकर उनके आने की प्रतीक्षा की और बुद्धत्व की छह रंगों वाली किरणें बिखेरीं। प्यास बुझाने के बाद वे गुरु के पास आए और आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके बैठ गए। गुरु ने सामान्य सौहार्दपूर्ण अभिवादन के बाद उनसे पूछा कि वे कहाँ से आए हैं। "हम आदरणीय महोदय, ऋणी हैं।" "बहनोई, मुझे आशा है कि आपके पति आपकी भलाई के लिए चिंतित होंगे और आप पर कृपा करने के लिए तत्पर होंगे।" "आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया, "मैं उनसे बहुत स्नेह करती हूँ, लेकिन वे मुझसे प्रेम नहीं करते। आज जब मैंने एक पर्वत को देखकर उनसे पूछा, "मान लीजिए कि यह सब शुद्ध सोना है, तो क्या आप मुझे थोड़ा सा देंगे?" तो उन्होंने उत्तर दिया, "तुम कौन हो? मैं तुम्हें एक कण भी नहीं दूँगा।" वे कितने कठोर हृदय के हैं।" “श्रीमती बहन,” गुरु ने कहा, “वह इस तरह बातें करता है। लेकिन जब भी उसे आपके गुणों की याद आती है, वह आपको सर्वोपरि बनाने के लिए तैयार हो जाता है।” “हमें इसके बारे में बताइए, महाराज,” उन्होंने विनती की, और उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की यह कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके मंत्री थे और उनकी सभी सेवाएँ करते थे। एक दिन राजा ने अपने पुत्र को, जो उनके प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे, उनसे मिलने आते देखा। राजा ने मन ही मन सोचा, "अगर इसे

मौका मिला तो यह मेरा कुछ बिगाड़ सकता है।" इसलिए उन्होंने उसे बुलवाया और कहा, "जब तक मैं जीवित हूँ, तुम इस शहर में नहीं रह सकते। कहीं और रहो, और मेरी मृत्यु के बाद राज्य का शासन संभालो।" बोधिसत्व इन शर्तों पर सहमत हो गए और अपने पिता को विदाई देकर अपनी पत्नी के साथ बनारस से चल पड़े। एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचकर उन्होंने जंगल में पत्तों की एक झोपड़ी बनाई और वहीं जंगली जड़ों और फलों को खाकर अपना जीवन यापन करने लगे। कुछ समय बाद राजा की मृत्यु हो गई। युवा प्रतिनिधि ने नक्षत्रों के अवलोकन से अपने पिता की मृत्यु का पता लगा लिया और जब वे बनारस की यात्रा पर निकले, तो उन्हें एक पर्वत दिखाई दिया। उनकी पत्नी ने उनसे कहा, "मान लीजिए, महाराज, वह पर्वत शुद्ध सोने का बना हो, तो क्या आप मुझे उसमें से कुछ देंगे?" “तुम कौन हो?” वह चिल्लाया, “मैं तुम्हें एक कण भी नहीं दूँगा।” उसने सोचा, “उसके प्रति प्रेम के कारण ही मैं इस जंगल में आई हूँ, उसे छोड़ने का मन नहीं करता, और वह मुझसे इस तरह बात करता है। वह बहुत कठोर हृदय का है, और यदि वह राजा बन गया, तो मेरा क्या भला करेगा?” और उसका मन पीड़ा से भर गया।

बनारस पहुँचकर उन्होंने सिंहासन संभाला और रानी को प्रधान रानी का पद दिया। उन्होंने रानी को केवल उपाधि दी, इसके अलावा उन्होंने रानी का कोई आदर-सम्मान नहीं किया और यहाँ तक कि उनके अस्तित्व को भी मान्यता नहीं दी। बोधिसत्व ने सोचा, "यह रानी राजा की संगिनी थी, जिसने कष्टों की परवाह किए बिना उनके साथ वन में निवास किया। परन्तु राजा इसकी परवाह न करते हुए अन्य स्त्रियों के साथ भोग-विलास करता है। परन्तु मैं ऐसा करूँगा कि वह समस्त पर आधिपत्य प्राप्त करे।" और इसी विचार के साथ वे एक दिन गए और रानी को प्रणाम करते हुए बोले, "देवी, हमें आपसे चावल का एक टुकड़ा भी नहीं मिलता। आप इतनी कठोर हृदय क्यों हैं और हमारी उपेक्षा क्यों करती हैं?" “मित्र,” उसने उत्तर दिया, “यदि मुझे स्वयं कुछ प्राप्त हो, तो मैं तुम्हें दे दूँगी, परन्तु यदि मुझे कुछ न मिले, तो मैं क्या दूँगी? मैं पूछती हूँ, राजा मुझे क्या देने की संभावना रखते हैं? यहाँ आते समय, जब मुझसे पूछा गया, “यदि यह पर्वत पूर्णतः शुद्ध सोने का होता, तो क्या तुम मुझे कुछ देती?” तो उन्होंने उत्तर दिया, “तुम कौन हो? मैं तुम्हें कुछ नहीं दूँगा।” “अच्छा, क्या तुम यह सब राजा के सामने दोहरा सकती हो?” उन्होंने कहा। “क्यों न दोहराऊँ, मित्र?” उसने उत्तर दिया। “तो जब मैं राजा के समक्ष खड़ा होऊँगा,” उन्होंने कहा, “मैं पूछूँगा और तुम इसे दोहरा देना।” “ठीक है, मित्र,” उसने कहा। अतः बोधिसत्व ने राजा को प्रणाम करते हुए रानी से पूछा, “क्या हमें, हे देवी, आपके हाथों से कुछ प्राप्त नहीं होगा?” “महोदय,” उसने उत्तर दिया, “जब मुझे कुछ मिलेगा, तो मैं आपको कुछ दूँगी। परन्तु मैं पूछती हूँ, अब राजा मुझे क्या देने की संभावना रखते हैं?” जब हम जंगल से आ रहे थे और एक पहाड़ दिखाई दिया, तो मैंने उससे पूछा, "अगर पहाड़ पूरी तरह से शुद्ध सोना होता, तो क्या तुम मुझे उसमें से कुछ देते?" "तुम कौन हो?" उसने कहा, "मैं तुम्हें कुछ नहीं दूंगा।" और इन शब्दों में उसने उस चीज़ को ठुकरा दिया जिसे देना आसान था।" इसे समझाने के लिए, उसने पहला छंद दोहराया:

वह कम कीमत पर दान दे सकता है।
अगर वह किसी चीज को खो देता, तो उसे उसकी कमी महसूस नहीं होती।
मैं स्वर्णिम पर्वत देता हूँ;
मैं उससे जो भी पूछता हूँ, वह हर बार "नहीं" कहता है।
यह सुनकर राजा ने दूसरा श्लोक कहा:

जब भी संभव हो, "हां, मैं करूंगा" कहिए।
जब आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कुछ भी वादा न करें।
टूटे हुए वादे झूठ होते हैं;
सभी बुद्धिमान लोग झूठ बोलने वालों से घृणा करते हैं।
यह सुनकर रानी ने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन किया और तीसरे श्लोक को दोहराया:

धार्मिकता में दृढ़ रहते हुए,
हे राजकुमार, हम आपको विनम्रतापूर्वक आशीर्वाद देते हैं।
भाग्य ही सब कुछ नष्ट कर सकता है;
सत्य ही अब भी आपका एकमात्र आनंद है।
रानी द्वारा राजा की प्रशंसा में गाए गए गीतों को सुनकर बोधिसत्व ने उनके गुणों का स्मरण किया और चौथे श्लोक को दोहराया।

एक असाधारण पत्नी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली,
जीवन के सुख-दुखों को साझा करना,
वह दोनों ही नियतियों के लिए समान रूप से उत्तरदायी है।
यहां तक कि राजाओं के साथ भी संभोग करने में सक्षम।

इन शब्दों में बोधिसत्व ने रानी की प्रशंसा करते हुए कहा, "महाराज, विपत्ति के समय में यह देवी आपके साथ वन में रहीं और आपके दुखों में भागीदार बनीं। आपको उनका सम्मान करना चाहिए।" राजा ने उनकी बात सुनकर रानी के गुणों को याद किया और कहा, "हे ज्ञानी महाराज, आपके शब्दों से मुझे रानी के गुण याद आ गए," और ऐसा कहकर उन्होंने सारी शक्ति रानी को सौंप दी। इसके अलावा उन्होंने बोधिसत्व को भी अपार शक्ति प्रदान की। उन्होंने कहा, "आपके कारण ही मुझे रानी के गुणों की याद आई।"

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए सत्य प्रकट किए और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, पति-पत्नी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय यह जमींदार बनारस का राजा था, यह गृहस्थ बहन रानी थी, और मैं स्वयं बुद्धिमान सलाहकार था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुटिदुसाका-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-321-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 321
कुटिदुसका-जातक

“बंदर, पैरों में,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। यह कहानी एक युवा शिष्य के बारे में है जिसने वरिष्ठ भिक्षु महाकश्यप की पत्तों की कुटिया जला दी थी। इस कहानी की उत्पत्ति राजगृह नगर में हुई थी। कहते हैं कि उस समय वरिष्ठ भिक्षु राजगृह नगर के पास जंगल में एक कुटिया में रहते थे। दो युवा शिष्य उनकी सेवा करते थे। उनमें से एक वरिष्ठ भिक्षु का सेवाभावी था, जबकि दूसरा बदतमीज़ था। उसका साथी जो भी काम करता, वह उसे ऐसे दिखाता जैसे उसने खुद किया हो। उदाहरण के लिए, जब दूसरे लड़के ने कुल्ला करने के लिए पानी रखा, तो वह वरिष्ठ भिक्षु के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहता, “महोदय, पानी तैयार है। कृपया कुल्ला कर लीजिए।” और जब उसका साथी सुबह जल्दी उठकर वरिष्ठ भिक्षु की कुटिया साफ कर देता, तो जैसे ही वरिष्ठ भिक्षु प्रकट होते, वह इधर-उधर चीजें बिखेर देता और ऐसा दिखाता जैसे पूरी कुटिया उसने खुद साफ की हो।

उस आज्ञाकारी शिष्य ने सोचा, "यह बदमाश तो मेरे हर काम का श्रेय खुद को ही दे देता है। मैं उसकी इस धूर्तता का पर्दाफाश करूँगा।" इसलिए जब वह बदमाश लड़का गाँव से लौटकर खाना खाने के बाद सो रहा था, तो उसने नहाने के लिए पानी गर्म किया और उसे एक पिछले कमरे में छिपा दिया, और फिर बॉयलर में बस थोड़ा सा पानी डाला। दूसरा लड़का जागने पर गया और भाप को ऊपर उठते देखा और सोचा, "ज़रूर हमारे दोस्त ने पानी गर्म करके स्नानघर में डाल दिया है।" तो वह बड़े भिक्षु के पास गया और बोला, "महोदय, पानी स्नानघर में है। कृपया स्नान कर लीजिए।" बड़े भिक्षु उसके साथ स्नान करने गए, और स्नानघर में पानी न पाकर पूछा कि पानी कहाँ है। लड़का जल्दी से गर्म करने वाले कमरे में गया और खाली बॉयलर में एक करछुल डाल दी। करछुल खाली बर्तन के तल से टकराई और एक खड़खड़ाहट की आवाज़ आई। (तब से उस लड़के को "रैटल-लैडल" के नाम से जाना जाने लगा।) इसी समय दूसरा लड़का पीछे वाले कमरे से पानी लेकर आया और बोला, "महोदय, कृपया स्नान कीजिए।" बड़े भिक्षु ने स्नान किया और रैटल-लैडल के दुराचार से अवगत होने पर, जब वह लड़का शाम को उनकी सेवा करने आया, तो उन्होंने उसे फटकारा और कहा, "जब कोई व्यक्ति जो धार्मिक (तपस्वी) व्रत धारण किए हुए है, कोई कार्य स्वयं करता है, तभी उसे यह कहने का अधिकार है, 'मैंने यह किया।' अन्यथा यह जानबूझकर बोला गया झूठ है। अब से इस प्रकार का आचरण न करना।"

वह लड़का बड़े भिक्षु से नाराज़ था, और अगले दिन उसने उनके साथ शहर में भिक्षा मांगने जाने से इनकार कर दिया। लेकिन दूसरा युवक बड़े भिक्षु के साथ चला गया। और रैटल-लैडल बड़े भिक्षु के संरक्षकों के परिवार से मिलने गया। जब उन्होंने पूछा कि बड़े भिक्षु कहाँ हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे बीमार होकर घर पर ही हैं। उन्होंने पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। उन्होंने कहा, "मुझे यह दे दो," और उसे लेकर अपनी मनपसंद जगह पर गए, वहाँ भोजन किया और आश्रम लौट आए। अगले दिन बड़े भिक्षु उस परिवार से मिलने गए और उनके साथ बैठ गए। लोगों ने कहा, "आप ठीक नहीं हैं, है ना? कल, लोग कहते हैं, आप घर पर अपनी कुटिया में ही रहे। हमने फलाँ लड़के के हाथों आपके लिए कुछ भोजन भेजा था। क्या आपने उसे खाया?" बड़े भिक्षु चुप रहे, और भोजन समाप्त करने के बाद मठ लौट आए।

शाम को जब लड़का उनकी सेवा करने आया, तो बड़े भिक्षु ने उससे कहा, "हे महोदय, आप फलां परिवार और फलां गांव में भीख मांगने गए थे। आपने यह कहकर भीख मांगी, "बड़े भिक्षु को फलां भोजन चाहिए।" और फिर, लोग कहते हैं, आपने वह स्वयं खा लिया। इस तरह भीख मांगना अत्यंत अनुचित है। ध्यान रखें कि आप फिर कभी ऐसा दुराचार न करें।"

इसलिए वह लड़का लंबे समय तक उस बड़े भिक्षु के प्रति द्वेष रखता रहा, यह सोचते हुए कि, "कल तो उसने थोड़े से पानी के लिए मुझसे झगड़ा किया। और अब अपने संरक्षक के घर में मुट्ठी भर चावल खाने पर नाराज़ होकर मुझसे फिर झगड़ा कर रहा है। मैं उससे निपटने का सही तरीका ज़रूर ढूँढूँगा।" और अगले दिन, जब वह बड़ा भिक्षु भिक्षा मांगने शहर गया, तो उसने एक हथौड़ा उठाया और भोजन के सभी बर्तन तोड़ दिए, और पत्तों की झोपड़ी में आग लगाकर भाग गया। जीवित रहते हुए ही वह मनुष्यों के संसार में प्रेत बन गया, और धीरे-धीरे क्षीण होता चला गया, जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई और उसका पुनर्जन्म अविची के महान नरक में हुआ। और उसके इस बुरे कर्म की प्रसिद्धि लोगों में फैल गई।

एक दिन कुछ भिक्षु राजग्रह नगर से श्रावस्ती नगर आए और सभा कक्ष में अपने पान-पात्र और वस्त्र रखकर गुरु को प्रणाम करके बैठ गए। गुरु ने उनसे स्नेहपूर्वक बातचीत की और पूछा कि वे कहाँ से आए हैं। "राजग्रह नगर से, महोदय।" "वहाँ उपदेश देने वाले गुरु कौन हैं?" उन्होंने कहा। "महान कश्यप, महोदय।" "क्या कश्यप ठीक हैं, भिक्षुओं?" उन्होंने पूछा। "जी, आदरणीय, वरिष्ठ भिक्षु ठीक हैं। लेकिन भिक्षुओं के एक शिष्य को उनकी फटकार से इतना क्रोध आया कि उसने वरिष्ठ भिक्षु की पत्तों की कुटिया में आग लगा दी और भाग गया।" यह सुनकर गुरु ने कहा, "भाइयों, कश्यप के लिए इस मूर्ख की संगति से एकांत बेहतर है।" और ऐसा कहकर उन्होंने धम्मपद का एक श्लोक दोहराया।

अशिष्ट और निकम्मे लोगों के साथ यात्रा करना,
   और मूर्ख लोगों की संगति से दूर रहो;
अपने समकक्ष या बेहतर साथी का चयन करें
   या फिर एकांत में ही अपना रास्ता खोजो।
इसके बाद उन्होंने फिर भाइयों को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, केवल आज ही इस युवक ने झोपड़ी नहीं तोड़ी और डांटने वाले पर क्रोधित नहीं हुआ। पहले भी वह क्रोधित होता था।" फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब बोधिसत्व एक छोटे सिंहला पक्षी के रूप में प्रकट हुए। जब वे बड़े हुए, तो वे हिमालय में बस गए और अपनी पसंद का एक घोंसला बनाया, जो बारिश से सुरक्षित था। फिर बरसात के मौसम में, जब लगातार बारिश हो रही थी, एक बंदर बोधिसत्व के पास बैठा था, ठंड के कारण उसके दांत किटकिटा रहे थे। बोधिसत्व ने उसे इस प्रकार दुखी देखकर उससे बात करना शुरू किया और पहला श्लोक कहा:

बंदर, पैरों, हाथों और चेहरे में
   तो जैसे मानव रूप,
तुम रहने के लिए कोई जगह क्यों नहीं बना रहे हो?
   क्या तुम्हें तूफान से बचाने के लिए?
यह सुनकर बंदर ने दूसरी पंक्ति में उत्तर दिया:

पैरों, हाथों और चेहरे में, हे पक्षी,
   हालांकि सहयोगी व्यक्ति के करीब,
उन्हें प्राप्त सबसे बड़ा वरदान ज्ञान था।
   मुझे इससे वंचित रखा गया है।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दो और दोहे दोहराए:

जो अविश्वसनीय है वह धोखा देता है, एक कमजोर और निर्धन मन वाला व्यक्ति।
अपने सभी व्यवहारों में अस्थिरता साबित होने पर, उसे सुख नहीं मिल सकता।
हे बंदर, उत्कृष्टता प्राप्त करने के गुण में, अपना पूरा परिश्रम करो।
और सर्द हवाओं से सुरक्षित रहने के लिए, जाओ, पत्तों की झोपड़ी बनाओ।

बंदर ने सोचा, "यह प्राणी, जो बारिश से सुरक्षित स्थान पर रहता है, मुझसे घृणा करता है। मैं इसे इस घोंसले में चैन से नहीं बैठने दूँगा।" बोधिसत्व को पकड़ने की उत्सुकता में उसने उन पर झपट्टा मारा। लेकिन बोधिसत्व हवा में उड़ गए और कहीं और चले गए। और बंदर ने अपना घोंसला तोड़कर नष्ट कर दिया और वहाँ से चला गया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म की पहचान बताई: "उस समय झोपड़ी में आग लगाने वाला युवक बंदर था, और मैं स्वयं सिंगिला पक्षी था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दद्दभा-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-322-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 322
दद्दभा-जातक

“जिस स्थान से,” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए कुछ दुराचारी अनुयायियों के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि ये दुराचारी अनुयायी जेतवन मठ के आस-पास विभिन्न स्थानों पर कांटों पर बिस्तर लगाते थे, पांचों प्रकार की अग्नि तपस्या करते थे और अनेक प्रकार की झूठी तपस्या करते थे। अब श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद जेतवन मठ लौटते समय कुछ भिक्षुओं ने इन दुराचारी अनुयायियों को दिखावटी तपस्या करते देखा और गुरुजी से पूछा, “हे गुरुजी, क्या इन विभिन्न संप्रदायों के भिक्षुओं द्वारा इन प्रथाओं को अपनाने में कोई गुण है?” गुरुजी ने कहा, “हे भिक्षुओं, इसमें न तो कोई गुण है और न ही कोई विशेष पुण्य। जब इसकी जांच-परख की जाती है, तो यह गोबर के ढेर पर चलने के समान है, या खरगोश द्वारा सुनी गई आवाज के समान है।” “हे गुरुजी, हमें नहीं पता कि वह आवाज क्या थी। हे परम पूज्य, हमें बताइए।” इसलिए उनके अनुरोध पर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन लोककथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक युवा शेर के रूप में जन्म लिया। बड़े होकर वे एक जंगल में रहने लगे। उस समय पश्चिमी सागर के पास खजूर और विल्व के पेड़ों का एक छोटा सा जंगल था। एक खरगोश विल्व के पेड़ की तलहटी में, खजूर के एक छोटे से पौधे के नीचे रहता था। एक दिन भोजन करने के बाद वह खरगोश उस युवा खजूर के पेड़ के नीचे लेट गया। तभी उसके मन में यह विचार आया, "यदि यह पृथ्वी नष्ट हो जाए, तो मेरा क्या होगा?" ठीक उसी क्षण एक पका हुआ विल्व का फल खजूर के पत्ते पर गिरा। उसकी आवाज सुनकर खरगोश ने सोचा, "यह ठोस पृथ्वी ढह रही है," और वह बिना पीछे देखे ही डर के मारे भाग गया। एक दूसरे खरगोश ने उसे डर के मारे भागते हुए देखा और उससे भागने का कारण पूछा। उसने कहा, "कृपया मुझसे मत पूछिए।" दूसरे खरगोश ने चिल्लाकर कहा, "श्रीमान, क्या बात है?" और उसके पीछे दौड़ता रहा। फिर खरगोश एक पल के लिए रुका और पीछे मुड़े बिना बोला, "यहाँ धरती फट रही है।" यह सुनकर दूसरा खरगोश उसके पीछे दौड़ पड़ा। इस तरह पहले एक और फिर दूसरा खरगोश उसे दौड़ते हुए देखकर उसका पीछा करने लगा, और अंत में एक लाख खरगोश एक साथ भागने लगे। उन्हें एक हिरण, एक जंगली सूअर, एक बारहसिंगा, एक भैंस, एक जंगली बैल, एक गैंडा, एक बाघ, एक शेर और एक हाथी ने देखा। जब उन्होंने पूछा कि इसका क्या मतलब है और उन्हें बताया गया कि धरती फट रही है, तो वे भी भागने लगे। धीरे-धीरे जानवरों का यह समूह बढ़कर एक लीग (4.23 किमी) की लंबाई तक फैल गया।

जब बोधिसत्व ने जानवरों को इस तरह बेतहाशा भागते देखा और सुना कि वे पृथ्वी के अंत की आशंका से भाग रहे हैं, तो उन्होंने सोचा, "पृथ्वी कहीं भी समाप्त नहीं हो रही है। ज़रूर कोई ऐसी आवाज़ होगी जिसे उन्होंने गलत समझा होगा। और अगर मैंने कोई बड़ा प्रयास नहीं किया, तो वे सब मर जाएँगे। मैं उनकी जान बचाऊँगा।" इसलिए वे शेर की गति से उनके आगे एक पहाड़ की तलहटी तक पहुँचे और शेर की तरह तीन बार दहाड़े। शेर को देखकर वे बुरी तरह डर गए और भागना बंद करके एक साथ huddled होकर खड़े हो गए। शेर उनके बीच गया और पूछा कि वे क्यों भाग रहे हैं।

उन्होंने उत्तर दिया, "पृथ्वी ढह रही है।"

उन्होंने कहा, "इसे ढहते हुए किसने देखा?"

उन्होंने जवाब दिया, "हाथियों को इसके बारे में सब पता है।"

उसने हाथियों से पूछा। "हमें नहीं पता," उन्होंने कहा, "शेर जानते हैं।" लेकिन शेरों ने कहा, "हमें नहीं पता, बाघ जानते हैं।" बाघों ने कहा, "गैंडे जानते हैं।" गैंडों ने कहा, "जंगली बैल जानते हैं।" जंगली बैलों ने कहा, "भैंसें।" भैंसों ने कहा, "हिरण।" हिरणों ने कहा, "सूअर।" सूअरों ने कहा, "हिरण।" हिरणों ने कहा, "हमें नहीं पता, खरगोश जानते हैं।" जब खरगोशों से पूछा गया, तो उन्होंने एक खास खरगोश की ओर इशारा करते हुए कहा, "इसने हमें बताया।"

तब बोधिसत्व ने पूछा, "क्या यह सच है, महाराज, कि पृथ्वी फट रही है?" "जी महाराज, मैंने देखा है," खरगोश ने कहा।

उसने पूछा, "जब आपने इसे देखा, तब आप कहाँ रह रहे थे?"

"महासागर के निकट, खजूर और विल्वा के पेड़ों से भरे एक झुरमुट में। मैं विल्वा के पेड़ की तलहटी में खजूर के छोटे पौधे की छाया में लेटा हुआ था, तभी मैंने सोचा, 'यदि यह पृथ्वी फट जाए, तो मैं कहाँ जाऊँगा?' और ठीक उसी क्षण मैंने पृथ्वी के फटने की आवाज सुनी और मैं भाग गया।"

शेर ने सोचा, "पका हुआ विल्वा फल ज़रूर किसी ताड़ के पत्ते पर गिरा होगा और 'धड़' की आवाज़ हुई होगी, और इस खरगोश ने यह सोचकर कि पृथ्वी का अंत होने वाला है, भाग गया होगा। मैं इसकी सच्चाई का पता लगाऊंगा।" उसने जानवरों के झुंड को आश्वस्त करते हुए कहा, "मैं खरगोश को लेकर जाता हूं और उसके बताए स्थान पर जाकर पता लगाता हूं कि पृथ्वी का अंत हो रहा है या नहीं। मेरे लौटने तक तुम यहीं रहो।" फिर खरगोश को अपनी पीठ पर लादकर वह शेर की गति से आगे बढ़ा और उसे ताड़ के झुरमुट में उतारते हुए बोला, "आओ, हमें वह स्थान दिखाओ जिसकी तुम बात कर रहे थे।"

"मैं ऐसा करने की हिम्मत नहीं कर सकता, महाराज," खरगोश ने कहा।

"आओ, डरो मत," शेर ने कहा।

खरगोश विल्वा वृक्ष के पास जाने का साहस न करते हुए, दूर खड़ा रहा और चिल्लाया, "हे प्रभु, उधर ही भयानक ध्वनि का स्थान है," और ऐसा कहते हुए उसने पहली पंक्ति दोहराई:

जिस स्थान पर मैं रहता था
  एक भयानक "धड़ाम" के साथ जारी किया गया;
वह क्या था, मैं नहीं बता सकता।
  और न ही इसके कारण का पता चल पाया।

खरगोश की बात सुनकर शेर विल्वा वृक्ष के नीचे गया और उसने वह स्थान देखा जहाँ खरगोश ताड़ के पेड़ की छाया में लेटा हुआ था, और ताड़ के पत्ते पर गिरे हुए पके विल्वा फल को भी देखा। उसने ध्यानपूर्वक यह सुनिश्चित कर लिया कि मिट्टी नहीं फटी है, फिर उसने खरगोश को अपनी पीठ पर उठाया और शेर की गति से शीघ्र ही पशुओं के झुंड के पास वापस आ गया।

फिर उन्होंने उन्हें पूरी कहानी सुनाई और कहा, "डरो मत।" इस प्रकार पशुओं के झुंड को आश्वस्त करके उन्होंने उन्हें जाने दिया। सचमुच, यदि उस समय बोधिसत्व न होते, तो सभी पशु समुद्र में गिरकर मर जाते। बोधिसत्व की कृपा से ही वे मृत्यु से बच गए।

गिरे हुए फलों की आवाज सुनकर घबरा गया
  एक बार एक खरगोश भाग गया,
बाकी सभी जानवरों ने भी उनका अनुसरण किया।
  उस खरगोश की निराशा देखकर मैं द्रवित हो गया।

वे दृश्य को न देखने के लिए तेजी से आगे बढ़े।
  लेकिन उन्होंने ध्यान से सुना।
बेकार की गपशप के लिए, और साफ थे
  मूर्खतापूर्ण भय से पागल।
जो लोग ज्ञान की शांत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं
  और सद्गुण की ऊँचाइयों को प्राप्त करते हैं,

हालांकि बुरे उदाहरण से चेतावनी मिलनी चाहिए,
इस तरह की घबराहट, भय और इनकार।
ये तीनों श्लोक पूर्ण ज्ञान से प्रेरित हैं।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय मैं स्वयं शेर था।"

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-323-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 323
ब्रह्मदत्त-जातक

"यही गुण है," इत्यादि-- यह कहानी गुरु ने अलवी के पास अग्गलावा मंदिर में रहते हुए, कोठरियों के निर्माण में पालन किए जाने वाले नियमों के बारे में सुनाई थी। (*1)

मणिकांत जन्म (*2) में प्रारंभिक कथा पहले ही बताई जा चुकी है, लेकिन इस अवसर पर गुरु ने कहा, "क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम यहाँ भीख माँगने और गिड़गिड़ाने की अपनी ज़िद के कारण रहते हो?" और जब उन्होंने उत्तर दिया "हाँ," तो उन्होंने उन्हें फटकारा और कहा, "पुराने समय के बुद्धिमान पुरुषों को जब राजा ने अपनी पसंद चुनने का अवसर दिया, तो यद्यपि वे एक जोड़ी सिंगल सोल वाले जूते माँगने के लिए तरस रहे थे, लेकिन अपनी संवेदनशील और संशयपूर्ण प्रकृति के प्रति दुर्भावना के भय से, उन्होंने लोगों के सामने एक शब्द भी कहने का साहस नहीं किया, बल्कि एकांत में बात की।" और ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, कम्पिलक राज्य में, जब उत्तरी पंचाल नगर में एक पंचाल राजा शासन कर रहे थे, तब एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका जन्म एक बाजार नगर में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में उन्होंने संन्यासी बनने का मार्ग अपनाया और हिमालयी क्षेत्र में रहकर, जो कुछ भी उन्हें प्राप्त होता, उसी से अपना जीवन व्यतीत किया - वे जंगली फलों और जड़ों को खाकर अपना पेट भरते थे।

नमक और सिरका प्राप्त करने के उद्देश्य से लोगों के घरों में भटकते हुए, वह उत्तर पांचाल के एक नगर में पहुँचा और राजा के उद्यान में रहने लगा। अगले दिन वह भिक्षा मांगने के लिए नगर में गया और राजा के द्वार पर पहुँचा। राजा उसके व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे ऊंचे आसन पर बैठाया और राजा के योग्य भोजन कराया। उसने उससे एक वचनबद्धता करवाई और उसे उद्यान में रहने का स्थान दिया।

वह राजा के महल में ही रहता था, और बरसात के मौसम के अंत में, हिमालय लौटने की तीव्र इच्छा से उसने सोचा, "यदि मैं इस यात्रा पर जाऊँ, तो मुझे एक जोड़ी एकल-तलवे वाले जूते (*3) और पत्तों की छतरी अवश्य चाहिए। मैं राजा से ये माँगूँगा।" एक दिन वह बगीचे में आया, और राजा को वहाँ बैठे देखकर उसने उन्हें प्रणाम किया और जूते और छतरी माँगने का निश्चय किया। परन्तु उसके मन में दूसरा विचार आया, "जो व्यक्ति किसी दूसरे से यह कहते हुए भीख माँगता है, 'मुझे फलाँ चीज़ दे दो,' वह अवश्य रोएगा। और जब दूसरा व्यक्ति यह कहते हुए मना करता है, 'मेरे पास नहीं है,' तो वह भी रोएगा।" और ताकि लोग उसे या राजा को रोते हुए न देख सकें, उसने सोचा, "हम दोनों किसी गुप्त स्थान पर चुपचाप रो लेंगे।" अतः उसने कहा, "महाराज, मैं आपसे एकांत में बात करना चाहता हूँ।" यह सुनकर राज सेवक वहाँ से चले गए। बोधिसत्व ने सोचा, "यदि राजा मेरी प्रार्थना अस्वीकार कर दें, तो हमारी मित्रता समाप्त हो जाएगी। इसलिए मैं उनसे कोई वरदान नहीं माँगूँगा।" उस दिन, इस विषय पर बात करने का साहस न करते हुए, उन्होंने कहा, "अब जाइए, महाराज, मैं इस मामले को उचित समय पर देख लूँगा।" एक और दिन जब राजा उद्यान में आए, तो पहले यह और फिर वह कहते हुए, वे अपना अनुरोध स्पष्ट नहीं कर सके। और इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए।

तब राजा ने सोचा, “इस पुजारी ने कहा था, ‘मैं एकांत में बात करना चाहता हूँ,’ और जब दरबारी चले गए, तो बोलने का साहस नहीं हुआ। और ऐसा करने की उनकी तीव्र इच्छा के कारण बारह वर्ष बीत गए। इतने लंबे समय तक धार्मिक (सन्यासी) जीवन जीने के बाद, मुझे लगता है, वे संसार के लिए तरस रहे हैं। वे सुखों का आनंद लेने के लिए उत्सुक हैं और शासन करने की शक्ति की लालसा रखते हैं। लेकिन ‘राज्य’ शब्द का उच्चारण करने में असमर्थ होने के कारण वे चुप रहते हैं। आज मैं उन्हें अपने राज्य से लेकर नीचे तक जो कुछ भी वे चाहते हैं, वह सब अर्पित करूँगा।” अतः वह उद्यान में गए और बैठकर उन्हें प्रणाम किया। बोधिसत्व ने उनसे एकांत में बात करने का अनुरोध किया, और जब दरबारी चले गए, तो वे एक शब्द भी नहीं बोल सके। राजा ने कहा, “बारह वर्षों से आप मुझसे एकांत में बात करने का अनुरोध करते रहे हैं, और जब भी आपको अवसर मिला, आप एक शब्द भी नहीं बोल पाए। मैं आपको अपने राज्य से लेकर सब कुछ अर्पित करता हूँ। भयभीत न हों, जो कुछ भी आप चाहें, माँग लें।”

“महाराज,” उसने कहा, “क्या आप मुझे वह देंगे जो मैं चाहता हूँ?”

"जी हां, पूज्यवर, मैं करूंगा।"

"महाराज, जब मैं अपनी यात्रा पर जाऊं, तो मुझे एक जोड़ी सिंगल सोल वाले जूते और पत्तों की छतरी अवश्य चाहिए।"

"क्या आप बारह वर्षों में इतनी तुच्छ चीज़ भी नहीं माँग पाए हैं, महोदय?"

"जी हां, महाराज।"

"महाराज, आपने ऐसा क्यों किया?"

"महाराज, जो कहता है 'मुझे फलां वस्तु दे दो', वह आंसू बहाता है, और जो मना करता है और कहता है 'मेरे पास यह नहीं है', वह भी रोता है। यदि मेरी विनती पर आपने मुझे मना कर दिया होता, तो मुझे डर था कि लोग हमें आंसू बहाते हुए देख लेंगे। इसीलिए मैंने गुप्त मुलाकात का अनुरोध किया था।" फिर उन्होंने शुरू से ही तीन छंद दोहराए:

हे राजा, प्रार्थना का यही गुण है।
यह या तो एक कीमती उपहार होगा या अस्वीकृति का कारण बनेगा।
जो पांचाल स्वामी से रोने की विनती करते हैं, वे ऐसा करने के लिए विवश हैं।
जो इनकार करते हैं, उन्हें दोबारा रोना पड़ सकता है।
अन्यथा लोग हमें व्यर्थ में आंसू बहाते हुए देखेंगे।
मैं अपनी प्रार्थना तुम्हारे कान में फुसफुसाता हूँ।
बोधिसत्व द्वारा दिखाए गए इस आदर भाव से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें वरदान दिया और चौथा श्लोक बोला:

ब्राह्मण, मैं आपको एक हजार गायें भेंट करता हूँ।
लाल रंग की गायें, मेहनती और झुंड की मुखिया;
आपके इन उदार शब्दों को अभी सुनकर,
मैं भी उदारतापूर्ण कार्य करने के लिए प्रेरित हुआ हूँ।
लेकिन बोधिसत्व ने कहा, "हे प्रभु, मुझे भौतिक सुखों की इच्छा नहीं है। मुझे वही दीजिए जो मैं मांगता हूँ।" और उन्होंने एक जोड़ी एकल-तलवे वाले जूते और पत्तों की छतरी ली, और राजा को धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहने, नैतिक नियमों का पालन करने और उपवास रखने के लिए प्रोत्साहित किया। यद्यपि राजा ने उनसे रुकने की विनती की, फिर भी वे हिमालय चले गए, जहाँ उन्होंने सभी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया, और ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में जन्म लेने के लिए नियत हुए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा थे और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1)सुत्तविभंग vi. 1 देखें।

(2) संख्या 253,

(3)महावग्ग, खंड 1. 28 देखें। भाइयों को एक से अधिक अस्तर वाले जूते नहीं पहनने थे, सिवाय इसके कि जब उन्हें दूसरों ने उतार दिया हो।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कम्मासातक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-324-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 324
चम्मसतका-जातक

“दयालु पशु,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक ऐसे भिक्षु के बारे में जो चमड़े की जैकेट पहनता था। (*1) कहा जाता है कि उसका ऊपरी और भीतरी दोनों वस्त्र चमड़े के थे। एक दिन वह मठ से तेज़ी से निकलकर श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगा रहा था, तभी वह भेड़ों के युद्धक्षेत्र में पहुँच गया। एक भेड़ ने उसे देखकर पीछे हटकर उसे टक्कर मारने की इच्छा जताई। भिक्षु ने सोचा, “वह मेरे प्रति सम्मान का भाव दिखा रहा है,” और वह पीछे नहीं हटा। भेड़ तेज़ी से दौड़ा और उसकी जांघ पर प्रहार करके उसे ज़मीन पर गिरा दिया। भिक्षुओं के संघ में इस काल्पनिक अभिवादन की घटना खूब चर्चित हुई। उन्होंने सत्य सभा में इस विषय पर चर्चा की कि कैसे चमड़े की जैकेट पहने भिक्षु ने सोचा कि उसे अभिवादन किया जा रहा है और इसी कारण उसकी मृत्यु हो गई। गुरुजी आए और उन्होंने उनकी चर्चा का विषय पूछा, और जब उन्हें बताया गया कि क्या हो रहा था, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पुराने समय में भी इस तपस्वी ने सोचा कि उसे प्रणाम किया जा रहा है और इसी कारण उसकी मृत्यु हुई," और फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व एक व्यापारी परिवार में पैदा हुए और अपना व्यापार करते थे। उसी समय चमड़े का वस्त्र पहने एक धर्मनिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते हुए भेड़ों के युद्धक्षेत्र में आए और एक भेड़ को अपने सामने पीछे हटते देखकर उन्होंने सोचा कि भेड़ ने ऐसा सम्मान के प्रतीक के रूप में किया है, और वे स्वयं पीछे नहीं हटे। उन्होंने सोचा, "संपूर्ण संसार में, केवल यही भेड़ मेरे गुणों को पहचानती है," और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए वे खड़े हो गए और पहली पंक्ति दोहराई:

दयालु जानवर उसके सामने सम्मान का भाव प्रकट करता है।
पवित्र परंपराओं में पारंगत उच्च जाति का ब्राह्मण।
आप एक अच्छे ईमानदार प्राणी हैं।
मैं कसम खाता हूँ, मैं सभी अन्य जानवरों से अधिक प्रसिद्ध हूँ!
इसी क्षण अपने भंडार में बैठे एक बुद्धिमान व्यापारी ने भिक्षु को रोकने के लिए दूसरी पंक्ति का उच्चारण किया:

ब्राह्मण, इस जानवर पर इतना जल्दी भरोसा मत करो।
अन्यथा वह तुम्हें धूल में मिलाने में जरा भी देर नहीं करेगा।
इसके लिए रैम पीछे हट जाती है।
अपने हमले को गति देने के लिए।
जब यह बुद्धिमान व्यापारी अभी बोल ही रहा था कि मेढ़ा पूरी गति से आया और भिक्षु की जांघ पर प्रहार करके उसे गिरा दिया। वह दर्द से पागल हो गया और कराहते हुए पड़ा रहा, तब गुरु ने घटना को समझाने के लिए तीसरे श्लोक का उच्चारण किया:

टूटी टांग और भिक्षापात्र उलट जाने के साथ,
अपनी क्षतिग्रस्त संपत्ति पर उन्हें गहरा अफसोस होगा।
उसे व्यर्थ में बाहें फैलाकर रोने न दो।
पुजारी की हत्या होने से पहले बचाव के लिए तुरंत पहुंचें।
फिर भिक्षु ने चौथा श्लोक दोहराया:

इस प्रकार अयोग्य लोगों को वह सारा सम्मान चुकाना पड़ता है।

मुझे भी वही नियति मिले जो आज मुझे मिली है;
धूल में लोटते हुए, राम के प्रहार से नीचे गिर पड़ा
मेरी मृत्यु का कारण मेरा मूर्खतापूर्ण विश्वास था।
इस प्रकार शोक मनाते हुए ही उनकी मृत्यु हो गई।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान इस प्रकार बताई: "आज चमड़े का कोट पहने हुए व्यक्ति तब भी वही था जो अब है। और मैं स्वयं वह बुद्धिमान व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1)महावग्ग, viii. 28. 2.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गोधा-जातक3**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-325-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 325
गोधा-जातक(*1)

“एक धोखेबाज़,” इत्यादि—यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक धोखेबाज़ भिक्षु के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कहानी पहले ही पूरी तरह से बताई जा चुकी है। लेकिन इस बार वे उस भिक्षु को गुरुजी के पास लाए और उसका पर्दाफ़ाश करते हुए कहा, “हे पूज्यवर, यह भिक्षु धोखेबाज़ है।” गुरुजी ने कहा, “यह केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी धोखेबाज़ था।” और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब बोधिसत्व का जन्म एक छोटे छिपकली के रूप में हुआ। जब वे बड़े होकर बलवान और सुखी हुए, तो वे एक जंगल में रहने लगे। तभी एक दुष्ट तपस्वी ने पत्तों की एक कुटिया बनाई और उनके पास ही रहने लगा। बोधिसत्व भोजन की तलाश में भटकते हुए उस कुटिया को देखकर मन ही मन सोचने लगे,

"यह झोपड़ी अवश्य ही किसी पवित्र तपस्वी की होगी," और वह वहाँ गया और उस पवित्र व्यक्ति को प्रणाम करने के बाद अपने निवास स्थान पर लौट आया।

एक दिन इस झूठे तपस्वी ने अपने एक संरक्षक के घर में बना स्वादिष्ट भोजन खाया और पूछा कि यह कौन सा मांस है। यह सुनकर कि यह छिपकली का मांस है, वह अपने लज़ीज़ भोजन के प्रति इतना ललचा गया कि उसने सोचा, "मैं इस छिपकली को मार डालूँगा जो लगातार मेरे आश्रम में आती रहती है और इसे अपने स्वादानुसार पकाकर खाऊँगा।" इसलिए उसने घी, दही, मसाले और इसी तरह की अन्य वस्तुएँ लीं और अपनी गदा को अपने पीले वस्त्र के नीचे छिपाकर अपनी कुटिया के द्वार पर एकदम शांत होकर बैठ गया, बोधिसत्व के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

जब बोधिसत्व ने इस दुष्ट को देखा, तो उन्होंने सोचा, "यह नीच मेरे परिवार का मांस खा रहा होगा। मैं इसकी परीक्षा लूँगा।" इसलिए वे उसके सामने हवा की दिशा में खड़े हो गए और उसके शरीर से आती गंध से जान गए कि वह छिपकली का मांस खा रहा था, और उसके पास जाए बिना ही वे वापस मुड़ गए और भाग गए। जब तपस्वी ने देखा कि वह नहीं आ रहा है, तो उन्होंने अपना गदा उस पर फेंका। गदा उसके शरीर को तो नहीं छू पाया, लेकिन उसकी पूंछ के सिरे तक पहुँच गया। तपस्वी ने कहा, "चले जाओ, मुझे तुम्हारी याद आ रही है।" बोधिसत्व ने कहा, "हाँ, तुम्हें मेरी याद आ रही है, लेकिन तुम चारों प्रकार के दुखों से नहीं बच पाओगे।" फिर वे भाग गए और बाड़े के अंत में स्थित एक चींटी के टीले में गायब हो गए, और किसी दूसरे छेद से अपना सिर बाहर निकालकर उन्होंने तपस्वी को इन दो छंदों में संबोधित किया:

जो तपस्वी की भूमिका निभाता है
आत्मसंयम प्रदर्शित करना चाहिए।
तुमने मुझ पर अपनी लाठी फेंकी थी,
तुम झूठे तपस्वी ही होगे।
उलझे हुए बाल और त्वचा का आवरण
किसी गुप्त पाप को छुपाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
मूर्ख! दिखावे के लिए सफाई करना,
जो भी गंदा है उसे नीचे छोड़ दें।
यह सुनकर तपस्वी ने तीसरे श्लोक में उत्तर दिया:

हे छिपकली, कृपया जल्दी से पीछे हट जाओ।
मुझे तेल और नमक की कोई कमी नहीं है:
मैं काली मिर्च भी सुझाऊंगा।
उबले हुए चावल में डालने से स्वाद और भी बढ़ जाता है।
यह सुनकर बोधिसत्व ने चौथा श्लोक कहा:

मैं अपने आप को सुरक्षित और गर्म जगह में छिपा लूंगी
चींटियों के टीले पर उमड़ी असंख्य चींटियों के बीच।
तेल और नमक का उपयोग बंद करने के लिए,
मुझे काली मिर्च से सख्त नफरत है।
इसके अलावा, उसने उसे धमकी देते हुए कहा, "अरे दुष्ट! झूठे तपस्वी, यदि तू यहाँ ठहरता रहा, तो मैं तुझे चोर की तरह अपने चरागाह में रहने वाले लोगों से पकड़वाकर नष्ट करवा दूँगा। इसलिए जल्दी कर यहाँ से चला जा।" तब वह झूठा तपस्वी उस स्थान से भाग गया।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान इस प्रकार बताई: "उस समय वह दुष्ट भिक्षु (भाई) झूठा तपस्वी था, परन्तु मैं स्वयं राजसी छिपकली था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 277 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कक्करू-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-326-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 326
कक्करू-जातक

“चोरी करने वाला,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी। उन्होंने बताया कि देवदत्त ने संघ में फूट डालने के बाद अपने प्रमुख शिष्यों के साथ जाते समय, जब सभा समाप्त हुई, तो उसके मुँह से खून की गर्म धारा बह निकली। तब भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा की और कहा कि देवदत्त ने झूठ बोलकर फूट डाली थी, जिसके बाद वह बीमार पड़ गया और उसे भारी बारिश का सामना करना पड़ा। गुरु वहाँ आए और पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने कहा, “भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पुराने समय में भी यह व्यक्ति झूठा था, और केवल अभी ही नहीं, बल्कि पुराने समय में भी उसे झूठ बोलने के दंड के रूप में पीड़ा सहनी पड़ी थी।” ऐसा कहकर उन्होंने इस प्राचीन कथा को दोहराया।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में एक देवदूत बन गए। उस समय बनारस में एक बड़ा उत्सव था। नागों, गरुड़ों और पृथ्वी के देवताओं की भीड़ उत्सव देखने आई थी। तैंतीस देवताओं के स्वर्ग से चार दिव्य प्राणी, दिव्य कक्करु फूलों की माला धारण किए हुए, उत्सव देखने आए। बारह मील (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैला शहर इन फूलों की सुगंध से भर गया। लोग यह सोचकर इधर-उधर घूमने लगे कि ये फूल किसने धारण किए हैं। देवताओं ने कहा, "वे हमें देख रहे हैं," और अलौकिक शक्ति से राजमहल से उड़कर वे हवा में स्थिर हो गए। सभी लोग एकत्रित हुए, और राजा अपने राजकुमारों के साथ आए और पूछा कि वे किस लोक से आए हैं।

"हम तैंतीस के स्वर्ग से आए हैं।"

आप किसलिए आए हैं?

"त्योहार देखने के लिए।"

ये फूल कैसे हैं?

"इन्हें दिव्य कक्करू फूल कहा जाता है।"

उन्होंने कहा, "महोदय, देवदूतों की दुनिया में आपको पहनने के लिए अन्य फूल मिल सकते हैं। कृपया ये फूल हमें दे दीजिए।"

देवताओं (देवदूतों) ने उत्तर दिया, "ये दिव्य फूल महान शक्तियों से संपन्न लोगों के लिए उपयुक्त हैं; इस संसार में रहने वाले नीच, मूर्ख, अविश्वासी और पापी प्राणियों के लिए ये उपयुक्त नहीं हैं। परन्तु जो भी मनुष्य अमुक गुणों से संपन्न हैं, उनके लिए ये फूल उपयुक्त हैं।" और इन्हीं शब्दों के साथ इन दिव्य प्राणियों में प्रमुख ने प्रथम श्लोक को दोहराया:-

जो चोरी करने से परहेज करता है,
वह अपने मुंह से झूठ बोलने से खुद को रोकता है।
और प्रसिद्धि की बुलंदियों तक पहुंचना
फिर भी वह अपना सिर ऊंचा रखता है—यह फूल शायद यही दावा करे।
यह सुनकर कुलपुजारी ने सोचा, "इनमें से एक भी गुण मुझमें नहीं है, लेकिन झूठ बोलकर मैं ये फूल धारण कर लूँगा, और इस प्रकार लोग मुझे इन गुणों से युक्त मान लेंगे।" फिर उसने कहा, "मैं इन गुणों से संपन्न हूँ," और उसने फूल मंगवाए और उन्हें धारण कर लिया, और फिर दूसरे देवता (देवदूत) से प्रार्थना की, जिसने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:-

जो ईमानदारी से धन अर्जित करना चाहता है, वही सफल होगा।
और धोखाधड़ी से अर्जित धन से दूर रहो।
अत्यधिक सुख से बचना चाहिए।
इस दिव्य फूल ने आखिरकार जीत हासिल कर ली है।
पुजारी ने कहा, "मैं इन गुणों से संपन्न हूँ," और उसने फूल मंगवाकर उन्हें धारण किया, और फिर तीसरे देवता (देवदूत) से प्रार्थना की, जिसने तीसरा श्लोक कहा:-

जो अपने लक्ष्य से दृढ़ निश्चय कर लेता है, वह कभी विचलित नहीं होता।
और उनका अविचल विश्वास कायम रहता है,
चुनिंदा भोजन को ही खाने से घृणा होती है।
इस दिव्य फूल पर उचित रूप से दावा किया जा सकता है।
पुजारी ने कहा, "मुझे ये गुण प्राप्त हैं," और उसने फूल मंगवाए और उन्हें धारण किया, फिर चौथे देवता (देवदूत) से प्रार्थना की, जिसने चौथा श्लोक कहा:-

वह जिस पर भले लोग कभी हमला नहीं करेंगे
जब वे मौजूद हों, न तो उनकी पीठ पीछे,
और वह जो कुछ कहता है, उसे अपने कर्मों में पूरा करता है।
यह फूल अपने अधिकार में खरपतवार होने का दावा कर सकता है।
पुजारी ने कहा, "मैं इन गुणों से संपन्न हूँ," और उसने फूल मंगवाकर उन्हें अपने ऊपर धारण कर लिया। तब उन दिव्य प्राणियों ने पुजारी को फूलों की चार मालाएँ दीं और देवदूतों के लोक में लौट गए। उनके जाते ही पुजारी के सिर में असहनीय दर्द होने लगा, मानो किसी

नुकीले कांटे से ठोका जा रहा हो या लोहे के औजार से कुचला जा रहा हो। दर्द से पागल होकर वह सिर पर लोटने लगा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। जब लोगों ने पूछा, "इसका क्या अर्थ है?" तो उसने कहा, "मैंने इन गुणों का दावा किया जबकि मुझमें ये गुण नहीं थे, और झूठ बोला था, इसलिए मैंने इन फूलों को देवदूतों से विनती की: इन्हें मेरे सिर से उतार दो।" वे उन्हें उतारना चाहते थे, लेकिन नहीं उतार सके, क्योंकि वे मानो लोहे के बंधन से बंधे हुए थे। फिर उन्होंने उसे उठाया और घर ले गए। और वह वहाँ लेटा हुआ जोर-जोर से रो रहा था, सात दिन बीत गए। राजा ने अपने सलाहकारों से कहा, "यह दुष्ट ब्राह्मण मरेगा। अब हम क्या करें?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे मेरे स्वामी, आइए हम फिर से उत्सव मनाएं। देवताओं के पुत्र (देवदूत) वापस आएंगे।"

राजा ने एक उत्सव का आयोजन किया, और देवदूत लौटकर आए और उन्होंने पूरे नगर को फूलों की सुगंध से भर दिया, और राजमहल में एक ही स्थान पर खड़े हो गए। लोग एकत्रित हुए, और उस दुष्ट ब्राह्मण को लाकर देवदूतों के सामने पेट के बल लिटा दिया। उसने देवदूतों से प्रार्थना की, “हे मेरे स्वामियों, मेरी जान बख्श दीजिए।” उन्होंने कहा, “ये फूल दुष्ट और पापी मनुष्य के लिए उपयुक्त नहीं हैं। तुमने मन ही मन हमें धोखा देने का सोचा था। तुम्हें अपने झूठे वचनों का फल मिल गया है।”

लोगों के सामने उसे इस प्रकार फटकार लगाने के बाद, उन्होंने उसके सिर से फूलों की माला उतार ली और लोगों को संबोधित करने के बाद वे अपने निवास स्थान पर लौट गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त ब्राह्मण थे, दिव्य प्राणियों में कश्यप एक थे, मोग्गल्याण दूसरे थे, सारिपुत्र तीसरे थे, और मैं स्वयं उन सब में प्रमुख था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काकति-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-327-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 327
काकती-जातक (*1)

"सुगंधित सुगंध," आदि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते समय सुनाई थी। यह कहानी एक भिक्षु (भाई) की थी, जिसे शिष्य बनने के अपने निर्णय पर खेद था। इस अवसर पर गुरु ने भिक्षु से पूछा कि क्या वह वास्तव में असंतुष्ट है, और जब उसने उत्तर दिया, "जी, परम पूज्य", तो उन्होंने उससे कारण पूछा। भिक्षु ने उत्तर दिया, "पापपूर्ण वासना के कारण।" गुरु ने कहा, "स्त्री की रक्षा नहीं की जा सकती। उसे सुरक्षित रखना असंभव है। प्राचीन ऋषियों ने एक स्त्री को सिंबली झील (*2) के किनारे एक महल में समुद्र के बीच में रख दिया था, लेकिन फिर भी उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सके।" फिर उन्होंने पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने राजा की रानी पत्नी से पुत्र के रूप में जन्म लिया। बड़े होकर, अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने शासन संभाला। काकती उनकी मुख्य रानी थीं और अप्सरा के समान सुंदर थीं। इस कथा का प्राचीन रूप कुणाल जन्म (*3) में पूर्ण रूप से वर्णित है। यहाँ इसका संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

उस समय एक गरुड़ राजा मनुष्य का वेश धारण करके बनारस के राजा के साथ पासा खेलने आया। रानी काकतीय से प्रेम हो जाने पर वह उसे अपने साथ गरुड़ों के निवास स्थान पर ले गया और उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। राजा को काकतीय की याद सताने लगी और उसने अपने संगीतकार नटकुवेरा को उसकी खोज में भेजा। नटकुवेरा ने गरुड़ राजा को एक झील में एरका घास के बिस्तर पर लेटा हुआ पाया। जैसे ही गरुड़ राजा वहाँ से जाने ही वाला था, वह राजा के पंखों के बीच में बैठ गया और इस प्रकार गरुड़ों के निवास स्थान पर पहुँच गया। वहाँ उसने रानी का भोग लगाया और फिर से काकतीय के पंख पर बैठकर घर लौट आया। जब राजा के साथ पासा खेलने का समय आया, तो संगीतकार ने अपना वीणा उठाया और खेल के तख़्ते के पास जाकर राजा के सामने खड़ा हो गया और गीत के रूप में पहला श्लोक गाया:

मेरे चारों ओर सुगंधित खुशबू फैल रही है

सुंदर काकाती के प्रेम की सांस,
अपने दूर स्थित घर से संदेश भेजते हुए
मेरे अंतर्मन में विचार हलचल मचा रहे हैं।
यह सुनकर गरुड़ ने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:-

समुद्र और केबुक धारा को चुनौती देते हुए
क्या आप मेरे द्वीप पर स्थित घर पहुँच गए?
सात महासागरों के ऊपर उड़ान भरते हुए
क्या वह सिंबल वन में आया था?
यह सुनकर नटकुवेरा ने तीसरा श्लोक कहा:-

यह सब आप ही के माध्यम से संभव हुआ, अंतरिक्ष की सीमाओं को चुनौती देते हुए।
मुझे सिंबल वन में ले जाया गया।
और समुद्रों और नदियों के ऊपर उड़ते हुए
तुम्हारे माध्यम से ही मुझे मेरा प्यार मिला।
तब गरुड़ राजा ने चौथे श्लोक में उत्तर दिया:-

उस मूर्खतापूर्ण भूल पर,
मैं कितना बड़ा मूर्ख था!
प्रेमी जोड़े को अलग रखा गया,
देखो! मैंने मध्यस्थ की भूमिका निभाई है।
इसलिए गरुड़ रानी को लेकर आया और उसे बनारस के राजा को वापस सौंप दिया, और फिर कभी वहां नहीं आया।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों का खुलासा किया और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर असंतुष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय असंतुष्ट भाई नटकुवेरा थे, और मैं स्वयं राजा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 360

(2)मेरु पर्वत पर: गरुड़ इसके चारों ओर रहते हैं।

(3)सं. 536.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अन्नुसोसिया-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-328-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 328
अननुसोचिया-जातक

“मैं क्यों आँसू बहाऊँ?” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ज़मींदार की सुनाई थी, जिसकी पत्नी का देहांत हो गया था। कहते हैं कि उसकी मृत्यु के बाद उसने न तो स्नान किया, न भोजन किया और न ही अपने खेत के कामों में लापरवाही बरती। शोक से व्याकुल होकर वह कब्रिस्तान में शोक मनाता फिरता था, जबकि प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करने का उसका पूर्वनियोजित भाग्य उसके सिर के चारों ओर एक आभा की तरह चमक रहा था। एक सुबह गुरुजी ने संसार पर दृष्टि डाली और उसे देखकर कहा, “मेरे सिवा कोई नहीं है जो इस व्यक्ति के दु:ख को दूर कर सके और उसे प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश करने की शक्ति प्रदान कर सके। मैं

ही उसका आश्रय बनूँगा।" अतः जब वह अपने परिक्रमाओं से लौटकर भोजन कर चुके, तो उन्होंने एक सेवक भिक्षु को साथ लेकर ज़मींदार के घर के द्वार पर गए। गुरुजी के आने की सूचना पाकर वह उनसे मिलने बाहर आया और अन्य आदरपूर्वक उन्हें निर्धारित आसन पर बैठाया और एक तरफ बैठकर उनका प्रणाम किया।

गुरु ने पूछा, "हे शिष्य, तुम किस कारण चुप हो?"

"आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया, "मैं उनके लिए शोक मना रहा हूँ।"

गुरु ने कहा, "हे शिष्य, जो टूटने योग्य है वह टूट जाता है, परन्तु ऐसा होने पर शोक नहीं करना चाहिए। प्राचीन ऋषियों ने जब अपनी पत्नी को खोया, तो वे इस सत्य को जानते थे, इसलिए उन्होंने शोक नहीं किया।" और फिर उनके अनुरोध पर गुरु ने एक प्राचीन कथा सुनाई।

यह प्राचीन कथा दसवें खंड में कुल्लाबोधि जन्म (*1) में मिलेगी। यहाँ इसका संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं का अध्ययन किया और फिर अपने माता-पिता के पास लौट आए। इस जन्म में, महान पुरुष एक पवित्र युवा छात्र बने। तब उनके माता-पिता ने उनसे कहा कि वे उनके लिए एक पत्नी की तलाश करेंगे।

बोधिसत्व ने कहा, "मुझे वैवाहिक जीवन की कोई इच्छा नहीं है। आपके मरने के बाद, मैं एक तपस्वी का धार्मिक जीवन अपना लूंगा।"

उनके अत्यधिक आग्रह पर, उसने सोने की एक मूर्ति बनवाई और कहा, "यदि आप मुझे इसके जैसी कोई कन्या ढूंढकर दे दें, तो मैं उससे विवाह करूंगा।" उसके माता-पिता ने कुछ दूतों को एक बड़े दल के साथ भेजा और उनसे कहा कि वे सोने की मूर्ति को एक रथ में रखकर भारत के मैदानों में ऐसी ही एक ब्राह्मण कन्या की खोज करें। जब उन्हें ऐसी कन्या मिल जाए, तो वे सोने की मूर्ति देकर उसे वापस ले आएं। उसी समय, काशी राज्य के एक नगर में, अस्सी करोड़ (10 मिलियन) धनवान ब्राह्मण के घर में, ब्रह्मलोक से एक संत का पुनर्जन्म हुआ और उनका नाम सम्मिलभासिनी रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में वह अप्सरा के समान सुंदर और आकर्षक थी, स्त्री सौंदर्य के सभी लक्षणों से परिपूर्ण। और चूंकि पापमय वासनाओं ने कभी भी उसके मन में बुराई का विचार नहीं जगाया, इसलिए वह पूर्णतः पवित्र थी। अतः वे लोग सोने की मूर्ति लेकर भटकते रहे और अंततः इस नगर में पहुँचे। वहाँ के निवासियों ने मूर्ति देखकर पूछा, "अमुक ब्राह्मण की पुत्री सम्मिलभासिनी को यहाँ क्यों रखा गया है?" यह सुनकर दूतों ने ब्राह्मण परिवार को ढूँढा और सम्मिलभासिनी को राजकुमार की दुल्हन के रूप में चुना। सम्मिलभासिनी ने अपने माता-पिता को संदेश भेजा, "आपके मरने के बाद मैं संन्यासी जीवन अपना लूँगी; मुझे विवाह की कोई इच्छा नहीं है।" उन्होंने कहा, "बेटी, तुम क्या सोच रही हो?" और स्वर्ण मूर्ति को स्वीकार करके उन्होंने अपनी पुत्री को बड़ी संख्या में परिचारकों के साथ विदा किया। विवाह समारोह बोधिसत्व और सम्मिलभासिनी दोनों की इच्छा के विरुद्ध संपन्न हुआ। एक ही कमरे और एक ही बिस्तर पर सोते हुए भी उन्होंने एक-दूसरे को वासना भरी दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि दो पवित्र पुरुषों या दो संत महिलाओं की तरह साथ रहे।

कुछ समय बाद बोधिसत्व के माता-पिता का देहांत हो गया। उन्होंने उनके अंतिम संस्कार किए और सम्मिलभासिनी को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, "हे प्रिय, मेरी पारिवारिक संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) है, और तुम्हारी संपत्ति भी लगभग अस्सी करोड़ (10 मिलियन) है। यह सब ले लो और गृहस्थ जीवन व्यतीत करो। मैं संन्यासी बन जाऊंगा।"

"श्रीमान," उसने उत्तर दिया, "यदि आप संन्यासी बन जाते हैं, तो मैं भी बन जाऊंगी। मैं आपको नहीं छोड़ सकती।"

"तो फिर आओ," उन्होंने कहा। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति दान में दे दी और अपनी सांसारिक संपत्ति को कफ के ढेले की तरह त्याग दिया। वे हिमालय की ओर चल पड़े और दोनों ने तपस्वी जीवन अपना लिया। वहाँ उन्होंने लंबे समय तक जंगली फल और कंद खाकर जीवन व्यतीत किया। अंततः वे नमक और सिरका लेने के लिए हिमालय से नीचे उतरे और धीरे-धीरे बनारस पहुँचे तथा राजमहल में रहने लगे। वहाँ रहते हुए, इस युवा और कोमल तपस्वी को मिश्रित गुणवत्ता वाले बेस्वाद चावल खाने से पेचिश हो गई और कोई उपाय न मिलने के कारण वह बहुत कमजोर हो गई। भिक्षा मांगने निकले बोधिसत्व ने उसे उठाया और नगर के द्वार तक ले जाकर एक विशेष कक्ष में एक बेंच पर लिटा दिया और स्वयं भिक्षा मांगने नगर के भीतर चले गए। उनके निकलते ही उसकी मृत्यु हो गई। इस तपस्वी की अपार सुंदरता को देखकर लोग उसके चारों ओर जमा हो गए और रोने-धोने लगे। भिक्षा मांगने के बाद बोधिसत्व वापस लौटे और उनकी मृत्यु की खबर सुनकर बोले, "जिसमें विघटन का गुण होता है, वह विघटित हो जाता है। सभी अनित्य प्राणी इसी प्रकार के होते

हैं।" ये कहकर वे उस आसन पर बैठ गए जिस पर वे लेटी थीं और भोजन का मिश्रण खाकर उन्होंने कुल्ला किया। वहाँ खड़े लोग उनके चारों ओर जमा हो गए और बोले, "आदरणीय महोदय, यह महिला तपस्वी आपके लिए क्या मायने रखती थी?"

"जब मैं एक आम आदमी था," उसने जवाब दिया, "वह मेरी पत्नी थी।"

उन्होंने कहा, "हे प्रभु, जब हम रोते-बिलखते हैं और अपनी भावनाओं पर काबू नहीं रख पाते, तो आप क्यों नहीं रोते?"

बोधिसत्व ने कहा, "जब तक वह जीवित थी, वह किसी न किसी रूप में मेरी थी। जो दूसरे लोक में चला गया है, उसका कुछ भी नहीं बचा है: वह दूसरों के अधिकार में चली गई है। मुझे क्यों रोना चाहिए?" और लोगों को सत्य का उपदेश देते हुए, उन्होंने ये श्लोक सुनाए:

मुझे तुम्हारे लिए आंसू क्यों बहाने चाहिए?
सुंदर सम्मिलाभासिनी?
मृत्यु के बहुमत को सौंप दिया गया
अब से तुम मेरे लिए खो चुके हो।
कमजोर मनुष्य को शोक क्यों करना चाहिए?
उसके लिए केवल उपवास क्या है?
वह भी अपनी नश्वर सांस लेता है
मृत्यु के कारण हर घंटा कम होता जा रहा है।
चाहे वह खड़ा हो या बैठा हो,
चलना-फिरना, आराम करना, जो चाहे।
पलक झपकते ही,
एक पल में मृत्यु निकट है।
मैं जीवन को एक अस्थिर चीज मानता हूँ।
दोस्तों को खोना अपरिहार्य है।
जो भी जीवित हैं, उन सभी को संजो कर रखें।
यदि आप जीवित रहें तो शोक न करें।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने सत्य का उपदेश दिया और इन चार श्लोकों के माध्यम से वस्तुओं की अनित्यता को समझाया। लोगों ने उस महिला तपस्वी का अंतिम संस्कार किया। और बोधिसत्व हिमालय लौट गईं, और रहस्यमय ध्यान से प्राप्त उच्च ज्ञान को ग्रहण करके ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में जन्म लेने के लिए नियत हुईं।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करने के बाद सत्यों का खुलासा किया और जन्म का वर्णन किया:- सत्यों के समापन पर, भूस्वामी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की:- "उस समय राहुल की माता सम्मिलभासिनी थीं, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1)सं. 443.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कालबाहु-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-329-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 329
कलाबाहु जातक

"एक समय था जब हमने आनंद लिया," इत्यादि—यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए देवदत्त के लाभ और मान-सम्मान के ह्रास के संबंध में सुनाई थी। जब देवदत्त ने बुद्ध के प्रति अनुचित द्वेष पाल लिया और उन्हें मारने के लिए धनुर्धारियों के एक दल को रिश्वत दी,

तो उसका अपराध नलगिरि (*1) नामक हाथी को छोड़े जाने से प्रकट हुआ। तब लोगों ने उसका पद और उसके लिए निर्धारित राशन छीन लिया, और राजा ने उसका सम्मान करना छोड़ दिया। लाभ और मान-सम्मान का स्रोत खो देने के बाद, वह कुलीन परिवारों में भीख माँगकर जीवन यापन करने लगा। भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस बात पर चर्चा शुरू की कि देवदत्त ने लाभ और मान-सम्मान तो प्राप्त कर लिया, लेकिन उसे बनाए नहीं रख सका। गुरु आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, और जब उन्हें बताया गया तो उन्होंने कहा, "भाइयों, न केवल अब, बल्कि पहले भी देवदत्त लाभ और मान-सम्मान से वंचित रहा है।" और फिर उन्होंने उन्हें एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में धनंजय राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व राधा नाम के तोते बन गए। वे सुगठित और सुगठित थे। उनके छोटे भाई का नाम पोत्थपाद था। एक शिकारी ने इन दोनों पक्षियों को पकड़ लिया और बनारस के राजा को भेंट के रूप में लाया। राजा ने उन्हें सोने के पिंजरे में रखा और उनकी देखभाल की। उन्होंने उन्हें सोने के बर्तन में शहद और भुना हुआ मक्का खाने को दिया और चीनी का पानी पीने को दिया। राजा ने उनकी बहुत देखभाल की और वे खूब धन-दौलत और सम्मान प्राप्त कर गए। फिर एक वनपाल ने कलाबाहु नाम का एक बड़ा काला बंदर राजा को भेंट के रूप में लाया। चूंकि वह तोतों से बाद में आया था, इसलिए उसे और भी अधिक धन-दौलत और सम्मान प्राप्त हुआ, जबकि तोतों का सम्मान कम हो गया। बुद्ध गुणों से युक्त बोधिसत्व ने एक शब्द भी नहीं कहा, परन्तु उनके छोटे भाई, जिनमें ये गुण नहीं थे, बंदर को दिए जा रहे सम्मान को सहन न कर पाने के कारण बोले, "भाई, पहले इस राजमहल में लोग हमें स्वादिष्ट भोजन देते थे, परन्तु अब हमें कुछ नहीं मिलता, और वे सब कुछ बंदर कलाबाहु को अर्पित कर देते हैं। इस स्थान पर राजा से हमें न तो कोई लाभ मिलता है और न ही कोई सम्मान, तो हम क्या करें? चलो, हम जंगल में जाकर निवास करें।" और उनसे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:

एक बार हमने प्रचुर मात्रा में भोजन भंडार का आनंद लिया,
अब इस बंदर के पास वह चीज है जो पहले हमारी थी।
आओ, राधा, हम जंगल की ओर चलें;
इस तरह के खराब इलाज को भला कौन उचित ठहरा सकता है?
यह सुनकर राधा ने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:

लाभ और हानि, प्रशंसा और निंदा,
सुख, दुख, अपमान, प्रसिद्धि,
सभी क्षणिक अवस्थाओं के रूप में परिकल्पित हैं--
पोत्थापाड़ा को शोक क्यों करना चाहिए?
यह सुनकर पोत्थापदा बंदर के प्रति अपनी दुर्भावना से मुक्त नहीं हो सका और उसने तीसरा श्लोक दोहराया:

राधा, सबसे बुद्धिमान पक्षी,
मुझे यकीन है कि आप आने वाली बातों से अवगत हैं।
यह घिनौना प्राणी जो चलाएगा
अदालत से लेकर उनके पुराने घर तक?
यह सुनकर राधा ने चौथा श्लोक बोला:

अक्सर उसका सिकुड़ा हुआ चेहरा और हिलते हुए कान
शाही बच्चे मूर्खतापूर्ण भय से भर जाते हैं:
जल्द ही कलाबाहु किसी शरारती सनकी के माध्यम से,
उसे भोजन की तलाश में बहुत दूर जाना पड़ेगा।
कुछ ही समय में बंदर ने अपने कान हिलाकर और इसी तरह की हरकतें करके युवा राजकुमारों को डरा दिया। घबराकर उन्होंने शोर मचाया। राजा ने पूछा कि क्या हुआ, और कारण सुनकर कहा, "इसे भगा दो।" इस प्रकार उन्होंने बंदर को भगा दिया, और तोते अपनी पूर्व सुख-सुविधा और सम्मान की स्थिति में लौट आए।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त कलाबाहु थे, आनंद पोत्थपाद थे और मैं स्वयं राधा थी।"

फुटनोट:

(1) देवदत्त द्वारा बुद्ध को मारने के लिए भेजा गया हाथी

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----॥-330-॥---->>>> अगला

जातक क्रमांक 330
सिलविमांसा-जातक

"पृथ्वी पर शक्ति," इत्यादि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, एक ब्राह्मण के बारे में जो सदा अपने सद्‌गुणों का प्रमाण देता रहता था। इससे पहले भी दो ऐसी ही कहानियां सुनाई जा चुकी हैं। (*1)

इस मामले में बोधिसत्व बनारस के राजा के कुलपुजारी थे।

अपनी सदाचारिता की परीक्षा के लिए उसने तीन दिन तक राजकोष के कोष से एक-एक सिक्का चुराया। लोगों ने उसके खिलाफ चोर होने की सूचना दी, और जब उसे राजा के सामने लाया गया, तो उसने कहा:

पृथ्वी पर अतुलनीय शक्ति,
   सद्‌गुण में एक अद्‌भुत आकर्षण होता है:
नेक होने का दिखावा करना
   घातक सांप किसी भी प्रकार के नुकसान से बचते हैं।

पहले श्लोक में इस प्रकार सद्‌गुणों की प्रशंसा करने के बाद, उन्होंने राजा की सहमति प्राप्त की और तपस्वी जीवन अपना लिया। अब एक बाज ने कसाई की दुकान में मांस का एक टुकड़ा उठाया और हवा में उड़ गया। अन्य पक्षियों ने उसे घेर लिया और अपने पैरों, पंजों और चोंचों से उस पर प्रहार किया। दर्द सहन न कर पाने के कारण उसने मांस का टुकड़ा गिरा दिया। दूसरे पक्षी ने उसे पकड़ लिया। वह भी उसी प्रकार दबाव में आकर मांस को गिरा दिया। फिर एक और पक्षी उस पर झपटा, और जिसने भी मांस पकड़ा, बाकी पक्षियों ने उसका पीछा किया, और जिसने उसे छोड़ दिया, उसे शांति मिली। यह देखकर बोधिसत्व ने सोचा, "हमारी ये इच्छाएँ मांस के टुकड़ों के समान हैं। जो इन्हें पकड़ते हैं उन्हें दुख मिलता है, और जो इन्हें छोड़ देते हैं उन्हें शांति मिलती है।" और उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

जब तक बाज को खाने को कुछ मिलता रहा,
   शिकारी पक्षियों ने दर्द से कराहते हुए उसे चोंच मारी।
जब अनैच्छिक रूप से उससे मांस गिर गया,
   फिर उन्होंने उसे चोंच मारना बंद कर दिया।

शहर से लौटते हुए तपस्वी अपनी यात्रा के दौरान एक गाँव में पहुँचे और शाम को एक व्यक्ति के घर में ठहर गए। वहाँ पिंगला नाम की एक दासी ने एक पुरुष से मुलाकात तय की और कहा, "आपको अमुक समय पर आना है।" अपने स्वामी और उनके परिवार के सदस्यों के पैर धोने के बाद, जब वे लेट गए, तो वह दहलीज पर बैठ गई और अपने प्रेमी के आने की प्रतीक्षा करती रही। उसने पहला और मध्य पहर यह दोहराते हुए बिताया, "अब वह आ रहा होगा।" लेकिन भोर होते ही, आशा खोकर उसने कहा, "अब वह नहीं आएगा," और लेटकर सो गई। यह देखकर बोधिसत्व ने कहा, "यह स्त्री इतने लंबे समय तक अपने प्रेमी के आने की आशा में बैठी रही, लेकिन अब जब वह जानती है कि वह नहीं आएगा, तो निराशा में वह शांति से सो रही है।" और इस विचार के साथ कि पापी संसार में आशा दुख लाती है, जबकि निराशा शांति लाती है, उन्होंने तीसरा श्लोक कहा:

आशा की पूर्ति का फल आनंद है;
निराशा और निराशा में क्या अंतर है?
हालांकि घोर निराशा उसकी आशा को नष्ट कर देती है,
देखो! पिंगला को शांत नींद का आनंद मिलता है।

अगले दिन उस गाँव से आगे बढ़ते हुए वह एक जंगल में प्रवेश किया, और एक साधु को जमीन पर बैठे ध्यान में लीन देखकर उसने सोचा, "इस लोक और परलोक दोनों में ध्यान के आनंद से बढ़कर कोई सुख नहीं है।" और उसने चौथे श्लोक को दोहराया:

इस दुनिया में और आने वाली दुनियाओं में
 परमानंद की अनुभूति से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता:
किसी भक्त को पवित्र शांति प्रदान करने के लिए,
 स्वयं को कोई हानि न पहुंचाते हुए, वह किसी को परेशान नहीं करेगा।
फिर वह जंगल में चले गए और एक ऋषि का तपस्वी जीवन अपना लिया तथा ध्यान से प्राप्त उच्च ज्ञान को विकसित किया और ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में जन्म लेने के लिए नियत हो गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय मैं स्वयं कुल का पुरोहित था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 86 और संख्या 290

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोकालिका-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-331-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 331
कोकालिका-जातक

"जो अनुचित वाणी से विवश होते हैं," इत्यादि - यह कथा जेतवन मठ में गुरु द्वारा कोकालिका के बारे में सुनाई गई थी। प्रारंभिक कथा पूरी तरह से टक्करिका जन्म में वर्णित है। (*1)

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, बोधिसत्व उनके प्रिय मंत्री थे। राजा बहुत बातूनी थे। बोधिसत्व ने सोचा, "मैं इनकी बातूनीपन का अंत करूँगा," और इसके लिए एक उपयुक्त उदाहरण की तलाश में निकल पड़े। एक दिन राजा अपने बगीचे में आए और राजसी पत्थर की शिला पर बैठ गए। उनके सिर के ऊपर एक आम का पेड़ था और वहाँ एक कौवे के घोंसले में एक काली कोयल ने अंडा दिया था और चली गई थी। मादा कौवा उस कोयल के अंडे की रखवाली करती रही। कुछ समय बाद उसमें से एक छोटी कोयल निकली। कौवे ने उसे अपना बच्चा समझकर उसकी देखभाल की और अपनी चोंच में उसके लिए भोजन लाती रही। वह नन्हा पक्षी अभी पंखहीन ही था कि उसने समय से पहले कोयल की आवाज निकाली। कौवे ने सोचा, "यह नन्हा पक्षी अभी से अजीब आवाज निकाल रहा है। बड़ा होकर क्या करेगा?" और इसलिए उसने अपनी चोंच से उसे मारकर घोंसले से बाहर फेंक दिया, जो राजा के चरणों में गिर गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा, "हे मेरे मित्र, इसका क्या अर्थ है?" बोधिसत्व ने सोचा, "मैं राजा को सबक सिखाने के लिए एक उदाहरण खोज रहा था, और अब मुझे वह मिल गया है।" इसलिए उन्होंने कहा, "हे महाराज, जो लोग समय से पहले बहुत बोलते हैं, उनका यही हाल होता है। हे महाराज, कौवे द्वारा पाली जा रही इस छोटी कोयल ने, पंखहीन अवस्था में ही, समय से पहले ही रोना शुरू कर दिया। कौवे ने जान लिया कि यह उसकी संतान नहीं है और उसने अपनी चोंच से उसे मारकर घोंसले से बाहर फेंक दिया। जो भी लोग समय से पहले बहुत बोलते हैं, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, उन्हें इसी प्रकार कष्ट भोगना पड़ता है।" और इन शब्दों के साथ उन्होंने ये श्लोक सुनाए:

वे जो अनुचित भाषण से अपराध करते हैं
जैसे कोयल का बच्चा अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है।
न तो घातक जहर, न ही धारदार तलवार
यह अपशब्दों के बोले जाने से आधा घातक होता है।

ऋषि अपने संयमित शब्दों से विवेकपूर्ण मार्गदर्शन करते हैं।
और न ही जल्दबाजी में अपने दूसरे स्वरूप से कोई बात साझा करता है:
बोलने से पहले वह समझदारी भरी सलाह लेगा,
अपने प्रतिद्वंद्वियों को फंसाने के लिए, वह गरुड़ नामक सर्प की तरह उनका उपयोग करता है।
बोधिसत्व की धार्मिक शिक्षा सुनने के बाद राजा अपने शब्दों में अधिक संयम बरतने लगा और बोधिसत्व की महिमा बढ़ाते हुए उन्हें लगातार अधिकाधिक दान देता रहा।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उन दिनों कोकालिका नन्ही कोयल थी, और मैं स्वयं बुद्धिमान मंत्री था।"

फुटनोट:

(1)सं. 481

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रथलाथी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-332-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 332
रथलत्थी-जातक

"किसी दूसरे को घायल करना," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। यह कहानी कोसल के राजा के कुल पुरोहित के बारे में है, जो अपने रथ में बैठकर अपने राज्य के एक गाँव जा रहे थे, तभी एक संकरी सड़क पर उन्हें एक काफिला मिला। वे बार-बार "रास्ते से हट जाओ" चिल्लाते हुए, एक गाड़ी के न हटने पर इतने क्रोधित हो गए कि उन्होंने अपनी लाठी पहले गाड़ी के चालक पर फेंक दी। लाठी गाड़ी के जुए से टकराई और उछलकर उनके माथे पर लगी, जिससे उनके सिर पर एक उभार आ गया। पुरोहित वापस मुड़े और राजा के पास जाकर बताया कि उन्हें कुछ गाड़ी चालकों ने घायल कर दिया है। गाड़ी चालकों को बुलाया गया और मामले की जाँच करने वाले न्यायाधीशों ने पाया कि केवल पुरोहित ही दोषी थे। एक दिन सत्य सभा में इस बात पर चर्चा हुई कि राजा के पुरोहित, जिन्होंने कहा था कि उन पर कुछ गाड़ी चालकों ने हमला किया था, जब अदालत गए तो उनका मुकदमा खारिज कर दिया गया। जब गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए सभा में बैठे हैं, तो यह सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी यह व्यक्ति ठीक इसी तरह व्यवहार करता था।" फिर उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके न्याय स्वामी बने। राजा का पुजारी उस गाँव में गया जहाँ वह मुखिया था, और उसने ठीक उसी तरह व्यवहार किया जैसा कि दूसरी कहानी में है, लेकिन इस संस्करण में, जब राजा ने पुजारी की कहानी सुनी, तो उसने रथ चालकों को बुलाया और स्वयं न्याय के लिए बैठ गया, और बिना मामले की जाँच किए ही उसने कहा, "तुमने मेरे पुजारी को पीटा है और उसके माथे पर चोट पहुँचाई है," और उनकी सारी संपत्ति छीन लेने का आदेश दिया। तब बोधिसत्व ने उससे कहा, "महाराज, बिना मामले की जाँच किए ही आप उन्हें उनकी सारी संपत्ति जब्त करने का आदेश देते हैं, जबकि कुछ लोग खुद को घायल करने के बाद कहते हैं कि उन्हें किसी और ने घायल किया है। इसलिए, शासक के लिए बिना मामले की सुनवाई किए इस प्रकार कार्य करना गलत है। उसे सब कुछ सुने बिना कोई कार्रवाई नहीं करनी चाहिए।" और फिर उन्होंने ये श्लोक सुनाए:

दूसरे को घायल करके, वह अपना ही घाव दिखाता है।
स्वयं अपराधी होते हुए भी, वह मारपीट की शिकायत करता है।
हे राजा, बुद्धिमान लोग, पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से सावधान रहें।
पहले दोनों पक्षों की बात सुन लें, फिर सही फैसला सुनाएं।
मुझे आलसी, कामुक और उदासीन व्यक्ति से घृणा है।

झूठा तपस्वी एक दुष्ट तपस्वी होता है।
एक दुष्ट राजा बिना सुने ही किसी मामले का फैसला कर देगा।
ऋषि का क्रोध कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।
योद्धा राजकुमार एक सुविचारित निर्णय देता है,
धर्मी न्यायाधीश की प्रसिद्धि सदा बनी रहती है।
बोधिसत्व के वचन सुनकर राजा ने न्यायसंगत निर्णय लिया, और जब मामले की विधिवत सुनवाई हुई, तो दोष केवल ब्राह्मण का ही पाया गया।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान बताते हुए कहा: "दोनों कहानियों में ब्राह्मण ने एक ही भूमिका निभाई, और मैं स्वयं उन दिनों में बुद्धिमान मंत्री था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गोधा-जातक4**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-333-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 333
गोधा-जातक(*1)

“तो फिर तुम,” इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक जमींदार के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कहानी पहले ही पूरी सुनाई जा चुकी है। (*2) इस मामले में, पति-पत्नी कर्ज चुकाकर घर लौट रहे थे, तभी रास्ते में कुछ शिकारियों ने उन्हें भुनी हुई छिपकली दी और उसे खाने को कहा। पति ने पत्नी को पानी लाने भेजा और पूरी छिपकली खा गया। जब वह लौटी, तो उसने कहा, “मेरी प्रिय, छिपकली भाग गई।” “हे स्वामी,” उसने कहा, “भटकने वाली भुनी हुई छिपकली का क्या करें?” उसने थोड़ा पानी पिया और बाद में जेतवन मठ में गुरु के सामने बैठी, तो गुरु ने उससे पूछा: “श्रीमती, क्या यह पुरुष तुम्हारे प्रति स्नेही, प्रेममय और सहायक है?” उसने उत्तर दिया, “मैं उससे प्रेम करती हूँ और स्नेह रखती हूँ, लेकिन वह मुझसे प्रेम नहीं करता।” गुरु ने कहा, "अच्छा, मान लो कि वह तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करता है। दुखी मत होना। जब उसे तुम्हारे सद्गुण याद आएंगे, तो वह सर्वोच्च शक्ति केवल तुम्हें ही प्रदान करेगा।" और उनके अनुरोध पर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

यह पुरानी कहानी ऊपर दी गई कहानी जैसी ही है, लेकिन इस मामले में, जब पति-पत्नी घर लौट रहे थे, तो कुछ शिकारियों ने उनकी व्यथा देखी और उन्हें एक भुनी हुई छिपकली दी और उसे आपस में बाँटने को कहा। राजमाता ने उसे एक लता से बाँधकर रस्सी की तरह इस्तेमाल किया और उसे हाथ में लिए अपने रास्ते पर चल पड़ी। वे एक झील के पास पहुँचे और मुख्य सड़क छोड़कर बोधि वृक्ष के नीचे बैठ गए। राजकुमार ने कहा, "जाओ, मेरी प्रिय, कमल के पत्ते में झील से पानी ले आओ, फिर हम यह मांस खाएँगे।" उसने छिपकली को पेड़ की शाखा पर लटका दिया और पानी लाने चली गई। उसके साथी ने सारी छिपकली खा ली और फिर मुँह फेरकर पूंछ का सिरा हाथ में पकड़े बैठ गया। जब वह पानी लेकर लौटी, तो उसने कहा, "मेरी प्यारी, छिपकली पेड़ की डाल से नीचे उतरी और चींटियों के टीले की ओर चली गई। मैं दौड़ा और उसकी पूंछ का सिरा पकड़ लिया। छिपकली दो टुकड़ों में टूट गई और जो हिस्सा मैंने पकड़ा था, वह मेरे हाथ में छोड़कर बिल में गायब हो गई।"

"अच्छा, महाराज," उसने उत्तर दिया, "हम उस भुनी हुई छिपकली से कैसे निपट सकते हैं जो भाग जाती है? चलिए, हम चलते हैं।"

और इस प्रकार जल पीकर वे बनारस की यात्रा पर निकल पड़े। राजकुमार ने सिंहासन ग्रहण करते ही उन्हें रानी की उपाधि दी, परन्तु उन्हें कोई आदर-सम्मान नहीं दिया गया। बोधिसत्व ने उनका सम्मान दिलाने की इच्छा से राजा के समक्ष खड़े होकर उनसे पूछा, "हे देवी, क्या ऐसा नहीं है कि हमें आपसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता? आप हमारी उपेक्षा क्यों करती हैं?"

"महोदय," उसने कहा, "मुझे राजा से कुछ नहीं मिलता। तो मैं आपको उपहार कैसे दूं? अब राजा मुझे क्या देंगे? जब हम जंगल से लौट रहे थे, तो उन्होंने भुनी हुई छिपकली अकेले ही खा ली थी।"

"महामहिम," उसने कहा, "राजा इस तरह का व्यवहार नहीं करेंगे। उनके बारे में इस तरह की बातें न करें।"

तब उस महिला ने उससे कहा, "महोदय, यह बात आपको स्पष्ट नहीं है, लेकिन राजा और मुझे यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है," और उसने पहला श्लोक दोहराया:-

तो फिर सबसे पहले आप मेरे संपर्क में कब आए थे?
हे राजा, जब आप घने जंगलों में हों,
भुनी हुई छिपकली ने अपना धागा तोड़ दिया
और बो (पीपल) के पेड़ की शाखा से मुक्त हो गया।
हालांकि छाल के आवरण के नीचे, मुझे लगता है,
तलवार और कवच दिखाई दिए।

इस प्रकार रानी ने राजा के अपराध को उनके दरबारियों के बीच प्रकट करते हुए कहा। बोधिसत्व ने यह सुनकर कहा, "हे देवी, जब से तुम्हारे पति ने तुमसे प्रेम करना छोड़ दिया है, तब से तुम यहाँ क्यों रह रही हो और हम दोनों के लिए अप्रिय स्थिति पैदा कर रही हो?" और उन्होंने दो श्लोक दोहराए:-

जो आपका सम्मान करता है, उसके प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करें।
दी गई अच्छी सेवा के लिए पूर्ण भुगतान के साथ:
कंजूसों पर दया मत करो।
और न ही उन लोगों से दूर रहें जो आपकी उपस्थिति को प्रभावित कर सकते हैं।
उस दुष्ट को छोड़ दो जिसने तुम्हें त्याग दिया है।
और उससे प्रेम मत करो जो तुमसे प्रेम न करता हो।
जिस प्रकार एक पक्षी बंजर पेड़ को छोड़ देता है,
और वह किसी दूरदराज के जंगल में अपना घर तलाशता है।

जब बोधिसत्व बोल ही रहे थे, तभी राजा को उनके गुणों की याद आई और उन्होंने कहा, "मेरी प्रिय, मैंने बहुत समय तक तुम्हारे गुणों पर ध्यान नहीं दिया, परन्तु इस ज्ञानी पुरुष के वचनों से मैंने उन्हें जान लिया है। मेरी गलती क्षमा करो। मैं अपना सारा राज्य तुम्हें ही समर्पित करता हूँ।" और इस पर उन्होंने चौथा श्लोक कहा:-

जहां तक उसके अधिकार में हो,
एक राजा को जो कृतज्ञता दिखानी चाहिए:
मैं अपना सारा राज्य तुम्हें सौंपता हूँ।
आप जिसे चाहें, उपहार दे सकते हैं।

इन शब्दों के साथ राजा ने रानी को सर्वोच्च शक्ति प्रदान की, और यह सोचते हुए कि "इसी व्यक्ति के माध्यम से मुझे उसके गुणों की याद आई," उसने उस बुद्धिमान व्यक्ति को भी बहुत शक्ति प्रदान की।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, पति और पत्नी दोनों ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की: "इस कहानी के पति और पत्नी ने पुरानी कहानी में भी वही भूमिका निभाई थी। लेकिन मैं स्वयं बुद्धिमान सेवक था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 223 की तुलना करें

(2) क्रमांक 320 देखें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **राजोवदा-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-334-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 334
राजोवदा-जातक

“बाढ़ में बैल,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक राजा को सलाह देते समय सुनाई थी। प्रारंभिक कथा पूरी तरह से तेसाकुना जन्म (*1) में मिलेगी। लेकिन इस संस्करण में गुरु ने कहा, “हे महाराज, प्राचीन काल के राजाओं ने बुद्धिमानों की बात सुनकर न्यायपूर्वक शासन किया और स्वर्गलोक प्राप्त किया।” और राजा के अनुरोध पर उन्होंने प्राचीन काल की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने सभी कलाओं का प्रशिक्षण प्राप्त किया और तपस्वी जीवन अपनाकर सभी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया। वे हिमालय के एक रमणीय क्षेत्र में निवास करने लगे और जंगली फलों और जड़ों का सेवन करने लगे। उस समय राजा उनकी कमियों को जानने के लिए उत्सुक थे और यह जानने के लिए इधर-उधर भटकने लगे कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो उन्हें उनकी कमियां बता सके। जब उन्हें न तो घर के अंदर और न ही बाहर कोई ऐसा व्यक्ति मिला जो उनकी आलोचना कर सके, तो वे भेस बदलकर ग्रामीण इलाकों में घूमने लगे और सोचने लगे, "ग्रामीण इलाकों में कैसा होगा?" वहां भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उनकी आलोचना कर सके, और लोगों को केवल उनके गुणों की ही प्रशंसा करते सुनकर उन्होंने सोचा, "हिमालय क्षेत्र में कैसा होगा?" और वह जंगल में चला गया और भटकता रहा, जब तक कि वह बोधिसत्व के आश्रम तक नहीं पहुँच गया। वहाँ उसने बोधिसत्व को प्रणाम किया और उनसे मैत्रीपूर्ण ढंग से बात की, फिर एक तरफ बैठ गया। उस समय बोधिसत्व कुछ पके हुए अंजीर खा रहे थे, जो वे जंगल से लाए थे। वे स्वादिष्ट और मीठे थे, मानो पिसी हुई चीनी हों। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, मैं आपसे निवेदन करता हूँ, कृपया यह पका हुआ अंजीर खाएँ और थोड़ा पानी पी लें।"

राजा ने ऐसा ही किया और बोधिसत्व से पूछा, "हे पूज्यवर, यह पका हुआ अंजीर इतना मीठा क्यों है?"

"महामहिम," उन्होंने उत्तर दिया, "राजा अब न्याय और निष्पक्षता के साथ शासन कर रहे हैं। इसीलिए यह इतना सुखद है।"

"क्या एक अन्यायी राजा के शासनकाल में इसकी मिठास खो जाती है, महोदय?"

"जी हां, महाराज, अन्यायपूर्ण राजाओं के समय में तेल, शहद, गुड़ और इसी प्रकार की चीजें, साथ ही जंगली जड़ें और फल भी अपनी मिठास और स्वाद खो देते हैं, और केवल ये ही नहीं बल्कि पूरा राज्य खराब और बेस्वाद हो जाता है; लेकिन जब शासक न्यायप्रिय होते हैं, तो ये चीजें मीठी और स्वाद से भरपूर हो जाती हैं, और पूरा राज्य अपना स्वाद और रंगत वापस पा लेता है।"

राजा ने कहा, "ऐसा ही होना चाहिए, पूज्यवर," और बिना राजा को बताए, उसने बोधिसत्व को प्रणाम किया और बनारस लौट गया। तपस्वी की बात सिद्ध करने के लिए उसने अन्यायपूर्ण शासन किया और मन ही मन कहा, "अब मुझे सब पता चल जाएगा," और कुछ समय बाद वह वापस लौटा और बोधिसत्व को प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गया। बोधिसत्व ने ठीक उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हुए उसे एक पका हुआ अंजीर भेंट किया, जो उसे कड़वा लगा। कड़वा पाकर उसने उसे थूक दिया और कहा, "यह कड़वा है, महाराज।"

बोधिसत्व ने कहा, "हे महाराज, राजा अवश्य ही अन्यायी है, क्योंकि जब शासक अन्यायी होते हैं, तो जंगल के जंगली फलों से लेकर सब कुछ अपनी मिठास और स्वाद खो देता है।" और इस पर उन्होंने ये श्लोक पढ़े:-

बाढ़ के बीच से बैल टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाएगा।
गायों का पूरा झुंड उसके पीछे-पीछे चल रहा था:
इसलिए यदि कोई नेता कठिन रास्तों का अनुसरण करता है,
वह इस अशिष्ट समूह को नीच उद्देश्यों की ओर ले जाएगा।
और संपूर्ण राज्य उस तरह के पछतावे के युग में डूबा हुआ है।
लेकिन अगर बैल को सीधे रास्ते पर ले जाना चाहिए,
गायों का झुंड सीधे उसके पीछे-पीछे चलता है।
इसलिए उनका मुख्य उद्देश्य सही मार्ग अपनाना होना चाहिए।
आम जनता अन्याय से बच जाएगी।
और पूरे राज्य में पवित्र शांति का प्रसार होगा।

बोधिसत्व के सत्य के प्रवचन को सुनकर राजा ने उन्हें यह बताया कि वह राजा हैं और कहा, "हे परम पूज्य, पहले मेरी ही वजह से अंजीर पहले मीठे और फिर कड़वे हो गए थे, परन्तु अब मैं उन्हें फिर से मीठा बना दूंगा।" फिर उन्होंने बोधिसत्व को प्रणाम किया और घर लौट आए, और न्यायपूर्वक शासन करते हुए सब कुछ उसकी मूल स्थिति में बहाल कर दिया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा थे और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 521

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जम्बूक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-335-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 335
जंबुका-जातक

"सियार सावधान," इत्यादि-- यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा बुद्ध का अनुकरण करने के प्रयास का वर्णन है। इस कहानी की उत्पत्ति का घटनाक्रम पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है। (*1) यहाँ उसका संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

जब गुरु ने सारिपुत्र से पूछा कि देवदत्त ने उन्हें देखकर क्या किया, तो वरिष्ठ भिक्षु ने उत्तर दिया, "महोदय, आपको उतारते समय उसने मेरे हाथ में पंखा थमा दिया और लेट गया, तब कोकालिका ने उसके सीने पर घुटने से प्रहार किया: और इस प्रकार आपको उतारते समय वह मुसीबत में पड़ गया।" गुरु ने कहा, "देवदत्त के साथ पहले भी ऐसा हो चुका है," और वरिष्ठ भिक्षु के बार-बार पूछने पर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म एक युवा सिंह के रूप में हुआ और वे हिमालय की एक गुफा में रहने लगे। एक दिन भैंस का वध करके उसका मांस खाने के बाद उन्होंने पानी पिया और घर लौट आए। तभी एक सियार ने उन्हें देख लिया और भागने में असमर्थ होकर पेट के बल लेट गया।

शेर ने कहा, "इसका क्या मतलब है, श्रीमान सियार?"

"महाराज," उसने कहा, "मैं आपका सेवक बनना चाहूंगा।"

शेर ने कहा, "अच्छा, तो आओ," और उसे अपने निवास स्थान पर ले जाकर प्रतिदिन उसके लिए मांस लाता और उसे खिलाता रहा। जब सियार शेर के दिए हुए मांस को खाकर मोटा हो गया, तो एक दिन उसमें अहंकार जागा और वह शेर के पास आकर बोला, "हे स्वामी, मैं आपके लिए सदा एक बाधा रहा हूँ। आप मुझे निरंतर मांस लाते और खिलाते हैं। आज आप यहीं रहिए। मैं जाकर एक हाथी मारूंगा और पेट भरकर आपके लिए कुछ मांस लाऊंगा।" शेर ने कहा, "मित्र सियार, इसे अपनी दृष्टि में अच्छा मत समझो। तुम ऐसे वंश से नहीं आए हो जो हाथियों को मारकर उनका मांस खाते हों। मैं एक हाथी मारूंगा और उसका मांस तुम्हारे लिए लाऊंगा। हाथी तो विशाल शरीर वाला होता है। अपने स्वभाव के विपरीत कार्य मत करो, बल्कि मेरी बात सुनो।" और इस पर उसने पहला श्लोक कहा:-

सियार, सावधान!
उसके दांत लंबे हैं।
तुम्हारी तुच्छ जाति में से एक
शायद ही हिम्मत कर पाऊंगा

इतना विशाल और मजबूत
ऐसे राक्षस का सामना करना बहुत कठिन है।

शेर के मना करने के बावजूद, सियार गुफा से बाहर निकला और तीन बार सियार की दहाड़ लगाई। पहाड़ की तलहटी की ओर देखते हुए, उसने नीचे एक काले हाथी को चलते हुए देखा। सिर के बल गिरने की सोचकर वह उछला और हवा में पलटते हुए हाथी के पैरों पर गिर पड़ा। हाथी ने अपना अगला पैर उठाकर सियार के सिर पर रख दिया और उसकी खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। सियार वहीं कराहता हुआ पड़ा रहा और हाथी चिंघाड़ता हुआ चला गया। बोधिसत्व आए और चट्टान के ऊपर खड़े होकर देखा कि सियार की मृत्यु कैसे हुई, और कहा, "अपने अहंकार के कारण ही यह सियार मारा गया," और तीन श्लोक कहे:-

एक बार एक सियार ने शेर के गौरव को धारण कर लिया था।
और हाथी ने बराबर के प्रतिद्वंद्वी के रूप में चुनौती दी।
वह धरती पर औंधा पड़ा था, और उसके सीने से चीर-फाड़ की आवाज़ें आ रही थीं।
उसने उस जल्दबाजी में किए गए कृत्य पर पश्चाताप करना सीख लिया।
तो भला कौन असाधारण प्रसिद्धि वाले व्यक्ति को चुनौती दे सकता है?
और न ही उसके सुगठित शरीर की मजबूती पर ध्यान दिया।
उस सियार का भी वही दुखद अंत हुआ जो उस पर आया था।
लेकिन अपनी शक्ति का माप कौन जानता है?
और उनकी भाषा में संयम का अच्छा प्रयोग स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।
अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान रहते हुए वह जीवित रहता है और अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करता है।
इस प्रकार बोधिसत्व ने इन श्लोकों में इस संसार में किए जाने वाले उचित कर्तव्यों का उपदेश दिया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त सियार था और मैं स्वयं सिंह था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 204 देखें

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-336-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 336
ब्रह्मचट्ट जातक

"घास अभी भी स्थिर है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक बदमाश के बारे में सुनाई थी। जिस घटना से यह कहानी प्रेरित हुई, उसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके मंत्री और सांसारिक एवं आध्यात्मिक सलाहकार बने। बनारस के राजा ने एक विशाल सेना के साथ कोसल के राजा पर आक्रमण किया और श्रावस्ती नगर पहुँचकर युद्ध के बाद राजा को बंदी बना लिया। कोसल के राजा का एक पुत्र था, जिसका नाम राजकुमार चट्टा था। वह भेष बदलकर तक्षशिला चले गए, जहाँ उन्होंने तीनों वेदों और अठारह विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। तक्षशिला छोड़कर वे विज्ञान के व्यावहारिक उपयोगों का अध्ययन करते हुए एक सीमावर्ती गाँव पहुँचे। इस गाँव के पास ही एक जंगल में पाँच सौ तपस्वी प्यालों की झोपड़ियों में रहते थे। राजकुमार उनके पास गए और उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से वे भी तपस्वी बन गए और उनसे जो भी ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे, वह ग्रहण कर लिया। समय के साथ वे शिष्यों के उस समूह के नेता बन गए।

एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए उनसे पूछा, "महोदय, आप मध्य क्षेत्र में क्यों नहीं जाते?"

उन्होंने कहा, "महोदय, मध्य क्षेत्र में ज्ञानी पुरुष रहते हैं। वे प्रश्न पूछते हैं, धन्यवाद देने और आशीर्वाद दोहराने के लिए कहते हैं, और अयोग्य लोगों को फटकारते हैं। इसलिए हम वहां जाने से डरते हैं।"

"चिंता मत करो, मैं तुम्हारे लिए यह सब संभाल लूंगा," उसने कहा।

"तो हम चलते हैं," उन्होंने कहा। और वे सब अपनी-अपनी ज़रूरत की चीज़ें लेकर समय पर बनारस पहुँचे। बनारस के राजा ने कोसल राज्य को अपने अधिकार में लेकर वहाँ वफादार अधिकारियों को राज्यपाल नियुक्त किया और स्वयं उनका सारा खजाना इकट्ठा करके बनारस लौट आया। उसने लोहे के बर्तनों में खजाना भरकर राजमहल के बगीचे में गाड़ दिया और वहीं रहने लगा। ये साधु राजा के बगीचे में रात बिताने के बाद अगले दिन शहर में भीख मांगने गए और महल के द्वार पर पहुँचे। राजा उनके व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उन्हें बुलाया और चबूतरे पर बैठाकर चावल और रोटी खिलाई और भोजन के समय तक उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछे। चट्टा ने राजा के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर उसका दिल जीत लिया और भोजन के अंत में उसने कई प्रकार से धन्यवाद दिया। राजा और भी प्रसन्न हुआ और उनसे वचन लेकर उन्हें अपने बगीचे में ठहरा लिया।

चट्टा को दबे हुए खजाने को निकालने का एक मंत्र आता था, और वहाँ रहते हुए उसने सोचा, "मेरे पिता का पैसा इस आदमी ने कहाँ रखा होगा?" इसलिए उसने मंत्र दोहराया और चारों ओर खोजबीन की तो पाया कि वह बगीचे में दबा हुआ है। यह सोचकर कि इस पैसे से वह अपना राज्य भी वापस पा लेगा, उसने तपस्वियों से कहा, "महोदय, मैं कोसल के राजा का पुत्र हूँ। जब बनारस के राजा ने हमारे राज्य पर कब्जा कर लिया था, तब मैं भेस बदलकर भाग निकला था और अब तक अपनी जान बचा पाया हूँ। लेकिन अब मुझे वह संपत्ति मिल गई है जो मेरे परिवार की थी। मैं इससे जाकर अपना राज्य वापस पाऊँगा। आप क्या करेंगे?"

उन्होंने जवाब दिया, "हम भी आपके साथ चलेंगे।"

"ठीक है," उसने कहा और चमड़े के बड़े-बड़े बोरे बनवाए। रात में उसने ज़मीन में गड्ढा खोदकर खजाने के बर्तन निकाले और उनमें पैसा भरकर बर्तनों को घास से भर दिया। फिर उसने पाँच सौ साधुओं और अन्य लोगों को भी पैसा लेने का आदेश दिया और श्रावस्ती नगर भाग गया। वहाँ उसने राजा के सभी अधिकारियों को पकड़वा लिया और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। उसने शहर की दीवारों, मीनारों और अन्य निर्माणों का जीर्णोद्धार करवाया और इस प्रकार शहर को किसी भी शत्रु राजा के आक्रमण से अभेद्य बनाकर वहाँ निवास करने लगा। बनारस के राजा को सूचना मिली, "सन्यासी आपके उद्यान से खजाना लेकर भाग गए हैं।" वह उद्यान गया और बर्तनों को खोलकर देखा तो उनमें केवल घास ही पाई। अपने खोए हुए खजाने के कारण वह घोर शोक में डूब गया। शहर जाते हुए वह "घास, घास" बुदबुदाते हुए इधर-उधर भटक रहा था, और कोई भी उसके दुःख को शांत नहीं कर पा रहा था। बोधिसत्व ने सोचा, "राजा बड़ी मुसीबत में है। वह इधर-उधर भटक रहा है, व्यर्थ की बातें कर रहा है। मेरे सिवा कोई भी उसके दुःख को दूर नहीं कर सकता। मैं ही उसे उसकी मुसीबत से मुक्त करूँगा।" इसलिए एक दिन जब वह राजा के साथ शांति से बैठा था, और राजा ने फिर से बातें करना शुरू किया, तो उसने पहली पंक्ति दोहराई:

"घास" अब भी तुम्हारी लगातार पुकार है;
आपकी घास कौन ले गया?
आपको इसकी आवश्यकता क्यों है?
क्या आप सिर्फ यही शब्द बोलते हैं?
राजा ने उसकी बात सुनकर दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:

चट्टा, प्रसिद्धि का पवित्र व्यक्ति,
संयोगवश बात इस प्रकार सामने आई:
मुझे लगता है कि इसके लिए केवल वही दोषी है।
सोने की जगह घास का इस्तेमाल करना।
यह सुनकर बोधिसत्व ने तीसरा श्लोक कहा:

समझदार लोगों को अपना नियम बनाना चाहिए,
"थोड़ा दो और खूब ले लो।"
जो कुछ उसने लिया वह सब उसका अपना था।
उसने वहाँ सिर्फ घास छोड़ी थी।

यह सुनकर राजा ने चौथा श्लोक बोला:

सद्गुण ऐसे किसी नियम का पालन नहीं करता।
ये तो मूर्खों के लिए ही उपयुक्त नैतिक सिद्धांत हैं।
उनके नैतिक मूल्यों पर संदेह होना स्वाभाविक है।
ज्ञान प्राप्त करना भी व्यर्थ है।
यद्यपि राजा ने इस प्रकार चट्टा को दोषी ठहराया, लेकिन बोधिसत्व के इन शब्दों से वह अपने दु:ख से मुक्त हो गया और उसने अपने राज्य पर न्यायपूर्वक शासन किया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय बेईमान भाई (भिक्षु) महान चट्टा थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान मंत्री था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पीठ-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-337-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 337
पीठा जातक

"अफ़सोस! हमने आपको भेंट की थी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि वह गाँव से जेतवन मठ आया था और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र त्यागकर गुरु को प्रणाम किया तथा युवा भिक्षुओं से पूछा, "महोदय, श्रावस्ती नगर में आने वाले पराभिषेक भिक्षुओं की देखभाल कौन करता है?" उन्होंने कहा, "कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका और महान और पवित्र गृहस्थ बहन विशाखा भिक्षुओं की देखभाल करते हैं और उनके लिए माता-पिता के समान हैं।" उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा," और अगले दिन सुबह-सुबह, किसी भी भिक्षु के घर में प्रवेश करने से पहले ही, वह अनाथपिंडिका के द्वार पर आ गया। समय से पहले आने के कारण वहाँ उसकी सेवा करने वाला कोई नहीं था। वहाँ भी कुछ न मिलने पर वह विशाखा के घर चला गया। वहाँ भी समय से पहले आने के कारण उसे कुछ नहीं मिला। इधर-उधर भटकने के बाद वह वापस आया और जब उसने देखा कि चावल का दलिया खत्म हो गया है, तो वह चला गया। फिर वह इधर-उधर भटकता रहा और लौटकर जब उसने देखा कि चावल खत्म हो गया है, तो वह मठ में वापस गया और बोला, "यहाँ के भिक्षु इन दो परिवारों को सच्चे विश्वासी कहते हैं, लेकिन वास्तव में ये दोनों ही अविश्वासी और नास्तिक हैं।" इस प्रकार वह इन परिवारों को बुरा-भला कहता रहा। एक दिन सत्य के हॉल में चर्चा शुरू हुई कि गाँव का एक भिक्षु कुछ घरों के दरवाजे पर सुबह जल्दी पहुँच गया और भिक्षा न मिलने पर उन परिवारों को बुरा-भला कहने लगा। जब गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, तो यह सुनकर उन्होंने भिक्षुजी को बुलाया और पूछा कि क्या यह सच है। जब भिक्षुजी ने कहा, "जी जी, यह सच है," तो गुरुजी ने पूछा, "भाइ, तुम क्रोधित क्यों हो? पुराने समय में, बुद्ध के आने से पहले, जब तपस्वी किसी घर में जाते थे और उन्हें भिक्षा नहीं मिलती थी, तो वे क्रोधित नहीं होते थे।" और इसी के साथ उन्होंने पुराने जमाने की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वयस्क होने पर उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं का अध्ययन किया और बाद में एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया। हिमालय में दीर्घकाल व्यतीत करने के बाद वे नमक और सिरका लेने बनारस गए और एक बगीचे में अपना निवास स्थान बनाकर अगले दिन भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश किया। उस समय बनारस में एक व्यापारी था, जो सच्चा विश्वासी था। बोधिसत्व ने पूछा कि कौन सा परिवार विश्वासी है, और व्यापारी के परिवार का नाम सुनकर वे उसके घर गए। उस समय व्यापारी राजा को प्रणाम करने गया हुआ था और उसके परिवार का कोई भी सदस्य उन्हें देख नहीं पाया। इसलिए वे वापस लौट आए।

फिर महल से लौट रहे व्यापारी ने उन्हें देखा और प्रणाम करके अपना भिक्षापात्र लेकर उन्हें अपने घर ले गया। वहाँ उसने उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित किया और उनके पैर धोकर और मालिश करके तथा चावल, रोटी और अन्य भोजन देकर उनका सत्कार किया। भोजन के दौरान उसने उनसे कई बातें पूछीं और भोजन समाप्त होने के बाद, उन्हें प्रणाम करके एक तरफ आदरपूर्वक बैठते हुए कहा, “आदरणीय महोदय, हमारे द्वार पर आने वाले अजनबी, चाहे भिखारी हों, पुजारी हों या ब्राह्मण हों, पहले कभी भी आदर और सम्मान प्राप्त किए बिना नहीं गए, परन्तु आज हमारे संरक्षकों द्वारा न देखे जाने के कारण आप बिना बैठने, बिना पानी पिए, बिना पैर धोए और बिना चावल-दलिया खाए चले गए। यह हमारी गलती है। कृपया हमें क्षमा करें।” और इन शब्दों के साथ उसने पहला श्लोक कहा:

अफसोस! हमने आपको बैठने की जगह नहीं दी।
पानी नहीं लाया गया, न ही खाने के लिए कुछ।
हम यहां अपने पापों को स्वीकार करते हैं।
हे परम पूज्य, हम आपसे विनम्रतापूर्वक क्षमा करने की विनती करते हैं।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक दोहराया:

मुझे कुछ भी स्वीकार नहीं करना है।
मुझे कोई गुस्सा नहीं आता।
यह विचार कि एक बार मैं इसे अपना बना लूँ
मेरे मन में यह बात आ गई,
यहां के लोगों की आदतें
ये तो बस बहुत छोटे हैं।"
यह सुनकर व्यापारी ने दो और पंक्तियों में उत्तर दिया:

हमारे परिवार की परंपरा—यह कुछ इस प्रकार थी
हमें यह बहुत पुराने समय से प्राप्त है--
अजनबी को बैठने की जगह देना है।
उसकी ज़रूरतों की पूर्ति करो, उसके पैरों के लिए पानी लाओ
और हर मेहमान को अपने प्रिय रिश्तेदार की तरह सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।
और बोधिसत्व ने वहां कुछ दिन रहने और बनारस के व्यापारी को उसके कर्तव्य का उपदेश देने के बाद सीधे हिमालय वापस चले गए, जहां उन्होंने सभी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए सत्यों का खुलासा किया और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय आनंद बनारस का व्यापारी था, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **थुसा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-338-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 338
थुसा-जातक

"इतनी अच्छी समझ के साथ," इत्यादि - यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए राजकुमार अजातशत्रु की सुनाई थी। उनके गर्भ धारण के समय, कोसल के राजा की पुत्री, उनकी माता के मन में अपने पति बिम्बिसार के दाहिने घुटने से रक्त पीने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी दासियों द्वारा पूछे जाने पर, उन्होंने उन्हें अपनी स्थिति बताई। राजा ने भी यह सुनकर अपने ज्योतिषियों को बुलाया और कहा, "रानी को ऐसी-ऐसी इच्छा है। इसका क्या परिणाम होगा?" ज्योतिषियों ने कहा, "रानी के गर्भ में पल रहा बच्चा आपको मार डालेगा और आपका राज्य छीन लेगा।" राजा ने कहा, "यदि मेरा पुत्र मुझे मार डाले और मेरा राज्य छीन ले, तो इसमें क्या हर्ज है?" फिर उन्होंने तलवार से अपना दाहिना घुटना चीर दिया और रक्त को एक सोने के पात्र में गिराकर रानी को पीने के लिए दे दिया। उसने सोचा, "अगर

मेरा बेटा अपने पिता को मार डाले, तो मुझे उसकी क्या परवाह होगी?" और उसने गर्भपात कराने की कोशिश की। राजा ने यह सुनकर उसे अपने पास बुलाया और कहा, "मेरी प्रिय, ऐसा कहा जाता है कि मेरा बेटा मुझे मार डालेगा और मेरा राज्य छीन लेगा।"

लेकिन मैं बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त नहीं हूँ: मुझे अपने बच्चे का चेहरा देखने की अनुमति दो। अब से ऐसा व्यवहार मत करना।" लेकिन वह फिर भी बगीचे में गई और पहले की तरह ही व्यवहार करती रही। राजा ने यह सुनकर उसके बगीचे में जाने पर रोक लगा दी, और जब वह पूरे समय बगीचे में रही तो उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसके नामकरण के दिन, क्योंकि वह जन्म से पहले ही अपने पिता का शत्रु था, उसका नाम राजकुमार अजातशत्रु रखा गया। जब वह राजसी परिवेश में बड़ा हो रहा था, एक दिन गुरु पाँच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के महल में आए और बैठ गए। राजा ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की सभा को उत्तम भोजन, कठोर और नरम दोनों प्रकार का, से दावत दी। गुरु को प्रणाम करने के बाद राजा धर्म मार्ग सुनने के लिए बैठ गए। इसी समय उन्होंने युवा राजकुमार को वस्त्र पहनाए और राजा के पास लाए। राजा ने बच्चे का बड़े स्नेह से स्वागत किया और उसे अपनी गोद में बिठा लिया, और एक पिता के अपने बच्चे के प्रति स्वाभाविक प्रेम से उसे दुलारते हुए, धर्म मार्ग की बात नहीं सुनी। गुरु ने उसकी लापरवाही देखकर कहा, "महाराज, पहले के राजा अपने पुत्रों पर संदेह करते थे।" उन्हें गुप्त स्थान पर रखा गया था, और आदेश दिया गया था कि उनकी मृत्यु के बाद उन्हें लाया जाए और सिंहासन पर बिठाया जाए। और राजा के अनुरोध पर उसने उसे पुराने समय की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व तक्षशिला में एक प्रसिद्ध शिक्षक थे और वे कई युवा राजकुमारों और ब्राह्मणों के पुत्रों को विद्याओं का प्रशिक्षण देते थे। बनारस के राजा का पुत्र सोलह वर्ष की आयु में उनके पास आया और तीनों वेदों और सभी विद्याओं में निपुणता प्राप्त करने के बाद, उसने अपने गुरु से विदा ली। गुरु ने अपनी दूरदृष्टि से उसे देखकर सोचा, "इस व्यक्ति पर उसके पुत्र के कारण कोई संकट आ रहा है। मैं अपनी जादुई शक्ति से उसे इससे बचाऊंगा।" और चार श्लोक रचकर उन्होंने युवा राजकुमार को दिए और इस प्रकार कहा: "मेरे पुत्र, जब तुम सिंहासन पर बैठोगे और तुम्हारा पुत्र सोलह वर्ष का हो जाएगा, तब चावल खाते समय पहला श्लोक बोलना; महान सभा के समय दूसरा श्लोक दोहराना; महल की छत पर चढ़ते समय सीढ़ियों के शीर्ष पर खड़े होकर तीसरा श्लोक बोलना; और राजकक्ष में प्रवेश करते समय दहलीज पर खड़े होकर चौथा श्लोक बोलना।"

राजकुमार ने तुरंत इस बात पर सहमति जताई और अपने गुरु को प्रणाम करके चले गए। वायसराय के रूप में कार्य करने के बाद, अपने पिता की मृत्यु पर वे सिंहासन पर आसीन हुए। जब उनका पुत्र सोलह वर्ष का था, तब राजा को बगीचे में आराम करते हुए देखकर, अपने पिता की शान और शक्ति को देखकर उसके मन में उन्हें मारकर उनके राज्य पर कब्जा करने की इच्छा जागृत हुई और उसने अपने सेवकों से इस बारे में बात की। उन्होंने कहा, "महाराज, यह सच है, लेकिन बुढ़ापे में सत्ता प्राप्त करने का क्या लाभ? आपको किसी न किसी तरह राजा को मारकर उनके राज्य पर कब्जा करना ही होगा।" राजकुमार ने कहा, "मैं उनके भोजन में जहर मिलाकर उन्हें मार डालूंगा।" इसलिए उन्होंने थोड़ा जहर लिया और अपने पिता के साथ रात्रि भोजन करने बैठ गए। जब कटोरे में चावल परोसे ही जा रहे थे, तब राजा ने पहला श्लोक बोला:

इतनी अच्छी समझ के साथ, चावल के छिलके
  चूहे भेद करने में माहिर होते हैं:
उन्हें छिलकों को छूने की ज्यादा परवाह नहीं थी।
 लेकिन उन्होंने चावल को दाना-दाना करके खाया।

"मैं पकड़ा गया," राजकुमार ने सोचा, और चावल के कटोरे में जहर मिलाने की हिम्मत न करते हुए, वह उठा और राजा को प्रणाम करके चला गया। उसने अपने सेवकों को सारी कहानी सुनाई और कहा, "आज मैं पकड़ा गया। अब मैं उसे कैसे मारूँ?" उस दिन से वे बगीचे में छिपे रहे और फुसफुसाते हुए आपस में सलाह करते रहे, "अभी एक काम बाकी है। जब बड़ी सभा का समय आए, तो अपनी तलवार तैयार रखो, और सलाहकारों के बीच खड़े होकर, जब राजा लापरवाह दिखे, तो उसे अपनी तलवार से वार करके मार डालो।" इस प्रकार उन्होंने योजना बनाई। राजकुमार तुरंत मान गया, और बड़ी सभा के समय, उसने अपनी तलवार तैयार रखी और जगह-जगह घूमते हुए राजा पर वार करने का मौका ढूंढने लगा। उसी क्षण राजा ने दूसरा श्लोक बोला:

जंगल में ली गई गुप्त सलाह
  मेरे द्वारा इसका अर्थ यह समझा जाता है:
गांव के खेत ने कान में धीरे से फुसफुसाया
  मैंने भी यही सुना है।

राजकुमार ने सोचा, "मेरे पिता जानते हैं कि मैं उनका शत्रु हूँ," और भागकर अपने सेवकों को यह बात बता दी। सात-आठ दिन बीतने के बाद उन्होंने कहा, "राजकुमार, आपके पिता को आपके प्रति आपकी भावनाओं का ज्ञान नहीं है। यह सब आप अपने मन में ही सोच रहे हैं। उन्हें मृत्युदंड दे दीजिए।" इसलिए एक दिन उन्होंने अपनी तलवार उठाई और राजकक्ष की सीढ़ियों के शीर्ष पर खड़े हो गए। सीढ़ियों के शीर्ष पर खड़े राजा ने तीसरा श्लोक बोला:

एक बार एक बंदर ने क्रूरतापूर्ण उपाय किए
उसकी कोमल संतान संतान उत्पन्न करने में असमर्थ थी।
राजकुमार ने सोचा, "मेरे पिता मुझे पकड़ना चाहते हैं," और डर के मारे वह भाग गया और अपने सेवकों को बताया कि उसके पिता ने उसे धमकी दी है। दो सप्ताह बीतने के बाद उन्होंने कहा, "राजकुमार, यदि राजा को यह पता होता, तो वह इतने लंबे समय तक इसे सहन नहीं करते। आपकी कल्पना आपको ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। उसे मार डालो।" इसलिए एक दिन उसने अपनी तलवार उठाई और महल की ऊपरी मंजिल पर स्थित शाही कक्ष में प्रवेश करके पलंग के नीचे लेट गया, राजा के आते ही उसे मारने के इरादे से। शाम के भोजन के बाद, राजा ने अपने सेवकों को विदा कर दिया, क्योंकि वह लेटना चाहता था, और शाही कक्ष में प्रवेश करते ही, दहलीज पर खड़े होकर उसने चौथा श्लोक बोला:

आपके सतर्क रेंगने के तरीके
सरसों के खेत में भटकती हुई एक आंख वाली बकरी की तरह,
और तुम कौन हो जो यहाँ नीचे छिपे हुए हो?
यह बात भी मुझे पता है।
राजकुमार ने सोचा, "मेरे पिता को मेरी भनक लग गई है। अब वे मुझे मार डालेंगे।" भय से कांपते हुए वह पलंग के नीचे से बाहर आया और राजा के चरणों में अपनी तलवार फेंककर, "मुझे क्षमा करें, महाराज," कहते हुए उनके सामने गिड़गिड़ाने लगा। राजा ने कहा, "तुमने सोचा था, कोई नहीं जानता कि मैं क्या कर रहा हूँ।" और उसे फटकार लगाने के बाद, उन्होंने उसे जंजीरों में बांधकर कारागार में डालने और उस पर पहरा बिठाने का आदेश दिया। फिर राजा ने बोधिसत्व के गुणों का ध्यान किया। और कुछ समय बाद उनका निधन हो गया। जब उनके अंतिम संस्कार हो गए, तो उन्होंने युवा राजकुमार को कारागार से निकालकर सिंहासन पर बिठा दिया।

गुरु ने अपना पाठ यहीं समाप्त करते हुए कहा, "हे महाराज, पुराने समय में राजा उन मामलों में संदेह करते थे जिनमें संदेह उचित होता था," और फिर उन्होंने यह घटना सुनाई, लेकिन राजा ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार गुरु ने जन्म का कारण बताया: "उस समय तक्षशिला का प्रसिद्ध शिक्षक मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बवेरु-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-339-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 339
बावेरु-जातक

"मुकुटदार मोर से पहले," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जिसमें कुछ पथभ्रष्ट अनुयायियों का वर्णन था जिन्होंने अपने पूर्व के लाभ और यश को खो दिया था। बुद्ध के जन्म से पहले लाभ और सम्मान प्राप्त करने वाले ये पथभ्रष्ट अनुयायी उनके जन्म के समय उसे खो बैठे और सूर्योदय के समय जुगनू के समान हो गए। सत्य के हॉल में उनके भाग्य पर चर्चा हुई। जब गुरु आए और उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, तो विषय जानने पर उन्होंने कहा, "भाइयों, न केवल अब, बल्कि पहले भी, सद्गुणों से परिपूर्ण भिक्षुओं के प्रकट होने से पहले, निर्गुण भिक्षुओं ने सर्वोच्च लाभ और यश प्राप्त किया था, परन्तु जब सद्गुणों से परिपूर्ण भिक्षु प्रकट हुए, तो निर्गुण भिक्षुओं ने अपना लाभ और यश खो दिया।" और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक युवा मोर के रूप में जन्म लिया। जब वे पूर्ण रूप से बड़े हुए, तो वे अत्यंत सुंदर थे और एक वन में रहते थे। उसी समय कुछ व्यापारी बावेरु राज्य में आए और अपने साथ एक विदेशी कौआ लेकर आए। कहा जाता है कि उस समय बावेरु में कोई पक्षी नहीं थे। स्थानीय लोग जो समय-समय पर आते और उस पक्षी को जहाज के मस्तूल पर बैठे देखते, वे कहते, "इस पक्षी की त्वचा का रंग देखो। इसके गले के अंत में स्थित चोंच को देखो, और इसकी आंखें रत्न-जड़ित गेंदों जैसी हैं।" इस प्रकार उस कौए की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उन व्यापारियों से कहा, "महोदय, हमें यह पक्षी दे दीजिए। हमें इसकी आवश्यकता है, और आप अपने देश में दूसरा प्राप्त कर सकते हैं।"

उन्होंने कहा, "तो इसे ले लो, लेकिन कीमत चुकानी होगी।"

उन्होंने कहा, "हमें यह एक सिक्के के बदले दे दो।"

व्यापारियों ने कहा, "हम इसे उस कीमत पर नहीं बेचेंगे।"

धीरे-धीरे अपनी पेशकश बढ़ाते हुए लोगों ने कहा, "इसे हमें सौ सिक्कों में दे दो।"

उन्होंने उत्तर दिया, "यह हमारे लिए बहुत उपयोगी है, लेकिन कृपया हमारे और आपके बीच मित्रता बनी रहे।" और उन्होंने इसे सौ सिक्कों में बेच दिया।

स्थानीय लोगों ने उसे ले जाकर एक सुनहरे पिंजरे में रख दिया और उसे तरह-तरह की मछलियाँ, मांस और जंगली फल खिलाए। एक ऐसी जगह पर जहाँ कोई और पक्षी नहीं थे, दस दुष्ट गुणों से युक्त एक कौवे ने सर्वोच्च लाभ और यश प्राप्त किया। अगली बार जब ये व्यापारी बावेरु राज्य में आए, तो वे एक शाही मोर लाए जिसे उन्होंने उंगलियां चटकाने पर चीखने और ताली बजाने पर नाचने का प्रशिक्षण दिया था। जब भीड़ जमा हो गई, तो पक्षी जहाज के आगे वाले हिस्से में खड़ा हो गया और अपने पंख फड़फड़ाते हुए मधुर ध्वनि निकालते हुए नाचने लगा।

इसे देखने वाले लोग बेहद प्रसन्न हुए और बोले, "पक्षियों का यह राजा बहुत सुंदर और प्रशिक्षित है। इसे हमें दे दीजिए।"

व्यापारियों ने कहा, "पहले हम एक कौआ लाए थे। आपने उसे ले लिया। अब हम यह शाही मोर लाए हैं और आप इसके लिए भीख मांग रहे हैं। आपके देश में आकर किसी भी पक्षी का नाम लेना भी नामुमकिन होगा।"

उन्होंने कहा, "महोदय, संतुष्ट रहिए, यह पक्षी हमें दे दीजिए और अपने देश से दूसरा पक्षी ले लीजिए।"

और कीमत बढ़ाकर उन्होंने उसे एक हजार सिक्कों में खरीद लिया। फिर उन्होंने उसे सात रत्नों से सजे पिंजरे में रखा और उसे मछली, मांस और जंगली फल, साथ ही शहद, भुना हुआ मक्का, चीनी का पानी आदि खिलाया। इस प्रकार शाही मोर को सर्वोच्च लाभ और यश प्राप्त हुआ। उसके आने के दिन से ही कौवे को मिलने वाला लाभ और सम्मान कम हो गया। और कोई उसे देखना तक नहीं चाहता था। जब कौवे को न तो कठोर और न ही नरम भोजन मिला, तो वह "कांव-कांव" की आवाज करते हुए गया और गोबर के ढेर पर बैठ गया।

गुरु ने दोनों कथाओं के बीच संबंध स्थापित करते हुए, अपनी पूर्ण बुद्धि से इन छंदों को दोहराया:

कलगीदार मोर के प्रकट होने से पहले,
कौवों को फल और मांस के उपहार देकर सम्मानित किया जाता था।
मधुर आवाज वाला मोर बावेरु के पास आया।
कौवे से तुरंत ही सारे उपहार और प्रसिद्धि छीन ली गई।
इसलिए उस व्यक्ति ने कई पुजारियों को उचित सम्मान दिया।
जब तक बुद्ध ने सत्य के पूर्ण प्रकाश को प्रकट नहीं किया:
लेकिन जब मधुर स्वर वाले बुद्ध ने धर्म के मार्ग का उपदेश दिया,
गलत विश्वासियों से सभी लोगों ने उनके उपहार और प्रशंसा वापस ले ली।

इन चार श्लोकों का उच्चारण करने के बाद, उन्होंने इस प्रकार जन्म की पहचान की: "उस समय जैन निगंथ नटपुत्त (जैनों के गुरु महावीर) कौआ थे, और मैं स्वयं राजसी मोर था।"

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 340
विषय-जातक

"पुराने समय की बात है, विषया," इत्यादि--यह कथा गुरु ने अनाथपिंडिका के जेतवन मठ में सुनाई थी। इस कथा की उत्पत्ति का घटनाक्रम खदिरंगारा जन्म में पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है। (*1) इस अवसर पर गुरु ने अनाथपिंडिका को संबोधित करते हुए कहा, "हे मेरे गृहस्थ शिष्य, पुराने समय के ज्ञानी पुरुषों ने स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) की सलाह को ठुकराते हुए भिक्षा दी थी, जब उन्होंने वायु में खड़े होकर उन्हें रोकने का प्रयास किया था और कहा था, 'भिक्षा मत दो।' और उनके अनुरोध पर गुरु ने अतीत की एक कथा सुनाई।"

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व विषया नामक एक महान व्यापारी बने, जिनकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। पंच सद्गुणों से संपन्न होने के कारण वे उदार और दानप्रिय थे। उन्होंने नगर के चारों द्वारों पर, नगर के मध्य में और अपने घर के द्वार पर भिक्षागृह बनवाए। इन छह स्थानों से वे भिक्षादान करते थे, और प्रतिदिन छह लाख लोग भिक्षा मांगने जाते थे, और बोधिसत्व और भिखारियों का भोजन एक समान होता था।

और जब उसने अपने दान से पूरे भारत को उत्तेजित कर दिया, तो उसके दान के असाधारण प्रभाव से सक्का (इंद्र) का निवास हिल उठा और स्वर्ग के राजा के पीले संगमरमर के सिंहासन पर गर्मी के लक्षण दिखाई देने लगे। सक्का (इंद्र) ने कहा, "अरे, मुझे स्वर्ग के सिंहासन से कौन गिरा सकता है?" और चारों ओर देखते हुए उसने उस महान व्यापारी को देखा और मन ही मन सोचा, "यह विषया भिक्षा देता है और अपने दान को हर जगह बिखेरकर पूरे भारत को उत्तेजित कर रहा है। मुझे लगता है कि वह अपने भिक्षादान के द्वारा मुझे सिंहासन से हटाकर स्वयं सक्का (इंद्र) बन जाएगा। मैं उसकी सारी संपत्ति नष्ट कर दूंगा और उसे कंगाल बना दूंगा, ताकि वह फिर कभी भिक्षा न दे सके।" इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने उसका तेल, शहद, गुड़ और इसी तरह की सभी वस्तुएँ, यहाँ तक कि उसका सारा अनाज का भंडार, उसके दास और कामगार भी गायब कर दिए। जिन लोगों को उनके दान से वंचित रखा गया था, वे आकर बोले, “हे प्रभु, भिक्षागृह गायब हो गया है। आपने जो विभिन्न स्थान स्थापित किए थे, उनमें हमें कुछ भी नहीं मिल रहा है।” उन्होंने कहा, “यहाँ से धन ले लो। भिक्षा देना बंद मत करो।” और अपनी पत्नी को बुलाकर उन्होंने उससे दान जारी रखने का आग्रह किया। उसने पूरे घर की तलाशी ली, और एक भी पैसा न पाकर बोली, “हे प्रभु, हमारे वस्त्रों के अलावा मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। पूरा घर खाली है।” सात रत्न-भंडारों को खोलकर देखने पर उन्हें कुछ नहीं मिला, और व्यापारी और उसकी पत्नी के अलावा कोई और दिखाई नहीं दिया, न दास और न ही श्रमिक। बोधिसत्व ने फिर अपनी पत्नी से कहा, “प्रिय, हम दान देना बंद नहीं कर सकते। पूरे घर की तलाशी लो जब तक कुछ मिल न जाए।”

उसी क्षण एक घास काटने वाले ने अपना हंसिया, डंडा और घास बांधने वाली रस्सी दरवाजे पर फेंक दी और भाग गया। व्यापारी की पत्नी ने उन्हें पाया और कहा, "हे स्वामी, मुझे बस यही दिखाई दे रहा है," और उन्हें लाकर उसे दे दिया। बोधिसत्व ने कहा, "हे प्रिय, इतने वर्षों में मैंने कभी घास नहीं काटी, लेकिन आज मैं घास काटूंगा और उसे बेचकर उचित दान जुटाऊंगा।" इसलिए दान में कटौती के डर से, उसने हंसिया, डंडा और रस्सी उठाई और शहर से आगे बढ़ते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जहां बहुत घास थी। उसने घास काटकर दो गट्ठे बांधे और कहा, "एक गट्ठा हमारा रहेगा और दूसरा मैं दान में दूंगा।" घास को डंडे पर लटकाकर वह शहर के द्वार पर गया और उसे बेच दिया। उसे दो छोटे सिक्के मिले और उसने आधा पैसा भिखारियों को दे दिया। वहाँ बहुत से भिखारी थे, और जब वे बार-बार पुकार कर कह रहे थे, "हमें भी दे दो," तो उसने बाकी का आधा पैसा भी दे दिया, और अपनी पत्नी के साथ उपवास करते हुए दिन बिताया। इस तरह छह दिन बीत गए, और सातवें दिन, जब वह घास इकट्ठा कर रहा था, क्योंकि वह स्वभाव से कमजोर था और सात दिनों से उपवास कर रहा था, जैसे ही सूर्य की गर्मी उसके माथे पर पड़ी, उसकी आँखें घूमने लगीं, और वह बेहोश होकर गिर पड़ा, घास बिखर गई। सक्का (इंद्र) इधर-उधर घूम रहा था, और विषया की हरकतों को देख रहा था। और उसी क्षण देवदूत आया, और हवा में खड़े होकर पहला श्लोक बोला:

विसायहा, पुराने समय में तुम दान देते थे।

और दान देने से धन की हानि होती है।
अब से आत्मसंयम दिखाओ, देने से इनकार करो।
और आप निश्चित रूप से चिरस्थायी सुखों के बीच जीवन व्यतीत करेंगे।
बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर पूछा, "तुम कौन हो?" उन्होंने कहा, "मैं सक्का (इंद्र) हूँ।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "सक्का (इंद्र) ने स्वयं दान देकर, नैतिक कर्तव्यों का पालन करके, उपवास रखकर और सात व्रतों को पूरा करके सक्का (इंद्र) पद प्राप्त किया था। परन्तु अब तुम उस दान को रोक रहे हो जिससे तुम्हें स्वयं महानता प्राप्त हुई। निश्चय ही तुम एक अयोग्य कर्म के दोषी हो।" और ऐसा कहकर उन्होंने तीन श्लोक दोहराए:

पुरुषों का कहना है कि यह शर्मनाक कृत्य करना सही नहीं है।
इससे एक प्रतिष्ठित नाम की प्रतिष्ठा कलंकित होनी चाहिए।
हे हजार नेत्रों के स्वामी!
हमारी पीड़ादायक स्थिति में भी, हमें इससे बचाओ।
हमारी संपत्ति विश्वासघाती तरीके से खर्च न हो।
अपनी खुशी के लिए या धन बढ़ाने के उद्देश्य से,
लेकिन पुराने समय से ही हमारे भंडारों में वृद्धि होती जा रही है।
उसी रास्ते से एक पुराना रथ गुजरा था।
दूसरा भी जा सकता है। तो क्या हम भी देंगे?
जब तक हमारे पास जीने के साधन हैं,
और सबसे बुरी स्थिति में भी हर उदार विचार को रोकना नहीं चाहिए।
सक्का (इंद्र) उन्हें उनके उद्देश्य से रोक नहीं पाए और उनसे पूछा कि वे दान क्यों देते हैं। उन्होंने कहा, "मैं न तो सक्कात्व (देवदूतों का राजा) और न ही ब्रह्मत्व (प्रधान देवदूत) की इच्छा रखता हूँ, बल्कि अनंत ज्ञान की प्राप्ति के लिए दान देता हूँ।" ये शब्द सुनकर सक्का (इंद्र) प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने हाथों से उनकी पीठ थपथपाई। बोधिसत्व को यह कृपा प्राप्त होते ही उनका पूरा शरीर आनंद से भर गया। सक्का (इंद्र) की अलौकिक शक्ति से उन्हें सर्वथा समृद्धि प्राप्त हुई। सक्का (इंद्र) ने कहा, "हे महान व्यापारी, अब से प्रतिदिन बारह लाख दान बाँटो।" उनके घर में अपार धन सृजित करके सक्का (इंद्र) ने उनसे विदा ली और सीधे अपने निवास स्थान लौट गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का इस प्रकार वर्णन किया: "उस समय राहुल की माता व्यापारी की पत्नी थी, और मैं स्वयं विषया था।"

फुटनोट:

(1)सं. 40

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कंडारी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-341-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 341
कंदारी-जातक

इस जन्म की पूरी कहानी कुणाला जन्म में विस्तार से बताई जाएगी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वानर-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 342
वानर-जातक (*1)

"मैंने जल से प्राप्त किया है," इत्यादि - यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा बुद्ध की हत्या के प्रयास का वर्णन है। इस कथा की उत्पत्ति का घटनाक्रम पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब हिमालय क्षेत्र में बोधिसत्व एक युवा बंदर के रूप में पैदा हुए। बड़े होकर वे गंगा नदी के किनारे रहने लगे। गंगा में रहने वाली एक मादा मगरमच्छ को बोधिसत्व के हृदय के मांस की तीव्र इच्छा हुई और उसने यह बात अपने पति को बताई। पति ने सोचा, "मैं बोधिसत्व को पानी में डुबोकर मार डालूंगा और उनके हृदय का मांस निकालकर अपनी पत्नी को दे दूंगा।" इसलिए उसने बोधिसत्व से कहा, "आओ, मेरे मित्र, हम एक द्वीप पर जाकर जंगली फल खाएंगे।"

"मैं वहां कैसे पहुंचूंगा?" उसने कहा।

"मैं तुम्हें अपनी पीठ पर लादकर वहाँ ले जाऊँगा," मगरमच्छ ने उत्तर दिया।

मगरमच्छ के इरादे से अनजान बंदर उसकी पीठ पर कूद गया और वहीं बैठ गया। मगरमच्छ थोड़ी दूर तैरने के बाद गोता लगाने लगा। तब बंदर बोला, "हे भगवान, आप मुझे पानी में क्यों डुबो रहे हैं?"

मगरमच्छ ने कहा, "मैं तुम्हें मार डालूंगा और तुम्हारे दिल का मांस अपनी पत्नी को दूंगा।"

“मूर्ख,” उसने कहा, “क्या तुम्हें लगता है कि मेरा दिल मेरे अंदर है?” “तो फिर तुमने उसे कहाँ रखा है?”

क्या तुम उसे अंजीर के पेड़ पर लटका हुआ नहीं देख रहे हो?

मगरमच्छ ने कहा, "मैं इसे देख रहा हूँ। लेकिन क्या तुम इसे मुझे दोगे?"

"हां, मैं करूंगा," बंदर ने कहा।

फिर मगरमच्छ—अपनी मूर्खता के कारण—उसे पकड़कर नदी किनारे अंजीर के पेड़ की तलहटी तक तैरकर ले गया। बोधिसत्व मगरमच्छ की पीठ से कूदकर अंजीर के पेड़ पर बैठ गया और उसने ये श्लोक दोहराए:

क्या मैं पानी से, मछली से, सूखी ज़मीन तक आ गया हूँ?
क्या अंततः आप ही आपके वश में आ जाएंगे?
मुझे ब्रेड फ्रूट और रोज़ एप्पल से उल्टी आने लगी है।
और आमों की बजाय अंजीर चुनना बेहतर है।
जो महान अवसर पर उठने में विफल रहता है
शत्रु के पैरों तले दु:ख में गिरी पड़ी है:
एक बात उसके भाग्य में संकट पैदा कर देती है।
उसे अपने शत्रु के उत्पीड़न से कभी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।
इस प्रकार बोधिसत्व ने इन चार श्लोकों में सांसारिक मामलों में सफलता प्राप्त करने का तरीका बताया और फिर वृक्षों के झुरमुट में विलीन हो गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त मगरमच्छ था, और मैं स्वयं बंदर था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 523

स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-343-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 343
कुन्तानी-जातक

"मैंने बहुत देर तक थामे रखा," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ के गुरु ने सुनाई थी, जो कोसल के राजा के घर में रहने वाले एक बगुले के बारे में है। कहते हैं कि वह राजा के लिए संदेश ले जाती थी और उसके दो बच्चे थे। राजा ने इस पक्षी को किसी दूसरे राजा के पास पत्र के साथ भेजा। जब वह चली गई, तो राजपरिवार के लड़कों ने उन बच्चों को अपने हाथों में दबाकर मार डाला। माँ पक्षी वापस आई और अपने बच्चों को याद करते हुए पूछा कि उसके बच्चों को किसने मारा। उन्होंने कहा, "अमुक व्यक्ति ने।" उस समय महल में एक खूंखार और हिंसक बाघ को मजबूत जंजीर से बांधकर रखा गया था। अब वे लड़के बाघ को देखने आए और बगुला उनके साथ चला गया, यह सोचते हुए कि "जिस तरह मेरे बच्चों को उन्होंने मार डाला, उसी तरह मैं इन लड़कों के साथ भी करूंगी," और उसने उन्हें पकड़कर बाघ के पैरों में फेंक दिया। बाघ ने गुर्राते हुए उन्हें कुतर दिया। पक्षी ने कहा, "अब मेरे दिल की इच्छा पूरी हो गई," और हवा में उड़कर सीधे हिमालय की ओर चली गई। यह सब सुनकर वे सत्य के हॉल में चर्चा करने लगे और कहने लगे, “महोदय, ऐसा कहा जाता है कि राजा के महल में एक बगुला अपने बच्चों को मारने वाले लड़कों को बाघ के सामने गिरा देता है, और उन्हें मारने के बाद वह भाग जाता है।” गुरुजी आए और उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, और कहा, “भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी वह अपने बच्चों को मारने वालों को मार डालती थी।” और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के बोधिसत्व ने अपने राज्य पर न्याय और निष्पक्षता से शासन किया। उनके घर में एक बगुला उनके लिए संदेश पहुँचाता था। और यह सिलसिला पहले की तरह ही चलता रहा। लेकिन यहाँ खास बात यह है कि इस घटना में, बाघ द्वारा बच्चों को मारे जाने के बाद, पक्षी ने सोचा, "मैं अब यहाँ नहीं रह सकती। मैं यहाँ से चली जाऊँगी, लेकिन जाते समय मैं राजा को बताए बिना नहीं जाऊँगी, और जैसे ही मैं उन्हें बता दूँगी, मैं चली जाऊँगी।" और इस प्रकार वह राजा के पास आई और उन्हें प्रणाम किया, और थोड़ी दूरी पर खड़े होकर बोली, "हे प्रभु, आपकी लापरवाही के कारण ही उन बच्चों ने मेरे बच्चों को मार डाला, और आवेश में आकर मैंने बदला लेने के लिए उन्हें मार डाला। अब मैं यहाँ नहीं रह सकती।" और पहला श्लोक बोलते हुए उसने कहा:

मैंने लंबे समय तक इस घर को अपना माना।
   मुझे बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ।
यह आपके कृत्य के कारण है
   अब मुझे जाने के लिए विवश होना पड़ रहा है।
यह सुनकर राजा ने दूसरा श्लोक दोहराया:

यदि कोई जवाबी कार्रवाई करे,
   गलत के बदले समान गलत का भुगतान करना,
तब उसका क्रोध शांत हो जाएगा;
   तो, हे अच्छे बगुले, कृपया यहीं रहो।
यह सुनकर पक्षी ने तीसरा छंद बोला:

पीड़ित कभी भी अपराधी के साथ अन्याय नहीं कर सकता।
   पहले की तरह एक ही बार में बनाया जाए:
हे राजा, कोई भी चीज मुझे यहाँ रोक नहीं सकती।
   देखो! अब से मैं जा रहा हूँ।
यह सुनकर राजा ने चौथा श्लोक बोला:

उन्हें बुद्धिमान होना चाहिए, मूर्ख नहीं।
  पीड़ित के साथ गलत काम करने वाला व्यक्ति
शांति और सद्भाव से जीवन व्यतीत करें:
  तो, हे अच्छे बगुले, कृपया यहीं रहो।
चिड़िया ने कहा, "हालात ऐसे हैं कि मैं यहाँ नहीं रुक सकती, महाराज," और राजा को प्रणाम करके वह हवा में उड़ गई और सीधे हिमालय की ओर चली गई।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने इस प्रकार जन्म की पहचान की: "पिछली कहानी का बगुला इस कहानी का बगुला था, लेकिन बनारस का राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अंबाकोरा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-344-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 344
अम्बाकोरा-जातक

“जिसने तुम्हारे आम खाए,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में सुनाई थी, जो आमों की रखवाली करने वाले एक बुजुर्ग भिक्षु से संबंधित है। कहते हैं कि जब वे बूढ़े हो गए, तो उन्होंने संन्यासी बन गए और जेतवन मठ के बाहरी इलाके में एक आम के बाग में पत्तों की एक कुटिया बनाई। वे न केवल स्वयं आमों से गिरे पके फल खाते थे, बल्कि अपने परिवार को भी कुछ देते थे। जब वे भिक्षा मांगने निकले, तो कुछ चोरों ने उनके आम तोड़ लिए, कुछ खा लिए और बाकी ले गए। उसी समय एक धनी व्यापारी की चार बेटियाँ अचिरवती नदी में स्नान करने के बाद भटकते हुए आम के बाग में आ गईं। जब बूढ़े भिक्षु वापस लौटे और उन्हें वहाँ पाया, तो उन्होंने उन पर अपने आम खाने का आरोप लगाया।

उन्होंने कहा, "महोदय, हम अभी-अभी आए हैं; हमने आपके आम नहीं खाए हैं।"

"तो फिर शपथ लो," उन्होंने कहा।

“जी, हम करेंगे,” उन्होंने कहा और शपथ ली। इस प्रकार शपथ दिलवाकर उन्हें शर्मिंदा करने के बाद बूढ़े व्यक्ति ने उन्हें जाने दिया।

भिक्षुओं ने जब उसके इस कार्य के बारे में सुना, तो उन्होंने सत्य के हॉल में चर्चा शुरू कर दी कि कैसे एक बूढ़े व्यक्ति ने एक व्यापारी की बेटियों से शपथ ली, जो उस आम के बाग में गया था जहाँ वह स्वयं रहता था। बूढ़े व्यक्ति ने उन्हें शपथ दिलाकर अपमानित करने के बाद छोड़ दिया। जब गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी यह बूढ़ा व्यक्ति, जब आमों की रखवाली करता था, एक धनी व्यापारी की कुछ बेटियों से शपथ लेता था और उन्हें अपमानित करने के बाद छोड़ देता था।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व इंद्र (सक्का) बने। उसी समय एक बेईमान तपस्वी ने बनारस के पास एक नदी के किनारे आम के बाग में पत्तों का एक आश्रम बनाया और आमों की रखवाली करते हुए, पेड़ों से गिरे पके आमों को खुद खा लेता था और कुछ अपने परिवार को भी देता था। वह वहाँ विभिन्न कुटिल प्रथाओं से जीविका कमाता था।

उस समय स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने सोचा, “हे मनुष्यलोक में, कौन अपने माता-पिता का सहारा बनता है, परिवार के वृद्ध सदस्यों का आदर करता है, दान देता है, नैतिक नियमों का पालन करता है और व्रत रखता है? इनमें से कौन संन्यासी जीवन अपनाकर निरंतर पुरोहितों के कर्तव्यों का निर्वाह करता है, और कौन दुराचार का दोषी है?” संसार का भ्रमण करते हुए उन्होंने एक दुष्ट तपस्वी को अपने आमों की रखवाली करते देखा और कहा, “यह पाखंडी तपस्वी, ध्यान की अवस्था में पहुंचने जैसी प्रक्रियाओं आदि जैसे पुरोहितों के

कर्तव्यों का त्याग करके, निरंतर आमों के बाग की रखवाली कर रहा है। मैं इसे खूब डराऊंगा।" अतः जब वह भिक्षा मांगने गांव गया, तो सक्का (इंद्र) ने अपनी अलौकिक शक्ति से आमों को गिरा दिया और ऐसा कर दिया मानो चोरों ने उन्हें लूट लिया हो। इसी समय बनारस के एक व्यापारी की चार बेटियाँ बाग में दाखिल हुईं, और उस झूठे तपस्वी ने उन्हें देखकर रोक दिया और कहा, "तुमने मेरे आम खा लिए हैं।"

उन्होंने कहा, "महोदय, हम अभी-अभी आए हैं। हमने इन्हें नहीं खाया है।"

"तो फिर शपथ लो," उन्होंने कहा।

"लेकिन अगर ऐसा है तो क्या हम जा सकते हैं?" उन्होंने पूछा। "बिल्कुल जा सकते हैं।"

"बहुत खूब, महोदय," उन्होंने कहा, और उनमें से सबसे बड़े ने पहली पंक्ति का उच्चारण करते हुए शपथ ली:

जिसने तुम्हारे आम खाए,
 क्योंकि उसका स्वामी किसी देहाती व्यक्ति को स्वीकार करेगा,
सफेद बालों को रंगने से धोखा होगा
 और वह चिमटे से अपने बालों को कर्ल करता था।
तपस्वी ने कहा, "तुम एक तरफ खड़ी हो जाओ," और उसने व्यापारी की दूसरी बेटी से शपथ ली, और उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

उस नौकरानी को जिसने तुम्हारा पेड़ चुराया, उसे जाने दो।
 पति की व्यर्थ चाह में आह भरते हुए,
हालांकि वह अपनी किशोरावस्था पार कर चुकी हो सकती है
 और लगभग तीस के आसपास।
और शपथ लेने और एक तरफ खड़े होने के बाद, तीसरी लड़की ने तीसरा छंद बोला:

उसने तुम्हारे पके आम खा लिए
 थका देने वाले रास्ते पर अकेले ही चलना होगा।
और मुलाकात की जगह पर भी बहुत देर हो चुकी थी।
 अपने प्रेमी के चले जाने से दुखी।
जब उसने शपथ ली और एक तरफ खड़ी हो गई, तब चौथी लड़की ने चौथा श्लोक बोला:

जिसने तुम्हारे पेड़ लूटे
 चमकीले रंग के कपड़े पहने, सिर पर फूलों की माला धारण किए हुए।
और चंदन के तेल से नम किया हुआ
 फिर भी कुंवारी बिस्तर की तलाश रहेगी।
तपस्वी ने कहा, "तुमने बहुत बड़ी शपथ ली है; आम तो दूसरों ने भी खा लिए होंगे। इसलिए अब तुम यहाँ से चले जाओ।" ऐसा कहकर उसने उन्हें विदा कर दिया। फिर इंद्र ने भयानक रूप धारण किया और उस झूठे तपस्वी को वहाँ से भगा दिया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय यह झूठा तपस्वी आमों की रखवाली करने वाला बूढ़ा व्यक्ति था। व्यापारी की चारों पुत्रियाँ तब भी वही भूमिका निभा रही थीं जो अब निभा रही हैं। लेकिन सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गजकुंभ-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-345-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 345

गजकुंभ-जातक

“यदि ज्वाला भस्म हो जाए,” इत्यादि—यह कथा जेतवन मठ के गुरु ने एक आलसी भिक्षु के विषय में सुनाई थी। कहा जाता है कि वह एक कुलीन परिवार से था और श्रावस्ती नगर में रहता था। दीक्षा को सहर्ष स्वीकार करने और भिक्षु संघ में शामिल होने के बाद वह आलसी हो गया और धार्मिक मार्ग के अभ्यास, प्रश्नोत्तर, प्रबुद्ध भक्ति और भिक्षुओं के कर्तव्यों के पालन में पूर्णतः संलग्न नहीं हो पाया, क्योंकि वह अपने पापों के प्रति आसक्त था और हमेशा सार्वजनिक विश्राम स्थलों पर पाया जाता था। भिक्षुओं ने सत्य सभा में उसकी आलस्य पर चर्चा करते हुए कहा, “हे सज्जनों, ऐसा व्यक्ति, इतनी उत्तम आस्था के साथ भिक्षु संघ में शामिल होने के बाद भी, जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाती है, निरंतर आलसी और सुस्त बना रहता है और अपने पापों के प्रति आसक्त रहता है।” जब गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, तो उन्हें जब बताया गया कि विषय क्या है, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, वह केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी आलसी था।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके प्रिय मंत्री बन गए। बनारस के राजा आलसी स्वभाव के थे, और बोधिसत्व राजा को सक्रिय करने के उपाय सोचने लगे। एक दिन राजा अपने मंत्री के साथ अपने बगीचे में गए, और वहाँ घूमते हुए उन्होंने एक आलसी कछुआ देखा। कहते हैं कि ऐसे आलसी प्राणी, भले ही दिनभर चलते रहें, केवल एक या दो इंच ही आगे बढ़ते हैं।

राजा ने उसे देखकर पूछा, "मित्र, इसका नाम क्या है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, “हे महाराज, इस प्राणी का नाम कछुआ है; और यह इतना आलसी है कि दिन भर गतिमान रहने पर भी यह केवल एक या दो इंच ही चलता है।” और उसे संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, “हे! हे कछुआ, तुम्हारी गति तो बहुत धीमी है। मान लो जंगल में आग लग जाए तो तुम क्या करोगे?” और इसके साथ ही उन्होंने पहला श्लोक कहा:

यदि जंगल में आग की लपटें फैल जाएं,
काले पड़ चुके रास्ते को पीछे छोड़ते हुए,
अरे, श्रीमान वैडलर, आप तो बहुत धीमी गति से चल रहे हैं!
क्या आप सुरक्षा का कोई उपाय ढूंढ सकते हैं?
यह सुनकर कछुए ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

हर तरफ कई छेद थे।
हर पेड़ में दरारें तो होती ही हैं।
यहां शरण मिलेगी
या फिर हमारा अंत हो जाएगा।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दो श्लोक कहे:

जो कोई भी विश्राम करने के समय जल्दी करता था,
और जब अधिकतम गति सबसे अच्छी होती है, तब देरी लंबी हो जाती है।
यह उसके कल्याण के पतले ताने-बाने को नष्ट कर देता है।
जैसे सूखी पत्ती एड़ी के नीचे कुचली जाती है।
लेकिन जो लोग जल्दी इंतजार नहीं करते और जल्दबाजी नहीं करते,
वे चंद्रमा की परिक्रमा करते हुए अपने उद्देश्य को पूरा करते हैं।
बोधिसत्व के वचन सुनकर राजा तब से आलसी नहीं रहा।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय आलसी भाई (भिक्षु) कछुआ था, और मैं स्वयं बुद्धिमान सलाहकार था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **केसव-जातक**

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----॥-346-॥---->>>> अगला

जातक क्रमांक 346
केशव जातक

"तुम जो हाल ही में," इत्यादि - यह कहानी गुरु (भगवान बुद्ध) ने जेतवन मठ में मित्रता पर्व के संबंध में सुनाई थी।

कहते हैं कि अनाथपिंडिका के घर में पाँच सौ भिक्षुओं को निरंतर भोजन कराया जाता था। वह घर भिक्षुओं की सभा के लिए सदा विश्राम स्थल बना रहता था, उनके पीले वस्त्रों की चमक से जगमगाता और पवित्र सुगंध से महकता रहता था। एक दिन राजा जब शहर में जुलूस निकाल रहे थे, तो उनकी नज़र कोषाध्यक्ष के घर में भिक्षुओं की सभा पर पड़ी। उन्होंने सोचा, "मैं भी संतों की इस सभा को शाश्वत दान दूंगा," और वे मठ गए तथा गुरु को प्रणाम करने के बाद पाँच सौ भिक्षुओं के लिए शाश्वत दान की व्यवस्था की। तब से राजा के महल में निरंतर दान-पुण्य का सिलसिला चलता रहता है, यहाँ तक कि वर्षा की सुगंध से सराबोर उत्तम चावल भी दिया जाता है, लेकिन कोई भी अपने हाथों से स्नेह और प्रेम के साथ दान नहीं करता, बल्कि राजा के मंत्री ही भोजन उपलब्ध कराते हैं, और भिक्षु स्वयं बैठकर भोजन करने की परवाह नहीं करते, बल्कि विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन लेकर अपने-अपने संरक्षकों के घर जाते हैं, और उन्हें भोजन देकर स्वयं जो कुछ भी उनके सामने परोसा जाता है, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, उसे खा लेते हैं।

एक दिन राजा के पास बहुत सारे जंगली फल लाए गए। राजा ने कहा, "इन्हें भिक्षुओं के संघ को दे दो।"

वे भोजन करने के लिए कमरे में गए और आकर राजा को बताया, "वहाँ एक भी भिक्षु नहीं है।"

"क्या, अभी समय नहीं हुआ है?" राजा ने कहा।

उन्होंने कहा, "हाँ, समय आ गया है, लेकिन भाई लोग आपके घर में भोजन ले लें, और फिर अपने भरोसेमंद सेवकों के घर जाकर उन्हें भोजन दें, और स्वयं जो कुछ भी परोसा जाए, चाहे वह साधारण हो या उत्तम, उसे खा लें।"

राजा ने कहा, "हमारा भोजन तो उत्तम है। फिर ये लोग हमारा भोजन क्यों नहीं खाते और दूसरा भोजन क्यों करते हैं?" और यह सोचकर कि "मैं गुरु से पूछूंगा," वह मठ गया और उनसे पूछा।

गुरु ने कहा, "सबसे अच्छा भोजन वही है जो प्रेम से दिया जाए। प्रेम से भोजन देकर मित्रता स्थापित करने वालों की अनुपस्थिति के कारण, बंधुआ लोग भोजन लेकर अपने किसी मित्रवत स्थान पर खाते हैं। हे महाराज, प्रेम के स्वाद के समान कोई स्वाद नहीं है। जो भोजन बिना प्रेम के दिया जाता है, चाहे वह चार मीठी चीजों से ही क्यों न बना हो, प्रेम से दिए गए जंगली चावल के बराबर भी नहीं। पुराने समय के बुद्धिमान लोग जब बीमार पड़ते थे, तो राजा और उसके पाँच परिवारों के लोग भी उपचार उपलब्ध कराते थे, फिर भी यदि रोग से राहत नहीं मिलती थी, तो वे अपने घनिष्ठ मित्रों के पास जाते थे और बिना नमक के जंगली चावल और बाजरे का शोरबा या केवल पानी छिड़के हुए बिना नमक के पत्ते खाकर ठीक हो जाते थे।" और इन शब्दों के साथ, उनके अनुरोध पर, उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था, और उन्हें युवा कप्पा नाम दिया गया था। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और बाद में संन्यासी जीवन व्यतीत किया। उसी समय, केशव नामक एक तपस्वी, जिनके साथ पाँच सौ अन्य तपस्वी भी थे, हिमालय में निवास करते हुए शिष्यों के एक समूह के गुरु बन गए। बोधिसत्व उनके पास गए और पाँच सौ शिष्यों में वरिष्ठ होकर वहीं रहने लगे और केशव के प्रति अपने मैत्रीपूर्ण और स्नेहपूर्ण भाव को प्रकट किया। इस प्रकार वे एक-दूसरे के बहुत घनिष्ठ हो गए।

कुछ समय बाद केशव अपने साथ इन तपस्वियों को लेकर नमक और सिरका लेने बनारस गए और राजा के बगीचे में ठहरे। अगले दिन वे शहर गए और महल के द्वार पर पहुँचे। जब राजा ने इन साधुओं को देखा, तो उन्होंने उन्हें अंदर बुलाया और अपने घर में भोजन कराया। उनसे प्रतिज्ञा लेकर उन्होंने उन्हें अपने बगीचे में ठहराया। बरसात का मौसम समाप्त होने पर केशव ने राजा से विदा ली। राजा ने

कहा, “हे पूज्यवर, आप वृद्ध हो गए हैं। अब आप हमारे पास ही रहें और इन युवा तपस्वियों को हिमालय भेज दें।” केशव मान गए और उन्हें मुख्य शिष्य के साथ हिमालय भेज दिया और स्वयं अकेले रह गए। कप्पा हिमालय गए और वहाँ तपस्वियों के साथ रहने लगे। कप्पा के साथ न रहने से केशव दुखी थे और उन्हें देखने की तीव्र इच्छा के कारण उन्हें नींद नहीं आई। नींद न आने के कारण उनका भोजन ठीक से पच नहीं पाया। उन्हें दस्त हो गए और फिर असहनीय पीड़ा होने लगी। राजा अपने पांच परिवारों के जोंकों के साथ तपस्वी की देखरेख करता रहा, लेकिन उसकी बीमारी में कोई कमी नहीं आई।

तपस्वी ने राजा से पूछा, "महाराज, क्या आप चाहते हैं कि मैं मर जाऊं या ठीक हो जाऊं?"

"ठीक होने के लिए, महोदय," उसने उत्तर दिया।

"तो मुझे हिमालय भेज दो," उसने कहा।

“सहमत,” राजा ने कहा और नारद नामक एक मंत्री को भेजा और उनसे कुछ वनपालों के साथ उस संत को हिमालय ले जाने को कहा। नारद उन्हें वहाँ ले गए और घर लौट आए। लेकिन कप्पा के दर्शन मात्र से केशव का मानसिक विकार दूर हो गया और उनका दुख कम हो गया। कप्पा ने उन्हें बाजरे और जंगली चावल का शोरबा दिया, जिसमें पानी में छिड़के हुए पत्ते थे, बिना नमक और मसालों के, और उसी क्षण उनका पेचिश ठीक हो गया। राजा ने फिर नारद को यह कहकर भेजा, “जाओ और तपस्वी केशव का हालचाल पता करो।” वह आए और उन्हें स्वस्थ पाकर बोले, “आदरणीय महोदय, बनारस के राजा ने अपने पाँच परिवारों की जोंकों से आपका इलाज किया, फिर भी आपकी बीमारी ठीक नहीं हुई। कप्पा ने आपका इलाज कैसे किया?” और यह कहकर उन्होंने पहला श्लोक कहा:

तुम जो हाल ही में मनुष्यों के स्वामी के साथ निवास करते थे,
  एक ऐसा राजा जो आपके दिल की हर इच्छा पूरी करने के लिए तैयार है।
कप्पा की एकांतवास की क्या खूबी है?
  क्या यह आदरणीय केशवा का यहाँ सेवानिवृत्ति का स्थान है?
यह सुनकर केशवा ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

यहां सब कुछ मनमोहक है: यहां तक कि पेड़ भी।
  हे नारद, मेरी कल्पना,
और कप्पा के वो शब्द जो हमेशा मन को प्रसन्न करते हैं
  मेरे हृदय में कृतज्ञता की एक गूंज जागृत हुई।
इन शब्दों के बाद उन्होंने कहा: "कप्पा ने मुझे प्रसन्न करने के लिए बाजरा और जंगली चावल से बना शोरबा पिलाया, जिसमें पानी में कुछ पत्ते छिड़के हुए थे, और उसमें नमक और मसाले नहीं थे, और उसके बाद मेरी शारीरिक बीमारी दूर हो गई और मैं ठीक हो गया।"

यह सुनकर नारद ने तीसरा श्लोक दोहराया:

आपने वह खाया लेकिन अब आपने सबसे शुद्ध चावल खाया।
  मांस के बेहतरीन स्वाद के साथ उबाला गया,
आप इतने फीके भोजन का आनंद कैसे ले सकते हैं?
  और क्या साधुओं के साथ बाजरा और जंगली चावल साझा किए जाते हैं?
यह सुनकर केशव ने चौथा श्लोक कहा:

भोजन चाहे साधारण हो या सुरुचिपूर्ण,
  यह कम भी हो सकता है या बहुत अधिक भी हो सकता है।
लेकिन अगर भोजन प्रेम से भरा हो,
  यह अब तक की सबसे बेहतरीन सॉस है।
नारद ने उनकी बात सुनकर राजा के पास लौटकर कहा, "केशव ने ऐसा कहा है।"

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय राजा आनंद थे, नारद सारिपुत्र थे, केशव बकाब्रह्म थे और मैं स्वयं कप्पा था।"

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-347-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 347
अयाकुटा-जातक (*1)

"हवा में क्यों?", इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए मनुष्यों के प्रति भलाई करने के कर्तव्य के विषय में सुनाई थी। इस कहानी की उत्पत्ति का वर्णन महाकान्हा जन्म में किया जाएगा। (*2)

बहुत समय पहले की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनकी प्रमुख रानी के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। जब वे वयस्क हुए, तो उन्हें सभी कलाओं का ज्ञान दिया गया और अपने पिता की मृत्यु के बाद, वे उनके राज्य में स्थापित हुए और न्यायपूर्वक शासन किया।

उस समय मनुष्य अलौकिक शक्तियों की पूजा में लीन थे और बकरियों, भेड़ों आदि का वध करके उन्हें धार्मिक भेंट चढ़ाते थे। बोधिसत्व ने ढोल बजाकर घोषणा की, "किसी भी जीवित प्राणी को मृत्युदंड नहीं दिया जाना चाहिए।" अपनी भेंट न मिलने से यक्ष (राक्षस) बोधिसत्व के विरुद्ध क्रोधित हो गए और हिमालय में अपने साथियों की सभा बुलाकर उन्होंने एक क्रूर यक्ष (राक्षस) को बोधिसत्व की हत्या करने के लिए भेजा। उसने घर के गुंबद के समान विशाल जलता हुआ लोहे का टुकड़ा उठाया और मध्याह्न के तुरंत बाद, बोधिसत्व के पलंग के पास आकर खड़ा हो गया। उसी क्षण इंद्र के सिंहासन पर ऊष्मा के लक्षण प्रकट हुए। इस मामले पर विचार करने के बाद, देवदूत ने कारण का पता लगाया और अपने वज्र को हाथ में धारण करके यक्ष (राक्षस) के ऊपर आकर खड़ा हो गया। यक्ष (राक्षस) को देखकर बोधिसत्व ने सोचा, "यह यहाँ क्यों खड़ा है? क्या यह मेरी रक्षा करने के लिए है, या मुझे मारने की इच्छा से?" और उससे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

हे यक्ष, तुम वायु में क्यों खड़े हो?
क्या आपके हाथ में लोहे का इतना बड़ा बोल्ट है?
क्या आप मुझे हर प्रकार के हानिकारक इरादों से बचाएंगे?
या फिर आज मुझे नष्ट करने के लिए भेजा गया है?
अब बोधिसत्व को केवल यक्ष (राक्षस) दिखाई दिया। उन्हें सक्का (इंद्र) दिखाई नहीं दिया। सक्का (इंद्र) के भय से यक्ष (राक्षस) ने बोधिसत्व पर प्रहार करने का साहस नहीं किया। बोधिसत्व की बात सुनकर यक्ष (राक्षस) ने कहा, "महाराज, मैं यहाँ आपकी रक्षा के लिए नहीं आया हूँ; मैं इस धधकते लोहे के टुकड़े से आप पर प्रहार करने के इरादे से आया था, परन्तु सक्का (इंद्र) के भय से मैंने आप पर प्रहार करने का साहस नहीं किया।" और अपने अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उसने दूसरा श्लोक कहा:

राक्षसों के दूत के रूप में, देखो!
मैं तुम्हारा विनाश करने के लिए प्रकट हुआ हूँ।
लेकिन मेरे द्वारा चलाया गया अग्नि-बल व्यर्थ है।
उस सिर के विरुद्ध जिसकी रक्षा इंद्र स्वयं करेंगे।
यह सुनकर बोधिसत्व ने दो और श्लोक दोहराए:

यदि इंद्र, सुजा के स्वामी, स्वर्ग में राज करते हैं,
हे महान देवताओं (देवदूतों) के राजा, मेरा कर्तव्य है कि मैं इसका समर्थन करूं।
भयानक चीखों के साथ पिशाच आकाश को चीरते हुए,
किसी भी युवा दानव में आतंकित करने की शक्ति नहीं होती।
मिट्टी की परियों को जो कहना है कहने दो,
वे कठिन मुकाबले के लिए बराबर के नहीं हैं।

इस प्रकार इंद्र ने यक्ष (राक्षस) को भगा दिया। और उस महान सत्ता को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "महाराज, भयभीत न हों। अब से हम आपकी रक्षा करेंगे। आप निःसंदेह रहें।" और ऐसा कहकर वे सीधे अपने निवास स्थान पर लौट गए।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म का वर्णन किया: "उस समय अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, और मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 405 देखें।

(2)सं. 469, खंड iv.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अरण्य-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-348-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 348
अरन्ना-जातक

"यह संदेह, मेरे पिता," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक साधारण स्त्री द्वारा एक युवक को बहकाने का वर्णन है। इस कहानी की उत्पत्ति से जुड़ी घटनाओं का वर्णन कुल्लानारद कश्यप जन्म में किया जाएगा। (*1)

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। तक्षशिला में बड़े होकर जब उन्होंने सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया, तब उनकी पत्नी का देहांत हो गया और उन्होंने संन्यासी जीवन अपना लिया तथा अपने पुत्र के साथ हिमालय में निवास करने चले गए। वहाँ अपने पुत्र को एक आश्रम में छोड़कर वे विभिन्न प्रकार के फल एकत्र करने चले गए। उसी समय कुछ लुटेरे सीमावर्ती गाँव में आतंक मचा रहे थे और अपने कैदियों को लेकर भाग रहे थे, तभी एक स्त्री शरण लेने के लिए उस आश्रम में आई और अपने प्रलोभनों से उस युवक के सजगता में बहका दिया। उसने उससे कहा, "चलो, हम यहाँ से चले चलते हैं।"

उसने कहा, "पहले मेरे पिता को लौटने दो, और उनसे मिलने के बाद मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।"

“अच्छा, जब तुम उसे देख लो, तो मेरे पास आना,” उसने कहा। और बाहर जाकर वह सड़क के बीचोंबीच बैठ गई। जब उसके पिता आए, तो उस युवा तपस्वी ने पहला श्लोक बोला:

मेरे पिता, कृपया मेरे इस संदेह का समाधान करें;
यदि मैं इस जंगल से भटककर किसी गाँव में चला जाऊं,
किस विचारधारा या किस संप्रदाय के लोग?
क्या मुझे अपने दोस्तों के लिए सबसे बुद्धिमानी से काम करना चाहिए?
तब उसके पिता ने उसे चेतावनी देते हुए तीन छंद दोहराए:

एक ऐसा व्यक्ति जो आपका विश्वास और प्यार जीत सके।
मैं आपके शब्दों पर भरोसा कर सकता हूं, और आपके धैर्य को साबित कर सकता हूं।
विचार, वचन और कर्म से कभी किसी को ठेस नहीं पहुंचाऊंगा--
उसे अपने दिल में बसा लो और एक मित्र की तरह उससे जुड़े रहो।
बंदरों की तरह चंचल स्वभाव वाले मनुष्यों के लिए

और यदि अस्थिर पाया जाए, तो उसकी ओर आकर्षित न हों।
हालांकि, आपका भाग्य कुछ हद तक एकांत रेगिस्तान तक ही सीमित होना चाहिए।
यह सुनकर उस युवा तपस्वी ने कहा, "प्रिय पिता, मुझे इन गुणों से युक्त पुरुष कहाँ मिलेगा? मैं नहीं जाऊँगा। मैं केवल आपके साथ ही रहूँगा।" और ऐसा कहकर वह लौट गया। तब उसके पिता ने उसे रहस्यमयी ध्यान में लीन होने के लिए आवश्यक विधियाँ सिखाईं। और पिता और पुत्र दोनों ही ध्यान की परमानंद अवस्था (सम्मोहन) से विमुख हुए बिना (प्रधान देवदूतों के लोक में) जन्म लेने के लिए नियत हो गए।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान इस प्रकार की: "उस समय युवक और कन्या वही थे जो बाद की कहानी में हैं। तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 477

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संधिभेद-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-349-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 349
संधिभेद-जातक

"कोई समानता नहीं," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने निंदा संबंधी नैतिक नियम के बारे में सुनाई थी।

एक समय की बात है, गुरुजी ने सुना कि छह (*1) भिक्षु निंदात्मक कहानियाँ एकत्र करते हैं। उन्होंने उन्हें अपने पास बुलाया और पूछा, "क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम अपने उन भिक्षुओं की निंदात्मक कहानियाँ एकत्र करते हो जो झगड़ालू, विवादशील और वाद-विवाद करने के लिए प्रवृत्त हैं, और इस कारण ऐसे झगड़े उत्पन्न होते हैं जो अन्यथा नहीं होते, और जब वे उत्पन्न होते हैं तो बढ़ने लगते हैं?" "हाँ, यह सच है," उन्होंने कहा। तब उन्होंने उन भिक्षुओं को फटकारा और कहा, "भाइयों, चुगली करना तेज तलवार के प्रहार के समान है। निंदा से एक दृढ़ मित्रता शीघ्र ही टूट जाती है और जो लोग इसे सुनते हैं वे अपने मित्रों से विमुख हो जाते हैं, जैसा कि शेर और बैल के मामले में हुआ था।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व उनके पुत्र के रूप में पैदा हुए, और तक्षशिला में सभी कलाओं को प्राप्त करने के बाद, अपने पिता की मृत्यु के बाद, उन्होंने अपने राज्य पर न्यायपूर्वक शासन किया।

उस समय जंगल में मवेशी चरा रहा एक चरवाहा घर लौटा और अनजाने में एक गर्भवती गाय को वहीं छोड़ गया। उस गाय और एक शेरनी के बीच गहरी दोस्ती हो गई। दोनों जानवर पक्के दोस्त बन गए और साथ-साथ घूमने लगे। कुछ समय बाद गाय ने एक बछड़ा और शेरनी ने एक शावक को जन्म दिया। पारिवारिक बंधन के कारण ये दोनों छोटे जीव भी पक्के दोस्त बन गए और साथ-साथ घूमने लगे। फिर एक वनपाल ने उनकी दोस्ती देखकर जंगल में उगने वाली कुछ वस्तुएँ लीं और बनारस जाकर राजा को भेंट कीं। जब राजा ने उससे पूछा, "मित्र, क्या तुमने जंगल में कोई अद्भुत चीज़ देखी है?" तो उसने उत्तर दिया, "महाराज, मैंने इसके अलावा कुछ भी अद्भुत नहीं देखा, लेकिन मैंने एक शेर और एक बैल को साथ-साथ घूमते हुए देखा, वे एक-दूसरे के प्रति बहुत मित्रवत थे।"

राजा ने कहा, "यदि तीसरा जानवर दिखाई दे तो निश्चित रूप से विपत्ति आएगी। यदि तुम उस जोड़े के साथ किसी तीसरे जानवर को देखो तो आकर मुझे बताना।"

"जी हां, महाराज," उसने उत्तर दिया।

जब वनपाल बनारस के लिए रवाना हुआ, तो एक सियार ने शेर और बैल को भोजन कराया। जब वह जंगल में लौटा और यह देखा, तो उसने कहा, "मैं राजा को बताऊंगा कि एक तीसरा जानवर प्रकट हुआ है," और शहर के लिए निकल पड़ा। सियार ने सोचा, "मैंने शेरों और बैलों के मांस के अलावा कोई ऐसा मांस नहीं खाया है जो मैंने न खाया हो। इन दोनों को आपस में लड़वाकर मैं इनका मांस खाऊंगा।" और उसने कहा, "यह तो तुम्हारे बारे में ऐसा ही कहता है," और इस तरह उन्हें आपस में अलग करके उसने शीघ्र ही उनमें झगड़ा करवा दिया और उन्हें मरने की हालत में पहुंचा दिया।

लेकिन वनपाल आया और राजा को बताया, “महाराज, एक तीसरा जानवर दिखाई दिया है।” राजा ने पूछा, “यह क्या है?” राजा ने कहा, “एक सियार।” राजा ने आगे कहा, “यह उन दोनों में झगड़ा करवाएगा और उनकी मृत्यु का कारण बनेगा। जब हम वहाँ पहुँचेंगे तो वे मरे हुए मिलेंगे।” ऐसा कहकर वह अपने रथ पर सवार हुआ और वनपाल द्वारा बताए गए मार्ग पर चल पड़ा। वह ठीक उसी समय पहुँचा जब दोनों जानवर आपस में लड़कर एक-दूसरे को मार चुके थे। सियार बड़े आनंद से शेर का मांस और बैल का मांस खा रहा था। जब राजा ने देखा कि वे दोनों मर चुके हैं, तो वह अपने रथ पर वहीं खड़ा रहा और अपने सारथी से ये शब्द कहे:

इन दोनों में कोई समानता नहीं थी।
न तो पत्नियों ने आपस में भोजन साझा किया; न ही भोजन साझा किया गया;
लेकिन देखो यह कितना अपमानजनक शब्द है,
दोधारी तलवार की तरह तेज,
उसने बड़ी चतुराई से यह योजना बनाई।
पुराने दोस्तों को अलग रखना होगा
इस प्रकार बैल और शेर गिर पड़े
सबसे क्रूर जानवर का शिकार:
तो सभी बिस्तर के साथी भी ऐसे ही होंगे।
इस जोड़े की दुर्दशा को देखते हुए,
यदि वे ध्यानपूर्वक सुनने को तैयार हों
निंदा करने वाले की फुसफुसाती उपहास के जवाब में।
लेकिन वे बहुत अच्छी तरह से फल-फूल रहे हैं।
स्वर्ग में रहने वालों के समान ही,
जिन लोगों की निंदा की जाती है, वे कभी उपस्थित नहीं होते--
बदनामी का मतलब है दोस्त को दोस्त से अलग करना।
राजा ने ये छंद कहे और उनसे शेर की अयाल, खाल, पंजे और दांत इकट्ठा करने को कहकर सीधे अपने शहर लौट गया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय मैं स्वयं राजा था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 28 देखें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **देवतापन्ह-जातक**
स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-350-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 350
देवतापन्हा-जातक

यह प्रश्न उम्मग्ग जातक में मिलेगा।

पुस्तक V. पंचनिपाता:

***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-351-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 351
मणिकुंडला-जातक

"जीवन के सभी सुखों से वंचित," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा के हरम में दुराचार के दोषी एक सलाहकार के बारे में सुनाई थी। इस कहानी की उत्पत्ति का घटनाक्रम पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है। (*1)

यहाँ भी बोधिसत्व बनारस के राजा बन गए। दुष्ट सलाहकार ने कोसल के राजा को बुलाया और उसे काशी राज्य पर कब्ज़ा करने और बोधिसत्व को कैद में डालने के लिए उकसाया। बनारस के राजा ने समाधि जैसी अवस्था प्राप्त की और हवा में पालथी मारकर बैठ गए। उस लुटेरे राजा के शरीर में तीव्र गर्मी उत्पन्न हुई और वह बनारस के राजा के पास आकर पहली पंक्ति को दोहराया:

जीवन के सभी सुखों से वंचित,
   रत्नजड़ित झुमके, घोड़ा और रथ,
बच्चे और प्यारी पत्नी से वंचित,
   लेकिन आपकी खुशी आपसे छिन नहीं जाएगी।
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने ये श्लोक पढ़े:-

सुख-सुविधाएं बहुत जल्द हमसे बिछड़ जाती हैं।
   सुख-सुविधाओं का अंत शीघ्र ही हो जाता है।
दु:ख में हमें दुखी करने की कोई शक्ति नहीं होती।
   खुशी भी जल्द ही दुख में बदल जाती है।
नवजात शिशु के चेहरे वाले चंद्रमा दिखाई दे रहे हैं
   कुछ समय तक बढ़ना, फिर कम होना और मर जाना।
सूर्य की गर्माहट से पूरी प्रकृति प्रसन्न हो रही है।
   आकाश में अस्त होने की जल्दी।
मुझे लगता है कि परिवर्तन ही इस दुनिया का नियम है।
   मुझे दु:ख से कोई पीड़ा नहीं होती।
इस प्रकार अब उस महान सत्ता ने सत्ता हथियाने वाले राजा को सत्य समझाया और उसके आचरण की परीक्षा लेते हुए इन छंदों को दोहराया:

मुझे आलसी, कामुक और उदासीन व्यक्ति से घृणा है।
 झूठा तपस्वी एक दुष्ट तपस्वी होता है।
एक दुष्ट राजा बिना सुने ही किसी मामले का फैसला कर देगा;
 ऋषि का क्रोध कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।
योद्धा राजकुमार एक सुविचारित निर्णय देता है,
 धर्मी न्यायाधीश की प्रसिद्धि सदा बनी रहती है।
इस प्रकार कोसला के राजा ने बोधिसत्व से क्षमा प्राप्त कर ली और उन्हें उनका राज्य वापस सौंप दिया, जिसके बाद वह अपने देश लौट गया।

गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त करते हुए जन्म का इस प्रकार वर्णन किया: "उस समय आनंद कोसल के राजा थे और मैं स्वयं बनारस का राजा था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 282, खंड 2 और क्रमांक 303 देखें

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुजाता-जातक**3
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-352-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 352
सुजाता-जातक

“जल्दी लाने की क्या ज़रूरत है,” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ज़मींदार के बारे में सुनाई थी, जिसके पिता का देहांत हो गया था। कहते हैं कि पिता की मृत्यु पर वह शोक में डूबा रहा, उसका दुख कम नहीं हो रहा था। गुरुजी ने उस व्यक्ति में मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करने की क्षमता देखी, और जब वे एक भिक्षु के साथ श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने गए, तो वे उसके घर आए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठकर अपने मेज़बान को प्रणाम किया, जो स्वयं भी बैठे हुए थे, और पूछा, “हे शिष्य, क्या तुम शोक में हो?” जब उसने उत्तर दिया, “जी, पूज्यवर, मैं हूँ,” तो गुरुजी ने कहा, “मित्र, पुराने समय के ऋषियों ने ज्ञान की बातें सुनीं, और जब उन्होंने अपने पिता को खोया, तो वे शोक नहीं मनाए।” और अपने मेज़बान के अनुरोध पर उन्होंने पुराने समय की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक जमींदार के घर में हुआ। उनका नाम सुजाता रखा गया। जब वे बड़े हुए, तो उनके दादाजी का देहांत हो गया। उनके पिता, दादाजी की मृत्यु के दिन से ही व्याकुल हो गए। उन्होंने श्मशान घाट से अस्थियां लाकर अपने उद्यान में एक मिट्टी का टीला बनवाया और उसमें अस्थियां रखकर, जब भी वे वहां जाते, स्तूप को फूलों से सजाते और गहन शोक मनाते, न स्नान करते, न इत्र लगाते और न ही भोजन करते। उन्होंने अपने व्यवसाय पर भी ध्यान नहीं दिया। यह देखकर बोधिसत्व ने सोचा, “मेरे पिता दादाजी की मृत्यु के बाद से ही व्याकुल हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे सिवा कोई उन्हें सांत्वना नहीं दे सकता। मैं उनके इस व्याकुलता का मार्ग खोजूंगा।”

तो उसने शहर के बाहर एक मरा हुआ बैल पड़ा देखा, तो वह घास और पानी लेकर उसके सामने रखकर बोला, "खाओ और पियो, खाओ और पियो।" वहाँ से गुजरने वाले सभी लोगों ने यह देखकर कहा, "मित्र सुजाता, क्या तुम पागल हो गए हो? क्या तुम मरे हुए बैल को घास और पानी चढ़ा रहे हो?" लेकिन उसने एक शब्द भी नहीं कहा।

तो वे उसके पिता के पास गए और बोले, “आपका बेटा पागल हो गया है। वह मरे हुए बैल को घास और पानी दे रहा है।” यह सुनकर जमींदार का अपने पिता के लिए शोक समाप्त हो गया और वह अपने बेटे के लिए शोक करने लगा। और वह जल्दी से गया और रोते हुए बोला, “मेरी प्यारी सुजाता, क्या तुम होश में नहीं हो? तुम बैल के मृत शरीर को घास और पानी क्यों दे रही हो?” और इस पर उसने दो श्लोक कहे:-

अपनी नई कटी घास को इतनी मीठी बनाने की इतनी जल्दी क्यों है?
और निर्जीव जानवर से पुकार कर कहूँ, "उठो और खाओ"?
किसी मरे हुए बैल को भोजन से जीवित नहीं किया जा सकता।
आपके शब्द व्यर्थ हैं और कुकर्म से प्रेरित हैं।
तब बोधिसत्व ने दो श्लोक कहे:-

मुझे लगता है कि यह राक्षस फिर से जीवित हो सकता है।
इसका सिर, पूंछ और चारों पैर बरकरार हैं।
लेकिन मेरे दादाजी के सिर और हाथ-पैर गायब हैं:

उसकी कब्र पर कोई मूर्ख नहीं रोता, सिवाय तुम्हारे।
यह सुनकर बोधिसत्व के पिता ने सोचा, “मेरा पुत्र बुद्धिमान है। वह इस लोक और परलोक दोनों के लिए उचित मार्ग जानता है। उसने यह मुझे सांत्वना देने के लिए किया।” और उन्होंने कहा, “मेरे प्रिय और बुद्धिमान पुत्र सुजाता, मैं जानता हूँ कि सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। अब से मैं शोक नहीं करूँगा। ऐसा पुत्र ही हर उस व्यक्ति में होना चाहिए जो पिता के शोक को दूर करे।” और अपने पुत्र की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा:-

घी से प्रज्वलित लौ की तरह जो तेजी से भड़क उठती है
उसे पानी से बुझाया गया, इसलिए उसने मेरा दर्द बुझा दिया।
दु:ख के तीर से मेरा हृदय घायल हो गया,
उन्होंने घाव को भर दिया और मेरा जीवन पुन: संवार दिया।
कांटा निकाल दिया गया, शांति और आनंद से परिपूर्ण,
मैं शोक करना बंद कर देता हूँ और अपने बेटे की बात सुनता हूँ।
इस प्रकार दयालु आत्माएं मनुष्यों को उनके दु:ख से मुक्ति दिलाती हैं।
बुद्धिमान सुजाता ने अपने पिता को राहत पहुंचाई।

अपने प्रवचन के अंत में गुरु ने सत्य प्रकट किए और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर भूस्वामी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की: "उस समय मैं स्वयं सुजाता थी।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 332 में दोहराया गया

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धोंसखा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-353-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 353
धोनासखा-जातक

“यद्यपि तुम अब हो,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने भग्गों के देश में सुमसुमरगिरि (मगरमच्छ पर्वत) के निकट भेषकला वन में रहते हुए युवा राजकुमार बोधि के विषय में सुनाई। यह राजकुमार उदेना का पुत्र था और उस समय सुमसुमरगिरि में रहता था। उसने एक अत्यंत कुशल कारीगर को बुलाया और उससे कोकनादा नामक एक महल बनवाया, जो अन्य राजाओं के महलों से बिलकुल भिन्न था। बाद में उसने सोचा, “यह कारीगर किसी अन्य राजा के लिए भी ऐसा ही महल बना सकता है।” ईर्ष्यावश उसने उसकी आँखें निकाल लीं। यह बात भिक्षुओं की सभा में ज्ञात हुई। तब उन्होंने सत्य के सभागार में इस विषय पर चर्चा की और कहा, “महोदय, युवा राजकुमार बोधि ने फलाँ कारीगर की आँखें निकलवा लीं। निश्चय ही वह एक कठोर, क्रूर और हिंसक व्यक्ति है।” गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि जब वे सब एक साथ बैठे थे तो वे किस विषय पर चर्चा कर रहे थे। जब उन्होंने यह सुना तो उन्होंने कहा, "न केवल अभी, बल्कि पहले भी उनका स्वभाव ऐसा ही था, और पुराने समय में उन्होंने इसी प्रकार हज़ार योद्धाओं की आँखें निकाल दीं और उन्हें मारने के बाद उनके मांस को बलि के रूप में अर्पित किया।" और ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें बीते समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तब बोधिसत्व तक्षशिला में विश्वप्रसिद्ध शिक्षक बन गए और भारत भर से योद्धा और ब्राह्मण जाति के युवक उनसे विद्या सीखने के लिए आने लगे। बनारस के राजा के पुत्र, राजकुमार ब्रह्मदत्त को भी उन्होंने तीनों वेदों की शिक्षा दी। अब वे स्वभाव से कठोर, निर्दयी और हिंसक थे। बोधिसत्व ने अपनी दूरदृष्टि से उनके स्वभाव को जानकर कहा, "मेरे मित्र, तुम कठोर, निर्दयी और हिंसक हो, और यह सत्य है कि हिंसाशील व्यक्ति द्वारा प्राप्त शक्ति क्षणभंगुर होती है:

जब उसकी शक्ति उससे चली जाती है, तो वह समुद्र में डूबे हुए जहाज के समान होता है। उसे कोई सुरक्षित बंदरगाह नहीं मिलता। इसलिए ऐसा स्वभाव मत रखो।" और उपदेश के रूप में उन्होंने दो श्लोक दोहराए:-

हालांकि अब आप शांति और समृद्धि से परिपूर्ण हैं,
ऐसा सुखद भाग्य अल्पकालिक ही सिद्ध हो सकता है:
धन-दौलत नष्ट हो जाए तो दुःख और व्याकुलता से मत घबराओ।
जैसे तूफान में फंसा कोई नाविक समुद्र में बहुत दूर फंस गया हो।
हर किसी को उसके कर्मों के अनुसार ही फल मिलेगा।
और वह जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है।
चाहे वह अच्छी जड़ी बूटी हो या फिर हानिकारक खरपतवार।
फिर उन्होंने अपने गुरु को विदाई दी और बनारस लौट आए। अपने पिता को कलाओं में अपनी निपुणता का प्रदर्शन करने के बाद, उन्हें वायसराय का पद प्राप्त हुआ और पिता की मृत्यु के बाद वे राज्य के उत्तराधिकारी बने। उनके कुल पुरोहित, पिंगिया नाम के, एक कठोर और निर्दयी व्यक्ति थे। यश के लालच में उन्होंने सोचा, "क्या होगा यदि मैं भारत के सभी शासकों को इस राजा के हाथों पकड़वा दूँ, और इस प्रकार वह एकमात्र सम्राट बन जाए और मैं एकमात्र पुरोहित बन जाऊँ?" और उन्होंने राजा को अपनी बात मनवा ली।

और राजा ने एक विशाल सेना के साथ आगे बढ़कर एक राजा के नगर पर कब्जा कर लिया और उसे बंदी बना लिया। इसी प्रकार उसने पूरे भारत पर शासन करने की शक्ति प्राप्त कर ली और अपने साथ एक हजार राजाओं को लेकर तक्षशिला राज्य पर कब्जा करने के लिए आगे बढ़ा। बोधिसत्व ने नगर की दीवारों की मरम्मत करवाकर उसे शत्रुओं के लिए अभेद्य बना दिया। बनारस के राजा ने गंगा नदी के किनारे एक विशाल बरगद के वृक्ष के नीचे अपने ऊपर एक मंडप और चारों ओर एक पर्दा लगवाया। अपने लिए एक पलंग बिछाकर वह वहाँ रहने लगा। भारत के मैदानों में युद्ध करते हुए उसने एक हजार राजाओं को बंदी बना लिया था, लेकिन तक्षशिला पर आक्रमण में असफल होने पर उसने अपने पुरोहित से पूछा, "गुरुजी, यद्यपि हम बंदी राजाओं की एक बड़ी सेना लेकर यहाँ आए हैं, फिर भी हम तक्षशिला पर कब्जा नहीं कर सकते। अब हम क्या करें?"

“महाराज,” उसने उत्तर दिया, “हजारों राजाओं की आंखें निकाल दीजिए और उनके पेट चीरकर उनका मांस और पांच मीठे पदार्थ निकाल लीजिए और इस बरगद के संरक्षक देवता को अर्पित कीजिए। और वृक्ष के चारों ओर एक घेरा बनाकर उसे पांच इंच गहरे रक्त से भर दीजिए। इस प्रकार शीघ्र ही विजय हमारी होगी।”

राजा तुरंत मान गया और शक्तिशाली पहलवानों को पर्दे के पीछे छिपाकर, उसने एक-एक करके सभी राजाओं को बुलाया। जब पहलवानों ने उन्हें अपनी बाहों में जकड़कर बेहोश कर दिया, तो उसने उनकी आँखें निकलवा दीं। उनकी मृत्यु के बाद, उसने उनका मांस लिया और शवों को गंगा में बहा दिया। फिर उसने ऊपर वर्णित आहुति दी, ढोल बजवाया और युद्ध के लिए चला गया। तभी एक यक्ष (राक्षस) अपने पहरेदार बुर्ज से आया और राजा की दाहिनी आँख निकाल ली। भयंकर पीड़ा हुई और पीड़ा से पागल होकर वह बरगद के पेड़ के नीचे बने पलंग पर लेट गया। उसी क्षण एक गिद्ध एक नुकीली हड्डी लेकर पेड़ की चोटी पर बैठ गया। मांस खाते समय उसने हड्डी गिरा दी, और नुकीली नोक लोहे की कीलों की तरह राजा की बाईं आँख पर लगी, जिससे वह आँख भी नष्ट हो गई। इस क्षण उन्हें बोधिसत्व के शब्द याद आए और उन्होंने कहा, "हमारे गुरु ने जब कहा था कि 'ये मनुष्य अपने कर्मों के अनुरूप फल भोगते हैं, जैसे बीज के अनुरूप फल मिलता है', तो मुझे लगता है कि उन्होंने ये सब बातें अपने मन में रखते हुए कही थीं।" और रोते हुए उन्होंने पिंगिया को दो छंदों में संबोधित किया:-

आह! अब जाकर मुझे सच्चाई का पता चला।
मेरे युवावस्था में ही गुरु ने मुझे यह शिक्षा दी:
“पाप मत करो,” वह चिल्लाया, “वरना बुरा कर्म होगा।”
एक दिन शायद यही बात आपको अपने ही दंड की ओर ले जाए।
इस वृक्ष की छंटी हुई शाखाओं और कांपती हुई छाया के नीचे
चंदन के तेल का अर्पण किया गया।
मैंने यहीं पर एक हजार राजाओं का वध किया, और देखो!
उस समय उन्होंने जो पीड़ा सहन की, अब मुझे भी वही सहनी होगी।
इस प्रकार शोक मनाते हुए, उन्होंने अपनी रानी पत्नी को याद किया और इस श्लोक को दोहराया:-

हे उब्बारी, मेरी सांवली रानी,
सुंदर मोरिंगा वृक्ष की टहनी की तरह लचीला,

चंदन के तेल से अपने अंगों को नम करें।
मैं तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगा?
हाँ, मृत्यु भी इससे कहीं कम कष्टदायी होगी!

ये शब्द बुदबुदाते हुए ही उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में पुनर्जन्म लेकर लौटा। सत्ता के लालच में डूबा हुआ पुजारी न तो उसे बचा सका और न ही अपनी शक्ति से स्वयं को बचा सका, और उसकी मृत्यु होते ही उसकी सेना तितर-बितर हो गई और भाग गई।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय युवा राजकुमार बोधि एक लुटेरा राजा था, देवदत्त पिंगिया था, और मैं स्वयं विश्वप्रसिद्ध शिक्षक था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उरगा-जातक**2
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-354-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 354
उरगा-जातक

"मनुष्य अपने नश्वर शरीर को त्याग देता है," इत्यादि। यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक जमींदार के बारे में सुनाई थी, जिसके पुत्र का निधन हो गया था। प्रारंभिक कहानी ठीक वैसी ही है जैसी उस व्यक्ति की थी जिसने अपनी पत्नी और पिता दोनों को खो दिया था। यहाँ भी गुरुजी उसी प्रकार उस व्यक्ति के घर गए और बैठे हुए उसे प्रणाम करने के बाद पूछा, "महोदय, क्या आप शोक में हैं?" जब उन्होंने उत्तर दिया, "जी, पूज्यवर, अपने पुत्र की मृत्यु के बाद से मैं शोक में डूबा हुआ हूँ," तो उन्होंने कहा, "महोदय, सत्य है कि जो विघटन के अधीन है, वह विघटन के अधीन है, और जो विनाश के अधीन है, वह विनाश के अधीन है, और यह केवल एक व्यक्ति के साथ या केवल एक गाँव में ही नहीं होता, बल्कि असंख्य लोकों में, और तीनों गुणों में, ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो मृत्यु के अधीन न हो, और न ही कोई ऐसी वस्तु है जो इस अवस्था में रह सकती है। सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, और सभी सांसारिक वस्तुएँ विघटन के अधीन हैं। परन्तु प्राचीन ऋषि-मुनि, जब अपने पुत्र को खो देते थे, तो कहते थे, "जो विनाश के अधीन है, वह नष्ट हो जाता है," और शोक नहीं करते थे।" और इस पर उस व्यक्ति के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, बोधिसत्व का जन्म बनारस के द्वार के बाहर एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे खेतों में मजदूरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। उनके दो बच्चे थे, एक पुत्र और एक पुत्री। जब पुत्र बड़ा हुआ, तो पिता ने अपने ही परिवार के एक उच्च वर्ग की महिला को उसके लिए घर में आमंत्रित किया। इस प्रकार, एक दासी के साथ उनका परिवार छह सदस्यों का हो गया: बोधिसत्व और उनकी पत्नी, पुत्र और पुत्री, बहू और दासी। वे सभी सुखपूर्वक और प्रेमपूर्वक एक साथ रहते थे। बोधिसत्व ने अन्य पाँचों को सलाह दी: "जैसा तुम्हें प्राप्त हुआ है, दान करो, पवित्र दिनों का पालन करो, नैतिक नियमों का पालन करो, मृत्यु के विषय में चिंतन करो, अपनी नश्वरता के प्रति सचेत रहो। क्योंकि हम जैसे प्राणियों के लिए मृत्यु निश्चित है, जीवन अनिश्चित: सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर और क्षय के अधीन हैं। इसलिए दिन-रात अपने आचरण पर ध्यान दो।" उन्होंने उनकी शिक्षा को सहर्ष स्वीकार कर लिया और मृत्यु के विचार पर गंभीरतापूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक दिन बोधिसत्व अपने पुत्र के साथ खेत जोतने गए। पुत्र ने कूड़ा-करकट इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी। जहाँ वे थे, वहाँ से कुछ ही दूरी पर एक चींटी के टीले में एक साँप रहता था। धुएँ से साँप की आँखों में जलन हुई। क्रोधित होकर वह अपने बिल से बाहर निकला और सोचने लगा, "यह सब उस युवक की वजह से हुआ है," और अपने चारों दाँतों से उसे काट लिया। युवक वहीं गिर पड़ा और मर गया। बोधिसत्व ने उसे गिरते देख अपने बैलों को वहीं छोड़ दिया और उसके पास आए। जब उन्होंने देखा कि वह मर चुका है, तो उन्होंने उसे उठाया और एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया। उन्हें एक चादर से ढक दिया और न तो रोए और न ही शोक मनाया। उन्होंने कहा, "जो नश्वर है, वह नश्वर है, और जो मृत्यु के अधीन है, वह मर चुका है। समस्त सांसारिक अस्तित्व क्षणभंगुर और मृत्यु के योग्य हैं।" वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति को पहचानते हुए वे खेत जोतने लगे। पास से गुजरते हुए एक पड़ोसी को देखकर उन्होंने पूछा, "मित्र, क्या तुम घर जा रहे हो?" और जब उसने "हाँ" में उत्तर दिया, तो उसने कहा, "तो कृपया हमारे घर जाओ और मालकिन से कहो, 'आज पहले

की तरह दो लोगों के लिए भोजन मत लाओ, बल्कि केवल एक के लिए लाओ। अब तक केवल दासी ही भोजन लाती थी, लेकिन आज तुम चारों साफ वस्त्र पहनो और अपने हाथों में इत्र और फूल लेकर आओ।'"

"ठीक है," उसने कहा और जाकर ब्राह्मण की पत्नी से ठीक यही शब्द कहे।

उसने पूछा, "महोदय, यह संदेश किसके द्वारा दिया गया था?"

"ब्राह्मण की कसम, महिला," उसने उत्तर दिया।

तब उसे समझ आया कि उसका पुत्र मर गया है। परन्तु वह जरा भी नहीं काँपी। पूर्ण आत्मसंयम दिखाते हुए, सफेद वस्त्र पहने और हाथों में इत्र और फूल लिए, उसने उनसे भोजन लाने को कहा और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खेत में चली गई। परन्तु उनमें से किसी ने भी न तो आँसू बहाए और न ही रोई। बोधिसत्व, जहाँ युवक लेटा था, वहीं छाया में बैठे रहे और अपना भोजन किया। भोजन समाप्त होने पर, सबने लकड़ियाँ लीं और शव को चिता पर रखकर, इत्र और फूल अर्पित किए और फिर उसे अग्नि दे दी। परन्तु किसी ने भी एक आँसू नहीं बहाया। सब मृत्यु के विचार में ही जी रहे थे। उनके पुण्य का ऐसा प्रभाव था कि सक्का (इंद्र) का सिंहासन ऊष्मा से भर गया। सक्का (इंद्र) ने कहा, "अरे, मुझे आश्चर्य है कि कौन मुझे मेरे सिंहासन से नीचे उतारने के लिए उत्सुक है?" और अंतर्दृष्टि से उसने पाया कि गर्मी इन लोगों में विद्यमान सद्गुण की शक्ति के कारण थी, और अत्यंत प्रसन्न होकर उसने कहा, "मुझे उनके पास जाकर शेर की दहाड़ की तरह ज़ोर से उपदेश देना चाहिए, और तुरंत बाद उनके निवास स्थान को सात रत्नों से भर देना चाहिए।" और वहाँ जल्दी से जाकर वह चिता के पास खड़ा हो गया और बोला, "तुम क्या कर रहे हो?"

"हम एक आदमी के शव को जला रहे हैं, मेरे स्वामी।"

"तुम किसी इंसान को नहीं जला रहे हो," उसने कहा। "मुझे लगता है कि तुम किसी जानवर का मांस भून रहे हो जिसे तुमने मार डाला है।"

“ऐसा नहीं है, महाराज,” उन्होंने कहा। “हम तो बस एक मनुष्य के शरीर को जला रहे हैं।”

फिर उसने कहा, "यह कोई दुश्मन ही रहा होगा।"

बोधिसत्व ने कहा, "यह हमारा सच्चा पुत्र है, शत्रु नहीं।"

"तब वह आपके लिए बेटे के समान प्रिय नहीं हो सकता था।"

"वह बहुत प्रिय थे, मेरे स्वामी।"

तो फिर तुम रोते क्यों नहीं हो?

तब बोधिसत्व ने अपने न रोने का कारण बताते हुए पहला श्लोक कहा:-

जीवन में सुख समाप्त हो जाने पर मनुष्य अपने नश्वर शरीर को त्याग देता है।
जिस प्रकार एक सांप अपनी पुरानी केंचुली को फेंकने का आदी होता है।
किसी मित्र का शोक भी मृतक की राख को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? वह उसी रास्ते से यात्रा करता है जिस पर उसे चलना था।
बोधिसत्व की बात सुनकर सक्का (इंद्र) ने ब्राह्मण की पत्नी से पूछा, "हे महिला, मृत व्यक्ति का आपके प्रति क्या रवैया था?"

"मैंने उसे दस महीने तक अपने गर्भ में पाला, उसे अपना दूध पिलाया, उसके हाथों और पैरों की गतिविधियों को निर्देशित किया, और वह मेरा बड़ा बेटा था, मेरे स्वामी।"

"मान लिया कि एक पिता स्वभाव से रो नहीं सकता, लेकिन एक माँ का हृदय निश्चित रूप से कोमल होता है। तो फिर आप क्यों नहीं रोतीं?"

और यह समझाने के लिए कि वह क्यों नहीं रोई, उसने कुछ पंक्तियाँ कहीं:-

वह बिना बुलाए यहाँ आया, बिना पूछे ही जल्द ही चला जाएगा;

वह जैसे आया वैसे ही चला गया। इसमें दुख का क्या कारण है?
किसी मित्र का शोक भी मृतक की राख को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? वह उसी रास्ते से यात्रा करता है जिस पर उसे चलना था।
ब्राह्मण की पत्नी की बात सुनकर सक्का (इंद्र) ने बहन से पूछा: "हे महिला, वह मृत व्यक्ति तुम्हारे लिए क्या मायने रखता था?"

"वह मेरे भाई थे, मेरे स्वामी।"

"महोदया, बहनें तो अपने भाइयों से बहुत प्यार करती हैं। आप क्यों नहीं रोतीं?"

लेकिन उसने यह समझाने के लिए कि वह क्यों नहीं रोई, कुछ पंक्तियाँ दोहराईं:-

अगर मैं उपवास करूं और रोऊं, तो इससे मुझे क्या लाभ होगा?
अफसोस! मेरे दोस्त और परिवार वाले और भी ज्यादा दुखी होंगे।
किसी मित्र का शोक भी मृतक की राख को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? वह उसी रास्ते से यात्रा करता है जिस पर उसे चलना था।
सक्का (इंद्र) ने बहन की बात सुनकर अपनी पत्नी से पूछा: "हे देवी, वह तुम्हारे लिए क्या था?"

"वह मेरे पति थे, मेरे स्वामी।"

"जब पति की मृत्यु हो जाती है, तो विधवाएँ निःसंकोच हो जाती हैं। तुम क्यों नहीं रोती हो?"

लेकिन उसने अपने रोने का कारण बताते हुए दो पंक्तियाँ कहीं:-

जैसे बच्चे ऊपर चाँद को पकड़ने के लिए व्यर्थ में रोते हैं,
इसलिए मनुष्य अपने प्रियजनों के बिछड़ने पर व्यर्थ ही शोक मनाते हैं।
किसी मित्र का शोक भी मृतक की राख को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? वह उसी रास्ते से यात्रा करता है जिस पर उसे चलना था।
पत्नी की बात सुनकर इंद्र ने दासी से पूछा, "हे स्त्री, वह तुम्हारे लिए क्या था?"

"वह मेरे स्वामी थे, मेरे मालिक थे।"

"निस्संदेह, उसने तुम्हारा शोषण किया होगा, तुम्हें पीटा होगा और तुम पर अत्याचार किया होगा, इसलिए यह सोचकर कि वह खुशी-खुशी मर गया है, तुम रोती नहीं हो।"

"ऐसा मत कहिए, मेरे स्वामी। यह उनके मामले के अनुकूल नहीं है। मेरे युवा स्वामी मेरे प्रति बहुत धैर्यवान, प्रेमशील और दयालु थे, और मेरे लिए एक सधे हुए बच्चे के समान थे।"

तो फिर तुम रोते क्यों नहीं हो?

और उसने यह समझाने के लिए कि वह क्यों नहीं रोई, कुछ पंक्तियाँ कही:-

मिट्टी का टूटा हुआ घड़ा, आह! इसे कौन जोड़ सकता है?
इसी प्रकार, मृतकों का शोक मनाना भी व्यर्थ का श्रम है।
किसी मित्र का शोक भी मृतक की राख को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? वह उसी रास्ते से यात्रा करता है जिस पर उसे चलना था।
उन सबकी बातें सुनकर इंद्र (सक्का) अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "तुमने मृत्यु के विचार में ही अपना जीवन व्यतीत किया है। अब से तुम अपने हाथों से परिश्रम न करना। मैं (सक्का), स्वर्ग का राजा, तुम्हारे घर में सातों रत्नों का असंख्य सृजन करूंगा। तुम्हें दान देना है, नैतिक नियमों का पालन करना है, पवित्र दिनों का ध्यान रखना है और अपने आचरण पर ध्यान देना है।" ऐसा कहकर उन्होंने उनके घर को अपार धन से भर दिया और उनसे विदा हो गए।

गुरु ने धम्म (धार्मिक मार्ग) की व्याख्या समाप्त करने के बाद सत्यों का स्पष्टीकरण दिया और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर भूस्वामी ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया: "उस समय खुज्जुत्तारा दासी थी, उप्पलावन्ना पुत्री, राहुल पुत्र, खेमा माता और मैं स्वयं ब्राह्मण था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **घट-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----॥-355-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 355
घट-जातक

"जब दूसरे रो रहे थे," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने कोसल के राजा के एक मंत्री के बारे में सुनाई। प्रारंभिक कहानी पहले दी गई कहानी के समान ही है। लेकिन इस मामले में राजा ने अपने एक कुशल सेवक को बहुत सम्मान देने के बाद कुछ उपद्रवियों की बात मानकर उसे पकड़वाकर जेल में डाल दिया। जब वह जेल में था, तब उसने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया। राजा ने उसके महान पुण्य को जानकर उसे रिहा कर दिया। उसने एक सुगंधित माला ली और गुरु के समक्ष आकर उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया। तब गुरु ने पूछा कि क्या उसके साथ कोई बुरा हुआ है? "जी, पूज्यवर," उसने उत्तर दिया, "लेकिन बुरे से ही मुझे भला हुआ है। मैंने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया है।" "सचमुच," गुरु ने कहा, "केवल तुम ही नहीं, बल्कि प्राचीन ऋषियों ने भी बुरे से भला पाया है।" और यह कहकर उन्होंने उसके अनुरोध पर अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब उनकी रानी पत्नी से बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका नाम राजकुमार घटा रखा गया। बाद में उन्होंने तक्षशिला में कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया।

अब एक मंत्री ने राजमहल में दुराचार किया। राजा ने अपनी आँखों से अपराध देखकर उसे अपने राज्य से निर्वासित कर दिया। उस समय श्रावस्ती नगर में वांका नामक राजा का शासन था। मंत्री उसके पास गया और उसकी सेवा में प्रवेश करके, ठीक उसी प्रकार जैसे पिछली कथा (*1) में बताया गया है, राजा का विश्वास जीत लिया और उसे बनारस राज्य पर कब्जा करने के लिए राजी कर लिया। राज्य पर कब्जा करने के बाद, उसने बोधिसत्व को जंजीरों में जकड़कर कारागार में डाल दिया। बोधिसत्व समाधि में लीन हो गए और पालथी मारकर हवा में बैठ गए। वांका के शरीर में तीव्र ऊष्मा उत्पन्न हुई। वह आया और उसने बोधिसत्व की शांति को एक पूर्ण विकसित कमल की सुंदरता से जगमगाते हुए, सुनहरे दर्पण के समान देखा, और प्रश्न के रूप में प्रथम श्लोक को दोहराया:-

जबकि दूसरे रोते-बिलखते हैं, उनके गाल आंसुओं से भीगे हुए हैं,
घाटा अब भी मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ कभी शिकायत क्यों नहीं करता?
तब बोधिसत्व ने शोक न करने का कारण बताते हुए शेष श्लोकों का पाठ किया:-

अतीत को बदलना सभी दुखों के लिए व्यर्थ है।
   इसमें भविष्य के राज्य के लिए कोई आशीर्वाद नहीं है:
मैं, वांका, अपने कष्टों की शिकायत क्यों करूं?
   दुःख हमारे लिए साथी बनने के योग्य नहीं है।
जो दुःख से बीमार होता है, वह तड़प-तड़प कर मर जाता है।
   उसका भोजन बेस्वाद और नीरस होता जा रहा है।
जैसे तीरों से भेदा गया हो, अपने दुख के लिए शिकार बना हो,
   वह अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों के लिए हंसी का पात्र बन जाता है।
चाहे मेरा घर सूखी जमीन पर हो या समुद्र पर,
   चाहे वह गांव हो या कोई डरावना जंगल,
कोई भी दुख कभी मेरे पास नहीं आएगा।
   परिवर्तित आत्मा को किसी बात का भय नहीं रहता।

लेकिन जो व्यक्ति स्वयं में पूर्णता से रहित है
  और इंद्रियों को तृप्त करने वाली चीजों की लालसा से प्रज्वलित है,
पूरी दुनिया नहीं, अपनी सारी गंदी और अवैध रूप से अर्जित दौलत के साथ,
  क्या यह कभी ऐसे व्यक्ति की इच्छा को पूरा कर सकता है?
अत: इन चार श्लोकों को सुनकर वांका ने बोधिसत्व से क्षमा मांगी और उन्हें उनका राज्य लौटा कर अपने मार्ग पर चल दिया। परन्तु बोधिसत्व ने अपना राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया और हिमालय में जाकर तपस्वी बन गए। वे बिना किसी व्यवधान के अपनी समाधि जैसी ध्यान साधना में लीन रहे और ब्रह्मलोक (परमलोक) में जन्म लेने के लिए नियत हुए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा वांका थे और मैं स्वयं राजा घटा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 303 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कराण्डीय-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-356-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 356
करंदीय जातक

“जंगल में क्यों?” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो धर्म के सरदार (सारिपुत्र) के बारे में थी। कहते हैं कि जब दुष्ट लोग, जैसे शिकारी, मछुआरे आदि, उनके पास आते थे, तो वे उन्हें और समय-समय पर मिलने वाले अन्य लोगों को नैतिक नियम समझाते हुए कहते थे, “धर्म का मार्ग अपनाओ।” गुरु के प्रति आदर के कारण वे उनकी बात नहीं मानते थे और धर्म का मार्ग अपना लेते थे, परन्तु उसका पालन नहीं करते थे और अपने-अपने काम में लगे रहते थे। गुरु ने अपने साथी भिक्षुओं से सलाह ली और कहा, “महोदय, ये लोग मुझसे धर्म का मार्ग तो ग्रहण करते हैं, परन्तु उसका पालन नहीं करते।” उन्होंने उत्तर दिया, “हे परम पूज्य, आप उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें धर्म का मार्ग सिखाते हैं, और क्योंकि वे आपकी बात मानने से इनकार नहीं करते, इसलिए वे उसे स्वीकार कर लेते हैं। अब से ऐसे लोगों को धर्म का मार्ग न सिखाएँ।” गुरु को यह सुनकर ठेस पहुँची। इस घटना के बारे में सुनकर उन्होंने सत्य के हॉल में चर्चा शुरू कर दी कि कैसे वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र हर उस व्यक्ति को धर्म का उपदेश देते थे जो उन्हें दिखाई देता था। गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षुओं की सभा में क्या चर्चा चल रही है, और यह सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी वे हर उस व्यक्ति को धर्म का उपदेश देते थे जो उन्हें दिखाई देता था, भले ही उन्होंने इसके लिए न कहा हो।" और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और वे वहीं पले-बढ़े। वे तक्षशिला में एक विश्वप्रसिद्ध गुरु के प्रमुख शिष्य बने। उस समय, गुरु सभी को, चाहे वे मछुआरे हों या अन्य, नैतिक नियमों का उपदेश देते थे, यहाँ तक कि उनकी अनिच्छा होने पर भी, और बार-बार उनसे धर्म मार्ग अपनाने का आग्रह करते थे। परन्तु वे नियम को ग्रहण तो करते थे, पर उसका पालन नहीं करते थे। गुरु ने अपने शिष्यों से इस विषय पर चर्चा की। शिष्यों ने कहा, “हे गुरु, आप उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें उपदेश देते हैं, और इसीलिए वे धर्म का उल्लंघन करते हैं। अब से केवल उन्हीं को उपदेश दीजिए जो सुनना चाहते हैं, न कि उन्हें जो सुनना नहीं चाहते।” गुरु को बहुत खेद हुआ, परन्तु फिर भी उन्होंने सभी को नैतिक नियमों का उपदेश दिया।

एक दिन एक गाँव से कुछ लोग आए और गुरु को ब्राह्मणों को अर्पित किए गए केक खाने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने अपने शिष्य करंदिया को बुलाया और कहा, "मेरे प्रिय पुत्र, मैं नहीं जा रहा हूँ, तुम इन पाँच सौ शिष्यों के साथ वहाँ जाओ, केक लो और मेरे हिस्से का केक लाकर दो।" तो उन्होंने उसे भेज दिया। शिष्य गया, और लौटते समय उसने रास्ते में एक गुफा देखी, और उसके मन में यह विचार आया, "हमारे गुरु बिना पूछे ही सबको धर्म का मार्ग दिखाते हैं। अब से मैं उन्हें केवल उन्हीं को उपदेश देने के लिए कहूँगा जो सुनना

चाहते हैं।" और जब अन्य शिष्य आराम से बैठे थे, तब वह उठा और एक बड़ा पत्थर उठाकर गुफा में फेंक दिया, और बार-बार यही करता रहा। तब शिष्य खड़े हो गए और बोले, "गुरुजी, आप क्या कर रहे हैं?" करंदिया ने एक शब्द भी नहीं कहा। और वे जल्दी से जाकर अपने गुरु को बताने लगे। गुरु आए और करंदिया से बातचीत करते हुए पहली पंक्ति दोहराई:-

जंगल में अकेले क्यों?
अक्सर एक विशाल पत्थर को पकड़ते हुए,
क्या तुमने इसे जानबूझकर फेंका था?
क्या यह पर्वतीय गुफा भरने के लिए थी?
उनकी बात सुनकर करंदिया ने अपने स्वामी को उत्तेजित करने के लिए दूसरी पंक्ति कही:-

मैं इस समुद्र से घिरी भूमि को बनाऊंगा
मानव हथेली की तरह चिकना:
इस प्रकार मैंने टीले और पहाड़ी को समतल किया
और पत्थरों से हर खोखले भाग को भर दो।
यह सुनकर ब्राह्मण ने तीसरा श्लोक दोहराया:-

वह कभी भी नश्वर जन्म का नहीं था।
इसमें धरती को समतल करने की शक्ति है।
दुर्लभ करंदिया उम्मीद कर सकते हैं
सिर्फ एक गुफा से ही काम चलाना था।
यह सुनकर शिष्य ने चौथा श्लोक कहा:-

यदि कोई व्यक्ति नश्वर जन्म का हो
इसमें पृथ्वी को समतल करने की शक्ति नहीं है।
गलत धारणा रखने वाले लोग शायद इनकार कर दें।
ब्राह्मण, आपके विचारों को अपनाने के लिए।
यह सुनकर शिक्षक ने उचित उत्तर दिया। क्योंकि अब उन्हें यह आभास हो गया था कि अन्य लोग उनसे असहमत हो सकते हैं, और यह सोचकर कि "मैं अब ऐसा नहीं करूंगा," उन्होंने पाँचवाँ श्लोक कहा:-

मित्र करंदिया, संक्षेप में
आप मेरी भलाई के लिए सलाह देते हैं:
पृथ्वी को कभी समतल नहीं किया जा सकता।
न ही सभी पुरुष सहमत हो सकते हैं।
इस प्रकार गुरु ने अपने शिष्य की प्रशंसा की। और शिष्य ने गुरु से इस प्रकार बात करने के बाद उसे घर ले गया।

इस पाठ को समाप्त करते हुए गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय सारिपुत्र ब्राह्मण थे और मैं स्वयं उनका शिष्य करंदिया था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लाटुकिका-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-357-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 357
लतुकिका-जातक

"साठ वर्ष का हाथी," इत्यादि - यह कहानी गुरुजी ने बाँस के वन में रहते हुए देवदत्त के विषय में सुनाई थी। एक दिन सत्य के हॉल में चर्चा हुई और सबने कहा, "महोदय, देवदत्त कठोर, निर्दयी और हिंसक है। उसे मनुष्यों पर जरा भी दया नहीं आती।" जब गुरुजी आए,

तो उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, और जब उन्होंने सुना, "भाइयों, वह न केवल अभी, बल्कि पहले भी निर्दयी था।" और यह कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने एक युवा हाथी के रूप में जन्म लिया और बड़े होकर एक सुंदर और आकर्षक जानवर बन गए। वे अस्सी हजार हाथियों के झुंड के मुखिया बने और हिमालय में रहने लगे। उसी समय एक बटेर ने हाथियों के चारागाह में अंडे दिए। जब अंडे से बच्चे निकलने वाले थे, तो उन्होंने खोल तोड़कर अंडे से बाहर आ गए। उनके पंख अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुए थे और वे उड़ने में भी असमर्थ थे, तभी बोधिसत्व अपने अस्सी हजार हाथियों के झुंड के साथ भोजन की तलाश में उस स्थान पर आए। उन्हें देखकर बटेर ने सोचा, "यह राजसी हाथी मेरे बच्चों को कुचलकर मार डालेगा। देखो! मैं अपने बच्चों की रक्षा के लिए उनकी कृपा की प्रार्थना करती हूँ।" तब उसने अपने दोनों पंख उठाए और उनके सामने खड़े होकर पहला श्लोक दोहराया:-

साठ वर्ष का हाथी,
आपके समकक्षों के बीच वन स्वामी,
मैं तो एक तुच्छ पक्षी हूँ।
आप समूह के नेता हैं;
मैं अपने पंखों से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।
हे भगवान, मेरे बच्चों को बचा लो।
उस महान प्राणी ने कहा, "हे बटेर, चिंता मत करो। मैं तुम्हारे बच्चों की रक्षा करूँगा।" और नन्हे पक्षियों के ऊपर खड़े होकर, जब अस्सी हज़ार हाथी वहाँ से गुज़र रहे थे, तब उन्होंने बटेर से इस प्रकार कहा: "हमारे पीछे एक अकेला दुष्ट हाथी आ रहा है। वह हमारी बात नहीं मानेगा। जब वह आए, तो तुम भी उससे विनती करना, और इस प्रकार अपने बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करना।" और ये कहकर वे चले गए। और बटेर दूसरे हाथी से मिलने गई, और दोनों पंख ऊपर उठाकर, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उसने दूसरा श्लोक कहा--

पहाड़ियों और घाटियों में विचरण करते हुए
    अपने एकाकीपन को संजोते हुए,
हे वनराज, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।
    और पंखों के साथ मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।
मैं तो बस एक दयनीय बटेर हूँ।
    मेरे नाज़ुक बच्चों को मारने के लिए छोड़ दो।
उसकी बात सुनकर हाथी ने तीसरा श्लोक बोला:-

मैं तेरे बच्चों को मार डालूंगा, बटेर;
आपके गरीब लोग किस काम आ सकते हैं?
मेरा बायां पैर आसानी से कुचल सकता है
इन जैसे हजारों पक्षी।
और ऐसा कहते हुए, उसने अपने पैर से उन नन्हे पक्षियों को चूर-चूर कर दिया, और उन पर मल त्याग कर उन्हें पानी की बाढ़ में बहा दिया, और जोर-जोर से चिंघाड़ते हुए चला गया। बटेर एक पेड़ की शाखा पर बैठ गई और बोली, "तो जाओ और चिंघाड़ते रहो। तुम बहुत जल्द देखोगे कि मैं क्या करूंगी। तुम्हें जरा भी अंदाजा नहीं है कि शरीर की ताकत और मन की ताकत में कितना फर्क होता है। अच्छा! मैं तुम्हें यह सबक सिखाऊंगी।" और इस प्रकार उसे धमकाते हुए उसने चौथा श्लोक दोहराया:-

सत्ता का दुरुपयोग हमेशा लाभप्रद नहीं होता।
सत्ता अक्सर कुकर्म की कमजोरी बन जाती है।
उस दरिंदे ने मेरे बच्चों की हत्या की।
मैं अब भी तुम्हारे लिए शरारतें करता रहूंगा।
ऐसा कहकर, कुछ ही देर बाद उसने एक कौवे पर कृपा की। जब कौवा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पूछा, "मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?" तो बटेर ने कहा, "महोदय, और कुछ नहीं किया जा सकता, बस मैं चाहूँगी कि आप अपनी चोंच से इस दुष्ट हाथी की आँखें फोड़ दें।" कौवा तुरंत मान गया। फिर बटेर ने एक नीली मक्खी की भी कृपा की। जब मक्खी ने पूछा, "मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ?" तो उसने कहा, "जब कौवा इस दुष्ट हाथी की आँखें फोड़ दे, तो आप उन पर अंडे गिरा दें।" मक्खी मान गई, और फिर बटेर ने एक

मेंढक पर दया दिखाई। जब मेंढक ने पूछा कि उसे क्या करना है, तो बटेर ने कहा, "जब यह दुष्ट हाथी अंधा हो जाए और पानी की तलाश में निकले, तो पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर टर्राना, और जब वह चोटी पर चढ़ जाए, तो नीचे आकर खाई के तल पर फिर से टर्राना। बस इतना ही मैं तुमसे चाहूँगी।" बटेर की बात सुनकर मेंढक तुरंत मान गया। एक दिन कौवे ने अपनी चोंच से हाथी की दोनों आँखें निकाल दीं, और मक्खी ने उन पर अंडे दे दिए। कीड़े लगने से हाथी दर्द से पागल हो गया और प्यास से बेहाल होकर पानी की तलाश में भटकने लगा। उसी समय पहाड़ की चोटी पर खड़ा मेंढक टर्राया। हाथी ने सोचा, "वहाँ ज़रूर पानी होगा," और पहाड़ पर चढ़ गया। तब मेंढक नीचे उतरा और तल पर खड़े होकर फिर से टर्राया। हाथी ने सोचा, "वहाँ पानी होगा," और खाई की ओर बढ़ गया, और लुढ़कते हुए पहाड़ की तलहटी में गिर गया और मर गया। जब बटेर को पता चला कि हाथी मर गया है, तो उसने कहा, "मैंने अपने शत्रु की पीठ देख ली है," और अत्यंत प्रसन्न होकर उसके शरीर पर घूमने लगी, और अपने कर्मों के फल के लिए चल बसी।

गुरु ने कहा, "भाइयों, किसी की शत्रुता मोल नहीं लेनी चाहिए। इन चारों प्राणियों ने मिलकर इस हाथी का नाश कर दिया, चाहे वह कितना भी बलवान क्यों न हो।"

कौवे, नीली मक्खी और मेंढक के साथ एक बटेर।
  एक समय यह एक घातक झगड़े का कारण साबित हुआ था।
उन्हीं के कारण हाथी राजा की असमय मृत्यु हो गई:
  इसलिए हर प्रकार के झगड़े से बचना चाहिए।

पूर्ण ज्ञान से प्रेरित होकर इस श्लोक का उच्चारण करते हुए, उन्होंने इस प्रकार जन्म की पहचान की: "उस समय देवदत्त दुष्ट हाथी था, और मैं स्वयं हाथियों के झुंड का नेता था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्लधम्मपाल-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-358-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 358
कुल्लधममपाला-जातक

"महापातपा की दुखी रानी," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा बोधिसत्व की हत्या करने की योजना का वर्णन है। अन्य सभी जन्मों में देवदत्त बोधिसत्व के मन में जरा सा भी भय उत्पन्न करने में विफल रहा, परन्तु कुलधम्मपाल जन्म में, जब बोधिसत्व केवल सात महीने के थे, उसने उनके हाथ-पैर और सिर काट दिए और उनके शरीर को तलवार के घावों से इस प्रकार घेर लिया मानो किसी माला से सजाया हो। दद्दरा (*1) जन्म में उसने उनकी गर्दन मरोड़कर उनकी हत्या कर दी, उनके मांस को भट्टी में भूनकर खा लिया। खंतिवादी (*2) जन्म में उसने उन्हें दो हज़ार कोड़ों से पीटा, उनके हाथ-पैर, कान और नाक काटने का आदेश दिया, फिर उनके सिर के बाल पकड़कर उन्हें घसीटा, और जब वे पीठ के बल पूरी तरह लेट गए, तो उसने उनके पेट में लात मारी और भाग गया, और उसी दिन बोधिसत्व की मृत्यु हो गई। लेकिन चुल्लनन्दक और वेवतियाकापी जन्मों में उसने केवल उनकी हत्या करवाई। इस प्रकार देवदत्त लंबे समय तक उन्हें मारने की कोशिश करता रहा, और बुद्ध बनने के बाद भी ऐसा करता रहा। इसलिए एक दिन सत्य के हॉल में चर्चा हुई, और कहा गया, "महोदय, देवदत्त लगातार बुद्ध को मारने की साजिश रच रहा है। सर्वोच्च बुद्ध को मारने के इरादे से उसने धनुर्धारियों को रिश्वत देकर उन पर तीर चलाए, उन पर एक चट्टान फेंकी, और उन पर हाथी नलगिरि को छोड़ दिया।" जब गुरुजी आए और उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, तो यह सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, न केवल अभी, बल्कि पहले भी वह मुझे जान से मारने की कोशिश करता था, लेकिन अब वह मुझमें जरा भी भय उत्पन्न नहीं कर पाता, जबकि पहले जब मैं धम्मपाल राजकुमार था, तब उसने अपने पुत्र होते हुए भी, मेरे शरीर को तलवार के वारों से इस प्रकार घेरकर मेरी हत्या कर दी थी, मानो मुझे एक माला पहनाई गई हो।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब महापातपा बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व ने उनकी रानी चंदा के पुत्र के रूप में जन्म लिया और उनका नाम धम्मपाला रखा गया। जब वे सात महीने के थे, तब उनकी माता ने उन्हें सुगंधित जल से स्नान कराया, उन्हें सुंदर वस्त्र पहनाए

और उनके साथ खेलने लगीं। राजा उनके घर आए। जब माता अपने बच्चे के प्रति प्रेम से भरी हुई थीं, तब उन्होंने राजा को देखकर उठना ही भूल गईं। राजा ने सोचा, "यह स्त्री अभी भी अपने पुत्र के कारण अहंकार से भरी हुई है और मेरी जरा भी कद्र नहीं करती, लेकिन जब यह पुत्र बड़ा होगा, तब यह सोचेगी, 'मुझे एक पुरुष पुत्र मिल गया है' और मेरी ओर ध्यान नहीं देगी। मैं इसे तुरंत मृत्युदंड दिलवा दूंगा।" इसलिए वे घर लौट आए और अपने सिंहासन पर बैठकर जल्लाद को उसके सभी उपकरणों के साथ अपने समक्ष बुलाया। उस व्यक्ति ने अपना पीला वस्त्र पहना और लाल रंग का मुकुट धारण करके अपनी कुल्हाड़ी कंधे पर रखी, और हाथों में एक गट्ठा और एक कटोरा लेकर राजा के सामने आकर खड़ा हो गया, और उन्हें प्रणाम करते हुए बोला, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?"

राजा ने कहा, "रानी के राजमहल कक्ष में जाओ और धम्मपाला को यहाँ ले आओ।"

लेकिन रानी जानती थी कि राजा उसे क्रोधित अवस्था में छोड़कर चला गया है, और उसने बोधिसत्व को अपनी गोद में लिटाकर रोना शुरू कर दिया। जल्लाद आया और उसकी पीठ पर एक प्रहार करके लड़के को उसकी बाहों से छीन लिया और राजा के पास ले जाकर बोला, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने एक तख्ता मंगवाया और उसे अपने सामने रखवाया और कहा, "इसे इस पर लिटा दो।" उस व्यक्ति ने वैसा ही किया। लेकिन रानी चंदा आकर अपने पुत्र के ठीक पीछे खड़ी हो गई और रोने लगी। जल्लाद ने फिर पूछा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "धम्मपाल के हाथ काट दो।" रानी चंदा ने कहा, "महाराज, मेरा बालक तो केवल सात महीने का बच्चा है। उसे कुछ नहीं पता। गलती उसकी नहीं है। यदि कोई गलती है, तो वह मेरी है। इसलिए मेरे हाथ काटने का आदेश दें।" और अपनी बात स्पष्ट करने के लिए, उसने पहला श्लोक कहा:-

महापतापा की दुखी रानी,
इसके लिए मैं ही पूरी तरह से दोषी हूं।
हे महाराज, धम्मपाला से नि: मुक्त होने का अनुरोध करें।
और बदकिस्मत मुझ पर से ये छुटकारा पा लिया गया।
राजा ने जल्लाद की ओर देखा। "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "बिना देर किए, इसके हाथ काट दो।" उसी क्षण जल्लाद ने एक तेज कुल्हाड़ी उठाई और लड़के के दोनों हाथ ऐसे काट दिए जैसे वे बांस के छोटे-छोटे अंकुर हों। हाथ कटने पर लड़का न तो रोया और न ही शोक मनाया, बल्कि धैर्य और दया से प्रेरित होकर उसने इसे सहन किया। लेकिन रानी चंदा ने उसकी उंगलियों के सिरों को अपनी गोद में रखा और खून से लथपथ होकर शोक मनाने लगी। जल्लाद ने फिर पूछा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "इसके पैर काट दो।" यह सुनकर चंदा ने दूसरा श्लोक कहा:-

महापतापा की दुखी रानी,
इसके लिए मैं ही पूरी तरह से दोषी हूं।
हे महाराज, धम्मपाला से नि:मुक्त होने का अनुरोध करें।
और दुर्भाग्य से मेरे पैर कट गए।
लेकिन राजा ने जल्लाद को इशारा किया और उसने उसके दोनों पैर काट दिए। रानी चंदा ने उसके पैर भी अपनी गोद में रख लिए और खून से लथपथ होकर विलाप करते हुए बोली, "मेरे महापतापा, उसके पैर और हाथ काट दिए गए हैं। एक माँ का कर्तव्य है कि वह अपने बच्चों का पालन-पोषण करे। मैं मजदूरी करके अपने बेटे का पालन-पोषण करूंगी। उसे मुझे दे दीजिए।" जल्लाद ने कहा, "महाराज, क्या आपकी इच्छा पूरी हो गई? क्या मेरा काम समाप्त हो गया?" राजा ने कहा, "अभी नहीं।" "महाराज, तो आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "उसका सिर काट दो।" तब चंदा ने तीसरा श्लोक दोहराया:-

महापतापा की दुखी रानी,
इसके लिए मैं ही पूरी तरह से दोषी हूं।
हे महाराज, धम्मपाला से नि: मुक्त होने का अनुरोध करें।
और मेरा, बदनसीब का सिर काट दिया जाए।
और इन्हीं शब्दों के साथ उसने अपना सिर अर्पित कर दिया। जल्लाद ने फिर पूछा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" राजा ने कहा, "इसका सिर काट दो।" अतः उसने उसका सिर काट दिया और पूछा, "क्या महाराज की इच्छा पूरी हुई?" राजा ने कहा, "अभी नहीं। महाराज, मुझे और क्या करना है?" राजा ने कहा, "तलवार की धार से उसे पकड़कर, तलवार के वारों से उसे ऐसे घेर लो जैसे किसी माला से।" फिर उसने बालक के शरीर को हवा में उछाला, और तलवार की धार से उसे पकड़कर, तलवार के वारों से उसे ऐसे घेर लिया जैसे किसी माला से, और उसके टुकड़े मंच पर बिखेर दिए। चंदा ने बोधिसत्व के मांस को अपनी गोद में रखा, और मंच पर बैठकर शोक मनाते हुए उसने ये श्लोक दोहराए:-

कोई भी मित्रवत सलाहकार राजा को सलाह नहीं देता।

"अपने गर्भ से उत्पन्न हुए उत्तराधिकारी को मत मारो":
किसी भी स्नेही रिश्तेदार ने कोमल विनती नहीं की।
"उस लड़के को मत मारो जिसने तुम्हारे कारण अपनी जान बचाई है।"
इन दो श्लोकों को बोलने के बाद रानी चंदा ने अपने दोनों हाथों को अपने हृदय पर रखकर तीसरा श्लोक दोहराया:-

हे धम्मपाल, जन्मसिद्ध अधिकार से आप ही थे।
पृथ्वी के स्वामी:
तुम्हारी भुजाएँ, जो कभी चंदन के तेल से सराबोर थीं,
खून से लथपथ लेटे हुए।
हाय! मेरी रुक-रुक कर चलने वाली सांसें आहों से भर कर रुक गई हैं।
और टूटी हुई चीखें।
जब वह शोक मना रही थी, तभी उसका हृदय टूट गया, जैसे जंगल में आग लगने पर बाँस टूट जाता है, और वह वहीं गिर पड़ी। राजा भी अपने सिंहासन पर स्थिर न रह पाने के कारण चबूतरे पर गिर पड़ा। धरती में एक गहरी खाई फट गई, और वह तुरंत उसमें गिर गया। फिर ठोस धरती, जो दो लाख मील (4.23 किमी) से भी अधिक मोटी थी, उसके दुष्टता को सहन न कर पाने के कारण फट गई और एक दरार खुल गई। अविची नरक से एक ज्वाला उठी, और उसे पकड़कर, जैसे किसी शाही ऊनी वस्त्र में लपेटकर, अविची में धकेल दिया। उसके मंत्रियों ने चंदा और बोधिसत्व का अंतिम संस्कार किया।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त राजा थे, महाप्रजापति (जिन्हें गौतमी भी कहा जाता है, जो बुद्ध की पालक माता, दिवंगत जन्मदाता महामाया की बहन और कपिलवस्तु की रानी थीं, जो अब एक भिक्षुणी हैं) चंदा थीं, और मैं स्वयं राजकुमार धम्मपाला था।"

फुटनोट:

(1) यह बात दद्दरा जातक कथाओं संख्या 172 और संख्या 304 में से किसी में भी नहीं मिलती।

(2) संख्या 313

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुवनमिग-जातक**
स्रोत : *एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-359-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 359
सुवन्नामिगा-जातक

"हे स्वर्ण चरण!" यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में निवास करते समय श्रावस्ती नगर की एक कुलीन कन्या को सुनाई थी। कहते हैं कि वह श्रावस्ती नगर के दो प्रमुख शिष्यों के सहायक की पुत्री थी, और एक सच्ची भक्त थी, बुद्ध, धर्ममार्ग और भिक्षु संघ से प्रेम करती थी, अच्छे कर्मों में निपुण थी, मोक्ष (निर्वाण) की राह पर अग्रसर थी, और दान-पुण्य और ऐसे ही अन्य धार्मिक कार्यों में लगी रहती थी। श्रावस्ती नगर के एक अन्य परिवार ने, जो उसी उच्च कोटि का था लेकिन जिनके विचार गलत थे, उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा। तब उसके माता-पिता ने कहा, "हमारी पुत्री एक सच्ची भक्त है, तीनों रत्नों में लीन है, दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में लगी रहती है, परन्तु आपके विचार गलत हैं। और क्योंकि आप उसे अपनी इच्छा अनुसार दान करने, सत्य सुनने, मठ जाने, नैतिक नियमों का पालन करने या पवित्र दिनों का पालन करने की अनुमति नहीं देते, इसलिए हम उसका विवाह आपसे नहीं करेंगे। आप भी अपने जैसे गलत विचारों वाले परिवार से ही किसी कन्या का चुनाव करें।" जब उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया गया, तो उन्होंने कहा, "जब आपकी बेटी हमारे घर आए, तो वह अपनी इच्छा अनुसार सब कुछ करे। हम उसे नहीं रोकेंगे। बस हमें यह वरदान दीजिए।" "तो उसे ले आइए," उन्होंने उत्तर दिया। अतः उन्होंने शुभ मुहूर्त में विवाह समारोह मनाया और उसे घर ले आए। उसने अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए निष्ठा दिखाई, एक समर्पित पत्नी बनी और अपने ससुर और सास की उचित सेवा की। एक दिन उसने अपने पति से कहा, "हे स्वामी, मैं अपने

कुल भिक्षुओं को दान देना चाहती हूँ।" "ठीक है, मेरी प्रिय, उन्हें जो चाहे दान दीजिए।" तो एक दिन उसने इन भिक्षुओं को आमंत्रित किया और एक भव्य भोज आयोजित करके उन्हें उत्तम भोजन कराया, और उनसे अलग बैठकर कहा, "हे पूज्यवर, यह परिवार कुटिल और अविश्वासी है। ये तीनों रत्नों के महत्व से अनभिज्ञ हैं। तो फिर, हे पूज्यवर, जब तक यह परिवार तीनों रत्नों का महत्व नहीं समझ लेता, तब तक आप यहाँ भोजन ग्रहण करते रहें।" भिक्षुओं ने सहमति जताई और वहीं नियमित रूप से भोजन करने लगे। उसने फिर अपने पति से कहा, "महोदय, भिक्षु यहाँ लगातार आते रहते हैं। आप उनसे क्यों नहीं मिलते?" यह सुनकर उसने कहा, "ठीक है, मैं उनसे मिलूंगा।" अगले दिन जब भिक्षुओं ने भोजन कर लिया, तो उसने उसे बताया। वह आया और एक तरफ आदरपूर्वक बैठ गया, और भिक्षुओं से विनम्रतापूर्वक बातचीत करने लगा। तब धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने उसे धर्म का उपदेश दिया। वह धर्म के उपदेश और भिक्षुओं के व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि उस दिन से वह वरिष्ठ भिक्षुओं के बैठने के लिए चटाई बिछाने लगा, उनके लिए पानी छानने लगा और भोजन के दौरान धर्म के उपदेश सुनने लगा। समय के साथ उसके गलत विचार दूर हो गए। एक दिन वरिष्ठ भिक्षु ने धर्म की व्याख्या करते हुए उस व्यक्ति और उसकी पत्नी को सत्य समझाया, और जब उपदेश समाप्त हुआ, तो वे दोनों प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गए। तब से वे सभी,उसके माता-पिता से लेकर नौकरों तक, सभी ने अपने गलत विचारों को त्याग दिया और बुद्ध, उनके धार्मिक मार्ग और भिक्षुओं के पवित्र संघ के प्रति समर्पित हो गए। एक दिन उस युवती ने अपने पति से कहा, "हे स्वामी, गृहस्थ जीवन से मेरा क्या लेना-देना? मैं संन्यासी जीवन अपनाना चाहती हूँ।" "बहुत अच्छा, मेरी प्रिय," उसने कहा, "मैं भी संन्यासी बनूँगा।" और वह उसे बड़े धूमधाम से भिक्षुणी संघ ले गया और उसे भिक्षुणी के रूप में प्रवेश दिलाया, और स्वयं भी गुरु के पास जाकर दीक्षा का अनुरोध किया। गुरु ने पहले उसे भिक्षुओं के संघ में और बाद में वरिष्ठ भिक्षुओं के पवित्र संघ में प्रवेश दिया। दोनों को आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त हुई और शीघ्र ही वे संत बन गए। एक दिन उन्होंने सत्य सभा में चर्चा करते हुए कहा, "महोदय, एक स्त्री ने अपने और अपने पति के विश्वास के कारण भिक्षुणी का रूप धारण किया। और दोनों ने संन्यासी जीवन अपनाकर और आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करके संतत्व प्राप्त किया।" गुरुजी जब आए तो उन्होंने पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा करने के लिए सभा में बैठे हैं। विषय सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, उसने न केवल अभी अपने पति को वासना के बंधनों से मुक्त किया है, बल्कि पहले भी उसने प्राचीन ऋषियों को मृत्यु के बंधनों से मुक्त किया था।" इतना कहकर वे चुप रहे, परन्तु आग्रहवश उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, बोधिसत्व एक युवा हिरण के रूप में अवतरित हुए और सुनहरे रंग के एक सुंदर और आकर्षक प्राणी के रूप में बड़े हुए। उनके आगे और पीछे के पैर मानो लाख से ढके हुए थे। उनके सींग चांदी की माला के समान थे, उनकी आंखें गोल रत्नों जैसी थीं और उनका मुख लाल ऊन के गोले जैसा था। उनकी साथी हिरणी भी सुंदर थी और वे सुख-सुविधाओं के साथ रहते थे। बोधिसत्व के झुंड में अस्सी हजार चित्तीदार हिरण थे। जब वे वहां रह रहे थे, तभी एक शिकारी ने हिरणों के झुंड में फंदा लगा दिया। एक दिन बोधिसत्व अपने झुंड का नेतृत्व करते हुए, अपना पैर फंदे में फंसा बैठे। फंदा तोड़ने के लिए उन्होंने उसे खींचा और पैर की चमड़ी कट गई। फिर उन्होंने खींचा और मांस में चोट लगी, और तीसरी बार खींचने पर नस में चोट आ गई। अंत में फंदा हड्डी तक घुस गया। फंदे को तोड़ने में असमर्थ, हिरण मृत्यु के भय से इतना भयभीत हो गया कि वह लगातार चीखने लगा। उसकी चीख सुनकर हिरणों का झुंड घबराकर भाग गया। लेकिन हिरणी भागते हुए हिरणों के बीच बोधिसत्व को नहीं देख पाई और सोचने लगी, "यह घबराहट अवश्य ही मेरे स्वामी से संबंधित है," और तेजी से उनके पास दौड़कर, बहुत आँसू बहाते हुए और रोते हुए बोली, "मेरे स्वामी, आप बहुत बलवान हैं। आप फंदे को क्यों नहीं तोड़ पा रहे हैं? अपनी शक्ति का प्रयोग कीजिए और इसे तोड़ दीजिए।" और इस प्रकार उन्हें प्रयास करने के लिए प्रेरित करते हुए, उसने पहला श्लोक कहा:-

हे सुनहरे पैरों वाले,
अपने आप को जंजीरदार जाल से मुक्त करने में कोई कसर मत छोड़ो।
तुम्हारे बिना मैं
जंगल में स्वतंत्र रूप से विचरण करने का आनंद कैसे ले सकता हूँ?
यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:-

मैं हर संभव प्रयास करता हूँ, पर व्यर्थ,
मुझे अपनी स्वतंत्रता नहीं मिल पाती।
जितना अधिक मैं मुक्त होने के लिए संघर्ष करता हूँ,
उतना ही फंदा कसता जाता है।
तब हिरणी ने कहा, "हे मेरे स्वामी, भयभीत न हों। मैं अपनी शक्ति से शिकारी से विनती करूंगी, और अपना प्राण त्यागकर आपका प्राण बचा लूंगी।" इस प्रकार उस महान प्राणी को दिलासा देते हुए, उसने रक्त से लथपथ बोधिसत्व को गले लगाया। लेकिन शिकारी तलवार और भाला लिए, चक्र की शुरुआत में विनाशकारी ज्वाला की तरह, पास आ रहा था। उसे देखकर हिरणी ने कहा, "हे मेरे स्वामी, शिकारी आ रहा है। मैं अपनी शक्ति से आपको बचा लूंगी। भयभीत न हों।" इस प्रकार हिरण को दिलासा देते हुए, वह शिकारी

से मिलने गई, और आदरपूर्वक दूरी पर खड़े होकर उसने उसे प्रणाम किया और कहा, "हे मेरे स्वामी, मेरे पति स्वर्ण रंग के हैं, और सभी गुणों से परिपूर्ण हैं, अस्सी हजार हिरणों के राजा हैं।" और इस प्रकार बोधिसत्व की स्तुति करते हुए, उसने अपनी मृत्यु की भीख मांगी, केवल झुंड के राजा को बचाए रखने के लिए, और उसने तीसरा श्लोक दोहराया:-

हे शिकारी , धरती पर पत्तों से भरा एक बिस्तर बिछा दो
, जहाँ हम गिर सकें;
और अपनी तलवार म्यान से निकालकर
मुझे मार डालो और उसके बाद मेरे स्वामी को भी।
यह सुनकर शिकारी अचंभित हो गया और बोला, "मनुष्य भी अपने राजा के लिए अपनी जान नहीं देते; तो जानवर भी नहीं। इसका क्या अर्थ है? यह प्राणी तो मनुष्यों की भाषा में मधुर स्वर में बोल रही है। आज मैं इसे और इसके साथी को जीवनदान दूंगा।" और उससे अत्यंत मोहित होकर शिकारी ने चौथा श्लोक कहा:-

ऐसा प्राणी जो मनुष्यों की आवाज़ में बोलता हो,
मेरी समझ से परे था।
शांति से विश्राम करो, मेरे प्यारे हिरण, और
हे सुनहरे पैरों वाले, भय करना छोड़ दो।
बोधिसत्व को आराम से बैठे देखकर हिरणी अत्यंत प्रसन्न हुई और शिकारी को धन्यवाद देते हुए पाँचवाँ श्लोक दोहराया:-

आज जिस प्रकार मैं
इस शक्तिशाली जानवर को स्वतंत्र देखकर प्रसन्न हूं,
उसी प्रकार हे शिकारी, जिसने जाल खोला,
अपने सभी मित्रों और परिवार के साथ आनन्द मनाओ।
और बोधिसत्व ने सोचा, "इस शिकारी ने मुझे और इस हिरणी को, तथा अस्सी हज़ार हिरणों को जीवनदान दिया है। यह मेरा आश्रय रहा है, और मुझे भी इसका आश्रय बनना चाहिए।" और अपने परम गुणी स्वभाव के कारण उन्होंने सोचा, "जिसने सहायता की है, उसका उचित प्रतिफल देना चाहिए।" और उन्होंने शिकारी को एक जादुई रत्न दिया जो उन्हें उनके चारागाह में मिला था और कहा: "मित्र, अब से किसी भी प्राणी का वध मत करना, बल्कि इस रत्न से अपना घर बसाओ, पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करो, दान दो और अन्य अच्छे कार्य करो।" और इस प्रकार कहकर हिरण जंगल में विलीन हो गया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय चन्ना शिकारी था, यह नवोदित महिला हिरणी थी, और मैं स्वयं शाही हिरण था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुसोंडी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----॥-360-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 360
सुस्सौंडी-जातक (*1)

"मुझे सुगंध आ रही है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। गुरु ने पूछा कि क्या यह सच है कि वह संसार के लिए तरस रहा है, और उसने ऐसा क्या देखा है जिससे उसे शिष्यों के मार्ग पर चलने का पछतावा हो रहा है। भिक्षु ने उत्तर दिया, "यह सब एक स्त्री के आकर्षण के कारण था।" गुरु ने कहा, "सचमुच, भिक्षु, स्त्री-पुरुषों से सावधान रहना संभव नहीं है। प्राचीन ऋषि, यद्यपि गरुड़ों के निवास में रहते थे, फिर भी उनसे सावधान नहीं रह पाए।" और उसके आग्रह पर, गुरु ने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ताम्बा राजा का राज था और उनकी रानी सुसोंडी अत्यंत सुंदर थीं। उसी समय बोधिसत्व ने एक युवा गरुड़ का रूप धारण किया। नाग द्वीप को तब सेरुमा द्वीप के नाम से जाना जाता था और बोधिसत्व इसी द्वीप पर गरुड़ों के निवास में रहते थे। वे एक युवक का वेश धारण करके बनारस गए और राजा ताम्बा के साथ जुए का खेल खेला। उनकी सुंदरता देखकर सुसोंडी से लोगों ने कहा, "फलां-फलां युवक हमारे राजा के साथ जुए का खेल खेल रहा है।" सुसोंडी उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो उठीं और एक दिन उन्होंने सज-धज कर जुए के कक्ष में गईं। वहां सेवकों के बीच खड़ी होकर उन्होंने युवक पर अपनी निगाहें गड़ा दीं। युवक की भी रानी पर निगाहें टिक गईं और दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगे। गरुड़ राजा ने अलौकिक शक्ति से शहर में तूफान ला दिया। महल के गिरने के भय से लोग भाग निकले। अपनी शक्ति से उसने अंधेरा कर दिया और रानी को अपने साथ हवा में उठाकर नाग द्वीप में अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ा। लेकिन सुसोंडी के आने-जाने की किसी को खबर नहीं थी। गरुड़ ने उसके साथ आनंद लिया और राजा के साथ पासा खेलने आता रहा। राजा का एक संगीतकार था जिसका नाम सग्गा था। रानी के बारे में न जानकर राजा ने संगीतकार से कहा, "जाओ और हर जगह, हर समुद्र और भूमि की खोज करो और पता लगाओ कि रानी कहाँ है।" इतना कहकर उसने संगीतकार को जाने के लिए कहा।

उसने अपनी यात्रा के लिए आवश्यक सामान लिया और नगर द्वार से खोज शुरू करते हुए अंततः भारुकच्छा पहुँचा। उस समय भारुकच्छा के कुछ व्यापारी स्वर्ण देश (स्वर्ग) के लिए रवाना हो रहे थे। वह उनके पास पहुँचा और बोला, "मैं एक संगीतकार हूँ। यदि आप मेरा किराया माफ कर दें, तो मैं आपके लिए संगीतकार का काम करूँगा। मुझे अपने साथ ले चलिए।" वे मान गए और उसे जहाज पर बिठाकर लंगर उठा दिया। जब जहाज पूरी तरह से रवाना हो गया, तो उन्होंने उसे बुलाया और उनसे उनके लिए संगीत बजाने को कहा। उसने कहा, "मैं संगीत बजा सकता हूँ, लेकिन अगर मैं ऐसा करूँ, तो मछलियाँ इतनी उत्तेजित हो जाएँगी कि आपका जहाज डूब जाएगा।" उन्होंने कहा, "अगर एक साधारण मनुष्य संगीत बजाए, तो मछलियाँ उत्तेजित नहीं होंगी। हमारे लिए बजाइए।" उसने कहा, "तो मुझ पर क्रोधित मत होइए," और अपने वीणा को ठीक करते हुए और अपने गीत के शब्दों और वीणा के साथ पूर्ण सामंजस्य बनाए रखते हुए, उसने उनके लिए संगीत बजाया। मछलियाँ उस ध्वनि से पागल हो गईं और उछल-कूद करने लगीं। एक समुद्री राक्षस उछलकर जहाज पर गिरा और उसे दो टुकड़ों में तोड़ दिया। सग्गा एक तख्ते पर लेटा हुआ था और हवा उसे उड़ाते हुए नाग द्वीप में एक बरगद के पेड़ तक ले गई, जहाँ गरुड़ राजा रहते थे। रानी सुसोंडी, जब भी गरुड़ राजा जुआ खेलने जाते थे, अपने घर से नीचे आती थीं। जब वह किनारे पर घूम रही थीं, तो उन्होंने संगीतकार सग्गा को देखा और पहचान लिया। उन्होंने उससे पूछा कि वह यहाँ कैसे आया। सग्गा ने उन्हें सारी कहानी सुनाई। रानी ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "डरो मत," और उसे अपनी बाहों में भरकर अपने घर ले गईं और पलंग पर लिटा दिया। जब वह पूरी तरह से स्वस्थ हो गया, तो रानी ने उसे दिव्य भोजन खिलाया, दिव्य सुगंधित जल से स्नान कराया, दिव्य वस्त्र पहनाए और दिव्य सुगंध वाले फूलों से सजाया और उसे दिव्य पलंग पर आराम दिया। इस प्रकार वह उसकी रक्षा करती रही, और जब भी गरुड़ राजा लौटता, वह अपने प्रेमी को छुपा लेती, और राजा के जाते ही, वासना के आवेश में आकर उसके साथ भोग-विलास करती। उस समय से डेढ़ महीने बाद, बनारस में रहने वाले कुछ व्यापारी जलाऊ लकड़ी और पानी लेने के लिए इस द्वीप पर बरगद के पेड़ की तलहटी में उतरे। संगीतकार उनके साथ जहाज पर सवार हो गया, और बनारस पहुँचकर, जैसे ही उसने राजा को पासा खेलते देखा, सग्गा ने अपना वीणा उठाया, और संगीत बजाते हुए पहला श्लोक सुनाया:-

मुझे तिमिरा के उपवन की सुगंध आ रही है।
मुझे थके हुए समुद्र की कराह सुनाई देती है:
ताम्बा, मैं अपने प्यार के कारण पीड़ा झेल रहा हूँ।
सुंदर सुसोंडी मुझसे बहुत दूर रहती है।
यह सुनकर गरुड़ राजा ने दूसरा श्लोक कहा:-

आपने तूफानी जलधाराओं को कैसे पार किया?
और क्या सीरम से सुरक्षा में कोई लाभ होता है?
सागा, आपने ये कैसे किया, मुझे बताइए, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ।
क्या सुसोंडी को जीत दिलाने में कोई बाधा आएगी?
फिर सग्गा ने तीन छंद दोहराए:-

भारुकच्छ भूमि के व्यापारियों के साथ
समुद्र के राक्षसों ने मेरे जहाज को चकनाचूर कर दिया;
मैंने तख्ते पर चढ़कर सुरक्षित रूप से किनारे तक पहुँच प्राप्त कर ली।
जब एक अभिषिक्त रानी कोमल हाथों से
उसने मुझे प्यार से अपनी गोद में बिठाया था।
मानो मैं उसके लिए एक सच्चा बेटा हो सकता हूँ।

वह खाना और कपड़े लेकर आई, और मैं लेटा रहा
प्रेम में डूबी निगाहों से वह दिन भर मेरे सोफे पर टकटकी लगाए रहा।
ताम्बा, इसे अच्छी तरह जान लो; मैं जो कह रहा हूँ वह सत्य है।
जब संगीतकार इस प्रकार बोल रहा था, गरुड़ खेद से भर उठा और बोला, "यद्यपि मैं गरुड़ों के निवास में रहता था, फिर भी मैं उसकी रक्षा करने में असफल रहा। यह दुष्ट स्त्री मेरे लिए क्या मायने रखती है?" इसलिए वह उसे वापस ले आया और राजा के समक्ष प्रस्तुत करके चला गया। और उसके बाद वह फिर कभी वहाँ नहीं आया।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर सांसारिक मन वाले भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उस समय आनंद बनारस के राजा थे, और मैं स्वयं गरुड़ राजा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 327 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वाणारोह-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-361-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 361
वन्नारोह-जातक(*1) "क्या ऐसा है, सुदथ?" इत्यादि--यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अपने दो प्रमुख शिष्यों के विषय में सुनाई थी। एक बार वर्षा ऋतु में दोनों प्रमुख भिक्षुओं ने एकांतवास करने का निश्चय किया। उन्होंने गुरु को विदाई दी और भिक्षुओं का साथ छोड़कर जेतवन मठ से अपने कुंड और वस्त्र स्वयं उठाकर एक सीमावर्ती गाँव के पास के जंगल में रहने लगे। वहीं एक व्यक्ति, जो भिक्षुओं की सेवा करता था और उनके द्वारा दिए गए भोजन पर निर्भर था, अलग से उसी स्थान पर रहने लगा। इन भिक्षुओं को इतने सुखपूर्वक एक साथ रहते देखकर उसने सोचा, "क्या इनके बीच मतभेद संभव है?" इसलिए वह सारिपुत्र के पास आया और बोला, "हे पूज्यवर, क्या आपके और आदरणीय प्रमुख भिक्षु मोग्गल्याना के बीच कोई मतभेद है?" "ऐसा क्यों, श्रीमान?" सारिपुत्र ने पूछा। "हे परम पूज्य, वह हमेशा आपकी आलोचना करते हुए कहता है, 'मेरे जाने के बाद, जाति, वंश, परिवार और देश के संदर्भ में, या पवित्र ग्रंथों में प्राप्त ज्ञान के संदर्भ में, सारिपुत्र मेरे मुकाबले क्या महत्व रखता है?'" वरिष्ठ भिक्षु मुस्कुराए और बोले, "चले जाओ!" एक दिन वह मुख्य वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना के पास आया और वही बात कही। मोग्गल्याना भी मुस्कुराए और बोले, "चले जाओ!" मोग्गल्याना सारिपुत्र के पास गए और पूछा, "क्या इस व्यक्ति ने, जो हमारे बचे हुए भोजन पर जीता है, आपसे कुछ कहा है?" "हाँ, मित्र, कहा है।" "और उसने मुझसे भी बिलकुल यही बात कही।" हमें उसे भगा देना चाहिए।" "ठीक है, मित्र, उसे भगा दो।" बड़े भिक्षु ने कहा, "तुम्हें यहाँ नहीं आना है," और उंगली चटकाकर उसे भगा दिया। दोनों बड़े भिक्षु सुखपूर्वक साथ रहे, और गुरु के पास लौटकर उन्हें प्रणाम किया और बैठ गए। गुरु ने उनसे स्नेहपूर्वक बात की और पूछा कि क्या उनका एकांतवास सुखमय रहा। उन्होंने कहा, "एक भिखारी ने हमें आपस में झगड़ा कराने की कोशिश की, लेकिन असफल होने पर वह भाग गया।" गुरु ने कहा, "सचमुच, सारिपुत्र, अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी उसने तुम्हें आपस में झगड़ा कराने की कोशिश की थी, लेकिन असफल होने पर वह भाग गया।" और इस पर उनके अनुरोध पर उन्होंने बीते दिनों की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक वन में वृक्ष-देवता (देवदूत) के रूप में विराजमान थे। उस समय उस वन की एक पर्वत-गुफा में एक शेर और एक बाघ रहते थे। एक सियार उनकी सेवा में था और उनके मांस के टुकड़े खाकर उसका शरीर बड़ा होने लगा। एक दिन उसके मन में यह विचार आया, "मैंने आज तक शेर या बाघ का मांस नहीं खाया है। मुझे इन दोनों जानवरों को आपस में लड़वाना चाहिए और जब उनके झगड़े के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो जाए, तब मैं उनका मांस खाऊंगा।" इसलिए वह शेर के पास गए और बोले, "क्या आपके और बाघ के बीच कोई झगड़ा है, महाराज?" "क्यों, महाराज?" उन्होंने कहा, "यह शेर हमेशा आपकी आलोचना करता है और कहता है, 'मेरे मरने के बाद, यह शेर मेरी सुंदरता, मेरे कद और आकार, और मेरी स्वाभाविक शक्ति और सामर्थ्य के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हो पाएगा।' तब शेर ने उनसे कहा, "यहाँ से चले जाओ।" वह

मेरे बारे में कभी ऐसा नहीं कहेगा।" फिर सियार भी शेर के पास आया और उसी तरह बोला। उसकी बात सुनकर शेर तेजी से शेर के पास गया और पूछा, "मित्र, क्या यह सच है कि तुमने मेरे बारे में ऐसा कहा?" और उसने पहला श्लोक कहा:-

"क्या सुदथा मेरे बारे में इस प्रकार (*2) बात करता है?
रूप और वंश की सुंदरता में,
मैदान में शक्ति और कौशल में,
(*2)सुबाहु को अभी भी मेरे सामने झुकना होगा।"
यह सुनकर सुदत्थ ने शेष चार श्लोक दोहराए:-

क्या सुबाहु मेरे बारे में इसी प्रकार बात करता है?
"रूप और वंश की कृपा में,
मैदान में शक्ति और कौशल में,
सुदथा को अब भी मेरे सामने झुकना होगा।"
यदि ऐसे अपमानजनक शब्द आपके हैं,
अब तुम मेरे मित्र नहीं रहोगे।
वह व्यक्ति जो ध्यानपूर्वक सुनता है
उसे जो भी गपशप सुनने को मिले,
जल्द ही एक दोस्त से झगड़ा शुरू कर देता है।
और प्रेम का अंत घोर घृणा में होगा।
कोई भी दोस्त बिना कारण के संदेह नहीं करता।
या फिर सावधानीपूर्वक खामियों की तलाश करता है;
लेकिन भरोसे का सारा भार अपने मित्र पर ही रहेगा।
जैसे बच्चा अपनी माँ की गोद में होता है,
और मैं कभी किसी अजनबी के शब्दों पर विश्वास नहीं करूंगा।
अपने हृदय के स्वामी से विमुख हो जाना।
जब इन चार छंदों में मित्र के गुणों का वर्णन हो गया, तो बाघ ने कहा, "गलती मेरी है," और शेर से क्षमा मांगी। और वे उसी स्थान पर सुखपूर्वक साथ रहने लगे। लेकिन सियार वहां से चला गया और कहीं और भाग गया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए जन्म का वर्णन किया: "उस समय सियार वह भिखारी था जो टूटे-फूटे मांस पर जीवन यापन करता था, शेर सारिपुत्र था, बाघ मोग्गल्याना था, और वह देवता जो उस जंगल में रहता था और जिसने यह सब अपनी आँखों से देखा, वह मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 349 की तुलना करें

(2) सुदथा (मजबूत दांत वाला) सिंह है, सुबाहु (मजबूत भुजा वाला) बाघ है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शीलाविमांसा-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-362-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 362
सिलविमांसा-जातक(*1)

“सद्‌गुण और विद्या,” इत्यादि — यह कथा गुरु (भगवान बुद्ध) ने जेतवन मठ में निवास करते हुए एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई, जो सद्‌गुण की शक्ति का परीक्षण करना चाहता था। कहते हैं कि राजा ने उसके सद्‌गुणों के कारण उसे अन्य ब्राह्मणों से अधिक सम्मान दिया। ब्राह्मण ने सोचा, “क्या राजा मुझे सद्‌गुणों से संपन्न होने के कारण विशेष सम्मान दे रहे हैं, या विद्या के प्रति समर्पित होने के कारण? मैं तो बस सद्‌गुण और विद्या के तुलनात्मक महत्व का परीक्षण करूँगा।”

एक दिन उसने राजकोष से एक सिक्का चुरा लिया। कोषाध्यक्ष, उसके प्रति अपने आदर के कारण, कुछ नहीं बोला। ऐसा दूसरी बार भी हुआ, तब भी कोषाध्यक्ष चुप रहा। लेकिन तीसरी बार उसने उसे चोरी का दोषी समझकर गिरफ्तार करवा दिया और राजा के समक्ष पेश किया। जब राजा ने उससे अपराध के बारे में पूछा, तो उसने उस पर राजा की संपत्ति चुराने का आरोप लगाया।

"क्या यह सच है, ब्राह्मण?" राजा ने कहा।

“महाराज, मुझे आपकी संपत्ति चुराने की आदत नहीं है,” उसने कहा, “लेकिन मुझे सद्‌गुण और ज्ञान के सापेक्षिक महत्व के बारे में संदेह था, और यह जानने के लिए कि दोनों में से कौन अधिक महत्वपूर्ण है, मैंने तीन बार एक सिक्का चुराया, और फिर मुझे हिरासत में लेकर आपके सामने पेश किया गया। अब जब मैं ज्ञान की तुलना में सद्‌गुण का अधिक महत्व जान गया हूँ, तो मैं अब गृहस्थ जीवन नहीं जीना चाहता। मैं संन्यासी बनूँगा।”

अनुमति मिलने पर, उन्होंने अपने घर के दरवाजे की ओर देखे बिना सीधे जेतवन मठ जाकर गुरु से दीक्षा देने का अनुरोध किया। गुरु ने उन्हें दीक्षा प्राप्त भिक्षु और वरिष्ठ भिक्षु दोनों की दीक्षा प्रदान की। दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद, उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ और वे परम मोक्ष को प्राप्त कर गए। सत्य सभा में इस घटना की चर्चा हुई कि कैसे एक ब्राह्मण ने सद्‌गुणों की शक्ति सिद्ध करने के बाद शिष्यों का मार्ग अपनाया और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर संतत्व को प्राप्त किया। जब गुरु आए और भिक्षुओं से उनके विषय के बारे में पूछा, तो विषय सुनकर उन्होंने कहा, "केवल यह व्यक्ति ही नहीं, बल्कि प्राचीन ऋषियों ने भी सद्‌गुणों को सिद्ध किया और तपस्वी बनकर निर्वाण प्राप्त किया।" और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में सभी धार्मिक विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और बनारस लौटकर राजा से मिलने गए। राजा ने उन्हें कुलपुजारी का पद प्रदान किया और चूंकि वे पांच नैतिक नियमों का पालन करते थे, इसलिए राजा ने उन्हें एक गुणी व्यक्ति मानकर आदर किया। उन्होंने सोचा, "क्या ऐसा हो सकता है कि राजा मुझे एक गुणी व्यक्ति मानकर आदर कर रहे हैं, या विद्या प्राप्ति में लीन रहने वाले व्यक्ति के रूप में?" यह पूरी कहानी आधुनिक घटना से हूबहू मेल खाती है, लेकिन इस मामले में ब्राह्मण ने कहा, "अब मैं विद्या की तुलना में सद्‌गुण के महत्व को समझ गया हूँ।" और इस पर उन्होंने ये पांच श्लोक कहे:

मुझे सद्‌गुण और ज्ञान की परीक्षा करने में खुशी हुई;
अब से मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सद्‌गुण ही सर्वश्रेष्ठ है।
सद्‌गुण, रूप और जन्म के व्यर्थ उपहारों से श्रेष्ठ है।
सद्‌गुण के बिना विद्या का कोई मूल्य नहीं है।
चाहे राजकुमार हो या किसान, यदि वह पाप का गुलाम हो जाए,
दोनों ही मोर्चों पर दुख-तकलीफें कम नहीं होतीं।
उच्च जाति के पुरुषों का निम्न जाति के पुरुषों के साथ टकराव।
जो इस ग्रह पर सदाचारी है, उसे स्वर्ग में भी समान दर्जा मिलेगा।
न जन्म, न परंपरा, न मित्रता - इनमें से कुछ भी मायने नहीं रखता।
शुद्ध सद्‌गुण ही भविष्य में सुख की प्राप्ति का कारण बनते हैं।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने सद्‌गुणों की स्तुति की और राजा की सहमति प्राप्त करके उसी दिन हिमालय क्षेत्र में चले गए, और एक तपस्वी का धार्मिक (सन्यासी) जीवन अपनाकर उन्होंने अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया और (प्रधान देवदूतों के लोक में) जन्म लेने के लिए नियत हो गए।

गुरु ने यहाँ इस पाठ को समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय मैंने स्वयं सद्‌गुण की परीक्षा ली और एक तपस्वी का धार्मिक (सन्यासी) जीवन अपनाया।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 86, 290, 305 और 330 की तुलना करें

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हिरि-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-363-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 363
हिरी-जातक

"जो सम्मान के बावजूद," इत्यादि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, अनाथपिंडिका के मित्र, एक सीमावर्ती प्रांत में रहने वाले एक धनी व्यापारी के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कहानी और अतीत की कहानी, दोनों ही प्रथम पुस्तक के नौवें भाग के समापन अध्याय 'जन्म' में पूरी तरह से वर्णित हैं, (*1) लेकिन इस संस्करण में जब बनारस के व्यापारी को बताया गया कि विदेशी व्यापारी के अनुयायियों की सारी संपत्ति छीन ली गई और सब कुछ खोने के बाद उन्हें भागना पड़ा, तो उन्होंने कहा, "क्योंकि वे अपने पास आए अजनबियों के लिए वह नहीं कर पाए जो उन्हें करना चाहिए था, इसलिए उन्हें कोई भी मदद करने के लिए तैयार नहीं मिला।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने इन छंदों को दोहराया:

जो सम्मान की परवाह किए बिना, अपनी भूमिका निभाता है
एक विनम्र सेवक, अपने हृदय में आपसे घृणा करता है।
अच्छे कर्मों में विपन्न, केवल शब्दों में धनी—
आह! ऐसा दोस्त तो आप कभी नहीं चाहेंगे।
अपने हर वादे को अपने कर्मों में निभाओ।
जो आप पूरा नहीं कर सकते, उसका वादा करने से इनकार करें;
ज्ञानी लोग खोखली शेखी बघारने वालों को संदेह की नजर से देखते हैं।
कोई भी मित्र बिना कारण के झगड़े पर संदेह नहीं करता।
खामियों को खोजने के लिए हमेशा देखते रहने के लिए:
लेकिन जो अपने मित्र पर भरोसा रखता है, वह निश्चिंत रह सकता है।
जैसे छोटा बच्चा अपनी माँ की गोद में होता है,
मैं कभी भी किसी अजनबी के कर्म या वचन से प्रभावित नहीं होऊंगा।
अपने हृदय के स्वामी से विमुख हो जाना।
जो व्यक्ति मानवीय मित्रता के बंधन को भलीभांति निभाता है,
बढ़े हुए आनंद और सम्मान से भरा जीवन क्या बता सकता है:
लेकिन जो शांति के आनंद का अनुभव करता है,
सत्य के मीठे घूंट पीते हुए—केवल वही जानता है
पाप के बंधनों और उसके सभी कष्टों से मुक्ति।
इस प्रकार, दुष्ट साथियों के संपर्क में आने से विरक्त होकर, उस महान सत्ता ने एकांत की शक्ति के माध्यम से अपने उपदेश को समाप्त किया और मनुष्यों को शाश्वत निर्वाण की ओर ले गए।

अपने पाठ के अंत में गुरु ने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय मैं स्वयं बनारस का व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1)सं. 90

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खज्जोपनक-जातक**

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----II-364-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 364
खज्जोपनक-जातक

जुगनू से संबंधित इस प्रश्न पर महाउम्मग्ग में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अहिगुंडिका-जातक**
स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----II-365-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 365
अहिगुंडिका-जातक

"देखो! हम यहाँ लेटे हैं," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई थी। यह कहानी शलाका जन्म (*1) में पहले ही पूरी तरह से वर्णित है। इस संस्करण में भी, वृद्ध भिक्षु ने एक गाँव के लड़के को भिक्षु दीक्षा देने के बाद उसका अपमान किया और उसे पीटा। लड़का भाग गया और संसार में लौट गया। वृद्ध भिक्षु ने उसे एक बार फिर शिष्यों के पवित्र संघ में शामिल किया और पहले की तरह ही व्यवहार किया। तीसरी बार संसार में लौटने के बाद, जब उस युवक को फिर से वापस आने के लिए कहा गया, तो उसने वृद्ध भिक्षु की ओर देखा तक नहीं। सत्य के हॉल में इस बात पर चर्चा हुई कि एक वरिष्ठ भिक्षु न तो अपने शिष्य के साथ रह सकता है और न ही उसके बिना, जबकि वह लड़का, जो एक संवेदनशील युवक था, वृद्ध भिक्षु के स्वभाव दोष को देखकर उसकी ओर देखता तक नहीं था। गुरु आए और उन्होंने पूछा कि चर्चा का विषय क्या है। जब उन्होंने उसे बताया, तो उसने कहा, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि पहले भी यही युवक एक संवेदनशील नौसिखिया था, जो वरिष्ठ भिक्षु की कमियों को देखकर उनकी ओर दृष्टि तक नहीं डालता था।" और ऐसा कहते हुए उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व का जन्म एक अनाज व्यापारी के परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे अनाज बेचकर अपना जीवन यापन करते थे।

एक सपेरे ने एक बंदर को पकड़ा और उसे सांप के साथ खेलना सिखाया। जब बनारस में एक त्योहार की घोषणा हुई, तो उसने बंदर को अनाज व्यापारी के पास छोड़ दिया और सात दिनों तक घूम-घूम कर सांप के साथ खेलता रहा। व्यापारी बंदर को हर तरह का भोजन खिलाता रहा। सातवें दिन त्योहार के जश्न में सपेरा शराब के नशे में चूर हो गया और वापस आकर उसने बांस के एक टुकड़े से बंदर को तीन बार मारा। फिर उसे अपने साथ एक बगीचे में ले जाकर बांध दिया और सो गया। बंदर अपनी जंजीर से छूट गया और एक आम के पेड़ पर चढ़कर वहां फल खाने लगा। जब सपेरे की नींद खुली तो उसने बंदर को पेड़ पर बैठा देखा और सोचा, "मुझे उसे बहला-फुसलाकर पकड़ना चाहिए।" और उससे बात करते हुए उसने पहली पंक्ति दोहराई:

देखो! हम यहाँ लेटे हैं, मेरी प्यारी।
जैसे कोई जुआरी पासे से हार जाता है।
कुछ आम गिरा दो: खैर, हम जानते हैं।
हम अपनी आजीविका के लिए आपके तरकीबों के ऋणी हैं।
यह सुनकर बंदर ने शेष छंद बोले:

हे मित्र, तुम्हारी प्रशंसा निरर्थक लगती है;
एक सुंदर बंदर कभी नहीं मिला।

दुकानों में कौन, जब नशे में हो,
क्या आज तुमने मुझे भूखा रखा और इतना पीटा कि दर्द होने लगा?
जब मैं, सपेरा, याद करता हूँ
दर्द की वह बिस्तर जिस पर मैं लेटा हुआ था,
हालांकि मुझे किसी दिन राजा बनना हो,
मेरी किसी भी प्रार्थना से यह वरदान भंग नहीं होना चाहिए।
तुम्हारी क्रूरता याद आ रही है।
लेकिन अगर किसी व्यक्ति के रहने के बारे में पता हो
घर पर संतुष्टि मिलने की संभावना है,
और सौम्य जाति के स्रोत, बुद्धिमान
ऐसे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करने चाहिए।
इन शब्दों के साथ ही बंदर अपने साथी बंदरों की भीड़ में खो गया। (*2)

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय बूढ़ा व्यक्ति सपेरा था, नौसिखिया बंदर था, और मैं स्वयं अनाज व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 249 देखें

(2) "पेड़ों के झुरमुट में खो गया था"।

स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-366-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 366
गुम्बिया-जातक (*1)

"शहद जैसा ज़हर," इत्यादि - यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी। यह कहानी एक भिक्षु के बारे में है जिसे दीक्षा लेने का पछतावा था। गुरुजी ने उससे पूछा कि क्या उसे सच में पछतावा है? भिक्षु ने कहा, "जी हाँ, परम पूज्य।" गुरुजी ने पूछा, "ऐसा क्या देखा है जिससे तुम्हें यह एहसास हुआ?" जब भिक्षु ने उत्तर दिया, "एक स्त्री के आकर्षण के कारण," तो गुरुजी ने कहा, "इच्छा के ये पाँच गुण उस शहद के समान हैं जिस पर घातक ज़हर छिड़का गया हो और जिसे गुम्बिका ने सड़क पर छोड़ दिया हो।" और इस पर भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक व्यापारी के घर में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर वे पाँच सौ गाड़ियों में माल लादकर व्यापार के लिए बनारस से निकले। मुख्य मार्ग पर, एक जंगल के प्रवेश द्वार पर पहुँचकर उन्होंने अपने सभी काफिले के सदस्यों को बुलाया और कहा, “देखो! इस मार्ग पर पत्ते, फूल, फल और ऐसी ही अन्य चीजें हैं जो विषैली हैं। इन्हें खाते समय मुझसे पूछे बिना कोई भी पराया भोजन न करना; क्योंकि राक्षस मार्ग में ताजे चावल और विभिन्न प्रकार के मीठे जंगली फलों से भरी टोकरियाँ रखते हैं और उन पर विष छिड़कते हैं। मेरी अनुमति के बिना इन्हें मत खाना।” यह चेतावनी देने के बाद वे अपनी यात्रा पर आगे बढ़ गए।

फिर गुम्बिया नाम के एक यक्ष (राक्षस) ने जंगल के बीचोंबीच एक जगह पर पत्ते बिछाए और उन पर शहद के कुछ टुकड़े रखकर उन्हें घातक विष से ढक दिया। वह स्वयं पेड़ों को चोंच मारने का नाटक करते हुए, मानो शहद की खोज में लगा हो, सड़क पर इधर-उधर भटकने लगा। अज्ञानवश मनुष्यों ने सोचा, "यह शहद किसी पुण्य कर्म के फल के रूप में यहाँ रखा गया होगा," और फिर उसे खाकर

उनकी मृत्यु हो गई। राक्षस आए और उनका मांस खा गए। बोधिसत्व के काफिले के कुछ लोग, स्वभाव से लालची होने के कारण, इन उत्तम खाद्य पदार्थों को देखकर अपने आप को रोक नहीं पाए और उन्हें खा लिया। लेकिन जो बुद्धिमान थे उन्होंने कहा, "हम खाने से पहले बोधिसत्व से सलाह लेंगे," और उसे अपने हाथों में पकड़े खड़े रहे। जब बोधिसत्व ने देखा कि उनके हाथों में क्या है, तो उन्होंने उन्हें उसे फेंक देने के लिए कहा। और जो लोग उसे पूरा खा चुके थे, वे मर गए। लेकिन जिन्होंने आधा ही खाया था, उन्हें उन्होंने उल्टी कराने वाली दवा दी, और उल्टी होने के बाद उन्होंने उन्हें चार मीठी चीजें दीं, और इस प्रकार अपनी अलौकिक शक्ति से वे ठीक हो गए। बोधिसत्व सुरक्षित रूप से अपने इच्छित स्थान पर पहुँच गए, और अपना सामान बेचने के बाद अपने घर लौट गए।

जहर, दिखने में, स्वाद में और गंध में शहद जैसा।
गुंबिया द्वारा जानबूझकर बिछाया गया था, लेकिन वह गिर गया:
वे सभी जिन्होंने शहद की तरह उस हानिकारक भोजन को खाया,
अपने ही लालच के कारण वे जंगल में नष्ट हो गए।
लेकिन जिन्होंने बुद्धिमानी से प्रलोभन से परहेज किया,
वे यातनाओं से मुक्त रहे और शांति से रहे।
इसलिए कामवासना, विष के चारे की तरह, मनुष्य के लिए रखी जाती है;
उसके दिल की ख्वाहिश अक्सर मौत के मुंह में धकेल दी गई है।
लेकिन जो कमजोर होते हुए भी, पापों के प्रति आसक्त होने से त्याग देता है,
दुख और पीड़ा के बंधनों से मुक्ति।

पूर्ण ज्ञान से प्रेरित इन श्लोकों को सुनाने के बाद, गुरु ने सत्यों को प्रकट किया और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया: "उस समय मैं स्वयं वह व्यापारी था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 85 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सालिया-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-367-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 367
सालिया-जातक

"जिसने अपने दोस्त को मार डाला," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बांस के जंगल में रहते हुए सुनाई थी, उस कहावत के संदर्भ में कि देवदत्त भय भी उत्पन्न नहीं कर सकता था।

जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक गृहस्थ परिवार में हुआ था। बचपन में वे गाँव के प्रवेश द्वार पर स्थित एक बरगद के पेड़ की तलहटी में अन्य लड़कों के साथ खेलते थे। उसी समय एक गरीब, बूढ़ा वैद्य, जिसका कोई व्यवसाय नहीं था, गाँव से भटकते हुए उस स्थान पर आया और उसने पेड़ की शाखाओं के बीच एक साँप को सिर छिपाए सोते हुए देखा। उसने सोचा, "इस गाँव में कुछ नहीं मिलता। मैं इन लड़कों को समझाऊँगा और साँप से उन्हें कटवाऊँगा, फिर मैं उनके इलाज के बदले कुछ कमा लूँगा।" उसने बोधिसत्व से कहा, "यदि आपको एक छोटा सा काँटेदार जानवर दिखाई दे, तो क्या आप उसे पकड़ लेंगे?" बोधिसत्व ने कहा, "हाँ, मैं पकड़ लूँगा।"

"देखो, एक इस पेड़ की शाखा में पड़ा है," बूढ़े आदमी ने कहा।

बोधिसत्व को यह पता नहीं था कि वह एक साँप है, इसलिए वह पेड़ पर चढ़ गए और उसकी गर्दन पकड़ ली। लेकिन जब उन्हें पता चला कि वह एक साँप है, तो उन्होंने उसे अपने ऊपर हमला नहीं करने दिया, बल्कि उसे अच्छी तरह से पकड़कर जल्दी से दूर फेंक दिया। साँप बूढ़े चिकित्सक की गर्दन पर गिरा और उसके चारों ओर लिपटकर उसे इतनी ज़ोर से काटा कि उसके दाँत मांस में धंस गए और बूढ़ा वहीं गिर पड़ा और मर गया, और साँप भाग गया। लोग उनके चारों ओर जमा हो गए, और महान सत्ता ने एकत्रित लोगों को धर्म का मार्ग समझाते हुए ये श्लोक दोहराए:

जिसने अपने दोस्त को कब्जा करने के लिए राजी किया
एक घातक सांप, जिसे आप चाहें तो हेजहॉग कह सकते हैं।
सांप के काटने से उसकी मृत्यु हो गई।
जैसे कोई व्यक्ति अपने पड़ोसी के प्रति बुराई की इच्छा रखता हो।
जिसने प्रहार किया था, वह चला गया
वह आदमी जो कभी पलटवार नहीं करता,
उसे चोट लगी और वह नीचे लेट गया।
इस बेईमान को घातक प्रहार से बहुत पीड़ा हुई।
तो धूल जिसे फेंक देना चाहिए
हवा के विपरीत दिशा में चलने पर हवा चेहरे पर वापस आ जाती है;
और एक के लिए खराब ढंग से डिजाइन किया गया।
जो पवित्र है, और जिसने कोई बुराई नहीं की है,
अंततः मूर्ख के सिर पर
विस्फोट के विपरीत दिशा में फेंकी गई धूल की तरह यह पीछे हटता है।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय वह बेचारा बूढ़ा चिकित्सक देवदत्त था, और वह बुद्धिमान युवक मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तकासार-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-368-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 368
ताकासारा-जातक

“प्रतिद्वंद्वियों के हाथों में पड़ जाना,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए ज्ञान की पूर्णता के विषय में सुनाई थी। तब गुरु ने कहा, “हे भिक्षुओं, केवल अब ही नहीं, बल्कि पहले भी तथागत (बुद्ध) ने स्वयं को बुद्धिमान और संसाधन संपन्न सिद्ध किया था।” और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक प्राचीन कथा सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, बोधिसत्व का जन्म एक ग्रामस्वामी के घर में हुआ था। पूरी कहानी पिछले जन्म की कहानी से बिल्कुल मिलती-जुलती है। लेकिन इस कथा के अनुसार, जब वैद्य की मृत्यु हो गई, तो उनके गाँव के पड़ोसियों ने कहा, "इन युवकों ने उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनाया है। हम इन्हें राजा के समक्ष लाएँगे।" और उन्होंने उन्हें जंजीरों में बाँधकर बनारस ले गए। बोधिसत्व ने यात्रा के दौरान अन्य युवकों को सलाह देते हुए कहा, "डरो मत। राजा के समक्ष लाए जाने पर भी, निडर और प्रसन्न रहना। राजा पहले हमसे बात करेंगे, और उसके बाद मैं निर्णय लूँगा कि क्या करना है।" वे उनकी बात से सहमत हो गए और उन्होंने उसी के अनुसार कार्य किया। जब राजा ने उन्हें शांत और प्रसन्न पाया, तो उसने कहा, "इन बेचारे लोगों को हत्यारों के रूप में जंजीरों में बांधकर यहाँ लाया गया है, और इतनी विपत्ति में होने के बावजूद, वे भयभीत नहीं हैं और प्रसन्न हैं। मैं उनसे पूछूंगा कि वे क्यों परेशान नहीं हैं।"

और उन्होंने पहला छंद दोहराया:

प्रतिद्वंद्वियों के हाथ में पड़ गया
   और बांस की जंजीरों से बंधा हुआ,
तुम अपने कष्टों को कैसे छुपा सकते हो?
   और मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ पाया जा सकता है?
यह सुनकर बोधिसत्व ने शेष श्लोक कहे:

   थोड़ी सी भी अच्छाई नहीं होती।
वह व्यक्ति विलाप और शोक से सदा के लिए मुक्त हो जाएगा;
   उसके शत्रु प्रसन्न होते हैं।
जब वे अपने प्रतिद्वंद्वी को दर्द से बेहाल देखते हैं।
   लेकिन शत्रु दुख से भरे हुए हैं
जब वह बड़े साहस के साथ अपने भाग्य से मिलने जाता है,
   और वह घबराता नहीं है, जैसे कोई कुशल व्यक्ति।
विवेक का प्रयोग करके सभी चीजों में अंतर करना चाहिए।
   चाहे वह मंत्रोच्चारण से हो या जादू-टोने से,
महंगे उपहारों से, या शक्तिशाली परिवार की मदद से,
   ताकि वह नुकसान से सर्वोत्तम तरीके से बच सके।
किसी व्यक्ति को जीतने के लिए किसी अनुकूल स्थिति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
   लेकिन अगर वह सफलता हासिल करने में असफल रहता है,
दूसरों की सहायता से या अकेले ही,
   उसे शोक नहीं करना चाहिए बल्कि सहमत होना चाहिए;
भाग्य बहुत शक्तिशाली है, उसने अपनी पूरी कोशिश कर ली है।
बोधिसत्व द्वारा धर्म की व्याख्या सुनने के बाद राजा ने मामले की जांच की और लड़कों की निर्दोषता का पता चलने पर उनकी बेड़ियाँ खुलवा दीं। उन्होंने बोधिसत्व को बहुत सम्मान दिया और उन्हें अपना सांसारिक और आध्यात्मिक सलाहकार तथा अपना विशिष्ट मंत्री नियुक्त किया। उन्होंने अन्य युवकों को भी सम्मान प्रदान किया और उन्हें विभिन्न पदों पर नियुक्त किया।

जब गुरु ने यह पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद बनारस के राजा थे, अन्य युवक निम्न श्रेणी के पुरोहित थे, और मैं स्वयं ज्ञानी युवक था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मित्तविंदा-जातक3**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-369-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 369
मित्तविन्द-जातक(*1)

"बुराई क्या थी?", इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक उद्दंड भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इस कहानी की उत्पत्ति का कारण महामित्तविन्द जन्मग्रंथ में मिलेगा।

अब जब मित्तविन्दका को समुद्र में फेंक दिया गया, तो उसने अत्यंत लालच दिखाया और और भी अधिक लालच करते हुए नरक में जाने वाले प्राणियों के यातनास्थल पर पहुँच गया। उसने उस्सादा नरक को नगर समझकर उसमें प्रवेश किया और वहाँ अपने सिर पर

एक तेज धार वाला पहिया लगवा लिया। तब बोधिसत्व देवदूत के रूप में उस्सादा गए। उन्हें देखकर मित्तविन्दका ने पहले श्लोक को प्रश्नवाचक रूप में दोहराया:-

मेरे कारण क्या बुराई उत्पन्न हुई?
इस प्रकार स्वर्ग के श्राप को भड़काना,
कि मेरा बेचारा सिर कभी भी
यातना के घूमते पहिये के टूटने से?
यह सुनकर बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक कहा:

आनंद और सुख के घरों को त्यागकर,
यह मोतियों और क्रिस्टल से सजा हुआ है।
और सोने-चांदी की चमक से सजे महल,
आपको इस भयावह दृश्य तक क्या चीज ले आई?
तब मित्तविन्दक ने तीसरे श्लोक में उत्तर दिया:

मुझे वहाँ कहीं अधिक परिपूर्ण आनंद प्राप्त होंगे
इन गरीब दुनियाओं में से कोई भी इससे बेहतर प्रदर्शन नहीं कर सकता।"
यही विचार मेरी कमजोरी साबित हुआ।
और इसी वजह से मैं पीड़ा के इस दृश्य तक पहुंचा।
इसके बाद बोधिसत्व ने शेष श्लोकों को दोहराया:

चार से आठ तक, फिर वहां से सोलह तक, और इसी तरह
बत्तीस वर्ष की आयु तक अतृप्त लालच बढ़ता चला गया।
इस प्रकार, हे लालची आत्मा, तुम निरंतर आगे बढ़ते रहे।
जब तक तुम्हें अपने सिर पर यह पहिया ढोने के लिए अभिशप्त न होना पड़े।
अतः सभी, लालच भरी इच्छाओं का पीछा करते हुए,
अब भी अतृप्त हैं, फिर भी और अधिक से अधिक की मांग है:
उनकी भूख का बढ़ता हुआ मार्ग,
और, आपकी ही तरह, वे भी इस चक्र को अपने सिर पर ढोते हैं।
लेकिन जब मित्तविन्दक बोल ही रहे थे कि पहिया उन पर गिर पड़ा और उन्हें कुचल दिया, जिससे वे आगे कुछ बोल नहीं सके। लेकिन वह दिव्य प्राणी सीधे अपने स्वर्गलोक लौट गए।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय उद्दंड भाई (भिक्षु) मित्तविन्दक थे, और मैं स्वयं दिव्य सत्ता था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 41, 82 और 104 देखें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पलास-जातक2**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-370-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 370
पलासा-जातक

"हंस ने यहूदा वृक्ष से कहा," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते समय पाप के दंड के विषय में सुनाई थी। इस कथा की उत्पत्ति का वर्णन पन्ना जन्म में किया जाएगा। इस अवसर पर गुरु ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, पाप को संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए। चाहे वह बरगद की छोटी सी टहनी ही क्यों न हो, वह घातक सिद्ध हो सकता है। प्राचीन ऋषि भी हर उस चीज़ पर संदेह करते थे जिस पर संदेह किया जा सकता था।" और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, बोधिसत्व एक सुनहरे हंस के बच्चे के रूप में प्रकट हुए। जब वे बड़े होकर हंस बन गए, तो वे हिमालय क्षेत्र के चित्तकूट पर्वत पर स्थित एक सुनहरी गुफा में रहने लगे और एक प्राकृतिक झील के किनारे उगने वाले जंगली धान को खाने के लिए नियमित रूप से जाया करते थे। उनके आने-जाने के रास्ते में एक विशाल बरगद का पेड़ था। आते-जाते वे हमेशा वहीं रुककर विश्राम करते थे। इस प्रकार, बरगद में निवास करने वाले देवता से उनका मित्रत्व स्थापित हो गया। कुछ समय बाद, एक पक्षी बरगद का पका फल खाकर बरगद के पेड़ पर आकर बैठ गया और उसकी शाखा के बीच में अपनी विष्ठा गिरा दी। वहीं से एक छोटा बरगद का पेड़ उगा, जो चार इंच ऊंचा हो गया और लाल अंकुरों और हरियाली से जगमगा रहा था। यह देखकर शाही हंस ने वृक्ष के संरक्षक देवता से कहा, "मेरे मित्र, जिस भी वृक्ष पर बरगद का अंकुर उगता है, वह उसके बढ़ने से नष्ट हो जाता है। इसे बढ़ने मत दो, वरना यह तुम्हारे निवास स्थान को नष्ट कर देगा। तुरंत वापस जाओ और इसे जड़ से उखाड़कर फेंक दो। जिस बात पर संदेह करना उचित हो, उस पर संदेह करना चाहिए।" और इस प्रकार वृक्ष-परी से बात करते हुए हंस ने पहला श्लोक कहा:

हंस ने यहूदा के पेड़ से कहा,
"एक बरगद की शाखा तुम्हें धमका रही है:
आप अपने सीने के पिछले हिस्से में क्या करते हैं
मुझे डर है कि वो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देगा।
यह सुनकर वृक्ष देवता ने उसकी बातों पर ध्यान न देते हुए दूसरी पंक्ति दोहराई:

अच्छा! इसे बढ़ने दो, और क्या मुझे होना चाहिए?
बरगद के पेड़ के लिए एक शरणस्थल,
और उसकी देखभाल माता-पिता के प्यार से करें।
यह मेरे लिए एक आशीर्वाद साबित होगा।
फिर हंस ने तीसरा छंद बोला:

मुझे डर है कि यह एक शापित अंकुर है।
आप इसे अपने सीने के पिछले हिस्से के भीतर करते हैं।
मैं अलविदा कहता हूँ और भाग जाता हूँ।
अफसोस! यह वृद्धि मुझे पसंद नहीं करती।
इन शब्दों के साथ राजसी हंस ने अपने पंख फैलाए और सीधे चित्तकुटा पर्वत की ओर चल पड़ा। उसके बाद वह कभी वापस नहीं लौटा। कुछ समय बाद बरगद का पौधा उगा। इस वृक्ष का भी अपना संरक्षक देवता था। और अपनी वृद्धि के दौरान, इसने यहूदा वृक्ष को तोड़ दिया, और एक शाखा के साथ वृक्ष-देवता का निवास भी गिर गया। इस समय राजसी हंस के शब्दों पर विचार करते हुए, वृक्ष-देवता ने सोचा, "हंसों के राजा ने भविष्य में इस खतरे को भांप लिया था और मुझे इसके बारे में चेतावनी दी थी, लेकिन मैंने उनकी बात नहीं मानी।" और इस प्रकार शोक करते हुए, उन्होंने चौथा श्लोक कहा:

मेरु की ऊँचाई के समान एक भयानक प्रेत
इसने मुझे एक भयावह स्थिति में डाल दिया है;
मित्र गूसी द्वारा कहे गए शब्दों का तिरस्कार करते हुए,
अब मैं भय से व्याकुल हूँ।
इस प्रकार, जैसे-जैसे बरगद का वृक्ष बढ़ता गया, उसने उस पूरे यहूदा वृक्ष को नष्ट कर दिया और उसे मात्र एक ठूंठ में बदल दिया, और वृक्ष-देवता का निवास स्थान पूरी तरह से गायब हो गया।

बुद्धिमान लोग परजीवी चीजों से घृणा करते हैं।
यह उस रूप का गला घोंट देता है जिससे वह चिपके रहना पसंद करता है।
बुद्धिमान व्यक्ति, खरपतवार से होने वाले खतरे को भांपते हुए,
बीज बनने से पहले ही जड़ को नष्ट कर दें।

यह पांचवां छंद था, जो पूर्ण ज्ञान से प्रेरित था।

यहां गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए सत्यों का खुलासा किया और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के समापन पर पांच सौ भिक्षुओं ने संतत्व प्राप्त किया:- "उस समय मैं स्वयं सोने की मुर्गी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दिघिटिकोसल-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-371-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 371
दिघितिकोसला-जातक (*1)

“तुम मेरी शक्ति के अधीन हो,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसंबी के कुछ झगड़ालू लोगों के बारे में सुनाई थी। जब वे जेतवन मठ आए, तो गुरु ने उनके बीच सुलह कराते हुए कहा, “भाइयों, तुम मेरे वचनों से उत्पन्न मेरे वैध पुत्र हो। बच्चों को अपने पिता की सलाह को पैरों तले नहीं रौंदना चाहिए, परन्तु तुम मेरी सलाह का पालन नहीं करते। प्राचीन ऋषियों ने जब अपने माता-पिता को मारकर उनके राज्य पर कब्जा करने वाले लोग जंगल में उनके हाथ लग गए, तो उन्होंने उन्हें मृत्युदंड नहीं दिया, यद्यपि वे पक्के विद्रोही थे, बल्कि उन्होंने कहा, “हम अपने माता-पिता की सलाह को नहीं रौंदेंगे।” और इस पर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई। इस जन्म में, इस कथा से संबंधित घटना और कथा दोनों का संघभेदक जन्म में पूर्ण वर्णन किया जाएगा।

राजकुमार दिघावु ने बनारस के राजा को जंगल में एक तरफ लेटा हुआ पाया, तो उसने उसकी चोटी पकड़कर कहा, "अब मैं उस लुटेरे के चौदह टुकड़े कर दूंगा जिसने मेरे माता-पिता को मार डाला।" और जिस क्षण वह अपनी तलवार लहरा रहा था, उसे अपने माता-पिता की सलाह याद आई और उसने सोचा, "यद्यपि मुझे अपना प्राण भी बलिदान करना पड़े, तो भी मैं उनकी सलाह को पैरों तले नहीं रौंदूंगा। मैं उसे डराकर ही संतुष्ट हो जाऊंगा।" और उसने पहला श्लोक कहा:

हे राजा, आप मेरी शक्ति के अधीन हैं।
   आप यहां जिस प्रकार से लेटे हैं:
आप क्या योजना लेकर आ रहे हैं?
   क्या आप अपने डर से मुक्ति पाना चाहते हैं?
तब राजा ने दूसरा श्लोक बोला:

मेरे मित्र, मैं आपकी शक्ति के भीतर झूठ बोलता हूँ।
   सभी असहाय होकर जमीन पर पड़े हैं,
और न ही मुझे कोई ऐसा साधन ज्ञात है जिससे
   मुक्ति मिल सकती है।
तब बोधिसत्व ने शेष श्लोकों को दोहराया:

हे राजा, धन-दौलत की नहीं, केवल अच्छे कर्म और अच्छे वचन ही काफी हैं।
मृत्यु के क्षण में क्या कोई सांत्वना दे सकता है?
(*2) "इस आदमी ने मुझे गाली दी, इसने मुझे एक मुक्का मारा,
एक तीसरे व्यक्ति ने बहुत पहले ही मुझ पर विजय प्राप्त कर मुझे लूट लिया था।"
इस प्रकार की भावना रखने वाले सभी लोग,
वे अपने गुस्से को शांत करने के लिए कभी इच्छुक नहीं होते।
"उन्होंने अतीत को लेकर मुझे गालियां दीं और मुझे सताया।"
उसने मुझे पराजित किया और मुझे पीड़ा पहुँचाई।

जो लोग ऐसे विचारों को स्वीकार करने से इनकार करते हैं,
उनके गुस्से को शांत करें और फिर से एक साथ रहें।
नफरत नहीं, बल्कि केवल प्रेम ही नफरत को समाप्त कर सकता है:
यह शांति का शाश्वत नियम है।
इन शब्दों के बाद बोधिसत्व ने कहा, "हे महाराज, मैं आपका कोई नुकसान नहीं करूंगा। लेकिन क्या आप मुझे मार डालेंगे?" और उन्होंने अपनी तलवार राजा के हाथ में रख दी। राजा ने भी कहा, "मैं भी आपका कोई नुकसान नहीं करूंगा।" और उन्होंने शपथ ली, और उनके साथ नगर गए, और उन्हें अपने सलाहकारों के सामने पेश करते हुए कहा, "हे महाराज, मैं कोसल के राजा का पुत्र, राजकुमार दिघावु हूं। इसने मेरी जान बख्श दी है। मैं इसे कोई हानि नहीं पहुंचाऊंगा।" और ऐसा कहकर उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया, और उन्हें उनके पिता के राज्य में स्थापित कर दिया। तब से दोनों राजा सुखपूर्वक और सौहार्दपूर्वक एक साथ शासन करते रहे।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उन दिनों के पिता और माता अब शाही परिवार के सदस्य हैं, और राजकुमार दिघावु मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 428 की तुलना करें

(2)धम्मपद खंड 3-5.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मिगपोटक-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-372-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 372
मिगापोताका-जातक

“मृतकों के लिए शोक करना,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि उन्होंने एक युवक को शिष्यों के पवित्र संघ में प्रवेश दिया, और उस नौसिखिए ने उनकी पूरी लगन से सेवा करने के बाद, कुछ समय बाद बीमार पड़कर उनकी मृत्यु हो गई। युवक की मृत्यु से व्याकुल होकर वृद्ध भिक्षु जोर-जोर से विलाप करने लगे। भिक्षु उन्हें सांत्वना देने में असफल रहे और उन्होंने सत्य कक्ष में चर्चा छेड़ दी, “एक वृद्ध भिक्षु अपने नौसिखिए की मृत्यु पर विलाप कर रहा है। मृत्यु के विचार में जीकर वह निश्चय ही अपंग हो जाएगा।” जब गुरु वहाँ आए, तो उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, और यह सुनकर उन्होंने कहा, “केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी, जब इस युवक की मृत्यु हुई थी, तब वृद्ध भिक्षु विलाप करते थे।” और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बेवारों के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बोधिसत्व इंद्र (सक्का) के रूप में पैदा हुए। उस समय काशी राज्य में रहने वाला एक व्यक्ति हिमालय क्षेत्र में आया और तपस्वी जीवन अपनाकर जंगली फल खाकर जीवन यापन करने लगा। एक दिन उसे जंगल में एक हिरण का बच्चा मिला जिसकी माँ मर चुकी थी। वह उसे अपने आश्रम में ले आया और उसका पालन-पोषण किया। हिरण का बच्चा बड़ा होकर सुंदर और आकर्षक जानवर बन गया, और तपस्वी ने उसकी देखभाल की और उसे अपने बच्चे की तरह माना। एक दिन घास अधिक खाने से अपच के कारण हिरण की मृत्यु हो गई। तपस्वी शोक मनाते हुए कहने लगे, "मेरा बच्चा मर गया।" तब स्वर्ग के राजा इंद्र (सक्का) ने संसार का भ्रमण करते हुए उस तपस्वी को देखा और उसे डराने के लिए हवा में खड़े होकर पहला श्लोक बोला:

मृतकों के लिए शोक करना उचित नहीं था।

घर-परिवार के बंधनों से मुक्त, एकाकी तपस्वी।
यह सुनते ही तपस्वी ने दूसरा श्लोक बोला:

हे सक्का (इंद्र), क्या पशुवंशी पुरुष को शोक करना चाहिए?
एक बिछड़े हुए साथी को आंसुओं में राहत मिलती है।
तब सक्का (इंद्र) ने दो श्लोक दोहराए:

जो लोग खुशी के आंसू बहाते हैं, वे मृतकों के लिए शोक भी मना सकते हैं।
हे ऋषि, रोओ मत, बुद्धिमानों ने कहा है कि रोना व्यर्थ है।
यदि हमारे आँसुओं से हम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकें,
इस प्रकार हम सभी अपने प्रियजनों को बचाने के लिए एकजुट होंगे।
जब सक्का (इंद्र) इस प्रकार बोल रहे थे, तब तपस्वी ने यह जानते हुए कि रोना व्यर्थ है, सक्का (इंद्र) की स्तुति करते हुए तीन श्लोक दोहराए (*1):

घी से प्रज्वलित लौ की तरह जो तेजी से भड़क उठती है
उसे पानी से बुझाया गया, इसलिए उसने मेरा दर्द बुझा दिया।
दु:ख के बाण से मेरा हृदय घायल हो गया:
उन्होंने मेरे घाव को ठीक किया और मुझे नया जीवन दिया।
कांटा निकालते समय, आनंद और शांति का अनुभव हुआ।
सक्का (इंद्र) के शब्दों से मेरा दु:ख समाप्त हो गया।
इस प्रकार तपस्वी को सलाह देने के बाद, सक्का (इंद्र) अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान कर गए।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म का वर्णन किया:- "उस समय वृद्ध व्यक्ति तपस्वी था, नौसिखिया हिरण था, और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 352 और क्रमांक 410 में भी

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> मुसिका - **जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-373-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 373
मुसिका-जातक

लोग रोते हैं, “वह कहाँ चली गई?” आदि। यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में निवास करते हुए अजातशत्रु के बारे में सुनाई थी। इस कहानी की उत्पत्ति का पूरा वर्णन थुसा जन्म (*1) में किया जा चुका है। यहाँ भी गुरु ने राजा को अपने पुत्र के साथ खेलते हुए और धार्मिक मार्ग की बातें सुनते हुए देखा। और यह जानते हुए कि उनके पुत्र के कारण राजा को खतरा होगा, उन्होंने कहा, “महाराज, पुराने समय के राजा संदेह के दायरे में आने वाली बातों पर संदेह करते थे और अपने उत्तराधिकारियों को कैद में रखते हुए कहते थे, “हमारे शरीर को चिता पर जलाने के बाद ही उन्हें शासन करने दें।” और इस प्रकार उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में एक समय की बात है, बोधिसत्व एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे और विश्वप्रसिद्ध गुरु बने। बनारस के राजा के पुत्र, राजकुमार यव ने उनसे सभी विद्याओं का गहन अध्ययन करने के बाद, अपने प्रस्थान की इच्छा से उन्हें विदा

किया। गुरु को अपनी दूरदृष्टि से यह ज्ञात हो गया कि उनके पुत्र के कारण राजकुमार को कोई खतरा होगा, इसलिए उन्होंने इस खतरे को दूर करने के उपाय खोजने शुरू किए और अपने आसपास एक उपयुक्त उदाहरण की तलाश करने लगे।

उस समय उनके पास एक घोड़ा था, जिसके पैर में चोट लग गई थी। चोट का ध्यान रखने के लिए घोड़े को अस्तबल में रखा गया था। पास ही एक कुआँ था। एक चूहा अक्सर अपने बिल से निकलकर घोड़े के पैर की चोट को कुतरता था। घोड़ा उसे रोक नहीं पाता था, और एक दिन दर्द सहन न कर पाने पर जब चूहा उसे काटने आया, तो उसने अपने खुर से उसे मारकर कुएँ में लात मार दी। घोड़े की देखभाल करने वालों ने चूहे को न देखकर कहा, "पहले तो चूहा आकर चोट को कुतरता था, लेकिन अब दिखाई नहीं दे रहा। उसका क्या हुआ?" बोधिसत्व ने यह सब देखा और कहा, "दूसरे लोग न जानने के कारण पूछते हैं, 'चूहा कहाँ है?' लेकिन केवल मैं ही जानता हूँ कि चूहे को घोड़े ने मार डाला है और वह कुएँ में गिर गया है।" और इसी घटना को उदाहरण बनाकर उन्होंने पहला श्लोक रचा और उसे युवा राजकुमार को दे दिया।

एक और उदाहरण की तलाश करते हुए, उसने देखा कि वही घोड़ा, जब उसका फोड़ा ठीक हो गया, तो बाहर गया और जौ के खेत में जौ खाने के लिए गया, और बाड़ में एक छेद से अपना सिर बाहर निकाला। इसे एक उदाहरण मानकर उसने दूसरा छंद रचा और राजकुमार को दे दिया। लेकिन तीसरा छंद उसने अपनी सूझबूझ से रचा और उसे भी दे दिया। और उसने कहा, "मेरे मित्र, जब तुम राज्य में स्थापित हो जाओ, तो शाम को स्नानघर जाते समय, सीढ़ियों के सामने तक पहले छंद को दोहराते हुए चलो, और जब तुम अपने महल में प्रवेश करो, तो सीढ़ियों के नीचे तक दूसरे छंद को दोहराते हुए चलो, और वहाँ से सीढ़ियों के ऊपर तक जाते समय तीसरे छंद को दोहराते हुए चलो।" और इन शब्दों के साथ उसने उसे विदा कर दिया।

युवा राजकुमार घर लौट आया और वायसराय के रूप में कार्य किया, और अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राजा बन गया। उसका एक ही पुत्र था, और जब वह सोलह वर्ष का हुआ तो वह राजा बनने के लिए उत्सुक था। अपने पिता की हत्या का संदेह होने पर उसने अपने संरक्षकों से कहा, "मेरे पिता अभी युवा हैं। जब मैं उनकी चिता देखूंगा, तब मैं एक बूढ़ा और कमजोर व्यक्ति होऊंगा। तब सिंहासन पर बैठने का क्या लाभ होगा?" उन्होंने कहा, "महाराज, आपके लिए सीमा पर जाकर विद्रोही बनना संभव नहीं है। आपको किसी न किसी तरह अपने पिता को मारना होगा और उनके राज्य पर कब्जा करना होगा।" वह तुरंत सहमत हो गया, और शाम को गया, अपनी तलवार ली और राजा के महल में स्नानकुंड के पास खड़ा हो गया, अपने पिता को मारने के लिए तैयार। शाम को राजा ने मुसिका नामक एक दासी को यह कहते हुए भेजा, "जाओ और स्नानकुंड की सतह को साफ करो। मैं स्नान करूंगा।" वह वहां गई और स्नानकुंड की सफाई करते समय उसकी नजर राजकुमार पर पड़ी। उसे डर था कि उसका भेद खुल जाएगा, इसलिए उसने तलवार से उसे दो टुकड़ों में काट दिया और शव को तालाब में फेंक दिया। राजा स्नान करने आया। सबने कहा, "आज दासी मुसिका वापस नहीं लौटी। वह कहाँ चली गई?" राजा तालाब के किनारे गया और पहली पंक्ति दोहराई:

लोग रोते हुए पूछते हैं, "वह कहाँ चली गई?"
   मुसिका, तुम कहाँ भाग गई हो?
यह बात सिर्फ मुझे ही पता है:
   वह कुएं में मृत पड़ी है।

राजकुमार ने सोचा, "मेरे पिता को पता चल गया है कि मैंने क्या किया है।" और घबराकर वह भाग गया और अपने सेवकों को सब कुछ बता दिया। सात-आठ दिन बीतने के बाद, उन्होंने फिर उससे कहा, "महाराज, यदि राजा को पता चल जाता तो वह चुप नहीं रहते। उन्होंने जो कहा वह महज़ एक अनुमान ही होगा। उन्हें मृत्युदंड दे दीजिए।" इसलिए एक दिन वह सीढ़ियों के नीचे तलवार लिए खड़ा था, और जब राजा आया तो वह उस पर हमला करने का अवसर तलाश रहा था। राजा दूसरी पंक्ति दोहराते हुए आया:

अभी भी बोझ ढोने वाले जानवर की तरह
   आप बार-बार घूमते रहते हैं,
तुमने मुसिका (*2) को मार डाला,
   मुझे संदेह है कि यवा (*2) खुशी से खाएगा।

राजकुमार ने सोचा, "मेरे पिता ने मुझे देख लिया है," और भयभीत होकर भाग गया। लेकिन दो सप्ताह बाद उसने सोचा, "मैं फावड़े के एक ही वार से राजा को मार डालूँगा।" इसलिए उसने लंबे हैंडल वाला चम्मच के आकार का एक औजार लिया और उसे तानकर खड़ा हो गया। राजा सीढ़ी के शीर्ष पर चढ़ गया, और तीसरी पंक्ति को दोहराता रहा:

तुम तो बस एक कमजोर मूर्ख हो।
   जैसे कोई बच्चा अपने खिलौने से खेलता है,
इस लंबे चम्मच जैसे उपकरण को पकड़कर,

मैं तुम्हें मार डालूंगा, बदमाश लड़के।
उस दिन जब वह भागने में असमर्थ था, तो उसने राजा के चरणों में गिरकर कहा, "महाराज, मेरी जान बख्श दीजिए।" राजा ने उसे फटकार लगाने के बाद जंजीरों में जकड़कर जेल में डाल दिया। सफेद छतरी से ढके एक भव्य राजसी आसन पर बैठकर उसने कहा, "हमारे गुरु, एक प्रसिद्ध ब्राह्मण ने हमारे इस खतरे को पहले ही भांप लिया था और हमें ये तीन श्लोक दिए थे।" और अत्यंत प्रसन्न होकर उसने अपनी प्रसन्नता की तीव्रता में शेष श्लोक गाए:

आकाश में रहने से मुझे आजादी नहीं मिलती।
न ही किसी पारिवारिक धार्मिक कृत्य से।
नहीं, जब मेरे बेटे को मेरी जान चाहिए थी,
कविता की शक्ति के माध्यम से मृत्यु से मुक्ति प्राप्त की गई।
वह हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।
और इसका क्या अर्थ हो सकता है, यह समझने का प्रयास करें:
हालाँकि आपको इसका उपयोग नहीं करना चाहिए, समय आ जाएगा
जब आप जो सुनते हैं वह आपके लिए फायदेमंद हो सकता है।
कुछ समय बाद राजा की मृत्यु के बाद युवा राजकुमार सिंहासन पर विराजमान हो गया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उस समय वह प्रसिद्ध शिक्षक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 338 उपरोक्त.

(2)मुसिका का अर्थ है चूहा, यवा का अर्थ है जौ।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुलधनुग्गहा-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-374-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 374
चूलधनुग्गह जातक

“चूंकि तुमने लाभ प्राप्त किया है,” इत्यादि – यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु को उसकी अपरिपक्वता के दिनों की पत्नी द्वारा बहकाए जाने की घटना का वर्णन है। जब भिक्षु ने स्वीकार किया कि पत्नी के कारण ही उसने उसे त्याग दिया था और शिष्यों के मार्ग पर चलने का उसे पछतावा है, तो गुरु ने कहा, “हे भिक्षु, इस स्त्री ने केवल आज ही तुम्हें हानि नहीं पहुँचाई। पहले भी इसी के कारण तुम्हारा सिर काट दिया गया था।” और भिक्षुओं के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, बोधिसत्व इंद्र ने सक्का (इंद्र) के रूप में पुनर्जन्म लिया। उस समय बनारस के एक युवा ब्राह्मण ने तक्षशिला में सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और धनुर्विद्या में निपुण होने के कारण वह चतुर धनुर्विद् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। तब उसके गुरु ने सोचा, "इस युवक ने मेरे समान कौशल प्राप्त कर लिया है," और उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह उससे करवा दिया। वह पुत्री को लेकर बनारस लौटने की इच्छा से यात्रा पर निकल पड़ा। आधे रास्ते में, एक हाथी ने एक स्थान को उजाड़ दिया, और कोई भी उस स्थान पर जाने का साहस नहीं कर रहा था। चतुर धनुर्विद् ने, लोगों के रोकने के बावजूद, अपनी पुत्री को साथ लिया और जंगल के प्रवेश द्वार तक चढ़ गया। जब वह जंगल के बीच में था, तभी हाथी उस पर हमला करने के लिए उठ खड़ा हुआ। धनुर्विद् ने एक तीर से हाथी के माथे पर प्रहार किया, जो उसके शरीर को भेदते हुए उसके सिर के पिछले हिस्से से निकल गया, और हाथी वहीं गिरकर मर गया। चतुर तीरंदाज ने इस जगह को सुरक्षित करने के बाद आगे एक और जंगल की ओर

प्रस्थान किया। वहाँ पचास लुटेरे सड़क पर आतंक मचा रहे थे। कई लोगों के रोकने के बावजूद, वह इस स्थान तक भी चढ़ता चला गया, जहाँ उसे वह नियमित स्थान मिल गया, जहाँ लुटेरे हिरणों को मारकर उनका मांस भूनकर खाते थे, जो सड़क के पास ही था। लुटेरों ने उसे अपनी सजी-धजी पत्नी के साथ आते देख उसे पकड़ने का भरसक प्रयास किया। लुटेरों का सरदार, जो लोगों के चरित्र को परखने में निपुण था, ने उसे एक नज़र देखा और उसे एक विशिष्ट नायक के रूप में पहचानते हुए, उन्हें उसके विरुद्ध विद्रोह करने नहीं दिया, हालाँकि वह अकेला ही था। चतुर तीरंदाज ने अपनी पत्नी को इन लुटेरों के पास भेजा और कहा, "जाओ और उनसे मांस की एक सींक मांगो और मेरे पास ले आओ।" तो वह गई और बोली, "मुझे मांस की एक सींक दो।" लुटेरों के सरदार ने कहा, "यह एक नेक आदमी है," और उन्हें उसे देने के लिए कहा। लुटेरों ने कहा, "क्या! क्या वह हमारा भुना हुआ मांस खाएगा?" और उन्होंने उसे कच्चा मांस का एक टुकड़ा दिया। धनुर्धारी, जो अपने आप को बहुत ऊँचा समझता था, कच्चे मांस की पेशकश करने पर लुटेरों से क्रोधित हो गया। लुटेरों ने कहा, "क्या! क्या वह अकेला पुरुष है, और हम केवल स्त्रियाँ हैं?" और इस प्रकार उसे धमकाते हुए, वे उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। धनुर्धारी ने पचास लुटेरों को, एक को छोड़कर, उतने ही तीरों से घायल कर दिया और जमीन पर गिरा दिया। उसके पास लुटेरों के सरदार को घायल करने के लिए कोई तीर नहीं बचा था। उसके तीरों के थैले में पूरे पचास तीर थे। उनमें से एक से उसने हाथी को घायल कर दिया था, और बाकी से पचास लुटेरों को, एक को छोड़कर। इस प्रकार उसने लुटेरों के सरदार को गिरा दिया, और उसकी छाती पर बैठकर उसकी पत्नी से कहा कि वह अपने हाथ में उसकी तलवार लाए ताकि उसका सिर काट सके। उसी क्षण उसे लुटेरों के सरदार से प्रेम हो गया और उसने तलवार की मूठ उसके हाथ में और म्यान अपने पति के हाथ में रख दी। लुटेरे ने मूठ पकड़कर तलवार निकाली और धनुर्धारी का सिर काट दिया। अपने पति को मारने के बाद वह उस स्त्री को अपने साथ ले गया, और जब वे साथ यात्रा कर रहे थे, तो उसने उससे उसके मूल के बारे में पूछा।उन्होंने कहा, "मैं तक्षशिला के एक विश्वप्रसिद्ध शिक्षक की बेटी हूं।"

"उसने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में कैसे राजी किया?" उसने कहा।

उसने कहा, "मेरे पिता उससे अपने बराबर की संपत्ति पाकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मुझे उससे पत्नी के रूप में दे दिया। और क्योंकि मुझे तुमसे प्यार हो गया, इसलिए मैंने तुम्हें अपने वैध पति की हत्या करने की अनुमति दे दी।"

डाकुओं के सरदार ने सोचा, "इस औरत ने अपने जायज़ पति को मार डाला है। जैसे ही इसे कोई दूसरा आदमी दिखेगा, यह मेरे साथ भी वैसा ही बर्ताव करेगी। मुझे इससे छुटकारा पाना ही होगा।"

और जैसे ही वह आगे बढ़ा, उसने देखा कि उनका रास्ता एक छोटी, उथली नदी से अवरुद्ध हो गया है, जो आमतौर पर उफनती रहती थी, लेकिन अब बाढ़ से भरी हुई थी, और उसने कहा, "मेरी प्यारी, इस नदी में एक खूंखार मगरमच्छ है। हम क्या करें?"

"मेरे स्वामी," उसने कहा, "मेरे पहने हुए सभी आभूषण ले लीजिए, उन्हें अपने ऊपरी वस्त्र में एक गठरी में बांध लीजिए, और उन्हें नदी के उस पार ले जाइए, और फिर वापस आकर मुझे उस पार ले जाइए।"

"बहुत अच्छा," उसने कहा और उसके सारे गहने लेकर, बड़ी जल्दी में नदी की ओर चल पड़ा, दूसरे किनारे पर पहुँचकर उसे वहीं छोड़कर भाग गया।

यह देखकर वह रो पड़ी, "मेरे स्वामी, आप ऐसे जा रहे हैं जैसे मुझे छोड़कर जा रहे हों। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? वापस आइए और मुझे अपने साथ ले जाइए।" और उनसे संबोधित करते हुए उसने पहला छंद कहा:

चूंकि आपने दूसरा पक्ष प्राप्त कर लिया है,
मेरे सारे सामान की पट्टियाँ बंधी हुई थीं,
जितनी जल्दी हो सके लौट आइए।
और मुझे भी अपने साथ पार ले चलो।
लुटेरा, उसकी बात सुनकर, दूसरे किनारे पर खड़ा होकर, दूसरी पंक्ति दोहराता है: (*2)

हे महोदया, आपकी कल्पना तो हमेशा भटकती रहती है।
परखी हुई आस्था से लेकर हल्के-फुल्के प्रेम तक,
मुझे भी तुम जल्द ही धोखा दे दोगे।
क्या मुझे इसलिए दूर भाग नहीं जाना चाहिए?
लेकिन जब लुटेरे ने कहा, "मैं यहाँ से आगे जा रहा हूँ: तुम यहीं रुक जाओ," तो वह ज़ोर से चीखी और वह उसके सारे गहने लेकर भाग गया। यही उस बेचारी मूर्ख स्त्री का हश्र हुआ, जो वासना की अति के कारण हुआ था। और पूरी तरह असहाय होकर वह कैसिया के

पौधों के झुंड के पास आकर बैठ गई और रोने लगी। उसी क्षण इंद्र ने संसार पर दृष्टि डालते हुए उसे वासना से व्याकुल और पति-प्रेमिका दोनों के खोने के गम में रोते हुए देखा।

और यह सोचकर कि वह जाकर उसे फटकारेगा और उसे शर्मिंदा करेगा, वह मताली और पंचसिखा (*3) को अपने साथ लेकर नदी के किनारे जाकर खड़ा हो गया और बोला, "मताली, तुम मछली बन जाओ, पंचसिखा, तुम पक्षी बन जाओ, और मैं सियार बन जाऊँगा। और अपने मुँह में मांस का एक टुकड़ा लेकर मैं इस स्त्री के सामने जाकर खड़ा हो जाऊँगा, और जब तुम मुझे वहाँ देखो, तो मताली, तुम पानी से उछलकर मेरे सामने गिर जाओगी, और जब मैं अपने मुँह में लिया हुआ मांस का टुकड़ा गिरा दूँगा और मछली को पकड़ने के लिए उछलूँगा, उसी क्षण, पंचसिखा, तुम मांस के टुकड़े पर झपटकर हवा में उड़ जाओगी, और मताली, तुम पानी में गिर जाओगी।"

इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने उन्हें निर्देश दिया। उन्होंने कहा, "अच्छा, हे स्वामी।" मतली मछली में, पंचसिखा पक्षी में और सक्का (इंद्र) सियार में परिवर्तित हो गए। उन्होंने अपने मुँह में मांस का एक टुकड़ा लेकर स्त्री के सामने जाकर बैठ गए। मछली पानी से उछलकर सियार के सामने गिर पड़ी। सियार ने अपने मुँह में रखा मांस का टुकड़ा गिरा दिया और मछली को पकड़ने के लिए उछल पड़ा। मछली उछलकर पानी में गिर गई और पक्षी ने मांस का टुकड़ा छीनकर हवा में उड़ गया। इस प्रकार सियार ने मछली और मांस दोनों खो दिए और उदास होकर कैसिया के झुंड की ओर देखने लगा। यह देखकर स्त्री ने कहा, "लालच के कारण उसे न तो मांस मिला और न ही मछली," और मानो उसे चाल समझ आ गई हो, वह दिल खोलकर हंस पड़ी।

यह सुनकर सियार ने तीसरा श्लोक बोला:

कैसिया वनस्पति की आभा कौन पैदा करता है?
हंसी के साथ, हालांकि कोई नाचता या गाता नहीं है,
या फिर ताली बजाएं, अच्छा समय बिताने का तरीका?
हे सुंदर, हंसो मत, जब तुम्हें रोना चाहिए।
यह सुनकर उसने चौथा छंद दोहराया:

हे मूर्ख सियार, तुम्हें अवश्य ही कामना करनी चाहिए
आपने मांस और मछली दोनों नहीं खोई हैं।
बेचारा मूर्ख! तुम्हें यह देखकर कितना दुख होगा!
तुम्हारी मूर्खता का क्या परिणाम निकलता है?
फिर सियार ने पाँचवाँ छंद दोहराया:

दूसरे की कमियां स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।
मुझे लगता है कि खुद को देख पाना मुश्किल है।
मुझे लगता है कि आपको भी इसके परिणाम भुगतने होंगे।
जब जीवनसाथी और प्रेमी दोनों खो जाते हैं।
उनकी बातें सुनकर उसने यह छंद बोला:

किंग जैकाल, यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा आपने कहा।
इसलिए मैं बहुत दूर चला जाऊंगा।
और किसी दूसरे वैवाहिक प्रेम की तलाश करो।
और एक वफादार पत्नी साबित होने के लिए कड़ी मेहनत करें।
तब स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने इस दुष्ट और अपवित्र स्त्री के शब्दों को सुनकर अंतिम श्लोक दोहराया:

जो मिट्टी का घड़ा चुराएगा
मैं किसी भी दिन पीतल का एक चुरा लूंगा:
तो वह जो अपने पति की कमजोरी थी
हालात फिर से उतने ही खराब या उससे भी बदतर होंगे।
इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने उसे लज्जित किया और पश्चाताप कराया, और फिर अपने निवास स्थान पर लौट गया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और सत्यों को प्रकट करते हुए जन्म का वर्णन किया:- सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया:- "उस समय पथभ्रष्ट भाई धनुर्धर था, उसकी परित्यक्त पत्नी वह स्त्री थी, और मैं स्वयं स्वर्ग का राजा सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 425 की तुलना करें

(2) इसके अलावा क्रमांक 318 में भी, जिससे इस कहानी की तुलना की जा सकती है।

(3)उनका सारथी और एक गंधर्व।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कपोता-जातक**2
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-375-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 375
कपोता-जातक(*1)

“मैं बिल्कुल ठीक हूँ,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इस लालची भिक्षु की कहानी पहले भी कई रूपों में पूरी तरह से सुनाई जा चुकी है। इस मामले में गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह लालची है, और जब उसने स्वीकार किया कि वह लालची है, तो गुरु ने कहा, “भाई, न केवल अभी, बल्कि पहले भी तुम लालची थे, और लालच के कारण ही तुम्हारी मृत्यु हुई।” और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, बोधिसत्व एक युवा कबूतर के रूप में अवतरित हुए और बनारस के एक धनी व्यापारी के रसोईघर में बुने हुए पिंजरे में रहने लगे। मछली और मांस की लालसा में डूबे एक कौवे ने उस कबूतर से मित्रता कर ली और उसी स्थान पर रहने लगा। एक दिन उसने बहुत सारी मछली और मांस देखा और सोचा, "मैं इसे खाऊंगा," और पिंजरे में जोर-जोर से कराहने लगा। जब कबूतर ने कहा, "आओ, मेरे मित्र, चलो जल्दी से भोजन के लिए बाहर चलें," तो उसने जाने से इनकार कर दिया और कहा, "मुझे बदहजमी हो गई है। तुम जाओ।" कबूतर के चले जाने पर उसने कहा, "मेरा कष्टदायक शत्रु चला गया।"

अब मैं जी भर के मछली और मांस खाऊंगा।" और ऐसा सोचते हुए, उसने पहली पंक्ति दोहराई:

मैं काफी स्वस्थ और सहज महसूस कर रहा हूँ।
  मिस्टर पिजन ऑफ जा चुके हैं।
अब मैं अपनी इच्छाओं को शांत करूंगा:
  सब्जियां और मांस खाने से व्यक्ति को ताकत मिलनी चाहिए।
जब मछली और मांस भूनने वाला रसोइया पसीने से तरबतर होकर रसोई से बाहर आया, तो कौआ टोकरी से कूदकर मसालों के बर्तन में छिप गया। बर्तन से 'क्लिक' की आवाज़ आई और रसोइया जल्दी से आया, और कौए को पकड़कर उसके पंख नोच डाले। फिर उसने गीली अदरक और सफेद सरसों को पीसकर एक सड़ी हुई खजूर से कूटा और उसे कौए के पूरे शरीर पर मल दिया, और टूटे हुए मिट्टी के बर्तन से रगड़कर उसे घायल कर दिया। फिर उसने टूटे हुए मिट्टी के बर्तन को रस्सी से कौए के गले में बांध दिया, उसे वापस टोकरी में फेंक दिया और चला गया।

जब कबूतर वापस आया और उसे देखा तो उसने कहा, "मेरे दोस्त की टोकरी में यह सारस कौन है? यह तो बहुत गुस्सैल है और आकर इस अजनबी को मार डालेगा।" और इस प्रकार मजाक करते हुए उसने दूसरा छंद कहा:

"बादलों का बच्चा," (*2) गुच्छेदार कलगी वाला,

तुमने मेरे बेचारे दोस्त का घोंसला क्यों चुराया?
इधर आओ, श्री क्रेन। मेरे दोस्त कौवे।
आपको पता होना चाहिए कि उसका स्वभाव बहुत गुस्सैल है।
यह सुनकर कौवे ने तीसरा छंद बोला:

आप इस दृश्य को देखकर हंस सकते हैं।
क्योंकि मैं अत्यंत दयनीय स्थिति में हूँ।
रसोइए ने मुझे चुन-चुनकर तेल लगा दिया है।
सड़ी हुई खजूर और मसालों के साथ।
कबूतर, अब भी उसका मजाक उड़ाते हुए, चौथे छंद को दोहराता रहा:

मुझे लगता है कि उसे अच्छी तरह से नहलाया और तेल लगाया गया है।
आप जल्दी से अपना पेट भर खाना-पीना कर लेते हैं।
तुम्हारी गर्दन रत्नों की चमक से जगमगा रही है,
क्या तुम बनारस गए हो, मित्र?
फिर कौवे ने पाँचवाँ छंद दोहराया:

मेरे मित्र या कट्टर प्रतिद्वंद्वी को भी ऐसा करने से मत रोको।
बनारस की यात्रा पर जाएं।
उन्होंने मजाक में मुझे नंगा कर दिया।
मैंने टूटे हुए मिट्टी के बर्तन को अपनी छाती पर बांध लिया है।
यह सुनकर कबूतर ने अंतिम छंद दोहराया:

इन बुरी आदतों से छुटकारा पाना
ऐसे स्वभाव वाले कौवे के साथ रहना मुश्किल है।
पक्षियों को सावधान रहना चाहिए ताकि वे इनसे बच सकें।
वे भोजन देखते हैं जिसे मनुष्य आनंदपूर्वक ग्रहण करता है।
इस प्रकार फटकार लगाने के बाद, कबूतर वहाँ नहीं रहा, बल्कि अपने पंख फैलाकर कहीं और उड़ गया। परन्तु कौआ वहीं मर गया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और सत्यों को प्रकट करते हुए जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर लालची भाई (भिक्षु) ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की: "उस समय कौआ लालची भाई था, कबूतर मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 42 और क्रमांक 274 की तुलना करें

(2) गरजते बादलों की आवाज से सारस उत्पन्न होते हैं।

पुस्तक VI. चानीपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अवारिया-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-376-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 376
अवरिया-जातक

“कभी क्रोधित मत हो, इत्यादि।” गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक नाविक की यह कहानी सुनाई। कहते हैं कि वह व्यक्ति मूर्ख और अज्ञानी था; वह तीन रत्नों और सभी श्रेष्ठ प्राणियों के गुणों से अनभिज्ञ था; वह उतावला, कठोर और हिंसक था। एक ग्रामीण भिक्षु, जो बुद्ध की सेवा करना चाहता था, एक शाम अचिरवती नदी पर नाव के पास आया और नाविक से कहा, “हे भिक्षु, मैं नदी पार करना चाहता हूँ, कृपया मुझे अपनी नाव दे दीजिए।” “महोदय, बहुत देर हो चुकी है, यहीं रुकिए।” “हे भिक्षु, मैं यहाँ नहीं रुक सकता, मुझे नदी पार करा दीजिए।” नाविक ने क्रोधित होकर कहा, “ठीक है, भिक्षु जी,” और उसे नाव में बिठा लिया; परन्तु उसने नाव को बुरी तरह चलाया जिससे नाव में पानी भर गया और भिक्षु का वस्त्र भीग गया, और उसे दूसरी ओर किनारे पर उतारने से पहले ही अंधेरा हो गया। जब भिक्षु मठ पहुँचा, तो वह उस दिन बुद्ध की सेवा नहीं कर सका। अगले दिन वह गुरु के पास गया, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। गुरु ने अभिवादन किया और पूछा कि वह कब आया था। "कल।" "तो फिर आज तक मेरी सेवा क्यों नहीं की?" उसका कारण सुनकर गुरु ने कहा, "न केवल आज, बल्कि पुराने समय में भी वह व्यक्ति कठोर था: और उसने पुराने समय के बुद्धिमानों को भी परेशान किया था, जैसे तुम्हें किया था।" और पूछे जाने पर उसने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं की शिक्षा प्राप्त की और तपस्वी बन गए। हिमालय में जंगली फलों पर जीवन व्यतीत करने के बाद, वे नमक और सिरके के लिए बनारस आए: वे राजमहल के बगीचे में ठहरे और अगले दिन भीख मांगने के लिए शहर गए। राजा ने उन्हें राजमहल के प्रांगण में देखा और उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर उन्हें अंदर बुलाया और भोजन कराया: फिर उन्होंने उनसे वचन लिया और उन्हें बगीचे में रहने दिया: और वे प्रतिदिन प्रणाम करने आते थे। बोधिसत्व ने उनसे कहा, "हे महान राजा, एक राजा को अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन करना चाहिए, चार बुराइयों से बचना चाहिए, उत्साही और धैर्यवान, दयालु और करुणामय होना चाहिए," और इस प्रकार के दैनिक उपदेश के साथ उन्होंने दो श्लोक कहे:

हे योद्धाओं के राजकुमार, कभी क्रोधित मत हो; हे पृथ्वी के स्वामी, कभी क्रोधित मत हो:
क्रोध का बदला क्रोध से नहीं लिया जा सकता: अतः राजा ही पूजा के योग्य है।
गांव में, जंगल में, समुद्र पर या तट पर,
हे योद्धाओं के राजकुमार, कभी क्रोधित मत होना: यही मेरी हमेशा से सलाह रही है।
अतः बोधिसत्व प्रतिदिन राजा को ये श्लोक सुनाते थे। राजा उनसे प्रसन्न हुए और उन्हें एक लाख पीस की आय वाला गाँव भेंट किया, परन्तु उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार बोधिसत्व बारह वर्ष तक जीवित रहे। फिर उन्होंने सोचा, "मैं बहुत देर तक यहाँ रह चुका हूँ, मैं देश की यात्रा करके वापस आऊँगा": अतः राजा को बिना बताए, केवल माली से इतना कहकर, "मित्र, मैं थक गया हूँ, मैं देश की यात्रा करके वापस आऊँगा, कृपया राजा को बता देना," वे चले गए और गंगा नदी पर एक घाट पर पहुँचे। वहाँ अवरियापिता नामक एक मूर्ख नाविक रहता था: वह न तो भले लोगों के गुणों को समझता था और न ही अपने लाभ-हानि को: जब लोग गंगा पार करते थे, तो वह पहले उन्हें पार कराता था और फिर अपना किराया माँगता था; जब वे उसे किराया नहीं देते थे, तो वह उनसे झगड़ा करता था, जिससे उसे बहुत गालियाँ और मार पड़ती थी, परन्तु लाभ न के बराबर, वह इतना अंधा मूर्ख था।

उनके विषय में, गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से तीसरा श्लोक कहा:

अवरिया के पिता,
 उसकी नाव गंगा की लहरों पर है:
वह पहले लोगों को पार कराता है,
 और फिर उसे अपने भोजन की लालसा होगी:
और इसीलिए वह कमाता तो है लेकिन विवादों में घिरा रहता है।
 एक फिजूलखर्ची करने वाला, बदकिस्मत, बेईमान!
बोधिसत्व एक नाविक के पास आए और बोले, "मित्र, मुझे दूसरे किनारे तक ले चलो।" नाविक ने कहा, "पुजारी, आप मुझे कितना किराया देंगे?" बोधिसत्व ने कहा, "मित्र, मैं तुम्हें धन, कल्याण और पुण्य बढ़ाने के तरीके बताऊंगा।" नाविक ने सोचा, "यह मुझे कुछ न कुछ जरूर देगा," इसलिए वह उन्हें नदी पार ले गया और फिर बोला, "किराया दे दो।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, मित्र," और इस प्रकार पहले उन्हें धन बढ़ाने का तरीका बताते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:

नदी पार करने से पहले ही किराया पूछ लें, कभी भी दूसरी तरफ पहुँचने पर न पूछें:
जिन लोगों को आप एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं, उनके बारे में अलग-अलग विचार होते हैं, पहले और बाद में भी अलग-अलग विचार होते हैं।

नाविक ने सोचा, "यह तो केवल उनकी सलाह होगी, अब वे मुझे कुछ और भी देंगे": लेकिन बोधिसत्व ने कहा, "मित्र, तुम्हें धन बढ़ाने का तरीका मिल गया है, अब कल्याण और सद्‌गुण बढ़ाने का तरीका सुनो," इस प्रकार उन्होंने सलाह का एक श्लोक सुनाया:

गांव में, जंगल में, समुद्र पर और तट पर,
मेरे अच्छे नाविक, कभी क्रोधित मत होना; यही मेरी हमेशा सलाह रहती है।
तो उसने उसे कल्याण और सद्‌गुण बढ़ाने का तरीका बताकर कहा, "यह रहा कल्याण बढ़ाने का तरीका और सद्‌गुण बढ़ाने का तरीका।" तब उस मूर्ख ने, उसकी सलाह को न समझते हुए कहा, "पुजारी, क्या यही मुझे मेरा भोजन है?" "जी, मित्र।" "मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, मुझे कुछ और दीजिए।" "मित्र, सिवाय इसके कि मेरे पास कुछ और नहीं है।" "तो फिर तुम मेरी नाव पर क्यों आए?" उसने कहा और तपस्वी को किनारे पर पटक दिया, उसकी छाती पर बैठ गया और उसके मुंह पर प्रहार किया।

गुरु ने कहा: "तो आप देखते हैं कि जब तपस्वी ने राजा को यह सलाह दी तो उसे एक गाँव का वरदान मिला, और जब उसने वही सलाह एक मूर्ख नाविक को दी तो उसे मुँह पर एक लात पड़ी: इसलिए जब कोई यह सलाह दे तो उसे उपयुक्त लोगों को देना चाहिए, अनुपयुक्त लोगों को नहीं," और इस प्रकार अपनी पूर्ण बुद्धि से उन्होंने एक श्लोक कहा:

अच्छी सलाह के बदले राजा ने एक नगर का राजस्व दे दिया।
उसी सलाह के लिए नाविक ने सलाह देने वाले को ही गिरा दिया।
जब वह व्यक्ति पुजारी को पीट रहा था, तभी उसकी पत्नी चावल लेकर आई और उस तपस्वी को देखकर बोली, “पतिदेव, यह राजा के दरबार का तपस्वी है, इसे मत पीटिए।” वह क्रोधित हो गया और बोला, “तुम मुझे इस झूठे पुजारी को पीटने से मना कर रही हो!” और उसने उठकर उसे नीचे गिरा दिया। चावल की थाली गिरकर टूट गई और उसका गर्भ गिर गया। लोग उसके चारों ओर जमा हो गए और “हत्यारे बदमाश!” चिल्लाते हुए उसे बांधकर राजा के पास ले गए। राजा ने उस पर मुकदमा चलाया और उसे दंडित किया।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से इस विषय को समझाते हुए अंतिम श्लोक कहा:

चावल गिर गया, उसकी पत्नी को चोट लगी, बच्चा जन्म से पहले ही मर गया।
उसके लिए, जैसे किसी जानवर के लिए कीमती सोना, सलाह का कोई मूल्य नहीं था।

जब गुरु ने अपना पाठ समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: सत्यों के बाद भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया; और जन्म की पहचान की: "उस समय नाविक आज का नाविक था, राजा आनंद था, तपस्वी मैं स्वयं था।"

स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-377-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 377
सेताकेतु-जातक

"मित्र, क्रोधित मत हो," इत्यादि-- गुरु ने जेतवन मठ में एक कपटी भिक्षु की यह कहानी सुनाई। इस कहानी का ज़िक्र उद्दल (*1) जन्म में आएगा।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व एक विख्यात शिक्षक थे और पाँच सौ शिष्यों को पवित्र ग्रंथों का अध्ययन कराते थे। उनमें से वरिष्ठ शिष्य, सेतकेतु, उत्तर भारत के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और अपनी जाति पर बहुत गर्व करते थे। एक दिन वे अन्य शिष्यों के साथ शहर से बाहर गए और लौटते समय उन्होंने एक चांडाल को देखा। उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो?" "मैं एक चांडाल हूँ।" उन्हें डर था कि हवा चांडाल के शरीर से टकराकर कहीं उनके शरीर को भी न छू ले, इसलिए वे चिल्लाए, "तुम्हें श्राप मिले, हे अशुभ चांडाल, हवा की ओर मुड़ो," और तेज़ी से हवा की दिशा में चले गए, लेकिन चांडाल उनसे तेज़ थे और उनके सामने ही खड़े हो गए। तब उन्होंने चांडाल को और भी अधिक अपशब्द कहे और कहा, "तुम्हें श्राप मिले, हे अशुभ।" चांडाल ने पूछा,

"तुम कौन हो?" "मैं एक ब्राह्मण छात्र हूँ।" "अच्छा, अगर तुम हो, तो तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे पाओगे।" "हाँ।" "अगर तुम नहीं कर सकते, तो मैं तुम्हें अपने पैरों के बीच रख दूँगा।" ब्राह्मण ने आत्मविश्वास से कहा, "ठीक है।" चांडाल ने सभी को मामला समझाते हुए पूछा, "युवक ब्राह्मण, दिशाएँ क्या हैं?" "चार दिशाएँ हैं, पूर्व और बाकी।" चांडाल ने कहा, "मैं उस तरह की दिशा के बारे में नहीं पूछ रहा हूँ: और तुम, जो यह भी नहीं जानते, मेरे शरीर पर लगी हवा को नापसंद करते हो," इसलिए उसने उसे कंधे से पकड़कर नीचे गिरा दिया और अपने पैरों के बीच रख दिया। अन्य शिष्यों ने अपने गुरु को यह बात बताई। गुरु ने पूछा, "युवक सेताकेतु, क्या तुम्हें एक चांडाल के पैरों के बीच रखा गया है?" "जी गुरु: एक दास के पुत्र ने मुझे अपने पैरों के बीच रख दिया और कहा, "इसे दिशाओं का भी ज्ञान नहीं है"; लेकिन अब मुझे पता है कि इसके साथ क्या करना है," और इस तरह उसने गुस्से में चांडाल का अपमान किया। शिक्षक ने उसे समझाते हुए कहा: "युवा सेताकेतु, उस पर क्रोधित मत हो, वह बुद्धिमान है; वह किसी और प्रकार के स्थान के बारे में पूछ रहा था, इसके बारे में नहीं: जो तुमने नहीं देखा, सुना या समझा है, वह उससे कहीं अधिक है जो तुमने देखा, सुना या समझा है": और उसने सलाह के रूप में दो श्लोक कहे:

मित्र, क्रोधित मत हो, क्रोध करना अच्छा नहीं है।
ज्ञान उस चीज़ से कहीं अधिक है जिसे आपने देखा या सुना है:
"क्वार्टर" से माता-पिता को समझा जा सकता है।
और शिक्षक को इस शब्द से दर्शाया जाता है।
वह गृहस्वामी जो भोजन, वस्त्र और पेय पदार्थ देता है,
जिसके दरवाजे खुले हैं, वह उसका एक "चौथाई" है:
और "क्वार्टर" का मतलब, हमारे विचार से, उच्चतम अर्थ में है।
क्या वह अंतिम अवस्था है जहाँ दुख ही आनंद बन जाएगा? (*2)

तब बोधिसत्व ने युवा ब्राह्मण को अपने निवास स्थान के बारे में बताया: परन्तु वह यह सोचकर, "मुझे चांडाल के चरणों में रखा गया है," उस स्थान को छोड़कर तक्षशिला चला गया और वहाँ के एक प्रसिद्ध गुरु से सभी कलाएँ सीखीं। उस गुरु की अनुमति से वह तक्षशिला छोड़कर चला गया और व्यावहारिक कलाओं का अध्ययन करने के लिए भटकता रहा। एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचकर उसने वहाँ पाँच सौ तपस्वियों को रहते हुए पाया और उनसे दीक्षा ली। उसने उनकी सभी कलाएँ, ग्रंथ और विधियाँ सीखीं और वे उसके साथ बनारस गए। अगले दिन वह राजमहल के प्रांगण में भिक्षा माँगने गया। तपस्वियों के व्यवहार से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें राजमहल में भोजन और अपने बगीचे में आवास दिया। एक दिन उसने उन्हें भोजन भेजते हुए कहा, "मैं आज शाम बगीचे में आप सभी को प्रणाम करूँगा।" सेताकेतु उद्यान में गए और तपस्वियों को एकत्रित करके बोले, "महोदय, आज राजा आ रहे हैं; राजाओं को एक बार प्रसन्न करने से मनुष्य जीवन भर सुखी रहता है, इसलिए अब आप में से कुछ झूलते हुए तपस्या करें, कुछ काँटों की सेज पर लेटें, कुछ पाँच अग्नियों को सहन करें, कुछ उकडू बैठकर तपस्या करें, कुछ जलप्रपात करें, कुछ ग्रंथों का पाठ करें।" इन आदेशों के बाद वे कुटिया के द्वार पर सिरहाने वाली कुर्सी पर बैठ गए, एक चमकीले लिबास वाली पुस्तक को रंगीन स्टैंड पर रखा और चार-पाँच बुद्धिमान शिष्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने लगे। उसी क्षण राजा आ गए और उन्हें ये झूठी तपस्या करते देख प्रसन्न हुए: वे सेताकेतु के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए: फिर अपने कुल पुरोहित से बात करते हुए उन्होंने तीसरा श्लोक सुनाया।

गंदे दांतों, बकरियों की खाल के वस्त्र और बालों के साथ
सभी उलझे बालों वाले, शांति में पवित्र शब्दों का जाप करते हुए:
निश्चित रूप से वे भलाई के लिए किसी भी मानवीय साधन को नहीं छोड़ते।
वे सत्य को जानते हैं, और उन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है।

पुजारी ने यह सुना और चौथा श्लोक बोला:

हे राजा, एक विद्वान ऋषि भी बुरे कर्म कर सकता है।
एक विद्वान संत भी सही मार्ग का अनुसरण करने में विफल हो सकता है:
हजार वेद भी सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते।
असफल होना ही काम आता है, या फिर बुरी स्थिति से बचाता है।

जब राजा ने यह सुना, तो उसने तपस्वियों से अपना स्नेह वापस ले लिया। सेताकेतु ने सोचा, "इस राजा को तपस्वियों से लगाव था, लेकिन इस पुजारी ने तो इसे ऐसे नष्ट कर दिया जैसे कुल्हाड़ी से काट डाला हो: मुझे उससे बात करनी ही होगी": इसलिए उससे बात करते हुए उसने पाँचवाँ श्लोक कहा:

"हे राजा, एक विद्वान ऋषि भी बुरे कर्म कर सकता है।"
एक विद्वान संत भी सही मार्ग का अनुसरण करने में असफल हो सकता है।
आप कहते हैं: तो फिर वेद बेकार हैं:

केवल आत्मसंयम के साथ काम करना आवश्यक है।
यह सुनकर पुजारी ने छठा श्लोक बोला:

नहीं, वेद पूरी तरह से बेकार नहीं हैं:
हालांकि आत्मसंयम के साथ काम करना ही सच्चा शिक्षण है:
वेदों का अध्ययन मनुष्य के नाम को ऊंचा उठाता है।
लेकिन आचरण के माध्यम से ही वह परमानंद प्राप्त करता है।

अतः पुजारी ने सेताकेतु की शिक्षा का खंडन किया। उसने उन सभी को साधारण बना दिया, उन्हें ढाल और हथियार दिए, और उन्हें राजा के सेवक के रूप में उच्च अधिकारी नियुक्त किया: और इसीलिए कहा जाता है कि उच्च अधिकारियों का वंश चला।

पाठ के बाद गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय सेताकेतु धोखेबाज पुजारी था, चांडाल सारिपुत्र था, और राजा का पुजारी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 487 (2)यह चार क्वार्टरों के नामों पर काल्पनिक शब्दों के खेल पर आधारित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दारिमुख-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-378-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 378
दारिमुख जातक

"इंद्रियों के सुख," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो महान त्याग से संबंधित है। इस कथा की उत्पत्ति का घटनाक्रम पहले ही बताया जा चुका है।

एक समय की बात है, मगध के राजा राजगृह नगर में शासन करते थे। उनकी प्रमुख रानी से बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। उनके जन्म के दिन ही कुलपुजारी के भी एक पुत्र का जन्म हुआ: उनका चेहरा अत्यंत सुंदर था, इसलिए उनका नाम दारिमुख रखा गया। दोनों राजा के दरबार में घनिष्ठ मित्र बनकर पले-बढ़े और सोलह वर्ष की आयु में तक्षशिला गए, जहाँ उन्होंने सभी कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। फिर व्यावहारिक रीति-रिवाजों को जानने और ग्रामीण परंपराओं को समझने के उद्देश्य से वे नगरों, गाँवों और पूरे देश में विचरण करने लगे। वे बनारस पहुँचे और एक मंदिर में ठहरकर अगले दिन भीख माँगने के लिए नगर में गए। नगर के एक घर में ब्राह्मणों के लिए चावल की दलिया पकाई गई थी और बैठने की व्यवस्था की गई थी। दोनों युवकों को भीख माँगते देख, उन्होंने सोचा, "ब्राह्मण आ गए हैं," और उन्हें अंदर बुलाकर बोधिसत्व के आसन पर एक सफेद वस्त्र और दारिमुख के आसन पर एक लाल गलीचा बिछा दिया। दारिमुख ने शगुन देखकर समझ लिया कि उनका मित्र बनारस का राजा बनेगा और वह स्वयं सेनापति। उन्होंने भोजन किया और आशीर्वाद लेकर राजा के उद्यान में चले गए। बोधिसत्व राजसी पत्थर के आसन पर विराजमान थे। दारिमुख उनके चरणों को सहलाते हुए बैठे रहे। बनारस के राजा को मरे हुए सात दिन हो चुके थे। कुलपुजारी ने अंतिम संस्कार किया था और सिंहासन का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण सात दिनों तक उत्सव रथ यात्रा कराई थी। इस रथ यात्रा समारोह का वर्णन महाजनक जन्म में किया जाएगा। यह रथ शहर से निकला और उद्यान के द्वार पर पहुँचा, जिसके साथ चार टुकड़ियों की सेना और सैकड़ों वाद्ययंत्रों का संगीत था। दारिमुख ने संगीत सुनकर सोचा, "यह रथ मेरे मित्र के लिए आ रहा है, वह आज राजा बनेगा और मुझे सेनापति का पद देगा, लेकिन मैं गृहस्थ क्यों रहूँ? मैं जाकर संन्यासी बन जाऊँगा"; इसलिए बोधिसत्व से बिना कुछ कहे वह एक तरफ हट गए और छिप गए। पुजारी ने रथ को उद्यान के द्वार पर रोक दिया और प्रवेश करके देखा कि बोधिसत्व राजसी आसन पर लेटे हुए हैं। उनके चरणों पर शुभ चिह्नों को देखकर उन्होंने सोचा, "इनमें गुण हैं और ये चारों महाद्वीपों और उनके चारों ओर फैले दो हजार द्वीपों के राजा बनने के योग्य हैं, लेकिन इनका साहस क्या है?" इसलिए उन्होंने सभी वाद्ययंत्रों को पूरी ध्वनि से बजा दिया। बोधिसत्व जागे और अपने चेहरे से

कपड़ा हटाकर उन्होंने लोगों को देखा। फिर उन्होंने अपना चेहरा दोबारा ढक लिया और थोड़ी देर के लिए लेट गए। रथ के रुकने पर वे उठकर आसन पर पालथी मारकर बैठ गए। पुजारी ने उनके घुटने पर सहारा लेकर कहा, "हे प्रभु, राज्य आपको मिलेगा।" "क्यों, क्या कोई उत्तराधिकारी नहीं है?" "नहीं, प्रभु।" "तो ठीक है," और उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया, और उद्यान में ही उनका अभिषेक किया गया। अपनी महान महिमा में वे दारिमुख को भूल गए। वे रथ पर सवार हुए और लोगों के बीच से शहर का चक्कर लगाया। फिर महल के द्वार पर रुककर उन्होंने दरबारियों के स्थान व्यवस्थित किए और चबूतरे पर चले गए।उसी क्षण दारिमुख ने उद्यान को खाली देखकर आकर उद्यान में स्थित राजसी आसन पर बैठ गए। उनके सामने एक सूखा पत्ता गिरा। उसमें उन्होंने क्षय और मृत्यु के सिद्धांतों को देखा, तीनों चिन्हों को समझा और पृथ्वी को आनंद से गुंजायमान करते हुए पच्चेकबोधि में प्रवेश किया। उसी क्षण गृहस्थ के लक्षण उनसे विलीन हो गए, आकाश से एक चमत्कारिक प्याला और वस्त्र गिरे और उनके शरीर से चिपक गए, उन्हें तुरंत आठों आवश्यक वस्तुएँ और शत वर्ष के भिक्षु का पूर्ण व्यवहार प्राप्त हो गया और चमत्कारिक रूप से वे वायु में उड़कर हिमालय की नन्दमूल गुफा में चले गए।

बोधिसत्व ने अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन किया, परन्तु अपनी महिमा के नशे में चूर होकर वे चालीस वर्षों तक दारिमुख को भूल गए। चालीसवें वर्ष में उन्हें दारिमुख की याद आई और उन्होंने कहा, “मेरा एक मित्र है जिसका नाम दारिमुख है; वह अब कहाँ है?” उन्हें उससे मिलने की तीव्र इच्छा हुई। तब से लेकर हरम में और सभा में भी वे यही कहते, “मेरा मित्र दारिमुख कहाँ है? जो मुझे उसके निवास स्थान का पता बताएगा, मैं उसका बहुत आदर करूँगा।” दस वर्ष और बीत गए, इस दौरान भी वे समय-समय पर दारिमुख को याद करते रहे। दारिमुख, यद्यपि अब पच्चेकबुद्ध हो चुके थे, पचास वर्षों बाद उन्होंने सोचा और जाना कि उनके मित्र उन्हें याद करते हैं: और यह सोचकर, “वह अब बूढ़े हो गए हैं और उनके पुत्र-पुत्रियाँ बढ़ गई हैं, मैं जाकर उन्हें धर्म का उपदेश दूँगा और उन्हें संघ में दीक्षित करूँगा,” वे चमत्कारिक रूप से वायु में प्रकट हुए और उद्यान में उतरकर एक सुनहरी प्रतिमा की तरह पत्थर के आसन पर बैठ गए। माली ने उन्हें देखकर पूछा, “महोदय, आप कहाँ से आए हैं?” “नंदामूलक गुफा से।” "तुम कौन हो?" "मित्र, मैं दारिमुख पच्चेक हूँ।" "महाराज, क्या आप हमारे राजा को जानते हैं?" "जी हाँ, वह मेरे गृहस्थ जीवन में मेरे मित्र थे।" "महाराज, राजा आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं, मैं उन्हें आपके आने की सूचना दे दूँगा।" "जाओ और ऐसा करो।" वह गया और राजा को बताया कि दारिमुख आ गए हैं और पत्थर के आसन पर बैठे हैं। राजा ने कहा, "तो मेरे मित्र आ गए हैं, मैं उनसे मिलूँगा।" अतः वह अपने रथ पर सवार होकर अपने कई सेवकों के साथ उद्यान में गए और पच्चेकबुद्ध को विनम्रतापूर्वक प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गए। पच्चेकबुद्ध ने कहा, "ब्रह्मदत्त, क्या तुम अपने राज्य पर धर्म से शासन करते हो, कभी बुरे मार्ग नहीं अपनाते, न ही धन के लिए लोगों पर अत्याचार करते हो, और दान से अच्छे कर्म करते हो?" और विनम्रतापूर्वक प्रणाम करने के बाद, "ब्रह्मदत्त, तुम वृद्ध हो गए हो, अब तुम्हारे लिए सुख-सुविधाओं का त्याग करने और दीक्षा लेने का समय आ गया है।" अतः उन्होंने धर्म का उपदेश दिया और पहला श्लोक बोला।

इंद्रियों के सुख दलदल और कीचड़ के समान हैं:
   मैं इन्हें "त्रिस्तरीय आतंक" कहता हूँ।
मैंने इन्हें वाष्प और धूल घोषित किया है, महाराज:
   भाई बनो और उन सबको त्याग दो।
यह सुनकर राजा ने अपनी इच्छाओं के बंधन में बंधे होने का कारण बताते हुए दूसरा श्लोक बोला:

मैं मोहित, बंधा हुआ और गहरे दागों से ग्रसित हूँ।
   ब्राह्मण, सुखों के साथ: वे भयभीत हो सकते हैं,
लेकिन मुझे जीवन से प्यार है, और मैं इसे नकार नहीं सकता:
   मैं निरंतर अच्छे कार्य करता रहता हूँ।
तब दारिमुख ने यद्यपि बोधिसत्व ने कहा, "मैं दीक्षा नहीं ले सकता," फिर भी उन्हें अस्वीकार नहीं किया और उन्हें एक बार फिर प्रोत्साहित किया:

जो अपने मित्र की सलाह को ठुकरा देता है,
   कौन उस पर दया करता है और उसकी बर्बादी को रोकना चाहता है?
यह सोचना कि "यह दुनिया बेहतर है," कभी खत्म नहीं होता।
   गर्भ में लंबे समय तक पुनर्जन्म लेने की मूर्खता।
वह भयानक दंड स्थल उसका है।
   पूरी तरह से मैला, अच्छे लोगों द्वारा बुरा माना जाने वाला:
लालची लोग अपनी इच्छाओं को कभी शांत नहीं कर सकते।
   शरीर सभी सांसारिक प्राणियों को कैद कर लेता है।
अतः दारिमुख पुच्चेकबुद्ध ने गर्भाधान और प्रज्वलन से उत्पन्न होने वाले दुख को दर्शाते हुए, जन्म के दुख को दर्शाने के लिए डेढ़ श्लोक बोले:

खून से लथपथ और दुर्गंध से सना हुआ,
सभी नश्वर प्राणी जन्म से ही उत्पन्न होते हैं:
इसके बाद वे जिस भी चीज को छूते हैं, वही उनके भाग्य पर निर्भर करता है।
ताकि वे धरती पर पीड़ा और दुख ला सकें।
मैं वही बोलता हूँ जो मैंने देखा है, न कि जो मैंने सुना है।
दूसरों से: मुझे पुराने दिन याद हैं।
अब गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से कहा, "तो पच्चेकबुद्ध ने राजा की अच्छे शब्दों से सहायता की," और अंत में शेष आधा श्लोक बोला:

दारिमुख ने सुमेधा के कान के साथ जो किया, वह इस प्रकार था:
कई मधुर छंदों में ज्ञान प्रकट होता है।
पच्चेकबुद्ध ने इच्छाओं के कष्टों को दर्शाते हुए, अपने शब्दों को स्पष्ट करते हुए कहा, "हे राजा, दीक्षा लो या न लो, परन्तु मैंने इच्छाओं के कष्ट और दीक्षा के लाभों का वर्णन कर दिया है, इसलिए उत्साहपूर्वक दीक्षा लो।" और इस प्रकार वे एक सुनहरे हंस की तरह आकाश में विलीन हो गए और बादलों पर विचरण करते हुए नंदमूलक गुफा तक पहुँचे। उस महान पुरुष ने अपने सिर पर दस उंगलियों के नाखूनों को मिलाकर तेजस्वी प्रणाम किया और दारिमुख के दृष्टि से ओझल होने तक प्रणाम करते रहे। फिर उन्होंने अपने बड़े पुत्र को बुलवाया और उसे राज्य सौंप दिया। और इच्छाओं का त्याग करते हुए, जब बहुत से लोग रो रहे थे और शोक मना रहे थे, वे हिमालय चले गए और पत्तों की कुटिया बनाकर तपस्वी के रूप में दीक्षा ली। फिर थोड़े ही समय में उन्होंने ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं और अपने जीवन के अंत में ब्रह्मा के उच्चतर स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में चले गए।

पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की: तब कई लोगों ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) प्राप्त किया और बाकी लोगों ने भी:-और उन्होंने जन्म की पहचान की: "उस समय राजा मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नेरु-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-379-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 379
नेरु-जातक

"कौवे और कौवे," आदि-- गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में यह कहानी सुनाई। कहानी यह है कि उन्होंने गुरु से ध्यान के तरीके सीखे और फिर एक सीमावर्ती गाँव में चले गए। वहाँ के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए, उन्हें भोजन कराया, जंगल में उनके लिए एक कुटिया बनाई और वचन लेकर उन्हें वहाँ रहने दिया और उनका बहुत सम्मान किया। लेकिन बाद में उन्होंने उन्हें पदार्थ की नश्वरता के शिक्षकों के लिए छोड़ दिया, फिर उन्हें छोड़कर अमरता का खंडन करने वाले संप्रदाय में चले गए, और फिर उन्हें भी नग्न तपस्वियों के संप्रदाय में चले गए: क्योंकि इन सभी संप्रदायों के शिक्षक बारी-बारी से उनके बीच आते रहे। इसलिए वे उन लोगों के बीच दुखी रहे जो भले-बुरे का ज्ञान नहीं रखते थे, और वर्षा और पवाराना (*1) के बाद वे गुरु के पास वापस गए, और उनके अनुरोध पर उन्हें बताया कि वे वर्षा के दौरान कहाँ रहे थे और भले-बुरे का ज्ञान न रखने वाले लोगों के बीच दुखी रहे थे। गुरु ने कहा, "पुराने समय के ऋषि, भले ही वे पशु रूप में पैदा हुए थे, अच्छे और बुरे के ज्ञान से रहित लोगों के बीच एक दिन भी नहीं रुके, तुमने ऐसा क्यों किया?" और इस तरह उन्होंने कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक स्वर्ण हंस के रूप में हुआ। वे अपने छोटे भाई के साथ चित्तकूट पर्वत पर रहते थे और हिमालय में उगने वाले जंगली धान को खाकर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन चित्तकूट लौटते समय, उन्होंने स्वर्ण पर्वत नेहरू को देखा और उसकी चोटी पर बस गए। पर्वत के चारों ओर विभिन्न प्रकार के पक्षी और जानवर भोजन के लिए निवास करते थे: पर्वत पर आने के समय से ही वे उसकी चमक से स्वर्णिम रंग के हो गए। बोधिसत्व के भाई ने यह देखा, लेकिन कारण न जानते हुए उन्होंने पूछा, "इसका कारण क्या है?" और फिर अपने भाई से बात करते हुए उन्होंने दो श्लोक कहे:

कौवे और काले पक्षी, और हम सबसे श्रेष्ठ पक्षी हैं।
इस पहाड़ पर सब कुछ एक जैसा ही दिखाई देता है।
दुष्ट सियार बाघों और उनके स्वामियों को भी टक्कर देते हैं।
शेर: इस पहाड़ का क्या नाम हो सकता है?
यह सुनकर बोधिसत्व ने तीसरा श्लोक बोला:

पर्वतों में सर्वोत्कृष्ट, इसका नाम नेरु है।
यहां सभी जानवरों को देखने में सुंदर बनाया गया है।
यह सुनकर छोटे वाले ने शेष तीन छंद बोले:

जहां भी अच्छे लोगों को सम्मान कम या बिल्कुल न के बराबर मिलता है,
या फिर दूसरों से कम, जियो मत, बल्कि चले जाओ।
मंदबुद्धि और चतुर, बहादुर और कायर, सभी को समान रूप से सम्मान दिया जाता है:
भेदभाव न करने वाले पर्वत, अच्छे लोग तुम पर नहीं टिकेंगे!
सर्वश्रेष्ठ, उदासीन और सबसे नीच, नेरु किसी को अलग नहीं करता।
हे भेदभाव न करने वाले नेरु, अफसोस! हमें तुम्हें सीधे-सीधे छोड़ना होगा।
इसके साथ ही वे दोनों उड़कर चित्तकुटा चले गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की घोषणा की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, वह भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उस समय छोटा हंस आनंद था, बड़ा भिक्षु मैं था।"

फुटनोट:

(1)वर्षा ऋतु के अंत में मनाया जाने वाला त्योहार।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **असांक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-380-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 380
असांका-जातक

"स्वर्गिक उद्यान में," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए यह कथा सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु को उसकी पूर्व पत्नी द्वारा बहकाए जाने की घटना का वर्णन है। यह घटना इंद्रिय जन्म (*1) में वर्णित है। गुरु ने देखा कि भिक्षु अपनी पत्नी के विचारों के कारण पथभ्रष्ट हो रहा था, इसलिए उन्होंने कहा, "महोदय, यह स्त्री आपको हानि पहुँचा रही है: पहले भी आपने इसके लिए चार भागों की सेना का बलिदान दिया था और तीन वर्ष हिमालय में अत्यंत कष्ट भोगते हुए बिताए थे" - इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म उसी देश के एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में विद्या सीखी, तपस्वी बन गए और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करके हिमालय में जड़ और फल खाकर जीवन व्यतीत किया। उसी समय तैंतीस लोकों के स्वर्ग से एक परम पुण्यात्मा अवतरित हुए और एक कुंड में कमल के गर्भ में कन्या के रूप में प्रकट हुए। जब अन्य कमल जीर्ण होकर गिर गए, तो वह कमल विशाल होकर स्थिर रहा। स्नान करने आए तपस्वी ने उसे देखा और सोचा, “अन्य कमल तो गिर जाते हैं, लेकिन यह कमल विशाल होकर स्थिर है; ऐसा क्यों है?” इसलिए उन्होंने स्नान वस्त्र धारण किया और कमल को खोलकर उसमें कन्या को देखा। पुत्री के समान स्नेह से वे उसे अपनी कुटिया में ले गए और उसकी देखभाल की। जब वह सोलह वर्ष की हुई, तब वह अत्यंत सुंदर थी और मनुष्य के सौंदर्य से भी अधिक सुंदर थी, परन्तु देवदूतों के सौंदर्य को प्राप्त नहीं कर

सकी। सक्का (इंद्र) बोधिसत्व की सेवा करने आए। उन्होंने उस कन्या को देखा, पूछा और उन्हें बताया गया कि वह कहाँ मिली थी। फिर उन्होंने पूछा, "उसे क्या मिलना चाहिए?" "हे महाराज, एक निवास स्थान, वस्त्र, आभूषण और भोजन।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा, स्वामी," और उसके रहने के लिए एक क्रिस्टल महल बनाया, उसके लिए पलंग, वस्त्र, आभूषण, और दिव्य भोजन और पेय की व्यवस्था की। जब वह ऊपर जा रही थी, तो महल नीचे उतरकर जमीन पर ठहर गया; जब वह ऊपर पहुँच गई, तो वह ऊपर उठकर हवा में ठहर गया। महल में रहते हुए उसने बोधिसत्व की अनेक सेवाएँ कीं। एक वनपाल ने यह देखा और पूछा, "हे स्वामी, यह कन्या आपके लिए क्या है?" "मेरी पुत्री।" इसलिए वह बनारस गया और राजा को बताया, "हे महाराज, मैंने हिमालय में एक तपस्वी की पुत्री को अत्यंत सुंदर देखा है।" यह सुनकर राजा चौंक गया और वनपाल को अपना मार्गदर्शक बनाकर चार टुकड़ियों की सेना के साथ उस स्थान पर गया। वहाँ डेरा डालकर उसने वनपाल और उसके सेवकों को साथ लेकर आश्रम में प्रवेश किया। उसने बोधिसत्व को प्रणाम किया और कहा, "हे प्रभु, स्त्रियाँ धार्मिक (सन्यासी) जीवन पर कलंक हैं; मैं आपकी पुत्री की सेवा करूँगा।"

बोधिसत्व ने उस कन्या का नाम असंका रखा था क्योंकि वह अपने संदेह (असंका) के कारण जलमार्ग पार करते हुए उसे उनके पास लाई थी, "इस कमल में क्या है?" उन्होंने राजा से सीधे यह नहीं कहा, "इसे ले जाओ और चले जाओ," बल्कि कहा, "हे महाराज, यदि आप इस कन्या का नाम जानते हैं, तो इसे ले जाओ और चले जाओ।" राजा ने कहा, "हे प्रभु, यदि आप बताएँगे, तो मैं जान जाऊँगा।" उन्होंने कहा, "मैं नहीं बताऊँगा, परन्तु जब आप जान लें, तो इसे ले जाओ और चले जाओ।" राजा मान गए और तब से अपने मंत्रियों के साथ विचार करने लगे, "इसका नाम क्या हो सकता है?" उन्होंने सभी कठिन नामों का अनुमान लगाया और बोधिसत्व से कहा, "इसका नाम फलाँ-फलाँ होगा": परन्तु बोधिसत्व ने मना कर दिया। इस प्रकार राजा के विचार करते-करते एक वर्ष बीत गया। शेरों और अन्य जानवरों ने उनके हाथियों, घोड़ों और आदमियों पर हमला किया, साँपों का खतरा था, मक्खियों का खतरा था, और बहुत से लोग ठंड से मर गए। राजा ने बोधिसत्व से कहा, "मुझे उसकी क्या आवश्यकता है?" और वह चल पड़ा। कन्या असंका एक खुली क्रिस्टल खिड़की पर खड़ी थी। राजा ने उसे देखकर कहा, "हमें तुम्हारा नाम नहीं मिल रहा है, तुम यहीं हिमालय में रहो, हम जा रहे हैं।" असंका ने कहा, "महाराज, यदि आप चले गए तो आपको मुझ जैसी पत्नी कभी नहीं मिलेगी। तैंतीस के स्वर्ग में, चित्तलता उद्यान में, असावती नामक एक लता है: इसके फल से एक दिव्य पेय उत्पन्न होता है, और जो इसे एक बार पीते हैं वे चार महीने तक मदहोश रहते हैं और एक दिव्य पलंग पर लेट जाते हैं: यह एक हजार वर्षों में एक बार फल देती है और देवताओं के पुत्र (देवदूत), यद्यपि मादक पेय के आदी होते हैं, उस दिव्य पेय की प्यास को सहन करते हुए कहते हैं, "हम इससे फल प्राप्त करेंगे," और हजार वर्षों तक लगातार पौधे को देखने आते हैं और पूछते हैं, "क्या यह ठीक है?" लेकिन आप एक वर्ष में ही असंतुष्ट हो जाते हैं: जो अपनी आशा का फल प्राप्त करता है वह सुखी होता है, अभी असंतुष्ट मत हो," और इस प्रकार उसने तीन श्लोक कहे:

स्वर्गिक उद्यान में असावती विराजमान होती है;
हजार साल में एक बार, इससे ज्यादा नहीं, वह पेड़
यह फल देता है: इसके लिए देवता (देवदूत) धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।
हे राजा, आशा बनाए रखो, आशा का फल मीठा होता है।
एक पक्षी उड़ता रहा और उसने कभी हार स्वीकार नहीं की।
हालांकि उनकी इच्छा दूर थी, फिर भी उन्होंने उसे पूरी तरह से हासिल कर लिया:
हे राजा, आशा बनाए रखें: आशा का फल मीठा होता है।

राजा उसके शब्दों से मोहित हो गया: उसने अपने मंत्रियों को फिर से इकट्ठा किया और नाम का अनुमान लगाने लगा, हर बार दस बार अनुमान लगाता रहा, जब तक कि एक और वर्ष बीत नहीं गया। लेकिन उसका नाम उन दस नामों में नहीं था, इसलिए बोधिसत्व ने उसे मना कर दिया। राजा ने फिर कहा, "मुझे उसकी क्या आवश्यकता है?" और चला गया। वह खिड़की पर प्रकट हुई: और राजा ने कहा, "तुम यहीं रहो, हम चलते हैं।" "महाराज, क्यों जा रहे हो?" "मुझे आपका नाम नहीं मिल रहा है।" "हे महाराज, आप इसे क्यों नहीं पा सकते? आशा व्यर्थ नहीं जाती; एक सारस पहाड़ी की चोटी पर रहकर अपनी मनोकामना पूरी कर लेता है: आप क्यों नहीं पा सकते? धैर्य रखिए, हे महाराज। एक सारस कमल के तालाब में भोजन करता था, लेकिन उड़कर एक पहाड़ी की चोटी पर उतर आया: वह उस दिन वहीं ठहर गया और अगले दिन सोचने लगा, "मैं इस पहाड़ी की चोटी पर सुखपूर्वक बस गया हूँ: अगर बिना नीचे उतरे यहीं भोजन और पानी पाता रहूँ और इस तरह आज का दिन व्यतीत करूँ, तो कितना आनंद होगा।" उसी दिन स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने असुरों का वध किया था और तैंतीस लोकों के स्वर्ग में विराजमान होकर सोच रहे थे, "मेरी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गई हैं, क्या वन में कोई ऐसा है जिसकी मनोकामना अधूरी रह गई हो?" यह सोचते हुए उन्होंने उस सारस को देखा और सोचा, "मैं इस पक्षी की मनोकामना पूरी करूँगा": सारस के बैठने की जगह से कुछ ही दूरी पर एक धारा बहती है, और सक्का (इंद्र) ने धारा को पूरी तरह उफान पर पहाड़ी की चोटी पर भेज दिया: इसलिए सारस बिना हिले-डुले वहीं पहुँच गया। "उसने मछली खाई, पानी पिया और उस दिन वहीं रही; फिर पानी कम हुआ और बह गया; इसलिए, हे महाराज, सारस ने अपनी उस आशा को साकार किया, तो आप क्यों नहीं करेंगे? आशा बनाए रखें," उसने शेष श्लोक के साथ कहा। राजा, उसकी कहानी सुनकर, उसकी सुंदरता और उसके शब्दों से मोहित हो गया: वह वहाँ से जा नहीं सका, बल्कि अपने मंत्रियों को इकट्ठा करके और सौ नाम प्राप्त करके, उन सौ नामों पर अनुमान लगाने में एक और वर्ष व्यतीत

किया। तीन वर्ष के अंत में वह बोधिसत्व के पास आया और पूछा, "क्या वह नाम उन सौ नामों में होगा, हे स्वामी?" "आप नहीं जानते, हे महाराज।" उसने बोधिसत्व को प्रणाम किया और "हम अब चलते हैं" कहकर वह चल पड़ा। कन्या असंका फिर से एक क्रिस्टल खिड़की के पास खड़ी थी। राजा ने उसे देखा और कहा, "तुम यहीं रहो, हम चलते हैं।" "क्यों, हे महाराज?" "तुम मुझे शब्दों से संतुष्ट करती हो, प्रेम से नहीं: तुम्हारे मीठे शब्दों से मोहित होकर मैंने यहाँ तीन वर्ष बिताए हैं, अब मैं चलता हूँ," और उसने ये श्लोक कहे:

तुम मुझे शब्दों से प्रसन्न करते हो, कर्मों से नहीं।
सुगंधहीन फूल, हालांकि देखने में सुंदर होता है, लेकिन वह एक खरपतवार मात्र है।
अपने दोस्तों से बिना किसी परिणाम के अच्छा वादा करना व्यर्थ है।
कभी कुछ न देना, हमेशा संचय करना: यही मित्रता के पतन का निश्चित कारण है।
पुरुषों को तभी बोलना चाहिए जब वे कार्य करने को तैयार हों, न कि उन चीजों का वादा करना चाहिए जिन्हें वे पूरा नहीं कर सकते।
यदि वे केवल बातें करते हैं लेकिन कुछ करके नहीं दिखाते, तो बुद्धिमान लोग उन्हें भली-भांति पहचान लेते हैं।
मेरी सेना बर्बाद हो गई है, मेरा सारा भंडार खत्म हो गया है।
मुझे शक है कि मेरा जीवन बर्बाद हो गया है: अब मेरे जाने का समय आ गया है।
राजा की बातें सुनकर कन्या असंका ने कहा, “महाराज, आप मेरा नाम जानते हैं, आपने अभी-अभी मेरा नाम लिया है; मेरे पिता को मेरा नाम बताइए, मुझे अपने साथ ले जाइए।” इस प्रकार राजा से बात करते हुए उसने कहा:

राजकुमार, तुमने वही शब्द कहा है जो मेरा नाम है:
आइए, महाराज: मेरे पिता इस दावे को स्वीकार कर लेंगे।
राजा बोधिसत्व के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, “हे प्रभु, आपकी पुत्री का नाम असंका है।” बोधिसत्व ने कहा, “जब से आपको उसका नाम पता चले, उसे अपने साथ ले जाइए, महाराज।” उन्होंने बोधिसत्व को प्रणाम किया और रत्न महल में आकर कहा, “देवी, आपके पिता ने आपको मुझे सौंपा है, अब आइए।” असंका ने कहा, “हे महाराज, आइए, मैं अपने पिता से अनुमति लेकर आती हूँ।” वह महल से नीचे उतरकर बोधिसत्व को प्रणाम किया, उनकी अनुमति प्राप्त की और राजा के पास आई। राजा उन्हें बनारस ले गए और उनके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया, उनके पुत्र-पुत्रियाँ हुए। बोधिसत्व निरंतर ध्यान में लीन रहे और ब्रह्मलोक में जन्म लिया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के बाद, भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गए: - "असंका पूर्व पत्नी थी, राजा असंतुष्ट भाई था, तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 423

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-381-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 381
मिगालोपा-जातक (*1)

"तुम्हारे तौर-तरीके, मेरे पुत्र," इत्यादि-- गुरु ने जेतवन मठ में एक उद्दंड भिक्षु की यह कहानी सुनाई। गुरु ने भिक्षु से पूछा, "क्या तुम सचमुच उद्दंड हो?" उसने कहा, "जी प्रभु": और गुरु ने कहा, "तुम पहली बार उद्दंड नहीं हो; पहले भी उद्दंडता के कारण तुमने ज्ञानियों की बात नहीं मानी और वेरम्भ (*2) हवाओं से तुम्हारी मृत्यु हुई," इस प्रकार उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व अपरन्नगिज्ज नाम के एक गिद्ध के रूप में जन्मे और गिज्जपब्बत (गिद्ध पर्वत) में गिद्धों के एक समूह के साथ रहते थे। उनके पुत्र मिगलोपा अत्यंत बलवान और शक्तिशाली थे; वे अन्य गिद्धों की पहुँच से बहुत ऊपर उड़ते थे। उनके पुत्रों ने राजा को बताया कि उनका पुत्र बहुत दूर उड़ गया है। राजा ने मिगलोपा को बुलाया और कहा, "पुत्र, लोग कहते हैं कि तुम बहुत ऊँचा उड़ते हो: यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम स्वयं पर मृत्यु बुला लोगे," और तीन श्लोक कहे:

मेरे बेटे, तुम्हारे तौर-तरीके मुझे असुरक्षित लगते हैं,
तुम हमारी उचित सीमा से बहुत ऊपर उड़ रहे हो।
जब पृथ्वी तुम्हारी दृष्टि में केवल एक वर्गाकार मैदान के समान हो जाए, तो
मेरे पुत्र, वापस मुड़ जाना और इससे भी ऊँची उड़ान भरने का साहस मत करना।
ऊँची उड़ान भरने की कोशिश में अन्य पक्षियों ने भी कभी-कभार प्रयास किया है, लेकिन
प्रचंड हवा और आंधी की चपेट में आकर वे अपने अभिमान में ही नष्ट हो गए हैं।
मिगालोपा ने अवज्ञा करते हुए अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया, बल्कि ऊपर उठते हुए उसने अपने पिता द्वारा निर्धारित सीमा को पार कर लिया, यहाँ तक कि काली हवाओं का भी सामना किया और ऊपर की ओर उड़ता रहा जब तक कि उसका सामना वेरम्भा हवाओं से नहीं हो गया। उन हवाओं ने उस पर प्रहार किया और उनके मात्र प्रहार से ही वह टुकड़े-टुकड़े होकर हवा में विलीन हो गया।

अपने वृद्ध पिता के बुद्धिमानी भरे आदेशों को अनसुना करते हुए,
उसने अंधकार के पार, वेरम्भा हवाओं का मार्ग खोज लिया।
उसकी पत्नी, उसके बच्चे, उसके घर के सारे जानवर,
सब कुछ उस अवज्ञाकारी पक्षी के कारण नष्ट हो गया।
अतः जो अपने बड़ों की बात नहीं मानते, वे
इस अभिमानी गिद्ध की तरह सीमा से बाहर भटक जाते हैं, और
जब वे सत्य के नियमों का उल्लंघन करते हैं, तो उनका विनाश निश्चित होता है।

पाठ के बाद गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय मिगालोपा उद्दंड भाई (भिक्षु) थे, और अपरान्ना मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 427 देखें

(2) एक हवा जिसे इसी नाम के समुद्र से यह नाम दिया गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिरिकालकणि-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-382-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 382
सिरिकालकन्नी-जातक

“यह कौन है,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में अनाथपिंडिका के विषय में यह कथा सुनाई। प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त करने के समय से ही उन्होंने पाँचों प्रथम आज्ञाओं का अटूट पालन किया; उनकी पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, सेवक और कर्मचारी भी ऐसा ही करते थे। एक दिन सत्य के हॉल में वे इस बात पर चर्चा करने लगे कि क्या अनाथपिंडिका का आचरण और गृहस्थी भी शुद्ध है। गुरु आए और उन्हें उनका विषय बताया गया: तो उन्होंने कहा, “भाइयों (भिक्षुओं), प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों के गृहस्थी शुद्ध होते थे,” और एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व एक व्यापारी थे, जो दान देते थे, आज्ञाओं का पालन करते थे और व्रत के नियमों का पालन करते थे। उनकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ, सेवक और कर्मचारी भी पाँचों आज्ञाओं का पालन करते थे। इसलिए उन्हें व्यापारी सुचिपरिवार (शुद्ध गृहस्थ) कहा जाता था। उन्होंने सोचा, "यदि मुझसे भी अधिक शुद्ध चरित्र वाला कोई आए, तो उसे बैठने के लिए अपना पलंग या लेटने के लिए अपना बिस्तर देना उचित नहीं होगा, बल्कि उसे एक शुद्ध और अप्रयुक्त पलंग देना चाहिए।" अतः उन्होंने अपने दरबार में एक तरफ अप्रयुक्त पलंग और पलंग तैयार करवाए। उस समय चार राजाओं के स्वर्ग (*1) में विरुपाक्खा की पुत्री कलाकन्नी और धतरत्था की पुत्री श्री, दोनों ने मिलकर अनेक इत्र और मालाएँ लीं और अनोटत्ता झील में खेलने गईं। उस झील पर अनेक स्नान स्थल हैं: बुद्ध अपने स्थान पर स्नान करते हैं, पच्चेकबुद्ध अपने स्थान पर, भिक्षु अपने स्थान पर, तपस्वी अपने स्थान पर, छह काम-स्वर्गों (*2) के देवता (देवदूत) अपने स्थान पर और देवियाँ अपने स्थान पर। ये दोनों वहाँ आए और इस बात पर झगड़ने लगे कि उनमें से पहले कौन स्नान करेगा। कालकन्नी ने कहा, "मैं संसार का स्वामी हूँ: इसलिए उचित है कि मैं पहले स्नान करूँ।" श्री ने कहा, "मैं मानव जाति को आधिपत्य दिलाने वाले आचरण का मार्गदर्शन करता हूँ: इसलिए उचित है कि मैं पहले स्नान करूँ।" तब दोनों ने कहा, "चारों राजा जानेंगे कि हममें से पहले कौन स्नान करेगा": अतः वे उनके पास गए और पूछा कि अनोतत्ता में पहले स्नान करने के योग्य कौन है। धतरत्थ और विरुपाक्खा ने कहा, "हम निर्णय नहीं कर सकते," और यह कर्तव्य विरुल्हा और वेसवना पर डाल दिया। उन्होंने भी कहा, "हम निर्णय नहीं कर सकते, हम इसे अपने भगवान के चरणों में भेज देंगे": इसलिए उन्होंने इसे सक्का (इंद्र) के पास भेज दिया। उन्होंने उनकी कहानी सुनी और सोचा, "ये दोनों मेरी सहेलियों की बेटियाँ हैं; मैं इस मामले का फैसला नहीं कर सकता": इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "बनारस में सुचिपरिवार नाम का एक व्यापारी है; उसके घर में एक अप्रयुक्त पलंग और पलंग तैयार है: जो पहले वहाँ बैठ या लेट सके, वही पहले स्नान करने के लिए उचित है।" यह सुनकर कलाकन्नी ने तुरंत नीले (*3) वस्त्र धारण किए, नीले रंग का इत्र लगाया और नीले आभूषणों से खुद को सजाया: वह गुलेल से पत्थर की तरह स्वर्ग से उतरी, और रात के मध्य पहर के ठीक बाद वह हवा में खड़ी हो गई, नीली रोशनी बिखेरती हुई, व्यापारी से कुछ ही दूरी पर, जो अपने महल के बैठक कक्ष में पलंग पर लेटा हुआ था। व्यापारी ने उसे देखा: लेकिन उसकी नज़र में वह अरुचिकर और भद्दी थी। उससे बात करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:

यह इतने गहरे रंग का कौन है?
क्या यह दृश्य इतना अप्रिय है?
आप कौन हैं, और किसकी बेटी हैं?
कृपया बताएं कि हम आपको कैसे जान सकते हैं?
उनकी बात सुनकर कलाकन्नी ने दूसरा श्लोक बोला:

महान राजा विरुपाक्खा मेरे पिता हैं:
मैं बदकिस्मती हूँ, कलाकन्नी कठिन है:
मुझे वह कमरा दे दो जो मैं तुम्हारे पास चाहता हूँ।
तब बोधिसत्व ने तीसरा श्लोक कहा:

उनका आचरण कैसा था, उनके तौर-तरीके क्या थे?
   उन पुरुषों में से जिनके साथ आप रहते हैं
मेरा प्रश्न यही है:
   हमें इसका जवाब अच्छी तरह पता होगा।
फिर उन्होंने अपने गुणों का वर्णन करते हुए चौथा छंद बोला:

पाखंडी, व्यभिचारी, चिड़चिड़े स्वभाव का व्यक्ति,
   ईर्ष्या, लोभ और कपट का स्वामी:
ये मेरे प्रिय मित्र हैं: और मैं इन्हें त्याग देता हूँ
   उनका लाभ यह है कि वे पूरी तरह से नष्ट हो जाएं।
उन्होंने पाँचवें, छठे और सातवें छंद भी पढ़े:

और उससे भी अधिक प्रिय हैं क्रोध और घृणा।
निंदा और विवाद, बदनामी और क्रूरता।
वह निकम्मा प्राणी जो अपना भला नहीं जानता,
सलाह को नापसंद करते हुए, अपने से बड़ों के प्रति असभ्य व्यवहार:
वह व्यक्ति जिसे कुकर्म करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे मित्र घृणा करते हैं,
वह मेरा मित्र है, मुझे उसी में आनंद मिलता है।

तब उस महान सत्ता ने उसे दोषी ठहराते हुए आठवां श्लोक कहा:

काली, यहाँ से चली जाओ: यहाँ तुम्हें खुश करने जैसा कुछ नहीं है:
अन्य देशों और शहरों में विलीन हो जाना।
कलाकन्नी ने उसकी बात सुनकर दु:ख व्यक्त किया और एक और श्लोक बोला:

मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ: यहाँ मुझे खुश करने जैसा कुछ भी नहीं है।
कुछ अन्य लोग बदकिस्मत होते हैं, जो बहुत सारा सामान इकट्ठा कर लेते हैं;
मैं और मेरा भाई-ईश्वर इसे गायब कर देंगे।
जब वह चली गई, तो देवी श्री, सुनहरे रंग के वस्त्र और इत्र तथा सुनहरी चमक वाले आभूषणों से सुसज्जित होकर, पीले प्रकाश को बिखेरते हुए, उपस्थिति कक्ष के द्वार पर आईं और समतल भूमि पर सीधे पैर रखकर आदरपूर्वक खड़ी हो गईं। उन्हें देखकर बोधिसत्व ने प्रथम श्लोक दोहराया:

यह रंगीन दिव्य आकृति कौन है?
इतनी दृढ़ और सच्ची जमीन पर?
आप कौन हैं, और किसकी बेटी हैं?
कृपया बताएं कि हम आपको कैसे जान सकते हैं?
सिरी ने उसकी बात सुनकर दूसरा छंद बोला:

महान राजा धतरत्थ मेरे पिता हैं:
मैं भाग्य और सौभाग्य का धनी हूँ, और मेरी बुद्धिमत्ता की लोग प्रशंसा करते हैं:
मुझे वह कमरा प्रदान करें जिसमें मैं आपके साथ रहना चाहता हूँ।
तब

उनका आचरण कैसा था, उनके तरीके कैसे थे
 जिन पुरुषों के साथ आप रहते हैं?
मेरा प्रश्न इसी बात का आह्वान करता है;
 हमें आपका जवाब अच्छी तरह पता होगा।
जो सर्दी और गर्मी में, हवा और धूप में,
 प्यास और भूख के बीच, सांप और जहरीली मक्खी,
वह दिन-रात अपना वर्तमान कर्तव्य निभा रहा है;
 मैं उनके साथ निवास करता हूँ और उनसे निष्ठापूर्वक प्रेम करता हूँ।
सौम्य और मित्रवत, धर्मनिष्ठ, उदार,
 बिना छल के और ईमानदार, नेक, विजयी, सरल,
उच्च पद पर नम्र: मैं उसके भाग्य को पूरी तरह से प्रभावित करता हूँ।
 जैसे लहरें सागर में अपना रंग फैलाती हैं। (*4)
दोस्त बनाना है या दुश्मनी खत्म करनी है, बेहतर है, पसंद है या बुरा है,
 सहायक हो या प्रतिद्वंद्वी, चाहे अंधेरा हो या दिन का उजाला,
जो कोई दयालु हो, कठोर शब्द या शाप न बोले,
 मैं उसका दोस्त हूँ, चाहे वह जीवित हो या मृत, हमेशा।
लेकिन अगर किसी मूर्ख ने मुझसे कुछ प्यार जीत लिया हो,
 और वह घमंडी और अभिमानी हो जाता है।
मैं उसके कुकर्म के अवज्ञाकारी मार्ग से भाग जाता हूँ।
 जैसे कोई गंदा दाग।
प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य और दुर्भाग्य उसी का कर्म है, किसी और का नहीं।
न तो कोई व्यक्ति अपने भाइयों के लिए सौभाग्य बना सकता है और न ही दुर्भाग्य।
व्यापारी द्वारा पूछे जाने पर सिरी ने यही उत्तर दिया।

बोधिसत्व श्री की बातों से प्रसन्न हुए और बोले, "यह तुम्हारे लिए उपयुक्त पवित्र आसन और पलंग है; यहाँ बैठो और लेट जाओ।" वह वहाँ ठहरीं और सुबह चार महान राजाओं के स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और सर्वप्रथम अनोतत्ता झील में स्नान किया। श्री द्वारा प्रयुक्त पलंग को सिरिसया कहा गया: यहीं से सिरिसयान की उत्पत्ति हुई और इसी कारण से इसे आज भी इसी नाम से जाना जाता है।

पाठ के बाद गुरु ने जन्म का विवरण दिया: "उस समय देवी सिरी उप्पलावन्ना थीं, और व्यापारी सुचिपरिवारा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)ये उत्तर के राजा धतरत्थ, दक्षिण के विरुल्हा, पश्चिम के विरुपाक्खा और पूर्व के वेसवना हैं।

(2) जिनमें से चार राजाओं का स्वर्ग पहला है।

(3) नीला अशुभ रंग है।

(4)शायद वन्नम वास्तव में संस्कृत वृम्हन वृद्धि के लिए है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुक्कुट्ट-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-383-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 383
कुक्कुट जातक

"पंखों वाला पक्षी," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में यह कथा सुनाई, जो संसार के प्रति ललक रखता था। गुरु ने उससे पूछा, "तुम संसार के प्रति क्यों ललक रखते हो?" "हे प्रभु, वासना के कारण, क्योंकि मैंने एक सजी-धजी स्त्री को देखा।" "भाई, स्त्रियाँ बिल्लियों के समान होती हैं, छल-कपट और फुसलाकर अपने वश में आए व्यक्ति को बर्बाद कर देती हैं," इस प्रकार उसने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, बोधिसत्व एक मुर्गे के रूप में पैदा हुए और सैकड़ों मुर्गों के एक समूह के साथ जंगल में रहते थे। पास ही में एक बिल्ली रहती थी: उसने धूर्तता से बोधिसत्व को छोड़कर बाकी सभी मुर्गों को धोखा दिया और उन्हें खा गई: लेकिन बोधिसत्व उसके वश में नहीं आए। उसने सोचा, "यह मुर्गा बहुत चालाक है, लेकिन वह नहीं जानता कि मैं भी चालाक और कुशल हूं: अच्छा होगा कि मैं उसे यह कहकर बहलाऊं, 'मैं तुम्हारी पत्नी बनूंगी,' और जब वह मेरे वश में आ जाए तो उसे खा जाऊं।" वह उस पेड़ की जड़ के पास गई जहां बोधिसत्व बैठे थे, और उनकी सुंदरता की प्रशंसा करते हुए प्रार्थना करते हुए, उसने पहला श्लोक बोला:

चमकीले रंगों वाले पंखों वाला पक्षी, सुंदर ढंग से झुकी हुई कलगी वाला पक्षी।
मैं मुफ्त में तुम्हारी पत्नी बन जाऊंगी, इस शाखा को छोड़कर मेरे पास आ जाओ।
उसकी बात सुनकर बोधिसत्व ने सोचा, "इसने मेरे सभी रिश्तेदारों को खा लिया है; अब यह मुझे बहला-फुसलाकर मुझे खाना चाहती है: मैं इससे छुटकारा पाऊंगा।" इसलिए उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:

हे सुंदर और आकर्षक देवी, आपके चार पैर हैं, मेरे केवल दो।
पशुओं और पक्षियों को कभी विवाह नहीं करना चाहिए: क्योंकि कोई दूसरा पति ढूंढ लेंगे।
फिर उसने सोचा, "वह बहुत ही चालाक है; मैं किसी न किसी चतुराई से उसे धोखा दूंगी और उसे खा जाऊंगी"; इस प्रकार उसने तीसरा छंद बोला:

मैं तुम्हारे लिए यौवन और सौंदर्य, मधुर वाणी और शिष्टाचार लाऊंगा:
आदरणीय पत्नी हो या साधारण दासी, जैसा आप चाहें मेरे साथ व्यवहार करें।
तब बोधिसत्व ने सोचा, "उसे अपमानित करके भगा देना ही सबसे अच्छा है," इसलिए उन्होंने चौथा श्लोक कहा:

तुमने मेरे परिवार का खून पिया है, और उन्हें बेरहमी से लूटा और मार डाला है:
"सम्मानित पत्नी"! मुझे रिझाने के प्रयास में तुम्हारे हृदय में कोई सम्मान नहीं है।
उसे वहां से भगा दिया गया और उसने दोबारा उसकी तरफ देखने की हिम्मत नहीं की।

इसलिए जब वे किसी नायक को देखती हैं, तो महिलाएं चालाक हो जाती हैं,
(बिल्ली और मुर्गे की तुलना करें,) उसे लुभाने की कोशिश करें।
जो महान अवसर पर उठने में विफल रहता है
शत्रु के पैरों तले दु:ख में पड़ा हुआ है।
एक कारण उसके भाग्य में संकट उत्पन्न हो जाता है,
जैसे मुर्गा बिल्ली से बचकर अपने दुश्मन से भाग निकलता है।
ये श्लोक पूर्ण ज्ञान से प्रेरित हैं।

उनका पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के बाद, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उस समय मुर्गा मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धम्मद्धजा-जातबा**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-384-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 384. (*1)
धम्मद्धज-जताबा

"सद्गुणों का अभ्यास करो," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक कपटी भिक्षु की यह कहानी सुनाई। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह व्यक्ति अब पहली बार कपटी नहीं है": इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक पक्षी के रूप में हुआ। बड़े होकर वे समुद्र के बीचोंबीच एक द्वीप पर पक्षियों के एक समूह के साथ रहने लगे। काशी के कुछ व्यापारियों ने एक अनुभवी कौआ लिया और समुद्र यात्रा पर निकल पड़े। समुद्र के बीचोंबीच उनका जहाज़ टूट गया। कौआ उस द्वीप पर पहुँचा और सोचने लगा, "यहाँ पक्षियों का एक बड़ा झुंड है, अच्छा होगा कि मैं उन्हें छल से अपने वश में कर लूँ और उनके अंडे और बच्चे खा जाऊँ।" इसलिए वह उनके बीच उतरा और मुँह खोलकर एक पैर ज़मीन पर रखकर खड़ा हो गया। उन्होंने पूछा, "हे स्वामी, आप कौन हैं?" कौआ ने कहा, "मैं एक पवित्र व्यक्ति हूँ।" "आप एक पैर पर क्यों खड़े हैं?" "अगर मैं दूसरा पैर नीचे रख दूँ, तो धरती मेरा भार नहीं सह पाएगी।" "तो फिर आप मुँह खोलकर क्यों खड़े हैं?" "हम और कुछ नहीं खाते, हम केवल हवा पीते हैं।" और इसी के साथ उसने इन पक्षियों को बुलाया और कहा, "मैं तुम्हें उपदेश दूंगा, तुम सुनो," और उसने उपदेश के रूप में पहला छंद सुनाया:

भाइयों, सद्गुणों का अभ्यास करो, ईश्वर आप पर कृपा करे! सद्गुणों का अभ्यास करो, मैं दोहराता हूँ:
यहां और इसके बाद, गुणी लोगों को पूर्ण सुख प्राप्त होता है।
पक्षियों को यह नहीं पता था कि उसने यह बात उनके अंडे खाने के छल से कही थी, इसलिए उन्होंने उसकी प्रशंसा की और दूसरा छंद गाया:

नि:संदेह एक धर्मी पक्षी, एक धन्य पक्षी।

वह एक पैर पर खड़े होकर पवित्र वचन का प्रचार करता है।
पक्षियों ने उस दुष्ट पर विश्वास करते हुए कहा, "हे प्रभु, आप केवल हवा पर ही निर्भर रहते हैं, और कुछ नहीं खाते। इसलिए, कृपया हमारे अंडों और बच्चों की रखवाली कीजिए।" इस प्रकार वे अपने भोजन स्थल पर चले गए। जब वे चले गए, तो उस पापी ने उनके अंडों और बच्चों को पेट भर खा लिया, और जब वे वापस आए, तो वह एक पैर पर खड़ा होकर शांत भाव से मुंह खोले रहा। जब पक्षी वापस आए, तो उन्होंने अपने बच्चों को न देखकर जोर से चिल्लाया, "इन्हें कौन खा रहा है?" लेकिन यह सोचकर कि "यह कौआ पवित्र है," उन्हें उस पर ज़रा भी संदेह नहीं हुआ। फिर एक दिन बोधिसत्व ने सोचा, "पहले तो यहाँ कुछ भी गलत नहीं था, यह सब तो इसके आने के बाद से ही शुरू हुआ है, इसकी परीक्षा लेना अच्छा रहेगा।" इसलिए, ऐसा दिखावा करते हुए कि वह अन्य पक्षियों के साथ भोजन करने जा रहा है, वह वापस मुड़ा और एक गुप्त स्थान पर खड़ा हो गया। पक्षियों के चले जाने से आश्वस्त होकर कौआ उठा और जाकर अंडों और बच्चों को खा गया, फिर वापस आकर एक पैर पर खड़ा होकर मुंह खोले रहा। जब पक्षी आए, तो उनके राजा ने उन सभी को इकट्ठा किया और कहा, "मैंने आज अपने बच्चों पर मंडरा रहे खतरे का जायजा लिया, और मैंने इस दुष्ट कौवे को उन्हें खाते हुए देखा, हम इसे पकड़ लेंगे": इसलिए पक्षियों को इकट्ठा करके और कौवे को घेरकर उसने कहा, "यदि वह भाग जाए, तो हम उसे पकड़ लेंगे," और शेष छंद बोले:

तुम उसके तौर-तरीकों को नहीं जानते, जब तुम इस पक्षी की प्रशंसा करते हो:
   तुमने मूर्खतापूर्ण बातें कीं:
वह कहेगा, "सद्गुण," और "सद्गुण," हाँ।
   लेकिन वह हमारे अंडे और बच्चों को खा जाता है।
जो बातें वह अपनी वाणी से प्रचारित करता है
   उनके सदस्य ऐसा कभी नहीं करते:
उसका सद्गुण एक खोखला शोर है।
   उसकी धार्मिकता झूठी है।
मन से वह पाखंडी है, लेकिन उसकी भाषा मनमोहक होती है।
   एक काला सांप अपने बिल की ओर रेंगता हुआ जा रहा है:
वह अपने बाहरी प्रतीक चिन्ह के माध्यम से धोखा देता है।
   ग्रामीण लोग अपनी सादगी में।
उसे चोंच और पंखों से मार गिराओ।
   उसे अपने पंजों से फाड़ डालो:
ऐसे नीच चेले का नाश हो।
   हमारे उद्देश्य के गद्दार।
ये कहते ही पक्षियों का सरदार स्वयं उछल पड़ा और उसने अपनी चोंच से कौवे के सिर पर प्रहार किया, और बाकी पक्षियों ने भी अपनी चोंच, पैरों और पंखों से उस पर प्रहार किया: इस प्रकार वह मर गया।

पाठ के अंत में, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय कौआ कपटी भाई (भिक्षु) था, पक्षियों का राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **नंदियामिगा-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-385-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 385
नंदीयमिगा-जातक

"क्या तुम राजा के उद्यान जाओगे?" इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु के बारे में सुनाई, जो अपनी माता का भरण-पोषण करता था। उन्होंने भिक्षु से पूछा, "क्या सच में तुम गृहस्थों का भरण-पोषण करते हो?" "जी हाँ, गुरुजी।" "वे कौन हैं?" "मेरे

माताजी, गुरुजी।" "शाबाश, शाबाश, भिक्षु जी: तुम प्राचीन ज्ञानियों के नियम का पालन कर रहे हो, क्योंकि वे भी पशु रूप में जन्म लेकर अपने माता-पिता के लिए प्राण त्याग देते थे," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब कोसल राजा साकेत (अवध) में कोसलों पर शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म हिरण के रूप में हुआ। बड़े होकर उनका नाम नंदीयमिगा रखा गया और वे अपने उत्तम स्वभाव और आचरण के कारण अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते थे। कोसल राजा शिकार के प्रति बेहद उत्साही थे और प्रतिदिन अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर शिकार पर जाते थे, जिसके कारण उनकी प्रजा खेती-बाड़ी और व्यापार नहीं कर पाती थी। प्रजा ने आपस में विचार-विमर्श करते हुए कहा, "महाराज, हमारे इस राजा ने हमारे व्यापार को नष्ट कर दिया है, हमारा गृहस्थ जीवन बर्बाद हो रहा है; क्या हम अंजनावन उद्यान को घेर लें, उसमें द्वार लगा दें, एक तालाब खोदकर उसमें घास बो दें, फिर लाठियाँ और डंडे लेकर जंगल में जाएँ, झाड़ियों को पीटें और इस प्रकार हिरणों को भगाकर उन्हें गायों की तरह बाड़े में धकेल दें? फिर हम द्वार बंद कर देंगे, राजा को सूचना भेज देंगे और अपने व्यापार में लग जाएँगे।" "यही रास्ता है," उन्होंने कहा, और एकमत होकर उन्होंने पार्क तैयार किया, और फिर जंगल में प्रवेश करके दोनों ओर एक लीग (4.23 किमी) का क्षेत्र घेर लिया। उस समय नंदिया अपने माता-पिता को जंगल में ले जाकर जमीन पर लेटा हुआ था। हाथों में विभिन्न ढालें और हथियार लिए लोग घनी झाड़ियों को घेरे हुए थे; और कुछ लोग हिरण की तलाश में अंदर घुस गए। नंदिया ने उन्हें देखा और सोचा, "आज अपने माता-पिता के लिए प्राण त्याग देना ही अच्छा है," इसलिए उठकर अपने माता-पिता को प्रणाम करते हुए उसने कहा, "पिता और माता, अगर ये लोग इस घनी झाड़ियों में प्रवेश करेंगे तो हम तीनों को देख लेंगे; आप केवल एक ही तरीके से बच सकते हैं, और आपका जीवन ही सबसे अच्छा है: मैं आपको अपना प्राण त्याग कर दूंगा, घनी झाड़ियों के किनारे खड़ा होकर और जैसे ही वे अंदर घुसें, मैं निकल आऊंगा: तब वे सोचेंगे कि इस घनी झाड़ियों में केवल एक ही हिरण हो सकता है और इसलिए वे अंदर नहीं आएंगे: सावधान रहें": इस प्रकार उसने उनकी अनुमति प्राप्त की और दौड़ने के लिए तैयार हो गया। जैसे ही बाड़े के बाहरी किनारे पर खड़े लोग शोर मचाते हुए झाड़ियों को रौंदने लगे, नंदिया बाहर आ गया, और उन्होंने सोचा कि वहाँ केवल एक ही हिरण होगा, इसलिए वे अंदर नहीं गए। नंदिया अन्य हिरणों के बीच चला गया, और लोग उन्हें लेकर पार्क में चले गए; फिर फाटक बंद करके उन्होंने राजा को सूचना दी और अपने-अपने घरों को चले गए। उस समय से राजा हमेशा स्वयं जाकर एक हिरण का शिकार करते थे; फिर या तो उसे लेकर चले जाते थे, या उसे बुलवाकर मंगवा लेते थे। हिरणों ने अपनी बारी तय कर ली थी, और जिसकी बारी आती थी वह एक तरफ खड़ा हो जाता था: और गोली लगने पर वे उसे ले जाते थे। नंदिया ने तालाब से पानी पिया और घास खाई, लेकिन उसकी बारी अभी तक नहीं आई थी। फिर कई दिनों बाद उसके माता-पिता उसे देखने के लिए तरसते हुए सोचने लगे, "हमारा पुत्र नंदिया, हिरणों का राजा, हाथी के समान बलवान और पूर्ण रूप से स्वस्थ था: यदि वह जीवित है तो वह अवश्य बाड़ फांदकर हमसे मिलने आएगा; हम उसे संदेश भेजेंगे": इसलिए वे सड़क के किनारे खड़े हो गए और एक ब्राह्मण को देखकर उन्होंने मनुष्य की आवाज में पूछा, "महोदय, आप कहाँ जा रहे हैं?" "साकेत जा रहे हैं।"उन्होंने कहा; इस प्रकार अपने बेटे को संदेश भेजते हुए उन्होंने पहला छंद बोला:

हे ब्राह्मण, जब तुम अवध से होकर गुजरोगे तो क्या तुम राजा के उद्यान जाओगे?
हमारे प्यारे बेटे नंदिया को ढूंढो और उसे हमारा संदेश सही-सही बताओ।
"तुम्हारे माता-पिता उम्रदराज हो चुके हैं और वे तुम्हें देखकर बहुत खुश हैं।"
ब्राह्मण ने "ठीक है" कहकर बात मान ली और अगले दिन साकेत जाकर उद्यान में प्रवेश किया और पूछा, "नंदिया कौन है?" हिरण उसके पास आया और बोला, "मैं।" ब्राह्मण ने अपना संदेश दिया। नंदिया ने यह सुनकर कहा, "मैं जा सकता हूँ, ब्राह्मण; मैं बाड़ फांदकर जा सकता हूँ: लेकिन मुझे राजा से नियमित भोजन और पानी मिलता रहा है, और यह मेरे लिए एक ऋण के समान है: इसके अलावा, मैं इन हिरणों के बीच लंबे समय तक रहा हूँ, और इस राजा और उनके प्रति भलाई किए बिना या अपनी शक्ति दिखाए बिना जाना मेरे लिए उचित नहीं है: लेकिन जब मेरी बारी आएगी, तो मैं उनके प्रति भलाई करूँगा और खुशी से वापस आऊँगा": और इस प्रकार समझाते हुए उसने दो श्लोक कहे।

मैं राजा का ऋणी हूँ और उन्हें प्रतिदिन भोजन और पेय प्रदान करता हूँ:
जब तक मैं इसे अच्छे से नहीं बना लेता, मैं नहीं जा सकता।
मैं राजा के तीरों के सामने अपना पक्ष रखूंगा:
फिर मेरी माँ को देखो और न्यायोचित साबित हो जाओ।
यह सुनकर ब्राह्मण चला गया। उसके बाद जिस दिन राजा की बारी आई, वह अपने कई सेवकों के साथ उद्यान में आया। बोधिसत्व एक तरफ खड़े हो गए। राजा ने कहा, "मैं हिरण का शिकार करूँगा," और उन्होंने धनुष पर एक तेज बाण चढ़ाया। बोधिसत्व मृत्यु के भय से अन्य जानवरों की तरह भागे नहीं, बल्कि निर्भय होकर और अपने प्रेम को मार्गदर्शक बनाकर दृढ़ता से खड़े रहे, अपनी मजबूत पसलियों को दिखाते हुए। राजा अपने प्रेम के प्रभाव से बाण नहीं चला सके। बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, आप बाण क्यों नहीं चला रहे? चलाइए!" "हिरणों के राजा, मैं नहीं चला सकता।" "तो हे महाराज, गुणी (*1) का पुण्य देखिए।" तब राजा बोधिसत्व से प्रसन्न होकर

अपना धनुष नीचे रख दिया और बोले, "लकड़ी का यह बेजान टुकड़ा आपका पुण्य जानता है: क्या मैं, जो समझदार और मनुष्य हूँ, इसे न जानूँ? मुझे क्षमा कीजिए; मैं आपको सुरक्षा देता हूँ।" “हे महाराज, आप मुझे सुरक्षा तो देते हैं, लेकिन उद्यान में हिरणों का यह झुंड क्या करेगा?” “मैं उन्हें भी सुरक्षा देता हूँ।” इस प्रकार बोधिसत्व ने उद्यान के सभी हिरणों, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों और जल में रहने वाली मछलियों के लिए निग्रोध जन्म में वर्णित तरीके से सुरक्षा प्राप्त करने के बाद, राजा को पंच आज्ञाओं में स्थापित किया और कहा, “हे महाराज, किसी राजा के लिए यह अच्छा है कि वह कुकर्मों के मार्ग को त्यागकर, दस राजसी गुणों का उल्लंघन न करके और न्यायपूर्ण आचरण से राज्य पर शासन करे।”

भिक्षा, नैतिकता, दान, न्याय और पश्चाताप
शांति, नम्रता, दया, कोमलता, धैर्य:
मुझे ऐसा महसूस होता है कि ये गुण मेरी आत्मा में समा गए हैं,
वहीं से प्रेम और पूर्ण आंतरिक कल्याण की उत्पत्ति होती है।
इन शब्दों के साथ उन्होंने एक श्लोक के रूप में राजसी गुणों का प्रदर्शन किया, और राजा के साथ कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने शहर में एक सोने का ढोल भेजा, जिसमें सभी प्राणियों को सुरक्षा का उपहार देने की घोषणा की गई थी: और फिर यह कहते हुए, "हे राजा, सावधान रहें," वे अपने माता-पिता से मिलने चले गए।

पुराने समय में अवध में हिरणों का एक राजा हुआ करता था,
नाम और स्वभाव से, नंदिया, रमणीय।
मुझे मारने के लिए राजा अपने हिरण-पारागाह में आया था।
उसका धनुष मुड़ा हुआ था, तीर कमान पर लगा हुआ था।
मैंने राजा के तीर के सामने अपनी कमर खुजला दी;
फिर मैंने अपनी माँ को देखा और मेरा निर्णय सही साबित हुआ।
ये छंद परिपूर्ण ज्ञान से प्रेरित थे।

अंत में, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के अंत में, अपनी माता का सहारा देने वाले भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) में स्थापित हुए:- "उस समय पिता और माता राजपरिवार के सदस्य थे, ब्राह्मण सारिपुत्र थे, राजा आनंद थे, और मैं स्वयं हिरण था।"

फुटनोट:

(1)यहाँ गुणम पर एक शब्द-खेल है जिसका अर्थ है योग्यता या स्ट्रिंग।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **खरपुत्त-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-386-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 386
खरपुत्त-जातक

"बकरियां मूर्ख होती हैं," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में एक भिक्षु को उसकी पूर्व पत्नी के प्रलोभन में पड़ने की कहानी सुनाई। जब भिक्षु ने संसार के प्रति अपनी लालसा व्यक्त की, तो गुरु ने कहा, "भाई, यह स्त्री तुम्हें हानि पहुँचा रही है: पहले भी तुम इसके कारण अग्नि में गिरे थे और ऋषियों द्वारा मृत्यु से बचाए गए थे," इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में सेनाक नामक राजा का शासन था, और उनके बोधिसत्व इंद्र थे। सेनाक नाम के एक नाग राजा के मित्र थे। कहते हैं कि वह नाग राजा नागलोक छोड़कर भोजन की तलाश में पृथ्वी पर भटकने लगा। गाँव के लड़कों ने उसे देखकर कहा, "यह

तो साँप है," और उस पर पत्थर और अन्य वस्तुएँ फेंकने लगे। राजा अपने बगीचे में मनोरंजन कर रहे थे, तभी उन्होंने उन्हें देखा और जब उन्हें पता चला कि वे साँप को पीट रहे हैं, तो उन्होंने कहा, "इन्हें इसे पीटने मत दो, इन्हें भगा दो।" और ऐसा ही किया गया। इस प्रकार नाग राजा को जीवनदान मिला। जब वह नागलोक लौटा, तो वह अपने साथ बहुत से रत्न ले गया और आधी रात को राजा के शयनकक्ष में आकर उन्हें देते हुए कहा, "मैंने आपके कारण जीवनदान पाया।" इस प्रकार उसने राजा से मित्रता कर ली और बार-बार उनसे मिलने आने लगा। उसने अपनी एक नाग कन्या को, जो सुख-भोग में तृप्त नहीं होती थी, राजा के पास रहने और उसकी रक्षा करने का आदेश दिया। उसने राजा को एक मंत्र दिया और कहा, "यदि तुम उसे न देख पाओ, तो इस मंत्र को दोहराना।" एक दिन राजा नाग कन्या के साथ उद्यान में गया और कमल-तालाब में आनंद ले रहा था। नाग कन्या ने एक जल-सांप को देखकर अपना मानव रूप त्याग दिया और राजा के साथ प्रेम संबंध बनाया। राजा ने कन्या को न देखकर पूछा, "वह कहाँ चली गई?" और मंत्र दोहराया। तब उसने उसे दुराचार करते हुए देखा और उसे बांस के टुकड़े से मारा। वह क्रोधित होकर नागलोक चली गई, और जब उससे पूछा गया, "तुम क्यों आई हो?" तो उसने कहा, "आपके मित्र ने मेरी पीठ पर इसलिए मारा क्योंकि मैंने उसकी बात नहीं मानी," और उसने चोट का निशान दिखाया। नाग राजा सच्चाई से अनजान था, उसने चार नाग युवकों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि वे सेनाक के शयनकक्ष में प्रवेश करें और अपनी नाक की साँस से उसे भूसे की तरह नष्ट कर दें। वे राजा के सोने के समय शयनकक्ष में प्रवेश कर गए। जब वे अंदर आए, तो राजा रानी से कह रहे थे: "हे देवी, क्या आप जानती हैं कि नाग कन्या कहाँ गई है?" "महाराज, मैं नहीं जानती।" "आज जब हम तालाब में स्नान कर रहे थे, तो उसने अपना रूप त्याग दिया और एक जल सर्प के साथ दुराचार किया। मैंने कहा, 'ऐसा मत करो,' और उसे सबक सिखाने के लिए बांस के टुकड़े से मारा। अब मुझे डर है कि वह नागलोक चली गई होगी और मेरे मित्र से झूठ बोलकर उसके मेरे प्रति सद्भाव को नष्ट कर दिया होगा।" यह सुनकर युवा नाग तुरंत नागलोक लौट गए और अपने राजा को सब कुछ बताया। राजा द्रवित हो गए और तुरंत राजा के कक्ष में गए, उन्हें सब कुछ बताया और उन्हें क्षमा कर दिया गया। फिर उन्होंने कहा, "इस तरह मैं प्रायश्चित करता हूँ," और राजा को सभी ध्वनियों का ज्ञान देने वाला एक मंत्र दिया: "हे महाराज, यह एक अनमोल मंत्र है: यदि आप किसी को यह मंत्र देंगे तो आप तुरंत अग्नि में प्रवेश करेंगे और मर जाएंगे।" राजा ने कहा, "यह ठीक है," और इसे स्वीकार कर लिया। उस समय से वह चींटियों की आवाज भी समझने लगे। एक दिन वह चबूतरे पर बैठकर शहद और गुड़ के साथ ठोस भोजन खा रहा था: तभी शहद की एक बूंद, गुड़ की एक बूंद और केक का एक टुकड़ा जमीन पर गिर गया। यह देखकर एक चींटी रोती हुई आई।"राजा का शहद का घड़ा चबूतरे पर टूट गया है, उनकी गुड़ और रोटी की गाड़ी उलट गई है; आओ और शहद, गुड़ और रोटी खाओ।" यह सुनकर राजा हँस पड़ा। रानी पास ही खड़ी थी और सोचने लगी, "राजा ने ऐसा क्या देख लिया है कि वह हँस रहा है?" जब राजा ने अपना भोजन कर लिया, स्नान कर लिया और पालथी मारकर बैठ गया, तो एक मक्खी ने उसकी पत्नी से कहा, "आओ, देवी, हम प्रेम का आनंद लें।" उसने कहा, "मुझे थोड़ी देर के लिए क्षमा करें, पतिदेव, वे जल्द ही राजा के लिए इत्र ला रहे होंगे; जब वह इत्र लगाएगा तो कुछ पाउडर उसके पैरों पर गिर जाएगा: मैं वहीं रहूँगी और सुगंधित हो जाऊँगी, फिर हम राजा की पीठ पर लेटकर आनंद लेंगे।" यह सुनकर राजा फिर हँस पड़ा। रानी फिर सोचने लगी, "उसने ऐसा क्या देख लिया है कि वह हँस रहा है?" फिर जब राजा अपना रात का भोजन कर रहा था, तो चावल का एक गट्ठा ज़मीन पर गिर गया। चींटियाँ चिल्लाईं, "राजा के महल में चावल की गाड़ी टूट गई है, और इसे खाने वाला कोई नहीं है।" यह सुनकर राजा फिर हँस पड़ा। रानी ने एक सोने का चम्मच लिया और राजा की मदद करते हुए सोचने लगी, "क्या राजा मुझे देखकर हंसते हैं?" वह राजा के साथ शयनकक्ष में गई और सोने के समय उसने पूछा, "हे राजा, आप क्यों हंसे?" राजा ने कहा, "मेरे हंसने से तुम्हारा क्या लेना-देना है?" लेकिन बार-बार पूछे जाने पर उसने उसे बता दिया। तब रानी ने कहा, "मुझे अपना ज्ञान का मंत्र दीजिए।" राजा ने कहा, "यह नहीं दिया जा सकता": लेकिन हालांकि रानी को यह मंत्र पसंद नहीं आया, फिर भी उसने उससे विनती की।

राजा ने कहा, "यदि मैं तुम्हें यह मंत्र दूँ, तो मैं मर जाऊँगा।" राजा ने कहा, "चाहे तुम मर ही जाओ, मुझे यह मंत्र दे दो।" स्त्रियों के वश में होने के कारण राजा ने कहा, "ठीक है," और मान गया। वह रथ पर सवार होकर उद्यान की ओर चल पड़ा और बोला, "मैं यह मंत्र देने के बाद अग्नि में प्रवेश करूँगा।" उसी क्षण, देवदूतों के राजा सक्का (इंद्र) ने पृथ्वी पर दृष्टि डाली और यह देखकर कहा, "यह मूर्ख राजा, यह जानते हुए भी कि वह स्त्रियों के वश में होकर अग्नि में प्रवेश करेगा, अपने मार्ग पर चल रहा है; मैं इसे जीवनदान दूँगा।" अतः उसने असुरों की पुत्री सूजा को अपने साथ लिया और बनारस चला गया। वह एक बकरा बना और सूजा से एक बकरा बनवाया। यह निश्चय करते हुए कि लोग उन्हें न देखें, वह राजा के रथ के सामने खड़ा हो गया। राजा और रथ में जुते हुए सिंधी गधों ने उसे देखा, परन्तु किसी और ने नहीं। मानो बातचीत शुरू करने के लिए वह मानो उस बकरे के साथ प्रेम कर रहा हो। रथ में जुते हुए सिंधी गधों में से एक ने उसे देखकर कहा, "मित्र बकरे, हमने पहले सुना तो है, पर देखा नहीं है, कि बकरे मूर्ख और निर्लज्ज होते हैं: लेकिन तुम हम सबके सामने वह काम कर रहे हो जो गुप्त और एकांत में किया जाना चाहिए, और तुम्हें शर्म नहीं है: जो हमने पहले सुना था वह इस दृश्य से मेल खाता है:" और इस प्रकार उसने पहला श्लोक कहा।

"बकरियां मूर्ख होती हैं," बुद्धिमान व्यक्ति कहता है, और ये शब्द निश्चित रूप से सत्य हैं:
इसे पता ही नहीं है कि वह वह काम कर रहा है जो उसे गुप्त रूप से करना चाहिए।
उसकी बात सुनकर बकरी ने दो पंक्तियाँ बोलीं:

ओह, गधे साहब, सोचो और अपनी मूर्खता को पहचानो।
तुम रस्सियों से बंधे हो, तुम्हारा जबड़ा मरोड़ा हुआ है, और तुम्हारी आंखें बहुत झुकी हुई हैं।
जब आप बंधे होते हैं, तो आप भाग नहीं सकते, महोदय, यह भी एक मूर्खतापूर्ण आदत है:
और जिस सेनाका को तुम अपने साथ लिए फिरते हो, वह तुमसे भी ज्यादा बेवकूफ है।
राजा दोनों जानवरों की बातें समझ गया और सुनकर उसने तुरंत रथ को भेज दिया। गधे ने बकरी की बातें सुनकर चौथा श्लोक बोला:

खैर, बकरियों के राजा महोदय, आप मेरी इस घोर मूर्खता को भलीभांति जानते हैं:
लेकिन सेनाका बेवकूफ कैसे है, कृपया मुझे समझाएं।
इस बात को समझाते हुए बकरी ने पाँचवाँ श्लोक बोला:

जो व्यक्ति अपनी पत्नी के लिए अपने सबसे अनमोल खजाने को भी त्याग देता है,
वह उसे हमेशा वफादार नहीं रख सकता और उसे अपने जीवन के साथ विश्वासघात करना ही होगा।
राजा ने उसकी बातें सुनकर कहा, "बकरियों के राजा, तुम निश्चय ही मेरे हित में कार्य करोगे: अब मुझे बताओ कि मेरे लिए क्या उचित है।" तब बकरी ने कहा, "राजा, सभी प्राणियों में स्वयं से बढ़कर कोई प्रिय नहीं होता: किसी प्रिय वस्तु के लिए स्वयं को नष्ट करना और अर्जित सम्मान को त्याग देना उचित नहीं है।" इस प्रकार उसने छठा श्लोक कहा:-

आप जैसे राजा के मन में भी ऐसी इच्छाएं उत्पन्न हो सकती थीं।
 और फिर भी, अगर इसकी कीमत उसकी जान हो तो वह इसे त्याग देगा:
जीवन ही सर्वोपरि है: मनुष्य इससे बढ़कर और क्या खोज सकता है?
 यदि जीवन सुरक्षित है, तो इच्छाओं को कभी भी बाधित होने की आवश्यकता नहीं होती है।
तब बोधिसत्व ने राजा को प्रोत्साहित किया। राजा प्रसन्न होकर बोला, "बकरियों के राजा, आप कहाँ से आए हैं?" "मैं सक्का (इंद्र) हूँ, हे राजा, आप पर दया करके आपको मृत्यु से बचाने आया हूँ।" "देवताओं के राजा, मैंने उसे ताबीज देने का वादा किया था: अब मैं क्या करूँ?" "तुम दोनों का विनाश करने की कोई आवश्यकता नहीं है: तुम कहो, 'यह जादू-टोने का तरीका है,' और उसे कुछ कोड़े लगवाओ: इस तरह वह ताबीज प्राप्त नहीं कर पाएगी।" राजा ने कहा, "ठीक है," और मान गया। राजा को सलाह देने के बाद बोधिसत्व सक्का (इंद्र) के स्वर्ग चले गए। राजा उद्यान में गए, रानी को बुलवाया और फिर बोला, "देवी, क्या आप ताबीज लेंगी?" "जी, महाराज।" "तो फिर सामान्य विधि का पालन करो।" "क्या विधि?" "पीठ पर सौ कोड़े, लेकिन तुम्हें कोई आवाज़ नहीं करनी है।" ताबीज के लालच में रानी मान गई। राजा ने अपने दासों को कोड़े देकर उसे दोनों तरफ से पिटवाया। उसने दो-तीन कोड़े सहे और फिर रोते हुए कहा, "मुझे ताबीज़ नहीं चाहिए।" राजा ने कहा, "ताबीज़ पाने के लिए तुम मुझे मार डालतीं," और इस तरह उसकी पीठ पर कोड़े मारकर उसे भगा दिया। उसके बाद वह इस घटना के बारे में फिर कभी बात नहीं कर सकी।

पाठ के अंत में गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के अंत में, भाई (भिक्षु) प्रथम पथ (समाधि) में स्थापित हो गए: "उस समय राजा असंतुष्ट भाई थे, रानी उनकी पूर्व पत्नी थीं, घोड़ा सारिपुत्र था, और सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सूचि-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-387-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 387
सुचि-जातक

"जल्दी से पिरोया गया," इत्यादि-- यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए ज्ञान की पूर्णता के विषय में सुनाई थी। कथा का अवसर महाउम्मग्ग (*1) में दिया जाएगा। गुरु ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "यह पहली बार नहीं है जब तथागत (बुद्ध) बुद्धिमान और चतुराईपूर्ण उपायों में निपुण हैं," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म काशी राज्य में एक लोहार परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे इस शिल्प में निपुण हो गए। उनके माता-पिता गरीब थे। उनके गाँव से कुछ ही दूरी पर एक हजार घरों का एक और लोहारों का गाँव था। उस हजार घरों के मुखिया लोहार राजा के प्रिय, धनी और संपन्न थे। उनकी पुत्री अत्यंत सुंदर थी, मानो स्वर्ग की अप्सरा हो, और उसमें एक सुंदर स्त्री के सभी शुभ लक्षण थे। आसपास के गाँवों से लोग तेज धार वाले औजार, कुल्हाड़ी, हल और चाबुक बनवाने आते थे और अक्सर उस लड़की को देखते थे। जब वे अपने गाँव लौटते थे, तो वे पुरुषों के बीच और अन्य जगहों पर उसकी सुंदरता की प्रशंसा करते थे। बोधिसत्व, उसके बारे में मात्र सुनकर ही आकर्षित हो गए और सोचने लगे, "मैं उसे अपनी पत्नी बनाऊंगा": अतः उन्होंने उत्तम प्रकार का लोहा लिया और एक नाजुक, मजबूत सुई बनाई जो पासे को छेद सकती थी और पानी पर तैरती थी: फिर उन्होंने उसी प्रकार का एक आवरण बनाया और उससे भी पासे को छेदा: और इसी प्रकार उन्होंने सात आवरण बनाए: उन्होंने उन्हें कैसे बनाया, यह बताना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा कार्य बोधिसत्वों के ज्ञान की महानता के कारण ही फलता-फूलता है। फिर उन्होंने सुई को एक नली में डाला और उसे एक डिब्बे में रखकर उस गाँव में गए और उस गली का पता पूछा जहाँ लोहार का घर था: फिर दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने कहा, "कौन मुझसे इस प्रकार की सुई पैसे देकर खरीदेगा?" सुई का वर्णन करते हुए, लोहार के घर के पास खड़े होकर उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

तेजी से पिरोया जा सकने वाला, चिकना और सीधा,
  एमरी से पॉलिश किया हुआ।
नुकीला और नाजुक,
  सुइयां! कौन खरीदेगा?
इसके बाद उन्होंने फिर से इसकी प्रशंसा की और दूसरा श्लोक बोला:-

तेजी से पिरोया जा सकने वाला, मजबूत और सीधा,
  ठीक से गोल किया हुआ,
वे लोहे को भी भेद देंगे।
  सुइयां! कौन खरीदेगा?
उस समय वह लड़की अपने पिता को ताड़ के पत्ते से हवा कर रही थी, जो सुबह के भोजन के बाद थोड़ी सी खाँसी पर लेटे हुए थे ताकि उन्हें आराम मिल सके। बोधिसत्व की मधुर आवाज़ सुनकर, मानो उसे मांस का कोई ताजा टुकड़ा खाकर उल्टी आ गई हो और हज़ार घड़े पानी से उसका दर्द दूर हो गया हो, उसने कहा, "लोहारों के इस गाँव में इतनी मधुर आवाज़ में सुई कौन बेच रहा है? ये किसलिए आया है? मैं पता लगाऊँगी।" इस प्रकार उसने ताड़ का पंखा नीचे रखा और बाहर बरामदे में खड़े होकर उनसे बात की। बोधिसत्वों का उद्देश्य अवश्य पूरा होता है: वे उसी के लिए उस गाँव में आए थे। उसने उससे कहा, "हे युवक, राज्य भर के लोग सुई और इसी तरह की चीजें खरीदने के लिए इस गाँव में आते हैं; लोहारों के गाँव में सुई बेचना कुकर्म है; चाहे तुम दिन भर अपनी सुई की प्रशंसा करते रहो, कोई भी उसे तुमसे नहीं लेगा; यदि तुम कीमत पाना चाहते हो, तो किसी दूसरे गाँव में जाओ।" इस प्रकार उसने दो पंक्तियाँ कहीं:-

हमारे हुक ऊपर और नीचे दोनों तरफ से बेचे जाते हैं।
  पुरुष हमारी सुइयों को अच्छी तरह जानते हैं:
हम सभी इस अच्छे शहर में लोहार हैं:
  सुइयां! कौन बेच सकता है?
लोहे के काम में हमारी ख्याति है।
  हथियारों के क्षेत्र में हम उत्कृष्ट हैं:
हम सभी इस अच्छे शहर में लोहार हैं:
  सुइयां! कौन बेच सकता है?
बोधिसत्व ने उनकी बातें सुनकर कहा, "हे देवी, आप यह सब अज्ञानता और अज्ञानता में कह रही हैं" और फिर उन्होंने दो श्लोक कहे:-

हालांकि इस अच्छे शहर में सभी लोहार हैं,
  लेकिन कौशल हमेशा बिकता नहीं है;
क्योंकि इस कला में माहिर लोग मालिक होंगे
  एक उत्कृष्ट लेख।
मैडम, अगर एक बार आपके पिता को पता चल गया
  यह सुई मैंने बनाई है;
वह मुझे तुम्हारा हाथ दे देगा
  और उसकी सारी संपत्ति।

उनकी सारी बातें सुनकर लोहार ने अपनी बेटी को बुलाया और पूछा, "तुम किससे बात कर रही हो?" "पिताजी, एक सुई बेचने वाले से।" "तो उसे यहाँ बुलाओ।" वह गई और उसे बुला लाई। बोधिसत्व ने लोहार को प्रणाम किया और पास खड़े हो गए। लोहार ने पूछा, "आप किस गाँव के हैं?" "मैं फलाँ गाँव का हूँ और फलाँ लोहार का पुत्र हूँ।" "आप यहाँ क्यों आए हैं?" "सुइयाँ बेचने।" "आइए, हमें आपकी सुई दिखाएँ।" बोधिसत्व, उन सबके बीच अपने गुणों का बखान करने की इच्छा से बोले, "क्या सबके बीच देखी गई वस्तु, अकेले देखी गई वस्तु से बेहतर नहीं है?" "बिल्कुल सही, मित्र।" इसलिए उन्होंने सभी लोहारों को इकट्ठा किया और उनके बीच में कहा, "महोदय, सुई लीजिए।" "गुरुजी, एक निहाई और पानी से भरा एक पीतल का बर्तन मंगवाइए।" ऐसा ही किया गया। बोधिसत्व ने सुई को आवरण से निकाला और उन्हें दे दिया। उसे लेकर मुख्य लोहार ने पूछा, "क्या यह सुई है?" "नहीं, यह सुई नहीं है, यह म्यान है।" जाँच करने पर उसे न तो सिरा दिखाई दिया और न ही नोक। बोधिसत्व ने उनसे सुई लेकर अपने नाखून से म्यान हटा दिया और लोगों को दिखाते हुए कहा, "यह सुई है, यह म्यान है।" उन्होंने सुई गुरु के हाथ में और म्यान उनके चरणों में रख दी। जब गुरु ने फिर कहा, "मुझे लगता है यह सुई है," तो उन्होंने उत्तर दिया, "यह भी सुई का म्यान है।" फिर उन्होंने इसे अपने नाखून से तोड़ दिया और इस प्रकार छह म्यान एक के बाद एक मुख्य लोहार के चरणों में रख दिए और यह कहते हुए, "यह रही सुई," उसे उनके हाथ में रख दिया। हज़ार लोहार प्रसन्नता से अपनी उंगलियां चटकाने लगे और कपड़े लहराने लगे; तब मुख्य लोहार ने पूछा, "मित्र, इस सुई की शक्ति क्या है?" "गुरुजी, किसी बलवान व्यक्ति से इस निहाई को उठवाइए और निहाई के नीचे एक जलपात्र रखवाइए; फिर सुई को सीधे निहाई में ठोकिए।" उन्होंने ऐसा ही करवाया और सुई की नोक को निहाई में ठोक दिया। निहाई को भेदती हुई सुई पानी की सतह पर पड़ी रही, जरा भी ऊपर-नीचे नहीं हिली। सभी लोहारों ने कहा, "हमने इतने समय तक कभी किसी से यह भी नहीं सुना कि ऐसे लोहार भी होते हैं।" यह सुनकर उन्होंने उंगलियां चटकाईं और हजार कपड़े लहराए। मुख्य लोहार ने अपनी बेटी को बुलाया और सभा के बीच में यह कहते हुए, "यह लड़की तुम्हारे लिए उपयुक्त है," उसने उन पर जल डाला और उसे विदा कर दिया। बाद में जब मुख्य लोहार की मृत्यु हो गई, तो बोधिसत्व उस गांव में मुख्य लोहार बन गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "लोहार की बेटी राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) थी, और वह चतुर युवक लोहार मैं ही था।"

फुटनोट:

(1)सं. 546, खंड VI.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तुण्डिला-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-388-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 388
टुंडिला-जातक

"आज कुछ अजीब हुआ," इत्यादि। गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में यह कहानी सुनाई, जिसे मृत्यु का भय था। उसका जन्म श्रावस्ती नगर में एक अच्छे परिवार में हुआ था और उसने धर्म में दीक्षा ली थी। परन्तु उसे मृत्यु का भय था और जब वह किसी शाखा के हिलने, किसी टहनी के गिरने, किसी पक्षी या जानवर की आवाज़, या ऐसी ही किसी भी चीज़ की हल्की सी भी ध्वनि सुनता, तो मृत्यु के भय से भयभीत हो जाता और पेट में चोट लगे खरगोश की तरह कांपते हुए भाग जाता। सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने चर्चा शुरू की, "महोदय, लोग कहते हैं कि एक भिक्षु मृत्यु के भय से हल्की सी भी आवाज़ सुनकर कांपते हुए भाग जाता है: अब इस संसार में प्राणियों के लिए मृत्यु निश्चित है, जीवन अनिश्चित, तो क्या हमें इस बात को बुद्धिमानी से ध्यान में नहीं रखना चाहिए?" गुरुजी ने पाया कि यही उनका विषय था और भिक्षु ने स्वीकार किया कि उसे मृत्यु का भय है: इसलिए उन्होंने कहा, "भाइयों, उसे मृत्यु का भय पहली बार नहीं है," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब एक जंगली सूअरनी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया। समय आने पर उसने दो नर बच्चों को जन्म दिया। एक दिन उसने उन्हें लेकर एक गड्ढे में लेट गई। बनारस के द्वार पर स्थित एक गाँव की एक बूढ़ी औरत कपास के खेत से कपास से भरी टोकरी लेकर घर आ रही थी और अपनी छड़ी से ज़मीन पर थपथपा रही थी। सूअरनी ने यह आवाज़ सुनी और मृत्यु के भय से अपने बच्चों को छोड़कर भाग गई। बूढ़ी औरत ने उन छोटे सूअरों को देखा और उन्हें अपने बच्चों की तरह मानते हुए टोकरी में रख लिया और घर ले आई। फिर उसने बड़े भिक्षु महातुंडिला (बड़े थूथन वाले) और छोटे भिक्षु कुल्लतुंडिला (छोटे थूथन वाले) को बुलाया और उनका बच्चों की तरह पालन-पोषण किया। समय के साथ वे बड़े हो गए और मोटे-ताज़े हो गए। जब बूढ़ी औरत से उन्हें पैसे के लिए बेचने को कहा गया, तो उसने उत्तर दिया, "ये मेरे बच्चे हैं," और उन्हें बेचने से इनकार कर दिया। एक त्यौहार के दिन कुछ बदचलन लोग शराब पी रहे थे और जब उनका खाना खत्म हो गया तो वे सोचने लगे कि उन्हें मांस कहाँ से मिलेगा। उन्हें पता चला कि एक बुढ़िया के घर में सूअर हैं, तो उन्होंने पैसे लिए और वहाँ जाकर कहा, "माँ, ये पैसे ले लो और हमें इनमें से एक सूअर दे दो।" बुढ़िया ने कहा, "बस करो, नौजवानों: क्या कोई ऐसा इंसान है जो अपने बच्चों को मांस खाने के लिए बेच दे?" और उसने मना कर दिया। उन लोगों ने कहा, "माँ, सूअर इंसानों के बच्चे नहीं हो सकते, इन्हें हमें दे दो": लेकिन बार-बार माँगने पर भी उन्हें यह नहीं मिला। फिर उन्होंने बुढ़िया को शराब पिलाई और जब वह नशे में थी, तो उसने कहा, "माँ, तुम इन सूअरों का क्या करोगी? पैसे ले लो और खर्च कर दो।" उन्होंने उसके हाथ में सिक्के रख दिए। बुढ़िया ने सिक्के लेते हुए कहा, "मैं तुम्हें महातुंडिला नहीं दे सकती, चुल्लातुंडिला ले लो।" "वह कहाँ है?" "वह उस झाड़ी में है।" "उसे बुलाओ।" "मुझे उसके लिए कोई खाना नहीं दिख रहा है।" उन लोगों ने पैसे देकर चावल का एक बर्तन मंगवाया। बुढ़िया ने उसे लिया और दरवाजे पर रखे सूअर के चारे को भरकर उसके पास खड़ी हो गई। तीस लोग हाथों में फंदे लिए खड़े थे। बुढ़िया ने उसे पुकारा, "आओ, नन्हे कुल्लातुंडिला, आओ।" यह सुनकर महातुंडिला ने सोचा, "इतने समय से माँ ने कुल्लातुंडिला को कभी नहीं बुलाया, वह हमेशा मुझे पहले बुलाती है; ज़रूर आज हम पर कोई खतरा मंडरा रहा है।" उसने अपने छोटे भाई से कहा, "भाई, माँ तुम्हें बुला रही है, जाओ जाकर पता करो।" वह बाहर गया और उन्हें चारे के बर्तन के पास खड़ा देखकर उसने सोचा, "आज तो मौत आ गई है," और मृत्यु के भय से वह कांपते हुए अपने भाई की ओर मुड़ा; और जब वह वापस आया तो वह खुद को संभाल नहीं पाया और कांपते हुए इधर-उधर भागने लगा। महातुंडिला ने उसे देखकर कहा, "भाई, तुम आज कांप रहे हो, लड़खड़ा रहे हो और दरवाजे को देख रहे हो: ऐसा क्यों कर रहे हो?" उसने जो कुछ देखा था, उसका वर्णन करते हुए पहला श्लोक कहा:-

मुझे डर है कि आज कुछ अजीब होने वाला है:
   कुंड भरा हुआ है, और मालकिन भी पास में है;
कुछ पुरुष हाथों में फांसी का फंदा लिए पास में खड़े हैं:
   खाना खाना भी एक खतरे की तरह लग रहा है।
तब बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर कहा, "भाई चुल्लातुंडिला, मेरी माता ने इतने समय तक जिस उद्देश्य से सूअर पाले हैं, वह आज पूरा हो गया है: शोक मत करो," और फिर मधुर स्वर और बुद्ध के सहज ज्ञान से उन्होंने धर्ममार्ग समझाया और दो श्लोक कहे:-

तुम डरते हो, मदद की तलाश करते हो, और कांपते हो।
   लेकिन, असहाय होकर आप कहां भाग सकते हैं?
हम अपने शरीर को मोटा करने के लिए ही मोटे होते हैं:
   टुंडिला, खाओ और खुशी-खुशी खाओ।
निर्भीक होकर क्रिस्टल पूल में डुबकी लगाओ,
   पसीने के सारे दाग धो डालें:
आपको हमारा मरहम बहुत पसंद आएगा।
   जिसकी सुगंध कभी क्षीण नहीं होती।
दस सिद्धियों पर विचार करते हुए, प्रेम की सिद्धि को अपना मार्गदर्शक मानकर, जब उन्होंने पहली पंक्ति बोली, तो उनकी वाणी बारह मील (4.23 किमी) दूर बनारस तक पहुँच गई। इसे सुनते ही बनारस के सभी लोग, राजाओं और वायसराय से लेकर नीचे तक, आ गए, और जो नहीं आए वे अपने घरों में खड़े होकर सुनने लगे। राजा के आदमियों ने झाड़ियों को हटाकर ज़मीन समतल की और रेत बिखेरी। व्यभिचारी लोगों का नशा उतर गया, और वे अपने बंधनों को त्यागकर धर्मपरायण मार्ग को सुनने के लिए खड़े हो गए; और उस बूढ़ी औरत का नशा भी उतर गया। बोधिसत्व ने वहाँ मौजूद लोगों में से कुल्लतुंडिला को धर्मपरायण मार्ग का उपदेश देना शुरू किया।

कुल्लतुंडिला ने उसकी बात सुनकर सोचा, "मेरा भाई मुझसे ऐसा कहता है, लेकिन यह तो हमारी प्रथा ही नहीं है कि हम तालाब में डुबकी लगाएं और स्नान करके पसीना धोकर शरीर से पुराने दाग हटाकर नया मरहम लगाएं; मेरा भाई मुझसे ऐसा क्यों कहता है?" इस प्रकार उसने चौथा श्लोक बोला:-

लेकिन वह सुंदर क्रिस्टल पूल आखिर है क्या?

और पसीने के ये दाग क्या हैं, मैं पूछता हूँ?
और वह मरहम कितना अद्भुत है!
जिसकी सुगंध कभी क्षीण नहीं होती?
यह सुनकर बोधिसत्व ने कहा, "तो ध्यानपूर्वक सुनो," और बुद्ध की सहजता से धर्ममार्ग समझाते हुए उन्होंने ये श्लोक कहे:-

सही मार्ग निर्मल क्रिस्टल के समान है।
कहते हैं, पाप पसीने का दाग है।
सद्गुण ही अद्भुत औषधि है।
जिसकी सुगंध कभी क्षीण नहीं होगी।
जो लोग अपनी जान गंवाते हैं, वे खुश होते हैं।
जो पुरुष इसे छिपा कर रखते हैं उन्हें झुंझलाहट महसूस होती है:
पुरुषों को मरना चाहिए और दुखी नहीं होना चाहिए।
जैसे महीने के मध्य में त्योहार की खुशी का माहौल होता है।
तब उस महान सत्ता ने मधुर स्वर में, बुद्ध के आकर्षण से, धर्म मार्ग का उपदेश दिया। हजारों लोगों ने उंगलियां चटकाकर और अपने वस्त्र लहराकर उनका उत्साहवर्धन किया, और पूरा वातावरण "अच्छा, अच्छा" की ध्वनि से गूंज उठा। बनारस के राजा ने बोधिसत्व को राजसी पद से सम्मानित किया, और उस वृद्धावृष्टि को महिमा देते हुए, दोनों सूअरों को सुगंधित जल से नहलाया, वस्त्र पहनाए, गले में गहने पहनाए, और उन्हें नगर में अपने पुत्रों के समान स्थान दिया। उन्होंने बड़ी संख्या में सेवकों के साथ उनकी रक्षा की। बोधिसत्व ने राजा को पांच आज्ञाएं दीं, और बनारस एवं काशी के सभी निवासियों ने उनका पालन किया। बोधिसत्व ने पवित्र दिनों (अमावस्या और पूर्णिमा) पर उन्हें धर्म मार्ग का उपदेश दिया, और न्यायपीठ पर बैठकर मामलों का निर्णय किया। उनके जीवनकाल में कोई भी अन्यायपूर्ण मुकदमा लेकर नहीं आया। बाद में राजा का निधन हो गया। बोधिसत्व ने अपने शरीर का अंतिम संस्कार किया; फिर उन्होंने न्याय-पत्र लिखवाया और कहा, "इस पुस्तक का पालन करके तुम मुकदमों का निपटारा करोगे।" इस प्रकार, लोगों को धर्म का मार्ग समझाकर और उत्साहपूर्वक उपदेश देकर, वे कुल्लतुंडिला के साथ वन में चले गए, जबकि वे सब रोते-शोक मनाते रहे। फिर बोधिसत्व का उपदेश साठ हजार वर्षों तक चलता रहा।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के अंत में, मृत्यु से भयभीत भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उन दिनों राजा आनंद थे, कुल्लतुंडिला मृत्यु से भयभीत भाई थे, और लॉट में मंडली थी, और महातुंडिला स्वयं थे।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुवनक्कक्कट-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-389-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 389
सुवन्नकक्कटा-जातक

"स्वर्ण-पंजे वाला प्राणी," इत्यादि—गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए यह कथा सुनाई थी कि आनंद ने उनके लिए अपनी जान दे दी थी। इस घटना का वर्णन खंडाहल (*1) जन्म में धनुर्धारियों की नियुक्ति के संबंध में और चुल्लहंस (*2) जन्म में हाथी धनपाल (*3) की गर्जना के संबंध में मिलता है। तब उन्होंने सत्य के हॉल में चर्चा शुरू की: "महोदय, क्या धर्ममार्ग के कोषाध्यक्ष, परम भिक्षु आनंद, जिन्होंने अनुशासन में रहते हुए भी सभी ज्ञान प्राप्त कर लिए थे, ने धनपाल के आने पर पूर्ण बुद्ध के लिए अपने प्राण त्याग दिए थे?" गुरु आए और उन्हें उनकी चर्चा का विषय बताया गया: उन्होंने कहा, "भाई (भिक्षु), पुराने समय में भी आनंद ने मेरे लिए अपने प्राण त्याग दिए थे:" और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

राजगृह नगर के पूर्व दिशा में सालिंदिया नाम का एक ब्राह्मण गाँव था। बोधिसत्व का जन्म उसी गाँव में एक ब्राह्मण किसान परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे गाँव के उत्तर-पूर्व में स्थित मगध जिले में एक हजार करिस (*4) के खेत में खेती करने लगे। एक दिन वे अपने आदमियों के साथ खेत में गए और उन्हें हल चलाने का आदेश देकर खेत के अंत में स्थित एक बड़े तालाब में अपना चेहरा धोने गए। उस तालाब में सुनहरे रंग का एक सुंदर और आकर्षक केकड़ा रहता था। बोधिसत्व ने अपनी दाँत चबाकर तालाब में डुबकी लगाई। जब वे अपना मुँह धो रहे थे, तो केकड़ा पास आ गया। तब उन्होंने केकड़े को उठाकर अपने वस्त्र में रख लिया और खेत का काम पूरा करके उसे वापस तालाब में डाल दिया और घर चले गए। उस समय से वे खेत में जाते समय हमेशा पहले उस तालाब में जाते, केकड़े को अपने वस्त्र में रखते और फिर अपना काम करते। इस प्रकार उन दोनों के बीच अटूट विश्वास का भाव उत्पन्न हुआ। बोधिसत्व लगातार खेत में आते थे। उनकी आँखों में पाँचों गुण और तीन अत्यंत शुद्ध वृत्त दिखाई देते थे। खेत के उस कोने में ताड़ के पेड़ पर बने घोंसले में बैठी एक कौवे ने उनकी आँखें देखीं और उन्हें खाने की इच्छा से कौवे से बोली, "पतिदेव, मेरी एक इच्छा है।" "किसकी इच्छा है?" "मैं एक ब्राह्मण की आँखें खाना चाहती हूँ।" "तुम्हारी इच्छा बुरी है: तुम्हारे लिए कौन लाएगा!" "मुझे पता है कि तुम नहीं ला सकते: लेकिन हमारे पेड़ के पास चींटियों के टीले में एक काला साँप रहता है: उसकी प्रतीक्षा करो: वह ब्राह्मण को काट कर मार डालेगा, फिर तुम उसकी आँखें निकालकर मेरे पास ले आना।" बोधिसत्व मान गए और उसके बाद काले साँप की प्रतीक्षा करने लगे। जब बोधिसत्व द्वारा बोया गया बीज अंकुरित हो रहा था, तब तक केकड़ा बहुत बड़ा हो चुका था। एक दिन साँप ने कौवे से कहा, "मित्र, तुम हमेशा मेरी प्रतीक्षा करते हो: मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?" “हे प्रभु, आपकी दासी इस खेत के स्वामी की आँखों के लिए तरस रही है: मैं आपकी कृपा से उनकी आँखें पाने की आशा में आपकी सेवा कर रही हूँ।” साँप ने कहा, “अच्छा, यह मुश्किल नहीं है, तुम्हें मिल जाएँगी,” और इस प्रकार उसे प्रोत्साहित किया। अगले दिन साँप खेत की सीमा पर घास में छिपकर ब्राह्मण के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। बोधिसत्व जब तालाब में प्रवेश करके अपना मुँह धो रहे थे, तो उन्हें केकड़े के प्रति स्नेह का अनुभव हुआ। उन्होंने उसे गले लगाया और अपने वस्त्र में लपेटकर खेत की ओर चल दिए। साँप ने उन्हें आते देखा और तेज़ी से आगे बढ़कर उनके बछड़े पर काट लिया और उन्हें वहीं गिराकर अपनी चींटी की बस्ती में भाग गया। बोधिसत्व का गिरना, वस्त्र से सुनहरे केकड़े का उछलना और कौए का बोधिसत्व की छाती पर बैठना एक के बाद एक घटित हुए। कौए ने अपनी चोंच बोधिसत्व की आँखों में डाल दी। केकड़े ने सोचा, "इसी कौवे की वजह से मेरे दोस्त पर खतरा आया है: अगर मैं इसे पकड़ लूँगा तो साँप आ जाएगा।""तो कौवे की गर्दन को अपने पंजे से कसकर जकड़े हुए, मानो किसी शिकंजे में, वह थक गया और फिर उसे थोड़ा ढीला कर दिया। कौवे ने साँप को पुकारा, "मित्र, तुम मुझे छोड़कर क्यों भाग रहे हो? यह केकड़ा मुझे परेशान कर रहा है, मेरे मरने से पहले आ जाओ," और इस प्रकार पहला श्लोक बोला गया:--

उभरी हुई आँखों वाला सुनहरे पंजों वाला प्राणी,
झील में पला-बढ़ा, बाल रहित, हड्डीदार खोल से ढका हुआ,
उसने मुझे पकड़ लिया है: मेरी पीड़ा से भरी चीखें सुनो!
आप ऐसे साथी को क्यों छोड़ देते हैं जो आपसे बहुत प्यार करता है?
उसकी बात सुनकर सांप ने अपना फन बड़ा किया और कौवे को सांत्वना देने के लिए उसके पास आया।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से मामले की व्याख्या करते हुए दूसरा श्लोक कहा--

सांप तेजी से केकड़े पर झपटा, वह अपने दोस्त को नहीं छोड़ना चाहता था।
अपना विशाल फन उठाकर वह आगे बढ़ा: लेकिन केकड़े ने सांप पर हमला कर दिया।
थककर केकड़े ने उसे थोड़ा खोल दिया। साँप ने सोचा, "केकड़े न तो कौवों का मांस खाते हैं और न ही साँपों का, तो फिर यह हमें क्यों पकड़ रहा है?" यह सोचकर उसने तीसरा श्लोक बोला:-

यह भोजन के लिए नहीं है
   केकड़े सांप या कौवे को पकड़ लेते थे:
मुझे बताओ, तुम जिनकी आंखें उभरी हुई हैं,
   तुम हमें इस तरह क्यों पकड़ते और जकड़ते हो?
उसकी बात सुनकर, केकड़े ने कारण बताते हुए दो छंद बोले:-

इस आदमी ने मुझे पूल से बाहर निकाला।
   उन्होंने जो दयालुता दिखाई है, वह महान है;
यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो मेरा शोक चरम पर होगा:
   सर्प, वह और मैं एक ही हैं।
मुझे इतना बड़ा होते देखकर
   सभी स्वेच्छा से मुझे मार डालेंगे:

मोटा, मीठा और नाजुक,
   कौवों को देखते ही मैं उन्हें घायल कर देता था!
उसकी बात सुनकर सांप ने सोचा: "किसी भी तरह मुझे उसे धोखा देना होगा और खुद को और कौवे को मुक्त करना होगा।" इसलिए उसे धोखा देने के लिए उसने छठा श्लोक बोला:-

यदि आपने हमें केवल उसके कारण ही पकड़ा है,
   मैं उससे जहर ले लूंगा: उसे उठने दो:
जल्दी करो! कौवे और मुझसे अपने चिमटे छीन लो;
   तब तक जहर शरीर में गहराई तक उतर चुका होता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।
उसकी बात सुनकर केकड़े ने सोचा, "यह किसी तरह मुझे इन दोनों को छोड़ने पर मजबूर करके भाग जाना चाहता है; इसे मेरी चालाकी का पता नहीं है; अब मैं अपना पंजा ढीला कर दूंगा ताकि सांप हिल सके, लेकिन मैं कौवे को नहीं छोड़ूंगा," इस प्रकार उसने सातवां श्लोक बोला:-

मैं सांप को तो छोड़ दूंगा, लेकिन कौवे को नहीं;
   कौआ बंधक बनकर बंधा रहेगा:
मैं उसे कभी जाने नहीं दूँगा
   जब तक मेरा दोस्त सुरक्षित और स्वस्थ है।
ऐसा कहकर उन्होंने अपना पंजा ढीला कर दिया ताकि सांप आराम से जा सके। सांप विष ले गया और बोधिसत्व के शरीर को विषमुक्त कर दिया। वे उठ खड़े हुए और अपने स्वाभाविक रंग में आ गए। केकड़े ने सोचा, "अगर ये दोनों ठीक रहे तो मेरे मित्र का कोई कल्याण नहीं होगा, मैं इन्हें मार डालूंगा," और अपने पंजों से दोनों के सिर कमल की कलियों की तरह कुचल दिए और उनकी जान ले ली। मादा कौआ वहां से भाग गई। बोधिसत्व ने एक डंडे से सांप के शरीर में छेद किया और उसे एक झाड़ी पर फेंक दिया, सुनहरे केकड़े को तालाब में छोड़ दिया, स्नान किया और फिर सालिंदिया चले गए। उस समय से उनके और केकड़े के बीच और भी गहरी मित्रता स्थापित हो गई।

पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की, और जन्म की पहचान बताते हुए अंतिम श्लोक बोला:

"मारा, काले रंग का सर्प था, देवदत्त कौवा था।"
बहुत समय पहले, आनंद केकड़े थे और मैं ब्राह्मण था।
सत्यों के अंत में कई लोग प्रथम मार्ग (सम्मोहन) और अन्य मार्गों तक पहुँचे। मादा कौआ चिंचमनविका थी, हालाँकि इसका उल्लेख अंतिम श्लोक में नहीं है।

फुटनोट:

(1) संख्या 542

(2) संख्या 533

(3) खंड 1, संख्या 21 की परिचयात्मक कहानी देखें; मिलिंदपन्हो

(4)लगभग आठ हजार एकड़।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मायाक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-390-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 390

मयहाका-जातक

“क्या हमने आनंद मनाया,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक अजनबी व्यापारी के बारे में यह कहानी सुनाई। श्रावस्ती नगर में एक धनी और समृद्ध अजनबी व्यापारी रहता था। वह न तो स्वयं अपने धन का आनंद लेता था और न ही दूसरों को देता था। अगर उसे उत्तम स्वाद का भोजन परोसा जाता, तो वह उसे नहीं खाता था, केवल खट्टी दलिया के साथ चावल के चूरे का शोरबा खाता था। अगर उसे अगरमधु से सुगंधित रेशमी वस्त्र लाए जाते, तो वह उन्हें उतारवा देता और चीनी के बदले मोटे कपड़े पहनता था। अगर उसे रत्नों और सोने से सजा हुआ और उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचा जाने वाला रथ लाया जाता, तो वह उसे वापस ले लेता और पत्तों की छतरी वाले एक जर्जर पुराने रथ में चला जाता था। उसने जीवन भर दान या अन्य पुण्य कर्मों का कोई उपयोग नहीं किया और जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसका जन्म रोरुवा नरक में हुआ। उसकी संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, और राजा के आदमियों ने सात दिन और सात रातों में उसे महल में पहुँचाया। जब संपत्ति महल में पहुँच गई, तो राजा नाश्ते के बाद जेतवन मठ गया और गुरु को प्रणाम किया। जब उनसे पूछा गया कि वे नियमित रूप से बुद्ध की सेवा क्यों नहीं करते, तो उन्होंने उत्तर दिया, “हे प्रभु, श्रावस्ती नगर में एक अजनबी व्यापारी की मृत्यु हो गई है। सात दिन तक हम उसका सारा धन, जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, मेरे घर लाए। परन्तु इतना धन होने के बावजूद उसने न तो स्वयं उसका आनंद लिया और न ही दूसरों को दिया। उसका धन राक्षसों द्वारा संरक्षित कमल-तालाबों के समान था। एक दिन उत्तम मांस और ऐसी ही अन्य चीजों का स्वाद लेने से इनकार करने पर उसकी मृत्यु हो गई। अब उस स्वार्थी और अयोग्य व्यक्ति ने इतना धन कैसे प्राप्त किया और उसने उसका आनंद क्यों नहीं लिया?” यही प्रश्न उन्होंने गुरु से पूछा। “हे महाराज, उसने धन प्राप्त किया और फिर भी उसका आनंद क्यों नहीं लिया, इसका कारण यह है,” और उनके अनुरोध पर गुरु ने उन्हें पुराने समय की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब वहाँ एक स्वार्थी और अविश्वासी व्यापारी रहता था। वह किसी को कुछ नहीं देता था, न ही किसी की मदद करता था। एक दिन राजा से मिलने जाते समय उसने तगरसिखी नाम के एक पच्चेकबुद्ध को भिक्षा मांगते देखा। उसने राजा को प्रणाम करते हुए पूछा, "महोदय, क्या आपके पास भिक्षा है?" पच्चेकबुद्ध ने कहा, "क्या मैं भिक्षा नहीं मांग रहा हूँ, व्यापारी?" व्यापारी ने अपने आदमी को आदेश दिया, "जाओ, इसे मेरे घर ले आओ, इसे मेरी कुर्सी पर बिठाओ और इसे मेरे लिए तैयार किया हुआ भोजन से भरा कटोरा दो।" वह आदमी उसे घर ले गया, बिठाया और व्यापारी की पत्नी को बताया। पत्नी ने उसे स्वादिष्ट भोजन से भरा कटोरा दिया। वह भोजन लेकर घर से निकलकर गली में चला गया। दरबार से लौटते समय व्यापारी ने उसे देखा और प्रणाम करते हुए पूछा कि क्या उसे भोजन मिल गया है। पच्चेकबुद्ध ने कहा, "हाँ, व्यापारी।" व्यापारी अपने कटोरे को देखकर इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रहा था, बल्कि सोच रहा था, "अगर मेरे दास या काम करने वाले लोग मेरा यह भोजन खाते तो वे मेरी कड़ी सेवा करते: हाय, यह तो मेरा नुकसान है!" और वह अपने इस विचार को पूर्ण नहीं कर सका। अब दान देना केवल उसी को फलदायी होता है जो इन तीन विचारों को पूर्ण कर सके:-

क्या हमें देने की इच्छा महसूस करने में आनंद मिला?
   उपहार दीजिए, और प्रसन्नतापूर्वक दीजिए।
जीते जी दान देने पर कभी पछतावा न करें।
   हमसे पैदा होने वाली संतानें कभी नहीं मरेंगी।
उदारता दिखाने से पहले आनंदित होना, प्रसन्नतापूर्वक दान देना,
इसके बाद इस विचार से प्रसन्न होना ही सच्ची परोपकारिता है।

तो उस अजनबी व्यापारी ने तगरसिखी को दान देकर बहुत धन अर्जित किया, परन्तु वह अपने धन का आनंद नहीं ले सका क्योंकि वह अपने कर्मों को शुद्ध नहीं कर सका। “हे प्रभु, उसका कोई पुत्र क्यों नहीं था?” गुरु ने कहा, “हे राजा, यही उसके पुत्र न होने का कारण था”: और उसके अनुरोध पर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म एक व्यापारी परिवार में हुआ, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। जब वे बड़े हुए, तो माता-पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने छोटे भाई का भरण-पोषण किया और घर की बागडोर संभाली। उन्होंने घर के द्वार पर एक भिक्षागृह बनवाया और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए खूब दान दिया। उनका एक पुत्र हुआ; जब पुत्र चलना सीख गया, तो उसने इच्छाओं के कष्ट और त्याग के आशीर्वाद को समझा। उसने अपनी सारी संपत्ति, पत्नी और बच्चे सहित, अपने छोटे भाई को सौंप दी और उसे लगन से दान देने के लिए प्रोत्साहित किया। फिर वह संन्यासी बन गया और ज्ञान और सिद्धियों को प्राप्त करके हिमालय में रहने लगा। छोटे भाई ने उस पुत्र को अपने पास रखा, लेकिन उसे बड़ा होते देख उसने सोचा, "यदि मेरा भाई का पुत्र जीवित रहा, तो संपत्ति दो भागों में बंट जाएगी, मैं अपने भाई के पुत्र को मार डालूंगा।" अतः एक दिन उसने उसे नदी में डुबोकर मार डाला। स्नान करके घर लौटने पर उनके भाई की पत्नी ने उनसे पूछा, "मेरा बेटा कहाँ है?" "वह नदी में खेल रहा था: मैंने

उसे ढूँढा लेकिन वह कहीं नहीं मिला।" वह रोने लगी और कुछ नहीं बोली। बोधिसत्व को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने सोचा, "मैं इस बात को सबके सामने लाऊँगा"; और इसलिए वे आकाश में उड़ते हुए बनारस पहुँचे, सुंदर वस्त्र पहने हुए, और द्वार पर खड़े हो गए। भिक्षागृह न देखकर उन्होंने सोचा, "उस दुष्ट ने भिक्षागृह को नष्ट कर दिया है।" उनके आने की खबर सुनकर छोटा भाई आया और बोधिसत्व को प्रणाम किया और उन्हें छत पर ले जाकर भोजन कराया। भोजन समाप्त होने के बाद, वे आपस में बातचीत करने बैठे और बोले, "मेरा बेटा दिखाई नहीं दे रहा: वह कहाँ है?" "मर गया है, महाराज।" "कैसे?" "स्नानघर में: लेकिन मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है।" "अरे दुष्ट! मुझे तुम्हारा कर्म ज्ञात है: क्या तुमने उसे उसी प्रकार नहीं मारा? क्या राजाओं और अन्य लोगों द्वारा नष्ट किए जाने पर तुम उस धन को बचा पाओगे? तुममें और मयह पक्षी में क्या अंतर है?" इस प्रकार बोधिसत्व ने बुद्ध के समान सहजता से विधि का वर्णन करते हुए ये श्लोक कहे:-

मयहाका नाम का एक पक्षी है, जो पर्वतीय गुफा में रहता है:
पके हुए फलों से लदे पीपल के पेड़ों पर, "मेरा," "मेरा" की पुकार आती है।
जब वह इस प्रकार गाता है, तो अन्य पक्षी झुंड में उसके चारों ओर उड़ते हैं:
वे फल खाते हैं, लेकिन फिर भी मयहा का दुख भरा विलाप जारी रहता है।
और फिर भी एक अकेला व्यक्ति अपार धन अर्जित कर सकता है।
और फिर भी वह इसे अपने और अपने रिश्तेदारों के बीच उचित रूप से विभाजित नहीं कर सकता है।
उसे कभी भी वस्त्र या भोजन का सुख प्राप्त नहीं होता।
न तो इत्र से और न ही चमकीले रंगों की मालाओं से; और न ही उसके परिवार का भला होता है।
"मेरा, मेरा," वह गिड़गिड़ाते हुए अपने खजाने की लालच से रक्षा करता है:
लेकिन राजा, या लुटेरे, या उसके उत्तराधिकारी जो उसे मरते देखना चाहते हैं
उसकी संपत्ति लूट लो: फिर भी कंजूस का दर्द भरा विलाप जारी रहता है।
एक बुद्धिमान व्यक्ति, अपार धन अर्जित करने के बाद, अपने परिवार के सदस्यों की सहायता करता है:
इस प्रकार वह पृथ्वी पर यश प्राप्त करेगा और परलोक में भी यश पाएगा।
अतः उस महान सत्ता ने उन्हें विधि समझाते हुए उन्हें दान देने का सिलसिला फिर से शुरू करने के लिए प्रेरित किया, और हिमालय जाकर उन्होंने निरंतर ध्यान किया और इस प्रकार ब्रह्मलोक स्वर्ग (देवदूतों का लोक) में प्रवेश किया।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "तो, महान राजा, उस अजनबी व्यापारी का इतने समय तक न तो कोई पुत्र था और न ही कोई पुत्री, क्योंकि उसने अपने भाई के पुत्र की हत्या कर दी थी," और फिर उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "छोटा भाई (भिक्षु) वह अजनबी व्यापारी था, बड़ा भाई मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धजविहेठ-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-391-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 391
धजविहेत-जातक

"मुखौटे वाले," इत्यादि—गुरु ने ये बातें जेतवन मठ में रहते हुए, समस्त विश्व के कल्याण के लिए अपने भ्रमण के विषय में बताईं। यह घटना महाकान्हा जन्म में प्रकट होगी। (*1) तब गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), तथागत (बुद्ध) ने विश्व के कल्याण के लिए भ्रमण किया है, यह पहली बार नहीं है," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे और बोधिसत्व इंद्र थे। उसी समय एक जादूगर आधी रात को आया और बनारस की प्रधान रानी को वश में कर लिया। रानी की दासियों को इसकी जानकारी थी। रानी स्वयं राजा के पास गईं और बोलीं, "महाराज, कोई व्यक्ति आधी रात को राजकक्ष में आता है और मुझे वश में कर लेता है।" राजा ने पूछा, "क्या आप उस पर कोई निशान लगा सकती

हैं?" रानी ने कहा, "हाँ।" तो उन्होंने असली सिंदूर का एक कटोरा लिया और जब वह व्यक्ति रात को आया और भोग-विलास के बाद जाने लगा, तो उन्होंने अपनी पाँच उंगलियों का निशान उसकी पीठ पर लगा दिया और सुबह राजा को बताया। राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे हर जगह खोजकर एक ऐसे व्यक्ति को लाएँ जिसकी पीठ पर लाल निशान हो।

रात में दुराचार करने के बाद, वह जादूगर दिन में एक पैर पर खड़े होकर सूर्य की पूजा कर रहा था। राजा के सैनिकों ने उसे देखा और घेर लिया; लेकिन उसने यह सोचकर कि उसका यह काम उनके सामने आ गया है, अपनी जादूगरी का प्रयोग किया और हवा में उड़ गया। जब उसके सैनिक यह देखकर वापस आए, तो राजा ने उनसे पूछा, "क्या तुमने उसे देखा?" "हाँ, हमने उसे देखा।" "वह कौन है?" "महाराज, एक तपस्वी।" क्योंकि रात में दुराचार करने के बाद वह दिन में तपस्वी के वेश में रहता था। राजा ने सोचा, "ये लोग दिन में तपस्वी के वेश में घूमते हैं और रात में दुराचार करते हैं।" इसलिए तपस्वियों से क्रोधित होकर उसने गलत धारणाएँ बना लीं और ढोल बजाकर यह घोषणा करवाई कि सभी तपस्वियों को उसके राज्य से निकल जाना होगा और जहाँ भी वे मिलेंगे, उसके सैनिक उन्हें दंडित करेंगे। तीन सौ मील (4.23 किमी) के क्षेत्रफल वाले काशी राज्य से सभी तपस्वी भागकर अन्य राजसी नगरों में चले गए, और काशी के लोगों को उपदेश देने वाला कोई धर्मनिष्ठ बौद्ध या ब्राह्मण नहीं था; परिणामस्वरूप उपदेश न मिलने से लोग बर्बर हो गए, और दान और आज्ञाओं से विमुख होने के कारण अधिकांशतः मृत्यु के समय दंड की अवस्था में ही जन्म लेते थे, और उन्हें कभी स्वर्ग में जन्म नहीं मिलता था। सक्का (इंद्र), जब उन्हें कोई नए देवता (देवदूत) दिखाई नहीं दिए, तो उन्होंने इसके कारण पर विचार किया और पाया कि बनारस के राजा ने जादूगर के प्रति क्रोधित होकर गलत धारणाएँ अपना ली थीं, जिसके चलते उन्होंने अपने भाइयों को राज्य से निष्कासित कर दिया था। तब उन्होंने सोचा, "मेरे सिवा कोई नहीं है जो इस राजा के गलत विश्वास को नष्ट कर सके; मैं राजा और उसकी प्रजा का सहायक बनूँगा।" इसलिए वे नंदमूल गुफा में स्थित पच्चेकबुद्धों के पास गए और कहा, "महोदय, मुझे एक वृद्ध पच्चेकबुद्ध दीजिए, मैं काशी राज्य का धर्म परिवर्तन कराना चाहता हूँ।" उन्हें उनमें से सबसे वरिष्ठ पच्चेकबुद्ध प्राप्त हुए। जब उन्होंने अपना कुंड और वस्त्र ग्रहण किया, तो सक्का (इंद्र) ने उन्हें आगे स्थापित किया और स्वयं उनके पीछे आकर पच्चेकबुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनका सम्मान किया। स्वयं एक सुंदर युवा भाई का रूप धारण करके उन्होंने पूरे शहर का तीन बार चक्कर लगाया और राजा के द्वार पर आकर हवा में खड़े हो गए। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, राजा के द्वार पर एक सुंदर युवक एक पुजारी के साथ हवा में खड़ा है।" राजा अपनी गद्दी से उठे और द्वार के पास खड़े होकर बोले, "युवक, तुम जो इतने सुंदर हो, उस बदसूरत पुजारी का आदर क्यों कर रहे हो और उसका कटोरा और वस्त्र क्यों पकड़े हो?" और फिर उससे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

आपका चेहरा सुंदर है, आप आदर को कम आंकते हैं;
एक नीच और गरीब दिखने वाले व्यक्ति के पीछे आप जाते हैं:
मान लीजिए, क्या वह आपसे बेहतर है या आपके बराबर है?
कृपया हमें अपना और उनका नाम बताएं।
सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "महाराज, पुरोहित गुरु के स्थान पर होते हैं (*2); इसलिए उनका नाम लेना उचित नहीं है: परन्तु मैं अपना नाम बताऊंगा," अतः उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:-

देवता (देवदूत) वंश और नाम नहीं बताते।
धर्मनिष्ठ और पूर्ण मार्ग पर चलने वाले संतों के बारे में:
जहां तक मेरा सवाल है, मैं अपनी उपाधि की घोषणा करता हूं।
सक्का (इंद्र), वह स्वामी जिसकी तीस देवता (देवदूत) आज्ञा का पालन करते हैं।
यह सुनकर राजा ने तीसरे श्लोक में पूछा कि भाई का आदर करने का क्या आशीर्वाद है?

जो व्यक्ति पूर्ण गुणों वाले संत को देखता है,
और वह श्रद्धापूर्वक उसके पीछे-पीछे झुककर चलता है:
हे देवदूतों के राजा, मैं पूछता हूँ कि उसे क्या विरासत में मिलेगा?
एक और जीवन से क्या-क्या आशीर्वाद मिलेंगे?
सक्का (इंद्र) ने चौथे श्लोक में उत्तर दिया:-

जो व्यक्ति पूर्ण गुणों वाले संत को देखता है,
जो उनके पीछे श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर चलता है:
इस दुनिया में उसे जो विरासत मिलती है, उसमें पुरुषों से उसे बहुत प्रशंसा मिलती है।
और मृत्यु उसे स्वर्ग का मार्ग दिखाएगी।
सक्का (इंद्र) के वचन सुनकर राजा ने अपने गलत विचारों का त्याग कर दिया और प्रसन्न होकर पाँचवाँ श्लोक बोला:-

ओह, आज मुझ पर भाग्य का सूरज उगा है।
हमने आपकी दिव्य महिमा को अपनी आँखों से देखा है:
हे सक्का (इंद्र), आपके संत हमारे दर्शन कर रहे हैं।
और अब मैं अनेक पुण्य कर्म करूंगा।
अपने स्वामी की प्रशंसा सुनकर इंद्र ने छठा श्लोक कहा:-

बुद्धिमानों का सम्मान करना निस्संदेह अच्छा है।
ज्ञान की ओर वे लोग जिनका विद्वतापूर्ण विचार झुकाव रखता है:
अब जबकि संत और मेरी आंखें आपकी आंखों से मिल चुकी हैं,
हे राजा, आप अनेक पुण्य कर्म करें।
यह सुनकर राजा ने अंतिम श्लोक बोला:-

क्रोध से मुक्त होकर, हर विचार में शालीनता के साथ,
जब भी अजनबी लोग मुकदमा करेंगे, मैं उनकी बात सुनूंगा:
मैंने आपकी सलाह को अच्छे से समझा, लेकिन मेरा कोई योगदान नहीं है।
मुझे गर्व है और मैं आपको उचित श्रद्धा के साथ सेवा करता हूँ, हे प्रभु।
ऐसा कहकर वह छत से नीचे उतरे, पच्चेकबुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। पच्चेकबुद्ध हवा में पालथी मारकर बैठे और राजा को उपदेश देते हुए बोले, “महाराज, वह जादूगर कोई भाई नहीं था: अब से यह जान लो कि संसार व्यर्थ (खोखला) नहीं है, अच्छे बौद्ध और ब्राह्मण भी हैं, इसलिए दान करो, नैतिकता का पालन करो, और त्योहारों का पालन करो।” इंद्र भी अपनी शक्ति से हवा में खड़े होकर नगरवासियों को उपदेश देते हुए बोले, “अब से उत्साह रखो।” उन्होंने ढोल बजाकर यह घोषणा करवाई कि जो बौद्ध और ब्राह्मण भाग गए थे, वे लौट आएं। फिर दोनों अपने-अपने स्थान पर लौट गए। राजा ने उनकी सलाह को दृढ़ता से माना और अच्छे कर्म किए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय पच्चेकबुद्ध निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, राजा आनंद थे, सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 469

(2) किसी संत शिक्षक का नाम बताना गलत है, महावग्ग 1.74.1.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भिसापुप्पा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-392-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 392
भीसपुप्प-जातक

“तुम कभी नहीं थे,” इत्यादि — गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में यह कथा सुनाई। कथा यह है कि भिक्षु जेतवन मठ छोड़कर कोसल राज्य में एक वन के पास रहने लगे। एक दिन वे एक कमल-कुंड में उतरे और एक खिला हुआ कमल देखकर हवा की ओर मुंह करके उसे सूंघा। तब उस वन में निवास करने वाली देवी ने उन्हें डराते हुए कहा, “हे प्रभु, आप सुगंधों के चोर हैं, यह एक प्रकार की चोरी है।” वे भयभीत होकर जेतवन मठ लौट आए और गुरुजी को प्रणाम करके बैठ गए। “तुम कहाँ रह रहे थे, भिक्षु?” “अमुक वन में, और देवी ने मुझे अमुक तरीके से डराया।” गुरुजी ने कहा, “तुम पहले नहीं हो जो किसी फूल को सूंघने से देवी द्वारा भयभीत हुए हो; प्राचीन ऋषि भी इसी प्रकार भयभीत हुए हैं,” और भिक्षुजी के अनुरोध पर उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में विद्या सीखी और बाद में तपस्वी बन गए तथा एक कमल-कुंड के पास रहने लगे। एक दिन वे कुंड में उतरे और खिले हुए कमल को सूंघने लगे। तभी एक पेड़ के खोखले तने में बैठी देवी ने उन्हें सचेत करते हुए पहला श्लोक कहा:-

आपको वह फूल कभी नहीं दिया गया जिसकी खुशबू आपको आ रही है, हालांकि वह केवल एक ही खिला हुआ फूल है;
यह एक प्रकार की चोरी है, महोदय, आप इसकी सुगंध चुरा रहे हैं।
तब बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक कहा:-

मैं न तो फूल तोड़ता हूँ और न ही उसे अलग करता हूँ; मैं दूर से ही उसकी सुगंध महसूस करता हूँ।
मुझे नहीं पता कि आप किस सबूत के आधार पर कह रहे हैं कि मैं इत्र चुराती हूँ।
उसी समय एक आदमी कमल के रेशे निकालने के लिए तालाब में खुदाई कर रहा था और कमल के पौधों को तोड़ रहा था। बोधिसत्व ने उसे देखकर कहा, "तुम दूर से फूल की सुगंध सूंघने वाले आदमी को चोर कहते हो: तुम उस दूसरे आदमी से बात क्यों नहीं करते?" तब उससे बात करते हुए उन्होंने तीसरा श्लोक कहा:-

मुझे एक ऐसा आदमी दिखाई देता है जो कमल की जड़ों को खोदता है और डंठलों को तोड़ता है:
आप उस व्यक्ति के आचरण को अव्यवस्थित क्यों नहीं कहते?
देवी ने उससे बात न करने का कारण बताते हुए चौथे और पाँचवें श्लोक कहे:-

नर्स की पोशाक की तरह ही ये पुरुष भी अभद्र व्यवहार करते हैं:
मुझे ऐसे लोगों से बात करने का कोई अधिकार नहीं है, लेकिन मैं आपसे बात करने के लिए बाध्य हूं।
जब कोई व्यक्ति बुराइयों से मुक्त होकर पवित्रता की खोज करता है,
उसके लिए एक बाल के सिरे जितना पाप भी आकाश में छाए काले बादल की तरह दिखाई देता है।
उससे भयभीत होकर बोधिसत्व ने भावुक होकर छठा श्लोक कहा:-

हे परी, तुम मुझे भली-भांति जानती हो, मुझ पर दया करना तो तुम्हारा कर्तव्य है।
यदि आप मुझे ऐसा ही कोई अपराध करते हुए देखें, तो कृपया मुझसे दोबारा बात करें।
तब देवी ने उनसे सातवां श्लोक कहा:-

मैं आपकी सेवा करने के लिए यहां नहीं हूं, हम कोई किराए के कर्मचारी नहीं हैं।
हे भाई, अपने लिए सुख प्राप्त करने का मार्ग खोज लो।
इस प्रकार उन्हें सलाह देकर वह अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गईं। बोधिसत्व ने गहन ध्यान में लीन होकर ब्रह्मलोक (देवदूतों के लोक) में जन्म लिया।

पाठ समाप्त हुआ, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के अंत में, भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) के फल में स्थापित हो गया: "उस समय देवी उप्पलावन्ना थीं, मैं स्वयं तपस्वी था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विघास-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-393-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 393
विघासा-जातक

“उनका जीवन सुखमय है,” इत्यादि—गुरु ने यह कथा पूर्वी उद्यान में रहते हुए कुछ भिक्षुओं के बारे में सुनाई, जो मौज-मस्ती में लिप्त थे। महान मोग्गल्याना ने उनके जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया था और उन्हें भयभीत कर दिया था। भिक्षु सत्य के हॉल में बैठकर अपनी गलती पर चर्चा कर रहे थे। गुरु को जब यह बताया गया, तो उन्होंने उनसे कहा, “वे पहली बार मौज-मस्ती में लिप्त नहीं हुए हैं,” और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व सक्का (इंद्र) थे। काशी नामक एक गाँव में सात बंधुओं ने कामवासनाओं के बुरे प्रभाव को देखकर उनका त्याग कर संन्यासी बन गए। वे मेझरन्ना में रहते थे, पर तरह-तरह के भोग-विलास में लिप्त रहते थे, भक्ति का अभ्यास नहीं करते थे और देह-भोग में लिप्त रहते थे। देवदूतों के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा, "मैं उन्हें चेतावनी दूंगा;" और इस प्रकार वे एक तोते का रूप धारण करके उनके निवास स्थान पर आए और एक वृक्ष पर बैठकर उन्हें चेतावनी देने के लिए पहला श्लोक बोला:

जो लोग दान से बचे हुए अंशों पर जीवन यापन करते हैं, उनका जीवन सुखमय होता है:
इस दुनिया में प्रशंसा पाना उनका भाग्य है, और अगली दुनिया में सुख-सुविधाएं।
तब उनमें से एक ने तोते की बात सुनकर बाकी लोगों को पुकारा और दूसरी पंक्ति बोली:-

क्या बुद्धिमान लोगों को तब नहीं सुनना चाहिए जब एक तोता मनुष्य की भाषा में बोलता है?
सुनो, भाइयों: यह पक्षी स्पष्ट रूप से हमारी प्रशंसा में गा रहा है।
तब तोते ने इस बात का खंडन करते हुए तीसरा श्लोक बोला:-

मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, सड़े हुए मांस खाने वालों: मेरी बात सुनो।
कूड़ा वह भोजन है जिसे आप खाते हैं, न कि दान में मिले अवशेष।
जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो वे सब मिलकर चौथा श्लोक बोले:-

सात वर्ष से पुरोहित, विधिवत मुंडा हुआ सिर।
  हम मेज्झारन्ना में अपने दिन बिताते हैं।
बचे-खुचे भोजन पर जीवन यापन करना: यदि आप इसके लिए हमारे भोजन को दोषी ठहराते हैं,
  तो फिर आप किसकी प्रशंसा करते हैं?
उस महान सत्ता ने पाँचवाँ श्लोक बोलकर उन्हें लज्जित कर दिया:-

शेर, बाघ, हिंसक जानवर के बचे हुए हिस्से ही आपकी आपूर्ति हैं:
सचमुच इनकार करो, भले ही तुम इसे दान से बचे हुए अवशेष कहो।
उनकी बात सुनकर तपस्वियों ने कहा, "यदि हम अवशेष खाने वाले नहीं हैं, तो फिर कौन हैं?" तब उन्होंने उन्हें सही अर्थ समझाते हुए छठा श्लोक सुनाया:-

जो लोग पुरोहितों और ब्राह्मणों को दान देते हैं, वे अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हैं।
बाकी बचा हुआ खा लो, क्योंकि दान में मिले बचे-खुचे भोजन पर ही तो लोग जीते हैं।
तब बोधिसत्व ने उन्हें शर्मिंदा किया और अपने स्थान पर चले गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय सात भाई क्रीड़ा करने वाले भाई थे, सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वातक-जातक3**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 394
वट्टक-जातक

“तेल और मक्खन,” इत्यादि – गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक लालची भिक्षु के बारे में यह कहानी सुनाई। जब उन्होंने देखा कि वह लालची है, तो गुरु ने उससे कहा, “यह पहली बार नहीं है जब तुम लालची हुए हो: एक बार बनारस में लालच के कारण तुम हाथियों, बैलों, घोड़ों और मनुष्यों के शवों से संतुष्ट नहीं हुए थे; और बेहतर भोजन की आशा में जंगल चले गए थे;” और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, बोधिसत्व का जन्म एक बटेर के रूप में हुआ और वे जंगल में सूखी घास और बीजों पर जीवन व्यतीत करते थे। उस समय बनारस में एक लालची कौआ था, जो हाथियों और अन्य जानवरों के मृत शरीरों से संतुष्ट नहीं था, इसलिए बेहतर भोजन की आशा में जंगल में गया। वहाँ जंगली फल खाते हुए उसने बोधिसत्व को देखा और सोचा, "यह बटेर बहुत मोटा है: मुझे लगता है कि यह मीठा भोजन खाता है, मैं इससे इसका भोजन माँगूँगा और इसे खाकर खुद भी मोटा हो जाऊँगा।" यह सोचकर वह बोधिसत्व के ऊपर एक शाखा पर बैठ गया। बोधिसत्व ने बिना पूछे ही उसे प्रणाम किया और पहला श्लोक बोला:

चाचाजी, तेल और मक्खन आपका भोजन हैं; मुझे लगता है कि समृद्ध भोजन आपका भोजन है।
तो मुझे बताओ, हे स्वामी कौवे, तुम्हारे दुबलेपन का कारण क्या है?
उसकी बातें सुनकर कौवे ने तीन छंद बोले:-

मैं अनेक प्रतिद्वंद्वियों के बीच रहता हूँ, मेरा दिल धड़कता रहता है
डर के मारे मैं अपना भोजन ढूंढ रहा हूँ: एक कौआ मोटा कैसे हो सकता है?
कौवे अपना जीवन भय में व्यतीत करते हैं, शरारत करने की उनकी बुद्धि हमेशा तेज रहती है;
वे जो टुकड़े चुनते हैं, वे पर्याप्त नहीं होते; अच्छी बटेर, इसीलिए मैं दुबला हूँ।
तुम्हारा सारा भोजन सूखी घास और बीज ही हैं: उनमें पौष्टिकता का नामोनिशान नहीं है।
तो मुझे बताओ, अच्छी बटेर, इतने कम भोजन पर भी तुम इतनी मोटी क्यों हो?
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने अपने मोटापे का कारण बताते हुए ये श्लोक कहे:-

मैं संतुष्ट और शांत मन का हूं, मुझे ज्यादा दूर नहीं जाना है।
मुझे जो कुछ भी मिलता है, मैं उसी से अपना गुजारा कर लेता हूँ, इसलिए मैं मोटा हूँ, वाह!
मन की शांति और हृदय की कम चिंता के साथ सुख।
एक ऐसा मानक जिसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है: कि जीवन का सबसे अच्छा हिस्सा वही है।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के अंत में, भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उस समय कौआ लालची भाई था, बटेर मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काक-जातक3**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-395-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 395
काका-जातक। (*1)

"हमारा पुराना मित्र," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक लालची भिक्षु के बारे में यह कहानी सुनाई थी। घटना का विवरण ऊपर दिया गया है।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब बोधिसत्व एक कबूतर थे और बनारस के एक व्यापारी की रसोई में एक टोकरी में रहते थे। एक कौआ उनसे घनिष्ठ मित्र बन गया और वहीं रहने लगा। यहाँ कहानी को आगे बढ़ाया जाना है। रसोइए ने कौए के पंख नोच लिए और उस पर आटा छिड़क दिया, फिर एक कौड़ी को छेदकर उसके गले में लटका दिया और उसे टोकरी में फेंक दिया। बोधिसत्व जंगल से निकले और उन्हें देखकर एक उपहास किया और पहला श्लोक बोला:-

हमारा पुराना दोस्त! उसे देखो!
 वह एक चमकीला रत्न धारण करता है;
उनकी दाढ़ी बड़े ही सलीके से संवारी हुई थी।
 हमारा दोस्त कितना चमकीले रंगों वाला दिख रहा है!
कौवे ने उसकी बात सुनकर दूसरा श्लोक बोला:-

मेरे नाखून और बाल इतनी तेजी से बढ़ गए थे।
 उन्होंने मेरे हर काम में बाधा डाली:
अंततः एक नाई आ गया,
 और मैंने अतिरिक्त बालों से छुटकारा पा लिया है।
तब बोधिसत्व ने तीसरा श्लोक कहा:-

मान लीजिए कि आपके पास नाई है,
 आपके बाल इतने अच्छे से किसने काटे हैं?
क्या आप समझा पाएंगे कि यह आपके गले में है?
 ये घंटी जैसी झनझनाहट किस बात की है?
तब कौवे ने दो छंद बोले:-

फैशनपरस्त पुरुष एक अनमोल रत्न पहनते हैं।
 गले में लपेटना: यह अक्सर किया जाता है:
मैं उनकी नकल कर रहा हूँ:
 यह मत सोचो कि यह सिर्फ मनोरंजन के लिए है।
अगर आप सचमुच ईर्ष्यालु हैं
 मेरी दाढ़ी, जो बिल्कुल सही ढंग से ट्रिम की गई है:
मैं इस तरह से आपके बाल कटवा सकता हूँ;
 आपके पास भी वह रत्न हो सकता है।
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने छठा श्लोक कहा:-

नहीं, उन्हें तुम्हारे जैसा बनना ही बेहतर होगा।
 दाढ़ी और रत्न, जो बिल्कुल सही ढंग से ट्रिम किए गए हैं।
मुझे आपकी उपस्थिति असुविधाजनक लगती है:
 आपको शुभ दिन की शुभकामनाएं।
ये शब्द कहकर वह उड़ गया और कहीं और चला गया; और कौआ वहीं मर गया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के बाद, लालची भाई (भिक्षु) तीसरे मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उस समय कौआ लालची भाई था, कबूतर मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 42 और क्रमांक 274 देखें

पुस्तक VII. सत्तनिपाता:

पिछला <<<<-----||-396-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 396
कुक्कू-जातक

“चोटी एक हाथ की दूरी पर है,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक राजा को सलाह देते हुए यह बात कही थी। इस घटना का वर्णन तेसाकुना-जन्म में मिलेगा। (*1)

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व उनके सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार थे। राजा बुरे मार्ग पर चल रहे थे, अपने राज्य पर अन्यायपूर्वक शासन कर रहे थे और जनता पर अत्याचार करके धन इकट्ठा कर रहे थे। बोधिसत्व उन्हें उपदेश देने के लिए एक दृष्टांत की तलाश में निकले। राजा का शयनकक्ष अधूरा था और उसकी छत भी पूरी नहीं बनी थी: शहतीरें एक शिखर को सहारा दे रही थीं, लेकिन वे अभी-अभी अपनी जगह पर लगी थीं। राजा कुछ समय पार्क में आनंद लेने गए थे: जब वे अपने घर लौटे तो उन्होंने ऊपर देखा और गोल शिखर को देखा: उन्हें डर था कि वह उन पर गिर जाएगा, इसलिए वे बाहर जाकर खड़े हो गए, फिर ऊपर देखकर उन्होंने सोचा, "यह शिखर इस तरह कैसे टिका हुआ है? और शहतीरें कैसे हैं?" और बोधिसत्व से पूछते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

शिखर की ऊंचाई डेढ़ हाथ की लंबाई के बराबर है।
    आठ फाटक इसे घेरते हुए एक गोलाकार आकृति बनाएंगे।
सिम्सपा और सारा का निर्माण ठीक से हुआ है:
    यह इतनी मजबूती से क्यों खड़ा है?
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने सोचा, "अब मुझे राजा को समझाने के लिए एक दृष्टांत मिल गया है," और उन्होंने ये श्लोक कहे:-

सारा की लकड़ी के तीस शहतीर झुक गए।
    बराबर दूरी पर रखकर, उसके चारों ओर घेरा बना लिया।
वे इसे कसकर दबाते हैं, क्योंकि उनकी पकड़ मजबूत होती है:
    यह ठीक से स्थापित है और सही स्थिति में है।
इसी प्रकार, वफादार मित्रों से घिरा हुआ बुद्धिमान व्यक्ति भी ऐसा ही होता है।
    समर्पित सलाहकारों और शुद्धता द्वारा:
वह कभी भी सफलता की ऊंचाइयों से नीचे नहीं उतरता:
    जैसे छत की कड़ियाँ शिखर को सुरक्षित रखती हैं।
जब बोधिसत्व बोल रहे थे, राजा अपने आचरण पर विचार कर रहे थे, "यदि शिखर न हो, तो शहतीरें स्थिर नहीं रहतीं; शिखर शहतीरों के सहारे नहीं टिकता; शहतीरें टूट जाएं, तो शिखर गिर जाता है; ठीक उसी प्रकार एक दुष्ट राजा, जो अपने मित्रों और मंत्रियों, अपनी सेनाओं, अपने ब्राह्मणों और गृहस्थों को एकजुट नहीं रखता, यदि ये सब बिखर जाएं, तो वह इनके सहारे नहीं टिकता, बल्कि अपनी सत्ता से गिर जाता है; एक राजा को धर्मपरायण होना चाहिए।" उसी क्षण वे उन्हें भेंट के रूप में एक नींबू लाए। राजा ने बोधिसत्व से कहा, "मित्र, इस नींबू को खाओ।" बोधिसत्व ने उसे लिया और कहा, "हे राजा, जो लोग इसे खाना नहीं जानते, वे इसे कड़वा या खट्टा बना देते हैं; परन्तु जो बुद्धिमान जानते हैं, वे कड़वाहट दूर कर देते हैं और नींबू के स्वाद को बिगाड़े बिना या खट्टापन हटाए बिना इसे खा लेते हैं।" इस दृष्टांत के द्वारा उन्होंने राजा को धन संचय करने का साधन समझाया और दो श्लोक कहे:-

खुरदरी त्वचा वाला नींबू खाने में कड़वा होता है।
    यदि यह नक्काशी करने वाले के स्टील से अछूता रहे:
हे राजा, केवल गूदा ले लो, वह मीठा है।
    अगर आप छिलका डालेंगे तो मिठास खराब हो जाएगी।
फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति हिंसा के बिना कार्य करता है।

वह गांव और शहर में राजा का कर वसूलता है।
इससे धन में वृद्धि होती है, फिर भी कोई अपराध नहीं होता:
वह सत्य और यश के मार्ग पर चलता है।

राजा ने बोधिसत्व से सलाह लेकर एक कमल-कुंड में जाकर, नवभूराज के समान रंग का, जल से अछूता एक खिला हुआ कमल देखा और कहा, "मित्र, जल में उगा हुआ वह कमल जल से अछूता रहता है।" तब बोधिसत्व ने कहा, "हे राजा, राजा को ऐसा ही होना चाहिए," और सलाह देते हुए ये श्लोक कहे:-

तालाब में कमल की तरह,
सफेद जड़ें, शुद्ध जल, इसे पोषित करता है;
सूर्य की किरणें पूर्ण रूप से खिल रही हैं,
धूल, कीचड़ या नमी से इस पर दाग नहीं लग सकता।
अत: जिस व्यक्ति पर सद्गुणों का शासन होता है,
हम उन्हें विनम्र, पवित्र और नेक कहते हैं:
तालाब में कमल की तरह
पाप का दाग उसे अपवित्र नहीं कर सकता।

बोधिसत्व की सलाह सुनकर राजा ने बाद में अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया और अच्छे कर्म, दान-पुण्य आदि करते हुए स्वर्ग के लिए नियत हो गया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय राजा आनंद थे, जो स्वयं एक बुद्धिमान मंत्री थे।"

फुटनोट:

(1) संख्या 521

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मनोज-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-397-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 397
मनोजा-जातक

“धनुष मुड़ा हुआ है,” इत्यादि—गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए एक भिक्षु (भाई) के बारे में यह कहा था जो बुरी संगत में रहता था। इस घटना का विस्तृत वर्णन महिलामुखता जन्म में किया गया है। (*1) गुरु ने कहा, “भाइयों (भिक्षुओं), वह पहली बार बुरी संगत में नहीं है,” और एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, बोधिसत्व सिंह थे और एक सिंहनी के साथ रहते थे। उनके दो बच्चे थे, एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम मनोज था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसने एक युवा सिंहनी से विवाह किया, और इस प्रकार वे पाँच हो गए। मनोज जंगली भैंसों और अन्य जानवरों का शिकार करता था, और इस प्रकार अपने माता-पिता, बहन और पत्नी के लिए मांस प्राप्त करता था। एक दिन अपने शिकारगाह में उसने गिरिया नामक एक सियार को देखा, जो भागने में असमर्थ था और पेट के बल लेटा हुआ था। उसने कहा, "क्या हाल है, मित्र? मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ, स्वामी।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, ऐसा करो।" तो वह सियार को अपनी मांद में ले गया। बोधिसत्व ने उसे देखकर कहा, "प्रिय मनोज, सियार दुष्ट और पापी होते हैं, और गलत सलाह देते हैं; इसे अपने पास मत लाना," लेकिन वह उसे रोक नहीं सका। फिर एक दिन सियार ने घोड़े का मांस खाने की इच्छा व्यक्त की, और मनोज से कहा, "महोदय, घोड़े के मांस के अलावा हमने कुछ भी नहीं खाया है; चलिए एक घोड़ा लेते हैं।" "लेकिन घोड़े कहाँ हैं, मित्र?" "बनारस में नदी के किनारे।" उसने यह सलाह मानी और उसके साथ वहाँ गया जहाँ घोड़े नदी में नहाते थे; उसने एक घोड़ा लिया और

उसे अपनी पीठ पर लादकर तेज़ी से शेर की मांद के मुँह तक पहुँचा। घोड़े का मांस खा रहे उसके पिता ने कहा, "प्रिय, घोड़े राजाओं की संपत्ति हैं, राजाओं के पास कई तरकीबें होती हैं, उनके पास कुशल तीरंदाज होते हैं; जो शेर घोड़े का मांस खाते हैं वे ज़्यादा दिन नहीं जीते, अब से घोड़े मत चुराना।" शेर ने अपने पिता की सलाह नहीं मानी और घोड़े चुराता रहा। राजा ने यह सुनकर कि एक शेर घोड़े चुरा रहा है, शहर के अंदर घोड़ों के लिए एक स्नान-कुंड बनवाया: लेकिन शेर फिर भी आता और घोड़े चुरा लेता। राजा ने एक अस्तबल बनवाया और उसमें घोड़ों के लिए चारा और पानी रखा। शेर दीवार फांदकर अस्तबल से भी घोड़े चुरा लेता था। राजा ने बिजली की गति से तीर चलाने वाले एक तीरंदाज को बुलाया और पूछा कि क्या वह शेर को मार सकता है। उसने कहा कि वह मार सकता है, और जिस दीवार से शेर आता था उसके पास एक मीनार बनाकर वह वहाँ इंतज़ार करने लगा। शेर आया और सियार को बाहर कब्रिस्तान में छिपाकर घोड़ों को लेने के लिए कस्बे में घुस गया। धनुर्धारी ने सोचा, "जब वह आएगा तो उसकी गति बहुत तेज़ होगी," इसलिए उसने शेर पर तीर नहीं चलाया, लेकिन जब वह एक घोड़ा लेकर भारी वजन के कारण लड़खड़ाते हुए जा रहा था, तो उसने शेर के पिछले हिस्से में एक तेज़ तीर मारा। तीर उसके अगले हिस्से से निकलकर हवा में उड़ गया। शेर चिल्लाया, "मैं घायल हो गया।" तीर चलाने के बाद धनुर्धारी ने गरज की तरह अपना धनुष चलाया। शेर और धनुष की आवाज़ सुनकर सियार ने मन ही मन कहा, "मेरा साथी घायल हो गया है और उसे मारना ही होगा, मरे हुओं से कोई दोस्ती नहीं होती, अब मैं जंगल में अपने पुराने घर जाऊंगा," और इस तरह उसने दो पंक्तियाँ कहीं:-

धनुष मुड़ा हुआ है, धनुष की डोरी से मधुर ध्वनि निकल रही है;
मेरे मित्र, पशुओं के राजा मनोज की हत्या कर दी गई है।
अफसोस, मैं यथासंभव जंगलों की तलाश करता हूँ:
ऐसी दोस्ती का कोई महत्व नहीं; मुझे दूसरों का सहारा लेना होगा।
शेर झपट्टा मारकर आया और घोड़े को मांद के मुँह पर पटक दिया, और स्वयं वहीं गिरकर मर गया। उसका परिवार बाहर आया और उसे खून से लथपथ देखा, उसके घावों से खून बह रहा था, दुष्टों का साथ देने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी; और उसके पिता, माता, बहन और पत्नी ने उसे देखकर क्रम से चार पंक्तियाँ कहीं:-

जो लोग दुष्टों के बहकावे में आ जाते हैं, उनका भाग्य उज्ज्वल नहीं होता;
गिरिया की सलाह पर मनोजा वहां लेटी हुई है, उसे देखो।
जिस बेटे के साथी अच्छे न हों, उससे माताओं को कोई खुशी नहीं मिलती।
मनोजा को देखो, वह खून से लथपथ वहां पड़ा है।
और फिर भी उस आदमी का यही हाल रहता है, वह दीन-हीन अवस्था में पड़ा रहता है।
जो सच्चे मित्र और बुद्धिमान व्यक्ति की सलाह का पालन नहीं करता।
यही, या इससे भी बदतर, उसका भाग्य होगा।
जो ऊँचा तो है, पर नीचों पर भरोसा करता है:
देखिए, यह राजशाही अवस्था से ही है।
वह धनुष से गिर गया है।
अंत में, पूर्ण ज्ञान का श्लोक:-

जो बहिष्कृत लोगों का अनुसरण करता है, वह स्वयं बहिष्कृत हो जाता है।
जो अपने समकक्षों से प्रेम करता है, उसे कभी धोखा नहीं दिया जाएगा।
जो परम श्रेष्ठ के सामने नतमस्तक होता है, वह शीघ्र ही उत्थान प्राप्त करता है;
इसलिए सहायता के लिए अपने से श्रेष्ठ लोगों की ओर देखो।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के बाद, बुरी संगति में रहने वाला भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हुआ:- "उस समय सियार देवदत्त था, मनोज बुरी संगति का रक्षक था, उसकी बहन उप्पलावन्ना (भिक्षुणी) थी, उसकी पत्नी बहन (भिक्षुणी) खेमा थी, उसकी माता राहुल (बुद्ध की पत्नी) की माता थी, और उसके पिता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 26

पिछला <<<<-----॥-398-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 398
सुतानो-जातक

“राजा ने भेजा है,” इत्यादि — गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए यह कथा सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु (भाई) का जिक्र था जो अपनी माता का भरण-पोषण करता था। यह घटना साम (*1) जन्म में वर्णित है।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक हो रहा था, तब एक गरीब गृहस्थ परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका नाम सूतना रखा गया। बड़े होकर वे मजदूरी करते थे और अपने माता-पिता का सहारा बनते थे। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने माता का सहारा लिया। उस समय राजा को शिकार का बहुत शौक था। एक दिन वे अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर एक या दो मील (4.23 किमी) लंबे जंगल में गए और सभी को यह घोषणा की, "यदि कोई हिरण किसी व्यक्ति की चौकी से भाग निकले, तो उस व्यक्ति पर हिरण के मूल्य के बराबर जुर्माना लगाया जाएगा।" मंत्रियों ने मुख्य सड़क के किनारे एक गुप्त कुटिया बनाई और उसे राजा को दे दिया। हिरणों के मांदों को घेरने वाले लोगों के रोने की आवाज से वे जाग उठे और एक हिरण राजा की चौकी पर आ गया। राजा ने सोचा, "मैं इसे मारूंगा," और एक तीर चलाया। जानवर, जो एक तरकीब जानता था, उसने देखा कि तीर उसकी ओर आ रहा है और घूमकर ऐसे गिर पड़ा जैसे तीर से घायल हो गया हो। राजा ने सोचा, "मैंने उसे मार गिराया है," और उसे पकड़ने के लिए दौड़ा। हिरण उठा और हवा की तरह भाग गया। मंत्रियों और बाकी लोगों ने राजा का उपहास किया। राजा हिरण का पीछा करता रहा और जब वह थक गया तो उसने अपनी तलवार से उसे दो टुकड़ों में काट दिया: टुकड़ों को एक डंडे पर लटकाकर वह एक डंडा उठाते हुए आया और बोला, "मैं थोड़ा आराम करूँगा," और सड़क के किनारे एक बरगद के पेड़ के पास आकर लेट गया और सो गया। उस बरगद में मखदेव नामक एक यक्ष (राक्षस) का पुनर्जन्म हुआ था, और वह वेसवना (*2) से आने वाले सभी जीवों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करता था। जब राजा उठा तो उसने कहा, "रुको, तुम मेरा भोजन हो," और उसका हाथ पकड़ लिया। राजा ने पूछा, "तुम कौन हो?" "मैं यहाँ जन्मा एक यक्ष (राक्षस) हूँ, मैं यहाँ आने वाले सभी मनुष्यों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करता हूँ।" राजा ने हिम्मत जुटाकर पूछा, "क्या तुम आज ही खाओगे या निरंतर खाओगे?" "मैं जो भी प्राप्त करूँगा, निरंतर खाऊँगा।" “तो आज इस हिरण को खा लो और मुझे जाने दो; कल से मैं तुम्हें प्रतिदिन चावल की थाली के साथ एक आदमी भेजूँगा।” “तो सावधान रहो: जिस दिन कोई नहीं भेजा जाएगा, मैं तुम्हें खा जाऊँगा।” “मैं बनारस का राजा हूँ: ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं नहीं कर सकता।” यक्ष (राक्षस) ने उसका वादा ले लिया और उसे जाने दिया। जब राजा नगर में आया, तो उसने उपस्थित मंत्री को मामला बताया और पूछा कि क्या किया जाना चाहिए।

“क्या कोई समय सीमा तय की गई थी, हे राजा?” “नहीं।” “जब आपने यह तय किया था तब तो गलत था; लेकिन कोई बात नहीं, जेल में बहुत से लोग हैं।” “तो आप इस मामले को संभालिए और मुझे जीवनदान दीजिए।” मंत्री मान गया और प्रतिदिन जेल से एक आदमी को निकालकर बिना कुछ बताए चावल की थाली के साथ यक्ष (राक्षस) के पास भेज देता था। यक्ष (राक्षस) चावल और मनुष्य दोनों को खा जाता है। कुछ समय बाद जेलें खाली हो गईं। राजा को चावल ले जाने वाला कोई नहीं मिला, तो वह मृत्यु के भय से कांप उठा। मंत्री ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "हे राजा, धन की लालसा जीवन की लालसा से प्रबल होती है: आइए हम एक हाथी की पीठ पर एक हजार सिक्कों का एक पैकेट रखें और ढोल बजाकर घोषणा करें, 'कौन चावल लेकर यक्ष (राक्षस) के पास जाएगा और यह धन लाएगा?'" और उन्होंने ऐसा ही किया। बोधिसत्व ने सोचा, "मुझे मजदूरी के रूप में कुछ पैसे और आधे पैसे मिलते हैं और मैं मुश्किल से अपनी माँ का भरण-पोषण कर पाता हूँ: मैं यह धन लाकर उन्हें दे दूँगा, और फिर यक्ष (राक्षस) के पास जाऊँगा: यदि मैं उसे हरा सकूँ, तो अच्छा है, और यदि नहीं तो वह आराम से जीवन व्यतीत करेंगी।" उन्होंने अपनी माँ को यह बताया, लेकिन उन्होंने कहा, "मेरे पास पर्याप्त है, प्रिय, मुझे धन की आवश्यकता नहीं है," और इस प्रकार उन्हें दो बार रोका; लेकिन तीसरी बार बिना उनसे पूछे, उन्होंने कहा, "महोदय, हजार सिक्के लाएँ, मैं चावल ले जाऊँगा।" तो उन्होंने अपनी माँ को हजार सिक्के दिए और कहा, "चिंता मत करो, प्रिय; मैं यक्ष (राक्षस) पर विजय प्राप्त करूँगा और लोगों को सुख दूँगा: मैं तुम्हारे आँसू भरे चेहरे पर मुस्कान लाऊँगा," और उसे प्रणाम करते हुए वह राजा के आदमियों के साथ राजा के पास गया और वहाँ खड़ा हो गया। राजा ने कहा, "मेरे भले, क्या तुम चावल लोगे?" "जी हाँ, महाराज।" "तुम अपने साथ क्या लोगे?" "आपकी सोने की चप्पलें, महाराज।" "क्यों?" "हे महाराज, वह यक्ष (राक्षस) पेड़ की तलहटी में खड़े सभी लोगों को खा जाता है: मैं चप्पलों पर खड़ा रहूँगा, उसकी ज़मीन पर नहीं।" "और कुछ?" "आपका छाता, महाराज।" "क्यों?" "हे महाराज, वह

यक्ष (राक्षस) अपने ही पेड़ की छाया में खड़े सभी लोगों को खा जाता है: मैं छाते की छाया में खड़ा रहूँगा, उसके पेड़ की नहीं।" "और कुछ?" "आपकी तलवार, महाराज।" "किस उद्देश्य से?" "हे महाराज, यहाँ तक कि जिन्नों के हाथों में हथियार होते हैं, उनसे तो राक्षस भी डरते हैं।" "और कुछ?" "आपका सोने का कटोरा, महाराज, जो आपके चावलों से भरा हो।" "अपने चावल लाओ।" "क्यों, महाराज?" "मुझ जैसे बुद्धिमान व्यक्ति के लिए मिट्टी के बर्तन में मोटा भोजन करना उचित नहीं है।" राजा मान गए और उन्होंने अधिकारियों को भेजकर बोधिसत्व की सभी माँगें पूरी करवाईं। बोधिसत्व ने कहा, "हे महाराज, चिंता न करें, मैं आज यक्ष (राक्षस) पर विजय प्राप्त करके और आपको सुख प्रदान करके वापस आऊँगा," और इसलिए आवश्यक वस्तुएँ लेकर उस स्थान पर जाकर, उन्होंने वृक्ष के कुछ दूर सामने सैनिकों को तैनात किया, सोने की चप्पलें पहनीं, तलवार को सुरक्षित रखा और अपने सिर पर सफेद छत्र डाला।और सोने की थाली में चावल लेकर वह यक्ष (राक्षस) के पास गया। सड़क पर देख रहे यक्ष (राक्षस) ने उसे देखा और सोचा, "यह आदमी वैसे नहीं आया जैसे पहले आते थे, क्या कारण है?" बोधिसत्व पेड़ के पास आकर तलवार की नोक से चावल की थाली को छाया में धकेल दिया, और छाया के पास खड़े होकर पहला श्लोक बोला:-

राजा ने आपके लिए मांस के साथ अच्छी तरह से पका हुआ और मसालेदार चावल भेजा है:
यदि मखादेव घर पर हैं, तो उन्हें आने दीजिए और भोजन करने दीजिए!
उसकी बात सुनकर यक्ष (राक्षस) ने सोचा, "मैं उसे छल करूंगा और जब वह छाया में आएगा तो उसे खा जाऊंगा," और इस प्रकार उसने दूसरा श्लोक कहा:-

अंदर आओ, युवक, अपना मसालेदार भोजन लेकर।
यह और तुम, युवक, दोनों का खाना अच्छा है।
तब बोधिसत्व ने दो श्लोक कहे:-

यक्खा (राक्षस), तुम एक छोटी सी चीज के लिए एक बड़ी चीज खो दोगे।
मृत्यु से भयभीत पुरुष बिल्कुल भी भोजन नहीं लाएंगे।
आपको भरपूर खुशी मिलेगी।
शुद्ध, मधुर और आपके मन को भाने वाला स्वाद:
लेकिन इसे यहाँ लाने वाला एक आदमी,
अगर तुम मुझे खाओगे तो तुम्हें ढूंढना मुश्किल होगा।
यक्ष (राक्षस) ने सोचा, "युवक ने समझदारी की बात कही है," और मित्रता भाव से उसने दो श्लोक कहे:-

युवा सुताना, मेरी रुचियां स्पष्ट रूप से वैसी ही हैं जैसा आपने दिखाया है:
फिर शांति से अपनी मां से मिलें, मैं आपको जाने की अनुमति देता हूं।
हे युवक, तलवार, छाता और थाली लेकर अपने मार्ग पर चल।
अपनी मां से खुशी-खुशी मिलें और उनके जीवन में खुशियां लाएं।
यक्ष (राक्षस) के शब्दों को सुनकर बोधिसत्व प्रसन्न हुए और सोचने लगे, "मेरा कार्य पूरा हो गया, यक्ष (राक्षस) पर विजय प्राप्त हो गई, बहुत धन प्राप्त हुआ और राजा का वचन सिद्ध हो गया।" यक्ष (राक्षस) को धन्यवाद देते हुए उन्होंने अंतिम श्लोक कहा:

हे यक्ष (राक्षस), तुम अपने सभी मित्रों और परिवार के साथ खूब सुखी रहो।
राजा के आदेश का पालन किया गया है, और मुझे धन प्राप्त हुआ है।
अतः उसने यक्ष (राक्षस) को फटकारते हुए कहा, "मित्र, तूने पुराने समय में बुरे कर्म किए, तू क्रूर और निर्दयी था, तूने दूसरों का मांस और रक्त खाया, इसीलिए तू यक्ष (राक्षस) के रूप में जन्मा: अब से हत्या या इस प्रकार का कोई भी काम मत करना।" इस प्रकार उसने यक्ष (राक्षस) को पुण्य के आशीर्वाद और पाप के कष्टों के बारे में बताते हुए उसे पाँच गुणों में स्थापित किया: फिर उसने कहा, "जंगल में क्यों रहते हो? आओ, मैं तुझे नगर द्वार पर बसाऊँगा और तुझे उत्तम चावल दिलाऊँगा।" अतः वह यक्ष (राक्षस) को तलवार और अन्य वस्तुएँ देकर उसके साथ बनारस चला गया। उन्होंने राजा को बताया कि सूतना यक्ष (राक्षस) के साथ आया है। राजा अपने मंत्रियों के साथ बोधिसत्व से मिलने निकला, उसने यक्ष (राक्षस) को नगर द्वार पर ठहराया और उसे सर्वोत्तम चावल दिलवाए; फिर वह नगर में प्रवेश किया, ढोल बजाकर घोषणा की और नगरवासियों की सभा बुलाकर बोधिसत्व की स्तुति की तथा उन्हें सेना का नेतृत्व सौंप दिया; स्वयं बोधिसत्व की शिक्षाओं में स्थापित हुआ, दान-पुण्य और अन्य सद्‌गुणों का पालन किया और स्वर्ग के लिए नियत हो गया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के बाद, अपनी माता का सहारा देने वाले भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हुए:- "उस समय यक्ष (राक्षस) अंगुलिमाला था, राजा आनंद, और मैं स्वयं युवक था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 540

(2) यक्षों का राजा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गिज्जा-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-399-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 399
गिज्जा जातक

"बुजुर्गों का क्या होगा," इत्यादि - गुरु ने ये बातें जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में बताईं, जो अपनी माँ का भरण-पोषण करता था।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब बोधिसत्व का जन्म एक गिद्ध के गर्भ से हुआ। बड़े होकर उन्होंने अपने माता-पिता को, जो अब बूढ़े और कमजोर आँखों वाले थे, एक गिद्ध की गुफा में रखा और उन्हें गाय का मांस और इसी तरह के अन्य जानवर खिलाकर उनका पेट भरते थे। उसी समय एक शिकारी बनारस के एक कब्रिस्तान के चारों ओर गिद्धों के लिए जाल बिछाता था। एक दिन मांस की तलाश में बोधिसत्व कब्रिस्तान आए और उनका पैर जाल में फंस गया। उन्होंने अपने बारे में नहीं सोचा, बल्कि अपने बूढ़े माता-पिता को याद किया। "मेरे माता-पिता अब कैसे जिएंगे? मुझे लगता है कि वे मर जाएंगे, इस बात से अनजान कि मैं फंसा हुआ हूँ, असहाय और निर्धन, उस पहाड़ी गुफा में धीरे-धीरे कमजोर होता जा रहा हूँ।" इस प्रकार शोक करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:

अब पहाड़ की गुफा में बुजुर्ग लोग अपना गुजारा कैसे करेंगे?
क्योंकि मैं एक जाल में फंसा हुआ हूँ, क्रूर नीलिया का गुलाम हूँ।
एक शिकारी के बेटे ने, उसके विलाप को सुनकर, दूसरा छंद बोला, गिद्ध ने तीसरा छंद बोला, और इसी तरह बारी-बारी से:-

गिद्ध, तुम्हारे ये कौन से विचित्र विलाप हैं जो मेरे कानों तक पहुँच रहे हैं?
मैंने कभी किसी ऐसे पक्षी को न तो सुना है और न ही देखा है जो मनुष्यों की तरह बोलता हो।
मैं एक पहाड़ी गुफा में अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल करता हूँ।
अब जब मैं तुम्हारा गुलाम बन गया हूँ, तो बूढ़े लोग कैसे गुजारा करेंगे?
एक गिद्ध सौ मील (4.23 किमी) की दूरी पर सड़ते हुए मांस को देखता है;
इतनी नज़दीक मौजूद जाल और फंदे को आप क्यों नहीं देख पा रहे हैं?
जब किसी व्यक्ति पर विपत्ति आ पड़ती है, और भाग्य उसकी मृत्यु की मांग करता है,
वह अपने इतने करीब होने के बावजूद भी फंदे या जाल को देखने में विफल रहता है।
जाओ, पहाड़ों में बनी उनकी गुफा में अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल करो।
जाओ, शांति से उनसे मिलो, मेरी ओर से तुम्हें वो विदाई मिलेगी जिसकी तुम्हें चाहत है।
हे शिकारी, तुम्हें अपने सभी मित्रों और परिवार के साथ सुख मिले।
मैं अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल करूंगा, जो पहाड़ों में बनी अपनी गुफा में रहते हैं।
तब बोधिसत्व, मृत्यु के भय से मुक्त होकर, प्रसन्नतापूर्वक धन्यवाद देते हुए और अंतिम श्लोक बोलते हुए, अपने निवाले में से मांस लेकर चले गए और उसे अपने माता-पिता को दे दिया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के बाद, भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गए:- "उस समय, शिकारी चन्ना था, माता-पिता राजा का परिवार थे, और मैं स्वयं गिद्ध-राजा था।"

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-400-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 400
दब्बपुप्प-जातक

"मित्र अनुतिराचारी," इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए शाक्य वंश (बुद्ध के कुल) के उपनंद के विषय में यह वृत्तांत सुनाया। उपनंद ने धर्म की दीक्षा तो ली, पर संतोष और अन्य सुख-सुविधाओं का त्याग कर अत्यंत लोभी हो गया। वर्षा ऋतु के आरंभ में उसने दो-तीन मठों में ठहरकर देखा, कभी छाता तो कभी जूता, कभी लाठी तो कभी घड़ा छोड़कर वह स्वयं एक में रहने लगा। वर्षा ऋतु की शुरुआत में उसने एक ग्रामीण मठ में ठहरकर कहा, "भिक्षुओं को संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए।" उसने भिक्षुओं को, मानो आकाश में चंद्रमा का उदय कर रहा हो, संतोष की दिव्य अवस्था का मार्ग समझाया और आवश्यक वस्तुओं से संतुष्ट रहने की प्रशंसा की। यह सुनकर भिक्षुओं ने अपने सुंदर वस्त्र और पात्र त्याग दिए और मिट्टी के घड़े तथा चिथड़े ओढ़ लिए। उसने अन्य भिक्षुओं को अपने में ठहराया और वर्षा ऋतु और पवाराना उत्सव समाप्त होने पर एक गाड़ी भरकर जेतवन मठ चला गया। रास्ते में, जंगल में एक मठ के पीछे, अपने पैरों को लताओं से लपेटते हुए और यह कहते हुए कि, "यहाँ कुछ न कुछ तो ज़रूर मिलेगा," वह मठ में प्रवेश कर गया। दो वृद्ध भिक्षुओं ने वहाँ वर्षा ऋतु बिताई थी: उन्हें दो मोटे लबादे और एक बढ़िया कंबल मिला था, और क्योंकि वे उन्हें आपस में बाँट नहीं सकते थे, इसलिए उन्हें देखकर प्रसन्न हुए, यह सोचकर कि, "यह वरिष्ठ भिक्षु इन्हें हमारे बीच बाँट देंगे," और कहा, "महोदय, हम इसे, जो वर्षा ऋतु के वस्त्र हैं, बाँट नहीं सकते; इस पर हमारा विवाद है, क्या आप इसे हमारे बीच बाँट देंगे?" वह मान गया और उन्हें दो मोटे लबादे देकर कंबल ले लिया और कहा, "यह मुझे मिलता है, जो अनुशासन के नियमों को जानता हूँ," और चला गया। ये वरिष्ठ भिक्षु, जिन्हें कंबल बहुत प्रिय था, उसके साथ जेतवन मठ गए और नियमों को जानने वाले भिक्षुओं को यह बात बताई और कहा, "क्या नियमों को जानने वालों के लिए इस तरह लूट का माल खाना उचित है?" भिक्षुओं ने जब वरिष्ठ भिक्षु उपनंद द्वारा लाए गए वस्त्रों और कुंडों का ढेर देखा, तो उन्होंने कहा, "महोदय, आपने बहुत पुण्य कमाया है, आपने बहुत भोजन और वस्त्र अर्जित किए हैं।" उपनंद ने कहा, "महोदय, मेरा पुण्य कहाँ है? मैंने तो यह सब फलाँ-फलाँ तरीके से अर्जित किया है," और सबको यही बताया। सत्य के हॉल में सबने आपस में चर्चा शुरू कर दी, "महोदय, शाक्य वंश का उपनंद बहुत लालची और लोभी है।" गुरु ने उनकी बात समझकर कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), उपनंद के कर्म उन्नति के लिए उपयुक्त नहीं हैं; जब कोई भिक्षु (भिक्षु) दूसरे को उन्नति का उपदेश देता है, तो उसे पहले स्वयं उचित कर्म करके देखना चाहिए और फिर दूसरों को उपदेश देना चाहिए।"

सर्वप्रथम स्वयं को धार्मिकता में स्थापित करो।
फिर सिखाओ; बुद्धिमानों को स्वार्थपरक नहीं होना चाहिए।
धम्मपद के इस श्लोक के द्वारा उन्होंने धर्म का मार्ग दिखाया और कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), उपनंद पहली बार लालची नहीं है; वह पहले भी लालची था और उसने पहले भी लोगों की संपत्ति लूटी थी": और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व नदी के किनारे एक वृक्ष-आत्मा के रूप में विराजमान थे। मायावी नामक एक सियार ने विवाह किया और उसी नदी के किनारे रहने लगी। एक दिन उसकी साथी ने उससे कहा, "पतिदेव, मुझे एक तीव्र इच्छा हुई है: मुझे ताज़ी रोहिता मछली खाने की इच्छा है।" उन्होंने कहा, "चिंता मत करो, मैं तुम्हारे लिए लाता हूँ," और नदी के किनारे लताओं से अपने पैर लपेटकर चलने लगे। उसी क्षण, दो ऊदबिलाव, गंभीराचारी और अनुतिराचारी, मछली की तलाश में नदी के किनारे खड़े थे। गंभीराचारी ने एक बड़ी रोहिता मछली देखी और पानी में कूदकर उसकी पूंछ पकड़ ली। मछली बलवान थी और उसे घसीटते हुए चली गई। उन्होंने दूसरे को पुकारा, "यह बड़ी मछली हम दोनों के लिए पर्याप्त होगी, आओ और मेरी सहायता करो," और इस प्रकार पहला श्लोक बोला:-

मेरे मित्र अनुतिराकारी, मेरी सहायता के लिए शीघ्र आओ, मैं आपसे विनती करता हूँ:
मैंने एक बड़ी मछली पकड़ी है, लेकिन वह मुझे जबरदस्ती अपने साथ ले जा रहा है।
उसकी बात सुनकर दूसरे ने दूसरा श्लोक बोला:-

गंभीराकारी, आपको सौभाग्य मिले! आपकी पकड़ दृढ़ और मजबूत हो।

और जैसे एक रोक पक्षी सांप को उठाता है, वैसे ही मैं इस साथी को बाहर निकाल लूंगा।
फिर उन दोनों ने मिलकर रोहिता मछली को निकाला, उसे जमीन पर रखा और मार डाला; परन्तु एक दूसरे से "तुम इसे बाँट लो" कहते हुए वे झगड़ पड़े और उसे बाँट नहीं सके; इसलिए उसे वहीं छोड़कर बैठ गए। उसी क्षण सियार वहाँ आया। उसे देखकर दोनों ने उसे प्रणाम किया और कहा, "हे भूरे घास के स्वामी, इस मछली को हम दोनों ने मिलकर पकड़ा था: हम इसे बाँट नहीं सके इसलिए झगड़ा हुआ: क्या आप इसे बराबर बाँटकर अलग कर देंगे?" (तीसरा श्लोक कहते हुए)

हमारे बीच विवाद उत्पन्न हो गया, देखो! हे घास के रंग वाले!
महोदय, कृपया हमारे विवाद का निष्पक्ष निपटारा करें।
उनकी बातें सुनकर सियार ने अपनी शक्ति का बखान करते हुए कहा:-

मैंने कई मामलों में मध्यस्थता की है और शांतिपूर्ण तरीके से ऐसा किया है:
महोदय, आपके इस विवाद का निष्पक्ष निपटारा मैं कर लूँगा।
उस श्लोक को बोलने और विभाजन करने के बाद, उन्होंने यह श्लोक बोला:-

पूँछ, अनुतिराकारी; गंभीराचारी, प्रमुख:
मध्यस्थ को उचित भुगतान किया जाएगा।
मछली को दो भागों में बाँटकर उसने कहा, "तुम बिना झगड़ा किए सिर और पूंछ खा लो," और बीच का हिस्सा अपने मुँह में लेकर वह उनकी आँखों के सामने से भाग गया। वे उदास होकर बैठ गए, मानो उन्होंने अपने हज़ार टुकड़े खो दिए हों, और उन्होंने छठा श्लोक बोला:-

लेकिन हमारे विवाद के कारण ही यह हमारे लिए लंबे समय तक पर्याप्त साबित हुआ:
लेकिन अब सियार मछली ले जाता है और हमें सिर और पूंछ समेत छोड़ देता है।
सियार प्रसन्न हुआ और यह सोचकर कि "अब मैं अपनी पत्नी को रोहिता मछली खिलाऊंगा," वह उसके पास गया। उसने उसे आते देखा और प्रणाम करते हुए एक श्लोक कहा:-

जिस प्रकार एक राजा किसी राज्य को अपने शासन में शामिल करने पर प्रसन्न होता है,
इसलिए मुझे आज अपने प्रभु को मुँह भरकर खाते हुए देखकर खुशी हो रही है।
फिर उसने उससे प्राप्ति के साधनों के बारे में पूछा और एक श्लोक बोला:-

तुम तो जमीन के प्राणी हो, पानी से मछली कैसे पकड़ ली?
हे स्वामी, आपने यह चमत्कार कैसे किया? मैं आपसे निवेदन करता हूँ, मेरी इच्छा का उत्तर दीजिए।
सियार ने उसे साधन समझाते हुए अगला श्लोक कहा:-

विवाद से ही उनकी कमजोरी उत्पन्न होती है, विवाद से ही उनके साधन नष्ट होते हैं।
विवाद के चलते ऊदबिलावों ने अपना इनाम खो दिया: मायावी, शिकार को खाओ।
बुद्ध की पूर्ण बुद्धि द्वारा उच्चारित एक और श्लोक है:-

फिर भी जब पुरुषों के बीच विवाद उत्पन्न होता है,
वे एक मध्यस्थ की तलाश करते हैं: तब वही नेता होता है:
उनकी संपत्ति कम होती जाती है, और राजा का खजाना भरता जाता है।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय सियार उपनंद था, ऊदबिलाव दो बूढ़े व्यक्ति थे, और कारण देखने वाला वृक्ष-आत्मा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दशाननक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-401-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 401
दशान्नक-जातक

“दासन्ना की उत्तम तलवार,” इत्यादि — गुरु ने ये कथा जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जब एक भिक्षु गृहस्थ था और उसकी पत्नी ने उसे बहकाया था। भिक्षु ने स्वीकार किया कि वह इसी कारण पथभ्रष्ट हो रहा था। गुरु ने कहा, “वह स्त्री तुम्हें हानि पहुँचा रही है: पहले भी तुम उसके कारण मानसिक रोग से मर रहे थे, और ज्ञानी पुरुषों के कारण जीवन पाया,” और इस प्रकार उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में महान राजा मद्दवा का शासन था, तब एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका नाम युवा सेनाक रखा गया। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं की शिक्षा प्राप्त की और बनारस लौटकर राजा मद्दवा के सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार बन गए। बुद्धिमान सेनाक कहलाने के कारण वे पूरे शहर में सूर्य या चंद्रमा के समान पूजनीय थे। राजा के गृह पुरोहित का पुत्र राजा से मिलने आया और सभी आभूषणों से सजी और अत्यंत सुंदर रानी को देखकर मोहित हो गया। घर जाकर वह बिना भोजन किए लेट गया। उसके साथियों ने उससे पूछताछ की और उसने उन्हें सारी बात बताई। राजा ने कहा, "गृह पुरोहित का पुत्र दिखाई नहीं दे रहा, क्या बात है?" कारण सुनकर उन्होंने उसे बुलवाया और कहा, "मैं उसे सात दिनों के लिए तुम्हें सौंपता हूँ, इन दिनों को अपने घर में बिताओ और आठवें दिन उसे वापस भेज दो।" उसने कहा, "ठीक है," और उसे अपने घर ले जाकर उसके साथ आनंद मनाया। वे एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो गए और इसे गुप्त रखते हुए वे घर के द्वार से भाग निकले और दूसरे राजा के देश में आ गए। किसी को भी उस स्थान का पता नहीं था जहाँ वे गए थे, और उनका मार्ग किसी जहाज के मार्ग की तरह था। राजा ने पूरे शहर में ढोल बजाकर घोषणा की, और अनेक मार्गों से खोज करने के बावजूद वह उस स्थान को नहीं पा सका जहाँ वह गई थी। तब उसे उसके लिए गहरा शोक हुआ: उसका हृदय प्रचंड हो गया और रक्त बहने लगा: उसके बाद उसकी अंतड़ियों से रक्त बहने लगा, और उसकी बीमारी गंभीर हो गई। महान राजचिकित्सक भी उसे ठीक नहीं कर सके। बोधिसत्व ने सोचा, "रोग राजा में नहीं है, वह अपनी पत्नी को न देख पाने के कारण मानसिक रूप से बीमार है: मैं उसे एक विशेष उपाय से ठीक करूँगा"; अतः उसने राजा के बुद्धिमान सलाहकारों, आयुरा और पुक्कुसा को निर्देश देते हुए कहा, "राजा को रानी से न मिलने के कारण मानसिक रोग के अलावा कोई और बीमारी नहीं है। अब वह हमारे लिए एक महान सहायक है और हम उसे एक विशेष उपाय से ठीक करेंगे: हम महल के प्रांगण में एक सभा आयोजित करेंगे और एक ऐसे व्यक्ति को, जो तलवार निगलना जानता हो, उससे तलवार निगलवाएंगे। हम राजा को एक खिड़की पर बिठाएंगे और उसे सभा पर नीचे देखने के लिए कहेंगे। तलवार निगलते हुए उस व्यक्ति को देखकर राजा पूछेगा, "क्या इससे कठिन कुछ है?" तब, हे मेरे स्वामी आयुरा, आप उत्तर दें, "यह कहना कि 'मैं फलां वस्तु का त्याग करता हूँ' इससे भी कठिन है।" तब वह आपसे, हे मेरे स्वामी पुक्कुसा, पूछेगा और आप उत्तर दें, "हे राजा, यदि कोई व्यक्ति कहता है, 'मैं फलां वस्तु का त्याग करता हूँ' और उसे नहीं देता, तो उसका वचन व्यर्थ है; ऐसे शब्दों से कोई जीवित नहीं रहता, खाता नहीं, पीता नहीं; परन्तु जो उस वचन के अनुसार कार्य करते हैं और अपने वादे के अनुसार वस्तु देते हैं, वे दूसरे से भी कठिन कार्य करते हैं। तब मैं आगे क्या करना है, यह सोचूंगा।" अतः उसने एक सभा बुलाई। फिर वे तीन ज्ञानी पुरुष राजा के पास गए और उनसे कहा, “हे महाराज, राजमहल के प्रांगण में एक सभा हो रही है; यदि लोग उसे देखें तो उनका दुःख आनन्द में बदल जाता है, आइए हम वहाँ चलें।” अतः वे राजा को अपने साथ ले गए।खिड़की खोलकर उसने नीचे सभा को देखा। कई लोग अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे, जिसे वह जानता था: और एक आदमी तैंतीस इंच लंबी और तेज धार वाली तलवार निगल रहा था। उसे देखकर राजा ने सोचा, "यह आदमी तलवार निगल रहा है, मैं इन बुद्धिमानों से पूछूंगा कि क्या इससे भी कठिन कुछ है?": इसलिए उसने अयुरा से पूछा, और पहला श्लोक बोला:-

(*1)दासन्ना की उत्तम तलवार रक्त की प्यासी है, उसकी धार उत्तम रूप से तेज की गई है:
फिर भी भीड़ के बीच वह इसे सह लेता है: इससे कठिन कार्य और कोई नहीं हो सकता:
मैं पूछता हूँ कि क्या इससे कठिन कुछ है? मैं आपसे निवेदन करता हूँ, मुझे उत्तर दीजिए। तब उन्होंने उत्तर में दूसरा श्लोक कहा:-
लालच मनुष्य को पूरी तरह से तेज की गई तलवारें भी निगलने के लिए प्रेरित कर सकता है:
लेकिन "मैं इसे स्वेच्छा से देता हूँ" कहना कहीं अधिक कठिन कार्य होगा;
बाकी सब कुछ आसान है; महाराज मगध, मैंने आपको उत्तर दे दिया है।
जब राजा ने बुद्धिमान आयुरा के शब्द सुने, तो उसने सोचा, "तो फिर 'मैं यह वस्तु देता हूँ' कहना तलवार निगलने से भी कठिन है: मैंने कहा, 'मैं अपनी रानी को पुजारी के पुत्र को देता हूँ': मैंने बहुत कठिन कार्य किया है": और इस प्रकार उसके हृदय का दुःख थोड़ा कम हो गया। फिर यह सोचते हुए, "क्या 'मैं यह वस्तु किसी दूसरे को देता हूँ' कहने से भी कठिन कुछ है?" उसने बुद्धिमान पुक्कुसा से बात की और तीसरा श्लोक कहा:-

आयुरा ने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया है, वह दर्शनशास्त्र के सभी पहलुओं में पारंगत है:
पुक्कुसा, मैं अब यह सवाल पूछता हूं, क्या इससे भी कठिन कोई उपलब्धि हो सकती है?

क्या इससे भी कठिन कुछ और हो सकता है? कृपया उत्तर दें।
बुद्धिमान पुक्कुसा ने उसे उत्तर देते हुए चौथा श्लोक कहा:-

मनुष्य शब्दों से नहीं जीता, न ही व्यर्थ बोले गए शब्दों से।
लेकिन दान देना और उस पर पछतावा न करना, यह उससे भी बड़ी उपलब्धि होगी:
बाकी सब कुछ आसान है; महाराज मगध, मैंने आपको उत्तर दे दिया है।
यह सुनकर राजा ने सोचा, "मैंने पहले कहा था, 'मैं रानी को पुरोहित के पुत्र को दे दूंगा,' और फिर मैंने अपने वचन के अनुसार उसे दे दिया: निश्चय ही मैंने एक कठिन कार्य किया है।" इससे उसका दु:ख कुछ कम हुआ। फिर उसके मन में आया, "बुद्धिमान सेनाक से बढ़कर कोई बुद्धिमान नहीं है, मैं यह प्रश्न उनसे पूछूंगा।" और उनसे पूछकर उन्होंने पाँचवाँ श्लोक कहा:-

पुक्कुसा ने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया है, वह दर्शनशास्त्र के सभी पहलुओं में पारंगत हैं:
सेनाका, मैं अब यह सवाल पूछता हूं, क्या इससे भी कठिन कोई उपलब्धि हो सकती है?
क्या इससे भी कठिन कुछ और हो सकता है? कृपया उत्तर दें।
तब सेनाका ने उसके उत्तर में छठा श्लोक कहा:-

यदि कोई व्यक्ति दान के रूप में छोटी या बड़ी कोई वस्तु दान करे,
और बाद में देने पर पछतावा भी न हो: इससे भी कठिन कार्य होगा:
बाकी सब कुछ आसान है: महाराज मगध, मैंने आपको उत्तर दे दिया है।
बोधिसत्व के वचन सुनकर राजा ने मन ही मन सोचा, "मैंने अपनी इच्छा से रानी को पुरोहित के पुत्र को सौंप दिया; अब मैं अपने विचारों पर नियंत्रण नहीं रख पा रहा, मैं शोक में व्याकुल और कमजोर हो रहा हूँ; यह मेरे योग्य नहीं है। यदि वह मुझसे प्रेम करती तो अपना राज्य छोड़कर भाग न जाती; जब उसने मुझसे प्रेम नहीं किया बल्कि भाग गई, तो मुझे उससे क्या लेना-देना?" ऐसा सोचते ही उसका सारा दु:ख कमल के पत्ते पर पानी की बूँद की तरह बह गया और विलीन हो गया। उसी क्षण उसके अंतर्मन को शांति मिली। वह स्वस्थ और प्रसन्न हुआ और बोधिसत्व की स्तुति करते हुए अंतिम श्लोक बोला:-

आयुरा ने प्रश्न का उत्तर दिया, पुक्कुसा भी अच्छा था:
ज्ञानी सेनाका के वचन सभी उत्तरों में श्रेष्ठ हैं।
और इस प्रशंसा के बाद उसने प्रसन्नतावश उसे बहुत धन-दौलत दे दी।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के बाद, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हुए: "उस समय रानी उनके गृहस्थ जीवन की पत्नी थीं, राजा पथभ्रष्ट भाई थे, आयुरा मोग्गल्याना थे, पुक्कुसा सारिपुत्र थे, और बुद्धिमान सेनाक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) मध्य भारत में राज्य, जाहिरा तौर पर तलवार बनाने की कला का केंद्र।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सत्तुभस्ता-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-402-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 402
सत्तुभास्त जातक

"तुम भ्रमित हो," इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, ज्ञान की पूर्णता के विषय में यह कहा था। इस कथा का उल्लेख उम्मग्ग-जन्म में मिलेगा। (*1)

एक समय बनारस में जनक नामक राजा का शासन था। उसी समय बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उनका नाम युवा सेनाक रखा गया। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं की शिक्षा प्राप्त की और बनारस लौटकर राजा से मिले। राजा ने उन्हें मंत्री पद पर नियुक्त किया और उनका बहुत सम्मान किया। उन्होंने राजा को सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ दीं। धर्म के मार्ग के एक मधुर उपदेशक होने के नाते, उन्होंने राजा को पंच नियमों, दान, व्रत और दस प्रकार के सही कर्मों का पालन करना सिखाया और इस प्रकार उन्हें सद्‌गुण के मार्ग पर स्थापित किया। पूरे राज्य में ऐसा लग रहा था मानो बुद्धों का आगमन हो रहा हो। पखवाड़े के व्रत के दिन राजा, वायसराय और अन्य सभी एकत्रित होते और सभा स्थल को सजाते। बोधिसत्व ने एक सजे-धजे कक्ष में, हिरण की खाल के पलंग पर बैठकर, बुद्ध के समान शक्ति से धर्म का उपदेश दिया और उनके वचन बुद्धों के उपदेश के समान थे। फिर एक बूढ़े ब्राह्मण ने भिक्षा मांगते हुए एक हजार सिक्के जमा किए। उसने उन्हें एक ब्राह्मण परिवार में छोड़ दिया और फिर भिक्षा मांगने चला गया। उसके लौटने पर उस परिवार ने उसके सारे सिक्के खर्च कर दिए। वह वापस आया और अपने सिक्के मंगवाने लगा। ब्राह्मण उन्हें सिक्के नहीं दे सका, इसलिए उसने अपनी बेटी से उसकी शादी करवा दी। दूसरे ब्राह्मण ने उसे अपने साथ ले लिया और बनारस के पास ही एक ब्राह्मण गांव में रहने लगा। उसकी कम उम्र के कारण उसकी पत्नी की इच्छाएं अतृप्त रहीं और उसने एक दूसरे युवा ब्राह्मण के साथ पाप किया। सोलह ऐसी चीजें हैं जिनसे कभी संतुष्टि नहीं मिलती: और ये सोलह चीजें क्या हैं? समुद्र सभी नदियों से संतुष्ट नहीं होता, न ही अग्नि ईंधन से, न ही राजा अपने राज्य से, न ही मूर्ख पापों से, न ही स्त्री तीन चीजों - संभोग, श्रृंगार और संतानोत्पत्ति - से, न ही ब्राह्मण पवित्र ग्रंथों से, न ही ऋषि समाधि जैसी ध्यान साधना से, न ही शिष्य (*2) सम्मान से, न ही इच्छामुक्त व्यक्ति तपस्या से, न ही बलवान पुरुष ऊर्जा से, न ही वाचाल व्यक्ति वाणी से, न ही चतुर व्यक्ति परिषद से, न ही विश्वासी भिक्षुओं के संघ की सेवा से, न ही उदार व्यक्ति दान देने से, न ही विद्वान विधि-विधान सुनने से, और न ही चारों संघ (*3) बुद्ध के दर्शन से। अतः यह ब्राह्मण स्त्री संभोग से असंतुष्ट होकर अपने पति को त्याग कर निर्भीकता से पाप करना चाहती थी। एक दिन अपने इस बुरे इरादे से वह लेट गई। जब उसने पूछा, "कैसी हो पत्नी?" तो उसने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, मैं आपके घर का काम नहीं कर सकती, मेरे लिए एक दासी ला दीजिए।" "पत्नी, मेरे पास पैसे नहीं हैं, मैं उसे पाने के लिए क्या दूं?" "भिक्षा मांगकर पैसे जुटाओ और उसे ले आओ।" "तो पत्नी, मेरे सफर के लिए कुछ तैयार करो।" उसने चमड़े के थैले में पका और कच्चा आटा भरकर उसे दे दिया। ब्राह्मण गांवों, कस्बों और शहरों से होते हुए सात सौ टुकड़े इकट्ठा कर लाया और यह सोचकर कि "इससे तो नर और मादा दास खरीदे जा सकते हैं," वह अपने गांव लौट रहा था: पानी के लिए सुविधाजनक एक जगह पर उसने अपना थैला खोला।भोजन करने के बाद वह मुंह बांधे बिना पानी पीने नीचे गया। तभी एक खोखले पेड़ में रहने वाला काला सांप भोजन की गंध सूंघकर थैले में घुस गया और कुंडली मारकर भोजन खाने लगा। ब्राह्मण आया और बिना अंदर देखे ही थैले को बांधकर अपने कंधे पर रखकर चला गया। तभी पेड़ के खोखले तने में बैठी एक आत्मा ने रास्ते में उससे कहा, "ब्राह्मण, यदि तुम रास्ते में रुकोगे तो मर जाओगे, यदि तुम आज घर जाओगे तो तुम्हारी पत्नी मर जाएगी," और गायब हो गई। उसने देखा, लेकिन आत्मा को न देखकर वह भयभीत हो गया और मृत्यु के भय से व्याकुल होकर रोता-बिलखता बनारस के द्वार पर आ गया। यह पंद्रहवें दिन का व्रत था, बोधिसत्व के प्रवचन का दिन था। धर्म के अलंकृत आसन पर बैठे हुए, बहुत से लोग अपने हाथों में इत्र और फूल आदि लिए हुए प्रवचन सुनने के लिए झुंड में आए थे। ब्राह्मण ने पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?" और उन्हें बताया गया, "हे ब्राह्मण, आज ज्ञानी सेनाक मधुर स्वर और बुद्ध के समान शक्ति से धर्म का उपदेश दे रहे हैं: क्या आप नहीं जानते?" उन्होंने सोचा, "वे कहते हैं कि वे एक ज्ञानी उपदेशक हैं, और मैं मृत्यु के भय से व्याकुल हूँ: ज्ञानी पुरुष बड़े से बड़े दुःख को भी दूर कर सकते हैं: मेरे लिए भी वहाँ जाकर धर्म का उपदेश सुनना उचित है।" अतः वे उनके साथ चले गए, और जब सभा और उनमें से राजा बोधिसत्व के चारों ओर बैठ गए, तो वे धर्म-पीठ से कुछ दूर, बाहर खड़े रहे, अपने कंधे पर अनाज का थैला रखे, मृत्यु के भय से भयभीत। बोधिसत्व का उपदेश ऐसा था मानो वे स्वर्ग की नदी बहा रहे हों या अमृत (देवताओं का भोजन) बरसा रहे हों। सभा के सभी लोग प्रसन्न हुए और तालियाँ बजाते हुए उपदेश सुनने लगे। ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि दूरदर्शी होती है। उस समय बोधिसत्व ने पंच गुणों से परिपूर्ण अपनी आँखें खोलकर सभा का चारों ओर अवलोकन किया और उस ब्राह्मण को देखकर सोचा, "यह विशाल सभा प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हुए विधि का पाठ सुन रही है, परन्तु वह ब्राह्मण अप्रसन्न है और रो रहा है: उसके भीतर अवश्य ही कोई दुःख है जिसके कारण वह रो रहा है: जैसे जंग पर तेजाब डाल दिया जाए, या कमल के पत्ते से पानी की बूँद लुढ़का दी जाए, वैसे ही मैं उसे विधि का पाठ पढ़ाऊँगा, जिससे वह दुःख से मुक्त होकर मन से प्रसन्न हो जाएगा।" अतः उन्होंने उसे पुकारा, "ब्राह्मण, मैं ज्ञानी सेनाक हूँ, अब मैं तुम्हें दुःख से मुक्त करूँगा, निडर होकर बोलो," और उससे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-पंद्रहवें दिन व्रत का दिन था, बोधिसत्व के प्रवचन का दिन। वे धर्म के सुशोभित आसन पर विराजमान थे, और बहुत से लोग अपने हाथों में इत्र और फूल आदि लिए हुए प्रवचन सुनने के लिए समूह में आए थे। ब्राह्मण ने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" तो उसे बताया गया, "हे ब्राह्मण, आज ज्ञानी सेनाक मधुर स्वर और बुद्ध के सामर्थ्य से धर्म का प्रवचन दे रहे हैं: क्या आप नहीं जानते?" उसने सोचा, "वे कहते हैं कि वे एक ज्ञानी प्रवचनकर्ता हैं, और मैं मृत्यु के भय से व्याकुल हूँ: ज्ञानी लोग बड़े से बड़े दुख को भी दूर कर सकते हैं: मेरे लिए भी वहाँ जाकर धर्म का प्रवचन सुनना उचित है।" अतः वह उनके साथ चला गया, और जब सभा और उनमें से राजा बोधिसत्व के चारों ओर बैठ गए, तो वह धर्म के आसन से कुछ दूर, अपने कंधे पर अनाज का थैला लिए, मृत्यु के भय से भयभीत होकर बाहर खड़ा रहा। बोधिसत्व का प्रवचन ऐसा था मानो वे स्वर्ग की नदी ला रहे हों या देवताओं (देवदूतों) का भोजन (अमृत) बरसा रहे हों। सभी लोग प्रसन्न हुए और तालियाँ बजाते हुए उपदेश सुनने लगे। बुद्धिमानों की

दृष्टि दूरदर्शी होती है। उसी क्षण बोधिसत्व ने पंच गुणों से परिपूर्ण अपनी आँखें खोलकर सभा का चारों ओर अवलोकन किया और उस ब्राह्मण को देखकर सोचा, "यह विशाल सभा प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हुए प्रवचन सुन रही है, परन्तु वह ब्राह्मण अप्रसन्न है और रो रहा है: उसके भीतर अवश्य ही कोई दुःख होगा जिसके कारण वह रो रहा है: जैसे जंग पर तेजाब डाल दिया जाए, या कमल के पत्ते से पानी की बूँद लुढ़का दी जाए, वैसे ही मैं उसे प्रवचन दूँगा, जिससे वह दुःख से मुक्त होकर मन से प्रसन्न हो जाएगा।" अतः उन्होंने उसे पुकारा, "ब्राह्मण, मैं बुद्धिमान सेनाक हूँ, अब मैं तुम्हें दुःख से मुक्त करूँगा, निडर होकर बोलो," और उससे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-पंद्रहवें दिन व्रत का दिन था, बोधिसत्व के प्रवचन का दिन। वे धर्म के सुशोभित आसन पर विराजमान थे, और बहुत से लोग अपने हाथों में इत्र और फूल आदि लिए हुए प्रवचन सुनने के लिए समूह में आए थे। ब्राह्मण ने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" तो उसे बताया गया, "हे ब्राह्मण, आज ज्ञानी सेनाक मधुर स्वर और बुद्ध के सामर्थ्य से धर्म का प्रवचन दे रहे हैं: क्या आप नहीं जानते?" उसने सोचा, "वे कहते हैं कि वे एक ज्ञानी प्रवचनकर्ता हैं, और मैं मृत्यु के भय से व्याकुल हूँ: ज्ञानी लोग बड़े से बड़े दुख को भी दूर कर सकते हैं: मेरे लिए भी वहाँ जाकर धर्म का प्रवचन सुनना उचित है।" अतः वह उनके साथ चला गया, और जब सभा और उनमें से राजा बोधिसत्व के चारों ओर बैठ गए, तो वह धर्म के आसन से कुछ दूर, अपने कंधे पर अनाज का थैला लिए, मृत्यु के भय से भयभीत होकर बाहर खड़ा रहा। बोधिसत्व का प्रवचन ऐसा था मानो वे स्वर्ग की नदी ला रहे हों या देवताओं (देवदूतों) का भोजन (अमृत) बरसा रहे हों। सभी लोग प्रसन्न हुए और तालियाँ बजाते हुए उपदेश सुनने लगे। बुद्धिमानों की दृष्टि दूरदर्शी होती है। उसी क्षण बोधिसत्व ने पंच गुणों से परिपूर्ण अपनी आँखें खोलकर सभा का चारों ओर अवलोकन किया और उस ब्राह्मण को देखकर सोचा, "यह विशाल सभा प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हुए प्रवचन सुन रही है, परन्तु वह ब्राह्मण अप्रसन्न है और रो रहा है: उसके भीतर अवश्य ही कोई दुःख होगा जिसके कारण वह रो रहा है: जैसे जंग पर तेजाब डाल दिया जाए, या कमल के पत्ते से पानी की बूँद लुढ़का दी जाए, वैसे ही मैं उसे प्रवचन दूँगा, जिससे वह दुःख से मुक्त होकर मन से प्रसन्न हो जाएगा।" अतः उन्होंने उसे पुकारा, "ब्राह्मण, मैं बुद्धिमान सेनाक हूँ, अब मैं तुम्हें दुःख से मुक्त करूँगा, निडर होकर बोलो," और उससे बात करते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-"यह विशाल सभा प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हुए विधि-विधान सुन रही है, परन्तु वह ब्राह्मण अप्रसन्न है और रो रहा है: उसके भीतर अवश्य ही कोई दुःख होगा जिसके कारण वह रो रहा है: जैसे जंग पर तेजाब छिड़क दिया जाए, या कमल के पत्ते से पानी की बूँद लुढ़का दी जाए, वैसे ही मैं उसे विधि-विधान सिखाऊँगा, जिससे वह दुःख से मुक्त होकर मन से प्रसन्न हो जाएगा।" अतः उसने उसे पुकारा, "ब्राह्मण, मैं ज्ञानी सेनाक हूँ, अब मैं तुम्हें दुःख से मुक्त करूँगा, निडर होकर बोलो," और उससे बात करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:-"यह विशाल सभा प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हुए विधि-विधान सुन रही है, परन्तु वह ब्राह्मण अप्रसन्न है और रो रहा है: उसके भीतर अवश्य ही कोई दुःख होगा जिसके कारण वह रो रहा है: जैसे जंग पर तेजाब छिड़क दिया जाए, या कमल के पत्ते से पानी की बूँद लुढ़का दी जाए, वैसे ही मैं उसे विधि-विधान सिखाऊँगा, जिससे वह दुःख से मुक्त होकर मन से प्रसन्न हो जाएगा।" अतः उसने उसे पुकारा, "ब्राह्मण, मैं ज्ञानी सेनाक हूँ, अब मैं तुम्हें दुःख से मुक्त करूँगा, निडर होकर बोलो," और उससे बात करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:-

आप विचारों में उलझे हुए हैं, आपकी चेतना विचलित है।
आपकी आंखों से बहते आंसू ही इसका प्रमाण हैं;
आपने क्या खोया है, या आप क्या पाना चाहते हैं?
यहां आकर? मुझे स्पष्ट उत्तर दो।
तब ब्राह्मण ने अपने दुःख का कारण बताते हुए दूसरा श्लोक कहा:-

अगर मैं घर गया तो मेरी पत्नी को मरना ही होगा।
यक्ष (राक्षस) ने कहा, यदि मैं नहीं गया तो यह मैं ही हूँगा;
यही वह विचार है जो बेरहमी से चुभता है:
सेनाका, मुझे इस मामले को समझाओ।
ब्राह्मण की बातें सुनकर बोधिसत्व ने ज्ञान का जाल इस प्रकार फैलाया मानो समुद्र में जाल फेंक रहे हों, और सोचने लगे, "इस संसार में प्राणियों की मृत्यु के अनेक कारण हैं: कुछ समुद्र में डूबकर मरते हैं, कुछ भूखी मछलियों द्वारा पकड़े जाते हैं, कुछ गंगा में गिरकर मरते हैं, कुछ मगरमच्छों द्वारा पकड़े जाते हैं, कुछ पेड़ से गिरकर मरते हैं, कुछ काँटे से घायल होकर मरते हैं, कुछ विभिन्न प्रकार के हथियारों से घायल होकर मरते हैं, कुछ विष खाने से, फांसी पर लटककर, खाई से गिरकर, अत्यधिक ठंड से या अनेक प्रकार के रोगों से मरते हैं: अब मृत्यु के इतने सारे कारणों में से किस कारण से यह ब्राह्मण आज मार्ग में रहने पर मरेगा, या उसकी पत्नी घर जाने पर किस कारण से मरेगी?" जब वह विचार कर रहा था, तभी उसकी नज़र ब्राह्मण के कंधे पर पड़े बोरे पर पड़ी और उसने सोचा, "ज़रूर कोई साँप उस बोरे में घुस गया होगा। वह भोजन की गंध से अंदर गया होगा, जब ब्राह्मण ने नाश्ता किया और पानी पीने के लिए बोरे का मुँह बंद किए बिना चला गया। पानी पीकर लौटते समय ब्राह्मण ने बोरे का मुँह बंद करके उसे उठा लिया होगा और उसे पता भी नहीं चला होगा कि साँप अंदर घुस गया है। अगर वह रास्ते में ही रुका रहा, तो शाम को विश्राम करते समय वह कहेगा, 'मैं कुछ भोजन करूँगा,' और बोरा खोलकर उसे अपने हाथ में रख लेगा। तब साँप उसके हाथ में काट लेगा और उसकी जान ले लेगा। रास्ते में रुकने पर यही उसकी मृत्यु का कारण होगा। लेकिन अगर वह घर चला गया, तो बोरा उसकी पत्नी के हाथ में आ जाएगा; वह कहेगी, 'मैं अंदर का सामान देख लेती

हूँ,' और बोरा खोलकर उसे अपने हाथ में रख लेगी। तब साँप उसे काट लेगा और उसकी जान ले लेगा। आज घर जाने पर यही उसकी मृत्यु का कारण होगा।" यह बात उसे कर्मों के ज्ञान से पता चली। तब उनके मन में यह विचार आया, "यह सर्प अवश्य ही काला, वीर और निर्भीक सर्प होगा; जब बोरी ब्राह्मण के शरीर से टकराती है, तो वह न तो हिलता है और न ही कांपता है; वह इतनी बड़ी सभा में अपनी उपस्थिति का कोई संकेत नहीं देता: अतः वह अवश्य ही काला, वीर और निर्भीक सर्प होगा।" अपने ज्ञान के बल पर उन्होंने यह बात ऐसे जान ली मानो उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो। अतः, मानो वे स्वयं वहाँ खड़े होकर सर्प को बोरी में प्रवेश करते हुए देख रहे हों, अपने ज्ञान के बल पर निर्णय लेते हुए, बोधिसत्व ने राजसभा में ब्राह्मण के प्रश्न का उत्तर देते हुए तीसरा श्लोक कहा:-

सबसे पहले मैं कई शंकाओं के साथ आगे बढ़ता हूँ,
अब मेरी ज़बान सच बोलती है;
ब्राह्मण, आपके भोजन के थैले में
एक सांप अनजाने में अंदर घुस गया है।

ऐसा कहकर उन्होंने पूछा, "हे ब्राह्मण, क्या तुम्हारे उस थैले में कोई भोजन है?" "हाँ, हे ऋषि।" "क्या तुमने आज नाश्ते में कुछ खाया था?" "हाँ, हे ऋषि।" "तुम कहाँ बैठे थे?" "जंगल में, एक पेड़ की जड़ के पास।" "जब तुमने भोजन किया और पानी पीने गए, तो क्या तुमने थैले का मुँह बंद किया था या नहीं?" "नहीं किया था, हे ऋषि।" "जब तुमने पानी पिया और वापस आए, तो क्या तुमने थैले में देखकर उसे बंद किया था?" "मैंने बिना देखे ही बंद कर दिया था, हे ऋषि।" "हे ब्राह्मण, जब तुम पानी पीने गए, तो मुझे लगता है कि भोजन की गंध से साँप तुम्हारी जानकारी के बिना थैले में घुस गया: ऐसा ही हुआ है: इसलिए अपना थैला नीचे रखो, उसे सभा के बीच में रखो और मुँह खोलकर पीछे हट जाओ और एक छड़ी लेकर थैले को उससे मारो: तब जब तुम एक काले साँप को फन फैलाकर फुफकारते हुए बाहर आते देखोगे, तो तुम्हें कोई संदेह नहीं होगा।" इस प्रकार उन्होंने चौथा श्लोक कहा:-

एक छड़ी लो और अंडकोष को पीटो।
वह मूक और दोहरी वाणी वाला है;
अपने मन को संशय से ग्रस्त होने से रोकें;
बोरी खोलो, तुम्हें सांप दिखाई देगा।

ब्राह्मण ने महापुरुष की बातें सुनकर, यद्यपि भयभीत और भयभीत था, वैसा ही किया। जब छड़ी से सांप के फन पर प्रहार किया गया, तो वह बोरी से बाहर निकला और भीड़ को देखने लगा।

गुरु ने विषय को समझाते हुए पाँचवाँ श्लोक कहा:

पराजित भीड़ के बीच भयभीत होकर,
उसने आटे की बोरी की डोरी खोली;
क्रोधित होकर एक सर्प बाहर निकला।
अपने सिर को पूरी शान से सीधा खड़ा किए हुए।

जब नाग फनाए सीधा करके बाहर आया, तो बोधिसत्व के अनंत ज्ञानी बुद्ध के रूप में प्रकट होने की भविष्यवाणी हुई। हजारों लोग वस्त्र लहराने और उंगलियां चटकाने लगे, सात बहुमूल्य पत्थरों की वर्षा घने बादल से बरसने जैसी थी, लाखों की संख्या में "अच्छा" के स्वर गूंजे, और शोर ऐसा था मानो धरती फट रही हो। बुद्ध की शक्ति से ऐसे प्रश्न का उत्तर देना जन्मजात शक्ति नहीं है, न ही वरदानों से संपन्न और उच्च कुल के पुरुषों की शक्ति है: तो फिर यह किसकी शक्ति है? ज्ञान की शक्ति: ज्ञानी व्यक्ति आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि बढ़ाता है, श्रेष्ठ मार्गों का द्वार खोलता है, महान और अनंत निर्वाण में प्रवेश करता है और शिष्यत्व, सिद्ध बुद्धत्व और पूर्ण बुद्धत्व की पूर्णता प्राप्त करता है: ज्ञान महान और अनंत निर्वाण लाने वाले गुणों में श्रेष्ठ है, बाकी सब ज्ञान के सहायक हैं: और इसलिए कहा जाता है:-

"बुद्धि ही सर्वोत्तम है," अच्छे लोग स्वीकार करते हैं।
तारों भरे आकाश में चंद्रमा की तरह;
सद्गुण, भाग्य, धार्मिकता,
क्या वे बुद्धिमानों की सेविकाएँ हैं?

जब बोधिसत्व ने प्रश्न का उत्तर दे दिया, तो एक सपेरे ने साँप के मुँह में पट्टी बाँधी, उसे पकड़ा और जंगल में छोड़ दिया। ब्राह्मण राजा के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए आधा श्लोक बोला:-

महान, राजा जनक, आपका लाभ हुआ!
बुद्धिमान सेनाका को देखकर।

राजा की प्रशंसा करने के बाद, उसने थैली से सात सौ सिक्के निकाले और बोधिसत्व की प्रशंसा करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक दान देने की इच्छा से डेढ़ श्लोक बोले:

अपनी बुद्धिमत्ता से भयभीत रहो; पर्दे व्यर्थ हैं।
ब्राह्मण, तुम्हारी भेदक दृष्टियों के लिए।
ये सात सौ टुकड़े देखिए,
ये सब ले लो, मैं तुम्हें ये देता हूँ;
मैं आपकी वजह से ही जीवित हूं।
और मेरी पत्नी का कल्याण।
यह सुनकर बोधिसत्व ने आठवां श्लोक कहा:-

कविता पाठ के लिए
बुद्धिमान व्यक्ति वेतन स्वीकार नहीं कर सकते;
बल्कि हम आपको देते हैं,
घर वापसी की यात्रा शुरू करने से पहले।
ऐसा कहकर बोधिसत्व ने ब्राह्मण को देने के लिए पूरे एक हजार सिक्के बनाए और उससे पूछा, "तुम्हें भीख मांगने किसने भेजा है?" "मेरी पत्नी ने, हे ऋषि।" "तुम्हारी पत्नी बूढ़ी है या जवान?" "जवान, हे ऋषि।" "तो वह किसी और के साथ पाप कर रही है, और उसने तुम्हें यह सोचकर भेजा है कि वह सुरक्षित रहेगी: यदि तुम ये सिक्के घर ले जाओगे, तो वह तुम्हारे परिश्रम से कमाए हुए सिक्के अपने प्रेमी को दे देगी: इसलिए तुम्हें सीधे घर नहीं जाना चाहिए, बल्कि इन सिक्कों को कस्बे के बाहर किसी पेड़ की जड़ में या कहीं और छोड़ देना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने उसे विदा कर दिया। वह गाँव के पास आकर अपने सिक्के एक पेड़ की जड़ में छोड़कर शाम को घर लौटा। उस समय उसकी पत्नी अपने प्रेमी के साथ बैठी थी। ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा होकर बोला, "पत्नी।" उसने उसकी आवाज़ पहचान ली और रोशनी बुझाकर दरवाज़ा खोल दिया। जब ब्राह्मण अंदर आया, तो उसने दूसरे को उठाकर दरवाज़े पर खड़ा कर दिया। फिर वापस आकर जब उसने बोरी में कुछ नहीं देखा, तो उसने पूछा, "ब्राह्मण, यात्रा में आपको क्या भिक्षा मिली है?" "हज़ार सिक्के।" "कहाँ है?" "यह फलाँ जगह पर छूट गया है: कोई बात नहीं, हम इसे कल ले लेंगे।" वह गई और अपने प्रेमी को बताया। वह गया और उसे ऐसे ले आया जैसे वह उसका अपना खजाना हो। अगले दिन ब्राह्मण गया और सिक्के न देखकर बोधिसत्व के पास आया, जिन्होंने पूछा, "क्या बात है, ब्राह्मण?" "मुझे सिक्के नहीं दिख रहे हैं, हे ऋषि।" "क्या आपने अपनी पत्नी को बताया?" "जी हाँ, हे ऋषि।" यह जानकर कि पत्नी ने अपने प्रेमी को बता दिया है, बोधिसत्व ने पूछा, "ब्राह्मण, क्या कोई ब्राह्मण है जो आपकी पत्नी का मित्र है?" "हाँ, हे ऋषि।" "क्या कोई है जो आपका मित्र है?" "जी हाँ, हे ऋषि।" तब उस महान पुरुष ने सात दिनों का खर्च दिलवाया और कहा, "जाओ, तुम दोनों पहले दिन चौदह ब्राह्मणों को आमंत्रित करो और उनका सत्कार करो, सात अपने लिए और सात अपनी पत्नी के लिए। अगले दिन से प्रतिदिन एक-एक ब्राह्मण कम करते जाओ, जब तक कि सातवें दिन तुम एक ब्राह्मण और अपनी पत्नी के लिए एक ब्राह्मण को आमंत्रित न करो। फिर यदि तुम देखो कि तुम्हारी पत्नी द्वारा सातवें दिन आमंत्रित किया गया ब्राह्मण हर बार आता है, तो मुझे बताना।" ब्राह्मण ने ऐसा ही किया और बोधिसत्व से कहा, "हे ऋषि, मैंने उस ब्राह्मण को देखा है जो हमेशा हमारा अतिथि होता है।" बोधिसत्व ने अपने साथ कुछ लोगों को उस दूसरे ब्राह्मण को लाने के लिए भेजा और उससे पूछा, "क्या तुमने फलां पेड़ की जड़ से इस ब्राह्मण के हजार टुकड़े लिए थे?" "मैंने नहीं लिए, हे ऋषि।" "तुम नहीं जानते कि मैं ज्ञानी सेनाक हूँ; मैं तुमसे वे टुकड़े वापस लाऊँगा।" वह डर गया और उसने स्वीकार किया, "मैंने उन्हें लिया था।" "तुमने क्या किया?" "मैंने उन्हें फलां जगह रख दिया, हे ऋषि।" बोधिसत्व ने पहले ब्राह्मण से पूछा, "हे ब्राह्मण, क्या तुम अपनी पत्नी को रखोगे या दूसरी से विवाह करोगे?" "हे ऋषि, मैं उसे ही रखूंगा।" बोधिसत्व ने अपने आदमियों को पत्नी और उसके टुकड़े लाने के लिए भेजा।और उसने ब्राह्मण को चोर के हाथ से छीने हुए टुकड़े दे दिए; उसने दूसरे को दंडित किया और उसे शहर से निकाल दिया, उसकी पत्नी को भी दंडित किया और ब्राह्मण को बहुत सम्मान देते हुए उसे अपने पास निवास स्थान दिया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के अंत में, कई लोगों ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की:- "उस समय ब्राह्मण आनंद थे, आत्मा सारिपुत्र थे, सभा बुद्ध के भिक्षुओं का संघ था, और बुद्धिमान सेनाक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 546

(2) एक पवित्र व्यक्ति जिसने संतत्व प्राप्त नहीं किया है।

(3)भाइयों, बहनों, गृहस्थ पुरुषों और गृहस्थ महिलाओं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **आथिसेन-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-403-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 403
अथिसेना-जातक

"अत्थिसेना, अनेक भिखारी," इत्यादि - गुरु ने यह बात अलवी के पास अग्गलावा नामक मंदिर में रहते हुए, कुटियाओं के निर्माण के नियमों के संबंध में कही थी। इस घटना का वर्णन ऊपर मणिकांत जन्म (*1) में मिलता है। गुरु ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भाइयों, बुद्ध के जन्म से पहले, अन्य तपस्वी मार्गों के भिक्षु, राजाओं द्वारा भिक्षा मांगने का अवसर दिए जाने पर भी, कभी भिक्षा नहीं मांगते थे, क्योंकि उनका मानना था कि दूसरों से भीख मांगना उचित या सुखद नहीं है।" इस प्रकार उन्होंने पुराने समय की कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनका नाम युवा अथिसेना रखा गया। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और बाद में कर्मों के कष्टों को देखकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। उच्चतर ज्ञान और सिद्धियों को प्राप्त करके वे हिमालय में दीर्घकालीन निवास करते रहे। फिर नमक और सिरका लेने के लिए वे मनुष्यों के बीच आए और बनारस पहुँचे। एक उद्यान में कुछ दिन बिताने के बाद वे अगले दिन राजा के दरबार में भीख मांगने पहुँचे। राजा उनके रूप और व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें अपने पास बुलाकर प्रांगण में बैठाया और उन्हें उत्तम भोजन कराया। बोधिसत्व का धन्यवाद पाकर राजा प्रसन्न हुए और उनसे प्रतिज्ञा लेकर उन्हें राज उद्यान में निवास करने का अधिकार दिया और प्रतिदिन दो-तीन बार उनकी सेवा में जाते रहे। एक दिन, उनके धर्मोपदेश से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें विकल्प देते हुए कहा, "जो कुछ भी तुम चाहो, मेरे राज्य से ही शुरुआत करो।" बोधिसत्व ने यह नहीं कहा, "मुझे फलां वस्तु दो।" दूसरे लोग अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी मांग लेते हैं, यह कहते हुए, "मुझे यह दो," और राजा उसे दे देता है, बशर्ते कि वह उससे आसक्त न हो। एक दिन राजा ने सोचा, "दूसरे दूल्हों और भिक्षुओं ने मुझसे फलां वस्तु मांगी; लेकिन श्रेष्ठ अथिसेना ने, जब से मैंने उन्हें विकल्प दिया है, कुछ नहीं मांगा; वे बुद्धिमान और चतुराई भरे उपायों में निपुण हैं: मैं उनसे ही मांगूंगा।" इसलिए एक दिन सुबह के भोजन के बाद वह एक तरफ बैठ गए, और उनसे यह पूछते हुए कि दूसरे लोग दूल्हों की ओर क्यों दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर दूल्हों की ओर से ...

अत्थिसेना में कई भिखारी हैं, हालांकि वे पूरी तरह से अजनबी हैं,
लोग अपनी याचिकाएं लेकर मेरे पास आते हैं: आप मुझसे कोई शिकायत क्यों नहीं करते?
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने दूसरा श्लोक कहा:-

न तो प्रस्ताव रखने वाला और न ही प्रस्ताव को अस्वीकार करने वाला व्यक्ति सुखद हो सकता है:
इसीलिए, क्रोधित मत होइए, मेरे पास आपके लिए कोई सूट नहीं है।
उनकी बातें सुनकर राजा ने तीन श्लोक कहे:-

जो व्यक्ति मुकदमेबाजी से अपना जीवन यापन करता है, और जिसने उचित समय पर मुकदमेबाजी नहीं की है,
योग्यता के मामले में एक बार फिर गिरावट आई, आजीविका कमाने में असफल रहा।
जो व्यक्ति मुकदमेबाजी से अपना जीवन यापन करता है, और जिसने उचित समय पर मुकदमेबाजी की है,
इससे दूसरे व्यक्ति को पुण्य मिलता है और खुद को जीविका कमाने का जरिया मिल जाता है।
बुद्धिमान पुरुष दूल्हों की भीड़ देखकर क्रोधित नहीं होते;
बोलिए, मेरे पवित्र मित्र; आप जो वरदान मांग रहे हैं वह कभी गलत नहीं हो सकता।
अतः बोधिसत्व ने राज्य चुनने का अवसर दिए जाने पर भी कोई निवेदन नहीं किया। जब राजा ने अपनी इच्छा व्यक्त की, तो बोधिसत्व ने उन्हें पुरोहितों का मार्ग दिखाते हुए कहा, "हे महाराज, ये निवेदन सांसारिक इच्छाओं वाले और गृहस्थों को भाते हैं, पुरोहितों को नहीं:

पुरोहितों को दीक्षा से ही गृहस्थों के विपरीत शुद्ध जीवन व्यतीत करना चाहिए।" और इस प्रकार पुरोहितों का मार्ग दिखाते हुए उन्होंने छठा श्लोक कहा:-

ज्ञानी लोग कभी निवेदन नहीं करते, योग्य गृहस्थों को यह जानना चाहिए:
नेक वरन् मौन खड़ा है: ऋषि भी इसी प्रकार प्रार्थना करते हैं।
बोधिसत्व की बातें सुनकर राजा ने कहा, "हे प्रभु, यदि ज्ञानवान सेवक अपने मित्र को वह देता है जो उसे देना चाहिए, तो मैं भी आपको अमुक वस्तु देता हूँ," और इस प्रकार उन्होंने सातवाँ श्लोक कहा:-

ब्राह्मण, मैं आपको एक हजार गायें भेंट करता हूँ।
  लाल गायें, मेहनती, झुंड की मुखिया:
आपके उन उदार कार्यों के बारे में अभी सुनकर,
  मुझे भी उदारतापूर्ण कार्यों की प्रेरणा मिलती है।
जब उन्होंने यह कहा, तो बोधिसत्व ने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "महाराज, मैंने निर्मल संन्यासी जीवन व्यतीत किया है; मुझे गायों की आवश्यकता नहीं है।" राजा ने उनकी सलाह मानकर, भिक्षावृत्ति और अन्य अच्छे कर्म करके स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया और अपनी ध्यान साधना से विचलित न होकर ब्रह्मलोक में जन्म लिया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के बाद कई लोग प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हुए:- "उस समय राजा आनंद थे, अत्तिसेना मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 253

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कपि-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-404-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 404
कापी-जातक। (*1)

"बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा नहीं करना चाहिए," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त के पृथ्वी में समा जाने की कहानी सुनाई। जब उन्होंने देखा कि भिक्षु इस विषय पर सत्य के हॉल में चर्चा कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा, "देवदत्त अपने साथियों के साथ पहली बार नष्ट नहीं हुए हैं: वे पहले ही नष्ट हो चुके हैं," और उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व बंदर के गर्भ से पैदा हुए और राजा के उद्यान में पाँच सौ बंदरों के साथ रहते थे। देवदत्त भी बंदर के गर्भ से पैदा हुए और पाँच सौ बंदरों के साथ वहीं रहते थे। एक दिन जब राजा के कुल पुरोहित उद्यान में स्नान करके सज-धज कर गए, तो एक चालाक बंदर उनके आगे-आगे चलकर उद्यान के प्रवेश द्वार के ऊपर बैठ गया और पुरोहित के बाहर निकलते समय उनके सिर पर मल गिरा दिया। जब पुरोहित ने ऊपर देखा, तो उसने फिर से मल उनके मुँह में गिरा दिया। पुरोहित ने मुड़कर बंदरों को धमकी देते हुए कहा, "ठीक है, मैं जानता हूँ कि तुमसे कैसे निपटना है," और स्नान करके चले गए। बंदरों ने बोधिसत्व को बताया कि वे क्रोधित थे और उन्होंने बंदरों को धमकाया था। उन्होंने हज़ार बंदरों से कहा, "क्रोधित व्यक्ति के निवास के पास रहना ठीक नहीं है; बंदरों का पूरा झुंड भागकर कहीं और चला जाए।" एक आज्ञा न मानने वाला बंदर अपने सेवकों के समूह को लेकर भागा नहीं और बोला, "मैं बाद में देख लूँगा।" बोधिसत्व अपने सेवकों के समूह को लेकर जंगल चले गए। एक दिन चावल कूट रही एक दासी

ने कुछ चावल धूप में रख दिए और एक बकरी उन्हें खा रही थी। मशाल से चोट लगने पर वह आग में जलते हुए भाग गई और हाथी के अस्तबल के पास एक घास की झोपड़ी की दीवार पर खुद को रगड़ रही थी। आग झोपड़ी में लग गई और उससे हाथी के अस्तबल तक पहुँच गई; उसमें हाथियों की पीठ जल गई और हाथी चिकित्सक हाथियों का इलाज कर रहे थे। कुलपुजारी हमेशा बंदरों को पकड़ने का मौका ढूंढता रहता था। वह राजा की सेवा में बैठा था और राजा ने कहा, "महाराज, हमारे कई हाथी घायल हो गए हैं और हाथी चिकित्सकों को उनका इलाज नहीं पता; क्या आपको कोई उपाय पता है?" "हाँ, महाराज।" "क्या है?" "बंदर की चर्बी, महाराज।" "यह हमें कैसे मिलेगी?" "बगीचे में बहुत सारे बंदर हैं।" राजा ने कहा, "बगीचे में बंदरों को मार डालो और उनकी चर्बी ले आओ।" तीरंदाज गए और उन्होंने तीरों से पाँच सौ बंदरों को मार डाला। एक बूढ़ा बंदर तीर से घायल होते हुए भी भाग गया, और यद्यपि वह मौके पर नहीं गिरा, लेकिन बोधिसत्व के निवास स्थान पर पहुँचकर गिर पड़ा। बंदरों ने कहा, "वह हमारे निवास स्थान पर पहुँचते ही मर गया," और बोधिसत्व को बताया कि वह एक घाव के कारण मर गया था। वह आया और बंदरों की सभा में बैठ गया, और बुद्धिमानों की सलाह से बंदरों को सलाह देते हुए ये श्लोक कहे, जो इस प्रकार हैं: "अपने शत्रुओं के निकट रहने वाले मनुष्य इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं:"

बुद्धिमान व्यक्ति को उस स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए जहाँ उसका प्रतिद्वंद्वी निवास करता है:
एक रात, दो रातें, इतनी नज़दीकी उसके लिए कष्ट लाएगी।
जो लोग मूर्ख की बात पर भरोसा करते हैं, वह उनका प्रतिद्वंद्वी होता है।
एक बंदर ने पूरे झुंड पर संकट ला दिया।
एक मूर्ख सरदार, जो अपने अहंकार में ही बुद्धिमान था।
यह बंदर हमेशा हराने के लिए आता है।
झुंड की रखवाली के लिए एक बलवान मूर्ख अच्छा नहीं होता।
उसके परिवार पर श्राप पड़े, जैसे किसी छलावे वाले पक्षी पर।
झुंड की रखवाली के लिए बलवान और बुद्धिमान व्यक्ति ही अच्छा होता है।
जैसे इंद्र देवताओं (देवदूतों) के लिए, अपने परिवार के लिए एक पुरस्कार थे।
जिनके पास सद्गुण, ज्ञान और विद्या थी,
उसके कर्मों से वह स्वयं और अन्य लोग भी आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।
इसलिए उसे सद्गुण, ज्ञान, विद्या और स्वयं का ध्यान रखना चाहिए।
या तो एक एकाकी संत बनो या फिर झुंड की रखवाली और सुरक्षा करो।
अतः बोधिसत्व ने वानरों का राजा बनकर, इस साधना को सीखने का तरीका समझाया।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय अवज्ञाकारी बंदर देवदत्त था, उसका दल देवदत्त की मंडली थी और बुद्धिमान राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) काकाजातक, सं. 140

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बका-ब्रह्म-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-405-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 405
बका-ब्रह्म-जातक

"बहत्तर," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) (*1) बका के विषय में यह कथा सुनाई। उनके मन में एक गलत धारणा उत्पन्न हुई, अर्थात्, "यह वर्तमान जीवन शाश्वत, स्थायी, अपरिवर्तनीय है; इसके बिना कोई मोक्ष (निर्वाण) या मुक्ति नहीं है।" पिछले जन्म में इस ब्रह्मा ने ध्यान का अभ्यास किया था, इसलिए उनका जन्म वेहप्पला स्वर्ग में हुआ था। वहाँ पाँच सौ कल्पों (कल्प = 4320 मिलियन वर्ष, अर्थात् ब्रह्मांड के विस्तार/बिग बैंग से संकुचन/पतन का एक पूर्ण चक्र) का जीवन व्यतीत करने के बाद, उनका

जन्म सुभकिन्न स्वर्ग में हुआ; वहाँ चौंसठ कल्पों के बाद उनका देहांत हुआ और उनका जन्म आभासर स्वर्ग में हुआ, जहाँ जीवन आठ कल्पों का होता है। वहीं उनके मन में यह गलत शिक्षा उत्पन्न हुई। वह भूल गया था कि वह उच्चतर ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) से आया था और उसी स्वर्ग में जन्मा था, और इन दोनों बातों को न जानते हुए उसने गलत धारणा बना ली थी। भगवान ने उसके विचारों को समझकर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला या मोड़ सकता है, उसी सहजता से जेतवन मठ से विलीन होकर उस ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में प्रकट हुए। ब्रह्मा (देवदूत) ने भगवान को देखकर कहा, "हे प्रभु, यहाँ आइए; आपका स्वागत है, हे प्रभु; हे प्रभु, आपने बहुत समय बाद यहाँ आने का अवसर लिया है; हे प्रभु, यह संसार शाश्वत है, यह स्थायी है, यह अनंत है, यह निरपेक्ष है, यह अपरिवर्तनीय है; यह संसार न जन्म लेता है, न क्षय होता है, न मरता है, न नष्ट होता है, न पुनर्जन्म लेता है: इस संसार के सिवा कोई अन्य मोक्ष नहीं है।" यह सुनकर भगवान ने बका ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) से कहा, "बका ब्रह्मा अज्ञान में डूब गया है, वह अज्ञान में डूब गया है, वह कहता है कि जो चीज स्थायी नहीं है वह स्थायी है, इत्यादि, और यह कि इस मोक्ष के सिवा कोई दूसरा मोक्ष नहीं है जबकि दूसरा मोक्ष (निर्वाण) है।" यह सुनकर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) ने सोचा, "यह तो मुझे बुरी तरह से परख रहा है, ठीक-ठीक जानना चाहता है कि मैं क्या कहता हूँ," और एक डरपोक चोर की तरह, कुछ मार खाने के बाद, कहता है, "क्या मैं अकेला चोर हूँ? फलाँ-फलाँ और फलाँ-फलाँ भी चोर हैं," अपने साथियों को दिखाते हुए; इसलिए, भगवान के प्रश्नों के भय से, यह दिखाते हुए कि अन्य उसके साथी हैं, उसने पहला श्लोक कहा:-

हे गौतम (बुद्ध), हम बहत्तर हैं।
हम धर्मी और महान हैं, जन्म और उम्र से स्वतंत्र हैं:
हमारा स्वर्ग ज्ञान का घर है, उससे ऊपर कुछ भी नहीं है:
और कई अन्य लोग भी इस दृष्टिकोण से सहमत होंगे।
उनकी बात सुनकर गुरु ने दूसरा श्लोक कहा:-

इस संसार में अपना जीवन छोटा करना गलत है।
बेवकूफ, यह सोचना कि यहाँ जीवन लंबा है:
एक लाख युग बीत गए
मैं आपके अस्तित्व के बारे में भलीभांति जानता हूँ।
यह सुनकर बाका ने तीसरा श्लोक बोला:-

हे प्रभु, मैं असीम ज्ञान का स्वामी हूँ।
जन्म, बुढ़ापा और दुःख, सब मेरे नीचे समाए हुए हैं:
मैंने बहुत पहले जो अच्छे काम किए थे, उनका मुझे क्या करना चाहिए?
फिर भी, हे प्रभु, मुझे कुछ ऐसा बताइए जो मुझे पता चले।
तब प्रभु ने उसे अतीत की बातें समझाते और दिखाते हुए चार श्लोक कहे:-

तुमने कई वृद्ध पुरुषों को शराब पिलाई
प्यास और भीषण सूखे से जूझते हुए डूबने के लिए तैयार:
बहुत समय पहले आपके उस नेक काम के लिए
मुझे याद आ रहा है, मानो नींद से जाग गया हो, मुझे पता है।
एनी के बैंक के जरिए आप लोगों को आजादी दिलाते हैं।
जब जंजीरों में बांधकर और तंग कैद में रखा जाता है:
बहुत समय पहले आपके उस नेक काम के लिए
मुझे याद आ रहा है, मानो नींद से जाग गया हो, मुझे पता है।
गंगा की धारा के किनारे तुमने उस आदमी को मुक्त किया था।
जिसकी नाव को नागों ने बेरहमी से छीन लिया था
देह की लालसा से, उसे पूरी शक्ति से बचाओ:
आपका वह पुण्य कर्म, जो आपने बहुत समय पहले किया था
मुझे याद आ रहा है, मानो नींद से जाग गया हो, मुझे पता है।
और मैं कप्पा था, आपका सच्चा शिष्य।
मैं केवल आपकी बुद्धिमत्ता और आपके सद्गुणों को ही जानता था:
और अब तुम्हारे वे पुराने कर्म
मुझे याद आ रहा है, मानो नींद से जाग गया हो, मुझे पता है।

गुरु के प्रवचन से अपने कर्मों का वर्णन सुनकर बाका ने धन्यवाद दिया और यह अंतिम श्लोक बोला:-

आप मेरे हर जीवन को जानते हैं:
आप बुद्ध हैं, समस्त ज्ञान निश्चित रूप से आपका है:
और निश्चित रूप से, आपके गौरवशाली महाराज और राज्य
यह ब्रह्म लोक भी प्रकाशित हो।
अतः गुरु ने बुद्ध के रूप में अपने गुणों को प्रकट करते हुए और धर्म की व्याख्या करते हुए सत्यों का उपदेश दिया। अंत में दस हजार ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के विचार आसक्ति और पापों से मुक्त हो गए। इस प्रकार भगवान अनेक ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के शरणस्थल बन गए और ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों का लोक) से लौटकर जेतवन मठ में वर्णित मार्ग का उपदेश देते हुए अपने जन्म का वर्णन किया: "उस समय ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) बका तपस्वी केशव थे और शिष्य कप्पा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)ब्रह्मा का अर्थ ब्रह्मलोक के स्वर्गों में से एक में स्थित प्रधान देवदूत है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गांधार-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----॥-406-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 406
गांधार जातक

“सोलह हज़ार से भरे गाँव,” इत्यादि—गुरु ने ये बातें जेतवन मठ में रहते हुए औषधियों के भंडारण के नियम के विषय में बताई थीं (*1)। यह घटना राजगृह नगर में घटी। जब पूज्य पिलिंडियावच्छ उद्यान रक्षक के परिवार को मुक्त कराने राजा के महल गए (*2), तो राजा ने जादुई शक्ति से महल को सोने का बना दिया। प्रसन्न होकर लोग उस वरिष्ठ भिक्षु के पास पाँच प्रकार की औषधियाँ लेकर आए। उन्होंने उन्हें भिक्षुओं के समूह में बाँट दिया। इस प्रकार भिक्षुओं के समूह के पास बहुत सी औषधियाँ हो गईं। जैसे-जैसे उन्हें औषधियाँ मिलती गईं, वे उन्हें बर्तनों, घड़ों और थैलों में भरकर एक तरफ रख देते गए। यह देखकर लोग आपस में बड़बड़ाने लगे, “ये लालची भिक्षु तो इन्हें अपने घरों में जमा कर रहे हैं।” यह सुनकर गुरु ने नियम बनाया, "बीमार भाइयों के लिए जो भी औषधियाँ प्राप्त हों, उन्हें सात दिनों के भीतर उपयोग कर लेना चाहिए," और कहा, "भाइयों, बुद्ध के प्रकट होने से पहले के प्राचीन ज्ञानी पुरुष, जो अन्य धर्मों में दीक्षित थे और केवल पाँच नियमों का पालन करते थे, उन लोगों को फटकारते थे जो अगले दिन के लिए नमक और चीनी भी बचाकर रखते थे; परन्तु तुम, जो मोक्ष (निर्वाण) के ऐसे मार्ग पर दीक्षित हो, दूसरे और तीसरे दिन के लिए भंडार रखते हो," और इस प्रकार उन्होंने प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट स्थित क्षेत्र) राज्य के राजा के पुत्र थे; अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और उन्होंने धर्मपरायणता से शासन किया।

मध्य क्षेत्र में, विदेह राज्य में उस समय विदेह नामक एक राजा शासन कर रहा था। इन दोनों राजाओं ने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा था, लेकिन वे मित्र थे और एक-दूसरे पर गहरा विश्वास रखते थे। उस समय मनुष्य दीर्घायु होते थे: उनका जीवन तीस हजार वर्ष का होता था। फिर एक बार, पूर्णिमा के व्रत के दिन, कंधार के राजा ने आज्ञाओं का व्रत लिया (*3), और अपने लिए तैयार किए गए राजसिंहासन के मध्य में बने चबूतरे पर, पूर्व दिशा की ओर खुली खिड़की से देखते हुए, अपने मंत्रियों को धर्ममार्ग के विषय पर प्रवचन दे रहे थे। उसी क्षण राहु (ग्रहण) ने पूर्णिमा के चंद्रमा के चेहरे को ढक लिया, जो आकाश में फैला हुआ था। चंद्रमा का प्रकाश गायब हो गया। मंत्रियों ने चंद्रमा की चमक न देखकर राजा से कहा कि चंद्रमा को राहु (ग्रहण) ने पकड़ लिया है। राजा ने चंद्रमा को देखते हुए सोचा, “उस चंद्रमा का प्रकाश किसी बाहरी विपत्ति से क्षतिग्रस्त होकर फीका पड़ गया है; अब मेरे शाही सेवकों का समूह ही मेरे लिए विपत्ति बन गया है, और यह उचित नहीं कि मैं राहु (ग्रहण) से प्रभावित चंद्रमा की तरह अपना प्रकाश खो दूं: मैं अपने राज्य को निर्मल आकाश में चमकते चंद्रमा के समान त्याग दूंगा और तपस्वी बन जाऊंगा: मुझे किसी और को सलाह क्यों देनी चाहिए? मैं परिवार और लोगों से विरक्त

होकर, केवल स्वयं को अनुशासित करूंगा: यही मेरे लिए उचित है।" अतः उन्होंने कहा, "जैसा आप चाहें वैसा करें," और राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया। कश्मीर और गांधार (कंधार) के दो राज्यों में अपना राज्य त्यागने के बाद, उन्होंने संन्यासी जीवन व्यतीत किया, और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके हिमालय क्षेत्र में वर्षाकाल ध्यान में लीन रहे। विदेह के राजा ने व्यापारियों से पूछा, "क्या मेरे मित्र का हालचाल है?" जब उसने सुना कि उसने संन्यासी जीवन अपना लिया है, तो उसने सोचा, "जब मेरे मित्र ने संन्यासी जीवन अपना लिया है, तो मैं अपने राज्य का क्या करूँ?" इसलिए उसने अपने सात मील (x 4.23 किमी) के नगर मिथिला और तीन सौ मील (x 4.23 किमी) के विदेह राज्य, जिसमें सोलह हजार गाँव, भरे हुए भंडारगृह और सोलह हजार नर्तकियाँ थीं, का शासन त्याग दिया। अपने पुत्र-पुत्रियों की परवाह किए बिना वह हिमालय क्षेत्र में चला गया और संन्यासी जीवन अपना लिया। वहाँ वह केवल फल खाकर शांत अवस्था में रहा। बाद में दोनों इस शांत जीवन का अनुसरण करते हुए मिले, लेकिन एक-दूसरे को पहचान नहीं पाए; फिर भी वे इस शांत जीवन में मित्रतापूर्वक साथ रहे। विदेह के संन्यासी ने गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के संन्यासी की सेवा की। पूर्णिमा के दिन जब वे एक पेड़ की जड़ में बैठकर धर्म से संबंधित विषयों पर चर्चा कर रहे थे, तभी राहु (ग्रहण) ने आकाश में चमकते हुए चंद्रमा के चेहरे को ढक लिया। विदेह के तपस्वी ने ऊपर देखते हुए कहा, "चंद्रमा का प्रकाश क्यों नष्ट हो गया?" और यह देखकर कि राहु (ग्रहण) ने उसे पकड़ लिया है, उन्होंने पूछा, "गुरुजी, उसने चंद्रमा को क्यों ढक दिया है और उसे अंधकारमय कर दिया है?" "विद्वान,चंद्रमा की एक ही समस्या है, जिसे राहु (ग्रहण) के नाम से जाना जाता है; वह इसे चमकने से रोकता है: मैंने राहु (ग्रहण) से प्रभावित चंद्रमा का चेहरा देखकर सोचा, "देखो, चंद्रमा का पवित्र चेहरा बाहरी विपत्ति से अंधकारमय हो गया है; अब यह राज्य मेरे लिए विपत्ति है: मैं संन्यासी जीवन धारण करूँगा ताकि यह राज्य मुझे राहु (ग्रहण) की तरह अंधकारमय न कर दे": और इसलिए राहु (ग्रहण) से प्रभावित चंद्रमा के चेहरे को अपना विषय बनाकर, मैंने अपना महान राज्य त्याग दिया और संन्यासी जीवन धारण कर लिया।" "गुरुजी, क्या आप गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा थे?" "हाँ, मैं था।" "गुरुजी, मैं विदेह राज्य और मिथिला नगर में विदेह का राजा था: क्या हम मित्र नहीं थे, यद्यपि हमने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा?" "आपका विषय क्या था?" "मैंने सुना था कि आपने संन्यासी जीवन धारण कर लिया है और यह सोचकर, "निश्चित रूप से उन्होंने उस जीवन का लाभ देखा होगा," मैंने आपको अपना विषय बनाया, और अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन धारण कर लिया।" उस समय वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत थे, और केवल फल खाकर ही जीवन यापन करते थे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे हिमालय से नमक और सिरका लेने के लिए नीचे आए और एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी। उन्होंने वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर आदि बनवाए और उन्हें वहाँ ठहराया। उन्होंने सड़क के किनारे एक सुखद जलयुक्त स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा भी बनवाया। सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने के बाद, वे पत्तों की उस झोपड़ी में बैठकर भिक्षा ग्रहण करते और फिर अपने निवास स्थान पर चले जाते। एक दिन भोजन देने वाले लोगों ने उन्हें एक पत्ते पर नमक लगाकर दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने उन्हें पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में ले लिया। फिर शेष नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के गट्ठे में लपेटकर उन्होंने कहा, "यह बिना नमक वाले दिन के लिए पर्याप्त है।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन प्राप्त हुआ, तो विदेह के एक व्यक्ति ने गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के व्यक्ति को भिक्षा देते हुए घास के गट्ठे से नमक निकाला और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, आपको यह कहाँ से मिला?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और सोचा, 'यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।'" तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, तुमने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन अपनाया और मोह से मुक्ति प्राप्त की, और अब तुम्हें नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-"बाहरी विपत्तियों से चंद्रमा का निर्मल चेहरा अंधकारमय हो गया है; अब यह राज्य मेरे लिए विपत्ति बन गया है: मैं संन्यासी जीवन व्यतीत करूँगा ताकि यह राज्य मुझे राहु (ग्रहण) के समान अंधकारमय न कर दे, जैसे राहु चंद्रमा के चेहरे को अंधकारमय कर देता है।" "गुरुजी, क्या आप गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा थे?" "हाँ, मैं था।" "गुरुजी, मैं विदेह राज्य और मिथिला नगर में विदेह का राजा था: क्या हम मित्र नहीं थे, यद्यपि हमने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा?" "आपका क्या विचार था?" "मैंने सुना था कि आपने संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया है और यह सोचकर, 'निश्चित रूप से उन्होंने उस जीवन का लाभ देखा होगा,' मैंने आपको अपना विचार बनाया और अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया।" उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर ही जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे हिमालय से नमक और सिरका लेने के लिए एक व्यक्ति आया और सीमावर्ती गाँव में पहुँचा। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी। उन्होंने वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर और इसी तरह की अन्य व्यवस्थाएँ करवाईं और उन्हें वहाँ ठहराया। उन्होंने सड़क के किनारे एक सुंदर, पानी से भरे स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा भी बनवाया। सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने के बाद, वे पत्तों की उस झोपड़ी में बैठकर भिक्षा ग्रहण करते और फिर अपने निवास स्थान पर चले जाते। एक दिन भोजन देने वाले लोगों ने उन्हें एक पत्ते पर नमक लगाकर दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने उन्हें पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में नमक रख लिया। फिर शेष नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के गट्ठे में लपेटकर उन्होंने कहा, "यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन प्राप्त हुआ, तो विदेह के उस व्यक्ति ने भिक्षा का

भोजन वापस देते हुए कहा, "यह बिना नमक वाले दिन के लिए पर्याप्त है।" गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के एक व्यक्ति ने घास के गट्ठे से नमक उठाया और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, आपको यह कहाँ से मिला?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और सोचा, 'यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।'" तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, आपने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन अपनाया और मोह से मुक्ति प्राप्त की, और अब आपको नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-"बाहरी विपत्तियों से चंद्रमा का निर्मल चेहरा अंधकारमय हो गया है; अब यह राज्य मेरे लिए विपत्ति बन गया है: मैं संन्यासी जीवन व्यतीत करूँगा ताकि यह राज्य मुझे राहु (ग्रहण) के समान अंधकारमय न कर दे, जैसे राहु चंद्रमा के चेहरे को अंधकारमय कर देता है।" "गुरुजी, क्या आप गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा थे?" "हाँ, मैं था।" "गुरुजी, मैं विदेह राज्य और मिथिला नगर में विदेह का राजा था: क्या हम मित्र नहीं थे, यद्यपि हमने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा?" "आपका क्या विचार था?" "मैंने सुना था कि आपने संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया है और यह सोचकर, 'निश्चित रूप से उन्होंने उस जीवन का लाभ देखा होगा,' मैंने आपको अपना विचार बनाया और अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया।" उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर ही जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे हिमालय से नमक और सिरका लेने के लिए एक व्यक्ति आया और सीमावर्ती गाँव में पहुँचा। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी। उन्होंने वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर और इसी तरह की अन्य व्यवस्थाएँ करवाईं और उन्हें वहाँ ठहराया। उन्होंने सड़क के किनारे एक सुंदर, पानी से भरे स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा भी बनवाया। सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने के बाद, वे पत्तों की उस झोपड़ी में बैठकर भिक्षा ग्रहण करते और फिर अपने निवास स्थान पर चले जाते। एक दिन भोजन देने वाले लोगों ने उन्हें एक पत्ते पर नमक लगाकर दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने उन्हें पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में नमक रख लिया। फिर शेष नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के गट्ठे में लपेटकर उन्होंने कहा, "यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन प्राप्त हुआ, तो विदेह के उस व्यक्ति ने भिक्षा का भोजन वापस देते हुए कहा, "यह बिना नमक वाले दिन के लिए पर्याप्त है।" गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के एक व्यक्ति ने घास के गट्ठे से नमक उठाया और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, आपको यह कहाँ से मिला?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और सोचा, 'यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।'" तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, आपने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन अपनाया और मोह से मुक्ति प्राप्त की, और अब आपको नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-मैंने अपना महान राज्य त्याग दिया और संन्यासी जीवन व्यतीत किया। "गुरुजी, क्या आप गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा थे?" "हाँ, मैं था।" "गुरुजी, मैं विदेह राज्य और मिथिला नगर में विदेह का राजा था: क्या हम मित्र नहीं थे, यद्यपि हमने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा?" "आपका क्या विचार था?" "मैंने सुना था कि आपने संन्यासी जीवन व्यतीत किया है और यह सोचकर कि 'निश्चित रूप से उन्होंने उस जीवन का लाभ देखा होगा', मैंने आपको अपना आदर्श बनाया और अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया।" उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर जीवन यापन करने लगे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे नमक और सिरका लेने के लिए हिमालय से नीचे आए और एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी और उनसे वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर आदि बनवाए और उन्हें वहाँ ठहराया, और सड़क के किनारे एक सुखद जलयुक्त स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा बनवाया। वे अपने चक्कर लगाने के बाद सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने वाले एक तपस्वी ने पत्तों की झोपड़ी में बैठकर भिक्षा ग्रहण की और फिर अपने निवास स्थान पर चले गए। एक दिन भोजन देने वालों ने एक पत्ते पर नमक लगाकर उन्हें दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में रख लिया। फिर बचे हुए नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के गट्ठे में लपेटकर कहा, "यह एक दिन बिना नमक के काम चल जाएगा।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन मिला, तो विदेह के तपस्वी ने गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के तपस्वी को भिक्षा देते हुए घास के गट्ठे से नमक निकाला और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" तपस्वी ने कहा, "आज तो लोगों ने नमक नहीं दिया, यह कहाँ से मिला?" तपस्वी ने कहा, "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब जो बच गया था, मैंने उसे रख लिया और कहा, 'यह एक दिन बिना नमक के काम चल जाएगा।'" दिन।" "तब बोधिसत्व ने उसे फटकारते हुए कहा, "हे मूर्ख, तूने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन व्यतीत किया और आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त की, और अब तुझे नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-मैंने अपना महान राज्य त्याग दिया और संन्यासी जीवन व्यतीत किया। "गुरुजी, क्या आप गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के राजा थे?" "हाँ, मैं था।" "गुरुजी, मैं विदेह राज्य और मिथिला नगर में विदेह का राजा था: क्या हम मित्र नहीं थे, यद्यपि हमने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा?" "आपका क्या विचार था?" "मैंने सुना था कि आपने संन्यासी जीवन व्यतीत किया है और यह सोचकर कि 'निश्चित रूप से उन्होंने उस जीवन का लाभ देखा होगा', मैंने आपको अपना आदर्श बनाया और अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया।"

उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर जीवन यापन करने लगे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे नमक और सिरका लेने के लिए हिमालय से नीचे आए और एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी और उनसे वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर आदि बनवाए और उन्हें वहाँ ठहराया, और सड़क के किनारे एक सुखद जलयुक्त स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा बनवाया। वे अपने चक्कर लगाने के बाद सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने वाले एक तपस्वी ने पत्तों की झोपड़ी में बैठकर भिक्षा ग्रहण की और फिर अपने निवास स्थान पर चले गए। एक दिन भोजन देने वालों ने एक पत्ते पर नमक लगाकर उन्हें दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में रख लिया। फिर बचे हुए नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के गट्ठे में लपेटकर कहा, "यह एक दिन बिना नमक के काम चल जाएगा।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन मिला, तो विदेह के तपस्वी ने गांधार (कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) के तपस्वी को भिक्षा देते हुए घास के गट्ठे से नमक निकाला और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" तपस्वी ने कहा, "आज तो लोगों ने नमक नहीं दिया, यह कहाँ से मिला?" तपस्वी ने कहा, "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब जो बच गया था, मैंने उसे रख लिया और कहा, 'यह एक दिन बिना नमक के काम चल जाएगा।'" दिन।" "तब बोधिसत्व ने उसे फटकारते हुए कहा, "हे मूर्ख, तूने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन व्यतीत किया और आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त की, और अब तुझे नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-
उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर ही जीवन यापन करते थे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे हिमालय से नमक और सिरका लेने आए और एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी। उन्होंने वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर आदि बनवाए और उन्हें वहाँ ठहराया। उन्होंने सड़क के किनारे एक सुखद जलयुक्त स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा भी बनवाया। सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने के बाद, वे पत्तों की उस झोपड़ी में बैठकर भिक्षा खाते और फिर अपने निवास स्थान पर चले जाते। एक दिन भोजन देने वाले लोगों ने उन्हें एक पत्ते पर नमक लगाकर दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने उन्हें पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में ले लिया। फिर शेष नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के एक लोथड़े में लपेटकर उन्होंने कहा, "यह बिना नमक के भोजन के लिए पर्याप्त है।" दिन।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन प्राप्त हुआ, तो विदेह के उस व्यक्ति ने गांधार (अफगानिस्तान और पाकिस्तान के पास, कंधार सहित) के व्यक्ति को भिक्षा देते हुए घास के गट्ठे से नमक निकाला और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, आपको यह कहाँ से मिला?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और कहा, 'यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।' "तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, तुमने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन अपनाया और आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त की, और अब तुम्हें नमक और चीनी की लालसा होती है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-उस समय से वे अत्यंत घनिष्ठ और मित्रवत हो गए और केवल फल खाकर ही जीवन यापन करते थे। वहाँ लंबे समय तक रहने के बाद वे हिमालय से नमक और सिरका लेने आए और एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग उनके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षा दी। उन्होंने वादा लेकर जंगल में उनके लिए रात के लिए घर आदि बनवाए और उन्हें वहाँ ठहराया। उन्होंने सड़क के किनारे एक सुखद जलयुक्त स्थान पर भोजन करने के लिए एक कमरा भी बनवाया। सीमावर्ती गाँव में भिक्षा मांगने के बाद, वे पत्तों की उस झोपड़ी में बैठकर भिक्षा खाते और फिर अपने निवास स्थान पर चले जाते। एक दिन भोजन देने वाले लोगों ने उन्हें एक पत्ते पर नमक लगाकर दिया, दूसरे दिन बिना नमक का भोजन दिया। एक दिन उन्होंने उन्हें पत्तों की टोकरी में बहुत सारा नमक दिया। विदेह के तपस्वी ने नमक लिया और भोजन के समय बोधिसत्व को पर्याप्त नमक दिया और अपने लिए भी उचित मात्रा में ले लिया। फिर शेष नमक को पत्तों की टोकरी में भरकर घास के एक लोथड़े में लपेटकर उन्होंने कहा, "यह बिना नमक के भोजन के लिए पर्याप्त है।" दिन।" फिर एक दिन जब बिना नमक का भोजन प्राप्त हुआ, तो विदेह के उस व्यक्ति ने गांधार (अफगानिस्तान और पाकिस्तान के पास, कंधार सहित) के व्यक्ति को भिक्षा देते हुए घास के गट्ठे से नमक निकाला और कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, आपको यह कहाँ से मिला?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और कहा, 'यह बिना नमक वाले दिन के लिए काफी है।' "तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, तुमने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन अपनाया और आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त की, और अब तुम्हें नमक और चीनी की लालसा होती है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-घास के गट्ठे से नमक लेकर उसने कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, ये कहाँ से लाया?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और सोचा, 'इससे आज बिना नमक के काम चल जाएगा।'" तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, तूने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन व्यतीत किया और मोह से मुक्ति पाई, और अब तुझे नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-घास के गट्ठे से नमक लेकर उसने कहा, "गुरुजी, नमक लीजिए।" "आज लोगों ने नमक नहीं दिया, ये कहाँ से लाया?" "गुरुजी, लोगों ने एक दिन पहले बहुत नमक दिया था: तब मैंने बचा हुआ नमक रख लिया और सोचा, 'इससे आज बिना नमक के काम चल जाएगा।'" तब बोधिसत्व ने उसे डांटते हुए कहा, "हे मूर्ख, तूने तीन सौ मील (4.23 किमी) के विदेह राज्य को त्याग दिया, संन्यासी जीवन व्यतीत किया

और मोह से मुक्ति पाई, और अब तुझे नमक और चीनी की लालसा हो रही है।" और इस प्रकार उसे सलाह देते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

तुमने सोलह हजार लोगों से भरे गांवों को उनकी संपत्ति समेत लुटा दिया।
धन-संपन्न खजाने: और आप आज यहां धन का भंडार जमा कर रहे हैं!
इस प्रकार उपदेश सुनकर विदेह डांट सहन नहीं कर सका और विमुख होकर बोला, "गुरुजी, आप मेरी गलती देखते हैं, अपनी नहीं; क्या आपने अपना राज्य छोड़कर संन्यासी नहीं बन गए थे, यह कहते हुए कि "मैं किसी और को क्यों सलाह दूं? मैं स्वयं ही अपना अनुशासन संभाल लूंगा": तो फिर अब आप मुझे क्यों सलाह दे रहे हैं?" इस प्रकार उसने दूसरा श्लोक कहा:-

कंधार और उसके पूरे प्रांत, उसकी सारी संपत्ति, तुमने सब कुछ त्याग दिया।
अब और कोई शाही आदेश नहीं देना: और तुम आज मुझे आदेश दे रहे हो!
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने तीसरा श्लोक कहा:-

मैं धर्म की बात कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे अधर्म से घृणा है।
जब मैं धार्मिकता की बात करता हूँ, तो पाप मुझ पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता।
विदेह के तपस्वी ने बोधिसत्व के वचन सुनकर कहा, "गुरुजी, किसी को नाराज़ और क्रोधित करने के बाद बोलना उचित नहीं है, भले ही आप सही बात कह रहे हों: आप मुझसे बहुत कठोर शब्दों में बात कर रहे हैं, मानो मुझे कुंद लोहे से काट रहे हों," और इस प्रकार उन्होंने चौथा श्लोक कहा:-

जो भी शब्द बोले जाने पर दूसरों को ठेस पहुंचाते हों,
बुद्धिमान लोग उन शब्दों को अनकहा छोड़ देते हैं, हालांकि उनका महत्व बहुत अधिक होता है।
तब बोधिसत्व ने पाँचवाँ श्लोक कहा:-

चाहे मेरा श्रोता तुच्छ बातों को उजागर करे या न करे, वह नाराज हो या न हो।
जब मैं बोल रहा होता हूँ तो धार्मिकता मुझ पर कोई दाग नहीं छोड़ सकती।
ऐसा कहकर उन्होंने आगे कहा, "हे आनंद (*4) मैं तुम्हारे साथ केवल कच्ची मिट्टी से काम करने वाले कुम्हार की तरह काम नहीं करूँगा: मैं बार-बार फटकार लगाऊँगा; सत्य क्या है, वह अटल रहेगा।" और इस प्रकार भगवान बुद्ध की उस सलाह के अनुरूप आचरण में समर्पित होकर, जैसे कुम्हार अपने बर्तनों में से कच्ची मिट्टी को बार-बार पीटने के बाद केवल पके हुए बर्तन को ही लेता है, वैसे ही बार-बार उपदेश और फटकार लगाते हुए वे एक व्यक्ति को अच्छे बर्तन के समान लेते हैं, और उसे यह दिखाने के लिए उपदेश देते हुए उन्होंने श्लोकों की यह जोड़ी कही:-

यदि कुछ लोगों के जीवन में ज्ञान और अच्छे आचरण को विकसित होने के लिए प्रशिक्षित न किया जाता,
बहुत से लोग अंधे भैंस की तरह व्यर्थ ही भटकते रहते थे।
लेकिन चूंकि कुछ लोगों को नैतिक आचरण में बुद्धिमानी से प्रशिक्षित किया जाता है, जो विकास के लिए उचित है,
इस प्रकार, जो लोग सद्गुणों के मार्ग पर अनुशासित होकर चलते हैं, वे भी उसी राह पर आगे बढ़ते हैं।
यह सुनकर विदेह तपस्वी ने कहा, "गुरुजी, अब से मुझे फटकारें; मैंने आपसे चिड़चिड़े स्वभाव से बात की, मुझे क्षमा करें।" इस प्रकार आदरपूर्वक उन्होंने बोधिसत्व की क्षमा प्राप्त कर ली। अतः वे शांतिपूर्वक साथ रहे और फिर हिमालय चले गए। तब बोधिसत्व ने विदेह तपस्वी को रहस्यवादी ध्यान की विधि बताई। उन्होंने ऐसा किया और उच्चतर शक्तियों और उपलब्धियों को प्राप्त किया। इस प्रकार दोनों ने निरंतर ध्यान करते हुए ब्रह्मलोक के लिए नियति का मार्ग चुना।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म का विवरण दिया: "उस समय विदेह तपस्वी आनंद थे, और गांधार (कंधार) के राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)महावग्ग vi. 15. 10

(2)महावग्ग vi. 15. 1 देखें

(3) पाँच नैतिक नियमों का पालन करने की प्रतिज्ञा।

(4) तपस्वी को इस नाम से संबोधित किया जाता है, मानो आनंद के रूप में उनके भविष्य के पुनर्जन्म की भविष्यवाणी की गई हो।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महाकपि-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-407-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 407
महाकपी-जातक

"तुमने स्वयं को बनाया," इत्यादि—गुरु ने ये बातें जेतवन मठ में रहते हुए अपने सगे-संबंधियों के प्रति सत्कार के विषय में कही थीं। इस घटना का वर्णन भद्दसला जन्म (*1) में मिलेगा। वे सत्य के हॉल में चर्चा करने लगे, "परम बुद्ध अपने सगे-संबंधियों के प्रति सत्कार करते हैं।" जब गुरु ने उनसे विषय पूछा और उन्हें बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि तथागत (बुद्ध) ने अपने सगे-संबंधियों के प्रति सत्कार किया हो," और फिर उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक बंदर के गर्भ से हुआ। जब वे बड़े हुए और तंदुरुस्त हुए, तो वे बलवान और शक्तिशाली हो गए और हिमालय में अस्सी हजार बंदरों के एक दल के साथ रहते थे। गंगा के किनारे एक आम का पेड़ था (कुछ लोग कहते हैं कि यह बरगद का पेड़ था), जिसकी शाखाएँ और शाखाएँ घनी थीं, और घनी छाया और घने पत्ते थे, मानो किसी पर्वत की चोटी हो। इसके मीठे फल, दिव्य सुगंध और स्वाद से भरपूर, घड़े जितने बड़े थे: एक शाखा से फल जमीन पर गिरते थे, एक गंगा के पानी में, और दो पेड़ के मुख्य तने पर। बोधिसत्व बंदरों के एक दल के साथ फल खाते हुए सोच रहे थे, "एक दिन इस पेड़ के फल के पानी में गिरने से हम पर खतरा आएगा"; इसलिए, पानी के ऊपर उगी शाखा पर एक भी फल न छोड़ने के लिए, उन्होंने बंदरों को चने के आकार के होने पर ही, उनके मौसम के अनुसार फूल खाने या नीचे फेंकने के लिए कहा। लेकिन फिर भी, एक पका हुआ फल, जो अस्सी हज़ार बंदरों की नज़रों से बचकर चींटियों के घोंसले में छिपा हुआ था, नदी में गिर गया और बनारस के राजा के ऊपर लगे जाल में फंस गया। राजा मनोरंजन के लिए ऊपर और नीचे जाल बिछाकर स्नान कर रहे थे। जब राजा दिन भर मनोरंजन करने के बाद शाम को जाने लगे, तो जाल समेट रहे मछुआरों ने उस फल को देखा और यह न जानते हुए कि वह क्या है, राजा को समझाया। राजा ने पूछा, "यह कौन सा फल है?" "महाराज, हमें नहीं पता।" "किसे पता चलेगा?" "वनपालों को, महाराज।" उन्होंने वनपालों को बुलवाया और उनसे यह जानकर कि यह एक आम है, उन्होंने उसे चाकू से काटा और पहले वनपालों को खिलाया, फिर स्वयं खाया और कुछ अपने हरम और मंत्रियों को भी दिया। पके आम का स्वाद राजा के पूरे शरीर में बसा रहा। स्वाद की लालसा से व्याकुल होकर उन्होंने वनपालों से पूछा कि वह वृक्ष कहाँ स्थित है। यह जानकर कि वह हिमालयी क्षेत्र में एक नदी के किनारे पर है, उन्होंने कई नौकाओं को जोड़कर वनपालों द्वारा बताए गए मार्ग से नदी के ऊपर की ओर प्रस्थान किया। दिनों का सटीक विवरण नहीं दिया गया है। उचित समय पर वे उस स्थान पर पहुँचे और वनपालों ने राजा से कहा, "महाराज, वह रहा वृक्ष।" राजा ने नौकाओं को रोक दिया और अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर पैदल चले और वृक्ष के नीचे एक पलंग तैयार करवाकर आम खाने और उसके विभिन्न उत्तम स्वादों का आनंद लेने के बाद लेट गए। दोनों ओर पहरेदार तैनात किए गए और आग जलाई गई। जब सेवक सो गए, आधी रात को बोधिसत्व अपने सेवकों के साथ सो रहे थे। अस्सी हज़ार बंदर डालियों पर चढ़कर आम खा रहे थे। राजा जागकर बंदरों के झुंड को देखकर अपने सैनिकों को जगाया और अपने धनुर्धारियों को बुलाकर कहा, "आम खाने वाले इन बंदरों को घेर लो ताकि वे भाग न सकें और उन्हें मार गिराओ: कल हम बंदरों के मांस के साथ आम खाएंगे।" धनुर्धारियों ने आज्ञा का पालन करते हुए कहा, "ठीक है।"और पेड़ के चारों ओर तीर तैयार करके खड़े थे। बंदरों ने उन्हें देखकर और मृत्यु से भयभीत होकर, क्योंकि वे भाग नहीं सकते थे, बोधिसत्व के पास आकर कहा, "हे प्रभु, तीरंदाज पेड़ के चारों ओर खड़े हैं और कह रहे हैं, 'हम उन भटकते बंदरों को मार गिराएंगे:' हम क्या करें?" और कांपते हुए खड़े रहे। बोधिसत्व ने कहा, "डरो मत, मैं तुम्हें जीवन दूंगा;" और बंदरों के झुंड को दिलासा देते हुए, वे एक सीधी शाखा पर चढ़ गए, फिर गंगा की ओर फैली दूसरी शाखा पर चले गए, और उसके अंत से छलांग लगाकर सौ धनुष की लंबाई पार कर नदी के किनारे एक झाड़ी पर उतरे (*2)। नीचे आकर, उन्होंने दूरी का अनुमान लगाते हुए कहा, "यह वह दूरी है जो मैंने तय की है:" और एक बांस के अंकुर को जड़ से काटकर और उसे छीलते हुए कहा, "इतना भाग पेड़ से बंधा रहेगा, और इतना भाग हवा में रहेगा," और इस प्रकार दोनों लंबाई को नापा, अपनी कमर पर बंधे हुए भाग को भूलकर। अंकुर को लेकर उन्होंने एक छोर बांध दिया उसने एक धनुष गंगा तट पर स्थित वृक्ष से और दूसरा अपनी कमर से बाँध लिया, और फिर हवा से चीरे हुए बादल की गति से सौ धनुषों की दूरी तय कर ली। कमर से बाँधे हुए धनुष को नापने के कारण वह वृक्ष तक नहीं पहुँच पाया: इसलिए उसने दोनों हाथों से एक शाखा को मजबूती से

पकड़कर बंदरों के झुंड को संकेत दिया, "जल्दी जाओ, मेरी पीठ पर बाँस के अंकुर के सहारे चलते हुए।" अस्सी हजार बंदर बोधिसत्व को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर भाग गए। देवदत्त उस झुंड में एक बंदर था: उसने कहा, "यह मेरे लिए अपने शत्रु को अंतिम रूप से देखने का मौका है," इसलिए एक शाखा पर चढ़कर उसने छलांग लगाई और बोधिसत्व की पीठ पर गिर पड़ा। बोधिसत्व का हृदय टूट गया और उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। देवदत्त उस असहनीय पीड़ा को उत्पन्न करके चला गया: और बोधिसत्व अकेले रह गए। राजा जागते हुए बंदरों और बोधिसत्व द्वारा किए गए सभी कार्यों को देख रहा था: और वह सोचते हुए लेट गया, "इस जानवर ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए अपने समूह की सुरक्षा खतरे में डाल दी है।" जब सूर्योदय हुआ, तो बोधिसत्व से प्रसन्न होकर उसने सोचा, "इस वानरों के राजा को मारना उचित नहीं है: मैं इसे किसी तरह नीचे लाऊंगा और इसकी देखभाल करूंगा।" अतः उसने गंगा में बेड़ा मोड़कर वहाँ एक चबूतरा बनाया और बोधिसत्व को धीरे से नीचे उतारा, और उनकी पीठ पर पीले रंग का वस्त्र पहनाकर उन्हें गंगाजल से नहलाया, उन्हें मीठा जल पिलाया और उनके शरीर को हजार बार शुद्ध किए गए तेल से शुद्ध किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल लगी चमड़ी बिछाई और उन्हें उस पर लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठकर प्रथम श्लोक बोला:-मैं तुम्हें जीवन दूंगा;" और इस प्रकार बंदरों के झुंड को दिलासा देते हुए, वह एक सीधी शाखा पर चढ़ गया, फिर गंगा की ओर फैली दूसरी शाखा पर चला गया, और उसके अंत से छलांग लगाकर सौ धनुष की लंबाई पार कर किनारे पर एक झाड़ी पर उतर गया (*2)। नीचे आकर उसने दूरी का अनुमान लगाते हुए कहा, "यह वह दूरी है जो मैंने तय की है:" और एक बांस के अंकुर को जड़ से काटकर और उसे छीलकर उसने कहा, "इतना भाग पेड़ से बंधा रहेगा, और इतना हवा में रहेगा," और इस प्रकार उसने दोनों लंबाई नापीं, अपनी कमर पर बंधे भाग को भूलकर। उसने अंकुर को लेकर उसका एक सिरा गंगा किनारे के पेड़ से और दूसरा अपनी कमर से बांध लिया, और फिर हवा से चीरे हुए बादल की गति से सौ धनुष की लंबाई की दूरी तय कर ली। अपनी कमर पर बंधे भाग को न नापने के कारण वह पेड़ तक नहीं पहुंच पाया: इसलिए उसने दोनों हाथों से एक शाखा को मजबूती से पकड़कर बंदरों के झुंड को संकेत दिया, "जल्दी जाओ, मेरी पीठ पर पैर रखकर।" बाँस की टहनी।" अस्सी हज़ार बंदर बोधिसत्व को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर भाग निकले। देवदत्त उस झुंड में एक बंदर था: उसने कहा, "यह मेरे लिए अपने शत्रु को अंतिम रूप से देखने का मौका है," इसलिए वह एक शाखा पर चढ़कर उछला और बोधिसत्व की पीठ पर गिर पड़ा। बोधिसत्व का हृदय टूट गया और उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। देवदत्त उस असहनीय पीड़ा को उत्पन्न करके चला गया: और बोधिसत्व अकेले रह गए। जागते हुए राजा ने बंदरों और बोधिसत्व द्वारा किए गए सभी कार्यों को देखा: और वह यह सोचते हुए लेट गया, "इस जानवर ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए अपने झुंड की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है।" जब दिन निकला, तो बोधिसत्व से प्रसन्न होकर उसने सोचा, "बंदरों के इस राजा को नष्ट करना उचित नहीं है: मैं उसे किसी तरह नीचे लाऊंगा और उसका ध्यान रखूंगा:" इसलिए उसने गंगा में बेड़ा मोड़ा और वहाँ एक चबूतरा बनाया, और बोधिसत्व को वहाँ लिटाया। धीरे से नीचे आकर, उसने उसे पीले रंग का वस्त्र पहनाया और गंगाजल से स्नान कराया, उसे मीठा जल पिलाया, और उसके शरीर को शुद्ध करके हजार बार शुद्ध किए गए तेल से लेप किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल लगी मशक रखी और उसे उस पर लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया, और पहला श्लोक बोला:-मैं तुम्हें जीवन दूंगा;" और इस प्रकार बंदरों के झुंड को दिलासा देते हुए, वह एक सीधी शाखा पर चढ़ गया, फिर गंगा की ओर फैली दूसरी शाखा पर चला गया, और उसके अंत से छलांग लगाकर सौ धनुष की लंबाई पार कर किनारे पर एक झाड़ी पर उतर गया (*2)। नीचे आकर उसने दूरी का अनुमान लगाते हुए कहा, "यह वह दूरी है जो मैंने तय की है:" और एक बांस के अंकुर को जड़ से काटकर और उसे छीलकर उसने कहा, "इतना भाग पेड़ से बंधा रहेगा, और इतना हवा में रहेगा," और इस प्रकार उसने दोनों लंबाई नापीं, अपनी कमर पर बंधे भाग को भूलकर। उसने अंकुर को लेकर उसका एक सिरा गंगा किनारे के पेड़ से और दूसरा अपनी कमर से बांध लिया, और फिर हवा से चीरे हुए बादल की गति से सौ धनुष की लंबाई की दूरी तय कर ली। अपनी कमर पर बंधे भाग को न नापने के कारण वह पेड़ तक नहीं पहुंच पाया: इसलिए उसने दोनों हाथों से एक शाखा को मजबूती से पकड़कर बंदरों के झुंड को संकेत दिया, "जल्दी जाओ, मेरी पीठ पर पैर रखकर।" बाँस की टहनी।" अस्सी हज़ार बंदर बोधिसत्व को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर भाग निकले। देवदत्त उस झुंड में एक बंदर था: उसने कहा, "यह मेरे लिए अपने शत्रु को अंतिम रूप से देखने का मौका है," इसलिए वह एक शाखा पर चढ़कर उछला और बोधिसत्व की पीठ पर गिर पड़ा। बोधिसत्व का हृदय टूट गया और उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। देवदत्त उस असहनीय पीड़ा को उत्पन्न करके चला गया: और बोधिसत्व अकेले रह गए। जागते हुए राजा ने बंदरों और बोधिसत्व द्वारा किए गए सभी कार्यों को देखा: और वह यह सोचते हुए लेट गया, "इस जानवर ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए अपने झुंड की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है।" जब दिन निकला, तो बोधिसत्व से प्रसन्न होकर उसने सोचा, "बंदरों के इस राजा को नष्ट करना उचित नहीं है: मैं उसे किसी तरह नीचे लाऊंगा और उसका ध्यान रखूंगा:" इसलिए उसने गंगा में बेड़ा मोड़ा और वहाँ एक चबूतरा बनाया, और बोधिसत्व को वहाँ लिटाया। धीरे से नीचे आकर, उसने उसे पीले रंग का वस्त्र पहनाया और गंगाजल से स्नान कराया, उसे मीठा जल पिलाया, और उसके शरीर को शुद्ध करके हजार बार शुद्ध किए गए तेल से लेप किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल लगी मशक रखी और उसे उस पर लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया, और पहला श्लोक बोला:-फिर उसने हवा से चीरे हुए बादल की गति से सौ धनुषों की दूरी तय कर ली। कमर से बंधे हिस्से को नापने के कारण वह पेड़ तक नहीं पहुँच पाया: इसलिए उसने दोनों हाथों से एक शाखा को मजबूती से पकड़कर बंदरों के झुंड को संकेत दिया, "जल्दी जाओ, मेरी पीठ पर बांस के अंकुर के सहारे चलते हुए।" अस्सी हजार बंदर बोधिसत्व को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर भाग गए। देवदत्त उस झुंड में एक बंदर था: उसने कहा, "यह मेरे लिए अपने शत्रु को अंतिम बार देखने का मौका है," इसलिए वह एक शाखा पर चढ़कर उछला और बोधिसत्व की पीठ पर गिर पड़ा। बोधिसत्व का हृदय टूट गया और उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। देवदत्त उस असहनीय पीड़ा

को पहुँचाकर चला गया: और बोधिसत्व अकेले रह गए। जागते हुए राजा ने बंदरों और बोधिसत्व द्वारा किए गए सभी कार्यों को देखा और यह सोचते हुए लेट गया, "इस जानवर ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए अपने दल की रक्षा की है।" जब दिन निकला, तो बोधिसत्व से प्रसन्न होकर उसने सोचा, "इस बंदरों के राजा को नष्ट करना उचित नहीं है: मैं इसे किसी तरह नीचे लाऊंगा और इसकी देखभाल करूंगा।" अतः उसने गंगा में बेड़ा मोड़कर वहाँ एक चबूतरा बनाया और बोधिसत्व को धीरे से नीचे उतारा, और उनकी पीठ पर पीले रंग का वस्त्र पहनाया और उन्हें गंगाजल से धोया, उन्हें मीठा जल पिलाया और उनके शरीर को हजार बार शुद्ध किए गए तेल से शुद्ध किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल लगी हुई चमड़ी बिछाई और उन्हें उस पर लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया और पहला श्लोक बोला:-फिर उसने हवा से चीरे हुए बादल की गति से सौ धनुषों की दूरी तय कर ली। कमर से बंधे हिस्से को नापने के कारण वह पेड़ तक नहीं पहुँच पाया: इसलिए उसने दोनों हाथों से एक शाखा को मजबूती से पकड़कर बंदरों के झुंड को संकेत दिया, "जल्दी जाओ, मेरी पीठ पर बांस के अंकुर के सहारे चलते हुए।" अस्सी हजार बंदर बोधिसत्व को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर भाग गए। देवदत्त उस झुंड में एक बंदर था: उसने कहा, "यह मेरे लिए अपने शत्रु को अंतिम बार देखने का मौका है," इसलिए वह एक शाखा पर चढ़कर उछला और बोधिसत्व की पीठ पर गिर पड़ा। बोधिसत्व का हृदय टूट गया और उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। देवदत्त उस असहनीय पीड़ा को पहुँचाकर चला गया: और बोधिसत्व अकेले रह गए। जागते हुए राजा ने बंदरों और बोधिसत्व द्वारा किए गए सभी कार्यों को देखा और यह सोचते हुए लेट गया, "इस जानवर ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए अपने दल की रक्षा की है।" जब दिन निकला, तो बोधिसत्व से प्रसन्न होकर उसने सोचा, "इस बंदरों के राजा को नष्ट करना उचित नहीं है: मैं इसे किसी तरह नीचे लाऊंगा और इसकी देखभाल करूंगा।" अतः उसने गंगा में बेड़ा मोड़कर वहाँ एक चबूतरा बनाया और बोधिसत्व को धीरे से नीचे उतारा, और उनकी पीठ पर पीले रंग का वस्त्र पहनाया और उन्हें गंगाजल से धोया, उन्हें मीठा जल पिलाया और उनके शरीर को हजार बार शुद्ध किए गए तेल से शुद्ध किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल लगी हुई चमड़ी बिछाई और उन्हें उस पर लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया और पहला श्लोक बोला:-और उसने उसके शरीर को शुद्ध किया और हजार बार शुद्ध किए गए तेल से अभिषेक किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल से सना हुआ चमड़ा रखा और उसे वहाँ लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया और पहला श्लोक बोला:-और उसने उसके शरीर को शुद्ध किया और हजार बार शुद्ध किए गए तेल से अभिषेक किया; फिर उसने एक पलंग पर तेल से सना हुआ चमड़ा रखा और उसे वहाँ लिटाकर स्वयं एक नीची चौकी पर बैठ गया और पहला श्लोक बोला:-

आपने उनके लिए एक पुल का निर्माण किया ताकि वे सुरक्षित रूप से गुजर सकें:
तो फिर, हे बंदर, तुम उनके लिए क्या हो, और वे तुम्हारे लिए क्या हैं?
उनकी बात सुनकर, राजा को उपदेश दे रहे बोधिसत्व ने अन्य श्लोक कहे:-

विजयी राजा, मैं झुंड की रक्षा करता हूँ, मैं उनका स्वामी और मुखिया हूँ।
जब वे तुमसे भयभीत थे और शोक से व्याकुल थे।
मैंने फैली हुई धनुष की लंबाई से सौ गुना अधिक दूरी तक छलांग लगाई।
जब मैंने अपनी जांघों के चारों ओर बांस की एक शाखा को कसकर बांध लिया था:
मैं आंधी के झोंके से तेजी से आगे बढ़ते हुए गरजते बादल की तरह पेड़ तक पहुंचा;
मेरी ताकत खत्म हो गई, लेकिन मैंने अपने हाथों से एक शाखा को पकड़ लिया और उसे मजबूती से थाम लिया।
और जब मैं वहां टहनियों और शाखाओं से मजबूती से बंधा हुआ लटका हुआ था,
मेरे बंदर मेरी पीठ पर से निकल गए और अब सुरक्षित हैं।
इसलिए मुझे मृत्यु के कष्ट से भय नहीं होता, बंधन मुझे पीड़ा नहीं देते।
मैंने उन लोगों को प्रसन्न किया जिन पर मैंने शासन किया था।
हे राजा, यदि आप सत्य को पढ़ना चाहें तो आपके लिए एक दृष्टांत:
राज्य, सेना और घुड़सवार सेना का सुख
और यदि तुम सचमुच शासन करना चाहते हो, तो यह नगर तुम्हारे लिए प्रिय होना चाहिए।
इस प्रकार राजा को उपदेश और शिक्षा देते हुए बोधिसत्व का निधन हो गया। राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर आदेश दिया कि वानर-राजा का अंतिम संस्कार राजा के समान किया जाए और उन्होंने हरम में संदेश भेजा, "लाल वस्त्र, बिखरे हुए बाल और हाथों में मशालें लेकर वानर-राजा के परिचारकों के समूह के रूप में श्मशान में आओ।" मंत्रियों ने सौ गाड़ियों में लदी लकड़ियों से चिता बनाई। बोधिसत्व के अंतिम संस्कार की विधिपूर्वक तैयारी करने के बाद, वे उनकी खोपड़ी लेकर राजा के पास आए। राजा ने बोधिसत्व के समाधि स्थल पर एक मंदिर बनवाया, वहाँ मशालें जलाई गईं और धूप और फूल चढ़ाए गए; उन्होंने खोपड़ी को सोने से जड़वाया और उसे भाले की नोक पर ऊँचा करके रखा: धूप और फूलों से उसका सम्मान करते हुए, उन्होंने उसे बनारस आने पर राजा के द्वार पर रखा और पूरे शहर को सजाकर सात दिनों तक उसका सम्मान किया। फिर उसे एक पवित्र अवशेष मानकर और एक मंदिर बनाकर, उन्होंने जीवन भर धूप और मालाओं से उसका सम्मान किया; और बोधिसत्व की शिक्षाओं में स्थापित होकर उन्होंने दान और अन्य अच्छे कर्म किए, और अपने राज्य पर धार्मिक रूप से शासन करते हुए स्वर्ग के लिए नियत हो गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय राजा आनंद थे, वानरों का समूह सभा था, और वानर-राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 444

(2)भरहुत स्तूप पर बनी आकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि वह गंगा के पार कूद गया था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुम्भकार-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-408-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 408
कुंभकर जातक

"जंगल में एक आम," इत्यादि। गुरु ने ये बातें जेतवन मठ में रहते हुए पाप के निवारण के विषय में कही थीं। इसका वर्णन पाणिय जन्म (*1) में मिलेगा। उस समय श्रावस्ती नगर में पाँच सौ मित्र, जो संन्यासी बन चुके थे और स्वर्णमयी भवन में रहते थे, आधी रात को कामुक विचारों से ग्रस्त हो गए। गुरु अपने शिष्यों का रात में तीन बार और दिन में तीन बार, दिन-रात छह बार ध्यान रखते हैं, जैसे नीलकंठ अपने अंडे की रक्षा करता है, या याक अपनी पूंछ की, या माता अपने प्रिय पुत्र की, या काना अपनी आँख की; ठीक उसी क्षण वे आरंभ हो रहे पाप को डांट देते हैं। उस आधी रात को वे जेतवन मठ का अवलोकन कर रहे थे और भिक्षुओं के चिंतन को जानकर उन्होंने सोचा, "यदि इन भिक्षुओं में यह पाप बढ़ता रहा तो यह संतत्व के मार्ग को नष्ट कर देगा। मैं अभी इसी क्षण उनके पाप का निवारण करूंगा और उन्हें संतत्व का मार्ग दिखाऊंगा।" अतः सुगंधित कक्ष छोड़कर उन्होंने आनंद को पुकारा और उनसे वहां रहने वाले सभी भिक्षुओं को एकत्रित करने को कहा। वे सब एकत्रित होकर बुद्ध के लिए तैयार आसन पर बैठ गए। उन्होंने कहा, "भाइयों, पापी विचारों के वश में रहना उचित नहीं है; पाप यदि बढ़ता है तो शत्रु के समान घोर विनाश लाता है। भिक्षुओं को छोटे से छोटे पाप का भी निवारण करना चाहिए। प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने एक छोटे से कारण को देखकर भी आरंभ हुए पापी विचार का निवारण किया और इस प्रकार सिद्धबुद्धत्व की प्राप्ति हुई।" और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म बनारस के उपनगर में एक कुम्हार परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे गृहस्थ बन गए, उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई, और वे अपने कुम्हार के काम से अपनी पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करते थे। उसी समय कलिंग राज्य के दंतपुरा नगर में, राजा करंडु अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर अपने उद्यान में गए। उन्होंने उद्यान के द्वार पर मीठे फलों से लदा एक आम का वृक्ष देखा। उन्होंने हाथी पर बैठे-बैठे ही हाथ बढ़ाकर आमों का एक गुच्छा तोड़ लिया। फिर उद्यान में प्रवेश करके वे राजसी आसन पर बैठ गए और एक आम खाया, तथा कुछ आम उन्होंने जरूरतमंदों को भी दिए। राजा के एक आम खाने के बाद, मंत्रियों, ब्राह्मणों और गृहस्थों ने यह सोचकर कि दूसरों को भी ऐसा करना चाहिए, उस वृक्ष से आम तोड़कर खाए। वे बार-बार वृक्ष पर चढ़ते, उसे गदाओं से पीटते और डालियों को तोड़ते हुए सारे फल खा जाते, यहाँ तक कि कच्चे आम भी नहीं छोड़ते। राजा दिनभर बगीचे में आनंद लेते रहे, और शाम को जब वे शाही हाथी पर सवार होकर वहाँ से गुज़रे तो उस वृक्ष को देखकर वे हाथी से उतर गए और उसकी जड़ के पास जाकर ऊपर देखते हुए सोचने लगे, "सुबह तो यह वृक्ष फलों से लदा हुआ कितना सुंदर लग रहा था कि देखने वालों की आँखें चौंधिया जाती थीं: अब तो इसके फल टूटकर गिर जाने से यह सुंदर नहीं लग रहा है।" फिर दूसरी जगह से देखने पर उन्हें एक और आम का पेड़ सूखा पड़ा दिखाई दिया, और उन्होंने सोचा, "यह आम का पेड़ अपनी बंजर अवस्था में रत्नों के नंगे पहाड़ की तरह सुंदर लग रहा है; दूसरा पेड़ अपनी फलदायकता से इस दुर्भाग्य में गिर गया: गृहस्थ जीवन फलदार वृक्ष के समान है, संन्यासी जीवन बंजर वृक्ष के समान है: धनी भयभीत होते हैं, गरीब भयभीत नहीं होते: मैं भी बंजर वृक्ष के समान होना चाहता हूँ।" अतः उस फलदार वृक्ष को अपना विषय बनाकर वे उसकी जड़ के पास खड़े हो गए; और तीनों (*2) गुणों पर विचार करते हुए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को पूर्ण करते हुए, उन्होंने पच्चेकबुद्धत्व प्राप्त किया, और यह सोचते हुए, "गर्भ का

आवरण अब मुझसे हट गया है, तीनों जन्मों का चक्र समाप्त हो गया है, जन्म-जन्म का मैल धुल गया है, आँसुओं का सागर सूख गया है, हड्डियों का ढाँचा टूट गया है, अब मेरा कोई पुनर्जन्म नहीं होगा," वे मानो सभी आभूषणों से सुशोभित खड़े थे। तब उनके मंत्रियों ने कहा, "हे महान राजा, आप बहुत देर तक खड़े रहे।" "मैं राजा नहीं, मैं पच्चेकबुद्ध हूँ।" "हे राजा, पच्चेकबुद्ध आपके जैसे नहीं होते।" "तो फिर वे कैसे होते हैं?" "उनके बाल और दाढ़ी मुंडे हुए होते हैं, वे पीले वस्त्र धारण करते हैं, वे परिवार या गोत्र से आसक्त नहीं होते, वे हवा से चीरे हुए बादलों या राहु (ग्रहण) से मुक्त चंद्रमा के चेहरे के समान होते हैं, और वे हिमालय में नंदमूल गुफा में निवास करते हैं: हे राजा, ऐसे ही पच्चेकबुद्ध होते हैं।" उसी क्षण राजा ने अपना हाथ ऊपर उठाया और अपने सिर को छुआ, और तुरंत ही गृहस्थ के लक्षण गायब हो गए, और एक पुजारी के लक्षण दिखाई देने लगे:-

तीन वस्त्र, कटोरा, रेजर, सुइयां, छलनी, क्षेत्र,
एक धर्मनिष्ठ भाई के पास वे आठ चिह्न होने चाहिए।
पुजारी की आवश्यक वस्तुएँ, जैसा कि उन्हें कहा जाता है, उनके शरीर से जुड़ गईं। हवा में खड़े होकर उन्होंने लोगों को उपदेश दिया और फिर आकाश के माध्यम से ऊपरी हिमालय में स्थित नंदामूला पर्वत गुफा में चले गए।

कंधार राज्य के तक्षशिला शहर में, राजा नग्गजी एक चबूतरे पर शाही पलंग के बीच में बैठे थे। उन्होंने देखा कि एक स्त्री ने दोनों हाथों में रत्नजड़ित कंगन पहन रखे थे और पास में बैठकर इत्र पीस रही थी। उन्होंने सोचा, "अलग-अलग होने पर ये रत्नजड़ित कंगन न तो रगड़ते हैं और न ही झनझनाते हैं," और वे बैठकर उसे देखते रहे। फिर उसने दाहिने हाथ का कंगन बाएं हाथ में पहनाकर दाहिने हाथ से इत्र इकट्ठा करते हुए उसे पीसना शुरू कर दिया। बाएं हाथ का कंगन दूसरे हाथ से रगड़ने पर आवाज करने लगा। राजा ने देखा कि ये दोनों कंगन आपस में रगड़ने पर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, और उन्होंने सोचा, "जब ये कंगन अलग-अलग थे तो किसी चीज को नहीं छूते थे, अब जब ये दूसरे को छूते हैं तो ध्वनि उत्पन्न करते हैं; ठीक इसी प्रकार, जब जीव अलग-अलग होते हैं तो न तो एक दूसरे को छूते हैं और न ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं; जब वे दो या तीन हो जाते हैं तो एक दूसरे से रगड़ते हैं और शोर मचाते हैं; अब मैं कश्मीर और कंधार के दो राज्यों के निवासियों पर शासन करता हूँ, और मुझे भी उस अकेले कंगन की तरह रहना चाहिए जो स्वयं पर शासन करता है, न कि किसी दूसरे पर।" इस प्रकार, कंगनों के रगड़ने को अपना विषय बनाकर, वे बैठे-बैठे ही तीनों गुणों को जान गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और पच्चेकबुद्धत्व प्राप्त किया। शेष पहले जैसा ही है।

विदेह राज्य के मिथिला नगर में, राजा निमी ने नाश्ते के बाद अपने मंत्रियों से घिरे हुए महल की खुली खिड़की से सड़क की ओर देखा। एक बाज़ मांस बाजार से कुछ मांस लेकर हवा में उड़ रहा था। बाज़ के दोनों ओर कुछ गिद्ध या अन्य पक्षी मंडरा रहे थे और मांस के लिए उसे अपनी चोंचों से नोच रहे थे, अपने पंखों से मार रहे थे और अपने पैरों से पीट रहे थे। मरने की पीड़ा सहन न कर पाने के कारण बाज़ ने मांस गिरा दिया, दूसरे पक्षी ने उसे उठा लिया; बाज़ से बचा हुआ मांस दूसरे पर गिर पड़ा; जब उसने उसे फिर से छोड़ दिया, तो तीसरे ने उसे उठा लिया; और वे उसे भी उसी तरह नोचते रहे। उन पक्षियों को देखकर राजा ने सोचा, "जिसने मांस खाया, उसे दुःख हुआ; जिसने मांस त्यागा, उसे सुख मिला; जिसने पाँचों इंद्रिय सुखों का सेवन किया, उसे दुःख हुआ, दूसरे को सुख मिला; ये तो अनेकों के लिए सामान्य हैं; अब मेरे पास सोलह हजार स्त्रियाँ हैं: मुझे पाँचों इंद्रिय सुखों को त्यागकर सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहिए, जैसे बाज मांस का टुकड़ा त्याग देता है।" इस पर बुद्धिमानी से विचार करते हुए, जहाँ वह खड़ा था, उसने तीनों गुणों को जान लिया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और पच्चेकबुद्धत्व का ज्ञान प्राप्त किया। शेष पहले जैसा ही।

उत्तरा पंचाल राज्य के कामपिल्ला नगर में, दुममुख नामक राजा ने नाश्ते के बाद, अपने सभी आभूषणों से सुसज्जित और अपने मंत्रियों से घिरे हुए, महल के प्रांगण की ओर खुली खिड़की से नीचे देखा। जैसे ही उन्होंने गौशाला का द्वार खोला, गौशाला से निकले बैलों ने एक गाय पर वासना से आवेशित होकर हमला कर दिया। एक विशाल, नुकीले सींगों वाले बैल ने दूसरे बैल को आते देख, वासना से ग्रस्त होकर, अपने नुकीले सींगों से उसकी जांघ पर प्रहार किया। प्रहार की शक्ति से उसकी आंतें बाहर निकल आईं और वह मर गया। यह देखकर राजा ने सोचा, "पशुओं से ऊपर के सभी जीव वासना के कारण दुःख भोगते हैं; यह बैल वासना के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ है; अन्य जीव भी वासना से व्याकुल होते हैं; मुझे उन वासनाओं का त्याग करना चाहिए जो इन जीवों को व्याकुल करती हैं।" और इस प्रकार खड़े-खड़े ही उन्होंने तीनों गुणों को जान लिया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और पच्चेकबुद्धत्व का ज्ञान प्राप्त किया। शेष कहानी पहले जैसी ही है।

फिर एक दिन उन चारों पच्चेकबुद्धों ने यह सोचकर कि उनके परिक्रमा का समय हो गया है, नंदमूल गुफा से प्रस्थान किया। उन्होंने अनोत्तत्ता झील में पान चबाकर अपने दांत साफ किए और मनोशिला में अपनी आवश्यकताओं का ध्यान रखा। फिर उन्होंने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और जादू से हवा में उड़ते हुए, पांच रंगों के बादलों पर चलते हुए, बनारस के उपनगर के पास उतरे। एक उपयुक्त स्थान पर उन्होंने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिया और उपनगर में प्रवेश करके भिक्षा मांगने के लिए परिक्रमा करते हुए बोधिसत्व के घर के द्वार तक पहुंचे। बोधिसत्व ने उन्हें देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और उन्हें अपने घर में प्रवेश देकर एक तैयार आसन पर बैठाया, उन्हें आदर का जल दिया और उत्तम भोजन, कठोर और नरम, परोसा। फिर एक तरफ बैठकर उन्होंने उनमें से सबसे बड़े को प्रणाम किया

और कहा, "महोदय, आपका धार्मिक (सन्यासी) जीवन बहुत सुंदर प्रतीत होता है: आपकी इंद्रियाँ बहुत शांत हैं, आपका रंग बहुत निर्मल है: किस विचार ने आपको धार्मिक (सन्यासी) जीवन और दीक्षा लेने के लिए प्रेरित किया?" और जैसे उन्होंने उनमें से सबसे बड़े से पूछा, वैसे ही वे दूसरों के पास गए और उनसे भी पूछा। तब उन चारों ने एक-एक करके कहा, "मैं फलाँ था, फलाँ राज्य के फलाँ शहर का राजा था" और इसी तरह, प्रत्येक ने संसार से संन्यास लेने के कारण बताए और क्रम से एक-एक श्लोक सुनाया।

मैंने जंगल में एक आम देखा
पूर्ण विकसित, गहरे रंग का, अत्यंत फलदायी:
और इसके फल के लिए ही पुरुषों ने आम तोड़ा था।
इसी बात ने मेरे मन को कटोरा लेने के लिए प्रेरित किया।
एक कंगन, जिसे एक प्रसिद्ध कारीगर के हाथों तराशा गया है।
एक महिला ने बिना आवाज किए दोनों कलाई पर पहना हुआ था:
एक ने दूसरे को छुआ और एक आवाज से नींद खुल गई:
इसी बात ने मेरे मन को कटोरा लेने के लिए प्रेरित किया।
पक्षियों के झुंड में से एक पक्षी ने अपने एक मित्र को फाड़ दिया।
जिसने अकेले ही सड़े हुए मांस के एक टुकड़े को सहा:
सड़े हुए मांस के लिए पक्षी को मारा गया।
इसी बात ने मेरे मन को कटोरा लेने के लिए प्रेरित किया।
एक बैल अपने साथियों के बीच गर्व से चहलकदमी कर रहा था;
उनकी पीठ शक्ति और सुंदरता से परिपूर्ण होकर ऊंची उठी हुई थी:
वासना के कारण उसकी मृत्यु हुई: उसके घाव से एक सींग बन गया:
इसी बात ने मेरे मन को कटोरा लेने के लिए प्रेरित किया।
प्रत्येक श्लोक को सुनकर बोधिसत्व ने कहा, "अच्छा, महोदय: आपकी बातें अच्छी हैं," और इस प्रकार प्रत्येक पच्चेकबुद्ध की प्रशंसा की। उन चारों द्वारा दिए गए प्रवचन को सुनकर उनका गृहस्थ जीवन के प्रति विमुखता उत्पन्न हो गई। जब पच्चेकबुद्धों ने प्रवचन जारी रखा, तो नाश्ते के बाद आराम से बैठकर उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाया और कहा, "पत्नी, वे चारों पच्चेकबुद्ध राज्य छोड़कर बंधु बन गए और अब पाप रहित, बाधा रहित, धार्मिक (सन्यासी) जीवन के आनंद में रहते हैं। मैं तो भिक्षा मांगकर जीविका कमाता हूँ, तो गृहस्थ जीवन से मेरा क्या लेना-देना? क्या तुम बच्चों को लेकर घर में रहोगी?" और उन्होंने दो श्लोक कहे:

कलंगा के राजा करणदु, गांधार के नग्गाजी,
पांचाल के शासक दुमुख, विदेह के महान निमि,
उन्होंने अपने सिंहासन त्याग दिए हैं और भाइयों की तरह निष्पाप जीवन व्यतीत कर रहे हैं।
यहां वे अपने दिव्य स्वरूपों को प्रदर्शित करते हैं।
  प्रत्येक एक धधकती आग की तरह:
भग्गवी, मैं भी जाऊंगी।
  पुरुषों की हर इच्छा को त्यागते हुए।
उनकी बातें सुनकर उसने कहा, "पतिदेव, जब से मैंने पच्चेकबुद्धों का प्रवचन सुना है, मुझे भी घर में संतोष नहीं मिलता," और उसने एक श्लोक कहा:-

मुझे पता है, यही नियत समय है:
बेहतर शिक्षक शायद ये न हों:
भगगव, मैं भी जाऊँगा।
जैसे किसी पक्षी को हाथ से मुक्त कर दिया गया हो।
बोधिसत्व ने उसकी बातें सुनकर मौन धारण किया। वह बोधिसत्व को धोखा दे रही थी और उनसे पहले संन्यासी जीवन ग्रहण करने के लिए उत्सुक थी। इसलिए उसने कहा, "पतिदेव, मैं पानी की टंकी में जा रही हूँ, आप बच्चों का ध्यान रखिएगा।" और एक बर्तन लेकर, जैसे वह वहाँ जा रही हो, वह चली गई और नगर के बाहर तपस्वियों के पास आकर उनसे दीक्षा प्राप्त की। बोधिसत्व ने देखा कि वह वापस नहीं लौटी, तो उन्होंने स्वयं बच्चों की देखभाल की। बाद में जब बच्चे थोड़े बड़े हो गए और स्वयं समझने लगे, तो उन्हें सिखाने के लिए, चावल पकाते समय वे कभी थोड़े कच्चे, कभी थोड़े अधपके, कभी अच्छे से पके, कभी गीले, कभी बिना नमक के, कभी बहुत अधिक नमक के साथ पकाते थे। बच्चे कहते, "पिताजी, आज चावल उबले नहीं हैं, आज गीले हैं, आज अच्छे से पके हैं: आज बिना नमक के हैं, आज बहुत नमक है।" बोधिसत्व ने कहा, "जी हाँ, प्यारे बच्चों," और मन ही मन सोचा, "ये बच्चे अब जान गए हैं कि कच्चा क्या है और पका हुआ क्या है, किसमें नमक है और किसमें नहीं: ये अपनी मर्जी से जीवन यापन कर सकेंगे: मुझे दीक्षा ले लेनी चाहिए।"

फिर उन्हें उनके परिवार से मिलवाकर उन्होंने संन्यासी जीवन की दीक्षा ली और नगर से बाहर रहने लगे। एक दिन बनारस में भीख माँग रही एक महिला तपस्वी ने उन्हें देखा और प्रणाम करते हुए कहा, "हे प्रभु, मुझे लगता है आपने बच्चों को मार डाला है।" बोधिसत्व ने कहा, "मैं बच्चों को नहीं मारता: जब वे स्वयं समझ गए, तब मैंने दीक्षा ली: तुम उनकी परवाह नहीं करती थीं और दीक्षा लेकर खुद को प्रसन्न करती रहीं": और इस प्रकार उन्होंने अंतिम श्लोक कहा:-

यह देखकर कि वे नमकीन और बिना नमकीन, उबले हुए और कच्चे में अंतर कर सकते हैं,
मैं एक भाई बन गया हूँ: मुझे छोड़ दो, हम दोनों सही रास्ते पर चल सकते हैं।
इस प्रकार, उन्होंने स्त्री तपस्वी को सलाह देकर उनसे विदा ली। सलाह मानकर उन्होंने बोधिसत्व को प्रणाम किया और अपनी पसंद के स्थान पर चली गईं। उस दिन के बाद उनका फिर कभी आमना-सामना नहीं हुआ। अलौकिक ज्ञान प्राप्त कर बोधिसत्व ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) के लिए नियत हो गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: - सत्यों के बाद पाँच सौ भिक्षुओं ने संतत्व प्राप्त किया: - "उस समय पुत्री उप्पलावन्ना थीं, पुत्र राहुल (बुद्ध के पुत्र) थे, महिला तपस्वी राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) थीं, और तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 459

(2) अनित्यता, पीड़ा, अवास्तविकता।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दधधम्म-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-409-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 409
दल्हधम्म-जातक

“मैंने राजा के लिए भार ढोया,” इत्यादि। गुरु ने यह बात कोसंबी के निकट घोसीता वन में रहते हुए राजा उदेना की हथिनी भद्दावतीका के विषय में कही थी। अब इस हथिनी के अलंकरण और उदेना के राजवंश का वर्णन मतंगा (*1) जन्म में किया जाएगा। एक दिन सुबह शहर से बाहर जाते समय एक हाथी ने बुद्ध को अनेक संतों से घिरे हुए, बुद्ध के अतुलनीय वैभव में, भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश करते देखा। उसने तथागत (बुद्ध) के चरणों में गिरकर रोते हुए प्रार्थना की, “हे सर्वज्ञ प्रभु, समस्त जगत के रक्षक, जब मैं युवा और कर्म करने योग्य थी, तब उदेना, जो कि सच्चे राजा थे, ने मुझसे प्रेम किया और कहा, “मेरा जीवन, मेरा राज्य और मेरी रानी सब उसी की देन हैं,” और मुझे बहुत सम्मान दिया, मुझे सभी आभूषणों से सुशोभित किया; उन्होंने मेरे अस्तबल को सुगंधित मिट्टी से लेप किया, उसके चारों ओर रंगीन पर्दे लगाए, सुगंधित तेल से दीपक जलाया और धूपदानी रखी, मेरे गोबर के ढेर पर सोने का पात्र रखा, मुझे रंगीन कालीन पर खड़ा किया और मुझे अनेक प्रकार के स्वादिष्ट राजसी भोजन खिलाया: परन्तु अब जब मैं बूढ़ी हो गई हूँ और कर्म नहीं कर सकती, तो उन्होंने वह सारा सम्मान छीन लिया है; मैं बेसहारा और निर्धन होकर भोजन पर निर्भर हूँ “मैं जंगल में केतका फल खाती हूँ; मेरे पास कोई और सहारा नहीं है: हे प्रभु, उदेना को मेरे गुणों पर विचार करने के लिए प्रेरित करें और मुझे मेरा पुराना सम्मान लौटा दें।” गुरु ने कहा, “आप जाइए, मैं राजा से बात करके आपका पुराना सम्मान वापस दिलवाता हूँ,” और वे राजा के महल के द्वार पर गए। राजा ने बुद्ध को अंदर बुलाया और बुद्ध के अनुयायियों (भिक्षुओं) की सभा को महल में भव्य भोज दिया। भोजन समाप्त होने पर, गुरु ने राजा को धन्यवाद दिया और पूछा, “हे राजा, भद्दावतीका कहाँ है?” “हे प्रभु, मुझे नहीं पता।” “हे राजा, सेवकों को सम्मान देने के बाद, वृद्धावस्था में उनका सम्मान छीन लेना उचित नहीं है, बल्कि कृतज्ञ और आभारी होना उचित है; भद्दावतीका अब वृद्ध हो चुकी है, वह उम्र से कमजोर और असुरक्षित है, और वह जंगल में केतका फल खाकर जीवन यापन करती है: वृद्धावस्था में उसे असुरक्षित छोड़ना आपके लिए उचित नहीं है”: इस प्रकार भद्दावतीका के गुणों का वर्णन करते हुए और यह कहते हुए कि “उसके सभी पुराने सम्मान लौटा दें,” वे चले गए। राजा ने वैसा ही किया। पूरे शहर में यह बात फैल गई कि बुद्ध द्वारा उनके गुणों का वर्णन करने से उनका पूर्व सम्मान बहाल हो गया है। यह बात भिक्षुओं की सभा में फैल गई और भिक्षुओं ने अपनी बैठक में इस पर चर्चा की। गुरुजी आकर जब उन्होंने

सुना कि यह विषय चर्चा में है, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि बुद्ध ने उनके गुणों का वर्णन करके उनका पूर्व सम्मान बहाल करवाया है" और उन्होंने पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में दल्हधम्म नाम का एक राजा राज करता था। उस समय बोधिसत्व एक मंत्री परिवार में पैदा हुए थे और बड़े होकर राजा की सेवा करने लगे। उन्हें राजा से बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और वे सबसे सम्मानित मंत्री बन गए। राजा के पास एक विशेष, शक्तिशाली और बलवान हथिनी थी। वह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर लेती थी, राजा के लिए दूत का काम करती थी और युद्ध में शत्रु को परास्त कर देती थी। राजा ने कहा, "वह मेरे लिए बहुत उपयोगी है," और उसे सभी आभूषण दिए और उसे वह सम्मान दिलाया जो उदेना ने भद्दावतीका को दिया था। फिर जब वह वृद्धावस्था के कारण कमजोर हो गई, तो राजा ने उसका सारा सम्मान छीन लिया। तब से वह असुरक्षित हो गई और जंगल में घास-फूस खाकर अपना जीवन यापन करने लगी। फिर एक दिन जब राजा के दरबार में बर्तन कम पड़ गए, तो राजा ने एक कुम्हार को बुलवाया और कहा, "बर्तन पर्याप्त नहीं हैं।" "हे राजा, मेरे पास बैल नहीं हैं जिन्हें गाड़ी में जोतकर गोबर ला सकूँ (मिट्टी पकाने के लिए)।" यह सुनकर राजा ने कहा, "हमारी हाथी कहाँ है?" "हे राजा, वह अपनी मर्ज़ी से कहीं जा रही है।" राजा ने उसे कुम्हार को सौंपते हुए कहा, "अब से तुम उसे जोतकर गोबर लाओ।" कुम्हार ने कहा, "ठीक है, हे राजा," और वैसा ही किया। फिर एक दिन वह गाड़ी से बाहर निकली... शहर में, बोधिसत्व को आते देख, वह उनके चरणों में गिरकर विलाप करते हुए बोली, "हे प्रभु, मेरी जवानी में राजा ने मुझे बहुत उपयोगी समझा और मुझे बहुत सम्मान दिया; अब जब मैं बूढ़ी हो गई हूँ, तो उन्होंने सब कुछ छीन लिया है और मेरी कोई परवाह नहीं करते; मैं बेसहारा हूँ और जंगल में घास-पत्ते खाकर जीवन यापन करती हूँ; इस विपत्ति में उन्होंने मुझे एक कुम्हार को गाड़ी में जोतने के लिए दे दिया है; आपके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं है: आप राजा के प्रति मेरी सेवाओं को जानते हैं; अब मुझे मेरा खोया हुआ सम्मान लौटा दीजिए": और उसने तीन श्लोक कहे:-

मैंने पुराने राजा के लिए माल ढोया था: क्या वह संतुष्ट नहीं था?
मैंने अपने सीने पर हथियार रखकर, बड़े ही शक्तिशाली कदमों से लड़ाई का सामना किया।
मेरे पुराने युद्धों के कारनामों को राजा नहीं भूलता।
और मैंने कूरियर सेवाओं के लिए निर्धारित मानकों के अनुसार इतनी अच्छी सेवाएं प्रदान कीं?
अब मैं असहाय और परिवारहीन हूँ: निश्चय ही मेरी मृत्यु निकट है।
जब मैं कुम्हार के लिए गोबर ढोने आया था, तब उसकी सेवा करने के लिए।
बोधिसत्व ने उसकी कहानी सुनकर उसे दिलासा देते हुए कहा, "शोक मत करो, मैं राजा को बता दूंगा और तुम्हारा सम्मान वापस दिला दूंगा।" इसलिए नगर में प्रवेश करके, वे सुबह के भोजन के बाद राजा के पास गए और बातचीत शुरू करते हुए कहा, "महाराज, क्या फलां नाम की एक हथिनी फलां स्थानों पर सीने पर हथियार बांधकर युद्ध में नहीं गई थी, और फलां दिन गले में लेख बांधकर सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय करके संदेश लेकर नहीं गई थी? आपने उसे बहुत सम्मान दिया था: वह अब कहां है?" "मैंने उसे गोबर ढोने के लिए एक कुम्हार को दे दिया था।" तब बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, क्या यह उचित है कि आप उसे गाड़ी में जोतने के लिए कुम्हार को दे दें?" और उपदेश देते हुए उन्होंने चार श्लोक कहे:-

स्वार्थपूर्ण आशाओं के कारण ही मनुष्य अपने द्वारा दिए जाने वाले सम्मानों को नियंत्रित करते हैं:
जिस प्रकार आप हाथी को फेंकते हैं, उसी प्रकार वे थके हुए गुलाम को फेंक देते हैं।
अच्छे कर्म और सेवाएँ तब फलदायी होती हैं जब मनुष्य उन्हें भूल जाते हैं।
रुइन अभी भी उस व्यवसाय को आगे बढ़ा रहा है जिस पर उनका दिल लगा हुआ है।
यदि मनुष्य अच्छे कर्मों और सेवाओं को न भूले तो उनका फल मिलेगा।
सफलता उसी व्यवसाय को मिलती है जिसमें उनका दिल लगा होता है।
इस पवित्र सत्य के चारों ओर मौजूद सभी लोगों से मैं कहता हूँ:
सभी कृतज्ञ रहें, और पुरस्कार के रूप में आप स्वर्ग में लंबे समय तक निवास करेंगे।
इस आरंभ के साथ ही बोधिसत्व ने वहाँ एकत्रित सभी लोगों को उपदेश दिया। यह सुनकर राजा ने उस बूढ़े हाथी को उसका पूर्व सम्मान लौटा दिया और बोधिसत्व के उपदेशों का पालन करते हुए दान-पुण्य और पुण्य कर्म किए, जिससे वह स्वर्ग के लिए अर्द्ध हो गया।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई:- "उस समय हथिनी भद्दावतीका थी, राजा आनंद थे, और मंत्री मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 497

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-410-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 410
सोमदत्त-जातक

"जंगल के भीतर," इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक वृद्ध भिक्षु के बारे में यह कहानी सुनाई। कहानी यह थी कि उस भिक्षु ने एक नवोदित भिक्षु को दीक्षा दी, जो उनकी सेवा करता था, लेकिन जल्द ही एक घातक बीमारी से मर गया। वह वृद्ध भिक्षु उसकी मृत्यु पर रोता-पीटता फिरने लगा। उसे देखकर भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में आपस में बात करना शुरू कर दिया, "महोदय, यह वृद्ध भिक्षु नवोदित भिक्षु की मृत्यु पर रोता-पीटता फिर रहा है: उसने मृत्यु का ध्यान अवश्य नहीं किया होगा।" गुरु वहाँ आए और उनकी बातों का विषय सुनकर बोले, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब यह व्यक्ति किसी दूसरे की मृत्यु पर रो रहा है," और फिर उन्होंने वही पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व इंद्र थे। बनारस में रहने वाले एक धनी ब्राह्मण ने सांसारिक जीवन त्याग दिया और हिमालय में तपस्वी बन गए, जहाँ वे जंगल से जड़ और फल चुनकर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन जंगली फल खोजते हुए उन्हें एक हाथी का बच्चा दिखाई दिया और वे उसे अपने आश्रम में ले आए। उन्होंने उसे अपना पुत्र मानकर सोमदत्त नाम दिया और घास-फूस और पत्तों का भोजन देकर उसका पालन-पोषण किया। हाथी बड़ा होकर विशाल हो गया, लेकिन एक दिन उसने अधिक भोजन कर लिया और अधिक खाने से बीमार पड़ गया। तपस्वी उसे आश्रम के भीतर ले गए और जंगली फल लेने चले गए। लेकिन उनके लौटने से पहले ही हाथी की मृत्यु हो गई। फल लेकर लौटते समय तपस्वी ने सोचा, "अन्य दिनों में तो मेरा बच्चा मुझसे मिलने आता है, लेकिन आज नहीं; उसे क्या हुआ है?" इस प्रकार उन्होंने शोक किया और पहला श्लोक कहा:-

वह घने जंगल में मुझसे मिलता था: लेकिन आज
मुझे कोई हाथी दिखाई नहीं दे रहा: वह कहाँ भटक गया है?
इस विलाप के साथ, उसने ढके हुए रास्ते के अंत में लेटे हुए हाथी को देखा और उसकी गर्दन पकड़कर रोते हुए दूसरी पंक्ति बोली:-

वही है जो मृत्यु की गोद में पड़ा है, जैसे कोई कोमल अंकुर चूर-चूर हो जाता है;
वह जमीन पर पड़ा है: हाय, मेरा हाथी मर गया।
उसी क्षण, सक्का (इंद्र) ने संसार का अवलोकन करते हुए सोचा, "इस तपस्वी ने मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिए पत्नी और बच्चे को त्याग दिया, अब वह उस युवा हाथी के लिए शोक मना रहा है जिसे वह अपना पुत्र कहता था, मैं उसे जगाऊंगा और उसे सोचने पर मजबूर करूंगा," और इस प्रकार आश्रम में आकर वह हवा में खड़ा हो गया और तीसरा श्लोक बोला:-

मृतकों के लिए शोक करना उचित नहीं था।
घर-परिवार के बंधनों से मुक्त एकाकी तपस्वी।
यह सुनकर तपस्वी ने चौथा श्लोक बोला:-

हे सक्का (इंद्र), क्या पशुवंशी पुरुष को शोक करना चाहिए?
एक बिछड़े हुए साथी को आंसुओं में राहत मिलती है।
सक्का (इंद्र) ने उन्हें संबोधित करते हुए दो श्लोक कहे:-

जो लोग खुशी के आंसू बहाते हैं, वे मृतकों के लिए शोक भी मना सकते हैं।
हे ऋषि, रोओ मत, रोना व्यर्थ है, बुद्धिमानों ने कहा है।
यदि हमारे आँसुओं से हम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकें,
इस प्रकार हम सभी अपने प्रियजनों को बचाने के लिए एकजुट होंगे।

सक्का (इंद्र) के वचन सुनकर तपस्वी ने चिंतन और सांत्वना पाई, अपने आँसू पोंछे और सक्का (इंद्र) की स्तुति में शेष श्लोक कहे:-

घी से प्रज्वलित लौ की तरह जो तेजी से भड़क उठती है
उसे पानी से बुझाया गया, इसलिए उसने मेरा दर्द बुझा दिया।
दु:ख के बाण से मेरा हृदय घायल हो गया:
उन्होंने मेरे घाव को ठीक किया और मुझे नया जीवन दिया।
कांटा निकालते समय, आनंद और शांति का अनुभव हुआ।
सक्का (इंद्र) के शब्दों से मेरा दु:ख समाप्त हो गया।
ये ऊपर दिए गए हैं।

तपस्वी को संबोधित करने के बाद, सक्का (इंद्र) अपने स्थान पर चले गए।

पाठ समाप्त होने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय युवा हाथी नौसिखिया था, तपस्वी वृद्ध भाई (भिक्षु) था, और सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुसीमा-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-411-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 411
सुसीमा जातक

"बालों के अतीत में," इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए महान त्याग के बारे में यह कथा सुनाई। भिक्षु सत्य के हॉल में बैठे बुद्ध के त्याग की प्रशंसा कर रहे थे। गुरु ने देखा कि वे इसी विषय पर चर्चा कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मैं अब महान त्याग कर सांसारिक जीवन से संन्यास ले रहा हूँ, मैंने तो लाखों युगों तक सिद्धि का अभ्यास किया है: प्राचीन काल में भी मैंने तीन सौ मील (4.23 किमी) के काशी राज्य का शासन त्याग कर त्याग दिया था, और इस प्रकार उन्होंने यह पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब उनके पुरोहित की प्रमुख पत्नी के गर्भ में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनके जन्म के दिन ही राजा के एक पुत्र का भी जन्म हुआ। नामकरण के दिन उन्होंने बोधिसत्व का नाम सुसीमा-कुमार और उनके पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त-कुमार रखा। राजा ने देखा कि दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ है, इसलिए उन्होंने बोधिसत्व को दाई को सौंप दिया और अपने पुत्र के साथ उनका पालन-पोषण करवाया। दोनों बड़े होकर देवदूतों के पुत्रों की तरह सुंदर हो गए। दोनों ने तक्षशिला में सभी विद्याओं की शिक्षा प्राप्त की और फिर घर लौट आए। राजकुमार वायसराय बन गया और बोधिसत्व के साथ खाने-पीने और रहने लगा। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राजा बना और बोधिसत्व को बहुत सम्मान देते हुए उन्हें अपना पुरोहित बनाया। एक दिन उसने नगर को सजाया-संवारा और देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) की तरह सज-धज कर, एरावन (*1) के समान गौरवशाली भाव से शाही हाथी के कंधे पर बैठकर जुलूस निकाला। बोधिसत्व हाथी की पीठ पर पीछे-पीछे चल रहे थे। रानी माँ अपने पुत्र को देखने के लिए शाही खिड़की से बाहर देख रही थी, तभी उसने देखा कि जुलूस से लौटते समय पुरोहित उसके पीछे आ रहा है। वह उससे मोहित हो गई और अपने कक्ष में जाकर सोचने लगी, "यदि मैं उसे नहीं पा सकी, तो मैं यहीं मर जाऊँगी।" इसलिए उसने अपना भोजन छोड़ दिया और वहीं लेट गई। राजा ने उसे न देखकर उसके बारे में पूछा। जब उसे पता चला कि वह बीमार है, तो वह उसके पास गया और आदरपूर्वक पूछा कि उसे क्या कष्ट है। शर्म के मारे उसने कुछ नहीं बताया। वह राजसिंहासन पर बैठा और अपनी मुख्य रानी को अपनी माँ का पता लगाने के लिए भेजा। वह गई और महारानी माँ की पीठ सहलाते हुए उनसे पूछा। स्त्रियाँ स्त्रियों से रहस्य नहीं छिपातीं: और रहस्य बता दिया गया। रानी ने जाकर राजा को बताया। राजा ने कहा, "ठीक है, जाओ और उन्हें दिलासा दो: मैं पुरोहित को राजा बनाऊँगा और उन्हें उनकी प्रधान रानी।" वह गई और उन्हें दिलासा दिया। राजा ने पुरोहित को बुलवाया और उन्हें सारी बात बताई, "मित्र, मेरी माता का जीवन बचाओ: तुम राजा बनोगे, वह तुम्हारी प्रधान रानी और मैं उपसराय।" पुरोहित ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता," लेकिन दोबारा पूछे

जाने पर वह मान गए: और राजा ने पुरोहित को राजा, महारानी माँ को प्रधान रानी और स्वयं को उपसराय बना दिया। वे सब एक साथ सद्भाव से रहने लगे, परन्तु बोधिसत्व गृहस्थ जीवन में दुर्बल महसूस करने लगे: उन्होंने इच्छाओं का त्याग कर एक धार्मिक (सन्यासी) जीवन की ओर रुख किया: इंद्रिय सुखों की परवाह किए बिना वे अकेले खड़े, बैठे और लेटे रहे, जैसे कोई कैदी या पिंजरे में बंद मुर्गा। रानी ने सोचा, "राजा मुझसे दूर भागते हैं, अकेले खड़े रहते हैं, बैठते हैं और लेटते हैं; वे जवान और तरोताज़ा हैं, मैं बूढ़ी और सफ़ेद बालों वाली हूँ: अगर मैं उन्हें एक कहानी सुनाऊँ कि उनके सिर में एक सफ़ेद बाल है, तो क्या होगा, जिससे वे इस पर विश्वास कर लें और मेरी संगति में आएं?" एक दिन, राजा का सिर साफ़ करते हुए, उन्होंने कहा, "महाराज, आप बूढ़े हो रहे हैं, आपके सिर में एक सफ़ेद बाल है। इसे निकाल कर मेरे हाथ में रख दीजिए।" उन्होंने एक बाल निकाला, लेकिन उसे फेंक दिया और अपना एक सफ़ेद बाल उनके हाथ में रख दिया। जब उन्होंने उसे देखा, तो मृत्यु के भय से उनके माथे से पसीना बहने लगा।हालांकि वह सोने की थाली के समान थी। उसने स्वयं को फटकारते हुए कहा, "सुसीमा, तुम जवानी में ही बूढ़ी हो गई हो; इतने समय से तुम इच्छाओं की गंदगी में डूबी हुई हो, जैसे कोई गाँव का सूअर कीचड़ में लोटता रहता है, तुम इसे छोड़ नहीं सकती: इच्छाओं को त्याग दो और हिमालय में तपस्वी बन जाओ: अब धार्मिक जीवन जीने का समय आ गया है," और इसी विचार के साथ उसने पहला श्लोक कहा:-

पहले बाल काले थे
   मेरी भौंहों के आसपास जमाव;
आज सफेद: सुसीमा, ध्यान दो!
   अब धर्म (मुक्ति) का समय आ गया है!
अतः बोधिसत्व ने संन्यासी जीवन की प्रशंसा की; परन्तु रानी ने देखा कि उसने बोधिसत्व को प्रेम करने के बजाय उससे विदा कर दिया है, और भयभीत होकर, उसके शरीर की प्रशंसा करके उसे संन्यासी जीवन से दूर रखने की इच्छा से, उसने दो श्लोक कहे:-

मेरे बाल सफेद हो गए हैं, तुम्हारे नहीं;
   जिस सिर से यह आया है, उसे ही खोदकर निकाल लें:
तुम्हारे भले के लिए मैं झूठ बोलने की हिम्मत करता हूँ:
   ऐसी ही एक गलती के लिए दोषारोपण से बचें!
तुम जवान हो, और देखने में सुंदर हो।
   जैसे वसंत ऋतु में एक कोमल पौधा!
अपना राज्य अपने पास रखो, मुझ पर मुस्कुराओ!
   अभी से यह मत सोचो कि बुढ़ापा क्या लेकर आएगा!
लेकिन बोधिसत्व ने कहा, "हे देवी, आप उस बात का वर्णन कर रही हैं जो अवश्य ही घटित होगी: जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, ये काले बाल पान के समान पीले पड़ जाते हैं: मैं उम्र के साथ शरीर में होने वाले परिवर्तन और विघटन को देखता हूँ, चाहे वे नीले कमल के फूलों की माला के समान कोमल हों, सोने के समान सुंदर हों और अपनी गौरवशाली यौवन के गौरव में डूबी हों: हे देवी, यही प्राणियों का भयानक अंत है," और, इसके अलावा, बुद्ध के आकर्षण के साथ सत्य को दर्शाते हुए, उन्होंने दो श्लोक कहे:-

मैंने उस युवा नौकरानी को देखा है,
   कोमल डंठल की तरह झूलता हुआ,
अपने रूप-रंग के गौरव से सजी हुई;
   वह जहां भी जाती है, पुरुष उस पर मोहित हो जाते हैं।
यह वही है जिसे मैंने स्कैन किया है।
   (अस्सी, नब्बे वर्ष बीत चुके हैं)
थरथराते हुए, कांपते हुए, हाथ में लाठी लिए हुए,
   अंततः पेड़ की छत की तरह झुक गया।
इस श्लोक में महान सत्ता ने सौंदर्य के दुख को दर्शाया है, और अब गृहस्थ जीवन के प्रति अपनी असंतुष्टि व्यक्त की है:-

मैं ऐसे ही विचारों पर चिंतन करता हूँ;
   एकांत रातों में ये विचार आते हैं:
मुझे अब आम आदमी का जीवन पसंद नहीं है:
   अब धर्म (मुक्ति) का समय आ गया है!
सामान्य जीवन में आनंद लेना एक कमजोर सहारा है:
बुद्धिमान व्यक्ति उसे काट देता है और अपने रास्ते चला जाता है।
इंद्रियों के सुखों और उनके सभी प्रभावों का त्याग करना।

इस प्रकार, इच्छाओं के सुख और दुख दोनों का उपदेश देते हुए, उन्होंने बुद्ध के संपूर्ण आकर्षण के साथ सत्य का प्रदर्शन किया; उन्होंने अपने मित्र को बुलवाया और उनसे राज्य पुनः प्राप्त करवाया; उन्होंने अपने सन्यास और सत्ता को अपने सन्यासों और मित्रों के विलाप के बीच त्याग दिया; वे हिमालय में एक तपस्वी ऋषि बन गए, और ध्यान की समाधि में प्रवेश करके ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियत हो गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की, और कई लोगों को अमृत (देवताओं (देवदूतों) का पेय) पिलाते हुए, उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय प्रधान रानी राहुल की माता थीं, राजा आनंद थे, और राजा सुसीमा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) सक्का (इंद्र) का हाथी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोटिसिंबली-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-412-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 412
कोटिसिम्बली-जातक. (*1)

“मैंने सहन किया” इत्यादि – गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए पाप के दंड के विषय में यह कथा सुनाई थी। इस कथा से संबंधित घटना का वर्णन पन्ना जन्म (जातक 149) में मिलता है। उस अवसर पर गुरु ने देखा कि स्वर्णमयी मठ में पाँच सौ भिक्षु कामुक विचारों से ग्रस्त थे। उन्होंने सभा को एकत्रित किया और कहा, “भाइयों, जहाँ संदेह करना उचित हो, वहाँ संदेह करना सही है; पाप मनुष्य को बरगद के वृक्षों की तरह घेर लेते हैं, जैसे बरगद के वृक्ष पेड़ के चारों ओर उगते हैं। इसी प्रकार, पुराने समय में एक सूती वृक्ष के शीर्ष पर रहने वाली एक आत्मा ने एक पक्षी को बरगद के बीज, जिन्हें उसने खा लिया था, सूती वृक्ष की शाखाओं में त्यागते हुए देखा और भयभीत हो गई कि कहीं उसका निवास स्थान नष्ट न हो जाए।” इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व एक वृक्ष-आत्मा के रूप में कपास के वृक्ष के शीर्ष पर निवास करते थे। गरुड़ (एक अलौकिक बाज) के राजा ने एक सौ पचास मील (4.23 किमी) के विशाल आकार में अवतार लिया और अपने पंखों की फड़फड़ाहट से विशाल सागर के जल को दो भागों में बाँटते हुए, एक हजार फुट लंबे (एक अलौकिक) सर्प के राजा को उसकी पूंछ से पकड़ लिया। सर्प ने अपने मुँह में पकड़ी हुई वस्तु को उगलवाकर, वह वृक्षों की चोटियों के साथ-साथ कपास के वृक्ष की ओर उड़ने लगा। सर्प-राज ने सोचा, "मैं उसे मुझे छोड़ने पर मजबूर करूँगा," इसलिए उसने अपना फन एक बरगद के वृक्ष में गाड़ दिया और खुद को मजबूती से उसके चारों ओर लपेट लिया। नाग-राज की शक्ति और सर्प-राज के विशाल आकार के कारण बरगद जड़ से उखड़ गया। लेकिन सर्प-राज ने बरगद को नहीं छोड़ा। रॉक किंग नागराज को बरगद के पेड़ समेत कपास के पेड़ पर ले गया, उसे पेड़ के तने पर लिटाया, उसका पेट चीरा और चर्बी खा ली। फिर उसने बाकी बचे शव को समुद्र में फेंक दिया। अब उस बरगद के पेड़ में एक चिड़िया थी, जो बरगद के फेंके जाने पर उड़कर कपास के पेड़ की एक ऊँची शाखा पर बैठ गई। चिड़िया को देखकर वृक्ष-आत्मा भय से काँप उठी और सोचने लगी, "यह चिड़िया मेरे तने पर बीट गिराएगी; बरगद या अंजीर का पेड़ उगेगा और मेरे पूरे पेड़ पर फैल जाएगा: इस प्रकार मेरा घर नष्ट हो जाएगा।" आत्मा के काँपने से पेड़ जड़ तक हिल गया। रॉक किंग ने काँपना देखा और कारण जानने के लिए दो श्लोक बोले:-

मैंने उस विशाल सांप की हजार फीट (6 फीट) लंबाई को सहन किया:
आपने उसके आकार और मेरे विशालकाय शरीर को सहन किया, फिर भी आप नहीं डरे।
लेकिन अब यह नन्हा पक्षी जिसे तुम धारण किए हुए हो, जो मेरे मुकाबले बहुत छोटा है:
तुम भय से कांपते और थरथराते हो; लेकिन किसलिए, हे कपास के वृक्ष?
तब देवता ने कारण बताते हुए चार श्लोक कहे:-

हे राजा, तुम्हारा भोजन मांस है, पक्षी का भोजन फल है।
वह बरगद और अंजीर के बीजों को निशाना बनाएगा।
और बो (पीपल) का पेड़ भी, और मेरा सारा तना प्रदूषित है;
वे मेरी टहनी की छाया में पेड़ उगाएंगे।
और मैं कोई वृक्ष नहीं बनूंगा, जो इस प्रकार उनके द्वारा छिपा रहे।
अन्य वृक्ष, जो कभी मजबूत जड़ों और घनी शाखाओं वाले थे, स्पष्ट रूप से दिखाते हैं
किस प्रकार पक्षियों द्वारा फैलाए गए विनाशकारी बीज उन्हें नष्ट कर देते हैं।
परजीवी वनस्पतियां विशाल वन वृक्ष को भी ढक लेंगी:
इसीलिए, हे राजा, आने वाले भय को देखकर मैं कांप उठता हूँ।
वृक्ष-आत्मा के शब्दों को सुनकर, रॉक किंग ने अंतिम छंद बोला:-

यदि परिस्थितियाँ डरावनी हों तो भय उचित है: आने वाले खतरे से बचाव करें:
बुद्धिमान लोग दोनों लोकों को शांतिपूर्वक देखते हैं यदि वे भय को त्याग दें।
दूसरे शब्दों में कहें तो, उसके द्वारा पेड़ को हिलाने-डुलाने की शक्ति से पक्षी उस पेड़ से भाग गया।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या करते हुए इन शब्दों से शुरुआत की: "जहाँ अविश्वास करना उचित हो, वहाँ अविश्वास करना सही है," और जन्म का उल्लेख किया: सत्यों के बाद पाँच सौ भिक्षुओं को संतत्व प्राप्त हुआ: "उस समय सारिपुत्र चट्टान थे और मैं स्वयं वृक्ष-आत्मा था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 370 की तुलना करें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धूमकारी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-413-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 413
धूमकारी-जातक

“धर्मी राजा,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल राजा द्वारा एक अजनबी पर किए गए पक्षपात का वर्णन किया। कथा के अनुसार, एक बार उस राजा ने अपने पुराने योद्धाओं पर कोई कृपा नहीं दिखाई जो नियमित रूप से उसके पास आते थे, परन्तु पहली बार आने वाले अजनबियों का आदर और सत्कार किया। वह एक अशांत सीमावर्ती प्रांत में युद्ध करने गया: परन्तु उसके पुराने योद्धाओं ने यह सोचकर युद्ध नहीं किया कि नए योद्धा, जिन पर कृपा थी, वे करेंगे; और नए योद्धाओं ने यह सोचकर युद्ध नहीं किया कि पुराने योद्धा करेंगे। विद्रोहियों की विजय हुई। राजा को यह जानकर कि उसकी पराजय नए योद्धाओं पर पक्षपात करने की गलती के कारण हुई है, श्रावस्ती नगर लौट आया। उसने ज्ञान के स्वामी से यह पूछने का निश्चय किया कि क्या वह एकमात्र ऐसा राजा था जिसे इस कारण पराजित होना पड़ा था: अतः सुबह के भोजन के बाद वह जेतवन मठ गया और गुरु से यह प्रश्न पूछा। गुरु ने उत्तर दिया, "महान राजा, आपका मामला अकेला नहीं है: पूर्व के राजा भी नए क्षेत्रों के प्रति दिखाए गए पक्षपात के कारण पराजित हुए थे," और इसलिए, राजा के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, कुरुओं के राज्य में स्थित इंद्रप्रस्थ नगर में युधिष्ठिल वंश के धनंजय नामक राजा शासन कर रहे थे। बोधिसत्व का जन्म उनके कुल पुरोहित के घर हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। पिता की मृत्यु के बाद वे इंद्रप्रस्थ लौट आए और राजा के कुल पुरोहित तथा सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों में उनके सलाहकार बन गए। उनका नाम विदुरपंडित था।

राजा धनंजय ने अपने पुराने सैनिकों की उपेक्षा की और नए सैनिकों को तरजीह दी। वे एक अशांत सीमावर्ती प्रांत में युद्ध करने गए, लेकिन न तो उनके पुराने योद्धा और न ही नए सैनिक लड़ने को तैयार हुए, दोनों को लगा कि दूसरा पक्ष मामले को संभाल लेगा। राजा पराजित हुए। इंद्रप्रस्थ लौटने पर उन्होंने सोचा कि उनकी पराजय नए सैनिकों को दी गई तरजीह के कारण हुई है। एक दिन उन्होंने सोचा, "क्या मैं अकेला ऐसा राजा हूँ जो नए सैनिकों को दी गई तरजीह के कारण पराजित हुआ हूँ, या क्या पहले भी दूसरों का यही हाल हुआ है? मैं विदुरपांडित से पूछूंगा।" इसलिए उन्होंने राजा की सेना में आए विदुरपांडित से यह प्रश्न पूछा।

गुरु ने अपने प्रश्न का कारण बताते हुए आधा श्लोक बोला:

धर्मात्मा राजा युधिष्ठिल ने एक बार बुद्धिमान विदुर से पूछा,
"हे ब्राह्मण, क्या तुम जानते हो कि किसके अकेले हृदय में अत्यंत तीखा दुख समाया हुआ है?"
उनकी बात सुनकर बोधिसत्व ने कहा, "हे महाराज, आपका दुःख तो छोटा दुःख है। पुराने समय में धूमकारी नाम के एक ब्राह्मण चरवाहे ने बकरियों का एक बड़ा झुंड लिया और जंगल में एक बाड़ा बनाकर उन्हें वहाँ रखा। वह आग जलाकर दूध और अन्य खाद्य पदार्थों से अपना जीवन यापन करता था और बकरियों की देखभाल करता था। कुछ सुनहरे रंग के हिरणों को देखकर, जो वहाँ आए थे, उसे उनसे प्रेम हो गया और उसने अपनी बकरियों की परवाह किए बिना हिरणों को उनका आदर दिया। शरद ऋतु में हिरण हिमालय की ओर चले गए: उसकी बकरियाँ मर गईं और हिरण उसकी दृष्टि से ओझल हो गए; इसलिए दुःख से उसे पीलिया हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। उसने नए आने वालों का आदर किया और मर गया, उसका दुःख और कष्ट आपसे सौ-हजार गुना अधिक था।" यह उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा,

बकरियों के झुंड के साथ एक ब्राह्मण, जो उच्च वसित्था वंश का था,
जंगल में बने अपने आवास में वे दिन-रात आग जलाकर धुआं करते रहते थे।
धुएं की गंध सूंघते हुए, मच्छरों से बुरी तरह परेशान हिरणों का एक झुंड आया।
धूमकारी के घर के पास बारिश के मौसम में जीविका कमाने के लिए।
अब सारा ध्यान हिरणों पर है; उसकी बकरियों की कोई परवाह नहीं की जाती।
वे आते-जाते रहते हैं, उन पर कोई ध्यान नहीं देता, और इसलिए वे वहीं मर जाते हैं।
लेकिन अब मच्छर जंगल छोड़कर चले गए हैं, शरद ऋतु में बारिश नहीं हो रही है:
हिरण को फिर से पर्वतीय ऊंचाइयों और नदी के उद्गम स्थलों की तलाश करनी होगी।
ब्राह्मण देखता है कि हिरण गायब हो गए हैं और उसकी सारी बकरियां मर चुकी हैं:
दुःख से क्षीण हो चुके उस व्यक्ति को पीलिया हो गया है और उसके चेहरे की सारी रौनक गायब हो गई है।
इसलिए जो व्यक्ति अपनों की उपेक्षा करता है और किसी अजनबी को प्रिय कहता है,
धूमकारी की तरह, वह अकेले ही अनेक कड़वे आँसू बहाते हुए शोक मनाता है।
इस प्रकार की कथा उस महान सत्ता ने राजा को सांत्वना देने के लिए सुनाई। राजा को इससे तसल्ली मिली और वह प्रसन्न हुआ, और उसने उस सत्ता को बहुत धन-दौलत दी। उस समय से उसने अपनी प्रजा पर कृपा दिखाई, और दान-पुण्य और सद्गुणों के कारण वह स्वर्ग के लिए नियत हो गया।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय कुरु राजा आनंद थे, धूमकारी कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) थे, और विदुरपंडित मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जागर-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-414-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 414
जागरा-जातक

“वह कौन है जो जागता है,” इत्यादि — गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक गृहस्थ (शिष्य) के विषय में यह कथा सुनाई। वह प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश कर चुके थे। श्रावस्ती नगर से वन मार्ग से होते हुए वे रथों के काफिले के साथ निकले। एक रमणीय जलयुक्त स्थान पर काफिले के सरदार ने पाँच सौ रथों को खोलकर भोजन की व्यवस्था की और वहीं डेरा डाला। सभी लोग इधर-उधर लेटकर सो गए। काफिला सरदार के पास एक वृक्ष की जड़ में गृहस्थ परिक्रमा करने लगे। पाँच सौ लुटेरों ने काफिले को लूटने की योजना बनाई: उन्होंने विभिन्न हथियारों से काफिले को घेर लिया और प्रतीक्षा करने लगे। काफिला टहलते हुए देखकर वे उसके सोने के समय लूटपाट शुरू करने के लिए घात लगाकर बैठ गए। वे पूरी रात टहलते रहे। भोर होते ही लुटेरों ने अपने द्वारा उठाए गए डंडे, पत्थर और अन्य हथियार फेंक दिए। वे यह कहते हुए चले गए, "गुरुजी, आप अपनी संपत्ति के स्वामी हैं क्योंकि आपने उस व्यक्ति की कृपा से अपना जीवन बचाया है जो इतनी लगन से जागता रहता है; आपको उसका आदर करना चाहिए।" सुबह जल्दी उठकर लुटेरों द्वारा फेंके गए पत्थरों और अन्य वस्तुओं को देखकर, उन्होंने उस गृहस्थ को आदर दिया, यह मानते हुए कि उन्होंने अपना जीवन उसी के ऋणी बनाया है। गृहस्थ अपने गंतव्य पर गया और अपना काम निपटाया; फिर वह श्रावस्ती नगर लौट आया और जेतवन मठ गया; वहाँ उसने तथागत (बुद्ध) को प्रणाम किया और उनके चरणों में बैठ गया, और जब तथागत ने उसे बोलने का निमंत्रण दिया, तो उसने कथा सुनाई। गुरु ने कहा, "गृहस्थ, जागते और जागते रहने से केवल आपको ही विशेष पुण्य प्राप्त नहीं हुआ है, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने भी ऐसा ही किया था।" और इस प्रकार गृहस्थ के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और फिर लौटकर गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। कुछ समय बाद उन्होंने गृहस्थी त्याग दी और तपस्वी बन गए। शीघ्र ही उन्होंने ध्यान की साधना प्राप्त कर ली और हिमालय पर्वतमाला में केवल खड़े और चलते हुए ही रात भर बिना सोए चलते रहे। उनकी यात्रा के अंत में एक वृक्ष में निवास करने वाली एक आत्मा उनसे प्रसन्न हुई और वृक्ष के एक छिद्र से उनसे प्रश्न पूछते हुए प्रथम श्लोक कहा:

वह कौन है जो दूसरों के सोते समय जागता है और दूसरों के जागते समय सोता है?
मेरी पहेली को कौन पढ़ सकता है, और इसका उत्तर कौन देगा?
आत्मा की वाणी सुनकर बोधिसत्व ने यह श्लोक कहा:-

मैं वह हूं जो दूसरों के सोते समय जागता हूं, और दूसरों के जागते समय सोता हूं।
मैं तुम्हारी पहेली पढ़ सकता हूँ, मैं तुम्हें उत्तर दे सकता हूँ।
आत्मा ने इस श्लोक में फिर से एक प्रश्न पूछा:-

ऐसा कैसे होता है कि आप तब जागते हैं जब दूसरे सोते हैं, और तब सोते हैं जब दूसरे जागते हैं?
आपने मेरी पहेली को कैसे पढ़ा, और इस उत्तर तक कैसे पहुंचे?
उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया:-

कुछ लोग यह भूल जाते हैं कि सद्गुण पूरी तरह संयमी रहने में निहित है।
जब वे सो रहे होते हैं, मैं जागता रहता हूँ, हे वृक्ष की आत्मा।
कुछ लोगों में वासना, बुराई और अज्ञानता का अस्तित्व समाप्त हो गया है:
जब ऐसे लोग जागते हैं, तब मैं सोता हूँ, हे वृक्ष की आत्मा।
इसलिए मैं तब जागता हूँ जब दूसरे सोते हैं, और तब सोता हूँ जब दूसरे जागते हैं:
इसलिए मैंने आपकी पहेली पढ़ी, और इसी के अनुसार मैं आपको उत्तर देता हूँ।
जब उस महान सत्ता ने यह उत्तर दिया, तो आत्मा प्रसन्न हुई और उसने उनकी स्तुति में अंतिम श्लोक कहा:-

अच्छी बात यह है कि तुम दूसरों के सोते समय जागते हो, और दूसरों के जागते समय सोते हो।
आपने मेरी पहेली को अच्छे से पढ़ा, और आपने जो उत्तर दिया वह भी अच्छा था।
और इस प्रकार बोधिसत्व की स्तुति करते हुए, आत्मा वृक्ष में स्थित अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गई।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय, वृक्ष-आत्मा उप्पलावन्ना थी, और तपस्वी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुम्मासापिंड-जातक**

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----॥-415-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 415
कुम्मसपिंडा जातक

“सेवा संपन्न हुई,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए रानी मल्लिका के विषय में यह कथा सुनाई। वह श्रावस्ती नगर के माला बनाने वालों के मुखिया की पुत्री थीं, अत्यंत सुंदर और गुणी। जब वह सोलह वर्ष की थीं, तब कुछ अन्य स्त्रियों के साथ एक पुष्प उद्यान में जा रही थीं। उनके पास एक टोकरी में खट्टी दलिया के तीन भाग थे। नगर से निकलते समय उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रकाश बिखेरते हुए और भिक्षुओं की सभा से घिरे हुए नगर में प्रवेश करते देखा। उन्होंने भगवान बुद्ध को दलिया के तीन भाग अर्पित कर दिए।

गुरु ने अपना राजसी प्याला आगे बढ़ाते हुए उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्होंने तथागत (बुद्ध) के चरणों को सिर झुकाकर प्रणाम किया और अपनी प्रसन्नता को ध्यान में लीन करते हुए एक तरफ खड़ी हो गईं। उन्हें देखकर गुरु मुस्कुराए। पूज्य आनंद को आश्चर्य हुआ कि तथागत (बुद्ध) क्यों मुस्कुरा रहे हैं और उन्होंने उनसे यह प्रश्न पूछा। गुरु ने उन्हें कारण बताते हुए कहा, "आनंद, आज यह कन्या कोसल राजा की प्रधान रानी बनेगी, क्योंकि उसने दलिया खाया है।" कन्या पुष्प उद्यान की ओर चली गई। उसी दिन कोसल राजा ने अजातशत्रु से युद्ध किया और पराजित होकर भाग गया। जब वह घोड़े पर सवार होकर आ रहा था, तो उसने कन्या के गायन की ध्वनि सुनी और उससे आकर्षित होकर उद्यान की ओर चल पड़ा। कन्या का पुण्य फलदायी था, इसलिए राजा को देखते ही वह बिना भागे उसके पास आई और घोड़े की नाक से लगाम पकड़ ली। राजा ने घोड़े पर सवार होकर उससे पूछा कि क्या वह विवाहित है या नहीं। जब उसे पता चला कि वह नहीं है, तो वह घोड़े से उतरा और हवा व धूप से थककर थोड़ी देर उसकी गोद में विश्राम किया। फिर उसने उसे घोड़े पर बिठाया और एक विशाल सेना के साथ नगर में प्रवेश करके उसे उसके घर ले आया। शाम को उसने एक रथ भेजा और बड़े सम्मान और धूमधाम से उसे उसके घर से लाया, उसे गहनों के ढेर पर बिठाया, उसका अभिषेक किया और उसे प्रधान रानी बना दिया। उस समय से वह राजा की प्रिय, प्रियतम और समर्पित पत्नी बन गई, जिसके पास वफादार सेवक और पाँचों स्त्रीत्व के गुण थे; और वह बुद्धों की प्रिय थी। पूरे नगर में यह बात फैल गई कि उसने गुरु को दलिया के तीन भाग देने के कारण इतनी समृद्धि प्राप्त की है।

एक दिन सत्य के हॉल में वे चर्चा करने लगे: “महोदय, रानी मल्लिका ने बुद्धों को तीन भाग दलिया दिया, और फलस्वरूप उसी दिन उनका राज्याभिषेक हुआ: वास्तव में बुद्धों का पुण्य महान है।” गुरु आए, उन्होंने पूछा और उन्हें भिक्षुओं की चर्चा का विषय बताया गया: उन्होंने कहा, “यह आश्चर्य की बात नहीं है, भिक्षुओं, कि मल्लिका ने केवल असीम ज्ञानी बुद्ध को तीन भाग दलिया देकर कोसल राजा की प्रधान रानी बन गईं: ऐसा क्यों? क्योंकि यह बुद्धों के महान पुण्य के कारण है: प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने पच्चेकबुद्धों को बिना नमक या तेल के दलिया दिया, और इसके कारण उन्हें अपने अगले जन्म में काशी में राजा बनने का गौरव प्राप्त हुआ, जो तीन सौ मील (4.23 किमी) में फैला हुआ था”: और इस प्रकार उन्होंने प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ था। बड़े होकर वे एक धनी व्यक्ति के यहाँ मजदूरी करके अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन उन्होंने एक दुकान से खट्टी दलिया के चार भाग लिए और सोचा, "यह मेरे नाश्ते के लिए काफी होगा," और अपने खेती के काम पर चले गए। चार पच्चेकबुद्धों को भिक्षा मांगने के लिए बनारस की ओर आते देख उन्होंने सोचा, "मेरे पास दलिया के ये चार भाग हैं, अगर मैं इन्हें बनारस आने वाले इन लोगों को दे दूं तो क्या होगा?" इसलिए वे उनके पास गए और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "महोदय, मेरे पास दलिया के ये चार भाग हैं: मैं इन्हें आपको अर्पित करता हूँ: मैं आपसे निवेदन करता हूँ, कृपया इन्हें स्वीकार करें, इससे मुझे अपने शाश्वत कल्याण के लिए पुण्य प्राप्त होगा।" यह देखकर कि उन्होंने स्वीकार कर लिया है, उन्होंने रेत बिछाई और चार आसन बनाए और उन पर टूटी हुई शाखाएँ बिछाईं; फिर उन्होंने पच्चेकबुद्धों को क्रम से बैठाया; पत्तों की टोकरी में जल लाकर, उन्होंने दान का जल डाला और फिर चार कटोरों में दलिया के चार भाग रखते हुए प्रणाम किया और कहा, "हे प्रभु, इनके फलस्वरूप मेरा जन्म निर्धन परिवार में न हो; यही मेरे अनंत ज्ञान की प्राप्ति का कारण बने।" पच्चेकबुद्धों ने भोजन किया और धन्यवाद देकर नंदमूल गुफा की ओर प्रस्थान किया। प्रणाम करते हुए बोधिसत्व ने पच्चेकबुद्धों के साथ संगति का आनंद अनुभव किया और उनके दृष्टि से ओझल होने और अपने कार्य पर जाने के बाद भी वे मृत्यु तक उन्हें याद करते रहे। इसी फलस्वरूप उनका जन्म बनारस की प्रमुख रानी के गर्भ में हुआ। उनका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। जब से वह अकेले चलने में सक्षम हुआ, तब से उसे अपने पिछले जन्मों के सभी कर्मों को स्पष्ट रूप से याद करने की शक्ति प्राप्त थी, जैसे किसी साफ दर्पण में उसका

अपना चेहरा प्रतिबिंबित होता है। उसे यह स्पष्ट था कि उसका जन्म इस अवस्था में इसलिए हुआ है क्योंकि उसने उसी शहर में सेवक के रूप में काम पर जाते समय पच्चेकबुद्धों को चार भाग दलिया दिया था। बड़े होकर उसने तक्षशिला में सभी कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। लौटने पर उसके पिता उसकी प्रतिभा से प्रसन्न हुए और उसे वायसराय नियुक्त किया। बाद में, अपने पिता की मृत्यु के बाद, वह राज्य में प्रतिष्ठित हो गया। फिर उसने कोसल राजा की अत्यंत सुंदर पुत्री से विवाह किया और उसे अपनी मुख्य रानी बनाया। उसके छत्र उत्सव के दिन पूरे शहर को इस प्रकार सजाया गया मानो वह देवताओं (देवदूतों) का शहर हो। उसने जुलूस में शहर का चक्कर लगाया; फिर वह सजे-धजे महल में चढ़ा और सफेद छत्र से सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान हुआ। वहाँ बैठे हुए उन्होंने उपस्थित सभी लोगों को देखा; एक ओर मंत्री, दूसरी ओर ब्राह्मण और गृहस्थ, जो विभिन्न प्रकार के वस्त्रों में सुशोभित थे; तीसरी ओर नगरवासी, जिनके हाथों में विभिन्न प्रकार के उपहार थे; और चौथी ओर सोलह हजार नर्तकियों का समूह, मानो स्वर्ग की अप्सराओं का समूह, पूर्ण वस्त्रों में सजी हुई थीं। इस मनमोहक वैभव को देखकर उन्हें अपनी पूर्व स्थिति याद आई और उन्होंने सोचा,"यह सफेद छत्र, स्वर्ण माला और विशाल स्वर्ण आधार, ये हजारों हाथी और रथ, मेरा विशाल क्षेत्र जो रत्नों और मोतियों से भरा है, धन और हर प्रकार के अनाज से लबालब है, ये स्त्रीयाँ जो स्वर्ग की अप्सराओं के समान हैं, और यह सारी शान-शौकत, जो केवल मेरी है, चार पच्चेकबुद्धों को दिए गए चार भाग दलिया के दान के कारण ही है: मैंने यह सब उन्हीं के माध्यम से प्राप्त किया है": और इस प्रकार पच्चेकबुद्धों की श्रेष्ठता को याद करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने पूर्व पुण्य कर्म का वर्णन किया। जैसे ही उन्होंने इस बारे में सोचा, उनका पूरा शरीर आनंद से भर गया। आनंद से उनका हृदय पिघल गया और उन्होंने आनंदमय गीत के दो श्लोक गाए:-

बुद्धों की उच्च सेवा की गई
   वे कहते हैं कि कभी भी सस्ता नहीं माना जाता:
नमक रहित, सूखा दलिया दान में दिया गया।
   मुझे यह इनाम लाओ ताकि मैं इसे प्राप्त कर सकूं।
हाथी, घोड़े और गायें
   सोना, अनाज और सारी ज़मीन,
दिव्य रूप वाली लड़कियों की टोलियाँ:
   दान ने इन्हें मेरे हाथों तक पहुँचाया है।
अतः बोधिसत्व ने अपने छत्र-समारोह के दिन हर्ष और प्रसन्नता में दो छंदों का आनंद गीत गाया। तब से यह गीत राजा का प्रिय गीत कहलाया और सभी इसे गाते थे—बोधिसत्व की नर्तकियाँ, अन्य नर्तक और संगीतकार, महल में रहने वाले लोग, नगरवासी और मंत्री मंडल के सदस्य।

बहुत समय बीत जाने के बाद, रानी उस गीत का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हो गईं, लेकिन उन्होंने राजा से पूछने का साहस नहीं किया। एक दिन राजा उनकी किसी खूबी से प्रसन्न हुए और बोले, "हे रानी, मैं तुम्हें वरदान देता हूँ; वरदान स्वीकार करो।" "ठीक है, महाराज, मैं स्वीकार करती हूँ।" "मैं आपको क्या दूँ, हाथी, घोड़े या कुछ और?" "हे महाराज, आपकी कृपा से मुझे किसी चीज की कमी नहीं है, मुझे ऐसी किसी चीज की आवश्यकता नहीं है: लेकिन यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो मुझे अपने गीत का अर्थ बताकर दीजिए।" "हे रानी, तुम्हें उस वरदान की क्या आवश्यकता है? कुछ और स्वीकार करो।" "हे महाराज, मुझे किसी और चीज की आवश्यकता नहीं है: मैं यही स्वीकार करती हूँ।" "हे देवी, मैं आपको बताऊंगा, लेकिन केवल आपसे ही नहीं: मैं बनारस के पूरे बारह मील (4.23 किमी) में ढोल भेजूंगा, मैं अपने महल के द्वार पर रत्नजड़ित मंडप बनवाऊंगा और वहां रत्नजड़ित सिंहासन स्थापित करूंगा: मैं उस पर मंत्रियों, ब्राह्मणों और शहर के अन्य लोगों तथा सोलह हजार स्त्रियों के बीच बैठूंगा और वहां यह कहानी सुनाऊंगा।" रानी मान गईं। राजा ने सब कुछ वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा था, और फिर देवताओं (देवदूतों) की संगति में इंद्र (सक्का) की तरह, एक विशाल जनसमूह के बीच सिंहासन पर बैठ गए। रानी ने भी अपने सभी आभूषणों के साथ एक स्वर्णमयी कुर्सी सजाई और एक तरफ उचित स्थान पर बैठ गईं, और तिरछी दृष्टि से देखते हुए कहा, "हे राजा, मुझे उस आनंद गीत का अर्थ समझाएं और स्पष्ट करें, जैसे आपने आकाश में चंद्रमा को उदय किया हो, जो आपने प्रसन्नता में गाया था"; और इस प्रकार उन्होंने तीसरा श्लोक बोला:-

गौरवशाली और धर्मात्मा राजा,
कई बार जो गाना आप गाते हैं,
अत्यंत आनंद से:
मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि कृपया मुझे इसका कारण बताएं।
उस महान सत्ता ने गीत का अर्थ बताते हुए चार छंद बोले:-

यह वही शहर है, लेकिन मेरे पिछले जन्म में मेरी स्थिति अलग थी:
मैं किसी दूसरे का नौकर था, एक किराए का कर्मचारी, लेकिन ईमानदार और योग्य व्यक्ति।
एक बार मैंने शहर से काम पर जाते हुए चार तपस्वियों को देखा,

भावहीन और शांत दृष्टि वाला, नैतिक नियमों में परिपूर्ण।
मेरे सारे विचार उन बुद्ध प्रतिमाओं की ओर चले गए: जैसे वे पेड़ के नीचे बैठे थे,
मैंने अपने हाथों से उन्हें दलिया लाकर दिया, जो भक्ति का प्रतीक था।
ऐसा पुण्य कर्म: देखो! आज मुझे इसका फल मिल रहा है।
सारी राजसी शान-शौकत और धन-दौलत, सारी भूमि मेरे अधिकार में।
जब रानी ने महान पुरुष को अपने कर्मों के फल का इस प्रकार पूर्ण वर्णन करते सुना, तो उसने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "महाराज, यदि आप दान के फल को इतनी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, तो आज से चावल का एक भाग लें और स्वयं तब तक न खाएं जब तक आप उसे धर्मात्मा पुरोहितों और ब्राह्मणों को दान न कर दें"; और उसने बोधिसत्व की स्तुति में एक श्लोक कहा:-

भोजन करो, दान का ध्यान रखो।
  सही-गलत का पहिया घुमाना शुरू करें:
हे शक्तिशाली राजा, अन्याय से भागो।
  अपने राज्य पर धार्मिक रूप से नियंत्रण रखें।
उस महान सत्ता ने उसकी बात स्वीकार करते हुए एक श्लोक कहा:-

फिर भी मैं उस रास्ते को अपना बना लेता हूँ।
  सही मार्ग पर चलते हुए,
जहां पराक्रमी, सुंदर रानी चली गई हैं:
  मुझे संत दृष्टि में सुखद लगते हैं।
यह कहकर उन्होंने रानी की सुंदरता की ओर देखा और कहा, "सुंदर देवी, मैंने अपने पूर्व कर्मों का पूरा वर्णन कर दिया है, परन्तु इन सब स्त्रियों में तुम्हारे समान सुंदर और आकर्षक कोई नहीं है: तुमने यह सुंदरता किस कर्म से प्राप्त की?" और फिर उन्होंने एक श्लोक कहा:-

हे देवी, स्वर्ग की अप्सरा के समान।
  तुम नौकरानियों की भीड़ में सबसे अलग हो:
किस अनुग्रहपूर्ण कार्य के लिए दिया गया था?
  क्या वह दिव्य सौंदर्य की देवी है?
फिर उसने अपने पिछले जन्म में किए गए पुण्य कर्म का वर्णन किया और अंतिम दो छंद कहे:-

मैं कभी एक नौकरानी की गुलाम थी
  अंबत्था के शाही दरबार में,
मैंने अपना हृदय विनम्रता को समर्पित कर दिया।
  सद्गुण और अच्छी प्रतिष्ठा के लिए।
एक भिखारी भिक्षु के कटोरे में
  एक बार मैंने चावल का दान दिया;
दान-पुण्य से मेरी आत्मा भर गई थी:
  ऐसा कर्म किया, और देखो! वैसा ही फल मिला।
ऐसा कहा जाता है कि वह भी पिछले जन्मों के सटीक ज्ञान और स्मरण के साथ बोलती थी।

अतः उन दोनों ने अपने पिछले कर्मों का पूर्णतः वर्णन किया, और उस दिन से उन्होंने शहर के चारों द्वारों पर, केंद्र में और महल के द्वार पर छह दान-पुण्य कक्ष बनवाए, और समस्त भारत में उत्साह जगाते हुए उन्होंने महान दान दिए, नैतिक कर्तव्यों और पवित्र दिनों का पालन किया, और अपने जीवन के अंत में स्वर्ग के लिए नियत हो गए।

पाठ के अंत में, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय रानी राहुल की माता थीं, और राजा मैं स्वयं था।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **परंतप-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-416-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 416
परंतप-जातक

"आतंक और भय," इत्यादि - गुरु ने यह बात बाँस के जंगल में रहते हुए देवदत्त द्वारा उन्हें जान से मारने की कोशिश के बारे में बताई। वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे, "महोदय, देवदत्त तथागत (बुद्ध) को मारने की कोशिश कर रहा है। उसने धनुर्धारियों को किराए पर लिया है, एक चट्टान फेंकी है, नलगिरी छोड़ी है, और तथागत (बुद्ध) के नाश के लिए विशेष उपाय कर रहा है।" गुरु आए और जब वे सब साथ बैठे थे, तो उन्होंने उनसे चर्चा का विषय पूछा। जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब उसने मुझे मारने की कोशिश की है: लेकिन वह मुझे डरा भी नहीं सका, और उसे केवल अपने लिए दुख ही मिला।" और इस तरह उन्होंने पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उनकी प्रमुख रानी के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और सभी पशुओं की आवाजों को समझने का मंत्र भी सीख लिया। अपने गुरु की शिक्षाओं का पालन करने के बाद वे बनारस लौट आए। उनके पिता ने उन्हें अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, लेकिन नियुक्त होने के बावजूद वे उन्हें जान से मारने की इच्छा रखने लगे और उनसे मिलना तक नहीं चाहते थे।

एक मादा सियार अपने दो शावकों के साथ रात में नाले के रास्ते शहर में घुस आई, जब पुरुष आराम करने के लिए सो रहे थे। बोधिसत्व के महल में, उनके शयनकक्ष के पास एक कमरा था, जहाँ एक अकेला यात्री अपने जूते उतारकर ज़मीन पर रखे हुए, अभी तक सोया नहीं था, एक तख़्ते पर लेटा हुआ था। सियार के बच्चे भूखे थे और रोने लगे। उनकी माँ ने सियारों की भाषा में कहा, "शोर मत करो, प्यारे बच्चों: उस कमरे में एक आदमी है जिसने अपने जूते उतारकर ज़मीन पर रखे हैं: वह एक तख़्ते पर लेटा है, लेकिन अभी सोया नहीं है: जब वह सो जाएगा, तो मैं उसके जूते ले लूँगी और तुम्हें खाना दूँगी।" मंत्र के प्रभाव से बोधिसत्व उसकी पुकार समझ गए, और अपने शयनकक्ष से बाहर आकर उन्होंने खिड़की खोली और कहा, "वहाँ कौन है?" "मैं, महाराज, एक यात्री।" "तुम्हारे जूते कहाँ हैं?" "ज़मीन पर।" "उन्हें उठाओ और ज़ोर से पटको।" यह सुनकर सियार बोधिसत्व पर क्रोधित हो गई। एक दिन वह उसी रास्ते से फिर शहर में आई। उस दिन एक शराबी आदमी कमल के कुंड में पानी पीने उतरा: वह उसमें गिर गया और डूब गया। उसके पास वे दो वस्त्र थे जो उसने पहने हुए थे, उसके अंतर्वस्त्र में एक हजार सिक्के थे और उसकी उंगली में एक अंगूठी थी। सियार के बच्चे भूख से रोने लगे, और माँ ने कहा, "शांत हो जाओ, बच्चों: इस कमल के कुंड में एक मृत व्यक्ति है, उसके पास इतनी संपत्ति थी: वह कुंड की सीढ़ी पर मृत पड़ा है, मैं तुम्हें उसका मांस खाने को दूंगी।" बोधिसत्व ने उसकी बात सुनकर खिड़की खोली और पूछा, "कक्ष में कौन है?" एक व्यक्ति उठा और बोला, "मैं।" "जाओ और कमल के कुंड में मृत पड़े व्यक्ति से वस्त्र, एक हजार सिक्के और अंगूठी ले आओ, और उसके शरीर को इस तरह डुबो दो कि वह पानी से बाहर न निकल सके।" उस व्यक्ति ने वैसा ही किया। सियार फिर क्रोधित हो गई: "कल तुमने मेरे बच्चों को जूते खाने से रोका था; आज तुम उन्हें मरे हुए आदमी को खाने से रोक रही हो। ठीक है: इसके तीसरे दिन एक शत्रु राजा आएगा और शहर को घेर लेगा, तुम्हारा पिता तुम्हें युद्ध में भेजेगा, वे तुम्हारा सिर काट देंगे: मैं तुम्हारा गला का खून पीकर अपनी शत्रुता शांत करूँगी: तुमने खुद को मेरा शत्रु बनाया है और मैं इसका हिसाब लूँगी।" उसने बोधिसत्व को कोसते हुए कहा। फिर वह अपने बच्चों को लेकर चली गई। तीसरे दिन शत्रु राजा आया और शहर को घेर लिया। राजा ने बोधिसत्व से कहा, "जाओ, प्रिय पुत्र, और उससे लड़ो।" "हे राजा, मैंने एक दर्शन देखा है: मैं नहीं जा सकता, क्योंकि मुझे अपनी जान जाने का डर है।" "तुम्हारा जीवन या मृत्यु मेरे लिए क्या मायने रखती है? जाओ।" महान बोधिसत्व ने आज्ञा मानी: अपने आदमियों को लेकर वह उस द्वार से बचकर निकल गया जहाँ शत्रु राजा तैनात था, और दूसरे द्वार से बाहर चला गया जिसे उसने खोला था। जैसे ही वह निकला, पूरा शहर मानो वीरान हो गया, क्योंकि सभी लोग उसके साथ निकल गए थे। वह एक खुले स्थान पर डेरा डाले बैठा और प्रतीक्षा करने लगा। राजा ने सोचा, "मेरे प्रतिनिधि ने शहर खाली कर दिया है और मेरी सारी सेना लेकर भाग गया है; शत्रु शहर के चारों ओर घात लगाए बैठा है; मैं तो बस एक मृत व्यक्ति हूँ।"अपनी जान बचाने के लिए, बोधिसत्व ने अपनी मुख्य रानी, अपने कुल पुरोहित और परंतपा नामक एक सेवक को साथ लिया। वे रात में भेस बदलकर जंगल में भाग गए। उनके भागने की खबर सुनकर, बोधिसत्व शहर में प्रवेश कर गए, शत्रु राजा को युद्ध में पराजित किया और राज्य पर कब्जा कर लिया। उनके पिता ने नदी के किनारे पत्तों की एक कुटिया बनाई और जंगली फल खाकर वहीं जीवन यापन करने लगे। वे और कुल पुरोहित जंगली फल लाने जाया करते थे; सेवक परंतपा कुटिया में रानी के साथ रहता था। रानी राजा से गर्भवती थी; लेकिन परंतपा के साथ लगातार रहने के कारण, उसने राजा के साथ पाप किया। एक दिन रानी ने उनसे कहा, "यदि राजा को पता चल गया, तो न तो तुम और न ही मैं जीवित रह पाओगे: उसे मार डालो।" "कैसे?" "वह तुम्हें स्नान करते समय अपनी तलवार और स्नान वस्त्र ले जाने के लिए कहता है: स्नान स्थल पर उसे पकड़ लो, उसका सिर काट दो और तलवार से उसके शरीर के टुकड़े-

टुकड़े कर दो और फिर उसे जमीन में दफना दो।" बोधिसत्व मान गए। एक दिन पुरोहित जंगली फल लाने गए थे; वे राजा के स्नान स्थल के पास एक पेड़ पर चढ़ गए। और वह फल इकट्ठा कर रहा था। राजा स्नान करना चाहता था, इसलिए वह परंतप के साथ, जो उसकी तलवार और स्नान वस्त्र लिए हुए था, जल-किनारे आया। जैसे ही राजा स्नान करने जा रहा था, परंतप ने, राजा की सतर्कता भंग करते हुए, उसकी गर्दन पकड़ ली और तलवार उठा ली। राजा मृत्यु के भय से चिल्ला उठा। पुजारी ने चीख सुनी और ऊपर से देखा कि परंतप उसका वध कर रहा है: लेकिन वह बहुत भयभीत था और पेड़ की डाल से फिसलकर घनी झाड़ियों में छिप गया। परंतप ने उसके फिसलने की आवाज सुनी, और राजा को मारकर दफनाने के बाद उसने सोचा, "आस-पास कहीं किसी डाल से फिसलने की आवाज आई थी; कौन है वहाँ?" लेकिन किसी को न देखकर वह स्नान करके चला गया।उसने राजा की गर्दन पकड़ ली और तलवार उठा ली। राजा मृत्यु के भय से चीख उठा। पुजारी ने चीख सुनी और ऊपर से देखा कि परंतप राजा की हत्या कर रहा है। परंतप बहुत भयभीत था और पेड़ की डाल से फिसलकर घनी झाड़ियों में छिप गया। परंतप ने फिसलते समय अपने द्वारा की गई आवाज सुनी और राजा को मारकर दफनाने के बाद सोचा, "आस-पास कहीं किसी डाल से फिसलने की आवाज आई थी; कौन है यहाँ?" लेकिन किसी को न देखकर वह नहाया और चला गया।उसने राजा की गर्दन पकड़ ली और तलवार उठा ली। राजा मृत्यु के भय से चीख उठा। पुजारी ने चीख सुनी और ऊपर से देखा कि परंतप राजा की हत्या कर रहा है। परंतप बहुत भयभीत था और पेड़ की डाल से फिसलकर घनी झाड़ियों में छिप गया। परंतप ने फिसलते समय अपने द्वारा की गई आवाज सुनी और राजा को मारकर दफनाने के बाद सोचा, "आस-पास कहीं किसी डाल से फिसलने की आवाज आई थी; कौन है यहाँ?" लेकिन किसी को न देखकर वह नहाया और चला गया।

फिर पुजारी अपने छिपने की जगह से बाहर आया; यह जानते हुए कि राजा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए हैं और उसे एक गड्ढे में दफना दिया गया है, उसने स्नान किया और अपनी जान के डर से कुटिया में लौटकर अंधा होने का नाटक किया। परंतप ने उसे देखा और पूछा कि उसके साथ क्या हुआ है। उसने अनजान होने का नाटक किया और कहा, "हे राजा, मैं अपनी आँखें खोकर लौटा हूँ: मैं साँपों से भरे जंगल में चींटियों के टीले के पास खड़ा था, और किसी विषैले साँप की साँस मुझ पर पड़ गई होगी।" परंतप ने सोचा कि पुजारी अज्ञानता में उसे राजा कह रहा है, और उसे आश्वस्त करने के लिए उसने कहा, "ब्राह्मण, चिंता मत करो, मैं तुम्हारा ख्याल रखूँगा," और इस तरह उसे दिलासा दिया और उसे बहुत सारे जंगली फल दिए। उस समय से परंतप ही फल इकट्ठा करता था। रानी का एक पुत्र हुआ। जब वह बड़ा हो रहा था, तो एक दिन सुबह-सुबह आराम से बैठे हुए रानी ने परंतप से कहा, "किसी ने तुम्हें राजा को मारते हुए देखा था?" "मुझे किसी ने नहीं देखा: लेकिन मैंने किसी चीज़ के शाखा से फिसलने की आवाज़ सुनी, चाहे वह मनुष्य हो या जानवर, मैं नहीं कह सकता: लेकिन जब भी मुझ पर भय आता है तो वह शाखाओं के चरमराने के कारण ही होता है," और इस प्रकार उससे बातचीत करते हुए उसने पहला छंद कहा:-

आज भी मुझ पर आतंक और भय का साया छाया रहता है।
तब किसी मनुष्य या पशु ने एक शाखा को हिलाया।
उन्होंने सोचा कि पुजारी सो रहा है, लेकिन वह जागा हुआ था और उनकी बातें सुन रहा था। एक दिन, जब परंतपा जंगली फल लेने गया था, पुजारी को अपनी ब्राह्मण पत्नी की याद आई और रोते हुए उसने दूसरा श्लोक कहा:-

मेरी सच्ची पत्नी का घर निकट ही है: मेरा प्रेम मुझे ऐसा बना देगा
परंतप की तरह पीला और पतला, पेड़ के कांपने पर।
रानी ने पूछा कि वह क्या कह रहा है। उसने कहा, "मैं तो बस सोच रहा था:" लेकिन एक दिन उसने फिर से तीसरी पंक्ति दोहराई:-

मेरी प्यारी पत्नी बनारस में है: उसकी अनुपस्थिति मुझे अब बहुत परेशान कर रही है।
परंतपा की तरह शाखा के हिलने से भी बीमार पड़ने की स्थिति।
एक दिन फिर उन्होंने चौथा छंद बोला:-

उसकी काली आँखों की चमक, उसकी बातें और सोच में डूबी मुस्कानें मुझे वर्तमान में सुकून देती हैं।
परंतपा की तरह पेड़ की डाल हिलने से भी बीमार पड़ने की स्थिति तक।
समय बीतने पर राजकुमार बड़ा हुआ और सोलह वर्ष का हो गया। तब ब्राह्मण ने उसे एक छड़ी दी और उसके साथ स्नानस्थान पर जाकर उसकी आँखें खोलीं और देखा। राजकुमार ने कहा, “क्या आप अंधे नहीं हैं, ब्राह्मण?” “मैं अंधा नहीं हूँ, लेकिन इस तरह मैंने अपनी जान बचाई है: क्या आप जानते हैं कि आपके पिता कौन हैं?” “हाँ।” “वह व्यक्ति आपके पिता नहीं हैं: आपके पिता बनारस के राजा थे: वह व्यक्ति आपके घर का सेवक है, उसने आपकी माता के साथ पाप किया और इसी स्थान पर आपके पिता की हत्या करके उन्हें दफना दिया।” ऐसा कहकर उन्होंने हड्डियाँ उखाड़कर उसे दिखाईं। राजकुमार बहुत क्रोधित हुआ और पूछा, “मैं क्या करूँ?” “उस व्यक्ति के साथ वही करो जो उसने तुम्हारे पिता के साथ किया,” और उसे पूरी बात समझाते हुए कुछ ही दिनों में उसे तलवार चलाना सिखाया। फिर एक दिन राजकुमार ने तलवार और स्नान वस्त्र लेकर कहा, “पिताजी, चलिए स्नान करते हैं।” परंतपा मान गए और उनके साथ चले गए। जब वह पानी में उतरा, तो राजकुमार ने अपने बाएं हाथ में चोटी और दाएं हाथ में तलवार पकड़ी और कहा, "इसी स्थान

पर तुमने मेरे पिता को चोटी से पकड़कर मार डाला था, जब वे चिल्ला रहे थे: मैं भी तुम्हारे साथ ऐसा ही करूंगा।" परंतपा मृत्यु के भय से विलाप करने लगा और उसने दो श्लोक कहे:-

निश्चित रूप से वह आवाज आप तक पहुंची होगी और आपको बता दी होगी कि क्या हुआ था:
जिस व्यक्ति ने शाखा को मोड़ा, वह निश्चित रूप से कहानी सुनाने आएगा।
वह मूर्खतापूर्ण विचार जो कभी मेरे मन में था, अब आपको भी पता चल गया है:
उस दिन वहां कोई गवाह, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, मौजूद था और उसने शाखा को हिलाया।
फिर राजकुमार ने अंतिम श्लोक बोला:-

तुमने मेरे पिता को देशद्रोहियों के झूठे शब्दों से मार डाला था;
तुमने उसके शरीर को शाखाओं में छिपा दिया: अब तुम भयभीत हो गए हो।
ऐसा कहकर उसने उसे वहीं मार डाला, दफना दिया और उस जगह को टहनियों से ढक दिया। फिर तलवार धोकर और स्नान करके वह पत्तों की झोपड़ी में लौट गया। उसने पुजारी को बताया कि उसने परंतपा को कैसे मारा: उसने उसकी माँ की निंदा की, और यह कहते हुए, "अब हम क्या करें?" तीनों बनारस लौट गए। बोधिसत्व ने युवा राजकुमार को अपना प्रतिनिधि बनाया और दान-पुण्य और अन्य अच्छे कर्म करके वह स्वर्ग के मार्ग पर पूर्णतः चल पड़ा।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म का विवरण दिया: "उस समय देवदत्त वृद्ध राजा थे, और मैं स्वयं युवा राजा था।"

पुस्तक VIII. अत्थ-निपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कक्कानि-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-417-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 417
कच्चानी-जातक

"सफेद वस्त्र पहने हुए," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए यह कथा सुनाई थी, जो एक ऐसे व्यक्ति के बारे में थी जो अपनी माता का भरण-पोषण करता था। कथा यह है कि वह व्यक्ति श्रावस्ती नगर में एक अच्छे परिवार और आचरण का था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह अपनी माता के प्रति समर्पित हो गया और मुख धोने, दांत साफ करने, स्नान कराने, पैर धोने आदि के साथ-साथ दलिया, चावल और अन्य भोजन देकर उनकी सेवा करता था। माता ने उससे कहा, "प्रिय पुत्र, गृहस्थ जीवन में और भी कर्तव्य होते हैं: तुम्हें एक अच्छे परिवार की दासी से विवाह करना चाहिए, जो मेरी सेवा करे, और तब तुम अपना उचित कार्य कर सकते हो।" "माता, यह मेरे अपने भले और संतोष के लिए है कि मैं आपकी सेवा करता हूँ: आपकी इतनी अच्छी सेवा और कौन कर सकता है?" "पुत्र, तुम्हें हमारे घर की समृद्धि के लिए कुछ करना चाहिए।" "मुझे गृहस्थ जीवन की कोई परवाह नहीं है; मैं आपकी सेवा करूँगा, और आपके मरने और दफ़नाए जाने के बाद मैं संन्यासी बन जाऊँगा।" उसने बार-बार उस पर दबाव डाला: और अंत में, उसे मनाने या उसकी सहमति प्राप्त करने में असफल रहने पर, वह उसके लिए एक उपयुक्त परिवार से एक नौकरानी ले आई। उसने उससे शादी कर ली और उसके साथ रहने लगा, क्योंकि वह अपनी माँ का विरोध नहीं करना चाहता था। उसने देखा कि उसका पति अपनी माँ की कितनी देखभाल करता है, और उसकी नकल करने की इच्छा से वह भी अपनी माँ की उतनी ही देखभाल करने लगी। अपनी पत्नी की भक्ति को देखकर, उसने उसे तब से हर संभव स्वादिष्ट भोजन देना शुरू कर दिया। समय बीतने के साथ, उसने अपने अहंकार में मूर्खतापूर्ण ढंग से सोचा, "वह मुझे हर संभव स्वादिष्ट भोजन देता है: वह अपनी माँ से छुटकारा पाने के लिए बेचैन होगा और मैं इसके लिए कोई न कोई उपाय जरूर ढूंढ लूंगी।" तो एक दिन उसने कहा, "पतिदेव, जब आप घर से बाहर जाते हैं तो आपकी माँ मुझे डांटती है।" उसने कुछ नहीं कहा। उसने सोचा, "मैं बुढ़िया को परेशान कर दूंगी और उसे अपने बेटे के लिए अप्रिय बना दूंगी": और तब से वह उसे चावल का दलिया या तो बहुत गर्म या बहुत ठंडा या बहुत नमकीन या बिना नमक के देने लगी। जब बुढ़िया शिकायत करती कि पानी बहुत गर्म या बहुत नमकीन है, तो वह बर्तन भरने के लिए पर्याप्त ठंडा पानी डाल देती: और फिर पानी ठंडा और नमकीन होने की शिकायत पर वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाती, "अभी तो तुमने कहा था कि पानी बहुत गर्म और नमकीन है: तुम्हें कौन संतुष्ट कर सकता है?" इसलिए स्नान करते समय वह

बुढ़िया की पीठ पर बहुत गर्म पानी डाल देती: जब वह कहती, "बेटी, मेरी पीठ जल रही है," तो दूसरी उस पर थोड़ा ठंडा पानी डाल देती, और इसकी शिकायत पर वह पड़ोसियों को कहानी सुनाती, "इस औरत ने अभी कहा था कि पानी बहुत गर्म है, अब यह चिल्ला रही है कि पानी बहुत ठंडा है: कौन इसकी धृष्टता सहन कर सकता है?" यदि बुढ़िया शिकायत करती कि उसके बिस्तर में पिस्सू भरे हुए हैं, तो वह बिस्तर को बाहर ले जाती और अपने बिस्तर को उस पर झाड़ती और फिर उसे वापस लाकर कहती, "मैंने इसे झाड़ दिया है": भली बुढ़िया, जिसे अब दोगुने पिस्सू काट रहे होते, पूरी रात जागती रहती और रात भर काटे जाने की शिकायत करती रहती; दूसरा पलटकर जवाब देता, "कल और परसों भी तुम्हारा बिस्तर हिलाया गया था।"ऐसी स्त्री की सारी ज़रूरतें कौन पूरी कर सकता है? बुढ़िया के बेटे को उससे भड़काने के लिए, वह जगह-जगह कफ, बलगम और सफ़ेद बाल बिखेर देती थी, और जब वह पूछता कि सारा घर इतना गंदा कौन कर रहा है, तो वह कहती, "तेरी माँ करती है।" लेकिन अगर उसे ऐसा करने से मना किया जाता, तो वह चिल्ला उठती: मैं ऐसी बुढ़िया के साथ एक ही घर में नहीं रह सकती: आपको तय करना होगा कि वह रहे या मैं। उसने उसकी बात सुनी और कहा, "पत्नी, तुम अभी जवान हो और जहाँ भी जाओ, कमा सकती हो: लेकिन मेरी माँ कमज़ोर है और मैं ही उसका सहारा हूँ; जाओ और अपने रिश्तेदारों के पास चली जाओ।" यह सुनकर वह डर गई और सोचने लगी, "वह अपनी माँ से नाता नहीं तोड़ सकता जो उसे इतनी प्यारी है: लेकिन अगर मैं अपने पुराने घर चली गई, तो मुझे वियोग का दुखमय जीवन जीना पड़ेगा: मैं अपनी सास को मनाऊँगी और पहले की तरह उसकी देखभाल करूँगी": और तब से उसने ऐसा ही किया। एक दिन वह गृहस्थ शिष्य जेतवन मठ में धर्ममार्ग का उपदेश सुनने गया: गुरु को प्रणाम करके वह एक तरफ खड़ा हो गया। गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह अपने पुराने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह तो नहीं है, क्या वह अपनी माँ की देखभाल में कर्तव्यनिष्ठ है। उसने उत्तर दिया, "हाँ, प्रभु: मेरी माँ मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे लिए एक दासी को पत्नी के रूप में लाई, उसने ऐसा-ऐसा किया।" "अनुचित बातें," उसने उसे सब कुछ बताते हुए कहा, "परन्तु वह स्त्री मुझे मेरी माँ से संबंध तोड़ने के लिए विवश नहीं कर सकी, और अब वह उनका पूरे आदर से ध्यान रखती है।" गुरु ने कहानी सुनी और कहा, "इस बार तुमने उसकी विनती नहीं मानी: परन्तु पहले तुमने उसकी विनती पर अपनी माँ को घर से निकाल दिया था और मेरी कृपा से उसे वापस अपने घर ले आए और उसकी देखभाल की": और उस व्यक्ति के अनुरोध पर उसने पुरानी कहानी सुनाई।"इस बार तुम उसकी विनती नहीं करोगे: परन्तु पहले तुमने उसकी विनती पर अपनी माँ को घर से निकाल दिया था और मेरी वजह से उसे वापस अपने घर ले आए और उसकी देखभाल की": और उस आदमी के अनुरोध पर उसने पुरानी कहानी सुनाई।"इस बार तुम उसकी विनती नहीं करोगे: परन्तु पहले तुमने उसकी विनती पर अपनी माँ को घर से निकाल दिया था और मेरी वजह से उसे वापस अपने घर ले आए और उसकी देखभाल की": और उस आदमी के अनुरोध पर उसने पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, एक परिवार के युवक ने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी माँ की देखभाल में अपना जीवन व्यतीत किया, जैसा कि प्रारंभिक कथा में बताया गया है: विवरण ऊपर दिए गए अनुसार विस्तृत हैं। लेकिन इस बार, जब उसकी पत्नी ने कहा कि वह उस बुढ़िया के साथ नहीं रह सकती और उसे यह तय करना होगा कि उनमें से किसे जाना चाहिए, तो उसने उसकी बात मानकर कहा कि गलती उसकी माँ की है और कहा, "माँ, तुम हमेशा घर में झगड़े का कारण बनती हो: अब से कहीं और जाकर रहो, जहाँ तुम चाहो।" वह रोते हुए मान गई और एक सहेली के घर जाकर मजदूरी करने लगी और बड़ी मुश्किल से अपना गुजारा करती थी। उसके जाने के बाद, उसकी बहू गर्भवती हो गई और अपने पति और पड़ोसियों से कहने लगी कि जब तक वह बुढ़िया घर में थी, ऐसा कभी नहीं हो सकता था। बच्चे के जन्म के बाद, उसने अपने पति से कहा, "तुम्हारी माँ के घर में रहने के दौरान मेरा कोई बेटा नहीं हुआ, लेकिन अब हुआ है: तो अब तुम देख सकते हो कि वह कितनी बुरी चुड़ैल थी।" वृद्धा ने सुना कि पुत्र का जन्म उसके घर छोड़ने के कारण हुआ है, और उसने सोचा, "निश्चित रूप से सत्य इस संसार में मर चुका है: यदि ऐसा न होता, तो इन लोगों को अपनी माँ को पीटने और घर से बाहर निकालने के बाद पुत्र और सुखमय जीवन न मिलता: मैं मरे हुए सत्य के लिए भेंट चढ़ाऊँगी।" इसलिए एक दिन उसने पिसा हुआ तिल और चावल, एक छोटा बर्तन और एक चम्मच लिया: वह शवों के कब्रिस्तान में गई और तीन खोपड़ियों से बने चूल्हे के नीचे आग जलाई: फिर वह पानी में उतरी, सिर समेत स्नान किया, अपने वस्त्र धोए और अपने चूल्हे के पास लौटकर अपने बाल खोले और चावल धोने लगी।

उस समय बोधिसत्व स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) थे; और बोधिसत्व सतर्क रहते हैं। जब उन्होंने संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने देखा कि एक वृद्ध स्त्री सत्य को इस प्रकार अंतिम आहुति दे रही थी मानो सत्य मर चुका हो। उसकी सहायता करने में अपनी शक्ति दिखाने की इच्छा से, वे एक ब्राह्मण का वेश धारण करके मुख्य मार्ग पर यात्रा करते हुए नीचे आए: उसे देखते ही वे मार्ग छोड़कर उसके पास खड़े हो गए और उससे बातचीत शुरू करते हुए कहा, "माँ, लोग श्मशान में भोजन नहीं पकाते: पकने के बाद तुम इस तिल और चावल का क्या करोगी?" इस प्रकार उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

सफेद वस्त्र पहने, बालों से पानी टपकता हुआ,
    क्यों, कच्चानी (*1), बर्तन उबालो?
वहाँ चावल और तिल धोते हुए,

क्या आप गर्म होने पर इनका इस्तेमाल करेंगे?
उसने उसे जानकारी देने के लिए दूसरा श्लोक बोला:-

ब्राह्मण, मैं भोजन के लिए नहीं
तिल और चावल का प्रयोग करें:
सही मर चुका है; उसकी स्मृति भी मर चुकी है।
मैं बलिदान से इसे परिपूर्ण बनाऊंगा।
तब इंद्र ने तीसरा श्लोक कहा:-

महोदया, निर्णय लेने से पहले सोचिए:
आपको यह झूठ किसने बताया है?
बलवान और हजार आंखों वाला
पूर्ण सत्य कभी मर नहीं सकता।
उसकी बात सुनकर महिला ने दो पंक्तियाँ बोलीं:-

ब्राह्मण, मैंने मजबूत गवाह देखा है,
मुझे मानना ही होगा कि "दक्षिणपंथी विचारधारा मर चुकी है"।
अब सभी पुरुष जो गलत राह पर चलते हैं
आपको अपार समृद्धि प्राप्त हो।
एक समय बांझ रही, मेरे अच्छे बेटे की पत्नी
मुझे समझ नहीं आया, और उसने एक बेटे को जन्म दिया:
वह हमारे घर की मुखिया हैं।
मैं एक बहिष्कृत और हारा हुआ व्यक्ति हूँ।
तब इंद्र ने छठा श्लोक कहा:-

(*2)नहीं, मैं शाश्वत रूप से जीवित रहता हूँ;
मैं तुम्हारे लिए ही आया था:
उसने तुम्हें हराया; लेकिन उसके बेटे और उसने
मेरी ज्वाला में राख हो जाओगे।
उसकी बात सुनकर वह रो पड़ी, "हाय, तुम क्या कहते हो? मैं अपने पोते को मृत्यु से बचाने की कोशिश करूंगी," और इस प्रकार उसने सातवां श्लोक बोला:-

हे देवताओं (देवदूतों) के राजा, आपकी इच्छा पूरी हो:
अगर तुम मेरे लिए आकाश छोड़ दो,
मेरे बच्चे और उनका बेटा
मेरे साथ सौहार्दपूर्ण जीवन व्यतीत करो।
तब इंद्र ने आठवां श्लोक कहा:-

कटियानी की इच्छा पूरी हो:
हारने के बाद भी, आप सही रास्ते पर भरोसा करते हैं:
आपके बच्चों और उनके बेटे के साथ
सौहार्द के साथ एक ही घर में रहें।
यह कहने के बाद, सक्का (इंद्र), अपने दिव्य वस्त्रों में, अपनी अलौकिक शक्ति से हवा में खड़े हो गए और बोले, "कच्चानी, डरो मत: मेरी शक्ति से तुम्हारा पुत्र और बहू आएंगे, और रास्ते में तुमसे क्षमा प्राप्त करके तुम्हें अपने साथ ले जाएंगे; तुम उनके साथ शांति से रहो।" फिर वे अपने स्थान पर चले गए। सक्का (इंद्र) की शक्ति से उन्हें कच्चानी के अच्छे स्वभाव का ज्ञान हुआ, और गाँव में पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि वह श्मशान की ओर गई हैं। वे सड़क पर उनका नाम पुकारते हुए गए: जब उन्होंने उन्हें देखा तो उनके चरणों में गिर पड़े, और अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी और प्राप्त की। उन्होंने अपने पोते का स्वागत किया। इस प्रकार वे सभी प्रसन्न होकर घर लौट आए और तब से साथ रहने लगे।

अपने अच्छे बेटे की पत्नी के साथ आनंदित

फिर कटियानी ने वहीं निवास किया:
इंद्र ने उनके विवाद को सुलझाया।
बेटा और पोता उसकी अच्छी देखभाल करते हैं।
यह श्लोक 'परफेक्ट विजडम' से प्रेरित है।

पाठ के बाद गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के बाद वह शिष्य प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गया:- "उस समय जो व्यक्ति अपनी माता का सहारा था, वही आज भी अपनी माता का सहारा है, उस समय की पत्नी वही आज की पत्नी है, और सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)आठवें श्लोक में उसे कटियानी कहा गया है।

(2) सक्का (इंद्र) स्वयं को सही के साथ पहचानता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अट्ठसद्दा-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-418-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 418
अत्थासद्दा-जातक

"एक गहरा कुंड," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए यह कथा सुनाई थी, जिसमें कोसल के राजा द्वारा आधी रात को सुनी गई एक अस्पष्ट और भयानक ध्वनि का वर्णन था। यह घटना वैसी ही है जैसी लोहकुंभी जन्म में वर्णित है। उस समय जब राजा ने कहा, "हे प्रभु, इन ध्वनियों का मेरे लिए क्या अर्थ है?" तो गुरु ने उत्तर दिया, "महाराज, भयभीत न हों: इन ध्वनियों के कारण आपको कोई खतरा नहीं होगा: ऐसी भयानक और अस्पष्ट ध्वनियाँ केवल आपने ही नहीं सुनी हैं: प्राचीन काल के राजाओं ने भी ऐसी ध्वनियाँ सुनी थीं, और ब्राह्मणों की सलाह मानकर प्रत्येक प्रजाति के चार पशुओं का यज्ञ करने का निश्चय किया था, परन्तु ज्ञानी पुरुषों की बात सुनकर उन्होंने यज्ञ के लिए एकत्रित पशुओं को मुक्त कर दिया और ढोल बजाकर सभी प्रकार के वध के विरुद्ध घोषणा करवाई": और राजा के अनुरोध पर उन्होंने यह प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक था, तब बोधिसत्व का जन्म अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति वाले एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में विद्या सीखी। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने सभी खजानों का जायजा लिया, दान देकर अपनी सारी संपत्ति का विमोचन कर दिया, अपनी इच्छाओं का त्याग किया, हिमालय चले गए और तपस्वी बनकर रहस्यवादी ध्यान में लीन हो गए। कुछ समय बाद वे नमक-मिर्च के लिए मनुष्यों के निवास स्थान पर आए और बनारस पहुँचकर एक बगीचे में रहने लगे। उस समय बनारस के राजा आधी रात को अपने शाही पलंग पर बैठे थे, तभी उन्हें आठ आवाजें सुनाई दीं: पहली, महल के पास एक बगीचे में सारस ने आवाज की; दूसरी, सारस के तुरंत बाद, हाथी-घर के द्वार से एक मादा कौवे ने आवाज की; तीसरी, महल की चोटी पर बैठे एक कीड़े ने आवाज की; चौथी, महल में एक पालतू कोयल ने आवाज की; पाँचवीं, उसी स्थान पर एक पालतू हिरण ने आवाज की; छठी, वहीं पर एक पालतू बंदर ने आवाज की। सातवें, महल में रहने वाले एक बौने ने; आठवें, अंतिम के तुरंत बाद, एक पच्चेकबुद्ध ने राजा के निवास की छत से बगीचे की ओर जाते हुए परमानंद की ध्वनि निकाली। इन आठ ध्वनियों को सुनकर राजा भयभीत हो गए और अगले दिन उन्होंने ब्राह्मणों से परामर्श किया। ब्राह्मणों ने कहा, "महाराज, आप पर खतरा है: आइए हम महल के बाहर यज्ञ करें।" और उनकी अनुमति प्राप्त करके वे प्रसन्नतापूर्वक आए और यज्ञ कार्य प्रारंभ किया। अब सबसे वृद्ध यज्ञकारी ब्राह्मण का एक युवा शिष्य बुद्धिमान और विद्वान था: उसने अपने गुरु से कहा, "गुरुजी, इतने सारे प्राणियों का ऐसा कठोर और क्रूर वध न करवाएं।" "शिष्य, तुम्हें क्या पता? अगर कुछ और न भी हो, तो हमें खाने के लिए बहुत सी मछली और मांस मिलेगा।" "गुरुजी, पेट भरने के लिए ऐसा कार्य न करें जिससे नरक में पुनर्जन्म हो।" यह सुनकर अन्य ब्राह्मण अपने लाभ को खतरे में डालने के

कारण शिष्य पर क्रोधित हो गए। भयभीत शिष्य ने कहा, "ठीक है, तो फिर मछली और मांस खाने का कोई उपाय निकालो," और राजा को यज्ञ करने से रोकने में सक्षम किसी धर्मनिष्ठ तपस्वी की तलाश में शहर छोड़ दिया। वह राजमहल में पहुँचा और बोधिसत्व को देखकर उसने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "क्या आपको प्राणियों पर दया नहीं आती? राजा ने ऐसा यज्ञ करवाया है जिससे अनेक प्राणियों की मृत्यु होगी: क्या आप इतने सारे प्राणियों का उद्धार नहीं करेंगे?" "युवक ब्राह्मण, मैं इस देश के राजा को नहीं जानता, न ही वह मुझे।" "महोदय, क्या आप जानते हैं कि राजा ने जो आवाजें सुनीं उनका क्या परिणाम होगा?" "हाँ।" "यदि आप जानते हैं, तो राजा को क्यों नहीं बताते?" "युवक ब्राह्मण, मैं अपने माथे पर सींग बांधकर कैसे कह सकता हूँ, 'मैं जानता हूँ?' यदि राजा मुझसे पूछताछ करने यहाँ आए, तो मैं उन्हें बता दूँगा।" वह युवक ब्राह्मण शीघ्रता से राजा के दरबार में गया, और जब उससे उसका उद्देश्य पूछा गया, तो उसने कहा, "महाराज, एक तपस्वी उन ध्वनियों का कारण जानता है जो आपने सुनीं।"वह आपके बगीचे में राजसी आसन पर बैठे हैं, और कहते हैं कि यदि आप उनसे पूछेंगे तो वे आपको बता देंगे: आपको ऐसा ही करना चाहिए।" राजा शीघ्रता से गए, तपस्वी को प्रणाम किया, और मैत्रीपूर्ण अभिवादन के बाद बैठ गए और पूछा, "क्या यह सच है कि आप उन ध्वनियों का अर्थ जानते हैं जो मैंने सुनी हैं?" "जी हां, महाराज।" "तो मैं निवेदन करता हूं, मुझे बताइए।" "महाराज, उन ध्वनियों से कोई खतरा नहीं है: आपके पुराने बगीचे में एक सारस है; वह भोजनहीन था, और भूख से अधमरा होकर उसने पहली ध्वनि उत्पन्न की:" और इस प्रकार अपने ज्ञान से सारस का सटीक अर्थ बताते हुए उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

एक इतना गहरा और मछलियों से भरा तालाब जिसे वे अतीत का स्थान कहते थे।
यह सारस राजा का निवास स्थान था, मेरे पूर्वजों का पहले का निवास स्थान था:
और यद्यपि हम आज मेंढकों पर जीवित रहते हैं, हम कभी भी इसके किनारे को नहीं छोड़ते।
"हे महाराज, भूख से व्याकुल सारस ने वह आवाज़ निकाली थी: यदि आप उसे भूख से मुक्त करना चाहते हैं, तो बगीचे की सफाई करवाइए और तालाब को पानी से भर दीजिए।" राजा ने एक मंत्री को ऐसा करने का आदेश दिया। "हे महाराज, आपके हाथी के घर के द्वार पर एक मादा कौआ रहती है: उसने अपने बेटे के लिए शोक करते हुए दूसरी आवाज़ निकाली थी: आपको उससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है," और इस प्रकार उसने दूसरा श्लोक कहा:-

ओह! दुष्ट बंधुरा को कौन देखेगा? एक आँख उसे फाड़ डालेगी!
मेरा घोंसला, मेरे बच्चे और मैं खुद! अब कौन मेरा मित्र बनेगा?
फिर उसने राजा से हाथीशाला के मुख्य सारथी का नाम पूछा। "महाराज, उसका नाम बंधुरा है।" "क्या उसकी एक ही आँख है, महाराज?" "जी हाँ।" "महाराज, एक कौवे ने आपकी हाथीशाला के द्वार पर अपना घोंसला बना लिया है; उसने वहाँ अंडे दिए, और समय आने पर उसके बच्चे भी निकल आए। जब भी सारथी अपने हाथी पर सवार होकर अस्तबल में आता-जाता है, वह कौवे और उसके बच्चों पर अपने हुक से प्रहार करता है और घोंसला नष्ट कर देता है। कौवा इस पीड़ा में उसकी आँख निकाल लेना चाहता है और इसी कारण उसने ऐसा कहा। यदि आप उस पर दया करें, तो बंधुरा को बुलवाकर उसे घोंसला नष्ट करने से रोकें।" राजा ने उसे बुलवाया, उसे डाँटा और वहाँ से हटा दिया, और हाथी दूसरे को दे दिया।

"हे महाराज, आपके महल की छत के शिखर पर एक लकड़ी का कीड़ा है; उसने वहाँ की सारी अंजीर की लकड़ी खा ली है और कठोर लकड़ी नहीं खा सका: भोजन की कमी और भागने में असमर्थ होने के कारण, उसने रोने की तीसरी ध्वनि निकाली: आपको इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है:" और इस प्रकार अपने ज्ञान से कीड़े का सटीक अर्थ बताते हुए उन्होंने तीसरा छंद कहा:-

मैंने अंजीर की सारी लकड़ी जितनी दूर तक जा सकती थी, खा ली है:
घुन को कठोर लकड़ी पसंद नहीं होती, हालांकि अन्य भोजन की कमी है।
राजा ने एक सेवक को भेजा और किसी तरह घुन को मुक्त करवा दिया।

"हे महाराज, क्या आपके निवास में कोई पालतू कोयल है?" "हाँ, महाराज।" "हे महाराज, वह कोयल जंगल के लिए तरस रही थी, जब उसे अपना पिछला जीवन याद आया, 'मैं इस पिंजरे को छोड़कर अपने प्यारे जंगल में कैसे जा सकती हूँ?' और इसलिए उसने चौथी ध्वनि निकाली: आपको इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है: " और इस प्रकार उसने चौथा छंद बोला:-

काश, मैं इस राजसी जीवन को छोड़ सकूँ! काश, मुझे अपनी स्वतंत्रता मिल जाए!
मुझे जंगल में घूमने और पेड़ पर अपना घोंसला बनाने में बहुत खुशी होती है।
ऐसा कहते हुए उसने आगे कहा, "हे महाराज, कोयल बड़ी दुखी है, उसे मुक्त कर दीजिए।" राजा ने वैसा ही किया।

"महाराज, क्या आपके निवास में कोई पालतू हिरण है?" "हाँ, महाराज।" "वह झुंड का मुखिया था: अपनी मादा हिरण को याद करते हुए और उसके प्रेम के लिए तरसते हुए उसने पाँचवीं ध्वनि निकाली: तुम्हें इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है:" और उसने पाँचवाँ छंद बोला:-

काश, मैं इस राजसी जीवन को छोड़ सकूँ! काश, मुझे अपनी स्वतंत्रता मिल जाए!
झरने का शुद्ध जल पियो, मेरे पीछे आने वाले झुंड का नेतृत्व करो!
उस महान प्राणी ने उस हिरण को भी मुक्त कर दिया और आगे बोला, "महाराज, क्या आपके निवास में कोई पालतू बंदर है?" "जी हां, है।" "वह हिमालय में एक झुंड का मुखिया था, और उसे मादा बंदरों का साथ बहुत पसंद था: उसे भरत नामक एक शिकारी यहाँ लाया था: अपने पुराने विश्राम स्थलों की लालसा और तड़प में उसने छठी ध्वनि निकाली: आपको इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है," और उसने छठा श्लोक बोला:-

मैं भावनाओं से भरा और दागदार था, इच्छाओं से भरा हुआ था,
मुझे शिकारी भरत ने पकड़ा; आशा है मैं आपके लिए शुभ भाग्य लेकर आऊँगा!
उस महान प्राणी ने बंदर को भी मुक्त कर दिया और आगे बोला, "महान राजा, क्या आपके निवास में कोई बौना रहता है?" "जी हाँ, महाराज।" "वह अपनी परी के साथ किए गए अपने कृत्य के बारे में सोच रहा था और इच्छा की पीड़ा में उसने सातवीं ध्वनि उत्पन्न की। एक दिन वह उसके साथ एक ऊँचे पर्वत की चोटी पर चढ़ गया था: उन्होंने उत्तम रंग और सुगंध वाले कई फूल चुने और उनसे खुद को सजाया, और उन्हें पता ही नहीं चला कि सूरज डूब रहा है; जैसे ही वे नीचे उतर रहे थे, अंधेरा छा गया। परी ने कहा, "पतिदेव, अंधेरा हो गया है, बिना ठोकर खाए सावधानी से नीचे आ जाओ," और उसका हाथ पकड़कर उसे नीचे ले गई। उसके शब्दों की स्मृति में ही उसने यह ध्वनि उत्पन्न की: तुम्हें इससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।" अपने ज्ञान से उसने घटना का सटीक वर्णन किया और सातवाँ श्लोक बोला:-

जब पहाड़ की चोटी पर घना अंधेरा छा गया,
"पत्थर पर पैर रखकर ठोकर मत खाओ," उसने मुझे धीरे से चेतावनी दी।
तब उस महान सत्ता ने समझाया कि बौने ने वह ध्वनि क्यों निकाली थी, और उसे मुक्त कर दिया, और आगे कहा, "हे महाराज, एक आठवीं ध्वनि थी, जो परमानंद (सम्मोहन) की थी। नन्दमूल गुफा में रहने वाला एक पच्चेकबुद्ध, यह जानते हुए कि अब उसके लिए जीवन की परिस्थितियाँ समाप्त हो गई हैं, मनुष्य के निवास पर आया, यह सोचते हुए, "मैं बनारस के राजा के उद्यान में निर्वाण प्राप्त करूँगा: उसके सेवक मुझे दफनाएँगे, पवित्र उत्सव मनाएँगे और मेरे अवशेषों का आदर करेंगे और इस प्रकार स्वर्ग प्राप्त करेंगे।" वह अपनी अलौकिक शक्ति से आ रहा था और जैसे ही वह आपके महल की छत पर पहुँचा, उसने जीवन का बोझ उतार फेंका और परमानंद (सम्मोहन) में वह गीत गाया जो निर्वाण नगर के प्रवेश द्वार को प्रकाशित करता है।" और इस प्रकार उसने पच्चेकबुद्ध द्वारा उच्चारित श्लोक कहा।

मुझे यकीन है कि मुझे जन्म का अंत दिखाई दे रहा है।
मैं फिर कभी गर्भ नहीं देखूंगी:
पृथ्वी पर मेरा अंतिम अस्तित्व
सब कुछ खत्म हो गया है, और इसके साथ-साथ सारी पीड़ा भी।
“इन भावपूर्ण शब्दों के साथ वे आपके उद्यान में पहुँचे और पूर्ण रूप से खिले हुए साल के वृक्ष की तलहटी में निर्वाण प्राप्त कर लिया: हे महाराज, आइए और उनके अंतिम संस्कार कीजिए।” अतः उस महान सत्ता ने राजा को उस स्थान पर ले गए जहाँ पच्चेकबुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था और उन्हें शरीर के बारे में बताया। शरीर को देखकर राजा ने एक विशाल सेना के साथ इत्र, फूल और इसी प्रकार की भेंट चढ़ाकर सम्मान व्यक्त किया। बोधिसत्व की सलाह पर उन्होंने यज्ञ रोक दिया, सभी प्राणियों को जीवनदान दिया, पूरे नगर में ढोल बजाकर यह घोषणा की कि कोई वध न हो, सात दिनों का पवित्र उत्सव आयोजित करवाया, पच्चेकबुद्ध के शरीर को इत्र से सजी चिता पर पूर्ण सम्मान के साथ दाह संस्कार करवाया और चारों मुख्य सड़कों के संगम स्थल पर एक स्तूप बनवाया। बोधिसत्व ने राजा को धर्म का उपदेश दिया और उसे परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित किया; फिर वह हिमालय गया और वहाँ उसने पूर्ण अवस्था में कर्म किए, और बिना किसी व्यवधान के अपने ध्यान में लीन होकर ब्रह्म स्वर्ग (प्रधान देवदूतों का लोक) के लिए नियत हो गया।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "हे महाराज, उस ध्वनि से आपको कोई खतरा नहीं है, यज्ञ रोक दीजिए और इन सभी प्राणियों को उनका जीवनदान दे दीजिए": और ढोल से यह घोषणा करवाकर कि उनके जीवनदान दे दिया गया है, उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय राजा आनंद थे, शिष्य सारिपुत्र थे और तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) गर्व के प्रतीक के रूप में

***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-419-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 419
सुलासा-जातक

"यह सोने का हार है," इत्यादि — गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अनाथपिंडिका की एक दासी के बारे में यह कहानी सुनाई। कहानी यह है कि एक पर्व के दिन, जब वह कई दासियों के साथ एक उद्यान में जा रही थी, तो उसने अपनी स्वामिनी पन्नालक्खनादेवी से पहनने के लिए एक आभूषण मांगा।

उसकी मालकिन ने उसे अपना एक आभूषण दिया, जिसकी कीमत एक लाख सिक्के थी। उसने उसे पहना और अन्य नौकरों के साथ आनंद उद्यान में चली गई। एक चोर उस आभूषण को पाने के लिए ललचा रहा था, और उसे मारकर आभूषण छीनने के इरादे से वह उससे बातें करने लगा। उद्यान में उसने उसे मछली, मांस और शराब पिलाई। उसने सोचा, "मुझे लगता है कि वह ऐसा इसलिए कर रहा है क्योंकि वह मुझे चाहता है।" शाम को जब बाकी नौकर खेल-कूद के बाद आराम करने के लिए लेट गए, तो वह उठी और उसके पास गई। उसने कहा, "मालकिन, यह जगह एकांत में नहीं है; चलिए थोड़ा और आगे चलते हैं।" उसने सोचा, "इस जगह पर कोई भी एकांत काम हो सकता है: इसमें कोई शक नहीं कि वह मुझे मारकर मेरा आभूषण छीनने के लिए बेचैन होगा: मैं उसे सबक सिखाऊंगी।" इसलिए उसने कहा, "मालिक, शराब पीने से मुझे प्यास लग रही है: मुझे थोड़ा पानी दीजिए।" और उसे एक कुएँ के पास ले जाकर रस्सी और बाल्टी दिखाते हुए उससे पानी भरने को कहा। चोर ने बाल्टी नीचे डाली। फिर जब वह पानी भरने के लिए झुका, तो बलवान लड़की ने उसे दोनों हाथों से ज़ोर से धक्का दिया और कुएँ में फेंक दिया। "तुम इस तरह नहीं मरोगे," उसने कहा और उसके सिर पर एक बड़ी ईंट फेंक दी। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। जब वह शहर लौटी और अपनी मालकिन को आभूषण दिया, तो उसने कहा, "आज उस आभूषण के लिए मैं लगभग मर ही गई थी," और पूरी कहानी सुनाई। मालकिन ने अनाथपिंडिका को बताया, और उन्होंने तथागत (बुद्ध) को बताया। स्वामी ने कहा, "गृहस्थ, यह पहली बार नहीं है कि उस दासी ने सूझबूझ का परिचय दिया है; वह पहले भी ऐसा कर चुकी है: यह पहली बार नहीं है कि उसने उस आदमी को मारा है; उसने पहले भी एक बार ऐसा किया है," और अनाथपिंडिका के अनुरोध पर, उन्होंने पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, तब शहर में सुलासा नाम की एक खूबसूरत महिला रहती थी, जिसके पास पाँच सौ शाही नर्तकियों और वेश्याओं का एक समूह था, और जिसकी कीमत एक हजार पैसे प्रति रात थी। उसी शहर में सत्तुका नाम का एक डाकू था, जो हाथी के समान बलवान था, और वह रात में अमीरों के घरों में घुसकर मनमाने ढंग से लूटपाट करता था। शहरवासियों ने इकट्ठा होकर राजा से शिकायत की। राजा ने शहर के पहरेदारों को आदेश दिया कि वे जगह-जगह दल तैनात करें, डाकू को पकड़वाएँ और उसका सिर काट दें। उन्होंने उसके हाथ पीछे बाँध दिए और उसे फाँसी के स्थान पर ले गए, रास्ते में हर चौराहे पर कोड़ों से उसकी पिटाई की। उसके पकड़े जाने की खबर से पूरा शहर उत्साहित हो गया। सुलासा एक खिड़की पर खड़ी थी और सड़क पर नीचे देख रही थी, तभी उसकी नज़र उस डाकू पर पड़ी, उसे देखते ही उससे प्रेम हो गया और उसने सोचा, "अगर मैं उस बलवान योद्धा को आज़ाद करा सकूँ, तो मैं अपना यह बुरा जीवन त्याग दूँगी और उसके साथ सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करूँगी।" कनावेरा जन्म कथा में वर्णित तरीके से, सुलासा ने शहर के मुख्य कांस्टेबल को एक हजार सिक्के भेजकर उसे मुक्त कराया और फिर उसके साथ सुख-शांति से रहने लगी। तीन-चार महीने बाद डाकू ने सोचा, "मैं इस जगह पर कभी नहीं टिक पाऊंगा: लेकिन खाली हाथ तो नहीं जा सकता: सुलासा के आभूषण एक लाख सिक्कों के बराबर हैं: मैं उसे मार डालूंगा और उन्हें ले लूंगा।" इसलिए एक दिन उसने सुलासा से कहा, "प्रिय, जब राजा के आदमी मुझे घसीट रहे थे, तब मैंने एक पर्वत की चोटी पर स्थित वृक्ष देवता को भेंट चढ़ाने का वादा किया था, जो अब मुझे धमकी दे रहा है क्योंकि मैंने भेंट नहीं चढ़ाई है: चलो भेंट चढ़ाते हैं।" "ठीक है, पतिदेव, तैयार करो और भेज दो।" "प्रिय, भेजना ठीक नहीं होगा: चलो हम दोनों अपने सारे आभूषण पहनकर और बहुत सारे सेवकों के साथ जाकर भेंट चढ़ाते हैं।" "ठीक है, पतिदेव, हम ऐसा ही करेंगे।" उसने उससे भेंट तैयार करवाई और जब वे पर्वत की तलहटी पर पहुँचे, तो उसने कहा, "प्रिय, देवता इतनी भीड़ देखकर भेंट स्वीकार नहीं करेंगे; चलो हम दोनों ऊपर जाकर भेंट चढ़ाते हैं।" वह मान गई, और उसने उसे पात्र उठाने को कहा। वह स्वयं हथियारों से लैस था, और जब वे शिखर पर पहुँचे, तो उसने भेंट को एक ऐसे पेड़ के नीचे रख दिया जो एक मनुष्य की ऊँचाई से सौ गुना ऊँची खाई के किनारे उगता था, और कहा, "प्रिय, मैं भेंट चढ़ाने नहीं आया हूँ, मैं तुम्हें मारने और तुम्हारे सारे आभूषण लेकर जाने के

इरादे से आया हूँ: इन्हें उतार दो और अपने बाहरी वस्त्र में बाँध लो।" "पतिदेव, आप मुझे क्यों मारेंगे?" "तुम्हारे धन के लिए।" "पति, मेरे द्वारा आपके लिए किए गए उपकार को याद रखें: जब आपको जंजीरों में जकड़कर घसीटा जा रहा था, तब मैंने आपके लिए एक धनी व्यक्ति के बेटे का बलिदान दिया और एक बड़ी रकम देकर आपकी जान बचाई: भले ही मुझे प्रतिदिन हज़ार सिक्के मिलें, मैं कभी किसी दूसरे पुरुष की ओर नहीं देखती: मैं आपके लिए कितनी उपकारिणी हूँ: मुझे मत मारो, मैं आपको बहुत सारा धन दूंगी और वह आपका दास होगा।" इन निवेदनों के साथ उसने पहला छंद कहा:-

यह सोने का हार है, और पन्ना और मोती भी हैं।
सब कुछ स्वीकार करो और मेरा स्वागत करो: मुझे अपनी दासियों में स्थान दो।
जब सत्तुका ने अपने उद्देश्य के अनुसार दूसरा श्लोक बोल दिया—

हे सुंदर स्त्री, अपने गहने नीचे रख दो और पीड़ा से मत रोओ।
मैं तुम्हें मार डालूंगा: अन्यथा मुझे यकीन नहीं होगा कि तुम मुझे अपना सारा सामान दे दोगे।
सुलासा ने सूझबूझ का परिचय देते हुए सोचा, "यह लुटेरा मुझे मेरी जान नहीं देगा, लेकिन मैं किसी न किसी तरह उसे खाई में फेंककर पहले उसकी जान ले लूंगी," और फिर उसने दो पंक्तियाँ बोलीं:-

मेरी समझ के दायरे में, मेरी सचेत स्मृति के भीतर,
मैं यह बात पूरी ईमानदारी से कहता हूँ कि इस धरती पर मैंने किसी भी पुरुष को तुमसे अधिक प्रेम नहीं किया है।
यहां आओ, मेरी अंतिम सलामी के लिए, मेरे अंतिम आलिंगन को ग्रहण करो:
अब हम धरती पर कभी आमने-सामने नहीं मिलेंगे।
सत्तुका को उसका इरादा समझ नहीं आया, इसलिए उसने कहा, "ठीक है, प्रिय; आओ और मुझे गले लगाओ।" सुलासा ने तीन बार आदरपूर्वक उसके चारों ओर परिक्रमा की, उसे चूमा और कहा, "अब, पतिदेव, मैं चारों ओर से आपको प्रणाम करने जा रही हूँ," उसने अपना सिर उसके चरणों पर रखा, उसके दोनों ओर प्रणाम किया और उसके पीछे प्रणाम करने के लिए चली गई: फिर हाथी के बल से उसने उसे पीछे से पकड़ा और सौ गुना ऊँची उस विनाश स्थल पर सिर के बल फेंक दिया। वह चूर-चूर हो गया और मौके पर ही मर गया। इस घटना को देखकर पर्वत की चोटी पर रहने वाले देवता ने ये श्लोक कहे:-

ज्ञान कभी-कभी केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं होता।
एक महिला भी कभी-कभी बुद्धिमत्तापूर्ण बातें कह सकती है।
ज्ञान कभी-कभी केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं होता:
महिलाएं कभी-कभी सलाह देने में बहुत तेज होती हैं।
वह यह जानने में कितनी तेज और उत्सुक थी,
उसने उसे ऐसे मार डाला जैसे पूरी ताकत से तीर चलाकर हिरण का शिकार किया जाता है।
जो महान अवसर पर उठने में विफल रहता है
गिरता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई सुस्त चोर खाई से गिरता है।
एक कारण उसके भाग्य में संकट उत्पन्न हो जाता है,
उसकी ही तरह, वह भी खतरनाक शत्रु से बच गया।
तब सुलासा ने डाकू को मार डाला। जब वह पहाड़ से उतरकर अपने सेवकों के पास आई, तो उन्होंने उससे उसके पति के बारे में पूछा। उसने कहा, "मुझसे मत पूछो," और अपने रथ पर सवार होकर शहर की ओर चल पड़ी।

पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय वे दोनों वही दो थे जो अब हैं, देवता मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुमंगल-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-420-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 420

सुमंगल जातक

"गुस्से भरी भौंहों से सचेत," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक राजा को दी गई सलाह के संबंध में यह कहानी सुनाई। इस अवसर पर गुरु ने राजा के अनुरोध पर एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उनकी प्रमुख रानी के पुत्र के रूप में हुआ। बड़े होकर, अपने पिता की मृत्यु के बाद वे राजा बने और उन्होंने भरपूर दान दिया। उनके पास सुमंगला नाम का एक उद्यान रक्षक था। एक पच्चेकबुद्ध नन्दमूल गुफा से भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर निकले और बनारस आकर उद्यान में ठहरे। अगले दिन वे भिक्षा मांगने के लिए नगर गए। राजा ने उन्हें कृपापूर्वक देखा, उन्हें महल में बुलाया और सिंहासन पर बैठाया, उनका अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से भली-भांति स्वागत किया और उनका धन्यवाद प्राप्त किया। पच्चेकबुद्ध के अपने उद्यान में ठहरने से प्रसन्न होकर, राजा ने उनसे वचन लिया और उन्हें वापस वहीं भेज दिया। सुबह का भोजन करने के बाद, राजा स्वयं वहाँ गए, उनके रात-दिन के रहने की व्यवस्था की, उद्यान रक्षक सुमंगला को सेवक बनाकर उन्हें दिया और नगर लौट गए। उसके बाद पच्चेकबुद्ध महल में लगातार भोजन करते रहे और वहाँ लंबे समय तक रहे: सुमंगला आदरपूर्वक उनकी सेवा करती रही। एक दिन वे सुमंगला से यह कहकर चले गए, "मैं कुछ दिनों के लिए फलाँ गाँव जा रहा हूँ, लेकिन वापस आ जाऊँगा: राजा को सूचित कर देना।" सुमंगला ने राजा को सूचित कर दिया। उस गाँव में कुछ दिन रहने के बाद पच्चेकबुद्ध सूर्यास्त के बाद शाम को उद्यान में वापस आ गए। सुमंगला को उनके आने की सूचना नहीं थी, इसलिए वे अपने घर चले गए थे। पच्चेकबुद्ध ने अपना कटोरा और वस्त्र एक तरफ रख दिया और थोड़ी दूर चलकर एक पत्थर की पटिया पर बैठ गए। उस दिन उद्यान के रखवाले के घर कुछ अजनबी मेहमान आए थे। उनके लिए सूप और करी लाने के लिए वह धनुष लेकर उद्यान में एक पालतू हिरण का शिकार करने गया था: हिरण वहाँ हिरण की तलाश कर रहा था जब उसने पच्चेकबुद्ध को देखा और उन्हें एक बड़ा हिरण समझकर तीर चला दिया। पच्चेकबुद्ध ने अपना सिर खोला और कहा, "सुमंगला।" अत्यंत व्यथित होकर सुमंगला ने कहा, “महाराज, मुझे आपके आने की सूचना नहीं थी और मैंने आपको हिरण समझकर तीर मार दिया: मुझे क्षमा कर दीजिए।” “ठीक है, लेकिन अब आप क्या करेंगे? आइए, तीर निकालिए।” उन्होंने प्रणाम किया और तीर निकाल दिया। पच्चेकबुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई और वे उसी क्षण निर्वाण प्राप्त कर गए। उद्यान के रखवाले ने सोचा कि यदि राजा को पता चलेगा तो वे उसे क्षमा नहीं करेंगे: वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर भाग गया। अलौकिक शक्ति से पूरे शहर में यह खबर फैल गई कि पच्चेकबुद्ध निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, और सभी अत्यंत उत्साहित हो गए। अगले दिन कुछ लोग उद्यान में आए, उन्होंने शव देखा और राजा को बताया कि पच्चेकबुद्ध को मारने के बाद उद्यान का रखवाला भाग गया था। राजा अपने साथ बड़ी संख्या में सेवकों को लेकर गए और सात दिनों तक शव का सम्मान किया: फिर उन्होंने पूरे विधि-विधान से अवशेष लिए, एक मंदिर बनवाया, और उसका सम्मान करते हुए अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करना शुरू कर दिया। एक वर्ष बाद, सुमंगला ने राजा के विचार जानने का निश्चय किया: वह वहाँ आए और अपने सामने मौजूद एक मंत्री से पूछा कि राजा उनके बारे में क्या सोचते हैं। मंत्री ने राजा के सामने सुमंगला की प्रशंसा की, लेकिन राजा ने मानो कुछ सुना ही न हो। मंत्री ने और कुछ नहीं कहा, बस सुमंगला को बताया कि राजा उनसे प्रसन्न नहीं हैं।एक वर्ष बाद वह फिर आया, और तीसरे वर्ष वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर आया। मंत्री जानता था कि राजा प्रसन्न हो गए हैं, और उसने सुमंगला को महल के द्वार पर खड़ा करके राजा को उसके आने की सूचना दी। राजा ने उसे बुलवाया और अभिवादन करने के बाद कहा, "सुमंगला, तुमने उस पच्चेकबुद्ध को क्यों मारा, जिसके द्वारा मुझे पुण्य प्राप्त हो रहा था?" "हे राजा, मेरा उसे मारने का इरादा नहीं था, लेकिन इस तरह मुझसे यह काम हो गया," और उसने पूरी कहानी सुनाई। राजा ने उसे डरने की कोई बात नहीं कही और आश्वस्त करके उसे फिर से उद्यान रक्षक बना दिया। तब मंत्री ने पूछा, "हे राजा, सुमंगला की प्रशंसा दो बार सुनने पर आपने कोई उत्तर क्यों नहीं दिया, और तीसरी बार सुनने पर आपने उसे बुलवाया और क्षमा क्यों कर दी?" राजा ने कहा, "महोदय, राजा के लिए क्रोध में आकर जल्दबाजी करना अनुचित है; इसलिए मैं पहले चुप रहा और तीसरी बार जब मुझे लगा कि मेरा क्रोध शांत हो गया है, तब मैंने सुमंगला को बुलवाया।" और इस प्रकार उन्होंने राजा के कर्तव्य को सिखाने के लिए ये श्लोक कहे:

गुस्से से भरी भौंहों के प्रति सचेत,
  राजा को सजा को लंबा खींचने की अनुमति कभी न दें:
ताज के अयोग्य वस्तुएँ
  फिर वह सिर हिलाकर आगे बढ़ता।
शांत मनोदशा के प्रति सचेत,
  उसे कठोर फैसले सुनाने दो,
जब मामला समझ में आ जाए,
  उचित दंड निर्धारित करें:
वह न तो खुद को और न ही दूसरों को नाराज करेगा।

सही और गलत में स्पष्ट अंतर:
यद्यपि उसका जुआ मनुष्यों की गर्दन पर है,
सद्गुण ही उसे उच्च और शक्तिशाली बनाए रखता है।
राजकुमार अपने कार्यों में लापरवाह थे
निर्दयतापूर्वक दंड लागू करें।
यहां बदनामी ही उनका वेतन है।
मरने के बाद उन्हें नरक का सामना करना पड़ेगा।
जो लोग पवित्र और धार्मिक मार्ग से प्रेम करते हैं,
कर्म, वचन और विचार में शुद्ध
दया, शांति और विस्मय से परिपूर्ण,
दोनों दुनियाओं से वैसे ही गुजरें जैसे उन्हें गुजरना चाहिए।
मैं राजा हूँ, अपनी प्रजा का स्वामी हूँ;
क्रोध मेरी इच्छाशक्ति को नहीं रोक पाएगा:
जब मैं बुराई की ओर तलवार उठाता हूँ,
दया ही दंड का कारण बनती है।

इस प्रकार राजा ने अपने अच्छे गुणों का वर्णन छह छंदों में किया: उनका पूरा दरबार प्रसन्न हुआ और उनके गुणों का वर्णन करते हुए कहा, "महाराज, नैतिक आचरण और गुणों में ऐसी उत्कृष्टता आपके योग्य है।" दरबार के बोलने के बाद, सुमंगला ने राजा को प्रणाम किया और सम्मानपूर्वक तीन छंदों में उनकी प्रशंसा की:-

आपकी महिमा और आपकी शक्ति ऐसी ही है;
उन्हें कभी भी एक घंटे के लिए अकेला न छोड़ें:
क्रोध से मुक्त, भय से मुक्त,
सौ वर्षों तक आनंदपूर्वक शासन करो।
राजकुमार, जिन्हें ये सभी गुण प्राप्त हैं,
हल्का और सादा, लेकिन गुणवत्ता में दृढ़।
धर्म के द्वारा संसार पर शासन करो।
पृथ्वी से मुक्त होकर स्वर्ग में प्रवेश करें।
कथनी और करनी में उत्तम,
अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हर संभव साधन का उपयोग करें:
परेशान लोगों को शांत करो।
जैसे कोई बादल मधुर वर्षा कर रहा हो।

कोसल राजा को दी गई सलाह से संबंधित पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय पच्चेकबुद्ध निर्वाण में लीन हो गए, सुमंगल आनंद थे, और राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> गंगामाला - **जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-421-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 421
गंगामाला जातक

“धरती अंगारे जैसी है,” इत्यादि — गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए साप्ताहिक पवित्र दिनों के पालन के विषय में यह कथा सुनाई थी। एक दिन गुरु पवित्र दिनों का पालन कर रहे गृहस्थों को संबोधित करते हुए बोले, “गृहस्थों, आपका आचरण अच्छा है; जब मनुष्य पवित्र दिनों का पालन करें तो उन्हें दान देना चाहिए, नैतिक नियमों का पालन करना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए, दयालुता का भाव रखना

चाहिए और उस दिन के कर्तव्यों का पालन करना चाहिए: प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने पवित्र दिनों का आंशिक पालन करके भी महान यश प्राप्त किया था।" और उनके अनुरोध पर उन्होंने यह प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, उस नगर में सुचिपरिवार नाम का एक धनी व्यापारी रहता था, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) तक पहुँच गई थी और जो दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों में प्रसन्न रहता था। उसकी पत्नी, बच्चे, घर के सभी लोग, यहाँ तक कि चरवाहे भी, हर महीने छह पवित्र दिन मनाते थे। उसी समय बोधिसत्व का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ था और वे मजदूरी पर कठिन जीवन व्यतीत करते थे। काम की उम्मीद में वे सुचिपरिवार के घर आए: प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए, जब उनसे उनका काम पूछा गया तो उन्होंने कहा, "मैं आपके घर में मजदूरी पर काम पाना चाहता था।" जब अन्य मजदूर उनके पास आते थे, तो व्यापारी उनसे कहता था, "इस घर में मजदूर नैतिक नियमों का पालन करते हैं, यदि आप भी उनका पालन कर सकें तो आप मेरे यहाँ काम कर सकते हैं।" लेकिन बोधिसत्व से उन्होंने नैतिक नियमों का कोई जिक्र नहीं किया, बल्कि कहा, "ठीक है, मेरे भले, आप मेरे यहाँ काम कर सकते हैं और अपनी मजदूरी का इंतजाम कर सकते हैं।" तब से बोधिसत्व व्यापारी का सारा काम विनम्रता और लगन से करते थे, अपनी थकान की परवाह किए बिना; वे सुबह जल्दी काम पर जाते और शाम को लौट आते। एक दिन शहर में एक त्योहार की घोषणा हुई। व्यापारी ने एक दासी से कहा, "आज पवित्र दिन है: तुम्हें सुबह कामगारों के लिए चावल पकाने होंगे: वे इसे सुबह खा लेंगे और बाकी दिन उपवास रखेंगे।" बोधिसत्व सुबह जल्दी उठे और काम पर चले गए: किसी ने उन्हें उस दिन उपवास रखने के लिए नहीं कहा था। बाकी कामगारों ने सुबह खाना खाया और फिर उपवास रखा: व्यापारी अपनी पत्नी, बच्चों और सेवकों के साथ उपवास रखा: सभी अपने-अपने घर चले गए और वहाँ बैठकर नैतिक नियमों का ध्यान किया। बोधिसत्व ने सारा दिन काम किया और सूर्यास्त के समय घर लौटे। रसोइया ने उनके हाथों के लिए पानी दिया और उन्हें एक थाली में चूल्हे से निकाला हुआ चावल दिया। बोधिसत्व ने कहा, "आम दिनों में इस समय बहुत शोर होता है: आज ये सब कहाँ चले गए हैं?" "वे सब अपने-अपने घर में व्रत रख रहे हैं।" उसने सोचा, "इतने सारे सदाचारी लोगों के बीच मैं अकेला दुराचारी नहीं होऊँगा।" इसलिए वह व्यापारी के पास गया और उससे पूछा कि क्या उस समय दिन के सारे काम निपटाकर व्रत रखा जा सकता है। व्यापारी ने बताया कि पूरा काम नहीं किया जा सकता, क्योंकि सुबह काम नहीं किया गया था; लेकिन आधा काम किया जा सकता है। "ठीक है," उसने उत्तर दिया और अपने स्वामी की उपस्थिति में काम निपटाकर व्रत रखना शुरू कर दिया। अपने घर जाकर वह व्रत के नियमों पर ध्यान लगाने लगा। उसने दिन भर कुछ नहीं खाया था और अंतिम पहर में उसे भाले के घाव जैसा दर्द हुआ। व्यापारी उसके लिए कई दवाइयाँ लाया और उन्हें खाने को कहा, लेकिन उसने कहा, "मैं अपना व्रत नहीं तोड़ूँगा: मैंने यह व्रत इसलिए रखा है, चाहे इसके लिए मुझे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े।" दर्द बढ़ता गया और सूर्योदय होते-होते वह बेहोश होने लगा। लोगों ने उसे बताया कि वह मर रहा है और उसे बाहर निकालकर आराम करने के लिए एक स्थान पर लिटा दिया।उस समय बनारस के राजा अपने विशाल रथ और सेवकों के साथ नगर का चक्कर लगाते हुए उस स्थान पर पहुँचे थे। बोधिसत्व ने राजसी वैभव देखकर राजसत्ता पाने की इच्छा की और उसके लिए प्रार्थना की। मृत्यु से पहले, आधे व्रत के फलस्वरूप वे मुख्य रानी के गर्भ में पुनर्जन्म लिए। रानी ने गर्भाधान की विधि-विधानी अपनाई और दस माह बाद पुत्र को जन्म दिया। उनका नाम उदय राजकुमार रखा गया। बड़े होकर वे सभी विद्याओं में पारंगत हो गए: पिछले जन्मों की स्मृति से उन्हें अपने पुण्य कर्मों का ज्ञान था और इसे अपने छोटे से कर्म का महान फल समझकर वे बार-बार समाधि गीत गाते थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने राज्य प्राप्त किया और अपनी महान महिमा को देखते हुए वे वही समाधि गीत गाते रहे। एक दिन नगर में उत्सव की तैयारी चल रही थी। बहुत से लोग मनोरंजन में लीन थे। बनारस के उत्तरी द्वार के पास रहने वाले एक पानी ढोने वाले ने चारदीवारी की एक ईंट में आधा पैसा छिपा रखा था। वह एक गरीब महिला के साथ रहता था जो पानी ढोकर अपना जीवन यापन करती थी। उसने उससे कहा, "महोदय, शहर में एक उत्सव है: अगर आपके पास कुछ पैसे हों, तो चलिए हम सब मिलकर आनंद लें।" "हाँ, प्रिय।" "कितने?" "आधा पैसा।" "कहाँ है?" "उत्तरी द्वार के पास एक ईंट में, यहाँ से बारह मील (4.23 किमी) दूर, मैं अपना खजाना छोड़ रहा हूँ: लेकिन क्या आपके पास कुछ है?" "हाँ।" "कितने?" "आधा पैसा।" "तो आपके और मेरे मिलाकर पूरा एक पैसा होता है: हम इसके एक हिस्से से एक माला, दूसरे से इत्र और तीसरे से एक शराब खरीदेंगे: जाइए और अपना आधा पैसा वहाँ से ले आइए जहाँ आपने रखा है।" वह अपनी पत्नी के शब्दों से मिले विचार को पाकर प्रसन्न हुआ और यह कहते हुए, "चिंता मत कीजिए, प्रिय, मैं ले आता हूँ," वह चल पड़ा। वह व्यक्ति हाथी के समान बलवान था: वह छह लीग (4.23 किमी) से अधिक की दूरी तय कर गया, और यद्यपि दोपहर का समय था और वह ऐसी गर्म रेत पर चल रहा था मानो उस पर अभी-अभी जले हुए कोयले बिखरे हों, फिर भी वह लाभ की लालसा से प्रसन्न था और पुराने पीले वस्त्र पहने, कान में ताड़ का पत्ता (*1) लगाए, महल के प्रांगण से अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गीत गाते हुए गुजरा। राजा उदय एक खुली खिड़की पर खड़े थे, और उसे आते देख आश्चर्यचकित हुए कि यह कौन है, जो इतनी हवा और गर्मी की परवाह किए बिना खुशी से गीत गा रहा है, और उन्होंने एक सेवक को उसे बुलाने के लिए भेजा। "राजा आपको बुला रहे हैं," उसे बताया गया: लेकिन उसने कहा, "राजा से मेरा क्या संबंध है? मैं राजा को नहीं जानता।" उसे जबरदस्ती ले जाया गया और एक तरफ खड़ा कर दिया गया। तब राजा ने पूछताछ में दो श्लोक कहे:-उनका नाम उदय राजकुमार रखा गया। बड़े होकर वे सभी विद्याओं में पारंगत हो गए: उन्हें अपने पिछले जन्मों की स्मृति से अपने पुण्य कर्मों का ज्ञान था, और इसे अपने छोटे से कर्म का बड़ा पुरस्कार समझकर वे बार-बार समाधि गीत गाते थे। अपने

पिता की मृत्यु के बाद उन्हें राज्य प्राप्त हुआ, और अपनी महान महिमा को देखते हुए उन्होंने वही समाधि गीत गाया। एक दिन शहर में एक उत्सव की तैयारी चल रही थी। बहुत से लोग मनोरंजन में मग्न थे। बनारस के उत्तरी द्वार के पास रहने वाले एक जलवाहक ने चारदीवारी की एक ईंट में आधा पैसा छिपा रखा था। वह एक गरीब स्त्री के साथ रहता था जो जल ढोकर अपना जीवन यापन करती थी। उसने उससे कहा, "स्वामी, शहर में एक उत्सव है: यदि आपके पास कुछ पैसे हों, तो आइए हम आनंद मनाएं।" "मेरे पास हैं, प्रिय।" "कितने?" "आधा पैसा।" "कहाँ है?" "उत्तर द्वार के पास एक ईंट में, यहाँ से बारह लीग (4.23 किमी) दूर, मैं अपना खजाना छोड़ रही हूँ: लेकिन क्या तुम्हारे पास कुछ है?" "हाँ।" "कितना?" "आधा पैसा।" "तो तुम्हारा और मेरा मिलाकर पूरा एक पैसा होता है: हम इसके एक हिस्से से एक माला, दूसरे से इत्र और तीसरे से एक तेज़ शराब खरीदेंगे: जाओ और अपना आधा पैसा वहाँ से ले आओ जहाँ तुमने रखा है।" वह अपनी पत्नी के शब्दों से मिले सुझाव को पाकर प्रसन्न हुआ और यह कहते हुए, "चिंता मत करो, प्रिय, मैं ले आता हूँ," वह चल पड़ा। वह आदमी हाथी जितना बलवान था: उसने छह लीग (4.23 किमी) से अधिक की दूरी तय की, और यद्यपि दोपहर का समय था और वह ऐसी गर्म रेत पर चल रहा था मानो उस पर अभी-अभी जले हुए कोयले बिखरे हों, फिर भी वह लाभ की लालसा से प्रसन्न था और पुराने पीले कपड़े पहने, कान में ताड़ का पत्ता (*1) लगाए, महल के प्रांगण से होते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गीत गाता हुआ चला गया। राजा उदय एक खुली खिड़की पर खड़े थे और उन्हें आते देख आश्चर्यचकित हुए कि कौन है, जो इतनी हवा और गर्मी की परवाह किए बिना खुशी से गीत गाते हुए आ रहा है। उन्होंने एक सेवक को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। सेवक ने कहा, "राजा आपको बुला रहे हैं।" लेकिन उन्होंने कहा, "राजा से मेरा क्या संबंध है? मैं राजा को नहीं जानता।" उन्हें जबरदस्ती ले जाकर एक तरफ खड़ा कर दिया गया। तब राजा ने पूछताछ करते हुए दो श्लोक कहे:-उनका नाम उदय राजकुमार रखा गया। बड़े होकर वे सभी विद्याओं में पारंगत हो गए: उन्हें अपने पिछले जन्मों की स्मृति से अपने पुण्य कर्मों का ज्ञान था, और इसे अपने छोटे से कर्म का बड़ा पुरस्कार समझकर वे बार-बार समाधि गीत गाते थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्हें राज्य प्राप्त हुआ, और अपनी महान महिमा को देखते हुए उन्होंने वही समाधि गीत गाया। एक दिन शहर में एक उत्सव की तैयारी चल रही थी। बहुत से लोग मनोरंजन में मग्न थे। बनारस के उत्तरी द्वार के पास रहने वाले एक जलवाहक ने चारदीवारी की एक ईंट में आधा पैसा छिपा रखा था। वह एक गरीब स्त्री के साथ रहता था जो जल ढोकर अपना जीवन यापन करती थी। उसने उससे कहा, "स्वामी, शहर में एक उत्सव है: यदि आपके पास कुछ पैसे हों, तो आइए हम आनंद मनाएं।" "मेरे पास हैं, प्रिय।" "कितने?" "आधा पैसा।" "कहाँ है?" "उत्तर द्वार के पास एक ईंट में, यहाँ से बारह लीग (4.23 किमी) दूर, मैं अपना खजाना छोड़ रही हूँ: लेकिन क्या तुम्हारे पास कुछ है?" "हाँ।" "कितना?" "आधा पैसा।" "तो तुम्हारा और मेरा मिलाकर पूरा एक पैसा होता है: हम इसके एक हिस्से से एक माला, दूसरे से इत्र और तीसरे से एक तेज़ शराब खरीदेंगे: जाओ और अपना आधा पैसा वहाँ से ले आओ जहाँ तुमने रखा है।" वह अपनी पत्नी के शब्दों से मिले सुझाव को पाकर प्रसन्न हुआ और यह कहते हुए, "चिंता मत करो, प्रिय, मैं ले आता हूँ," वह चल पड़ा। वह आदमी हाथी जितना बलवान था: उसने छह लीग (4.23 किमी) से अधिक की दूरी तय की, और यद्यपि दोपहर का समय था और वह ऐसी गर्म रेत पर चल रहा था मानो उस पर अभी-अभी जले हुए कोयले बिखरे हों, फिर भी वह लाभ की लालसा से प्रसन्न था और पुराने पीले कपड़े पहने, कान में ताड़ का पत्ता (*1) लगाए, महल के प्रांगण से होते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गीत गाता हुआ चला गया। राजा उदय एक खुली खिड़की पर खड़े थे और उन्हें आते देख आश्चर्यचकित हुए कि कौन है, जो इतनी हवा और गर्मी की परवाह किए बिना खुशी से गीत गाते हुए आ रहा है। उन्होंने एक सेवक को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। सेवक ने कहा, "राजा आपको बुला रहे हैं।" लेकिन उन्होंने कहा, "राजा से मेरा क्या संबंध है? मैं राजा को नहीं जानता।" उन्हें जबरदस्ती ले जाकर एक तरफ खड़ा कर दिया गया। तब राजा ने पूछताछ करते हुए दो श्लोक कहे:-"कितना?" "आधा पैसा।" "कहाँ है?" "यहाँ से बारह लीग (x 4.23 किमी) दूर उत्तरी द्वार के पास एक ईंट में मैंने अपना खजाना रखा है: लेकिन क्या तुम्हारे पास कुछ है?" "है।" "कितना?" "आधा पैसा।" "तो तुम्हारा और मेरा मिलाकर पूरा पैसा होता है: हम इसके एक हिस्से से एक माला, दूसरे से इत्र और तीसरे से एक तेज़ शराब खरीदेंगे: जाओ और अपना आधा पैसा वहाँ से ले आओ जहाँ तुमने रखा है।" वह अपनी पत्नी के शब्दों से मिले सुझाव को पाकर बहुत खुश हुआ और यह कहते हुए, "चिंता मत करो, प्रिय, मैं ले आता हूँ," वह चल पड़ा। वह आदमी हाथी जितना बलवान था: उसने छह लीग (x 4.23 किमी) से अधिक की दूरी तय की, और यद्यपि दोपहर का समय था और वह ऐसी गर्म रेत पर चल रहा था मानो उस पर अभी-अभी जले हुए कोयले बिखरे हों, फिर भी वह लाभ की लालसा से प्रसन्न था और पुराने पीले कपड़ों में, कान में ताड़ का पत्ता (*1) लगाए, वह महल के प्रांगण से होकर गुजरा। अपने उद्देश्य की पूर्ति में, वह गीत गाते हुए जा रहा था। राजा उदय एक खुली खिड़की पर खड़े थे और उसे आते देख आश्चर्यचकित हुए कि कौन है, जो इतनी हवा और गर्मी की परवाह किए बिना खुशी से गीत गा रहा है। उन्होंने एक सेवक को उसे बुलाने के लिए भेजा। सेवक ने कहा, "राजा आपको बुला रहे हैं।" लेकिन उसने कहा, "राजा से मेरा क्या संबंध है? मैं राजा को नहीं जानता।" उसे जबरदस्ती ले जाकर एक तरफ खड़ा कर दिया गया। तब राजा ने पूछताछ करते हुए दो श्लोक कहे:-"कितना?" "आधा पैसा।" "कहाँ है?" "यहाँ से बारह लीग (x 4.23 किमी) दूर उत्तरी द्वार के पास एक ईंट में मैंने अपना खजाना रखा है: लेकिन क्या तुम्हारे पास कुछ है?" "है।" "कितना?" "आधा पैसा।" "तो तुम्हारा और मेरा मिलाकर पूरा पैसा होता है: हम इसके एक हिस्से से एक माला, दूसरे से इत्र और तीसरे से एक तेज़ शराब खरीदेंगे: जाओ और अपना आधा पैसा वहाँ से ले आओ जहाँ तुमने रखा है।" वह अपनी पत्नी के शब्दों से मिले सुझाव को पाकर बहुत खुश हुआ और यह कहते हुए, "चिंता मत करो, प्रिय, मैं ले आता हूँ," वह चल पड़ा। वह आदमी हाथी जितना बलवान था: उसने छह लीग (x 4.23 किमी) से अधिक की दूरी तय की, और यद्यपि दोपहर का समय था और वह ऐसी गर्म रेत पर चल रहा था मानो उस पर अभी-अभी जले हुए कोयले बिखरे हों, फिर भी वह लाभ की लालसा से प्रसन्न था और पुराने पीले कपड़ों में, कान में ताड़ का पत्ता (*1) लगाए, वह महल के

प्रांगण से होकर गुजरा। अपने उद्देश्य की पूर्ति में, वह गीत गाते हुए जा रहा था। राजा उदय एक खुली खिड़की पर खड़े थे और उसे आते देख आश्चर्यचकित हुए कि कौन है, जो इतनी हवा और गर्मी की परवाह किए बिना खुशी से गीत गा रहा है। उन्होंने एक सेवक को उसे बुलाने के लिए भेजा। सेवक ने कहा, "राजा आपको बुला रहे हैं।" लेकिन उसने कहा, "राजा से मेरा क्या संबंध है? मैं राजा को नहीं जानता।" उसे जबरदस्ती ले जाकर एक तरफ खड़ा कर दिया गया। तब राजा ने पूछताछ करते हुए दो श्लोक कहे:-

धरती अंगारों जैसी है, जमीन दहकते अंगारों जैसी है:
तुम अपना गीत गाओ, भीषण गर्मी तुम्हें नहीं जलाएगी।
आसमान में सूरज चमक रहा है, नीचे रेत गर्म है:
तुम अपना गीत गाओ, भीषण गर्मी तुम्हें नहीं जलाएगी।
राजा के वचन सुनकर उसने तीसरा श्लोक बोला:-

ये इच्छाएँ ही जलती हैं, सूर्य नहीं:
ये सभी अत्यावश्यक कार्य हैं जिन्हें पूरा किया जाना चाहिए।
राजा ने पूछा कि उसका क्या काम है। उसने उत्तर दिया, "हे राजा, मैं दक्षिणी द्वार के पास एक गरीब स्त्री के साथ रहता था। उसने प्रस्ताव रखा कि हम दोनों उत्सव में मनोरंजन करें और पूछा कि क्या मेरे पास कुछ है। मैंने उसे बताया कि उत्तरी द्वार के पास एक दीवार के भीतर मैंने खजाना छिपा रखा है। उसने मुझे उसे लाने के लिए भेजा ताकि हम दोनों मनोरंजन कर सकें। उसके वे शब्द मेरे हृदय से कभी नहीं निकलते और जब मैं उन्हें याद करता हूँ तो मेरे मन में तीव्र इच्छा जागृत होती है। यही मेरा काम है।" "तो फिर ऐसी क्या बात है जो तुम्हें इतना प्रसन्न करती है कि तुम हवा और धूप की परवाह किए बिना गाते हुए जाते हो?" "हे राजा, मैं यह सोचकर गाता हूँ कि जब मैं अपना खजाना लाऊंगा तो उसके साथ मनोरंजन करूंगा।" "तो फिर, मेरे भले आदमी, क्या उत्तरी द्वार के पास छिपा हुआ तुम्हारा खजाना एक लाख सिक्कों का है?" "नहीं।" तब राजा ने एक-एक करके पूछा कि क्या वह पचास हजार, चालीस, तीस, बीस, दस, पाँच, चार, तीन, दो सोने के सिक्के, एक सिक्का, आधा सिक्का, एक चौथाई सिक्का, चार पेंस, तीन, दो, एक पेंस का है। उस आदमी ने इन सभी सवालों का जवाब "नहीं" में दिया और फिर बोला, "यह तो आधा पैसा है: हे महाराज, यही तो मेरा सारा खजाना है: लेकिन मैं इसे लाने और फिर उसके साथ आनंद मनाने की उम्मीद में जा रहा हूँ: और इस इच्छा और आनंद में हवा और धूप मुझे परेशान नहीं कर रही हैं।" राजा ने कहा, "हे महाराज, इतनी गर्मी में वहाँ मत जाओ: मैं तुम्हें आधा पैसा दूंगा।" "हे महाराज, मैं आपकी बात मान लेता हूँ और इसे स्वीकार करता हूँ, लेकिन मैं दूसरा नहीं खोऊंगा: मैं वहाँ जाकर उसे भी लाने का प्रयास नहीं छोड़ूंगा।" "हे महाराज, यहीं रुको: मैं तुम्हें एक पैसा, दो पैसे दूंगा:" फिर वह और अधिक राशि देने लगा और एक करोड़ (10 करोड़), सौ करोड़ (10 करोड़), असीमित धन देने की पेशकश करने लगा, अगर वह आदमी रुक जाए। लेकिन वह हमेशा यही कहता रहा, "हे महाराज, मैं इसे ले लूंगा, लेकिन मैं दूसरा भी लाऊंगा।" फिर उन्हें कोषाध्यक्ष और कई अन्य पदों के साथ-साथ वायसराय के पद का भी प्रलोभन दिया गया: अंत में उन्हें राज्य का आधा हिस्सा देने की पेशकश की गई, बशर्ते वे वहीं रुकें। तब वे मान गए। राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, "जाओ, मेरे मित्र की दाढ़ी बनवाओ, उन्हें नहलाओ और सजाओ, और उन्हें वापस लाओ।" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने अपने राज्य को दो भागों में बाँटकर उन्हें आधा हिस्सा दे दिया: लेकिन कहते हैं कि उन्होंने अपने प्रिय मित्र के प्रेम के कारण उत्तरी भाग ले लिया। उन्हें प्रिय मित्र के नाम से जाना जाने लगा। उन्होंने मित्रता और सद्भाव से राज्य पर शासन किया। एक दिन वे दोनों साथ में उद्यान गए। मनोरंजन करने के बाद, राजा उदय ने अपना सिर प्रिय मित्र की गोद में रख लिया। वे सो गए, जबकि सेवक इधर-उधर घूमकर अपने मनोरंजन का आनंद ले रहे थे। राजा हाफ-पेनी ने सोचा, "मुझे हमेशा आधा राज्य ही क्यों मिले? मैं उसे मार डालूंगा और अकेला राजा बन जाऊंगा।" इसलिए उसने अपनी तलवार निकाली, लेकिन उस पर वार करने के बारे में सोचते ही उसे याद आया कि राजा ने ही उसे गरीब और निर्धन होने के समय अपना साझेदार बनाया था और उसे इतनी शक्ति प्रदान की थी। उसके मन में अपने सहायक को मारने का जो विचार आया था, वह दुष्टतापूर्ण था। इसलिए उसने तलवार म्यान में रख ली। यही विचार उसके मन में दूसरी और तीसरी बार भी आया।यह महसूस करते हुए कि यह विचार बार-बार उठकर उसे बुरे कर्म की ओर ले जाएगा, उसने तलवार जमीन पर फेंक दी और राजा को जगाया। "हे राजा, मुझे क्षमा करें," उसने कहा और उनके चरणों में गिर पड़ा। "मित्र, आपने मेरा कोई नुकसान नहीं किया है।" "मैंने किया है, हे महान राजा: मैंने ऐसा-ऐसा किया है।" "तो, मित्र, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ: यदि तुम चाहो, तो अकेले राजा बनो, और मैं तुम्हारे अधीन वायसराय के रूप में सेवा करूँगा।" उसने उत्तर दिया, "हे राजा, मुझे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसी इच्छा मुझे बुरे कर्मों में पुनर्जन्म दिलाएगी: राज्य आपका है, इसे ले लो: मैं तपस्वी बन जाऊँगा: मैंने इच्छा की जड़ देखी है, यह मनुष्य की इच्छा से उत्पन्न होती है, अब से मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं होगी," और इस प्रकार समाधि की अवस्था में उसने चौथा श्लोक बोला:-

मैंने तुम्हारी जड़ें देखी हैं, इच्छा: वे मनुष्य की अपनी इच्छाशक्ति में निहित होती हैं।
मैं अब तुम्हारे लिए कोई कामना नहीं करूंगा, और तुम, इच्छा, मर जाओगी।
ऐसा कहकर उन्होंने पाँचवाँ श्लोक सुनाया, जिसमें उन्होंने इच्छाओं में लिप्त लोगों के एक बड़े समूह को धार्मिक मार्ग का उपदेश दिया:

कम इच्छा पर्याप्त नहीं होती, और अधिक इच्छा केवल पीड़ा ही लाती है:

अरे! मूर्ख लोगो: हे मित्रों, होश में रहो, यदि तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो।
अत:, सभी को धर्म का उपदेश देते हुए, उन्होंने राज्य को राजा उदय के हवाले कर दिया: आँसुओं से भीगी प्रजा को छोड़कर, वे हिमालय चले गए, तपस्वी बन गए और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। तपस्वी बनने के समय, राजा उदय ने परमानंद (सम्मोहन) की पूर्ण अभिव्यक्ति में छठे श्लोक का उच्चारण किया:-

थोड़ी सी इच्छा ने ही मुझे सारे फल दिए हैं।
उदय को जो यश प्राप्त होता है वह महान है;
दृढ़ निश्चय होने पर बहुत बड़ा लाभ होता है।
भाई बनना और इच्छाओं का त्याग करना।
इस श्लोक का अर्थ किसी को नहीं पता था। एक दिन मुख्य रानी ने राजा से इसका अर्थ पूछा। राजा ने बताने से इनकार कर दिया। राजा के दरबार में गंगामाला नाम का एक नाई था, जो राजा की सेवा करते समय पहले उस्तरे का इस्तेमाल करता था और फिर चिमटी से बाल पकड़ता था।

राजा को पहला ऑपरेशन पसंद आया, लेकिन दूसरे से उन्हें तकलीफ हुई: पहले ऑपरेशन में तो वे नाई को वरदान दे देते, दूसरे में तो वे अपना सिर ही काट लेते। एक दिन उन्होंने रानी को इसके बारे में बताया और कहा कि उनका दरबारी नाई मूर्ख है। जब रानी ने पूछा कि उसे क्या करना चाहिए, तो उसने उत्तर दिया, "पहले चिमटी का इस्तेमाल करो और फिर तरकश का।" रानी ने नाई को बुलवाया और कहा, "महोदय, जब तुम राजा की दाढ़ी काट रहे हो, तो पहले चिमटी से बाल लो और फिर तरकश का इस्तेमाल करो। फिर अगर राजा तुम्हें वरदान दें, तो कहना कि तुम्हें और कुछ नहीं चाहिए, बस उनके गीत का अर्थ जानना है। अगर तुम ऐसा करोगे, तो मैं तुम्हें बहुत सारा पैसा दूंगी।" नाई मान गया। अगले दिन जब वह राजा की दाढ़ी काट रहा था, तो उसने पहले चिमटी का इस्तेमाल किया। राजा ने कहा, "गंगमाला, क्या यह तुम्हारा नया फैशन है?" "हे महाराज," उसने उत्तर दिया, "नाइयों का नया फैशन चल रहा है।" पहले उसने चिमटी से राजा के बाल पकड़े और फिर उस्तरे का इस्तेमाल किया। राजा ने उसे एक वरदान दिया। नाई ने कहा, "हे महाराज, मुझे और कुछ नहीं चाहिए; मुझे अपने गीत का अर्थ बताइए।" राजा को अपने गरीबी के दिनों के पेशे के बारे में बताने में शर्म आ रही थी, इसलिए उसने कहा, "हे मेरे भले, ऐसे वरदान से आपको क्या लाभ? कुछ और चुन लीजिए।" लेकिन नाई ने विनती की। राजा अपना वचन तोड़ने से डर गया और मान गया। कुम्मसपिंडा जन्म के वर्णन के अनुसार, उसने सारी व्यवस्था की और रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठकर उस शहर में अपने पिछले जन्म के पुण्य कर्मों की पूरी कहानी सुनाई। उसने कहा, "इससे आधे श्लोक का अर्थ स्पष्ट होता है: बाकी के लिए, मेरा साथी तपस्वी बन गया: मैं अपने अहंकार में अब अकेला राजा हूँ, और यही मेरे समाधि गीत के दूसरे भाग का अर्थ है।" उनकी बात सुनकर नाई ने सोचा, "राजा को आधा दिन का उपवास रखने से यह यश प्राप्त हुआ: पुण्य ही सही मार्ग है: अगर मैं भी संन्यासी बन जाऊं और अपना मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त कर लूं तो क्या होगा?" उन्होंने अपने सभी रिश्तेदारों और सांसारिक वस्तुओं को त्याग दिया, राजा से संन्यासी बनने की अनुमति प्राप्त की और हिमालय जाकर संन्यासी बन गए। उन्होंने सांसारिक वस्तुओं के तीन गुणों को जाना, पूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त की और पच्चेकबुद्ध बन गए। उन्होंने अलौकिक शक्ति से एक कुंड और वस्त्र बनवाए। गंगामाला पर्वत पर पांच-छह वर्ष बिताने के बाद, उन्हें बनारस के राजा से मिलने की इच्छा हुई और वे वायुमार्ग से वहां के राजमहल में पहुंचे और राजमहल के पत्थर के आसन पर बैठ गए। राजमहल के रखवाले ने राजा को बताया कि गंगामाला, जो अब पच्चेकबुद्ध बन चुके हैं, वायुमार्ग से आए हैं और राजमहल में बैठे हैं। राजा तुरंत पच्चेकबुद्ध को प्रणाम करने गए और महारानी अपने पुत्र के साथ बाहर चली गईं। राजा ने राजमहल में प्रवेश किया, उन्हें प्रणाम किया और अपने सेवकों के साथ एक तरफ बैठ गए। पच्चेकबुद्ध ने उनसे मैत्रीपूर्ण लहजे में कहा, "ब्रह्मदत्त" (उन्हें परिवार के नाम से पुकारते हुए), "क्या आप परिश्रमी हैं और राज्य का शासन विधिपूर्वक कर रहे हैं?""क्या तुम दान-पुण्य और अन्य अच्छे काम कर रहे हो?" महारानी माँ क्रोधित हो गईं। "नाई का यह नीच जाति का शैम्पू लगाने वाला बेटा अपनी औकात नहीं जानता: यह मेरे शाही खानदान के पुत्र को ब्रह्मदत्त कहता है," और उन्होंने सातवाँ श्लोक कहा:-

प्रायश्चित वास्तव में मनुष्यों को उनके पापों से विमुख कर देता है।
उनके नाई की दुकान, कुम्हार की दुकान, हर जगह उनके कारखाने:
तपस्या के माध्यम से गंगामाला की महिमा प्राप्त होती है।
और अब वह मेरे बेटे को "ब्रह्मदत्त" कहकर पुकारता है।
राजा ने अपनी माता की जाँच की और पच्चेकबुद्ध के गुणों का वर्णन करते हुए आठवाँ श्लोक बोला:-

देखो! चाहे उसकी मृत्यु किसी भी तरह से हो जाए,
नम्रता मनुष्य को उसका फल देती है!
वह व्यक्ति जिसने हम सबके सामने सिर झुकाया,
अब राजाओं और सरदारों को सलाम करना होगा।

यद्यपि राजा ने अपनी माता को रोका, फिर भी बाकी सभी उठ खड़े हुए और बोले, "यह उचित नहीं है कि इतनी नीची जाति का व्यक्ति तुम्हें इस प्रकार नाम लेकर संबोधित करे।" राजा ने उन सभी को फटकारा और पच्चेकबुद्ध के गुणों का वर्णन करते हुए अंतिम श्लोक बोला:

गंगामाला का अपमान करना उचित नहीं है।
   तपस्वी (धार्मिक) मार्ग में परिपूर्ण:
वह दुख की लहरों को पार कर चुका है।
   अब दुःख से मुक्त होकर वह भटकता है।

ऐसा कहकर राजा ने पच्चेकबुद्ध को प्रणाम किया और उनसे महारानी को क्षमा करने का अनुरोध किया। पच्चेकबुद्ध ने ऐसा ही किया और राजा के सेवकों को भी क्षमा मिल गई। राजा ने उनसे वादा करने को कहा कि वे आस-पास ही रहेंगे, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया और पूरे दरबार के सामने हवा में खड़े होकर राजा को आशीर्वाद दिया और गंधमादना चले गए।

पाठ के बाद गुरु ने कहा, "मेरे गृहस्थ भाइयों (शिष्यों), आप देख रहे हैं कि उपवास रखना कितना उचित है," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय पच्चेकबुद्ध निर्वाण में प्रवेश कर गए, राजा आधा-पेनी आनंद थे, प्रधान रानी राहुल की माता थीं, और राजा उदय मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) ताड़ के पत्ते का उपयोग कान के आभूषण के रूप में किया जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चेतिया-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-422-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 422
चेतिया-जातक

"घायल दायाँ अंग अत्यधिक पीड़ा पहुँचा सकता है," इत्यादि। - गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त के पृथ्वी में समा जाने की यह कहानी सुनाई थी। उस दिन सत्य के हॉल में चर्चा हो रही थी कि देवदत्त ने झूठ बोला था, जिसके कारण वह धरती में समा गया और अविची नरक में जाने के लिए अभिशप्त हो गया। गुरुजी आए और उनकी बातें सुनकर बोले, "यह पहली बार नहीं है जब वह धरती में समाया है," और फिर उन्होंने पुरानी कहानी सुनाई।

प्रथम युग में, महासम्मत नामक एक राजा थे, जिनका जीवनकाल एक असंख्य (*1) वर्ष था। उनके पुत्र रोजा, पुत्र वरारोजा, और फिर उनके उत्तराधिकार में कल्याणा, वराकल्याण, उपोसथ, मंधाता, वरमंधता, चरा और उपाकर (जिन्हें अपाकर भी कहा जाता था) थे। वे सोत्थीवती नगर में स्थित चेति राज्य के राजा थे। उन्हें चार अलौकिक वरदान प्राप्त थे - वे ऊँचाई पर चल सकते थे और हवा में उड़ सकते थे, उनकी रक्षा के लिए चारों दिशाओं में चार-चार देवदूत तलवार लिए रहते थे, उनके शरीर से चंदन की सुगंध निकलती थी और उनके मुख से कमल की सुगंध निकलती थी। उनके कुल पुरोहित का नाम कपिला था। इस ब्राह्मण के छोटे भाई कोराकलम्बा ने राजा के साथ ही एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी और वे राजा के सहपाठी थे। जब अपाकर राजकुमार बने, तो उन्होंने कोराकलम्बा को राजा बनने पर अपना कुल पुरोहित बनाने का वचन दिया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राजा बना, लेकिन वह कपिल को कुलपुजारी के पद से नहीं हटा सका। जब कपिल उससे मिलने आया, तो उसने उसे सम्मान के विशेष नियम समझाए। ब्राह्मण ने यह देखा और सोचा कि राजा अपने ही उम्र के मंत्रियों के साथ बेहतर ढंग से शासन कर सकता है, और शायद उसे स्वयं भी राजा से संन्यासी बनने की अनुमति मिल जाए। इसलिए उसने कहा, "हे राजा, मैं बूढ़ा हो रहा हूँ; मेरा एक पुत्र है, उसे कुलपुजारी बना दीजिए और मैं संन्यासी बन जाऊँगा।" उसे राजा की अनुमति मिल गई और उसने अपने पुत्र को कुलपुजारी नियुक्त करवा दिया। फिर वह राजा के उद्यान में गया, संन्यासी बन गया, पारलौकिक ज्ञान प्राप्त किया और अपने पुत्र के पास वहीं रहने लगा। कोराकलंबक को अपने भाई से इस बात का द्वेष

था कि संन्यासी बनने पर उसने उसे यह पद नहीं दिलवाया था। एक दिन राजा ने उससे मैत्रीपूर्ण बातचीत में कहा, "कोराकलमबक, तुम कुलपुजारी नहीं हो?" "नहीं, हे राजा: मेरे भाई ने यह पद प्राप्त कर लिया है।" "क्या तुम्हारा भाई संन्यासी नहीं बना?" "हाँ, बना तो लिया है, लेकिन उसने यह पद अपने पुत्र को दिलवा दिया है।" "तो फिर आप इसे संभाल लेंगे?" "हे महाराज, मेरे लिए अपने भाई को दरकिनार करके वंशानुगत पद ग्रहण करना असंभव है।" "यदि ऐसा है, तो मैं आपको वरिष्ठ और दूसरे को कनिष्ठ बना दूंगा।" "कैसे, हे महाराज?" "झूठ बोलकर (*2)।" "हे महाराज, क्या आप नहीं जानते कि मेरा भाई एक जादूगर है, जिसे अलौकिक शक्ति प्राप्त है? वह आपको जादुई भ्रमों से धोखा देगा: वह आपके चारों देवदूतों को गायब कर देगा, और आपके शरीर और मुंह से मानो दुर्गंध उत्पन्न कर देगा, वह आपको आकाश से नीचे उतारकर धरती पर खड़ा कर देगा: आप मानो धरती में समा गए हों, और आप अपनी कहानी सुनाने में असमर्थ होंगे।" "चिंता मत कीजिए; मैं इसे संभाल लूंगा।"

“हे राजा, आप यह कब करेंगे?” “आज से सातवें दिन।” यह कहानी पूरे शहर में फैल गई, “राजा झूठ बोलकर वरिष्ठ को कनिष्ठ बना रहा है और पद कनिष्ठ को दे देगा: झूठ किस प्रकार की चीज है? क्या यह नीला है या पीला या कोई और रंग?” लोग इस पर बहुत सोचने लगे। कहते हैं, वह ऐसा समय था जब दुनिया सच बोलती थी: लोगों को “झूठ” शब्द का अर्थ नहीं पता था। पुजारी के बेटे ने यह कहानी सुनी और अपने पिता से कहा, “पिताजी, लोग कहते हैं कि राजा झूठ बोलकर आपको कनिष्ठ बना रहा है और हमारा पद मेरे चाचा को दे देगा।” “मेरे प्यारे, राजा झूठ बोलकर भी हमारा पद हमसे नहीं छीन पाएगा: वह यह किस दिन करने वाला है?” “लोग कहते हैं कि आज से सातवें दिन।” “समय आने पर मुझे बता देना।” सातवें दिन राजा के प्रांगण में बहुत से लोग कतारों में बैठे हुए थे, झूठ देखने की उम्मीद में। युवा पुजारी गया और उसने अपने पिता को बताया। राजा पूरी तरह तैयार थे, वे प्रकट हुए और प्रांगण में लोगों के बीच हवा में खड़े हो गए। तपस्वी हवा में से आए, राजा के सामने अपना आसन बिछाया, हवा में अपने सिंहासन पर बैठे और बोले, "हे राजा, क्या यह सच है कि आप झूठ बोलकर कनिष्ठ को वरिष्ठ बनाना चाहते हैं और उसे पद देना चाहते हैं?" "गुरुजी, मैंने ऐसा ही किया है।" फिर उन्होंने राजा को उपदेश दिया, "हे महान राजा, झूठ अच्छे गुणों का घोर नाश है, यह चार बुरी अवस्थाओं में पुनर्जन्म का कारण बनता है; झूठ बोलने वाला राजा धर्म का नाश करता है, और धर्म का नाश करके वह स्वयं नाश हो जाता है।" और उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

घायल धार्मिकता अत्यधिक तीव्रता से चोट पहुंचा सकती है, और बदले में चोट ही पहुंचाती है;
इसलिए धर्म को कभी ठेस नहीं पहुंचानी चाहिए, अन्यथा इसका दुष्परिणाम आप पर ही उल्टा पड़ेगा।
उन्हें और फटकार लगाते हुए उन्होंने कहा, "महान राजा, यदि आप झूठ बोलेंगे, तो आपकी चारों अलौकिक शक्तियां लुप्त हो जाएंगी," और उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:-

ईश्वरीय शक्तियां झूठ बोलने वाले व्यक्ति का साथ छोड़ देती हैं।
उसके मुंह से दुर्गंध आती है, वह आकाश में अपना पैर नहीं जमा सकता:
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
यह सुनकर राजा भयभीत होकर कोरकलंबक की ओर देखने लगा। उसने कहा, "हे महाराज, भयभीत न हों; क्या मैंने आपको पहले ही ऐसा नहीं कहा था?" और इसी प्रकार आगे भी। यद्यपि राजा ने कपिल की बातें सुनीं, फिर भी उसने अपना कथन दोहराया, "महाराज, आप छोटे हैं, कोरकलंबक बड़े हैं।" जैसे ही उसने यह झूठ बोला, चारों देवदूतों ने कहा कि वे ऐसे झूठे की रक्षा नहीं करेंगे, उन्होंने अपनी तलवारें उसके चरणों में फेंक दीं और गायब हो गए; उसका मुँह टूटे हुए सड़े अंडे की तरह दुर्गंधयुक्त हो गया और उसका शरीर खुले नाले की तरह; और हवा से गिरकर वह पृथ्वी पर आ गिरा: इस प्रकार उसकी सभी चार अलौकिक शक्तियाँ लुप्त हो गईं। उसके मुख्य पुरोहित ने कहा, "महाराज, भयभीत न हों: यदि आप सत्य बोलेंगे, तो मैं आपको सब कुछ लौटा दूँगा," और इस प्रकार उसने तीसरा श्लोक कहा:-

हे राजा, सत्य का एक शब्द और अपने सभी उपहार तुम पुनः प्राप्त कर लोगे।
झूठ बोलने से तुम सेती की मिट्टी में हमेशा के लिए जम जाओगे।
उन्होंने कहा, "हे महाराज, देखिए: आपकी वे चारों अलौकिक शक्तियाँ आपके झूठ के कारण ही लुप्त हुईं; विचार कीजिए, क्योंकि अब उन्हें पुनः प्राप्त करना संभव है।" परन्तु राजा ने उत्तर दिया, "आप मुझे इस बात से धोखा देना चाहते हैं," और दूसरा झूठ बोलकर वे टखनों तक धरती में धंस गए। तब ब्राह्मण ने एक बार फिर कहा, "हे महाराज, विचार कीजिए," और चौथा श्लोक बोला:-

उस पर बारिश के समय सूखा आ पड़ता है, बारिश तब होती है जब सूखा होना चाहिए।
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
फिर उसने एक बार फिर कहा, "तुम्हारे झूठ बोलने के कारण तुम टखनों तक धरती में धंस गए हो: हे महान राजा, विचार करो," और पाँचवाँ श्लोक बोला:-

हे राजा, सत्य का एक शब्द कहो, और अपने सभी उपहार पुनः प्राप्त कर लो।

झूठ आपको सेती की मिट्टी में धंसा देगा और आप वहीं रह जाएंगे।
लेकिन तीसरी बार राजा ने कहा, "आप कनिष्ठ हैं और कोरकलंबक कनिष्ठ हैं," और यह झूठ बोलकर वह घुटनों तक जमीन में धंस गए। ब्राह्मण ने एक बार फिर कहा, "हे महान राजा, विचार कीजिए," और दो श्लोक कहे:-

हे राजा, वह मनुष्य दोमुँही जीभ वाला और सर्प की तरह धूर्त है।
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
हे राजा, सत्य का एक शब्द कहो, और अपने सभी उपहार पुनः प्राप्त कर लो।
झूठ आपको सेती में और भी गहरे दलदल में धकेल देगा, जहाँ आप हमेशा के लिए फंसे रहेंगे।
आगे उन्होंने कहा, "अब भी सब कुछ बहाल हो सकता है।" राजा ने उनकी बात अनसुनी करते हुए चौथी बार झूठ दोहराया, "महाराज, आप कनिष्ठ हैं और कोराकलंबक वरिष्ठ हैं," और ये सुनकर वे कमर तक धंस गए। ब्राह्मण ने फिर कहा, "हे महाराज, विचार कीजिए," और दो श्लोक बोले:-

हे राजा, वह मनुष्य मछली के समान है, और वह बिना जीभ का होगा।
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
हे राजा, सत्य का एक शब्द कहो, और अपने सभी उपहार पुनः प्राप्त कर लो।
झूठ आपको सेती में और भी गहरे दलदल में धकेल देगा, जहाँ आप हमेशा के लिए फंसे रहेंगे।
राजा ने पाँचवीं बार झूठ दोहराया, और ऐसा करते ही वह नाभि तक धंस गया। ब्राह्मण ने एक बार फिर उससे विचार करने की विनती की और दो श्लोक कहे:-

उससे केवल पुत्रियाँ ही उत्पन्न होंगी, उसका कोई पुत्र नहीं होगा।
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
हे राजा, सत्य का एक शब्द कहो, और अपने सभी उपहार पुनः प्राप्त कर लो।
झूठ आपको सेती में और भी गहरे दलदल में धकेल देगा, जहाँ आप हमेशा के लिए फंसे रहेंगे।
राजा ने कोई ध्यान नहीं दिया और छठी बार झूठ दोहराते हुए सीने में धंस गया। ब्राह्मण ने एक बार फिर विनती की और दो श्लोक बोले:-

उसके बच्चे उसके साथ नहीं रहेंगे, वे हर तरफ भाग रहे हैं।
जो भी व्यक्ति प्रश्न का उत्तर जानबूझकर झूठ से देता है।
सत्य का एक शब्द कहो, और हे राजा, तुम अपने सभी उपहार पुनः प्राप्त कर लोगे।
झूठ आपको सेती में और भी गहरे दलदल में धकेल देगा, जहाँ आप हमेशा के लिए फंसे रहेंगे।
एक दुष्ट मित्र की संगति के कारण उसने उन शब्दों की अवहेलना की और सातवीं बार वही झूठ दोहराया। तब धरती फट गई और अविची की ज्वालाएं भड़क उठीं और उसे अपनी चपेट में ले लिया।

कहते हैं, एक ऋषि द्वारा शापित, वह राजा जो कभी हवा में चल सकता था।
वह अपने नियत दिन पर खो गया और धरती में समा गया।
इसी कारण बुद्धिमान लोग इसका बिल्कुल भी समर्थन नहीं करते।
जब वह इच्छा हृदय में उत्पन्न हुई:
जो छल से मुक्त है, जिसका हृदय शुद्ध है,
वह जो कुछ भी कहता है, वह हमेशा दृढ़ और निश्चित होता है।
ये दो श्लोक 'पूर्ण ज्ञान' से प्रेरित हैं।

लोगों ने भयभीत होकर कहा, “चेति के राजा ने ऋषि का अपमान किया और झूठ बोला; इसलिए वह अविची में प्रवेश कर गया है।” राजा के पाँचों पुत्र ब्राह्मण के पास आए और बोले, “आप हमारी सहायता कीजिए।” ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “तुम्हारे पिता ने सत्य का नाश किया, उन्होंने झूठ बोला और ऋषि का अपमान किया; इसलिए वह अविची में प्रवेश कर गए हैं। यदि सत्य का नाश हो जाए, तो वह सब कुछ नष्ट कर देता है। तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए।” उन्होंने अपने सबसे बड़े पुत्र से कहा, “प्रिय, आओ: पूर्वी द्वार से नगर छोड़ो और सीधे जाओ: तुम्हें एक सफेद राज हाथी सात स्थानों से पृथ्वी को स्पर्श करते हुए लेटा हुआ दिखाई देगा (*3): यह तुम्हारे लिए संकेत होगा कि तुम वहाँ एक नगर बसाओ और उसमें निवास करो: और उसका नाम हत्थिपुरा होगा।” दूसरे राजकुमार से उन्होंने कहा, “तुम दक्षिणी द्वार से निकलो और सीधे तब तक जाओ जब तक तुम्हें एक शुद्ध सफेद राज अश्व दिखाई न दे: यह संकेत होगा कि तुम्हें वहाँ एक नगर बसाना है और उसमें निवास करना है: और उसका नाम अस्सपुरा होगा।” तीसरे राजकुमार से उन्होंने कहा, "तुम पश्चिमी द्वार से निकलकर सीधे चलते रहो जब तक तुम्हें अयाल वाला सिंह न दिखाई दे; यह संकेत होगा कि तुम्हें वहाँ एक नगर बसाना है और उसमें

निवास करना है: और उसका नाम सिहापुरा होगा।" चौथे राजकुमार से उन्होंने कहा, "तुम उत्तरी द्वार से निकलकर सीधे चलते रहो जब तक तुम्हें रत्नों से बना एक चक्र-ढांचा (*4) न दिखाई दे: यह संकेत होगा कि तुम्हें वहाँ एक नगर बसाना है और उसमें निवास करना है: और उसका नाम उत्तरा पंचाल होगा।" पाँचवें राजकुमार से उन्होंने कहा, "तुम यहाँ नहीं रह सकते: इस नगर में एक बड़ा मंदिर बनाओ, उत्तर-पश्चिम की ओर जाओ, और सीधे चलते रहो जब तक तुम्हें दो पर्वत आपस में टकराते हुए और दद्दरा की ध्वनि करते हुए दिखाई न दें: यह संकेत होगा कि तुम्हें वहाँ एक नगर बसाना है और उसमें निवास करना है: और उसका नाम दद्दरापुरा होगा।" सभी पाँचों राजकुमार गए, और संकेतों का अनुसरण करते हुए वहाँ नगर बसाए और उनमें निवास किया।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "तो, भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने झूठ बोला है और धरती में समा गया है," और फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय चेति का राजा देवदत्त था, और ब्राह्मण कपिल मैं ही था।"

फुटनोट:

(1) वर्षों में, 1 के बाद 140 अंक।

(2) पहले युग में झूठ एक नई बात थी।

(3)दांतों, सूंड और चार पैरों के साथ।

(4) पंच-चक्कम, "पांच पहिये।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **इंद्रिय-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-423-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 423
इंद्रिय जातक

“जो इच्छा के कारण,” इत्यादि। गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए यह कथा सुनाई, जो पूर्वज पत्नी द्वारा प्रलोभन दिए जाने से संबंधित है। कथा यह है कि श्रावस्ती नगर के एक अच्छे परिवार के युवक ने गुरुजी का उपदेश सुना और गृहस्थ जीवन को पूर्णतः पवित्र और शुद्ध मानना असंभव समझकर, उन्होंने गुरुजी के असाधारण उपदेशों के अधीन संन्यासी बनने और दुःख का अंत करने का निश्चय किया। अतः उन्होंने अपना घर और संपत्ति अपनी पत्नी और बच्चों को सौंप दी और गुरुजी से दीक्षा देने का अनुरोध किया। गुरुजी ने दीक्षा दे दी। भिक्षा मांगने के दौरान वे अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों में कनिष्ठ थे और भिक्षुओं की संख्या अधिक थी, इसलिए उन्हें न तो गृहस्थों के घरों में और न ही भोजन कक्ष में बैठने के लिए कोई कुर्सी मिली, बल्कि नौसिखियों के अंत में केवल एक स्टूल या बेंच मिली। उनका भोजन जल्दी से करछुल में उछाला जाता था, उन्हें चावल के टूटे हुए टुकड़ों से बना दलिया, बासी या सड़ा हुआ ठोस भोजन, या सूखे और जले हुए अंकुरित अनाज मिलते थे; और यह उनके जीवनयापन के लिए पर्याप्त नहीं था। वह अपने साथ जो कुछ लाया था, उसे अपनी पत्नी के पास ले गया। पत्नी ने उसका कटोरा लिया, उसे प्रणाम किया, कटोरा खाली किया और बदले में उसे अच्छी तरह पका हुआ दलिया, चावल, चटनी और करी दी। भिक्षु इन स्वादों से इतना मोहित हो गया कि वह अपनी पत्नी को नहीं छोड़ सका। पत्नी ने सोचा कि वह उसके प्रेम की परीक्षा लेगी। एक दिन उसने एक ग्रामीण को सफेद मिट्टी से स्नान कराया और अपने घर में उसके कुछ अन्य लोगों के साथ, जिन्हें उसने बुलवाया था, ठहराया। उसने उन्हें खाने-पीने को दिया। वे सब बैठकर खाने का आनंद ले रहे थे। घर के दरवाजे पर उसने कुछ बैलों को पहियों से बांधकर एक गाड़ी तैयार रखी थी। वह खुद पीछे के कमरे में केक पका रही थी। उसका पति आया और दरवाजे पर खड़ा हो गया। उसे देखकर एक बूढ़े नौकर ने उसकी मालकिन से कहा कि दरवाजे पर एक बुजुर्ग भिक्षु हैं। "उन्हें प्रणाम करो और जाने के लिए कहो।" लेकिन बार-बार ऐसा करने के बावजूद, उसने देखा कि पुजारी वहीं खड़ा है और उसने अपनी मालकिन को बताया। मालकिन आई और पर्दा उठाकर देखा तो वह चिल्लाई, "यह मेरे बेटों के पिता हैं।" वह बाहर आईं और उन्हें प्रणाम किया; उनका कटोरा लेकर उन्हें अंदर बुलाया और भोजन कराया; भोजन करने के बाद उन्होंने फिर प्रणाम किया और कहा, "महोदय, अब आप संत बन गए हैं; हम इतने समय से इसी घर में रह रहे हैं; लेकिन स्वामी के बिना गृहस्थ जीवन संभव नहीं है, इसलिए हम दूसरा घर लेंगे और दूर देश में चले जाएंगे; अपने अच्छे कार्यों में तत्पर रहें, और यदि मैं कोई गलती कर रही हूँ तो मुझे क्षमा कर दें।"

कुछ समय के लिए उनके पति का हृदय मानो टूट गया। फिर उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता: मत जाओ, मैं अपने सांसारिक जीवन में लौट जाऊंगा; फलां स्थान पर एक गृहस्थ का वस्त्र भेज दो, मैं अपना कटोरा और वस्त्र त्याग कर तुम्हारे पास लौट आऊंगा।" वह मान गईं। भिक्षु अपने मठ में गए, और अपने शिक्षकों और प्रशिक्षकों को अपना कटोरा और वस्त्र सौंपकर, उनके प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने समझाया कि वे अपनी पत्नी को नहीं छोड़ सकते और सांसारिक जीवन में लौट रहे हैं।उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें गुरु के पास ले जाया गया और बताया गया कि वे पथभ्रष्ट हो रहे हैं और सांसारिक जीवन में लौटना चाहते हैं। गुरु ने पूछा, "क्या यह कहानी सच है?" "जी हाँ, गुरुजी।" "कौन आपको पथभ्रष्ट कर रहा है?" "मेरी पत्नी।" "भाई (भिक्षु), वह स्त्री ही आपके लिए विपत्ति का कारण है: पहले भी उसी के कारण आप ध्यान की चारों अवस्थाओं से विमुख हो गए थे और बहुत दुखी हुए थे: फिर मेरे द्वारा आप अपने दुख से मुक्त हुए और ध्यान की खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया," और फिर उन्होंने पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म राजा के कुलपुजारी और उनकी ब्राह्मण पत्नी के पुत्र के रूप में हुआ। उनके जन्म के दिन पूरे शहर में शस्त्रों की गर्जना हुई, इसलिए उनका नाम युवा ज्योतिपाल रखा गया। बड़े होकर उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया और राजा को अपनी कुशलता दिखाई; परन्तु उन्होंने अपना पद त्याग दिया और किसी को बिना बताए गुप्त द्वार से निकलकर एक वन में प्रवेश कर सक्कदत्तिया नामक कवित्तक आश्रम में तपस्वी बन गए। उन्होंने ध्यान में पूर्णता प्राप्त की। वहाँ रहते हुए सैकड़ों ऋषि उनकी सेवा में रहते थे। उनके साथ एक विशाल मंडली रहती थी और उनके सात प्रमुख शिष्य थे। इनमें से ऋषि सालिसारा कवित्थक आश्रम छोड़कर सूरत्थ देश चले गए और सतोदिका नदी के किनारे हजारों ऋषियों के साथ रहने लगे। मेंडिसारा हजारों ऋषियों के साथ राजा पाजका के देश में लंबकुलक नगर के पास रहने लगे। पब्बटा हजारों ऋषियों के साथ एक वन क्षेत्र में रहने लगे। कालदेवला हजारों ऋषियों के साथ अवंती और दक्कन के एक पर्वतीय वन में रहने लगे। किसावच्छा राजा दंडकी के उद्यान में कुंभवती नगर के पास अकेले रहने लगे। तपस्वी अनुसिसा बोधिसत्व के सेवक थे और उनके साथ रहते थे। कालदेवला के छोटे भाई नारद मध्य क्षेत्र के अरंजारा पर्वतीय क्षेत्र में एक गुफा में अकेले रहने लगे। अब अरंजारा से कुछ ही दूरी पर एक बहुत घनी आबादी वाला नगर है। नगर में एक बड़ी नदी बहती है, जिसमें बहुत से लोग स्नान करते हैं। इसके किनारों पर कई सुंदर नर्तकियां और युवतियां पुरुषों को आकर्षित करती हुई बैठी रहती हैं। तपस्वी नारद ने उनमें से एक को देखा और उस पर मोहित होकर अपनी तपस्या त्याग दी और दुखी होकर, बिना भोजन के सात दिनों तक प्रेम के बंधन में लीन रहे। उनके भाई कालदेवल ने अंतर्दृष्टि से इसका कारण जान लिया और हवा में उड़ते हुए गुफा में आ गए। नारद ने उन्हें देखकर पूछा कि वे क्यों आए हैं। "मुझे पता था कि आप बीमार हैं और मैं आपकी देखभाल करने आया हूँ।" नारद ने झूठ बोलकर उन्हें यह कहकर विदा किया, "तुम बकवास, झूठ और व्यर्थ बातें कर रहे हो।" दूसरे ने उन्हें छोड़ने से इनकार कर दिया और सालिसारा, मेंडिसारा और पब्बतिसारा को ले आए। उन्होंने उन सभी को भी उसी तरह विदा किया। कालदेवल उनके गुरु सरभंग को लाने के लिए उड़कर गए और उन्हें ले आए। जब गुरु आए, तो उन्होंने देखा कि नारद इंद्रियों के वश में आ गए हैं और पूछा कि क्या ऐसा है। नारद यह सुनकर उठे और प्रणाम करके अपनी गलती स्वीकार की। गुरु ने कहा, "नारद, जो लोग इंद्रियों के वश में आ जाते हैं, वे इस जीवन में दुख में त्रस्त हो जाते हैं और अगले जन्म में नरक में जन्म लेते हैं।" और इस प्रकार उन्होंने पहला श्लोक कहा:-

जो इच्छाओं के वश में आकर इंद्रियों के प्रभाव का पालन करता है,
वह दोनों दुनिया खो देता है और अपना पूरा जीवन तड़प-तड़प में बिता देता है।
उनकी बात सुनकर नारद ने उत्तर दिया, "गुरुजी, इच्छाओं का अनुसरण करना ही सुख है; आप ऐसे सुख को दुख क्यों कहते हैं?" सरभंग ने कहा, "तो सुनिए," और दूसरा श्लोक बोला:-

सुख और दुख हमेशा एक दूसरे के पदचिन्हों पर चलते हैं:
आपने उनका परिवर्तन देखा है: सच्ची खुशी की तलाश करना।
नारद ने कहा, "गुरुजी, ऐसा दुख सहना कठिन है, मैं इसे सहन नहीं कर सकता।" उस महान प्राणी ने कहा, "नारद, जो दुख आता है उसे सहना ही पड़ता है," और तीसरा श्लोक बोला:-

जो संकटों से जूझते हुए कठिन समय में धीरज रखता है
उस अंतिम आनंद तक पहुँचने के लिए शक्ति आवश्यक है जहाँ हमारे सभी कष्ट समाप्त हो जाते हैं।
लेकिन नारद ने उत्तर दिया, "गुरुजी, प्रेम की इच्छा का सुख ही सबसे बड़ा सुख है: मैं इसे त्याग नहीं सकता।" उस महान सत्ता ने कहा, "सद्गुण को किसी भी कारण से नहीं त्यागना चाहिए," और चौथा श्लोक कहा:-

वासनाओं के प्रेम के लिए, लाभ की आशाओं के लिए, बड़े और छोटे दुखों के लिए,
अपने पवित्र अतीत को नष्ट मत करो, वरना तुम सद्गुणों से गिर जाओगे।

इस प्रकार सरभंगा द्वारा चार श्लोकों में धर्ममार्ग का दर्शन कराने के बाद, कालदेवला ने अपने छोटे भाई की सलाह पर पाँचवाँ श्लोक कहा:-

जानो (*1) सांसारिक जीवन कष्टदायी है, भोजन निःशुल्क देना चाहिए।
धन इकट्ठा करने में कोई आनंद नहीं, और उसे खर्च करने पर कोई दुःख नहीं।
छठा श्लोक गुरु द्वारा अपनी पूर्ण बुद्धि से देवल द्वारा नारद को दी गई सलाह के संबंध में कहा गया है:

अब तक ब्लैक (*2) देवाला ने सबसे बुद्धिमानी से बात कही:
"इंद्रियों के बंधन में बंधने वाले से बुरा कोई नहीं।"
तब सरभंग ने चेतावनी देते हुए कहा, "नारद, यह सुनो: जो पहले उचित कार्य नहीं करेगा, उसे उस युवक की तरह रोना और विलाप करना पड़ेगा जो जंगल में गया था," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले काशी नामक एक नगर में एक सुंदर, बलवान और हाथी के समान हष्ट-पुष्ट ब्राह्मण रहता था। उसके मन में विचार आया, "खेती करके, पत्नी-पुत्र करके, दान-पुण्य करके अपने माता-पिता का भरण-पोषण क्यों करूँ? मैं न तो किसी का भरण-पोषण करूँगा और न ही कोई पुण्य कर्म करूँगा; मैं वन में जाकर हिरण मारकर अपना भरण-पोषण करूँगा।" अतः वह पाँच प्रकार के शस्त्र लेकर हिमालय गया और अनेक हिरणों का शिकार करके उन्हें खाया। हिमालय क्षेत्र में उसे विधावा नदी के किनारे पर्वतों से घिरी एक विशाल घाटी मिली, और वहाँ वह प्रचंड कोयलों पर पकाए गए हिरणों के मांस को खाकर अपना जीवन व्यतीत करता था। उसने सोचा, "मैं सदा बलवान नहीं रहूँगा; जब मैं दुर्बल हो जाऊँगा तो वन में नहीं रह पाऊँगा: अब मैं अनेक प्रकार के जंगली पशुओं को इस घाटी में भगा दूँगा, इसे द्वार से बंद कर दूँगा, और फिर वन में भटके बिना ही अपनी इच्छा अनुसार उनका शिकार करके उन्हें खाऊँगा।" और उसने ऐसा ही किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वही हुआ और संसार के सारे कष्ट उस पर आ पड़े: उसने अपने हाथों और पैरों पर नियंत्रण खो दिया, वह इधर-उधर स्वतंत्र रूप से चल-फिर नहीं सकता था, उसे भोजन-पानी नहीं मिल रहा था, उसका शरीर सूख गया, वह मनुष्य का भूत बन गया, उसके शरीर पर झुर्रियाँ ऐसे पड़ गईं जैसे गर्मी के मौसम में धरती पर पड़ती हैं; बदसूरत और बेढंगा होकर वह बहुत दुखी हो गया। इसी प्रकार समय बीतने पर, सिवी नामक राजा को जंगल में कोयलों पर भुना हुआ मांस खाने की इच्छा हुई: इसलिए उसने अपना राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया और पाँच प्रकार के शस्त्रों के साथ जंगल में गया और उसने जिस हिरण का शिकार किया था, उसका मांस खाया: कुछ समय बाद वह उस स्थान पर पहुँचा और उस मनुष्य को देखा। भयभीत होते हुए भी उसने साहस जुटाकर पूछा कि वह कौन है। "हे प्रभु, मैं मनुष्य का भूत हूँ, अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ: आप कौन हैं?" "सिवी का राजा।" "आप यहाँ क्यों आए हैं?" "हिरण का मांस खाने।" उसने कहा, "महाराज, मैं उस उद्देश्य से यहाँ आया था इसलिए मनुष्य का भूत बन गया हूँ," और पूरी कहानी विस्तार से सुनाते हुए और राजा को अपनी बदकिस्मती का कारण बताते हुए, उसने शेष छंद कहे:-

महाराज, मुझे ऐसा लग रहा है मानो मैं प्रतिद्वंद्वियों के साथ भयंकर विवाद में उलझा हुआ हूँ।
श्रम, हस्तशिल्प में निपुणता, एक शांत घर, एक पत्नी,
सब कुछ मुझसे छिन गया है: मेरे कर्म इसी जीवन में फलदायी होते हैं।
मैं हजार बार पराजित हो चुका हूँ, मेरा कोई रिश्तेदार नहीं है और मुझे रहने की जगह से वंचित कर दिया गया है।
मैं धर्म के नियम से भटक गया हूँ, भूत की तरह मैं विमुख हो गया हूँ।
मेरी यह स्थिति इसलिए है क्योंकि मैंने आनंद के बजाय कष्ट उत्पन्न किया।
मैं मानो धधकती आग से घिरा हुआ हूँ, मुझे कोई खुशी नहीं है।
इसके साथ ही उसने कहा, "हे राजा, सुख की लालसा में मैंने दूसरों को दुख पहुँचाया और इस जीवन में भी मनुष्य का भूत बन गया हूँ: आप बुरे कर्म न करें, अपने नगर जाकर दान-पुण्य जैसे अच्छे कर्म करें।" राजा ने ऐसा ही किया और स्वर्ग की यात्रा पूरी की।

सरभंग द्वारा इस घटना का वर्णन सुनकर तपस्वी जागृत हो गया। वह व्याकुल हो गया और गुरु को प्रणाम करके उनसे क्षमा प्राप्त करने के बाद, विधिपूर्वक उसने अपनी खोई हुई ध्यान शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। सरभंग ने उसे वहाँ रहने की अनुमति देने से इनकार कर दिया और उसे अपने साथ अपने आश्रम ले गए।

पाठ के बाद, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के बाद, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया:- "उस समय नारद पथभ्रष्ट भाई थे, सालिसारा सारिपुत्र थे, मेंडिसारा कश्यप थे, पब्बत अनुरुद्ध थे, कालदेवल कच्चन थे, अनुसिस्सा आनंद थे, किसवच्छ मोग्गल्याना थे, और सरभंग मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) गृहस्थी की चिंताएँ अच्छी हैं, दान करना अच्छा है, धन बढ़ने पर घमंड नहीं करना चाहिए, न ही उसके क्षय होने पर शोक करना चाहिए।

(2) कालो और असितो दोनों का अर्थ काला है: यह व्यक्ति असिता है, बौद्ध जन्मकथा का शिमोन।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **आदित्त-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-424-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 424
आदित्य-जातक

“मनुष्य जो कुछ बचा सकता है,” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक अतुलनीय उपहार के विषय में यह कथा सुनाई थी। इस अतुलनीय उपहार का पूर्ण वर्णन महागोविन्दसुत्त की व्याख्या में मिलता है। जिस दिन यह उपहार दिया गया था, उसके अगले दिन सत्य सभा में लोग इसके विषय में चर्चा कर रहे थे, “महोदय, कोसल राजा ने परीक्षा के बाद पुण्य का उचित क्षेत्र पाया और बुद्ध की अध्यक्षता में सभा को यह महान उपहार दिया।” गुरु वहाँ आए और जब वे सब साथ बैठे थे, तो उन्हें उनकी चर्चा का विषय बताया गया: उन्होंने कहा, “भाइयों, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि राजा ने परीक्षा के बाद पुण्य के सर्वोच्च क्षेत्र को महान उपहार दिए हैं: प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुष भी परीक्षा के बाद ऐसे ही उपहार देते थे,” और इस प्रकार उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, भरत नाम का एक राजा रोरुवा राज्य में सोविरा राज्य में शासन करता था। वह दस राजगुणों का पालन करता था, लोकप्रियता के चार तत्वों से लोगों का दिल जीतता था, लोगों के लिए माता-पिता के समान था और गरीबों, तीर्थयात्रियों, भिखारियों, दूल्हों आदि को बड़े दान देता था। उसकी मुख्य रानी समुद्दविजय बुद्धिमान और ज्ञानी थी। एक दिन उसने अपने भिक्षागृह का अवलोकन किया और सोचा, "मेरा भिक्षा निकम्मे और लालची लोगों द्वारा हड़प लिया जाता है: मुझे यह अच्छा नहीं लगता: मैं उन गुणी पच्चेकबुद्धों को भिक्षा देना चाहता हूँ जो सर्वश्रेष्ठ दान के पात्र हैं: वे हिमालय क्षेत्र में रहते हैं: मेरे निमंत्रण पर उन्हें यहाँ कौन लाएगा और मैं इस कार्य के लिए किसे भेजूँ?" उसने रानी से कहा, "हे राजा, चिंता न करें: हम उपयुक्त वस्तुएँ देकर, अपने सद्गुणों और सत्यनिष्ठा के बल पर फूल भेजकर पच्चेकबुद्धों को आमंत्रित करेंगे, और जब वे आएँगे तो हम उन्हें सभी आवश्यक वस्तुओं सहित दान देंगे।" राजा मान गए। उन्होंने ढोल बजाकर घोषणा की कि नगर के सभी लोग नियमों का पालन करें; उन्होंने स्वयं अपने परिवार सहित पवित्र दिनों के सभी कर्तव्यों का निर्वाह किया और दान में बड़ी मात्रा में भेंट दी। उन्होंने चमेली के फूलों से भरा एक सोने का बक्सा मंगवाया, अपने महल से नीचे आए और राजमहल के प्रांगण में खड़े हो गए। वहाँ उन्होंने पाँचों स्पर्शों से जमीन पर प्रणाम किया, पूर्व दिशा की ओर प्रणाम किया और सात मुट्ठी फूल फेंकते हुए कहा, "पूर्व दिशा के संतों को मेरा प्रणाम: यदि हममें कोई पुण्य है, तो हम पर दया कीजिए और हमारी भिक्षा स्वीकार कीजिए।" पूर्व दिशा में कोई पच्चेकबुद्ध नहीं थे, इसलिए वे अगले दिन नहीं आए। दूसरे दिन उन्होंने दक्षिण दिशा को प्रणाम किया, लेकिन वहाँ से कोई नहीं आया। तीसरे दिन उन्होंने पश्चिम दिशा को प्रणाम किया, लेकिन वहाँ से भी कोई नहीं आया। चौथे दिन उन्होंने उत्तर दिशा में प्रणाम किया और प्रणाम करने के बाद सात मुट्ठी फूल फेंकते हुए कहा, "हिमालय के उत्तरी क्षेत्र में निवास करने वाले पच्चेकबुद्धों को हमारी भिक्षा प्राप्त हो।" फूल नन्दमूल गुफा में स्थित पाँच सौ पच्चेकबुद्धों पर गिरे। उन्होंने अंतर्दृष्टि से समझ लिया कि राजा ने उन्हें आमंत्रित किया है; इसलिए उन्होंने अपने सात साथियों को बुलाया और कहा, "महोदय, राजा आपको आमंत्रित करते हैं; उन पर कृपा कीजिए।" ये पच्चेकबुद्ध वायु से प्रकट हुए और राजा के द्वार पर उतरे। उन्हें देखकर राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उनका अभिवादन किया, उन्हें महल में बुलाया, उनका सम्मान किया और उन्हें उपहार दिए। भोजन के बाद उन्होंने उनसे अगले दिन के लिए भोजन माँगा और इसी तरह पाँचवें दिन तक छह दिनों तक उन्हें भोजन कराया। सातवें दिन उन्होंने सभी आवश्यक वस्तुओं से युक्त उपहार तैयार किया, सोने से जड़े पलंग और कुर्सियाँ लगाईं और सात पच्चेकबुद्धों के सामने तीन वस्त्रों के जोड़े और अन्य सभी पवित्र पुरुषों द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुएँ रखीं। राजा और रानी ने भोजन के बाद औपचारिक रूप से उन्हें ये वस्तुएँ भेंट कीं और आदरपूर्वक अभिवादन किया। धन्यवाद व्यक्त करने के लिए सभा के वरिष्ठ ने दो श्लोक कहे:-

जो कुछ भी मनुष्य अपनी आजीविका को नष्ट करने वाली ज्वालाओं से बचा सकता है,
जो कुछ भी उपभोग के लिए बचा है, वह अभी भी उसका अपना ही रहेगा।
दुनिया आग की लपटों में घिरी है, क्षय और मृत्यु आग को हवा दे रहे हैं;

दान देकर जितना हो सके बचत करें, दान करना वास्तव में बचत ही है।
इस प्रकार धन्यवाद व्यक्त करते हुए, बड़े ने राजा को सद्गुणों में लगनशील रहने की सलाह दी: फिर वह हवा में उड़ गया, महल की नुकीली छत को पार करते हुए सीधे नंदमूल गुफा में उतरा: उसके साथ उसे दी गई सभी आवश्यक वस्तुएँ भी उड़कर गुफा में पहुँच गईं: और राजा और रानी के शरीर आनंद से भर गए। उसके जाने के बाद, अन्य छह ने भी एक-एक श्लोक में धन्यवाद व्यक्त किया:

जो धर्मी पुरुषों को देता है,
पवित्र ऊर्जा से भरपूर,
यमराज (मृत्यु के देवता) की बाढ़ को पार करता है, और फिर
आकाश में रहकर जीविका कमाता है।
जैसे युद्ध करना दान है:
कुछ लोगों के भागने से पहले बहुत से लोग भाग सकते हैं:
थोड़ी सी श्रद्धापूर्वक दान करें:
इसके बाद आपको सुख मिलेगा।
समझदार दानदाता प्रभु को प्रसन्न करते हैं।
वे अपनी मेहनत को सार्थक रूप से व्यतीत करते हैं।
उनके उपहारों से भरपूर फल प्राप्त होते हैं।
उपजाऊ मिट्टी में बीज की तरह।
जो कभी भी अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करते,
जीवित प्राणियों के प्रति अन्याय का त्याग करना:
पुरुष उन्हें डरपोक, कमजोर कह सकते हैं:
क्योंकि भय ही उन्हें पवित्र रखता है।
कम कर्तव्यों के कारण, पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेने वाले मनुष्य को राजसी भाग्य प्राप्त होता है।
मध्यम दर्जे के कर्तव्यों से उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है, सर्वोच्च कर्तव्यों से उन्हें परम पवित्र अवस्था प्राप्त होती है। (*1)
दान करना वास्तव में पुण्य का काम है।
फिर भी, सही मार्ग पर चलने से अधिक प्रतिफल मिलता है:
सदियों पुराने और बीते युगों के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं।
इस प्रकार ज्ञानी लोग अपने विश्राम को प्राप्त कर लेते हैं।
इसलिए वे भी उन्हें दी गई आवश्यक वस्तुओं के साथ ही चले गए।

सातवें पच्चेकबुद्ध ने राजा को धन्यवाद देते हुए शाश्वत निर्वाण की प्रशंसा की और उन्हें सावधानीपूर्वक सलाह देकर उनके निवास स्थान पर चले गए, जैसा कि कहा गया है। राजा और रानी ने जीवन भर दान दिया और स्वर्ग के मार्ग पर पूर्णतः व्यतीत हुए।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "इसी प्रकार प्राचीन काल के बुद्धिमानों ने विवेकपूर्ण तरीके से दान दिए," और जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय पच्चेकबुद्ध निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, समुद्दविजय राहुल की माता थीं, और राजा भरत मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) बौद्ध ब्रह्मांड विज्ञान में उच्चतर स्वर्ग।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> आठान - **जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-425-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 425
अत्थाना-जातक

"गंगा को शांत करो," इत्यादि - गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में यह कथा सुनाई। गुरु ने उससे पूछा, "क्या यह कहानी सच है, भिक्षु, कि तुम पथभ्रष्ट हो रहे हो?" "जी, गुरुजी।" "कारण क्या है?" "इच्छाओं का प्रभाव।" "भिक्षु, स्त्री कृतघ्न, कपटी और अविश्वसनीय होती हैं: पुराने समय में बुद्धिमान पुरुष एक स्त्री को प्रतिदिन हजार टुकड़े देकर भी संतुष्ट नहीं कर पाते थे: और एक दिन जब उसे हजार टुकड़े नहीं मिले तो उन्होंने उसका गला पकड़कर उसे बाहर फेंकवा दिया: स्त्री इतनी कृतघ्न होती हैं: ऐसी समस्या के प्रभाव में मत पड़ो," और इस प्रकार उन्होंने एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे। उनके पुत्र, युवा ब्रह्मदत्त, और बनारस के एक धनी व्यापारी के पुत्र युवा महाधन, सहपाठी और खेलकूद के साथी थे, और एक ही गुरु के घर में शिक्षा प्राप्त करते थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद, राजकुमार राजा बने और व्यापारी का पुत्र उनके पास ही रहने लगा। बनारस में एक सुंदर और समृद्ध राजसी नर्तकी और मदिरा-संपन्न थीं। व्यापारी का पुत्र उन्हें प्रतिदिन एक हजार सिक्के देता था और उनके साथ निरंतर मदिरापान करता था। अपने पिता की मृत्यु के बाद, उन्होंने धनी व्यापारी का पदभार संभाला और उन्हें नहीं छोड़ा, बल्कि उन्हें प्रतिदिन एक हजार सिक्के देते रहे। वह दिन में तीन बार राजा से मिलने जाते थे। एक दिन वे शाम को राजा से मिलने गए। जब वे राजा से बात कर रहे थे, तभी सूर्य अस्त हो गया और अंधेरा हो गया। महल से निकलते समय उन्होंने सोचा, "घर जाकर वापस आने का समय नहीं है; मैं सीधे मदिरा-संपन्न के घर जाऊंगा।" इसलिए उन्होंने अपने सेवकों को विदा किया और अकेले ही उसके घर में प्रवेश किया। जब उसने उसे देखा, तो पूछा कि क्या वह हज़ार सिक्के लाया है। "प्रिय, मुझे आज बहुत देर हो गई थी; इसलिए मैं घर जाए बिना ही अपने सेवकों को भेजकर अकेला आ गया हूँ; लेकिन कल मैं तुम्हें दो हज़ार सिक्के दूँगा।" उसने सोचा, "अगर मैं उसे आज अंदर आने दूँगी, तो वह बाकी दिनों में खाली हाथ आएगा, और इस तरह मेरी सारी दौलत बर्बाद हो जाएगी: मैं उसे इस बार अंदर नहीं आने दूँगी।" इसलिए उसने कहा, "महोदय, मैं तो बस एक शाही नर्तकी और वेश्या हूँ: मैं हज़ार सिक्कों के बिना अपनी कृपा नहीं देती: आपको पूरी रकम लानी होगी।" "प्रिय, मैं कल दुगुनी रकम लाऊँगा," और इस तरह वह बार-बार उससे विनती करता रहा। शाही नर्तकी और वेश्या ने अपनी दासियों को आदेश दिया, "उस आदमी को वहाँ खड़े होकर मुझे देखने मत दो: उसकी गर्दन पकड़ो, उसे बाहर फेंक दो, और फिर दरवाज़ा बंद कर दो।" उन्होंने वैसा ही किया। उसने सोचा, “मैंने उस पर अस्सी करोड़ (10 मिलियन) रुपये खर्च कर दिए; फिर भी जिस दिन मैं खाली हाथ लौटा, उसने मेरा गला पकड़कर मुझे बाहर फेंक दिया: हे स्त्री जाति, कितनी दुष्ट, निर्लज्ज, कृतघ्न और धोखेबाज़ है!” वह स्त्री जाति के इन बुरे गुणों के बारे में सोचता रहा, यहाँ तक कि उसे घृणा और अरुचि हो गई और वह गृहस्थ जीवन से असंतुष्ट हो गया। “मैं गृहस्थ जीवन क्यों जीऊँ? मैं आज ही जाकर संन्यासी बन जाऊँगा,” उसने सोचा। अतः अपने घर वापस जाए बिना और राजा से दोबारा मिले बिना, वह शहर छोड़कर जंगल में चला गया। उसने गंगा तट पर एक आश्रम बनाया और वहाँ संन्यासी के रूप में निवास किया, ध्यान की पूर्णता प्राप्त की और जंगली जड़ों और फलों पर जीवन व्यतीत किया।

राजा को अपने मित्र की याद सताने लगी और उन्होंने उसे बुलाया। राजसी नर्तकी और वेश्या के आचरण की चर्चा पूरे शहर में फैल चुकी थी, इसलिए उन्होंने राजा को यह बात बताई और कहा, "हे राजा, लोग कहते हैं कि आपका मित्र शर्म के मारे घर नहीं लौटा, बल्कि जंगल में संन्यासी बन गया है।" राजा ने राजसी नर्तकी और वेश्या को बुलाया और पूछा कि क्या उनके मित्र के साथ किए गए व्यवहार की कहानी सच है। उसने स्वीकार किया, "दुष्ट स्त्री, जल्दी जाओ और मेरे मित्र को ले आओ: यदि तुम असफल रही, तो तुम्हारी जान चली जाएगी।" राजा के शब्दों से वह भयभीत हो गई; वह एक रथ पर सवार होकर अपने कई सेवकों के साथ शहर से निकल गई; उसने उसके निवास स्थान की खोज की और जब उसे इसके बारे में पता चला, तो वह वहाँ गई और प्रणाम करते हुए प्रार्थना की, "हे महाराज, मैंने अपनी अज्ञानता और कुकर्म में जो बुराई की है, उसे क्षमा कर दीजिए: मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगी।" राजा ने कहा, "ठीक है, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ; मैं तुमसे क्रोधित नहीं हूँ।" "यदि आप मुझे क्षमा कर दें, तो मेरे साथ रथ पर सवार हो जाइए: हम शहर चलेंगे, और जैसे ही हम उसमें प्रवेश करेंगे, मैं आपको अपने घर का सारा पैसा दे दूँगा।" जब उसने यह सुना, तो उसने उत्तर दिया, "महोदया, मैं अभी आपके साथ नहीं जा सकता: लेकिन जब इस दुनिया में असंभव सी कोई घटना घटित होगी, तब शायद मैं जाऊँगा;" और इस प्रकार उसने पहला श्लोक कहा:-

गंगा को कमल-तालाब की तरह शांत बना दो, कोयल मोती जैसी सफेद दिखाई दे।
सेबों को ताड़ के पेड़ों के फल देने लायक बनाओ: शायद तब ऐसा हो सके।
लेकिन उसने फिर कहा, "चलो; मैं जा रही हूँ।" उसने उत्तर दिया, "मैं जाऊँगा।" "कब?" "अमुक समय पर," उसने कहा और शेष छंद बोले:-

कछुए के बालों से बुना हुआ तिहरा कपड़ा आपको दिखाई देगा,
सर्दी से बचाव के लिए शायद यह उपयुक्त हो सकता है।
जब तुम मच्छर के दांतों से इतनी कुशलता से मीनार बनाते हो,

वह चीज जल्द ही हिलेगी या डगमगाएगी नहीं, शायद तब ऐसा हो सकता है।
जब आप खरगोश के सींगों से कुशलतापूर्वक सीढ़ी बनाते हैं,
शायद तब ऐसा हो सकता है कि ये सीढ़ियाँ स्वर्ग की ऊँचाई तक ले जाएँ।
जब चूहे उन सीढ़ियों पर चढ़कर चाँद को खाने के लिए सहमत हो जाते हैं,
और राहु (ग्रहण) को आकाश से नीचे लाना शायद यही बात हो सकती है।
जब मक्खियों के झुंड भरे हुए और मुफ्त में उपलब्ध घड़ों में रखी शराब को चट कर जाते हैं,
और शायद वे जलते हुए अंगारों में अपना घर बना लें।
जब गधों के होंठ पके हुए लाल हो जाते हैं और उनके चेहरे देखने में सुंदर हो जाते हैं,
और शायद वे गाने और नाचने में अपनी कुशलता दिखा सकें।
जब कौवे और उल्लू गुप्त रूप से बात करने के लिए मिलेंगे,
और वे एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, प्रेमियों की तरह, शायद यही बात हो सकती है।
जब वन वृक्षों की कोमल पत्तियों से बने धूप से बचाव के लिए छाते लगाए जाते हैं,
तेज बारिश के सामने शायद ये मजबूत हों।
जब गौरैया हिमालय की संपूर्ण भव्यता को निहारती हैं,
और शायद वे इसे अपनी छोटी चोंचों में लेकर चलते हों।
और जब एक लड़का प्रकाश को, उसकी सारी बहादुरी के साथ, धारण कर सकता है,
यह शायद दूर-दराज के समुद्रों के लिए पूरी तरह से सुसज्जित जहाज हो सकता है।
अत: उस महान सत्ता ने असंभव (अत्थाना) स्थिति को हल करने के लिए ये ग्यारह श्लोक कहे। उनकी बात सुनकर राजसी नर्तकी और मदिरा कन्या क्षमा प्राप्त कर ली और बनारस लौट गई। उसने राजा को सारी बात बताई और अपने जीवन की भीख मांगी, जिसे स्वीकार कर लिया गया।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "इसलिए, भिक्षुओं, स्त्रियाँ कृतघ्न और कपटी होती हैं"; फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के बाद, पथभ्रष्ट भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हुए: "उस समय राजा आनंद थे, और तपस्वी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दिपि-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-426-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 426
दीप-जातक

“तुम्हारा हाल कैसा है?” इत्यादि—गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक बकरी के बारे में यह कहानी सुनाई थी। एक समय, वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना पहाड़ियों से घिरे एक पहाड़ी बाड़े में एक दरवाजे वाले छोटे से कमरे में रहते थे। उनका ढका हुआ रास्ता दरवाजे के पास ही था। कुछ बकरी चराने वालों ने सोचा कि यह बाड़ा उनकी बकरियों के लिए अच्छा रहेगा, इसलिए वे उन्हें वहाँ ले आए और अपनी मर्जी से वहाँ रहने लगे। एक दिन वे शाम को आए, सारी बकरियों को ले गए और चले गए: लेकिन एक बकरी बहुत दूर भटक गई थी, और बकरियों को जाते हुए न देखकर वह पीछे रह गई। बाद में, जब वह जा रही थी, तो एक तेंदुआ ने उसे देखा और उसे खाने के इरादे से बाड़े के दरवाजे पर खड़ा हो गया। उसने चारों ओर देखा और तेंदुआ को देखा। उसने सोचा, “वह मुझे मारने और खाने के लिए यहाँ है; अगर मैं मुड़कर भागी, तो मेरी जान चली जाएगी; मुझे बहादुरी दिखानी होगी,” और इसलिए उसने अपने सींग हिलाए और पूरी ताकत से उस पर झपट्टा मारा। वह उसकी पकड़ से बच निकली, हालाँकि वह उसे पकड़ने के डर से काँप रहा था: फिर पूरी गति से दौड़ते हुए वह अन्य बकरियों के साथ आ गई। वरिष्ठ भिक्षु ने सभी जानवरों के व्यवहार को देखा: अगले दिन वह तथागत (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "हे प्रभु, इस बकरी ने अपनी चतुराई और सूझबूझ से एक अद्भुत कारनामा किया और तेंदुआ से बच निकली।" गुरु ने उत्तर दिया, "मोग्गल्याना, तेंदुआ इस बार उसे पकड़ने में असफल रहा, लेकिन इससे पहले उसने उसे मार डाला था, हालाँकि वह चिल्लाई थी, और उसे खा गया था।" फिर मोग्गल्याना के अनुरोध पर, उन्होंने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, मगध राज्य के एक गाँव में एक समृद्ध परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। बड़े होकर उन्होंने इच्छाओं का त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया और ध्यान की पूर्णता प्राप्त की। हिमालय में दीर्घकाल बिताने के बाद वे नमक और सिरका लेने राजगृह नगर आए और पर्वतीय क्षेत्र में पत्तों से बनी एक कुटिया में रहने लगे। जैसा कि आरंभिक कथा में बताया गया है, चरवाहे अपनी बकरियों को वहाँ ले गए थे; ठीक उसी प्रकार, एक दिन जब एक अकेली बकरी बाकियों से देर से बाहर जा रही थी, तो एक तेंदुआ उसे खाने की योजना बनाकर द्वार पर घात लगाए बैठा था। जब उसने उसे देखा, तो उसने सोचा, "मेरा जीवन समाप्त हो गया है: किसी भी तरह मुझे उससे मधुर और दयालुतापूर्ण बातें करनी होंगी, ताकि उसका हृदय नरम हो जाए और मैं अपना जीवन बचा सकूँ।" कुछ दूरी से उससे मैत्रीपूर्ण बातचीत शुरू करते हुए, उसने पहला श्लोक कहा:-

चाचा जी, आपका हाल कैसा है? और क्या आप ठीक हैं?
मेरी मां ने आपको शुभकामनाएं भेजी हैं: और मैं आपका सच्चा दोस्त हूं।
उसकी बात सुनकर पैंथर ने सोचा, "यह औरत मुझे 'चाचा' कहकर मेरा ध्यान भटकाएगी; उसे नहीं पता कि मैं कितना कठोर हूँ;" और इस तरह उसने दूसरा छंद बोला:-

हे बकरी, तुमने मेरी पूंछ पर पैर रख दिया और मुझे चोट पहुँचाई:
और आपको लगता है कि "हार मान ली" कहकर आप बच निकलेंगे।
जब उसने उसकी बात सुनी, तो उसने कहा, "हे चाचा, इस तरह बात मत करो," और तीसरा छंद बोला:-

जब मैं आया था तो मैंने आपका सामना किया था, महोदय, अब आप बैठते समय मेरा सामना करें:
तुम्हारी पूंछ पूरी तरह से तुम्हारे पीछे है: मैं उस पर कैसे चल सकता हूँ?
उसने उत्तर दिया, "क्या कहती हो, बकरी? क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ मेरी पूंछ न हो?" और इस प्रकार उसने चौथा श्लोक बोला:-

समुद्रों और पहाड़ों से घिरे चार विशाल महाद्वीपों तक फैला हुआ,
मेरी पूंछ लंबी है: इतनी लंबी पूंछ के सहारे चलना भला कोई कैसे असफल हो सकता है?
जब बकरी ने यह सुना, तो उसने सोचा, "यह दुष्ट मीठे शब्दों से आकर्षित नहीं होता: मैं इसे शत्रु की तरह जवाब दूंगी," और इस प्रकार उसने पाँचवाँ श्लोक बोला:-

मुझे पता है कि तुम्हारे खलनायक की पूंछ लंबी है, क्योंकि मुझे पहले ही अच्छी तरह से चेतावनी मिल गई थी:
मेरे माता-पिता और भाइयों ने मुझे ऐसा बताया था, लेकिन मैं हवा में उड़ गया।
फिर उसने कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम हवा के रास्ते आए हो: लेकिन तुम्हारे आने के तरीके ने मेरा भोजन खराब कर दिया," और इस प्रकार उसने छठा श्लोक कहा:-

हे बकरी जी, तुम्हें इतनी ऊँचाई पर उड़ते हुए देखना, हवा में उड़ते हुए देखना,
तुमने हिरणों के झुंड को डरा दिया, और इस तरह मेरा खाना तुम्हारे कारण खराब हो गया।
यह सुनकर, मृत्यु के भय से बकरी के पास कोई और बहाना नहीं बचा और वह चिल्लाई, "चाचा जी, मुझ पर इतनी क्रूरता मत कीजिए; मेरी जान बख्श दीजिए।" लेकिन उसके चिल्लाने के बावजूद, दूसरे ने उसे कंधे से पकड़कर मार डाला और खा लिया।

इस प्रकार बकरी ने दया की भीख मांगी, लेकिन खून से ही संतुष्टि मिलनी चाहिए।
वह दरिंदा जो उसका गला जकड़ लेता है; वह दुष्ट कोई दया नहीं दिखाएगा।
दुष्ट व्यक्ति न तो आचरण प्रदर्शित करेगा, न ही सत्य और न ही शिष्टाचार;
वह अच्छाई से नफरत करता है: उससे मुकाबला करने का सबसे अच्छा तरीका खुले मैदान में लड़ाई करना है।
ये दो श्लोक 'पूर्ण ज्ञान' से प्रेरित हैं।

एक पवित्र तपस्वी ने उन दोनों जानवरों का पूरा मामला देखा।

इस पाठ के बाद, गुरु ने जन्म की पहचान बताई: "उस समय बकरी और तेंदुआ आज के बकरी और तेंदुआ थे, पवित्र तपस्वी मैं स्वयं था।"

पुस्तक 9. नवनीपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गिज्जा-जातक3**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-427-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 427
गिज्जा-जातक(*1)

"खुरदुरे लट्ठों से निर्मित;" इत्यादि--यह कहानी गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में एक अवज्ञाकारी भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि वे कुलीन कुल में जन्मे थे, और यद्यपि उन्हें मोक्ष (निर्वाण) की शिक्षा दी गई थी, फिर भी उनके शुभचिंतकों, गुरुओं, शिक्षकों और सहपाठियों ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया: "इस प्रकार आगे बढ़ो और इस प्रकार पीछे हटो; इस प्रकार वस्तुओं को देखो या उनसे दूर हटो; इस प्रकार भुजा फैलाओ या पीछे खींचो; इस प्रकार भीतरी और बाहरी वस्त्र धारण करो; इस प्रकार प्याला पकड़ो, और जब जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त भोजन प्राप्त हो जाए, आत्म-परीक्षण के बाद, इस प्रकार उसे खाओ, इंद्रियों पर नियंत्रण रखते हुए; भोजन करते समय संयम बरतो और सतर्कता बरतो; मठ में आने-जाने वाले भिक्षुओं के प्रति अमुक-अमुक कर्तव्यों को पहचानो; ये चौदह (*2) भिक्षुओं के कर्तव्य हैं, और अस्सी महान कर्तव्य हैं जिनका विधिवत पालन किया जाना चाहिए; ये तेरह धूत अभ्यास हैं; इन सभी का सावधानीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए।" फिर भी वह अवज्ञाकारी और अधीर था, और उसने आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं किया, बल्कि उनकी बात सुनने से इनकार कर दिया और कहा, "मुझे आपमें कोई दोष नहीं है। आप मुझसे इस प्रकार क्यों बात करते हैं? मैं स्वयं जान लूंगा कि मेरे लिए क्या अच्छा है और क्या नहीं।" तब भिक्षुओं ने उसकी अवज्ञा के बारे में सुनकर सत्य के हॉल में बैठकर उसकी कमियों का बखान किया। गुरु आए और उनसे पूछा कि वे किस बारे में चर्चा कर रहे हैं, और भिक्षु को बुलवाकर कहा, "क्या यह सच है, भाई, कि तुम अवज्ञाकारी हो?" जब उसने स्वीकार किया, तो गुरु ने कहा, "भाई, इतनी उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी, जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाती है, तुम अपने शुभचिंतकों की बात क्यों नहीं सुनते? पहले भी तुमने ज्ञानियों की बात नहीं मानी थी, और वेरम्बा वायु द्वारा चूर-चूर हो गए थे।" और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व ने गिद्ध पर्वत पर एक युवा गिद्ध के रूप में जन्म लिया। उनका पुत्र सुपत्त, जो गिद्धों का राजा था, बहुत बलवान था और उसके साथ हजारों गिद्धों का समूह था। वह अपने माता-पिता पक्षियों का भोजन करता था। अपनी शक्ति के कारण वह बहुत दूर तक उड़ता था। इसलिए उसके पिता ने उसे सलाह दी और कहा, "पुत्र, तुम इतनी दूरी से आगे मत जाना।" उसने कहा, "ठीक है," लेकिन एक दिन जब बारिश हुई, तो वह अन्य गिद्धों के साथ उड़ गया और बाकियों को पीछे छोड़कर निर्धारित सीमा से आगे निकल गया। वह वेरम्बा वायु के प्रभाव में आ गया और चूर-चूर हो गया।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से इस घटना की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित श्लोक कहे:

खुरदुरे लट्ठों से बना एक प्राचीन मार्ग ऊपर की ओर जाता था।
बेहद ऊँचाई पर, जहाँ एक युवा गिद्ध भोजन कर रहा था
माता-पिता पक्षी। पंखों से हृष्ट-पुष्ट और मजबूत।
वह अक्सर उनके लिए सांपों की चर्बी लाया करता था;
और जब उसके पिता ने उसे ऊँची उड़ान भरते देखा
और दूर खेतों में जाकर वह इस प्रकार पुकारता था,
"मेरे बेटे, जब तुम अपने निगरानी कक्ष से स्कैन कर सको।"
पृथ्वी का गोलाकार भाग महासागरों से घिरा हुआ है।
आगे मत जाओ, सीधे वापस लौट आओ, मैं अनुरोध करता हूँ।"
तब पक्षियों का यह राजा अपनी राह पर तेजी से आगे बढ़ेगा,
और पृथ्वी पर झुककर, भेदक दृष्टि से
उसने जंगल और पर्वत की ऊँचाई से नीचे का दृश्य देखा:
और पृथ्वी, जैसा कि उसके पिता ने वर्णन किया था, प्रकट होगी।

चारों ओर से घिरे समुद्र के बीच एक गोलाकार गोला।
लेकिन जब वह इन सीमाओं को पार कर चुका था,
चाहे वह कितना भी शक्तिशाली पक्षी क्यों न हो, एक प्रचंड विस्फोट।
उसे असमय मृत्यु के मुंह में धकेल दिया।
तूफ़ानी हवा की प्रचंड साँसों का सामना करने में असमर्थ।
इस प्रकार पक्षी ने अवज्ञा करके यह सिद्ध कर दिया।
जो लोग उसके प्रेम पर निर्भर थे, उनके लिए घातक:
इसलिए बुढ़ापे का तिरस्कार करने वाले सभी लोग नष्ट हो जाएं।
ऋषि द्वारा दी गई चेतावनियों का उपहास करो।
जैसे ही युवा गिद्ध विजडम की आवाज ने चुनौती दी
और उसने अपने अभिमान को सीमित करने के लिए निर्धारित सीमाओं का तिरस्कार किया।
"अतः, भाई, इस गिद्ध के समान मत बनो, बल्कि अपने शुभचिंतकों से मदद मांगो।" गुरु की इस सलाह को सुनकर वह आज्ञाकारी हो गया।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म का कारण बताते हुए कहा: "उन दिनों का अवज्ञाकारी गिद्ध अब अवज्ञाकारी भिक्षु है। मूल गिद्ध मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 381 देखें

(2) इसे खंडकवत्तनी कहा जाता है क्योंकि यह विनय के खंडक विभाजन में निहित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोसंबी-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-428-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 428
कोसंबी-जातक

"जब भी भिक्षु समुदाय," इत्यादि — यह कहानी गुरु ने कोसंबी के पास स्थित घोषिता उद्यान में रहते हुए कोसंबी के कुछ झगड़ालू लोगों के बारे में सुनाई थी। इस कहानी की उत्पत्ति विनय ग्रंथ के कोसंबी संबंधी खंड (*1) में वर्णित है। इसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है: उस समय, कहा जाता है कि दो भिक्षु एक ही घर में रहते थे, एक विनय (नियमों) में पारंगत था और दूसरा सूत्रों (शिक्षाओं) में। एक दिन भिक्षु को शौचालय जाने की आवश्यकता हुई और वह अतिरिक्त पानी को एक पात्र में मुंह धोने के लिए छोड़कर बाहर चला गया। बाद में विनय में पारंगत भिक्षु अंदर गया और पानी देखकर बाहर आया और अपने साथी से पूछा कि क्या पानी वहीं छोड़ा था। उसने उत्तर दिया, "जी जी।" "क्या! क्या तुम नहीं जानते कि यह पाप है?" "नहीं, मुझे इसका ज्ञान नहीं था।" "अच्छा, भिक्षु, यह पाप है।" "तो मैं इसका प्रायश्चित करूँगा।" "परन्तु यदि तुमने अनजाने में और लापरवाही से ऐसा किया है, तो यह पाप नहीं है।" इस प्रकार वह ऐसा बन गया मानो पाप में भी पाप न देखता हो। विनय विद्वान ने अपने शिष्यों से कहा, "यह सूत्र विद्वान पाप में पड़कर भी अनभिज्ञ है।" दूसरे भिक्षु के शिष्यों को देखकर उन्होंने कहा, "तुम्हारा गुरु पाप में पड़कर भी उसकी पापमयता को नहीं पहचानता।" वे जाकर अपने गुरु को बताने लगे। गुरु ने कहा, "इस विनय विद्वान ने पहले कहा था कि यह पाप नहीं है, और अब कहता है कि यह पाप है: यह झूठा है।" वे जाकर दूसरों को बताने लगे, "तुम्हारा गुरु झूठा है।" इस प्रकार उन्होंने आपस में झगड़ा शुरू कर दिया। तब विनय विद्वान ने अवसर पाकर भिक्षु को उसके अपराध को नकारने के कारण बहिष्कृत करने की प्रक्रिया शुरू कर दी। तब से भिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने वाले गृहस्थ भी दो गुटों में बँट गए। जिन बहनों (नन) ने उनकी सलाह स्वीकार की, और संरक्षक देवताओं (देवदूतों), उनके मित्रों और घनिष्ठों और देवताओं, अंतरिक्ष में विश्राम करने वालों से लेकर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत के देवताओं तक, यहाँ तक कि सभी जो परिवर्तित नहीं हुए थे, ने दो दल बनाए, और कोलाहल उदात्त देवताओं (देवदूतों) के निवास तक पहुँच गया (*2)।

फिर एक भिक्षु तथागत (बुद्ध) के पास आए और उन्होंने बहिष्कार करने वाले दल का मत बताया, जिन्होंने कहा, "इस व्यक्ति का बहिष्कार विधिवत किया गया है," और बहिष्कार किए गए व्यक्ति के अनुयायियों का मत भी बताया, जिन्होंने कहा, "इसका बहिष्कार अवैध रूप से किया गया है," और उन लोगों के व्यवहार का भी उल्लेख किया जो बहिष्कार करने वाले दल द्वारा मना किए जाने के बावजूद भी तथागत के समर्थन में एकत्रित थे। भगवान बुद्ध ने कहा, "भाईचारे में फूट पड़ गई है, हाँ, विभाजन हो गया है," और वे उनके पास गए और बहिष्कार करने वालों को बहिष्कार से जुड़े कष्टों और विपक्ष को पाप छिपाने से होने वाले कष्टों के बारे में बताया, और फिर चले गए। फिर जब वे उसी स्थान पर, सीमा के भीतर, उपोसथ और इसी प्रकार की पूजा-अर्चना कर रहे थे और भोजन कक्ष और अन्य स्थानों पर झगड़ा कर रहे थे, तो उन्होंने यह नियम बनाया कि वे बारी-बारी से दोनों पक्षों में से एक-एक करके एक साथ बैठें। जब उसने सुना कि वे मठ में अभी भी झगड़ रहे हैं, तो वह वहाँ गया और बोला, "बस करो, भाइयों, अब झगड़ा बंद करो।" तब विपक्ष के एक व्यक्ति ने, भगवान बुद्ध को नाराज़ न करने की इच्छा से, कहा, "परमेश्वर बुद्ध को घर पर ही रहने दो। भगवान बुद्ध को शांतिपूर्वक रहने दो, इस जीवन में प्राप्त आनंद का अनुभव करने दो। हम इस झगड़े, कहा-सुनी, विवाद और कलह से अपनी बदनामी करेंगे।"

लेकिन गुरु ने उनसे कहा, "एक समय की बात है, हे भिक्षुओं, बनारस के काशी राज्य में ब्रह्मदत्त राजा था। उसने कोसल के राजा दिघाटी को उसके राज्य से बेदखल कर मार डाला, जब वह भेस बदलकर रह रहा था। जब राजकुमार दिघावु ने ब्रह्मदत्त का जीवन बख्श दिया, तो वे तब से घनिष्ठ मित्र बन गए। और चूंकि इन राजदंडधारी और तलवारधारी राजाओं का धैर्य और कोमलता ऐसी रही होगी, इसलिए हे भिक्षुओं, आपको यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि आप भी, इतनी अच्छी शिक्षा और अनुशासन के अनुसार संन्यासी जीवन अपनाकर, क्षमाशील और कोमल हृदय के हो सकते हैं।" और इस प्रकार उन्हें तीसरी बार समझाते हुए उन्होंने कहा, "बस करो, हे भिक्षुओं, अब झगड़ा बंद करो।" और जब उन्होंने देखा कि उनके कहने पर भी वे नहीं रुके, तो वे यह कहते हुए चले गए, "सचमुच, ये मूर्ख लोग भूत-प्रेत से ग्रसित लोगों की तरह हैं, इन्हें समझाना आसान नहीं है।" अगले दिन भिक्षा एकत्र करके लौटने पर उन्होंने अपने सुगंधित कक्ष में कुछ देर विश्राम किया, अपने कमरे को व्यवस्थित किया और फिर अपना कटोरा और वस्त्र लेकर हवा में खड़े होकर सभा के बीच में ये छंद कहे:

जब भी ब्रदरहुड दो भागों में बंट जाता है,
आम लोग जोर-जोर से चिल्लाकर अपना गुस्सा निकालते हैं:
हर कोई अपने आप को बुद्धिमान समझता है।
और वह अपने पड़ोसी को घृणा भरी निगाहों से देखता है।
भ्रमित आत्माएं, आत्मसम्मान से फूली हुई,
वे खुले मुँह से मूर्खतापूर्ण ढंग से ईश्वर की निंदा करते हैं;
और जैसे-जैसे वे वाणी के पूरे दायरे में भटकते हैं,
उन्हें नहीं पता कि किसका नेतृत्व स्वीकार करना है।
"इस (*3) आदमी ने मुझे गाली दी, जिसने मुझे मुक्का मारा,
एक तीसरे व्यक्ति ने बहुत पहले ही मुझ पर विजय प्राप्त कर मुझे लूट लिया था।"
इस प्रकार की भावना रखने वाले सभी लोग,
वे अपने गुस्से को शांत करने के लिए कभी इच्छुक नहीं होते।
"उसने मुझे अतीत के लिए गाली दी और मुझे सताया।"
उसने मुझे पराजित किया और मुझे पीड़ा पहुँचाई।
जो लोग ऐसे विचारों को स्वीकार करने से इनकार करते हैं,
उनके गुस्से को शांत करें और फिर से एक साथ रहें।
नफरत नहीं, बल्कि केवल प्रेम ही नफरत को समाप्त कर सकता है:
यह शांति का शाश्वत और धर्मपरायण मार्ग है।
कुछ लोग आत्मसंयम के धर्मी मार्ग को तुच्छ समझते हैं।
लेकिन जो लोग अपने झगड़ों को सुलझा लेते हैं, वे बुद्धिमान होते हैं।
यदि सभी पुरुष घातक संघर्ष में घावों से ग्रस्त हों,
लुटेरे और डाकू, जो मानव जीवन छीन लेते हैं।
नहीं, वे जो पूरे राज्य को लूटते हैं, शायद
अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ मित्रता रखने वाले ब्रदरन को क्या इससे सहमत नहीं होना चाहिए?
यदि आपको कोई बुद्धिमान और ईमानदार साथी मिल जाए,

एक परिचित आत्मा, जो आपके साथ रहने को इच्छुक है,
सभी खतरे टल जाने के बाद भी, तुम उसके साथ भटकना चाहोगे।
सारा दिन आनंदमय चिंतन में व्यतीत हुआ।
लेकिन यदि आप ऐसे मित्र से मिलने में असफल रहते हैं,
आपका जीवन एकांत में बिताना ही सबसे अच्छा था।
जैसे कोई राजकुमार सिंहासन त्याग देता है,
या फिर वह हाथी जो बिल्कुल अकेला घूमता है।
विकल्प के तौर पर एकांत जीवन अपनाएं।
मूर्खों की संगति से केवल संघर्ष ही होता है;
अपनी बेपरवाह मासूमियत में अपने रास्ते पर चलते रहो,
जंगल में भटकते हाथी की तरह।
जब गुरुजी ने इस प्रकार कहा, और इन भिक्षुओं को मनाने में असफल रहे, तो वे बालाकालोनकारगामा (नमक बनाने वाले बालाका का गाँव) गए और आदरणीय भगु को एकांतवास के लाभों के बारे में प्रवचन दिया। वहाँ से वे तीन कुलीन युवकों के घर गए और उन्हें सामंजस्य की मिठास में निहित आनंद के बारे में बताया। वहाँ से वे परिलय्यक वन की ओर चले गए और वहाँ तीन माह रहने के बाद, कोसंबी वापस नहीं लौटे, सीधे श्रावस्ती नगर चले गए। कोसंबी के गृहस्थों ने आपस में विचार-विमर्श किया और कहा, "निश्चित रूप से इन पूज्य कोसंबी भिक्षुओं ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है; इनके कारण चिंतित होकर भगवान बुद्ध चले गए हैं। हम न तो उन्हें प्रणाम करेंगे, न ही अन्य कोई आदर प्रकट करेंगे, और न ही उनके आने पर उन्हें दान देंगे। इसलिए वे या तो चले जाएँगे, या संसार में लौट जाएँगे, या भगवान बुद्ध को प्रसन्न करेंगे।" और उन्होंने ऐसा ही किया। और इस प्रकार के दंड से व्याकुल होकर ये भिक्षु (भाई) श्रावस्ती नगर गए और भगवान बुद्ध से क्षमा मांगी।

इस प्रकार गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "पिता महान राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) थे, माता महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) थीं, और राजकुमार दिघावु मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)महावग्ग, x. 1-10.

(2) इनमें सभी देवता (देवदूत) शामिल हैं, सिवाय उन देवताओं के जो चार उच्चतम स्वर्गों (अरूप-ब्रह्मलोक/निराकार-ऊपरी स्वर्ग) में हैं।

(3) धम्मपद, खंड 3-5. क्रमांक 371 भी देखें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महासुक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-429-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 429
महासुका-जातक

“जहाँ भी फलदायी वृक्ष हों,” इत्यादि — यह कथा जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक भिक्षु के विषय में सुनाई थी। कथा के अनुसार, वह कोसल देश के सीमावर्ती गाँव के पास एक जंगल में रहता था और गुरु से ध्यान की विधियाँ सीखता था। लोगों ने उसके लिए एक ऐसी जगह बनाई जहाँ लोग लगातार आते-जाते रहते थे, उसे दिन-रात रहने की सुविधा दी और उसकी सेवा की। बरसात का मौसम शुरू होने के ठीक पहले महीने में ही गाँव जल गया और लोगों के पास एक बीज तक नहीं बचा था और वे उसके भिक्षापात्र में स्वादिष्ट भोजन भी नहीं भर सके। यद्यपि वह एक सुखद स्थान पर रह रहा था, फिर भी वह भिक्षा के लिए इतना विवश था कि वह न तो मार्ग पर चल सका और न ही उसकी सफलता प्राप्त कर सका। इसलिए जब तीन महीने बाद वह गुरु से मिलने गया, तो गुरु ने स्नेहपूर्वक अभिवादन करने

के बाद आशा व्यक्त की कि भिक्षा के लिए विवश होने के बावजूद उसे रहने के लिए एक सुखद स्थान मिल गया होगा। भिक्षु ने उन्हें स्थिति के बारे में बताया। गुरु ने जब सुना कि उसका निवास स्थान सुखमय है, तो कहा, "भाई, यदि ऐसा है, तो एक तपस्वी को लालच का त्याग करके जो भी भोजन मिले, उसी से संतुष्ट रहना चाहिए और भिक्षु के सभी कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। पुराने समय के ऋषि जब संसार में पशु रूप में जन्मे, तो यद्यपि वे उस सड़े हुए वृक्ष की धूल पर ही जीवित रहे, जिसमें वे रहते थे, उन्होंने लालच का त्याग किया और जहाँ थे वहीं संतुष्ट रहे तथा प्रेम के मार्ग का अनुसरण किया। तो फिर तुम सुखमय निवास स्थान क्यों छोड़ रहे हो, क्योंकि तुम्हें जो भोजन मिल रहा है वह कम और मोटा है?" और उसके अनुरोध पर गुरु ने उसे अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले हिमालय पर्वतमाला में गंगा नदी के किनारे अंजीर के पेड़ों के एक उपवन में तोतों के कई झुंड रहते थे। वहाँ के तोतों के राजा ने, जब उसके वृक्ष का फल समाप्त हो गया, तो जो कुछ भी बचा था, चाहे वह टहनी हो, पत्ती हो, छाल हो या छिलका हो, सब खा लिया और गंगा का जल पिया। वह अत्यंत प्रसन्न और संतुष्ट होकर वहीं बैठा रहा। उसकी प्रसन्नता और संतुष्टि के कारण इंद्र का निवास हिल गया। इंद्र ने कारण जानने की कोशिश की, तोते को देखा और उसकी पुण्यता की परीक्षा लेने के लिए अपनी अलौकिक शक्ति से उस वृक्ष को सुखा दिया। वह वृक्ष केवल छेदों से भरा एक ठूंठ बनकर रह गया, जिस पर हवा के हर झोंके पड़ते थे और छेदों से धूल निकलती थी। तोते के राजा ने उस धूल को खाया और गंगा का जल पिया और कहीं और न जाकर अंजीर के ठूंठ के शीर्ष पर बैठा रहा, हवा और धूप की परवाह किए बिना।

सक्का (इंद्र) ने देखा कि तोता कितना संतुष्ट था, और उन्होंने कहा, "मित्रता के गुण के बारे में उसकी बातें सुनकर, मैं आकर उसे उसकी पसंद का वरदान दूंगा और अंजीर के वृक्ष पर दिव्य फल उत्पन्न करूंगा।" अतः उन्होंने एक राजसी हंस का रूप धारण किया और असुर अप्सरा के रूप में सूजा के साथ अंजीर के वृक्षों के उपवन में गए, और पास के एक वृक्ष की शाखा पर बैठकर तोते से बातचीत करने लगे तथा पहला श्लोक बोला:

जहां फलदार वृक्ष बहुतायत में हों,
भूखे पक्षियों का एक झुंड पाया गया:
लेकिन अगर सारे पेड़ सूख जाएं तो,
पक्षी तुरंत उड़ जाएंगे।
और इन शब्दों के बाद, तोते को वहाँ से भगाने के लिए, उसने दूसरा छंद बोला:

जल्दी करो, सर रेडबीक, यहाँ से चले जाओ;
तुम अकेले बैठकर सपने क्यों देखते हो?
हे वसंत ऋतु के पक्षी, कृपया मुझे बताओ
तुम इस सूखे ठूंठ से क्यों चिपके हुए हो?
तब तोते ने कहा, "हे हंस, कृतज्ञता की भावना से मैं इस पेड़ को नहीं छोड़ता," और उसने दो पंक्तियाँ दोहराईं:

जो बचपन से घनिष्ठ मित्र रहे हैं,
अच्छाई और सत्य के प्रति सचेत,
जीवन और मृत्यु में, सुख और दुख में
दोस्ती के दावे कभी हार नहीं मानते।
मुझे भी दयालु और अच्छा बनना अच्छा लगेगा।
मेरे मित्र ने लंबे समय तक उनका साथ दिया है;
मैं जीना चाहता हूँ, लेकिन मेरे पास जीने की इच्छा नहीं है।
इस पुराने वृक्ष से, भले ही वह मृत हो चुका हो, विदा लेना।
सक्का (इंद्र) ने उसकी बात सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की और उसकी प्रशंसा करते हुए उसे एक विकल्प देने की इच्छा व्यक्त की और दो श्लोक कहे:

मैं आपकी मित्रता और आपके कृतज्ञ प्रेम को जानता हूँ।
ये ऐसे गुण हैं जिन्हें बुद्धिमान लोग अवश्य ही पसंद करेंगे।
मैं आपको आपकी पसंद के अनुसार कोई भी विकल्प प्रदान करता हूँ;
तोते, कौन सा वरदान पाकर तुम्हारा दिल सबसे अधिक प्रसन्न होगा?
यह सुनकर, राजा तोते ने अपनी पसंद चुनकर सातवां छंद बोला:

हे हंस, यदि तुम मुझे वह सब कुछ दे दोगी जिसकी मुझे सबसे अधिक इच्छा है,
मुझे यह वरदान दीजिए कि जिस वृक्ष से मुझे प्रेम है, वह फिर से जीवित हो उठे।
इसे एक बार फिर अपनी पुरानी शक्ति के साथ अंकुरित होने दो,
ताजी मिठास इकट्ठा करो और अच्छे फल दो।
तब सक्का (इंद्र) ने वरदान देते हुए आठवां श्लोक कहा:

देखो! मित्र, एक फलदायी और उत्तम वृक्ष!
आपके रहने के स्थान के लिए बिल्कुल उपयुक्त।
इसे एक बार फिर अपनी पुरानी शक्ति के साथ अंकुरित होने दो,
ताजी मिठास इकट्ठा करो और अच्छे फल दो।
इन शब्दों के साथ सक्का (इंद्र) ने अपना वर्तमान स्वरूप त्याग दिया और अपनी तथा सुजा की अलौकिक शक्ति प्रकट करते हुए गंगा का जल हाथ में लेकर अंजीर के वृक्ष के ठूंठ पर छिड़क दिया। तुरंत ही वृक्ष शाखाओं, तनों और शहद जैसे मीठे फलों से लदा हुआ खड़ा हो गया और नंगे रत्न-पर्वत के समान एक मनमोहक दृश्य प्रस्तुत करने लगा। इसे देखकर तोते का राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और सक्का (इंद्र) की स्तुति करते हुए उसने नौवां श्लोक बोला:

सक्का (इंद्र) और सक्का (इंद्र) के सभी प्रिय लोगों को आशीर्वाद मिले।
आज मुझे यह सुंदर दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ!
सक्का (इंद्र) ने तोते को उसकी पसंद की चीज देने और अंजीर के पेड़ पर दिव्य फल उत्पन्न करने के बाद, सुजाता के साथ अपने निवास स्थान पर लौट आए।

इस कहानी के उदाहरण स्वरूप, पूर्ण ज्ञान से प्रेरित ये छंद अंत में जोड़े गए हैं:

जैसे ही तोते के राजा ने बुद्धिमानी से अपना चुनाव किया,
पेड़ पर एक बार फिर फल लग गए;
तब इंद्र अपनी रानी के साथ तेजी से उड़ गए।
जहां नंदन में देवता (देवदूत) आनंदित होते हैं।

गुरु ने अपना उपदेश समाप्त करते हुए कहा, "हे भिक्षु, प्राचीन ऋषि भले ही पशु रूप में जन्मे हों, वे भी संपत्ति के लालच से मुक्त थे। तो फिर तुम इतने उत्तम दीक्षा (धर्म) के अंतर्गत दीक्षित होकर लोभ के मार्ग पर क्यों चल रहे हो? यहीं निवास करो।" और उन्होंने उन्हें ध्यान का एक रूप बताया, जिससे उनके जन्म का पता चला। भिक्षु वापस गए और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से संतत्व प्राप्त किया। "उस समय इंद्र (सक्का) अनुरुद्ध थे, और तोता राजा मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुलसुका-जातक**
स्रोत : *एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-430-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 430
कुल्लासुक-जातक

"देखो! अनगिनत वृक्ष," इत्यादि - यह कथा जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने वेरंजा क्षेत्र (*1) के विषय में सुनाई थी। जब गुरु वेरंजा में वर्षा ऋतु व्यतीत करने के बाद श्रावस्ती नगर पहुँचे, तो सत्य सभा में भिक्षुओं ने चर्चा करते हुए कहा, "महोदय, एक तथागत (बुद्ध), जो कोमल हृदय वाले क्षत्रिय और बुद्ध थे, और अलौकिक शक्तियों से संपन्न थे, वेरंजा के एक ब्राह्मण के निमंत्रण पर उनके साथ तीन माह रहे। जब मार के प्रलोभन के कारण वे ब्राह्मण से एक दिन भी भिक्षा ग्रहण नहीं कर सके, तो उन्होंने सभी लोभ त्याग दिए और तीन माह तक एक ही स्थान पर रहकर जल और थोड़ी मात्रा में पिसी हुई जड़ों के आटे पर जीवन व्यतीत किया। तथागतों का कितना संतोषमय स्वभाव है!" जब गुरुजी आए और पूछताछ करने पर उन्हें उनकी चर्चा का विषय पता चला, तो उन्होंने कहा, "हे भाइयों, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि तथागत (बुद्ध) ने अब सभी वस्तुओं के प्रति लालसा का त्याग कर दिया है, क्योंकि पहले जब उन्होंने पशु

रूप धारण किया था तब भी उन्होंने वस्तुओं के प्रति लालसा का त्याग किया था।" और इस पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई। अब पूरी कहानी को ठीक उसी तरह विस्तार से सुनाया जाना है जैसे पिछली कहानी में सुनाया गया था।

देखो! यहाँ अनगिनत पेड़ हैं, सभी हरे-भरे और फलदार हैं!
हे तोते, तुम इस बेचारे सूखे पेड़ से क्यों चिपके रहते हो?
हमने कई वर्षों तक इसके स्वादिष्ट फलों का आनंद लिया है।
और भले ही अब इसके पास कुछ भी न हो, फिर भी इसे हमारी देखभाल की आवश्यकता है।
इस पेड़ पर न तो पत्ते आते हैं और न ही फल, अफसोस! यह पेड़ मर चुका है।
अपने साथी पक्षियों को दोष क्यों देना, कि वे सभी भाग गए?
वे इसे इसके फलों के लिए पसंद करते थे, और अब जब इसमें फल नहीं हैं,
बेचारे स्वार्थी मूर्ख! उनका प्यार और कृतज्ञता सब खत्म हो गया।
मैं आपकी कृतज्ञता, आपके सच्चे और निरंतर प्रेम को स्वीकार करता हूँ।
इस प्रकार के सद्गुण को बुद्धिमान लोग अवश्य ही सराहेंगे।
हे पक्षी, मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छा अनुसार जो कुछ भी चाहिए, वह सब कुछ प्रदान करता हूँ;
मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे बताइए, कौन सा वरदान आपके हृदय को सबसे अधिक प्रसन्न करेगा?
काश यह वृक्ष फिर से नए पत्ते और फल उगाए;
मुझे उतनी ही खुशी होगी जितनी उन्हें वह खजाना प्राप्त होगा।
फिर इंद्र (सक्का) के पास एक वृक्ष था जिस पर अमृत (देवताओं/देवदूतों का पेय) छिड़का हुआ था।
और ठंडी छाया देने वाली शाखाएँ उग आईं, जो पहले की तरह ही मनमोहक थीं।
सक्का (इंद्र) और सक्का (इंद्र) के सभी प्रिय लोगों को आशीर्वाद मिले।
आज मुझे यह आनंदमय दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।
इस प्रकार तोते की कृतज्ञतापूर्ण पसंद से वृक्ष फलदायी हो गया।
और नंदना के उपवनों में सक्क (इंद्र) और उनकी रानी आनन्द मनाते हैं।

अपने उपदेश के अंत में गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उन दिनों सक्का (इंद्र) अनुराधा थे, और तोते का राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)विनय, पर. i. 1-4 देखें.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हरिता-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-431-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 431
हरित-जातक

"मित्र हरिता," इत्यादि - यह कथा जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक असंतुष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई। एक सुंदर वस्त्रधारी स्त्री को देखकर वह भिक्षु असंतुष्ट हो गया और उसने अपने बाल और नाखून लंबे कर लिए तथा संसार में लौटने की इच्छा की। जब उसके गुरु और प्रशिक्षक उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध गुरु के पास लाए और गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह वास्तव में पथभ्रष्ट है, और यदि हाँ, तो क्यों, तो उसने कहा, "जी जी, यह सुंदर स्त्री को देखने के बाद उत्पन्न हुई वासना के कारण है।" गुरु ने कहा, “भाई, पाप सद्गुणों का नाश करता है, और साथ ही उन्हें नीरस बना देता है, और मनुष्य को नरक में पुनर्जन्म लेने का कारण बनता है; तो यह पाप तुम्हारा विनाश क्यों न करे? क्योंकि सिनेरू पर्वत पर आने वाला तूफान एक सूखे पत्ते को भी उड़ा ले जाने में संकोच नहीं करता। परन्तु इस पाप के कारण ज्ञान और बुद्धि के मार्ग पर चलने वाले और पंच शक्तियों एवं अष्टम सिद्धियों को प्राप्त कर चुके मनुष्य, यद्यपि वे महान और

पवित्र पुरुष थे, अपने विचारों को स्थिर न कर पाने के कारण रहस्यवादी ध्यान से विमुख हो गए।" और फिर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब एक गाँव में अस्सी करोड़ (10 मिलियन) धनवान ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनके सुनहरे रंग के कारण उन्हें हरित्तचकुमार (युवा स्वर्णचमड़ी) कहा जाता था। तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद, उन्होंने अपने खजाने का निरीक्षण किया और सोचा, "खजाना तो हमेशा रहता है, लेकिन उसे पैदा करने वाले नश्वर हो जाते हैं; मुझे भी मृत्यु के कारण कण-कण में विलीन होना है।" मृत्यु के भय से भयभीत होकर उन्होंने बड़े दान दिए और हिमालय में जाकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। सातवें दिन उन्होंने ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कीं। वहाँ वे दीर्घकाल तक जंगली फल और जड़ों का सेवन करते रहे और नमक और सिरका लाने के लिए पर्वत से नीचे उतरते हुए, वे समय के साथ बनारस पहुँचे। वहाँ वह राजमहल में रहने लगा, और अगले दिन भिक्षा माँगते हुए राजा के महल के द्वार पर पहुँचा। राजा उसे देखकर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे बुलवाया और सफेद छतरी की छाँव में राजमहल पर बैठाया, और उसे तरह-तरह के उत्तम भोजन परोसे। भिक्षा माँगने पर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और उससे पूछा, "आदरणीय महोदय, आप कहाँ जा रहे हैं?" भिक्षा ने कहा, "महाराज, हम बरसात के मौसम के लिए रहने की जगह ढूँढ़ रहे हैं।" भिक्षा ने कहा, "पूर्ण है आदरणीय महोदय," और सुबह का भोजन करने के बाद वह उसके साथ राजमहल गया, और उसके लिए दिन-रात के रहने के लिए कमरे बनवाए, और राजमहल के रखवाले को अपना सेवक नियुक्त करके उसे प्रणाम किया और चला गया। उस समय से वह महान व्यक्ति लगातार राजमहल में भोजन करता रहा और वहाँ बारह वर्ष तक रहा।

एक दिन राजा सीमा पर हुई अशांति को शांत करने गए और उन्होंने बोधिसत्व को रानी की देखरेख में सौंपते हुए कहा, "हमारे पुण्य क्षेत्र की उपेक्षा मत करना।" तब से रानी ने स्वयं अपने हाथों से उस महान सत्ता की सेवा की।

एक दिन उसने बोधिसत्व के लिए भोजन तैयार किया, और चूंकि बोधिसत्व को आने में देरी हो रही थी, इसलिए उसने सुगंधित जल से स्नान किया, महीन कपड़े का एक नरम वस्त्र पहना, और खिड़की की जाली खोलकर एक छोटे से पलंग पर लेट गई, और हवा को अपने शरीर पर बहने दिया। उसी दिन बाद में, बोधिसत्व ने एक बड़ा भीतरी और बाहरी वस्त्र धारण किया, अपना भिक्षापात्र लिया और हवा में चलते हुए खिड़की पर आए। जैसे ही रानी उनके वस्त्रों की सरसराहट से जल्दी उठी, उनका महीन वस्त्र उनसे गिर गया। एक असाधारण वस्तु ने बोधिसत्व की दृष्टि को स्तब्ध कर दिया। तब उनके हृदय में असंख्य युगों से बसा हुआ पापी भाव एक डिब्बे में लेटे हुए साँप की तरह उठ खड़ा हुआ, और उनके गहन ध्यान को भंग कर दिया। अपने विचारों को स्थिर न कर पाने के कारण वे गए और रानी का हाथ पकड़ लिया, और फिर उनके चारों ओर एक पर्दा डाल दिया गया। उनके साथ कुछ व्यभिचार करने के बाद, उन्होंने कुछ भोजन किया और उद्यान में लौट गए। और तब से प्रत्येक दिन वे इसी प्रकार व्यवहार करते रहे।

उसके दुराचार की चर्चा पूरे शहर में फैल गई। राजा के मंत्रियों ने उसे पत्र भेजकर कहा, "तपस्वी हरिता इस प्रकार व्यवहार कर रहा है।"

राजा ने सोचा, "वे हमें अलग करने की लालसा में ऐसा कह रहे हैं," और उन्हें इस पर विश्वास नहीं हुआ। सीमावर्ती क्षेत्र में शांति स्थापित करने के बाद वे बनारस लौट आए, और शहर का जुलूस निकालने के बाद वे रानी के पास गए और उनसे पूछा, "क्या यह सच है कि पवित्र तपस्वी हरित ने आपके साथ दुर्व्यवहार किया?" "हाँ, महाराज।" उन्हें रानी की बात पर भी विश्वास नहीं हुआ, और उन्होंने सोचा, "मैं स्वयं उस व्यक्ति से पूछूंगा," और पार्क में जाकर उन्होंने हरित को प्रणाम किया, और एक तरफ आदरपूर्वक बैठकर उन्होंने प्रश्न के रूप में पहला श्लोक कहा:

मित्र हरिता, मैंने अक्सर यह सुना है
आपके आदर के कारण ही पापमय जीवन का मार्ग प्रशस्त होता है;
मुझे विश्वास है कि इस रिपोर्ट में कोई सच्चाई नहीं है।
और क्या आप कर्म और विचार दोनों में निर्दोष हैं?
उन्होंने सोचा, "अगर मैं कहूँ कि मैं पाप नहीं कर रहा हूँ, तो यह राजा मुझ पर विश्वास कर लेगा, लेकिन इस संसार में सत्य बोलने के समान कोई दृढ़ आधार नहीं है। जो सत्य का त्याग करते हैं, वे बोधिवृक्ष (पीपल) के पवित्र स्थान में बैठे रहने पर भी बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर सकते। मुझे केवल सत्य बोलना ही चाहिए।" कुछ मामलों में एक बोधिसत्व जीवन का नाश कर सकता है, वह वस्तु ले सकता है जो उसे नहीं दी गई है, व्यभिचार कर सकता है, मादक पेय पी सकता है, लेकिन वह झूठ नहीं बोल सकता, जो छल से युक्त हो और वास्तविकता का उल्लंघन करता हो। इसलिए केवल सत्य बोलते हुए ही उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:

हे महाराज, जैसा आपने सुना है, वह बुरे रास्तों पर चल रहा है।

दुनिया की भ्रामक कलाओं में फंसकर मैंने गलती की।
यह सुनकर राजा ने तीसरा श्लोक बोला:

आत्म-प्रशंसा करने वाला अहंकार मनुष्य की सबसे गहरी बुद्धिमत्ता है जिसे दूर करना आवश्यक है।
उसके हृदय में उमड़ती हुई भावनाएँ।
तब हरिता ने उन्हें पाप की शक्ति के बारे में बताया और चौथा श्लोक बोला:

हे महाराज, इस संसार में चार प्रकार की वासनाएँ हैं।
जो अपनी शक्ति में सर्वोपरि हैं:
वासना, घृणा, अति और अज्ञानता इनके नाम हैं;
यहां ज्ञान किसी निश्चित आधार का दावा नहीं कर सकता।
यह सुनकर राजा ने पाँचवाँ श्लोक बोला:

पवित्रता और बुद्धि से परिपूर्ण
संत हरिता हमारे सम्मान के पात्र हैं।
तब हरिता ने छठा श्लोक बोला:

सुखद दुर्गुणों के साथ मिले हुए बुरे विचार,
ऋषि को संत बनने की ओर प्रेरित करना।
तब राजा ने उसे पापी वासनाओं से विमुख होने के लिए प्रोत्साहित करते हुए सातवाँ श्लोक कहा:

वह सुंदरता जो पवित्रतम हृदयों से चमकती थी
  यह नश्वर शरीर से उत्पन्न कामवासना से दूषित है;
इसे हटा दो, और तुम्हें आशीर्वाद प्राप्त होगा।
  और आपकी बुद्धिमत्ता का भरपूर प्रचार होगा।
तब बोधिसत्व ने अपने विचारों को एकाग्र करने की शक्ति पुनः प्राप्त कर ली, और पापी इच्छाओं के कष्ट को देखकर उन्होंने आठवां श्लोक कहा:

क्योंकि अंधाधुंध जुनून से कड़वा फल ही मिलता है,
मैंने वासना की हर वृद्धि को जड़ से काट डाला।
ऐसा कहकर उन्होंने राजा से अनुमति मांगी और उनकी सहमति प्राप्त करके वे अपनी कुटिया में प्रवेश कर गए। उन्होंने रहस्यमयी घेरे पर अपनी दृष्टि टिकाकर समाधि में प्रवेश किया और कुटिया से बाहर आकर हवा में पालथी मारकर बैठे हुए राजा को सच्चा उपदेश दिया और कहा, "महाराज, मैंने जनता के बीच इस कारण निंदा झेली है कि मैं ऐसी जगह पर रह रहा हूँ जहाँ मुझे नहीं रहना चाहिए। परन्तु आप सावधान रहें। अब मैं किसी ऐसे वन में लौटूंगा जो स्त्रीत्व के किसी भी कलंक से मुक्त हो।" राजा के आँसुओं और विलाप के बीच वे हिमालय लौट गए और रहस्यमयी ध्यान से विचलित हुए बिना ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक में प्रवेश कर गए।

पूरी कहानी जानने वाले गुरु ने कहा:

इस प्रकार हरिता ने सत्य और न्याय के लिए दृढ़तापूर्वक संघर्ष किया।
और कामवासना का त्याग करके ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) ने संसार का आरोहण किया।

और अपनी पूर्ण बुद्धि से इस श्लोक का उच्चारण करते हुए उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया:- सत्यों के समापन पर सांसारिक मन वाले भिक्षु ने संतत्व प्राप्त किया:- "उस समय राजा आनंद थे, हरित मैं ही था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पादकुसलमानव-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

जातक क्रमांक 432
पदकुसलामनव-जातक

"हे पाताल, गंगा की कसम," इत्यादि - यह कथा जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक बालक के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि वह श्रावस्ती नगर के एक गृहस्थ का पुत्र था, मात्र सात वर्ष का, और पदचिह्नों को पहचानने में निपुण था। अब उसके पिता ने उसकी परीक्षा लेने के लिए उसे बिना बताए अपने एक मित्र के घर चले गए। बालक ने अपने पिता से पूछे बिना ही, उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए आकर उनके सामने खड़ा हो गया। तो एक दिन उसके पिता ने उससे पूछा, "जब मैं तुम्हें बिना बताए चला गया था, तो तुम्हें कैसे पता चला कि मैं कहाँ गया था?" बालक ने कहा, "मेरे प्रिय पिता, मैंने आपके पदचिह्नों को पहचान लिया। मैं इस मामले में निपुण हूँ।" तब उसके पिता ने उसकी परीक्षा लेने के लिए सुबह का भोजन करने के बाद अपने घर से बाहर निकले, और अपने पड़ोसी के घर गए, वहाँ से दूसरे घर गए, और फिर तीसरे घर से अपने घर लौट आए, और वहाँ से उत्तरी द्वार की ओर गए, और वहाँ से निकलकर शहर का दाएँ से बाएँ चक्कर लगाया। जेतवन मठ पहुँचकर उसने गुरु को प्रणाम किया और धार्मिक मार्ग सुनने के लिए बैठ गया। बालक ने पूछा कि उसके पिता कहाँ हैं, और जब उन्होंने कहा, "हमें नहीं पता," तो उसने अपने पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए, पड़ोस के घर से शुरू करके, उसी रास्ते से जेतवन मठ तक गया जिससे उसके पिता आए थे। गुरु को प्रणाम करने के बाद वह अपने पिता के समक्ष खड़ा हो गया, और जब उनके पिता ने उससे पूछा कि उसे कैसे पता चला कि वह यहाँ आया है, तो उसने कहा, "मैंने आपके पदचिह्न पहचान लिए और आपके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यहाँ आ गया।" गुरु ने पूछा, "शिष्य, तुम क्या कह रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "आदरणीय, यह बालक पदचिह्नों को पहचानने में निपुण है। उसकी परीक्षा लेने के लिए मैं इस प्रकार से यहाँ आया था। मुझे घर पर न पाकर, वह मेरे पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यहाँ पहुँच गया।" गुरु ने कहा, "ज़मीन पर पदचिह्नों को पहचानना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। प्राचीन ऋषि तो हवा में भी पदचिह्न पहचान लेते थे," और पूछे जाने पर उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में एक समय की बात है, उनकी रानी पत्नी पाप करने के कारण राजा के प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य हुईं। रानी ने शपथ लेकर कहा, "यदि मैंने आपके विरुद्ध पाप किया है, तो मैं घोड़े के मुख वाली यक्षिणी बन जाऊंगी।" उनकी मृत्यु के बाद, वे घोड़े के मुख वाली यक्षिणी बन गईं और एक पर्वत की तलहटी में स्थित विशाल वन में एक चट्टानी गुफा में रहने लगीं। वे पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले मार्ग पर आने-जाने वाले पुरुषों को पकड़कर खा जाती थीं। कहा जाता है कि वेसवना (*1) की तीन वर्ष सेवा करने के बाद, उन्हें तीस मील (4.23 किमी) लंबी और पाँच मील (4.23 किमी) चौड़ी एक निश्चित दूरी में लोगों को खाने की अनुमति मिली। एक दिन एक धनी, सुंदर और प्रभावशाली ब्राह्मण अपने एक बड़े दल के साथ उस मार्ग से गुजरा। यक्षिणी ने उसे देखते ही जोर से हंसते हुए उस पर आक्रमण कर दिया, और उसके सभी सेवक भाग गए। हवा की गति से उसने ब्राह्मण को पकड़कर अपनी पीठ पर लाद लिया और गुफा में प्रवेश करते ही, उस पुरुष के संपर्क में आने से, कामुक आवेश में आकर, उसे उससे स्नेह हो गया। उसने उसे खाने के बजाय अपना पति बना लिया और वे सौहार्दपूर्वक साथ रहने लगे। तब से यक्ष (राक्षस) जब भी पुरुषों को पकड़ती, उनके वस्त्र, चावल, तेल आदि भी ले लेती और उसे विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर स्वयं उनका मांस खा जाती। जब भी वह कहीं जाती, उसके भाग जाने के डर से, गुफा का मुँह एक बड़े पत्थर से बंद कर देती। जब वे इस प्रकार सौहार्दपूर्ण ढंग से साथ रह रहे थे, तभी ब्राह्मण के गर्भ से यक्ष (राक्षस) के गर्भ में बोधिसत्व का जन्म हुआ। दस महीने बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया और ब्राह्मण और अपने बच्चे के प्रति प्रेम से भर कर उसने उन दोनों का पालन-पोषण किया। समय आने पर जब लड़का बड़ा हो गया, तो उसने उसे भी उसके पिता के साथ गुफा में रख दिया और दरवाजा बंद कर दिया। एक दिन बोधिसत्व को जब पता चला कि उसकी माँ चली गई है, तो उसने पत्थर हटाकर अपने पिता को बाहर निकाल दिया। जब माँ ने लौटकर पूछा कि पत्थर किसने हटाया, तो उसने कहा, "मैंने हटाया, माँ: हम अंधेरे में नहीं बैठ सकते।" अपने बच्चे के प्रति प्रेम के कारण उसने एक शब्द भी नहीं कहा। एक दिन बोधिसत्व ने अपने पिता से पूछा, "प्रिय पिता, आपका मुख मेरी माँ के मुख से भिन्न है; इसका क्या कारण है?" "मेरे पुत्र, तुम्हारी माँ यक्ष (राक्षस) है और मनुष्य का मांस खाती है, लेकिन तुम और मैं मनुष्य हैं।" "यदि ऐसा है, तो हम यहाँ क्यों रहते हैं? चलो, हम मनुष्यों के निवास स्थान पर चलते हैं।" "मेरे प्रिय पुत्र, यदि हम भागने का प्रयास करेंगे, तो तुम्हारी माँ हम दोनों को मार डालेगी।" बोधिसत्व ने अपने पिता को आश्वस्त करते हुए कहा, "डरो मत, प्रिय पिता; मनुष्यों के निवास स्थान पर तुम्हारा लौटना मेरी जिम्मेदारी है।" अगले दिन जब उसकी माँ चली गई, तो वह अपने पिता को लेकर भाग गया। जब यक्ष (राक्षस) वापस लौटा और उन्हें न पाकर हैरान रह गया, तो वह हवा की गति से आगे बढ़ी और उन्हें पकड़ लिया और बोली, "हे ब्राह्मण,तुम क्यों भाग रहे हो? क्या तुम्हें यहाँ कुछ चाहिए?" "मेरी प्रिय," उसने कहा, "मुझ पर क्रोधित मत होइए। आपका पुत्र मुझे अपने साथ ले गया था।" और बिना कुछ और कहे, अपने बच्चे के प्रति प्रेम के कारण, उसने उन्हें सांत्वना दी और कुछ दिनों के पलायन के बाद उन्हें अपने निवास स्थान पर वापस ले आई। बोधिसत्व ने सोचा, "मेरी माता का कार्यक्षेत्र सीमित होना चाहिए। मान लीजिए कि मैं उनसे पूछूँ कि उनका अधिकार किस सीमा तक फैला हुआ है। तो मैं उस सीमा से परे जाकर बच निकलूँगा।" इसलिए एक दिन अपनी माता के पास आदरपूर्वक बैठे हुए उन्होंने कहा, "मेरी प्रिय, जो माता का होता है, वह बच्चों को

भी मिलता है; अब मुझे बताओ कि हमारी भूमि की सीमा क्या है?" उसने उसे सभी दिशाओं में सभी स्थलचिह्न, पर्वत और इसी प्रकार की अन्य चीजें बताईं, और अपने पुत्र को तीस लीग (x 4.23 किमी) लंबी और पाँच लीग (x 4.23 किमी) चौड़ी जगह की ओर इशारा करते हुए कहा, "इसे इतना ही समझो, मेरे पुत्र।" दो-तीन दिन बीतने के बाद, जब उसकी माता जंगल चली गई, तो उसने अपने पिता को अपने कंधे पर उठाया और अपनी माता के इशारे पर हवा की गति से दौड़ते हुए उस नदी के किनारे पहुँच गया जो सीमा थी। माता भी, जब लौटते समय उन्हें नहीं देखा, तो उनके पीछे-पीछे चली। बोधिसत्व अपने पिता को नदी के बीच में ले गया, और वह नदी के किनारे आकर खड़ी हो गई, और जब उसने देखा कि वे उसकी सीमा से बाहर निकल गए हैं, तो वह वहीं रुक गई और रोते हुए बोली, "मेरे प्यारे बच्चे, अपने पिता के साथ यहाँ आओ। मेरा क्या कसूर है? किस बात में तुम्हारे साथ सब ठीक नहीं चल रहा है?" "मेरे स्वामी, वापस आ जाइए।" इस प्रकार उसने अपने पुत्र और पति से विनती की। तब ब्राह्मण नदी पार कर गया। उसने अपने पुत्र से भी प्रार्थना की और कहा, "प्रिय पुत्र, ऐसा मत करो: वापस आ जाओ।" "माँ, हम मनुष्य हैं: आप यक्ष (राक्षस) हैं। हम आपके साथ सदा नहीं रह सकते।" "और क्या तुम वापस नहीं लौटोगे?" "नहीं, माँ।" "तो यदि तुम वापस नहीं लौटते—क्योंकि मनुष्यलोक में रहना कष्टदायी है, और जो कोई शिल्प नहीं जानते वे जी नहीं सकते—तो मैं पारस पत्थर की विद्या में निपुण हूँ: इसकी शक्ति से बारह वर्ष बाद भी कोई उन लोगों के पदचिन्हों पर चल सकता है जो चले गए हैं। यह तुम्हारे लिए जीविका का साधन सिद्ध होगा।" "मेरे बच्चे, यह अनमोल ताबीज लो।" और इतने गहरे दुख से व्याकुल होते हुए भी, अपने बच्चे के प्रेम से उसने उसे ताबीज दे दिया। बोधिसत्व नदी में खड़े-खड़े ही कछुए की तरह हाथ जोड़कर ताबीज लेकर अपनी माता को प्रणाम करते हुए रोते हुए बोले, "अलविदा, माता।" यक्ष (राक्षस) ने कहा, "यदि तुम वापस नहीं लौटे, मेरे पुत्र, तो मैं जीवित नहीं रह सकती," और उसने अपनी छाती पर हाथ मारा, और तुरंत अपने पुत्र के शोक में उसका हृदय टूट गया और वह वहीं गिरकर मर गई। बोधिसत्व को जब अपनी माता की मृत्यु का पता चला, तो उसने अपने पिता को पुकारा और जाकर चिता बनाकर उसके शरीर को जला दिया। आग बुझाने के बाद,उसने विभिन्न रंगों के फूलों का अर्पण किया और रोते-बिलखते अपने पिता के साथ बनारस लौट आया।

राजा को बताया गया, "पैरों के निशान पहचानने में माहिर एक युवक द्वार पर खड़ा है।" जब राजा ने उसे अंदर आने को कहा, तो वह अंदर आया और राजा को प्रणाम किया। उसने कहा, "मेरे मित्र, क्या आप कोई हुनर जानते हैं?" राजा ने कहा, "महाराज, बारह वर्ष पहले किसी ने संपत्ति चुराई थी, मैं उसका पीछा कर रहा हूँ और उसे पकड़ सकता हूँ।" राजा ने कहा, "तो मेरी सेवा में आ जाओ। मैं प्रतिदिन एक हजार सिक्के लेकर तुम्हारी सेवा करूँगा।" राजा ने कहा, "ठीक है, मित्र, तुम मेरी सेवा करोगे।" और राजा ने उसे प्रतिदिन एक हजार सिक्के देने का आदेश दिया। एक दिन कुल पुरोहित ने राजा से कहा, "महाराज, क्योंकि यह युवक अपने हुनर से कुछ नहीं करता, इसलिए हम नहीं जानते कि इसमें कोई कौशल है या नहीं: अब हम इसकी परीक्षा लेंगे।" राजा तुरंत मान गया, और दोनों ने विभिन्न खजानों के रखवालों को सूचना दी, और सबसे कीमती गहने लेकर चबूतरे से नीचे उतरे, और महल के चारों ओर तीन बार टटोलने के बाद, उन्होंने दीवार के ऊपर एक सीढ़ी लगाई और उसके सहारे बाहर उतर गए। फिर वे न्याय कक्ष में प्रवेश कर गए, और वहाँ बैठने के बाद वापस आकर सीढ़ी को दीवार पर फिर से रखकर शहर में उतर गए। एक तालाब के किनारे पहुँचकर उन्होंने उसके चारों ओर तीन बार चक्कर लगाया, फिर अपना खजाना तालाब में डाल दिया और वापस चबूतरे पर चढ़ गए। अगले दिन बहुत शोर मच गया और लोग कहने लगे, "महल से खजाना चोरी हो गया है।" राजा ने अनभिज्ञता का नाटक करते हुए बोधिसत्व को बुलाया और कहा, "मित्र, महल से बहुत कीमती खजाना चोरी हो गया है: हमें उसका पता लगाना होगा।" बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, जो बारह वर्ष पहले चोरी हुए खजाने को चोरों के निशानों का पीछा करके वापस ला सकता है, उसके लिए एक दिन और रात में चोरी की संपत्ति को वापस लाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं उसे वापस लाऊंगा; आप चिंता न करें।" बोधिसत्व ने कहा, "तो फिर उसे वापस लाओ, मित्र।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, महाराज," और जाकर अपनी माता की स्मृति को प्रणाम करते हुए, चबूतरे पर खड़े-खड़े ही मंत्र दोहराया और कहा, "महाराज, दो चोरों के पदचिह्न दिखाई दे रहे हैं।" राजा और पुजारी के पदचिन्हों पर चलते हुए वह राजकक्ष में प्रवेश किया, और वहाँ से निकलकर चबूतरे से नीचे उतरा, और महल का तीन बार चक्कर लगाने के बाद वह दीवार के पास पहुँचा। उस पर खड़े होकर उसने कहा, "महाराज, इस दीवार से शुरू होकर मुझे हवा में पदचिह्न दिखाई दे रहे हैं: मेरे लिए एक सीढ़ी लाओ।" दीवार के सहारे उसके लिए एक सीढ़ी लगवा दी गई, और वह उससे नीचे उतरा, और उनके पदचिह्नों का पीछा करते हुए न्याय कक्ष तक पहुँचा। फिर महल में लौटकर उसने दीवार के सहारे सीढ़ी लगवाई, और उससे नीचे उतरकर वह तालाब के पास पहुँचा। उसके तीन बार चक्कर लगाने के बाद उसने कहा, "महाराज, चोर इस तालाब में उतरे हैं," और खजाना निकालकर, मानो उसने स्वयं उसे वहाँ रखा हो, उसने उसे राजा को दिया और कहा, "महाराज, ये दोनों चोर प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं:इस तरह वे महल में चढ़ गए।" लोग खुशी से झूम उठे और ज़ोर-ज़ोर से कपड़े लहराने लगे। राजा ने सोचा, "मुझे लगता है कि यह युवक उनके कदमों का पीछा करके उस जगह को जानता है जहाँ चोरों ने खजाना छिपाया है, लेकिन चोरों को पकड़ नहीं पा रहा है।" फिर उसने कहा, "तुमने चोरों द्वारा चुराया गया माल तो तुरंत हमारे पास ला दिया, लेकिन क्या तुम चोरों को पकड़कर हमारे पास ला पाओगे?" "महाराज, चोर यहीं हैं: वे ज़्यादा दूर नहीं हैं।" "वे कौन हैं?" "महाराज, जिसे चाहे चोर बना लो। जब से आपने अपना खजाना वापस पा लिया है, आपको चोरों की क्या ज़रूरत है? इसके बारे में मत पूछिए।" "मित्र, मैं तुम्हें प्रतिदिन एक हज़ार सिक्के देता हूँ: चोरों को मेरे पास लाओ।" "महाराज, जब खजाना वापस मिल गया है, तो चोरों की क्या ज़रूरत है?" "मित्र, हमारे लिए खजाने को वापस पाने से बेहतर है कि हम चोरों को पकड़ लें।" "तो महाराज, मैं आपको

यह नहीं बताऊंगा कि “फलां-फलां चोर हैं,” बल्कि मैं आपको एक घटना बताऊंगा जो बहुत पहले घटी थी।” यदि तुम बुद्धिमान हो, तो तुम इसका अर्थ जान जाओगे।" और इतना कहकर उसने एक पुरानी कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, महाराज, बनारस से कुछ ही दूरी पर नदी के किनारे बसे एक गाँव में पाताल नाम का एक नर्तक रहता था। एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ बनारस गया और नाच-गाकर पैसे कमाकर मेले के अंत में उसने कुछ चावल और शराब खरीदी। अपने गाँव लौटते समय वह नदी के किनारे पहुँचा और बहती हुई नदी को देखते हुए अपनी शराब पीने बैठ गया। जब वह नशे में चूर हो गया और अपनी कमजोरी से बेखबर हो गया, तो उसने कहा, "मैं अपना बड़ा वीणा अपने गले में बाँधकर नदी में उतर जाऊँगा।" और उसने अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर नदी में उतर गया। पानी वीणा के छेदों में घुस गया और उसके भार से वह डूबने लगा। लेकिन जब उसकी पत्नी ने उसे डूबते देखा, तो उसने उसका हाथ छोड़ दिया और नदी से बाहर निकलकर किनारे पर खड़ी हो गई। नर्तक पाताल कभी ऊपर उठता, कभी नीचे डूबता, और पानी निगलने से उसका पेट फूल गया। तब उसकी पत्नी ने सोचा, "मेरे पति अब मर रहे हैं: मैं उनसे एक गीत माँगूँगी, और लोगों के बीच इसे गाकर मैं अपनी जीविका कमाऊँगी।" और यह कहते हुए, "मेरे स्वामी, आप पानी में डूब रहे हैं: मुझे बस एक गीत दे दीजिए, और मैं उसी से अपनी जीविका कमाऊँगी," उसने यह छंद गाया:

हे पाताल, गंगा ने बहा दिया,
नृत्य में प्रसिद्ध और गायन में निपुण,
पाताला, जय हो! जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ते जाओ,
कृपया मुझे कोई छोटा सा गीत सुना दीजिए।
तब नर्तक पाताल ने कहा, "मेरे प्रिय, मैं तुम्हें एक छोटा सा गीत कैसे सुनाऊँ? जो जल लोगों का मोक्ष (निर्वाण) रहा है, वही मुझे मार रहा है," और उसने एक श्लोक बोला:

जिससे पीड़ा से व्याकुल आत्माओं पर पानी छिड़का जाता है,
मुझे सीधे मार दिया गया। मेरी शरण ही मेरी कमजोरी साबित हुई।
इस श्लोक की व्याख्या करते हुए बोधिसत्व ने कहा, "हे प्रभु, जैसे जल मनुष्यों का आश्रय है, वैसे ही राजाओं का भी। यदि उनसे कोई खतरा उत्पन्न हो, तो उसे कौन रोकेगा? हे प्रभु, यह एक गुप्त विषय है। मैंने बुद्धिमानों को बोधगम्य कथा सुनाई है: इसे समझिए।" "मित्र, मैं इस प्रकार की गुप्त कथा नहीं समझ सकता। चोरों को पकड़ो और मेरे पास लाओ।" तब बोधिसत्व ने कहा, "हे प्रभु, इसे सुनिए और समझिए।" और उन्होंने एक और कथा सुनाई।

"मेरे स्वामी, पहले बनारस नगर के द्वार के बाहर एक गाँव में, एक कुम्हार अपने बर्तनों के लिए मिट्टी लाया करता था। वह नियमित रूप से एक ही जगह से मिट्टी लाता था और उसने पहाड़ की गुफा में एक गहरा गड्ढा खोदा था। एक दिन जब वह मिट्टी ला रहा था, अचानक अचानक एक तूफानी बादल उठा और भारी बारिश हुई। बाढ़ ने गड्ढे को बहा दिया और उसकी दीवार को तोड़ दिया, जिससे उस आदमी का सिर टूट गया। जोर-जोर से विलाप करते हुए उसने यह छंद कहा:

जिससे बीज उगते हैं, जिससे मनुष्य का पालन-पोषण होता है।
इसने मेरा सिर चकनाचूर कर दिया। मेरा आश्रय ही मेरी कमजोरी साबित हुआ।
"हे महाराज, जिस प्रकार परम पूज्य पृथ्वी, जो लोगों की शरणस्थली है, ने कुम्हार का सिर चकनाचूर कर दिया, उसी प्रकार जब कोई राजा, जो परम पूज्य पृथ्वी के समान समस्त संसार की शरणस्थली है, उठ खड़ा हो और चोर की तरह व्यवहार करे, तो इस खतरे को कौन रोक सकता है? क्या आप, महाराज, इस कहानी के आवरण में छिपे चोर को पहचान सकते हैं?" "मित्र, हमें कोई छिपा हुआ अर्थ नहीं चाहिए। बस कहिए, 'यह रहा चोर,' और उसे पकड़कर मेरे हवाले कर दीजिए।"

राजा की रक्षा करते हुए और बिना कुछ कहे, "तुम चोर हो," उसने एक और कहानी सुनाई।

महाराज, इसी नगर में एक व्यक्ति के घर में आग लग गई। उसने दूसरे व्यक्ति को घर में जाकर अपना सामान बाहर लाने का आदेश दिया। जब वह व्यक्ति घर में घुसकर अपना सामान बाहर ला रहा था, तभी दरवाजा बंद हो गया। धुएँ से अंधा होकर, बाहर निकलने का रास्ता न देख पाने और बढ़ती लपटों से पीड़ित होकर, वह अंदर ही शोक मनाता रहा और उसने ये पंक्तियाँ कहीं:

जो ठंड को नष्ट करता है और अनाज को सुखा देता है,
यह मेरे अंगों को नष्ट कर देता है। मेरा आश्रय ही मेरी कमजोरी साबित होता है।
"हे महाराज, जो प्रजा के लिए अग्नि के समान शरणस्थल था, उसी ने रत्नों का गड्ढा चुरा लिया। चोर के बारे में मुझसे मत पूछिए।" "मित्र, सीधे चोर को मेरे पास ले आओ।" राजा को यह बताए बिना कि वह चोर है, उसने एक और कहानी सुना दी।

एक बार, महाराज, इसी शहर में एक व्यक्ति ने अत्यधिक भोजन कर लिया और वह उसे पचा नहीं पाया। पीड़ा और शोक से व्याकुल होकर उसने यह छंद कहा:

वह भोजन जिस पर अनगिनत ब्राह्मणों का जीवन निर्भर करता है
इसने मुझे पूरी तरह से मार डाला। मेरा आश्रय ही मेरी कमजोरी साबित हुआ।
“एक व्यक्ति, जो महाराज, चावल की तरह जनता का आश्रय था, उसने संपत्ति चुरा ली। जब वह संपत्ति बरामद हो गई, तो चोर के बारे में क्यों पूछें?” “मित्र, यदि संभव हो तो मुझे चोर को लाओ।” राजा को समझाने के लिए, उसने एक और कहानी सुनाई।

महाराज, पहले इसी शहर में एक हवा चली और एक आदमी के अंग तोड़ दिए। शोक मनाते हुए उसने यह छंद कहा:

जून माह में प्रार्थना द्वारा ज्ञानी लोगों को मिलने वाली हवा,
मेरे अंग टूट गए। मेरा आश्रय ही मेरी कमजोरी साबित हुआ।
"हे महाराज, इस प्रकार मेरे आश्रय से ही खतरा उत्पन्न हुआ। इस कहानी को समझिए।" "मित्र, चोर को मेरे पास लाओ।" राजा को समझाने के लिए उसने एक और कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, महाराज, हिमालय की ढलान पर एक वृक्ष था जिसकी शाखाएँ दो भागों में बँटी हुई थीं, वह असंख्य पक्षियों का निवास स्थान था। उसकी दो शाखाएँ आपस में रगड़ खा गईं। इससे धुआँ उठा और आग की चिंगारियाँ गिरने लगीं। यह देखकर प्रधान पक्षी ने यह छंद बोला:

जिस पेड़ पर हम लेटे हुए थे, उससे आग की लपटें निकल रही हैं:
हे पक्षियों, बिखर जाओ। हमारा आश्रय ही हमारी कमजोरी साबित होता है।
"हे महाराज, जिस प्रकार वृक्ष पक्षियों का आश्रय होता है, उसी प्रकार राजा अपनी प्रजा का आश्रय होता है। यदि वह चोर बन जाए, तो इस खतरे को कौन रोकेगा? इस बात का ध्यान रखिए, महाराज।" "मित्र, मुझे चोर लाकर दो।" फिर उसने राजा को एक और कहानी सुनाई।

महाराज, बनारस के एक गाँव में, एक सज्जन के घर के पश्चिम की ओर खूंखार मगरमच्छों से भरी एक नदी बहती थी। इस परिवार में एक इकलौता बेटा था, जिसने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी माँ की देखभाल की। उसकी माँ ने उसकी इच्छा के विरुद्ध एक सज्जन की बेटी को उसकी पत्नी के रूप में घर में लाया। पहले तो वह अपनी सास से स्नेह रखती थी, लेकिन बाद में जब उसके अपने कई बेटे-बेटियाँ हुए, तो वह उससे छुटकारा पाना चाहती थी। उसकी अपनी माँ भी उसी घर में रहती थी। अपने पति के सामने उसने अपनी सास की हर तरह से आलोचना की, ताकि वह उससे नाराज़ हो जाए। उसने कहा, "मैं तुम्हारी माँ का भरण-पोषण नहीं कर सकती: तुम्हें उसे मार डालना चाहिए।" जब उसने उत्तर दिया, "हत्या एक गंभीर मामला है: मैं उसे कैसे मारूँ?" तो उसने कहा, "जब वह सो जाएगी, तो हम उसे बिस्तर समेत उठाकर मगरमच्छों वाली नदी में फेंक देंगे। फिर मगरमच्छ उसे खा जाएँगे।" "और तुम्हारी माँ कहाँ है?" उसने कहा। "वह तुम्हारी माँ के साथ उसी कमरे में सोती है।" “तो जाओ और जिस पलंग पर वह लेटी है, उस पर रस्सी बांधकर निशान लगा दो।” उसने ऐसा ही किया और कहा, “मैंने निशान लगा दिया है।” पति ने कहा, “एक पल रुकिए; पहले लोगों को सोने दीजिए।” और वह सोने का नाटक करते हुए लेट गया, और फिर जाकर अपनी सास के पलंग पर रस्सी बांध दी। फिर उसने अपनी पत्नी को जगाया, और वे दोनों मिलकर उसे पलंग समेत उठाकर नदी में फेंक दिया। वहाँ मगरमच्छों ने उसे मार डाला और खा लिया। अगले दिन उसे अपनी माँ के साथ हुई घटना का पता चला और उसने कहा, “मेरे स्वामी, मेरी माँ मर गई है, अब हम आपकी माँ को मार डालें।” “ठीक है,” उसने कहा, “हम कब्रिस्तान में एक चिता बनाएंगे, और उसे आग में डालकर मार डालेंगे।” तो पति-पत्नी उसे सोते हुए ही कब्रिस्तान ले गए और वहाँ रख दिया। फिर पति ने अपनी पत्नी से कहा, “क्या तुम आग लाई हो?” “मैं भूल गई हूँ, मेरे स्वामी।” “तो जाओ और ले आओ।” “मैं जाने की हिम्मत नहीं कर सकती, मेरे स्वामी, और यदि आप जाते हैं, तो मैं यहाँ रहने की हिम्मत नहीं कर सकती: हम साथ चलेंगे।” उनके जाने के बाद, ठंडी हवा से बूढ़ी औरत की नींद खुल गई, और जब उसने देखा कि यह एक कब्रिस्तान है, तो उसने सोचा, “वे मुझे मारना चाहते हैं: वे आग लाने गए हैं। उन्हें नहीं पता कि मैं कितनी शक्तिशाली हूँ।” और उसने एक शव को पलंग पर लिटाया और उसे कपड़े से ढक दिया, और भागकर उसी स्थान पर एक पहाड़ी गुफा में छिप गई। पति-पत्नी आग लाए और शव को बूढ़ी औरत समझकर उसे जला दिया और चले गए। एक डाकू अपना गठरी इसी पहाड़ी गुफा में छोड़ गया था और उसे लेने वापस आते समय उसने बूढ़ी औरत को देखा और सोचा, “यह अवश्य ही कोई यक्ष (राक्षस) है: मेरी गठरी में भूत-प्रेत का वास है,” और वह एक दैत्य चिकित्सक को ले आया। चिकित्सक ने एक मंत्र पढ़ा और गुफा में प्रवेश किया। तब उसने उससे कहा, “मैं कोई यक्ष (राक्षस) नहीं हूँ: आओ, हम इस खजाने का साथ में आनंद लेंगे।”“इस पर कैसे विश्वास किया जाए?” “अपनी जीभ मेरी जीभ पर रखो।” उसने ऐसा ही किया, और उसने उसकी जीभ का एक टुकड़ा काट लिया और उसे ज़मीन पर गिरा दिया। दैत्य चिकित्सक ने सोचा, “यह ज़रूर कोई यक्ष (राक्षस) है,” और वह ज़ोर से चिल्लाया और अपनी जीभ से खून टपकते हुए भाग गया। अगले दिन बुढ़िया ने एक साफ अंतर्वस्त्र पहना और

तरह-तरह के गहनों का गट्ठा लेकर घर चली गई। बहू ने उसे देखकर पूछा, “माँ, यह आपको कहाँ से मिला?” “मेरी प्यारी, इस कब्रिस्तान में लकड़ी के ढेर पर जलाए जाने वाले सभी लोगों को यही मिलता है।” “मेरी प्यारी माँ, क्या मुझे भी यह मिल सकता है?” “अगर तुम मेरी तरह बन जाओगी, तो तुम्हें मिल जाएगा।” इसलिए अपने पति से एक शब्द भी कहे बिना, बहुत सारे गहने पहनने की इच्छा में, वह वहाँ गई और खुद को जला लिया। अगले दिन उसके पति को उसकी याद आई और उसने कहा, “मेरी प्यारी माँ, क्या इस समय आपकी बहू नहीं आ रही है?” तब उसने उसे डांटते हुए कहा, “अरे! "तुम बुरे आदमी, मरे हुए लोग वापस कैसे आते हैं?" और उसने ये पंक्तियाँ कहीं:

एक सुंदर लड़की, जिसके सिर पर फूलों का मुकुट है,
चंदन के तेल की सुगंध से युक्त, मुझे आगे ले जाया गया
मेरे घर में एक खुशहाल दुल्हन राज करेगी:
उसने मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। मेरा सहारा ही मेरी कमजोरी साबित हुआ।
"हे महाराज, जैसे बहू अपनी सास के लिए शरणस्थली होती है, वैसे ही राजा अपनी प्रजा के लिए शरणस्थली होता है। यदि वहाँ से कोई खतरा उत्पन्न हो, तो क्या किया जा सकता है? कृपया इस बात का ध्यान रखें।" "मित्र, मुझे तुम्हारी बातें समझ नहीं आ रही हैं: बस चोर को मेरे पास ले आओ।" उसने मन ही मन सोचा, "मैं राजा की रक्षा करूँगा," और उसने एक और कहानी सुनाई।

हे महाराज, पुराने समय में इसी नगर में एक व्यक्ति की प्रार्थना का फल उसे मिला। पुत्र के जन्म पर पिता पुत्र प्राप्ति की खुशी से अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसे खूब प्यार किया। पुत्र के बड़े होने पर उसने उसका विवाह कर दिया और समय बीतने पर वह स्वयं वृद्ध हो गया तथा कोई कार्य करने में असमर्थ हो गया। तब पुत्र ने कहा, "आप कोई कार्य नहीं कर सकते: आपको यहाँ से चले जाना चाहिए," और उसने उसे घर से निकाल दिया। बड़ी कठिनाई से वह भीख मांगकर अपना जीवन यापन करता रहा और शोक में उसने यह श्लोक कहा:

जिसके जन्म की मुझे सबसे ज्यादा चाह थी, और किसी चीज की नहीं।
इसने मुझे घर से दूर कर दिया। मेरा आश्रय ही मेरी कमजोरी साबित हुआ।
“हे महाराज, जिस प्रकार एक वृद्ध पिता की देखभाल एक स्वस्थ पुत्र द्वारा की जानी चाहिए, उसी प्रकार समस्त प्रजा की रक्षा राजा द्वारा की जानी चाहिए, और यह वर्तमान खतरा राजा से ही उत्पन्न हुआ है, जो समस्त मनुष्यों का रक्षक है। महाराज, इस तथ्य से जान लीजिए कि चोर फलां व्यक्ति है।” “मुझे यह समझ नहीं आ रहा, चाहे यह तथ्य हो या असत्य: या तो चोर को मेरे पास लाओ, या तुम स्वयं चोर होगे।” इस प्रकार राजा ने बार-बार युवक से प्रश्न किया। तब उसने उससे कहा, “हे महाराज, क्या आप सचमुच चाहते हैं कि चोर पकड़ा जाए?” “जी हां।” “तो मैं सभा के बीच में घोषणा कर दूंगा, फलां व्यक्ति चोर है।” “ठीक है, मित्र।” राजा की बात सुनकर उसने मन ही मन सोचा, “यह राजा मुझे अपनी रक्षा करने नहीं देगा: मैं अब चोर को पकड़ूंगा।” और जब लोग एकत्रित हो गए, तो उसने उन्हें संबोधित करते हुए ये पंक्तियाँ कहीं:

शहर और गांव के सभी उपस्थित लोग ध्यान से सुनें।
देखो! पानी में आग लग गई है। सुरक्षा से डर पैदा होता है।
लूटे गए राज्य के लोग राजा और पुजारी से शिकायत कर सकते हैं;
अब से अपनी रक्षा स्वयं करो। शरण लेना ही तुम्हारी कमजोरी साबित करता है।
जब लोगों ने उसकी बात सुनी, तो उन्होंने सोचा, “राजा ने दूसरों की रक्षा करने के बजाय दोष दूसरे पर डाल दिया। अपने हाथों से खजाना तालाब में रखने के बाद वह चोर की तलाश में निकल पड़ा। ताकि वह भविष्य में फिर कभी चोर की तरह व्यवहार न करे, हम इस दुष्ट राजा को मार डालेंगे।” इसलिए वे लाठियाँ और डंडे लेकर उठे और राजा और पुजारी को वहीं पीट-पीटकर मार डाला। लेकिन उन्होंने बोधिसत्व का अभिषेक किया और उन्हें सिंहासन पर बिठाया।

गुरु ने सत्यों की व्याख्या करने के लिए यह कथा सुनाने के बाद कहा, "हे शिष्य, पृथ्वी पर पदचिह्नों को पहचानना कोई आश्चर्य की बात नहीं है: प्राचीन ऋषि तो उन्हें आकाश में पहचान लेते थे," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर, शिष्य और उनके पुत्र ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उन दिनों पिता कश्यप थे, और पदचिह्नों को पहचानने में कुशल युवक मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) यक्षों का स्वामी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **लोमासककस्सप-जातक**

स्रोत : *एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-433-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 433
लोमसकश्यप-जातक

“इंद्र के समान राजा,” इत्यादि — यह कथा जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक सांसारिक मन वाले भिक्षु के बारे में सुनाई। गुरु ने उनसे पूछा कि क्या वे संसार के प्रति आसक्त हैं, और जब उन्होंने स्वीकार किया कि वे संसार के प्रति आसक्त हैं, तो गुरु ने कहा, “भाई, उच्चतम ख्याति प्राप्त पुरुष भी कभी-कभी निंदा के पात्र हो जाते हैं। ऐसे पाप पवित्र प्राणियों को भी अपवित्र कर देते हैं; तुम्हारे जैसे व्यक्ति को तो और भी अधिक।” और फिर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र राजकुमार ब्रह्मदत्त और उनके कुल पुरोहित के पुत्र कश्यप सहपाठी थे और एक ही गुरु से सभी विद्याओं की शिक्षा प्राप्त करते थे। समय बीतने पर, पिता की मृत्यु के बाद युवा राजकुमार को राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। कश्यप ने सोचा, "मेरा मित्र राजा बन गया है: वह मुझे बड़ी शक्ति देगा: मुझे शक्ति से क्या लेना-देना? मैं राजा और अपने माता-पिता से विदा लेकर संन्यासी बन जाऊंगा।" अतः वे हिमालय चले गए और संन्यासी जीवन व्यतीत किया। सातवें दिन उन्होंने ज्ञान और ज्ञान प्राप्त कर लिया और खेतों में बचे हुए अनाज से अपना जीवन यापन करने लगे। लोगों ने उन्हें लोमसकश्यप (बालों वाला कश्यप) नाम दिया। अपनी इंद्रियों को वश में करके वे घोर तपस्या करने वाले संन्यासी बन गए। उनकी तपस्या के कारण इंद्र का निवास स्थान हिल गया। कारण पर विचार करते हुए, सक्का (इंद्र) ने उसका अवलोकन किया और सोचा, "यह तपस्वी अपने अत्यंत प्रचंड पुण्य से मुझे सक्का (इंद्र) के निवास से भी गिरा देगा। बनारस के राजा से गुप्त रूप से मिलने के बाद, मैं उसकी तपस्या भंग कर दूंगा।" सक्का (इंद्र) की शक्ति से वह आधी रात को बनारस के राजा के राजकक्ष में प्रवेश कर गया और अपने स्वरूप के प्रकाश से पूरे कक्ष को प्रकाशित कर दिया। राजा के सामने हवा में खड़े होकर उसने उन्हें जगाया और कहा, "महाराज, उठिए।" जब राजा ने पूछा, "आप कौन हैं?" तो उसने उत्तर दिया, "मैं सक्का (इंद्र) हूँ।" "आप किसलिए आए हैं?" "महाराज, क्या आप पूरे भारत पर एकाधिकार चाहते हैं?" "हाँ, बिल्कुल चाहता हूँ।" तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "तो लोमसकश्यप को यहाँ लाओ और उससे वध किए गए पशुओं का यज्ञ करने को कहो, और तुम सक्का (इंद्र) के समान वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाओगे और समस्त भारत पर शासन करोगे," और उसने पहला श्लोक दोहराया:

तुम इंद्र के समान राजा बनोगे।
बुढ़ापा या मृत्यु को कभी भी दुर्भाग्यवश न देखने की सोची।
क्या कश्यप को आपकी सलाह माननी चाहिए?
जीवित बलिदान अर्पित करें।
उनकी बात सुनकर राजा तुरंत मान गए। सक्का (इंद्र) ने कहा, "तो देर मत करो," और चले गए। अगले दिन राजा ने सयाह नामक एक सलाहकार को बुलाया और कहा, "हे महाराज, मेरे प्रिय मित्र लोमसकश्यप के पास जाइए और मेरी ओर से उनसे यह कहिए: "राजा आपको यज्ञ करने के लिए राजी करके पूरे भारत के एकमात्र शासक बन जाएंगे, और वे आपको आपकी इच्छा अनुसार भूमि प्रदान करेंगे: मेरे साथ यज्ञ करने आइए।" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज," और तपस्वी के निवास स्थान का पता लगाने के लिए ढोल बजाकर घोषणा की, और जब एक वनपाल ने कहा, "मैं जानता हूँ," तो सयाह उनके मार्गदर्शन में अपने एक बड़े अनुयायी दल के साथ वहाँ गए, और ऋषि को प्रणाम करके एक तरफ आदरपूर्वक बैठ गए और अपना संदेश दिया। फिर उन्होंने उससे कहा, "सयाह, यह तुम क्या कह रहे हो?" और उसे मना करते हुए उन्होंने ये चार श्लोक कहे:

(*1) समुद्र में सुरक्षित कोई द्वीप राज्य नहीं,
सायहा, तुम मुझे इस क्रूरता के लिए उकसाओगी।
यश और धन की लालसा पर अभिशाप।
जहां से उन पापों का जन्म होता है जो अंतहीन पीड़ा की ओर ले जाते हैं।
तपस्वी की तरह भीख मांगकर रोटी कमाना बेहतर है।
अपराध करके अपने सिर पर कलंक लगाने से बेहतर है।

हाँ, बेहतर है कि प्याला हाथ में लेकर पाप से भागा जाए।
ऐसी क्रूरता से कोई राज्य नहीं जीता जा सकता।
सलाहकार ने उसकी बात सुनकर राजा को बताया। राजा ने सोचा, "यदि वह आने से इनकार कर दे, तो मैं क्या करूँ?" और चुप रहा। लेकिन आधी रात को इंद्र आए और हवा में खड़े होकर बोले, "हे महाराज, आप लोमसकश्यप को क्यों नहीं बुलवाते और उनसे यज्ञ करने का अनुरोध क्यों नहीं करते? जब उन्हें बुलवाया जाता है, तो वे आने से इनकार कर देते हैं।" "हे महाराज, अपनी पुत्री, राजकुमारी चंदावती को सजाएँ और उसे सायहा के हाथों भेजकर उससे कहें, 'यदि आप आकर यज्ञ करेंगे, तो राजा आपको यह कन्या पत्नी के रूप में दे देंगे।'" "निश्चित रूप से वह कन्या के प्रेम में पड़ जाएगा और आएगा।" राजा तुरंत मान गया और अगले दिन अपनी पुत्री को सायहा के हाथों भेज दिया। सायहा राजा की पुत्री को लेकर वहाँ गया और ऋषि को औपचारिक प्रणाम और सम्मान देने के बाद, उसने अप्सरा के समान सुंदर राजकुमारी को उनके समक्ष प्रस्तुत किया और आदरपूर्वक दूरी पर खड़ा हो गया। तपस्वी ने अपनी नैतिक चेतना खोते हुए उसे देखा और मात्र एक नज़र से ही ध्यान भंग हो गया। सलाहकार ने देखा कि वह प्रेम से अभिभूत है और कहा, "महाराज, यदि आप यज्ञ करेंगे, तो राजा आपको यह कन्या पत्नी के रूप में दे देगा।" वह प्रेम की शक्ति से कांप उठा और बोला, "क्या वह सचमुच उसे मुझे दे देगा?" "हाँ, यदि आप यज्ञ करेंगे, तो वह दे देगा।" "ठीक है," उसने कहा, "यदि मुझे वह मिल जाए, तो मैं यज्ञ करूँगा," और उसे अपने साथ, उसी रूप में, अपने तपस्वी बालों सहित, लेकर एक भव्य रथ पर सवार होकर बनारस चला गया। लेकिन राजा, जैसे ही उसने यह सुना, वह निश्चित रूप से लोमस काश्यप यज्ञ-प्रणाली में तैयार होकर आ रहे थे। जब लोमस काश्यप ने उन्हें आते देखा, तो उन्होंने कहा, "यदि आप यज्ञ करें, तो मैं इंद्र के समर्थ हो जाऊँगा, और यज्ञ पूर्ण होने पर मैं आपको अपनी पुत्री दे दूँगा।" कश्यप तुरंत मान गए। अतः राजा चंदावती के साथ अगले दिन यज्ञ-प्रणाली में गए। वहाँ सभी चौपाये, हाथी, घोड़े, बैल और अन्य जानवर एक पंक्ति में रखे हुए थे। कश्यप ने उन सभी को मारकर यज्ञ करने का प्रयास किया। तब वहाँ एकत्रित लोगों ने कहा, "यह आपके लिए उचित नहीं है, लोमस काश्यप; आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?" और शोक मनाते हुए उन्होंने दो श्लोक कहे:

सूर्य और चंद्रमा दोनों का ही प्रबल प्रभाव होता है।
और ज्वार-भाटे को पृथ्वी की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती।
ब्राह्मण और पुरोहित सर्वशक्तिमान हैं,
लेकिन नारी जाति कहीं अधिक शक्तिशाली है।
फिर भी चंदावती की जीत हुई।
क्रूर कश्यपा ने घातक पाप किया,
और उसने अपने पिता की चतुर चालों से उसे प्रेरित किया।
जीवित बलिदान अर्पित करना।
इसी क्षण कश्यप ने यज्ञ करने के लिए अपनी बहुमूल्य तलवार उठाई और राज हाथी की गर्दन पर प्रहार करने को तैयार हुए। तलवार देखते ही हाथी मृत्यु के भय से भयभीत होकर जोर से चिल्लाया। उसकी चीख सुनकर अन्य जानवर, हाथी, घोड़े और बैल भी मृत्यु के भय से जोर से चिल्लाए और मनुष्य भी जोर-जोर से रोने लगे। इन चीखों को सुनकर कश्यप उत्तेजित हो गए और अपने जटाओं के बारे में सोचने लगे। फिर उन्हें अपने जटाओं, दाढ़ी और शरीर एवं छाती के बालों का आभास हुआ। पश्चाताप से भर कर वे रोए, "हाय! मैंने पाप किया है, जो मेरे स्वभाव के विपरीत है," और अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने आठवां श्लोक कहा:

यह क्रूर कृत्य इच्छा का फल है;
मैं वासना की इस वृद्धि को जड़ से काट डालूंगा।
तब राजा ने कहा, "मित्र, भयभीत न हो: यज्ञ करो, और मैं तुम्हें राजकुमारी चंदावती, अपना राज्य और सातों खजाने दे दूंगा।" यह सुनकर कश्यप ने कहा, "महाराज, मैं अपने प्राणों पर यह पाप नहीं लेना चाहता," और अंतिम श्लोक बोला:

इस धरती पर व्याप्त वासनाओं पर लानत हो!
इन सबसे कहीं बेहतर है तपस्वी जीवन;
मैं पाप का त्याग करके संन्यासी बनूंगा:
अपने राज्य और सुंदर चंदावती को अपने पास रखें।
इन शब्दों के साथ उन्होंने अपना ध्यान उस रहस्यमयी वस्तु पर केंद्रित किया, और खोए हुए विचार को पुनः प्राप्त कर वायु में पालथी मारकर बैठ गए, राजा को विधि का उपदेश दिया, और उन्हें अच्छे कार्यों में तत्पर रहने की सलाह देते हुए, यज्ञकुंड को नष्ट करने और प्रजा को क्षमादान देने का आदेश दिया। राजा के अनुरोध पर, वे वायु में उड़कर अपने निवास स्थान पर लौट आए। और जब तक वे जीवित रहे, उन्होंने ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के गुणों का अभ्यास किया और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक में जन्म लेने के लिए नियत हुए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए सत्य प्रकट किए और जन्म का वर्णन किया: सत्यों के समापन पर सांसारिक मन वाले भिक्षु ने संतत्व प्राप्त किया: "उन दिनों महान सलाहकार सयाह सारिपुत्र थे, और लोमसाकश्यप मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) यह संख्या 310 में भी, एक अलग संदर्भ में घटित होती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चक्कवाक-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-434-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 434
चक्कवका-जातक

"पक्षियों का जोड़ा," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहा जाता था कि वह बौद्ध धर्म की आवश्यकताओं के प्रति लालची था और गुरु एवं चरवाहे के सभी कर्तव्यों का त्याग करके श्रावस्ती नगर में भोर में प्रवेश कर गया। विशाखा के घर में उसने उत्तम चावल का दलिया और कई प्रकार के ठोस भोजन खाए, और दिन भर में धान, मांस और उबले हुए चावल जैसे कई उत्तम खाद्य पदार्थ खाए, फिर भी संतुष्ट न होकर वह वहां से कुल्ला-अनाथपिंडिका, कोसल के राजा और अन्य कई लोगों के घर गया। एक दिन सत्य सभा में उसके लालच को लेकर चर्चा हुई। जब गुरु ने उनकी बात सुनी, तो उन्होंने उस भिक्षु को बुलवाया और उससे पूछा कि क्या वह सचमुच लालची है। और जब उसने "हाँ" कहा, तो गुरु ने पूछा, "भाई, तुम इतने लालची क्यों हो? पहले भी अपने लालच के कारण, हाथियों के शवों से संतुष्ट न होकर, तुम बनारस छोड़कर गंगा के किनारे भटकते हुए हिमालय में चले गए थे।" और इस पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, एक लालची कौआ मरे हुए हाथियों के शव खा रहा था। उससे संतुष्ट न होकर उसने सोचा, "मैं गंगा के किनारे मछलियों की चर्बी खाऊंगा।" कुछ दिन वहाँ मरी हुई मछलियाँ खाकर वह हिमालय चला गया और वहाँ तरह-तरह के जंगली फल खाकर जीवन यापन करने लगा। मछलियों और कछुओं से भरे एक विशाल कमल-कुंड में पहुँचकर उसने वहाँ दो सुनहरे रंग के हंस देखे जो सेवल के पौधे पर रहते थे। उसने सोचा, "ये पक्षी बहुत सुंदर और आकर्षक हैं: इनका भोजन अवश्य ही स्वादिष्ट होगा। मैं इनसे पूछूंगा कि ये क्या है, और इसे खाकर मैं भी सुनहरे रंग का हो जाऊंगा।" अत: वह उनके पास गया, और शाखा के सिरे पर बैठे हुए उन्हें सामान्य स्नेहपूर्वक नमस्कार करने के बाद, उसने उनकी प्रशंसा में पहला श्लोक बोला:

पीले रंग के वस्त्र पहने पक्षियों का जुड़वां जोड़ा,
   इधर-उधर घूमना कितना आनंददायक है;
पुरुषों को किस प्रकार के पक्षी सबसे अधिक पसंद होते हैं?
   मुझे यह जानकर खुशी हुई।
यह सुनकर लाल हंस ने दूसरा छंद बोला:

हे पक्षी, तुम मानव जाति के लिए विपत्ति हो।
हम अन्य पक्षियों की तुलना में अधिक भाग्यशाली हैं।
हमारी "भक्ति (*1)" वाली सभी भूमि
और मनुष्य और पक्षी हमारी प्रशंसा में गीत गाते हैं।
तो जान लो कि हम लाल हंस हैं।
और सीट पर निडर होकर विचरण करें (*2).
यह सुनकर कौवे ने तीसरा छंद बोला:

समुद्र पर कितने फल उगते हैं?
और हंसों के लिए मांस कहाँ से मिल सकता है?

बताइए आप किस दिव्य भोजन पर निर्भर रहते हैं?
कितनी सुंदरता और देने की कितनी शक्ति।
फिर लाल हंस ने चौथा छंद बोला:

समुद्र में खाने के लिए कोई फल नहीं हैं।
और लाल हंसों को मांस कहाँ से मिलेगा?
सेवाला का पौधा, जिसका छिलका उतार दिया गया हो।
इससे प्राप्त होने वाला भोजन पाप के किसी भी दाग से मुक्त होता है।
तब कौवे ने दो छंद बोले:

मुझे आपके द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्द पसंद नहीं हैं, हंस।
मुझे एक समय विश्वास था कि हम जो खाना चुनते हैं, वही मायने रखता है।
हमें पोषण देने के लिए, सहमत होना चाहिए
हमारा बाहरी स्वरूप कैसा भी हो।
लेकिन अब मुझे इस पर संदेह है, क्योंकि मैं खाता हूँ
चावल, नमक, तेल, फल और मांस:
जब वीर युद्ध से लौटकर दावत का आनंद लेने लगे,
इसलिए मैं भी प्रसन्नता से झूम उठा।
लेकिन हालांकि मैं उत्तम दर्जे के भोजन पर ही जीवन यापन करता हूँ,
मेरी शक्ल-सूरत की तुलना तुम्हारी शक्ल-सूरत से नहीं की जा सकती।
फिर लाल हंस ने कारण बताया कि कौआ व्यक्तिगत सौंदर्य को प्राप्त करने में क्यों असफल रहा, जबकि उसने स्वयं इसे प्राप्त कर लिया, और शेष छंद कहे:

मिले हुए फल या कचरे से संतुष्ट नहीं हुए
श्मशान भूमि के परिसर के भीतर,
लालची कौआ व्यर्थ की उड़ान भरता रहता है
वह आकस्मिक शिकार जो उसकी भूख को उत्तेजित करता है।
लेकिन जो भी इस प्रकार अपनी दुष्ट इच्छा पूरी करेंगे,
और वे अपने आनंद के लिए निर्दोष प्राणियों को मार डालते हैं।
अंतरात्मा की फटकार से निराश होकर वे मुरझा जाते हैं।
और उनकी ताकत और सुंदरता को क्षय होते हुए देखें।
इसलिए वे इतने सुखी प्राणी हैं कि किसी भी प्राणी को नुकसान नहीं पहुंचाते।
शारीरिक रूप से चुस्त-दुरुस्त और दिखने में आकर्षक बनो।
सुंदरता को अवश्य ही समझा जाना चाहिए।
यह पूरी तरह से भोजन के प्रकार पर निर्भर नहीं करता है।
इस प्रकार लाल हंस ने कई तरह से कौवे को फटकारा। और कौवे ने खुद ही यह फटकार मोल ली और बोला, "मुझे तुम्हारी सुंदरता नहीं चाहिए।" और "कांव-कांव" की आवाज करते हुए वह उड़ गया।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों का खुलासा किया और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर, लालची भाई (भिक्षु) ने द्वितीय मार्ग (सम्मोहन) की सफलता प्राप्त की: "उन दिनों कौआ लालची भाई था, हंसनी राहुल की माता थी, और हंस मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) हिंदू कविता में लाल हंस उनका कबूतर है।

(2) यहाँ "समुद्र" शब्द से गंगा का तात्पर्य है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हलिद्दिराग-जातक**

स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

पिछला <<<<-----||-435-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 435
हलीदिराग-जातक

"एकांत वन में," इत्यादि - यह कहानी जेतवन मठ के गुरु ने एक ऐसे युवक के बारे में सुनाई थी जो एक विशिष्ट स्त्री के प्रलोभन में पड़ गया था। परिचयात्मक कहानी कुल्लनारदा जन्म (*1) के तेरहवें खंड में मिलेगी।

अब पुरानी कथा के अनुसार, उस लड़की को पता था कि यदि युवा तपस्वी नैतिक नियम तोड़ दे, तो वह उसके वश में हो जाएगा। उसे समझाने और उसे वापस मनुष्य-आवास में लाने के लिए उसने कहा, "जंगल में सुरक्षित रखा गया सद्गुण, जहाँ सौंदर्य और ऐसे ही अन्य इंद्रिय सुखों का अस्तित्व नहीं होता, बहुत फलदायी सिद्ध नहीं होता, परन्तु मनुष्य-आवास में, सौंदर्य और ऐसे ही अन्य गुणों की उपस्थिति में, वह भरपूर फल देता है। इसलिए मेरे साथ आओ और वहाँ अपने सद्गुण की रक्षा करो। जंगल से तुम्हारा क्या लेना-देना है?" और उसने पहला श्लोक कहा:

एकांत जंगल में व्यक्ति शुद्ध हो सकता है।
वहां प्रलोभनों को सहन करना आसान होता है;
लेकिन एक ऐसे गांव में जहां प्रलोभन व्यापक रूप से प्रचलित हैं,
एक व्यक्ति कहीं अधिक श्रेष्ठ जीवन की ओर अग्रसर हो सकता है।
यह सुनकर उस युवक ने कहा, "मेरे पिता जंगल में गए हैं। जब वे लौटेंगे, तो मैं उनसे अनुमति लेकर आपके साथ चलूँगा।" उसने सोचा, "लगता है उसका पिता है; अगर वह मुझे यहाँ पा गया, तो वह मुझे अपने डंडे के सिरे से मारकर मार डालेगा: मुझे उससे पहले ही निकलना होगा।" इसलिए उसने युवक से कहा, "मैं तुमसे पहले रास्ते पर चलूँगी और अपने पीछे निशान छोड़ जाऊँगी: तुम मेरे पीछे आना।" उसके जाने के बाद, वह न तो लकड़ी लाया, न पीने का पानी लाया, बल्कि बस ध्यान में बैठा रहा, और जब उसके पिता आए, तो वह उनसे मिलने बाहर नहीं आया। तब पिता समझ गया कि उसका बेटा एक स्त्री के वश में आ गया है और उसने कहा, "बेटे, तूने न तो लकड़ी लाई, न पीने का पानी लाया, न खाने का भोजन लाया, बल्कि क्यों तू बस बैठा ध्यान कर रहा है?" उस युवा तपस्वी ने कहा, "हे पिता, लोग कहते हैं कि वन में सद्गुणों की रक्षा करना अधिक फलदायी नहीं होता, परन्तु मनुष्यों के निवास में वह बहुत फलदायी होता है। मैं वहाँ जाकर अपने सद्गुणों की रक्षा करूँगा। मेरा साथी आगे चला गया है और मुझे उसके पीछे आने को कह रहा है, इसलिए मैं उसके साथ चलूँगा। परन्तु जब मैं वहाँ रहूँगा, तो मुझे किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहिए?" और यह प्रश्न पूछते हुए उसने दूसरा श्लोक कहा:

(*2) हे मेरे पिता, कृपया मेरे लिए इस संदेह का समाधान करें;
यदि मैं इस जंगल से भटककर किसी गाँव में चला जाऊं,
किस विचारधारा या किस संप्रदाय के लोग?
क्या मुझे अपने दोस्तों के लिए सबसे बुद्धिमानी से काम करना चाहिए?
फिर उनके पिता ने शेष छंदों को दोहराया:

एक ऐसा व्यक्ति जो आपका विश्वास और प्यार जीत सके।
मैं आपके शब्दों पर भरोसा कर सकता हूं, और आपके धैर्य को साबित कर सकता हूं।
विचार, वचन और कर्म से कभी किसी को ठेस नहीं पहुंचाऊंगा--
उसे अपने दिल में बसा लो और एक मित्र की तरह उससे जुड़े रहो।
बंदरों की तरह चंचल स्वभाव वाले पुरुषों के लिए,
और यदि अस्थिर पाया जाए, तो उसकी ओर आकर्षित न हों।
हालांकि, आपका भाग्य कुछ हद तक एकांत में ही सीमित है।
गलत रास्तों से बचो, ठीक वैसे ही जैसे तुम साफ-सुथरा रहना चाहते हो।
क्रोधित सर्प के रूप में, या सारथी के रूप में

ऊबड़-खाबड़ रास्ते से बचता है। दुख अनेक हैं।
जब भी किसी अपराधी का पता चलता है:
मूर्खों से मित्रता मत करो—मेरी बात मानो—
मूर्ख का साथी शिकार को दुखी करना होता है।
पिता की इस सलाह पर युवक ने कहा, "यदि मैं मनुष्यों के निवास में जाऊँ, तो मुझे आप जैसे ऋषि नहीं मिलेंगे। मुझे वहाँ जाने से डर लगता है। मैं यहीं आपकी उपस्थिति में रहूँगा।" तब पिता ने उसे और सलाह दी और उसे रहस्यमय ध्यान में लीन होने के लिए आवश्यक विधियाँ सिखाईं। शीघ्र ही पुत्र ने सभी गुण और योग्यताएँ प्राप्त कर लीं और अपने पिता के साथ ब्रह्मलोक में जन्म लेने के लिए नियत हो गया।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों की घोषणा की और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के समापन पर, संसार की लालसा रखने वाले भिक्षु (भाई) ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की:- "उन दिनों में युवा तपस्वी सांसारिक मन वाला भिक्षु था, तब की लड़की अब की लड़की है, लेकिन पिता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 477

(2) यह श्लोक और इसके बाद के पहले सात श्लोक क्रमांक 348 में पाए जाते हैं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **समुग्ग-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-436-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 436
समुग्गा-जातक

"हे मित्रों, तुम कहाँ से आए हो?" इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक सांसारिक भिक्षु के बारे में सुनाई। कहते हैं कि गुरु ने उससे पूछा कि क्या वह संसार के प्रति ललक रखता है, और जब उसने स्वीकार किया कि वह ऐसा ही चाहता है, तो गुरु ने कहा, "हे भिक्षु, तुम स्त्री की इच्छा क्यों रखते हो? वास्तव में स्त्री दुष्ट और कृतघ्न होती है। प्राचीन काल में असुर राक्षस स्त्रियों को निगल जाते थे, और यद्यपि वे उन्हें अपने गर्भ में सुरक्षित रखते थे, फिर भी वे उन्हें एक पुरुष के प्रति वफादार नहीं रख पाते थे। तो तुम ऐसा कैसे कर पाओगे?" और इस पर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब पूर्व उल्लेखित बोधिसत्व, जो पापमय सुखों में लिप्त थे, हिमालय में चले गए और संन्यासी जीवन अपना लिया। वे वहाँ जंगली फलों का सेवन करते हुए जीवन व्यतीत करते रहे और अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित करते रहे। उनकी पर्णपाती कुटिया से कुछ ही दूरी पर एक असुर राक्षस रहता था। वह समय-समय पर उस महान पुरुष के पास आता और धर्म का उपदेश सुनता, परन्तु मनुष्यो के एकत्र होने वाले मार्ग पर जंगल में छिपकर उन्हें पकड़ता और खा जाता। इसी समय काशी राज्य की एक अत्यंत सुंदर कुलीन स्त्री सीमावर्ती गाँव में बस गई। एक दिन वह अपने माता-पिता से मिलने गई, और लौटते समय उस राक्षस ने उसके साथ आए पुरुषों को देख लिया और भयानक रूप धारण करके उन पर टूट पड़ा। पुरुषों ने अपने हाथ के हथियार गिरा दिए और भाग गए। रथ में बैठी उस सुंदर स्त्री को देखकर राक्षस उस पर मोहित हो गया और उसे अपने गुफा में ले जाकर अपनी पत्नी बना लिया। तब से वह उसके लिए घी, भूसे वाले चावल, मछली, मांस और इसी तरह की चीजें, साथ ही पके फल खाने के लिए लाता रहा, उसे वस्त्र और आभूषण पहनाता रहा, और उसकी सुरक्षा के लिए उसे एक डिब्बे में बंद कर दिया जिसे उसने निगल लिया, और इस प्रकार उसे अपने पेट में सुरक्षित रखा। एक दिन उसे स्नान करने की इच्छा हुई, और तालाब के पास आकर उसने डिब्बा ऊपर फेंक दिया और उसे उसमें से निकालकर स्नान कराया और तेल लगाया, और उसे कपड़े पहनाकर कहा, "थोड़ी देर के लिए खुली हवा में आनंद लो," और बिना किसी खतरे की आशंका के वह थोड़ी दूर जाकर स्नान करने लगा। उसी समय वायु का

पुत्र, जो एक जादूगर था, तलवार से लैस होकर हवा में चल रहा था। जब उसने उसे देखा, तो उसने अपने हाथों को एक विशेष मुद्रा में रखा और उसे अपने पास आने का संकेत दिया। जादूगर तुरंत जमीन पर उतर आया। फिर उसने उसे संदूक में रखा और उस पर बैठ गई, असुर के आने की प्रतीक्षा करने लगी। जैसे ही उसने उसे आते देखा, संदूक के पास पहुँचने से पहले ही उसने संदूक खोल दिया और अंदर जाकर जादूगर के ऊपर लेट गई और अपना वस्त्र उसके चारों ओर लपेट दिया। असुर आया और संदूक की जाँच किए बिना ही उसने सोचा कि यह केवल स्त्री है, और उसने संदूक को निगल लिया और अपनी गुफा की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसने सोचा, "सन्यासी को देखे हुए बहुत समय हो गया है: मैं आज जाकर उन्हें प्रणाम करूँगा।" अतः वह उनसे मिलने गया। तपस्वी ने उसे दूर से ही देख लिया और जान लिया कि राक्षस के पेट में दो लोग हैं, और पहला श्लोक बोलते हुए उसने कहा:

आप सब कहाँ से आए हैं, मित्रों?
    आप तीनों का स्वागत है!
कृपया कुछ समय के लिए मेरे साथ विश्राम करें।
    मैं निवेदन करता हूँ: मुझे आशा है कि आप सुखी और आराम से जीवन व्यतीत करेंगे;
    आपमें से किसी ने भी बहुत समय से इस रास्ते से यात्रा नहीं की है।
यह सुनकर असुर ने सोचा, "मैं इस तपस्वी से मिलने बिल्कुल अकेला आया हूँ, और ये तीन लोगों की बात कर रहे हैं: इनका क्या मतलब है? क्या ये वास्तविकता को जानकर बोल रहे हैं, या पागल होकर मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हैं?" तब वह तपस्वी के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, और आदरपूर्वक दूरी पर बैठकर उनसे बातचीत की और दूसरा श्लोक बोला:

मैं आज आपसे अकेले मिलने आया हूँ।
    और न ही कोई प्राणी मेरा साथ देता है।
हे पवित्र साधु, तब आप ऐसा क्यों कहते हैं?
    आप सब कहाँ से आए हैं, मित्रों?
    आप तीनों का बहुत-बहुत स्वागत है।
तपस्वी ने कहा, "क्या तुम सचमुच कारण सुनना चाहते हो?" "जी हाँ, पूज्यवर।" "तो सुनो," उन्होंने कहा और तीसरा श्लोक सुनाया:

आप और आपकी प्यारी पत्नी दो लोग हैं, इस बात का पूरा यकीन रखें;
वह एक डिब्बे के अंदर सुरक्षित पड़ी है:
वह हमेशा तुम्हारे गर्भ में सुरक्षित रहेगी।
वायु के बेटे के साथ वह खुशी-खुशी खेल रही थी।
यह सुनकर असुर ने सोचा, "जादूगर तो चालबाज़ों से भरे होते हैं: अगर उसके हाथ में तलवार आ जाए तो वह मेरा पेट चीरकर भाग जाएगा।" और वह बहुत घबराकर उस संदूक को उछालकर अपने सामने रख लिया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से चौथे श्लोक को दोहराया:

तलवार से लैस राक्षस बहुत भयभीत हो गया।
    और उसने पेट से डिब्बा उगल कर जमीन पर गिरा दिया;
उनकी पत्नी, सुंदर फूलों की मालाओं से सजी हुई, मानो दुल्हन हो।
    वायु के बेटे को वहां खुशी-खुशी खेलते हुए पाया गया।
जैसे ही संदूक खोला गया, जादूगर ने एक मंत्र बुदबुदाया और अपनी तलवार पकड़कर हवा में उछल पड़ा। यह देखकर असुर उस महान प्राणी से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने शेष श्लोक दोहराए, जो मुख्यतः उसकी प्रशंसा से प्रेरित थे।

हे कठोर तपस्वी, आपकी स्पष्ट दृष्टि ने देखा
    एक महिला का गुलाम, बेचारा आदमी कितना नीचतम स्तर तक गिर सकता है;
जैसे जीवन ही मेरे पेट में सुरक्षित हो,
    मुझे लगता है कि उस दुष्ट ने वाकई बुरा बर्ताव किया।
मैंने दिन-रात उसकी देखभाल बड़े ध्यान से की।
    जैसे वनवासी संन्यासी लौ को संजोकर रखता है,
और फिर भी उसने हर तरह के न्यायसंगत अर्थों से परे जाकर पाप किया:
    महिलाओं की जरूरतों से जुड़ी हर बात का अंत शर्मिंदगी में ही होना चाहिए।
मैं अपने शरीर के भीतर, दृष्टि से छिपा हुआ सोचता हूँ,

वह मेरी ही होनी चाहिए—लेकिन उसका नाम "अनैतिक" था—
और इस प्रकार उसने न्यायसंगतता की सारी सीमाओं को पार करते हुए पाप किया:
महिलाओं की जरूरतों से संबंधित हर बात का अंत शर्मिंदगी में ही होना चाहिए।
उसके हजारों प्रलोभनों के बावजूद मनुष्य ने व्यर्थ ही मुकाबला किया।
उसका यह विश्वास व्यर्थ है कि उसका बचाव पुख्ता है;
जैसे नरक की ओर ढलान वाली खड़ी चट्टानें,
उसने बेचारे लापरवाह लोगों को मोहक आकर्षण के जाल में फंसा दिया।
वह पुरुष जो नारीत्व के मार्ग से विमुख हो जाता है
सुखमय और सभी दुखों से मुक्त जीवन जीता है;
उसे एकांत में ही सच्चा आनंद मिलेगा।
स्त्री और उसके छल से दूर।

ये शब्द कहकर राक्षस महापुरुष के चरणों में गिर पड़ा और उनकी स्तुति करते हुए बोला, "हे प्रभु, आपकी कृपा से मेरा जीवन बच गया। उस दुष्ट स्त्री के कारण जादूगर ने मुझे लगभग मार ही डाला था।" तब बोधिसत्व ने उसे धर्म का मार्ग समझाते हुए कहा, "उसे हानि न पहुँचाओ, आज्ञाओं का पालन करो," और उसे पाँच नैतिक नियमों में स्थापित किया। असुर ने कहा, "यद्यपि मैंने उसे अपने गर्भ में रखा, फिर भी मैं उसे सुरक्षित नहीं रख सका। भला उसे कौन सुरक्षित रखेगा?" इसलिए उसने उसे जाने दिया और सीधे अपने वनवास लौट गया।

अपने उपदेश के अंत में, गुरु ने सत्यों की घोषणा की और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर सांसारिक मन वाले भिक्षु ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त की: "उन दिनों अलौकिक दृष्टि शक्तियों वाला तपस्वी मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पूतिमांसा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-437-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 437
पुतिमांसा-जातक

"पुतिमांसा ऐसा क्यों करता है?", इत्यादि - यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में इंद्रियों के वशीकरण के विषय में सुनाई थी। क्योंकि एक समय ऐसा था जब बहुत से भिक्षु (भाई) इंद्रियों के मार्ग पर कोई नियंत्रण नहीं रखते थे। गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु आनंद से कहा, "मुझे इन भिक्षुओं को उपदेश देना चाहिए," और उनके आत्मसंयम के अभाव के कारण उन्होंने भिक्षुओं की सभा बुलाई और एक भव्य पलंग के बीच में बैठकर उन्हें संबोधित किया: "भाइयों, यह उचित नहीं है कि कोई भिक्षु अपने शारीरिक सौंदर्य के प्रभाव में आकर मानसिक या शारीरिक गुणों पर अपना आलिंगन लगाए, क्योंकि यदि वह ऐसे क्षण में मर जाता है, तो उसका पुनर्जन्म नरक और इसी प्रकार के बुरे लोकों में होता है; इसलिए भौतिक रूपों और ऐसी ही चीजों पर अपना आलिंगन न लगाएं। किसी भिक्षु को अपने मन को मानसिक और शारीरिक गुणों में नहीं लगाना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, वे इस वर्तमान स्थिति में भी पूरी तरह से बर्बाद हो जाते हैं। इसलिए, भाइयों, यह अच्छा है कि इंद्रियों की आंख को गर्म लोहे की सुई से स्पर्श किया जाए।" और यहाँ उन्होंने अन्य विवरण देते हुए कहा, "सौंदर्य का सम्मान करने का भी एक समय होता है और उसकी उपेक्षा करने का भी। जब आप सौंदर्य का सम्मान कर रहे हों, तो उसे सुखद बातों के प्रभाव में नहीं, बल्कि अप्रिय बातों के प्रभाव में देखें। इस प्रकार आप अपने उचित क्षेत्र से नहीं भटकेंगे। तो आपका यह क्षेत्र क्या है? चार गंभीर ध्यान, पवित्र अष्टांग मार्ग और नौ पारलौकिक अवस्थाएँ। यदि आप अपने इस उचित क्षेत्र में चलते हैं, तो मारा को प्रवेश नहीं मिलेगा, लेकिन यदि आप वासना के अधीन होकर और व्यक्तिगत सौंदर्य के प्रभाव में चीजों का सम्मान करते हैं, जैसे सियार पुतिमांसा, तो आप अपने सच्चे क्षेत्र से भटक जाएँगे।" और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, हिमालय की ढलानों पर स्थित एक वन क्षेत्र में एक पहाड़ी गुफा में सैकड़ों जंगली बकरियाँ रहती थीं। उनके निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर, पुतिमांसा नाम का एक सियार अपनी पत्नी वेणी के साथ एक

गुफा में रहता था। एक दिन जब वह अपनी पत्नी के साथ घूम रहा था, तो उसने उन बकरियों को देखा और सोचा, "मुझे इन बकरियों का मांस खाने का कोई उपाय ढूंढना चाहिए," और उसने चतुराई से एक बकरी को मार डाला। बकरी का मांस खाकर वह और उसकी पत्नी दोनों बलवान और तगड़े हो गए। धीरे-धीरे बकरियों की संख्या कम होती गई। उनमें से एक बुद्धिमान बकरी थी जिसका नाम मेलमाता था। सियार, हालांकि धूर्तता में माहिर था, उसे मार नहीं सका। अपनी पत्नी से सलाह लेकर उसने कहा, "मेरी प्रिय, सारी बकरियाँ मर चुकी हैं। हमें इस बकरी को खाने का कोई तरीका सोचना होगा। अब मेरी योजना यह है। तुम अकेले जाओ और उससे दोस्ती कर लो। जब तुम दोनों के बीच विश्वास पैदा हो जाए, तो मैं लेट जाऊँगा और मरने का नाटक करूँगा। फिर तुम बकरी के पास जाकर कहना, 'मेरी प्रिय, मेरे पति की मृत्यु हो गई है और मैं अकेली पड़ गई हूँ; तुम्हारे सिवा मेरा कोई दोस्त नहीं है: आओ, हम रोएँ और शोक मनाएँ और उसके शरीर को दफनाएँ।' और ये कहकर उसे अपने साथ ले आओ। फिर मैं उछलकर उसकी गर्दन पर काट कर उसे मार डालूँगा।" वह तुरंत मान गई और बकरी से दोस्ती करने के बाद, जब विश्वास स्थापित हो गया, तो उसने अपने पति के बताए शब्दों में उससे बात की। बकरी ने उत्तर दिया, "मेरी प्रिय, मेरे पूरे परिवार को तुम्हारे पति ने खा लिया है। मुझे डर लग रहा है; मैं नहीं आ सकती।" "डरो मत; मरे हुए तुम्हें क्या नुकसान पहुँचा सकते हैं?" "तुम्हारा पति क्रूर स्वभाव का है; मुझे डर लग रहा है।" लेकिन बार-बार विनती करने पर बकरी ने सोचा, "वह ज़रूर मर गया होगा," और उसके साथ जाने के लिए राज़ी हो गई। लेकिन रास्ते में उसने सोचा, "पता नहीं क्या होगा?" और संदेह होने पर उसने सियार को आगे भेज दिया और सियार पर पैनी नज़र रखी। सियार ने उनके कदमों की आहट सुनी और सोचा, "देखो, बकरी आ रही है," और अपना सिर उठाकर आँखें घुमाते हुए चारों ओर देखा। उसे ऐसा करते देख बकरी बोली, "यह दुष्ट मुझे पकड़कर मारना चाहता है: यह वहाँ मरने का नाटक कर रहा है," और वह मुड़कर भाग गई। जब सियार ने उससे भागने का कारण पूछा, तो बकरी ने कारण बताया और पहला छंद बोला:

पुतिमाइंसा इस तरह क्यों घूर रही है?
 उसकी नजरें मुझे नापसंद करती हैं:
ऐसे मित्र से सावधान रहना चाहिए।
 और उसे बहुत दूर भाग जाना चाहिए।
ये कहकर वह मुड़ी और सीधे अपने घर की ओर चल पड़ी। सियारिन उसे रोकने में असफल रही तो वह उस पर क्रोधित हो उठी और अपने पति के पास जाकर शोक मनाने बैठ गई। तब सियारिन ने उसे फटकारते हुए दूसरा छंद कहा:

मेरी पत्नी वेनी बुद्धिहीन प्रतीत होती है।
 अपने द्वारा बनाए गए मित्रों पर गर्व करना;
अधर में लटकी हुई वह बस बैठी रह सकती है।
 और शोक मनाओ, क्योंकि मेला के लोगों को धोखा दिया गया है।
यह सुनकर मादा सियार ने तीसरा छंद बोला:

आप भी, मेरे स्वामी, शायद ही बुद्धिमान थे।
 और, हे मूर्ख प्राणी, तुमने अपना सिर उठाया।
खुली आँखों से चारों ओर देखते हुए,
 हालांकि वह मरने का नाटक कर रहा था।
उचित समय पर बुद्धिमान लोग
 उन्हें आंखें कब खोलनी या बंद करनी हैं, यह जानना।
जो गलत समय पर देखते हैं, उनका ही नुकसान होगा।
 पुतिमांसा की तरह, बीमार पड़ो।
यह श्लोक 'परफेक्ट विजडम' से प्रेरित है।

लेकिन सियार ने पुतिमानसा को दिलासा देते हुए कहा, "हे स्वामी, आप परेशान न हों, मैं उसे यहाँ वापस लाने का कोई रास्ता निकाल लूँगी, और जब वह आए, तो सावधान रहना और उसे पकड़ लेना।" फिर उसने बकरी को ढूँढा और कहा, "मेरे मित्र, तुम्हारा आना हमारे लिए उपयोगी साबित हुआ; क्योंकि तुम्हारे आते ही मेरे स्वामी को होश आ गया और अब वे जीवित हैं। आओ और उनसे सौहार्दपूर्ण बातें करो," और ऐसा कहते हुए उसने पाँचवाँ श्लोक कहा:

हमारी पुरानी दोस्ती, बकरी, एक बार फिर से जीवित हो उठे,
 और कृपया हमारे लिए भरा हुआ कटोरा लेकर आइए, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ।
मेरे स्वामी, जिन्हें मैंने मृत समझ लिया था, वे अभी भी जीवित हैं।
 आज ही उन्हें विनम्रतापूर्वक नमस्कार करके मिलें।

बकरी ने सोचा, "यह दुष्ट औरत मुझे फंसाना चाहती है। मुझे खुलेआम प्रतिद्वंद्वी की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए; मैं उसे धोखा देने का कोई उपाय ढूंढूंगी," और उसने छठा छंद बोला:

हमारी पुरानी दोस्ती को पुनर्जीवित करने के लिए,
मैं एक भरा हुआ कटोरा सहर्ष देता हूँ:
मैं बड़े सुरक्षा दल के साथ आऊंगा;
हमें अच्छे से दावत देने के लिए, जल्दी घर जाओ।
फिर मादा सियार ने अपने अनुयायियों के बारे में पूछताछ की और सातवां श्लोक बोला:

आप किस तरह की एस्कॉर्ट लाएंगे?
   मुझे आपको अच्छे से दावत देने के लिए कहा गया है?
सभी स्मरण के नाम
   मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप हमें सच-सच बताएं।
बकरी ने आठवां श्लोक बोला और कहा:

शिकारी कुत्ते (*1) भूरे और हल्के भूरे रंग के, एक चार आंखों वाला भी,
जंबुक के साथ मेरा सच्चा अंगरक्षक:
जल्दी घर जाओ और फटाफट तैयारी करो।
सभी को भरपूर मात्रा में स्वादिष्ट भोजन मिले।
“इनमें से प्रत्येक के साथ पाँच सौ कुत्ते होते हैं: इसलिए मैं दो हज़ार कुत्तों के पहरे के साथ आऊँगी। अगर उन्हें खाना नहीं मिला, तो वे तुम्हें और तुम्हारे साथी को मार कर खा जाएँगे।” यह सुनकर मादा सियार इतनी भयभीत हो गई कि उसने सोचा, “अब बहुत हो गया उसका आना; मैं उसे आने से रोकने का उपाय ढूँढूँगी,” और उसने नौवाँ छंद बोला:

घर से बाहर मत निकलो, वरना मुझे डर है
आपका सारा सामान जल्द ही गायब हो जाएगा:
मैं आपका अभिवादन स्वामी जी तक पहुंचा दूंगा;
हिलाओ मत: नहीं, एक शब्द भी नहीं!
ये शब्द कहकर वह अपनी जान बचाने के लिए बड़ी हड़बड़ी में भागी और अपने स्वामी को साथ लेकर वहां से चली गई। और फिर कभी उस जगह पर लौटने की हिम्मत नहीं हुई।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान बताई: "उन दिनों मैं वह देवत्व था जो वहाँ एक पुराने वन वृक्ष में निवास करता था।"

फुटनोट:

(1) मालिया और पिंगिया संभवतः कुत्तों के रंग को संदर्भित करते हैं; चतुराक्ष ऋग्वेद में यम के कुत्तों में से एक है; जंबुका स्कंद समूह में एक आत्मा है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तित्तिर-जातक4**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस और आर.ए. नील द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-438-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 438
तित्तिरा-जातक

"आपकी निर्दोष संतान," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने गिद्ध शिखर पर रहते हुए देवदत्त द्वारा उन्हें मारने के प्रयास के बारे में सुनाई थी। उसी समय सत्य के हॉल में चर्चा शुरू हुई और उन्होंने कहा, "हाय! महोदय, देवदत्त कितना निर्लज्ज और नीच था। अजातशत्रु से मिलकर उसने श्रेष्ठ और सर्वोच्च बुद्ध को मारने की साजिश रची, धनुर्धारियों को रिश्वत देकर, एक पत्थर फेंककर और नलगिरि को छोड़ कर।" गुरु आए और भिक्षुओं से पूछा कि वे अपनी सभा में क्या चर्चा कर रहे हैं, और जब उन्हें बताया गया कि क्या हो रहा है, तो उन्होंने कहा, "न केवल अभी, बल्कि पहले भी देवदत्त मुझे मारने के प्रयास करता था, लेकिन अब वह मुझे जरा भी डरा नहीं सकता," और उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, बनारस के एक विश्वप्रसिद्ध शिक्षक ने पाँच सौ युवा ब्राह्मणों को विज्ञान की शिक्षा दी। एक दिन उन्होंने सोचा, "जब तक मैं यहाँ रहूँगा,

मुझे धार्मिक (सन्यासी) जीवन जीने में बाधाओं का सामना करना पड़ता है, और मेरे शिष्य अपनी पढ़ाई में निपुण नहीं हो पाते हैं। मैं हिमालय की ढलानों पर स्थित एक वन-गृह में सेवानिवृत्त हो जाऊंगा और वहीं अपना अध्यापन जारी रखूंगा।" उन्होंने अपने शिष्यों से कहा और उनसे तिल, भूसा, तेल, वस्त्र आदि लाने को कहकर जंगल में चले गए और पत्तों की एक झोपड़ी बनाकर राजमार्ग के पास ही अपना निवास स्थान बना लिया। उनके शिष्यों ने भी अपने-अपने लिए एक-एक झोपड़ी बनाई। उनके परिवार ने चावल और अन्य खाद्य सामग्री भेजी, और देश के निवासी यह कहते हुए कि "कहते हैं कि जंगल में फलां-फलां स्थान पर एक प्रसिद्ध शिक्षक रहते हैं और विज्ञान की शिक्षा देते हैं," चावल के उपहार लाए, और वनपालों ने भी अपने उपहार दिए, जबकि एक व्यक्ति ने दूध देने के लिए एक दुधारू गाय और एक बछड़ा दिया। अब एक छिपकली अपने दो बच्चों के साथ शिक्षक की झोपड़ी में रहने लगी, और एक शेर और एक बाघ उनकी सेवा करते थे। एक तीतर भी वहां स्थायी रूप से रहता था, और अपने गुरु को अपने शिष्यों को पवित्र ग्रंथों का अध्यापन करते हुए सुनकर, तीतर ने तीन वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। और युवा ब्राह्मण उस पक्षी के साथ बहुत मित्रवत हो गए। समय बीतने के साथ-साथ, युवाओं के विज्ञान में निपुणता प्राप्त करने के बाद, उनके गुरु का निधन हो गया। उनके शिष्यों ने उनके शरीर को जलाया, उनकी राख पर रेत का स्तूप स्थापित किया और रोते-बिलखते उसे तरह-तरह के फूलों से सजाया। तब तीतर ने उनसे पूछा कि वे क्यों रो रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "हमारे गुरु का निधन हो गया है जबकि हमारी पढ़ाई अभी अधूरी है।" "यदि ऐसा है, तो दुखी न हों: मैं आपको विज्ञान पढ़ाऊंगा।" "आपको यह कैसे पता?" "मैं आपके गुरु को सुनता था, जब वे आपको पढ़ाते थे, और मैंने तीन वेद कंठस्थ कर लिए।" "तो क्या आप हमें वह ज्ञान देंगे जो आपने कंठस्थ किया है?" तीतर ने कहा, "अच्छा, सुनो," और उन्होंने उन्हें कठिन बातें इतनी सरलता से समझाईं जैसे कोई पर्वत की ऊँचाई से जलधारा बहाता है। युवा ब्राह्मण अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने विद्वान तीतर से विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया। और तीतर प्रसिद्ध गुरु के स्थान पर विज्ञान के व्याख्यान देने लगा। युवकों ने उसके लिए एक सोने का पिंजरा बनाया और उस पर एक चंदवा लगाकर उसे शहद और भुना हुआ अनाज खिलाया। एक सुनहरी थाली में भोजन परोसकर और उसे कई रंग-बिरंगे फूल भेंट करके, उन्होंने पक्षी का बहुत सम्मान किया। पूरे भारत में यह बात फैल गई कि जंगल में एक तीतर पाँच सौ युवा ब्राह्मणों को पवित्र ग्रंथों का ज्ञान दे रहा है। उस समय लोगों ने एक भव्य उत्सव का आयोजन किया—यह किसी पर्वत की चोटी पर लोगों के जमावड़े जैसा था। युवकों के माता-पिता ने अपने बेटों को उत्सव देखने के लिए संदेश भेजा। उन्होंने तीतर को बताया और उस विद्वान पक्षी और पूरे आश्रम को छिपकली की देखरेख में सौंपकर अपने-अपने शहरों के लिए प्रस्थान कर दिया। उसी समय इधर-उधर भटकता हुआ एक दुष्ट तपस्वी इस स्थान पर आया। छिपकली ने उसे देखकर उससे मैत्रीपूर्ण बातचीत शुरू की और कहा,"फलां जगह पर चावल, तेल और ऐसी ही चीज़ें मिलेंगी; चावल उबालकर मज़े से खाओ," और ऐसा कहकर वह अपने भोजन की तलाश में निकल पड़ा। सुबह-सुबह उस दुष्ट ने चावल उबाले और दो छोटे छिपकलियों को मारकर बड़े चाव से खाया। दोपहर में उसने विद्वान तीतर और उसके बछड़े को मारकर खाया, और शाम को जैसे ही उसने गाय को घर आते देखा, उसने उसे भी मार डाला और उसका मांस खा लिया। फिर वह एक पेड़ के नीचे लेटकर गुर्राने लगा और सो गया। शाम को छिपकली वापस आई और अपने बच्चों को ढूंढते हुए इधर-उधर भटकने लगी। एक वृक्ष-परी ने अपने बच्चों को न पाकर कांपती हुई छिपकली को देखा और अपनी दिव्य शक्ति का प्रयोग करते हुए वृक्ष के खोखले तने में खड़ी होकर बोली, "कांपना बंद करो, छिपकली: तुम्हारे बच्चे, तीतर, बछड़ा और गाय इस दुष्ट प्राणी ने मार डाले हैं। इसकी गर्दन पर काट लो, और इस तरह इसे मार डालो।" और इस प्रकार छिपकली से बात करते हुए देवी ने पहला श्लोक कहा:

उसने तुम्हारे निर्दोष बच्चे को खा लिया।
  हालांकि आपने भरपूर मात्रा में चावल दिए;
तुम्हारे दांत उसके मांस में घुसकर मिलते हैं,
  और उस दुष्ट को जिंदा भागने मत दो।
फिर छिपकली ने दो छंद दोहराए:

उसकी लालची आत्मा पर गंदगी ने, नर्स के वस्त्र की तरह, दाग लगा दिया।

मुझे डर है कि उसका पूरा व्यक्तित्व मेरे दांतों के सामने अचूक है।
नीच और कृतघ्न लोगों की गलतियाँ हर जगह देखी जाती हैं।
संसार के उपहारों से भी वह संतुष्ट नहीं हो सकता।
छिपकली ने ऐसा कहते हुए सोचा, "यह जाग जाएगा और मुझे खा जाएगा," और अपनी जान बचाने के लिए वह भाग गई। शेर और बाघ का तीतर से बहुत अच्छा रिश्ता था। कभी वे तीतर को देखने आते थे, और कभी तीतर जाकर उन्हें सही राह दिखाता था। आज शेर ने बाघ से कहा, "बहुत दिनों से हमने तीतर को नहीं देखा; सात-आठ दिन हो गए होंगे: जाओ और उसके बारे में खबर लाओ।" बाघ तुरंत मान गया, और वह ठीक उसी समय वहाँ पहुँचा जब छिपकली भाग गई थी, और उसने उस दुष्ट को सोते हुए पाया। उसके उलझे बालों में तीतर के कुछ पंख दिखाई दिए, और पास ही गाय और बछड़े की हड्डियाँ पड़ी थीं। यह सब देखकर और अपने सोने के पिंजरे से तीतर को न पाकर बाघ राजा ने सोचा, "इन जीवों को इस दुष्ट ने मार डाला होगा," और उसने उसे एक लात मारकर जगा दिया। बाघ को देखते ही वह आदमी बुरी तरह डर गया। तब बाघ ने पूछा, "क्या तुमने इन जीवों को मारकर खाया?" "मैंने न तो इन्हें मारा और न ही खाया।" "अरे दुष्ट, अगर तुमने इन्हें नहीं मारा, तो और कौन मार सकता था? और अगर नहीं बताया, तो तुम मरे हुए हो।" अपनी जान के डर से उसने कहा, "जी महाराज, मैंने छोटी छिपकलियों, गाय और बछड़े को मारकर खाया, लेकिन तीतर को नहीं मारा।" उसके बहुत विरोध करने के बावजूद, बाघ ने उस पर विश्वास नहीं किया और पूछा, "तुम यहाँ कहाँ से आए हो?" "महाराज, मैं कलिंग देश में व्यापारियों का सामान बेचकर अपना गुजारा करता था, और कई तरह के काम करने के बाद मैं यहाँ आ गया हूँ।" लेकिन जब उस आदमी ने उसे सब कुछ बता दिया, तो बाघ ने कहा, "अरे दुष्ट, अगर तुमने तीतर को नहीं मारा, तो और कौन मार सकता था? आओ, मैं तुम्हें जानवरों के राजा, शेर के सामने ले चलता हूँ।" यह कहकर बाघ उस आदमी को अपने आगे भगाते हुए चला गया। जब शेर ने बाघ को उस आदमी को अपने साथ लाते हुए देखा, तो उसने इसे प्रश्न के रूप में प्रस्तुत करते हुए चौथा श्लोक बोला:

सुबाहु (*2), तुम इतनी जल्दी में यहाँ क्यों आए हो?
और यह युवा प्रतिभा तुम्हारे साथ ही क्यों प्रकट होती है?
मैं पूछता हूँ, यहाँ इतनी तत्परता की क्या आवश्यकता है?
जल्दी, मुझे सच-सच और बिना देरी किए बताओ।
यह सुनकर बाघ ने पाँचवाँ श्लोक बोला:

हे महाराज, हमारे अत्यंत योग्य मित्र, तीतर पक्षी।
मुझे संदेह है कि आज का दिन बुरा अंत लेकर आया है:
इस व्यक्ति के पिछले रिकॉर्ड देखकर मुझे डर लगता है।
हमें अपने प्यारे तीतर पक्षी के बारे में बुरी खबर सुनने को मिल सकती है।
फिर शेर ने छठा श्लोक बोला:

उस व्यक्ति का पिछला इतिहास क्या हो सकता है?
और उसने तुम्हारे सामने किन पापों को स्वीकार किया?
आपको इस बात पर संदेह करने के लिए कि कोई दुर्भाग्य हो सकता है
क्या आज कोई विद्वान पक्षी आपसे टकरा गया?
तब बाघ राजा ने उसके उत्तर में शेष छंद दोहराए:

कलिंग भूमि में यात्रा करने वाले विक्रेता के रूप में
वह हाथ में लाठी लिए ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर सफर करता रहा;
वह कलाबाजों के साथ पाया गया है।
और निर्दोष जानवर को जाल में जकड़ लिया है;
पासे के साथ भी अक्सर खेला जाता रहा है।
और उसने छोटे पक्षियों के लिए जाल बिछाए हैं;
भीड़ में लकड़ी की लाठियों से लड़ाई हुई है।
और अनाज को नापकर लाभ की खोज की है:
अपने वादों के प्रति झूठे, आधी रात की लड़ाई में
घायल अवस्था में उसने खून धो डाला:
अपनी बहादुरी के कारण उसके हाथ जल गए।
इतना गर्म खाना कि उसे पकड़ना मुश्किल हो, उसे झटपट उठा लेना।
मैंने सुना था कि वह ऐसा ही जीवन व्यतीत करता था।

उसके सिर पर यही पाप हैं।
और चूंकि हम जानते हैं कि गाय मर चुकी है,
और उसके बालों के बीच पंख दिखाई देते हैं,
मुझे अपने दोस्त तीतर पक्षी से बहुत डर लगता है।
शेर ने उस आदमी से पूछा, "क्या तुमने विद्वान तीतर को मारा?" "जी महाराज, मैंने मारा।" शेर ने उसकी सच्चाई सुनकर उसे जाने देने की ठान ली, लेकिन बाघ राजा ने कहा, "यह दुष्ट मरने लायक ही है," और वहीं उसे अपने दाँतों से नोंच डाला। फिर उसने एक गड्ढा खोदा और उसके शरीर को उसमें फेंक दिया। जब युवा ब्राह्मण घर लौटे, तो उन्हें तीतर नहीं मिला, वे रोते-बिलखते वहाँ से चले गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए कहा, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, प्राचीन काल में देवदत्त ने भी मुझे मारने का प्रयास किया था," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय तपस्वी देवदत्त थे, छिपकली किसागोतमी, बाघ मोग्गल्याण, सिंह सारिपुत्र, विश्वप्रसिद्ध शिक्षक कश्यप और विद्वान तीतर मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) "नग्न तपस्वी"

(2) सुबाहु (बलवान भुजा वाला) बाघ का नाम है। क्रमांक 361 से तुलना करें।

पुस्तक X. दशा-निपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चतु-द्वार-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-439-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 439. (*1)
चतु-द्वार-जातक

"चार द्वार," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक उद्दंड व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। नौवें खंड के पहले जन्म में इन घटनाओं का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। (*2) यहाँ गुरु ने फिर से उस भिक्षु से पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि तुम अवज्ञाकारी हो?" "जी हाँ।" उसने कहा, "बहुत समय पहले, जब तुमने अवज्ञा करके ज्ञानी पुरुषों के अनुरोधों को मानने से इनकार कर दिया था, तो तुम्हें एक तरकश दिया गया था।" और उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बुद्ध कश्यप के समय में, बनारस में एक व्यापारी रहता था, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी और उसका एक पुत्र था जिसका नाम मित्तविन्दक था। इस बालक के माता-पिता ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का मार्ग अपना लिया था, लेकिन वह दुष्ट और नास्तिक था।

समय बीतने पर जब पिता का देहांत हो गया, तो माता, जो उनकी जगह संपत्ति का प्रबंधन कर रही थीं, ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, मनुष्य का सुख भोगना कठिन है (*3); दान करो, सद्गुणों का पालन करो, पवित्र दिनों का पालन करो, और धर्म के मार्ग पर चलो।" तब पुत्र ने कहा, "माता, मेरे लिए कोई दान-पुण्य या ऐसा कुछ नहीं; मुझे कभी भी इसके बारे में मत बताना; जैसा मैं जी रहा हूँ, वैसा ही मेरा भविष्य होगा।" एक पूर्णिमा के पवित्र दिन, जब वह इस प्रकार बोल रहा था, तो उसकी माता ने उत्तर दिया, "पुत्र, यह दिन विशेष रूप से पवित्र है। आज पवित्र दिन की प्रतिज्ञाएँ लो; आश्रम में जाओ, और रात भर धर्म के मार्ग पर चलो, और जब तुम लौट आओगे तो मैं तुम्हें एक हजार सिक्के दूँगी।"

धन की लालसा में पुत्र मान गया। उपवास तोड़ते ही वह बाड़े में चला गया और पूरा दिन वहीं बिताया; परन्तु रात को किसी को भी धर्म के मार्ग का वचन सुनाई न दे, इसलिए वह एक स्थान पर लेट गया और सो गया। अगले दिन, सुबह तड़के, उसने अपना चेहरा धोया और अपने घर जाकर बैठ गया।

अब माँ ने मन ही मन सोचा, "आज सुबह मेरा बेटा धर्म का मार्ग सुनकर भोर में लौट आएगा, और अपने साथ धर्म के मार्ग का उपदेश देने वाले बड़े-बुजुर्ग को भी लाएगा।" इसलिए उसने दलिया, और हर तरह का खाना तैयार किया, और बैठने की व्यवस्था करके उसके आने की प्रतीक्षा करने लगी। जब उसने अपने बेटे को अकेले आते देखा, तो उसने कहा, "बेटा, तू उपदेशक को अपने साथ क्यों नहीं लाया?" — "माँ, मुझे कोई उपदेशक नहीं चाहिए!" उसने कहा। "तो लो," स्त्री ने कहा, "तुम यह दलिया पी लो।" उसने कहा, "माँ, तुमने मुझे हज़ार सिक्के देने का वादा किया था, पहले यह मुझे दे दो, फिर मैं पीऊँगा।" "पहले पी लो, बेटा, फिर तुम्हें पैसे मिलेंगे," उसने कहा, "नहीं, मैं पैसे मिलने तक नहीं पीऊँगा।" तब उसकी माँ ने उसके सामने हज़ार सिक्कों से भरा एक थैला रख दिया। उसने दलिया पिया, हज़ार सिक्कों वाला थैला लिया और अपने काम पर चला गया; और इसी तरह कुछ ही समय में उसने दो मिलियन कमा लिए।

फिर उसके मन में यह विचार आया कि वह एक जहाज़ का इंतज़ाम करे और उससे व्यापार करे। उसने एक जहाज़ का इंतज़ाम किया और अपनी माँ से कहा, "माँ, मैं इस जहाज़ से व्यापार करना चाहता हूँ।" माँ ने कहा, "तुम मेरे इकलौते बेटे हो और इस घर में धन-दौलत की कोई कमी नहीं है; समुद्र खतरों से भरा है। मत जाओ!" लेकिन उसने कहा, "मैं जाऊँगा, और तुम मुझे रोक नहीं सकती।" माँ ने जवाब दिया, "हाँ, मैं तुम्हें रोकूँगी," और उसका हाथ पकड़ लिया; लेकिन उसने उसका हाथ झटक दिया और उसे धक्का देकर गिरा दिया, और पल भर में वह वहाँ से चला गया।

सातवें दिन, मित्तविन्दका के कारण, जहाज गहरे समुद्र में स्थिर हो गया। पर्ची निकाली गई, और तीनों बार पर्ची मित्तविन्दका के हाथ में आई। तब उन्होंने उसे एक बेड़ा दिया; और यह कहते हुए—"एक के लिए बहुतों को मरने न दो," उन्होंने उसे गहरे समुद्र में बहा दिया। पल भर में जहाज तेजी से गहरे समुद्र पर चलने लगा।

और वह अपनी नाव पर सवार होकर एक द्वीप पर पहुँचा। वहाँ एक क्रिस्टल महल में उसने चार मृत स्त्रियों को देखा। वे सात दिन कष्ट में और सात दिन सुख में रहती थीं। उनकी संगति में उसे दिव्य आनंद का अनुभव हुआ। फिर, जब उनके प्रायश्चित का समय आया, तो उन्होंने कहा, "गुरुजी, हम सात दिनों के लिए आपसे विदा ले रहे हैं; हमारे जाने के दौरान, आप यहीं ठहरिए और दुखी मत होइए।" ऐसा कहकर वे चली गईं।

लेकिन वह लालसा से भरा हुआ, फिर से अपनी नाव पर सवार हुआ और समुद्र पार करते हुए एक और छोटे द्वीप पर पहुँचा; वहाँ उसने चाँदी के महल में आठ अन्य आत्माओं को देखा। इसी तरह, उसने एक और द्वीप पर, रत्नों से सजे महल में सोलह आत्माओं को देखा, और एक अन्य द्वीप पर, सोने के हॉल में बत्तीस आत्माओं को देखा। इनके साथ, पहले की तरह, वह दिव्य आनंद में रहा, और जब वे तपस्या के लिए चले गए, तो वह एक बार फिर समुद्र पार चला गया; अंत में उसने चार द्वारों वाला एक शहर देखा, जो एक दीवार से घिरा हुआ था। कहते हैं कि यह उस्सादा नरक है, वह स्थान जहाँ नरक की सजा पाए अनेक प्राणी अपने कर्मों का फल भोगते हैं: लेकिन मित्तविन्दक को वह एक सुंदर शहर जैसा लगा। उसने सोचा, "मैं इस शहर का दर्शन करूँगा और इसका राजा बनूँगा।" तो वह अंदर गया, और वहाँ उसने एक पीड़ा भोगते हुए प्राणी को देखा, जो एक तेज धार वाला पहिया धारण किए हुए था; लेकिन मित्तविन्दक को ऐसा लगा मानो उसके सिर पर रखा वह तेज धार वाला पहिया कमल का फूल हो; उसके सीने पर पाँचों जंजीरें मानो किसी भव्य और कीमती पोशाक जैसी लग रही थीं; उसके सिर से टपकता खून लाल चंदन की सुगंधित धूल जैसा लग रहा था; उसकी कराहने की आवाज़ किसी मधुर गीत जैसी थी। पास आकर उसने कहा, "अरे, मनुष्य! बहुत देर से तुम उस कमल के फूल को ढो रहे हो; अब मुझे दे दो!" उसने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी, यह कमल नहीं, बल्कि एक तेज पत्थर है।" "अरे," पहले ने कहा, "तो तुम ऐसा इसलिए कह रहे हो क्योंकि तुम इसे देना नहीं चाहते?" दोषी ने सोचा: "मेरे पिछले कर्मों का फल मिल चुका होगा। निस्संदेह यह व्यक्ति भी मेरी ही तरह किसी माँ को मारने के लिए यहाँ आया है। ठीक है, मैं इसे तेज पत्थर दे देता हूँ।" फिर उसने कहा, "तो लो, कमल ले लो," और ये कहते हुए उसने तेज पत्थर उसके सिर पर फेंक दिया; और वह उसके सिर पर गिरा, जिससे उसका सिर चकनाचूर हो गया। पल भर में मित्तविन्दक को पता चल गया कि यह एक तेज पहिया है, और वह दर्द से कराहते हुए बोला, "अपना पहिया ले लो, अपना पहिया वापस ले लो!" लेकिन दूसरा पहिया गायब हो चुका था।

उस समय बोधिसत्व अपने विशाल अनुयायियों के साथ उस्सादा नरक का चक्कर लगा रहे थे और उस स्थान पर पहुँचे। उन्हें देखकर मित्तविन्दक ने पुकार कर कहा, "हे देवताओं (देवदूतों) के राजा, यह तेज पहिया मुझे सरसों के दानों को कूटने वाले मूसल की तरह भेद रहा है और चीर रहा है! मैंने क्या पाप किया है?" और यह प्रश्न पूछते हुए उन्होंने इन दो श्लोकों को दोहराया:

"इस लोहे के शहर में चार द्वार हैं, जहाँ मैं फँसा हुआ और पकड़ा हुआ हूँ:
मेरे चारों ओर एक दीवार खड़ी है: मैंने कौन सी बुराई ला दी है?

"अब शहर के द्वार तेजी से बंद हो रहे हैं: यह चक्र मुझे नष्ट कर रहा है:
मुझे पिंजरे में बंद पक्षी की तरह क्यों पकड़ा गया है? हे जिन्पलीन, ऐसा क्यों होना चाहिए?
तब देवदूतों के राजा ने उन्हें यह बात समझाने के लिए ये श्लोक कहे:

"एक लाख, महोदय, आपके स्वामित्व में थे, और बीस की वृद्धि भी थी।"
लेकिन जब कोई मित्र बोले तो तुम उसकी बात ध्यान से नहीं सुनोगे।
"तुम समुद्र पार करके तेजी से भाग निकले, मुझे लगता है यह एक खतरनाक काम था;
चारों, आठ, सीधे मिलने गए, और आठ, सोलह के साथ,
और सोलह से बत्तीस वर्ष की आयु तक; और हमेशा वासना महसूस करती रही।
अब देखो, घोर लालच का फल तुम्हारे सिर पर आ पड़ा है, यह पहिया।
"जो लोग इच्छा के राजमार्ग पर चलते हैं, वह विशाल मार्ग है,
वह विशाल, अतृप्त राजमार्ग, इस पहिए को ढोने का दायित्व उन्हीं का है।
जो अपने धन का त्याग नहीं करेगा, न ही उस मार्ग पर चलेगा,
जो लोग यह नहीं जानते कि ऐसा होना चाहिए, उन्हें ही इस बोझ को उठाना पड़ेगा।
अपने कर्मों के बारे में सोचो और देखो
आपकी संपत्ति कितनी भी अधिक क्यों न हो, उससे कम होने की लालसा न रखें।
अवैध रूप से अर्जित धन का स्वामी; मित्रों की सलाह
ऐसा करो, और पहिया कभी तुम्हारे पास नहीं आएगा।
यह सुनकर मित्तविन्दक ने मन ही मन सोचा, "देवदूतों के इस पुत्र ने मेरे किए का ठीक-ठीक वर्णन कर दिया है। नि:संदेह वह मेरे दंड की मात्रा भी जानता है।" और उसने नौवाँ श्लोक दोहराया:

"हे राक्षस, यह पहिया मेरे सिर पर कब तक रहेगा?"
कितने हजार साल? बता दो, कहीं मेरा सवाल व्यर्थ न हो जाए!
फिर उस महान सत्ता ने दसवें श्लोक में इस विषय को बताया:

"चक्र घूमता रहेगा, और घूमता रहेगा, कोई उद्धारकर्ता प्रकट नहीं होगा।"
हे मिट्टाविंदा, सुनो! यह तुम्हारे सिर पर तब तक टिका रहेगा जब तक तुम मर न जाओ!
ऐसा कहकर, ईश्वर अपने स्थान पर लौट गया, और दूसरा व्यक्ति घोर कष्ट में पड़ गया।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय उद्दंड भाई (भिक्षु) मित्तविन्दक थे, और मैं स्वयं देवताओं (देवदूतों) का राजा था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 82, 104, 369 देखें

(2)सं. 427

(3) पाँच गतियों में से.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कान्हा-जातक**2
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-440-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 440
कान्हा-जातक

"उस आदमी को देखो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) में बरगद के उद्यान में मुस्कुराने के बारे में सुनाई थी।

उस समय कहते हैं कि गुरुदेव अपने भिक्षुओं के समूह के साथ शाम के समय बरगद के उद्यान में टहल रहे थे, तभी एक स्थान पर उन्होंने मुस्कुरा दिया। वरिष्ठ भिक्षु आनंद ने कहा, "भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुरा रहे हैं? तथागत बिना कारण के नहीं मुस्कुराते। मैं उनसे ही पूछूंगा।" आदरपूर्वक उन्होंने इस मुस्कान का कारण पूछा। तब गुरुदेव ने उनसे कहा, "आनंद, पुराने समय में इस स्थान पर कान्हा नामक एक ऋषि रहते थे, जो ध्यान में लीन रहते थे; और उनके पुण्य के बल पर इंद्र का निवास हिल गया था।" लेकिन मुस्कान के बारे में यह बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं थी, इसलिए वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब एक निःसंतान ब्राह्मण थे, जिनके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी। उन्होंने पुण्य व्रत लिए और पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। इस ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ में बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनके काले रंग के कारण उनके जन्मदिवस पर उनका नाम कान्हाकुमार रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में, वे अत्यंत तेजस्वी थे, मानो किसी अनमोल पत्थर की प्रतिमा हों। उनके पिता ने उन्हें तक्षशिला भेज दिया, जहाँ उन्होंने सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और वापस लौट आए। तब उनके पिता ने उनके लिए एक उपयुक्त पत्नी का प्रबंध किया। समय आने पर उन्हें अपने माता-पिता की सारी संपत्ति प्राप्त हुई।

एक दिन, अपने खजाने का निरीक्षण करने के बाद, जब वह अपने भव्य सोफे पर बैठे थे, तो उन्होंने एक सोने की थाली हाथ में ली और उस पर अपने पूर्वजों द्वारा उत्कीर्ण इन पंक्तियों को पढ़ा: "इतनी संपत्ति फलां ने अर्जित की, इतनी दूसरे ने। इस धन को अर्जित करने वाले अब नहीं रहे, परन्तु धन तो अब भी है; उनमें से कोई भी इसे अपने साथ नहीं ले जा सका; हम अपने धन को बांधकर परलोक नहीं ले जा सकते। यह देखते हुए कि यह पंच पापों से जुड़ा है, इस व्यर्थ धन को दान में देना श्रेष्ठ है; यह देखते हुए कि यह भौतिक शरीर अनेक रोगों से जुड़ा है, गुणी लोगों के प्रति आदर और दया दिखाना श्रेष्ठ है; यह देखते हुए कि यह क्षणभंगुर और निरर्थक जीवन सदा परिवर्तनशील है, आध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रयास करना श्रेष्ठ है। अतः मैं इन व्यर्थ खजानों को दान में दे दूंगा, ताकि ऐसा करके मैं श्रेष्ठ भाग को प्राप्त कर सकूं।" अत: वह अपने आसन से उठा और राजा की अनुमति लेकर उसने उदारतापूर्वक दान दिया।

सातवें दिन तक अपनी संपत्ति में कोई कमी न देखकर उन्होंने सोचा, "मेरे लिए धन क्या है? जब तक बुढ़ापा मुझ पर हावी नहीं हुआ है, मैं अभी से ही संन्यास का व्रत लूंगा, अपनी इंद्रियों और योग्यताओं का विकास करूंगा, और ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग (देवदूतों के स्वर्ग) के लिए नियत हो जाऊंगा!" अतः उन्होंने अपने निवास के सभी द्वार खुलवा दिए और सभी को यह सब मुफ्त में देने को कहा; और इसे अपवित्र मानकर अस्वीकार करते हुए, उन्होंने आंखों की सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया, और बहुत से लोगों के रोने-धोने के बीच, शहर छोड़कर हिमालय क्षेत्र की ओर चल दिए। वहां उन्होंने एकांत जीवन को अपनाया; और रहने के लिए एक सुखद स्थान की तलाश करते हुए, उन्हें यह स्थान मिला, और उन्होंने वहीं निवास करने का संकल्प लिया; और भोजन के लिए एक लौकी का वृक्ष चुनकर, वे वहीं बस गए, और उस वृक्ष की जड़ में रहने लगे। वह कभी किसी गाँव में नहीं रहे, बल्कि जंगलों में रहने लगे। उन्होंने कभी पत्तों की झोपड़ी नहीं बनाई, बल्कि इस वृक्ष की तलहटी में, खुले में, बैठे रहते थे, या यदि लेटना चाहते तो ज़मीन पर लेट जाते। वे भोजन पीसने के लिए मूसल का इस्तेमाल नहीं करते थे, केवल दाँतों का उपयोग करते थे, आग पर बिना पकाए भोजन ही खाते थे, और कभी भी छिलके सहित अनाज का एक दाना भी उनके मुँह में नहीं जाता था। वे दिन में एक बार, एक ही बार में भोजन करते थे। ज़मीन पर, मानो वे चारों तत्वों के साथ एक हो गए हों, वे तपस्वी गुणों को अपनाकर जीवन व्यतीत करते थे। उस जन्म में, जैसा कि हम जानते हैं, बोधिसत्व की बहुत कम आवश्यकताएँ थीं।

इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने सभी ज्ञान और योग्यताएँ प्राप्त कर लीं और उस स्थान पर परमानंदमय ध्यान की अवस्था में रहने लगे। जंगली फलों के लिए वे खेतों में दूर तक नहीं जाते थे; जब वृक्ष पर फल लगते थे, तो वे उन्हें खा लेते थे; जब फूल खिलते थे, तो वे फूल खा लेते थे; जब पत्ते उगते थे, तो वे पत्ते खा लेते थे; जब पत्ते नहीं होते थे, तो वे वृक्षों की छाल खा लेते थे। इस प्रकार वे परम संतोष में उस स्थान पर दीर्घकाल व्यतीत करते रहे। जैसे वे सुबह उस वृक्ष के फल तोड़ते थे, वैसे ही कभी लालच में आकर किसी अन्य स्थान से फल नहीं तोड़ते थे। जहाँ वे बैठते थे, वहीं अपना हाथ फैलाकर अपने हाथ की पहुँच में आने वाले सभी फलों को इकट्ठा कर लेते थे; वे उन्हें बिना किसी भेद के, अच्छे और बुरे के बीच अंतर किए बिना, खाते रहते थे। जब वे इसमें आनंद लेते रहे, तो उनके पुण्य के बल पर इंद्र का पीला पत्थर का सिंहासन गर्म हो गया। (वे कहते हैं कि यह सिंहासन तब गर्म हो जाता है जब सक्का (इंद्र) का जीवन अपने अंत की ओर अग्रसर होता है, या जब उसका पुण्य समाप्त हो जाता है और उसका कर्मफल निकल जाता है, या जब कोई शक्तिशाली प्राणी प्रार्थना करता है, या पुरोहितों या सामर्थ्य से परिपूर्ण ब्राह्मणों में सद्गुण के प्रभाव से (*3)।)

तब इंद्र ने सोचा, "अब मुझे कौन हटाएगा?" चारों ओर देखते हुए उन्होंने एक जंगल में एक विशेष स्थान पर ऋषि कान्हा को फल तोड़ते हुए देखा और जाना कि वहाँ घोर तपस्या के ऋषि विराजमान हैं, जिन्होंने अपनी सभी इंद्रियों को वश में कर लिया है; उन्होंने सोचा, "मैं उनके पास जाऊँगा, मैं उनसे तुरही की ध्वनि में धर्म का प्रचार करवाऊँगा, और शांतिदायक उपदेश सुनकर उन्हें वरदान देकर उनके वृक्ष को निरंतर फलदायी बना दूँगा, और फिर मैं यहाँ लौट आऊँगा।" फिर अपनी अपार शक्ति से शीघ्रता से नीचे उतरकर, ऋषि के पीछे उस वृक्ष की जड़ में खड़े होकर, यह परखने के लिए कि क्या ऋषि उनकी कुरूपता का उल्लेख करने पर क्रोधित होंगे, उन्होंने पहला श्लोक कहा:

"उस आदमी को देखो, जो पूरी तरह से काले रंग का है, और इस काले धब्बे पर रहता है।"
उसने जो मांस खाया वह काला था—मेरी आत्मा उसे पसंद नहीं करती!
अंधकारमय कान्हा ने उसकी बात सुनी। "मुझसे कौन बात कर रहा है?" अपनी दिव्य अंतर्दृष्टि से उसने जाना कि यह सक्का (इंद्र) थे; और बिना मुड़े, उन्होंने दूसरे श्लोक से उत्तर दिया:

हे सक्का (इंद्र), यद्यपि तुम काले रंग के हो, फिर भी सच्चे ब्राह्मण हो, देखो:
त्वचा के रंग से नहीं, लेकिन अगर कोई पाप करता है, तो उसे काला होना ही पड़ेगा।
इसके बाद, उन्होंने इन प्राणियों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते हुए, उन पापों की निंदा की जो इन्हें अंधकारमय बनाते हैं, और सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हुए, सक्का (इंद्र) को प्रवचन दिया, और ऐसा लगा मानो उन्होंने आकाश में चंद्रमा को उदय कर दिया हो। उनके प्रवचन को सुनकर सक्का (इंद्र) मोहित और प्रसन्न हो गए, और उन्होंने उस महान प्राणी को वरदान दिया, और तीसरे श्लोक को दोहराया:

"आपने बहुत ही मधुरता से बात की है, ब्राह्मण, आपने बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
यह सुनकर उस महान ऋषि ने मन ही मन सोचा, “मैं जानता हूँ कि यह कैसे हुआ होगा। वह मेरी परीक्षा लेना चाहता था, और देखना चाहता था कि क्या मैं अपनी कुरूपता का जिक्र सुनकर क्रोधित होता हूँ; इसलिए उसने मेरी त्वचा के रंग, मेरे भोजन, मेरे निवास स्थान का उपहास किया; यह देखकर कि मैं क्रोधित नहीं हुआ, वह प्रसन्न हुआ और मुझे वरदान देने का प्रस्ताव रखा; निस्संदेह वह सोचता है कि मैं सक्का (इंद्र) या ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) की शक्ति की लालसा में इस प्रकार जीवन व्यतीत करता हूँ; और अब, उसे आश्वस्त करने के लिए, मुझे ये चार वरदान चुनने होंगे: कि मैं शांत रहूँ, कि मेरे मन में अपने पड़ोसी के प्रति कोई घृणा या द्वेष न हो, और कि मेरे मन में अपने पड़ोसी की महिमा का कोई लालच या वासना न हो।” इस प्रकार सोचते हुए, सक्का (इंद्र) के संदेह को दूर करने के लिए, ऋषि ने इन चार वरदानों का दावा करते हुए चौथा श्लोक बोला:

"सम्मोहन जगत के स्वामी सक्का (इंद्र) ने आशीर्वादों का एक विशेष विकल्प प्रदान किया।"
मैं द्वेष, घृणा, अधिकार की लालसा से मुक्ति चाहता हूँ।
और हर तरह की वासना से मुक्त होना: मैं इन चार वरदानों की कामना करता हूँ।"
इस विचार पर इंद्र ने कहा, "ऋषि कान्हा ने वरदान चुनते समय चार सबसे निष्कलंक वरदान चुने हैं। अब मैं उनसे पूछूंगा कि इन चारों में क्या अच्छा है और क्या बुरा है।" और उन्होंने पाँचवें श्लोक को दोहराते हुए प्रश्न पूछा:

"कामवासना में, घृणा में, अधिकार की लालसा में, द्वेष में, हे ब्राह्मण, कहो
आपको इसमें कौन सी बुरी बात दिखाई देती है? कृपया मुझे इसका उत्तर दें।
“तो सुनो,” उस महान सत्ता ने उत्तर दिया और चार श्लोक कहे:

क्योंकि दुर्भावना से उपजी घृणा छोटी सी शुरुआत से ही बड़ी होती जाती है।
यह हमेशा कड़वाहट से भरा रहता है, इसलिए मैं नफरत नहीं चाहता।
दुष्ट लोगों के साथ हमेशा ऐसा ही होता है: पहले शब्द, फिर स्पर्श।
पहले मुट्ठी, फिर लाठी, और अंत में तलवार का तेज प्रहार:
जहां द्वेष होता है, वहां घृणा उत्पन्न होती है—इसलिए मेरे लिए कोई द्वेष नहीं।
"जब लोग लालच से प्रेरित होकर तेजी से काम करते हैं, तो धोखाधड़ी और छल उत्पन्न होते हैं।"
और बर्बर लूट की तीव्र खोज—इसलिए, किसी चीज पर अधिकार करने की कोई इच्छा नहीं।
"वासना से बंधी जंजीरें दृढ़ होती हैं, जो भरपूर फलती-फूलती हैं।"
दिल के भीतर, कड़वी पीड़ा के लिए—तब मेरे लिए कोई वासना नहीं होगी।"
इस प्रकार अपने प्रश्नों का उत्तर पाकर सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "हे बुद्धिमान कान्हा, आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर बुद्ध की कुशलता से दिया है; मैं आपसे अत्यंत प्रसन्न हूँ; अब कोई दूसरा वरदान चुनिए" और उन्होंने दसवाँ श्लोक दोहराया।

"हे ब्राह्मण, आपने बहुत ही सुंदर बात कही है, उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
तुरंत ही बोधिसत्व ने एक श्लोक दोहराया:

"हे सक्का (इंद्र), समस्त जगत के स्वामी, आपने मुझे एक वरदान दिया है, मैं रो पड़ा।"
मैं जंगल में जहाँ रहता हूँ, जहाँ मैं बिल्कुल अकेला रहता हूँ,
ईश्वर करे कोई भी बीमारी मेरी शांति भंग न करे, न ही मेरे परमानंद (सम्मोहन) को भंग करे।
यह सुनकर इंद्र ने सोचा, "बुद्धिमान कान्हा वरदान चुनते समय भोजन से संबंधित कोई वस्तु नहीं चुनते; वे जो कुछ भी चुनते हैं वह तपस्वी जीवन से संबंधित है।" और अधिक प्रसन्न होकर उन्होंने एक और वरदान जोड़ा और एक और श्लोक पढ़ा:

"हे ब्राह्मण, आपने बहुत ही सुंदर बात कही है, उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
और बोधिसत्व ने अपने वरदान का वर्णन करते हुए अंतिम श्लोक में नियम बताया:

हे सक्का (इंद्र), समस्त जगत के स्वामी, आपने मुझे जो विकल्प चुनने को कहा था, वह यह है:
हे सक्का (इंद्र), मेरी ओर से किसी भी प्राणी को कहीं भी हानि न पहुंचाई जाए।
न शरीर से, न मन से: हे सक्का (इंद्र), यही मेरी प्रार्थना है (*4)।"
इस प्रकार, उस महान प्राणी ने छह अवसरों पर वरदान चुनते समय केवल वही वरदान चुना जो त्याग के जीवन से संबंधित था। वे भली-भांति जानते थे कि शरीर रोगग्रस्त है, और न ही सक्का (इंद्र) इसे दूर कर सकते हैं; न ही सक्का (इंद्र) के पास तीन द्वारों (*5) में जीवों को शुद्ध करने का अधिकार है; फिर भी, उन्होंने यह वरदान इसलिए चुना ताकि वे उन्हें धर्म का उपदेश दे सकें। और सक्का (इंद्र) ने उस वृक्ष को बारहमासी फलदायी बना दिया, और हाथ जोड़कर उनके सिर को स्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम किया और कहा, "यहाँ सदा रोगमुक्त रहो," और अपने स्थान पर चले गए। परन्तु बोधिसत्व ने कभी भी अपनी समाधि (तल्ली) भंग नहीं की, और वे ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों के उच्चतर स्वर्ग) के लिए नियत हो गए।

यह पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने कहा, "आनंद, यही वह स्थान है जहाँ मैं पहले रहता था," और इस प्रकार उन्होंने अपने जन्म का उल्लेख किया: "उस समय अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, और मैं स्वयं ज्ञानी कान्हा था।"

फुटनोट:

(1)अर्थात उसके पास इन भावनाओं से अधिक कोई भावना नहीं थी।

(2) इन तेरह तपस्वी प्रथाओं में पेड़ के नीचे रहना, अकेले रहना, जंगल में रहना, बैठकर सोना शामिल है, जैसा कि पाठ में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

(3) इंद्र के सिंहासन के बारे में: उस समय राजाओं को एक विरासत मिली थी। जब वे उचित न्याय करना नहीं जानते थे, तो न्यायपीठ लात मारने लगती थी, और राजा की गर्दन मुड़ जाती थी जब वह उचित न्याय नहीं करता था।

(4)ये पंक्तियाँ मिलिंडा, पृष्ठ 384 में मिलती हैं।

(5) शरीर, वाणी, मन: वे तीन द्वार जिनसे बुराई प्रवेश करती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कान्हा-जातक2**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-440-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 440

कान्हा-जातक

"उस आदमी को देखो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) में बरगद के उद्यान में मुस्कुराने के बारे में सुनाई थी।

उस समय कहते हैं कि गुरुदेव अपने भिक्षुओं के समूह के साथ शाम के समय बरगद के उद्यान में टहल रहे थे, तभी एक स्थान पर उन्होंने मुस्कुरा दिया। वरिष्ठ भिक्षु आनंद ने कहा, "भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुरा रहे हैं? तथागत बिना कारण के नहीं मुस्कुराते। मैं उनसे ही पूछूंगा।" आदरपूर्वक उन्होंने इस मुस्कान का कारण पूछा। तब गुरुदेव ने उनसे कहा, "आनंद, पुराने समय में इस स्थान पर कान्हा नामक एक ऋषि रहते थे, जो ध्यान में लीन रहते थे; और उनके पुण्य के बल पर इंद्र का निवास हिल गया था।" लेकिन मुस्कान के बारे में यह बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं थी, इसलिए वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने यह पुरानी कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब एक निःसंतान ब्राह्मण थे, जिनके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी। उन्होंने पुण्य व्रत लिए और पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। इस ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ में बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनके काले रंग के कारण उनके जन्मदिवस पर उनका नाम कान्हाकुमार रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में, वे अत्यंत तेजस्वी थे, मानो किसी अनमोल पत्थर की प्रतिमा हों। उनके पिता ने उन्हें तक्षशिला भेज दिया, जहाँ उन्होंने सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया और वापस लौट आए। तब उनके पिता ने उनके लिए एक उपयुक्त पत्नी का प्रबंध किया। समय आने पर उन्हें अपने माता-पिता की सारी संपत्ति प्राप्त हुई।

एक दिन, अपने खजाने का निरीक्षण करने के बाद, जब वह अपने भव्य सोफे पर बैठे थे, तो उन्होंने एक सोने की थाली हाथ में ली और उस पर अपने पूर्वजों द्वारा उत्कीर्ण इन पंक्तियों को पढ़ा: "इतनी संपत्ति फलां ने अर्जित की, इतनी दूसरे ने। इस धन को अर्जित करने वाले अब नहीं रहे, परन्तु धन तो अब भी है; उनमें से कोई भी इसे अपने साथ नहीं ले जा सका; हम अपने धन को बांधकर परलोक नहीं ले जा सकते। यह देखते हुए कि यह पंच पापों से जुड़ा है, इस व्यर्थ धन को दान में देना श्रेष्ठ है; यह देखते हुए कि यह भौतिक शरीर अनेक रोगों से जुड़ा है, गुणी लोगों के प्रति आदर और दया दिखाना श्रेष्ठ है; यह देखते हुए कि यह क्षणभंगुर और निरर्थक जीवन सदा परिवर्तनशील है, आध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रयास करना श्रेष्ठ है। अतः मैं इन व्यर्थ खजानों को दान में दे दूंगा, ताकि ऐसा करके मैं श्रेष्ठ भाग को प्राप्त कर सकूं।" अत: वह अपने आसन से उठा और राजा की अनुमति लेकर उसने उदारतापूर्वक दान दिया।

सातवें दिन तक अपनी संपत्ति में कोई कमी न देखकर उन्होंने सोचा, "मेरे लिए धन क्या है? जब तक बुढ़ापा मुझ पर हावी नहीं हुआ है, मैं अभी से ही संन्यास का व्रत लूंगा, अपनी इंद्रियों और योग्यताओं का विकास करूंगा, और ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग (देवदूतों के स्वर्ग) के लिए नियत हो जाऊंगा!" अतः उन्होंने अपने निवास के सभी द्वार खुलवा दिए और सभी को यह सब मुफ्त में देने को कहा; और इसे अपवित्र मानकर अस्वीकार करते हुए, उन्होंने आंखों की सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया, और बहुत से लोगों के रोने-धोने के बीच, शहर छोड़कर हिमालय क्षेत्र की ओर चल दिए। वहां उन्होंने एकांत जीवन को अपनाया; और रहने के लिए एक सुखद स्थान की तलाश करते हुए, उन्हें यह स्थान मिला, और उन्होंने वहीं निवास करने का संकल्प लिया; और भोजन के लिए एक लौकी का वृक्ष चुनकर, वे वहीं बस गए, और उस वृक्ष की जड़ में रहने लगे। वह कभी किसी गाँव में नहीं रहे, बल्कि जंगलों में रहने लगे। उन्होंने कभी पत्तों की झोपड़ी नहीं बनाई, बल्कि इस वृक्ष की तलहटी में, खुले में, बैठे रहते थे, या यदि लेटना चाहते तो ज़मीन पर लेट जाते। वे भोजन पीसने के लिए मूसल का इस्तेमाल नहीं करते थे, केवल दाँतों का उपयोग करते थे, आग पर बिना पकाए भोजन ही खाते थे, और कभी भी छिलके सहित अनाज का एक दाना भी उनके मुँह में नहीं जाता था। वे दिन में एक बार, एक ही बार में भोजन करते थे। ज़मीन पर, मानो वे चारों तत्वों के साथ एक हो गए हों, वे तपस्वी गुणों को अपनाकर जीवन व्यतीत करते थे। उस जन्म में, जैसा कि हम जानते हैं, बोधिसत्व की बहुत कम आवश्यकताएँ थीं।

इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने सभी ज्ञान और योग्यताएँ प्राप्त कर लीं और उस स्थान पर परमानंदमय ध्यान की अवस्था में रहने लगे। जंगली फलों के लिए वे खेतों में दूर तक नहीं जाते थे; जब वृक्ष पर फल लगते थे, तो वे उन्हें खा लेते थे; जब फूल खिलते थे, तो वे फूल खा लेते थे; जब पत्ते उगते थे, तो वे पत्ते खा लेते थे; जब पत्ते नहीं होते थे, तो वे वृक्षों की छाल खा लेते थे। इस प्रकार वे परम संतोष में उस स्थान पर दीर्घकाल व्यतीत करते रहे। जैसे वे सुबह उस वृक्ष के फल तोड़ते थे, वैसे ही कभी लालच में आकर किसी अन्य स्थान से फल नहीं तोड़ते थे। जहाँ वे बैठते थे, वहीं अपना हाथ फैलाकर अपने हाथ की पहुँच में आने वाले सभी फलों को इकट्ठा कर लेते थे; वे उन्हें बिना किसी भेद के, अच्छे और बुरे के बीच अंतर किए बिना, खाते रहते थे। जब वे इसमें आनंद लेते रहे, तो उनके पुण्य के बल पर इंद्र का पीला पत्थर का सिंहासन गर्म हो गया। (वे कहते हैं कि यह सिंहासन तब गर्म हो जाता है जब सक्का (इंद्र) का जीवन अपने अंत की ओर अग्रसर होता है, या जब उसका पुण्य समाप्त हो जाता है और उसका कर्मफल निकल जाता है, या जब कोई शक्तिशाली प्राणी प्रार्थना करता है, या पुरोहितों या सामर्थ्य से परिपूर्ण ब्राह्मणों में सद्गुण के प्रभाव से (*3)।)

तब इंद्र ने सोचा, "अब मुझे कौन हटाएगा?" चारों ओर देखते हुए उन्होंने एक जंगल में एक विशेष स्थान पर ऋषि कान्हा को फल तोड़ते हुए देखा और जाना कि वहाँ घोर तपस्या के ऋषि विराजमान हैं, जिन्होंने अपनी सभी इंद्रियों को वश में कर लिया है; उन्होंने सोचा, "मैं उनके पास जाऊँगा, मैं उनसे तुरही की ध्वनि में धर्म का प्रचार करवाऊँगा, और शांतिदायक उपदेश सुनकर उन्हें वरदान देकर उनके वृक्ष को निरंतर फलदायी बना दूँगा, और फिर मैं यहाँ लौट आऊँगा।" फिर अपनी अपार शक्ति से शीघ्रता से नीचे उतरकर, ऋषि के पीछे उस वृक्ष की जड़ में खड़े होकर, यह परखने के लिए कि क्या ऋषि उनकी कुरूपता का उल्लेख करने पर क्रोधित होंगे, उन्होंने पहला श्लोक कहा:

"उस आदमी को देखो, जो पूरी तरह से काले रंग का है, और इस काले धब्बे पर रहता है।"
उसने जो मांस खाया वह काला था—मेरी आत्मा उसे पसंद नहीं करती!
अंधकारमय कान्हा ने उसकी बात सुनी। "मुझसे कौन बात कर रहा है?" अपनी दिव्य अंतर्दृष्टि से उसने जाना कि यह सक्का (इंद्र) थे; और बिना मुड़े, उन्होंने दूसरे श्लोक से उत्तर दिया:

हे सक्का (इंद्र), यद्यपि तुम काले रंग के हो, फिर भी सच्चे ब्राह्मण हो, देखो:
त्वचा के रंग से नहीं, लेकिन अगर कोई पाप करता है, तो उसे काला होना ही पड़ेगा।
इसके बाद, उन्होंने इन प्राणियों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते हुए, उन पापों की निंदा की जो इन्हें अंधकारमय बनाते हैं, और सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए, सक्का (इंद्र) को प्रवचन दिया, और ऐसा लगा मानो उन्होंने आकाश में चंद्रमा को उदय कर दिया हो। उनके प्रवचन को सुनकर सक्का (इंद्र) मोहित और प्रसन्न हो गए, और उन्होंने उस महान प्राणी को वरदान दिया, और तीसरे श्लोक को दोहराया:

"आपने बहुत ही मधुरता से बात की है, ब्राह्मण, आपने बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
यह सुनकर उस महान ऋषि ने मन ही मन सोचा, "मैं जानता हूँ कि यह कैसे हुआ होगा। वह मेरी परीक्षा लेना चाहता था, और देखना चाहता था कि क्या मैं अपनी कुरूपता का जिक्र सुनकर क्रोधित होता हूँ; इसलिए उसने मेरी त्वचा के रंग, मेरे भोजन, मेरे निवास स्थान का उपहास किया; यह देखकर कि मैं क्रोधित नहीं हुआ, वह प्रसन्न हुआ और मुझे वरदान देने का प्रस्ताव रखा; निस्संदेह वह सोचता है कि मैं सक्का (इंद्र) या ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) की शक्ति की लालसा में इस प्रकार जीवन व्यतीत करता हूँ; और अब, उसे आश्वस्त करने के लिए, मुझे ये चार वरदान चुनने होंगे: कि मैं शांत रहूँ, कि मेरे मन में अपने पड़ोसी के प्रति कोई घृणा या द्वेष न हो, और कि मेरे मन में अपने पड़ोसी की महिमा का कोई लालच या वासना न हो।" इस प्रकार सोचते हुए, सक्का (इंद्र) के संदेह को दूर करने के लिए, ऋषि ने इन चार वरदानों का दावा करते हुए चौथा श्लोक बोला:

"सम्मोहन जगत के स्वामी सक्का (इंद्र) ने आशीर्वादों का एक विशेष विकल्प प्रदान किया।"
मैं द्वेष, घृणा, अधिकार की लालसा से मुक्ति चाहता हूँ।
और हर तरह की वासना से मुक्त होना: मैं इन चार वरदानों की कामना करता हूँ।"
इस विचार पर इंद्र ने कहा, "ऋषि कान्हा ने वरदान चुनते समय चार सबसे निष्कलंक वरदान चुने हैं। अब मैं उनसे पूछूंगा कि इन चारों में क्या अच्छा है और क्या बुरा है।" और उन्होंने पाँचवें श्लोक को दोहराते हुए प्रश्न पूछा:

"कामवासना में, घृणा में, अधिकार की लालसा में, द्वेष में, हे ब्राह्मण, कहो
आपको इसमें कौन सी बुरी बात दिखाई देती है? कृपया मुझे इसका उत्तर दें।
"तो सुनो," उस महान सत्ता ने उत्तर दिया और चार श्लोक कहे:

क्योंकि दुर्भावना से उपजी घृणा छोटी सी शुरुआत से ही बड़ी होती जाती है।
यह हमेशा कड़वाहट से भरा रहता है, इसलिए मैं नफरत नहीं चाहता।
दुष्ट लोगों के साथ हमेशा ऐसा ही होता है: पहले शब्द, फिर स्पर्श।
पहले मुट्ठी, फिर लाठी, और अंत में तलवार का तेज प्रहार:
जहां द्वेष होता है, वहां घृणा उत्पन्न होती है—इसलिए मेरे लिए कोई द्वेष नहीं।
"जब लोग लालच से प्रेरित होकर तेजी से काम करते हैं, तो धोखाधड़ी और छल उत्पन्न होते हैं।"
और बर्बर लूट की तीव्र खोज—इसलिए, किसी चीज पर अधिकार करने की कोई इच्छा नहीं।
"वासना से बंधी जंजीरें दृढ़ होती हैं, जो भरपूर फलती-फूलती हैं।"
दिल के भीतर, कड़वी पीड़ा के लिए—तब मेरे लिए कोई वासना नहीं होगी।"
इस प्रकार अपने प्रश्नों का उत्तर पाकर सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "हे बुद्धिमान कान्हा, आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर बुद्ध की कुशलता से दिया है; मैं आपसे अत्यंत प्रसन्न हूँ; अब कोई दूसरा वरदान चुनिए" और उन्होंने दसवाँ श्लोक दोहराया।

"हे ब्राह्मण, आपने बहुत ही सुंदर बात कही है, उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
तुरंत ही बोधिसत्व ने एक श्लोक दोहराया:

"हे सक्का (इंद्र), समस्त जगत के स्वामी, आपने मुझे एक वरदान दिया है, मैं रो पड़ा।"
मैं जंगल में जहाँ रहता हूँ, जहाँ मैं बिल्कुल अकेला रहता हूँ,
ईश्वर करे कोई भी बीमारी मेरी शांति भंग न करे, न ही मेरे परमानंद (सम्मोहन) को भंग करे।
यह सुनकर इंद्र ने सोचा, "बुद्धिमान कान्हा वरदान चुनते समय भोजन से संबंधित कोई वस्तु नहीं चुनते; वे जो कुछ भी चुनते हैं वह तपस्वी जीवन से संबंधित है।" और अधिक प्रसन्न होकर उन्होंने एक और वरदान जोड़ा और एक और श्लोक पढ़ा:

"हे ब्राह्मण, आपने बहुत ही सुंदर बात कही है, उत्कृष्ट ढंग से कहा है।"
जो भी आपका मन कहे, वही चुनें—जैसा आपका दिल कहे, इसलिए अपना चुनाव कर लें।"
और बोधिसत्व ने अपने वरदान का वर्णन करते हुए अंतिम श्लोक में नियम बताया:

हे सक्का (इंद्र), समस्त जगत के स्वामी, आपने मुझे जो विकल्प चुनने को कहा था, वह यह है:
हे सक्का (इंद्र), मेरी ओर से किसी भी प्राणी को कहीं भी हानि न पहुंचाई जाए।
न शरीर से, न मन से: हे सक्का (इंद्र), यही मेरी प्रार्थना है (*4)।"
इस प्रकार, उस महान प्राणी ने छह अवसरों पर वरदान चुनते समय केवल वही वरदान चुना जो त्याग के जीवन से संबंधित था। वे भली-भांति जानते थे कि शरीर रोगग्रस्त है, और न ही सक्का (इंद्र) इसे दूर कर सकते हैं; न ही सक्का (इंद्र) के पास तीन द्वारों (*5) में जीवों को शुद्ध करने का अधिकार है; फिर भी, उन्होंने यह वरदान इसलिए चुना ताकि वे उन्हें धर्म का उपदेश दे सकें। और सक्का (इंद्र) ने उस वृक्ष को बारहमासी फलदायी बना दिया, और हाथ जोड़कर उनके सिर को स्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम किया और कहा, "यहाँ सदा रोगमुक्त रहो," और अपने स्थान पर चले गए। परन्तु बोधिसत्व ने कभी भी अपनी समाधि (तल्ली) भंग नहीं की, और वे ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों के उच्चतर स्वर्ग) के लिए नियत हो गए।

यह पाठ समाप्त होने पर, गुरु ने कहा, "आनंद, यही वह स्थान है जहाँ मैं पहले रहता था," और इस प्रकार उन्होंने अपने जन्म का उल्लेख किया: "उस समय अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, और मैं स्वयं ज्ञानी कान्हा था।"

फुटनोट:

(1)अर्थात उसके पास इन भावनाओं से अधिक कोई भावना नहीं थी।

(2) इन तेरह तपस्वी प्रथाओं में पेड़ के नीचे रहना, अकेले रहना, जंगल में रहना, बैठकर सोना शामिल है, जैसा कि पाठ में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

(3) इंद्र के सिंहासन के बारे में: उस समय राजाओं को एक विरासत मिली थी। जब वे उचित न्याय करना नहीं जानते थे, तो न्यायपीठ लात मारने लगती थी, और राजा की गर्दन मुड़ जाती थी जब वह उचित न्याय नहीं करता था।

(4)ये पंक्तियाँ मिलिंडा, पृष्ठ 384 में मिलती हैं।

(5) शरीर, वाणी, मन: वे तीन द्वार जिनसे बुराई प्रवेश करती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चतु-पोसथिका-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-441-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 441

चतु-पोसथिका-जातक

इस जन्म का वर्णन पुन्नक जन्म में किया जाएगा।

***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-442-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 442
शंख-जातक

"हे विद्वान ब्राह्मण," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में सभी आवश्यक वस्तुओं के दान के बारे में सुनाई थी।

श्रावस्ती नगर में, ऐसा कहा जाता है कि तथागत (बुद्ध) के प्रवचन सुनकर एक गृहस्थ शिष्य प्रसन्न हुआ और उसने अगले दिन के लिए निमंत्रण दिया। उसने अपने द्वार पर भव्य रूप से सजा हुआ मंडप बनवाया और यह संदेश भेजा कि समय हो गया है। गुरु पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आए और अपने लिए निर्धारित भव्य आसन पर विराजमान हुए। उस गृहस्थ ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को बहुमूल्य उपहार दिए और उन्हें अगले दिन के लिए फिर से आमंत्रित किया। इस प्रकार सात दिनों तक उसने उन्हें आमंत्रित किया और उपहार दिए, और सातवें दिन उसने सभी भिक्षुओं को उनकी आवश्यक वस्तुएँ भेंट कीं। इस भेंट में उसने विशेष रूप से जूते भेंट किए। बुद्ध को भेंट किए गए जूतों का मूल्य एक हजार सिक्कों के बराबर था, दो मुख्य शिष्यों को भेंट किए गए जूतों का मूल्य पाँच सौ सिक्कों के बराबर था, और शेष पाँच सौ भिक्षुओं में से प्रत्येक को सौ सिक्कों के बराबर जूते दिए गए। भिक्षुओं को उनकी सभी आवश्यक वस्तुएँ भेंट करने के बाद, वह अपने साथियों के साथ भगवान बुद्ध के समक्ष बैठ गया। तब गुरु ने अत्यंत मधुर स्वर में धन्यवाद देते हुए कहा, "हे गृहस्थ, आपका दान अत्यंत उदार है; प्रसन्न होइए। पुराने समय में, बुद्ध के जन्म से पहले, ऐसे लोग थे जिन्होंने पच्चेक बुद्ध को एक जोड़ी जूते दान किए थे और उस दान के फलस्वरूप उन्हें समुद्र में शरण मिली थी, जहाँ कोई शरण नहीं थी; और आपने बुद्ध के पूरे समुदाय को वह सब कुछ दिया है जिसकी एक भिक्षु को आवश्यकता हो सकती है - यह कैसे संभव है कि आपके जूतों का दान आपके लिए शरण का स्रोत न बने?" और उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, इस बनारस का नाम मोलिनी था। जब ब्रह्मदत्त मोलिनी के राजा थे, तब एक धनी ब्राह्मण शंख ने शहर के चारों द्वारों पर एक-एक, शहर के मध्य में एक और अपने घर के पास एक-एक करके छह स्थानों पर भिक्षागृह बनवाए थे। वे प्रतिदिन छह लाख सिक्के दान करते थे और संन्यासियों एवं भिखारियों पर बहुत दया दिखाते थे।

एक दिन उसने मन ही मन सोचा, "मेरी सारी दौलत खत्म हो गई तो मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं बचेगा। अभी जब तक यह बची है, मैं जहाज लेकर सोने के देश के लिए रवाना होऊंगा, जहाँ से मैं धन लेकर लौटूँगा।" इसलिए उसने एक जहाज बनवाया; उसे माल से भर दिया; और पत्नी और बच्चे को विदाई देते हुए कहा, "जब तक मैं वापस न आऊँ, तब तक दान बाँटने में कोई कसर मत छोड़ना।" इतना कहकर उसने अपना छाता उठाया, जूते पहने और अपने नौकरों के साथ, बंदरगाह की ओर मुँह करके, दोपहर के समय रवाना हो गया।

उसी क्षण, गंधमदन पर्वत पर ध्यानमग्न पच्चेक बुद्ध ने धन प्राप्ति के मार्ग पर चल रहे ब्राह्मण को देखा और सोचा, "एक महान व्यक्ति धन प्राप्ति के लिए यात्रा कर रहा है: क्या समुद्र में कोई बाधा होगी या नहीं? - होगी। यदि वह मुझे देखेगा तो मुझे जूते और धूप से बचाव के लिए छाता भेंट करेगा; और जूतों के इस दान के कारण, जब उसका जहाज समुद्र में डूब जाएगा तो उसे शरण मिलेगी। मैं उसकी सहायता करूँगा।" अतः वायु में उड़ते हुए, वे यात्री से कुछ ही दूरी पर उतरे और उससे मिलने के लिए आगे बढ़े, तेज हवा और धूप में जलते अंगारों की तरह गर्म रेत पर पैर रखते हुए। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ पुण्य कमाने का अवसर है; मुझे आज यहाँ एक बीज बोना चाहिए।" अत्यंत प्रसन्न होकर वे उससे मिलने और अभिवादन करने के लिए शीघ्रता से आगे बढ़े। उन्होंने कहा, "महोदय, कृपया कुछ समय के लिए सड़क से हटकर इस वृक्ष के नीचे आ जाएँ।" फिर जब वह व्यक्ति वृक्ष के नीचे आया, तो उसने उसके लिए रेत साफ की, उसका ऊपरी वस्त्र बिछाया और उसे बिठाया; उसने सुगंधित जल से उसके पैर धोए, सुगंधित तेल से उसका लेप किया; उसने अपने पैरों से जूते उतारे, उन्हें साफ किया और सुगंधित तेल से लेप किया और उसे पहना दिए, और उसे जूते और धूप से बचने के लिए छाता भेंट किया, और उससे कहा कि वह एक जूता पहने और दूसरा अपने रास्ते जाते समय सिर पर फैला दे। दूसरे ने उसे प्रसन्न करने के लिए

उपहार स्वीकार किया, और ब्राह्मण ने अपनी आस्था में वृद्धि के लिए उसे देखते हुए, उड़कर गंधमदन की ओर अपने रास्ते पर फिर से चल दिया।

बोधिसत्व प्रसन्न होकर बंदरगाह की ओर बढ़े और जहाज पर सवार हो गए।

जब वे खुले समुद्र में पहुँचे, तो सातवें दिन जहाज में रिसाव हो गया और वे पानी को साफ नहीं कर सके। सभी लोग अपनी जान के डर से जोर-जोर से चिल्लाने लगे और अपने-अपने देवता (देवदूत) को पुकारने लगे। उस महान सत्ता ने अपने लिए एक सहायक चुना और अपने पूरे शरीर पर तेल लगाकर, अपनी इच्छा अनुसार घी में पिसी हुई चीनी खाई, और उस व्यक्ति को भी खाने को देकर, वह मस्तूल पर चढ़ गया। उसने कहा, "उस दिशा में हमारा शहर है"; दिशा बताते हुए और मछलियों और कछुओं के भय को त्यागकर, वह उस व्यक्ति के साथ डेढ़ सौ भुजाओं से भी अधिक दूर समुद्र में गोता लगा गया। बहुत से लोग मारे गए; लेकिन वह महान सत्ता अपने सेवक के साथ समुद्र में आगे बढ़ने लगी। वह सात दिनों तक तैरता रहा। इस दौरान भी उसने पवित्र उपवास रखा और खारे पानी से अपना मुँह धोया।

उस समय मणि-मेखला नामक एक देवी को, जिसका अर्थ रत्न-क्षेत्र है, लोक के चार स्वामियों ने आदेश दिया था, “यदि किसी भी मनुष्य के साथ, जिसने तीन शरणस्थलों की शरण ली हो, या जो सद्‌गुणों से संपन्न हो, या जो अपने माता-पिता की पूजा करता हो, कोई दुर्घटना हो जाए, तो आप उसकी रक्षा करें”; और ऐसे किसी भी व्यक्ति की रक्षा के लिए, देवी ने समुद्र पर विराजमान होकर स्थान ग्रहण किया। अपनी दिव्य शक्ति के कारण वह सात दिनों तक समुद्र की ओर नहीं देखीं, लेकिन सातवें दिन, समुद्र को देखते हुए, उन्होंने गुणी ब्राह्मण शंख को देखा और सोचा, “उस व्यक्ति को समुद्र में फेंके हुए अब सात दिन हो गए हैं: यदि वह मर गया, तो यह मेरा बड़ा दोष होगा।” हृदय से व्याकुल होकर देवी ने एक सोने की थाली में सभी प्रकार के दिव्य मांस भर दिए, और तेज हवा की गति से उसकी ओर बढ़ते हुए, उसके सामने हवा में रुक गईं और बोलीं, “सात दिनों से, ब्राह्मण, तुमने कुछ नहीं खाया है: इसे खाओ!” ब्राह्मण ने उनकी ओर देखा और उत्तर दिया, “अपना भोजन ले जाओ, क्योंकि मैं उपवास कर रहा हूँ।”

उसके पीछे आए उसके सेवक ने देवता को तो नहीं देखा, लेकिन केवल ध्वनि सुनी; और उसने सोचा, "मुझे लगता है कि ब्राह्मण कोमल शरीर का होने और सात दिनों के उपवास के कारण पीड़ा और मृत्यु के भय से बड़बड़ा रहा है; मैं उसे सांत्वना दूंगा।" और उसने पहला श्लोक दोहराया:

हे विद्वान ब्राह्मण, पवित्रता से परिपूर्ण,
अनेक पवित्र शिक्षकों का शिष्य, क्यों?
तर्कहीन होकर व्यर्थ की बकवास करना
जब मेरे सिवा कोई जवाब देने के लिए यहाँ मौजूद ही न हो?
ब्राह्मण ने सुना, और यह जानते हुए कि उसने देवता को नहीं देखा था, उसने कहा, "हे स्वामी, मृत्यु का भय नहीं है; बल्कि मेरे पास यहाँ एक और व्यक्ति है जिससे मैं बात कर सकता हूँ"; और उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

"यह एक सुंदर, दीप्तिमान उपस्थिति है, जिस पर सोने की चमक बिखरी हुई है।"
इससे मुझे पोषण के लिए भोजन मिलता है।
सभी को साहसपूर्वक सोने की थाली में सजाया गया:
मैं उसे पूरे मन से 'नहीं' कहता हूँ।
फिर उस व्यक्ति ने तीसरी पंक्ति दोहराई:

"यदि कोई ऐसे अद्‌भुत प्राणी को देख ले,
मनुष्य को आशापूर्वक आशीर्वाद मांगना चाहिए।
उठो, उससे विनती करो, हाथ जोड़कर:
"बताइए, आप मनुष्य हैं या देवता?"
“तुमने ठीक कहा,” ब्राह्मण ने कहा और चौथे श्लोक को दोहराते हुए अपना प्रश्न पूछा:

"जैसा कि आप मुझे देखते हैं, दयालु तरीके से"
और मुझसे कहो, "यह भोजन लो और खाओ।"
मैं आपसे पूछता हूँ, हे शक्ति में श्रेष्ठ महिला,
मैं पूछता हूँ, क्या तुम देवी हो या स्त्री?
इस पर देवता ने दो श्लोक दोहराए:

मैं शक्ति में श्रेष्ठ देवी हूँ;
और वह मध्य महासागर की ओर आगे बढ़ता गया।
करुणा से परिपूर्ण और हृदय से प्रसन्न,
तुम्हारे लिए इस चरम स्थिति में आया हूँ।
"यहाँ भोजन, पेय और विश्राम स्थल उपलब्ध हैं।"
विभिन्न प्रकार के और कई बार वाहन;
शंख, मैं तुम्हें सर्वस्व का स्वामी बनाता हूँ।
जिसे आपका दिल वांछनीय मान सकता है।
यह सुनकर उस महान प्राणी ने मन ही मन सोचा, "यह देवी (उसने सोचा), सागर के बीच में विराजमान होकर मुझे यह और वह वस्तु भेंट कर रही है। वह मुझे ये वस्तुएँ क्यों भेंट करना चाहती है? क्या यह मेरे किसी पुण्य कर्म के कारण है, या वह अपनी शक्ति से ऐसा कर रही है? खैर, मैं यह प्रश्न पूछूंगा।" और उसने सातवें श्लोक के शब्दों में यह प्रश्न पूछा:

मेरे सभी बलिदानों और भेंटों में से
आप रानी हैं, और शासन करने का अधिकार भी आपका ही है;
सुडौल कमर वाली, सुंदर भौंहों वाली तुम:
मेरे किस कर्म के कारण यह सब हुआ?
देवी ने उसकी बात सुनी और सोचा, "मुझे लगता है कि इस ब्राह्मण ने यह प्रश्न इसलिए पूछा है क्योंकि वह सोचता है कि मुझे नहीं पता कि उसने कौन सा पुण्य कर्म किया है। मैं उसे बता दूंगी।" अतः उन्होंने उसे आठवें श्लोक के शब्दों में बताया:

"एक अकेला, जलते हुए रास्ते पर,"
थके-हारे, पैरों में छाले पड़े हुए, प्यासे होने के बावजूद, तुम वहीं रुके रहे।
हे ब्राह्मण शंख, मुझे चप्पल भेंट करो:
"आज का दिन आपके लिए समृद्धि का उपहार है।"
जब उस महान प्राणी ने यह सुना, तो उसने मन ही मन सोचा, "वाह! इस अथाह सागर में मेरे द्वारा दिया गया जूतों का उपहार मेरे लिए सर्वदान बन गया! आह, पच्चेक बुद्ध को दिया गया मेरा उपहार कितना भाग्यशाली रहा!" फिर, अत्यंत संतोष के साथ, उसने नौवें श्लोक को दोहराया:

"मज़बूत तख्तों से बना एक जहाज हो।"
अनुकूल हवाओं के सहारे तेजी से आगे बढ़ा, समुद्र की लहरों से अप्रभावित;
यहां अन्य वाहनों के लिए कोई जगह नहीं है;
आज ही मुझे मोलिनी ले चलो।
ये शब्द सुनकर देवी अत्यंत प्रसन्न हुईं और उन्होंने सात बहुमूल्य वस्तुओं से निर्मित एक पोत प्रकट किया; उसकी लंबाई आठ सौ भुजाएँ, चौड़ाई छह सौ भुजाएँ और गहराई बीस फ़ैदम (छह फ़ीट) थी; उसमें नीलम के तीन मस्तूल, सोने की रस्सियाँ, चाँदी के पाल और चप्पू एवं पतवार भी सोने के थे। देवी ने इस पोत को सात बहुमूल्य वस्तुओं से भर दिया; फिर ब्राह्मण को आलिंगन देकर उसे उस भव्य पोत पर बिठा दिया। उन्होंने सेवक पर ध्यान नहीं दिया; परन्तु ब्राह्मण ने उसे अपने सौभाग्य का एक हिस्सा दे दिया; वह प्रसन्न हुआ, देवी ने उसे भी आलिंगन दिया और पोत पर बिठा दिया। फिर उन्होंने पोत को मोलिनी नगर की ओर ले जाकर, इस समस्त धन को ब्राह्मण के घर में रखकर अपने निवास स्थान पर लौट गईं।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से अंतिम श्लोक कहा:

वह प्रसन्न, आनंदित और प्रसन्न थी।
एक अद्भुत पोत प्रकट हुआ;
फिर, अपने सेवक के साथ शंखा को लेकर,
उस सबसे सुंदर शहर ने उन्हें करीब ला दिया।
और वह ब्राह्मण जीवन भर घर में ही रहा, असीम उदारता का वितरण करता रहा और सद्गुणों का पालन करता रहा; और अपने जीवन के अंत में वह अपने पति के साथ स्वर्ग चला गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: सत्यों की व्याख्या के बाद, गृहस्थ ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया: और इस प्रकार उसने जन्म की पहचान की; "उस समय उप्पलावन्ना देवता थे, आनंद सेवक थे, और मैं स्वयं ब्राह्मण शंख था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्ल-बोधि-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-443-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 443
कुल्ला-बोधि-जातक। (*1)

“यदि कोई आवेशित हो जाए,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक आवेशित व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। यह व्यक्ति संन्यासी बनने के बाद, मोक्ष (निर्वाण) के समस्त आशीर्वादों की ओर ले जाने वाले मार्ग का अनुसरण करते हुए, अपने आवेश पर नियंत्रण नहीं रख पा रहा था: वह आवेशित और द्वेषपूर्ण था; ज़रा सी बात पर वह क्रोधित हो जाता, आवेश में आ जाता, कड़वे और हठी स्वभाव का हो जाता। गुरु ने उसके आवेशित व्यवहार के बारे में सुनकर उसे बुलवाया और पूछा कि क्या यह सच है कि वह आवेशित है, जैसा कि अफवाह थी? “जी, महाराज,” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया। “भाई (भिक्षु),” गुरु ने कहा, “आवेश को नियंत्रित करना चाहिए; ऐसे दुष्ट का न तो इस लोक में और न ही परलोक में कोई स्थान है। परम बुद्ध, जो आवेशित नहीं हैं, उनके मोक्ष (निर्वाण) मार्ग को अपनाने के बाद भी तुम आवेशित क्यों हो? प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुष, यहाँ तक कि वे भी जिन्होंने हमारे मार्ग से भिन्न संन्यासी मार्ग अपनाया, क्रोध से दूर रहे।” और उन्होंने उसे एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, काशी नामक एक नगर में एक धनी, समृद्ध और संपत्ति संपन्न ब्राह्मण रहता था, परन्तु उसकी पत्नी पुत्र की कामना करती थी। उसी समय ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों) से अवतरित बोधिसत्व उस स्त्री के गर्भ में उत्पन्न हुए; और उनके नामकरण के दिन उनका नाम बोधिकुमार रखा गया। जब वे वयस्क हुए तो तक्षशिला गए, जहाँ उन्होंने सभी विद्याओं का अध्ययन किया; और घर लौटने पर, उनकी इच्छा के विरुद्ध, उनके माता-पिता ने उनके लिए उसी जाति के परिवार से एक कन्या का विवाह किया। वह कन्या भी ब्रह्मा के लोक (परमलोक) से इस लोक में अवतरित हुई थी और अप्सरा के समान अत्यंत सुंदर थी। इन दोनों का विवाह हुआ, यद्यपि दोनों में से किसी की भी इच्छा नहीं थी। दोनों ने कभी कोई पाप नहीं किया था, और न ही प्रेम-प्रसंग में एक-दूसरे की ओर दृष्टि डाली थी; यहाँ तक कि स्वप्न में भी उन्होंने कभी प्रेम-प्रसंग नहीं किया था, वे इतने पवित्र थे।

कुछ समय बाद, जब उनके माता-पिता का देहांत हो गया और उन्होंने उनके पार्थिव शरीरों का विधिवत अंतिम संस्कार कर दिया, तब उस महान पुरुष ने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा, "हे देवी, आप यह अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति ले लीजिए और सुखमय जीवन व्यतीत कीजिए।" - "नहीं, बल्कि आप, महाराज।" उन्होंने कहा, "मुझे धन की कोई इच्छा नहीं है; मैं हिमालय क्षेत्र में जाकर संन्यासी बन जाऊंगा और वहीं शरण पाऊंगा।" - "अच्छा, महाराज, क्या केवल पुरुषों को ही तपस्वी जीवन जीना चाहिए?" "नहीं," उन्होंने कहा, "स्त्रियों को भी।" "तो मैं आपकी इस व्यर्थ की बात को नहीं मानूंगा; मुझे धन की उतनी ही परवाह नहीं है जितनी आपको, और मैं भी आपकी ही तरह संन्यासी जीवन व्यतीत करूंगा।"

“बहुत अच्छा, महिला,” उसने कहा। और उन दोनों ने बड़ी मात्रा में दान दिया; और एक रमणीय स्थान पर जाकर उन्होंने एक आश्रम बनाया। वहाँ वे दस वर्षों तक जंगली फलों को इकट्ठा करके खाते रहे, फिर भी उन्हें समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हुई।

और वहां दस वर्षों तक तपस्वी जीवन के सुख में रहने के बाद, वे नमक और मसाले प्राप्त करने के लिए देश भर में यात्रा करते हुए, उचित समय पर बनारस पहुंचे, जहां वे शाही उद्यान में रहने लगे।

एक दिन राजा ने हाथ में उपहार लेकर आए उद्यान-रक्षक को देखकर कहा, "हम अपने उद्यान में आनंद मनाएंगे, इसलिए इसे व्यवस्थित करो।" उद्यान की सफाई और उसे तैयार करने के बाद, राजा अपने कई सेवकों के साथ उसमें प्रवेश कर गया। उस समय ये दोनों भी उद्यान के एक भाग में बैठे हुए थे और संन्यासी जीवन के आनंद में लीन थे। राजा जब उद्यान से गुजर रहा था, तो उसने उन दोनों को वहाँ बैठे देखा; और जैसे ही उसकी दृष्टि इस सुंदर और मनमोहक स्त्री पर पड़ी, वह उससे प्रेम करने लगा। इच्छा से कांपते हुए, उसने यह

जानने का निश्चय किया कि वह उस तपस्वी के लिए क्या है; इसलिए बोधिसत्व के पास जाकर उसने उनसे यह प्रश्न पूछा। बोधिसत्व ने कहा, "महाराज, वह मेरे लिए कुछ भी नहीं है; वह केवल मेरे संन्यासी जीवन की सहचर है, परन्तु संसार में रहते हुए वह मेरी पत्नी थी।" यह सुनकर राजा मन ही मन सोचने लगा, "तो वह कहता है कि वह उसके लिए कुछ भी नहीं है, जबकि सांसारिक जीवन में वह उसकी पत्नी थी। अच्छा, अगर मैं अपनी संप्रभु शक्ति से उसे छीन लूँ तो वह क्या करेगा? मैं उसे ले ही लूँगा।" और इस प्रकार पास आकर उसने पहली पंक्ति दोहराई:

"यदि कोई उस बड़ी-बड़ी आँखों वाली महिला को पकड़कर आपसे दूर ले जाए,
हे ब्राह्मण, जो वहां मुस्कुराते हुए बैठा है, तुम क्या करोगे?
इस प्रश्न के उत्तर में, उस महान सत्ता ने दूसरे श्लोक को दोहराया:

"एक बार उठ खड़ा होने के बाद, यह जीवन भर मुझे कभी नहीं छोड़ेगा, बिल्कुल भी नहीं।"
जैसे बारिश की बौछार धूल को फिर से बिछा देती है, वैसे ही उसे बुझा दो जब वह अभी छोटी हो।
इस प्रकार महान सत्ता ने सिंह की दहाड़ के समान बुलंद स्वर में उत्तर दिया। यद्यपि राजा ने यह सुना, फिर भी अज्ञानता और कुकर्म के आवेश में आकर उसका हृदय मोहित हो गया और उसने अपने एक दरबारी को आदेश दिया, "कि वह उस स्त्री को महल में ले जाए।" दरबारी ने आज्ञाकारी होकर, उसके बार-बार कहने और रोने के बावजूद कि अराजकता और अन्याय ही संसार का मार्ग है, उसे अपने साथ ले गया। बोधिसत्व ने उसकी चीखें सुनीं, एक बार देखा और फिर नहीं देखा। इस प्रकार रोती-बिलखती हुई उसे महल ले जाया गया।

बनारस के राजा ने अपने उद्यान में देर नहीं की, बल्कि तुरंत अंदर लौट आए और उस स्त्री को बुलवाकर उसका बहुत सम्मान किया। उसने ऐसे सम्मान की निरर्थकता और एकांत जीवन के एकमात्र महत्व के बारे में बताया। राजा ने देखा कि वह किसी भी तरह से उसका मन नहीं जीत सकते, इसलिए उन्होंने उसे एक अलग कमरे में रखवाया और सोचने लगे, "यह एक तपस्वी स्त्री है जिसे इस सम्मान की कोई परवाह नहीं है, और उस साधु ने तो तब भी क्रोधित दृष्टि नहीं डाली जब वह पुरुष इतनी सुंदर स्त्री को अपने साथ ले गया! साधुओं का आकर्षण बहुत गहरा होता है; वह अवश्य ही कोई साजिश रचेगा और मुझे नुकसान पहुंचाएगा। अच्छा, मैं उसके पास वापस जाऊंगा और पता लगाऊंगा कि वह वहां क्यों बैठा है।" और इस प्रकार, वह शांत नहीं रह सके और उद्यान में चले गए।

बोधिसत्व अपना लबादा सिल रहे थे। राजा लगभग अकेले ही, बिना किसी आहट के, दबे पांव आए। राजा की ओर देखे बिना ही, दूसरे बोधिसत्व अपना काम करते रहे। राजा ने सोचा, "यह व्यक्ति मुझसे बात नहीं कर रहा है क्योंकि वह क्रोधित है। यह पाखंडी तपस्वी पहले तो दहाड़ता है, 'मैं क्रोध को बिल्कुल भी उत्पन्न नहीं होने दूंगा, लेकिन यदि यह उत्पन्न हुआ, तो मैं इसे शुरुआत में ही कुचल दूंगा,' और फिर क्रोध में इतना अड़ियल हो जाता है कि मुझसे बात तक नहीं करता!" इसी विचार के साथ राजा ने तीसरा श्लोक दोहराया:

तुम जो कुछ समय पहले तक शेखी बघारने में माहिर थे,
अब तुम गुस्से में आकर चुपचाप बैठो और सिलाई करो!
जब उस महान सत्ता ने यह सुना, तो उसने समझा कि राजा उसे क्रोध के कारण चुप समझ रहा है; और यह दिखाने की इच्छा से कि वह क्रोध से प्रभावित नहीं है, उसने चौथे श्लोक को दोहराया:

"एक बार उठने के बाद, इसने मुझे कभी नहीं छोड़ा, और यह मुझे कभी नहीं छोड़ेगा।"
जैसे ही बारिश की बौछार धूल को फिर से बिछा देती है, मैंने उसे तब बुझा दिया जब वह छोटी थी।"
ये शब्द सुनकर राजा ने सोचा, "क्या वह क्रोध की बात कर रहा है, या किसी और बात की? मैं उससे पूछूंगा।" और उसने पाँचवें श्लोक को दोहराते हुए प्रश्न पूछा:

"ऐसी कौन सी चीज है जो जीवन भर आपको कभी नहीं छोड़ती, कभी भी नहीं?"
जब बारिश की बौछार धूल को फिर से उड़ा देती है, तो उस छोटी सी चीज ने तुम्हारी प्यास बुझाई थी?
दूसरे ने कहा, "महाराज, इस प्रकार क्रोध बहुत दुख और विनाश लाता है; यह मेरे भीतर अभी-अभी शुरू हुआ था, लेकिन दयालु भावनाओं को पोषित करके मैंने इसे शांत कर दिया," और फिर उसने क्रोध के दुख के बारे में सिखाने के लिए निम्नलिखित छंदों को दोहराया।

"वह चीज जिसके बिना मनुष्य स्पष्ट रूप से नहीं देख पाता, जिसके सहारे वह अंधाधुंध आगे बढ़ता रहता है।"
मेरे भीतर क्रोध उत्पन्न हुआ, लेकिन उसे मुक्त नहीं होने दिया गया—मूर्खता से पोषित क्रोध।
"हमारे प्रतिद्वंद्वियों को किस बात से संतुष्टि मिलती है, जो हमारे सिर पर कष्ट लाना चाहते हैं?"
मेरे भीतर क्रोध उत्पन्न हुआ, लेकिन उसे मुक्त नहीं होने दिया गया—मूर्खता से पोषित क्रोध।

"जो चीज हमारे भीतर जागृत हो जाए तो वह हमारे आध्यात्मिक कल्याण के प्रति पूरी तरह से अंधा कर देती है।"
मेरे भीतर क्रोध उत्पन्न हुआ, लेकिन वह मुक्त नहीं हो सका—अधर्म, जिसका पोषण कुकर्म ने किया।
"वह जो सर्वोच्च रूप से प्रत्येक महान आशीर्वाद को नष्ट कर देता है,"
जिसके कारण इसके शिकार हर अच्छी चीज को त्याग देते हैं।
शक्तिशाली, विनाशकारी, अपने भय के झुंड के साथ,
हे महान राजा, क्रोध ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा!
"ईंधन को हिलाने और पलटने से आग और भी ऊंची उठेगी।"
और क्योंकि आग ऊपर उठती है, इसलिए ईंधन भी जल जाता है।
और इस प्रकार मूर्ख के मन में, जो व्यक्ति विवेक नहीं कर सकता,
झगड़े से क्रोध उत्पन्न होता है, और उसी से व्यक्ति स्वयं भी जल उठेगा।
जिसका क्रोध ईंधन और घास से जलती हुई आग की तरह बढ़ता है,
जैसे अंधकारमय पखवाड़े में चंद्रमा का रंग घटता है, वैसे ही उसका सम्मान भी घटता-बढ़ता रहता है।
जो व्यक्ति अपने क्रोध को शांत कर लेता है, वह उस आग की तरह हो जाता है जिसे ईंधन नहीं मिलता।
जैसे शुक्ल पक्ष में चंद्रमा चमकता है, वैसे ही उनका सम्मान भी बढ़ता जाता है।
जब राजा ने उस महान व्यक्ति का प्रवचन सुना, तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने अपने एक दरबारी को उस स्त्री को वापस लाने का आदेश दिया; और उस भावहीन संन्यासी को उस उद्यान में उसके साथ एकांत जीवन का आनंद लेने के लिए आमंत्रित किया, और वादा किया कि वह उनकी रक्षा करेगा और उनकी देखभाल करेगा। फिर क्षमा मांगकर उसने विनम्रतापूर्वक विदा ली। और वे दोनों वहीं रहने लगे। कुछ समय बाद स्त्री की मृत्यु हो गई, और उसकी मृत्यु के बाद, वह पुरुष हिमालय लौट गया, और अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित करते हुए, और अपने भीतर श्रेष्ठता को उत्पन्न करते हुए, वह ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) के लिए नियत हो गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई;--(अब सत्यों के समापन पर भावुक भाई (भिक्षु) तीसरे मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए)--"उस समय राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) तपस्वी थीं, आनंद राजा थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1)अनानुसोसिया-जातक, संख्या 328

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कान्हादीपायन-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-444-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 444
कन्हादीपायना-जातक

"सात दिन," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक धर्मभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इस घटना का वर्णन कुश जन्म (*1) के अंतर्गत किया जाएगा। जब गुरु ने पूछा कि क्या यह कथन सत्य है, और उस व्यक्ति ने कहा कि यह सत्य है, तो उन्होंने कहा, "भाई, बुद्ध के उदय से पहले, पुराने समय में, यहाँ तक कि वे बुद्धिमान लोग भी जिन्होंने पचास वर्षों से अधिक समय तक धर्मविहीन (सन्यासी) जीवन व्यतीत किया, अपनी संवेदनशील प्रकृति के संदेहों के कारण कभी किसी को अपने धर्मभ्रष्ट होने की बात नहीं बताई; और तुम, जिसने हमारे जैसे मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले धर्म (धार्मिक मार्ग) को अपनाया है, और जो मुझ जैसे पूजनीय बुद्ध की उपस्थिति में खड़े हो, तुमने अपने धर्मभ्रष्ट होने की बात चारों प्रकार के शिष्यों के सामने क्यों बताई? तुम अपने संदेहों को क्यों नहीं छिपाते?" ऐसा कहकर उन्होंने एक प्राचीन कथा सुनाई।

एक समय की बात है, वंश राज्य में कोसंबी (*2) नामक एक राजा का शासन था, जिसका नाम कोसंबिका था। उस समय एक नगर में दो ब्राह्मण रहते थे, जिनमें से प्रत्येक के पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) धन था, और वे एक दूसरे के घनिष्ठ मित्र थे। कामवासना के दुराचार को जानकर, उन्होंने बहुत सी संपत्ति दान में दी और संसार त्याग दिया। अनेक लोगों के विलाप के बीच वे हिमालय चले गए और वहाँ एक आश्रम बनाया। वहाँ वे पचास वर्षों तक तपस्वी जीवन व्यतीत करते रहे, जहाँ भी उन्हें वनों के फल और जड़ें मिलतीं, उन्हें खाकर अपना जीवन व्यतीत करते रहे; परन्तु वे समाधि की अवस्था को प्राप्त करने में असमर्थ रहे।

पचास वर्ष बीत जाने के बाद, वे नमक और मसाले लेने के लिए देश भर में तीर्थयात्रा पर निकले और काशी राज्य में पहुँचे। इस राज्य के एक नगर में मांडव्य नामक एक गृहस्थ रहता था, जो तपस्वी दिपायन का गृहस्थ जीवन में मित्र था। हमारे दोनों मित्र मांडव्य के पास गए; उन्हें देखकर मांडव्य मुग्ध हो गया और उसने उनके लिए पत्तों की एक कुटिया बनाई और उन्हें जीवन की चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। वे तीन-चार ऋतुओं तक वहाँ रहे और फिर दिपायन से विदा लेकर बनारस की तीर्थयात्रा पर चले गए, जहाँ वे अतिमुत्तक वृक्षों से आच्छादित एक कब्रिस्तान में रहने लगे। जब दिपायन वहाँ अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय तक रहे, तो वे अपने पुराने मित्र के पास लौट आए; दूसरा तपस्वी मांडव्य अभी भी उसी स्थान पर रहता था। (*3)

एक दिन एक लुटेरा शहर में चोरी करके लौट रहा था और अपने साथ काफी सारा माल लेकर जा रहा था। घर के मालिक और पहरेदार जाग उठे और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे, "चोर!"। लुटेरा उनके पीछे भागते हुए नाले से निकल गया और कब्रिस्तान के पास से तेज़ी से भागते हुए उसने अपना गट्ठा तपस्वी की कुटिया के दरवाज़े पर गिरा दिया। जब घर के मालिकों ने गट्ठा देखा, तो वे चिल्लाए, "अरे, बदमाश! तू रात में लुटेरा है और दिन में तपस्वी का वेश धारण करके घूमता है!" इसलिए, उसे गालियाँ और मारते-पीटते हुए वे राजा के सामने ले गए।

राजा ने कोई पूछताछ नहीं की, बल्कि केवल इतना कहा, "इसे ले जाओ, इसे खंभे पर लटका दो!" वे उसे श्मशान ले गए और बबूल की लकड़ी के खंभे पर खड़ा कर दिया; लेकिन खंभा तपस्वी के शरीर में नहीं घुसा। फिर वे नीम की लकड़ी का खंभा लाए, लेकिन यह भी उसे नहीं भेद पाया: फिर लोहे का कीला लाया गया, और वह भी उसके शरीर में नहीं घुसा। तपस्वी को आश्चर्य हुआ कि उसके किस पिछले कर्म के कारण ऐसा हुआ होगा, और उसने अतीत का अवलोकन किया; तब उसे पूर्व जन्मों का ज्ञान प्राप्त हुआ, और इस तरह अतीत का अवलोकन करते हुए उसने देखा कि उसने बहुत पहले क्या किया था; और वह यह था - आबनूस की लकड़ी के टुकड़े पर मक्खी को चुभना।

कहा जाता है कि पिछले जन्म में वह एक बढ़ई का पुत्र था। एक बार वह उस स्थान पर गया जहाँ उसका पिता पेड़ काटने का काम करता था, और उसने आबनूस की लकड़ी के टुकड़े से एक मक्खी को इस प्रकार छेद दिया जैसे उसे सूली पर चढ़ा रहा हो। और यही पाप उसके जीवन के अंतिम क्षण में उसके सामने आया। उसने महसूस किया कि अब पाप से मुक्ति पाना असंभव है; इसलिए उसने राजा के सैनिकों से कहा, "यदि तुम मुझे सूली पर चढ़ाना चाहते हो, तो आबनूस की लकड़ी का एक खंभा ले आओ।" उन्होंने ऐसा ही किया, उसे उस पर गाड़ दिया और एक पहरेदार को उसकी निगरानी के लिए छोड़कर चले गए।

छुपकर पहरेदार उसे देखने आने वाले सभी लोगों पर नज़र रख रहे थे। अब दिपायन ने सोचा, "अपने तपस्वी साथी को देखे हुए बहुत समय हो गया है," और उसे ढूंढने आया। उसने सुना कि वह दिन भर सड़क किनारे सूली पर लटका रहा है, तो वह उसके पास गया और एक तरफ खड़े होकर पूछा कि उसने क्या किया है। "कुछ नहीं," उसने कहा। "क्या तुम द्वेष भाव से बच सकते हो या नहीं?" दूसरे ने पूछा। "हे मित्र," उसने कहा, "न तो मुझे पकड़ने वालों के प्रति, न ही राजा के प्रति, मेरे मन में कोई द्वेष है।" - "यदि ऐसा है, तो इतने गुणी व्यक्ति की छाया मुझे सुखद लगती है," और ये कहकर वह सूली के किनारे बैठ गया। फिर मांडव्य के शरीर से उसके शरीर पर रक्त की बूंदें गिरीं; और ये बूंदें सुनहरी त्वचा पर गिरकर सूख गईं, जिससे उसे कान्हा या काला दिपायन नाम मिला। और वह पूरी रात वहीं बैठा रहा।

अगले दिन पहरेदार राजा के पास गए और उन्हें सारी बात बताई। राजा ने कहा, "मैंने जल्दबाजी में काम किया है।" वे तुरंत उस स्थान पर पहुँचे और दिपायन से पूछा कि वह सूली के पास क्यों बैठा है। दिपायन ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं यहाँ उसकी रक्षा के लिए बैठा हूँ। लेकिन बताइए, उसने ऐसा क्या किया है या क्या नहीं किया है कि आप उसके साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हैं?" दिपायन ने बताया कि मामले की जाँच नहीं हुई है। दूसरे ने उत्तर दिया, "महाराज, राजा को सावधानी से काम लेना चाहिए; एक आलसी गृहस्थ जो सुख-सुविधाओं में लिप्त रहता है, अच्छा नहीं होता," और इसी तरह की अन्य नसीहतें देते हुए उसने दिपायन को समझाया।

जब राजा को पता चला कि मांडव्य निर्दोष है, तो उसने सूली निकालने का आदेश दिया। लेकिन लाख कोशिश करने पर भी सूली नहीं निकली। मांडव्य ने कहा, "महाराज, मुझे बहुत पहले किए गए एक अपराध के लिए यह घोर अपमान सहना पड़ा है, और मेरे शरीर से सूली निकालना असंभव है। लेकिन यदि आप मेरी जान बचाना चाहते हैं, तो एक आरी लाएँ और इसे त्वचा के बराबर काट दें।" राजा ने ऐसा ही करवाया; और सूली का वह हिस्सा उसके शरीर में ही रह गया। क्योंकि कहते हैं कि उस पिछली घटना में उसने हीरे का एक

छोटा टुकड़ा लेकर मक्खी की नलिका में छेद कर दिया था, जिससे वह तब भी नहीं मरी और न ही अपने जीवन के अंत तक; और इसलिए वह आदमी भी नहीं मरा, ऐसा कहा जाता है।

राजा ने उन तपस्वियों को प्रणाम किया और क्षमा मांगी; उन्हें अपने उद्यान में ठहराकर उनकी देखभाल की। तब से मांडव्य को पेग वाला मांडव्य कहा जाने लगा। वह राजा के पास ही इस स्थान पर रहने लगा; और दीपायान ने अपने मित्र के घाव को ठीक करने के बाद अपने गृहस्थ मित्र मांडव्य के पास वापस गया। जब उन्होंने उसे पत्तिपर्ण-शैतान में प्रवेश करते देखा, तो उन्होंने यह बात उसके मित्र को बताई। यह सुनकर वह प्रसन्न हुआ; और अपनी पत्नी और बच्चे के साथ, ढेर सारी सुगंध, मालाएं, तेल, चीनी आदि लेकर वह पत्तिपर्ण-शैतान के पास आया; दीपायान का अभिवादन करके, उसके पैर धोकर और मालिश करके, उसे पानी पिलाकर, वह पेग वाले मांडव्य की कहानी सुनने बैठ गया। फिर उसका पुत्र, यन्ना-दत्त नामक एक युवक, ढके हुए रास्ते के अंत में गेंद से खेल रहा था। वहाँ एक चींटी के टीले में एक साँप रहता था। लड़के की गेंद जमीन पर गिरी और चींटी के टीले के छेद में जाकर साँप पर जा गिरी। यह जाने बिना, लड़के ने अपना हाथ छेद में डाल दिया। क्रोधित साँप ने लड़के के हाथ पर काट लिया; साँप के विष की तीव्रता से वह बेहोश होकर गिर पड़ा। यह देखकर उसके माता-पिता ने अपने बेटे को साँप से काटा हुआ पाया, उसे उठाया और तपस्वी के पास ले गए; उसे तपस्वी के चरणों में रखकर उन्होंने कहा, "हे प्रभु, धार्मिक लोग औषधीय जड़ी-बूटियों और मंत्रों को जानते हैं; कृपया हमारे बेटे का इलाज करें।" - "मैं किसी औषधीय जड़ी-बूटी को नहीं जानता; मैं चिकित्सक नहीं हूँ।" - "आप धर्मी (धार्मिक) व्यक्ति हैं। तो कृपया इस लड़के पर दया करें, और सत्य का कार्य करें।" "अच्छा," तपस्वी ने कहा, "मैं सत्य का कार्य करूँगा।" और यन्ना-दत्ता के सिर पर हाथ रखकर उन्होंने पहला श्लोक पढ़ा:-

"सात दिन मैंने शांत हृदय से शुद्ध होकर , पुण्य की कामना करते हुए बिताए:
तब से लेकर पचास वर्षों तक,
स्वार्थ में डूबे हुए, मैं
यहाँ अनिच्छा से जी रहा हूँ:
ईश्वर करे यह सत्य आशीर्वाद दे:
विष दूर हो जाए, बालक पुनर्जीवित हो जाए!"

जैसे ही यन्ना-दत्ता ने सत्य का यह कार्य किया, उसके सीने से विष निकला और ज़मीन में समा गया। बालक ने आँखें खोलीं और अपने माता-पिता की ओर देखकर "माँ!" कहकर पुकारा, फिर करवट बदलकर लेट गया। तब काले दिपायन ने पिता से कहा, "देखो, मैंने अपनी शक्ति का प्रयोग कर लिया है; अब तुम्हारी बारी है।" पिता ने उत्तर दिया, "तो मैं भी सत्य का कार्य करूँगा"; और अपने पुत्र की छाती पर हाथ रखकर उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

"यदि मैं उपहारों की जरा भी परवाह न करता,
सभी आने-जाने वालों का स्वागत करता,
तब भी भले और बुद्धिमान लोग यह नहीं जानते कि
मैं अपने सच्चे स्वरूप को नियंत्रित कर रहा था;
यदि मैं अनिच्छा से देता हूँ,
तो यह सत्य आशीर्वाद दे,
विष दूर हो जाए, और लड़का पुनर्जीवित हो जाए!"

सत्य के इस कार्य के बाद, उसकी पीठ से विष निकला और ज़मीन में समा गया। लड़का उठ बैठा, लेकिन खड़ा नहीं हो सका। तब पिता ने माता से कहा, "देवी, मैंने अपनी शक्ति का प्रयोग कर लिया है; अब सत्य के कार्य द्वारा अपने पुत्र को उठाकर चलने योग्य बनाना आपकी ज़िम्मेदारी है।" माता ने कहा, "मुझे भी एक सत्य कहना है, लेकिन आपकी उपस्थिति में मैं उसे नहीं कह सकती।" पिता ने कहा, "देवी, किसी भी तरह से मेरे पुत्र को स्वस्थ कर दीजिए।" माता ने उत्तर दिया, "ठीक है," और उनके सत्य के कार्य का वर्णन तीसरे छंद में किया गया है।

"मेरे बेटे, आज जिस साँप ने तुम्हें
गड्ढे में काटा,
और तुम्हारा यह पिता, मैं
अपनी उदासीनता में कहता हूँ, एक ही हैं:
यह सत्य आशीर्वाद दे:
विष निकल जाए, बेटा फिर से जीवित हो जाए!"

सत्य के इस कार्य के होते ही, सारा विष गिरकर जमीन में समा गया; और यन्नादत्त, विष से पूरी तरह मुक्त होकर उठ खड़े हुए और खेलने लगे। जब पुत्र इस प्रकार उठ खड़ा हुआ, तो मांडव्य ने चौथे श्लोक में दिपायन के मन में चल रही बातों के बारे में पूछा:

"जो शांत और संयमित होते हैं, वे संसार को त्याग देते हैं,
कान्हा को छोड़कर, बाकी सभी अनिच्छुक होते हैं;
दीपायना, आपको पीछे हटने के लिए क्या प्रेरित करता है, और आप
अनिच्छा से पवित्रता के मार्ग पर क्यों चलते हैं?"
इसका उत्तर देने के लिए, दूसरे ने पाँचवाँ छंद दोहराया:

वह संसार को छोड़ देता है, और फिर वापस लौट आता है;
"एक मूर्ख, एक बेवकूफ!" ऐसा कोई सोच सकता है:-
यही बात मुझे पीछे हटने पर मजबूर करती है,
इस प्रकार मैं पवित्र मार्ग पर चलता हूँ, यद्यपि मुझमें इच्छा की कमी है,
मेरे अच्छे कर्मों का कारण यह है--
(*4) बुद्धिमानों द्वारा अच्छे मनुष्य के जीवन की प्रशंसा की जाती है।"
इस प्रकार अपने विचार को स्पष्ट करने के बाद, उन्होंने छठे श्लोक में मांडव्य से एक बार फिर पूछा:

"यह तुम्हारा घर मात्र (*5) था,
जिसमें भोजन और पेय का भंडार था:
ऋषि, तीर्थयात्री, ब्राह्मण यहाँ
प्यास और भूख मिटाते थे।
क्या तुम्हें किसी बदनामी का डर था, फिर भी
तुम दे रहे थे, अपनी इच्छा के विरुद्ध?"
फिर मांडव्य ने सातवें श्लोक में अपने विचारों को स्पष्ट किया:

"मेरे पिता और दादा पवित्र थे,
दान देने में सबसे उदार थे;
और मैंने
अपने पूर्वजों के जीवन जीने के तरीके का पूरी सावधानी से पालन किया;
अन्यथा मैं पतित हो जाता।
मैंने अनिच्छा से दान दिए।"
यह कहने के बाद, मांडव्य ने अपनी पत्नी से आठवें श्लोक के शब्दों में एक प्रश्न पूछा:

"जब मैं एक अपरिपक्व युवती थी और
तुम्हें तुम्हारे घर से अपनी पत्नी बनाने के लिए लाई थी, तब
तुमने मुझे अपनी उदासीनता नहीं बताई,
कि कैसे तुमने अपना सारा जीवन बिना प्रेम के बिताया।
तो फिर, हे सुंदर स्त्री, तुम क्यों रुकी रहीं
और मेरे साथ इस प्रेमहीन तरीके से रहीं?"
और उसने नौवें श्लोक को दोहराकर उसे उत्तर दिया:

"इस परिवार में विवाहित पत्नी का नया साथी चुनने का रिवाज नहीं है ,
न ही कभी रहा है; और मैं इस रिवाज का
पालन करना चाहती हूँ, अन्यथा मुझे पतित कहा जाएगा।
इसी डर से मैंने
तुम्हारे साथ इस प्रेमहीन तरीके से रहने का फैसला किया है।"

लेकिन जब यह कहा गया, तो उसके मन में एक विचार आया, "मेरा रहस्य मेरे पति को पता चल गया है, वह रहस्य जो पहले कभी किसी को नहीं पता था! वह मुझसे नाराज़ होंगे; मैं इस तपस्वी, हमारे विश्वासपात्र के सामने क्षमा मांगूंगी।" और इसी उद्देश्य से उसने दसवां श्लोक दोहराया:

"अब मैंने वो बात कह दी है जो नहीं कहनी चाहिए थी:
हमारे बेटे की खातिर मुझे क्षमा कर दिया जाए।
माता-पिता के प्यार से बढ़कर कुछ नहीं है;
हमारा यान्ना-दत्ता जीवित है, जो मानो मर ही गया था!"
“उठो, देवी,” मांडव्य ने कहा, “मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। अब से मेरे प्रति कठोर मत होना; मैं तुम्हें कभी दुखी नहीं करूँगा।” बोधिसत्व ने मांडव्य को संबोधित करते हुए कहा, “अवैध धन इकट्ठा करने और यह विश्वास न करने में कि उदारतापूर्वक दान करने से फल मिलता है, तुमने पाप किया है। भविष्य में दान के पुण्य में विश्वास रखो और दान करो।” दूसरे ने भी यही प्रतिज्ञा की और बोधिसत्व से कहा, “महोदय, आपने स्वयं पाप किया है जब आपने अपनी इच्छा के विरुद्ध पवित्रता के मार्ग पर चलते हुए हमारे दान स्वीकार किए। अब ताकि आपके कर्मों का भरपूर फल मिले, आप भविष्य में शांत हृदय और शुद्ध, परमानंद से परिपूर्ण होकर पवित्रता के मार्ग पर चलें।” तब उन्होंने उस महान सत्ता से विदा ली और प्रस्थान कर गए।

उस समय से पत्नी अपने पति से प्रेम करने लगी; मांडव्य ने शांत हृदय से श्रद्धापूर्वक दान दिया; बोधिसत्व ने अपनी अनिच्छा को दूर करते हुए परमानंद की क्षमता विकसित की और ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) के लिए नियत हो गए।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट व्यक्ति प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया:) और जन्म का वर्णन किया:- "उस समय आनंद मांडव्य थे, विशाखा उनकी पत्नी थीं, राहुल पुत्र थे, सारिपुत्र खूंटी के मांडव्य थे, और मैं स्वयं काला दीपायना था।"

फुटनोट:

(1)सं. 531.

(2)गंगा पर.

(3) इस भ्रामक कथा में, मांडव्य तपस्वियों में से एक का नाम है और गृहस्थ का भी, दीपायना दूसरे तपस्वी का नाम है।

(4)या, बुद्धिमान और अच्छे धर्म की प्रशंसा की जाती है।

(5) इस शब्द का अर्थ संभवतः सार्वजनिक घर हो सकता है: दोनों ही "पीने की जगह" (अवपना) हैं।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **निग्रोध-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-445-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 445
निग्रोध-जातक

“वह कौन है?”, इत्यादि – यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में देवदत्त के बारे में सुनाई थी। एक दिन भिक्षुओं ने उनसे कहा, “मित्र देवदत्त, गुरु आपके लिए अत्यंत सहायक हैं! गुरु से ही आपने शिष्यों का पवित्र क्रम प्राप्त किया है, छोटे-बड़े सभी; आपने त्रिपिटक (बुद्ध के सभी उपदेशों का तीन भागों वाला संग्रह) और बुद्ध की वाणी को सीखा है; आपने अपने भीतर समाधि (सम्मोहन) की अवस्था उत्पन्न की है; दशबल (बुद्ध) (*1) की महिमा और लाभ आपके हैं।” यह कहते हुए उन्होंने घास का एक तिनका उठाया और कहा, “मुझे कोई लाभ नहीं दिखता जो तपस्वी गौतम (बुद्ध) ने मेरे लिए किया हो, इतना भी नहीं!” उन्होंने सत्य के हॉल में इस पर चर्चा की। जब गुरु आए, तो

उन्होंने पूछा कि वे सब बैठकर क्या बातें कर रहे थे। उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है, बल्कि बहुत पहले भी देवदत्त अपने मित्रों के प्रति कृतघ्न और विश्वासघाती था।" और उन्होंने उन्हें पुराने समय की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, राजगृह नगरी में मगध नामक एक महान राजा का शासन था। उस नगरी के एक व्यापारी ने अपने पुत्र के लिए किसी ग्रामीण व्यापारी की पुत्री को विवाह के बंधन में बांधा। परन्तु वह बांझ थी। समय बीतने के साथ-साथ इस कारण उसका सम्मान कम होता गया; सब लोग उससे कहते थे, “जब तक हमारे पुत्र के घर में बांझ पत्नी रहेगी, वंश कैसे चलेगा?” यह बात बार-बार उसके कानों तक पहुँचती रही, उसने मन ही मन सोचा, “ठीक है, मैं गर्भवती होने का नाटक करूँगी और सबको धोखा दूँगी।” इसलिए उसने अपनी एक भली-भांति अनुभवी दाई से पूछा, “गर्भावस्था के दौरान स्त्रियाँ क्या करती हैं?” और जब उसे गर्भावस्था के दौरान क्या करना चाहिए, यह बताया गया (*2), तो उसने अपने मासिक धर्म का समय छुपाया; खट्टे और विचित्र स्वादों का शौक दिखाया; जब उसके हाथ-पैर सूजने लगे, तो उसने उन्हें तब तक हाथों, पैरों और पीठ पर पीटने को कहा जब तक कि वे सूज न जाएँ; वह दिन-प्रतिदिन अपने शरीर को चिथड़ों और कपड़ों से लपेटती रही और उसे बड़ा दिखाने का प्रयास करती रही; उसने अपने स्तनों के निप्पल काले कर लिए थे; और उस नर्स के अलावा किसी और को अपने कमरे में आने की अनुमति नहीं दी। उसके पति ने भी उसकी स्थिति के अनुसार उसका पूरा ख्याल रखा। इस तरह नौ महीने बीत जाने के बाद, उसने घर लौटने और अपने पिता के घर में बच्चे को जन्म देने की इच्छा जताई। इसलिए अपने पति के माता-पिता से विदा लेकर, वह एक रथ पर सवार हुई और कई परिचारिकाओं के साथ राजगृह शहर को पीछे छोड़कर सड़क पर चल पड़ी।

उसके आगे एक काफिला चल रहा था; और वह हमेशा नाश्ते के समय उस जगह पहुँच जाती जहाँ से वह काफिला अभी-अभी गया था। एक रात, उस काफिले की एक गरीब औरत ने बरगद के पेड़ के नीचे एक बेटे को जन्म दिया; और यह सोचकर कि काफिले के बिना उसका गुजारा नहीं चलेगा, लेकिन अगर वह जीवित रही तो उसे बच्चे को गोद लेने का मौका मिल जाएगा, उसने बच्चे को उसी हालत में ढक दिया और उसे बरगद के पेड़ के नीचे वहीं छोड़ दिया। और पेड़ के देवता ने उसकी देखभाल की; वह कोई साधारण बच्चा नहीं था, बल्कि स्वयं बोधिसत्व उस रूप में संसार में आए थे।

नाश्ते के समय बाकी यात्री भी वहाँ पहुँच गए। वह स्त्री, अपनी दाई के साथ, बरगद के पेड़ की छाँव में श्रृंगार के लिए अलग गई, तो उसने वहाँ सुनहरे रंग का एक शिशु देखा। थोड़ी देर बाद उसने दाई को पुकार कर बताया कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है; उसने अपने पेट से पट्टियाँ खोलीं और कहा कि यह शिशु उसका अपना है और उसने अभी-अभी उसे जन्म दिया है।

परिचारकों ने तुरंत उसे एकांत में रखने के लिए एक तम्बू खड़ा किया और अत्यंत प्रसन्नता से राजगृह नगर को पत्र भेजा। उसके पति के माता-पिता ने उत्तर में लिखा कि चूंकि शिशु का जन्म हो चुका है, इसलिए अब उसे अपने पिता के घर जाने की आवश्यकता नहीं है; वह वापस लौट सकती है। अतः वह तुरंत राजगृह नगर लौट आई। और उन्होंने शिशु को स्वीकार किया: और जब शिशु का नामकरण करने का समय आया, तो उसका नाम उसके जन्मस्थान के नाम पर निग्रोध-कुमार रखा गया, जिसका अर्थ है मास्टर बरगद। उसी दिन, एक व्यापारी की बहू, अपने पिता के घर प्रसव के लिए लौटते समय, एक वृक्ष की शाखाओं के नीचे एक पुत्र को जन्म दिया; और उन्होंने उसका नाम शाखा-कुमार रखा। और उसी दिन, इस व्यापारी के यहाँ काम करने वाले एक दर्जी की पत्नी ने उसके कपड़ों के बीच एक पुत्र को जन्म दिया; और उन्होंने उसका नाम पोट्टिका रखा।

उस महान व्यापारी ने इन दोनों बच्चों को, क्योंकि वे स्वामी बनयान के जन्मदिन पर पैदा हुए थे, बुलवाया और उन्हें अपने साथ पाला-पोसा।

वे सब एक साथ पले-बढ़े और धीरे-धीरे अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए तक्षशिला चले गए। दोनों व्यापारियों के बेटों के पास अपने शिक्षक को शुल्क के रूप में देने के लिए दो हजार सिक्के थे; मास्टर बनयान ने पोट्टिका को अपने संरक्षण में शिक्षा प्रदान की।

जब उनकी शिक्षा पूरी हो गई, तो उन्होंने अपने शिक्षक से विदा ली और देशवासियों के रीति-रिवाज सीखने के इरादे से उन्हें छोड़कर चले गए; और यात्रा करते-करते वे बनारस पहुँचे और एक मंदिर में विश्राम करने के लिए लेट गए। बनारस के राजा की मृत्यु को सात दिन हो चुके थे। ढोल बजाकर पूरे शहर में यह घोषणा की गई कि अगले दिन उत्सव का रथ तैयार किया जाएगा। तीनों साथी एक पेड़ के नीचे सो रहे थे, तभी भोर में पोट्टिका जाग उठी और उठकर बरगद के पैर खुजलाने लगी। उस पेड़ पर कुछ मुर्गे बैठे थे, और सबसे ऊपर वाले मुर्गे ने नीचे वाले मुर्गे पर बीट गिरा दी (*3)। "मुझ पर क्या गिरा?" उस मुर्गे ने पूछा। "गुस्सा मत होइए, साहब," दूसरे ने उत्तर दिया, "मैंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया।" "ओह, तो आपको लगता है कि मेरा शरीर आपकी बीट के लिए जगह है! आप मेरी अहमियत नहीं जानते, यह तो साफ है!" इस पर दूसरे ने कहा, "अरे, अब भी गुस्सा हो, जबकि मैंने कहा था कि मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था! और तुम्हारी अहमियत क्या है, बताओ ना?" - "जो कोई मुझे मारकर मेरा मांस खाएगा, उसे आज सुबह ही हज़ार सिक्के मिलेंगे! क्या यह गर्व

की बात नहीं है?" "छी, छी," दूसरे ने कहा, "ऐसी छोटी सी बात पर गर्व! अरे, अगर कोई मुझे मारकर मेरी चर्बी खाएगा, तो वह आज सुबह ही राजा बन जाएगा; जो बीच का मांस खाएगा, वह सेनापति बनेगा; और जो हड्डियों के आसपास का मांस खाएगा, वह कोषाध्यक्ष बनेगा!"

यह सब पोट्टिका ने सुन लिया। "हजारों सिक्के—" उसने सोचा, "यह क्या है? राजा बनना ही सबसे अच्छा है!" तो वह धीरे से पेड़ पर चढ़ गया, ऊपर बैठे मुर्गे को पकड़ा, उसे मार डाला और अंगारों में पकाया; चर्बी उसने बरगद को दी, बीच का मांस शाखा को दिया, और खुद हड्डियों के आसपास का मांस खा लिया। जब वे खा चुके, तो उसने कहा, "बरगद, महाराज, आज आप राजा होंगे; शाखा, महाराज, आप सेनापति होंगे; और मैं, मैं कोषाध्यक्ष हूँ!" उन्होंने उससे पूछा कि उसे कैसे पता चला; उसने उन्हें बताया।

दिन के पहले भोजन के समय के आसपास, वे बनारस नगर में प्रवेश कर गए। एक ब्राह्मण के घर पर उन्होंने घी और चीनी के साथ चावल की दलिया का भोजन किया; और फिर नगर से निकलकर वे राजमहल में प्रवेश कर गए।

बरगद एक पत्थर की पटिया पर लेट गया, बाकी दो उसके बगल में लेट गए। संयोग से उसी समय राजसी प्रतीक (*4) से सुसज्जित औपचारिक रथ रवाना किया जा रहा था। (इसका विस्तृत विवरण महाजनक जन्म (*5) में दिया जाएगा।) रथ आ पहुँचा और रुककर उनके प्रवेश के लिए तैयार खड़ा हो गया। पुजारी ने मन ही मन सोचा, "यहाँ कोई महान पुण्यात्मा उपस्थित होना चाहिए!" वह उद्यान में दाखिल हुआ और उस युवक को देखा; फिर उसके पैरों से कपड़ा हटाकर उसने उन पर बने निशानों को देखा। उसने कहा, "अरे वाह, यह तो बनारस ही नहीं, पूरे भारत का राजा बनने वाला है!" और उसने सभी घंटियों और झांझों को एक साथ बजाने का आदेश दिया।

बरगद जाग उठा और उसने अपने चेहरे से कपड़ा हटा दिया, और देखा कि उसके चारों ओर भीड़ जमा है! वह मुड़ा और एक-दो पल के लिए लेटा रहा; फिर उठा और पैर मोड़कर बैठ गया। पुजारी एक घुटने पर गिर पड़ा और बोला, "हे ईश्वर, यह राज्य आपका है!" "ऐसा ही हो," युवक ने कहा; पुजारी ने उसे कीमती रत्नों के ढेर पर बिठाया और उसे राजा का ताज पहनाया।

इस प्रकार राजा बनने पर, उसने अपने मित्र शाखा को सेनापति का पद दिया और बड़े धूमधाम से शहर में प्रवेश किया; और पोट्टिका (*6) उनके साथ गई।

उस दिन से महान सत्ता ने बनारस में न्यायपूर्वक शासन किया।

एक दिन उसे अपने माता-पिता की याद आ गई; और शाखा से उसने कहा, "महोदय, माता-पिता के बिना जीना असंभव है; बहुत सारे लोगों को साथ लेकर उन्हें बुला लाओ।" लेकिन शाखा ने मना कर दिया; उसने कहा, "यह मेरा काम नहीं है।" तब उसने पोट्टिका को यह काम करने को कहा। पोट्टिका मान गया, और बनयान के माता-पिता के पास जाकर उन्हें बताया कि उनका बेटा राजा बन गया है, और उनसे विनती की कि वे उसके पास आएं। लेकिन उन्होंने यह कहते हुए मना कर दिया कि उनके पास शक्ति और धन है: बस बहुत हो गया, वे नहीं जाएंगे। उसने शाखा के माता-पिता को भी आने के लिए कहा, और उन्होंने भी वहीं रहना पसंद किया; और जब उसने अपने माता-पिता को आमंत्रित किया, तो उन्होंने कहा, "हम सिलाई का काम करके गुजारा करते हैं; बस बहुत हो गया," और बाकी लोगों की तरह मना कर दिया।

उनकी इच्छा पूरी न कर पाने के कारण वह बनारस लौट आया। उसने सोचा कि बनयान से मिलने से पहले वह सेनापति के घर में यात्रा की थकान से विश्राम कर लेगा, इसलिए वह उसी घर की ओर चल पड़ा।

“कमांडर-इन-चीफ को बता दो,” उसने द्वारपाल से कहा, “कि उसका साथी पोट्टिका यहाँ है।” उस आदमी ने वैसा ही किया। लेकिन ब्रांच को उससे द्वेष था, क्योंकि उसने कहा कि उस आदमी ने अपने साथी बनयान को राज्य दे दिया था, खुद को छोड़कर; इसलिए यह संदेश सुनकर वह क्रोधित हो गया। “सचमुच साथी! कौन है उसका साथी? एक पागल नीच देहाती! उसे पकड़ो!” तो उन्होंने उसे पीटा, लात मारी, लात-घूंसे मारे और कोहनी-पैर से घूंसे मारे, फिर उसका गला पकड़कर उसे फेंक दिया।

“ब्रांच ने मेरे ज़रिए सेनापति का पद हासिल किया, और अब वह कृतघ्न और द्वेषपूर्ण है, उसने मुझे पीटा और मुझे त्याग दिया। लेकिन बनयान एक बुद्धिमान, कृतज्ञ और नेक इंसान है, और मैं उसी के पास जाऊँगा।” अतः वह राजा के द्वार पर गया और राजा को संदेश भेजा कि उसका साथी पोट्टिका द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है। राजा ने उसे अंदर बुलाया और जैसे ही उसने उसे आते देखा, वह अपनी कुर्सी से उठकर उससे मिलने गया और स्नेहपूर्वक उसका अभिवादन किया; उसने उसकी दाढ़ी बनवाई और उसकी देखभाल की, उसे हर तरह के आभूषण पहनाए, फिर उसे हर प्रकार का स्वादिष्ट भोजन कराया; और यह सब करने के बाद, वह उसके साथ आदरपूर्वक बैठा और उसके माता-पिता के बारे में पूछा, जिन्होंने दूसरे के बताए अनुसार आने से इनकार कर दिया था।

अब शाखा ने मन ही मन सोचा, "पोटिका राजा के कान में मेरी निंदा करेगी, लेकिन अगर मैं वहाँ रहा तो वह कुछ बोल नहीं पाएगा"; इसलिए वह भी वहाँ चला गया। और पोटिका ने राजा की उपस्थिति में ही उससे कहा, "महाराज, जब मैं यात्रा से थक गया था, तो मैं शाखा के घर गया, यह सोचकर कि पहले वहाँ विश्राम कर लूँ और फिर आपसे मिलने आऊँ। लेकिन शाखा ने कहा, "मैं उसे नहीं जानता!" और मुझ पर विपत्ति आ पड़ी, और उसने मुझे गर्दन से पकड़कर खींच लिया! क्या आप विश्वास कर सकते हैं!" और इन शब्दों के साथ उसने कविता के तीन छंद कहे:

"वह आदमी कौन है? मैं उसे नहीं जानता! और उस आदमी का पिता कौन है?"
"वह आदमी कौन है?" तब सखा ने कहा:- निग्रोधा, तुम क्या सोचती हो?
"तब सखा के कहने पर उसके आदमियों ने मेरे चेहरे पर घूंसे बरसाए।"
और उसने मेरा गला पकड़कर मुझे उस जगह से बाहर फेंक दिया।
"ऐसा छल-कपट किसी दुष्ट व्यक्ति को ही करना चाहिए!"
हे राजा, कृतघ्न होना शर्म की बात है—और वह तुम्हारा साथी भी!
यह सुनकर बनयान ने चार श्लोक पढ़े:

मुझे नहीं पता, और न ही मैंने कभी किसी से इस बारे में सुना है।
आप बताइए कि सखा ने अब तक ऐसा कोई बुरा काम किया है या नहीं।
तुम मेरे और सखा के साथ रहे हो; हम दोनों तुम्हारे साथी थे;
आपने मानवजाति के बीच अपने साम्राज्य का एक हिस्सा हम सभी को दिया है:
हमें आपकी कृपा से ही यह गौरव प्राप्त हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है।
"जैसे आग में बीज फेंकने पर वह जल जाता है और उग नहीं पाता;
बुरे लोगों के साथ भलाई करो, फिर भी वह व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है।
"कृतज्ञ, भले और गुणी लोग, ऐसे लोग नहीं होते;
अच्छी मिट्टी में बोए गए बीज और अच्छे लोगों के कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाते।
जब बनयान ये पंक्तियाँ पढ़ रहा था, तब शाखा वहीं स्थिर खड़ी रही। तब राजा ने उससे पूछा, "अच्छा, शाखा, क्या तुम इस पोत्तिका को पहचानते हो?" वह चुप रहा। और राजा ने आठवें श्लोक के शब्दों में उस व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा:

"इस निकम्मे गद्दार को पकड़ो, जिसके विचार इतने बुरे हैं;
उसे भाले से मार डालो! क्योंकि मैं उसे मरते हुए देखना चाहता हूँ—उसकी जान मेरे लिए कुछ भी मायने नहीं रखती!
लेकिन पोत्तिका ने यह सुनकर मन ही मन सोचा—"मेरे लिए इस मूर्ख को मरने मत दो!" और नौवां श्लोक बोला:

"हे महान राजा, दया करो! एक बार जीवन चला गया तो उसे वापस लाना कठिन है।"
हे प्रभु, क्षमा कर दे और उसे जीने दे! मैं उस देहाती व्यक्ति को कोई कष्ट नहीं देना चाहता।
जब राजा ने यह सुना, तो उसने ब्रांच को क्षमा कर दिया; और वह पोट्टिका को सेनापति का पद देना चाहता था, पर पोट्टिका ने मना कर दिया। तब राजा ने उसे कोषाध्यक्ष का पद दिया, और इसके साथ ही उसे सभी व्यापारी संघों का न्यायाधीश भी बना दिया। इससे पहले ऐसा कोई पद नहीं था, लेकिन इसके बाद यह पद हमेशा के लिए अस्तित्व में आ गया। और कुछ समय बाद, शाही कोषाध्यक्ष पोट्टिका को पुत्र और पुत्रियाँ हुईं, और उसने उनकी सलाह पर अंतिम श्लोक कहा:

"निग्रोधा के साथ निवास करना चाहिए;"
सखा की सेवा करना ठीक नहीं है।
निग्रोधा की मृत्यु के साथ बेहतर
"साखा के साथ सांस लेने से बेहतर है।"

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "तो, भिक्षुओं, आप देख सकते हैं कि देवदत्त पहले कृतघ्न था," और फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, देवदत्त सखा थे, आनंद पोत्तिका थे, और मैं स्वयं निग्रोध था।"

फुटनोट:

(1)बुद्ध; "वह जो दस शक्तियों का स्वामी है।"

(2) यह एक धार्मिक अनुष्ठान हो सकता है।

(3) क्रमांक 284 में मुर्गों का प्रकरण पहले ही आ चुका है।

(4) तलवार, छाता, मुकुट, चप्पल, पंखा।

(5) संख्या 539

(6) इसके बाद उन्हें कई बार पोट्ठिया कहा जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तक्कड-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-446-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 446
तक्कला-जातक

"यहाँ बल्ब नहीं हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में एक गृहस्थ व्यक्ति के बारे में सुनाई थी जो अपने पिता का सहारा था।

हमें पता चलता है कि इस व्यक्ति का पुनर्जन्म एक जरूरतमंद परिवार में हुआ था। अपनी माता की मृत्यु के बाद, वह सुबह जल्दी उठकर मुँह साफ करने के लिए दाँत साफ करने वाली टहनियाँ और पानी तैयार करता था; फिर मजदूरी करके या खेतों में हल चलाकर चावल की दलिया जुटाता था और इस तरह अपने पिता का भरण-पोषण उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार करता था। उसके पिता ने उससे कहा, "बेटा, घर के सारे काम तुम अकेले करो। मैं तुम्हारे लिए एक पत्नी ढूँढ देता हूँ, वह तुम्हारे लिए घर का सारा काम कर देगी।" - "पिताजी," उसने कहा, "अगर घर में औरतें आ जाएँगी तो न तो मुझे और न ही आपको मन की शांति मिलेगी। कृपया ऐसा सपना भी मत देखिए! जब तक आप जीवित हैं, मैं आपका भरण-पोषण करूँगा; और आपके जाने के बाद, मुझे पता होगा कि क्या करना है।"

लेकिन पिता ने अपने बेटे की इच्छा के विरुद्ध एक लड़की को बुलवाया; और वह अपने पति और उसके पिता की देखभाल करने लगी; पर वह एक नीच स्वभाव की महिला थी। अब उसका पति अपने पिता की सेवा करने के कारण उससे प्रसन्न था; और जो कुछ भी उसे प्रसन्न करने के लिए मिलता, वह उसे लाकर देता; और वह उसे अपने ससुर को भेंट करती। एक समय ऐसा आया जब उस स्त्री ने सोचा, "मेरे पति को जो कुछ भी मिलता है, वह मुझे दे देता है, लेकिन अपने पिता को कुछ नहीं। यह स्पष्ट है कि उसे अपने पिता की कोई परवाह नहीं है। मुझे किसी तरह अपने पति को बूढ़े से अलग करना होगा, और फिर मैं उसे घर से निकाल दूंगी।" इसलिए उस समय से उसने उसके लिए पानी को कभी ठंडा तो कभी गर्म करना शुरू कर दिया, और खाने में कभी बहुत नमक डालती तो कभी बिल्कुल नहीं, और चावल कभी सख्त तो कभी गीला परोसती; और इस तरह वह उसे चिढ़ाने के लिए हर संभव प्रयास करती। फिर, जब वह क्रोधित हो जाता, तो वह उसे डांटती: "इस बूढ़े की सेवा कौन करेगा!" और झगड़ा शुरू कर देती। वह ज़मीन पर थूकती और फिर अपने पति को उकसाती— "देखो!" वह कहती, "यह तुम्हारे पिता की करतूत है! मैं उनसे बार-बार ये-वो न करने की विनती करती हूँ, पर वे बस गुस्सा हो जाते हैं। या तो तुम्हारे पिता को यह घर छोड़ना होगा, या मुझे!" तब पति ने उत्तर दिया, "महोदय, आप जवान हैं, और जहाँ चाहें रह सकती हैं; लेकिन मेरे पिता बूढ़े हैं। अगर आपको वे पसंद नहीं हैं, तो आप घर छोड़ सकती हैं।" यह सुनकर वह डर गई। वह बूढ़े आदमी के पैरों में गिर पड़ी और क्षमा माँगते हुए वादा किया कि वह ऐसा दोबारा कभी नहीं करेगी; और पहले की तरह उसकी देखभाल करने लगी।

वह नेक आम आदमी पहले तो उसके व्यवहार से इतना परेशान था कि उसने गुरु से प्रवचन सुनने के लिए उनके पास जाना छोड़ दिया; लेकिन जब वह फिर से शांत हो गई, तो वह गया। गुरु ने पूछा कि वह पिछले सात-आठ दिनों से उनका प्रवचन सुनने क्यों नहीं आया। उस आदमी ने सारी बात बताई। गुरु ने कहा, "इस बार तुमने उसकी बात नहीं मानी और अपने पिता को घर से नहीं निकाला; लेकिन पहले तुमने उसकी बात मानी थी; तुम उसे कब्रिस्तान ले गए और उसके लिए एक गड्ढा खोदा। जब तुम उसे मारने ही वाले थे, तब मैं सात साल का था, और मैंने माता-पिता की अच्छाई का वर्णन करके तुम्हें पिता की हत्या करने से रोका था। उस समय तुमने मेरी बात सुनी थी; और अपने पिता की देखभाल करके तुम स्वर्ग के पात्र बन गए थे। मैंने तब तुम्हें समझाया था और चेतावनी दी थी कि जब तुम

दूसरे जीवन में जाओ तो उन्हें मत छोड़ना; इसी कारण तुमने अब उस स्त्री की बात नहीं मानी है, और तुम्हारे पिता की हत्या नहीं हुई है।" ऐसा कहकर, उस आदमी के अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, काशी के एक गाँव में वसित्तक नाम का एक इकलौता बेटा था। वह अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता था, और अपनी माँ की मृत्यु के बाद, जैसा कि प्रस्तावना में वर्णित है, वह अपने पिता का भी भरण-पोषण करता था। लेकिन एक अंतर है। जब स्त्री ने कहा, "देखो! यह सब तुम्हारे पिता की करतूत है! मैं उनसे बार-बार यह और वह न करने की विनती करती हूँ, और वे केवल क्रोधित होते हैं!" तो उसने आगे कहा, "महाराज, आपके पिता बहुत क्रूर और हिंसक हैं, हमेशा झगड़े करते रहते हैं। ऐसे बूढ़े और बीमार व्यक्ति की जल्द ही मृत्यु हो जाएगी; और मैं उनके साथ एक ही घर में नहीं रह सकती। कुछ ही दिनों में उनकी स्वयं मृत्यु हो जाएगी; ठीक है, उन्हें कब्रिस्तान ले जाओ, एक गड्ढा खोदो, उन्हें उसमें फेंक दो और फावड़े से उनका सिर फोड़ दो; और जब वे मर जाएँ, तो उन पर मिट्टी डाल दो और उन्हें वहीं छोड़ दो।" अंततः, कानों में गूंजती इस आवाज़ से तंग आकर उसने कहा, "पत्नी, किसी पुरुष को मारना एक गंभीर मामला है: मैं यह कैसे करूँ?" "मैं तुम्हें एक तरीका बताती हूँ," उसने कहा।--"तो बताओ।"--"ठीक है, महाराज, सूर्योदय होते ही, उस स्थान पर जाओ जहाँ आपके पिता सोते हैं; उन्हें ज़ोर से बताओ, ताकि सब सुन सकें, कि उनका एक ऋणी किसी गाँव में है, कि आप वहाँ गए थे और उसने आपको पैसे नहीं दिए, और यदि वह मर गया तो वह कभी पैसे नहीं चुकाएगा; और कहो कि तुम दोनों सुबह साथ-साथ वहाँ जाओगे। फिर नियत समय पर उठो, जानवरों को गाड़ी में बाँधो, और उन्हें उसमें बिठाकर श्मशान ले जाओ। वहाँ पहुँचकर, उन्हें एक गड्ढे में दफना दो, ऐसा शोर मचाओ जैसे तुम्हें लूट लिया गया हो, अपने सिर को ज़ख्मी करो और धो लो, और वापस आ जाओ।" "जी हाँ, यह योजना ठीक रहेगी," वसित्तक ने कहा। वह उसके प्रस्ताव पर सहमत हो गया, और यात्रा के लिए गाड़ी तैयार कर ली।

उस आदमी का एक सात साल का बेटा था, जो बुद्धिमान और चतुर था। लड़के ने अपनी माँ की बातें सुन लीं और सोचा, "मेरी माँ एक दुष्ट स्त्री है और पिताजी को उनके पिता की हत्या करने के लिए उकसा रही है। मैं अपने पिता को यह हत्या करने से रोकूँगा।" वह जल्दी से भागा और अपने दादा के पास लेट गया। पत्नी के कहने पर वसित्तक ने गाड़ी तैयार की। उसने कहा, "आओ, पिताजी, चलो वह कर्ज़ चुकाते हैं!" और अपने पिता को गाड़ी में बिठा दिया। लेकिन लड़का सबसे पहले गाड़ी में बैठ गया। वसित्तक उसे रोक नहीं सका, इसलिए वह उसे अपने साथ कब्रिस्तान ले गया। फिर, अपने पिता और बेटे को गाड़ी के साथ एक अलग जगह पर रखकर, वह नीचे उतरा, फावड़ा और टोकरी ली, और एक ऐसी जगह पर छिपकर जहाँ वह उनसे छिपा हुआ था, एक चौकोर गड्ढा खोदने लगा। लड़का भी नीचे उतरा और उसके पीछे-पीछे गया, और मानो उसे कुछ पता ही न हो, उसने पहली पंक्ति दोहराकर बातचीत शुरू कर दी।

"यहाँ न तो कंद हैं, न ही मांस पकाने के लिए जड़ी-बूटियाँ।"
न तो कैटमिंट है, न ही खाने के लिए कोई अन्य पौधा।
तो पिताजी, इस गड्ढे की क्या आवश्यकता है, जबकि इसकी कोई जरूरत ही नहीं है?
क्या आप अकेले ही उस भयानक जंगल में प्रवेश करेंगे?
तब उनके पिता ने दूसरे श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

"बेटा, तुम्हारे दादाजी बहुत कमजोर और बूढ़े हैं।"
कई बार बीमारियों के दर्द से पीड़ित:
मैं आज उसे गड्ढे में दफना दूंगा;
ऐसे जीवन में मैं नहीं चाह सकता कि वह रुके।
यह सुनकर लड़के ने आधी पंक्ति दोहराते हुए उत्तर दिया:

"ऐसा चाहकर तुमने पाप किया है।"
और यह कृत्य एक क्रूर कृत्य है।"
ये कहते हुए उसने अपने पिता के हाथों से फावड़ा छीन लिया और थोड़ी ही दूरी पर एक और गड्ढा खोदना शुरू कर दिया।

उसके पिता ने पास आकर पूछा कि उसने वह गड्ढा क्यों खोदा; जिसका उत्तर उसने तीसरे छंद को पूरा करके दिया:

"मैं भी, जब आप बूढ़े हो जाएँगे, मेरे पिता,
मैं अपने पिता के साथ वैसा ही व्यवहार करूंगा जैसा आप अपने पिता के साथ करते हैं;
परिवार की परंपरा का पालन करते हुए
मैं भी तुम्हें एक गहरे गड्ढे में दफना दूंगा।

इस पर पिता ने चौथे श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

"एक लड़के के लिए इस तरह की कठोर बात कहना कितना बुरा है।"
और इस तरह से एक पिता में दोष ढूंढना!
यह सोचकर ही दुख होता है कि मेरा अपना बेटा मुझ पर गुस्सा करे।
और अपने सबसे सच्चे मित्र के प्रति निर्दयी होना चाहिए!
जब पिता ने इस प्रकार कहा, तो उस बुद्धिमान बालक ने तीन श्लोक सुनाए, एक उत्तर के रूप में और दो एक पवित्र भजन के रूप में:

"मैं कठोर नहीं हूँ, मेरे पिता, न ही निर्दयी हूँ।"
नहीं, मैं आपको मित्रतापूर्ण भाव से देखता हूँ:
लेकिन तुम यह करते हो, यह पाप का काम, तुम्हारे बेटे
एक बार हो जाने के बाद, उसे वापस ठीक करने की ताकत नहीं बचेगी।
"हे वसित्था, जो कोई भी बुरे इरादे से किसी को हानि पहुँचाता है,
उसकी माँ हो या उसका पिता, निर्दोष हैं।
जब शरीर नष्ट हो जाएगा, तब वह होगा
अगले जन्म में वह निस्संदेह नरक में जाएगा।
जो कोई भी भोजन और पेय के साथ, वसित्था,
इसके अलावा, उसकी माँ या उसके पिता भी उसे भोजन कराते हैं।
जब शरीर नष्ट हो जाएगा, तब वह होगा
"निस्संदेह, वह अगले जीवन में स्वर्ग में होगा।"
पुत्र के इस प्रकार के प्रवचन को सुनकर पिता ने आठवाँ श्लोक दोहराया:

"बेटे, मुझे लगता है तुम निर्दयी और कृतघ्न नहीं हो।"
लेकिन हे मेरे पुत्र, मेरे प्रति दयालु हृदय रखना;
यह तुम्हारी माँ के वचन का पालन करने के कारण था।
मुझे यह घिनौना काम करने से नफरत थी।"
यह सुनकर लड़के ने कहा, “पिताजी, जब स्त्रियाँ कोई गलत काम करती हैं और उन्हें डाँटा नहीं जाता, तो वे बार-बार पाप करती हैं। आपको मेरी माँ को सुधारना होगा, ताकि वह फिर कभी ऐसा काम न करे।” और उसने नौवाँ श्लोक दोहराया:

"तुम्हारी वह पत्नी, वह कुटिल स्वभाव वाली महिला,"
मेरी माँ, जिसने मुझे पाला-पोसा—वही,
आइए हम अपने जीवन से दूर होकर उन्हें निष्कासित कर दें।
अन्यथा वह तुम पर और भी कष्ट भोगेगी।"
अपने बुद्धिमान पुत्र के शब्दों को सुनकर वासित्थक अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "चलो चलें, मेरे पुत्र!" और वे पुत्र और पिता के साथ रथ में बैठ गए।

अब वह स्त्री, यह पापी भी, मन ही मन प्रसन्न हुई; क्योंकि उसने सोचा, अब यह दुर्भाग्य घर से चला गया है। उसने गीले गोबर से घर को लेप किया और चावल की खिचड़ी पकाई। लेकिन जब वह उस रास्ते को देख रही थी जिससे वे लौटेंगे, तो उसने उन्हें आते देखा। "देखो, वह फिर से अपने पुराने दुर्भाग्य के साथ लौट आया है!" उसने क्रोध से सोचा। "अरे, निकम्मे!" वह चिल्लाई, "क्या, अपने साथ लाया दुर्भाग्य वापस ले आए!" वसित्तका ने एक शब्द भी नहीं कहा, बल्कि गाड़ी को खोल दिया।

फिर उसने कहा, "हे दुष्ट स्त्री, तू क्या कह रही है?" उसने उसे खूब पीटा और घसीटते हुए घर से बाहर निकाल दिया, और उससे कहा कि वह फिर कभी उसके घर न आए। फिर उसने अपने पिता और पुत्र को नहलाया, और स्वयं भी नहाया, और तीनों ने चावल का दलिया खाया। वह पापी स्त्री कुछ दिनों तक दूसरे घर में रही।

तब बेटे ने अपने पिता से कहा, “पिताजी, मेरी माँ को यह सब समझ नहीं आ रहा है। चलिए, अब हम उन्हें परेशान करने की कोशिश करते हैं। आप यह बात फैला दीजिए कि फलाँ गाँव में आपकी एक भतीजी रहती है, जो आपके पिता, आपके बेटे और आपकी सेवा करेगी; तो आप जाकर उसे ले आइए। फिर फूल और इत्र लेकर अपनी गाड़ी में बैठिए और दिन भर गाँव-गाँव घूमते रहिए, शाम को लौट आइए।” और उसने ऐसा ही किया। पड़ोस के परिवार की महिलाओं ने उसकी पत्नी को यह बताया;--उन्होंने कहा, “क्या आपने सुना है कि आपके पति फलाँ जगह पर दूसरी पत्नी लाने गए हैं?” “अरे, मैं तो बर्बाद हो गई!” उसने कहा, “और मेरे लिए कोई जगह नहीं बची!”

लेकिन वह अपने बेटे से पूछना चाहती थी; इसलिए वह जल्दी से उसके पास आई और उसके पैरों पर गिरकर रोने लगी--"आपके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं! अब से मैं आपके पिता और दादाजी की देखभाल ऐसे करूँगी जैसे किसी सुंदर मंदिर की! मुझे एक बार फिर इस घर में प्रवेश दीजिए!" "जी माँ," लड़के ने उत्तर दिया, "यदि आप ऐसा दोबारा न करें, तो मैं करूँगा; निश्चिंत रहिए!" और अपने पिता के आने पर उसने दसवाँ श्लोक दोहराया:

"तुम्हारी वह पत्नी, वह कुटिल स्वभाव वाली महिला,"
मेरी माँ, जिसने मुझे पाला-पोसा, वही,
एक पालतू हाथी की तरह, पूर्ण नियंत्रण में,
वह पापी आत्मा फिर से लौट आए।
उसने अपने पिता से ऐसा कहा और फिर जाकर अपनी माता को बुलाया। माता का अपने पति और उसके पिता से मेल-मिलाप हो गया, और तब से वह शांत और धर्मपरायण हो गई, और अपने पति, उसके पिता और अपने पुत्र की देखभाल करने लगी। ये दोनों अपने पुत्र की सलाह का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए दान-पुण्य और अच्छे कर्म करते रहे और स्वर्ग में जाने के योग्य हो गए।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर, आज्ञाकारी पुत्र प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया): फिर उन्होंने जन्म की पहचान बताई:- "उस समय, पिता, पुत्र और बहू वही थे जो अब हैं, और वह बुद्धिमान बालक मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-धम्म-पाल-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-447-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 447
महा-धम्म-पाल-जातक

"यह कैसी प्रथा है," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने कपिलपुरा (जिसे कपिलवस्तु भी कहा जाता है, बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) की अपनी पहली यात्रा (बुद्ध के रूप में) के बाद सुनाई, जब वे अपने पिता के बरगद के जंगल में ठहरे हुए थे, और इसमें राजा और उनके पिता के विश्वास से इनकार करने के बारे में बताया गया था।

उस समय, ऐसा कहा जाता है कि महान राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) ने अपने निवास पर बीस हजार भिक्षुओं के समूह के साथ बुद्ध को चावल की दलिया का भोज दिया। भोज के दौरान, शुद्धोदन ने उनसे मधुरता से कहा, "महोदय, आपके परिश्रम के समय (*1), कुछ देवता मेरे पास आए और हवा में स्थिर होकर बोले, 'आपके पुत्र, राजकुमार सिद्धार्थ, भूख से मर गए हैं।' इस पर गुरु ने उत्तर दिया, 'क्या आपने इस पर विश्वास किया, महाराज?' - 'महोदय, मैंने इस पर विश्वास नहीं किया!'" जब देवता वायु में मंडराते हुए आए और उन्होंने मुझे यह बताया, तब भी मैंने इस पर विश्वास करने से इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि मेरे पुत्र की मृत्यु तब तक नहीं होगी जब तक वह बोधि वृक्ष की चरणों में बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर लेता। गुरु ने कहा, "महाराज, बहुत समय पहले महान धम्मपाल के समय में, जब एक विश्वप्रसिद्ध शिक्षक ने कहा था - "आपका पुत्र मर गया है, ये उसकी हड्डियाँ हैं," तब भी आपने विश्वास करने से इनकार कर दिया था, यह कहते हुए, "हमारे परिवार में कोई भी कम उम्र में नहीं मरता; तो अब आपको क्यों विश्वास करना चाहिए?" और अपने पिता के अनुरोध पर, गुरु ने बहुत समय पहले की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, काशी राज्य में धम्मपाला नामक एक गाँव था, और इसका यह नाम धम्मपाला के परिवार के निवास स्थान के कारण पड़ा था। दस पुण्यमार्गों का पालन करने के कारण, यह ब्राह्मण अपने निवास स्थान में धम्मपाला या विधिपालक के नाम से प्रसिद्ध था। उनके घर में, सेवक भी दान देते थे, सद्गुणों का पालन करते थे और पवित्र दिन मनाते थे।

उसी समय उस घर में बोधिसत्व का जन्म हुआ और उनका नाम धम्मपाल-कुमार रखा गया, जिसका अर्थ है लघु विधिपाल। जैसे ही वे वयस्क हुए, उनके पिता ने उन्हें एक हजार सिक्के दिए और तक्षशिला में अध्ययन के लिए भेज दिया। वहाँ उन्होंने एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की और पाँच सौ युवकों के समूह में अग्रणी शिष्य बन गए।

उसी समय गुरु के सबसे बड़े पुत्र का निधन हो गया; और गुरु अपने शिष्यों से घिरे हुए, अपने मित्रों और परिवार के बीच, रोते हुए श्मशान में बालक का अंतिम संस्कार किया। तब गुरु अपने परिवार और सभी शिष्यों के साथ रो रहे थे और विलाप कर रहे थे, परन्तु धम्मपाला न तो रोए और न विलाप किया। जब पाँच सौ युवक श्मशान से लौटे, तो वे अपने गुरु के समक्ष बैठ गए और बोले, “अरे, कितना उत्तम बालक, कितना अच्छा, कितना कोमल बच्चा, इतनी कम उम्र में माता-पिता से बिछड़ गया!” धम्मपाला ने उत्तर दिया, “सचमुच कोमल, जैसा तुम कहते हो! अच्छा, वह इतनी कम उम्र में क्यों मर गया? यह उचित नहीं है कि कम उम्र के बच्चे मरें।” तब उन्होंने उनसे कहा, “हे गुरु, क्या आप नहीं जानते कि ऐसे व्यक्ति नश्वर हैं?” — “मैं जानता हूँ; परन्तु कम उम्र में तो वे नहीं मरते; लोग वृद्ध होने पर मरते हैं।” — “तो क्या सभी सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर और अवास्तविक नहीं हैं?” “यह सच है कि वे क्षणभंगुर हैं; लेकिन जवानी में प्राणी नहीं मरते; वे केवल बुढ़ापे में ही मरते हैं।”--“ओह, क्या यही आपके परिवार की परंपरा है?”--“हाँ, यही मेरे परिवार की परंपरा है।” लड़कों ने यह बातचीत अपने गुरु को बताई। उन्होंने धम्मपाला को बुलवाया और उनसे पूछा, “धम्मपाला, मेरे पुत्र, क्या यह सच है कि तुम्हारे परिवार में लोग कम उम्र में नहीं मरते?” “जी हाँ, गुरुजी,” उन्होंने कहा, “यह सच है।”

यह सुनकर शिक्षक ने सोचा, "यह तो बहुत ही अद्भुत बात है! मैं उसके पिता के पास जाकर इस बारे में पूछूंगा; और यदि यह सच हुआ, तो मैं उसके बताए सही-गलत के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करूंगा।"

जब उन्होंने अपने पुत्र के लिए सभी कार्य संपन्न कर लिए, तो सात-आठ दिन बाद उन्होंने धम्मपाल को बुलवाया और कहा, "पुत्र, मैं घर से दूर जा रहा हूँ; मेरे जाने के दौरान तुम मेरे इन शिष्यों को शिक्षा दोगे।" ऐसा कहकर उन्होंने एक जंगली बकरी की हड्डियाँ प्राप्त कीं, उन्हें धोकर सुगंधित किया और एक थैले में रख दिया; फिर एक छोटे सेवक को साथ लेकर वे तक्षशिला से निकल पड़े और कुछ समय बाद उस गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने महा-धम्मपाल के घर का रास्ता पूछा और द्वार पर रुक गए।

ब्राह्मण के पहले सेवक ने, चाहे वह कोई भी हो, उसके हाथ से धूप से बचने का छाता, जूते और थैली ले ली। उसने उनसे कहा कि वे बालक के पिता को बता दें कि उनके पुत्र धम्मपाल लघु के गुरु द्वार पर खड़े हैं। "अच्छा," सेवकों ने कहा और पिता को अपने पास बुलाया। वे जल्दी से दहलीज पर आए और "अंदर आइए!" कहते हुए अपने घर में प्रवेश किया। उन्होंने अतिथि को पलंग पर बैठाया और मेज़बान के कर्तव्य निभाते हुए उनके पैर धोए, इत्यादि।

जब गुरु ने भोजन कर लिया और वे दोनों सौहार्दपूर्ण बातचीत के लिए बैठ गए, तो उन्होंने कहा, “ब्राह्मण, आपका पुत्र युवा धम्मपाल, जो ज्ञान से परिपूर्ण और तीनों वेदों तथा अठारह सिद्धियों का पूर्ण ज्ञाता था, दुर्भाग्यवश अपनी जान गंवा बैठा। समस्त सांसारिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं; उसके लिए शोक न कीजिए!” ब्राह्मण ने ताली बजाई और ज़ोर से हँसे। “आप क्यों हँस रहे हैं, ब्राह्मण?” दूसरे ने पूछा। “क्योंकि,” उन्होंने कहा, “मेरा पुत्र नहीं मरा है; कोई और मरा होगा।” “नहीं, ब्राह्मण,” उत्तर आया, “आपका पुत्र ही मरा है, कोई और नहीं। उसकी हड्डियों को देखिए और विश्वास कीजिए।” ऐसा कहकर उन्होंने हड्डियों को खोला। “ये आपके पुत्र की हड्डियाँ हैं,” उन्होंने कहा। “शायद किसी जंगली बकरी की हड्डियाँ हों,” दूसरे ने कहा, “या किसी कुत्ते की; लेकिन मेरा पुत्र मरा नहीं है। हमारे परिवार में सात पीढ़ियों से ऐसा कुछ नहीं हुआ है, जैसे कम उम्र में मृत्यु; और आप झूठ बोल रहे हैं।” फिर सबने ताली बजाई और जोर से हंसने लगे।

जब गुरु ने यह अद्भुत बात देखी, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "ब्राह्मण, तुम्हारे वंश में यह परंपरा व्यर्थ नहीं है कि युवा मरते नहीं। तो फिर तुम युवावस्था में क्यों नहीं मरते?" और उन्होंने पहले श्लोक को दोहराते हुए अपना प्रश्न पूछा:

यह कौन सी प्रथा है, या कौन सा पवित्र मार्ग है?
मैं पूछता हूँ, यह किस अच्छे कर्म का फल है?
हे ब्राह्मण, मुझे कारण बताओ।
बताओ, तुम्हारे वंश में युवा क्यों नहीं मरते!
तब ब्राह्मण ने यह समझाने के लिए कि किन गुणों के कारण उसके परिवार में कोई भी कम उम्र में नहीं मरा, निम्नलिखित श्लोकों को दोहराया:

हम सच्चाई के मार्ग पर चलते हैं, हम झूठ नहीं बोलते।
हम सभी घृणित और दुष्ट पापों से दूर रहते हैं।
हम उन सभी चीजों से दूर रहते हैं जो बुरी हैं।
इसलिए हममें से कोई भी जवानी में नहीं मरता।

हम मूर्खों और बुद्धिमानों दोनों के कर्मों के बारे में सुनते हैं;
जो बातें मूर्ख लोग नजरअंदाज करते हैं, हम वही करते हैं।
हम बुद्धिमानों का अनुसरण करते हैं और मूर्खों का त्याग करते हैं;
इसलिए हममें से कोई भी जवानी में नहीं मरता।
"पूर्व में प्राप्त उपहारों में ही हमारी संतुष्टि निहित है।"
देते हुए भी हम पूरी तरह संतुष्ट रहते हैं;
और न ही हम देने के बाद पश्चाताप करते हैं:
इसलिए हममें से कोई भी जवानी में नहीं मरता।
हम पुरोहितों, ब्राह्मणों, तीर्थयात्रियों को संतुष्ट करते हैं।
भिखारी, भिक्षु और सभी जरूरतमंद
हम उन्हें पानी पिलाते हैं, और भूखे लोगों को भोजन कराते हैं:
इसलिए हमारे बीच के युवा नहीं मरते।
"विवाहित होने पर, हम दूसरों की पत्नियों के लिए आहें नहीं भरते।"
लेकिन हम विवाह की प्रतिज्ञा के प्रति निष्ठावान हैं;
और मुझे लगता है कि हमारी पत्नियां हमारे प्रति वफादार हैं:
इसलिए हमारे बीच के युवा नहीं मरते।
"इन सच्ची पत्नियों से जो संतानें पैदा होती हैं
वे अत्यंत बुद्धिमान हैं, और सीखने के लिए प्रवृत्त हैं।
वेदों में पारंगत और सर्वगुण संपन्न;
इसलिए हममें से कोई भी जवान रहते हुए नहीं मरता।
"स्वर्ग की खातिर सही काम करने का हर कोई प्रयास करता है:
पिता का जीवन भी ऐसा ही होता है, और माता का जीवन भी ऐसा ही होता है।
अतः पुत्र और पुत्री, बहन और भाई:
इसलिए हममें से कोई भी जवानी में नहीं मरता।
"स्वर्ग के खातिर हमारे सेवक भी आवेदन करें।"
उनका जीवन अच्छाई के लिए समर्पित हो, चाहे पुरुष हों या महिलाएं।
संरक्षक, सेवक, प्रत्येक निम्नतम कैदी:
इसलिए हमारे बीच के युवा नहीं मरते।
और अंत में, इन दो छंदों के माध्यम से उन्होंने उन लोगों की अच्छाई का वर्णन किया जो धार्मिकता के मार्ग पर चलते हैं:

जो व्यक्ति धर्म की ओर उन्मुख होता है, धर्म उसे बचाता है;
धर्मपरायणता का सही ढंग से पालन करने से सुख मिलता है;
जो लोग धार्मिक कार्यों को अंजाम देते हैं, उन्हें यह वरदान प्राप्त होता है।
धर्मी व्यक्ति को दंड नहीं मिलता।
धर्म धर्मी को बचाता है, जैसे छाया
बारिश के समय भी बचाव: लड़का अभी भी जीवित है।
धम्मपाला को सद्भावना से सुरक्षा मिलती है;
आपने जिन हड्डियों के बारे में बताया है, वे किसी और की हड्डियां हैं।
यह सुनकर गुरु ने उत्तर दिया, "मेरी यह यात्रा सुखद, फलदायी और फलदायी रही!" फिर प्रसन्न होकर उन्होंने धम्मपाला के पिता से क्षमा मांगी और कहा, "मैं यहाँ आया था और आपके परीक्षण के उद्देश्य से जंगली बकरी की ये हड्डियाँ अपने साथ लाया था। आपका पुत्र सुरक्षित और स्वस्थ है। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मुझे जीवन रक्षा का अपना नियम बताएँ।" फिर दूसरे गुरु ने इसे एक पत्ते पर लिख लिया; और कुछ दिन वहाँ रहने के बाद वे तक्षशिला लौट आए, और धम्मपाला को सभी प्रकार के कौशल और ज्ञान में दीक्षित करने के बाद, उन्होंने अपने अनुयायियों के एक बड़े दल के साथ उन्हें विदा कर दिया।

जब गुरु ने महान राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) को इस प्रकार प्रवचन दिया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर राजा तृतीय मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए):--"उस समय, माता-पिता

महाराजा का परिवार (बुद्ध के माता-पिता) थे, शिक्षक सारिपुत्र थे, सेवकों का समूह बुद्ध का सेवकों का समूह था, और मैं स्वयं लघु धम्मपाल था।"

फुटनोट:

(1) बुद्ध द्वारा निर्वाण की ज्ञान प्राप्ति से पहले किए गए छह वर्षों के तपस्या/ध्यान।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुक्कुट्ट-जातक2**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-448-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 448
कुक्कुट जातक

"उन पर भरोसा मत करो," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने बाँस के जंगल में हत्या करने के विषय पर सुनाई थी। सत्य के हॉल में भिक्षु देवदत्त के दुष्ट स्वभाव पर चर्चा कर रहे थे। "हे महाराज, देवदत्त धनुर्धारियों और अन्य लोगों को रिश्वत देकर दशबल (बुद्ध) की हत्या करने का प्रयास कर रहा है!" गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा, "भाइयों, आप यहाँ बैठकर किस बारे में बात कर रहे हैं?" उन्होंने गुरु को बताया। गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है जब उसने मेरी हत्या करने का प्रयास किया है, बल्कि पहले भी ऐसा ही हुआ था"; और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, कोसंबी (*1) में कोसंबक नाम का एक राजा राज करता था। उस समय बोधिसत्व बाँस के पेड़ों के झुरमुट में रहने वाली एक जंगली मुर्गी की संतान थे, और बाद में जंगल में सैकड़ों पक्षियों के झुंड के मुखिया बन गए। पास ही में एक बाज़ रहता था, जो मौका मिलते ही पक्षियों को एक-एक करके पकड़ लेता और खा जाता था। समय के साथ उसने सभी बाज़ों को खा डाला, और बोधिसत्व अकेले रह गए। लेकिन उन्होंने भोजन की तलाश में बहुत सावधानी बरती और बाँस के घने जंगल में रहने लगे। यहाँ बाज़ उन तक नहीं पहुँच सकता था, इसलिए वे सोचने लगे कि किस तरकीब से उसे फंसाया जाए।

फिर वह पास ही की एक शाखा पर उतरे और पुकार कर बोले, "हे आदरणीय पक्षी, तुम मुझसे क्यों डरते हो? मैं तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ। अब ऐसे स्थान पर (उसका नाम बताते हुए) भोजन प्रचुर मात्रा में है; आओ हम वहाँ साथ भोजन करें और मित्रों की तरह साथ रहें।" - "नहीं, हे प्रभु," बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "आपके और मेरे बीच कभी मित्रता नहीं हो सकती; इसलिए चले जाइए!" - "हे प्रभु, मेरे पूर्व पापों के कारण आप मुझ पर अब भरोसा नहीं कर सकते; लेकिन मैं वादा करता हूँ कि मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा!" - "नहीं, मुझे ऐसे मित्र की परवाह नहीं है; चले जाइए!" तीसरी बार भी बोधिसत्व ने इनकार कर दिया: "ऐसे गुणों वाले प्राणी के साथ," उन्होंने कहा, "मित्रता कभी नहीं हो सकती"; और उन्होंने इस प्रवचन को कहते हुए विशाल जंगल को गूंजाया, देवता उनकी प्रशंसा में जयजयकार कर रहे थे।

उन लोगों पर भरोसा मत करो जिनके शब्द झूठ हैं, न ही उन लोगों पर जो केवल जानते हैं
न तो स्वार्थ, न ही पापी लोग, और न ही अत्यधिक धार्मिकता दिखाने वाले लोग।
कुछ पुरुषों का स्वभाव गायों जैसा होता है, जो प्यासे और लालची होते हैं।
सच के शब्द दिलासा देने वाले मित्र की भूमिका निभाते हैं, लेकिन उन पर अमल कभी मत करो।
"ये सूखे और खाली हाथ फैलाते हैं; आवाज उनके दिल की बात छुपाती है;
कृतज्ञता का ज्ञान न रखने वालों (घमंडी प्राणियों!) से दूर रहो।
"स्त्री या दुर्बल मन वाले पुरुष पर भरोसा मत करो।"
और न ही वे लोग जिन्होंने समझौता किया है, उसे तोड़ने के लिए इच्छुक हैं।
जो व्यक्ति बुरे रास्तों पर चलता है, जो हर उस चीज़ की ओर जाता है जो मृत्यु का खतरा पैदा करती है,
दृढ़ मत रहो, उस पर भरोसा मत करो, जैसे म्यान में रखी सबसे तेज तलवार।
कुछ लोग दिल से नहीं बल्कि मीठी-मीठी बातें करते हैं और दूसरों को खुश करने की कोशिश करते हैं।

कई लोग दोस्ती का दिखावा करते हैं: ऐसे लोगों पर भरोसा न करें।
जब ऐसा दुष्ट व्यक्ति भोजन या लाभ देखता है,
वह बहुत बुरा काम करता है, और वह जाएगा, लेकिन पहले तुम्हारी कमजोरी सामने आएगी।"
पक्षियों के राजा ने इन सात श्लोकों को दोहराया। फिर धर्म के राजा ने अगले चार श्लोकों का पाठ किया, जो बुद्ध की अंतर्दृष्टि से प्रेरित थे:

"मैत्रीपूर्ण प्रदर्शन में कई प्रतिद्वंद्वी उसका समर्थन करने के लिए उसका अनुसरण करते हैं;"
जिस प्रकार पक्षी बाज़ को छोड़कर चला गया, उसी प्रकार बुरे लोगों के लिए भी चले जाना ही सबसे अच्छा था।
घटनाओं के अर्थ को पहचानने में कौन शीघ्रता नहीं दिखाता?
वह अपने प्रतिद्वंद्वियों के नियंत्रण में चला जाता है, और बाद में पछताता है।
जो भी व्यक्ति घटनाओं के अर्थ को शीघ्रता से पहचान लेता है,
जैसे बाज़ अपने परिश्रम से पक्षी को बचा लेता है, वैसे ही वह अपने प्रतिद्वंद्वियों से दूर भाग जाता है।
"ऐसे अपरिहार्य और कपटपूर्ण जाल से,
घातक, कई वन वृक्षों के बीच गहराई में स्थित,
जैसे ही पक्षी बाज से दूर भागा,
दूरदृष्टि रखने वाले व्यक्ति को सफलता मिलनी चाहिए।
और इन छंदों का पाठ करने के बाद, उसने फिर बाज़ को बुलाया और उसे फटकारते हुए कहा, "यदि तू इस स्थान पर रहना जारी रखेगा, तो मैं जान जाऊँगा कि मुझे क्या करना है।" बाज़ वहाँ से उड़कर दूसरे स्थान पर चला गया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), बहुत समय पहले भी देवदत्त ने मेरा नाश करने का प्रयास किया था," और फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय देवदत्त बाज़ था, और मैं स्वयं पक्षी था।"

फुटनोट:

(1) गंगा नदी पर स्थित एक शहर।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> मत - **कुंडली-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-449-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 449
मत्त-कुंडली-जातक। (*1)

“वन में क्यों?” इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक जमींदार के बारे में जिसके बेटे की मृत्यु हो गई थी। श्रावस्ती नगर में हमें पता चलता है कि बुद्ध की सेवा करने वाले एक जमींदार के प्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई। पुत्र के शोक से व्याकुल होकर वह व्यक्ति न स्नान करता, न भोजन करता, न अपने काम करता और न ही बुद्ध की सेवा करता, बल्कि केवल रोता रहा, “हे मेरे प्रिय पुत्र, तू मुझे छोड़कर चला गया!”

सुबह के समय जब गुरुजी समाधि में संसार का अवलोकन कर रहे थे, तब उन्होंने महसूस किया कि यह व्यक्ति प्रथम मार्ग (समाधि) का फल प्राप्त करने के योग्य है। अतः अगले दिन, अपने अनुयायियों को श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के लिए ले जाने के बाद, भोजन करने हेतु उन्होंने भिक्षुओं को विदा किया और वरिष्ठ भिक्षु आनंद के साथ उस स्थान पर गए जहाँ यह व्यक्ति रहता था। उन्होंने ज़मींदार को बताया कि गुरुजी आए हैं। तब उनके परिवार ने एक आसन तैयार किया और गुरुजी को उस पर बैठाया तथा ज़मींदार को गुरुजी के समक्ष ले आए। प्रणाम करने के बाद, जब वह एक तरफ बैठे, तो गुरुजी ने करुणा से भरे स्वर में कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, क्या तुम अपने इकलौते पुत्र के लिए शोक मना रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "जी हाँ।" गुरुजी ने कहा, "बहुत समय पहले, हे गृहस्थ शिष्य, पुत्र की मृत्यु के

शोक में व्याकुल होकर, ज्ञानी पुरुषों ने ज्ञानियों के वचन सुने और यह स्पष्ट रूप से जानते हुए भी कि खोए हुए को वापस नहीं लाया जा सकता, फिर भी उन्हें कोई शोक नहीं हुआ, जरा सा भी नहीं।" ऐसा कहकर, उनके अनुरोध पर गुरु ने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, एक अत्यंत धनी ब्राह्मण का पुत्र पंद्रह-सोलह वर्ष की आयु में एक बीमारी से ग्रसित हो गया और मृत्यु के समय देवदूतों के लोक में पुनर्जन्म लिया। पुत्र की मृत्यु के बाद से ब्राह्मण श्मशान जाकर राख के ढेर के चारों ओर घूम-घूम कर विलाप करता था; अपने सभी कर्तव्यों को अधूरा छोड़कर वह व्यथित होकर इधर-उधर भटकता रहता था। एक देवदूत पुत्र ने घूमते हुए पिता को देखा और उसके दु:ख को कम करने की योजना बनाई। वह शोक के समय श्मशान गया, पुत्र का वेश धारण किया और सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित होकर एक तरफ खड़ा हो गया, दोनों हाथों से अपना सिर थामे हुए और जोर-जोर से विलाप करने लगा। आवाज सुनकर ब्राह्मण ने देखा और अपने पुत्र के प्रति प्रेम से भरकर उसके सामने रुक गया और बोला, "मेरे पुत्र, प्यारे बच्चे, तुम इस श्मशान के बीच में शोक क्यों मना रहे हो?" उसने यही प्रश्न निम्नलिखित श्लोक के शब्दों में व्यक्त किया:

"तुम यहाँ जंगल में क्यों खड़े हो?"
मालाओं के साथ, प्रत्येक कान में बालियां पहने हुए,
    चंदन की खुशबू से महकते हुए, अपने हाथ फैलाए हुए?
किस दु:ख के कारण तुम्हारे आंसू बहने लगते हैं?
और फिर युवक ने दूसरी पंक्ति को दोहराते हुए अपनी कहानी सुनाई:

शुद्ध सोने से बना और शानदार ढंग से चमकता हुआ
मेरा रथ वह है, जिसमें मैं लेटा रहता था:
    इसके लिए मुझे पहियों का एक जोड़ा नहीं मिल पा रहा है;
इसलिए मैं इतना पीड़ा से व्याकुल हूँ कि मुझे मरना ही पड़ेगा!
ब्राह्मण ने सुना और तीसरा श्लोक दोहराया:

"सुनहरा, या रत्नों से जड़ा हुआ, किसी भी प्रकार का।"
पीतल का हो या चांदी का, जो भी आपके मन में हो।
    बस एक शब्द बोलो, रथ बन जाएगा।
और मैं इसके लिए एक जोड़ी पहिए ढूंढ लूंगा!
अब गुरु ने स्वयं, अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता से, युवक द्वारा दोहराई गई पंक्ति को सुनकर, दूसरी पंक्ति की पहली पंक्ति दोहराई—

"ब्राह्मण युवक ने अपनी बात पूरी करने के बाद उत्तर दिया";

जबकि युवक शेष भाग को दोहराता है:

"वहाँ ऊपर भाई चाँद और सूरज हैं!"
    ऐसे पहियों के जोड़े द्वारा जैसे कि दो
मेरे सुनहरे रथ ने नई चमक हासिल कर ली है!
और ठीक उसके बाद:

तुमने जो किया है उसके लिए तुम मूर्ख हो।
उस चीज की मांग करना जिसकी किसी को भी लालसा नहीं करनी चाहिए;
    मुझे लगता है, हे युवक, आपकी मृत्यु शीघ्र ही होनी चाहिए।
क्योंकि तुम्हें न तो चाँद मिलेगा और न ही सूरज!
तब--

"हमारी आँखों के सामने वे अस्त होते हैं और उदय होते हैं, उनका रंग और मार्ग अटल रहता है।"
किसी को भूत दिखाई नहीं देता: तो फिर विलाप करने में कौन अधिक मूर्ख है?
युवक ने ऐसा कहा; और ब्राह्मण ने समझकर एक श्लोक दोहराया:

"हे सबसे बुद्धिमान युवक, हम दोनों शोक करने वालों में से,

मैं ही सबसे बड़ा मूर्ख हूँ—तुम सच कहते हो।
मृतकों की आत्मा की लालसा में,
बिल्कुल वैसे ही जैसे कोई बच्चा चाँद के लिए रोता है!
तब ब्राह्मण युवक के शब्दों से सांत्वना पाकर शेष श्लोकों का पाठ करके उसे धन्यवाद दिया:

मैं ऐसे भड़क उठा जैसे कोई व्यक्ति आग पर तेल डालता है।
तुम पानी लाए और मेरी इच्छा की पीड़ा को शांत किया।
"मेरे बेटे के लिए शोक—एक क्रूर तीर मेरे दिल में धंस गया था;
आपने मेरे दु:ख में मुझे सांत्वना दी और मेरे अंदर से तीर निकाल दिया।
"वह तीर निकल जाने के बाद, दर्द से मुक्त होकर, मैं शांत और स्थिर रहता हूँ;
हे युवक, तुम्हारे सत्य के वचन सुनकर अब मैं शोक नहीं करता, न ही रोता हूँ (*2)।"
तब उस युवक ने कहा, “हे ब्राह्मण, मैं वही पुत्र हूँ जिसके लिए आप शोक मना रहे हैं; मेरा जन्म देवदूतों के लोक में हुआ है। अब से मेरे लिए शोक न कीजिए, बल्कि दान दीजिए, सद्‌गुणों का पालन कीजिए और व्रत रखिए।” यह सलाह देकर वह अपने स्थान पर चला गया। उस ब्राह्मण ने उसकी सलाह मानकर, बहुत दान और अन्य अच्छे कर्म करने के बाद प्राण त्याग दिए और उसका पुनर्जन्म हुआ।

इस प्रवचन को समाप्त करते हुए, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: (सत्यों के समापन पर, भूस्वामी प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया था): "उस समय, मैं स्वयं उन देवताओं (देवदूतों) का पुत्र था जिन्होंने यह सलाह दी थी।"

फुटनोट:

(1) कहानी धम्मपद, पृष्ठ 93 में दी गई है, जहाँ नाम मद्धकुंडली है।

(2) ये छंद 157, 215, 390 में पुनः आते हैं

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **बिसारि-कोसिय-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-450-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 450
बिलारी-कोसिया-जातक

"जब भोजन न हो," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जो दान देने के लिए समर्पित था।

हमें बताया जाता है कि इस व्यक्ति ने धर्म के मार्ग का उपदेश सुनकर, जब से उसने इस शिक्षा को अपनाया, तब से वह दान देने में लीन रहा, दान देने के लिए उत्सुक रहा। वह कभी भी एक कटोरा भरकर भोजन तब तक नहीं खाता था जब तक कि उसे किसी दूसरे के साथ साझा न कर दे; यहाँ तक कि वह पानी भी तब तक नहीं पीता था जब तक कि उसे किसी दूसरे को न दे दे; वह दान देने में इतना लीन था।

फिर वे सत्य के हॉल में उनके अच्छे गुणों के बारे में बातें करने लगे। गुरुजी वहाँ आए और पूछा कि वे लोग क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने गुरुजी को बताया। उन्होंने भिक्षु को बुलवाकर पूछा, "क्या यह सच है जो मैंने सुना है, भिक्षुजी, कि आप दान देने के लिए समर्पित हैं, दान देने के लिए उत्सुक हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "जी हाँ।" गुरुजी ने कहा, "बहुत समय पहले, भिक्षुजी, यह व्यक्ति विश्वासहीन और नास्तिक था; वह किसी को घास के तिनके के सिरे पर तेल की एक बूँद तक नहीं देता था; तब मैंने उसे विनम्र बनाया, उसका परिवर्तन किया और उसे विनम्र बनाया और उसे दान का फल सिखाया; और उसका यह दान-प्रसन्न हृदय दूसरे जन्म में भी उसका साथ नहीं छोड़ता।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई (*1)।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था; और वयस्क होने पर उन्होंने संपत्ति अर्जित की, और अपने पिता की मृत्यु के बाद व्यापारी के रूप में उनका स्थान ग्रहण किया।

एक दिन, जब वह अपनी संपत्ति का जायजा ले रहा था, तो उसने सोचा, "मेरी संपत्ति तो यहाँ है, लेकिन इसे इकट्ठा करने वाले कहाँ हैं? मुझे अपनी संपत्ति दान में बाँटनी चाहिए और दान देना चाहिए।" इसलिए उसने एक दान-पुण्य स्थल बनवाया और अपने जीवनकाल में बहुत दान दिया; और जब उसके दिन समाप्त होने वाले थे, तो उसने अपने पुत्र को दान देने का कार्य न छोड़ने का आदेश दिया और तैंतीस के स्वर्ग में सक्का (इंद्र) के रूप में पुनर्जन्म लिया। पुत्र ने अपने पिता की तरह दान दिया और अपने पुत्र को भी यही आदेश देते हुए, देवताओं (देवदूतों) के बीच चंदा, चंद्रमा के रूप में जन्म लिया। उसका पुत्र सूर्य बना, जिसने एक और पुत्र को जन्म दिया जो सारथी माताली (*2) बना, और उसका पुत्र पंचशिखा के रूप में पुनर्जन्म लिया, जो गंधर्वों में से एक था। लेकिन इस वंश का छठा व्यक्ति आस्थाहीन, कठोर हृदय वाला, प्रेमहीन और कंजूस था; और उसने भिक्षा देने के स्थान को ध्वस्त कर दिया, उसे जला दिया, भिखारियों को पीटा और उन्हें उनके काम पर भेज दिया; किसी को घास के तिनके के सिरे पर तेल की एक बूंद तक नहीं दी।

तब देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने अपने अतीत के कार्यों पर विचार करते हुए आश्चर्य किया, "क्या मेरी दान देने की परंपरा जारी है या नहीं?" यह सोचते हुए उन्हें यह समझ आया: "मेरे पुत्र ने दान देना जारी रखा और वह चंदा बन गया; उसका पुत्र सूर्य, उसका पुत्र मतली और उसका पुत्र पंचशिखा बन गया; परन्तु छठे ने परंपरा तोड़ दी है।" तब उनके मन में यह विचार आया कि वे उस पापी व्यक्ति को सबक सिखाएंगे और उसे दान का फल बताएंगे। अतः उन्होंने चंदा, सूर्य, मतली और पंचशिखा को अपने पास बुलाया और कहा, "महोदय, हमारे वंश के छठे ने हमारे परिवार की परंपरा तोड़ दी है; उसने दान देने के स्थान को जला दिया है, भिखारियों को भगा दिया है; वह किसी को कुछ नहीं देता। तो आइए हम उसे सबक सिखाएं!" अतः वे उनके साथ बनारस के लिए रवाना हुए।

उस समय व्यापारी राजा से मिलने गया था और लौटकर सातवें द्वार के नीचे इधर-उधर टहल रहा था, सड़क को देख रहा था। सक्का (इंद्र) ने दूसरों से कहा, "मेरे अंदर जाने तक तुम सब रुको, फिर एक-एक करके मेरे पीछे आना।" ये कहकर वह आगे बढ़ा और धनी व्यापारी के सामने खड़े होकर उससे बोला, "हे महाराज! मुझे भोजन दीजिए!" - "यहाँ तुम्हारे लिए कुछ नहीं है, ब्राह्मण; कहीं और जाओ।" - "हे महाराज! जब ब्राह्मण भोजन मांगते हैं, तो उन्हें मना नहीं किया जाना चाहिए!" - "मेरे घर में, ब्राह्मण, न तो भोजन पका है और न ही पकने के लिए तैयार है; यहाँ से चले जाओ!" - "महाराज, मैं आपको एक श्लोक सुनाता हूँ, सुनिए।" उसने कहा, "मुझे तुम्हारी कविता नहीं चाहिए; चले जाओ, और यहाँ खड़े मत रहो।" लेकिन सक्का (इंद्र) ने उसकी बात पर ध्यान दिए बिना दो श्लोक सुना दिए:

"जब बर्तन में भोजन न हो, तो भलाई करने वाले को भोजन मिल जाएगा, और वह इससे इनकार नहीं करेगा।"
और आप खाना बना रहे हैं! यह अच्छा नहीं था, अगर आप अब खाना नहीं बनाते तो खाने की कोई आपूर्ति नहीं होती।
जो व्यक्ति लापरवाह और उदार नहीं होता, वह हमेशा देने से इनकार करता है;
लेकिन जो व्यक्ति सद्गुण से प्रेम करता है, उसे अवश्य देना चाहिए, और जिसका मन बुद्धिमान हो उसे भी।
यह सुनकर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "ठीक है, अंदर आओ और बैठो; तुम्हें थोड़ा सा मिलेगा।" सक्का (इंद्र) इन श्लोकों को दोहराते हुए अंदर आया और बैठ गया।

फिर चंदा आया और भोजन मांगा। उस व्यक्ति ने कहा, "तुम्हारे लिए भोजन नहीं है, चले जाओ!" चंदा ने उत्तर दिया, "महाराज, अंदर एक ब्राह्मण बैठा है; मुझे लगता है कि ब्राह्मण के लिए मुफ्त भोजन होगा, इसलिए मैं भी अंदर आ जाता हूँ।" उस व्यक्ति ने कहा, "ब्राह्मण के लिए कोई मुफ्त भोजन नहीं है! चले जाओ!" तब चंदा ने कहा, "महाराज, कृपया एक-दो श्लोक सुनिए," और दो श्लोक दोहराए: (जब भी कोई भयभीत कंजूस किसी को कुछ नहीं देता, तो जिस चीज से वह डरता है वही उसके पास आ जाती है क्योंकि वह कुछ नहीं देता):--

जब भूख या प्यास का भय निर्दयी आत्माओं को भयभीत कर देता है,
इस दुनिया में और अगली दुनिया में उन मूर्खों को पूरा दंड मिलेगा।
अतः दान करो, धन-संपत्ति की लालसा से दूर रहो, लोभ की गंदगी को दूर करो।
परलोक में मनुष्यों के सद्गुण ही उनका सबसे मजबूत सहारा होंगे।
ये बातें सुनकर उस व्यक्ति ने कहा, "ठीक है, अंदर आ जाओ, तुम्हें थोड़ा मिलेगा।" वह अंदर आया और सक्का (इंद्र) के साथ बैठ गया।

कुछ देर इंतजार करने के बाद, सूर्या आगे आया और दो श्लोक दोहराते हुए भोजन मांगा:

"अच्छे लोगों की तरह करना, उनकी क्षमता के अनुसार देना कठिन है।"
बुरे लोग अच्छे लोगों के जीवन की नकल शायद ही कर सकते हैं।

और इसलिए, जब अच्छाई और बुराई पृथ्वी से मिट जाएंगी,
बुरे लोग नरक में जन्म लेते हैं, अच्छे लोग स्वर्ग में जन्म लेते हैं।
धनी व्यक्ति को कोई उपाय न सूझने पर उसने उससे कहा, "ठीक है, अंदर आओ और इन ब्राह्मणों के साथ बैठो, तुम्हें थोड़ा भोजन मिल जाएगा।" और मताली थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद आया और भोजन माँगा; और जब उसे बताया गया कि भोजन नहीं है, तो उसने यह कहते ही सातवाँ श्लोक दोहराया:

कुछ लोग थोड़े में से देते हैं, कुछ लोग भरपूर भंडार होने के बावजूद नहीं देते।
जो व्यक्ति थोड़ी सी राशि से दान करता है, यदि वह हजार भी दे दे तो भी कुछ नहीं बचेगा।
उस व्यक्ति ने उससे भी कहा, "ठीक है, अंदर आओ और बैठो।" थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद, पंचसिखा आया और भोजन माँगा। उत्तर मिला, "यहाँ कुछ नहीं है, चले जाओ।" उसने कहा, "मैंने कितनी जगहें देखी हैं! मुझे लगता है कि यहाँ ब्राह्मणों के लिए मुफ्त भोजन अवश्य होगा!" और वह उसे पकड़कर आठवाँ श्लोक दोहराने लगा।

"जो जूठे भोजन पर जीवन यापन करता है, उसे भी धर्मी होना चाहिए।"
अपने पुत्रों के होते हुए भी वह अपने सीमित भंडार से देता है;
धनी लोगों द्वारा दान किए गए एक लाख रुपये,
ऐसे व्यक्ति से एक छोटा सा उपहार भी पाने के लायक नहीं हैं।"
पंचसिखा का भाषण सुनकर धनी व्यक्ति सोचने लगा। फिर उसने नौवां श्लोक दोहराया, ताकि ऐसे उपहारों के अल्प मूल्य का कारण पूछ सके।

"एक समृद्ध और उदार बलिदान क्यों है?"
उचित मूल्य के मामले में यह किसी धार्मिक दान के बराबर नहीं है।
धनवान व्यक्ति जो हजार रुपये देता है, उसका क्या अर्थ है?
भले ही आकार में छोटा हो, क्या यह किसी गरीब आदमी के उपहार के लायक नहीं है?
उत्तर में, पंचसिखा ने अंतिम श्लोक का पाठ किया:

कुछ लोग बुरे रास्तों पर चलते हुए जीवन यापन करते हैं
अत्याचार करो, हत्या करो, फिर सांत्वना दो:
उनके क्रूर और चिड़चिड़े उपहार कम हैं
किसी भी धार्मिकता से प्रदत्त व्यक्ति की तुलना में।
इस प्रकार धनी लोगों में से एक हजार भी नहीं हो सकते
ऐसे व्यक्ति के छोटे से उपहार के बराबर ही उपहार दें।"
पंचसिखा की सलाह सुनकर उसने कहा, "ठीक है, अंदर जाओ और बैठ जाओ; तुम्हें थोड़ा मिलेगा।" और वह भी अंदर गया और बाकियों के साथ बैठ गया।

तब धनी व्यापारी बिलारिकोसिया ने एक दासी की ओर इशारा करते हुए कहा, "ब्राह्मणों को एक-एक माप छिले हुए चावल दो।" वह चावल ले आई और उनके पास जाकर उन्हें चावल भूनने और कहीं पकाकर खाने को कहा। उन्होंने कहा, "हम छिले हुए चावल कभी नहीं खाते।" - "मालिक, वे कहते हैं कि वे छिले हुए चावल कभी नहीं खाते!" - "ठीक है, उन्हें छिले हुए चावल दो।" वह उनके लिए छिले हुए चावल ले आई और उन्हें लेने को कहा। उन्होंने कहा, "हम कुछ भी कच्चा नहीं खाते।" - "मालिक, वे कुछ भी कच्चा नहीं खाते!" - "तो फिर एक बर्तन में उनके लिए गाय का चारा पकाओ और उन्हें दो।" उसने एक बर्तन में गाय का चारा पकाया और उन्हें दे दिया। उन पाँचों ने एक-एक निवाला लिया और अपने मुँह में डाला, लेकिन वह गले में अटक गया; फिर आँखें घुमाते हुए वे बेहोश हो गए और मानो मर गए हों। यह देखकर दासी को लगा कि वे मर गए होंगे, और वह बहुत डरकर व्यापारी के पास गई और बोली, "मालिक, वे ब्राह्मण गाय का चारा नहीं पचा पाए और मर गए!" उसने सोचा, "अब लोग मुझे धिक्कारेंगे, कहेंगे कि इस व्यभिचारी ने कोमल ब्राह्मणों को गाय का चारा खिलाया, जो वे नहीं पचा पाए और मर गए!" तब उसने दासी से कहा, "जल्दी जाओ, उनके कटोरे से चारा हटाओ और उनके लिए उत्तम किस्म के चावल पकाओ।" उसने वैसा ही किया। व्यापारी ने सड़क से राहगीरों को अंदर बुलाया, और जब उसने उनमें से कुछ को इकट्ठा किया तो उसने कहा, "मैंने इन ब्राह्मणों को अपने तरीके से भोजन कराया, और वे लालची थे और उन्होंने बड़े-बड़े टुकड़े बना लिए, और इस तरह खाते समय भोजन उनके गले में अटक गया और वे मर गए। मैं तुम्हें गवाह बनाता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ।" भीड़ के इकट्ठा होते ही ब्राह्मण उठे और पर्ची देखकर बोले, "देखो इस व्यापारी का छल! इसने हमें अपना ही भोजन दिया! पहले तो इसने हमें केवल गाय का चारा दिया, और फिर जब हम मृत समान पड़े थे, तब इसने यह भोजन तैयार करवाया।" और उन्होंने अपने मुँह से लिया हुआ भोजन फेंक दिया और दिखाया। भीड़ ने व्यापारी को फटकारा और चिल्लाई, "अंधे मूर्ख! तूने अपने

परिवार की परंपरा तोड़ दी; तूने भिक्षागृह जला दिया; तूने भिखारियों का गला पकड़कर फेंक दिया; और अब जब तू इन कोमल ब्राह्मणों को भोजन दे रहा था, तो तूने केवल गाय का चारा दिया! मुझे लगता है कि जब तू परलोक जाएगा, तो अपने घर की सारी संपत्ति अपने गले में फँसाकर ले जाएगा!"

इस समय, सक्का (इंद्र) ने भीड़ से पूछा, "क्या तुम जानते हो कि इस घर की संपत्ति किसकी है?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम नहीं जानते।" उन्होंने कहा, "तुमने बनारस के एक महान व्यापारी के बारे में सुना है, जो एक समय इस शहर में रहता था, और उसने भिक्षा वितरण के लिए भवन बनवाए थे, और बहुत दान दिया था?" उन्होंने कहा, "हाँ, हमने उसके बारे में सुना है।" उन्होंने कहा, "मैं ही वह व्यापारी हूँ, और उन दान के कारण अब मैं सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) का राजा बन गया हूँ; और मेरा पुत्र, जिसने मेरी परंपरा नहीं तोड़ी, चंदा (देवदूत) बन गया है; और उसका पुत्र सूर्य है, और उसका पुत्र मतली है, और उसका पुत्र पंचशिखा है; इनमें से, वहाँ चंदा है, और वह सूर्य है, और यह सारथी मतली है, और यह पंचशिखा है, जो अब एक दिव्य संगीतकार है, जो कभी उस व्यभिचारी का पिता था! इस प्रकार दान देना शक्तिशाली है।" इसलिए बुद्धिमानों को सद्गुणों का पालन करना चाहिए।" ऐसा कहकर, वहाँ एकत्रित लोगों के संदेह दूर करने के उद्देश्य से, वे वायु में उठे और स्थिर अवस्था में रहे, अपनी अपार शक्ति से उन्होंने अपने चारों ओर एक विशाल जनसमूह को घेर लिया, उनके शरीर अग्नि से प्रज्वलित थे, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो पूरा शहर आग की लपटों में घिरा हो। तब सक्का (इंद्र) ने भीड़ को संबोधित करते हुए कहा: "हम यहाँ आने के लिए अपनी स्वर्गीय महिमा को त्यागकर आए हैं, और हम इस पापी बिलारिकोसिया के कारण आए हैं, जो अपने वंश का अंतिम है, अपने पूरे वंश का नाश करने वाला है।" हम उस पर दया करके आए हैं, क्योंकि हम जानते थे कि इस पापी ने अपने परिवार की परंपरा को तोड़ा है, दान देने के स्थान को जला दिया है, भिखारियों का गला खींचा है, और हमारी प्रथा का उल्लंघन किया है, और दान देना बंद करने पर वह नरक में फिर से जन्म लेगा। इस प्रकार उसने भीड़ को दान की शक्ति के बारे में बताया। बिलारिकोसिया ने हाथ जोड़कर विनती की, और प्रतिज्ञा की; "हे प्रभु, आज से मैं परिवार की परंपरा को नहीं तोड़ूंगा, बल्कि दान दूंगा; और आज से मैं कभी भी अपने भोजन, यहाँ तक कि पीने का पानी और दांत साफ करने वाला पदार्थ भी, दूसरों के साथ बाँटे बिना नहीं खाऊंगा।"

इस प्रकार इंद्र ने उसे विनम्र बनाकर, आत्म-त्यागी बनाकर और पंच सद्गुणों में स्थापित करके, चारों देवदूतों को अपने साथ लेकर अपने स्थान पर प्रस्थान किया। और वह व्यापारी जीवन भर दान देता रहा और तैंतीसवें स्वर्ग में जन्मा।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, पूर्व में यह भिक्षु अविश्वासी था और किसी को भी दान नहीं देता था, परन्तु मैंने उसे विनम्र बनाया और दान का फल सिखाया; और यह भाव उसके मन से नहीं निकला, यहाँ तक कि परलोक में प्रवेश करने पर भी नहीं।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, उदार भिक्षु धनी थे, सारिपुत्र चंदा थे, मोग्गल्याण सूर्य थे, कश्यप मतली थे, आनंद पंचशिखा थे, और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) इस कहानी का कुछ भाग क्रमांक 313 में मिलता है

(2) सक्का या इंद्र का।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चक्क-वाक-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-451-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 451
चक्क-वका-जातक। (*1)

"तुम तो सुंदर रंग के हो," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक लालची भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि वह भिक्षु अपने वस्त्रों आदि से असंतुष्ट होकर इधर-उधर घूमता रहता था और पूछता था, "सामुदायिक भोजन कहाँ है? निमंत्रण कहाँ है?" और जब उसे मांस का नाम सुनाई देता, तो वह अत्यंत प्रसन्न हो उठता था। तब कुछ दयालु भिक्षुओं ने उसके प्रति सहानुभूति दिखाते हुए गुरु को इस बारे में बताया। गुरु ने उसे बुलाकर पूछा, "क्या यह सच है, भिक्षु, जैसा मैंने सुना है, कि तुम लालची हो?" "जी, महाराज, यह

सच है," उसने कहा। "भाई," गुरु ने कहा, "हमारे जैसे मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले धर्म को अपनाने के बाद भी तुम लालची क्यों हो? लालच पाप है; बहुत समय पहले, लालच के कारण ही तुम बनारस में हाथियों के शवों और अन्य जानवरों के अंगों से संतुष्ट नहीं हुए और घने जंगल में चले गए थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस राज्य के राजा थे, एक लालची कौआ बनारस में हाथियों के शवों और अन्य सभी जानवरों के आंतरिक अंगों से संतुष्ट नहीं था। उसने सोचा, "अब मुझे आश्चर्य होता है कि जंगल कैसे होंगे?" इसलिए वह जंगल की ओर चल पड़ा; लेकिन वहाँ मिले जंगली फलों से भी वह संतुष्ट नहीं हुआ और गंगा की ओर चल पड़ा। गंगा के किनारे चलते हुए, उसने लाल हंसों का एक जोड़ा देखा (*2), और सोचा, "ये पक्षी बहुत सुंदर हैं; मुझे लगता है कि उन्हें गंगा के किनारे खाने के लिए भरपूर मांस मिलता है। मैं उनसे पूछूंगा, और अगर मैं भी उनका भोजन खा सकूं तो निस्संदेह मेरा रंग भी उनके जैसा सुंदर हो जाएगा।" इसलिए जोड़े से कुछ ही दूरी पर बैठकर, उसने दो श्लोक सुनाकर लाल हंसों से अपना प्रश्न पूछा:

"तुम सुंदर रंग की हो, आकर्षक आकृति की, भरी-पूरी काया की, लाल रंग की हो।"
ओ हंस! मैं कसम खाता हूँ कि तुम अत्यंत सुंदर हो, तुम्हारा चेहरा और तुम्हारी इंद्रियाँ स्पष्ट और सच्ची हैं!
"गंगा के किनारे बैठकर तुम पाइक और ब्रीम मछली खाते हो,"
रोच, कार्प और गंगा की धारा में तैरने वाली अन्य सभी मछलियाँ (*3)!"
लाल हंस ने तीसरे छंद का पाठ करके उसका खंडन किया:

मैं ज्वार से बहकर आने वाले शवों को नहीं खाता, न ही जंगल में पड़े हुए शवों को।
मैं हर तरह की जंगली घास खाता हूँ; दोस्त, यही मेरा सारा भोजन है।
फिर कौवे ने दो छंद पढ़े:

"मैं हंस की मांस के बारे में कही गई बातों पर विश्वास नहीं कर सकता।"
मैं गांव में नमक और तेल मिलाकर बनाई गई चीजें खाता हूँ।
"चावलों का ढेर, एकदम साफ-सुथरा और बढ़िया, जिसे एक आदमी बनाता है और डालता है।"
उसके भोजन पर; लेकिन फिर भी, गूज, मेरा रंग तुम्हारे जैसा नहीं है।"
इस पर लाल हंस ने उसे शेष छंद सुनाए, जिनमें उसके बदसूरत रंग का कारण बताया गया था और उसकी धार्मिकता का वर्णन किया गया था।

अपने हृदय में पाप को देखकर, जो मानव जाति का विनाश कर रहा है,
भय और घबराहट में तुम अपना भोजन खाते हो; इसीलिए तुम्हें यह रंग मिलता है।
"कौवे, तूने अपने पूर्व जन्मों के पापों के कारण संसार में हर जगह गलती की है।"
आपको अपने भोजन में आनंद नहीं आता; यह आपके रंग के कारण है।
लेकिन, मित्र, मैं खाता हूँ और किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, चिंतित नहीं हूँ, आराम से हूँ।
बिना किसी परेशानी के, किसी भी शत्रु से भयभीत नहीं।
"तुम्हें यही करना चाहिए, और शक्तिशाली बनना चाहिए, अपने बुरे मार्गों का त्याग कर देना चाहिए।"
संसार में चलो और किसी को दुख मत पहुंचाओ; तब सब तुमसे प्रेम करेंगे और तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।
जो सभी प्राणियों के प्रति दयालु है, न तो उन्हें चोट पहुँचाता है और न ही किसी को चोट पहुँचाने का कारण बनता है।
जो किसी को ठेस नहीं पहुंचाता, उसे कोई ठेस नहीं पहुंचाता, उसके प्रति कोई घृणा नहीं पाई जाती।
"इसलिए यदि तुम संसार के प्रिय बनना चाहते हो, तो सभी बुरी वासनाओं से दूर रहो," लाल हंस ने धर्म का उपदेश देते हुए कहा। कौए ने उत्तर दिया, "अपने खान-पान के बारे में मुझसे व्यर्थ की बातें मत करो!" और "कांव! कांव!" चिल्लाते हुए बनारस के गोबर के ढेर की ओर उड़ गया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर, लालची भाई (भिक्षु) तृतीय मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया): "उस समय, लालची भाई कौवा था, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) लाल हंस की साथी थी, और मैं स्वयं लाल हंस था।"

फुटनोट:

(1)सं. 434

(2)cakkavako, Anas Casarca.

(3)मछलियों के नाम हैं: पावुसा, वलजा, मुंजा, रोहिता (साइप्रिनस रोहिता), और पाथिना (सिल्वंस बोआलिस)।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भूरी-पन्हा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-452-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 452
भूरी-पन्हा-जातक

"क्या यह सचमुच सच है?" इत्यादि--यह भूरी-पन्हा जन्म उम्मग्ग जन्म में प्रकट होगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-मंगल-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-453-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 453
महा-मंगल-जातक

"सत्य का उपदेश दो," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए महा-मंगल शास्त्र, या शकुन ग्रंथ (*1) के बारे में सुनाई थी। राजगृह नगर में किसी कारणवश राजगृह में एक बड़ी भीड़ जमा हो गई थी, और उनमें से एक व्यक्ति उठा और यह कहते हुए बाहर चला गया, "आज शुभ शगुन का दिन है।" किसी और ने यह सुना और कहा, "यह व्यक्ति 'शगुन' की बातें करते हुए बाहर चला गया है; शगुन से उसका क्या तात्पर्य है?" तीसरे ने कहा, "किसी भी शुभ दिखने वाली चीज का दर्शन शुभ शगुन होता है; मान लीजिए कोई व्यक्ति सुबह जल्दी उठता है और उसे एक बिल्कुल सफेद बैल, या गर्भवती स्त्री, या लाल मछली (*2), या लबालब भरा हुआ घड़ा, या गाय के दूध का ताजा पिघला हुआ घी, या नया बिना धुला वस्त्र, या चावल का दलिया दिखाई देता है, तो इससे बेहतर शगुन और कोई नहीं हो सकता।" कुछ उपस्थित लोगों ने इस व्याख्या की प्रशंसा की; उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा कहा।" लेकिन एक अन्य व्यक्ति ने बीच में ही कहा, "नहीं, इनमें कोई अपशगुन नहीं है; जो आप सुनते हैं वही अपशगुन है। एक व्यक्ति लोगों को 'भरा हुआ' कहते हुए सुनता है, फिर वह 'पूर्ण विकसित' या 'बढ़ रहा है' सुनता है, या वह उन्हें 'खाओ' या 'चबाओ' कहते हुए सुनता है: इससे बेहतर कोई अपशगुन नहीं है।" कुछ उपस्थित लोगों ने कहा, "बहुत अच्छी बात कही," और इस व्याख्या की प्रशंसा की। एक अन्य व्यक्ति ने कहा, "इन सब में कोई अपशगुन नहीं है; जो आप छूते हैं (*3) वही अपशगुन है। यदि कोई व्यक्ति सुबह जल्दी उठता है, और धरती को छूता है, या हरी घास, ताजा गोबर, साफ वस्त्र, लाल मछली, सोना या चांदी, भोजन को छूता है, तो इससे बेहतर कोई अपशगुन नहीं है।" और यहाँ भी कुछ उपस्थित लोगों ने सहमति जताई और कहा कि यह बात अच्छी तरह से कही गई है। और फिर दृष्टि, ध्वनि और स्पर्श के अपशगुन के समर्थक तीन समूहों में बंट गए, और एक-दूसरे को समझाने में असमर्थ रहे। पृथ्वी के देवताओं से लेकर ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) तक, कोई भी शगुन का सटीक अर्थ नहीं बता सका। सक्का (इंद्र) ने सोचा, "देवदूतों और मनुष्यों में से केवल भगवान बुद्ध ही शगुन के इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। मैं भगवान बुद्ध के पास जाऊँगा और उनसे यह प्रश्न पूछूँगा।" अतः रात्रि में वे भगवान बुद्ध के दर्शन करने गए, उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए प्रश्न पूछा, "बहुत से देवता और मनुष्य हैं।" तब गुरु ने बारह श्लोकों में उन्हें अड़तीस महान शगुन बताए। और जैसे-जैसे उन्होंने एक-एक करके शगुन-शास्त्रों का पाठ किया, दस हजार करोड़ देवताओं ने संतत्व प्राप्त किया, और अन्य तीन मार्गों में प्रवेश करने वालों की संख्या अनगिनत है। शगुन सुनकर सक्का (इंद्र) अपने

स्थान पर लौट आए। जब गुरु ने शकुन बताए, तो मनुष्यों की दुनिया और देवताओं (देवदूतों) की दुनिया ने सहमति जताते हुए कहा, "बहुत अच्छा कहा।"

फिर सत्य के हॉल में वे तथागत (बुद्ध) के गुणों पर चर्चा करने लगे: "महोदय, शकुन का रहस्य दूसरों की समझ से परे था, परन्तु उन्होंने मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के हृदयों को समझ लिया और उनके संदेहों को ऐसे दूर किया जैसे आकाश में चंद्रमा को उदय कर रहे हों! आह, तथागत (बुद्ध) कितने बुद्धिमान हैं, मेरे मित्रों!" गुरु ने प्रवेश किया और उनसे पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, भिक्षुओं, कि अब जब मैं पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण हूँ, तो मैंने शकुन के रहस्य को सुलझा लिया है; परन्तु जब मैं बोधिसत्व के रूप में पृथ्वी पर विचरण करता था, तब भी मैंने शकुन के रहस्य का उत्तर देकर मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संदेहों को दूर किया था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बोधिसत्व का जन्म एक धनी ब्राह्मण परिवार में एक नगर में हुआ और उनका नाम रक्षितकुमार रखा गया। तक्षशिला में शिक्षा पूर्ण करने के बाद, उन्होंने विवाह किया और अपने माता-पिता के देहांत के बाद, उन्होंने अपनी संपत्ति का जायजा लिया। मन में व्याकुलता के कारण, उन्होंने दान-पुण्य किया और अपने कर्मों पर विजय प्राप्त करके हिमालय के क्षेत्रों में एक संन्यासी बन गए, जहाँ उन्होंने अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं और एक स्थान पर रहकर वन की जड़ों और फलों से अपना जीवन यापन किया। समय के साथ, उनके अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई, लगभग पाँच सौ शिष्य उनके साथ रहने लगे।

एक दिन, ये तपस्वी बोधिसत्व के पास पहुँचे और उनसे कहा, "गुरुजी, वर्षा ऋतु आने पर हम हिमालय से नीचे उतरकर नमक और मसाले लाने के लिए देश-क्षेत्र की यात्रा करें; इससे हमारा शरीर बलवान होगा और हमारी तीर्थयात्रा पूर्ण हो जाएगी।" बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, आप जा सकते हैं, लेकिन मैं यहीं रहूँगा।" इस प्रकार उन्होंने बोधिसत्व से विदा ली और हिमालय से नीचे उतरकर अपनी यात्रा जारी रखी, और बनारस पहुँचे, जहाँ उन्होंने राजा के उद्यान में अपना निवास स्थान बनाया। उनका बहुत आदर और आतिथ्य सत्कार किया गया।

एक दिन बनारस के राजमहल में एक बड़ी भीड़ जमा हुई और शकुन की समस्या पर चर्चा हुई। इस कहानी की प्रस्तावना में वर्णित घटनाक्रम को ही समझना होगा। फिर, पहले की तरह, भीड़ को कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो मनुष्यों के संदेह दूर कर शकुन की समस्या का समाधान कर सके; इसलिए वे उद्यान में गए और ऋषियों के समक्ष अपनी समस्या रखी। ऋषियों ने राजा से कहा, "महाराज, हम इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते, परन्तु हमारे गुरु, परम बुद्धिमान ऋषि रक्षित, हिमालय में निवास करते हैं; वे इस प्रश्न का उत्तर देंगे, क्योंकि वे मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के विचारों को समझते हैं।" राजा ने कहा, "महोदय, हिमालय बहुत दूर है और वहाँ पहुँचना कठिन है; हम वहाँ नहीं जा सकते। क्या आप स्वयं अपने गुरु के पास जाकर उनसे प्रश्न नहीं पूछेंगे, और जब आपको उत्तर मिल जाए, तो लौटकर हमें बताएँगे?" ऋषियों ने ऐसा करने का वचन दिया। और जब वे अपने गुरु के पास लौट आए और उन्हें प्रणाम किया, और गुरु ने राजा के कुशल-मंगल और देशवासियों के रीति-रिवाजों के बारे में पूछा, तो उन्होंने उन्हें शकुन-दर्शन आदि की पूरी कहानी शुरू से अंत तक सुनाई, और समझाया कि वे राजा के काम पर कैसे आए, ताकि वे स्वयं इस प्रश्न का उत्तर सुन सकें; "अब, महाराज," उन्होंने कहा, "कृपा करके हमें इस शकुन-दर्शन की समस्या को स्पष्ट करें और सत्य बताएं।" तब सबसे बड़े शिष्य ने गुरु से पहला श्लोक सुनाकर अपना प्रश्न पूछा:

"भ्रमित मनुष्य को सत्य का उपदेश दो।"
और बताइए कि कौन सा धर्मग्रंथ, या कौन सा पवित्र ग्रंथ,
  शुभ मुहूर्त में अध्ययन किया और कहा,
क्या यह इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी आशीर्वाद देता है?
जब वरिष्ठ शिष्य ने अपशकुन की समस्या को इन शब्दों में व्यक्त किया, तो उस महान सत्ता ने देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के संदेह दूर करते हुए उत्तर दिया, "यह और यह अपशकुन है," और इस प्रकार बुद्ध की कुशलता से अपशकुनों का वर्णन करते हुए कहा,

"जो भी देवता (देवदूत) हों, और सभी पिता (*4) हों,
और सरीसृप, और वे सभी प्राणी जिन्हें हम देखते हैं,
  सदा के लिए सम्मान, दयालु हृदय के साथ।
वह निःसंदेह सभी प्राणियों के लिए एक आशीर्वाद है।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने पहले शगुन के बारे में बताया, फिर दूसरे शगुन के बारे में और बाकी सभी शगुन के बारे में बताया:

जो पूरी दुनिया के सामने विनम्रतापूर्वक प्रसन्नता प्रकट करता है,

प्रिय पुरुषों और महिलाओं, पुत्रों और पुत्रियों को,
जो अपमानजनक जवाबों का उसी तरह से जवाब नहीं देते,
वह निश्चित रूप से सभी के लिए एक आशीर्वाद हैं।
"जो बुद्धि से स्पष्ट हो, संकट में समझदार हो,"
न तो वह अपने खेल के साथियों को और न ही अपने दोस्तों को तुच्छ समझता है।
न तो वह जन्म, ज्ञान, जाति या धन का घमंड करता है।
उनके साथियों के बीच एक आशीर्वाद की प्राप्ति हुई।
जो व्यक्ति अच्छे और सच्चे लोगों को अपना मित्र मानता है,
उस पर भरोसा करो, क्योंकि उसकी जुबान जहर से मुक्त है।
जो कभी किसी मित्र को हानि नहीं पहुँचाता, जो अपना धन साझा करता है,
वह निश्चित रूप से मित्रों में एक आशीर्वाद है।
"जिसकी पत्नी मिलनसार है और उम्र में बराबर है,"
सर्मपित, अच्छे और कई बच्चों वाले भालू,
निष्ठावान, गुणी और कुलीन कुल का।
पत्नियों में यही आशीर्वाद प्रकट होता है।
"जिसका राजा सर्वशक्तिमान ईश्वर है,
जो शुद्ध जीवन और सभी क्षमताओं को जानता है,
और कहता है, "वह मेरा दोस्त है," और उसका इरादा छल करने का नहीं है।
यही वह आशीर्वाद है जो सम्राटों में निहित होता है।
"सच्चा विश्वासी, भोजन और पेय पदार्थ देता है,"
फूल और मालाएँ, इत्र, हमेशा अच्छे होते हैं।
मन में शांति लिए और चारों ओर खुशियाँ फैलाते हुए--
इससे समस्त स्वर्गों में आशीर्वाद प्राप्त होता है।
"जिनका सद्‌गुणी जीवन निर्वाह करके गुणी ऋषि परीक्षण करते हैं"
शुद्धिकरण के लिए अथक प्रयास करने पर,
अच्छे और बुद्धिमान पुरुष, शांत जीवन से संपन्न।
वह संतों की संगति में एक आशीर्वाद है।"
इस प्रकार उस महान सत्ता ने अपने प्रवचन को संतत्व के उच्चतम स्तर तक पहुँचाया; और आठ श्लोकों में शकुनों की व्याख्या करने के बाद, उन्हीं शकुनों की प्रशंसा में अंतिम श्लोक का पाठ किया:

"तो ये आशीर्वाद, जो संसार में घटित होते हैं,
सभी बुद्धिमानों द्वारा सम्मानित, शानदार,
जो मनुष्य बुद्धिमान है, वह इन बातों का पालन करे।
शकुनों में कोई सच्चाई नहीं होती।
इन शकुनों के बारे में सुनकर ऋषि-मुनि सात-आठ दिन तक वहाँ रुके, फिर विदा लेकर उसी स्थान पर वापस चले गए।

राजा ने उनसे मुलाकात की और अपना प्रश्न पूछा। उन्होंने शकुनों की समस्या को उसी प्रकार समझाया जैसे उन्हें बताया गया था, और हिमालय लौट गए। तब से शकुनों का रहस्य संसार में समझ में आ गया। शकुनों के विषय पर ध्यान देने के बाद, वे सभी स्वर्ग चले गए। बोधिसत्व ने श्रेष्ठ गुणों का अभ्यास किया और अपने अनुयायियों के साथ ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में जन्म लिया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा: "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि प्राचीन काल में भी मैंने शकुनों की समस्या समझाई थी"; और फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया—"उस समय, बुद्ध के अनुयायियों का समूह ऋषियों का समूह था; सारिपुत्र शिष्यों में वरिष्ठ थे, जिन्होंने शकुनों के बारे में प्रश्न पूछा था; और मैं स्वयं गुरु था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 546.

(2)सुत्तनिपात, द्वितीय, चतुर्थ देखें।

(3) साइप्रिनस रोहिता.

(4)मुतम यहाँ संस्कृत म्रस्तम "छुआ हुआ" का बिगड़ा हुआ रूप होना चाहिए।

(5) "रूप और निराकार जगत के ब्राह्मण।" स्कोल.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **घट-जातक2 स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा पुरातन अनुवाद से अनुकूलित

पिछला <<<<-----||-454-||----->>>> अगला

अंतर्वस्तु

- 1जातक क्रमांक 454 घाटा-जातक
  - 1.1उपस्थित
  - 1.2पिछला जन्म
  - 1.3पाली-रोमन संस्करण
  - 1.4पाली-देवनागरी संस्करण

जातक क्रमांक 454 घाटा-जातक

उपस्थित

"कान्हा, उठो," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में पुत्र की मृत्यु के बारे में सुनाई थी। परिस्थितियाँ मठ-कुंडली जन्म (*1) जैसी ही थीं। यहाँ भी गुरु ने शिष्य से पूछा, "क्या तुम शोक में हो, गृहस्थ?" शिष्य ने उत्तर दिया, "जी, गुरुजी।" गुरु ने कहा, "गृहस्थ, बहुत समय पहले बुद्धिमानों ने बुद्धिमानों की बात सुनी थी और पुत्र की मृत्यु पर शोक नहीं किया था।" और उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

पिछला जन्म

एक समय की बात है, कंस जिले के उत्तरपथ में असितंजन नगर में महाकंस नाम का एक राजा रहता था। उसके दो पुत्र थे, कंस और उपकंस, और एक पुत्री थी जिसका नाम देवगब्भा था। उसके जन्मदिन पर भविष्य बताने वाले ब्राह्मणों ने उसके बारे में कहा, "इस कन्या से जन्मा पुत्र एक दिन देश और कंस के वंश का नाश करेगा।" राजा अपनी पुत्री से इतना प्रेम करता था कि उसे मृत्युदंड नहीं दे सका; बल्कि उसके भाइयों को मामला सौंपकर, उसने अपने दिन व्यतीत किए और फिर उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कंस राजा बना और उपकंस उसका वायसराय बना। उन्होंने सोचा कि यदि वे अपनी पुत्री को मृत्युदंड देंगे तो हंगामा मच जाएगा, इसलिए उन्होंने उसका विवाह किसी से न करने का निश्चय किया, बल्कि उसे अविवाहित रखने और उसकी निगरानी करने का निर्णय लिया; और उन्होंने उसके रहने के लिए एक गोलाकार मीनार बनवाई।

अब उसके पास नंदगोपा नाम की एक सेविका थी, और उस महिला का पति, अंधकवेनहु, उसकी देखभाल करने वाला सेवक था। उस समय ऊपरी मथुरा में महासागर नाम का एक राजा राज करता था, जिसके दो पुत्र थे, सागर और उपसागर। अपने पिता की मृत्यु के बाद, सागर राजा बना और उपसागर उसका उपसराय बना। यह लड़का उपकम्सा का मित्र था, जो उसके साथ पला-बढ़ा था और उसी गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। लेकिन वह अपने भाई के ज़नाना (हरम) में लिप्त हो गया, और पकड़े जाने पर कंस की जागीर में उपकम्सा के पास भाग गया। उपकम्सा ने उसे राजा कंस से मिलवाया, और राजा ने उसका बहुत सम्मान किया।

उपसागर राजा की सेवा करते हुए उस मीनार पर नज़र रखे हुए थे जहाँ देवगब् रहती थीं। जब उन्होंने पूछा कि वहाँ कौन रहता है, तो उन्हें कहानी सुनाई दी और वे उस लड़की से प्रेम करने लगे। एक दिन देवगब् ने उन्हें उपकांशा के साथ राजा की सेवा करने जाते हुए देखा। उन्होंने पूछा कि कौन है; नंदगोपा ने उन्हें बताया कि वे महान राजा सागर के पुत्र उपसागर हैं, और वे भी उनसे प्रेम करने लगीं। उपसागर ने नंदगोपा को एक उपहार देते हुए कहा, "बहन, आप देवगब् से मेरी मुलाकात करवा सकती हैं।" नंदगोपा ने कहा, "आसान है," और

लड़की को इसके बारे में बताया। देवगब् पहले से ही उनसे प्रेम करती थीं, इसलिए वे तुरंत मान गईं। एक रात नंदगोपा ने मुलाकात का समय तय किया और उपसागर को मीनार में ले गए; और वहाँ वे देवगब् के साथ रहे। उनके निरंतर मेलजोल और शारीरिक संबंध से देवगब् गर्भवती हो गईं। कुछ समय बाद यह बात सबको पता चली कि वह गर्भवती हैं, और भाइयों ने नंदगोपा से पूछताछ की। उसने उनसे क्षमादान का वादा लिया और फिर उन्हें सारी बात विस्तार से बताई। जब उन्होंने पूरी कहानी सुनी, तो उन्होंने सोचा, "हम अपनी बहन को मृत्युदंड नहीं दे सकते। यदि वह पुत्री को जन्म देती है, तो हम उसे भी छोड़ देंगे; यदि पुत्र को जन्म देती है, तो हम उसे मार डालेंगे।" और उन्होंने देवगब्हा को उपसागर को पत्नी के रूप में दे दिया।

जब प्रसव का समय आया, तो उसने एक पुत्री को जन्म दिया। यह सुनकर भाई अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसका नाम अंजना रखा। उन्होंने उन्हें गोवर्धन नामक एक गाँव जागीर के रूप में आवंटित किया। उपासगर ने देवगम्भा को अपने साथ गोवर्धन गाँव में ले जाकर उसके साथ निवास किया।

देवगब्हा फिर से गर्भवती हुईं और उसी दिन नंदगोपा भी गर्भ धारण कर लीं। जब उनका प्रसव का समय आया, तो दोनों ने एक ही दिन जन्म दिया - देवगब्हा को पुत्र और नंदगोपा को पुत्री। लेकिन देवगब्हा को डर था कि कहीं उनके पुत्र को मार न डाला जाए, इसलिए उन्होंने उसे चुपके से नंदगोपा के पास भेज दिया और बदले में नंदगोपा की पुत्री को प्राप्त कर लिया। उन्होंने अपने भाइयों को जन्म की सूचना दी। उन्होंने पूछा, "पुत्र या पुत्री?" उत्तर था, "पुत्री।" भाइयों ने कहा, "तो देखो उसका पालन-पोषण कैसे किया जाता है।" इसी प्रकार देवगब्हा के दस पुत्र और नंदगोपा की दस पुत्रियाँ हुईं। पुत्र नंदगोपा के साथ और पुत्रियाँ देवगब्हा के साथ रहती थीं, और इस रहस्य को किसी को भी पता नहीं था।

देवगब्भा के सबसे बड़े पुत्र का नाम वासु-देव, दूसरे का बलदेव, तीसरे का चंदा-देव, चौथे का सूर्य-देव, पाँचवें का अग्गी-देव, छठे का वरुण-देव, सातवें का अज्जुन, आठवें का पज्जुन, नौवें का घटा-पंडित और दसवें का अमकुरा (*2) था। वे अंधकवेनहु नामक सेवक के पुत्रों के रूप में प्रसिद्ध थे, जिन्हें दस दास-भाई कहा जाता था।

समय बीतने के साथ वे बड़े हो गए, और बहुत बलवान, साथ ही क्रूर और हिंसक होने के कारण वे लूटपाट करने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने राजा के लिए लाए जा रहे उपहार को भी लूट लिया। लोग राजा के प्रांगण में जमा होकर शिकायत करने लगे, “अंधकवेनहु के पुत्र, दस भाई, देश को लूट रहे हैं!” तब राजा ने अंधकवेनहु को बुलाया और अपने पुत्रों को लूटपाट की अनुमति देने के लिए उसे फटकारा। इसी तरह तीन-चार बार शिकायत की गई और राजा ने उसे धमकी दी। अपने जीवन के भय से वह राजा से सुरक्षा का वरदान माँगने लगा और यह रहस्य बताया कि ये उसके पुत्र नहीं, बल्कि उपसागर के पुत्र हैं। राजा घबरा गया। उसने अपने दरबारियों से पूछा, “हम उन्हें कैसे पकड़ें?” उन्होंने उत्तर दिया, “महाराज, वे पहलवान हैं। आइए शहर में कुश्ती का मुकाबला करवाएँ, और जब वे अखाड़े में प्रवेश करेंगे तो हम उन्हें पकड़कर मार डालेंगे।” इसलिए उन्होंने दो पहलवानों, कैनुरा और मुथिका को बुलवाया और ढोल बजाकर पूरे शहर में यह घोषणा करवाई कि "सातवें दिन कुश्ती का मुकाबला होगा।"

राजा के द्वार के सामने कुश्ती का अखाड़ा तैयार था; खेल के लिए एक घेरा बनाया गया था, अखाड़ा चमकीले रंगों से सजाया गया था, विजय के झंडे पहले से ही बंधे हुए थे। पूरा शहर उत्साह से भरा हुआ था; एक के ऊपर एक कतार में कुर्सियाँ लगी हुई थीं। कैनुरा और मुथिका अखाड़े में उतरे और उछलते-कूदते, चिल्लाते और ताली बजाते हुए इधर-उधर घूमने लगे। उनके दस भाई भी आ गए। रास्ते में उन्होंने धोबियों की गली लूट ली और चमकीले रंगों के वस्त्र पहन लिए, इत्र की दुकानों से इत्र और फूलों की दुकानों से फूलों की मालाएँ चुरा लीं। शरीर पर इत्र लगाकर, सिर पर मालाएँ और कानों में बालियाँ पहनकर वे अखाड़े में कूदते, चिल्लाते और ताली बजाते हुए चले गए।

उस समय, कैनुरा इधर-उधर घूम रहा था और ताली बजा रहा था। बलदेव ने उसे देखकर सोचा, "मैं इसे अपने हाथ से नहीं छूऊँगा!" इसलिए उसने हाथी के अस्तबल से एक मोटा पट्टा उठाया, उछलते-कूदते और चिल्लाते हुए उसे कैनुरा के पेट के चारों ओर फेंक दिया, और दोनों सिरों को कसकर बांधकर उसे ऊपर उठाया, उसके सिर के ऊपर घुमाया, और ज़मीन पर पटक कर अखाड़े से बाहर लुढ़का दिया। कैनुरा की मृत्यु के बाद, राजा ने मुत्थिका को बुलवाया। मुत्थिका उछलता-कूदता, चिल्लाता और ताली बजाता हुआ उठा। बलदेव ने उस पर प्रहार किया और उसकी आँखें फोड़ दीं; और जब वह चिल्लाया--"मैं पहलवान नहीं हूँ! मैं पहलवान नहीं हूँ!" बलदेव ने उसके हाथ बांधते हुए कहा, "पहलवान हो या न हो, मेरे लिए सब एक समान है," और उसे ज़मीन पर पटक कर मार डाला और अखाड़े से बाहर फेंक दिया।

मृत्यु पीड़ा में मुथिका ने प्रार्थना की—"काश मैं पिशाच बन जाऊं और उसे खा जाऊं!" और वह कलामत्तिया नामक वन में पिशाच बन गया। राजा ने कहा, "इन दस दास-भाइयों को ले जाओ।" उसी क्षण वासुदेव ने एक चक्र (*3) फेंका, जिससे दोनों भाइयों के सिर कट गए (*4)। भयभीत भीड़ उनके चरणों में गिर पड़ी और उनसे अपने रक्षक बनने की विनती की।

इस प्रकार दस बंधुओं ने अपने दो चाचाओं की हत्या करके असितांजना शहर के शासन की शक्ति अपने हाथ में ले ली और अपने माता-पिता को वहां ले आए।

अब वे पूरे भारत को जीतने के इरादे से निकल पड़े। कुछ ही समय में वे राजा कालसेना की राजधानी अयोध्या पहुँचे। उन्होंने शहर को चारों ओर से घेर लिया, उसके चारों ओर के जंगल को नष्ट कर दिया, दीवार तोड़कर राजा को बंदी बना लिया और शहर का शासन अपने हाथों में ले लिया। वहाँ से वे द्वारवती (द्वारका) की ओर बढ़े। इस शहर के एक ओर समुद्र और दूसरी ओर पहाड़ थे। कहते हैं कि यह स्थान भूतों से प्रेतवाधित था। एक भूत पहरा देता था, जो अपने शत्रुओं को देखकर गधे के समान रेंकता था। भूतों के जादू से पूरा शहर हवा में उठ जाता और समुद्र के बीचोंबीच एक द्वीप पर स्थापित हो जाता; शत्रु के चले जाने पर वह वापस आकर अपने स्थान पर फिर से बस जाता। इस बार भी, हमेशा की तरह, जैसे ही गधे ने उन दस भाइयों को आते देखा, उसने गधे के समान रेंकना शुरू कर दिया। शहर हवा में उठ गया और द्वीप पर बस गया। उन्हें कोई नगर दिखाई नहीं दिया और वे वापस लौट गए; फिर नगर अपनी जगह पर वापस आ गया। वे लौट आए—गधे ने फिर वही किया जो पहले हुआ था। वे द्वारवती (द्वारका) नगर की शासन शक्ति को अपने हाथ में नहीं ले सके।

अतः वे कान्हादीपायन (*5) के पास गए और बोले, “महोदय, हम द्वारवती (द्वारका) राज्य पर कब्जा करने में असफल रहे हैं; हमें बताइए कि यह कैसे किया जाए।” उन्होंने कहा, “एक खाई में, ऐसी जगह पर, एक गधा घूमता रहता है। जब वह किसी शत्रु को देखता है, तो वह रेंकता है, और तुरंत ही नगर हवा में उठ उठता है। आपको उसके पैर पकड़ने होंगे (*6), और यही आपके लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग है।” तब उन्होंने तपस्वी से विदा ली; और वे सभी दस लोग गधे के पास गए, और उसके चरणों में गिरकर बोले, “महोदय, आपके सिवा हमारा कोई सहारा नहीं है! जब हम नगर पर कब्जा करने आएं, तो रेंकना मत!” गधे ने उत्तर दिया, “मैं रेंकने से खुद को नहीं रोक सकता। लेकिन यदि आप पहले आएं, और आप में से चार लोग बड़े लोहे के हल लाएं, और नगर के चारों द्वारों पर जमीन में बड़े लोहे के खंभे गाड़ दें, और जब नगर उठने लगे, तो यदि आप हल से बंधी लोहे की जंजीर खंभे पर लगा दें, तो नगर उठ नहीं पाएगा।” उन्होंने उसका धन्यवाद किया; और जब तक वे हल लेकर नगर के चारों द्वारों पर खंभे गाड़कर प्रतीक्षा करने लगे, तब तक वह एक शब्द भी नहीं बोला। फिर गधे ने रेंककर कहा, नगर उठने लगा, परन्तु जो लोग चारों द्वारों पर हल लेकर खड़े थे, उन्होंने हलों में लोहे की जंजीरें ठोंक दीं, जिससे नगर नहीं उठ सका। इस पर दस बंधुओं ने नगर में प्रवेश किया, राजा को मार डाला और उसका राज्य छीन लिया।

इस प्रकार उन्होंने पूरे भारत पर विजय प्राप्त की और 360 हजार नगरों में से सभी के राजाओं को उन्होंने चक्र से मार डाला और द्वारवाती (द्वारका) में निवास किया, राज्य को दस भागों में बाँट लिया। परन्तु वे अपनी बहन अंजना को भूल गए थे। इसलिए उन्होंने कहा, "चलो इसे ग्यारह भागों में बाँट लेते हैं।" परन्तु अमकुरा ने उत्तर दिया, "मेरा भाग उसे दे दो, और मैं जीविका के लिए कोई व्यापार करूँगा; बस तुम दोनों अपने-अपने देश में मेरे कर माफ कर दो।" वे मान गए और उन्होंने अमकुरा का भाग उसकी बहन को दे दिया; और नौ राजा उसके साथ द्वारवाती (द्वारका) में रहने लगे, जबकि अमकुरा व्यापार के लिए निकल गया।

समय बीतने के साथ-साथ उनके पुत्र और पुत्रियाँ बढ़ते गए; और बहुत समय बीतने के बाद उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई। उस समय कहते थे कि मनुष्य का जीवन बीस हजार वर्ष होता था।

फिर महान राजा वासुदेव के एक प्रिय पुत्र का निधन हो गया। शोक से अधमरे राजा ने सब कुछ त्याग दिया और पलंग को थामे शोक में डूबे रहे। तब घटपांडित ने मन ही मन सोचा, "मेरे सिवा कोई और मेरे भाई के शोक को शांत नहीं कर सकता; मैं उसके शोक को शांत करने का कोई उपाय ढूंढूंगा।" इसलिए पागलपन का रूप धारण करके वह पूरे शहर में चक्कर लगाने लगा, आकाश की ओर देखते हुए चिल्लाने लगा, "मुझे एक खरगोश दो! मुझे एक खरगोश दो!" सारा शहर उत्तेजित हो गया: "घटपांडित पागल हो गया है!" सब कहने लगे। तभी रोहिणीय नामक एक दरबारी राजा वासुदेव के पास गया और उनसे बातचीत शुरू करते हुए पहला श्लोक सुनाया:

"कान्हा, उठो! सोने के लिए आंखें क्यों बंद कर रहे हो? वहां क्यों लेटे हो?"
अपने सगे भाई को देखो, वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है।
और उसकी बुद्धिमत्ता (*7)! घटा बड़बड़ा रहा है, सुनो तुम लंबे काले बालों वाले!"
जब दरबारी ने इस प्रकार कहा, तो गुरु ने देखा कि वह उठ खड़ा हुआ है, और अपनी पूर्ण बुद्धि से उसने दूसरा श्लोक कहा:

"तभी लंबे बालों वाले केशवा ने रोहिनेय्या की चीख सुनी,
वह घाटा की पीड़ा देखकर अत्यंत चिंतित और व्याकुल होकर उठा।
राजा उठे और जल्दी से अपने कक्ष से नीचे आए; और घटपांडित के पास जाकर, उन्होंने दोनों हाथों से उन्हें कसकर पकड़ लिया; और उनसे बात करते हुए, तीसरा श्लोक सुनाया:

"पागलपन भरे अंदाज में, तुम द्वारका में हर समय चक्कर क्यों लगाते रहते हो?"

और चिल्लाओ, "खरगोश, खरगोश!" कहो, किसने तुमसे खरगोश छीन लिया है?"
राजा के इन शब्दों के जवाब में उसने बार-बार वही चीख दोहराई। लेकिन राजा ने दो और छंद पढ़े:

चाहे वह सोने का हो या उत्तम रत्नों का,
या पीतल, या चांदी, जैसा आप चाहें (*8)
मैं घोषणा करता हूँ, चाहे वह शंख हो, पत्थर हो या मूंगा।
मैं एक खरगोश बनाऊंगा।
और भी बहुत से खरगोश हैं, जो विशाल जंगल में घूमते रहते हैं।
उन्हें लाया जाएगा, मैं उन्हें पकड़वा लूंगा; बताओ, तुम्हारा क्या फैसला है?
राजा की बातें सुनकर, ज्ञानी व्यक्ति ने छठे श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

"मुझे पृथ्वी पर रहने वाले किसी खरगोश की लालसा नहीं है, बल्कि चंद्रमा के भीतर रहने वाले खरगोश की लालसा है (*9)।"
हे केशव, उसे नीचे उतारो! मैं और कोई वरदान नहीं मांगता!
यह सुनकर राजा ने सोचा, "निस्संदेह मेरा भाई पागल हो गया है।" गहरे दुःख में उसने सातवाँ श्लोक दोहराया:

"सच तो ये है कि मेरे भाई, अगर तुम ऐसी प्रार्थना करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।"
और वह मांगो जिसकी कोई मनुष्य प्रार्थना नहीं कर सकता, चंद्रमा का दिव्य खरगोश।
राजा का उत्तर सुनकर घटपांडित वहीं स्थिर खड़े रह गए और बोले, "मेरे भाई, आप जानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति चंद्रमा में खरगोश के लिए प्रार्थना करता है और उसे प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह मर जाएगा; तो फिर आप अपने मृत पुत्र के लिए क्यों शोक मना रहे हैं?"

"यदि हे कान्हा, तुम यह जानते हो, और दूसरों के दुख को कम कर सकते हो,"
आप उस बेटे के लिए अभी भी शोक क्यों मना रहे हैं जिसकी मृत्यु इतने समय पहले हो गई थी?
फिर वह सड़क पर खड़े-खड़े बोले—"भाई, मैं तो केवल अस्तित्व में मौजूद चीजों की ही कामना करता हूँ, परन्तु तुम तो अस्तित्वहीन चीजों के लिए शोक मना रहे हो।" फिर उन्होंने दो और छंद दोहराते हुए उन्हें उपदेश दिया:

"मेरा बेटा पैदा हुआ है, उसे मरने मत दो!" न मनुष्य, न देवता
अगर वह वरदान मिल सकता है; तो फिर उस चीज की मांग क्यों करें जो कभी मिल ही नहीं सकती?
न तो रहस्यमय आकर्षण, न ही जादुई जड़ें, न ही जड़ी-बूटियाँ, न ही खर्च किया गया पैसा,
"वह भूत को फिर से जीवित कर सकता है, जिसके लिए, कान्हा, तुम शोक मना रहे हो।"
यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया, "प्रिय, तुम्हारा इरादा अच्छा था। तुमने मेरी परेशानी दूर करने के लिए ऐसा किया।" फिर घटपांडित की प्रशंसा में उन्होंने चार श्लोक दोहराए:

"मुझे ऐसे बुद्धिमान और उत्कृष्ट पुरुष मिले जिन्होंने मुझे अच्छी सलाह दी।"
लेकिन आज घटपांडिता ने मेरी आंखें कैसे खोल दीं!
मैं ऐसे भड़क उठा जैसे कोई व्यक्ति आग पर तेल डालता है;
तुम पानी लाए और मेरी इच्छा की पीड़ा को शांत किया।
"मेरे बेटे के शोक ने मेरे दिल में एक क्रूर तीर की तरह घाव कर दिया था।"
आपने मेरे दुःख में मुझे सांत्वना दी और मेरे अंदर से तीर निकाल दिया।
"वह तीर निकल जाने के बाद, दर्द से मुक्त होकर, मैं शांत और स्थिर रहता हूँ;
हे युवक, तुम्हारे सत्य वचन सुनकर अब मुझे न तो शोक होता है और न ही मैं रोता हूँ।
और अंत में:

दयालु लोग ऐसा ही करते हैं, और जो वास्तव में बुद्धिमान हैं वे भी ऐसा ही करते हैं।
वे दर्द से मुक्त हैं, जैसे यहाँ घटा ने अपने बड़े भाई को मुक्त किया था।"
यह पूर्ण ज्ञान का श्लोक है।

इस प्रकार राजकुमार घटा ने वासुदेव को सांत्वना दी।

बहुत समय बीत जाने के बाद, जब कन्हदीपायन ने अपने राज्य पर शासन किया, तो दस भाइयों के पुत्रों ने सोचा: "कहते हैं कि कन्हदीपायन (एक तपस्वी) को दिव्य अंतर्दृष्टि प्राप्त है। चलो उसकी परीक्षा लेते हैं।" इसलिए उन्होंने एक लड़के को बुलाया, उसे

सजाया-संवारा और उसके पेट पर तकिया बांधकर ऐसा दिखाया मानो वह गर्भवती हो। फिर वे उसे कन्हदीपायन के समक्ष लाए और उससे पूछा, "हे महाराज, यह स्त्री कब प्रसव करेगी?" तपस्वी को समझ आ गया (*10) कि दस शाही भाइयों के विनाश का समय आ गया है; फिर अपने जीवन की अवधि जानने के लिए उन्होंने देखा कि उन्हें उसी दिन मरना होगा। तब उन्होंने कहा, "हे बालकों, यह व्यक्ति तुम्हारे लिए क्या है?" "हमें उत्तर दीजिए," उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया। उन्होंने उत्तर दिया, “यह व्यक्ति आज से सातवें दिन बबूल की एक गांठ उत्पन्न करेगा। इससे वह वासुदेव वंश का नाश करेगा, चाहे तुम उस लकड़ी को जलाकर उसकी राख नदी में फेंक दो।” “अरे, झूठे तपस्वी!” उन्होंने कहा, “मनुष्य कभी संतान उत्पन्न नहीं कर सकता!” और उन्होंने रस्सी और धागे का काम किया और उसे तुरंत मार डाला। राजाओं ने उन युवकों को बुलवाया और उनसे पूछा कि उन्होंने तपस्वी को क्यों मारा। जब उन्होंने सब कुछ सुना, तो वे भयभीत हो गए। उन्होंने उस व्यक्ति पर पहरा बिठा दिया; और जब सातवें दिन उसने बबूल की एक गांठ उत्पन्न की, तो उन्होंने उसे जलाकर उसकी राख नदी में फेंक दी। राख नदी में बहती हुई एक पिछले द्वार के पास एक किनारे पर आकर रुक गई; वहाँ से एक एरका का पौधा उगा।

एक दिन राजाओं ने जल में आनंद लेने का प्रस्ताव रखा। अतः वे पिछले द्वार से आए और एक भव्य तंबू बनवाया। उस तंबू में उन्होंने भोजन और पेय किया। फिर खेल-खेल में वे एक-दूसरे का हाथ-पैर पकड़ने लगे और दो गुटों में बँटकर आपस में बहुत झगड़ा करने लगे। अंत में उनमें से एक को जब लाठी के लिए कुछ बेहतर नहीं मिला, तो उसने एरका के पौधे से एक पत्ता तोड़ा, और तोड़ते ही वह पत्ता उसके हाथ में बबूल की लाठी बन गया। इससे उसने कई लोगों को पीटा। फिर अन्य राजाओं ने भी तोड़ा और जैसे ही उन्होंने उसे पकड़ा, वह लाठी बन गई। उनसे वे एक-दूसरे को लाठियों से पीटते रहे, जब तक कि सब मर नहीं गए। जब वे एक-दूसरे को मार रहे थे, तभी केवल चार लोग - वासुदेव, बलदेव, उनकी बहन अंजना और पुजारी - रथ पर सवार होकर भाग गए; बाकी सब मारे गए।

अब ये चारों रथ में सवार होकर भागते हुए कलामत्तिका के वन में पहुँचे। वहाँ पहलवान मुथिका का जन्म हुआ था, जो अपनी प्रार्थना के फलस्वरूप एक राक्षस बन गया था। बलदेव के आने का आभास होते ही उसने उस स्थान पर एक गाँव बसा लिया; और पहलवान का रूप धारण करके उछल-कूद करने लगा और उंगलियाँ चटकाते हुए चिल्लाने लगा, "लड़ने के लिए कौन तैयार है?" बलदेव ने उसे देखते ही कहा, "भाई, मैं इससे मुकाबला करने की कोशिश करूँगा।" वासुदेव ने उसे रोकने का भरसक प्रयास किया; लेकिन वह रथ से नीचे उतरा और उंगलियाँ चटकाते हुए उसके पास गया। दूसरे राक्षस ने उसे हथेली में ही पकड़ लिया और मूली की तरह निगल गया। वासुदेव ने जब देखा कि वह मर गया है, तो वह अपनी बहन और पुजारी के साथ पूरी रात भटकता रहा और सूर्योदय के समय एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचा। वह एक झाड़ी की आड़ में लेट गया और अपनी बहन और पुजारी को गाँव में कुछ खाना पकाकर लाने का आदेश देकर भेजा। एक शिकारी (जिसका नाम जरा या वृद्धावस्था था) ने झाड़ी को हिलते हुए देखा। उसने सोचा, "ज़रूर कोई सूअर होगा!" उसने एक भाला फेंका और उसके पैरों में जा लगा। वासुदेव चिल्लाया, "मुझे किसने घायल किया है?" शिकारी ने जब देखा कि उसने एक आदमी को घायल किया है, तो वह डर के मारे भागने लगा। राजा ने होश में आकर उठकर शिकारी को पुकारा, "मामा, इधर आइए, डरिए मत!" जब वह आया, तो वासुदेव ने पूछा, "आप कौन हैं?" "मेरा नाम जरा है, महाराज।" राजा ने सोचा, "उदासी जिसे घायल करती है, वह मर जाता है, ऐसा पूर्वज कहते थे। निःसंदेह आज मुझे मरना ही है।" फिर उसने कहा, "डरो मत, मामा; "आओ, मेरे घाव पर पट्टी बाँध दो।" घाव पर पट्टी बाँधकर राजा ने उसे जाने दिया। उसे बहुत कष्ट हुआ; वह दूसरों द्वारा लाया गया भोजन नहीं खा सका। तब वासुदेव ने दूसरों से कहा, "आज मुझे मरना है। तुम नाज़ुक प्राणी हो, और जीविका के लिए कुछ और नहीं सीख पाओगे; इसलिए मुझसे यह विद्या सीख लो।" ऐसा कहकर उसने उन्हें एक विद्या सिखाई और उन्हें जाने दिया; और फिर तुरंत उसकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार, कहा जाता है कि अंजना को छोड़कर बाकी सभी लोग मारे गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "हे शिष्य, इस प्रकार प्राचीन काल के बुद्धिमानों के वचनों का पालन करके लोग पुत्र मृत्यु के शोक से मुक्त हो गए; तुम इस विषय में मत सोचो।" फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की (सत्यों की व्याख्या के समापन पर शिष्य प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया), और जन्म का वर्णन किया: "उस समय, आनंद रोहिणीय थे, सारिपुत्र वासुदेव (कान्हा) थे, बुद्ध के अनुयायी अन्य व्यक्ति थे, और मैं स्वयं घटपांडित था।"

फुटनोट:

(1)सं. 449.

(2)कृष्ण, बलराम (कृष्ण के भाई), चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, वरुण (स्वर्ग के देवता), अर्जुन वृक्ष, वर्षा प्रभात (? पज्जुन्नो, संस्कृत, जबकि यह कामदेव का एक नाम है), घी ऋषि (? या घट-प., एक तपस्वी), अंकुर। इस कथा में प्रकृति-कथा का सार प्रतीत होता है।

(3) एक प्रकार का हथियार.

(4)अर्थात राजा और उसका भाई।

(5) क्रमांक 444 में पहले से उल्लिखित ऋषि

(6) वे उससे विनती करते हैं.

(7) शाब्दिक अर्थ "उसका हृदय और उसकी दाहिनी आँख" (श्.): तुलना करें संस्कृत वायु-ग्रस्त "पागल."

(8)ये पंक्तियाँ पहले ही क्रमांक 449 में आ चुकी हैं।

(9) जिसे हम चंद्रमा में आदमी कहते हैं, उसे भारत में चंद्रमा में खरगोश कहा जाता है, जातक, संख्या 316 देखें।

(10) यानी उनके चमत्कारी दर्शन द्वारा।

लिंक:
कान्हा (कृष्ण) की कहानी: पेटवत्थु (भूत-प्रेत की कहानियां) 1.18
अंकुर (कृष्ण के भाई) की कहानी: पेटवत्थु (भूत-प्रेत की कहानियां) 1.21

पिछला <<<<-----||-454-||----->>>> अगला

पाली-रोमन संस्करण

(स्रोत: https://tipitaka.org/)
[454] 16. **घटपंडितजातकवन्ना**

उत्थेहिकंहति इदं सत्था जेतवने विहारन्तो मतपुत्तं कुटुम्बिकं अरब्भ कथेसि। वत्थु मथकुंडलिसादीसमेव। इधा पण सत्ता तं उपासकं "कीं, उपासक, सोकासि"ति वट्वा" अमा, भंते"न्ति वुत्ते" उपासक, पोराणकपंडिता पंडितानं कथं सुत्वा मतपुत्तन नानुसोचिंसु'ति वत्वा तेन याचितो अतीतं अहारी।

अतिते उत्तरपथे कंसभोगे असितञ्जनगारे महाकंसो नाम राजा रज्जन करेसि। तस्स कांसो च, उपाकांसो चति दवे पुत्त अहेसुं, देवगब्भा नाम एक धीता। तस्स जातदिवसे नेमित्तका ब्राह्मणा "एतिस्सा कुच्चियं निब्बट्टपुत्तं कंसगोट्टं कंसावंसं नास्सेसंती बयाकारिंसु।" राजा बलवसिनेहेन धीतरं विनाशेतुं नासक्खि, भतरो जनिसंति यावतायुकां यथात्व कालमकसि। तस्मिन कालकते कंसो राजा अहोसि, उपकंसो उपराज। ते चिंतायिन्सु "ससे मयां भगिनीं नासेस्सामा, गरेहा भविस्सामा, एतं कस्सासि अदत्वा निस्सामिकं कत्वा पतिजग्गिस्समा"ति। ते एकथुनकं पसादं करेत्वा तं तत्थ वसापेसुम्। नंदीगोपा नाम तस्स परिचारिका अहोसि। अंधकवेन्दो नाम दासो तस्स सामिको अरक्खमकासि।

तदा उत्तरमधुराय महासागरो नाम राजा रज्जन करेसि। तस्स सागारो, उपसागारो चति द्वे पुत्ता अहेसुम। तेसु पितु अक्येन सागरो राजा अहोसि, उपसागरो उपराजा। तो उपकंस्सास सहयाको एककारियाकुले एकतो उग्गहितसिप्पो। तो सागरस्स भतु अन्तेपुरे दुभ्भित्वा भयमानो पलयित्वा कंसभोगे उपकंसस्स शान्तिकं अगमसि। उपाकांसो तं रणनो दस्सेसि, राजा तस्स महन्तं यसं अदासि। तो राजुपत्थानं गच्छन्तो देवगब्भाय निवासं एकथंभं पसादं दिसवा "कस्सेसो निवासो"ति पुच्छित्वा तं कारणं सुत्वा देवगब्भाय पतिबद्धचित्तो अहोसी. देवगब्भापि एकदिवासं तं उपकंसेन सद्धिं राजुपत्थानं आगच्छन्तं दिस्व "को एसो"ति पुच्छित्वा "महासागरस्स पुत्तो उपसागरो नामा'ति नंदीगोपाय संतिका सुत्वा तस्मिं पतिबद्धचित्त अहोसि। उपसागरो नंदीगोपाय लांजं दत्वा "भगिनी, सक्खिस्ससि मे देवगभं दस्सेतु'न्ति अहा। स"न एतं सामि, गरुका'न्ति वत्वा तं कारणं देवगभय अरोसेसि। स पकतियाव तस्मिन पतिबद्धचित्त तं वचनं सुत्वा साधु'ति संपतिचित्वा नंदीगोपा उपसागरस्स संन्न दत्वा रतिभागे तं पसादं अरोपेसि। तो देवगभय सद्धिमं संवासं कप्पेसि । अथ नेसं पुनप्पुनं संवसेन देवगब्भा गभभः पतीलाभि।

अपराभागे तस्स गभपतिट्ठानं पाकतं अहोसि। भतारो नंदीगोपं पुच्छिंसु, स अभयं यचित्वा तं अंतरं कथेसि। ते सुत्वा " भगिनिं नासेतुं न सक्का, ससे धीतरं विजयिस्सति, तम्पि न नासेस्सामा, ससे पण पुत्तो भविष्यसति, नासेस्सामा'ति चिन्तेत्वा देवगब्भं उपसागरसेव अदांसु। सा परिपुणगब्भा धीतरं विजयी। भतरो सुत्वा हत्थुत्था तस्सा "अंजनादेवी'ति नामं करिणसु। तेसं भोगवधमानं नाम भोगागम अदांसु। उपसागरो देवगभं गहेत्वा भोगवधमानागमे वसि। देवगब्भाय पुनापि गब्बो पतिथसि, नंदीगोपि तं दिवासमेव गभभ पतिलाभि। तासु परिपुन्नगभासु एकादिवासमेव देवगब्भा पुत्तं विजई, नंदीगोपा धीतरं विजई। देवगभा पुत्तस्स विनाशनभयेन पुत्तं नंदीगोपाय रहस्सेन पेसत्व तस्स धीतरं आहारपसि। तस्स विजातभावं भयानकं अरोसेसुं । ते " पुत्तं विजेता, धीतर"न्ति पुच्छित्वा "धीतर"न्ति वुत्ते "तेन हि पोसेथा"ति अहंकारसु। एतेनुपायेन देवगब्भा दास पुत्ते विजई, दास धीतरो नंदीगोपा विजई। दश पुत्त नन्दीगोपाय संतिके वन्धन्ति, धीतरो देवगभाय। तं अंतरं कोचि न जानाति। देवगभाय जेट्ठापुट्टो वासुदेवो नाम अहोसी, दुतियो बलदेवो, ततियो चंदादेवो, कैटुथो सूर्यदेवो, पंचमो अग्गीदेवो, चाथो वरुणदेवो, सत्तमो अज्जुनो, अठमो पज्जुनो, नवामो घटपंडितो, दशमो अंकुरो नाम अहोसि। ते अंधकवेन्ददासपुत्त दास भाटिका चेताकाति पकाटा अहेसुम्।

ते अपराभागे वुद्धिमान्वय थम्बलसम्पन्ना कक्खहा फारुसा हुत्वा विलोपं करोंता विकारन्ति, रणनो गच्छन्ते पणनाकारेपि विलुमपंतेव। मनुस्सा सन्निपतित्व' अंधकवेन्ददासपुत्त दश भाटिका रथं विलुमपंती'ति राजांगने उपक्कोसिंसु। राजा अंधकवेन्दं पक्कोसपेत्वा "कस्मा पुत्तेहि विलोपं करापेसि"ति तज्जेसि। एवं दुतियामपि ततियामपि मनुस्सेही उपक्कोसे कते राजा तं संतज्जेसि। तो मरणभयभीतो राजनं अभयं यचित्व "देवा, एते न मयहं पुत्त, उपसागरस्स पुत्त'ति तं अंतरं अरोससि। राजा भीतो" केन ते उपयेन गन्हामा'ति अमास्से पुच्छित्वा' एते, देवा, मल्लयुद्धवित्तका, नगरे युद्धं करतेत्व तथा ने युद्धमंडलं अगते गहापेत्वा मरेस्सामा'ति वुट्टे चारुरणचा, मुथिकांचाति द्वे मल्ले पोसेत्वा "इतो सत्तामे दिवसे युद्धं भविष्यति"ति नगरे भेरिं कारपेट्वा राजंगने युद्धमंडलम सज्जापेतवा अक्खावंतं करेत्वा युद्धमंडलं अलंकारपेत्वा धजपताकं बंधपेसि। सकलानगरं संखुभिः। चक्कतिचक्कं मन्चतिमञ्चं बंधित्वा चारुरामुथिका युद्धमंडलं अगन्त्वा वग्गन्ता गज्जन्ता अफोटेन्टा विचारिन्सु। दश भाटिकापि अगन्त्वा राजकविथिं विलिम्पित्वा वनसातके निवासेत्व गन्धपनेसु गंधम्, मालाकारपनेसु मलं विलिम्पित्वा विलत्तगट्टा मालाधारिनो कटकण्पुरा वग्गंता गज्जंता अप्पोटेन्ता युद्धमंडलं पविसिंसु।

तस्मिं खाने कारुरो अप्फोटेन्टो विकारति। बलदेवो तं दिस्वा "न नं हत्थेन छुपिसामि"ति हट्ठिसलातो महंतं हत्थियोत्तं अहारित्वा वाग्गित्वा गज्जित्वा योत्तं खिपित्वा चारूरं उदारे वेथेट्वा द्वे योट्टकोटियो एकतो कत्वा वत्तेत्वा उक्खिपित्वा सीसमत्थके भमेत्वा भूमियां पोथेत्वा बहि अक्खवते खिपि। चारुरे मते राजा मुथिकमल्लं अनापेसि। तो उत्थाय वाग्गित्वा गज्जित्वा अपफोतेसि । बलदेवो तं पोथेत्वा अथिनि संकुणेत्वा"अमल्लोमहि, अमललोमहि"ति वदंतमेव" नाहं तव मल्लभवं वा अमल्भवं वा जानामि"ति हत्थे गहेत्वा भूमियां पोथेत्व जीविताक्खायं पपेत्वा बहि अक्खावते खिपि। मुतिहिको मरान्तो " यक्खो हुत्वा तम् खदितुं लभिस्सामि'ति पत्थानं पथपेसि। तो कालमत्तिकातवियां नाम यक्खो हुत्वा निब्बत्ती। राजा "गणहठ दासा भातिके चेताके"ति उठही। तस्मिं खने वासुदेवो चक्कं खिपि। तं द्विन्नमपि भयावहं सिसानि पतेसि। महाजनो भीतत्सितो "अवस्सया नो होथा"ति तेसं पदेसु पतित्व निपज्जि। ते द्वेपि मातुले मारेत्वा असितंजनगारे रज्जं गहेत्वा मातापितारो तत्थ कत्वा सकलजंबुदीपे रज्जं गणहिस्सामा'ति निक्खमित्वा अनुपुब्बेना कलयोनकरणो निवासं अयुज्झानगरं गन्त्वा तं परिक्खिपित्वा स्थितं परिखारुक्खगहनं विद्धनसेत्व पकारं भिंडित्वा राजनं गहेत्वा तं रज्जं अत्तनो हत्थागतं कट्वा द्वारवतीम् पापुनिसु. तस्सा पना नागरस्सा एकतो समुद्दो एकतो पब्बतो, अमानुस्सापरिग्गहितं किरा तां अहोसि।

तस्स अरक्खं गहेत्वा थितायक्खो पच्चमिते दिस्व गद्रभवेसेन गद्रभरवं रवति। तस्मिं खाने यक्खानुभावेन सकलानगरं उपपतित्व महासमुद्दे एकस्मिं दीपके तिथति। पच्चमित्तेसु गतेसु पुनगन्त्वा सकत्थनेयेव पतितथति। तदापि सो गद्रभो तेसं दशन्नं भयानकं अगमनं नात्वा गद्रभरवं रवि। नागरं उपपतित्व दीपके पतिथया तेसु नागरं अदिस्वा निवतंतेसु पुनगंत्वा सकथाने पतिथसि। ते पुना निवत्तिन्सु, पुनापि गद्रभो तथेव आकाशि। ते द्वारवतिनगरे राजजं गनहितुं असक्कोंता कण्हादिपयानस्सा इसिनो संतिकां गन्त्वा वंदित्वा "भंते, मयां द्वारवतियां रज्जं गहेतुं न सक्कोमा, एकं नो उपायं करोथा'ति पुच्छित्वा' परिखापिथे असुकास्मिन नाम ठाणे एको गद्रभो कैरति। तो हि अमिते दिवविरवती, तस्मिं खाने नागरं उप्पतित्व गच्छति, तुम्हें तस्स पदे गन्हथ, अयं वो निप्पज्जनुपायो'ति वुत्ते तपसं वंदित्वा गन्त्वा गद्रभस्सा पदेसु गहेत्वा निपतित्वा "सामि, थपेत्वा तुम्हें अन्नो अम्हाकं अवस्सयो नत्थि, अम्हाकं नागारं गन्नाकाले मा रवित्था'ति याचिंसु। गद्रभो "न सक्का न विरवितुं, तुम्हें पण पथमात्रं अगन्त्वा चत्तारो जन महन्तनि अयनांगलानि गहेत्वा कैटुसु नगरद्वारेसु महन्ते अयाखानुके भूमियां अकोतेत्वा नागरस्सा उप्पटनकाले नंगलानी गहेत्वा नंगलबद्धं अयासंखलिकां अयखानुके बंधेयथा, नागरं उप्पतितुं न सक्खिसति अहा।

ते "साधु'ति वत्वा तस्मिं अविरवंतयेव नंगलानी आदया कटुसु नगरद्वारेसु खनुके भूमियां अकोतेत्वा अथाहंसु।' तस्मिं खाने गद्रभो विरावि, नागरं उपपतितुमाराभि। कैटुसु द्वारेसु थिता कैटुहि अयानंगलेहि गहेत्वा नंगलबद्धा अयासंखलिका खनुकेसु बंधिंसु, नागरं उप्पतितुं नासक्खि। दश भाटिका ततो नागरं पविसित्वा राजनं मारेत्व रज्जं गणहिंसु। एवं ते सकलजम्बुदीपे तेसत्थिया नगरसहस्सेसु सब्बाराजनो चक्केन जीविताक्खयं पपेत्वा द्वारवतियां वसमाना रज्जं दासा कोठहासे कट्वा विभाजिंसु, भगिनीं पण अंजनदेविं न सरिणसु। ततो पुना "एकादसा कोठहासे करोमा"ति वुत्ते अंकुरो "मम कोठासां तस्स देथा, अहं वोहारं कत्वा जीविसामि, केवलं तुम्हें अत्तनो जनपद मयहं

सुंकम् विसज्जेथा'ति आहा। ते "साधु'ति संपतिचित्व तस्स कोठसां भगिनिया दत्वा सद्धिं तय नव राजनो द्वारवतियां वसिंसु।' अंकुरो पण वनिज्जमकासी। एवं तेसु अपारपरं पुत्तधिताहि वधमनेसु अद्धाने गते मतापित्रो कालमकंसु।

तदा किरा मनुस्सनं विसातिवस्ससहस्सयुकाकालो अहोसि। तदा वासुदेवमहाराजस्स एको पुत्तो कालमकसि। राजा सोकापरेतो सब्बाकिच्चानि पहाय मनकस्सा अटानिं परिग्गहेत्वा विलापंतो निपज्जि। तस्मिं काले घटपंडितो सिंतेसि "थपेत्वा मं आन्नो कोसि मम भातु सोकं हरितुं समत्थो नाम नत्थि, उपयेनस्सा सोकं हरिस्सामि"ति। तो उम्मत्तकवेसं गहेत्वा "ससं मे देथा, ससं मे देथा'ति आकाशं उल्लोकेनतो सकलानगरं विचारी। "घटपंडितो उम्मत्तको जातो'ति सकलानगरं संखुभि।' तस्मिं काले रोहिणीयो नाम अमाको वासुदेवराणो संतिकां गन्त्वा तेन सद्धिं कथं समुत्थापेन्टो पथमं गथमः -

165.

"उथेहि कान्हा किं सेसि, को अत्थो सुपानेना ते;

योपि तुयहं सको भता, हदयं चक्खु च दक्खिनं;

तस्स वाता बल्यन्ति, घटो जपपति केशव'ति।

तत्थ कान्हाति गोत्तेनालापति, कान्हायनगोत्तो किरेसा। को अत्थोति कटारा नाम वधि। हदायं चक्खु च दक्खिन्ति हदायेन सेवा दक्खिनचक्कुना च समानोति अथो। तस्स वात बल्यन्तिति तस्स हदयं अपस्मारवत अवत्थरन्ति अत्थो। जपतिति "सासं मे देथा"ति विप्पलपति। केशवति सो किरा केससोभनताय "केशव'ति पन्नयित्था, तेन तं नामेनालपति।

एवं अमास्सेन वुट्टे तस्स उम्मत्तकभावं नात्वा सत्ता अभिसंबुद्धो हुत्वा दुतियाम् गथमः -

166.

"तस्सा तं वचनं सुत्वा, रोहिणीयस्सा केसवो;

तारामनारूपो वुथसि, भातुसोकेन एतितो"ति।

राजा उत्थय सिघं पसाद ओतरित्वा घटपंडितस्स शांतिकं गन्त्वा उभोसु हत्थेसु दढहं गहेत्वा तेन सद्धिं सल्लपन्तो तत्यं गथमः -

167.

"किं नु उम्मत्तारूपोवा, केवलं द्वारकं इमाम;

ससो ससोति लापसि, को नू ते ससमाहरि'ति।

तत्थ केवलं द्वारकं इमान्ति कस्मा उम्मत्तको विया हुत्वा सकलं इमं द्वारवतीनगरम विकारन्तो "ससो ससो"ति लापसि। को तव ससं हरि, केना ते ससो गहितोति पुच्छति।

तो ॠणा एवं वुत्तेपि पुनप्पुनं तदेव वचनं वदति। राजा पुना द्वे गाथा अभ्यास -

168.

" सोवणमायं मणिमायं, लोहमायं अथ रुपियामयं;

संखशिलापवदामयं, कार्यिस्सामि ते ससां।

169.

"संति अण्णेपि ससाका, अरण्ये वनागोकरा;

तेपि ते अनायिस्सामि, किदिसं ससामिच्चसि'ति।

तत्रायं सांखेपत्थो — तेसु सुवन्नमायादिसु यां इच्छासि, तं वद, अहं ते करेत्वा दशमि, अथापि ते न रोसेसि, अण्णेपि अरण्ये वनगोचरा ससाका अह्नि, तपि ते अनयिस्सामि, वदा भद्रमुख, किदिसं ससामिच्चसिति।

राणो कथं सुत्वा घटपंडितो चाथं गथमः -

170.

"न चाहमेते इच्छामि, ये ससा पथविसिता;

चंडतो ससामिच्छामि, तं मे ओहारा केशव'ति।

Tattha oharāti otārehi.

राजा तस्स कथं सुत्वा " निस्सांसयं मे भता उम्मत्तकोवा जातो'ति दोमनस्सप्पत्तो सत्तमं गथमः -

171.

"सो नुना मधुरं नाति, जीवितं विजाहिस्सासि;

अपत्थियं यो पत्थयसि, चंडातो ससामिच्चसि'ति।

तत्थ नातिति कनिष्ठं अलापन्तो अहा। इदं वुत्तं होति - "तता, मयहं पियानति सो त्वं नुना अतिमधुरं अत्तनो जीवितं विजाहिस्सासि, यो आपत्थेतबं पथयसि"ति।

घटपंडितो रणनो वचनं सुत्वा निकललो तत्त्वा "भटिका, त्वं चंदतो ससाकं पत्थेनत्सा तं अलभित्वा जीविताखयभवं जानंतो किं करण मतपुत्तम् अनुसोकासि'ति वत्वा अष्ठमं गथमः -

172.

"एवं सी कान्हा जानासि, यदान्नमनुसासि;

कस्मा शुद्ध मतं पुत्तं, अजजापि मनुसोकासि'ति।

तत्थ एवन्ति इदं अलब्भनेयत्थानं नाम न पत्थेतब्बन्ति यदि एवं जानासी। यदान्नमनुससिति एवं जनंतोवा यदि अण्णां अनुससिति अथो। शुद्धि अथ कस्मा इतो कैटुमासमत्थके मतपुत्तं अज्जपि अनुसोकसति वदति।

एवं सो अंतरविथीयं हितकोवा भाटिका, अहं तव पन्नयामनं पत्थेमि, त्वं पण अपान्यामानस सोकासि'ति वत्वा तस्स धम्मं देसेंटो पुना द्वे गाथा अभासी -

173.

"यं न लब्भा मनुस्सेन, अमानुस्सेन वा पुना;

जातो मे मा मरी पुत्तो, कुतो लब्भा अलब्भ्यं।

174.

"न मंता मुलाभेसज्जा, ओसाधेहि धनेन वा;

सक्क अनैयितुं कान्हा, यं पेटमनुसोकासि'ति।

तत्थ यान्ति भाटिका यम एवं जातो मे पुत्तो मा मरिति मनुस्सेन वा देवेना वा पुना न लब्भा न सक्का लधुं, तं त्वं पत्थेसि, तदेतम कुतो लब्भा केन करणेन सक्का लधुं, न सक्कति दिपेति। कस्मा? यस्मा अलब्भ्यं, अलब्भनेयथनान्हि नमेतन्ति अत्थो। मंताति मंतपयोगेन। मूलभेषजति मूलभेषजजेण। ओसाधेहिति नानाविधोसाधेहि। धनेन वती कोटिसातसंख्येनपि धनेन वा। इदं वुट्टं होति - "यं त्वं पेटमानुसोकसि, तं एतेहि मंतपयोगादिहि अनेतुं न सक्क'ति।

राजा तं सुत्वा "युत्तं, तत, सल्लक्खितं मे, मम सोखहरणत्थाय तय इदं कत'न्ति घटपंडितं वन्नेनतो काटासो गाथा अभ्यास -

175.

"यस्सा एतादिसा अस्सु, अमाक्का पुरीसपंडिता;

यथा निज्झापये अज, घटो पुरिसपण्डितो।

176.

"अदित्तं वात मम् संतं, घटसित्तव पावकम्;

वारिणा विया ओसिंकं, सब्बं निब्बापये दरं।

177.

"अब्बाहि वात मे सल्लं, यमसि हदयस्सीतम्;

यो मे सोकापरेतस्सा, पुत्तसोकं अपानुदि।

178.

"सोहं अब्बुधसलोस्मि, वितासोको अनाविलो;

न सोकामि न रोदामि, तव सुत्वान् मनाव'ति।

तथा पठमगाथाय सांखेपत्तो – यथा येन करणेन अजजा मम् पुत्तसोकापरेतं घाटो पुरिसपंडितो सोखहरणत्थाय निज्झापे निज्झापेसि बोधेसि। यस्सा अण्णास्सपि एतादिसा पुरिसपंडिता अमाक्का अस्सु, तस्स कुतो सोकोटि। शेषगाथा वुट्टथयेव।

Avasāne –

179.

"एवं करोंति सप्पन्न, ये होंति अनुकम्पका;

निवत्तयन्ति सोकम्हा, घाटो जेत्थैव भतार'न्ति। –

अयं अभिसंबुद्धगाथा उत्तानत्थयेव।

एवं घटकुमारेण वितासोके कते वासुदेवे रज्जं अनुसासंते दीघस्सा अधुनो अच्चयेन दशभातिकापुत्त कुमार चिंतायिन्सु "कान्हादीपायनं 'दिब्बकक्खुको'ति वदन्ति, विमानसिस्साम तव न'अन्ति। ते एकं दहरकुमारं अलंकारित्वा गब्बिनिकारेण दस्सेत्वा उदारे मसूरकं बंधित्वा तस्स संतिकां नेत्वा भंते, अयं कुमारिका किं विजयिसति पुच्चिंसु। तपसो "दशभतिकारजुनं विनाशकलो पत्तो, मयहं नु खो आयुसंखारो किदिसो होती"ति ओलोकेंटो "अज्जेवा मरणं भविसति"ति नात्वा"कुमारा इमिना" तुम्हकं को अत्थो"ति वट्वा"कथेथेव नो, भंते"ति निबद्धो'अयं इतो सत्तमे दिवसे खदिराघातिकं विजयस्सति, तया वासुदेवकुलं नस्सीस्सति, अपिका खो पाना तुम्हें तां खादिराघातिकं गहेतवा झपेतवा चारिकं नादियां पक्खिपेयथा'ति आहा। अथ नं ते " कुटजटिला, पुरिसो विजयानको नाम नत्थि"ति वट्वा तन्तरज्जुकं नाम कम्मकारणं कट्वा तत्थेव जीवितक्खयं पापयिन्सु। राजणो कुमारे पक्कोसपेत्वा "किं कारण तपसं मरयित्था"ति पुच्छित्वा सब्बं सुत्वा भीता तस्स अरक्खं दत्वा सत्तामे दिवसे तस्स कुच्चितो निकखंतं खदिराघातिकं झपेत्वा चारिकं नादियां खिपिंसु। सा नदिया वुयहमाना मुखद्वारे एकपासे लग्गी, ततो एरकं निब्बति।

अथेकादिवासं ते राजनो "समुद्दकीडनं किदिस्सामा'ति मुखद्वारं गन्त्वा महामण्डपं करापेत्वा अलंकटमण्डपे खदन्त पिवंता किषावसेनेव पवत्तहत्थपादपरमसा द्विधा भिज्जित्वा महाकालहं करिणसु। अथेको अन्नं मुग्गरां अलभन्तो एरकवनतो एकं एरकपट्टं गाणहि। तं गहितमत्तमेव खादिरमुसलं अहोसि। तो तेन महाजनं पोथेसि । अथन्नैहि सब्बेहि गहितागहितं खादिरमुसलमेव अहोसि। ते अण्णामन्नं पहारित्वा महाविनासं पापुनिंसु। तेसु महाविनाशं विनाशंतेसु वासुदेवो च बलदेवो च भगिनी अंजनदेवी च पुरोहितो बिल्ली कटारो जन रथं अभिरुहित्वा पलयिन्सु, शेषा सब्बेपि विनथः। तेपि कटारो रथेन पलयंता कादमत्तिकातविं पापुनिसु। तो हि मुथिकमल्लो पत्तनं कत्वा

यक्खो हुत्वा तत्थ निब्बत्तो बलदेवस्सा अगतभावं नात्वा तत्थ गमं मपेत्वा मल्लवेसं गहेत्वा "को युज्हितुकामो"ति वाग्गंतो गज्जंतो एफोटेन्टो विकारी। बलदेवो तं दिस्वा "भटिका, अहं इमिना सद्धिं युज्हिस्सामि वट्वा वासुदेवे वारेन्तेयेव रथ ओरुयहा तस्स सान्तिकं गन्त्वा वाग्गान्तो गज्जन्तो एपफोतेसि। अथ नं सो पसारितहत्थयेव गहेत्वा मूलकंदं विया खादी। वासुदेवो तस्स मतभावं नात्वा भगिनीञ्च पुरोहितञ्च आदया सब्बरत्तीं गन्त्वा सूर्योदये एकं पच्चन्तगामं पटवा " आहारं पचित्वा आहारा'ति भगिनीञ्च पुरोहितान्च गमं पहिणित्वा सयं एकस्मिं गच्छन्तरे पतिच्चन्नो निपज्जि।

अथ नं जरा नाम एको लुद्दको गच्छं कलन्तं दिस्वा "सुकारो एत्थ भविसति"ति संन्याय सत्तीं खिपित्वा पदे विज्झित्वा "को मां विज्झि"ति वुत्ते मनुस्सास विद्धभवं नात्वा भीतो पलयितुं अरबीः। राजा सतिं पक्कुपत्थपेत्वा उथथया" मातुल, मा भायी, एहि"ति पक्कोसित्वा अगतं "कोसि नाम त्वा"न्ति पुच्छित्वा" अहं सामि, जरा नामा"ति वुत्ते" जराया विद्धो मरिसातीति किरा मां पोराणा बयाकारिन्सु, निस्सांसयं अज माया मरितब्बा'न्ति नात्वा'मातुला, मा भयी, एहि पहरं मे बंधा'ति तेना पहारमुखं बंधपेत्वा तं उयोजेसि. बलववेदना पवत्तिन्सु, इतरेहि अभातं आहारं परिभुञ्जितुं नासक्खि। अथा ते अमनतेत्वा "अज्ज अहं मारिसामि, तुम्हें पण सुखुमाला अन्नं कम्मं कट्वा जीवितं न सक्खिस्सथा, इमं विज्जं सिक्खथा'ति एकं विज्जं सिक्खपेत्वा ते उय्योजेत्वा तत्थेव जीविताक्खयं पापुनि। एवं अंजनदेविं थपेत्वा सब्बेव विनाशं पापुनिसुति।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा'उपासक, एवं पोराणकपंडिता पंडितानं कथं सुत्वा अत्तनो पुत्तसोकं हरिंसु, मा चिंतायि'ति वट्वा सच्चनि पाकसेत्व जातकं समोधनेसि, सक्कपरियोसाने उपासको सोतापत्तिफले पतितहि। तदा रोहिणीयो आनंदो अहोसि, वासुदेवो सारिपुत्तो, अवसेसा बुद्धपरिसा, घटपंडितो पना अहमेव अहोसिंति।

घटपंडितजातकवन्नाना सोषासमा।

इति सोससाजातकापतिमन्दितस्स

दशकनिपतजातकस्सा अत्थवन्ना निथिता।

Jātakuddānaṃ —

Catudvāro kaṇhuposo, saṅkha bodhi dīpāyano;

निग्रोधा तक्कल धम्म-पालो कुक्कुता कुंडलि;

बिलारा चक्क भूरि च, मंगला घाट सोसासा।

दसकनिपतवन्नान निथिता।

पाली-देवनागरी संस्करण

[454] 16. **घटपण्डितजातकवन्न**

उत्थेहि कन्हति इदं सत्था जेतवने विहरन्तो मतपुत्तं कुटुम्बिकं अर्भ कथेसि। वत्थु मत्थकुंडलिसदिसमेव। इध पण सत्था तं उपासकं "किं, उपासक, सोचसी"ति वत्वा "अम, भंते"न्ति वुत्ते" उपासक, पोराणकपंडिता पंडितानं कथं सुत्वा मतपुत्तं नानुसोचिन्सु"ति वत्वा तेन याचितो अगस्तं अहरि।

अस्ते उत्तरपथे कंसभोगे असितञ्जनगारे महाकंसो नाम राजा राजजं करेसि। तस्स कंसो च, उपकंसो चाति द्वे पुत्ता अहेसुं, देवगभा नाम एका धीता। तस्सा जातदैसे नेमित्तका ब्राह्मणा "एतिस्सा कुच्छियं निब्बत्तपुत्ता कंसगोत्तं कंसवांसं नासेस्संति"ति ब्याकरिन्सु। राजावसिनेहेन धीतरं विनाशेतुं नासक्खि, "भत्रो जानिस्संति"ति यावतायुकं तत्वा कालमाकासि। तस्मिं कालकते कंसो राजा अहोसि, उपकंसो उपराजा। ते चिन्तयिन्सु "सच्चे मयं भगिनं नासेस्साम, गरयहा भविस्साम, एतं कास्सि अदत्वा निस्सामिकं कत्वा पतिजग्गिस्समा"ति। ते एकथूनकं पासादं करेत्वा तं तत्थ वसापेसुं। नंदीगोपा नाम तस्सा परिचारिका अहोसि। अंधकवेन्दो नाम दासो तस्सा सामिको अरखमकासि।

तदा उत्तरमधुराय महासागरो नाम राजा रजजं करेसि। तस्स सगो, उपसगरो चाति दवे पुत्ता अहेसुं। तेसु पितु आच्छयेन सगुरो राजा अहोसि, उपसागरो उपराजा। सो उपकंसस सहायको एकाचारियकुले एकतो उग्गहितसिप्पो। सो सागरस्स भातु अन्तेपुरे दुब्भित्वा

भयमानो पलयित्वा कंसभोगे उपकंसस्स शांतिकं अगमासि। उपकांसो तं रञ्ञो दस्सेसि, राजा तस्स महन्तं यसं अदासि। सो राजुपट्ठानं गच्छन्तो देवगभय निवासं एकथंभं पासादं दिस्वा "कस्सेसो निवासो"ति पुच्छित्वा तं कारणं सुत्वा देवगभय पतिबद्धचित्तो अहोसि। देवगभापि एकदिवसं तं उपकंसेन सद्धिं राजुपट्ठानं आगच्छन्तं दिस्वा "को एसो"ति पुच्छित्वा "महासागरस्स पुत्तो उपसागरो नामा"ति नन्दिगोपाय संतिका सुत्वा तस्मिं पतिबद्धचित्ता अहोसि। उपसागरो नन्दिगोपाय लञ्जं दत्वा "भगिनी, सक्खिस्ससि मे देवगभं दस्सेतु"न्ति अह। सा "न एतं सामि, गुरुक्"न्ति वत्वा तं कारणं देवगभय अरोचेसि। सा पकतियाव तस्मिं पतिबद्धचित्ता तं वचनं सुत्वा "साधु"ति संपतिच्छित्वा नन्दिगोपा उपसागरस्स संज्ञं दत्वा रतिभागे तं पासादं आरोपेसि। सो देवगभय सद्धिं संवासं कप्पेसि। अथ नेसं पुन्नप्पुनं संवासेन देवगब्भा गभभं पाटिलभि।

अपरभागे तस्सा गब्बपतित्थानं पाकतं अहोसि। भतरो नन्दिगोपं पुच्छिंसु, सा अभयं यचित्वा तं अंतरं कथेसि। ते सुत्वा "भगिनिन नासेतुं न सचित्रका, सचे धीतरं विजेयिस्सित, तम्पि न नासेस्साम, सचे पण पुत्तो भविष्यसति, नासेस्सामा'ति चिंतातेत्वा देवगभं उपसागरस्सेव अदंसु। सा परिपुन्नग्भा धीतरं विजयि। भतरो सुत्वा हत्थतुत्था तस्सा "अञ्जनदेवी"ति नामं करिंसु। तेसं भोगवन्नमानं नाम भोगगामं अदंसु। उपसागरो देवगभं गहेत्वा भोगवन्नमांगामे वसि। देवगभय पुनपि गब्बो पतित्थसि, नन्दिगोपापि तं दयमेव गभभं पतिलाभि। तासु परिपुन्नगभासु एकदिवसमेव देवग्भ पुत्तं विजयी, नंदीगोपा धीतरं विजयी। देवगभा पुत्तस्स विनाशनभयेन पुत्तं नन्दिगोपाय रहस्सेन पेसेत्वा तस्सा धीतरं अहारापेसि। तस्सा विजातभावं भातिकानं अरोचेसुं। ते "पुत्तं विजता, धीतर"न्ति पुच्छित्वा "धीतर"न्ति बुत्ते "तेन हि पोसेथा"ति अहंसु। एतेनुपायेन देवगभा दस पुत्ते विजयि, दस धितरो नंदीगोपा विजयि। दश पुत्ता नन्दिगोपाय शांतिके वन्नन्ति, धीतरो देवगभय। तं अन्तरं कोच्चि न जानाति। गभ्भाय जेट्ठपुत्तो वासुदेवो नाम अहोसि, दुतियो बलदेवो, ततियो चंददेवो, चतुत्थो सूर्यदेवो, पंचमो अग्गिदेवो, छट्ठो वरुणदेवो, सत्तमो अजदजुनो, अट्ठमो पज्ज देवजुनो, नवमो घटपंडितो, दशमो अङ्कुरो नाम अहोसि। ते अंधकवेन्ददासपुत्ता दस भाटिका चेटकति पाकता अहेसुं।

ते अपरभागे वुद्धिमन्वाय थम्बलसम्प नयना कक्खला फरुसा हुत्वा विलोपं करोन्ता विचरन्ति, रञ्ञो गच्छन्ते पन्नकारेपि विलुम्पन्तेव। मनुस्सा स साइनापतित्वा "अंधकवेन्ददासपुत्ता दस भाटिका रत्थं विलुमपंती"ति राजङ्गाने उप्ट्रैक्टकोसिंसु। राजा अंधकवेन्दं प्रकाशपेत्वा "कस्मा पुत्तेहि विलोपं करापेसी"ति तजदजेसि। एवं दुतयम्पि ततियम्पि मनुस्सेहि उपक्राकोसे कते राजा तं सन्तजजसि। सो मरणभयभितो राजानं अभयं यचित्वा "देव, एते न म्याहं पुत्ता, उपसागरस्स पुत्त"ति तं अंतरं अरोचेसि। राजा भीतो "केन ते मेयेन गंघामा"ति अमचच्छे पुच्छित्वा "एते, देव, माललयुद्धवित्तका, नगरे युद्धं करेत्वा तथा ने युद्धमंडलं आगते गहापेत्वा मारेस्मामा"ति वुत्ते चारुंदच, मुत्थिकञ्चाति द्वे मालले पोसेत्वा "इतो सत्तमे दये युद्धं भविष्यस्ति"ति नगरे भेरीं चरापेत्वा राजङ्गाने युद्धमंडलं सज्जापेत्वा अक्खावतं करेत्वा युद्धमंडलं अलङकारापेट्वा धजपताकं बंधपेसि। सकलनगरं सङखुभिः। चार्टकातिचकं मञ्चातिमनदचं बंधित्वा चारुरमुट्ठिका युद्धमंडलं आगन्त्वा वग्गन्ता गज्जन्ता अप्फोटेन्टा विचारिंसु। भा दसतिकापि आगन्त्वा रजकविथिं विलुम्पित्वा वन्सातके निवासेत्वा गंधापनेसु गंधं, मंगलकारापनेसु मालं विलुम्पित्वा विलिटगत्ता मालधारिनो कटकन्नपूरा वग्गन्ता गजदजंता अप्फोटेन्ता युद्धमंडलं पविसिंसु।

तस्मिं खने चारुरो अप्फोतेन्तो विचारति। बलदेवो तं दिस्वा "न नं हत्थेन छुपिस्सामि"ति हत्थिसालतो महन्तं हत्थियोत्तं अहारित्वा वग्गित्वा गजित्वा योत्तं खिपित्वा चारुरं उड्रे वेथेत्वा द्वे योत्तकोटियो एकतो कत्वा वत्तेत्वा उखिपित्वा सीसमथके भमेत्वा भूमियं पोथेत्वा बहि अखवते खिपि। चारुरे मते राजा मुट्ठिकमल्लं अनापेसि। सो उत्थय वग्गित्वा गजजित्वा अपफोटेसि। बलदेवो तं पोथेत्वा अट्ठिनी संदचुन्नतेव "अमल्लोम्हि, अमललोम्हि"ति वदन्तमेव "नहं तव मल्ल्भावं वा अमललभावं वा जानामि"ति हत्थे गहेत्वा भूमियं पोथेत्वा सजीवखयं पापेत्वा बहि अखवते खिपि। मुट्ठिको मरन्तो "यक्खो हुत्वा तं खादितुं लभिस्सामि"ति पत्थानं पत्थपेसि। सो कालमत्तिकअटवियं नाम यक्खो हुत्वा निब्बति। राजा "गणहथ दश भातिके चेटके"ति उत्त्थहि। तस्मिं खने वासुदेवो चकं खीपि। तं द्विसन्नमपि भातिकानं सीसानि सोसि। महाजनो हितत्सितो "अवस्सया नो होथा"ति तेसं पदेसु पतित्वा निपजजि। ते द्वेपि मातुले मत्वा असितञ्जनगांगेरे राजदजं गहेत्वा मातापितरो तथा कत्वा "सकलजम्बुदीपे राजदजं गंहिसामा"ति निखमित्वा अणुपुब्बेन कालयोनकरनदनो निवासं अयुज्जनगरं गन्त्वा तं परिक्खिपित थ्वितं परिहारुक्खघनं विध्नसेत्वा पाकरं भिन्दित्वा राजानं गहेत्वा तं रजदजं अत्तनो हत्थगतं कत्वा द्वारवतीं पापुनिंसु। तस्स नगरपनस्स एकतो समुद्दो एकतो पब्बतो, अमानुस्सपरिग्गहितं किर तं अहोसि।

तस्स अरक्खं गहेत्वा ठितयक्खो पच्चामित्ते दिस्वा गद्रभवेसेन गद्रभर्वं रवति। तस्मिं खने यक्खानुभावेन सकलनगरं उपपतित्व महासमुद्दे एकस्मिं दीपके तिट्ठति। पचदचामित्तेसु गतेसु पुनागन्त्वा सकत्थानेयेव पतित्थति। तदापि सो गद्रभो तेसं दास नारायणं भातिकानं आगमनं ञत्वा गद्रभर्वं रवि। नगरं उपपतित्व दिकेके पतित्थाय तेसु नगरं आदिस्वा निवत्तन्तेसु पुनागन्त्वा सकने पतित्थसि। ते पुन निवत्तिन्सु, पुनपि गर्भो तथेव अकासि। ते द्वारवतीनगरे रजदजं गंहितं अस्कोन्ता कन्दिपायन्सस इसिनो शांतिकं गन्त्वा वंदित्वा "भंते, मयां द्वावतियां रजजं गहेतुं न सृक्तकोम, एकं नो उपायं करोथा'ति पुच्छित्वा' परिखापित्थे असुकास्मिं नाम थाने एको गद्रभो चरति। सो हि अमित्ते दिशव विरवति, तस्मिं खने नगरं उपपतित्व गच्छति, आप तस्स पदे गच्छति, अयं वो निपफजजनुपायो"ति वुत्ते तपसं वंदित्वा गन्त्वा गद्रभस्स पदेसु गहेत्वा निपतित्व "सामि, सूर्येत्वा हरि अंडग्नो अम्हाकं अवस्स्यो नत्थि, अम्हाकं नगरं घनकाले मा रवित्था'ति याचिंसु। गद्रभो "न सचित्र न विरवितुं, आपका पन पतमतरं आगन्त्वा चतारौ जना महन्तनि अयनङगलानि गहेत्वा चतुसु नगरद्वारेसु महन्ते अयखानुके

भूमियं अकोतेत्वा नगरस्स उप्पटनकाले नङगलानि गहेत्वा नङ्गलबृधं अयसङखलिकं अयखानुके बन्धेयथ, नगरं उपपतितुं न सक्खिस्सति"ति अह।

ते "साधु"ति वत्वा तस्मिं अविरवन्तेयेव नङ्गलानि आद्य चतुसु नगरद्वारेसु खानुके भूमियं अकोतेत्वा अट्ठंसु। तस्मिं खने गर्भो विरवि, नगरं उपपतितुमाराभि। चतुसु द्वारेसु थिता चतुहि अयनङ्गलेहि गहेत्वा नङ्गलबद्धा अयसङ्खलिका खानुकेसु बंधिन्सु, नगरं उपपतितुं नासक्खि। भा दसतिका ततो नगरं पविसीत्वा राजानं मारेत्व रजदजं गांहिंसु। एवं ते सकलजम्बुदीपे तेसत्थिया नगरसहस्सेसु सब्बराजानो चक्केन सजीवखयं पपेत्वा द्वारवतियां वसमानाद रज्जं दस कोत्थासे कत्वा विभजिंसु, भगिनीं पन अंजनदेविं न सरिंसु। ततो पुन" एकादस कोत्थासे करोमा"ति वुत्ते अङ्कुरो "मम कोत्थासन तस्सा देथ, अहं वोहारं कत्वा जीविस्सामि, केवलं आपके अत्तनो जिलें मयहं सुङकं विस्सज्जजेथा"ति अह। ते "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा तस्स कोत्थसं भगिनिया दत्व सद्धिं तै नव राजानो द्वारवतियां वसिंसु। अङ्कुरो पण वणिजजमकासि। एवं तेसु अपरापारं पुत्तधीताहि वन्नमनेसु अणेद्ध गते मातापितरो कालमकंसु।

तदा किर मनुस्साणं विसतिवस्ससहस्सयुक्कालो अहोसि। तदा वासुदेवमहाराजस्स एको पुत्तो कालमकसि। राजा सोकपरेतो सब्बकिचाचानि पहाय मन्डचस्स अतनिं परिग्गहेत्वा विलपन्तो निपज्जजि। तस्मिं काले घटपंडितो चिन्तेसि "ठपेत्वा मं अञ्जनो कोचि मम भातु सोकं हरितुं समथो नाम नत्थि, मेहेनस्स सोकं हरिस्सामि"ति। सो उम्मत्तकवेसं गहेत्वा "ससं मे देथ, ससं मे देथा"ति एकासं उल्लोकांतो सकलनगरं विचारी। घटपण्डितो उम्मत्तको जातो'ति सकलनगरं सङ्खुभि। तस्मिं काले रोहिणेय्यो नाम अमच्छो वासुदेवाञ्जो शांतिकं गन्त्वा तेन सद्धिं कथं समुत्थापेन्टो पथमं गथाः -

16.

"उत्थेहि कान्ह किं सेसि, को अत्थो सुपनेन ते।"

योपि तुयहं सको भता, हदयं चक्खु च दक्खिनं।

तस्स वाता बलीयन्ति, घटो जप्पति केसव"ति॥

तत्थ कन्हति गोत्तेनाल्पि, कन्हयानगोत्तो किरेस। को अथोति कतरा नाम वन्नि। हदयं चक्खु च दक्खिनन्ति हदयेन चेव दक्खिनचक्खुना च समनोति अथो। तस्स वाता बलीयन्तीति तस्स हदयं अपस्मारवता अवथरन्तिति अथो। जप्तेति "ससं मे देथा"ति विप्पलपति। केशवति सो किर केशोभनताय "केसवा"ति पञ्जयित्थ, तेन तं नामेनालपति।

एवं अमच्छेन वुत्ते तस्स उम्मत्तकभावं नत्वा सत्था अभिसंबुद्धो हुत्वा दुतियां गथमः -

.

"तस्स तं वचनं सुत्वा, रोहिनेय्यस्स केसवो।

तर्मन्रूपो वुट्ठसि, भातुसोकेन अत्तितो"ति॥

राजा उत्थाय सीघं पसदा ओतरित्वा घटपंडितस्स शांतिकं गन्त्वा उभोसु हत्थेसु दळहं गहेत्वा तेन सद्धिं सल्लल्पंतो ततियां गथामह -

.

"किं नु उम्मत्तरूपोव, केवलं द्वारकं इमं।

ससो ससोति लपसी, को नु ते ससमाहरि"ति॥

तत् केवलं द्वारकं इमन्ति कस्मा उम्मत्तको वि हुत्वा सकलं इमं द्वारतिनगरं विचारन्तो "ससो ससो"ति लपसि। को तव ससं हरि, केन ते ससो गहितोति पुच्छति।

सो रञ्जा एवं वुत्तेपि पुनप्पुनं तदेव वचनं वदति। राजा पुन द्वे गाथा अबसि -

एक पाउंड फ्लैश.

"सौसन्नमयं मणिमयं, लोहमायं अथ रूपियामयं।

सङ्क्षशिलापवाळमयं, कार्यिस्सामि ते ससं॥

156.

"सन्ति अञ्चेपि सस्का, अञ्जने वनगोचरा।

तेपि ते अनैयिसामि, किदिसं समिच्छसी"ति॥

तत्रायं सङ्खेपत्थो – तेसु सुवन्नमयादिसु यं इच्छसि, तं वद, अहं ते करेत्वा दशमि, अथापि ते न रोचेसि, अंडनेपि अरनदने वनगोचरा सस्का अथि, तेपि ते अनायिसामि, वद भद्रमुख, किदिसं सस्मिचसीति।

रञ्जो कथं सुत्वा घटपण्डितो छट्ठं गतः -

1 वर्ष।

"न इच्छामेते इच्छामि, ये ससा पथविस्सिता।"

छंदतो समिच्छामि, तं मे ओहर केसवा"ति॥

तथा ओहरति ओतारहि।

राजा तस्स कथं सुत्वा "निस्सांसयं मे भता उम्मत्तकोव जातो"ति दोमनस्सप्पत्तो सत्तमं गथमः -

1711.

"सो नून मधुरं ज्ञाति, जीवितं विघिस्सि।

अपथ्यं यो पथयसि, चंडतो सस्मिचसी"ति॥

तत्थ ज्ञातिति कनिट्ठं अलपन्तो अहः। इदं वुत्तं होति - "तत्, मयहं पियञाति सो त्वं नून अतिमधुरं अत्तनो जीवितं विघिस्सि, यो अपत्थेतब्बं पथयसी"ति।

घटपंडितो रञ्चो वचनं सुत्वा निच्चलो तत्वा "भटिक, त्वं चंदतो सस्कं पत्थेनतस्स तं अलभित्वा सजीवखयभावं जानन्तो किं कारण मतपुत्तं अनुसोचसी"ति वत वा अट्ठमं गथमः -

172

"एवं चे कन्ह जानासि, यदञ्चमनुससि।

कस्मा पूरे मतं पुत्तं, अजादजापि मनुसोचसि"ति॥

तथा एवन्ति इदं अलभनेय्यत्थानं नाम न पत्थेत्ब्बन्ति यदि एवं जानासि। यदञ्चमनुसासीति एव जानन्तोव यदि अञ्जनं अनुससीति अथो। पूर्ति अथ कस्मा इतो चातुमासमत्थके मतपुत्तं अजदजापि अनुसोचसीति वदति।

एव सो अंतरविथ्यं थितकोवा "भाटिक, अहं तव पञ्चयामानं पत्थेमि, त्वं पण अपञ्जनयामानस्स सोचसी"ति वत्वा तस्स धम्मं देसेन्तो पुन द्वे गाथा आभासि -

17

"यं न लब्भा मनुस्सेन, अमानुस्सेन वा पुनः।

जातो मे मा मेरी पुत्तो, कुतो लब्भा अलब्भ्यं॥

174.

"न मन्ता मूलभेसज्जा, ओस्धेहि धनेन वा।

सचित्रका अन्यितुं कन्ह, यं पेतमनुसोचसी"ति॥

तत्थ यंति भातिक यं एवं जातो मे पुत्तो मा मेरति मनुस्सेन वा देवेन वा पुन न लब्भा न सफ़्रका लधुं, तं त्वं पथेसि, तदेतं कुतो लब्भा के कारणेन सफ़्राका लद्धुं, न सचित्रकाति दीपेति। कसम? यस्मा अलब्भ्यं, अलब्भनेय्यत्थाञ्जहि नमेतन्ति अथो। मंतति मंतपयोगेन। मूलभेसजजाति मूलभेसजदजेन। ओसधेहिति नानाविधोसधेहि। धनेन वती कोतिसत्सङ्ख्येनपि धनेन वा। इदं वुत्तं होति - "यं त्वं पेटमनुसोचसि, तं एतेहि मंतपयोगदिहि अनेतुं न सफ़्रका"ति।

राजा तं सुत्वा "युत्तं, तत्, सल्ललक्खितं मे, मम सोखरणथय तय इदं कत"न्ति घटपंडितं वन्नेन्तो चट्सो गाथा आभासि -

17

"यस्स एतादिसा अस्सु, अमच्चा पुरिस्पंदिता।

यथा निज्झपये अजदज, घटो पुरिस्पण्डितो॥

17

"आदित्तं वत मं सन्तं, घटसित्त्व पावकं।

वारिणा वय ओसिंदचं, सब्बं निब्बापये दरं॥

1 7.

"अब्बही वत मे सल्लं, यमासि हद्यस्सीतं।"

यो मे सोकपेरेटस्स, पुत्तसोकं अपानुदि॥

11 तिमाही.

"सोहं अ उबोल्हसल्लोस्मि, वीत्सोको अनाविलो।

न सोयामि न रोदामि, तव सुत्वान् मन्वा"ति॥

तत्थ पथमगाथाय सङ्खेपत्थो - यथा येन कारणेन अजदज मन पुत्तसोकपरेतं घटो पुरिसपण्डितो सोखरणथय निज्झापये निज्झपेसि बोधेसि। यस अञ्जनस्सपि एतादिसा पुरिसपण्डिता अमच्छ अस्सु, तस्स कुतो सोकोटि। शेषगाथा वुत्तत्थायेव।

अवसाने —

.

"एवं करोंती सप्पञ्जा, ये होनीति अनुकंपका।"

निवत्तयन्ति सोख्म्हा, घटो जेट्ठ्व भतर"न्ति॥ —

अयं अभिसम्बुद्धगाथा उत्तानथयेव।

एवं घटकुमारेण वीतसोके कटे वासुदेवे रजदजं अनुसासन्ते दीघसस अधुनो अचदचयेन दशभातिकपुत्त कुमार चिन्तयिन्सु "कण्हदिपायनं 'दिब्बचक्खुकोऽति वदन्ति, विमांसिसाम तव न"न्ति। ते एकं दहर्कुमारं अलङ्कारित्वा गब्बिनियाकारेण दस्सेत्वा उड्रे मसूरकं बंधित्वा तस्स शांतिकं नेत्वा "भंते, अयं कुमारिका किं विजायिस्स्ति"ति पुच्छिंसु। तापसो" दसभातिराजूनं विनाशकालो पत्तो, मइहं नु खो आयुसङ्खारो किदिसो होता"ति ओलोकेंतो "अजदजेव मरणं भविष्यति"ति नत्वा "कुमारा इमिना तुम्हाकं को अथो"ति वत्वा "कथेथेव नो, भंते"ति निबद्धो "अयं इतो सत्तमे दये खादिरघटिकं विजयिस्स्ति, तय वासुदेवकुलं नस्सीस्स्ति, अपिच खो पन हर तं खदिरघटिकं गहेत्वा झपेत्वा चारिकं नदियां पक्खिपेयथा"ति अह। अथ नं ते "कूटजतिल, पुरिसो विजयंको नाम नत्थि"ति वत्वा तन्तर्जजुकं नाम

कम्मकरणं कत्वा तत्थेव जीवितखयं पापयिन्सु। राजानो कुमारे पकोसपेत्वा "किं कारण तपसं मरयित्था"ति पुच्छित्वा सब्बं सुत्व भीता तस्स अरखं दत्वा सत्तमे दये तस्स कुच्छितो निखकांतं खादिरघटिकं झपेत्वा चारिकं नादियं हिपिन्सु। सा नादिया वुयहमाना मुखद्वारे एकपस्से लंबी, ततो एरकं निब्बति।

अथेकदिवसं ते राजानो "समुद्दकीळं कीळिस्समा"ति मुखद्वारं गन्त्वा महामण्डपं करापेत्वा अलक्तमण्डपे खदन्त पिवंता किळावसेनेव पवत्तहत्थपादपरमासा द्विधा भिज्जित्वा महाकलहं करिन्सु। अथेको अञ्जनं मुग्गरं अलभन्तो अरकवन्तो एकं अरकपत्तं गंहि। तं गहितमत्तमेव खादिरमुसलं अहोसि। सो तेन महाजनं पोथेसि। अथञ्जेहि सब्बेहि गहितघातं खादिरमुसलमेव अहोसि। ते अञ्जमञ्चन परीत्वा महाविनासं पापुनिंसु। तेसु महाविनास विंसंस्तेसु वासुदेवो चदेवो च भगिनी अंजनदेवी च पुरोहितो चाति छत्रो जन रथं अभिरुहित्वा पलयिन्सु, सेसा सब्बेपि विन्था। तेपि चत्तारो रथेन पलायनता काळमत्तिकअटविं पापुनिंसु। सो हि मुत्थिकमलदल्लो पत्थनं कत्वा यक्खो हुत्वा तत्थ निब्बत्तो बलदेवस्स आगत्भावं ञत्व तत् गामं मापेत्वा मल्लवेसं गहेत्वा "को युज्जितुकामो"ति वग्गन्तो गज्जजन्तो अपफोटेनतो विचारी। बलदेवो तं दिसव "भटिक, अहं इमिना सद्धिं युज्झिअस्सामी"ति वत्वा वासुदेवे वारेन्तेयेव रथा ओरुयह तस्स संतिकं गन्त्वा वाग्गन्तो गजदजन्तो अपफोतेसि। अथ नं सो पसारितहत्थेयेव गहेत्वा मूलकन्दं विय खादि। वासुदेवो तस्स मत्भावं नट्वा भगिनीञ्च पुरोहितञ्च आदय सब्बरत्तीं गन्त्वा सूर्योदये एकं पचदचन्तगमं पट्वा "आहारं पछित्वा आहाराति" भगिनीञ्जादच पुरोहितञ्च गामं पहिणित्वा सयं एकस्मिं गच्छन्तरे पतीच्छ शयनो निपजजि।

अथ नं जरा नाम एको लुद्दको गच्छं चलंतं दिस्वा "सुकरो एत्थ भाविस्सति"ति संज्ञय सत्तीं खिपित्वा पदे विज्जित्वा "को मं विज्जी"ति वुत्ते मानुस्सस विद्धभावं ञत्वा हितो पलायितुं आरभि। राजा सतीं पच्चुपत्थपेत्वा उत्थय "मातुल, मा भायि, एही"ति प्रकाशोसित्वा आगतं "कोसि नाम त्व"न्ति पुच्छित्वा "अहं सामि, जरा नामा"ति वुत्ते" जराय विद्धो मरिस्सतिति किर मन पोराना ब्याकरिन्सु, निस्सांसयं अजदज मया मरित्ब"न्ति नत्वा "मातुल, मा भयि, एहि पहारं मे बंधा"ति तेन पहारमुखं बंधपेत्वा तं उयोजेसि। बलववेदना पवत्तिनसु, इतरेहि आभतं आहारं परिभुञ्जितुं नासक्खि। अथ ते अम्नतेत्वा "अजज अहं मरिस्सामि, तुम पन सुखुमला आनंदं कम्मं कत्वा सजीवं न सखिस्सथ, इमं विज्जं सिक्खथा"ति एकं विज्जं सिक्खपेतवा ते उय्योत्जे तत्थेव सजीवखयं पापुनि। एवं अञ्जनदेविं ओक्षेत्वा सब्बेव विनाशं पापुनिंसुति।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा "पासौक, एवं पोराणकपंडिता पंडितानं कथं सुत्वा अट्टनो पुत्तसोकं हरिंसु, मा चिन्तये"ति वत्वा सच्चाचानि पाकसेत्वा जातकं समोधनसि, सचदाचापरियोसाने उपासको सोतापत्तिफले पतिट्थि। तदा रोहिणीयो आनंदो अहोसि, वासुदेवो सारिपुत्तो, अवसेसा बुद्धपरिसा, घटपंडितो पण अहमेव अहोसिंति।

घटपंडितजातकवन्नना सोळसमा।

इति सोळसजातकपतिमण्डितस्स

दशकनिपातजातकस्स अत्थवन्न निट्ठिता।

जातकुद्दनं —

चतुद्वारो कान्हुपोसो, सङ्ख बोधि दीपायनो।

निग्रोध तककल धम्म-पालो कुकुट कुंडली।

बिलार चक भूरि च, मंगल घट सोळस॥

दशकनिपातवन्ना नित्थिता।

पुस्तक XI. एकादशी-निपाता:

जातक क्रमांक 455
मति-पोषक-जातक

“यद्यपि दूर,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ऐसे वृद्ध भिक्षु के बारे में सुनाई, जिन्हें अपनी माता का भरण-पोषण करना था। इस घटना की परिस्थितियाँ साम जन्म (*1) के समान हैं। इस अवसर पर भी गुरु ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “भाइयों, इस व्यक्ति पर क्रोधित न हों; प्राचीन काल में ऐसे बुद्धिमान पुरुष हुए हैं, जो पशु गर्भ से जन्म लेने पर भी, अपनी माता से विमुख होकर सात दिनों तक भोजन नहीं ग्रहण करते रहे और दुर्बल होते चले गए; और जब उन्हें राजा के योग्य भोजन दिया गया, तब भी उन्होंने यही कहा, “माँ के बिना मैं नहीं खाऊँगा”; फिर भी माता को देखकर उन्होंने भोजन ग्रहण कर लिया।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब हिमालय क्षेत्र में बोधिसत्व का जन्म एक हाथी के रूप में हुआ। वे पूर्णतः श्वेत, एक भव्य प्राणी थे और उनके चारों ओर अस्सी हजार हाथियों का झुंड रहता था; परन्तु उनकी माता अंधी थीं। वे अपने हाथियों को मीठे-मीठे जंगली फल उनकी माता के लिए देते थे; परन्तु हाथियों ने उन्हें एक भी फल नहीं दिया, बल्कि वे सब स्वयं खा गए। जब उन्होंने पूछताछ की और यह खबर सुनी, तो उन्होंने कहा, "मैं झुंड छोड़कर अपनी माता की देखभाल करूंगा।" अतः रात्रि के समय, अन्य हाथियों को बिना बताए, वे अपनी माता को साथ लेकर चंदोराणा पर्वत की ओर चल पड़े; और वहाँ उन्होंने अपनी माता को पहाड़ियों की एक गुफा में, एक झील के किनारे रखा और उनकी देखभाल की।

बनारस में रहने वाला एक वनपाल रास्ता भटक गया; दिशा का पता न चलने पर वह जोर-जोर से रोने लगा। यह आवाज सुनकर बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "एक आदमी मुसीबत में है, और मेरे यहाँ रहते हुए उसका दुख सहना उचित नहीं है।" इसलिए वह उस आदमी के पास गया; लेकिन वह डरकर भाग गया। यह देखकर हाथी ने उससे कहा, "हे मनुष्य! तुम्हें मुझसे डरने की कोई जरूरत नहीं है। भागो मत, बल्कि बताओ कि तुम रोते हुए क्यों घूम रहे हो?"

"मेरे स्वामी," उस व्यक्ति ने कहा, "मैं पिछले सात दिनों से रास्ता भटक गया हूँ।"

हाथी ने कहा, "हे मनुष्य, डरो मत; मैं तुझे मनुष्यों के मार्ग पर ले चलूँगा।" फिर उसने मनुष्य को अपनी पीठ पर बिठाया और उसे जंगल से बाहर ले जाकर लौट आया।

उस दुष्ट व्यक्ति ने नगर में जाकर राजा को बताने का निश्चय किया। उसने वृक्षों और पहाड़ियों पर निशान लगाए और बनारस की ओर चल पड़ा। उस समय राजा का राजसी हाथी मर गया था। राजा ने ढोल बजवाकर यह घोषणा करवाई, “यदि किसी ने कहीं भी राजा की सवारी के योग्य हाथी देखा हो, तो वह बताए!” तब वह व्यक्ति राजा के सामने आया और बोला, “हे महाराज, मैंने एक शानदार, पूर्णतः सफेद और उत्तम हाथी देखा है, जो राजा की सवारी के योग्य है। मैं मार्ग दिखाऊंगा; बस मेरे साथ हाथी प्रशिक्षकों को भेज दीजिए, और आप उसे पकड़ लेंगे।” राजा मान गया और उसने उस व्यक्ति के साथ एक वनपाल और अनुयायियों की एक बड़ी टुकड़ी भेजी।

वह आदमी उसके साथ गया और उसने बोधिसत्व को झील में भोजन करते हुए पाया। जब बोधिसत्व ने वनपाल को देखा, तो उन्होंने सोचा, "यह खतरा निःसंदेह उसी आदमी से आया है। लेकिन मैं बहुत बलवान हूँ; मैं हज़ार हाथियों को भी तितर-बितर कर सकता हूँ; क्रोध में मैं पूरे राज्य की सेना को ढोने वाले सभी जानवरों को नष्ट कर सकता हूँ। लेकिन अगर मैं क्रोध में आ गया, तो मेरा पुण्य कलंकित हो जाएगा। इसलिए आज मैं क्रोधित नहीं होऊंगा, चाहे मुझे चाकुओं से ही क्यों न घायल कर दिया जाए।" इस संकल्प के साथ, सिर झुकाकर वे अडिग रहे।

वनपाल कमल-झील में उतरा और उसके सुंदर सींग देखकर बोला, "आओ, मेरे बेटे!" फिर उसने उसका धड़ पकड़कर (जो चांदी की रस्सी जैसा था) उसे सात दिनों में बनारस ले गया।

जब बोधिसत्व की माता ने देखा कि उनका पुत्र नहीं आया, तो उन्होंने सोचा कि वह राजा के सरदारों द्वारा पकड़ लिया गया होगा। "और अब," वह विलाप करते हुए बोलीं, "ये सभी वृक्ष बढ़ते रहेंगे, लेकिन वह बहुत दूर रहेगा"; और उन्होंने दो श्लोक दोहराए:

"भले ही यह हाथी बहुत दूर चला जाए,
फिर भी ओलिबाने और कुताजा (*2) उगेंगे,
अनाज, घास, और ओलियंडर, सफेद लिली,
आश्रय स्थलों पर गहरे नीले रंग के फूल अभी भी खिलते हैं।

"उस शाही हाथी को कहीं न कहीं तो जाना ही होगा।"
जिनके स्तन और शरीर दिखाई देते हैं, उनसे पूर्ण रूप से तृप्त।
पूरी तरह सोने से ढका हुआ, ताकि राजा या राजकुमार उस पर सवार हो सकें
कवचधारी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए निडर।"

प्रशिक्षक ने रास्ते में ही राजा को संदेश भेजा। राजा ने नगर को सजाने का आदेश दिया। प्रशिक्षक बोधिसत्व को एक सजे-धजे अस्तबल में ले गया, जो मालाओं और झालरों से सुशोभित था, और रंग-बिरंगे पर्दे से उन्हें घेरकर राजा को संदेश भेजा। राजा ने हर प्रकार का उत्तम भोजन मंगवाया और बोधिसत्व को परोसा। परन्तु उन्होंने एक निवाला भी नहीं खाया: "माँ के बिना मैं कुछ नहीं खाऊँगा," उन्होंने कहा। राजा ने उनसे भोजन करने की विनती करते हुए तीसरा श्लोक दोहराया:

"आओ, एक निवाला लो, हाथी, और कभी कमजोर मत पड़ो;
अपने राजा की सेवा करने के लिए ऐसे बहुत से काम हैं जो तुम्हें एक दिन करने होंगे।
यह सुनकर बोधिसत्व ने चौथा श्लोक दोहराया:

नहीं, वह चंदोराणा पर्वत के पास रहने वाली, बेचारी अंधी और दुखी स्त्री थी।
वह अपने शाही बेटे के बिना, किसी पेड़ की जड़ पर पैर रखकर मारती है।"
राजा ने पाँचवाँ श्लोक यह पूछने के लिए कहा कि उसका क्या अर्थ है:

चंदोराणा पर्वत के पास कौन है, वह अंधा और दुखी प्राणी कौन है?
क्या वह अपने शाही बेटे के बिना, किसी पेड़ की जड़ पर पैर रखकर मारती है?
जिस पर दूसरे ने छठे छंद में उत्तर दिया:

"मेरी माँ चंदोराना से, आह अंधी, आह दुखी!"
वह अपने बेटे, यानी मेरी गैरमौजूदगी में किसी पेड़ की जड़ पर पैर पटककर पीटती है!
यह सुनकर राजा ने सातवां श्लोक सुनाते हुए उसे स्वतंत्रता दे दी:

"यह शक्तिशाली हाथी, जो अपनी माँ का पेट भरता है, उसे मुक्त छोड़ दिया गया है:
और उसे उसकी माँ और उसके पूरे परिवार के पास जाने दो।
आठवां और नौवां श्लोक बुद्ध के पूर्ण ज्ञान के दर्शन हैं:

"हाथी को जेल से रिहा कर दिया गया, जानवर को जंजीरों से मुक्त कर दिया गया।"
सांत्वना भरे शब्दों के साथ (*3) फिर से पहाड़ियों पर लौट गया।
फिर उस ठंडे और साफ पानी के कुंड से, जहाँ हाथी अक्सर आते-जाते हैं,
उसने अपनी सूंड से पानी निकाला, और उसकी माँ ने सारा पानी उस पर छिड़क दिया।
लेकिन बोधिसत्व की माता ने सोचा कि बारिश शुरू हो गई है, और उन्होंने बारिश को फटकारते हुए दसवें श्लोक को दोहराया:

"असमय बारिश कौन लाता है—कौन सा दुष्ट देवता?"
क्योंकि वह चला गया, मेरा अपना, मेरा बेटा, जो मेरी देखभाल करता था।"
तब बोधिसत्व ने उसे आश्वस्त करने के लिए ग्यारहवें श्लोक को दोहराया:

"उठो माँ! तुम वहाँ क्यों लेटी हो? तुम्हारा अपना, तुम्हारा बेटा आ गया है!"
काशी के गौरवशाली राजा वेदेह ने मुझे सुरक्षित घर पहुंचा दिया है।"
और उसने अंतिम छंद को दोहराते हुए राजा को धन्यवाद दिया:

"उस राजा की जय हो! वह अपने राज्य में समृद्धि लाता रहे।"
उस बेटे को किसने मुक्त किया जिसने हमेशा मेरा इतना सम्मान किया है!

राजा बोधिसत्व के गुणों से प्रसन्न हुए और उन्होंने झील के निकट एक नगर बसाया तथा बोधिसत्व और उनकी माता की निरंतर सेवा की। बाद में, जब उनकी माता का देहांत हो गया और बोधिसत्व ने उनके अंतिम संस्कार करंदक नामक एक मठ में निवास किया, तो वे वहाँ चले गए। इस मठ में पाँच सौ ऋषि आकर बस गए और राजा ने उनकी भी वैसी ही सेवा की। राजा ने बोधिसत्व की एक पत्थर की प्रतिमा बनवाई और उसका बहुत सम्मान किया। वहाँ प्रतिवर्ष भारत के सभी निवासी एकत्रित होकर हाथी उत्सव मनाते थे।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर, अपनी माता का सहारा देने वाला भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया था): "उस समय, आनंद राजा थे, महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्मदाता माता) हथिनी थीं, और मैं स्वयं वह हाथी था जो उनकी माता को भोजन कराता था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 540

(2) एक औषधीय पौधा।

(3) विद्वान बताते हैं कि हाथी ने राजा को सद्गुणों पर प्रवचन दिया, फिर उसे सावधान रहने की चेतावनी दी और फूलों की वर्षा करते हुए लोगों की प्रशंसा के बीच विदा हो गया। फिर वह घर गया और अपनी माँ को भोजन कराया और नहलाया। इसे समझाने के लिए गुरु ने दो श्लोक दोहराए।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जुन्हा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-456-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 456
जुन्हा-जातक

"हे मनुष्यों के राजा," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए वरिष्ठ भिक्षु आनंद को प्राप्त वरदानों के बारे में सुनाई थी। अपने पहले बीस वर्षों के बुद्धत्व काल में भगवान बुद्ध के सेवक हमेशा एक जैसे नहीं रहते थे: कभी वरिष्ठ भिक्षु नागसमला, कभी नागिता, उपवन, सुनक्खत्त, चुंडा, सगाला, कभी मेघिया भगवान बुद्ध की सेवा करते थे। एक दिन भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ: और जब मैं कहता हूँ, चलो इस रास्ते से चलें, तो कुछ भिक्षु दूसरे रास्ते से चले जाते हैं, कुछ मेरा पान और वस्त्र ज़मीन पर गिरा देते हैं। मेरे लिए एक भिक्षु को चुन लो जो सदा मेरी सेवा करे।" तब सभी भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र सहित, उठ खड़े हुए और अपने हाथ सिर पर रखकर बोले, "हे प्रभु, मैं आपकी सेवा करूँगा, मैं आपकी सेवा करूँगा!" लेकिन उन्होंने यह कहते हुए उन्हें मना कर दिया, "तुम्हारी प्रार्थना पहले ही पूरी हो चुकी है! बस करो।" तब भिक्षुओं ने वरिष्ठ भिक्षु आनंद से कहा, "हे मित्र, क्या आप सेवक का पद मांगना चाहते हैं?" वरिष्ठ भिक्षु ने कहा, "यदि भगवान बुद्ध मुझे वह वस्त्र न दें जो उन्होंने स्वयं ग्रहण किया है, यदि वे मुझे अपना भिक्षादान न दें, यदि वे मुझे अपने साथ उस स्थान पर न ले जाएं जहां उन्हें आमंत्रित किया जाता है: परन्तु यदि भगवान बुद्ध मुझे उस स्थान पर ले जाएं जहां मुझे आमंत्रित किया जाता है, यदि मुझे उस समय उस समूह का परिचय कराने का वरदान दिया जाए जो भगवान बुद्ध के दर्शन करने के लिए दूर-दूर से आता है, यदि मुझे संदेह उत्पन्न होते ही भगवान बुद्ध के पास जाने का वरदान दिया जाए, यदि जब भी भगवान बुद्ध मेरी अनुपस्थिति में प्रवचन दें, तो मेरे लौटने पर वे मुझे अपना प्रवचन दोहराएं: तो मैं भगवान बुद्ध की सेवा करूंगा।" उन्होंने ये आठ वरदान मांगे, चार ऋणात्मक और चार धनात्मक। और भगवान बुद्ध ने उन्हें ये वरदान प्रदान किए।

इसके बाद उन्होंने पच्चीस वर्षों तक निरंतर अपने गुरु की सेवा की। इस प्रकार पाँचों बिंदुओं में श्रेष्ठता प्राप्त करके और सात वरदान प्राप्त करके - अध्यापन का वरदान, उपदेश का वरदान, कारणों के ज्ञान का वरदान, अपने भले के लिए जिज्ञासा का वरदान, पवित्र स्थान में रहने का वरदान, प्रबुद्ध भक्ति का वरदान और बुद्धत्व की संभावना का वरदान - उन्होंने बुद्ध की उपस्थिति में आठ वरदानों की विरासत प्राप्त की और बुद्ध के धर्म (मुक्ति के मार्ग) में प्रसिद्ध हुए तथा आकाश में चंद्रमा के समान चमक उठे।

एक दिन वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा करने लगे: "मित्र, तथागत (बुद्ध) ने वरिष्ठ भिक्षु आनंद को वरदान देकर प्रसन्न किया है।" गुरुजी वहाँ आए और पूछा, "भाइयों, आप यहाँ बैठे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" उन्होंने गुरुजी को बताया। तब गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है, बल्कि पहले भी, जैसे अब, मैंने आनंद को वरदान देकर प्रसन्न किया था; पहले भी, जैसे अब, उन्होंने जो कुछ भी माँगा, मैंने उन्हें दिया।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज्य था, उनके पुत्र राजकुमार जुन्ह, जिन्हें चंद्रराज भी कहा जाता था, तक्षशिला में अध्ययन कर रहे थे। एक रात, अपने गुरु की शिक्षा ध्यानपूर्वक सुनने के बाद, वे अंधेरे में अपने गुरु के घर से निकले और घर की ओर चल पड़े। एक ब्राह्मण भिक्षा मांग रहा था और घर जा रहा था। राजकुमार ने उसे देखा नहीं और दौड़कर उसके पास पहुंचे और अपने हाथ के प्रहार से उसका भिक्षापात्र तोड़ दिया। ब्राह्मण दर्द से कराहते हुए गिर पड़ा। दया से राजकुमार मुड़े और उसके हाथ पकड़कर उसे उठाया। ब्राह्मण ने कहा, "पुत्र, तुमने मेरा भिक्षापात्र तोड़ दिया है, इसलिए मुझे भोजन का मूल्य दे दो।" राजकुमार ने कहा, "मैं अभी आपको भोजन का मूल्य नहीं दे सकता, ब्राह्मण; लेकिन मैं काशी के राजा का पुत्र राजकुमार जुन्ह हूं, और जब मैं अपने राज्य में आऊंगा, तो आप मेरे पास आकर धन मांग सकते हैं।"

जब उनकी शिक्षा पूरी हो गई, तो उन्होंने अपने शिक्षक से विदा ली और बनारस लौटकर अपने पिता को वह सब दिखाया जो उन्होंने सीखा था।

“मैंने अपनी मृत्यु से पहले अपने पुत्र को देख लिया है,” राजा ने कहा, “और मैं उसे सचमुच राजा बनते हुए देखूंगा।” फिर उन्होंने उसका राज्याभिषेक किया और उसे राजा बना दिया। राजकुमार ने राजा जुन्हा के नाम से धर्मपरायणता से शासन किया। जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसने सोचा कि अब वह अपने भोजन का मूल्य वसूल कर लेगा। अतः वह बनारस आया और उसने देखा कि नगर पूरी तरह से सजा हुआ है और राजा उसके चारों ओर जुलूस में चल रहा है। एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर ब्राह्मण ने अपना हाथ फैलाया और पुकारा, “राजा की जय हो!” राजा ने उसकी ओर देखे बिना ही आगे बढ़ गया। जब ब्राह्मण ने देखा कि उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, तो उसने पहले श्लोक को दोहराते हुए स्पष्टीकरण मांगा:

हे मनुष्यों के राजा, मेरी बात सुनो!
मैं आज बिना किसी कारण के यहां नहीं आया हूं।
कहा जाता है, हे श्रेष्ठ पुरुष, किसी को भी आगे नहीं बढ़ना चाहिए।
एक भटकता हुआ ब्राह्मण रास्ते में खड़ा है।"
ये शब्द सुनकर राजा ने अपने रत्नजड़ित डंडे से हाथी को वापस मोड़ दिया और दूसरी पंक्ति दोहराई:

मैंने सुना, मैं खड़ा हूँ: आओ ब्राह्मण, जल्दी बोलो,
आज आपको यहां लाने वाला कारण क्या है?
तुम मुझसे कौन सा वरदान चाहते हो?
क्या तुम मुझसे मिलने आए हो? बोलो, मैं पूछता हूँ!
राजा और ब्राह्मण के बीच प्रश्न-उत्तर के रूप में आगे जो कुछ कहा गया, उसका वर्णन शेष श्लोकों में किया गया है:

मुझे पांच गांव दीजिए, सभी उत्तम और शानदार हों।
सौ दासियाँ, सात सौ गायें,
सोने के एक हजार से अधिक आभूषण,
और मुझे दो पत्नियां दो, जो मेरी ही संतान हों।"
"क्या आपका कोई प्रायश्चित है, ब्राह्मण, जिसे बताने में मुझे डर लगता है?"
या फिर तुम्हारे पास अनेक ताबीज और अनेक जादू हैं?
या फिर भूत-प्रेतों, अपने आदेशों का पालन करने के लिए तैयार हो जाओ।
या मेरे लिए अच्छा काम करने का कोई दावा?
"मैंने न तो कोई तपस्या की है, न ही कोई जादू-टोना किया है।"
कोई भी दानव मेरी बात मानने को तैयार नहीं है।
और न ही मैं सेवा के बदले किसी वेतन का दावा कर सकता हूँ;
लेकिन सच तो ये है कि हम पहले भी मिल चुके हैं।
मुझे बीते समय की कोई बात याद नहीं आ रही है।
मैंने तुम्हारा चेहरा पहले कभी देखा है।
कृपया मुझे बताइए, मुझे यह बात बताइए।
हम कब मिले थे, या कहाँ मिले थे, बीते दिनों में?
"गांधार के राजा के सुंदर नगर में,
हे मेरे स्वामी, तक्षशिला ही हमारी आजीविका थी।
वहाँ रात के घोर अंधेरे में

हम दोनों कंधे से कंधा मिलाकर फेंक रहे थे।
और जब हम दोनों वहाँ खड़े थे, हे राजकुमार,
हमारे बीच तुरंत ही सौहार्दपूर्ण बातचीत शुरू हो जाती है।
फिर हम दोनों मिले, और केवल तभी,
न तो इससे पहले कभी, न ही इसके बाद कभी।"
"हे ब्राह्मण, जब भी किसी बुद्धिमान व्यक्ति से मुलाकात हुई हो
दुनिया में एक अच्छा आदमी, उसे ऐसा नहीं होने देना चाहिए
एक बार बनी दोस्ती हो या पुराना परिचय, सब कुछ खत्म हो जाए।
जो काम हो गया उसे कभी मत भूलो।
जो काम हो चुका है उसे नकारना मूर्खता है, और उसे होने देना भी मूर्खता है।
पुराने रिश्ते उन लोगों के साथ टूट जाते हैं जिनसे वे कभी मिले थे।
कई बार मूर्खों के कर्म व्यर्थ ही हो जाते हैं।
वे कृतघ्न हैं, और वे भूल सकते हैं।
लेकिन भरोसेमंद लोग अतीत को नहीं भूल सकते।
उनकी दोस्ती और जान-पहचान बहुत तेजी से बढ़ी।
ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया निम्न स्तर का अपराध अस्वीकार नहीं किया जाता:
इसलिए भरोसेमंद लोग अंत तक कृतज्ञ रहते हैं।
मैं तुम्हें पाँच गाँव देता हूँ, उत्तम और बेहतरीन।
सौ दासियाँ और सात सौ गायें
सोने के एक हजार से अधिक आभूषण,
और इतना ही नहीं, तुम्हारी ही जाति की दो पत्नियां भी।
"हे राजा, जब अच्छे लोग सहमत होते हैं तो ऐसा ही होता है:
जैसे तारों के बीच पूर्णिमा का चंद्रमा हमें दिखाई देता है,
फिर भी, हे काशी के स्वामी, मैं भी वैसा ही हूँ।
अब तुमने मुझसे किया हुआ वादा पूरा कर दिया है।
बोधिसत्व ने उन्हें बहुत सम्मान दिलाया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मैंने आनंद को वरदान देकर संतुष्ट किया है, बल्कि मैंने यह पहले भी किया है।" इन शब्दों के साथ उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद ब्राह्मण थे और मैं स्वयं राजा था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **धम्म-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-457-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 457
धम्म-जातक

“मैं सही करता हूँ,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, कि कैसे देवदत्त पृथ्वी में समा गया। वे सत्य के हॉल में चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए: “मित्र, देवदत्त तथागत (बुद्ध) के शत्रु बन गया और पृथ्वी में समा गया।” गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने उत्तर दिया, “हे भिक्षुओं, वह पृथ्वी में समा गया क्योंकि उसने मेरे विजयी अधिकार पर प्रहार किया; परन्तु पहले उसने सही के अधिकार पर प्रहार किया और पृथ्वी में समा गया और सबसे गहरे नरक की ओर चल पड़ा।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व ने देवताओं (देवदूतों) में से एक के रूप में इंद्रियों के संसार में जन्म लिया और उनका नाम धम्म, यानी सही, रखा गया, जबकि देवदत्त को अधम्म, यानी गलत कहा गया।

जैसे पूर्णिमा के व्रत के दिन, शाम को जब भोजन हो चुका था और गाँव-नगर तथा राजधानियों में लोग अपने-अपने घर के द्वार पर बैठकर आनंद ले रहे थे, तभी धम्म अपने दिव्य रथ पर सवार होकर, दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होकर, अप्सराओं के समूह के बीच में प्रकट हुए और उन्हें संबोधित किया:

"जीवित प्राणियों का वध न करो, और अन्य दस प्रकार के पाप से दूर रहो, माता और पिता की सेवा का कर्तव्य निभाओ और तीनों समय धर्म का पालन करो (*1); इस प्रकार तुम स्वर्ग के पात्र बनोगे और महान यश प्राप्त करोगे।" इस प्रकार उन्होंने मनुष्यों को दस प्रकार के धर्मों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया और भारत का सही मार्ग पर भ्रमण किया। परन्तु अधम ने उन्हें सिखाया, "जीवित प्राणियों का वध करो," और इसी प्रकार मनुष्यों को अन्य दस प्रकार के पापों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया और भारत का गलत मार्ग पर भ्रमण किया।

अब उनके रथ हवा में आमने-सामने आ गए, और उनके सेवकों ने एक-दूसरे से पूछा, "तुम किसके हो? और तुम किसके हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम धम्म के हैं, हम अधम्म के हैं," और रास्ता बना लिया, जिससे उनके मार्ग अलग हो गए। लेकिन धम्म ने अधम्म से कहा, "हे प्रभु, आप अधम्म हैं, और मैं धम्म हूँ; मुझे मार्ग का अधिकार है; अपना रथ एक तरफ मोड़िए, और मुझे रास्ता दीजिए," पहले श्लोक को दोहराते हुए:

मैं सही काम करता हूँ, लोगों की प्रसिद्धि मेरी कृपा से ही संभव हो पाती है।
हे ऋषियों और हे ब्राह्मणों, सदा मेरी स्तुति करो।
मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) द्वारा पूजित, मार्ग का अधिकार
यह मेरा है। मैं सही हूँ: तो, हे गलत, रास्ता दो!
इसके बाद ये बातें आती हैं:

"ऊपर सिंहासन पर विराजमान अन्याय के शक्तिशाली रथ में"
हे सर्वशक्तिमान, मुझे कोई भी चीज भयभीत नहीं कर सकती:
तो फिर मैं क्यों ऐसा करूं, जिसने कभी किसी को जगह नहीं दी?
क्या आज अधिकार को मेरे आगे से गुजरने का रास्ता मिलेगा?
"सत्य का अधिकार सर्वप्रथम प्रकट हुआ।"
वह आदिम है, सबसे पुराना और सबसे अच्छा;
रॉन्ग छोटा था, जिसका जन्म बाद में हुआ था।
बहुत छोटा, बड़े वंशज के कहने पर!
न तो तुम योग्य हो, न ही तुम मांगो,
और अगर यह उचित हो तो मैं पीछे नहीं हटूंगा:
आइए आज हम दोनों युद्ध करें;
जो भी लड़ाई जीतेगा, उसे जगह मिलेगी।
मैं दूर-दूर तक सभी क्षेत्रों में जाना जाता हूँ।
शक्तिशाली, असीम महिमा वाला, अद्वितीय,
मेरे स्वरूप में समस्त सद्गुण समाहित हैं।
मैं सही हूँ: गलत, तुम यहाँ कैसे जीत हासिल कर सकते हो?
"लोहे से सोना पीटा जाता है, न ही हम।"
क्या आपने कभी लोहे को पीटने के लिए सोने का उपयोग देखा है?
यदि आज सही के विरुद्ध गलत की लड़ाई जीत जाए,
लोहा सोने जितना सुंदर होगा।"
"यदि तुम सचमुच युद्ध में पराक्रमी हो,
हालांकि आपकी कही बात न तो अच्छी है और न ही बुद्धिमानी भरी।
मैं तुम्हारे इन सभी बुरे शब्दों को निगल लूंगा;

और चाहे जो भी हो, मैं तुम्हारे लिए रास्ता बना दूंगा।"
उन्होंने इन छह छंदों को दोहराया, एक दूसरे का उत्तर देते हुए।

लेकिन जिस क्षण बोधिसत्व ने इस श्लोक को दोहराया, उसी क्षण अधम्मा अपने रथ में खड़े नहीं रह सके, बल्कि सिर के बल धरती में जा गिरे, जो उन्हें ग्रहण करने के लिए फट गई, और उनका पुनर्जन्म सबसे गहरे नरक में हुआ।

भगवान बुद्ध ने जैसे ही इस घटना को समझा, उन्होंने अपनी पूर्ण बुद्धि से शेष श्लोकों का पाठ किया:

ये शब्द सुनते ही, ऊंचाई से गलत साबित हुए
सिर के बल लुढ़कते हुए, नजरों से ओझल हो गया:
 यह रॉन्ग का अंत और भयावह नियति थी।
मुझे कोई लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी, हालांकि मेरी लड़ने की बहुत इच्छा थी।
इस प्रकार संयम में रहने वाले सर्वशक्तिमान के द्वारा ही सफलता प्राप्त होती है।
शक्तिशाली योद्धा को गलत तरीके से हराया, और उसकी मृत्यु हो गई।
 धरती में समा गया: दूसरा, आनंदित, बलवान,
सत्य के कवच से सुसज्जित होकर, वह अपने रथ पर सवार होकर दूर चला जाता है।
जो अपने घर में उचित अनुष्ठान नहीं करता है
जब वह अपने माता-पिता, ऋषियों, ब्राह्मणों के समक्ष लेटता है
 शरीर नीचे गिरता है, और अपने बंधनों को तोड़ देता है,
वह इस दुनिया से भी सीधे नरक में जाता है।
अधम्मा सिर के बल नीचे गिर पड़ा।
जो अपने घर में सभी उचित नियमों का पालन करता है
जब वह अपने माता-पिता, ऋषियों, ब्राह्मणों के समक्ष लेटता है
 शरीर नीचे गिरता है, और अपने बंधनों को तोड़ देता है,
वह इस दुनिया से सीधे स्वर्ग की ओर प्रस्थान करता है।
जैसे धम्म (धर्म) अपने रथ में सवार होकर आकाश को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि पहले भी देवदत्त ने मुझ पर आक्रमण किया था और वह पृथ्वी में समा गया था": फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया—"उस समय देवदत्त अधर्म था, और उसके सेवक देवदत्त के सेवक थे, और मैं धर्म था, और बुद्ध के सेवक धर्म के सेवक थे।"

फुटनोट:

(1) सही काम करना, सही बोलना, सही सोचना।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उदय-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-458-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 458
उदय-जातक (*1)

“तुम निष्कलंक हो,” इत्यादि। यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इस घटना का वर्णन कुश जन्म (*2) के अंतर्गत किया जाएगा। गुरु ने फिर उस भिक्षु से पूछा, “क्या यह सच है, भिक्षु, कि तुम पथभ्रष्ट हो गए हो, जैसा कि लोग कहते हैं?” उसने उत्तर दिया, “जी, श्रीमान।” तब उन्होंने कहा, “हे भिक्षु, तुम हमारे जैसे धर्म (धर्म के मार्ग) से, जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाता है, क्यों पथभ्रष्ट हो रहे हो, और वह भी सांसारिक वासनाओं के लिए? प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष, जो सुरुंधा नगर के

राजा थे, जो एक समृद्ध नगर था और जिसकी लंबाई बारह मील (x 4.23 किमी) थी, सात सौ वर्षों तक अप्सराओं के समान सुंदर स्त्री के साथ एक ही कक्ष में रहे, फिर भी उन्होंने अपनी इंद्रियों के वश में नहीं रहे और कभी भी उस स्त्री की ओर वासना भरी दृष्टि से नहीं देखा।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब राजा काशी अपने नगर सुरुंध में शासन कर रहे थे, तब उनके न पुत्र थे और न पुत्री। उन्होंने अपनी रानियों से पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने को कहा। तब ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों) से बोधिसत्व का जन्म हुआ और वे उनकी मुख्य रानी के गर्भ में आए। उनके जन्म से अनेकों का हृदय प्रसन्न हुआ, इसलिए उनका नाम उदयभद्दा रखा गया। जब बालक चलना सीख गया, तब ब्रह्मा के लोक (परमलोक) से एक और प्राणी इस संसार में आया और राजा की एक अन्य पत्नी के गर्भ में कन्या के रूप में जन्म लिया। उसका नाम भी उदयभद्दा ही रखा गया।

जब राजकुमार वयस्क हुए, तो उन्होंने शिक्षा के सभी क्षेत्रों में पारंगत हो गए; इसके अलावा, वे अत्यंत पवित्र थे और स्वप्न में भी देह-सम्मोहन के बारे में नहीं जानते थे, न ही उनका मन पाप की ओर झुका था। राजा अपने पुत्र को राजा बनाना चाहते थे, उनके अभिषेक के लिए विधिपूर्वक जल छिड़काव करना चाहते थे और उनकी प्रसन्नता के लिए खेल-कूद का आयोजन करना चाहते थे; और उन्होंने आदेश भी दे दिया। परन्तु बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "मुझे राज्य नहीं चाहिए, और मेरा मन पाप की ओर नहीं झुका है।" बार-बार उनसे विनती की गई, परन्तु उनका उत्तर था कि उन्होंने लाल सोने की एक स्त्री की प्रतिमा बनवाई, जिसे उन्होंने अपने माता-पिता को यह संदेश भेजकर भेजा, "जब मुझे ऐसी स्त्री मिलेगी, तभी मैं राज्य स्वीकार करूँगा।" इस स्वर्ण प्रतिमा को पूरे भारत में भेजा गया, परन्तु इसके समान कोई स्त्री नहीं मिली। तब उन्होंने उदयभद्दा को बहुत सुंदर ढंग से सजाया और प्रतिमा के सामने उनकी प्रतिमा रखी; और प्रतिमा के सामने खड़े होने पर उनकी सुंदरता प्रतिमा से कहीं अधिक थी। फिर उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सही, बोधिसत्व की अपनी बहन, राजकुमारी उदयभद्दा से उसका विवाह करा दिया, जो कि एक अलग माता से जन्मी थी, और उसे राजा के रूप में ताज पहनाया।

ये दोनों ब्रह्मचर्य का जीवन साथ-साथ व्यतीत करते रहे। समय बीतने पर, जब उनके माता-पिता का देहांत हो गया, तो बोधिसत्व ने राज्य पर शासन किया। दोनों एक ही कक्ष में साथ रहते थे, फिर भी अपनी इंद्रियों को वश में रखते थे और कभी भी एक-दूसरे को वासना भरी दृष्टि से नहीं देखते थे; बल्कि उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि उनमें से जो भी पहले मरेगा, वह अपने पुनर्जन्म स्थान से दूसरे के पास लौटकर कहेगा, "मैं इस स्थान पर पुनर्जन्म लेता हूँ।"

बोधिसत्व के राज्याभिषेक के समय से वे सात सौ वर्ष तक जीवित रहे और फिर उनका निधन हो गया। उनके बाद कोई अन्य राजा नहीं हुआ, उदयभद्दा के आदेश लागू रहे और दरबारी राज्य का संचालन करते रहे। बोधिसत्व तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में सक्का (इंद्र) बन गए थे और अपनी महिमा के कारण सात दिनों तक अतीत को भूल गए थे। इसलिए सात सौ वर्षों के बाद, मनुष्य की समझ के अनुसार, उन्हें याद आया और उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं राजा की पुत्री उदयभद्दा के पास जाऊंगा, धन-दौलत से उसकी परीक्षा लूंगा, सिंह की गर्जना करते हुए प्रवचन दूंगा और अपना वचन पूरा करूंगा!"

उस युग में कहते थे कि मनुष्य का जीवनकाल दस हजार वर्ष होता था। उस समय, रात्रि का समय था, महल के द्वार कसकर बंद थे, पहरेदार तैनात थे, और राजा की पुत्री अपने सात मंजिला महल की भव्य छत पर बने एक आलीशान कक्ष में चुपचाप अकेली बैठी अपने सद्गुणों का ध्यान कर रही थी। तभी इंद्र ने सोने के सिक्कों से भरा एक सोने का पात्र लिया और उसके विश्राम कक्ष में उसके सामने प्रकट हुए; और एक तरफ खड़े होकर, पहले श्लोक का पाठ करते हुए उससे बातचीत शुरू की:

"तुम अपनी सुंदरता में बेदाग, पवित्र और उज्ज्वल हो,"
तुम इस चबूतरे की ऊंचाई पर अकेले बैठे हो,
 अत्यंत सुंदर मुद्रा में, स्वर्ग की अप्सराओं जैसी आंखों वाली,
मैं आपसे निवेदन करता हूँ, मुझे आज रात आपके साथ बिताने दीजिए!
इस पर राजकुमारी ने निम्नलिखित दो छंदों में उत्तर दिया:

"इस किलेबंद शहर तक, जिसमें चारों ओर खाई खोदी गई है, पहुंचना कठिन है।"
जबकि इसकी खाइयाँ और इसके बुर्ज हाथ और तलवार से मिलकर रक्षा करते हैं।
"न तो युवा और न ही शक्तिशाली लोग आसानी से यहां प्रवेश कर सकते हैं;
मुझे बताइए—मुझसे मिलने का क्या कारण हो सकता है?
तब सक्का (इंद्र) ने चौथा श्लोक पढ़ा:

"मैं, हे सुंदरी, एक जिन्न हूँ, मैं जो अब तुम्हारे सामने प्रकट हो रहा हूँ।"
हे देवी, मुझ पर कृपा कीजिए, यह भरा हुआ कटोरा मुझसे ग्रहण कीजिए।
यह सुनकर राजकुमारी ने पाँचवाँ श्लोक दोहराते हुए उत्तर दिया:

"मैं कुछ नहीं मांगता, क्योंकि उदय की मृत्यु हो चुकी है।"
न तो देवता (देवदूत), न भूत, न ही मनुष्य, इनके अलावा:
इसलिए, हे शक्तिशाली जिन्न, चले जाओ।
अब और पास मत आओ, बल्कि दूर ही रहो।"
उसके शेर की आवाज सुनकर वह रुका नहीं, बल्कि जाने का नाटक किया और तुरंत गायब हो गया। अगले दिन उसी समय, उसने सोने के सिक्कों से भरा एक चांदी का कटोरा लिया और छठे श्लोक को दोहराते हुए उससे बात की:

"वह सर्वोच्च आनंद, जिसे प्रेमी पूरी तरह से जान पाते हैं,"
जिसके कारण मनुष्य अनेक बुरे कार्य कर बैठते हैं।
हे मधुर मुस्कान वाली महिला, तुम्हें तुच्छ न समझो:
देखो, मैं चांदी से भरा एक पूरा कटोरा लेकर आया हूँ!
तब राजकुमारी सोचने लगी, "अगर मैं उसे बोलने और व्यर्थ की बातें करने दूँगी, तो वह बार-बार आएगा। अब तो मेरे पास उससे कहने के लिए कुछ नहीं बचेगा।" इसलिए उसने कुछ नहीं कहा। जब उसने देखा कि राजकुमारी के पास कहने के लिए कुछ नहीं है, तो इंद्र तुरंत वहाँ से चले गए।

अगले दिन, उसी समय, उसने सिक्कों से भरा एक लोहे का कटोरा लिया और कहा, "हे देवी, यदि आप मुझे अपने प्रेम से आशीर्वाद देंगी, तो मैं यह सिक्कों से भरा लोहे का कटोरा आपको दे दूंगा।" जब राजकुमारी ने उसे देखा, तो उसने सातवीं पंक्ति दोहराई:

"जो पुरुष किसी महिला को आकर्षित करते हैं, वे उसका पालन-पोषण करते हैं और उसे आगे बढ़ाते रहते हैं।"
जब तक वह उनकी इच्छा का पालन नहीं करती, तब तक सोने का प्रस्ताव दिया जाएगा।
आपके आधार पर मेरा अनुमान है कि देवताओं (देवदूतों) के तरीके भिन्न-भिन्न हैं:
आप आज पहले के दिनों की तुलना में कम सामान लेकर आ रहे हैं।
जब उस महान प्राणी ने ये शब्द सुने, तो उसने उत्तर दिया, "राजकुमारी, मैं एक समझदार व्यापारी हूँ और मैं अपना धन व्यर्थ नहीं लुटाता। यदि आपकी युवावस्था और सुंदरता बढ़ रही होती, तो मैं भी आपको भेंट की जाने वाली राशि बढ़ा देता; परन्तु आप वृद्ध होती जा रही हैं, इसलिए मैं भेंट कम कर रहा हूँ।" ऐसा कहकर उसने तीन श्लोक दोहराए।

"हे स्त्री! जवानी की रौनक और सुंदरता फीकी पड़ जाती है!"
पुरुषों की इस दुनिया में, हे सुंदर कन्या!
और आज आप पहले से अधिक उम्रदराज हो गए हैं।
इसलिए मेरे द्वारा भुगतान की जाने वाली राशि में कमी नहीं आती।
"इस प्रकार, हे राजा की गौरवशाली पुत्री, मेरी निगाहों के सामने
दिन और रात के बीतने के साथ-साथ तुम्हारी सुंदरता फीकी पड़ जाती है और मर जाती है।
लेकिन हे परम बुद्धिमान राजा की पुत्री, यदि यह तुम्हें पसंद हो
पवित्र और शुद्ध बने रहने से तुम और भी प्यारे बन जाओगे!
इस पर राजकुमारी ने एक और छंद दोहराया:

"देवता (देवदूत) मनुष्यों के समान नहीं हैं, वे बूढ़े नहीं होते;
उनकी त्वचा पर कोई झुर्रीदार सिलवटें दिखाई नहीं देतीं।
आखिर देवताओं (देवदूतों) का कोई भौतिक शरीर क्यों नहीं होता?
हे शक्तिशाली गोब्लिन, अब मुझे यह बताया जाए!
तब सक्का (इंद्र) ने एक और श्लोक दोहराकर इस मामले को समझाया:

"देवता (देवदूत) मनुष्यों के समान नहीं हैं; वे बूढ़े नहीं होते;
उनकी त्वचा पर कोई झुर्रीदार सिलवटें दिखाई नहीं देतीं:
कल और आने वाला कल और भी अधिक
दिव्य सौंदर्य बढ़ता है, और असीम आनंद प्राप्त होता है।"

जब उसने देवताओं (देवदूतों) के लोक की सुंदरता के बारे में सुना, तो उसने एक अन्य श्लोक में वहाँ जाने का मार्ग पूछा:

"यहाँ इतने सारे मनुष्यों को किस बात से डर लगता है?"
हे शक्तिशाली गोब्लिन, मैं तुमसे यह स्पष्ट करने का अनुरोध करता हूँ।
उस मार्ग को इतने विस्तार से समझाया गया है:
स्वर्ग की ओर यात्रा करते समय किसी को डरने की आवश्यकता क्यों नहीं है?
तब सक्का (इंद्र) ने एक अन्य श्लोक में इस मामले की व्याख्या की:

जो अपनी वाणी और मन दोनों पर उचित नियंत्रण रखता है,
जो शरीर के साथ पाप करना पसंद नहीं करता,
जिसके घर में हमें बहुत सारा भोजन और पेय पदार्थ मिलता है।
उदार, दयालु, सच्चे दिल का,
निःस्वार्थ अनुग्रह, मृदुभाषी बातें, दयालु उत्साह—
जो इस मार्ग से स्वर्ग की ओर जाता है उसे किसी बात का भय नहीं होना चाहिए।
जब राजकुमारी ने उसके शब्द सुने, तो उसने एक और छंद में धन्यवाद व्यक्त किया:

"माँ की तरह, पिता की तरह, गोब्लिन, तुम मुझे सलाह देते हो:
हे महानुभाव, हे सुंदर आत्मा, मुझे बताओ, मुझे बताओ तुम कौन हो?
फिर बोधिसत्व ने एक और श्लोक दोहराया:

"मैं उदय हूं, हे सुंदर स्त्री, मैं अपना वादा निभाने तुम्हारे पास आता हूं।"
अब मैं जाता हूँ, क्योंकि मैंने बोल दिया है; मैं प्रतिज्ञा से मुक्त हूँ।"
राजकुमारी ने गहरी सांस ली और बोली, "आप ही राजा उदयभद्दा हैं, मेरे स्वामी!" फिर वह फूट-फूटकर रोने लगी और बोली, "आपके बिना मैं जी नहीं सकती! मुझे मार्गदर्शन दीजिए, ताकि मैं हमेशा आपके साथ रह सकूँ!" ऐसा कहते हुए उसने एक और श्लोक दोहराया:

"यदि तुम उदय हो, तो अपने वादे के लिए यहाँ आओ—वास्तव में वही—"
तो मुझे निर्देश दीजिए, ताकि हम, हे राजकुमार, फिर से एक साथ हो सकें!
फिर उन्होंने निर्देश के रूप में चार छंद दोहराए:

"जवानी जल्दी बीत जाती है: एक पल—यह गुजर जाता है;
कोई भी स्थान स्थिर नहीं है: सभी प्राणी मरते हैं
नए जीवन के जन्म के साथ: यह नश्वर शरीर क्षीण हो जाता है:
इसलिए लापरवाह मत बनो, धर्मपरायणता के मार्ग पर चलो।
"अगर पूरी पृथ्वी अपनी सारी संपत्ति के साथ हो सकती है
एक ही राजा के अधिकार क्षेत्र में रहने वाला राज्य।
एक पवित्र संत उसे दौड़ में छोड़ देगा:
इसलिए लापरवाह मत बनो, धर्मपरायणता के मार्ग पर चलो।
"माँ और पिता, भाई-भाई, और वह
(वह पत्नी) जिसे कीमत देकर खरीदा जा सकता है,
वे चले जाते हैं, और एक दूसरे को पीछे छोड़ जाते हैं:
इसलिए लापरवाह मत बनो, धर्मपरायणता के मार्ग पर चलो।
"याद रखें कि यह शरीर का भोजन होगा
दूसरों के लिए; सुख और दुःख दोनों समान रूप से।
एक गुजरता हुआ घंटा, जैसे-जैसे जीवन एक के बाद एक आगे बढ़ता है:
इसलिए लापरवाह मत बनो, धर्मपरायणता के मार्ग पर चलो।
इस प्रकार महान सत्ता ने प्रवचन दिया। प्रवचन से प्रसन्न होकर स्त्री ने अंतिम श्लोक के शब्दों में धन्यवाद व्यक्त किया:

"इस जिन्न का कथन कितना मधुर है: मनुष्यों का जीवन छोटा होता है।"
यह दुखद है, और क्षणिक है, और इसके साथ अविभाज्य पीड़ा जुड़ी हुई है।
मैं संसार का त्याग करता हूँ: काशी से, सुरुंधना से, मैं जाता हूँ।

इस प्रकार उससे प्रवचन देने के बाद बोधिसत्व अपने स्थान पर लौट गए।

अगले दिन राजकुमारी ने अपने दरबारियों को शासन की बागडोर सौंप दी; और अपने ही शहर के एक रमणीय उद्यान में वह एक संन्यासिनी बन गईं। वहाँ उन्होंने धार्मिक जीवन व्यतीत किया, और अपने जीवन के अंत में तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में बोधिसत्व की सेविका के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म की पहचान बताई: (अब सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया:)--"उस समय राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) राजकुमारी थीं, और सक्का (इंद्र) मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)अनुनुसोसिया-जातक, संख्या 328 देखें

(2) संख्या 531.

पिछला <<<<-----||-459-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 459
पनिया-जातक

"जल," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए बुरी भावनाओं को वश में करने के बारे में सुनाई थी।

हमें पता चलता है कि एक समय श्रावस्ती नगर के पाँच सौ गृहस्थ और तथागत (बुद्ध) के मित्र नागरिकों ने धर्म का मार्ग सुनकर संसार त्याग दिया और भिक्षु बन गए। स्वर्णमयी भवन में रहते हुए, वे आधी रात को पाप के विचारों में लीन हो गए। (सभी विवरण पिछली कहानी (*1) के अनुसार ही समझे जाने चाहिए।) भगवान बुद्ध के आदेश पर, पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को एकत्रित किया। गुरु निर्धारित आसन पर बैठे और उनसे यह पूछे बिना कि, "क्या आप पाप के विचारों में लीन हैं?" उन्होंने उन्हें व्यापक और सामान्य शब्दों में संबोधित किया: "भाइयों, कोई भी पाप छोटा नहीं होता। एक भिक्षु को अपने सभी पापों को उत्पन्न होते ही रोकना चाहिए। बुद्ध के आने से पहले, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने अपने पापों पर विजय प्राप्त की और पच्चेक-बुद्ध का ज्ञान प्राप्त किया।" इन शब्दों के साथ, उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, काशी राज्य के एक गाँव में दो मित्र रहते थे। वे पीने के बर्तन लेकर खेत में गए, जिन्हें उन्होंने रास्ते में एक तरफ रख दिया, और प्यास लगने पर उनमें से पानी पीते थे। उनमें से एक ने पानी पीने के लिए जाते समय अपने बर्तन में पानी डाला और दूसरे के बर्तन से पी लिया। शाम को जब वह जंगल से बाहर आया और स्नान कर लिया, तो वह सोचने लगा, “क्या मैंने आज कोई पाप किया है, चाहे शरीर के माध्यम से हो या किसी और तरह से?” (*2) तब उसे याद आया कि उसने चोरी का पानी पिया था, और उसे बहुत दुख हुआ, और वह रो पड़ा, “अगर यह प्यास बढ़ती रही, तो यह मुझे किसी बुरे जन्म की ओर ले जाएगी! मैं अपने पाप को वश में करूँगा।” इस प्रकार, कारणवश चोरी का पानी पीने से (*3), उसने धीरे-धीरे अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, और पच्चेक-बुद्ध का ज्ञान प्राप्त किया; और वह वहीं खड़ा होकर अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान पर विचार करने लगा।

अब दूसरा व्यक्ति स्नान करके उठा और बोला, "चलो मित्र, घर चलते हैं।" दूसरे ने कहा, "घर जाओ तुम, घर मेरे लिए कुछ भी नहीं है, मैं तो पच्चेक-बुद्ध हूँ।" "छी! क्या पच्चेक-बुद्ध तुम्हारे जैसे होते हैं?" "तो फिर वे कैसे होते हैं?" "उनके बाल दो उंगल लंबे होते हैं, वे पीले

वस्त्र पहनते हैं, और वे हिमालय की ऊँची चोटियों पर नंदमूल गुफा में रहते हैं।" दूसरे ने अपना सिर सहलाया: उसी क्षण एक आम आदमी के निशान गायब हो गए, उसके चारों ओर लाल वस्त्र लिपटे हुए थे, बिजली की चमक के समान पीली कमरबंद बंधी हुई थी, लाल लाख के रंग का ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर था, उसके कंधे पर धूल से सना हुआ फटा हुआ कपड़ा था, और उसके बाएँ कंधे से भूरे रंग का मिट्टी का कटोरा लटक रहा था; वह हवा में स्थिर खड़ा था, और प्रवचन देने के बाद, वह उठा और तब तक नीचे नहीं उतरा जब तक कि वह नंदमूल की पर्वत-गुफा तक नहीं पहुँच गया।

काशी के एक गाँव में रहने वाला एक अन्य व्यक्ति, जो एक भूस्वामी था, बाज़ार में बैठा था, तभी उसने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी को साथ लाते हुए देखा। उसे देखकर (वह अत्यंत सुंदर स्त्री थी) उसने नैतिक सिद्धांतों का उल्लंघन किया और उसे घूरने लगा; फिर उसने सोचा, "यह इच्छा, यदि बढ़ती रही, तो मुझे किसी बुरे जन्म में धकेल देगी।" मन में व्याकुल होकर, उसने अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और पच्चेक बुद्ध का ज्ञान प्राप्त किया; फिर हवा में स्थिर होकर उसने प्रवचन दिया और वह नंदमूल गुफा (*4) भी गया।

काशी गांव के एक ग्रामीण में दो लोग, एक पिता और पुत्र, एक साथ यात्रा पर जा रहे थे। जंगल के प्रवेश द्वार पर लुटेरे घात लगाए बैठे थे। ये लुटेरे अगर पिता और पुत्र को पकड़ लेते, तो पुत्र को अपने साथ रख लेते और पिता को यह कहकर भेज देते, "अपने पुत्र को छुड़ाने के लिए फिरौती लाओ।" या अगर दो भाई होते, तो वे छोटे भाई को रख लेते और बड़े को भेज देते; या अगर गुरु और शिष्य होते, तो वे गुरु को रख लेते और शिष्य को भेज देते, और शिष्य विद्या के प्रति प्रेम के कारण फिरौती लाकर गुरु को छुड़ा लेता। अब जब इस पिता और पुत्र ने लुटेरों को घात लगाए देखा, तो पिता ने कहा, "मुझे 'पिता' मत कहो, और मैं तुम्हें 'पुत्र' नहीं कहूँगा।" और वे मान गए। जब लुटेरे उनके पास आए और उनसे पूछा कि उनका आपस में क्या रिश्ता है, तो उन्होंने जवाब दिया, "हमारा आपस में कोई रिश्ता नहीं है," इस प्रकार उन्होंने जानबूझकर झूठ बोला। जब वे जंगल से बाहर आए और शाम के स्नान के बाद विश्राम कर रहे थे, तब पुत्र ने अपने पुण्य का आत्मनिरीक्षण किया और इस झूठ को याद करके सोचा, "यह पाप यदि बढ़ता रहा तो मुझे किसी बुरे जन्म में डाल देगा। मैं अपने पाप को वश में करूँगा!" तब उसे अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसने पच्चेक-बुद्ध का ज्ञान प्राप्त किया। उसने वायु में स्थिर होकर अपने पिता को प्रवचन दिया और वह भी नन्दमूल गुफा की ओर चल पड़ा।

काशी के एक गाँव में एक ज़मींदार रहता था, जिसने सभी प्रकार के वध पर प्रतिबंध लगा रखा था। जब आत्माओं को अर्पण करने का समय आया, तो एक बड़ी भीड़ इकट्ठा हुई और बोली, "हे स्वामी! यह यज्ञ का समय है: आइए हम हिरण, सूअर और अन्य जानवरों को मारकर आत्माओं को अर्पण करें।" ज़मींदार ने उत्तर दिया, "जैसा तुम पहले करते आए हो, वैसा ही करो।" लोगों ने बड़े पैमाने पर वध किया। उस व्यक्ति ने बड़ी मात्रा में मछली और मांस देखकर मन ही मन सोचा, "इन सभी जीवित प्राणियों को इन मनुष्यों ने मार डाला, और वह भी केवल मेरे कहने मात्र से!" उसे पश्चाताप हुआ और खिड़की के पास खड़े-खड़े ही उसे अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसने पच्चेक-बुद्ध का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने वायु में स्थिर होकर प्रवचन दिया और फिर वह भी नन्दमूल गुफा चला गया।

काशी राज्य में रहने वाले एक अन्य जमींदार ने शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया। भीड़ ने उससे कहा, "महाराज, हम क्या करें? यह सदियों पुराना शराब उत्सव है!" उसने उत्तर दिया, "पहले की तरह ही करते रहो।" लोगों ने उत्सव मनाया, शराब पी और आपस में झगड़ने लगे; कई लोगों के पैर और हाथ टूट गए, खोपड़ियाँ फट गईं, कान कट गए और इसके लिए कई लोगों को दंडित किया गया। यह देखकर जमींदार ने मन ही मन सोचा, "अगर मैंने इसकी अनुमति न दी होती, तो उन्हें यह कष्ट न सहना पड़ता।" उसे अपने इस तुच्छ कार्य के लिए भी पश्चाताप हुआ: फिर उसे अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसने पच्चेक-बुद्ध का ज्ञान प्राप्त किया। वायु में स्थिर होकर उसने प्रवचन दिया और लोगों को सतर्क रहने के लिए कहा, फिर वह भी नन्दमूल गुफा चला गया।

कुछ समय बाद, पाँचों पच्चेक-बुद्ध भिक्षा माँगते हुए बनारस के द्वार पर उतरे। अपने ऊपरी और निचले वस्त्रों को सुव्यवस्थित ढंग से धारण करके, वे विनम्रतापूर्वक परिक्रमा करते हुए राजा के महल के द्वार पर पहुँचे। राजा उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए; उन्होंने उन्हें अपने महल में आमंत्रित किया, उनके पैर धोए, सुगंधित तेल से उनका अभिषेक किया, उनके सामने स्वादिष्ट भोजन परोसा, जिसमें कठोर और नरम दोनों प्रकार के व्यंजन थे, और एक तरफ बैठकर उनसे कहा: "महोदय, आपने युवावस्था में ही तपस्वी जीवन को अपनाया है, यह सुंदर है; इस आयु में आप तपस्वी बन गए हैं, और आप बुरी वासनाओं के कष्टों को देख रहे हैं। आपके इस कार्य का कारण क्या था?" उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया:

मैंने अपने ही मित्र का पानी चुरा लिया।
मैंने जो पाप किया था, उससे घृणा करते हुए, मुझे बाद में खुशी हुई।
संसार को त्यागकर संन्यासी बन जाना चाहिए, अन्यथा मैं फिर से पाप कर बैठूंगा।
मैंने दूसरे की पत्नी को देखा; मेरे मन में वासना जागृत हुई।
मैंने जो पाप किया था, उससे घृणा करते हुए, मुझे बाद में खुशी हुई।
संसार को त्यागकर संन्यासी बन जाना चाहिए, अन्यथा मैं फिर से पाप कर बैठूंगा।

चोरों ने मेरे पिता को जंगल में पकड़ लिया: मैंने उन्हें ही बताया
वह जैसा था उससे अलग था—यह झूठ था, मैं यह अच्छी तरह जानता था:
पाप से घृणा करते हुए," इत्यादि।
"एक भोज में लोगों ने बहुत सारे जानवरों को मार डाला।"
और मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं:
पाप से घृणा करते हुए," इत्यादि।
"वे लोग जो पुराने समय में शराब का भरपूर सेवन करते थे,
अब एक शराब पीने का सत्र आयोजित किया गया, जिसमें कई लोग बीमार पड़ गए।
और मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं।
मैंने जो पाप किया था, उससे घृणा करते हुए, मुझे बाद में खुशी हुई।
संसार को त्यागकर संन्यासी बन जाना चाहिए, अन्यथा मैं फिर से पाप कर बैठूंगा।
उन्होंने इन पांचों छंदों को एक के बाद एक दोहराया।

जब राजा ने प्रत्येक की व्याख्या सुन ली, तो उसने प्रशंसा करते हुए कहा, "महोदय, आपकी तपस्या आपको शोभा देती है।"

राजा इन पुरुषों के प्रवचन से प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें भीतरी और बाहरी वस्त्र तथा औषधियाँ दीं, फिर पच्चेक-बुद्धों को विदा किया। उन्होंने राजा को धन्यवाद दिया और जहाँ से आए थे वहीं लौट गए। उसके बाद से राजा इंद्रिय सुखों से विमुख हो गए, इच्छा से मुक्त हो गए, अपनी पसंद का उत्तम भोजन करते थे, परन्तु स्त्रियों से न तो बात करते थे, न ही उनकी ओर देखते थे, हृदय से घृणा करते हुए उठते और अपने भव्य कक्ष में चले जाते, और वहाँ बैठकर एक सफेद दीवार को तब तक घूरते रहे जब तक वे समाधि में नहीं चले गए, और अपने भीतर रहस्यमय ध्यान की परमानंद की अनुभूति की। इसी परमानंदमय मन से उन्होंने इच्छा की निंदा करते हुए एक श्लोक का पाठ किया।

"इससे दूर रहो, वासना से दूर रहो, मैं कहता हूँ, बुरा, काँटों से ग्रस्त!"
मैंने चाहे कितनी ही लंबी गलत राह पर चला हो, कभी भी ऐसा आनंद नहीं पाया जैसा मैंने इस बार पाया!
तब उनकी प्रधान रानी ने मन ही मन सोचा, "उस राजा ने पच्चेक-बुद्धों का प्रवचन सुना, और अब वह हमसे बात नहीं करता, बल्कि निराश होकर अपने आलीशान कक्ष में ही सिमट जाता है। मुझे उसे सबक सिखाना ही होगा।" अतः वह उस भव्य कक्ष के द्वार पर आई, और द्वार पर खड़ी होकर उसने राजा के प्रेम भरे शब्दों को सुना, जो कामवासना की निंदा कर रहे थे। उसने कहा, "हे शक्तिशाली राजा, आप कामवासना की निंदा करते हैं! परन्तु मीठी कामवासना के आनंद के समान कोई आनंद नहीं है!" फिर कामवासना की प्रशंसा में उसने एक और श्लोक दोहराया:

"मधुर इच्छा का आनंद महान है: प्रेम से बढ़कर कोई आनंद नहीं है।"
जो इसका अनुसरण करते हैं, उन्हें स्वर्ग के परम आनंद की प्राप्ति होती है!
यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया: "नष्ट हो जा, दुष्ट दुष्ट! तू क्या कहता है? इच्छा का आनंद कहाँ से आता है? इसके बदले में दुख ही मिलते हैं" - और इसके साथ ही उसने शेष छंदों की आलोचना की।

"इच्छा अप्रिय और कष्टदायी होती है, इससे बुरी पीड़ा और कोई नहीं होती।"
जो लोग पाप का अनुसरण करते हैं, उन्हें निश्चित रूप से नरक की पीड़ा भोगनी पड़ेगी।
"तेज धार वाली तलवार या प्यासी, कभी न तृप्त होने वाली तलवार से भी बेहतर है।"
दिल में गहरे धंसे हुए चाकुओं से भी ज्यादा घृणित तो इच्छाएं होती हैं।
"एक गड्ढा जो आदमियों की लंबाई जितना गहरा है, जहाँ धधकते हुए अंगारे हैं,"
धूप में तपते हल की इच्छाएँ कहीं अधिक भयावह होती हैं।
"अत्यंत विषैला जहर, कम आराम देने वाला तेल (*6)
या फिर वो घिनौनी चीज जो तांबे से चिपकी रहती है (*7), इच्छाएं इन सबसे भी बदतर हैं।"
इस प्रकार उस महान पुरुष ने अपनी पत्नी से प्रवचन दिया। फिर उन्होंने अपने दरबारियों को एकत्रित किया और कहा, "हे दरबारियों, तुम राज्य का संचालन करो: मैं संसार त्यागने जा रहा हूँ।" अनेक दरबारियों के विलाप और रोने-धोने के बीच वे उनके सामने उठे और वायु में स्थिर होकर प्रवचन दिया। फिर वे वायु के मार्ग पर चलते हुए सुदूर हिमालय की ओर गए और एक रमणीय स्थान पर एक आश्रम बनाया; वहाँ उन्होंने ऋषि का जीवन व्यतीत किया, और अंत में ब्रह्मालोक (परमलोक) के लिए नियत हो गए।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "भाइयों, कोई भी पाप छोटा नहीं होता: छोटे से छोटा पाप भी एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा ही रोका जाना चाहिए।" फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया (सत्यों के समापन पर पाँच सौ भिक्षु संतत्व प्राप्त कर चुके थे):- "उस समय पच्चेक-बुद्धों ने निर्वाण प्राप्त किया, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) रानी थीं और मैं स्वयं राजा था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 412 देखें

(2)अर्थात शब्द, या विचार।

(3)अर्थात, उसने इसे अपने ध्यान का विषय बनाया (अरम्मनम्, हिंदी-आलंबन), और इस प्रकार वह एक परमानंदमय समाधि में चला गया।

(4)सीएफ., विदभ-जातक, सं. 48

(5) क्या हमें abhunjitva को "खाने की परवाह नहीं की" पढ़ना चाहिए?

(6) "निकाला गया तेल"? (देखें सुक्रुत, 181)। जाहिरा तौर पर किसी प्रकार का जहर।

(7) वर्डीग्रिस, हरा तांबा जंग/तांबा सल्फेट।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **युवंजय-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-460-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 460
युवंजय जातक

"मैं प्रभु को प्रणाम करता हूँ," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो महान त्याग (*1) के बारे में है। एक दिन भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए। एक भिक्षु अपने साथी से कहता, "भाई (भिक्षु) बुद्ध (*2) भले ही एक घर में रहते हों, भले ही वे महान जगत के केंद्र में सर्वव्यापी सम्राट रहे हों, सात अनमोल चीजों से परिपूर्ण हों, चार अलौकिक शक्तियों (*3) से परिपूर्ण हों, और उनके चारों ओर एक हजार से अधिक पुत्र हों! फिर भी उन्होंने अपनी सारी शान-शौकत का त्याग कर दिया जब उन्हें इच्छाओं में निहित कमजोरी का ज्ञान हुआ। आधी रात को, चन्ना के साथ, वे अपने घोड़े कंठक पर सवार होकर चले गए: अनोमा नदी के तट पर, उन्होंने संसार का त्याग किया, और छह वर्षों तक तपस्या की, और फिर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया।" इस प्रकार उन्होंने बुद्ध के गुणों का वर्णन किया। गुरुजी ने प्रवेश करते हुए पूछा, "भाइयों, आप यहाँ बैठे-बैठे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" उन्होंने बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि तथागत (बुद्ध) ने महान त्याग किया है। अतीत में उन्होंने बारह लीग (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैले बनारस राज्य का त्याग कर दिया था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, रामा नगर में सब्बदत्त नामक राजा का शासन था। उदय जन्म (*4) में जिस स्थान को हम अब बनारस कहते हैं, उसका नाम सुरुंधना नगर, चुल्लासुतसोमा (*5) जन्म में सुदस्सन, सोनन्दना (*6) जन्म में ब्रह्मवद्धना और खंडाहल (*7) जन्म में पुप्पवती था; परन्तु युवंजय जन्म में इसका नाम रामा नगर है। इस प्रकार समय-समय पर इसका नाम बदलता रहता है। उस समय राजा सब्बदत्त के एक हजार पुत्र थे; और उन्होंने अपने सबसे बड़े पुत्र युवंजना को उपसदन का पद दिया।

एक दिन सुबह-सुबह राजकुमार अपने भव्य रथ पर सवार होकर बड़े ठाठ-बाठ से उद्यान में घूमने निकल पड़ा। वृक्षों की चोटियों पर, घास की नोकों पर, शाखाओं के सिरों पर, मकड़ियों के जालों और धागों पर, सरकंडों की शाखाओं पर, उसने ओस की बूंदों को मोतियों की मालाओं की तरह लटकते देखा। "मित्र सारथी," उसने कहा, "यह क्या है?" "यह, महाराज," उसने उत्तर दिया, "वह है जो ठंड के मौसम में गिरती है, और इसे ओस कहते हैं।" राजकुमार ने दिन का कुछ भाग उद्यान में आनंद लेते हुए बिताया। शाम को जब वह घर लौट रहा

था, तो उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। "मित्र सारथी," उसने कहा, "ओस की बूंदें कहाँ हैं? मुझे अब दिखाई नहीं दे रही हैं।" "महाराज," दूसरे ने कहा, "जैसे-जैसे सूर्य ऊपर चढ़ता है, वे सब पिघलकर जमीन में समा जाती हैं।" यह सुनकर राजकुमार व्याकुल हो गया और बोला, "हम प्राणियों का जीवन घास पर पड़ी ओस की बूंदों के समान है। मुझे रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु के बोझ से मुक्ति पानी है; मुझे अपने माता-पिता से विदा लेकर संसार का त्याग करना होगा।" ओस की बूंदों के कारण उसने तीनों स्वरूपों (*8) को धधकती आग में देखा। जब वह घर लौटा, तो अपने पिता के भव्य न्याय कक्ष में उनके समक्ष गया और उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ा हो गया और संसार का त्याग करने की अनुमति मांगते हुए पहला श्लोक दोहराया।

मैं रथ चालकों के स्वामी को मित्रों और दरबारियों के साथ इस प्रकार प्रणाम करता हूँ:
हे राजा! मैं संसार का त्याग करना चाहता हूँ: हे मेरे स्वामी, कृपया मुझे मना न करें।
तब राजा ने दूसरे श्लोक को दोहराते हुए उसे समझाया:

"युवंजना, अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो मैं उसे पूरा कर दूंगा।"
यदि कोई तुम्हें चोट पहुंचाए, तो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा: तुम संन्यासी मत बनो।"
यह सुनकर राजकुमार ने तीसरा श्लोक पढ़ा:

"ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो मुझे नुकसान पहुंचा सके: मेरी इच्छाओं में कोई कमी नहीं है।"
लेकिन मैं एक ऐसी शरणस्थली की तलाश करूंगा, जहां बुढ़ापा मुझ पर हावी न हो सके।"
इस मामले को समझाते हुए गुरु ने आधा श्लोक कहा:

पुत्र अपने पिता से इस प्रकार बात करता है, और पिता अपने पुत्र से इस प्रकार बात करता है:
शेष आधा श्लोक राजा द्वारा बोला गया था:

"हे राजकुमार, संसार को मत छोड़ो! नगरवासी यही पुकार रहे थे।"
राजकुमार ने फिर से इस श्लोक को दोहराया:

"हे महान सम्राट, मुझे सांसारिक जीवन से विमुख मत करो,"
अन्यथा मैं वासनाओं के नशे में चूर होकर बुढ़ापे में शिकार बन जाऊँगा!
यह सुनकर राजा झिझक गया। फिर माता को बताया गया, "महाराज, आपका पुत्र संसार त्यागने के लिए अपने पिता से अनुमति मांग रहा है।" "आप क्या कहते हैं?" उसने पूछा। वह स्तब्ध रह गई। सोने के पलंग में बैठी वह तेजी से न्याय कक्ष में गई और छठे श्लोक को दोहराते हुए पूछा:

"मैं आपसे विनती करता हूँ, मैं ही हूँ, मेरी प्रिय, और मैं आपको रोक लूँगा!"
हे मेरे पुत्र, मैं तुम्हें देखने की पुरजोर इच्छा रखता हूँ: हे मुझसे दूर मत जाना!
यह सुनकर राजकुमार ने सातवां श्लोक दोहराया:

"जैसे सूरज की तेज गर्मी में घास पर ओस की बूँदें पड़ती हैं,"
मनुष्य का जीवन ऐसा ही होता है: हे माता, मुझे मत रोको!
जब उसने यह कहा, तो उसने बार-बार उससे यही विनती की। फिर उस महान सत्ता ने आठवें श्लोक में अपने पिता को संबोधित किया:

"जो लोग इस जगह का भार उठा रहे हैं, वे इसे उठा लें: मेरी माँ को यहाँ न रहने दें।"
हे पराक्रमी राजा! मुझे मेरे पवित्र मार्ग पर प्रवेश करने से रोको (*9)।"
जब राजा ने अपने पुत्र की बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, "हे देवी, अपने कक्ष में जाइए, हमारे शाश्वत आनंद के महल में लौट आइए।" उनके ये शब्द सुनकर उनके पैर लड़खड़ा गए: और अपनी सहेलियों के साथ वे चली गईं, और महल में प्रवेश करके न्याय कक्ष की ओर देखने लगीं, और अपने पुत्र के समाचार की प्रतीक्षा करने लगीं। माता के जाने के बाद बोधिसत्व ने फिर अपने पिता से विदा मांगी। राजा उन्हें मना नहीं कर सके, और बोले, "हे प्रिय पुत्र, अपनी इच्छा पूरी कीजिए, संसार का त्याग कर दीजिए।"

जब यह सहमति प्राप्त हो गई, तो बोधिसत्व के सबसे छोटे भाई, राजकुमार युधिष्ठिल ने अपने पिता को प्रणाम किया और संन्यासी जीवन जीने की अनुमति मांगी, जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया। दोनों भाइयों ने अपने पिता को विदाई दी और सांसारिक इच्छाओं का त्याग करके, बड़ी संख्या में लोगों के बीच न्याय कक्ष से प्रस्थान किया। रानी ने उस महान व्यक्तित्व को देखकर विलाप करते हुए कहा, "मेरे पुत्र ने संसार का त्याग कर दिया है, और राम नगर खाली हो जाएगा!" फिर उन्होंने कुछ श्लोक दोहराए:

जल्दी करो, और तुम्हें आशीर्वाद मिले! मुझे लगता है कि राममका अब खाली है।
राजा सब्बदत्त ने युवंजना को जाने की अनुमति दे दी है।
"हजारों में सबसे बड़ा, वह, देखने में सोने के समान।"
इस पराक्रमी राजकुमार ने सांसारिक जीवन त्याग दिया है और पीले वस्त्र धारण किए हैं।
बोधिसत्व ने तुरंत संन्यासी जीवन नहीं अपनाया। उन्होंने पहले अपने माता-पिता को विदा किया; फिर अपने सबसे छोटे भाई, राजकुमार युधिष्ठिल को साथ लेकर वे नगर छोड़कर चले गए, और अपने पीछे आए हुए सभी लोगों को विदा करके वे दोनों हिमालय की ओर चल पड़े। वहाँ एक रमणीय स्थान पर उन्होंने एक आश्रम बनाया और एक पवित्र ऋषि का जीवन व्यतीत किया। ध्यान की दिव्य अवस्था में लीन होकर उन्होंने अपना सारा जीवन वन के फलों और जड़ों पर व्यतीत किया और ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियत हो गए।

इस विषय को अंतिम श्लोक में पूर्ण ज्ञान के साथ समझाया गया है:

युवंजन, युधित्थिला, पवित्र जीवन में बने रहो:
उनके पिता और उनकी माता चले गए, उन्होंने मृत्यु की दो कड़ियों को तोड़ दिया।"

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि तथागत (बुद्ध) ने राज्य का त्याग कर धार्मिक (सन्यासी) जीवन व्यतीत किया हो, बल्कि पहले भी ऐसा ही हुआ था;" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया:- "उस समय वर्तमान राजा के परिवार के सदस्य पिता और माता थे, आनंद युधिष्ठिल थे, और मैं स्वयं युवंजन था।"

फुटनोट:

(1) बुद्ध का सांसारिक जीवन त्यागकर संन्यासी बनना।

(2)बुद्ध: वह व्यक्ति जो दस शक्तियों या दस प्रकार के ज्ञान से युक्त हो।

(3)देखें 454

(4)सं. 458.

(5)सं. 525.

(6) संख्या 532.

(7) संख्या 542.

(8) कामभावो, रूपभावो, अरूपभावो: इंद्रिय-अस्तित्व, शरीर-अस्तित्व (जहाँ रूप है, परन्तु कोई इंद्रिय सुख नहीं), निराकार-अस्तित्व।

(9) तराती का तकनीकी अर्थ है "विनाश से भागना।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दशरथ-जातक**
स्रोत : पुरानी पुरातन अंग्रेज़ी अनुवाद से रूपांतरित और पाली से तुलना की गई

पिछला <<<<-----||-461-||----->>>> अगला

अंतर्वस्तु

- 1जाति क्रमांक 461
  - 1.1दिसम्बर-जातक (*1)
  - 1.2फुट मूवमेंट:
  - 1.3प्ले-रोमन संस्करण
  - 1.4पाली-देवनागरी संस्करण

जातक क्रमांक 461

दशरथ-जातक (*1)

"लक्खना और सीता," आदि - यह कथा गुरु (भगवान बुद्ध) ने जेतवन मठ में एक जमींदार के बारे में सुनाई थी, जिसके पिता का निधन हो गया था। पिता की मृत्यु पर वह व्यक्ति गहरे शोक में डूब गया: अपने सभी कर्तव्यों को अधूरा छोड़कर, उसने स्वयं को पूरी तरह से अपने शोक में लीन कर लिया। भोर में गुरु ने मानवजाति को देखते हुए महसूस किया कि वह प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त करने के योग्य है। अगले दिन, श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, उन्होंने भिक्षुओं को विदा किया और अपने साथ एक कनिष्ठ भिक्षु को लेकर उस व्यक्ति के घर गए, और उसे प्रणाम किया, और जब वह वहाँ बैठा था तो मधुर शब्दों में उससे बात की। "आप शोक में हैं, हे गृहस्थ शिष्य?" उसने कहा। "जी, महाराज, अपने पिता के कारण शोक में व्याकुल हूँ।" गुरु ने कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, प्राचीन काल के वे बुद्धिमान पुरुष जो इस संसार की आठ अवस्थाओं को भली-भांति जानते थे (*2), पिता की मृत्यु पर जरा भी शोक नहीं करते थे।" फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस में दशरथ नामक एक महान राजा ने बुराई के मार्ग का त्याग कर धर्मपरायणता से शासन किया। उनकी सोलह हजार पत्नियों में से सबसे बड़ी और रानी पत्नी के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम राम-पंडित, अर्थात् ज्ञानी राम, और दूसरे पुत्र का नाम राजकुमार लखण था।

समय बीतने के साथ ही महारानी का देहांत हो गया। उनकी मृत्यु से राजा दीर्घायु शोक में डूबे रहे, परन्तु दरबारियों के आग्रह पर उन्होंने उनका अंतिम संस्कार किया और उनकी स्थान पर दूसरी को महारानी नियुक्त किया। वह राजा की प्रिय और प्रेममयी थीं। कुछ समय बाद वह भी गर्भ धारण कर लीं और उनकी पूरी देखभाल करने पर उन्होंने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राजकुमार भरत रखा गया।

राजा अपने पुत्र से बहुत प्रेम करता था और उसने रानी से कहा, "श्रीमती, मैं आपको एक वरदान देता हूँ: आप चुनिए।" रानी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, लेकिन कुछ समय के लिए टाल दिया। जब पुत्र सात वर्ष का हुआ, तो वह राजा के पास गई और बोली, "महाराज, आपने मेरे पुत्र के लिए वरदान का वादा किया था। क्या आप अब मुझे वह वरदान देंगे?" राजा ने कहा, "चुनिए, रानी।" रानी ने कहा, "महाराज, मेरे पुत्र को राज्य दे दीजिए।" राजा ने उंगली उसकी ओर उठाई और क्रोधित होकर बोला, "निकल जा, दुष्ट स्त्री! मेरे दो पुत्र तो धधकती आग की तरह चमक रहे हैं; क्या तू उन्हें मारकर अपने पुत्र के बदले राज्य मांगेगी?" वह भयभीत होकर अपने आलीशान कक्ष में भाग गई और कई दिनों तक राजा से बार-बार यही वरदान मांगती रही। राजा ने उसे यह वरदान नहीं दिया। राजा मन ही मन सोचने लगा, "स्त्रियाँ कृतघ्न और कपटी होती हैं। यह स्त्री जाली पत्र या रिश्वत देकर मेरे पुत्रों की हत्या करवा सकती है।" इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों को बुलवाया और उन्हें सब कुछ बताते हुए कहा, "मेरे पुत्रों, यदि तुम यहाँ रहोगे तो तुम पर कोई विपत्ति आ सकती है। किसी पड़ोसी राज्य में या वन में चले जाओ, और जब मेरा शरीर दफ़न हो जाए, तब लौटकर अपने परिवार के राज्य का उत्तराधिकार ग्रहण करना।" फिर उन्होंने ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे अपने जीवनकाल की अवधि पूछी। उन्होंने बताया कि वे अभी बारह वर्ष और जीवित रहेंगे। तब उन्होंने कहा, "अब, मेरे पुत्रों, बारह वर्ष बाद तुम्हें लौटकर राजसी छत्रछाया को बुलंद करना होगा।" उन्होंने प्रतिज्ञा की और अपने पिता से विदा लेकर रोते हुए महल से चले गए। सीता देवी ने कहा, "मैं भी जाऊंगी," उन्होंने उन्हें विदाई दी और रोती हुई आगे बढ़ गईं।

ये तीनों लोगों की एक बड़ी भीड़ के बीच से रवाना हुए। उन्होंने लोगों को वापस भेज दिया और आगे बढ़ते रहे, अंततः वे हिमालय पहुँचे। वहाँ एक ऐसे स्थान पर जहाँ पानी की अच्छी व्यवस्था थी और जंगली फल आसानी से मिल जाते थे, उन्होंने एक आश्रम बनाया और वहीं जंगली फलों को खाकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

लक्खना-पंडित और सीता ने राम-पंडित से कहा, "आप हमारे लिए पिता समान हैं; इसलिए कुटिया में ही रहिए, हम जंगली फल लाकर आपको खिलाएंगे।" राम-पंडित मान गए: तब से राम-पंडित वहीं ठहर गए, और बाकी लोग जंगली फल लाकर उन्हें खिलाते रहे। (राम तपस्या, ध्यान, ब्रह्मचर्य और वासनाओं पर नियंत्रण के प्रति समर्पित थे, इसलिए सीता उनके लिए बहन समान थीं।)

इस प्रकार वे वहाँ जंगली फल खाकर जीवन व्यतीत करते रहे; परन्तु राजा दशरथ अपने पुत्रों के विरह में क्षीण हो गए और नौवें वर्ष में उनका प्राणत्याग हो गया। जब उनके अंतिम संस्कार किए गए, तो रानी ने आदेश दिया कि उनके पुत्र, राजकुमार भरत के ऊपर राजसी छत्र उठाया जाए। परन्तु दरबारियों ने कहा, "राजसी छत्र के स्वामी वन में निवास कर रहे हैं," और उन्होंने इसकी अनुमति नहीं दी। राजकुमार भरत ने कहा, "मैं अपने भाई रामपंडित को वन से लाऊंगा और उनके ऊपर राजसी छत्र उठाऊंगा।" राजसी प्रतीक (*3) लेकर वे चारों भुजाओं (*4) की पूर्ण सेना के साथ उनके निवास स्थान की ओर चल पड़े। कुछ ही दूरी पर उन्होंने शिविर लगवाया और फिर कुछ दरबारियों के साथ वे आश्रम गए, उस समय जब लक्खना-पंडित और सीता वन में विराजमान थे। आश्रम के द्वार पर रामपंडित

निडर और शांत भाव से बैठे थे, मानो सोने की कोई सुगठित प्रतिमा हों। राजकुमार ने प्रणाम करते हुए उनके पास आकर एक तरफ खड़े होकर राज्य में घटी सारी बातें बताईं और दरबारियों के साथ उनके चरणों में गिरकर रोने लगे। राम-पंडित न तो दुखी हुए और न ही रोए; उनके मन में कोई भावना नहीं थी। जब भरत का रोना समाप्त हुआ और वे बैठ गए, तो शाम होते-होते बाकी दोनों जंगली फल लेकर लौट आए। राम-पंडित ने सोचा—"ये दोनों तो युवा हैं: मेरे जैसी सर्वज्ञानी बुद्धि इनके पास नहीं है। अगर इन्हें अचानक पता चल जाए कि हमारे पिता का निधन हो गया है, तो इनका दर्द असहनीय होगा और कौन जाने, शायद इनका हृदय टूट जाए। मैं इन्हें पानी में उतरने के लिए मनाऊंगा और सच्चाई जानने का कोई उपाय ढूंढूंगा।" फिर उन्होंने सामने एक जगह की ओर इशारा करते हुए कहा, जहाँ पानी था, "तुम बहुत देर से बाहर हो: यही तुम्हारा प्रायश्चित होगा—उस पानी में जाओ और वहाँ खड़े हो जाओ।" फिर उन्होंने आधा श्लोक दोहराया:
"लक्खना और सीता दोनों को उस तालाब में उतर जाने दो।"

एक शब्द ही काफी था, वे पानी में उतरे और वहीं खड़े हो गए। फिर उन्होंने दूसरे आधे छंद को दोहराते हुए उन्हें खबर सुनाई:
भरत कहते हैं, राजा दशरथ का जीवन समाप्त हो गया है।

अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वे बेहोश हो गए। उन्होंने फिर से वही बात दोहराई, फिर वे बेहोश हो गए, और जब तीसरी बार भी वे बेहोश हो गए, तो दरबारियों ने उन्हें उठाया और पानी से बाहर निकालकर सूखी ज़मीन पर लिटा दिया। जब उन्हें सांत्वना दी गई, तो वे सब एक साथ बैठकर रोने-बिलखने लगे। तब राजकुमार भरत ने सोचा: "मेरे भाई राजकुमार लक्खना और सीता माता अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने शोक को रोक नहीं पा रहे हैं; परन्तु राम-पंडित न तो विलाप कर रहे हैं और न ही रो रहे हैं। मुझे आश्चर्य है कि इसका क्या कारण हो सकता है कि वे शोक नहीं कर रहे हैं? मैं उनसे पूछूंगा।" फिर उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया और प्रश्न पूछा:
"हे राम, तुम किस शक्ति से शोक नहीं करते, जबकि तुम्हें शोक करना चाहिए?
यद्यपि तुम्हारे पिता की मृत्यु हो गई है, फिर भी तुम शोक से अभिभूत नहीं हो!"

तब राम-पंडित ने अपने शोक न करने का कारण बताते हुए कहा,
जब मनुष्य किसी बात को अपने पास नहीं रख पाता, चाहे वह कितना भी रोए, तो
बुद्धिमान बुद्धि को उस बात से क्यों कष्ट सहना चाहिए?
युवा, वृद्ध, मूर्ख और बुद्धिमान,
अमीर हो या गरीब, सभी का अंत निश्चित है: उनमें से प्रत्येक की मृत्यु होती है।

जैसे पके फल के गिरने का भय निश्चित होता है,
वैसे ही मृत्यु का भय सभी मनुष्यों को सताता है।

सुबह के उजाले में दिखने वाले अक्सर शाम तक गायब हो जाते हैं,
और शाम को दिखने वाले कई लोग सुबह तक गायब हो जाते हैं।

यदि किसी मूर्ख को
आंसुओं से खुद को कष्ट देने से आशीर्वाद मिल सकता है, तो बुद्धिमान भी यही करेगा।

स्वयं को कष्ट देने से वह दुबला-पतला और पीला पड़ जाता है;
इससे मुर्दा जीवित नहीं हो सकता, और आंसुओं का कोई लाभ नहीं है।

जैसे जलते हुए घर को पानी से बुझाया जा सकता है, वैसे ही
बलवान, बुद्धिमान और समझदार लोग,
जो शास्त्रों को भली-भांति जानते हैं,
तूफानी हवाओं के चलने पर अपने दुःख को रुई की तरह बिखेर देते हैं।

"एक नश्वर प्राणी मरता है—और दूसरा सीधे पारिवारिक संबंधों से जुड़ जाता है:
प्रत्येक प्राणी का सुख उसके साथी संबंधों पर निर्भर करता है।"

"इसलिए बलवान पुरुष, जो पवित्र ग्रंथों में निपुण है,

इस संसार और परलोक का गहन चिंतन करता है, और
उनके स्वरूप को जानता है, किसी भी दुःख से,
चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, मन और हृदय में विचलित नहीं होता।"

"इसलिए मैं अपने परिवार को सब कुछ दूंगा, उनकी रक्षा करूंगा और उनका पालन-पोषण करूंगा, और
जो कुछ भी शेष बचेगा, उसका भरण-पोषण करूंगा: यही बुद्धिमान व्यक्ति का कर्म है (*5)।"

इन छंदों में उन्होंने वस्तुओं की अनित्यता को समझाया है।

जब सभा ने राम-पंडित का अनित्यता का उपदेश सुना, तो उनका सारा दुःख दूर हो गया। तब राजकुमार भरत ने राम-पंडित को प्रणाम किया और उनसे बनारस राज्य स्वीकार करने का निवेदन किया। राम ने कहा, "भाई, लक्खना और सीता को अपने साथ ले जाओ और स्वयं राज्य का शासन करो।" राम ने कहा, "नहीं, महाराज, आप ही शासन करें।" राम ने कहा, "भाई, मेरे पिता ने मुझे बारह वर्ष बाद राज्य ग्रहण करने का आदेश दिया है। यदि मैं अभी जाऊँगा, तो मैं उनकी आज्ञा का पालन नहीं करूँगा। मैं तीन वर्ष बाद आऊँगा।" राम ने पूछा, "इतने समय तक शासन कौन संभालेगा?" राम ने कहा, "आप संभालिए।" राम ने कहा, "मैं नहीं।" राम ने कहा, "तो जब तक मैं नहीं आता, ये चप्पलें ही कार्य करेंगी।" उन्होंने अपनी पुआल की चप्पलें उतारकर अपने भाई को दे दीं। इस प्रकार तीनों ने चप्पलें लीं और ज्ञानी पुरुष को विदाई देकर अपने अनुयायियों की विशाल भीड़ के साथ बनारस के लिए प्रस्थान किया।

तीन वर्षों तक चप्पलों का राज रहा। दरबारी किसी मामले पर फैसला सुनाते समय इन भूसे की चप्पलों को राजगद्दी पर रख देते थे। यदि फैसला गलत होता, तो चप्पलें आपस में टकरातीं और इस संकेत पर मामले की दोबारा जांच की जाती; जब फैसला सही होता, तो चप्पलें शांत हो जातीं।(*6)

तीन वर्ष बीत जाने पर, ज्ञानी पुरुष वन से निकलकर बनारस आए और उद्यान में प्रवेश किया। उनके आगमन की सूचना पाकर राजकुमार एक विशाल दल के साथ उद्यान में पहुँचे और सीता को अपना स्वामी बनाकर दोनों का अभिषेक किया। इस प्रकार अभिषेक संपन्न होने पर, महान पुरुष एक भव्य रथ पर सवार होकर और एक विशाल दल से घिरे हुए नगर में प्रवेश किया और दाहिनी ओर परिक्रमा की; फिर अपने भव्य महल सुचंदक के विशाल चबूतरे पर चढ़कर उन्होंने सोलह हजार वर्षों तक धर्मप्रधानता से शासन किया और फिर स्वर्ग चले गए।

पूर्ण ज्ञान की यह पंक्ति इसके परिणाम को स्पष्ट करती है:
"साठ गुना सौ और दस हजार और वर्षों तक, कुल मिलाकर,
बलवान भुजाओं वाले राम ने शासन किया, उनके गले में धन्य त्रिगुणा था।" (*7)

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर, भूस्वामी प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया): "उस समय राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) राजा दशरथ थे, महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) माता थीं, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) सीता थीं, आनंद भरत थे और मैं स्वयं राम-पंडित था।"

फुटनोट:

(अनुवादक द्वारा)

(1) दशरथ जातक की कहानी रामायण की कहानी के समान है।

(2) लाभ और हानि, यश और अपमान, प्रशंसा और निंदा, सुख और दुख।

(3) तलवार, छाता, मुकुट, चप्पल और पंखा।

(4) हाथी, घुड़सवार सेना, रथ, पैदल सेना।

(5) विद्वान कलाबाहु जन्म, क्रमांक 329 में उल्लिखित एक श्लोक का उद्धरण देते हैं, जो "लाभ और हानि" से शुरू होता है।

(6) यह अंतिम घटना रामायण में नहीं पाई जाती, न ही तुलसीदास के हिंदी संस्करण में पाई जाती है।

(7) गर्दन पर तीन बार, शंख-सर्पिलों की तरह, सौभाग्य का प्रतीक था।

नोट: यह समझना आवश्यक है कि उस समय बनारस एक विशाल राज्य का नाम था। अयोध्या शहर को साकेत के नाम से जाना जाता था।

पिछला <<<<-----||-461-||----->>>> अगला

पाली-रोमन संस्करण
(स्रोत: tipitaka.org)

---

[461] 7. दशरथजातकवन्ना

एथा लक्षणा सीता चति इदं सत्था जेतवने विहारन्तो एकं मतापिटिकं कुटुम्बिकं अरब कथेसि। तो हि पिटारी कालकते सोकाभिभूतो सब्बाकिच्चानि पहाय सोकनुवत्तकोवा अहोसि। सत्थ पच्चुससमाये लोकं ओलोकेनतो तस्स सोतापत्तिफलोपनिस्सायं दिव पुनादिवसे सवत्थियं पिंडाय चरित्वा कटभट्टकिको भिक्खु उय्योजेत्वा एकं पच्चसामानं गहेत्वा तस्स गेहं गनत्वा वंदित्वा निस्न्नं मधुरवाकेन अलापंतो "किं सोकासी उपासका"ति वट्वा" अमा, भंते, पितुसोको मा बधाति"ति वुत्ते" उपासक, पोराणकपण्डिता अठविधे लोकधम्मे तथातो जानंता पिटारी कालकते अप्पमट्टकमपि सोकं न करिंसु'ति वत्वा तेन याचितो अतीतं अहारी।

अतिते बरणसियं दशरथमहाराज नाम अगतिगमनं पाहाय धम्मेन रज्जन करेसि। तस्स सोसासन्नं इत्थिससहासनं जेठिका अग्गमहेसि द्वे पुत्ते एकान्च धीतरं विजयी। जेट्ठपुत्तो रामपंडितो नाम अहोसि, कर्तव्यो लक्खनकुमारो नाम, धीता सीता देवी नाम। अपराभागे महेसि कालमकसी। राजा तस्स कालकटाय चित्रं सोकावासं गन्त्वा अमाच्छेहि सन्नापितो तस्सा कट्टब्बापरिहारं कट्वा अण्णं अग्गमहेसित्थाने थपेसि। सा राननो पिया अहोसी मनापा। सापि अपराभागे गभं गणित्वा लद्धगभपरिहार पुत्तं विजयी, भरतकुमारो'तिस्सा नामं अकांशु। राजा पुत्तसिनेहेन "भड्डे, वरं ते दम्मी, गन्हाहि'ति आहा। स गहितकं कत्वा थपेत्वा कुमारस्स सत्ताथवस्सकाले राजनं उपसंकमित्वा "देवा, तुमहेहि मयहं पुत्तस्सा वरो दिन्नो, इदानिस्सा वरं देथा'ति आहा। गौंहा, भद्देति. "देव, पुत्तस्स मे रज्जं देथा'ति वुत्ते राजा आचारं पहारित्वा" नस्सा, वसालि, मयहं दवे पुत्त अग्गिकखंडा विया जलन्ति, ते मारापेत्वा तव पुत्तस्स रज्जं यकासी'ति तज्जेसि। स भीता सिरिगभं पविसित्वा अन्नेसुपि दिवासेसु राजनं पुनप्पुनं राजमेव याचि।

राजा तस्स तं वरं अदतव चिन्तेसि "मातुगामो नाम अकातन्नि मित्तदुब्भि, अयं मे कुण्तापणं वा कुन्तलंजं वा कट्वा पुट्टे घटापेययाति. तो पुत्ते पक्कोसापेतवा तमत्थं अरोचेत्वा "तता, तुम्हाकं इधा वसंतानां अंतरायोपि भवेया, तुम्हें समन्तरज्जं वा अरण्यं वा गन्त्वा मम मरणकाले आगन्त्वा कुलसन्तकं रज्जन गन्हेयथा'ति वट्वा पुना नेमित्तके ब्राह्मणे पक्कोसपेत्व अत्तनो अयुपरिच्छेदं पुच्छित्वा' अण्णानि द्वादसा वस्सानि पवत्तिस्सति" सुतवा "ताता, इतो द्वादसवसच्चयेन आगन्त्वा चट्टं उस्सपेयथा'ति अहा। ते "साधु'ति वत्वा पितरं वंदित्वा रोदंता पसाद ओतरिंसु। सीता देवी "अहम्पि भातिकेहि सद्धिं गमिसामि"ति पितरं वंदित्वा रोदन्ति निक्खमि। तयोपि जना महापरिवार निक्खमित्वा महाजनं निवत्तेत्वा अनुपुब्बेन हिमवन्तं पविसीत्वा सम्पन्नोदके सुलभफलाफले पदेसे असमम मापेत्वा फलाफलेना यापेंटा वसिंसु।

लक्खाणपंडितो च सीता च रामपंडितं यचित्व "तुम्हे अम्हकं पितुत्थाने स्थित, तस्मा अस्समेयेव होथा, मायं फलफलं अहरित्व तुम्हें पोसेसामा'ति पतिन्नं गानहिंसु। ततो पथाय रामपण्डितो तत्थेव होति। इतरे दवे फलाफलं अहारित्वा तं पतिजग्गिंसु। एवं तेसं फलफलेण यापेत्वा वसंतानां दशरथमहाराजा पुत्तसोकेन नवमे संवच्चरे कालमकासि। तस्स सारिरकिक्कं करेत्वा देवी"अत्तनो पुत्तस्स भरतकुमारस्स चट्टं उस्सापेथा"ति आहा। अमाक्का पना "चट्टसामिका अरण्ये वसंती"ति न अदंसु। भरतकुमारो "मम भतरं रामपंडितं अरण्यतो अनेत्व चट्टं उस्सपेस्सामि'ति पंचराजककुधभंडानि गहेत्वा चतुरंगिनिय सेनाय तस्स वसनत्थानं पट्वा अविदुरे खंडावरं कत्वा तथा निवासेत्व कटिपयेहि अमाच्छेहि सद्धिं लक्खाणपणितस्स च सीताय च अरण्यं गतकाले अस्समापदं पविसीत्वा असमपदद्वारे थपितकंचनरूपकं विया रामपंडितं निरासंकं सुखनिसिंन्न उपसंकमित्वा वंदित्वा एकमंतं धिठितो राणनो पवत्तिन अरोचेत्वा सद्धिं अमाच्छेहि पदेसु पतित्व

रोदति. रामपंडितो पना नेव सोसि, न परिदेवी, इंद्रियविकारमत्तमपिस्सा नहोसि। भरतस्सा पना रोदित्वा निसिंन्नाकाले सयानहसामय इतारे दवे फलाफलं आदया अगामिन्सु। रामपंडितो सिंतेसि "इमे दहारा मयहं विया परिग्गानपन्न एतेसं नत्थि, सहसा 'पिता वो मतोति वुत्ते सोकं संधारेतुं असक्कोंताणं हदयमपि तेसां फलेया, उपयेन" ते उदकं ओटरेत्वा एतं पवत्तीं अरोसेसामि'ति। अथ नेसं पुरतो एकं उदकथनं दस्सेत्व"तुम्हे अतिचिरेण अगाता, इदं वो दंडकम्मं होतु, इमं उदकं ओटरित्व तिथथ"ति उपान्धगाथं तव अहा -

84.

"एथा लक्षणा सीता च, उभो ओटराथोडका"न्ति।

तस्सत्थो – एथा लक्खण सीता च आगच्छथा, उभोपि ओतारथा उदकान्ति;

ते एकवाकानेनेव ओतरित्वा अथान्सु। अथ नेसं पितु पवत्तिं अरोसेंटो सेसं उपाढगथमहा -

"एवायं भारतो अहा, राजा दशरथो मतो"ति।

ते पितु मतासासनं सुत्वव विसान्या अहेसुं। पुनापि नेसं कथेसी, पुनापि ते विसान्या अहेसुन्ति एवं यावततियां विसानितां पत्ते ते अमाक्का उक्खीपित्वा उदका निहारित्वा थले निसीदापेट्वा लद्धसासेसु तेसु सब्बे अण्णामन्नं रोदित्वा परिदेवित्वा निसिदिंसु। तदा भरतकुमारो सिंतेसी - "मयहं भता लक्खनकुमारो च भगिनी च सीता देवी पितु मतासासनं सुत्वव सोकं संधारेतुं न सक्कोंति, रामपंडितो पना नेव सोकाति, न परिदेवति, किं नु खो तस्स असोकनकारणं, पुच्चिसामि न'अन्ति। तो तं पुच्चन्तो दुतीयं गथमः -

85.

"केना रामप्पाभावेन, सोसिताबं न सोकासि;

पितरं कालकटं सुत्वा, न तं पसहते दुःख'न्ति।

तत्थ पभावेनति अनुभावेन। न तं पसहते दुखंति एवरूपं दुक्खं केन कारणेन तं न पीड़ाति, किं ते अशोकनकारणं, कथेहि तव नन्ति।

अथस्सा रामपंडितो अत्तानो अशोकाकरणं कथेंटो -

86.

"यं न सक्क निपालेतुं, पोसेन लपतं बहुं;

सा किस्सा विष्णु मेधावी, अत्तनमुपतपये।

87.

"दहरा च हि वुधा च, ये बाला ये च पंडिता;

अद्धा सेवा दलिद्दा च, सब्बे मक्कूपरायणा।

88.

" फलानामिव पक्कनं, निच्चं पतनतो भयं;

एवं जटां मक्कणं, निक्कं मरणतो भयं।

89.

"सयामेके न डिस्संति, पतो दिट्ठा बहुज्जना;

पतो एके न दिसंति, सयं दिट्ठा बहुज्जना।

90.

"परिदेवयामानो सी, किञ्चिदत्थं उदाब्बहे;

सम्मूढो हिंसमत्तनं, कयिरा तं विकक्खणो।

91.

"किसो विवाणो भवति, हिंसामत्तनमत्तनो;

न तेन पेटा पलेन्ति, निरत्था परिदेवना।

92.

"यथा शरणमादित्तं, वारिणा परिनिब्बये;

एवमपि धीरो सुतवा, मेधावी पण्डितो नरो;

खिप्पमुप्पतितं सोकं, वातो तुलनव धंसये।

93.

"मैकको एकोवा एक्सेति, एकोवा जायते कुले;

संयोगपरमत्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिणं।

94.

"Tasmā hi dhīrassa bahussutassa, sampassato lokamimaṃ parañca;

अनन्याय धम्मं हदायं मनञ्च, सोका महन्तपि न तपयन्ति।

95.

"सोहं दसांचा भोक्खाञ्च, भरिसामि च नाताके;

सेसांका पालयिस्सामि, किच्चेमेतम विजानातो"ति। –

इमहि दशहि गाथाहि अनिच्चतं पकासेति।

तत्थ निपालेतुन्ति रक्खितुम्। लपटन्ति लपन्तानां। इदं वुट्टं होति - "तत् भारत, यं सत्तनं जीवितं बहुमपि विलापंतानां पुरिसानां एकेनापि मा उच्छिज्जिति न सक्क रक्खितुं, सो दानि मदिसो अथा।" लोकाधम्मे तथातो जानन्तो विन्निउ मेधावी पण्डितो मरणपरियोसनजीवितेसु सत्तेसु किस्सा अत्तनमुपतपये, किंकरण अनुपकारेण सोकादुक्खेन अत्तनं संतापेय्यति।

दहरा बिल्ली गाथा" मक्कु नामेसा तत् भारत, नेव सुवन्नारूपकसदिसानं दहरणं खट्टियकुमारकादीनं, न वुद्धिपट्टानां महायोधनं, न बलानां पुथुज्जनसत्तनं, न बुद्धदीनं पंडितानं, न चक्कवत्तिदीनं इस्सरणं, न निधनं दलिद्दिनां लज्जति, सब्बेपिमे सत्ता मक्कुपरायणं मरणमुखे संभग्गविभग्गा भवन्तियेवति दस्सानत्थं वुत्ता।

निक्कं पतनतोति इदं वुत्तं होति - यथा हि तत् भारत, पक्कणं फलानां पक्ककालतो पठया "इदानि वंता चिज्जित्वा पतिसन्ति, इदानि पतिसंति"ति पतनतो भयं निच्चं धुवं एकांशिकमेव भवति, एवं असांकनियातो एवं जातनं मक्कनमपि एकांशिक्येव मरणतो भयं, नत्थि सो खणो वा लयो वा यत्थ तेसं मरणं न असंकिताबं भवेयति।

सायन्ति विकले. इमिना रतिभागे च दिट्ठानं दिवासभागे अदस्सानं, दिवाभागे च दित्थानं रतिभागे अदस्सानं दीपेति। किञ्चिदत्थन्ति "पिता मे, पुत्तो मे"तिदिहि परिदेवमनोवा पोसो सम्मुधो अत्तनं हिंसान्तो किलामेंटो अप्पमत्तकम्पि अत्थं अहारेया। कयिरतां विकक्खनोति अथ पण्डितो पुरिसो एवं परिदेवं करेया, यस्मा पना परिदेवन्तो मतं वा अनेतुं अन्नं वा तस्स वधिं कटुं न सक्कोति, तस्मा निरत्थकत्ता परिदेवित्स्सा पंडिता न परिदेवन्ति।

अत्तनमत्तनोति अत्तनो अत्तभावं सोकापरिदेवदुक्खेन हिंसान्तो। न तेनाति तेन परिदेवेन परलोकं गता सत्ता न पलेन्ति न यापेन्ति। निरत्थति तस्मा तेसं मतसत्तनं अयं परिदेवाना निरत्थका। सरणन्ति निवासाघं। इदं वुट्टं होति - यथा पंडितो पुरिसो अत्तनो वसनगारे अदित्ते मुहुत्तमपि वोसनं अनपज्जित्वा घटसतेन घटसहस्सेन वारिणा निब्बापयतेव, एवं धीरो उपपतितं सोकं खिप्पमेव निब्बापये। तुलां विय च वातो यथा संथातुं न सक्कोति, एवं धंसये विद्धंसेयति अत्थो।

मैको एकोवा एकेतिति एत्था ताता भारत, इमे सत्त कम्मस्सका नाम, तथा हि इतो परलोकं गच्चन्तो सत्तो एकोवा एकेति अतिक्कमति, खटियादिकुले जयामानोपि एकोवा गन्त्वा जयति। तत्थ तथा पना नातिमित्तसंयोगेन "अयं मे पिता, अयं मे माता, अयं मे मिटो"ति संयोगपरमत्वेव सम्भोगा सब्बपाणिनं, परमत्थेन पना तिसुपि भावेसु कम्मासससकावेते सत्ताति अत्थो.

तस्माति यस्मा एतेसं सत्तनं नातिमित्तसंयोगम् नातिमित्तपरिभोगमत्तं थपेत्वा इतो परं अन्नं नत्थि, तस्मा। सम्पस्सतोति इमान्च पराञ्च लोकं नानाभावविनाभावमेव सम्मा पस्सतो। अनन्या धम्मन्ति अष्टविधलोकधम्मं जनित्वा। हदयं मनञ्चति इदं उभयम्पि चित्तसेवा नामम्। इदं वुत्तं होति -

"लाभो अलाभो यशो अयासो च, निन्दा पसांसा च सुखञ्च दुक्खं;

एते अनिच्च मनुजेसु धम्म, मा सोका किं सोकासी पोथपदा'ति। (जा. 1.4.114)-

इमेसं अट्ठन्नं लोकधम्मनं येन केनचि चित्तं परियादीयति, तस्स च अनिच्चतं नात्वा ऋहितस्स धीरस्सा पितुपुत्तमरणादिवत्थुका महंतापि सोका हदयं न तपयन्तीति. एतं वा आठविधं लोकधम्मं नट्वा ऋतस्स हदयवत्थुञ्च मनञ्च महन्तपि सोका न तपयन्तीति एवमपेट्टा अत्थो दतहब्बो।

सोहंदासांचा भोक्खाञ्चति गाथाय - तत् भारत, अन्धबलानां सत्तानं विया मम रोदनपरिदेवानां नाम न अनुच्चविकं, अहं पण पितु अचयेना तस्स ठाणे ठत्वा कपानादीनं दानराहनं दानं, थनंतराहणं थनंतरम, यसराहनं यसं दशमि, पितर मे परिभुत्तनयेन इस्सरियम् परिभुञ्जिस्सामि, नाताके च पोसेस्सामि, अवसेसंच अंतोपरिजनादिकं जनं पलेसामि, धम्मिकासमानब्राह्मणं धम्मिकां रक्खावरनगुत्तीं करिस्सामिति इवन्हि जानतो पण्डितपुरिसस्सा अनुरूपं किक्कन्ति अथो।

परिसा इमं रामपंडितस्सा अनिच्चतापकासनं धम्मदेसनं सुत्वा निस्सोका एहेसुं। ततो भरतकुमारो रामपंडितं वंदित्वा "बाराणसिराजं सम्पतिच्चता" आहा। तता लक्षणाञ्च, सीतादेविञ्च गहेत्वा गन्त्वा रज्जं अनुसासाथति। तुम्हें पाना, देवता. ताता, मम पिता "द्वादसवसच्चयेन आगन्त्वा रज्जं कार्यासि'ति मन अवोका, अहं इदानेव गच्छन्तो तस्स वचनाकारो नाम न होमि, आन्यानिपि तिनि वस्सनि अतिक्कमित्वा। अगामिस्सामिति. "एट्टकं कालं को रज्जं करस्सति?" "तुम्हे करता'ति. "न मयां करेसमा'ति।' "तेन हि याव ममगमना इमा पादुका करेसंती अत्तनो तिनपादुका ओमुन्चित्वा अदासि।" ते तैयोपि जन पादुका गहेत्वा रामपंडितं वंदित्वा महाजनपरिवुता बाराणसीं अगमंसु। तिनि संवच्चराणि पादुका रज्जं करेसुम्। अमाक्का तिनपादुका राजपल्लंके थापेत्वा विनिच्चिन्ति। ससे दुब्बिनिचितो होति, पादुका अण्णामन्नं पतिहन्नन्ति। तया संन्या पुना विनिच्चिन्ति। सम्मा विनिच्चिटकाले पादुका निस्सादा सन्निसिडन्ति। रामपंडितो तिन्नं संवच्चरणं अच्चयेन अरण्यं निक्खमित्वा बाराणसिनगरं पट्वा उय्यनं पविसि। तस्स अगमनाभवं नात्वा कुमारा अमाच्छगणपरिवुता उय्यनं गन्त्वा सीतां अग्गमहेसिं कत्वा उभिनमपि अभिषेकं अकांशु। एवं अभिषेकप्पत्तो महासत्तो अलंक्तराथे तथ्वा महान्तेन परिवारेण नगरं पविसीत्व पदक्खिनं कत्वा चंडकपासादवरस्स महतलं अभिरुहि। ततो पठया सोसासा वाससासहसानि धम्मेण रज्जं करेत्व अयुपरियोसाने सग्गपुराम शुद्धि।

96.

"दसा वाससाहस्सानि, सत्थि वाससातानि च;

कम्बुगीवो महाबाहु, रामो राजमकारयि'ति। —

अयं अभिसंबुद्धगाथा तमत्थं दिपेति।

तत्थ कम्बुगीवोति सुवन्नानगसादिसागिवो। सुवन्नाहि कंबुति वुच्चति।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा सच्चानि पाकसेत्व जातकं समोधनेसि, सैकापरियोसाने कुटुंबिको सोतापत्तिफले पतितहि। तदा दशरथमहाराज शुद्धोदनमहाराज अहोसि, माता महामायादेवी, सीता राहुलमाता, भरतो आनंदो, लक्खानो सारिपुत्तो, परिसा बुद्धपरिसा, रामपण्डितो पना अहमेव अहोसिन्ति।

दशरथजातकवन्नान सत्तमा।

पाली-देवनागरी संस्करण
(स्रोत: tipitaka.org)

[461] 7. दसरथजातकवन्न

एथ लक्खन सीता चति इदं सत्था जेतवने विहरन्तो एकं मात्पिटिकं कुटुम्बिकं अर्भ कथेसि। सो हि पितृ कालकते सोकाभिभूतो सब्बकिचचानि पहाय सोकानुवत्सकोव अहोसि। सत्था पचाचूससमये लोकं ओलोकेन्तो तस्स सोतापट्टफालूपनिस्सयं दिसवापुनदिवसे सावत्थियां पिण्डाय चरित्वा कटभत्तकिच्चो भिक्खु उयोजेत्वा एकं पच्चासमनं गहेत्वा तस्स गेहं गन्त्वा वंदित्वा निसि साइनंमधुवचनेन अलपन्तो "किं सोचसि उपासका"ति वत्वा "अम, भन्ते, पितुसोको मं बधति"ति वुत्ते" उपासक, पोराणकपंडिता अट्ठविधे लोकधम्मे तत्थो जानंता पितृ कालकते अप्पमत्तकम्पि सोकं न करिंसु"ति वत्वा तेन याचितो अस्तं अहारी।

अस्ते बरनसियं दशरथमहाराजा नाम अगतिगमनं पहाय धम्मेन राजमजं करेसि। तस्स सोळस नामकरणं इत्थिसहस्सानं जेट्ठिका अग्गमहेसि द्वे पुत्ते एकञ्च धीतरं विजयि। जेत्थपुत्तो रामपंडितो नाम अहोसि, दुतियो लक्षणकुमारो नाम, धीता सीता देवी नाम। अपरभागे महेसि कालमकसि। राजा तस्सा कालकटय चित्रारं सोकवसं गन्त्वा अमचच्छेहि संजनापितो तस्सा कट्टब्बपरिहारं कत्वा अञ्जनं अग्गमहेसित्थाने ओमेसि। सा रञ्चो पिया अहोसि मनापा। सापि अपरभागे गभं गण्हित्वा लद्धगभ्परिहार पुत्तं विजयि, "भारतकुमारो"तिस्स नामं अकंसु। राजा पुत्तसिनेहेन " भद्दे, वरं ते दम्मि, गंहाहि"ति आह। सा गहितकं कत्वा ओकेत्वा कुमारस्स सत्तत्थवस्सकाले राजानं उपसङ्कमित्वा "देव, तुमहि मयहं पुत्तस्स वरो दिन्नो, इदानिस्स वरं देथा"ति अह। गंह, भद्देति। "देव, पुत्तस्स मे रजदजं देथा"ति वुत्ते राजा अच्छरं पहरित्वा "नस्स, वसलि, मयहं द्वे पुत्त अग्गिखन्धा विय जलति, ते मरापेत्वा तव पुत्तस्स राजदजं याचसी"ति तज्जजेसि। सा भीता सिरिगभं पविसीत्वा अञ्जेसुपि दयेसु राजानं पुन्पपुनं रजदमेव याचि।

राजा तस्सा तं वरं अदत्वाव चिन्तेसि "मातुगामो नाम अकतञ्जु मित्तदुब्भि, अयं मे कूटपन्नं वा कुटलञ्जं वा कत्वा पुत्ते घटपेय"ति। सो पुत्ते पत्कोसापेत्वा तमत्थं अरोचेत्वा "ताता, तुम्हाकं इध वसंतानं अंतरायोपि भवेय, अरि समन्तर्जादजं वा अरंड्नं वा गन्त्वा मम मर्मणकालेन्त्वा कुलसन्तकंन्द रज्जं गन्धे अगायथा"ति वत्वा पुन नेमित्तके ब्राह्मणे पकोसपेत्वा अत्तनो अपरिच्छेदं पुच्छित्वा "अञ्जनानि द्वादस वस्सनि पवत्तिस्स्ति"ति सुत्वा "ताता, इतो द्वादसवस्सच्चचयेन आगन्त्वा छत्तं उस्सापेयथा"ति अह। ते "साधु"ति वत्वा पितरं वंदित्वा रोदंता पासादा ओतरिंसु। सीता देवी "अहम्पि भातिकेहि सद्धिं गमिस्सामि"ति पितरं वंदित्वा रोदन्ति निक्खामि। तयोपि जना महापरिवार निकमित्वा माजं निवत्तेत्वा अनुपुब्बेन हिमवन्तं पविसीत्वा स नग्नोदके सरलफलाफले पदेसे असमं मापेत्वा फलाफलेन यापेंटा वासिंसु।

लक्खणपंडितो च सीता च रामपंडितं यचित्वा "तुम्हे अम्हकं पितुत्थाने थिता, तस्मा अस्समेयेव होथ, मयं फलफलं आहार्वा तुम पोसेसामा"ति पतिञ्चं गांहिंसु। ततो पत्थाय रामपण्डितो तत्थेव होति। इतरे द्वे फलाफलं अहारित्वा तं पतिजग्गिंसु। एव तेसं फलाफलेन यापेत्वा वसंतानं दशरथमहाराजा पुत्तसोकेन नवमे संवच्छरे कालमकासि। तस्स सरीरकिच्चं करेत्वा देवी "अत्तनो पुत्तस्स भरतकुमारस्स छत्तं उस्सापेथा"ति अह। अमचच्चा पन "छत्तस्मामिका अरञ्जे वसन्ति"ति न अदंसु। भरतकुमारो "मम भतरं रामपंडितं अरंडन्तो अनेत्वा छत्तं उस्सापेस्सामि"ति पञ्चराजककुधभंडानि गहेत्वा चतुर्गिनीय सेनाय तस्स वसनत्थानं पट्वा अविदूरेण खंडावारं कत्वा तत्थ अंगेत्वा कटिपयेहि अमचदचेहि सद्धिं लाखनपंडितस्स च सीताय चन्नदं गटकले असमपदं पविसीत्वा असमपदद्वारे योगितकञ्चनरूपकं विय रामपंडितं निरासङ्कं सुखनिसि दर्शनं उपसङ्कमित्वा वंदित्वा एकमंतं ठितो रञ्जनो पतितं अरोचेत्वा सद्धिं अमचच्छेहि पदेसु पतित्व रोदति। रामपंडितो पन नेव सोचि, न परिदेवि, इन्द्रियविकारमत्तमपिस्स नहोसि। भरतस्स पन रोदित्वा निसि गानकाले संयन्हसमये इतरे द्वे फलाफलं आदाय अग्मिन्सु। रामपंडितो चिन्तेसि "इमे दाहरा मयहं विय परिग्गनघनपञ्जा एतेसं नत्थि, सहसा 'पिता वो मतो'ति वुत्ते सोकं संधारेतुं ट्रैक्ट असकोन्तानं हदयमपि तेसं फलेयय, उपायेन ते उदकं ओतारेत्वा एतं पवत्तिं अरोचेसामि"ति। अथ नेसं पुरतो एकं उदकट्ठानं दस्सेत्वा "तुम्हे अतिचिरेन आगता, इदं वो दंडकम्मं होतु, इमं उदकं ओतरित्वा तिट्ठत्था"ति उपन्नगाथं तव अह -

व्हाट.

"एथ लक्षं सीता च, उभो ओतरथोडक"न्ति॥

तस्सत्थो — एथ लक्खां सीता च आगच्छथ, उभोपि ओतरथ उदकन्ति।

ते एकवचनेनेव ओतरित्वा अट्ठंसु। अथ नेसं पितु पवत्तिं अरोचेनतो सेसं उपन्नगतः -

"एवायं भरतो अह, राजा दशरथो मतो"ति॥

ते पितु मत्सासनं सुत्वाव विज्ञान अहेसुं। पुनपि नेसं कथेसि, पुनपि ते विसं ज्ञान अहेसुन्ति एवं यावत्तियं विसंज्ञितं फूल ते अमचदचा उखिपित्वा उदका निहारित्वा थले निसीदापेट्वा लद्धस्ससेसु तेसु सब्बे अञ्जनमनदं रोदित्वा परिदेवित निवासिडिन्सु। तदा भरतकुमारो चिन्तेसि - "मयहं भाता लक्षणकुमारो च भगिनी च सीता देवी पितु मत्सासनं सुत्वाव सोकं संधारेतुं न सक्रोन्ति, रामपंडितो पण नेव सोचति, न परिदेवति, किं नु खो तस्स असोचनकारणं, पुच्छिसामि न"न्ति। सो तं पुच्छन्तो दूतीयं गतः -

85.

"केन रामप्पभावेन, सोचितब्बं न सोचसी।"

पितरं कालकतं सुत्वा, न तं पसहते दुःख"न्ति॥

तत् पभावेनति अनुभावेन। न तं पसहते दुखन्ति एवरूपं दुक्खं केन कारणेन तं न पियेति, किं ते असोचनकारणं, कथेहि तव नन्ति।

अथस्स रामपंडितो अत्तनो असोचनकारणं कथेन्टो -

6.

"यं न सका निपालेतुं, पोसेन लपतं बहुं।

स किस्स विञ्चु मेधावी, अत्तनमुपतपये॥

.

"धारा च हि वुधा च, ये बाला ये च पंडिता।"

अन्ना चेव दलिद्दा च, सब्बे मचचुपरायणा॥

88.

"फलानामिव पकनं, निच्चं च पतनतो भयं।

एवं जतन मचदचनं, निच्चचं मरन्तो भयं॥

.

"सायमेके न दिसंति, पतो दिट्ठा बहुजजना।"

पतो एके न दिसंति, सयं दिट्ठा बहुजजना॥

90.

"परिदेवयमानो चे, किञ्चिदत्थं उद्ब्बहे।"

सम्मूळधो हिंसमतानां, कयिरा तं विचखणो॥

.

"किसो विवन्नो भवति, हिंसमत्तनमत्तनो।

न तेन पेटा पलेन्ति, निरथा परिदेवना॥

.

"यथा शरणमादित्तं, वारिणा परिणिबये।

एवमपि धीरो सुतवा, मेधावी पंडितो नरो।

खिप्पमुप्पितं सोकं, वातो तुलव धंसये॥

.

"मच्चो एकोव अच्छाचेति, एकोव जायते कुले।

संयोगपरमात्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिनं॥

.

"तस्मा हि धीरेस्स बहुसुत्सुस्स, सम्पस्सतो लोकमिमं पञ्च।

अञ्जन्या धम्मं हदयं मन्नच, सोका महन्तपि न तपयन्ति॥

.

"सोहं दशस्ञ्च भोक्ञ्च, भृस्सामि च नाटकके।"

सेसञ्च पालयिस्सामि, किच्चमेतं विजानतो"ति॥ –

इमाहि दशहि गाथाहि अनिच्छतं पकासेति।

तत् निपालेतुन्ति रक्खितुं। लपटन्ति लपन्तनं। इदं वुत्तं होति -"तत् भारत, यं सत्यानं जीवितं बहुमपि विल्पनतानं पुरिसानं एकेनापि मा उच्छिज्जिति न सक्रका रक्खितुं, सो दानि मादिसो अट्ठ लोकधम्मे तत्थो जानंतो विञ्चु मेधावी पंडितो मरणपरियोसानजीवितेसु सत्तेसु किस्स अत्तनमुपतपये, किंकारणा अनुपकारेण सोकदुक्खेन अत्तानां सन्तापेय"ति।

धरा चाति गाथा" मच्छु नामेस तात भरत, नेव सुवन्नरूपकसदिसानं दहराणं खत्तियकुमारकादिनं, न वुद्धिप्पत्तनं महायोधनं, न बालानं पुथुजह्नसत्तानं, न बुद्धादीनं पंडितानं, न च खंडावतिआदीनं इस्सरानं, न निद्धधानां दलिदादीनं लज्जति, सब्बेपिमे सत्य मच्छुपरायणा मरणमुखे संभग्गविभग्गा भवन्तियेवा"ति दस्सन्तं वुत्ता।

निचदचं पतनतोति इदं वुत्तं होति - यथा हि तत् भारत, पक्कनं फलानं पककलतो पट्ठय "इदानि वंता छिज्डजित्वा पतिसंति, इदानि पतिसंति"ति पतनतो भयं निचदचं धुवं एकंसिकमेव भवति, एवं असङ्कनीयतो एवं जन्मनं मच्छनंमपि एकंसिकंयेव मरणतो भयं, नत्थि सो खणो वा लयो वा यथा तेसं मरणं न असङ्किकत्बं भवेयति।

सायन्ति विकाले। इमिना रत्तिभागे च दिट्ठानं दयभागे अडस्सनं, दयभागे च दिट्ठानं रतिभागे अडस्सनं दीपेति। किञ्चिचिदत्थन्ति "पिता मे, पुत्तो मे"तिआधिहि परिदेवमनोव पोसो सम्मुळधो अत्तानं हिंसान्तो किलमेन्तो अप्पमत्तकम्पि अथं अहरेय। कयिरा तं विचखनोति अथ पण्डितो पुरिसो एवं परिदेवं करेय, यस्मा पण परिदेवन्तो मतं वा एनेतुं अञ्जन वा तस्स वन्निं कटुं न सस्क्रकोति, तस्मा निर्थक्ता परिदेवित्स्स्स पण्डिता न परिदेवन्ति।

अत्तनमत्तनोति अत्तनो अत्तभावं सोकपरिदेवदुक्खेन हिंसान्तो। न तेनाति तेन परिदेवेन परलोकं गता सत्य न पलेन्ति न यापेन्ति। निरथति तस्मा तेसं मत्सत्तनं अयं परिदेवना निरथका। शरणन्ति निवासगेहं। इदं वुत्तं होति - यथा पंडितो पुरिसो अत्तनो वासनागारे आदित्ते मुहुत्तमपि वोसानं अनपजदजित्वा घटसतेन घटसहस्सेन वारिना निब्बापयेव, एवं धीरो उप्पतितं सोकं खिप्पमेव निब्बापये। तुलं विय च वातो यथा संथातु न सचित्रकोति, एवं धनसये विद्धंसैयति अथो।

मचचो एकोव अचच्छेति एत तत् भारत, इमे सत्य कम्मस्सका नाम, तथा हि इतो परलोकं गच्छन्तो सत्तो एकोव अचच्छेति अति त्रैकमति, खत्तियादिकुले जायमानोपि एकोव गन्त्वा जायति। तत्थ तथा पण ज्ञातिमितसंयोगेन "अयं मे पिता, अयं मे माता, अयं मे मित्तो"ति संयोगपरमत्वेव सम्भोग सब्बपणिनं, परमत्थेन पन तीसुपि भवेसु कम्मस्सकावेते सत्ताति अथो।

तस्माति यस्मा एतेसं सत्यानं नातिमित्तसंयोगं नातिमित्तपरिभोगमत्तं ओगेत्वा इतो परं अञ्जन नत्थि, तस्मा। सम्पासस्तोति इमाञ्च पञ्च लोकं नानाभावविनाभावमेव सम्मा पससतो। अञ्जन्या धम्मन्ति अट्ठविधलोकधम्मं जनित्वा। हदयं मन्नचाति इदं उभयम्पि चित्तस्सेव नमं। इदं वुत्तं होति -

"लाभो अलभो यसो अयसो च, निन्दा पसंसा च सुखञ्च दुक्खं।

एते अनिच्चचा मनुजेसु धम्मा, मा सोच किं सोचसि पोट्ठपदा"ति॥ (जा० 1.4.114) —

इमेसं अट्ठ नयनं लोकधम्मनं येन केनचि चित्तं परियादीयति, तस्स च अनिचदचतं ञत्वा थितस्स धीरेस्स पितुपुत्तमरणादिवत्थुका महन्तपि सोका हदयं न तपयन्तिति। एतं वा अट्ठविधं लोकधम्मं ञत्वा ठितस्स हदयवत्थुञ्च मन्नच महन्तपि सोका न तपयन्तिति एवेम्पेत्थ अत्थो दत्थब्बो।

सोहं दशञ्च भोक्ञ्चाति गाथाय - तत् भारत, अन्धबलानं सत्तानं विय मम रोडनपरिदेवनं नाम नच्छविकं, अहं पण पितु आचचयेन तस्स ठाणे तत्त्व कपानादीनं दनारहनं दानं, थनान्तराहनं थनान्तरं, यसारहनं यसं दशमि, पितरा मे परिभुत्तनयेन इस्सिरीयं अनुनां। परिभुञ्जिसामि, नत्के च पोसेसामि, अवसेसंच अंतोपरिजनादिकं जनं पलेसामि, धम्मिकसमन्ब्राह्मणां धम्मिकं रक्खारनगुत्तिं करिसामिति एवञ्हि जानतो पण्डितपुरिस्स्स श्रीं किच्चन्ति अथो।

परिसा इमं रामपंडितस्स अनिच्छतापकासनं धम्मदेसनं सुत्वा निस्सोका अहेसुं। ततो भरतकुमारो रामपंडितं वंदित्वा "बरनसिरजजं सम्पतिच्छथा"ति अह। तत् लक्षाञ्च, सीतादेविञ्च गहेत्वा गन्त्वा रज्जं अनुसास्थति। हे पन, देवाति। तात, मम पिता "द्वादसवस्सच्चयेन आगन्त्वा रज्जं करेयसी"ति मन अवोच, अहं इदानेव गच्छन्तो तस्स वचनकरो नाम न होमि, अञ्जनानिपि तेनि वस्सनि अति तृक्कमित्वा आगमिस्सामीति। "एत्तकं कालं को रज्दजं कैरेस्सति"ति? "तुम्हे करेथा"ति। "न मयं करेस्सामा"ति। "तेन हि याव ममागमना इमा पादुका कैरेस्सन्ति"ति अत्तानो तिनपादुका ओमञ्चित्व अदासि। ते तयोपि जन पादुका गहेत्वा रामपंडितं वंदित्वा महाजनपरिवुता बारांसिं अगमंसु। तेनि संवच्छराणि पादुका राजमजं करेसुं। आमचा तिनपदुका राजपललङके ओगेत्वा अद्दं विनिच्छिन्ति। सचे दुब्बिनिचितो होति, पादुका अञ्जमञ्चं पतिहञ्चन्ति। ताई संज्ञय पुन विनिच्छिन्ति। सम्मा विनिचितकाले पादुका निस्सद्द स नारायणिसिदन्ति। रामपंडितो तिन्नं संवच्छरणं अच्चादच्येन अरञ्जन निखमित्वा बाराणसिनगरं पट्वा उययानं पविसि। तस्स आगमनभावं ञत्वा कुमारा अमचत्गणपरिवुता उययानं गन्त्वा सीतं अग्गमहेसिं कत्वा उभि साइनमपि अभिसेकं अकांसु। एवं अभिसेकप्पत्तो महासत्तो अलङ्कत्रथे तत्त्वा महन्तेन परिवारेन नगरं पविसीत्वा पदक्खिनं कत्वा चण्डकपासादवर्सस्स महतलं अभिरुहि। ततो पट्ठाय सोळस वस्ससहस्सनि धम्मेन राजजं कैरेत्वा अयुपेरियोसाने सग्गपुरं पूरसि।

.

"दस वस्ससहस्सनि, सत्थि वस्सस्सतानि च।'

कम्बुगीवो महाबाहु, रामो रजमकार्यि"ति॥ —

अयं अभिसंबुद्धगाथा तमथं दीपेति।

तत्थ कम्बुगीवोति सुवन्नाळीङ्गसदिसगीवो। सुवन्नञ्हि कम्बूति वुचदचति।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा सच्चानि पाकसेत्वा जातकं समोधनसि, सचदचपरियोसाने कुटुम्बिको सोतापट्टफले पतित्थहि। तदा दशरथमहाराजा शुद्धोदनमहाराजा अहोसि, माता महामायादेवी, सीता राहुलमाता, भरतो आनंदो, लक्खणो सारिपुत्तो, परिसा बुद्धपरिसा, रामपंडितो पणेव अहम अहोसिंति।

दसार्थजातकवन्नना सत्तमा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संवर-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 462
संवर-जातक

"हे महामहिम, आपका स्वभाव," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक भिक्षु के बारे में सुनाई थी, जिसने साधना करना छोड़ दिया था। हमें पता चलता है कि वह श्रावस्ती नगर का एक संपन्न युवक था। गुरु के प्रवचन सुनकर उसने संसार त्याग दिया। अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों द्वारा दिए गए कार्यों को पूरा करते हुए उसने पतिमोक्ख के दोनों भागों को कंठस्थ कर लिया। पाँच वर्ष बीत जाने पर उसने कहा, "जब मुझे मृदु समाधि प्राप्त करने का मार्ग ज्ञात हो जाएगा, तब मैं वन में निवास करूँगा।" तब उसने अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों से विदा ली और कोसल राज्य के एक सीमावर्ती गाँव में चला गया। वहाँ के लोग उसके व्यवहार से प्रसन्न हुए और उसने पत्तों की एक कुटिया बनाई और वहाँ उसकी सेवा की गई। वर्षा ऋतु में प्रवेश करते ही, उसने उत्साहपूर्वक, उत्सुकता से और कठिन परिश्रम करते हुए तीन महीने तक मृदु समाधि प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिला। तब उसने सोचा, "सचमुच मैं सांसारिक हो गया हूँ! जंगल में रहने का मेरा क्या काम?" तब उसने मन ही मन कहा, "मैं जेतवन मठ लौटूँगा, और वहाँ तथागत (बुद्ध) की कृपा के दर्शन करके और उनके मधुर प्रवचन सुनकर अपने दिन व्यतीत करूँगा।" इस प्रकार उसने अपने परिश्रम को त्याग दिया; और प्रस्थान करते हुए वह कुछ समय बाद जेतवन मठ पहुँच गया। उसके गुरुओं, मित्रों और परिचितों ने उससे उसके आने का कारण पूछा। उसने उन्हें बताया, और उन्होंने उसे फटकारा और पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। फिर वे उसे गुरु के समक्ष ले गए। गुरु ने कहा, "भाइयों, तुम यहाँ एक भिक्षु को उसकी इच्छा के विरुद्ध क्यों लाए हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "यह भिक्षु यहाँ इसलिए आया है क्योंकि उसने अपने परिश्रम को त्याग दिया है।" गुरु ने पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि वे मुझे बता रहे हैं?" "जी हाँ," उस भिक्षु ने कहा। गुरु ने कहा, "भाई, तुमने प्रयास करना क्यों छोड़ दिया? इस धम्म (धार्मिक मार्ग) में कमजोर और आलसी व्यक्ति के लिए कोई उच्च फल या संतत्व नहीं है: केवल वे ही इसे प्राप्त करते हैं जो अथक प्रयास करते हैं। बहुत समय पहले तुम बलवान थे, तुम्हें सिखाना आसान था: और इस प्रकार, बनारस के राजा के सौ पुत्रों में सबसे छोटे होते हुए भी, तुमने ज्ञानियों की सलाह का पालन करके श्वेत छत्र प्राप्त किया।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उनके सौ पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र का नाम राजकुमार सम्वर रखा गया। राजा ने अपने प्रत्येक पुत्र को एक-एक दरबारी की देखरेख में नियुक्त किया और उन्हें निर्देश दिया कि वे प्रत्येक पुत्र को वह शिक्षा दें जो उन्हें प्राप्त करनी चाहिए। राजकुमार सम्वर को शिक्षा देने वाला दरबारी बोधिसत्व था, जो ज्ञानवान और विद्वान था और राजा के पुत्र के लिए पिता के समान था। जैसे-जैसे पुत्रों की शिक्षा पूरी होती गई, दरबारी उन्हें राजा के दर्शन के लिए लाते रहे। राजा ने प्रत्येक पुत्र को एक-एक प्रांत सौंप दिया और उन्हें विदा कर दिया।

जब राजकुमार सम्वर ने सभी विद्याओं में पारंगत हो गए, तो उन्होंने बोधिसत्व से पूछा, "हे पिता, यदि मेरे पिता मुझे किसी प्रांत में भेजें, तो मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे मेरे पुत्र, जब तुम्हें कोई प्रांत दिया जाए, तो उसे अस्वीकार कर देना और कहना, हे प्रभु, मैं सबसे छोटा हूँ: यदि मैं भी जाऊँगा, तो आपके चरणों में कोई नहीं रहेगा: मैं यहीं रहूँगा, आपके चरणों में।" फिर एक दिन, जब राजकुमार सम्वर ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े थे, तो राजा ने उनसे पूछा, "हे मेरे पुत्र, क्या तुमने अपनी विद्या पूर्ण कर ली है?" "जी हे प्रभु।" "एक प्रांत चुन लो।" "हे प्रभु, आपके चरणों में कोई नहीं रहेगा: मुझे यहीं आपके चरणों में रहने दो, और कहीं नहीं!" राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने सहमति दे दी।

उसके बाद वह राजा के चरणों में वहीं बैठा रहा; और फिर बोधिसत्व से पूछा, "हे पिता, मुझे और क्या करना चाहिए?" राजा ने कहा, "राजा से किसी पुराने उद्यान की मांग करो।" राजकुमार ने बात मान ली और एक उद्यान मांगा: वहां उगने वाले फलों और फूलों से उसने शहर के प्रभावशाली लोगों से मित्रता कर ली। उसने फिर पूछा कि उसे क्या करना चाहिए। बोधिसत्व ने कहा, "मेरे पुत्र, राजा से शहर में अन्न-भंडार के पैसे बांटने की अनुमति मांगो।" उसने ऐसा ही किया, और किसी की भी उपेक्षा किए बिना उसने शहर में अन्न-भंडार के पैसे बांट दिए। उसने फिर बोधिसत्व से सलाह मांगी, और राजा की सहमति प्राप्त करने के बाद, उसने महल में सेवकों, घोड़ों और सेना को बिना किसी चूक के भोजन वितरित किया: विदेशों से आए दूतों के लिए उसने आवास की व्यवस्था की, व्यापारियों के लिए कर निर्धारित किए, जो भी व्यवस्था करनी थी, उसने अकेले ही की। इस प्रकार, उस महान सत्ता की सलाह का पालन करते हुए, उसने घर के सदस्यों और घर के बाहर के लोगों, शहर के सभी लोगों, राज्य की प्रजा और अजनबियों, सभी से मित्रता कर ली; अपनी सुंदरता से उसने उन सभी को मानो लोहे के बंधन से बांध लिया था: वह उन सभी का प्रिय और चहेता था।

जब उचित समय पर राजा अपनी मृत्युशय्या पर लेटे थे, तब दरबारियों ने उनसे पूछा, "महाराज, आपकी मृत्यु के बाद हम श्वेत छत्र किसे देंगे?" उन्होंने कहा, "मित्रों, मेरे सभी पुत्रों का श्वेत छत्र पर अधिकार है। परन्तु आप इसे उसे दे सकते हैं जिसे आप प्रसन्न करना चाहें।" अतः उनकी मृत्यु के बाद, और अंतिम संस्कार संपन्न होने के बाद, सातवें दिन वे सब एकत्रित हुए और बोले, "हमारे राजा ने हमें कहा है

कि हम छत्र उसे दें जिसे हम प्रसन्न करना चाहें। जिसे हम प्रसन्न करना चाहते हैं, वह राजकुमार सम्वर हैं।" अतः उनके ऊपर सोने के झालरों से सुसज्जित श्वेत छत्र उठाया गया, और उनके संबंधी उन्हें ले गए।

महान राजा संवर ने बोधिसत्व की सलाह का पालन करते हुए धर्मपरायणता से शासन किया।

अन्य निन्यानवे राजकुमारों ने सुना कि उनके पिता की मृत्यु हो गई है और संवरा के ऊपर छत्र उठा दिया गया है। उन्होंने कहा, "परन्तु वह तो सबसे छोटा है; छत्र उसका नहीं है। चलो हम सब में सबसे बड़े के ऊपर छत्र उठाएँ।" वे सब एकजुट हो गए और संवरा को पत्र भेजकर उससे छत्र छोड़ने या युद्ध करने की विनती की; फिर उन्होंने नगर को घेर लिया। राजा ने यह समाचार बोधिसत्व को बताया और पूछा कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, आपको अपने भाइयों से युद्ध नहीं करना चाहिए। अपने पिता के खजाने को सौ भागों में बाँट लें और उनमें से निन्यानवे भाग अपने भाइयों को यह संदेश देकर भेज दें, "अपने पिता के खजाने का यह हिस्सा स्वीकार करो, क्योंकि मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा।" संवरा ने वैसा ही किया।

तब सभी भाइयों में सबसे बड़े, उपोसथा नामक राजकुमार ने बाकी सभी को बुलाया और उनसे कहा, "मित्रों, राजा को हराने वाला कोई नहीं है; और हमारा यह छोटा भाई, यद्यपि वह हमारा शत्रु रहा है, अब शत्रु नहीं रहा: बल्कि वह हमें अपना धन भेजता है और हमसे लड़ने से इनकार करता है। अब हम सभी एक साथ छत्र नहीं उठा सकते; आइए हम केवल एक पर ही छत्र उठाएँ और उसे ही राजा बनाएँ; ताकि जब हम उससे मिलें, तो हम राजकोष उसे सौंप दें और अपने-अपने प्रांतों में लौट जाएँ।" तब इन सभी राजकुमारों ने नगर की घेराबंदी हटा ली और उसमें प्रवेश कर गए, अब वे प्रतिद्वंद्वी नहीं रहे। राजा ने अपने दरबारियों को उनका स्वागत करने का आदेश दिया और उन्हें राजकुमारों से मिलने के लिए भेजा। राजकुमार अपने साथ बड़ी संख्या में लोगों को लेकर पैदल ही प्रवेश किया और महल की सीढ़ियों पर चढ़कर, महान राजा सम्वर के प्रति पूर्ण विनम्रता दिखाते हुए, एक नीची जगह पर बैठ गए। राजा सम्वर श्वेत छत्र के नीचे सिंहासन पर विराजमान थे: उनका वैभव और वैभव अद्भुत था; वह जिस भी स्थान पर दृष्टि डालता, वह कांप उठता और थरथराने लगता। शक्तिशाली राजा संवरा की भव्यता देखकर राजकुमार उपोसथा ने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि हमारे पिता को यह ज्ञात था कि उनकी मृत्यु के बाद राजकुमार संवरा राजा बनेंगे, इसलिए उन्होंने हमें प्रांत दिए और उन्हें एक भी नहीं दिया;" फिर उनसे बात करते हुए उन्होंने तीन श्लोक दोहराए:

"हे महान सम्राट, आप अपने स्वभाव को भली-भांति जानते थे, मनुष्यों के स्वामी।
अन्य राजकुमारों ने उनका सम्मान किया, लेकिन आपको कुछ नहीं दिया।
"क्या यह राजा के जीवित रहते हुआ था, या जब कोई देवता (देवदूत) स्वर्ग गया था?"
क्या आपके रिश्तेदारों ने अपना हित देखकर सहमति दी?
"हे सम्वर, बताइए कि किस शक्ति से आप अपने कुल से श्रेष्ठ हैं?"
तुम्हारे भाई-बंधु जीत हासिल करने के लिए तुमसे अलग होकर एकजुट क्यों नहीं होते?
यह सुनकर राजा संवर ने अपने चरित्र को समझाने के लिए छह श्लोक दोहराए:

"क्योंकि, हे राजकुमार, मैं सही-गलत के बारे में महान ऋषियों से कभी ईर्ष्या नहीं करता।"
मैं उन्हें उचित सम्मान देने के लिए तैयार हूं, मैं उनके चरणों में गिर पड़ता हूं।
मैं किसी से ईर्ष्या नहीं करता, और उचित एवं सही आचरण के सभी सिद्धांतों को अवश्य सीखूंगा।
बुद्धिमान ऋषि उन सभी अच्छे नियमों का उपदेश देते हैं जिनमें उन्हें आनंद मिलता है।
मैं इन महान और बुद्धिमान ऋषियों के प्रश्नों को सुनता हूँ:
मेरा हृदय नेक इरादों से भरा है, मैं किसी भी सलाह को तुच्छ नहीं समझता।
"हाथी सेना और रथ सैनिक, शाही रक्षक, पैदल सेना--"
मैंने दैनिक भत्ते का कोई हिस्सा नहीं लिया, बल्कि उन्हें उनका पूरा शुल्क चुका दिया।
"महान कुलीन और बुद्धिमान सलाहकार मेरी सेवा में उपस्थित हैं;
खाने-पीने, शराब और पानी के मामले में (जैसा कि वे दावा करते हैं) बनारस ने उम्मीदों से कहीं बेहतर प्रदर्शन किया।
इस प्रकार व्यापारी समृद्ध होते हैं, और वे अनेक राज्यों से आते-जाते रहते हैं।
और मैं उनकी रक्षा करता हूँ। अब सच्चाई, उपोसथा, तुम जानती हो।"
राजकुमार उपोसथा ने अपने चरित्र के इस विवरण को सुना और फिर दो छंद दोहराए:

"फिर अपने मित्रों और परिवार से ऊपर रहो, और धर्मपूर्वक शासन करो।"
हे समवर, तुम बुद्धिमान और समझदार हो, अपने भाइयों को आशीर्वाद दो।
"तुम्हारे खजाने की रक्षा तुम्हारे भाई करेंगे, और तुम सुरक्षित रहोगे।"

आप अपने शत्रुओं से उसी प्रकार सुरक्षित रहेंगे जैसे इंद्र स्वयं अपने कट्टर शत्रु से सुरक्षित रहे थे (*1)।"
राजा सम्वर ने अपने सभी भाइयों का बहुत सम्मान किया। वे डेढ़ महीने तक उनके साथ रहे; फिर उन्होंने उनसे कहा, "महाराज, हम जाकर देखना चाहते हैं कि क्या हमारे प्रांतों में कोई लुटेरे घूम रहे हैं; आपके शासन की जय हो!" वे सब अपने-अपने प्रांतों के लिए रवाना हो गए। और राजा ने बोधिसत्व की सलाह मानकर अपने जीवन के अंत में स्वर्ग देह धारण किया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करने के बाद कहा, "बहुत समय पहले, हे भिक्षु, तुमने उपदेशों का पालन किया था, तो अब तुम अपने प्रयास को क्यों नहीं जारी रखते?" फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की और जन्म का वर्णन किया: (सत्यों के समापन पर यह भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया था): "उस समय यह भिक्षु महान राजा संवर थे, सारिपुत्र राजकुमार उपोसथ थे, अन्य भिक्षु वरिष्ठ और द्वितीयक भिक्षु थे, उनके अनुयायी बुद्ध के अनुयायी थे, और मैं स्वयं राजा को सलाह देने वाला दरबारी था।"

फुटनोट:

(1) असुरों या टाइटनों का राजा (असुर लोक में, जो बुरे पुनर्जन्म का स्थान है, हिंसक प्राणी रहते हैं, जिनका कर्म मुख्य रूप से हिंसा, रक्तपात और हत्या के कृत्यों के कारण होता है। यही कारण है कि बौद्ध धर्म सभी हिंसा के विरुद्ध है, ताकि असुर लोक में बुरे पुनर्जन्म को रोका जा सके)।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुपारक-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-463-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 463
सुप्पाराका-जातक

"तेज धार वाले पुरुष," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए ज्ञान की पूर्णता के बारे में सुनाई थी। बताया जाता है कि एक दिन शाम को भिक्षु तथागत बुद्ध के आने और उन्हें उपदेश देने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे सत्य के हॉल में बैठे हुए आपस में कह रहे थे, "सचमुच, भिक्षुओं के पास महान ज्ञान है! व्यापक ज्ञान है! तत्पर ज्ञान है! तीव्र ज्ञान है! तीक्ष्ण ज्ञान है! मर्मस्पर्शी ज्ञान है! उनका ज्ञान सही समय पर सही योजना पर लगता है; संसार के समान विशाल, अथाह सागर के समान, आकाश के समान फैला हुआ: पूरे भारत में कोई भी ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति नहीं है जो दशबल (बुद्ध) के समर्थ हो। जैसे विशाल समुद्र पर उठने वाली लहर तट तक नहीं पहुँच सकती, या पहुँचकर टूट जाती है; वैसे ही कोई भी मनुष्य दशबल (बुद्ध) के ज्ञान तक नहीं पहुँच सकता, या गुरु के चरणों में आने पर वह विलीन हो जाता है।" इन शब्दों में उन्होंने दशाबल (बुद्ध) की परिपूर्ण बुद्धि की प्रशंसा की। गुरुजी अंदर आए और पूछा, "भाइयों, आप यहाँ बैठे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "तथागत (बुद्ध) केवल अब ही ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हैं। पूर्वकाल में, जब उनका ज्ञान अपरिपक्व था, तब भी वे बुद्धिमान थे। दृष्टिहीन होते हुए भी, उन्होंने सागर के संकेतों से जान लिया था कि सागर में अमुक रत्न छिपा है।" फिर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, भारू नाम का एक राजा भारू राज्य में शासन करता था। वहाँ भारूकच्छ (गुजरात में भारूच?) या भारू का दलदल नामक एक बंदरगाह नगर था। उसी समय बोधिसत्व का जन्म एक कुशल नाविक के परिवार में हुआ था; वे सौम्य स्वभाव के और सुनहरे भूरे रंग के थे। उनका नाम सुप्पारक-कुमार रखा गया। वे उच्च कोटि के धनी थे; और सोलह वर्ष की आयु में ही उन्होंने नौकायन में पूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी। बाद में जब उनके पिता का देहांत हो गया, तो वे नाविकों के मुखिया बन गए और नौकायन के कार्य में जुट गए; वे बुद्धिमान और ज्ञानी थे; उनके साथ जहाज पर सवार कोई भी जहाज कभी भी संकट में नहीं पड़ा।

समय बीतने के साथ ऐसा हुआ कि खारे पानी से घायल होने के कारण उनकी दोनों आँखों की रोशनी चली गई। इसके बाद, हालाँकि वे नाविकों के मुखिया थे, उन्होंने नाविकों का काम छोड़ दिया; बल्कि राजा की सेवा में जीवन यापन करने का निश्चय करके वे राजा के पास गए। राजा ने उन्हें मूल्यांकक और आकलनकर्ता के पद पर नियुक्त कर दिया। तब से वे मूल्यवान हाथियों, कीमती घोड़ों, उत्तम मोतियों और रत्नों का मूल्यांकन करने लगे।

एक दिन राजा के पास एक हाथी लाया गया, जिसका रंग काले पत्थर जैसा था, ताकि उसे राजसी हाथी बनाया जा सके। राजा ने उसे सरसरी नजर से देखा और आदेश दिया कि उसे एक ज्ञानी व्यक्ति को दिखाया जाए। वे हाथी को उसके सामने ले गए। ज्ञानी व्यक्ति ने हाथी के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा, "यह हाथी राजसी हाथी बनने के योग्य नहीं है। इसमें तो विकृत पिछले पैरों वाले हाथी के लक्षण हैं। जब उसकी माँ उसे लेकर आई थी, तो वह उसे अपने कंधे पर नहीं उठा सकी; इसलिए उसने उसे जमीन पर गिरा दिया, और इस प्रकार उसके पिछले पैर विकृत हो गए।" उन्होंने हाथी लाने वालों से पूछताछ की; और उन्होंने उत्तर दिया कि ज्ञानी व्यक्ति ने सत्य कहा था। यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने आठ सिक्के देने का आदेश दिया।

एक दिन राजा के राजसी घोड़े के लिए एक घोड़ा लाया गया। इसे भी उस ज्ञानी व्यक्ति के पास भेजा गया। उसने घोड़े को हाथ से छूकर देखा और कहा, "यह राजा के राजसी घोड़े के योग्य नहीं है। जिस दिन यह घोड़ा पैदा हुआ, उसी दिन इसकी माँ का निधन हो गया, और इसलिए घोड़ी का दूध न मिलने के कारण इसका विकास ठीक से नहीं हुआ।" उसकी यह बात भी सच निकली। जब राजा ने यह सुना, तो वह प्रसन्न हुआ और उसने उसे आठ और घोड़े भेंट करवाए।

एक दिन राजा के राजसी रथ के रूप में एक रथ लाया गया। राजा ने इसे भी उसके पास भेज दिया। उसने हाथ से छूकर रथ को देखा और कहा, "यह रथ खोखले पेड़ की लकड़ी से बना है, इसलिए यह राजा के योग्य नहीं है।" उसकी यह बात भी पिछली बातों की तरह सच निकली। यह सुनकर राजा फिर प्रसन्न हुआ और उसे आठ और रथ दे दिए।

फिर वे उसके लिए एक कीमती और बहुमूल्य कालीन लाए, जिसे राजा ने पहले की तरह उस व्यक्ति को भेजा। उसने उसे चारों ओर से छूकर देखा और कहा, "यहाँ एक जगह चूहे ने छेद कर दिया है।" उन्होंने जाँच की और वह जगह ढूंढ ली, फिर राजा को बताया। राजा प्रसन्न हुआ और उसने आठ और कालीन भेजने का आदेश दिया।

अब उस आदमी ने सोचा, "सिर्फ आठ सिक्के, और ये सब अद्भुत चीजें देखना! ये तो किसी नाई का तोहफा है; ये राजा जरूर किसी नाई का लाडला होगा। मैं ऐसे राजा की सेवा क्यों करूँ? मैं अपने घर लौट जाऊँगा।" इसलिए वह वापस भरुकच्छा के बंदरगाह पर चला गया और वहीं रहने लगा।

कुछ व्यापारियों ने एक जहाज तैयार किया और कप्तान की तलाश कर रहे थे। उन्होंने सोचा, "वह चतुर सुप्पारका एक बुद्धिमान और कुशल व्यक्ति है; उसके साथ जहाज को कोई नुकसान नहीं हो सकता। हालांकि वह अंधा है, बुद्धिमान सुप्पारका ही सर्वश्रेष्ठ है।" इसलिए वे उसके पास गए और उससे अपना कप्तान बनने का अनुरोध किया। उसने उत्तर दिया, "मैं अंधा हूँ, मित्रों, और मैं आपका जहाज कैसे चला सकता हूँ?" व्यापारियों ने कहा, "मालिक, आप अंधे हो सकते हैं, लेकिन आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं।" उनके लगातार आग्रह करने पर अंततः वह मान गया: "जैसा आप कहते हैं, मैं आपका कप्तान बनूँगा।" फिर वह उनके जहाज पर सवार हो गया।

वे अपने जहाज में खुले समुद्र में रवाना हुए। सात दिनों तक जहाज बिना किसी दुर्घटना के चलता रहा: फिर अचानक एक अप्रत्याशित हवा चलने लगी। चार महीने तक जहाज एक विशाल महासागर में हिचकोले खाता रहा, जब तक कि वह खुरमाला सागर नामक स्थान पर नहीं पहुँच गया। यहाँ मनुष्य जैसे शरीर और तेज धार वाले थूथन वाली मछलियाँ पानी में गोता लगाती और बाहर निकलती रहती हैं। इन मछलियों को देखकर व्यापारियों ने ईश्वर से पूछा कि इस सागर का नाम क्या है, और उन्होंने पहली पंक्ति को दोहराया:

"तेज धार वाली नाक वाले पुरुष ऊपर उठते हैं और नीचे गोता लगाते हैं!"
"हे सुप्पाराका, बोलो और हमें बताओ कि इस समुद्र को किस नाम से जाना जाता है?"
इस प्रश्न पर, महान सत्ता ने अपने नाविकों की परंपरा को ध्यान में रखते हुए, दूसरे श्लोक को दोहराकर उत्तर दिया:

"भरुकच्छ से व्यापारी धन-संपत्ति की तलाश में आते हैं, ताकि उसका व्यापार कर सकें।"
यह खुरमाली सागर है जहाँ आपका जहाज भटक गया है।
अब संयोगवश इस सागर में हीरे पाए जाते हैं। उस महान प्राणी ने सोचा कि यदि वह उन्हें बता दे कि यह हीरों का सागर है, तो वे हीरे इकट्ठा करने के लालच में जहाज़ को डुबो देंगे। इसलिए उसने उन्हें कुछ नहीं बताया; बल्कि जहाज़ को रोककर उसने एक रस्सी ली और मछली पकड़ने के लिए जाल डाला। इससे उसने हीरों का ढेर पकड़ा और उन्हें जहाज़ में जमा कर लिया; फिर उसने कम मूल्य की वस्तुओं को समुद्र में फेंक दिया।

जहाज इस समुद्र को पार करके अग्गिमाला नामक दूसरे समुद्र पर पहुँचा। इस समुद्र से ऐसी आभा निकल रही थी मानो धधकती हुई आग हो, जैसे दोपहर का सूरज। व्यापारियों ने उससे इस श्लोक में प्रश्न किया:

"देखो! हमें जलती हुई आग की तरह एक महासागर दिखाई देता है, सूर्य की तरह!"
बोलो, सुप्पाराका, और हमें बताओ कि इसका नाम क्या हो सकता है?

उस महान सत्ता ने अगले श्लोक में उन्हें उत्तर दिया:

"भरुकच्छ से व्यापारी धन-संपत्ति की तलाश में आते हैं, ताकि उसका व्यापार कर सकें।"
यह अग्गिमाली सागर है जहाँ आपका जहाज भटक गया है।"
अब इस सागर में सोने का भंडार था। पहले की तरह ही उसने इसमें से सोना निकाला और जहाज पर लाद दिया। इस सागर को पार करते हुए जहाज दधिमाला नामक एक सागर के पास पहुँचा, जो दूध या दही की तरह चमक रहा था। व्यापारियों ने एक श्लोक में इसके बारे में पूछा:

"देखो! हमें एक सफेद और दूधिया सागर दिखाई दे रहा है, बिल्कुल दही जैसा सफेद!"
बोलो, सुप्पाराका, और हमें बताओ कि इसका नाम क्या हो सकता है?
उस महान सत्ता ने उन्हें अगले श्लोक से उत्तर दिया:

"भरुकच्छ से व्यापारी धन-संपत्ति की तलाश में आते हैं, ताकि उसका व्यापार कर सकें।"
यह दाधिमाली सागर है जहाँ आपका जहाज भटक गया है।
इस समुद्र में चांदी प्रचुर मात्रा में थी। उसने पहले की तरह ही चांदी प्राप्त की और उसे जहाज पर रख दिया। जहाज इस समुद्र पर आगे बढ़ा और नीलावन्नकुसा-माला नामक एक महासागर में पहुँचा, जो देखने में गहरे कुश घास के मैदान या अनाज के खेत जैसा था। व्यापारियों ने एक श्लोक में इसका नाम पूछा:

"देखो! हमें हरे-भरे और घास से भरा एक महासागर दिखाई दे रहा है, मानो हम युवा मक्का देख रहे हों!"
बोलो, सुप्पाराका, और हमें बताओ कि इसका नाम क्या हो सकता है?
उन्होंने अगले श्लोक के शब्दों में उत्तर दिया:

"भरुकच्छ से व्यापारी धन-संपत्ति की तलाश में आते हैं, ताकि उसका व्यापार कर सकें।"
यह कुसमाली सागर है जहाँ आपका जहाज भटक गया है।
अब इस सागर में बड़ी मात्रा में बहुमूल्य पन्ना रत्न थे। पहले की तरह, उसने उन्हें इकट्ठा किया और जहाज पर रख लिया। इस सागर को पार करते हुए, जहाज नालमाला नामक एक सागर पर पहुँचा, जो देखने में सरकंडों के मैदान या बांस के झुरमुट जैसा था। व्यापारियों ने एक छंद में उसका नाम पूछा:

"देखो! हमें एक ऐसा सागर दिखाई देता है जो सरकंडों के बिस्तर जैसा, बांस के झुरमुट जैसा है!"
बोलो, सुप्पाराका, और हमें बताओ कि इसका नाम क्या हो सकता है?
उस महान सत्ता ने निम्नलिखित श्लोक में उत्तर दिया:

"भरुकच्छ से व्यापारी धन-संपत्ति की तलाश में आते हैं, ताकि उसका व्यापार कर सकें।"
यह नालामली सागर है जहाँ आपका जहाज भटक गया है।"
अब यह महासागर बांस के रंग के मूंगे से भरा हुआ था। उसने इसे भी इकट्ठा किया और जहाज पर लाद लिया।

नलमाली सागर पार करने के बाद व्यापारी वल्लभमुख नामक सागर पर पहुँचे। यहाँ जल चारों ओर खिंचकर ऊपर उठता है; और इस प्रकार चारों ओर से खिंचा हुआ जल खड़ी चट्टानों के रूप में ऊपर उठता है, जिससे एक विशाल गड्ढे जैसा दृश्य दिखाई देता है। एक लहर एक तरफ दीवार की तरह उठती है: एक भयानक गर्जना सुनाई देती है, जो कान फाड़ देने वाली और हृदय को क्षत-विक्षत कर देने वाली प्रतीत होती है। इसे देखकर व्यापारी भयभीत हो गए और उन्होंने एक श्लोक में इसका नाम पूछा:

"एक विशाल, अलौकिक समुद्र की भयानक ध्वनि सुनो!"
देखो, एक गड्ढा है, और पानी की ओर एक तीव्र ढलान है!
बोलो, सुप्पाराका, और हमें बताओ कि इसका नाम क्या हो सकता है?
बोधिसत्व ने निम्नलिखित श्लोक में उत्तर दिया, "व्यापारी," इत्यादि, और अंत में कहा--"यह वल्लभमुखी सागर," इत्यादि।

उन्होंने आगे कहा, "मित्रों, एक बार कोई जहाज वल्लभमुख सागर में प्रवेश कर जाए तो वापस लौटना असंभव है। यदि यह जहाज वहाँ पहुँच गया, तो वह डूब जाएगा और नष्ट हो जाएगा।" अब उस जहाज पर सात सौ आत्माएँ सवार थीं, और वे मृत्यु के भय से भयभीत थीं; उन्होंने एक स्वर में अत्यंत व्यथित विलाप किया, मानो वे सबसे निचले नरक में जल रहे हों (*1)। उस महान सत्ता ने सोचा, "मेरे सिवा कोई और इन्हें नहीं बचा सकता; मैं सत्य के एक कर्म द्वारा इन्हें बचाऊँगा।" तब उन्होंने ज़ोर से कहा, "मित्रों, मुझे शीघ्र सुगंधित जल से स्नान कराओ, और मुझे नए वस्त्र पहनाओ, एक भरा हुआ कटोरा तैयार करो, और मुझे जहाज के आगे रख दो।" उन्होंने तुरंत

ऐसा किया। उस महान सत्ता ने भरे हुए कटोरे को दोनों हाथों में लिया, और जहाज के आगे खड़े होकर, अंतिम श्लोक को दोहराते हुए, सत्य का एक कर्म किया:

"जबसे मुझे स्वयं याद है, जबसे बुद्धि का विकास शुरू हुआ,
मैंने किसी भी जीवित प्राणी की जान नहीं ली है, जिसे मैं जानता था।
अगर मेरी कही बातें सच हैं तो आशा है कि यह जहाज सुरक्षित लौट आएगा!
चार महीने तक वह पोत सुदूर क्षेत्रों में यात्रा करता रहा; और अब मानो किसी अलौकिक शक्ति से संपन्न होकर, वह एक ही दिन में भारुकच्छा के बंदरगाह पर लौट आया, और ग्यारह सौ भुजाओं की दूरी तय करके सीधे सूखी भूमि पर आ पहुँचा, जब तक कि वह नाविकों के द्वार के सामने आकर नहीं रुका। उस महान सत्ता ने व्यापारियों में सारा सोना, चांदी, रत्न, मूंगा और हीरे बाँट दिए और कहा, "यह खजाना तुम्हारे लिए काफी है; अब समुद्र में यात्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" फिर उन्होंने उन्हें प्रवचन दिया; और जीवन भर दान-पुण्य करते और भलाई करते रहने के बाद वे स्वर्ग चले गए।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "तो, भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) पूर्वकाल में भी अत्यंत बुद्धिमान थे, जैसे वे अब हैं," और उन्होंने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा: "उस समय बुद्ध के अनुयायी व्यापारियों का समूह थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान सुप्पारक था।"

फुटनोट:

(1) अविसी हेल

पुस्तक XII. द्वादश-निपात:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्ल-कुणाल-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-464-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 464
CULLA-KUNALA-JATAKA

"कम बुद्धि वाला," इत्यादि--यह जन्म कुणाल जन्म के अंतर्गत दिया जाएगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भद्द-शाला-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-465-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 465
भद्दा-शाला-जातक(*1)

“तुम कौन हो?” इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अपने मित्रों और परिवार के प्रति सद्भावना बरतने के बारे में सुनाई थी। श्रावस्ती नगर में अनाथपिंडिका के घर में पाँच सौ भिक्षुओं के लिए हमेशा भरपूर भोजन उपलब्ध रहता था, और यही हाल विशाखा (*2) और कोसल के राजा का भी था। परन्तु राजा के महल में, चाहे भोजन कितना भी स्वादिष्ट और उत्तम क्यों न हो, भिक्षुओं के प्रति कोई मित्रतापूर्ण व्यवहार नहीं करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि भिक्षु महल में कभी भोजन नहीं करते थे, बल्कि अपना भोजन लेकर अनाथपिंडिका, विशाखा या अपने किसी अन्य विश्वसनीय मित्र के घर जाकर खाते थे।

एक दिन राजा ने कहा, "एक उपहार लाया गया है: इसे भिक्षुओं के पास ले जाओ," और उसे भोजन कक्ष में भेज दिया। जवाब आया कि भोजन कक्ष में कोई भिक्षु नहीं है। राजा ने पूछा, "वे कहाँ गए हैं?" उत्तर मिला, "वे अपने मित्रों के घरों में भोजन कर रहे हैं।" इसलिए राजा सुबह का भोजन करने के बाद गुरु के पास आए और उनसे पूछा, "हे महाराज, सबसे अच्छा भोजन क्या है?" गुरु ने कहा, "मित्रता का भोजन सबसे अच्छा है; मित्र द्वारा दिया गया खट्टा चावल का दलिया भी मीठा हो जाता है।" राजा ने पूछा, "अच्छा, महाराज, भिक्षु किसके साथ मित्रता करते हैं?" "अपने परिचितों के साथ, महाराज, या शाक्य (कपिलवस्तु के बुद्ध वंश) परिवारों के साथ।" तब राजा ने सोचा, यदि वह किसी शाक्य कन्या को अपनी रानी बना लें, तो भिक्षु उनके मित्र बन जाएँगे, मानो वे उनके अपने परिवार के साथ हों।

अतः वे अपने आसन से उठकर महल लौट आए और कपिलवस्तु (बुद्ध के कुल का राज्य) (*3) को यह संदेश भेजा: "कृपया मुझे अपनी एक पुत्री का विवाह दे दीजिए, क्योंकि मैं आपके कुल से संबंध स्थापित करना चाहता हूँ।" यह संदेश प्राप्त होने पर शाक्यों एकत्रित हुए और विचार-विमर्श करने लगे। "हम कोसल के राजा के अधीन एक स्थान पर रहते हैं; यदि हम पुत्री देने से इनकार करते हैं, तो वह बहुत क्रोधित होंगे, और यदि हम उसे दे देते हैं, तो हमारे कुल की परंपरा भंग हो जाएगी। हम क्या करें?" तब कपिलवस्तु के राजा महानामा (बुद्ध के सौतेले भाई) (*4) ने उनसे कहा, "चिंता मत कीजिए। मेरी एक पुत्री है, जिसका नाम वसभक्षत्रिय है। उसकी माता नागमुंडा नाम की एक दासी है; वह लगभग सोलह वर्ष की है, अत्यंत सुंदर और उज्ज्वल भविष्य वाली है, और अपने पिता की ओर से कुलीन (*5) है। हम उसे कुलीन कन्या मानकर भेजेंगे।" शाक्यों मान गए और दूतों को बुलवाकर कहा कि वे अपने कुल की एक पुत्री देने को तैयार हैं और उसे तुरंत अपने साथ ले जा सकते हैं। लेकिन दूतों ने सोचा, "ये शाक्यों जन्म के मामले में बेहद अभिमानी हैं। मान लीजिए कि वे किसी ऐसी लड़की को भेज दें जो उनके कुल की न हो और दावा करें कि वह उनकी कुल की है? हम तो केवल उसी को लेंगे जो उनके साथ भोजन करे।" तो उन्होंने उत्तर दिया, "ठीक है, हम उसे ले लेंगे, लेकिन हम उसे लेंगे जो आपके साथ भोजन करे।"

शाक्यों ने दूतों के लिए एक आवास का प्रबंध किया और फिर सोचने लगे कि क्या करें। राजा महानामा ने कहा: "अब चिंता मत करो; मैं कोई उपाय निकाल लूँगा। मेरे भोजन के समय वासभक्षत्रिय को उसके उत्तम वस्त्रों में सज-धज कर लाओ; फिर जैसे ही मैं एक निवाला लूँ, एक पत्र प्रस्तुत करो और कहो, हे महाराज, फलाँ राजा ने आपको पत्र भेजा है; कृपया उनका संदेश शीघ्र सुनिए।"

वे मान गए; और जब राजा महानामा भोजन कर रहे थे, उन्होंने दासी को कपड़े पहनाकर सजाया। राजा महानामा ने कहा, "मेरी पुत्री को लाओ, और उसे मेरे साथ भोजन करने दो।" उन्होंने कहा, "एक क्षण में, जैसे ही वह ठीक से सज जाए," और थोड़ी देर बाद वे उसे ले आए। अपने पिता के साथ भोजन करने की उम्मीद में, उसने अपना हाथ उसी थाली में डाला। राजा महानामा ने उसके साथ एक निवाला लिया और उसे अपने मुँह में डाला; लेकिन जैसे ही उन्होंने दूसरा निवाला लेने के लिए हाथ बढ़ाया, वे उनके लिए एक पत्र लाए, जिसमें लिखा था, "महाराज, फलाँ राजा ने आपको पत्र भेजा है: कृपया उनका संदेश तुरंत सुनें।" राजा महानामा ने कहा, "अपनी प्रिय, भोजन करते रहो," और अपना दाहिना हाथ थाली में रखे हुए, अपने बाएँ हाथ से पत्र लिया और उसे देखा। जब वे संदेश पढ़ रहे थे, तब भी लड़की भोजन करती रही। भोजन समाप्त होने पर, उन्होंने अपना हाथ धोया और मुँह साफ किया। दूतों को पूरा विश्वास था कि वह उनकी पुत्री है, क्योंकि उन्होंने यह रहस्य किसी को नहीं बताया।

अतः राजा महानामा ने अपनी पुत्री को बड़े धूमधाम से विदा किया। दूत उसे श्रावस्ती नगर में लाए और बताया कि यह कन्या राजा महानामा की वास्तविक पुत्री है। राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने पूरे नगर को सजाया-संवारा, उसे खजाने के ढेर पर बिठाया और एक विधिपूर्वक जल छिड़काव करके उसे अपनी प्रधान रानी घोषित किया। वह राजा की प्रिय और प्रियतम थी।

कुछ ही समय में रानी गर्भवती हो गईं और राजा ने उचित उपचार करवाया; दस महीने बाद उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका रंग सुनहरा भूरा था। नामकरण के दिन राजा ने उनकी दादी को संदेश भेजा, “शाक्यों राजा की पुत्री वासभक्षत्रिय को पुत्र हुआ है; उसका नाम क्या रखा जाए?” यह संदेश ले जाने वाला दरबारी थोड़ा बहरा था; फिर भी वह गया और राजा की दादी को बताया। जब उन्होंने यह सुना, तो उन्होंने कहा, “वासभक्षत्रिय ने भले ही कभी पुत्र को जन्म नहीं दिया था, फिर भी वह समस्त संसार से बढ़कर थीं; और अब वह राजा की प्रियतम होंगी (*6)।” बहरे व्यक्ति ने “प्रियतम” शब्द ठीक से नहीं सुना, बल्कि उन्हें लगा कि दादी ने “विदुदभा” कहा है; इसलिए वह राजा के पास वापस गए और उन्हें बताया कि राजकुमार का नाम विदुदभा रखा जाए। राजा ने सोचा कि यह कोई खानदानी नाम होगा, और इसलिए उन्होंने उसका नाम विदुदभा रख दिया।

इसके बाद राजकुमार का पालन-पोषण उसी तरह हुआ जैसा एक राजकुमार का होना चाहिए।

जब वह सात वर्ष का था, तब उसने देखा कि अन्य राजकुमारों को उनके माता-पिता के परिवार से खिलौने वाले हाथी, घोड़े और अन्य खिलौने उपहार में मिलते हैं। तब उसने अपनी माँ से कहा, “माँ, बाकी सबको तो उनके माता-पिता के परिवार से उपहार मिलते हैं, लेकिन मुझे कोई कुछ नहीं भेजता। क्या तुम अनाथ हो?” तब उसकी माँ ने उत्तर दिया, “बेटा, तुम्हारे दादा शाक्य वंश के राजा हैं, लेकिन वे बहुत दूर रहते हैं, इसलिए वे तुम्हें कुछ नहीं भेजते।” फिर जब वह सोलह वर्ष का हुआ, तब उसने कहा, “माँ, मैं तुम्हारे पिता के परिवार से मिलना चाहता हूँ।” “इस बारे में बात मत करो, बेटा,” उसकी माँ ने कहा। “वहाँ पहुँचकर तुम क्या करोगे?” हालाँकि उसकी

माँ ने उसे टाल दिया, फिर भी वह बार-बार पूछता रहा। अंत में उसकी माँ ने कहा, “ठीक है, जाओ।” तब उस लड़के को अपने पिता की अनुमति मिल गई और वह कुछ अनुयायियों के साथ चल पड़ा। वासभक्षत्रिय ने उससे पहले यह पत्र भेजा: “मैं यहाँ सुख से रह रहा हूँ; मेरे स्वामियों को इस रहस्य के बारे में कुछ भी न बताने दें।” लेकिन शाक्यों ने विदूदभा के आने की खबर सुनकर अपने सभी छोटे बच्चों को गाँव भेज दिया। उन्होंने कहा, "उनका आदरपूर्वक स्वागत करना असंभव है।"

जब राजकुमार कपिलवस्तु (बुद्ध के वंश का राज्य) पहुँचे, तो शाक्यों राजगृह में एकत्रित थे। राजकुमार विश्रामगृह के पास पहुँचे और प्रतीक्षा करने लगे। तब उन्होंने राजकुमार से कहा, "ये तुम्हारी माता के पिता हैं, ये उनके भाई हैं," और उनकी ओर इशारा किया। राजकुमार एक-एक करके सभी को प्रणाम करते हुए आगे बढ़े। यद्यपि वे इतनी देर तक प्रणाम करते रहे कि उनकी कमर दुखने लगी, फिर भी किसी ने भी उन्हें प्रणाम नहीं किया; इसलिए उन्होंने पूछा, "आपमें से कोई भी मुझे प्रणाम क्यों नहीं कर रहा है?" शाक्यों ने उत्तर दिया, "मेरे प्रिय, सभी युवा राजकुमार देश में हैं;" तब उन्होंने राजकुमार का भव्य स्वागत किया।

कुछ दिन ठहरने के बाद, वह अपने सभी सेवकों के साथ घर के लिए निकल पड़ा। तभी एक दासी ने विश्रामगृह में उसके द्वारा इस्तेमाल किए गए आसन को दूध-जल से धोते हुए अपमानजनक ढंग से कहा, "यह वह आसन है जिस पर दासी वासभक्षत्रिय का पुत्र बैठा था!" एक व्यक्ति जो अपना भाला वहीं छोड़ आया था, उसे लेने ही जा रहा था कि उसने राजकुमार विदूदभा की गाली-गलौज सुन ली। उसने पूछा कि इसका क्या अर्थ है। उसे बताया गया कि वासभक्षत्रिय शाक्य राजा महानामा की दासी का पुत्र था। उसने यह बात सैनिकों को बताई: वहाँ बहुत शोर मच गया, सब चिल्लाने लगे—"ऐसा कहते हैं कि वासभक्षत्रिय एक दासी की पुत्री है!" राजकुमार ने यह सुना। "हाँ," उसने सोचा, "जिस आसन पर मैं बैठा था, उस पर दूध-जल डाल दें, उसे धोएँ! जब मैं राजा बनूँगा, तो मैं उस स्थान को उनके हृदय के रक्त से धो दूँगा!"

जब वह श्रावस्ती नगर लौटा, तो दरबारियों ने राजा को सारी बात बता दी। राजा शाक्यों द्वारा दासी की पुत्री से विवाह करने पर क्रोधित हो गया। उसने वासभक्षत्रिय और उसके पुत्र को दी जाने वाली सभी भत्तियाँ बंद कर दीं और उन्हें केवल वही दिया जो दास पुरुषों और स्त्रियों को दिया जाना उचित था।

कुछ दिनों बाद स्वामी महल में आया और बैठ गया। राजा उसके पास गया और अभिवादन करते हुए बोला, "महोदय, मुझे पता चला है कि आपके कुल के लोगों ने मुझे एक दासी की बेटी से विवाह करने के लिए दी है। मैंने माता-पिता दोनों का भत्ता बंद कर दिया है और अब उन्हें केवल उतना ही भत्ता देता हूँ जितना दासों को मिलता है।" गुरु ने कहा, "हे महान राजा, शाक्यों ने अन्याय किया है! यदि उन्हें किसी को पुत्र देना था, तो उन्हें अपने ही रक्त की पुत्री देनी चाहिए थी। परन्तु हे राजा, मैं यह कहता हूँ: वासभक्षत्रिय एक राजा की पुत्री है, और एक श्रेष्ठ राजा के घर में उसका अभिषेक हुआ है; विदूदभ भी एक श्रेष्ठ राजा की संतान था। प्राचीन काल के बुद्धिमानों ने कहा है, माता का जन्म क्या मायने रखता है? पिता का जन्म ही मायने रखता है: और एक निर्धन, लकड़ियाँ बीनने वाली पत्नी को उन्होंने रानी का पद दिया; और उससे जन्मे पुत्र ने बारह मील (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैले बनारस पर शासन किया और वह कत्थवाहन राजा बना।" इस पर उन्होंने उन्हें कत्थहारी जन्म की कथा सुनाई (*7)।

जब राजा ने यह बात सुनी तो वह प्रसन्न हुआ; और मन ही मन यह कहते हुए कि, "पिता का वंश ही मनुष्य की पहचान है," उसने फिर से माता और पुत्र के साथ उनके अनुरूप व्यवहार किया।

राजा का सेनापति बंधुला नाम का एक व्यक्ति था। उसकी पत्नी मल्लिका बांझ थी, इसलिए उसने उसे कुशीनारा भेज दिया और कहा कि वह अपने परिवार के पास लौट जाए। मल्लिका ने कहा, "मैं गुरु को प्रणाम करने के बाद जाऊंगी।" वह जेतवन मठ गई और तथागत (बुद्ध) को प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ी हो गई। उन्होंने पूछा, "तुम कहाँ जा रही हो?" मल्लिका ने उत्तर दिया, "मेरे पति ने मुझे घर भेजा है, महाराज।" गुरु ने पूछा, "क्यों?" मल्लिका ने उत्तर दिया, "मैं बांझ हूँ, महाराज, मेरा कोई पुत्र नहीं है।" उन्होंने कहा, "यदि यही कारण है, तो तुम्हारे जाने का कोई कारण नहीं है। वापस लौट जाओ।" मल्लिका बहुत प्रसन्न हुई और गुरु को प्रणाम करके वापस घर चली गई। उसके पति ने उससे पूछा कि वह क्यों लौटी है। मल्लिका ने उत्तर दिया, "दशबल (बुद्ध) ने मुझे वापस भेजा है, महाराज।" सेनापति ने कहा, "तो तथागत (बुद्ध) को अवश्य ही कोई उचित कारण लगा होगा।" कुछ ही समय बाद स्त्री गर्भवती हो गई और जब उसे गर्भाधान की इच्छा हुई, तो उसने उसे बताया। उसने पूछा, "तुम क्या चाहती हो?" उसने कहा, "हे स्वामी, मैं वैशाली नगर में उस तालाब में स्नान करना और उसका जल पीना चाहती हूँ जहाँ राजाओं के परिवार धार्मिक अनुष्ठानों के लिए जल लेते हैं।" सेनापति ने प्रयास करने का वादा किया। उसने अपना, हजार धनुषों के समान शक्तिशाली धनुष उठाया, अपनी पत्नी को रथ में बिठाया और श्रावस्ती नगर छोड़कर वैशाली नगर की ओर चल पड़ा।

उस समय द्वार के पास महाली (*8) नामक एक लिच्छवी रहता था, जिसने कोसल के राजा के सेनापति बंधुला के ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। वह अंधा था और लिच्छवियों को सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों में सलाह देता था। रथ के द्वार से गुजरते ही उसकी खड़खड़ाहट सुनकर उसने कहा, "मल्लिका बंधुला के रथ का शोर! आज लिच्छवियों में भय उत्पन्न होगा!" तालाब के चारों ओर और

बाहर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था थी; ऊपर लोहे का जाल बिछा था; यहाँ तक कि एक पक्षी भी उसमें से नहीं निकल सकता था। परन्तु सेनापति ने रथ से उतरकर अपनी तलवार के प्रहारों से पहरेदारों को भगा दिया और लोहे के जाल को तोड़कर तालाब में अपनी पत्नी को स्नान कराया और उसे जल पिलाया; फिर स्वयं स्नान करके उसने मल्लिका को रथ में बिठाया और नगर छोड़कर उसी मार्ग से वापस चला गया जिससे वह आया था।

पहरेदार गए और उन्होंने सारी बात लिच्छवियों को बता दी। तब लिच्छवी राजा क्रोधित हो गए; और उनमें से पाँच सौ, पाँच सौ रथों में सवार होकर मल्लियन बंधुला को पकड़ने के लिए निकल पड़े। उन्होंने महाली को इसकी सूचना दी, और उन्होंने कहा, "मत जाओ! क्योंकि वह तुम सबको मार डालेगा।" लेकिन उन्होंने कहा, "नहीं, हम जाएंगे।" "फिर यदि तुम किसी ऐसी जगह पर पहुँचो जहाँ कोई पहिया आधा धंसा हुआ हो, तो तुम्हें लौटना होगा। यदि तब भी न लौटो, तो वज्रपात की आवाज सुनते ही उस स्थान से वापस लौट आना। यदि तब भी न लौटो, तो उस स्थान से वापस लौट आना जहाँ तुम्हें अपने रथों के सामने एक गड्ढा दिखाई दे। आगे मत जाओ!" लेकिन वे उनके कहे अनुसार नहीं लौटे, बल्कि उनका पीछा करते रहे। मल्लिका ने उन्हें देखा और कहा, "हे स्वामी, रथ दिखाई दे रहे हैं।" "तो मुझे बताओ," उन्होंने कहा, "जब वे सभी एक रथ की तरह दिखने लगें।" जब वे सभी एक पंक्ति में एक रथ की तरह दिखने लगे, तो उसने कहा, "हे स्वामी, मुझे ऐसा लग रहा है जैसे एक रथ का सिरा दिखाई दे रहा है।" “तो लगाम पकड़ो,” उसने कहा और लगाम उसके हाथ में थमा दी। वह रथ में सीधा खड़ा हो गया और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। रथ का पहिया आधा ज़मीन में धंस गया। लिच्छवी वहाँ आए और यह देखा, पर वापस नहीं लौटे। दूसरे थोड़ा आगे गए और धनुष की प्रत्यंचा खींची; तब बिजली गिरने जैसी आवाज़ आई, फिर भी वे नहीं मुड़े, बल्कि आगे बढ़ते रहे। बंधुला रथ में खड़ा हुआ और एक बाण चलाया, जिसने पाँच सौ रथों के सिर चीर दिए और पाँच सौ राजाओं के कमरबंद के ठीक बीच से होकर ज़मीन में धंस गया। उन्हें पता ही नहीं चला कि वे घायल हो गए हैं और वे चिल्लाते हुए आगे बढ़ते रहे, “रुको, रुको!” बंधुला ने अपना रथ रोका और कहा, “तुम मरे हुए हो, और मैं मरे हुओं से नहीं लड़ सकता।” “क्या!” उन्होंने कहा, “मरे हुए, जैसे हम अब हैं?” "पहले आदमी की कमरबंद ढीली करो," बंधुला ने कहा।

उन्होंने उसकी कमरबंद खोली, और कमरबंद खुलते ही वह मर गया। फिर उसने उनसे कहा, "तुम सब एक ही हालत में हो: अपने-अपने घरों को जाओ, और जो व्यवस्था होनी चाहिए उसे ठीक करो, और अपनी पत्नियों और परिवारों को निर्देश दो, और फिर अपना कवच उतार दो।" उन्होंने ऐसा ही किया, और फिर उन सबने प्राण त्याग दिए (*9)।

और बंधुला मल्लिका को श्रावस्ती नगर ले गया। मल्लिका के सोलह पुत्र हुए, और वे सभी बलवान और वीर पुरुष थे, और सभी प्रकार की विद्याओं में निपुण थे। उनमें से प्रत्येक के साथ एक हजार सैनिक होते थे, और जब वे अपने पिता के साथ राजा की सेवा करने जाते थे, तो वे अकेले ही महल के प्रांगण को खचाखच भर देते थे।

एक दिन कुछ लोग, जो झूठे आरोप में अदालत में हार गए थे, बंधुला को आते देख ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाए और उन्हें बताया कि अदालत के न्यायाधीशों ने झूठे आरोप का समर्थन किया है। तब बंधुला अदालत में गए और मामले का फैसला सुनाया, और हर व्यक्ति को उसकी करनी का फल दिया। भीड़ ने तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया। राजा ने पूछा कि इसका क्या मतलब है, और सुनकर बहुत प्रसन्न हुए; उन्होंने उन सभी अधिकारियों को विदा कर दिया और बंधुला को न्याय अदालत का कार्यभार सौंप दिया, और तब से उन्होंने न्यायपूर्वक फैसले सुनाए। तब पूर्व न्यायाधीश गरीब हो गए, क्योंकि उन्हें अब रिश्वत नहीं मिलती थी, और उन्होंने राजा के कान में बंधुला की निंदा करते हुए उन पर राज्य पर कब्जा करने का आरोप लगाया। राजा ने उनकी बातें सुनीं और अपने संदेह को नियंत्रित नहीं कर सके। उन्होंने सोचा, "लेकिन अगर वह यहाँ मारा गया, तो दोष मेरा होगा।" उन्होंने कुछ लोगों को रिश्वत देकर सीमावर्ती जिलों में उपद्रव करने का आदेश दिया; फिर बंधुला को बुलवाकर कहा, "सीमाओं में आग लगी हुई है; अपने बेटों के साथ जाओ और लुटेरों को पकड़ो।" उसके साथ उसने कुछ और सक्षम, पराक्रमी योद्धाओं को भी भेजा, जिन्हें यह निर्देश दिया गया था कि वे उसे और उसके बत्तीस बेटों को मार डालें, उनके सिर काट दें और उन्हें वापस ले आएं।

जब वह रास्ते में ही था कि भाड़े के लुटेरों को सेनापति के आने की खबर मिल गई और वे भाग गए। उसने उस जिले के लोगों को उनके घरों में बसाया, प्रांत में शांति स्थापित की और घर के लिए निकल पड़ा। फिर जब वह शहर से कुछ ही दूर था, तो उन योद्धाओं ने उसका और उसके बेटों का सिर काट डाला।

उस दिन मल्लिका ने दो प्रमुख शिष्यों और पाँच सौ भिक्षुओं को निमंत्रण भेजा था। दोपहर होते-होते उन्हें एक पत्र मिला, जिसमें उनके पति और पुत्रों के सिर कलम किए जाने की खबर थी। यह सुनकर उन्होंने किसी से कुछ कहे बिना पत्र को अपने वस्त्र में छिपा लिया और भिक्षुओं की सेवा में लग गईं। उनके सेवकों ने भिक्षुओं को चावल दिए, और घी का कटोरा लाते समय वे भिक्षुओं के सामने ही कटोरा तोड़ बैठे। तब धर्म के प्रमुख (सारिपुत्र) ने कहा, "बर्तन टूटने के लिए ही बने हैं; इसकी चिंता मत करो।" मल्लिका ने अपने वस्त्र की तह से पत्र निकालते हुए कहा, "यह पत्र मुझे सूचित करता है कि मेरे पति और उनके बत्तीस पुत्रों के सिर कलम कर दिए गए हैं। अगर मैं इसकी चिंता नहीं करती, तो कटोरा टूटने पर क्या मैं चिंता करूंगी?" धर्माध्यक्ष (सारिपुत्र) ने अब "अदृश्य, अज्ञात (*10)" और इसी

प्रकार आगे बढ़ते हुए प्रवचन दिया और घर चले गए। उन्होंने अपनी बत्तीस बहुओं को बुलाया और उनसे कहा, "तुम्हारे पति निर्दोष होते हुए भी अपने कर्मों का फल भोग चुके हैं। शोक मत करो और राजा से भी बड़ा पाप मत करो।" यह उनकी सलाह थी। राजा के जासूसों ने यह सुनकर उन्हें सूचना दी कि वे क्रोधित नहीं हैं। तब राजा व्याकुल हो गए और मल्लिका और उनके पुत्रों की पत्नियों के लिए क्षमा मांगते हुए एक वरदान की पेशकश की। मल्लिका ने उत्तर दिया, "इसे स्वीकार करो।" उन्होंने अंत्येष्टि भोज तैयार किया, स्नान किया और फिर राजा के समक्ष गईं। उन्होंने कहा, "हे मेरे स्वामी, आपने मुझे वरदान दिया था। मुझे बस यही चाहिए कि आप मेरी बत्तीस बहुओं और मुझे अपने-अपने घर लौटने की अनुमति दें।" राजा ने स्वीकार कर लिया। उसने अपने बत्तीस पुत्रों की पत्नियों को उनके घर भेज दिया और स्वयं कुसिनारा नगर में अपने परिवार के घर लौट गई। राजा ने सेनापति बंधुला के पुत्र दीघा-करायण को सेनापति का पद दिया। परन्तु वह राजा की आलोचना करता फिरता था और कहता था, "उसने मेरे चाचा की हत्या की।"

निर्दोष बंधुला की हत्या के बाद से राजा पश्चाताप से व्याकुल हो गया, उसे मन की शांति नहीं मिली, राजा होने का उसे कोई आनंद नहीं रहा। उस समय गुरु शाक्यों के एक कस्बे उलुम्पा के पास रहते थे। राजा वहाँ गए, उद्यान से कुछ दूर एक शिविर लगाया और कुछ सेवकों के साथ गुरु को प्रणाम करने के लिए मठ गए। उन्होंने राजत्व के पाँच प्रतीक करायान को सौंप दिए और अकेले ही सुगंधित कक्ष में प्रवेश किया। इसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन धम्मचेतिया सूत्र में दिया गया है। सुगंधित कक्ष में प्रवेश करते ही करायान ने राजत्व के उन प्रतीकों को लेकर विदूदभ को राजा बनाया; और राजा के लिए एक घोड़ा और एक सेविका छोड़कर वे श्रावस्ती नगर चले गए।

गुरु से सुखद वार्तालाप के बाद, राजा जब वापस लौटे तो उन्हें कोई सेना नहीं मिली। उन्होंने उस स्त्री से पूछताछ की और पता लगाया कि क्या हुआ था। फिर वे राजगृह नगर के लिए निकल पड़े, अपने भतीजे को साथ ले जाने और विदूदभा को पकड़ने का निश्चय किया। जब वे नगर पहुँचे तो काफी रात हो चुकी थी और द्वार बंद थे। धूप और हवा से बेहाल होकर एक झोपड़ी में लेटते ही उनकी मृत्यु हो गई।

जब रात उजाला होने लगी, तो स्त्री विलाप करने लगी, “हे स्वामी, कोसल के राजा की जान बच नहीं सकती!” यह आवाज सुनी गई और राजा को खबर मिली। उन्होंने अपने चाचा का अंतिम संस्कार बड़े ही भव्य तरीके से किया।

जब विदुदाभा सिंहासन पर दृढ़ता से विराजमान हो गया, तो उसे अपना पुराना द्वेष याद आया और उसने शाक्यों वंश को पूरी तरह नष्ट करने का निश्चय किया; इसी उद्देश्य से वह एक विशाल सेना लेकर निकल पड़ा। उस दिन भोर में, गुरु ने संसार पर दृष्टि डालते हुए अपने परिवार को विनाश के मंडराते देखा। उन्होंने सोचा, "मुझे अपने परिवार की रक्षा करनी चाहिए।" दोपहर में वे भिक्षा मांगने गए, फिर भोजन करने के बाद अपने सुगंधित कक्ष में सिंह की तरह लेट गए, और शाम को कपिलवस्तु (बुद्ध के वंश का राज्य) के निकट वायुमार्ग से यात्रा करके एक कम छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गए। उस स्थान के निकट ही, विदुदाभा के राज्य की सीमा पर एक विशाल और छायादार बरगद का वृक्ष खड़ा था। गुरु को पास आते देख विदुदाभा ने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "हे महाराज, इस भीषण गर्मी में इतने कम छायादार वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हैं? कृपया इस छायादार बरगद के नीचे बैठें।" उसने उत्तर दिया, “रहने दो, हे महाराज! मेरे कुल की छाया मुझे शीतलता प्रदान करती है।” दूसरे ने सोचा, “गुरुजी अपने कुलवासियों की रक्षा के लिए यहाँ आए होंगे।” अतः उसने गुरुजी को प्रणाम किया और श्रावस्ती नगर लौट गया। गुरुजी उठकर जेतवन मठ चले गए। राजा को शाक्यों के प्रति अपने द्वेष की याद फिर आई, वह फिर चल पड़ा, और उसने गुरुजी को उसी स्थान पर बैठे हुए देखा, फिर लौट आया। चौथी बार वह चला; और गुरुजी ने शाक्यों के पूर्व कर्मों का अध्ययन करके यह जान लिया कि नदी में विष डालने के उनके दुष्ट कर्मों का प्रभाव निष्प्रभावी है; अतः वह चौथी बार वहाँ नहीं गया। तब राजा विदूदभ ने सभी शाक्यों को मार डाला, सबसे पहले दूध पीते शिशुओं को, और उनके रक्त से वेदी धोकर लौट आया।

गुरुजी के तीसरी बार बाहर जाने और लौटने के अगले दिन, भिक्षा मांगने और भोजन करने के बाद, जब वे अपने सुगंधित कक्ष में विश्राम कर रहे थे, तभी सभी दिशाओं से भिक्षु सत्य के हॉल में एकत्रित हुए और बैठकर उस महान व्यक्ति के गुणों का वर्णन करने लगे: “महोदय, गुरुजी ने अभी-अभी स्वयं को प्रकट किया और राजा को वापस लौटा दिया, और अपने कुल को मृत्यु के भय से मुक्त कर दिया। गुरुजी अपने कुल के लिए एक सहायक मित्र हैं!” गुरुजी प्रवेश कर गए और उनसे पूछा कि वे क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। तब उन्होंने कहा, “भाइयों, तथागत (बुद्ध) केवल आज ही अपने कुल के हित में कार्य नहीं करते; उन्होंने बहुत पहले भी ऐसा ही किया था।” इन शब्दों के साथ, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे और दस राजगुणों का पालन करते हुए उन्होंने मन ही मन सोचा, "पूरे भारत में राजा कई स्तंभों पर टिके महलों में रहते हैं। तो फिर कई स्तंभों पर टिके महल में कोई आश्चर्य की बात नहीं है; लेकिन अगर मैं केवल एक स्तंभ पर टिका महल बनाऊं तो क्या होगा? तब मैं सभी राजाओं में श्रेष्ठ हो जाऊंगा!" इसलिए उन्होंने अपने शिल्पकारों को बुलाया और उनसे एक स्तंभ पर टिका एक भव्य महल बनाने को कहा। "ठीक है," उन्होंने कहा और जंगल की ओर चल दिए।

वहाँ उन्होंने कई सीधे और विशाल वृक्ष देखे, जो किसी महल के एकमात्र स्तंभ बनने के योग्य थे। उन्होंने कहा, "ये वृक्ष तो यहाँ हैं, लेकिन रास्ता ऊबड़-खाबड़ है और हम इन्हें कभी नहीं ले जा सकते; हम राजा से इसके बारे में पूछेंगे।" जब उन्होंने ऐसा किया, तो राजा ने कहा, "किसी भी तरह से, चाहे जैसे भी हो, तुम्हें इन्हें लाना ही होगा, और वह भी जल्दी।" लेकिन उन्होंने उत्तर दिया, "न तो जैसे भी हो, यह संभव है।" तब राजा ने कहा, "तो मेरे उद्यान में एक वृक्ष खोजो।"

कारीगर उद्यान में गए और वहाँ उन्होंने एक भव्य साल का वृक्ष देखा, जो सीधा और सुगठित था, जिसकी गाँव-नगर के लोग पूजा करते थे, और शाही परिवार भी नियमित रूप से उसे भेंट और पूजा अर्पित करता था। उन्होंने राजा को यह बात बताई। राजा ने कहा, "मेरे उद्यान में तुम्हें एक वृक्ष मिला है: अच्छा—जाओ और इसे काट डालो।" उन्होंने कहा, "ठीक है," और सुगंधित मालाओं से भरे हाथों के साथ उद्यान की ओर चल पड़े; फिर उन्होंने उस पर पाँच गुच्छों की माला टांगी, उसे एक डोरी से घेरा, उस पर फूलों का गुलदस्ता बाँधा और एक दीपक जलाकर पूजा की, और समझाया, "आज से सातवें दिन हम इस वृक्ष को काट डालेंगे: यह राजा का आदेश है। इस वृक्ष में निवास करने वाले देवता कहीं और चले जाएँ, और इसके लिए हम दोषी न हों।"

वृक्ष में निवास करने वाले देवदूत ने यह सुनकर मन ही मन सोचा, "ये निर्माता इस वृक्ष को काटने और मेरे निवास स्थान को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। अब मेरा जीवन केवल इस निवास स्थान तक ही सीमित है। और इसके चारों ओर खड़े सभी युवा साल के वृक्ष, जहाँ मेरे परिवार के देवता निवास करते हैं, और वे अनेक हैं, नष्ट हो जाएँगे। मेरे स्वयं के विनाश से अधिक मुझे मेरे बच्चों के विनाश का भय नहीं है: इसलिए मुझे उनके जीवन की रक्षा करनी चाहिए।" तदनुसार, आधी रात को, दिव्य वैभव से सुसज्जित होकर, वह राजा के भव्य कक्ष में प्रवेश किया और पूरे कक्ष को प्रकाश से भरते हुए, राजा के तकिये के पास रोने लगा। उसे देखकर राजा भयभीत होकर प्रथम श्लोक बोला:

"तुम कौन हो, जो आकाश में ऊँचे खड़े हो, दिव्य वस्त्र धारण किए हुए?"
तुम्हारे डर कहाँ से आते हैं, तुम्हारी आँखों से ये आँसू क्यों बह रहे हैं?
यह सुनकर देवताओं (देवदूतों) के राजा ने दो श्लोक दोहराए:

"हे राजा, आपके राज्य में लोग मुझे भाग्यशाली वृक्ष के रूप में जानते हैं।"
मैं साठ हजार वर्षों तक यहाँ खड़ा रहा, और सभी ने मेरी पूजा की।
"यद्यपि उन्होंने अनेक नगर और घर बनाए, और अनेक राजाओं की संपत्तियाँ नष्ट कीं,
फिर भी उन्होंने मुझे कभी परेशान नहीं किया, मुझे कोई नुकसान नहीं पहुंचाया।
फिर जिस प्रकार वे आपकी उपासना करते हैं, उसी प्रकार वे भी आपकी उपासना करें, हे राजा!
फिर राजा ने दो छंद दोहराए:

लेकिन मैंने ऐसा दूसरा विशालकाय तना आज तक कभी नहीं देखा।
आकार और ऊंचाई में इतना उत्तम, इतना घना और मजबूत पेड़।
"मैं एक सुंदर महल बनाऊंगा, जिसमें सहारे के लिए एक ही स्तंभ होगा।"
मैं तुम्हें वहीं रखूंगा—तुम्हारा जीवन छोटा नहीं होगा।"
यह सुनकर देवताओं (देवदूतों) के राजा ने दो छंद दोहराए:

"चूंकि तुम मेरे शरीर को मुझसे अलग करने पर तुले हो, तो मुझे छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दो,"
हे राजा, या तो मुझे टुकड़ों-टुकड़ों में काट दो, या बिल्कुल मत काटो।
"पहले ऊपरी भाग को काटो, फिर मध्य भाग को, और अंत में मेरी जड़ को काटो।"
और हे राजा, यदि आप मुझे इस प्रकार काटेंगे, तो मृत्यु कष्टदायी नहीं होगी।
फिर राजा ने दो छंद दोहराए:

"पहले हाथ और पैर, फिर नाक और कान, जब तक पीड़ित जीवित है।"
और अंत में सिर को अलग कर दिया जाता है—यह एक दर्दनाक मौत होती है।
"हे भाग्यशाली वृक्ष! हे वन के राजा! आपको कितना सुख प्राप्त हो सकता है,"
आप किसलिए, किस कारण से अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवाना चाहते हैं?
तब भाग्यशाली वृक्ष ने दो छंदों को दोहराते हुए उत्तर दिया:

"इसका कारण (और यह एक बेहद नेक कारण है) कि टुकड़ों में
हे सर्वशक्तिमान राजा, मैं कट जाना चाहता हूँ! आओ, सुनो, मैं क्या कहता हूँ।

मेरे चारों ओर मेरे सभी मित्र और परिवार के सदस्य समृद्ध और सुरक्षित माहौल में पल-बढ़ रहे हैं।
मैं इन्हें एक ही झटके में कुचल दूंगा, और तब इन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ेगा।"
यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ: "यह तो एक योग्य देवदूत है, यह नहीं चाहता कि उसका परिवार अपना निवास स्थान खो दे; यह अपने परिवार के भले के लिए कार्य करता है।" और उसने शेष श्लोक दोहराया:

हे भाग्यशाली वृक्ष! हे वन के राजा! आपके विचार महान होने चाहिए।
तुम अपने परिवार से दोस्ती कर लोगे, इसलिए डर के मारे मैंने तुम्हें आज़ाद कर दिया।"
देवदूतों के राजा (इंद्र) ने इस राजा को प्रवचन देकर प्रस्थान किया। राजा ने उनकी सलाह मानकर दान-पुण्य किया और अन्य अच्छे कर्म करते हुए स्वर्ग विदा हो गया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, तथागत बुद्ध अपने मित्रों और परिवार का भला करने के लिए ही कार्य करते हैं;" और फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद राजा थे, बुद्ध के अनुयायी साल के वृक्ष के नन्हे पौधों में अवतरित देवता थे, और मैं स्वयं भाग्यशाली वृक्ष, देवताओं (देवदूतों) का राजा था।"

फुटनोट:

(1)सं. 536.

(2) एक प्रसिद्ध महिला शिष्या

(3) शाक्य वंश का मुख्यालय, और बुद्ध का जन्मस्थान।

(4) एक शाक्य राजकुमार, बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन का पुत्र

(5) क्षत्रिय.

(6) वल्लभ.

(7)सं. 7.

(8)धम्मपद में महालिच्छवी कहा जाता है

(9) यह एक प्रसिद्ध घटना का एक रूपांतर है। एक जल्लाद इतनी कुशलता से एक आदमी का सिर काट देता है कि पीड़ित को पता ही नहीं चलता कि ऐसा हुआ है। फिर पीड़ित एक चुटकी तंबाकू लेता है, छींकता है, और उसका सिर धड़ से अलग हो जाता है। एक अन्य रूप यह है: दो आदमी बहस करते हैं, और एक अपनी तलवार घुमाता है। वे बातें करते रहते हैं, और कुछ समय बाद दूसरा जाने के लिए उठता है, और दो टुकड़ों में गिर जाता है।

(10)सुत्त-निपात 574: "अदृश्य, अज्ञात है यहाँ नीचे मनुष्यों का जीवन:" और इसी प्रकार बीस श्लोकों तक। यह सल्लसुत है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **समुद्द-वणिज-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-466-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 466
समुद्दा-वनिज-जातक

"दूसरे बोते हैं," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी, जब वह पांच सौ परिवारों को अपने साथ लेकर नरक में गया था।

जब प्रमुख शिष्य (*1) अपने अनुयायियों को साथ लेकर चले गए, तो देवदत्त अपने दर्द को सहन न कर पाने के कारण अपने मुँह से गर्म खून थूक कर चले गए; फिर अत्यंत पीड़ा से पीड़ित होकर, तथागत (बुद्ध) के गुणों को याद करते हुए उन्होंने मन ही मन कहा, "मैंने नौ महीनों तक तथागत (बुद्ध) के प्रति दुर्भावना रखी, परन्तु गुरु के हृदय में मेरे लिए कभी कोई पापी विचार नहीं आया; अस्सी प्रमुख ऋषियों के मन में मेरे प्रति कोई द्वेष नहीं है; अपने कर्मों के कारण मैं बहुत दुखी हो गया हूँ, और गुरु, महान ऋषियों, मेरे कुल के मुखिया (*2) ऋषि राहुल (बुद्ध के पुत्र) और शाक्यों (कपिलवस्तु में बुद्ध का कुल) के सभी राजवंशों ने मुझे त्याग दिया है। मैं गुरु के पास जाऊँगा और उनसे मेल-मिलाप करूँगा।" इसलिए अपने अनुयायियों को इशारा करते हुए, उन्होंने खुद को एक स्ट्रेचर पर ले जाने का इंतजाम किया, और हमेशा रात के समय यात्रा करते हुए कोसला शहर की ओर चल पड़े।

आनंद भिक्षु ने गुरु से कहा, "कहते हैं कि देवदत्त आपसे सुलह करने आ रहे हैं।" — "आनंद, देवदत्त मुझे नहीं देख पाएंगे।" श्रावस्ती नगर पहुँचकर, गुरु ने गुरु को फिर यही बात बताई; और भगवान बुद्ध ने पहले की तरह ही उत्तर दिया। जब वे जेतवन मठ के द्वार पर थे और जेतवन झील की ओर बढ़ रहे थे, तब उनका पाप चरम पर पहुँच गया: उनके शरीर में बुखार आ गया, और स्नान और पानी पीने की इच्छा से उन्होंने उन्हें स्ट्रेचर से उतारने का आदेश दिया ताकि वे पानी पी सकें। जैसे ही वे नीचे उतरे और ज़मीन पर खड़े हुए, इससे पहले कि वे खुद को तरोताज़ा कर पाते, धरती फट गई, अविची के सबसे गहरे नरक से एक ज्वाला उठी और उन्हें घेर लिया। तब उन्हें पता चला कि उनके पाप का फल चरम पर पहुँच गया है, और तथागत (बुद्ध) के गुणों को याद करते हुए, उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

"मैं अपनी इन अस्थियों को उस परम सत्ता को अर्पित करता हूँ।"
सौ शुभ चिह्नों से सुशोभित, सर्वदर्शी,
ईश्वर, ईश्वर से भी बढ़कर, जो मनुष्य के उग्र स्वभाव को वश में करता है।
मैं अपने पूरे मन से बुद्ध की शरण में जा रहा हूँ!
लेकिन शरण लेने के क्षण भर में ही वह अविची नरक में जाने के लिए अभिशप्त हो गया। उसके साथ पाँच सौ परिवार थे, जिन्होंने उसका अनुसरण करते हुए दशबल (बुद्ध) का अपमान किया और उन्हें अपशब्द कहे, और वे भी अविची नरक में ही जन्म लिए। इस प्रकार वह पाँच सौ परिवारों को साथ लेकर अविची गया।

एक दिन वे सत्य के हॉल में बातें कर रहे थे: "भाई, पापी देवदत्त ने लाभ के लालच में आकर अकारण ही परम बुद्ध पर क्रोध किया और भविष्य के भय की परवाह न करते हुए अपने पाँच सौ परिवारों सहित नरक में जाने का ऋणी हुआ।" गुरुजी ने अंदर आकर उनसे पूछा कि वे क्या कह रहे हैं: उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों, देवदत्त लाभ और मान-सम्मान का लालची था और उसने भविष्य के भय पर ध्यान नहीं दिया; और पहले भी, और अब भी, भविष्य के भय की परवाह न करते हुए, वह अपने अनुयायियों के साथ वर्तमान सुख के लालच में पूरी तरह से नष्ट हो गया।" ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, बनारस के पास बढ़ईयों का एक बड़ा शहर था, जिसमें एक हजार परिवार रहते थे। इस शहर के बढ़ई कहते थे कि वे पलंग, कुर्सी या घर बना देंगे, लेकिन ग्राहकों से बड़ी रकम उधार लेने के बाद भी वे कुछ भी नहीं बना पाते थे। लोग हर बढ़ई को डांटते और उनके काम में दखल देते थे। इस तरह वे कर्जदार इतने परेशान हो गए कि वहां रहना उनके लिए मुश्किल हो गया। उन्होंने कहा, "चलो कहीं दूर जाकर रहने की जगह ढूंढते हैं।" इसलिए वे जंगल की ओर चल पड़े। उन्होंने पेड़ काटे, एक बड़ा जहाज बनाया और उसे नदी में उतारा। वे उस शहर से दूर लगभग तीन चौथाई मील (4.23 किमी) की दूरी पर जहाज को किनारे लगा दिया। फिर आधी रात को वे अपने परिवार को लाने के लिए शहर लौटे। उन्होंने अपने परिवार को जहाज पर बिठाया और फिर समुद्र की ओर चल दिए। वहाँ वे हवा के रुख के अनुसार चलते रहे, जब तक कि वे समुद्र के बीचोंबीच स्थित एक द्वीप पर नहीं पहुँच गए। उस द्वीप पर हर तरह के जंगली पौधे और फलदार पेड़, चावल, गन्ना, केला, आम, गुलाब सेब, कटहल, नारियल और न जाने क्या-क्या उगते थे। एक और आदमी था जो जहाज़ टूटने के कारण उस द्वीप पर उनसे पहले ही बस गया था और वहाँ चावल और गन्ने का सेवन करके रहता था, जिससे वह हष्ट-पुष्ट और तगड़ा हो गया था; वह नंगा रहता था और उसके बाल और दाढ़ी लंबी हो गई थी। बढ़ईयों ने सोचा, "अगर द्वीप पर भूत-प्रेत का वास है, तो हम सब मर जाएँगे; इसलिए हम इसकी खोज करेंगे।" तब सात वीर और बलवान पुरुषों ने पाँच प्रकार के हथियारों (*3) से लैस होकर उस द्वीप पर उतरे और उसकी खोजबीन की।

उस समय, जहाज़ टूटने के बाद, वह अकेला व्यक्ति अपना उपवास तोड़कर गन्ने का रस पी चुका था और अत्यंत प्रसन्न होकर एक सुंदर, ठंडी छायादार जगह पर, चांदी की थाली की तरह चमकती रेत पर पीठ के बल लेटा हुआ था। वह सोच रहा था, "भारत में रहने वालों को, जो खेती और बुवाई करते हैं, ऐसा सुख नहीं मिलता; मुझे तो यह द्वीप भारत से कहीं अधिक अच्छा लगता है!" वह खुशी से गीत गा रहा था और परमानंद में डूबा हुआ था।

गुरु ने यह समझाने के लिए कि कैसे उस परित्यक्त व्यक्ति ने आनंद और परमानंद के लिए गीत गाए, पहले छंद को दोहराया:

कुछ लोग बीज बोते हैं और कुछ लोग हल चलाते हैं।
कड़ी मेहनत से जीवन यापन करना;
मेरे राज्य में उनका कोई हिस्सा नहीं है:
भारत? यह तो कहीं बेहतर है!
छोटे से द्वीप की खोज कर रहे खोजकर्ताओं ने उसके गाने की आवाज़ सुनी और कहा, "लगता है किसी इंसान की आवाज़ है; चलो उससे जान-पहचान करते हैं।" आवाज़ का पीछा करते हुए वे उस आदमी के पास पहुँचे, लेकिन उसका चेहरा देखकर वे डर गए। "यह तो जिन्न है!" वे चिल्लाए और धनुष पर तीर चढ़ा लिया। जब उस आदमी ने उन्हें देखा, तो उसे घायल होने का डर सताने लगा, इसलिए वह चिल्लाया—"मैं जिन्न नहीं हूँ, सज्जनों, बल्कि एक इंसान हूँ: मेरी जान बख्श दो!"—"क्या!" वे बोले, "क्या इंसान तुम्हारी तरह नंगे और निहत्थे घूमते हैं?" और बार-बार उससे यही पूछते रहे, लेकिन उन्हें वही जवाब मिला कि वह एक इंसान है। आखिरकार वे उसके पास पहुँचे और सब आपस में मजे से बातें करने लगे। नए आए लोगों ने पूछा कि वह यहाँ कैसे आया। दूसरे ने उन्हें सच बताया। "तुम्हारे अच्छे कर्मों के फल के रूप में तुम यहाँ आए हो," उसने कहा, "यह एक बेहतरीन द्वीप है। यहाँ जीवनयापन के लिए हाथ से काम करने की कोई ज़रूरत नहीं है; चावल, गन्ना और बाकी सब कुछ यहाँ भरपूर मात्रा में उगता है, और सब कुछ जंगली है; तुम यहाँ निश्चिंत होकर रह सकते हो।" "क्या यहाँ रहने में कोई और बाधा नहीं है?" उन्होंने पूछा, "डरने की कोई बात नहीं है सिवाय इसके कि यह द्वीप राक्षसों से भरा हुआ है, और राक्षस तुम्हारे मल-मूत्र को देखकर क्रोधित हो जाएँगे; इसलिए जब तुम शौच करो, तो रेत में एक गड्ढा खोदकर उसे वहाँ छिपा देना। बस यही एक खतरा है; और कोई नहीं; बस इस बात का हमेशा ध्यान रखना।"

फिर वे उस स्थान पर रहने लगे।

लेकिन इन हजार परिवारों में दो कुशल कारीगर थे, प्रत्येक पांच सौ परिवारों में से एक का मुखिया था; और इनमें से एक मूर्ख और सर्वोत्तम भोजन का लालची था, जबकि दूसरा बुद्धिमान था और हर चीज में सर्वश्रेष्ठ पाने के लिए उत्सुक नहीं था।

समय बीतने के साथ-साथ, जब वे वहाँ रहने लगे, तो वे सब हट्टे-कट्टे और तगड़े हो गए। तब उन्होंने सोचा, "इतने लंबे समय से हमने मौज-मस्ती नहीं की है: चलो गन्ने के रस से ताड़ी बनाते हैं।" तो उन्होंने तेज़ शराब बनवाई और नशे में चूर होकर गाने, नाचने, खेलने-कूदने लगे, फिर लापरवाही से इधर-उधर और बिना छुपाए पेशाब करने लगे, जिससे द्वीप गंदा और घिनौना हो गया। देवता क्रोधित हो गए क्योंकि इन लोगों ने उनके खेल के मैदान को गंदा कर दिया था। उन्होंने विचार किया, "क्या हम समुद्र को इस पर लाकर द्वीप को शुद्ध कर दें? - यह अंधकारमय पखवाड़ा है: अब हमारा जमावड़ा टूट गया है। ठीक है, आज से पंद्रहवें दिन, पूर्णिमा के पहले दिन, चंद्रमा के उदय के समय, हम समुद्र को लाकर इन सबको खत्म कर देंगे।" इस प्रकार उन्होंने दिन तय किया। इस पर उनमें से एक धर्मात्मा देवता ने सोचा, "मैं नहीं चाहता कि ये सब मेरी आँखों के सामने नष्ट हो जाएँ।" अत: करुणावश, जब वे लोग शाम के भोजन के बाद अपने दरवाजों पर बैठकर सुखद बातें कर रहे थे, तब उन्होंने पूरे द्वीप को प्रकाश से जगमगा दिया, और समस्त वैभव से सुशोभित होकर उत्तर दिशा की ओर हवा में स्थिर रहे, और उनसे इस प्रकार कहा: "हे बढ़ई! देवता तुमसे क्रोधित हैं। इस स्थान पर अब और मत रहो, क्योंकि आधे महीने बाद देवता समुद्र को उफान पर लाएंगे और तुम सबको नष्ट कर देंगे। इसलिए इस स्थान से भाग जाओ।" और उन्होंने दूसरा श्लोक दोहराया:

"तीन बार पांच दिनों में चंद्रमा दिखाई देगा:
फिर समुद्र से एक भयंकर बाढ़ आने वाली है
इस विशाल द्वीप को अपने वश में करने के लिए: तो जल्दी करो,
कहीं और शरण लो, ताकि तुम्हें कोई हानि न हो।
यह सलाह देकर वह अपने स्थान पर लौट गया। उसके जाने पर, उसका एक और साथी, एक क्रूर देवता, सोचने लगा, "शायद वे उसकी सलाह मानकर भाग जाएँगे; मैं उन्हें जाने से रोकूँगा और उन सबको पूरी तरह नष्ट कर दूँगा।" दिव्य वैभव से सुशोभित होकर, उसने पूरे स्थान पर प्रकाश की एक प्रचंड ज्वाला उत्पन्न की और उनके पास आकर दक्षिण की ओर हवा में स्थिर हो गया, और पूछा, "क्या यहाँ कोई देवता (देवदूत) आया था?" "हाँ," उत्तर मिला। "उसने तुम्हें क्या बताया?" उन्होंने उत्तर दिया, "यह और यह, मेरे स्वामी।" तब उसने कहा, "यह देवता नहीं चाहता कि तुम यहाँ रहो, और क्रोधित होकर बोल रहा है। कहीं और मत जाओ, यहीं रहो।" और इन शब्दों के साथ, उसने दो छंद दोहराए:

मुझे अनेक संकेतों से यह स्पष्ट हो गया है,
उस विशाल समुद्री बाढ़ के बारे में जो तुम सुनते हो
क्या यह महान द्वीप कभी डूब नहीं पाएगा?
तो फिर आनंद लो, शोक मत करो, कभी डरो मत।
"यहाँ आपको एक विशाल आवास मिल गया है,"

खाने-पीने और भोजन की सभी वस्तुओं से परिपूर्ण;
मुझे आपके लिए कोई खतरा नहीं दिखता: आइए, आनंद लीजिए
यह भलाई आपकी सभी पीढ़ियों के लिए अच्छी रहे।"
इस प्रकार इन दो छंदों में उनकी चिंता दूर करने का प्रस्ताव देकर वह चला गया। उसके जाने के बाद, मूर्ख बढ़ई ने ऊँची आवाज़ में, धर्मात्मा देवता के वचन की परवाह न करते हुए, चिल्लाकर कहा, "हे प्रभु, मेरी बात सुनो!" और पाँचवें छंद में सभी बढ़इयों को संबोधित किया:

"वह देवता, जो दक्षिणी दिशा से स्पष्ट है

वह पुकारता है, सब सुरक्षित हैं! हम उससे ही सत्य सुनते हैं;
डरो या न डरो, उत्तर को कुछ नहीं पता:
तो फिर शोक क्यों करें? आनंद लें—कभी डरें नहीं!
उसकी बात सुनकर, अच्छी चीजों के लालची पाँच सौ बढ़ई मूर्ख बढ़ई की सलाह मानने को तैयार हो गए। लेकिन तब बुद्धिमान बढ़ई ने उसकी बात सुनने से इनकार कर दिया और बढ़इयों को संबोधित करते हुए चार छंद दोहराए:

"जब ये दोनों राक्षस एक-दूसरे के खिलाफ रोते हैं,
एक भय का आह्वान करता है, और दूसरा सुरक्षा का।
मेरी सलाह सुनो, अन्यथा जल्द ही हालात बेकाबू हो जाएंगे।
तुम सब मिलकर पूरी तरह से नष्ट हो जाओगे।
आइए हम सब मिलकर एक विशाल नौका का निर्माण करें।
एक मजबूत पात्र लाओ, और उसे इस नाव के भीतर रखो।
सभी फिटिंग: अगर इस दक्षिणी व्यक्ति ने सच कहा,
और दूसरे ने कहा, लेकिन गलत काम, गलत बात है।
"यह पात्र हमारे लिए आवश्यकता के समय उपयोगी साबित होगा।"
और न ही हम इस द्वीप को असंयमित छोड़ेंगे;
लेकिन अगर उत्तरी देवता ने सच कहा हो,
दक्षिण की ओर से तो केवल मूर्खता ही प्रस्तुत की गई—
फिर हम सब एक साथ जहाज में सवार हो जाते हैं।
और जहां हमारी सुरक्षा है, वहीं सब हमें दौड़ाते हैं।
"जो बात आप पहली बार सुनते हैं, उसे अच्छा या बुरा न मानें;
लेकिन जो कोई भी सब कुछ कान के भीतर से गुजरने देता है,
और फिर विचार-विमर्श में औसत निकाला जाता है।
वह व्यक्ति सबसे सुरक्षित आश्रय की ओर मार्ग प्रशस्त करेगा।
इसके बाद उसने फिर कहा: "चलो, अब हम दोनों देवताओं की बात मानें। चलो एक जहाज़ बनाएँ, और अगर पहले देवता की बात सच हुई, तो हम उस जहाज़ में चढ़कर चले जाएँगे; लेकिन अगर दूसरे देवता की बात सच हुई, तो हम जहाज़ को एक तरफ़ रख देंगे और यहीं बस जाएँगे।" जब उसने ऐसा कहा, तो मूर्ख बढ़ई बोला: "अरे! तुम तो चाय के प्याले में मगरमच्छ देख रहे हो! तुम बहुत ही सुस्त हो! पहले देवता ने क्रोध में हमसे बात की, दूसरे ने स्नेह में। अगर हम इस सबसे सुंदर द्वीप को छोड़ दें, तो कहाँ जाएँगे? लेकिन अगर तुम्हें जाना ही है, तो अपनी पूंछ साथ ले जाओ और अपना जहाज़ बना लो: हमें जहाज़ की ज़रूरत नहीं है!"

बुद्धिमान व्यक्ति और उसके साथियों ने एक जहाज़ बनाया, उस पर सभी साज-सामान लाद दिए और वह और उसके सभी साथी जहाज़ में खड़े हो गए। फिर पूर्णिमा के दिन, चंद्रमा उदय होते ही, समुद्र में एक लहर उठी और घुटनों तक गहरी होकर पूरे द्वीप को अपनी चपेट में ले ली। बुद्धिमान व्यक्ति ने लहर को उठते हुए देखकर जहाज़ को समुद्र में छोड़ दिया। मूर्ख बढ़ई के दल के पाँच सौ परिवार चुपचाप बैठे रहे और आपस में कहने लगे, "एक लहर उठी है, जो द्वीप को बहा ले जाएगी, लेकिन यह इससे ज़्यादा गहरी नहीं होगी।" फिर समुद्र की लहर कमर तक गहरी, मनुष्य के बराबर, एक ताड़ के पेड़ जितनी, सात ताड़ के पेड़ों जितनी गहरी उठी और पूरे द्वीप को अपनी चपेट में ले ली। बुद्धिमान व्यक्ति, जो संसाधनों से भरपूर था और अच्छी चीजों के लालच में नहीं फंसा था, सुरक्षित निकल गया; लेकिन मूर्ख बढ़ई, जो अच्छी चीजों का लालची था और भविष्य के भय की परवाह नहीं करता था, अपने पाँच सौ परिवारों के साथ नष्ट हो गया।

अन्य तीन श्लोक, जो इस विषय को स्पष्ट करने वाले उपदेशों से परिपूर्ण हैं, पूर्ण ज्ञान के श्लोक हैं:

जैसे कि मध्य सागर में, उनके कर्मों के द्वारा,
   व्यापारी खुशी-खुशी वहां से भाग निकले:
इसलिए बुद्धिमान लोग, छिपी हुई बातों को समझ लेते हैं।
   भविष्य में कोई भी उल्लंघन नहीं करेगा।
"अपने कुकर्मों में मूर्ख, लालच में डूबे हुए"
   जो भविष्य के खतरों को नहीं समझते,
वर्तमान आवश्यकता के सामने सिंक पूरी तरह से अभिभूत है।
   जैसे ही ये लोग समुद्र के बीचोंबीच अपनी अंतिम यात्रा पर पहुंचे।
"जरूरत पड़ने से पहले ही काम पूरा कर लो।"
   मुझे आवश्यक वस्तु की कमी से वंचित न होने दें।
जो समय रहते आवश्यक कार्य करते हैं
   समय आने पर कभी भी कष्ट में न पड़ें।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: “हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है, बल्कि पहले भी कई बार देवदत्त वर्तमान सुखों के जाल में फँसकर अपने सभी साथियों सहित विनाश की ओर अग्रसर हुआ है।” ऐसा कहते हुए उन्होंने जन्म का वर्णन किया: “उस समय देवदत्त मूर्ख बढ़ई था, कोकालिका दक्षिण क्षेत्र में विराजमान अधर्मी देवता थी, सारिपुत्र उत्तर क्षेत्र में विराजमान देवता था, और मैं स्वयं बुद्धिमान बढ़ई था।”

फुटनोट:

(1)सारिपुत्र और मोग्गल्याना.

(2) देवदत्त बुद्ध के चचेरे भाई थे।

(3) तलवार, भाला, धनुष, ढाल, कुल्हाड़ी।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **काम-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-467-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 467
कामजातक (*1)

"जो इच्छा करता है," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ब्राह्मण के बारे में सुनाई थी।

कहते हैं कि श्रावस्ती नगर में रहने वाला एक ब्राह्मण अचिरवती (राप्ती नदी) के किनारे खेती करने के लिए पेड़ काट रहा था। गुरु ने उसका भाग्य भांपते हुए (*2) जब भिक्षा मांगने श्रावस्ती नगर आए, तो वे अपने रास्ते से हटकर उससे मधुरता से बातें करने लगे। उन्होंने पूछा, "क्या कर रहे हो, ब्राह्मण?" उस व्यक्ति ने कहा, "हे गौतम (बुद्ध), मैं खेती के लिए जगह साफ कर रहा हूँ।" गुरु ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा, अपना काम जारी रखो, ब्राह्मण।" इसी तरह गुरु उससे तब भी बात करने आए जब सारे कटे हुए पेड़ हटा दिए गए थे और वह अपनी ज़मीन साफ कर रहा था, और फिर जुताई के समय और पानी के लिए छोटे-छोटे मेड़ बनाते समय भी। बुवाई के दिन ब्राह्मण ने कहा, “हे गौतम (बुद्ध) आज मेरा हल चलाने का पर्व है (*3)। जब यह फसल पक जाएगी, तो मैं बुद्ध के नेतृत्व में संघ को भरपूर दान दूंगा।” गुरु ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और चले गए। एक और दिन वे आए और ब्राह्मण को फसल की देखभाल करते देखा। उन्होंने पूछा, “क्या कर रहे हो, ब्राह्मण?” ब्राह्मण ने कहा, “फसल की देखभाल कर रहा हूँ, हे गौतम (बुद्ध)!” गुरु ने कहा, “बहुत अच्छा, ब्राह्मण,” और वे चले गए। तब ब्राह्मण ने सोचा, “तपस्वी गौतम (बुद्ध) कितनी बार इस रास्ते से आते हैं! निःसंदेह उन्हें भोजन की आवश्यकता होगी। ठीक है, मैं उन्हें भोजन दूंगा।” जिस दिन यह विचार उनके मन में आया, जब वे घर गए, तो उन्होंने गुरु को भी वहाँ पाया। इससे ब्राह्मण के मन में अद्भुत आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ।

कुछ समय बाद, जब फसल पक गई, तो ब्राह्मण ने कल खेत काटने का निश्चय किया। लेकिन जब वह बिस्तर पर लेटा था, अचिरवती नदी के ऊपरी इलाकों में मूसलाधार बारिश हुई: बाढ़ आई और सारी फसल को समुद्र में बहा ले गई, एक भी पौधा नहीं बचा। जब बाढ़ थम गई और ब्राह्मण ने अपनी फसलों का विनाश देखा, तो वह खड़ा नहीं रह सका: गहरे दुःख से व्याकुल होकर उसने अपना हाथ अपने हृदय पर रखा और रोते हुए घर गया और मातम मनाने लगा। सुबह गुरु ने ब्राह्मण को दुःख से व्याकुल देखा और सोचा, "मैं इस ब्राह्मण का सहारा बनूंगा।" इसलिए अगले दिन, श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन ग्रहण करके लौटने पर उन्होंने भिक्षुओं को उनके मठ में वापस भेज दिया और स्वयं अपने सहायक भिक्षु के साथ उस व्यक्ति के घर गए। जब ब्राह्मण ने उनके आने की सूचना सुनी, तो उसे यह सोचकर तसल्ली हुई कि "मेरा मित्र अवश्य ही आपसे प्रेम निवेदन करने आया होगा।" उन्होंने उसे बैठने के लिए कहा; गुरुजी अंदर आए और बताए गए आसन पर बैठ गए और पूछा, "हे ब्राह्मण, तुम उदास क्यों हो? क्या हुआ है जिससे तुम दुखी हो?" "हे गौतम (बुद्ध)!" उस व्यक्ति ने कहा, "जब से मैंने अचिरावती नदी के किनारे पेड़ काटे हैं, आप जानते हैं कि मैं क्या कर रहा हूँ। मैं घूम-घूम कर आपको फसल पकने पर उपहार देने का वादा कर रहा था: अब बाढ़ सारी फसल बहाकर समुद्र में ले गई है, कुछ भी नहीं बचा! सौ बैलगाड़ियों के बराबर अनाज नष्ट हो गया है, इसलिए मैं बहुत दुखी हूँ!" - "क्यों, क्या शोक करने से जो खो गया है वह वापस आ जाएगा?" - "नहीं, गौतम (बुद्ध), ऐसा नहीं होगा।" - "यदि ऐसा है, तो शोक क्यों? इस संसार में प्राणियों का धन, या उनका अनाज, जब उनके पास होता है, तब तक उनके पास होता है, और जब वह चला जाता है, तो चला जाता है। कोई भी सांसारिक वस्तु विनाश के अधीन नहीं है; इसके बारे में मत सोचो।" इस प्रकार उन्हें सांत्वना देते हुए, गुरु ने उनकी स्थिति के अनुसार काम शास्त्र (*4) का पाठ दोहराया। काम शास्त्र के समापन पर, शोकग्रस्त ब्राह्मण प्रथम मार्ग के फल (सम्मोहन) की अवस्था में स्थापित हो गया। गुरु ने उनका दर्द दूर करके, अपनी सीट से उठकर मठ लौट गए।

पूरे नगर में यह बात फैल गई कि गुरु ने एक ब्राह्मण को दुःख से व्याकुल पाया, उसे सांत्वना दी और उसे प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित किया। भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा की: “सुनो, महोदय! दशबल (बुद्ध) ने एक ब्राह्मण से मित्रता की, उससे घनिष्ठ संबंध स्थापित किया, दुःख से व्याकुल होने पर उसे धर्म का उपदेश दिया, उसकी पीड़ा दूर की और उसे प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित किया!” गुरु अंदर आए और पूछा, “भाइयों, आप सब यहाँ बैठे हैं, किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने उत्तर दिया, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है जब मैंने उसके दुःख को दूर किया है, बल्कि मैंने यही कार्य बहुत समय पहले भी किया था।” और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस के राजा ब्रह्मदत्त के दो पुत्र थे। उन्होंने बड़े पुत्र को उपसभापति बनाया और छोटे पुत्र को सेनापति नियुक्त किया। बाद में जब ब्रह्मदत्त की मृत्यु हो गई, तो दरबारी बड़े पुत्र को औपचारिक जल छिड़काव द्वारा राजा बनाना चाहते थे। लेकिन उन्होंने कहा, "मुझे राज्य की कोई परवाह नहीं है: मेरे छोटे भाई को ही राज्य मिले।" उन्होंने उनसे बहुत विनती की, लेकिन वे नहीं माने; और छोटे पुत्र को राजा नियुक्त किया गया। बड़े पुत्र को उपसभापति पद या ऐसी किसी भी चीज़ की परवाह नहीं थी; और जब उन्होंने उनसे कहा कि वे यहीं रहें और राज्य की समृद्धि का आनंद लें, तो उन्होंने कहा, "नहीं," "मुझे इस शहर में कोई काम नहीं है," और वे बनारस छोड़कर चले गए। वे सीमावर्ती क्षेत्र में गए; और एक धनी व्यापारी के परिवार के साथ रहने लगे, और अपने हाथों से काम करने लगे। कुछ समय बाद, जब उन्हें पता चला कि वे राजा के पुत्र हैं, तो उन्होंने उन्हें काम करने की अनुमति नहीं दी, बल्कि एक राजकुमार की तरह उनकी सेवा करने लगे।

कुछ समय बाद राजा के अधिकारी खेतों का सर्वेक्षण करने के लिए उस गाँव में आए। तब व्यापारी राजकुमार के पास आया और बोला, “महाराज, हम आपका समर्थन करते हैं; क्या आप अपने छोटे भाई को पत्र भेजकर हमारे कर माफ करवा देंगे?” राजा मान गया और उसने इस प्रकार लिखा: “मैं एक व्यापारी के परिवार के साथ रह रहा हूँ; मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरे लिए उनके कर माफ कर दें।” राजा मान गया और उसने कर माफ कर दिया। इसके बाद सभी गाँववाले और आसपास के लोग उसके पास आए और बोले, “हमारे कर माफ करवा दीजिए, हम आपको कर देंगे।” उनके लिए भी उसने याचिका भेजी और कर माफ करवा दिए। इसके बाद लोग उसे कर देने लगे। तब उसकी आमदनी और मान-सम्मान बहुत बढ़ गया; और इस वृद्धि के साथ-साथ उसकी सत्ता हथियाने की इच्छा भी बढ़ती गई। धीरे-धीरे उसने पूरे जिले पर अधिकार माँग लिया, उसने वायसराय का पद माँगा, और छोटे भाई ने उसे सब कुछ दे दिया। फिर जैसे-जैसे उसका लालच बढ़ता गया, वह वायसराय के पद से भी संतुष्ट नहीं हुआ और उसने राज्य पर कब्जा करने का निश्चय कर लिया; इसी उद्देश्य से वह लोगों की एक सेना लेकर निकला और शहर के बाहर एक स्थान ग्रहण करके अपने छोटे भाई को एक पत्र भेजा— "मुझे राज्य दे दो, या इसके लिए लड़ो।"

छोटे भाई ने सोचा, "इस मूर्ख ने एक बार राज्य, उपसराय पद और सब कुछ ठुकरा दिया था; और अब कहता है, मैं इसे युद्ध से प्राप्त करूँगा! अगर मैं इसे युद्ध में मार डालूँ, तो यह मेरी शर्म होगी; मुझे राजा होने की क्या परवाह?" इसलिए उसने संदेश भेजा, "मुझे लड़ने की कोई इच्छा नहीं है: आप राज्य ले सकते हैं।" दूसरे ने इसे स्वीकार कर लिया और अपने छोटे भाई को उपसराय बना दिया।

तब से उसने राज्य पर शासन किया। परन्तु वह इतना लालची था कि एक राज्य से उसका मन नहीं भरा, वह दो राज्यों की लालसा करने लगा, फिर तीन की, और उसकी लालसा का कोई अंत नहीं था।

उस समय देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) ने चारों ओर देखा: "ये कौन हैं जो अपने माता-पिता की देखभाल करते हैं? जो दान देते हैं और अच्छे काम करते हैं? जो लोभ के वश में हैं?" उन्होंने देखा कि यह व्यक्ति लोभ के वश में है: "मूर्ख," उन्होंने सोचा, "बनारस का राजा बनकर संतुष्ट नहीं है। चलो, मैं इसे सबक सिखाऊंगा।" अतः एक युवा ब्राह्मण का वेश धारण करके वे महल के द्वार पर खड़े हो गए और संदेश भेजा कि द्वार पर एक चतुर युवक खड़ा है। उसे अंदर आने दिया गया और उसने राजा को विजय की शुभकामनाएं दीं; तब राजा ने पूछा, "तुम क्यों आए हो?" "महाराज!" उसने उत्तर दिया, "मुझे आपसे कुछ कहना है, लेकिन मुझे एकांत चाहिए।" सक्का (इंद्र) की शक्ति से उसी क्षण लोग अंदर चले गए। तब उस युवक ने कहा, "हे महाराज! मैं तीन नगरों को जानता हूँ, जो समृद्ध हैं, जन-जनता से भरे हैं, और सेना एवं अश्वों से परिपूर्ण हैं। मैं अपनी शक्ति से इन नगरों का आधिपत्य प्राप्त करूँगा और आपको सौंप दूँगा। परन्तु आपको विलंब नहीं करना चाहिए, शीघ्र जाना चाहिए।" राजा, जो अधिकार की लालसा से परिपूर्ण था, ने अपनी सहमति दे दी। (परन्तु सक्का (इंद्र) की शक्ति से वह यह पूछने से विवश था, "तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? और तुम्हें क्या मिलेगा?") सक्का (इंद्र) ने इतना कहा और तैंतीस के निवास पर लौट गया।

तब राजा ने अपने दरबारियों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा:

"एक युवक यहाँ आया था, जिसने तीन राज्यों पर कब्ज़ा करके मुझे उनका आधिपत्य दिलाने का वादा किया था! जाओ, उसे ढूँढ़ो! शहर में ढोल बजवाओ, सेना इकट्ठा करो, देर मत करो, क्योंकि मैं तीन राज्यों पर कब्ज़ा करने ही वाला हूँ!" "हे महान राजा!" उन्होंने कहा, "क्या आपने उस युवक का आतिथ्य सत्कार किया था, या आपने उससे पता पूछा था?" "नहीं, नहीं, मैंने उसका आतिथ्य सत्कार नहीं किया, मैंने उससे पता नहीं पूछा: जाओ, और उसे ढूँढ़ो!" उन्होंने ढूँढ़ा, लेकिन वह नहीं मिला; उन्होंने राजा को बताया कि वे पूरे शहर में उस युवक को नहीं ढूँढ़ पाए। यह सुनकर राजा उदास हो गया। "तीन शहरों का आधिपत्य खो गया," वह बार-बार सोचने लगा: "मेरी महान महिमा छिन गई। निस्संदेह वह युवक मुझसे नाराज़ होकर चला गया होगा, क्योंकि मैंने उसे उसके खर्चों के लिए पैसे नहीं दिए, न ही रहने के लिए जगह दी।" फिर उसके शरीर में, लालच से भरा हुआ, एक जलन उठी; जैसे-जैसे शरीर जलता गया, उसकी आंतें खूनी दस्त से भर गईं; जैसे भोजन अंदर जाता था, वैसे ही बाहर आ जाता था; चिकित्सक उनका इलाज नहीं कर सके, राजा बहुत कमजोर हो गए थे। उनकी बीमारी की खबर पूरे शहर में फैल गई थी।

उस समय बोधिसत्व तक्षशिला से सभी विद्याओं में निपुण होकर बनारस में अपने माता-पिता के पास लौट आए थे। राजा के बारे में खबर सुनकर वे उनका इलाज करने के इरादे से महल के द्वार पर पहुँचे और संदेश भेजा कि एक युवक राजा का इलाज करने के लिए तैयार है। राजा ने कहा, "दूर-दूर तक प्रसिद्ध और विख्यात चिकित्सक भी मेरा इलाज नहीं कर पा रहे हैं: तो एक युवक क्या कर सकता है? उसका खर्च चुका दीजिए और उसे जाने दीजिए।" युवक ने उत्तर दिया, "मैं अपने इलाज के लिए कोई शुल्क नहीं लेता, मैं उनका इलाज करूँगा; वे केवल मुझे मेरी दवा का शुल्क दें।" यह सुनकर राजा मान गए और उन्होंने युवक को अंदर आने दिया। युवक ने राजा को प्रणाम करते हुए कहा, "हे राजा, भयभीत न हों! मैं आपका इलाज करूँगा; बस मुझे अपनी बीमारी का कारण बता दीजिए।" राजा ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, "तुम्हें इससे क्या लेना-देना? अपनी दवा बनाइए।" "हे महाराज," उसने कहा, "चिकित्सकों का यही तरीका होता है कि वे पहले रोग के स्रोत का पता लगाते हैं, फिर उसके अनुसार उपचार करते हैं।" "अच्छा, अच्छा, मेरे पुत्र," राजा ने कहा और फिर रोग की उत्पत्ति बताने लगे, जहाँ से वह युवक आया था और उसने वादा किया था कि वह उसे तीन नगरों का आधिपत्य सौंप देगा। "इस प्रकार, मेरे पुत्र, यह रोग लालच से उत्पन्न हुआ है; अब यदि तुम कर सको तो इसका उपचार करो।" "क्या, हे महाराज!" उसने कहा, "क्या आप शोक करके उन नगरों पर कब्जा कर सकते हैं?" — "नहीं, मेरे पुत्र।" — "यदि ऐसा है, तो शोक क्यों करें, हे महाराज? प्रत्येक सजीव या निर्जीव वस्तु का नश्वर अस्तित्व है और वह अपने पीछे सब कुछ छोड़ जाती है, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी। यदि आप चार नगरों पर शासन प्राप्त कर भी लें, तो भी आप एक ही समय में चार थाली भोजन नहीं कर सकते, चार पलंगों पर नहीं लेट सकते, चार वस्त्र नहीं पहन सकते। आपको कामवासना का दास नहीं बनना चाहिए; क्योंकि कामवासना जब बढ़ जाती है, तो वह चारों प्रकार के कष्टों से मुक्ति नहीं दिलाती।" इस प्रकार उसे उपदेश देने के बाद, उस महान सत्ता ने निम्नलिखित श्लोकों में विधि का वर्णन किया:

जो किसी वस्तु की इच्छा करता है, और फिर उसकी इच्छा की पूर्ति से प्रसन्न होता है,
वह निश्चित रूप से प्रसन्न हृदय वाला व्यक्ति है, क्योंकि उसकी इच्छा अब पूरी हो चुकी है। (*5)
जो किसी वस्तु की इच्छा करता है, और फिर उसकी इच्छा की पूर्ति से प्रसन्न होता है,
उस पर इच्छाएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जाती हैं, जैसे भीषण गर्मी में प्यास उसे सताती है।
"जैसे सींग वाली गायों में, उनके सींग बढ़ने के साथ-साथ बड़े होते जाते हैं:
अतः, एक मूर्ख और अविवेकी व्यक्ति में, जिसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता,

जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता जाता है, उसकी प्यास और लालसा बढ़ती जाती है।
"धरती पर मौजूद सारे चावल और अनाज, दास, गाय और घोड़े सब कुछ दे दो।"
इतना ही काफी नहीं है कि एक व्यक्ति यह जान ले और सही मार्ग पर चलता रहे।
"एक ऐसा राजा जो पूरी दुनिया को अपने अधीन कर ले,"
समुद्र तक फैली पूरी दुनिया,
समुद्र के इस हिस्से से असंतुष्टि के साथ
समुद्र के उस पार जो कुछ भी मिल सकता है, उसकी लालसा रहेगी।
"मन की इच्छाओं में लिप्त रहो—संतोष कभी प्राप्त नहीं होगा।"
जो इन सब से मुंह मोड़ लेता है, और सच्चे इलाज को पहचान लेता है,
वह व्यक्ति संतुष्ट रहता है, जिसे ज्ञान से तृप्ति मिलती है।
"ज्ञान से परिपूर्ण रहना ही सर्वोत्तम है: इसे कोई वासना प्रज्वलित नहीं कर सकती।"
ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति कभी भी इच्छाओं का गुलाम नहीं होता।
अपनी इच्छाओं को कुचल दो, और कम ही चाहो, सब कुछ पाने के लिए लालची मत बनो।
जो सागर के समान है, उसके भीतर इच्छाओं की आग नहीं भड़कती।
लेकिन एक मोची की तरह, वह जूते को चमड़ी के अनुसार काटता है।
"प्रत्येक इच्छा को त्यागने से सुख प्राप्त होता है।"
जो व्यक्ति सभी सुखों को प्राप्त करना चाहता है, उसे सभी वासनाओं का त्याग करना होगा।
लेकिन जब बोधिसत्व इन श्लोकों को दोहरा रहे थे, उनका मन राजा के सफेद धूपदान पर केंद्रित था, तभी उनमें श्वेत प्रकाश से प्राप्त रहस्यमय परमानंद की अनुभूति हुई (*6)। राजा भी पूर्णतः स्वस्थ हो गए; वे प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और उन्हें इस प्रकार संबोधित किया: "जब सभी चिकित्सक मुझे ठीक नहीं कर सके, तब एक बुद्धिमान युवक ने अपने ज्ञान के औषधि से मुझे पूर्ण कर दिया!" और फिर उन्होंने दसवाँ श्लोक दोहराया:

"तुमने आठ श्लोक कहे हैं, जिनमें से प्रत्येक हजार टुकड़ों के बराबर है:
हे महान ब्राह्मण! इस सार को ग्रहण करो, क्योंकि तुम्हारी यह वाणी मधुर है।
इस पर उस महान सत्ता ने ग्यारहवीं बात दोहराई:

"हजारों, सैकड़ों, लाखों बार लाखों (*7) के लिए, मुझे किसी बात की परवाह नहीं है:
जैसे ही मैंने आखिरी श्लोक बोला, मेरे दिल की इच्छा मर गई।
और भी अधिक प्रसन्न होकर, राजा ने महान सत्ता की स्तुति में अंतिम श्लोक का पाठ किया:

"यह युवक वास्तव में बुद्धिमान और नेक है, जो समस्त लोकों का ज्ञान रखता है।"
वास्तव में, सभी इच्छाएँ अपने प्रकटीकरण से दुख की जननी होती हैं।
“महाराज!” बोधिसत्व ने कहा, “सावधान रहें और धर्म के मार्ग पर चलें।” राजा को इस प्रकार संबोधित करते हुए वे वायुमार्ग से हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए और अपने जीवनकाल में एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए श्रेष्ठ गुणों का विकास किया और ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियत हो गए।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पूर्वकाल में भी, और अब भी, मैंने इस ब्राह्मण को पूर्ण बनाया था।" ऐसा कहते हुए उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय यह ब्राह्मण राजा था, और मैं ज्ञानी युवक था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 228 देखें

(2)अर्थात आध्यात्मिक जीवन में उसकी क्षमता।

(3) इस प्रकार का एक बड़ा वार्षिक समारोह होता था, जिसमें राजा हल चलाते थे।

(4) कामसुत्तम: सुत्त-निपाता में, चतुर्थ। मैं।

(5)सुट्टा-निपाता, IV. 1 श्लोक 766.

(6) यह कसीना के दस प्रकारों में से एक है, या वह तरीका है जिससे भक्त रहस्यमय समाधि में गिर सकता है।

(7) संख्या नहुतम 1 के बाद 28 अंक है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जनसंध-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-468-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 468
जनसन्ध जातक

"इस प्रकार कहा गया," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा को शिक्षा देने के लिए सुनाई थी।

कहते हैं कि एक समय राजा सत्ता के नशे में चूर और पाप के सुखों में लिप्त होकर न्याय न्यायालय नहीं लगाता था और बुद्ध की सेवा में भी लापरवाही बरतता था। एक दिन उसे दशाबल (बुद्ध) की याद आई; उसने सोचा, "मुझे उनसे मिलना ही चाहिए।" इसलिए उपवास तोड़ने के बाद वह अपने भव्य रथ पर सवार हुआ और मठ जाकर उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया। बोधिसत्व ने पूछा, "हे महाराज, आपने इतने लंबे समय तक दर्शन क्यों नहीं दिए?" राजा ने उत्तर दिया, "जी, मैं इतना व्यस्त था कि आपसे मिलने का अवसर ही नहीं मिला।" “महाराज,” उन्होंने कहा, “मुझ जैसे, जो सलाह दे सकते हैं, परम बुद्धों जैसे, जो सामने एक मठ में निवास करते हैं, उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। एक राजा को अपने सभी राजसी कर्तव्यों का पालन करते हुए, अपनी प्रजा के प्रति माता-पिता के समान श्रद्धा रखते हुए, सभी बुरे मार्गों का त्याग करते हुए, राजा के दस गुणों का निरंतर पालन करना चाहिए। जब राजा धर्मपरायण होता है, तो उसके आसपास के लोग भी धर्मपरायण होते हैं। वास्तव में, यदि आप मेरे मार्गदर्शन में धर्मपरायणता से शासन करें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है; परन्तु प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने, जब उन्हें सिखाने वाला कोई गुरु नहीं था, तब भी अपने तीन वक्त के अच्छे कर्मों के अभ्यास से प्राप्त ज्ञान के बल पर, बहुत से लोगों को धर्म का उपदेश दिया और अपने सभी सेवकों सहित स्वर्गलोक गए।” इन शब्दों के साथ, उनके अनुरोध पर, गुरु ने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनकी रानी पत्नी से बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका नाम राजकुमार जनसंध रखा गया। जब वे वयस्क हुए और तक्षशिला से लौटे, जहाँ उन्होंने सभी विद्याओं की शिक्षा प्राप्त की थी, तो राजा ने सभी कैदियों को क्षमा कर दिया और उन्हें उपसभापति बना दिया। बाद में जब उनके पिता का देहांत हुआ, तो वे राजा बने और उन्होंने शहर के चारों द्वारों पर, शहर के मध्य में और राजमहल के द्वार पर छह भिक्षागृह बनवाए। वहाँ वे प्रतिदिन छह लाख सिक्के वितरित करते थे और अपने भिक्षादान से पूरे भारत को प्रेरित करते थे: उन्होंने सभी के लिए कारागारों के द्वार खोल दिए, फाँसी के स्थानों को नष्ट कर दिया, चारों प्रकार के परोपकार (*1) से पूरे विश्व की रक्षा की, पाँच सद्गुणों का पालन किया, पवित्र व्रत का पालन किया और धर्मपरायणता से शासन किया। समय-समय पर वह अपने अनुयायियों को एकत्रित करता और उन्हें धर्म की शिक्षा देता: "दान करो, सद्गुणों का पालन करो, अपने व्यवसाय और पेशे को ईमानदारी से निभाओ, जवानी में शिक्षा प्राप्त करो, धन अर्जित करो, गाँव के धोखेबाज़ या कुत्ते जैसा व्यवहार न करो, कठोर और निर्दयी न बनो, माता-पिता की देखभाल में अपना कर्तव्य निभाओ, पारिवारिक जीवन में बड़ों का आदर करो।" इस प्रकार उसने बहुत से लोगों को अच्छे जीवन का मार्ग प्रशस्त किया।

एक बार पवित्र दिन, यानी पखवाड़े की पंद्रहवीं तिथि को, पवित्र दिन मनाने का संकल्प लेकर उन्होंने मन ही मन सोचा, “मैं इन लोगों को विधि सिखाऊँगा, ताकि उनकी भलाई और आशीष निरंतर बढ़ती रहे और वे अपने जीवन में सचेत रहें।” तब उन्होंने ढोल बजवाया और अपने घर की स्त्रियों से शुरू करके नगर के सभी लोगों को इकट्ठा किया। अपने महल के प्रांगण में, रत्नों से सजे एक मंडप के नीचे, एक भव्य पलंग पर बैठकर उन्होंने इन शब्दों में विधि का उपदेश दिया: “हे नगर के लोगों! मैं तुम्हें उन प्रथाओं के बारे में सिखाऊँगा जो तुम्हें कष्ट पहुँचाएँगी और जो नहीं पहुँचाएँगी। सचेत रहो और ध्यान से सुनो।”

गुरु ने अपना मुख खोला, जो सत्य से परिपूर्ण, अनमोल मुखों में से एक था, और शहद के समान मधुर स्वर में कोसल के राजा के इस संबोधन की व्याख्या की:

राजा जनसंध ने कहा: सत्य में दस बातें हैं।
यदि कोई व्यक्ति ऐसा करने में चूक करता है, तो उसे तुरंत इसका परिणाम भुगतना पड़ता है।
समय रहते धन-संग्रह न कर पाने से हृदय व्यथित होता है;
यह सोचना अजीब है कि उसने पहले कभी धन की तलाश नहीं की, और बाद में उसे पछतावा हुआ।
"अशिक्षित पुरुषों के लिए जीवन कितना कठिन है!" वह पीड़ा में पश्चाताप करते हुए सोचता है।
वह ज्ञान, जिसका उपयोग वह अब कर सकता है, वह पहले कभी नहीं सीखता।
एक समय निंदा करने वाला, एक समय बेईमान, एक निर्दयी चुगलखोर,
मैं कितना क्रूर और कठोर था: अब मुझे इस बात पर पछताने का अच्छा कारण मिल रहा है।
मैं एक हत्यारा था, निर्दयी था, और किसी भी प्राणी को दया नहीं दिखाता था।
घृणित: इसके लिए (उसने कहा) अब मुझे बहुत दुख है।
"जब मेरी कई पत्नियां थीं (वह सोचता है) जिनके प्रति मेरा कर्तव्य था,
मैंने उन्हें किसी और की पत्नी के लिए छोड़ दिया; जिसका मुझे अब बहुत पछतावा है।
"जब खाने-पीने का पर्याप्त भंडार था, तब भी वह पीड़ा से व्याकुल था।"
यह सोचकर हैरानी होती है कि पुराने समय में उन्होंने कभी कोई उपहार नहीं दिया था।
उसे यह सोचकर दुख होता है कि जब वह कर सकता था, तब भी उसने परवाह नहीं की और ध्यान नहीं रखा।
माता-पिता, अब बूढ़े हो चुके हैं, उनकी जवानी अब समाप्त हो चुकी है। (*2)
"किसी शिक्षक, पर्यवेक्षक या पिता का अपमान करना, जो प्रयास करता हो
उसकी हर इच्छा पूरी करने से गहरा दुख होता है।
"ब्राह्मणों के साथ उपेक्षा का व्यवहार करना, अनेक तपस्वियों के साथ भी उपेक्षा का व्यवहार करना"
अतीत में पवित्र और विद्वान होने के कारण वह शीघ्र ही पश्चाताप करता है।
"संयम का पालन करना मधुर है, एक अच्छे व्यक्ति का सम्मान करना मधुर है।"
यह बताते हुए दुख हो रहा है कि उन्होंने इससे पहले ऐसा कुछ नहीं किया था।
जो इन दस बातों को बुद्धिमत्ता से पूर्ण रूप से सिद्ध करता है,
और जो सभी मनुष्यों के प्रति अपना कर्तव्य निभाता है, उसे कभी पश्चाताप करने की आवश्यकता नहीं होगी।"
इस प्रकार महीने में दो बार उस महान सत्ता ने लोगों को इसी प्रकार उपदेश दिया। और लोगों ने उनकी सलाह में दृढ़ होकर इन दस बातों का पालन किया और स्वर्ग के लिए योग्य हो गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "हे महान राजा, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने, जो अशिक्षित थे और अपनी बुद्धि से ही, धर्म की स्थापना की और स्वर्ग के मार्ग में परास्नाय स्थापित किए।" इन शब्दों के साथ उन्होंने जन्म का परिचय दिया: "उस समय बुद्ध के अनुयायी ही लोग थे, और मैं स्वयं राजा जनसंध था।"

फुटनोट:

(1) उदारता, सौहार्द, निष्पक्षता, सुशासन।

(2) सुट्टा-निपाता, 95, 124 की तुलना करें।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-कान्हा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-469-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 469

महा-कान्हा-जातक

"एक काला, काला शिकारी कुत्ता," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो संसार के कल्याण के लिए जीने के बारे में थी।

कहते हैं कि एक दिन भिक्षु (ब्रदरन) सत्य के हॉल में बैठे हुए आपस में बातचीत कर रहे थे। "महोदय," कोई कहेगा, "गुरुजी, जो सदा जनमानस के प्रति मित्रता भाव रखते हैं, उन्होंने सुखमय निवास त्याग दिया और संसार के कल्याण के लिए ही जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया है, फिर भी स्वेच्छा से भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके अठारह मील (4.23 किमी) या उससे अधिक की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। पाँच वरिष्ठों (*1) के लिए उन्होंने धर्ममार्ग का चक्र चलाया; अर्धमाह के पाँचवें दिन उन्होंने अनत्तलक्खना शास्त्रों का पाठ किया और उन सभी को संतत्व प्रदान किया; वे उरुवेला (*2) गए और जटाधारी तपस्वियों को साढ़े तीन हजार चमत्कार दिखाए और उन्हें पवित्र संघ में शामिल होने के लिए प्रेरित किया; गयासिसा (*3) में उन्होंने अग्नि पर प्रवचन दिया और एक हजार तपस्वियों को संतत्व प्रदान किया; महाकश्यप से मिलने के लिए तीन मील आगे जाने पर, तीन प्रवचनों के बाद उन्होंने उन्हें उच्चतर पवित्र आदेश दिए। शिष्यों; दोपहर के भोजन के बाद, वे अकेले ही पैंतालीस मील (x 4.23 किमी) की यात्रा पर गए, और फिर पुक्कुसा (अत्यंत उत्तम कुल के एक युवक) को तृतीय मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित किया; महाकप्पिना से मिलने के लिए वे दो हजार मील (x 4.23 किमी) आगे गए, और उन्हें संतत्व प्रदान किया; दोपहर में वे अकेले ही तीस मील (x 4.23 किमी) की यात्रा पर गए, और उस क्रूर और निर्दयी पुरुष अंगुलिमाला को संतत्व में स्थापित किया; तीस मील (x 4.23 किमी) की दूरी तय करके उन्होंने अलावक (*4) को प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित किया, और राजकुमार का उद्धार किया; तैंतीस के स्वर्ग में वे तीन महीने रहे, और आठ सौ करोड़ देवताओं को धर्म मार्ग की पूर्ण समझ प्रदान की; वे ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों) में गए, और बका ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) (*5) की झूठी शिक्षा का नाश किया, और उन्होंने दस हजार ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) को संतत्व प्रदान किया; वे प्रतिवर्ष तीन क्षेत्रों में तीर्थयात्रा करते हैं, और जो भी ग्रहणशील होते हैं, उन्हें वे शरण, सद्गुण और विभिन्न चरणों के फल प्रदान करते हैं; वे अनेक प्रकार से नागों, गरुड़ों और इसी प्रकार के अन्य जीवों के कल्याण के लिए भी कार्य करते हैं। ऐसे शब्दों में उन्होंने संसार के कल्याण के लिए दशबल (बुद्ध) के जीवन की अच्छाई और महत्व की प्रशंसा की। गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे बैठे-बैठे क्या बातें कर रहे थे? उन्होंने उन्हें बताया। "और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, भाइयों," उन्होंने कहा। "मैं जो अब अपनी पूर्ण बुद्धि से संसार के कल्याण के लिए जीना चाहता हूँ, मैंने भी अतीत में, रजोनिवृत्ति के दिनों में, संसार के कल्याण के लिए ही जीवन व्यतीत किया था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, परम बुद्ध कश्यप के समय में, उसिनारा नामक एक राजा का शासन था। परम बुद्ध कश्यप द्वारा चार सत्यों का उपदेश देने, अनेक लोगों को बंधनों से मुक्त करने और निर्वाण में निवास करने वालों की संख्या बढ़ाने के लिए स्वर्गारोहण करने के बहुत समय बाद, धम्म (मुक्ति का मार्ग) पतन की ओर अग्रसर था। भिक्षु इक्कीस कुकर्मों से अपनी जीविका कमाते थे; वे भिक्षुणियों के साथ संबंध रखते थे और उनसे पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न होती थीं; भिक्षुओं ने भिक्षु संघ के कर्तव्यों का त्याग कर दिया था, भिक्षुणियों ने भिक्षुणियों के कर्तव्यों का त्याग कर दिया था, गृहस्थ भाइयों और बहनों ने उनके कर्तव्यों का त्याग कर दिया था, ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के कर्तव्यों का पालन करना छोड़ दिया था: अधिकांश मनुष्य दस कुकर्मों के मार्गों का अनुसरण करते थे और इस प्रकार मृत्यु के समय सभी प्रकार के दुखों का अनुभव करते थे।

तब इंद्र ने देखा कि कोई नए देवता अस्तित्व में नहीं आ रहे हैं, तो उन्होंने संसार पर नजर डाली; और तब उन्हें एहसास हुआ कि मनुष्य दुख की अवस्थाओं में जन्म ले रहे हैं, और बुद्ध का धम्म (धार्मिक मार्ग) पतित हो गया है। "अब मैं क्या करूँ?" उन्होंने सोचा। "अहा, मुझे मिल गया!" उन्होंने सोचा: "मैं मानवजाति को डराऊँगा और भयभीत करूँगा; और जब मैं देखूँगा कि वे भयभीत हैं, तो मैं उन्हें सांत्वना दूँगा, मैं धार्मिक मार्ग का उपदेश दूँगा, मैं पतित हो चुके धम्म (धार्मिक मार्ग) को पुनर्जीवित करूँगा, मैं इसे और एक हजार वर्षों तक कायम रखूँगा!" इस संकल्प के साथ, उन्होंने देवता (देवदूत) मतली (*6) को एक विशाल काले कुत्ते के रूप में बनाया, जो शुद्ध नस्ल का था, जिसके केले के आकार के चार दांत थे, भयानक, विकृत आकृति और मोटा पेट था, जैसे कोई गर्भवती स्त्री हो; उसे पाँच गुना जंजीर से बाँधकर और उस पर लाल पुष्पमाला पहनाकर, उन्होंने उसे एक रस्सी से खींच कर ले गए। उसने स्वयं पीले वस्त्र धारण किए, अपने बालों को पीछे बाँधा और लाल मुकुट पहना; मूंगे के रंग की डोरी से जड़ा एक विशाल धनुष लेकर और उंगलियों में हीरा जड़ा भाला घुमाते हुए, उसने वनपाल का वेश धारण किया और नगर से एक मील (4.23 किमी) दूर एक स्थान पर उतरा। "यह संसार विनाश के लिए अभिशप्त है, विनाश के लिए अभिशप्त है!" उसने तीन बार ज़ोर से पुकारा, जिससे लोग भयभीत हो गए; और नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचकर उसने फिर से यही पुकारा। कुत्ते को देखकर लोग डर गए और नगर में भागकर राजा को सारी घटना बताई। राजा ने तुरंत नगर के द्वार बंद करवा दिए। परन्तु सक्का (इंद्र) अठारह भुजाओं जितनी ऊँची दीवार फांदकर अपने कुत्ते के साथ नगर के भीतर आ गया। लोग भयभीत होकर घरों में भाग गए और दरवाज़े बंद कर लिए। बिग ब्लैकी ने हर उस आदमी का पीछा किया जिसे उसने

देखा, उन्हें डराया और अंत में राजा के महल में प्रवेश कर गया। जो लोग डर के मारे आंगन में शरण लिए हुए थे, वे महल में भागे और दरवाजा बंद कर लिया। राजा अपने घर की महिलाओं के साथ छत पर चले गए। बिग ब्लैकी ने अपने अगले पैर उठाए और उन्हें खिड़की में रखकर एक जोरदार दहाड़ लगाई। उसकी दहाड़ की आवाज नरक से लेकर स्वर्ग तक गूंजी: पूरा ब्रह्मांड एक जोरदार दहाड़ में बदल गया। भारत में अब तक सुनी गई तीन सबसे तेज दहाड़ें ये हैं: पुन्नक जन्म में राजा पुन्नक की चीख, भूरिदत्त जन्म (*7) में नागराज सुदस्सन की चीख और महाकान्हा जन्म में यह दहाड़, या बिग ब्लैकी की कहानी। लोग भयभीत और आतंकित थे, और उनमें से कोई भी सक्का (इंद्र) से एक शब्द भी नहीं कह सका।

राजा का हौसला बढ़ा और वह खिड़की के पास जाकर इंद्र से पुकारा, “हे शिकारी! तुम्हारा कुत्ता क्यों दहाड़ रहा है?” इंद्र ने कहा, “कुत्ता भूखा है।” राजा ने कहा, “ठीक है, मैं उसे कुछ भोजन देने का आदेश देता हूँ।” इसलिए उसने उन्हें आदेश दिया कि उसे उसका अपना भोजन और उसके परिवार के सभी लोगों का भोजन दिया जाए। कुत्ते ने मानो एक ही निवाला खाया और फिर दहाड़ने लगा। राजा ने फिर पूछा। उत्तर मिला, “मेरा कुत्ता अभी भी भूखा है।” तब उसने अपने हाथियों, घोड़ों आदि का सारा भोजन मंगवाकर उसे दिया। उसने वह भी एक ही बार में चट कर लिया; फिर राजा ने शहर का सारा भोजन मंगवाया। उसने उसे भी उसी तरह निगल लिया और फिर दहाड़ने लगा। राजा ने कहा, “यह कुत्ता नहीं है। निस्संदेह यह एक जिन्न है। मैं इससे पूछूंगा कि यह किस उद्देश्य से आया है।” भय से भयभीत होकर उसने पहला श्लोक दोहराते हुए अपना प्रश्न पूछा:

"एक काला, काला शिकारी कुत्ता, पाँच डोरियों से बंधा हुआ, जिसके दाँत पूरी तरह से सफेद रंग के हैं।"
महान, भयानक—शक्तिशाली! वह यहाँ आपके साथ क्यों है?
यह सुनकर सक्का (इंद्र) ने दूसरा श्लोक दोहराया:

"काला शिकारी कुत्ता शिकार करने नहीं आया था, बल्कि वह किसी काम आएगा।"
"उसीनारा, जब मैं उसे मुक्त कर दूंगा, तब मैं पुरुषों को दंडित करूंगा।"
तब राजा ने कहा, “हे शिकारी! क्या कुत्ता सभी मनुष्यों का मांस खाएगा, या केवल तुम्हारे शत्रुओं का?” “केवल मेरे शत्रुओं का, महाराज।” “और तुम्हारे शत्रु कौन हैं?” “हे महाराज, वे जो अधर्म से प्रेम करते हैं और दुष्टता का मार्ग अपनाते हैं।” “उनका वर्णन कीजिए,” उसने पूछा। और देवताओं (देवदूतों) के राजा ने उनका वर्णन इन छंदों में किया:

"जब झूठे भिक्षु, हाथ में कटोरा लिए, एक ही वस्त्र पहने हुए, चुनाव करेंगे
मुंडा हुआ सिर, हल का अनुसरण करूंगा, फिर काले शिकारी कुत्ते को छोड़ दूंगा।
"जब मठ की ननें एक ही वस्त्र में पाई जाएँगी,
मुंडा सिर, फिर भी दुनिया के तौर-तरीकों पर चलता हुआ, मैं अपने शिकारी कुत्ते को खुला छोड़ दूंगा।
"उस समय तपस्वी, सूदखोर, ऊपरी होंठ बाहर निकालते हुए,
गंदे दांतों और मैले बालों वाला होगा—वह काला शिकारी कुत्ता जिसे मैं जाने दूंगा।
जब ब्राह्मण, जो पवित्र ग्रंथों और धार्मिक अनुष्ठानों में निपुण हों, इनका उपयोग करेंगे
धन के लिए प्राणियों की बलि देने की उनकी कुशलता के कारण, ब्लैक हाउंड को खुला छोड़ दिया जाएगा।
जिसके माता-पिता अब बूढ़े हो गए हैं, जिनकी जवानी अब समाप्त हो गई है,
हालांकि वह ऐसा कर सकता है, फिर भी मैं उसके खिलाफ शिकारी कुत्ते को भेजूंगा।
"जिसके माता-पिता अब बूढ़े हो चुके हैं, और जिनकी जवानी अब समाप्त हो चुकी है,"
वह चिल्लाता है, तुम मूर्ख हो! ऐसे लोगों के विरुद्ध मैं काले कुत्ते को भेजूंगा।
जब पुरुष किसी शिक्षक या मित्र की पत्नियों के पीछे पड़ते हैं,
पिता की बहन, चाचा की पत्नी, मैं ब्लैक हाउंड को भेजूंगा।
"जब कंधे पर ढाल, हाथ में तलवार, पूरी तरह से हथियारों से लैस होकर लुटेरों की तरह"
वे हत्या और लूटपाट करने के लिए सड़क पर उतरेंगे, तब मैं ब्लैक हाउंड को छोड़ दूंगा।
"जब विधवाओं के पुत्र, जिनकी त्वचा को सफेद रंग से संवारा गया था, कौशल में पूरी तरह से बेकार पाए गए,
बलवान होकर झगड़ा और लड़ाई होगी, तब मैं शिकारी कुत्ते को छोड़ दूंगा।
"जब दुष्ट हृदय वाले लोग, झूठे और कपटी लोग,
मैं दुनिया में इधर-उधर घूमता रहूंगा, फिर मैं ब्लैक हाउंड को छोड़ दूंगा।"
इस प्रकार कहने के बाद, उसने कहा, “हे राजा!” और उसने ऐसा दिखाया मानो वह कुत्ते को उन सभी को खा जाने के लिए छोड़ देगा जिन्होंने शत्रुओं के कर्म किए थे। परन्तु समस्त प्रजा भयभीत हो गई, इसलिए उसने कुत्ते को रस्सी से रोक लिया और मानो उसे वहीं स्थिर कर दिया हो; फिर शिकारी का वेश उतारकर, अपनी शक्ति से वह वायु में उठा और बलिष्ठा हो गया, मानो आग उगल रहा हो, और बोला: “हे महान राजा, मैं देवताओं (देवदूतों) का राजा सक्का (इंद्र) हूँ! यह देखकर कि संसार का विनाश होने वाला है, मैं यहाँ

आया हूँ। अब वास्तव में मनुष्य मरते समय दु:ख भोग रहे हैं, क्योंकि उनके कर्म बुरे हैं, और स्वर्ग निर्जन हो गया है। अब से मैं दुष्टों से निपटने का तरीका जानता हूँ, परन्तु तुम सावधान रहो।" फिर उन्होंने चार सुपुर्दगी भरे श्लोकों में धर्म का उपदेश दिया और लोगों को उदारता के गुणों में स्थापित किया, जिससे धम्म (मुक्ति का धर्मी मार्ग) की क्षीण होती शक्ति को सुदृढ़ किया गया ताकि यह एक हजार वर्षों तक कायम रहे, और फिर मताली के साथ अपने स्थान पर लौट आए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने आगे कहा: "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पूर्व काल में भी और अब भी मैं संसार के कल्याण के लिए ही जीवित रहा हूँ;" और फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद मतली थे और मैं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1)वे पांच जो बुद्ध के साथ थे जब उन्होंने एक तपस्वी के रूप में अपना जीवन शुरू किया: अन्नकोंडन्ना, भद्दिया, वप्पा, अस्सजी, महानमा।

(2) उसने वहाँ अग्नि उपासकों को उपदेश दिया।

(3) अब ब्रह्मयोनि, गया के पास एक पर्वत।

(4) एक राक्षस जो प्रतिदिन बलिदान की मांग करता था।

(5)ब्रह्मा के तीनों लोकों (ऊपरी स्वर्गों) में रहने वाले प्राणियों को "ब्रह्मा" कहा जाता था। (प्रधान देवदूत)

(6) उसका सारथी.

(7) संख्या 543

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कोसीय-जातक3**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-470-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 470
कोसिया-जातक

कोसिया जन्म का विवरण सुधाभोजन जन्म के अंतर्गत दिया जाएगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मेन्दक-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-471-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 471
मेंडका-जातक

मेंदका की समस्या उम्मागगा जन्म (*1) के अंतर्गत दी जाएगी।

फुटनोट:

(1) संख्या 535

***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-472-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 472
महा-पदुम-जातक

"किसी राजा को नहीं होना चाहिए," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए चिंचमनविका (*1) के बारे में सुनाई थी।

जब दसबाला (बुद्ध) ने सर्वप्रथम परम ज्ञान प्राप्त किया, शिष्यों की संख्या बढ़ गई, असंख्य देवी-देवता और मनुष्य स्वर्गलोक में जन्म ले चुके थे, और अच्छाई के बीज चारों ओर बो दिए गए थे, तब उन्हें बहुत सम्मान दिया गया और बड़े-बड़े उपहार दिए गए। गलत अनुयायी सूर्योदय के बाद जुगनुओं के समान थे; उन्हें न तो सम्मान मिला और न ही उपहार; वे सड़कों पर खड़े होकर लोगों से चिल्लाते थे, "क्या, तपस्वी गौतम बुद्ध हैं? हम भी बुद्ध हैं! क्या केवल वही उपहार महान फल देता है जो उन्हें दिया जाता है? जो हमें दिया जाता है वह भी आपके लिए महान फल देता है! हमें भी दीजिए, हमारे लिए काम कीजिए!" लेकिन वे चाहे जितना भी चिल्लाते, उन्हें न तो सम्मान मिला और न ही उपहार। तब वे गुप्त रूप से एकत्रित हुए और विचार-विमर्श किया: "हम कैसे तपस्वी गौतम (बुद्ध) पर मनुष्यों के सामने कलंक लगा सकते हैं और उनके सम्मान और उपहारों का अंत कर सकते हैं?"

उस समय श्रावस्ती नगर में चिंचमनविका नाम की एक नन रहती थीं; वे अत्यंत सुंदर, अत्यंत आकर्षक और सौंदर्यपूर्ण थीं; उनके शरीर से तेज की किरणें निकलती थीं। किसी ने क्रूरतापूर्वक यह सलाह दी: "हम चिंचमनविका की सहायता से तपस्वी गौतम (बुद्ध) पर कलंक लगाएंगे और उनके सम्मान तथा उन्हें मिलने वाले सभी दान को समाप्त कर देंगे।" "हाँ," सभी सहमत हुए, "यही तरीका है।"

वह कुटिल अनुयायियों के मठ में आई, उन्हें प्रणाम किया और वहीं खड़ी हो गई। कुटिल अनुयायियों ने उससे कुछ नहीं कहा। उसने कहा, "मुझमें क्या दोष है? मैंने तीन बार आपको प्रणाम किया है!" उसने फिर कहा, "महोदय, मुझमें क्या दोष है? आप मुझसे बात क्यों नहीं करते?" उन्होंने उत्तर दिया, "क्या आप नहीं जानतीं, बहन, कि गौतम (बुद्ध) नामक तपस्वी घूम-घूम कर हमें हानि पहुँचा रहे हैं, और हमें जो सम्मान और उदारता दिखाई गई थी, उसे छीन रहे हैं?" - "मुझे पता नहीं था, महोदय; लेकिन मैं क्या कर सकती हूँ?" - "यदि आप हमारा भला चाहती हैं, तो बहन, अपने कर्मों से तपस्वी गौतम (बुद्ध) पर कलंक लगाएँ, और उनके सम्मान और उन्हें मिलने वाले दान को समाप्त कर दें।" उसने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा, महोदय, यह मुझ पर छोड़ दीजिए; इसकी चिंता न कीजिए।" ये कहकर वह चली गई।

उसके बाद उसने छल-कपट में स्त्री के सारे कौशल का प्रयोग किया। जब श्रावस्ती नगर के लोगों ने धर्म मार्ग के बारे में सुना और जेतवन मठ से लौट रहे थे, तो वह लाल रंग से रंगे वस्त्र और हाथों में सुगंधित मालाएँ लिए जेतवन मठ की ओर जाती थी। जब कोई उससे पूछता, "इस समय तुम कहाँ जा रही हो?" तो वह उत्तर देती, "मेरे आने-जाने से तुम्हारा क्या लेना-देना?" वह जेतवन मठ के पास ही स्थित कुटिल अनुयायियों के मठ में रात बिताती थी; और जब सुबह तड़के संघ के अनुयायी नगर से सुबह की प्रार्थना करने आते, तो वह उनसे ऐसे मिलती जैसे उसने जेतवन मठ में रात बिताई हो और नगर की ओर जा रही हो। यदि कोई पूछता कि वह कहाँ ठहरी थी, तो वह उत्तर देती, "मेरे ठहरने और रहने से तुम्हारा क्या लेना-देना है?" लेकिन लगभग छह सप्ताह बाद, उसने उत्तर दिया, "मैंने जेतवन मठ में गौतम (बुद्ध) तपस्वी के साथ एक सुगंधित कुटिया में रात बिताई।" तब जो लोग परिवर्तित नहीं हुए थे, वे सोचने लगे कि क्या यह सच है या नहीं। तीन-चार महीने बाद, उसने अपने पेट पर पट्टियाँ बाँधीं और ऐसा दिखाया जैसे वह गर्भवती हो, और अपने ऊपर एक लाल वस्त्र लपेट लिया। फिर उसने बताया कि वह तपस्वी गौतम (बुद्ध) से गर्भवती है, और अंधे मूर्खों को विश्वास दिला दिया। आठ-नौ महीने बाद, उसने अपने चारों ओर लकड़ी के टुकड़े बाँध लिए और अपने लाल वस्त्र के ऊपर उन्हें लपेट लिया; उसने अपने हाथों, पैरों और पीठ पर बैल की हड्डी से इस प्रकार चोट पहुँचाई कि सूजन आ गई; और ऐसा दिखाया जैसे उसकी सभी इंद्रियाँ थक गई हों। एक संध्या पर, जब तथागत (बुद्ध) अपने तेजस्वी उपदेश आसन पर विराजमान थे और धर्ममार्ग का उपदेश दे रहे थे, तब वह सभा में गईं और तथागत (बुद्ध) के सामने खड़ी होकर बोलीं—"हे महान तपस्वी! आप वास्तव में बहुतों को उपदेश देते हैं; आपकी वाणी मधुर है और आपके होंठ कोमल हैं; परन्तु आपने मुझे गर्भवती कर दिया है और मेरा प्रसव निकट है; फिर भी आप मुझे प्रसव के लिए कोई कक्ष नहीं देते, न घी देते हैं और न तेल; जो आप स्वयं नहीं करते, वह आप अपने किसी साथी भिक्षु से भी नहीं करवाते, चाहे वह कोसल का राजा हो, अनाथपिंडिका हो या महान गृहस्थ बहन विशाखा। आप उनमें से किसी को मेरे लिए वह करने के लिए क्यों नहीं कहते जो किया

जाना चाहिए? आप स्वयं सुख भोगना जानते हैं, परन्तु जन्म लेने वाले की देखभाल करना नहीं जानते!" इसलिए उसने सभा के बीच तथागत (बुद्ध) का अपमान किया, मानो कोई मुट्ठी भर मिट्टी से चंद्रमा के चेहरे को कलंकित करने का प्रयास कर रहा हो। तथागत (बुद्ध) ने अपना प्रवचन रोक दिया और सिंह की तरह दहाड़ते हुए कहा, "बहन, तुमने जो कहा है वह सत्य है या असत्य, यह केवल तुम जानती हो और मैं ही जानता हूँ।" "जी हाँ, बिल्कुल," उसने कहा, "यह किसी ऐसी बात के कारण हुआ है जिसे केवल आप और मैं ही जानते हैं।"

ठीक उसी क्षण, सक्का (इंद्र) का सिंहासन गर्म हो गया। इस पर विचार करते हुए, उन्हें कारण समझ में आया: "चिंचमनविका तथागत (बुद्ध) पर असत्य आरोप लगा रही है।" इस मामले को सुलझाने के लिए दृढ़ निश्चय करके, वे अपने साथ चार देवदूतों को लेकर वहाँ पहुँचे। देवदूतों ने चूहे का रूप धारण कर लिया और एक ही झटके में लकड़ी के गट्ठे को बाँधने वाली रस्सियों को कुतर दिया: हवा के एक झोंके से चिंचमनविका का वस्त्र उड़ गया और लकड़ी का गट्ठा प्रकट होकर उसके पैरों पर गिर गया: उसके दोनों पैरों की उंगलियाँ कट गईं। लोग चिल्ला उठे - "एक डायन सर्वोच्च बुद्ध पर आरोप लगा रही है!" उन्होंने उसके सिर पर थूका और लाठियों और पत्थरों से उसे जेतवन मठ से भगा दिया। और जैसे ही वह तथागत (बुद्ध) दृष्टि की सीमा से बाहर निकली, विशाल पृथ्वी फट पड़ी और उसमें एक बड़ी दरार दिखाई दी, सबसे निचले नरक से ज्वालाएं उठीं, और वह मानो किसी वस्त्र (*2) में लिपटी हुई, जिसे उसके मित्र उसे ओढ़ा दें, सबसे निचले नरक में गिर पड़ी और वहाँ उसका पुनर्जन्म हुआ। अन्य पथभ्रष्ट विश्वासियों का मान-सम्मान और लाभ समाप्त हो गया, जबकि दशबल (बुद्ध) का मान-सम्मान और लाभ प्रचुर मात्रा में बढ़ गया।

अगले दिन वे सत्य के हॉल में बातचीत कर रहे थे: "भाई, चिंचमनविका ने परम गुणवान, सभी वरदानों के योग्य, परम बुद्ध पर झूठा आरोप लगाया! और उसका भयानक विनाश हुआ।" गुरुजी अंदर आए और पूछा कि वे सब यहाँ बैठकर क्या बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), इस स्त्री ने न केवल अभी मुझ पर झूठा आरोप लगाया है और उसका भयानक विनाश हुआ है, बल्कि पहले भी ऐसा ही हुआ था।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब उनकी प्रधान रानी के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका शांत और सौम्य स्वभाव खिले हुए कमल के समान था, इसलिए उनका नाम पद्मकुमार रखा गया, जिसका अर्थ है कमल राजकुमार। बड़े होकर उन्होंने सभी कलाओं और निपुणताओं की शिक्षा प्राप्त की। फिर उनकी माता का देहांत हो गया; राजा ने दूसरी पत्नी से विवाह किया और अपने पुत्र को राजा का प्रतिनिधि नियुक्त किया।

इसके बाद, सीमा पर हुए विद्रोह को दबाने के लिए निकलने से पहले राजा ने अपनी पत्नी से कहा, "हे देवी, क्या तुम यहीं ठहरोगी, जब तक मैं सीमा पर हुए विद्रोह को दबाने जाता हूँ?" लेकिन उसने उत्तर दिया, "नहीं, महाराज, मैं यहाँ नहीं ठहरूँगी, बल्कि आपके साथ चलूँगी।" तब उसने उसे युद्ध के मैदान में मंडरा रहे खतरे के बारे में बताया और आगे कहा, "तो मेरे लौटने तक तुम यहाँ बिना किसी बाधा के ठहरो, और मैं राजकुमार पद्मा को यह आदेश दूँगा कि वह तुम्हारे लिए जो भी कार्य करे, उसमें सावधानी बरते, और फिर मैं चला जाऊँगा।" ऐसा ही हुआ और वह चला गया।

जब उसने अपने शत्रुओं को तितर-बितर कर दिया और देश में शांति स्थापित कर दी, तो वह लौट आया और नगर के बाहर अपना शिविर लगाया। बोधिसत्व को अपने पिता के लौटने का पता चला, तो उसने नगर को सजाया-संवारा और राजमहल की निगरानी करते हुए अकेले अपने पिता से मिलने चला गया। रानी ने उसके सुंदर रूप को देखकर उस पर मोहित हो गई। विदा लेते समय बोधिसत्व ने कहा, "माँ, क्या मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ?" रानी ने कहा, "माँ, क्या आप मुझे बुला रहे हैं?" वह उठी और उसके हाथ पकड़कर बोली, "मेरे पलंग पर लेट जाइए!" उसने पूछा, "क्यों?" रानी ने कहा, "राजा के आने तक, हम दोनों प्रेम के आनंद का अनुभव करें!" "माँ, आप मेरी माँ हैं और आपका पति जीवित है। ऐसा पहले कभी नहीं सुना गया कि कोई स्त्री, एक संभ्रांत महिला, शारीरिक वासना के मार्ग पर चलकर नैतिक नियम का उल्लंघन करे। मैं आपके साथ ऐसा अपवित्र कार्य कैसे कर सकता हूँ?" उसने दो-तीन बार उससे विनती की, और जब उसने नहीं माना, तो उसने कहा, "तो क्या तुम मेरी बात मानने से इनकार करते हो?" - "हाँ, मैं इनकार करता हूँ।" - "तो मैं राजा से बात करूँगी और तुम्हारा सिर कलम करवा दूँगी।" "जैसा तुम चाहो," उस महान प्राणी ने उत्तर दिया; और उसे शर्मिंदा छोड़कर चला गया। तब वह बड़े भय से सोचने लगी: "अगर वह पहले राजा को बता दे, तो मेरा जीवन नहीं बचेगा! मुझे पहले खुद उससे बात करनी होगी।" तदनुसार, उसने अपना भोजन बिना छुए एक गंदा वस्त्र (*3) पहन लिया, और अपने शरीर पर नाखूनों से खरोंचें बना लीं; अपने परिचारकों को आदेश दिया कि जब भी राजा रानी के बारे में पूछे, तो उसे बताया जाए कि वह बीमार है, और वह बीमारी का आभास देते हुए लेट गई।

अब राजा ने शहर में सीधे जुलूस निकाला और अपने निवास स्थान पर गए। जब उन्होंने उसे नहीं देखा, तो उन्होंने पूछा, "रानी कहाँ है?" "वह बीमार है," उन्होंने कहा। वे राजकक्ष में गए और उनसे पूछा, "क्या हुआ है, महारानी?" उन्होंने ऐसा दिखाया जैसे उन्होंने कुछ सुना

ही न हो। उन्होंने दो-तीन बार पूछा, और फिर उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, आप क्यों पूछ रहे हैं? चुप रहिए: जिन स्त्रियों का पति होता है, उन्हें मेरे जैसी ही होना चाहिए।" "किसने तुम्हें नाराज़ किया है?" उन्होंने कहा। "मुझे जल्दी बताओ, वरना मैं उसका सिर कलम करवा दूँगा।" - "जब तुम यहाँ से गई थीं, तो इस शहर में किसे छोड़कर गई थीं?" - "राजकुमार पद्मा।" "और वह," उसने आगे कहा, "मेरे कमरे में आया, और मैंने कहा, 'मेरे बेटे, ऐसा मत करो, मैं तुम्हारी माँ हूँ': लेकिन मैं जो भी कहूँ, वह चिल्लाया, 'यहाँ मेरे सिवा कोई राजा नहीं है, और मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊँगा, और तुम्हारे प्रेम का आनंद लूँगा'; फिर उसने मेरे सिर के बाल पकड़ लिए, और बार-बार नोचे, और क्योंकि मैंने उसकी इच्छा के आगे घुटने नहीं टेके, उसने मुझे घायल किया और पीटा, और चला गया।" राजा ने कोई जाँच नहीं की, बल्कि साँप की तरह क्रोधित होकर अपने आदमियों को आदेश दिया, "जाओ और राजकुमार पदुमा को बाँधो, और उसे मेरे पास लाओ!" वे उसके घर गए, मानो पूरे शहर में भीड़ उमड़ पड़ी हो, और उसे बाँधकर पीटा, उसके हाथ पीछे बाँध दिए, उसके गले में लाल फूलों की माला (*4) डाल दी, उसे एक दोषी अपराधी बना दिया, और उसे वहाँ ले गए, रास्ते भर पीटते रहे। उसे स्पष्ट था कि यह रानी का काम है, और जाते हुए वह चिल्लाया, "हे साथियों, मैंने राजा के विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया है! मैं निर्दोष हूँ।" पूरे शहर में यह खबर गूंज रही थी: "लोग कहते हैं कि राजा एक स्त्री के कहने पर राजकुमार पद्मा को मृत्युदंड देने जा रहे हैं!" सब लोग इकट्ठा हो गए, राजकुमार के चरणों में गिर पड़े और जोर-जोर से विलाप करते हुए बोले, "हे स्वामी, आप इसके योग्य नहीं हैं!"

अंततः वे उसे राजा के सामने ले आए। उसे देखते ही राजा अपने हृदय में उमड़ रहे आवेश को रोक नहीं सका और चिल्ला उठा, "यह व्यक्ति राजा तो नहीं है, पर राजा होने का ढोंग बखूबी करता है! यह मेरा पुत्र है, फिर भी इसने रानी का अपमान किया है। इसे यहाँ से हटाओ, चोरों की चट्टान से नीचे फेंक दो, इसका अंत कर दो!" परन्तु राजकुमार ने अपने पिता से कहा, "पिताजी, मेरे ऊपर ऐसा कोई अपराध नहीं है। एक स्त्री के कहने पर मुझे मत मार डालो।" राजा ने उसकी बात नहीं सुनी। तब सोलह हजार की संख्या में राजहरम के सभी लोगों ने एक साथ जोर से चिल्लाते हुए कहा, "प्रिय पद्म, शक्तिशाली राजकुमार, आप इस दंड के पात्र नहीं हैं!" और देश के सभी योद्धा सरदारों, बड़े सामंतों और सभी दरबारी चिल्ला उठे, "महाराज! राजकुमार एक नेक और सदाचारी व्यक्ति है, अपने वंश की परंपराओं का पालन करता है, राज्य का उत्तराधिकारी है! बिना सुने एक स्त्री के कहने पर उसे मत मार डालो! राजा का कर्तव्य है कि वह पूरी सावधानी से कार्य करे।" ऐसा कहकर उन्होंने सात छंद दोहराए:

"किसी भी राजा को अपराध के लिए दंड नहीं देना चाहिए और किसी भी प्रकार की दलीलें नहीं सुननी चाहिए।"
उन्होंने स्वयं हर पहलू, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, की पूरी तरह से जांच नहीं की।
"वह योद्धा सरदार जो किसी गलती को आज़माने से पहले ही उसे दंडित करता है,"
यह उस जन्म से अंधे व्यक्ति के समान है जो अपना भोजन केवल हड्डियों और मक्खियों को खाकर गुजारता है।
जो निर्दोषों को दंडित करता है और दोषियों को छोड़ देता है, वही जानता है
किसी ऊबड़-खाबड़ राजमार्ग पर अंधा व्यक्ति जितना खतरनाक हो सकता है, उतना ही खतरनाक भी हो सकता है।
जो व्यक्ति इन सभी बातों का अच्छी तरह से विश्लेषण करता है, चाहे वे छोटी हों या बड़ी,
और इसलिए, वह प्रशासक है और सभी का मुखिया बनने का हकदार है।
जो व्यक्ति स्वयं को उच्च स्थान पर स्थापित करना चाहता है, उसे सर्व-विनम्र नहीं होना चाहिए।
न ही पूरी तरह कठोर होना चाहिए: बल्कि इन दोनों बातों का अभ्यास संगति में करना चाहिए।
"जो अत्यंत सौम्य है उसका तिरस्कार करने वाला विजयी होता है, और जो अत्यंत कठोर है, उसे क्रोध का सामना करना पड़ता है।"
इसलिए दोनों के बारे में अच्छी तरह से जागरूक रहें और बीच का रास्ता अपनाएं।
"हे राजा, क्रोधित व्यक्ति बहुत कुछ कह सकता है, और बेईमान व्यक्ति भी बहुत कुछ कह सकता है।"
इसलिए स्त्री के खातिर अपने बेटे की हत्या मत करो।
लेकिन दरबारी चाहे कितनी भी कोशिश कर लें, वे उसे अपनी बात मनवाने में सफल नहीं हुए। बोधिसत्व भी, अपनी तमाम विनतियों के बावजूद, उसे सुनने के लिए राजी नहीं कर सके: नहीं, राजा ने कहा, अंधे मूर्ख—"दूर हो जाओ! इसे चोरों की चट्टान से नीचे फेंक दो!" आठवें श्लोक को दोहराते हुए:

"एक तरफ पूरी दुनिया खड़ी है, दूसरी तरफ मेरी रानी बिल्कुल अकेली है;"
फिर भी मैं अपनी बात पर अडिग हूं: उसे चट्टान से नीचे फेंक दो और चले जाओ!
ये शब्द सुनकर सोलह हज़ार महिलाओं में से कोई भी विचलित हुए बिना नहीं रह सकी, जबकि समस्त जनता ने हाथ फैलाकर रोते हुए अपने बाल नोच लिए। राजा ने कहा, "ये लोग इस आदमी को चट्टान से नीचे फेंकने से रोकने की कोशिश तो करें!" और अपने अनुयायियों के बीच, भीड़ के विलाप के बावजूद, उसने राजकुमार को पकड़वाकर उसे सिर के बल खाई में फेंक दिया।

तब पर्वत पर निवास करने वाले देवता ने अपनी दयालुता से राजकुमार को दिलासा देते हुए कहा, "डरो मत, पद्मा!" और दोनों हाथों से उन्हें थामकर अपने हृदय से लगा लिया, उनके शरीर में दिव्य स्पंदन उत्पन्न किया और उन्हें आठ कोष्ठों के सर्पों के निवास में, सर्पों के राजा के फन के भीतर स्थापित कर दिया। सर्पों के राजा ने बोधिसत्व को सर्पों के निवास में ग्रहण किया और उन्हें अपनी आधी महिमा

और स्थिति प्रदान की। वहाँ वे एक वर्ष तक रहे। फिर उन्होंने कहा, "मैं मनुष्यों के मार्ग पर लौटना चाहता हूँ।" "कहाँ?" उन्होंने पूछा। "हिमालय, जहाँ मैं एक संन्यासी जीवन व्यतीत करूँगा।" सर्पों के राजा ने अपनी सहमति दी; उन्हें लेकर वे उस स्थान पर ले गए जहाँ मनुष्य आते-जाते हैं, और उन्हें संन्यासियों की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं, और अपने स्थान पर लौट गए।

अतः वह हिमालय चले गए और उन्होंने धार्मिक (सन्यासी) जीवन को अपना लिया तथा परमानंद की अनुभूति को विकसित किया; वहाँ वे निवास करते हुए वन के फलों और जड़ों का सेवन करते थे।

बनारस में रहने वाला एक लकड़हारा उस स्थान पर आया और उसने उस महान व्यक्ति को पहचान लिया। उसने पूछा, “क्या आप महान राजकुमार पद्मा ही हैं, महाराज?” पद्मा ने उत्तर दिया, “जी हां।” दूसरे ने उन्हें प्रणाम किया और कुछ दिनों तक वहीं रहा। फिर वह बनारस लौट आया और राजा से कहा, “महाराज, आपके पुत्र ने हिमालय क्षेत्र में संन्यासी जीवन अपना लिया है और पत्तों की कुटिया में रहते हैं। मैं उनके साथ रह रहा था और वहीं से आया हूं।” राजा ने पूछा, “क्या आपने उन्हें अपनी आंखों से देखा है?” पद्मा ने उत्तर दिया, “जी हां, महाराज।” राजा एक विशाल सेना के साथ वहां गया और जंगल के बाहरी इलाके में अपना शिविर लगाया; फिर अपने दरबारियों के साथ उस महान व्यक्ति को प्रणाम करने गया, जो अपने सुनहरे रूप में पत्तों की कुटिया के द्वार पर विराजमान थे, और पद्मा एक तरफ बैठ गए; दरबारियों ने भी उन्हें प्रणाम किया और उनसे मधुरता से बातें कीं और एक तरफ बैठ गए। बोधिसत्व ने राजा को अपने जंगली फल खाने के लिए आमंत्रित किया और उनसे मधुरता से बातें कीं। तब राजा ने कहा, "मेरे पुत्र, मैंने ही तुम्हें एक गहरी खाई में फेंक दिया था, और तुम अभी तक कैसे जीवित हो?" यह सुनकर उन्होंने नौवां श्लोक दोहराया:

"जैसे तुम्हें किसी लटकती हुई पहाड़ी से नीचे फेंक दिया गया हो, मानो नरक के द्वार में।"
कोई राहत नहीं—खजूर के पेड़ों की घनी छाया: तुम अब भी कैसे जी रहे हो?
ये शेष श्लोक हैं, और पाँचों में से, बारी-बारी से, तीन बोधिसत्व द्वारा बोले गए थे, और दो राजा द्वारा।

"एक शक्तिशाली सर्प, सामर्थ्य से परिपूर्ण, उस पर्वतीय भूमि पर जन्मा।"
उसने मुझे अपने फंदों में जकड़ लिया; और इसलिए मैं यहाँ मृत्यु से सुरक्षित खड़ा हूँ।"
"देखो! मैं तुम्हें वापस अपने घर ले जाऊंगी, हे राजकुमार।"
और वहाँ—तुम्हें लकड़ी से क्या लेना-देना है?—तुम आशीर्वाद के साथ राज करोगे।
"जैसे किसी को कांटा निगल गया हो और वह सारा खून चूस रहा हो,"
इसे जारी रखने से खुशी मिलती है: इसलिए मैं अपने भीतर इस आनंद और अच्छाई को देखता हूं।"
"तुम हुक के बारे में इस तरह क्यों बोलते हो, तुम खून-खराबे के बारे में इस तरह क्यों बोलते हो?"
समलैंगिक होने की बात क्यों करें? आकर मुझे बताएं, मैं आपसे विनती करता हूँ।
"वासना ही जाल है: मैं बेहतरीन हाथियों और घोड़ों को उनके रक्त से दिखाता हूँ;
इन सब का त्याग करके ही मैंने इन्हें प्राप्त किया है; हे सरदार, यह बात तुम्हें अवश्य जाननी चाहिए।
“हे महान राजा, राजा बनना मेरे लिए कुछ भी नहीं है; परन्तु ध्यान रखना कि तुम दस राजसी गुणों का उल्लंघन न करो, बल्कि बुराई से दूर रहकर धर्म के मार्ग पर शासन करो।” इन शब्दों में उस महान सत्ता ने राजा को संबोधित किया। राजा रोते-बिलखते विरह करते हुए विदा हुआ और अपने नगर की ओर जाते हुए उसने अपने दरबारियों से पूछा, “मैंने इतने गुणी पुत्र से किस कारण विमुखता की?” उन्होंने उत्तर दिया, “रानी के कारण।” राजा ने रानी को पकड़वाकर चोरों की चट्टान से नीचे फेंकवा दिया और अपने नगर में प्रवेश करके धर्म के मार्ग पर शासन किया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "इस प्रकार, भाइयों (भिक्षुओं), इस स्त्री ने अतीत में मेरी निंदा की और गंभीर विनाश का शिकार हुई;" और फिर अंतिम श्लोक को दोहराते हुए जन्म की पहचान बताई:

"लेडी चिंचा मेरी मां थीं।"
देवदत्त मेरे पिता थे।
 मैं उस समय उनका पुत्र राजकुमार था:
सारिपुत्र आत्मा थे।
और मैं इसे अच्छा सांप घोषित करता हूँ।
 वह आनंद था। मैंने कर दिया है।"

फुटनोट:

(1)जिन्होंने बुद्ध पर झूठा आरोप लगाया

(2) दुल्हन को दिया जाने वाला "शाही ऊनी वस्त्र" या "विवाह वस्त्र"

(3)पढ़ना, लामकवत्थम.

(4) यह वज्झमाला थी, जिसे मृत्युदंड पाए अपराधी के सिर या गर्दन पर रखा जाता था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मित्तमित्त-जातक2**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-473-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 473
मित्तमित्त-जातक

"बुद्धिमान को कैसे व्यवहार करना चाहिए," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा के एक धर्मनिष्ठ दरबारी के बारे में सुनाई थी।

कहते हैं कि यह व्यक्ति राजा के लिए बहुत उपयोगी था, और राजा ने उसे बहुत सम्मान दिया। अन्य दरबारी उसे पसंद नहीं करते थे, इसलिए उन्होंने राजा के सामने उस पर राजा को हानि पहुँचाने का आरोप लगाया। राजा ने उसके बारे में पूछताछ की और उसमें कोई दोष न पाकर सोचा, "मुझे इस व्यक्ति में कोई दोष नहीं दिखता; मैं कैसे जानूँ कि यह मेरा मित्र है या शत्रु?" फिर उन्होंने सोचा, "तथागत (बुद्ध) के सिवा कोई भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता; मैं जाकर उनसे ही पूछूँगा।" इसलिए उपवास तोड़ने के बाद वे गुरु के पास गए और कहा, "हे महाराज, कोई कैसे जान सकता है कि कोई व्यक्ति मित्र है या शत्रु?" तब गुरु ने उत्तर दिया, "हे महाराज, प्राचीन काल के बुद्धिमानों ने इस समस्या पर विचार किया है और बुद्धिमानों से इस विषय पर प्रश्न पूछे हैं, और उनकी सलाह का पालन करते हुए सत्य का पता लगाया है, और अपने शत्रुओं का त्याग करके अपने मित्रों पर ध्यान दिया है।" यह कहकर, उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व उनके दरबारी थे जो उन्हें आध्यात्मिक और सांसारिक मामलों में सलाह देते थे। उस समय, बाकी लोगों ने एक ईमानदार दरबारी की निंदा की। राजा को उसमें कोई दोष नहीं दिखा, इसलिए उन्होंने उस महान सत्ता से पूछा, "अब कोई मित्र या शत्रु को किस बात में दोषी ठहरा सकता है?" (पहले श्लोक को दोहराते हुए):

"बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति को किस प्रकार प्रयास करने चाहिए, विवेक कैसे जान सकता है?"
"किस कर्म से आंख या कान से पता चलता है कि कौन सा व्यक्ति शत्रु है?"
फिर उस महान सत्ता ने शत्रु के लक्षणों को समझाने के लिए इन पांच श्लोकों को दोहराया:

"जब आप उसे देखते हैं तो वह मुस्कुराता नहीं है, वह कोई स्वागत नहीं दिखाता।"
वह उस ओर अपनी नज़रें नहीं घुमाएगा, और आपको जवाब देगा...
वह तुम्हारे शत्रुओं का सम्मान करता है, तुम्हारे मित्रों की उसे परवाह नहीं है।
जो लोग आपकी योग्यता की प्रशंसा करना चाहते हैं, वह उनके साथ रहता है, और आपके निंदकों की सराहना करता है।
"वह तुम्हें कोई रहस्य नहीं बताता, बल्कि तुम्हारे ही रहस्य को उजागर कर देता है।"
जो लोग आपके काम की कभी तारीफ नहीं करते, वे आपकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा नहीं करेंगे।
वह तुम्हारे कल्याण से नहीं, बल्कि तुम्हारी बदनामी से प्रसन्न होता है।
यदि उसे कोई शानदार उपहार मिले, तो वह आपके नाम के बारे में नहीं सोचेगा।
न तो वह तुम पर दया करता है, न ही जोर से रोता है—काश मेरे दोस्त के साथ भी ऐसा ही होता!
"ये सोलह चिह्न हैं जिनके द्वारा आप अपने शत्रु को देख सकते हैं।"
यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति इन्हें देख या सुन ले तो वह अपने शत्रु को पहचान लेता है।

"बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति को किस प्रकार प्रयास करने चाहिए, विवेक से क्या लाभ होगा?"
"कौन से कर्म आंखों और कानों को यह बताते हैं कि कौन सा व्यक्ति सच्चा मित्र है?"
दूसरे व्यक्ति ने, इन पंक्तियों में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुए, शेष छंदों का पाठ किया:

वह अनुपस्थित को याद रखता है; लौटकर वह प्रसन्न होगा।
फिर वह अपनी अत्यधिक प्रसन्नता में आपको अपनी आवाज से नमस्कार करता है।
वह तुम्हारे शत्रुओं का कभी सम्मान नहीं करता, वह तुम्हारे मित्रों की सेवा करना पसंद करता है।
जो लोग तुम्हारी निंदा करते हैं, वह उनके साथ रहता है; जो तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, वह उनकी सराहना करता है।
वह तुम्हें अपने रहस्य बताता है, तुम्हारा रहस्य कभी उजागर नहीं होता।
आपके हर कार्य की हमेशा प्रशंसा होती है, आपकी बुद्धिमत्ता प्रशंसा करना पसंद करती है।
वह तुम्हारी भलाई की खबर सुनकर प्रसन्न होता है, तुम्हारी बदनामी से नहीं।
अगर उसे कोई शानदार उपहार मिलता है, तो वह सीधे आपके नाम के बारे में सोचता है।
और वह तुम पर तरस खाता है, और जोर-जोर से रोता है- काश मेरे दोस्त के साथ भी ऐसा ही हुआ होता!
"ये सोलह संकेत हैं जो अच्छे संबंध रखने वाले मित्रों में पाए जाते हैं।"
जिसे यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति देखे या सुने तो वह एक सच्चे मित्र को बता सकता है।
महान व्यक्तित्व के भाषण से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें सर्वोच्च सम्मान दिया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, “हे महाराज, यह प्रश्न अतीत में भी उठा था, ठीक वैसे ही जैसे अब उठा है, और बुद्धिमानों ने इस पर अपनी राय दी थी; इन बत्तीस चिह्नों से मित्र और शत्रु की पहचान की जा सकती है।” इन शब्दों के साथ उन्होंने जन्म का वर्णन किया: “उस समय आनंद राजा थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान दरबारी था।”

पुस्तक XIII. तेरसा-निपाता:

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अम्बा-जातक2**
स्रोत : *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-474-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 474
अम्बा-जातक

"हे शिष्य, कब?" इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी। देवदत्त ने अपने गुरु का खंडन करते हुए कहा, "मैं स्वयं बुद्ध बनूँगा, और गौतम (बुद्ध) तपस्वी मेरे गुरु या मार्गदर्शक नहीं हैं!" इस प्रकार, अपनी रहस्यमयी ध्यान साधना से जागृत होकर, उन्होंने संघ में विमुख हो गए। फिर वे धीरे-धीरे श्रावस्ती नगर की ओर बढ़े, और जेतवन मठ के बाहर, पृथ्वी फट पड़ी, और वे अविची नरक में उतर गए।

तब सत्य के हॉल में सब लोग इस विषय पर चर्चा कर रहे थे: “भाई, देवदत्त ने अपने गुरु को त्याग दिया और घोर विनाश का भागी, अविची नामक गहरे नरक में उसका पुनर्जन्म हुआ!” गुरुजी ने प्रवेश किया और उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें बताया। गुरुजी ने कहा, “केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी, जैसे अभी, देवदत्त ने अपने गुरु को त्याग दिया था और घोर विनाश का भागी था।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उनके पुरोहित परिवार का मलेरिया बुखार (*1) से विनाश हो गया। उनका एक पुत्र ही दीवार तोड़कर (*2) बच निकला। वह तक्षशिला आया और एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से सभी कलाएँ और सिद्धियाँ सीखीं। फिर उसने अपने गुरु को विदाई दी और विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा करने के इरादे से प्रस्थान किया; और अपनी यात्रा के दौरान वह एक सीमावर्ती गाँव में पहुँचा। इसके पास ही निम्न जाति के चांडालों का एक बड़ा गाँव था। फिर इस गाँव में रहने वाले एक बोधिसत्व, एक विद्वान

ऋषि, एक ऐसा मंत्र जानते थे जिससे समय से पहले फल तोड़े जा सकते थे। वे सुबह सवेरे अपनी लाठी लेकर उस गाँव से तब तक चलते थे जब तक कि वे जंगल में उगने वाले एक आम के पेड़ तक नहीं पहुँच जाते; और सात फुट की दूरी पर खड़े होकर, वे उस मंत्र का जाप करते और मुट्ठी भर पानी उस पेड़ पर डालते। पलक झपकते ही सूखे पत्ते झड़ जाते हैं, नए पत्ते उग आते हैं, फूल खिलते हैं और मुरझा जाते हैं, आम फल पककर तैयार हो जाते हैं: लेकिन एक पल में—वे पक जाते हैं, मीठे और स्वादिष्ट हो जाते हैं, दिव्य फल की तरह बढ़ते हैं, और पेड़ से गिर जाते हैं! महान सत्ता अपनी इच्छा अनुसार फल चुनकर खा लेते हैं, फिर अपने खंभे से लटकी टोकरियों को भरते हैं, घर जाते हैं और फल बेचकर पत्नी और बच्चे का भरण-पोषण करते हैं।

अब उस युवा ब्राह्मण ने देखा कि महापुरुष बेमौसम पके आम बेच रहे हैं। उसने सोचा, "निस्संदेह, ये किसी मंत्र के प्रभाव से ही उगे हैं। यह व्यक्ति मुझे एक ऐसा मंत्र सिखा सकता है जिसका कोई मोल नहीं है।" उसने ध्यान से देखा कि महापुरुष किस प्रकार फल प्राप्त करते हैं, और उसे ठीक-ठीक पता चल गया। फिर वह उस समय महापुरुष के घर गया जब वे अभी जंगल से नहीं लौटे थे, और ऐसा दिखावा करते हुए कि उसे कुछ पता ही नहीं है, उसने ज्ञानी पुरुष की पत्नी से पूछा, "गुरुजी कहाँ हैं?" पत्नी ने कहा, "जंगल गए हैं।" वह उनके आने तक प्रतीक्षा करता रहा, फिर उनके पास गया, और उनसे डंडा और टोकरियाँ लेकर घर में ले गया और वहाँ रख दीं। महापुरुष ने उसकी ओर देखा और अपनी पत्नी से कहा, "श्रीमती, यह युवक मंत्र लेने आया है; परन्तु कोई मंत्र इसके पास नहीं टिकेगा, क्योंकि यह अच्छा आदमी नहीं है।" परन्तु युवक सोच रहा था, "मैं अपने गुरु का सेवक बनकर ही मंत्र प्राप्त करूँगा;" और तब से वह घर के सारे काम करने लगा: लकड़ी लाता, चावल कूटता, खाना बनाता, चेहरा धोने के लिए आवश्यक सभी चीजें लाता, पैर धोता।

एक दिन जब उस महान पुरुष ने उससे कहा, "मेरे पुत्र, मेरे पैरों को सहारा देने के लिए एक चौकी लाओ," तो युवक ने कोई और उपाय न देखकर रात भर उस महान गुरु के पैर अपनी जांघ पर रखे। कुछ समय बाद जब उस महान पुरुष की पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया, तो उसने प्रसव के समय किए जाने वाले सभी कार्य किए। एक दिन पत्नी ने उस महान पुरुष से कहा, "पतिदेव, यह बालक, भले ही उच्च कुल का हो, इस मंत्र के कारण हमारे लिए यह छोटा-मोटा काम करता है। इसे यह मंत्र दे दीजिए, चाहे यह उसके पास रहे या न रहे।" इस पर वह सहमत हो गए। उन्होंने उसे मंत्र सिखाया और इस प्रकार कहा, "मेरे पुत्र, यह एक अनमोल मंत्र है; और इससे तुम्हें बहुत लाभ और सम्मान मिलेगा। लेकिन जब राजा या उसका महान मंत्री तुमसे पूछे कि तुम्हारा गुरु कौन था, तो मेरा नाम मत छिपाना; क्योंकि यदि तुम इस बात से शर्मिंदा होगे कि एक नीच जाति के व्यक्ति ने तुम्हें यह मंत्र सिखाया है, और कहोगे कि तुम्हारा गुरु ब्राह्मणों का एक महान सरदार था, तो तुम्हें इस मंत्र का कोई लाभ नहीं मिलेगा।" "मैं आपका नाम क्यों छिपाऊँ?" लड़के ने कहा, "जब भी मुझसे पूछा जाएगा, मैं कहूंगा कि यह आप हैं।" फिर उसने अपने गुरु को प्रणाम किया और उस नीच जाति के गाँव से मंत्र का स्मरण करते हुए चला गया और उचित समय पर बनारस पहुँच गया। वहाँ उसने आम बेचकर खूब धन अर्जित किया।

एक दिन उद्यान के रखवाले ने राजा को एक आम भेंट किया, जो उसने राजा से खरीदा था। राजा ने आम खाकर पूछा कि उसे इतना उत्तम फल कहाँ से मिला? उत्तर मिला, “महाराज, एक युवक है जो बेमौसम आम लाता है और बेचता है: मैंने यह आम उसी से लिया है।” राजा ने कहा, “उसे कह दो कि अब से वह आम यहीं मेरे पास लाए।” युवक ने ऐसा ही किया; और तब से वह युवक राजा के घर आम लाने लगा। राजा ने उसे अपने यहाँ काम करने का निमंत्रण दिया और वह राजा का सेवक बन गया; और धीरे-धीरे धनवान होकर वह राजा का विश्वासपात्र बन गया।

एक दिन राजा ने उससे पूछा, “हे युवक, तुम्हें ये बेमौसम, इतने मीठे, सुगंधित और सुंदर रंग के आम कहाँ से मिलते हैं? क्या कोई नाग या गरुला तुम्हें ये देता है, या कोई देवता (देवदूत), या यह जादू की शक्ति है?” “हे महामहिम, मुझे कोई नहीं देता!” युवक ने उत्तर दिया, “लेकिन मेरे पास एक अनमोल मंत्र है, और यही उस मंत्र की शक्ति है।” “अच्छा, क्या तुम मुझे किसी दिन इस मंत्र की शक्ति दिखाना चाहोगे?” “ज़रूर, महाराज, और मैं ऐसा ही करूँगा,” उसने कहा। अगले दिन राजा उसके साथ उद्यान में गए और उससे वह मंत्र दिखाने को कहा। युवक तैयार हो गया और एक आम के पेड़ के पास जाकर, उससे सात फुट की दूरी पर खड़ा हो गया, और पेड़ पर पानी फेंकते हुए मंत्र दोहराया। उसी क्षण आम के पेड़ पर ऊपर वर्णित तरीके से फल लग गए: आमों की बौछार हुई, मानो तूफान आ गया हो; सभी लोग बड़े हर्षोल्लास से अपने रुमाल लहराने लगे; राजा ने फल खाया और उसे बड़ा इनाम दिया, और कहा, "हे युवक, तुझे यह अद्भुत मंत्र किसने सिखाया?" युवक ने सोचा, अगर मैं कहूँ कि मुझे किसी नीच जाति के चांडाल ने सिखाया है, तो मेरी बेइज्जती होगी और वे मेरा उपहास करेंगे; मुझे यह मंत्र कंठस्थ है और अब मैं इसे कभी नहीं भूल सकता; अच्छा, मैं कह दूँगा कि यह किसी विश्वप्रसिद्ध गुरु ने सिखाया है। इसलिए उसने झूठ बोला और कहा, "मैंने इसे तक्षशिला में एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से सीखा है।" जैसे ही उसने अपने गुरु का नाम छिपाते हुए ये शब्द कहे, उसी क्षण मंत्र गायब हो गया। लेकिन राजा बहुत प्रसन्न हुए और उसके साथ नगर लौट गए।

एक दिन राजा को आम खाने की इच्छा हुई; वे उद्यान में गए और राजकीय अवसरों पर इस्तेमाल होने वाली एक पत्थर की बेंच पर बैठ गए। उन्होंने युवक से आम लाने को कहा। युवक बड़ी उत्सुकता से एक आम के पेड़ के पास गया और पेड़ से सात फुट की दूरी पर खड़े होकर मंत्र जपने लगा; लेकिन मंत्र का कोई असर नहीं हुआ। तब उसे समझ आ गया कि उसका मंत्र खो गया है और वह शर्मिंदा होकर वहीं खड़ा रह गया। राजा ने सोचा, "पहले तो यह युवक भीड़ के बीच भी मुझे आम लाकर देता था, और आमों की बारिश होती थी। अब

यह तो एक लकड़ी के लट्ठे की तरह खड़ा है: इसका क्या कारण हो सकता है?" जिसका उत्तर उन्होंने पहली पंक्ति को दोहराकर जानने का प्रयास किया।

"युवा विद्यार्थी, जब मैंने हाल ही में तुमसे यह पूछा था,
तुम मेरे लिए छोटे और बड़े दोनों तरह के आम लाए थे:
अब, हे ब्राह्मण, वृक्ष पर कोई फल नहीं दिखाई देता।
हालांकि आप उसी आकर्षण को बार-बार दोहराते हैं!
यह सुनकर युवक ने मन ही मन सोचा, यदि वह कह दे कि आज कोई फल नहीं मिलेगा, तो राजा क्रोधित हो जाएगा; इसीलिए उसने झूठ बोलकर राजा को धोखा देने का सोचा और दूसरी पंक्ति दोहराई।

"समय और क्षण अनुकूल नहीं हैं: इसलिए प्रतीक्षा करें।"
आकाश में ग्रहों का उपयुक्त मिलन बिंदु।
उचित संयोग और वह क्षण आ गया,
तब मैं तुम्हारे लिए ढेर सारे आम लाऊंगा।
"यह क्या है?" राजा ने आश्चर्य से कहा। "इस व्यक्ति ने पहले ग्रहों के संयोजन के बारे में कुछ नहीं कहा!" इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, उसने दो छंद दोहराए:

आपने समय और ऋतुओं के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा, न ही
अतीत में ग्रहों के मिलन के बारे में:
लेकिन आम, सुगंधित, स्वाद में नाजुक,
रंग तो बढ़िया है, आप भरपूर सामान लेकर आए हैं।
"हे ब्राह्मण, अतीत में तुमने बहुत अच्छा उत्पादन किया था।"
अपने मंत्र का जाप करने से पेड़ पर फल लग जाएंगे:
आज आप ऐसा नहीं कर सकते, चाहे आप कितना भी बड़बड़ाएं।
इस व्यवहार का क्या अर्थ है, कृपया मुझे बताएं?
यह सुनकर युवक ने सोचा, "झूठ बोलकर राजा को धोखा नहीं दिया जा सकता। यदि सच बोलने पर वह मुझे दंडित करे, तो करे, पर मैं सच जरूर बोलूंगा।" फिर उसने दो श्लोक पढ़े:

"मेरे शिक्षक एक निम्न जाति के व्यक्ति थे, जो मुझे पढ़ाते थे।"
इसका आकर्षण उचित और प्रभावी था, और इसने क्या-क्या परिणाम दिए:
यह कहते हुए, "यदि आपसे मेरा नाम और जन्मतिथि पूछी जाए,
कुछ भी मत छिपाओ, वरना सारा आकर्षण व्यर्थ हो जाएगा।
"मनुष्यों के स्वामी ने मुझसे पूछा, हालांकि मैं यह अच्छी तरह जानता था,"
फिर भी मैंने छल में वह बात कही जो सच नहीं थी;
मैंने झूठ बोलते हुए कहा, "एक ब्राह्मण के मंत्र"; और अब,
आकर्षण खो गया, मुझे अपने गलत काम पर गहरा अफसोस है।"
यह सुनकर राजा मन ही मन सोचने लगा, "पापी मनुष्य ऐसे अनमोल खजाने की परवाह क्यों नहीं करता! जब किसी के पास इतना अनमोल खजाना हो, तो जन्म का क्या लेना-देना?" और क्रोधित होकर उसने निम्नलिखित पंक्तियाँ दोहराईं:

नीम, अरंडी का तेल, या प्लासी का पेड़ (*3), चाहे जो भी पेड़ हो
जहां खोज करने वाले को मधुकोश मिल जाए, वह सोचता है कि वह सबसे अच्छा पेड़ है।
"क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वैश्य हो, जिससे मनुष्य सही सीखता है--
शूद्र, चांडाल, पुक्कुसा--उनकी दृष्टि में सर्वोच्च लगते हैं (*4)।"
"उस निकम्मे देहाती को दंडित करो, या फिर जान से मार डालो।"
अत: बिना विलंब किए उसका गला पकड़ लो।
जिसने बड़ी मेहनत से खजाना अर्जित किया,
अति आत्मविश्वास और गर्व के साथ इसे फेंक देता है!

राजा के आदमियों ने वैसा ही किया और कहा, "अपने गुरु के पास लौट जाओ और उनसे क्षमा मांग लो; फिर, यदि तुम वह मंत्र फिर से सीख सको, तो तुम यहाँ दोबारा आ सकते हो, लेकिन यदि नहीं, तो फिर कभी इस देश की ओर मत देखना।" इस प्रकार उन्होंने उसे निर्वासित कर दिया।

वह आदमी बहुत दुखी था। उसने सोचा, "मेरे लिए कोई सहारा नहीं है, सिवाय मेरे गुरु के। मैं उनके पास जाऊँगा, उनकी क्षमा प्राप्त करूँगा और फिर से मंत्र सीखूँगा।" शोक में डूबा हुआ वह उस गाँव की ओर चल पड़ा। उस महान सत्ता ने उसे आते हुए देखा और अपनी पत्नी को उसकी ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, महिला, वह दुष्ट फिर आ गया, उसका मंत्र खो गया है!" वह आदमी उस महान सत्ता के पास पहुँचा, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। "तुम यहाँ क्यों आए हो?" दूसरी तरफ ने पूछा। "हे मेरे गुरु!" उस आदमी ने कहा, "मैंने झूठ बोला, अपने गुरु का इनकार किया, और मैं पूरी तरह बर्बाद हो गया हूँ!" फिर उसने अपने अपराध को एक श्लोक में सुनाया और फिर से मंत्र माँगे।

"अक्सर वही व्यक्ति जो सोचता है कि समतल जमीन उसके पैरों के नीचे पड़ी है,
तालाब, गड्ढे, चट्टान में गिर जाना, सड़ी हुई जड़ से ठोकर लग जाना;
एक और व्यक्ति एक रस्सी जैसी दिखने वाली चीज पर कदम रखता है, एक काले रंग के सांप को खोजने के लिए;
एक अन्य व्यक्ति अपनी आंखों की रोशनी खो देने के कारण आग में कूद जाता है:
इसलिए मैंने पाप किया है और अपना जादू खो दिया है; लेकिन हे बुद्धिमान गुरु,
मुझे क्षमा कर दो! और मुझे एक बार फिर अपनी दृष्टि में कृपा प्राप्त करने का अवसर दो!
तब उनके शिक्षक ने उत्तर दिया, "क्या कहते हो मेरे बेटे? अंधे को बस एक इशारा दे दो, वो मुझे तालाबों और न जाने क्या-क्या से बचा लेगा; लेकिन मैंने तुम्हें एक बार बता दिया है, तो अब तुम्हें यहाँ क्या चाहिए?" फिर उन्होंने निम्नलिखित छंद दोहराए:

मैंने तुम्हें उचित तरीके से बताया था,
आपने उचित तरीके से सही मंत्र सीख लिया।
मैंने पूरी स्वेच्छा से इसकी प्रकृति समझाई:
अगर तुमने अच्छा व्यवहार किया होता, तो यह बात तुम्हें कभी नहीं छोड़ती।
"हे मूर्ख! किसने बड़ी मेहनत से जादू सीखा है?"
जो लोग इस संसार में निवास करते हैं, उनके लिए यह बहुत कठिन है।
तो फिर, मूर्ख! अंततः जीविका प्राप्त हो ही गई!
वह सब कुछ त्याग देता है, क्योंकि वह झूठ का पर्दाफाश कर देगा।
"ऐसे मूर्ख, नासमझ व्यक्ति के लिए, जो खुशी-खुशी झूठ बोलता है,"
कृतघ्न, जो स्वयं को संयमित नहीं कर सकता।
हम उसे शक्तिशाली मंत्र नहीं देते:
आप यहाँ से चले जाइए, और मुझसे दोबारा मत पूछिएगा!
इस प्रकार अपने शिक्षक द्वारा बर्खास्त किए जाने पर, उस व्यक्ति ने सोचा, "मेरे लिए जीवन का क्या अर्थ है?" और जंगल में जाकर दुखी मन से मर गया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "भाई, केवल अब ही नहीं, देवदत्त ने अपने गुरु का अनादर किया है और गंभीर विनाश का शिकार हुआ है;" और ऐसा कहते हुए उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त कृतघ्न व्यक्ति था, आनंद राजा था और मैं नीच जाति का व्यक्ति था।"

फुटनोट:

(1) क्रमांक 178 देखें

(2) एक प्राचीन मान्यता है कि इस बीमारी से ठीक होने के लिए, घर की दीवार तोड़कर बीमारी पैदा करने वाली आत्मा से भागना पड़ता है।

(3)ब्यूटिया फ्रोंडोसा। चूंकि प्लासी का नाम इसी वृक्ष से पड़ा है, इसलिए शायद इसे वृक्ष के नाम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

(4) ये छह जातियों के नाम हैं: क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, ये चार जातियाँ संस्कृत ग्रंथों में प्रचलित हैं, साथ ही चांडाल और पुक्कास, ये दोनों मिश्रित जातियाँ हैं और गैर-आर्य (गैर-यूरोपीय) प्रजाजन जातियाँ हैं जिन्हें बहुत तिरस्कृत किया जाता है, लगभग दास के समान। जातक क्षत्रियों, या योद्धाओं को ब्राह्मणों पर वरीयता देता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **फंदन-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-475-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 475
फंदना-जातक

"हे मनुष्य, जो खड़े हो जाओ," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने रोहिणी नदी के किनारे एक पारिवारिक कलह के बारे में सुनाई थी। कुणाल (*1) जन्म के अंतर्गत परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन किया जाएगा। इस अवसर पर गुरु ने अपने सगे-संबंधियों को संबोधित करते हुए कहा, "हे राजा,"

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब शहर के बाहर बढ़ईयों का एक गाँव था। उसमें एक ब्राह्मण बढ़ई रहता था, जो जंगल से लकड़ी लाकर और गाड़ियाँ बनाकर अपना जीवन यापन करता था।

उस समय हिमालय क्षेत्र में एक विशाल प्लासी (*2) का पेड़ था। एक काला शेर शिकार करते समय उसकी जड़ में लेट जाता था। एक दिन तेज़ हवा चली और पेड़ की एक सूखी शाखा टूटकर उसके कंधे पर जा गिरी। चोट से उसे दर्द हुआ और वह डर के मारे तुरंत उठा और भाग गया; फिर मुड़कर उसने उस रास्ते पर देखा जिससे वह आया था, और कुछ भी न देखकर उसने सोचा, "यहाँ न तो कोई दूसरा शेर है, न बाघ, न ही कोई मेरा पीछा कर रहा है। लगता है पेड़ का देवता मुझे वहाँ लेटे हुए देखकर नाराज़ होगा। मैं पता लगाऊंगा कि ऐसा है या नहीं।" ऐसा सोचते हुए वह बेवजह क्रोधित हो गया और पेड़ पर प्रहार करते हुए चिल्लाया—"मैं तेरे पेड़ का एक पत्ता भी नहीं खाता, न ही कोई शाखा तोड़ता हूँ; तू यहाँ दूसरे जीवों को बर्दाश्त कर सकता है, और मुझे नहीं! मुझमें क्या खराबी है? कुछ दिन रुक जा, मैं तुझे जड़ से उखाड़ फेंकूँगा, तुझे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा!" इस प्रकार उसने वृक्ष के देवता को फटकारा और फिर एक आदमी की तलाश में चला गया।

उस समय उपर्युक्त ब्राह्मण बढ़ई अपने दो-तीन अन्य साथियों के साथ गाड़ी में बैठकर उस इलाके में लकड़ी लेने आया था, क्योंकि वह गाड़ी बनाने का काम करता था। उसने अपनी गाड़ी एक जगह खड़ी की और कुल्हाड़ी व हथौड़ा लेकर पेड़ों की तलाश में निकल पड़ा। संयोगवश वह इस प्लासी के पेड़ के पास आ पहुँचा। शेर ने उसे देखकर पेड़ के नीचे जाकर खड़ा हो गया, क्योंकि उसने सोचा, "आज मुझे अपने शत्रु की पीठ देखनी ही है!" लेकिन बढ़ई इधर-उधर देखकर पेड़ के पास से भाग गया। शेर ने सोचा, "उसके पूरी तरह चले जाने से पहले मैं उससे बात करूँगा," और उसने पहली पंक्ति दोहराई:

"हे मनुष्य, जो इस वनक्षेत्र में हाथ में कुल्हाड़ी लिए खड़ा है,
मुझे सच-सच बताओ, मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम्हें कौन सा पेड़ चाहिए?
"देखो, चमत्कार!" यह सुनकर उस आदमी ने कहा, "मैं कसम खाता हूँ, मैंने आज तक ऐसा कोई जानवर नहीं देखा जो मनुष्य की तरह बोल सके। उसे तो पता ही होगा कि गाड़ी बनाने वाले के लिए किस तरह की लकड़ी अच्छी होती है। मैं उससे पूछूँगा।" ऐसा सोचते हुए उसने दूसरा छंद दोहराया:

"पहाड़ी पर चढ़ो, घाटी में उतरो, मैदान में चलो, जंगल में तुम एक राजा की तरह विचरण करते हो:
मुझे सच-सच बताओ, मैं तुमसे पूछता हूँ—पहियों के लिए कौन सा पेड़ अच्छा होता है?
शेर ने सुना और मन ही मन कहा, "अब मुझे मेरी दिली इच्छा पूरी होगी!" फिर उसने तीसरा छंद दोहराया:

"साल, बबूल, घोड़ी का कान (*3) नहीं, झाड़ी (*4) तो बिल्कुल भी अच्छी नहीं है;
एक पेड़ होता है जिसे प्लासी कहते हैं, और वही आपकी सबसे अच्छी पहिए वाली लकड़ी होती है।"

यह सुनकर वह व्यक्ति प्रसन्न हुआ और सोचने लगा, "आज का दिन कितना सुखद है, जो मुझे जंगल में ले आया। यहाँ एक जानवर के रूप में एक प्राणी है जो मुझे बता रहा है कि पहिया बनाने वाले के लिए कौन सी लकड़ी अच्छी है! अरे वाह, यह तो बढ़िया है!" इसलिए उसने चौथे छंद में शेर से प्रश्न पूछा:

"पत्तियों का स्वरूप कैसा है, तना किस प्रकार का दिखता है?"
मुझे सच-सच बताओ, मैं तुमसे विनती करता हूँ, ताकि मैं उस पेड़ को जान सकूँ?
इसके जवाब में शेर ने दो छंद दोहराए:

"यह वह वृक्ष है जिसकी शाखा को आप झुकते, मुड़ते हुए देखते हैं, लेकिन वह कभी टूटती नहीं है;
यह वह प्लासी है, जिसकी जड़ों पर मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।
"रथ की तीलियों या उनके किनारे, रथ के ध्रुव, या पहिए, या किसी भी भाग के लिए,"
यह प्लासी का पेड़ आपके लिए गाड़ी बनाने में काम आएगा।
इस घोषणा के बाद, शेर खुशी से झूमते हुए एक तरफ हट गया। वृक्ष-देवता ने पेड़ काटना शुरू किया। तभी वृक्ष-देवता ने सोचा, "मैंने उस जानवर पर कुछ नहीं गिराया; वह बेमौसम गुस्से में गिर पड़ा, और अब वह मेरा घर नष्ट करने पर तुला है, और मैं भी नष्ट हो जाऊंगा। मुझे उसके महामहिम को नष्ट करने का कोई तरीका ढूंढना होगा।" इसलिए लकड़हारे का रूप धारण करके वह वृक्ष-देवता के पास आया और उससे बोला, "अरे! आपके पास तो बहुत बढ़िया पेड़ है! जब यह गिर जाएगा तो आप इसका क्या करेंगे?" - "गाड़ी का पहिया बनाऊंगा।" - "क्या! क्या किसी ने आपको बताया है कि यह पेड़ गाड़ी के लिए अच्छा है?" "हाँ, एक काला शेर।" -- "बहुत खूब, काले शेर, तुमने सही कहा। तुम उस पेड़ से एक बढ़िया गाड़ी बना सकते हो," उसने कहा। "लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि अगर तुम एक काले शेर की गर्दन से खाल उतारकर, उसे लोहे के आवरण की तरह पहिये के बाहरी किनारे पर, केवल चार उंगल चौड़ी पट्टी की तरह, लगा दो, तो पहिया बहुत मजबूत हो जाएगा, और तुम्हें इससे बहुत फायदा होगा।" -- "लेकिन मुझे काले शेर की खाल कहाँ से मिलेगी?" -- "कितने मूर्ख हो तुम! पेड़ जंगल में मजबूती से खड़ा है, और भागेगा नहीं। तुम जाओ और उस शेर को ढूंढो जिसने तुम्हें इस पेड़ के बारे में बताया था, और उससे पूछो कि पेड़ के किस हिस्से को काटना है, और उसे यहाँ ले आओ। फिर जब उसे कुछ शक न हो, और वह इधर-उधर इशारा करे, तब तक इंतज़ार करो जब तक वह अपना जबड़ा बाहर न निकाल दे, और जब वह बोल रहा हो, तभी अपनी सबसे तेज कुल्हाड़ी से उस पर वार करो, उसे मार डालो, खाल ले लो, सबसे अच्छा मांस खा लो, और आराम से पेड़ काट दो।" इस तरह उसने अपना गुस्सा निकाला।

इस बात को समझाने के लिए गुरु ने निम्नलिखित श्लोकों को दोहराया:

इस प्रकार प्लासी के वृक्ष ने तुरंत ही अपनी इच्छा और अभिलाषा स्पष्ट कर दी:
मुझे भी एक संदेश देना है: हे भारद्वाज, सुनो!
"पशुओं के राजा के कंधे से चार इंच चौड़ा टुकड़ा काट कर निकाल दिया गया।"
और इसे पहिये के चारों ओर लगा दो, इससे यह और भी मजबूती से टिका रहेगा।"
"तो थोड़ी देर में प्लासी का पेड़, अपने क्रोध में लिप्त होकर,
जन्म लेने वाले और जन्म न लेने वाले शेरों ने मिलकर भीषण विनाश किया।"
वृक्ष देवता के निर्देश सुनकर रथ बनाने वाला चिल्ला उठा, "आह, आज तो मेरे लिए सौभाग्य का दिन है!" उसने शेर को मार डाला, पेड़ को काट डाला और चला गया।

गुरु ने निम्नलिखित वचन सुनाकर बात समझाई:

"इस प्रकार प्लासी वृक्ष पशु से लड़ता है (*5), और पशु वृक्ष से लड़ता है,
इसलिए दोनों आपस में विवाद करते हुए एक दूसरे को मौत के घाट उतार देते हैं।
अतः मनुष्यों के बीच जहाँ कहीं भी कोई झगड़ा या कलह उत्पन्न होता था,
उन्होंने, जैसे ही जानवर और पेड़ ने अब किया, मोर की तरह केपर्स काटे (*6)।
"मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि तुम किस समय एक पर हो, यह तुम्हारे लिए अच्छा है।"
सब एकमत रहो और झगड़ा मत करो, जैसा कि जानवर और पेड़ ने किया था।
सभी मनुष्यों के साथ शांति बनाए रखना सीखो; बुद्धिमान लोग इसी की प्रशंसा करते हैं; और जो प्रसन्न होता है
वह निश्चित रूप से शांति और धार्मिकता की अंतिम शांति प्राप्त करेगा।
जब उन्होंने राजा का प्रवचन सुना, तो वे आपस में सहमत हो गए।

गुरु ने इस प्रवचन को समाप्त करते हुए जन्म की पहचान बताई: "उस समय, मैं उस जंगल में रहने वाला देवता था, और मैंने सारी घटना देखी।"

फुटनोट:

(1)सं. 536.

(2)फंदना पलासा, "ब्यूटिया फ्रोंडोसा" के समान ही एक वृक्ष है।

(3) वैटिका रोबस्टा: इसके पत्तों के आकार के कारण ऐसा कहा जाता है।

(4)dhavo: Grislea Tomentosa.

(5)शब्द is is is is is, “स्वामी,” यानी शेर, पशुओं का राजा। जैसा ऊपर बताया गया है।

(6) टीकाकार समझाते हैं कि पुरुष झगड़े में खुद को उजागर करते हैं, जैसे मोर अपने गुप्तांगों को उजागर करते हैं। यह शायद क्रमांक 32 का संकेत है।

स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-476-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 476
जवाना-हंसा-जातक

"आओ, हंस," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में दलहधम्म सूत्रंत या बलवान पुरुषों के दृष्टांत के बारे में सुनाई थी। भगवान बुद्ध ने कहा: “मान लीजिए, भिक्षुओं, कि चार धनुर्धारी चारों दिशाओं में खड़े हों, बलवान, प्रशिक्षित और कुशल, तीरंदाजी में निपुण। फिर एक व्यक्ति आकर कहे, “यदि ये चारों धनुर्धारी, बलवान, प्रशिक्षित और कुशल, तीरंदाजी में निपुण, चारों दिशाओं से तीर चलाएँ, तो मैं उन तीरों को चलते ही, जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लूँगा”: क्या आप निश्चित रूप से सहमत नहीं होंगे कि वह अत्यंत फुर्तीला और फुर्ती का साक्षात उदाहरण होगा? खैर, भिक्षुओं, ऐसे व्यक्ति की फुर्ती चाहे कितनी भी महान हो, सूर्य और चंद्रमा की फुर्ती के समान, फिर भी उससे भी अधिक तीव्र कुछ है: मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, ऐसे व्यक्ति की फुर्ती चाहे कितनी भी महान हो, सूर्य और चंद्रमा की फुर्ती के समान, और यद्यपि देवता (देवदूत) सूर्य या चंद्रमा से भी तेज गति से उड़ते हैं, फिर भी देवताओं (देवदूतों) से भी अधिक तीव्र कुछ है: भिक्षुओं, उस व्यक्ति की फुर्ती (और इसी प्रकार), फिर भी उससे भी अधिक तीव्र देवता (देवदूत) जा सकते हैं, जीवन के तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसलिए, हे भाइयों, आपको यह सीखना चाहिए, सावधान रहना चाहिए; मैं सचमुच आपसे कहता हूँ, आपको यह सीखना चाहिए।” इस उपदेश के दो दिन बाद, वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे: “हे भाइयों, गुरु ने बुद्ध के रूप में अपने विशिष्ट क्षेत्र में, जीवन के तत्वों की प्रकृति की व्याख्या करते हुए, इसे क्षणभंगुर और दुर्बल दिखाया, और हे भाइयों और गैर-धर्मांतरित लोगों को समान रूप से अत्यंत भयभीत कर दिया। ओह, बुद्ध की शक्ति!” गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया; और उन्होंने कहा, “हे भाइयों, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मैं अपने असीम ज्ञान से अपने उपदेशों द्वारा भाइयों को भयभीत करूँ, और दिखाऊँ कि जीवन के तत्व कितने क्षणभंगुर हैं। यहाँ तक कि जब मैं अप्राकृतिक कारण (*1) एक हंस द्वारा गर्भ में आया, तब भी मैंने जीवन के तत्वों की क्षणभंगुर प्रकृति को दिखाया, और अपने उपदेशों द्वारा एक राजा के पूरे दरबार को, यहाँ तक कि बनारस के राजा को भी भयभीत कर दिया।” ऐसा कहकर, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब परमपिता का जन्म एक तेज हंस के रूप में हुआ, जो चित्तकूट पर्वत पर नब्बे हजार अन्य हंसों के झुंड में रहता था। एक दिन, भारत के मैदानी इलाकों में एक तालाब में उगे जंगली चावल खाकर, वह अपने झुंड के साथ हवा में उड़ने लगा (ऐसा लग रहा था मानो बनारस शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक सोने की चटाई बिछी हो), और खेल-खेल में धीरे-धीरे चित्तकूट की ओर उड़ गया। बनारस के राजा ने उसे देखा और अपने दरबारियों से कहा, "यह पक्षी अवश्य ही राजा होगा, जैसा

कि मैं हूँ।" राजा को वह पक्षी बहुत पसंद आया, और वह अपने साथ मालाएँ, इत्र और मलहम लेकर परमपिता की खोज में निकल पड़ा; और अपने साथ तरह-तरह के संगीत की धुनें भी बजाईं। जब परमपिता ने उसे इस प्रकार सम्मान देते हुए देखा, तो उसने अन्य हंसों से पूछा, "जब एक राजा मुझे इतना सम्मान दे रहा है, तो वह क्या चाहता है?" "वह आपसे मित्रता करना चाहता है, महाराज।" "ठीक है, मुझे राजा से दोस्ती करने दो," उसने कहा; और उसने राजा से दोस्ती कर ली, और फिर लौट आया।

इसके एक दिन बाद, जब राजा अपने उद्यान में थे और अनोतात्ता झील गए, तो एक पक्षी राजा के पास उड़कर आया, जिसके एक पंख पर पानी और दूसरे पर चंदन का पाउडर था। उसने राजा पर पानी छिड़का और पाउडर भी डाल दिया। फिर, जब सभी लोग देख रहे थे, वह अपने झुंड के साथ चित्तकुटा की ओर उड़ गया। तब से राजा उस महान प्राणी के लिए तरसने लगे; वे रुक-रुक कर उस रास्ते को देखते रहते जिससे वह आया था और सोचते—"आज मेरा साथी आएगा।"

अब महापुरुष के झुंड के दो सबसे छोटे हंसों ने सूर्य के साथ दौड़ लगाने का निश्चय किया; इसलिए उन्होंने महापुरुष से सूर्य के साथ दौड़ लगाने की अनुमति मांगी। महापुरुष ने कहा, "मेरे बच्चों, सूर्य की गति बहुत तीव्र है, और तुम कभी भी उसके साथ दौड़ नहीं लगा पाओगे। तुम दौड़ में ही मर जाओगे, इसलिए मत जाओ।" उन्होंने दूसरी बार और तीसरी बार भी अनुमति मांगी; लेकिन बोधिसत्व ने तीसरी बार तक उनकी अनुमति नहीं दी। फिर भी वे अपनी शक्ति को न जानते हुए दृढ़ रहे और राजा को बिना बताए सूर्य के साथ उड़ने का निश्चय कर लिया। इसलिए सूर्योदय से पहले ही वे युगंधर पर्वत (*2) की चोटी पर पहुंच गए। महापुरुष ने उन्हें नहीं देखा और पूछा कि वे कहां गए। जब उन्होंने सब कुछ सुना, तो उन्होंने सोचा, "वे कभी भी सूर्य के साथ नहीं उड़ पाएंगे, बल्कि दौड़ में ही मर जाएंगे। मैं उनकी जान बचाऊंगा।" इसलिए वे भी युगंधर पर्वत की चोटी पर गए और उनके पास बैठ गए। जब सूर्य क्षितिज पर दिखाई दिया, तो युवा हंस उठे और सूर्य के साथ-साथ आगे बढ़े; महापुरुष भी उनके साथ उड़ते हुए आगे बढ़े। सबसे छोटा हंस दोपहर तक उड़ता रहा, फिर कमजोर पड़ने लगा; उसे अपने पंखों के जोड़ों में आग सी लग गई। तब उसने महापुरुष को संकेत दिया: "भाई, मैं नहीं कर सकता!" महापुरुष ने कहा, "डरो मत, मैं तुम्हें बचाऊंगा;" और उसे अपने फैले हुए पंखों पर उठाकर, उसे शांत किया और चित्तकुटा पर्वत पर ले जाकर हंसों के बीच में रख दिया। फिर वह उड़ गया और सूर्य को पकड़ते हुए दूसरे हंस के साथ-साथ चलने लगा। दोपहर तक दूसरा हंस सूर्य के साथ उड़ता रहा, फिर वह कमजोर पड़ने लगा और उसे ऐसा लगा जैसे उसके पंखों के जोड़ों में आग लग गई हो। महापुरुष को संकेत देते हुए वह रोया, "भाई, मैं नहीं कर सकता!" उस महान प्राणी ने उसे भी उसी प्रकार सांत्वना दी और अपने फैले हुए पंखों पर बिठाकर चित्तकुटा ले गया। उस समय सूर्य ठीक सिर के ऊपर था। उस महान प्राणी ने सोचा, "आज मैं सूर्य की शक्ति की परीक्षा लूँगा;" और एक ही झटके में वापस आकर वह युगंधरा पर बैठ गया। फिर एक ही झटके में ऊपर उठकर उसने सूर्य को पीछे छोड़ दिया और कभी आगे, कभी पीछे उड़ते हुए मन ही मन सोचा, "मेरे लिए सूर्य के साथ उड़ना व्यर्थ है, यह तो केवल पाप का फल है: वह मेरे लिए क्या है? मैं बनारस जाऊँगा और वहाँ अपने साथी राजा को धर्म और सत्य का संदेश सुनाऊँगा।" फिर मुड़कर, सूर्य के आकाश के मध्य से हटने से पहले ही, वह पूरी दुनिया को एक छोर से दूसरे छोर तक पार कर गया; फिर अपनी गति धीमी करके, पूरे भारत को एक छोर से दूसरे छोर तक पार किया और अंत में बनारस पहुँचा। बारह लीग (x 4.23 किमी) के दायरे में फैला पूरा शहर, मानो पक्षी की छाया में था (*3), कहीं कोई दरार या छेद नहीं था; फिर जैसे-जैसे गति धीमी होती गई, आकाश में छेद और दरारें दिखाई देने लगीं। महान प्राणी की गति धीमी हो गई, और वह हवा से नीचे उतरकर एक खिड़की के सामने आ गिरा। "मेरा साथी आ गया है!"राजा अत्यंत प्रसन्न होकर चिल्लाया; और पक्षी के बैठने के लिए एक सोने का आसन लाकर बोला, "अंदर आओ, मित्र, और यहाँ बैठो," और उसने पहला श्लोक सुनाया।

"आओ, हे महान हंस, आओ यहाँ बैठो; तुम्हारा नजारा मुझे बहुत प्रिय है;
अब आप इस जगह के मालिक हैं; जो कुछ भी आपको दिखे, उसे चुन लीजिए।
महान प्राणी स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे। राजा ने उनके पंखों के नीचे सौ गुना नहीं, बल्कि हज़ार गुना शुद्ध किए गए इत्र से अभिषेक किया, उन्हें स्वर्ण थाली में मीठे चावल और चीनी युक्त जल दिया और मधुर स्वर में उनसे कहा— "हे मित्र, तुम अकेले आए हो; अब कहाँ से आए हो?" पक्षी ने उन्हें सारी बात विस्तार से बताई। तब राजा ने उनसे कहा: "मित्र, मुझे भी सूर्य के विरुद्ध अपनी शीघ्रता दिखाओ।"—"हे शक्तिशाली राजा, वह शीघ्रता दिखाई नहीं जा सकती।"—"तो मुझे कुछ वैसा ही दिखाओ।" "बहुत अच्छा, हे राजा, मैं आपको कुछ वैसा ही दिखाऊंगा। अपने उन धनुर्धारियों को बुलाओ जो बिजली की तरह तेज़ तीर चला सकते हैं।" राजा ने उन्हें बुलवाया। महान प्राणी ने उनमें से चार को चुना और उनके साथ महल से नीचे प्रांगण में गए। वहाँ उन्होंने ज़मीन में एक पत्थर का स्तंभ स्थापित करवाया और अपने गले में एक घंटी बंधवाई। फिर वह पत्थर के खंभे के शीर्ष पर बैठ गया और चारों तीरंदाजों को खंभे से दूर चारों दिशाओं की ओर मुंह करके खड़ा करते हुए बोला, "हे महाराज, इन चारों को एक ही क्षण में चार अलग-अलग दिशाओं में चार-चार तीर चलाने दीजिए, और मैं जमीन पर गिरने से पहले ही इन तीरों को पकड़ लूंगा और उनके चरणों में रख दूंगा। जब मैं तीर लेने जाऊंगा तो इस घंटी की झंकार से आपको पता चल जाएगा, लेकिन मैं दिखाई नहीं दूंगा।" फिर एक ही क्षण में सभी पुरुषों ने चारों तीर चला दिए; उसने उन्हें पकड़ लिया और उनके चरणों में रख दिया, और वह खंभे पर बैठा हुआ दिखाई दिया। "क्या आपने मेरी गति देखी, हे महाराज?" उसने पूछा; फिर आगे बोला, "हे महान महाराज, यह गति न तो मेरी सबसे तेज है और न ही मध्यम गति, यह मेरी सबसे धीमी गति है: और इससे आपको पता चलेगा कि मैं कितना तेज हूं।" तब राजा ने उससे पूछा, "अच्छा, मित्र, क्या कोई गति आपकी गति

से तेज है?" "हाँ, मेरे मित्र। मेरी सबसे तेज़ गति से भी सौ गुना, हज़ार गुना, नहीं, एक लाख गुना, सजीव प्राणियों में जीवन के तत्वों का क्षय होता है: वे चूर-चूर हो जाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।" इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट किया कि कैसे रूप का संसार पल-पल नष्ट होता हुआ चूर-चूर हो जाता है। यह सुनकर राजा मृत्यु के भय से भयभीत हो गया, होश खो बैठा और बेहोश हो गया। लोग व्याकुल हो गए, उन्होंने राजा का चेहरा पानी से धोया और उसे होश में लाया। तब उस महान सत्ता ने उससे कहा, "हे महान राजा, भयभीत न हों; परन्तु मृत्यु को याद रखें। धर्म के मार्ग पर चलें, दान दें और भलाई करें, सावधान रहें।" तब राजा ने उत्तर दिया, "हे मेरे स्वामी, आप जैसे बुद्धिमान गुरु के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता, चित्तकूट पर्वत पर वापस न लौटें, बल्कि यहीं रहें, मुझे शिक्षा दें, मेरे गुरु बनें और मुझे सिखाएँ!" और उसने यह निवेदन दो छंदों में व्यक्त किया:

प्रियजन के बारे में सुनकर प्रेम को पोषण मिलता है।
दृष्टि से ही खोए हुए की लालसा समाप्त हो जाती है:
क्योंकि देखना और सुनना मनुष्यों को प्रसन्न और प्रिय बनाता है,
आपको देखकर मुझे कृपा प्राप्त हो।
"आपकी आवाज प्यारी है, और जब मैं आपको देखता हूँ तो आपकी उपस्थिति उससे भी कहीं अधिक प्यारी लगती है।"
तो चूंकि मुझे तुम्हारा दर्शन करना अच्छा लगता है, हे हंस, मेरे साथ रहने आ जाओ!
बोधिसत्व ने कहा:

"इस प्रकार प्रदत्त सम्मान में मैं सदा आपके साथ रहना चाहूंगा;"
लेकिन एक दिन तुम शराब के नशे में कह सकते हो—"मेरे लिए उस शाही पक्षी को भून दो!"
"नहीं," राजा ने कहा, "तो मैं कभी शराब या मादक पेय को हाथ नहीं लगाऊंगा," और उन्होंने यह प्रतिज्ञा निम्नलिखित छंद में की:

"धिक्कार हो उन सभी भोजन और पेय पदार्थों पर जिन्हें मैं तुमसे अधिक प्रेम करता हूँ।"
और जब तक तुम मेरे साथ रहोगे, मैं एक बूंद भी नहीं पीऊंगा!
इसके बाद बोधिसत्व ने छह श्लोक पढ़े:

सियार या पक्षियों की आवाज आसानी से समझ में आ जाती है;
हाँ, परन्तु हे राजा, मनुष्यों के वचन इन सबसे कहीं अधिक अंधकारमय हैं!
एक व्यक्ति सोच सकता है, "यह मेरा दोस्त है, मेरा साथी है, मेरे परिवार का सदस्य है।"
लेकिन दोस्ती खत्म हो जाती है, और अक्सर नफरत और दुश्मनी शुरू हो जाती है (*5)।
"जिसके दिल में तुम्हारा दिल बसता है, वह तुम्हारे पास है, तुम्हारे साथ है, चाहे वह कहीं भी हो।"
लेकिन जो तुम्हारे साथ रहता है, और तुम्हारा हृदय उससे विमुख हो जाता है, वह तुमसे बहुत दूर रहता है।
"आपके दयालु हृदय वाले घर में कौन होगा?"
वह अब भी दयालु है, हालांकि वह समुद्र के उस पार बहुत दूर है:
तुम्हारे घर में कौन शत्रुतापूर्ण हृदय रखेगा?
हालांकि वह समुद्र जितनी दूरी पर है, फिर भी वह शत्रुतापूर्ण है।
"हे रथों के स्वामी, आपके शत्रु आपके निकट होते हुए भी दूर हैं।"
लेकिन, हे अपने राज्य के पालक! अच्छे हृदय वाले आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।
"जो लोग बहुत देर तक एक ही जगह पर रहते हैं, उन्हें अक्सर पता चलता है कि उनका दोस्त दुश्मन में बदल गया है।"
फिर, इससे पहले कि मैं तुम्हारी दोस्ती खो दूं, मैं तुमसे विदा लूंगा और चला जाऊंगा।
तब राजा ने उससे कहा:

"यद्यपि मैं हाथ जोड़कर आपसे विनती करता हूँ, तो भी आप मेरी बात नहीं सुनते;
आप हमारे लिए एक शब्द भी नहीं छोड़ते, जिनके लिए आपकी सेवा अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।
मेरी आपसे बस एक ही गुजारिश है: दोबारा आइए और यहां जरूर आइए।
तब बोधिसत्व ने कहा:

"अगर कुछ भी ऐसा न हो जो हमारे जीवन को तोड़ दे, हे राजा! अगर आप और मैं
हे जनमानस के पालनहार, अब भी जीवित रहो! शायद मैं यहीं उड़कर आऊँगा।
और दिन-रात बीतने के साथ-साथ शायद हम फिर से एक-दूसरे से मिलें।"
राजा को यह संबोधन देकर वह महान व्यक्तित्व चित्तकुटा के लिए प्रस्थान कर गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: “इस प्रकार, हे भिक्षुओं, बहुत समय पहले, जब मैं एक पशु के रूप में जन्मा था, तब मैंने जीवन के सभी तत्वों की कमजोरी को दर्शाया और सत्य का उपदेश दिया।” ऐसा कहते हुए उन्होंने अपने जन्म का वर्णन किया: “उस समय आनंद राजा थे, मोग्गल्याण सबसे छोटा पक्षी थे, सारिपुत्र दूसरे थे, बुद्ध के सभी अनुयायी झुंड के हंस थे, और मैं स्वयं तेज गति वाला हंस था।”

फुटनोट:

(1) प्राकृतिक प्रक्रियाओं के बिना, अचानक अस्तित्व में आने का एक तरीका।

(2) मेरु पर्वत को घेरने वाली सात महान पर्वत श्रृंखलाओं में से एक।

(3) इसका अर्थ है कि पक्षी उसके ऊपर इतनी तेज़ी से चक्कर लगा रहा था कि वह छत्रछाया जैसा प्रतीत हो रहा था।

(4)अगंत्वा पढ़ना

(5) ये दोनों दोहे क्रमांक 478 में पुनः आते हैं

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुल्ल-नारद-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-477-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 477
कुल्ला-नारदा-जातक

"कोई लकड़ी नहीं काटी जाती," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक साधारण लड़की के आकर्षण के बारे में सुनाई थी।

हमें पता चला कि श्रावस्ती नगर के एक नागरिक की लगभग सोलह वर्ष की एक युवती थी, जो किसी पुरुष के लिए सौभाग्य ला सकती थी, फिर भी कोई पुरुष उसे नहीं चुनता था। तब उसकी माता ने मन ही मन सोचा, "मेरी यह पुत्री अब बालिग हो चुकी है, फिर भी कोई उसे नहीं चुनता। मैं उसे मछली के लिए चारा बनाऊंगी और शाक्य (बुद्ध वंश) के किसी तपस्वी को संसार में वापस लाऊंगी और उसी से अपना जीवन यापन करूंगी।" उस समय श्रावस्ती नगर में एक कुलीन युवक रहता था, जिसने धम्म (बुद्ध के मार्ग) को अपना हृदय समर्पित कर दिया था और भिक्षु संघ में शामिल हो गया था। परन्तु शिष्यत्व की पूर्ण दीक्षा प्राप्त करने के बाद से ही उसने विद्या की सारी इच्छा खो दी थी और अपने श्रृंगार में लीन हो गया था। वह गृहस्थ नन अपने घर में चावल की दलिया और अन्य प्रकार के नरम-कच्चे व्यंजन बनाती और द्वार पर खड़ी होकर भिक्षुओं के आने-जाने पर ऐसे किसी व्यक्ति की तलाश करती जो स्वादिष्ट भोजन की लालसा से ललचा जाए। तेपितक, अभिधम्म और विनय का पालन करने वाले पुरुषों की भीड़ उमड़ पड़ी; लेकिन उनमें से कोई भी उसके जाल में फँसने को तैयार नहीं था। कटोरे और वस्त्र धारण किए, मधुर स्वर में सत्य का प्रचार करने वाले, हवा में मटमैले पक्षियों की तरह गतिमान, उन आकृतियों में से उसे एक भी नज़र नहीं आया। लेकिन अंत में उसने एक व्यक्ति को आते देखा, जिसकी आँखों के बाहरी कोने सुगंधित थे, बाल लटके हुए थे, उसने उत्तम वस्त्र का अंतर्वस्त्र और झाड़ा हुआ और शुद्ध बाहरी वस्त्र पहना हुआ था, उसके हाथ में किसी कीमती रत्न के समान रंग का कटोरा था और मनपसंद धूप से बचने के लिए एक छाता था, एक ऐसा व्यक्ति जो अपनी इंद्रियों को अपने वश में रखता था, उसका शरीर काँच-सा तंदुरुस्त था। "यही वह व्यक्ति है जिसे मैं अपने जाल में फँसा सकती हूँ!" उसने सोचा; और उसका अभिवादन करते हुए, उसने उसका कटोरा लिया और उसे घर में आमंत्रित किया। उसने उसके लिए बैठने की व्यवस्था की और चावल का दलिया और अन्य सभी व्यंजन परोसे; फिर भोजन के बाद, उसने उससे विनती की कि वह भविष्य में उसी घर में आए। इसलिए वह उसके बाद से उस घर में आने लगा और समय के साथ घनिष्ठ हो गया।

एक दिन, गृहस्थी साध्वी ने उसके सामने कहा, "इस घर में हम काफी सुखी हैं, बस मेरे पास कोई ऐसा पुत्र या दामाद नहीं है जो इसे संभाल सके।" उस व्यक्ति ने यह सुना और यह सोचकर कि वह ऐसा क्यों कह रही है, कुछ ही क्षण में उसका हृदय मानो भेद उठा। उसने

अपनी पुत्री से कहा, "इस पुरुष को लुभाओ और उसे अपने वश में करो।" इसके बाद, उस लड़की ने स्वयं को सजाया-संवारा और स्त्री के सभी छल-कपटों से उसे लुभाने का प्रयास किया। (आपको यह समझना चाहिए कि "अशिष्ट" कन्या का अर्थ केवल मोटी कन्या नहीं है, बल्कि चाहे वह मोटी हो या पतली, पाँचों इंद्रिय सुखों के कारण उसे "अशिष्ट" कहा जाता है।) तब वह व्यक्ति, जो युवा था और वासनाओं के वश में था, अपने मन में सोचने लगा, "मैं अब बुद्ध के धर्म (धार्मिक मार्ग) पर नहीं चल सकता"; और वह मठ में गया, और पान-पात्र और वस्त्र रखकर अपने आध्यात्मिक गुरुओं से कहा, "मैं असंतुष्ट हूँ।" फिर वे उसे गुरु के पास ले गए और बोले, "महोदय, यह भिक्षु असंतुष्ट है।" उसने पूछा, "क्या यह सच है कि आप असंतुष्ट हैं, भिक्षु?" "जी हाँ, सच है।" "तो फिर किस बात ने आपको असंतुष्ट किया?" "एक कुटिल लड़की की वजह से, भिक्षु।" गुरु ने कहा, "भिक्षु, बहुत समय पहले, जब आप जंगल में रहते थे, तो यही लड़की आपकी पवित्रता में बाधा बनी थी और उसने आपको बहुत हानि पहुँचाई थी; तो फिर आप उसके कारण फिर से असंतुष्ट क्यों हैं?" तब भिक्षुओं के अनुरोध पर उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक धनी ब्राह्मण परिवार में जन्मे और अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद जागीर का प्रबंधन करने लगे। फिर उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया और उनका निधन हो गया। उन्होंने सोचा, "जैसे मेरी प्रिय पत्नी के साथ हुआ, वैसे ही मेरे साथ भी मृत्यु लज्जित नहीं होगी (*1); मेरे लिए घर क्या है? मैं तपस्वी बन जाऊंगा।" अतः अपनी वासनाओं का त्याग करके वे अपने पुत्र के साथ हिमालय चले गए; और वहाँ उन्होंने तपस्वी जीवन व्यतीत किया, रहस्यमय समाधि और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त किया, और जंगलों में फल और जड़ों को खाकर जीवन यापन करने लगे।

उस समय सीमावर्ती लुटेरों ने ग्रामीण इलाकों पर हमला किया; एक कस्बे पर आक्रमण करके, कैदियों को पकड़कर, लूट का माल लादकर वे सीमा की ओर लौट गए। उनमें एक लड़की थी, जो सुंदर तो थी, लेकिन पाखंडी की सारी चालाकी उसमें कूट-कूटकर भरी थी। उस लड़की ने मन ही मन सोचा, "ये लोग हमें अपने घर ले जाकर गुलामों की तरह इस्तेमाल करेंगे; मुझे किसी तरह भागने का रास्ता खोजना होगा।" इसलिए उसने कहा, "मेरे स्वामी, मैं एकांतवास करना चाहती हूँ; मुझे थोड़ी देर के लिए दूर जाने दीजिए।" इस प्रकार उसने लुटेरों को धोखा दिया और भाग गई।

अब बोधिसत्व फल और अन्य वस्तुएँ लाने के लिए बाहर गए थे (*2), अपने पुत्र को कुटिया में छोड़कर। उनके जाने के दौरान, यह लड़की जंगल में भटकती हुई सुबह कुटिया में आई; और प्रेम की इच्छा से तपस्वी पुत्र को बहकाकर, उसके सद्‌गुणों को नष्ट कर दिया और उसे अपने वश में कर लिया। उसने उससे कहा, "यहाँ जंगल में क्यों रहना? चलो, हम किसी गाँव में जाकर अपना घर बसाएँ। वहाँ सभी इंद्रिय सुखों और वासनाओं का आनंद लेना आसान है।" उसने सहमति जताते हुए कहा, "मेरे पिता अभी जंगल में जंगली फल ढूँढ़ रहे हैं। जब हम उनसे मिल लेंगे, तो हम दोनों साथ चले जाएँगे।" तब लड़की ने सोचा, "यह भोला-भाला लड़का कुछ नहीं जानता; लेकिन उसके पिता बुढ़ापे में तपस्वी बन गए होंगे। जब वह आएगा, तो वह जानना चाहेगा कि मैं यहाँ क्या कर रही हूँ, और मुझे पीटेगा, मेरे पैर पकड़कर घसीटेगा और जंगल में फेंक देगा। मैं उसके आने से पहले ही भाग जाऊँगी।" तब उसने लड़के से कहा, "मैं पहले चलती हूँ, तुम मेरे पीछे आ जाना"; फिर उसने रास्ते के निशान दिखाते हुए प्रस्थान किया। उसके जाने के बाद लड़का उदास हो गया और उसने अपने सारे कर्तव्य नहीं निभाए; बल्कि सिर समेत खुद को लपेटकर झोपड़ी में लेट गया और बेचैनी से बड़बड़ाने लगा।

जब महान प्राणी जंगली फल लेकर आए, तो उन्होंने लड़की के पदचिह्न को देखा। उन्होंने सोचा, "यह तो एक स्त्री का पदचिह्न है; मेरे बेटे का सतीत्व नष्ट हो गया होगा।" फिर वे झोपड़ी में गए, जंगली फल नीचे रखे और पहले श्लोक को दोहराते हुए अपने बेटे से वही प्रश्न पूछा:

"न तो लकड़ी काटी गई है और न ही तुम तालाब से पानी लाए हो।"
आग नहीं जल रही है: तुम मूर्ख की तरह क्यों पड़े हो?
अपने पिता की आवाज सुनकर लड़का उठा और उन्हें प्रणाम किया; और पूरे आदर के साथ यह बताया कि वह वन जीवन सहन नहीं कर सकता, और कुछ पंक्तियाँ दोहराईं:

"मैं जंगलों में नहीं रह सकता: हे कश्यप, मैं शपथ लेता हूँ;
जंगल का जीवन कठिन है, और मैं वापस पुरुषों (*3) के पास चला जाऊँगा।
हे ब्राह्मण, मुझे यह सिखाओ कि जब मैं जाऊँ, तो जहाँ कहीं भी जाऊँ,
ग्रामीण इलाकों के रीति-रिवाजों को मैं सबसे अच्छी तरह से जान सकता हूँ।
“बहुत अच्छा, मेरे पुत्र,” उस महान प्राणी ने कहा, “मैं तुम्हें इस देश के रीति-रिवाजों के बारे में बताऊंगा।” और उन्होंने ये दो पंक्तियाँ दोहराईं:

"यदि आपका मन जंगल के फलों और जड़ों को पीछे छोड़ने का है
और शहरों में निवास करो, मेरी बात सुनो और मुझे वह मार्ग सिखाओ जो उस जीवन के लिए उपयुक्त है:
हर खाई से दूर रहो, जहर से बचो।
कभी भी कीचड़ में मत बैठो, और जहां सांप हों वहां सावधानी से चलो।"
तपस्वी के पुत्र को यह संक्षिप्त सलाह समझ में न आई और उसने पूछा:

"तुम्हारे इस पतन का धार्मिक (तपस्वी) मार्ग से क्या संबंध है?"
तुम्हारा कीचड़, तुम्हारा जहर और तुम्हारा सांप? आओ, मुझे ये सब बताओ, मैं तुमसे विनती करता हूँ।"
दूसरे ने समझाया--

"मेरे बेटे, दुनिया में एक ऐसा पेय है जिसे लोग शराब कहते हैं।"
सुगंधित, स्वादिष्ट, शहद जैसी मीठी और सस्ती, उत्तम स्वाद वाली:
हे नारद, ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह पवित्र पुरुषों के लिए विष है।
और दुनिया की औरतें मूर्खों की बुद्धि को चकनाचूर कर सकती हैं।
वे युवा दिलों को अपनी गिरफ्त में ले लेते हैं, जैसे तूफान जमीन से कपास को उखाड़ लेते हैं:
मेरा तात्पर्य उस कगार से है जिसके ठीक सामने वह नेक इंसान लेट जाता है।
"अन्य पुरुषों द्वारा दिखाए गए उच्च सम्मान, आदर, प्रसिद्धि और लाभ,"
हे नारद, यही वह कीचड़ है जिससे पवित्र पुरुष भी अपवित्र हो सकते हैं।
"महान सम्राट अपने सेवकों के समूह के साथ उस दुनिया में रहते हैं,
और हे नारद, वे महान हैं, और उनमें से प्रत्येक एक शक्तिशाली राजा है:
"सर्वशक्तिमान स्वामियों और सम्राटों के चरणों में तुम मत चलो।"
क्योंकि, नारद, ये वही सर्प हैं जिनके बारे में मैंने अभी बात की थी।
"जिस घर में तुम भोजन करने आ रहे हो, जब पुरुष भोजन करने बैठते हैं,
यदि आपको उस घर में कुछ अच्छा दिखाई दे, तो वहाँ से जी भर कर खा लें।
जब कोई दूसरा व्यक्ति आपको भोजन या पेय पदार्थ से दावत दे, तो ऐसा करें:
बहुत अधिक मत खाओ, बहुत अधिक मत पियो, और शारीरिक वासनाओं से दूर रहो।
गपशप, शराब, अश्लील संगति और सुनार के सामान की दुकानों से दूर,
आपको दूर रखा जाएगा, जैसे वे लोग जो ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलते हैं।"
पिता के लगातार बोलते रहने से बालक को होश आया और उसने कहा, "पिताजी, अब संसार से मेरा मन भर गया!" तब पिता ने उसे दयालुता और अन्य अच्छे भाव विकसित करने का तरीका बताया। पुत्र ने पिता के निर्देशों का पालन किया और शीघ्र ही उसे रहस्यमयी ध्यान की अवस्था प्राप्त हो गई। और पिता-पुत्र दोनों बिना समाधि भंग हुए ब्रह्मलोक (स्वर्ग) में पुनर्जन्म ले लिया।

जब गुरु ने यह प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म की पहचान बताई: "उस समय यह खुरदरी लड़की युवती थी, असंतुष्ट भाई (भिक्षु) तपस्वी का पुत्र था, और मैं पिता था।"

फुटनोट:

(1)अर्थात् यह एक दिन मुझ पर भी हावी हो जाएगा।

(2) संख्या 435

(3) शाब्दिक रूप से "राज्य।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दूत-जातक**2
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 478
दूता-जातक

"ओ, चिंतन में डूबे हुए," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अपनी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए सुनाई थी। सत्य के हॉल में वे कानाफूसी कर रहे थे: "देखो, भिक्षुओं, दसबल (बुद्ध) की सूझबूझ! उन्होंने उस युवक नंदा (*1) को अप्सराओं के चित्र दिखाए और उन्हें संतत्व प्रदान किया; उन्होंने अपने छोटे सेवक (*2) को एक वस्त्र दिया और उन्हें रहस्यवाद की चार शाखाओं (*3) के साथ संतत्व प्रदान किया; उन्होंने लोहार को एक कमल दिखाया और उन्हें संतत्व प्रदान किया; वे प्राणियों को कितनी ही चीजों का ज्ञान देते हैं!" गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं; उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "यह पहली बार नहीं है कि तथागत (बुद्ध) सूझबूझ में कुशल हैं और वांछित प्रभाव जानने में चतुर हैं; वे पहले भी चतुर थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब देश में सोने की कमी थी; क्योंकि राजा ने देश पर अत्याचार करके धन इकट्ठा किया था। उसी समय बोधिसत्व का जन्म काशी के एक गाँव के ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब वे वयस्क हुए, तो वे तक्षशिला गए और बोले, "मैं बाद में अपने गुरु को भिक्षा देने के लिए ईमानदारी से भिक्षा माँगकर धन जुटा लूँगा।" उन्होंने विद्या प्राप्त की और जब उनकी शिक्षा पूरी हो गई, तो उन्होंने कहा, "हे गुरु, मैं आपको आपके शिक्षण के लिए देय धन लाने में पूरी लगन लगाऊँगा।" फिर उनसे विदा लेकर वे चले गए और भिक्षा माँगते हुए देश-विदेश घूमने लगे। जब उन्होंने ईमानदारी से कुछ औंस (*4) सोना इकट्ठा कर लिया, तो वे उसे अपने गुरु को देने के लिए निकल पड़े; और रास्ते में गंगा नदी पार करने के लिए एक नाव पर सवार हो गए। जैसे ही नाव पानी पर आगे-पीछे हिलने लगी, सोना पानी में गिरने लगा। तब उसने सोचा, "यह ऐसा देश है जहाँ सोना मिलना मुश्किल है; अगर मैं अपने गुरु को भुगतान करने के लिए फिर से धन जुटाने जाऊँगा, तो बहुत समय लग जाएगा। क्या होगा अगर मैं गंगा के किनारे उपवास करूँ? समय आने पर राजा को मेरे यहाँ बैठने का पता चल जाएगा, और वह अपने कुछ दरबारियों को भेजेगा, लेकिन मेरे पास उनसे कहने के लिए कुछ नहीं होगा। फिर राजा स्वयं आएगा, और इस तरह मुझे अपने गुरु का शुल्क उससे मिल जाएगा।" इसलिए उसने अपना ऊपरी वस्त्र लपेट लिया, और यज्ञ का धागा उतारकर गंगा के किनारे ऐसे बैठ गया जैसे चाँदी की रेत पर सोने की मूर्ति हो। वहाँ से गुजरने वाली भीड़ ने उसे वहाँ बैठे और कुछ न खाते देखकर पूछा कि वह क्यों बैठा है। लेकिन उसने उनमें से किसी को एक शब्द भी नहीं कहा। अगले दिन उपनगर के ग्रामीणों को उसके वहाँ बैठे होने की खबर मिली, और वे भी आए और पूछा, लेकिन उसने उन्हें कुछ नहीं बताया; ग्रामीण उसकी थकी हुई हालत देखकर शोक मनाते हुए चले गए। तीसरे दिन शहर से लोग आए, चौथे दिन शहर के बड़े लोग आए, पाँचवें दिन राजा के करीबी लोग आए, छठे दिन राजा ने अपने मंत्रियों को भेजा; लेकिन उस व्यक्ति ने उनमें से किसी से भी बात नहीं की।

सातवें दिन राजा घबराकर उस व्यक्ति के पास आया और पहला श्लोक सुनाते हुए स्पष्टीकरण मांगा:

हे गंगा तट पर चिंतन में डूबे हुए, तुमने फिर क्यों नहीं बोला?
मेरे संदेशों के जवाब में? क्या तुम अपना दर्द छुपाओगे?
यह सुनकर उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "हे महान राजा! यह दुःख केवल उसी को बताया जाना चाहिए जो इसे दूर कर सकता है, और किसी और को नहीं।" और उन्होंने सात छंद दोहराए:

"हे काशी भूमि के पितृवत स्वामी! यदि दुख ही आपका भाग्य हो,
यदि कोई व्यक्ति ऐसा करने से बच सकता है, तो उसे अपने दुख के बारे में न बताएं।
लेकिन जो कोई भी अधिकार के बल पर इसके एक हिस्से को मुक्त कर सकता है,
वह अपनी सारी इच्छाएँ प्रत्येक दुखी प्राणी को बता दे।
सियार या पक्षियों की आवाज आसानी से समझ में आ जाती है;
हाँ, परन्तु हे राजा, मनुष्यों का वचन इन सबसे कहीं अधिक अंधकारमय है। (*5)
एक व्यक्ति सोच सकता है, "यह मेरा मित्र है, मेरा साथी है, मेरे परिवार का सदस्य है":
लेकिन दोस्ती टूट जाती है, और अक्सर नफरत और दुश्मनी शुरू हो जाती है! (*5)
वह व्यक्ति जिससे बार-बार पूछे जाने पर भी नहीं पूछा जाता
समय से परे जाकर ही उसके दर्द का पता चलेगा।
इससे निश्चित रूप से उसके मित्र नाराज होंगे।

और जो लोग उसका भला चाहते हैं, वे बहुत शोक मनाते हैं।
बोलने का सही समय जानना और उसे ढूंढना
समान विचारधारा वाले एक बुद्धिमान व्यक्ति को जानकर,
   बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को उसके कष्टों के बारे में बताता है।
कोमल शब्दों में, जिनके पीछे गहरा अर्थ छिपा होता है।
लेकिन अगर उसे यह पता चले कि कुछ भी सुधार नहीं कर सकता
उनकी कठिनाइयाँ, और यह कि उन्हें बताने से मदद मिलेगी
   किसी भी अच्छे मुद्दे में बुद्धिमानों को ही शामिल करना उचित नहीं है।
अंत तक संयमित, शांत और निर्लज्ज बने रहो।"
इस प्रकार महान सत्ता ने राजा को शिक्षा देने के लिए इन सात श्लोकों में प्रवचन दिया; और फिर शिक्षक को भुगतान करने के लिए धन की तलाश दिखाने के लिए चार अन्य श्लोकों को दोहराया:

"हे राजा! मैंने सारे राज्य छान मारे हैं, प्रत्येक राजा के नगरों को छान मारा है,
भिक्षा मांगने वाले प्रत्येक कस्बे या गांव को मेरे गुरु की फीस लानी होती थी।
गृहस्थ, दरबारी, धनी व्यक्ति, ब्राह्मण—हर दरवाजे पर
खोजते-खोजते मुझे थोड़ा सा सोना मिला, एक या दो औंस, इससे ज्यादा नहीं।
अब वह भी खो गया, हे महान राजा! और इसलिए मैं अत्यंत पीड़ा से शोकग्रस्त हूँ।
"आपके दूतों में मुझे मेरे दर्द से मुक्त करने की कोई शक्ति नहीं थी।"
मैंने इन बातों का अच्छी तरह से मूल्यांकन किया, हे महामहिम! इसलिए मैंने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया।
"परन्तु हे पराक्रमी राजा! आप मुझे मेरे दर्द से मुक्त करने की शक्ति रखते हैं।"
मैंने तुम्हारे गुणों का अच्छी तरह से मूल्यांकन किया है; मैं तुम्हें इसका स्पष्टीकरण देता हूँ।
जब राजा ने उसकी बात पढ़ी, तो उसने उत्तर दिया, "चिंता मत करो, ब्राह्मण, मैं तुम्हें तुम्हारे गुरु की फीस वापस कर दूंगा;" और उसने उसे दुगुना लौटा दिया।

इसे स्पष्ट करने के लिए गुरु ने अंतिम श्लोक को दोहराया:

कासी भूमि के सहायक स्वामी ने इस व्यक्ति को पुनर्स्थापित किया।
(पूरे भरोसे के साथ) उसके पास पहले से दुगुना शुद्ध सोना था।"
जब उस महान व्यक्ति ने इस प्रकार स्वयं को मुक्त कर दिया, तो उसने अपने गुरु की फीस अदा की; और राजा ने भी उसी प्रकार उनके उपदेशों का पालन करते हुए दान-पुण्य किया और भलाई के कार्य करते हुए धर्मपरायणता से शासन किया। इस प्रकार अंततः वे दोनों अपने कर्मों के अनुसार परलोक विदा हो गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "तो, भिक्षुओं, यह केवल अब ही नहीं है कि तथागत (बुद्ध) संसाधनों से भरपूर हैं, बल्कि वे हमेशा से ऐसे ही थे।" फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय आनंद राजा थे, सारिपुत्र गुरु थे और मैं युवक था।"

फुटनोट:

(1)बुद्ध के सौतेले भाई। संदर्भ के लिए देखें क्रमांक 182, सम्गवचार जातक, और हार्डी, मैनुअल, पृष्ठ 204; वारेन, अनुवाद में बौद्ध धर्म, 269 आगे।

(2) पढ़ना cullupatthakassa.

(3)अत्थ-, धम्म-, निरुति-, पतिभन- का।

(4) "सात निक्खा।" निक्खा एक परिवर्तनीय भार है, जो 250 फला के बराबर है, जिसे हम अनाज कह सकते हैं।

(5)ये दो दोहे ऊपर क्रमांक 476 (पृष्ठ 135) में आते हैं।

स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-479-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 479
कलिंग-बोधि-जातक

"राजा कलिंग," आदि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें वरिष्ठ भिक्षु आनंद द्वारा बोधि वृक्ष (पीपल) की पूजा का वर्णन है।

जब तथागत (बुद्ध) धर्म परिवर्तन के लिए तैयार लोगों को एकत्रित करने के उद्देश्य से यात्रा पर निकले, तो श्रावस्ती नगर के नागरिक अपने हाथों में सुगंधित पुष्पमालाएँ लिए जेतवन मठ की ओर चल पड़े। उन्हें श्रद्धा अर्पित करने के लिए कोई और स्थान न मिला, इसलिए उन्होंने उन्हें सुगंधित कक्ष के द्वार पर रख दिया और चले गए। इससे बहुत हर्षोल्लास हुआ। परन्तु अनाथपिंडिका को इसकी सूचना मिली; तथागत (बुद्ध) के लौटने पर उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु आनंद से मुलाकात की और उनसे कहा, "हे प्रभु, तथागत (बुद्ध) की यात्रा के दौरान यह मठ अनुपलब्ध है, और लोगों के लिए सुगंधित पुष्पमालाएँ अर्पित करके श्रद्धा अर्पित करने का कोई स्थान नहीं है। क्या आप कृपा करके तथागत (बुद्ध) को इस विषय में सूचित करेंगे और उनसे यह पता लगाएँगे कि क्या इसके लिए कोई स्थान उपलब्ध कराया जा सकता है या नहीं?" दूसरे ने, बिना किसी हिचकिचाहट के, ऐसा किया और पूछा, "कितने मंदिर हैं?" - "तीन, आनंद।" - "वे कौन से हैं?" - "शरीर के अवशेष के लिए मंदिर, उपयोग या पहनने के अवशेष के लिए मंदिर, स्मृति अवशेष के लिए मंदिर (*1)।" - "क्या आपके जीवनकाल में मंदिर बनाया जा सकता है, महोदय?" - "नहीं, आनंद, शरीर-मंदिर नहीं; उस प्रकार का मंदिर तब बनाया जाता है जब बुद्ध निर्वाण प्राप्त करते हैं। स्मृति मंदिर उचित नहीं है क्योंकि संबंध केवल कल्पना पर निर्भर करता है। लेकिन बुद्धों द्वारा उपयोग किया जाने वाला महान बोधि वृक्ष (पीपल का पेड़) मंदिर के लिए उपयुक्त है, चाहे वे जीवित हों या मृत।" - "महोदय, जब आप तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं, तो जेतवन मठ असुरक्षित है, और लोगों के पास कोई स्थान नहीं है जहाँ वे अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकें। क्या मैं जेतवन मठ के द्वार के सामने महान बोधि वृक्ष का बीज लगाऊँ?" - "ज़रूर लगाएँ, आनंद, और यह ठीक रहेगा।" यह मेरे लिए एक स्थायी स्थान था।"

वरिष्ठ भिक्षु ने यह बात अनाथपिंडिका, विशाखा और राजा को बताई। फिर जेतवन मठ के द्वार पर उन्होंने बोधिपीपल के वृक्ष के लिए एक गड्ढा खोदा और प्रधान वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना से कहा, "मैं जेतवन मठ के सामने एक बोधिपीपल का वृक्ष लगाना चाहता हूँ। क्या आप मुझे उस महान बोधिपीपल वृक्ष का एक फल लाकर देंगे?" वरिष्ठ भिक्षु सहर्ष तैयार होकर हवा में उड़ते हुए बोधिपीपल के वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर पहुँचे। उन्होंने अपने वस्त्र में एक फल रखा जो पेड़ की डंठल से गिर रहा था लेकिन अभी जमीन पर नहीं पहुँचा था, उसे वापस लाए और आनंद को दे दिया। वरिष्ठ भिक्षु ने कोसल के राजा को सूचित किया कि उन्हें उसी दिन बोधिपीपल का वृक्ष लगाना है। अतः शाम को राजा एक विशाल सभा के साथ सभी आवश्यक सामग्री लेकर आए; उनके साथ अनाथपिंडिका, विशाखा और श्रद्धालुओं की भीड़ भी आई।

जिस स्थान पर बोपड़ी का वृक्ष लगाया जाना था, वहाँ एक भिक्षु ने सोने का घड़ा रखा था, जिसके तल में एक गड्ढा था; वह सुगंधित जल से भीगी मिट्टी से भरा हुआ था। उन्होंने कहा, "हे महाराज, बोपड़ी के इस वृक्ष का बीज बोइए," और वह बीज राजा को दे दिया। लेकिन राजा ने सोचा कि उनका राज्य सदा उनके हाथ में नहीं रहेगा, और यह बीज अनाथपिंडिका को ही लगाना चाहिए, इसलिए उन्होंने वह बीज महान व्यापारी अनाथपिंडिका को दे दिया। अनाथपिंडिका ने सुगंधित मिट्टी को उछाला और बीज उसमें डाल दिया। जैसे ही वह बीज उनके हाथ से गिरा, सबके सामने हल के सिरे जितना चौड़ा, पचास भुजाओं जितना लंबा बोपड़ी का पौधा उग आया; चारों ओर और ऊपर की ओर तना के समान पचास भुजाओं जितनी लंबी पाँच बड़ी शाखाएँ निकल आईं। इस प्रकार वह वृक्ष जंगल का स्वामी बनकर खड़ा हो गया; एक अद्‌भुत चमत्कार! राजा ने वृक्ष के चारों ओर आठ सौ सोने और चांदी के कलश रखे, जो सुगंधित जल से भरे हुए थे और नीली कमल के फूलों से सुशोभित थे। उसने वहाँ भरे हुए बर्तनों की एक लंबी कतार स्थापित करवाई, और सात बहुमूल्य वस्तुओं से एक आसन बनवाया, जिस पर सोने की धूल छिड़की गई थी। उसने परिसर के चारों ओर एक दीवार बनवाई और सात बहुमूल्य वस्तुओं से एक द्वार कक्ष बनवाया। उस कक्ष को बहुत सम्मान दिया गया।

वरिष्ठ भिक्षु तथागत (बुद्ध) के पास आकर उनसे बोले, "हे प्रभु, जन कल्याण के लिए, मेरे द्वारा रोपित बोधि-वृक्ष के नीचे उस सिद्धि को प्राप्त कीजिए जो आपने उस विशाल बोधि-वृक्ष के नीचे प्राप्त की थी।" "यह क्या कह रहे हो, आनंद?" उन्होंने उत्तर दिया। "यदि मैं वहाँ बैठकर उस सिद्धि को प्राप्त करूँ जो मैंने उस विशाल बोधि-वृक्ष के बीच प्राप्त की थी, तो कोई अन्य स्थान मुझे सहारा नहीं दे सकता।"

"हे प्रभु," आनंद ने कहा, "मैं आपसे जन कल्याण के लिए निवेदन करता हूँ कि इस वृक्ष का उपयोग सिद्धि की अनुभूति के लिए कीजिए, जहाँ तक यह स्थान भार सहन कर सकता है।" गुरु ने एक रात उस स्थान का उपयोग सिद्धि की अनुभूति के लिए किया।

वरिष्ठ भिक्षु ने राजा और अन्य सभी को सूचित किया और इसे बो (पीपल) उत्सव का नाम दिया। और यह वृक्ष, जिसे आनंद ने लगाया था, आनंद के बो (पीपल) वृक्ष के नाम से जाना जाने लगा।

उस समय सत्य के हॉल में वे इस विषय पर चर्चा करने लगे। “भाई (भिक्षु), तथागत (बुद्ध) के जीवित रहते हुए, पूज्य आनंद ने एक बोधि वृक्ष (पीपल का पेड़) लगवाया और उसकी अत्यंत श्रद्धापूर्वक पूजा की। हे, गुरु की शक्ति कितनी महान है!” गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, “भाई (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि आनंद ने चारों महाद्वीपों में बंदी मानवजाति को, चारों ओर फैली भीड़ के साथ, बड़ी मात्रा में सुगंधित मालाएँ मंगवाईं और उस विशाल बोधि वृक्ष के परिसर में बोधि वृक्ष उत्सव का आयोजन किया।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, कलिंग राज्य में, दंतपुरा नगर में, कलिंग नामक एक राजा का शासन था। उनके दो पुत्र थे, महा-कलिंग और चुल्ला-कलिंग, अर्थात् महान कलिंग और लघु कलिंग। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि पिता की मृत्यु के बाद बड़ा पुत्र शासन करेगा; परन्तु छोटा पुत्र तपस्वी जीवन व्यतीत करेगा और भिक्षा मांगकर जीवन यापन करेगा, जबकि उसका पुत्र सर्वशक्तिमान सम्राट होगा।

समय बीतता गया और पिता की मृत्यु के बाद सबसे बड़ा पुत्र राजा बना और सबसे छोटा पुत्र उपसराय। सबसे छोटा पुत्र, हमेशा यह सोचकर कि उसका पुत्र सर्वशक्तिमान सम्राट बनेगा, अहंकारी हो गया। राजा को यह बात सहन नहीं हुई, इसलिए उसने छोटे कलिंग को गिरफ्तार करने के लिए एक दूत भेजा। दूत आया और बोला, "राजकुमार, राजा आपको गिरफ्तार करवाना चाहते हैं, इसलिए अपनी जान बचा लीजिए।" राजकुमार ने इस कार्य पर भेजे गए दरबारी को अपनी मुहर लगी अंगूठी, एक उत्तम कालीन और अपनी तलवार दिखाई। फिर उसने कहा, "इन चिह्नों (*3) से तुम मेरे पुत्र को पहचानोगे और उसे राजा बनाओगे।" ये कहकर वह जंगल में भाग गया। वहाँ उसने एक रमणीय स्थान पर एक कुटिया बनाई और नदी के किनारे तपस्वी के रूप में रहने लगा।

मद्दा राज्य में, सगला नगर में, मद्दा के राजा की एक पुत्री का जन्म हुआ। राजकुमार की ही तरह, ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि वह एक तपस्वी जीवन व्यतीत करेगी, जबकि उसका पुत्र सर्वशक्तिशाली सम्राट बनेगा। भारत के सभी राजाओं ने यह अफवाह सुनकर एकमत होकर नगर को घेर लिया। राजा ने मन ही मन सोचा, "यदि मैं अपनी पुत्री को किसी एक को दे दूँ, तो सभी राजा क्रोधित हो जाएँगे। मैं उसे बचाने का प्रयास करूँगा।" अतः वह अपनी पत्नी और पुत्री के साथ वेश बदलकर जंगल में भाग गया; और नदी के किनारे, राजकुमार कलिंग की कुटिया से कुछ दूरी पर एक कुटिया बनाकर, वहाँ एक तपस्वी के रूप में रहने लगा और जो कुछ भी भोजन मिलता, वही खाता था।

माता-पिता अपनी बेटी को बचाने की इच्छा से उसे झोपड़ी में छोड़कर जंगली फल इकट्ठा करने चले गए। उनके जाने के बाद उसने तरह-तरह के फूल इकट्ठा किए और उनकी माला बनाई। गंगा के किनारे एक आम का पेड़ है जिस पर सुंदर फूल लगते हैं, जो एक तरह की प्राकृतिक सीढ़ी का काम करता है। वह उस पर चढ़ी और खेलते-खेलते फूलों की माला पानी में गिरा दी (*4)।

एक दिन, जब राजकुमार कलिंग स्नान करके नदी से बाहर आ रहे थे, तो फूलों की यह माला उनके बालों में फंस गई।

उसने उसे देखा और कहा, "इसे किसी स्त्री ने बनाया है, कोई वयस्क स्त्री नहीं, बल्कि एक कोमल कन्या। मुझे उसे ढूंढना होगा।" प्रेम में इतना डूबा हुआ वह गंगा नदी में ऊपर की ओर यात्रा करता रहा, जब तक कि उसने उसे आम के पेड़ पर बैठी मधुर स्वर में गाते हुए नहीं सुना। वह पेड़ के नीचे पहुंचा और उसे देखकर बोला, "सुंदर देवी, तुम कौन हो?" "मैं मनुष्य हूं, महाराज," उसने उत्तर दिया। "तो नीचे आ जाओ," उसने कहा। "महाराज, मैं नहीं आ सकती; मैं योद्धा जाति की हूं (*5)।" "मैं भी वही हूं, देवी: नीचे आ जाओ!" "नहीं, नहीं महाराज, मैं ऐसा नहीं कर सकती। कहने से योद्धा नहीं बन जाते; यदि आप हैं, तो मुझे उस रहस्य का राज बताइए।" तब उन्होंने एक-दूसरे को अपने गुप्त ज्ञान के रहस्य बताए। और राजकुमारी नीचे आ गई, और उन्होंने एक-दूसरे के साथ संबंध बनाए।

जब उसके माता-पिता लौटे, तो उसने उन्हें कलिंग के राजा के पुत्र के बारे में विस्तार से बताया और यह भी बताया कि वह जंगल में कैसे आया था। उन्होंने उसे उससे विदा करने की सहमति दे दी। जब वे सुखमय वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब राजकुमारी गर्भवती हुई और दस महीने बाद उसने सौभाग्य और सद्गुणों से परिपूर्ण पुत्र को जन्म दिया; जिसका नाम उन्होंने कलिंग रखा। वह बड़ा हुआ और अपने पिता और दादा से सभी कलाएँ और निपुणताएँ सीखीं।

अंततः उसके पिता को नक्षत्रों की स्थिति देखकर पता चला कि उसका भाई मर गया है। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र को बुलाया और कहा, “मेरे पुत्र, तुम अपना जीवन वन में न व्यतीत करो। तुम्हारे पिता के भाई, कलिंग महापुरुष, मर गए हैं; तुम्हें दंतपुरा जाना चाहिए और अपना पैतृक राज्य ग्रहण करना चाहिए।” फिर उन्होंने उसे वे वस्तुएँ दीं जो वे अपने साथ लाए थे, जैसे कि मुहर, कालीन और तलवार, और कहा, “मेरे पुत्र, दंतपुरा नगर में, इस गली में, एक दरबारी रहता है जो मेरा बहुत अच्छा सेवक है। उसके घर जाओ और उसके शयनकक्ष में प्रवेश करो, और उसे ये तीनों वस्तुएँ दिखाओ और कहो कि तुम मेरे पुत्र हो। वह तुम्हें सिंहासन पर बिठा देगा।”

उस बालक ने अपने माता-पिता और दादा-दादी को विदाई दी; और अपने पुण्य के बल पर वह वायु में विचरण करते हुए उस दरबारी के घर में उतरा और उसके शयनकक्ष में प्रवेश किया। दूसरे ने पूछा, "तुम कौन हो?" उसने तीन चिन्ह प्रकट करते हुए कहा, "मैं कलिंग का पुत्र हूँ।" दरबारी ने यह बात महल में सबको बता दी, और दरबार के सभी लोगों ने शहर को सजाया और उसके सिर पर राजसी छत्र फैला दिया। तब कलिंग-भरद्वाज नामक पुरोहित ने उसे दस विधियाँ सिखाईं जो एक सर्वशक्तिशाली सम्राट को अदा करनी होती हैं, और उसने उन सभी कर्तव्यों का पालन किया। फिर पंद्रहवें दिन, उपवास के दिन, उसे चक्रदहा से साम्राज्य का बहुमूल्य चक्र, उपोसथ वंश से बहुमूल्य हाथी, राजसी वलाहा नस्ल से बहुमूल्य अश्व, वेपुल्ला से बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुए; और उसकी पत्नी, सेवकों का समूह और राजकुमार प्रकट हुए (*6)। तब उसने समस्त पृथ्वी पर शासन करने की शक्ति प्राप्त कर ली।

एक दिन, छत्तीस मील (4.23 किमी) के विशाल दल से घिरे हुए, और कैलाश पर्वत की चोटी के समान ऊँचे, पूरी तरह से सफेद हाथी पर सवार होकर, वह बड़े ठाठ-बाठ और वैभव के साथ अपने माता-पिता से मिलने गए। लेकिन विशाल बोधि वृक्ष (पीपल) के चारों ओर बने घेरे (*7) से आगे, जो सभी बुद्धों का विजय सिंहासन है और पृथ्वी की नाभि बन चुका है, हाथी आगे नहीं जा सका: राजा ने बार-बार उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया, लेकिन वह आगे नहीं बढ़ सका।

इसे समझाते हुए, गुरु ने पहला श्लोक सुनाया:

"सर्वोच्च स्वामी, राजा कलिंग,
   उन्होंने कानून और अधिकार के बल पर पृथ्वी पर शासन किया।
एक बार वह बो (पीपल) के पेड़ के पास आया।
   एक शक्तिशाली हाथी पर सवार होकर।"

इस पर राजा के साथ यात्रा कर रहे उनके पुरोहित ने मन ही मन सोचा, “हवा में तो कोई बाधा नहीं है; राजा अपने हाथी को आगे क्यों नहीं बढ़ा पा रहे? मैं जाकर देखता हूँ।” फिर हवा से नीचे उतरकर उन्होंने समस्त बुद्धों के विजय सिंहासन, पृथ्वी की नाभि, विशाल बोधि वृक्ष के चारों ओर बने घेरे को देखा। कहा जाता है कि उस समय एक राजसी करिषा (*8) के स्थान में घास का एक तिनका भी नहीं था, जो खरगोश की मूंछ जितना बड़ा भी न हो; वह मानो चांदी की थाली की तरह चिकनी फैली रेत हो; परन्तु चारों ओर घास, लताएँ, वन के स्वामियों के समान विशाल वृक्ष थे, मानो बोधि वृक्ष के सिंहासन की ओर मुख किए आदरपूर्वक खड़े हों। जब ब्राह्मण ने पृथ्वी के इस स्थान को देखा, तो उसने सोचा, “यह वह स्थान है जहाँ समस्त बुद्धों ने देह की समस्त इच्छाओं का नाश किया है; और इसके आगे कोई नहीं जा सकता, चाहे वह स्वयं सक्का (इंद्र) ही क्यों न हो।” फिर राजा के पास जाकर उसने उन्हें बोधि वृक्ष के मार्ग की विशेषताओं के बारे में बताया और उनसे नीचे उतरने का अनुरोध किया।

इसे समझाने के लिए गुरु ने निम्नलिखित श्लोक पढ़े:

"कलिंग-भरद्वाज ने अपने राजा, तपस्वी के पुत्र से कहा,
जैसे-जैसे वह साम्राज्य के पहिये को घुमाता गया, जो उसका मार्गदर्शन कर रहा था, वैसे-वैसे सम्मान के कार्य किए गए:
"यही वह स्थान है जिसका कवि गुणगान करते हैं; हे पराक्रमी राजा, यहीं अवतरित हो!"
यहां पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले, परिपूर्ण बुद्ध प्रकाशमान हैं।
"विश्व में, परंपरा के अनुसार, यह एक स्थान पवित्र भूमि है।"
जहां श्रद्धा भाव से जड़ी-बूटियां और लताएं चारों ओर खड़ी हैं (*9)।
आओ, नीचे उतरो और श्रद्धा अर्पित करो; क्योंकि जहाँ तक समुद्र की सीमा है, वहाँ तक हम पहुँच सकते हैं।
इस उपजाऊ धरती में, जो सर्वपोषक है, यह एक स्थान पवित्र भूमि है।
आपके पास जितने भी हाथी हैं, वे सभी शुद्ध नस्ल के हैं।
उन्हें यहाँ ले आओ, वे निश्चित रूप से यहाँ तक आ जाएँगे, लेकिन इससे आगे नहीं बढ़ पाएँगे।
"वह एक बेहतरीन नस्ल का घोड़ा है जिस पर आप सवारी कर रहे हैं; आप उस प्राणी को अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं।"
वह एक कदम भी आगे नहीं जा सकता: हाथी यहीं खड़ा है।
ज्योतिषी ने कहा, कलिंग ने सुना; फिर राजा ने उससे कहा,

उसे गहराई से यह बात समझाते हुए—"यही सच है, हम जल्द ही इसका पता लगा लेंगे।"
"छेदित होने पर, प्राणी जोर से चिंघाड़ता है, उसकी आवाज किसी बगुले की चीख की तरह तीखी होती है।"
वह हिलने लगा, फिर वजन के कारण अपने घुटनों के बल गिर पड़ा और उठ नहीं सका।
राजा द्वारा बार-बार घायल किए जाने पर, हाथी दर्द सहन नहीं कर सका और मर गया; परन्तु राजा को पता ही नहीं चला कि वह मर गया है और वह उसकी पीठ पर बैठा रहा। तब कलिंगभरद्वाज ने कहा, "हे महान राजा! आपका हाथी मर गया है; अब दूसरे हाथी पर सवार हो जाइए।"

इस बात को समझाने के लिए गुरु ने दसवां श्लोक सुनाया:

"जब कालिंग-भरद्वाज ने देखा कि हाथी मर गया है,
तब उसने भयभीत होकर राजा कलिंग से कहा:
"किसी दूसरे शक्तिशाली सम्राट की तलाश करो: तुम्हारा यह हाथी मर चुका है।"
राजा के पुण्य और जादुई शक्ति से उपोसथा नस्ल का एक और जानवर प्रकट हुआ और उसने अपनी पीठ पेश की। राजा उसकी पीठ पर बैठ गया। उसी क्षण मृत हाथी धरती पर गिर पड़ा।

इस बात को समझाने के लिए गुरु ने एक और श्लोक दोहराया:

"यह सुनकर कलिंग निराश हो गया।"
दूसरे पर सवार हुए, और तुरंत
शव धरती पर धंस गया।
और ज्योतिषी का वचन बिल्कुल सत्य साबित हो गया।
तब राजा आकाश से नीचे उतरे और बोधि वृक्ष के परिसर और हुए चमत्कार को देखकर भारद्वाज की प्रशंसा करते हुए कहा--

"कलिंग-भारद्वाज राजा कलिंग ने इस प्रकार कहा:
"आप सब कुछ जानते और समझते हैं, और आप हमेशा सब कुछ देखते हैं।"
अब ब्राह्मण ने इस प्रशंसा को स्वीकार नहीं किया; बल्कि अपने विनम्र स्थान पर खड़े होकर उन्होंने बुद्धों की प्रशंसा की, और उनकी स्तुति करते रहे।

इसे समझाने के लिए, गुरु ने इन छंदों को दोहराया:

लेकिन ब्राह्मण ने तुरंत इसका खंडन किया और राजा से इस प्रकार कहा:
मैं चिह्नों और प्रतीकों की सच्चाई जानता हूँ: लेकिन बुद्ध, सब कुछ जानते हैं।
"यद्यपि वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, फिर भी उन्हें चिह्नों में कोई निपुणता नहीं है।"
वे सब कुछ जानते हैं, लेकिन अंतर्दृष्टि से जानते हैं: मैं अभी भी किताबों का आदमी हूँ।"
बुद्धों के गुणों के बारे में सुनकर राजा का मन प्रसन्न हुआ; और उसने संसार के सभी निवासियों को प्रचुर मात्रा में सुगंधित पुष्पमालाएँ लाने का आदेश दिया, और सात दिनों तक उन्हें महान बोधि वृक्ष (पीपल वृक्ष) की परिक्रमा करने के लिए कहा।

स्पष्टीकरण के तौर पर, गुरु ने कुछ श्लोक सुनाए:

इस प्रकार उन्होंने मधुर ध्वनि के साथ महान बोधि वृक्ष की पूजा की।
संगीत से, और सुगंधित मालाओं से: उसने चारों ओर एक दीवार खड़ी कर दी।
और उसके बाद राजा अपने रास्ते पर चल पड़ा—

"साठ हजार गाड़ियों में फूल लाए गए, भेंट के रूप में।"
इस प्रकार राजा कलिंग ने वृक्ष की परिक्रमा की पूजा की।
इस प्रकार बोधिवृक्ष (पीपल वृक्ष) की पूजा करने के बाद, उन्होंने अपने माता-पिता से मुलाकात की और उन्हें अपने साथ दंतपुरा वापस ले आए; जहाँ उन्होंने दान दिया और अच्छे कर्म किए, जब तक कि उनका तैंतीस के स्वर्ग में पुनर्जन्म नहीं हो गया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करने के बाद कहा: "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि आनंद ने बोधि वृक्ष की पूजा की, बल्कि अतीत में भी ऐसा किया था;" और फिर उन्होंने जन्म का उल्लेख किया: "उस समय आनंद कलिंग थे, और मैं स्वयं कलिंग-भरद्वाज था।"

फुटनोट:

(1) अंतिम वर्ग को बुद्ध की प्रतिमाएँ कहा जाता है।

(2) परिगलन्तम पढ़ना.

(3) ये प्रतीक लोककथाओं की एक परिचित विशेषता हैं।

(4) यह आमतौर पर महिला के सिर का बाल होता है जो गिरता है।

(5) क्षत्रिय.

(6)चक्कवत्ती का विवरण और उनके प्रकट होने पर हुए चमत्कारों के लिए,

(7) यह शब्द वृक्ष के नीचे की सीट और उसके चारों ओर निर्मित ऊंचे चबूतरे दोनों के लिए प्रयोग किया जाता है।

(8)या फिर राजा के चारों ओर करिसा होनी चाहिए?

(9) विद्वान इस मांडो के बारे में कहते हैं: "जैसे-जैसे युग आगे बढ़ता है, पहले तो यह वैसा ही बना रहता है, फिर युग के घटने के साथ-साथ यह फिर से घटता जाता है और कम होता जाता है।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अकित्ता-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-480-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 480
अकित्त-जातक (अगत्स्य ऋषि)

"सक्का (इंद्र), प्राणियों के स्वामी," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए श्रावस्ती नगर में रहने वाले एक उदार दाता के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि उस व्यक्ति ने गुरु को आमंत्रित किया और सात दिनों तक उनके साथ आए समूह को अनेक उपहार दिए; अंतिम दिन उन्होंने संतों के समूह को उनकी सभी आवश्यक वस्तुएँ भेंट कीं। तब गुरु ने उनका धन्यवाद करते हुए कहा, "हे शिष्य, आपकी उदारता महान है: आपने अत्यंत कठिन कार्य किया है। दान देने की यह प्रथा प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों की प्रथा है। दान देना आवश्यक है, चाहे आप सांसारिक जीवन में हों या सांसारिक जीवन का त्याग कर रहे हों; प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष, जब उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया था और वन में रहते थे, जब उन्हें केवल जल में छिड़के हुए करौंदे (*1) खाने पड़ते थे, बिना नमक या मसाले के, तब भी वे राहगीरों को दान देते थे और स्वयं अपने आनंद और प्रसन्नता में जीते थे।" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "महोदय, कंपनी को सभी आवश्यक वस्तुएँ देने की बात तो स्पष्ट है, लेकिन आपकी बात स्पष्ट नहीं है। क्या आप हमें समझाएँगे?" तब गुरु ने उसके अनुरोध पर अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण सरदार के परिवार में हुआ, जिनकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। उनका नाम अकित्ति (अगत्स्य) रखा गया। जब वे चलने-फिरने लायक हुए, तो उनकी एक बहन का जन्म हुआ, जिसका नाम यशवती रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में बोधिसत्व बनारस गए, जहाँ उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की और फिर लौट आए। इसके बाद उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उन्होंने मृतकों की आत्माओं के लिए सभी आवश्यक कार्य कर दिए थे और अपने खजाने का निरीक्षण कर रहे थे (*2): "फलां व्यक्ति ने इतना धन इकट्ठा किया और मर गया, फलां व्यक्ति ने इतना।" यह सुनकर वे व्याकुल हो गए और सोचने लगे, "यह खजाना सबके सामने है, लेकिन इसे इकट्ठा करने वाले अब कहीं नहीं हैं: वे सब चले गए हैं

और खजाना पीछे छोड़ गए हैं, लेकिन जब मैं मर जाऊंगा तो इसे अपने साथ ले जाऊंगा।" इसलिए उन्होंने अपनी बहन को बुलवाकर कहा, "इस खजाने की जिम्मेदारी तुम ले लो।" "तुम्हारा इरादा क्या है?" उसने पूछा। उसने उत्तर दिया, "सन्यासी बनना।" "प्रिय," उसने कहा, "तुम्हारे मुंह से निकली इस बात को मैं अपने ऊपर नहीं लूंगी; मैं इसे नहीं लूंगी, बल्कि मैं भी तपस्वी बनूंगी।" फिर राजा से अनुमति लेकर उसने पूरे शहर में ढोल बजवाया और घोषणा करवाई: "हे! धन चाहने वाले सभी लोग ज्ञानी पुरुष के घर जाएं!" सात दिनों तक उसने बहुत दान दिया, फिर भी खजाना खत्म नहीं हुआ। तब उसने मन ही मन सोचा, "मेरे शरीर के तत्व नष्ट हो रहे हैं, और इस धन-दौलत के खेल से मुझे क्या चाहिए? जो चाहें ले लें।" फिर उसने घर के दरवाजे खोलते हुए कहा, "यह एक उपहार है; लोग इसे ले लें।" इस प्रकार, अपने परिवार को रोते हुए छोड़कर, घर को उसके सारे सोने और कीमती धातुओं के साथ छोड़कर, वह और उसकी बहन चले गए। और बनारस का वह द्वार जिससे होकर वे गए थे, अकित्ती का द्वार कहलाता था, और वह घाट जिससे होकर वे नदी में उतरे थे, वह भी अकित्ती का घाट कहलाता था।

वह तीन लीग (4.23 किमी) की दूरी तय करके एक रमणीय स्थान पर पहुंचा और वहां पत्तों और शाखाओं से एक झोपड़ी बनाई और अपनी बहन के साथ उसमें एक तपस्वी के रूप में रहने लगा।

उनके संसार से संन्यास लेने के बाद, कई अन्य लोगों ने भी ऐसा ही किया, गाँव वालों, नगरवासियों, राज नगर के नागरिकों ने; उनकी संगति विशाल थी, उन्हें मिले उपहार और सम्मान भी विशाल थे; यह किसी बुद्ध के पुनर्जन्म के समान था। तब उस महान सत्ता ने मन ही मन सोचा, "यहाँ तो बहुत सम्मान और भिक्षा का भंडार है, यहाँ तो बहुत बड़ी संगति है, हाँ, बहुत बड़ी, लेकिन मुझे तो एकांत में रहना चाहिए।" अतः, जब किसी को इसकी उम्मीद नहीं थी, अपनी बहन को बिना बताए ही वे अकेले ही चले गए, और समय आने पर दमिला (*3) राज्य पहुँचे, जहाँ कविरापट्टन के सामने एक उद्यान में रहकर उन्होंने रहस्यमय समाधि (सम्मोहन) और अलौकिक शक्तियों का अभ्यास किया। वहाँ भी उन्हें बहुत सम्मान और उपहार प्राप्त हुए। यह उन्हें पसंद नहीं आया, और उन्होंने इसे त्याग दिया, और वायु में विचरण करते हुए नाग (*4) द्वीप के सामने स्थित कारा द्वीप पर अवतरित हुए। उस समय, काराद्वीप का नाम अहिद्वीप था, जिसका अर्थ है नागों का द्वीप। वहाँ उसने एक विशाल करा-वृक्ष के पास एक कुटिया बनाई और उसमें रहने लगा। परन्तु उसके वहाँ रहने की बात किसी को पता नहीं थी।

अब उनकी बहन अपने भाई की खोज में निकल पड़ीं और कुछ समय बाद दमिला राज्य पहुँचीं, उन्हें वहाँ नहीं पाया, फिर भी उसी स्थान पर रहीं जहाँ वे रहते थे, पर उन्हें समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हुई। महापुरुष इतने संतुष्ट थे कि वे कहीं नहीं गए, बल्कि फल लगने के समय उसी वृक्ष का फल खाते थे और पत्तियाँ धारण करने के समय जल से भीगी हुई पत्तियों को खाते थे। उनके पुण्य की अग्नि से सक्का (इंद्र) का संगमरमर का सिंहासन प्रज्वलित हो गया। "मुझे मेरे स्थान से कौन उतारेगा?" सक्का (इंद्र) ने सोचा, और विचार करते हुए उन्होंने उस ज्ञानी पुरुष को देखा। "यह तपस्वी अपने पुण्य की रक्षा क्यों करता है? क्या वह सक्का (इंद्र) बनने की इच्छा रखता है, या किसी अन्य कारण से? मैं उसकी परीक्षा लूँगा। वह दुखी जीवन जीता है, जल से भीगी हुई करप की पत्तियाँ खाता है: यदि वह सक्का (इंद्र) बनना चाहता है, तो वह मुझे अपनी भीगी हुई पत्तियाँ देगा; यदि नहीं, तो वह नहीं देगा।" फिर ब्राह्मण का वेश धारण करके वह बोधिसत्व के पास गया।

बोधिसत्व अपने पत्तिपर्ण-शैक्ष के द्वार पर बैठे थे, उन्होंने पत्तियाँ गीली करके बिछा दी थीं: "जब ये ठंडी हो जाएँगी, तब मैं इन्हें खाऊँगा," उन्होंने सोचा। उसी क्षण सक्का (इंद्र) उनके सामने भिक्षा माँगते हुए खड़े थे। जब बोधिसत्व ने उन्हें देखा, तो वे प्रसन्न हुए; "मेरे लिए आशीर्वाद है, मैं एक भिखारी को देख रहा हूँ; आज मैं अपने हृदय की इच्छा पूरी करूँगा और भिक्षा दूँगा।" जब भोजन तैयार हो गया, तो उन्होंने तुरंत उसे अपने कटोरे में ले लिया और सक्का (इंद्र) की ओर बढ़ते हुए उनसे कहा, "यह मेरा दान है: यही मेरे अनंत ज्ञान प्राप्ति का साधन बने!" फिर अपने लिए कुछ भी छोड़े बिना, उन्होंने भोजन दूसरे के कटोरे में रख दिया। ब्राह्मण ने उसे लिया और थोड़ी दूर जाकर अंतर्धान हो गए। लेकिन बोधिसत्व ने अपना दान देने के बाद फिर कभी भोजन नहीं पकाया, बल्कि आनंद और प्रसन्नता में बैठे रहे। अगले दिन उन्होंने फिर भोजन पकाया और पहले की तरह शैक्ष के प्रवेश द्वार पर बैठ गए। फिर सक्का (इंद्र) ब्राह्मण के वेश में आए, और फिर उस महान सत्ता ने उन्हें भोजन कराया और आनंद और प्रसन्नता में लीन रहे। तीसरे दिन भी उन्होंने पहले की तरह ही दान दिया और कहा, "देखो, मेरे लिए कितना बड़ा आशीर्वाद है! कुछ कराली के पत्तों ने मेरे लिए महान पुण्य उत्पन्न किया है।" इस प्रकार, तीन दिनों से भोजन न मिलने के कारण दुर्बल होते हुए भी, वे दोपहर के समय अपनी कुटिया से बाहर निकले और द्वार पर बैठकर अपने दिए गए दान पर विचार करने लगे। सक्का (इंद्र) ने सोचा, "यह ब्राह्मण तीन दिनों से उपवास कर रहा है, दुर्बल होते हुए भी मुझे दान दे रहा है और अपने दान में प्रसन्न है। उसके विचारों में कोई अन्य अर्थ नहीं है; मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि वह क्या चाहता है और ये दान क्यों दे रहा है, इसलिए मुझे उससे पूछना चाहिए, उसका अर्थ जानना चाहिए और उसके दान का कारण समझना चाहिए।" तदनुसार, उन्होंने दोपहर तक प्रतीक्षा की, और फिर युवा सूर्य के समान तेजस्वी और वैभवशाली रूप में उस महान सत्ता के पास आए; और उसके सामने खड़े होकर उससे यह प्रश्न पूछा: "हे तपस्वी! आप इस खारे समुद्र से घिरे जंगल में, गर्म हवाओं के बीच तपस्वी जीवन का अभ्यास क्यों करते हैं?"

इस बात को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने पहला श्लोक दोहराया:

"सक्का (इंद्र), प्राणियों के स्वामी ने अकिति को सम्मानित होते देखा:
"हे महान ब्राह्मण, आप यहाँ भीषण गर्मी में क्यों विश्राम कर रहे हैं?" उसने कहा।
जब उस महान प्राणी ने यह सुना और जाना कि यह सक्का (इंद्र) हैं, तो उन्होंने उत्तर देते हुए कहा, "मैं उन उपलब्धियों की लालसा नहीं करता; परन्तु अनंत ज्ञान की लालसा में मैं एक संन्यासी का जीवन व्यतीत करता हूँ।" इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने दूसरा श्लोक पढ़ा:

"पुनर्जन्म, शरीर का टूटना, मृत्यु, सब कुछ पीड़ादायक है।"
अत: हे सक्का (इंद्र) वासव! मैं यहाँ शांति से रहता हूँ।
ये शब्द सुनकर इंद्र प्रसन्न हुए और सोचने लगे, "यह तो सभी प्राणियों से असंतुष्ट है और निर्वाण की प्राप्ति के लिए वन में निवास करता है। मैं इसे वरदान दूंगा।" फिर उन्होंने तीसरे श्लोक के शब्दों में उसे वरदान चुनने के लिए आमंत्रित किया:

"काश्यपा, आपने बहुत अच्छी बात कही, बहुत ही बढ़िया ढंग से कहा, उत्कृष्ट ढंग से कहा।"
अब एक वरदान चुनो—जैसा तुम्हारा हृदय पूछे, तो चुनाव कर लो (*5)।"
उस महान सत्ता ने अपना वरदान चुनते हुए चौथे श्लोक को दोहराया:

"सभी प्राणियों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है।"
पुत्र, पत्नी या खजाना, भंडार में अनाज, सब कुछ प्राप्त होने पर भी संतुष्ट नहीं:
मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदय में ऐसे लोगों के प्रति कोई वासना उत्पन्न न हो।
तब इंद्र (सक्का) अत्यंत प्रसन्न होकर और भी वरदानों की पेशकश की, और उस महान आत्मा ने उन्हें स्वीकार कर लिया, और बारी-बारी से प्रत्येक वरदान ने निम्नलिखित श्लोकों को दोहराया:

"काश्यप, आपने बहुत अच्छी बात कही, बहुत ही सटीक और उत्कृष्ट ढंग से कहा: अब अपने हृदय की पुकार के अनुसार वरदान चुनिए, और वही चुनाव कीजिए।"

"सभी प्राणियों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है।"
भूमि, सामान और सोना, गुलाम, घोड़े और गायें, सब बूढ़े होकर नष्ट हो जाते हैं:
मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं उनके जैसा न बनूँ, और न ही मुझमें यह दोष हो।
"अच्छी बातें कही हैं," इत्यादि (पहले की तरह ही)

"संपूर्ण जगत के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है।"
मुझे कभी किसी मूर्ख को देखना या सुनना न पड़े, और न ही कोई ऐसा व्यक्ति मेरे साथ रहे।
किसी मूर्ख से बात मत करो, न ही उसकी संगति पसंद करो।
"हे कश्यप, मूर्ख ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मुझे बताइए, मूर्खों की संगति तुम्हारे लिए असहनीय क्यों है?"

मूर्ख व्यक्ति दुष्टतापूर्ण कार्य करता है, वह अपने ऊपर ऐसा बोझ लाद लेता है जिसे कोई भी सहन नहीं कर सकता।
बुराई करना उसे अच्छा लगता है, और जब उसकी तारीफ की जाती है तो वह क्रोधित हो जाता है।
उसे सही आचरण का ज्ञान नहीं है; इसीलिए मैं वहाँ किसी मूर्ख को नहीं रखना चाहता।
"आपने सही कहा, कश्यप," इत्यादि।

"सभी प्राणियों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है।"
मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं उस बुद्धिमान व्यक्ति को देख और सुन सकूँ, और वह मेरे साथ निवास करे।
क्या मैं बुद्धिमानों से बातचीत कर सकता हूँ और उनकी संगति का आनंद ले सकता हूँ?
"हे कश्यप, कृपया बताइए, उस ज्ञानी व्यक्ति ने आपके साथ क्या किया है? आप ऐसा क्यों चाहते हैं कि जहाँ आप हैं, वहाँ वह ज्ञानी व्यक्ति भी हो?"

बुद्धिमान व्यक्ति अच्छा काम करता है, वह कभी भी ऐसा बोझ अपने ऊपर नहीं लेता जिसे कोई उठा न सके।
भलाई करना उसका गुण है, और वह अच्छी बातें सुनने पर क्रोधित नहीं होता।
वह उचित आचरण को भली-भांति जानता है; इसीलिए उसका वहां होना उचित है।"
"आपने सही कहा, कश्यप," इत्यादि।

सभी प्राणियों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है।
मैं वासनाओं से मुक्त हो जाऊं, और जब सूरज चमकने लगे
हे पवित्र भिक्षुओं, प्रकट होइए और मुझे दिव्य भोजन प्रदान कीजिए;
"कृपा हो कि मेरे देने से यह कम न हो, और न ही मुझे अपने कर्म पर पछतावा हो।"
लेकिन मेरा हृदय देने में प्रसन्न रहे; मैं इसी को अपना प्रतिफल मानता हूँ।
"काश्यप, आपने बहुत अच्छी बात कही, बहुत ही सटीक और उत्कृष्ट ढंग से कहा: अब अपने हृदय की पुकार के अनुसार वरदान चुनिए, और वही चुनाव कीजिए।"

"सभी प्राणियों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया।"
हे सक्का (इंद्र), अब मेरे पास मत आना: मुझे बस यही वरदान चाहिए।
लेकिन बहुत से पुरुष और महिलाएं, जो सही ढंग से जीवन जीते हैं, मुझे देखना चाहते हैं: क्या मुझे देखने में कोई खतरा हो सकता है?

आपका स्वरूप इतना दिव्य है, आप इतनी महिमावान और आनंदमय हैं।
इसे देखकर मैं अपनी प्रतिज्ञाएँ भूल सकता हूँ: यह खतरा स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।"
"जी, श्रीमान," सक्का (इंद्र) ने कहा, "मैं अब कभी आपके पास नहीं आऊंगा"; और उन्हें प्रणाम करके और क्षमा मांगकर सक्का (इंद्र) चले गए। इसके बाद उस महान प्राणी ने अपना पूरा जीवन गुणों का अभ्यास करते हुए बिताया और ब्रह्मा लोक (परमलोक) में पुनर्जन्म लिया।

इस प्रवचन को समाप्त करने के बाद, गुरु ने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान अकित्ति (अगत्स्य) था।"

फुटनोट:

(1)रीडिंग टैन बोधिम.

(2) कैंथियम पार्विफ्लोरम (कारा)।

(3)सं. 313

(4) मालाबार तट या उत्तरी सीलोन।

(5) सीलोन के निकट, या उसका भाग।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तककारिया-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-481-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 481
ताक्करिया-जातक

"मैंने कहा," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोकालिका के बारे में सुनाई थी।

एक बरसात के मौसम में, दो प्रमुख शिष्य (*1) अपने समूह को छोड़कर अलग रहने की इच्छा से गुरु से विदा लेकर उस राज्य में चले गए जहाँ कोकालिका (विधर्मी और देवदत्त का मित्र, जिसने बुद्ध की हत्या का प्रयास किया था) रहता था। वे कोकालिका के घर गए और उससे कहा, "भाई (भिक्षु) कोकालिका, क्योंकि हमें आपके साथ रहना सुखद है और आपको हमारे साथ, इसलिए हम यहाँ तीन महीने रहना चाहेंगे।" दूसरे ने पूछा, "मेरे साथ रहना आपको कैसे सुखद लगेगा?" उन्होंने उत्तर दिया, "यदि आप किसी को भी न बताएँ कि दो प्रमुख शिष्य यहाँ रह रहे हैं, तो हम प्रसन्न रहेंगे और यही आपके साथ रहने का हमारा सुख होगा।" "और आपके साथ रहना मुझे कैसे

सुखद लगेगा?" "हम आपके घर में तीन महीने तक आपको धर्म का उपदेश देंगे और आपसे प्रवचन करेंगे, और यही आपके लिए हमारे साथ रहने का सुख होगा।" उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, जब तक चाहो यहाँ निवास करो," और उन्होंने उन्हें एक सुखमय निवास स्थान आवंटित किया। वहाँ वे सिद्धि की प्राप्ति में व्यतीत हुए, और किसी को भी उनके वहाँ रहने की जानकारी नहीं थी।

बरसात का मौसम बीत जाने पर उन्होंने उनसे कहा, "भाई, अब हम आपके साथ रह चुके हैं, और अब हम गुरु से मिलने जा रहे हैं," और उनसे जाने की अनुमति मांगी। वे मान गए और उनके साथ उस गाँव के सामने वाले गाँव में भिक्षा मांगने के लिए गए जहाँ वे ठहरे हुए थे। भोजन के बाद, बड़े-बुजुर्ग गाँव से चले गए। कोकालिका उन्हें छोड़कर पीछे मुड़े और लोगों से कहा, "भाइयों, तुम जंगली जानवरों की तरह हो। यहाँ दो मुख्य शिष्य तीन महीने से सामने वाले मठ में रह रहे थे, और तुम्हें इसकी कोई जानकारी नहीं थी: अब वे चले गए हैं।" लोगों ने पूछा, "आपने हमें क्यों नहीं बताया, महाराज?" तब वे घी, तेल, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, वस्त्र और कपड़े लेकर बड़े-बुजुर्गों के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "क्षमा कीजिए, महाराज, हमें नहीं पता था कि आप मुख्य शिष्य हैं, हमें यह आज ही पूज्य भाई कोकालिका के शब्दों से पता चला है। कृपया हम पर दया करें और ये औषधीय जड़ी-बूटियाँ और वस्त्र स्वीकार करें।" कोकालिका बड़ों के साथ उनके पीछे गया, क्योंकि उसने सोचा, "ये बड़े मितव्ययी हैं और थोड़े में ही संतुष्ट रहते हैं; वे ये चीजें स्वीकार नहीं करेंगे, और फिर ये मुझे दे दी जाएंगी।" लेकिन बड़ों ने, क्योंकि यह भेंट एक भाई के कहने पर दी गई थी, न तो स्वयं स्वीकार की और न ही कोकालिका को दिलवाई। तब आम लोगों ने कहा, "महोदय, यदि आप इन्हें स्वीकार नहीं करेंगे, तो एक बार फिर यहाँ आकर हमें आशीर्वाद दें।" बड़ों ने वादा किया और गुरु के पास चले गए।

अब कोकालिका क्रोधित हो गया, क्योंकि बुजुर्गों ने न तो स्वयं उन वस्तुओं को स्वीकार किया और न ही उन्हें कोकालिका को दिया। परन्तु बुजुर्गों ने गुरु के साथ कुछ समय व्यतीत करने के बाद, प्रत्येक ने पाँच सौ भाइयों को अपने अनुयायी के रूप में चुना और इन एक हजार भाइयों के साथ भिक्षा मांगने के लिए कोकालिका के देश तक तीर्थयात्रा की। आम लोग उनसे मिलने आए और उन्हें उसी मठ में ले गए और प्रतिदिन उनका बहुत सम्मान किया।

उन्हें वस्त्रों और औषधियों का विशाल भंडार दिया गया था। जो भिक्षु बड़ों के साथ वस्त्र बाँटने गए थे, उन्होंने उनमें से कुछ वस्त्र सभी आए हुए भिक्षुओं को दे दिए, लेकिन कोकालिका को एक भी वस्त्र नहीं दिया, और न ही बड़ों ने उसे कुछ दिया। वस्त्र न मिलने पर कोकालिका बड़ों को अपशब्द कहने और उनका अपमान करने लगा: "सारिपुत्र और मोग्गल्याण पापमय इच्छाओं से भरे हुए हैं; वे पहले जो कुछ भी उन्हें दिया जाता था, उसे स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन ये सब स्वीकार कर लेते हैं। उन्हें संतुष्ट करना असंभव है, वे एक-दूसरे का सम्मान नहीं करते।" लेकिन बड़ों ने यह समझ लिया कि वह व्यक्ति उनके प्रति दुर्भावना रख रहा है, इसलिए वे अपने अनुयायियों के साथ वहाँ से चले गए; और वे वापस नहीं लौटे, भले ही लोगों ने उनसे कुछ और दिन रुकने की विनती की। तब एक युवा भिक्षु ने कहा: "हे गृहस्थों, बड़े कहाँ ठहरेंगे? आपके अपने विशेष भिक्षु उन्हें यहाँ ठहराना नहीं चाहते।" तब लोग कोकालिका गए और बोले, "महोदय, हमें बताया गया है कि आप नहीं चाहते कि बड़े-बुजुर्ग यहाँ रहें। जाइए! या तो उन्हें मनाकर वापस ले आइए, या आप यहाँ से चले जाइए और कहीं और रहिए!" लोगों के डर से वह व्यक्ति गया और उसने बड़े-बुजुर्गों से विनती की। बड़े-बुजुर्गों ने उत्तर दिया, "भाई, वापस जाइए, हम नहीं लौटेंगे।" इसलिए वह उन्हें मनाने में असफल होकर मठ लौट आया। तब मठवासियों ने उससे पूछा कि क्या बड़े-बुजुर्ग लौट आए हैं। उसने कहा, "मैं उन्हें वापस लौटने के लिए राजी नहीं कर सका।" उन्होंने पूछा, "क्यों नहीं, भाई?" तब वे सोचने लगे कि शायद कोई अच्छा मठवासी यहाँ नहीं रहेगा क्योंकि वह व्यक्ति पाप में डूबा हुआ है; उन्हें उससे छुटकारा पाना ही होगा। उन्होंने कहा, "महोदय, यहाँ मत रहिए; हमारे पास आपके लिए यहाँ कुछ नहीं है।"

इस प्रकार उनके द्वारा अपमानित होकर, उसने कुंड और वस्त्र धारण किया और जेतवन मठ चला गया। गुरु को प्रणाम करने के बाद उसने कहा, "हे गुरु, सारिपुत्र और मोग्गल्याण पापमय इच्छाओं से भरे हुए हैं, वे पापमय इच्छाओं के वश में हैं!" गुरु ने उत्तर दिया, "ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, अपने हृदय को सारिपुत्र और मोग्गल्याण के प्रति शांत रखो; यह जान लो कि वे अच्छे भाई हैं।" कोकालिका ने कहा, "हे गुरु, आप अपने दो प्रमुख शिष्यों पर विश्वास करते हैं; मैंने अपनी आँखों से देखा है; उनमें पापमय इच्छाएँ हैं, उनके भीतर गुप्त बातें हैं, वे दुष्ट पुरुष हैं।" उसने ऐसा तीन बार कहा (यद्यपि गुरु उसे रोकना चाहते थे), फिर अपने आसन से उठा और चला गया। जैसे ही वह रास्ते में गया, उसके पूरे शरीर पर सरसों के दाने के आकार के फोड़े निकल आए, बढ़ते-बढ़ते विल्व वृक्ष के पके बीज के आकार के हो गए (*2), फूट गए और पूरे शरीर पर खून बहने लगा। दर्द से कराहते हुए वह जेतवन मठ के द्वार पर गिर पड़ा। ज़ोरदार आवाज़ उठी और ब्रह्मा के लोक तक पहुँच गई—"कोकालिका ने दो प्रमुख शिष्यों का अपमान किया है!" तब उसके आध्यात्मिक गुरु, ब्रह्मा प्रधान देवदूत, तुदु, को यह जानकर बड़ों को शांत करने के इरादे से आए और हवा में स्थिर होकर बोले, "कोकालिका, तुमने यह बहुत क्रूर काम किया है; प्रमुख शिष्यों से सुलह कर लो।" "भाई, आप कौन हैं?" उस व्यक्ति ने पूछा। "मेरा नाम तुदु ब्रह्मा है," उसने कहा। "क्या भगवान बुद्ध ने तुम्हें नहीं बताया," उस व्यक्ति ने कहा, "कि तुम उन लोगों में से हो जो वापस नहीं आते (अनगामी) (*3)? उस शब्द का अर्थ है कि ऐसे लोग इस पृथ्वी पर वापस नहीं आते। तुम गोबर के ढेर पर एक जिन्न बन जाओगे!" इस प्रकार उसने महान ब्रह्मा प्रधान देवदूत को फटकारा। और जब वे उस व्यक्ति को अपनी सलाह मानने के लिए राजी नहीं कर सके, तो उन्होंने उससे कहा, "तुम्हें अपने वचन के अनुसार भोगना पड़े।" फिर वह अपने आनंदमय निवास में लौट आया। और कोकालिका की

मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म कमल नरक (*4) में हुआ। उसके वहाँ जन्म लेने की बात महान और शक्तिशाली ब्रह्मा भगवान (*5) ने तथागत (बुद्ध) को बताई, और गुरु ने यह बात अपने भाइयों को सुनाई। सत्य के हॉल में भाइयों ने उस व्यक्ति के दुष्ट कर्मों के बारे में बात की: "भाई, लोग कहते हैं कि कोकालिका ने सारिपुत्र और मोग्गल्याण का अपमान किया और अपने ही शब्दों के कारण कमल नरक में आ गया।" गुरु अंदर आए और उन्होंने कहा, "भाई, तुम यहाँ बैठे-बैठे क्या बात कर रहे हो?" उन्होंने उन्हें बताया। तब उन्होंने कहा, "भाई, यह पहली बार नहीं है कि कोकालिका अपने ही शब्दों के कारण नष्ट हुआ है और अपने ही शब्दों के कारण दुख भोगने के लिए अभिशप्त हुआ है; पहले भी ऐसा ही हुआ था।" और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उनके पुजारी का रंग भूरा था (*6) और उनके सारे दांत झड़ चुके थे। उनकी पत्नी ने एक दूसरे ब्राह्मण के साथ पाप किया। वह पुरुष भी बिल्कुल पहले वाले ब्राह्मण जैसा ही था। पुजारी ने बार-बार अपनी पत्नी को रोकने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सके। तब उन्होंने सोचा, "मैं अपने इस शत्रु को अपने हाथों से नहीं मार सकता, लेकिन मुझे उसे मारने की कोई योजना बनानी होगी।"

तो वह राजा के सामने आया और बोला, “हे महाराज, आपका नगर पूरे भारत का सर्वोच्च नगर है और आप सर्वोच्च राजा हैं, परन्तु आप सर्वोच्च राजा होते हुए भी, आपका दक्षिणी द्वार अशुभ और कुनिर्मित है।” “तो गुरुजी, क्या किया जाए?” “इसमें सौभाग्य लाना होगा और इसे ठीक करना होगा।” “क्या किया जाए?” “हमें पुराना द्वार गिराना होगा, नई और शुभ लकड़ियाँ लगानी होंगी, नगर की रक्षा करने वाले देवताओं को यज्ञ करना होगा और नक्षत्रों की शुभ स्थिति में नया द्वार स्थापित करना होगा।” “ठीक है,” राजा ने कहा।

उस समय बोधिसत्व तकरिया नामक एक युवक थे, जो इस व्यक्ति के अधीन अध्ययन कर रहे थे।

पुरोहित ने पुराने द्वार को तुड़वा दिया और नया द्वार तैयार करवाया। इसके बाद वह राजा के पास गया और बोला, “महाराज, द्वार तैयार है: कल शुभ संयोग है; कल के समाप्त होने से पहले हमें यज्ञ करना चाहिए और नया द्वार स्थापित करना चाहिए।” “अच्छे गुरुदेव, इस विधि के लिए क्या आवश्यक है?” “महाराज, एक विशाल द्वार पर महान आत्माओं का वास है और वे उसकी रक्षा करते हैं। एक भूरे रंग के, बिना दांत वाले, दोनों ओर से शुद्ध रक्त वाले ब्राह्मण की हत्या करनी होगी; उसके मांस और रक्त को पूजा में अर्पित करना होगा, उसके शरीर को नीचे रखकर द्वार को उस पर स्थापित करना होगा। इससे आपको और आपके नगर को सौभाग्य प्राप्त होगा (*7)।” “बहुत अच्छा, गुरुदेव, ऐसे ब्राह्मण की हत्या करवाइए और उसके ऊपर द्वार स्थापित कीजिए।”

पुजारी प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "कल मैं अपने शत्रु को देख लूँगा!" वह जोश से भरा हुआ अपने घर लौटा, लेकिन अपनी ज़बान पर काबू नहीं रख सका और जल्दी से अपनी पत्नी से बोला, "अरे, हे कुरूप बुढ़िया, अब तुम किसके साथ मजे करोगी? कल मैं तुम्हारे प्रेमी को मार डालूँगा और उसकी बलि चढ़ा दूँगा!" "तुम एक निर्दोष व्यक्ति को क्यों मारोगे?" "राजा ने मुझे एक भूरे रंग के ब्राह्मण को मारने और उसकी बलि चढ़ाने और उस पर नगर का द्वार स्थापित करने का आदेश दिया है।"

तुम्हारा प्रेमी सांवले रंग का है, और मैं उसे बलि के लिए मारना चाहती हूँ। उसने अपने प्रेमी को संदेश भेजा, “लोग कहते हैं कि राजा बलि में एक सांवले रंग के ब्राह्मण को मारना चाहता है; यदि तुम अपनी जान बचाना चाहते हो, तो समय रहते भाग जाओ, और अपने साथ उन सभी को भी ले जाओ जो तुम्हारे जैसे हैं।” तो उस आदमी ने वैसा ही किया: यह खबर पूरे शहर में फैल गई, और शहर के सभी सांवले रंग के लोग भाग गए।

अपने शत्रु के भाग जाने से अनभिज्ञ पुजारी अगली सुबह तड़के राजा के पास गया और बोला, “महाराज, इस स्थान पर एक भूरे रंग का ब्राह्मण है; उसे पकड़ लीजिए।” राजा ने कुछ लोगों को उसे लाने के लिए भेजा, पर उन्हें कोई नहीं मिला और लौटकर उन्होंने राजा को बताया कि वह भाग गया है। राजा ने कहा, “अन्यत्र खोजो।” उन्होंने पूरे शहर में खोज की, पर कोई नहीं मिला। राजा ने कहा, “जल्दी खोजो!” उन्होंने उत्तर दिया, “महाराज, आपके पुजारी के सिवा ऐसा कोई दूसरा नहीं है।” राजा ने कहा, “एक पुजारी को मारा नहीं जा सकता।” राजा ने कहा, “महाराज, आप क्या कहते हैं? पुजारी के अनुसार, यदि आज द्वार नहीं लगाया गया, तो शहर खतरे में पड़ जाएगा। पुजारी ने जब अपनी बात समझाई, तो उसने कहा कि यदि हम आज का दिन बीतने देंगे, तो एक वर्ष के अंत तक फिर से शुभ मुहूर्त नहीं आएगा। एक वर्ष तक बिना द्वार वाला शहर, हमारे शत्रुओं के लिए कितना बड़ा अवसर! आइए हम किसी को मार डालें और किसी अन्य बुद्धिमान ब्राह्मण की सहायता से यज्ञ करें और द्वार लगा दें।” “पर क्या मेरे गुरु के समान कोई और बुद्धिमान ब्राह्मण है?” “जी, उनके शिष्य, तक्करिया नामक एक युवक; उन्हें अपना पुरोहित बनाइए और शुभ अनुष्ठान कीजिए।” राजा ने उन्हें बुलवाया, उनका आदर किया, उन्हें पुरोहित बनाया और आदेश दिया कि जैसा कहा गया है वैसा ही करें। वह युवक एक बड़ी भीड़ के साथ द्वार पर गया। राजा के नाम पर उन्होंने पुरोहित को बांधकर लाया। उस महान सत्ता ने उस स्थान पर एक गड्ढा खुदवाया जहाँ द्वार स्थापित होना था, और उस पर एक तम्बू लगवाया, और अपने गुरु के साथ तम्बू में प्रवेश किया। गुरु ने गड्ढा देखकर और बचने का कोई रास्ता न देखकर उस

महान सत्ता से कहा, “मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। मूर्खतावश, मैं चुप नहीं रह सका और उस दुष्ट स्त्री को शीघ्र ही बता दिया। मैंने अपने ही हथियार से स्वयं को मार डाला।” फिर उन्होंने पहला श्लोक पढ़ा:

मैंने गलत काम करते हुए बात की, जैसे कोई मेंढक पुकारता है
जंगल में एक सांप पर: इसलिए मैं गिर पड़ा
इस गड्ढे में, तकरिया (*8)। कितना सच है,
पहले सीज़न में बोले गए शब्दों पर पछतावा होना ही चाहिए!
फिर दूसरे ने उसे संबोधित करते हुए यह श्लोक सुनाया:

जो व्यक्ति अनुचित समय पर बोलता है, वह चला जाएगा।
इस तरह बर्बाद होना, रोना, पीड़ा सहना:
यहां आपको खुद को दोषी ठहराना चाहिए, अब आपको ऐसा करना ही होगा।
हे मेरे गुरु, यह गड्ढा आपकी कब्र के लिए खोदा गया है।
इन शब्दों के साथ उन्होंने यह भी जोड़ा: "हे गुरु, केवल आप ही नहीं, बल्कि कई अन्य लोग भी अपने शब्दों पर ध्यान न देने के कारण कष्ट भोग चुके हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने इसे सिद्ध करने के लिए अतीत की एक कहानी सुनाई।

कहते हैं, एक समय की बात है, बनारस में काली नाम की एक शाही नर्तकी और वेश्या रहती थी, और उसका एक भाई था जिसका नाम तुंडिला था। काली एक दिन में हज़ार सिक्के कमा लेती थी। तुंडिला अय्याश, शराबी और जुआरी था; काली उसे पैसे देती थी, लेकिन वह सब कुछ लुटा देता था। काली उसे रोकने की हर संभव कोशिश करती थी, पर वह नहीं रोक पाती थी। एक दिन जुए में उसकी हार हुई और उसके सारे कपड़े भी छिन गए। उसने लंगोटी का एक टुकड़ा अपने चारों ओर लपेटा और अपनी बहन के घर चला गया। लेकिन बहन ने अपनी दासियों को आदेश दिया था कि अगर तुंडिला घर आए, तो उसे कुछ न दें, बल्कि उसका गला पकड़कर उसे बाहर फेंक दें। और उन्होंने वैसा ही किया: वह दहलीज पर खड़ा होकर विलाप करने लगा। उसी दिन एक धनी व्यापारी का पुत्र, जो काली को अक्सर हज़ार सिक्के देता था, वहाँ से गुज़रा और बोला, "तुंडिला, तुम क्यों रो रहे हो?" “मालिक,” उसने कहा, “मैं जुए में हार गया और अपनी बहन के पास आया; नौकरानियों ने मेरा गला पकड़कर मुझे बाहर फेंक दिया।” “ठीक है, यहीं ठहरो,” दूसरे ने कहा, “मैं तुम्हारी बहन से बात करता हूँ।” वह घर में दाखिल हुआ और बोला, “तुम्हारा भाई फटी हुई धोती पहने इंतज़ार कर रहा है। तुम उसे पहनने के लिए कुछ क्यों नहीं देती?” “हाँ,” उसने जवाब दिया, “मैं कुछ नहीं दूँगी। अगर तुम्हें उससे प्यार है, तो तुम खुद दे दो।” उस बदनाम घर में यह रिवाज था: हर हज़ार सिक्कों में से पाँच सौ सिक्के औरत के लिए होते थे, पाँच सौ कपड़े, इत्र और मालाओं के लिए; उस घर में आने वाले पुरुषों को पहनने के लिए कपड़े दिए जाते थे और वे रात वहीं बिताते थे, फिर अगले दिन वे अपने मिले हुए कपड़े उतारकर अपने लाए हुए कपड़े पहन लेते थे और अपने-अपने रास्ते चले जाते थे। इस बार व्यापारी के बेटे ने अपने लिए दिए गए कपड़े पहन लिए और अपने कपड़े टुंडिला को दे दिए। उसने उन्हें पहना और जोर-जोर से चिल्लाते हुए सराय की ओर तेजी से बढ़ा। लेकिन काली ने अपनी स्त्रियों को आदेश दिया कि जब वह युवक अगले दिन जाए, तो वे उसके कपड़े छीन लें। तदनुसार, जब वह आया, तो वे लुटेरों की तरह इधर-उधर से दौड़कर आईं और उसके कपड़े छीन लिए, और उसे नंगा कर दिया, यह कहते हुए, "अब, युवक, चले जाओ!" इस प्रकार उन्होंने उससे छुटकारा पा लिया। वह नंगा ही चला गया: लोगों ने उसका मजाक उड़ाया, और वह शर्मिंदा हुआ, और विलाप करते हुए बोला, "यह मेरी ही गलती है, क्योंकि मैं अपने होंठों पर काबू नहीं रख सका!" इसे स्पष्ट करने के लिए, महान सत्ता ने तीसरा श्लोक पढ़ा:

"टुंडिला से यह क्यों पूछा जाए कि उसका क्या हाल होगा?"
कालिका के हाथों? अब देखो!
मेरे कपड़े चले गए हैं, मैं नंगा और निर्वस्त्र हूँ;
यह उतना ही भयावह है जितना कि आपके साथ हाल ही में हुआ था।"
एक और व्यक्ति यह कहानी सुनाता है। बकरियों के चरवाहों की लापरवाही के कारण, बनारस के एक चरागाह में दो मेढ़े आपस में लड़ने लगे। जब वे बुरी तरह लड़ रहे थे, तो एक पूंछ वाले मेढ़े ने मन ही मन सोचा, "ये दोनों अपना सिर फोड़कर मर जाएंगे; मुझे इन्हें रोकना होगा।" इसलिए उसने पुकार कर उन्हें रोकने की कोशिश की—"चाचा जी, लड़ाई मत करो!" उनकी ओर से उसे एक शब्द भी सुनाई नहीं दिया: लड़ाई के बीच में, पहले पीठ पर, फिर सिर पर चढ़कर, उसने उनसे रुकने की विनती की, लेकिन कुछ नहीं कर सका। अंत में वह चिल्लाया, "लड़ो, फिर मुझे पहले मार डालो!" और खुद को दोनों सिरों के बीच खड़ा कर दिया। वे एक-दूसरे को टक्कर मारते रहे। पक्षी एक धक्के से कुचल गया, और अपने ही कर्मों से मारा गया। इस दूसरी कहानी को समझाने के लिए, महान सत्ता ने चौथे श्लोक को दोहराया:

दो लड़ते हुए भेड़ों के बीच से एक दोमुंही पूंछ वाला पक्षी उड़ गया।
हालांकि उस लड़ाई में उसकी कोई भूमिका नहीं थी।

दोनों भेड़ों के सिरों ने उसे वहीं कुचल दिया।
उसका भाग्य भी तुम्हारी ही तरह भयानक था!
एक और कहानी। एक ताल का पेड़ था, जिसे चरवाहे बहुत महत्व देते थे। बनारस के लोगों ने उसे देखकर एक आदमी को पेड़ पर फल तोड़ने के लिए भेजा। जैसे ही वह फल नीचे फेंक रहा था, एक चींटी के टीले से एक काला सांप पेड़ पर चढ़ने लगा; नीचे खड़े लोगों ने उसे लाठियों और अन्य चीजों से मारकर भगाने की कोशिश की, लेकिन वे सफल नहीं हुए। तब उन्होंने दूसरे को पुकारा, "एक सांप पेड़ पर चढ़ रहा है!" और वह डर के मारे जोर से चिल्लाया। नीचे खड़े लोगों ने एक मोटे कपड़े को चारों कोनों से पकड़ लिया और उसे कपड़े में गिरने के लिए कहा। उसने खुद को छोड़ दिया और उन चारों के बीच कपड़े के बीचोंबीच गिर गया; वह हवा की तरह तेज आया और आदमी उसे पकड़ नहीं सके, बल्कि उन्होंने अपने चारों सिर आपस में टकराकर तोड़ दिए और इस तरह उनकी मृत्यु हो गई। इस कहानी को समझाने के लिए महान सत्ता ने पांचवां श्लोक सुनाया:

"चार आदमी, एक साथी को उसके भाग्य से बचाने के लिए,"
 नीचे रखे कपड़े के चारों कोनों को पकड़ रखा था।
वे सभी मृत अवस्था में गिर पड़े, प्रत्येक की खोपड़ी टूटी हुई थी।
 मुझे लगता है कि ये लोग भी तुम्हारी तरह ही भयानक थे।
कुछ लोग यह कहानी सुनाते हैं। बनारस में रहने वाले कुछ बकरी चोरों ने एक रात एक बकरी चुराई और जंगल में उसका शिकार करने का निश्चय किया। उसकी आवाज रोकने के लिए उन्होंने उसका मुंह बंद कर दिया और उसे बांस के झुंड में बांध दिया। अगले दिन, उसे मारने जाते समय वे कुल्हाड़ी लाना भूल गए। उन्होंने कहा, "अब हम बकरी को मारेंगे और पकाएंगे; कुल्हाड़ी लाओ!" लेकिन किसी के पास कुल्हाड़ी नहीं थी। उन्होंने कहा, "बिना कुल्हाड़ी के हम उसे मार भी दें तो भी नहीं खा सकते; उसे छोड़ दो! यह उसके किसी अच्छे कर्म का फल है।" इसलिए उन्होंने उसे छोड़ दिया। फिर संयोग से, बांस काटने वाला एक मजदूर, जो वहां से एक गठरी लेने आया था, टोकरी बनाने का चाकू वहीं पत्तों के बीच छिपाकर छोड़ गया, ताकि अगली बार आने पर उसका इस्तेमाल कर सके। लेकिन बकरी ने खुद को आज़ाद समझकर बांस के झुंड के नीचे खेलना शुरू कर दिया और अपने पिछले पैरों से लात मारकर चाकू गिरा दिया। चोरों ने चाकू गिरने की आवाज़ सुनी और जब वे यह जानने के लिए आए कि यह क्या है, तो उन्होंने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की; फिर उन्होंने बकरी को मार डाला और उसका मांस खा लिया। इस प्रकार यह समझाने के लिए कि यह बकरी अपने ही कर्म से कैसे मारी गई, उस महान सत्ता ने छठा श्लोक सुनाया:

"बांस की झाड़ियों में एक बकरी,
तलाशी लेते हुए उसे एक चाकू मिला।
उसी चाकू से उन्होंने उस प्राणी का गला काट दिया।
मुझे लगता है कि तुम उस बकरी की तरह ही राक्षसी हो।
यह बताने के बाद, उन्होंने समझाया, "लेकिन जो लोग बोलने में संयमी होते हैं, वे अपने शब्दों पर ध्यान देकर अक्सर मृत्यु के भाग्य से मुक्त हो जाते हैं," और फिर परियों की एक कहानी सुनाई (*9)।

कहा जाता है कि बनारस में रहने वाला एक शिकारी एक बार हिमालय क्षेत्र में था, जहाँ उसने किसी तरह दो अलौकिक प्राणियों, एक अप्सरा और उसके पति को पकड़ लिया और उन्हें राजा के सामने पेश किया। राजा ने ऐसे प्राणी पहले कभी नहीं देखे थे। राजा ने कहा, "शिकारी, ये किस प्रकार के प्राणी हैं?" उस व्यक्ति ने कहा, "महाराज, ये मधुर स्वर में गा सकते हैं, इनका नृत्य इतना मनमोहक है कि कोई भी मनुष्य इनके समान नृत्य या गायन नहीं कर सकता।" राजा ने शिकारी को बड़ा इनाम दिया और अप्सराओं को गाने और नाचने का आदेश दिया। लेकिन उन्होंने सोचा, "यदि हम अपने गीत का पूरा अर्थ नहीं समझा पाए, तो गीत व्यर्थ हो जाएगा, वे हमें गाली देंगे और हमें चोट पहुँचाएँगे; और फिर, जो बहुत बोलते हैं वे झूठ भी बोलते हैं।" इसलिए किसी झूठ के डर से उन्होंने न तो गाया और न ही नृत्य किया, क्योंकि राजा बार-बार उनसे विनती करता रहा। अंत में राजा क्रोधित हो गया और बोला, "इन प्राणियों को मार डालो, पकाओ और मुझे परोस दो।" उन्होंने सातवें श्लोक के शब्दों में यह आदेश दिया:

"ये न तो देवता (देवदूत) हैं और न ही स्वर्ग के संगीतकार (*10) हैं,
ऐसे जानवर जिन्हें एक ऐसा व्यक्ति लाया था जो खुशी-खुशी अपनी जेब भरना चाहता था।
तो मेरे रात के खाने के लिए वे मेरे लिए एक खाना बना दें।
और एक अगले दिन सूरज उगने से पहले नाश्ते के लिए।
तब परी ने मन ही मन सोचा, "अब राजा क्रोधित हैं; निःसंदेह वे हमें मार डालेंगे। अब बोलने का समय आ गया है।" और तुरंत ही उन्होंने एक श्लोक सुनाया:

एक लाख गाने, सब गलत तरीके से गाए गए

ये सभी एक अच्छे गाने के दसवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं।
खराब गाना एक अपराध है; और यही कारण है
(गलत काम करने के कारण नहीं) परी ऐसा करने की कोशिश नहीं करेगी।"
परी से प्रसन्न होकर राजा ने तुरंत एक श्लोक सुनाया:

जिसने बात की है, उसे जाने दो, वह
हिमालय पर्वतमाला फिर से दिखाई दे सकती है,
लेकिन उन्हें दूसरे को ले जाकर मार डालने दो।
और कल के नाश्ते के लिए उसे तैयार कर देना।
लेकिन दूसरे परी ने सोचा, "अगर मैं चुप रहा तो राजा मुझे मार डालेगा; अब बोलने का समय है;" और फिर उसने एक और छंद सुनाया:

"गाय बादलों पर निर्भर करती हैं (*11), और मनुष्य गायों पर निर्भर करते हैं।"
और हे राजा! मैं आप पर, और अपनी इस पत्नी पर निर्भर हूँ।
पहाड़ों की ओर जाने से पहले, एक को दूसरे के भाग्य का अंदाजा हो जाना चाहिए।"
यह कहने के बाद, उन्होंने कुछ छंदों को दोहराया, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि वे राजा के वचन का पालन करने की अनिच्छा के कारण चुप नहीं रहे थे, बल्कि इसलिए चुप रहे थे क्योंकि उन्हें पता था कि बोलना एक गलती होगी।

"हे सम्राट! अन्य राष्ट्र, अन्य मार्ग:
आपको दोषमुक्त रखना बहुत मुश्किल है।
जिस चीज के लिए किसी को प्रशंसा मिलती है,
एक अन्य व्यक्ति को इसी बात के लिए फटकार मिलती है।
"कोई न कोई तो ऐसा है जिसे हर मूर्ख व्यक्ति पाता है (*12);
प्रत्येक की कल्पना अलग-अलग होती है;
सभी अलग-अलग, कई पुरुष और कई विचार।
कोई भी सार्वभौमिक कानून किसी एक व्यक्ति की इच्छा नहीं होता।
राजा ने कहा, "वह सच कह रहा है; वह एक बुद्धिमान परी है;" और बहुत प्रसन्न होकर उसने अंतिम छंद का पाठ किया:

"परी और उसकी साथी चुप थे:
और जो अब भय के मारे बोलने लगा,
बिना चोट के, स्वतंत्र, खुश, उसे अपनी चाल से चलने दो।
यह भाषण शुभ होता है, जैसा कि हम अक्सर सुनते हैं।"
फिर राजा ने दोनों परियों को एक सुनहरे पिंजरे में रखा और शिकारी को बुलवाकर उन्हें उसी स्थान पर मुक्त कर दिया जहाँ उसने उन्हें पकड़ा था।

महान पुरुष ने आगे कहा, "देखिए, मेरे गुरुजी! परियाँ इसी प्रकार अपने वचनों पर ध्यान रखती थीं और सही समय पर बोलकर अच्छे वचन बोलकर मुक्त हो जाती थीं; परन्तु आप अपने बुरे वचनों के कारण घोर विपत्ति में पड़ गए हैं।" फिर यह उदाहरण देकर उन्होंने उसे दिलासा देते हुए कहा, "भयभीत न हों, मेरे गुरुजी; मैं आपका जीवन बचा लूँगा।" दूसरे ने पूछा, "क्या सचमुच कोई उपाय है? आप मुझे कैसे बचा सकते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "ग्रहों की अनुकूल स्थिति अभी नहीं आई है।" उन्होंने दिन बीतने दिया और रात के मध्य पहर में एक मृत बकरी वहाँ ले आए। उन्होंने कहा, "जहाँ चाहो जाइए, ब्राह्मण, और जीवन व्यतीत कीजिए," फिर उसे जाने दिया और किसी को कुछ पता नहीं चला। फिर उन्होंने बकरी के मांस का यज्ञ किया और उस पर द्वार स्थापित कर दिया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि कोकालिका अपने ही शब्दों से नष्ट हुआ है, बल्कि पहले भी ऐसा ही हुआ था;" इसके बाद उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय कोकालिका भूरे रंग का पुरुष था, और मैं स्वयं बुद्धिमान तकरिया था।"

फुटनोट:

(1)सारिपुत्र और मोग्गल्याना.

(2)एगल मार्मेलोस.

(3) अनागामी, तृतीय मार्ग (सम्मोहन) के वे लोग जो पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेने के लिए वापस नहीं लौटते। जातक संख्या 1 के नोट 12 देखें।

(4) उनमें से 136 थे।

(5) सहमपति; पहले भाग का अर्थ अज्ञात है; वह ब्रह्म स्वर्ग (प्रधान देवदूतों का क्षेत्र) का प्रमुख है, जिसमें तुदु एक प्रधान देवदूत है।

(6)पिंगालो एक उचित नाम नहीं है

(7) किसी भवन की नींव रखने के समय मानव बलि, या इसी तरह की कोई प्रथा प्राचीन काल में आम रही होगी, क्योंकि इसके बारे में परंपराएँ बहुत प्रचलित हैं।

(8) यहाँ नाम स्त्रीलिंग है

(9)किन्नारा.

(10)गंधब्बपुत्त.

(11)क्योंकि उनका भोजन (घास आदि) बारिश पर निर्भर करता है।

(12)पराचित्त पढ़ना: "हर कोई किसी न किसी दूसरे आदमी की राय में मूर्ख है।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रुरु-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-482-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 482
रुरु-जातक

“मैं तुम्हारे लिए समाचार लाया हूँ,” इत्यादि। यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी। कोई उनसे कह सकता था, “हे मित्र देवदत्त, गुरु (बुद्ध) आपके लिए अत्यंत उपयोगी हैं। आपने तथागत (बुद्ध) से शिष्यत्व की दीक्षा प्राप्त की, उनसे त्रिपिटक (बुद्ध के सभी उपदेशों का तीन भागों का संग्रह) सीखा, और वरदान एवं सम्मान प्राप्त किया।” जब ऐसी बातें कही जातीं, तो ऐसा माना जाता है कि वे उत्तर देते, “नहीं, मित्र; गुरु ने मेरा कोई भला नहीं किया, एक तिनके के बराबर भी नहीं। मैंने स्वयं शिष्यत्व की दीक्षा प्राप्त की, स्वयं त्रिपिटक सीखा, और स्वयं वरदान एवं सम्मान अर्जित किया।” सत्य के हॉल में भिक्षु इस सब पर चर्चा कर रहे थे: “हे मित्र, देवदत्त कृतघ्न है, और किए गए उपकार को भूल जाता है।” गुरु वहाँ आए और उन्हें पता चल गया कि वे क्या कह रहे हैं। उन्होंने गुरु को बताया। उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त कृतघ्न है, बल्कि वह पहले भी कृतघ्न था; और बहुत समय पहले मैंने उसकी जान बचाई थी, फिर भी वह मेरे पुण्य का महत्व नहीं जानता।" ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस के राजा ब्रह्मदत्त थे, तब एक महान व्यापारी, जिनके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी, का एक पुत्र जन्मा; उन्होंने उसका नाम महाधनक रखा। लेकिन उन्होंने उसे कभी कुछ नहीं सिखाया; क्योंकि उनका कहना था, "मेरे पुत्र को पढ़ाई शारीरिक थकावट लगेगी।" गाने-नाचने, खाने-पीने और दावतों के अलावा उस लड़के को कुछ नहीं आता था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने उसके लिए एक उपयुक्त पत्नी का विवाह किया और बाद में उनका देहांत हो गया। उनकी मृत्यु के बाद, वह युवक अय्याशों, शराबी और जुआरियों की संगति में रहा और उसने अपनी सारी संपत्ति फिजूलखर्ची में उड़ा दी। फिर उसने कर्ज लिया, लेकिन उसे चुका नहीं सका और उसके लेनदारों ने उससे पैसे वसूलने की कोशिश की। अंत में उसने सोचा, "मेरे लिए जीवन का

क्या महत्व है? इस एक जन्म में तो मैं मानो किसी दूसरे प्राणी में परिवर्तित हो चुका हूँ; मर जाना ही बेहतर है।" इस पर उसने अपने लेनदारों से कहा, "अपने बिल लेकर यहाँ आओ। मैंने गंगा के किनारे अपना पारिवारिक खजाना छिपा रखा है, और वह तुम्हें मिलेगा।" वे उसके साथ चल दिए। वह मानो जगह-जगह अपने खजाने की छुपी जगहें दिखा रहा था (परन्तु उसका इरादा नदी में गिरकर डूबने का था), और अंत में दौड़कर गंगा में कूद गया। जैसे ही तेज धारा उसे बहा ले गई, वह दर्द भरी चीख के साथ चिल्ला उठा।

उस समय उस महान प्राणी का जन्म हिरण के रूप में हुआ था, और झुंड को छोड़कर, वह नदी के मोड़ के पास, साल के पेड़ों और सुंदर फूलों वाले आमों के झुरमुट में अकेला रह रहा था। उसके शरीर की त्वचा चमकदार सोने की थाली जैसी थी, उसके आगे और पीछे के पैर मानो लाख से ढके हुए थे, उसकी पूंछ जंगली बैल की पूंछ जैसी थी, उसके सींग चांदी के सर्पिल जैसे थे, उसकी आंखें चमकीले रत्नों जैसी थीं, और जब वह अपना मुंह किसी भी दिशा में घुमाता था तो वह लाल कपड़े के गोले जैसा लगता था। आधी रात के करीब उसने एक दुख भरी पुकार सुनी और सोचा, "मुझे एक आदमी की आवाज सुनाई दे रही है। जब तक मैं जीवित हूं, वह न मरे! मैं उसकी जान बचाऊंगा।" झाड़ियों में अपने विश्राम स्थल से उठकर वह नदी के किनारे गया और सांत्वना भरी आवाज में पुकारा, "हे मनुष्य! डरो मत, मैं तुम्हें जीवित बचाऊंगा।" फिर उसने धारा को चीरते हुए उसके पास तैरकर गया, उसे अपनी पीठ पर लादकर किनारे पर अपने निवास स्थान पर ले आया; जहां उसने दो-तीन दिन तक उसे जंगली फल खिलाए (*1) इसके बाद उसने उस आदमी से कहा, "हे मनुष्य, मैं अब तुझे इस जंगल से निकालकर बनारस के रास्ते पर ले चलूँगा, और तू शांति से जाएगा। परन्तु मैं तुझसे विनती करता हूँ कि लाभ के लालच में आकर राजा या किसी बड़े आदमी को यह मत बताना कि इस स्थान पर सोने का हिरण पाया जाता है।" उस आदमी ने अपने वचन का पालन करने का वादा किया; और उस महान सत्ता ने उसका वादा पाकर उसे अपनी पीठ पर उठाया और बनारस के रास्ते पर ले जाकर अपने मार्ग पर चल दिया।

जिस दिन वह बनारस पहुँचा, रानी की पत्नी, जिसका नाम खेमा था, ने सुबह सपने में देखा कि एक सुनहरे रंग का हिरण उसे धर्म का उपदेश दे रहा है; और उसने सोचा, "यदि ऐसा कोई प्राणी न होता, तो मैं उसे अपने सपने में न देखती। निश्चित रूप से ऐसा कोई प्राणी होगा; मैं राजा को इसकी सूचना दूंगी।"

तब वह राजा के पास गई और बोली, “महाराज! मैं एक सुनहरे हिरण के बारे में सुनना चाहती हूँ। यदि ऐसा संभव हुआ तो मैं जीवित रहूँगी, अन्यथा मेरा कोई जीवन नहीं।” राजा ने उसे दिलासा देते हुए कहा, “यदि ऐसा कोई प्राणी मनुष्य जगत में विद्यमान है, तो वह तुम्हें अवश्य मिलेगा।” तब उसने ब्राह्मणों को बुलवाया और उनसे पूछा, “क्या सुनहरे रंग के हिरण जैसी कोई वस्तु होती है?” “जी हाँ, महाराज।” राजा ने एक अलंकृत काठी वाले हाथी की पीठ पर सोने के संदूक में बंद एक हजार सिक्कों से भरा थैला रख दिया: जो कोई भी सुनहरे हिरण के बारे में सूचना लाएगा, राजा उसे हजार सिक्कों वाला थैला, सोने का संदूक और इसके अतिरिक्त या इससे भी बेहतर हाथी देने को तैयार था। उसने सोने की एक पट्टिका पर एक श्लोक खुदवाया और उसे अपने एक दरबारी को सौंपकर उससे कहा कि वह अपने नाम से उस श्लोक का पाठ नगरवासियों के बीच करे। तब उसने उस श्लोक का पाठ किया जो इस जन्म में सबसे पहले आता है:

"मुझे उस हिरण के बारे में कौन खबर देता है, जो अपनी नस्ल में सबसे उत्तम है?"
सुंदर महिलाएं और गांव की एक ऐसी महिला जिसे उसकी मजदूरी के बदले में कौन जीत सकता है?
दरबारी ने सोने की थाली ली और पूरे शहर में इसकी घोषणा करवाई। उसी समय एक युवक का पुत्र बनारस में प्रवेश कर रहा था; घोषणा सुनकर वह दरबारी के पास गया और बोला, "मैं राजा को एक हिरण के बारे में खबर दे सकता हूँ; मुझे उनके समक्ष ले चलिए।" दरबारी अपने हाथी से उतरा और उसे राजा के सामने ले जाकर बोला, "महाराज, यह व्यक्ति कहता है कि वह आपको हिरण के बारे में खबर दे सकता है।" राजा ने कहा, "क्या यह सच है, महोदय?" उसने उत्तर दिया, "यह सच है, हे महाराज! आप मुझे यह सम्मान प्रदान करेंगे।" और उसने दूसरा श्लोक सुनाया:

मैं आपको उस हिरण के बारे में खबर देता हूँ, जो इस नस्ल में सबसे उत्तम है:
फिर मुझे मेरी मजदूरी के बदले सुंदर महिलाएं और गांव में रहने का विकल्प दे दो।"
अपने विश्वासघाती मित्र की ये बातें सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। उसने कहा, “चलो, यह हिरण कहाँ मिलेगा?” “यहाँ, महाराज,” उसने उत्तर दिया और उन्हें जाने का मार्ग बताया। अपने दल-पतियों के साथ राजा ने विश्वासघाती को उस स्थान तक ले जाने का आदेश दिया और फिर कहा, “सेना को रुकने का आदेश दो।” सेना के रुकने पर राजा ने हाथ से इशारा करते हुए कहा, “वह सुनहरा हिरण उस जगह पर है,” और उसने तीसरा श्लोक दोहराया।

"फूलों वाले साल और आम के पेड़ों के झुंड के भीतर, जहाँ ज़मीन
"सब कुछ लाल रंग की तरह लाल है, यहीं पर यह हिरण मिलेगा।"
जब राजा ने ये शब्द सुने, तो उसने अपने दरबारियों से कहा, “हिरण को भागने मत दो, बल्कि पूरी तेज़ी से वन के चारों ओर घेरा बना लो, अपने हथियारबंद सैनिकों को साथ लेकर।” उन्होंने वैसा ही किया और ज़ोर से आवाज़ लगाई। राजा कुछ अन्य लोगों के साथ

अलग खड़ा था, और यह व्यक्ति भी कुछ ही दूरी पर खड़ा था। उस महान प्राणी ने आवाज़ सुनी और सोचा, "यह एक विशाल सेना की आवाज़ है, इसलिए मुझे इनसे सावधान रहना चाहिए (*2)।" वह उठा और सभी सैनिकों पर नज़र डालते हुए राजा के खड़े होने का स्थान देखा। उसने सोचा, "जहाँ राजा खड़ा है, मैं सुरक्षित रहूँगा, और मुझे वहीं जाना चाहिए;" और वह राजा की ओर दौड़ा। जब राजा ने उसे आते देखा, तो उसने कहा, "हाथी के समान बलवान प्राणी अपने रास्ते में आने वाली हर चीज़ को गिरा देगा। मैं तीर चढ़ाकर उस जानवर को डराऊँगा; यदि वह भागने की कोशिश करेगा तो मैं उसे तीर मारकर कमज़ोर कर दूँगा, ताकि मैं उसे पकड़ सकूँ।" फिर अपना धनुष चढ़ाकर वह बोधिसत्व के सामने खड़ा हो गया।

इस बात को समझाने के लिए गुरु ने कुछ छंद दोहराए:

वह आगे बढ़ा: धनुष झुका हुआ था, तीर कमान पर था;
जब हिरण ने राजा को देखा तो दूर से ही पुकार लगाई:
"हे रथ चालकों के स्वामी, महान राजा, स्थिर रहो! और चोट मत पहुँचाओ।"
आपको यह खबर किसने दी कि यह हिरण यहाँ पाया जाता है?
राजा उनकी मधुर वाणी से मुग्ध हो गए; उन्होंने अपना धनुष नीचे रख दिया और श्रद्धापूर्वक स्थिर खड़े रहे। तभी वह महान प्राणी राजा के पास आए और एक तरफ खड़े होकर उनसे मधुरतापूर्वक बातें करने लगे। सभी उपस्थित लोगों ने भी अपने हथियार नीचे रख दिए और राजा को घेर लिया। उसी क्षण उस महान प्राणी ने राजा से मधुर स्वर में (जैसे कोई सोने की घंटी बजा रहा हो) प्रश्न पूछा: "आपको यह खबर किसने दी कि यहाँ यह हिरण पाया जाता है?" तभी वह दुष्ट व्यक्ति पास आया और सुनने की दूरी पर खड़ा हो गया। राजा ने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा, "वही है जिसने मुझे सूचना दी है," और छठा श्लोक सुनाया:

"मेरे प्रिय मित्र, वह पापी मनुष्य जो वहाँ डटा हुआ है,"
वह मुझे यह खबर लेकर आया कि हिरण यहीं पाया जाता है।
यह सुनकर उस महान सत्ता ने अपने विश्वासघाती मित्र को फटकारा और राजा को संबोधित करते हुए सातवां श्लोक सुनाया:

पृथ्वी पर बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनके बारे में यह कहावत सत्य है:
तुम्हारे जैसे व्यक्ति को बचाने से बेहतर तो डूबते हुए लट्ठे को बचाना होता।
यह सुनकर राजा ने एक और श्लोक दोहराया:

"हे हिरण, इस मामले में तुम किसे दोषी ठहराओगे?"
क्या यह कोई मनुष्य है, या कोई जानवर या पक्षी है?
मैं असीम भय से ग्रस्त हूँ।
यह आपकी वह मानवीय वाणी है जो मैंने हाल ही में सुनी।
इस पर उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "हे महान राजा, मैं किसी जानवर या पक्षी को दोष नहीं देता, केवल मनुष्य को दोष देता हूँ," जिसकी व्याख्या करने के लिए उन्होंने नौवें श्लोक को दोहराया।

मैंने उसे एक बार बचाया था, जब वह डूबने वाला था।
उस तीव्र लहर पर जो उसे बहा ले गई:
और अब मैं इसके कारण खतरे में हूँ।
दुष्टों का साथ दोगे तो तुम्हें इसका पछतावा जरूर होगा।
यह सुनकर राजा उस आदमी पर क्रोधित हो गया। उसने कहा, "क्या? इतनी अच्छी सेवा के बाद भी उसकी योग्यता को न पहचानना! मैं उसे गोली मारकर मार डालूँगा!" फिर उसने दसवाँ श्लोक दोहराया:

"इस चार पंखों वाले जीव को मैं उड़ने दूंगा,"
और उसके हृदय में छेद कर दो! उसे मर जाने दो।
दुष्ट ने अपने छल में,
जिसने ऐसी दयालुता के लिए धन्यवाद नहीं दिया, उसने इसकी सराहना की!
तब उस महान सत्ता ने सोचा, "मैं नहीं चाहता कि वह मेरे कारण नष्ट हो जाए," और ग्यारहवाँ श्लोक बोला:

"हे राजा, मूर्ख पर सचमुच शर्म आती है!"
लेकिन कोई भी नेक इंसान हत्या को सही नहीं मानता;
उस अभागे को जाने दो और उसकी मजदूरी दे दो।

आपने उससे जो भी वादा किया था, उसे पूरा किया:
और मैं आपकी जरूरत के समय आपकी सेवा करूंगा।
यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशंसा करते हुए उसने अगला श्लोक कहा:

"यह हिरण वाकई बहुत अच्छा है।"
बुराई का बदला बुराई से चुकाना, अनिच्छुक होने के कारण।
उस दुष्ट को जाने दो! मैं उसे उसकी मजदूरी देता हूँ।
मैंने उससे जो भी वादा किया था, वह सब पूरा किया।
और आप जहां चाहें वहां जाइए—शुभ यात्रा!
इस पर उस महान सत्ता ने कहा, "हे पराक्रमी राजा, मनुष्य अपने मुख से कुछ कहते हैं और करते कुछ और हैं;" इस बात को समझाने के लिए उन्होंने दो श्लोक सुनाए:

सियार और पक्षियों की आवाज आसानी से समझ में आ जाती है;
हाँ, परन्तु हे राजा, मनुष्यों के वचन इन सबसे कहीं अधिक कठोर होते हैं।
एक व्यक्ति सोच सकता है, "यह मेरा मित्र है, मेरा साथी है, मेरे रिश्तेदार है;"
लेकिन दोस्ती टूट जाती है, और अक्सर नफरत और दुश्मनी शुरू हो जाती है।
जब राजा ने ये शब्द सुने, तो उसने उत्तर दिया, "हे हिरणों के राजा! यह मत समझिए कि मैं उस प्रकार का हूँ; क्योंकि मैंने आपको जो वरदान दिया है, उसे मैं कभी नहीं नकारूँगा, चाहे इसके लिए मुझे अपना राज्य ही क्यों न खोना पड़े। मुझ पर भरोसा रखिए।" और उसने उसे वरदान चुनने का विकल्प दिया। उस महान प्राणी ने उसके हाथों से यह वरदान स्वीकार किया और यह चुना: कि सभी प्राणी, स्वयं से प्रारंभ होकर, खतरे से मुक्त हो जाएँ। राजा ने यह वरदान दिया और फिर उसे बनारस नगर में वापस ले गया। नगर और उस महान प्राणी को सजाने के बाद, उसने अपनी पत्नी रानी से बात की। उस महान प्राणी ने रानी से, और बाद में राजा और उसके पूरे दरबार से, शहद के समान मधुर मानवीय स्वर में बात की; उसने राजा को राजाओं के दस गुणों का दृढ़ता से पालन करने के लिए कहा, और उस महान प्राणी को सांत्वना दी, और फिर जंगल में लौट गया, जहाँ वह हिरणों के झुंड के बीच रहने लगा।

राजा ने शहर में ढोल बजवाते हुए यह घोषणा करवाई: "मैं सभी प्राणियों की रक्षा करता हूँ!" उस समय से किसी ने भी पशु या पक्षी के विरुद्ध हाथ उठाने का साहस नहीं किया।

हिरणों के झुंडों ने मनुष्यों की फसलों को चट कर दिया, और कोई भी उन्हें भगाने में सक्षम नहीं था। राजा के प्रांगण में एक भीड़ जमा हो गई और उन्होंने शिकायत की।

इसे स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने निम्नलिखित श्लोक को दोहराया:

"गांव और शहर के सभी लोग सीधे राजा के पास चले गए।"
"हिरण हमारी फसलें खा रहे हैं: राजा इसे रोकें!"
यह सुनकर राजा ने कुछ श्लोक पढ़े:

"जनता की इच्छा हो या न हो, भले ही मेरा राज्य समाप्त हो जाए,
मैं उस हिरण के साथ अन्याय नहीं कर सकता, जिसे मैंने जीवन और शांति का वादा किया था।
"हो सकता है कि जनता मेरा साथ छोड़ दे, मेरी राजसत्ता नष्ट हो जाए।"
मैंने उस शाही हिरण को जो वरदान दिया था, उसे मैं कभी नहीं नकारूंगा।
लोगों ने राजा की बातें सुनीं और कुछ न कह पाने के कारण वहाँ से चले गए। यह बात दूर-दूर तक फैल गई। परमेश्वर ने इसके बारे में सुना और सभी हिरणों को इकट्ठा करके उनसे कहा: "अब से तुम मनुष्यों की फसलें मत खाना।" फिर उन्होंने मनुष्यों को संदेश भेजा कि प्रत्येक मनुष्य अपनी भूमि पर एक तख्ती लगा ले। मनुष्यों ने ऐसा ही किया; और उस तख्ती के कारण आज तक हिरण फसलें नहीं खाते।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि देवदत्त ने कृतघ्नता दिखाई है;" और फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, देवदत्त व्यापारी का पुत्र था, आनंद राजा था, और मैं स्वयं हिरण था।"

फुटनोट:

(1)फलाफलानी पढ़ें.

(2)पुरिसभयेना पढ़ना, या मुझे छोड़ देना (इसके साथ यह होगा "मुझे उस आदमी से सावधान रहना चाहिए")।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सरभ-मिगा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-483-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 483
सरभ-मिगा-जातक। (*1)

"हे मनुष्य, परिश्रम करते रहो," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, ताकि धर्म के सेनापति से स्वयं द्वारा संक्षेप में पूछे गए एक प्रश्न का पूर्णतः उत्तर दिया जा सके।

उस समय गुरु ने उस वरिष्ठ भिक्षु से संक्षेप में एक प्रश्न पूछा। देवताओं (देवदूतों) के लोक से अवतरण की पूरी कहानी संक्षेप में इस प्रकार है। जब पूज्य पिंडोला-भारद्वाज ने राजगृह नगर के महान व्यापारी (*2) की उपस्थिति में अपनी अलौकिक शक्ति से चंदन का कटोरा प्राप्त किया, तो गुरु ने भिक्षुओं को अपनी चमत्कारी शक्तियों का प्रयोग न करने के लिए कहा।

तब षड्यंत्रकारियों ने सोचा, “संन्यासी गौतम (बुद्ध) ने चमत्कारिक शक्तियों के प्रयोग को वर्जित किया है: अब वे स्वयं कोई चमत्कार नहीं करेंगे।” उनके शिष्य व्याकुल हो गए और षड्यंत्रकारियों से बोले, “तुमने अपनी अलौकिक शक्ति से वह कटोरा क्यों नहीं लिया?” उन्होंने उत्तर दिया, “मित्र, यह हमारे लिए कोई कठिन बात नहीं है। परन्तु हम सोचते हैं, भला कौन साधारण लोगों के सामने अपनी उत्तम और अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन एक तुच्छ लकड़ी के कटोरे के लिए करेगा? इसीलिए हमने उसे नहीं लिया। शाक्य वर्ग के तपस्वियों (बुद्ध के अनुयायियों) ने उसे लिया और केवल मूर्खतापूर्ण लालच के कारण अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया। चमत्कार करना हमारे लिए कोई कठिन बात नहीं है। मान लीजिए कि हम तपस्वी गौतम (बुद्ध) के शिष्यों को छोड़ दें: यदि हम चाहें, तो हम भी तपस्वी गौतम (बुद्ध) के सामने अपनी अलौकिक शक्तियाँ दिखाएँगे: यदि तपस्वी गौतम (बुद्ध) एक चमत्कार करते हैं, तो हम उससे दुगुना चमत्कार करेंगे।”

यह सुनकर भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को बताया, “हे प्रभु, षड्यंत्रकारी कह रहे हैं कि वे चमत्कार करेंगे।” गुरु ने कहा, “उन्हें करने दो, भिक्षुओं; मैं भी वैसा ही करूंगा।” यह सुनकर बिम्बिसार ने जाकर भगवान बुद्ध से पूछा, “क्या आप चमत्कार करेंगे, प्रभु?” “जी, हे महाराज।” “क्या इस विषय में कोई आदेश नहीं दिया गया था, प्रभु?” “यह आदेश, हे महाराज, मेरे शिष्यों को दिया गया था; बुद्धों पर कोई आदेश लागू नहीं होता। जब आपके उद्यान के फूल और फल दूसरों के लिए वर्जित हैं (*3), तो यह नियम आप पर लागू नहीं होता।” “तो आप यह चमत्कार कहाँ करेंगे, प्रभु?” “श्रावस्ती नगर में, एक गांठदार आम के वृक्ष के नीचे।” “तो मुझे क्या करना होगा?” “कुछ नहीं, महाराज।”

अगले दिन, व्रत तोड़ने के बाद, गुरु भिक्षा मांगने गए। लोगों ने पूछा, “गुरु कहाँ गए?” भाइयों ने उत्तर दिया, “श्रावस्ती नगर के द्वार पर, एक गांठदार आम के वृक्ष के नीचे, वे षड्यंत्रकारियों को भ्रमित करने के लिए दो बार चमत्कार करने वाले हैं।” भीड़ ने कहा, “यह चमत्कार एक उत्कृष्ट कृति होगा; हम इसे देखने जाएंगे।” अपने घरों के द्वार छोड़कर वे गुरु के साथ चल पड़े। कुछ षड्यंत्रकारी भी अपने शिष्यों के साथ गुरु के पीछे-पीछे चले: उन्होंने कहा, “हम भी उसी स्थान पर चमत्कार करेंगे जहाँ तपस्वी गौतम (बुद्ध) ने अपना चमत्कार किया था।”

कुछ समय बाद गुरु श्रावस्ती नगर पहुंचे। राजा ने उनसे पूछा, "क्या यह सच है, महाराज, कि आप चमत्कार करने वाले हैं, जैसा कि लोग कहते हैं?" "जी हां, यह सच है," उन्होंने कहा। "कब?" राजा ने पूछा। "आज से सात दिन बाद, जून माह की पूर्णिमा को।" "क्या मैं एक मंडप बनाऊं, महाराज?" "शांति, महाराज: जिस स्थान पर मैं अपना चमत्कार करूंगा, वहां सक्का (इंद्र) बारह कुंड (4.23 किमी) के घेरे में रत्नों का एक मंडप बनाएंगे।" "क्या मैं इस बात की घोषणा नगर में करूं, महाराज?" "घोषणा कीजिए, महाराज।" राजा ने सत्य के उद्घोषक को एक अलंकृत हाथी पर सवार करके यह घोषणा करने के लिए भेजा: "सुसमाचार! गुरु सात दिन बाद श्रावस्ती नगर के द्वार पर, एक गांठदार आम के वृक्ष के नीचे, षड्यंत्रकारियों को भ्रमित करने के लिए चमत्कार करने वाले हैं!" यह घोषणा प्रतिदिन की जाती

थी। जब साजिशकर्ताओं को यह खबर मिली कि चमत्कार एक गांठदार आम के पेड़ के नीचे होगा, तो उन्होंने श्रावस्ती शहर के पास के सभी आम के पेड़ों को कटवा दिया और उनके मालिकों को इसके लिए पैसे दिए।

पूर्णिमा की रात सत्य के उद्घोषक ने घोषणा की, "आज (*4) सुबह चमत्कार होगा।" देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से ऐसा लगा मानो सारा भारत द्वार पर खड़ा हो और घोषणा सुन रहा हो; जिसके मन में जाने की इच्छा थी, वह सब श्रावस्ती नगर में पहुँच गया: बारह मील (x 4.23 किमी) तक भीड़ फैली हुई थी।

सुबह-सुबह गुरुजी भिक्षा मांगने निकले। राजा का माली, गंडा या नॉट नाम का व्यक्ति, राजा के लिए एक बढ़िया पका हुआ आम लेकर जा रहा था; आम पूरी तरह पका हुआ था, एक टोकरी जितना बड़ा, तभी उसने गुरुजी को नगर द्वार पर देखा। "यह फल गुरुजी के योग्य है," उसने कहा और उन्हें दे दिया। गुरुजी ने उसे लिया और वहीं एक तरफ बैठकर खा लिया। खाने के बाद उन्होंने कहा, "आनंद, माली को यह पत्थर दे दो, ताकि वह इसे यहाँ लगा दे; यही नॉट-आम का वृक्ष होगा।" बड़े भिक्षु ने वैसा ही किया। माली ने जमीन में एक गड्ढा खोदा और उसमें पत्थर लगा दिया। जैसे ही पत्थर फटा, जड़ें फूट पड़ीं और हल के डंडे जितना लंबा एक लाल अंकुर फूट पड़ा; भीड़ के देखते ही देखते वह सौ भुजाओं जितना लंबा आम का वृक्ष बन गया, जिसका तना पचास भुजाओं जितना और शाखाएँ भी पचास भुजाओं जितनी ऊँची थीं; उसी समय फूल खिले और फल पक गए; आकाश को भर देने वाला वह वृक्ष मधुमक्खियों से आच्छादित था, सुनहरे फलों से लदा हुआ था; जब हवा चलती तो मीठे फल गिरते; तब भक्तगण आकर फल खाते और विश्राम करते। संध्याकाल में देवदूतों के राजा ने इस विषय पर विचार करते हुए यह समझा कि उन्हें सात अनमोल वस्तुओं का एक मंडप बनाने का कार्य सौंपा गया है। अतः उन्होंने विश्वकर्मा को भेजा और उनसे सात अनमोल वस्तुओं का बारह कुंड (4.23 किमी) का एक मंडप बनवाया, जो चारों ओर से नीले कमलों से ढका हुआ था। इस प्रकार दस हजार लोकों के देवदूत एकत्रित हुए। गुरु ने षड्यंत्रकारियों को भ्रमित करने के लिए अपने शिष्यों के बीच असाधारण चमत्कार किया, जिससे अनेकों शिष्यों में आस्था उत्पन्न हुई, फिर वे उठे और बुद्ध के आसन पर बैठकर निर्वाण/मुक्ति की ओर ले जाने वाले धर्ममार्ग का उपदेश दिया। बीस करोड़ (10 मिलियन) प्राणियों ने जीवन के जल का पान किया। फिर, यह देखने के लिए ध्यान करते हुए कि पूर्व बुद्ध चमत्कार करने पर कहाँ जाते थे, और यह जानकर कि वे तैंतीस के स्वर्ग में जाते थे, वे बुद्ध के आसन से उठे, अपना दाहिना पैर युगंधरा पर्वत (*5) के शिखर पर रखा, और अपने बाएं पैर से सिनेरू की चोटी पर चले गए, उन्होंने पीले पत्थर के सिंहासन पर बैठकर महान मूंगा वृक्ष (*6) के नीचे वर्षा ऋतु का आरंभ किया; तीन महीने तक उन्होंने देवताओं (देवदूतों) को पारलौकिक शिक्षा (*7) पर प्रवचन दिया।

लोगों को पता नहीं था कि गुरु कहाँ गए हैं; उन्होंने देखा और कहा, "चलो घर चलते हैं," और बरसात के मौसम में वहीं रहने लगे। जब धार्मिक पर्व समाप्त होने वाला था और पर्व निकट था, तब महान भिक्षु मोग्गल्याना ने जाकर भगवान बुद्ध को इसकी सूचना दी। इस पर गुरु ने उनसे पूछा, "सारिपुत्र अब कहाँ हैं?" "हे प्रभु, उस चमत्कार के बाद जिससे वे प्रसन्न हुए, वे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ समकस्सा नगर में रहे और अभी भी वहीं हैं।" "मोग्गल्याना, आज से सातवें दिन मैं समकस्सा के द्वार से उतरूँगा। तथागत (बुद्ध) के दर्शन की इच्छा रखने वाले समकस्सा नगर में एकत्रित हों।" भिक्षु मान गए, गए और लोगों को बताया: उन्होंने पलक झपकते ही श्रावस्ती नगर से समकस्सा तक, तीस मील (4.23 किमी) की दूरी, पूरी मंडली को पहुँचा दिया। उपवास समाप्त होने और पर्व मनाए जाने पर, गुरु ने राजा सक्का (इंद्र) को बताया कि वे मनुष्यलोक में लौटने वाले हैं। तब सक्का (इंद्र) ने विश्वकर्मा को बुलवाया और उनसे कहा, "दशबल (बुद्ध) के मनुष्यलोक में उतरने के लिए एक सीढ़ी बनाओ।" उन्होंने सीढ़ी का शीर्ष सिनेरु पर्वत की चोटी पर और उसका निचला भाग समकस्सा द्वार के पास रखा, और इनके बीच में तीन सीढ़ियाँ अगल-बगल बनाईं: एक रत्नों की, एक चाँदी की और एक सोने की। रेलिंग और कंगनी सात बहुमूल्य वस्तुओं से बनी थीं। गुरु ने जगत के उद्धार के लिए चमत्कार किया और रत्नों से बनी मध्य सीढ़ी से नीचे उतरे। सक्का (इंद्र) ने कुंड और वस्त्र धारण किए, सूर्य ने याक की पूंछ का पंखा, समस्त प्राणियों के स्वामी ब्रह्मा ने धूप सेंकने के लिए छत्र धारण किया, और दस हजार लोकों के देवताओं ने दिव्य मालाओं और सुगंधों से पूजा की। जब गुरुजी सीढ़ियों के नीचे खड़े हुए, तो सबसे पहले वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र ने उनका अभिवादन किया, उसके बाद बाकी साथियों ने।

इस सभा के बीच गुरु ने सोचा, "मोग्गल्याना को अलौकिक शक्ति से युक्त दिखाया गया है, उपाली को धर्म, पवित्र धार्मिक मार्ग में पारंगत दिखाया गया है, परन्तु सारिपुत्र के पास मौजूद उच्च ज्ञान का गुण प्रकट नहीं हुआ है। मेरे सिवा किसी और के पास उनके जैसा पूर्ण और संपूर्ण ज्ञान नहीं है; मैं उनके ज्ञान के गुण को प्रकट करूँगा।" सबसे पहले उन्होंने एक ऐसा प्रश्न पूछा जो सामान्य लोगों से पूछा जाता है, और सामान्य लोगों ने उसका उत्तर दिया। फिर उन्होंने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के दायरे में आने वाला एक प्रश्न पूछा, और प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के लोगों ने उसका उत्तर दिया, परन्तु सामान्य लोगों को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं था। इसी प्रकार उन्होंने द्वितीय और तृतीय मार्ग (सम्मोहन) के लोगों, संतों, प्रमुख शिष्यों के दायरे में आने वाले प्रश्न पूछे; और प्रत्येक मामले में, उनसे नीचे के लोग उत्तर देने में असमर्थ थे, परन्तु उनसे ऊपर के लोग उत्तर दे सके। फिर उन्होंने सारिपुत्र की क्षमता के भीतर एक प्रश्न पूछा, और इसका उत्तर वरिष्ठ भिक्षु दे सके, परन्तु अन्य नहीं। लोगों ने पूछा, "गुरु को उत्तर देने वाले ये वरिष्ठ भिक्षु कौन हैं?" उन्हें बताया गया कि वे धर्म के सेनापति थे और उनका नाम सारिपुत्र था। "अहा, उनकी बुद्धि कितनी महान है!" उन्होंने कहा। इसके बाद से वरिष्ठ भिक्षु की महान बुद्धि का गुण मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) को ज्ञात हो गया। तब गुरु ने उनसे कहा,

"कुछ लोगों को अभी परिवीक्षा अवधि पूरी करनी बाकी है, और कुछ लोग लक्ष्य तक पहुंच चुके हैं:
उनके अलग-अलग तौर-तरीके यही कहते हैं, क्योंकि आप तो पूरी बात जानते ही हैं (*8)।"
इस प्रकार एक ऐसा प्रश्न पूछकर जो बुद्ध के दायरे में आता है, उन्होंने आगे कहा, "सारिपुत्र, संक्षेप में कहें तो, इस विषय का सभी अर्थों में क्या अर्थ है?" वरिष्ठ भिक्षु ने इस समस्या पर विचार किया। उन्होंने सोचा, "गुरुजी यह पूछ रहे हैं कि भिक्षुओं को किस उचित तरीके से प्रगति प्राप्त करनी चाहिए, चाहे वे निम्न मार्गों पर हों या संत?" सामान्य प्रश्न के संबंध में उन्हें कोई संदेह नहीं था। लेकिन फिर उन्होंने सोचा, "व्यवहार के उचित तरीके को अस्तित्व के मूल तत्वों (*9) के अनुसार अनेक तरीकों से वर्णित किया जा सकता है, और इसी प्रकार आगे भी; अब मैं गुरुजी के अर्थ को किस प्रकार समझाऊं?" वे अर्थ को लेकर संशय में थे। गुरुजी ने सोचा, "सारिपुत्र को सामान्य प्रश्न में तो कोई संदेह नहीं है, लेकिन इस बात को लेकर संशय है कि मैं इसके किस विशेष पहलू पर विचार कर रहा हूं। यदि मैं कोई संकेत नहीं दूंगा, तो वह कभी उत्तर नहीं दे पाएगा, इसलिए मैं उसे एक संकेत दूंगा।" यह संकेत उन्होंने यह कहकर दिया, "देखो, सारिपुत्र: क्या तुम इसे सत्य मानते हो?" (किसी बिंदु का उल्लेख करते हुए)। सारिपुत्र ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार दिए गए संकेत से, वह समझ गया कि सारिपुत्र ने उसका अर्थ समझ लिया है और अस्तित्व के मूल तत्वों से शुरू करते हुए पूर्ण उत्तर देगा। तब वह प्रश्न वरिष्ठ भिक्षु के समक्ष सौ संकेतों की तरह, नहीं, बल्कि हज़ार संकेतों की तरह स्पष्ट हो गया; और उन्होंने गुरु द्वारा दिए गए संकेत पर उस प्रश्न का उत्तर दिया जो बुद्ध के दायरे में आता था।

गुरु ने बारह लीग (x 4.23 किमी) भूमि में फैले इस समूह को (निर्वाण/मोक्ष के लिए) धार्मिक मार्ग का उपदेश दिया: तीस करोड़ (x 10 मिलियन) प्राणियों ने जीवन के जल का सेवन किया।

कंपनी भंग कर दी गई, और गुरुजी भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर निकले और कुछ समय बाद श्रावस्ती नगर पहुंचे। अगले दिन, श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के बाद, वे अपने भ्रमण से लौटे और भिक्षुओं को उनके कर्तव्य के बारे में बताकर अपने सुगंधित कक्ष में प्रवेश किया। शाम के समय, भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में बैठकर गुरुजी के उच्च गुणों की चर्चा की। "हे सज्जनों, सारिपुत्र ज्ञान में महान हैं; उनका ज्ञान व्यापक, तीव्र, तीक्ष्ण और तीव्र है। गुरुजी ने एक प्रश्न संक्षिप्त में पूछा, और उसका विस्तृत उत्तर दिया।" गुरुजी ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे वहां बैठकर क्या बातें कर रहे थे। उन्होंने उन्हें बताया। "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं," उन्होंने कहा, "कि उन्होंने संक्षिप्त प्रश्न का विस्तृत उत्तर दिया है, बल्कि उन्होंने पहले भी ऐसा किया है;" और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व वन में रहते थे, उनका जन्म एक हिरण के रूप में हुआ था। राजा को शिकार का बहुत शौक था और वे एक शक्तिशाली पुरुष थे: वे अपने आप को पुरुष कहलाने के योग्य नहीं समझते थे। एक दिन जब वे शिकार पर गए, तो उन्होंने अपने दरबारियों से कहा, "जो कोई भी हिरण को जाने देगा, उसे ऐसा दंड मिलेगा।" उन्होंने सोचा, "कोई घर में खड़ा रहे तो अन्न भंडार न मिले (*10)। जब कोई हिरण आ जाए, तो उसे किसी भी तरह राजा के पास ले जाना ही होगा।" उन्होंने आपस में एक समझौता किया और राजा को रास्ते के अंत में बिठा दिया। फिर उन्होंने एक बड़े जंगल को घेर लिया और लकड़ी की छड़ियों और इसी तरह की चीजों से जमीन पर पीटना शुरू कर दिया। सबसे पहले हमारे हिरण को बुलाया गया। वह घनी वनस्पति के चारों ओर तीन बार चक्कर लगाता रहा, भागने का मौका ढूंढता रहा: चारों ओर उसने देखा कि आदमी बिना रुके खड़े हैं, एक दूसरे से धक्का-मुक्की कर रहे हैं और तीर चला रहे हैं; केवल राजा के पास ही उसे मौका दिखाई दिया। आँखों में चमक लिए वह राजा की ओर झपटा, मानो उसकी आँखों में रेत फेंक दी हो। राजा ने उसे तुरंत देख लिया, तीर चलाया, लेकिन निशाना चूक गया। आपको पता होना चाहिए कि ये हिरण तीरों से बचने में बहुत चतुर होते हैं। जब तीर सीधे उनकी ओर आते हैं, तो हिरण स्थिर खड़े रहते हैं और उन्हें उड़ने देते हैं; अगर तीर पीछे से आते हैं, तो वे उनसे भी तेज़ उड़ जाते हैं; अगर ऊपर से गिरते हैं, तो वे अपनी पीठ झुका लेते हैं; अगर बगल से आते हैं, तो वे थोड़ा सा मुड़ जाते हैं; अगर तीर पेट पर लगते हैं, तो वे लुढ़क जाते हैं, और तीर निकल जाने के बाद हिरण हवा में उड़ते बादल की तरह तेज़ी से निकल जाते हैं। इस प्रकार, जब राजा ने इस हिरण को लुढ़कते देखा, तो उसे लगा कि उसे तीर लग गया है और उसने ज़ोर से पुकारा। हिरण हवा की तरह तेज़ी से उठा और आदमियों के घेरे को तोड़ते हुए भाग गया। हिरण को जाते देख दोनों ओर के दरबारी इकट्ठा हो गए और पूछा, "हिरण किसके पास गया?" "राजा के पास!" "लेकिन राजा चिल्ला रहा है, मैंने उसे मारा! उसने किसे मारा? हमारे राजा का निशाना चूक गया, मैं तुम्हें बताता हूँ! उसने ज़मीन पर मारा!" इस प्रकार उन्होंने राजा का भरपूर मज़ाक उड़ाया। "ये लोग मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं," राजा ने सोचा; "ये मेरी कीमत नहीं जानते।" फिर अपनी कमर कस कर, पैदल और हाथ में तलवार लिए, वह तेज़ी से दौड़ पड़ा और चिल्लाया, "मैं हिरण को पकड़ लूँगा!" उसने उसे अपनी नज़र में रखा और तीन मील (4.23 किमी) तक उसका पीछा किया। हिरण जंगल में घुस गया, और राजा भी उसमें घुस गया। अब हिरण के रास्ते में एक गड्ढा था, एक बड़ा गड्ढा जहाँ एक पेड़ सड़ गया था, साठ भुजाओं जितना गहरा, और तीस भुजाओं की गहराई तक पानी से भरा हुआ, फिर भी खरपतवारों से ढका हुआ। हिरण ने पानी की गंध सूँघी, और यह जानते हुए कि यह एक गड्ढा है, अपने रास्ते से थोड़ा हट गया। लेकिन राजा सीधे आगे बढ़ता गया और गड्ढे में गिर गया। हिरण को उसके कदमों की आहट सुनाई नहीं दी, इसलिए वह मुड़ा; और किसी को न देखकर समझ गया कि

वह गड्ढे में गिर गया होगा। इसलिए वह जाकर देखने लगा और उसे गंभीर संकट में पाया।गहरे पानी में संघर्ष करते हुए, हिरण ने अपने किए पर कोई द्वेष नहीं दिखाया, बल्कि दयापूर्वक सोचा, "राजा को मेरी आँखों के सामने मरने मत दो: मैं उसे इस कष्ट से मुक्त करूँगा।" गड्ढे के किनारे खड़े होकर उसने पुकारा, "हे राजा, भयभीत मत हो, मैं तुम्हें तुम्हारे कष्ट से बचाऊँगा।" फिर उसने उतनी ही लगन से, मानो वह अपने प्रिय पुत्र को बचा रहा हो, चट्टान पर सहारा लिया; और उस राजा को, जो उसे मारने आया था, साठ भुजाओं की गहराई वाले गड्ढे से बाहर निकाला, उसे सांत्वना दी, अपनी पीठ पर बिठाया, जंगल से दूर ले गया और उसकी सेना से कुछ दूरी पर उसे उतार दिया। फिर उसने राजा को उपदेश दिया और उसे पंच सद्‌गुणों में स्थापित किया। लेकिन राजा उस महान प्राणी को छोड़कर नहीं जा सका, इसलिए उसने उससे कहा, “हे हिरणों के स्वामी, मेरे साथ बनारस चलिए, मैं आपको बनारस का आधिपत्य देता हूँ, जो बारह मील (4.23 किमी) में फैला हुआ है, ताकि आप इस पर शासन कर सकें।” लेकिन उसने कहा, “हे महाराज, मैं एक प्राणी हूँ, और मुझे कोई राज्य नहीं चाहिए। यदि आपको मेरी थोड़ी भी परवाह है, तो मैंने आपको जो अच्छे नियम सिखाए हैं, उनका पालन कीजिए, और अपनी प्रजा को भी उनका पालन करना सिखाइए।” यह सलाह देकर वह जंगल में लौट गया। राजा अपनी सेना के पास लौटा, और हिरण के नेक गुणों को याद करके उसकी आँखों में आँसू भर आए। अपनी सेना के एक दल से घिरा हुआ वह शहर में घूमा, जबकि धर्म के मार्ग का ढोल बज रहा था, और उसने यह घोषणा करवाई: “आज से इस शहर के सभी निवासी पाँच सद्‌गुणों का पालन करें।”और यह घोषणा करवाई गई: "आज से इस नगर के सभी निवासी पाँचों सद्‌गुणों का पालन करें।"और यह घोषणा करवाई गई: "आज से इस नगर के सभी निवासी पाँचों सद्‌गुणों का पालन करें।"

लेकिन उन्होंने किसी को भी उस महान सत्ता द्वारा उन पर किए गए उपकार के बारे में नहीं बताया। अनेक उत्तम मांस खाने के बाद, शाम के समय, वे अपने भव्य पलंग पर लेट गए, और भोर होते ही महान सत्ता के महान गुणों को याद करते हुए, वे उठे और पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए, और आनंद से भरे हृदय से छह श्लोकों में अपनी आकांक्षाओं का जाप किया:

हे बुद्धिमान मनुष्य, आशा बनाए रखो, और अपने साहस को कमजोर मत पड़ने दो।
मैं स्वयं को देखता हूँ, जिसने अब अपनी इच्छा का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।
"हे मनुष्य, आशा बनाए रखो, यदि तुम बुद्धिमान हो, तो कष्ट सहते हुए भी मत थको।"
मैं स्वयं को देखता हूँ, जो लहरों से लड़ते हुए किनारे तक पहुँचा हूँ।
हे मनुष्य, यदि तुम बुद्धिमान हो तो परिश्रम करते रहो, और अपने साहस को शिथिल न होने दो।
मैं स्वयं को देखता हूँ, जिसने अब अपनी इच्छा का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।
हे मनुष्य, यदि तुम बुद्धिमान हो तो परिश्रम करते रहो, कष्ट सहते हुए भी मत थको।
मैं स्वयं को देखता हूँ, जो लहरों से लड़ते हुए किनारे तक पहुँचा हूँ।
"जो बुद्धिमान है, वह पीड़ा से अभिभूत होने पर भी,
मैं फिर कभी सुख की आशा करना नहीं छोड़ूंगा।
इनमें से कई पुरुषों की भावनाएं हैं, जिनमें खुशी और दुख दोनों शामिल हैं:
वे इसके बारे में सोचते भी नहीं, फिर भी मृत्यु की ओर चल पड़ते हैं।
जो सोचा नहीं जाता, वह घटित हो जाता है; और जिसके बारे में सोचा जाता है, वह असफल हो जाता है।
किसी पुरुष या स्त्री की खुशी के लिए केवल विचार ही पर्याप्त नहीं होते।

जब राजा इन पंक्तियों का जाप कर रहे थे, तभी सूर्योदय हो गया। उनके पुजारी राजा का हालचाल जानने के लिए सुबह-सुबह आए थे और द्वार पर खड़े होकर उन्होंने इस जाप की आवाज़ सुनी और मन ही मन सोचा, "कल राजा शिकार पर गए थे। निःसंदेह उनका हिरण चूक गया होगा और दरबारियों द्वारा उपहास किए जाने पर उन्होंने कहा होगा कि वे स्वयं शिकार को पकड़कर मार डालेंगे। फिर निस्संदेह उन्होंने एक योद्धा होने के नाते अपने अभिमान में आकर हिरण का पीछा किया होगा और साठ भुजाओं के बराबर गहरे गड्ढे में गिर गए होंगे; और दयालु हिरण ने राजा के इस अपराध की परवाह किए बिना उन्हें बाहर निकाल लिया होगा। इसीलिए राजा यह जाप कर रहे हैं, मुझे लगता है।" इस प्रकार ब्राह्मण ने राजा के जाप का प्रत्येक शब्द सुना; और राजा और हिरण के बीच जो कुछ भी हुआ, वह एक पॉलिश किए हुए दर्पण में प्रतिबिंबित चेहरे की तरह स्पष्ट हो गया। उन्होंने अपनी उंगलियों से द्वार पर दस्तक दी। राजा ने पूछा, "कौन है?" "मैं हूँ, महाराज, आपका पुजारी।" “अंदर आइए, गुरुजी,” राजा ने कहा और द्वार खोल दिया। वह अंदर आया और राजा की विजय के लिए प्रार्थना करते हुए एक तरफ खड़ा हो गया। फिर उसने कहा, “हे महान राजा! मैं जानता हूँ कि जंगल में आपके साथ क्या हुआ था। जब आप एक हिरण का पीछा कर रहे थे, तो आप एक गड्ढे में गिर गए, और हिरण गड्ढे की पत्थर की दीवारों पर आराम करते हुए (*11) आपको बाहर ले आया। इसलिए आपने उसकी उदारता को याद करते हुए एक भजन गाया।” फिर उसने दो छंद पढ़े:

"वह हिरण जो हाल ही में एक खड़ी पहाड़ी पर आपका शिकार था,
उन्होंने साहसपूर्वक आपको जीवनदान दिया, क्योंकि वे लोभ और घृणा से मुक्त थे।
"भयानक गड्ढे से, मृत्यु के चंगुल से बाहर,"
एक चट्टान पर झुकना (*11) (जरूरत के समय एक दोस्त)

उस विशाल हिरण ने तुम्हारी रक्षा की: तुमने यह बात सही कही थी।
उनका मन घृणा या लोभ से बहुत दूर है।
यह सुनकर राजा ने सोचा, "क्या!" "वह आदमी मेरे साथ शिकार पर नहीं गया था, फिर भी उसे सारी बात पता है! उसे कैसे पता चल सकता है? मैं उससे पूछूंगा"; और उसने नौवां श्लोक दोहराया:

"हे ब्राह्मण! क्या तुम उस दिन वहाँ थे?"
या आपने किसी अन्य गवाह से सुना?
आपने जुनून का पर्दा हटा दिया है:
आप जानते हैं, आपकी सारी बुद्धिमत्ता मुझे भयभीत करती है।
लेकिन ब्राह्मण ने कहा, "मैं कोई सर्वज्ञानी बुद्ध नहीं हूँ; मैंने केवल आपके द्वारा गाए गए भजन को बिना अर्थ खोए सुना, और इस प्रकार तथ्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया।" इसे समझाने के लिए उन्होंने दसवाँ श्लोक दोहराया:

हे मनुष्यों के स्वामी! मैंने वह बात नहीं सुनी,
और मैं उस दिन वहां मौजूद भी नहीं था:
लेकिन आपने जिन छंदों को मधुरता से गाया,
बुद्धिमान लोग मामले की असलियत समझ सकते हैं।
राजा प्रसन्न हुआ और उसने उसे एक बहुमूल्य उपहार दिया।

तब से राजा दान-पुण्य और अच्छे कर्मों में लीन हो गया, और उसकी प्रजा भी अच्छे कर्मों में लीन होकर स्वर्ग में चली गई।

एक दिन ऐसा हुआ कि राजा अपने पुरोहित के साथ अपने उद्यान में लक्ष्य पर निशाना लगाने गए। उस समय इंद्र यह सोच रहे थे कि उनके चारों ओर इतने असंख्य देवदूत (पुत्र और पुत्रियाँ) कहाँ से आए। सोचते-सोचते उन्हें पूरी कहानी समझ में आ गई: कैसे उस हिरण ने राजा को गड्ढे से बचाया था, कैसे वह सद्गुणों में स्थिर हुए थे, और कैसे इस राजा की शक्ति से बहुतों ने अच्छे कर्म किए और स्वर्ग भर गया था; और अब राजा अपने उद्यान में लक्ष्य पर निशाना लगाने गए थे। फिर वे भी वहाँ गए ताकि सिंह की वाणी से हिरण की महानता का बखान कर सकें, और यह बता सकें कि वे इंद्र हैं, और वायु में स्थिर होकर धर्म के मार्ग पर प्रवचन दे सकें, दया और पंच सद्गुणों का उपदेश दे सकें, और फिर लौट आएँ। अब राजा ने लक्ष्य पर निशाना लगाने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और बाण को प्रत्यंचा पर जड़ा। उसी क्षण इंद्र ने अपनी शक्ति से राजा और लक्ष्य के बीच हिरण को प्रकट कर दिया; राजा ने उसे देखकर अपना शिकार नहीं छोड़ा। तब इंद्र ने पुरोहित के शरीर में प्रवेश करके राजा को निम्नलिखित श्लोक सुनाया:

"तुम्हारा बाण कई शक्तिशाली चीजों के लिए मृत्यु का कारण है।"
आप इसे तार पर चुपचाप क्यों पकड़े रहते हैं?
फिर तीर चलाओ और हिरण को मार डालो:
हे सबसे बुद्धिमान राजा, यह तो सम्राटों का भोजन है!
इस पर राजा ने एक श्लोक में उत्तर दिया:

"मैं जानता हूँ, ब्राह्मण, मुझे उतना ही यकीन है जितना आपको।"
मैं कसम खाता हूँ, हिरण योद्धाओं का मांस है।
लेकिन मैं किए गए सेवा कार्य के लिए आभारी हूं।
इसलिए अब मुझे हत्या करने से रोको।
तब सक्का (इंद्र) ने कुछ श्लोक दोहराए:

"हे महामहिम सम्राट, यह कोई हिरण नहीं है! बल्कि यह एक दानव है।"
तुम मनुष्यों के राजा हो; परन्तु इसे मार डालो— तुम देवताओं (देवदूतों) के राजा बनोगे।
लेकिन अगर तुम संकोच करो, हे वीर राजा!
हिरण को मारना, क्योंकि वह तुम्हारा मित्र है:
मृत्यु की ठंडी नदी (*12) और मृत्यु के भयानक राजा (*13) के लिए
आप, आपकी पत्नी और आपके बच्चे नीचे उतरेंगे।
इस पर राजा ने दो छंद दोहराए:

ऐसा ही हो: मृत्यु की नदी और मृत्यु के राजा के लिए

मुझे, मेरी पत्नियों और बच्चों को, मेरे पूरे समूह को भेज दो।
दोस्तों और साथियों की कसम; मैं यह काम नहीं करूंगा।
और मेरे हाथों से इस हिरण को नहीं मारा जाएगा।
एक बार एक भयानक, खौफनाक जंगल में
उसी हिरण ने मुझे असहनीय पीड़ा से बचाया।
मैं अपने सहायक की मृत्यु की कामना कैसे कर सकता हूँ?
इतनी सेवा तो आपने बहुत पहले ही कर दी थी?
तब सक्का (इंद्र) पुरोहित के शरीर से प्रकट हुए, अपना वास्तविक रूप धारण किया और वायु में स्थिर होकर दो श्लोकों का पाठ किया, जो राजा के महान गुणों को दर्शाते थे।

"हे सच्चे और वफादार मित्र, पृथ्वी पर दीर्घायु हो!"
इस क्षेत्र में सत्य और अच्छाई से सुकून मिलता है;
फिर आपके आसपास की बहुत सी लड़कियां आएंगी
जबकि आप इंद्र (*14) के रूप में देवताओं (देवदूतों) के बीच शासन करेंगे।
"भावुकता से मुक्त, सदा शांत हृदय के साथ,"
जब अजनबी किसी चीज की चाहत रखते हैं, तो उनकी अधूरी जरूरत को पूरा करें;
जैसे ही आपको शक्ति दी जाती है, वैसे ही दें और अपनी भूमिका निभाएं (*15),
निर्दोष रहो, जब तक स्वर्ग तुम्हारा अंतिम प्रतिफल न हो।
इस प्रकार कहते हुए, देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने आगे कहा, "हे राजा, मैं यहाँ आपकी परीक्षा लेने आया था, और आपने मुझे कोई मौका नहीं दिया। बस सावधान रहें।" और यह सलाह देकर वे अपने स्थान लौट गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि सारिपुत्र को वह सब कुछ विस्तार से पता था जो केवल सामान्य शब्दों में कहा गया था; बल्कि ऐसा पहले भी हो चुका है।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा थे, सारिपुत्र पुरोहित थे, और मैं स्वयं हिरण था।"

फुटनोट:

(1) जयद्दीसा जातक, संख्या 513

(2) सेठी ने चंदन का कटोरा एक ऊँचे खंभे पर रख दिया था और किसी भी पवित्र व्यक्ति को उसे नीचे उतारने की चुनौती दी थी। पिंडोला जादुई शक्ति से हवा में उठ खड़ा हुआ और उसे ले आया। इसके लिए गुरु ने उसे फटकारा, क्योंकि उसने अपनी महान शक्ति का उपयोग अनुचित उद्देश्य के लिए किया था।

(3)वरितम पढ़ना.

(4) पूर्वी दिन सूर्यास्त से सूर्यास्त तक माना जाता है।

(5) माउंट मेरु या सिनेरू, भारतीय ओलंपस, पहाड़ियों के सात संकेंद्रित वृत्तों से घिरा हुआ है, जिनमें से सबसे भीतरी युगंधरा है।

(6) उस वृक्ष का नाम एरिथमिया इंडिका है; इंद्र के स्वर्ग में एक विशाल वृक्ष उगता था।

(7)अभिधम्म.

(8)संखतधम्म का अर्थ अराहा या अशेखा प्रतीत होता है।

(9) पाँच खंड।

(10)निस्संदेह एक कहावत है: कोई सबसे स्पष्ट चीजों को भी नज़रअंदाज़ कर सकता है।

(11) इसका अर्थ हो सकता है "पहले पत्थर से अपनी ताकत आज़माना"।

(12) वेटरानी.

(13) यम.

(14)वासावो.

(15) भूत्वा, "खाया हुआ", समय पर लागू, का अर्थ है "पास करना": भूत्वा द्वादसा वासनि, मह। 253.

पुस्तक XIV. पकिन्नाका-निपाता :

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सालिकेदार-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-484-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 484
सालिकेदारा जातक

"चावल की फसल," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, एक भिक्षु के बारे में जो अपनी माता का सहारा था। इस घटना का वर्णन साम जन्म (*1) में किया जाएगा। तब गुरु ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा, "भाई, क्या यह सच है कि तुम गृहस्थों का सहारा हो?" "जी हाँ।" "वे कौन हैं?" "मेरे माता-पिता।" गुरु ने कहा, "शाबाश, भाई! पुराने समय के बुद्धिमान लोग, यहाँ तक कि जब वे निम्न प्राणियों के रूप में, तोते के रूप में जन्म लेकर भी, अपने माता-पिता के बूढ़े हो जाने पर उन्हें घोंसले में रखते थे और अपनी चोंच में भोजन लाकर उन्हें खिलाते थे।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, राजगृह नगरी में मगध नामक एक राजा का शासन था। उस समय नगरी से उत्तर-पूर्व दिशा में सालिंदिया नामक एक ब्राह्मण गाँव था। इसी उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में मगध की संपत्ति थी। सालिंदिया में कोसियागोट्टा (*2) नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसके पास एक हजार एकड़ (*3) भूमि थी, जहाँ वह धान उगाता था। जब फसल तैयार हो जाती थी, तो वह एक मजबूत बाड़ बनवाता था और भूमि का प्रबंधन अपने लोगों को सौंप देता था, एक को पचास एकड़, दूसरे को साठ एकड़, इस प्रकार वह अपनी संपत्ति का लगभग पाँच सौ एकड़ हिस्सा बाँट देता था। शेष पाँच सौ एकड़ भूमि उसने एक मजदूर को मजदूरी पर दे दी, और वह वहाँ एक झोपड़ी बनाकर दिन-रात रहता था। अब इस संपत्ति के उत्तर-पूर्व में एक पहाड़ी की चोटी पर रेशम-कपास के पेड़ों का एक विशाल वन (*4) था, और इस वन में बड़ी संख्या में तोते रहते थे।

उस समय बोधिसत्व का जन्म तोतों के इस झुंड में, तोतों के राजा के पुत्र के रूप में हुआ। वे बड़े होकर सुंदर और बलवान हुए, उनका शरीर बैलगाड़ी के पहिये के आधे के बराबर था। उनके पिता, जो अब बूढ़े हो चुके थे, ने उनसे कहा, "मैं अब दूर खेतों में नहीं जा सकता; तुम इस झुंड की देखभाल करो," और इसका आधिपत्य अपने पुत्र को सौंप दिया। अगले दिन से उन्होंने अपने माता-पिता को भोजन की तलाश में जाने से मना कर दिया; लेकिन जब पूरा झुंड चला गया, तो वे हिमालय की पहाड़ियों पर उड़ गए, और वहाँ उगे जंगली धान के ढेर खाकर तृप्त होकर लौटे, और अपने माता-पिता के लिए पर्याप्त भोजन लाए, और उन्हें खिलाया।

एक दिन तोतों ने उनसे एक सवाल पूछा। उन्होंने कहा, "पहले मगध के खेत में इस समय तक चावल पक जाते थे; क्या अब चावल उगे हैं या नहीं?" उन्होंने जवाब दिया, "जाकर देख लो," और फिर दो तोतों को पता लगाने के लिए भेजा। तोते चले गए और मगध की भूमि में उस हिस्से में उतरे जहाँ एक मज़दूर पहरा दे रहा था; उन्होंने चावल खाए और एक बाली चावल अपने साथ अपने जंगल में ले गए और उसे उस महान व्यक्ति के चरणों में रखकर कहा, "यहाँ ऐसे ही चावल उगते हैं।" अगले दिन वह अपने सारे तोतों के साथ खेत में गए और उतरे। वह आदमी इधर-उधर भागता रहा, पक्षियों को भगाने की कोशिश करता रहा, लेकिन उन्हें भगा नहीं सका। बाकी तोतों ने चावल खाए और खाली चोंच लेकर चले गए; लेकिन तोतों के राजा ने बहुत सारा चावल इकट्ठा किया और उसे अपने माता-पिता के पास ले आए। अगले दिन तोतों ने वहाँ फिर से चावल खाए, और ऐसा ही चलता रहा। तब उस आदमी ने सोचना शुरू किया, "अगर ये जीव कुछ और दिन ऐसे ही खाते रहे तो एक दाना भी नहीं बचेगा। ब्राह्मण चावल की कीमत लगवाएगा और मुझ पर जुर्माना लगाएगा। मैं जाकर उसे बताता हूँ।" मुट्ठी भर चावल और एक भेंट लेकर वह ब्राह्मण से मिलने गया, उसे प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो

गया। "हे मेरे भले आदमी," गुरु ने कहा, "क्या चावल की अच्छी फसल हुई है?" "जी हाँ, ब्राह्मण, हुई है," उसने उत्तर दिया और दो श्लोक दोहराए:

"चावल की फसल बहुत अच्छी है, लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूँ,
तोते इसे चट कर रहे हैं, मैं उन्हें वहां से हटा नहीं सकता।
"उस झुंड में एक पक्षी सबसे उत्तम होता है, जो सबसे पहले भोजन करता है।"
फिर वह अपनी चोंच में एक गठरी लेकर अपनी भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए पैसे जुटाता है।
जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसे तोते के राजा से स्नेह हो गया। उसने कहा, "मेरे स्वामी, क्या आप जाल बिछाना जानते हैं?" "हाँ, मैं जानता हूँ।" तब स्वामी ने उससे इस श्लोक में कहा:

फिर घोड़े के बालों का एक फंदा लगाओ जिससे वह पकड़ा जा सके;
और तुम उस पक्षी को जिंदा पकड़कर मेरे पास यहाँ ले आओ।
खेत का रखवाला इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ कि चावल पर कोई कीमत नहीं लगाई गई थी और न ही किसी कर्ज की बात हुई थी। वह तुरंत गया और घोड़े के बालों का एक फंदा बनाया। फिर उसने पता लगाया कि वे उस दिन कब उतरने वाले थे; और अगले दिन सुबह-सुबह उसने उस जगह की जासूसी की जहाँ तोते राजा उतरते थे, और पानी के घड़े के आकार का एक पिंजरा बनाया, उसमें फंदा लगाया और अपनी झोपड़ी में बैठकर तोतों के आने का इंतजार करने लगा। तोते राजा अपने पूरे झुंड के बीच आया; और वह बिल्कुल भी लालची नहीं था, इसलिए वह उसी जगह उतरा जहाँ कल उतरा था, उसका पैर फंदे में फंसा हुआ था। जब उसने पाया कि उसका पैर फंस गया है, तो उसने सोचा, "अब अगर मैं पकड़े जाने की आवाज लगाऊँगा, तो मेरा परिवार इतना डर जाएगा कि वे बिना भोजन के ही उड़ जाएँगे। मुझे तब तक सहना होगा जब तक वे अपना भोजन खत्म नहीं कर लेते।" जब उसने देखा कि उन्होंने पेट भर खा लिया है, तो अपनी जान के डर से उसने तीन बार पकड़े जाने की आवाज लगाई। सभी पक्षी उड़ गए। तब तोतों के राजा ने कहा, "ये सब मेरे मित्र और परिवार हैं, और एक भी मेरी ओर मुड़कर नहीं देखता! मैंने क्या पाप किया है?" और उन्हें फटकारते हुए उसने एक श्लोक कहा:

उन्होंने खाया, पिया और अब वे सब जल्दी से चले गए।
मैं तो बस एक जाल में फंस गया: मैंने आखिर क्या गलती की है?
चौकीदार ने तोते के राजा की पुकार और दूसरे तोतों के हवा में उड़ने की आवाज़ सुनी। "यह क्या है?" उसने सोचा। वह अपनी झोपड़ी से उठा और अपने जाल वाली जगह पर गया, और वहाँ उसने तोतों के राजा को देखा। "जिस पक्षी के लिए मैंने जाल बिछाया था, वही पकड़ा गया!" वह अत्यंत प्रसन्न होकर चिल्लाया। उसने तोते को जाल से निकाला और उसके दोनों पैर बाँध दिए, और सालिंदिया गाँव की ओर चल पड़ा, जहाँ उसने पक्षी को ब्राह्मण को सौंप दिया। महान सत्ता के प्रति अपने गहरे स्नेह से ब्राह्मण ने उसे दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया और अपनी कमर पर बिठाकर उससे इन दो श्लोकों में बात की:

"तुम्हारे पेट तो बाकियों के पेट से कहीं बड़े हैं।"
पहले भरपेट भोजन करो, फिर चोंच भरकर उड़ान भरो।
क्या आपके पास वहाँ भरने के लिए कोई अन्न भंडार है? या आप मुझसे बहुत नफरत करते हैं?
मैं आपसे पूछता हूं, मुझे सच-सच बताइए—आप अपनी दुकान कहां खोलेंगे?
यह सुनकर तोते के राजा ने शहद जैसी मीठी मानवीय आवाज में सातवें श्लोक को दोहराते हुए उत्तर दिया:

"मैं तुमसे नफरत नहीं करता, हे कोसिया! मेरे पास कोई अन्न भंडार नहीं है;
मैं अपने जंगल में एक बार कर्ज चुकाता हूँ और एक बार ऋण भी देता हूँ।
और मैं वहाँ खजाना जमा करता हूँ: इसलिए मेरा जवाब सबको पता चल जाए।"
तब ब्राह्मण ने उससे पूछा:

आप कौन सा ऋण देते हैं? आप कौन सा कर्ज चुकाते हैं?
मुझे अपने संचित खजाने के बारे में बताओ, और फिर स्वतंत्र होकर उड़ जाओ।"
ब्राह्मण के इस अनुरोध के उत्तर में तोते के राजा ने चार श्लोकों में अपने इरादे को स्पष्ट करते हुए उत्तर दिया:

"मेरे अपरिपक्व चूजे, मेरे कोमल बच्चे, जिनके पंख अभी तक विकसित नहीं हुए हैं,
जो भी समय आने पर मेरा भरण-पोषण करेगा, मैं उसे ऋण देता हूँ।
फिर मेरे बूढ़े माता-पिता, जो जवानी की सीमाओं से बहुत दूर हैं,
जो कुछ मैं अपनी चोंच में लेकर आता हूँ, उसी से मैं उनका कर्ज चुकाता हूँ।
और भी बहुत से असहाय पंखों वाले और कमजोर पक्षी हैं।

मैं इन्हें दान देता हूँ: ऋषि इसे मेरा भंडार कहते हैं।
"यह वह ऋण है जो मैं देता हूँ, यह वह कर्ज है जो मैं चुकाता हूँ।"
और यही वह खजाना है जिसे मैं संजोकर रखता हूँ: अब मैंने अपनी बात कह दी है।"
उस महान सत्ता से यह पुण्यमय प्रवचन सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और उसने दो श्लोक दोहराए:

"जीवन के कितने महान सिद्धांत हैं! यह पक्षी कितना भाग्यशाली है!"
पृथ्वी पर रहने वाले कई मनुष्यों से ऐसे नियम कभी सुनने को नहीं मिलते।
"जहां भी संभव हो, अपने परिवार के साथ जी भरकर खाएं।"
और, तोते! हम फिर मिलेंगे: मुझे तुम्हें देखना बहुत अच्छा लगता है।
इन शब्दों के साथ, उसने उस महान प्राणी को कोमल हृदय से देखा, मानो वह उसका सबसे प्रिय पुत्र हो; और उसके पैरों से बंधन खोलकर, उसने सौ बार शुद्ध किए गए तेल से उसकी मालिश की, उसे सम्मान के आसन पर बैठाया, उसे सोने की थाली में मीठा भुट्टा खिलाया और उसे चीनी का पानी पिलाया। इसके बाद, तोतों के राजा ने ब्राह्मण को सावधान करते हुए यह श्लोक सुनाया:

"हे कोसिया! यहाँ रहते हुए
मुझे भोजन, पेय और प्रिय मित्रता, तीनों ही प्राप्त हुए।
उन लोगों को अपना बोझ दो जिनका बोझ उतार दिया गया है।
जब आपके माता-पिता बूढ़े और वयस्क हो जाएं तो उनका सहारा बनें।
तब ब्राह्मण ने हृदय से प्रसन्न होकर अपनी प्रसन्नता को इस श्लोक में व्यक्त किया:

"आज तो भाग्य की देवी स्वयं प्रकट हुई होंगी।"
जब मेरी नजर इस असाधारण पक्षी पर पड़ी!
मैं अच्छे कर्म करूंगा और कभी नहीं रुकूंगा।
अब मैंने तोते की मीठी आवाज सुन ली है।
लेकिन उस महान प्राणी ने ब्राह्मण द्वारा दिए गए एक हजार एकड़ जमीन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और केवल आठ एकड़ जमीन ही ली। ब्राह्मण ने सीमा पत्थर स्थापित किए और यह जमीन उन्हें सौंप दी; फिर आदरपूर्वक अपने सिर पर हाथ रखकर कहा, "हे स्वामी, शांति से जाइए और अपने रोते हुए माता-पिता को सांत्वना दीजिए," और फिर उन्हें जाने दिया। बहुत प्रसन्न होकर, उन्होंने चावल की एक बाली ली और उसे अपने माता-पिता के पास ले जाकर उनके सामने रख दिया और कहा, "अब उठिए, मेरे प्रिय माता-पिता!" उनके शब्द सुनकर वे रोते हुए चेहरों के साथ उठ खड़े हुए। तब तोतों के झुंड एक साथ आने लगे और पूछने लगे, "हे स्वामी, आप कैसे मुक्त हुए?" उन्होंने उन्हें पूरी कहानी शुरू से अंत तक सुनाई। और कोसिया ने तोतों के राजा की सलाह का पालन किया और धर्मात्माओं, तपस्वियों और ब्राह्मणों को बहुत दान दिया।

गुरु ने इस बात को समझाते हुए अंतिम श्लोक को दोहराया:

"यह कोसिया अत्यंत हर्ष और आनंद के साथ है।"
आम तौर पर और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध पेय और भोजन:
वह खाने-पीने से पूरी तरह संतुष्ट हो गया।
ब्राह्मण और साधु, स्वयं सर्वगुण संपन्न।"

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, अपने माता-पिता का सहारा देना बुद्धिमान और भले लोगों का पारंपरिक मार्ग है।" फिर, सत्यों की व्याख्या करने के बाद, उन्होंने जन्म का वर्णन किया: (अब सत्यों के समापन पर, भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए):--"उस समय बुद्ध के अनुयायी तोतों का झुंड थे, राजा के परिवार के दो सदस्य पिता और माता थे, चन्ना पहरेदार थे, आनंद ब्राह्मण थे, और मैं स्वयं तोतों का राजा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 540

(2) "कौसिका (उल्लू) या विक्वामित्र वंश" में से एक।

(3)करिसा.

(4)सिम्बली: बॉम्बैक्स हेप्टाफिलम।

(5)दत्व के स्थान पर कत्वा पढ़ना, जो संदर्भ के विपरीत है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कैंड-किन्नर-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-485-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 485
चंदा-किन्नर-जातक

"यह बीत रहा है," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने कपिलपुरा (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य कपिलवस्तु) के निकट बरगद के वन में रहते हुए, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) के बारे में सुनाई थी, जब वह महल में थीं।

इस जन्म की कथा बुद्ध के अस्तित्व के सुदूर युग (*1) से शुरू होनी चाहिए। लेकिन युगों की कथा, उरुवेला के कश्यप (*2) के सिंह गर्जना तक, लत्थिवना (*3) के मठ में, बाँस के वन में, अपन्नक जन्म (*4) में पहले ही बताई जा चुकी है। उस बिंदु से शुरू करते हुए आप वेस्सन्तर जन्म (*5) में कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) आगमन तक की उसकी निरंतरता पढ़ेंगे। गुरु अपने पिता के घर में भोजन के दौरान बैठे हुए महाधम्मपाल जन्म (*6) सुनाते हैं; और भोजन समाप्त होने के बाद उन्होंने कहा, "मैं राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) के उत्तम गुणों की प्रशंसा उनके घर में चंदा-किन्नर जन्म सुनाकर करूँगा।" फिर राजा को अपना कुंड सौंपकर, वे अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) के घर चले गए। उस समय उनकी सेवा में चालीस हजार दासियाँ रहती थीं, जिनमें से एक हजार नब्बे योद्धा जाति की थीं। जब उस महिला ने तथागत (बुद्ध) के आने का समाचार सुना, तो उसने उन सभी को पीले वस्त्र पहनने को कहा, और उन्होंने वैसा ही किया। गुरु आए और अपने लिए निर्धारित स्थान पर बैठ गए। तब सभी स्त्रियों ने एक स्वर में पुकार लगाई, जिससे रोने की एक बड़ी आवाज गूंज उठी। राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) ने रो-रोकर अपना दुःख दूर किया और गुरु का स्वागत करते हुए राजा के समान आदरपूर्वक बैठ गईं। तब राजा (बुद्ध के पिता) ने उनके गुणों का वर्णन शुरू किया: "हे महाराज, मेरी बात सुनिए; उन्होंने सुना कि आप पीले वस्त्र पहनते हैं, इसलिए उन्होंने भी पीले वस्त्र पहन लिए; उन्होंने यह भी सुना कि मालाएँ और ऐसी वस्तुएँ त्याग देनी चाहिए, और देखिए, उन्होंने मालाएँ त्याग दी हैं और ज़मीन पर बैठ गई हैं। जब आपने संन्यासी जीवन अपनाया, तब वह विधवा हो गईं; और उन्होंने अन्य राजाओं द्वारा भेजे गए उपहारों को भी अस्वीकार कर दिया। उनका हृदय आपके प्रति इतना निष्ठावान है।" इस प्रकार उन्होंने उनके गुणों का वर्णन अनेक तरीकों से किया। गुरु ने कहा, "हे महाराज, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अब अपने अंतिम जन्म में भी वह स्त्री मुझसे प्रेम करती हैं, और उनका हृदय निष्ठावान है और वह केवल मेरे द्वारा ही निर्देशित होती हैं। यहाँ तक कि जब उन्होंने पशु रूप में जन्म लिया, तब भी वह निष्ठावान थीं और केवल मेरी ही थीं।" तब राजा के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, तब हिमालय क्षेत्र में एक परी के रूप में महान पुरुष का जन्म हुआ (*7)। उनकी पत्नी का नाम चंदा था (*8)। ये दोनों चंदापब्बता नामक एक चांदी के पर्वत पर रहते थे, जिसे चंद्र पर्वत भी कहा जाता है। उस समय बनारस के राजा ने अपना शासन अपने मंत्रियों को सौंप दिया था, और अकेले ही दो पीले वस्त्र धारण करके और पाँचों शस्त्रों से सुसज्जित होकर (*9), वे हिमालय की ओर चल पड़े।

हिरण का मांस खाते हुए उसे एक छोटी सी धारा याद आई और वह पहाड़ी पर चढ़ने लगा। वर्षा ऋतु में चंद्र पर्वत पर रहने वाली परियाँ वहीं रहती हैं और केवल गर्म मौसम में ही नीचे आती हैं। उसी समय चंदा नाम का यह परी अपनी साथी के साथ नीचे आया और इधर-उधर घूमने लगा। वह अपने शरीर पर इत्र लगाता, फूलों का पराग खाता, फूलों से बने वस्त्र पहनता, लताओं में झूलता और मधुर स्वर में गीत गाता रहा। वह भी इस धारा के पास पहुँचा; और एक जगह रुककर अपनी पत्नी के साथ उसमें उतर गया, फूल बिखेरते हुए पानी में खेलने लगा। फिर उन्होंने फूलों के वस्त्र पहने और चाँदी की थाली जैसी सफेद रेत पर फूलों का पलंग बिछाकर लेट गए। नर परी ने बाँस का एक टुकड़ा उठाया और उस पर बजाने लगा, और मधुर स्वर में गाने लगा; वहीं उसकी साथी अपने कोमल हाथों को हिलाते हुए पास में नाचने लगी और साथ में गाने भी गाती रही। राजा को आवाज़ सुनाई दी, और दबे पांव, ताकि किसी को उसके कदमों की आहट सुनाई न दे, वह पास आया और एक गुप्त स्थान पर परियों को देखने लगा। उसे तुरंत ही एक परी से प्रेम हो गया। उसने सोचा, "मैं उसके

पति को मार डालूंगा, और मैं उसकी पत्नी के साथ यहीं रहूंगा।" फिर उसने चंदा नाम की परी को तीर मारा, जिसने दर्द में विलाप करते हुए चार श्लोक कहे:

"मुझे लगता है कि यह बीत रहा है, और मेरा खून बह रहा है, बह रहा है।"
हे चंदा! मैं जीवन से अपना बंधन खो रहा हूँ! मेरी साँसें रुक रही हैं!
"यह डूब रहा है, मुझे दर्द हो रहा है, मेरा दिल जल रहा है, जल रहा है।"
लेकिन चंदा, तुम्हारे दुख के लिए ही मेरे हृदय में व्याकुलता है।
"मैं घास की तरह, पेड़ की तरह नष्ट हो जाता हूँ, पानी रहित नदी की तरह सूख जाता हूँ।"
लेकिन चंदा, मेरे दिल में तुम्हारे दुख के लिए ही तड़प है।
"पहाड़ की तलहटी में स्थित झील पर बारिश की बूंदों की तरह मेरी आंखों से आंसू गिरते हैं।"
लेकिन चंदा, तुम्हारे दुख के लिए ही मेरा हृदय तड़प रहा है।
इस प्रकार महान प्राणी ने चार छंदों में शोक व्यक्त किया; और फूलों के पलंग पर लेटे-लेटे वे बेहोश हो गए और मुंह फेर लिया। राजा वहीं खड़े रहे। लेकिन दूसरी परी को पता ही नहीं चला कि महान प्राणी घायल हैं, यहाँ तक कि उनके शोक व्यक्त करने पर भी नहीं, क्योंकि वह अपने आनंद में डूबी हुई थी। उन्हें मुंह फेरे बेजान पड़ा देखकर वह सोचने लगी कि उसके स्वामी को क्या हुआ है। जब उसने उनकी जांच की तो उसने घाव से खून बहता देखा, और अपने प्रिय पति के लिए असहनीय पीड़ा सहन न कर पाने के कारण वह जोर से चिल्लाई। राजा ने सोचा, "परी मर गई होगी," और वह बाहर आकर प्रकट हुए। चंदा ने उन्हें देखकर सोचा, "यही तो वह डाकू होगा जिसने मेरे प्रिय पति को मार डाला है!" और कांपते हुए वह भाग गई। पहाड़ी की चोटी पर खड़े होकर उसने पाँच छंदों में राजा की निंदा की:

"दुष्ट राजकुमार—आह, मैं पीड़ा सह रही हूँ!—मेरे प्यारे पति ने मुझे चोट पहुँचाई।"
जो व्यक्ति जंगल के एक पेड़ के नीचे था, वह अब जमीन पर पड़ा है।
"हे राजकुमार! मेरे हृदय को जो पीड़ा हो रही है, उसका प्रायश्चित आपकी माता स्वयं करें।"
मेरी परी को आज मृत देखकर मेरा दिल कितना दुखी है!
"जी हां, राजकुमार! मेरे हृदय को जो पीड़ा हो रही है, उसका बदला आपकी पत्नी ही चुकाए।"
मेरी परी को आज मृत देखकर मेरा दिल कितना दुखी है!
और तुम्हारी माता अपने स्वामी के लिए शोक करे, और वह अपने पुत्र के लिए शोक करे।
हे मेरे प्रभु, जिसने वासना के कारण यह कृत्य किया है, वह अत्यंत निर्दोष है।
और आपकी पत्नी को अपने स्वामी और पुत्र के खोने का दुख सहना पड़े।
"मेरे निर्दोष स्वामी, तुमने वासना के कारण यह कृत्य किया है।"
जब उसने इस प्रकार इन पांच छंदों में अपना विलाप व्यक्त कर दिया, तो पर्वत की चोटी पर खड़े होकर राजा ने एक और छंद से उसे सांत्वना दी:

"रोओ मत, शोक मत करो: मुझे लगता है कि जंगल के अंधेरे ने तुम्हें अंधा कर दिया है।"
एक राजपरिवार आपका सम्मान करेगा, और आप मेरी रानी होंगी।"
"यह कौन सा शब्द है जो तुमने कहा?" चंदा ने यह सुनकर चीख मारी; और शेरनी की दहाड़ की तरह ऊँची आवाज में उसने अगला श्लोक सुनाया:

नहीं! मैं अवश्य ही आत्महत्या कर लूंगी! मैं तुम्हारी कभी नहीं बनूंगी।
मेरे निर्दोष पति की हत्या किसने की, वह भी सिर्फ मेरे प्रति हवस के कारण?
यह सुनकर उसका जोश ठंडा पड़ गया और उसने एक और श्लोक पढ़ा:

"हे डरपोक, अगर चाहो तो जियो! हिमालय जाओ:
झाड़ियों और पेड़ों पर भोजन करने वाले जीव (*10) जंगल को पसंद करते हैं, मुझे पता है।"
इन शब्दों के साथ वह उदासीन भाव से विदा हो गया। चंदा ने जैसे ही उसके जाने का पता लगाया, वह तुरंत ऊपर आई और उस महान पुरुष को गले लगाकर पहाड़ी की चोटी पर ले गई और वहाँ समतल भूमि पर लिटा दिया; उसका सिर अपनी गोद में रखकर उसने बारह छंदों में विलाप किया:

"यहाँ पहाड़ियों और पर्वतीय गुफाओं में, अनेक घाटियों और कंदराओं में,
हे मेरी परी! अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?

जंगली जानवर घूमते हैं, पत्ते कई खूबसूरत जगहों पर फैले हुए हैं:
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
जंगली जानवर घूमते हैं, कई सुंदर स्थानों पर मीठे फूल खिले हुए हैं:
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"पहाड़ियों से नीचे बहती नदियाँ निर्मल हैं, और चारों ओर फूल खिले हुए हैं:
हे मेरी परी, अब जब तुमने मुझे अकेला छोड़ दिया है, तो मैं क्या करूँ?
"हिमालय की पहाड़ियाँ नीली हैं, देखने में अत्यंत सुंदर हैं।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"हिमालय की चोटियाँ सोने से लथपथ हैं, वे देखने में बेहद खूबसूरत हैं।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
हिमालय की पहाड़ियाँ लाल रंग से जगमगा रही हैं, देखने में वे अत्यंत सुंदर हैं:
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"हिमालय की चोटियाँ नुकीली हैं, वे देखने में सबसे सुंदर हैं।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"हिमालय की चोटियाँ सफेद चमकती हैं, वे देखने में अत्यंत सुंदर हैं।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"हिमालय इंद्रधनुषी रंगों से भरा है, इसे देखना अत्यंत सुंदर है।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"पहाड़ी सुगंधित (*11) जिन्नों को प्रिय है; पौधे हर जगह को ढक लेते हैं
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
"परियों को सुगंधित पहाड़ी बहुत पसंद है, वहां हर जगह पेड़-पौधे उगे हुए हैं।"
हे मेरी परी, अब जब मैं तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ, तो मैं क्या करूँ?
उसने विलाप किया; और महापुरुष का हाथ अपने सीने पर रखकर उसने महसूस किया कि वह अभी भी गर्म है। "चंदा अभी जीवित है!" उसने सोचा: "मैं देवताओं (देवदूतों) (*12) को तब तक ताना मारूंगी जब तक मैं उसे फिर से जीवित न कर दूं!" फिर वह जोर से चिल्लाई, उन्हें ताना मारते हुए, "क्या संसार पर शासन करने वाला कोई नहीं है? क्या वे यात्रा पर हैं? या शायद वे मर चुके हैं, और इसलिए मेरे प्रिय पति को नहीं बचा सकते!" उसके दर्द की शक्ति से सक्का (इंद्र) का सिंहासन गर्म हो गया। कारण जानकर, वह एक ब्राह्मण के रूप में पास आया, और एक मटके से जल लेकर महापुरुष पर छिड़का। तुरंत ही विष का प्रभाव समाप्त हो गया, उसका रंग लौट आया, उसे घाव का स्थान तक नहीं पता चला: महापुरुष पूरी तरह से ठीक होकर खड़ा हो गया। चंदा ने अपने प्रिय पति को स्वस्थ देखकर, प्रसन्नता से सक्का (इंद्र) के चरणों में गिर पड़ी, और निम्नलिखित श्लोक में उनकी स्तुति की:

हे पवित्र ब्राह्मण, आपकी स्तुति हो! जिन्होंने एक असहाय पत्नी को अपना वरदान दिया।
अपने प्रिय पति पर जीवन का अमृत छिड़कते हुए!
तब सक्का (इंद्र) ने यह सलाह दी: "अब से चंद्र पर्वत से नीचे मनुष्यों के मार्ग पर मत उतरना, बल्कि यहीं रहना।" उन्होंने यह बात दो बार दोहराई और फिर अपने स्थान पर लौट गए। चंदा ने अपने पति से कहा, "हे स्वामी, यहाँ खतरे में क्यों रहना? आइए, चंद्र पर्वत पर चलें," और अंतिम श्लोक का पाठ किया।

"चलो पहाड़ की ओर चलते हैं।"
जहां सुंदर नदियां बहती हैं,
  नदियाँ फूलों से पूरी तरह ढकी हुई हैं:
वहाँ हमेशा के लिए, जब हवा चलती है
हजारों पेड़ों में फुसफुसाहट,
  खुशनुमा पलों में बातचीत से सबका दिल जीत लें।"

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "न केवल अभी, बल्कि बहुत पहले भी, वह मेरे प्रति समर्पित और निष्ठावान थीं।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय अनुराधा राजा थे, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) चंदा थीं, और मैं स्वयं परी था।"

फुटनोट:

(1) बुद्ध के अस्तित्व को तीन कालों में विभाजित किया गया है: सुदूर काल (दुरेनिदानम), मध्य काल (अविदुरे डिग्री) और निकट काल (सान्तिके डिग्री)। सुदूर काल "उस समय से शुरू होता है जब वे दीपांकर के चरणों में गिरे थे और तुषिता देवताओं (देवदूतों) के नगर में उनका जन्म हुआ था" (जाट. आईपी 47, पाली पाठ): मध्य काल उस समय से शुरू होता है जब तक उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त नहीं किया (जाट. आई. 76); निकट काल उनकी मृत्यु तक। --देखें राइस डेविड की बौद्ध जन्म कथाएँ, पृष्ठ 2, 58; वॉरेन, अनुवादों में बौद्ध धर्म, पृष्ठ 38, 82।

(2) उरुवेला में रहने वाले तीन ब्राह्मण भाइयों में से एक, बुद्ध द्वारा परिवर्तित।

(3) राजगृह नगर के निकट: जाट. 84

(4) निदान-कथा

(5) संख्या 547

(6)सं. 447

(7) किन्नरा.

(8)चांदो एम. का अर्थ है चंद्रमा। कहानी में प्रकृति से संबंधित मिथक प्रतीत होता है।

(9) तलवार, भाला, धनुष, युद्ध कुल्हाड़ी, ढाल।

(10)दो का नाम है, कोरीफा तालिएरा और टैबरनेमोंटाना कोरोनारिया।

(11)गंध-मदन.

(12)उज्जनकम्मम कट्वा, यानी सक्का (इंद्र) को मदद के लिए "उकसाना"।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-उक्कुसा-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-486-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 486
महा-उक्कुसा-जातक

“ग्रामीण लोग,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अपने एक शिष्य, मित्तगंधक के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि श्रावस्ती नगर के एक पतित परिवार में जन्मे इस शिष्य ने एक साथी को एक युवती से विवाह का प्रस्ताव देने भेजा। प्रश्न पूछा गया, “क्या उसका कोई मित्र या साथी है जो किसी भी आवश्यक कार्य को संभाल सके?” उत्तर मिला, “नहीं, ऐसा कोई नहीं था।” तब उन्होंने उससे कहा, “तो उसे पहले कुछ मित्र बनाने चाहिए।” उस व्यक्ति ने यह सलाह मानी और चारों द्वारपालों से मित्रता स्थापित की। इसके बाद उसने धीरे-धीरे नगर रक्षकों, ज्योतिषियों, दरबार के कुलीनों, यहाँ तक कि सेनापति और वायसराय से भी मित्रता कर ली; और उनके साथ संगति के कारण वह राजा का मित्र बन गया, और उसके बाद अस्सी प्रमुख भिक्षुओं का मित्र बन गया, और भिक्षु आनंद के माध्यम से स्वयं तथागत (बुद्ध) का मित्र बन गया। तब गुरु ने शरण और सद्गुणों में अपना परिवार स्थापित किया, राजा ने उन्हें उच्च पद दिया, और वे मित्त-गंधक, यानी "अनेक मित्रों के पुरुष" (*1) के नाम से जाने गए। राजा ने उन्हें एक भव्य घर दिया, उनका विवाह भोज आयोजित करवाया, और राजा से लेकर सभी लोगों ने उन्हें उपहार भेजे। फिर उनकी पत्नी को राजा द्वारा भेजा गया उपहार, वायसराय द्वारा भेजा गया उपहार, सेनापति का उपहार, और इसी प्रकार नगर के सभी लोग उनसे जुड़ गए। सातवें दिन, नवविवाहित जोड़े ने भव्य समारोह के साथ दशबल (बुद्ध) को आमंत्रित किया, बुद्ध और उनके साथियों को पाँच सौ की संख्या में बड़े-बड़े उपहार दिए गए; भोज के अंत में उन्होंने गुरु का धन्यवाद ग्रहण किया और दोनों प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए।

सत्य के हॉल में सभी इस विषय पर चर्चा कर रहे थे। “भाइयों (भिक्षुओं), गृहस्थ मित्त-गंधक ने अपनी पत्नी की सलाह मानी और उनकी कृपा से सभी के मित्र बन गए तथा राजा के हाथों उन्हें महान सम्मान प्राप्त हुआ; और गुरु के मित्र बनने पर पति-पत्नी दोनों प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए।” गुरु ने प्रवेश करते हुए पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, “भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि इस पुरुष को इस स्त्री के कारण महान सम्मान प्राप्त हुआ है। बहुत समय पहले, जब वह पशुवत थे, उनकी सलाह से उन्होंने अनेक मित्र बनाए और पुत्र की चिंता से मुक्त हुए।” ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब सीमावर्ती इलाकों के कुछ लोग जंगल में बस जाते थे, जहाँ उन्हें भोजन आसानी से मिल जाता था। वे जंगल में रहते थे और अपने और अपने परिवार के लिए शिकार करते थे। उनके गाँव से कुछ ही दूरी पर एक बड़ी प्राकृतिक झील थी। उसके दक्षिणी किनारे पर एक बाज़ रहता था, पश्चिम में एक मादा बाज़; उत्तर में जानवरों का राजा शेर; पूर्व में पक्षियों का राजा शंख; और बीच में एक छोटे से द्वीप पर एक कछुआ रहता था। बाज़ ने मादा बाज़ से विवाह का प्रस्ताव रखा। उसने उससे पूछा, "क्या तुम्हारा कोई मित्र है?" "नहीं, महोदया," उसने उत्तर दिया। "हमें किसी भी खतरे या मुसीबत से बचाने के लिए किसी की आवश्यकता है, और आपको कुछ मित्र बनाने होंगे।" "मैं किससे मित्र बनाऊँ?" "क्यों, पूर्वी किनारे पर रहने वाले शंख के राजा से, उत्तर में रहने वाले शेर से और इस झील के बीच में रहने वाले कछुए से।" उसने उसकी सलाह मानी और वैसा ही किया। फिर वे दोनों एक साथ रहने लगे (यह बताना जरूरी है कि उसी झील में एक छोटे से द्वीप पर एक कदंब का पेड़ उगा हुआ था, जो चारों ओर से पानी से घिरा हुआ था) एक घोंसले में जिसे उन्होंने बनाया था।

बाद में उन्हें दो पुत्र हुए। एक दिन, जब छोटे बच्चों के पंख अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुए थे, कुछ ग्रामीण दिनभर जंगल में भोजन की तलाश करते रहे, लेकिन उन्हें कुछ नहीं मिला। खाली हाथ घर न लौटना चाहते हुए, वे मछली या कछुआ पकड़ने के लिए झील पर गए। वे द्वीप पर पहुँचे और कदंब के पेड़ के नीचे लेट गए। वहाँ मच्छरों और मक्खियों के काटने से परेशान होकर, उन्हें भगाने के लिए उन्होंने लकड़ियों को आपस में रगड़कर आग जलाई और धुआँ किया। धुएँ से पक्षी परेशान हो गए और उनके बच्चे रोने लगे। ग्रामीण बोले, "यह पक्षियों की आवाज़ है! उठो, आग जलाओ: हम यहाँ भूखे नहीं लेट सकते, लेकिन लेटने से पहले हम पक्षियों का मांस खाएँगे।" उन्होंने आग जलाई और उसे तेज़ किया। लेकिन मादा पक्षी ने आवाज़ सुनकर सोचा, "ये लोग हमारे बच्चों को खाना चाहते हैं। हमने इस खतरे से बचाने के लिए दोस्त बनाए हैं। मैं अपने साथी को विशाल ओस्प्रे के पास भेज दूँगी।" फिर उसने कहा, "जाओ, मेरे पति, ओस्प्रे को उस खतरे के बारे में बताओ जो हमारे बच्चों को धमका रहा है," और इस पंक्ति को दोहराया:

"द्वीप पर देहाती लोग आग जलाते हैं,"
थोड़ी देर में अपने बच्चों को खाने के लिए:
हे बाज़! अपने मित्र और साथी को संदेश दे दो,
मेरे बच्चों के खतरे के बारे में हर पक्षी को बता दो!
नर पक्षी पूरी तेज़ी से उस स्थान पर पहुँचा और अपने आगमन की सूचना देते हुए एक आवाज़ निकाली। अनुमति मिलने पर, वह ओस्प्रे के पास आया और अभिवादन किया। ओस्प्रे ने पूछा, "तुम क्यों आए हो?" तब नर पक्षी ने दूसरी पंक्ति दोहराई:

हे पंख वाले पक्षी! तुम पक्षियों में श्रेष्ठ हो।
इसलिए, ओस्प्रे राजा, मैं अब आपकी शरण चाहता हूँ।
कुछ ग्रामीण लोग जो अब शिकार कर रहे हैं, खुश हैं
मेरे बच्चों को खाने के लिए: तुम फिर से मेरी खुशी बनो!
"डरो मत," ओस्प्रे ने बाज़ से कहा, और उसे दिलासा देते हुए उसने तीसरा छंद दोहराया:

"समय हो या न हो, बुद्धिमान लोग निर्णय लेते हैं।"
रक्षा के लिए मित्र और साथी दोनों:
हे बाज! मैं तुम्हारे लिए यह कार्य करूंगा;
अच्छे लोगों को जरूरत के समय एक दूसरे की मदद करनी चाहिए।
फिर उसने पूछा, "क्या देहाती लोग पेड़ पर चढ़ गए हैं, मेरे दोस्त?" "वे अभी नहीं चढ़ रहे हैं; वे बस आग में लकड़ियाँ डाल रहे हैं।" "तो बेहतर होगा कि तुम जल्दी जाओ और अपने साथी को दिलासा दो, और कहो कि मैं आ रहा हूँ।" उसने वैसा ही किया। ओस्प्रे भी गया, और कदंब के पेड़ के पास एक जगह से पेड़ की चोटी पर बैठकर आदमियों के चढ़ने का इंतज़ार करने लगा। जैसे ही पेड़ पर चढ़ रहे देहातियों में से एक घोंसले के पास पहुँचा, ओस्प्रे झील में कूद गया, और अपने पंखों और चोंच से जलती हुई लकड़ियों पर पानी छिड़का, जिससे वे बुझ गईं। आदमी नीचे उतरे, और पक्षी और उसके बच्चों को पकाने के लिए दूसरी आग जलाई; जब वे फिर से चढ़े, तो ओस्प्रे

ने एक बार फिर आग बुझा दी। इस तरह जब भी आग जलाई जाती, पक्षी उसे बुझा देता, और आधी रात हो गई। पक्षी बहुत परेशान था: उसके पेट के नीचे की त्वचा बिल्कुल पतली हो गई थी, उसकी आँखें लाल हो गई थीं। उसे देखकर मुर्गी ने अपने साथी से कहा, "मेरे स्वामी, ओस्प्रे थक गया है; जाओ और कछुए को बता दो कि वह आराम कर ले।" यह सुनकर, पक्षी ओस्प्रे के पास पहुँचकर उससे एक छंद में बोली:

"अच्छे लोग अच्छे की मदद करते हैं: यह एक आवश्यक कार्य है।"
आपने दया करके हमारी जरूरत के समय हमारी सहायता की है।
हमारे बच्चे सुरक्षित हैं, आप जीवित हैं: अपना ख्याल रखें।
न तो अपने आप पर और न ही अपनी सारी ताकत को बाहरी रूप से प्रकट करने पर।
ये शब्द सुनकर, शेर की दहाड़ की तरह जोर से उसने पाँचवाँ छंद दोहराया:

"जब मैं इस पेड़ की रखवाली कर रहा हूँ,
मुझे इस बात की परवाह नहीं कि मैं तुम्हारे लिए अपनी जान गंवा दूं।
इसलिए अच्छाई का उपयोग करें: इस प्रकार मित्र मित्र के लिए करेगा।
हां, भले ही अंत में उसकी मृत्यु हो जाए।"
लेकिन गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से पक्षी की अच्छाई की प्रशंसा करते हुए छठे श्लोक को दोहराया:

"अंडे से जन्म लेने वाला पक्षी जो हवा में उड़ता है, उसने एक अत्यंत कष्टदायक कार्य किया।"
आधी रात के अंधेरे से पहले, ओस्प्रे पक्षी चूजों की अच्छी तरह से रखवाली कर रहा है।
फिर बाज़ ने कहा, "कुछ देर आराम करो, मेरे दोस्त ओस्प्रे," और फिर कछुए के पास गया, जिसे उसने जगाया। कछुए ने पूछा, "तुम्हारा क्या काम है, दोस्त?" बाज़ ने जवाब दिया, "हम पर ऐसा-ऐसा खतरा मंडरा रहा है, और शाही ओस्प्रे सुबह से ही लगातार मेहनत कर रहा है, और बहुत थक गया है; इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ।" इन शब्दों के साथ उसने सातवाँ श्लोक दोहराया।

"यहां तक कि वे भी जो पाप या बुरे कर्म के कारण गिर जाते हैं
यदि उन्हें जरूरत पड़ने पर मदद मिले तो वे फिर से उठ खड़े हो सकते हैं।
मेरा बच्चा खतरे में है, मैं सीधे तुम्हारे पास आता हूँ:
हे झील में रहने वाले, आओ, मुझे सांत्वना दो!
यह सुनकर कछुए ने एक और छंद दोहराया:

"एक नेक इंसान अपने मित्र के प्रति कैसा व्यवहार करता है?"
भोजन और सामान, यहाँ तक कि स्वयं जीवन भी उधार देगा।
हे बाज़! मैं तेरे लिए यह कार्य करूंगा:
अच्छे लोगों को जरूरत के समय एक दूसरे की मदद करनी चाहिए।
पास ही लेटे उनके बेटे ने अपने पिता के शब्दों को सुनकर सोचा, "मैं अपने पिता को परेशान नहीं करना चाहता, लेकिन मैं अपने पिता का कर्तव्य निभाऊंगा," और इसलिए उसने नौवां छंद दोहराया:

"यहाँ आराम से रहो, हे मेरे पिता,"
और मैं, आपका पुत्र, आपका यह कार्य पूरा करूंगा।
पुत्र को पिता की सेवा करनी चाहिए, यही सर्वोत्तम है;
मैं बाज के बच्चों को घोंसले में ही बचा लूंगा।
पिता कछुए ने अपने बेटे को एक छंद में संबोधित किया:

"इसलिए, मेरे बेटे, अच्छा काम करो, और यही सच है।"
पिता की सेवा के लिए पुत्र को यही करना चाहिए।
फिर भी वे बाज के बच्चों को अकेला छोड़ सकते हैं।
शायद, अगर वे मुझे इतना परिपक्व देख लें।"
इन शब्दों के साथ कछुए ने बाज़ को विदा किया और कहा, "डरो मत, मेरे मित्र, तुम आगे जाओ, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।" वह पानी में कूदा, थोड़ी मिट्टी ली और द्वीप पर जाकर आग बुझाई और वहीं लेट गया। तब गाँव वालों ने कहा, "हम छोटे बाज़ों की चिंता क्यों करें? चलो इस शापित (*2) कछुए को पलटकर मार डालें! यह हम सबके लिए काफी होगा।" तो उन्होंने कुछ लताएँ और रस्सियाँ लीं, लेकिन जब उन्होंने उन्हें इधर-उधर बाँध दिया और इसके लिए अपने कपड़े फाड़ डाले, तब भी वे कछुए को पलट नहीं पाए। कछुआ उन्हें अपने

साथ घसीटता हुआ गहरे पानी में कूद गया। लोग उसे पाने के लिए इतने उत्सुक थे कि वे भी उसके पीछे पानी में गिर पड़े: पानी में छपछपाते हुए, और पानी से भरे पेट के साथ बाहर निकले। “देखो तो ज़रा,” उन्होंने कहा: “आधी रात तक एक ओस्प्रे हमारी आग बुझाता रहा, और अब इस कछुए ने हमें पानी में गिरा दिया और हमें पानी निगलने पर मजबूर कर दिया, जिससे हमें बहुत तकलीफ़ हुई। चलो, हम एक और आग जलाते हैं, और सूर्योदय के समय हम उन छोटे बाज़ों को खा जाएँगे।” फिर वे आग जलाने लगे। मुर्गी ने उनके शोर को सुना और कहा, “मेरे पति, देर-सवेर ये लोग हमारे बच्चों को खा जाएँगे और चले जाएँगे: तुम जाओ और हमारे दोस्त शेर को बताओ।” वह तुरंत शेर के पास गया, जिसने उससे पूछा कि वह इतने असमय क्यों आया है। चिड़िया ने उसे शुरू से सब कुछ बताया और ग्यारहवाँ श्लोक दोहराया:

सभी जानवरों में सबसे शक्तिशाली, चाहे वे जानवर हों या मनुष्य।
जब भय से परेशान हों तो सबसे शक्तिशाली की शरण में जाएं।
मेरे बच्चे खतरे में हैं; कृपया मेरी मदद करें।
आप हमारे राजा हैं, इसलिए मैं यहां हूं।"
यह कहकर शेर ने एक श्लोक दोहराया:

"हां, मैं यह सेवा आपके लिए करूंगा, हॉक।"
चलो, हम जाकर दुश्मनों के इस गिरोह का सफाया कर देते हैं!
निःसंदेह, समझदार व्यक्ति, वह जो ज्ञान को जानता है,
एक मित्र का रक्षक बनने का प्रयास करना चाहिए।
इतना कहकर उसने उसे विदा किया और कहा, "अब जाओ और अपने बच्चों को दिलासा दो।" फिर वह आगे बढ़ा और निर्मल जल को मथने लगा।

जब ग्रामीणों ने उसे आते देखा, तो वे बुरी तरह डर गए: “ओस्प्रे,” वे चिल्लाए, “उसने हमारी मशालें बुझा दीं; कछुए ने हमारे कपड़े उतार दिए: लेकिन अब तो हम गए काम से। यह शेर हमें पल भर में मार डालेगा।” वे इधर-उधर भागने लगे: जब शेर पेड़ के नीचे पहुँचा, तो उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। तभी ओस्प्रे, बाज़ और कछुआ आए और उसके पास पहुँचे। उसने उन्हें मित्रता का महत्व बताया और कहा, “अब से मित्रता के बंधन को कभी न तोड़ना।” यह सलाह देकर वह चला गया: और वे भी अपने-अपने स्थान पर चले गए। मादा बाज़ अपने बच्चों को देखकर सोचने लगी—“आह, दोस्तों की वजह से मेरे बच्चे मुझे वापस मिल गए!” और प्रसन्न होकर उसने अपने साथी से बात की और मित्रता के प्रभाव को बताते हुए छह छंद सुनाए:

"दोस्त बनाओ, घर भर के दोस्त बनाओ, बिना किसी असफलता के।"
एक अच्छा दोस्त पाओ: वह एक आशीर्वाद साबित होगा (*3):
व्यर्थ ही कवच पर तीर चलाना।
और हम खुश हैं कि हमारे बच्चे सुरक्षित और स्वस्थ हैं।
"अपने ही साथी की मदद से, उस मित्र की मदद से जो उनका साथ देने के लिए रुका रहा,"
एक चिड़िया चहचहाती है, तो नन्हे पक्षी भी चहचहाकर जवाब देते हैं, उनकी आवाज़ें मन को मोह लेती हैं।
बुद्धिमान व्यक्ति मित्र या साथी से सहायता मांगता है।
वह अपनी संपत्ति और संतान के साथ सुखी जीवन व्यतीत करता है:
इसलिए मैं, मेरा साथी और मैं, तीनों एक साथ खड़े हैं।
क्योंकि हमारा मित्र दया भाव से प्रेरित था।
"मनुष्य को सुरक्षा के लिए राजा और योद्धाओं की आवश्यकता होती है।"
और ये वे लोग हैं जिनकी मित्रता परिपूर्ण है:
तुम सुख की लालसा रखते हो: वह प्रसिद्ध और शक्तिशाली है;
जिसके मित्र होते हैं, वह निश्चय ही समृद्ध होता है।
"हे बाज़, गरीबों और कमजोरों में भी अच्छे मित्र अवश्य पाए जा सकते हैं।"
अब देखो, दयालुता के कारण हम और हमारे सभी लोग सुरक्षित और स्वस्थ हैं।
"वह पक्षी जो एक मजबूत नायक को जीतता है, वह मित्रतापूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार रहता है।"
जैसे आप और मैं खुश हैं, हॉक भी अपने दिल में खुश है।"
इस प्रकार उन्होंने छह छंदों में मित्रता के गुण का वर्णन किया। और मित्रों का यह सारा समूह जीवन भर मित्रता के बंधन को तोड़े बिना जिया, और फिर अपने कर्मों के अनुसार इस दुनिया से विदा हो गया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "यह पहली बार नहीं है, भिक्षुओं, कि उन्होंने अपनी पत्नी के माध्यम से आनंद प्राप्त किया; पहले भी ऐसा ही हुआ था।" इन शब्दों के साथ उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय विवाहित जोड़ा बाज़ का जोड़ा था, राहुल युवा कछुआ था, मोग्गल्याना बूढ़ा कछुआ था, सारिपुत्र शरमाया था, और मैं स्वयं सिंह था।"

फुटनोट:

(1) शाब्दिक रूप से "मित्रों का बंधन।"

(2)कला पढ़ना-.

(3)सुखगमया पढ़ना।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उद्दालक-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-487-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 487
उद्दलक-जातक। (*1)

"गंदे दाँतों वाला," इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक बेईमान व्यक्ति के बारे में सुनाई थी। यह व्यक्ति मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले धर्म के प्रति समर्पित होते हुए भी, जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तीन बार बेईमानी करता था। भिक्षुओं ने सत्य कक्ष में आपस में बातचीत करते हुए उस व्यक्ति के सभी दोषों को उजागर किया: "हे भिक्षुओं, ऐसा व्यक्ति, जिसने स्वयं को बुद्ध के इस महान धर्म के प्रति समर्पित कर दिया है जो मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाता है, फिर भी छल में जीवन व्यतीत करता है!" गुरु अंदर आए और यह जानने के लिए उत्सुक थे कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने गुरु को बताया। गुरु ने कहा, "यह पहली बार नहीं है; वह पहले भी छल करता रहा है," और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व एक पुरोहित थे और वे एक बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति थे। एक दिन वे अपने उद्यान में घूमने गए और वहाँ एक सुंदर कन्या को देखकर उन पर मोहित हो गए और उसके साथ रहने लगे। उन्होंने उसे गर्भवती कर दिया और जब उसे इस बात का एहसास हुआ तो उसने उनसे कहा, "हे प्रभु, मैं गर्भवती हूँ; जब बच्चा पैदा होगा और मैं उसका नाम रखूँगी, तो मैं उसे उसके दादा का नाम दूँगी।" लेकिन उन्होंने सोचा, "किसी दासी के नाजायज बच्चे को किसी कुलीन परिवार का नाम देना तो संभव ही नहीं है।" तब उन्होंने उससे कहा, "मेरी प्रिय, यहाँ इस वृक्ष का नाम उद्दला (*2) है, और तुम बच्चे का नाम उद्दलाका रख सकती हो क्योंकि उसका गर्भ यहीं पर धारण हुआ है।" फिर उन्होंने उसे एक मुहरबंद दी और कहा, "यदि पुत्री हो तो इसका उपयोग उसके पालन-पोषण में करना; परन्तु यदि पुत्र हो तो उसे बड़ा होकर मेरे पास ले आना।"

समय आने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम उद्दालक रखा। जब वह बड़ा हुआ, तो उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ, मेरे पिता कौन हैं?" - "पुजारी, मेरे बेटे।" - "अगर ऐसा है, तो मैं पवित्र ग्रंथों का अध्ययन करूँगा।" इसलिए अपनी माँ से अंगूठी और गुरु की फीस लेकर वह तक्षशिला गया और वहाँ एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की। अपनी पढ़ाई के दौरान उसने तपस्वियों का एक समूह देखा। उसने सोचा, "इन्हें अवश्य ही पूर्ण ज्ञान होगा, मैं इनसे सीखूँगा।" तदनुसार, ज्ञान की इतनी तीव्र इच्छा से उसने संसार त्याग दिया और उनकी सेवा में लगाम लगाई, बदले में उनसे अपना ज्ञान सिखाने की विनती की। तो उन्होंने उसे अपना सारा ज्ञान सिखाया; लेकिन उन पाँच सौ तपस्वियों में से कोई भी ज्ञान में उससे आगे नहीं था; वह उन सब में सबसे बुद्धिमान था। तब वे सब एकत्रित हुए और उसे अपना गुरु नियुक्त किया। उन्होंने उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, आप सदा वन में फल और कंद खाकर जीवन व्यतीत करते हैं; आप मनुष्यों के मार्ग पर क्यों नहीं चलते?” उन्होंने कहा, “महोदय, मनुष्य हमें दान देने को तो तत्पर रहते हैं, परन्तु वे हमें धर्म का उपदेश देकर कृतज्ञता प्रकट करने के लिए विवश करते हैं, वे हमसे प्रश्न पूछते हैं: इसी भय से हम उनके बीच नहीं जाते।” उन्होंने उत्तर दिया, “महोदय, यदि आप मुझे अपने साथ रखते हैं, तो चाहे कोई सर्वशक्तिमान राजा प्रश्न पूछे, उन्हें हल करने का कार्य मुझ पर छोड़ दीजिए,

और आप किसी बात से भयभीत न हों।” अतः वे उनके साथ तीर्थयात्रा पर निकल पड़े, भिक्षा माँगते हुए, और अंत में बनारस पहुँचे तथा राजा के उद्यान में ठहरे। अगले दिन, उन सभी के साथ, वे नगर द्वार के समक्ष एक गाँव में भिक्षा माँगने गए। लोगों ने उन्हें भरपूर भिक्षा दी। उसके अगले दिन तपस्वी नगर में घूमे, लोगों ने उन्हें भरपूर भिक्षा दी। तपस्वी उद्दालक ने धन्यवाद दिया, उन्हें आशीर्वाद दिया और उनके प्रश्नों के उत्तर दिए। लोगों को धर्म का उपदेश दिया गया और उन्होंने अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में दान कर दीं। पूरे शहर में यह खबर फैल गई, "एक ज्ञानी गुरु, एक पवित्र तपस्वी आए हैं," और राजा को भी इसकी सूचना मिल गई। राजा ने पूछा, "वे कहाँ रहते हैं?" उन्होंने बताया, "पार्क में।" राजा ने कहा, "अच्छा, आज मैं उनसे मिलने जाऊंगा।" एक व्यक्ति उद्दालक के पास गया और उसे बताया, "राजा आज आपसे मिलने आ रहे हैं।" उसने सभी को बुलाया और कहा, "महोदय, राजा आ रहे हैं: एक दिन के लिए महान व्यक्ति की कृपा प्राप्त कर लो, यह जीवन भर के लिए पर्याप्त है।" उन्होंने पूछा, "गुरुजी, हमें क्या करना चाहिए?" तब उन्होंने कहा, "तुममें से कुछ को झूलते हुए तपस्या करनी चाहिए (*3), कुछ को जमीन पर बैठना चाहिए (*4), कुछ को कीलों के बिस्तरों पर लेटना चाहिए, कुछ को पंच अग्नियों की तपस्या करनी चाहिए (*5), कुछ को जल में उतरना चाहिए, और कुछ को इस या उस स्थान पर पवित्र श्लोकों का पाठ करना चाहिए।" उन्होंने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा था। वह स्वयं आठ-दस बुद्धिमान पुरुषों के साथ एक तैयार आसन पर सिरहाने के साथ बैठकर वाद-विवाद कर रहे थे, उनके बगल में एक सुंदर मंच पर एक अच्छी किताब रखी थी, और चारों ओर श्रोता मौजूद थे। उसी क्षण राजा अपने पुजारी और एक विशाल दल के साथ पार्क में आए।और जब उसने उन सभी को उनकी दिखावटी तपस्या में डूबा हुआ देखा, तो वह प्रसन्न हुआ और सोचने लगा, "वे भविष्य में किसी भी बुरी स्थिति के भय से मुक्त हैं।" उद्दालक के पास पहुँचकर, उसने उनका विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया; फिर अपने हृदय की प्रसन्नता में पुजारी से बात करने लगा और पहला श्लोक (*6) सुनाने लगा:

"गंदे दांतों, बकरियों की खाल के वस्त्र और बालों के साथ"
सभी उलझे बालों वाले, शांति में पवित्र शब्दों का जाप करते हुए:
निश्चित रूप से वे भलाई के लिए किसी भी मानवीय साधन को नहीं छोड़ते।
निश्चित रूप से वे सत्य को जानते हैं, उन्हें मुक्ति मिल चुकी है।"
यह सुनकर पुजारी ने उत्तर दिया, "राजा वहाँ प्रसन्न है जहाँ उसे प्रसन्न नहीं होना चाहिए, और मुझे चुप नहीं रहना चाहिए।" फिर उसने दूसरा श्लोक दोहराया:

"हे राजा, एक विद्वान ऋषि भी बुरे कर्म कर सकता है।"
    एक विद्वान संत भी सही मार्ग का अनुसरण करने में विफल हो सकता है।
हजार वेद भी सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते।
    असफल होना ही काम करता है, या फिर बुरी स्थिति से बचाता है।"
उद्दालक ने ये शब्द सुनकर मन ही मन सोचा, “राजा तपस्वियों से प्रसन्न थे, चाहे वे जैसे भी हों; परन्तु यह व्यक्ति जब बैल बहुत तेज दौड़ता है तो उसकी थूथन पर थप्पड़ मारता है, तैयार भोजन में गंदगी गिरा देता है: मुझे इससे बात करनी ही होगी।” अतः उसने उसे तीसरा श्लोक सुनाया।

"हजारों वेद भी सुरक्षा नहीं ला सकते।"
    असफल होना ही काम करता है, या बुरी स्थिति से बचाता है:
तो फिर वेद तो निरर्थक ही होंगे:
    सच्ची शिक्षा यही है—स्वयं पर नियंत्रण रखो, सही काम करो।
इस पर पुजारी ने चौथा श्लोक पढ़ा:

ऐसा नहीं है: वेद कोई व्यर्थ वस्तु नहीं हैं।
    हालांकि आत्म-संयम के साथ काम करना ही सच्चा शिक्षण है।
वेदों का अच्छी तरह अध्ययन करने से प्रसिद्धि प्राप्त होती है।
    लेकिन उचित आचरण से ही हम आनंद प्राप्त करते हैं।"
अब उद्दालक ने सोचा, "इस आदमी से दुर्भावना रखना ठीक नहीं होगा। अगर मैं उसे बता दूं कि मैं उसका बेटा हूं, तो वह मुझे जरूर प्यार करेगा; मैं उसे बता दूंगा कि मैं उसका बेटा हूं।" फिर उसने पांचवां श्लोक पढ़ा:

माता-पिता और रिश्तेदार किसी की देखभाल का दावा करते हैं;
हमारे माता-पिता का एक दूसरा स्वरूप इस प्रकार है:
मैं उद्दालका हूँ, एक फोटोग्राफर।
हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, आप ही की जड़ से हैं।

“क्या आप सचमुच उद्दालक हैं?” उसने पूछा। “हाँ,” दूसरे ने कहा। फिर उसने कहा, “मैंने आपकी माता को एक चिन्ह दिया था, वह कहाँ है?” उसने कहा, “यह रहा, ब्राह्मण,” और उसे अंगूठी दे दी। ब्राह्मण ने अंगूठी को फिर से पहचान लिया और कहा, “निस्संदेह आप एक ब्राह्मण हैं; लेकिन क्या आप ब्राह्मण के कर्तव्यों को जानते हैं?” उसने छठे श्लोक के शब्दों में इन कर्तव्यों के बारे में पूछा:

"ब्राह्मण क्या होता है? वह परिपूर्ण कैसे हो सकता है? मुझे यह बताओ:
धर्मात्मा कौन होता है, और वह निर्वाण की प्राप्ति कैसे करता है?
उद्दालक ने सातवें श्लोक में इसकी व्याख्या की है:

संसार का त्याग करके, वह अग्नि से पूजा करके कीमत चुकाता है।
पानी डालता है, बलि का खंभा उठाता है:
जो व्यक्ति अपना कर्तव्य निभाता है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।
और ऐसा ब्राह्मण उसे मन की शांति दिलाता है।
पुजारी ने ब्राह्मण के कर्तव्यों के बारे में उसका विवरण सुना, लेकिन उसमें त्रुटि पाई और आठवें श्लोक का पाठ इस प्रकार किया:

"पवित्र जल का छिड़काव न करने से ब्राह्मण शुद्ध नहीं हो जाता, पूर्णता इससे नहीं मिलती।"
इस प्रकार न तो उसे शांति मिलती है, न दया, और न ही निर्वाण का आनंद प्राप्त होता है।
इस पर उद्दालक ने नौवें श्लोक का पाठ करते हुए पूछा, "यदि इससे ब्राह्मण नहीं बनता, तो फिर किससे बनता है?"

"ब्राह्मण क्या होता है? वह परिपूर्ण कैसे हो सकता है? मुझे यह बताओ:
धर्मात्मा कौन होता है? और वह निर्वाण की प्राप्ति कैसे करता है?
पुजारी ने एक और श्लोक सुनाकर उत्तर दिया:

उसके पास न खेत है, न संपत्ति है, न कोई इच्छा है, न परिवार है।
जीवन के प्रति लापरवाह, वासनाओं से रहित, बुरे मार्गों से दूर:
ऐसे ब्राह्मण को भी मन की शांति प्राप्त होगी।
इसलिए, अपने कर्तव्य के प्रति सच्चे व्यक्ति के रूप में, उसकी प्रशंसा करें।"
इसके बाद उद्दालक ने एक श्लोक का पाठ किया:

"क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चांडाल और पुक्कुसा (*7),
ये सभी करुणामय हो सकते हैं, निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं:
सभी संतों में से कौन ऐसा है जो बेहतर या बदतर है?
तब ब्राह्मण ने एक श्लोक का पाठ किया, यह दर्शाने के लिए कि संतत्व प्राप्त होने के क्षण से ही कोई ऊँच-नीच नहीं रह जाती:

"क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चांडाल और पुक्कुसा,
ये सभी करुणामय हो सकते हैं, निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं:
सभी संतों में से कोई भी ऐसा नहीं पाया जाता जो किसी से बुरा या बेहतर हो।
लेकिन उद्दालक ने इस पर आपत्ति जताते हुए कुछ श्लोक सुनाए:

"क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चांडाल और पुक्कुसा,
ये सभी गुणी हो सकते हैं और निर्वाण की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं।
सभी संतों में से कोई भी ऐसा नहीं पाया जाता जो किसी से बुरा या बेहतर हो।
तो फिर तुम्हारा ब्राह्मण होना व्यर्थ है: मुझे लगता है तुम्हारा पद व्यर्थ है।
यहां पुजारी ने एक उपमा के साथ दो और छंदों का पाठ किया:

"कई रंगों में रंगे कैनवास से मंडप बनाए जा सकते हैं:
छत, एक बहुरंगी गुंबद: एक रंग छाया का प्रतीक है।
"फिर भी, जब मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं, तो पृथ्वी पर भी ऐसा ही होता है।"
अच्छे लोग यह जानते हैं कि वे संत हैं, और वे कभी भी उनके जन्म के बारे में नहीं पूछते।
अब उद्दालक इस बात को मना नहीं कर सका, इसलिए वह चुपचाप बैठ गया। तब ब्राह्मण ने राजा से कहा, “हे महाराज, ये सब बेईमान हैं; बेईमानी से समस्त भारत का विनाश हो जाएगा। उद्दालक को समझाइए कि वह अपनी तपस्या त्याग दे और मेरे अधीन पुरोहित बन

जाए; बाकी सब भी अपनी तपस्या छोड़ दें, उन्हें ढाल और भाला दें और उन्हें अपना सेवक बना लें।" राजा मान गया और उसने ऐसा ही किया, और वे सब राजा की सेवा में लग गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि वह व्यक्ति बेईमान था।" फिर उन्होंने जन्म का विवरण देते हुए कहा, "उस समय बेईमान भिक्षु उद्दालक थे, आनंद राजा थे और मैं पुरोहित था।"

फुटनोट:

(1) इस अनुवाद का क्रमांक 153)।

(2) कैसिया फिस्टुला.

(3) "मुर्गी-संत" (एक पैर पर) और "गाय संत" (चार पैरों पर)

(4) मानो वे कुछ आधुनिक जालसाजों की तरह वर्षों तक ऐसे ही बने रहे हों।

(5) प्रत्येक दिशा के लिए एक, और ऊपर सूर्य।

(6) पहले चार छंदों को इस अनुवाद संख्या 155 में क्रमांक 236-7 से दोहराया गया है।

(7) पहले दो का क्रम नोट करें। सं. 194.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भिसा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-488-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 488
भीसा जातक

"घोड़े और गायों की जय हो," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। इसका वर्णन कुश जन्म (*1) के अंतर्गत मिलेगा। यहाँ गुरु ने फिर पूछा—"क्या सच है, भिक्षु, कि तुम पथभ्रष्ट हो गए हो?" "जी, श्रीमान, सच है।" "किस कारण?" "पाप के कारण।" "भिक्षु, मोक्ष (निर्वाण) की ओर ले जाने वाले इस धर्म को अपनाने के बाद तुम क्यों पथभ्रष्ट हो गए; और वह भी पाप के कारण? पुराने समय में, बुद्ध के उदय से पहले, जो ज्ञानी लोग धार्मिक (सन्यासी) जीवन व्यतीत करते थे, यहाँ तक कि जो साधु-संतों से परे थे, वे भी शपथ लेकर किसी भी प्रलोभन या इच्छा से जुड़े विचार का त्याग कर देते थे!" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब बोधिसत्व का जन्म एक महान ब्राह्मण के पुत्र के रूप में हुआ, जिनके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी। उनका नाम महा-कंचना रखा गया, जिसका अर्थ है स्वर्ण के स्वामी। जब वे अभी चलना ही सीखे थे, तभी उस ब्राह्मण के एक और पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम उप-कंचना रखा गया, जिसका अर्थ है स्वर्ण के छोटे स्वामी। इस प्रकार क्रमानुसार सात पुत्र हुए, और सबसे छोटी पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम कंचना-देवी रखा गया।

महा-कंचना जब बड़े हुए तो उन्होंने तक्षशिला में सभी कलाओं और विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त की और घर लौट आए। तब उनके माता-पिता ने उनका अपना गृहस्थी बसाने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने कहा, "हम तुम्हारे लिए एक परिवार से एक अच्छी कन्या लाएँगे, जो तुम्हारे लिए उपयुक्त होगी, और फिर तुम्हारा अपना गृहस्थी हो जाएगा।" लेकिन उन्होंने कहा, "माँ और पिताजी, मुझे गृहस्थी नहीं चाहिए। मेरे लिए तीनों प्रकार के जीवन (*2) आग के समान भयानक हैं, जेल की जंजीरों के समान जकड़े हुए हैं, कूड़े के ढेर के समान

घृणित हैं। मैंने कभी भी दयालुता का कार्य नहीं किया, सपने में भी नहीं। आपके अन्य पुत्र हैं, उन्हें गृहस्थी का मुखिया बनने के लिए कहें और मुझे अकेला छोड़ दें।" यद्यपि उन्होंने बार-बार उनसे विनती की, उनके मित्रों को उनके पास भेजा और उनसे अपने मुख से आग्रह किया, फिर भी उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। तब उनके मित्रों ने उनसे पूछा, "हे मेरे मित्र, तुम क्या चाहते हो कि तुम्हें प्रेम और इच्छा के भोग में कोई रुचि नहीं है?" उन्होंने उन्हें बताया कि कैसे उन्होंने समस्त संसार का त्याग कर दिया था। जब माता-पिता को यह बात समझ आई, तो उन्होंने यही प्रस्ताव अपने अन्य पुत्रों के सामने भी रखा, परन्तु किसी ने भी इसे नहीं माना; और न ही कन्या कंचना ने। कुछ समय बाद माता-पिता का देहांत हो गया। ज्ञानी महा-कंचना ने अपने माता-पिता का अंतिम संस्कार किया; अस्सी करोड़ (10 मिलियन) के खजाने से उन्होंने भिखारियों और यात्रियों को उदारतापूर्वक दान दिया; फिर अपने छह भाइयों, बहन, एक नौकर और एक दासी तथा एक साथी को साथ लेकर उन्होंने महान वैराग्य धारण किया और हिमालय क्षेत्र में शरण ली। वहाँ एक कमल-झील के पास एक रमणीय स्थान पर उन्होंने एक आश्रम बनाया और वन के फल और जड़ों का सेवन करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत किया। जब वे वन में जाते, तो एक-एक करके जाते, और यदि उनमें से किसी को कोई फल या पत्ता दिखाई देता, तो वह बाकी सबको बुला लेता: वहाँ वे जो कुछ देखते और सुनते, सब बताते और जो कुछ मिलता, उसे उठा लेते—वह किसी गाँव के बाज़ार जैसा लगता था। लेकिन गुरु, तपस्वी महा-कंचना ने मन ही मन सोचा, "हमने अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है, और अब लालच से जंगली फल लाना उचित नहीं है। अब से मैं स्वयं जंगली फल लाऊंगा।" शाम को आश्रम लौटकर उन्होंने सभी को एकत्रित किया और उन्हें अपना विचार बताया। उन्होंने कहा, "तुम यहीं रहो और संन्यासी जीवन व्यतीत करो, मैं तुम्हारे लिए फल लाऊंगा।" यह सुनकर उप-कंचना और बाकी सभी ने कहा, "हम आपके मार्गदर्शन में संन्यासी बन गए हैं, आपको यहीं रुककर संन्यासी जीवन व्यतीत करना चाहिए। हमारी बहन भी यहीं रहें और दासी भी उनके साथ रहें: हम आठों बारी-बारी से फल लाएंगे, लेकिन तुम तीनों को बारी-बारी से फल लाने की आवश्यकता नहीं है।" वे मान गए। तब से ये आठों बारी-बारी से फल लाने लगे; बाकी सभी को उनका हिस्सा मिल जाता था, और वे उसे अपने-अपने रहने की जगह पर ले जाकर अपनी-अपनी झोपड़ी में रहने लगते थे। इस प्रकार वे बिना किसी कारण या वजह के एक साथ नहीं रह सकते थे।जिसकी बारी होती, वह भोजन लाता (वहाँ एक ही बाड़ा था), और उसे एक समतल पत्थर पर रखकर उसके ग्यारह भाग बनाता; फिर घंटा बजाकर वह अपना भाग लेता और अपने निवास स्थान पर चला जाता; बाकी लोग घंटा बजते ही आते, बिना हड़बड़ी किए, लेकिन पूरी विधि-विधानी से, अपना-अपना भाग लेते, फिर अपने-अपने स्थान पर लौटकर उसे खाते और ध्यान व धार्मिक तपस्या में लग जाते। कुछ समय बाद वे कमल के रेशे इकट्ठा करके खाते और वहीं रहकर, झुलसा देने वाली गर्मी और अन्य प्रकार की यातनाओं से स्वयं को कष्ट देते, अपनी सभी इंद्रियों को निष्क्रिय करके, परमानंद की अवस्था प्राप्त करने का प्रयास करते।

उनके पुण्य की महिमा से इंद्र का सिंहासन कांप उठा। उन्होंने कहा, "क्या ये केवल कामवासना से मुक्त हैं, या ये ऋषि हैं? क्या ये ऋषि हैं? मैं अभी पता लगाऊंगा।" अतः उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से तीन दिनों तक उस महान प्राणी का हिस्सा गायब कर दिया। पहले दिन, अपना हिस्सा न देखकर उन्होंने सोचा, "मेरा हिस्सा अवश्य ही भुला दिया गया होगा।" दूसरे दिन, "मुझमें ही कोई दोष है: (*3) उन्होंने उचित सम्मान के साथ मेरा हिस्सा नहीं दिया।" तीसरे दिन, "ऐसा क्यों हो सकता है कि उन्होंने मुझे हिस्सा न दिया हो? यदि मुझमें कोई दोष है तो मैं क्षमा मांग लूंगा।" अतः शाम को उन्होंने घंटा बजाया। वे सब एकत्रित हुए और पूछा कि घंटा किसने बजाया था। "मैंने बजाया, मेरे भाइयों।" "हे स्वामी?" "मेरे भाइयों, तीन दिन पहले भोजन कौन लाया था?" एक भाई उठा और सम्मानपूर्वक खड़े होकर बोला, "मैं लाया था।" "जब आपने भोजन का बंटवारा किया था, तो क्या आपने मेरे लिए भी हिस्सा अलग रखा था?" "जी हां, मालिक, सबसे बड़े का हिस्सा।" "और कल खाना कौन लाया था?" एक और उठा और बोला, "मैं लाया था," फिर आदरपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। "क्या तुम्हें मेरी याद थी?" "मैंने तुम्हारे लिए सबसे बड़े का हिस्सा अलग रख दिया था।" "आज खाना कौन लाया था?" एक और उठा और आदरपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। "क्या तुमने बंटवारा करते समय मेरी याद रखी थी?" "मैंने तुम्हारे लिए सबसे बड़े का हिस्सा अलग रख दिया था।" फिर उसने कहा, "भाइयों, आज तीसरा दिन है जब मुझे हिस्सा नहीं मिला। पहले दिन जब मुझे कुछ नहीं मिला, तो मैंने सोचा, निःसंदेह जिसने बंटवारा किया है, वह मेरा हिस्सा भूल गया है। दूसरे दिन, मैंने सोचा कि मुझमें ही कोई गलती होगी। लेकिन आज मैंने ठान लिया है कि अगर गलती है भी, तो मैं उससे छुटकारा पा लूँगा, और इसीलिए मैंने इस घंटे की आवाज़ से तुम्हें बुलाया है। तुम बताओ कि तुमने मेरे लिए कमल के रेशों के ये हिस्से अलग रखे हैं: मुझे उनमें से एक भी नहीं मिला। मुझे पता लगाना होगा कि किसने इन्हें चुराया और खा लिया है। जब कोई संसार और उसकी सभी वासनाओं का त्याग कर देता है, तो चोरी करना अशोभनीय है, चाहे वह कमल की डंठल ही क्यों न हो।" ये शब्द सुनकर वे सब चिल्ला उठे, "अरे, यह कितना क्रूर काम है!" और वे सब बहुत विचलित हो गए।

अब उस आश्रम के पास स्थित जंगल के सबसे ऊंचे पेड़ पर रहने वाले देवता बाहर आए और उनके बीच बैठ गए। वहाँ एक हाथी भी था, जो अपने प्रशिक्षण के बावजूद अविचल नहीं रह सका था और जिस खूंटी से बंधा था उसे तोड़कर जंगल में भाग गया था। वह समय-समय पर आकर ऋषियों के समूह को प्रणाम करता था और आज भी आकर एक तरफ खड़ा हो गया। वहाँ एक बंदर भी था, जो नागों से खेलता था और सपेरे के हाथों से छूटकर जंगल में भाग गया था। वह उस आश्रम में रहता था और उस दिन उसने भी तपस्वियों के समूह को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। तपस्वियों की परीक्षा लेने के लिए सक्का (इंद्र) भी अदृश्य रूप में उनके बगल में

उपस्थित थे। उसी क्षण बोधिसत्व के छोटे भाई, तपस्वी उप-कंचना, अपने आसन से उठे और बुद्ध को प्रणाम करते हुए, अन्य सभी को प्रणाम करते हुए, इस प्रकार बोले: "गुरुजी, बाकी सभी को छोड़कर, क्या मैं इस आरोप से मुक्त हो सकता हूँ?" "हाँ, भाई।" वे ऋषियों के बीच खड़े होकर बोले, "यदि मैंने आपके वे रेशे खा लिए होते, तो मैं ऐसा होता," और प्रथम श्लोक के शब्दों में दृढ़ शपथ ली:

"उसके घोड़े और गाय हों, चांदी और सोना हो,"
एक प्रेममयी पत्नी, ये अनमोल चीजें उसके लिए अनमोल हों।
ईश्वर करे कि उन्हें अनेक पुत्र और पुत्रियाँ हों।
  ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*4)।"
इस पर तपस्वियों ने अपने कान ढक लिए और रोते हुए कहा, "नहीं, नहीं, महाराज, यह शपथ बहुत भारी है!" तब बोधिसत्व ने भी कहा, "भाई, तुम्हारी शपथ बहुत भारी है: तुमने भोजन नहीं किया, अपनी गद्दी पर बैठ जाओ।" इस प्रकार शपथ लेकर बैठ जाने पर दूसरा भाई उठा और उस महान सत्ता को प्रणाम करते हुए, अपने दोषमुक्ति के लिए दूसरा श्लोक पढ़ा।

"ईश्वर करे कि उसे अपनी इच्छा अनुसार पुत्र और वस्त्र प्राप्त हों।"
उसके हाथों में फूलों की मालाएँ और मधुर चंदन भर दें।
उसका हृदय अब भी वासना और लालसा से प्रज्वलित है।
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
जब वह बैठ गया, तो बाकी सभी ने बारी-बारी से अपनी-अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अपनी-अपनी कविताएँ सुनाईं:

"ईश्वर करे उसे भरपूर समृद्धि मिले, वह यश और भूमि दोनों प्राप्त करे।"
पुत्र, घर, खजाने, सब कुछ उसके अधीन था।
शायद वह बीतते वर्षों को समझ न पाए।
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
"उन्हें एक महान योद्धा प्रमुख के रूप में जाना जाए।"
राजाओं के राजा के रूप में, एक भव्य सिंहासन पर विराजमान,
धरती और उसके चारों कोने पूरी तरह से उसके स्वामित्व में थे।
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
चाहे वह ब्राह्मण हो, उसकी वासना अनियंत्रित हो,
सितारों में विश्वास और सौभाग्यशाली दिनों के अस्तित्व के साथ,
महान सम्राटों की कृतज्ञता से सम्मानित,
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
"वैदिक परंपरा का एक विद्यार्थी गहन अध्ययन करता है,
सभी मनुष्य उनकी पवित्रता का आदर करें।
और लोग उसकी पूजा करते हैं।
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
इंद्र (*5) के उपहार से वह एक गाँव धारण करे,
धनी, उत्तम, सभी वस्तुओं से चार गुना संपन्न (*6),
और ईश्वर करे कि उसकी मृत्यु अनियंत्रित भावनाओं के साथ हो।
  "ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
"एक ग्राम प्रधान, उसके चारों ओर उसके साथी,
नृत्य और मधुर संगीत की ध्वनि में उनका आनंद;
राजा की कृपा उस पर अत्यधिक बनी रहे।
  ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*7)।"
"वह समस्त स्त्री जाति में सबसे सुंदर हो।"
विश्व के सर्वोच्च सम्राट को यह प्राप्त हो
उसके मन में दस हजार लोगों में से वह सबसे श्रेष्ठ थी।
  ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*8)।"
जब सभी नौकरानियाँ मिलती हैं,
वह निडर होकर अपनी सीट पर बैठ जाए।
अपनी उपलब्धियों पर गर्व हो, और उसका भोजन स्वादिष्ट हो।

ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*9)।"
"काजंगल का विशाल परिसर उनकी देखरेख में हो।"
और ईश्वर खंडहरों की मरम्मत करे।
और हर दिन वहां एक नई खिड़की बनाएं,
ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*10)।"
उसे छह सौ बंधनों में जकड़कर पकड़ा जाए।
प्यारे जंगल से शहर में लाया गया,
कोड़ों और भाले से क्षत-विक्षत, घायल,
ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा भोजन का हिस्सा चुरा लिया (*11)।"
गले में माला, दोनों कानों में टिन की बाली।
उसे बांधकर, भय से भरकर राजमार्ग पर चलने दो।
और लाठियों से प्रशिक्षित होकर सर्प जाति (*12) पास आओ,
"ब्राह्मण, जिसने तुम्हारा हिस्सा चुरा लिया।"
जब इन तेरह श्लोकों में शपथ ली गई, तो महान सत्ता ने सोचा, "शायद वे सोचते हैं कि मैं स्वयं झूठ बोल रहा हूँ, और कह रहा हूँ कि भोजन वहाँ नहीं था जबकि वह था।" इसलिए उन्होंने चौदहवें श्लोक में अपनी ओर से शपथ ली:

"अगर खाना गायब नहीं हुआ था, तो कौन कसम खाकर कह सकता है कि खाना गायब हो गया था?"
उसे इच्छा और उसके प्रभाव का आनंद लेने दो।
अंत में उसका भाग्य सांसारिक मृत्यु ही हो।
यही बात आप पर भी लागू होती है, महोदय, यदि अब आपको संदेह है।
जब ऋषियों ने इस प्रकार शपथ ली, तो इंद्र ने मन ही मन सोचा, "डरने की कोई बात नहीं; मैंने इन कमल के रेशों को इन मनुष्यों की परीक्षा लेने के लिए गायब कर दिया था, और ये सब शपथ ले रहे हैं, मानो इस कर्म से घृणा कर रहे हों, मानो यह थूक का एक टुकड़ा हो। अब मैं उनसे पूछूंगा कि वे कामवासना और वासना से क्यों घृणा करते हैं।" यह प्रश्न उन्होंने अगले श्लोक में बोधिसत्व से पूछा, दृश्य रूप धारण करने के बाद।

"आखिर लोग यहाँ किस बात की तलाश में आते हैं?"
वह चीज कई लोगों को प्यारी और प्रिय लगती है।
इस जीवन में जिसकी प्रबल इच्छा थी, जो आनंददायक है: तो फिर क्यों?
क्या संत उन चीजों की प्रशंसा नहीं करते जो मनुष्य उनसे चाहते हैं?
इस प्रश्न के उत्तर में, उस महान सत्ता ने दो श्लोक पढ़े:

"इच्छाएं घातक प्रहार और बांधने वाली जंजीरें हैं।"
इन दोनों दुखों और भय में ही हमें ये चीजें मिलती हैं:
जब इच्छाओं से प्रेरित होकर शाही राजा (*13)
आसक्ति में आकर लोग घृणित और पापपूर्ण कार्य करते हैं।
ये पापी पाप को जन्म देते हैं, इसलिए नरक में ही जाएंगे।
इस नश्वर शरीर के अंत के समय।
क्योंकि वे कामवासना के दुख को जानते हैं (*14)
इसलिए संत वासना की प्रशंसा नहीं करते, बल्कि केवल निंदा करते हैं।
जब इंद्र ने महान प्राणी का स्पष्टीकरण सुना, तो वे अत्यंत द्रवित होकर निम्नलिखित श्लोक को दोहराया:

"मैंने इन ऋषियों की परीक्षा लेने के लिए चुपके से प्रस्थान किया।"
वह भोजन, जिसे मैंने झील के किनारे रखा था।
वे सचमुच ऋषि हैं, पवित्र और अच्छे हैं।
हे पवित्र जीवन के स्वामी, अपने भोजन पर ध्यान दो!
यह सुनकर बोधिसत्व ने एक श्लोक का पाठ किया:

"हम कोई कलाबाज नहीं हैं, जो आपके लिए मनोरंजन का साधन बन सकें।"
हम न तो आपके रिश्तेदार हैं और न ही आपके मित्र।

तो फिर, हे दिव्य राजा, हे हजार नेत्रों वाले,
आपको लगता है कि ऋषियों को आपके खेल के माध्यम से यह सुविधा प्रदान करनी चाहिए?
और सक्का (इंद्र) ने बीसवां श्लोक पढ़कर उससे सुलह कर ली:

आप मेरे गुरु हैं, और आप मेरे पिता हैं।
मेरे अपराध से अब यह मेरी रक्षा करे।
हे ज्ञानी ऋषि, मेरी एक गलती के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए!
जो बुद्धिमान होते हैं वे क्रोध में कभी उग्र नहीं होते।
तब उस महान सत्ता ने देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) को क्षमा कर दिया और ऋषियों के समूह से उनका मेल कराने के लिए स्वयं एक और श्लोक का पाठ किया:

"पवित्र पुरुषों के लिए एक रात खुशी भरी रही है,"
जब हमें भगवान वासव के दर्शन हुए।
और महोदय, यह देखकर मन ही मन प्रसन्न होइए।
जो खाना मुझसे चुराया गया था, वह अब मुझे वापस मिल गया है।"
सक्का (इंद्र) ने ऋषियों के समूह को प्रणाम किया और देवदूतों के लोक में लौट आए। वहाँ उन्होंने रहस्यमय समाधि और अलौकिक शक्तियों का संचार किया और ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों) के लिए नियत हो गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने पाप का त्याग करने की शपथ ली थी।" यह कहकर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की। सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गया। जन्म की पहचान करते हुए, उसने तीन श्लोक पढ़े:

"सारिपुत्र, मोग्गलायन, पुन्ना, कश्यप, और मैं,
अनुरुद्ध और आनंद, फिर सात भाई थे।
उप्पलावन्ना बहन थी और खुज्जुत्तारा दासी थी।
सतागिरा आत्मा थी, चित्त गृहस्थ दास था।
"हाथी परिलेय्या था, मधुवसेठ वानर था,
तब कलुदयी सक्का (इंद्र) थे। अब आपको जन्म की प्रक्रिया समझ आ गई होगी।
फुटनोट:

(1) संख्या 531

(2) इंद्रियों का, शरीर का, शरीर या रूप के बिना (काम-, रूप-, अरूप-लोक में)।

(3)या "यह मुझे सम्मानपूर्वक याद दिलाने के लिए है कि वह मेरे लिए कोई हिस्सा प्रदान नहीं करता है।"

(4) इसका अर्थ यह है कि जिस व्यक्ति का हृदय इन चीजों पर लगा होता है, उसे इनसे वियोग करने में पीड़ा होती है, और इसलिए बौद्ध दृष्टिकोण से वह मरने के योग्य नहीं है। अतः यह श्लोक अभिशाप है।

(5) वासावा.

(6) विद्वान इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं: घनी आबादी वाला, अनाज, लकड़ी और पानी से समृद्ध। यह श्लोक मित्रवत तपस्वी द्वारा कहा गया है।

(7) दास व्यक्ति द्वारा बोला गया।

(8) कंचना द्वारा बोला गया।

(9) दासी लड़की द्वारा बोला गया।

(10)वृक्ष-आत्मा द्वारा कहा गया। विद्वान हमें बताते हैं कि कजंगला एक ऐसा नगर था जहाँ सामग्री मिलना कठिन था। वहाँ बुद्ध कश्यप के समय में एक देवता (देवदूत) को एक पुराने मठ के खंडहरों की मरम्मत का कठिन कार्य करना पड़ा।

(11) हाथी द्वारा बोला गया.

(12)बंदर यह कहता है: उसका काम साँप के साथ खेलना था।

(13) प्राणियों के स्वामी, "सक्का (इंद्र) का संकेत" (विद्वत्ता)

(14)सुत्त निपाता, 50.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुरुचि-जातक**
__स्रोत__ : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-489-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 489
सुरुचि-जातक

“मैं हूँ,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने श्रावस्ती नगर के निकट मिगारा की माता (*1) के महल में रहते हुए सुनाई थी, कि कैसे महान संन्यासिनी विशाखा को आठ वरदान प्राप्त हुए। एक दिन उन्होंने जेतवन मठ में धर्म मार्ग का उपदेश सुना और बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन के लिए आमंत्रित करके घर लौट आईं। परन्तु उसी रात एक भयंकर तूफान ने विश्व के चारों महाद्वीपों को जलमग्न कर दिया। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया, “जैसे जेतवन मठ में वर्षा हो रही है, वैसे ही हे भिक्षुओं, विश्व के चारों महाद्वीपों में वर्षा हो रही है। अपने आप को पूरी तरह भीग जाने दो: यह मेरा अंतिम विश्व-तूफान है!” इस प्रकार, भिक्षुओं के शरीर पहले से ही भीग चुके थे, और अपनी अलौकिक शक्ति से वे जेतवन मठ से विमुख होकर विशाखा के महल के एक कमरे में प्रकट हुए। वह रोते हुए बोली, "सचमुच अद्‌भुत! एक रहस्यमयी बात! तथागत (बुद्ध) की शक्ति से हुआ चमत्कार! बाढ़ घुटनों तक, जी हाँ, कमर तक भरी हो, तब भी किसी भिक्षु का पैर या वस्त्र तक नहीं भीगा!" वह हर्ष और प्रसन्नता से बुद्ध और उनके सभी साथियों की सेवा करने लगी। भोजन समाप्त होने के बाद उसने बुद्ध से कहा, "मैं सचमुच भगवान बुद्ध से वरदान माँगना चाहती हूँ।" "विशाखा, तथागतों (बुद्धों) के वरदान असीम हैं (*2)।" "परन्तु वे वरदान जो जायज़ हों, जो निष्कलंक हों?" "बोलिए, विशाखा।" “मेरी यह तमन्ना है कि जीवन भर मुझे भिक्षुओं को बरसात के मौसम में वस्त्र, आने वाले सभी अतिथियों को भोजन, यात्रा करने वाले भिक्षुओं को भोजन, बीमारों को भोजन, बीमारों की सेवा करने वालों को भोजन, बीमारों को औषधि, चावल की दलिया का निरंतर वितरण और जीवन भर भिक्षुणियों को स्नान के लिए वस्त्र देने का अधिकार प्राप्त हो।” गुरु ने उत्तर दिया, “विशाखा, तथागत (बुद्ध) से ये आठ वरदान माँगकर तुम क्या वरदान चाहती हो?” उसने उन्हें अपनी इच्छा बताई और गुरु ने कहा, “यह अच्छा है, यह अच्छा है, विशाखा, यह सचमुच अच्छा है, विशाखा, कि तथागत (बुद्ध) से आठ वरदान माँगकर तुम यही वरदान चाहती हो।” फिर उन्होंने कहा, “मैं तुम्हें आठ वरदान प्रदान करता हूँ, विशाखा।” आठ वरदान प्रदान करके और धन्यवाद कहकर वे विदा हो गए।

एक दिन जब गुरुजी पूर्वी उद्यान में रह रहे थे, तब सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा शुरू हुई: “भाई (भिक्षु), महान गृहस्थ बहन विशाखा ने अपने स्त्रीत्व के बावजूद दशबल (बुद्ध) के हाथों से आठ वरदान प्राप्त किए। आह, उनके गुण कितने महान हैं!” गुरुजी अंदर आए और उन्होंने पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने बताया। गुरुजी ने कहा, “यह पहली बार नहीं है जब इस स्त्री ने मुझसे वरदान प्राप्त किए हैं, क्योंकि उन्होंने पहले भी ऐसे वरदान प्राप्त किए हैं”; और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, मिथिला में सुरुचि नाम का एक राजा राज करता था। उसके एक पुत्र का जन्म हुआ और उसने उसका नाम सुरुचि-कुमार रखा। जब वह बड़ा हुआ, तो उसने तक्षशिला में अध्ययन करने का निश्चय किया; इसलिए वह वहाँ गया और नगर द्वार पर एक हॉल में बैठ गया। बनारस के राजा का पुत्र, जिसका नाम राजकुमार ब्रह्मदत्त था, भी उसी स्थान पर गया और उसी आसन पर बैठ गया जहाँ राजकुमार सुरुचि बैठे थे। दोनों ने आपस में बातचीत की और मित्र बन गए, और दोनों एक साथ गुरु के पास गए। उन्होंने शुल्क अदा किया और अध्ययन किया, और कुछ ही समय में उनकी शिक्षा पूरी हो गई। फिर उन्होंने अपने गुरु से विदा ली और अपने-अपने रास्ते पर चल दिए। थोड़ी दूर चलने के बाद, वे एक ऐसे स्थान पर रुके जहाँ सड़क दो भागों में बँट जाती थी। तब उन्होंने गले

लगाया और अपनी मित्रता को कायम रखने के लिए एक प्रतिज्ञा की: "यदि मुझे पुत्र और तुम्हें पुत्री हो, या यदि तुम्हें पुत्र और मुझे पुत्री हो, तो हम उन दोनों का विवाह करा देंगे।"

जब वे सिंहासन पर आसीन हुए, तब राजा सुरुचि के पुत्र का जन्म हुआ और उनका नाम राजकुमार सुरुचि रखा गया। ब्रह्मदत्त की एक पुत्री थी, जिसका नाम सुमेधा (ज्ञानी देवी) था। राजकुमार सुरुचि समय के साथ बड़े हुए, शिक्षा के लिए तक्षशिला गए और शिक्षा पूरी करके लौट आए। तब उनके पिता ने अपने पुत्र को राजा बनाने की विधि के लिए जल छिड़काव करने की इच्छा से मन ही मन सोचा, "मेरे मित्र बनारस के राजा की एक पुत्री है, ऐसा कहा जाता है: मैं उसे अपने पुत्र की पत्नी बनाऊंगा।" इसके लिए उन्होंने एक व्यक्ति को बहुमूल्य उपहारों के साथ भेजा।

लेकिन उनके आने से पहले ही बनारस के राजा ने अपनी रानी से यह प्रश्न पूछा: "महारानी, एक स्त्री के लिए सबसे बड़ा दुख क्या है?" "अपनी सहेलियों से झगड़ा करना।" "तो, महाराज, हमारी इकलौती पुत्री राजकुमारी सुमेधा को इस दुख से बचाने के लिए, हम उसे केवल उसी को देंगे जो उससे विवाह करना चाहेगा, किसी और को नहीं।" इसलिए जब दूत आए और उन्होंने अपनी पुत्री का नाम बताया, तो राजा ने उनसे कहा, "प्रिय मित्रों, यह सच है कि मैंने बहुत पहले अपनी पुत्री का विवाह अपने पुराने मित्र से तय कर दिया था। लेकिन हम उसे स्त्रियों की भीड़ में नहीं डालना चाहते, और हम उसे केवल उसी को देंगे जो उससे विवाह करना चाहेगा, किसी और को नहीं।" यह संदेश वे राजा तक ले आए। लेकिन राजा अप्रसन्न थे। उन्होंने कहा, "हमारा राज्य विशाल है, मिथिला नगर सात कुंड (x 4.23 किमी) में फैला है, पूरे राज्य का क्षेत्रफल तीन सौ कुंड (x 4.23 किमी) है। ऐसे राजा के पास कम से कम सोलह हजार स्त्रियाँ होनी चाहिए।" लेकिन राजकुमार सुरुचि ने सुमेधा की अपार सुंदरता के बारे में सुनकर ही उस पर मोहित हो गए। उन्होंने अपने माता-पिता को संदेश भेजा, "मैं उसे ही लूंगा, किसी और को नहीं: मुझे बहुत सी स्त्रियों की क्या आवश्यकता है? उसे ही लाया जाए।" उनके माता-पिता ने उनकी इच्छा को नहीं रोका, बल्कि एक बहुमूल्य उपहार और एक भव्य सभा भेजकर उसे घर लाने का आह्वान किया। तब सुमेधा को उनकी रानी पत्नी बनाया गया और उन दोनों का राज्याभिषेक किया गया।

वह राजा सुरुचि बने और न्यायपूर्वक शासन करते हुए अपनी रानी के साथ सुखमय जीवन व्यतीत किया। यद्यपि उनकी रानी दस हजार वर्षों तक उनके महल में रहीं, फिर भी उन्हें न तो कोई पुत्र हुआ और न ही कोई पुत्री।

तब सभी नगरवासी सलाह लेने के लिए महल के प्रांगण में एकत्रित हुए। राजा ने पूछा, "क्या बात है?" उन्होंने कहा, "हमें इसके अलावा कोई और दोष नहीं दिखता, सिवाय इसके कि आपके वंश को आगे बढ़ाने के लिए आपका कोई पुत्र नहीं है।"

आपके पास तो केवल एक रानी है, जबकि एक राजकुमार के पास कम से कम सोलह हजार होनी चाहिए। हे महाराज, कुछ महिलाओं का समूह चुनिए: कोई योग्य पत्नी आपको पुत्र देगी। "प्रिय मित्रों, आप लोग क्या कह रहे हैं? मैंने वचन दिया था कि मैं एक के अलावा किसी और को नहीं लूंगा, और उसी शर्त पर मैंने उसे पा लिया।" मैं झूठ नहीं बोल सकता, मेरे लिए कोई स्त्री-समूह नहीं है।" इसलिए उन्होंने उनका अनुरोध ठुकरा दिया और वे चली गईं। लेकिन सुमेधा ने सब कुछ सुन लिया। उसने सोचा, "राजा अपनी सच्चाई के लिए रखैलें नहीं चुन रहे हैं; अच्छा, मैं उनके लिए कोई ढूंढ लूंगी।" राजा की माता और पत्नी की भूमिका निभाते हुए, उसने अपनी इच्छा से एक हजार योद्धा कन्याओं, एक हजार दरबारी कन्याओं, एक हजार गृहस्थ पुत्रियों, एक हजार हर तरह की नर्तकियों, कुल मिलाकर चार हजार कन्याओं को चुना और उन्हें राजा को सौंप दिया। और ये सभी दस हजार वर्षों तक महल में रहीं, और उनके बीच कभी कोई पुत्र या पुत्री नहीं हुई। इस तरह वह तीन बार चार हजार कन्याएं लाई, लेकिन उनके न तो कोई पुत्र हुआ और न ही कोई पुत्री। इस प्रकार वह कुल मिलाकर सोलह हजार पत्नियां लाई। चालीस हजार वर्ष बीत गए, यानी कुल मिलाकर पचास हजार वर्ष, जिसमें दस हजार वर्ष शामिल हैं जो राजा ने अकेले सुमेधा के साथ बिताए थे। तब नगरवासी फिर से इकट्ठा होकर निंदा करने लगे। राजा ने पूछा, "अब क्या हुआ?" "महाराज, अपनी स्त्रियों को पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का आदेश दीजिए।" राजा संतुष्ट नहीं थे। अनिच्छुक होने के कारण, उन्हें प्रार्थना करने का आदेश दिया गया। तब से पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हुए, उन्होंने सभी प्रकार के देवताओं की पूजा की और सभी प्रकार के व्रत रखे; फिर भी कोई पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। तब राजा ने सुमेधा को पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का आदेश दिया। वह मान गई। महीने के पंद्रहवें दिन के व्रत में, उसने आठों वक्त के व्रत (*3) धारण किए और एक भव्य कमरे में एक आरामदायक पलंग पर बैठकर सद्गुणों का ध्यान किया। अन्य लोग पार्क में बकरियों या गायों का यज्ञ करने का व्रत ले रहे थे। सुमेधा के सद्गुणों की महिमा से सक्का (इंद्र) का निवास स्थान कांपने लगा। सक्का (इंद्र) ने सोचा और समझा कि सुमेधा ने पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की है; ठीक है, उसे पुत्र प्राप्त होना चाहिए। "पर मैं उसे यह या वह पुत्र यूं ही नहीं दे सकता; मैं एक उपयुक्त व्यक्ति की खोज करूँगा। तभी उन्होंने नलकारा नामक एक युवा देवदूत को देखा, जो टोकरी बुनने वाला था। वह पुण्य से संपन्न प्राणी था, जो पिछले जन्म में बनारस में रहता था, जब उस पर यह विपत्ति आई। बुवाई के समय जब वह खेतों की ओर जा रहा था, तो उसने पच्चेक बुद्ध को देखा। उसने अपने हिरनों को बीज बोने के लिए भेजा, लेकिन स्वयं वापस लौट आया और पच्चेक बुद्ध को घर ले गया, उन्हें भोजन कराया और फिर उन्हें गंगा तट पर ले गया। उसने और उसके पुत्र ने मिलकर एक कुटिया बनाई, जिसकी नींव अंजीर के तनों से और दीवारें सरकंडों से बुनी हुई थीं; उसने उसमें एक दरवाजा लगाया और चलने के लिए एक रास्ता बनाया। वहाँ उन्होंने पच्चेक बुद्ध को तीन महीने तक ठहराया; और वर्षा

ऋतु समाप्त होने के बाद, पिता और पुत्र दोनों ने उन्हें तीन वस्त्र पहनाए और उन्हें विदा किया। इसी प्रकार उन्होंने उस कुटिया में सात पच्चेक बुद्धों का सत्कार किया ।और उन्हें तीन वस्त्र दिए और उन्हें अपने-अपने मार्ग पर जाने दिया। आज भी लोग बताते हैं कि कैसे ये दोनों, पिता और पुत्र, टोकरी बुनने लगे और गंगा के किनारे सरकंडे इकट्ठा करते थे, और जब भी वे किसी पच्चेक बुद्ध को देखते, तो वही करते थे जो हमने बताया है। जब उनकी मृत्यु हुई, तो उनका जन्म तैंतीस के स्वर्ग में हुआ और वे एक के बाद एक, प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में, इंद्रियों के छह स्वर्गों में रहे, और देवताओं (देवदूतों) के बीच महान महिमा का आनंद लिया। उस लोक में मरने के बाद, ये दोनों उच्च देवलोक में जाने की इच्छा रखते थे। सक्का (इंद्र) ने यह जानकर कि उनमें से एक तथागत (बुद्ध) होंगे, उनके महल के द्वार पर गए और जब वे उठे और उनसे मिलने आए तो उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "महोदय, आपको मनुष्यलोक में जाना होगा।" लेकिन उसने कहा, "हे राजा, मनुष्यों का संसार घृणित और नफरत से भरा है: वहाँ रहने वाले लोग देवताओं (देवदूतों) के लोक की लालसा में अच्छे काम करते हैं और दान देते हैं। वहाँ जाकर मैं क्या करूँ?" "हे महाराज, उस लोक में आपको जो कुछ भी आनंदित किया जा सकता है, वह सब आपको परिपूर्णता से प्राप्त होगा; आप बहुमूल्य पत्थरों से बने एक महल में निवास करेंगे, जो पच्चीस लीग (4.23 किमी) ऊँचा होगा। कृपया स्वीकार कीजिए।" उसने स्वीकार कर लिया। जब इंद्र को अपना वचन मिल गया, तो वे एक ऋषि के वेश में राजा के उद्यान में उतरे और उन स्त्रियों के ऊपर हवा में इधर-उधर उड़ते हुए यह मंत्रोच्चार किया, "पुत्र की कामना करने वाले को मैं पुत्र का आशीर्वाद दूँ?" "मुझे, महाराज, मुझे!" हजारों हाथ ऊपर उठे। फिर उन्होंने कहा, "मैं गुणी लोगों को पुत्र देता हूँ: तुम्हारा गुण क्या है, तुम्हारा जीवन और आचरण कैसा है?" उन्होंने अपने उठे हुए हाथ नीचे कर लिए और कहा, "यदि आप गुण का पुरस्कार चाहते हैं, तो सुमेध के पास जाइए।" वह वायु में उड़ते हुए आए और उनके शयनकक्ष की खिड़की पर ठहर गए। फिर वे उनके पास गए और उन्हें बताया, “देखिए, मेरी स्वामिनी, देवताओं का एक राजा (देवदूत) वायु में उतरकर आपके शयनकक्ष की खिड़की पर खड़ा है और आपको पुत्र का वरदान दे रहा है!” वह बड़े धूमधाम से वहाँ गईं और खिड़की खोलकर बोलीं, “क्या यह सच है, महाराज, जो मैं सुन रही हूँ, कि आप एक गुणी स्त्री को पुत्र का आशीर्वाद दे रहे हैं?” “हाँ, और मैं ऐसा ही कर रहा हूँ।” “तो मुझे यह वरदान दीजिए।” “आपका गुण क्या है, बताइए; और यदि आप मुझे प्रसन्न करें, तो मैं आपको वरदान दे दूँगा।” फिर उन्होंने अपने गुण बताते हुए ये पंद्रह श्लोक सुनाए ।जब इंद्र उठे और उनसे मिलने आए तो उन्होंने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "हे महाराज, आपको मनुष्यलोक में जाना होगा।" लेकिन उन्होंने कहा, "हे महाराज, मनुष्यलोक घृणित और अप्रिय है; वहाँ रहने वाले लोग देवताओं (देवदूतों) के लोक की लालसा में अच्छे काम करते हैं और दान देते हैं। वहाँ जाकर मैं क्या करूँ?" "हे महाराज, आपको उस लोक में जो कुछ भी भोगा जा सकता है, वह सब पूर्ण रूप से प्राप्त होगा; आप बहुमूल्य पत्थरों से बने एक महल में निवास करेंगे, जो पच्चीस मील (4.23 किमी) ऊँचा होगा। कृपया स्वीकार कीजिए।" उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब इंद्र को अपना वचन मिल गया, तो वे एक ऋषि के वेश में राजा के उद्यान में उतरे और उन स्त्रियों के ऊपर हवा में इधर-उधर उड़ते हुए यह मंत्रोच्चार किया, "पुत्र की कामना करने वाले को मैं पुत्र का आशीर्वाद दूँ?" "मुझे, हे महाराज, मुझे!" हजारों हाथ ऊपर उठ गए। तब उन्होंने कहा, "मैं गुणी महिलाओं को पुत्र प्रदान करता हूँ: तुम्हारा गुण क्या है, तुम्हारा जीवन और आचरण कैसा है?" उन्होंने अपने उठे हुए हाथ नीचे करते हुए कहा, "यदि आप गुण का पुरस्कार चाहते हैं, तो सुमेधा के पास जाएँ।" वह वायु में विचरण करते हुए उनके शयनकक्ष की खिड़की पर ठहर गए। तब वे उनके पास गए और उन्हें बताया, "देखिए, मेरी स्वामिनी, देवताओं का एक राजा (देवदूत) वायु में उतरकर आपके शयनकक्ष की खिड़की पर खड़ा है और आपको पुत्र का वरदान दे रहा है!" वह बड़े धूमधाम से वहाँ गईं और खिड़की खोलकर बोलीं, "क्या यह सच है, महाराज, कि आप एक गुणी स्त्री को पुत्र का आशीर्वाद दे रहे हैं?" "हाँ, और मैं ऐसा ही करता हूँ।" "तो मुझे यह वरदान दीजिए।" "तुम्हारा गुण क्या है, मुझे बताइए; और यदि आप मुझे प्रसन्न करें, तो मैं आपको वरदान प्रदान करता हूँ।" तब उन्होंने अपने गुण का वर्णन करते हुए ये पंद्रह श्लोक सुनाए ।जब इंद्र उठे और उनसे मिलने आए तो उन्होंने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "हे महाराज, आपको मनुष्यलोक में जाना होगा।" लेकिन उन्होंने कहा, "हे महाराज, मनुष्यलोक घृणित और अप्रिय है; वहाँ रहने वाले लोग देवताओं (देवदूतों) के लोक की लालसा में अच्छे काम करते हैं और दान देते हैं। वहाँ जाकर मैं क्या करूँ?" "हे महाराज, आपको उस लोक में जो कुछ भी भोगा जा सकता है, वह सब पूर्ण रूप से प्राप्त होगा; आप बहुमूल्य पत्थरों से बने एक महल में निवास करेंगे, जो पच्चीस मील (4.23 किमी) ऊँचा होगा। कृपया स्वीकार कीजिए।" उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब इंद्र को अपना वचन मिल गया, तो वे एक ऋषि के वेश में राजा के उद्यान में उतरे और उन स्त्रियों के ऊपर हवा में इधर-उधर उड़ते हुए यह मंत्रोच्चार किया, "पुत्र की कामना करने वाले को मैं पुत्र का आशीर्वाद दूँ?" "मुझे, हे महाराज, मुझे!" हजारों हाथ ऊपर उठ गए। तब उन्होंने कहा, "मैं गुणी महिलाओं को पुत्र प्रदान करता हूँ: तुम्हारा गुण क्या है, तुम्हारा जीवन और आचरण कैसा है?" उन्होंने अपने उठे हुए हाथ नीचे करते हुए कहा, "यदि आप गुण का पुरस्कार चाहते हैं, तो सुमेधा के पास जाएँ।" वह वायु में विचरण करते हुए उनके शयनकक्ष की खिड़की पर ठहर गए। तब वे उनके पास गए और उन्हें बताया, "देखिए, मेरी स्वामिनी, देवताओं का एक राजा (देवदूत) वायु में उतरकर आपके शयनकक्ष की खिड़की पर खड़ा है और आपको पुत्र का वरदान दे रहा है!" वह बड़े धूमधाम से वहाँ गईं और खिड़की खोलकर बोलीं, "क्या यह सच है, महाराज, कि आप एक गुणी स्त्री को पुत्र का आशीर्वाद दे रहे हैं?" "हाँ, और मैं ऐसा ही करता हूँ।" "तो मुझे यह वरदान दीजिए।" "तुम्हारा गुण क्या है, मुझे बताइए; और यदि आप मुझे प्रसन्न करें, तो मैं आपको वरदान प्रदान करता हूँ।" तब उन्होंने अपने गुण का वर्णन करते हुए ये पंद्रह श्लोक सुनाए ।और वह आपके शयनकक्ष की खिड़की पर खड़ी होकर आपको पुत्र का वरदान दे रही है!” वह बड़े धूमधाम से वहाँ पहुँची और खिड़की खोलकर बोली, “क्या यह सच है, महाराज, जो मैंने सुना है कि आप एक गुणी स्त्री को पुत्र का आशीर्वाद दे रहे हैं?” “हाँ, और मैं ऐसा ही कर रहा हूँ।” “तो मुझे यह वरदान दीजिए।” “आपका गुण क्या है, बताइए; और यदि आप मुझे प्रसन्न करें, तो मैं आपको यह वरदान दे दूँगी।” फिर अपने गुण का वर्णन करते हुए

उसने ये पंद्रह श्लोक सुनाए।और वह आपके शयनकक्ष की खिड़की पर खड़ी होकर आपको पुत्र का वरदान दे रही है!” वह बड़े धूमधाम से वहाँ पहुँची और खिड़की खोलकर बोली, “क्या यह सच है, महाराज, जो मैंने सुना है कि आप एक गुणी स्त्री को पुत्र का आशीर्वाद दे रहे हैं?” “हाँ, और मैं ऐसा ही कर रहा हूँ।” “तो मुझे यह वरदान दीजिए।” “आपका गुण क्या है, बताइए; और यदि आप मुझे प्रसन्न करें, तो मैं आपको यह वरदान दे दूँगी।” फिर अपने गुण का वर्णन करते हुए उसने ये पंद्रह श्लोक सुनाए।

"मैं राजा रुसी की पत्नी-रानी हूँ, जिनसे उन्होंने सबसे पहले विवाह किया था।"
मैंने सुरुचि के साथ दस हजार वर्षों तक वैवाहिक जीवन व्यतीत किया।
"मिथिला के राजा सुरुचि, विदेह का सर्वोच्च स्थान,
मैंने उसकी इच्छा को कभी हल्के में नहीं लिया, न ही उसे नीच या तुच्छ समझा।
कर्म से हो, विचार से हो या शब्दों से, न तो उसकी पीठ पीछे, न ही उसके सामने।
"यदि यह सच है, हे पवित्र आत्मा, तो ऐसा ही पुत्र दिया जाए; परन्तु यदि मेरे होंठ झूठ बोल रहे हैं, तो मेरा सिर सात टुकड़ों में तोड़ दो।"

"मेरे प्रिय पति के माता-पिता, जब तक उनका प्रभाव था,
और जब तक वे जीवित रहेंगे, वे मुझे सदा उस मार्ग का प्रशिक्षण देते रहेंगे।
"मेरा जुनून किसी भी जीव को नुकसान न पहुंचाना और स्वेच्छा से सही काम करना था।"
मैंने दिन-रात बिना थके अत्यंत सावधानी से उनकी सेवा की।
"यदि यह सच है, इत्यादि।"

"मेरी सहेलियों में सोलह हजार से कम महिलाएं नहीं रही हैं:
फिर भी, हे ब्राह्मण, ईर्ष्या या क्रोध कभी भी बीच में नहीं आए।
"उनकी खुशकिस्मती पर मुझे आनंद आता है; उनमें से हर एक मुझे प्रिय है।"
इन सभी पत्नियों के प्रति मेरा हृदय इतना कोमल है मानो वह स्वयं मैं ही हूँ।
"यदि यह सच है, इत्यादि।"

"सभी दास, संदेशवाहक और नौकर, और चारों ओर यही हाल था।"
मैं उन्हें खाना देता हूँ, मैं उनके साथ अच्छा व्यवहार करता हूँ, और मेरा चेहरा हंसमुख और प्रसन्न रहता है।
"यदि यह सच है, इत्यादि।"

"तपस्वी, ब्राह्मण, यहाँ भीख माँगने वाला कोई भी व्यक्ति दिखाई देता है,"
मैं सभी को भोजन और पेय से दिलासा देता हूँ, मेरे हाथ पूरी तरह से साफ धुले हुए हैं।
"यदि यह सच है, इत्यादि।"

"किसी भी पखवाड़े का आठवां दिन, चौदहवां, पंद्रहवां दिन,"
और मैं जो विशेष उपवास रखता हूँ, मैं पवित्र मार्गों पर चलता हूँ (*4)।
"यदि यह सच है, हे पवित्र आत्मा, तो ऐसा ही पुत्र दिया जाए; परन्तु यदि मेरे होंठ झूठ बोल रहे हैं, तो मेरा सिर सात टुकड़ों में तोड़ दो।"

वास्तव में, सौ या हज़ार श्लोक भी उनके गुणों की प्रशंसा करने के लिए पर्याप्त नहीं होते: फिर भी इंद्र ने उन्हें इन पंद्रह श्लोकों में अपनी ही प्रशंसा करने की अनुमति दी, और उन्होंने वृत्तांत को संक्षिप्त नहीं किया, यद्यपि उन्हें अन्यत्र बहुत कुछ करना था; फिर उन्होंने कहा, "आपके गुण प्रचुर और अद्भुत हैं"; फिर उनकी प्रशंसा में उन्होंने दो श्लोक पढ़े:

"हे गौरवशाली देवी, हे राजा की पुत्री, ये सभी महान गुण..."
हे देवी, आप स्वयं के बारे में जो गाती हैं, वे आप में ही पाई जाती हैं।
"कुलीन वंश में जन्मा एक योद्धा, सर्वोपरि, बुद्धिमान और गौरवशाली।"
विदेह के धर्मी सम्राट, आपके पुत्र, शीघ्र ही उदय होंगे।"
ये शब्द सुनकर उसने अत्यंत प्रसन्नता से दो छंद सुनाए और उससे एक प्रश्न पूछा:

"अव्यवस्थित, धूल और गंदगी से सना हुआ, आकाश में ऊँचाई पर स्थित,"
आपकी आवाज़ इतनी मधुर है कि मेरा दिल छू जाती है।
"हे ऋषि, क्या आप एक शक्तिशाली देवता (देवदूत) हैं और स्वर्ग में निवास करते हैं?"
मुझे बताओ तुम यहाँ कहाँ से आ रहे हो, मुझे बताओ तुम कौन हो!

उसने उसे छह छंदों में बताया:

"सौ नेत्रों वाले इंद्र (सक्का) को आप देख सकते हैं, क्योंकि देवता (देवदूत) मुझे इसी नाम से पुकारते हैं।"
जब वे स्वर्गिक न्याय कक्ष में एकत्रित होने के आदी हो जाते हैं।
"जब संसार में गुणी, बुद्धिमान और नेक स्त्रियाँ पाई जाती हैं,
सच्ची पत्नियाँ, पति की माँ के प्रति कर्तव्यबद्ध होने के समान दयालु होती हैं (*5)
"जब उन्हें ऐसी बुद्धिमान और नेक स्वभाव वाली स्त्री का ज्ञान हो,
हालांकि वह स्त्री है, फिर भी वे मानते हैं कि स्वयं देवता (देवदूत) उसके पास जाएंगे।
"तो हे महिला, आप एक नेक जीवन जीकर, अच्छे कर्मों का भंडार करके,
एक राजकुमारी का जन्म हुआ है, दिल की सारी खुशियाँ उसने पा ली हैं।
"इसलिए, हे राजकुमारी, तुम पृथ्वी पर यश प्राप्त करके अपने कर्मों का फल भोगोगी।"
और उसके बाद देवताओं (देवदूतों) के लोक में एक नया और दिव्य जन्म।
हे बुद्धिमान, हे धन्य! इसी प्रकार जीवन व्यतीत करो, अपने आचरण को सही बनाए रखो।
अब मुझे स्वर्ग लौटना होगा, आपके दर्शन से प्रसन्न होकर।
उन्होंने कहा, "मुझे देवदूतों के लोक में कुछ काम है, इसलिए मैं जा रहा हूँ; लेकिन तुम सावधान रहना।" यह सलाह देकर वे चले गए।

सुबह के समय, नालकारा देवता का गर्भ उनके गर्भ में आया। जब उन्हें इसका पता चला, तो उन्होंने राजा को बताया, और राजा ने गर्भवती स्त्री के लिए जो आवश्यक था वह किया (*6)। दस महीने बाद उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया, और उन्होंने उसका नाम महा-पानादा रखा। दोनों देशों के सभी लोग यह कहते हुए आए, "हे स्वामी, हम यह पुत्र के दूध के लिए लाए हैं," और प्रत्येक ने राजा के प्रांगण में एक सिक्का डाल दिया; सिक्कों का एक बड़ा ढेर लग गया। राजा इसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे, लेकिन उन्होंने पैसा वापस नहीं लिया, बल्कि जाते समय कहा, "हे स्वामी, जब पुत्र बड़ा हो जाएगा, तो इससे उसका भरण-पोषण हो जाएगा।"

बालक का पालन-पोषण अत्यंत वैभवपूर्ण वातावरण में हुआ; और जब वह सोलह वर्ष की आयु तक पहुंचा, तो वह सभी गुणों में निपुण हो चुका था। राजा ने अपने पुत्र की आयु देखकर रानी से कहा, "महारानी, जब हमारे पुत्र के अभिषेक का समय आएगा, तो हम उसके लिए एक सुंदर महल बनवाएंगे।" रानी सहर्ष सहमत हो गईं। राजा ने भवन निर्माण के लिए शुभ स्थान का पता लगाने में कुशल लोगों को बुलवाया (*7), और उनसे कहा, "मेरे मित्रों, एक कुशल राजमिस्त्री (*8) को बुलाओ और मेरे महल से कुछ ही दूरी पर मेरे लिए एक महल बनवाओ। यह मेरे पुत्र के लिए है, जिसे हम अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने वाले हैं।" उन्होंने कहा कि यह ठीक है, और वे जमीन की सतह की जांच करने लगे। उसी क्षण इंद्र का सिंहासन गर्म हो गया। यह देखकर उसने तुरंत विश्वकर्मा (*9) को बुलाया और कहा, "हे मेरे भले विश्वकर्मा, जाइए और राजकुमार महापानाद के लिए आधा लीग (4.23 किमी) लंबाई और चौड़ाई तथा पच्चीस लीग (4.23 किमी) ऊँचाई का एक महल बनाइए, जो सभी कीमती पत्थरों से बना हो।" विश्वकर्मा ने राजमिस्त्री का रूप धारण किया और कामगारों के पास जाकर कहा, "जाइए, नाश्ता कीजिए, फिर लौट आइए।" इस प्रकार कामगारों को विदा करके उसने अपनी लाठी से धरती पर प्रहार किया; उसी क्षण उपर्युक्त आकार का सात मंजिला महल खड़ा हो गया। अब महापानाद के लिए ये तीन समारोह एक साथ संपन्न हुए: महल का समारोह, उनके ऊपर राजसी छत्र फैलाने का समारोह और उनका विवाह समारोह। समारोह के समय दोनों देशों के सभी लोग एकत्रित हुए और सात वर्षों तक दावत में शामिल रहे, और राजा ने उन्हें विदा नहीं किया: उनके वस्त्र, उनके आभूषण, उनका भोजन और उनका पेय और बाकी सभी चीजें राजपरिवार द्वारा प्रदान की गईं। सात वर्ष बीतने पर वे बड़बड़ाने लगे, और राजा सुरुचि ने पूछा, क्यों? उन्होंने कहा, "हे राजा, इस उत्सव में मौज-मस्ती करते-करते सात वर्ष बीत गए। यह उत्सव कब समाप्त होगा?" राजा ने उत्तर दिया, "मेरे मित्रों, इतने समय में मेरे पुत्र ने एक बार भी नहीं हँसा। जैसे ही वह हँसेगा, हम फिर से तितर-बितर हो जाएँगे।" तब भीड़ ढोल बजाते हुए गई और कलाबाजों और बाज़ीगरों को इकट्ठा किया। हजारों कलाबाज इकट्ठा हुए, और उन्होंने खुद को सात समूहों में बाँट लिया और नृत्य किया; लेकिन वे राजकुमार को हँसा नहीं सके। ज़ाहिर है, जिसने दिव्य नर्तकों का नृत्य देखा था, वह ऐसे नर्तकों की परवाह नहीं कर सकता था। तब दो चतुर बाज़ीगर, भांडू-कन्ना और पांडू-कन्ना, यानी क्रॉप-ईयर और येलो-ईयर आए और उन्होंने कहा, "हम राजकुमार को हँसा देंगे।" भंडु-कन्ना ने महल के द्वार के सामने एक विशाल आम का पेड़ उगाया, जिसका नाम उन्होंने संस्पेरिल रखा। फिर उन्होंने एक डोरी उछाली और उसे पेड़ की एक शाखा में फंसा दिया, और फिर वे आम संस्पेरिल पर चढ़ गए। अब लोग कहते हैं कि आम संस्पेरिल वेसवना का आम है (*10)। और वेसवना के दासों ने हमेशा की तरह उन्हें पकड़ा, उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उन टुकड़ों को नीचे फेंक दिया।अन्य बाज़ीगरों ने टुकड़ों को जोड़ा और उन पर पानी डाला। उस व्यक्ति ने फूलों के वस्त्र पहने और उठकर फिर से नाचने लगा। यह देखकर भी राजकुमार नहीं हँसा। तब पांडु-कन्ना ने प्रांगण में कुछ लकड़ियाँ जमा करवाईं और अपने दल के साथ आग में उतर गया। जब आग बुझ गई, तो लोगों ने लकड़ियों के ढेर पर पानी छिड़का। पांडु-कन्ना अपने दल के साथ फूलों के वस्त्र पहने नाचते हुए उठ खड़ा हुआ। जब लोगों ने देखा कि वे उसे हँसा नहीं पा रहे हैं, तो वे क्रोधित हो गए। यह देखकर इंद्र ने एक दिव्य नर्तक को भेजा और उससे राजकुमार महा-पानाद को हँसाने का अनुरोध किया। तब वह आया और राजमहल के ऊपर हवा में स्थिर हो गया और उसने अर्ध-शरीर नृत्य किया: एक हाथ, एक पैर, एक आँख, एक दाँत नाचते हुए, फड़फड़ाते हुए, इधर-उधर

झिलमिलाते हुए, बाकी सब पत्थर की तरह स्थिर। महा-पानाद ने यह देखकर हल्की सी मुस्कान दी। लेकिन भीड़ ठहाकों से लोटपोट हो गई, हँसी रुक ही नहीं रही थी, हँसते-हँसते उनका दिमाग खराब हो गया, वे अपने अंगों पर नियंत्रण खो बैठे, शाही प्रांगण में लोटपोट होते रहे। उत्सव यहीं समाप्त हुआ। बाकी का...

महान पनादा, पराक्रमी राजा,
उसका महल पूरी तरह सोने का था, (*12)
महा-पानादा जन्म (*13) में इसकी व्याख्या की जानी चाहिए।

राजा महापाणद ने अच्छे कर्म किए और दान दिया, और अपने जीवन के अंत में देवताओं (देवदूतों) के लोक में चले गए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, विशाखा को मुझसे पहले ही वरदान प्राप्त हो चुका है," और फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय, भद्दाजी महापाणद थे, विशाखा सुमेधा देवी थीं, आनंद विश्वकर्मा थे, और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) उनका असली नाम विशाखा था; वे बुद्ध की महिला शिष्यों में सबसे विशिष्ट थीं। महावग्ग, 8:15 में कहानी देखें।

(2)या "वरदान देने से ऊपर हैं (जब तक वे यह नहीं जान लेते कि वे क्या हैं)": महावग्ग, i. 54. 4, viii. 15. 6.

(3) आठ सिलानी: जीवन लेना, चोरी, अशुद्धता, झूठ बोलना, मादक पेय, निषिद्ध समय पर भोजन करना, सांसारिक मनोरंजन, मलहम और आभूषण।

(4)पतिहरियापक्खो

(5)ससुदेव-पतिबत्ता। ससुदेव एक अलग शब्द होना चाहिए।

(6) गर्भरक्षण नामक एक समारोह था जो गर्भपात से बचाता था।

(7)संख्या 297 की तुलना करें

(8) बढ़ई या राजमिस्त्री।

(9)देवताओं (देवदूतों) का वास्तुकार।

(10)संख्या 281 देखें। यहाँ वर्णित करतबों के बारे में मध्ययुगीन यात्रियों ने बात की है।

(11)na ca के लिए एक गलत मुद्रण है।

(12)ये शब्द क्रमांक 264 में छंदों की शुरुआत हैं।

(13)सं. 264

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पञ्च-स्पोसथ-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-490-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 490
पंच-उपोस्थ-जातक

“आप संतुष्ट हैं,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें लगभग पाँच सौ गृहस्थ भिक्षु (भिक्षु) उपवास व्रत धारण किए हुए थे। उस समय, कहते हैं कि गुरु बुद्ध के तेजस्वी आसन पर, सत्य के हॉल में, चारों प्रकार के लोगों के बीच (*1), उपस्थित लोगों को सौम्य हृदय से देखते हुए, यह समझ गए कि आज का प्रवचन गृहस्थ भिक्षुओं की कथा पर आधारित होगा (*2)। तब उन्होंने इन भिक्षुओं से पूछा, “क्या गृहस्थ भिक्षुओं ने उपवास व्रत धारण किया है?” उत्तर मिला, “जी हाँ, उन्होंने किया है।” “यह उचित था, यह उपवास प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों की प्रथा थी: प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष, कामवासना और वासना के पापों को वश में करने के लिए उपवास करते थे।” तब उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, मगध राज्य को उससे सटे दो राज्यों से अलग करने वाला एक विशाल वन था। बोधिसत्व का जन्म मगध में एक महान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने अपनी इच्छाओं का त्याग कर उस वन में शरण ली और वहीं रहने लगे। उस शरण से कुछ ही दूरी पर, बांस के एक झुरमुट में एक जंगली कबूतर अपनी मादा साथी के साथ रहता था; एक चींटी के टीले में एक साँप रहता था; एक झाड़ी में सियार का मांद था और दूसरी में भालू का। ये चारों जीव समय-समय पर ऋषि के पास आते और उनके प्रवचन सुनते थे।

एक दिन कबूतर और उसकी मादा भोजन की तलाश में अपने घोंसले से निकले। मादा कबूतर पीछे-पीछे गई, और जैसे ही वह गई, एक बाज़ ने उस पर झपट्टा मारा और उसे उठा ले गया। उसकी चीख सुनकर नर कबूतर मुड़ा और देखा कि बाज़ उसे ले जा रहा है! बाज़ ने चीखते-चिल्लाते ही उसे मार डाला और खा गया। अब नर कबूतर अपनी मादा कबूतर के बिछड़ने से प्रेम की आग में जल रहा था। तब उसने सोचा, "यह वासना मुझे बहुत सता रही है; मैं तब तक भोजन की तलाश में नहीं जाऊँगा जब तक मुझे इसे वश में करने का उपाय न मिल जाए।" इसलिए अपनी खोज को बीच में ही रोककर वह एक तपस्वी के पास गया और वासना को वश में करने का व्रत लेकर एक करवट लेट गया।

साँप ने भी भोजन की तलाश करने का सोचा; इसलिए वह अपने बिल से बाहर निकला और सीमावर्ती गाँवों में से एक के पास एक गायों के रास्ते पर खाने की खोज करने लगा। तभी वहाँ गाँव के मुखिया का एक बैल था, जो पूरी तरह से सफेद और शानदार था। भोजन करने के बाद वह एक चींटी के टीले के नीचे घुटनों के बल बैठ गया और खेल-खेल में अपने सींगों से मिट्टी उछालने लगा। साँप बैल के खुरों की आवाज़ से भयभीत हो गया और चींटी के टीले में छिपने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ा। साँप गलती से उस पर चल पड़ा, जिससे साँप क्रोधित हो गया और उसने बैल को काट लिया; और बैल वहीं मर गया। जब ग्रामीणों को बैल की मृत्यु का पता चला, तो वे सब रोते हुए एक साथ दौड़े और मृत बैल को माला पहनाकर श्रद्धांजलि दी, उसे कब्र में दफनाया और अपने-अपने घरों को लौट गए। उनके चले जाने के बाद सर्प आया और सोचने लगा, "क्रोध के कारण मैंने इस प्राणी का जीवन छीन लिया है और अनेकों के हृदयों को दुःख पहुँचाया है। जब तक मैं क्रोध को वश में करना नहीं सीख लेता, तब तक मैं भोजन लेने के लिए बाहर नहीं जाऊँगा।" फिर वह मुड़ा और आश्रम की ओर गया, और क्रोध को वश में करने का व्रत लेकर एक करवट लेट गया।

सियार भी भोजन की तलाश में निकला और उसे एक मरा हुआ हाथी मिला (*3)। वह बहुत प्रसन्न हुआ: "यहाँ तो खूब खाना है!" वह चिल्लाया और हाथी की सूंड को काटने लगा—ऐसा लगा जैसे वह किसी पेड़ के तने को काट रहा हो। उसे इससे कोई आनंद नहीं मिला और उसने हाथी के दांत को काटा—ऐसा लगा जैसे वह किसी पत्थर को काट रहा हो। उसने हाथी का पेट भी चखा—ऐसा लगा जैसे वह कोई टोकरी हो। इसलिए वह हाथी की पूंछ पर टूट पड़ा, जो लोहे के कटोरे जैसी थी। फिर उसने हाथी के पिछले हिस्से पर हमला किया और देखो! वह घी की टिकिया की तरह नरम था। उसे वह इतना पसंद आया कि वह उसे खाते हुए अंदर तक घुस गया। वह वहीं रहा, भूख लगने पर खाता और प्यास लगने पर खून पीता; और लेटने के लिए हाथी के अंदरूनी अंगों और फेफड़ों को बिस्तर की तरह फैला लेता। "यहाँ," उसने सोचा, "मुझे खाना-पीना और बिस्तर दोनों मिल गए; कहीं और जाने का क्या फायदा?" इसलिए वह हाथी के पेट में ही संतुष्ट होकर रहा और फिर कभी बाहर नहीं निकला। लेकिन समय बीतने के साथ-साथ हवा और गर्मी से शव सूख गया और पीछे का रास्ता बंद हो गया। सियार अंदर ही अंदर क्षीण होता जा रहा था, उसका शरीर पीला पड़ गया था, लेकिन उसे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं दिख रहा था। तभी एक दिन अचानक तेज़ आंधी आई; नाला पानी से भीग गया और नरम होकर फटने लगा। दरार देखकर सियार चिल्लाया, "मैं बहुत दिनों से यहाँ कष्ट भोग रहा हूँ, अब मैं इसी छेद से बाहर निकलूँगा।" फिर वह सिर के बल उस जगह की ओर दौड़ा। रास्ता संकरा था और वह तेज़ी से भागा, जिससे उसका शरीर छिल गया और उसके सारे बाल पीछे छूट गए। जब वह बाहर निकला तो वह ताड़ के पेड़ के तने की तरह नंगा था, उस पर एक भी बाल नहीं था। "आह," उसने सोचा, "यह मेरे लालच ने ही मुझे यह सब मुसीबत दी है। जब तक मैं अपने लालच को वश में करना नहीं सीख लेता, तब तक मैं फिर कभी भोजन के लिए बाहर नहीं जाऊँगा।" फिर वह आश्रम गया और लालच को वश में करने का व्रत लिया और एक करवट लेट गया।

भालू भी जंगल से बाहर आया और लालच का गुलाम होने के कारण माला राज्य के सीमावर्ती गाँव में चला गया। "देखो, भालू है!" गाँव वाले सब चिल्लाए; और वे धनुष, लाठी और न जाने क्या-क्या लेकर बाहर आए और उस घनी वनस्पति को घेर लिया जिसमें वह लेटा हुआ था। भीड़ से घिरे होने पर वह बाहर भागा और भागने लगा, और भागते समय उन्होंने उसे धनुष और लाठियों से पीटा। वह टूटे सिर और खून से लथपथ घर लौटा। "अरे," उसने सोचा, "यह मेरा अत्यधिक लालच ही है जिसने मुझ पर यह सारी मुसीबत ला दी है। जब तक मैं इसे वश में करना नहीं सीख लेता, तब तक मैं फिर कभी भोजन के लिए बाहर नहीं जाऊँगा।" इसलिए वह आश्रम गया और लालच को वश में करने का व्रत लिया और एक तरफ लेट गया।

लेकिन तपस्वी अपने उच्च कुल में जन्म लेने के अहंकार के कारण रहस्यमयी समाधि (सम्मोहन) प्राप्त करने में असमर्थ था। पच्चेक बुद्ध ने यह जानकर कि वह अहंकार से ग्रस्त है, यह भी पहचाना कि वह कोई साधारण प्राणी नहीं है। उन्होंने सोचा, "यह व्यक्ति बुद्ध बनने के लिए ही जन्मा है, और इसी चक्र में वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त करेगा। मैं उसके अहंकार को वश में करने में उसकी सहायता करूँगा और उसे सिद्धियाँ प्राप्त करने में मदद करूँगा।" जब वह अपने पत्तों की कुटिया में बैठा था, पच्चेक बुद्ध उच्च हिमालय से नीचे आए और तपस्वी की शिला पर बैठ गए। तपस्वी बाहर आया और उन्हें अपने आसन पर बैठा देखकर अपने अहंकार में वश में नहीं रहा। वह उनके पास गया और उंगली उठाकर चिल्लाया, "तुम्हें धिक्कार है, निकम्मे, गंजे पाखंडी, तुम मेरे आसन पर क्यों बैठे हो?" "हे पवित्र पुरुष," दूसरे ने कहा, "आप इतने अभिमानी क्यों हैं? मैंने पच्चेक बुद्ध के ज्ञान को आत्मसात कर लिया है, और मैं आपको बताता हूँ कि इसी चक्र में आप असीम ज्ञानी हो जाएँगे; आप बुद्ध बनने के लिए ही पैदा हुए हैं! जब आप पूर्ण सद्गुणों (*4) को सिद्ध कर लेंगे, तो एक और ऐसे ही समय के बाद आप बुद्ध बन जाएँगे; और जब आप बुद्ध बन जाएँगे, तो आपका नाम सिद्धार्थ होगा।" फिर उन्होंने उसे नाम, कुल, परिवार, प्रमुख शिष्यों आदि के बारे में बताया और कहा, "अब आप इतने अभिमानी और भावुक क्यों हैं? यह बात आपके योग्य नहीं है।" पच्चेक बुद्ध की यही सलाह थी। इन शब्दों पर दूसरे ने कुछ नहीं कहा: न तो अभिवादन किया, न ही यह पूछा कि वह कब, कहाँ और कैसे बुद्ध बनेगा। तब आगंतुक ने कहा, "इस बात से अपने जन्म और मेरी शक्तियों (*5) का अंदाजा लगाइए: यदि आप कर सकते हैं, तो मेरी तरह हवा में उठिए।" ऐसा कहकर वह आकाश में उठा और दूसरे के सिर पर बंधी बालों की लटों पर अपने पैरों की धूल झाड़कर वापस उच्च हिमालय लौट गया। उसके जाने पर तपस्वी व्यथित हो उठा। उसने कहा, "एक पवित्र पुरुष है, जिसका शरीर इतना भारी है, वह हवा में रुई के कण की तरह उड़ता है! वह पच्चेक बुद्ध हैं, और मैंने जन्म के अहंकार के कारण उनके चरणों को कभी नहीं चूमा, उनसे यह भी नहीं पूछा कि मैं बुद्ध कब बनूंगा। यह जन्म मेरे लिए क्या कर सकता है? इस संसार में शक्ति ही सुखदायी जीवन है; परन्तु मेरा यह अहंकार मुझे नरक में ले जाएगा। जब तक मैं अपने अहंकार को वश में करना नहीं सीख लेता, तब तक मैं फिर कभी जंगली फल लाने नहीं जाऊंगा।" फिर वह अपने पत्तों के बने कुटिया में प्रवेश कर गया और अहंकार को वश में करने का व्रत लिया। टहनियों से बने अपने गद्दे पर बैठे हुए, उस बुद्धिमान युवा रईस ने अपने अहंकार को वश में किया, रहस्यमय समाधि की अवस्था में प्रवेश किया, अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों को विकसित किया, फिर आगे बढ़कर उस पत्थर की चौकी पर बैठ गया जो ढके हुए रास्ते के अंत में थी।

फिर कबूतर और बाकी सब आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। उस महान प्राणी ने कबूतर से कहा, "आम दिनों में तुम इस समय यहाँ नहीं आते, बल्कि भोजन की तलाश में जाते हो: क्या आज तुम उपवास रख रहे हो?" "जी हाँ, मैं रख रहा हूँ।" तब उसने पूछा, "क्यों?" और पहला श्लोक सुनाया।

मुझे यकीन है कि आप थोड़े में ही संतुष्ट हैं।
   हे उड़ते हुए कबूतर, क्या अब तुम्हें भोजन नहीं चाहिए?
भूख और प्यास को स्वेच्छा से क्यों सहन करें?
   महोदय, आप उपवास का व्रत क्यों धारण कर रहे हैं?
जिस पर कबूतर ने दो छंदों में उत्तर दिया:

एक समय था जब मैं और मेरा साथी लालच से भरे हुए थे।
   वे दोनों इस जगह को लेकर प्रेमियों की तरह मस्ती कर रहे थे।
उस पर एक बाज झपटा और वह उड़ गया:
   तो, मुझसे छीन ली गई, वह नहीं रही जिससे मैं प्यार करता था!
मैं अपने इस भीषण नुकसान को कई तरह से जानता हूँ;
   मैं जो कुछ भी देखता हूँ, उसमें मुझे एक पीड़ा महसूस होती है;
इसलिए मैं सहायता के लिए व्रत रखने जाता हूँ।
   वह जुनून शायद मुझमें कभी वापस न आए।"
जब कबूतर ने प्रतिज्ञाओं के संबंध में अपने कार्य की प्रशंसा की, तो उस महान प्राणी ने वही प्रश्न सर्प से और बाकी सभी से एक-एक करके पूछा। उन्होंने एक-एक करके सब कुछ स्पष्ट-स्पष्ट बताया।

"पेड़ों पर रहने वाला, कुंडली मारकर पेट के बल रेंगने वाला सांप,"
अपने मजबूत नुकीले दांतों और त्वरित एवं अचूक जहर से लैस,
आप ये व्रत क्यों रखना चाहते हैं?
प्यास और भूख को स्वेच्छा से क्यों सहन करें?
मुखिया का बैल, जो पूरी तरह से शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण था,
कूबड़ पूरी तरह से कांप रहा था, सुंदर और आकर्षक,
वह मेरे ऊपर से गुजरा: गुस्से में मैंने उसे काट लिया:
असहनीय पीड़ा से तड़प कर वह वहीं दम तोड़ बैठा।
"गांव के सभी लोग बाहर निकल आते हैं।"
वे जो दृश्य देखते हैं, उसे देखकर रोते-बिलखते हैं।
इसलिए मैं उपवास के दिन सहायता के लिए प्रार्थना करने दौड़ता हूँ।
वह जुनून मुझमें फिर कभी वापस नहीं आएगा।"
"सड़ा हुआ मांस तुम्हारे लिए समृद्ध और दुर्लभ भोजन है।"
कब्रिस्तान में सड़ती हुई लाशें पड़ी हैं।
एक सियार को प्यास और भूख क्यों सहनी पड़ी?
उस पर उपवास के व्रत क्यों थोपे गए, क्यों?
मुझे एक हाथी मिला और मुझे उसका मांस पसंद आया।
तो ठीक है, मैं उसके गर्भ में ही रहा।
लेकिन गर्म हवा और सूरज की झुलसा देने वाली गर्मी
जिस रास्ते से मैं जबरदस्ती आगे बढ़ा, वह सूख गया।
"मैं एकदम दुबली-पतली और पीली पड़ गई थी, मेरे स्वामी!"
जाने का कोई रास्ता नहीं था, मुझे यहीं रुकना होगा।
फिर एक भयंकर तूफान आया और मूसलाधार बारिश होने लगी।
उस पिछले हिस्से को नरम और सुचारु बनाना।
"फिर बाहर निकलने में मुझे देर नहीं लगी,
जैसे राहु (ग्रहण) के जबड़ों से चंद्रमा निकलता है (*6):
इसलिए मैं उपवास के दिन सहायता के लिए प्रार्थना करता हूँ।
वह लालच मुझसे दूर रहे: यही कारण है।
"एक समय था जब आप खाना बनाते थे।"
चींटियों के ढेर पर चींटियों के बारे में, मास्टर भालू:
अब भूख और प्यास महसूस करने की इच्छा क्यों?
अब उपवास के दिन शपथ लेने की इच्छा क्यों है?
"अत्यधिक लालच के कारण मैंने अपने ही घर का अपमान किया।"
मैं मलाटा की ओर भागने के लिए पूरी तेजी से जुट गया।
गांव से सभी लोग बाहर आ गए।
उन्होंने मुझे धनुष और लाठियों से बुरी तरह पीटा।
खून से लथपथ और टूटे हुए सिर के साथ
मैं अपनी रोजी-रोटी की ओर भागने में जल्दी करने लगा।
इसलिए अब मैं उपवास के व्रतों से दूर भाग गया हूँ।
"वह लालच फिर कभी मेरे पास न आए।"

इस प्रकार उन चारों ने अपने द्वारा लिए गए व्रतों की सराहना की; फिर उठकर परमेश्वर को प्रणाम करते हुए उन्होंने उनसे यह प्रश्न पूछा, “हे प्रभु, अन्य दिनों में आप इस समय जंगली फल लाने जाते हैं। आज आप क्यों नहीं जा रहे हैं, बल्कि व्रत के व्रतों का पालन कर रहे हैं?” उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:

"वह बात, महोदय, जिसे आप सीखना चाहते हैं।"
हमारी जानकारी के अनुसार हमने अब तक यह बात बता दी है:
लेकिन हम भी बदले में एक सवाल पूछेंगे:
हे ब्राह्मण, तुम उपवास का व्रत क्यों लेते हो?

उन्होंने उन्हें समझाया:

"यह एक पच्चेका बुद्ध थे, जो आए थे।"
   और मेरी झोपड़ी में एक पल रुका, और दिखाया
मेरा आना-जाना, नाम और शोहरत,
   मेरा परिवार, और मेरा पूरा भविष्य।
"फिर अहंकार से भर कर मैंने फेंका नहीं।"
   मैं उनके चरणों में नतमस्तक हो गया; मैंने और कुछ नहीं माँगा।
इसलिए मैं सहायता के लिए व्रत रखने जाता हूँ।
   वह गर्व शायद अब पहले की तरह मेरे पास न आए।
इस प्रकार उस महान पुरुष ने अपने द्वारा इन प्रतिज्ञाओं के पालन का स्पष्टीकरण दिया। फिर उन्होंने उन्हें संबोधित किया, विदा किया और अपनी कुटिया में चले गए। बाकी सभी अपने-अपने स्थान पर लौट गए। उस महान पुरुष ने अपनी समाधि (तल्ली) को भंग किए बिना ब्रह्मालोक (परमलोक) के लिए प्रस्थान किया, और बाकी सभी ने उनकी सलाह का पालन करते हुए स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "इस प्रकार, हे गृहस्थ भाइयों, उपवास के व्रत प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों की प्रथा थे, और अब भी इनका पालन करना आवश्यक है।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया। "उस समय अनुराधा कबूतर थे, कश्यप भालू थे, मोग्गल्याण सियार थे, सारिपुत्र नाग थे, और मैं स्वयं तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1) यह कहानी उस पुरुष या स्त्री के प्रकरण का एक नया चरण दर्शाती है जिसे हँसाया नहीं जा सकता। इससे निकटता से संबंधित वे कहानियाँ हैं जिनमें कोई काँप नहीं सकता या डर नहीं सकता।

(2) भिक्षु, भिक्षुणियाँ, गृहस्थ भिक्षु, गृहस्थ भिक्षुणियाँ।

(3)परिचयात्मक कहानी संख्या 148 देखें।

(4)संख्या 148, i. 502 (अनुवाद i. 315) की तुलना करें।

(5) ये दस हैं, जो बुद्ध की अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रारंभिक हैं। अर्थात् तुम्हारा जन्म मेरी शक्तियों के सामने कुछ भी नहीं है।

(6) एक राक्षस जो ग्रहण में चंद्रमा को निगलने वाला था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-मोरा-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-491-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 491
महा-मोरा-जातक(*1)

"यदि मुझे पकड़ लिया जाए," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। उस भिक्षु से गुरु ने पूछा, "क्या यह सच है, जैसा कि मुझे बताया गया है, कि तुम पथभ्रष्ट हो गए हो?" "जी, महाराज, यह सच है।" "भिक्षु," उन्होंने कहा, "क्या सुख की यह लालसा तुम जैसे मनुष्य को भ्रमित नहीं करेगी? सिनेरु पर्वत को प्रचंड करने वाला तूफान भी एक सूखे पत्ते के सामने फीका नहीं पड़ता। बीते समय में इस वासना ने उन पवित्र प्राणियों को भ्रमित किया है, जिन्होंने सात हजार वर्षों तक भीतर उठने वाली वासनाओं से खुद को दूर रखा।" इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब सीमावर्ती देश में एक मोरनी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया। उचित समय बीतने पर, मोरनी ने अपना अंडा वहीं रखा जहाँ वह चर रही थी और चली गई। स्वस्थ मोरनी का अंडा सुरक्षित रहता है, बशर्ते साँपों या ऐसे ही हानिकारक जीवों से कोई खतरा न हो। यह अंडा कनिकारा (*2) कली के समान सुनहरे रंग का था, और पकने पर यह अपने आप फट गया, जिससे एक सुनहरे रंग का मोर निकला, जिसकी दो आँखें गुंजा फल जैसी थीं, चोंच मूंगे जैसी थी, और उसके गले से लेकर पीठ के मध्य तक तीन लाल धारियाँ थीं। जब वह बड़ा हुआ तो उसका शरीर व्यापारी के ठेले जितना बड़ा था, देखने में बहुत सुंदर था, और सभी काले मोर इकट्ठा होकर उसे अपना राजा चुन लिया।

एक दिन, जब वह एक तालाब से पानी पी रहा था, तो उसने अपनी सुंदरता देखी और सोचा, "मैं सभी मोरों में सबसे सुंदर हूँ। यदि मैं मनुष्यों के बीच उनके साथ रहूँगा, तो मैं किसी खतरे में पड़ जाऊँगा: मैं हिमालय चला जाऊँगा और वहाँ एक शांत स्थान पर अकेला रहूँगा।" अतः रात के समय, जब सभी मोर अपने गुप्त ठिकानों में थे, वह किसी को बिना बताए हिमालय के लिए निकल पड़ा और तीन पर्वत श्रृंखलाओं को पार करते हुए चौथी में बस गया। यह एक जंगल था जहाँ उसे कमलों से ढकी एक विशाल प्राकृतिक झील मिली, और पास ही एक पहाड़ी के किनारे एक विशाल बरगद का पेड़ था; वह इस पेड़ की शाखाओं में उतर गया। इस पहाड़ी के बीचोंबीच एक सुंदर गुफा थी; और वहाँ रहने की इच्छा से, वह उसके मुहाने पर स्थित एक समतल भूमि पर उतर गया। अब इस स्थान पर चढ़ना असंभव था, न नीचे से ऊपर और न ऊपर से नीचे; यह पक्षियों, जंगली बिल्लियों, साँपों या मनुष्यों के किसी भी भय से मुक्त था। "यह मेरे लिए एक रमणीय स्थान है!" उसने सोचा। उस दिन वह वहीं रुका रहा, और अगली बार गुफा से निकलकर वह पहाड़ी की चोटी पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया। जब उसने सूर्य को उदय होते देखा, तो उसने आने वाले दिन के लिए "देखो, सर्वदर्शी राजा उदय हो रहा है" (*3) श्लोक का जाप करके स्वयं को सुरक्षित किया। इसके बाद वह भोजन की तलाश में निकल गया। शाम को वह फिर लौटा, और पहाड़ी की चोटी पर पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बैठ गया; फिर, जब उसने सूर्य को डूबते हुए देखा, तो उसने आने वाली रात के लिए "देखो, सर्वदर्शी राजा अस्त हो रहा है" श्लोक का जाप करके स्वयं को सुरक्षित किया। इस प्रकार उसका जीवन व्यतीत हुआ।

लेकिन एक दिन जंगल में रहने वाले एक शिकारी ने उसे पहाड़ी की चोटी पर बैठे हुए देखा और वापस घर चला गया। जब उसका मरने का समय आया, तो उसने अपने बेटे को बताया: "मेरे बेटे, पहाड़ों की चौथी श्रृंखला में, जंगल में, एक सुनहरा मोर रहता है। अगर राजा को ऐसा ही कोई मोर चाहिए, तो तुम जानते हो कि वह कहाँ मिलेगा।"

एक दिन बनारस के राजा की प्रधान रानी (उनका नाम खेमा था) ने भोर में एक सपना देखा, जो इस प्रकार था: एक सुनहरा मोर धर्म का उपदेश दे रहा था, रानी उसे ध्यान से सुन रही थी। मोर ने अपना उपदेश समाप्त करके जाने के लिए उठा, तो रानी ने उस पर चिल्लाकर कहा, "मोरों का राजा भाग रहा है, उसे पकड़ो!" और ये कहते ही वह जाग गई। जब वह जागी और उसे पता चला कि यह एक सपना था, तो उसने सोचा, "अगर मैं राजा को बताऊँ कि यह एक सपना था, तो वह इस पर ध्यान नहीं देगा; लेकिन अगर मैं कहूँ कि यह एक गर्भवती स्त्री की तमन्ना थी, तो वह ध्यान देगा।" इसलिए उसने गर्भवती स्त्रियों की तरह तमन्ना का नाटक किया और लेट गई। राजा उसके पास आया और पूछा कि क्या हुआ है। "मुझे एक तमन्ना है," उसने कहा। "तुम्हारी क्या इच्छा है?" "हे महाराज, मैं एक सुनहरे रंग के मोर का उपदेश सुनना चाहती हूँ।" "लेकिन ऐसा मोर हमें कहाँ मिलेगा, हे देवी?" “अगर ऐसा मोर नहीं मिला, महाराज, तो मैं मर जाऊंगी।” “चिंता मत कीजिए, महारानी; अगर कहीं ऐसा मोर है, तो उसे आपके लिए लाया जाएगा।” इस प्रकार उन्होंने महारानी को सांत्वना दी और फिर चले गए। बैठकर उन्होंने अपने दरबारियों से पूछा: “देखिए, महारानी एक सुनहरे मोर के बारे में सुनना चाहती हैं। क्या सच में सुनहरे मोर होते हैं?” “यह तो ब्राह्मणों को पता होगा, महाराज।” राजा ने ब्राह्मणों से पूछा। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया: “हे महाराज! हमारे शुभ संकेतों के श्लोकों में लिखा है कि जल जीव जैसे मछली, कछुआ और केकड़ा, और भूमि जीव जैसे हिरण, हंस, मोर और तीतर, ये सभी जीव और मनुष्य सुनहरे रंग के हो सकते हैं।” तब राजा ने अपने राज्य के सभी शिकारियों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कभी सुनहरा मोर देखा है। सभी ने उत्तर दिया, नहीं, सिवाय उस एक शिकारी के जिसके पिता ने उसे बताया था कि उसने क्या देखा था। उस व्यक्ति ने कहा, “मैंने स्वयं तो कभी मोर नहीं देखा, परन्तु मेरे पिता ने मुझे एक ऐसे स्थान के बारे में बताया है जहाँ एक स्वर्ण मोर पाया जाता है।” तब राजा ने कहा, “हे जन, यह मेरे और मेरी रानी के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न है: इसे पकड़ो और यहाँ ले आओ।” उसने उस व्यक्ति को खूब धन दिया और उसे भेज दिया। उस व्यक्ति ने धन अपनी पत्नी और पुत्र को दे दिया और उस स्थान पर गया, जहाँ उसने उस महान प्राणी को देखा। उसने उसके लिए जाल बिछाए, प्रतिदिन स्वयं से कहता रहा कि वह प्राणी अवश्य पकड़ा जाएगा; फिर भी वह उसे पकड़े बिना ही मर गया। और रानी भी अपनी मनोकामना पूरी किए बिना ही मर गई। राजा बहुत क्रोधित हुआ, क्योंकि उसने कहा, “मेरी प्रिय रानी इस मोर के कारण मर गई”; और उसने एक स्वर्ण थाली पर यह कहानी लिखवाई कि हिमालय की चौथी पर्वत श्रृंखला में एक स्वर्ण मोर रहता है, और जो उसका मांस खाएगा वह सदा युवा और अमर रहेगा। उसने उस थाली को अपने खजाने में रख दिया, और बाद में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद एक और राजा उठा, जिसने उस थाली पर लिखी हुई बातें पढ़ीं, और अमर और सदा युवा रहने की इच्छा से प्रेरित होकर,उसे पकड़ने के लिए एक शिकारी भेजा गया; लेकिन वह भी बाकी शिकारियों की तरह पहले ही मर गया। इस तरह छह राजा आए और चले गए, छह शिकारी हिमालय में असफल रहे। लेकिन सातवें राजा द्वारा भेजा गया सातवां शिकारी, सात वर्षों तक उस पक्षी को पकड़ने में असमर्थ रहा, हालांकि वह हर दिन उसे पकड़ने की उम्मीद करता था, तो

उसे आश्चर्य होने लगा कि आखिर इस मोर के पैर जाल में क्यों नहीं फंस रहे हैं। इसलिए उसने पक्षी को देखा और पाया कि वह सुबह-शाम सुरक्षा के लिए प्रार्थना कर रहा है, और इस प्रकार उसने तर्क दिया: "इस जगह पर कोई दूसरा मोर नहीं है, और यह स्पष्ट है कि यह एक पवित्र पक्षी होना चाहिए। यह उसकी पवित्रता और सुरक्षात्मक मंत्र की शक्ति है, जिसके कारण उसके पैर कभी मेरे जाल में नहीं फंसते।" इस निष्कर्ष पर पहुँचकर, वह सीमावर्ती क्षेत्र में गया और एक मोरनी को पकड़ा, जिसे उसने उंगली के इशारे पर अपनी आवाज निकालने और हाथ की ताली पर नाचने का प्रशिक्षण दिया। उसे अपने साथ लेकर वह लौट आया; फिर बोधिसत्व के मंत्रोच्चार से पहले ही उसने अपना जाल बिछा दिया और उंगलियां चटकाकर उसे चीखने पर मजबूर कर दिया। मोर ने यह चीख सुनी: उसी क्षण, सात हजार वर्षों से निष्क्रिय पड़ा पाप, एक झटके में फन फैलाए हुए नाग की तरह भड़क उठा। कामवासना से ग्रस्त होने के कारण वह अपना रक्षा मंत्रोच्चार नहीं कर सका, बल्कि उसकी ओर तेजी से बढ़ते हुए, वह हवा से सीधे जाल में आ गिरा: वह जाल जो सात हजार वर्षों से उसे पकड़ने में असमर्थ था, अब उसके पैर को जकड़ लिया। जब शिकारी ने उसे छड़ी के सिरे पर लटकते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "छह शिकारी इस मोर के राजा को पकड़ने में नाकाम रहे, और मैं सात साल से नहीं पकड़ पाया। लेकिन आज, जैसे ही वह इस मोरनी के लिए वासना से ग्रस्त हुआ, वह अपना जादू नहीं चला सका, जाल में आ गया और पकड़ा गया, और अब वह सिर नीचे करके लटक रहा है। कितना पुण्यशील प्राणी है जिसे मैंने चोट पहुँचाई है! रिश्वत के लिए ऐसे प्राणी को किसी दूसरे के हवाले करना अशोभनीय है। राजा के सम्मान का मेरे लिए क्या महत्व है? मैं उसे जाने देता हूँ।" लेकिन फिर उसने सोचा, "यह एक विशालकाय, शक्तिशाली और बलवान पक्षी है, और अगर मैं उसके पास गया तो वह सोचेगा कि मैं उसे मारने आया हूँ, वह अपनी जान के डर से काँप जाएगा, और संघर्ष में उसकी टांग या पंख टूट सकता है। मैं उसके पास नहीं जाऊँगा, बल्कि छिपकर खड़ा रहूँगा और तीर से जाल काट दूँगा। फिर वह अपनी मर्जी से चला जाएगा।" इसलिए वह छिप गया, और अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उस पर तीर लगाया और उसे वापस ले आया।और उस रक्षा मंत्र के बारे में, जो उसके पैरों को मेरे जाल में कभी नहीं फँसने देता है।" इस निष्कर्ष पर पहुँचकर वह सीमावर्ती क्षेत्र में गया और एक मोरनी को पकड़ा, जिसे उसने उंगली के इशारे पर सुर निकालने और ताली बजाने पर नाचने का प्रशिक्षण दिया। उसे अपने साथ लेकर वह लौट आया; फिर बोधिसत्व के मंत्र जाप करने से पहले ही उसने अपना जाल बिछा दिया, उंगलियां चटकाईं और मोरनी से चीख निकलवाई। मोर ने यह सुना: उसी क्षण, सात हजार वर्षों से निष्क्रिय पड़ा पाप, एक झटके में फन फैलाए हुए कोबरा की तरह उठ खड़ा हुआ। कामवासना से ग्रस्त होने के कारण वह अपना रक्षा मंत्र नहीं जाप सका, बल्कि उसकी ओर तेजी से बढ़ते हुए, वह हवा से सीधे जाल में फँस गया: वह जाल जो सात हजार वर्षों से उसे पकड़ने में असमर्थ था, अब उसके पैर को जकड़ लिया। जब शिकारी ने उसे छड़ी के सिरे पर लटकते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "छह शिकारी इस मोर के राजा को पकड़ने में असफल रहे, और मैं सात वर्षों से नहीं पकड़ पाया।" लेकिन आज, जैसे ही वह इस मोरनी के लिए वासना से ग्रस्त हुआ, वह अपना जादू दोहरा नहीं सका, जाल में फंस गया और वहीं सिर नीचे करके लटका हुआ है। मैंने जिस प्राणी को चोट पहुंचाई है, वह कितना पुण्यशील है! रिश्वत के लिए ऐसे प्राणी को किसी दूसरे के हवाले करना अशोभनीय है। राजा के सम्मान का मेरे लिए क्या महत्व है? मैं उसे जाने दूंगा। लेकिन फिर उसने सोचा, "यह एक विशालकाय, शक्तिशाली और बलवान पक्षी है, और अगर मैं उसके पास गया तो वह सोचेगा कि मैं उसे मारने आया हूं, वह अपनी जान के डर से कांप जाएगा, और संघर्ष में उसकी टांग या पंख टूट सकते हैं। मैं उसके पास नहीं जाऊंगा, बल्कि छिपकर खड़ा रहूंगा और तीर से जाल काट दूंगा। फिर वह अपनी मर्जी से जा सकता है।" इसलिए वह छिप गया, और अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर तीर को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और वापस आ गया।और उस रक्षा मंत्र के बारे में, जो उसके पैरों को मेरे जाल में कभी नहीं फँसने देता है।" इस निष्कर्ष पर पहुँचकर वह सीमावर्ती क्षेत्र में गया और एक मोरनी को पकड़ा, जिसे उसने उंगली के इशारे पर सुर निकालने और ताली बजाने पर नाचने का प्रशिक्षण दिया। उसे अपने साथ लेकर वह लौट आया; फिर बोधिसत्व के मंत्र जाप करने से पहले ही उसने अपना जाल बिछा दिया, उंगलियां चटकाईं और मोरनी से चीख निकलवाई। मोर ने यह सुना: उसी क्षण, सात हजार वर्षों से निष्क्रिय पड़ा पाप, एक झटके में फन फैलाए हुए कोबरा की तरह उठ खड़ा हुआ। कामवासना से ग्रस्त होने के कारण वह अपना रक्षा मंत्र नहीं जाप सका, बल्कि उसकी ओर तेजी से बढ़ते हुए, वह हवा से सीधे जाल में फँस गया: वह जाल जो सात हजार वर्षों से उसे पकड़ने में असमर्थ था, अब उसके पैर को जकड़ लिया। जब शिकारी ने उसे छड़ी के सिरे पर लटकते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, "छह शिकारी इस मोर के राजा को पकड़ने में असफल रहे, और मैं सात वर्षों से नहीं पकड़ पाया।" लेकिन आज, जैसे ही वह इस मोरनी के लिए वासना से ग्रस्त हुआ, वह अपना जादू दोहरा नहीं सका, जाल में फंस गया और वहीं सिर नीचे करके लटका हुआ है। मैंने जिस प्राणी को चोट पहुंचाई है, वह कितना पुण्यशील है! रिश्वत के लिए ऐसे प्राणी को किसी दूसरे के हवाले करना अशोभनीय है। राजा के सम्मान का मेरे लिए क्या महत्व है? मैं उसे जाने दूंगा। लेकिन फिर उसने सोचा, "यह एक विशालकाय, शक्तिशाली और बलवान पक्षी है, और अगर मैं उसके पास गया तो वह सोचेगा कि मैं उसे मारने आया हूं, वह अपनी जान के डर से कांप जाएगा, और संघर्ष में उसकी टांग या पंख टूट सकते हैं। मैं उसके पास नहीं जाऊंगा, बल्कि छिपकर खड़ा रहूंगा और तीर से जाल काट दूंगा। फिर वह अपनी मर्जी से जा सकता है।" इसलिए वह छिप गया, और अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर तीर को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और वापस आ गया।रिश्वत के लिए ऐसे प्राणी को किसी दूसरे के हवाले करना अशोभनीय है। राजा के सम्मान से मुझे क्या लेना-देना? मैं उसे जाने दूंगा।" लेकिन फिर उसने सोचा, "यह एक विशालकाय, शक्तिशाली और बलवान पक्षी है, और अगर मैं उसके पास गया तो वह सोचेगा कि मैं उसे मारने आया हूँ, वह अपनी जान के डर से कांप उठेगा, और संघर्ष में उसका पैर या पंख टूट सकता है। मैं उसके पास नहीं जाऊंगा, बल्कि छिपकर खड़ा रहूंगा और तीर से फंदा काट दूंगा। फिर वह अपनी मर्जी से चला जाएगा।" इसलिए वह छिप गया, और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर तीर को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और वापस आ गया।रिश्वत के लिए ऐसे प्राणी को किसी दूसरे

के हवाले करना अशोभनीय है। राजा के सम्मान से मुझे क्या लेना-देना? मैं उसे जाने दूंगा।" लेकिन फिर उसने सोचा, "यह एक विशालकाय, शक्तिशाली और बलवान पक्षी है, और अगर मैं उसके पास गया तो वह सोचेगा कि मैं उसे मारने आया हूँ, वह अपनी जान के डर से कांप उठेगा, और संघर्ष में उसका पैर या पंख टूट सकता है। मैं उसके पास नहीं जाऊंगा, बल्कि छिपकर खड़ा रहूंगा और तीर से फंदा काट दूंगा। फिर वह अपनी मर्जी से चला जाएगा।" इसलिए वह छिप गया, और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर तीर को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और वापस आ गया।

अब मोर सोच रहा था, "इस शिकारी ने मुझे वासना से व्याकुल कर दिया है, और जब वह मुझे पकड़ा हुआ देखेगा तो मुझे नहीं छोड़ेगा। वह कहाँ हो सकता है?" उसने इधर-उधर देखा, और उसने उस आदमी को धनुष लिए तीर चलाने को तैयार खड़ा देखा। "निस्संदेह वह मुझे मारकर भाग जाना चाहता है," उसने सोचा, और मृत्यु के भय से उसने अपनी जान की भीख मांगते हुए पहली पंक्ति दोहराई।

"यदि मुझे बंदी बनाकर तुम्हारे पास धन लाया जाए,
तो मुझे घायल मत करो, बल्कि मुझे जीवित ही ले जाओ।
हे मित्र, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मुझे राजा के पास ले चलें।
मुझे लगता है कि वह बहुत ही अच्छा इनाम देगा।
इस पर शिकारी ने सोचा, "बड़ा मोर सोच रहा होगा कि मैं उसे इस तीर से मार गिराने वाला हूँ: मुझे उसकी इस चिंता को दूर करना होगा," और इसी उद्देश्य से उसने दूसरी पंक्ति का पाठ किया।

मैंने इस तीर को धनुष पर नहीं चढ़ाया है।
हे मोर राजा, आज तुम्हें कष्ट पहुँचाने के लिए:
मैं इस जाल को काटकर तुम्हें जाने देना चाहता हूँ।
फिर अपनी इच्छा का पालन करो और उड़ जाओ।"
इस पर मोर ने दो छंदों में उत्तर दिया:

"हे शिकारी, तुमने पहले सात वर्षों तक पीछा किया,"
दिन-रात प्यास और भूख सहन करना:
अब मैं जाल में फंस गया हूँ, तुम क्या करोगे?
मुझे खोने की, मुझे उड़ने देने की इच्छा क्यों रखते हो?
"निश्चित रूप से सभी जीवित प्राणी आपके लिए सुरक्षित हैं:
आज तुमने जीवन लेने का संकल्प त्याग दिया है:
मैं तो जाल में फंसा हुआ हूँ, फिर भी तुम मुझे मुक्त करना चाहते हो।
फिर भी तुम मुझे मुक्त करना चाहते हो, मुझे उड़ जाने देना चाहते हो।"
इसके बाद यह आता है:

जब कोई व्यक्ति किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुँचाने की शपथ लेता है:
जब उसके लिए सभी जीवित प्राणी भय से मुक्त हो जाएंगे:
इससे अगले जन्म में क्या आशीर्वाद प्राप्त होगा?
हे राजसी मोर, मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो!
"जब उसके लिए सभी जीवित प्राणी भय से मुक्त हो जाते हैं,
जब कोई व्यक्ति किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुँचाने की शपथ लेता है,
आज भी उनकी खूब प्रशंसा होती है।
मृत्यु के बाद उसे उसके गुणों के अनुसार स्वर्ग में ले जाया जाएगा।
"कोई देवता (देवदूत) नहीं हैं, ऐसा बहुत से लोग कहते हैं:
इस जीवन में मिलने वाला सर्वोच्च आनंद केवल यही है;
इससे अच्छे या बुरे मार्ग का फल प्राप्त होता है;
और दान देना एक मूर्खतापूर्ण बात बताई जाती है।
इसलिए मैं पक्षियों को फंदे में फंसाता हूँ, क्योंकि पवित्र पुरुषों ने ऐसा कहा है:
मैं पूछता हूँ, क्या उनके शब्दों पर मुझे विश्वास नहीं करना चाहिए?
तब उस महान सत्ता ने उस व्यक्ति को दूसरे संसार की वास्तविकता बताने का निश्चय किया; और जब वह छड़ी के सिरे पर सिर नीचे करके झूल रहा था, तब उसने एक श्लोक दोहराया:

सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है, सूर्य और चंद्रमा दोनों चल रहे हैं
वे अपने उज्ज्वल मार्ग पर आकाश की ऊंचाइयों पर विचरण कर रहे हैं।
इस दुनिया में पुरुष उन्हें क्या कहकर पुकारते हैं?
बताइए, वे इस दुनिया के हैं या किसी और दुनिया के!
शिकारी ने एक श्लोक दोहराया:

सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है, सूर्य और चंद्रमा दोनों चल रहे हैं
वे अपने उज्ज्वल मार्ग पर आकाश की ऊंचाइयों पर विचरण कर रहे हैं।
वे हमारी इस निचली दुनिया का हिस्सा नहीं हैं।
लेकिन दूसरी बात यह है: "पुरुष ऐसा कहते हैं।"
तब उस महान सत्ता ने उससे कहा:

"तो वे गलत हैं, वे झूठ बोलते हैं जो ऐसी बातें कहते हैं;
बिना किसी कारण के, कौन कहता है कि यह दुनिया ला सकती है
अच्छे या बुरे मार्ग का फल ही सब कुछ होता है।
या जो कोई मूर्खतापूर्ण बात कहते हैं।"
जब उस महान प्राणी ने बोलना शुरू किया, तो शिकारी ने सोचा और फिर कुछ छंदों को दोहराया:

"आप जो कह रहे हैं वह बिल्कुल सही है:
कोई यह कैसे कह सकता है कि उपहारों के साथ-साथ कोई फल भी नहीं मिल सकता?
यहाँ तो व्यक्ति बुरे कर्मों का फल भोगता है।
या अच्छा है; क्या दान देना मूर्खतापूर्ण बात है?
मुझे कैसे व्यवहार करना चाहिए, क्या करना चाहिए, कौन सा पवित्र मार्ग अपनाना चाहिए?
क्या मुझे तुम्हारा अनुसरण करना चाहिए, हे मोर राजा, बताओ!
किस प्रकार का तपस्वी सद्गुण—उदाहरण के लिए,
मुझे नरक में डूबने से बचाया जाए!
यह सुनकर उस महान प्राणी ने सोचा, "यदि मैं उसकी इस समस्या का समाधान कर दूं, तो संसार उसे निरर्थक और व्यर्थ लगेगा। मैं उसे फिलहाल धर्मनिष्ठ और पवित्र तपस्वी ब्राह्मणों का स्वरूप बता देता हूं।" इसी इरादे से उन्होंने दो श्लोक दोहराए:

पृथ्वी पर वे लोग, जिन्होंने तपस्वी व्रत धारण किए हैं,
पीले कपड़े पहने हुए, घर में नहीं रहते हुए,
जो लोग अपना खाना लेने के लिए सुबह जल्दी निकल जाते हैं,
दोपहर में नहीं (*4): ये आदमी अच्छे हैं।
समय आने पर ऐसे भले लोगों से मिलने जाएं।
और आप जिससे चाहें उससे प्रश्न पूछ सकते हैं:
वे इस मामले को समझाएंगे, क्योंकि वे जानते हैं।
दूसरी दुनिया और इस नीचे की दुनिया के बारे में।"
इस प्रकार बोलते हुए, उन्होंने उस व्यक्ति को नरक के भय से भयभीत कर दिया। दूसरे ने पच्चेक बोधिसत्व की पूर्ण अवस्था प्राप्त कर ली; क्योंकि वे परिपक्व होते ज्ञान के साथ, सूर्य की किरणों के स्पर्श की प्रतीक्षा करते पके कमल की कली के समान जीवन व्यतीत कर रहे थे। शिकारी ने जहाँ खड़ा होकर उनका प्रवचन सुना, क्षण भर में ही उसने विद्यमान वस्तुओं के सभी घटकों को समझ लिया, उनके तीन गुणों (*5) को ग्रहण कर लिया और पच्चेक बुद्ध के ज्ञान को प्राप्त कर लिया। उनकी यह समझ और उस महान सत्ता का फंदे से मुक्त होना, दोनों एक ही क्षण में घटित हुए। पच्चेक बुद्ध ने अपनी वासनाओं और इच्छाओं का नाश करते हुए, अस्तित्व के चरम सीमा (*6) पर खड़े होकर, इस श्लोक में अपनी आकांक्षा व्यक्त की:

"जैसे सर्प अपनी सूखी त्वचा को उतार फेंकता है,
जब पेड़ पर हरियाली शुरू होती है तो उसके सूखे पत्ते झड़ जाते हैं:
अतः मैं आज से शिकारी का पेशा त्यागता हूँ।
मैंने शिकारी के अपने हुनर को हमेशा के लिए त्याग दिया है।"

इस उदात्त आकांक्षा को व्यक्त करते हुए, उन्होंने सोचा, "मैं अभी-अभी पाप के बंधनों से मुक्त हुआ हूँ; परन्तु घर पर मेरे अनेक पक्षी बंधन में जकड़े हुए हैं, मैं उन्हें कैसे मुक्त करूँ?" अतः उन्होंने महापुरुष से पूछा: "मोरराज, मैंने घर पर अनेक पक्षी बंधन में छोड़ दिए हैं, मैं उन्हें कैसे मुक्त करूँ?" अब बोधिसत्व, जो असीम ज्ञानी हैं, पच्चेक बुद्ध से कहीं अधिक ज्ञान और साधनों की समझ रखते हैं; अतः उन्होंने उत्तर दिया, "चूंकि तुमने कामवासना की शक्ति को तोड़कर पच्चेक बुद्ध के ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, इसी आधार पर सत्य का कार्य करो, और समस्त भारत में कोई भी प्राणी बंधन में नहीं रहेगा।" तब दूसरे ने, बोधिसत्व द्वारा उसके लिए खोले गए द्वार से प्रवेश करते हुए, इस श्लोक को दोहराया और सत्य का कार्य किया।

"वे सभी मेरे पंख वाले पक्षी जिन्हें मैंने बांधा था,
मेरे घर में सैकड़ों-सैकड़ों लोग कैद हैं।
आज मैं उन सभी को अपना प्राण अर्पित करता हूँ।
और स्वतंत्रता: उन्हें अपने घर की ओर उड़ जाने दो।"

फिर उनके सत्य कर्म के फलस्वरूप, यद्यपि विलंब से, वे सब बंधन से मुक्त हो गए और आनंदपूर्वक चहचहाते हुए अपने-अपने स्थानों पर लौट गए। उसी क्षण पूरे भारत में सभी बंधनों में जकड़े प्राणी मुक्त हो गए और एक भी प्राणी बंधन में नहीं रहा, यहाँ तक कि एक बिल्ली भी नहीं। पच्चेक बुद्ध ने अपना हाथ उठाया और अपना माथा रगड़ा: तुरंत ही कुलचिह्न गायब हो गया और उसके स्थान पर धर्मी (तपस्वी) चिह्न प्रकट हो गया। फिर उन्होंने साठ वर्ष के एक बुजुर्ग की तरह, पूर्ण वस्त्र पहने हुए, आठ आवश्यक वस्तुएँ (*7) धारण करके, राजसी मोर को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उसके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए वायु में ऊपर उठे और नंदा पर्वत की चोटी पर स्थित गुफा में चले गए। मोर भी फंदे से उठकर अपना भोजन ग्रहण करके अपने निवास स्थान पर चला गया।

गुरु ने अंतिम श्लोक को दोहराया, जिसमें बताया गया कि कैसे शिकारी सात वर्षों तक हाथ में फंदा लिए घूमता रहा, और अंत में मोर राजा द्वारा उसे दर्द से मुक्त किया गया:

शिकारी पूरे जंगल में घूमता रहा
मोरों के राजा को पकड़ने के लिए, हाथ में फंदा लिए।
उसने मोरों के गौरवशाली स्वामी को मुक्त कर दिया।
मुझे भी पकड़े जाने के तुरंत बाद दर्द होने लगा।

इस प्रवचन के अंत में, गुरु ने सत्यों की व्याख्या की: सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भिक्षु ने संतत्व प्राप्त किया: फिर उसने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा, "उस समय मैं मोर राजा था।"

फुटनोट:

(1)मोरा जातक की तुलना करें, नहीं। 159.

(2) टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम.

(3) प्रथम मोर जन्म (ii. 33) में दिए गए भजन की पहली पंक्ति।

(4) यह भिक्षुओं के लिए सख्ती से निषिद्ध था।

(5) अनित्यता, पीड़ा, अवास्तविकता।

(6)अर्थात निर्वाण में प्रवेश करने के कगार पर।

(7) कटोरा, तीन वस्त्र, कमरबंद, रेज़र, सुई, पानी छानने वाला यंत्र।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **तच्च-सूकर-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

जातक क्रमांक 492
तच्चा-सुकरा-जातक (*1)

"मैं दूर-दूर तक खोजता हुआ भटकता रहा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए दो वृद्ध बुजुर्गों के बारे में सुनाई थी।

कहते हैं कि महाकोसल ने अपनी पुत्री को राजा बिम्बिसार (*2) को देते समय, स्नान के बदले उसे काशी गाँव आवंटित किया था। अजातशत्रु द्वारा अपने पिता की हत्या (*3) के बाद, राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने उस गाँव को नष्ट कर दिया। उस गाँव के लिए दोनों के बीच हुए युद्धों में, प्रथम विजय अजातशत्रु की हुई। कोसल के राजा ने, जो बुरी तरह हार गए थे, अपने सलाहकारों से पूछा, "हम अजातशत्रु को पकड़ने के लिए क्या उपाय कर सकते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, भिक्षुओं को मंत्रों का बहुत ज्ञान है। उनके पास दूत भेजिए और मठ में भिक्षुओं की राय प्राप्त कीजिए।" यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए। तदनुसार, उन्होंने कुछ लोगों को भेजा और उन्हें वहाँ छिपकर भिक्षुओं की बातें सुनने को कहा। अब जेतवन मठ में राजा के कई अधिकारी हैं जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया है। इनमें से दो, दो वृद्ध भिक्षु, मठ के बाहरी इलाके में पत्तों की झोपड़ी में रहते थे: उनमें से एक का नाम वृद्ध भिक्षु धनुग्गहा-तिस्सा था, दूसरे का नाम वृद्ध भिक्षु मंतिदत्ता। ये दोनों रात भर सोए रहे और सुबह होते ही जाग गए। वृद्ध भिक्षु धनुग्गहा-तिस्सा ने आग जलाते हुए कहा, "वृद्ध भिक्षु दत्ता, महोदय।" "क्या आप सो रहे हैं?" "नहीं, मैं नहीं सो रहा हूँ: अब क्या करें?" "कोसल का राजा तो जन्म से ही मूर्ख है; उसे बस खाना खाना आता है।" "आपका क्या मतलब है, महोदय?" "वह अजातशत्रु से पिट जाता है, जो उसके पेट में कीड़े से कम नहीं है।" "तो फिर उसे क्या करना चाहिए?" "हे भिक्षु दत्ता, आप जानते हैं कि युद्ध की विधि तीन प्रकार की होती है: रथ युद्ध, चक्र युद्ध और कमल युद्ध (*4)। अजातशत्रु को पकड़ने के लिए उसे रथ युद्ध विधि का प्रयोग करना चाहिए। वह पहाड़ी की चोटी पर अपने दोनों किनारों पर वीर सैनिकों को तैनात करे और फिर सामने से मुख्य सेना उतारे: जैसे ही वह बीच में आए, जोर से चिल्लाते हुए और छलांग लगाते हुए उस पर झपट्टा मारो, और उसे मछली की तरह पकड़ लो। यही उसे पकड़ने का तरीका है।" यह सब दूतों ने सुना और फिर वापस जाकर राजा को बताया। राजा तुरंत एक विशाल सेना लेकर निकला और अजातशत्रु को बंदी बनाकर जंजीरों में जकड़ दिया। कुछ दिनों तक उसे इस प्रकार दंडित करने के बाद, उसने उसे रिहा कर दिया और चेतावनी दी कि वह ऐसा दोबारा न करे। सांत्वना के रूप में उसने अपनी पुत्री, राजकुमारी वजिरा का विवाह उससे कर दिया और अंत में बड़े धूमधाम से उसे विदा कर दिया।

भिक्षुओं के बीच इस बात की खूब चर्चा हो रही थी: "अजातशत्रु को कोसल के राजा ने पकड़ लिया, क्योंकि उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु धनुग्गहा-तिस्सा के निर्देशों का पालन किया था!" वे सत्य के हॉल में भी इसी विषय पर बात कर रहे थे, और गुरुजी ने प्रवेश करके उनसे पूछा कि क्या चर्चा हो रही है। उन्होंने उन्हें बताया। तब उन्होंने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि धनुग्गहा-तिस्सा ने रणनीति में अपनी कुशलता साबित की है।" और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस शहर के द्वार के पास एक गाँव में रहने वाला एक बढ़ई लकड़ी काटने के लिए जंगल में गया। वहाँ उसे एक छोटा जंगली सूअर गड्ढे में गिरा हुआ मिला, जिसे वह घर ले आया और उसका पालन-पोषण करते हुए उसका नाम 'बढ़ई का सूअर' रख दिया। वह सूअर उसका सेवक बन गया: वह अपनी थूथन से पेड़ पलटता और उसके पास लाता; वह अपने दांत में नापने वाली रस्सी बाँधकर उसे खींचता था; और अपने दाँतों में कुल्हाड़ी, छेनी और हथौड़ा उठाकर लाता-ले जाता था।

जब वह बड़ा हुआ, तो वह एक विशालकाय, बलिष्ठ जानवर बन गया। बढ़ई, जो उसे अपने बेटे की तरह प्यार करता था और इस डर से कि कहीं कोई उसे नुकसान न पहुँचा दे, उसे जंगल में आज़ाद छोड़ दिया। सूअर ने सोचा, "मैं इस जंगल में अकेला नहीं रह सकता: अगर मैं अपने परिवार को खोज निकालूँ और उनके बीच रहूँ तो क्या होगा?" इसलिए उसने पेड़ों के उस पूरे झुंड में सूअरों को खोजा, जब तक कि उसे उनका एक झुंड नहीं दिख गया। उसे देखकर वह प्रसन्न हुआ और उसने तीन श्लोक पढ़े:-

मैं दूर-दूर तक जंगलों और पहाड़ियों में भटकता रहा और खोजता रहा:
मैं अपने रिश्तेदारों की तलाश में भटकता रहा: और देखो, मुझे मेरा परिवार मिल गया!
"यहाँ प्रचुर मात्रा में जड़ें और फल हैं, साथ ही भोजन का भरपूर भंडार भी है;
कितनी सुंदर पहाड़ियाँ और मनमोहक झरने हैं! यहाँ रहना अच्छा रहेगा।
मैं यहाँ अपने पूरे परिवार के साथ निश्चिंत होकर, आराम से रहूँगा।
मुझे कोई परेशानी नहीं है, किसी भी दुश्मन से डर नहीं है।"
इस श्लोक को सुनकर सूअरों ने चौथे छंद के साथ उत्तर दिया:-

"यहाँ एक शत्रु है! कहीं और शरण लो, अपने-अपने रास्ते जाओ।"
हे बढ़ई, वह तो झुंड में सबसे उत्तम को ही चुनकर मारता है!

"वह शत्रु कौन है? मुझे सच-सच बताओ, मेरे परिवार, जिनसे आपका बहुत अच्छा परिचय हुआ था।"
वह कौन है जो तुम्हें नष्ट कर रहा है? हालांकि उसने अभी तक तुम्हें पूरी तरह से नष्ट नहीं किया है।
"एक पशु राजा! वह ऊपर से नीचे तक धारीदार है, काटने के लिए दांतों से लैस है:
वह झुंड में से सबसे बेहतरीन को ही मारता है—एक शक्तिशाली जानवर!
"क्या हमारे शरीर अपनी शक्ति खो चुके हैं? क्या हमारे पास दिखाने के लिए कोई दांत नहीं हैं?"
हम मिलकर काम करके उसे हरा सकते हैं: केवल इसी तरह।
"हे बढ़ई, ये मधुर शब्द सुनकर मेरा हृदय प्रसन्न हो गया है।"
किसी भी सूअर को भागने न दो! अन्यथा युद्ध के बाद उसे मार डाला जाएगा!
बढ़ई के सूअर ने उन सबको एकमत करके पूछा, "बाघ किस समय आएगा?" "आज वह सुबह जल्दी आया और एक को ले गया, कल भी वह सुबह जल्दी आएगा।" सूअर युद्धकला में निपुण था और विजय प्राप्त करने के लिए उपयुक्त स्थान जानता था। उसने एक स्थान की खोज की और रात रहते ही उन्हें भोजन कराया; फिर सुबह बहुत जल्दी उसने उन्हें समझाया कि युद्ध की विधि तीन प्रकार की होती है, वैगन युद्ध इत्यादि; इसके बाद उसने कमल (*5) युद्ध को इस प्रकार व्यवस्थित किया। बीच में उसने दूध पीते सूअरों को रखा, और उनके चारों ओर उनकी माताओं को, इनके बगल में बांझ मादा सूअरों को, फिर छोटे सूअरों का एक घेरा, फिर दांत निकल रहे छोटे सूअरों को, फिर बड़े दांत वाले सूअरों को, और सबसे बाहर बूढ़े सूअरों को रखा। फिर उसने दस, बीस, तीस के छोटे-छोटे दल इधर-उधर तैनात किए। उसने अपने लिए एक गड्ढा खुदवाया और बाघ के लिए सूप के आकार का एक छेद खुदवाया: दोनों छेदों के बीच में खड़े होने के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा छोड़ा। फिर वह बलवान लड़ाकू सूअरों के साथ चारों ओर घूमकर उन्हें उकसाता रहा।

जब वह इस काम में मशगूल था, तभी सूर्योदय हुआ। एक पाखंडी तपस्वी के आश्रम से निकलता हुआ बाघ पहाड़ी की चोटी पर प्रकट हुआ। सूअर चिल्लाए, "महाराज, हमारा शत्रु आ गया है!" बाघ ने कहा, "डरो मत, वह जो भी करे, तुम भी वही करना।" बाघ ने खुद को झटका दिया और जैसे जाने ही वाला हो, पेशाब किया; सूअरों ने भी ऐसा ही किया। बाघ ने सूअरों की ओर देखा और ज़ोर से दहाड़ा; उन्होंने भी ऐसा ही किया। उनकी हरकतों को देखकर उसने सोचा, "ये लोग बदल गए हैं; आज ये मेरे सामने शत्रुओं की तरह, संगठित समूहों में खड़े हैं: किसी योद्धा ने इन्हें इकट्ठा किया है; मुझे आज इनके पास नहीं जाना चाहिए।" मृत्यु के भय से वह दुम दबाकर पाखंडी तपस्वी के पास भाग गया; और उसने बाघ को खाली हाथ देखकर नौवां श्लोक पढ़ा:-

क्या तुमने हत्या के सभी रूपों का त्याग कर दिया है? क्या तुमने शपथ ली है?
जन्म लेने वाले प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए सुरक्षा?
निश्चित रूप से आपके दांतों में उनकी पहले जैसी मजबूती नहीं रही।
तुम जानवरों का झुंड पाते हो, और भिखारी बनकर लौटते हो!
बाघ ने उस पर तीन छंद दोहराए:-

"मेरे दांत अब काट नहीं पाते।"
मेरी सारी ताकत खत्म हो गई:
सभी भाई-भाई एक साथ खड़े थे:
इसलिए मैं जंगल में अकेला भटकता हूँ।
एक समय था जब वे चारों ओर हड़बड़ी मचाते थे।
अपनी कमजोरियों को ढूंढने के लिए, एक घबराहटपूर्ण वापसी।
लेकिन अब वे घनी पंक्तियों में एकजुट होकर गुर्राते हैं:
वे अजेय हैं, डटकर मेरा सामना करते हैं। (*6)
"अब वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि उन्हें एक नेता मिल गया है।"
जब सब सहमत हों तो वे मुझे नुकसान पहुंचा सकते हैं: इसलिए मैं उन्हें नहीं चाहता।"
इस पर उस पाखंडी तपस्वी ने निम्नलिखित श्लोक से उत्तर दिया:-

बाज़ अकेले ही पक्षियों को वश में करता है, अकेले ही।
इंद्र द्वारा टाइटन्स का वध किया गया:
और जब शक्तिशाली बाघ जानवरों के झुंड को देखता है,
वह हमेशा सर्वश्रेष्ठ शिकारियों को चुनता है और उन्हें बड़ी आसानी से मार डालता है।
फिर बाघ ने एक कविता सुनाई:-

न बाज़, न बाघ, न ही दैत्यों का स्वामी इंद्र किसी को आदेश दे सकते हैं।

एक समान समूह जो बाघ की तरह (*7) मिलकर डटकर मुकाबला करता है।"
इसलिए उस पाखंडी तपस्वी ने उसे उकसाने के लिए दो श्लोक पढ़े:-

"छोटे-छोटे पंखों वाले पक्षी झुंडों में उड़ते हैं,"
वे एक साथ ढेर की तरह ऊपर उठते हैं, एक साथ आकाश को छूते हैं।
बाज़ नीचे झुकता है, और बिल्कुल अकेला, उन पर झपटता है जब वे खेल रहे होते हैं।
वह अपनी इच्छा से उन पर हमला करता है और उन्हें मार डालता है: यही तुम्हारे बाघ का तरीका है।"
इतना कहकर उसने उसे और प्रोत्साहित किया: "शाही बाघ, तुम अपनी शक्ति को नहीं जानते। बस एक दहाड़ और एक छलांग—फिर तुम दोनों एक साथ नहीं बचोगे, मैं कसम खाकर कहता हूँ!" बाघ ने वैसा ही किया।

इसे समझाने के लिए गुरु ने एक श्लोक कहा:-

"तब उसने क्रूर लालची दृष्टि से, इन शब्दों को सत्य मानकर,
उसने हिम्मत जुटाई और अपने सारे नुकीले दांत दिखाते हुए सूंड वाले दल पर छलांग लगा दी।
खैर, बाघ वापस गया और कुछ देर पहाड़ी पर खड़ा रहा। सूअरों ने बढ़ई के सूअर को बताया कि वह फिर आ गया है। "डरो मत," उसने उन्हें दिलासा देते हुए कहा और फिर दोनों गड्ढों के बीच की पहाड़ी पर खड़ा हो गया। बाघ पूरी तेज़ी से सूअर की ओर झपटा, लेकिन सूअर पहले गड्ढे में पूंछ और थूथन के बल लुढ़क गया। बाघ अपने हमले को रोक नहीं सका और सरकंडे के पंखे जैसे आकार के गड्ढे में ढेर हो गया। थोड़ी ही देर में सूअर उछल पड़ा, अपने दांत बाघ की जांघ में गाड़ दिए, उसे दिल तक छेद दिया, मांस को चट कर गया, उसे काटता रहा और उसे दूसरे गड्ढे में धकेलते हुए चिल्लाया, "लो, बदमाश को ले जाओ!" जो पहले आए थे उन्हें एक-एक निवाला चखने का मौका मिला, जो बाद में आए वे पूछने लगे, "बाघ का मांस कैसा लगता है?"

बढ़ई का सूअर गड्ढे से बाहर आया और बाकियों की ओर देखते हुए बोला, "वाह, क्या आपको यह पसंद नहीं आया?" लेकिन उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, आपने बाघ का तो काम तमाम कर दिया, और यह तो एक था; लेकिन एक और बचा है जो दस बाघों से भी बदतर है।" "बताइए, वह कौन है?" "एक पाखंडी तपस्वी, जो बाघ द्वारा समय-समय पर लाया गया मांस खाता है।" "चलिए, हम उसे पकड़ लेते हैं।" यह सुनकर वे सब झटपट एक साथ चल पड़े।

अब वह पाखंडी तपस्वी सड़क पर नज़र रखे हुए था और हर पल बाघ के आने की आशंका कर रहा था। और तभी उसने देखा कि जंगली सूअर आ रहे हैं! "मुझे लगता है उन्होंने बाघ को मार डाला है, और अब वे मुझे मारने आए हैं!" वह भागा और एक जंगली अंजीर के पेड़ पर चढ़ गया। "वह पेड़ पर चढ़ गया?" सूअरों ने अपने सरदार से कहा। "कौन सा पेड़?" "एक अंजीर का पेड़।" "ठीक है, हम उसे तुरंत पकड़ लेंगे।" उसने जवान सूअरों से पेड़ की जड़ों से मिट्टी खुदवाई और मादा सूअरों से उनके मुंह में जितना पानी समा सकता था उतना पानी लाने को कहा, जब तक कि पेड़ जड़ों तक नंगा सीधा खड़ा नहीं हो गया। फिर उसने बाकी सूअरों को रास्ते से हटा दिया और घुटनों के बल बैठकर अपने दांत से जड़ पर वार किया: उसने कुल्हाड़ी की तरह जड़ को चीर दिया, पेड़ नीचे गिर गया, लेकिन वह आदमी ज़मीन तक नहीं पहुँच पाया: रास्ते में ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए और उसे खा लिया गया। इस चमत्कार को देखकर वृक्ष-आत्मा ने एक श्लोक सुनाया:-

"जंगल के पेड़ों की तरह एकजुट मित्र—यह एक सुखद दृश्य है:
सूअर एकजुट हो गए, एक ही हमले में बाघ ने उसे तुरंत मार डाला।
और गुरु ने एक और श्लोक सुनाया, जिसमें बताया गया था कि वे दोनों कैसे नष्ट हो गए:-

इस प्रकार जंगली सूअरों ने ब्राह्मण और बाघ दोनों का वध कर दिया।
और वे अत्यधिक खुशी में जोर-जोर से दहाड़ने लगे।
फिर सूअर ने पूछा, "क्या तुम्हारा कोई और शत्रु है?" "नहीं, महाराज," उन्होंने उत्तर दिया। तब उन्होंने उसे अपना राजा बनाने का प्रस्ताव रखा। पानी लाया गया। उस शंख को देखकर, जिसका उपयोग वह पाखंडी तपस्वी पीने के लिए करता था, जो दाहिनी ओर मुड़ी हुई सर्पिल वाली एक कीमती शंख थी (*8), उन्होंने उसे पानी से भर दिया, और बढ़ई के सूअर को अंजीर के पेड़ की जड़ पर बिठाकर उस पर आशीर्वाद का जल उंडेला। उन्होंने एक जवान मादा सूअर को उसकी पत्नी बनाया। इस प्रकार वह प्रथा शुरू हुई जो आज भी प्रचलित है, कि राजा नियुक्त करते समय उसे अंजीर की लकड़ी की कुर्सी पर बिठाया जाता है, और दाहिनी ओर मुड़ी हुई सर्पिल वाली शंख से उस पर जल छिड़का जाता है।

गुरु ने अंतिम श्लोक का पाठ करके इसे भी समझाया:-

जंगली अंजीर के पेड़ के नीचे सूअरों पर पवित्र जल उंडेला गया।
मैंने बढ़ई पर चढ़कर कहा, "आप हमारे राजा और स्वामी हैं!"

जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो गुरु ने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि धनुग्गहा-तिस्सा ने रणनीति में अपनी चतुराई दिखाई है, बल्कि वह पहले भी ऐसा ही था।" इन शब्दों के साथ, उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय देवदत्त पाखंडी तपस्वी था, धनुग्गहा-तिस्सा बढ़ई का सूअर था, और मैं स्वयं वृक्ष-परी था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 283 की तुलना करें

(2)देखें 275.

(3)पसेनदी (प्रसेनजित) महा-कोशल का पुत्र था, अजजशत्रु ने उसके पिता बिम्बिसार की हत्या कर दी थी।

(4) क्रमांक 275 देखें

(5) ध्यान दें कि यह प्रस्तावना से असहमत है।

(6)वही श्लोक क्रमांक 407 में भी आता है।

(7) पाठ अनिश्चित है। निस्संदेह इसका मतलब है कि समूह बाघ का मुकाबला कर सकता है।

(8) एक दुर्लभ वस्तु, बहुत मूल्यवान, और राजा के आशीर्वाद के लिए प्रयुक्त।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-वणिज-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-493-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 493
महा-वनिजा-जातक

"कई जगहों से व्यापारी," इत्यादि। यह कहानी गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो श्रावस्ती नगर में रहने वाले कुछ व्यापारियों के बारे में थी। सुना है कि ये व्यापारी व्यापार के सिलसिले में जाते समय गुरुजी के पास उपहार लेकर आए और उनके चरणों में शरण ली। उन्होंने कहा, "हे प्रभु, यदि हम सुरक्षित लौट आए तो आपके चरण चूम लेंगे।" वे पाँच सौ बैलगाड़ियों में माल लेकर निकले और जल्द ही एक घने जंगल में पहुँच गए, जहाँ उन्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया। भटकते हुए, पानी और भोजन के बिना, वे जंगल में भटकते रहे, जब तक कि उन्हें एक विशाल बरगद का पेड़ दिखाई नहीं दिया, जिस पर अजगरों का साया था। उन्होंने अपनी बैलगाड़ियाँ खोलीं और उसके नीचे बैठ गए। उसके पत्तों को देखकर वे इतने चमकदार लग रहे थे मानो पानी से भीगे हों, और डालियाँ भी पानी से भरी हुई प्रतीत हो रही थीं, जिससे उनके मन में यह विचार आया: "ऐसा लगता है जैसे इस पेड़ से पानी बह रहा हो। अगर हम इसकी पूर्व दिशा की ओर वाली एक डाल काट लें तो क्या होगा? हमें पीने के लिए कुछ मिल जाएगा।" इस पर एक व्यक्ति वृक्ष पर चढ़ा और एक शाखा काट डाली: उसमें से ताड़ के तने के समान मोटी जलधारा निकली, और उन्होंने उसमें स्नान किया और उसका जल पिया। फिर उन्होंने दक्षिणी दिशा की एक शाखा काटी: उसमें से उत्तम खाद्य पदार्थ निकले, और उन्होंने उन्हें खाया। फिर उन्होंने वृक्ष की पश्चिमी दिशा की एक शाखा काटी: उसमें से सुंदर और अलंकृत स्त्रियाँ निकलीं, जिनके साथ उन्होंने आनंद लिया। अंत में, उन्होंने उत्तरी शाखा का एक भाग काटा: उसमें से सात बहुमूल्य वस्तुएँ गिरीं, और उन्होंने उन्हें लेकर पाँच सौ रथ भर दिए, और श्रावस्ती नगर लौट आए। वहाँ उन्होंने खजाने की सावधानीपूर्वक रखवाली करवाई। अपने हाथों में मालाएँ, इत्र और इसी प्रकार की वस्तुएँ लिए वे जेतवन मठ गए और गुरु को प्रणाम किया और उनकी पूजा की, और फिर एक तरफ बैठ गए। उस दिन उन्होंने धर्ममार्ग के उपदेश सुने; अगले दिन, वे एक बड़ा उपहार लेकर आए और उसका सारा पुण्य त्यागते हुए बोले, "हे प्रभु, हम इस उपहार का पुण्य उस वृक्ष देवता को अर्पित करते

हैं जिसने हमें यह सारा खजाना दिया है।" भोजन समाप्त होने पर, गुरु ने उनसे पूछा, "तुम यह पुण्य किस वृक्ष देवता को अर्पित करते हो?" व्यापारियों ने तथागत (बुद्ध) को बताया कि उन्हें बरगद के वृक्ष से यह खजाना कैसे प्राप्त हुआ। गुरु ने कहा, "यह खजाना तुम्हें संयम के कारण और इसलिए प्राप्त हुआ है क्योंकि तुमने अपने आप को इच्छाओं के वश में नहीं किया; परन्तु पुराने समय में मनुष्य आत्मसंयम का अभाव रखते थे और इच्छाओं के वश में रहते थे, और इसी कारण उन्होंने धन और जीवन दोनों खो दिए।" फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस के पास ही (*1) यही घना जंगल और यही बरगद का पेड़ था। व्यापारी रास्ते से भटक गए और उन्होंने बरगद का पेड़ देखा।

गुरु ने अपनी पूर्ण बुद्धि से इस विषय को इन श्लोकों में समझाया है:-

अनेक राज्यों से व्यापारी आए और सब आपस में मिले।
उनमें से एक मुखिया चुन लो, और तुरंत ही खजाना ढूंढने निकल पड़ो।
"भोजन की कमी वाले इस सूखे जंगल की ओर यात्री अपना रास्ता बनाते हुए आगे बढ़े।"
और मैंने एक विशाल बरगद का पेड़ देखा जिसकी छाया ठंडी और सुखद थी।
"उस घने पेड़ की छाया में वे सभी व्यापारी बैठे थे।"
और उसने कुकर्म को कुंठित करते हुए, बुद्धिहीनता का प्रयोग करते हुए इस प्रकार तर्क दिया:
"पेड़ पूरी तरह से नम है, और ऐसा लगता है जैसे उसमें पानी बह रहा हो।"
"आइए हम उसकी एक शाखा को काट दें जो पूर्व दिशा की ओर बढ़ती है।"
शाखा काट दी गई; फिर शुद्ध और निर्मल जल की धारा बहने लगी।
व्यापारियों ने हाथ धोए, व्यापारियों ने तब तक पानी पिया जब तक वे तृप्त नहीं हो गए।
वे कहते हैं, "बुद्धिहीनता के कारण, वे फिर से कुकर्म को अपराध का आवरण चढ़ा देते हैं।"
"दक्षिण की ओर की एक शाखा को हम काट कर अलग कर देते हैं।"
"इस शाखा के कटने से चावल और मांस दोनों इसके साथ बहकर धारा में चले जाते हैं।"
गाढ़ा दलिया, अदरक, दाल का सूप और कई अन्य चीजें।
व्यापारियों ने खाया, व्यापारियों ने पिया, उन्होंने जी भरकर खाया।
फिर उसने कुकर्म को बुद्धिहीनता के आवरण में लपेटकर दोबारा कहा:
"आओ, साथी व्यापारियों, हम पश्चिम की ओर एक शाखा काट लें।"
सुंदर युवतियों का एक समूह बाहर आया और सभी ने साहसपूर्वक अनुशासन में चलना शुरू कर दिया।
और हे रंग-बिरंगे वस्त्र, ढेरों गहने और अंगूठियां!
प्रत्येक व्यापारी के पास एक सुंदर नौकरानी थी, उन पच्चीस व्यापारियों में से प्रत्येक के पास।
ये सभी लोग पत्तों की छांव के नीचे एक साथ खड़े थे:
इन लोगों और बीच में बैठे व्यापारियों ने मिलकर खूब मौज-मस्ती की।
वे कहते हैं, "बुद्धिहीनता के कारण, वे फिर से कुकर्म को अपराध का आवरण चढ़ा देते हैं।"
"उत्तर दिशा की एक शाखा को आओ, चलो उसे काट देते हैं।"
लेकिन जब उत्तरी शाखा को काटा गया, तो उसमें से सोने की एक धारा बह निकली।
मुट्ठी भर चांदी, कीमती कालीन और कई बार गहने;
और उत्तम बनारस के वस्त्र, और मोटे-पतले कंबल।
तब व्यापारियों ने उन्हें बंडलों में लपेटना शुरू कर दिया।
उन्होंने फिर से नासमझी और कुकर्म में, पहले की तरह कहा:
"चलो इसे जड़ से काट देते हैं, फिर शायद हमें और अधिक मिल सके।"
तब उनके सरदार उठे और आदरपूर्वक झुकते हुए बोले,
"बरगद का पेड़ क्या शरारत करता है, सज्जनों? भगवान आपका भला करे!"
"पूर्वी शाखा से जलधाराएँ प्राप्त हुईं, दक्षिणी शाखा से हमें भोजन मिला।"
पश्चिमी देशों ने हमें सुंदर युवतियाँ दीं, उत्तरी देशों ने हमें हर अच्छी चीज़ दी:
बरगद का पेड़ क्या शरारत करता है, सज्जनों? भगवान आपका भला करे!
"वह वृक्ष जो आपको सुखद छाया प्रदान करता है, जिस पर आप आवश्यकतानुसार बैठ या लेट सकते हैं,"

आपको इसकी शाखाओं को नहीं तोड़ना चाहिए, यह एक क्रूर और गलत काम होगा।
"लेकिन वे बहुत थे, वह उनमें से एक था जिसकी आवाज ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।"
उन्होंने धारदार कुल्हाड़ियों से प्रहार करके उसे जड़ से उखाड़ दिया।
तब नागराज ने उन्हें वृक्ष की जड़ के पास आते देखा ताकि वे वृक्ष को काट सकें। उसने मन ही मन सोचा, “मैंने इन लोगों को प्यास लगने पर पानी पिलाया, फिर उन्हें पवित्र भोजन दिया, फिर सोने के लिए पलंग दिए और उनकी सेवा के लिए स्त्रियाँ दीं, फिर पाँच सौ गाड़ियों को भरने लायक खजाना दिया, और अब ये कहते हैं, चलो वृक्ष को जड़ से काट डालें! ये हद से ज्यादा लालची हैं, और कारवां के मुखिया को छोड़कर बाकी सब मर जाएँगे।” तब उसने एक सेना तैयार की: “इतने सारे कवचधारी, इतने सारे तीरंदाज, इतने सारे तलवार और ढालधारी सैनिक तैयार खड़े हो जाओ।”

इसे समझाने के लिए गुरु ने एक श्लोक दोहराया:

फिर पच्चीस कवचधारी सांप मैदान में उतरे और आक्रमण करने लगे।
तीन सौ धनुर्धारी और छह हजार तलवार और ढाल से लैस सैनिक।
निम्नलिखित श्लोक सर्पराज द्वारा कहा गया है:

"उन आदमियों को मार गिराओ और उन्हें कसकर बांध दो, किसी की भी जान मत बख्शो।"
मुखिया को छोड़कर बाकी सबको जलाकर राख कर दो, फिर तुम्हारा काम पूरा हो जाएगा।"
और सर्पों ने भी ऐसा ही किया। फिर उन्होंने उत्तरी शाखा से कालीन और बाकी सारा सामान पाँच सौ गाड़ियों पर लाद दिया, और गाड़ियों और कारवां के मुखिया को बनारस ले गए, और सामान उसके घर में रख दिया, और उससे विदा लेकर अपने निवास स्थान लौट गए।

जब गुरु ने यह देखा, तो उन्होंने दो श्लोकों में सलाह दोहराई:

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को अपना भला देखना चाहिए, और उसे कभी नहीं जाना चाहिए।
लोभ का गुलाम होकर वह अपने शत्रु के उद्देश्य को विफल कर देता है।
"तो उसे, इस बुरी चीज को देखकर, इच्छा से उपजी पीड़ा को देखकर,
इच्छाओं और बंधनों को त्याग दो, और पवित्र जीवन की आकांक्षा रखो।

यह प्रवचन समाप्त करते हुए उन्होंने कहा, “इस प्रकार, भिक्षुओं, अतीत में लोभ से ग्रस्त व्यापारियों का भारी विनाश हुआ, इसलिए आपको लोभ को स्थान नहीं देना चाहिए।” फिर सत्यों की व्याख्या करते हुए (सत्यों के समापन पर वे व्यापारी प्रथम मार्ग (सम्मोहन) के फल में स्थापित हो गए) उन्होंने जन्म का वर्णन किया: “उस समय सारिपुत्र नागों के राजा थे और मैं कारवां का मुखिया था।”

फुटनोट:

(1)निस्साया पढ़ना ---

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **साधिन-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-494-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 494
साधना-जातक

"दुनिया में एक अजूबा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, उन गृहस्थ भिक्षुओं के बारे में जिन्होंने व्रत का व्रत लिया था। उस अवसर पर गुरु ने कहा: "पुराने समय के ज्ञानी गृहस्थ भिक्षुओं ने व्रत के व्रत का पालन करने के कारण शरीर सहित स्वर्ग में जाकर वहाँ दीर्घकाल बिताया।" फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, मिथिला में राजा साधना रहते थे, जो धर्मपरायण थे। उन्होंने नगर के चारों द्वारों पर, नगर के मध्य में और अपने महल के द्वार पर छह भिक्षागृह बनवाए और अपने दान-पुण्य से पूरे भारत में हलचल मचा दी। प्रतिदिन छह लाख सिक्के दान में खर्च होते थे। वे पंच सद्गुणों का पालन करते थे और व्रत रखते थे। नगरवासियों ने भी उनकी सलाह मानकर दान दिया और अच्छे कार्य किए, और उनकी मृत्यु होते ही वे देवदूतों के नगर में पुनर्जीवित हो गए।

सक्का (इंद्र) के न्याय कक्ष में पूर्ण सभा में बैठे स्वर्ग के राजकुमारों ने साधना के सदाचारी जीवन और अच्छे गुणों की प्रशंसा की। उनके बारे में सुनकर अन्य सभी देवता (देवदूत) उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो गए। देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने उनके मन की बात जानकर पूछा, "क्या तुम राजा साधना को देखना चाहते हो?" उन्होंने उत्तर दिया, हाँ, वे देखना चाहते हैं। तब उन्होंने मतली को आदेश दिया, "मेरे महल वेजयंत जाओ, मेरा रथ जोतो और साधना को यहाँ ले आओ।" उन्होंने आदेश का पालन किया और रथ जोतकर विदेह राज्य की ओर चल दिए।

उस दिन पूर्णिमा थी। जब लोग शाम का भोजन कर चुके थे और आराम से अपने दरवाजों के पास बैठे थे, तब मताली ने अपना रथ चंद्रमा के साथ-साथ चलाया। सभी लोग चिल्ला उठे, "देखो, आकाश में दो चंद्रमा हैं!" लेकिन जब उन्होंने रथ को चंद्रमा के पास से गुजरते हुए अपनी ओर आते देखा, तो वे चिल्लाए, "यह चंद्रमा नहीं, बल्कि रथ है; लगता है यह देवताओं (देवदूतों) का पुत्र है। यह दिव्य रथ, अपने सामंती घोड़ों के दल के साथ, किसके लिए ला रहा है? क्या यह हमारे राजा के लिए नहीं होगा? हाँ, हमारे राजा धर्मात्मा और भले राजा हैं!" प्रसन्नता में उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े और खड़े होकर पहला श्लोक दोहराया:

"दुनिया में एक ऐसा अजूबा देखा गया, जिसे देखकर रोंगटे खड़े हो गए।"
महान विदेह के राजा के लिए आकाश से एक रथ भेजा गया है!
मताली रथ को पास ले आया, और जब लोग फूलों और इत्रों से उसकी पूजा कर रहे थे, तब उसने रथ को शहर के तीन चक्कर दाहिनी ओर घुमाया। फिर वह राजा के द्वार पर पहुँचा, और वहाँ रथ को रोककर पश्चिमी खिड़की के सामने खड़ा हो गया, मानो उसने अंदर आने का संकेत दिया हो। उस दिन राजा ने स्वयं अपने दान-गृहों का निरीक्षण किया था और दान वितरण के निर्देश दिए थे; इसके बाद उसने उपवास के व्रत लिए और इस प्रकार दिन व्यतीत किया। तभी वह पूर्वी खिड़की के सामने एक भव्य चबूतरे पर बैठा था, उसके चारों ओर दरबारी थे, और वह उन्हें न्याय और सही-गलत के विषय पर प्रवचन दे रहा था। उसी क्षण मताली ने उसे रथ में बैठने का निमंत्रण दिया और ऐसा करने के बाद वह उसके साथ चला गया।

इसे समझाने के लिए, गुरु ने निम्नलिखित छंदों को दोहराया:

"सर्वोच्च देवता (देवदूत), सारथी मताली ने लाया।"
मिथिला के राजा वेदेह को एक सम्मन भेजा गया।
"हे पराक्रमी सम्राट, महान राजा, मेरे साथ इस रथ पर सवार होइए:
इंद्र तुम्हें देखेंगे, और देवता (देवदूत), वो तैंतीस गौरवशाली देवदूत।
और अब वे सब सभा में बैठे हैं और आपके बारे में सोच रहे हैं।"
तब राजा साधना ने अपना मुख फेरा और रथ पर सवार हो गए:
फिर वह अपने हजार घोड़ों के साथ उसे दूर स्थित देवताओं (देवदूतों) के पास ले गया।
"देवताओं (देवदूतों) ने राजा को आते देखा: और फिर, अपने अतिथि का स्वागत करने के लिए आए..."
उन्होंने कहा, "आपका स्वागत है, महामहिम सम्राट, जिनसे मिलकर हमें बहुत खुशी हुई!"
हे राजा! हम आपसे विनती करते हैं कि आप देवताओं (देवदूतों) के राजा के पास बैठें।
और सक्का (इंद्र) ने मिथिला नगर के राजा वेदेह का स्वागत किया।
हाँ, वासवा (*1) ने उसे सभी सुखों का प्रस्ताव दिया और उससे बैठने का अनुरोध किया।
"विश्व के शासकों के बीच, हमारे देश में आपका स्वागत है:
हे राजा, उन देवताओं (देवदूतों) के साथ निवास करो, जिनके पास सभी इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार है।
अमर सुखों का आनंद लें, जहाँ 33 का स्थान है।"
देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) ने उन्हें देवताओं के नगर का आधा भाग, दस हजार मील (4.23 किमी) क्षेत्रफल वाला, पच्चीस करोड़ अप्सराओं का नगर और वेजयंत महल प्रदान किया। वहाँ उन्होंने मनुष्य की समझ के अनुसार सात सौ वर्षों तक सुख भोगा। परन्तु स्वर्ग में उस पद पर रहते हुए उनका पुण्य समाप्त हो गया; उनके मन में असंतोष उत्पन्न हुआ और उन्होंने सक्का (इंद्र) से एक श्लोक को दोहराते हुए इन शब्दों में कहा:

"जब मैं पहले स्वर्ग में आया था, तब मुझे बहुत आनंद हुआ था।"

नृत्य, गीत और संगीत में स्पष्ट:
अब मुझे पहले जैसा महसूस नहीं होता।
क्या मेरा जीवन समाप्त हो गया है, क्या मृत्यु निकट आ रही है?
या फिर, हे महाराज, क्या मुझे किसी कुकर्म से डरना चाहिए?
तब सक्का (इंद्र) ने उससे कहा:

"तुम्हारा जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है, और मृत्यु अभी दूर है।"
और हे महापुरुष, तुम मूर्ख भी नहीं हो:
लेकिन आपके अच्छे कर्म समाप्त हो गए हैं
और अब आपके सारे पुण्य कर्म पूरे हो गए हैं।
"हे महामहिम राजा, मेरी दिव्य आज्ञा से यहीं निवास करो;"
अमर सुखों का आनंद लें, जहाँ 33 लोग खड़े हैं (*2)।"
लेकिन उस महान सत्ता ने इनकार कर दिया और उससे कहा:

"जैसे जब कोई रथ दिया जाता है, या जब मांग पर सामान दिया जाता है,"
किसी दूसरे के हाथों से प्राप्त आनंद का अनुभव करना भी ऐसा ही है।
मुझे दूसरों के हाथों से दिए गए आशीर्वादों की परवाह नहीं है।
जब मैं अपने कर्मों के आधार पर खड़ा होता हूँ, तो मेरी संपत्ति मेरी ही होती है और केवल मेरी ही होती है।
मैं जाकर मनुष्यों का बहुत भला करूंगा, पूरे देश में दान दूंगा।
सद्गुणों का पालन करेंगे, संयम और आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करेंगे:
जो इस प्रकार कार्य करता है वह सुखी रहता है और उसे पश्चाताप का कोई भय नहीं होता।
यह सुनकर इंद्र ने मतली को आदेश दिया: "जाओ, राजा साधिना को मिथिला ले जाओ और उन्हें उनके उद्यान में ठहरा दो।" उसने वैसा ही किया। राजा अपने उद्यान में इधर-उधर टहल रहे थे; उद्यान के रखवाले ने उन्हें देखा और उनका परिचय पूछकर यह खबर राजा नारद को दी। राजा के आगमन की सूचना पाकर उन्होंने रखवाले को यह कहकर भेजा: "तुम आगे जाओ और दो आसन तैयार करो, एक उनके लिए और एक मेरे लिए।" उसने वैसा ही किया। तब राजा ने उससे पूछा, "तुम ये दो आसन किसके लिए तैयार कर रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "एक आपके लिए, और एक हमारे राजा के लिए।" तब राजा ने कहा, "मेरे समक्ष और कौन बैठेगा?" वे एक आसन पर बैठ गए और अपने पैर दूसरे आसन पर रख दिए। राजा नारद आए और उनके चरणों को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए: कहा जाता है कि वे राजा के सातवें वंशज थे और उस समय मनुष्य की आयु पचहत्तर (20) वर्ष थी। इतना समय उस महान प्राणी ने अपनी कृपा से व्यतीत किया था। उन्होंने नारद का हाथ पकड़ा और उद्यान में इधर-उधर घूमते हुए तीन श्लोक पढ़े:

"ये भूमि हैं, वो मार्ग जिसके चारों ओर से जलधारा बहती है।"
इसे ढकने वाली हरी घास, बहने वाली छोटी-छोटी नदियाँ,
"सुंदर झीलें, जो लाल हंसों की पुकार सुनती हैं,"
जहां सफेद कमल और नीले कमल तथा मूंगे जैसे वृक्ष (*3) उगते हैं,
लेकिन जो लोग मेरे साथ इस जगह से प्यार करते थे, हे भगवान, वे सब कहाँ हैं?
ये एकड़ जमीन है, ये जगह है,
बगीचा और खेत यहीं हैं:
लेकिन कोई परिचित चेहरा न देखकर,
मुझे तो यह एक भयानक रेगिस्तान जैसा लगता है।"
इस पर नारद ने उनसे कहा, "हे मेरे स्वामी, आपके देवलोक जाने के बाद से सात सौ वर्ष बीत चुके हैं; मैं आपसे सातवां वंशज हूँ, आपके सभी सेवक मृत्यु के मुंह में जा चुके हैं। परन्तु यह आपका उचित राज्य है, और मैं आपसे इसे स्वीकार करने का निवेदन करता हूँ।" राजा ने उत्तर दिया, "हे मेरे प्रिय नारद, मैं यहाँ राजा बनने नहीं, बल्कि भलाई करने आया हूँ, और मैं भलाई ही करूँगा।" फिर उन्होंने आगे कहा:

मैंने हर जगह चमकते हुए दिव्य महल देखे हैं।
तैंतीस प्रधान देवदूत और उनके सम्राट आमने-सामने।
मैंने मानवीय भावनाओं से परे आनंद का अनुभव किया है, मेरा घर स्वर्ग जैसा था।
दिल की हर इच्छा पूरी हो, तैंतीस दिव्य देवताओं के बीच।
"मैंने यह देखा है, और पुण्य कर्म करने के लिए मैं नीचे आया हूँ।"

और मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा: मुझे कोई राजसी मुकुट नहीं चाहिए।
"वह मार्ग जो कभी दुख की ओर नहीं ले जाता, वह मार्ग जो बुद्धों ने दिखाया है।"
अब मैं उसी मार्ग पर चल रहा हूँ जिस पर पवित्र लोग चलते हैं।
इस प्रकार परमपिता ने अपने असीम ज्ञान से सब कुछ इन श्लोकों में समेटते हुए कहा। तब नारद ने उनसे फिर कहा, "राज्य का शासन अपने ऊपर ले लो।" उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे प्रिय पुत्र, मुझे राज्य नहीं चाहिए; परन्तु मैं सात दिनों तक उन सात सौ वर्षों में दिए गए दान को पुनः वितरित करना चाहता हूँ।" नारद तैयार हो गए और राजा के अनुरोध के अनुसार उन्होंने वितरण के लिए विशाल दान तैयार किया। सात दिनों तक राजा ने दान दिया; और सातवें दिन उनकी मृत्यु हो गई और वे तैंतीसवें स्वर्ग में पुनर्जन्म हुए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "पवित्र दिनों के व्रतों का पालन करना कर्तव्य है," और सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर, कुछ गृहस्थ भाइयों ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की प्राप्ति की, और कुछ ने द्वितीय मार्ग की:) और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा नारद थे, अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, और मैं स्वयं राजा साधना था।"

फुटनोट:

(1) इंद्र का दूसरा नाम शक्र।

(2) विद्वान समझाते हैं: "मैं तुम्हें अपने पुण्य का आधा भाग दूंगा, इसलिए मेरी शक्ति से यहीं रहो।"

(3) एरिथ्रिना इंडिका.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **दास-ब्राह्मण-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-495-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 495
दशा-ब्राह्मण-जातक

“धर्मी राजा,” इत्यादि—यह कथा गुरु (बुद्ध) ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक अतुलनीय दान का वर्णन है। इसका वर्णन आठवें ग्रंथ सुचिरा (*1) में मिलता है। हमें पता चलता है कि राजा ने दान बांटते समय, गुरु सहित पाँच सौ भिक्षुओं की परीक्षा ली और उनमें से सबसे पवित्र संतों को दान दिया। फिर वे सत्य के हॉल में बैठकर बातें करने लगे और राजा के पुण्य का गुणगान करते हुए बोले, “हे भिक्षु, राजा ने अतुलनीय दान देकर एक अत्यंत पुण्य कर्म का फल पाया है।” गुरु वहाँ आकर यह जानने को उत्सुक थे कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने गुरु को सब कुछ बताया। गुरु ने कहा, “हे भिक्षुओं, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कोसल के राजा, जो मेरे जैसे शिष्य हैं, विवेक से दान देते हैं। पुराने समय के बुद्धिमान पुरुष, बुद्ध के उदय से पहले भी, विवेक से दान देते थे।” इन शब्दों के साथ उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, कुरु राज्य और इंद्रप्रस्थ नगर में, युद्धित्तिल वंश के राजा कोरव्य का शासन था। उनके सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के सलाहकार विदुर नामक मंत्री थे। राजा के दान-पुण्य से पूरे भारत में हलचल मच गई थी; परन्तु दान प्राप्त करने और उसका लाभ उठाने वालों में से एक भी ऐसा नहीं था जिसने पंच सद्गुणों का पालन किया हो; सब दुष्ट थे, और राजा के दान से उन्हें कोई संतुष्टि नहीं मिली। राजा ने सोचा, "विवेचपूर्ण दान का फल महान होता है;" और सद्गुणी लोगों को दान देने की इच्छा से उन्होंने बुद्धिमान विदुर से परामर्श करने का निश्चय किया। जब विदुर उनसे मिलने आए, तो राजा ने उन्हें बैठने के लिए कहा और उनसे प्रश्न पूछा।

इसे समझाते हुए, गुरु ने पहले श्लोक का आधा भाग सुनाया। शेष सभी भाग राजा और विदुर के प्रश्न और उत्तर हैं।

"धर्मी राजा युधित्थिल ने एक बार बुद्धिमान विदुर से पूछा (*2):

"विधुर, मेरे लिए अच्छे ब्राह्मणों की खोज करो, जिनमें अपार ज्ञान निहित है।"
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं दान दूंगा, मेरे मित्र, ताकि मुझे अच्छा फल मिल सके।"
"ऐसे पवित्र पुरुष, ऐसे ब्राह्मण, जो बुद्धिमान और अच्छे हों, मिलना कठिन है।"
जो उन्हें हर तरह की वासना से बचाकर रखते हैं, ताकि वे आपका भोजन खा सकें।
"हे परम शक्तिशाली राजा, ब्राह्मणों के दस प्रकार होते हैं।
सुनो, मैं इनमें अंतर स्पष्ट करता हूँ, और इन सभी प्रकारों का वर्णन करता हूँ।
कुछ लोग अपनी पीठ पर जड़ों से भरे और कसकर बंधे बोरे ढोते हैं;
वे औषधीय जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करते हैं, स्नान करते हैं और जादू के मंत्रों का जाप करते हैं।
"हे महाराज, ये चिकित्सक के समान हैं और ब्राह्मण भी कहलाते हैं।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ लोग घंटियाँ लेकर आगे-आगे चलते हैं और चलते समय उन्हें बजाते हैं।
एक रथ जिसे वे कुशलता से चला सकते हैं, और संदेश पहुंचा सकते हैं:
"ये सेवकों के समान हैं, हे पराक्रमी राजा, और इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ लोग पानी का घड़ा और टेढ़ी लाठी लेकर राजा से मिलने दौड़ते हैं।
सभी कस्बों और गांवों से गुजरते हुए, और जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते हैं, गाते हुए—
"जंगल हो या शहर, हम कभी नहीं हिलते, जब तक आप कोई उपहार नहीं लाते!"
"ये लोग कर वसूलने वालों की तरह हड़बड़ी करते हैं, और ब्राह्मण भी कहलाते हैं।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ के नाखून लंबे थे, हाथ-पैर बालों से ढके थे, दांत गंदे थे और बाल उलझे हुए थे।
धूल और गंदगी से सने हुए, भिखारियों की तरह उनका हाल है:
"हे महामहिम, इन्हें लकड़ी काटने वाले और ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
चेरी बेर और विल्वा फल, गुलाब सेब, पके आम (*3)

लाबुज फल, लकड़ी के तख्ते, टूथब्रश और धूम्रपान पाइप।
"गन्ने की टोकरियाँ, मीठा शहद और मरहम भी, हे राजा।"
वे इन सभी चीजों का और कई अन्य चीजों का भी व्यापार करते हैं।
"हे महाराज, ये व्यापारियों के समान हैं, और इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ लोग व्यापार और पशुपालन करते हैं, कुछ लोग बकरियों के झुंड पालते हैं।
वे विवाह में देते और लेते हैं, और उनकी बेटियाँ सोने के लिए बेची जाती हैं (*4)।
वैश्य और अंबत्थ (*5) की तरह ये भी ब्राह्मण कहलाते हैं:
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
"कुछ पुजारी पैसे लेकर भविष्य बताते हैं, या जानवरों को नपुंसक बनाकर उन पर निशान लगाते हैं।"
भोजन उपलब्ध कराकर, गांववाले अक्सर उन्हें अपने यहां ठहरने के लिए आमंत्रित करते हैं।
वहां प्रतिदिन कई बार गायों, बैलों, सूअरों और बकरियों का वध किया जाता है।
"हे राजा, ये कसाइयों के समान नीच हैं, और इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ ब्राह्मण, तलवार और ढाल से लैस, हाथ में युद्ध कुल्हाड़ी लिए हुए,
व्यापारियों के खड़े होने से पहले कारवां का मार्गदर्शन करने के लिए तैयार।
"ये चरवाहों या साहसी डाकुओं की तरह हैं, फिर भी इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है:
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ लोग उनके लिए झोपड़ियाँ बनाते हैं और किसी भी जंगली इलाके में उनके लिए जाल बिछाते हैं।
मछलियों और कछुओं को पकड़ो, खरगोश, जंगली बिल्ली और छिपकली का पीछा करो।
"हे महाराज, ये शिकारी हैं, और इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"

विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे पुरुष जो बुरे कर्मों से मुक्त हैं, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
कुछ लोग सोने के लालच में शाही पलंग के नीचे लेट जाते हैं।
सोमा-बलिदान पर: राजा उनके सिर के ऊपर स्नान कर रहे हैं (*6)।
"ये नाई जैसे हैं? हे महाराज, इन्हें ब्राह्मण भी कहा जाता है।"
अब आप इस प्रकार के ब्राह्मणों को ठीक से जान गए हैं, तो हमें ऐसे ब्राह्मणों की ही तलाश करनी चाहिए?
राजा कोरव्य ने कहा:

"इन्हें ऐसा नाम पाने का कोई अधिकार नहीं है: इनका ब्राह्मणत्व खो गया है।"
विदुर, मेरे लिए कुछ ऐसे अन्य पुरुषों को ढूंढो जो बुद्धिमान और अच्छे हों।
"वे मनुष्य जो बुरी वासनाओं से मुक्त हों, वे मेरा भोजन खा सकें।"
इसलिए मैं भी दान दूंगा, ताकि मुझे स्वयं अच्छा फल प्राप्त हो सके।"
इस प्रकार, नाममात्र के ब्राह्मणों का वर्णन करने के बाद, उन्होंने अगले दो श्लोकों में उच्चतम अर्थों में ब्राह्मणों का वर्णन किया:

लेकिन हे प्रभु, ब्राह्मण भी हैं, जो बहुत बुद्धिमान और अच्छे पुरुष हैं।
बुरी वासनाओं से मुक्त होकर, तुम्हारे द्वारा अर्पित भोजन ग्रहण करो।
"वे केवल एक ही बार चावल का भोजन करते हैं: वे कभी भी मादक पेय को हाथ नहीं लगाते।"
अब जब आप इस प्रकार को अच्छी तरह से जान गए हैं, तो क्या हम इस तरह की तलाश करें?
जब राजा ने उनकी बात सुनी, तो उन्होंने पूछा, “हे मित्र विदुर, ये श्रेष्ठ गुणों वाले ब्राह्मण कहाँ निवास करते हैं?” “हे महाराज, सुदूर हिमालय में, नंदा पर्वत की एक गुफा में।” “तो हे ज्ञानी महाराज, अपनी शक्ति से उन ब्राह्मणों को यहाँ ले आइए।” तब राजा ने अत्यंत प्रसन्नता से यह श्लोक सुनाया:

"विधुर, उन ब्राह्मणों को यहाँ लाओ, वे कितने पवित्र और बुद्धिमान हैं।"
हे विदुर, उन्हें यहाँ आमंत्रित करो, विलंब न होने दो!
महान पुरुष ने अनुरोध के अनुसार कार्य करने की सहमति देते हुए कहा: "हे राजा! अब नगर में ढोल बजवाकर यह घोषणा करवाइए कि नगर को भव्य रूप से सजाया जाए, और नगर के सभी लोग दान दें, पवित्र दिन की प्रतिज्ञाएँ लें और सद्गुणों के प्रति समर्पित रहें; और आप भी अपने पूरे दरबार के साथ पवित्र दिन की प्रतिज्ञाएँ लें।" स्वयं उन्होंने भोर में भोजन किया और पवित्र दिन की प्रतिज्ञाएँ लीं, फिर शाम को चमेली के रंग की एक टोकरी मंगवाई और राजा के साथ पूर्ण प्रणाम करते हुए (*7) पच्चेक बुद्धों के गुणों का स्मरण करते हुए कहा: "उत्तरी हिमालय में, नंदा पर्वत की गुफा में निवास करने वाले पाँच सौ पच्चेक बुद्ध कल हमारा भोजन करें!" उन्होंने आठ मुट्ठी फूल हवा में उछाले। ये फूल तुरंत पाँच सौ पच्चेक बुद्धों पर, उनके निवास स्थान पर गिरे। उन्होंने विचार किया, तथ्य को समझा और निमंत्रण स्वीकार करते हुए कहा, "आदरणीय महोदय, हमें ज्ञानी विदुर ने आमंत्रित किया है, और वे कोई साधारण प्राणी नहीं हैं: उनके भीतर बुद्ध का बीज है, और इसी चक्र में वे बुद्ध बनेंगे। आइए हम उन पर कृपा करें।" महान सत्ता ने यह समझ लिया कि वे आज्ञा का पालन करेंगे, क्योंकि फूल वापस नहीं लौटे। तब उन्होंने कहा, "हे महान राजा! कल पच्चेक बुद्ध आएंगे; उनका आदर और पूजा कीजिए।" अगले दिन राजा ने उनका बड़ा आदर किया और उनके लिए एक विशाल चबूतरे पर कीमती आसन तैयार किए। पच्चेक बुद्ध, अनोत्तट्टा झील में, अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रतीक्षा करते हुए, वायु में यात्रा करके राजमहल में उतरे। राजा और बोधिसत्व ने श्रद्धापूर्वक उनके हाथों से प्याले ग्रहण किए और उन्हें चबूतरे पर बुलाया, उन्हें बैठाया, उनके हाथों में उपहार जल (*8) दिया और उन्हें अत्यंत स्वादिष्ट कठोर और कोमल भोजन परोसा।

भोजन के बाद, उसने उन्हें अगले दिन के लिए आमंत्रित किया, और इसी तरह अगले सात दिनों तक उन्हें कई उपहार दिए, और सातवें दिन उसने उन्हें सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। तब उन्होंने उसका धन्यवाद किया, और हवा में उड़ते हुए उसी स्थान पर लौट गए, और आवश्यक वस्तुएँ भी उनके साथ चली गईं।

यह प्रवचन समाप्त करने के बाद गुरु ने कहा: "हे भिक्षुओं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कोसल के राजा मेरे अनुयायी होने के कारण मुझे अतुलनीय वरदान दे रहे हैं, क्योंकि प्राचीन काल में, जब बुद्ध का अस्तित्व भी नहीं था, तब भी बुद्धिमानों ने ऐसा ही किया था।" फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद राजा थे और मैं स्वयं वह बुद्धिमान विदुर था।"

फुटनोट:

(1) अतुलनीय उपहार का उल्लेख संख्या 424, अदित्त जातक में किया गया है, लेकिन पाठक को महागोविन्द सूत्र की ओर निर्देशित किया जाता है।

(2) यह पंक्ति क्रमांक 401 में आती है

(3) उल्लिखित फल और वृक्ष हैं: मायरोबोलन (टर्मिनलिया चेबुला), एम्ब्लिक मायरोबोलन (एम्ब्लिका ऑफिसिनैलिस), आम, गुलाब-सेब (यूजेनिया जांबू/जामुन), बेलेरिक मायरोबोलन, आर्टोकार्पस लाकुचा, विल्वा (एगल मार्मेलोस), राजयतन की लकड़ी (? बुचानिया लैटिफोलिया)। ब्राह्मणों को फल या औषधीय जड़ी-बूटियाँ, शहद और मलहम बेचने की मनाही थी, अन्य चीजों का तो जिक्र ही नहीं।

(4) वे एक ऐसा विवाह आयोजित करते हैं जिसमें पुरुष उन्हें कीमत चुकाता है।

(5) एक मिश्रित जाति, एक ब्राह्मण पिता और एक वैश्य स्त्री से आई।

(6)सोमा अर्पण के बाद, राजा के लिए एक भव्य पलंग पर स्नान करने की प्रथा थी। एक ब्राह्मण नीचे लेटता था, और पवित्र जल, राजा के पापों को धोकर ब्राह्मण पर डाल देता था, जिसे बलि का बकरा बनने के बदले पलंग और उसके सभी आभूषण प्राप्त होते थे।

(7) शाब्दिक रूप से "पांच विश्राम" का प्रणाम, जिससे माथे, दोनों कोहनियों, कमर, घुटनों और पैरों से जमीन को स्पर्श किया जा सके।

(8) किसी वादे या दिए गए उपहार की पुष्टि में दाहिने हाथ में डाला गया पानी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भिक्खा-परंपरा-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-496-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 496
भिक्ख-परंपरा-जातक

“मैंने एक को बैठे हुए देखा,” इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक जमींदार के बारे में सुनाई थी। वह एक सच्चे और निष्ठावान भक्त थे और तथागत (बुद्ध) तथा संघ का निरंतर सम्मान करते थे। एक दिन उनके मन में ये विचार आया, “मैं बुद्ध, जो एक अनमोल रत्न हैं, और पवित्र संघ, जो एक अनमोल रत्न हैं, को उत्तम भोजन और कोमल वस्त्र देकर निरंतर सम्मान करता हूँ। अब मैं उस अनमोल रत्न धम्म, निर्वाण के मार्ग का सम्मान करना चाहता हूँ: परन्तु उसका सम्मान कैसे किया जाए?” इसलिए उन्होंने बहुत सारी सुगंधित मालाएँ और इसी प्रकार की वस्तुएँ लीं और जेतवन मठ गए, और गुरु को प्रणाम करते हुए उनसे यह प्रश्न पूछा, “हे गुरु, मेरी इच्छा है कि मैं धर्म के रत्न का सम्मान करूँ: मनुष्य इसे कैसे कर सकता है?” गुरु ने उत्तर दिया, “यदि तुम्हारी इच्छा धर्म के रत्न का सम्मान करने की है, तो धर्म के कोषाध्यक्ष आनंद का सम्मान करो।” “यह ठीक है,” उन्होंने कहा और ऐसा करने का वादा किया। उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया और अगले दिन उन्हें बड़े धूमधाम से अपने घर ले आए; उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु को एक भव्य आसन पर बिठाया और सुगंधित मालाओं आदि से उनका आदर-आराम किया, उन्हें कई प्रकार के उत्तम भोजन दिए और तीनों वस्त्रों के लिए पर्याप्त कीमती वस्त्र भेंट किए। वरिष्ठ भिक्षु ने सोचा, “यह सम्मान धर्म के रत्न को दिया गया है; यह मुझे नहीं, बल्कि धर्म के प्रमुख सेनापति को शोभा देता है।” अतः उन्होंने कटोरे में रखा भोजन और वस्त्र मठ में ले जाकर वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र को दे दिए। उन्होंने भी सोचा, “यह सम्मान धर्म के रत्न को दिया गया है; यह केवल और केवल धर्म के स्वामी, सर्वोच्च बुद्ध को शोभा देता है,” और उन्होंने इसे दशबल (बुद्ध) को दे दिया। गुरु ने अपने से ऊपर किसी को न समझते हुए भोजन ग्रहण किया और वस्त्र स्वीकार किए। और भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा की: "भाइयों, फलां जमींदार ने धर्म के मार्ग का सम्मान करते हुए धर्म के कोषाध्यक्ष, वरिष्ठ भिक्षु आनंद को दान दिया; उन्होंने स्वयं को इसके योग्य न समझते हुए इसे धर्म के सेनापति को दे दिया; और उन्होंने भी स्वयं को योग्य न समझते हुए तथागत (बुद्ध) को दे दिया। परन्तु तथागत (बुद्ध) ने अपने से ऊपर किसी को न देखकर यह जान लिया कि धर्म के स्वामी होने के नाते वे इसके योग्य हैं, और उन्होंने भोजन ग्रहण किया तथा उस वस्त्र को अपने वस्त्र के रूप में धारण कर लिया। इस प्रकार, भोजन का दान अपने वास्तविक स्वामी तक पहुँच गया।" गुरु ने प्रवेश करते हुए उनसे पूछा कि वे वहाँ बैठे-बैठे क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों, यह पहली बार नहीं है कि दान दिया गया भोजन क्रमिक रूप से योग्यों के हिस्से में आया है; ऐसा बहुत पहले, बुद्ध के समय से पहले भी होता था।" इन शब्दों के साथ, उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, ब्रह्मदत्त बनारस में धर्मपूर्वक शासन कर रहे थे। उन्होंने पाप के मार्ग त्याग दिए थे और दस राजगुणों का पालन करते थे। इस कारण उनका न्यायालय लगभग खाली हो गया। राजा ने अपने दोषों की खोज में अपने आसपास रहने वालों से लेकर सभी से पूछताछ शुरू की; परन्तु न तो स्त्रियों के कक्षों में, न नगर में, न ही आसपास के गांवों में, उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिला जो उनके विरुद्ध कोई दोष बता सके (*1)। तब उन्होंने गांववासियों से पूछताछ करने का निश्चय किया। अतः उन्होंने शासन अपने दरबारियों को सौंप दिया और पुरोहित को अपने साथ लेकर काशी राज्य में भेष बदलकर यात्रा की; फिर भी उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उनके विरुद्ध कोई दोष बता सके।

अंततः वह सीमावर्ती गाँव में पहुँचा और द्वार के बाहर एक सभागृह में बैठ गया। उसी समय, उस गाँव का एक ज़मींदार, जो अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति का धनी था, अपने दल के साथ स्नान करने जा रहा था, तभी उसने राजा को सभागृह में बैठे देखा। राजा का शरीर सुशोभित था और उसकी त्वचा सुनहरे रंग की थी। वह राजा पर मोहित हो गया और सभागृह में प्रवेश करते हुए बोला, "कुछ देर यहाँ ठहरिए।" फिर वह अपने घर गया और तरह-तरह के उत्तम भोजन की व्यवस्था करवाकर अपने भव्य सेवकों के साथ भोजन के पात्र लेकर लौटा। उसी समय, हिमालय से एक तपस्वी आया और वहाँ बैठ गया। वह पाँचों दिव्य शक्तियों से युक्त था। और नंदा पर्वत की एक गुफा से पच्चेक बुद्ध भी आकर वहाँ बैठ गए। ज़मींदार ने राजा को हाथ धोने के लिए जल दिया और तरह-तरह की उत्तम चटनी और मसालों (मिठाइयों) से युक्त भोजन की थाली राजा के समक्ष रख दी। राजा ने उसे ग्रहण किया और ब्राह्मण पुरोहित को दे दिया। पुजारी ने उसे लिया और तपस्वी को दे दिया। तपस्वी अपने बाएँ हाथ में भोजन का पात्र और दाएँ हाथ में जलपात्र लिए पच्चेक बुद्ध के पास गए, पहले उन्होंने दान का जल अर्पित किया और फिर भोजन को कटोरे में रखा। उन्होंने बिना किसी को भोजन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किए या अनुमति मांगे ही भोजन करना शुरू कर दिया। भोजन समाप्त होने पर, जमींदार ने सोचा: "मैंने यह भोजन राजा को दिया, राजा ने अपने पुजारी को, पुजारी ने तपस्वी को और तपस्वी ने पच्चेक बुद्ध को; पच्चेक बुद्ध ने बिना अनुमति मांगे ही इसे खा लिया। इस तरह से देने का क्या अर्थ है? अंतिम व्यक्ति ने बिना अनुमति के या बिना अनुमति के क्यों खाया? मैं उनसे एक-एक करके पूछूंगा।" फिर वह बारी-बारी से प्रत्येक के पास गए और उन्हें प्रणाम करके अपना प्रश्न पूछा, जिस पर उन्होंने उत्तर दिया।

मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जो सिंहासन के योग्य था, जो एक राज्य से आया था।
महलों से रहित रेगिस्तानों तक, सबसे नाजुक संरचना।
"मैंने दया करके उसे खाने के लिए धान के दाने दिए।"
चावल का एक ऐसा ढेर जो इतनी अच्छी तरह से पका हुआ है जैसे पुरुष मांस पर डालते हैं।
"तुमने भोजन लिया और ब्राह्मण को दे दिया, स्वयं स्वयं कुछ नहीं खाया।"
मैं अत्यंत सम्मानपूर्वक पूछना चाहता हूँ, आपने क्या किया है?
"मेरे शिक्षक, मेरे पादरी, वे छोटे-बड़े सभी कर्तव्यों के प्रति उत्साही थे,
मुझे खाना उसे दे देना चाहिए, क्योंकि वह इसका हकदार है।
"हे ब्राह्मण, जिनका राजा भी आदर करते हैं, कहो कि तुमने भोजन क्यों नहीं किया (*2)
चावल का वह ढेर, जो बहुत अच्छे से पका हुआ है, जिसे पुरुष मांस के ऊपर डालते हैं।
"आपको इस उपहार के दायरे का ज्ञान नहीं था, लेकिन आपने इसे उस ऋषि को सौंप दिया।"
मैं पूरे सम्मान के साथ पूछना चाहता हूँ, आपने क्या किया है?
मैं पत्नी और परिवार का भरण-पोषण करता हूँ, घरों में भी रहता हूँ।
मैं एक राजा की तरह अपनी वासनाओं पर शासन करता हूँ, और अपनी स्वयं की वासनाओं को भी पूरा करता हूँ।
"जंगल में लंबे समय से रह रहे एक बुद्धिमान तपस्वी पुरुष के पास,
मुझे, जो वृद्ध और धार्मिक (तपस्वी) परंपरा में अभ्यस्त हूँ, भोजन देना चाहिए।
अब मैं उस दुबले-पतले ऋषि से पूछता हूँ, जिसकी त्वचा पर नीचे की सभी नसें दिखाई देती हैं,
लंबे नाखून, बिखरे बाल, गंदा सिर और दांत:
"क्या तुम्हें जीवन की कोई परवाह नहीं है, हे जंगल में अकेले रहने वाले?"
जिस भिक्षु को आपने भोजन दिया, वह बेहतर इंसान कैसे बन गया?
मैं जंगली कंद और मूली खोदता हूँ, कैटमिंट और जड़ी-बूटियाँ खोजता हूँ।
जंगली चावल और काली सरसों को तोड़कर या झाड़कर सुखा लें।
बेर, जड़ी-बूटियाँ, शहद, कमल के रेशे, चेरी बेर, मांस के टुकड़े,
यह मेरी संपत्ति है, और मैं इन्हें लेकर खाने योग्य बनाता हूँ।
मैं खाना बनाती हूँ, वो नहीं बनाता: मेरे पास धन है, उसके पास कुछ नहीं: मैं बुरी तरह बंधी हुई हूँ

सांसारिक चीजों के प्रति तो वह स्वतंत्र है, लेकिन भोजन उसका स्वाभाविक अधिकार है।
"मैं वहां बैठे भाई से पूछता हूं, जिनकी सारी इच्छाएं दबी हुई हैं;
चावल का यह ढेर, पूरी तरह पका हुआ और स्वादिष्ट, जिसे लोग अपने भोजन पर डालते हैं।
"तुमने इसे लिया, और बड़े चाव से खाया, और किसी के साथ साझा नहीं किया;"
मैं पूरे सम्मान के साथ पूछना चाहता हूँ, आपने क्या किया है?
मैं न तो खाना पकाता हूँ, न ही खाना पकवाता हूँ, न ही नष्ट करता हूँ और न ही नष्ट करवाता हूँ;
वह जानता था कि मेरे पास कोई धन-दौलत नहीं है, मैं सभी पापों से दूर रहता हूँ।
"उसने अपने दाहिने हाथ में बर्तन और अपने बाएं हाथ में भोजन रखा हुआ था।"
मुझे वो शोरबा दिया जो लोग मांस पर डालते हैं, चावल का वो मिश्रण बहुत स्वादिष्ट था;
उनके पास संपत्ति है, उनके पास धन है, उनका कर्तव्य है देना:
जो दाता से खाने की मांग करता है, वह शत्रु है, यह बात अच्छी तरह जान लो।
ये शब्द सुनकर, जमींदार ने अत्यंत प्रसन्नता से अंतिम दो छंद दोहराए:

"आज मेरे लिए यह एक सुखद संयोग था कि राजा यहाँ आए।"
मुझे पहले कभी पता नहीं था कि भरपूर फल मिलने से कितने बड़े उपहार मिलते हैं।
"राजा अपने राज्यों में, ब्राह्मण अपने काम में लोभ से भरे हुए हैं।"
फल और जड़ें चुनते समय ज्ञानी लोग कहते हैं: "भाई-बहन पाप से मुक्त हो जाते हैं।"
पच्चेक बुद्ध ने उन्हें प्रवचन देने के बाद, तपस्वी सहित अपने स्थान के लिए प्रस्थान किया। राजा कुछ दिन उनके साथ रहने के बाद बनारस के लिए रवाना हो गया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि भोजन उसे मिला जो उसका हकदार था, क्योंकि ऐसा पहले भी हो चुका है।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय, धर्म मार्ग का पालन करने वाला जमींदार कथा का जमींदार था, आनंद राजा थे, सारिपुत्र पुरोहित थे, और मैं स्वयं हिमालय में रहने वाला तपस्वी था।"

फुटनोट:

(1)संख्या 151 की तुलना करें

(2)गौतम यहाँ केवल ब्राह्मण का गोत्र-नाम है, वद्धम सही पाठ है, उबले हुए चावल।

पुस्तक XV. VISATI-NIPATA:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **मातंग-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-497-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 497
मातंग-जातक

“आप कहाँ से आए हैं,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए राजा उदेना के बारे में सुनाई थी। उस समय, पूज्य पिंडोला-भरद्वाज जेतवन मठ से वायु मार्ग से गुजरते हुए अक्सर दिन की तपिश कोसंबी स्थित राजा उदेना के उद्यान में बिताते थे। कहा जाता है कि पूर्व जन्म में वे राजा थे और अपने सेवकों के साथ लंबे समय तक उसी उद्यान में वैभव का आनंद लेते रहे थे। उनके द्वारा किए गए पुण्य कर्मों के फलस्वरूप वे दिन की तपिश में वहाँ बैठकर समाधि की प्राप्ति का आनंद लेते थे।

एक दिन वह उस स्थान पर, फूलों से लदे साल के पेड़ के नीचे बैठे थे, तभी उडेना अपने कई अनुयायियों के साथ उद्यान में आए। वे सात दिनों से शराब पी रहे थे और उद्यान में आनंद लेना चाहते थे। वे अपनी एक दासी की बाहों में राजसी आसन पर लेट गए और नशे में धुत्त

होकर जल्दी ही सो गए। तब आसपास बैठीं गीत गा रही स्त्रियों ने अपने वाद्य यंत्र नीचे रख दिए और फूल-फल इकट्ठा करने के लिए बगीचे में घूमने लगीं। कुछ समय बाद उन्होंने उस वृहत्तर भिक्षु को देखा और उनके पास आकर प्रणाम किया और बैठ गईं। वृहत्तर भिक्षु वहीं बैठे रहे और उन्हें प्रवचन देने लगे। दूसरी स्त्री ने अपनी बाहें हिलाकर राजा को जगाया और कहा, "ये मूर्ख कहाँ गए?" उसने उत्तर दिया, "ये एक तपस्वी के चारों ओर घेरा बनाकर बैठे हैं।" राजा क्रोधित हो गए और वृहत्तर भिक्षु के पास जाकर उन्हें अपशब्द कहने लगे, "भाड़ में जाए ये! मैं इसे लाल चींटियों से कुतरवा दूँगा!" क्रोधित होकर उन्होंने लाल चींटियों से भरी टोकरी वृहत्तर भिक्षु के शरीर पर तुड़वा दी। लेकिन वरिष्ठ भिक्षु वायु में उठे और राजा को फटकारा; फिर वे जेतवन मठ गए और सुगंधित कक्ष के द्वार पर उतरे। तथागत (बुद्ध) ने पूछा, "तुम कहाँ से आए हो?" और उन्होंने उन्हें सच्चाई बताई। उन्होंने कहा, "भारद्वाज, यह पहली बार नहीं है कि उदेना ने किसी धार्मिक व्यक्ति का अपमान किया है, बल्कि उसने पहले भी ऐसा किया था।" फिर वरिष्ठ भिक्षु के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, तब महान पुरुष का जन्म नगर के बाहर एक चांडाल के पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम मतंग (हाथी) रखा गया (*1)। बाद में उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और ज्ञानी मतंग के रूप में उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उस समय बनारस के एक व्यापारी की पुत्री दित्था-मंगलिका (*2) हर दो महीने में एक बार अपने साथियों के साथ उद्यान में घूमने आती थी। एक दिन, महान पुरुष किसी काम से नगर गए थे और द्वार से प्रवेश करते समय उनकी मुलाकात दित्था-मंगलिका से हुई। वे एक तरफ हट गए और वहीं खड़े रह गए। दित्था-मंगलिका ने अपने पर्दे के पीछे से उन्हें देखा और पूछा, "यह कौन है?" "एक चांडाल, मेरी स्वामिनी।" "अरे!" दित्था-मंगलिका बोली, "मैंने कुछ ऐसा देख लिया है जो दुर्भाग्य लाता है," और सुगंधित जल से अपनी आँखें धोकर वह वापस मुड़ गई। उसके साथ आए लोग चिल्लाए, "अरे, नीच अछूत, तुमने आज हमारा मुफ्त खाना और शराब छीन ली!" गुस्से में आकर उन्होंने ज्ञानी मतंगा को हाथों-पैरों से पीटा, उसे बेहोश कर दिया और चले गए। कुछ देर बाद जब उसे होश आया तो उसने सोचा, "दित्था-मंगलिका के चारों ओर मौजूद भीड़ ने मुझे बेवजह पीटा, मैं तो निर्दोष हूँ। जब तक मैं उसे पा नहीं लेता, तब तक मैं हिलूंगा नहीं, एक पल भी नहीं।" इसी दृढ़ निश्चय के साथ वह गया और उसके पिता के घर के दरवाजे पर लेट गया। जब लोगों ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों लेटा है, तो उसने उत्तर दिया, "मुझे बस दित्था-मंगलिका चाहिए।" एक दिन बीता, फिर दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा। बुद्धों का संकल्प अटल होता है; इसलिए सातवें दिन वे उस लड़की को बाहर लाए और उसे मतंगा को सौंप दिया। तब उसने कहा, "उठिए, गुरुजी, चलिए हम आपके घर चलते हैं।" लेकिन मतंगा ने कहा, "देवी, आपके लोगों ने मुझे बहुत पीटा है, मैं कमजोर हूँ, मुझे अपनी पीठ पर उठा लीजिए और ले जाइए।" तो उसने वैसा ही किया, और नागरिकों की पूरी नजरों के सामने शहर से निकलकर चंदाला बस्ती की ओर चली गई।

कुछ दिनों तक उस महान पुरुष ने उसे वहाँ रखा, जाति के नियमों का किसी भी प्रकार से उल्लंघन किए बिना। फिर उन्होंने सोचा, "संसार का त्याग करके ही, और किसी अन्य तरीके से नहीं, मैं इस महिला को सर्वोच्च सम्मान दे पाऊँगा और उसे सर्वोत्तम उपहार दे पाऊँगा।" अतः उन्होंने उससे कहा, "देवी, यदि मैं वन से कुछ नहीं लाता, तो हम जीवित नहीं रह सकते। मैं वन में जाता हूँ; मेरे लौटने तक प्रतीक्षा करो, लेकिन चिंता मत करो।" उन्होंने गृहस्थों को आदेश दिया कि वे उसकी उपेक्षा न करें, और स्वयं वन में चले गए, और पूरी लगन से एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया; इस प्रकार सात दिनों में उन्होंने अष्टम सिद्धियाँ और पाँच अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं। फिर उन्होंने सोचा, "अब मैं दित्था-मंगलिका की रक्षा कर पाऊँगा।" अपनी अलौकिक शक्ति से वे वापस लौटे, और चंदाल गाँव के द्वार पर उतरे, जहाँ से वे दित्था-मंगलिका के घर के द्वार की ओर बढ़े। जब उसने उसके लौटने की खबर सुनी, तो वह बाहर आई और रोने लगी, “हे गुरुदेव, आपने मुझे क्यों त्याग दिया और संन्यासी बन गए?” उसने कहा, “कोई बात नहीं, देवी, अब मैं तुम्हें तुम्हारी पिछली महिमा से भी अधिक गौरवशाली बना दूंगा। क्या तुम लोगों के बीच यह कह पाओगी: “मेरे पति मतंग नहीं, बल्कि महान ब्रह्मा हैं?” “जी, गुरुदेव, मैं कह सकती हूँ।” “अच्छा, जब लोग तुमसे पूछें कि तुम्हारे पति कहाँ हैं, तो तुम्हें उत्तर देना, वे ब्रह्मा के स्वर्ग (देवदूतों के स्वर्ग) में गए हैं। यदि वे पूछें कि वे कब लौटेंगे, तो तुम्हें कहना, वे सात दिनों में पूर्णिमा के दिन चंद्रमा को चीरते हुए लौटेंगे।” ये कहकर वे हिमालय चले गए।

दित्था-मंगलिका ने बनारस में इधर-उधर से सुनी हुई बातें एक विशाल जनसमूह के सामने बताईं। लोगों ने विश्वास करते हुए कहा, "अरे, ये तो ब्रह्मा हैं, इसलिए दित्था-मंगलिका के पास नहीं आते, बल्कि ऐसा ही होगा।" पूर्णिमा की रात, जब चंद्रमा मध्य पथ पर स्थिर होता है, तब बोधिसत्व ने ब्रह्मा का रूप धारण किया और काशी राज्य और बनारस नगर (12 लीग x 4.23 किमी) में फैले हुए प्रकाश की तेज किरण के बीच चंद्रमा को भेदकर पृथ्वी पर उतरे। उन्होंने बनारस नगर के ऊपर तीन बार परिक्रमा की और विशाल जनसमूह से सुगंधित मालाएँ और अन्य भेंटें प्राप्त कीं, फिर अपना मुख चांडाल गाँव की ओर किया। ब्रह्मा के भक्त एकत्रित होकर चांडाल गाँव गए। उन्होंने दित्था-मंगलिका के घर को सफेद वस्त्रों से ढक दिया, जमीन को चार प्रकार की सुगंधित वस्तुओं से साफ किया, फूल बिखेरे, अगरबत्ती जलाई, शामियाना लगाया, एक भव्य आसन तैयार किया, सुगंधित तेल का दीपक जलाया, द्वार पर चांदी की थाली के समान सफेद और चिकनी रेत रखी, फूल बिखेरे और झंडे लगाए। इस प्रकार सजे हुए घर के सामने भगवान नीचे आए, प्रवेश किया और थोड़ी

देर आसन पर बैठे। उस समय दित्था-मंगलिका मासिक धर्म में थीं। उनके (*3) अंगूठे ने उनकी नाभि को छुआ और वे गर्भवती हो गईं। तब उस महान प्राणी ने उससे कहा, "हे देवी, तुम गर्भवती हो और पुत्र को जन्म दोगी; तुम्हें और तुम्हारे पुत्र को सर्वोच्च सम्मान और भेंट प्राप्त होगी; जिस जल से तुम अपने पैर धोओगी, उसका उपयोग भारत भर में राजा धार्मिक अनुष्ठानों में छिड़काव के लिए करेंगे; जिस जल से तुम स्नान करोगी, वह अमरता का अमृत होगा; जो इसे अपने सिर पर छिड़केंगे, वे सभी रोगों से मुक्त हो जाएंगे और उन पर कभी दुर्भाग्य नहीं आएगा; जो तुम्हारे चरणों में सिर रखकर तुम्हें प्रणाम करेंगे, उन्हें एक हजार सिक्के देने होंगे; जो तुम्हारी उपस्थिति में तुम्हें प्रणाम करेंगे, उन्हें सौ सिक्के देने होंगे; जो तुम्हारी दृष्टि में आकर तुम्हें प्रणाम करेंगे, उन्हें एक-एक रुपया देना होगा। सावधान रहो!" यह सलाह देकर, भीड़ के सामने, वह उठ खड़ा हुआ और चंद्रमा में समा गया।

ब्रह्मा के भक्त एकत्रित हुए और पूरी रात वहीं खड़े रहे; सुबह उन्होंने उन्हें सोने की पालकी में बिठाया और उसे अपने सिर पर उठाकर नगर में ले गए। एक विशाल जनसमूह उनके पास आया और जोर-जोर से पुकारने लगा, "महान ब्रह्मा की पत्नी!" और सुगंधित मालाओं और अन्य वस्तुओं से उनकी पूजा की; जिन्हें उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम करने की अनुमति मिली, उन्होंने एक हजार सिक्कों का थैला दिया, जिन्हें उनकी उपस्थिति में प्रणाम करने की अनुमति मिली, उन्होंने सौ सिक्के दिए और जिन्हें उनकी दृष्टि में खड़े होकर प्रणाम करने की अनुमति मिली, उन्होंने एक-एक रुपया दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने मार्ग में बारह लीग (4.23 किमी) के पूरे बनारस नगर को शामिल किया और अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये की राशि प्राप्त की।

इस प्रकार उस नगर का चक्कर लगाने के बाद, वे उसे नगर के केंद्र में ले आए, और वहाँ एक विशाल मंडप बनवाया, उसके चारों ओर पर्दे लगवाए, और उसे वहाँ वैभव और समृद्धि के बीच निवास करने का प्रबंध किया। मंडप के सामने, उन्होंने सात विशाल प्रवेश द्वार और सात मंजिला महल का निर्माण शुरू किया: इससे उनके खाते में बहुत बड़ा पुण्य जुड़ गया।

उसी मंडप में दित्था-मंगलिका ने पुत्र को जन्म दिया। उसके जन्मदिवस पर ब्राह्मण एकत्रित हुए और उसका नाम मांडव्य-कुमार रखा, अर्थात् मंडप का राजकुमार, क्योंकि उसका जन्म वहीं हुआ था। दस महीनों में महल बनकर तैयार हो गया: तब से वह (*4) उसमें अत्यंत सम्मान के साथ रहने लगी। और राजकुमार मांडव्य का पालन-पोषण अत्यंत वैभव के बीच हुआ। जब वह सात या आठ वर्ष का था, तब भारत के कोने-कोने से सर्वश्रेष्ठ शिक्षक एकत्रित हुए और उन्होंने उसे तीनों वेदों की शिक्षा दी। सोलह वर्ष की आयु से वह ब्राह्मणों को भोजन उपलब्ध कराने लगा और सोलह हजार ब्राह्मणों को निरंतर भोजन कराया जाता था; चौथे प्राचीर द्वार पर ब्राह्मणों को भिक्षा दी जाती थी।

एक बड़े उत्सव के दिन उन्होंने बड़ी मात्रा में चावल का दलिया तैयार किया, और सोलह हजार ब्राह्मण चौथे द्वार पर बैठकर इस भोजन का आनंद लिया। भोजन के साथ उन्होंने सुनहरे पीले रंग का ताजा घी, शहद और चीनी का मिश्रण भी खाया। राजकुमार स्वयं गहनों से सुसज्जित, पैरों में सोने की चप्पलें और हाथ में सोने की छड़ी लिए हुए घूम रहे थे और निर्देश दे रहे थे, "घी यहाँ, शहद यहाँ।" उसी समय हिमालय में अपने आश्रम में बैठे ज्ञानी मतंग ने दित्था-मंगलिका के पुत्र के बारे में जानने के लिए विचार किया। यह देखकर कि वह गलत रास्ते पर जा रहे हैं, उन्होंने सोचा, "आज मैं जाकर उस युवक का धर्म परिवर्तन कराऊंगा और उसे दान देने का तरीका सिखाऊंगा ताकि दान से भरपूर फल मिले।" वे वायुमार्ग से अनोटत्ता झील गए और वहाँ उन्होंने अपना मुँह धोया, इत्यादि। मनोशिला (*5) जिले में खड़े होकर, उन्होंने रंगीन वस्त्रों का जोड़ा पहना, कमरबंद बांधा, फटे-पुराने वस्त्र ओढ़े, मिट्टी का कटोरा लिया और हवा में उड़ते हुए चौथे द्वार तक गए, जहाँ वे भिक्षागृह के ठीक बगल में उतरे और एक तरफ खड़े हो गए। मांडव्य ने इधर-उधर देखते हुए उन्हें देखा। "तुम कहाँ से आए हो?" वह चिल्लाया, "हे तपस्वी, हे अपराधी, हे कुकुल के बहिष्कृत, हे राक्षस, न कि मनुष्य?" और उसने पहला श्लोक दोहराया:

"तुम जहां से आए हो, गंदे वस्त्र पहने हुए,
मैं कसम खाता हूँ, वह एक घिनौना और भूतिया प्राणी था।
तुम्हारे सीने पर चिथड़ों से बना एक लबादा,
उपहार के अयोग्य—कहिए, आप कौन हैं?
उस महान सत्ता ने सुना, फिर कोमल हृदय से दूसरे श्लोक के शब्दों में उससे कहा:

"हे महोदय, भोजन तैयार है।"
लोग इसका स्वाद लेते हैं, खाते हैं और पीते हैं:
आप जानते हैं कि हम जो कुछ भी संयोगवश प्राप्त होता है, उसी से अपना जीवन यापन करते हैं;
उठो! नीची जाति के देहाती को भी थोड़ा आनंद लेने दो।
तब मांडव्य ने तीसरा श्लोक पढ़ा:

"ब्राह्मणों के लिए, मेरे आशीर्वाद के लिए, मेरे हाथों से"
यह भोजन प्राप्त हुआ है, निष्ठावान हृदय का उपहार।

दूर हटो! मेरी नजरों में यहाँ खड़े रहने का क्या मतलब है?
 यह तुम्हारे जैसे लोगों के लिए नहीं है: नीच दुष्ट, यहाँ से चले जाओ!
इस पर उस महान सत्ता ने एक श्लोक दोहराया:

वे ऊँची और नीची दोनों जगहों पर बीज बोते हैं।
 फल की उम्मीद में, और दलदली मैदान पर:
इसी विश्वास के साथ अपने उपहार दें;
 योग्य प्राप्तकर्ताओं को यह अवश्य प्राप्त होगा।
तब मांडव्य ने एक श्लोक दोहराया:

मैं उन जमीनों को जानता हूँ जिनमें मैं बीज बोना चाहता हूँ।
 इस संसार में बीज बोने के लिए उपयुक्त स्थान,
उच्च कुल के ब्राह्मण, जिन्हें पवित्र शास्त्रों का ज्ञान है:
 ये ज़मीनें वाकई अच्छी और उपजाऊ हैं।
फिर उस महान सत्ता ने दो छंद दोहराए:

जन्म का गौरव, अति आत्मविश्वास और आत्म-अभिमान,
 नशा, घृणा, अज्ञानता और लोभ
जिनके हृदयों में ये बुराइयाँ घर कर जाती हैं,
 ये सभी बीज बोने के लिए बंजर और अनुपयुक्त खेत हैं।
जन्म का गर्व, अति आत्मविश्वास, आत्म-अभिमान,
 नशा, घृणा, अज्ञानता और लोभ
जिनके हृदय में इन बुराइयों के लिए कोई स्थान नहीं है,
 ये सभी बीज बोने के लिए अच्छे और उपजाऊ खेत हैं।"
ये शब्द उस महान प्राणी ने बार-बार दोहराए; लेकिन दूसरा क्रोधित हो गया और चिल्लाया—"यह आदमी बहुत ज्यादा फिजूलखर्ची करता है। मेरे कुली कहाँ गए हैं कि वे इस देहाती को बाहर नहीं निकाल देते?" फिर उसने एक श्लोक दोहराया:

"हे भंडाकुच्ची, उपज्झाय हो!
 और उपजोतिया कहाँ है, मैं पूछता हूँ?
उस आदमी को सज़ा दो, उसे मार डालो, जाओ--
 और उस बदतमीज़ देहाती को गले से पकड़कर घसीट कर ले जाओ!
उसकी पुकार सुनकर वे लोग दौड़ते हुए आए और उसे प्रणाम करते हुए पूछा, "हम क्या करें, महाराज?" "क्या तुमने कभी इस नीच, बहिष्कृत व्यक्ति को देखा है?" "नहीं, महाराज, हमें पता ही नहीं चला कि वह यहाँ आया है: वह कोई जादूगर है, या कोई धूर्त बदमाश।" "तो फिर तुम यहाँ क्यों खड़े हो?" "हम क्या करें, महाराज?" "क्यों, इसके मुँह पर प्रहार करो, इसका जबड़ा तोड़ दो, इसकी पीठ छड़ियों और लकड़ी के डंडों से फाड़ दो, इसे दंडित करो, इस दुष्ट का गला पकड़ो, इसे नीचे गिरा दो, इसे इस जगह से भगा दो!" लेकिन इससे पहले कि वे उस पर हमला कर पाते, वह महान प्राणी हवा में ऊपर उठ गया और वहाँ स्थिर होकर एक श्लोक दोहराया:

"किसी ऋषि का अपमान करना! धधकती आग को निगलने से भी कोई लाभ नहीं होता।"
या फिर कठोर लोहे को दांतों से काट लो, या अपने नाखूनों से पहाड़ को खोद डालो।"
ये शब्द कहते ही वह महान सत्ता आकाश में बहुत ऊपर उठ गई, जबकि युवक और ब्राह्मण उस दृश्य को देखते रह गए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने एक श्लोक सुनाया:

सत्य और न्याय के रक्षक ऋषि मतंगा ने ऐसा कहा था।
फिर वह ब्राह्मणों की दृष्टि के सामने आकाश में बहुत ऊपर उठ गया।
उसने अपना मुख पूर्व दिशा की ओर किया और एक गली में उतरकर, इस इरादे से कि उसके पदचिह्न दिखाई दें, पूर्वी द्वार के पास भिक्षा माँगने लगा; फिर, कुछ मिश्रित भोजन एकत्र करके, वह एक विशेष कक्ष में बैठ गया और खाने लगा। परन्तु नगर के देवता वहाँ आ गए, क्योंकि उन्हें यह असहनीय लगा कि राजा ने ऐसा कुछ कहा जिससे उनके ऋषि को ठेस पहुँची। अतः उनमें से सबसे बड़े राक्षस ने मांडव्य की गर्दन पकड़कर मरोड़ दी, और अन्य राक्षसों ने दूसरे ब्राह्मणों को पकड़कर उनकी गर्दनें मरोड़ दीं। परन्तु बोधिसत्व पर दया करके उन्होंने मांडव्य को नहीं मारा: "वह उनका पुत्र है," उन्होंने कहा, और केवल उसे कष्ट दिया। मांडव्य का सिर इस प्रकार मुड़ा हुआ

था कि वह उसके कंधों के ऊपर पीछे की ओर देख रहा था; हाथ-पैर अकड़े हुए और बेजान थे; उसकी आँखें ऊपर की ओर उठी हुई थीं, मानो वह मृत हो: वह वहीं बेजान पड़ा रहा। अन्य ब्राह्मण मुँह से झाग उगलते हुए गोल-गोल घूमने लगे। लोग दित्था-मंगलिका के पास गए और उनसे कहा, "हे देवी, आपके पुत्र को कुछ हो गया है!" वह तुरंत वहाँ पहुँचीं और उसे देखकर रो पड़ीं, "अरे, यह क्या है!" और एक श्लोक सुनाया:

"उसका सिर कंधे के ऊपर मुड़ा हुआ है;"
देखो वह कैसे बेबस होकर अपना हाथ फैला रहा है!
उसकी आंखें इतनी सफेद हैं मानो वह बिल्कुल मर चुका हो:
हे, मेरे बेटे को यह हानि किसने पहुंचाई है?
फिर वहां मौजूद लोगों ने एक श्लोक दोहराया और उसे इसके बारे में बताया:

"एक साधु आया, गंदे वस्त्र पहने हुए,
देखने में एक घिनौना और भूतिया सा प्राणी।
उसके सीने पर चिथड़ों से बना एक लबादा था:
जिस व्यक्ति ने आपके बेटे के साथ ऐसा व्यवहार किया, वही वह व्यक्ति है।
यह सुनकर उसने सोचा: "किसी और के पास यह शक्ति नहीं है, निस्संदेह यह बुद्धिमान मतंगा के पास ही होगी! लेकिन जो दृढ़ है और सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना रखता है, वह कभी भी इन सभी लोगों को कष्ट में छोड़कर नहीं जाएगा। अब वह किस दिशा में गया होगा?" यही प्रश्न उसने निम्नलिखित श्लोक में पूछा:

"वह ज्ञानी व्यक्ति किस दिशा में गया?"
हे महानुभावों, कृपया मुझे इस प्रश्न का उत्तर दें!
आओ, हम इस अपराध के लिए प्रायश्चित करें।
हम अपने बेटे को फिर से जीवित कर सकें।"
उन युवकों ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:

वह बुद्धिमान व्यक्ति आकाश में ऊपर उठ गया।
जैसे चंद्रमा अपने मध्यकाल में पंद्रहवें दिन हो:
सत्य में स्थापित ऋषि, दर्शन में सुंदर।
इसके अलावा वह पूर्व दिशा की ओर मुड़ गया।
यह उत्तर मिलने पर उसने कहा, "मैं अपने पति को ढूँढूँगी!" और सोने के घड़े और सोने के प्याले लेकर, दासियों के एक समूह से घिरी हुई, वह उस स्थान पर गई जहाँ उसके पदचिह्न पड़े थे; वह उनका पीछा करती हुई तब तक गई जब तक वह उसे एक आसन पर बैठे भोजन करते हुए नहीं देख लिया। पास आकर उसने उसे प्रणाम किया और वहीं खड़ी हो गई। उसे देखकर उसने अपने कटोरे में कुछ उबले हुए चावल डाले। दित्था मंगलिका ने सोने के घड़े से उसके लिए पानी डाला; उसने तुरंत अपने हाथ धोए और मुँह साफ किया। फिर उसने कहा, "मेरे बेटे के साथ यह क्रूरता किसने की है?" इस श्लोक को दोहराते हुए:

"उसका सिर कंधे के ऊपर मुड़ा हुआ है;"
देखो वह कैसे बेबस होकर अपना हाथ फैला रहा है!
उसकी आंखें सफेद हैं, मानो वह बिल्कुल मर चुका हो:
हे, मेरे बेटे को यह हानि किसने पहुंचाई है?
इसके बाद के छंदों को दोनों बारी-बारी से पढ़ते हैं:

"वहाँ ऐसे पिशाच हैं, जिनकी शक्ति और सामर्थ्य बहुत अधिक है।"
जो ऋषियों का अनुसरण करते हैं, उन्हें देखना सुंदर है:
उन्होंने आपके बेटे को दुष्ट स्वभाव वाला, भावुक देखा।
और उन्होंने तुम्हारे बेटे के साथ तुम्हारे लिए ऐसा व्यवहार किया है।"
"तो फिर ये काम जिन्नों ने किया है।"
हे पवित्र पुरुष, मुझ पर क्रोधित मत हो!
हे भाई! मेरे बेटे के प्रति प्रेम से परिपूर्ण!
मैं शरण लेने के लिए आपके चरणों में आता हूँ!

"तो मैं आपको बता दूं कि मेरे दिमाग ने छिपा लिया था।"
न तब, न अब, शत्रुता का कोई विचार:
आपका पुत्र, काल्पनिक ज्ञान के बल पर, अभिमान में चूर होकर,
तीनों वेदों का अर्थ नहीं जानता।"
"हे भाई! सचमुच एक आदमी पा सकता है
थोड़े ही समय में उसकी सारी इंद्रियां सुन्न हो गईं।
हे ज्ञानी ऋषि, मेरी एक गलती के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए!
जो बुद्धिमान होते हैं वे क्रोध में कभी उग्र नहीं होते।
इस प्रकार उसके द्वारा शांत किए जाने पर उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं तुम्हें अमर जीवन का अमृत दूंगा, जिससे भूत-प्रेत चले जाएंगे"; और उसने यह श्लोक सुनाया:

"मेरे बचे हुए भोजन का यह टुकड़ा अपने साथ ले जाओ,"
बेचारे मूर्ख मांडव्य को भी एक टुकड़ा खाने दो:
आपका पुत्र स्वस्थ होकर आपको वापस मिल जाएगा।
और इस प्रकार पिशाच अपने शिकार को मुक्त कर देंगे।
जब उसने उस महान प्राणी के शब्द सुने, तो उसने एक सोने का कटोरा आगे बढ़ाते हुए कहा, "हे स्वामी, मुझे अमरत्व का अमृत दीजिए!" उस महान प्राणी ने उसमें अपने चावल के दलिया की कुछ बूँदें डालीं और कहा, "पहले इसका आधा भाग अपने पुत्र के मुँह में डालो; शेष भाग को एक पात्र में पानी में मिलाकर अन्य ब्राह्मणों के मुँह में डाल दो; वे सब स्वस्थ हो जाएँगे।" फिर वह उठा और हिमालय की ओर प्रस्थान कर गया। वह घड़ा अपने सिर पर उठाकर चिल्लाई, "मुझे अमरत्व का अमृत मिल गया!" घर पहुँचकर उसने सबसे पहले उसमें से कुछ अपने पुत्र के मुँह में डाला। जिन्न भाग गया; राजा उठा और धूल झाड़ते हुए पूछा, "यह क्या है, माँ?" - "तुम अच्छी तरह जानती हो कि तुमने क्या किया है; अब अपने भिक्षा मांगने वालों की दयनीय स्थिति देखो!" जब उसने उन्हें देखा, तो वह पश्चाताप से भर गया। तब उसकी माता ने कहा, "मांडव्य, मेरे प्रिय पुत्र, तुम मूर्ख हो और तुम्हें यह नहीं पता कि दान कैसे देना चाहिए जिससे फल मिले। ऐसे लोग तुम्हारे दान के योग्य नहीं हैं, केवल वे ही जो बुद्धिमान मतंग के समान हैं। अब से ऐसे दुष्ट लोगों को कुछ मत दो, बल्कि गुणी लोगों को दो।" फिर उसने कहा:-

"तुम मूर्ख हो, मांडव्य, बुद्धिहीन हो।"
अच्छे कर्म कब करने चाहिए, यह न जानना:
आप उन लोगों को देते हैं जिनका पाप बहुत बड़ा होता है।
दुष्ट कर्म करने वालों और आत्मसंयम की कमी वाले लोगों के लिए।
"चमड़े के वस्त्र, घने बालों का गुच्छा,"
घास से ढका हुआ प्राचीन कुएं जैसा मुँह।
और देखो ये जीव कैसे फटे-पुराने कपड़े पहने हुए हैं!
लेकिन मूर्खों का उद्धार केवल ऐसी चीजों से ही नहीं होता।
जब वासना, घृणा और अज्ञानता को मनुष्यों से दूर कर दिया जाता है,
ऐसे शांत और पवित्र पुरुषों को दान दें: इससे बहुत फल मिलता है।
अत: अब से ऐसे दुष्टों को दान न दो; परन्तु इस संसार में जिन्होंने भी अष्टम सिद्धियाँ प्राप्त की हों, धर्मात्मा तपस्वियों और ब्राह्मणों जिन्होंने पंच पारलौकिक शक्तियाँ प्राप्त की हों, पच्चेक बुद्धों को दान दो। आओ मेरे पुत्र, मैं इन सेवकों को अमरत्व का अमृत पिलाकर उन्हें पूर्ण कर दूँ। ऐसा कहकर उसने चावल के दलिया का बचा हुआ भाग एक घड़े में पानी में डालकर सोलह हजार ब्राह्मणों के मुखों पर छिड़क दिया। प्रत्येक ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ और धूल झाड़ ली।

फिर इन ब्राह्मणों को चांडाल के अवशेष चखाए जाने के बाद अन्य ब्राह्मणों ने उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया। लज्जित होकर वे बनारस छोड़कर मेझ्झा राज्य चले गए, जहाँ वे उस देश के राजा के साथ रहने लगे। परन्तु मांडव्य वहीं रहा।

उस समय जातिमंत नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो धार्मिक (तपस्वी) था और वेट्टावती नगर के पास उसी नाम की नदी के किनारे बसा हुआ था। वह अपने जन्म पर बहुत घमंड करता था। भगवान वहाँ गए और उस व्यक्ति के घमंड को तोड़ने का निश्चय किया। उन्होंने उसके पास ही, नदी के थोड़ा ऊपर की ओर अपना निवास स्थान बनाया। एक दिन, जातिमंत ने एक दाँत-छड़ी (*6) चबाई और उसे नदी में गिरा दिया, यह सोचकर कि वह जातिमंत के बालों में फँस जाएगी। जब वह पानी में स्नान कर रहा था, तो वह छड़ी उसके बालों में फँस गई। जब उसने उसे देखा, तो वह बोला, "इस जानवर को धिक्कार है! यह कहाँ से आई है, यहाँ तक कि एक बीमारी भी! मैं पता लगाऊँगा।" वह नदी के ऊपर की ओर बढ़ा और उस महान पुरुष को पाकर उससे पूछा, "तुम किस जाति के हो?" - "मैं चांडाल

हूँ।" - "क्या तुमने नदी में दाँत-छड़ी डाली थी?" - "हाँ, डाली थी।" - "अरे जानवर! धिक्कार है तुम पर, नीच जाति के, धिक्कार है तुम पर, यहाँ मत रुको, बल्कि नदी के नीचे की ओर जाओ।" लेकिन जब वह नदी के नीचे रहने गया, तो उसके द्वारा डाली गई दाँत-छड़ी धारा के विपरीत बहकर जातिमंत के बालों में फंस गई। "धिक्कार है तुम पर!" उसने कहा, "यदि तुम यहाँ रुके, तो सात दिनों में तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा!" महान पुरुष ने सोचा, "यदि मैं इस आदमी पर क्रोधित हुआ, तो मैं अपने सद्‌गुणों को नष्ट कर दूँगा; लेकिन मैं इसके अहंकार को तोड़ने का कोई न कोई तरीका ज़रूर ढूँढूँगा।" सातवें दिन, उसने सूर्योदय को रोक दिया। सारी दुनिया परेशान हो गई: वे तपस्वी जातिमंत के पास आए और पूछा, "हे प्रभु, क्या आप ही हैं जो सूर्य को उदय होने से रोकते हैं?" उन्होंने कहा, "यह मेरा काम नहीं है; बल्कि नदी किनारे एक चांडाल रहता है, और यह उसी का काम होगा।" तब लोग उस महान व्यक्ति के पास आए और उनसे पूछा, "हे प्रभु, क्या आप ही हैं जो सूर्य को उदय होने से रोकते हैं?" "जी हां, मित्रों," उन्होंने कहा। "क्यों?" उन्होंने पूछा। "वह तपस्वी जो आपका प्रिय है, मेरा, एक निर्दोष व्यक्ति का अपमान करता है; जब वह आकर मेरे चरणों में गिरकर दया की भीख मांगेगा, तब मैं सूर्य को उदय होने दूंगा।" वे गए और उसे घसीटकर लाए और उस महान व्यक्ति के चरणों में गिरा दिया, और उन्हें शांत करने का प्रयास करते हुए कहा, "हे प्रभु, कृपया सूर्य को उदय होने दें।" लेकिन उन्होंने कहा, "मैं उसे उदय नहीं होने दे सकता; यदि मैंने ऐसा किया, तो इस व्यक्ति का सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा।" उन्होंने कहा, "तो फिर, हे प्रभु, हम क्या करें?" "मुझे मिट्टी का एक ढेला लाओ।" वे उसे ले आए। "अब इसे इस तपस्वी के सिर पर रखो, और तपस्वी को पानी में डुबो दो।" ये व्यवस्था करने के बाद, उन्होंने सूर्य को उदय होने दिया। सूर्य अस्त होते ही (*7), मिट्टी का ढेर सात भागों में फट गया और तपस्वी जल में डूब गया। इस प्रकार उसे अपमानित करके, उस महान सत्ता ने सोचा: "अब वे सोलह हजार ब्राह्मण कहाँ हैं?" उसने देखा कि वे मेज्झा के राजा के साथ हैं, और उन्हें अपमानित करने का निश्चय किया; अपनी अलौकिक शक्ति से वह नगर के आसपास के क्षेत्र में उतरा ।हाथ में कटोरा लिए वह नगर में भिक्षा माँगता फिर रहा था। जब ब्राह्मणों ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा, "इसे यहाँ दो दिन ही रहने दो, नहीं तो यह हमें बेसहारा छोड़ जाएगा!" वे शीघ्रता से राजा के पास गए और चिल्लाए, "हे महामहिम, देखो एक बाज़ीगर और बाजीगर आया है: इसे बंदी बना लो!" राजा तैयार था। वह महान पुरुष अपने मिश्रित भोजन के साथ एक दीवार के किनारे एक बेंच पर बैठा भोजन कर रहा था। जब वह भोजन में व्यस्त था, तभी राजा के दूतों ने उसे पाया और तलवार से प्रहार करके उसे मार डाला। उसकी मृत्यु के बाद, उसका जन्म ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूतों) में हुआ। कहा जाता है कि इस जन्म में बोधिसत्व नेवला पालक था और इसी दासतापूर्ण कार्य में उसकी मृत्यु हो गई। देवता क्रोधित हुए और उन्होंने मेज्झा राज्य पर गर्म राख की बाढ़ ला दी और उसे राज्यों में से मिटा दिया। इसलिए कहा जाता है:

"तो, जैसा कि वे कहते हैं, मेज्जा के कारण सारा राष्ट्र नष्ट हो गया।"
महान मतंगा की मृत्यु के कारण राज्य में उथल-पुथल मच गई।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "यह पहली बार नहीं है कि उदेना ने धार्मिक (तपस्वी) पुरुषों का अपमान किया है, बल्कि उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय उदेना मांडव्य थे, और मैं स्वयं ज्ञानी मतंग था।"

फुटनोट:

(1)चांडाल जाति के एक व्यक्ति का नाम भी, जो सबसे नीच और घृणित थी।

(2) शाब्दिक अर्थ: "वह जिसने अच्छे शगुन देखे हों।"

(3)रीडिंग असा.

(4) एक एमएस के साथ सा जोड़ना।

(5) हिमालय क्षेत्र का भाग।

(6) भारतीय लोग दांतों को साफ करने के लिए रेशेदार छड़ी का उपयोग करते हैं।

(7) पहाता लेना- जैसा कि पहिना- के लिए प्रयोग किया जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चित्त-संभूत-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-498-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 498
चित्त-संभूत-जातक

“हर अच्छे कर्म” आदि — यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें पूज्य महा-कश्यप के दो साथी भिक्षुओं का वर्णन है, जो सुखपूर्वक साथ रहते थे। बताया जाता है कि ये दोनों अत्यंत मित्रवत थे और हर काम में पूर्ण निष्पक्षता से बराबर हिस्सा लेते थे: यहाँ तक कि भिक्षा मांगने जाते समय भी वे साथ जाते और साथ लौटते थे, और अलग रहना उन्हें कतई पसंद नहीं था। सत्य के कुंड में भिक्षु बैठे उनकी मित्रता की प्रशंसा कर रहे थे, तभी गुरु आए और उनसे पूछा कि वे क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने बताया; और गुरु ने उत्तर दिया, “भाइयों, एक ही जन्म में उनकी मित्रता कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुष तीन-चार जन्मों तक अटूट मित्रता बनाए रखते थे।” ऐसा कहकर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, अवंती राज्य और उज्जैनी नगर में, अवंती नामक एक महान राजा का शासन था। उस समय उज्जैनी के बाहर एक चांडाल गाँव था, जहाँ अवंती का जन्म हुआ। उनकी माता की बहन से एक और पुत्र का जन्म हुआ। इन दोनों में से एक का नाम चित्त और दूसरे का नाम संभूत रखा गया।

जब ये दोनों बड़े हुए और चंदाल जाति में झाड़ू लगाने की कला सीख ली, तो एक दिन उन्होंने शहर के द्वार पर जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करने का सोचा। तो उनमें से एक ने उत्तरी द्वार पर और दूसरे ने पूर्वी द्वार पर प्रदर्शन किया। इस शहर में शकुन देखने में माहिर दो स्त्रियाँ थीं, एक व्यापारी की पुत्री और दूसरी पुजारी की। वे दोनों उद्यान में मौज-मस्ती करने गईं, उन्होंने नरम-कठोर भोजन, मालाएँ और इत्र मंगवाए थे; और संयोग से एक उत्तरी द्वार से और दूसरी पूर्वी द्वार से बाहर निकली। दोनों युवा चंदालों को अपनी कला का प्रदर्शन करते देख, लड़कियों ने पूछा, "ये कौन हैं?" उन्हें बताया गया, "ये चंदाल हैं।" उन्होंने कहा, "यह एक अपशगुन है!" और सुगंधित जल से अपनी आँखें धोकर वापस लौट आईं। तब सभी चिल्लाए, "हे दुष्टों, तुमने हमारा भोजन और पेय छीन लिया जो हमें मुफ्त में मिलता!" उन्होंने दोनों रिश्तेदारों को पीटा और उन्हें खूब सताया-पीड़ा की। जब उन्हें होश आया, तो वे उठ खड़े हुए और एक साथ मिलकर एक-दूसरे को अपने कष्टों के बारे में बताने लगे। वे रोते-बिलखते हुए यह सोचने लगे कि अब क्या करें। उन्होंने सोचा, “यह सारा दुख हम पर जन्म के कारण आया है। हम कभी चांडाल नहीं बन पाएंगे; चलो अपना जन्म छुपा लेते हैं और युवा ब्राह्मणों के वेश में तक्षशिला जाकर वहाँ अध्ययन करते हैं।” यह निर्णय लेकर वे वहाँ गए और एक प्रसिद्ध गुरु के अधीन विधि का अध्ययन किया। पूरे भारत में यह अफवाह फैल गई कि दो युवा चांडाल विद्यार्थी हैं और उन्होंने अपना जन्म छुपा लिया है। बुद्धिमान चित्त अपनी पढ़ाई में सफल रहा, लेकिन संभूत नहीं।

एक दिन एक ग्रामीण ने ब्राह्मणों को भोजन कराने के उद्देश्य से गुरु को आमंत्रित किया। संयोगवश, रात में बारिश हुई और सड़क के सभी गड्ढे पानी से भर गए। सुबह तड़के गुरु ने बुद्धिमान चित्त को बुलाया और कहा, "मेरे बालक, मैं नहीं जा सकता, तुम इन युवकों के साथ जाओ और आशीर्वाद दो, अपने लिए जो लाओ उसे खा लो और मेरे लिए जो बचे उसे घर ले आओ।" तदनुसार, वह युवकों को लेकर चले गए। जब युवक स्नान कर रहे थे और कुल्ला कर रहे थे, तब लोगों ने चावल का दलिया तैयार किया और उन्हें परोसते हुए कहा, "इसे ठंडा होने दो।" ठंडा होने से पहले ही युवक आकर बैठ गए। लोगों ने उन्हें अर्पण का जल दिया और उनके सामने कटोरे रख दिए। संभूत कुछ भ्रमित थे और ठंडा समझकर उन्होंने चावल का एक गोला उठाया और अपने मुँह में डाल लिया, लेकिन वह उन्हें धातु के लाल गोले की तरह जला गया। दर्द में वह अपना हिस्सा पूरी तरह भूल गया और बुद्धिमान चित्त की ओर देखते हुए चांडाल बोली में बोला, "गर्म है ना?" दूसरा भी अपना आपा खो बैठा और उनकी बोली में बोला, "बोल दो, बोल दो।" यह सुनकर दोनों युवक एक-दूसरे को देखकर बोले, "ये कैसी भाषा है?" बुद्धिमान चित्त ने आशीर्वाद दिया।

जब वे युवक घर लौटे, तो छोटे-छोटे समूहों में इकट्ठा होकर इधर-उधर बैठकर उन शब्दों पर चर्चा करने लगे। जब उन्हें पता चला कि यह चांडालों की बोली है, तो वे उन पर चिल्लाए, "अरे नीच अछूतों! तुम इतने समय से हमें धोखा दे रहे हो और ब्राह्मण होने का ढोंग कर रहे हो!" और उन्होंने उन दोनों की पिटाई कर दी। एक भले आदमी ने उन्हें भगाते हुए कहा, "चले जाओ! कलंक लग गया है। चले जाओ! कहीं जाकर तपस्वी बन जाओ।" उन युवा ब्राह्मणों ने अपने गुरु को बताया कि ये दोनों चांडाल हैं।

वे दोनों जंगल में चले गए और वहाँ तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो गई और वे नेरंजारा नदी के किनारे एक हिरणी के बच्चे के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटे। जन्म से ही वे हमेशा साथ-साथ रहते थे। एक दिन जब वे भोजन कर चुके थे,

तो एक शिकारी ने उन्हें एक पेड़ के नीचे जुगाली करते और एक-दूसरे से लिपटे हुए देखा। वे बहुत खुश थे, सिर से सिर, नाक से नाक, सींग से सींग मिलाकर। उसने उन पर भाला फेंका और एक ही वार में दोनों को मार डाला।

इसके बाद वे नरबुद्दा नदी के किनारे एक जलपक्षी के बच्चे के रूप में पैदा हुए। वहीं बड़े होकर, भोजन करने के बाद वे एक-दूसरे से सिर मिलाकर और चोंच से चोंच मिलाकर सोते थे। एक पक्षी पकड़ने वाले ने उन्हें देखा, उन्हें एक साथ पकड़ा और दोनों को मार डाला।

इसके बाद ज्ञानी चित्त का जन्म कोसंबी में एक पुजारी के पुत्र के रूप में हुआ; ज्ञानी संभूता का जन्म उत्तरापंचल के राजा के पुत्र के रूप में हुआ। अपने जन्म-दिवसों से ही उन्हें अपने पिछले जन्म याद थे। लेकिन संभूता को सभी जन्म बिना किसी रुकावट के याद नहीं थे, और उन्हें केवल चौथा या चांडाल जन्म ही याद था; जबकि चित्त को अपने चारों जन्म क्रम से याद थे। जब चित्त सोलह वर्ष के हुए, तो वे हिमालय चले गए और एक तपस्वी बन गए, और उन्होंने ध्यान की अवस्था (सम्मोहन) की क्षमता विकसित की, और समाधि के आनंद में लीन रहे। ज्ञानी संभूता ने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपने ऊपर छत्र डलवाया, और छत्र डलवाने की रस्म के दिन ही, एक विशाल सभा के बीच, एक औपचारिक भजन गाया और आकांक्षा में दो श्लोक बोले। यह सुनकर, राजपत्नियों और संगीतकारों ने एक साथ कहा, "हमारे राजा का अपना राज्याभिषेक भजन!" समय बीतने के साथ-साथ सभी नागरिक इसे अपने राजा के प्रिय भजन के रूप में गाने लगे। हिमालय में स्थित अपने निवास स्थान पर बुद्धिमान चित्त यह सोच रहे थे कि क्या उनके भाई संभूता ने छत्र धारण किया है या नहीं। जब उन्हें पता चला कि उन्होंने कर लिया है, तो उन्होंने सोचा, "मैं कभी भी किसी युवा शासक को शिक्षा नहीं दे पाऊंगा; लेकिन जब वह वृद्ध हो जाएगा, तो मैं उससे मिलने जाऊंगा और उसे तपस्वी बनने के लिए प्रेरित करूंगा।" पचास वर्षों तक वे नहीं गए, और तब तक राजा के पुत्र-पुत्रियों की संख्या बढ़ चुकी थी; फिर अपनी अलौकिक शक्ति से वे गए और उद्यान में उतरकर सोने की प्रतिमा के समान पूजा-अर्चना के आसन पर बैठ गए। तभी एक लड़का लकड़ियाँ उठा रहा था और ऐसा करते हुए वह वही भजन गा रहा था। बुद्धिमान चित्त ने उसे पास बुलाया; वह प्रणाम करते हुए आया और प्रतीक्षा करने लगा। चित्त ने उससे कहा, "तुम सुबह से यही भजन गा रहे हो; क्या तुम्हें कोई और भजन नहीं आता?" - "जी हाँ, महाराज, मुझे और भी बहुत से भजन आते हैं, लेकिन ये वे श्लोक हैं जो राजा को प्रिय हैं, इसीलिए मैं कोई और भजन नहीं गाता।" - "क्या कोई है जो राजा के भजन के उत्तर में गा सके?" - "नहीं, महाराज।" - "क्या तुम गा सकते हो?" - "हाँ, अगर मुझे सिखाया जाए।" - "अच्छा, जब राजा ये दो श्लोक गाएँ, तो तुम इसे तीसरे श्लोक के रूप में गाओ," और उसने एक भजन सुनाया। "अब," उसने कहा, "जाओ और इसे राजा के सामने गाओ, राजा तुमसे प्रसन्न होंगे और तुम्हारा सम्मान करेंगे।" लड़का जल्दी से अपनी माँ के पास गया और तैयार हुआ; फिर राजा के द्वार पर गया और संदेश भेजा कि एक लड़का उनके भजन के उत्तर में उन्हें भजन सुनाएगा। राजा ने कहा, "उसे आने दो।" जब लड़का अंदर आया और उसने राजा को प्रणाम किया, तो राजा ने कहा, "कहते हैं कि तुम मेरे भजन का उत्तर गाओगे?" "जी महाराज," उसने कहा, "पूरे दरबार को सुनने के लिए बुला लीजिए।" जैसे ही दरबार इकट्ठा हुआ, लड़के ने कहा, "आप अपना भजन गाइए, महाराज, और मैं अपना भजन गाकर उत्तर दूंगा।" राजा ने दो छंद दोहराए:

हर अच्छे कर्म का फल देर-सवेर अवश्य मिलता है।
   कोई भी कर्म व्यर्थ नहीं होता, और कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता।
मैं संभूता को बहुत शक्तिशाली और महान देखता हूँ।
   इस प्रकार उसके सद्गुण उसे पुनः फल प्रदान करते हैं।
हर अच्छे कर्म का फल देर-सवेर अवश्य मिलता है।
   कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं होता, और कुछ भी निरर्थक नहीं होता।
कौन जाने, शायद चित्ता भी महान हो।
   और मेरी तरह, उसके दिल ने भी उसे लाभ पहुंचाया है?
इस भजन के अंत में, लड़के ने तीसरा छंद गाया:

हर अच्छे कर्म का फल देर-सवेर अवश्य मिलता है।
   कोई भी कर्म व्यर्थ नहीं होता, और कुछ भी निरर्थक नहीं है।
देखिए, मेरे स्वामी, देखिए चित्त आपके द्वार पर खड़ी है।
   और तुम्हारी ही तरह, उसके दिल ने भी उसे लाभ पहुंचाया है।"
यह सुनकर राजा ने चौथा श्लोक दोहराया:

"तो क्या तुम चित्त हो, या तुमने यह कहानी सुनी है?"
   क्या आपको यह जानकारी उनसे मिली, या किसी और ने दी?
आपका भजन बहुत मधुर है: मुझे कोई डर नहीं है;
   मैं एक गाँव और एक उपहार (*1) देता हूँ।"

फिर लड़के ने पाँचवाँ श्लोक दोहराया:

"मैं चित्ता नहीं हूँ, लेकिन मैंने वह बात सुनी है।"
एक ऋषि ने मुझे यह आदेश दिया था--
जाओ और राजा को उत्तर सुनाओ।
और उसके कृतज्ञ हाथों से पुरस्कृत हो जाओ।"
यह सुनकर राजा ने सोचा, "यह मेरा भाई चित्त ही होगा; अब मैं जाकर उससे मिलूंगा"; फिर उसने अपने आदमियों से इन दो छंदों में यह अनुरोध किया:

"आओ, इन राजसी रथों को जोत दो, जो इतने सुंदर ढंग से गढ़े और बनाए गए हैं:
हाथियों की कमर पर बेल्ट बांधें, और उन्हें चमकीले हार पहनाएं।
"खुशी से ढोल बजाओ, और शंख बजाओ।"
मेरे पास मौजूद सबसे तेज रथों को तैयार करो:
मैं उस आश्रम की ओर प्रस्थान करूंगा।
आज अपने भीतर विराजमान ऋषि को देखने के लिए।"
ऐसा कहकर उन्होंने अपने उत्तम रथ पर सवार होकर शीघ्रता से उद्यान के द्वार की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने रथ रोककर, ज्ञानी चित्त के समक्ष आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए; अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने आठवें श्लोक का पाठ किया:

"मैंने एक अनमोल भजन गाया, वह बहुत मधुर था।"
मेरे चारों ओर भीड़भाड़ होने के कारण काफी दबाव महसूस हो रहा था;
फिलहाल मैं इस पवित्र ऋषि को प्रणाम करने आया हूँ।
और मेरे हृदय में आनंद और प्रसन्नता व्याप्त है।
बुद्धिमान चित्त को देखते ही प्रसन्न होकर उसने सभी आवश्यक निर्देश दिए, अपने भाई के लिए आसन तैयार करने को कहा और नौवें श्लोक को दोहराया:

बैठ जाइए, और अपने पैरों के लिए ताज़ा पानी लीजिए: यही उचित है।
मेहमानों को भोजन भेंट करना: स्वीकार करें, क्योंकि हम आपको आमंत्रित करते हैं।"
इस मधुर निमंत्रण के बाद, राजा ने एक और छंद दोहराया, जिसमें उसने उसे अपने राज्य का आधा हिस्सा देने की पेशकश की:

"वे उस स्थान को प्रसन्न करें जहाँ तुम निवास करोगे।"
प्रतीक्षा कर रही महिलाओं की भीड़ को आपकी सेवा करने दें;
ओह, मुझे यह दिखाने दो कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूँ।
और हम दोनों यहाँ एक साथ राजा बनें।"
ये शब्द सुनकर बुद्धिमान चित्त ने उन्हें छह श्लोकों में प्रवचन दिया:

"हे राजा, बुरे कर्मों का फल देखकर,
अच्छे कर्मों से मिलने वाले लाभ को देखकर,
मैं खुशी-खुशी कठोर आत्म-संयम का अभ्यास करूंगा।
पुत्र, धन और पशुधन मेरी आत्मा को मोहित नहीं कर सकते।
"इस नश्वर जीवन के दस दशक होते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दूसरे के बाद आते हैं।"
इस सीमा तक पहुँचने पर, मनुष्य टूटे हुए सरकंडे की तरह तेजी से मुरझा जाता है।
"तो फिर मेरे लिए सुख क्या है, प्रेम क्या है, धन की लालसा क्या है?"
हे राजा, क्या आप जानते हैं कि मैं किन पुत्रों और पुत्रियों को जंजीरों से मुक्त कर चुका हूँ?
"यह सच है, मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ—मृत्यु मुझे नहीं छोड़ेगी।"
और जब मृत्यु ही आनी है, तो प्रेम या धन का क्या अर्थ है?
"सबसे नीच जाति जो दो पैरों पर चलती है"
क्या चांडाल, पृथ्वी पर सबसे नीच मनुष्य हैं?
जब हमारे सभी कर्म फलदायी हुए, तब उचित भाग्य प्राप्त हुआ।
हम दोनों युवा चांडाल के रूप में पैदा हुए थे।

"अवंती भूमि में चांडाल, नेरनजारा द्वारा हिरण,
नर्बुद्दा द्वारा पाले गए ओस्प्रे (मछली बाज), जो अब ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं।
इस प्रकार अतीत में अपने साधारण जन्मों का स्पष्टीकरण देने के बाद, उन्होंने इस जन्म में भी सृष्टि की अनित्यता का उपदेश दिया और चार श्लोक सुनाए।

जीवन छोटा है, और मृत्यु ही अंत है।
वृद्ध लोगों के पास छिपने के लिए कोई जगह नहीं होती।
तो हे पांचाल, मैं तुमसे जो करने का अनुरोध करता हूँ, वह यह है:
वे सभी कर्म जिनसे कष्ट होता है, उनसे कृपया बचें।
जीवन छोटा है, और मृत्यु ही अंत है।
वृद्ध लोगों के पास छिपने के लिए कोई जगह नहीं होती।
तो हे पांचाल, मैं तुमसे जो करने का अनुरोध करता हूँ, वह यह है:
वे सभी कर्म जिनसे कष्ट प्राप्त होता है, उनसे कृपया बचें।
जीवन छोटा है, और मृत्यु ही अंत है।
वृद्ध लोगों के पास छिपने के लिए कोई जगह नहीं होती।
तो हे पांचाल, मैं तुमसे जो करने का अनुरोध करता हूँ, वह यह है:
वासना से प्रेरित सभी कार्यों से कृपया बचें।
जीवन छोटा है, और मृत्यु ही अंत है।
बुढ़ापा हमारी ताकत को क्षीण कर देगा, हम इससे भाग नहीं सकते।
तो हे पांचाल, मैं तुमसे जो करने का अनुरोध करता हूँ, वह यह है:
वे सभी कर्म जिनसे निम्नतम नरक की ओर ले जाया जा सकता है, कृपया उनसे बचें।
जब उस महान सत्ता ने बोलना शुरू किया और तीन छंद दोहराए तो राजा प्रसन्न हो उठा:

"हे भाई! जो तुम कहते हो, वह सत्य है।"
आप किसी पवित्र संत की तरह हैं, आपके शब्द मार्गदर्शन करते हैं:
लेकिन मेरी इच्छाओं को त्यागना कठिन है।
मेरे जैसे लोगों के लिए, वे बहुत महान हैं।
"जैसे हाथी कीचड़ में गहरे धंसे हुए हों
वे जमीन देख तो सकते हैं, लेकिन बाहर नहीं निकल सकते:
तो, तीव्र इच्छा की सर्पकाली त्वचा में धंसा हुआ
मैं ब्रदरन के पथ पर खड़ा नहीं हो सकता।
"जैसे पिता या माता अपने बेटे से करते हैं"
अच्छी सलाह दें, और खुशहाल विकास के तरीके बताएं:
मुझे बताएं कि खुशी कैसे प्राप्त की जाती है।
और मुझे यह भी बताइए कि मुझे किस रास्ते से जाना चाहिए।
तब उस महान सत्ता ने उससे कहा:

हे मनुष्यों के स्वामी! आप इसे त्याग नहीं सकते।
ये वे भावनाएँ हैं जो मानव जाति में समान हैं:
अपने लोगों से अन्यायपूर्ण कर न वसूलें।
उन्हें समान और न्यायपूर्ण शासन मिले।
उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की ओर दूत भेजो
ब्राह्मणों और तपस्वियों को आमंत्रित करने के लिए:
उन्हें भोजन और पानी उपलब्ध कराएं, आराम करने के लिए जगह दें,
कपड़े और अन्य सभी आवश्यक वस्तुएं।
हम आपको वह भोजन और पेय देंगे जो आपको तृप्त करेगा।
आस्थावान ऋषि और पवित्र ब्राह्मण:
जो देता भी है और शासन भी करता है, और उसी में निहित भी है।
मृत्यु के बाद सभी निर्दोष होकर स्वर्ग जाएंगे।

लेकिन अगर, अपनी नारी जाति से घिरे हुए
 आपको अपनी भावनाओं और इच्छाओं की प्रबलता महसूस होती है।
कविता की इस पंक्ति को ध्यान में रखें
 और इसे सारी भीड़ के बीच में गाओ:
"आसमान से बचने के लिए कोई छत नहीं थी, वह कुत्तों के बीच लेटा हुआ था।"
चलते-चलते उसकी मां उसे दूध पिलाती थी, लेकिन आज वह राजा है।
यह उस महान पुरुष का उपदेश था। फिर उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हें अपना उपदेश दे दिया है। अब तुम संन्यासी बनना चाहो या न बनना, यह तुम्हारी इच्छा है; परन्तु मैं अपने कर्मों का फल भुगतूँगा।" फिर वे आकाश में उठे, अपने चरणों की धूल झाड़कर हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए। राजा ने यह देखकर अत्यंत व्यथित हुआ; और अपने राज्य को अपने वृहत्तर पुत्र को सौंपकर, उसने अपनी सेना को बुलाया और हिमालय की ओर मुख करके चल पड़ा। जब उस महान पुरुष ने उसके आने का आशय सुना, तो वे अपने ऋषियों के साथ गए और उसका स्वागत किया, उसे संन्यासी जीवन का दीक्षा दी और उसे समाधि की विधि सिखाई। उसने समाधि की विधि का विकास किया। इस प्रकार ये दोनों ब्रह्मा के लोक के लिए नियत हुए।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा: "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष तीन या चार जन्मों तक पक्के मित्र बने रहे।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय आनंद ज्ञानी संभूत थे, और मैं स्वयं ज्ञानी चित्त था।"

फुटनोट:

(1) शाब्दिक रूप से सौ (पैसे): या (टीकाकार के साथ) "मैं सौ गाँव देता हूँ।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिवि-जातक**
***स्रोत**: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-499-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 499
शिवी जातक (*1)

"यदि कोई मनुष्य हो," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए अतुलनीय दान के बारे में सुनाई थी। इसका पूर्ण वर्णन आठवीं पुस्तक में सोविरा जन्म (*2) के अंतर्गत दिया गया है। परन्तु यहाँ राजा ने सातवें दिन सभी आवश्यक वस्तुएँ दान कीं और धन्यवाद माँगी; परन्तु गुरु बिना धन्यवाद दिए ही चले गए। नाश्ते के बाद राजा मठ गए और बोले, "महाराज, आपने धन्यवाद क्यों नहीं दिया?" गुरु ने कहा, "महाराज, लोग अपवित्र थे।" उन्होंने "लालची स्वर्ग नहीं जाएँगे (*3)" से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ करते हुए धर्ममार्ग का उपदेश देना जारी रखा। राजा प्रसन्न होकर तथागत (बुद्ध) को एक हजार सिक्कों के मूल्य का शिव देश का वस्त्र भेंट करके आदर किया; फिर वे नगर लौट गए।

अगले दिन वे सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा कर रहे थे: "महोदय, कोसल के राजा ने अतुलनीय उपहार दिया: और इतने से संतुष्ट न होकर, जब दशबल (बुद्ध) ने उन्हें प्रवचन दिया, तो राजा ने उन्हें एक हजार सिक्कों के बराबर मूल्य का शिव वस्त्र भेंट किया! राजा दान देने में कितना लालची है, यह तो निश्चित ही है!" गुरुजी अंदर आए और उन्होंने पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं: उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), बाहरी वस्तुएँ स्वीकार्य हैं, यह सत्य है: परन्तु प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुष, जिन्होंने प्रतिदिन छह लाख सिक्कों तक का दान देकर पूरे भारत को गौरवान्वित कर दिया, वे बाहरी उपहारों से संतुष्ट नहीं थे; और यह कहावत याद रखते हुए कि 'जिसका तुम सम्मान करते हो, वही दो, प्रेम अपने आप उत्पन्न होगा', उन्होंने अपनी आँखें भी निकालकर माँगने वालों को दे दीं।" इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब शक्तिशाली राजा शिवी अपने राज्य के अरित्थपुरा नगर में शासन कर रहे थे, तब उनके पुत्र के रूप में एक महान व्यक्तित्व का जन्म हुआ। उनका नाम राजकुमार शिवी रखा गया। बड़े होकर वे तक्षशिला गए और वहाँ अध्ययन किया; फिर लौटकर

उन्होंने अपने ज्ञान का प्रमाण अपने पिता राजा को दिया और उनके द्वारा उन्हें वायसराय नियुक्त किया गया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वे स्वयं राजा बने और बुराई के मार्ग को त्यागकर दस राजगुणों का पालन करते हुए धर्मपरायणता से शासन किया। उन्होंने नगर के चारों द्वारों पर, नगर के मध्य में और अपने गृह नगर के द्वार पर छह भिक्षागृह बनवाए। वे प्रतिदिन छह लाख सिक्के दान करते थे। आठवें, चौदहवें और पंद्रहवें दिन वे भिक्षागृह जाकर दान वितरण देखना कभी नहीं भूलते थे।

एक बार पूर्णिमा के दिन, सुबह-सुबह राजकीय छत्र फहराया गया और वह शाही सिंहासन पर बैठकर अपने द्वारा दिए गए उपहारों के बारे में सोचने लगे। उसने मन ही मन सोचा, "बाहरी चीज़ों में से मैंने सब कुछ दे दिया है; परन्तु इस प्रकार का दान मुझे तृप्त नहीं करता। मैं कुछ ऐसा देना चाहता हूँ जो मेरा ही अंश हो। ठीक है, आज जब मैं भिक्षागृह जाऊँगा, तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कोई मुझसे कुछ बाहरी न माँगे, बल्कि मेरे ही अंश का नाम ले, यदि वह मेरे हृदय का ज़िक्र करे, तो मैं भाले से अपनी छाती चीर दूँगा, और जैसे किसी शांत झील से कमल का फूल, डंठल समेत, तोड़ रहा हो, वैसे ही खून से लथपथ अपना हृदय निकालकर उसे दे दूँगा; यदि वह मेरे शरीर के मांस का ज़िक्र करे, तो मैं अपने शरीर से मांस काटकर दे दूँगा, जैसे किसी औज़ार से नक्काशी कर रहा हो; यदि वह मेरे रक्त का ज़िक्र करे, तो मैं उसे अपना रक्त दे दूँगा, उसके मुँह में बूँद डाल दूँगा या एक कटोरा भर दूँगा; या फिर, यदि कोई कहे, मैं अपने घर का काम नहीं कर पा रहा/रही, आओ और घर पर दास का काम कर दो, तो मैं अपने शाही वस्त्र छोड़कर बाहर खड़ा हो जाऊँगा, और स्वयं को दास घोषित करूँगा।" और मैं दासों का काम करूँगा: यदि कोई मेरी आँखें माँगे, तो मैं अपनी आँखें निकाल कर दे दूँगा, जैसे कोई ताड़ के पेड़ का गूदा निकालता है। उसने मन ही मन सोचा:

"अगर कोई ऐसा मानवीय उपहार है जो मैंने कभी नहीं दिया है,"
चाहे मेरी आंखें ही क्यों न हों, मैं इसे अभी दे दूंगा, पूरी दृढ़ता और निडरता के साथ।"
फिर उसने सोलह घड़े सुगंधित जल से स्नान किया और अपने पूरे वैभव से सुसज्जित हुआ, और उत्तम भोजन करने के बाद वह एक शानदार ढंग से सजे हुए हाथी पर सवार होकर भिक्षागृह गया।

सक्का (इंद्र) ने उनके संकल्प को भांपते हुए सोचा, "राजा शिव ने निश्चय किया है कि वे किसी भी आने-जाने वाले को अपनी आंखें दे देंगे जो भी उनसे मांगेगा। क्या आप ऐसा कर पाएंगे या नहीं?" उन्होंने सक्का की परीक्षा लेने का निश्चय किया; और एक बूढ़े और अंधे ब्राह्मण का रूप धारण करके वे एक ऊंचे स्थान पर बैठ गए। जब राजा अपने भिक्षागृह में आए, तो उन्होंने हाथ फैलाकर कहा, "राजा की जय हो!" तब राजा ने अपने हाथी को उनकी ओर दौड़ाया और कहा, "क्या कहते हो, ब्राह्मण?" सक्का (इंद्र) ने उनसे कहा, "हे महान राजा! समस्त संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां आपके उदार हृदय की प्रसिद्धि न फैली हो। मैं अंधा हूं, और आपके पास दो आंखें हैं।" फिर उन्होंने आंख मांगने के लिए पहली पंक्ति दोहराई।

"आँख मांगने के लिए बूढ़ा आदमी दूर से आता है, क्योंकि मेरे पास आँख नहीं है।"
"ओह, कृपया मुझे अपना एक दे दीजिए, फिर हम दोनों के पास एक-एक हो जाएगा।"
जब उस महान प्राणी ने यह सुना, तो उसने सोचा, "अरे वाह, यही तो मैं अपने महल में आने से पहले सोच रहा था! कितना अच्छा संयोग है! आज मेरे दिल की इच्छा पूरी होगी; मैं एक ऐसा उपहार दूंगा जो आज तक किसी ने नहीं दिया।" और उसने दूसरा श्लोक सुनाया:

"तुम्हें यहाँ से आगे अपना रास्ता तय करना किसने सिखाया?"
हे भिक्षु, क्या आप आँख से विनती करेंगे?
 मनुष्य का सर्वोच्च गुण यही है,
और कहते हैं कि पुरुषों के लिए इससे अलग होना मुश्किल होता है।
(जैसा कि आसानी से देखा जा सकता है, आगे के छंदों को दो-दो करके पढ़ा जाना चाहिए।)

"देवताओं (देवदूतों) में सुजामपति, वही
यहां मगहावा नाम के पुरुषों के बीच,
 उन्होंने मुझे यहाँ से आगे बढ़कर अपना रास्ता खुद तय करना सिखाया।
भीख मांगना, और अपनी बात मनवाने के लिए किसी की नजर पाने की कोशिश करना।
"यह सर्वोच्च उपहार है जिसके लिए मैं अनुरोध करता हूँ (*4)।
मुझे एक नज़र दो! मुझे मना मत करो!
 मुझे एक आंख दे दो, जो सर्वोच्च उपहार है।
कहते हैं ना, पुरुषों के लिए इससे अलग होना कितना मुश्किल होता है!
"वह इच्छा जो आपको यहाँ लाई, वह इच्छा जो उत्पन्न हुई"
हे ब्राह्मण, अपनी उस मनोकामना को अपने भीतर साकार करो। लो, मेरी आँखें ले लो।

"तुमने मुझसे एक आंख मांगी थी: देखो, मैं तुम्हें दो आंखें देता हूँ!"
अच्छी दृष्टि के साथ, सभी लोगों की नजरों में रहो;
तो आपकी मनोकामना पूरी हो और अब सच हो जाए।"
राजा ने इतना कहा। लेकिन, यह उचित न समझते हुए कि वह ब्राह्मण की आँखें निकाल कर वहीं दान कर दे, वह ब्राह्मण को अपने साथ अंदर ले आया और राजसिंहासन पर बैठकर शिवका नामक एक सर्जन को बुलवाया। फिर उसने कहा, "मेरी आँख निकाल दो।"

अब पूरे शहर में यह खबर फैल गई कि राजा अपनी आंखें निकालकर एक ब्राह्मण को देना चाहता है। तब सेनापति, सभी अधिकारी और राजा के प्रियतम लोग शहर और हरम से एकत्रित हुए और राजा को उसके इरादे से विमुख करने के लिए तीन श्लोक पढ़े:

"हे मेरे स्वामी, अपनी आँख मत फेरो; हे राजा, हमें मत त्यागो!"
पैसा दो, मोती और मूंगा दो, और कई अनमोल चीजें दो:
"उत्कृष्ट नस्ल के घोड़ों को काठी पहनाओ, रथों को उन पर लाद दो,"
हे राजा, सोने के वस्त्र से सजे हुए सुंदर हाथियों को ले आओ।
"हे राजा! ये हमें दीजिए, ताकि हम सब आपकी रक्षा कर सकें।"
आपके वफादार लोग, अपने रथों और गाड़ियों के साथ चारों ओर तैनात हैं।"
इस पर राजा ने तीन श्लोक पढ़े:

"वह आत्मा जिसने देने की शपथ ली हो, और फिर विश्वासघाती पाई जाए,"
वह अपनी गर्दन को जमीन पर छिपे हुए एक जाल में फंसा लेता है।
"वह आत्मा जिसने देने की शपथ ली हो, और फिर विश्वासघाती पाई जाए,"
पाप से भी अधिक पापी है, और वह यमराज (*5) के घर जाने के लिए बाध्य है।
बिना मांगे कुछ मत दो; न ही वह चीज दो जो वह न मांगे।
अतः ब्राह्मण जो कुछ भी मांगता है, मैं उसे तुरंत दे देता हूँ।
तब दरबारियों ने पूछा, "अपनी आँखें देने में तुम्हारी क्या इच्छा है?" एक श्लोक को दोहराते हुए:

"जीवन, सौंदर्य, आनंद या शक्ति—इनमें से असली पुरस्कार क्या है?"
हे राजा, आपके इस कार्य के पीछे क्या प्रेरणा है?
शिवी भूमि का राजा सर्वोच्च क्यों होना चाहिए?
क्या वह परलोक के लिए अपनी आँखें त्याग देगा?
राजा ने उन्हें एक श्लोक में उत्तर दिया:

"इस प्रकार दान देने में मेरा लक्ष्य यश प्राप्त करना नहीं है।"
न तो पुत्र, न धन-दौलत, न ही शासन करने के लिए राज्य:
यह पवित्र पुरुषों का पुराना और अच्छा तरीका है;
उपहार देने से मेरी आत्मा मोहित हो जाती है।" (*6)
महान सत्ता के शब्दों का दरबारियों ने कोई उत्तर नहीं दिया; इसलिए महान सत्ता ने चिकित्सक शिवका को एक श्लोक में संबोधित किया:

"मेरे मित्र और साथी, शिवका, क्या तुम हो?
जैसा मैं कहूँ वैसा करो—तुम्हारे पास पर्याप्त कौशल है—
मेरी आँखें निकाल लो, क्योंकि यही मेरी इच्छा है।
और अब इन्हें भिखारी के हाथों में दे दो।
लेकिन शिवक ने कहा, "महोदय, सोच-विचार कीजिए! अपनी आँखें देना कोई मामूली बात नहीं है।" - "शिवक, मैंने विचार कर लिया है; देर मत कीजिए, और मेरे सामने ज़्यादा बात मत कीजिए।" फिर उन्होंने सोचा, "मेरे जैसे कुशल सर्जन के लिए राजा की आँखों में तलवार चलाना उचित नहीं है," इसलिए उन्होंने कई औषधीय जड़ी-बूटियों को पीसकर, एक नीले कमल को उस पाउडर से रगड़ा और दाहिनी आँख पर मल दिया: आँख गोल-गोल घूमने लगी और बहुत दर्द हुआ। "महोदय, फिर से सोचिए, मैं इसे ठीक कर सकता हूँ।" - "लगे रहिए, मित्र, देर मत कीजिए।" उन्होंने फिर से पाउडर को रगड़ा और आँख पर मल दिया: आँख सॉकेट से बाहर निकल आई, दर्द पहले से भी ज़्यादा बढ़ गया। "महोदय, फिर से सोचिए, मैं इसे अभी भी ठीक कर सकता हूँ।" - "जल्दी कीजिए!" तीसरी बार उन्होंने एक तेज़ पाउडर को मलकर लगाया: औषधि के प्रभाव से आँख गोल-गोल घूमने लगी, सॉकेट से बाहर आ गई और नस के सिरे पर लटकने लगी। "पुनः विचार कीजिए, महाराज, मैं इसे फिर से ठीक कर सकता हूँ।" - "जल्दी कीजिए।" पीड़ा असहनीय थी, खून बह रहा था,

राजा के वस्त्र खून से सने हुए थे। राजा की स्त्रियाँ और दरबारी उनके चरणों में गिर पड़े और रोने लगे, "हे महाराज, अपनी आँखें मत चढ़ाइए!" वे ज़ोर-ज़ोर से रोते और विलाप करते रहे। राजा ने पीड़ा सहन की और कहा, "मेरे मित्र, जल्दी कीजिए।" "बहुत अच्छा, महाराज," चिकित्सक ने कहा; और अपने बाएँ हाथ से आँख की पुतली को पकड़कर, अपने दाहिने हाथ में चाकू लेकर, नस को काटकर आँख को महाराज के हाथ में रख दिया (*8)। उन्होंने अपनी बाईं आँख से दाहिनी आँख को देखते हुए और पीड़ा सहन करते हुए कहा, "ब्राह्मण, इधर आइए।" जब ब्राह्मण पास आया, तो उन्होंने आगे कहा - "अनंत ज्ञान की आँख इस आँख से सौ गुना, बल्कि हज़ार गुना अधिक प्रिय है: यही मेरे इस कार्य का कारण है," और उन्होंने वह आँख ब्राह्मण को दे दी, जिसने उसे उठाकर अपनी आँख में लगा लिया। वहाँ वह आँख उनकी शक्ति से खिले हुए नीले कमल की तरह स्थिर रही। जब उस महान प्राणी ने अपनी बाईं आँख से अपने सिर में उस आँख को देखा, तो वह चिल्लाया—"आह, मेरी यह आँख का उपहार कितना अच्छा है!" और अपने भीतर उत्पन्न आनंद से भर कर उसने दूसरी आँख भी दे दी। इंद्र ने उसे भी अपनी आँख के स्थान पर स्थापित किया और राजा के महल से, फिर शहर से, सभी की निगाहें अपने ऊपर लिए हुए, देवताओं (देवदूतों) के लोक में चला गया।

गुरु ने इसकी व्याख्या करते हुए डेढ़ श्लोक दोहराया:

"इस प्रकार सिवी ने शिवका को प्रेरित किया, और उसने अपनी इच्छा पूरी की।"
उसने राजा की आंखें निकाल लीं और उन्हें ब्राह्मण को सौंप दिया:
और अब ब्राह्मण को आंखें मिल गईं, और राजा अंधा हो गया।
कुछ ही समय में राजा की आँखें बढ़ने लगीं; जैसे-जैसे वे बढ़ती गईं और छेदों के ऊपरी भाग तक पहुँचने से पहले ही, ऊन के गोले की तरह मांस का एक गोला अंदर उठ खड़ा हुआ और उस खाली जगह को भर दिया; वे गुड़िया की आँखों जैसी लग रही थीं, लेकिन दर्द थम गया। महान व्यक्ति कुछ दिनों तक महल में ही रहे। फिर उन्होंने सोचा, "एक अंधे व्यक्ति का शासन से क्या लेना-देना? मैं अपना राज्य दरबारियों को सौंप दूँगा, और अपने उद्यान में जाकर तपस्वी बन जाऊँगा, और एक पवित्र व्यक्ति की तरह जीवन व्यतीत करूँगा।" उन्होंने अपने दरबारियों को बुलाया और उन्हें अपनी योजना बताई। उन्होंने कहा, "एक व्यक्ति मेरे साथ रहेगा, मेरा चेहरा धोने आदि के लिए, और जो भी उचित हो, वह सब करने के लिए, और तुम्हें मुझे विश्राम स्थलों तक ले जाने के लिए एक रस्सी बाँधनी होगी।" फिर उन्होंने अपने सारथी को बुलाया और उसे रथ तैयार करने को कहा। लेकिन दरबारियों ने उन्हें रथ में नहीं बैठने दिया; वे उन्हें एक सोने की गाड़ी में (पुरुषों द्वारा उठाई गई) बाहर लाए और झील के किनारे उतार दिया, और फिर चारों ओर उनकी रक्षा करते हुए लौट गए। राजा रथ में बैठे-बैठे अपने उपहार के बारे में सोच रहे थे।

उसी क्षण इंद्र का सिंहासन गर्म हो गया; और उन्होंने सोच-विचार करके इसका कारण समझ लिया। उन्होंने सोचा, "मैं राजा को वरदान दूंगा और उनकी आँख ठीक कर दूंगा।" इसलिए वे उस स्थान पर आए; और उस महान सत्ता से कुछ ही दूरी पर इधर-उधर, इधर-उधर चलने लगे।

इसे समझाने के लिए गुरु ने निम्नलिखित श्लोकों का पाठ किया:

कुछ दिन बीत गए; आंखें ठीक होने लगीं और आवाज आने लगी:
तब सिवी के समर्थक राजा ने अपने सारथी को बुलवाया।
"हे सारथी, रथ तैयार करो; फिर मुझे यह बात बता दो।"
मैं पार्क, जंगल और झील पर जाता हूँ जहाँ लिली के फूल बहुतायत में उगे होते हैं।"
"उसने उसे नदी किनारे एक गाड़ी में बिठाया, और यहाँ
देवताओं (देवदूतों) के राजा, महान सक्का (इंद्र), सुजामपति प्रकट हुए।
“वह कौन है?” महान प्राणी ने पदचिन्हों की आवाज सुनकर पुकारा। सक्का (इंद्र) ने एक श्लोक दोहराया:

मैं सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) का राजा हूँ; मैं आपसे मिलने आया हूँ।
हे राजमहिम, आप वरदान चुन लें! आपकी जो भी इच्छा हो।
राजा ने एक और छंद के साथ उत्तर दिया:

"मैं अपने पीछे अनंत धन-दौलत, शक्ति और खजाना छोड़ आया हूँ।"
हे सक्का (इंद्र), मुझे मृत्यु ही चाहिए, और कुछ नहीं: क्योंकि मैं अंधा हूँ।
तब इंद्र ने कहा, "हे राजा शिवी, क्या तुम मृत्यु की याचना इसलिए कर रहे हो क्योंकि तुम मरना चाहते हो, या इसलिए कि तुम अंधे हो?" - "क्योंकि मैं अंधा हूँ, महाराज।" - "यह वरदान अपने आप में सब कुछ नहीं है, महाराज, यह भविष्य को ध्यान में रखकर दिया गया है। फिर भी इस दृश्य संसार से संबंधित एक उद्देश्य है। अब तुमसे एक आँख माँगी गई थी, और तुमने दो आँखें दे दीं; इसे सत्य का कार्य बनाओ।" फिर उन्होंने एक श्लोक शुरू किया:

हे योद्धा, दो पैरों वाले जीवों के स्वामी, सच बोलो:
यदि तुम सच बोलोगे, तो तुम्हारी आंख तुम्हें वापस मिल जाएगी।
यह सुनकर उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "यदि तुम मुझे आँख देना चाहते हो, सक्का (इंद्र), तो कोई और उपाय मत करो, बल्कि मेरे दान के फलस्वरूप ही मेरी आँख तुम्हें वापस मिल जाए।" सक्का (इंद्र) ने कहा, "यद्यपि लोग मुझे सक्का (इंद्र), देवताओं का राजा, महाराज, कहते हैं, फिर भी मैं किसी और को आँख नहीं दे सकता; केवल आपके द्वारा दिए गए दान के फलस्वरूप ही, और किसी अन्य कारण से नहीं, तुम्हारी आँख तुम्हें वापस मिल जाएगी।" तब दूसरे ने एक श्लोक दोहराया, जिसमें उसने कहा कि उसका दान उचित था।

चाहे किसी भी प्रकार का, किसी भी किस्म का वर आए,
जो कोई भी मुझसे कुछ मांगने आता है, वह मेरे दिल के बहुत करीब होता है।
यदि मेरी ये सच्ची बातें सच हैं, तो अब मेरी आंख प्रकट हो!
जैसे ही उसने ये शब्द कहे, उसकी एक आँख सॉकेट में बड़ी हो गई। फिर उसने दूसरी आँख को वापस लाने के लिए कुछ छंद दोहराए:

"एक ब्राह्मण मुझसे मिलने आया, मेरी एक आंख को पाने की लालसा में।"
मैंने वे दोनों वस्तुएँ उस ब्राह्मण भिक्षु को दे दीं।
"उस कार्य से कहीं अधिक आनंद और प्रसन्नता प्राप्त हुई।"
यदि मेरी ये सच्ची बातें सच हैं, तो मेरी दूसरी आंख भी ठीक हो जाए!
उसी क्षण उनकी दूसरी आँख प्रकट हुई। परन्तु उनकी ये आँखें न तो प्राकृतिक थीं और न ही दिव्य। हम जानते हैं कि ब्राह्मण के रूप में सक्का (इंद्र) द्वारा दी गई आँख प्राकृतिक नहीं हो सकती; दूसरी ओर, किसी भी क्षतिग्रस्त वस्तु में दिव्य आँख उत्पन्न नहीं हो सकती। परन्तु इन आँखों को परम सत्य की आँखें कहा जाता है। जिस समय ये आँखें प्रकट हुईं, सक्का (इंद्र) की शक्ति से समस्त शाही सेवक एकत्रित हुए; और सक्का (इंद्र) भीड़ के बीच खड़े होकर दो श्लोकों में स्तुतिगान किया:

"हे सिवी भूमि के पितामह राजा, आपके ये पवित्र भजन..."
मैंने आपके लिए उपहार के रूप में ये दिव्य आँखें प्राप्त की हैं।
"चट्टानों और दीवारों के बीच से, पहाड़ियों और घाटियों के ऊपर से, चाहे कितनी भी बाधा क्यों न हो,"
तुम्हारी आँखें चारों ओर सौ मील (x 4.23 किमी) तक देख सकेंगी।
इन श्लोकों का उच्चारण करने के बाद, लोगों के सामने वायु में स्थिर होकर, महान सत्ता को सतर्क रहने की अंतिम सलाह देते हुए, सक्का (इंद्र) देवताओं (देवदूतों) के लोक में लौट गए। और महान सत्ता, अपने सेवकों के समूह से घिरे हुए, भव्यता के साथ नगर में लौटे और चंदाका नामक महल में प्रवेश किया, जिसे मोर की आँख कहा जाता है। उनकी आँखें पुनः प्राप्त होने की खबर शिवी राज्य में फैल गई। सभी लोग अपने हाथों में उपहार लेकर उन्हें देखने के लिए एकत्रित हुए। महान सत्ता ने सोचा, "अब ये सभी लोग एकत्रित हो गए हैं, मैं अपने दिए हुए उपहार की प्रशंसा करूँ।" उन्होंने महल के द्वार पर एक विशाल मंडप बनवाया, जहाँ वे राजसिंहासन पर विराजमान हुए, उनके ऊपर सफेद छत्र फैला हुआ था। फिर शहर में ढोल बजाया गया, ताकि सभी व्यापारिक संघ एकत्रित हो सकें (*9)। फिर उन्होंने कहा, "हे शिवी गण! अब तुमने ये दिव्य आँखें देख ली हैं, बिना कुछ दान किए कभी भोजन मत करो!" और उन्होंने धर्म मार्ग का उपदेश देते हुए चार श्लोक दोहराए:

"अगर उससे देने के लिए कहा जाए तो कौन मना करेगा?"
  भले ही यह उसका सबसे अच्छा और पसंदीदा पुरस्कार हो?
सिवी के लोग सभा में उमड़ पड़े, हो!
  इधर आओ, मेरी आँखों से ईश्वर का दिया हुआ उपहार देखो!
"चट्टानों और दीवारों के बीच से, पहाड़ियों और घाटियों के ऊपर से, चाहे कितनी भी बाधा क्यों न हो,"
मेरी ये आंखें हर दिशा में सौ लीग (x 4.23 किमी) तक देख सकती हैं।
सभी नश्वर मनुष्यों में आत्म-बलिदान की भावना होती है।
  इन सब चीजों में सबसे उत्तम है:
मैंने अपनी एक नश्वर आँख का बलिदान दिया; और उसे देते हुए,
  मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई।
"देखो, लोगों! देखो, खाने से पहले दूसरों को भी हिस्सा दो।"
  यह सब आपकी पूरी इच्छा और सावधानी के साथ किया गया है।
  तुम निर्दोष होकर स्वर्ग जाओगे।

इन चार आयतों में उन्होंने धर्म का मार्ग सिखाया; और उसके बाद, हर पखवाड़े, पवित्र दिन पर, यानी हर पंद्रहवें दिन, वे इन्हीं आयतों में निरंतर रूप से लोगों की एक बड़ी सभा को धर्म का मार्ग सिखाते थे। यह सुनकर लोग दान देते और अच्छे कर्म करते थे, और स्वर्ग चले जाते थे।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जो बाहरी उपहारों से संतुष्ट नहीं होता था, अपने सिर से निकालकर अपनी आँखें तक दे दीं।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद चिकित्सक शिवक थे, अनरुद्ध इंद्र थे, बुद्ध के अनुयायी आम लोग थे, और मैं स्वयं राजा शिवी था।"

फुटनोट:

(1) मिलिंडा-पन्हा देखें, iv. मैं। 42

(2) यह अदित्त जातक, क्रमांक 424 है

(3)धम्मपद, 177.

(4) वैनिब्बाको को डिट्टोग्राफी द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है।

(5) विद्वान इसे नरक के रूप में समझाते हैं।

(6) विद्वान आगे कहते हैं: "सर्वोच्च बुद्ध ने धर्म के सेनापति सारिपुत्र को चरिया-पिटक की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया कि अनंत ज्ञान दोनों आँखों से भी अधिक प्रिय है।"

(7)लद्धा त्वम् को दो शब्दों के रूप में पढ़ना।

(8) ऐसा प्रतीत होता है कि यह दृश्य भरहुत के स्तूप पर चित्रित है।

(9) यह सख्ती से -सेनिओ होना चाहिए: शायद सभी अधिकारी या सैनिक

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सिरिमंदा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-500-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 500
सिरिमंडा-जातक

"ज्ञान से परिपूर्ण," इत्यादि--सिरीमांडा की यह समस्या महा-उम्मग्ग जातक संख्या 546 में विस्तार से दी जाएगी।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **रोहंता-मिगा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-501-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 501
रोहंता-मिगा-जातक

"मृत्यु के भय से," इत्यादि—यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें पूज्य आनंद के प्राण त्यागने का वर्णन है। इस संन्यास का वर्णन पुस्तक 21 में, चुल्ला-हंस जन्म (*1) और धनपाल पर विजय के अंतर्गत किया जाएगा। जब इस पूज्य व्यक्ति ने गुरु के लिए प्राण त्यागे, तो सत्य के हॉल में कानाफूसी होने लगी: "महोदय, पूज्य आनंद ने धार्मिक (तपस्वी) साधना के विस्तृत ज्ञान को प्राप्त कर दशबल (बुद्ध) के लिए प्राण त्यागे।" गुरु अंदर आए और उनसे पूछा कि वे क्या बातें कर रहे हैं। उन्होंने बताया। गुरु ने कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है जब उन्होंने मेरे लिए प्राण त्यागे हैं; वे पहले भी ऐसा कर चुके हैं।" फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस के राजा थे, उनकी प्रमुख पत्नी का नाम खेमा था। उसी समय हिमालय क्षेत्र में बोधिसत्व का जन्म एक हिरण के रूप में हुआ था: वे सुनहरे रंग के और सुंदर थे, और उनके छोटे भाई, चित्तमिगा, या चितकबरा हिरण, भी सुनहरे रंग के थे, और उनकी छोटी बहन सुताना भी सुनहरे रंग की थीं। उस महान पुरुष का नाम रोहंत था, और वे हिरणों के राजा थे। दो पर्वत श्रृंखलाओं को पार करते हुए, वे तीसरी श्रृंखला में रोहंत झील के किनारे रहते थे, जो अस्सी हजार हिरणों के झुंड से घिरी हुई थी। वे अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते थे, जो बूढ़े और अंधे थे।

बनारस के पास शिकारियों के एक गाँव में रहने वाला एक शिकारी हिमालय आया और उसने उस महान प्राणी के दर्शन किए। वह अपने गाँव लौटा और अपनी मृत्युशय्या पर अपने बेटे से कहा, "मेरे बेटे, हमारे शिकारगाह के एक हिस्से में एक सुनहरा हिरण है; यदि राजा पूछे तो तुम उसे इसके बारे में बता देना।"

एक दिन सुबह-सुबह रानी खेमा ने एक सपना देखा। सपने में एक सुनहरे रंग का हिरण सोने के आसन पर बैठा था और मीठी आवाज़ में, मानो किसी सुनहरी घंटी की झंकार जैसी, रानी को धर्म के मार्ग पर उपदेश दे रहा था। रानी बड़े आनंद से उसका उपदेश सुन रही थी, लेकिन उपदेश समाप्त होने से पहले ही हिरण उठकर चला गया। रानी जाग उठी और चिल्लाई, "हिरण को पकड़ो!" उसकी चीख सुनकर सेवक हंसने लगे। "घर पूरी तरह बंद है, दरवाजे-खिड़कियां बंद हैं; हवा का एक झोंका भी अंदर नहीं आ सकता, और ऐसे समय में मेरी मालकिन हिरण को पकड़ने के लिए पुकार रही हैं!" तब तक वह समझ चुकी थी कि यह एक सपना था। लेकिन उसने मन ही मन कहा, "अगर मैं कहूँ कि यह सपना है, तो राजा इस पर ध्यान नहीं देगा; लेकिन अगर मैं कहूँ कि यह मेरी पत्नी की इच्छा है, तो वह पूरी तत्परता से मेरी बात सुनेगा। मैं सुनहरे हिरण का उपदेश ज़रूर सुनूँगी!" फिर वह बीमार होने का नाटक करते हुए लेट गई। राजा अंदर आया और बोला, "मेरी रानी को क्या हुआ है?" रानी ने कहा, "हे महाराज, बस मेरी स्वाभाविक इच्छा है।" "तुम क्या चाहती हो?" "मैं एक धर्मात्मा सुनहरे हिरण का प्रवचन सुनना चाहती हूँ।" "हे महारानी, तुम्हारी इच्छा तो है ही नहीं: सुनहरा हिरण जैसी कोई चीज नहीं होती।" रानी ने कहा, "अगर मुझे वह नहीं मिला, तो मैं यहीं मर जाऊँगी।" उसने राजा की ओर पीठ फेर ली और वहीं लेट गई। राजा ने कहा, "अगर ऐसा कोई हिरण है, तो उसे पकड़ लिया जाएगा।" फिर उसने अपने दरबारियों और ब्राह्मणों से, ठीक उसी तरह जैसे मयूर जन्म (*2) में बताया गया है, पूछा कि क्या सुनहरे हिरण जैसी कोई चीज होती है। जब उसे पता चला कि सुनहरे हिरण होते हैं, तो उसने शिकारियों को बुलाया और पूछा, "तुममें से किसने ऐसा प्राणी देखा या सुना है?" जिस शिकारी की हमने बात की थी, उसके बेटे ने सुनी-सुनाई कहानी सुनाई। "मेरे सेवक," राजा ने कहा, "जब तुम मुझे यह हिरण लाकर दोगे, तो मैं तुम्हें भरपूर इनाम दूंगा; जाओ और इसे यहाँ ले आओ।" उन्होंने उसे खर्च के लिए पैसे दिए और उसे विदा कर दिया। उस व्यक्ति ने कहा, "चिंता मत करो: अगर मैं हिरण नहीं ला सका तो उसकी खाल लाऊंगा; अगर वह भी नहीं तो उसके बाल लाऊंगा।" फिर वह व्यक्ति घर लौटा और राजा के पैसे अपने परिवार को दे दिए। फिर वह बाहर गया और उसने शाही हिरण को देखा। "मैं उसे पकड़ने के लिए अपना जाल कहाँ लगाऊं?" उसने पानी पीने की जगह पर अपना मौका देखा। उसने चमड़े की पट्टियों से एक मजबूत रस्सी बनाई और उसे एक खंभे के साथ उस जगह पर गाड़ दिया जहाँ महान प्राणी पानी पीने के लिए उतरता था।

अगले दिन, भोजन की तलाश में निकले महापुरुष अस्सी हज़ार हिरणों के साथ हमेशा की तरह घाट पर पानी पीने आए। जैसे ही वे नीचे उतर रहे थे, वे फंदे में फंस गए। तब उन्होंने सोचा, "अगर मैं पकड़े जाने की चीख (*4) मारूँ, तो मेरे सारे हिरण बिना पानी पिए ही डर के मारे भाग जाएँगे।" हालाँकि वे फंदे के अंत में जकड़े हुए थे, फिर भी वे पीने का नाटक करते रहे, मानो वे आज़ाद हों। जब अस्सी हज़ार हिरण पानी पीकर पानी से बाहर आ गए, तो उन्होंने फंदे को तोड़ने के लिए तीन बार झटका दिया। पहली बार में उनकी त्वचा कट गई, दूसरी बार में मांस में कट लगा, और तीसरी बार में उन्होंने एक नस को इतना खींचा कि फंदा हड्डी को छू गया। फिर, फंदा तोड़ने में असमर्थ होकर, उन्होंने पकड़े जाने की चीख मारी: हिरणों का सारा झुंड तीन समूहों में डर के मारे भाग गया। चित्तमिगा को तीनों समूहों में से किसी में भी महापुरुष दिखाई नहीं दिया: "यह खतरा," उन्होंने सोचा, "जो हम पर आया है, वह मेरे भाई पर आ पड़ा है।" फिर लौटकर उसने उसे वहाँ फँसा हुआ पाया। उस महान सत्ता ने उसे देखते ही कहा, "भाई, वहाँ मत खड़े रहो, यहाँ खतरा है!" फिर उसे भागने के लिए उकसाते हुए उसने पहला श्लोक दोहराया:

"हे चित्तक, मृत्यु के भय से वे जीव-जंतुओं के झुंड भाग जाते हैं:
तुम उनके साथ जाओ, और देर मत करो, क्योंकि वे तुम्हारे साथ ही रहेंगे।
इसके बाद आने वाले तीन छंदों को दोनों बारी-बारी से पढ़ते हैं:

"नहीं, नहीं, रोहंता, मैं नहीं जाऊँगा; मेरा दिल मुझे पास खींच लाया है।"
मैं अपनी जान कुर्बान करने को तैयार हूं, मैं तुम्हें यहां नहीं छोडूंगा।"
"तब अंधे होकर, उनकी देखभाल करने वाला कोई न होने के कारण, हमारे माता-पिता (*5) दोनों को मरना होगा:
जाओ, और उन्हें अपने साथ रहने दो: पास में मत ठहरो!
"नहीं, नहीं, रोहंता, मैं नहीं जाऊँगा; मेरा दिल मुझे पास खींच लाया है।"
मैं अपनी जान कुर्बान करने को तैयार हूं, मैं तुम्हें यहां नहीं छोडूंगा।"
वह दाईं ओर बोधिसत्व का समर्थन करते हुए खड़ा हो गया और उनका उत्साहवर्धन करने लगा।

युवा हिरणी सुताना भी हिरणों के बीच दौड़ती रही, लेकिन उसे अपने भाई कहीं नहीं मिले। उसने सोचा, "यह खतरा मेरे भाइयों पर आ पड़ा होगा।" वह वापस मुड़ी और उनके पास आई; और जैसे ही उस महान सत्ता ने उसे आते देखा, उसने पाँचवाँ श्लोक दोहराया:

"हे डरपोक हिरणी, भाग जा; लोहे के फंदे में मैं फंसा हुआ हूँ।"
बाकियों के साथ जाओ, देर मत करो, वे तुम्हारे साथ रहेंगे।"
अगले तीन छंदों को पहले की तरह बारी-बारी से पढ़ा जाता है:

"नहीं, नहीं, रोहंता, मैं नहीं जाऊँगा; मेरा दिल मुझे पास खींच लाया है।"
मैं अपनी जान कुर्बान करने को तैयार हूं, मैं तुम्हें यहां नहीं छोडूंगा।"
"फिर अंधे होकर, उनकी देखभाल करने वाला कोई न होने के कारण, हमारे माता-पिता दोनों को मरना होगा:
जाओ, और उन्हें अपने साथ रहने दो: पास में मत ठहरो!
"नहीं, नहीं, रोहंता, मैं नहीं जाऊँगा; मेरा दिल मुझे पास खींच लाया है।"
मैं अपनी जान गंवा दूंगा, लेकिन तुम्हें कभी भी यहाँ फँसाकर कैद नहीं होने दूंगा।"
इसलिए उसने भी आज्ञा मानने से इनकार कर दिया; और उसके बाईं ओर खड़ी होकर उसे सांत्वना देने लगी।

अब शिकारी ने हिरण को भागते हुए देखा और पकड़े जाने की आवाज़ सुनी। "ज़रूर झुंड का राजा पकड़ा गया है!" उसने कहा; और अपनी कमर कस कर, उसे मृत्यु देने के लिए भाला उठाया और तेज़ी से दौड़ पड़ा। जैसे ही उस महान सत्ता ने उसे आते देखा, उसने नौवाँ श्लोक दोहराया:

"क्रोधित शिकारी, हाथों में हथियार लिए, उसे पास आते हुए देखता है!"
और वह आज हमें यहीं तीर या भाले से मार डालेगा।
चित्त ने उस आदमी को देखकर भी भागने की कोशिश नहीं की। लेकिन सूतना, स्थिर खड़े रहने की शक्ति न होने के कारण, मृत्यु के भय से थोड़ी दूर भागी। फिर यह सोचकर कि "यदि मैं अपने दोनों भाइयों को छोड़कर भाग जाऊँ तो कहाँ जाऊँगी?" वह अपने प्राण त्यागकर (*6) मृत्यु का भाव लिए वापस लौट आई और अपने भाई के बाईं ओर खड़ी हो गई।

इसे समझाने के लिए, गुरु ने दसवां श्लोक सुनाया:

"घबराहट और डर के मारे वह कोमल हिरणी थोड़ी दूर तक भाग गई।"
फिर उसने वह काम किया जो करना सबसे कठिन था, क्योंकि वह मरने के लिए लौट आई।
जब शिकारी वहाँ पहुँचा, तो उसने इन तीनों प्राणियों को एक साथ खड़े देखा। उसके मन में एक दयनीय विचार आया, क्योंकि उसने अनुमान लगाया कि वे एक ही गर्भ से जन्मे भाई-बहन हैं। उसने सोचा, "केवल झुंड का राजा ही फँसा है; बाकी दोनों सम्मान के बंधन में बंधे हैं। वे उसके लिए किस परिवार के सदस्य हो सकते हैं?" और उसने यह प्रश्न इस प्रकार पूछा:

"ये हिरण कौन हैं जो कैदी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जबकि वह स्वतंत्र है?"
और न ही मैं अपनी जान की खातिर उसे यहाँ छोड़कर भाग जाऊँगी?
तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया:

"मेरे भाई और मेरी बहन, ये दोनों एक ही माँ की संतान हैं:
और न ही मैं अपनी जान की खातिर यहां उदास होकर जाऊंगा।"

इन शब्दों ने उसके हृदय को अत्यंत कोमल बना दिया। चित्त, वह राजसी हिरण, ने देखा कि उसका हृदय कोमल हो गया है, तो उसने कहा, "मित्र शिकारी, यह मत समझो कि यह प्राणी केवल एक हिरण है। यह अस्सी (20) हजार हिरणों का राजा है, सदाचारी जीवन जीने वाला, सभी प्राणियों के प्रति दयालु, महान बुद्धि वाला है; यह अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता है, जो अब अंधे और बूढ़े हैं। यदि तुम इस धर्मात्मा प्राणी को मारोगे, तो उसे मारकर तुम माता-पिता, मेरी बहन और मुझे, हम पाँचों को मारोगे; परन्तु यदि तुम मेरे भाई को जीवनदान दोगे, तो तुम हम पाँचों को जीवनदान दोगे।" फिर उसने एक श्लोक दोहराया:

"अंधे हो जाने के कारण, उनकी देखभाल करने वाला कोई न होने के कारण, वे दोनों इसी तरह मर जाएंगे।"
हे प्रभु, इन पाँचों को जीवनदान दे और मेरे भाई को जाने दे!
जब शिकारी ने यह धार्मिक प्रवचन सुना, तो वह मन ही मन प्रसन्न हुआ। "भयभीत न हों, मेरे स्वामी," उसने कहा और अगली पंक्ति दोहराई:

"ऐसा ही हो: देखो, मैं अब माता-पिता का सहारा देने वाले हिरण को मुक्त कर रहा हूँ:
जब उसके माता-पिता उसे सुरक्षित पाएंगे तो वे खुशी से जयजयकार करेंगे।
यह कहते हुए उसने सोचा: "मुझे राजा और उसके सम्मान से क्या लेना-देना? अगर मैंने इस राजसी हिरण को चोट पहुँचाई, तो या तो धरती फटकर मुझे निगल जाएगी, या बिजली गिरकर मुझे मार डालेगी। मैं इसे जाने दूँगा।" अतः उस महान सत्ता के पास पहुँचकर उसने खंभा नीचे गिराया और चमड़े की डोरी काट दी; फिर उसने हिरण को गले लगाया और उसे पानी के पास लिटाया, कोमलता से उसके फंदे को खोला, नसों के सिरों को जोड़ा, घाव के किनारों को मिलाया और त्वचा के किनारों को भी, पानी से खून धोया और दयापूर्वक बार-बार उसे सहलाया। उसके प्रेम और उस महान सत्ता की पूर्णता से सब कुछ फिर से ठीक हो गया, नसें, मांस और त्वचा: पैर पर खाल और बाल आ गए: कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि उसे कहाँ चोट लगी थी। वह महान सत्ता वहाँ प्रसन्नता से खड़ी थी। चित्त ने उसे देखा और प्रसन्न हुआ, और इस श्लोक में शिकारी को धन्यवाद दिया:

"हंटर, अब खुश रहो, और तुम्हारा परिवार भी खुश रहे।"
मुझे इस विशाल हिरण को मुक्त देखकर खुशी हो रही है।"
अब उस महान प्राणी ने सोचा, "क्या इस शिकारी ने मुझे अपनी मर्जी से फंसाया है, या किसी और के कहने पर?" और उसने अपने पकड़े जाने का कारण पूछा। शिकारी ने कहा, "महाराज, मेरा आपसे कोई लेना-देना नहीं है; लेकिन राजा की पत्नी खेमा आपसे धर्म के प्रवचन सुनना चाहती हैं; इसलिए मैंने राजा के कहने पर आपको फंसाया।" - "अगर ऐसा है, तो मेरे मित्र, आपने मुझे मुक्त करके बड़ा साहस दिखाया है। आइए, मुझे राजा के पास ले चलें, और मैं रानी के सामने प्रवचन दूंगा।" - "सचमुच, महाराज, राजा क्रूर होते हैं। कौन जाने इसका क्या परिणाम होगा? राजा मुझे जो भी सम्मान दें, मुझे उसकी परवाह नहीं: आप जहां चाहें जाएं।" लेकिन फिर उस महान प्राणी ने सोचा कि उसे मुक्त करना एक साहसिक कार्य था; उसे वादा किया गया सम्मान पाने का मौका देना ही होगा। इसलिए उसने कहा, "मित्र, अपने हाथ से मेरी पीठ खुजलाओ।" उसने ऐसा किया; उसका हाथ सुनहरे बालों से ढक गया। "हे स्वामी, मैं इन बालों का क्या करूँ?" — "मेरे मित्र, इन्हें ले लो, राजा और रानी को दिखाओ, उन्हें बताओ कि ये उस सुनहरे हिरण के बाल हैं; मेरी जगह ले लो और उन्हें उन श्लोकों का पाठ करो जिन्हें मैं दोहराऊँगा: जब वह तुम्हें सुनेगी, तो उसकी जिज्ञासा शांत हो जाएगी।" "हे राजा, विधि का पाठ करो!" उस व्यक्ति ने कहा; और दूसरे ने उसे पवित्र जीवन के दस श्लोक सिखाए, पाँच सद्गुणों का वर्णन किया और उसे सतर्क रहने की चेतावनी देकर विदा किया। शिकारी ने उस महान व्यक्ति के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कोई गुरु के साथ करता है: उसने तीन बार उनके चारों ओर विधिपूर्वक परिक्रमा की, चारों प्रकार के प्रणाम किए और बालों को कमल के पत्ते में लपेटकर चला गया। तीनों जानवर थोड़ी दूर तक उसके साथ गए, फिर भोजन और पानी पीने के बाद अपने माता-पिता के पास लौट गए।

माता-पिता ने उससे पूछा: "रोहंता, मेरे बेटे, हमने सुना था कि तुम पकड़े गए थे, और तुम कैसे छूट गए?" उन्होंने इस प्रश्न को एक छंद में पिरोया:

"जब जीवन लगभग समाप्त हो चुका था, तब आपने अपनी स्वतंत्रता कैसे प्राप्त की?"
मेरे बेटे, शिकारी ने तुम्हें उस खतरनाक जाल से कैसे मुक्त किया?
इसके उत्तर में बोधिसत्व ने तीन श्लोक दोहराए:

"चित्तका ने मुझे अपने मधुर शब्दों से स्वतंत्रता दिलाई।"
वो शब्द दिल को छू गए, दिल को भेद गए, मीठे और स्पष्ट शब्दों से कहे गए।
"सुताना ने अपने मधुर शब्दों से मुझे आजादी दिलाई।"
वो शब्द दिल को छू गए, दिल को भेद गए, मीठे और स्पष्ट शब्दों से कहे गए।
"शिकारी ने मुझे ये मनमोहक शब्द सुनने की आजादी दी।"

वो शब्द दिल को छू गए, दिल को भेद गए, शब्द मधुर और स्पष्ट थे।
उनके माता-पिता ने आभार व्यक्त करते हुए कहा:

"वह अपनी पत्नी और परिवार के साथ, हे भगवान, वे कितने सुखी हों!"
हमें रोहंता को अब मुक्त देखकर बहुत खुशी हो रही है!
फिर शिकारी जंगल से बाहर आया और राजा के पास गया; फिर उसने राजा को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। राजा ने उसे देखकर कहा:

"मुझे बताओ, शिकारी: क्या तुम कहते हो, 'देखो मैं हिरण की खाल लाया हूँ':
या फिर किसी भी कारण से आपके पास दिखाने के लिए हिरण की खाल ही नहीं है?
शिकारी ने उत्तर दिया:

"वह प्राणी मेरे हाथों में आ गया, मेरे गुप्त जाल में फंस गया।"
और वह तुरंत पकड़ा गया: लेकिन अन्य लोग, जो स्वतंत्र थे, वहीं उसकी सेवा में लगे रहे।
"तब दया ने मेरे रोंगटे खड़े कर दिए, एक अजीब और नई दया।"
मैंने सोचा, "अगर मैं इस हिरण को मार डालूँ तो मैं भी मर जाऊँगा।"
"हे शिकारी, ये हिरण कौन थे, इनका स्वभाव और इनके तौर-तरीके क्या थे?"
उनका रंग कैसा था, उनमें क्या गुणवत्ता थी, जिसके कारण वे इतनी उच्च्य प्रशंसा के पात्र हैं?
राजा ने अत्यंत आश्चर्यचकित होकर यह प्रश्न कई बार पूछा। शिकारी ने इस छंद में उत्तर दिया:

"चांदी जैसे सींगों और सुंदर आकृति के साथ, अत्यंत चमकदार खाल और रोएँ के साथ,"
लाल छेद, और चमकती हुई खूबसूरत आंखें, सब कुछ देखने में बहुत सुंदर है।"
जैसे ही उसने इस श्लोक को दोहराया, शिकारी ने राजा के हाथ में उस महान सत्ता के सुनहरे बाल रख दिए, और एक अन्य श्लोक में इन हिरणों के चरित्र का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत किया:

"हे प्रभु, इनका स्वभाव और तौर-तरीके ऐसे ही हैं, और ये हिरण भी ऐसे ही हैं।"
वे अपने माता-पिता के लिए खाना ढूंढते थे: मैं उनके लिए यहां खाना नहीं ला सकता था।"
इन शब्दों में उन्होंने महान सत्ता, चित्त नामक हिरण और हिरणी सूतना के गुणों का वर्णन किया; और आगे कहा, "हे राजा, राजसी हिरण ने मुझे अपने बाल दिखाए और मुझे आदेश दिया कि मैं उसका स्थान लूँ और रानी के समक्ष दस श्लोकों में पवित्र जीवन का उपदेश दूँ (*7)।" फिर स्वर्ण सिंहासन पर बैठकर उन्होंने उन श्लोकों में धर्म का उपदेश दिया।

रानी की इच्छा पूरी हो गई। राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने शिकारी को बड़ा सम्मान देते हुए इन छंदों को दोहराया।

मैं तुम्हें एक रत्नजड़ित बाली और सौ ड्रैचम सोना देता हूँ।
सन के फूल के समान एक सुंदर सिंहासन, जिस पर चार बार तकिए बिछे हुए हैं (*8),
"समान पद और योग्यता वाली दो पत्नियाँ, एक बैल और पचास गायें (x20)।"
प्रिय सहायक! और मैं हमेशा न्याय के साथ शासन करूंगा।
"व्यापार, खेती, खेतों से बचे हुए अवशेष एकत्र करना (*9), सूदखोरी,
आपका जो भी पेशा हो,
ध्यान रखो कि तुम पाप न करो, बल्कि इन्हीं से अपने परिवार का भरण-पोषण करो।
राजा के ये शब्द सुनकर उसने कहा, “मेरे लिए कोई घर-बार नहीं; हे स्वामी, मुझे संन्यासी बनने की अनुमति दीजिए।” राजा की सहमति पाकर उसने राजा के बहुमूल्य उपहार अपनी पत्नी और परिवार को सौंप दिए और हिमालय की ओर प्रस्थान किया, जहाँ उसने संन्यासी जीवन अपनाया, अष्टगुणों का अभ्यास किया और ब्रह्मा के लोक में प्रवेश किया। राजा ने परमपिता के उपदेशों का पालन किया और स्वर्ग की प्राप्ति की। ये उपदेश एक हजार वर्षों तक कायम रहे।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, बहुत समय पहले आनंद ने मेरे लिए प्राण त्याग दिए थे।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय चन्ना शिकारी थे और सारिपुत्र राजा, उनकी बहन रानी खेमा थीं; राजा के परिवार के कुछ सदस्य माता-पिता थे, उप्पलावन्ना सुताना थे, आनंद चित्त थे, शाक्य (बुद्ध का वंश) अस्सी हजार हिरण थे, और मैं स्वयं राजसी हिरण रोहंत था।"

"हे योद्धा राजा, अपने मित्रों और दरबारियों के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इसलिए
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"युद्ध और यात्रा में, हे योद्धा राजा, न्यायसंगत आचरण करो; और इसलिए
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे योद्धा राजा, नगर और गाँव में न्यायपूर्वक आचरण करो; और इस प्रकार"
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे राजा, प्रत्येक देश और राज्य में न्यायपूर्वक आचरण करो; और इस प्रकार
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
सभी ब्राह्मणों और तपस्वियों से निवेदन है कि वे धार्मिक आचरण करें; और इस प्रकार
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे योद्धा राजा, पशुओं और पक्षियों के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करो; और इसलिए
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे योद्धा राजा, धार्मिक आचरण करो; इसी से समस्त आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।"
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे राजा, सतर्कतापूर्वक अच्छाई के मार्ग पर चलो।"
ब्राह्मणों, इंद्र और देवताओं (देवदूतों) ने अपनी देवत्व प्राप्ति कर ली है।
ये वे सिद्धांत हैं जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं: और ज्ञान के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।
समस्त सुख की देवी ने स्वयं को स्वर्ग में उठा लिया।
इस प्रकार शिकारी ने धर्म का उपदेश दिया, जैसा कि उस महान सत्ता ने उसे दिखाया था, बुद्ध की कुशलता से, मानो वह स्वर्ग की गंगा को पृथ्वी पर अवतरित कर रहा हो। हजारों लोगों की भीड़ ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ इसका स्वागत किया। प्रवचन सुनकर रानी की हार्दिक इच्छा पूरी हुई।

फुटनोट:

(1) संख्या 546

(2) संख्या 533

(3) मोरा जातक: क्रमांक 129

(4) खंड संख्या 153 और 184 "जोरदार और लंबा," "चीखों की एक श्रृंखला।"

(5) "माता-पिता" शब्द विद्वान द्वारा जोड़ा गया है, पाठ में यह "वे" है।

(6) यानी मृत्यु को अपने भाग्य के रूप में स्वीकार करना (माथे पर लिखा हुआ)।

(7) तब राजा ने उसे सात प्रकार के रत्नों से जड़े अपने राजसिंहासन पर बैठाया; और स्वयं अपनी रानी के साथ एक किनारे पर रखी एक साधारण चौकी पर बैठकर, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए, उससे बोलने का अनुरोध किया। शिकारी ने इस प्रकार विधि का वर्णन किया:

"हे योद्धा राजा, अपने माता-पिता के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इसलिए
धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
"हे योद्धा राजा, अपनी पत्नी और संतान के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इस प्रकार

धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करने से राजा स्वर्ग में जाएगा।
(8)chatussado "चार अलग-अलग चीजों में समृद्ध"

(9) उंचचरियाया में एक अक्षर अधिक है, और शायद उंचचरिया होना चाहिए।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हंस-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-502-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 502
हम्सा-जातक

“देखो, पक्षी जा रहे हैं,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें उन्होंने वरिष्ठ भिक्षु आनंद के संन्यास का वर्णन किया था। तब भी भिक्षु (भाईचारे के भिक्षु) सत्य के हॉल में वरिष्ठ भिक्षु के अच्छे गुणों के बारे में बातें कर रहे थे, तभी गुरु वहाँ आए और उनसे पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा, “भाइयों (भिक्षुओं) यह पहली बार नहीं है कि आनंद ने मेरे लिए अपना प्राण त्यागा है, बल्कि उन्होंने पहले भी ऐसा किया था।” और फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में बहुपुत्तक नामक राजा का शासन था, जिन्हें अनेक पुत्रों का पिता भी कहा जाता था। उनकी पत्नी का नाम खेमा था। उस समय बहुपुत्तक चित्तकूट पर्वत पर निवास करते थे और नब्बे हजार जंगली हंसों के मुखिया थे, जिनका जन्म एक स्वर्ण हंस के रूप में हुआ था। जैसा कि पहले बताया गया है, रानी ने एक सपना देखा और राजा को बताया कि उनके गर्भ में स्वर्ण हंस द्वारा धर्म के मार्ग पर दिए गए प्रवचन को सुनने की तीव्र इच्छा जागृत हुई है। जब राजा ने पूछा कि क्या स्वर्ण हंस जैसे कोई प्राणी होते हैं, तो उन्हें बताया गया कि हाँ, चित्तकूट पर्वत पर होते हैं। तब उन्होंने एक झील बनवाई जिसका नाम उन्होंने खेमा रखा और उसमें हर प्रकार के अनाज बोए। वे प्रतिदिन चारों दिशाओं में सुरक्षा की घोषणा करवाते थे और हंसों को पकड़ने के लिए शिकारी भेजते थे। इस व्यक्ति को कैसे भेजा गया, पक्षियों पर उसकी निगरानी, सुनहरे हंसों के आने पर राजा को कैसे सूचना दी गई, किस प्रकार फंदा बिछाया गया और महापुरुष फंदे में कैसे फँसे, हंसों के मुख्य सेनापति सुमुख ने उन्हें हंसों के तीन समूहों में कैसे नहीं देखा और वापस लौट गया, यह सब महाहंस जन्म (*1) में वर्णित किया जाएगा। अब, जैसे उस समय महापुरुष फंदे और छड़ी में फँसे थे; और छड़ी के अंत में फंदे में लटकते हुए, उन्होंने अपनी गर्दन फैलाकर उस रास्ते की ओर देखा जहाँ से हंस गए थे, और सुमुख को आते हुए देखकर सोचा, "जब वह आएगा तो मैं उसकी परीक्षा लूँगा।" इसलिए जब वह आया, तो महापुरुष ने तीन श्लोक दोहराए:

"देखो, पक्षी जा रहे हैं, लाल हंस, सब डर से कांप रहे हैं:
हे सुनहरे पीले रंग की सुमुखा, यहाँ से चली जाओ! तुम्हें यहाँ क्या करना है?
मेरे दोस्तों और परिवार ने मुझे छोड़ दिया, वे सब मुझसे दूर चले गए।
बिना सोचे समझे वे उड़ जाते हैं: तुम्हें अकेला क्यों छोड़ दिया गया है?
"उड़ो, हे महान पक्षी! कैदियों के साथ कोई संगति नहीं हो सकती।"
सुमुखा, उड़ जाओ! जब तक तुम स्वतंत्र हो, इस अवसर को मत गंवाओ।
इस पर सुमुखा ने मिट्टी पर बैठे हुए उत्तर दिया--

"नहीं, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, रॉयल गूज, जब मुसीबत करीब आएगी;
लेकिन मैं यहीं रुकूंगा, और तुम्हारे साथ ही जिऊंगा या मरूंगा।"
इस प्रकार सुमुख ने सिंह स्वर में कहा; और धतरत्थ ने इस श्लोक से उत्तर दिया:

"सुमुख, आपके ये शब्द एक महान हृदय और साहस का प्रतीक हैं:
मैंने तुम्हें सिर्फ तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही उड़ जाने को कहा था।
जब वे आपस में बातचीत कर रहे थे, तभी एक शिकारी हाथ में लाठी लिए पूरी गति से आता हुआ दिखाई दिया। सुमुखा ने धतरत्था को प्रोत्साहित किया और उस व्यक्ति से मिलने के लिए उड़ गई, तथा आदरपूर्वक शाही पक्षी के गुणों का वर्णन किया। तुरंत ही शिकारी का हृदय नरम पड़ गया; यह देखकर सुमुखा वापस लौट गई और हंसों के राजा को प्रोत्साहित करने लगी। शिकारी हंसों के राजा के पास पहुँचकर छठा श्लोक सुनाने लगा:

वे अनछुए रास्तों से पैदल चलते हैं, जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं:
और क्या तुमने, हे महान हंस, दूर से ही जाल नहीं देखा था?
उस महान सत्ता ने कहा:

जब जीवन का अंत निकट आ रहा हो, और मृत्यु का समय नजदीक आ रहा हो,
यद्यपि आप इसके करीब आ सकते हैं, लेकिन आप जाल या फंदे में जासूसी नहीं करते (*2)।"

पक्षी की टिप्पणी से प्रसन्न होकर शिकारी ने सुमुखा को तीन श्लोक संबोधित किए।

"देखो, पक्षी जा रहे हैं, लाल हंस, सब डर से कांप रहे हैं:
और हे सुनहरे पीले पक्षी, तुम अभी भी यहीं प्रतीक्षा कर रहे हो।
"लाल हंसों ने खाया-पिया; वे बेपरवाह होकर उड़ गए।"
वे हवा में तेजी से उड़ जाते हैं, और आप अकेले रह जाते हैं।
"यह कौन सा पक्षी है, जो बाकियों के उसे छोड़कर उड़ जाने पर भी,
हालांकि आप स्वतंत्र हैं, फिर भी आप कैदी के साथ शामिल हो जाते हैं—आपको अकेला क्यों छोड़ दिया गया है?
सुमुखा ने उत्तर दिया:

"वह मेरे साथी, मित्र और राजा हैं, वे मेरे जीवन के समान ही प्रिय हैं।"
मैं उसे कभी नहीं छोडूंगी—नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगी, जब तक कि मृत्यु मुझे अपने पास न बुला ले।"
यह सुनकर शिकारी बहुत प्रसन्न हुआ और मन ही मन सोचने लगा—"यदि मैं इन जैसे गुणी प्राणियों को हानि पहुँचाऊँ तो पृथ्वी फट जाएगी और मुझे निगल जाएगी। मुझे राजा के पुरस्कार की क्या परवाह? मैं इन्हें मुक्त कर दूँगा।" और उसने एक श्लोक दोहराया:

अब यह देखकर कि तुम मित्रता की खातिर मरने को तैयार हो,
मैंने तुम्हारे राजा और साथी को मुक्त कर दिया है, ताकि वे तुम्हारे पीछे-पीछे उड़ सकें।"
यह कहकर, उन्होंने धतरत्था को छड़ी से नीचे उतारा, फंदा खोला, और उन्हें किनारे पर ले गए, और दयापूर्वक उनका खून धोया, और उनकी उखड़ी हुई मांसपेशियों और नसों को ठीक किया। और उनके दयालु हृदय और महापुरुष की पूर्णता (*3) की शक्ति के कारण, पल भर में उनका पैर फिर से ठीक हो गया, और जहाँ उन्हें फँसाया गया था, वहाँ कोई निशान नहीं बचा। सुमुख ने महापुरुष को प्रसन्नता से देखा और इन शब्दों में धन्यवाद दिया:

"अपने पूरे परिवार और दोस्तों के साथ, हे शिकारी, खुश रहो (*4)
मुझे पक्षियों के राजा को मुक्त देखकर खुशी हो रही है।
जब शिकारी ने यह सुना, तो उसने कहा, "अब आप जा सकते हैं, मित्र।" तब उस महान प्राणी ने उससे कहा, "क्या तुमने मुझे अपने स्वार्थ के लिए पकड़ा है, मेरे भले, या किसी और के कहने पर?" उसने उसे सारी बात बता दी। दूसरा सोचने लगा कि चित्तकुटा लौटना बेहतर होगा या शहर जाना। उसने सोचा, "अगर मैं शहर जाऊँगा, तो शिकारी को इनाम मिलेगा, रानी की इच्छा पूरी होगी, सुमुखा की मित्रता का पता चलेगा, और फिर अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर मुझे खेमा झील मुफ्त उपहार में मिलेगी। इसलिए शहर जाना ही बेहतर है।" यह तय करके उसने कहा, "शिकारी, हमें अपने डंडे पर राजा के पास ले चलो, और अगर वह चाहे तो मुझे रिहा कर देगा।" - "मेरे स्वामी, राजा कठोर होते हैं; आप अपने रास्ते जाओ।" - "क्या! मैंने तुम्हारे जैसे शिकारी को नरम कर दिया है, और क्या मुझे राजा की कृपा नहीं मिलेगी? यह मुझ पर छोड़ दो; तुम्हारा काम, मित्र, हमें उसके पास पहुँचाना है।" उस व्यक्ति ने वैसा ही किया।

जब राजा की नज़र हंसों पर पड़ी, तो वह प्रसन्न हुआ। उसने दोनों हंसों को एक सुनहरे तंबू पर बिठाया, उन्हें खाने के लिए शहद और भुना हुआ अनाज दिया और पीने के लिए मीठा पानी दिया, और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें विधि के बारे में बताएं। हंसों के राजा ने राजा की उत्सुकता देखकर पहले उनसे मधुर शब्दों में बात की। ये छंद राजा और हंसों के बीच हुई बातचीत को दर्शाते हैं।

अब उसके पास सम्मान, स्वास्थ्य और धन है, और राज्य परिपूर्ण है।
क्या वह कल्याण और समृद्धि के बारे में न्यायपूर्वक शासन करता है?
"ओह, यहाँ स्वास्थ्य और धन है, हे हंस, और यहाँ एक परिपूर्ण राज्य है।"
कल्याण और समृद्धि का, न्यायपूर्ण और धर्मपरायण शासन के साथ।"
क्या आपके दरबार में कोई दाग नहीं दिखता, और क्या आपके शत्रु
बहुत दूर; और दक्षिण की ओर पड़ने वाली उस छाया की तरह, जो कभी बढ़ती नहीं।
मेरे दरबारियों और मेरे शत्रुओं में कोई दाग नहीं दिखता।
दूर-दूर तक फैली हुई चीजें दक्षिण की ओर पड़ने वाली उस छाया के समान हैं, जो कभी बढ़ती नहीं।
और क्या तुम्हारी रानी समान वंश की, आज्ञाकारी और मधुर वाणी वाली है?
फलदायी, निष्पक्ष, प्रसिद्ध, आपकी इच्छाओं की प्रतीक्षा में, प्रत्येक कार्य को पूरा करने वाला?
"ओह हाँ, मेरी रानी समान कुल की है, आज्ञाकारी है, मधुर वाणी वाली है।"
फलदायी, निष्पक्ष, प्रसिद्ध, मेरी इच्छाओं की प्रतीक्षा करने वाला, हर काम करने वाला।"
"हे पिता तुल्य शासक! आपके अनेक, कुलीन पुत्र हों,"

तेज बुद्धि वाले, आसानी से प्रसन्न हो जाने वाले पुरुष, चाहे कुछ भी हो जाए?
"हे धतरत्था! मेरे यशवान पुत्रों की संख्या पचास (20) है:
उन्हें उनका कर्तव्य बताएं: वे आपकी अच्छी सलाह को अनदेखा नहीं करेंगे।
यह सुनकर उस महान सत्ता ने उन्हें पाँच श्लोकों में सलाह दी:

जो व्यक्ति भलाई करने के प्रयास को बहुत देर तक टालता रहता है,
उच्च कुल में जन्म लेने के बावजूद, सद्गुणों से संपन्न होने के बावजूद, वह बाढ़ में डूब जाता है।
"उसका ज्ञान लुप्त हो रहा है, उसे भारी हानि हो रही है; जैसे रात में कोई चाँदनी रात में अंधा हो जाता है।"
अपनी अपूर्ण दृष्टि के कारण उसे सभी चीजें अपने वास्तविक आकार से दोगुनी बड़ी दिखाई देती हैं।
जो असत्य में सत्य देखता है, उसे किसी प्रकार की बुद्धि प्राप्त नहीं होती।
जैसे किसी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ते पर हिरण अक्सर गिर जाते हैं।
यदि कोई बलवान साहसी व्यक्ति सद्गुण से प्रेम करता है, सही मार्ग का अनुसरण करता है,
हालांकि वह एक निम्न कुल का देहाती व्यक्ति है, फिर भी वह रात में जलती हुई आग की तरह दमकता है।
"इस उपमा का उपयोग करके ज्ञान के सभी सत्यों की व्याख्या की जा सकती है।"
अपने बेटों को तब तक प्यार करो जब तक वे समझदार न हो जाएं, जैसे बारिश में अंकुरित पौधे।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने राजा से पूरी रात प्रवचन दिए। रानी की तृप्ति हुई। सूर्योदय होते ही उन्होंने राजा को राजाओं के गुणों से सुसज्जित किया और उन्हें सतर्क रहने के लिए प्रोत्साहित किया, फिर सुमुखा के साथ उत्तरी खिड़की से उड़कर चित्तकुटा चले गए।

इस प्रवचन के बाद, गुरु ने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, इस व्यक्ति ने पहले मेरे लिए अपना प्राण बलिदान कर दिए थे," और फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय चन्ना शिकारी थे, सारिपुत्र राजा थे, एक बहन रानी खेमा थीं, शाक्य गोत्र (बुद्ध का कुल) हंसों का झुंड था, आनंद सुमुख थे, और मैं स्वयं हंसों का राजा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 534, जहाँ हंसों के राजा का नाम धतरत्था है।

(2) यह दोहा क्रमांक 52 और क्रमांक 331 ("जब विनाश...") में आता है।

(3) बोधिसत्व की दस सिद्धियाँ।

(4) यह पंक्ति क्रमांक 331 ("ओ शिकारी...") में आती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सत्तीगुम्बा-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-503-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 503
सत्तिगुम्बा-जातक। (*1)

“एक विशाल सेना के साथ,” इत्यादि — यह कथा गुरु ने मद्दकुच्ची के हिरण उद्यान में रहते हुए देवदत्त के बारे में सुनाई थी। जब देवदत्त ने पत्थर फेंका और उसका एक टुकड़ा भगवान बुद्ध के पैर में जा लगा, तो उन्हें बहुत पीड़ा हुई। असंख्य भिक्षु तथागत (बुद्ध) के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए। जब भगवान बुद्ध ने इतने लोगों को एकत्रित देखा, तो उन्होंने उनसे कहा, “भाइयों, यहाँ बहुत भीड़ है: बहुत बड़ी सभा होगी। आइए, मुझे हाथगाड़ी में बिठाकर मद्दकुच्ची ले चलें।” तब भिक्षुओं ने वैसा ही किया। जीवक ने तथागत (बुद्ध) के पैर का उपचार किया। गुरु के समक्ष बैठे भिक्षु इस विषय पर चर्चा करने लगे: “महोदय, देवदत्त पापी है और उसके सभी अनुयायी पापी हैं; पापी पापियों की संगति में रहता है।” गुरु ने पूछा, “भाइयों, आप क्या कह रहे हैं?” उन्होंने उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "ऐसा पहले भी हो चुका है, और यह पहली बार नहीं है जब पापी देवदत्त ने पापी संगति की है।" फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, उत्तरा-पंचाल नगर में पंचाल नामक राजा का शासन था। महान पुरुष पंचाल का जन्म एक ऊंचे पठार पर स्थित रेशम-कपास के पेड़ों से घिरे जंगल में तोतों के राजा के पुत्र के रूप में हुआ था। उनके दो भाई थे। इस पहाड़ी से हवा की दिशा में एक डाकुओं का गांव था, जहां पांच सौ डाकू रहते थे, और उसके नीचे पांच सौ ऋषियों का एक आश्रम था।

जब तोते अपने पंख बदल रहे थे, उसी समय एक बवंडर आया और एक तोते को उड़ा ले गया। वह तोता डाकुओं के गाँव में, उनके हथियारों के बीच जा गिरा। वहाँ गिरने के कारण उसका नाम सत्तिगुम्बा या काँटेदार भाला रखा गया। दूसरा तोता आश्रम में, रेतीले स्थान पर उगे फूलों के बीच गिरा, इसलिए उसका नाम पुप्पका रखा गया। सत्तिगुम्बा डाकुओं के बीच पला-बढ़ा, जबकि पुप्पका ऋषियों के साथ।

एक दिन, राजा भव्य वस्त्रों में, एक विशाल सेना के साथ, अपने शानदार रथ पर सवार होकर हिरण का शिकार करने निकले। नगर से कुछ ही दूरी पर, वे फूलों और फलों से लदे एक सुंदर उपवन में प्रवेश कर गए। उन्होंने कहा, "यदि कोई हिरण को उनके पास से जाने देगा, तो उन्हें इसका हिसाब चुकाना होगा!" फिर वे रथ से उतरे और अपने लिए निर्धारित कुटिया में धनुष हाथ में लिए खड़े हो गए। शिकारियों ने झाड़ियों को पीटकर शिकार को बाहर निकालने का प्रयास किया। एक हिरण उठा और रास्ता खोजने लगा; उसने राजा के पास एक रास्ता देखा, उसमें से निकलकर भाग गया। सबने पूछा कि हिरण को किसने जाने दिया। जवाब था राजा! यह सुनकर सब लोग उनका मज़ाक उड़ाने लगे। राजा अपने अहंकार में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें यह मज़ाक सहन नहीं हुआ। "अब मैं उस हिरण को पकड़ूंगा!" वे चिल्लाए और अपने रथ पर सवार हो गए। "पूरी गति से चलो!" उन्होंने सारथी से कहा और हिरण के पीछे चल पड़े। राजा इतनी तेज़ी से भागा कि बाकी लोग उसका साथ नहीं दे पाए: राजा और सारथी, ये दोनों ही दोपहर तक चलते रहे, लेकिन उन्हें कोई हिरण नहीं दिखा। तब राजा वापस मुड़ा; और डाकुओं के गाँव के पास एक सुंदर घाटी देखकर, वह नीचे उतरा, स्नान किया, पानी पिया और पानी से बाहर आ गया। फिर सारथी रथ से एक चटाई लाया और उसे एक पेड़ की छाया में बिछा दिया; राजा उस पर लेट गया, सारथी उसके पैरों की मालिश करने के लिए उसके पास बैठ गया: राजा कभी ऊंघता, कभी जागता। डाकुओं के गाँव के लोग, यहाँ तक कि सभी डाकू भी, राजा की सेवा में जंगल में चले गए थे: इस प्रकार गाँव में सत्तिगुम्बा और रसोइया, पतिकोलम्बा नामक व्यक्ति के अलावा कोई नहीं बचा था। उसी क्षण सत्तिगुम्बा गाँव से बाहर आया और राजा को देखकर सोचा, "अगर हम सोते हुए ही उसे मार डालें और उसके गहने ले लें तो क्या होगा!" इसलिए वह पतिकोलम्बा के पास लौटा और उसे सारी बात बताई।

इसे समझाने के लिए गुरु ने पाँच श्लोक सुनाए:

"पांचाल का राजा एक विशाल सेना के साथ हिरण का शिकार करने निकला था;
घने जंगलों में वह सम्राट भटक गया, और उसके आसपास कोई भी नहीं था।
"देखो, उसने जंगल के भीतर चोरों द्वारा बनाया गया एक आश्रय देखा,"
एक तोता बाहर आया और फिर उसने ये क्रूर शब्द कहे:-
"एक युवक रथ पर सवार था, जिसके पास अनेक आभूषण थे।"
और उसके माथे पर सोने का मुकुट सूर्य की तरह लाल चमक रहा है!
दोपहर के समय राजा और सारथी दोनों वहीं सो रहे थे।
आओ, हम उनकी संपत्ति लूट लें और उसे जल्दी से ले जाएं!
"आधी रात की तरह सन्नाटा छाया हुआ है: राजा और सारथी दोनों सो रहे हैं।"
उनकी संपत्ति और गहने हमें लेने और अपने पास रखने दो।
उन्हें मार डालो और उन पर टहनियों का ढेर लगा दो।"
इस प्रकार संबोधित किए जाने पर, वह व्यक्ति बाहर गया और देखा, और यह देखकर कि वह एक राजा था, वह भयभीत हो गया, और उसने यह श्लोक पढ़ा:

"सत्तिगुम्बा, क्या तुम पागल हो गए हो? ये मैं कैसे शब्द सुन रहा हूँ?"
राजा धधकती आग के समान होते हैं, और उनके पास जाना अत्यंत खतरनाक होता है।
पक्षी ने एक और छंद में उत्तर दिया:

"ये सब बेवकूफी भरी बातें हैं, पतिकोलम्बा; और पागल तुम हो, मैं नहीं।"
मेरी माँ नग्न है; हम जिस कर्तव्य के लिए जीते हैं, उसका तिरस्कार क्यों करें (*2)?"
अब राजा जाग उठा, और उन्हें मनुष्यों की भाषा में बात करते हुए सुनकर, खतरे को भांपते हुए, उसने अपने सारथी को जगाने के लिए निम्नलिखित श्लोक पढ़ा:

"हे सारथी, जल्दी उठो और रथ को जोतो।"
हमें कोई और आश्रय ढूंढना होगा, क्योंकि मुझे यह तोता पसंद नहीं है।"
वह जल्दी से उठा और टीम के सामने खड़ा हो गया, फिर उसने एक श्लोक सुनाया:

"हे महामहिम, रथ तैयार है, तैयार है और वहाँ मौजूद है।"
हे राजा, प्रवेश कीजिए! और हमें कहीं और शरण लेने दीजिए।"
जैसे ही वह अंदर दाखिल हुआ, वैसे ही तेज रफ्तार से घोड़े हवा की तरह उड़ गए। जब सत्तिगुम्बा ने रथ को जाते देखा, तो उत्साह से भर कर उसने दो श्लोक दोहराए:

"अब वे सभी लोग कहाँ चले गए जो कभी इस जगह पर हुआ करते थे?"
पंचाला उड़ गया, उसे जाने दिया गया क्योंकि उन्होंने उसे नहीं देखा।
क्या वह बिना जान गंवाए बच जाएगा? भाला, बरछी और धनुष ले लो:
देखो, पंचाल उड़ रहा है! हे भगवान, उसे जाने मत दो!
तो वह बड़बड़ाते हुए इधर-उधर फड़फड़ाने लगा: इसी बीच कुछ समय बाद राजा ऋषियों के आश्रम में आ पहुँचे। उस समय सभी ऋषि फल और जड़ें इकट्ठा करने गए हुए थे, और आश्रम में केवल तोता पुप्पा ही रह गया था। जब उसने राजा को देखा, तो वह उनसे मिलने गया और विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन किया।

फिर गुरु ने समझाने के लिए चार श्लोक पढ़े:

लाल चोंच वाले तोते ने बड़े ही विनम्रतापूर्वक कहा,

"स्वागत है, हे राजा! एक सुखद संयोग ने आपको इस ओर निर्देशित किया है!"
आप कितने महान और गौरवशाली हैं: कृपया बताइए, आपका काम क्या है?
"टिंडूक और पियाल के पत्ते, और कसुमरी मिठाई (*3)
हे राजा, भले ही हम थोड़े-थोड़े हों, फिर भी हमारे पास जो सबसे अच्छा है, वही लो और खाओ।
और यह ठंडा पानी, एक पहाड़ी पर छिपी हुई गुफा से आता है,
हे महामहिम सम्राट, इसे ग्रहण कीजिए, यदि आपकी इच्छा हो तो पीजिए।
"जंगल में इकट्ठा होने वाले सभी लोग वे हैं जो यहाँ रहने के आदी हैं।"
हे राजा, उठो और ले लो: मेरे पास देने के लिए हाथ नहीं हैं।
इस विनम्र संबोधन से प्रसन्न होकर राजा ने दो छंदों में उत्तर दिया:

इससे बेहतर पक्षी कभी पैदा नहीं हुआ; एक बहुत ही नेक पक्षी।
लेकिन वहाँ मौजूद दूसरे तोते ने कई क्रूर शब्द कहे।
"हे भगवान, उसे यहाँ से जीवित न जाने दो, आओ और मार डालो या बाँध दो!"
वह रोते हुए बोला, "मैंने इस आश्रम की तलाश की, और मुझे यहाँ सुरक्षा मिल गई।"
राजा द्वारा इस प्रकार संबोधित किए जाने पर, पुप्पका ने दो श्लोक कहे:

"हे सर्वशक्तिमान राजा, हम भाई हैं, एक ही माता से उत्पन्न हुए हैं।"
दोनों को एक ही पेड़ पर एक साथ पाला गया, अलग-अलग चरागाहों में चरने के लिए छोड़ा गया।
"सत्तिगुम्बा के चोरों के लिए, मैं ऋषियों के पास आया;"
ये बुरे हैं, ये अच्छे हैं, और इसी वजह से हमारे रास्ते एक जैसे नहीं रह गए हैं।"
फिर उन्होंने दो छंदों को दोहराते हुए, अंतरों को विस्तार से समझाया:

"वहाँ घाव हैं, बंधन हैं, छल-कपट है, बेईमानी है और घटिया मोड़ हैं।"
लूटपाट और हिंसात्मक कृत्य: यही वह परंपरा है जो वह सीखता है।
"यहाँ आत्मसंयम, संयम, दयालुता, सही और सच्चा मार्ग है,
अजनबियों के लिए आश्रय और पानी: ये चीजें मेरे आसपास तब मौजूद थीं जब मैं बड़ा हो रहा था।
इसके बाद उन्होंने राजा को निम्नलिखित छंदों में कानून सुनाया:

"जिस किसी को भी, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सम्मान देना चाहिए,"

चाहे वह व्यक्ति दुष्ट हो या सदाचारी, वह उसे अपने वश में रखता है।
"जैसे कोई प्रशंसनीय साथी, जैसे कोई चुना हुआ मित्र,"
अंततः, जो व्यक्ति उसके साथ रहेगा, उसका भी यही हाल होगा।
"दोस्ती पसंद पैदा करती है, और स्पर्श से फैलती है, आपको यह सच लगेगा।"
तीर में जहर डालो, और कुछ ही समय में तीर का खोल भी जहर से भर जाएगा।
बुद्धिमान व्यक्ति बुरी संगति से दूर रहता है, क्योंकि उसे दूषित स्पर्श का डर रहता है।
सड़ी हुई मछली को घास में लपेट दो, तुम्हें पता चलेगा कि घास से भी उतनी ही बदबू आती है।
और जो मूर्खों की संगति में रहते हैं, वे भी शीघ्र ही मूर्ख बन जाते हैं।
"अगर किसी पत्ते में मीठी अगरबत्ती लपेट दी जाए, तो पत्ता भी उतनी ही मीठी खुशबू देने लगेगा।"
इसलिए जो लोग बुद्धिमानों के चरणों में बैठते हैं, वे स्वयं शीघ्र ही बुद्धिमान हो जाएंगे।
इस उदाहरण से बुद्धिमान व्यक्ति को अपना लाभ अवश्य पता होना चाहिए।
उसे बुरी संगति से दूर रहना चाहिए और धर्मी लोगों के साथ रहना चाहिए:
नेक लोगों के लिए स्वर्ग है, लेकिन बुरे लोग नरक में जाने के लिए अभिशप्त हैं।
राजा इस व्याख्या से प्रसन्न हुए। तब ऋषि भी लौट आए। राजा ने ऋषियों का अभिवादन करते हुए कहा, "कृपा करके मेरे प्रांगण में निवास करें," और उन्हें निमंत्रण स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। जब वे घर लौटे, तो उन्होंने सभी तोतों के लिए सुरक्षा की घोषणा कर दी। ऋषि भी वहाँ आए और उनसे मिलने गए। राजा ने उन्हें अपना उद्यान रहने के लिए दे दिया और अपने जीवनकाल तक उनकी देखभाल की। जब उनका स्वर्गवास हुआ, तो उनके पुत्र ने उनके ऊपर राजसी छत्र उठवाया और ऋषियों की भी देखभाल की, और इस प्रकार यह परंपरा सात पीढ़ियों तक, सभी ऋषियों के बीच, पिता से पुत्र तक चलती रही। और महान पुरुष अपने कर्मों के अनुसार परलोक जाने तक वनों में रहे।

जब यह पाठ समाप्त हुआ, तो गुरु ने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, आप देखते हैं कि देवदत्त पहले भी बुरी संगत में था, जैसा कि वह अब है।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, देवदत्त सत्तिगुम्बा था, उसके अनुयायी डाकू थे, आनंद राजा था, बुद्ध के अनुयायी ऋषि थे, और मैं स्वयं तोता पुप्पक था।"

फुटनोट:

(1) शिकायत संख्या 513 (जयद्दीसा)

(2) "उसका मतलब लुटेरों के सरदार की पत्नी से है, जो टहनियों से बने वस्त्र पहनकर घूमती थी। "मेरी माँ नंगी है": तुम लुटेरों के धंधे से इतनी घृणा क्यों करते हो?"--विद्वान।

(3) डायोस्पायरोस एम्ब्रियोप्टेरिस और बुकानिया लैटिफोलिया का नाम लिया गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भल्लातिया-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-504-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 504
भल्लतिया जातक

"एक राजा भल्लतिया थे," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए मल्लिका (मसूड़ों की दुल्हन) के बारे में सुनाई थी (*1)। एक दिन मल्लिका और राजा के बीच वैवाहिक अधिकारों को लेकर झगड़ा हुआ। राजा क्रोधित थे और उनकी ओर देख भी नहीं रहे थे। मल्लिका ने सोचा, "मुझे लगता है कि तथागत (बुद्ध) को नहीं पता कि राजा मुझसे क्रोधित हैं।" जब गुरु को इस बात का पता चला, तो अगले दिन वे भिक्षुओं के साथ बनारस में भिक्षा मांगने गए और फिर राजा के महल के द्वार पर गए। राजा उनसे मिलने आए, उनका भिक्षापात्र ले लिया, उन्हें छत पर ले गए, भिक्षुओं को उचित क्रम में बैठाया, उनका स्वागत जल पिलाया और उन्हें उत्तम भोजन कराया;

भोजन के बाद वे एक तरफ बैठ गए। गुरु ने पूछा, "मल्लिका क्यों नहीं आ रही हैं?" राजा ने कहा, "यह उनकी समृद्धि का उनका मूर्खतापूर्ण अभिमान है।" गुरु ने कहा, "हे महान राजा! बहुत समय पहले जब आप एक परी थे, तब आप एक रात के लिए अपने साथी से अलग रहे और फिर सात सौ वर्षों तक शोक मनाते रहे।" फिर उनके अनुरोध पर, उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस में भल्लतिया नाम का एक राजा राज करता था। कोयले पर भुना हुआ हिरण का मांस खाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर, उसने राज्य का कार्यभार अपने दरबारियों को सौंप दिया, पाँचों शस्त्रों से सुसज्जित होकर और अपने प्रशिक्षित, कुशल शिकारी कुत्तों के झुंड के साथ शहर से निकलकर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। वह गंगा नदी के किनारे-किनारे तब तक चलता रहा जब तक कि वह और ऊपर नहीं जा सका, फिर एक सहायक नदी के साथ कुछ दूर तक चला, हिरण और सूअर का शिकार करता रहा और उनका भुना हुआ मांस खाता रहा, जब तक कि वह एक ऊँचाई पर नहीं पहुँच गया। वहाँ जब सुहावनी नदी पूरी तरह से भरी होती थी, तो पानी छाती तक होता था, लेकिन अन्य समय में यह केवल घुटनों तक ही होता था। उस समय वहाँ तरह-तरह की मछलियाँ और कछुए उछल-कूद करते थे, पानी के किनारे की रेत चाँदी जैसी चमकती थी, दोनों किनारों पर पेड़ फूलों और फलों के भार से झुके होते थे, कई पक्षी और मधुमक्खियाँ फलों के रस और फूलों के शहद से मदहोश होकर छाया में घूमती रहती थीं, जहाँ तरह-तरह के हिरणों के झुंड अक्सर आते-जाते थे। अब इस खूबसूरत पहाड़ी झरने के किनारे दो परियां एक-दूसरे को प्यार से गले लगाती और चूमती रहीं, फिर बड़ी दयनीयता से रोने और विलाप करने लगीं।

जब राजा इस नदी के किनारे से होते हुए गंधमादन पर्वत पर चढ़ रहे थे, तो उन्होंने दो परियों को देखा। उन्होंने सोचा, "ये इस तरह क्यों रो रही हैं? मैं इनसे सवाल करूंगा।" उन्होंने अपने कुत्तों की ओर एक नज़र डाली, उंगली चटकाई, और इस इशारे पर, अपने काम में माहिर वे बेहतरीन कुत्ते झाड़ियों में घुस गए और पेट के बल बैठ गए। जैसे ही उन्होंने देखा कि वे रास्ते से हट गई हैं, उन्होंने अपना धनुष, बाण और अन्य हथियार पास के एक पेड़ के पास रख दिए, और बिना किसी को आहट दिए चुपके से परियों के पास गए और उनसे पूछा, "तुम क्यों रो रही हो?"

इसे समझाने के लिए, गुरु ने तीन श्लोक दोहराए:

"क्या राजा भल्लातियो थे?"
और वह शिकार पर निकल जाता था;
  सुगंधित पर्वत पर चढ़ता है, और उसे पा लेता है
परियों और हवा में उड़ने वाले फूलों से भरा हुआ।
वह तुरंत ही हर शिकारी कुत्ते को शांत कर देता है।
धनुष और बाण का खोल जमीन पर रख देता है।
  आगे बढ़ने के लिए, एक प्रश्न पूछना
जहां परियों का एक जोड़ा मिला था।
"सर्दी चली गई: तो फिर वापस क्यों लौटें?"
जलती हुई जगह के किनारे बैठकर बातें करना?
  हे मनुष्य जैसे दिखने वाले प्राणियों,
मैं यह सीख लूंगी कि पुरुष तुम्हें क्या कहकर पुकारते हैं।
राजा के प्रश्न पर नर परी ने कुछ नहीं कहा; लेकिन उसकी साथी ने इस प्रकार उत्तर दिया:

"मल्ला, त्रि-शिखर, पीली पहाड़ी (*2)
हम ठंडी-ठंडी धाराओं का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ते हैं।
  जंगली जीव हमें मनुष्य के समान मानते हैं:
शिकारी हमें (*3) अब भी भूत कहते हैं।"
तब राजा ने तीन श्लोक पढ़े:

"हालाँकि तुम प्रेमियों की तरह एक दूसरे को सहलाते हो..."
तुम गहरे दुख से भरे हुए रोते हो।
  हे मनुष्य जैसे दिखने वाले प्राणियों,
इतना रोना क्यों? आओ, सच बताओ!
"हालाँकि तुम प्रेमियों की तरह एक दूसरे को सहलाते हो..."

तुम गहरे दुख से भरे हुए रोते हो।
हे मनुष्य जैसे दिखने वाले प्राणियों,
इतना शोक क्यों? आओ, स्वीकार करो!
"हालाँकि तुम प्रेमियों की तरह एक दूसरे को सहलाते हो..."
तुम गहरे दुख से भरे हुए रोते हो।
हे मनुष्य जैसे दिखने वाले प्राणियों,
ये मातम क्यों? आओ, कबूल करो!
निम्नलिखित छंदों को प्रत्येक व्यक्ति ने संबोधन और उत्तर के दौरान कहा था:

"हम एक रात अलग-अलग लेटे थे,"
दोनों प्रेमहीन, कड़वी पीड़ा से भरे हुए।
प्रत्येक के बारे में सोचना: लेकिन कभी नहीं
क्या वो रात फिर कभी आएगी?
तो फिर वो रात अकेले क्यों बितानी है?
जिसकी वजह से आपको कई आहें और कराहें भरनी पड़ीं।
हे मनुष्य-दृष्टि वाले प्राणियों--
पैसा खो गया? पिता बिछड़ गया?
घनी छाया में नदी बहती है
चट्टानों के बीच: एक तूफान उठ खड़ा हुआ:
फिर बड़ी चिंता से मुझे ढूंढने के लिए
मेरे प्रियजन ठीक सामने से गुजरते हैं।
"लगातार व्यस्त पैरों के साथ"
मैंने तुम्हारा मुझे और घास के मैदान को मीठा (*4) इकट्ठा किया
मेरे प्यार को एक माला बनाने के लिए सब कुछ।
और मैं, जब हमारी मुलाकात होनी चाहिए।
"गुच्छेदार हरेबेल, बैंगनी नीला,
और ओस से भीगा हुआ सफेद डैफोडिल का फूल,
मेरे प्यार को एक माला बनाने के लिए सब कुछ।
और मैं, जब हमारी मुलाकात होनी चाहिए।
"फिर मैंने गुलाबों का एक गुच्छा तोड़ा,
वह सबसे सुंदर फूल है जो उगता है।
मेरे प्यार को एक माला बनाने के लिए सब कुछ।
और मैं, जब हमारी मुलाकात होनी चाहिए।
"मुझे आगे फूल और पत्तियां मिलीं।"
और उन्हें जमीन पर घनी मात्रा में फैला दो।
जहां पूरी रात एक साथ बिताई जाए
हम चैन की नींद सो सकते हैं।
चंदन और मीठी लकड़ियाँ जल्द ही
मैंने एक पत्थर पर धीरे-धीरे प्रहार किया,
मेरी प्रेमिका के अंगों को सुकून देने वाला इत्र,
मेरे लिए सबसे प्यारी खुशबू।
"तेजी से बहती नदी के किनारे"
मैंने अंत तक लिली (*5) एकत्र कीं:
शाम हो गई—नदी उफान पर थी
इससे आगे बढ़ना नामुमकिन हो गया था।
हम दोनों किनारों पर खड़े थे,
एक दूसरे को निहारते हुए।
हम साथ-साथ कितना हंसे और रोए!

आह! उस रात हमने बहुत पीड़ा सहन की।
सुबह हुई, सूरज आसमान में काफी ऊपर था।
और जल्द ही हमने नदी को सूखते हुए देखा।
फिर हम पार गए और एक दूसरे को गले लगाया।
हम एक ही समय में हंसते भी हैं और रोते भी हैं।
"सात सौ साल लेकिन तीन
जब से हम अलग हुए हैं, मैं और वह।
जब दो प्यार भरे दिल अलग हो जाते हैं
लगता है कि अभी पूरा जीवन जीना बाकी है।"
"आपकी उम्र की सीमा क्या है?"
अगर यह अफवाह से पुरानी बात लगती है तो।
या फिर बड़ों की शिक्षा,
मुझे बताओ, और डरो मत।
"हजारों ग्रीष्मकाल, मजबूत और स्वस्थ,
कभी भी जानलेवा पीड़ा हमला नहीं करती,
कम दुःख, भरपूर आनंद।
अंत में प्रेम के आनंद की ही जीत होती है।
राजा ने सुनते हुए मन ही मन सोचा, "ये प्राणी, जो मनुष्य से भी नीच हैं, एक रात के बिछड़ने के लिए सात सौ वर्षों तक रोते रहते हैं: और मैं, तीन सौ मील (4.23 किमी) के विशाल राज्य का स्वामी, अपनी सारी शान-शौकत छोड़कर जंगल में भटक रहा हूँ। यह एक बड़ी गलती है।" वह तुरंत लौट आया। बनारस पहुँचकर दरबारियों ने उससे पूछा कि क्या उसने हिमालय में कोई अद्‌भुत चीज़ देखी है। उसने उन्हें पूरी कहानी सुनाई और तब से दान-पुण्य करने लगा और अपनी संपत्ति का आनंद लेने लगा।

इस विषय को समझाते हुए गुरु ने इस श्लोक को दोहराया:

इस प्रकार परियों द्वारा निर्देश दिया गया
राजा अपने मार्ग पर लौट गया।
शिकार करना बंद कर दिया और जरूरतमंदों को भोजन कराया।
और उन्होंने उन क्षणभंगुर दिनों का आनंद लिया।
उन्होंने दो और छंद जोड़े:

परियों से सबक लें:
और झगड़ा मत करो, बल्कि अपने आचरण में सुधार करो।
अन्यथा तुम परी की तरह कष्ट भोगोगे।
अपने जीवन भर की अपनी ही गलती।
परियों से सबक लें:
और आपस में झगड़ा मत करो, बल्कि अपने तौर-तरीकों को सुधारो।
अन्यथा तुम परी की तरह कष्ट भोगोगे।
तुम्हारे सारे दिन तुम्हारी अपनी ही गलती के होंगे।"
तथागत (बुद्ध) की सलाह सुनकर मल्लिका देवी अपने पलंग से उठीं और हाथ जोड़कर आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए अंतिम श्लोक का पाठ किया।

"पवित्र पुरुष, स्वेच्छा से"
मुझे आपके शब्द बहुत अच्छे और दयालु लगे।
आप पर ईश्वर की कृपा बनी रहे! आपने सही कहा।
मेरे सारे दुख पीछे छूट गए हैं।
इसके बाद कोसला का राजा उसके साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से रहने लगा।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने जन्म का वर्णन किया: "उस समय कोसल के राजा परी थे, देवी मल्लिका उनकी साथी थीं, और मैं स्वयं राजा भल्लतिया था।"

फुटनोट:

(1) राजा पसेनादि (प्रसेनाजित) और इस "भिखारी-दासी" की सुंदर कहानी संख्या 306

(2) दिए गए नाम मल्लमगिरि, टिकुटा, पंडारक हैं।

(3) va के लिए ti पढ़ना

(4) अनुवाद में दिए गए फूल, मूल पाठ में उल्लिखित फूलों से भिन्न हैं, जो गर्व से अंग्रेजी कविता को चुनौती देते हैं। उनमें से कुछ हैं: अलंगियम हेक्सापेटालम, गार्टनेरा रेसमोसा, कैसिया फिस्टुला, बिगोनिया सुवेओलेंस, विटेक्स निगुंडो, शोरिया रोबस्टा।

(5) टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सोमनस्सा-जातक**
स्रोत : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----॥-505-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 505
सोमनस्सा-जातक

“तुम्हें किसने हानि पहुँचाई, इत्यादि”—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, कि कैसे देवदत्त ने उन्हें जान से मारने की कोशिश की। फिर गुरु ने कहा, “भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने मुझे मारने की कोशिश की है, बल्कि उसने पहले भी ऐसा ही किया था।” फिर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, कुरु राज्य और उत्तरा पंचाल नगर में रेणु नामक राजा का शासन था। उस समय हिमालय में पाँच सौ अन्य तपस्वियों के साथ एक महारक्षित तपस्वी रहते थे। नमक और मसाले लेने के लिए वे उत्तरा पंचाल आए और राजमहल में ठहरने लगे। अपने अनुयायियों के साथ भिक्षा माँगते हुए वे राजा के द्वार पर पहुँचे। राजा ने उन तपस्वियों को देखकर उनका व्यवहार प्रसन्न हुआ और उन्हें एक भव्य मंच पर बैठने के लिए आमंत्रित किया तथा उन्हें उत्तम भोजन कराया। फिर उन्होंने उनसे वर्षा ऋतु में अपने राजमहल में रहने का अनुरोध किया। वे उनके साथ राजमहल में गए, उन्हें रहने के लिए स्थान दिए, उन्हें संन्यासी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं और उनसे विदा ली। इसके बाद उन सभी ने राजमहल में भोजन किया। राजा निःसंतान थे और पुत्रों की कामना करते थे, परन्तु उन्हें कोई पुत्र जन्म नहीं हुआ।

वर्षा ऋतु समाप्त होने पर महारक्षित ने कहा, "अब हिमालय क्षेत्र सुहावना है; चलो वहीं लौट चलें।" फिर उन्होंने राजा से विदा ली, जिन्होंने उनका पूर्ण आदर और उदारता से स्वागत किया, और प्रस्थान किया। दोपहर के समय यात्रा के दौरान वे मुख्य मार्ग छोड़कर अपने लोगों के साथ एक छायादार वृक्ष के नीचे नरम घास पर बैठ गए। तपस्वी बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "राजमहल में कोई पुत्र नहीं है जो वंश को आगे बढ़ा सके। यदि राजा को पुत्र हो जाए और वंश आगे बढ़े तो यह सौभाग्य की बात होगी।" उनकी बातें सुनकर महारक्षित ने सोचा, "क्या राजा को पुत्र होगा या नहीं?" उन्हें आभास हुआ कि राजा को पुत्र होगा, और उन्होंने कहा, "चिंता न करें, महाराज; आज रात भोर में देवताओं का पुत्र (देवदूतों का पुत्र) अवतरित होगा और रानी की पत्नी उसे गर्भ धारण करेंगी।" एक पाखंडी तपस्वी ने यह सुना और सोचा, "अब मैं राजपरिवार का विश्वासपात्र बनूंगा।" जब तपस्वियों के जाने का समय आया, तो वह लेट गया और बीमार होने का नाटक करने लगा। "चलो, हम चलते हैं," उन्होंने कहा। "मैं नहीं चल सकता," उसने कहा। महाराज को समझ में आया कि वह क्यों लेटा हुआ है। "जब तुम चल सको, तब हमारे पीछे आना," उन्होंने कहा और बाकी ऋषियों के साथ हिमालय की ओर चल दिए।

अब वह धूर्त जितनी तेज़ी से हो सकता था भागा और महल के द्वार पर खड़े होकर यह संदेश भेजा कि महारक्षित का एक सेवक आया है। राजा ने उसे तुरंत बुलाया और वह चबूतरे पर जाकर उस आसन पर बैठ गया जो उसे दिखाया गया था। राजा ने उसका अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर ऋषियों के स्वास्थ्य के बारे में पूछा। "तुम बहुत जल्दी लौट आए," उन्होंने कहा; "तुम्हारी इतनी जल्दी वापसी का क्या कारण है?" “हे महामहिम,” उसने उत्तर दिया, “जब सभी ऋषि आराम से एक साथ बैठे थे, तो वे कहने लगे कि यदि राजा को पुत्र हो, तो यह कितना बड़ा सौभाग्य होगा, जिससे उनका वंश आगे बढ़ेगा। यह सुनकर मैं सोचने लगा कि क्या राजा को पुत्र होगा या नहीं; तभी मुझे दिव्य दृष्टि से देवताओं (देवदूतों) का एक शक्तिशाली पुत्र दिखाई दिया, और मैंने देखा कि वह पृथ्वी पर उतरने वाला है, ताकि वह आपकी रानी पत्नी सुधम्मा से गर्भ धारण कर सके। तब मैंने सोचा, यदि उन्हें पता नहीं चला, तो वे गर्भ में पल रहे बच्चे को नष्ट कर देंगे, इसलिए मुझे उन्हें बताना ही होगा; और आपको यह समाचार देने के लिए, हे राजा, मैं आया हूँ। अब मैंने बता दिया है, मुझे वापस जाने दीजिए।” “नहीं, नहीं, मित्र,” राजा ने कहा, “ऐसा नहीं होना चाहिए”; और अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने उस धूर्त को अपने उद्यान में ले आए और उसके रहने के लिए एक स्थान दिया। तब से वह राजा के घर में रहने लगा और वहीं भोजन प्राप्त करता था, और उसका नाम दिब्बचक्खुका, दिव्य दृष्टि वाला पुरुष, पड़ गया।

फिर बोधिसत्व तैंतीस के स्वर्ग से नीचे आए और वहीं उनका गर्भ धारण हुआ; और जब उनका जन्म हुआ तो उन्हें सोमनस्स कुमार, यानी आनंद के राजकुमार का नाम दिया गया और उनका पालन-पोषण राजकुमारों की तरह किया गया।

अब उद्यान के एक कोने में वह पाखंडी तपस्वी सब्जियां, जड़ी-बूटियां और बेलें उगाता था और उन्हें बाज़ार के बागवानों को बेचकर बहुत धन कमाता था। जब बोधिसत्व सात वर्ष के थे, तब सीमावर्ती क्षेत्र में विद्रोह हो गया। राजा उसे शांत करने के लिए निकले और तपस्वी दिब्बचक्खुका को राजकुमार के हवाले कर दिया, साथ ही यह आदेश भी दिया कि उसकी उपेक्षा न करें। एक दिन राजकुमार तपस्वी से मिलने गए। उन्होंने देखा कि वह दोनों पीले वस्त्र, ऊपरी और निचले, बांधे हुए थे, प्रत्येक हाथ में पानी का घड़ा लिए अपने पौधों को पानी दे रहे थे। उन्होंने सोचा, "यह पाखंडी तपस्वी, तपस्वी का कर्तव्य निभाने के बजाय माली का काम कर रहा है।" फिर उन्होंने पूछा, "क्या कर रहे हो, माली, सांसारिक?" इस प्रकार उन्होंने उसे लज्जित किया और बिना प्रणाम किए ही चले गए। राजकुमार ने सोचा, "अब मैंने इस व्यक्ति को अपना शत्रु बना लिया है। कौन जाने यह क्या करेगा? मुझे इसका तुरंत अंत करना होगा।"

राजा के लौटने के समय के आसपास, उस व्यक्ति ने अपनी पत्थर की बेंच एक तरफ फेंक दी, अपना पानी का घड़ा तोड़ दिया, अपनी झोपड़ी में घास बिखेर दी, अपने पूरे शरीर पर तेल मल लिया, झोपड़ी में गया और अपने पुआल के गद्दे पर सिर समेत लिपटकर लेट गया, मानो उसे बहुत दर्द हो रहा हो। राजा लौटा और शहर का सीधा चक्कर लगाया। लेकिन अपने घर में प्रवेश करने से पहले, वह अपने मित्र दिब्बाचक्खुका से मिलने गया। झोपड़ी के द्वार पर खड़े होकर उसने देखा कि सब कुछ अस्त-व्यस्त है, और यह सोचकर अंदर गया कि क्या बात है। वहाँ वह व्यक्ति लेटा हुआ था। राजा ने उसके पैर छुए और पहली पंक्ति दोहराई:

"किसने आपको हानि पहुंचाई है या आपका अपमान किया है?"
तुम पीड़ा में क्यों दुखी होते हो?
अब किनके माता-पिता को शोक मनाना पड़ेगा?
यहां फर्श पर कौन लेटा है?
इस पर वह धोखेबाज कराहते हुए उठा और दूसरा छंद बोला:

तुम्हें देखकर मुझे बहुत खुशी होती है
हे राजा, यद्यपि आप लंबे समय से अनुपस्थित हैं!
आपका बेटा, जो मेरे पास आया था,
बिना किसी उकसावे के यह अन्याय हुआ।"
निम्नलिखित श्लोकों का संबंध स्पष्ट है; इन्हें उचित क्रम में व्यवस्थित किया गया है।

"जल्लादों, क्या हाल है!"
सेवको, अपनी तलवारें उठाओ और जाओ।
राजकुमार सोमनासा की हत्या कर दी गई।
यहां उसका पवित्र सिर लाओ!
"राजकीय दूत आगे बढ़े और राजकुमार से पुकार कर बोले--"
"महाराज ने तुम्हें पदच्युत कर दिया है; और हे राजकुमार, तुम्हें मरना होगा!"
"वहाँ राजकुमार शोक में खड़ा है,"
हाथ जोड़कर कृपा की कामना करना:

मुझे अभी कुछ समय के लिए बख्श दो, और मुझे ले आओ।
मैं राजा को देखने के लिए जीवित रहूंगा!
उन्होंने उसकी प्रार्थना सुनी, और सेवक उसके पुत्र को राजा के पास ले गए।
उसने दूर से अपने पिता को देखा और उनसे कहा:
"अपने आदमियों को तलवार उठाने और मारने दो,"
कृपया पहले मेरी बात सुन लें!
हे महान सम्राट! मुझे यह बताइए--
मैंने क्या गलती की है?
राजा ने उत्तर दिया, "उच्च पद बहुत नीचे गिर गया है: तुम्हारी गलती बहुत बड़ी है," और इसे इस श्लोक में समझाया:

वह सुबह और शाम को पानी भरता है।
बिना रुके आग को संभाले रखता है।
क्या तुम इस आदमी को पवित्र कहने की हिम्मत करते हो?
दुनियादार? अगर जवाब दे सकते हो तो दो!
"मेरे स्वामी," राजकुमार ने कहा, "यदि मैं किसी सांसारिक को सांसारिक कहूँ तो क्या हानि होगी!" और उसने एक श्लोक दोहराया:

उसके पास पेड़ और फल हैं।
और, मेरे प्रभु, सभी प्रकार की जड़ें,
वह उनकी निरंतर देखभाल करता है:
तो फिर वो दुनियादारी जानता है, मैं कहता हूँ।
“और यही कारण है,” उन्होंने आगे कहा, “कि मैंने उसे सांसारिक कहा। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो चारों द्वारों पर स्थित सब्जी विक्रेताओं से पूछ लीजिए।” राजा ने पूछताछ की। उन्होंने कहा, “जी हाँ, हम उससे सब्जियाँ और सभी प्रकार के फल खरीदते हैं।” जब उन्हें इस सब्जी के कारोबार का पता चला, तो उन्होंने इसकी सूचना दी। राजकुमार के लोग उस व्यक्ति की झोपड़ी में गए और रुपये और छोटे सिक्कों का एक गट्ठा, हरी सब्जियों की कीमत, राजा को दिखाया। तब राजा को पता चला कि महान व्यक्ति निर्दोष है, और उन्होंने एक श्लोक कहा:

"यह सच था कि पेड़ और जड़ें
उसके पास कई फलों सहित बहुत कुछ था।
असीम देखभाल के साथ,
जैसा कि आपने कहा, सांसारिक।
तब उस महान प्राणी ने सोचा, "जब तक ऐसा अज्ञानी मूर्ख राजा के परिवार में है, तब तक सबसे अच्छा यही होगा कि वह हिमालय जाकर संन्यासी जीवन अपना ले। पहले मैं यहाँ एकत्रित सभी लोगों के सामने उसके पाप का खुलासा करूँगा, और फिर आज ही जाकर संन्यासी बन जाऊँगा।" अतः उसने सभी को प्रणाम करते हुए कहा,

"मेरी पुकार सुनो,"
सभी ग्रामीण और शहरी निवासी:
इस मूर्ख की सलाह पर राजा ने
निर्दोष लोगों को भी मौत के घाट उतार दिया जाएगा।
यह कहकर उन्होंने अगले छंद में ऐसा करने की अनुमति मांगी:

"तुम एक बलवान, विस्तृत रूप से फैले हुए वृक्ष हो,"
मैं तुममें लीन एक शाखा की तरह हूं,
मैं आपसे यहाँ निवेदन करता हूँ, झुककर,
दुनिया को छोड़कर चले जाओ!
निम्नलिखित छंदों में राजा और उसके पुत्र के बीच हुई बातचीत का वर्णन है।

"राजकुमार, अपनी संपत्ति का आनंद लें।"
और कुरु सिंहासन पर आसीन हों।
दुनिया को मत छोड़ो, लाने के लिए

अपने आप पर शोक करो—राजा बनो!
"यह दुनिया किस प्रकार का आनंद दे सकती है?"
जब मैं स्वर्ग में रहता था
वहाँ दृश्य, ध्वनियाँ और गंध थीं।
स्वाद और स्पर्श (*1), दिल खूब प्यार करता है!
"स्वर्ग के आनंद और दिव्य अप्सराएँ,
मैंने उन चीजों का त्याग कर दिया जो कभी मेरी थीं।
आप जैसे कमजोर राजा के साथ
मैं अब और नहीं रुकूंगा।
"यदि मैं मूर्ख-कमजोर हूँ, मेरे बेटे,
इस बार मुझे मेरे किए के लिए क्षमा कर दीजिए।
और अगर मैं वही काम दोबारा करूं,
आप जो चाहें करें, मुझे कोई शिकायत नहीं होगी।
इसके बाद उस महान प्राणी ने राजा को संबोधित करते हुए आठ छंदों को दोहराया।

"एक विचारहीन कार्य, या बिना पूर्वचिंता के किया गया कार्य,
किसी दवा के असफल होने की तरह, यह मामला भी गंभीर होना चाहिए।
"एक विचारपूर्ण कार्य, जिसमें सावधानीपूर्वक नीति का पालन किया जाता है,"
किसी सफल दवा की तरह, समस्या भी अच्छी होनी चाहिए।
"मैं आलसी, कामुक और उदासीन व्यक्ति से घृणा करता हूँ।"
झूठा तपस्वी एक धोखेबाज प्रतियोगिता है;
एक दुष्ट राजा बिना सुने ही किसी मामले का फैसला कर देगा;
एक ऋषि का क्रोध कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।
योद्धा राजकुमार सावधानीपूर्वक विचार करता है और सोच-समझकर निर्णय लेता है:
जब राजा अपने निर्णय को अच्छी तरह समझते हैं, तो उनकी प्रसिद्धि हमेशा के लिए जीवित रहती है (*2)।
"राजाओं को सावधानीपूर्वक दंड देना चाहिए।"
जल्दबाजी में किए गए कार्यों के लिए उन्हें फुर्सत में पछतावा होगा।
क्या हृदय में अच्छे संकल्प होते हैं?
देर से किए गए पश्चाताप से उसे कोई कड़वी पीड़ा नहीं मिलती।
जो लोग ऐसे कर्म करते हैं जिनसे पश्चाताप नहीं होता,
हर एक चीज का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करते हुए,
जो अच्छा है उसे प्राप्त करो, और जो तुम्हें संतुष्टि दे वह करो।
पवित्र लोग बुद्धिमानों की स्वीकृति प्राप्त करते हैं।
"हे मेरे जल्लादों!" तुम चिल्लाए,
"जाओ मेरे बेटे को ढूंढो, और जहाँ वह मिले, उसे मार डालो!"
मैं अपनी माँ के बगल में बैठा था
उन्होंने मुझे ढूंढ लिया और बेरहमी से घसीटकर ले गए।
"एक कोमल शिशु, जिसके साथ इस तरह का व्यवहार किया जाता है,"
मुझे उनका क्रूर व्यवहार बहुत दर्दनाक लगा।
आज एक क्रूर विनाश से मुक्ति मिली
मैं इस दुनिया को छोड़कर चला जाऊंगा और इसमें फिर कभी नहीं जिऊंगा।
जब उस महान व्यक्ति ने इस प्रकार प्रवचन दिया, तो राजा ने अपनी रानी से कहा,

"तो मेरे छोटे बेटे सुधम्मा ने मुझे मना कर दिया,"
राजकुमार सोमानासा, कोमल और दयालु।
अब चूंकि मैं आज अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता,
आपको खुद देखना होगा कि क्या आप उसका मन बदल सकते हैं।
लेकिन इस श्लोक में उसने उससे संसार का त्याग करने का आग्रह किया:

"हे पुत्र, पवित्र जीवन ही तुम्हारा सुख हो!"
संसार का त्याग करो, धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहो:
जो सभी प्राणियों में से किसी के प्रति क्रूर नहीं है,
अंत में निर्दोष लोग ब्रह्मा के लोक में पहुँचेंगे।
फिर राजा ने एक श्लोक दोहराया:

"यह एक आश्चर्य की बात है जो मैं आपसे सुन रहा हूँ।"
मुझ पर दुखों का अंबार लगता जा रहा है।
मैंने आपसे हमारे बेटे को रुकने के लिए मनाने को कहा था।
तुम तो उसे और जल्दी जाने के लिए उकसा रहे हो।"
रानी ने फिर से एक श्लोक दोहराया:

"ऐसे लोग भी हैं जो पाप और दुःख से मुक्त जीवन जीते हैं।"
निर्दोष, और जो निर्वाण की ऊँचाई को प्राप्त करते हैं:
यदि राजकुमार उनके नेक मार्ग पर चलता तो
अपने साथी को उससे दूर रखना स्वार्थीपन है।
उत्तर में राजा ने अंतिम श्लोक का पाठ किया:

"बुद्धिमानों का सम्मान करना निःसंदेह अच्छा है।"
जिनमें गहन ज्ञान और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं।
रानी ने उनकी बातें सुनी हैं और उनकी परंपरा को समझा है।
उसे अब कोई दर्द महसूस नहीं होता और न ही उसकी कोई इच्छा बची है।"
तब उस महान पुरुष ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और उनसे क्षमा मांगी यदि उन्होंने कोई गलती की हो, और समूह को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए हिमालय की ओर मुख कर लिया। जब लोग लौट आए, तो वे मानव रूप में आए देवताओं के साथ सात पर्वत श्रृंखलाओं को पार करते हुए हिमालय पहुंचे। स्वर्ग के वास्तुकार विश्वकर्मा द्वारा निर्मित एक पर्णपाती में उन्होंने संन्यासी जीवन व्यतीत किया और सोलह वर्ष की आयु तक देवताओं के एक शाही समूह ने उनकी सेवा की। परन्तु उस कपटी तपस्वी पर भीड़ ने हमला कर दिया और उसे पीट-पीटकर मार डाला। उस महान पुरुष ने समाधि की साधना की और ब्रह्मा के स्वर्ग (देवदूतों के स्वर्ग) में जाने का निश्चय किया।

यह प्रवचन समाप्त होने पर, गुरु ने कहा, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, उसने पूर्व में भी मुझे मारने का प्रयास किया था, जैसा कि अब कर रहा है," और फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय देवदत्त धोखेबाज था, महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता) माता थी, सारिपुत्र रक्षित था, और मैं स्वयं राजकुमार सोमनस्सा था।"

फुटनोट:

(1)passehi संभवतः phassehi (स्पर्श की वस्तुएँ) के लिए है: rupa आँख से मेल खाता है।

(3) ये दोनों पंक्तियाँ क्रमांक 306 में आती हैं

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कैम्पेय्य-जातक**
स्रोत *: डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-506-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 506
कैम्पेय्य-जातक

“यह किसके समान है,” इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए व्रतों के बारे में सुनाई थी। गुरु ने कहा, “हे भिक्षुओं, आपने व्रतों का व्रत लेकर अच्छा कार्य किया है। प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने भी नागराज होने का गौरव त्याग दिया था और इन व्रतों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत किया था।” फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब अंग राज्य में अंग राजा थे और मगध राज्य में मगध राजा थे, अंग और मगध राज्यों के बीच चंपा नामक एक नदी थी, जहाँ सर्प रहते थे और यहाँ सर्प राजा चंपेय्या का राज था।

कभी मगध राजा अंग देश पर विजय प्राप्त करता था, कभी अंग राजा मगध पर। एक दिन मगध राजा अंग से युद्ध में पराजित होकर घोड़े पर सवार होकर भागने लगा, अंग के योद्धा उसका पीछा कर रहे थे। जब वह चंपा नदी के पास पहुँचा, तो नदी में बाढ़ आई हुई थी। परन्तु उसने कहा, “शत्रु हाथों मरने से बेहतर है इस नदी में डूबकर मरना!” फिर वह और उसका घोड़ा नदी में कूद पड़े।

नागराज कैम्पेय ने जलमग्न एक रत्नजड़ित मंडप बनवाया था; और उस समय वह अपने दरबार में गहरे भोज में मग्न था। लेकिन राजा और उसका घोड़ा नागराज के ठीक सामने नदी में कूद पड़े। नागराज ने इस भव्य राजा को देखकर उस पर मोहित हो गया। वह अपने सिंहासन से उठकर राजा को अपने सिंहासन पर बैठाया और उससे कहा कि वह किसी बात से न डरे, और पूछा कि वह जलमग्न क्यों हुआ। राजा ने उसे सब कुछ सच-सच बता दिया। तब नागराज ने कहा, "हे महान राजा, डरो मत! मैं तुम्हें दोनों राज्यों का स्वामी बनाऊँगा।" इस प्रकार उसने राजा को सांत्वना दी और सात दिनों तक उसका उच्च सम्मान किया। सातवें दिन वह राजा मगध के साथ नागमहल से निकल गया। फिर नागराज की शक्ति से राजा मगध ने राजा अंग को वश में कर लिया और उसे मार डाला, और दोनों राज्यों पर संयुक्त रूप से शासन किया। उस समय से राजा और नागराज के बीच दृढ़ संबंध स्थापित हो गया। वह वर्ष दर वर्ष कैम्पा नदी के किनारे एक रत्नजड़ित मंडप का निर्माण करवाता था और भारी खर्च पर सर्पराज को भेंट चढ़ाता था: सर्पराज अपने महल से सेवकों के एक बड़े समूह के साथ भेंट स्वीकार करने आता था, और सभी लोग सर्पराज की महिमा देखते थे।

उस समय बोधिसत्व एक गरीब परिवार से थे और राजा के लोगों के साथ नदी किनारे जाया करते थे। वहाँ सर्पराज की महिमा देखकर वे उसके प्रति ललचा गए; और इसी लालसा (*1) में उनका अवतरण हो गया। सर्पराज चम्पेय की मृत्यु के सात दिन बाद, बोधिसत्व ने दान देकर और सदाचारी जीवन व्यतीत करते हुए अपने महल में अपने पलंग पर जन्म लिया: उनका शरीर चमेली की एक बड़ी माला के समान था। जब उन्होंने इसे देखा, तो वे पश्चाताप से भर गए। उन्होंने कहा, “मेरे अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, मेरे पास छह प्रमुख इंद्रियों (*2) में शक्ति संचित है, जैसे अन्न भंडार में अनाज संचित होता है। लेकिन देखो, मैं इस सरीसृप रूप में जन्मा हूँ; मुझे जीवन की क्या परवाह!” और इस प्रकार उन्होंने आत्महत्या करने का विचार किया। लेकिन सुमना नाम की एक युवा नागनी ने उसे देखकर बाकी नागियों को आगे बढ़कर कहा, "यह अवश्य ही साक्का (इंद्र) होंगे, जो शक्ति में महान हैं और यहीं हमारे यहाँ जन्म लिए हैं!" तब वे सभी आए और अपने हाथों में तरह-तरह के वाद्ययंत्र लिए उन्हें भेंट अर्पित की। उनका वह नाग महल मानो साक्का (इंद्र) का महल बन गया, मृत्यु का विचार उनके मन से निकल गया: उन्होंने अपना नाग रूप त्याग दिया और भव्य वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित पलंग पर बैठ गए। उस समय से उनका वैभव महान हो गया और उन्होंने नागों पर शासन किया। एक बार फिर उन्हें पश्चाताप हुआ, यह सोचकर, "मुझे इस नाग रूप की क्या परवाह? मैं उपवास के व्रतों का पालन करूँगा और यहीं से अपने आप को मुक्त करूँगा, मनुष्यों के बीच जाऊँगा, सत्य का ज्ञान प्राप्त करूँगा और कष्टों का अंत करूँगा।" लेकिन बाद में भी वे उसी महल में उपवास के व्रतों का पालन करते रहे, और जब रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजी युवा नागनी उनके आसपास आईं, तो उन्होंने अपने सदाचार के नियम का उल्लंघन किया। उसके बाद वह महल से निकलकर पार्क में चला गया, लेकिन वे लोग उसके पीछे-पीछे वहाँ भी आ गए, और उसका व्रत पहले की तरह टूट गया। तब उसने सोचा: "मुझे यह महल छोड़कर मनुष्यों की दुनिया में जाना होगा, और वहाँ मुझे उपवास के व्रतों का पालन करना होगा।" इसलिए उपवास के दिनों में वह महल से निकलकर एक सीमावर्ती गाँव के पास, मुख्य सड़क के किनारे चींटियों के ढेर पर लेट गया। उसने कहा, "जो कोई मेरी खाल या मेरे शरीर का कोई भी हिस्सा चाहता है, वह ले ले; या यदि कोई मुझे नाचता हुआ साँप बनाना चाहता है, तो वह मुझे वैसा बना दे।" इस प्रकार उसने अपना शरीर दान कर दिया, और अपना फन समेटकर वहीं लेटकर उपवास के व्रतों का पालन किया।

राजमार्ग पर आने-जाने वाले लोग उसे देखकर सुगंध और इत्र से उसकी पूजा करते थे। उस सीमावर्ती गाँव के निवासी उसे महान शक्ति का सर्प राजा मानकर उसके ऊपर एक मंडप बनाते, उसके सामने रेत बिछाते और सुगंध और इत्र से उसकी पूजा करते थे। अब लोग उसकी सहायता से पुत्र प्राप्ति की कामना करने लगे, क्योंकि वे उस महान सत्ता में आस्था रखते थे और उसकी पूजा करते थे। वह महान सत्ता अर्धचंद्र के चौदहवें और पंद्रहवें दिन चींटियों के ढेर पर लेटकर उपवास रखता था; और अर्धचंद्र के पहले दिन अपने महल में लौट जाता था; और इस प्रकार अपने व्रतों को पूरा करते हुए समय बीतता गया।

एक दिन उनकी पत्नी सुमना ने उनसे कहा, "हे स्वामी, आप व्रत रखने के लिए मनुष्यों के बीच जाने के आदी हैं। मनुष्यलोक खतरनाक और भय से भरा है। मान लीजिए आप पर कोई संकट आ जाए, तो मुझे अभी बताइए कि मुझे किस संकेत से इसकी जानकारी होगी।" तब उस महान प्राणी ने उन्हें एक शुभ तालाब के किनारे ले जाकर कहा, "यदि कोई मुझे मारे या मुझे चोट पहुँचाए, तो इस तालाब का पानी मटमैला हो जाएगा। यदि कोई बगुला मुझे उठा ले जाए, तो पानी गायब हो जाएगा। यदि कोई सपेरा मुझे पकड़ ले, तो पानी खून के रंग का हो जाएगा।" इन तीन संकेतों का अर्थ समझाने के बाद, वे अपने महल से चौदहवें दिन का व्रत रखने के लिए निकले, और चींटियों के ढेर पर लेट गए, जिससे उनके शरीर की चमक से चींटियों का ढेर प्रकाशित हो गया। उसका शरीर शुद्ध चांदी की कुंडली की तरह सफेद था, उसका सिर लाल ऊन के गोले जैसा था: अब इस जन्म में बोधिसत्व का शरीर हल के सिर की तरह मोटा था, भूरिदत्त जन्म (*3) में जांघ की तरह मोटा था, शंखपाल जन्म (*4) में आउट्रिगर वाली गर्त-कश्ती की तरह बड़ा गोल था।

उन दिनों बनारस का एक युवक तक्षशिला में विश्वप्रसिद्ध गुरु के चरणों में अध्ययन करने आया था, जिनसे उसने सभी इंद्रियों को वश में करने का मंत्र सीखा था। घर लौटते समय, उसे अचानक एक महान प्राणी दिखाई दिया। उसने सोचा, "मैं इस सर्प को पकडूंगा और इसे नगर, गाँव और राजमहल में नचाऊंगा और खूब धन कमाऊंगा।" फिर उसने कुछ जादुई जड़ी-बूटियाँ प्राप्त कीं और मंत्र का जाप करते हुए सर्प के पास पहुँचा। मंत्र की ध्वनि सुनते ही, महान प्राणी को ऐसा लगा जैसे उसके कान जलते हुए टुकड़ों से छेद दिए गए हों, और उसका सिर तलवार के प्रहार से टूट गया हो। "यह क्या हो रहा है!" उसने सोचा; सिर से फन हटाकर उसने देखा कि वह सपेरा है। फिर उसने सोचा, "मेरा विष शक्तिशाली है, और यदि मैं क्रोधित होकर अपनी नाक से निकलने वाली श्वास (*5) उस पर डालूँ तो उसका शरीर भूसे की मुट्ठी भर के समान चूर-चूर हो जाएगा; तब मेरा पुण्य नष्ट हो जाएगा। मैं उसकी ओर नहीं देखूँगा।" आँखें बंद करके उसने अपना सिर फन के भीतर कर लिया। ब्राह्मण सपेरे ने एक जड़ी बूटी खाई, अपना मंत्र दोहराया, और उस पर थूका: जड़ी बूटी और मंत्र के प्रभाव से, जहाँ-जहाँ थूक लगा, वहाँ त्वचा पर सूजन आ गई। फिर उस व्यक्ति ने उसकी पूंछ पकड़ ली, उसे घसीटा, और उसे पूरी लंबाई में लिटा दिया: उसने बकरी के पैर के डंडे से उसे तब तक दबाया जब तक वह कमजोर नहीं हो गया, फिर उसका सिर कसकर पकड़कर उसे जोर से कुचल दिया। महान प्राणी ने अपना मुँह चौड़ा खोला; उस व्यक्ति ने उसमें थूक डाला, और जड़ी बूटी और मंत्र के प्रभाव से उसके दाँत टूट गए; मुँह खून से भर गया। लेकिन महान प्राणी को अपने पुण्य के नष्ट होने का इतना भय था कि उसने यह सारी यातना सहन की और उसकी ओर देखने के लिए एक आँख तक नहीं खोली। तब उस आदमी ने कहा, "मैं इस राजसी सर्प को कमजोर कर दूंगा!" उसने सर्प के शरीर को पूंछ से सिर तक ऐसे निचोड़ा मानो उसकी हड्डियों को चूर-चूर कर देगा। फिर उसने उसे कपड़े में लपेटा, रस्सी से रगड़ा, पूंछ से पकड़ा और रुई से मारा (*6)। महापुरुष का शरीर खून से लथपथ था और वह बहुत पीड़ा में था। सर्प को कमजोर देखकर उस आदमी ने सीप की टोकरी बनाई और उसमें सर्प को रख दिया। फिर वह उसे गांव ले गया और भीड़ के सामने उसका प्रदर्शन करवाया। काला हो या नीला, गोल हो या चौकोर, छोटा हो या बड़ा—ब्राह्मण जो चाहे, महापुरुष वही करता, नाचता, अपना फन फैलाता मानो सैकड़ों या हजारों की संख्या में हो (*7)। लोग इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बहुत सारा पैसा दिया: एक दिन में वह हजार रुपये और हजार रुपये की वस्तुएँ ले लेता था। पहले तो उस आदमी का इरादा था कि जब वह हजार रुपये कमा लेगा तो उसे मुक्त कर देगा; लेकिन जब उसे वह मिल गया, तो उसने सोचा, "एक छोटे से सीमावर्ती गाँव में मैंने यह सब हासिल कर लिया है: राजाओं और दरबारियों से मैं कितना धन जीत सकता हूँ!" इसलिए उसने एक गाड़ी और एक आनंद रथ खरीदा, और गाड़ी में अपना सामान लाद दिया।जब वह रथ में बैठा था। इस प्रकार वह अपने अनुयायियों के साथ शहर और गाँव में घूमता रहा, महान हस्ती से प्रदर्शन करवाता रहा, और उसे बनारस के राजा उगसेना के सामने प्रदर्शित करने के इरादे से आगे बढ़ता रहा; और फिर राजा उसे जाने देगा।

वह मेंढकों को मारकर राजसी सर्प को खिलाता था। परन्तु सर्प हर बार खाने से इनकार कर देता था, ताकि उसके लिए किसी को मारा न जाए। तब उस व्यक्ति ने उसे शहद और भुट्टा दिया। परन्तु उस महान प्राणी ने इन्हें भी खाने से इनकार कर दिया; क्योंकि उसने सोचा, "यदि मैं भोजन कर लूँगा, तो मैं मरने तक इसी टोकरी में पड़ा रहूँगा।"

एक महीने के भीतर ब्राह्मण बनारस आ गया। वहाँ उसने नगर के प्रांगण में नाग का प्रदर्शन करवाकर खूब धन कमाया। राजा ने भी उसे बुलवाया और प्रदर्शन का आदेश दिया। उस व्यक्ति ने अगले दिन, जो कि अर्धमाह का अंतिम दिन था, प्रदर्शन करने का वादा किया। तब राजा ने शहर में ढोल बजवाकर यह घोषणा करवाई कि अगले दिन राजमहल के प्रांगण में एक शाही नाग नृत्य करेगा; लोग अपने-अपने स्थानों पर इकट्ठा होकर उसे देखें। अगले दिन राजमहल का प्रांगण सजाया गया और ब्राह्मण को बुलाया गया। वह एक चमकीले रंग के कालीन पर रत्नजड़ित टोकरी में उस महान प्राणी को लेकर आया, जिसे उसने नीचे रखा और स्वयं बैठ गया। राजा ऊपरी मंजिल से नीचे आया और लोगों की एक विशाल सभा के बीच अपने राजमहल पर बैठ गया। ब्राह्मण ने उस महान प्राणी को बाहर निकाला और उसे नृत्य करवाया। लोग अपनी जगह पर स्थिर नहीं रह सके: हजारों रूमाल हवा में लहराने लगे; बोधिसत्व के चारों ओर सातों प्रकार के रत्नों की वर्षा हुई।

सर्प को पकड़े हुए अब पूरा एक महीना बीत चुका था; और इस पूरे समय में उसने कुछ भी नहीं खाया था। अब सुमना सोचने लगी--

"मेरे प्यारे पति बहुत देर कर रहे हैं। एक महीना हो गया है उन्हें लौटे नहीं; आखिर क्या बात है?" तो वह गई और तालाब को देखा: देखो, पानी खून की तरह लाल था! तब उसे समझ आया कि उसे किसी सपेरे ने पकड़ लिया होगा। वह महल से आगे बढ़कर चींटियों के ढेर के पास गई; उसने वह जगह देखी जहाँ उसे पकड़ा गया था, और वह जगह जहाँ वह कष्ट भोग रहा था, और वह रो पड़ी। फिर वह सीमावर्ती गाँव गई और पूछताछ की; और सारी बात जानकर वह बनारस चली गई, और लोगों के बीच, महल के प्रांगण के ऊपर हवा में खड़ी होकर शोक मनाने लगी। महान देवता नाचते हुए ऊपर हवा में देखने लगे, और उसे देखकर शर्मिंदा होकर अपनी टोकरी में घुस गए, और वहीं लेट गए। जब वह टोकरी में घुसे, तो राजा चिल्लाए, "अब क्या बात है?" इधर-उधर देखते हुए, उन्होंने उसे हवा में तैरती हुई देखा, और पहला श्लोक पढ़ा:

"कौन है जो बिजली की तरह चमकता है, या किसी धधकते तारे की तरह?"
देवी या दानव? मुझे लगता है कि तुम बिल्कुल भी इंसान नहीं हो।
उनकी बातचीत निम्नलिखित छंदों में दी गई है:

न मैं देवी हूँ, न ही दानव, न ही कोई मानव, पराक्रमी राजा
"नाग प्रजाति की एक मादा, किसी खास काम से आई है।"
तुम क्रोध और रोष से भरे हुए दिखते हो।
तुम्हारी आँखों से आँसू बहते हैं:
    बताइए क्या गलत है या क्या इच्छा है
क्या आप मुझे यहाँ ला रही हैं, मैडम? मुझे पता है।
रेंगता हुआ सर्प, ज्वाला की तरह भयंकर!
तो उन्होंने उसे बुलाया: एक आया,
    उसने अपने लाभ के लिए उसे पकड़ लिया, महाराज:
मैं अपने स्वामी के लिए स्वतंत्रता का दावा करता हूँ!
"ऐसा भूखा प्राणी भला कैसे..."
क्या आप किसी शक्तिशाली प्राणी को पकड़ना चाहते हैं?
    नागों की पुत्री, कहो,
सांप की सही पहचान कैसे करें?
"उसकी शक्ति इतनी अधिक थी कि इस शहर को भी
वह जलकर राख हो सकता था।
    लेकिन वह पवित्र मार्ग से प्रेम करता है।
और वह मितव्ययिता की प्रसिद्धि चाहता है।"
तब राजा ने पूछा कि उस आदमी ने उसे कैसे पकड़ा। उसने निम्नलिखित छंद में उत्तर दिया:

"पवित्र दिनों (*8) पर शाही साँप
चारों रास्तों पर लिया जाता था
    पवित्र प्रतिज्ञाएँ: एक बाज़ीगर ने उसे पकड़ लिया।
मेरे पति को मेरी खातिर रिहा कर दो!
इन शब्दों के बाद उसने दो और छंद जोड़े, जिसमें उसने उसकी रिहाई की गुहार लगाई:

"देखो, सोलह हजार स्त्रियाँ गहनों और अंगूठियों से सजी हुई हैं।"
जल के नीचे रहने वाले लोग उसे अपना आश्रय और अपना राजा मानते थे।
"उसे न्यायपूर्वक, विनम्रता से मुक्त कर दो,"
सर्प स्वतंत्रता खरीदो,
    सोने के साथ, सौ गायों के साथ, एक गाँव के साथ:
इससे आपको जीत मिलेगी।
तब राजा ने तीन श्लोक पढ़े:

"अभी न्यायपूर्वक और धीरे से देखें"
मैं सर्पेंट लिबर्टी खरीदता हूँ
    सोने के साथ, सौ गायें, एक गाँव,

इससे मुझे जीत मिलेगी।
मैं तुम्हें एक रत्नजड़ित बाली और सौ ड्रैचम सोना देता हूँ।
सन के फूल से बना एक सुंदर सिंहासन, जिस पर चार-चार तकिए बिछे हुए हैं!
"एक बैल, सौ गायें, और तुम्हारे समान कुल की दो पत्नियाँ:
पवित्र सर्प को छोड़ दो: यह कर्म पुण्य सिद्ध होगा।
इस पर शिकारी ने उत्तर दिया:

"महाराज, मुझे कोई उपहार नहीं चाहिए।"
लेकिन अब सर्प को मुक्त जाने दो।
अतः अब मैं सर्प को मुक्त करता हूँ:
यह कर्म पुण्यकारी होगा।
इस भाषण के बाद उन्होंने महान प्राणी को टोकरी से बाहर निकाला। सर्पराज आगे बढ़े और एक फूल में घुस गए, जहाँ उन्होंने अपना रूप बदलकर एक भव्य वस्त्रधारी युवक का रूप धारण किया: वे वहाँ ऐसे खड़े थे मानो उन्होंने धरती को चीरकर बाहर आए हों। और आकाश से सुमना नीचे आए और उनके बगल में खड़े हो गए। सर्पराज ने राजा के प्रति आदरपूर्वक हाथ जोड़कर उनका सम्मान किया।

सब कुछ स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने दो श्लोक पढ़े:

"नागराज कैम्पेयका ने अब मुक्त हो चुके राजा को संबोधित किया:
"हे काशी के राजा, पिता तुल्य स्वामी, अब आपको ही सर्वोपरि सम्मान!"
मैं आपको प्रणाम करता हूँ, घर लौटने से पहले आपसे मिलने जाता हूँ।
"अलौकिक प्राणी शायद
उनका कहना है कि इस पर विश्वास करना मुश्किल है।
हे सर्प, यदि तू सत्य बोलेगा,
तुम्हारा महल कहाँ है? रास्ता दिखाओ।
लेकिन उस महान सत्ता ने उसे विश्वास दिलाने के लिए, इन दो श्लोकों में इस प्रकार शपथ ली:

यदि हवा ऊंचे पहाड़ों को हिला दे,
आकाश से चंद्रमा और सूर्य गिर पड़ते हैं।
बहती नदियों के विपरीत दिशा में बहना,
हे राजा! मैं कभी झूठ नहीं बोल सकता।
आकाश फट जाए, सागर सूख जाए,
उदार धरती माता गड़बड़
क्रम्पलिंग (*9) रोल, उखड़ना माउंट मेरु,
फिर भी, हे राजा, मैं झूठ नहीं बोल सकता!
लेकिन इस आश्वासन के बावजूद, उसने उस महान सत्ता पर विश्वास नहीं किया और कहा--

"अलौकिक प्राणी शायद
उनका कहना है कि इस पर विश्वास करना मुश्किल है।
हे सर्प! यदि तू सत्य बोले तो!
तुम्हारा महल कहाँ है? रास्ता दिखाओ।
उन्होंने फिर से वही छंद दोहराया और आगे कहा, "तुम्हें मेरे द्वारा किए गए अच्छे कर्मों के लिए आभारी होना चाहिए: हालांकि, मुझे तुम्हें सही मानना चाहिए या नहीं, यह तो मुझे तय करना है।" अगले छंद में उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया:

"अत्यधिक विषैला, शक्ति से परिपूर्ण,"
झगड़े में तेज, चमकीला,
मैंने तुम्हें कारागार से मुक्त कराया है:
तब कृतज्ञता मेरा अधिकार है।"
उस महान सत्ता ने उसका विश्वास जीतने के लिए इस प्रकार शपथ ली:

जो धन्यवाद नहीं लौटाएगा,

खुशी को कभी सीखना नहीं चाहिए:
उसे टोकरीनुमा जेल में ही मरना चाहिए।
उसे भयानक नरक में जलना चाहिए!
अब राजा ने उसकी बात पर विश्वास किया और उसे इस प्रकार धन्यवाद दिया:

"चूंकि आपकी वह प्रतिज्ञा सत्य है,
क्रोध से दूर रहो और घृणा से बचो:
जैसे हम गर्मी में आग से भागते हैं,
"तुम्हारे पास से रॉक पक्षी भाग जाएं!" (*10)
उस महान सत्ता ने भी राजा को धन्यवाद देने के अर्थ में एक और श्लोक कहा:

"जैसे एक माँ करती।"
एक इकलौते, प्रिय पुत्र को,
आप सभी सर्पों के प्रति दयालु हैं:
हम आप सभी की सेवा करेंगे।
अब राजा सर्पों की दुनिया में जाने के लिए उत्सुक था, उसने आदेश दिया कि उसकी सेना को निम्नलिखित श्लोक में जाने के लिए तैयार किया जाए:

शाही रथों को जोड़ो और खड़े हो जाओ
प्रशिक्षित कंबोडियन खच्चर उपलब्ध हैं।
सुनहरे अलंकृत वस्त्रों में सजे हाथी:
हम सर्पों की भूमि की यात्रा करेंगे!
अगला श्लोक पूर्ण ज्ञान का है:

ढोल बजाओ, ढोल की थाप दो,
शंख और झांझ की ध्वनियाँ और झंकार,
शानदार मध्य में बहुत सी महिलाएं
देखो, राजा उगासेना आ रहे हैं।
जिस क्षण राजा ने नगर छोड़ा, उसी क्षण उस महान सत्ता ने अपनी शक्ति से सर्पलोक में सात बहुमूल्य वस्तुओं से बनी एक दीवार, द्वार-मीनारें प्रकट कीं और सर्पलोक तक जाने वाले मार्ग को भव्य रूप से सुशोभित किया। इसी मार्ग से राजा अपने अनुयायियों के साथ महल में प्रवेश किया और वहाँ महलों से सुसज्जित एक रमणीय स्थान देखा।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

काशी के स्वामी ने देखा कि धरती सुनहरी रेत से ढकी हुई है।
चारों ओर मूंगे के सुंदर फूल बिखरे हुए हैं, हर तरफ सोने के टावर हैं।
"तब राजा कैम्पेय्या के दिव्य महलों में प्रवेश कर गया,
जो पीतल की वज्र (*11) या लाल सूरज की तरह चमकता था।
"राजा ने कैम्पेय्या के महलों में प्रवेश किया:
हजारों सुगंध हवा में घुल जाती हैं, हजारों पेड़ छाया प्रदान करते हैं।
"जैसे ही राजा ने कैम्पेय्या के महल में कदम बढ़ाया,
दिव्य वीणाओं ने मधुर संगीत रचा, सुंदर नाग-स्त्रियों ने नृत्य किया।
उन्हें सोने की कुर्सी दिखाई जाती है
गद्देदार और सैंडल की तरह सुंदर,
जहां सुंदर लड़कियों की संगति
भीड़ भरे कदमों से गलियारों में घूमो।"
वहाँ बैठते ही उनके सामने उत्तम स्वाद का दिव्य भोजन परोसा गया, और सोलह हज़ार स्त्रियों और बाकी सभी को भी दिया गया। सात दिनों तक उन्होंने अपने सेवकों के साथ दिव्य भोजन और पेय का आनंद लिया और हर तरह के सुखों का लुत्फ़ उठाया। अपने सुंदर

आसन पर बैठे हुए उन्होंने ईश्वर की महिमा का गुणगान किया। उन्होंने कहा, “हे सर्पों के राजा, आपने यह सारी शान-शौकत छोड़कर चींटियों के ढेर पर लेटने और मनुष्यों के संसार में व्रत रखने का फैसला क्यों किया?” दूसरे ने उन्हें जवाब दिया।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"वहाँ राजा प्रसन्नतापूर्वक ठहरे रहे।"
फिर उसने कैम्पेय्या से कहा:
"ये आपके महल तो वाकई शानदार हैं!"
वे सूर्य के समान लाल रंग से चमकते हैं।
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
"ये महिलाएं बेहद खूबसूरत और आकर्षक दिख रही हैं।"
जो नुकीली उंगलियों से पकड़ते हैं
दोनों लाल रंग से सने हाथों में से किसी एक से पेय लें।
स्तन और शरीर सोने से घिरे हुए हैं।
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
नदी, मछली का तालाब, कांच जैसा साफ पानी,
प्रत्येक में अच्छी तरह से निर्मित लैंडिंग-सीढ़ी है,
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
"बगुला, मोर, स्वर्गीय हंस,
कोयल के आकर्षण इस प्रकार हैं,
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
आम, साल और तिलक की खेती की जाती है।
कैसिया (*12), तुरही-फूल (*13) पूरी तरह से खिला हुआ,
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
"झीलें देखो!" और वह ऊपर की ओर बह गई।
हर तट पर दिव्य सुगंध:
पृथ्वी पर ऐसे प्राणी न ही देखने को मिलते हैं:
आप संन्यासी क्यों बनना चाहेंगे?
न जीवन के लिए, न पुत्रों के लिए, न धन के लिए।
क्या मैं स्वयं से संघर्ष करता हूँ?
अगर संभव हो तो, यही मेरी दिली इच्छा है।
मनुष्य के रूप में पुनः जन्म लेना।"
इस उत्तर पर राजा ने कहा:

"साहसपूर्वक कपड़े पहने, आंखें लाल और धुंधली,
चौड़े कंधे, मुंडा हुआ सिर और दाढ़ी,
जैसे कोई देवदूत-राजा संबोधित कर रहा हो
सारी दुनिया, चंदन के रंग से सनी हुई।
"शक्ति में महान, दिव्य सामर्थ्य में महान,"
हे समस्त इच्छाओं के स्वामी, मेरी ओर ध्यान दें।
सर्पराज, मेरे प्रश्न का उत्तर दो—
हमारी दुनिया आपकी दुनिया से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
सर्पराज ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया:
"नियंत्रण और शुद्धि तब आती है जब

एक तो पुरुषों की दुनिया में है,
केवल वहीं: एक बार आदमी, मैं कभी नहीं
फिर कभी जन्म न देखो, न मृत्यु।
तब राजा ने सुना और इस प्रकार उत्तर दिया:

"बुद्धिमानों का सम्मान करना निःसंदेह अच्छा है।"
जिनमें गहन ज्ञान और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं (*14)।
जब तुम और ये सारी नौकरानियाँ मुझे दिखती हैं,
मैं अनेक बार पुण्य कर्म करूंगा।
सर्पराज ने उससे कहा:

"बुद्धिमानों का सम्मान करना निःसंदेह अच्छा है।"
जिनमें गहन ज्ञान और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं।
जब मुझे और इन सभी नौकरानियों को आप देखते हैं,
तो फिर तुम अनेक बार पुण्य कर्म करो।
इस भाषण के बाद, उगासेना जाने के लिए उत्सुक हो गया और उसने विदा लेते हुए कहा, "सर्पराज, मैं यहाँ बहुत देर तक रुका रहा, अब मुझे जाना होगा।" उस महान प्राणी ने अपने खजाने की ओर इशारा करते हुए उसे जो कुछ भी लेना चाहता था, वह देते हुए कहा,

मैं इसका त्याग करता हूँ, अथाह सोने का भी।
देखो, पेड़ जितने ऊंचे चांदी के ढेर!
चांदी लो और उससे दीवारें बनाओ।
सोने के घर बनाओ और ले जाओ।
"मोती, पांच हजार भार, मुझे लगता है।"
बीच में मूंगा रंग की हल्की सी लाली,
इन्हें ले जाकर अपने महल में फैला दें
न तो मिट्टी दिखाई देती है और न ही धूल।
"ऐसा महल जैसा कि मैं बताता हूँ
निर्माण करो, और वहाँ, हे सम्राट! निवास करो:
बनारस शहर समृद्ध होगा:
इस पर बुद्धिमानी से शासन करो, अच्छे से शासन करो।"
राजा ने यह सुझाव मान लिया। तब उस महान शक्ति ने ढोल बजाकर नगर में यह घोषणा करवाई: "राजा के सभी सेवक मेरी संपत्ति, सोना और उत्तम सोना, में से जो चाहें ले लें!" और उन्होंने सैकड़ों रथों में भरकर खजाना राजा को भेज दिया। इसके बाद राजा ने धूमधाम से सर्पलोक छोड़ा और बनारस लौट आए। कहते हैं कि तब से पूरे भारत में धरती सोने से भर गई।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "इस प्रकार प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने सर्प लोक की महिमा को त्यागकर व्रत का पालन किया।" फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय देवदत्त नाग-सन्यासी थे, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) सुमना थीं, सारिपुत्र उगसेना थे और मैं स्वयं नागों का राजा कैम्पेज्य था।"

फुटनोट:

(1)पत्थयामानो पढ़ना.

(2) छह देवलोक (देवदूत लोक)।

(3) संख्या 543

(4) संख्या 524

(5) विषैला माना जाता है। क्रमांक 55 और 206 की तुलना करें।

(6)ये तकनीकी शब्द प्रतीत होते हैं।

(7)अर्थात्, अपनी तीव्र गति से हजारों हुडों का आभास देते हुए।

(8) चौदहवें और पंद्रहवें का नाम लिया गया है।

(9) पढ़ना samvattaye

(10) "सर्प जनजाति" शाब्दिक अनुवाद है।

(11) उत्तर भारत में कांस्य वज्र का प्रयोग ताबीज के रूप में किया जाता था।

(12) कैसिया फिस्टुला.

(13) बिगोनिया सुवेओलेन्स.

(14)संख्या 306 देखें

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महा-पलोभन-जातक**
***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-507-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 507
महा-पालोभना-जातक

"ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) से," इत्यादि - यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें पवित्र आत्माओं के अपवित्र होने का वर्णन था। परिस्थितियाँ पहले ही बताई जा चुकी हैं। यहाँ गुरु ने फिर कहा, "स्त्रियाँ पवित्र आत्माओं को भी अपवित्र कर देती हैं," और फिर अतीत की यह कथा सुनाई।

बहुत समय पहले बनारस में—यहाँ अतीत की कहानी को कुल्ला-पालोभना जन्म (*1) की तरह विस्तार से बताया जाना है। अब एक बार फिर महान सत्ता ब्रह्मा के लोक से काशी के राजा के पुत्र के रूप में अवतरित हुई, और उनका नाम राजकुमार अनित्थि-गंध था, जो स्त्री-द्वेषी थे। वे किसी स्त्री के हाथों में नहीं रहना चाहते थे; उन्हें स्तनपान कराने के लिए स्त्रियों को पुरुषों का वेश धारण करना पड़ता था; वे ध्यान कक्ष में रहते थे, और उन्होंने कभी किसी स्त्री को नहीं देखा। (*2)

इसे समझाने के लिए गुरु ने चार श्लोक दोहराए।

ब्रह्मा के उच्च स्वर्ग से एक प्रधान देवदूत इस पृथ्वी पर अवतरित हुए।
एक राजा के पुत्र के रूप में, जिसकी हर इच्छा कानून थी, उसका जन्म हुआ था।
ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में कभी भी कामवासना का कोई कार्य, कोई उल्लेख, नहीं आया।
इस संसार में जन्म लेने के बाद, राजकुमार को अब इसका नाम तक नापसंद था।
"महल के भीतर उसने अपना एक कमरा निजी तौर पर बना लिया था।"
जहां वह गहन ध्यान में लीन होकर अकेले ही दिन गुजारता था।
"राजा अपने पुत्र के लिए चिंतित हो गया और उसे वहाँ देखकर शोकग्रस्त हो गया।"
मेरा एक ही बेटा है, और उसे सुख-सुविधाओं की परवाह नहीं है।"
पांचवें श्लोक में राजा के रोने का वर्णन है:

"ओह, मुझे कौन बताएगा कि मुझे क्या करना चाहिए! क्या कोई कारगर उपाय नहीं है?"
उसे प्रेम की लालसा के आनंद कौन सिखाएगा, और कौन उसे लुभा सकता है?
अगले छंद और आधा छंद पूर्ण ज्ञान के हैं:

"वहाँ एक लड़की थी, सुडौल शरीर वाली, गोरी और सुंदर त्वचा वाली।"
उसे सुरीले गीतों की दुनिया का ज्ञान था, और वह अच्छी तरह से नृत्य और चक्कर लगा सकती थी।
इस लड़की ने महाराज को ढूँढा और इस प्रकार उसने शुरुआत की।
दूसरी पंक्ति उस युवा लड़की द्वारा बोली गई है:

"अगर आप मुझसे उसका विवाह करवा देंगी तो मैं उसे बहला-फुसला लूंगी।"
राजा ने दासी को उत्तर दिया और इस प्रकार कहा:

"यदि तुम उसे लुभाने में सफल हो जाओ, तो वही तुम्हारा पति होगा।"
राजा ने आदेश दिया कि उसे हर संभव अवसर दिया जाए और उसे राजकुमार की सेवा में भेज दिया। सुबह वह अपना वीणा लेकर राजकुमार के शयनकक्ष के ठीक बाहर जाकर खड़ी हो गई और अपनी उंगलियों से वीणा को छूते हुए मधुर स्वर में गाकर उसे लुभाने का प्रयास करने लगी।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"लड़की घर के अंदर गई और जहाँ वह अलग खड़ी थी,
प्रेमी के दिल को भेदने के लिए मधुर और लंबे गीत गाए।
"जब वह लड़की खड़ी होकर गा रही थी, तभी राजकुमार ने वह आवाज़ सुनी,
स्ट्रेट को वह चीज़ पसंद आ गई और उसने आसपास इंतज़ार कर रहे नौकरों से पूछा--
"वह मधुर ध्वनि क्या है जो मुझे इतनी स्पष्ट रूप से सुनाई दे रही है?"
प्रेम के विचारों से हृदय को भेदते हुए, मेरे कानों को कितना आनंद आता है?
"एक युवती, महाराज, देखने में सुंदर, असीम नखरे वाली।"
क्या तुम प्रेम की मिठास का आनंद लेना चाहते हो, इस आनंद के आगे झुक जाओ, इस प्रसन्नता के वश में हो जाओ।
"अरे, यहाँ आओ, वह और पास आए, और वह और गाए।"
यहां वह मेरे कमरे के दरवाजे के भीतर मेरे सामने गाए!
"जो महिला दीवार के बाहर गाती थी, वह वहाँ उस कमरे में खड़ी थी:
उसने उसे ऐसे पकड़ा जैसे जंगल में हाथी को जाल में फंसा लिया जाता है।
"उसने प्रेम का आनंद महसूस किया, और देखो! ईर्ष्या अपने चरम पर पहुँच गई थी।"
"कोई और पुरुष मुझसे प्रेम नहीं करेगा!" वह चिल्लाता है, "केवल मैं ही प्रेम करूंगा!"
"मेरे सिवा कोई और नहीं!" वह चिल्लाता है; और फिर चला जाता है--
तलवार छीनकर वह उन्माद में आकर बाकी सभी पुरुषों को मारने के लिए दौड़ पड़ता है!
"लोग घबराकर चिल्लाते हुए महल की ओर भागे:
वे चिल्लाते हैं, "तुम्हारा बेटा बिना किसी उकसावे के सबको मार रहा है!"
"योद्धा राजा ने उसे गिरफ्तार किया और उसके सामने से निकाल दिया।"
"मेरे राज्य की सीमाओं के भीतर तुम्हें कोई स्थान नहीं मिलेगा।"
वह अपनी पत्नी को लेकर आगे बढ़ता रहा और समुद्र के किनारे आकर रुक गया।
उन्होंने पत्तों की एक झोपड़ी बनाई और जंगल से भोजन इकट्ठा करके अपना जीवन यापन किया।
"एक पवित्र साधु उड़ते हुए समुद्र के ऊपर से आया,
जब मैं झोपड़ी में दाखिल हुआ तो खाना तैयार था।
"उस स्त्री ने उसे बहकाया: अब देखो कितना घिनौना काम हुआ!"
वह ब्रह्मचर्य से विमुख हो गया, और उसकी सारी जादुई शक्ति समाप्त हो गई!
शाम हो गई; राजकुमार लौट आया, और अपने संग्रह से लाया
उसने अपने खंभे पर जड़ों और जंगली लकड़ी की चीजों का प्रचुर भंडार लटका दिया।
"सन्यासी ने राजकुमार को आते देखा: वह किनारे की ओर चल पड़ा,
हवा में उड़ने की सोच रहा था, लेकिन समुद्र में डूब गया!

लेकिन जब राजकुमार ने ऋषि को समुद्र में डूबते हुए देखा,
उसके मन में दया का भाव जागा, और फिर उसने ये पंक्तियाँ कहीं:-
"तुम यहाँ समुद्र में नौकायन करके नहीं, बल्कि जादुई शक्ति से आए हो।"
लेकिन अब तुम डूब रहे हो; एक दुष्ट पत्नी ने तुम्हें इस शर्मिंदगी तक पहुँचाया है।
"वे गद्दारियों को बहकाकर सबसे पवित्र व्यक्ति को भी उसके पतन की ओर ले जाते हैं।"
वे नीचे की ओर डूबते जाते हैं: जिन महिलाओं को वे जानती हैं, उन्हें सबसे दूर भाग जाना चाहिए।
"मधुर भाषी, संतुष्ट करना कठिन, जैसे नदियों को भरना कठिन होता है;"
वे नीचे की ओर धंसते जाते हैं: जिन महिलाओं को वे जानती हैं, उन्हें उनसे और भी दूर भाग जाना चाहिए।
और वे जिसकी भी सेवा सोने के लिए या इच्छा के लिए करें,
वे उसे जलाकर राख कर देते हैं, जैसे भयंकर आग में ईंधन जलता है।
"सन्यासी ने राजकुमार की बात सुनी; उसे यह स्वार्थी संसार नापसंद था।"
अपने पूर्व पथ (*3) की ओर मुड़ा, और फिर से हवा में ऊपर उठ गया।
राजकुमार ने जैसे ही देखा कि वह हवा में ऊपर उठ रहा है,
वह दुखी था और उसने दृढ़ संकल्प के साथ पवित्र जीवन जीने का मार्ग चुना;
फिर, धार्मिक (तपस्वी) बनकर, उसने अपनी कामवासना और तीव्र इच्छा को पूरी तरह से वश में कर लिया;
और वासना को वश में करके, अब से वह ब्रह्मा के लोक की ओर जाने की आकांक्षा रखने लगा।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, स्त्री के कारण पवित्र आत्माएँ भी पाप कर बैठती हैं;" फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की: (सत्यों के समापन पर, पथभ्रष्ट भिक्षु ने संतत्व प्राप्त किया:) जिसके बाद उन्होंने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा, "उस समय मैं स्वयं राजकुमार अनित्तिगंधा था।"

फुटनोट:

(1) संख्या 263

(2)पढ़ना, अगच्चत

(3)अर्थात, वह पवित्रता के मार्ग पर लौट आया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> पंच **-पंडित जातक**
स्रोत: *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-508-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 508
पंच-पंडित जातक

पांच ज्ञानी पुरुषों के जन्म का वर्णन महा-उम्मग्ग जातक क्रमांक 546 में दिया जाएगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **हत्थि-पाल जातक**
स्रोत: *डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-509-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 509
हाथी-पाल जातक

"अंततः हमें समझ आ गया," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए त्याग के विषय में सुनाई थी। फिर इन शब्दों के साथ, "हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) ने पहली बार त्याग नहीं किया है, बल्कि इससे पहले भी ऐसा हुआ था,"—गुरु ने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में एसुकारी नाम का एक राजा राज करता था। उसका पुजारी बचपन से ही उसका प्रिय साथी था। दोनों निःसंतान थे। एक दिन दोनों मित्रवत भाव से बैठे थे, तभी उन्होंने सोचा, "हमारे पास महान यश तो है, पर पुत्र-पुत्री नहीं है; अब क्या करें?" तब राजा ने पुजारी से कहा, "मित्र, यदि तुम्हारे घर में पुत्र उत्पन्न हो, तो वह मेरे राज्य का स्वामी होगा; परन्तु यदि मेरा पुत्र हो, तो वह तुम्हारी संपत्ति का स्वामी होगा।" दोनों ने इन शर्तों पर समझौता कर लिया।

एक दिन, जब पुजारी अपने राजस्व-गाँव के पास पहुँचा और दक्षिणी द्वार से प्रवेश किया, तो द्वार के बाहर उसने एक दुखी स्त्री को देखा जिसके कई पुत्र थे: उसके सात पुत्र थे, सभी स्वस्थ और तंदुरुस्त; एक खाना पकाने के लिए बर्तन और थाली पकड़े हुए था, एक चटाई और बिस्तर, एक आगे चल रहा था और एक पीछे, एक ने उसकी उंगली पकड़ी हुई थी, एक उसकी कमर पर बैठा था और एक उसके कंधे पर। पुजारी ने पूछा, "इन लड़कों का पिता कहाँ है?" उसने उत्तर दिया, "महोदय, इन लड़कों का कोई पिता नहीं है।" पुजारी ने कहा, "तो फिर, तुम्हें ऐसे सात अच्छे पुत्र कैसे मिले?" (*1) जंगल के बाकी हिस्से को अनदेखा करते हुए, उसने शहर के द्वार के पास खड़े एक बरगद के पेड़ की ओर इशारा किया और कहा, "महोदय, मैंने इस पेड़ में निवास करने वाले देवता से प्रार्थना की थी, और उन्होंने मुझे ये लड़के देकर मेरी प्रार्थना का उत्तर दिया।" पुजारी ने कहा, "तो तुम जा सकती हो; अपने रथ से उतरकर वह वृक्ष के पास गया और एक शाखा को पकड़कर उसे हिलाते हुए बोला, "हे देवता, राजा ने आपको क्या नहीं दिया? वह हर साल आपको हज़ार सिक्के भेंट करता है, पर आप उसे एक भी पुत्र नहीं देते। इस भिखारी पत्नी ने आपके लिए ऐसा क्या किया है कि आप उसे सात पुत्र देते हैं? आप सात दिनों के भीतर राजा को एक पुत्र प्रदान करें, अन्यथा मैं आपको जड़ से उखाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा।" बरगद के वृक्ष के देवता को इस प्रकार संबोधित करते हुए वह चला गया। छह दिनों तक उसने यही किया, और छठे दिन शाखा को पकड़कर बोला—"हे वृक्ष-देव, केवल एक रात शेष है; यदि आप मेरे राजा को पुत्र प्रदान नहीं करेंगे, तो आप नीचे गिर जाएंगे!"

वृक्ष की देवी ने तब तक विचार किया, जब तक उन्हें पूरी तरह से पता नहीं चल गया कि मामला क्या है। उन्होंने सोचा, "यदि ब्राह्मण को पुत्र नहीं हुआ, तो वह मेरा घर नष्ट कर देगा: भला मैं उसे पुत्र कैसे दिला सकती हूँ?" फिर वे चार महान राजाओं (*2) के समक्ष गईं और उन्हें बताया। उन्होंने कहा, "हम उस व्यक्ति को पुत्र नहीं दे सकते।" इसके बाद वे अट्ठाईस योद्धाओं के पास गईं, और उन सभी ने भी यही कहा। अंत में वे देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) के पास गईं और उन्हें बताया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या राजा को अपने योग्य पुत्र मिलेंगे या नहीं?" फिर उन्होंने चारों ओर देखा और देवताओं (देवदूतों) के चार गुणी पुत्रों को देखा। कहा जाता है कि ये पूर्वज बनारस के बुनकर थे; और उस व्यापार से होने वाली अपनी सारी कमाई को वे पाँच ढेरों में बाँटते थे; इनमें से चार उनके अपने हिस्से थे, परन्तु पाँचवाँ उन्होंने सबको बाँट दिया। उस स्थान से पुनर्जन्म लेकर वे तैंतीसों के स्वर्ग में आए, वहाँ से उनका पुनर्जन्म यमलोक (*3) में हुआ, और वहाँ से वे क्रमानुसार छहों लोकों में विचरण करते हुए अनेक यश का अनुभव किया। ठीक उसी समय उनका तैंतीसों के स्वर्ग से यमलोक जाने का समय आ गया। सक्का (इंद्र) उन्हें खोजने गए, उन्हें बुलाया और कहा, "हे पूज्यवर, आपको मनुष्यलोक में जाकर राजा एशुकारी की मुख्य पत्नी के गर्भ में जन्म लेना होगा।" उन्होंने कहा, "हे स्वामी, हम जाएँगे। परन्तु हमारा राजपरिवार से कोई संबंध नहीं है: हम पुरोहित परिवार में जन्म लेंगे और युवावस्था में ही संसार का त्याग कर देंगे।" तब सक्का (इंद्र) ने उनके वचन को स्वीकार कर लिया और लौटकर वृक्ष में निवास करने वाली देवी को सब कुछ बताया। बहुत प्रसन्न होकर वृक्ष-देवी ने सक्का (इंद्र) से विदा ली और अपने निवास स्थान पर चली गईं।

लेकिन अगले दिन पुजारी आया, और उसके साथ उसने कुछ बलवान पुरुष भी एकत्र किए थे, जिनमें से प्रत्येक के पास एक तेज धार वाली कुल्हाड़ी या इसी तरह का कोई हथियार था। पुजारी पेड़ के पास पहुँचा और एक शाखा पकड़कर चिल्लाया—"हे वृक्ष के देवता! आज सातवाँ दिन है जब से मैंने आपसे कृपा माँगी है: आपके विनाश का समय आ गया है!" वृक्ष देवी ने अपनी महान शक्ति से पेड़ के तने को दो भागों में बाँट दिया और आगे आकर मधुर स्वर में उससे कहा, "एक पुत्र, ब्राह्मण? छी! मैं तुम्हें चार दूँगी।" उसने कहा, "मुझे पुत्र नहीं चाहिए; मेरे राजा को एक दे दीजिए।" "नहीं," उसने कहा, "मैं केवल तुम्हें ही दूँगी।" "तो दो राजा को और दो मुझे दे दीजिए।" "नहीं, राजा को कोई पुत्र नहीं होगा, चारों पुत्र तुम्हें ही मिलेंगे; लेकिन वे केवल तुम्हें ही दिए जाएँगे, क्योंकि वे सांसारिक गृहस्थी में नहीं रहेंगे: अपनी युवावस्था में वे संसार का त्याग कर देंगे।" "बस मुझे पुत्र दे दो, मैं देख लूँगा कि वे संसार का त्याग न करें," उसने कहा। इस प्रकार देवी ने उसकी संतान प्राप्ति की प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने निवास स्थान पर लौट गई। उसके बाद से उस देवी को अत्यंत सम्मान प्राप्त हुआ।

अब सबसे बड़े देवदूत (देवदूत) का जन्म हुआ और वे ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ में आए। उनके नामकरण के दिन उनका नाम हाथीपाल रखा गया; और उन्हें संसार त्यागने से रोकने के लिए, उन्हें कुछ हाथी पालकों की देखरेख में सौंप दिया गया, जिनके बीच वे पले-बढ़े। जब वे चलने लायक हुए, तो उसी स्त्री से दूसरे देवदूत का जन्म हुआ। उनके जन्म पर उनका नाम अस्सपाल रखा गया, और वे घोड़े पालने वालों के बीच पले-बढ़े। तीसरे देवदूत का नाम गोपाल रखा गया, और वे पशुपालकों के बीच पले-बढ़े। चौथे देवदूत का नाम अजपाल रखा गया, और वे बकरी पालकों के बीच पले-बढ़े। जब वे बड़े हुए तो वे शुभ शगुन वाले बालक थे।

अब संसार त्यागने के भय से, ऐसा करने वाले सभी तपस्वियों को राज्य से निर्वासित कर दिया गया: काशी राज्य में एक भी नहीं बचा। वे युवक उतावले थे: वे जहाँ भी जाते, वहाँ भेजे गए धार्मिक उपहारों को लूट लेते थे।

जब हत्थिपाला सोलह वर्ष का हुआ, तो राजा और पुजारी ने उसके शारीरिक सौंदर्य को देखकर मन ही मन सोचा, "लड़के बड़े हो गए हैं। जब राजसी साक्षात सत्ता में आएगी, तो इनका क्या किया जाए? जैसे ही इन पर जल छिड़काव किया जाएगा, ये अत्यंत कुशल हो जाएँगे: तपस्वी आएँगे, उन्हें देखेंगे और वे भी तपस्वी बन जाएँगे; एक बार ऐसा हो जाने पर, सारा देश अस्त-व्यस्त हो जाएगा। पहले इनकी परीक्षा ले लें, फिर जल छिड़काव करें।" अतः वे दोनों तपस्वियों के वेश में भिक्षा माँगते हुए हत्थिपाला के घर के द्वार तक पहुँचे। लड़का उन्हें देखकर प्रसन्न और आनंदित हुआ; पास आकर उसने आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और तीन श्लोक पढ़े:

"अंततः हमें एक ब्राह्मण देवता (देवदूत) के समान दिखाई देता है, जिसकी चोटी बहुत बड़ी है।"
दांतों को साफ नहीं किया गया, धूल से सना हुआ, और भार से बोझिल (*4)।
अंततः हमें एक ऐसा ऋषि मिलता है, जो धर्म में आनंदित होता है।
उसे छाल के वस्त्रों से ढका गया था, और उसने पीले रंग की पोशाक पहनी हुई थी।
बैठ जाइए, और अपने पैरों के लिए ताज़ा पानी ले लीजिए; यह उचित है।
मेहमानों को भोजन भेंट करना—जैसे हम आमंत्रित करते हैं, वैसे ही स्वीकार करें।"
इस प्रकार उन्होंने एक-एक करके उन सभी को संबोधित किया। फिर पुजारी ने उससे कहा: "मेरे पुत्र हत्थिपाला, तुम यह इसलिए कह रहे हो क्योंकि तुम हमें नहीं जानते। तुम सोचते हो कि हम हिमालय के ऋषि हैं, लेकिन ऐसा नहीं है, मेरे पुत्र। मैं राजा एसुकारी हूँ और मैं तुम्हारा पिता, पुजारी हूँ।" "तो फिर," लड़के ने कहा, "आप ऋषियों की तरह क्यों सजे हैं?" "तुम्हें परखने के लिए," उन्होंने कहा। "मुझे क्यों परख रहे हो?" उसने पूछा। "क्योंकि, यदि तुम संसार का त्याग किए बिना हमें देखोगे, तो हम छिड़काव की रस्म अदा करने और तुम्हें राजा बनाने के लिए तैयार हैं।" "हे मेरे पिता," उसने कहा, "मुझे राजसी पद नहीं चाहिए; मैं संसार का त्याग करूँगा।" तब उसके पिता ने उत्तर दिया, "पुत्र हत्थिपाला, यह संसार का त्याग करने का समय नहीं है;" और उन्होंने चौथे श्लोक में अपना उद्देश्य स्पष्ट किया:

पहले वेदों का अध्ययन करो, धन और पत्नी प्राप्त करो।
और पुत्रों, जीवन के सुखद अनुभवों का आनंद लो।
गंध, स्वाद और हर इंद्रिय: लकड़ी मीठी है
तब जीवन व्यतीत करना अच्छा है, और तब ऋषि का ज्ञान भी अच्छा होता है।"
हत्थिपाला ने एक श्लोक में उत्तर दिया:

सत्य न तो वेदों से मिलता है और न ही सोने से;
पुत्र होने से भी बुढ़ापा नहीं रुकेगा;
बुद्धिमान लोग जानते हैं कि इंद्रियों से मुक्ति मिलती है;
अगले जन्म में हम वही काटेंगे जो हमने अभी बोया है।
युवक के प्रश्न के उत्तर में राजा ने एक श्लोक सुनाया:

आपके मुख से निकले शब्द अत्यंत सत्य हैं:
अगले जन्म में हम वही काटेंगे जो हमने अभी बोया है।
आपके माता-पिता अब बूढ़े हो गए हैं: लेकिन ईश्वर करे वे देख सकें
आपके लिए सौ वर्षों का स्वस्थ जीवन इंतजार कर रहा है।"
"आपका क्या तात्पर्य है, महाराज?" राजकुमार ने पूछा और दो छंद दोहराए:

"हे राजा, जो मृत्यु में भी मित्र पा सके,"
और बुढ़ापे के साथ एक समझौता हो चुका है;
जो मरना नहीं चाहता, उसके लिए यही प्रार्थना करो।
उसे सौ साल का जीवन मिलेगा।

"जैसे कोई नदी पर नाव चलाता है
एक नाव, और दूसरे किनारे की यात्रा,
इसलिए नश्वर प्राणी अनिवार्य रूप से इस ओर प्रवृत्त होते हैं।
बीमारी और बुढ़ापे का अंत मृत्यु में ही होता है।
इस प्रकार उन्होंने इन लोगों को नश्वर जीवन की क्षणभंगुरता का परिचय देते हुए यह सलाह दी: "हे महाराज, जब आप यहाँ खड़े हैं और मैं आपसे बात कर रहा हूँ, तब भी रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु मेरे निकट आ रही हैं। इसलिए सावधान रहें!" राजा और उनके पिता को प्रणाम करके वे अपने सेवकों को साथ लेकर बनारस राज्य का त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से प्रस्थान कर गए। हत्थिपाला के साथ बहुत से लोग गए; उन्होंने कहा, "यह संन्यासी जीवन एक महान कार्य है।" यह समूह एक मील (4.23 किमी) लंबा था। वे इस समूह के साथ गंगा तट तक पहुँचे। वहाँ उन्होंने गंगा के जल को निहारते हुए आध्यात्मिक समाधि प्राप्त की। उन्होंने सोचा, "यहाँ एक बड़ी सभा होगी।" "मेरे तीनों छोटे भाई, मेरे माता-पिता, राजा, रानी और सभी अपने सेवकों के साथ आएंगे और संन्यासी जीवन अपना लेंगे। बनारस वीरान हो जाएगा। उनके आने तक मैं यहीं रहूंगा।" इस प्रकार वे वहां बैठकर एकत्रित लोगों को उपदेश देने लगे।

अगले दिन राजा और उनके पुजारी ने सोचा, "तो राजकुमार हाथीपाला ने सचमुच राज्य पर अपना दावा त्याग दिया है और गंगा के किनारे बैठे हैं, जहाँ वे संन्यासी जीवन जीने के लिए गए हैं और अपने साथ बहुत सारा धन ले गए हैं। लेकिन चलो असपाला को परखते हैं और विधिपूर्वक उन्हें राजा घोषित करते हैं।" अतः पहले की तरह वे तपस्वियों के वेश में उनके द्वार पर गए। उन्हें देखकर वह प्रसन्न हुए और उनके पास जाकर "अंततः" आदि पंक्तियाँ दोहराते हुए उन्होंने भी वही किया जो अन्य ने किया था। अन्य ने भी पहले की तरह ही किया और उन्हें अपने आने का कारण बताया। उन्होंने कहा, "राजकुमार हाथीपाला नाम का मेरा भाई है, फिर भी मुझे ही श्वेत छत्र क्यों दिया जा रहा है?" उन्होंने उत्तर दिया, "पुत्र, तुम्हारा भाई संन्यासी जीवन जीने के लिए चला गया है; उसे राज-पाट से कोई लेना-देना नहीं है।" "वह अब कहाँ है?" लड़के ने पूछा। "गंगा के किनारे बैठा है।" "प्रियजनों," उसने कहा, "मेरे भाई ने जो कुछ भी कहा है, मुझे उसकी परवाह नहीं है। मूर्ख और बुद्धिहीन लोग इस पाप का त्याग नहीं कर सकते, परन्तु मैं इसका त्याग करूँगा।" फिर उसने पिता और राजा को दो श्लोकों में विधि सुनाई:

"इंद्रियों के सुख तो केवल दलदल और कीचड़ हैं (*5);
मन की प्रसन्नता मृत्यु लाती है और कष्टों को पीड़ा देती है।
जो इन दलदलों में डूब जाते हैं, वे कभी भी लक्ष्य के करीब नहीं पहुँच पाते।
मूर्खतापूर्ण पागलपन में दूर किनारे तक (*6).
"यह वह व्यक्ति है जिसने कभी दुख और पीड़ा पहुंचाई थी:
अब वह पकड़ा जा चुका है, और उसकी रिहाई का कोई रास्ता नहीं है।
ताकि वह फिर कभी ऐसी हरकतें न करे।
मैं इसके चारों ओर अभेद्य दीवारें बनाऊंगा।
"तुम यहीं खड़े हो, और जैसे ही मैं तुमसे बात कर रहा हूँ, बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु निकट आ रही हैं।" इस चेतावनी के साथ, और एक मील (4.23 किमी) लंबी सेना के साथ, वह अपने भाई राजकुमार हाथीपाला के पास गया। हाथीपाला ने हवा में स्थिर खड़े होकर उसे विधि बताई और कहा, "भाई, यहाँ एक बड़ी सभा होगी; हम दोनों यहीं ठहरें।" दूसरा वहाँ ठहरने के लिए सहमत हो गया।

अगले दिन राजा और पुजारी उसी प्रकार राजकुमार गोपाल के घर गए। उनका भी उसी हर्षोल्लास से स्वागत किया गया, तो उन्होंने अपने आने का कारण बताया। गोपाल ने भी अस्सपाल की तरह उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया। उन्होंने कहा, "बहुत समय से मेरी इच्छा संन्यासी जीवन अपनाने की रही है; जंगल में भटकी गाय की तरह मैं इस जीवन की खोज में भटक रहा हूँ। मैंने अपने भाइयों के मार्ग को खोई हुई गाय के पदचिह्नों की तरह देखा है; और मैं भी उसी मार्ग पर चलूँगा।" फिर उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

"जैसे कोई गाय की तलाश में रास्ता भटक जाए,"
लकड़ी को लेकर जो भी लोग असमंजस में थे, वे सब भटक गए।
तो क्या मेरा कल्याण खतरे में है; फिर पीछे क्यों हटूं?
क्या राजा एसुकारी इस राह पर आगे बढ़ेंगे?
"पर," उन्होंने उत्तर दिया, "हे गोपालक पुत्र, एक दिन के लिए हमारे साथ आओ, दो-तीन दिन के लिए हमारे साथ आओ; हमें प्रसन्न करो और फिर संसार का त्याग कर दो।" उन्होंने कहा, "हे महान राजा! जो काम आज करना है उसे कल पर मत टालो; यदि भाग्य चाहिए तो आज को ही पकड़ लो।" फिर उन्होंने एक और श्लोक सुनाया:

"कल!" मूर्ख चिल्लाता है; "अगले दिन!" वह चिल्लाता है।

बुद्धिमानों का कहना है, भविष्य में कोई स्वस्वाधिकार नहीं!
जो अच्छाई उसकी पहुंच में है, उसे वह कभी तुच्छ नहीं समझेगा।
इस प्रकार गोपाल ने दो श्लोकों में विधि का वर्णन करते हुए कहा, “तुम यहाँ खड़े हो, और जैसे ही मैं तुमसे बात कर रहा हूँ, तुम रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हो।” फिर एक मील (4.23 किमी) लंबी मंडली के साथ वह अपने दो भाइयों के पास पहुँचा। वहाँ वायु में स्थित हाथीपाला ने उसे भी विधि का वर्णन किया।

अगले दिन उसी प्रकार राजा और पुजारी राजकुमार अजपाला के घर गए, जिन्होंने अन्य लोगों की तरह ही उनका हर्षोल्लास से स्वागत किया। उन्होंने अपने आने का कारण बताया और राजसी छत्र फहराने का प्रस्ताव रखा। राजकुमार ने पूछा, "मेरे भाई कहाँ हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "आपके भाइयों का राज्य से कोई संबंध नहीं है; उन्होंने श्वेत छत्र का त्याग कर दिया है और तीन मील (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैले एक समूह के साथ गंगा तट पर विराजमान हैं।" राजकुमार ने कहा, "मैं अपने भाइयों द्वारा उगले गए इस प्रकार के उपदेशों को अपने सिर पर नहीं धारण करूँगा; मैं भी संन्यासी जीवन अपनाऊँगा।" उन्होंने आगे कहा, "मेरे पुत्र, तुम अभी बहुत छोटे हो; तुम्हारा कल्याण हमारी चिंता है; बड़े हो जाओ, तब तुम संन्यासी जीवन अपनाओगे।" लेकिन लड़के ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं? निश्चित रूप से मृत्यु जवानी में भी आती है, जैसे बुढ़ापे में! किसी के हाथ या पैर में कोई निशान नहीं होता जिससे पता चले कि वह जवान मरेगा या बूढ़ा। मुझे अपनी मृत्यु का समय नहीं पता, इसलिए मैं अब संसार का पूर्णतः त्याग कर दूंगा।" फिर उसने दो श्लोक सुनाए:

मैंने अक्सर एक युवा और सुंदर लड़की को देखा है,
चमकीली आँखों वाली (*7), जीवन के नशे में चूर, उसका हिस्सा
जवानी के पहले वसंत में, अभी तक अनछुए आनंद का अनुभव:
मृत्यु आई और उस कोमल आत्मा को अपने साथ ले गई।
"कितने नेक, सुंदर, सुगठित और युवा लड़के हैं,"
जिसकी काली ठुड्डी के चारों ओर दाढ़ी (*8) गुच्छों में चिपकी हुई थी--
मैं संसार और उसकी समस्त वासनाओं को त्यागकर,
एक संन्यासी: तुम घर जाओ, और मुझे क्षमा कर दो।"
फिर उन्होंने आगे कहा, "आप लोग वहीं खड़े हैं, और जब मैं आपसे बात कर रहा हूँ, तब भी रोग, बुढ़ापा और मृत्यु मेरे निकट आ रहे हैं।" उन्होंने उन दोनों को प्रणाम किया और एक मील (4.23 किमी) लंबी टुकड़ी के आगे बढ़ते हुए गंगा तट पर चले गए। हत्थिपाला ने हवा में स्थिर होकर उन्हें भी विधि का उपदेश दिया और उस विशाल सभा की प्रतीक्षा में बैठ गए जिसकी उन्हें उम्मीद थी।

अगले दिन पुजारी अपने पलंग पर बैठकर ध्यान करने लगे। उन्होंने सोचा, “मेरे पुत्रों ने संन्यासी जीवन अपना लिया है; और अब मैं अकेला एक मुरझाया हुआ इंसान हूँ। मैं भी संन्यासी जीवन का अनुसरण करूँगा।” फिर उन्होंने अपनी पत्नी को यह श्लोक संबोधित किया:

"जिसकी शाखाएँ निकलती हों, उसे वृक्ष कहते हैं।"
शाखाओं को हटा देने पर, यह एक तना रह जाता है, पेड़ बिल्कुल नहीं रहता।
इसी प्रकार, मेरी उच्च कुल की पत्नी, एक निःसंतान पुरुष है:
अब मेरे लिए पवित्र जीवन को अपनाने का समय आ गया है।"
यह कहकर उन्होंने ब्राह्मणों को अपने समक्ष बुलाया: साठ हज़ार ब्राह्मण उपस्थित हुए। फिर उन्होंने उनसे पूछा कि वे क्या करने जा रहे हैं। उन्होंने कहा, "आप हमारे गुरु हैं।" उन्होंने कहा, "ठीक है, मैं अपने पुत्र को खोजूंगा और संन्यासी जीवन अपनाऊंगा।" उन्होंने उत्तर दिया, "नरक केवल आपके लिए ही गर्म नहीं है; हम भी उसके लिए तरसेंगे।" उन्होंने अपना 80 करोड़ का खजाना अपनी पत्नी को सौंप दिया और ब्राह्मणों की एक लंबी कतार के आगे-आगे अपने पुत्रों के स्थान की ओर चल दिए। और इस समूह को, पहले की तरह, हाथीपाल ने वायु में विराजमान होकर विधि का उपदेश दिया।

अगले दिन पत्नी मन ही मन सोचने लगी, "मेरे चारों बेटों ने श्वेत छत्र धारण करने से इनकार कर दिया और धार्मिक (तपस्वी) जीवन व्यतीत करने का मार्ग चुना; मेरे पति ने अपनी अस्सी हज़ार की संपत्ति और राजपुजारी का पद भी त्याग दिया और अपने बेटों के पास चले गए: मैं अकेले क्या करूँ? जिस राह पर मेरा बेटा गया है, मैं भी जाऊँगी।" और एक प्राचीन नियम का हवाला देते हुए उसने आकांक्षा से भरी यह पंक्ति दोहराई:

"बारिश के महीने बीत गए, हंस जाल और फंदे तोड़ देते हैं,
आकाश में बगुले की तरह स्वतंत्र उड़ान भरते हुए; (*9)

अतः पति और पुत्र के मार्ग से
मैं भी उन्हीं की तरह ज्ञान की खोज करूंगा।
“जब मुझे यह पता चल गया है,” उसने मन ही मन कहा, “तो मैं संसार का त्याग क्यों न करूँ?” इसी उद्देश्य से उसने ब्राह्मण स्त्रियों को बुलाया और उनसे पूछा, “तुम क्या करने जा रही हो?” उन्होंने पूछा, “तुम क्या?” — “मैं संसार का त्याग करूँगी।” — “तो हम भी ऐसा ही करेंगे।” इस प्रकार, अपना सारा वैभव छोड़कर, वह अपने पुत्रों के पीछे चल पड़ी, अपने साथ स्त्रियों का एक दल लेकर। इस दल को भी हत्थिपाला ने वायु में स्थिर बैठे हुए विधि का उपदेश दिया।

अगले दिन राजा ने पूछा, "मेरा पुजारी कहाँ है?" "महाराज," उन्होंने उत्तर दिया, "पुजारी और उसकी पत्नी अपना सारा धन छोड़कर अपने पुत्रों के पीछे दो-तीन मील (4.23 किमी) की दूरी तय करने वाले दल के साथ चले गए हैं।" राजा ने कहा, "बिना स्वामी का धन मेरे पास आता है," और पुजारी के घर से उसे लाने के लिए संदेश भेजा। अब रानी यह जानना चाहती थी कि राजा क्या कर रहा है। उसे बताया गया, "वह पुजारी के घर से खजाना ला रहा है।" "और पुजारी कहाँ है?" उसने पूछा। "वह संन्यासी बनने चला गया है, अपनी पत्नी समेत।" "अरे," उसने सोचा, "राजा अपने घर में इस ब्राह्मण और उसकी पत्नी और उसके चार पुत्रों द्वारा गिराए गए गोबर और थूक को ला रहा है! मूर्ख मूर्ख!" मैं उसे एक दृष्टांत से सिखाऊँगी।” उसने कुत्ते का मांस लिया और महल के प्रांगण में उसका ढेर लगा दिया। फिर उसने उसके चारों ओर एक फंदा लगा दिया, जिससे ऊपर जाने का रास्ता सीधा खुला रहे। दूर से गिद्धों ने उसे देखकर नीचे झपट्टा मारा। लेकिन उनमें से बुद्धिमानों ने देखा कि उसके चारों ओर फंदा लगा है; और यह महसूस करते हुए कि वे सीधे उठने के लिए बहुत भारी हैं, उन्होंने जो खाया था उसे उगल दिया, और फंदे में फंसे बिना ऊपर उठकर उड़ गए। अन्य जो पाप में अंधे थे, उन्होंने पहले वालों की उल्टी खा ली, और भारी होने के कारण वे बच नहीं पाए और फंदे में फंस गए। वे एक गिद्ध को रानी के पास लाए, और रानी उसे राजा के पास ले गई। “देखिए, हे राजा!” उसने कहा, “प्रांगण में हमारे लिए एक अद्‌भुत दृश्य है।” फिर एक खिड़की खोलकर, “उन गिद्धों को देखिए, महाराज!” फिर उसने दो छंद दोहराए:

"जो पक्षी खाकर हवा में उल्टी कर देते हैं, वे अब स्वतंत्र रूप से उड़ रहे हैं।"
लेकिन जिन्होंने इसे खाया और पचाया, वे अब मेरे द्वारा पकड़े गए हैं।
एक ब्राह्मण अपनी वासनाओं को उबार कर देता है, तो क्या तुम वही खाओगे?
"जो व्यक्ति उल्टी खाता है, महाराज, वह सबसे गहरे दंड का पात्र है।"
इन शब्दों को सुनकर राजा को पश्चाताप हुआ; तीनों अवस्थाएँ (*10) धधकती आग के समान प्रतीत हुईं; और उसने कहा, "आज ही मुझे अपना राज्य छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाना होगा।" शोक से व्याकुल होकर उसने एक श्लोक में अपनी रानी की प्रशंसा की:

जैसे कोई बलवान व्यक्ति मदद का हाथ बढ़ाता है
कमजोर, कीचड़ में धंसा हुआ या दलदल में फंसा हुआ:
तो, रानी पंचाटी, आपने मुझे यहाँ बचा लिया।
मेरे कानों में मधुरता से गाए गए छंदों के साथ।"
जैसे ही उन्होंने ऐसा कहा, उन्होंने तुरंत अपने दरबारियों को बुलवाया, जो संन्यासी जीवन अपनाने के लिए उत्सुक थे, और उनसे पूछा, "तुम क्या करोगे?" उन्होंने उत्तर दिया, "आप क्या करेंगे?" उन्होंने कहा, "मैं हत्थिपाला की शरण में जाकर संन्यासी बनूँगा।" "तो फिर," उन्होंने कहा, "महाराज, हम भी यही करेंगे।" राजा ने बारह मील (4.23 किमी) के विशाल शहर बनारस पर अपना प्रभुत्व त्याग दिया और कहा, "जो चाहे श्वेत छत्र उठाए।" फिर अपने दरबारियों से घिरे हुए, तीन मील (4.23 किमी) लंबी एक पंक्ति के आगे, वे उस युवक के समक्ष गए। हत्थिपाला ने आकाश में ऊँचे स्थान पर बैठकर उस युवक को भी विधि का उपदेश दिया।

गुरु ने एक श्लोक दोहराया जिसमें बताया गया था कि राजा ने किस प्रकार इस संसार का त्याग किया।

"इस प्रकार एज़ुकारी, पराक्रमी राजा, अनेक देशों के स्वामी,
राजा से संन्यासी बने व्यक्ति की तरह, जैसे कोई हाथी अपने बंधन तोड़कर भाग जाता है।
अगले दिन शहर में बचे हुए लोग महल के द्वार के सामने एकत्र हुए और रानी को संदेश भेजा। वे अंदर गए और रानी को प्रणाम करके एक तरफ खड़े हो गए, और एक श्लोक दोहराया:

"यह हमारे महान राजा की इच्छा है।"
एकांतवासी बनना, सब कुछ छोड़ देना।
अतः अब हम आपसे राजा के स्थान पर खड़े होने का अनुरोध करते हैं;
हमारे हाथों से संरक्षित इस राज्य को संजोकर रखें।"
उसने भीड़ की बातें सुनीं और फिर शेष छंदों को दोहराया:

"यह महान राजा की इच्छा है।"
एकांतवासी बनना, सब कुछ छोड़ देना।
अब जान लो कि मैं इस दुनिया में अकेला ही चलूंगा।
सभी को वासनाओं और सुखों का त्याग करना चाहिए।
"यह महान राजा की इच्छा है।"
एकांतवासी बनना, सब कुछ छोड़ देना।
अब जान लो कि मैं इस दुनिया में अकेला ही चलूंगा।
वे जहाँ कहीं भी हों, सभी अपनी वासनाओं का त्याग कर दें।
समय बीतता जाता है, रात के बाद रात गुज़रती जाती है (*11)
यौवन की सुंदरता एक-एक करके फीकी पड़ जाती है और समाप्त हो जाती है:
अब जान लो कि मैं इस दुनिया में अकेला ही चलूंगा।
सभी को वासनाओं और सुखों का त्याग करना चाहिए।
समय बीतता जाता है, रात के बाद रात गुज़रती जाती है।
यौवन की सुंदरता एक-एक करके फीकी पड़ जाती है और समाप्त हो जाती है:
अब जान लो कि मैं इस दुनिया में अकेला ही चलूंगा।
वे जहाँ कहीं भी हों, सभी अपनी वासनाओं का त्याग कर दें।
समय बीतता जाता है, रात के बाद रात गुज़रती जाती है।
यौवन की सुंदरता एक-एक करके फीकी पड़ जाती है और समाप्त हो जाती है:
अब जान लो कि मैं इस दुनिया में अकेला ही चलूंगा।
हर बंधन टूट जाता है, न ही जुनून की शक्ति मेरे पास होती है।"
इन छंदों में उन्होंने विशाल जनसमूह को विधि का उपदेश दिया; फिर दरबारियों की पत्नियों को बुलाकर उनसे पूछा, "तुम क्या करोगी?" उन्होंने कहा, "महोदया, आप क्या करेंगी?" - "मैं संन्यासी जीवन अपनाऊँगी।" - "तो हम भी ऐसा ही करेंगे।" अतः रानी ने महल के सभी सोने के भंडारगृहों के द्वार खोल दिए और एक सोने की थाली पर उत्कीर्ण करवाया, "इस स्थान पर एक बड़ा खजाना छिपा है; जो चाहे उसे प्राप्त कर सकता है।" उन्होंने इस सोने की थाली को विशाल चबूतरे पर एक खंभे से बाँध दिया और ढोल बजाकर पूरे शहर में यह घोषणा करवाई। फिर अपनी सारी शान-शौकत छोड़कर वह शहर से चली गईं। तब पूरा शहर अचंभित हो गया: सब चिल्ला रहे थे, "हमारे राजा और रानी संन्यासी बनने के लिए शहर छोड़कर चले गए हैं; अब हम क्या करें?" इस पर सभी लोग अपने-अपने घर और उनमें जो कुछ भी था, सब छोड़कर अपने बेटों का हाथ पकड़कर निकल पड़े। सभी दुकानें खुली थीं, लेकिन किसी ने उनकी तरफ मुड़कर देखा तक नहीं: पूरा शहर खाली था।

और रानी अपने परिचारकों के साथ तीन मील (4.23 किमी) लंबी पंक्ति में खड़ी होकर अन्य परिचारकों के साथ उसी स्थान पर गईं। इस दल को भी हत्थिपाला ने उनके ऊपर हवा में खड़े होकर विधि का उपदेश दिया; और फिर बारह मील (4.23 किमी) लंबी पंक्ति में खड़े होकर वह हिमालय के लिए रवाना हो गए।

सारा काशी शोर मचा रहा था, लोग चिल्ला रहे थे कि युवा हाथीपाला ने बारह लीग (4.23 किमी) क्षेत्रफल वाले बनारस शहर को खाली कर दिया है और वह अपने विशाल दल के साथ हिमालय में संन्यासी जीवन अपनाने जा रहा है; उन्होंने कहा, "तो फिर हमें तो और भी ज्यादा करना चाहिए!" अंत में यह दल इतना बढ़ गया कि यह तीस लीग (4.23 किमी) तक फैल गया; और वह अपने इस विशाल दल के साथ हिमालय चला गया।

सक्का (इंद्र) ध्यान में लीन होकर आने वाली घटनाओं को भलीभांति समझ गए। उन्होंने सोचा, "राजकुमार हत्थिपाला ने संन्यास ले लिया है; यहाँ लोगों का एक बड़ा जमावड़ा होगा, और उनके रहने के लिए जगह चाहिए होगी।" उन्होंने विश्वकर्मा को आदेश दिया: "जाओ, छत्तीस मील (4.23 किमी) लंबा और पंद्रह मील चौड़ा एक आश्रम बनाओ, और उसमें धार्मिक (तपस्वी) व्यवस्था के लिए आवश्यक सभी चीजें एकत्र करो।" विश्वकर्मा ने आज्ञा का पालन किया; और गंगा तट पर एक रमणीय स्थान पर आवश्यक आकार का एक आश्रम बनाया, पत्तों से बनी झोपड़ियों में टहनियों या पत्तों से गद्दे बिछाए, और धार्मिक (तपस्वी) व्यवस्था के लिए आवश्यक सभी चीजें तैयार कीं। प्रत्येक झोपड़ी का अपना द्वार था, प्रत्येक का अपना सैरगाह; रात और दिन के रहने के लिए अलग-अलग स्थान थे; सब कुछ साफ-सुथरा सफेदी से पुता हुआ था; विश्राम के लिए बेंचें थीं। जगह-जगह रंग-बिरंगे सुगंधित फूलों से लदे हुए पुष्पवृंत थे। प्रत्येक सैरगाह के अंत में पानी निकालने के लिए एक कुआँ था, और उसके पास एक फलदार वृक्ष था, और प्रत्येक वृक्ष पर तरह-तरह के फल लगे थे। यह सब दिव्य शक्ति से हुआ था। जब विश्वकर्मा ने आश्रम का निर्माण पूरा कर लिया और पत्तों की झोपड़ियों में सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करा दीं, तो उन्होंने लाल अक्षरों में एक दीवार पर लिखा, "जो कोई भी धार्मिक (सन्यासी) जीवन अपनाना

चाहे, इन आवश्यक वस्तुओं का स्वागत है।" फिर अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने उस स्थान से सभी भयानक ध्वनियों, सभी घृणित जानवरों और पक्षियों, सभी अमानवीय प्राणियों को भगा दिया और अपने स्थान पर लौट गए।

हत्थिपाला को एक पगडंडी पर यह आश्रम मिला, जो सक्का (इंद्र) का उपहार था, और उन्होंने उस पर लिखावट देखी। तब उन्होंने सोचा, "सक्का (इंद्र) ने अवश्य ही देख लिया होगा कि मैंने महान त्याग कर लिया है।" उन्होंने एक द्वार खोला और एक कुटिया में प्रवेश किया, और तपस्वी की पहचान वाली वस्तुएँ लेकर बाहर निकले और सैरगाह पर कुछ देर तक आगे-पीछे चले। फिर उन्होंने बाकी साथियों को भी तपस्वी जीवन में शामिल किया और आश्रम का निरीक्षण करने गए। उन्होंने बीच में छोटे बच्चों वाली महिलाओं के लिए एक आवास बनाया, उसके बगल में वृद्ध महिलाओं के लिए, उसके बगल में निःसंतान महिलाओं के लिए; बाकी सभी कुटियाएँ उन्होंने चारों ओर पुरुषों के लिए आरक्षित कर दीं।

फिर एक राजा ने सुना कि बनारस में कोई राजा नहीं है, तो वह देखने गया और उसने शहर को सजा-संवरा पाया। राजमहल में प्रवेश करते ही उसने खजाना ढेर में पड़ा देखा। "वाह!" उसने कहा, "इस तरह के शहर को त्यागकर, मौका मिलते ही संन्यासी बन जाना, यह तो सचमुच महान कार्य है!" किसी नशे में धुत व्यक्ति से रास्ता पूछकर वह हत्थिपाला को खोजने निकल पड़ा। जब हत्थिपाला ने देखा कि वह जंगल के किनारे आ गया है, तो वह उससे मिलने बाहर आया और हवा में स्थिर होकर उसके साथियों को धर्म का उपदेश दिया। फिर वह उन्हें आश्रम ले गया और पूरे समूह को भिक्षु संघ में शामिल कर लिया। इसी प्रकार छह अन्य राजा भी उनके साथ जुड़ गए। इन सात राजाओं ने अपना धन त्याग दिया। छत्तीस मील (4.23 किमी) में फैला वह आश्रम हमेशा भरा रहता था। जब किसी महान व्यक्ति के मन में कामवासना या ऐसी ही कोई बात आती, तो वह उसे धर्म का उपदेश देता और उसे पूर्णता और समाधि की अवस्था का ज्ञान कराता; इसके बाद इनमें से आम तौर पर रहस्यमय समाधि अवस्था प्राप्त हुई; और इनमें से दो तिहाई ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेकर आए, जबकि एक तिहाई तीन भागों में विभाजित हो गए - एक भाग ब्रह्मा के लोक में, एक इंद्रिय लोक के छह लोकों में, और एक ऋषि का कार्य पूरा करके मनुष्य लोक में जन्म लिया। इस प्रकार तीनों ने अपने-अपने पुण्य का फल भोगा। इस प्रकार हत्थिपाला की शिक्षा ने सभी को नरक, पशु जन्म, प्रेत लोक और दैत्य रूप धारण करने से बचाया।

इस द्वीप में, जिन लोगों ने संन्यास लिया, वे थे: धम्मगुट्टा, जिन्होंने पृथ्वी को कंपकंपा दिया; फुस्सदेव, जो कटकन्धकारा के निवासी थे; महासंघरक्षित, जो उपरिमंडलकमलय से थे; मालिमहादेव; महादेव, जो भग्गिरी से थे; महाशिव, जो वामंतपभरा से थे; महानगा, जो कलावल्लीमंडप से थे; कुद्दला, मुगपक्खा, चुलसुतसोमा, ज्ञानी अयोगरा के अनुयायी और अंत में हत्थिपाला। इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा, "जल्दी करो, हे सुखी!" इत्यादि, यानी, सुख तभी प्राप्त होगा जब वे पूरी गति से प्रयास करेंगे।

जब उन्होंने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो गुरु ने कहा, "इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) ने बहुत पहले महान त्याग किया था, ठीक वैसे ही जैसे अब किया है"; इस प्रकार उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) राजा एशुकारी थे, महामाया (बुद्ध की दिवंगत माता) उनकी रानी थीं, कश्यप पुरोहित थे, भद्दकपिलानी उनकी पत्नी थीं, अनुराद्ध अजपाल थे, मोग्गल्याण गोपाल थे, सारिपुत्र हत्थिपाला थे, बुद्ध के अनुयायी शेष थे, और मैं स्वयं हत्थिपाला था।"

फुटनोट:

(1)या “इससे बाहर निकलने का कोई और रास्ता न देखकर।” भारत में शाही नर्तकियों और आनंद लेने वाली लड़कियों की शादी कुछ पेड़ों से कर दी जाती थी: शायद यह महिला उसी वर्ग से संबंधित है।

(2) पृथ्वी के चार स्वामी, उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम।

(3) इंद्रियों के स्वर्गों का तीसरा भाग

(4) स्मन्यूत्त निकया देखें

(5) यह पंक्ति क्रमांक 241 (अनुवाद का क्रमांक 158) में आती है।

(6) निर्वाण.

(7) "पैंडनस ओडोरैटिसिमस के फूल जैसी आँखों के साथ।"

(8) "दाढ़ी मानो कार्थमस टिंक्टोरियस से ढकी हुई हो।"

(9) टीकाकार एक कहानी का जिक्र करते हैं जिसमें बताया गया है कि बारिश में एक मकड़ी ने एक जाल बुना जिसमें सुनहरे हंसों का झुंड फंस गया, बारिश खत्म होने पर दो छोटे पक्षी बलपूर्वक जाल तोड़कर बाहर निकल गए, और बाकी भी उसी अंतराल से निकलकर उड़ गए।

(10)इंद्रिय, देह और निराकार, तीन संबंधित दिव्य लोकों का जिक्र करते हुए।

(11) देखें समन्युत्त निकया, I.

***स्रोत** : डब्ल्यूएचडी राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-510-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 510
योगाहार-जातक

"जीवन की उत्पत्ति हो गई, इत्यादि।" यह कथा गुरु ने महान त्याग के बारे में सुनाई। फिर उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) ने पहले भी महान त्याग किया है, यह पहली बार नहीं है।" और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में राज कर रहे थे, तब उनकी पत्नी गर्भवती हुई और प्रसव के समय उन्होंने भोर होते ही एक पुत्र को जन्म दिया। कहा जाता है कि पिछले जन्म में, उसी पति की एक अन्य पत्नी ने प्रार्थना की थी कि वह इस स्त्री के बच्चे को खा जाए। वह बांझ थी और माता-पुत्र से क्रोधित होकर उसने यह प्रार्थना की थी, जिसके कारण वह एक राक्षसी के रूप में प्रकट हुई। दूसरी स्त्री राजा की पत्नी बनी और उसने इस पुत्र को जन्म दिया। राक्षसी स्त्री को मौका मिल गया और उसने भयानक रूप धारण करके बच्चे को माँ की आँखों के सामने से छीन लिया और भाग गई। रानी जोर से चिल्लाई, "एक राक्षसी मेरे बेटे को ले जा रही है!" दूसरी राक्षसी स्त्री ने उसे प्याज की तरह चबाया और निगल लिया; फिर अपने अंगों के कई रूप परिवर्तन करके, जिससे रानी क्रोधित और भयभीत हो गई, वहाँ से चली गई। जब राजा ने यह सुना, तो वह अवाक रह गया: उसने सोचा, एक राक्षसी के विरुद्ध क्या किया जा सकता है?

अगली बार जब रानी प्रसव पीड़ा में थी, तो उसने उसके चारों ओर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था कर दी। रानी ने एक और पुत्र को जन्म दिया; राक्षस फिर आया, उसे भी खा गया और चला गया।

तीसरी बार रानी के गर्भ में महान प्राणी का जन्म हुआ। राजा ने कई लोगों को इकट्ठा किया और कहा, "मेरी रानी जब भी जन्म देती है, एक राक्षसी आकर उसे खा जाती है। अब क्या किया जाए?" तब किसी ने कहा, "राक्षस ताड़ के पत्ते से डरते हैं; रानी के दोनों हाथों और पैरों पर एक-एक पत्ता बाँध दो।" दूसरे ने कहा, "वे लोहे के घर से डरते हैं; एक लोहे का घर बनवाना चाहिए।" राजा मान गया। उसने अपने राज्य के सभी लोहारों को बुलाया और उनसे एक लोहे का घर बनाने को कहा, और उन पर निरीक्षक नियुक्त किए। शहर के बीचोंबीच एक सुंदर जगह पर उन्होंने घर बनाया; उसमें खंभे थे, और घर के सभी हिस्से, सब कुछ केवल लोहे का बना था: नौ महीनों में वह बनकर तैयार हो गया, एक विशाल चौकोर हॉल: वह चमकता था, लगातार दीपों से जगमगाता रहता था।

जब राजा को पता चला कि उसकी मृत्यु का समय निकट है, तो उसने लोहे का घर तैयार करवाया और उसे उसमें ले गया। उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जो सौभाग्य और अच्छे गुणों से परिपूर्ण था, और उन्होंने उसका नाम अयोघरा-कुमार रखा, जो लोहे के घर का राजकुमार था। राजा ने उसे दाइयों की देखरेख में सौंप दिया और उस स्थान के चारों ओर भारी पहरा लगा दिया, जबकि वह अपनी रानी के साथ पूरे शहर का चक्कर लगाकर अपने भव्य चबूतरे पर चला गया। इसी बीच, पानी की प्यास से व्याकुल स्त्री वेसवना का पानी लाने के प्रयास में नष्ट हो गई।

लोहे के घर में महान प्राणी का पालन-पोषण हुआ, उनकी बुद्धि में वृद्धि हुई और वहीं उन्होंने सभी विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त की।

राजा ने अपने दरबारियों से पूछा, "मेरे पुत्र की आयु क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया, "वह सोलह वर्ष का है, महाराज: एक वीर, पराक्रमी और बलवान, जो हज़ारों राक्षसों को परास्त करने में सक्षम है!" राजा ने राज्य को अपने पुत्र के हाथों में सौंपने का निश्चय किया। उन्होंने

नगर को सजाया-संवारा और आदेश दिया कि बालक को लोहे के महल से उनके पास लाया जाए। दरबारियों ने आज्ञा का पालन किया: बारह मील (4.23 किमी) के विशाल शहर बनारस को सजाया गया; राजसी हाथी को शानदार काठी से सजाया गया, बालक को उसके सर्वोत्तम वस्त्र पहनाए गए और उसे हाथी की पीठ पर बिठाते हुए कहा गया, "महाराज, अपने राज्य, इस आनंदित नगर का सही-सही चक्कर लगाइए और अपने पिता, काशी के राजा को प्रणाम कीजिए; क्योंकि आज आपको श्वेत छत्र प्राप्त होगा।" महान सत्ता ने अपना विधिवत चक्कर दाहिनी ओर लगाया और सुंदर उद्यानों, मनमोहक रंगों, झीलों, भूखंडों, सभी सुंदर घरों आदि को देखकर मन ही मन सोचा: "इतने समय तक मेरे पिता ने मुझे कैद में रखा, मुझे कभी इस इतने भव्य रूप से सजे शहर को देखने नहीं दिया। मेरी क्या गलती हो सकती है?" उन्होंने यह प्रश्न दरबारियों से पूछा। उन्होंने कहा, "महाराज, आपकी कोई गलती नहीं है; बल्कि एक राक्षसी ने आपके दो भाइयों को खा लिया था, इसलिए आपके पिता ने आपको लोहे के घर में रखा, और लोहे के घर ने आपकी जान बचाई।" इन शब्दों ने उन्हें फिर सोचने पर मजबूर कर दिया, "दस महीने तक मैं अपनी माँ के गर्भ में रहा, मानो वह लोहे की भट्टी का नरक या गोबर का नरक हो (*1); और गर्भ से बाहर आने के बाद, सोलह साल तक मैं इसी कारागार में रहा, बाहर देखने का कभी मौका ही नहीं मिला। हालाँकि मैं राक्षस के चंगुल से बच निकला हूँ, पर बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्ति नहीं मिली है। मुझे राज-पाट की क्या परवाह? एक बार राज-पाट में स्थापित हो जाने के बाद वहाँ से निकलना मुश्किल होता है। आज ही मैं अपने पिता से संन्यासी जीवन अपनाने की अनुमति माँगूँगा और हिमालय जाकर ऐसा करूँगा।"

इसलिए नगर में अपनी शोभायात्रा समाप्त करने के बाद, वह राजा के महल में गया, राजा को प्रणाम किया और प्रतीक्षा करने लगा। राजा ने उसकी शारीरिक सुंदरता देखकर अपने दरबारियों को प्रेम भरी निगाहों से देखा। उन्होंने पूछा, "महाराज, आप हमसे क्या करवाना चाहते हैं?" राजा ने कहा, "मेरे पुत्र को ले जाइए और उसे रत्नों के ढेर पर रखिए, तीनों शंखों से विधिपूर्वक उस पर जल छिड़किए, और सोने की मालाओं से सजे श्वेत छत्र को ऊपर उठाइए।" लेकिन उस महान प्राणी ने अपने पिता को प्रणाम किया और कहा, "पिताजी, मुझे राज-पाट से कोई संबंध नहीं है। मैं संन्यासी जीवन अपनाना चाहता हूँ, और इसके लिए मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ।" “हे मेरे पुत्र, तुम अपना राज-पाट छोड़कर संन्यासी जीवन क्यों अपना रहे हो?” — “हे मेरे स्वामी, मैं दस महीने तक अपनी माता के गर्भ में मानो नरक में था; जन्म के बाद, एक प्रेत के भय से सोलह वर्ष तक कारागार में रहा, बाहर देखने का भी अवसर नहीं मिला, मानो मुझे उस्सादा के नरक में फेंक दिया गया हो। अब प्रेत से तो सुरक्षित हूँ, पर बुढ़ापे और मृत्यु से नहीं, क्योंकि मृत्यु पर कोई विजय नहीं पा सकता। मैं जीवन से व्याकुल हूँ। जब तक रोग, बुढ़ापा या मृत्यु मुझ पर न आ जाए, मैं धर्मपरायण जीवन का अनुसरण करूँगा, धर्म के मार्ग पर चलूँगा। मेरे लिए कोई राज्य नहीं! हे मेरे स्वामी, कृपया अनुमति दीजिए!” तब उसने अपने पिता को इस प्रकार विधि बताई:

गर्भ में जीवन की उत्पत्ति होते ही,
फिर यह निरंतर चलता रहता है, इसका मार्ग कभी समाप्त नहीं होता (*2)।
न तो युद्ध कौशल, न ही कोई प्रखर शक्ति
यह पुरुषों को बुढ़ापे और मृत्यु से लंबे समय तक बचा सकता है;
मुझे लगता है कि सभी जन्म और बुढ़ापे की समस्या से ग्रस्त हैं:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
महान राजा बल और हिंसा द्वारा अधीन करते हैं
चार भुजाओं वाली सेना (*3), देखने में भयानक;
वे मृत्यु की सेना पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"हालाँकि घोड़े, हाथी, गाड़ियाँ और मनुष्य
उन्हें घेर लो, कुछ लोग फिर से मुक्त हो गए हैं;
लेकिन मृत्यु के चंगुल से कोई भी नहीं बच सकता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
घोड़ों, हाथियों, गाड़ियों और आदमियों के साथ,
नायक विनाश करते हैं, कुचलते हैं और फिर से कुचलते हैं;
लेकिन मौत को कुचलने के लिए मुझे कोई इतना शक्तिशाली आदमी नहीं दिखता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"मादा हाथी संभोग के दौरान रिसती त्वचा के साथ पागल हो जाते हैं"
पूरे-पूरे शहरों को रौंद डालो और अंदर मौजूद पुरुषों को मार डालो।
मृत्यु को कुचलने के लिए मुझे इतना शक्तिशाली कोई नहीं दिखता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"सबसे बलवान और कुशल तीरंदाज,

दूर से बिजली की चमक की तरह घाव,
लेकिन मौत को घायल करने के लिए मुझे इतना शक्तिशाली कोई आदमी नहीं दिखता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"विशाल झीलें, उनके जंगल और चट्टानें खंडहर में तब्दील हो जाती हैं।"
कुछ समय बाद सबका विनाश हो जाएगा।
समय आने पर ये सब नष्ट हो जाएंगे।
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"जैसे नदी के किनारे खड़ा पेड़,
या जैसे कोई शराबी शराब के लिए अपना कोट बेच देता है (*4),
मनुष्यों का जीवन ऐसा ही होता है:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।"
शरीर के तत्व घुल जाते हैं—वे गिर जाते हैं
युवा, बूढ़े, अधेड़, पुरुष, महिलाएं—सभी
जैसे हिलते हुए पेड़ से फल गिरते हैं, वैसे ही गिरना:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
मनुष्य का यौवनार युग उस रानी से बिलकुल अलग है जिसके शासनकाल
सितारों पर नियम (*5): यह फिर कभी नहीं आएगा।
थकी-हारी बुढ़ापे में आनंद या प्रेम क्या हो सकता है?
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
जबकि भूत, परी और भयानक जिन्न कर सकते हैं
जब क्रोधित होकर वे मनुष्य पर अपनी विषैली साँस छोड़ते हैं,
उनकी जहरीली सांसें मौत के आगे कोई मदद नहीं कर सकतीं:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
जबकि भूत, परी और भयानक जिन्न कर सकते हैं
जब क्रोधित हों, तो मनुष्य के कर्मों से शांत हों।
इसे मृत्यु के साथ करो, वह कभी नरम नहीं पड़ता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
जो लोग अपराध करते हैं, गलत काम करते हैं और नुकसान पहुंचाते हैं,
जब इनका पता चलता है, तो राजाओं द्वारा इन्हें दंडित किया जाता है।
लेकिन मृत्यु के विरुद्ध कोई दंड नहीं हो सकता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
जो लोग अपराध करते हैं, गलत काम करते हैं और नुकसान पहुंचाते हैं
राजाओं के हाथों को रोकने का कोई रास्ता निकाला जा सकता है।
लेकिन मौत के चंगुल से कैसे बचा जाए, यह संभव नहीं है:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"योद्धा या ब्राह्मण, उच्च पदस्थ पुरुष,
अत्यंत धनवान पुरुष, शक्तिशाली और महान लोग,
मृत्यु के राजा को न दया आती है, न करुणा।
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
शेर, बाघ, तेंदुआ अपने शिकार को पकड़ लेते हैं।
और सभी इसे खा जाते हैं, चाहे इसके लिए कितना भी संघर्ष करना पड़े;
उनके विनाशकारी मृत्यु के भय से मुक्ति:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
मंच पर एक बाज़ीगर अपनी छड़ी से करतब दिखा रहा था।
प्रदर्शन लोगों की दृष्टि को धोखा दे सकता है।
मौत को चकमा देने के लिए, इससे तेज़ कोई तरकीब नहीं हो सकती:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
क्रोधित सर्प विषैले डंक से हमला करेंगे

तुरंत हमला करो और आदमी को तुरंत मार डालो;
मृत्यु के लिए विषैले काटने का कोई भय नहीं हो सकता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
विषैले दांतों वाले क्रोधित सर्प काट सकते हैं।
कुशल जोंक जहर की शक्ति को कम कर सकती है;
मृत्यु के घाव को ठीक करने के लिए कोई भी व्यक्ति इतना शक्तिशाली नहीं हो सकता:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
चिकित्सकों के कौशल से सांप के काटने का इलाज हो सकता था;
अब वे स्वयं मर चुके हैं और नजरों से ओझल हो गए हैं।
भोग, वेतरानी, धम्मंतरी
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
कुछ लोग जो जादू-टोने और तंत्र-मंत्र की परंपरा में बुद्धिमान हैं
दूसरों की नजरों से अदृश्य होकर चल सकता है।
फिर भी इतना अदृश्य नहीं कि मृत्यु उसे देख न सके:
इसलिए मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है—मैं एक पवित्र जीवन जीऊंगा।
"जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता है, वह सुरक्षित है।"
धर्म (धर्म) का सही ढंग से पालन करने से आशीर्वाद प्राप्त करने की शक्ति मिलती है;
धर्मी व्यक्ति धन्य है, और वह कभी नहीं।
जबकि वह धर्मी है, दुख में गिर जाता है (*6)।
"क्या यह सच नहीं है कि उसका उचित फल सही या गलत से ही उत्पन्न होगा?"
सही राह स्वर्ग की ओर ले जाती है, जबकि अधर्म मनुष्य को नरक की ओर ले जाता है।
जब उस महान सत्ता ने चौबीस श्लोकों में इस प्रकार विधि का वर्णन किया, तो उन्होंने कहा, "हे महाराज! अपना राज्य अपने पास ही रखें; मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपसे बात करते-करते ही रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु मेरे निकट आ रहे हैं। आप जहाँ हैं वहीं ठहरें।" फिर, जैसे कोई क्रोधित हाथी अपनी लोहे की जंजीरें तोड़ देता है, जैसे कोई जवान शेर सोने के पिंजरे से बाहर निकल आता है, वैसे ही उन्होंने अपनी सांसारिक इच्छाओं को त्याग दिया; और अपने माता-पिता को प्रणाम करके वे चले गए। तब उनके पिता ने कहा, "मुझे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है!" और उसे छोड़कर वे उनके साथ चले गए। उनके जाने के बाद, रानी, दरबारी, ब्राह्मण, गृहस्थ और नगर में रहने वाले सभी लोग अपने-अपने घर छोड़कर चले गए। वहाँ एक विशाल जनसमूह था; भीड़ बारह कुंड (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैली हुई थी। इसी भीड़ के साथ वे हिमालय के लिए रवाना हुए।

जब इंद्र को पता चला कि विश्वकर्मा चले गए हैं, तो उन्होंने विश्वकर्मा को बारह कुंड (4.23 किमी) लंबा और सात कुंड चौड़ा एक आश्रम बनाने के लिए भेजा और उनसे उसमें तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक सभी चीजें रखने को कहा। महान सत्ता ने किस प्रकार इन सभी को भिक्षु समुदाय में शामिल किया, उन्हें शिक्षा दी और वे ब्रह्मा के लोक के लिए नियत हुए या तीसरे मार्ग (सम्मोहन) में प्रवेश किया, यह सब पहले की तरह फिर से बताना होगा।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरु ने कहा: "इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत (बुद्ध) ने पहले महान त्याग किया था"; जिसके बाद उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय राजा के माता-पिता माता-पिता थे, बुद्ध के अनुयायी उनके अनुयायी थे, और मैं स्वयं ज्ञानी अयोघरा था।"

फुटनोट:

(1) गुथानिरायो.

(2)इसकी व्याख्या करते हुए विद्वान निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं:

"पहले बीज, फिर भ्रूण, फिर आकारहीन मांस,"
फिर कोई ठोस चीज, जिससे जल्द ही विकास होता है
जांघें, सिर और शरीर के बाल, नाखूनों सहित:
मां जो भी भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करती है,
बच्चा अपनी मां के गर्भ में जीवित रहता है।"

(3) घोड़े, पैदल सैनिक, रथ, हाथी।

(4) पाठ है: "शराबी के कपड़े की तरह," लेकिन इस गूढ़ कथन की व्याख्या विद्वान ने इस प्रकार की है।

(5) चंद्रमा.

(6)सं. 224 , थेरागाथा. 35.

पुस्तक XVI. तिमसानिपाटा:

स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-511-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 511
किमचंदा-जातक

"तुम ऐसा क्यों करते हो," इत्यादि--यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए उपवास के दिनों के पालन के बारे में सुनाई थी (*1)।

एक दिन जब कई गृहस्थ शिष्याएँ और बहनें, जो उपवास रख रही थीं, विधि सुनने के लिए आईं और सत्य के हॉल में बैठ गईं, तो गुरु ने उनसे पूछा कि क्या वे उपवास रख रही हैं, और उनके हाँ कहने पर उन्होंने कहा, "और उपवास रखना अच्छा है: पुराने समय के लोग, आधा उपवास रखने के परिणामस्वरूप, महान यश प्राप्त करते थे," और उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ब्रह्मदत्त अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन कर रहे थे। वे एक सच्चे विश्वासी थे और व्रत के कर्तव्यों का पालन करने, आज्ञाओं का पालन करने और दान देने में अत्यंत तत्पर रहते थे। उन्होंने अपने मंत्रियों और अन्य लोगों को भी दान-पुण्य आदि की प्रतिज्ञा लेने के लिए प्रेरित किया। परन्तु उनके कुल पुरोहित चुगली करने वाले, रिश्वतखोर और अन्यायपूर्ण निर्णय देने वाले थे। एक व्रत के दिन राजा ने अपने सलाहकारों को बुलाया और उनसे व्रत रखने को कहा। पुरोहित ने व्रत के कर्तव्यों का पालन नहीं किया। इसलिए जब वह दिन भर रिश्वत लेकर और झूठे निर्णय देकर दरबार में आए, तो राजा ने पहले अपने प्रत्येक मंत्री से पूछा कि क्या वे व्रत रख रहे हैं, और फिर पुरोहित से पूछा, "क्या आप व्रत रख रहे हैं, महाराज?" पुरोहित ने झूठ बोला और कहा, "हाँ," और महल से चले गए। तब एक मंत्री ने उन्हें फटकारा और कहा, "क्या आप व्रत रख रहे हैं?" उन्होंने कहा, “मैंने सुबह जल्दी भोजन कर लिया है, लेकिन घर जाकर मैं कुल्ला करूँगा और व्रत के नियमों का पालन करते हुए शाम को कुछ नहीं खाऊँगा, और पूरी रात नैतिक नियमों का पालन करूँगा, इस तरह मेरा आधा व्रत पूरा हो जाएगा।” उन्होंने कहा, “बहुत अच्छा, महाराज।” और वे घर गए और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन जब वे न्याय कर रहे थे, एक महिला, जो नैतिक नियमों का पालन करती थी, का एक मामला चल रहा था। घर न जा पाने के कारण उसने सोचा, “मैं व्रत का उल्लंघन नहीं करूँगी,” और जैसे ही समय नजदीक आया, उसने कुल्ला करना शुरू कर दिया। उसी समय ब्राह्मण के पास पके आमों का एक गुच्छा लाया गया। उन्होंने देखा कि महिला व्रत रख रही है और कहा, “इसे खाओ और व्रत पूरा करो।” उसने ऐसा ही किया। ब्राह्मण के इस कार्य का यही उदाहरण है। समय बीतने पर उनका निधन हो गया और हिमालयी क्षेत्र में, गंगा की कोसिकी शाखा के तट पर स्थित एक रमणीय स्थान पर, तीन मील (4.23 किमी) चौड़े आमों के बाग में, एक भव्य स्वर्ण महल में शाही पलंग पर उनका पुनर्जन्म हुआ। उनका पुनर्जन्म ऐसे हुआ मानो वे अभी-अभी नींद से जागे हों, सुशोभित और अलंकृत, अत्यंत सुंदर रूप वाले, और सोलह हजार अप्सराओं से सजे हुए। वे रात भर इस महिमा का आनंद लेते हैं, क्योंकि एक प्रेत के रूप में एक मायावी महल में जन्म लेने के कारण उन्हें उनके कर्मों के अनुरूप प्रतिफल प्राप्त होता है। इसलिए भोर होते ही वे आमों के बाग में प्रवेश करते हैं, और उनके प्रवेश करते ही उनका दिव्य शरीर लुप्त हो जाता है, वे एक विशाल ताड़ के पेड़ के समान, अस्सी भुजाओं की ऊँचाई वाले रूप में प्रकट होते हैं, और उनका पूरा शरीर खिले हुए जुडास वृक्ष की तरह अग्नि से प्रज्वलित होता है। उसके प्रत्येक हाथ में केवल एक उंगली है, जबकि उसके नाखून कुदाल जितने बड़े हैं, और इन्हीं नाखूनों से वह अपनी पीठ की त्वचा को खोदता है और उसे फाड़कर खाता है, और दर्द से पागल होकर वह जोर से चीखता है। सूर्यास्त के समय उसका शरीर गायब हो जाता है और उसका दिव्य रूप पुनः प्रकट होता है। स्वर्ग की नर्तकियां, अपने हाथों में विभिन्न वाद्ययंत्र लिए, उसकी सेवा करती हैं।और महान सम्मान का आनंद लेते हुए वह एक रमणीय आम के बाग में स्थित एक दिव्य महल में विराजमान होता है। इस प्रकार, उपवास रखने

वाली एक स्त्री को आम देने के फल से उसे तीन लीग (x 4.23 किमी) का एक आम का बाग प्राप्त हुआ, परन्तु रिश्वत लेने और झूठे फैसले सुनाने के कारण वह अपनी ही पीठ से मांस नोचकर खाता है, जबकि आधा उपवास रखने के कारण वह हर रात सोलह हजार नृत्य करती अप्सराओं के दल से घिरा हुआ यश का अनुभव करता है।

लगभग इसी समय बनारस के राजा ने, अपनी इच्छाओं के पापमय स्वभाव को समझते हुए, तपस्वी जीवन अपना लिया और गंगा के निचले हिस्से में एक रमणीय स्थान पर पत्तों की कुटिया में रहने लगे, जहाँ वे जो कुछ भी तोड़ पाते थे, उसी से अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन उसी कुटिया से एक पका हुआ आम, जो एक बड़े कटोरे के आकार का था, गंगा में गिर गया और धारा के साथ बहकर उस स्थान के ठीक सामने आ गया जहाँ तपस्वी भोजन करते थे। जब वे कुल्ला कर रहे थे, तो उन्होंने आम को नदी के बीच में तैरते हुए देखा। नदी पार करके वे उसे उठाकर अपनी कुटिया में ले आए और उसे उस कोठरी में रख दिया जहाँ उनकी पवित्र अग्नि जलती थी (*2)। फिर उन्होंने आम को चाकू से काटकर उतना ही खाया जितना उनके जीवन के लिए आवश्यक था, और शेष को केले के पत्तों से ढककर वे प्रतिदिन तब तक खाते रहे जब तक वह बचा रहा। और जब वह सब खा गया, तो वह किसी और प्रकार का फल नहीं खा सका, लेकिन उत्तम भोजन की लालसा का गुलाम होने के कारण उसने प्रतिज्ञा की कि वह केवल पका हुआ आम ही खाएगा, और नदी के किनारे जाकर वह नदी को निहारने लगा, यह निश्चय करते हुए कि जब तक उसे आम न मिल जाए, तब तक वह नहीं उठेगा। इस प्रकार उसने वहाँ लगातार छह दिनों तक उपवास किया और फल की खोज में बैठा रहा, जब तक कि हवा और गर्मी से वह सूख नहीं गया। सातवें दिन नदी की देवी ने इस विषय पर विचार करते हुए उसके इस कार्य का कारण जान लिया और सोचा, "यह तपस्वी अपनी लालसा का गुलाम होकर सात दिनों तक गंगा को निहारते हुए उपवास कर रहा है; उसे पका हुआ आम न देना अनुचित है; क्योंकि इसके बिना वह मर जाएगा; मैं उसे एक आम दूंगी।" इसलिए वह आई और गंगा के ऊपर आकाश में खड़ी हो गई, और उससे बातचीत करते हुए पहला श्लोक बोला:

आप भीषण गर्मी में भी इस नदी किनारे क्यों टिके रहते हैं?
ब्राह्मण, तुम्हारी गुप्त आशा क्या है? इससे तुम्हें क्या लाभ होगा?
यह सुनकर तपस्वी ने नौ छंद दोहराए:

नदी पर तैरती हुई, सुंदर अप्सरा, मैंने एक आम देखा;
मैंने हाथ बढ़ाकर फल को पकड़ा और उसे अपने साथ घर ले आया।
स्वाद और सुगंध में यह इतना मीठा था कि मैंने इसे एक अनमोल वस्तु समझा;
इसका आकर्षक आकार शायद सबसे बड़े पानी के जार को भी टक्कर दे सकता है।
मैंने इसे केले के पत्तों के बीच छिपा दिया और चाकू से काट दिया;
साधारण जीवन जीने वाले व्यक्ति के लिए भोजन और पेय के रूप में थोड़ी मात्रा ही पर्याप्त होती थी।
मेरा भंडार खाली हो गया है, मेरी पीड़ा शांत हो गई है, लेकिन फिर भी मुझे पछतावा करना ही होगा।
मुझे जो अन्य फल मिलते हैं, उनमें मुझे कोई स्वाद नहीं मिलता।
मैं मुरझा जाता हूँ; वह मीठा आम जिसे मैंने लहर से बचाया था
मुझे डर है कि इससे मेरी मृत्यु हो जाएगी। मुझे किसी और फल की लालसा नहीं है।
मैंने आपको बताया है कि मैं उपवास क्यों करता हूँ, हालाँकि मैं एक नदी के किनारे रहता हूँ।
जिसकी चौड़ी होती लहरों में तैरने वाली हर मछली की भरमार होती है।
और अब मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे बताएं, और आप डरकर भागें नहीं।
ओ प्यारी लड़की, तुम कौन हो और तुम यहाँ किस कारण से हो?
देवताओं (देवदूतों) की सेविकाएँ सुंदर हैं, वे चमकीले सोने के समान हैं।
पहाड़ों की ढलानों पर खेलते हुए बाघ के बच्चों की तरह सुंदर।
यहां भी पुरुषों की दुनिया में सुंदर स्त्रियां देखने को मिलती हैं।
लेकिन हमारे देवताओं (देवदूतों) या मनुष्यों में से कोई भी आपकी तुलना में नहीं है।
हे दिव्य कृपा से परिपूर्ण सुंदर अप्सरा, मैं तुमसे यह विनती करता हूँ,
अपना नाम, परिवार और अपनी जाति के बारे में बताएं।
तब देवी ने आठ श्लोक कहे:

हे ब्राह्मण, जिस सुंदर नदी के किनारे तुम बैठे हो, उस पर मेरा आधिपत्य है।
और गंगा की लहरों के नीचे, विशाल गहराइयों में निवास करते हैं।
मेरे पास हजारों पर्वतीय गुफाएं हैं जो पूरी तरह से वनों से ढकी हुई हैं।
जहां से अनेक उफनती धाराएँ बहकर मेरी लहरों में मिल जाती हैं।

नागों को प्रिय प्रत्येक वन और उपवन से अनेक जलधाराएँ प्रवाहित होती हैं।
और यह अपने नीले जल का भंडार प्रदान करता है, जिससे मेरा भरपूर मार्ग भर जाता है।
अक्सर इन सहायक धाराओं के साथ-साथ हर पेड़ के फल भी बहकर आते हैं।
गुलाब सेब, ब्रेड फ्रूट, खजूर और अंजीर के साथ-साथ आम भी देखने को मिल सकते हैं।
और दोनों किनारों पर जो कुछ भी उगता है और मेरी पहुँच में आता है,
मैं इसे वैध पुरस्कार के रूप में दावा करता हूं, और कोई भी मेरे अधिकार को चुनौती नहीं दे सकता।
यह भली-भांति जानकर, हे बुद्धिमान और विद्वान राजा, मेरी बात सुनिए।
अपने मन की इच्छाओं को पूरा करना बंद करो—इस अभिशापित वस्तु का त्याग करो।
हे विशाल साम्राज्य के पूर्व शासक, मैं आपके इस कार्य की प्रशंसा नहीं कर सकता।
जवानी के चरम पर मौत की कामना करना, निश्चित रूप से एक बड़ा गुनाह है, जो विश्वासघात को दर्शाता है।
ब्राह्मण और देवदूत, देवता (देवदूत) और मनुष्य, सभी आपके कर्म और नाम को जानते हैं।
और वे संत जो अपनी पवित्रता से पृथ्वी पर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं—
हाँ, सभी बुद्धिमान और प्रसिद्ध लोगों के पापपूर्ण कर्म ही इस बात का प्रमाण हैं।
तब तपस्वी ने चार श्लोक कहे:

जो जानता है कि हमारा जीवन कितना कमजोर है, और इंद्रियों से मिलने वाली वस्तुएँ कितनी क्षणभंगुर हैं,
वह कभी किसी दूसरे को मारने के बारे में नहीं सोचता, बल्कि निर्दोषता में रहता है।
संतों की सभा द्वारा एक बार सम्मानित, एक सदाचारी नाम के स्वामी,
अब पापी पुरुषों की बातचीत से तुम्हें बदनामी ही मिलेगी।
हे सुंदर रूप वाली अप्सरा, यदि मैं तुम्हारे तट पर ही मर जाऊं,
बदनामी तुम पर बादल की छाया की तरह छा जाएगी।
अत: हे सुंदर देवी, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप सभी पाप कर्मों से दूर रहें।
अन्यथा, जनता के बीच तुम एक कहावत बनकर रह जाओगे, जिसके कारण मुझे अपनी मृत्यु पर खेद होगा।
उनकी बात सुनकर देवी ने पाँच श्लोकों में उत्तर दिया:

मैं तुम्हारी उस गुप्त इच्छा को अच्छी तरह जानता हूँ, जिसे तुम इतने धैर्य से सहन कर रहे हो।
और मैं स्वयं को आपका सेवक मानता हूँ और आपको आम अर्पित करता हूँ।
देखो! पूर्व के पापपूर्ण सुख, वे सुख जिन्हें छोड़ना कठिन है,
आपने सदा के लिए पवित्रता और मन की शांति प्राप्त कर ली है।
जो व्यक्ति बचपन की गुलामी से मुक्त होकर भी उन्हीं जंजीरों को गले लगाता है जिन्हें उसने कभी त्याग दिया था।
अपवित्र मार्गों पर अविवेकी रूप से चलने से पाप और भी अधिक बढ़ते जाते हैं।
मैं तुम्हारी दिली इच्छा पूरी करूंगा और तुम्हारे कष्टों का अंत करूंगा।
हम आपको शांत और एकांत स्थानों की ओर मार्गदर्शन करेंगे, जहाँ आप शांति से रह सकें।
बगुले, मैना पक्षी और कोयल, साथ ही लाल हंस जो इन्हें पसंद करते हैं
फूलों से अमृत इकट्ठा करना, हंसों के झुंड ऊँचाई पर विचरण करते हैं,
धान के पक्षी और राजसी मोर अपने गीत से उपवन को जगा देते हैं।
केसर और कदंब के फूल भूसे की तरह जमीन पर पड़े हैं।
खजूर के सबसे पके हुए टुकड़े, ताड़ के पेड़ों की शोभा बढ़ाते हुए, चारों ओर गुच्छों में लटके हुए हैं।
और, लदे हुए पेड़ों की शाखाओं के बीच, देखो यहाँ कितने सारे आम लगे हुए हैं!
उस स्थान की प्रशंसा करते हुए वह तपस्वी को वहाँ ले गई और उससे कहा कि वह इस बाग में आम खाकर अपनी भूख मिटा ले, फिर वह चली गई। तपस्वी ने आम खाकर अपनी भूख शांत की और कुछ देर विश्राम किया। फिर, जब वह बाग में घूम रहा था, तो उसने उस आत्मा को कष्ट की अवस्था में देखा और उसका मन नहीं हुआ कि वह उससे एक शब्द भी कहे, लेकिन सूर्यास्त के समय उसने उसे अप्सराओं से घिरा हुआ और दिव्य महिमा का आनंद लेते हुए देखा और तीन छंदों में उससे बात की:

पूरी रात अभिषेक किया गया, सम्मान दिया गया, माथे पर ताज पहनाया गया,
गर्दन और बाजू गहनों से सजी हुई—दिनभर तुम पीड़ा में तड़पती रहती हो!
हजारों अप्सराएं आपकी सेवा में हैं। यह कितनी अद्‌भुत जादुई शक्ति है!
दुख की अवस्था से आनंद की अवस्था में परिवर्तन होना कितना अद्‌भुत है!
आपकी बर्बादी का कारण क्या था? वह कौन सा पाप है जिसका आपको पछतावा है?

तुम अपनी ही पीठ से मांस क्यों खाते हो, हर रोज?
पवित्र आत्मा ने उसे पहचान लिया और कहा, "तुम मुझे नहीं पहचानते, परन्तु मैं एक समय तुम्हारा याजक था। रात में मुझे जो सुख मिलता है, वह तुम्हारी कृपा से है, क्योंकि मैंने आधा उपवास रखा था; जबकि दिन में जो कष्ट सहता हूँ, वह मेरे द्वारा किए गए बुरे कर्मों का परिणाम है। क्योंकि तुमने मुझे न्याय के सिंहासन पर बिठाया था, और मैंने रिश्वत ली, झूठे निर्णय दिए, और चुगली की, और दिन में किए गए बुरे कर्मों के फलस्वरूप अब मैं यह कष्ट सह रहा हूँ," और उसने कुछ पंक्तियाँ कहीं:

एक बार पवित्र परंपरा में आनंद लेते हुए, मैं पापपूर्ण कार्यों में लिप्त होकर गिर गया था।
बीते वर्षों में, मैं अपने पड़ोसी के लिए बुराई करता रहा।
जो दूसरों की चुगली करके उनकी प्रतिष्ठा का लाभ उठाता है,
वह अपनी ही पीठ से मांस नोचकर खाएगा, जैसा कि मैं आज कर रहा हूँ।
ऐसा कहकर उसने तपस्वी से पूछा कि वह यहाँ क्यों आया है। तपस्वी ने विस्तार से अपनी पूरी कहानी सुनाई। आत्मा ने कहा, "हे पूज्यवर, क्या आप यहाँ ठहरेंगे या चले जाएँगे?" तपस्वी ने कहा, "मैं नहीं ठहरूँगा, मैं अपने आश्रम लौट जाऊँगा।" आत्मा ने कहा, "बहुत अच्छा, पूज्यवर, मैं आपको लगातार पका हुआ आम देता रहूँगा," और अपनी जादुई शक्ति से उसने उन्हें उनके आश्रम में पहुँचा दिया, और उनसे वहाँ संतुष्ट रहने का अनुरोध करके उनसे वचन प्राप्त किया और अपने मार्ग पर चला गया। तब से आत्मा उन्हें लगातार आम देता रहा। तपस्वी ने आम का आनंद लेते हुए रहस्यमय ध्यान के लिए प्रारंभिक अनुष्ठान किए और (प्रधान देवदूतों के लोक) के लिए नियत हो गया।

गुरु ने आम लोगों को अपना पाठ समाप्त करने के बाद सत्यों को प्रकट किया और जन्म का वर्णन किया:- सत्यों के समापन पर, कुछ ने प्रथम मार्ग (सम्मोहन) को, कुछ ने द्वितीय मार्ग को और अन्य ने तृतीय मार्ग (सम्मोहन) को प्राप्त किया:- "उस समय देवी उप्पलावन्ना थीं, और तपस्वी मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) पोया (उपोसथा) दिनों का पालन, "उपवास" में अपने पड़ोसी के साथ कोई अन्याय न करना शामिल है।

(2)तुलना करें महावग्ग, इ. 15. 2.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुम्भ-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-512-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 512
कुंभ जातक

“तुम कौन हो?” इत्यादि—यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए विशाखा की पाँच सौ सहेलियों के बारे में सुनाई, जो मादक पेय पीती थीं। कथा के अनुसार, श्रावस्ती नगर में एक मादक पेय उत्सव का आयोजन हुआ। इन पाँच सौ सहेलियों ने अपने गुरुओं को मादक पेय पिलाने के बाद उत्सव के अंत में सोचा, “हम भी इस उत्सव में शामिल होंगी।” वे सब विशाखा के पास गईं और बोलीं, “सहेली, हम भी इस उत्सव में शामिल होंगी।” विशाखा ने उत्तर दिया, “यह तो मादक पेय उत्सव है। मैं मादक पेय नहीं पीऊँगी।” उन्होंने कहा, “तो आप बुद्ध को भेंट चढ़ाएँ, हम भी इस उत्सव में शामिल होंगी।” विशाखा ने तुरंत सहमति दे दी और उन्हें विदा कर दिया। गुरुजी का सत्कार करने और उन्हें बड़ी भेंट चढ़ाने के बाद, वे शाम को अपने हाथों में कई सुगंधित पुष्पमालाएँ लिए, इन सहेलियों के साथ जेतवन मठ के लिए रवाना हुईं, ताकि धार्मिक मार्ग का उपदेश सुन सकें। अब वे पीने के लिए बेताब थीं, जब वे उसके साथ निकलीं, और जब वे छज्जे वाले कक्ष में खड़ी हुईं, तो उन्होंने खूब शराब पी और फिर विशाखा के साथ गुरु के समक्ष गईं। विशाखा ने गुरु को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गईं। कुछ अन्य स्त्रियाँ गुरु के सामने ही नाचने लगीं; कुछ गाने लगीं; कुछ ने हाथों और पैरों से अनुचित हरकतें कीं; कुछ आपस में झगड़ने लगीं। गुरु ने उन्हें चौंकाने के लिए अपनी भौंहों से प्रकाश की एक किरण निकाली; और इसके बाद घोर अंधकार छा गया। ये स्त्रियाँ मृत्यु के भय से भयभीत और डरी हुई थीं, और इस प्रकार शराब का असर

खत्म हो गया। गुरु अपने सिंहासन से विदा होकर सिनेरू पर्वत की चोटी पर खड़े हो गए और अपनी भौंहों के बीच के बालों से प्रकाश की एक किरण निकाली (*1), मानो हजारों चंद्रमा उदय हो गए हों। गुरु ने वहाँ खड़े होकर, इन स्त्रियों में सनसनी पैदा करने के लिए, यह श्लोक बोला:

(*2) यहां हंसी की कोई जगह नहीं, खुशी के लिए कोई गुंजाइश नहीं,
जुनून की ज्वालाएं पीड़ादायक संसारों को नष्ट कर देती हैं।
मैं पूछता हूँ, घोर अंधकार में भी हम क्यों अभिभूत हो जाते हैं?
क्या तुम अपने मार्ग को रोशन करने के लिए किसी मशाल की तलाश नहीं करोगे?
श्लोक के अंत में, सभी पाँच सौ स्त्रियाँ प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त कर चुकी थीं। गुरुदेव आकर सुगंधित कक्ष की छाया में बुद्ध आसन पर बैठ गए। तब विशाखा ने उन्हें प्रणाम किया और पूछा, "हे परम पूज्य, यह मादक पेय पीने की लत कहाँ से आई, जो मनुष्य के सम्मान और कोमल अंतरात्मा को ठेस पहुँचाती है?" और उन्होंने उसे अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, काशी राज्य में रहने वाला सूरा नामक एक वनपाल व्यापारिक वस्तुओं की खोज में हिमालय गया। वहाँ एक वृक्ष था जो एक आदमी की भुजाओं को सिर के ऊपर फैलाकर खड़ी होने जितनी ऊँचाई का था और फिर तीन भागों में बँट गया। उसकी तीनों शाखाओं के बीच में एक मदिरा घड़े जितना बड़ा छेद था, और जब बारिश होती थी तो यह छेद पानी से भर जाता था। उसके चारों ओर दो मरुबलन (*3) के पौधे और एक काली मिर्च का पौधा था; और इनके पके फल जब तोड़े जाते थे तो छेद में गिर जाते थे। इस वृक्ष से कुछ ही दूरी पर कुछ धान अपने आप उग आया था। तोते इस वृक्ष पर बैठकर धान की बालियाँ तोड़कर खाते थे। खाते समय धान और चावल के छिलके वहाँ गिर जाते थे। इस प्रकार सूर्य की गर्मी से किण्वित होकर पानी का रंग गहरा लाल हो गया। गर्मी के मौसम में प्यास से व्याकुल पक्षियों के झुंड इसे पीते थे और मदहोश होकर वृक्ष की तलहटी में गिर पड़ते थे। कुछ देर सोने के बाद वे चहचहाते हुए उड़ जाते थे। जंगली कुत्तों, बंदरों और अन्य प्राणियों के साथ भी ऐसा ही होता था। यह देखकर वनपाल ने कहा, "यदि यह विष होता तो मर जाते, लेकिन थोड़ी देर सोने के बाद वे अपनी मर्जी से चले जाते हैं; यह विष नहीं है।" उसने स्वयं भी इसे पिया और मदहोश होकर उसे मांस खाने की इच्छा हुई। फिर उसने आग जलाकर वृक्ष की तलहटी में गिरे तीतरों और मुर्गों को मार डाला और जलते कोयलों पर उनका मांस भूनकर एक हाथ से इशारा करते हुए दूसरे हाथ से मांस खाते हुए एक-दो दिन वहीं बैठा रहा। अब यहाँ से कुछ ही दूरी पर वरुण नाम का एक तपस्वी रहता था। वनपाल अन्य समयों पर भी उससे मिलने जाता था, और अब उसके मन में यह विचार आया, "मैं भी इस तपस्वी के साथ यह पेय पीऊँगा।" इसलिए उन्होंने एक बांसुरी में वह पेय भर लिया और कुछ भुने हुए मांस के साथ उसे लेकर पत्तों की झोपड़ी में आए और कहा, "हे पूज्यवर, इस पेय का स्वाद चखिए।" दोनों ने उसे पिया और मांस खाया। इस पेय की खोज सूर और वरुण ने की थी, इसलिए इसका नाम उनके नाम पर (सूर और वरुण) पड़ गया। दोनों ने सोचा, "इसे पीने का यही तरीका है," और उन्होंने अपनी बांसुरियों में वह पेय भर लिया और उसे एक डंडे पर लादकर पास के एक गाँव में गए और राजा को संदेश भेजा कि कुछ शराब व्यापारी आए हैं। राजा ने उन्हें बुलवाया और उन्होंने राजा को वह पेय दिया। राजा ने उसे दो-तीन बार पिया और मदहोश हो गए। यह मदहोशी उन्हें केवल एक-दो दिन तक ही रही। फिर उन्होंने उनसे पूछा कि क्या और पेय है? "जी जी," उन्होंने कहा। "कहाँ?" "हिमालय में, महाराज।" "तो उसे यहाँ ले आओ।" वे गए और दो-तीन बार उसे ले आए। फिर यह सोचकर कि "हम हमेशा वहाँ नहीं जा सकते," उन्होंने सभी घटकों पर ध्यान दिया, और पेड़ की छाल से शुरू करके, उन्होंने बाकी सभी सामग्रियाँ मिला दीं, और शहर में वह पेय बनाया। शहर के लोगों ने उसे पिया और वे निकम्मे और निकम्मे हो गए।और वह स्थान वीरान शहर जैसा हो गया। तब ये शराब व्यापारी वहाँ से भागकर बनारस आ गए और राजा को अपने आने की सूचना दी। राजा ने उन्हें बुलवाया और पैसे देकर वहाँ भी शराब बनाई। और वह शहर भी उसी तरह नष्ट हो गया। वहाँ से वे साकेत भाग गए और साकेत से श्रावस्ती शहर आ गए। उस समय श्रावस्ती शहर में सब्बामित्त नाम का एक राजा था। उसने इन व्यापारियों पर कृपा की और उनसे पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। जब उन्होंने कहा, "हमें मुख्य सामग्री, पिसा हुआ चावल और पाँच सौ घड़े चाहिए," तो राजा ने उन्हें सब कुछ दे दिया। इसलिए उन्होंने शराब को पाँच सौ घड़ों में भर दिया और उनकी रखवाली के लिए प्रत्येक घड़े पर एक बिल्ली बाँध दी। जब शराब किण्वित होकर बहने लगी, तो बिल्लियों ने घड़ों के अंदर से बहने वाली तेज़ शराब पी ली और नशे में चूर होकर सो गईं; और चूहे आए और बिल्लियों के कान, नाक, दाँत और पूंछ काट डाले। राजा के अधिकारी आए और राजा को बताया, "बिल्लियाँ शराब पीने से मर गई हैं।" राजा ने कहा, "ज़रूर ये लोग ज़हर बनाने वाले होंगे," और उसने उन दोनों का सिर कलम करने का आदेश दिया। वे चिल्लाते हुए मर गए, "हमें तेज़ शराब दो, हमें शहद से बना मादक पेय दो (*4)।" राजा ने उन लोगों को मौत के घाट उतारने के बाद, घड़े तोड़ने का आदेश दिया। लेकिन जब शराब का असर उतरा, तो बिल्लियाँ उठ गईं और इधर-उधर चलने और खेलने लगीं। जब उन्होंने यह देखा, तो उन्होंने राजा को बताया। राजा ने कहा, "अगर यह ज़हर होता, तो वे मर गए होते; यह ज़रूर शहद से बना मादक पेय होगा; हम इसे पिएंगे।" इसलिए उसने शहर को सजाया, और महल के प्रांगण में एक मंडप बनवाया और अपने दरबारियों से घिरे हुए, एक सफेद छतरी वाले शाही सिंहासन पर बैठकर, इस भव्य मंडप में बैठकर, शराब पीने लगा। तब स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा, "माता की सेवा और इसी

प्रकार के कर्तव्यों का पालन करते हुए तीन प्रकार के सही आचरणों का पालन कौन करता है?" और संसार पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने राजा को मादक पेय पीते हुए देखा और सोचा, "यदि वह मादक पेय पिएगा, तो सारा भारत नष्ट हो जाएगा: मैं देखूंगा कि वह इसे न पिए।" अतः, उन्होंने अपने हाथ की हथेली में मादक पेय से भरा एक घड़ा रखा और ब्राह्मण का वेश धारण करके राजा के सामने हवा में खड़े होकर पुकारा, "यह घड़ा खरीदो, यह घड़ा खरीदो।" राजा सब्बमित्त ने उन्हें हवा में खड़े होकर इस प्रकार बोलते हुए देखकर कहा, "यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उनसे बातचीत करते हुए उन्होंने तीन श्लोक दोहराए:उस समय श्रावस्ती नगर में सब्बामित्त नामक एक राजा था। उसने उन लोगों पर कृपा की और उनसे पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। जब उन्होंने कहा, "हमें मुख्य सामग्री, पिसा हुआ चावल और पाँच सौ घड़े चाहिए," तो राजा ने उन्हें वह सब कुछ दे दिया जो उन्होंने माँगा था। इसलिए उन्होंने पाँच सौ घड़ों में शराब भर दी और उनकी रखवाली के लिए प्रत्येक घड़े के साथ एक बिल्ली बाँध दी। जब शराब किण्वित होकर बहने लगी, तो बिल्लियों ने घड़ों के अंदर से बहने वाली तेज़ शराब पी ली और नशे में चूर होकर सो गईं; तभी चूहे आए और बिल्लियों के कान, नाक, दाँत और पूंछ काट डाले। राजा के अधिकारी आए और राजा को बताया, "बिल्लियाँ शराब पीने से मर गई हैं।" राजा ने कहा, "ज़रूर ये लोग ज़हर बनाने वाले होंगे," और उसने उन दोनों का सिर कलम करने का आदेश दिया और वे चिल्लाते हुए मर गए, "हमें तेज़ शराब दो, हमें शहद से बनी मादक शराब दो (*4)।" राजा ने आदमियों को मौत के घाट उतारने के बाद आदेश दिया कि घड़े तोड़ दिए जाएँ। लेकिन जब शराब का असर उतर गया, तो बिल्लियाँ उठ खड़ी हुईं और इधर-उधर घूमने और खेलने लगीं। यह देखकर उन्होंने राजा को बताया। राजा ने कहा, "अगर यह ज़हर होता, तो वे मर जाते; यह ज़रूर शहद से बना मादक पेय होगा; हम इसे पिएँगे।" इसलिए उसने शहर को सजाया और महल के प्रांगण में एक मंडप बनवाया। वह अपने दरबारियों से घिरे एक भव्य मंडप में सफेद छतरी वाले राजसिंहासन पर विराजमान होकर पीने लगा। तब स्वर्ग के राजा इंद्र ने कहा, "माता की सेवा और इसी तरह के कर्तव्यों का पालन करते हुए तीन प्रकार के सही आचरण कौन करता है?" और संसार पर नज़र डालते हुए उसने राजा को शराब पीते हुए देखा और सोचा, "अगर वह शराब पिएगा, तो सारा भारत नष्ट हो जाएगा: मैं देखूँगा कि वह इसे न पिए।" अत: उसने शराब से भरा एक घड़ा अपनी हथेली पर रखा और ब्राह्मण का वेश धारण करके राजा के सामने हवा में खड़ा हो गया तथा चिल्लाया, "यह घड़ा खरीदो, यह घड़ा खरीदो।" राजा सब्बामित्त ने उसे हवा में खड़े होकर इस प्रकार बोलते हुए देखकर कहा, "यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:उस समय श्रावस्ती नगर में सब्बामित्त नामक एक राजा था। उसने उन लोगों पर कृपा की और उनसे पूछा कि उन्हें क्या चाहिए। जब उन्होंने कहा, "हमें मुख्य सामग्री, पिसा हुआ चावल और पाँच सौ घड़े चाहिए," तो राजा ने उन्हें वह सब कुछ दे दिया जो उन्होंने माँगा था। इसलिए उन्होंने पाँच सौ घड़ों में शराब भर दी और उनकी रखवाली के लिए प्रत्येक घड़े के साथ एक बिल्ली बाँध दी। जब शराब किण्वित होकर बहने लगी, तो बिल्लियों ने घड़ों के अंदर से बहने वाली तेज़ शराब पी ली और नशे में चूर होकर सो गईं; तभी चूहे आए और बिल्लियों के कान, नाक, दाँत और पूंछ काट डाले। राजा के अधिकारी आए और राजा को बताया, "बिल्लियाँ शराब पीने से मर गई हैं।" राजा ने कहा, "ज़रूर ये लोग ज़हर बनाने वाले होंगे," और उसने उन दोनों का सिर कलम करने का आदेश दिया और वे चिल्लाते हुए मर गए, "हमें तेज़ शराब दो, हमें शहद से बनी मादक शराब दो (*4)।" राजा ने आदमियों को मौत के घाट उतारने के बाद आदेश दिया कि घड़े तोड़ दिए जाएँ। लेकिन जब शराब का असर उतर गया, तो बिल्लियाँ उठ खड़ी हुईं और इधर-उधर घूमने और खेलने लगीं। यह देखकर उन्होंने राजा को बताया। राजा ने कहा, "अगर यह ज़हर होता, तो वे मर जाते; यह ज़रूर शहद से बना मादक पेय होगा; हम इसे पिएँगे।" इसलिए उसने शहर को सजाया और महल के प्रांगण में एक मंडप बनवाया। वह अपने दरबारियों से घिरे एक भव्य मंडप में सफेद छतरी वाले राजसिंहासन पर विराजमान होकर पीने लगा। तब स्वर्ग के राजा इंद्र ने कहा, "माता की सेवा और इसी तरह के कर्तव्यों का पालन करते हुए तीन प्रकार के सही आचरण कौन करता है?" और संसार पर नज़र डालते हुए उसने राजा को शराब पीते हुए देखा और सोचा, "अगर वह शराब पिएगा, तो सारा भारत नष्ट हो जाएगा: मैं देखूँगा कि वह इसे न पिए।" अत: उसने शराब से भरा एक घड़ा अपनी हथेली पर रखा और ब्राह्मण का वेश धारण करके राजा के सामने हवा में खड़ा हो गया तथा चिल्लाया, "यह घड़ा खरीदो, यह घड़ा खरीदो।" राजा सब्बामित्त ने उसे हवा में खड़े होकर इस प्रकार बोलते हुए देखकर कहा, "यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:"ज़रूर ये लोग ज़हर बनाने वाले होंगे," और उसने उन दोनों का सिर कलम करने का आदेश दिया। वे चिल्लाते हुए मर गए, "हमें तेज़ शराब दो, हमें शहद से बना मादक पेय दो (*4)।" राजा ने उन आदमियों को मार डालने के बाद, घड़े तोड़ने का आदेश दिया। लेकिन जब शराब का असर उतरा, तो बिल्लियाँ उठ गईं और इधर-उधर घूमने और खेलने लगीं। जब उन्होंने यह देखा, तो उन्होंने राजा को बताया। राजा ने कहा, "अगर यह ज़हर होता, तो वे मर जाते; यह शहद से बना मादक पेय ही होगा; हम इसे पिएंगे।" इसलिए उसने शहर को सजाया, और महल के प्रांगण में एक मंडप बनवाया और अपने दरबारियों से घिरे हुए, एक सफेद छतरी वाले राजसी सिंहासन पर इस भव्य मंडप में बैठकर, पीने लगा। तब स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा, "माता की सेवा और इसी तरह के कर्तव्यों में तीन प्रकार के सही आचरण का पालन करने वाले कौन हैं?" और, संसार पर नज़र डालते हुए उसने राजा को शराब पीते हुए देखा और सोचा, "यदि वह शराब पी लेगा, तो सारा भारत नष्ट हो जाएगा: मैं देखूंगा कि वह इसे न पिए।" अतः, उसने शराब से भरा एक घड़ा अपनी हथेली पर रखकर, ब्राह्मण का वेश धारण करके राजा के सामने हवा में खड़ा हो गया और चिल्लाया, "यह घड़ा खरीदो, यह घड़ा खरीदो।" राजा सब्बामित्त ने उसे हवा में खड़े होकर इस प्रकार बोलते हुए देखकर कहा, "यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:"ज़रूर ये लोग ज़हर बनाने वाले होंगे," और उसने उन दोनों का सिर कलम करने का आदेश दिया। वे चिल्लाते हुए मर गए, "हमें तेज़ शराब दो, हमें शहद से बना मादक पेय दो (*4)।" राजा ने उन आदमियों को मार डालने के बाद, घड़े तोड़ने का आदेश दिया। लेकिन जब शराब का असर उतरा, तो बिल्लियाँ उठ गईं

और इधर-उधर घूमने और खेलने लगीं। जब उन्होंने यह देखा, तो उन्होंने राजा को बताया। राजा ने कहा, “अगर यह ज़हर होता, तो वे मर जाते; यह शहद से बना मादक पेय ही होगा; हम इसे पिएंगे।” इसलिए उसने शहर को सजाया, और महल के प्रांगण में एक मंडप बनवाया और अपने दरबारियों से घिरे हुए, एक सफेद छतरी वाले राजसी सिंहासन पर इस भव्य मंडप में बैठकर, पीने लगा। तब स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा, “माता की सेवा और इसी तरह के कर्तव्यों में तीन प्रकार के सही आचरण का पालन करने वाले कौन हैं?” और, संसार पर नज़र डालते हुए उसने राजा को शराब पीते हुए देखा और सोचा, "यदि वह शराब पी लेगा, तो सारा भारत नष्ट हो जाएगा: मैं देखूंगा कि वह इसे न पिए।" अतः, उसने शराब से भरा एक घड़ा अपनी हथेली पर रखकर, ब्राह्मण का वेश धारण करके राजा के सामने हवा में खड़ा हो गया और चिल्लाया, "यह घड़ा खरीदो, यह घड़ा खरीदो।" राजा सब्बामित्त ने उसे हवा में खड़े होकर इस प्रकार बोलते हुए देखकर कहा, "यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:"यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:"यह ब्राह्मण कहाँ से आया है?" और उससे बातचीत करते हुए उसने तीन श्लोक दोहराए:

तुम कौन हो, जो ऊपर से आए हो?
   जिसका स्वरूप प्रकाश की चमकीली किरणें उत्सर्जित करता है,
आकाश में बिजली की चमक की तरह,
   या फिर चांद की रोशनी से सबसे अंधेरी रात रोशन होना?
पथहीन हवा पर सवार होने के लिए,
   शांत स्थान में हिलना या खड़े रहना--
असली शक्ति तो वही है जो आपने हासिल की है।
   और यह साबित करता है कि आप ईश्वरीय वंश के हैं।
तो फिर, ब्राह्मण, तुम किसे बताओगे?
   और आपके जार के अंदर क्या हो सकता है,
इस प्रकार वह हवा में प्रकट होता है,
   आप खुशी-खुशी अपना सामान मुझे बेच देंगे।
तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "तो मेरी बात सुनो," और शराब के बुरे गुणों को समझाते हुए उन्होंने कहा:

इस बर्तन में न तो तेल और न ही घी (स्पष्ट मक्खन) समा पाता था।
   यहां शहद या गुड़ नहीं है।
लेकिन ऐसी बुराइयाँ जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता
   ये इसके गोलाकार गोले के भीतर संग्रहित होते हैं।
जो शराब पिएगा वो गिरेगा, बेचारा मूर्ख।
   किसी गड्ढे या छेद में अशुद्ध रूप से,
या फिर घृणा के दलदल में पूरी तरह डूब जाओ
   और वह वह चीज खाए जिसे वह सहर्ष त्याग देना चाहेगा।
हे राजा, तो मेरा यह घड़ा खरीद लो।
सबसे तेज शराब से लबालब भरा हुआ।
जो व्यक्ति पूरी तरह से होश खोकर शराब पीता है,
   चरते हुए बैल की तरह, जिसे भटकना पसंद होता है,
मन में भटकता रहता है, एक असहाय प्राणी।
   और वह दिन भर गाती और नाचती रहती है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो शराब पिएगा वो बेशर्मी से भाग जाएगा।
   जैसे कोई नग्न तपस्वी शहर से होकर गुजरता है,
और वह देर से आराम करता है—वह इतना स्तब्ध है—
   उसे कब लिटाना है, यह भूल जाना।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
कौन पीता है, मानो कोई भयभीत हो गया हो?
   वह लड़खड़ाता है, मानो खड़ा नहीं हो सकता हो।
और कांपते हुए वह अपना सिर और हाथ हिलाता है।

जैसे हाथ से बनाई गई लकड़ी की कठपुतली।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो लोग शराब पीते हैं, वे बिस्तर पर ही जलकर मर जाते हैं।
अन्यथा सियार का शिकार बन जाओगे।
उन्हें गुलामी या मृत्यु की ओर ले जाया जाता है।
और इसके अतिरिक्त उन्हें माल का नुकसान भी उठाना पड़ेगा।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो शराब पीता है, वह शालीनता खो देता है।
और अश्लील बातों का जिक्र करता है।
लोगों के बीच बिना कपड़ों के बैठेगा।
वह बीमार है और हर तरह से अशुद्ध है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो व्यक्ति शराब पीता है, उसका उत्थान होता है।
उनकी दृष्टि बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है।
वह सोचता है, यह दुनिया पूरी तरह से मेरी है।
मैं किसी भी सांसारिक स्वामी को अपने समान नहीं मानता।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
शराब गर्व और घमंड का प्रतीक है।
एक बदसूरत, नंगा, कायर राक्षस,
विवाद और मानहानि आपस में जुड़े हुए हैं,
चोर और दलाल को पनाह देने वाला घर।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
भले ही परिवार धनी हों,
और अनगिनत खजानों का आनंद लिया जा सकता है,
पृथ्वी के सबसे समृद्ध उपहारों को स्वामित्व में रखते हुए,
इससे उनकी विरासत नष्ट हो जाएगी।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
चांदी, सोना और घरेलू सामान
बैल, खेत और अनाज के भंडार--
सब कुछ, सब कुछ खत्म हो गया: मुझे डर है कि यह शराब का ही नतीजा है।
इससे धनी घरों की कमजोरी साबित हुई है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
शराब पीने वाला व्यक्ति घमंड से भरा होता है।
और उसके अपने माता-पिता भी उसका अपमान करेंगे।
या, रक्त और पारिवारिक संबंधों का उल्लंघन किया गया,
विवाह के बिस्तर को अपवित्र करने का साहस करेगा।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
वह भी जो शराब पीती है, अपने स्वाभिमान में डूबी रहेगी।
उसके पति और उसके पिता ने अपमान किया,
और, नस्लीय गरिमा का उल्लंघन हुआ,
कुकर्म का गुलाम धोखा देगा।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो शराब पीता है, वह हत्या करने की हिम्मत भी करेगा।
एक धर्मनिष्ठ पुरोहित या सच्चा ब्राह्मण,
और फिर दुख भरी दुनियाओं में तो निश्चित रूप से।
इस पापपूर्ण कर्म का पछतावा अवश्य होगा।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जो शराब पिएगा उसे तीन गुना पाप करना पड़ेगा।

शब्दों में, कार्यों में और विचारों में,
फिर नरक में डूब जाओ, कष्ट भोगने के लिए
उन सभी बुराइयों के लिए जो वे लेकर आए हैं।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
वह व्यक्ति जिससे लोग व्यर्थ में भीख मांगते हैं,
यहां तक कि भारी मात्रा में सोने की कीमत पर भी,
जब वे नशे में होते हैं तो उससे अपना प्रभाव प्राप्त कर लेते हैं।
और झूठ आसानी से बोल दिया जाता है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
क्या किसी को संदेश ले जाने वाले व्यक्ति को पीना चाहिए?
और देखो! कोई बड़ी आपात स्थिति आ गई।
अगर अचानक कोई मुद्दा उठता है, तो वह कसम खाएगा।
वह बात उसके दिमाग से निकल गई है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
यहां तक कि साधारण लोग भी नशे में धुत हो जाते हैं।
शराब के साथ, यह सबसे अशोभनीय होगा।
और सबसे बुद्धिमान व्यक्ति भी नशे में धुत्त होकर व्यर्थ की बातें करने लगते हैं।
और वे बहुत ही मूर्खतापूर्ण बातें करते हैं।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
शराब के नशे में, उपवास करते हुए, झूठ बोलते हुए,
कठोर बंजर भूमि ही उनका विश्राम स्थल थी।
सूअरों की तरह दुबके हुए, एक निर्लज्ज वापसी,
उन्हें घोर अपमान का सामना करना पड़ता है।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जैसे बैल जमीन पर गिर पड़े हों
(*5) ढहते हुए, वे ढेर में पड़े हैं;
इस प्रकार की आग तेज शराब में पाई जाती है।
मनुष्य की कोई भी शक्ति इसका मुकाबला नहीं कर सकती।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
जब सभी मनुष्य, घातक सांप की तरह,
विष से भयभीत होकर पीछे हटते हुए,
कौन सा नायक इतना साहसी है जो संतुष्ट कर सके?
क्या उसे ऐसे घातक पेय की प्यास थी?
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
मुझे लगता है कि इसे पीने के बाद ऐसा हुआ था।
(*6)अंधक और वृष्णि जाति,
समुद्र तट पर घूमते हुए देखा गया
अपने-अपने रिश्तेदारों के गदा से गिर पड़ना।
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
देवदूत शराब के दीवाने हैं
हे राजा, तुम शाश्वत स्वर्ग से गिर पड़े।
अपनी समस्त दैवीय जादुई शक्ति के साथ:
फिर उस शापित चीज का स्वाद कौन चखेगा?
फिर खरीद लें...(और पहले जैसा ही)।
यहां न तो दही है और न ही मीठा शहद।
लेकिन हमेशा याद रखना
इस गोलाकार गोले के अंदर क्या संग्रहित है?
हे राजा, कृपया मेरा घड़ा खरीद लीजिए।

यह सुनकर राजा ने शराब के कारण होने वाले कष्टों को पहचानते हुए सक्का (इंद्र) से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने दो श्लोकों में उनकी प्रशंसा की:

किसी भी माता-पिता के पास आपको सिखाने के लिए कोई ज्ञानी व्यक्ति नहीं था।
लेकिन मुझे लगता है कि आप दयालु और कृपालु हैं;
सर्वोच्च सत्य का सदा खोजी;
इसलिए मैं आज आपकी बात मानूंगा।
देखो! मेरे स्वामित्व वाले पाँच चुनिंदा गाँव अब तुम्हारे हैं।
ढाई सौ नौकरानियाँ, सात सौ गायें,
और ये दस गाड़ियाँ जिनमें सबसे शुद्ध नस्ल के घोड़े लगे हैं,
आपने मुझे मेरे भले के लिए ही सलाह दी है।
यह सुनकर इंद्र ने अपने देवत्व का प्रकटीकरण किया और हवा में खड़े होकर दो श्लोक दोहराए:

हे राजा, ये सौ दास अभी भी आपके ही रहेंगे।
और गाँव और गायों के झुंड;
मैं उच्च नस्ल के घोड़ों से जुते हुए रथों का दावा नहीं करता;
सक्का (इंद्र), तैंतीस देवताओं के प्रमुख (देवदूत), मेरा नाम।
अपने घी (शुद्ध मक्खन), चावल, दूध और स्वादिष्ट मांस का आनंद लें।
फिर भी अपने शहद के केक खाकर संतुष्ट रहें।
अतः, महाराज, मेरे द्वारा प्रचारित सत्यों में आनंदित होकर,
अपने निष्कलंक मार्ग पर चलते रहो, जब तक कि स्वर्ग न पहुँच जाओ।
इस प्रकार इंद्र ने उनसे बात की और फिर स्वर्ग में अपने निवास स्थान पर लौट गए। राजा ने मादक पेय पदार्थों का सेवन न करते हुए, पीने के बर्तनों को तुड़वाने का आदेश दिया। नियमों का पालन करने और दान देने का वचन लेकर वे स्वर्ग के लिए नियत हो गए। परन्तु भारत में मादक पेय पदार्थों का सेवन धीरे-धीरे प्रचलित हो गया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा थे, और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) इस अभिव्यक्ति को बौद्ध कला में, विशेषकर महायान संप्रदाय की कला में, प्रचुर मात्रा में समझाया गया है।

(2) धम्मपद

(3)विभिन्न प्रकार के, टर्मिनलिया चेबुला और एम्ब्लिका ऑफिसिनैलिस।

(4) एक अन्य पाठ में है, "वाइन, हे राजा, मीड (शहद से बना मादक पेय), हे राजा।"

(5)पट्टक्खंधा.

(6)देखें विष्णु पुराण, जातक, सं. 81

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **जयाद्दिसा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-513-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 513

जयदिशा-जातक

"देखो! इसके बाद," इत्यादि—गुरु ने एक भिक्षु भाई की कहानी सुनाई, जिसने अपनी माता का सहारा दिया। प्रारंभिक कहानी (*1) समा जन्म में वर्णित कहानी के समान है। लेकिन इस अवसर पर गुरु ने कहा, "प्राचीन काल के ऋषियों ने अपने माता-पिता का सहारा देने के लिए सोने की माला से युक्त सफेद छत्र त्याग दिया था," और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, उत्तरी पंचालों के एक नगर, कम्पिला राज्य में पंचाल नामक एक राजा रहता था। उसकी रानी गर्भवती हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पिछले जन्म में, हरम में उसकी प्रतिद्वंदी क्रोधित होकर बोली, "एक दिन मैं तुम्हारे बच्चे को खा जाऊंगी।" ऐसा करने की प्रार्थना करने पर वह एक राक्षसी में परिवर्तित हो गई। फिर उसे मौका मिला और उसने रानी की आँखों के सामने ही बच्चे को छीन लिया और उसे कच्चे मांस के टुकड़े की तरह चबाकर खा गई और भाग गई। दूसरी बार भी उसने ठीक यही किया, लेकिन तीसरी बार जब रानी अपने प्रसव कक्ष में गई, तो महल के चारों ओर पहरेदार तैनात हो गए और कड़ी निगरानी रखने लगे। जिस दिन रानी का प्रसव हुआ, उसी दिन राक्षसी फिर प्रकट हुई और बच्चे को छीन लिया। रानी ने जोर से "राक्षसी" चिल्लाया और रानी के चेतावनी देने पर सशस्त्र सैनिक दौड़कर राक्षसी का पीछा करने लगे। बच्चे को खाने का समय न मिलने पर, वह भाग गई और एक नाले में छिप गई। बच्चे ने राक्षसी को अपनी माँ समझकर उसके स्तन से अपने होंठ लगाए, और माँ के मन में बच्चे के लिए मातृत्व प्रेम जागा। वह एक श्मशान में जाकर उसे एक चट्टानी गुफा में छिपाकर उसकी देखभाल करने लगी। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, रानी उसके लिए मानव मांस लाती और खिलाती रही, और दोनों उसी पर जीवित रहे। लड़के को यह नहीं पता था कि वह मनुष्य है; यद्यपि वह स्वयं को राक्षसी का पुत्र मानता था, फिर भी वह अपने शरीर को छिपा नहीं सका। इसलिए रानी ने उसे एक विशेष जड़ दी। इस जड़ के कारण उसने अपना रूप छिपा लिया और मानव मांस खाकर जीवित रहा। अब राक्षसी महान राजा वेसवना (*2) की सेवा करने चली गई और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। लेकिन रानी ने चौथी बार एक बालक को जन्म दिया, और क्योंकि राक्षसी अब मर चुकी थी, इसलिए वह सुरक्षित था, और अपने शत्रु राक्षसी पर विजय प्राप्त करने के कारण, उसे जयअदिशा (राजकुमार विजेता) कहा गया। जैसे ही वह वयस्क हुआ और सभी विद्याओं में पूर्णतः शिक्षित हो गया, उसने छत्र उठाकर शासन की बागडोर संभाली और राज्य पर शासन किया। उसी समय उसकी रानी पत्नी ने बोधिसत्व को जन्म दिया, और उन्होंने उसका नाम राजकुमार अलिनासत्तु रखा। जब वह वयस्क हुआ और सभी विद्याओं में पूर्णतः शिक्षित हो गया, तो वह वायसराय बन गया। लेकिन राक्षसी का पुत्र लापरवाही से जड़ को नष्ट कर देने के कारण स्वयं को छिपा नहीं सका, और श्मशान में छिपकर मानव मांस खाने लगा। उसे देखकर लोग भयभीत हो गए और राजा के पास आकर शिकायत की: “महाराज, एक राक्षस श्मशान में मानव मांस खा रहा है। समय आने पर वह नगर में घुसकर लोगों को मार डालेगा और खा जाएगा। कृपया उसे पकड़वा दें।” राजा तुरंत सहमत हो गया और उसे पकड़ने का आदेश दिया। नगर के चारों ओर सशस्त्र सेना तैनात कर दी गई। राक्षसी का पुत्र, नग्न और भयानक रूप में, मृत्यु के भय से व्याकुल होकर, जोर से चिल्लाया और सैनिकों के बीच कूद पड़ा। वे चिल्लाते हुए बोले, "ये रहा राक्षस,"अपनी जान के डर से घबराकर, वे दो समूहों में बंट गए और भाग गए। और राक्षस वहाँ से बचकर जंगल में छिप गया और फिर कभी मनुष्यों के घरों के पास नहीं आया। उसने जंगल से गुजरने वाली एक मुख्य सड़क के पास एक बरगद के पेड़ की तलहटी में अपना निवास स्थान बनाया, और जब लोग वहाँ से गुजरते, तो वह उन्हें एक-एक करके पकड़ लेता और जंगल में घुसकर उन्हें मार डालता और खा जाता। अब एक ब्राह्मण, जो एक कारवां का नेतृत्व कर रहा था, ने वन रक्षकों को एक हजार सिक्के दिए और पाँच सौ गाड़ियों के साथ सड़क पर यात्रा कर रहा था। मानव रूप धारण किए हुए राक्षस ने दहाड़ते हुए उन पर हमला कर दिया। लोग भय से भाग गए और जमीन पर लोटने लगे। उसने ब्राह्मण को पकड़ लिया, और भागते समय लकड़ी के एक टुकड़े से घायल हो गया, और वन रक्षकों द्वारा पीछा किए जाने पर, उसने ब्राह्मण को छोड़ दिया और जाकर उसी पेड़ की तलहटी में लेट गया जहाँ वह रहता था। इसके सातवें दिन, राजा जयदिशा ने शिकार की घोषणा की और जंगल से निकल पड़े। शहर। जैसे ही वह चलने लगा, तक्षशिला का एक ब्राह्मण, नंदा, जो अपने माता-पिता का सहारा था, राजा के समक्ष आया और अपने साथ चार श्लोक लाया, जिनमें से प्रत्येक सौ सिक्कों के बराबर था (*3)। राजा उन्हें सुनने के लिए रुक गया और उसके लिए एक निवास स्थान आवंटित करने का आदेश दिया। फिर शिकार पर जाते हुए उसने कहा, "जिस व्यक्ति की ओर से हिरण बच निकलेगा, वह ब्राह्मण को उसके श्लोकों का भुगतान करेगा।" तभी एक चित्तीदार मृग को छोड़ा गया और वह सीधे राजा की ओर भागा। दरबारी सब जोर से हँसे। राजा ने अपनी तलवार उठाई और जानवर का पीछा करते हुए तीन मील (4.23 किमी) की दूरी पर पहुँच गया और अपनी तलवार के एक ही प्रहार से उसे दो टुकड़ों में काट दिया और मृत शरीर को अपने डंडे पर लटका दिया। फिर लौटते समय वह उस स्थान पर आया जहाँ नर-राक्षस बैठा था, और कुश घास पर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद उसने आगे बढ़ने का प्रयास किया। तभी राक्षस उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया, "रुको!" तुम कहाँ जा रहे हो? तुम मेरे शिकार हो," और उसका हाथ पकड़कर उसने पहला छंद बोला:अपने माता-पिता का सहारा देने वाला एक व्यक्ति राजा के समक्ष चार श्लोक लेकर आया, जिनमें से प्रत्येक का मूल्य सौ सिक्कों के बराबर था (*3)। राजा उन्हें सुनने के लिए रुका और उसके लिए एक निवास स्थान आवंटित करने का आदेश दिया। फिर शिकार पर जाते हुए उसने कहा, "जिस व्यक्ति की ओर से हिरण बच निकलेगा, वह ब्राह्मण को उसके श्लोकों का भुगतान करेगा।" तभी एक चित्तीदार मृग को छोड़ा

गया और वह सीधे राजा की ओर भागा। दरबारी सब जोर से हँसे। राजा ने अपनी तलवार उठाई और जानवर का पीछा करते हुए तीन मील (x 4.23 किमी) की दूरी तय करके उसे पकड़ लिया और अपनी तलवार से एक ही प्रहार में उसे दो टुकड़ों में काट दिया और मृत शरीर को अपने डंडे पर लटका दिया। फिर लौटते समय वह उस स्थान पर आया जहाँ नर-राक्षस बैठा था और कुश घास पर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद आगे बढ़ने का प्रयास किया। तब राक्षस उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया, "रुको! कहाँ जा रहे हो? तुम मेरे शिकार हो," और उसका हाथ पकड़कर उसने पहला श्लोक बोला:अपने माता-पिता का सहारा देने वाला एक व्यक्ति राजा के समक्ष चार श्लोक लेकर आया, जिनमें से प्रत्येक का मूल्य सौ सिक्कों के बराबर था (*3)। राजा उन्हें सुनने के लिए रुका और उसके लिए एक निवास स्थान आवंटित करने का आदेश दिया। फिर शिकार पर जाते हुए उसने कहा, "जिस व्यक्ति की ओर से हिरण बच निकलेगा, वह ब्राह्मण को उसके श्लोकों का भुगतान करेगा।" तभी एक चित्तीदार मृग को छोड़ा गया और वह सीधे राजा की ओर भागा। दरबारी सब जोर से हँसे। राजा ने अपनी तलवार उठाई और जानवर का पीछा करते हुए तीन मील (x 4.23 किमी) की दूरी तय करके उसे पकड़ लिया और अपनी तलवार से एक ही प्रहार में उसे दो टुकड़ों में काट दिया और मृत शरीर को अपने डंडे पर लटका दिया। फिर लौटते समय वह उस स्थान पर आया जहाँ नर-राक्षस बैठा था और कुश घास पर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद आगे बढ़ने का प्रयास किया। तब राक्षस उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया, "रुको! कहाँ जा रहे हो? तुम मेरे शिकार हो," और उसका हाथ पकड़कर उसने पहला श्लोक बोला:

देखो! मेरे सात दिनों के लंबे उपवास के बाद
अंततः एक विशाल शिकार प्रकट हुआ!
कृपया मुझे बताएं, क्या आप प्रसिद्धि के लिए जाने जाते हैं?
मुझे आपकी जाति और नाम सुनकर खुशी होगी।
राक्षस को देखकर राजा भयभीत हो गया और एक खंभे की तरह अकड़कर भागने में असमर्थ हो गया; लेकिन, होश में आकर उसने दूसरा श्लोक बोला:

जयअदिसा, अगर आप मुझे जानते हों तो,
मैं पंचाल का राजा होने का दावा करता हूँ:
मैं दलदल और जंगल में भटकता हुआ शिकार ढूंढता हूँ:
तुम इस हिरण को खा जाओ; मुझे छोड़ दो, मैं तुमसे विनती करता हूँ।
यह सुनकर राक्षस ने तीसरी पंक्ति दोहराई:

अपनी जान बचाने के लिए, तुम मुझे खाने के बदले में देते हो।
हे महाराज, यह वह खदान है जिस पर मेरा दावा उचित है:
जान लो मैं तुम्हें पहले खाऊंगा, फिर भी इनकार नहीं करूंगा।
मुझे हिरण का मांस पसंद है: व्यर्थ की बातें बंद करो।
यह सुनकर राजा को ब्राह्मण नंदा की याद आई और उन्होंने चौथा श्लोक कहा:

क्या मुझे वह रिलीज नहीं खरीदनी चाहिए जिसकी मुझे बहुत चाहत है?
फिर भी, मुझे अपना वादा निभाने दीजिए।
एक ब्राह्मण मित्र। कल सुबह देखेंगे
मेरी इज्जत बच गई, और मैं आपके पास लौट आया।
यह सुनकर राक्षस ने पाँचवाँ श्लोक बोला:

मौत के इतने करीब खड़े होकर, क्या बात है?
हे राजा, क्या इसी बात ने आपको अत्यंत चिंतित किया?
मुझे सच बताओ, ताकि शायद हम ऐसा कर सकें
आपको एक संक्षिप्त दिन के लिए जाने की अनुमति दी जाती है।
मामले को समझाते हुए राजा ने छठा श्लोक कहा:

मैंने एक बार एक ब्राह्मण से वादा किया था;
वह वादा अभी भी बाकी है, वह कर्ज अभी तक चुकाया नहीं गया है:
प्रतिज्ञा पूरी हुई, कल सुबह देखने को मिलेगी
मेरी इज्जत बच गई, और मैं आपके पास लौट आया।
यह सुनकर राक्षस ने सातवां श्लोक बोला:

आपने एक ब्राह्मण से वादा किया है;
वह वादा अभी भी बाकी है, वह प्रतिज्ञा अभी भी अदा नहीं हुई है।
अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, और कल को देखने दो।
आपकी प्रतिष्ठा बच गई और आप मेरे पास लौट आए।
इतना कहकर उसने राजा को जाने दिया। राजा ने विदा लेते हुए कहा, "मेरे बारे में चिंता मत करो; मैं भोर होते ही लौट आऊंगा।" रास्ते में कुछ चिन्ह देखकर वह अपनी सेना के पास लौट आया और अपने दल के साथ नगर में प्रवेश किया। फिर उसने ब्राह्मण नंदा को बुलाया, उन्हें एक भव्य सिंहासन पर बैठाया और उनकी कविताएँ सुनने के बाद उन्हें चार हजार सिक्के भेंट किए। उसने ब्राह्मण को रथ पर बिठाकर विदा किया और अपने सेवकों को आदेश दिया कि उन्हें सीधे तक्षशिला ले चलें। अगले दिन, लौटने की तीव्र इच्छा से उसने अपने पुत्र को बुलाया और उसे यही निर्देश दिए।

गुरु ने इस विषय को समझाने के लिए दो श्लोक कहे:

वह एक क्रूर जिन्न से बच निकला था।
अपने प्यारे घर के लिए मीठी यादों से भरा हुआ:
उन्होंने अपने ब्राह्मण मित्र से किया वचन कभी नहीं तोड़ा।
लेकिन प्रिय अलीनासत्तु से उसने इस प्रकार कहा।
"मेरे पुत्र, आज से अभिषिक्त राजा के रूप में शासन करो।"
धार्मिक शासन द्वारा मित्र और शत्रु दोनों पर शासन करना;
किसी भी अन्याय को आपकी खुशहाल स्थिति को भंग न करने दें;
अब मैं उस क्रूर जिन्न से अपना भाग्य तलाश रहा हूँ।"
यह सुनकर राजकुमार ने दसवां श्लोक बोला:

मुझे यह जानकर खुशी होगी कि वह कौन सा कार्य या शब्द है।
इससे मैं अपने स्वामी की कृपा खो बैठा।
कि आप मुझे सिंहासन पर बिठाएँ
जिसे खोना, मैं स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता।
यह सुनकर राजा ने अगला श्लोक बोला:

प्रिय पुत्र, मुझे याद नहीं आ रहा है
एक शब्द या एक भी निर्दयी कार्य,
लेकिन अब सम्मान का कर्ज चुका दिया गया है,
मैं राक्षस से किया हुआ वचन निभाऊंगा।
यह सुनकर राजकुमार ने एक श्लोक बोला:

नहीं, मैं जाऊंगा और तुम यहीं रहो;
मुझे डर है कि सुरक्षित वापसी की कोई उम्मीद नहीं है।
लेकिन अगर तुम जाओगे तो मैं तुम्हारे पीछे आऊंगा।
और दोनों का अस्तित्व एक समान रूप से समाप्त हो जाएगा।
यह सुनकर राजा ने एक श्लोक कहा:

नैतिक कानून आपसे सहमत था।
लेकिन तब मेरे लिए जीवन का सारा आकर्षण खत्म हो जाएगा।
अगर लकड़ी की सींक पर यह भयानक राक्षस
तुम्हें भूनकर, अंग-अंग करके खा जाना चाहिए।
यह सुनकर राजकुमार ने एक श्लोक बोला:

यदि तुम इस राक्षस से भागोगे,
मैं तुम्हारे लिए मरने को भी तैयार हूँ।
जी हाँ, मैं सहर्ष मरना स्वीकार करूँगा, हे राजा।
काश मैं तुम्हें जीवन दे पाता।

यह सुनकर राजा ने अपने पुत्र के सद्गुण को पहचानते हुए उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा, "ठीक है, जाओ, प्रिय पुत्र।" इस प्रकार उसने अपने माता-पिता को विदाई दी और शहर छोड़ दिया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने आधा श्लोक बोला:

तब उस वीर राजकुमार ने अपने प्रिय माता-पिता से कहा
अंतिम विदाई, अत्यंत श्रद्धापूर्वक दी गई।
फिर उसके माता-पिता, बहन, पत्नी और दरबारी उसके साथ शहर से आगे बढ़े। राजकुमार ने वहाँ अपने पिता से रास्ता पूछा, और सावधानीपूर्वक व्यवस्था करने और अन्य लोगों से बात करने के बाद, वह सड़क पर चढ़ गया और उस राक्षस के निवास की ओर चल पड़ा, जो अयाल वाले शेर की तरह निर्भीक था। उसकी माँ उसे जाते देख खुद को रोक नहीं पाई और बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसके पिता बाहें फैलाकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे।

गुरु ने बात स्पष्ट करते हुए श्लोक का दूसरा भाग कहा:

उसके पिता ने बाहें फैलाकर अपने बेटे को वहीं रहने के लिए कहा।
वह दर्द से रो पड़ा। उसकी माँ शोक में व्याकुल होकर बेहोश हो गई।
और इस प्रकार पिता द्वारा कही गई प्रार्थना और माता, बहन और पत्नी द्वारा दोहराए गए सत्य के कार्य को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने चार और छंद कहे:

लेकिन जब उसका बेटा पूरी तरह से गायब हो गया
अपने हताश पिता की दृष्टि से,
उसने हाथ उठाकर देवताओं (देवदूतों) की स्तुति की।
राजा वरुण और सोम के नाम इस प्रकार हैं:
ब्रह्मा और दिन-रात के स्वामी।
इनके द्वारा अंगों को सुरक्षित और स्वस्थ रखा गया।
"प्रिय पुत्र, उस भयानक राक्षस से बच निकलो।"
"जैसे राम की सुंदर अंगों वाली माता ने जीत हासिल की (*4)
अपने अनुपस्थित पुत्र के लिए मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करना।
जब उसने दंडक के जंगलों की खोज की,
इसलिए मेरे बच्चे के लिए स्वतंत्रता लाई गई है;
और सत्य के इस कार्य से मैंने मोहित कर लिया है
देवता (देवदूत) आपको सुरक्षित घर वापस लाएंगे।
भाई, इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है।
मुझे याद है कि वह खुला था या गुप्त;
और सत्य के इस कार्य से मैंने मोहित कर लिया है
देवता (देवदूत) आपको सुरक्षित घर वापस लाएंगे।
"तुम मेरे लिए किसी भी प्रकार से अपराधरहित हो।"
मैं भी, मेरे स्वामी, आपसे प्रेम करता हूँ;
और सत्य के इस कार्य से मैंने मोहित कर लिया है
देवता (देवदूत) आपको सुरक्षित घर वापस लाएंगे।
और राजकुमार अपने पिता के निर्देशों का पालन करते हुए राक्षस के निवास की ओर चल पड़ा। लेकिन राक्षस ने सोचा, "क्षत्रियों के पास अनेक प्रलोभन होते हैं: कौन जाने क्या हो जाए?" और वह वृक्ष पर चढ़कर राजा के आने की प्रतीक्षा करने लगा। राजकुमार को देखकर उसने सोचा, "पुत्र ने अपने पिता को रोक दिया है और स्वयं आ रहा है। उससे डरने की कोई बात नहीं है।" और वृक्ष से उतरकर वह उसकी ओर पीठ करके बैठ गया। उठकर युवक राक्षस के सामने खड़ा हो गया, तब राक्षस ने यह श्लोक कहा:

तुम कहाँ से आए हो, हे सुंदर और आकर्षक युवक?
क्या तुम जानते हो कि यह वन क्षेत्र मेरा है?
वे अपनी जान बचाते हैं लेकिन सस्ते में आते हैं
जहां क्रूर राक्षस अपना घर पाते हैं।

यह सुनकर युवक ने यह श्लोक बोला:

मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ, निर्दयी राक्षस;
आप इसी जंगल में निवास करते हैं।
जयअद्दीसा का असली बेटा यहाँ खड़ा है:
मुझे खा लो और मेरे प्यारे पिता को मुक्त कर दो।
तब राक्षस ने यह श्लोक बोला:

मैं जानता हूँ कि जयअदिसा का असली बेटा कौन है;
आपके चेहरे के हाव-भाव से यह बात स्पष्ट हो जाती है।
यह आपके लिए निश्चित रूप से एक कठिन समय है।
अपने पिता को मुक्त कराने के लिए मर जाना।
तब युवक ने यह श्लोक बोला:

मुझे लगता है कि यह कोई महान कार्य नहीं है।
मरने के लिए, और पिता के कल्याण के लिए
और माँ का प्यार बिछड़ जाना
और निश्चित रूप से स्वर्ग के आनंद की प्राप्ति होगी।
यह सुनकर राक्षस ने कहा, "हे राजकुमार, ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो मृत्यु से भयभीत न हो। तुम क्यों नहीं भयभीत हो?" फिर उसने कारण बताया और दो श्लोक सुनाए:

मैंने कोई भी बुरा काम नहीं किया है।
मुझे याद है, चाहे वह खुला हो या गुप्त:
मैं जन्म और मृत्यु को अच्छी तरह से परखता हूँ।
जैसा यहाँ है, वैसा ही भविष्य के संसारों में भी होगा।
हे सर्वशक्तिमान, आज मुझे खा जाओ।
और जो कार्य करना आवश्यक है, उसे करो।
मैं किसी ऊंचे पेड़ से गिरकर मर जाऊंगा।
फिर मेरी देह को अपनी इच्छानुसार खाओ।
उसकी बात सुनकर राक्षस भयभीत हो गया और बोला, "इस आदमी का मांस नहीं खाया जा सकता"; और उसे भगाने की कोई योजना सोचकर उसने कहा:

यदि यह आपकी इच्छा है बलिदान देने की
हे राजकुमार, अपने पिता को मुक्त कराने के लिए अपना जीवन दांव पर लगा दो।
तो मेरी सलाह है कि जल्दी जाओ।
और आग जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करें।
ऐसा करने के बाद, युवक उसके पास लौट आया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने एक और श्लोक कहा:

तब बहादुर राजकुमार ने लकड़ी इकट्ठा की।
और, एक विशाल चिता खड़ी करते हुए,
उसने आग जलाते हुए रोते हुए कहा, "अपना खाना तैयार करो;
देखो! मैंने बड़ी आग जला दी है।"
जब राक्षस ने देखा कि राजकुमार लौट आया है और आग जला रहा है, तो उसने कहा, "यह तो शेर जैसा साहसी है। मृत्यु से भी इसे डर नहीं लगता। आज तक मैंने इतना निडर व्यक्ति कभी नहीं देखा।" और वह वहाँ अचंभित होकर बैठा रहा, बीच-बीच में उस युवक को देखता रहा। और जब उसने देखा कि राक्षस क्या करने वाला है, तो उसने यह छंद कहा:

खड़े होकर अवाक होकर विस्मय से मत देखो,
मुझे ले जाओ, मार डालो और खा जाओ, मैं विनती करता हूँ।

जब तक मैं जीवित हूँ, मैं योजना बनाऊंगा
ताकि आज आपको खाना खाकर खुशी हो।
तब राक्षस ने उसकी बातें सुनकर यह श्लोक बोला:

एक ऐसा व्यक्ति जो इतना सच्चा, दयालु और न्यायप्रिय हो।
इसे शायद कभी खाया नहीं जा सकता।
या फिर उसका सिर, जो तुम्हें खाता है, अवश्य
सात बार टुकड़ों को पीटा जाए।
यह सुनकर राजकुमार ने कहा, "यदि तुम मुझे खाना नहीं चाहते, तो तुमने मुझे लकड़ियाँ तोड़कर आग जलाने को क्यों कहा?" जब राक्षस ने उत्तर दिया, "यह तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए था; क्योंकि मुझे लगा था कि तुम भाग जाओगे," तो राजकुमार ने कहा, "अब तुम मेरी परीक्षा कैसे लोगे, जबकि मैंने पशु रूप में रहते हुए स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) को अपने सद्गुणों की परीक्षा लेने की अनुमति दी थी?" और इन शब्दों के साथ उसने यह श्लोक कहा:-

(*5) एक बार इंद्र के लिए, किसी गरीब ब्राह्मण की तरह कपड़े पहने हुए
खरगोश ने अपना मांस खाने के लिए पेश किया;
तब से उसकी आकृति चंद्रमा पर अंकित हो गई;
अब हम उस सुंदर चेहरे को यक्ष (राक्षस) के रूप में नमस्कार करते हैं।
यह सुनकर राक्षस ने राजकुमार को जाने दिया और कहा,

जैसे ही राहु (ग्रहण) की पकड़ से साफ चंद्रमा मुक्त हुआ
मध्य माह में हमेशा की तरह शानदार चमक बिखेरता है।
और आप भी, हे कामपिला के पराक्रमी स्वामी,
राक्षस से बचकर, आनंदमय प्रकाश फैलाया
आपकी उज्ज्वल उपस्थिति से, शोक संतप्त मित्रों को सांत्वना मिलती है।
और अपने माता-पिता के जीवन में फिर से खुशियाँ लाओ, प्रिय।
और "जाओ, वीर आत्मा," कहकर उन्होंने उस महान व्यक्ति को विदा किया। राक्षस को वश में करके उन्होंने उसे पाँच नैतिक नियम सिखाए, और यह परखने की इच्छा से कि वह राक्षस है या नहीं, उन्होंने सोचा, "राक्षसों की आँखें लाल होती हैं और पलकें नहीं झपकातीं। उनकी कोई परछाई नहीं होती और वे किसी भी भय से मुक्त होते हैं। यह कोई राक्षस नहीं है; यह एक मनुष्य है। कहते हैं कि मेरे पिता के तीन भाइयों को एक राक्षसी ले गई थी; उनमें से दो को उसने खा लिया होगा, और एक को उसने माँ के अपने बच्चे के प्यार से पाला होगा: यही वह होना चाहिए। मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगा और अपने पिता को बताऊँगा, और उसे सिंहासन पर बिठाऊँगा।" और ऐसा सोचते हुए उन्होंने पुकारा, "अरे! महाराज, आप कोई राक्षस नहीं हैं; आप मेरे पिता के बड़े भाई हैं। अच्छा, मेरे साथ आइए और अपने पैतृक राज्य में शासन करने की शक्ति के प्रतीक के रूप में अपना छाता उठाइए।" जब उसने उत्तर दिया, "मैं मनुष्य नहीं हूँ," तो राजकुमार ने कहा, "तुम मेरी बात पर विश्वास नहीं करते। क्या कोई ऐसा है जिस पर तुम विश्वास करोगे?" "हाँ," उसने कहा, "फलां स्थान पर एक तपस्वी है जिसे अलौकिक दृष्टि का वरदान प्राप्त है।" इसलिए वह उस राक्षस को अपने साथ लेकर वहाँ गया। तपस्वी ने उन्हें देखते ही कहा, "तुम दोनों एक ही पूर्वज की संतान होकर यहाँ किसलिए आए हो?" और इन शब्दों के साथ उसने उन्हें अपने रिश्ते के बारे में बताया। नरभक्षी ने विश्वास किया और कहा, "प्रिय मित्र, आप घर जाइए; मैं तो एक ही रूप में दो स्वभावों के साथ पैदा हुआ हूँ। मुझे राजा बनने की कोई इच्छा नहीं है। मैं तपस्वी बनूँगा।" इस प्रकार तपस्वी ने उसे संन्यासी जीवन की दीक्षा दी। फिर राजकुमार ने उसे प्रणाम किया और नगर लौट गया।

गुरु ने बात स्पष्ट करने के लिए यह श्लोक कहा:

तब क्या साहसी राजकुमार अलीनासत्तु ने भुगतान किया?
उस भयानक राक्षस के प्रति सभी उचित सम्मान व्यक्त करते हुए,
और वह एक बार फिर आज़ाद होकर अपने सुखमय मार्ग पर चल पड़ा।
कम्पिला वापस लौट आया, पूरी तरह से सुरक्षित और स्वस्थ।
और जब युवक शहर पहुँचा, तो गुरु ने नगरवासियों और अन्य लोगों को समझाया कि राजकुमार ने क्या किया था, और अंतिम छंद कहा:

इस प्रकार वे पैदल ही शहर और ग्रामीण इलाकों से आगे बढ़ते रहे,

देखो! उत्सुक भीड़ घोषणा करती है
उस वीर नायक का नाम,
या फिर रथ या हाथी पर सवार होकर वे कितनी ऊँचाई पर जाते हैं
वे उचित सम्मान के साथ आते हैं
विजेता को घर ले जाने के लिए।

राजा को पता चला कि राजकुमार लौट आया है और वह उससे मिलने के लिए निकल पड़ा। राजकुमार अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर आया और राजा को प्रणाम किया। राजा ने उससे पूछा, "प्रिय पुत्र, तुम इतने भयानक राक्षस से कैसे बच निकले?" राजकुमार ने कहा, "प्रिय पिता, वह राक्षस नहीं है; वह आपका बड़ा भाई और मेरा चाचा है।" उसने राजा को सारी बात बताई और कहा, "आपको मेरे चाचा से मिलने जाना चाहिए।" राजा ने तुरंत ढोल बजवाने का आदेश दिया और अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर तपस्वियों से मिलने निकल पड़ा। मुख्य तपस्वी ने उन्हें पूरी कहानी विस्तार से सुनाई; कैसे एक राक्षसी बच्चे को अगवा कर ले गई थी, और कैसे उसने उसे खाने के बजाय एक राक्षस की तरह पाला-पोसा, और कैसे वे आपस में रिश्तेदार थे। राजा ने कहा, "आओ, भाई, क्या तुम राजा बनोगे?" राजकुमार ने उत्तर दिया, "नहीं, महाराज।" राजा ने कहा, "तो आओ और हमारे उद्यान में निवास करो, मैं तुम्हें चारों आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराऊँगा।" उसने आने से इनकार कर दिया। तब राजा ने उनके आश्रम से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पर्वत पर बस्ती बसाई, वहाँ एक झील बनवाई, खेती योग्य खेत तैयार किए और एक हजार परिवारों को धन-संपत्ति के साथ लाकर एक बड़ा गाँव बसाया तथा तपस्वियों के लिए दान-पुण्य की व्यवस्था शुरू की। यही गाँव विकसित होकर कुल्लाकम्मासदम्मा नगर बन गया।

जिस क्षेत्र में महान प्राणी सुतासोमा द्वारा राक्षस को वश में किया गया था, उसे महाकम्मसदम्मा (*6) नगर के नाम से जाना जाना था।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करने के बाद सत्य प्रकट किए और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के समापन पर, अपनी माता का सहारा देने वाले वरिष्ठ भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हुए:- "उस समय पिता और माता राजा के परिवार के सदस्य थे, तपस्वी सारिपुत्र थे, नरभक्षी अंगुलिमाला थे, छोटी बहन उप्पलावन्ना थीं, रानी पत्नी राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) थीं, राजकुमार अलिनासत्तु मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं.540. ,सं.510 अयोगराजजातक.

(2)चार महान दानव-राजाओं में से एक।

(3) अंततः उसे चार हजार टुकड़े मिलते हैं।

(4) रामायण देखें

(5)सं. 316 ससाजातक देखें। टिप्पणी में कहा गया है कि वर्तमान कल्प में चंद्रमा पर खरगोश के बजाय यक्खा (राक्षस) अंकित है।

(6) इस नाम के एक स्थान की स्थापना का उल्लेख महासुतासोमा-जातक के अंत में मिलता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **चद्दंत-जातक**
स्रोत : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित

पिछला <<<<-----||-514-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 514
छद्दंत-जातक। (*1)

"बड़ी-बड़ी आँखों वाली और असाधारण" इत्यादि—यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक ननद के बारे में सुनाई थी। कहते हैं कि श्रावस्ती नगर के एक अच्छे परिवार की लड़की ने गृहस्थ जीवन के कष्टों को पहचानकर वैराग्य का मार्ग अपनाया और एक दिन

अन्य ननों के साथ बुद्ध से धार्मिक मार्ग सुनने गई, जब वे एक भव्य सिंहासन पर बैठकर उपदेश दे रहे थे। बुद्ध के असीम पुण्य से उत्पन्न अत्यंत सुंदर रूप को देखकर उसने सोचा, "क्या पिछले जन्म में वे महिलाएं, जिनकी मैंने सेवा की थी, इस पुरुष की पत्नियां थीं?" तभी उसे अपने पिछले जन्मों की याद आ गई। "छद्दंत हाथी के समय में, मैं इस पुरुष की पत्नी थी।" और इस स्मृति से उसके हृदय में अपार आनंद और प्रसन्नता का संचार हुआ। अपनी खुशी और उत्साह में वह ज़ोर से हंस पड़ी और सोचने लगी, "बहुत कम पत्नियां अपने पतियों के प्रति सहानुभूति रखती हैं; उनमें से अधिकतर सहानुभूतिहीन होती हैं। मुझे आश्चर्य है कि क्या मैं इस आदमी के प्रति सहानुभूति रखती थी या नहीं।" और अपनी यादों को याद करते हुए, उसने पाया कि उसके मन में एक सौ बीस भुजाओं के बलाक्रमी हाथी स्वामी चद्दंता के प्रति थोड़ी सी द्वेष भावना थी, जिसने सोनोत्तरा नामक शिकारी को भेजा था, जिसने विषैले तीर से उसे घायल कर दिया था। तब उसका दुख जागृत हुआ और उसका हृदय प्रचंड हो गया, और अपने भावों को वश में न कर पाने के कारण वह फूट-फूट कर रोने लगी। यह देखकर गुरु (बुद्ध) मुस्कुरा उठे, और भिक्षुओं की सभा द्वारा पूछे जाने पर, "हे प्रभु, आपके मुस्कुराने का कारण क्या था?" उन्होंने कहा, "भाइयों, इस युवती (भिक्षुणी) ने मेरे विरुद्ध किए गए अपने एक पाप को याद करके रो दिया।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, हिमालय में चद्दंता झील के पास आठ हजार राजसी हाथी रहते थे, जो अलौकिक शक्तियों से वायु में विचरण करते थे। इसी समय बोधिसत्व ने हाथी के मुखिया के पुत्र के रूप में जन्म लिया। उनका रंग शुद्ध सफेद था, उनके पैर और चेहरा लाल थे। समय बीतने पर, जब वे वयस्क हुए, तो उनकी ऊंचाई अस्सी-आठ भुजाओं जितनी और लंबाई एक सौ बीस भुजाओं जितनी थी। उनकी सूंड चांदी की रस्सी जैसी थी, जो अट्ठावन भुजाओं जितनी लंबी थी, और उनके दांत पंद्रह भुजाओं की परिधि के बराबर और तीस भुजाओं जितने लंबे थे, जिनसे छह रंगों की किरणें निकलती थीं। वे आठ हजार हाथियों के झुंड के मुखिया थे और पच्चेक बुद्धों को सम्मान देते थे। उनकी दो प्रमुख रानियां कुल्शुभद्दा और महासुभद्दा थीं। आठ हजार हाथियों के अपने झुंड के साथ राजा हाथी एक स्वर्ण गुफा में निवास करते थे। चद्दंता झील पचास मील (4.23 किमी) लंबी और पचास मील चौड़ी थी। इसके मध्य में, बारह लीग (4.23 किमी) के विस्तार में, कोई सेवाला या पनाका पौधा नहीं पाया जाता, और यह जल किसी जादुई रत्न की तरह प्रतीत होता है। इसके आगे, इस जल को घेरे हुए, एक लीग (4.23 किमी) चौड़ाई में शुद्ध सफेद लिली की वनस्पति थी। इसके आगे, इसे घेरे हुए, एक लीग (4.23 किमी) विस्तार में शुद्ध नीले कमल की वनस्पति थी। फिर सफेद और लाल कमल, लाल और सफेद लिली, और सफेद खाद्य लिली थीं, जिनमें से प्रत्येक एक लीग (4.23 किमी) विस्तार में थी और प्रत्येक पिछली लिली को घेरे हुए थी। इन सातों के आगे सफेद और अन्य लिली का मिश्रित जाल था, जो एक लीग (4.23 किमी) विस्तार में था और पिछली सभी लिली को घेरे हुए था। इसके आगे, हाथियों के खड़े होने की गहराई तक पानी में, लाल धान की वनस्पति थी। इसके बाद, आसपास के जल में, छोटे-छोटे झाड़ियों का एक छोटा सा उपवन था, जो नीले, पीले, लाल और सफेद रंग के नाजुक और सुगंधित फूलों से भरा हुआ था। इस प्रकार ये दस उपवन प्रत्येक एक लीग (4.23 किमी) के क्षेत्र में फैले हुए थे। इसके बाद विभिन्न प्रकार की राजमाओं की वनस्पति थी। फिर कंवोल्वुलस, खीरा, कद्दू, लौकी और अन्य लताओं का घना जंगल था। फिर सुपारी के पेड़ के आकार का गन्ने का उपवन था। फिर हाथी के दांत जितने बड़े केले के पेड़ों का उपवन था। फिर धान का खेत था। फिर पानी के घड़े के आकार का ब्रेडफ्रूट का उपवन था। इसके बाद स्वादिष्ट फलों से लदे इमली के पेड़ों का उपवन था। फिर हाथी सेब के पेड़ों का उपवन था। फिर विभिन्न प्रकार के पेड़ों का एक विशाल जंगल था। फिर बांस का उपवन था। उस समय इस क्षेत्र की ऐसी ही भव्यता थी - इसकी वर्तमान भव्यता का वर्णन संयुत्त टीका में किया गया है - लेकिन बांस के उपवन के चारों ओर सात पर्वत थे। सबसे बाहरी छोर से शुरू करते हुए, सबसे पहले छोटा काला पर्वत, फिर बड़ा काला पर्वत, उसके बाद जल पर्वत, चंद्रमा पर्वत, सूर्य पर्वत, रत्न पर्वत, और फिर सातवें स्थान पर स्वर्ण पर्वत था। इसकी ऊँचाई सात लीग (4.23 किमी) थी, जो चद्दंता झील के चारों ओर एक कटोरे के किनारे की तरह फैली हुई थी। इसका भीतरी भाग सुनहरे रंग का था। इससे निकलने वाले प्रकाश से चद्दंता झील नवभू सूर्योदय की तरह चमकती थी। लेकिन बाहरी पर्वतों की बात करें तो,एक पर्वत छह लीग (x 4.23 किमी) ऊँचा था, एक पाँच लीग, एक चार लीग, एक तीन लीग, एक दो लीग और एक केवल एक लीग (x 4.23 किमी) ऊँचा था। अब झील के उत्तर-पूर्वी कोने में, जो लगभग सात पर्वतों से घिरा हुआ था, एक ऐसी जगह पर जहाँ हवा पानी पर पड़ती थी, एक विशाल बरगद का वृक्ष उगा हुआ था। उसका तना पाँच लीग (x 4.23 किमी) परिधि का और सात लीग (x 4.23 किमी) ऊँचा था। उसकी चार शाखाएँ चारों दिशाओं में छह लीग (x 4.23 किमी) तक फैली हुई थीं, और जो शाखा सीधी ऊपर की ओर उठती थी, वह भी छह लीग (x 4.23 किमी) लंबी थी। इस प्रकार जड़ से ऊपर की ओर उसकी ऊँचाई तेरह लीग (x 4.23 किमी) थी, और एक दिशा में शाखाओं के सिरे से दूसरी दिशा में शाखाओं के सिरे तक उसकी ऊँचाई बारह लीग (x 4.23 किमी) थी। वृक्ष में आठ हज़ार शाखाएँ थीं और वह अपनी पूरी सुंदरता में नंगे रत्न पर्वत की तरह खड़ा था। चद्दंता झील के पश्चिम में, स्वर्ण पर्वत पर, बारह मील (4.23 किमी) लंबी एक स्वर्ण गुफा थी। हाथी राजा चद्दंता अपने आठ हजार हाथियों के दल के साथ वर्षा ऋतु में उस स्वर्ण गुफा में रहते थे; ग्रीष्म ऋतु में वे विशाल बरगद के वृक्ष की शाखाओं के बीच खड़े होकर जल से आने वाली ठंडी हवा का स्वागत करते थे। एक दिन उन्हें सूचना मिली, "विशाल साल वन में फूल खिले हैं।" इसलिए अपने हाथियों के साथ वे साल वन में मौज-मस्ती करने के लिए निकले और वहाँ जाकर उन्होंने अपने माथे के गोले से एक खिले हुए साल के वृक्ष पर प्रहार किया। उसी क्षण कुलसुभद्दा हवा की दिशा में खड़ी थीं, और सूखी

टहनियाँ, मृत पत्तियाँ और लाल चींटियाँ उन पर गिरीं। लेकिन महासुभद्दा हवा की ओर खड़ी थीं, और पराग, डंठल और हरी पत्तियों वाले फूल उन पर गिरे। कुलसुभद्दा ने सोचा, "उसने अपनी प्रिय पत्नी पर फूल, पराग, ताजे तने और पत्ते बरसाए, लेकिन मुझ पर सूखी टहनियाँ, सूखे पत्ते और लाल चींटियों का मिश्रण गिरा दिया। अब मुझे पता है मुझे क्या करना है!" और उसने महापुरुष के प्रति द्वेष पाल लिया। एक और दिन, हाथी राजा और उसके साथी छद्दंत झील में स्नान करने गए। तब दो युवा हाथियों ने अपनी सूंड में उशीरा की गठरियाँ लेकर उसे स्नान कराया, मानो केलसा पर्वत को रगड़ रहे हों। जब वह पानी से बाहर आया, तो उन्होंने दोनों रानियों को स्नान कराया, और वे भी पानी से बाहर आकर महापुरुष के सामने खड़ी हो गईं। तब आठ हजार हाथी झील में उतरे और पानी में खेलते हुए झील से तरह-तरह के फूल तोड़े, और महापुरुष को ऐसे सजाया जैसे वह कोई चांदी का मंदिर हो, और बाद में रानियों को भी सजाया। फिर एक हाथी झील में तैरते हुए सात कोंपलों वाला एक बड़ा कमल लाया और उसे महापुरुष को अर्पित किया। और उसने उसे अपनी सूंड में लेकर, पराग को अपने माथे पर छिड़का और उस फूल को महासुभद्दा नामक हाथी के मुखिया को भेंट कर दिया। यह देखकर उसकी प्रतिद्वंदी ने कहा, "सात पंखुड़ियों वाला यह कमल भी वह अपनी प्रिय रानी को दे रहा है, मुझे नहीं," और फिर से उसके मन में उसके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया।एक दिन जब बोधिसत्व ने स्वादिष्ट फलों, कमल की डंठलों और रेशों को फूलों के रस से सजाकर पाँच सौ पच्चेक बुद्धों का सत्कार किया, तब कुल्लासुभद्दा ने अपने द्वारा प्राप्त जंगली फल पच्चेक बुद्धों को अर्पित किए और यह प्रार्थना की: “इसके बाद, जब मैं इसलोक से विदा हो जाऊँ, तो मुझे मद्दा राजा के परिवार में सुभद्दा कन्या के रूप में पुनर्जन्म मिले और वयस्क होने पर मुझे बनारस के राजा की रानी का पद प्राप्त हो। तब मैं उनकी दृष्टि में प्रिय और आकर्षक हो जाऊँगी और जो चाहूँ वह कर सकूँगी। इसलिए मैं राजा से बात करूँगी और एक शिकारी को विषैले तीर के साथ इस हाथी को घायल करके मारने के लिए भेजूँगी। और इस प्रकार मुझे उसके छह रंगों की किरणें उत्सर्जित करने वाले दो दाँत प्राप्त हों।” उसके बाद उसने कुछ नहीं खाया और कुछ ही समय में दुर्बल होकर उसकी मृत्यु हो गई। फिर वह मद्दा राज्य की रानी की संतान के रूप में पुनर्जीवित हुई और उसका नाम सुभद्दा रखा गया। जब वह वयस्क हुई, तो उसका विवाह बनारस के राजा से कर दिया गया। वह राजा की प्रिय और आकर्षक थी, और सोलह हजार पत्नियों में सबसे श्रेष्ठ थी। उसे अपने पिछले जन्म याद आए और उसने सोचा, "मेरी प्रार्थना पूरी हो गई है; अब मुझे हाथी के दांत लाकर दिए जाएं।" फिर उसने अपने शरीर पर साधारण तेल लगाया, एक गंदा वस्त्र पहना और बीमार होने का नाटक करते हुए बिस्तर पर लेट गई। राजा ने पूछा, "सुभद्दा कहाँ है?" यह सुनकर कि वह बीमार है, वह राजकक्ष में गया और बिस्तर पर बैठकर उसकी पीठ सहलाते हुए पहला श्लोक बोला:“सुभद्दा कहाँ है?” यह सुनकर कि वह बीमार है, वह राजमहल में गया और पलंग पर बैठकर उसकी पीठ सहलाते हुए पहला श्लोक बोला:“सुभद्दा कहाँ है?” यह सुनकर कि वह बीमार है, वह राजमहल में गया और पलंग पर बैठकर उसकी पीठ सहलाते हुए पहला श्लोक बोला:

बड़ी-बड़ी आंखों वाली और असाधारण, मेरी रानी, इतनी पीली, शोक की शिकार।
जैसे पैरों तले रौंदी गई माला, तुम क्यों धीरे-धीरे मिट जाते हो?
यह सुनकर उसने दूसरा छंद बोला:

ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह सब एक सपने में हो रहा हो, एक ऐसी लालसा जो मेरे मन में बहुत गहरी थी;
मेरी इच्छा वरदान पाने की है, और इसीलिए मैं दुखी हूँ।
यह सुनकर राजा ने एक श्लोक कहा:

इस आनंदमय संसार में मनुष्य जिन सभी सुखों की आकांक्षा कर सकता है,
वे जो भी चाहें, मैं उन्हें पूरा कर सकता हूँ, इसलिए अपनी इच्छा मुझे बताएँ।
यह सुनकर रानी ने कहा, "महाराज, मेरी इच्छा पूरी करना कठिन है; मैं अभी यह नहीं बताऊंगी कि वह क्या है, लेकिन मैं चाहती हूं कि आपके राज्य में जितने भी शिकारी हैं, वे सब एकत्रित हों। तब मैं उनके बीच अपनी इच्छा बताऊंगी।" और अपनी बात समझाने के लिए उन्होंने अगला श्लोक कहा:

इस क्षेत्र में निवास करने वाले सभी शिकारी आपकी पुकार का पालन करें।
और जो कुछ मैं उनसे खुशी-खुशी प्राप्त करना चाहूंगा, वह मैं उनकी उपस्थिति में बताऊंगा।
राजा मान गया और राजकक्ष से निकलकर अपने मंत्रियों को आदेश दिया, “ढोल बजाकर यह घोषणा करवाओ कि काशी राज्य में, जो तीन सौ मील (4.23 किमी) में फैला है, सभी शिकारी इकट्ठा हों।” उन्होंने वैसा ही किया और कुछ ही समय में काशी राज्य में रहने वाले शिकारी अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेंट लेकर राजा के पास पहुँच गए। अब उनकी कुल संख्या लगभग साठ हज़ार थी। राजा ने जब उनके आने की सूचना सुनी, तो वह एक खुली खिड़की पर खड़ा हो गया और हाथ फैलाकर रानी को उनके आने की सूचना दी और कहा:

तो यहाँ हमारे साहसी और शिकार में कुशल शिकारी देखें।
उनमें जंगली जानवरों को मारने का कौशल है, और वे सभी मेरे लिए अपनी जान दे देंगे।

यह सुनकर रानी ने उन्हें संबोधित किया और एक और छंद बोला:

हे साहसी शिकारीगण, जो यहाँ एकत्रित हुए हो,
मेरी बातों पर ध्यान दीजिए, मैं आपसे निवेदन करता हूँ:
सपने में, मुझे लगता है मैंने एक हाथी देखा था।
छह दांतों वाला (*2) और बिना किसी दोष के सफेद:
मुझे उसके दांत पाने की तीव्र इच्छा है और मैं उन्हें सहर्ष प्राप्त करना चाहूंगा;
इस जीवन को बचाने के लिए और कुछ भी काम का नहीं है।
यह सुनकर शिकारियों ने उत्तर दिया:

हमारे पूर्वजों ने पुराने समय में कभी ऐसा नहीं किया था।
छह दांतों वाला हाथी:
हमें बताएं कि यह किस प्रकार का जानवर हो सकता है।
जो तुम्हें सपनों में दिखाई दिया।
इसके बाद उन्होंने एक और छंद पढ़ा:

चार दिशाएँ दिखाई देती हैं: उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम।
इनसे चार मध्यवर्ती हैं,
नादिर और ज़ेनिथ जुड़ते हैं, और फिर
बताइए कि उन दस बिंदुओं में से किस बिंदु पर।
यह शाही हाथी शायद हो सकता है,
वह आपको सपने में दिखाई दिया।
इन शब्दों के बाद सुभद्दा ने सभी शिकारियों को देखते हुए उनमें से एक को देखा जो चौड़े पैरों वाला, भिक्षापात्र की तरह फूली हुई पिंडली वाला, मजबूत घुटनों और पसलियों वाला, घनी दाढ़ी वाला, पीले दांतों वाला, घावों से विकृत, उन सभी में एक बदसूरत, भारी-भरकम व्यक्ति के रूप में अलग दिख रहा था, जिसका नाम सोनुत्तरा था, जो कभी महापुरुष का शत्रु था। और उसने सोचा, "वह मेरी प्रार्थना पूरी कर सकेगा," और राजा की अनुमति से वह उसे अपने साथ ले गई और सात मंजिला महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर चढ़कर उसने उत्तर की ओर एक खिड़की खोली, और उत्तरी हिमालय की ओर हाथ फैलाकर चार श्लोक पढ़े:

उत्तर दिशा की ओर, सात विशाल पर्वतों के पार,
अंततः गोल्डन क्लिफ तक पहुँच ही जाते हैं।
एक ऊँचाई जो गोबलिन रूपों के कब्जे में थी
और पैर से लेकर चोटी तक फूलों से जगमगा रहा है।
इस गोब्लिन शिखर के नीचे दिखाई देता है
गहरे हरे रंग का बादल के आकार का पिंड,
एक शाही बरगद का पेड़ जिसकी जड़ें
आठ हजार शाखाओं को मजबूती प्रदान करें।
वहाँ अजेय शक्ति का निवास है।
यह हाथी, छह दांतों वाला और सफेद रंग का,
आठ हजार जानवरों के झुंड के साथ लड़ाई के लिए।
उनके दांत रथ के डंडों के समान हैं,
वे रक्षा करने या प्रहार करने में हवा की तरह तेज होते हैं।
हांफते और गंभीर भाव से वे खड़े होकर घूरते हैं।
हवा के जरा से झोंके से भी उत्तेजित होकर,
यदि कोई मनुष्य से जन्मा व्यक्ति उसे देख ले,
उनका क्रोध उसे पूरी तरह से भस्म कर देता है।
यह सुनकर सोनट्टारा बुरी तरह भयभीत हो गया और बोला:

चमकीली चमक वाले फ़िरोज़ा या मोती,
अनेक स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित, रानी,

राजमहलों में इन्हें देखा जा सकता है।
तो फिर आप हाथीदांत का क्या करेंगे?
या फिर तुम सचमुच इन शिकारियों को मार डालोगे?
तब रानी ने एक श्लोक बोला:

मैं दुःख और द्वेष से ग्रस्त हूँ।
जब मुझे अपनी चोट याद आती है।
हे शिकारी, मुझे वह प्रदान करो जिसकी मुझे लालसा है।
और तुम्हें पाँच चुनिंदा गाँव मिलेंगे।
और इसके साथ ही उसने कहा, "मित्र शिकारी, जब मैंने पच्चेक बुद्धों को उपहार दिया, तो मैंने यह प्रार्थना की कि मुझे इस छह दांत वाले हाथी को मारने और उसके दांतों का एक जोड़ा प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त हो।"

यह मैंने केवल सपने में नहीं देखा, बल्कि मेरी प्रार्थना भी पूरी होगी। आप जाइए और डरिए मत।" ऐसा कहकर उसने उसे आश्वस्त किया। उसने उसकी बात मान ली और कहा, "ठीक है, महोदया; लेकिन पहले मुझे स्पष्ट कर दीजिए और बताइए कि उसका निवास स्थान कहाँ है," और उससे पूछते हुए उसने यह छंद कहा:

वह कहाँ रहता है? उसे कहाँ पाया जा सकता है?
स्नान करने के लिए उसका रास्ता कौन सा है?
यह शाही प्राणी कहाँ तैरता है?
हमें उसे पकड़ने का तरीका बताएं।
फिर अपने पूर्व जीवन को याद करते हुए उसने उस स्थान को स्पष्ट रूप से देखा और इन दो छंदों में उसके बारे में उसे बताया:

उसका यह स्नानस्थल ज़्यादा दूर नहीं था,
यह एक गहरा और बड़ा तालाब है:
वहां मधुमक्खियां झुंड में रहती हैं और फूल भी बहुत हैं।
और वहीं यह शाही जानवर पाया जाता है।
अब कमल के मुकुट से सजे, स्नान से तरोताजा होकर
वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर की ओर चल पड़ता है।
वह बिल्कुल सफेद और लंबा होकर चलता है।
उस रानी के पीछे जिसे वह बेहद प्यार करता है।
यह सुनकर सोनत्तरा मान गया और बोला, "हे देवी, मैं हाथी को मारकर उसके दांत आपके पास लाऊंगा।" फिर प्रसन्न होकर उसने उसे एक हजार दांत दिए और कहा, "इस बीच तुम घर जाओ, और सात दिन बाद वहां से निकल पड़ना।" उसे विदा करते हुए उसने लोहारों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया, "महोदय, हमें एक कुल्हाड़ी, एक फावड़ा, एक बरमा, एक हथौड़ा, बांस काटने का औजार, एक घास काटने की मशीन, एक लोहे का डंडा, एक खूंटी, एक लोहे का तीन मुंह वाला कांटा चाहिए; इन्हें शीघ्रता से बनाओ और हमारे पास लाओ।" फिर चमड़े का काम करने वालों को बुलाकर उसने उन्हें आदेश दिया, "महोदय, आपको हमारे लिए एक चमड़े का थैला बनाना होगा, जिसमें एक बड़े गट्ठे का वजन समा सके; हमें चमड़े की रस्सियों और पट्टियों, हाथी के लिए पर्याप्त बड़े जूते और एक चमड़े का पैराशूट चाहिए: इन्हें शीघ्रता से बनाओ और हमारे पास लाओ।" और लोहारों और चमड़े का काम करने वालों दोनों ने जल्दी से सब कुछ बनाया और लाकर उसे भेंट कर दिया। यात्रा के लिए आवश्यक सभी सामान, जैसे जलाऊ लकड़ी और अन्य सामग्री, उपलब्ध कराने के बाद, उसने यात्रा के लिए आवश्यक सभी उपकरण और सामान, जैसे पका हुआ आटा आदि, चमड़े के थैले में भर दिए। कुल मिलाकर उसका वजन लगभग एक बड़ा गट्ठा था। सोनोत्तरा ने अपनी सारी व्यवस्था पूरी कर ली और सातवें दिन पहुँचकर रानी के समक्ष आदरपूर्वक खड़ा हुआ। तब रानी ने कहा, "मित्र, तुम्हारी यात्रा के लिए सभी उपकरण तैयार हैं: तो यह थैला ले लो।" सोनोत्तरा, जो पाँच हाथियों के बराबर बलवान और हट्टा-कट्टा बेईमान था, ने थैले को ऐसे उठाया जैसे वह केक की थैली हो, और उसे अपनी कमर पर रखकर मानो खाली हाथ खड़ा हो गया। कुल्लासुभद्दा ने वह सामान शिकारी के सेवकों को दे दिया और राजा को बताकर सोनोत्तरा को विदा कर दिया। सोनोत्तरा ने राजा और रानी को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए महल से नीचे उतरकर अपना सामान रथ में रखा और सेवकों के एक बड़े समूह के साथ नगर से निकल पड़ा। वह कई गाँवों से होते हुए सीमा तक पहुँचा। फिर उसने देशवासियों को वापस मोड़ दिया और सीमावर्ती निवासियों के साथ जंगल में प्रवेश किया। मानव बस्तियों से आगे बढ़कर उसने सीमावर्ती लोगों को भी वापस भेज दिया और तीस मील (4.23 किमी) की दूरी तक बिल्कुल अकेले ही एक सड़क पर आगे बढ़ा। इस दौरान वह कुश और अन्य घासों, तुलसी की झाड़ियों, सरकंडों और बेंत के घने झुरमुटों, मिश्रित वनस्पतियों, सरकंडों और बेंत के जंगलों, घने वनों, जहाँ साँप भी नहीं घुस सकता था, पेड़ों और बाँसों की घनी वनस्पतियों, कीचड़ और पानी के रास्तों, पहाड़ी इलाकों से होकर गुजरा। कुल मिलाकर

अठारह क्षेत्र एक के बाद एक पार हुए। उसने घास के जंगलों को हंसिया से काटा, तुलसी और इसी तरह की झाड़ियों को बाँस काटने के औजार से साफ किया, पेड़ों को कुल्हाड़ी से काटा और बड़े पेड़ों को पहले बरमे से छेदा। फिर, अपने रास्ते पर चलते हुए, उसने बांस के झुरमुट में एक सीढ़ी बनाई और घनी वनस्पति के शीर्ष पर चढ़कर, उसने एक बांस रखा, जिसे उसने काटा था।अगले बांस के झुंड को पार करते हुए, घनी वनस्पति के ऊपर रेंगते हुए वह एक दलदल तक पहुँचा। फिर उसने कीचड़ पर एक सूखा तख्ता बिछाया और उस पर कदम रखते हुए एक और तख्ता अपने आगे फेंक दिया और इस तरह दलदल पार किया। फिर उसने एक डोंगी बनाई और उसकी मदद से बाढ़ वाले क्षेत्र को पार किया और अंत में पहाड़ों की तलहटी में पहुँच गया। फिर उसने एक तीन नोक वाले लोहे के डंडे को रस्सी से बांधा और उसे पहाड़ में ऊपर फेंककर मजबूती से गाड़ दिया। फिर रस्सी के सहारे ऊपर चढ़कर उसने हीरे की नोक वाले लोहे के डंडे से पहाड़ में छेद किया और छेद में एक खूंटी ठोककर उस पर खड़ा हो गया। फिर लोहे के डंडे को बाहर निकालकर उसने उसे एक बार फिर पहाड़ में ऊपर गाड़ दिया और इस स्थिति से चमड़े की रस्सी को नीचे लटकाकर उसे पकड़ लिया और नीचे उतरकर रस्सी को नीचे की खूंटी से बांध दिया। फिर अपने बाएं हाथ से रस्सी को पकड़कर और दाएं हाथ में हथौड़ा लेकर उसने रस्सी पर प्रहार किया और इस तरह खूंटी को उखाड़कर वह एक बार फिर ऊपर चढ़ गया। इस प्रकार वह पहले पर्वत की चोटी पर चढ़ गया और फिर दूसरी ओर उतरना शुरू करते हुए, पहले की तरह ही उसने पहले पर्वत की चोटी पर एक खूंटी गाड़ दी और अपने चमड़े के थैले पर रस्सी बांधकर उसे खूंटी के चारों ओर लपेट दिया। फिर वह थैले के अंदर बैठ गया और मकड़ी की तरह धागा फैलाते हुए रस्सी को खोलता हुआ नीचे उतर गया। फिर अपने चमड़े के पैराशूट को हवा में छोड़ते हुए वह एक पक्षी की तरह नीचे उतरा—कम से कम ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार गुरु ने बताया कि कैसे सुभद्दा के वचनों का पालन करते हुए शिकारी तेजी से शहर से आगे बढ़ा और सत्रह अलग-अलग रास्तों को पार करते हुए एक पहाड़ी क्षेत्र में पहुंचा, और कैसे उसने वहां छह पर्वतों को पार किया और स्वर्ण चट्टान की चोटी पर चढ़ गया।मकड़ी की तरह रस्सी खोलते हुए, जैसे कोई मकड़ी अपना धागा फैलाती है। फिर अपने चमड़े के पैराशूट को हवा में लहराते हुए, वह एक पक्षी की तरह नीचे उतरा—कम से कम ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार गुरु ने बताया कि कैसे सुभद्दा के वचनों का पालन करते हुए शिकारी तेजी से शहर से आगे बढ़ा और सत्रह अलग-अलग रास्तों को पार करते हुए एक पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचा, और कैसे उसने वहाँ छह पहाड़ों को पार किया और स्वर्ण चट्टान की चोटी पर चढ़ गया।मकड़ी की तरह रस्सी खोलते हुए, जैसे कोई मकड़ी अपना धागा फैलाती है। फिर अपने चमड़े के पैराशूट को हवा में लहराते हुए, वह एक पक्षी की तरह नीचे उतरा—कम से कम ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार गुरु ने बताया कि कैसे सुभद्दा के वचनों का पालन करते हुए शिकारी तेजी से शहर से आगे बढ़ा और सत्रह अलग-अलग रास्तों को पार करते हुए एक पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचा, और कैसे उसने वहाँ छह पहाड़ों को पार किया और स्वर्ण चट्टान की चोटी पर चढ़ गया।

शिकारी ने यह सुना, लेकिन वह अविचलित रहा।
धनुष और बाण से लैस होकर आगे बढ़ो,
और सात विशाल पर्वतों को पार करते हुए
अंततः भव्य गोल्डन क्लिफ पर पहुँच गए।
भूत-प्रेतों से ग्रस्त ऊँचाई पर पहुँचते हुए,
उसकी नजरों के सामने बादल के आकार का कौन सा पिंड फट गया?
यह एक शाही बरगद है जिसकी जड़ें
आठ हजार फैलने वाली शाखाओं को सहारा दें।
वह शक्ति में अजेय खड़ा था।
एक हाथी जिसके छह दांत हैं और वह सफेद रंग का है।
आठ हजार पशुओं के झुंड के साथ युद्ध के लिए;
उनके दांत रथ के डंडों के समान हैं:
वे रक्षा करने या प्रहार करने में हवा की तरह तेज होते हैं।
पास ही में एक स्विमिंग पूल है—जो पानी से लबालब भरा हुआ है।
शाही जानवरों के तैरने के लिए उपयुक्त स्थान;
इसके सुंदर किनारे फूलों से लदे हुए हैं
और चारों ओर मधुमक्खियाँ भिनभिनाती हुई मंडरा रही हैं।
उस प्राणी के जाने के तरीके को देखकर
जब भी नहाते समय कोई विचार मन में आता है,
उसने इतना नीच काम करने के लिए एक गड्ढा खोदा।
दुष्ट रानी के क्रोध से प्रेरित होकर।
कहानी शुरू से अंत तक इस प्रकार है: कहा जाता है कि शिकारी सात वर्ष, सात महीने और सात दिन बाद, ऊपर वर्णित तरीके से महापुरुष के निवास स्थान पर पहुँचकर, उनके निवास स्थान को पहचान कर वहाँ एक गड्ढा खोदा, यह सोचकर कि, "मैं यहाँ घात लगाकर हाथियों के सरदार को घायल करूँगा और उसकी मृत्यु का कारण बनूँगा।" उसने ऐसा ही किया और जंगल में जाकर खंभे

बनाने के लिए पेड़ काटे और बहुत सारा सामान इकट्ठा किया। फिर जब हाथी स्नान करने गए, तो उसने उस स्थान पर जहाँ हाथी का सरदार खड़ा होता था, एक बड़े कुदाल से एक चौकोर गड्ढा खोदा, और खोदी गई मिट्टी को पानी के ऊपर छिड़क दिया, मानो वह बीज बो रहा हो, और पत्थरों को ओखली की तरह ऊपर रखकर खंभे गाड़ दिए, उन पर भार और रस्सियाँ बाँध दीं और उनके ऊपर तख्ते बिछा दिए। इसके बाद उसने तीर के आकार का एक गड्ढा खोदा और उसके ऊपर मिट्टी और कूड़ा-करकट डाल दिया, और एक तरफ उसने अपने लिए प्रवेश द्वार बना लिया, और इस प्रकार, जब गड्ढा बनकर तैयार हो गया, तो सूर्योदय होते ही उसने एक नकली चोटी बांधी और पीले वस्त्र पहने और अपना धनुष और एक विषैला तीर लेकर नीचे उतर गया और गड्ढे में खड़ा हो गया।

गुरु ने सारी बात स्पष्ट करने के लिए कहा:

उसने सबसे पहले गड्ढे को तख्तों से ढककर छिपाया था।
फिर हाथ में धनुष लिए वह अंदर चला गया।
और जब हाथी वहाँ से गुजरा,
उस दुष्ट ने एक शक्तिशाली तीर चलाया।
घायल जानवर दर्द से कराह उठा।
और सारा झुंड फिर से दहाड़ उठा:
कुचली हुई शाखाएँ और रौंदी हुई घासें सच्चाई बयां करती हैं।
जहां घबराहट के मारे भागने की प्रवृत्ति उन्हें ले जाती है।
उनके स्वामी ने लगभग अपने शत्रु को मार ही डाला था।
वह दर्द से इतना पागल हो गया था कि तभी अचानक!
उसकी नजर पीले रंग के वस्त्र पर पड़ी।
संतत्व का प्रतीक, पुरोहित का वेश
और बुद्धिमानों द्वारा इसे पवित्र माना जाता है।
गुरु ने शिकारी से बातचीत करते हुए कुछ पंक्तियाँ कहीं:

जो कोई भी पापमय दाग से दूषित है
और सत्य और आत्मसंयम से रहित,
भले ही उसने पीले रंग के वस्त्र पहने हों,
वह किसी भी प्रकार से पवित्र होने का दावा नहीं करता।
लेकिन जो पाप के दाग से मुक्त हो,
सत्य और आत्मसंयम से संपन्न,
और धर्म में दृढ़तापूर्वक स्थिर,
पीली पोशाक पहनने की हकदार है।
ऐसा कहकर, उस महान सत्ता ने उसके प्रति अपने सारे क्रोध को बुझाते हुए उससे पूछा, "तुमने मुझे क्यों घायल किया? क्या यह तुम्हारे अपने फायदे के लिए था या किसी और ने तुम्हें रिश्वत दी थी?"

फिर गुरु ने मामले की व्याख्या करते हुए कहा:

उस विशालकाय बाण ने जानवर को मार गिराया।
अब भी अविचलित होकर, उसने अपने शत्रु को संबोधित किया:
"मित्र, मुझे मारने का तुम्हारा क्या उद्देश्य है?"
और, कृपया बताएं, आपको किसने उकसाया?
तब शिकारी ने उससे कहा और यह छंद सुनाया:

काशी के राजा की प्रिय रानी
सुभद्दा ने मुझे बताया कि उसने देखा था
"सपनों में तुम्हारा रूप," उसने कहा।
"मुझे उसके दांत चाहिए; जाओ, उन्हें मेरे पास ले आओ।"

यह सुनकर और यह पहचानते हुए कि यह कुल्लासुभद्दा का काम था, उसने धैर्यपूर्वक अपने कष्टों को सहन किया और सोचा, "उसे मेरे दांत नहीं चाहिए; उसने उसे इसलिए भेजा क्योंकि वह मुझे मारना चाहती थी," और, इस मामले को समझाने के लिए, उसने कुछ छंद कहे:

मेरे पास बड़े-बड़े दांतों का भरपूर भंडार है।
मेरे दिवंगत पूर्वजों के अवशेष,
और यह बात उस शापित स्त्री को भलीभांति पता है।
उस दुष्ट ने मेरी जान को निशाना बनाया था।
उठो, शिकारी, या इससे पहले कि मैं मर जाऊं।
इन हाथीदांतों को काटकर अलग कर दिया:
जाओ, उस चिड़चिड़े व्यक्ति को कहो कि वह खुश रहे।
"जानवर मारा गया है; उसके दांत यहीं हैं।"
उसकी बात सुनकर शिकारी अपनी जगह से उठा और हाथ में आरी लेकर उसके दांत काटने के लिए उसके पास आया। हाथी अस्सी भुजाओं जितने ऊंचे पर्वत के समान था, इसलिए उसे काटना व्यर्थ था। क्योंकि आदमी उसके दांतों तक नहीं पहुंच पा रहा था। तब वह विशालकाय प्राणी अपना शरीर उसकी ओर झुकाकर सिर नीचे करके लेट गया। फिर शिकारी उस विशालकाय प्राणी की सूंड पर चढ़ गया, उसे अपने पैरों से ऐसे दबा रहा था मानो वह चांदी की रस्सी हो, और उसके माथे पर ऐसे खड़ा हो गया मानो वह केलाश की चोटी हो। फिर उसने अपना पैर उसके मुंह में डाला और उसके मांसल हिस्से पर घुटने से प्रहार करते हुए, वह जानवर के माथे से नीचे उतरा और आरी उसके मुंह में घुसा दी। उस विशालकाय प्राणी को असहनीय पीड़ा हुई और उसका मुंह खून से लथपथ हो गया। शिकारी इधर-उधर खिसकता रहा, फिर भी आरी से दांत नहीं काट पा रहा था। तब उस विशालकाय प्राणी ने मुंह से खून टपकने दिया और पीड़ा में तड़पते हुए पूछा, "महोदय, क्या आप इन्हें नहीं काट सकते?" जब उसने "नहीं" कहा, तो उसने होश में आकर कहा, "अच्छा, क्योंकि मुझमें अपनी सूंड उठाने की शक्ति नहीं है, तो क्या तुम इसे मेरे लिए उठाओगे और आरी के सिरे को पकड़ोगे?" शिकारी ने वैसा ही किया: और उस महान प्राणी ने अपनी सूंड से आरी को पकड़ लिया और उसे आगे-पीछे घुमाया, और उसके दांत ऐसे कट गए जैसे अंकुर हों। फिर उसे दांत लेने के लिए कहते हुए उसने कहा, "हे मित्र शिकारी, मैं तुम्हें ये नहीं देता, क्योंकि मैं इन्हें महत्व नहीं देता, न ही मैं सक्का (इंद्र), मार या ब्रह्मा के पद की इच्छा रखता हूँ, बल्कि अनंत ज्ञान के दांत मुझे इनसे एक लाख गुना अधिक प्रिय हैं, और यह पुण्य कर्म मुझे अनंत ज्ञान की प्राप्ति का कारण बने।" और जब उसने उसे दांत दिए, तो उसने पूछा, "तुम यहाँ कितने समय से आ रहे थे?" "सात वर्ष, सात महीने और सात दिन।" "तो इन दांतों की जादुई शक्ति से जाओ, और तुम सात दिनों में बनारस पहुँच जाओगे।" और उसने उसे सुरक्षित मार्ग बताकर जाने दिया। और उसके जाने के बाद, अन्य हाथियों और सुभद्दा के लौटने से पहले ही, वह मर चुका था।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

शिकारी ने तब हाथीदांत को देखा
उस महान प्राणी के जबड़े से,
और अपने शानदार, बेजोड़ पुरस्कार के साथ
वह पूरी तेज़ी से घर की ओर चल पड़ा।
उसके जाने के बाद, हाथियों का झुंड अपने दुश्मन को न पाकर वापस लौट आया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

उनकी मृत्यु से दुखी और भयभीत,
वह झुंड जो घबराकर भागने लगा,
क्रूर शत्रु का कोई निशान न देखकर,
वापस लौटने पर उन्होंने अपने सरदार को बुरी तरह घायल पाया।
और उनके साथ सुभद्दा भी आईं, और वे सब रोते-बिलखते उन्हें पच्चेक बुद्धों के पास ले गए, जो उस महान सत्ता के प्रति अत्यंत मित्रवत थे, और कहा, "महोदय, जिसने आपको जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं, वह विषैले बाण के घाव से मर गया है। आइए और देखिए कि उसका शव कहाँ रखा है।" और पाँच सौ पच्चेक बुद्ध वायु में विचरण करते हुए पवित्र स्थान पर उतरे। उसी क्षण दो युवा हाथियों ने अपने दाँतों से हाथी के राजा के शरीर को उठाकर, उसे पच्चेक बुद्धों को प्रणाम करवाते हुए, एक ऊँची चिता पर रखा और उसे जला दिया। पच्चेक बुद्धों ने पूरी रात श्मशान में शास्त्रों का पाठ किया। आठ हज़ार हाथियों ने आग बुझाने के बाद, पहले स्नान किया और फिर, सुभद्दा के नेतृत्व में, अपने निवास स्थान पर लौट गए।

इस मामले को स्पष्ट करने के लिए गुरु ने कहा:

वे रोए और विलाप किया, ऐसा कहा जाता है।
उसके सिर पर धूल का ढेर लग रहा था,
फिर धीरे-धीरे घर लौटने का सिलसिला शुरू हुआ।
अपनी सदा दयालु रानी के पीछे।
और सोनोत्तरा सात दिनों के भीतर अपने दांतों के साथ बनारस पहुँच गया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

शिकारी सीधे काशी की ओर यात्रा करता है
अपना उज्ज्वल और अद्वितीय पुरस्कार लिए हुए
मेरा मतलब उस महान प्राणी के दांतों से है।
सुनहरी चमक से सभी दिलों को प्रसन्न करते हुए--
और उन्होंने उस शाही महिला से कहा,
"ये रहे उसके दांत: वह जानवर मर चुका है।"
रानी को वे दांत भेंट करते हुए उसने कहा, "महारानी, जिस हाथी से आपने एक छोटी सी गलती पर द्वेष रखा था, उसे मैंने मार डाला है।" रानी रो पड़ीं, "क्या आप मुझे बता रहे हैं कि वह मर गया है?" तब उसने रानी को दांत देते हुए कहा, "निश्चिंत हो जाइए, वह मर गया है: ये रहे उसके दांत।" रानी ने अपने रत्नजड़ित पंखे पर छह अलग-अलग रंगों की किरणों से सजे दांत ग्रहण किए और उन्हें अपनी गोद में रखकर, अपने प्रिय स्वामी के दांतों को निहारने लगीं और सोचने लगीं, "यह व्यक्ति उन दांतों को लेकर आया है जिन्हें उसने उस शुभ हाथी से काटा था जिसे उसने विषैले बाण से मारा था।" और उस महान प्राणी की याद से वह इतने गहरे दुःख से भर उठीं कि वह सहन नहीं कर सकीं, उनका हृदय वहीं टूट गया और उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई।

गुरु ने कहानी को स्पष्ट करने के लिए कहा:

जैसे ही उसने उसके दांत देखे, वह तुरंत ही
वह उसका प्रिय प्राचीन स्वामी था
फिर दुख से उसका दिल तुरंत टूट गया
और वह बेचारी मूर्ख, उसके लिए मर गई।
जब वह, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञानी,
उनकी आंखों के सामने ही उनके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी।
तब इन पवित्र भिक्षुओं ने तुरंत सोचा,
"निश्चित रूप से बुद्ध बिना किसी कारण के नहीं मुस्कुराते।"
"वह जिसे तुम पहले देखा करते थे," उसने कहा।
"पीले वस्त्र पहने एक तपस्वी दासी,
"पहले मैं एक रानी थी," वह रोते हुए बोला।
क्या वह हाथी राजा था जिसकी मृत्यु हुई थी?
"उस नीच ने उन सफेद दांतों को चुरा लिया,"
धरती पर अद्वितीय, अत्यंत उज्ज्वल,
और उन्हें बनारस शहर ले आए।
अब उन्हें देवदत्त के नाम से जाना जाता है।
बुद्ध ने अपने ज्ञान के आधार पर बताया
पुराने समय की यह लंबी कहानी,
अपनी तमाम दुखद विविधताओं के साथ,
हालांकि वह दर्द और दुख से मुक्त था।
बहुत समय पहले का वह हाथी
क्या मैं उस बैंड का राजा था?

और, भाइयों (भिक्षुओं), मैं चाहता हूँ कि आप ऐसा करें।
इस जन्म को ठीक से समझना आवश्यक है।
इन छंदों को बुजुर्गों ने शास्त्र का पाठ करते हुए और सर्वशक्तिमान ईश्वर की स्तुति गाते हुए रिकॉर्ड किया था।

और इस प्रवचन को सुनकर बहुत से लोग प्रथम मार्ग (समाधि) में प्रवेश कर गए, लेकिन बाद में उस बहन ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से संतत्व प्राप्त कर लिया।

फुटनोट:

(1) छद्दंत-जातक

(2) विद्वान छब्बिसना (संस्कृत षडविशना) छह दांत वाले को छब्बन्ना छह रंग का बताते हैं, शायद कहानी के नायक को बुद्ध के साथ अधिक पूर्ण रूप से पहचानने के लिए।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संभव-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-515-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 515
संभव-जातक

"यह नियम," इत्यादि—यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते समय ज्ञान की पूर्णता के विषय में सुनाई थी। इस प्रारंभिक कथा की ओर ले जाने वाली परिस्थितियाँ महाउम्मग्ग जन्म (*1) में वर्णित की जाएँगी।

एक समय की बात है, कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में धनंजय कोरब्य नामक एक राजा का राज्य था। सुचिराता नामक एक ब्राह्मण उनका पुरोहित और सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों का सलाहकार था। राजा ने दान-पुण्य और अन्य अच्छे कार्यों का पालन करते हुए अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया। एक दिन उन्होंने सत्य की सेवा के विषय में एक प्रश्न तैयार किया और ब्राह्मण सुचिराता को बिठाकर उनका उचित सम्मान करते हुए उनसे चार श्लोकों में अपना प्रश्न पूछा:

मैं इस शासन और प्रभुत्व को अस्वीकार करता हूँ।
सुसिराटा, क्योंकि मुझे खुशी होगी
महान बनो और पूरी दुनिया पर राज करो।
मैं केवल सही के मार्ग पर चलता हूँ—गलत से बचता हूँ—
क्योंकि जो कुछ भी अच्छा और सच्चा है
सभी मनुष्यों को राजाओं से ऊपर लक्ष्य रखना चाहिए।
इससे वह हमेशा के लिए दोषमुक्त हो जाएगा,
यहां और भविष्य में, हम दावा कर सकते हैं
देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच एक गौरवशाली नाम।
हे ब्राह्मण, जान लो कि मैं सहर्ष ऐसा करूँगा।
जो कुछ भी अच्छा और सत्य माना जाता है,
इसलिए कृपया बताएं, जब पूछा जाए, तो मुझे बताएं
जो भी अच्छा और सच्चा हो।
यह एक कठिन प्रश्न था, जो बुद्ध के दायरे में आता था। यह प्रश्न किसी को असीम ज्ञान से परिपूर्ण बुद्ध से पूछना चाहिए, और यदि वे न हों तो किसी ऐसे बोधिसत्व से पूछना चाहिए जो असीम ज्ञान का वरदान प्राप्त करना चाहता हो। लेकिन सुचिराता, बोधिसत्व न होने के कारण, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका, और ज्ञान का दिखावा करने के बजाय, उसने निम्नलिखित श्लोक में अपनी अक्षमता स्वीकार की:

विधुर (*2) के अलावा कोई नहीं, हे राजा!
इस अद्भुत बात को बताने की शक्ति रखता है,
हे प्रभु, अच्छा और सच्चा क्या है?
जिसे करने में आपको हमेशा खुशी होगी।
राजा ने उसकी बात सुनकर कहा, "तो जाओ, ब्राह्मण, तुरंत जाओ," और उसे साथ ले जाने के लिए एक उपहार दिया, और उसे विदा करने की हड़बड़ी में उसने यह श्लोक दोहराया:

देखो! सीधे इस सोने के वजन को, मेरे मित्र,
मैं आपके द्वारा विदुर को भेजता हूँ;
उस ज्ञानी व्यक्ति के लिए उपयुक्त उपहार जो सबसे अच्छा प्रदर्शन कर सकता है
मैं उस अच्छाई और सच्चाई को जानना चाहता हूँ।
और इन शब्दों के साथ उन्होंने उसे एक लाख सिक्कों के मूल्य की सोने की एक पट्टिका दी, जिस पर प्रश्न का उत्तर लिखना था, यात्रा के लिए एक रथ, उसकी सुरक्षा के लिए एक सेना और भेंट के रूप में एक उपहार दिया, और उसे तुरंत भेज दिया। इंद्रप्रस्थ नगर से निकलकर, वह सीधे बनारस नहीं गए, बल्कि उन्होंने पहले उन सभी स्थानों का भ्रमण किया जहाँ ऋषि निवास करते थे, और पूरे भारत में प्रश्न का उत्तर देने वाला कोई न पाकर वे धीरे-धीरे बनारस पहुँचे। वहाँ निवास करने के बाद, वे कुछ अनुयायियों के साथ सुबह के भोजन के समय विदुर के घर गए, और अपने आगमन की सूचना देने पर उन्हें अंदर आमंत्रित किया गया और उन्होंने विदुर को अपने घर में नाश्ता करते हुए पाया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने सातवें श्लोक को दोहराया:

तब भारद्वाज (*3) शीघ्रता से सीधे चलने लगे।
वह विदुर की ओर गया और वहाँ उसे अपना मित्र मिला।
घर पर बैठे हैं, और खाने के लिए तैयार हैं।
साधारण भोजन से, उसने अपना सुबह का उपवास तोड़ा।
अब विदुर उनके बचपन के मित्र थे और उन्होंने एक ही गुरु के परिवार में शिक्षा प्राप्त की थी, इसलिए उनके साथ भोजन करने के बाद, जब नाश्ता समाप्त हो गया और सुचिराता आराम से बैठ गए, तो विदुर द्वारा पूछे जाने पर, "मित्र, आप यहाँ क्यों आए हैं?" उन्होंने उन्हें अपने आने का कारण बताया और आठवें श्लोक को दोहराया:

मैं सुप्रसिद्ध कुरु राजा के आदेश पर आया हूँ।
युधिष्ठिल (*4) से आया, और यही उसकी खोज थी,
मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, विदुर, कि आप मुझे बताएं
सत्य और अच्छा, जो निश्चित रूप से हो सकता है।
उस समय ब्राह्मण अनेक लोगों के विचारों को एकत्रित करने के लिए इस खोज में जुट जाता है, मानो वह गंगा की बाढ़ की तरह विचारों का ढेर लगा रहा हो, और समस्या को हल करने का समय ही नहीं बचता। इस प्रकार, उसने नौवें श्लोक को दोहराया:

इतने शक्तिशाली विषय से अभिभूत
क्योंकि यह गंगा की बाढ़ वाली धारा के किनारे स्थित था,
मैं यह नहीं बता सकता कि यह क्या हो सकता है।
तुम मुझसे अच्छाई और सच्चाई की तलाश कर रहे हो।
और ऐसा कहते हुए उन्होंने आगे कहा: "मेरा एक चतुर पुत्र है, जो मुझसे कहीं अधिक बुद्धिमान है: वह तुम्हें सब कुछ स्पष्ट कर देगा। उसके पास जाओ।" और उन्होंने दसवाँ श्लोक दोहराया:

मेरा एक बेटा है, मेरा अपना इकलौता बेटा।
पुरुषों में भद्रकारा के नाम से जाना जाता है;
उससे संपर्क करो, वह तुम्हें सिखाएगा।
आपके लिए सत्य और अच्छाई का क्या अर्थ है?
यह सुनकर सुचिराता विदुर का घर छोड़कर भद्रकारा के निवास स्थान पर गया और उसे अपने लोगों के बीच नाश्ता करते हुए पाया।

मामले को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने ग्यारहवें श्लोक को दोहराया:

तब भारद्वाज ने जल्दी से
वह भद्रकारा के घर चला गया।
जहां दोस्तों के बीच, सभी लोग एकत्रित थे,
युवक आराम से बैठा हुआ पाया गया।
वहाँ पहुँचने पर युवक भद्रकारा ने उनका आतिथ्य सत्कार किया और उन्हें कुर्सी और उपहार भेंट किए। जब वे अपनी जगह पर बैठे, तो उनसे पूछा गया कि वे क्यों आए हैं, तो उन्होंने बारहवाँ श्लोक दोहराया:

मैं सुप्रसिद्ध कुरु राजा के आदेश पर आया हूँ।
युधिष्ठिल से आया था, और यही उसकी खोज थी।
भद्रकारा, मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि मुझे दिखाएँ
अच्छाई और सच्चाई, वे निश्चित रूप से जो भी हों।
तब भद्रकारा ने उससे कहा, "हे महाराज, अभी मैं दूसरे आदमी की पत्नी के साथ षड्यंत्र रच रहा हूँ। मेरा मन बेचैन है, इसलिए मैं आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता, लेकिन मेरे छोटे भाई संजय की बुद्धि मुझसे कहीं अधिक स्पष्ट है। आप उससे पूछिए: वह आपके प्रश्न का उत्तर देगा।" और उसे वहाँ भेजने के लिए उसने दो श्लोक दोहराए:

मैं अच्छा हिरण का मांस छोड़ देता हूँ, अब एक छिपकली का पीछा करूँगा:
तो फिर मुझे अच्छाई और सच्चाई के बारे में कैसे पता चलेगा?
आपको पता ही होगा कि मेरा एक छोटा भाई है।
संजय नाम दिया गया. तो, ब्राह्मण, जाओ
और उसे ढूंढो, वह तुम्हें सिखाएगा।
आपके लिए सत्य और अच्छाई का क्या अर्थ है?
वह तुरंत संजय के घर के लिए रवाना हुआ, जहाँ संजय ने उसका स्वागत किया और जब उससे आने का कारण पूछा गया तो उसने कारण बताया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए गुरु ने दो श्लोक कहे:

तब भारद्वाज ने जल्दी से
संजय के घर की ओर प्रस्थान किया।
जहां दोस्तों के बीच, सभी लोग एकत्रित थे,
युवक आराम से बैठा हुआ पाया गया।
मैं सुप्रसिद्ध कुरु राजा के आदेश पर आया हूँ।
युधिष्ठिल से आया था, और यही उसकी खोज थी।
संजय, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप मुझे दिखाएँ।
अच्छाई और सच्चाई, वे निश्चित रूप से जो भी हों।
लेकिन संजय भी एक षड्यंत्र में लिप्त था और उसने उससे कहा, "महोदय, मैं किसी दूसरे पुरुष की पत्नी का पीछा कर रहा हूँ, और गंगा नदी में उतरकर दूसरी ओर जाता हूँ। शाम और सुबह नदी पार करते समय मैं मृत्यु के मुँह में होता हूँ: इसलिए मेरा मन व्याकुल है, और मैं आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाऊँगा, लेकिन मेरा सात वर्षीय छोटा भाई संभव ज्ञान में मुझसे एक लाख गुना श्रेष्ठ है। वह आपको बताएगा: जाकर उससे पूछिए।"

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने दो छंद दोहराए:

मृत्यु मेरे लिए अपने जबड़े खोल देती है।
सुबह और शाम। मैं आपको कैसे बताऊँ?
सत्य और अच्छाई क्या हैं?
आपको पता ही होगा कि मेरा एक छोटा भाई है।
संभव को बुलाया. तो, ब्राह्मण, जाओ,
और उसे खोजो। वह तुम्हें सिखाएगा।
आपके लिए सत्य और अच्छाई का क्या अर्थ है?

यह सुनकर सुचिराता ने सोचा, "यह प्रश्न दुनिया की सबसे अद्भुत बात होनी चाहिए। मुझे लगता है कि कोई भी इसका उत्तर देने में सक्षम नहीं है," और ऐसा सोचते हुए उन्होंने दो छंद दोहराए:

यह विचित्र चमत्कार मुझे नापसंद करता है,
न पिता, न पुत्र, तीनों में से कोई नहीं।
वह इस रहस्य को सुलझाने का तरीका जानता है।
यदि तुम इस प्रकार असफल हो जाते हो, तो क्या यह नन्हा युवक
क्या आप अच्छाई और सच्चाई के बारे में कुछ जानते हैं?
यह सुनकर संजय ने कहा, "हे प्रभु, युवा संभव को मात्र बालक न समझें। यदि कोई आपके प्रश्न का उत्तर न दे सके, तो जाकर उससे पूछ लें।" और युवक के गुणों का वर्णन करते हुए, उपमाओं के माध्यम से उन्होंने बारह श्लोक दोहराए:

संभवा से प्रश्न न करो और उसकी युवावस्था का तिरस्कार न करो।
 वह अच्छी तरह जानता है और बता भी सकता है।
अच्छाई और सत्य के बारे में।
जैसे ही स्वच्छ चंद्रमा तारों के समूह को फीका कर देता है,
उनकी तुच्छ उपलब्धियाँ उनकी शान में खो गईं।
फिर भी युवा संभव प्रकट होता है
अपनी उम्र से कहीं अधिक ज्ञान में उत्कृष्टता प्राप्त करना;
संभवा से प्रश्न न करो और उसकी युवावस्था का तिरस्कार न करो।
 वह अच्छी तरह जानता है और बता भी सकता है।
अच्छाई और सत्य के बारे में।
अप्रैल का महीना इतना मनमोहक था कि उसने सभी महीनों को पीछे छोड़ दिया।
खिलते फूलों और जंगल की हरियाली के साथ,
फिर भी युवा संभव प्रकट होता है (और पहले जैसा ही)।
गंधमादन की तरह, इसकी बर्फीली ऊँचाई
वन से आच्छादित और दिव्य जड़ी-बूटियों से सुशोभित,
प्रकाश और सुगंध को चारों ओर फैलाते हुए,
कई देवताओं (देवदूतों) के लिए निश्चित रूप से एक शरणस्थल पाया जाता है।
फिर भी युवा लोग...(और पहले जैसे ही)।
किसी दलदल में धधकती हुई शानदार आग की तरह।
ऊंचाइयों को घेरते हुए, अतृप्त होकर, घास खाता है
यह जहां से भी गुजरता है, अपने पीछे एक काला निशान छोड़ जाता है।
या फिर घोर अंधेरी रात में घी से प्रज्वलित लौ की तरह।
सर्वोत्तम लकड़ी पर इसने अपनी भूख मिटाई।
दूर किसी ऊँचाई पर स्पष्ट रूप से चमकता हुआ,
फिर भी युवा लोग...(और पहले जैसे ही)।
बल में बैल, गति में घोड़ा।
अपनी उत्कृष्ट नस्ल का प्रदर्शन करता है।
दूध से भरपूर गाय
हम किसी ऋषि को उसके ज्ञानवर्धक शब्दों से पहचानते हैं।
फिर भी युवा लोग...(और पहले जैसे ही)।
जब संजय संभव की स्तुति कर रहे थे, तब सुचिराता ने सोचा, "मैं उनसे पूछकर ही पता लगाऊंगा," इसलिए उन्होंने पूछा, "आपका छोटा भाई कहाँ है?" फिर उन्होंने खिड़की खोली और हाथ फैलाकर कहा, "आप उस लड़के को देख रहे हैं जिसका रंग सोने जैसा है, जो महल के द्वार के सामने गली में अन्य युवकों के साथ खेल रहा है: वही मेरा छोटा भाई है। उसके पास जाओ और उससे पूछो; वह बुद्ध के समान आकर्षण के साथ तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देगा।" सुचिराता ने उनकी बात सुनकर महल से नीचे उतरकर उस लड़के के पास पहुँच गए, ठीक उसी समय जब वह अपने वस्त्र ढीले ढाले कंधे पर डाले खड़ा था और दोनों हाथों से कुछ मिट्टी उठा रहा था।

गुरु ने इस मामले को समझाने के लिए एक श्लोक दोहराया:

तब भारद्वाज ने जल्दी से
संभवा के घर की ओर प्रस्थान किया।
और वहाँ सार्वजनिक मार्ग पर
वह छोटा लड़का खेलते हुए मिला।
जब उस महान पुरुष ने ब्राह्मण को अपने सामने आकर खड़े होते देखा, तो उन्होंने पूछा, "मित्र, यहाँ क्यों आए हो?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "प्रिय युवक, मैं पूरे भारत में भटक रहा हूँ, और मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो मेरे प्रश्न का उत्तर दे सके, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ।" बालक ने सोचा, "कहते हैं कि एक प्रश्न है जिसका उत्तर पूरे भारत में नहीं मिला है। ये मेरे पास आए हैं। मैं तो ज्ञान में वृद्ध हूँ।" और लज्जित होकर उसने अपने हाथ में पकड़ी मिट्टी गिरा दी, अपने वस्त्र ठीक किए और कहा, "ब्राह्मण, पूछो, मैं तुम्हें बुद्ध के समान धाराप्रवाह उत्तर दूँगा।" और अपने असीम ज्ञान से उन्होंने ब्राह्मण को प्रश्न पूछने के लिए आमंत्रित किया। तब ब्राह्मण ने अपना प्रश्न एक श्लोक के रूप में पूछा।

मैं सुप्रसिद्ध कुरु राजा के आदेश पर आया हूँ।
युधिष्ठिल से आया था, और यही उसकी खोज थी।
संभवा, मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आप मुझे दिखाएँ।
अच्छाई और सच्चाई, वे निश्चित रूप से जो भी हों।
संभवा को मानो आकाश के मध्य में पूर्णिमा का चंद्रमा चमक उठा हो और उसे अपने मन की बात स्पष्ट हो गई। उसने कहा, "तो मेरी बात सुनो," और सत्य की सेवा के विषय में पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने यह श्लोक कहा:

मैं आपको बताऊंगा, महोदय, और पूरी तरह से बताऊंगा।
एक बुद्धिमान व्यक्ति भी ऐसा ही करे,
राजा को अच्छाई और सच्चाई का ज्ञान होना चाहिए।
लेकिन कौन जाने राजा क्या करेगा?
और जब वह सड़क पर खड़े होकर शहद के समान मधुर स्वर में सत्य का उपदेश दे रहे थे, तो वह ध्वनि बनारस शहर में चारों ओर बारह लीग (4.23 किमी) तक फैल गई। तब राजा और उनके सभी वायसराय और अन्य शासक एकत्रित हुए, और महान सत्ता ने समूह के बीच में सत्य का उपदेश देना शुरू किया।

इस श्लोक में प्रश्न का उत्तर देने का वादा करने के बाद, उन्होंने अब सत्य की सेवा के बारे में उत्तर दिया:

राजा सुचिराता को उत्तर देते हुए, घोषणा करो,
"कल और आज कभी भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते।"
हे राजा युधिष्ठिल, मैं आपसे विनती करता हूँ, बुद्धिमान बनिए।
और जो भी अवसर उत्पन्न हो, उसे तुरंत भुनाने के लिए तत्पर रहें।"
सुसिराता, मुझे खुशी होगी अगर आप भी सुझाव दें।
एक ऐसा विचार जिसमें उसका मन लाभप्रद रूप से विश्राम कर सके।
एक राजा को सभी बुरे मार्गों से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए।
और न ही किसी भ्रमित मूर्ख की तरह बुराई का मार्ग अपनाओ।
उसे कभी भी अपनी आत्मा की हानि करने का अपराध नहीं करना चाहिए।
और कभी भी अधर्म के कर्मों में लिप्त मत रहो।
स्वयं कभी किसी बुरे मार्ग में संलग्न न हो।
और न ही कभी किसी भाई को गलत रास्ते पर ले जाया जाए।
इन बिंदुओं का पालन उन सभी को करना चाहिए जो इन्हें सही ढंग से जानते हैं।
जैसे चंद्रमा बढ़ता है, वैसे ही राजा की प्रसिद्धि भी बढ़ती जाती है।
वह अपने दोस्तों के लिए एक चमकता सितारा और अपने परिवार के प्रिय थे।
और जब उसका शरीर कमजोर हो जाएगा, तो वह ऋषि स्वर्ग की ओर अग्रसर होगा।
इस प्रकार, जैसे कोई आकाश में चंद्रमा को उदय करता है, वैसे ही उस महान पुरुष ने बुद्ध के पूर्ण कौशल से ब्राह्मण के प्रश्न का उत्तर दिया। लोग जयजयकार करने लगे, चिल्लाने लगे और तालियाँ बजाने लगे। हजारों लोगों ने अपने वस्त्र लहराते हुए और उंगलियां चटकाते हुए जयकार की आवाजें लगाईं। उन्होंने अपने हाथों में धारण किए हुए गहने फेंक दिए। फेंके गए गहनों का मूल्य लगभग एक करोड़ (10 करोड़) था। बनारस के राजा ने प्रसन्नतावश उनका बहुत आदर किया। सुचिराता ने उन्हें एक हजार वजन सोना भेंट करने के

बाद, सिंदूर से एक स्वर्ण पट्टिका पर प्रश्न का उत्तर लिखा और इंद्रप्रस्थ नगर आकर राजा को सत्य की सेवा का उपदेश दिया। राजा ने धर्म में लीन रहकर स्वर्ग की प्राप्ति की।

पाठ के अंत में गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, न केवल अभी, बल्कि पहले भी तथागत (बुद्ध) प्रश्नों के उत्तर देने में महान थे," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय आनंद राजा धनंजय थे, अनुरुद्ध सुचिराता थे, कश्यप विदुर थे, मोग्गल्याना भद्रकार थे, सारिपुत्र युवक संजय थे, और मैं स्वयं बुद्धिमान संभव था।"

फुटनोट:

(1) जातक, संख्या 546.

(2) विधुरा, बनारस के राजा का पुरोहित था।

(3) भारद्वाज सुचिराता का पारिवारिक नाम है।

(4) कुरु युधिष्ठिर के वंशज थे।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महाकपि-जातक2**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-516-||---->>>> अगला

जातक क्रमांक 516
महाकपी-जातक

"काशी का एक राजा," इत्यादि - यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें देवदत्त द्वारा उन पर पत्थर फेंकने की घटना का वर्णन है। जब भिक्षुओं ने देवदत्त पर बुद्ध को तीरंदाजों से छुरा घोंपने और बाद में उन पर पत्थर फेंकने का आरोप लगाया, तो गुरु ने कहा, "अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी देवदत्त ने मुझ पर पत्थर फेंका था," और इस प्रकार उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त का राज था, काशी के एक गाँव में एक ब्राह्मण किसान ने अपने खेतों की जुताई करने के बाद अपने बैलों को खोल दिया और फावड़े से काम करने लगा। बैल पेड़ों के एक झुंड में पत्तियाँ चरते हुए धीरे-धीरे जंगल में भाग गए। जब किसान को पता चला कि बहुत देर हो चुकी है, तो उसने फावड़ा एक तरफ रख दिया और अपने बैलों को खोजने लगा। उन्हें न पाकर वह व्याकुल हो गया और जंगल में भटकता रहा, यहाँ तक कि हिमालय क्षेत्र में पहुँच गया। वहाँ रास्ता भटककर वह सात दिन तक उपवास करता रहा, लेकिन एक तिन्दुका वृक्ष देखकर वह उस पर चढ़कर फल खाने लगा। पेड़ से फिसलकर वह साठ भुजाओं की दूरी पर एक भयानक खाई में गिर गया, जहाँ उसने दस दिन बिताए। उस समय बोधिसत्व बंदर के रूप में रह रहे थे और जंगली फल खाते हुए उनकी नज़र उस व्यक्ति पर पड़ी। उन्होंने पत्थर से अभ्यास करने के बाद उसे बाहर निकाल लिया। जब बंदर सो रहा था, तब उस आदमी ने पत्थर से उसका सिर फोड़ दिया। भगवान को जब इस बात का पता चला, तो वे उछलकर पेड़ की एक शाखा पर बैठ गए और बोले, "अरे! तुम ज़मीन पर चलो; मैं तुम्हें पेड़ की चोटी से रास्ता दिखा देता हूँ और फिर चला जाता हूँ।" इस तरह उन्होंने उस आदमी को जंगल से बचाया, उसे सही रास्ते पर पहुँचाया और फिर खुद पहाड़ी इलाके में गायब हो गए। उस आदमी ने भगवान के खिलाफ पाप किया था, इसलिए उसे कुष्ठ रोग हो गया और इस दुनिया में भी वह प्रेत (भूत) के रूप में इंसानी रूप में दिखाई देता रहा। सात साल तक वह दर्द से तड़पता रहा और भटकते-भटकते बनारस के मिगासिरा पार्क में पहुँच गया। वहाँ उसने केले का पत्ता बिछाकर लेट गया, अपने कष्टों से आधा पागल सा हो गया था। उसी समय बनारस का राजा पार्क में आया और घूमते हुए उसने उस आदमी को देखा और उससे पूछा, "तुम कौन हो और तुमने ऐसा क्या किया है कि तुम्हें यह कष्ट झेलना पड़ रहा है?" और उसने राजा को पूरी कहानी विस्तार से सुनाई।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

कहते हैं कि काशी का एक राजा, जिसने कभी महान बनारस पर अपना प्रभुत्व जमाया था, अपने दरबारी मित्रों के साथ, मिगासिरा जाने वाले रास्ते से पास आया।

वहाँ राजा ने एक ब्राह्मण को देखा, वह चलता-फिरता कंकाल था। उसकी त्वचा कुष्ठ रोग के खून से सफेद थी और टेढ़ी-मेढ़ी आबनूस की लकड़ी की तरह खुरदरी थी (*1)।

इस अत्यंत पीड़ित, दुर्भाग्यशाली प्राणी की दयनीय स्थिति देखकर मैं स्तब्ध रह गया।

"हाय! बेचारा!" वह चिल्लाया, "बताओ।"
राक्षसों के बीच तुम्हारा क्या नाम है?
तुम्हारे हाथ और पैर बर्फ की तरह सफेद हैं।
मुझे लगता है तुम्हारा सिर और भी ज्यादा सफेद हो गया है।
आपके शरीर पर कुष्ठ रोग के धब्बे बढ़ गए हैं,
बीमारी ने आपको अपना निशाना बना लिया है।
"तुम्हारी पीठ एक कतार में लगे तकुओं जैसी है।"
एक लंबी असमान वक्र रेखा दिखाई दी;
तुम्हारे जोड़ काले गांठों जैसे हैं; मुझे लगता है,
आपके जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था।
"तुम कहाँ से आए हो, इतने थके-हारे?"
मात्र हड्डियों का ढांचा, एक दुखी और लाचार इंसान।
तेज धूप की गर्मी से पीड़ित,
प्यास और भूख से पीड़ा में व्याकुल?
"शरीर इस तरह क्षतिग्रस्त है, यह एक भयानक दृश्य है।"
प्रकाश की ओर देखने के भी लगभग अयोग्य।
तुम्हारी माँ—नहीं, वो नहीं।
वह अपने बेचारे बेटे को देखना चाहती थी।
"आपने कौन सा पाप किया था, मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ?"
या आपने गैरकानूनी रूप से किसकी हत्या की?
मुझे यह जानकर खुशी होगी कि अपराध क्या है।
क्या इसी वजह से तुम इस पीड़ादायक अवस्था में पहुँच गए?
तब ब्राह्मण ने कहा:

मैं आपको बताऊंगा, महोदय, और सच-सच बताऊंगा।
एक अच्छे इंसान को यही करना चाहिए:
जो कभी झूठ नहीं बोलता
इस संसार में बुद्धिमानों द्वारा इसकी प्रशंसा की जाती है।
एक बार मैं एक सुनसान जंगल में अपने रास्ते पर चल पड़ा,
मैं अपनी उन गायों को ढूंढ रहा था जो देर रात भटक गई थीं;
जंगल के दुर्गम रास्तों से गुज़रते हुए, एक उपयुक्त घर की ओर
मैं जंगली हाथी के लिए, बिना किसी परवाह के घूमता रहता हूँ।
इस विशाल वन्य जीवन के भूलभुलैया में खो गया,
प्यास और भूख से पीड़ित होकर पीड़ादायक कष्ट सहना पड़ रहा है।
मैं सात लंबे दिनों तक जंगल में भटकता रहा।
जहां खूंखार बाघ अपने क्रूर बच्चों का पालन-पोषण करता है।
मैं सबसे भयानक जहर भी खुशी-खुशी खा लेता।
तभी अचानक मेरी नजर एक सुंदर वृक्ष पर पड़ी;
एक खड़ी चट्टान के ऊपर से वह झूलता हुआ नीचे गिर गया।

और उसकी सभी शाखाओं से सुगंधित फल लटक रहे थे।
ठंडी हवा के स्पर्श से जो कुछ भी गिर गया था
मैंने बड़ी लालसा से खाया और खूब आनंद लिया।
फिर भी संतुष्ट न होकर, मैं पेड़ पर चढ़ गया।
मुझे लगता है, "इस तरह से पूर्ण तृप्ति मिलती है।"
मैंने इससे पहले कभी इतने पके फल नहीं चखे थे।
और अधिक इकट्ठा करने के लिए अपना हाथ फैलाते हुए,
जिस शाखा पर मेरा शरीर टिका हुआ था, वह टूट गई।
मानो लकड़हारे के प्रहार से बिल्कुल अलग हो गया हो।
टूटी हुई डाल को सिर के बल पकड़े मैं लुढ़कता हुआ चला गया,
मेरी तीव्र गति से नीचे उतरने की राह में मुझे रोकने वाला कोई नहीं था।
चट्टानी खाई के किनारे से नीचे,
अथाह खाई से कोई बच नहीं सकता।
नीचे स्थित कुंड में पानी की गहराई
मुझे बेरहमी से कुचलकर मरने से बचा लिया।
तो वहाँ, बेचारा अभागा प्राणी, बिना किसी प्रकाश की किरण के।
मुझे खुश करने की उम्मीद में, मैं दस लंबी रातें लेटा रहा।
अंततः एक बंदर आया—उसकी पूंछ लंबी थी।
और उसने किसी चट्टानी गुफा में अपना घर बना लिया।
और जैसे ही वह एक शाखा से दूसरी शाखा पर कदम रखता गया, वह क्रूर व्यक्ति
क्या आपने कभी उस खूबसूरत फल को तोड़कर खाया है?
लेकिन जब उसने मेरा दुबला-पतला और थका हुआ रूप देखा,
मेरी पीड़ाओं पर दया से द्रवित होकर वह रो पड़ा।
हाय! बेचारा, जिसे मैं वहाँ पड़ा हुआ देख रहा हूँ।
इस प्रकार पीड़ा और निराशा से अभिभूत होकर,
चाहे तुम मनुष्य हो या जिन्न, बताओ तुम कौन हो।
तब मैंने पूरे आदर के साथ उत्तर दिया;
मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जिसका कोई बचाव नहीं है और जो बर्बाद हो चुका है।
लेकिन मैं यह कहता हूँ, "सभी आशीर्वाद आप पर बरसें,"
अगर आप मुझे बचाने का कोई रास्ता ढूंढ सकें।
बंदर ऊपर की ऊंचाई पर कदम रख रहा है
उसने अपनी ताकत साबित करने के लिए एक भारी पत्थर उठाया।
और जब अभ्यास से वह पूर्ण रूप से परिपक्व हो गया,
उस महानुभाव ने इस प्रकार अपना उद्देश्य प्रकट किया।
"आप मेरी पीठ पर चढ़ जाइए, सज्जन, और मुझे फेंक दीजिए।"
अपनी बाहों से मेरी गर्दन को पकड़ लो और मुझे कसकर थामे रहो;
तब मैं पूरी तेजी से तुम्हें पहुंचा दूंगा
तुम्हारी कैद की पत्थर की दीवारों से।'
मैंने प्रसन्नतापूर्वक सुना, मुझे अच्छी तरह याद था।
महान वानर राजा की सलाहें,
और, उसकी पीठ पर चढ़कर, मैंने अपनी बाहें फैला दीं।
उसने उस बुद्धिमान प्राणी की गर्दन के चारों ओर घेरा बनाकर उसे कसकर पकड़ लिया।
वह बंदर इतना बहादुर और बलवान था—
हालांकि वह प्रयास से थक चुका था,
पथरीले रास्ते से पीछे हटने के बाद मुझे जल्द ही बहुत अच्छा महसूस हुआ।
और मुझे बाहर निकालने के बाद, नायक रो पड़ा,
मैं थक गया हूँ: कृपया मेरे साथ रहकर मेरी रक्षा करें, महोदय।
मैं जल्द ही शांतिपूर्ण नींद में सो जाऊंगा।

शेर और बाघ, तेंदुआ और भालू,
अगर वे कभी मुझे अचानक पकड़ लें,
इससे मेरी जान ही चली जाएगी। देखना तुम्हारी जिम्मेदारी होगी।
मेरी नज़र उस पर थी, तभी उसने थोड़ी देर आराम किया।
मेरे मन में एक अप्रिय विचार पनप रहा था।
"बंदर और हिरण जैसे जानवर खाने में अच्छे होते हैं।"
अगर मैं उसे मार दूं और मेरी भूख शांत हो जाए तो क्या होगा?
अगर उस जानवर को मार दिया जाए तो उसका मांस स्वादिष्ट होगा।
"जब मेरी इच्छा पूरी हो जाएगी, तो मैं यहाँ नहीं रहूँगा।"
लेकिन कई दिनों तक अच्छी तरह से व्यवस्था की गई थी।
मैं इस जंगल से बाहर निकलने का रास्ता ढूंढ लूंगा।
मैंने पत्थर से उसकी खोपड़ी लगभग तोड़ ही दी थी।
लेकिन एक लंगड़े हाथ ने कमजोर प्रहार किया।
बंदर झटपट एक पेड़ पर चढ़ गया।
और खून से सने सभी लोग मुझे देख रहे थे
दूर से, नम आंखों से, अस्वीकृति के भाव से।
"ईश्वर आपका भला करे, कृपया ऐसा व्यवहार न करें, महोदय।"
अन्यथा, मेरा मानना है कि आपका भाग्य यही होगा।
क्या इससे अन्य सभी लोग ऐसे कृत्यों से हतोत्साहित होंगे?
"हाय! कितनी शर्म की बात है। यह कैसा प्रतिफल है!"
आपको उस भयानक खाई से बचाने के लिए धन्यवाद!
"मौत से बचाए जाने के बावजूद तुमने विश्वासघाती भूमिका निभाई।"
और दुष्टों ने बुरे हृदय से योजना बनाई है।
"दुष्ट प्राणी, सावधान रहो अन्यथा तुम्हें घोर पीड़ा सहनी पड़ेगी।"
बुरे कर्मों का फल ही मृत्यु का कारण बनेगा।
जबकि इसका फल बांस के पेड़ को नष्ट कर देता है (*2)।
मुझे तुम पर भरोसा नहीं है, क्योंकि तुम मुझे बीमार कर दोगे।
आगे अच्छे से चलो ताकि मैं तुम्हें देख सकूँ।
"एक हिंसक जानवर से बचकर, आप फिर से स्वस्थ हो सकते हैं।"
मनुष्यों के निवास स्थान: वह पथ जो समतल रूप से फैला हुआ है
अपनी आंखों के सामने, खुशी-खुशी अनुसरण करो।"
यह सुनकर बंदर ने अपने आंसू पोंछे और भाग गया।
एक पहाड़ी झील तक गया और अपने सिर को धोया।
खून के धब्बे से—हाय! यह मेरे द्वारा बहाया गया था—
वहाँ भी, उसे असहनीय पीड़ा के साथ शाप दिया गया,
मैं अपने पीड़ा से व्याकुल शरीर को घसीटते हुए, अपनी प्यास बुझाने के लिए निकला।
लेकिन जब मैं उस रक्तरंजित झील के पास आया,
लाल रंग की बाढ़ आग के एक विशाल पिंड की तरह प्रतीत हो रही थी।
उससे गिरी हर बूंद जो नमी पैदा करती थी
मेरे शरीर में सीधे घाव बन गया,
आकार और रंग में यह विल्वा फल के फटे हुए टुकड़े जैसा दिखता है।
घावों से निकलने वाले द्रव से दुर्गंध आती है।
और मैं जहाँ कहीं भी खुशी से रहना चाहूँगा
शहर हो या गांव, सभी लोग हड़बड़ी में इधर-उधर भाग रहे हैं।
दुर्गंध से बिखरे हुए, जबकि वे लहराते हैं
उनकी लाठियाँ और पत्थर, और "तुम बहुत पास मत आना"
'हे बेचारे, हमारे लिए,' सभी पुरुष और महिलाएं पुकारते हैं।
सात लंबे वर्षों तक मैंने यही पीड़ा सहन की है;

हर व्यक्ति का अंजाम उसके कर्मों के अनुसार ही निकला।
आप सभी का भला हो, जिन्हें मैं यहाँ देख रहा हूँ:
अपने दोस्तों को धोखा मत दो। वह कितना नीच है!
विश्वासघात करना मित्र के विरुद्ध पाप है।
इस धरती पर वे सभी लोग जिन्होंने मित्रों के प्रति विश्वासघात किया है,
कोढ़ी होने के नाते उन्हें अपने पाप पर सदा पछतावा करना पड़ेगा।
और जब शरीर विफल हो जाता है, तो नरक में उनका पुनर्जन्म होता है।
और जब वह व्यक्ति राजा से बात कर रहा था, तभी अचानक धरती खुल गई और उसी क्षण वह व्यक्ति गायब हो गया और नरक में पुनर्जन्म लिया। जब वह व्यक्ति धरती में समा गया, तो राजा पार्क से निकलकर शहर में प्रवेश कर गया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए कहा, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि पहले भी देवदत्त ने मुझ पर पत्थर फेंका था," और उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय वह कपटी मित्र देवदत्त था, और मैं स्वयं वानर-राजा था।"

फुटनोट:

(1) बौहिनिया वेरीगेटा.

(2) फल लगने के बाद बांस सूख जाता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **डकारक्खास-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-517-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 517
दकारक्खास-जातक

यह सब महाउम्मग्गा जन्म में निर्धारित किया जाएगा।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **पण्डारा-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-518-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 518
पांडारा-जातक

"कोई भी व्यक्ति जो झूठ बोलता है," इत्यादि — यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें बताया गया था कि कैसे देवदत्त ने झूठ बोला और धरती फटकर उसे निगल गई। उस समय जब भिक्षु देवदत्त पर दोषारोपण कर रहे थे, तब गुरु ने कहा, "भाइयों, केवल आज ही नहीं, बल्कि पुराने समय में भी देवदत्त ने झूठ बोला था और धरती में समा गया था," और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस में ब्रह्मदत्त राजा थे, पाँच सौ व्यापारी एक जहाज़ पर सवार होकर रवाना हुए। सातवें दिन जब वे तट से ओझल हो गए, तो उनका जहाज़ समुद्र के बीचोंबीच टूट गया और एक को छोड़कर बाकी सभी मछलियों का भोजन बन गए। वह एक व्यक्ति हवा के सहारे करम्बिया बंदरगाह पर पहुँचा और नग्न और निर्धन अवस्था में वहाँ पहुँचकर भीख माँगने लगा। लोगों ने सोचा, "देखो, यह तो एक तपस्वी है, जो थोड़े में ही सुखी और संतुष्ट है," और उन्होंने उसका भरपूर आतिथ्य सत्कार किया। लेकिन उसने कहा, "मेरे पास जीवनयापन के लिए पर्याप्त है," और जब उन्होंने उसे अंतर्वस्त्र और अंतर्वस्त्र दिए, तो उसने उन्हें भी नहीं लिया। लोगों ने कहा, "कोई भी तपस्वी इससे अधिक संतोष की स्थिति में नहीं पहुँच सकता," और उससे अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने उसके लिए एक आश्रम बनवाया, और वह करम्बिया तपस्वी के नाम से जाना जाने लगा। जब वह यहाँ रह रहे थे, तब उन्हें बहुत सम्मान और लाभ प्राप्त हुआ। एक नागराज और एक गरुड़राज उनसे मिलने आए, नागराज का नाम पंडारा था। एक दिन गरुड़राज उस तपस्वी के पास आए और प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे प्रभु, हमारे लोग जब नागों पर आक्रमण करते हैं, तो उनमें से बहुत से मारे जाते हैं। हमें नागों को पकड़ने का सही तरीका नहीं पता। कहा जाता है कि इसमें कोई रहस्य है। शायद आप चापलूसी करके उनसे यह रहस्य जान सकें।" तपस्वी ने कहा, "ठीक है।" जब गरुड़राज विदा लेकर चले गए, तो नागराज तुरंत आए और आदरपूर्वक प्रणाम करके बैठ गए। उन्होंने उनसे पूछा, "हे नागराज, गरुड़ कहते हैं कि आपको पकड़ने में उनमें से बहुत से मारे जाते हैं। आप पर आक्रमण करते समय वे आपको सुरक्षित रूप से कैसे पकड़ सकते हैं?" “महाराज,” उसने उत्तर दिया, “यह हमारा रहस्य है; यदि मैं इसे बता दूँ, तो मेरे पूरे परिवार का विनाश हो जाएगा।” “तुम्हें क्या संदेह है कि मैं किसी और को बता दूँगा? मैं किसी को नहीं बताऊँगा। मैं तो बस अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए पूछ रहा हूँ। तुम निश्चिंत होकर मुझे बता सकते हो।” नागराज ने उसे बताने का वादा किया और विदा हो गया। अगले दिन तपस्वी ने फिर उससे पूछा, और तब भी उसने उसे नहीं बताया। लेकिन तीसरे दिन जब नागराज आकर बैठ गया, तो तपस्वी ने कहा, “आज तीसरा दिन है जब मैंने तुमसे पूछा था। तुम मुझे क्यों नहीं बता रहे हो?” “मुझे डर है, महाराज, कि आप किसी और को बता देंगे।” “मैं किसी प्राणी से एक शब्द भी नहीं कहूँगा: मुझे निश्चिंत होकर बता दो।” फिर सांप ने उससे वादा लिया कि वह किसी को नहीं बताएगा, और कहा, "महोदय, हम बहुत बड़े-बड़े पत्थर निगलकर अपना वजन बढ़ा लेते हैं और लेट जाते हैं, और जब गरुड़ आते हैं, तो हम अपना मुंह चौड़ा खोलकर अपने दांत दिखाते हैं और उन पर टूट पड़ते हैं। वे आते हैं और हमें सिर से पकड़ लेते हैं, और जब वे हमें भारी वजन होने के बावजूद जमीन से उठाने की कोशिश करते हैं, तो हमारे मुंह से पानी बह निकलता है, और वे उसी के बीच में गिरकर मर जाते हैं। इस तरह कई गरुड़ मारे जाते हैं। जब वे हम पर हमला करते हैं,आखिर वे हमें सिर से क्यों पकड़ते हैं? अगर वे मूर्ख प्राणी हमें पूंछ से पकड़कर सिर नीचे की ओर झुका दें, तो वे हमें निगले हुए पत्थरों को उगलने पर मजबूर कर सकते हैं, और इस तरह हमें हल्का बनाकर अपने साथ ले जा सकते हैं।” इस प्रकार सर्प ने उस दुष्ट को अपना रहस्य बता दिया। फिर, जब सर्प चला गया, तो गरुड़ राजा आए और करंबिया तपस्वी को प्रणाम करते हुए पूछा, “अच्छा! महाराज, क्या आपने सर्प राजा से उनका रहस्य जान लिया है?” “जी महाराज,” उन्होंने कहा और उन्हें सब कुछ वैसे ही बताया जैसा उन्हें बताया गया था। यह सुनकर गरुड़ ने कहा, “सर्प राजा ने बहुत बड़ी गलती की है। उन्हें किसी दूसरे को अपने परिवार को नष्ट करने का तरीका नहीं बताना चाहिए था।” "आज मुझे सबसे पहले गरुड़ (*1) वायु उत्पन्न करके उसे पकड़ना होगा।" अतः वायु उत्पन्न करके उसने नागराज पंडारा को पूंछ से पकड़ लिया और उसका सिर नीचे की ओर झुका दिया; और इस प्रकार उसके द्वारा निगले गए पत्थरों को उगलवाकर वह उसे लेकर हवा में उड़ गया। पंडारा, जब हवा में सिर नीचे की ओर लटका हुआ था, अत्यंत शोक करते हुए रोया, "मैंने अपने ऊपर दुःख लाद लिया है," और उसने ये पंक्तियाँ दोहराईं:

वह व्यक्ति जो अपने गुप्त विचार को प्रकट होने देता है,
बोलने में अनियमितता, अविवेकपूर्ण व्यवहार की प्रवृत्ति,
    बेचारा मूर्ख, तुरंत ही भय से कांपने लगा।
जैसे मैं, नागराज, एक पक्षी द्वारा पराजित हो गया।
वह व्यक्ति जो अपने कुकर्म में विश्वासघात कर सकता था
यह सोचकर कि उसे दिन के उजाले से छिप जाना चाहिए,
    अपनी उतावली बातों से वह भय से अभिभूत हो जाता है।
जैसे ही एक राजा-सांप इस पक्षी का शिकार बन जाता है।
अपने अंतर्मन के विचार किसी भी साथी के साथ साझा न करें।
सबसे अच्छे दोस्त भी कई बार सबसे मूर्ख होते हैं।
और यदि आप बहुत बुद्धिमान हैं, तो विश्वासघात से सावधान रहें।
मैंने उस पर भरोसा किया, अफसोस! क्योंकि वह ऐसा नहीं था
एक पवित्र व्यक्ति, कठोर तपस्या करने वाला?
    मैंने अपना राज़ खोल दिया; काम हो गया।
और अब मैं अत्यंत दुख के कारण रो रहा हूँ।
उस दुष्ट ने मेरा विश्वास जीत लिया।

और मैं उससे कोई भी रहस्य छिपा नहीं सकता था:
उसी से वह खतरा उत्पन्न हुआ है जिसका मुझे डर था।
और अब मैं अत्यंत दुःख से रो रहा हूँ।
अपने मित्र को पूर्णतः निष्ठावान मानते हुए
और भय से प्रेरित होकर, या अपने प्रबल प्रेम से प्रेरित होकर,
किसी नीच व्यक्ति के सामने उसका रहस्य उजागर हो जाता है
और वह पराजित हो गया, बेचारा मूर्ख, अब कभी उठ नहीं पाएगा।
जो कोई भी बुरी संगति में प्रचार करता है
वह गुप्त विचार जो अभी भी छिपा रहना चाहिए,
पुरुषों में इसे विषैले सांप के समान माना जाता है:
"ऐसे व्यक्ति से कृपया दूर रहें," वे चिल्लाते हैं।
सुंदर स्त्रियाँ, रेशमी वस्त्र और चंदन की लकड़ी,
फूलों की मालाएँ और इत्र, यहाँ तक कि पेय और भोजन भी,
हाँ, सारी इच्छाएँ—काश तुम ही होतीं, हे पक्षी,
हमारी सहायता के लिए आओ—हम तुमसे बच निकलेंगे।
इस प्रकार पांडारका, सिर नीचे की ओर करके हवा में लटके हुए, आठ श्लोकों में अपना विलाप व्यक्त किया। गरुड़ ने उनके विलाप की ध्वनि सुनकर उन्हें फटकारा और कहा, "हे नागराज, तपस्वी को अपना रहस्य बताने के बाद अब तुम किस कारण विलाप कर रहे हो?" और उन्होंने यह श्लोक कहा:

हम तीनों प्राणियों में से, जो यहाँ रहते हैं, कृपया नाम बताइए
जिस पर दोष सिद्ध होना उचित है।
न तो पुजारी, न ही पक्षी, बल्कि तुम्हारा मूर्खतापूर्ण कार्य।
हे सर्प, तुझे शर्मिंदगी की इस गहराई तक ले आया है।
यह सुनकर पांडारका ने एक और श्लोक दोहराया:

मुझे लगता है कि पादरी मेरा मित्र होगा।
कठोर तपस्या करने वाला एक पवित्र व्यक्ति:
मैंने अपना रहस्य उजागर कर दिया: काम हो चुका है।
और अब मैं अत्यंत दुख के कारण रो रहा हूँ।
तब गरुड़ ने चार श्लोक दोहराए:

इस संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों को मरना ही है;
फिर भी, विजडम के तौर-तरीके उसके बच्चों को उचित ठहराते हैं:
ज्ञान, न्याय, आत्मसंयम और सत्य के द्वारा
अंततः एक व्यक्ति अपने उच्च उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है।
माता-पिता परिवार के अन्य सभी सदस्यों से ऊपर होते हैं।
कोई तीसरा व्यक्ति नहीं है जो हमें समान प्रेम दिखाए।
अपने गुप्त विचार का खुलासा उनसे भी मत करना।
अन्यथा शायद वे देशद्रोही साबित हो जाएं।
माता-पिता और परिवार के सभी सदस्य,
सभी सहयोगी और साथी मित्रवत हों:
अपने गुप्त विचार उनमें से किसी को भी मत सौंपो।
वरना बाद में आपको उनके विश्वासघात पर पछतावा होगा।
पत्नी चाहे युवा हो, अच्छी हो और सुंदर हो,
अपने दोस्तों के समूह और बच्चों के प्यार को साझा कर सकते हैं:
अपने गुप्त विचार भी उसे मत बताना।
या फिर आपको उसके छल से सावधान रहना चाहिए।
फिर इन छंदों का अनुसरण करें:

उसका रहस्य किसी को भी प्रकट नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे खजाने की तरह सुरक्षित रखना चाहिए:
किसी गुप्त बात का खुलासा करना कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार नहीं करेगा।
बुद्धिमान व्यक्ति किसी स्त्री या शत्रु से अपने रहस्य कभी प्रकट नहीं करते;
इच्छाओं के गुलामों पर भरोसा मत करो; वे आवेग के वश में रहने वाले प्राणी हैं।
जो कोई भी अपने गुप्त विचार को किसी कम बुद्धिमान व्यक्ति को प्रकट करता है,
उसे अपने भरोसे के टूटने का डर है और वह उसी की दया पर निर्भर है।
वे सभी उस गुप्त बात को जानते हैं जिसे आपको छिपा कर रखना चाहिए।
इससे आपकी मानसिक शांति को खतरा हो सकता है; उस गुप्त बात को किसी को न बताएं।
दिन के समय अकेले में ही उस रहस्य को नाम देने का साहस करो,
लेकिन आधी रात को उस रहस्य को प्रकट करने का साहस मत करना;
क्योंकि आस-पास ही ऐसे लोग खड़े हैं जो धोखा देने के लिए तैयार हैं।
उन्होंने शायद एक छोटी सी बात भी सुन ली हो: इसलिए मेरा अनुरोध है कि उन पर भरोसा न करें।
ये पाँच श्लोक 'उम्मागगा जन्म में पाँच ऋषियों की समस्या' में प्रकाशित होंगे।

फिर इन छंदों का अनुसरण करें:

जैसे कोई विशाल शहर चारों ओर से बाड़ से घिरा हो
लोहे की बनी खाई के साथ, यह लंबे समय से चुनौती देता रहा है।
परीलोक में शत्रु के प्रवेश के सभी रास्ते,
तो वे लोग भी ऐसे ही हैं जो अपनी सलाह छुपाते हैं।
जो जल्दबाजी में बोले गए शब्दों से रहस्यों का कोई सुराग नहीं देते,
लेकिन जो स्वयं के प्रति समर्पित रहते हैं, वे सच्चे होते हैं।
उन सभी से शत्रु दूरी बनाए रखते हैं।
जैसे घातक सांपों का पीछा करने पर लोग दूर भाग जाते हैं।
जब गरुड़ ने इस प्रकार सत्य का उद्‌घोष कर दिया, तब पांडारक ने कहा:

एक मुंडा हुआ सिर और नग्न तपस्वी अपने घर से निकल गया।
और भीख मांगते हुए वे देश भर में विचरण करते थे।
अफसोस! मैंने उसे अपना रहस्य बता दिया।
और सीधे सुख और सद्‌गुण से गिर पड़ा।
एक पुजारी को किस प्रकार का आचरण अपनाना चाहिए?
वह किन प्रतिज्ञाओं का पालन करता है और किन दोषों से बचता है?
वह अपने इस जुनूनी पाप से खुद को कैसे मुक्त करे?
और अंत में एक स्वर्गीय महल में विजय?
गरुड़ ने कहा:

धैर्य, आत्मसंयम और सहनशीलता से
मानहानि और क्रोध त्यागने से,
इस प्रकार एक पुजारी सभी पापों से मुक्ति दिला सकता है।
और अंत में एक स्वर्गीय महल में विजय प्राप्त हुई।
गरुड़राज द्वारा सत्य का इस प्रकार वर्णन सुनकर पांडारक ने अपने जीवन की भीख मांगी और यह श्लोक दोहराया:

एक माँ अपने नन्हे बेटे को निहार रही है
पवित्र आनंद से उसके शरीर के हर अंग में रोमांच उत्पन्न हो रहा है।
इसलिए, हे पक्षियों के राजा, मुझे दे दो
वह दया जो माताएं अपने बच्चों के प्रति दिखाती हैं।
तब गरुड़ ने उसे जीवनदान देते हुए एक और श्लोक दोहराया:

हे सर्प, आज मैं तुझे मृत्यु से मुक्त करता हूँ;

बच्चों की केवल तीन ही किस्में हैं।
शिष्य, दत्तक पुत्र और वास्तविक पुत्र:
इस बात पर प्रसन्न होइए कि आप निश्चित रूप से उनमें से एक हैं।
इतना कहकर वह हवा से नीचे उतरा और सांप को जमीन पर रख दिया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने दो छंद दोहराए:

ऐसा कहते हुए पक्षी ने तुरंत अपने दुश्मन को छोड़ दिया।
और धीरे से उसे नीचे धरती पर ले गए;
आज ही मुक्त हो जाओ, जाओ, खतरे से सुरक्षित रहो
पानी में हो या ज़मीन पर, मैं तुम्हारी अच्छी तरह रक्षा करूँगा।
बीमारियों के इलाज के लिए लोगों को लुभाने वाले एक कुशल परजीवी के रूप में,
या फिर प्यासे लोगों के लिए एक ठंडा टैंक।
जैसे घर कड़ाके की ठंड से आश्रय देता है,
इसलिए, जब तुम भटक जाओ, तो मैं तुम्हारे लिए एक शरणस्थल साबित होऊंगा।"
और "चले जाओ" कहकर उसने उसे जाने दिया। और साँप नागों के निवास में विलीन हो गया। परन्तु पक्षी गरुड़ों के निवास पर लौटकर बोला, "साँप पांडारक ने शपथ लेकर मेरा विश्वास जीत लिया है और मैंने उसे मुक्त कर दिया है। अब मैं उसकी परीक्षा लूँगा, यह देखने के लिए कि उसके मन में मेरे प्रति क्या भाव हैं।" और नागों के निवास पर जाकर उसने गरुड़ वायु प्रज्वलित की। उसे देखकर नागराज ने सोचा कि गरुड़राज उसे पकड़ने आया होगा, इसलिए उसने एक हजार फुट (6 फुट) तक फैला हुआ रूप धारण कर लिया और पत्थर और रेत निगलकर स्वयं को भारी बनाकर लेट गया, अपनी पूंछ को नीचे दबाए और अपने सिर पर फन उठाकर, मानो गरुड़राज को काटने का निश्चय कर रहा हो। यह देखकर गरुड़ ने एक और श्लोक दोहराया:

हे सर्प, तुमने अपने पुराने शत्रु से सुलह कर ली;
लेकिन अब तुम अपने दांत दिखा रहे हो। यह डर तुम्हें कहां से आया?
यह सुनकर नागराज ने तीन छंद दोहराए:

कभी भी दुश्मन पर शक न करें, और न ही अपने दोस्त पर वफादार होने का भरोसा करें;
सुरक्षा भय को जन्म देती है, जो आपको जड़ से खत्म कर देती है।
क्या! उस आदमी पर भरोसा करो जिससे बहुत पहले झगड़ा हुआ था!
नहीं, सावधान रहो। कोई भी अपने शत्रु से प्रेम नहीं कर सकता।
सभी में विश्वास जगाओ, लेकिन किसी पर भी भरोसा मत करो।
आपको स्वयं पर संदेह नहीं है, संदेह करने की प्रवृत्ति न रखें।
जो वास्तव में बुद्धिमान है, उसे अपनी हर नस को तनाव में डाल देना चाहिए।
ताकि उसका असली स्वभाव कभी दूसरों के सामने स्पष्ट रूप से प्रकट न हो सके।
इस प्रकार उन्होंने आपस में बातचीत की और सुलह और मित्रता स्थापित करके वे साथ-साथ तपस्वी के आश्रम में चले गए।

मास्टर ने बात स्पष्ट करने के लिए कहा,

अब उन दोनों दिव्य और आकर्षक पात्रों को यह सब दिखाई देता है।
पवित्रता की हवा में सांस लेना;
वे समान जुए के नीचे अच्छी तरह से मेल खाने वाले घोड़ों की तरह दौड़े।
उस संत पुरुष के जीवन की खोज करना।
इस विषय में गुरु ने एक और श्लोक कहा:

तब वह सीधा राजा-सांप तपस्वी के पास गया।
और इस प्रकार पंडारका ने अपने शत्रु को संबोधित किया,
"जान लो कि आज, सारे खतरे टल गए हैं, मैं मुक्त हूँ।"
लेकिन यह तुम्हारे मेरे प्रति प्रेम के कारण नहीं है।
फिर तपस्वी ने एक और श्लोक दोहराया:

उस पक्षी-राजा से मैं हार्दिक कहता हूँ,
मैंने तुम्हारे लिए पहले से कहीं अधिक प्रेम धारण किया।
उस शाही पक्षी के प्रति स्नेह से प्रेरित होकर,
मैंने जानबूझकर, न कि किसी कुकर्म के कारण, गलती की।
यह सुनकर नागराज ने दो छंद दोहराए:

वह व्यक्ति जो इस दुनिया और अगली दुनिया को देखता है,
वह कभी भी प्रेम या घृणा से नाराज नहीं होता।
आप आत्मसंयम के आवरण के नीचे खुशी-खुशी छिप जाएंगे
लेकिन पवित्र वस्त्रों से ढके हुए गैरकानूनी कृत्य उन कृत्यों का खंडन करते थे।
तुम, जो देखने में नेक लगते हो, असल में नीचता से कलंकित हो।
और, तपस्वी वस्त्र धारण किए हुए, वे अप्रतिबंधित हैं;
स्वभाव से ही घृणित और नीच विचारों से युक्त,
आप हर प्रकार के पाप कर्मों में पारंगत हैं।
अतः उसे फटकारने के लिए उसने यह श्लोक कहा, जिसमें उसका अपमान किया गया था:

मुखबिर, गद्दार, जो हत्या कर देगा
   एक कपटी मित्र, तेरा सिर धड़ से अलग हो जाए
सत्य के अपने इस कार्य के द्वारा, मैं निवेदन करता हूँ,
   टुकड़ों में, सभी सात भागों में।
नागराज की आँखों के सामने ही तपस्वी का सिर सात टुकड़ों में फट गया, और जिस स्थान पर वह बैठा था, वहाँ की भूमि फट गई। पृथ्वी में विलीन होकर वह अविची नरक में पुनर्जन्म लिया, और नागराज और गरुड़राज दोनों अपने-अपने निवास स्थान लौट गए।

गुरु ने यह स्पष्ट करने के लिए कि वे पृथ्वी में समा चुके हैं, अंतिम श्लोक को दोहराया:

इसलिए मैं कहता हूं, दोस्तों को कभी विश्वासघात नहीं करना चाहिए;
झूठे दोस्त से भी बुरा वह आदमी होता है जिसे देखना ही न पड़े।
धरती में दबा हुआ वह विषैला जीव पड़ा है।
और नागराज के कहने पर तपस्वी की मृत्यु हो जाती है।

गुरु ने यहाँ अपना प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि प्राचीन काल में भी देवदत्त ने झूठ बोला था और पृथ्वी में समा गया था," और उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय तपस्वी देवदत्त थे, नागराज सारिपुत्र थे और गरुड़राज मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) गरुड़ के पंखों से चलने वाली हवा। नागानंद: "गरुड़ प्रतिदिन एक सर्प को नरक से पकड़कर निगल जाता था, जबकि उसके पंखों की हवा से समुद्र ऊपर से नीचे तक फट जाता था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **संबुला-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-519-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 519
संबुला-जातक

"एक ही स्थान पर बंधी हुई," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए रानी मल्लिका के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कथा का विस्तृत वर्णन कुम्मसपिंड (*1) जन्म ग्रंथ में मिलता है। तथागत (बुद्ध) को खट्टी दलिया के तीन भाग दान करने के फलस्वरूप, वह उसी दिन प्रधान रानी बन गईं। उनके पास वफादार सेवक थे, पाँच स्त्री गुणों से परिपूर्ण थीं, ज्ञान से परिपूर्ण थीं और बुद्ध की शिष्या थीं। उन्होंने स्वयं को एक समर्पित पत्नी के रूप में सिद्ध किया। उनकी भक्ति पूरे नगर में प्रसिद्ध थी। एक दिन सत्य के हॉल में इस बात पर चर्चा शुरू हुई कि रानी मल्लिका कितनी वफादार और समर्पित पत्नी थीं। गुरु वहाँ आकर भिक्षुओं से पूछने लगे कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने कहा, "भाइयों, वह न केवल आज, बल्कि पहले भी एक समर्पित पत्नी थीं।" ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, राजा ब्रह्मदत्त का एक पुत्र था जिसका नाम सोत्थिसेना था। जब वह वयस्क हुआ तो राजा ने उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसकी मुख्य पत्नी, सांबुला, अत्यंत सुंदर और इतनी तेजस्वी थी कि वह किसी छायादार स्थान में जलती हुई दीपक की लौ के समान प्रतीत होती थी। समय बीतने पर सोत्थिसेना को कुष्ठ रोग हो गया और चिकित्सक उसे ठीक करने में असफल रहे। जब घावों से मवाद निकलने लगा, तो वह इतना क्रोधित हो गया कि अवसाद में उसने कहा, "मेरा राज्य मेरे लिए किस काम का? मैं जंगल में बिना किसी मित्र के मर जाऊंगा।" और राजा को यह बताने के लिए कहकर वह अपने हरम को छोड़कर चला गया। सांबुला ने उसे रोकने के कई प्रयास किए, लेकिन वह वापस नहीं लौटी और यह कहते हुए, "मैं जंगल में आपकी रक्षा करूंगी, महाराज," उसके साथ शहर से चली गई। जंगल में प्रवेश करके उसने पत्तों की एक कुटिया बनाई और एक छायादार और अच्छी तरह से सिंचित स्थान पर रहने लगा, जहाँ जंगली फल बहुतायत में थे। तो फिर राजसी पत्नी ने उसकी रक्षा कैसे की? वह सुबह जल्दी उठी, उसकी कुटिया साफ की, उसके लिए पीने का पानी रखा, उसे दांत साफ करने के लिए लकड़ी और मुंह धोने के लिए पानी दिया, और जब उसका मुंह साफ हो गया, तो उसने कई औषधीय जड़ी-बूटियां पीसकर उसके घावों पर पट्टी बांधी और उसे स्वादिष्ट फल खाने को दिए; जब उसने कुल्ला और हाथ धो लिए, तो उसने उसे प्रणाम किया और कहा, "हे स्वामी, अच्छे कामों में तत्पर रहें।" फिर एक टोकरी, एक फावड़ा और एक हुक लेकर वह जंगल में जंगली फल लाने गई, और उन्हें लाकर एक तरफ रख दिया, और एक घड़े में पानी भरकर, उसने कई तरह के पाउडर और मिट्टी से सोत्थिसेना को धोया और फिर उसे जंगली फल दिए। जब उसने भोजन समाप्त कर लिया, तो वह उसके लिए सुगंधित जल लाई और स्वयं फल खा लिए। फिर उसने एक तख्ती पर चादर बिछाई, और जब वह उस पर लेटा, तो उसने उसके पैर धोए, और उसके सिर, पीठ और पैरों की पट्टी और सफाई करने के बाद, वह आकर पलंग के किनारे लेट गई। इस प्रकार उसने अपने स्वामी की देखभाल की। एक दिन, जब वह जंगल से फल ला रही थी, तो उसे एक पहाड़ी गुफा दिखाई दी। उसने अपने सिर से टोकरी नीचे रखी और गुफा के किनारे पर खड़ी हो गई। नीचे उतरकर उसने अपने पूरे शरीर पर पीला रंग मल लिया और स्नान किया। स्नान करने के बाद, वह फिर से ऊपर चढ़ी और अपने छाल के वस्त्र पहनकर तालाब के किनारे खड़ी हो गई। उसके शरीर से निकलने वाली चमक से पूरा जंगल जगमगा उठा। उसी क्षण, अपने शिकार की तलाश में जा रहा एक जिन्न उसे देख लिया और उस पर मोहित होकर उसने कुछ पंक्तियाँ दोहराईं:

वहीं पर बंधा हुआ और भय से कांपता हुआ,
इस पथरीली गुफा में कौन खड़ा है?
हे पतली कमर वाली स्त्री, कृपया हमें बताइए।
आपके रिश्तेदार कौन-कौन हैं और आपका नाम क्या है?
आप कौन हैं, हे सदा सुंदर और तेजस्वी महिला?
और तुम्हारा जन्म ऐसा हो कि तुम उसे प्रकाश से भर सको।
क्या यह वनक्षेत्र हर शिकारी जानवर का उपयुक्त घर है?
हे राक्षस, मैं तुम्हें उचित सम्मान अर्पित करता हूँ।
उसकी बात सुनकर उसने तीन पंक्तियों में उत्तर दिया:

यह सर्वविदित है कि राजकुमार सोथिसेना काशी सिंहासन के उत्तराधिकारी हैं।
और मैं, इस राजकुमार की विवाहित पत्नी, जिसे सांबुला के नाम से जाना जाता है।
विदेह का राजपुत्र बीमार है और जंगल में पड़ा हुआ है;
मैं अकेले ही उसकी देखभाल करता हूँ, दर्द से पागल हो चुका हूँ, वरना वह निश्चित रूप से मर जाएगा।
जंगल में मुझे हिरण के मांस का यह स्वादिष्ट टुकड़ा मिला।
और इसे आज मेरे स्वामी के पास ले जाओ, जो भोजन की कमी से कमजोर हो गए हैं।
इसके बाद गोब्लिन और महिला द्वारा बारी-बारी से बोले गए छंद आते हैं:

हे संबुला, तुम्हारा यह बीमार स्वामी तुम्हारे किस काम का है?
उसे पत्नी नहीं, बल्कि नर्स बनने की चाहत है। मैं तुम्हारा पति बनूंगा।
दुःख से व्याकुल, एक दुखी अभागी, मुझमें सुंदरता का कोई अंश नहीं है।
यदि आप खुशी-खुशी दुल्हन बनना चाहते हैं, तो किसी और खूबसूरत महिला को आकर्षित करें।
मेरे पास चार सौ पत्नियां हैं जो पहाड़ी पर स्थित मेरे घर की शोभा बढ़ाती हैं;
हे देवी, उन पर शासन करने की कृपा कीजिए और उनकी प्रत्येक प्रिय इच्छा पूरी कीजिए।
सुनहरी रोशनी से जगमगाती सुंदर कन्या, जो कुछ भी तुम्हें प्रिय हो
यह सब कुछ मेरा देने का अधिकार है, इसलिए आओ और मेरे साथ आनंदमय जीवन व्यतीत करो।
लेकिन यदि मुझे दुल्हन के रूप में स्वीकार करने से इनकार किया जाता है, तो तुम मेरे वैध शिकार हो।
और आज व्रत तोड़ने के लिए यह भोजन के रूप में अच्छा रहेगा।
(सात बालों की चोटी वाले उस भयानक राक्षस ने, जो खौफ पैदा कर रहा था, असहाय सांबुला को भटकता हुआ पाया और उसे बांह से पकड़ लिया।)

इस प्रकार उस क्रूर राक्षस, उसके वासनापूर्ण, निर्दयी शत्रु द्वारा बंदी बनाए जाने पर भी, वह अपने अनुपस्थित स्वामी के लिए शोक मनाती रही और उसके कष्टों को कभी नहीं भूली।

मुझे इस बात का कोई दुख नहीं है कि मैं इस घृणित राक्षस का शिकार बनूँ।
लेकिन ऐसा न हो कि मेरे प्रिय स्वामी के प्रति मेरा प्रेम मुझसे विमुख हो जाए।
यहां कोई देवता (देवदूत) नहीं हैं, बल्कि वे बहुत दूर भाग गए हैं।
और न ही मुझे दुनिया के कोई रक्षक दिखाई देते हैं।
आक्रोश की दिशा को नियंत्रित करने और उसे दबाने के लिए
यौन अश्लीलता के सभी अनियंत्रित कृत्य।
तब उसके पुण्य के प्रभाव से सक्का (इंद्र) का निवास स्थान कांप उठा, और उनके पीले संगमरमर के सिंहासन से ताप निकलने लगा। सक्का (इंद्र) ने अंतर्दृष्टि से कारण का पता लगाया, और अपना वज्र लेकर पूरी गति से आए, और राक्षस के ऊपर खड़े होकर एक और श्लोक बोला:

महिलाओं में सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त,
वह बुद्धिमान और परिपूर्ण है, लौ की तरह उज्ज्वल है।
यदि तुम उसे खाओगे, तो तुम्हारी खोपड़ी फट जाएगी।
हे दानव, सात टुकड़ों में विभाजित हो जाओ।
इसलिए उसे नुकसान मत पहुंचाओ; उसे स्वतंत्र छोड़ दो।
वह एक समर्पित पत्नी है।
यह सुनकर राक्षस ने संबुला को छोड़ दिया। इंद्र ने सोचा, "यह राक्षस फिर वही गलती करेगा," इसलिए उन्होंने उसे दिव्य जंजीरों से बांधकर वहाँ से तीसरे पर्वत पर छोड़ दिया ताकि वह वापस न लौट सके; और राजकुमारी को गंभीरता से समझाकर अपने निवास स्थान पर चले गए। सूर्यास्त के बाद, चंद्रमा के प्रकाश में राजकुमारी आश्रम पहुँचीं।

इस विषय को समझाने के लिए गुरु ने आठ श्लोक दोहराए:

राक्षस से बचकर वह अपनी झोपड़ी की ओर भागी।
लौटते समय जब पक्षी अपने बच्चों को मृत पाता है,
या फिर, अपने बछड़े से वंचित गाय, खाली बाड़े में शोक मनाती है।
इस प्रकार राजसी प्रसिद्धि प्राप्त सांबुला विलाप करने लगा।
जंगल में अकेला, बेबस और हताश।
हे पुरोहितों, ब्राह्मणों और धर्मात्मा ऋषियों, सभी को नमस्कार!
मैं अकेला पड़ गया हूँ, इसलिए शरण लेने के लिए तुम्हारे पास आता हूँ।
हे शेरों और गिरे हुए बाघों, जय हो!
और अन्य जानवर जो जंगल में निवास करते हैं।
हे घास, जड़ी-बूटियों और रेंगने वाले पौधों, आपका स्वागत है!
हरे-भरे जंगलों और ऊंचे पहाड़ों को नमस्कार!

आकाश में तारों से सजी रात्रि को नमस्कार!
गहरे नीले रंग के कमल की तरह गहरा।
गंगा की जय हो: वह नदियों की जननी है।
लोगों के बीच प्रसिद्ध भागीरथी के नाम से विख्यात।
हे हिमवत (हिमालय), समस्त पर्वतों के राजा!
विशाल चट्टानों का ढेर, जो हर चीज को ढक रहा है।
जब वह रो रही थी, तो सोत्थिसेना ने सोचा, "वह कुछ ज़्यादा ही रो रही है: मुझे समझ नहीं आ रहा कि इसका क्या मतलब है। अगर वह मेरे प्यार के कारण ऐसा कर रही है, तो उसका दिल टूट गया होगा। मैं उसकी परीक्षा लूँगा।" और वह जाकर अपनी कुटिया के द्वार पर बैठ गया। वह, अभी भी शोक मना रही थी, द्वार पर आई और विनम्रता से प्रणाम करते हुए बोली, "मेरे स्वामी कहाँ थे?" "देवी," उसने कहा, "अन्य दिनों में आप इस समय कभी नहीं आतीं; आज तो आप बहुत देर से आई हैं," और प्रश्नवाचक रूप में उसने यह पंक्ति कही:

महोदया, आज इतनी देर क्यों हो गई?
किस प्रिय प्रेमी के कारण यह देरी हुई?
तब उसने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी, मैं अपने फल लेकर लौट रही थी तभी मैंने एक जिन्न को देखा, और वह मुझ पर मोहित हो गया, और मेरा हाथ पकड़कर चिल्लाया: "यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी, तो मैं तुम्हें जीवित खा जाऊंगा।" और उस क्षण, केवल आपके लिए दुखी होकर, मैंने यह विलाप किया; और उसने इस छंद को दोहराया:

अपने शत्रु द्वारा बंदी बनाए जाने पर, मैं पीड़ा से व्याकुल होकर उससे ये शब्द कहे;
मुझे इस बात का कोई दुख नहीं है कि मैं एक घृणित राक्षस का शिकार बन जाऊं।
लेकिन ऐसा न हो कि मेरे प्रिय स्वामी के प्रति मेरा प्रेम मुझसे विमुख हो जाए।
फिर उसने उसे बाकी की कहानी सुनाते हुए कहा, "जब इस जिन्न ने मुझे पकड़ लिया और मैं उसे छुड़ाने में असमर्थ थी, तो मैंने ऐसा काम किया जिससे देवदूत का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हो। तब सक्का (इंद्र) वज्र लिए हुए आए और हवा में खड़े होकर उन्होंने जिन्न को धमकाया और मुझे छुड़वा दिया। फिर उन्होंने उसे जादुई जंजीरों से बांधकर यहाँ से तीसरी पर्वत श्रृंखला पर रख दिया और चले गए। इस प्रकार सक्का (इंद्र) के द्वारा मेरी मुक्ति हुई।" यह सुनकर सोत्थिसेना ने उत्तर दिया, "अच्छा, हे देवी, ऐसा हो सकता है। स्त्रियों के साथ सत्य का पता लगाना कठिन है। हिमालय क्षेत्र में अनेक वनवासी, तपस्वी और जादूगर रहते हैं। कौन आपकी बात पर विश्वास करेगा?" और ऐसा कहकर उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

तुम बदमाश लोग हमेशा की तरह बहुत चालाक हो।
ऐसे लोगों के बीच सत्य का मिलना एक बड़ी दुर्लभता है।
कामवासना के रास्ते इतने पेचीदा हैं कि समझ ही नहीं आता।
समुद्र में मछली के तैरने के तरीके की तरह।
उनकी बातें सुनकर उसने कहा, "हे मेरे स्वामी, भले ही आप मुझ पर विश्वास न करें, लेकिन मेरे सत्य के बल पर मैं आपको ठीक कर दूंगी।" अतः उसने एक घड़ा पानी भरकर और सत्य का कार्य करते हुए, पानी उनके सिर पर डाला और यह श्लोक बोला:

सत्य ही मेरा आश्रय हो,
मैं तुमसे बढ़कर किसी और पुरुष से प्यार नहीं करती।
और सत्य के इस कार्य के द्वारा, मैं निवेदन करता हूँ,
आज ही आपकी बीमारी ठीक हो जाए।
जब उसने सत्य का यह कार्य किया, तो सोत्थिसेना पर जल छिड़कते ही कुष्ठ रोग तुरंत दूर हो गया, मानो किसी तेजाब में तांबे की जंग धुल गई हो। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद, वे जंगल से निकलकर बनारस पहुँचे और उद्यान में प्रवेश किया। राजा को उनके आगमन की सूचना मिली, तो वह उद्यान में गया और वहीं सोत्थिसेना पर राजसी छत्र उठाने का आदेश दिया तथा सांबुला को औपचारिक जल छिड़काव द्वारा मुख्य रानी के पद पर आसीन करने का आदेश दिया। फिर उन्हें नगर में ले जाकर, राजा ने स्वयं तपस्वी जीवन अपना लिया और उद्यान में रहने लगा, परन्तु वह अपना भोजन महल में ही करता रहा। सोत्थिसेना ने सांबुला को केवल मुख्य पत्नी का पद दिया, परन्तु उसका कोई सम्मान नहीं किया और राजा ने उसकी उपेक्षा करते हुए अन्य स्त्रियों के साथ भोग-विलास किया। अपनी प्रतिद्वंद्वियों से ईर्ष्या के कारण सांबुला दुबली-पतली और पीली पड़ गई, और उसकी नसें उभरने लगीं। एक दिन जब उसके ससुर, जो एक तपस्वी थे, भोजन करने आए, तो अपने दुःख को दूर करने के लिए वह उनके पास भोजन समाप्त होने के बाद आई और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गई। उसे इस उदास अवस्था में देखकर उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

सात सौ हाथी दिन-रात
वे आपकी रक्षा कर रहे हैं, लड़ाई के लिए पूरी तरह तैयार हैं।
सैकड़ों तीरंदाज आपको नुकसान से बचा रहे हैं;
आपको भयभीत करने वाले शत्रु कहाँ से आते हैं?
उनकी बातें सुनकर उसने कहा, "हे स्वामी, आपका पुत्र अब मेरे लिए पहले जैसा नहीं रहा"; और उसने पाँच छंद दोहराए:

उसकी प्रेमिकाएं कमल के समान सुंदर हैं।
उनकी हंस जैसी आवाज उनकी गहरी भावनाओं को जगा देती है।
और जब वह उनकी लयबद्ध धुन सुनता है,
अब उसके स्नेह में मेरा कोई प्रभुत्व नहीं है।
मानव रूप में, लेकिन दिव्य अप्सराओं के समान,
सोने के आभूषणों से सजे हुए वे चमकते हैं।
उत्तम रूप में वे कुलीन लड़कियाँ लेटी हैं
आकर्षक मुद्रा में, शाही निगाहों को मोहित करने के लिए।
अगर मुझे एक बार फिर जंगल में घूमने का मौका मिले,
अपने दैनिक भोजन के लिए एक हिस्सा इकट्ठा करने के लिए,
मुझे एक बार फिर पति का प्यार वापस पाना होगा।
और वनक्षेत्रों में शासन करने के लिए दरबार छोड़ दिया।
एक महिला को सबसे कोमल वस्त्रों में भी सजाया जा सकता है।
और भरपूर भोजन से धन्य हो।
चाहे वह कितनी भी सुंदर क्यों न हो, फिर भी यदि वह एक अवांछित पत्नी है,
बेहतर होगा कि रस्सी बांधकर उसकी जान ले ली जाए।
हाँ, बेचारा पुआल के बिस्तर पर लेटा हुआ है (*2),
यदि वह अपने पति की नजरों में कृपापात्र हो जाए,
एक ऐसी खुशी का अनुभव करता है जिसका उसे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ।
अन्य सभी चीजों में समृद्ध, लेकिन प्रेम में गरीब।
जब उसने तपस्वी को अपनी इस प्रकार दुर्बलता का कारण समझाया, तो उसने राजा को बुलाया और कहा, "प्रिय सोत्थिसेना, जब आप कुष्ठ रोग से क्षत-विक्षत होकर जंगल में छिपे थे, तब वह आपके साथ गई और आपकी जरूरतों को पूरा किया, और सत्य की शक्ति से आपके रोग को ठीक किया, और अब जब वह आपके सिंहासन पर विराजमान होने का माध्यम बनी है, तब भी आप उसके बैठने और उठने का स्थान तक नहीं जानते; यह आपका बहुत बड़ा अपराध है। इस प्रकार मित्र के साथ विश्वासघात करना पाप है," और अपने पुत्र को डांटते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:

एक प्यार करने वाली पत्नी मिलना हमेशा मुश्किल होता है।
जैसे वह पुरुष जो अपनी पत्नी के प्रति दयालु होता है:
आपकी पत्नी भी गुणी और प्रेममयी थीं;
हे राजा, क्या आप सांबुला के प्रति वफादार रहेंगे?
अपने पुत्र को इस प्रकार फटकार लगाने के बाद, वह उठा और चला गया। पिता के जाने के बाद, राजा ने सांबुला को बुलाया और कहा, "मेरे प्रिय, मैंने तुम्हें इतने समय तक जो अन्याय किया है, उसके लिए क्षमा कर दो। अब से मैं तुम्हें समस्त शक्ति प्रदान करता हूँ," और उसने अंतिम श्लोक दोहराया:

यदि आप अपार धन-दौलत से धन्य हों,
ईर्ष्या से पीड़ित होकर भी वे मुरझा जाते हैं।
मैं और ये लड़कियाँ, तुम्हारी रचनाएँ हैं।
मैं आपके आदेश का पालन करूंगा।
तब से वे दोनों सुखपूर्वक साथ रहने लगे और दान-पुण्य और अच्छे कर्मों का जीवन व्यतीत करने के बाद अपने कर्मों के फल के अनुसार इस दुनिया से विदा हो गए। तपस्वी ने समाधि की अवस्था में प्रवेश करने के बाद ब्रह्मा के स्वर्ग में देहांत प्राप्त किया।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त करते हुए कहा, "न केवल अभी, बल्कि पहले भी मल्लिका एक समर्पित पत्नी थीं," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय संबुल मल्लिका थीं, सोत्थिसेना कोसल के राजा थे, और तपस्वी पिता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 415

(2) कटादुतिया पढ़ना.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **गंडतिन्दु-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-520-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 520
गंडातिन्दु-जातक

"उत्साह ही मार्ग है," इत्यादि। यह कहानी जेतवन मठ में रहने वाले गुरु ने एक राजा को दी गई सलाह के बारे में सुनाई थी। राजा को दी गई यह सलाह पहले ही पूरी तरह से बताई जा चुकी है (*1)।

बहुत समय पहले उत्तरी पंचालों के एक नगर, कामपिल्ला राज्य में, पंचाल नामक एक राजा था, जो दुष्ट और निर्दयी आचरण में लिप्त होकर अपने राज्य पर अधर्मी शासन करता था। उसके सभी मंत्री भी अधर्मी हो गए। करों से पीड़ित होकर उसकी प्रजा अपने परिवार और पत्नियों को लेकर जंगली पशुओं की तरह जंगलों में भटकने लगी। जहाँ कभी गाँव हुआ करते थे, वहाँ अब कोई गाँव नहीं था, और लोग राजा के आदमियों के भय से दिन में अपने घरों में रहने का साहस नहीं करते थे, बल्कि काँटेदार शाखाओं से बाड़ लगाकर दिन निकलते ही जंगल में गायब हो जाते थे। दिन में राजा के आदमी उन्हें लूट लेते थे और रात में लुटेरे। उस समय बोधिसत्व नगर के बाहर एक तिन्दुका वृक्ष के देवता के रूप में अवतरित हुए। वे प्रतिवर्ष राजा से एक हजार सिक्कों के बराबर भेंट प्राप्त करते थे। उन्होंने सोचा, "यह राजा तो निकम्मा है; इसका पूरा राज्य बर्बाद हो रहा है; मेरे सिवा कोई नहीं है जो राजा को सही राह पर ला सके। यह तो मेरा समर्थक है और प्रतिवर्ष मुझे एक हजार सिक्कों की भेंट देता है। मैं इसे नसीहत और सलाह दूंगा।" अतः रात में वे राजकक्ष में प्रवेश कर गए और पलंग के सिरहाने पर खड़े होकर हवा में स्थिर हो गए, जिससे एक तेज प्रकाश निकल रहा था। राजा ने जब उन्हें उगते सूरज की तरह चमकते देखा, तो उनसे पूछा कि वे कौन हैं और किसलिए आए हैं। उनकी बात सुनकर उन्होंने कहा, "महाराज, मैं तिन्दुका वृक्ष का देवता हूं और आपको अच्छी सलाह देने आया हूं।" राजा ने कहा, "आप मुझे क्या सलाह देंगे?" “महाराज,” उस महान सत्ता ने कहा, “आप अपने शासन में लापरवाह हैं, और इसलिए आपका सारा राज्य बर्बाद हो रहा है, मानो भाड़े के सैनिकों का शिकार हो। जो राजा अपने शासन में लापरवाह होते हैं, वे अपने राज्य के स्वामी नहीं होते, बल्कि इस संसार में उनका विनाश होता है और परलोक में उनका पुनर्जन्म नरक में होता है, और जब वे लापरवाह होते हैं तो उनके राज्य के भीतर और बाहर दोनों ही लापरवाह हो जाते हैं, इसलिए एक राजा को अत्यंत सावधान रहना चाहिए,” और ऐसा कहते हुए, नैतिक शिक्षा देने के लिए, उन्होंने इन छंदों को दोहराया:

ऐसा कहा जाता है कि उत्साह निर्वाण का मार्ग है, जबकि आलस्य मृत्यु की ओर ले जाता है।
सतर्क आत्माएं कभी नहीं मरतीं, जबकि लापरवाह लोग तो मानो मरे हुए के समान ही होते हैं।
अहंकार से आलस्य उत्पन्न होता है, और आलस्य से हानि और पतन होता है।
पतन पाप का जनक है। हे महान राजा, समस्त आलस्य को त्याग दो।
आलस्य के कारण साहसी आत्माओं ने कई बार धन और राज्य से वंचित रह गए।
और इस प्रकार ग्राम स्वामी एकांतवासी के समान हो सकते हैं, जो बेघर और बेहद दुखी होते हैं।
जब कोई राजकुमार अपने शासनकाल में लापरवाह हो जाता है, अपने नाम और प्रसिद्धि के प्रति असत्य व्यवहार करता है,
यदि राजकुमार की सारी संपत्ति अचानक गायब हो जाए, तो इसे उसके लिए शर्म की बात माना जाता है।
हे राजा, आप समय से पहले ही शिथिल हो गए हैं, आप अपने सही मार्ग से भटक गए हैं।
आपका वह राज्य जो प्राचीन काल में इतना समृद्ध था, अब लुटेरों के हाथों में चला गया।

आपके राज्य का कोई पुत्र उत्तराधिकारी नहीं होगा, चाहे उसमें सोने और अनाज का खजाना ही क्यों न हो।
आपका राज्य बिगाड़ने वाले का शिकार बन जाता है और आपकी सारी संपत्ति कट जाती है।
वह राजकुमार जिसका राज्य, उसके भंडार और धन सहित कई बार छीन लिया जाता है,
उनके मित्र, परिचित और परिवार के सदस्य अब उन्हें पहले की तरह सम्मान नहीं देते।
उसके अंगरक्षक और उसके सारथी, उसके घोड़े और उसके साहसी पैदल सैनिक,
जब वे उसे सभी बेदखल लोगों में से एक के रूप में देखते हैं, तो वे उसे पहले की तरह महत्व नहीं देते।
अव्यवस्थित जीवन का मूर्ख व्यक्ति बुरी सलाह से गुमराह हो जाता है।
मूर्ख की प्रसिद्धि शीघ्र ही छिन जाती है, जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली उतार फेंकता है।
लेकिन जो व्यक्ति सुबह जल्दी उठकर, बिना थके और व्यवस्थित तरीके से काम करता है,
उसके बैल और गाय तेजी से फल-फूल रहे हैं, और उसकी संपत्ति लगातार बढ़ रही है।
हे महान राजा, सदा अपने कान खुले रखो और लोगों की बातें सुनो।
सत्य को देखकर और सुनकर, आप सौभाग्य की प्राप्ति कर सकते हैं।
इस प्रकार महान सत्ता ने राजा को ग्यारह छंदों में संबोधित किया और कहा, "जाओ, बिना विलंब किए अपने राज्य की रक्षा करो, उसे नष्ट मत करो," और फिर अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान किया। राजा ने उनकी बातें सुनीं और अत्यंत द्रवित होकर अगले दिन अपना राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया और अपने पुजारी के साथ सुबह-सुबह पूर्वी द्वार से शहर छोड़कर एक फर्लांग की दूरी पर चला गया। वहाँ गाँव के एक निवासी, एक बूढ़े व्यक्ति ने जंगल से काँटेदार टहनियाँ लाकर अपने घर के चारों ओर लगा दीं और दरवाजा बंद कर लिया, और अपनी पत्नी और बच्चों के साथ जंगल में चला गया। शाम को जब राजा के आदमी चले गए, तो वह अपने घर लौटा और दरवाजे पर ही उसके पैर में एक काँटा चुभ गया। वह पालथी मारकर बैठा और काँटा निकालते हुए, उसने राजा को निम्नलिखित छंद में शाप दिया:

लड़ाई में तीर लगने से घायल हो गया,
  इसलिए पंचाल शोक मनाए।
आज मुझे शोक करने का कारण है,
  इस प्रकार कांटे से घायल हो गया।
राजा पर यह अभिशाप बोधिसत्व की शक्ति से उत्पन्न हुआ था, और बोधिसत्व द्वारा आवेशित होकर ही उसने राजा को शाप दिया था। इसी दृष्टि से उसके इस कार्य को समझा जाना चाहिए। अब इसी समय राजा और उसका पुरोहित भेस बदलकर उसके समक्ष उपस्थित थे। पुरोहित ने उसके वचन सुनकर एक और श्लोक कहा:

आप वृद्ध हैं, मेरे सज्जन, और आपकी दृष्टि कमजोर हो गई है।
  चीजों को ठीक से समझने के लिए, मैं शपथ लेता हूँ;
जहां तक राजा ब्रह्मदत्त का सवाल है, उन्हें इससे क्या लेना-देना है?
  आपके पैर में कांटा चुभ गया है
यह सुनकर बूढ़े व्यक्ति ने तीन छंद दोहराए:

मुझे जो पीड़ा हो रही है, वह निश्चित रूप से ब्रह्मदत्त के कारण ही है।
जिस प्रकार निहत्थे लोगों को अक्सर उनके उत्पीड़कों द्वारा मार डाला जाता है।
रात में हम चोरों का शिकार बन जाते हैं, दिन में साहूकारों का।
जब दुष्ट राजाओं का शासन होता है, तब उस क्षेत्र में अनैतिक लोगों की संख्या चरम पर पहुंच जाती है।
इस प्रकार के भय से व्याकुल होकर लोग जंगल की ओर भाग जाते हैं।
और उनकी आजीविका के चारों ओर कांटे बिखेर दें, उनकी सुरक्षा के लिए।
यह सुनकर राजा ने अपने पुजारी से कहा, "गुरुजी, बूढ़े ने सच कहा है: यह हमारी गलती है। आइए, हम लौटकर राज्य पर विधिपूर्वक शासन करें।" तब बोधिसत्व ने पुजारी के शरीर में प्रवेश करके उसके सामने खड़े होकर कहा, "महाराज, आइए हम इस मामले की जांच करें।" और उस गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए उन्होंने एक बूढ़ी औरत की बातें सुनीं। कहा जाता है कि वह एक गरीब औरत थी, जिसकी दो वयस्क बेटियाँ थीं, जिन्हें वह जंगल में जाने नहीं देती थी। वह स्वयं लकड़ियाँ और पेड़ों के पत्ते लाती थी और अपनी बेटियों को खिलाती थी। एक दिन वह पत्ते इकट्ठा करने के लिए एक झाड़ी पर चढ़ी और गिरकर ज़मीन पर लुढ़क गई, और उसने राजा को मृत्युदंड देते हुए शाप दिया और यह श्लोक कहा:

ओह! ब्रह्मदत्त की मृत्यु कब होगी, वह तो बहुत लंबे समय तक शासन करेगा!
हमारी बेटियां अविवाहित रहती हैं और पतियों के लिए व्यर्थ ही आहें भरती हैं?

तब उसकी जाँच कर रहे पुजारी ने यह श्लोक कहा:

हे दुष्ट, तेरे ये शब्द भी दुष्टतापूर्ण और निरर्थक हैं।
राजा अपने राज्य में प्रत्येक कन्या के लिए पति कहाँ से लाएगा?
यह सुनकर बूढ़ी औरत ने दो पंक्तियाँ दोहराईं:

मेरे ये शब्द बुरे नहीं हैं, न ही व्यर्थ बोले गए हैं।
जब तक तुम्हारे निहत्थे लोगों को अत्याचारियों द्वारा मारा जाता रहेगा।
रात में हम चोरों का शिकार बन जाते हैं, दिन में साहूकारों का।
जब दुष्ट राजाओं का शासन होता है, तब उस क्षेत्र में कामुक लोगों की संख्या चरम सीमा पर पहुंच जाती है।
जब हालात खराब होते हैं, तो बेचारी नौकरानियां उदास हो जाती हैं, क्योंकि उनके पास पति नहीं होते।
उसकी बातें सुनकर उन्होंने सोचा, "वह बिल्कुल सही बात कह रही है," और आगे बढ़ते हुए उन्होंने एक किसान की बात सुनी। कहते हैं कि जब वह हल चला रहा था, तो हल के फाल से चोट लगने से उसका बैल, जिसका नाम सालिया था, गिर पड़ा, और उसके मालिक ने राजा को शाप दिया और यह श्लोक दोहराया:

इसलिए पंचाल अपने शत्रु के भाले के प्रहार से पृथ्वी पर गिर पड़े।
हल से घायल हुई सलिया, बेचारी, यहाँ गिरी पड़ी है।
तब पुजारी ने उसे रोकने के लिए यह श्लोक बोला:

आप ब्रह्मदत्त से नाराज हैं, जबकि इसका कोई उचित कारण नहीं बताया गया है।
और यदि आप राजा का अपमान करते हैं, तो इसका सारा दोष आपका ही है।
यह सुनकर किसान ने तीन छंदों में उत्तर दिया:

मुझे ब्रह्मदत्त पर गुस्सा है, और मेरा यह कहना उचित ही है;
निहत्थे लोगों को उनके उत्पीड़क द्वारा इसी प्रकार मार डाला जाता है।
रात में हम चोरों का शिकार बन जाते हैं...(और पहले जैसा ही)।
दास को दो बार (*2) खाना पकाना पड़ा और वह उसे मेरे पास देर से लाया;
जब सभी लोग उसे देखकर मुंह खोले खड़े थे, तभी मेरा बैल बुरी तरह घायल हो गया और उसकी मृत्यु हो गई।
आगे बढ़ते हुए वे एक गाँव में रुके। अगले दिन सुबह-सुबह एक गुस्सैल गाय ने एक दूधवाले को लात मारी और उसका सारा दूध गिरा दिया। उस आदमी ने ब्रह्मदत्त को कोसते हुए यह श्लोक दोहराया:

तलवार के प्रहार से पंचाल का स्वामी युद्ध के बीच में ही गिर जाएगा।
आज गाय की लात से मैं बुरी तरह घायल हो गया हूँ, दूध का बर्तन भी मेरे ऊपर गिर पड़ा है।
ब्राह्मण ने एक श्लोक में कहा:

मान लीजिए, कोई गाय कांटों के खिलाफ लात मारती है, या दूध की बाल्टी उलट जाती है—
ब्रह्मदत्त को इस सब गाली-गलौज से क्या लेना-देना है?
यह सुनकर दूधवाले ने तीन पंक्तियाँ दोहराईं:

हे ब्राह्मण, पंचाल का राजा दोषी है, क्योंकि उसके शासनकाल में
निहत्थे लोगों को उनके उत्पीड़कों द्वारा मारते हुए देखा जा रहा है।
रात तक...(और पहले जैसा ही)।
एक जंगली और उग्र गाय जिसे हमने पहले कभी दुहा नहीं था
हमने आज दूध दुहा: दूध की मांग दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।
उन्होंने कहा, "वह सच कहता है," और उस गाँव से आगे बढ़कर वे राजमार्ग पर चढ़ गए और शहर की ओर चल पड़े। एक गाँव में कर वसूलने वालों ने एक चित्तीदार बछड़े को मार डाला और उसकी खाल उतारकर तलवार का म्यान बना लिया। बछड़े की माँ अपने बच्चे के खोने से इतनी दुखी हुई कि उसने न घास खाई और न पानी पिया, बल्कि इधर-उधर भटकती रही और शोक मनाती रही। उसे देखकर गाँव के लड़कों ने राजा को शाप दिया और यह श्लोक बोला:

तो पंचाल को सूखने दो और निःसंतान व्यर्थ में रोने दो।

यह बेचारी गाय विचलित होकर उस बछड़े को ढूंढ रही है जिसे आदमियों ने मार डाला है।
फिर पुजारी ने एक और श्लोक पढ़ा:

जब झुंड से कोई जानवर भाग निकलता है और अपनी पीड़ा को कम करने के लिए दहाड़ता है,
इस संदर्भ में ब्रह्मदत्त के बारे में आपको शिकायत करने का क्या कारण है?
फिर गांव के लड़कों ने दो छंद दोहराए:

हे ब्राह्मण, इस मामले में राजा ब्रह्मदत्त का पाप मुझे स्पष्ट प्रतीत होता है।
निहत्थे लोगों को उनके उत्पीड़कों द्वारा इसी प्रकार मार डाला जाता है।
रात में हम चोरों का शिकार बन जाते हैं, दिन में साहूकारों का।
जब दुष्ट राजाओं का शासन होता है, तब उस क्षेत्र में अनैतिक लोगों की संख्या चरम पर पहुंच जाती है।
मैं यह जानना चाहता हूँ कि एक कोमल बछड़े को सिर्फ एक खोल के लिए क्यों मारा जाना चाहिए?
"तुम सत्य कहते हो," उन्होंने कहा और चले गए। फिर, आगे बढ़ते हुए, उन्होंने एक सूखे तालाब में देखा कि कौवे अपनी चोंच से मेंढकों पर प्रहार कर उन्हें खा रहे थे। जब वे उस स्थान पर पहुँचे, तो बोधिसत्व ने अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए राजा को मेंढक के मुख से शाप दिया और कहा,

इसलिए, युद्ध में मारे गए पांचाल को उसके पुत्रों सहित खा लिया जाए।
जैसे जंगल का मेंढक गांव के कौवों का शिकार बनता है, वैसे ही आज मैं भी शिकार बन जाता हूँ।
यह सुनकर मेंढक से बात कर रहे पुजारी ने इस श्लोक को दोहराया:

राजा ऐसा नहीं कर सकते, मेंढक, जैसा कि तुम जानते ही हो।
नीचे मौजूद हर प्राणी की रक्षा करो।
इस मामले में वह कोई दुष्ट राजा नहीं है।
कौवे तुम्हारे जैसे जीवित प्राणियों को खाते हैं।
यह सुनकर मेंढक ने दो पंक्तियाँ दोहराईं:

पुजारी ने अत्यधिक चापलूसी भरे शब्दों का प्रयोग किया
इस प्रकार वह दुष्टतापूर्वक राजा को धोखा देता है;
हालांकि जनता पर अत्याचार हो रहा है, फिर भी राजा
पुजारी की नीति को सर्वोत्तम मानता है।
यदि सभी प्रकार की समृद्धि से परिपूर्ण हो
यह राज्य प्रसन्न और शांतिपूर्ण होना चाहिए।
कौवे अपनी सबसे समृद्ध भेंटों (*3) का आनंद ले सकते हैं,
और न ही नष्ट करने के लिए किसी जीवित चीज की आवश्यकता है।
यह सुनकर राजा और पुजारी ने सोचा, "जंगल में रहने वाले मेंढक समेत सभी प्राणी हमें श्राप देते हैं," और वहां से शहर जाकर उन्होंने अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया, और ईश्वर की सलाह का पालन करते हुए उन्होंने स्वयं को दान और अन्य अच्छे कार्यों में समर्पित कर दिया।

गुरु ने कोसला के राजा को दिए अपने प्रवचन का समापन इन शब्दों में किया, "हे महाराज, एक राजा को बुरे मार्गों को त्यागकर अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करना चाहिए," और उन्होंने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा: "उस समय तिन्दुका वृक्ष की दिव्यता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)नहीं. 334, राजोवदा-जातक। क्रमांक 521

(2) विद्वान बताते हैं कि शाही कर वसूलने वालों ने वह भोजन खाया था जो दासी ने अपने स्वामी के लिए पहले पकाया था।

(3) कौवे को बलिपुत्थो कहा जाता था, जिसका अर्थ है "अर्पण से पोषित"।

पुस्तक XVII. कैटलिसानीपाटा:

स्रोत : *एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-521-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 521
तेसाकुना-जातक

"मैं यही पूछता हूँ," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए कोसल के राजा को सलाह के रूप में सुनाई थी। राजा धर्म मार्ग का उपदेश सुनने आया था और गुरु ने उससे कहा, "हे महाराज, राजा को अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन करना चाहिए, क्योंकि जब राजा अधर्मी होते हैं, तो उनके अधिकारी भी अधर्मी होते हैं।" और चतुक्कनिपात (चौथा खंड) में वर्णित सही मार्ग का उपदेश देते हुए, उन्होंने बुरे मार्गों का अनुसरण करने या उनसे दूर रहने में निहित कष्ट और आशीर्वाद की ओर इशारा किया, और इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाले दुख को विस्तार से समझाया, उनकी तुलना स्वप्नों आदि से करते हुए कहा, "इन पुरुषों के मामले में,

कोई रिश्वत निर्दयी मृत्यु को नहीं रोक सकती, कोई दया उसे नरम नहीं कर सकती।
युद्ध में कोई भी मृत्यु को नहीं जीत सकता। क्योंकि सभी को मरना ही है।
और जब वे दूसरे लोक में जाते हैं, तो अपने स्वयं के सद्गुणी कर्मों के अलावा उनके पास कोई और निश्चित शरण नहीं होती, इसलिए उन्हें अनिवार्य रूप से निम्न संगति का त्याग करना पड़ता है, और अपनी प्रतिष्ठा के लिए उन्हें लापरवाह नहीं होना चाहिए, बल्कि गंभीर होना चाहिए और धार्मिकता में शासन करना चाहिए, जैसे पुराने समय के राजा, बुद्ध के उदय से पहले, बुद्धिमानों की सलाह का पालन करते हुए, धार्मिकता से शासन करते थे और स्वर्गलोक में जाते थे," और राजा के अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में ब्रह्मदत्त का शासन था और उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। पुत्र या पुत्री की उनकी प्रार्थना भी पूरी नहीं हुई थी। एक दिन वे अपने साथ एक बड़े दल को लेकर अपने उद्यान में गए और दिन का कुछ समय उद्यान में बिताने के बाद, उन्होंने राजसी साल के वृक्ष के नीचे अपने लिए एक पलंग बिछाया। थोड़ी देर आराम करने के बाद जब वे उठे, तो उन्होंने साल के वृक्ष की ओर देखा और उसमें एक चिड़िया का घोंसला देखा। उसे देखकर उनके मन में उसे पाने की इच्छा जागी। उन्होंने अपने एक सेवक को बुलाया और कहा, "वृक्ष पर चढ़ो और देखो कि घोंसले में कुछ है या नहीं।" सेवक ऊपर चढ़ा और उसमें तीन अंडे पाकर राजा को बताया। राजा ने कहा, "ध्यान रखना, इन पर साँस मत लेना।" उन्होंने एक डिब्बे में रुई बिछाकर सेवक को धीरे से नीचे आने और अंडों को उसमें रखने को कहा। अंडे नीचे लाने के बाद, उन्होंने डिब्बा उठाया और अपने दरबारियों से पूछा कि ये अंडे किस पक्षी के हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "हमें नहीं पता: शिकारी ही जानते होंगे।" राजा ने शिकारियों को बुलवाया और उनसे पूछा, “महाराज, एक उल्लू का अंडा है, दूसरा मैना का और तीसरा तोते का।” राजा ने पूछा, “क्या एक ही घोंसले में तीन अलग-अलग पक्षियों के अंडे हैं?” “जी महाराज, जब डरने की कोई बात नहीं होती, तो सावधानी से रखा गया अंडा नष्ट नहीं होता।” राजा प्रसन्न हुए और बोले, “ये मेरे बच्चे होंगे।” उन्होंने तीनों अंडों को तीन दरबारियों के हवाले करते हुए कहा, “ये मेरे बच्चे होंगे। तुम इनकी अच्छी तरह देखभाल करना और जब बच्चे अंडे से बाहर आ जाएं, तो मुझे बताना।” उन्होंने बच्चों की अच्छी देखभाल की। सबसे पहले उल्लू का अंडा फूटा, और दरबारी ने एक शिकारी को बुलवाया और कहा, “बच्चे का लिंग पता करो, कि वह नर है या मादा।” जब शिकारी ने जांच कर बताया कि वह नर है, तो दरबारी राजा के पास गया और बोला, “महाराज, आपके घर एक पुत्र का जन्म हुआ है।” राजा प्रसन्न हुए और उसे बहुत धन दिया और कहा, "इसकी अच्छी तरह देखभाल करना और इसका नाम वेसंतारा रखना," और उसे विदा कर दिया। उसने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। फिर कुछ दिनों बाद मैना पक्षी का अंडा फूटा, और दूसरे दरबारी ने भी शिकारी से उसकी जाँच करवाकर, जब यह पता चला कि वह मुर्गी है, तो राजा के पास जाकर उन्हें पुत्री के जन्म की सूचना दी। राजा प्रसन्न हुए और उसे भी बहुत खजाना दिया और कहा, "मेरी पुत्री की अच्छी तरह देखभाल करना और उसका नाम कुंडलिनी रखना," और उसे विदा कर दिया। उसने भी वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। फिर कुछ दिनों बाद तोते का अंडा फूटा और तीसरे दरबारी ने, जब शिकारी ने जाँच करके बताया कि वह मुर्गा है, तो राजा के पास जाकर उन्हें पुत्र के जन्म की सूचना दी। राजा प्रसन्न हुए और उसे उदारतापूर्वक भुगतान करते हुए कहा, "मेरे पुत्र के सम्मान में भव्य उत्सव मनाओ और उसका नाम जंबुका रखना," और फिर उसे विदा कर दिया। उसने भी वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था।और ये तीनों पक्षी तीनों दरबारियों के घरों में राजसी रीति-रिवाजों के साथ पले-बढ़े। राजा उन्हें अक्सर "मेरा बेटा" और "मेरी बेटी"

कहकर पुकारते थे। उनके दरबारी आपस में हँसते हुए कहते थे, "देखो राजा क्या कर रहे हैं: पक्षियों को अपना बेटा और बेटी कहकर पुकारते फिरते हैं।" राजा ने सोचा, "ये दरबारी मेरे बच्चों की बुद्धिमत्ता को नहीं जानते। मैं उन्हें यह दिखा दूँगा।" इसलिए उन्होंने अपने एक मंत्री को वेसंतारा के पास यह कहने के लिए भेजा, "आपके पिता आपसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। वे कब आएँगे और पूछेंगे?" मंत्री आया और वेसंतारा को प्रणाम करके संदेश दिया। वेसंतारा ने अपने दरबारी को बुलवाया और कहा, "मुझे बताया गया है कि मेरे पिता मुझसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। जब वे आएँ, तो हमें उनका पूरा सम्मान करना चाहिए।" और उन्होंने पूछा, "वे कब आएँगे?" दरबारी ने कहा, "वे आज से सातवें दिन आएँ।" यह सुनकर वेसंतारा ने कहा, "मेरे पिता को आज से सातवें दिन आने दीजिए," और यह कहकर उसने मंत्री को विदा कर दिया। वह जाकर राजा को यह बात बताई। सातवें दिन राजा ने पूरे शहर में ढोल बजवाने का आदेश दिया और अपने पुत्र के घर गया। वेसंतारा ने राजा का बहुत आदर किया और यहाँ तक कि दासों और नौकरों का भी बहुत आदर करवाया। वेसंतारा के घर में भोजन करने और भव्य भोज का आनंद लेने के बाद राजा अपने निवास स्थान पर लौट आया। फिर उसने महल के प्रांगण में एक बड़ा मंडप बनवाया और पूरे शहर में ढोल बजवाकर घोषणा की। वह अपने भव्य मंडप में, सेवकों के एक बड़े समूह से घिरा हुआ बैठा और एक दरबारी को वेसंतारा को लाने का संदेश भेजा। दरबारी वेसंतारा को एक सोने की चौकी पर बिठाकर लाया। वेसंतारा अपने पिता की गोद में बैठा और उनके साथ खेला, फिर जाकर चौकी पर बैठ गया। तब राजा ने लोगों की भीड़ के बीच उससे राजा के कर्तव्य के बारे में पूछा और पहला श्लोक बोला:यह सुनकर वेसंतारा ने कहा, “मेरे पिता को आज से सातवें दिन आने दीजिए,” और यह कहकर उसने मंत्री को विदा कर दिया। वह जाकर राजा को यह बात बताई। सातवें दिन राजा ने पूरे शहर में ढोल बजवाने का आदेश दिया और अपने पुत्र के घर गया। वेसंतारा ने राजा का बहुत आदर किया और अपने दासों और नौकरों का भी बहुत आदर करवाया। वेसंतारा के घर में भोजन करने और भव्य भोज का आनंद लेने के बाद राजा अपने निवास स्थान पर लौट आया। फिर उसने महल के प्रांगण में एक बड़ा मंडप बनवाया और पूरे शहर में ढोल बजवाकर घोषणा की। वह अपने भव्य मंडप में, सेवकों के एक बड़े समूह से घिरा हुआ बैठा और एक दरबारी को वेसंतारा को लाने का संदेश भेजा। दरबारी वेसंतारा को एक सोने की चौकी पर बिठाकर लाया। वेसंतारा अपने पिता की गोद में बैठा और उनके साथ खेला, फिर जाकर चौकी पर बैठ गया। तब राजा ने लोगों की भीड़ के बीच उससे राजा के कर्तव्य के बारे में पूछा और पहला श्लोक बोला:यह सुनकर वेसंतारा ने कहा, “मेरे पिता को आज से सातवें दिन आने दीजिए,” और यह कहकर उसने मंत्री को विदा कर दिया। वह जाकर राजा को यह बात बताई। सातवें दिन राजा ने पूरे शहर में ढोल बजवाने का आदेश दिया और अपने पुत्र के घर गया। वेसंतारा ने राजा का बहुत आदर किया और अपने दासों और नौकरों का भी बहुत आदर करवाया। वेसंतारा के घर में भोजन करने और भव्य भोज का आनंद लेने के बाद राजा अपने निवास स्थान पर लौट आया। फिर उसने महल के प्रांगण में एक बड़ा मंडप बनवाया और पूरे शहर में ढोल बजवाकर घोषणा की। वह अपने भव्य मंडप में, सेवकों के एक बड़े समूह से घिरा हुआ बैठा और एक दरबारी को वेसंतारा को लाने का संदेश भेजा। दरबारी वेसंतारा को एक सोने की चौकी पर बिठाकर लाया। वेसंतारा अपने पिता की गोद में बैठा और उनके साथ खेला, फिर जाकर चौकी पर बैठ गया। तब राजा ने लोगों की भीड़ के बीच उससे राजा के कर्तव्य के बारे में पूछा और पहला श्लोक बोला:

मैं वेसंतारा से यही प्रार्थना करता हूँ—प्रिय पक्षी, तुम पर कृपा बनी रहे।
जो व्यक्ति मनुष्यों पर शासन करने का आनंद लेता है, उसके लिए जीवन का सबसे अच्छा मार्ग कौन सा है?
वेसंतारा ने प्रश्न का सीधा उत्तर दिए बिना, राजा को उसकी लापरवाही के लिए फटकारा और दूसरा श्लोक बोला:

हे मेरे पिता कंस, काशी के स्वामी, तुमने बहुत समय पहले लापरवाही बरती थी।
उन्होंने अपने बेटे से आग्रह किया कि वह उत्साह से भरपूर होने के बावजूद और भी अधिक उत्साह दिखाए।
इस श्लोक में राजा को फटकारते हुए और यह कहते हुए कि, "महाराज, एक राजा को अपने राज्य पर न्यायपूर्वक शासन करना चाहिए, तीन सत्यों का पालन करना चाहिए," और राजा के कर्तव्य का वर्णन करते हुए उन्होंने ये श्लोक कहे:

सबसे पहले राजा को सभी प्रकार के झूठ, क्रोध और तिरस्कार का त्याग करना चाहिए;
उसे वही करने दो जो एक राजा को करना चाहिए, अन्यथा वह अपनी शपथ तोड़ देगा।
वासना और पाप के कारण भटककर, यदि उसने अतीत में कोई गलती की हो, तो यह स्पष्ट है।
वह अपने किए पर पश्चाताप करेगा और यह सीखेगा कि दोबारा ऐसा न करे।
जब कोई राजकुमार अपने शासनकाल में लापरवाह हो जाता है, अपने नाम और प्रसिद्धि के प्रति असत्य व्यवहार करता है,
यदि राजकुमार की सारी संपत्ति अचानक गायब हो जाए, तो इसे उसके लिए शर्म की बात माना जाता है।
इस प्रकार, जब मैंने सौभाग्य और भाग्य से पूछा, तो उन्होंने मुझे उत्तर दिया।
"एक ऊर्जावान और साहसी व्यक्ति में हमें प्रसन्नता होती है, बशर्ते वह ईर्ष्या से मुक्त हो।"
दुर्भाग्य, जो हमेशा सौभाग्य को नष्ट कर देता है, बुरे कर्म करने वाले लोगों में आनंदित होता है।
वे कठोर हृदय प्राणी जिनमें ईर्ष्या की भावना पनपती है।
हे महान राजा, सभी के मित्र बनो, ताकि सभी आपकी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकें।
दुर्भाग्य दूर हो जाए, लेकिन सौभाग्य सुरक्षित जीवन सुनिश्चित करता है।

हे काशी पर राज करने वाले, जो भाग्यशाली और साहसी है,
उसके शत्रु उसे जड़ से उखाड़ फेंकेंगे और वह निश्चित रूप से महानता प्राप्त करेगा।
महान इंद्र (सक्का) मनुष्य के सभी साहस को सतर्क दृष्टि से देखते रहते हैं।
वह साहस को एक सद्गुण मानता है और उसमें सच्ची अच्छाई को देखता है।
गंधर्व, देवता, देवदूत और मनुष्य, सभी ऐसे राजा का अनुकरण करते हैं।
और उनकी गायन की उमंग और जोश को दर्शाते हुए, आत्माएं प्रकट होकर खड़ी रहती हैं।
सही काम करने के लिए उत्सुक रहो, और चाहे कितना भी अपमानित हो जाओ, पाप के आगे मत झुको।
अच्छे कार्यों के लिए लगन से प्रयास करें—आलसी व्यक्ति कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।
इस संदर्भ में, आपका कर्तव्य यही है कि आपको वह मार्ग सिखाया जाए जिस पर आपको चलना चाहिए:
किसी मित्र को सुख दिलाना या किसी शत्रु को घोर हानि पहुंचाना ही काफी है।
इस प्रकार पक्षी वेसंतारा ने एक ही श्लोक में राजा की लापरवाही की निंदा की, और फिर ग्यारह श्लोकों में राजा के कर्तव्य का वर्णन करते हुए बुद्ध के समान आकर्षण के साथ उनके प्रश्न का उत्तर दिया। सभी के हृदय आश्चर्य और विस्मय से भर गए और अनगिनत तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। राजा प्रसन्नता से झूम उठे और अपने दरबारियों से पूछा कि उनके पुत्र के लिए क्या किया जाए, क्योंकि उन्होंने ऐसा कहा था। "महाराज, उसे सेनापति बनाया जाए।" "ठीक है, मैं उसे सेनापति का पद देता हूँ," और उन्होंने वेसंतारा को उस रिक्त पद पर नियुक्त कर दिया। तब से इस पद पर आसीन होकर उसने अपने पिता की इच्छाओं का पालन किया। यहीं वेसंतारा के प्रश्न की कहानी समाप्त होती है।

कुछ दिनों बाद राजा ने पहले की तरह ही कुंडलिनी को संदेश भेजा, और सातवें दिन उनसे मिलने गए और घर लौटकर एक मंडप के बीच में बैठ गए और कुंडलिनी को अपने पास लाने का आदेश दिया। जब कुंडलिनी एक स्वर्ण सिंहासन पर बैठीं, तो उन्होंने उनसे राजा के कर्तव्य के बारे में पूछा और यह श्लोक कहा:

हे राजसी वंश की कुंडलिनी, क्या तुम मेरी समस्या का समाधान कर सकती हो?
जो व्यक्ति मनुष्यों पर शासन करने का आनंद लेता है, उसके लिए जीवन का सबसे अच्छा मार्ग कौन सा है?
जब राजा ने उससे राजा के कर्तव्यों के बारे में पूछा, तो उसने कहा, "मुझे लगता है, महाराज, आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं, यह सोचकर कि 'एक स्त्री मुझे क्या बता पाएगी?' इसलिए मैं आपको बताऊंगी, राजा के रूप में आपके सभी कर्तव्यों को केवल दो सिद्धांतों में समेटते हुए," और उसने इन छंदों को दोहराया:

मेरे मित्र, यह मामला दो स्पष्ट सिद्धांतों में समाहित है--
जो कुछ भी अपने पास है उसे बनाए रखना, और जो कुछ भी अपने पास है उसे हासिल करने की कोशिश न करना।
अपने हितों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए बुद्धिमान व्यक्तियों को सलाहकार के रूप में लें।
दंगा-फसाद और फिजूलखर्ची में लिप्त नहीं, जुआ और शराबखोरी से मुक्त।
ऐसा व्यक्ति जो आपकी और आपके खजाने की पूरी लगन से रक्षा कर सके।
जिस प्रकार एक सारथी अपने रथ को चलाता है, उसी प्रकार वह कुशलता से राज्य के सामूहिक कल्याण का मार्गदर्शन करता है।
अपने परिवार को सदा अच्छी तरह संभाल कर रखें; और अपनी संपत्ति का समय-समय पर हिसाब रखें।
किसी दूसरे से ऋण या जमा राशि लेने के लिए कभी भी उस पर भरोसा न करें, बल्कि स्वयं निर्णय लें।
इससे आपके लाभ और हानि पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह आपको अच्छी तरह से पता होना चाहिए।
हमेशा दोषी को ही दोषी ठहराएं और उन्हीं का पक्ष लें जो इसके पात्र हों।
हे महान राजा, आप अपनी प्रजा को हर अच्छे मार्ग की शिक्षा दें।
अन्यथा तुम्हारा राज्य और तुम्हारी संपत्ति अधर्मी अधिकारियों के हाथों शिकार बन जाएगी।
यह सुनिश्चित करें कि आप स्वयं या दूसरों द्वारा कोई भी कार्य अत्यधिक जल्दबाजी में न किया जाए।
जो मूर्ख ऐसा कार्य करता है, वह निःसंदेह अपने कर्मों पर पश्चाताप करेगा।
क्रोध के आगे कभी भी झुकना नहीं चाहिए, क्योंकि यदि वह अपनी सीमाएँ पार कर जाए तो
इससे राजाओं का पतन होगा और सबसे गौरवशाली घराने भी नष्ट हो जाएंगे।
यह सुनिश्चित करें कि राजा के रूप में आप कभी भी अपनी प्रजा को गुमराह न करें, जिससे उन्हें नुकसान उठाना पड़े।
अन्यथा सभी पुरुष और महिलाएं समान रूप से संकटों के सागर में खो जाएंगे।
जब राजा सभी भय से मुक्त हो जाता है और इंद्रियों के सुख ही उसका लक्ष्य होते हैं,
यदि उसकी सारी दौलत और संपत्ति नष्ट हो जाए, तो उस राजा के लिए यह एक कलंक माना जाएगा।
इसमें आपके कर्तव्य का पाठ है, जो आपको सही मार्ग सिखाता है।
हर अच्छे काम में निपुण बनो, शत्रु को अति और उग्रता से पराजित करो।

सद्गुणों का अध्ययन करो, क्योंकि दुर्गुण सदा दुख और पीड़ा से भरे जीवन की ओर ले जाते हैं।
इस प्रकार कुंडलिनी ने ग्यारह श्लोकों में राजा को उनके कर्तव्य का उपदेश दिया। राजा प्रसन्न हुए और अपने दरबारियों से पूछा, "मेरी पुत्री ने ऐसा कहा है, इसके लिए उसे क्या पुरस्कार दिया जाए?" राजा ने उत्तर दिया, "महाराज, उसे कोषाध्यक्ष का पद।" "ठीक है, मैं उसे कोषाध्यक्ष का पद देता हूँ," और उन्होंने कुंडलिनी को इस रिक्त पद पर नियुक्त कर दिया। तब से वह इस पद पर आसीन रहीं और राजा के लिए कार्य करती रहीं। कुंडलिनी के प्रश्न की कहानी यहीं समाप्त होती है।

कुछ दिनों के अंतराल के बाद, राजा ने पहले की तरह ही, बुद्धिमान जंबुका के पास एक दूत भेजा। सातवें दिन वहाँ जाकर, भव्य स्वागत पाकर, वह घर लौटा और उसी प्रकार एक मंडप के बीच में बैठ गया। एक दरबारी ने बुद्धिमान जंबुका को सोने से जड़ी एक चौकी पर बिठाया और चौकी को अपने सिर पर रखकर आया। बुद्धिमान पक्षी अपने पिता की गोद में बैठा और उनके साथ खेलता हुआ अंततः सोने की चौकी पर बैठ गया। तब राजा ने उससे एक प्रश्न पूछकर यह श्लोक कहा:

हमने आपके भाई राजकुमार और सुंदर कुंडलिनी दोनों से पूछताछ की है;
अब, जंबुका, क्या तुम मुझे सर्वोच्च शक्ति के बारे में बताओगे?
इस प्रकार राजा ने जब उस महान सत्ता से प्रश्न पूछा, तो उसने अन्य लोगों की तरह नहीं, बल्कि एक विशेष तरीके से पूछा। तब उस बुद्धिमान पक्षी ने उससे कहा, "महाराज, ध्यान से सुनिए, मैं आपको सब कुछ बताता हूँ," और जैसे कोई व्यक्ति किसी के फैले हुए हाथ में हज़ार सिक्कों से भरा पर्स रख देता है, वैसे ही उसने राजा के कर्तव्य का वर्णन करना शुरू किया।

पृथ्वी के महान लोगों के बीच हमें पांच गुना अधिक शक्ति दिखाई देती है;
इनमें से अंगों की शक्ति निस्संदेह सबसे कम है।
और हे सर्वशक्तिमान स्वामी, धन की शक्ति को अगला स्थान दिया जाता है।
हे राजा, मैं इन सबमें तीसरे स्थान पर परामर्श की शक्ति का नाम लेता हूँ;
जाति व्यवस्था की शक्ति को निःसंदेह प्रसिद्धि में चौथे स्थान पर माना जाता है।
और एक बुद्धिमान व्यक्ति निश्चित रूप से इन सभी बातों का दावा करेगा।
इन सभी शक्तियों में से जो शक्ति सर्वश्रेष्ठ है, वह है ज्ञान की शक्ति।
इसी के बल पर मनुष्य बुद्धिमान बनता है और सफलता को अपना बनाता है।
यदि सबसे समृद्ध राज्य किसी बेचारे मूर्ख प्राणी के हिस्से में आ जाए,
दूसरा व्यक्ति अपनी अवज्ञा के चलते हिंसा के बल पर इसे हथिया लेगा।
शासन करने का दायित्व पाने वाला राजकुमार चाहे कितना भी महान क्यों न हो,
यदि वह मूर्ख साबित हुआ तो उसका जीवन यापन करना बेहद मुश्किल हो जाएगा।
बुद्धिमत्ता कर्मों की रिपोर्टों की जांच करती है और मनुष्यों की प्रसिद्धि को बढ़ाती है।
जिसे बुद्धि का वरदान प्राप्त है, वह दुख में भी सुख पा लेता है।
जो लोग ज्ञान के प्रति उदासीन रवैया रखते हैं, वे उसे प्राप्त नहीं कर सकते।
लेकिन बुद्धिमान और न्यायप्रिय लोगों से परामर्श अवश्य लेना चाहिए, अन्यथा अज्ञानी ही बने रहना पड़ेगा।
जो सुबह जल्दी उठकर बिना थके ध्यान देते हैं
कर्तव्य की विभिन्न पुकारों को स्वीकार करने पर, जीवन में सफलता निश्चित है।
कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो दूसरों को चोट पहुँचाने पर तुला हो या उदासीन मनोदशा में व्यवहार करता हो।
वह जो भी काम हाथ में लेगा, उसका परिणाम अच्छा ही होगा।
लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जो अथक रूप से सही मार्ग का अनुसरण करेगा,
वह जो भी काम करेगा, उसमें पूर्णता अवश्य प्राप्त करेगा।
अपनी दुकान की रक्षा करना ही अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना है।
और ये वो बातें हैं जिनका आपको ध्यान रखना चाहिए;
मूर्ख व्यक्ति अपने बुरे कर्मों के कारण नरकट से बने घर के समान होता है।
पतन होता है और अपने पीछे दर्द और विनाश छोड़ जाता है।
इस प्रकार बोधिसत्व ने इन सभी बिंदुओं में पंच शक्तियों की स्तुति की और ज्ञान की शक्ति का गुणगान करते हुए, मानो कोई अपने शब्दों से चंद्रमा के मुख को प्रहार कर रहा हो, उन्होंने ग्यारह श्लोकों में राजा को संबोधित किया:

हे योद्धा राजा, अपने माता-पिता के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इस प्रकार
हे महाराज, धार्मिक जीवन का अनुसरण करके आप स्वर्ग में जाएंगे।
धर्म के मार्ग के बारे में दस छंदों का उच्चारण करने के बाद, राजा को संबोधित करते हुए उन्होंने अंतिम छंद कहा:

इसमें आपके कर्तव्य का पाठ है, जो आपको सही मार्ग सिखाता है:
ज्ञान का अनुसरण करो और सदा सुखी रहो, सत्य को उसकी पूर्णता में जानो।
इस प्रकार, मानो स्वर्ग की गंगा नदी को बहाते हुए, उस महान सत्ता ने बुद्ध के समान आकर्षण के साथ धर्म का उपदेश दिया। सभी ने उनका आदर किया और अनगिनत जयकारे लगाए। राजा प्रसन्न हुए और अपने सलाहकारों से पूछा, "मेरे पुत्र, बुद्धिमान जंबुका, जिसकी चोंच गुलाब-सेब के ताजे फल जैसी है, को इस प्रकार बोलने के लिए क्या पुरस्कार दिया जाए?" "महाराज, सेनापति का पद।" "तो मैं उसे यह पद प्रदान करता हूँ," उन्होंने कहा और उसे रिक्त पद पर नियुक्त कर दिया, और तब से सेनापति के पद पर वह अपने पिता के आदेशों का पालन करता रहा। तीनों पक्षियों का आदर किया गया, और तीनों ने सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों में उपदेश दिया। राजा ने महान सत्ता की सलाह का पालन करते हुए, दान और अन्य अच्छे कार्यों से स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त किया। राजा के अंतिम संस्कार के बाद सलाहकारों ने पक्षियों से कहा, "मेरे स्वामी, जंबु, राजा ने आपके ऊपर राजसी छत्र उठाने का आदेश दिया है।" उस महान सत्ता ने कहा, "मुझे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है, तुम सब पूरी सतर्कता से शासन करो।" लोगों को नैतिक नियमों में स्थापित करने के बाद उन्होंने कहा, "न्याय का पालन करो।" फिर उन्होंने एक स्वर्ण पट्टिका पर न्यायपूर्ण निर्णय लिखवाया और वन में विलीन हो गए। उनका उपदेश चालीस हजार वर्षों तक प्रभावी रहा।

गुरु (बुद्ध) ने राजा को अपने उपदेश के माध्यम से यह पाठ पढ़ाया और जन्म का वर्णन किया: "उस समय राजा आनंद थे, कुंडलिनी उप्पलावन्ना थीं, वेसंतारा सारिपुत्र थे, और पक्षी जंबू मैं स्वयं था।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सरभंग-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-522-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 522
सरभंग-जातक

"अंगूठियों के साथ और वीरतापूर्वक," इत्यादि - यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, जो वरिष्ठ भिक्षु महान मोग्गल्याना (*1) की मृत्यु से संबंधित थी। वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्र (*2) ने जेतवन मठ में रहते हुए तथागत (बुद्ध) की सहमति प्राप्त करने के बाद, नाला गाँव में उसी कमरे में जाकर उनका निधन हो गया जहाँ उनका जन्म हुआ था। उनकी मृत्यु की सूचना पाकर गुरु राजगृह नगर गए और बाँस के वन में रहने लगे। वहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु इसिगिली (संतों का पर्वत) की ढलानों पर काले पत्थर के पास रहते थे। इस व्यक्ति ने अलौकिक शक्ति में पूर्णता प्राप्त कर स्वर्ग और नरक दोनों में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त कर ली थी। देवलोक में उन्होंने बुद्ध के एक शिष्य को अपार शक्ति का आनंद लेते देखा, और मनुष्यलोक में उन्होंने पथभ्रष्ट अनुयायियों के एक शिष्य को घोर पीड़ा भोगते देखा। मनुष्यलोक में लौटकर उन्होंने उन्हें बताया कि कैसे एक विशेष देवलोक में फलां शिष्या (या साध्वी) का पुनर्जन्म हुआ है और वह महान सम्मान का आनंद ले रही है, जबकि पथभ्रष्ट अनुयायियों में फलां पुरुष या स्त्री का पुनर्जन्म नरक या अन्य कष्टमय अवस्थाओं में हुआ है। लोगों ने सहर्ष उनकी शिक्षा को स्वीकार किया और षड्यंत्रकारियों की शिक्षा को अस्वीकार कर दिया। बुद्ध के शिष्यों को महान सम्मान प्राप्त हुआ, जबकि षड्यंत्रकारियों का सम्मान कम हो गया। उन्होंने उस वरिष्ठ भिक्षु के प्रति द्वेष पाल लिया और कहा, "जब तक यह जीवित है, हमारे अनुयायियों में फूट बनी रहेगी और हमारा सम्मान कम होता जाएगा; हम इसे मार डालेंगे।" और उन्होंने तपस्वियों की रक्षा करने वाले एक लुटेरे को वरिष्ठ भिक्षु को मारने के लिए एक हजार सिक्के दिए। लुटेरे ने वरिष्ठ भिक्षु को मारने का निश्चय किया और अपने साथ बड़ी संख्या में अनुयायियों को लेकर ब्लैक रॉक आया। जब बड़े भिक्षु ने उसे आते देखा, तो अपनी जादुई शक्ति से हवा में उड़ गए और गायब हो गए। उस दिन डाकू को बड़े भिक्षु नहीं मिले, इसलिए वह घर लौट आया और लगातार छह दिनों तक हर दिन आता रहा। लेकिन बड़े भिक्षु अपनी जादुई शक्ति से हमेशा उसी तरह गायब हो जाते थे। सातवें दिन बड़े भिक्षु द्वारा किया गया एक पुराना काम, जिसके परिणाम भविष्य में भुगतने को थे, अपना असर दिखाने का मौका पा गया। कहानी यह है कि एक बार अपनी पत्नी की बातें सुनकर, वह अपने माता-पिता को मार डालना चाहता था; और उन्हें एक गाड़ी में बिठाकर जंगल में ले गया, जहाँ उसने बहाना बनाया कि उन पर डाकुओं ने हमला कर दिया है, और अपने माता-पिता को पीटा। दृष्टिहीनता के कारण, वे अपने बेटे को पहचान नहीं पाए और उन्हें डाकू समझकर बोले: "प्यारे बेटे, कुछ डाकू हमें मार रहे हैं: भाग जाओ," और केवल उसके लिए शोक मनाया। उसने सोचा, "भले ही मैं उन्हें पीट रहा हूँ, लेकिन वे केवल मेरे कारण रो रहे हैं। मैं शर्मनाक काम कर रहा हूँ।" इसलिए उसने उन्हें आश्वस्त किया और यह दिखावा करते हुए कि लुटेरे भाग गए हैं, उसने उनके हाथों और पैरों को सहलाते हुए कहा, "प्यारे पिता

और माता, डरो मत, लुटेरे भाग गए हैं।"और उन्हें वापस उनके घर ले आया। यह क्रिया, जो बहुत लंबे समय से अपना अवसर नहीं पा रही थी, बल्कि राख के नीचे छिपी लौ की तरह अपने समय की प्रतीक्षा कर रही थी, अंततः उस व्यक्ति को पकड़ लिया जब उसने अंतिम बार पुनर्जन्म लिया, और इस क्रिया के परिणामस्वरूप, वरिष्ठ भिक्षु हवा में उड़ने में असमर्थ हो गए। उनकी जादुई शक्ति, जो कभी नंदा (*3) और उपनंद को वश में कर सकती थी और वेजयंत को कांपने पर मजबूर कर सकती थी, उनकी क्रिया के परिणामस्वरूप मात्र दुर्बलता बन गई। लुटेरे ने उनकी सभी हड्डियों को कुचल दिया, उन्हें भूसे और आटे की यातना (*4) दी, और यह सोचकर कि वह मर गए हैं, अपने अनुयायियों के साथ चले गए। लेकिन वरिष्ठ भिक्षु ने होश में आने पर ध्यान को वस्त्र की तरह धारण किया, और गुरु के समक्ष उड़कर उन्हें प्रणाम किया और कहा, "पवित्र गुरु, मेरा जीवन समाप्त हो गया है: मैं मरना चाहता हूँ," और गुरु की सहमति प्राप्त करके, वे वहीं पर मर गए। उस क्षण छह देव-लोकों में अफरा-तफरी मच गई। "हमारे “गुरुजी,” वे पुकारे, “मृत हो गए हैं।” और वे धूप, इत्र, दिव्य सुगंध से युक्त मालाएँ और हर तरह की लकड़ियाँ लेकर आए, और चिता चंदन और निन्यानवे कीमती वस्तुओं से बनी थी। गुरुजी, वरिष्ठ भिक्षु के पास खड़े होकर, उनके अवशेषों को दफनाने का आदेश दिया, और जिस स्थान पर शरीर जलाया गया था, उसके चारों ओर एक मील (4.23 किमी) की दूरी तक फूलों की वर्षा हुई, और मनुष्य और देवता (देवदूत) एक साथ खड़े रहे, और सात दिनों तक एक पवित्र उत्सव मनाया। गुरुजी ने वरिष्ठ भिक्षु के अवशेषों को एकत्रित करवाया और बांस के जंगल में एक छज्जे वाले कक्ष में एक मंदिर बनवाया। उस समय उन्होंने सत्य के हॉल में यह विषय उठाया, “महोदय, सारिपुत्र, क्योंकि वे तथागत (बुद्ध) की उपस्थिति में नहीं मरे, इसलिए उन्हें बुद्ध के हाथों महान सम्मान प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु महान वरिष्ठ भिक्षु मोग्गल्याना, क्योंकि वे गुरुजी के पास मरे, इसलिए उन्हें महान सम्मान प्राप्त हुआ।” गुरुजी आए उठकर, उसने भाइयों से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं, और जब उसने सुना तो कहा: "भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी मोग्गल्याना को मेरे हाथों से बहुत सम्मान प्राप्त हुआ था"; और ऐसा कहते हुए उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "हे परम पूज्य, मेरा जीवन समाप्त हो गया है: मैं मरना चाहता हूँ," और गुरु की सहमति प्राप्त करके वे वहीं पर प्राण त्याग बैठे। उसी क्षण छह देवलोकों में हलचल मच गई। "हमारे गुरु मर गए हैं," वे पुकारे। और वे धूप, इत्र, दिव्य सुगंध से युक्त पुष्पमालाएँ और हर प्रकार की लकड़ियाँ लेकर आए, और चिता चंदन और निन्यानवे बहुमूल्य वस्तुओं से बनाई गई। गुरु, वरिष्ठ भिक्षु के पास खड़े होकर, उनके अवशेषों को विसर्जित करने का आदेश दिया, और जिस स्थान पर शरीर को जलाया गया था, उसके चारों ओर एक मील (4.23 किमी) की दूरी तक फूलों की वर्षा हुई, और मनुष्य और देवदूत एक साथ मिलकर खड़े रहे, और सात दिनों तक एक पवित्र उत्सव मनाया। गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु के अवशेषों को एकत्रित करवाया, और बाँस के वन में एक छज्जे वाले कक्ष में एक मंदिर बनवाया। उस समय उन्होंने सत्य के हॉल में यह विषय उठाया और कहा, “महोदय, सारिपुत्र, क्योंकि उनकी मृत्यु तथागत (बुद्ध) की उपस्थिति में नहीं हुई, इसलिए उन्हें बुद्ध के हाथों से उतना सम्मान नहीं मिला, परन्तु महान भिक्षु मोग्गल्याना, क्योंकि उनकी मृत्यु गुरु के निकट हुई, इसलिए उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त हुआ।” गुरु आगे आए और भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं। जब उन्होंने यह सुना, तो उन्होंने कहा, “भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी मोग्गल्याना को मेरे हाथों से बहुत सम्मान प्राप्त हुआ था”; और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "हे परम पूज्य, मेरा जीवन समाप्त हो गया है: मैं मरना चाहता हूँ," और गुरु की सहमति प्राप्त करके वे वहीं पर प्राण त्याग बैठे। उसी क्षण छह देवलोकों में हलचल मच गई। "हमारे गुरु मर गए हैं," वे पुकारे। और वे धूप, इत्र, दिव्य सुगंध से युक्त पुष्पमालाएँ और हर प्रकार की लकड़ियाँ लेकर आए, और चिता चंदन और निन्यानवे बहुमूल्य वस्तुओं से बनाई गई। गुरु, वरिष्ठ भिक्षु के पास खड़े होकर, उनके अवशेषों को विसर्जित करने का आदेश दिया, और जिस स्थान पर शरीर को जलाया गया था, उसके चारों ओर एक मील (4.23 किमी) की दूरी तक फूलों की वर्षा हुई, और मनुष्य और देवदूत एक साथ मिलकर खड़े रहे, और सात दिनों तक एक पवित्र उत्सव मनाया। गुरु ने वरिष्ठ भिक्षु के अवशेषों को एकत्रित करवाया, और बाँस के वन में एक छज्जे वाले कक्ष में एक मंदिर बनवाया। उस समय उन्होंने सत्य के हॉल में यह विषय उठाया और कहा, “महोदय, सारिपुत्र, क्योंकि उनकी मृत्यु तथागत (बुद्ध) की उपस्थिति में नहीं हुई, इसलिए उन्हें बुद्ध के हाथों से उतना सम्मान नहीं मिला, परन्तु महान भिक्षु मोग्गल्याना, क्योंकि उनकी मृत्यु गुरु के निकट हुई, इसलिए उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त हुआ।” गुरु आगे आए और भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं। जब उन्होंने यह सुना, तो उन्होंने कहा, “भाइयों, केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी मोग्गल्याना को मेरे हाथों से बहुत सम्मान प्राप्त हुआ था”; और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

(*5) एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब राजपुजारी की ब्राह्मण पत्नी ने बोधिसत्व को गर्भ धारण कराया और दस माह के बाद सुबह तड़के उनका जन्म हुआ। उसी क्षण बनारस नगर में बारह मील (x 4.23 किमी) के क्षेत्र में सभी प्रकार के शस्त्रों की ज्वाला फैल गई। बालक के जन्म पर पुरोहित घर से बाहर निकले और अपने पुत्र के भाग्य का पता लगाने के उद्देश्य से आकाश की ओर देखा, और उन्हें पता चला कि आकाश में एक विशेष संयोग के तहत जन्म लेने के कारण यह बालक निश्चित रूप से पूरे भारत का प्रमुख धनुर्धर होगा। इसलिए वे सुबह-सुबह महल गए और राजा के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी ली। जब उसने उत्तर दिया, “हे स्वामी, मैं कैसे ठीक हो सकता हूँ? आज तो मेरे निवास स्थान में शस्त्रों की ज्वाला गूंज रही है।” तो पुजारी ने कहा, “भयभीत न हों, महाराज; केवल आपके घर में ही नहीं, बल्कि पूरे नगर में शस्त्रों की यह ज्वाला दिखाई दे रही है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आज हमारे

घर में एक बालक का जन्म हुआ है।” “हे स्वामी, इन परिस्थितियों में बालक के जन्म का क्या परिणाम होगा?” “कुछ नहीं, महाराज, वह पूरे भारत का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर सिद्ध होगा।” “ठीक है, महाराज, तो आप उसकी देखभाल कीजिए और जब वह बड़ा हो जाए, तो उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत कीजिए।” ऐसा कहकर पुजारी ने उसके पालन-पोषण के लिए एक हजार सिक्के देने का आदेश दिया (*6)। पुजारी ने वह राशि ली और घर चला गया। अपने पुत्र के नामकरण के दिन, उसके जन्म के समय शस्त्रों की ज्वाला के कारण, उसने उसका नाम ज्योतिपाला रखा। उसका पालन-पोषण बड़े ही शान-शौकत से हुआ और सोलह वर्ष की आयु में वह अत्यंत सुंदर था। तब उनके पिता ने उनकी विशिष्टता को देखते हुए कहा, "प्रिय पुत्र, तक्षशिला जाओ और विश्वप्रसिद्ध गुरु से समस्त विद्या की शिक्षा प्राप्त करो।" उन्होंने ऐसा करने की सहमति दी और गुरु की फीस लेकर अपने माता-पिता को विदा किया और वहाँ चले गए। उन्होंने एक हजार सिक्के फीस के रूप में दिए और शिक्षा प्राप्त करने में जुट गए, और सात दिनों के भीतर ही उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली। उनके गुरु उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उन्हें अपनी एक बहुमूल्य तलवार, मेढ़े के सींग से बना धनुष और बाण का खोल, दोनों को सुंदर ढंग से जोड़कर, अपना कवच और मुकुट भेंट किया और कहा, "प्रिय ज्योतिपाल, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, क्या अब आप इन शिष्यों को प्रशिक्षण देंगे?" और उन्होंने पाँच सौ शिष्यों को उनके हवाले कर दिया। बोधिसत्व ने सब कुछ अपने साथ लेकर अपने गुरु को विदाई दी और बनारस लौटकर अपने माता-पिता से मिलने गए। तब उनके पिता ने उन्हें अपने सामने आदरपूर्वक खड़े देखकर कहा, "पुत्र, क्या तुमने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली है?" "जी हाँ।" उसका जवाब सुनकर वह महल गया और बोला, “महाराज, मेरे बेटे ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है: अब वह क्या करे?” “मालिक, उसे हमारी सेवा करने दो।” “महाराज, उसके खर्चों के बारे में आपका क्या निर्णय है?” “उसे प्रतिदिन एक हजार सिक्के दिए जाएं।” वह तुरंत मान गया, और घर लौटकर उसने अपने बेटे को अपने पास बुलाया और कहा,"प्रिय पुत्र, तुम्हें राजा की सेवा करनी है।" तब से उसे प्रतिदिन एक हजार सिक्के मिलते थे और वह राजा की सेवा में तत्पर रहता था। राजा के सेवक नाराज़ हो गए; "हमें तो ज्योतिपाला का कोई काम नज़र नहीं आता, उसे तो प्रतिदिन एक हजार सिक्के मिलते हैं। हम तो उसकी कला का नमूना देखना चाहते हैं।" राजा ने उनकी बात सुनी और पुजारी को बताया। पुजारी ने कहा, "ठीक है महाराज," और अपने पुत्र को बताया। "बहुत अच्छा, प्रिय पिता," उसने कहा, "इस दिन के सातवें दिन मैं उन्हें दिखाऊंगा: राजा अपने राज्य के सभी धनुर्धारियों को इकट्ठा करें।" पुजारी गया और उसने राजा को वही बात दोहराई। राजा ने ढोल बजाकर पूरे शहर में अपने सभी धनुर्धारियों को इकट्ठा करवाया। जब वे एकत्रित हुए, तो उनकी संख्या साठ हजार थी। राजा ने यह सुनकर कि वे एकत्रित हो गए हैं, कहा: "शहर में रहने वाले सभी लोग ज्योतिपाला की कला देखें।" ढोल बजाकर घोषणा करते हुए उन्होंने महल के प्रांगण को तैयार करवाया और एक विशाल जनसमूह के साथ भव्य सिंहासन पर विराजमान हुए। धनुर्धारियों को बुलाकर उन्होंने ज्योतिपाला को बुलवाया। ज्योतिपाला ने अपने गुरु द्वारा दिए गए धनुष, बाण-कोष, कवच और मुकुट को अपने अंतर्वस्त्र के नीचे छिपा लिया और तलवार मंगवाकर राजा के सामने साधारण वेश में उपस्थित हुए और एक ओर आदरपूर्वक खड़े हो गए। धनुर्धारियों ने सोचा, "ज्योतिपाला हमें अपने कौशल का प्रदर्शन करने आए हैं, लेकिन उनके बिना धनुष के आने से स्पष्ट है कि वे हमसे धनुष लेना चाहेंगे।" परन्तु वे सब इस बात पर सहमत हुए कि वे उन्हें धनुष नहीं देंगे। राजा ने ज्योतिपाला से कहा, "अपने कौशल का प्रमाण दिखाओ।" अतः ज्योतिपाला ने अपने चारों ओर तंबू जैसा पर्दा डलवाया और उसके भीतर खड़े होकर अपना लबादा उतारकर कवच पहन लिया और मुकुट को अपने सिर पर धारण कर लिया। फिर उसने अपने मेढ़े के रंग के धनुष पर मूंगे की डोरी लगाई, अपने बाण का थैला पीठ पर बाँधा और अपनी तलवार बाएँ कमर पर बाँधी, फिर उसने अपने नाखून पर हीरे जड़ा बाण घुमाया, और पर्दा हटाकर नाग राजकुमार की तरह पृथ्वी से प्रकट होते हुए तेज गति से आगे बढ़ा, भव्य रूप से सुसज्जित होकर, और राजा को प्रणाम किया। उसे देखकर सभी उछल पड़े, चिल्लाए और तालियाँ बजाईं। राजा ने कहा, "ज्योतिपाला, हमें अपनी कुशलता का एक नमूना दिखाओ।" उसने कहा, "महाराज, आपके धनुर्धारियों में ऐसे पुरुष हैं जो बिजली की तरह भेदन करते हैं (*7), बाल को भी चीर सकते हैं, आवाज सुनकर (बिना देखे) तीर चला सकते हैं और गिरते हुए बाण को भी चीर सकते हैं। इनमें से चार धनुर्धारियों को बुलाइए।" राजा ने उन्हें बुलाया। उस महान प्राणी ने महल के प्रांगण में एक वर्गाकार घेरे में एक मंडप स्थापित किया, और चारों कोनों पर उसने चार धनुर्धारियों को तैनात किया, और उनमें से प्रत्येक को तीस हजार तीर आवंटित किए, और प्रत्येक को तीर देने के लिए आदमी नियुक्त किए, और स्वयं हीरे की नोक वाला एक तीर लेकर मंडप के बीच में खड़ा हो गया और चिल्लाया।"हे महाराज, इन चारों धनुर्धारियों को एक साथ अपने बाण चलाकर मुझे घायल करने दीजिए; मैं उनके बाणों को रोक लूँगा।" राजा ने उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया। "महाराज," उन्होंने कहा, "हम बिजली की गति से तीर चलाते हैं, बाल को भी चीर सकते हैं, आवाज सुनकर (बिना देखे) तीर चला सकते हैं, और गिरते हुए बाण को भी चीर सकते हैं, लेकिन ज्योतिपाल तो अभी बच्चा है; हम उसे तीर नहीं चलाएँगे।" महापुरुष ने कहा, "यदि कर सकते हो, तो मुझे तीर चलाओ।" "सहमत," उन्होंने कहा, और एकमत होकर अपने बाण चला दिए। उस महान प्राणी ने अपने लोहे के बाण से उन पर ज़ोरदार प्रहार किया और किसी न किसी तरह उन्हें ज़मीन पर गिरा दिया। फिर उसने उनके चारों ओर एक दीवार (*8) खड़ी कर दी और उन्हें एक साथ ढेर कर बाणों का भंडार बना लिया। उसने हर बाण को इस तरह फिट किया कि हैंडल हैंडल से, बट बट से, पंख पंख से, जब तक कि सभी धनुर्धारियों के बाण समाप्त नहीं हो गए। जब उसने देखा कि ऐसा हो गया है, तो उसने अपने बाणों के भंडार को खाली किए बिना ही हवा में उड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया। जनता ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना, नाचना और तालियाँ बजाना शुरू कर दिया। उन्होंने अपने वस्त्र और आभूषण उतार फेंके, जिससे अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये का खजाना ढेर हो गया। तब राजा ने उससे पूछा, "ज्योतिपाल, तुम इस चाल को क्या कहते हो?" "महाराज, इसे बाण-रक्षा कहते हैं।" "क्या इसे जानने वाला कोई और है?" "महाराज, मेरे सिवा पूरे भारत में कोई नहीं।" "मित्र, हमें कोई और चाल दिखाओ।" "महाराज, चारों कोनों पर तैनात ये चारों आदमी मुझे घायल नहीं कर पाए। लेकिन अगर इन्हें चारों कोनों पर तैनात किया जाए, तो मैं एक ही तीर से

इन्हें घायल कर दूंगा।" तीरंदाज वहाँ खड़े होने की हिम्मत नहीं कर पाए। इसलिए उस महान शक्ति ने चारों कोनों पर चार केले गाड़ दिए, और तीर के पंख वाले हिस्से पर लाल धागा बाँधकर, एक केले पर निशाना साधते हुए तीर चलाया। तीर पहले केले पर लगा, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे पर, एक के बाद एक, और फिर पहले केले पर लगा, जिसे वह पहले ही भेद चुका था, और इस तरह तीरंदाज के हाथ में लौट आया; जबकि केले धागे से घिरे रहे। लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं। राजा ने पूछा, "मित्र, इस करतब को क्या कहते हो?" "भेदा हुआ घेरा, महाराज।" "हमें कुछ और दिखाओ।" उस महान प्राणी ने उन्हें बाण-छड़ी, बाण-रस्सी, बाण-बुनाई दिखाई और बाण-छतरी, बाण-मंडप, बाण-दीवार, बाण-सीढ़ी, बाण-तालाब जैसे अन्य करतब दिखाए और बाण-कमल को खिलाया तथा उससे बाणों की बौछार करवाई।मुझे तीर मारो।" "सहमत," उन्होंने कहा और एकमत होकर अपने तीर चला दिए। उस महान प्राणी ने अपने लोहे के तीर से उन पर ज़ोरदार प्रहार किया और किसी न किसी तरह उन्हें ज़मीन पर गिरा दिया। फिर उसने उनके चारों ओर एक दीवार (*8) खड़ी कर दी और उन्हें एक साथ ढेर कर तीरों का भंडार बना लिया। उसने हर तीर को इस तरह फिट किया कि हैंडल हैंडल से, बट बट से, पंख पंख से, जब तक कि सभी धनुर्धारियों के तीर खत्म नहीं हो गए। जब उसने देखा कि ऐसा हो गया है, तो उसने अपने तीरों के भंडार को बर्बाद किए बिना हवा में उड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया। जनता ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए, नाचते हुए और तालियाँ बजाते हुए शोर मचाया और अपने वस्त्र और आभूषण उतार फेंके, जिससे अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये का खजाना ढेर हो गया। तब राजा ने उससे पूछा, "ज्योतिपाल, तुम इस चाल को क्या कहते हो?" "महाराज, इसे तीर-रक्षा कहते हैं।" "क्या इसे जानने वाला कोई और है?" "महाराज, मेरे सिवा पूरे भारत में कोई नहीं।" "मित्र, हमें कोई और चाल दिखाओ।" "महाराज, चारों कोनों पर तैनात ये चारों आदमी मुझे घायल करने में असफल रहे।" लेकिन अगर उन्हें चारों कोनों पर रखा जाए, तो मैं उन्हें एक ही तीर से घायल कर दूंगा।" तीरंदाज वहाँ खड़े होने की हिम्मत नहीं कर पाए। इसलिए उस महान प्राणी ने चारों कोनों पर चार केले गाड़ दिए, और तीर के पंख वाले हिस्से पर लाल धागा बांधकर, एक केले पर निशाना साधते हुए तीर चलाया। तीर पहले केले को लगा, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे को, एक के बाद एक, और फिर पहले केले को लगा, जिसे वह पहले ही भेद चुका था, और इस तरह तीरंदाज के हाथ में लौट आया; जबकि केले धागे से घिरे रहे। लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं। राजा ने पूछा, "मित्र, इस करतब को क्या कहते हो?" "भेदा हुआ घेरा, महाराज।" "हमें कुछ और दिखाओ।" उस महान प्राणी ने उन्हें तीर-छड़ी, तीर-रस्सी, तीर-बुनाई दिखाई, और तीर-छतरी, तीर-मंडप, तीर-दीवार, तीर-सीढ़ी, तीर-तालाब जैसे अन्य करतब दिखाए, और तीर-कमल को खिलाया और उससे तीरों की बौछार करवाई।मुझे तीर मारो।" "सहमत," उन्होंने कहा और एकमत होकर अपने तीर चला दिए। उस महान प्राणी ने अपने लोहे के तीर से उन पर ज़ोरदार प्रहार किया और किसी न किसी तरह उन्हें ज़मीन पर गिरा दिया। फिर उसने उनके चारों ओर एक दीवार (*8) खड़ी कर दी और उन्हें एक साथ ढेर कर तीरों का भंडार बना लिया। उसने हर तीर को इस तरह फिट किया कि हैंडल हैंडल से, बट बट से, पंख पंख से, जब तक कि सभी धनुर्धारियों के तीर खत्म नहीं हो गए। जब उसने देखा कि ऐसा हो गया है, तो उसने अपने तीरों के भंडार को बर्बाद किए बिना हवा में उड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया। जनता ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए, नाचते हुए और तालियाँ बजाते हुए शोर मचाया और अपने वस्त्र और आभूषण उतार फेंके, जिससे अठारह करोड़ (10 मिलियन) रुपये का खजाना ढेर हो गया। तब राजा ने उससे पूछा, "ज्योतिपाल, तुम इस चाल को क्या कहते हो?" "महाराज, इसे तीर-रक्षा कहते हैं।" "क्या इसे जानने वाला कोई और है?" "महाराज, मेरे सिवा पूरे भारत में कोई नहीं।" "मित्र, हमें कोई और चाल दिखाओ।" "महाराज, चारों कोनों पर तैनात ये चारों आदमी मुझे घायल करने में असफल रहे।" लेकिन अगर उन्हें चारों कोनों पर रखा जाए, तो मैं उन्हें एक ही तीर से घायल कर दूंगा।" तीरंदाज वहाँ खड़े होने की हिम्मत नहीं कर पाए। इसलिए उस महान प्राणी ने चारों कोनों पर चार केले गाड़ दिए, और तीर के पंख वाले हिस्से पर लाल धागा बांधकर, एक केले पर निशाना साधते हुए तीर चलाया। तीर पहले केले को लगा, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे को, एक के बाद एक, और फिर पहले केले को लगा, जिसे वह पहले ही भेद चुका था, और इस तरह तीरंदाज के हाथ में लौट आया; जबकि केले धागे से घिरे रहे। लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं। राजा ने पूछा, "मित्र, इस करतब को क्या कहते हो?" "भेदा हुआ घेरा, महाराज।" "हमें कुछ और दिखाओ।" उस महान प्राणी ने उन्हें तीर-छड़ी, तीर-रस्सी, तीर-बुनाई दिखाई, और तीर-छतरी, तीर-मंडप, तीर-दीवार, तीर-सीढ़ी, तीर-तालाब जैसे अन्य करतब दिखाए, और तीर-कमल को खिलाया और उससे तीरों की बौछार करवाई।"क्या इसे जानने वाला कोई और है?" "महाराज, मेरे सिवा पूरे भारत में कोई नहीं।" "कोई और तरकीब दिखाओ, दोस्त।" "महाराज, चारों कोनों पर तैनात ये चारों आदमी मुझे घायल करने में नाकाम रहे।" लेकिन अगर उन्हें चारों कोनों पर रखा जाए, तो मैं उन्हें एक ही तीर से घायल कर दूंगा।" तीरंदाज वहाँ खड़े होने की हिम्मत नहीं कर पाए। इसलिए उस महान प्राणी ने चारों कोनों पर चार केले गाड़ दिए, और तीर के पंख वाले हिस्से पर लाल धागा बांधकर, एक केले पर निशाना साधते हुए तीर चलाया। तीर पहले केले को लगा, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे को, एक के बाद एक, और फिर पहले केले को लगा, जिसे वह पहले ही भेद चुका था, और इस तरह तीरंदाज के हाथ में लौट आया; जबकि केले धागे से घिरे रहे। लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं। राजा ने पूछा, "मित्र, इस करतब को क्या कहते हो?" "भेदा हुआ घेरा, महाराज।" "हमें कुछ और दिखाओ।" उस महान प्राणी ने उन्हें तीर-छड़ी, तीर-रस्सी, तीर-बुनाई दिखाई, और तीर-छतरी, तीर-मंडप, तीर-दीवार, तीर-सीढ़ी, तीर-तालाब जैसे अन्य करतब दिखाए, और तीर-कमल को खिलाया और उससे तीरों की बौछार करवाई।"क्या इसे जानने वाला कोई और है?" "महाराज, मेरे सिवा पूरे भारत में कोई नहीं।" "कोई और तरकीब दिखाओ, दोस्त।" "महाराज, चारों कोनों पर तैनात ये चारों आदमी मुझे घायल करने में नाकाम रहे।" लेकिन अगर उन्हें चारों कोनों पर रखा जाए, तो मैं उन्हें एक ही तीर से घायल कर दूंगा।" तीरंदाज वहाँ खड़े होने की हिम्मत नहीं कर पाए। इसलिए उस महान प्राणी ने चारों कोनों पर चार केले गाड़ दिए, और तीर के पंख वाले हिस्से पर लाल धागा बांधकर, एक केले पर निशाना साधते हुए तीर चलाया। तीर पहले केले को लगा, फिर दूसरे, तीसरे और चौथे को, एक के बाद एक, और फिर पहले केले को लगा, जिसे वह पहले

ही भेद चुका था, और इस तरह तीरंदाज के हाथ में लौट आया; जबकि केले धागे से घिरे रहे। लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं। राजा ने पूछा, “मित्र, इस करतब को क्या कहते हो?” “भेदा हुआ घेरा, महाराज।” “हमें कुछ और दिखाओ।” उस महान प्राणी ने उन्हें तीर-छड़ी, तीर-रस्सी, तीर-बुनाई दिखाई, और तीर-छतरी, तीर-मंडप, तीर-दीवार, तीर-सीढ़ी, तीर-तालाब जैसे अन्य करतब दिखाए, और तीर-कमल को खिलाया और उससे तीरों की बौछार करवाई।

इस प्रकार उन्होंने कौशल के ये बारह अद्वितीय कारनामे दिखाए, और फिर उन्होंने सात अतुलनीय विशाल वस्तुओं को विच्छेदित किया। उन्होंने आठ इंच मोटी अंजीर की लकड़ी का तख्ता, चार इंच मोटी आसन की लकड़ी का तख्ता, दो इंच मोटी तांबे की थाली, एक इंच मोटी लोहे की थाली को भेदा, और सौ तख्तों को एक के बाद एक भेदने के बाद, उन्होंने भूसे, रेत और तख्तों से भरी गाड़ियों के आगे के हिस्से पर तीर चलाया और उसे पीछे से निकाल दिया; और गाड़ियों के पीछे तीर चलाकर, उन्होंने तीर को आगे से निकाल दिया। उन्होंने एक फर्लांग से अधिक पानी और दो फर्लांग से अधिक मिट्टी में तीर चलाया, और हवा के चलने के पहले संकेत पर ही आधे फर्लांग की दूरी पर एक बाल को भेद दिया। और जब उन्होंने कौशल के ये सभी कारनामे प्रदर्शित कर दिए, तब सूर्य अस्त हो गया। तब राजा ने उन्हें सेनापति का पद देने का वादा करते हुए कहा, "ज्योतिपाल, आज बहुत देर हो चुकी है; कल तुम्हें सेनापति का पदभार ग्रहण करने का सम्मान मिलेगा। जाओ, अपनी दाढ़ी मुंडवा लो और स्नान कर लो।" उसी दिन राजा ने उनके खर्चों के लिए उन्हें एक लाख सिक्के दिए। ज्योतिपाल ने कहा, "मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है," और उन्होंने अपने सामंतों को अठारह करोड़ (10 मिलियन) का खजाना दिया और एक बड़े दल के साथ स्नान करने चले गए। दाढ़ी मुंडवाने और स्नान करने के बाद, वे सभी प्रकार के आभूषणों से सज-धज कर अपने निवास में अभूतपूर्व वैभव के साथ प्रवेश किया। विभिन्न प्रकार के लज़ीज़ भोजन का आनंद लेने के बाद, वे उठे और राजसी पलंग पर लेट गए। दो पहरों तक सोने के बाद, अंतिम पहर में वे जागे और अपने पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए, अपने कौशल के आरंभ, मध्य और अंत पर विचार करने लगे। “मेरी कुशलता,” उसने सोचा, “शुरुआत में स्पष्ट रूप से मृत्यु है, मध्य में पाप का भोग है, और अंत में नरक में पुनर्जन्म है: क्योंकि जीवन का विनाश और पापमय भोग में अत्यधिक लापरवाही नरक में पुनर्जन्म का कारण बनती है। सेनापति का पद मुझे राजा द्वारा दिया गया है, और मुझे महान शक्ति प्राप्त होगी, और मेरी एक पत्नी और कई संतानें होंगी; लेकिन यदि इच्छाओं की पूर्ति न हो, तो इच्छाओं से छुटकारा पाना कठिन होगा। मैं अकेले ही संसार छोड़कर वन में प्रवेश करूँगा: मेरे लिए तपस्वी का जीवन अपनाना उचित है।” अतः वह महान पुरुष अपने पलंग से उठा, और किसी को बताए बिना, वह चबूतरे से नीचे उतरा, और घर के द्वार (*9) से बाहर निकलकर अकेले ही वन में चला गया, और गोदावरी नदी के किनारे कवित्था (*10) वन के पास, तीन कुंड (x 4.23 किमी) के विस्तार वाले एक स्थान पर गया। सक्का (इंद्र) ने जगत के त्याग के बारे में सुनकर विश्वकर्मा को बुलाया और कहा, "मित्र, ज्योतिपाल ने जगत का त्याग कर दिया है; उनके चारों ओर एक बड़ा समूह एकत्रित होगा। कवित्थ वन में गोदावरी नदी के किनारे एक आश्रम बनवाओ और उन्हें तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक सभी चीजें प्रदान करो।" विश्वकर्मा ने वैसा ही किया। जब वह महान प्राणी उस स्थान पर पहुँचे,एक पैदल यात्री के लिए बनी सड़क देखकर उन्होंने सोचा, "यह अवश्य ही तपस्वियों के रहने का स्थान होगा।" इस सड़क पर चलते हुए, जब उन्हें कोई नहीं मिला, तो वे पत्तों की कुटिया में प्रवेश कर गए। तपस्वी जीवन की आवश्यक वस्तुएँ देखकर उन्होंने कहा, "मुझे लगता है कि स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) जानते थे कि मैंने संसार का त्याग कर दिया है।" उन्होंने अपना लबादा उतारकर, रंगे हुए छाल के भीतरी और बाहरी वस्त्र धारण किए और एक कंधे पर हिरण की खाल डाल ली। फिर उन्होंने अपनी जटाओं को बांधा, तीन बोरी अनाज की थैली कंधे पर रखी, भिक्षु की लाठी ली और तेजी से अपनी कुटिया से निकल पड़े। वे ढके हुए रास्ते पर चढ़कर कई बार चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार उन्होंने तपस्या के सौंदर्य से वन को सुशोभित किया, और कसीना अनुष्ठान संपन्न करने के बाद, अपने संन्यासी जीवन के सातवें दिन उन्होंने आठों सिद्धियाँ और पाँचों इंद्रियाँ प्राप्त कीं, और एकांतवास में रहकर जो कुछ वे एकत्रित कर पाते थे, उसे खाकर तथा जड़ों और बेरों का सेवन करके अपना जीवन व्यतीत किया। उनके माता-पिता और मित्रों, परिवार और परिचितों की भीड़ उन्हें न देखकर व्याकुल होकर भटकती रही। तब एक वनपाल ने, जिसने कवित्था आश्रम में उस महान पुरुष को देखा और पहचाना था, उनके माता-पिता को सूचना दी और उन्होंने राजा को सूचित किया। राजा ने कहा, "चलो, हम उनसे मिलने चलते हैं," और माता-पिता को लेकर, और बहुत से लोगों के साथ, वे उस मार्ग से गोदावरी नदी के तट पर पहुँचे जो वनपाल ने उन्हें दिखाया था। नदी के किनारे आकर बोधिसत्व वायु में विराजमान हो गए और उन्हें धर्म का उपदेश देने के बाद अपने आश्रम में ले आए। वहाँ भी वे वायु में ही विराजमान होकर उन्हें इंद्रिय सुखों के कष्टों के बारे में बताते हुए धर्म का उपदेश देते रहे। राजा समेत सभी ने संन्यासी जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। बोधिसत्व तपस्वियों के समूह से घिरे हुए वहीं निवास करते रहे। उनके वहाँ निवास करने की खबर पूरे भारत में फैल गई। राजा और उनकी प्रजा उनके पास आकर शिष्यत्व ग्रहण करने लगे और उनकी एक विशाल सभा होने लगी, जिनकी संख्या धीरे-धीरे हजारों तक पहुँच गई। जो भी व्यक्ति कामवासना के विचार करता, या दूसरों को दुख पहुँचाने की इच्छा रखता, बोधिसत्व उसके पास प्रकट होते और वायु में विराजमान होकर उसे धर्म का उपदेश देते तथा कसीना विधि का प्रशिक्षण देते। उनके सात प्रमुख शिष्य थे: सालिसारा (*11), मेंडिसारा, पब्बटा, कलादेवला, किसावच्छा, अनुसिस्सा और नारद। उन्होंने उनकी सलाह का पालन करते हुए समाधि अवस्था में पहुंचकर पूर्णता प्राप्त की। समय बीतने के साथ कवित्थ आश्रम में भीड़ बढ़ गई और इतने सारे तपस्वियों के रहने के लिए जगह नहीं बची। तब भगवान ने सालिसारा से कहा, "सालिसारा, यह आश्रम इतने सारे तपस्वियों के लिए पर्याप्त नहीं है; क्या आप अपने साथ इन तपस्वियों को लेकर राजा चंदापज्जोत के प्रांत में स्थित लंबकुलक नगर के पास चले जाएंगे?" सालिसारा मान गए और हजारों तपस्वियों को लेकर वहां जाकर रहने लगे।लेकिन जैसे-जैसे लोग आते रहे और

तपस्वियों से जुड़ते रहे, आश्रम फिर से भर गया। बोधिसत्व ने मेंडिसारा को संबोधित करते हुए कहा, "सुरत्था देश की सीमा पर सतोदिका नामक एक नदी है। तपस्वियों के इस समूह को लेकर उस नदी के किनारे निवास करो।" और उन्होंने उसे विदा कर दिया। इसी प्रकार तीसरी बार उन्होंने पब्बता को यह कहते हुए भेजा, "बड़े जंगल में अंजना पर्वत है: जाओ और उसके पास निवास करो।" चौथी बार उन्होंने कालदेवला को यह कहते हुए भेजा, "दक्षिण देश में अवंती राज्य में घनसेल पर्वत है: उसके पास निवास करो।" कवित्था आश्रम फिर से भर गया, हालांकि पाँच अलग-अलग स्थानों पर उन्नीस हज़ार तपस्वियों का समूह था। और किसावच्छ ने महापुरुष से अनुमति लेकर दंडकी के प्रांत में कुंभवती नगर में सेनापति के पास स्थित उद्यान में अपना निवास स्थान बनाया। नारद मध्य प्रांत में अरंजारा पर्वत श्रृंखला में बस गए, और अनुसिसा उनके साथ रहीं। इसी समय राजा दंडकी ने एक शाही नर्तकी और वेश्या को, जिसे उन्होंने बहुत सम्मान दिया था, उसके पद से हटा दिया। अनुसिसा अपनी इच्छा से घूमते हुए एक उद्यान में आईं और तपस्वी किसावच्छ को देखकर उन्होंने सोचा, "यह तो दुर्भाग्य है। मैं अपना पाप इन पर त्याग दूंगी और फिर स्नान करूंगी।" उन्होंने पहले अपने दांत से बलगम को दांतों से दबाकर थूका और न केवल तपस्वी की जटाओं पर थूका, बल्कि अपना दांत भी उनके सिर पर फेंक दिया और स्नान करने चली गईं। राजा ने उन्हें याद दिलाकर अनुसिसा को उनके पुराने पद पर बहाल कर दिया। अपने इस कुकर्म से आहत होकर अनुसिसा इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उन्होंने यह सम्मान इसलिए वापस पाया है क्योंकि उन्होंने दुर्भाग्य के व्यक्ति पर अपना पाप त्याग दिया था। इसके कुछ समय बाद ही राजा ने अपने पारिवारिक पुजारी को पद से हटा दिया और उस स्त्री से पूछा कि उसने अपना पद कैसे पुनः प्राप्त किया। उसने बताया कि उसने राजमहल में दुर्भाग्य के देवता पर पाप का प्रायश्चित कर लिया था। पुजारी ने भी उसी प्रकार अपने पाप का प्रायश्चित किया और राजा ने उसे भी उसके पद पर पुनः स्थापित कर दिया। कुछ समय बाद राजा की सीमा पर अशांति फैल गई और वह अपनी सेना की एक टुकड़ी के साथ लड़ने के लिए आगे बढ़ा। तब उस मोहित पुजारी ने राजा से पूछा, "महाराज, आप विजय चाहते हैं या पराजय?" जब राजा ने उत्तर दिया, "विजय," तो उसने कहा, "राजमहल में दुर्भाग्य का देवता निवास करता है; जाओ और अपने पाप का प्रायश्चित उसके पास करो।" राजा को यह सुझाव पसंद आया और उसने कहा, "इन लोगों को मेरे साथ राजमहल में चलने दो और दुर्भाग्य के देवता पर अपने पाप का प्रायश्चित करने दो।" और पार्क में जाकर, उसने सबसे पहले अपनी दाढ़ चबाई और थूक तथा दाढ़ को तपस्वी की जटाओं पर गिराया और फिर उसका सिर धोया, और उसकी सेना ने भी ऐसा ही किया। जब राजा चला गया तो सेनापति आया, और तपस्वी को देखकर उसने उसकी जटाओं से दाढ़ निकाली और उसे अच्छी तरह से धुलवाया और फिर पूछा,"राजा का क्या होगा?" "महाराज, मेरे मन में कोई बुरा विचार नहीं है, परन्तु देवता (देवदूत) क्रोधित हैं और सातवें दिन उनका सारा राज्य नष्ट हो जाएगा: आप शीघ्रता से भागकर कहीं और चले जाइए।" वह अत्यंत भयभीत हो गया और जाकर राजा को यह बात बताई। राजा ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, इसलिए वह अपने घर लौट आया और अपनी पत्नी एवं बच्चों को साथ लेकर दूसरे राज्य में भाग गया। गुरु सरभंग (*12) ने यह सुनकर दो युवा तपस्वियों को भेजा और किसावच्छ को पालकी में हवा के द्वारा अपने पास बुलवाया। राजा ने युद्ध लड़ा और विद्रोहियों को बंदी बनाकर नगर लौट आया। उसके लौटने पर देवताओं (देवदूतों) ने सबसे पहले स्वर्ग से वर्षा कराई, और जब सभी मृत शरीर वर्षा की बाढ़ में बह गए, तो निर्मल सफेद रेत पर दिव्य फूलों की बौछार हुई, और उन फूलों पर छोटे सिक्कों की वर्षा हुई, और उनके बाद बड़े सिक्कों की बौछार हुई, और फिर दिव्य आभूषणों की बौछार हुई। लोग अत्यंत प्रसन्न हुए और सोने के आभूषण, यहाँ तक कि शुद्ध सोने के आभूषण भी उठाने लगे। फिर उन पर हर प्रकार के धधकते हथियारों की बौछार हुई, और लोग टुकड़े-टुकड़े हो गए। फिर उन पर धधकते अंगारों की बौछार हुई, और इन विशाल धधकती पर्वत चोटियों पर, साठ भुजाओं के बराबर क्षेत्र में महीन रेत की बौछार हुई। इस प्रकार उसके राज्य का साठ लीग (x 4.23 किमी) का एक भाग नष्ट हो गया, और उसकी तबाही की खबर पूरे भारत में फैल गई। तब उनके राज्य के अधीन अधीनस्थ राज्यों के तीनों राजा, कलिंग, अत्तक और भीमरथ, सोचने लगे, "एक समय बनारस में, काशी के राजा कलाबु (*13) ने तपस्वी खन्तीवादी के विरुद्ध पाप किया था, जिसके कारण वे पृथ्वी में समा गए थे। इसी प्रकार नालिकीरा ने भी तपस्वियों को कुत्तों के द्वारा खा जाने के लिए सौंप दिया था, और हजार भुजाओं वाले अज्जुन (*14) ने भी अंगिरस के विरुद्ध पाप किया था, जिसके कारण उनका भी नाश हो गया। अब फिर से दंडकी राजा ने किसावच्छ के विरुद्ध पाप किया था, जिसके कारण उनका राज्य भी नष्ट हो गया है। हमें नहीं पता कि ये चारों राजा कहाँ पुनर्जन्म लेते हैं: हमारे स्वामी सरभंग के सिवा कोई भी हमें यह नहीं बता सकता। हम जाकर उनसे पूछेंगे।" और तीनों राजा बड़े धूमधाम से यह प्रश्न पूछने के लिए चल पड़े। यद्यपि उन्होंने यह अफवाह सुनी थी कि फलां व्यक्ति चला गया है, फिर भी उन्हें वास्तव में इसका पता नहीं था, परन्तु प्रत्येक ने यह कल्पना की कि वह अकेला ही जा रहा है। गोदावरी से कुछ ही दूरी पर वे सब मिले और अपने रथों से उतरकर तीनों एक ही रथ पर सवार होकर गोदावरी के तट की ओर चल पड़े। इस समय सक्का (इंद्र), अपने पीले संगमरमर के सिंहासन पर बैठे हुए, सात प्रश्नों पर विचार करने लगे और मन ही मन बोले, "सर्वोच्च स्वामी सरभंग के सिवा इस संसार में या देव-लोक में कोई और ऐसा नहीं है जो इन प्रश्नों का उत्तर दे सके: मैं उनसे ही ये प्रश्न पूछूंगा। ये तीनों राजा सर्वोच्च स्वामी सरभंग से पूछताछ करने गोदावरी के तट पर आए हैं।"मैं उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों के बारे में भी उनसे परामर्श करूँगा।" और, दो देवलोकों के देवताओं के साथ, वे स्वर्ग से अवतरित हुए। उसी दिन किसावच्छा का निधन हो गया, और उनके अंतिम संस्कार के लिए, चार अलग-अलग स्थानों में रहने वाले असंख्य तपस्वियों के समूहों ने चंदन की लकड़ियों का ढेर लगाकर उनके शरीर को जला दिया, और उनके दाह संस्कार स्थल के चारों ओर आधा मील (4.23 किमी) के दायरे में दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई। महापुरुष ने अपने अवशेषों को विसर्जित करने के बाद, आश्रम में प्रवेश किया और तपस्वियों के इन समूहों के साथ बैठ गए। जब राजा नदी के किनारे पहुँचे तो उन्हें युद्ध संगीत की ध्वनि सुनाई दी।

महापुरुष ने इसे सुनकर तपस्वी अनुसिस्सा को संबोधित किया और कहा, "जाओ और जानो कि इस संगीत का क्या अर्थ है"; और पीने के पानी का कटोरा लेकर वे वहाँ गए, और इन राजाओं को देखकर उन्होंने प्रश्न के रूप में यह पहला श्लोक कहा:

अंगूठियों से सुसज्जित और शानदार ढंग से कपड़े पहने हुए,
सभी को रत्नजड़ित मूठ वाले ब्लेड से सुरक्षित किया गया है।
हे महान सरदारों, रुकिए और सीधे बताइए
आप मनुष्यों की दुनिया में किस नाम से जाने जाते हैं?
उनकी बातें सुनकर वे रथ से उतरकर उन्हें प्रणाम करने लगे। उनमें से राजा अट्ठक ने उनसे बातचीत करते हुए दूसरा श्लोक कहा:

भीमरथ, कलिंग के प्रसिद्ध व्यक्ति,
और अत्थका—इसी नाम से हम जाने जाते हैं—
जीवन के संतों को संयमी दृष्टि से देखना
और उनसे पूछें, क्या हम यहां आए हैं?
तब तपस्वी ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप उस स्थान पर पहुँच गए हैं जहाँ आप प्रसन्नतापूर्वक रहना चाहते हैं: इसलिए, स्नान करने के बाद विश्राम करें, और आश्रम में प्रवेश करके तपस्वियों के समूह को प्रणाम करें, और गुरु से अपना प्रश्न पूछें"; और इस प्रकार, उनसे मैत्रीपूर्ण बातचीत करते हुए, उन्होंने जल का घड़ा उछाला और गिरी हुई बूंदों को पोंछते हुए आकाश की ओर देखा और स्वर्ग के स्वामी सक्का (इंद्र) को देवताओं (देवदूतों) के समूह से घिरे हुए देखा, और एरवन (*15) की पीठ पर सवार होकर स्वर्ग से उतरते हुए, उनसे बातचीत करते हुए, उन्होंने तीसरा श्लोक दोहराया:

आप (*16) मध्य आकाश में ऊँचाई पर स्थिर हैं
जैसे पूर्णिमा का चंद्रमा आकाश को सुनहरा कर देता है,
हे सर्वशक्तिमान आत्मा, मैं आपसे विनती करता हूँ, कहिए
मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप पृथ्वी पर किस नाम से जाने जाते हैं?
यह सुनकर सक्का (इंद्र) ने चौथा श्लोक दोहराया:

स्वर्ग में सुजामपति ने घोषणा की
पृथ्वी पर मगहवा का यही नाम है;
आज देवदूतों का यह राजा यहाँ आता है
जीवन के इन संतों को संयमी अवस्था में देखना।
तब अनुसिसा ने उनसे कहा: "हे महाराज, क्या आप हमारे साथ आएंगे?" और पीने का पात्र लेकर वे आश्रम में प्रवेश कर गए, और जल का घड़ा एक तरफ रखकर उन्होंने महापुरुष को सूचित किया कि तीनों राजा और स्वर्ग के स्वामी उनसे कुछ प्रश्न पूछने आए हैं। तपस्वियों के एक समूह से घिरे सरभंग एक विशाल, विस्तृत बंद स्थान में बैठे थे। तीनों राजा आए और तपस्वियों के समूह को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। और सक्का (इंद्र) आकाश से उतरकर तपस्वियों के पास आए और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हुए और उनकी स्तुति करते हुए पाँचवाँ श्लोक दोहराया:

यह संत मंडली अपनी व्यापक प्रसिद्धि के लिए जानी जाती है,
उनके पास अपार शक्तियां थीं:
मैं खुशी से आपकी प्रशंसा करता हूँ: योग्यता में
आप धरती पर सर्वश्रेष्ठ लोगों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।
इस प्रकार इंद्र ने तपस्वियों के समूह को प्रणाम किया और बैठने के छह दोषों से सावधान रहते हुए अलग बैठ गए। तब अनुसिसा ने उन्हें तपस्वियों की ओर हवा की दिशा में बैठे देखकर छठा श्लोक कहा:

एक वृद्ध संत का व्यक्तित्व
यह देखने में भद्दा है और इससे हवा भी प्रदूषित हो जाती है।
हे महान सक्का (इंद्र/देवदूतों के मुखिया), शीघ्र पीछे हट जाओ।
बुजुर्गों की गंध, जो बिल्कुल भी मीठी नहीं होती।
यह सुनकर सक्का (इंद्र) ने एक और श्लोक दोहराया:

हालांकि वृद्ध संत नाक को अप्रिय लगते हैं
और बहने वाली सबसे मधुर हवा को भी दूषित कर देता है:

लेकिन ताजे फूलों की सुगंधित माला की तरह ऊपर
यह उन संतों की सुगंध है जिनसे हम प्रेम करते हैं;
देवताओं (देवदूतों) के प्रति ऐसी कोई अरुचि नहीं होती जिससे विचलित हुआ जा सके।
और इतना कहकर उन्होंने आगे कहा, "आदरणीय अनुसिस्सा, मैंने यहाँ आने और एक प्रश्न पूछने के लिए बहुत प्रयास किया है: मुझे ऐसा करने की अनुमति दें।" और सक्का (इंद्र) की बात सुनकर अनुसिस्सा अपने आसन से उठे और उन्हें अनुमति देकर तपस्वियों के समूह के समक्ष कुछ श्लोक दोहराए।

प्रसिद्ध मगहवा, सुजम्पति
दानदाता, परियों का स्वामी है वह--
राक्षसों पर विजय प्राप्त करने वाला, स्वर्ग का राजा,
क्रेव्स अपने सवालों को आगे बढ़ाने के लिए छुट्टी ले लेता है।
यहां उपस्थित ऋषियों में से कौन
वे अपने सूक्ष्म प्रश्नों को स्पष्ट कर देंगे।
उन तीन लोगों के लिए जिनका पुरुषों पर प्रभुत्व है,
और सक्का (इंद्र) जिसकी देवता (देवदूत) आज्ञा का पालन करते हैं?
यह सुनकर तपस्वियों के समूह ने कहा, "आदरणीय अनुसिस्सा, आप ऐसे बोल रहे हैं मानो आपने उस धरती को देखा ही न हो जिस पर आप खड़े हैं; हमारे गुरु सरभंग के अलावा, इन प्रश्नों का उत्तर देने में और कौन सक्षम है?" और ऐसा कहते हुए उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

यह सरभंगा, ऋषि और संत हैं,
इतनी पवित्र और वासना के दाग से मुक्त,
शिक्षक का बेटा, जो बहुत अनुशासित था,
उन्हें अपनी शंकाओं का समाधान मिल जाएगा।
और ऐसा कहकर, तपस्वियों के समूह ने अनुसिसा से कहा, "हे प्रभु, संतों के समूह की ओर से गुरु को प्रणाम कीजिए और उन्हें सक्का (इंद्र) द्वारा पूछे गए प्रश्न के बारे में बताने का अवसर ढूंढिए।" अनुसिसा ने सहर्ष सहमति व्यक्त की और अवसर पाकर एक और श्लोक दोहराया:

हे पवित्र पुरुषों, कोंडन्ना (*17), मैं आपसे निवेदन करता हूँ
कि आप उनके संदेह दूर कर देंगे;
यह बोझ, मनुष्यों के समान, बना रहता है।
उम्र और ज्ञान में परिपक्व पुरुषों पर।
तब उस महान सत्ता ने अपनी सहमति देते हुए निम्नलिखित श्लोक दोहराया:

मैं आपको जो कुछ भी पूछना हो, पूछने की अनुमति देता हूँ।
आप हृदय से यह सुनकर प्रसन्न होंगे;
मैं इस दुनिया और अगली दुनिया दोनों को जानता हूँ;
कोई भी प्रश्न मुझे असमंजस में नहीं डालता।
इस प्रकार अनुमति प्राप्त करने के बाद, सक्का (इंद्र) ने स्वयं तैयार किया हुआ एक प्रश्न पूछा:

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

सक्का (इंद्र), उदार नगरों के प्रति उदार, जो चीजों की सच्चाई को देखता है,
जो बात वह जानना चाहता था, उसे जानने के लिए उसने पूछताछ शुरू की।
वह क्या चीज है जिसे कोई व्यक्ति सीधे तौर पर मार सकता है और फिर कभी पछतावा नहीं करता?
ऐसी कौन सी चीज़ है जिसे सभी भले लोगों की सहमति से फेंका जा सकता है?
किसी को किसके शब्दों को सहन करना चाहिए, चाहे वे कितने भी कठोर क्यों न हों?
यही वो बात है जो मैं कोंडन्ना से सुनना चाहता हूँ।
फिर प्रश्न को समझाते हुए उन्होंने कहा:

क्रोध वह चीज है जिसके कारण मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो सकता है और फिर कभी पश्चाताप नहीं करता;

वह सभी भले लोगों की सहमति से पाखंड को त्याग देता है;
उसे हर तरह की वाणी सहन करनी चाहिए, चाहे वह कितनी भी कठोर क्यों न हो।
बुद्धिमान लोगों का कहना है कि धैर्य का यह रूप उच्चतम स्तर का होता है।
दो लोगों की अभद्र भाषा को धैर्य से सुना जा सकता है।
अपने से वरिष्ठ व्यक्ति से, या अपने समकक्ष से,
लेकिन नीच लोगों के असभ्य भाषण को कैसे सहन किया जाए?
कोंडन्ना मुझे यही सिखाना पसंद करेंगी, इसमें मुझे कोई संकोच नहीं होगा।
बड़प्पन से मिली अभद्र बातों को कोई डर के मारे सह सकता है।
या, किसी समकक्ष से झगड़े से बचने के लिए,
लेकिन अभद्र भाषा को सहन करने की प्रवृत्ति से परे।
यह पूर्ण धैर्य है, जैसा कि ऋषि-मुनि सिखाते हैं।
इस प्रकार के श्लोकों को प्रश्न और उत्तर के रूप में आपस में जुड़ा हुआ समझना चाहिए।

इस प्रकार कहने के बाद, सक्का (इंद्र) ने महापुरुष से कहा, "हे प्रभु, पहले आपने कहा था, 'सभी की कठोर वाणी सहन करो; लोग कहते हैं कि यही धैर्य का सर्वोच्च रूप है,' लेकिन अब आप कहते हैं, 'यहाँ एक निम्न व्यक्ति की वाणी सहन करो; लोग कहते हैं कि यही धैर्य का सर्वोच्च रूप है'; यह बाद वाला कथन आपके पहले वाले कथन से मेल नहीं खाता।" तब महापुरुष ने उनसे कहा, "सक्का (इंद्र), मेरा यह अंतिम कथन उस व्यक्ति के लिए है जो कठोर वाणी सहन करता है, क्योंकि वह जानता है कि बोलने वाला उससे निम्न है, लेकिन मैंने जो पहले कहा था वह इसलिए था क्योंकि केवल लोगों के बाहरी रूप को देखकर उनकी स्थिति का निश्चित रूप से पता नहीं लगाया जा सकता है, चाहे वे स्वयं से श्रेष्ठ हों या नहीं," और यह स्पष्ट करने के लिए कि केवल बाहरी रूप को देखकर व्यक्तियों की स्थिति, चाहे वे निम्न हों या नहीं, घनिष्ठ संपर्क के बिना कैसे भेदना कितना कठिन है, उन्होंने यह श्लोक कहा:

बाहरी दिखावे से परिपूर्ण व्यक्ति का आकलन करना कितना कठिन होता है!
चाहे वह किसी से बेहतर हो, बराबर हो या फिर किसी से हीन हो।
सर्वश्रेष्ठ पुरुष भी कई बार निम्नतम रूपों में भेस बदलकर संसार में आते-जाते हैं;
इसलिए, यदि आप, मेरे मित्र, सही सलाह मानते हैं, तो सभी की कठोर भाषा को सहन करें।
यह सुनकर इंद्र (सक्का) ने श्रद्धापूर्वक उनसे विनती की, “हे परम पूज्य, हमें इस धैर्य में निहित आशीर्वाद के बारे में बताइए,” और उस महान सत्ता ने यह श्लोक दोहराया:

कोई भी शाही सेना, चाहे उसकी शक्ति कितनी भी विशाल क्यों न हो,
लड़ाई में बहुत बड़ा फायदा मिल सकता है।
जिस प्रकार धैर्य से नेक व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है:
सबसे भयंकर झगड़ों का इलाज दृढ़ धैर्य से ही होता है।
जब उस महान सत्ता ने धैर्य के गुणों का इस प्रकार वर्णन किया, तो राजाओं ने सोचा, "इंद्र तो अपना प्रश्न स्वयं ही पूछ रहे हैं; वे हमें अपना प्रश्न पूछने का अवसर ही नहीं देंगे।" अतः उनकी इच्छा को समझते हुए उन्होंने अपने द्वारा तैयार किए गए चार प्रश्नों को एक तरफ रख दिया और अपने संदेह व्यक्त करते हुए इस श्लोक को दोहराया:

आपके शब्द सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगा।
लेकिन एक और बात मैं सहर्ष सुनना चाहूंगा;
हमें दंडकी के भविष्य के बारे में बताएं।
और उसके तीन सह-पापी,
किस प्रकार के कष्ट भोगने के लिए नियत हैं ये पुनर्जन्म?
पृथ्वी पर संतों को सताने के लिए।
तब उस महान सत्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए पाँच श्लोक दोहराए:

कुछ समय पहले, राज्य समेत सब कुछ उखाड़ दिया गया था।
जिसे किसावच्छ ने अपवित्र किया,
धधकती चिंगारियों से अभिभूत, देखो,
कुक्कुला में दंडाकी स्थित है।
जिसने उसे पुजारी और संत का मजाक बना दिया

और उपदेशक, पापमय दाग से मुक्त,
यह नालिकिरा कांपते हुए गिर पड़ी
नरक में कुत्तों के जबड़ों में।
तो अजजूना, जिसने सीधे तौर पर हत्या कर दी
वह पवित्र, निर्मल, सहनशील प्राणी,
अंगिरासा को सिर के बल फेंक दिया गया।
पीड़ा से भरी दुनिया में यातनाओं के लिए।
जिसने कभी एक निष्पाप संत को अपंग किया था
उनका नाम धैर्य का उपदेशक था।
कलाबू अब नरक की आग में झुलस रहा था।
पीड़ा के बीच, दर्दनाक और भयानक।
जो बुद्धिमान व्यक्ति सुनता है, वही बताता है।
ऐसी कहानियों या नरक की इससे भी बदतर कहानियों के बारे में,
पुजारी या ब्राह्मण के पापों के विरुद्ध कभी नहीं।
और स्वर्ग उसके सही कर्मों से विजय प्राप्त करता है।
जब उस महान सत्ता ने उन स्थानों का उल्लेख किया जहाँ चारों राजाओं का पुनर्जन्म हुआ था, तो तीनों राजा सभी संदेहों से मुक्त हो गए।
तब इंद्र ने अपने शेष चार प्रश्न पूछते हुए इस श्लोक का पाठ किया:

आपके शब्द सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगा।
लेकिन एक और बात मैं सहर्ष सुनना चाहूंगा:
दुनिया किसे "नैतिक" नाम देती है?
और यह किसे "बुद्धिमान" घोषित करता है?
दुनिया किसे "धार्मिक" मानती है?
और भाग्य किसे कभी नहीं छोड़ता?
फिर उन्हें उत्तर देते हुए उस महान सत्ता ने चार श्लोक दोहराए:

जो कोई भी अपने कर्मों और वचनों में संयम दिखाता है,
और विचारों में भी वह पापमयता से मुक्त है।
न ही वह अपने नीच उद्देश्यों की पूर्ति के लिए झूठ बोलता है—वही
सभी पुरुष स्वयं को "नैतिक" घोषित करते हैं।
जो अपने मन में गहन प्रश्नों का मंथन करता है
फिर भी वह किसी भी प्रकार की क्रूरता या निर्दयता नहीं करता।
सही समय पर अच्छे शब्दों से सलाह देना।
उस व्यक्ति को सर्वथा बुद्धिमान माना जाता है।
जो व्यक्ति एक बार प्राप्त हुई कृपा के लिए आभारी होता है,
और दुःख की आवश्यकता को सावधानीपूर्वक दूर किया गया है,
उन्होंने स्वयं को एक अच्छा और समर्पित मित्र साबित किया है--
सभी लोग उन्हें एक धर्मनिष्ठ आत्मा के रूप में सराहते हैं।
वह व्यक्ति जिसके पास हर प्रतिभा मौजूद थी,
सच्चा, कोमल, उदार और दयालु,
दिल जीतने वाला, विनम्र, और वाक्पटुता से भरपूर—
ऐसे व्यक्ति से भाग्य कभी नहीं गिरेगा।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने, मानो आकाश में चंद्रमा को उदय कर रहे हों, चारों प्रश्नों के उत्तर दिए। फिर अन्य प्रश्न पूछे गए और उनके उत्तर दिए गए।

आपके दयालु शब्द सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।
लेकिन एक और बात सुनकर मुझे खुशी हुई:
सद्‌गुण, सौभाग्य, अच्छाई, ज्ञान—कहें
मैं पूछना चाहता हूं कि इन सबमें से पुरुष किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं?

अच्छे लोगों द्वारा कही गई ज्ञान की बातें सर्वोत्कृष्ट होती हैं।
यहां तक कि जब चंद्रमा हर तारे को ग्रहण लगा देता है
सद्‌गुण, सौभाग्य, अच्छाई, यह स्पष्ट है।
सभी लोग विधिवत रूप से उस बुद्धिमान व्यक्ति के मार्ग का अनुसरण करते हैं।
आपके दयालु शब्द सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।
लेकिन एक और बात सुनकर मुझे खुशी हुई:
इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?
किस प्रकार की कार्यप्रणाली अपनाई जाए या कौन सा मार्ग अपनाया जाए?
हमें बताइए कि ज्ञान का मार्ग किस ओर जाता है
और किन कर्मों से मनुष्य बुद्धिमान बनता है?
एक चतुर, अनुभवी और विद्वान पुरुष से शादी करने वाली पत्नी के साथ,
उनसे प्रश्न पूछकर ज्ञान प्राप्त करना:
उनकी अच्छी सलाह को सुनना और उसका महत्व समझना चाहिए।
क्योंकि इसी प्रकार एक नश्वर मनुष्य बुद्धिमान बनता है।
ऋषि इंद्रिय सुख की वस्तुओं की लालसा को महत्व देते हैं।
बीमारी, दर्द और नश्वरता को देखते हुए;
दुःखों, वासनाओं और भय के बीच,
शांत और अविचलित होकर ऋषि उन सभी को नजरअंदाज कर देते हैं।
इस प्रकार वह पाप पर विजय प्राप्त करेगा, वासना से मुक्त होगा।
और असीम परोपकार की भावना विकसित करें;
हर जीवित प्राणी पर दया दिखाओ।
और हे निष्कलंक आत्मा, ब्रह्मलोक (परम स्वर्ग) में जाओ।
जब परमेश्वर इंद्रिय सुख के पापों के बारे में बोल ही रहे थे, तब इन तीनों राजाओं ने अपनी सेनाओं सहित विपरीत गुण के द्वारा इंद्रिय सुख की वासना से मुक्ति पा ली। यह जानकर परमेश्वर ने उनकी प्रशंसा करते हुए यह श्लोक पढ़ा:

भीमरथ जादू की शक्ति से आया
हे अत्थका, आपके साथ, और प्रसिद्धि की ओर जाने वाले एक व्यक्ति के साथ।
जैसा कि राजा कलिंग को ज्ञात है, और अब तीनों को,
कभी कामुकता के गुलाम रहे लोग अब मुक्त हो गए हैं।
यह सुनकर, महान सत्ता की स्तुति करते हुए शक्तिशाली राजाओं ने यह श्लोक पढ़ा:

हे पुरुषों के विचारों के पाठक, यह सच है: तीनों
हममें से कुछ लोग कामुकता से मुक्त हैं।
हमें वह वरदान प्रदान करें जिसके हम हकदार हैं।
ताकि हम आपकी सुखी अवस्था को प्राप्त कर सकें।
तब उस महान सत्ता ने उन्हें यह कृपा प्रदान करते हुए एक और श्लोक दोहराया:

मैं आपको वह वरदान प्रदान करता हूँ जो आप मुझसे चाहते हैं (*18),
जितना अधिक आप कामुक विकारों से मुक्त होंगे:
इसलिए आप असीम आनंद से भर उठें।
वह सुखद अवस्था जिसे आप प्राप्त करना चाहते हैं।
यह सुनकर उन्होंने सहमति जताते हुए इस छंद को दोहराया:

हम आपके आदेशानुसार सब कुछ करेंगे।
जो भी आप अपनी बुद्धिमत्ता से सर्वोत्तम समझते हैं;
तो क्या हम असीम आनंद से भर उठेंगे?
वह सुखद अवस्था जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं।
तब उस महान सत्ता ने अपनी सेनाओं को आदेश दिए और तपस्वियों के समूह को विदा करते हुए इस श्लोक को दोहराया:

किसवच्छ को उचित सम्मान दिया गया;
तो अब प्रस्थान करो, हे महान प्रसिद्धि के संतों!
परमानंद (सम्मोहन) में आनंदित होकर शांत भाव से विश्राम करना;
पवित्रता का यह आनंद सर्वोत्कृष्ट है।
संतों ने उनके वचनों से सहमत होते हुए उन्हें प्रणाम किया और वायु में उड़कर अपने-अपने निवास स्थानों की ओर प्रस्थान कर गए। वहीं, इंद्र (सक्का) अपने आसन से उठकर, हाथ जोड़कर, सूर्य की पूजा के समान ही उस महान सत्ता को प्रणाम करते हुए, अपने साथियों के साथ प्रस्थान कर गए।

यह देखकर गुरु ने इन छंदों को दोहराया:-

सर्वोच्च सत्य द्वारा सिखाए गए इन शब्दों को सुनकर
एक पवित्र ऋषि द्वारा दिए गए एक बड़े भाषण से प्रेरित होकर,
वे गौरवशाली प्राणी अपने स्वर्गिक घर की ओर
एक बार फिर खुशी और कृतज्ञता के साथ वह आया।
पवित्र ऋषि के शब्द कानों को बहुत भाते हैं।
अर्थ से परिपूर्ण और स्पष्ट लहजे में;
जो ध्यान से सुनता है और अपना मन एकाग्र रखता है
उनके विशेष विचार से निश्चित रूप से लाभ होगा
परमानंद (सम्मोहन) की प्रत्येक अवस्था तक पहुँचने का मार्ग,
और अत्याचारी मृत्यु के चंगुल से उसे मुक्ति मिल जाती है।

इस प्रकार गुरु (बुद्ध) ने अर्हतत्व में अपने उपदेश का समापन करते हुए कहा, "न केवल अभी, बल्कि पहले भी, मोगल्लाना के शरीर के दाह संस्कार के समय फूलों की वर्षा हुई थी," और उन्होंने सत्यों को प्रकट करते हुए जन्म का वर्णन किया: "सलिसारा सारिपुत्र थे, मेंडिसारा कश्यप थे, पब्बत अनुरुद्ध थे, देवल कच्चयन थे, अनुसिस्सा आनंद थे, किसवच्छ कोलिता थे, सरभंग बोधिसत्व थे: इस प्रकार आपको जन्म को समझना चाहिए।"

फुटनोट:

(1) मोग्गल्याना की मृत्यु

(2) सारिपुत्र की मृत्यु, सं. 95, महासुदासन-जातक

(3)नंदा और उपनंदा नागों के दो राजा थे, वेजयंत इंद्र का महल था।

(4) अंगुत्तरा निकया,

(5)वॉल्यूम की तुलना करें। क्रमांक 423, इन्द्रिय जातक।

(6)khiramulam, ie trofeia.

(7)अक्खनवेधी, "लक्ष्य भेदन" के रूप में

(8)महाभारत, VI देखें। 58. 2 और 101. 32, कोष्ठकि-कृत्य, घेरना, घेरना।

(9)अग्गदवरम शायद मुख्य प्रवेश द्वार के विपरीत एक घर का दरवाजा।

(10) कवित्था फेरोनिया एलिफेंटम या हाथी सेब का पेड़ है।

(11) ये सभी नाम इंद्रिय जातक के क्रमांक 423 में मिलते हैं।

(12) कहानी के शुरुआती भाग के ज्योतिपाला को यहाँ बोधिसत्व सरभंग के साथ पहचाना गया है।

(13)नहीं. 313, खांतिवादी जातक.

(14)अर्जुन को कार्तवीर्य कहा जाता है।

(15इंद्र का हाथी.

(16) कर्ता भावम् के साथ तीसरा व्यक्ति यहाँ दूसरे व्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया प्रतीत होता है।

(17) विद्वान बताते हैं कि यह सरभंगा का पारिवारिक नाम है।

(18) कारोही के लिए करोमी पढ़ना।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **अलम्बुसा-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-523-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 523
अलंबुसा-जातक

“तब हे पराक्रमी इंद्र,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते हुए एक भिक्षु को उसकी पूर्व पत्नी द्वारा प्रलोभित किए जाने के बारे में सुनाई थी। इस कथा का पूर्ण वर्णन इंद्रिय जन्म (*1) में मिलता है। गुरु ने भिक्षु से पूछा, “क्या यह सच है, भिक्षु, कि तुम असंतुष्ट हो गए थे?” “जी हाँ, पूज्यवर।” “किसके कारण?” “मेरी पूर्व पत्नी के कारण।” “भिक्षु,” उन्होंने कहा, “इस स्त्री ने तुम्हारे लिए विपत्ति लाई: इसी के कारण तुम ध्यान से विमुख हो गए, और तीन वर्ष तक व्यथित और विचलित अवस्था में रहे, और जब तुम्हें होश आया तो तुम बहुत रोए।” ऐसा कहकर उन्होंने उसे अतीत की एक कहानी सुनाई।

बनारस में ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, एक समय की बात है, काशी राज्य में एक ब्राह्मण परिवार में बोधिसत्व का जन्म हुआ। वयस्क होने पर उन्होंने सभी कलाओं में निपुणता प्राप्त की और तपस्वी जीवन अपनाकर वन में जंगली बेर और जड़ों का सेवन करते हुए अपना जीवन व्यतीत किया। अब ब्राह्मण के विश्राम स्थल में एक हिरणी ने घास खाई और उनके वीर्य से मिश्रित जल पिया, और वह उनसे इतनी मोहित हो गई कि गर्भवती हो गई और तब से वह आश्रम के पास ही उस स्थान पर आने लगी। इस मामले की जांच करते हुए भगवान ने मामले के तथ्यों का पता लगाया। समय बीतने पर हिरणी ने एक बालक को जन्म दिया, और भगवान ने पिता के स्नेह से उसकी देखभाल की। उसका नाम इसीसिंह (*2) रखा गया। जब बालक समझदार हुआ, तो उन्होंने उसे संन्यासियों के पवित्र संघ में प्रवेश दिया, और जब वे स्वयं वृद्ध हो गए, तो वे उसके साथ नारी वन गए और उससे कहा, "मेरे प्रिय बालक, इस हिमालयी देश में इन फूलों के समान सुंदर स्त्रियाँ हैं: वे अपने वश में आने वाले सभी का पूर्ण विनाश करती हैं: तुम्हें उनके प्रभाव में नहीं आना चाहिए।" और कुछ ही समय बाद उनका ब्रह्मलोक में जन्म होना निर्धारित हुआ। परन्तु ईसिंघा, रहस्यवादी ध्यान में लीन होकर, हिमालय क्षेत्र में एक कठोर तपस्वी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करते रहे, अपनी सभी इंद्रियों को वश में रखते हुए। इस प्रकार उनके पुण्य के बल पर इंद्र का निवास स्थान हिल गया। सक्का (इंद्र) ने अंतर्दृष्टि से कारण का पता लगाया और सोचा, "यह व्यक्ति मुझे सक्का (इंद्र) पद से हटा देगा, इसलिए मैं एक अप्सरा को भेजकर उसके पुण्य का नाश करवाऊंगा।" उन्होंने संपूर्ण देवलोक की जांच की और पच्चीस करोड़ दासियों में से, अप्सरा अलंबुसा के अलावा, उन्हें कोई और ऐसी नहीं मिली जो इस कार्य के योग्य हो। इसलिए उन्होंने उसे बुलाकर संत के पुण्य का नाश करने का आदेश दिया।

गुरु ने इस विषय की व्याख्या करते हुए यह श्लोक कहा:

फिर पराक्रमी इंद्र, देवताओं के स्वामी, वह देवता जिसे वत्र ने मारा था,
वह अप्सरा को अपने महल में बुलाता था, क्योंकि वह उसके आकर्षणों को भलीभांति जानता था।
और "हे प्यारे अलम्बुसा," वह चिल्लाया, "ऊपर स्वर्गदूतों का समूह है।"
मैं तुमसे इसिंगा जाने का आग्रह करता हूँ, ताकि तुम उसे अपने प्रेम से लुभा सको।

सक्का (इंद्र) ने अलम्बुसा को आदेश देते हुए कहा, "जाओ और इसीसिंह के पास आओ, और उसे अपने वश में करके उसके पुण्य का नाश करो," और उसने ये शब्द कहे:

हे मोहक स्त्री, जाओ, सदा उसके पदचिन्हों पर चलो, क्योंकि वह एक पवित्र ऋषि है।
और, सर्वोच्च आनंद की खोज में, वह मुझ पर विजय प्राप्त कर लेता है।
यह सुनकर अलंबुसा ने कुछ छंद दोहराए:

हे देवदूतों के राजा, समस्त अप्सराओं में से, केवल मुझे ही क्यों महत्व देते हो?
और मुझसे यह अपेक्षा करोगे कि मैं उस संत पुरुष को बहकाऊं जो तुम्हारे सिंहासन के लिए खतरा है?
नंदना के आनंदमय उपवन में अनेक दिव्य अप्सराएँ विराजमान हैं।
अब उनमें से किसी एक को—उनकी बारी है—यह घृणित कार्य सौंपा जाए।
तब सक्का (इंद्र) ने तीन श्लोक दोहराए:

आप सच कहते हैं; नंदना के सुखद उपवन में, मैं सोचता हूँ,
आशा है कि अनेक अप्सराएँ आपकी सुंदरता में प्रतिस्पर्धा करने के लिए उत्पन्न होंगी।
लेकिन हे असाधारण कन्या, तुम्हारे जैसी कोई नहीं, तुममें नारीत्व का सारा आकर्षण है।
यह पवित्र व्यक्ति कुकर्म के मार्गों में इतना निपुण था कि वह धोखा देने में माहिर था।
हे स्त्री-राजकुमारी, तुम जाओ, प्यारी अप्सरा, अपने मार्ग पर।
और सौंदर्य की शक्ति से संत को अपना प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए मजबूर करें।
यह सुनकर अलम्बुसा ने दो छंद दोहराए:

हे देवदूत-राजा, मैं आपके आदेश का पालन करने में कोई कसर नहीं छोड़ूंगा।
लेकिन फिर भी भय के साथ मैं इस गंभीर ऋषि को परेशान करने का साहस करता हूँ।
कई लोग, बेचारे मूर्ख, चले गए हैं (यह सोचकर ही मुझे कंपकंपी आ जाती है)
नरक में उसे उन संतों के प्रति अपने द्वारा किए गए अन्याय के कारण उत्पन्न पीड़ा का पश्चाताप करना होगा।
यह सुनकर, सुंदर अप्सरा अलम्बुसा पूरी तेज़ी से प्रसिद्ध इसिसिंगा को किसी अपवित्र कार्य के लिए लुभाने के लिए रवाना हो गई।

लाल रंग के चमकीले बेरों से लदे उस बाग में, जहाँ इसिसिंगा रहती थी, वह आँखों से ओझल हो गई।

भोर होते ही, सूरज के आसमान में ठीक से जागने से पहले ही, अपनी कोठरी की सफाई कर रहे इसिसिंगा के पास अप्सरा आई।

इन छंदों की प्रेरणा पूर्ण ज्ञान से मिली थी।

तब तपस्वी ने उससे प्रश्न किया और कहा:

तुम कौन हो, बिजली की चमक की तरह, या सुबह के तारे की तरह उज्ज्वल?
क्या वो कान और हाथ रत्नों से ढके हुए हैं जो दूर से ही चमकते हैं?
सुनहरे चंदन की तरह सुगंधित, सूर्य के समान चमक से भरपूर,
तुम दुबली-पतली और आकर्षक नौकरानी हो, देखने में बहुत सुंदर हो।
इतनी कोमल और पवित्र, पतली कमर और दृढ़ उछाल भरी चाल के साथ,
आपकी चाल-ढाल इतनी सुंदर है कि मेरा दिल मोह लेती है।
आपकी जांघें, हाथी की सूंड की तरह, धीरे-धीरे पतली होती जाती हैं।
आपके नितंब छूने में मुलायम हैं और किसी भी पासे के बोर्ड के गोलों की तरह लगते हैं।
कमल के तंतुओं जैसे मुलायम पंखों से तुम्हारी नाभि पर निशान बना हुआ था, मुझे लगता है।
दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो इसे काले काजल से अभिमंत्रित किया गया हो।
दो दूध से भरे स्तन, आधे कटे कद्दू की तरह, उनके फूले हुए गोले प्रदर्शित करते हैं,
वे मजबूती से जमे हुए हैं, हालांकि बिना डंठल के वे पूरी तरह से असमर्थित हैं।
तुम्हारे होंठ और जीभ दोनों लाल हैं, और हे शुभ चिन्ह,
आपकी गर्दन मृग जितनी लंबी है, उस पर तिहरी रेखा (*3) अंकित है।
लकड़ी के टुकड़े से दांत साफ करने से वे हमेशा साफ और चमकदार रहते थे।

अपने ऊपरी और निचले जबड़े को शुद्ध सफेद रंग की चमक से जगमगाएं।
तुम्हारी आंखें लंबी और बड़ी हैं, देखने में बहुत सुंदर लगती हैं।
जैसे काले रंग के गुंजा फल, जिन पर लाल रंग की धारियाँ बनी होती हैं।
आपके बाल चिकने हों, बहुत लंबे न हों और सबसे करीने से गुंथे हुए हों।
इन पर सोने की परत चढ़ी होती है और इनमें बेहतरीन चंदन के तेल की खुशबू होती है।
जो लोग व्यापार, पशुपालन या हल से अपना जीवन यापन करते हैं, उनमें से
उन सभी महान संतों में से जो तपस्या की प्रतिज्ञा का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।
इस विशाल संसार में, तुम्हारे समान मुझे शायद ही कोई दिखे।
तो आपका नाम क्या है और आपके पिता कौन हैं, यह हम आपसे सहर्ष जानना चाहेंगे।
जब तपस्वी अलंबुसा की इस प्रकार स्तुति कर रहा था, अपने पैरों से लेकर सिर के बालों तक, वह चुप रही, और उसके लंबे भाषण से उसकी व्याकुलता को देखते हुए उसने इस श्लोक को दोहराया:

हे मेरे मित्र, कश्यप (इसीसिंघा) (*4), ईश्वर आपको आशीर्वाद दे; वह समय बीत चुका है।
ऐसे निरर्थक प्रश्नों के लिए—क्या हम अकेले नहीं हैं?—
आइए, हम आपके आश्रम में आकर जल्दबाजी को स्वीकार करें और साबित करें
प्रेम के सभी उपासकों को ज्ञात हजारों आनंद।
यह कहते हुए अलंबुसा ने सोचा, "अगर मैं स्थिर खड़ी रहूँ, तो वह मेरे पास नहीं आ पाएगा; मैं ऐसा दिखावा करूँगी जैसे मैं भाग रही हूँ," और एक स्त्री के प्रलोभन की सारी चालाकी से उसने तपस्वी के इरादे को झकझोर दिया, और उसी दिशा में भाग गई जहाँ से वह उसके पास आई थी।

गुरु ने बात स्पष्ट करने के लिए यह श्लोक कहा:

यह सुनकर अप्सरा अलंबुसा अत्यंत शीघ्रता से प्रस्थान कर गई।
प्रसिद्ध इसिसिंगा को किसी अपवित्र कृत्य के लिए उकसाने के लिए।
तब तपस्वी ने उसे जाते हुए देखकर कहा, "वह चली गई है;" और उसने फुर्ती से उसे जाते हुए ही रोक लिया और अपने हाथ से उसके बालों को पकड़ लिया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

उसकी उड़ान रोकने के लिए, पवित्र पुरुष ने हवा के समान तेज गति से उसका पीछा किया और उसे बालों से पकड़ लिया।

जहां वह खड़ा था, वहीं उस सुंदर युवती ने उसे अपनी बाहों में भर लिया, और तुरंत ही उसका सद्गुण उसके आकर्षण के जादू के आगे झुक गया।

वह मन ही मन दूर नंदन में स्थित इंद्र के सिंहासन की ओर उड़ गई; देवदूत ने तुरंत उसकी इच्छा को भांप लिया और एक स्वर्ण रथ भेज दिया।

अलंकृत वस्त्र फैले हुए थे और सब कुछ अनेक प्रकार के वस्त्रों से सजा हुआ था: और वहाँ संत कई दिनों तक उसकी बाहों में लेटे रहे।

तीन साल उसके सिर के ऊपर से ऐसे गुजर गए मानो एक पल का अंतराल हो, जब तक कि अंत में वह पवित्र व्यक्ति उसके आलिंगन से जाग नहीं गया।

उसे चारों ओर हरे-भरे पेड़ दिखाई दिए; पास ही एक वेदी थी, और हरे-भरे उपवन कोयल की तेज आवाज से गूंज रहे थे।

उसने चारों ओर देखा और बहुत रोते हुए एक आंसू बहाया;

मैं कोई भेंट नहीं चढ़ाता, कोई भजन नहीं गाता; यहाँ कोई बलिदान नहीं है।
इस जंगल में अकेले रहते हुए, मुझे कौन बहका सकता है?
जिसने कुटिल आचरण से मुझमें सत्य की सारी भावना को नष्ट कर दिया है,
क्या तब भी कोई ऐसा ही होगा जब कीमती माल से लदा जहाज समुद्र में डूब जाए?

यह सुनकर अलंबुसा ने सोचा: "अगर मैं उसे नहीं बताऊंगी तो वह मुझे श्राप देगा; सच में, मैं उसे बताऊंगी," और उसके पास प्रत्यक्ष रूप में खड़ी होकर उसने यह श्लोक दोहराया:

मैं राजा सक्का (इंद्र) द्वारा भेजा गया हूँ और यहाँ खड़ा हूँ।
आपकी आज्ञा का स्वेच्छा से पालन करने वाला गुलाम;
हालांकि मैं इस बात को लेकर बहुत लापरवाह था,
मेरे बारे में सोचकर ही तुम्हारी खुशी भंग हुई।
उसके शब्दों को सुनकर उसे अपने पिता की सलाह याद आ गई, और अपने पिता की बात न मानने के कारण अपने पूर्ण पतन पर शोक व्यक्त करते हुए उसने चार छंद दोहराए:

इस प्रकार, मेरे पिता दयालु कश्यप ऐसा करेंगे,
विवेक के साथ युवा प्रेरणा देते हैं:
"स्त्रियाँ कमल के फूल के समान सुंदर होती हैं।"
हे युवाओं, सावधान रहो, उनकी शक्ति सूक्ष्म होती है।
स्त्री के नवोदित आकर्षण से सावधान रहें।
वहां छिपे खतरे से सावधान रहें।
इस प्रकार, दया से प्रेरित होकर मेरे पिता ने ऐसा किया।
वह अपने प्रिय पुत्र को चेतावनी देने में प्रसन्न होता।
मेरे बुद्धिमान बूढ़े पिता के शब्द, अफसोस!
मैंने अनसुना करके उसे गुजरने दिया।
और इस प्रकार अकेले, अत्यंत कष्ट में
मैं आज भी इस वीरान इलाके में भटकता रहता हूँ।
वृद्धावस्था का जीवन अभिशापित हो!
अब से मैं वही करूंगा जो मुझे कहा जाएगा।
मृत्यु का सामना करना कहीं बेहतर है।
फिर से ऐसी स्थिति में होना।
अत: उन्होंने कामुक इच्छाओं का त्याग कर रहस्यमयी ध्यानमग्न अवस्था में प्रवेश किया। तब अलंबुसा ने उनके तपस्वी गुणों को देखकर और यह जानकर कि वे समाधि की अवस्था में पहुँच चुके हैं, भयभीत हो गए और उनसे क्षमा मांगी।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने दो छंद दोहराए:

अलम्बुसा को जैसे ही उनकी सच्ची भक्ति और साहस का ज्ञान हुआ, वैसे ही उन्होंने झुककर ऋषि का अभिवादन किया और अप्सरा ने तुरंत उनके चरणों को गले लगा लिया।

"हे संत, अपना सारा क्रोध त्याग दो,"
"मैं एक महान कृति लेकर आई थी," वह चिल्लाई।
जब स्वर्ग स्वयं और प्रसिद्धि के देवता (देवदूत)
तुम्हारा नाम सुनकर मैं भय से कांप उठा।
फिर उसने उसे जाने दिया और कहा, "मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ, सुंदर स्त्री; तुम जैसे चाहो जा सकती हो।" और उसने एक छंद दोहराया:

तैंतीसवें वर्ष पर मेरा आशीर्वाद
और वासव, उनके स्वामी, और आप:
जाओ, सुंदर कन्या, क्योंकि तुम स्वतंत्र हो।
उन्हें प्रणाम करके वह उसी सुनहरे रथ में सवार होकर देवताओं (देवदूतों) के निवास स्थान की ओर प्रस्थान कर गई।

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने तीन छंद दोहराए:

फिर ऋषि के चरणों को गले लगाते हुए और दाहिनी ओर चक्कर लगाते हुए,
हाथ जोड़कर विनती भरे भाव से वह उसकी नजरों से ओझल हो गई।
और सुनहरे रथ पर सवार होकर, अलंकृत और अलंकृत वस्त्रों से सुशोभित होकर,

वह शानदार ढंग से सजी-धजी, स्वर्ग की ऊंचाइयों की ओर दौड़ पड़ी।
जैसे धधकती मशाल या बिजली की चमक, वह आकाश में से गुज़र गई।
और सक्का (इंद्र), प्रसन्न होकर बोले, "मैं किसी वरदान को अस्वीकार नहीं कर सकता।"
उससे वरदान प्राप्त करके उसने अंतिम श्लोक दोहराया:

हे परियों के स्वामी, यदि आप मेरी हृदय की इच्छा पूरी करने की अनुमति दें,
मैं फिर कभी किसी संत को उसकी प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए उकसाऊंगा नहीं।

गुरु ने यहाँ उस भिक्षु भाई को अपना पाठ समाप्त किया और सत्य प्रकट करते हुए जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर वह भिक्षु प्रथम मार्ग (समाधि) के फल में स्थापित हो गया - "उस समय अलंबुसा उसके अपवित्र दिनों की पत्नी थी, इसिसिंगा पथभ्रष्ट भिक्षु था, और महान संत उसके पिता मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) खंड III. संख्या 423.

(2) रामायण प्रथम 9. ऋष्यश्रृंग की कथा;

(3) कंबुगीवा: गर्दन पर शंख-सर्पिलों जैसी तीन तहें सौभाग्य का प्रतीक थीं, जातक चतुर्थ. 130

(4)कश्यपा इसिसिंगा का पारिवारिक नाम था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **शंखपाल-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-524-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 524
संखपाल-जातक

"आकर्षक उपस्थिति," इत्यादि। यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए पवित्र दिनों के कर्तव्यों के संबंध में सुनाई थी। इस अवसर पर गुरुजी ने पवित्र दिनों का पालन करने वाले कुछ गृहस्थों की प्रशंसा करते हुए कहा: "प्राचीन काल के बुद्धिमान पुरुषों ने नाग लोक की महान महिमा का त्याग करके पवित्र दिनों का पालन किया था," और उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, मगध के राजगृह नगर में एक राजा शासन करता था। उसी समय बोधिसत्व का जन्म राजा की प्रमुख पत्नी के पुत्र के रूप में हुआ और उनका नाम दुय्योधन रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने तक्षशिला में विद्या की शिक्षा प्राप्त की और अपने पिता से मिलने घर लौट आए। उनके पिता ने उन्हें राज्य में स्थान दिया और स्वयं संन्यासी जीवन अपनाकर उद्यान में निवास करने लगे। बोधिसत्व दिन में तीन बार अपने पिता से मिलने आते थे, जिससे उनके पिता को बहुत लाभ और सम्मान प्राप्त होता था। इस बाधा के कारण वे ध्यान साधना की पूर्वसूचनाओं का भी पालन नहीं कर पाते थे और सोचने लगे, "मुझे तो बहुत लाभ और सम्मान प्राप्त हो रहा है, लेकिन जब तक मैं यहाँ जीवित हूँ, मेरे लिए अपनी इस वासना को नष्ट करना असंभव होगा। अपने पुत्र से बिना कुछ कहे, मैं कहीं और चला जाऊँगा।" अत: किसी को बताए बिना वह उद्यान छोड़कर मगध राज्य की सीमा पार कर गया और महिंसक राज्य में, चंदाका पर्वत के निकट, कन्नपेन्ना नदी के मोड़ पर, जहाँ से शंखपाल झील निकलती है, उसने पत्तों की एक कुटिया बनाई। वहाँ उसने निवास किया और प्रारंभिक अनुष्ठान करते हुए उसने रहस्यमय ध्यान की कला विकसित की और जो कुछ भी उसे मिलता, उसी से अपना जीवन यापन किया। कन्नपेन्ना नदी से निकलने वाले नागों के एक राजा, शंखपाल, समय-समय पर नागों के एक बड़े समूह के साथ उस तपस्वी से मिलने आते थे, और उसने नाग राजा को विधि का ज्ञान दिया। अब पुत्र अपने पिता से मिलने के लिए उत्सुक था और यह न जानते हुए कि वे कहाँ गए हैं, उसने खोजबीन शुरू की। जब उसे पता चला कि वे फलाँ स्थान पर रह रहे हैं, तो वह अपने साथ कई

सेवकों को लेकर उनसे मिलने गया। कुछ दूरी पर रुककर, कुछ दरबारियों के साथ वह आश्रम की ओर चल पड़ा। उस समय शंखपाल अपने कई अनुयायियों के साथ धर्मोपदेश सुन रहे थे, परन्तु राजा को आते देख वे उठ खड़े हुए और ऋषि को प्रणाम करके विदा हो गए। राजा ने अपने पिता को प्रणाम किया और औपचारिक शिष्टाचार के बाद पूछा, “आदरणीय महोदय, आपसे मिलने कौन से राजा आए हैं?” “प्रिय पुत्र, ये नाग राजा शंखपाल हैं।” नाग की महान भव्यता देखकर पुत्र के मन में नागलोक जाने की लालसा उत्पन्न हुई। कुछ दिन वहाँ रहकर उन्होंने अपने पिता को भोजन की निरंतर आपूर्ति की और फिर अपने नगर लौट आए। वहाँ उन्होंने नगर के चारों द्वारों पर भिक्षागृह बनवाया और अपने भिक्षादान से पूरे भारत में ख्याति अर्जित की। नागलोक जाने की आकांक्षा में वे सदा नैतिक नियमों का पालन करते रहे और पवित्र दिनों के कर्तव्यों का अनुपालन करते रहे। अंत में उनका नागलोक में राजा शंखपाल के रूप में पुनर्जन्म हुआ। समय बीतने के साथ-साथ वह इस वैभव से ऊब गया और उस दिन से मनुष्य के रूप में जन्म लेने की इच्छा से उसने पवित्र दिनों का पालन करना शुरू कर दिया, लेकिन नागलोक में रहने के कारण वह उनका पालन करने में सफल नहीं हो सका और उसके नैतिक मूल्यों में गिरावट आई। उस दिन से उसने नागलोक छोड़ दिया और कन्नपेन्ना नदी से कुछ ही दूरी पर,मुख्य सड़क और संकरे रास्ते के बीच चींटियों के टीले पर कुंडली मारकर, उसने वहाँ पवित्र दिन मनाने का संकल्प लिया और नैतिक नियम का पालन करने का निश्चय किया। उसने कहा, "जो मेरी खाल या मेरा मांस चाहते हैं, वे सब ले लें," और इस प्रकार दान के रूप में स्वयं को बलिदान करते हुए वह चींटियों के टीले के ऊपर लेट गया और महीने के पखवाड़े की चौदहवीं और पंद्रहवीं तारीख को वहाँ ठहरता रहा, और प्रत्येक पखवाड़े के पहले दिन नाग लोक लौट जाता था। एक दिन जब वह वहाँ लेटा हुआ था, नैतिक नियम का पालन करते हुए, पास के एक गाँव में रहने वाले सोलह पुरुषों का एक समूह, मांस खाने की इच्छा से, अपने हाथों में हथियार लेकर जंगल में घूम रहा था। जब वे कुछ भी न पाकर लौटे, तो उन्होंने उसे चींटियों के टीले पर लेटा हुआ देखा और सोचा, "आज तो हमें एक छोटी छिपकली भी नहीं मिली, हम इस नाग-राजा को मार कर खा जाएँगे।" लेकिन इस डर से कि उसके विशाल आकार के कारण, अगर वे उसे पकड़ भी लें, तो वह उनसे बच निकलेगा, उन्होंने सोचा कि वे उसे वहीं कुंडली मारकर लेटे हुए ही डंडों से छेद देंगे और इस तरह उसे निष्क्रिय करके पकड़ लेंगे। इस प्रकार, डंडे हाथ में लेकर वे उसके पास पहुँचे। और बोधिसत्व ने अपने शरीर को एक नाली के आकार का विशाल बना लिया, और वह अत्यंत सुंदर दिखाई दिए, मानो जमीन पर रखी चमेली की माला हो, उनकी आंखें गुंजा झाड़ी के फल के समान थीं और उनका सिर जयसूमन (*1) फूल के समान था। सोलह पुरुषों के कदमों की आहट सुनकर, उन्होंने अपने कुंडलियों से अपना सिर बाहर निकाला और अपनी ज्वलंत आंखें खोलीं, तो उन्होंने देखा कि वे अपने हाथों में भाले लिए आ रहे हैं और उन्होंने सोचा, "आज मेरी इच्छा पूरी होगी, मैं अपने संकल्प में दृढ़ रहूंगा और स्वयं को उनके सामने बलिदान के रूप में प्रस्तुत करूंगा, और जब वे मुझे अपने भालों से मारेंगे और मुझे घावों से भर देंगे, तो मैं अपनी आंखें नहीं खोलूंगा और क्रोध से उनकी ओर नहीं देखूंगा।" नैतिक नियम को तोड़ने के भय से इस दृढ़ संकल्प को धारण करते हुए, उन्होंने अपना सिर अपने फन में छिपा लिया और लेट गए। फिर वे उनके पास आए और उनकी पूंछ पकड़कर उन्हें जमीन पर घसीटने लगे। उन्हें फिर से नीचे गिराकर, उन्होंने नुकीले डंडों से आठ अलग-अलग जगहों पर घायल कर दिया और काले बांस के डंडों को, कांटों समेत, उनके खुले घावों में ठोक दिया। फिर वे आठों जगहों पर रस्सियों से उन्हें बांधकर अपने साथ ले जाते हुए आगे बढ़ गए। डंडों से घायल होने के क्षण से ही उस महान प्राणी ने एक बार भी अपनी आँखें नहीं खोलीं और न ही उन आदमियों को गुस्से से देखा, लेकिन जैसे ही उन्हें आठ डंडों से घसीटा जा रहा था, उनका सिर नीचे झुक गया और जमीन से टकराया। इसलिए जब उन्होंने देखा कि उनका सिर नीचे झुक गया है, तो उन्होंने उन्हें मुख्य सड़क पर लिटा दिया और एक पतले डंडे से उनकी नाक में छेद करके उनका सिर ऊपर उठाया और उसमें एक रस्सी डाली, और उसे अंत में बांधकर उन्होंने एक बार फिर उनका सिर ऊपर उठाया और अपने रास्ते पर चल पड़े। उसी समय, विदेह राज्य के मिथिला शहर में रहने वाला अलारा नाम का एक जमींदार, एक आरामदायक रथ में बैठा हुआ, पाँच सौ गाड़ियों के साथ यात्रा कर रहा था।बोधिसत्व के साथ इन दुराचारी पुरुषों को देखकर, उन्होंने उन सोलहों को, प्रत्येक को एक-एक बैल, मुट्ठी भर सोने के सिक्के, भीतरी और बाहरी वस्त्र और उनकी पत्नियों को पहनने के लिए आभूषण दिए, और इस प्रकार उन्हें बोधिसत्व को छोड़ने के लिए राजी कर लिया। बोधिसत्व नाग महल लौट आए और बिना किसी देरी के, अपने साथ बड़ी संख्या में सेवकों को लेकर अलारा के पास पहुँचे, और नाग महल की प्रशंसा करने के बाद, उन्हें अपने साथ ले गए और वहाँ लौट आए। फिर उन्होंने अलारा और तीन सौ नाग कन्याओं का भव्य स्वागत किया और उन्हें दिव्य सुखों से तृप्त किया। अलारा ने नाग महल में पूरे एक वर्ष तक दिव्य सुखों का आनंद लिया, और फिर नाग राजा से कहा, "मेरे मित्र, मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ," और तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक सभी सामान लेकर नागों का निवास छोड़कर हिमालय क्षेत्र की ओर चल दिए और शिष्यों के पवित्र मार्ग में प्रवेश करके वहाँ दीर्घकाल तक रहे। कुछ समय बाद वे तीर्थयात्रा पर निकले और बनारस पहुँचे, जहाँ उन्होंने राजा के उद्यान में अपना निवास स्थान बनाया। अगले दिन वे भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश किया और राजा के महल के द्वार पर पहुँचे। बनारस के राजा उन्हें देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उन्हें अपने समक्ष बुलाया, उनके लिए निर्धारित विशेष आसन पर बैठाया और उन्हें विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे। फिर राजा ने एक नीची कुर्सी पर बैठकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे बातचीत करते हुए प्रथम श्लोक का पाठ किया:

आकर्षक व्यक्तित्व और सुंदर रूप वाली,
मुझे लगता है कि आप एक कुलीन परिवार के वंशज हैं;
तो फिर पृथ्वी के सुखों और सांसारिक वस्तुओं का त्याग क्यों करें?

क्या संन्यासी का वस्त्र धारण करके कठोर शासन करना चाहिए?
आगे के भाग में श्लोकों के संबंध को तपस्वी और राजा के बीच बारी-बारी से दिए गए भाषणों के रूप में समझा जाना चाहिए।

हे मनुष्यों के स्वामी, मुझे अच्छी तरह याद है
उस सर्वशक्तिमान नाग राजा का निवास स्थान,
मैंने पवित्रता से उत्पन्न होने वाले भरपूर फल को देखा।
और सच्चे विश्वासियों ने पुरोहितों का वस्त्र धारण किया।
न तो भय, न वासना, न ही घृणा स्वयं
एक पवित्र व्यक्ति सत्य के वचनों का त्याग कर देता है:
मुझे वह बात बताओ जिसे जानकर मुझे खुशी होगी।
और मेरे हृदय में विश्वास और शांति बढ़ेगी।
हे राजा, मैं व्यापारिक यात्रा पर जा रहा था।
जब मेरे रास्ते में ये दुष्ट और नीच लोग मिले,
जंजीरों में जकड़े एक पूर्ण विकसित सांप को ले जाया गया।
और वे विजय की खुशी में झूमते हुए तेजी से घर की ओर चल पड़े।
जब मैं उनके साथ आया, हे राजा, मैंने पुकार लगाई,
मैं आश्चर्यचकित और बेहद भयभीत था।
"आप लोग इस भयानक राक्षस को कहाँ घसीट रहे हैं, महोदय?"
और तुम लोग, उसके साथ क्या करोगे?'
"यह पूरी तरह से विकसित सांप जिसे आप इस प्रकार जंजीरों से बंधा हुआ देख रहे हैं"
अपने विशाल आकार के कारण यह हमें भोजन प्रदान करेगा।
अलारा, इससे ज़्यादा की तुम शायद ही कुछ और चाह सकती हो।
किसी बेहतर या अधिक स्वादिष्ट व्यंजन का स्वाद लेने के लिए।"
इसलिए हम अपने घर के लिए उड़ान भरेंगे और थोड़ी ही देर में पहुँच जाएँगे।
प्रत्येक ने अपनी-अपनी छुरी से एक सुंदर टुकड़ा काटा
और खुशी से उसका मांस खाओ, क्योंकि जैसा कि तुम जानते हो,
सांपों को हममें हमेशा एक घातक शत्रु मिलता है।"
"अगर यह विशालकाय सांप, जिसे हाल ही में जंगल में पकड़ा गया था,
उसे भोजन के रूप में इस्तेमाल करने के लिए घसीटा जा रहा है।
मैं प्रत्येक को एक-एक बैल भेंट करता हूँ।
क्या तुम इस सर्प को उसकी जंजीरों से मुक्त कर दोगे?
"हमें गोमांस की आवाज़ सुखद लगती है, मैं कसम खाता हूँ।"
इससे पहले हम अक्सर सांप का मांस खाकर पेट भरते थे।
हे अलारा, आपकी प्रार्थना है, हम उसे पूरा करेंगे;
अब से हम दोनों के बीच मित्रता का राज कायम रहे।
फिर उन्होंने उसे उस रस्सी से मुक्त कर दिया जो उसके पास से गुजर रही थी।
उसकी नाक के आर-पार होकर गांठों से उसे कसकर पकड़ लिया गया था।
सर्प-राजा ने कष्ट सहने की क्षमता से मुक्ति पाई
उसने उसे पूर्व दिशा की ओर मोड़ा, फिर कुछ देर रुका।
और पूर्व दिशा की ओर मुख किए, उड़ने के लिए तैयार,
उसने नम आंखों से मेरी ओर देखा।
मैं उसके रास्ते में उसका पीछा कर रहा था
हाथों को आपस में जोड़कर फैलाया हुआ, मानो कोई प्रार्थना करने वाला हो।
"तेजी से चलो, मेरे मित्र, जैसे कोई जल्दी में जा रहा हो।"
अन्यथा तुम एक बार फिर अपने शत्रुओं के बीच गिर जाओगे।
ऐसे बदमाशों को देखकर लोग मुंह फेर लेते हैं।
या फिर आपको अपनी ही इच्छा के विरुद्ध कष्ट भोगना पड़ सकता है।
फिर वह एक मनमोहक स्वच्छ तालाब की ओर तेजी से बढ़ा।

इसके किनारों पर गन्ने और गुलाब सेब दोनों फैले हुए हैं--
वह अत्यंत प्रसन्न था, उसे अब किसी बात का डर नहीं था।
लेकिन पानी की गहराई में डूब जाने के कारण वह नजरों से ओझल हो गया।
सांप के गायब होते ही, उसने
उन्होंने अपनी दिव्यता को पूर्णतया स्पष्ट रूप से प्रकट किया।
उन्होंने अपने दयालु कार्यों से दयालुता की भूमिका निभाई।
और उनके कृतज्ञतापूर्ण भाषणों ने मेरे हृदय को छू लिया।
"तुम मेरे माता-पिता से भी अधिक प्रिय हो, तुमने मुझे सब कुछ वापस लौटा दिया।"
मेरे जीवन, सच्चे मित्र, तुम्हारे अंतर्मन तक भी।
आपके कारण मुझे मेरा पूर्वज आनंद पुनः प्राप्त हो गया है।
तो आओ, अलारा, देखो जहाँ कभी मैंने राज किया था।
इंद्र के नगर की तरह, भोजन से भरपूर जीवन यापन करने वाला एक स्थान।
मसक्कसारा, उच्च प्रसिद्धि का स्थान।"
हे प्रभु, सर्पराज ने ये शब्द कहने के बाद, अपने निवास स्थान की ओर भी अधिक प्रशंसा करते हुए, कुछ छंद दोहराए:

मेरे क्षेत्र में कितने मनमोहक स्थान दिखाई देते हैं!
चलने में कोमल और सदाबहार पेड़ों से ढका हुआ!
हमारे रास्ते में न तो धूल है और न ही कंकड़।
और वहीं सुखी आत्माएं अपने दुख को पीछे छोड़ देती हैं।
नीलम की दीवारों से घिरे समतल प्रांगण के बीच में
चारों ओर सुंदर आम के बाग ही बाग हैं।
जिस पर भरपूर फलों के पके हुए गुच्छे दिखाई देते हैं
साल भर के सभी बदलते मौसमों के दौरान।
इन उपवनों के बीच सोने का एक कपड़ा लाया गया।
और आप देख सकते हैं कि ये चांदी के बोल्ट से जड़े हुए हैं।
एक जीवंत, वैभवशाली जीवन, जो सभी को पीछे छोड़ दे।
आकाश में चमकती बिजली की चमक।
रत्नों और सोने से निर्मित, दिव्य रूप से सुंदर,
और कई बार दुर्लभ चित्रों से सजा हुआ।
यह भव्य वस्त्रों से सजी अप्सराओं से भरा हुआ है।
सभी ने अपनी छाती पर सोने की जंजीरें पहन रखी थीं।
फिर समखापाला ने बड़ी जल्दबाजी में चढ़ाई की।
सीढ़ीदार ऊँचाई, जिस पर सत्ता में उदात्त
हजारों खंभों पर उठा हुआ देखा गया
उनकी विवाहित पत्नी और रानी का महल।
जल्दी ही उस गर्ल बैंड में से एक
हाथ में एक कीमती गहना लिए हुए,
जादुई शक्तियों से परिपूर्ण एक दुर्लभ फ़िरोज़ा,
और बिना पूछे ही सभी ने मुझे बैठने के लिए जगह दी।
फिर सांप ने मेरी बांह पकड़ ली और मुझे वहां ले गया जहां
वहाँ एक भव्य और राजसी कुर्सी खड़ी थी।
कृपया, माननीय महोदय मेरे बगल में बैठें।
"आप मेरे लिए सबसे प्रिय अभिभावक हैं," वह रोते हुए बोला।
फिर एक दूसरी अप्सरा उसके आदेश पर तुरंत आ गई।
वह हाथ में पानी का कटोरा लेकर आई थी।
और उन्होंने मेरे पैर धोए, दयालुतापूर्वक सेवा करते हुए।
रानी ने भी अपने प्रिय स्वामी राजा के लिए ऐसा ही किया।
फिर कुछ ही समय में एक और लड़की।

सुनहरी थाली में करी चावल परोसा गया।
कई तरह की चटनी के साथ, जो संयोगवश हो सकती हैं
तीव्र लालसा भूख को उत्तेजित करती है।
फिर संगीत की धुनें बजने लगीं—क्योंकि वे ऐसी ही धुनें जानते थे।
क्या उनके स्वामी की यही इच्छा थी—वे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वश में करने को तैयार थे
न तो मेरी इच्छा कभी विफल हुई और न ही स्वयं राजा कभी विफल हुए।
मेरी आत्मा दिव्य इच्छाओं से व्याकुल है।
मेरे पास आकर उसने एक और छंद दोहराया:

अलारा, मेरे पास तीन सौ पत्नियां हैं।
पतली कमर वाली, सुंदरता में वे सब से बढ़कर हैं।
कमल का फूल। देखो, वे केवल जीवित रहते हैं
आपकी इच्छा पूरी करने के लिए: मेरे द्वारा दिए गए वरदान को स्वीकार करें।
अलारा ने कहा:

मुझे एक वर्ष तक परम सुखों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।
जब मैंने राजा से यह प्रश्न पूछा,
"नागा, यह महल हमारा घर कैसे है?"
और आपको अपना हिस्सा कैसे मिला?
क्या यह सुंदर स्थान संयोगवश प्राप्त हुआ था?
क्या यह तुमने स्वयं लाया है, या स्वर्गदूतों से प्राप्त उपहार है?
मैं आपसे पूछता हूँ, नागों के राजा, सच बताओ,
आप इस खूबसूरत जगह पर रहने के लिए कैसे आए?
इसके बाद दोनों (*2) द्वारा बारी-बारी से बोले गए छंद आए।

यह किसी संयोग या प्राकृतिक नियम से प्राप्त नहीं हुआ था।
यह मेरे द्वारा नहीं लाया गया है, न ही मुझे स्वर्गदूतों से कोई वरदान प्राप्त हुआ है;
लेकिन मेरे अच्छे कर्मों के बारे में आपको अवश्य ही जानना चाहिए।
और मेरी योग्यताओं के कारण ही मुझे ये सुंदर महल मिले हैं।
क्या पवित्र प्रतिज्ञा है, क्या पवित्र और शुद्ध जीवन है!
इस प्रकार के आनंद से पुण्य का कौन सा भंडार सुरक्षित हो सकता है?
हे सर्पराज, मुझे बताओ, क्योंकि मैं बहुत उत्सुक हूँ।
यह जानने के लिए कि आप इस खूबसूरत हवेली को कैसे प्राप्त कर सकते हैं।
मैं एक समय मगध का राजा था, मेरा नाम
दुय्योधन, एक प्रखर ख्यातिप्राप्त राजकुमार:
मुझे अपना जीवन घृणित और असुरक्षित लगता था।
परिपक्वता की पूरी शक्ति के बिना।
मुझे नियमित रूप से मांस और पेय पदार्थ की आपूर्ति की जाती है।
और दूर-दूर तक सभी को दान दिया गया।
मेरा घर एक सराय जैसा था, जहाँ सभी लोग आते थे।
ऋषियों और संतों ने अपने थके हुए शरीर को तरोताजा किया।
मैंने ऐसी प्रतिज्ञाओं से बंधे हुए ही जीवन व्यतीत किया।
और इस प्रकार मैंने पुण्य का भंडार संचित किया,
जिसके द्वारा अंततः इस हवेली को प्राप्त किया गया।
और भरपूर मात्रा में भोजन और पेय प्राप्त हुए।
यह जीवन, चाहे कितने ही दिनों तक उज्ज्वल क्यों न हो
नृत्य और गीत के साथ, लेकिन यह निश्चित रूप से कब तक चलेगा, यह कहना मुश्किल है।
कमजोर प्राणी आपकी पूरी ताकत के बावजूद आपको परेशान करते हैं।
और कमजोर प्राणी बलवानों को भगा देते हैं।

ऐसे असमान संघर्ष में पूरी तरह से हथियारों से लैस होकर क्यों?
क्या तुम्हें उन नीच भिखारियों का शिकार बनना चाहिए?
किस भय पर विजय पाने के कारण आप पराजित हुए?
तुम्हारे जहर का वायरस कहाँ चला गया था?
तुम तो हथियारों से लैस और शक्तिशाली थे, फिर भी...
क्या तुमने ऐसे बेचारे प्राणियों से पीड़ा सहन की?
किसी भी भय पर विजय प्राप्त करने से मैं पराजित नहीं हुआ।
और न ही कोई मेरी शक्तियों को कुचल सकता था।
अच्छाई का महत्व सभी स्वीकार करते हैं;
समुद्र तट की तरह इसकी सीमाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया जाता।
मैं महीने में दो बार एक पवित्र दिन मनाता था;
तभी, अलारा, मेरा रास्ता उससे टकरा गया।
दो बार आठ व्यभिचारी पुरुष, अपने हाथों में लिए हुए
सबसे महीन धागे से बनी एक रस्सी और गांठदार फंदा।
बदमाशों ने मेरी नाक में छेद कर दिया, और उस छेद के माध्यम से
रस्सी को आगे बढ़ाते हुए, वह मुझे अपने साथ घसीटता हुआ ले गया।
मुझे कितना दर्द सहना पड़ा—अरे! कितनी निर्दयी किस्मत थी!
पवित्र दिनों को अक्षुण्ण रखने के लिए।
उस एकांत पथ पर, जो पूरी लंबाई तक फैला हुआ था, देखकर
सुंदरता और अपार शक्ति का एक अनूठा संगम।
मैंने पुकारा, "हे ज्ञानी और महिमावान, क्या तुम ऐसा करोगे?"
क्या आप यह कठोर तपस्वी व्रत ग्रहण करेंगे?
न तो मुझे संतान की इच्छा है और न ही धन की।
और न ही मैं लंबे दिनों की आकांक्षा रखता हूँ;
लेकिन मैं पुरुषों की दुनिया के बीच रहना पसंद करूंगी।
और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वीरतापूर्वक प्रयास करें।
अच्छी तरह से ट्रिम किए हुए बाल और दाढ़ी के साथ, आपका मजबूत शरीर
भव्य वस्त्रों से सुशोभित, ज्वाला जैसी आंख,
लाल चंदन के तेल में नहाए हुए तुम चमकते हुए प्रतीत होते हो।
दूर से, मानो कोई संगीतकार दिव्य राजा हो।
दिव्य उपहारों से चमत्कारिक रूप से धन्य
और जो कुछ भी तुम्हारा हृदय चाहे, वह तुम्हें प्राप्त हो जाए।
हे सर्पराज, मैं आपसे सत्य जानने का अनुरोध करता हूँ।
आप पुरुषों की दुनिया में रहना क्यों पसंद करते हैं?
मेरे ख्याल से, सिर्फ पुरुषों की दुनिया में ही ऐसा संभव है।
पवित्रता और आत्मसंयम दिखाई दे:
काश, मुझे एक बार भी मनुष्यों के बीच सांस लेने का मौका मिले।
मैं जन्म और मृत्यु के इस चक्र को समाप्त कर दूंगा।
हमेशा उदारता और उत्साह से भरपूर,
हे राजा, मैं आपके साथ एक वर्ष तक रहा हूँ।
अब मुझे विदाई लेकर भाग जाना चाहिए।
घर से दूर रहकर मैं अब और नहीं रह सकता।
मेरी पत्नी, बच्चे और हमारा नौकरों का दल
क्या वे हमेशा आपके आदेश का इंतजार करने के लिए प्रशिक्षित होते हैं?
मुझे पूरा भरोसा है कि किसी ने भी आपको थोड़ी सी भी पेशकश नहीं की है।
क्योंकि तुम मुझे बहुत प्रिय हो, अलारा।
दयालु माता-पिता की उपस्थिति घर को आनंद से भर देती है।
फिर भी, वे किसी प्रिय लड़के को बहुत प्यार करते थे:

लेकिन मुझे सबसे बड़ा आनंद यहीं मिला है।
हे राजा, आपने मुझे सदा प्रिय माना है।
मेरे पास खून जैसे लाल धब्बे वाला एक दुर्लभ रत्न है।
इससे उन लोगों को अपार धन प्राप्त होता है जिनके पास यह नहीं है।
इसे ले जाओ और अपने घर जाओ, और जब
आप अमीर हो गए हैं, कृपया इसे वापस भेज दें।
अलारा ने ये शब्द कहकर आगे कहा: "हे महाराज, मैंने नागराज से कहा, 'मुझे धन की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु मैं संन्यासी बनने के लिए उत्सुक हूँ' और तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक सब कुछ माँगकर, मैं राजा के साथ नाग महल छोड़कर चला गया, और उसे वापस भेजकर हिमालय देश में प्रवेश किया और संन्यासी बन गया।" इन शब्दों के बाद उन्होंने बनारस के राजा को प्रवचन दिया और कुछ और श्लोक दोहराए।

मनुष्य की इच्छाएँ क्षणभंगुर होती हैं, और न ही वे स्थिर हो सकती हैं।
परिपक्वता परिवर्तन के उच्च नियम का पालन करें:
पापी वासनाओं से उत्पन्न होने वाले कष्टों को देखकर,
हे राजा, विश्वास ने मुझे पुरोहित बनने के लिए प्रेरित किया।
मनुष्य फल की तरह गिरते हैं, तुरंत नष्ट हो जाते हैं।
सभी शरीर, चाहे युवा हों या वृद्ध, क्षय होते हैं:
मुझे केवल तपस्या (वैराग्य) में ही विश्राम मिलता है।
जो सत्य और सार्वभौमिक है, वही सर्वश्रेष्ठ है।
यह सुनकर राजा ने एक और श्लोक दोहराया:

बुद्धिमान और विद्वान, जैसे कि ध्यान करते हैं
हमें महत्वपूर्ण विषयों पर चिंतन करना चाहिए;
अलारा, मैं सांप और तुम्हारी बात सुन रही हूँ।
देखो! मैं सभी प्रकार के धार्मिक कार्य करता हूँ।
तब तपस्वी ने अपनी शक्ति का संचार करते हुए समापन श्लोक कहा:

बुद्धिमान और विद्वान, जैसे कि ध्यान करते हैं
हमें इन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श करना चाहिए:
हे सम्राट, मेरी और साँप की बातें सुनो।
क्या आप सभी धार्मिक कार्यों का पालन करते हैं?
इस प्रकार उन्होंने राजा को धार्मिक शिक्षा दी, और वर्षा ऋतु के चार महीने एक ही स्थान पर रहने के बाद वे फिर से हिमालय लौट आए, और जब तक वे जीवित रहे, उन्होंने चारों सिद्ध अवस्थाओं का अभ्यास किया, जब तक कि वे ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) में नहीं चले गए, और जब तक वे जीवित रहे, उन्होंने शंखपाल के दिनों का पालन किया, और राजा ने दान और अन्य अच्छे कार्यों में व्यतीत जीवन के बाद अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त किया।

इस प्रवचन के अंत में गुरु ने जन्म की पहचान इस प्रकार की: "उस समय जो पिता तपस्वी बने वे कश्यप थे, बनारस के राजा आनंद थे, अलारा सारिपुत्र थे और शंखपाल मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)पेंटापेट्स फोनीसिया.

(2) दो वार्ताकार नाग राजा और अलारा हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुला-सुतसोम-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 525
CULLA-SUTASOMA-JATAKA

"अच्छे दोस्तों," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते हुए आत्म-त्याग के पूर्ण अभ्यास के विषय में सुनाई थी। प्रारंभिक कथा महानारद कश्यप (*1) के जन्म की कथा से मेल खाती है।

बहुत समय पहले, जिसे अब बनारस कहा जाता है, वहाँ सुदस्सन नामक नगर हुआ करता था और वहाँ राजा ब्रह्मदत्त रहते थे। उनकी प्रमुख पत्नी ने बोधिसत्व को जन्म दिया। उनका चेहरा पूर्णिमा के चंद्रमा के समान तेजस्वी था, इसलिए उनका नाम सोमकुमार रखा गया। जब वे वयस्क हुए, तो सोम रस के प्रति उनके प्रेम और इसे दूसरों को अर्पित करने की आदत के कारण, लोग उन्हें सुतासोमा (सोम-आसुत) के नाम से जानने लगे। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में कलाओं की शिक्षा प्राप्त की, और घर लौटने पर उनके पिता ने उन्हें एक सफेद छत्र भेंट किया। उन्होंने अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया और एक विशाल साम्राज्य के स्वामी थे, जिनके सोलह हजार पत्नियाँ थीं, जिनमें चंदादेवी प्रमुख पत्नी थीं। समय बीतने के साथ, जब उनका परिवार बहुत बड़ा हो गया, तो वे गृहस्थ जीवन से असंतुष्ट हो गए और तपस्वी जीवन अपनाने की इच्छा से वन में चले गए। एक दिन उन्होंने अपने नाई को बुलाया और उससे कहा, "जब मेरे सिर पर एक भी सफेद बाल दिखाई दे, तो मुझे बताना।" नाई मान गया और कुछ समय बाद उसने एक सफेद बाल देखा और उसे इसके बारे में बताया। राजा ने कहा, "तो, महाराज नाई, इसे निकाल कर मेरे हाथ में रख दीजिए।" नाई ने सोने की चिमटी से उसे निकाला और उसके हाथ में रख दिया। जब राजा ने उसे देखा, तो वह चिल्लाया, "मेरा शरीर बुढ़ापे का शिकार हो रहा है," और भयभीत होकर उसने सफेद बाल उठाया और चबूतरे से नीचे उतरकर लोगों के सामने रखे सिंहासन पर बैठ गया। फिर उसने अपने सेनापति के नेतृत्व में अस्सी हजार सलाहकारों और अपने पुजारी के नेतृत्व में साठ हजार ब्राह्मणों और अपने कई अन्य प्रजाजनों और नागरिकों को बुलाया और उनसे कहा, "मेरे सिर पर एक सफेद बाल आ गया है; मैं बूढ़ा हो गया हूँ, और आप जान लें कि मैं संन्यासी बन गया हूँ," और उसने पहला श्लोक दोहराया:

यहां अच्छे मित्र और नागरिक एकत्रित हुए हैं।
   मेरे विश्वसनीय सलाहकारों, मेरी बात सुनो।
अब मेरे सिर पर सफेद बाल दिखने लगे हैं,
   अब से मेरी यही इच्छा है कि मैं भिक्षु बनूं।
यह सुनकर उनमें से प्रत्येक ने निराशा के आवेश में आकर इस छंद को दोहराया:

उच्चारण में ऐसे यादृच्छिक (*2) शब्द
   तुम मेरे दिल में तीर चला रहे हो:
हे राजा, अपनी सात सौ पत्नियों को याद रखना;
   आपके चले जाने पर उनका क्या होगा?
तब उस महान सत्ता ने तीसरा श्लोक बोला:

उनके दुखों को जल्द ही कोई और दिलासा देगा।
   क्योंकि वे उम्र में युवा हैं और देखने में सुंदर हैं।
लेकिन मैं एक दिव्य लक्ष्य की ओर अग्रसर हूँ।
   और इसलिए मुझे भिक्षु बनकर बहुत खुशी है।
राजा के सलाहकारों के पास कोई जवाब न होने पर वे उनकी माता के पास गए और उन्हें इस बारे में बताया। माता जल्दी से आईं और उनसे पूछा, "प्रिय पुत्र, क्या यह सच है कि तुम तपस्वी बनना चाहते हो?" उन्होंने दो श्लोक दोहराए:

वह दिन कितना दुर्भाग्यपूर्ण था, अफसोस! कि मैं
   मुझे तुम्हारे जैसे बेटे की माँ होने के लिए सराहा जाता था।
मेरे आंसुओं और कड़वी चीखों के बावजूद,
   हे राजा, आपने भिक्षु बनने का निश्चय कर लिया है।
हाय! वह दिन कितना अभिशापपूर्ण था, जब मैं

हे प्रिय सुतासोमा, तुमने तुम्हें जन्म दिया।
मेरे आंसुओं और कड़वी चीखों के बावजूद,
हे राजा, आपने भिक्षु बनने का निश्चय कर लिया है।
जब उनकी माता इस प्रकार शोक मना रही थीं, बोधिसत्व ने एक शब्द भी नहीं कहा। वह एकांत में बैठकर रोती रहीं। फिर उन्होंने उनके पिता को बताया। और वे आए और उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

यह कौन सा नियम है जो आपको बनने की ओर ले जाता है?
क्या आप अपना राज्य और अपना घर छोड़ने के लिए उत्सुक हैं?
अपने बूढ़े माता-पिता को पीछे छोड़कर अकेले रहने के लिए
क्या तुम यहाँ बिल्कुल अकेले एक साधु की कुटिया की तलाश में हो?
यह सुनकर महापुरुष चुप हो गए। तब उनके पिता ने कहा, "मेरे प्रिय सुतासोमा, भले ही तुम्हें अपने माता-पिता से स्नेह न हो, तुम्हारे कई छोटे बेटे-बेटियाँ हैं। वे तुम्हारे बिना नहीं रह सकेंगे। जिस क्षण वे बड़े हो जाएँगे, क्या तुम संन्यासी बन जाओगे?" और उन्होंने सातवाँ श्लोक दोहराया:

लेकिन मुझे लगता है कि आपके कई बच्चे हैं।
और उन सभी कोमल वर्षों में,
जब आप अब दिखाई न दें,
उन्हें कितना दुख सहना पड़ेगा!
यह सुनकर उस महान सत्ता ने एक श्लोक दोहराया:

हां, मेरे कई बच्चे हैं, मुझे लगता है।
वे अभी कम उम्र के हैं।
हालांकि मैं उनके साथ काफी लंबे समय से रहा हूँ,
अब मुझे निश्चित रूप से विदा लेना होगा।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने अपने पिता को विधि का उपदेश दिया। जब उन्होंने विधि का उपदेश सुना, तो वे चुप रहे। तब उन्होंने उनकी सात सौ पत्नियों को यह बात बताई। और वे महल के शिखर से उतरकर उनके समक्ष आईं और उनके चरणों को गले लगाकर रोने लगीं और इस श्लोक को दोहराया:

दुःख में तुम्हारा हृदय अवश्य टूट जाएगा।
या फिर दया भाव तुम्हारे लिए अज्ञात है,
आप धार्मिक अनुष्ठान (तपस्या) कर सकते हैं।
और हमें यहाँ अकेले रोने के लिए छोड़ दिया।
जब उस महान सत्ता ने उनके चरणों में गिरकर जोर-जोर से रोने की आवाज़ सुनी, तो उन्होंने एक और श्लोक दोहराया:

दुःख में भी मेरा हृदय न टूटे,
हालांकि मुझे आपके दर्द पर दया आती है,
लेकिन मुझे पवित्र तपस्या करनी ही होगी।
ताकि मैं स्वर्गिक आनंद प्राप्त कर सकूं।
तब उन्होंने उसकी रानी पत्नी को बताया, और वह गर्भवती होने के बावजूद, हालांकि उसका प्रसव समय निकट आ चुका था, उस महान व्यक्ति के पास गई और उसे प्रणाम करते हुए आदरपूर्वक एक तरफ खड़ी हो गई और तीन श्लोक दोहराए:

वह दिन कितना दुर्भाग्यपूर्ण था, अफसोस! कि मैं
हे प्रिय सुतासोमा, मैंने तुमसे विवाह कर लिया है।
मेरे आंसुओं और कड़वी चीखों के बावजूद
हे राजा, आपने भिक्षु बनने का निश्चय कर लिया है।
वह दिन कितना बुरा था, हाय! कि मैं
हे प्रिय सुतासोमा, मैंने तुमसे विवाह कर लिया है।
क्योंकि तुम मुझे मेरी पीड़ा में मरने के लिए छोड़ दोगे।
आप एक भिक्षु बनने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं।

मेरी प्रसव की घड़ी नजदीक आ रही है।
और मुझे खुशी होगी अगर मेरे स्वामी मेरे साथ रहें
जब तक मेरा बच्चा पैदा नहीं होता, उससे पहले मैं
देखो, तुम्हारे बिना मेरा दिन कितना दुखद है।
फिर उस महान सत्ता ने एक श्लोक दोहराया:

आपकी डिलीवरी का समय नजदीक आ रहा है।
जब तक बच्चा पैदा नहीं हो जाता, मैं तुम्हारे साथ रहूंगी।
तब क्या मैं उस शाही छोटे शैतान को छोड़कर उड़ जाऊँगा?
संसार से दूर, एक पवित्र भिक्षु बनने की राह पर।
उनकी बातें सुनकर वह अपने दुःख को संभाल नहीं पाईं और दोनों हाथों से अपना दिल थामकर बोलीं, "हे प्रभु, अब से हमारी शान नहीं रहेगी।" फिर अपने आँसू पोंछते हुए वह ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगीं। उस महान सत्ता ने उन्हें सांत्वना देने के लिए एक श्लोक दोहराया:

मेरी रानी, जिसकी आंखें काले फूल जैसी हैं,
प्रिय चंदा, मेरे लिए मत रोओ।
लेकिन एक बार फिर अपने महल के बुर्ज पर चढ़ें:
मुझे तुम्हारी कोई परवाह नहीं है।
उसके शब्दों को सहन न कर पाने के कारण वह महल के शिखर पर चढ़ गई और वहाँ बैठकर रोने लगी। तब बोधिसत्व के बड़े पुत्र ने यह देखकर कहा, "मेरी माँ यहाँ बैठकर क्यों रो रही है?" और उसने इस श्लोक को प्रश्नवाचक रूप में दोहराया:

माँ, किसने आपको नाराज़ किया है?
तुम क्यों रोते हो और मुझे घूरते हो?
मेरे परिवार का कौन सा सदस्य मुझे यहाँ दिख रहा है?
क्या मुझे, भले ही मैं पूरी तरह गलत हूँ, तुम्हारे लिए किसी को मारना चाहिए?
तब रानी ने यह श्लोक कहा:

हे प्रिय पुत्र, उसके सिर को कोई हानि न पहुँचे।
कौन मेरे लिए इस तरह का कष्ट सहने के लिए जीवित है?
क्योंकि यह तुम्हारे पिता ने ही कहा था,
मुझे तुम्हारी कोई परवाह नहीं है।
उसकी बातें सुनकर उसने कहा, "प्यारी माँ, तुम ये क्या कह रही हो? अगर ऐसा है तो हम बेबस हो जाएँगे," और रोते हुए उसने ये पंक्तियाँ कहीं:

मैं, जो कभी पार्क में घूमने गया था, यह देखने के लिए
जंगली हाथी आपस में लड़ते हैं।
यदि मेरे प्रिय स्वामी, कोई भिक्षु हों,
मैं क्या करूँ, बेचारा बदनसीब प्राणी?
फिर उनका सात वर्षीय छोटा भाई, जब उन दोनों को रोते हुए देखा, तो अपनी माँ के पास आया और बोला, "मेरे प्यारे बच्चों, तुम क्यों रो रहे हो?" और कारण सुनकर माँ ने कहा, "ठीक है, रोना बंद करो;

मैं उसे संन्यासी नहीं बनने दूँगा," और उसने उन दोनों को दिलासा दिया, और अपनी नर्स के साथ महल के बुर्ज से नीचे उतरकर वह अपने पिता के पास गया और बोला, "प्रिय पिता, लोग मुझसे कहते हैं कि आप हमारी इच्छा के विरुद्ध हमें छोड़कर जा रहे हैं और कहते हैं कि आप संन्यासी बनेंगे; मैं आपको संन्यासी नहीं बनने दूँगा," और अपने पिता की गर्दन को कसकर पकड़ते हुए उसने यह श्लोक कहा:

देखो, मेरी माँ रो रही है!
मेरा भाई तुम्हें खुशी-खुशी रोके रखेगा।
मैं भी तुम्हारा हाथ थाम लूंगा
और न ही हम आपको अपनी इच्छा के विरुद्ध जाने देंगे।

उस महान प्राणी ने सोचा, "यह बच्चा मेरे लिए खतरे का स्रोत है; मैं इससे कैसे छुटकारा पाऊँ?" फिर अपनी नर्स की ओर देखकर उसने कहा, "अच्छी नर्स, यह गहना देखो: यह तुम्हारा है: बस बच्चे को यहाँ से ले जाओ, ताकि वह मेरे लिए बाधा न बने।" और जब वह स्वयं उस बच्चे को, जिसने उसका हाथ पकड़ रखा था, छुड़ाने में असमर्थ हुआ, तो उसने उसे रिश्वत देने का वादा किया और इस श्लोक को दोहराया:

नर्स उठो और छोटे लड़के को जाने दो
 उसके साथ किसी और जगह पर खेलो।
अन्यथा कहीं वह मेरी खुशी को खराब न कर दे।
 और स्वर्ग की ओर मेरी यात्रा में बाधा उत्पन्न करते हैं।
उसने रिश्वत ली और बच्चे को दिलासा देते हुए उसके साथ दूसरी जगह चली गई, और इस प्रकार शोक मनाते हुए उसने इस छंद को दोहराया:

अगर मैं सीधे-सीधे अस्वीकार कर दूं तो क्या होगा?
मुझे इसकी जरूरत नहीं है--क्या यह चमकीला रत्न है?
यदि मेरे स्वामी एक संन्यासी हों,
मुझे गहनों से क्या फायदा होगा?
तब उसके सेनापति ने सोचा, "मुझे लगता है कि इस राजा ने यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि उसके महल में बहुत कम खजाना है; मैं उसे बता दूंगा कि उसके पास बहुत अधिक धन है," इसलिए वह खड़ा हुआ और उसने उसे प्रणाम किया और इस श्लोक को दोहराया:

आपके खजाने विशाल भंडार से भरे हुए हैं।
हे राजा, आपने अपार धन-संपत्ति एकत्रित कर ली है।
पूरी दुनिया तुम्हारे वश में है।
आप आराम करें; संन्यासी न बनें।
यह सुनकर उस महान सत्ता ने इस श्लोक को दोहराया:

मेरे खजाने विशाल खजानों से भरे हुए हैं,
मैंने अपार धन-संपत्ति अर्जित की है:
मैंने पूरी दुनिया को अपने अधीन कर लिया है;
मैं इसे एक साधु की तरह जीना छोड़ देता हूँ।
यह सुनकर जब वह चला गया, तो कुलवद्धन नामक एक धनी व्यापारी खड़ा हुआ और राजा को प्रणाम करते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:

हे राजा, मैंने अपार धन-संपत्ति एकत्रित कर ली है।
समझ की सारी शक्ति से परे विशालता:
देखो, मैं यह सब तुम्हें देता हूँ।
आप आराम करें; संन्यासी न बनें।
यह सुनकर उस महान सत्ता ने एक श्लोक दोहराया:

हे कुलवद्धन, मैं जानता हूँ,
तुम अपनी सारी संपत्ति मुझे दे दोगे,
लेकिन अगर मेरा लक्ष्य दिव्य हो तो मैं जीत जाऊंगा।
अतः मैं इस पापमय संसार का त्याग करता हूँ।
कुलवद्धन ने यह सुनकर जैसे ही वहां से चले गए, उन्होंने अपने छोटे भाई सोमदत्त को संबोधित करते हुए कहा, "प्रिय भाई, मैं पिंजरे में बंद जंगली मुर्गे की तरह असंतुष्ट हूँ, गृहस्थ जीवन के प्रति मेरी अरुचि मुझ पर हावी हो गई है; आज ही मैं संन्यासी बन जाऊँगा; क्या तुम इस राज्य का शासन संभालोगे?" और राज्य का कार्यभार उन्हें सौंपते हुए उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

ओ सोमदत्ता, मुझे यकीन है
मेरी इंद्रियों पर अजीब सी घृणा हावी हो जाती है
अपने उन जुनूनी पापों के बारे में सोचकर:
आज से मेरा एकांत जीवन शुरू होता है।

ये शब्द सुनकर सोमदत्त के मन में भी संन्यासी बनने की इच्छा जागृत हुई और इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने एक और श्लोक दोहराया:

प्रिय सुतासोमा, जाओ और निवास करो
एकांतवास में जैसा आपको अच्छा लगे;
मैं भी खुशी-खुशी संन्यासी बनना चाहूंगा।
तुम्हारे बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है।
तब इसे अस्वीकार करते हुए सुतासोमा ने एक आधा श्लोक दोहराया:

आप न तो जा सकते हैं, न ही उस भूमि से होकर जा सकते हैं।
घरेलू जीवन पूरी तरह से ठप हो जाएगा (*3)।
यह सुनकर लोग उस महान सत्ता के चरणों में गिर पड़े और शोक मनाते हुए बोले

यदि सुतासोमा चला जाए,
हम पूछते हैं, हमारा क्या होगा?
तब उस महान सत्ता ने कहा, "शोक मत करो: यद्यपि मैं तुम्हारे साथ लंबे समय तक रहा हूँ, अब मुझे तुमसे विदा होना पड़ेगा; किसी भी वस्तु में स्थायित्व नहीं है," और लोगों को धर्म का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा,

जैसे छलनी से पानी छनता है (*4), हमारा दिन
अफसोस! कितना क्षणिक है! पल भर में बीत जाता है:
जीवन इस प्रकार सीमित हो जाने पर, मुझे लगता है,
लापरवाही की कोई गुंजाइश नहीं दिखती।
जैसे छलनी से पानी छनता है, वैसे ही हमारा दिन भी छनता है।
अफसोस! कितना क्षणिक है! पल भर में बीत जाता है:
इस प्रकार जीवन चारों ओर से सीमित हो जाने के कारण,
केवल मूर्ख ही लापरवाह पाया जाता है।
वासनाओं के बंधन में जकड़े हुए, जिनमें वे पड़ गए,
ऐसे लोग नरक की सीमाओं को बढ़ाते हैं।
क्रूर दुनिया और भूतों के दायरे में भीड़ जमा हो जाती है,
और राक्षसों की सेनाओं को बढ़ाओ।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने लोगों को धर्म का उपदेश दिया, और पुष्पमहल की सातवीं मंजिल पर चढ़कर, तलवार से अपनी चोटी काट दी और पुकार कर कहा, "अब मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हूँ; तुम अपना राजा चुन लो।" इन शब्दों के साथ ही उसने अपनी चोटी, पगड़ी समेत, लोगों के बीच फेंक दी। लोगों ने उसे पकड़ लिया और ज़मीन पर लोटते हुए ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगे। उस स्थान पर धूल का एक बादल बहुत ऊँचा उठ उठा। लोग पीछे हटकर खड़े हो गए और उसे देखते हुए बोले, "राजा ने अपनी चोटी, पगड़ी समेत, काटकर भीड़ के बीच फेंक दी होगी, इसीलिए महल के पास धूल का बादल उठा है।" विलाप करते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:

धूल का बादल देखो कितना ऊंचा उठता है
रॉयल हाउस ऑफ फ्लावर्स के ठीक बगल में;
मुझे लगता है, न्याय के प्रसिद्ध राजा, हमारे प्रभु
उसने तलवार से अपने बाल काट लिए हैं।
लेकिन उस महान सत्ता ने एक सेवक भेजा और तपस्वी के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ मंगवाईं, और एक नाई से अपने बाल और दाढ़ी कटवाईं। उन्होंने अपना भव्य वस्त्र पलंग पर फेंककर रंगे हुए कपड़े की पट्टियाँ काटीं और उन्हें पहनकर अपने बाएँ कंधे पर एक मिट्टी का कटोरा बाँधा और हाथ में भिक्षु की लाठी लेकर सबसे ऊपरी मंजिल पर आगे-पीछे चहलकदमी की। फिर वे महल के शिखर से नीचे उतरकर सड़क पर आ गए, लेकिन जाते समय किसी ने उन्हें पहचाना नहीं। तब उनकी सात सौ राजसी पत्नियाँ शिखर पर चढ़ीं और उन्हें न पाकर, केवल उनके आभूषणों का गट्ठा देखकर नीचे आईं और अन्य सोलह हजार स्त्रियों को बताया, "शक्तिशाली सुतासोमा, आपके प्रिय स्वामी, तपस्वी बन गए हैं," और वे जोर-जोर से विलाप करते हुए बाहर चली गईं। इसी क्षण लोगों को पता चला कि वह संन्यासी बन गए हैं, और पूरा शहर बहुत हलचल में डूब गया, और लोग कहने लगे, "वे हमें बता रहे हैं कि हमारे राजा भिक्षु बन गए हैं," और वे महल के द्वार पर एकत्रित हो गए, और "राजा अवश्य ही यहाँ या वहाँ होंगे" चिल्लाते हुए, वे उन सभी स्थानों पर दौड़े जहाँ वह अक्सर जाया करते थे, और राजा को न पाकर वे इधर-उधर भटकते रहे, और इन छंदों में अपना शोक व्यक्त किया:

(*5)ये उनके स्वर्णिम महल-मीनार हैं
सभी सुगंधित फूलों की मालाओं से सजे हुए थे।
जहां कई सुंदर महिलाओं से घिरा हुआ है
हमारे राजा कई बार जाया करते थे।
यहां फूलों से सजा हुआ और सोने से निर्मित।
उनकी छत ढलान वाली है, जिसे देखकर कोई भी उनका हॉल देख सकता है।
जहां, उसका पूरा परिवार उसके साथ था,
हमारा राजा पूरे गौरव के साथ इतराता था।
यह फूलों से भरा उसका बगीचा है।
मौसम के बदलते घंटों के दौरान,
जहां घिरा हुआ हो, ..(और पहले जैसा ही)।
उसकी झील कमल के नीले फूलों से ढकी हुई थी।
यहां जंगली पक्षियों का निवास स्थान दिखाई देता है।
जहां, उसका पूरा परिवार, ..(और पहले जैसा ही)।
इस प्रकार लोगों ने विभिन्न स्थानों पर विलाप किया, और फिर महल के प्रांगण में लौटकर उन्होंने इस छंद को दोहराया:

राजा सुतासोमा, यह बताते हुए मुझे खेद है,
उसने अपना सिंहासन छोड़कर एकांतवास में शरण ले ली है।
और, पीले वस्त्र पहने हुए, वह अपने रास्ते चला जाता है।
जैसे कोई अकेला हाथी रास्ता भटक गया हो।
फिर वे अपना सारा घरेलू सामान छोड़कर अपने बच्चों का हाथ थामकर बोधिसत्व के पास गए, और उनके साथ उनके माता-पिता, छोटे बच्चे और सोलह हजार नर्तकियाँ भी थीं। पूरा शहर वीरान लग रहा था, और उनके पीछे-पीछे गाँव के लोग चल रहे थे। बोधिसत्व बारह कुंड (x 4.23 किमी) की दूरी तय करने वाले दल के साथ हिमालय की दिशा में चल पड़े। तब इंद्र ने विश्वकर्मा के संसार त्याग को ध्यान में रखते हुए उनसे कहा, "मित्र विश्वकर्मा, राजा सुतसोमा संसार त्याग रहे हैं। उनके रहने के लिए एक स्थान होना चाहिए: वहाँ लोगों का एक विशाल समूह होगा।" और उन्होंने विश्वकर्मा को यह कहकर भेजा, "हिमालय में गंगा नदी के किनारे तीस कुंड (x 4.23 किमी) लंबा और पाँच कुंड (x 4.23 किमी) चौड़ा एक आश्रम बनवाओ।" उन्होंने ऐसा ही किया, और इस आश्रम में तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक सभी चीजें उपलब्ध कराकर, उन्होंने सीधे आश्रम तक एक पगडंडी बनाई और फिर देवदूत लोक लौट गए। महान पुरुष ने इसी मार्ग से आश्रम में प्रवेश किया, और स्वयं के पहले दीक्षा लेने के बाद, उन्होंने अन्य लोगों को तपस्वी जीवन में प्रवेश दिया, और समय के साथ-साथ बड़ी संख्या में लोगों ने दीक्षा ली, यहाँ तक कि तीस मील (4.23 किमी) का क्षेत्र उनसे भर गया। अब विश्वकर्मा द्वारा आश्रम का निर्माण कैसे हुआ, बड़ी संख्या में लोगों ने तपस्वी जीवन कैसे ग्रहण किया और बोधिसत्व के आश्रम की व्यवस्था कैसे की गई - यह सब हत्थिपाला (*6) जन्म में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए। इस स्थिति में यदि किसी के मन में इच्छा का विचार या कोई अन्य झूठा विचार उत्पन्न होता, तो महान पुरुष वायु के माध्यम से उसके पास पहुँचते, और अंतरिक्ष में पालथी मारकर बैठते हुए, उसे दो श्लोकों में उपदेश देते:

अतीत के प्रेम के खेलों को याद मत करो
जब तक आपके चेहरे पर मुस्कान बरकरार थी,
अन्यथा वह सुंदर आनंदमय शहर
इससे वासना जागृत होगी और तुम्हारी जान जा सकती है।
बिना किसी रोक-टोक के अभ्यास करो।
दिन-रात मनुष्यों के प्रति सद्भावना।
इस प्रकार तुम देवदूत को घर वापस लाने में सफल हो जाओगे।
जहां सभी अच्छे कर्म करने वाले लोग आएंगे।
और संतों का यह समूह, जिसने उनकी सलाह का पालन किया, ब्रह्मलोक के लिए नियत हो गया, और यह कहानी हत्थिपाला जन्म में बताई गई कथा के अनुसार ही सुनाई जानी है।

गुरु ने प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, न केवल अभी, बल्कि पहले भी तथागत (बुद्ध) ने महान त्याग किया था," और उन्होंने जन्म का वर्णन किया। "उस समय माता-पिता महान राजा के दरबार के सदस्य थे, चंदा राहुल की माता थीं, पुत्र सारिपुत्र थे, छोटा

पुत्र राहुल था, धाय खुज्जुत्तारा थीं, धनी व्यापारी कुलवद्धन कश्यप थे, सेनापति मोग्गल्याना थे, राजकुमार सोमदत्त आनंद थे और राजा सुतसोमा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 544.

(2)अभुम्मा, किसी की सीमा या क्षेत्र से बाहर, अनुपयुक्त, अनुचित।

(3) शाब्दिक अर्थ: "खाना नहीं पकाया जा रहा है," या "कोई भी चूल्हे में आग नहीं जलाता है।"

(4) कैमगावरा। "रंगसाज़ों का छानने वाला कपड़ा।" मज्झिमा निकया I. 144 देखें, या टोकरी का काम।

(5) पाठ, जो एक दूसरे से अधिकतर एक शब्द से भिन्न होते हैं, आमतौर पर किसी पेड़ या फूल का नाम।

(6) संख्या 509

पुस्तक XVIII. पन्नासानिपाटा:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> नादिनिका - जातक
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-526-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 526
नलिनीका-जातक

"देखो! यह भूमि," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते हुए सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु को उसकी पूर्व पत्नी द्वारा बहकाए जाने का वर्णन था। कथा सुनाते हुए उन्होंने भिक्षु से पूछा कि उसे किसने गुमराह किया था। भिक्षु ने कहा, "एक पूर्व पत्नी ने।" गुरु ने कहा, "सचमुच, भिक्षु, वह तुम्हारे लिए बुराई का कारण है। पुराने समय में उसी के कारण तुम ध्यान से विमुख हो गए और तुम्हारा घोर विनाश हुआ।" और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, जब ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब बोधिसत्व का जन्म उत्तर के ब्राह्मणों के एक धनी परिवार में हुआ। जब वे वयस्क हुए और सभी कलाओं में प्रशिक्षित हुए, तो उन्होंने तपस्वी जीवन अपना लिया और रहस्यमय ध्यान के अभ्यास से अलौकिक शक्तियां प्राप्त करने के बाद हिमालय में निवास करने लगे। ठीक उसी प्रकार जैसे (*1) अलंबुसा जन्म में वर्णित है, एक हिरणी ने उन्हें गर्भ धारण कराया और एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम ईसिंघा रखा गया। जब वह बड़े हुए, तो उनके पिता ने उन्हें तपस्वी जीवन में प्रवेश कराया और उन्हें रहस्यमय ध्यान के अनुष्ठानों का प्रशिक्षण दिया। कुछ ही समय में उन्होंने इस प्रकार अलौकिक शक्तियां प्राप्त कर लीं और हिमालय क्षेत्र में समाधि (सम्मोहन) के आनंद का अनुभव किया। इंद्रियों को वश में करके वे इतने कठोर तपस्वी बन गए कि उनके सद्गुणों की शक्ति से इंद्र का निवास भी कांप उठा। सक्का (इंद्र) ने अंतर्दृष्टि से इसका कारण जान लिया और यह सोचकर कि "मैं उसके पुण्य को नष्ट करने का कोई तरीका ढूंढूंगा," उन्होंने तीन वर्षों तक काशी राज्य में वर्षा रोक दी। देश मानो झुलस गया और जब कोई फसल नहीं हुई, तो अकाल से व्याकुल होकर लोग महल के प्रांगण में एकत्रित हो गए और राजा को फटकारा। एक खुली खिड़की पर खड़े होकर उन्होंने पूछा कि क्या बात है। उन्होंने कहा, "महाराज, तीन वर्षों से आकाश से वर्षा नहीं हुई है, और सारा राज्य जल गया है और लोग बहुत कष्ट भोग रहे हैं; हे महाराज, वर्षा कीजिए।" राजा ने नैतिक व्रत लिए और उपवास रखा, फिर भी वर्षा नहीं हुई। तभी आधी रात को सक्का (इंद्र) राजकक्ष में प्रवेश कर गए और चारों ओर प्रकाश फैलाते हुए हवा में खड़े दिखाई दिए। राजा ने उन्हें देखकर पूछा, "आप कौन हैं?" उन्होंने कहा, "मैं सक्का (इंद्र) हूं। राजा ने पूछा, "आप किसलिए आए हैं?" "हे महाराज, क्या आपके राज्य में वर्षा होती है?" "नहीं, वर्षा नहीं होती।" "क्या आप जानते हैं कि वर्षा क्यों नहीं होती?" "मुझे नहीं पता।" "हे महाराज, हिमालय देश में इसीसिंघा नाम का एक तपस्वी रहता है, जो अपनी इंद्रियों को कष्ट देकर घोर तपस्या करता है। जब भी वर्षा

शुरू होती है, वह क्रोध से आकाश की ओर देखता है और वर्षा रुक जाती है।" "तो अब क्या किया जाए?" "यदि उसका पुण्य भंग हो जाए, तो वर्षा होगी।" "पर कौन उसके पुण्य को भंग कर सकता है?" "हे महाराज, आपकी पुत्री नलिनिका यह कर सकती है। उसे यहाँ बुलाइए और उसे अमुक स्थान पर जाकर तपस्वी के पुण्य में विच्छेद करने के लिए कहिए।" और इस प्रकार राजा को सलाह देकर इंद्र अपने निवास स्थान पर लौट गए। अगले दिन राजा ने अपने दरबारियों से परामर्श लिया और अपनी पुत्री को बुलाकर उससे प्रथम श्लोक में कहा:

देखो! धरती झुलसी हुई और खंडहर पड़ी है और मेरा राज्य पतन की ओर अग्रसर है:
जाओ, नलिनिका, और कृपया इस ब्राह्मण को अपने वश में कर लो।
यह सुनकर उसने दूसरा छंद दोहराया:

मैं इस कठिनाई को कैसे सहन करूँ, कैसे, भटके हुए हाथियों के बीच?
क्या मैं जंगल के संकरे रास्तों से सुरक्षित रूप से अपना मार्ग तय कर पाऊंगा?
फिर राजा ने दो छंद दोहराए:

मेरी बेटी, अपना सुखमय घर ढूंढो और वहां से बिना देरी किए निकल जाओ।
लकड़ी के उस रथ में सवार होकर, जिसे इतनी कुशलता से गढ़ा गया है, आप अपनी यात्रा पर निकल पड़ें।
घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक—शानदार पोशाक पहनकर जाओ।
और अपनी सुंदरता के आकर्षण से तुम उसे शीघ्र ही अपने वश में कर लोगी।
इस प्रकार अपने राज्य की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी पुत्री से उन बातों का भी ज़िक्र किया जो शब्दों में नहीं कही जानी चाहिए थीं। और उसने सहर्ष उनकी बातें सुनीं। फिर, उसकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, उन्होंने उसे अपने मंत्रियों के साथ विदा कर दिया। वे सीमा पर गए और वहाँ अपना शिविर लगाने के बाद, उन्होंने राजकुमारी को कुछ वनपालों द्वारा बताए गए मार्ग से वहाँ पहुँचाया, और सूर्योदय होते ही हिमालयी क्षेत्र में प्रवेश करके वे तपस्वी के आश्रम के निकट पहुँचे। ठीक उसी समय बोधिसत्व अपने पुत्र को आश्रम में छोड़कर जंगली फल इकट्ठा करने के लिए जंगल में गए थे। वनपाल स्वयं आश्रम के पास पहुँचे और जहाँ से वे उसे देख सकते थे, वहाँ खड़े होकर उन्होंने नलिनिका को आश्रम दिखाया और दो श्लोक दोहराए:

भूरजा के हरे-भरे पेड़ों के बीच केले के पेड़ दिखाई दिए।
देखो! इसिसिंगा की सुंदर झोपड़ी दिखाई दे रही है।
मुझे लगता है कि धुआं आग की लपटों से उठता है।
चमत्कारिक कार्यों के लिए प्रसिद्ध उस संत की देखरेख में पला-बढ़ा।
जिस क्षण बोधिसत्व वन में गए, उसी समय राजा के मंत्रियों ने आश्रम को घेर लिया और उस पर पहरा बिठा दिया। उन्होंने राजकुमारी को तपस्वी का वेश धारण कराया और उन्हें सुंदर छाल से बने आभूषणों से सजे वस्त्र पहनाए। उन्होंने राजकुमारी से एक रंगीन गेंद हाथ में लेने को कहा और उन्हें आश्रम परिसर में भेज दिया, जबकि वे स्वयं बाहर पहरा देते रहे। इस प्रकार, गेंद से खेलते हुए वह परिसर में प्रवेश कर गईं। उस समय, इसीसिंघा अपने पत्तों से बने कुटिया के द्वार पर एक बेंच पर बैठे थे। जब उन्होंने राजकुमारी को आते देखा, तो वे भयभीत हो गए और उठकर कुटिया में जाकर छिप गए। राजकुमारी द्वार के पास आईं और गेंद से खेलती रहीं।

इस बात को और अन्य बातों को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने इन छंदों को दोहराया:

रत्नों से सजी हुई, एक उज्ज्वल और प्यारी दासी पास आती हुई दिखाई दी।
बेचारा इसिसिंगा डर के मारे अपनी कोठरी की सुरक्षात्मक छाया की तलाश कर रहा था।
और जब लड़की साधु के द्वार के सामने गेंद से खेल रही थी,
उसने अपने सुंदर अंगों को पूरी तरह नग्न अवस्था में उसकी निगाहों के सामने प्रकट कर दिया।
लेकिन जब उसने उसे इस तरह खेलते हुए देखा, तो वह अपनी कोठरी से बाहर निकल आया।
और पत्तों से घिरी झोपड़ी से भागते हुए उसने कुछ इस तरह के शब्द कहे।
महोदय, यह किस वृक्ष का फल है जो चाहे कितनी भी दूर फेंका जाए, फिर भी नहीं गिरता?
यह फिर भी आपके पास वापस आ जाएगा और फिर कभी खोएगा नहीं?
फिर उसने उस वृक्ष के बारे में बताते हुए यह छंद कहा:

गंधमादना पर्वत, जिस पर मैं निवास करता हूँ, गर्व कर सकता है।
कई फलदार वृक्ष ऐसे भी होते हैं कि भले ही उन्हें दूर तक फेंका जाए,
यह फिर से मेरे पास लौट आएगा और फिर कभी कुछ खोएगा नहीं।

इस प्रकार उसने झूठ बोला, लेकिन उसने उस पर विश्वास कर लिया, और यह सोचकर कि वह एक तपस्वी है, उसने विनम्रतापूर्वक उसका अभिवादन किया और यह श्लोक कहा:

कृपया, आदरणीय महोदय, अंदर आइए और बैठ जाइए।
अपने पैरों के लिए कुछ खाना और पानी ले लें।
और यहाँ कुछ देर आराम करो, मेरे साथ आनंद लो।
मैं आपको ऐसी ही जड़ें और फलियाँ भेंट करता हूँ।
(*2) भोला-भाला युवक होने के कारण और पहले कभी किसी स्त्री को न देखने के कारण, वह उसके द्वारा सुनाई गई असाधारण कहानी पर विश्वास करने के लिए प्रेरित हुआ, और उसके प्रलोभनों से उसका सजगता हुआ गुण भंग हो गया और उसकी रहस्यमयी ध्यान साधना टूट गई। उसके साथ आनंद लेने के बाद जब वह थक गया, तो वह शीघ्रता से आगे बढ़ा और तालाब तक पहुँचकर स्नान किया, और जब उसकी थकान दूर हो गई, तो वह लौटकर अपनी कुटिया में बैठ गया। और एक बार फिर, उसे अभी भी एक तपस्वी मानते हुए, उसने पूछा कि वह कहाँ रहती है, और यह श्लोक बोला:

आप यहाँ किस रास्ते से आए हैं?
और क्या आपको अपना जंगल वाला घर पसंद है?
क्या जड़ों और बेरों की भूख बनी रह सकती है?
और तुम शिकारी जानवर कैसे बच निकलते हो?
तब नलिनिका ने चार श्लोक पढ़े:

इसके उत्तर में खेमा नदी बहती है
सीधे हिमालय की बर्फ से:
इसके किनारे पर एक मनमोहक स्थान है,
मेरी एकांतवास वाली कुटिया दिखाई दे सकती है।
आम, तिलक, साल (पूरी तरह से विकसित)
कैसिया, तुरही के आकार का फूल पूरी तरह से खिल चुका है--
सभी जगह परियों के गीत गूंज रहे हैं:
महोदय, मेरा घर यहीं स्थित है।
यहां तारीखों और जड़ों के साथ, मुझे लगता है,
यहां हर तरह के फल देखने को मिलते हैं:
यह एक चमकीले रंग का और सुगंधित स्थान है।
यह मेरी किस्मत में लिखा है।
यहां कई प्रकार की जड़ें और बेर पाए जाते हैं।
मीठा, सुंदर और स्वादिष्ट पाया गया।
लेकिन मुझे डर है, अगर लुटेरे आ गए तो,
वे मेरे खुशहाल घर को लूट लेंगे।
यह सुनकर तपस्वी ने अपने पिता के लौटने तक उसे टालने के लिए यह श्लोक कहा:

मेरे पिता फल ढूंढने गए थे, लेकिन अब वे नहीं रहे;
सूरज डूब रहा है, वह जल्द ही यहाँ आ जाएगा।
जब वह फल तोड़ने के बाद वापस आता है,
हम मिलकर आपके एकांतवास की शुरुआत करेंगे।
फिर उसने सोचा: "यह लड़का जंगल में पला-बढ़ा है, इसलिए उसे नहीं पता कि मैं एक औरत हूँ, लेकिन उसका पिता मुझे देखते ही जान जाएगा और मुझसे पूछेगा कि मैं यहाँ क्या काम से आई हूँ और अपनी लाठी के सिरे से मुझे मारकर मेरा सिर फोड़ देगा। मुझे उसके लौटने से पहले यहाँ से चले जाना चाहिए, वरना मेरे आने का उद्देश्य पूरा हो चुका होगा।" और उसे अपने घर का रास्ता बताते हुए उसने एक और पंक्ति दोहराई:

हाय! मुझे डर है कि मैं अब और नहीं रुक पाऊंगा।
लेकिन कई शाही संत रास्ते में ही रहते हैं:
उनमें से किसी एक से रास्ता बताने के लिए कहें;

वह खुशी-खुशी मेरे घर तक गाइड का काम करेगा।
जब उसने भागने की योजना बना ली, तो वह आश्रम छोड़कर चली गई, और जब युवक उसे उदास निगाहों से देख रहा था, तो उसने उसे वहीं रुकने के लिए कहा। फिर वह उसी रास्ते से मंत्रियों के पास लौट गई जिससे वह आई थी। मंत्री उसे अपने साथ अपने शिविर में ले गए और कई पड़ावों से होते हुए बनारस पहुँचे। उसी दिन इंद्र इतना प्रसन्न हुआ कि उसने पूरे राज्य में वर्षा करवा दी। लेकिन जैसे ही वह तपस्वी, इसीसिंह को छोड़कर गई, उसे बुखार हो गया और वह कांपते हुए पत्तों की कुटिया में गया और छाल का वस्त्र पहनकर कराहने लगा। शाम को उसके पिता लौटे और अपने पुत्र को न पाकर बोले, "वह कहाँ चला गया?" उन्होंने अपना डंडा नीचे रखा और कुटिया में गए, और जब उन्होंने उसे वहाँ लेटा हुआ पाया तो कहा, "क्या हुआ है मेरे प्यारे पुत्र?" और उसकी पीठ छूकर उन्होंने तीन श्लोक कहे:

न लकड़ी काटी गई, न पानी लाया गया, न आग जलाई गई। मैं निवेदन करता हूँ।
मुझे बताओ, हे मूर्ख लड़के, तुम सारा दिन ऐसे सपने क्यों देखते रहते हो?
आज तक लकड़ी की कटाई होती रही है।
आग जल उठी और उस पर बर्तन रख दिया गया।
मेरी सीट लग गई, पानी मंगवा दिया गया। सचमुच
तुमने अपने काम में ही खुशी पाई, अच्छे युवक!
आज न तो लकड़ी काटी गई, न पानी लाया गया।
आग नहीं जल रही; पका हुआ भोजन पाने की इच्छा व्यर्थ है।
आज आपने मेरा स्वागत नहीं किया:
आपने क्या खोया है? आपको किस बात का दुख सता रहा है?
अपने पिता की बातें सुनकर, जो मामले को समझा रहे थे, उसने कहा:

महाराज, आज यहाँ एक पवित्र युवक आया है।
एक सुंदर, आकर्षक लड़का, जिसका रूप-रंग मनमोहक है:
वह न तो बहुत लंबा था और न ही बहुत छोटा।
उसके बाल गहरे काले थे, बिल्कुल काले।
चिकने गालों वाला और बिना दाढ़ी वाला यह बालक जैसा प्राणी था।
और उसके गले में एक चमकीला रत्न लटका हुआ था;
उसकी सुंदर छाती पर दो प्यारे उभार थे,
शुद्धतम किरण से बने चमकीले सोने के गोलों की तरह।
उसका चेहरा बेहद सुंदर था, और प्रत्येक कान से
एक घुमावदार अंगूठी लटकती हुई दिखाई दी;
ये और उसके सिर पर लगा मांस का टुकड़ा टूट गया
जब भी वह हिलता-डुलता था, प्रकाश की चमक दिखाई देती थी।
फिर भी युवक ने अन्य आभूषण भी पहन रखे थे।
या फिर उसके कपड़ों और बालों पर नीला या लाल रंग हो;
जब भी वह हिलता, वे झनझनाते और फिर बजने लगते।
जैसे छोटी चिड़ियाएँ (*3) जो बारिश के समय चहचहाती हैं।
छाल का कोई वस्त्र नहीं, कठोर तपस्वी का चिन्ह।
उसके लिए मुंजा घास से बनी कोई कमरबंद नहीं।
उसके वस्त्र चमक रहे हैं, जांघों से चिपके हुए हैं।
आकाश में बिजली की चमक की तरह तेज।
किस वृक्ष के फल उसकी कमर के नीचे बंधे हुए हैं?
--क्या यह चिकना है और इसमें कोई डंठल या कांटे नहीं पाए जाते हैं?--
उसके वस्त्र में सिला हुआ, ढीला लेकिन मोटा,
वे एक दूसरे से टकराते हैं और "क्लिक" की आवाज़ आती है।
उसके सिर के बाल बेहद सुंदर थे।
सैकड़ों घुंघराले बालों की खुशबू से पूरा वातावरण महक रहा था:
ये ताले बीच से ही खुल गए थे, क्या उसने ऐसा किया था?
वह चाहता था कि मेरे बाल भी वैसे ही सजे-धजे हों जैसे वह चाहता था।

लेकिन जब उसने संयोगवश अपने ताले खोल दिए
और अपनी सारी सुंदरता के साथ हवा में लहराते हुए,
उनकी सुगंध से जंगल के पेड़ों के बीच बसा हमारा घर भर गया।
जैसे कमल की सुगंध हवा के साथ बहती है।
उनकी अस्थियां भी देखने में सुंदर थीं।
उनका व्यक्तित्व आपके बेटे से बिल्कुल अलग था:
इससे निकलने वाली गंध हर जगह फैल गई,
जैसे गर्मियों की हवा में झाड़ियाँ खिल उठती हैं।
उसके फल इतने चमकीले और सुंदर थे, अनेक रंगों के थे।
उसने उसे उससे दूर जमीन पर फेंक दिया,
लेकिन यह हमेशा उसी के पास वापस लौटकर आता था:
मैं आपसे यह जानना चाहूंगा कि यह कौन सा फल है।
उसके दांत सीधी पंक्तियों में थे, एकदम शुद्ध और सफेद।
सर्वश्रेष्ठ मोतियों से प्रतिस्पर्धा करना, एक मनमोहक दृश्य;
जब भी वह अपने होंठ खोलता है, कितना मनमोहक लगता है!
हमारे जैसा खाना तो उसे मिलता ही नहीं, बस जड़ वाली सब्जियां और सड़ी हुई जड़ी-बूटियां ही मिलती हैं!
उनकी आवाज इतनी कोमल और मधुर थी, फिर भी दृढ़ और स्पष्ट थी।
मधुर स्वर में ये ध्वनि कानों को भा गई;
इसने मेरे दिल को छू लिया: कितना मधुर स्वर था!
यह मधुर आवाज वाली कोयल के गले से कभी नहीं निकली।
मुझे इसकी आवाज़ दबी हुई, बहुत धीमी लगी।
मेरे विचार से, किसी पवित्र परंपरा का पालन करने वाले व्यक्ति के लिए;
लेकिन—उनकी दयालुता इतनी महान है—मुझे खुशी होगी
इस युवक के साथ अपनी दोस्ती को फिर से मजबूत करना चाहता हूँ।
सुनहरे रंग की पोशाक में उनकी गर्म बाहें चमक रही थीं।
मेरे चारों ओर चमकती बिजली की तरह खेलो।
वे रुई से ढके हुए थे, जो आंखों में लगाने वाले मरहम की तरह कोमल थी।
उसकी उंगलियां गोल थीं और मूंगे की तरह लाल हो गई थीं।
उसके अंग चिकने थे, उसके लंबे बाल खुले हुए थे।
उसके नाखून भी लंबे थे और उनके सिरे गहरे लाल रंग से रंगे हुए थे:
उसकी कोमल बाहें मुझे कसकर घेरे हुए थीं
उस सुंदर लड़के ने मेरी सेवा करके मुझे बेहद प्रसन्न किया।
उसके हाथ रुई की तरह सफेद और चमकदार थे।
जैसे सुनहरा दर्पण जो प्रकाश को परावर्तित करता है;
उनके कोमल स्पर्श से मुझे एक तीव्र रोमांच का अनुभव हुआ।
और हालांकि वह अब हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनकी याद मुझे हमेशा प्रेरित करती है।
वह अनाज का कोई बोझ नहीं लाया, और न ही कभी ला सकता था।
वह अपने हाथों से हमारी लकड़ी काटने के लिए राजी हो जाए।
और न ही वह अपनी कुल्हाड़ी से पेड़ काटेगा।
और मुझे खुश करने के लिए कोई नुकीली कील भी मत लाओ।
लताओं की पत्तियों से ढका यह सिकुड़ा हुआ सोफा
भालू हमारे द्वारा की गई मजेदार शरारतों को देख रहे थे:
फिर हम झील में अपने थके हुए अंगों को धोते हैं।
और एक बार फिर हम जिस विश्राम की लालसा रखते हैं, उसे पाने के लिए घर के भीतर ही तलाश करते हैं।
आज मैं किसी भी पवित्र ग्रंथ का पाठ नहीं कर सकता।
बलिदान के लिए कोई अग्नि प्रज्वलित नहीं पाई गई:
हाँ, मैं सभी जड़ वाली सब्जियों और बेरीज से परहेज करूंगा।
जब तक मैं इस धर्मनिष्ठ युवक से दोबारा न मिल जाऊं।

मुझे बताइए, प्रिय पिताजी, क्योंकि आप इसे भली-भांति जानते हैं।
यह पवित्र युवक संसार में कहाँ निवास करता होगा?
और कृपया हमें पूरी गति से उड़ने दें।
या फिर मेरी मृत्यु निश्चित रूप से तुम्हारे दरवाजे पर ही होगी।
मैंने उसे रंग-बिरंगे फूलों से भरे मैदानों के बारे में बात करते सुना है।
और यह पक्षियों से भरा हुआ है जो दिन भर गाते रहते हैं।
यह वहाँ पूरी गति से है, मैं खुशी-खुशी उड़ जाऊंगा।
या फिर मैं यहीं लेटकर मर जाऊँगा।
उस महान सत्ता ने लड़के की ऐसी निरर्थक बातें सुनकर तुरंत जान लिया कि किसी स्त्री के कारण उसने अपना सतीत्व खो दिया है, और उसे चेतावनी देते हुए उसने छह श्लोक दोहराए:

एक प्राचीन घर सदियों से यहाँ खड़ा है
इस जंगल के धूप से रोशन परिसर के भीतर;
देवदूतों और अप्सराओं के लोकों में,
यह बेचैनी की भावना आपको कभी नहीं होनी चाहिए।
मित्रताएँ अस्तित्व में आती हैं और फिर समाप्त हो जाती हैं;
प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है;
लेकिन बेचारे वे प्राणी हैं जो नहीं जानते
वे अपनी उत्पत्ति और प्रेम के लिए किसके ऋणी हैं?
दोस्ती निरंतर संपर्क से बनती है;
जब यह बंधन टूट जाता है, तो दोस्ती का टूटना अपरिहार्य हो जाता है।
यदि आपको इस युवक पर एक बार फिर नजर आ जाए,
या फिर उससे पहले की तरह बातचीत करो।
जैसे बाढ़ पके हुए मक्के को बहा ले जाती है,
तो सद्‌गुण की शक्ति आगे ले जाई जाएगी(*4)।
ऐसे राक्षस हैं जो पूरी पृथ्वी पर विचरण करते हैं।
विभिन्न रूपों में भेस बदलकर। सावधान रहो, मेरे बेटे!
जो बुद्धिमान है उसे ऐसी स्त्री से विवाह नहीं करना चाहिए;
उनके स्पर्श से स्वयं सद्‌गुण नष्ट हो जाता है (*5)।
अपने पिता की बातें सुनकर युवक ने सोचा, "वह तो एक स्त्री यक्ष (राक्षस) है," और वह भयभीत हो गया तथा उसके बारे में सोचना बंद कर दिया। फिर उसने अपने पिता से क्षमा मांगते हुए कहा, "मुझे क्षमा कर दीजिए, प्रिय पिता, मैं इस स्थान को नहीं छोड़ूंगा।" उसके पिता ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "आओ, मेरे पुत्र, दान, दया, सहानुभूति और समभाव का अभ्यास करो," और उसे सिद्ध अवस्थाओं की प्राप्ति का उपदेश दिया। पुत्र ने उसी मार्ग पर चलते हुए एक बार फिर रहस्यमय ध्यान (सम्मोहन) का अभ्यास किया।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करने के बाद सत्य प्रकट किए और जन्म की पहचान बताई: सत्यों के समापन पर पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (समाधि) की सिद्धि में स्थापित हो गया: "उस समय उसके अपवित्र दिनों की पत्नी नलिनिका थी, पथभ्रष्ट भाई इसिसिंगा था, और मैं स्वयं पिता था।"

फुटनोट:

(1)सं. 523.

(2) नलिनिका, भालू द्वारा घायल होने का बहाना करके, तपस्वी युवक की सादगी का अभ्यास करती है।

(3) काराका भाषा में सिरिटाका एक पक्षी का नाम है।

(4) पांचवां छंद पिछले छंद की पुनरावृति है।

(5)पढ़ना, नस्साती.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **उम्मादंती-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-527-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 527
उम्मदन्ति-जातक

“यह किसका घर है?” इत्यादि। यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में निवास करते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कथा के अनुसार, एक दिन जब वह श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगा रहे थे, तो उन्होंने एक अत्यंत सुंदर, भव्य वस्त्रधारी स्त्री को देखा और उस पर मोहित हो गए। अपने मठ लौटने पर उनका ध्यान उससे हट ही नहीं रहा था। उस समय से, मानो प्रेम के बाणों से ग्रस्त और वासना से बीमार होकर, वह जंगली हिरण की तरह दुबले-पतले हो गए, उनकी नसें उभरने लगीं और उनका रंग पीला पड़ गया। उन्हें चारों प्रकार की ध्यान विधियों में आनंद नहीं मिलता था, न ही अपने विचारों में सुख मिलता था। गुरु की सभी सेवाओं का त्याग करके उन्होंने उपदेश, पूछताछ और ध्यान का भी त्याग कर दिया। उनके साथी भिक्षुओं ने कहा, “महोदय, एक समय आप मन से शांत और गंभीर थे, लेकिन अब ऐसा नहीं है। इसका क्या कारण हो सकता है?” उन्होंने पूछा। "महोदय," उसने उत्तर दिया, "मुझे किसी भी चीज़ में खुशी नहीं है।" तब उन्होंने उससे प्रसन्न होने को कहा, “बुद्ध के रूप में जन्म लेना कठिन है: वैसे ही सच्चे धर्म को सुनना और मनुष्य के रूप में जन्म लेना भी कठिन है। परन्तु तुमने यह प्राप्त कर लिया है, और दु:ख का अंत करने की लालसा में तुमने अपने रोते-बिलखते परिवार को छोड़कर विश्वासी बनकर तपस्वी जीवन अपना लिया। तो फिर अब तुम कामवासना के वश में क्यों हो रहे हो? ये बुरी कामवासनाएँ सभी अज्ञानी प्राणियों में पाई जाती हैं, जीवित कीड़े से लेकर ऊपर तक, और इनमें से जो कामवासनाएँ भौतिक उत्पत्ति की हैं, वे भी निरर्थक हैं। इच्छाएँ दु:ख और निराशा से भरी होती हैं: इस स्थिति में दु:ख निरंतर बढ़ता ही जाता है। इच्छा एक कंकाल या मांस के टुकड़े के समान है। इच्छा भूसे के ढेर से बनी मशाल या अंगारों से निकली रोशनी के समान है। इच्छा एक सपने या ऋण या पेड़ के फल की तरह लुप्त हो जाती है। इच्छा एक नुकीले भाले या साँप के सिर की तरह चुभती है। परन्तु तुम, वास्तव में, इतने गौरवशाली को अपनाने के बाद इस तरह का विश्वास और तपस्वी बनना, अब ऐसी हानिकारक वासनाओं के वश में आ गया है। जब वे अपनी शिक्षाओं से उसे अपनी शिक्षा समझाने में असफल रहे, तो वे उसे सत्य के हॉल में गुरु के समक्ष ले आए। और जब उसने कहा, "भाइयों, आप इस भिक्षु को उसकी इच्छा के विरुद्ध यहाँ क्यों लाए हैं?" तो उन्होंने उत्तर दिया, "हमें बताया गया है कि वह पथभ्रष्ट है।" गुरु ने पूछा कि क्या यह सच है, और जब उसने स्वीकार किया कि यह सच है, तो गुरु ने कहा, "भाइयों, प्राचीन काल के ऋषि, यद्यपि एक राज्य पर शासन करते थे, जब भी उनके हृदय में वासना उत्पन्न होती थी, वे कुछ समय के लिए उसके वश में आ जाते थे, परन्तु अपने भटकते विचारों को नियंत्रित करते थे और किसी भी अनुचित आचरण के दोषी नहीं होते थे।" और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, शिव राज्य के अरित्थपुरा नगर में शिव नाम का एक राजा रहता था। बोधिसत्व राजा की प्रधान रानी के पुत्र के रूप में उनका जन्म हुआ और उन्हें राजकुमार शिव कहा जाने लगा। उनके सेनापति का भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने अहिपरक रखा। दोनों बालक बचपन से मित्र थे और सोलह वर्ष की आयु में वे तक्षशिला गए और अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद घर लौट आए। राजा ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया, जिसने अहिपरक को सेनापति नियुक्त किया और अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया। उसी नगर में तिरितवच्छ नामक एक धनी व्यापारी रहता था, जिसकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। उसकी एक पुत्री थी, जो अत्यंत सुंदर और आकर्षक थी, और सौभाग्य के सभी लक्षणों से परिपूर्ण थी। नामकरण के दिन उसका नाम उम्मदंती रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में वह किसी अप्सरा के समान सुंदर थी, उसकी सुंदरता मनुष्य से कहीं अधिक थी। उसे देखने वाले सभी सांसारिक प्राणी अपने आप को वश में नहीं कर सके, मानो वे मादक पेय के नशे में चूर हो गए हों और अपना संयम खो बैठे हों। तब उसके पिता, तिरितवच्छ, राजा के पास आए और बोले, “महाराज, मेरे घर में एक अनमोल पुत्री है, जो राजा के लिए भी उपयुक्त है। अपने ज्योतिषियों को बुलाइए, जो शारीरिक बनावट को पढ़ सकते हैं, और उनसे उसकी परीक्षा करवाइए, फिर अपनी इच्छा अनुसार उसके साथ व्यवहार कीजिए।” राजा मान गए और अपने ब्राह्मणों को भेजा। वे व्यापारी के घर गए और उनका बड़े सम्मान और आतिथ्य सत्कार के साथ स्वागत किया गया, जहाँ उन्होंने चावल-दूध ग्रहण किया। उसी क्षण उमदंती भव्य वस्त्रों में उनके समक्ष प्रकट हुई। उन्हें देखते ही वे अपना संयम खो बैठे, मानो वे कामुक नशे में चूर हो गए हों, और यह भूल गए कि उन्होंने अपना भोजन अधूरा छोड़ दिया था। उनमें से कुछ ने

एक निवाला उठाया और यह सोचकर कि वे उसे खा लेंगे, उसे अपने सिर पर रख लिया। कुछ ने उसे अपनी कमर पर गिरा दिया। कुछ ने उसे दीवार पर फेंक दिया। सब लोग गुस्से से बौखला गए थे। जब उसने उन्हें इस हालत में देखा, तो उसने कहा, "वे कहते हैं कि ये लोग मेरे चुने हुए लोगों के चरित्र की परीक्षा लेने आए हैं," और उसने उन्हें गर्दन से पकड़कर बाहर निकालने का आदेश दिया। वे बहुत नाराज़ हुए और उम्मदंती के साथ महल लौट आए और बोले, "महाराज, यह स्त्री आपके लिए उपयुक्त नहीं है: यह एक डायन है।" राजा ने सोचा, "वे कहते हैं कि यह एक डायन है," और उसने उसे नहीं बुलाया। जब उसने यह सब सुना, तो उसने कहा, "राजा ने मुझे इसलिए नहीं चुना क्योंकि वे कहते हैं कि मैं एक डायन हूँ: डायनें सचमुच मेरे जैसी ही होती हैं। ठीक है, अगर कभी राजा से मिलूँ, तो मुझे पता है कि क्या करना है।" और उसके मन में राजा के प्रति द्वेष पैदा हो गया। इसलिए उसके पिता ने उसका विवाह अहिपारका से कर दिया, और वह अपने पति की प्रिय और प्रियतम बन गई। अब उसके किस कर्म के फलस्वरूप वह इतनी सुंदर हो गई थी? लाल वस्त्र के उपहार से। कहते हैं कि एक समय की बात है, उनका जन्म बनारस के एक गरीब परिवार में हुआ था और किसी त्योहार के दिन उन्होंने कुछ पवित्र महिलाओं को देखा,लाल रंग के केसर से रंगे हुए भव्य वस्त्र पहने और आनंदित होते हुए, उसने अपने माता-पिता से कहा कि वह भी ऐसा ही वस्त्र पहनकर प्रसन्न होना चाहती है। जब उन्होंने कहा, "मेरी प्यारी, हम गरीब हैं: तुम्हें ऐसा वस्त्र कहाँ से मिलेगा?" तो उसने कहा, "ठीक है, मुझे किसी धनी परिवार में मजदूरी करने दीजिए, और जैसे ही वे मेरी योग्यता को पहचानेंगे, वे मुझे एक वस्त्र भेंट करेंगे।" उनकी सहमति प्राप्त करने के बाद, वह एक परिवार के पास गई और उन्हें लाल वस्त्र के बदले अपनी सेवा देने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा, "हमारे लिए तीन साल काम करने के बाद, हम तुम्हारी योग्यता को पहचानते हुए तुम्हें एक वस्त्र देंगे।" वह तुरंत सहमत हो गई और काम में जुट गई। तीन साल पूरे होने से पहले ही, उन्होंने उसकी योग्यता को पहचानते हुए, उसे केसर से रंगे हुए एक मोटे वस्त्र के साथ एक और वस्त्र दिया, और उसे यह कहते हुए विदा किया, "अपने साथियों के साथ जाओ, और स्नान करने के बाद, इन वस्त्रों को पहन लो।" इसलिए वह अपने साथियों के साथ स्नान करने चली गई और लाल वस्त्र को किनारे पर ही छोड़ दिया। उसी समय कश्यप बुद्ध का एक शिष्य, जिसके वस्त्र छीन लिए गए थे और जिसने टूटी हुई शाखा के टुकड़ों को भीतरी और बाहरी वस्त्र के रूप में पहन रखा था, वहाँ पहुँचा। उसे देखकर उसने सोचा, "इस संत के वस्त्र अवश्य ही छीन लिए गए होंगे। पुराने समय में मुझे भी वस्त्र न मिलने के कारण वस्त्र प्राप्त करने में कठिनाई हुई थी," और उसने अपने वस्त्र को दो भागों में बाँटकर आधा भाग उन्हें देने का निश्चय किया। इसलिए वह पानी से बाहर निकली और अपने पुराने वस्त्र पहनकर, "हे संत, ठहरिए," कहकर उसने संत को प्रणाम किया और अपने वस्त्र को दो भागों में फाड़कर आधा भाग उन्हें दे दिया। फिर वह एक सुरक्षित स्थान पर एक तरफ खड़ा हो गया और अपने टहनियों से बने वस्त्र को उतार फेंककर, एक भाग को भीतरी वस्त्र और दूसरे भाग को बाहरी वस्त्र बना लिया और खुले में बाहर निकल आया। वस्त्र की चमक से उसका पूरा शरीर नवभू सूर्य के समान दमक रहा था। यह देखकर उसने सोचा, "यह पवित्र पुरुष पहले तो तेजस्वी नहीं था, लेकिन अब नवभू सूर्य के समान चमक रहा है। मैं इसे भी उसे दे दूंगी।" अतः उसने वस्त्र का दूसरा भाग उसे दे दिया और यह प्रार्थना की, "हे पवित्र पुरुष, मैं भविष्य में किसी जन्म में इतनी सुंदर होना चाहती हूँ कि जो भी मुझे देखे, वह अपने आप पर नियंत्रण न रख पाए और कोई भी स्त्री मुझसे अधिक सुंदर न हो।" बड़े ने उसे धन्यवाद दिया और अपने मार्ग पर चल दिया। देवताओं (देवदूतों) के लोक में कुछ जन्म-मृत्यु के बाद, वह इस समय अरित्थपुरा में जन्मी और उतनी ही सुंदर थी जितनी उसका वर्णन किया गया था। अब इस नगर में कट्टिका उत्सव की घोषणा की गई और पूर्णिमा के दिन नगर को सजाया गया। अहिपरका, अपने पहरे पर जाते समय, उससे कहा, "देवी उम्मदंती, आज कट्टिका उत्सव है; राजा नगर में जुलूस निकालते हुए सबसे पहले इस घर के द्वार पर आएंगे। ध्यान रहे कि आप उन्हें दर्शन न दें।"क्योंकि तुम्हें देखकर वह अपने विचारों पर काबू नहीं रख पाएगा।" जब वह उससे विदा लेने लगा, तो उसने उससे कहा, "मैं देख लूंगी।" और उसके जाते ही उसने अपनी दासी को आदेश दिया कि राजा के द्वार पर आने पर उसे सूचित करे। सूर्यास्त के समय, जब पूर्णिमा का चंद्रमा निकल आया था और शहर के हर कोने में मशालें जल रही थीं, जो मानो देवताओं (देवदूतों) के नगर की तरह सजा हुआ था, राजा अपने पूरे वैभव में, उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचे गए एक भव्य रथ पर सवार होकर और दरबारियों की भीड़ के साथ, बड़े धूमधाम से शहर का चक्कर लगाते हुए, सबसे पहले अहिपरक के घर के द्वार पर आया। अब यह घर, जो लाल रंग की दीवार से घिरा हुआ था, फाटकों और मीनारों से सुसज्जित था, एक सुंदर और आकर्षक स्थान था। इसी क्षण दासी ने अपनी मालकिन को राजा के आगमन की सूचना दी, और उम्मदंती ने उसे फूलों की टोकरी लाने को कहा, और खिड़की के पास खड़ी होकर उसने परी के आकर्षण से राजा पर फूल बरसाए। और ऊपर उसकी ओर देखते हुए राजा वासना से पागल हो गया था और अपने विचारों पर बिल्कुल नियंत्रण नहीं रख पा रहा था, और वह उस घर को अहिपारका का घर पहचानने में असफल रहा। इसलिए उसने अपने सारथी को संबोधित करते हुए दो श्लोक प्रश्नवाचक रूप में दोहराए:

सुनंदा, ये किसका घर है, सच-सच बताओ।
क्या चारों ओर सुनहरे रंग की दीवार है?
यह कैसा नजारा है, उल्कापिंड की तरह चमकीला?
या फिर किसी पर्वत की चोटी पर पड़ती सूर्य की किरण?
संयोगवश वह घर की ही बेटी है।
वह स्वयं उसकी रखैल थी, या शायद बेटे की पत्नी?
आपका उत्तर संक्षेप में एक शब्द में--

क्या वह अविवाहित है (*1) या क्या वह अभी भी एक स्वामी है?
फिर राजा को उत्तर देते हुए उन्होंने दो छंद दोहराए:

महाराज आपसे जो कुछ भी पूछ रहे हैं, मैं भली-भांति जानता हूँ।
और उसके माता-पिता दोनों तरफ से बता सकते हैं:
हे राजा, उसके पति के बारे में, दिन-रात,
वह हर काम में पूरी लगन से आपके उद्देश्य की सेवा करता है।
वह आपका एक शक्तिशाली मंत्री है।
उसके पास अपार संपत्ति और अपार समृद्धि है;
वह प्रसिद्ध अहीपरका की पत्नी हैं।
और जन्म के समय उनका नाम उम्मदंती रखा गया।
यह सुनकर राजा ने उसके नाम की प्रशंसा करते हुए एक और श्लोक दोहराया:

हाय! यह नाम कितना अशुभ है!
इस प्यारी बच्ची को उसके माता-पिता ने दिया था;
जब से उम्मादंती ने अपनी निगाहें मुझ पर टिका दीं,
देखो! मैं एक पागल, प्रेतबाधित इंसान बन गया था।
उसकी घबराहट देखकर उसने खिड़की बंद कर दी और सीधे अपने सुंदर कक्ष में चली गई। और जिस क्षण राजा की नज़र उस पर पड़ी, उसने शहर में जुलूस निकालने का विचार छोड़ दिया। अपने सारथी से उसने कहा, "मित्र सुनंदा, रथ रोक दो; यह उत्सव हमारे लिए उपयुक्त नहीं है; यह केवल मेरे सेनापति अहिपारक के लिए ही उपयुक्त है, और सिंहासन भी उसी के लिए अधिक उपयुक्त है।" रथ रोककर वह अपने महल में चढ़ गया और राजसी पलंग पर लेटकर बड़बड़ाते हुए बोला,

एक नन्ही सी कन्या, जिसकी आंखें हिरणी की तरह कोमल थीं,
मेरे सामने पूर्णिमा के निर्मल प्रकाश में,
उसे कबूतर जैसे रंग के वस्त्र में देखकर,
मुझे ऐसा लगा जैसे एक साथ दो चंद्रमा दिखाई दिए हों।
उसकी चमकीली, प्यारी आँखों से एक नजर हटाते हुए,
उस मोहक स्त्री ने मुझे अचानक ही अपने वश में कर लिया।
किसी पर्वत की ऊँचाई पर स्थित वनवासी बौने की तरह,
उसकी मनमोहक चाल ने पहली नजर में ही मेरा दिल जीत लिया।
वह युवती सांवली, लंबी और गोरी थी, जिसके कानों में गहने थे।
एक ही वस्त्र पहने, डरपोक हिरणी की तरह, वह प्रकट होती है।
लंबे बालों और पूरी तरह से लाल रंग से रंगे नाखूनों के साथ,
उसकी कोमल बाहों पर चंदन की समृद्ध सुगंध बिखरी हुई थी,
पतली उंगलियों और शालीन भाव के साथ,
हे मेरी प्यारी, वो कब मुझ पर मुस्कुराएगी?
तिरिटी की पतली कमर वाली दासी कब आएगी?
उसके स्तनों पर सोने का आभूषण प्रदर्शित था।
अपनी कोमल बाहों से मुझे गले लगा लो,
क्या किसी वन वृक्ष पर लता के रूप में भी?
वह कब लाख के इतने चमकीले रंग से रंगी जाएगी?
उभरे हुए वक्षस्थल वाली, निर्मल श्वेत कन्या,
मेरे साथ एक चुंबन का आदान-प्रदान करो, जितनी बार एक गिलास
क्या एक शराबी से दूसरे शराबी तक का संक्रमण स्वीकार्य होगा?
जैसे ही मैंने उसे इस प्रकार खड़ी देखा, जो देखने में इतनी सुंदर थी,
अब मैं स्वयं का स्वामी नहीं रहा, तर्क को त्यागकर दूर फेंक देता हूँ।
जब मैंने उम्मदंती को देखा, तो उसने चमकीले रत्नजड़ित झुमके पहने हुए थे,
जैसे किसी को भारी सजा मिली हो, मैं दिन-रात सो नहीं पाया।
यदि सक्का (इंद्र) मुझे वरदान प्रदान करें, तो मैं तुरंत निर्णय ले लूंगा।

मैं एक रात या संयोगवश दो रातों के लिए अहीपाराका बन जाऊंगा।
और इस प्रकार उम्मदंती को सुख प्राप्त होता, तो वह सिवी पर शासन कर सकता था।
तब उन सलाहकारों ने अहिपारका से कहा, "महाराज, राजा नगर में जुलूस निकालते हुए आपके घर के द्वार तक आए और फिर वापस मुड़कर अपने महल में चढ़ गए।" तो अहिपारका घर गए और उम्मदंती से पूछा कि क्या उसने राजा को दर्शन दिए थे। उम्मदंती ने कहा, "महाराज, एक मोटे पेट वाला, बड़े-बड़े दाँतों वाला व्यक्ति अपने रथ में खड़ा होकर यहाँ आया था। मुझे नहीं पता कि वह राजा था या राजकुमार, लेकिन मुझे बताया गया कि वह किसी प्रकार का सरदार था, और मैंने खुली खिड़की पर खड़े होकर उस पर फूल फेंके। इसी बीच वह वापस मुड़कर चला गया।" यह सुनकर अहिपारका ने कहा, "तुमने मुझे बर्बाद कर दिया।" और अगली सुबह जल्दी राजा के घर जाकर वह राजकक्ष के द्वार पर खड़ा हो गया और राजा को उम्मदंती के बारे में बड़बड़ाते हुए सुनकर उसने सोचा, "उम्मदंती को उससे प्रेम हो गया है; अगर वह उसे नहीं पा सका, तो वह मर जाएगा: मेरा कर्तव्य है कि मैं उसे जीवनदान दूं, यदि यह राजा या मेरे पाप के बिना संभव हो।" अतः वह घर गया और एक साहसी, बेईमान या सेवक को बुलाया और कहा, "मित्र, फलाँ स्थान पर एक खोखला वृक्ष है जो एक पवित्र स्थान है। किसी से कुछ कहे बिना, सूर्यास्त के समय वहाँ जाओ और वृक्ष के भीतर बैठ जाओ। फिर मैं आकर वहाँ भेंट चढ़ाऊँगा और देवताओं की आराधना करते हुए यह प्रार्थना करूँगा: "हे स्वर्ग के राजा, हमारे राजा एक उत्सव के दौरान, उसमें भाग लिए बिना, अपने राजकक्ष में चले गए हैं और वहाँ व्यर्थ की बातें कर रहे हैं; हमें नहीं पता कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। राजा देवताओं (देवदूतों) के बड़े समर्थक रहे हैं और वर्ष दर वर्ष यज्ञों में हज़ारों सिक्के खर्च करते रहे हैं। हमें बताइए कि राजा इस प्रकार मूर्खतापूर्ण बातें क्यों कर रहे हैं और हमें राजा के जीवन का वरदान दीजिए।" इस प्रकार मैं प्रार्थना करूँगा और इस समय आपको ये शब्द दोहराने हैं, "हे सेनापति, आपके राजा बीमार नहीं हैं, बल्कि वे आपकी पत्नी उम्मदंती पर मोहित हैं। यदि वे उसे प्राप्त कर लें, तो वे जीवित रहेंगे; अन्यथा वह मर जाएगा। यदि आप उसे जीवित रखना चाहते हैं, तो उसे उम्मदन्ती अर्पित कर दीजिए। आपको यही कहना है। इस प्रकार उसे समझाकर उसने उसे विदा कर दिया। अतः सेवक अगले दिन गया और वृक्ष के भीतर बैठ गया। जब सेनापति वहाँ आया और प्रार्थना करने लगा, तो उसने उसे अपना पाठ दोहराया। सेनापति ने कहा, "यह अच्छा है," और देवता को प्रणाम करते हुए वह राजा के मंत्रियों को बताने गया, और नगर में प्रवेश करके वह महल पर चढ़ गया और राजकक्ष के द्वार पर दस्तक दी। राजा ने होश में आकर पूछा कि कौन है। "मैं हूँ, अहिपरक, महाराज।" तब उसने राजा का द्वार खोला और अंदर जाकर राजा को प्रणाम किया और एक श्लोक दोहराया:

हे राजा, पवित्र मंदिर में घुटने टेकते हुए,
एक यक्ष (राक्षस) आया और उसने मुझे एक अजीब बात बताई।
उम्मदंती ने आपकी इच्छाशक्ति को किस प्रकार गुलाम बना लिया था:
उसे अपने साथ ले जाओ और इस तरह तुम्हारे दिल की इच्छा पूरी हो जाएगी।
तब राजा ने पूछा, "मित्र अहिपरक, क्या यक्ष भी जानते हैं कि मैं उम्मदंती के प्रति अपने मोह में मूर्खतापूर्ण बातें कर रहा हूँ?" "जी, महाराज," उसने कहा। राजा ने सोचा, "मेरी नीचता पूरी दुनिया में फैल गई है," और उसे शर्म महसूस हुई। और सत्य की राह पर चलते हुए उसने एक और श्लोक कहा:

मैं अपनी कृपा से विमुख हो गया हूँ, मुझे कोई देवत्व प्राप्त नहीं होगा।
और सारी दुनिया मेरे इस बड़े पाप के बारे में सुनेगी:
यह भी सोचो कि तुम्हारा मानसिक दुःख कितना गहरा होगा।
यदि आप अपने उम्मादंती को और नहीं देख पाते हैं
शेष छंदों को दोनों बारी-बारी से दोहराते हैं।

हे राजा, आपके और मेरे सिवा, कोई नहीं।
पूरी दुनिया को पता चल जाएगा कि क्या हुआ है:
देखो! उम्मदंती मेरी ओर से तुम्हारे लिए उपहार है।
तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई, उसे मेरे पास वापस भेज दो।
पापी सोचता है, "कोई भी नश्वर मनुष्य ऐसा नहीं हुआ है।"
मुझे लगता है, वह मेरे गुनाह का गवाह है।
फिर भी, वह जो कुछ भी करेगा, वह सब उसकी नजरों के दायरे में आएगा।
प्रेतात्माओं और पवित्र पुरुषों के बारे में।
इस दुनिया में, मान लीजिए आप कहें,
"मैंने उससे प्यार नहीं किया," क्या कोई इसकी कीमत चुकाएगा?
यह भी सोचो कि तुम्हारा मानसिक दुःख कितना गहरा होगा।
यदि आप अपने उम्मादंती को और नहीं देख पाते हैं

हे महान राजा, वह मेरे लिए जीवन के समान प्रिय थी।
वास्तव में एक बेहद प्रिय पत्नी;
फिर भी, श्रीमान, सीधे उम्मादंती के पास जाएँ,
ठीक वैसे ही जैसे शेर अपनी पथरीली मांद में जाता है।
लेकिन स्वयं के कष्टों से व्याकुल होकर,
वह शायद ही कभी ऐसा कोई कार्य करेगा जिससे उसे पूर्ण समर्पण के साथ आनंद प्राप्त हो।
आनंद में डूबा हुआ मूर्ख भी
मैं कभी भी इस तरह का पाप नहीं करूंगा।
हे राजा, आप मेरे लिए पिता समान हैं।
पति और स्वामी, हाँ, आप ही मेरे लिए ईश्वर (देवदूत) हैं।
मेरी पत्नी और बच्चा तुम्हारी दासियाँ हैं, और मैं तुम्हारा बंदी हूँ।
हे सिवी, हम सबके साथ अपनी इच्छा पूरी करो।
जो कोई अपने पड़ोसी के साथ अन्याय करे और पश्चाताप न करे,
यह कहते हुए, "यहाँ एक सर्वशक्तिमान स्वामी को देखो,"
वह अपने जीवन के आधे दिन भी जी नहीं पाएगा।
और देवता (देवदूत) उसके आचरण की आलोचना करेंगे।
क्या धर्मी पुरुषों को उपहार के रूप में कोई वस्तु स्वीकार करनी चाहिए?
हे राजा, दूसरों द्वारा स्वेच्छा से दिया गया।
प्राप्त करने वाले और देने वाले दोनों ने ही यह किया है।
ऐसा कर्म जिससे आनंद का फल प्राप्त होता है।
इस दुनिया में, मान लीजिए आप कहें,
क्या इस बात पर विश्वास करना सही होगा कि "मैं उससे प्यार नहीं करता?"
यह भी सोचो कि तुम्हारा मानसिक दुःख कितना गहरा होगा।
यदि आप अपने उम्मादंती को और नहीं देख पाते हैं
हे महान राजा, वह मेरे लिए जीवन के समान प्रिय थी।
वास्तव में एक बेहद प्रिय पत्नी;
देखो! उम्मदंती मेरी ओर से तुम्हारे लिए उपहार है।
तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई, उसे मेरे पास वापस भेज दो।
जो दूसरों के कष्टों की कीमत पर स्वयं को पीड़ा से मुक्त करता है,
दूसरों की खुशी छिन जाने पर भी प्रसन्न रहना,
वह नहीं, बल्कि वह जो दूसरे के दुख को महसूस करता है
क्योंकि यह उसका अपना था, इसलिए सच्ची धार्मिकता इसे जान सकती है।
हे महान राजा, वह मेरे लिए जीवन के समान प्रिय थी।
वास्तव में एक बेहद प्रिय पत्नी।
मैं वही देता हूँ जिसे मैं सबसे अधिक महत्व देता हूँ, व्यर्थ में नहीं देता।
जो लोग इस प्रकार देते हैं, उन्हें उतना ही वापस मिलता है।
मैं शारीरिक वासना के कारण स्वयं को नष्ट कर सकता हूँ।
लेकिन मैं कभी भी गलत तरीके से सही को नष्ट करने का साहस नहीं करूंगा।
हे महान राजकुमार, क्या आपको अपने प्रेम का त्याग करना चाहिए?
क्योंकि वह मेरी पत्नी है, इसलिए मैं यह कहता हूँ।
अब से वह तलाकशुदा है और सभी के लिए स्वतंत्र है।
आपका गुलाम, जो आपके हर इशारे पर काम करेगा।
यदि आप, मेरे श्रेष्ठ, अपने ही नुकसान के लिए,
तुम्हें अपनी पत्नी को त्याग देना चाहिए, भले ही वह निर्दोष हो।
मुझे लगता है कि आपको भारी दोष स्वीकार करना पड़ेगा।
और कभी कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बारे में अच्छी बातें नहीं कहता।
हे मेरे राजा, इन सभी दोषों के साथ, मैं दूर जा सकता था।
चाहे आलोचना हो, प्रशंसा हो, या जो भी हो,

सिवी, जो भी होना है, होने दो।
पहले अपनी इच्छा पूरी करो।
जो सम्मान या निंदा करता है, वह ध्यान नहीं देता।
क्योंकि प्रशंसा हो या आलोचना, उसे जरा भी परवाह नहीं होती--
उसी से यश और सौभाग्य दूर हो जाएंगे।
जैसे-जैसे बाढ़ का पानी कम होता है, जमीन सूखी और ऊँची रह जाती है।
इससे चाहे सुख हो या दुख, जो भी उत्पन्न हो,
अधिकार की सीमा पार करना, या दिल को इतना दुख पहुंचाना,
चाहे खुशी हो या दुख, मैं उसका स्वागत करूंगा।
पृथ्वी अच्छे और बुरे, दोनों तरह के कष्टों को सहन करती है।
मैं एक और कष्ट नहीं सहना चाहता।
किसी ऐसे गलत काम से जिससे उसका हृदय पीड़ा से भर जाए,
मैं अपने दुखों का बोझ अकेले ही उठाऊंगा।
सत्य के मार्ग पर चलने वाला, किसी की शांति भंग न करने वाला।
पुण्य कर्म स्वर्ग की ओर ले जाता है,
आप ऐसे कार्य में बाधा न बनें;
मैं उम्मादंती एक निशुल्क भेंट भेजता हूँ,
ब्राह्मण पुरोहितों पर राजा बहुत धन खर्च करते थे।
आपने मुझ पर सचमुच बहुत दया दिखाई है।
आपकी पत्नी और आप दोनों मेरे दोस्त हैं, मैं मालिक हूँ।
ब्राह्मण और देवता (देवदूत) दोनों ही मुझे बहुत दोषी ठहराएंगे।
और मुझ पर सदा के लिए अभिशाप बना रहेगा।
मुझे विश्वास है कि इस मामले में शहर और गांव के लोग सहमत होंगे।
हे सिवी राजा, मैं तुम्हें कभी अन्यायपूर्ण नहीं कहूँगा।
क्योंकि उम्मदंती मेरी ओर से आपको उपहार है,
तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई, उसे मेरे पास वापस भेज दो।
आपने मुझ पर सचमुच बहुत दया दिखाई है।
आप और आपकी पत्नी दोनों मेरे दोस्त हैं, मैं मालिक हूँ।
नेक लोगों के सही कार्यों की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है।
सही का उल्लंघन करना कठिन है, जैसे सागर की लहरें।
आदरणीय गुरुजी, देने के लिए प्रतीक्षारत
मेरी हर इच्छा पूरी हो, हे मेरे सदा के समर्थक, तुम।
मैं तुम्हें जो कुछ भी दूं, उसका सात गुना चुकाना;
उम्मदंती को ले लो; वह मेरी ओर से मुफ्त उपहार है।
मेरा श्रेष्ठ, अहिपरका, सच में,
तुमने बचपन से ही सही राह का अनुसरण किया है;
मैं निवेदन करता हूँ कि जीवित पुरुषों में से और कौन ऐसा करेगा जो...
क्या सुबह और शाम दोनों ने मिलकर मेरी भलाई के लिए कड़ी मेहनत की है?
हे महान राजकुमार, आपकी ख्याति असाधारण है।
बुद्धिमान, सही को जानने वाला और उसी मार्ग पर चलने वाला।
न्याय की रक्षा से परिपूर्ण, हे राजा, आपकी दीर्घायु हो।
और, हे धर्म के स्वामी, मुझे अधर्म से दूर रहना सिखाओ।
आओ, सुनो, अहिपरका, मेरी ये बातें और फिर
मैं तुम्हें अच्छे लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले धार्मिकता के मार्ग सिखाऊंगा।
जो राजा कानून का पालन करने में आनंद लेता है, वह धन्य है।
और सभी पुरुषों में विद्वान व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ होता है।
किसी मित्र को धोखा न देना अच्छी बात है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।
लेकिन जिस बुराई से बचा जा सके, वही परम आनंद है।

धर्मात्मा राजा के सौम्य प्रभाव में,
जैसे धूप से बचाव के लिए छाया प्रदान करना,
उनकी सभी प्रजा शांति से निवास करे।
अपनी संपत्ति में हुई वृद्धि पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए।
कोई भी बुरा कर्म मेरी स्वीकृति प्राप्त नहीं कर पाएगा।
लेकिन फिर भी यह एक पाप ही है:
लेकिन ज्ञान के विरुद्ध किए गए ऐसे पाप से मुझे घृणा है;
मेरी कहानी ध्यान से सुनो; इसे समझो और आत्मसात करो।
बाढ़ के बीच से बैल टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाएगा।
गायों का पूरा झुंड उसके पीछे-पीछे चल रहा था।
इसलिए यदि कोई नेता कठिन रास्तों का अनुसरण करता है,
वह इस अशिष्ट समूह को नीच उद्देश्यों की ओर ले जाएगा।
और संपूर्ण राज्य उस तरह के पछतावे के युग में डूबा हुआ है।
लेकिन यदि बैल सीधे मार्ग पर चलने लगे,
गायों का झुंड सीधे उसके पीछे-पीछे चलता है।
इसलिए उनका मुख्य उद्देश्य सही मार्ग अपनाना होना चाहिए।
आम जनता अन्याय से बच जाएगी।
और पूरे राज्य में पवित्र शांति का प्रसार होगा।
मैं अन्यायपूर्ण कार्य करके स्वर्ग को भी प्राप्त नहीं करना चाहता।
नहीं, ऐसा नहीं होगा, अहिपारका, भले ही मुझे पूरी दुनिया मिल जाए।
मनुष्यों के बीच जो भी मूल्यवान वस्तुएँ अच्छी मानी जाती हैं,
बैल, गुलाम, सोना, वस्त्र और चंदन।
युवा घोड़ियां, समृद्ध खजाना, चमकीले रत्न
और सूर्य और चंद्रमा दिन-रात सबकी रक्षा करते हैं,
मैं इन सब के लिए अन्याय नहीं करूंगा।
मैं सिविस में जन्मा एक सच्चा नेता हूँ।
हमारे देश के पिता, मुखिया और संरक्षक
इसके अधिकारों के रक्षक के रूप में मैं अपना रुख अपनाता हूं।
इसलिए मैं धार्मिक इरादे से शासन करूंगा।
मैं अपनी इच्छा के आगे और अधीन नहीं रहूंगा।
हे महान राजा, आपका शासन शुभ हो, आपकी दीर्घायु हो।
राज्य को सुखद भाग्य और अपनी मजबूत बुद्धिमत्ता के साथ मार्गदर्शन प्रदान करें।
हे राजा, आपने न्याय के प्रति जो उत्साह दिखाया है, उससे हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई है।
बलवान राजकुमारों ने न्याय का उल्लंघन करते हुए, पहले भी अपना ताज खोया है।
हे योद्धा राजा, अपने प्रिय माता-पिता के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इस प्रकार
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे योद्धा राजा, अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इस प्रकार
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे योद्धा राजा, अपने मित्रों और दरबारियों के प्रति न्यायसंगत व्यवहार करो; और इस प्रकार
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
युद्ध और यात्रा में, हे योद्धा राजा, न्यायसंगत आचरण करो; और इसलिए
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे योद्धा राजा, नगर और गाँव में न्यायपूर्वक आचरण करो; और ऐसा ही हो।
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे राजा, प्रत्येक देश और राज्य में न्यायपूर्वक आचरण करो; और इस प्रकार
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
सभी ब्राह्मणों और तपस्वियों के साथ धार्मिक व्यवहार करो; और ऐसा ही हो।
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।

हे योद्धा राजा, पशुओं और पक्षियों के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करो; और इसलिए
हे महाराज, आप धर्मी मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे योद्धा राजा, धार्मिक आचरण करो; इसी से समस्त आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।
हे महाराज, आप धर्मपरायण मार्ग का अनुसरण करके स्वर्ग की ओर अग्रसर होंगे।
हे राजा, सतर्कतापूर्वक अच्छाई के मार्ग पर चलो।
ब्राह्मणों, इंद्र और देवताओं (देवदूतों) ने अपनी देवत्व प्राप्ति कर ली है।
जब राजा को उसके सेनापति अहिपरका द्वारा कानून की शिक्षा दी गई, तो उसने उम्मदंती के प्रति अपने मोह से मुक्ति पा ली।

गुरु (बुद्ध) ने अपना उपदेश समाप्त करते हुए सत्य का प्रकटीकरण किया और जन्म का वर्णन किया। सत्यों के अंत में, भिक्षु प्रथम मार्ग (सम्मोहन) में स्थापित हुए। उस समय आनंद सारथी सुनंदा थे, सारिपुत्र अहिपरक थे, उप्पलावन्ना उमदंती थे, बुद्ध के अनुयायी शेष दरबारी थे, और मैं स्वयं राजा शिवी था।

फुटनोट:

(1) अववता, अर्थात् अव्यवृत्त, विवाह में चयनित नहीं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महाबोधि-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-528-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 528
महाबोधि-जातक। (*1)

“इन बातों का क्या अर्थ है?” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में निवास करते हुए प्रज्ञापारमिता के विषय में सुनाई थी। इस घटना का वर्णन महाउम्मग्ग (*2) में मिलता है। इस अवसर पर गुरु ने कहा, “केवल आज ही नहीं, बल्कि पहले भी तथागत (बुद्ध) ज्ञानवान थे और उन्होंने सभी विवाद करने वालों को कुचल दिया था।” इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

ब्रह्मदत्त के शासनकाल में, काशी राज्य के बनारस में, बोधिसत्व का जन्म हुआ। उनका परिवार उत्तरी ब्राह्मणों का था, जिनकी संपत्ति अस्सी करोड़ (10 मिलियन) थी। उनका नाम बालक बोधि रखा गया। जब वे वयस्क हुए, तो उन्होंने तक्षशिला में सर्वोपयोगी शिक्षा प्राप्त की और घर लौटकर गृहस्थी के कार्यों में लीन हो गए। कुछ समय बाद, उन्होंने बुरी इच्छाओं का त्याग कर हिमालय क्षेत्र में शरण ली और एक घुमंतू भिक्षु का जीवन व्यतीत किया। वे वहाँ लंबे समय तक जंगली बेर और जड़-जड़ी-बूटियाँ खाकर जीवन यापन करते रहे। वर्षा ऋतु में वे हिमालय से नीचे उतरे और भिक्षा माँगते हुए धीरे-धीरे बनारस पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजमहल के प्रांगण में अपना निवास स्थान बनाया और अगले दिन भिक्षा माँगते हुए भिक्षु के वेश में राजमहल के द्वार के पास पहुँचे। राजा ने खिड़की पर खड़े होकर उन्हें देखा और उनके शांत स्वभाव से प्रसन्न होकर उन्हें अपने महल में आमंत्रित किया और राजमहल पर बैठाया। कुछ देर सौहार्दपूर्ण बातचीत के बाद, राजा ने धर्म की व्याख्या सुनी और फिर उन्हें विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे। महानुभाव ने भोजन ग्रहण किया और मन ही मन सोचा, "सचमुच इस राजा का दरबार घृणा से भरा है और शत्रुओं की भरमार है। हे भगवान, मुझे इस भय से कौन मुक्ति दिलाएगा जो मेरे मन में उठ खड़ा हुआ है?" राजा के प्रिय भूरे रंग के कुत्ते को अपने पास खड़ा देखकर, उन्होंने भोजन का एक टुकड़ा उठाया और उसे कुत्ते को देने का नाटक किया। राजा को यह भलीभांति पता चल गया और उन्होंने कुत्ते का बर्तन मंगवाया और उनसे कहा कि वे भोजन कुत्ते को दे दें। महानुभाव ने ऐसा ही किया और फिर अपना भोजन समाप्त किया। राजा ने उनकी सहमति प्राप्त कर ली और शहर के भीतर राजमहल में उनके लिए पत्तों की एक कुटिया बनवाई, और उन्हें एक तपस्वी की सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हुए, उन्हें वहाँ रहने दिया। राजा प्रतिदिन दो या तीन बार उनसे मिलने आते थे। भोजन के समय महानुभाव राजमहल पर बैठते और राजमहल का भोजन ग्रहण करते रहते थे। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए। अब राजा के पाँच सलाहकार थे जो उन्हें सांसारिक और आध्यात्मिक कर्तव्यों का ज्ञान देते थे। उनमें से एक कर्म के अस्तित्व को नकारता था। दूसरा मानता था कि सब कुछ एक परम सत्ता का कार्य है।

तीसरा पूर्व कर्मों का उपदेश देता था। चौथा मृत्यु के बाद विनाश में विश्वास रखता था। पाँचवाँ क्षत्रिय दर्शन का अनुयायी था। कर्म के अस्तित्व को नकारने वाला व्यक्ति लोगों को सिखाता था कि इस संसार में प्राणी पुनर्जन्म द्वारा शुद्ध होते हैं। परम सत्ता के कार्य में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सिखाता था कि संसार उसी ने सृजित किया है। पूर्व कर्मों के फल में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सिखाता था कि मनुष्य को इस संसार में जो भी दुख या सुख प्राप्त होता है, वह किसी पूर्व कर्म का परिणाम है। विनाश में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सिखाता था कि कोई भी इस संसार से दूसरे लोक में नहीं जाता, बल्कि यह संसार ही नष्ट हो जाता है। क्षत्रिय दर्शन का अनुयायी सिखाता था कि अपने हित की पूर्ति के लिए माता-पिता की हत्या भी करनी पड़े तो भी उचित है।इन लोगों को राजा के दरबार में न्याय करने के लिए नियुक्त किया गया था, और रिश्वत के लालच में उन्होंने संपत्ति के असली मालिक को बेदखल कर दिया। एक दिन एक व्यक्ति, झूठे मुकदमे में हारने के बाद, परमेश्वर को महल में भिक्षा मांगते हुए देखा, और उसने उन्हें प्रणाम किया और अपना दुख उनके कानों में सुनाते हुए कहा, "हे परम पूज्य, आप जो राजा के महल में भोजन करते हैं, उन न्यायाधीशों के कार्यों को क्यों अनदेखा करते हैं जो रिश्वत लेकर सभी मनुष्यों को बर्बाद कर देते हैं? अभी-अभी इन पांच सलाहकारों ने झूठे मुकदमे में शामिल एक व्यक्ति से रिश्वत लेकर मुझे मेरी संपत्ति से गलत तरीके से वंचित कर दिया है।" तब परमेश्वर को उस पर दया आई और वे दरबार में गए, और न्यायपूर्ण निर्णय देते हुए उसे उसकी संपत्ति वापस दिला दी। लोगों ने एकमत होकर उनके इस कार्य की सराहना की। शोर सुनकर राजा ने पूछा कि इसका क्या अर्थ है। जब राजा ने भोजन समाप्त कर लिया, तो वह उनके पास बैठ गया और पूछा, "हे पूज्यवर, क्या यह सच है कि आपने किसी मुकदमे का फैसला किया है?" राजा ने कहा, "जीव जी, यह सच है। जनता के हित में होगा यदि आप मामलों का फैसला करें: अब से आप न्याय करेंगे।" राजा ने उत्तर दिया, "महाराज, हम तपस्वी हैं; यह हमारा काम नहीं है।" राजा ने कहा, "जी, जनता पर दया करके आप ऐसा करें। आपको पूरा दिन न्याय करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जब आप उद्यान से यहाँ आएँ, तो सुबह तड़के न्याय स्थल पर जाकर चार मामलों का फैसला करें; फिर उद्यान लौटकर भोजन करने के बाद चार और मामलों का फैसला करें, इस प्रकार जनता को लाभ होगा।" बार-बार विनती करने पर राजा मान गया और अब से वह इसी के अनुसार कार्य करने लगा। धोखाधड़ी करने वालों को आगे कोई अवसर नहीं मिला, और रिश्वत न मिलने से सलाहकारों की हालत खराब हो गई और वे सोचने लगे, "जब से इस भिक्षु बोधि ने न्याय करना शुरू किया है, हमें कुछ भी नहीं मिल रहा है।" और उन्हें राजा का शत्रु बताते हुए उन्होंने कहा, "चलो, हम राजा के सामने उनकी निंदा करें और उनकी मृत्यु करवा दें।" राजा के पास आकर उन्होंने कहा, "महाराज, भिक्षु बोधि आपका बुरा चाहते हैं।" राजा ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया और कहा, "नहीं, वह एक अच्छे और विद्वान व्यक्ति हैं; वह ऐसा नहीं करेंगे।" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, सभी नागरिक उनके गुलाम हैं: हम पाँच ही ऐसे लोग हैं जिन्हें वह अपने वश में नहीं कर सकते। यदि आप हमारी बात पर विश्वास नहीं करते हैं, तो अगली बार जब वह यहाँ आएँ, तो उनके अनुयायियों पर ध्यान दें।" राजा मान गए, और अपनी खिड़की पर खड़े होकर उनके आने का इंतजार करने लगे, और बोधि के पीछे बिना उनकी जानकारी के आए हुए लोगों की भीड़ को देखकर, राजा ने सोचा कि वे उनके सेवक हैं, और उनके प्रति पूर्वाग्रह रखते हुए उन्होंने अपने सलाहकारों को बुलाया और पूछा, "हम क्या करें?"
“महाराज,” उन्होंने कहा। “जब तक हमें उसकी ओर से कोई गंभीर अपराध न दिख जाए,” उन्होंने कहा।“हम उसे कैसे गिरफ्तार करें?”
“तो फिर उसका सम्मान कम कर दो, और जब वह देखेगा कि उसका सम्मान कम हो रहा है, तो एक बुद्धिमान भिक्षु होने के नाते वह बिना किसी से कुछ कहे स्वयं ही भाग जाएगा।” राजा को यह सुझाव पसंद आया और उसने धीरे-धीरे अपना सम्मान कम कर दिया। इसके अगले दिन उसे एक साधारण पलंग पर बैठाया गया। उसने यह देखा और तुरंत समझ गया कि राजा के सामने उसकी निंदा की गई है। वह उद्यान लौटकर उसी दिन वहाँ से जाने का मन बना रहा था, लेकिन उसने सोचा, “जब मुझे पक्का पता चल जाएगा, तभी मैं जाऊँगा,” और वह नहीं गया। इसलिए अगले दिन जब वह साधारण पलंग पर बैठा था, तो वे राजा के लिए तैयार किया गया भोजन और अन्य भोजन भी लेकर आए और उसे दोनों का मिश्रण दिया। तीसरे दिन उसे मंच के पास नहीं जाने दिया गया, बल्कि उसे सीढ़ियों के शीर्ष पर बैठाकर उसे मिश्रित भोजन दिया गया। उसने उसे ग्रहण किया और उद्यान में जाकर वहीं भोजन किया। चौथे दिन उन्होंने उसे नीचे चबूतरे पर लिटाया और चावल के चूर्ण से बना शोरबा पिलाया। वह उसे भी लेकर पार्क में गया और वहीं भोजन किया। राजा ने कहा, “यद्यपि उसका सम्मान कम हो गया है, फिर भी महान बोधि भिक्षु जा नहीं रहा है। हम क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, वह यहाँ भिक्षा मांगने नहीं आया है; बल्कि शासन करने की शक्ति चाहता है। यदि वह केवल भिक्षा मांगने आया होता, तो अपमानित होते ही पहले दिन भाग जाता।” राजा ने फिर कहा, “तो फिर हम क्या करें?” राजा ने कहा, “महाराज, कल उसे मरवा दीजिए।” राजा ने कहा, “ठीक है,” और उन्हीं आदमियों के हाथों में तलवारें थमाते हुए कहा, “कल जब वह आए और द्वार के अंदर खड़ा हो, तो उसका सिर काट देना और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना, और बिना किसी को कुछ कहे उसके शरीर को गोबर के ढेर पर फेंक देना, फिर स्नान करके यहाँ वापस आ जाना।”भिक्षु जा नहीं रहा है। हम क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, वह भिक्षा मांगने नहीं आया है; बल्कि शासन करने की शक्ति चाहता है। यदि वह केवल भिक्षा के लिए आया होता, तो अपमान होते ही पहले दिन भाग जाता।” “तो फिर हम क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, कल उसे मरवा दीजिए।” उन्होंने कहा, “ठीक है,” और उन्हीं आदमियों के हाथों में तलवारें थमाते हुए कहा, “कल जब वह आए और द्वार के अंदर खड़ा हो, तो उसका सिर काट देना और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना, और बिना किसी को कुछ कहे उसके शरीर को गोबर के ढेर पर फेंक देना, फिर स्नान करके यहाँ वापस आ जाना।”भिक्षु जा नहीं रहा है। हम क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, वह भिक्षा मांगने नहीं आया है; बल्कि शासन करने की शक्ति चाहता है। यदि वह केवल भिक्षा के लिए आया होता, तो अपमान होते ही पहले दिन भाग जाता।” “तो फिर हम क्या करें?” उन्होंने कहा, “महाराज, कल उसे मरवा दीजिए।” उन्होंने कहा, “ठीक है,” और उन्हीं आदमियों के हाथों में तलवारें थमाते हुए कहा, “कल जब वह आए और द्वार के अंदर खड़ा हो, तो उसका सिर काट देना

और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना, और बिना किसी को कुछ कहे उसके शरीर को गोबर के ढेर पर फेंक देना, फिर स्नान करके यहाँ वापस आ जाना।"

वे तुरंत सहमत हो गए और बोले, "कल हम आकर ऐसा करेंगे," और आपस में बातचीत करके वे अपने-अपने घर चले गए। राजा भी भोजन के बाद राजसी पलंग पर लेट गए और ईश्वर के गुणों का स्मरण करने लगे। तभी अचानक उन पर दुःख छा गया और उनके शरीर से पसीना बहने लगा। पलंग पर आराम न मिलने पर वे करवटें बदलते रहे। उनकी मुख्य रानी उनके बगल में लेटी थीं, लेकिन उन्होंने उनसे एक शब्द भी नहीं कहा।

तब उसने उससे पूछा, "महाराज, आप मुझसे एक शब्द भी क्यों नहीं कहते? क्या मैंने आपको किसी तरह से नाराज किया है?" "नहीं, देवी," उसने कहा, "परन्तु लोग कहते हैं कि भिक्षु बोधि हमारे शत्रु बन गए हैं। मैंने अपने पाँच सलाहकारों को कल उन्हें मारने का आदेश दिया है। मारने के बाद वे उनके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे और उनके शरीर को कूड़े के ढेर पर फेंक देंगे। परन्तु बारह वर्षों से उन्होंने हमें अनेक सत्य सिखाए हैं। मुझे उनसे पहले कभी कोई दोष नहीं दिखाई दिया, परन्तु दूसरों के उकसावे पर मैंने उन्हें मृत्युदंड देने का आदेश दिया है, और इसीलिए मैं दुखी हूँ।" तब उसने उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "महाराज, यदि वे आपके शत्रु हैं, तो उन्हें मारने पर आप दुखी क्यों हैं? आपकी अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना आवश्यक है, चाहे आप अपने पुत्र को ही क्यों न मारें। इसे दिल पर मत लीजिए।" उसके शब्दों से उन्हें तसल्ली मिली और वे सो गए। उस क्षण, अच्छी नस्ल के भूरे रंग के शिकारी कुत्ते ने बातें सुनकर सोचा, "कल मुझे अपनी शक्ति से इस आदमी की जान बचानी होगी।" अतः अगली सुबह सवेरे वह कुत्ता छत से नीचे उतरा और बड़े द्वार पर आकर दहलीज पर सिर रखकर लेट गया, उस रास्ते को देखता रहा जिससे वह महान व्यक्ति आ रहा था। परन्तु तलवार लिए वे सलाहकार सुबह जल्दी आ गए और द्वार के भीतर खड़े हो गए। बोधि समय देखकर पार्क से महल के द्वार के पास पहुँचे। तब कुत्ते ने उन्हें देखकर अपना मुँह खोला और अपने चारों बड़े दाँत दिखाते हुए सोचा, "हे परम पूज्य, आप भारत में कहीं और भिक्षा क्यों नहीं माँगते? हमारे राजा ने आपको मारने के लिए पाँच तलवारों से लैस सलाहकारों को द्वार के भीतर तैनात किया है। मृत्यु को अपना भाग्य मानकर मत आइए (*4), बल्कि शीघ्रता से यहाँ से चले जाइए," और उसने ज़ोर से भौंका। सभी ध्वनियों के अर्थ के ज्ञान से बोधि बात समझ गए और पार्क लौटकर अपनी यात्रा के लिए आवश्यक सभी सामान ले आए। लेकिन जब राजा ने अपनी खिड़की पर खड़े होकर देखा कि वह नहीं आ रहा है, तो उसने सोचा, "अगर यह आदमी मेरा दुश्मन है, तो वह पार्क में लौटकर अपनी सारी सेना इकट्ठा कर लेगा और युद्ध के लिए तैयार हो जाएगा, लेकिन अगर ऐसा नहीं है, तो वह निश्चित रूप से अपनी ज़रूरत का सारा सामान लेकर जाने के लिए तैयार हो जाएगा। मैं पता लगाऊंगा कि वह क्या कर रहा है।" और पार्क जाकर उसने उस महान व्यक्ति को अपने पत्तों की झोपड़ी से बाहर आते हुए और अपने बाड़े के अंत में अपनी सभी ज़रूरतों के साथ, जाने के लिए तैयार पाया, और उसे प्रणाम करते हुए वह एक तरफ खड़ा हो गया और पहला श्लोक बोला:

इन चीजों का क्या मतलब है, छाता, जूते, चमड़े का लबादा और हाथ में लाठी?
इस लबादे, कटोरे और हुक का क्या? मैं खुशी से समझ लूंगा।
आप इतनी जल्दबाजी में क्यों प्रस्थान करना चाहते हैं और किस दूर देश में जा रहे हैं?
यह सुनकर उस महान प्राणी ने सोचा, "मुझे लगता है कि उसे समझ नहीं आया कि उसने क्या किया है। मैं उसे बता दूंगा।" और उसने दो श्लोक दोहराए:

हे राजा, इन बारह लंबे वर्षों तक मैंने आपके राजमहल में ही अपना जीवन व्यतीत किया है;
और आज से पहले इस कुत्ते को कभी भौंकते हुए नहीं देखा गया था।
आज वह अपने दांत इतने सफेद दिखा रहा है, अब वह अडिग और गर्वित है।
और आपने रानी को जो कुछ कहा, मुझे चेतावनी देने के लिए, वह बात स्पष्ट रूप से कहती है।
तब राजा ने अपने पाप को स्वीकार किया और क्षमा मांगते हुए चौथे श्लोक को दोहराया:

पाप मेरा था: हे पवित्र महोदय, मेरा उद्देश्य आपको मारना था;
लेकिन अब मैं एक बार फिर आपका पक्ष लेता हूँ, और खुशी-खुशी चाहता हूँ कि आप यहीं रहें।
यह सुनकर उस महान प्राणी ने कहा, "सचमुच, महाराज, बुद्धिमान लोग ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं रहते जो किसी चीज को अपनी आँखों से देखे बिना दूसरों का अनुसरण करता है," और ऐसा कहकर उन्होंने उसके दुराचार को उजागर किया और इस प्रकार कहा:

मेरा पुराना भोजन शुद्ध और सफेद होता था, उसके बाद उसमें रंग मिलाना शुरू हुआ।
अब यह पूरी तरह से भूरा हो चुका है। अब मेरे जाने का समय आ गया है।
पहले मंच पर, फिर ऊपर और अंत में नीचे मैं भोजन करता हूँ;
इससे पहले कि मुझे गर्दन और बालों से पकड़कर बाहर धकेल दिया जाए, मैं अपना स्थान छोड़ दूंगा।

विश्वासघाती मित्र से मत पछताओ: वह सूखे कुएँ के समान है।
चाहे कितनी भी गहराई तक खुदाई कर ली जाए, धारा मैली ही रहेगी।
एक सच्चे मित्र से अवश्य संबंध बनाओ, एक विश्वासघाती मित्र से दूर रहो।
जैसे कोई प्यासा व्यक्ति तालाब की ओर दौड़ता है, वैसे ही एक वफादार दोस्त उसका पीछा करता है।
जो मित्र आपसे प्रेम करता है, उससे जुड़े रहो, उसका प्रेम तुम्हें प्रेम से लौटाएगा;
जो व्यक्ति अपने वफादार मित्र को त्याग देता है, उसे ही सबसे दयनीय प्राणी माना जाता है।
जो अपने सच्चे मित्र को छोड़कर नहीं जाता, प्रेम का प्रतिफल प्रेम से नहीं मिलता।
वह सबसे नीच मनुष्य है, और बंदरों की जाति भी उससे श्रेष्ठ नहीं है।
बहुत बार मिलना उतना ही बुरा है जितना कि बिल्कुल न मिलना;
किसी वरदान की अपेक्षा बहुत जल्दी कर लेना—यह भी प्रेम को फीका कर देता है।
किसी मित्र से मिलने जाएं, लेकिन बहुत बार नहीं, और न ही अपने प्रवास की अवधि बढ़ाएं;
सही समय पर ही कृपा की भीख मांगनी चाहिए: इसलिए प्रेम कभी क्षीण नहीं होता।
जो लोग बहुत लंबे समय तक एक ही जगह पर रहते हैं, उन्हें अक्सर यह पता चलता है कि उनका दोस्त दुश्मन में बदल गया है;
इसलिए, आपकी दोस्ती खोने से पहले मैं आपसे विदा लेता हूँ और चला जाता हूँ।
राजा ने कहा:

यद्यपि मैं हाथ जोड़कर आपसे विनती करता हूँ, आप मेरी ओर ध्यान नहीं देते।
आपके पास हमारे लिए कोई शब्द नहीं है, जिनके लिए आपकी सेवा अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।
मेरी आपसे एक ही गुजारिश है: दोबारा आइए और यहां जरूर आइए।
बोधिसत्व ने कहा:

हे राजा, यदि कुछ भी हमारे जीवन को समाप्त करने के लिए नहीं आता, यदि आप और मैं
हे अपने राज्य के पालनहार, अब भी जीवित रहो, शायद मैं यहाँ आकर उड़ जाऊँगा।
और दिन-रात बीतने के साथ-साथ शायद हम फिर से एक-दूसरे से मिलें।
इस प्रकार महान पुरुष ने राजा से कहा और सत्य का उपदेश देते हुए कहा, "हे महाराज, सावधान रहें।" और अपने क्षेत्र में भिक्षा मांगने के बाद, वे बनारस से निकलकर धीरे-धीरे हिमालय में एक स्थान पर पहुँचे, और कुछ समय वहाँ रहने के बाद, वे पहाड़ियों से नीचे उतरकर सीमावर्ती गाँव के पास एक जंगल में बस गए। उनके जाते ही, वे सलाहकार एक बार फिर न्याय करने बैठ गए, लोगों को लूटने लगे, और सोचने लगे, "यदि महान बोधि, भिक्षु, लौट आए, तो हमारी आजीविका छिन जाएगी। हम उन्हें वापस आने से रोकने के लिए क्या करें?" तब उन्हें यह विचार आया: "ऐसे लोग किसी भी वस्तु को नहीं छोड़ सकते जिससे वे आसक्त हों। यहाँ वह कौन सी वस्तु हो सकती है जिससे वे आसक्त हों?" तब उन्हें यकीन हो गया कि यह राजा की मुख्य पत्नी ही होगी, और उन्होंने सोचा, "यही कारण है कि वह यहाँ लौटेंगे। हम उनसे पहले ही (*5) मिलकर उसे मार डालेंगे।" और उन्होंने राजा से यही बात दोहराई, "महाराज, आज शहर में एक अफवाह फैली हुई है।" "क्या खबर है?" उसने कहा। "महान भिक्षु बोधि और रानी एक-दूसरे को संदेश भेजते हैं।" "किन वस्तुओं के साथ?" कहते हैं, राजा ने रानी को यह संदेश दिया, “क्या तुम अपनी शक्ति से राजा को मृत्युदंड दे सकती हो और मुझे सफेद छत्र प्रदान कर सकती हो?” रानी ने राजा को यह संदेश दिया, “राजा की मृत्यु का दायित्व सचमुच मेरा है: तुम्हें शीघ्र आना होगा।” उन्होंने यह बात बार-बार दोहराई, यहाँ तक कि राजा को इस पर विश्वास हो गया और उसने पूछा, “तो फिर क्या किया जाए?” उन्होंने उत्तर दिया, “हमें रानी को मृत्युदंड देना होगा।” और मामले की सच्चाई जाने बिना ही उसने कहा, “ठीक है, तो उसे मृत्युदंड दे दो: और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके कूड़े के ढेर पर फेंक दो।” उन्होंने ऐसा ही किया, और उसकी मृत्यु की खबर पूरे शहर में फैल गई। तब उसके चारों पुत्रों ने कहा, “हमारी माता, जो निर्दोष थी, को इस व्यक्ति ने मृत्युदंड दे दिया है,” और वे राजा के शत्रु बन गए। और राजा बहुत भयभीत हो गया। कुछ समय बाद परमेश्वर ने जो कुछ हुआ, वह सुना और सोचा, “मेरे सिवा कोई नहीं है जो इन राजकुमारों को शांत कर सके और उन्हें अपने पिता को क्षमा करने के लिए राजी कर सके; मैं राजा का जीवन बचाऊंगा और इन राजकुमारों को उनके बुरे इरादों से मुक्त करूंगा।” अगले दिन वह एक सीमावर्ती गाँव में गया और वहाँ के निवासियों द्वारा दिए गए बंदर का मांस खाने के बाद उसने उसकी खाल माँगी, जिसे उसने अपनी कुटिया में तब तक सुखाया जब तक उसकी गंध पूरी तरह खत्म नहीं हो गई। फिर उसने उससे एक भीतरी और एक बाहरी वस्त्र बनाया और उसे अपने कंधे पर डाल लिया। उसने ऐसा क्यों किया? ताकि वह कह सके, “यह मेरे लिए बहुत उपयोगी है।” खाल लेकर वह धीरे-धीरे बनारस की ओर बढ़ा और युवा राजकुमारों के पास आकर उनसे कहा, “अपने पिता की हत्या करना एक भयानक काम है: तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। कोई भी मनुष्य नाश और मृत्यु से मुक्त नहीं है। मैं यहाँ तुम्हें समझाने आया हूँ; जब मैं कोई संदेश भेजूँ, तो तुम्हें मेरे पास आना है।”"इस प्रकार युवकों को प्रोत्साहित करने के बाद, वह शहर के भीतर स्थित पार्क में गया और एक पत्थर की पटिया पर बैठ गया, और उस पर बंदर की खाल बिछा दी।"

जब उद्यान के रखवाले ने यह देखा, तो वह जल्दी से राजा को बताने गया। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए और अपने उन सलाहकारों को साथ लेकर उस महान प्राणी को प्रणाम करने गए और बैठकर उनसे मधुर वार्तालाप करने लगे। महान प्राणी ने बिना किसी मैत्रीपूर्ण अभिवादन के अपनी बंदर की खाल को सहलाना जारी रखा। राजा ने कहा, "महाराज, मेरे लिए कोई व्यवस्था किए बिना आप अपनी बंदर की खाल को सहलाते रहते हैं। क्या यह आपके लिए मुझसे अधिक उपयोगी है?" "जी महाराज, यह बंदर मेरे लिए सबसे बड़ा सेवक है। मैं इसकी पीठ पर बैठकर यात्रा करता था। इसने मेरे लिए पानी का घड़ा ढोया। इसने मेरे रहने की जगह की सफाई की।"

इसने मेरे लिए अनेक छोटे-मोटे काम किए। इसकी सादगी के कारण मैंने इसका मांस खाया और इसकी सूखी खाल को बिछाकर उस पर बैठा और लेटा, अतः यह मेरे लिए बहुत उपयोगी है। इस प्रकार, इन गलत धारणाओं का खंडन करने के लिए, उसने बंदर की खाल को बंदर के कार्यों से जोड़ा और इसी उद्देश्य से उसने ऐसा कहा। पहले इसकी खाल पहनने के कारण उसने कहा, "मैं इसकी पीठ पर बैठकर यात्रा करता था।" इसे अपने कंधे पर रखकर और इस प्रकार अपना पीने का बर्तन ढोने के कारण उसने कहा, "इसने मेरा पीने का बर्तन ढोया।" खाल से ज़मीन साफ़ करने के कारण उसने कहा, "यह मेरे रहने की जगह को साफ़ करती है।" जब वह लेटता है, क्योंकि उसकी पीठ इस खाल से छूती है, और जब वह इस पर कदम रखता है, क्योंकि यह उसके पैरों को छूती है, तो वह कहता है, "इसने मेरे लिए अमुक-अमुक काम किए": जब उसे भूख लगती है, क्योंकि उसने इसका मांस लिया और खाया, तो वह कहता है, "इतना सरल प्राणी होने के कारण, मैंने इसका मांस खाया।" यह सुनकर उन सलाहकारों ने सोचा, "यह आदमी हत्या का दोषी है।" कृपया इस तपस्वी के कार्य पर विचार करें: वह कहता है कि उसने एक बंदर को मारा, उसका मांस खाया और उसकी खाल लेकर घूमता है," और तालियाँ बजाकर उसका उपहास किया। यह देखकर उस महान सत्ता ने कहा, "ये लोग नहीं जानते कि मैं इस खाल के साथ उनके पाखंडों का खंडन करने आया हूँ: मैं उन्हें नहीं बताऊंगा।" और धर्म का खंडन करने वाले को संबोधित करते हुए उन्होंने पूछा, "हे प्रभु, आप मुझे क्यों दोष दे रहे हैं?" "क्योंकि तुमने एक मित्र के साथ विश्वासघात किया है और हत्या की है।" तब उस महान सत्ता ने कहा, "यदि कोई आप पर और आपकी शिक्षाओं पर विश्वास करे और उसके अनुसार कार्य करे, तो क्या बुराई हुई है?" और उसके गलत विश्वास का खंडन करते हुए उन्होंने कहा:

यदि आपका यही मानना है कि, "मनुष्यों के सभी कर्म, चाहे अच्छे हों या बुरे,
मेरा मानना है कि हर मामले में उत्पत्ति प्राकृतिक कारणों से ही होती है।
अनैच्छिक कृत्यों में पाप का स्थान कहाँ हो सकता है?
यदि आपका यही विश्वास है और यह शिक्षा सत्य है,
उस बंदर को मारना मेरा सही कदम था।
काश तुम देख पाते कि तुम्हारा यह विश्वास कितना पापपूर्ण है?
तब आप मेरे कृत्य को उचित रूप से दोष नहीं दे पाएंगे।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने उसे फटकारा और उसे चुप करा दिया। सभा के समक्ष फटकार से नाराज़ होकर राजा गिर पड़ा (*7) और बैठ गया। उस महान सत्ता ने उसकी गलत धारणा का खंडन करने के बाद, उस व्यक्ति को संबोधित किया जो मानता था कि सब कुछ एक सर्वोच्च सत्ता द्वारा बनाया गया है और कहा, "हे महाराज, यदि आप वास्तव में इस शिक्षा का पालन करते हैं कि सब कुछ एक सर्वोच्च सत्ता की रचना है, तो आप मुझे दोष क्यों देते हैं?" और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया।

यदि कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर विद्यमान है जो इन आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है
प्रत्येक प्राणी में सुख या दुख, और कर्म या तो अच्छा होता है या बुरा।
प्रभु भी पाप से दूषित है। मनुष्य तो केवल उसकी इच्छा का फल भोगता है।
यदि आपका यही विश्वास है और यह शिक्षा सत्य है,
उस बंदर को मारना मेरा सही कदम था।
काश तुम देख पाते कि तुम्हारा यह विश्वास कितना पापपूर्ण है?
तब आप मेरे कृत्य को उचित रूप से दोष नहीं दे पाएंगे।
इस प्रकार, जैसे कोई आम के पेड़ से तोड़ी हुई लाठी से आम को गिरा देता है, उसने उसी के उपदेश से उस व्यक्ति का खंडन किया जो किसी सर्वोच्च सत्ता की क्रिया में विश्वास करता था, और फिर उसने उस विश्वासी को संबोधित करते हुए कहा, "महोदय, यदि आप इस उपदेश की सत्यता में विश्वास करते हैं कि सब कुछ पहले से घटित है, तो आप मुझे दोष क्यों देते हैं?" और उसने इस श्लोक को दोहराया:

पूर्व कर्मों से ही सुख और दुख दोनों उत्पन्न होते हैं;
यह बंदर अपने किसी पुराने पाप का कर्ज चुका रहा है:
प्रत्येक कर्म एक ऋण का भुगतान है। तो फिर अपराधबोध कहाँ से आता है?
यदि आपका यही विश्वास है और यह शिक्षा सत्य है,

उस बंदर को मारना मेरा सही कदम था।
क्या तुम यह देख सकते हो कि तुम्हारी शिक्षा कितनी पापपूर्ण है?
तब आप मेरे कृत्य को उचित रूप से दोष नहीं दे पाएंगे।
इस प्रकार उस व्यक्ति के गलत विश्वास का भी खंडन करने के बाद, उसने विनाश में विश्वास करने वाले (*8) की ओर मुड़कर कहा, "महोदय, आप मानते हैं कि कोई पुरस्कार नहीं है और इसी प्रकार की बातें हैं, यह मानते हुए कि सभी नश्वर प्राणी यहाँ विनाश का शिकार होते हैं, और कोई भी भविष्य के लोक में नहीं जाता है। तो फिर आप मुझे क्यों दोष देते हैं?" और उसे फटकारते हुए उसने कहा:

प्रत्येक जीवित प्राणी का स्वरूप चार तत्वों (पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश) से मिलकर बना होता है;
शरीर धीरे-धीरे अपने प्रत्येक घटक भाग में घुल जाता है।
मृत व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, जीवित व्यक्ति का जीवन अभी भी जारी रहता है;
यदि यह संसार नष्ट हो जाए, तो बुद्धिमान और मूर्ख दोनों ही चले जाएंगे:
एक तबाह दुनिया के बीच, अपराध का दाग किसी को भी अपवित्र नहीं करता।
यदि आपका यही विश्वास है और यह शिक्षा सत्य है,
उस बंदर को मारना मेरा सही कदम था।
काश तुम देख पाते कि तुम्हारा यह विश्वास कितना पापपूर्ण है?
तब आप मेरे कृत्य को उचित रूप से दोष नहीं दे पाएंगे।
इस प्रकार उन्होंने इस व्यक्ति की भी गलत धारणा का खंडन किया और फिर क्षत्रिय शिक्षा मानने वाले को संबोधित करते हुए कहा, "महोदय, आप मानते हैं कि मनुष्य को अपने हितों की पूर्ति करनी चाहिए, भले ही इसके लिए उसे अपने माता-पिता को मारना पड़े। यदि आप इस मान्यता का प्रचार करते हैं, तो आप मुझे क्यों दोष देते हैं?" और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

क्षत्रिय कहते हैं, बेचारे भोले-भाले मूर्ख जो खुद को इतना बुद्धिमान समझते हैं।
यदि परिस्थिति उचित हो तो एक व्यक्ति अपने माता-पिता की हत्या कर सकता है।
या फिर बड़े भाई, बच्चे, पत्नी, यदि इसकी आवश्यकता हो।
इस प्रकार उन्होंने इस व्यक्ति के विचारों का भी विरोध किया और अपना विचार प्रकट करते हुए कहा:

"एक ऐसे पेड़ से, जिसकी छाया में एक आदमी बैठकर आराम करता था,"
शाखा काटना विश्वासघात था। हम दोनों को झूठे दोस्त बिल्कुल पसंद नहीं थे।
लेकिन यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए, तो उस पेड़ को नष्ट कर देना।
फिर, मेरी जरूरतों को पूरा करने के लिए, उस बंदर को मेरे द्वारा मार देना उचित ही था।
यदि आपका यह विश्वास और यह शिक्षा सत्य है,
तब उस बंदर को मारना मेरा सही कदम था।
काश तुम देख पाते कि तुम्हारा यह विश्वास कितना पापपूर्ण है?
तब आप मेरे कृत्य को उचित रूप से दोष नहीं दे पाएंगे।
इस प्रकार उन्होंने इस व्यक्ति की शिक्षा का भी खंडन किया, और अब जब ये पाँचों गलत मानने वाले हक्का-बक्का और भ्रमित हो गए (*9), तो उन्होंने राजा को संबोधित करते हुए कहा, "महाराज, ये लोग जिनके साथ आप घूमते हैं, बड़े चोर हैं जो आपके राज्य को लूटते हैं। अरे! मूर्ख! जो मनुष्य इस संसार में और आने वाले संसार में भी ऐसे लोगों की संगति करेगा, उसे बड़ा दुख भोगना पड़ेगा।" और ऐसा कहकर उन्होंने राजा को सत्य का उपदेश दिया और कहा:

यह व्यक्ति सिखाता है, "कोई कारण नहीं है।" दूसरा कहता है, "एक (ईश्वर) ही सबका स्वामी है।"
कुछ लोगों का मानना है, "हर कर्म पुराने कर्मों के कारण हुआ है।" वहीं कुछ अन्य लोगों का मानना है, "सारा संसार विनाश की ओर अग्रसर है।"
ये और क्षत्रिय गलत धारणा रखने वाले मूर्ख हैं जो खुद को बुद्धिमान समझते हैं।
बुरे लोग वे हैं जो स्वयं पाप करते हैं और दूसरों को भी बुरी सलाह देते हैं।
बुरी सलाह का परिणाम निश्चित रूप से कष्ट और दंड होता है।
अब उदाहरण के तौर पर, अपने उपदेश के पाठ की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा:

एक भेड़िया जो पुराने जमाने के मेढ़े का वेश धारण किए हुए है
वह अनजाने में ही झुंड के पास आ गया।
(*10) आतंकित झुंड को इसने मार डाला,

फिर वह नई राहों की तलाश में निकल पड़ा।
इस प्रकार भिक्षु और ब्राह्मण अक्सर इनका उपयोग करते हैं।
भोले-भाले लोगों का शोषण करने के लिए एक आवरण।
कुछ लोग नंगी जमीन पर गंदे पड़े हैं,
कुछ तेजी से दौड़ते हैं, कुछ दर्द से कराहते हुए उकड़ू बैठ जाते हैं।
कुछ लोग शराब नहीं पीते, कुछ लोग नियमों के अनुसार भोजन करते हैं।
ये सभी संत होने का दिखावा करते हैं, लेकिन असल में दुष्ट मूर्ख हैं।
वे दुष्ट जाति के लोग हैं, और वे मूर्ख हैं जो खुद को बुद्धिमान समझते हैं।
ऐसे सभी लोग न केवल स्वयं पाप करते हैं, बल्कि दूसरों को भी दुष्टतापूर्ण सलाह देते हैं।
बुरी सलाह का परिणाम निश्चित रूप से कष्ट और दंड होता है।
जो कहते हैं, "किसी भी चीज में कोई बल मौजूद नहीं है,"
सभी के उद्देश्य को नकारना, निंदा करना
हे राजा, उनके अपने और दूसरों के कर्म व्यर्थ हैं।
ये दुष्ट प्रकार के लोग हैं, और वे मूर्ख हैं जो स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं।
ऐसे सभी लोग न केवल स्वयं पाप करते हैं, बल्कि दूसरों को भी दुष्टतापूर्ण सलाह देते हैं।
बुरी सलाह का परिणाम निश्चित रूप से कष्ट और दंड होता है।
यदि बल का अस्तित्व कहीं नहीं है और न ही कर्म अच्छे या बुरे हैं,
एक राजा को कारीगरों को क्यों रखना चाहिए, ताकि वह उनके कौशल से लाभ कमा सके?
क्योंकि बल का अस्तित्व है और कर्म अच्छे हों या बुरे, यह बल ही मायने रखता है।
राजा हमेशा कारीगरों को अपने पास रखते हैं और उनकी कुशलता से लाभ कमाते हैं।
यदि सौ वर्षों या उससे अधिक समय तक बारिश या बर्फबारी न हो,
एक तबाह दुनिया के बीच, हमारी पूरी जाति का नाश हो जाएगा।
लेकिन जैसे-जैसे बारिश और बर्फबारी होती है, साल का बदलता स्वरूप सुनिश्चित होता है,
वह फसल पकती है और हमारी भूमि युगों-युगों तक बनी रहती है।
बाढ़ के बीच से बैल एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाएगा (और पहले जैसा ही)।
पेड़ पर फल पूरी तरह पकने से पहले कौन तोड़ता है?
इसके बीज नष्ट हो जाते हैं और उसे कभी पता नहीं चलता कि फल कितना मीठा हो सकता है।
अतः जिसने अन्यायपूर्ण शासन द्वारा अपने देश को नष्ट किया है,
धर्म से उत्पन्न होने वाली मिठाइयों का उसने कभी आनंद नहीं उठाया।
लेकिन जो व्यक्ति फल तोड़ने के बाद उसे पेड़ पर ही पकने देता है,
यह अपने बीज को सुरक्षित रखता है और यह भलीभांति जानता है कि फल कितना मीठा हो सकता है।
इसलिए उसने भी अपने धर्मपरायण शासन द्वारा इस भूमि की रक्षा की है।
न्याय के फल कितने मीठे होते हैं, यह बात पूरी तरह से समझी जा सकती है।
वह योद्धा राजा जो इस धरती पर अन्याय का शासन स्थापित करेगा
जमीन से जो भी उपज होगी, उसमें पेड़-पौधों और जड़ी-बूटियों की कमी होगी।
तो क्या उसे अपने उन नागरिकों को बिगाड़ देना चाहिए जिन्हें व्यापार से लाभ होने की इतनी संभावना है?
राजस्व के असफल होने से उनके खजाने पर बोझ पड़ेगा।
और यदि वह अपने उन बहादुर सैनिकों को नाराज कर दे, जो युद्ध में महारत हासिल करने में इतने कुशल हैं,
उसकी सेना उससे अलग हो जाएगी और उसकी शक्ति छीन लेगी।
इसलिए चाहे वह गलत हो, बुद्धिमान हो या संत, उसे अपने कर्मों का फल अवश्य मिलता है।
और अपने पाप के कारण, चाहे वह कितना भी ऊंचे कुल में जन्मा हो, स्वर्ग से वंचित कर दिया जाएगा।
और यदि किसी दुष्ट राजा द्वारा किसी निर्दोष पत्नी की हत्या कर दी जाए,
वह अपने बच्चों के कारण कष्ट भोगता है और नरक में पीड़ा से व्याकुल रहता है।
शहर और गांव के लोगों के साथ न्याय करो और अपने सैनिकों के साथ अच्छा व्यवहार करो।
पत्नी और बच्चों के प्रति दयालु रहें और संतों को सुरक्षित निवास करने दें।
हे महाराज, यदि ऐसा सम्राट वासना से मुक्त पाया जाए,
इंद्र और असुरों के स्वामी की तरह, वह चारों ओर आतंक फैलाता है।

इस प्रकार राजा को सत्य का उपदेश देने के बाद, उस महान सत्ता ने चारों युवा राजकुमारों को बुलाया और उन्हें संबोधित करते हुए राजा के कार्य का कारण समझाया। उन्होंने कहा, "राजा से क्षमा मांगो।" राजा को उन्हें क्षमा करने के लिए राजी करने के बाद, उन्होंने कहा, "महाराज, अब से निंदा करने वालों के कथनों को बिना सोचे-समझे स्वीकार न करें, और किसी भी प्रकार की हिंसा न करें। और तुम युवा राजकुमारों, राजा के प्रति विश्वासघात न करो।" इस प्रकार उन्होंने उन सभी को उपदेश दिया। तब राजा ने उनसे कहा, "हे प्रभु, इन्हीं लोगों के कारण मैंने आपके और रानी के विरुद्ध पाप किया, और उनके कथन को स्वीकार करके मैंने यह बुरा कार्य किया। मैं इन पाँचों को मृत्युदंड दूंगा।" "महाराज, आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।" "तो मैं उनके पैर और हाथ काटने का आदेश दूंगा।" "यह भी आपको नहीं करना चाहिए।" राजा ने "यह ठीक है" कहकर सहमति जताई और उनकी सारी संपत्ति छीन ली और उन्हें अनेक प्रकार से अपमानित किया, उनके बालों को पाँच लटों में बाँध दिया (*11), उन्हें जंजीरों में जकड़ दिया और उन पर गोबर मल दिया, और उन्हें अपने राज्य से निकाल दिया। बोधिसत्व ने वहाँ कुछ दिन रहकर राजा को सलाह दी, उन्हें सतर्क रहने को कहा, और फिर हिमालय की ओर प्रस्थान किया तथा रहस्यमय ध्यान से अलौकिक शक्ति प्राप्त की। जीवन भर वे सिद्ध अवस्थाओं का अभ्यास करते रहे और ब्रह्मलोक के निवासी बन गए।

गुरु (बुद्ध) ने यहाँ अपना पाठ समाप्त करते हुए कहा, "न केवल अब, भाइयों (भिक्षुओं), बल्कि पहले भी तथागत (बुद्ध) बुद्धिमान थे और उन्होंने सभी विवाद करने वालों को कुचल दिया था," इस प्रकार उन्होंने जन्म की पहचान की: "उस समय पाँच गलत विश्वासी (*12) पुराण कश्यप, मक्खली गोसला, पकुधा कच्चना, अजित केशकंबली, निगंथ नटपुत्त (जैनों के गुरु महावीर) थे, भूरे रंग का कुत्ता आनंद था, और विचरण करने वाला भिक्षु महाबोधि मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)दिघ निकाय, II देखें। समन्ना-फला

(2) जातक, संख्या 546.

(3)अज्झुपेक्खति. जातक, 147, कुलवग्गा, चतुर्थ। 4. 8.

(4) जातक, 417, "माथे पर मृत्यु लिखी हुई।"

(5)पतिगाकसेवा, पतिककसेवा।

(6) एक और पाठ है अकाथेटवा, "मुझसे एक शब्द भी कहे बिना।"

(7)पट्टकखंड

(8)उच्चेदावदा. विनय ग्रंथ, II देखें। 111, कथा वत्थु, पकाराना अट्ठकथा

(9) निप्पतिभाना, सीएफ। अप्पतिभना, कुलवग्गा, चतुर्थ। 4. 8.

(10) चित्रसयित्व के लिए वित्तसयित्व का पाठ करना।

(11) अपमान के प्रतीक के रूप में स्त्री का सिर इस प्रकार मुंडवाया जाता है कि पाँच लटें रह जाती हैं। जातक 135 दर्शाता है कि चुला कभी-कभी दासता का प्रतीक होता था।

(12) विधर्मी, पुराण, ककुधा कक्कायन और निगंथा नटपुत्त (जैनियों के गुरु महावीर)।

पुस्तक XIX. सत्थिनीपाता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सोनक-जातक**
***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

जातक क्रमांक 529
सोनाका-जातक। (*1)

"हजारों सिक्के," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जो वैराग्य की पूर्णता से संबंधित है। इस अवसर पर, भिक्षुओं के बीच सत्य कक्ष में बैठे बोधिसत्व, वैराग्य की पूर्णता की स्तुति कर रहे थे, तब उन्होंने कहा, "भाइयों, न केवल आज, बल्कि प्राचीन काल में भी तथागत (बुद्ध) ने सांसारिक जीवन का पूर्णतः त्याग कर महान वैराग्य ग्रहण किया था," और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, मगध के राजा राजगृह नगर में शासन करते थे। उनकी प्रमुख रानी के पुत्र एक बोधिसत्व का जन्म हुआ और नामकरण के दिन उनका नाम राजकुमार अरिंदमा रखा गया। उनके जन्म के दिन ही राजपुजारी के पुत्र का भी जन्म हुआ और उनका नाम सोनक रखा गया। दोनों बालक साथ-साथ पले-बढ़े और जब वे वयस्क हुए तो अत्यंत सुंदर थे, उनकी सुंदरता में कोई अंतर नहीं था। वे तक्षशिला गए और सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के बाद कलाओं और स्थानीय रीति-रिवाजों के व्यावहारिक उपयोगों को सीखने के उद्देश्य से तक्षशिला छोड़ गए। धीरे-धीरे भटकते हुए वे बनारस पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजगृह में अपना निवास स्थान बनाया और अगले दिन नगर में प्रवेश किया। उसी दिन कुछ लोगों ने ब्राह्मणों को भोजन दान करने के उद्देश्य से चावल का दलिया तैयार किया और बैठने की व्यवस्था की। इन युवकों को आते देख वे उन्हें घर में ले आए और उन्हें अपने द्वारा तैयार की गई सीटों पर बैठाया। बोधिसत्व के लिए निर्धारित आसन पर एक सफेद वस्त्र बिछाया गया था, और सोनाका के लिए निर्धारित आसन पर एक लाल ऊनी गलीचा। इस शगुन को देखकर सोनाका तुरंत समझ गया कि आज उसका प्रिय मित्र अरिंदमा बनारस का राजा बनेगा, और वह उसे सेनापति का पद प्रदान करेगा। भोजन करने के बाद वे दोनों साथ में उद्यान लौट आए। बनारस के राजा की मृत्यु को सात दिन हो चुके थे और राजपरिवार का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इसलिए सलाहकारों और अन्य लोगों ने सिर और शरीर को धोकर, एक साथ इकट्ठा होकर कहा, "तुम्हें उस व्यक्ति के घर जाना है जो राजा बनने के योग्य है," और उन्होंने उत्सव रथ (*2) को रवाना किया। शहर से निकलते ही रथ धीरे-धीरे उद्यान की ओर बढ़ा और उद्यान के द्वार पर रुककर खड़ा हो गया, मानो किसी के भी उस पर सवार होने के लिए तैयार हो। बोधिसत्व अपने बाहरी वस्त्र को सिर पर लपेटे हुए राजसी पत्थर की शिला पर लेटे थे, जबकि बालक सोनाका उनके पास बैठा था। वाद्ययंत्रों की ध्वनि सुनकर सोनाका ने सोचा, "अरिंदमा का उत्सव रथ आ रहा है। आज वह राजा बनेगा और मुझे सेनापति का पद देगा। परन्तु मुझे शासन करने की कोई इच्छा नहीं है: उसके जाने के बाद मैं संसार त्यागकर संन्यासी बन जाऊँगा।" यह सोचकर वह एक तरफ छिप गया। पुरोहित ने उद्यान में प्रवेश करते ही उस महान पुरुष को वहाँ लेटा हुआ देखा और तुरही बजाने का आदेश दिया। महान पुरुष जागा और कुछ देर करवटें बदलने और लेटने के बाद उठकर पत्थर के आसन पर पालथी मारकर बैठ गया। तब पुरोहित ने विनती भरे स्वर में हाथ फैलाकर कहा, "हे महाराज, राज्य आपको प्राप्त होगा।" "क्यों, क्या सिंहासन का कोई उत्तराधिकारी नहीं है?" "हाँ, महाराज।" "तो ठीक है," उसने कहा। अतः उन्होंने उसी क्षण उसे राजा नियुक्त कर दिया। और रथ पर बिठाकर वे उसे विशाल दल-बल के साथ नगर में ले आए। नगर का चक्कर लगाने के बाद वह अपने महल में गया और अपनी महिमा के वैभव में वह युवा सोनाका को पूरी तरह भूल गया।लेकिन जब राजा चले गए, तो सोनाका लौट आए और पत्थर के आसन पर बैठ गए। तभी उनके सामने साल के पेड़ का एक सूखा पत्ता गिर पड़ा। उसे देखकर वे रो पड़े, "जिस प्रकार यह पत्ता गल जाएगा, उसी प्रकार मेरा शरीर भी गल जाएगा।" सभी चीजों की अनित्यता का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने अलौकिक अंतर्दृष्टि से सिद्ध होकर पच्चेकबुद्ध का रूप धारण कर लिया। उसी क्षण उनका गृहस्थ स्वरूप लुप्त हो गया और एक तपस्वी के लक्षण प्रकट हो गए। उन्होंने कहा, "अब मेरा कोई पुनर्जन्म नहीं होगा," और इसी उद्बोधन के साथ वे नंदमूल की गुफा के लिए निकल पड़े। चालीस वर्ष बाद, उस महान सत्ता को सोनाका की याद आई और उन्होंने पूछा, "सोनाका कहाँ हो सकते हैं?" बार-बार याद करने पर भी उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो यह बता सके, "मैंने उनके बारे में सुना है या उन्हें देखा है।" और एक भव्य मंच पर राजसी सिंहासन पर पालथी मारकर बैठे हुए, संगीतकारों और नृत्यकलाकारों के एक समूह से घिरे हुए, अपनी महिमा का आनंद लेते हुए, उन्होंने कहा, "जो कोई भी किसी से यह सुनेगा कि सोनाका फलां स्थान पर निवास करते हैं और मुझे बताएगा, उसे मैं सौ सिक्के देने का वादा करता हूँ, परन्तु जो कोई भी उन्हें अपनी आँखों से देखेगा और मुझे बताएगा, उसे मैं हजार सिक्के देने का वादा करता हूँ," और इस प्रेरणादायक कथन को एक गीत के रूप में व्यक्त करते हुए, उन्होंने पहले छंद को दोहराया:

मेरे प्यारे दोस्त और खेल साथी को देखने वाले के लिए एक हजार सिक्के।
मैं सौ लो! देता हूँ अगर सोनाका में से एक भी सुन ले।
फिर एक नर्तकी ने मानो राजा के मुख से ही गीत के बोल सीख लिए हों, और फिर एक के बाद एक, और अंत में पूरे हरम की सभी कन्याएँ, यह सोचकर कि यह राजा का पसंदीदा गीत है, उसे गाने लगीं। धीरे-धीरे नगर और गाँव दोनों के लोग वही गीत गाने लगे और

राजा भी नियमित रूप से उसे गाने लगे। पचास वर्षों के अंत में राजा के कई पुत्र और पुत्रियाँ हुईं, और सबसे बड़े पुत्र का नाम राजकुमार दिघावु रखा गया। इस समय पच्चेकबुद्ध सोनाका ने सोचा, "राजा अरिंदमा मुझसे मिलने के लिए उत्सुक हैं। मैं जाकर उन्हें बुरी इच्छाओं के कष्ट और त्याग के आशीर्वाद के बारे में समझाऊंगा और उन्हें तपस्वी बनने का मार्ग दिखाऊंगा।" और अपनी अलौकिक शक्ति से वे वहां पहुंचे और उद्यान में बैठ गए। उसी क्षण सात वर्ष का एक लड़का, जिसके बालों में पांच चोटियां थीं, उसकी मां द्वारा वहां भेजा गया था, और वह उद्यान में लकड़ियां इकट्ठा करते हुए बार-बार यही गीत गा रहा था। सोनाका ने लड़के को अपने पास बुलाया और उससे पूछा, "मेरे बच्चे, तुम हमेशा यही गीत क्यों गाते हो और कुछ और क्यों नहीं गाते?" क्या तुम्हें कोई और गीत नहीं आता?" "मुझे और भी गीत आते हैं, महाराज, लेकिन यह राजा का सबसे प्रिय गीत है, इसलिए मैं इसे लगातार गाता रहता हूँ।" "क्या किसी ने इस गीत का उत्तर गाया है?" "नहीं, महाराज।" "मैं तुम्हें एक उत्तर सिखाता हूँ और फिर तुम जाकर राजा के सामने उत्तर गा सकते हो।" "जी, महाराज।" तो उन्होंने उसे उत्तर "हजार सिक्के" और बाकी गीत सिखाया, और जब लड़के ने इसे अच्छी तरह से सीख लिया, तो उन्होंने उसे यह कहते हुए विदा किया, "जाओ, मेरे बच्चे, और राजा के सामने यह उत्तर गाओ और वह तुम्हें महान शक्ति प्रदान करेगा। लकड़ियाँ इकट्ठा करने से तुम्हारा क्या लेना-देना है?" "जल्दी से जल्दी यहाँ से चले जाओ।" "ठीक है," लड़के ने कहा, और जवाब को अच्छी तरह समझकर और सोनाका को प्रणाम करके बोला, "हे प्रभु, जब तक मैं राजा को न ले आऊं, आप यहीं रहें।" ये कहकर वह जितनी जल्दी हो सके अपनी माँ के पास गया और उनसे कहा, "प्यारी माँ, मुझे नहला दो और मुझे मेरे सबसे अच्छे कपड़े पहना दो: आज मैं तुम्हें तुम्हारी गरीबी से मुक्ति दिलाऊंगा।" और जब उसने नहा लिया और अच्छे कपड़े पहन लिए, तो वह महल के द्वार पर गया और बोला, "द्वारपाल, जाओ और राजा को बताओ, 'एक लड़का आया है और अभी द्वार पर खड़ा है, आपके साथ गाना गाने के लिए तैयार है।' तो द्वारपाल जल्दी से गया और राजा को बताया। राजा ने उसे अपने पास बुलाया और बोला, "मित्र, क्या तुम मेरे साथ गाना गाओगे?" "जी महाराज।" "तो गाओ।" "महाराज, मैं यहाँ नहीं गाऊंगा, बल्कि पूरे शहर में ढोल बजवाऊंगा और लोगों को इकट्ठा होने के लिए कहूंगा। मैं लोगों के सामने गाऊंगा।" राजा ने ऐसा करने का आदेश दिया, और एक भव्य मंडप के नीचे एक पलंग के बीच में बैठकर, लड़के को भी एक उपयुक्त स्थान देते हुए कहा, "अब अपना गीत गाओ।" लड़के ने कहा, "महाराज, आप पहले गाइए, फिर मैं उसका उत्तर दूंगा।" तब राजा ने पहले गीत गाया।इस श्लोक को दोहराते हुए:

मेरे प्यारे दोस्त और खेल साथी को देखने वाले के लिए हजार सिक्के।
मैं सौ लो! देता हूँ अगर सोनाका में से एक भी सुन ले।
तब गुरु ने यह स्पष्ट करने के लिए कि पाँच गांठों में बंधे बालों वाले लड़के ने राजा द्वारा शुरू किए गए गीत का उत्तर दिया था, अपनी पूर्ण बुद्धि से दो पंक्तियाँ दोहराईं:

फिर वह छोटा लड़का बोला—जिसके बालों में पाँच उलझी हुई लटें थीं—
"जिन्होंने देखा, उन्हें हज़ारों और जिन्होंने सुना, उन्हें सौ और दो।"
मैं तुम्हें सोनाका के बारे में खबर सुनाऊंगा, जो तुम्हारा पुराना खेल साथी था।
आगे आने वाले श्लोकों को उनके स्पष्ट संदर्भ में ही लिया जाना चाहिए।

कृपया बताइए, आप किस देश, क्षेत्र या शहर में घूम रहे हैं?
और सोनाका कहाँ थी, मेरे दोस्त? कृपया मुझे बताएं, क्या आपने उसे देखा था?
इस क्षेत्र में, आपके अपने पार्क में कई बड़े साल के पेड़ हैं।
गहरे हरे पत्तों और सीधे तनों के साथ, यह एक सुखद दृश्य है;
उनकी शाखाएँ घनी रूप से आपस में गुंथी हुई हैं, बादल की तरह, वे स्वर्ग की ओर उठती हैं।
और देखो, उनके चरणों में सोनाका ध्यानमग्न लेटे हुए हैं।
जब मानवीय वासना समाप्त हो जाती है, तब अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध व्यक्ति) की पवित्र शांति से परिपूर्ण।
तब राजा ने पूरी ताकत से सड़क को समतल करते हुए सीधे सोनाका के निवास स्थान की ओर प्रस्थान किया।

वहाँ अपने आनंद स्थल के भीतर एक विशाल उपवन में विचरण करते हुए, पूर्ण भावहीनता से, संतमय आनंद में, उसने अपने मित्र को विश्राम करते हुए पाया।

उसे प्रणाम किए बिना वह एक तरफ बैठ गया और, स्वयं बुरी भावनाओं में डूबे होने के कारण, उसने उसे किसी बेचारे अभागे के रूप में समझा और इस छंद में उसे संबोधित किया:

मैंने देखा कि उसके माता-पिता मर चुके हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है और उसने भिक्षु का वस्त्र पहना हुआ है।
एक बेचारा भाई बेहोशी की हालत में इस पेड़ के नीचे लेटा हुआ है।
यह सुनकर सोनाका ने कहा, "हे महाराज, जो अपने प्रत्येक कार्य में निश्चय ही न्याय का मार्ग अपनाता है, वह कोई नीच प्राणी नहीं है।"

बल्कि वे लोग अधिक दयनीय हैं जो सही की उपेक्षा करते हैं और बुराई का अभ्यास करते हैं।
बुराई करने वाले को बुराई का ही फल भुगतना पड़ता है।
इस प्रकार उन्होंने बोधिसत्व को फटकारा, और बोधिसत्व ने यह जताते हुए कि उन्हें फटकार नहीं लगाई जा रही है, उनसे मैत्रीपूर्ण ढंग से बात की, अपना नाम और परिवार बताया और यह श्लोक कहा:

मैं काशी के राजा के रूप में जाना जाता हूँ, मेरा नाम अरिंदमा है।
महोदय, यहां आने के बाद से क्या आपके साथ कुछ ऐसा हुआ है जिसके लिए आपको दोषी ठहराया जा सके?
तब पच्चेकबुद्ध ने कहा, "न केवल यहाँ रहते हुए बल्कि कहीं और भी मुझे कोई असुविधा नहीं हुई है," और उन्होंने भिक्षु के आशीर्वादों का काव्यात्मक वर्णन करना शुरू किया:

मैं उस निर्धन भिक्षु के आशीर्वादों में से एक इसे भी गिनता हूँ।
उसने किसी बर्तन, बुनी हुई टोकरी या अन्न भंडार में कुछ भी जमा नहीं किया है।
लेकिन वह केवल दूसरों द्वारा छोड़ी गई चीजों की लालसा करता है और उसी से संतुष्ट होकर जीवन व्यतीत करता है।
उनकी तमाम नेमतों में से अगली नेमत प्रशंसा के योग्य है।
वह दोषमुक्त होकर अपने भोजन का आनंद लेता है और कोई भी उससे विवाद नहीं करता।
मेरे अनुसार भिक्षु का तीसरा आशीर्वाद यह है कि उसके सभी दिनों
वह प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता है और कोई भी उससे विवाद नहीं करता।
उनकी चौथी सबसे बड़ी नेमत यह है कि वे जहाँ कहीं भी जाते हैं,
वह पूरे जगत में स्वतंत्र रूप से विचरण करता है और किसी भी आसक्ति से अनजान है।
पांचवां आशीर्वाद यह है कि यदि वह नगर, चाहे वह कहीं भी हो,
वह आग की लपटों में जलकर मर जाए, उसे कोई कष्ट नहीं होता, क्योंकि उसके पास जलाने के लिए कुछ भी नहीं है।
वह अपने भाग्य में प्राप्त सभी आशीर्वादों में से छठे आशीर्वाद पर विचार कर सकता है।
यदि राज्य को लूटा भी जाए, तो उसे जरा भी हानि नहीं होगी।
गरीबी के कारण उसे जो सातवां आशीर्वाद प्राप्त हुआ, वह यह है कि...
भले ही उसके रास्ते में लुटेरे बाधा डालें और कई खतरनाक दुश्मन हों,
पवित्र व्यक्ति कटोरे और वस्त्र के साथ हमेशा सुरक्षित रहता है।
अंत में यही आशीर्वाद है कि हमारा यात्री जहाँ कहीं भी जाए,
वह एकांतवासी और गरीब व्यक्ति है, जो बिना किसी पछतावे या चिंता के अपनी यात्रा जारी रखता है।
इस प्रकार पच्चेकबुद्ध सोनाका ने भिक्षु के आठ आशीर्वादों का वर्णन किया, और इससे भी आगे वे सौ नहीं, बल्कि हज़ार अनगिनत आशीर्वादों का वर्णन कर सकते थे, लेकिन राजा कामुक इच्छाओं में लिप्त होने के कारण अपना भाषण छोटा करते हुए बोले, "मुझे भिक्षु आशीर्वादों की कोई आवश्यकता नहीं है," और यह स्पष्ट करने के लिए कि वे बुरी वासनाओं के प्रति कितने समर्पित थे, उन्होंने कहा:

आप अपनी अनेक आशीषों की प्रशंसा कर सकते हैं, लेकिन मैं क्या करूँ?
सोनाका, सांसारिक सुखों के पीछे इतनी लालसा से कौन भागता है?
प्रियतम, मेरे लिए सभी मानवीय सुख और साथ ही स्वर्गीय सुख भी हैं।
लेकिन दोनों दुनियाओं को एक साथ कैसे हासिल किया जाए, कृपया मुझे बताएं।
तब पच्चेकबुद्ध ने उसे उत्तर दिया:

जो लोग सांसारिक सुखों में लिप्त होकर, लालचवश अपनी सांसारिक इच्छाओं पर निर्भर हो जाते हैं,
कुछ समय तक दुष्ट कर्म करो, अन्यथा दुखमय अवस्था में पुनर्जन्म होगा।
लेकिन जो लोग इच्छाओं को त्यागकर निर्भय होकर जीवन व्यतीत करते हैं,
और एकाग्रता (*3) प्राप्त करने वाले शुद्ध लोग कभी भी दुख में पुनर्जन्म नहीं लेते।
मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ; अरिंदमा, ध्यान से सुनो।
जो लोग दृष्टांतों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे मेरे अर्थ को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।
देखो! गंगा नदी की उफनती लहरों पर कई विशाल शव बहते जा रहे थे।
एक मूर्ख कौवे ने मन ही मन सोचा, क्योंकि उसके सामने से एक रथ गुजर रहा था।
"ओह, मुझे तो एक शानदार गाड़ी और खाने-पीने का बड़ा भंडार मिल गया है।"
मैं यहीं दिन-रात रहूंगा और आनंदमय वातावरण का आनंद लूंगा।"
इसलिए वह हाथी का मांस खाता है और गंगा का पानी पीता है।

और वह बिना हिले-डुले सपने में उपवन और मंदिर को अपने सामने से गुजरते हुए देखता है।
अत: चाहे कुछ भी हो और सड़ते हुए मांस पर ही उसका सारा इरादा था,
गंगा नदी उसे बहाकर समुद्र के खतरों की ओर ले गई।
लेकिन जब भोजन समाप्त हो गया तो बेचारे पक्षी ने उड़ने का प्रयास किया।
न तो पूरब, न पश्चिम, न दक्षिण, न उत्तर की ओर कोई भूमि दिखाई दे रही थी।
समुद्र में बहुत दूर, वह इतना कमजोर था कि तट तक पहुँचने में उसे बहुत समय लगा।
अथाह सागर के अनगिनत खतरों के बीच वह गिर पड़ा और फिर कभी उठ नहीं पाया।
मगरमच्छों और विशालकाय मछलियों के लिए, जहाँ हमारी बेचारी मछली पड़ी थी,
वे चारों ओर से व्याकुल होकर आए और अपने कांपते हुए शिकार को झट से निगल गए।
इसलिए तुम और वे सभी जो इंद्रिय सुखों के लालच में लिप्त हैं
जब तक तुम सभी वासनाओं से दूर नहीं हो जाते, तब तक तुम्हें इस कौवे के समान बुद्धिमान समझा जाता है।
मेरी दृष्टांत कथा सत्य का बखान करती है। हे राजा, इस पर ध्यान दीजिए।
आपके कर्मों के अनुसार ही आपकी प्रसिद्धि बढ़ेगी, चाहे वह अच्छे के लिए हो या बुरे के लिए।
इस प्रकार इस दृष्टांत के माध्यम से उसने राजा को शिक्षा दी और इसे उसके मन में दृढ़ता से बिठाने के लिए उसने इस श्लोक को दोहराया:

दया भाव से एक बार, नहीं दो बार भी नहीं, चेतावनी भरे शब्द का उच्चारण करो,
लेकिन इसे बार-बार न दोहराओ, जैसे कोई गुलाम अपने स्वामी के सामने करता है।
इस प्रकार असीम ज्ञान से ऋषि सोनाका ने यह बात समझी।
राजा को निर्देश दिया, और फिर तुरंत अंतरिक्ष में गायब हो गया।
यह श्लोक 'परफेक्ट विजडम' से प्रेरित है।

और बोधिसत्व उसे तब तक देखते रहे जब तक वह उनकी दृष्टि में रहा, लेकिन जब वह दृष्टि से ओझल हो गया, तो वे बहुत व्याकुल हो गए और सोचने लगे, "यह नीच कुल का ब्राह्मण, मेरे सिर पर अपने चरणों की धूल बिखेरने के बाद, जबकि मैं कुलीन वंश से आया हूँ, आकाश में विलीन हो गया है: मुझे आज ही संसार का त्याग करके संन्यासी बनना होगा।" अतः संन्यासी बनने और अपने राज्य को त्यागने की इच्छा से उन्होंने दो श्लोक दोहराए:

मेरे सारथी कहाँ हैं, जिन्हें खोजने के लिए एक योग्य राजा को भेजा गया था?
मैं अब और शासन नहीं करूंगा; अब से मैं अपना ताज त्याग देता हूं।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
जब उनके इस प्रकार सिंहासन त्यागने की बात सुनी तो उनके सलाहकारों ने कहा:

आपका एक पुत्र है, जिसका नाम दिघावु है, वह एक सुंदर राजकुमार है।
विधिपूर्वक जल छिड़काव द्वारा उन्हें सिंहासन पर विराजमान करें, क्योंकि वे हमारे राजा होंगे।
फिर, राजा द्वारा बोले गए श्लोक से शुरू करते हुए, उचित क्रम में अन्य श्लोकों को उनके स्पष्ट संबंध के अनुसार समझा जाना चाहिए:

तो जल्दी से दिघावु को यहाँ लाओ, वह एक सुंदर राजकुमार है।
विधिपूर्वक जल छिड़काव द्वारा उसे सिंहासन पर विराजमान करो, क्योंकि वही तुम्हारा राजा होगा।
जब वे दिघावु को, जो उनका भावी राजा था, वहाँ लेकर आए, तो उसके पिता ने अपने प्रिय पुत्र को संबोधित किया - वह उनका इकलौता पुत्र था।

मैंने एक समय में पूरे साठ हजार गांवों को अपना बताया था।
मेरे पुत्र, इन्हें अपने साथ ले जाओ; अब से मैं अपने राज्य का त्याग करता हूँ।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
देखो! साठ हजार हाथी वैभव से सजे हुए हैं,
सोने की कमरबंद के साथ, सुनहरे रंग के अलंकृत वस्त्रों से सजी काठी,
प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने महावत पर सवार होता है, जिसके हाथ में नुकीला हुक होता है।

इन्हें ले लो, मेरे पुत्र, मैं इन्हें तुम्हें इस देश के शासक के रूप में सौंपता हूँ।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
देखो! यहाँ साठ हज़ार घोड़े हैं, चमकीले वस्त्रों से सजे हुए।
सिंध के घोड़े, सभी श्रेष्ठ नस्ल के और फुर्तीले होते हैं--
प्रत्येक घोड़े पर तलवार और धनुष लिए एक साहसी साथी सवार था।
इन्हें ले लो, मेरे पुत्र, मैं इन्हें तुम्हें इस देश के शासक के रूप में सौंपता हूँ।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
देखो! साठ हजार गाड़ियाँ एक साथ जुती हुई हैं, जिन पर झंडे लहरा रहे हैं।
बाघ की खाल और पैंथर की खाल से बना, एक अद्‌भुत दृश्य।
प्रत्येक रथ को बख्तरबंद रथ चालकों द्वारा चलाया जा रहा था, जो सभी हाथों में धनुष लिए हुए थे।
इन्हें ले लो, मेरे पुत्र, मैं इन्हें तुम्हें देता हूँ, क्योंकि तुम इस देश के शासक हो।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
देखो! साठ हजार लाल रंग की गायें, हर तरफ बैलों के साथ।
इन्हें ले लो, मेरे पुत्र, मैं इन्हें तुम्हें इस देश के शासक के रूप में सौंपता हूँ।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
यहां बारह हजार सुंदर युवतियां अच्छे वस्त्रों में सजी खड़ी हैं।
कई रत्नजड़ित कंगन और दोनों हाथों में अंगूठियों से सजी हुई,
इन्हें ले लो, मेरे पुत्र, मैं इन्हें तुम्हें देता हूँ, क्योंकि तुम इस देश के शासक हो।
कल शायद किसी की मृत्यु हो जाए, कौन जाने? आज मेरा अभिषेक हो जाएगा;
अन्यथा, मूर्ख कौवे की तरह, मैं भी वासना के हानिकारक प्रभाव में आ जाता हूँ।
(*5)वे मुझसे कहते हैं, "तुम्हारी प्यारी माँ, हाय! बेचारे लड़के, मर गई है।"
मैं तुम्हारे बिना भी नहीं जी सकता। जीवन से सारी खुशियाँ छिन गई हैं।
एक बूढ़े हाथी के ठीक पीछे अक्सर एक जवान हाथी दिखाई देता है।
पहाड़ी दर्रों या जंगलों से होते हुए, ऊबड़-खाबड़ या समतल जमीन पर चलना,
इसलिए मैं कटोरा हाथ में लेकर आपके पीछे चलूंगा, आप मुझे जहाँ भी ले जाएं।
और न ही आपको मुझे बोझ या भोजन कराने में मुश्किल लगेगी।
(*6) अक्सर ऐसा होता है कि व्यापारियों का कोई जहाज किसी भी कीमत पर लाभ कमाने की कोशिश करता है
एक भंवर (*7) में समा जाता है और जहाज और चालक दल दोनों खो जाते हैं,
अन्यथा मुझे इस मनहूस लड़के में एक बाधा नज़र आती है।
उसे मेरे महल में स्थापित करो, जहाँ वह सभी सुखों का आनंद ले सके।
सुनहरे रंग से सजे हाथों से उसे सहलाने वाली दासियों के साथ, जैसे सक्का (इंद्र) अपनी दिव्य अप्सराओं के बीच आनंदित होते हैं, वह सदा आनंदित रहेगा।

फिर वे राजकुमार दिघावु को आनंद के घर, महल में ले आए, और उन्हें देखकर उन सुंदर युवतियों ने राजकुमार से बात की।

"तुम कौन हो? देवदूत, संगीतकार-देवता, या प्रसिद्धि प्राप्त सक्का (इंद्र)?"
क्या आप हर कस्बे में दान-पुण्य करते हैं? हमें आपका नाम जानकर खुशी होगी।
न तो मैं कोई देवदूत हूँ, न ही संगीतकार-देवता, और न ही सक्का (इंद्र) जो प्रसिद्धि प्राप्त कर सके।
लेकिन काशी के राजा के उत्तराधिकारी, राजकुमार दिघावु मेरा नाम है।
इसलिए मुझे प्यार करो और खुश रहो: मैं हर एक को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करती हूँ।
तब उन कन्याओं ने अपने स्वामी दिघावु से कहा, “राजा ने कहाँ शरण ली है और वह कहाँ भाग गया है?”

कीचड़ भरे रास्तों से बचकर राजा सूखी जमीन पर सुरक्षित है।
अंततः कांटों और घने जंगल से मुक्त होकर उसे वह ऊंचा रास्ता मिल गया है।
लेकिन मैं एक ऐसे मार्ग पर चल पड़ा हूँ जो मुझे अत्यंत कष्टमय अवस्था की ओर ले जाता है।

कांटों और घने जंगल से होते हुए मैं एक भयानक नियति की ओर बढ़ता रहता हूँ।
हमारा स्वागत वैसे ही करें जैसे शेर अपने शावकों का पहाड़ों की गुफा में स्वागत करता है।
अब से, हमारे संप्रभु स्वामी, सच्चे और न्यायसंगत उत्तराधिकारी, भालू ही शासन करेंगे।
ऐसा कहते ही सबने अपने वाद्ययंत्र बजाए और तरह-तरह के गीत-नृत्य शुरू हो गए। उनकी महिमा इतनी महान थी कि राजकुमार उसमें मदहोश होकर अपने पिता को भूल गया, परन्तु न्यायपूर्वक शासन करते हुए उसने अपने कर्मों का फल पाया। परन्तु बोधिसत्व ने ध्यान से प्राप्त अलौकिक शक्ति (सम्मोहन अवस्था) विकसित कर ली और ब्रह्मलोक में देहान्त हो गए।

गुरु ने यहाँ अपना उपदेश समाप्त करते हुए कहा, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि प्राचीन काल में तथागत (बुद्ध) ने भी वास्तव में महान त्याग किया था," और उन्होंने जन्म का उल्लेख करते हुए कहा, "उस समय पच्चेकबुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया, पुत्र युवा राहुल थे, और राजा अरिंदमा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)दारिमुख की कहानी देखें, क्रमांक 378,

(2) फुस्सरथ, जातक 238, 39, और महाजनक, संख्या 539।

(3) एकोदिभाव, मन की एकाग्रता,

(4) किसी ब्राह्मण को हिना जैको कहा जाए

(5) यह और इसके बाद के दो छंद युवा राजकुमार द्वारा बोले गए हैं।

(6) यह और इसके बाद के दो श्लोक राजा अरिंदमा द्वारा बोले गए हैं।

(7) टीका में वोहारा को "राक्षसी मछली" या "भंवर" के रूप में समझाया गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सांकिच्च-जातक**
***स्रोत**: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-530-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 530
समकिच्च-जातक

"ब्रह्मदत्त को देखते ही," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जीवक के आम के बाग में रहते हुए सुनाई, जिसमें उन्होंने अजातशत्रु द्वारा अपने पिता की हत्या का वर्णन किया था। देवदत्त के उकसावे पर ही अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या करवाई थी। परन्तु संघ में विभाजन के बाद जब षड्यंत्रकारी समुदाय में बीमारी फैल गई, तो देवदत्त ने तथागत (बुद्ध) से क्षमा मांगने का निश्चय किया। श्रावस्ती नगरी जाते समय जब वह हाथगाड़ी में यात्रा कर रहा था, तो जेतवन मठ के द्वार पर ही वह पृथ्वी में समा गया। यह सुनकर अजातशत्रु ने सोचा, "देवदत्त परम बुद्ध का शत्रु था, इसलिए वह पृथ्वी में विलीन हो गया और अविची नरक में जाएगा। उसी के कारण मैंने अपने परम पूज्य पिता, धर्म के राजा, की हत्या की थी। मैं भी निश्चय ही पृथ्वी में समा जाऊंगा।" और वह इतना भयभीत था कि उसे अपने राजसी वैभव में भी कोई आनंद नहीं मिल रहा था, और यह सोचकर कि वह कुछ देर आराम करेगा, जैसे ही वह सो गया, उसे ऐसा लगा मानो उसे नौ मील (x 4.23 किमी) मोटी लोहे की दुनिया में गिरा दिया गया हो, और मानो लोहे की कीलों से पीटा जा रहा हो और कुत्ते लगातार उस पर झपट रहे हों, और वह एक भयानक चीख के साथ उठ खड़ा हुआ। तो एक दिन पूर्णिमा (*1) को चतुर्मास्य उत्सव के दौरान, जब वह दरबारी सेवकों के एक बड़े समूह से घिरा हुआ था, उसने अपनी महिमा के बारे में सोचा, उसने सोचा कि उसके पिता की महिमा इससे कहीं अधिक थी, और देवदत्त के कारण ही उसने इतने उत्तम धर्मी राजा को मारा था, और जब वह इस बारे में सोच रहा था, उसके अंगों में बुखार आ गया और उसका पूरा शरीर पसीने से भीग गया। और यह सोचते हुए कि कौन उसके इस भय को दूर कर सकता है, उसने

निष्कर्ष निकाला कि दशाबल (बुद्ध) के सिवा कोई नहीं है, और यह सोचते हुए, "मैंने तथागत (बुद्ध) के विरुद्ध बहुत बड़ा पाप किया है: वास्तव में कौन मुझे उनकी उपस्थिति में ले जाएगा?" और यह निष्कर्ष निकालते हुए कि जीवक के सिवा कोई नहीं है, उसने उसे अपने साथ ले जाने का कोई उपाय सोचा, और आनंद से चिल्लाते हुए, "हे प्रभु, कितनी सुंदर निर्मल रात है," उसने कहा, "क्या होगा यदि आज हम किसी भिक्षु या ब्राह्मण को प्रणाम करें?" और जब पुराण (*2) और अन्य गुरुओं के गुणों का उनके संबंधित शिष्यों द्वारा गुणगान किया गया, तो उनकी बातों पर ध्यान दिए बिना उसने जीवक से प्रश्न पूछे, और जब जीवक ने तथागत (बुद्ध) के गुणों का वर्णन करते हुए कहा, "महाराज भगवान बुद्ध को प्रणाम करें," तो उसने हाथी रथ तैयार करने का आदेश दिया और जीवक के आम के बाग में चला गया। तथागत (बुद्ध) के समक्ष प्रणाम करते हुए और उनके स्नेहपूर्ण अभिवादन को स्वीकार करते हुए, उन्होंने इस जीवन में तपस्या के फल के बारे में पूछा, तथागत (बुद्ध) से इस विषय पर मधुर प्रवचन सुनने के बाद, प्रवचन के अंत में उन्होंने अपने शिष्यत्व की घोषणा की, और तथागत (बुद्ध) से मेल-मिलाप होने के बाद वे अपने मार्ग पर चले गए। तब से वे दान-पुण्य करते हुए और नैतिक नियमों का पालन करते हुए तथागत (बुद्ध) के साथ जुड़े रहे।और उनके धार्मिक मार्ग पर दिए गए मधुर प्रवचन को सुनकर और एक गुणी मित्र की संगति में रहकर, उनके भय कम हो गए और उनका डर गायब हो गया, और उन्हें मन की शांति प्राप्त हुई और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक चारों प्रकार के आचरणों का पालन किया। फिर एक दिन उन्होंने सत्य के हॉल में चर्चा शुरू की और कहा, "महोदय, अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या करने के बाद भय का अनुभव किया और अपने राजसी वैभव में आनंद न पाकर प्रत्येक आसन में पीड़ा का अनुभव किया। तब वे तथागत (बुद्ध) के पास गए और एक गुणी मित्र की संगति से उनका भय दूर हो गया और उन्होंने प्रभुत्व के सुख का अनुभव किया।" गुरु आए और पूछा, "भाइयों, आप लोग इस सभा में किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" और जब उन्होंने उन्हें विषय बताया, तो उन्होंने कहा, "न केवल अभी, बल्कि पुराने समय में भी, इस व्यक्ति ने अपने पिता की हत्या करने के बाद, मेरे माध्यम से मन की शांति प्राप्त की थी," और उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले बनारस में ब्रह्मदत्त के एक पुत्र, राजकुमार ब्रह्मदत्त का जन्म हुआ। उसी समय कुलपुजारी के घर में बोधिसत्व का गर्भ धारण हुआ। जन्म के समय उनका नाम नन्हा सामकिच्चा रखा गया। दोनों बालक महल में साथ पले-बढ़े और घनिष्ठ मित्र बन गए। तक्षशिला में सर्वप्रसिद्धि प्राप्त करने के बाद जब वे वयस्क हुए तो घर लौट आए। तब राजा ने अपने पुत्र को उपसराय नियुक्त किया और बोधिसत्व अब भी उसके साथ ही रहते थे। एक दिन उपसराय ने जब अपने पिता को आनंद उद्यान में विश्राम करने के लिए भेजा, तो उनकी महान महिमा को देखकर उसके मन में उसे पाने की लालसा उत्पन्न हुई। उसने सोचा, "मेरे पिता तो भाई के समान हैं; यदि मैं उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहूँ, तो सिंहासन पर बैठने से पहले ही मैं बूढ़ा हो जाऊँगा। तब राज्य प्राप्त करने का क्या लाभ? मैं अपने पिता को मार डालूँगा और स्वयं राजा बन जाऊँगा।" उसने बोधिसत्व को अपने विचार बताए। बोधिसत्व ने इस विचार को अस्वीकार करते हुए कहा, “मित्र, पिता की हत्या एक गंभीर मामला है। यह नरक का मार्ग है। तुम्हें यह कार्य नहीं करना चाहिए। कृपया उसे मत मारो।” लेकिन उन्होंने बार-बार इस बात का जिक्र किया और उनके मित्र ने तीसरी बार उनका विरोध किया। तब उन्होंने अपने सेवकों से परामर्श किया और वे इस विचार से सहमत हो गए और राजा की हत्या की योजना बनाई। लेकिन बोधिसत्व ने यह सुनकर सोचा, “मैं ऐसे लोगों के साथ विवाह नहीं करूंगा,” और अपने माता-पिता से विदा लिए बिना एक घर के द्वार (*3) से भाग निकले और हिमालयी क्षेत्र में छिप गए। वहाँ उन्होंने तपस्वी जीवन को अपनाया और समाधि-स्थल ध्यान से उत्पन्न अलौकिक शक्तियों को प्राप्त किया, जड़ों और जंगली बेरों पर जीवन व्यतीत किया। लेकिन राजकुमार ने, अपने मित्र के चले जाने के बाद, अपने पिता की हत्या कर दी और महान यश प्राप्त किया। यह सुनकर कि युवा समकिच्च ने तपस्वी जीवन अपना लिया है, अच्छे परिवारों के कई युवकों ने संसार त्याग दिया और उनसे तपस्वी जीवन की दीक्षा ली। और वह वहाँ तपस्वियों के एक विशाल समूह से घिरे हुए रहते थे, जिनमें से सभी सिद्धियाँ प्राप्त कर चुके थे। राजा ने अपने पिता की हत्या करने के बाद थोड़े समय के लिए राज-काज का आनंद लिया, फिर भयभीत होकर उनका मन विचलित हो गया और वे नरक में दंड पाकर (*4) मानो नरक में पहुँच गए हों। तब बोधिसत्व को याद करते हुए उन्होंने सोचा, "मेरे मित्र ने मुझे रोकने का प्रयास किया था, यह कहते हुए कि पिता की हत्या एक गंभीर अपराध है, लेकिन मुझे समझाने में असफल होकर वे अपराधबोध से बचने के लिए भाग गए। यदि वे यहाँ होते, तो वे मुझे अपने पिता की हत्या नहीं करने देते और मुझे इस भय से मुक्त कर देते। वे कहाँ रह रहे होंगे? यदि मुझे पता होता कि वे कहाँ रह रहे हैं, तो मैं उन्हें बुलवा लेता। कौन मुझे उनका पता बता सकता है?" तब से वे हरम और दरबार दोनों में बोधिसत्व की स्तुति करते रहे। बहुत समय बाद, जब वे हिमालय में पचास वर्ष बिता चुके थे, तब बोधिसत्व ने सोचा, "राजा मुझे याद करते हैं। मुझे उनके पास जाना चाहिए और उन्हें धर्म का मार्ग सिखाना चाहिए और उनके भय को दूर करना चाहिए।""पचास सौ तपस्वियों के साथ वे वायु में विचरण करते हुए दयापस्सा नामक उद्यान में उतरे और अपने तपस्वियों के समूह से घिरे हुए एक पत्थर की शिला पर बैठ गए। उद्यान के रखवाले ने उन्हें देखकर पूछा, "हे पूज्यवर, तपस्वियों के इस समूह के नेता कौन हैं?" यह जानकर कि वे ऋषि समकिच्च हैं, और उन्हें पहचानते हुए उन्होंने कहा, "हे प्रभु, जब तक मैं राजा को न ले आऊं, तब तक यहीं ठहरिए। वे आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं।" और प्रणाम करते हुए वे शीघ्र ही महल गए और राजा को अपने मित्र के आगमन की सूचना दी। राजा उनसे मिलने आए और सभी शिष्टाचार का पालन करते हुए उनसे एक प्रश्न पूछा।"

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

ब्रह्मदत्त को इस प्रकार राजसी ठाठ-बाठ में सिंहासन पर विराजमान देखकर उन्होंने कहा, "हे महाराज, वह मित्र जिस पर आप दया करते हैं,

देखो! समकिक्का यहाँ हैं—वे संतों में सर्वोपरि हैं।
जल्दी से निकल पड़ो और इस पवित्र ऋषि से मिलने में देरी मत करो।
इसलिए, अपने आदेश पर तैयार किए गए रथ पर शीघ्रता से सवार होकर, दरबारी मित्रों से घिरे राजा अपने लक्ष्य की ओर चल पड़े।

राजसी वैभव के पांच प्रतीक चिन्हों को काशी स्वामी ने सीधे हटा दिया, जिनमें छाता, पगड़ी, याक की पूंछ का पंखा, जूते और उनकी तलवार शामिल थे।

फिर राजा अपने रथ से उतरकर, अपने चमकीले वस्त्रों को उतारकर, दयापस्सा उद्यान की ओर चल पड़े, जहाँ समकिच्चा विराजमान थे।

राजा पास आया और दरबारी भाषा में उनका अभिवादन करते हुए, पुराने दिनों में हुई उनकी बातचीत को याद किया।

और जब वह उसके बगल में बैठा था, तभी उचित अवसर आने पर, उसने तुरंत पाप कर्मों के बारे में एक प्रश्न पूछने का निर्णय लिया।

"संतों के समूह के स्वामी, महान ऋषि, समकिच्चा, जिन्हें मैं यहाँ देखता हूँ"
दयापासा पार्क में बैठकर, मैं खुशी-खुशी आपसे सवाल पूछूंगा।
मृत्यु के बाद पापियों का क्या होता है? वे किस अवस्था में जन्म लेते हैं?
मैंने भी धार्मिक मार्ग से भटककर गलती की है। कृपया शीघ्र उत्तर दें।
मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

समकिक्का ने दयापस्सा के मैदानों में बैठे काशी राज्य के शासक राजा को संबोधित करते हुए कहा, "हे महाराज, जान लीजिए और समझ लीजिए:

यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को सही राह दिखाएँ जो पूरी तरह से भटक गया हो,
और उसे आपकी सलाह माननी चाहिए, उसके रास्ते में कोई बाधा नहीं आएगी।
लेकिन जो बुरे रास्तों पर चलता है, यदि तुम उसे सही ढंग से निर्देशित करो,
और उसे आपकी सलाह माननी चाहिए, जिससे वह कष्टों से भरी विकट स्थिति से बच सके।
इस प्रकार उन्होंने राजा को सलाह दी और उन्हें धर्म की शिक्षा भी दी, यह कहते हुए--

दायाँ रास्ता, उच्च मार्ग के समान है।
गलत होना तो बस एक गौण मार्ग है।
स्वर्ग का अधिकार तो अवश्य ही अपना रास्ता बना लेता है।
गलत राह पर चलना मनुष्य को नरक की ओर ले जाता है।
हे प्रभु, जो मनुष्य व्यवस्था का उल्लंघन करते हैं और अधर्मी जीवन जीते हैं,
मृत्यु के बाद नरक में उनका क्या हश्र होता है, यह मुझसे सुनो।
संजीव, कलासुत्त और रोरुवा, बड़े और छोटे,
संघता, महान अविची, ये ऐसे नाम हैं जो शायद भयभीत कर सकते हैं।
तपना और पटापना सहित कुल आठ प्रमुख नरक हैं।
यहां से भागना असंभव है, और वे उस्सादास के बारे में बताते हैं।
(*5) संख्या में दुगुना आठ गुना अधिक, एक प्रकार का छोटा नरक--
यहां भयानक ज्वालाएं पापी मनुष्यों को यातना देती हैं, अनेक प्रकार के क्रूर कर्म होते हैं।
भय, विस्मय, पीड़ा, कष्ट और आतंक का माहौल छाया हुआ है।
चार दरवाजों वाला चार वर्गाकार भाग उचित अनुपात में दूरी पर स्थित है।
लोहे के गुंबद से ढका हुआ, लोहे की दीवार से घिरा हुआ,
लोहे से बना इसका आधार ऐसा है कि तेज आग भी इसे पिघला नहीं सकती।
हालांकि, इसके चारों ओर सौ लीग (x 4.23 किमी) के दायरे में भी इसकी प्रचंड शक्ति का अनुभव होता है।
जिन लोगों ने संतों का अपमान किया है या पवित्र पुरुषों को चोट पहुंचाई है, उन सभी के साथ ऐसा हुआ है।

सीधे नरक की खाई में गिर जाओ, फिर कभी उठ न पाओ।
उनकी क्षत-विक्षत काया दयनीय स्थिति में थी, टुकड़ों-टुकड़ों में बिखरी हुई उनकी काया, जैसे टोस्ट पर मछली।
अपने कुकर्मों के कारण अनगिनत वर्षों तक नरक में जलने के लिए अभिशप्त हैं।
उनके अंग जलती हुई गर्मी से झुलस गए थे, वे भय को शिकार बनाकर यातना देने लगे थे।
नरक से भागने की उनकी तीव्र इच्छा के बावजूद, उन्हें कभी कोई रास्ता नहीं मिलता।
पूरब या पश्चिम की ओर आने-जाने का रास्ता ढूंढते हुए वे उड़ान भरते हैं।
या फिर हताशा में उत्तर या दक्षिण की ओर हड़बड़ी मचाते हुए, एक निंदनीय खोज को अंजाम देना।
क्योंकि देवता (देवदूत) वहां मौजूद हैं जो उनके रास्ते में रुकावट डालेंगे, चाहे वे कोई भी दरवाजा खोलने की कोशिश करें।
बेचारे, हजारों वर्षों तक वे नरक के क्षेत्र में निवास करते हैं।
वे बाहें फैलाकर अपने असहनीय दर्द पर शोक व्यक्त करते हैं।
जैसे घातक विषैले सांप को भड़काना ही घातक होता है,
तपस्वी व्रतों से बंधे हुए संतों पर आक्रमण करने से बचें।
अज्जुना (*6), केककास के स्वामी, महान धनुर्धर, जिन्होंने नाराज किया
गौतम, अपने भारी-भरकम शरीर और हजार भुजाओं के बावजूद, नष्ट हो गया।
तो दण्डकी (*6) ने किसवाच्चा को, पापरहित को अपवित्र किया,
जैसे ताड़ के पेड़ को जड़ से काट दिया जाए, वह पूरी तरह से नष्ट हो जाता है।
मेज्जा (*7) प्रसिद्ध मतंगा के कारण अपने गौरवशाली स्थान से गिर गया,
वह भूमि वीरान हो गई और राजा और लोग मर गए।
विष्णु वंश के पुरुषों ने काले दीपायाना (*8) पर आक्रमण किया।
अंधकों (*9) ने यमलोक की खोज की, और दोनों एक दूसरे की गदा से मारे गए।
एक ऋषि द्वारा शापित, सेक्का, जो कभी हवा में चल सकती थी, ऐसा कहते हैं।
वह अपने नियत दिन पर खो गया और धरती में समा गया।
अपनी मनमानी करने वाला मूर्ख कभी भी बुद्धिमानों की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकता।
लेकिन कपट रहित आत्माएं, सत्य से परिपूर्ण होने के कारण, झूठ बोलने में संकोच करती हैं।
जो कोई भी किसी बुद्धिमान और पवित्र व्यक्ति को पकड़ने के लिए घात लगाकर बैठा हो,
नरक में धकेले जाने पर उसे जल्द ही अपने दुष्ट इरादे पर पछतावा होगा।
लेकिन कौन विश्वासघाती क्रूरता से वृद्ध संतों पर हमला करेगा?
यह मरते हुए ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह, निःसंतान और उत्तराधिकारीहीन होकर विफल हो जाएगा।
जिस किसी को भी कोई महान ऋषि, तपस्वी जीवन का पुरोहित, मार डाले,
कलासुत्त नरक में अनेक दिनों तक यातनाएं सहनी पड़ेंगी।
और यदि कोई दुष्ट मागा राजा अपने राज्य पर कब्जा कर ले,
तपना में मरने के बाद उसे भी वैसी ही पीड़ा सहनी पड़ेगी।
एक लाख वर्षों तक, जिस प्रकार देवता (देवदूत) वर्षों की गणना करते हैं, उसे निवास करने के लिए अभिशप्त होना पड़ेगा।
जलती हुई ज्वाला के वस्त्र में लिपटा हुआ, नरक की पीड़ाओं के बीच।
उसके पीड़ाग्रस्त शरीर से चारों ओर से आग की तेज लपटें निकल रही थीं।
उसके अंग, बाल, नाखून और सब कुछ, आग को और भड़काने का काम करते हैं।
और जैसे-जैसे उसका शरीर तेजी से जलने लगता है, वह दर्द से पूरी तरह तड़पने लगता है,
जैसे किसी कोड़े से घायल हाथी, बेचारा, वह बहुत दहाड़ता है।
हे नीच प्राणी, जो कोई लोभ या घृणा के कारण अपने पिता की हत्या करेगा,
कलासुत्त नरक में लंबे समय तक अग्नि में कष्ट भोगना पड़ेगा।
लोहे के कड़ाहे में तब तक उबाला गया जब तक उसकी त्वचा न छिल जाए।
माता-पिता के हत्यारे को लोहे के भालों से छेद दिया गया।
फिर अंधा करके और गंदगी में खाने के लिए अभिशप्त कर दिया गया
उसे अपने किए का प्रायश्चित करने के लिए खारे पानी में डुबो दिया गया है।
फिर उसके जबड़ों के बीच में भूत-प्रेत आ जाते हैं, अन्यथा वे बंद हो जाने चाहिए।
बीच में गर्म लोहे की गेंद या हल का फाल,
इन रस्सियों से उसके मुंह को इतनी मजबूती से सहारा दिया गया था,
उसमें गंदगी की धारा गिर सकती है।

काले और भूरे दोनों प्रकार के गिद्ध, और कौवे भी।
और लोहे की चोंच वाले पक्षी, एक विविध दल,
अपनी जीभ को छोटे-छोटे टुकड़ों में फाड़ते हुए,
कांपते हुए उस टुकड़े को खून समेत निगल जाओ।
बौने इधर-उधर घूम रहे थे
उस दुष्ट पर अनेक प्रहार करो।
उसकी झुलसी हुई छाती या टूटे हुए अंग पर
वे क्रूरतापूर्वक खुशी से उसे घूंसे मारते हैं।
उन्हें आनंद तो मिलेगा, लेकिन कष्ट भी सहने पड़ेंगे।
ऐसे नरक में रहने वाले सभी लोग
माता-पिता की हत्या जैसे सांसारिक अपराध के लिए।
जो पुत्र अपनी माता की हत्या करता है, उसे सीधे यमलोक भेजा जाता है।
अपने इस कृत्य के प्रतिशोध में उसे उचित दंड मिले।
वहां शक्तिशाली राक्षस दोषी मां के हत्यारे को जकड़ लेते हैं।
और लोहे के फालों से हल चलाते हुए उसकी पीठ पर गहरी और चौड़ी क्यारियाँ बन जाती हैं।
उसके घावों से बहता खून पिघले हुए तांबे की तरह था, वे उसे ले गए।
और इसे उस पापी को दे दो, ताकि उसकी जलती हुई प्यास मिट सके।
वह खून के थक्के से भरे लाल रंग के तालाब में डूबा खड़ा है।
सड़ते हुए मांस की दुर्गंध, घिनौनी या बदबूदार मिट्टी में सांस लेना।
लोहे के मुंह वाले विशालकाय कीड़े, जो अपने शिकार की त्वचा को छेदते हैं,
उसके मांस को बड़े लालच से खाओ और उसका खून चूस लो।
नरक में सौ फैदम (6 फीट) की गहराई में पीड़ित डूबता जाता है।
जबकि सौ मील (4.23 किमी) के दायरे में मृत शरीर से बदबू आ रही थी।
हे राजा, दुर्गंध के कारण ही उसकी यह दयनीय स्थिति है।
हालांकि कभी उनकी दृष्टि बहुत तेज थी, लेकिन अब वे अपनी दृष्टि खो बैठे हैं।
खुराधारा के नरक से बाहर निकला, उस भयानक कारागार से भागना मुश्किल था,
गर्भपात के पैरोकार आपकी भयानक धारा से नहीं बचेंगे, वेतरानी (*10)।
कहा जाता है कि रेशम-कपास के पेड़ों पर लोहे से बने एक फुट लंबे कांटे होते हैं।
वेतरानी नदी के दोनों किनारों पर, तुम्हारी उदास पलंग की छाया छाई रहती है।
सभी ज्वालाओं से घिरे हुए, आग के एक विशाल पिंड की तरह, वे आकाश के विरुद्ध खड़े हैं।
और सभी ऊंचे टावर शानदार रोशनी से जगमगा रहे थे, जो पूरी एक लीग (4.23 किमी) की ऊंचाई पर स्थित थे।
यहां नुकीले कांटों पर जड़े हुए, नरक में धधकते हुए दिखाई देते हैं।
बेवफा पति, दोषी पत्नियां, पूरा व्यभिचारी गिरोह।
कोड़ों की मार से बेहाल होकर वे सिर के बल गिरते हैं, उड़ान भरते हुए चक्कर लगाते हैं।
और वहां वे क्षत-विक्षत अंगों के साथ पूरी रात जागते रहते हैं।
भोर होते ही वे लोहे के कड़ाहे (*11) में छिप जाते हैं, जो प्रसिद्धि के लिए जाना जाता है।
यह पहाड़ जितना विशाल है और आग की लपटों की तरह पानी से भरा हुआ है।
इस प्रकार, ये पापी दिन-रात कुकर्मों के आवरण में लिपटे रहते हैं, मानो कोई चोला पहने हों।
उनके पुराने बुरे कर्मों का उचित दंड उन्हें भुगतना पड़ेगा।
जो कोई पत्नी बनकर अपने सोने से किसी की वस्तु खरीदती है, वह अपने पति को तुच्छ समझेगी।
या वह अपने मित्रों और परिवार को सदा तिरस्कार भरी नजरों से देखेगा।
हुक और धागे से खींची गई उसकी जीभ असहनीय पीड़ा झेलेगी।
वह अपनी जीभ को कीड़ों से भरी हुई देखती है, फिर भी शिकायत नहीं कर सकती।
तपना में असहनीय पीड़ा सहते हुए, वह अनिवार्य रूप से चुप रही।
भेड़ों, सूअरों और गायों के हत्यारे, और शिकार के अनुयायी,
मछुआरे, लुटेरे, सभी क्रूर, बहाने बना रहे हैं मानो ये सब जायज हो।
तलवारों और लोहे के डंडों से हमला किए गए, ये खूनी लोग,
भाले और बाणों से पीछा किए जाने पर वे खारे पानी की बाढ़ में गिर जाते हैं।

जाली दस्तावेज़ बनाने वाला, लोहे के डंडे से दिन-रात परेशान होता रहा।
यह केवल किसी बदकिस्मत बदमाश द्वारा की गई गंदी उल्टी से ही अपना पेट भरता है।
कौवे, रेवेन, गिद्ध, सियार भी, सभी लोहे के जबड़े से लैस हैं।
उस तड़पते हुए बेचारे को उनके अतृप्त पेट में जिंदा दफना दिया गया।
जो कोई पशु (*12) से पशु का शिकार करके उसे मार डालेगा, या पक्षी से पक्षी को मार डालेगा,
पाप से व्याकुल होकर नरक में गिरेंगे, और उस शापित दिन पर पछताएंगे।
इस प्रकार राजा ने इन सभी नरकों का वर्णन किया, और फिर पृथ्वी में एक छेद बनाकर उसने राजा को स्वर्गदूतों के लोक दिखाए और कहा:

प्राचीन काल से पृथ्वी पर संचित सद्गुणों के माध्यम से अच्छे लोग स्वर्ग प्राप्त करते हैं।
यहां ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), देव (देवदूत), इंद्र (देवदूतों के राजा), देखो! पुण्य का पका हुआ फल प्राप्त करो।
इसलिए मैं कहता हूँ, हे मेरे राजा, अपने राज्य में न्यायपूर्ण शासन करो।
क्योंकि न्याय किया जाना ही पुण्य का फल है, और इससे कभी पछतावा नहीं होता।
उस महान सत्ता के धार्मिक प्रवचन को सुनकर राजा को तुरंत शांति मिली। और बोधिसत्व कुछ समय वहाँ रहने के बाद अपने निवास स्थान पर लौट गए।

गुरु ने यहाँ अपनी कहानी समाप्त करते हुए कहा, "न केवल अभी, बल्कि पुराने समय में भी मैंने ही उन्हें सांत्वना दी थी," और उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय अजातशत्रु राजा थे, बुद्ध के अनुयायी तपस्वियों का समूह बनाते थे, और मैं स्वयं ऋषि समकिच्चा था।"

फुटनोट:

(1) कोमुदी, कत्तिका माह की पूर्णिमा का दिन।

(2)पुराण के स्थान पर पुराण, अर्थात् पुराण कश्यप। देखें दीघा निकाय, द्वितीय. 2, जहाँ नाम पुराण के रूप में प्रकट होता है।

(3) जब भी कोई व्यक्ति बिना किसी की नज़र में आए घर से बाहर जाना चाहता है, तो वह मुख्य द्वार के बजाय अगदवरम (संभवतः बगल का या पीछे का द्वार) से बाहर जाता है। (तुलना करें जातक, खंड I. 114, खंड V. 132, पाली पाठ)

(4)कम्मकरण पढ़ना। पाली टेक्स्ट सोसाइटी जर्नल, 1884, पृष्ठ 76 में इस शब्द पर मॉरिस की टिप्पणी देखें।

(5)विद्वानों ने उस्सादा नरकों की संख्या 128 बताई है। सी.एफ. एल'एनफर इंडियन पार एमएल फीयर, जर्नल एशियाटिक, 1892 (VIII. क्रमांक 20), पीपी. 185 वर्गमीटर। पंचगती-दीपना, पाली पाठ सोसायटी। जर्नल. 1884. सेनार्ट का महावस्तु, I. 4. 12--27. 1 (पृष्ठ XXII पर सारांश)। शिक्षासमुक्कया, एड. बेंडल, पीपी. 69-73.

(6)वॉल्यूम. वि. सं. 522, सरभंगा जातक, पृ. 72, अंग्रेजी संस्करण.

(7)वॉल्यूम. चतुर्थ. क्रमांक 497, मतंग जातक, पृ. 244, अंग्रेजी संस्करण।

(8)वॉल्यूम. चतुर्थ. क्रमांक 454, घट जातक, पृ. 53-7, अंग्रेजी संस्करण।

(9) खंड V. संख्या 512, कुंभ जातक, पृष्ठ 10, अंग्रेजी संस्करण।

(10) नरक में एक नदी.

(11) जातक, तृतीय पृ. 29 (अंग्रेजी संस्करण).

(12) इसका तात्पर्य कुत्तों या चीता से हिरण का शिकार करना होगा।

पुस्तक XX. सत्ततिनिपाता:

पिछला <<<<-----II-531-II---->>>> अगला

जातक क्रमांक 531
कुसा जातक। (*1)

"यह लोक," इत्यादि। यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए एक पथभ्रष्ट भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कथा के अनुसार, वह कुलीन कुल में जन्मे थे और श्रावस्ती नगर में रहते थे। उन्होंने धर्म को पूर्णतः ग्रहण कर लिया और तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन जब वे श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने निकले, तो उनकी मुलाकात एक सुंदर स्त्री से हुई और पहली ही नज़र में वे उससे मोहित हो गए। अपने प्रेम में व्याकुल होकर वे दुखी जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने अपने नाखून और बाल लंबे कर लिए और गंदे वस्त्र धारण कर लिए। हृदय विक्षिप्त होकर वे दुर्बल हो गए और पीले पड़ गए, उनके शरीर की नसें उभरने लगीं। और जैसे स्वर्गदूतों की दुनिया में, जो लोग अपने स्वर्गीय अस्तित्व से गिरने वाले होते हैं, उनमें पाँच सुप्रसिद्ध लक्षण प्रकट होते हैं, अर्थात् उनके हार मुरझा जाते हैं, उनके वस्त्र मैले हो जाते हैं, उनका शरीर कुरूप हो जाता है, उनकी बगलों से पसीना बहता है, और उन्हें अपने स्वर्गदूतों के घर में आनंद नहीं मिलता, वैसे ही सांसारिक भाइयों के मामले में, जो विश्वास से गिर जाते हैं, वही पाँच लक्षण दिखाई देते हैं: विश्वास के फूल मुरझा जाते हैं, धर्म के वस्त्र मैले हो जाते हैं, असंतोष और बदनामी के प्रभाव से उनका शरीर कुरूप हो जाता है, भ्रष्टाचार का पसीना उनसे बहता है और उन्हें वन वृक्षों की तलहटी में एकांत जीवन में आनंद नहीं मिलता—ये सभी लक्षण उसमें पाए गए। इसलिए वे उसे गुरु के समक्ष लाए और कहा, "हे प्रभु, यह व्यक्ति असंतुष्ट है।" गुरु ने पूछा कि क्या यह सच है, और जब उन्होंने स्वीकार किया कि यह सच है, तो उन्होंने कहा, "भाई (भिक्षु), पाप के गुलाम मत बनो। यह एक दुष्ट स्त्री है; उसके प्रति अपने प्रेम पर काबू पाओ, धर्म में सुख पाओ। सचमुच, स्त्री के प्रेम में पड़ने से प्राचीन काल के ऋषि, चाहे वे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों, अपनी शक्ति खो बैठे और दुख और विनाश की ओर बढ़ गए।" और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, मल्ल राज्य में, कुसावती (*2) के राज नगर में, राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन करते थे। उनकी सोलह हजार पत्नियों में प्रमुख उनकी रानी सिलावती थीं। अब उनके न तो पुत्र थे और न ही पुत्री, और नगर के पुरुष और उनकी सारी प्रजा महल के द्वार पर एकत्रित होकर शिकायत करने लगे कि राज्य का विनाश हो जाएगा। राजा ने अपनी खिड़की खोली और कहा, "मेरे शासन में कोई भी पाप नहीं करता। तुम मुझे क्यों धिक्कारते हो?" "जी महाराज, यह सच है, कोई पाप नहीं करता, लेकिन आपके यहाँ कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है जो वंश को आगे बढ़ा सके: कोई अजनबी राज्य पर कब्जा कर लेगा और उसे नष्ट कर देगा। इसलिए एक ऐसे पुत्र के लिए प्रार्थना करें जो आपके राज्य पर विधिपूर्वक शासन कर सके।" "पुत्र की मेरी इच्छा में मैं क्या करूँ?" "सबसे पहले, एक सप्ताह तक निम्न श्रेणी की नाचने वाली स्त्रियों का एक समूह (*3) सड़कों पर भेजो—इस कार्य को धार्मिक अर्थ देते हुए—और यदि उनमें से कोई पुत्र को जन्म दे, तो अच्छा है। अन्यथा, अच्छी प्रतिष्ठा वाली स्त्रियों का एक समूह भेजो, और अंत में उच्च श्रेणी की स्त्रियों का एक समूह भेजो। निश्चित रूप से इतनी स्त्रियों में से कोई न कोई स्त्री पुत्र को जन्म देने के लिए पर्याप्त गुणवान होगी।" राजा ने वैसा ही किया जैसा उन्होंने उससे कहा था, और हर सातवें दिन वह उन सभी से पूछता जो आनंद लेने के बाद लौट आई थीं, कि क्या उनमें से कोई गर्भवती हुई है। और जब सभी ने उत्तर दिया, "नहीं, महाराज," तो राजा निराश हो गया और रोते हुए बोला, "मुझे कोई पुत्र नहीं होगा।" नगरवासियों ने फिर से पहले की तरह उसे फटकारा। राजा ने कहा, "तुम मुझे क्यों फटकारते हो? तुम्हारे कहने पर स्त्रियों के समूह सड़कों पर उतारे गए, और उनमें से कोई भी गर्भवती नहीं हुई। अब मैं क्या करूँ?" "महाराज," उन्होंने उत्तर दिया, "ये स्त्रियाँ अवश्य ही अनैतिक और पुण्यहीन हैं। इनमें पुत्र को जन्म देने की पर्याप्त योग्यता नहीं है। परन्तु यद्यपि वे गर्भ धारण नहीं कर पा रही हैं, इसलिए आप अपने प्रयास न छोड़ें। रानी की पत्नी, सिलावती, एक गुणी स्त्री हैं। उन्हें सड़कों पर भेज दीजिए। उन्हें पुत्र का जन्म होगा।" राजा तुरंत सहमत हो गए और ढोल बजाकर घोषणा की कि उस समय से सातवें दिन जनता एकत्रित होगी और राजा सिलावती को सड़कों पर छोड़ देंगे—इस प्रकार उन्होंने इस कार्य को धार्मिक स्वरूप दिया। और सातवें दिन उन्होंने रानी को भव्य वस्त्र पहनाकर महल से नीचे उतारा और सड़कों पर छोड़ दिया। उनके पुण्य के प्रभाव से सक्का (इंद्र) के निवास में ऊष्मा के लक्षण प्रकट हुए। सक्का (इंद्र) ने इसका अर्थ समझते हुए पाया कि रानी पुत्र के लिए व्याकुल थीं और उन्होंने सोचा, "मुझे उन्हें पुत्र प्रदान करना चाहिए," और यह सोचते हुए कि क्या देवदूतों के लोक में कोई ऐसा है जो उनका पुत्र बनने योग्य हो, उन्होंने बोधिसत्व को देखा। ऐसा कहा जाता है कि उस समय, तैंतीस स्वर्ग में अपना जीवन व्यतीत करने के बाद, वे उच्चतर लोक में जन्म लेने की लालसा रखते थे। सक्का (इंद्र) उनके निवास स्थान के द्वार पर आकर उन्हें बुलाते हुए बोले, "महोदय, आपको मनुष्यलोक में जाना है और ओक्काका (इक्ष्वाकु) की प्रमुख पत्नी के पुत्र के

रूप में जन्म लेना है।"फिर उन्होंने एक अन्य दिव्य प्राणी की सहमति प्राप्त की और कहा, "और तुम भी उसके पुत्र बनोगे," और ताकि कोई भी पुरुष उसकी पवित्रता को भंग न कर सके, सक्का (इंद्र) एक वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके महल के द्वार पर गए। लोग, स्नान और श्रृंगार करने के बाद, रानी को पाने की इच्छा से राज द्वार पर एकत्रित हुए, लेकिन सक्का (इंद्र) को देखकर वे हँसने लगे और उनसे पूछने लगे कि वे क्यों आए हैं। सक्का (इंद्र) ने कहा, "मुझे दोष क्यों दे रहे हो?" "भले ही मैं शारीरिक रूप से बूढ़ा हूँ, मेरी वासनाएँ अभी भी अनियंत्रित हैं, और मैं सिलावती को अपने साथ ले जाने की आशा से आया हूँ, अगर वह मुझे मिल जाए।" और इन शब्दों के साथ, अपनी दिव्य शक्ति से वह उन सबके सामने आ गया, और अपने भीतर के सद्गुण के कारण कोई भी उसके सामने खड़ा नहीं हो सका, और जैसे ही रानी अपने पूरे वैभव के साथ महल से बाहर निकली, उसने उसका हाथ पकड़ा और उसे अपने साथ ले गया। तब वहाँ खड़े लोगों ने उसे कोसते हुए कहा, "उस पर लानत है, एक बूढ़ा ब्राह्मण असाधारण सुंदरता वाली रानी को ले गया है: उसे पता नहीं कि उसे क्या शोभा नहीं देता।" रानी ने भी सोचा, "एक बूढ़ा आदमी मुझे ले जा रहा है।" और वह नाराज़ और क्रोधित (*4) थी, बल्कि घृणा से भर गई। राजा खुली खिड़की पर खड़ा यह देखने के लिए देख रहा था कि रानी को कौन ले जा रहा है, उसे देखकर वह बहुत अप्रसन्न हुआ। सक्का (इंद्र), उसे लेकर नगर द्वार से भागते हुए, चमत्कारिक रूप से पास ही एक घर प्रकट कर दिया, जिसका दरवाजा खुला था और लकड़ियों का एक गट्ठा तैयार रखा था। "क्या यह “आपका निवास?” उसने पूछा। “जी, देवी, अब तक मैं अकेला था: अब हम दो हैं। मैं अपने चक्कर लगाता हूँ और कुछ भुट्टा घर लाता हूँ। इस बीच आप लकड़ियों के इस ढेर पर लेट जाइए।” ऐसा कहकर उसने धीरे से उसे अपने हाथ से सहलाया, जिससे दिव्य स्पर्श से वह सिहर उठी। फिर उसने उसे वहीं लिटा दिया, और उसके स्पर्श से वह बेहोश हो गई। फिर उसने अपनी अलौकिक शक्ति से उसे तैंतीसवें स्वर्ग में पहुँचाया और एक भव्य महल में एक दिव्य पलंग पर बिठा दिया। सातवें दिन जागने पर उसने यह वैभव देखा और जान गई कि यह कोई ब्राह्मण नहीं, बल्कि स्वयं सक्का (इंद्र) हैं। उस समय सक्का (इंद्र) एक मूंगा वृक्ष के चरणों में बैठे थे, उनके चारों ओर दिव्य नर्तकियाँ थीं। अपने पलंग से उठकर वह उनके पास गई और देवदूत को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़ी हो गई। तब सक्का (इंद्र) ने कहा, “मैं तुम्हें एक वरदान देता हूँ: जो चाहो चुन लो।” "तो मुझे एक पुत्र प्रदान कीजिए, महाराज।" "केवल एक नहीं, देवी। मैं आपको दो पुत्र प्रदान करूँगा। उनमें से एक बुद्धिमान लेकिन बदसूरत होगा, दूसरा सुंदर लेकिन मूर्ख होगा। आप उनमें से पहले किसे चाहेंगी?" "बुद्धिमान को," उसने उत्तर दिया। "अच्छा," उसने कहा, और उसने उसे कुश घास का एक टुकड़ा, एक दिव्य वस्त्र, चंदन, मूंगा वृक्ष का फूल और एक कोकनादा (*5) वीणा भेंट की। फिर वह उसे राजा के शयनकक्ष में ले गया और उसे राजा के साथ उसी पलंग पर लिटा दिया, और केवल अपने अंगूठे से उसके शरीर को छुआ।और उसी क्षण बोधिसत्व का गर्भ उनके गर्भ में धारण हुआ। और सक्का (इंद्र) तुरंत अपने निवास स्थान लौट गए। बुद्धिमान रानी को पता चल गया था कि वह गर्भवती हैं। तब राजा ने जागकर उन्हें देखकर पूछा कि उन्हें यहाँ कौन लाया है। "सक्का (इंद्र) द्वारा, महाराज।" "अरे! मैंने अपनी आँखों से एक वृद्ध ब्राह्मण को आपको ले जाते हुए देखा है। आप मुझे धोखा क्यों दे रही हैं?" "मान लीजिए, महाराज, सक्का (इंद्र) मुझे अपने साथ देवलोक ले गए।" "देवी, मुझे विश्वास नहीं हो रहा।" तब उन्होंने राजा को वह कुश घास दिखाई जो सक्का (इंद्र) ने उन्हें दी थी और कहा, "अब विश्वास कीजिए।" राजा ने सोचा, "कुश घास तो कहीं भी मिल जाती है," और फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने राजा को अपने दिव्य वस्त्र दिखाए। इन्हें देखकर राजा को विश्वास हो गया और उन्होंने कहा, "प्रिय देवी, मान लिया कि सक्का (इंद्र) आपको ले गए, लेकिन क्या आप गर्भवती हैं?" "जी, महाराज, मैं गर्भवती हूँ।" राजा बहुत प्रसन्न हुए और गर्भवती महिला के कारण विवाह समारोह संपन्न कराया। दस महीने बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका कोई नाम न रखते हुए, उसका नाम घास के नाम पर कुशा रखा गया। जब राजकुमार कुशा चलने-फिरने लायक हुआ, तभी एक दूसरे दिव्य प्राणी का जन्म हुआ। उनका नाम जयमपति रखा गया। दोनों पुत्रों का पालन-पोषण बड़े ही शान-शौकत से हुआ। बोधिसत्व इतने बुद्धिमान थे कि अपने गुरु से कुछ भी सीखे बिना, उन्होंने अपनी योग्यता से सभी कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। जब वे सोलह वर्ष के हुए, तो राजा उन्हें राज्य सौंपने के लिए उत्सुक थे और उन्होंने रानी से कहा, "महारानी, आपके पुत्र को राज्य सौंपते समय, हम भव्य समारोह आयोजित करेंगे और अपने जीवनकाल में ही उन्हें सिंहासन पर स्थापित होते देखेंगे। यदि पूरे भारत में कोई ऐसी राजा की पुत्री हो जिसे आप पसंद करें, तो उनके यहाँ लाने पर हम उन्हें उनकी रानी बना देंगे। उनसे पूछिए कि वे किस राजा की पुत्री को पसंद करते हैं।" रानी तुरंत सहमत हो गईं और उन्होंने एक दासी को राजकुमार को यह बात बताने और उनकी राय जानने के लिए भेजा। वह गई और राजकुमार को सारी स्थिति बताई। उसकी बात सुनकर महान पुरुष ने सोचा, "मैं भाग्यशाली नहीं हूँ। एक सुंदर राजकुमारी, भले ही उसे मेरी दुल्हन बनाकर यहाँ लाया जाए, मुझे देखकर कहेगी, 'इस बदसूरत आदमी से मेरा क्या लेना-देना?' और भाग जाएगी, और हम शर्मिंदा होंगे। गृहस्थी से मेरा क्या लेना-देना? मैं अपने माता-पिता का जीवन भर भरण-पोषण करूँगा, और उनकी मृत्यु के बाद संसार त्यागकर संन्यासी बन जाऊँगा।" इसलिए उन्होंने कहा, "मुझे राज्य या उत्सवों की क्या आवश्यकता है? मेरे माता-पिता की मृत्यु के बाद, मैं संन्यासी जीवन अपना लूँगा।" दासी लौटकर रानी को उनके कहे हुए शब्द बताए। राजा बहुत दुखी हुए और कुछ दिनों बाद फिर संदेश भेजा, लेकिन उन्होंने फिर भी उसे सुनने से इनकार कर दिया। तीन बार प्रस्ताव ठुकराने के बाद, चौथी बार उन्होंने सोचा, "अपने माता-पिता के पूर्ण विरोध में रहना उचित नहीं है: मुझे कुछ उपाय करना होगा।" इसलिए उन्होंने मुख्य लोहार को बुलाया, और उसे कुछ सोना देकर,उसे एक स्त्री की मूर्ति बनाने को कहा गया। जब वह चला गया, तो उसने और सोना लिया और उससे स्वयं एक स्त्री की मूर्ति बनाई। सचमुच बुद्धों के उद्देश्य पूरे होते हैं। यह मूर्ति इतनी सुंदर थी कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। फिर उस महान व्यक्ति ने उसे लिनेन का वस्त्र पहनाकर राजकक्ष में रख दिया। जब मुख्य सुनार द्वारा लाई गई मूर्ति को देखकर उसने उसमें कुछ कमियां निकालीं और कहा, "जाओ और राजकक्ष में रखी मूर्ति को ले आओ।" वह व्यक्ति कमरे में गया और उसे देखकर सोचा, "यह अवश्य

ही कोई अप्सरा होगी, जो राजकुमार के साथ आनंद लेने आई होगी," और वह हाथ बढ़ाने का साहस न कर पाने के कारण कमरे से बाहर निकल गया और बोला, "महाराज, आपके राजकक्ष में देवदूतों की एक कुलीन पुत्री खड़ी है: मैं उसके पास जाने का साहस नहीं कर सकता।" "मित्र," उसने कहा, "जाओ और सोने की मूर्ति ले आओ," और दोबारा आदेश दिए जाने पर वह उसे ले आया। राजकुमार ने लोहार द्वारा बनाई गई मूर्ति को स्वर्ण कक्ष में फेंकने का आदेश दिया, और स्वयं द्वारा बनाई गई मूर्ति को सुशोभित करके रथ में स्थापित करवाया और अपनी माता को यह कहते हुए भेजा, "जब मुझे इस जैसी स्त्री मिलेगी, तो मैं उससे विवाह करूंगा।" उसकी माता ने अपने सलाहकारों को बुलाया और उनसे कहा, "मित्रों, हमारा पुत्र महान गुणों से परिपूर्ण है और इंद्र का वरदान है; उसे अपने योग्य राजकुमारी अवश्य मिलनी चाहिए। तो आप इस मूर्ति को एक रथ में स्थापित करवाकर भारत के कोने-कोने की यात्रा करें, और जो भी राजा की पुत्री इस मूर्ति के समान दिखाई दे, उसे उस राजा के समक्ष प्रस्तुत करें और कहें, 'राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) आपकी पुत्री से विवाह करेंगे।' फिर अपने लौटने का दिन तय करके घर आ जाएं।" उन्होंने कहा, "ठीक है," और मूर्ति लेकर अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर चल पड़े। और अपनी यात्राओं में, वे जिस भी राजनगर में जाते, शाम को जहाँ भी लोग एकत्रित होते, वे इस मूर्ति को वस्त्रों, फूलों और अन्य आभूषणों से सजाकर, उसे एक स्वर्ण रथ पर रखकर घाट की ओर जाने वाले मार्ग पर रख देते और स्वयं एक तरफ हटकर खड़े हो जाते, ताकि वहाँ से गुजरने वाले सभी लोग उसकी बातें सुनें। लोग उसे देखकर, यह जाने बिना कि वह एक स्वर्ण प्रतिमा है, कहते, "यह, यद्यपि वास्तव में केवल एक स्त्री है, अत्यंत सुंदर है, किसी अप्सरा के समान। यह यहाँ क्यों विराजमान है, और कहाँ से आई है? हमारे नगर में इसके समान कोई नहीं है।" और इस प्रकार उसकी सुंदरता की प्रशंसा करके वे अपने-अपने मार्ग चले जाते। सलाहकारों ने कहा, "यदि यहाँ इसके समान कोई कन्या होती, तो वे कहते, 'यह फलाँ-फलाँ की पुत्री या फलाँ-फलाँ की मंत्री की पुत्री के समान है'; वास्तव में यहाँ ऐसी कोई कन्या नहीं है।" और वे उसे लेकर किसी अन्य नगर में चले जाते। भटकते-भटकते वे मद्दा राज्य के सागाला नगर में पहुँचे। मद्दा के राजा की सात पुत्रियाँ थीं, जो असाधारण रूप से सुंदर थीं, मानो स्वर्ग की अप्सराओं के समान हों।उनमें सबसे बड़ी का नाम पभवति था। उनके शरीर से प्रकाश की किरणें ऐसे निकलती थीं मानो नवजन्मे सूर्य की किरणें। चार भुजाओं के बराबर क्षेत्रफल वाले उनके कक्ष में जब अंधेरा होता था, तब किसी दीपक की आवश्यकता नहीं होती थी। पूरा कक्ष प्रकाश से जगमगा उठता था। अब उसके पास एक कुबड़ी नर्स थी, जिसने पाभवति को भोजन कराने के बाद, शाम को उसका सिर धोने के इरादे से, आठ दासियों के साथ पानी लाने के लिए घाट की ओर प्रस्थान किया। प्रत्येक दासी के हाथ में एक घड़ा था। घाट जाते समय उसकी नज़र इस मूर्ति पर पड़ी और उसने इसे पाभवति समझकर कहा, "बदतमीज़ लड़की, सिर धुलवाने का बहाना करके हमें पानी लाने भेज दिया और हमसे पहले वहाँ सड़क पर खड़ी है।" क्रोधित होकर वह चिल्लाई, "बुरी! तू परिवार के लिए कलंक है: यहाँ हमसे पहले पहुँच गई। अगर राजा को पता चला तो वह हमें मार डालेगा।" यह कहते हुए उसने मूर्ति के गाल पर एक प्रहार किया, जिससे उसकी हथेली के बराबर जगह फट गई। फिर जब उसे पता चला कि यह सोने की मूर्ति है, तो वह खिलखिलाकर हंस पड़ी और दासियों के पास जाकर बोली, "देखो मैंने क्या कर दिया। अपनी पाली हुई बेटी समझकर मैंने इसे मार डाला। मेरी बच्ची के सामने इस मूर्ति की क्या कीमत है? मुझे तो बस अपने हाथ में चोट लगी है।" तब राजा के दूतों ने उसे पकड़ लिया और कहा, "यह कैसी कहानी है जो तुम सुना रही हो, कि तुम्हारी बेटी इस मूर्ति से भी सुंदर है?" "मेरा मतलब है मद्दा राजा की पुत्री पभवती। यह मूर्ति उसके सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है।" मन ही मन प्रसन्न होकर वे महल के प्रवेश द्वार की ओर गए और राजा को यह सूचना भेज दी कि राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) के दूत उनके द्वार पर खड़े हैं। राजा अपनी गद्दी से उठे और खड़े होकर उन्हें अंदर आने का आदेश दिया। प्रवेश करते ही उन्होंने राजा को प्रणाम किया और कहा, “महाराज, हमारे राजा आपका हालचाल जानना चाहते हैं।” राजा ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया और जब उनसे पूछा गया कि वे क्यों आए हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, “हमारे राजा का एक पुत्र है, वीर राजकुमार कुसा। राजा उसे अपना राज्य सौंपना चाहते हैं और उन्होंने हमें आपसे यह निवेदन करने के लिए भेजा है कि आप अपनी पुत्री पभवती का विवाह उन्हें सौंप दें और इस स्वर्ण प्रतिमा को भेंट के रूप में स्वीकार करें।” इतना कहकर उन्होंने राजा को प्रतिमा भेंट कर दी। राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन्हें लगा कि इतने महान राजा के साथ विवाह करना शुभ होगा। तब दूतों ने कहा, “महाराज, हम यहाँ प्रतीक्षा नहीं कर सकते: हम जाकर अपने राजा को बताएँगे कि हमने राजकुमारी का हाथ प्राप्त कर लिया है, और फिर वे आकर उसे ले जाएँगे।” राजा ने यह स्वीकार कर लिया और उनका आतिथ्य सत्कार करने के बाद उन्हें जाने दिया। लौटने पर उन्होंने राजा और रानी को अपनी सूचना दी। राजा अपने साथ बहुत से सेवकों को लेकर कुसावती से रवाना हुए और कुछ समय बाद सगला नगर पहुँचे। मद्दा का राजा उससे मिलने आया, उसे शहर में ले आया और उसका बहुत सम्मान किया। रानी सिलावती, जो एक बुद्धिमान स्त्री थी, सोचने लगी,“इन सब का क्या नतीजा निकलेगा?” एक-दो दिन बाद उसने राजा से कहा, “हम अपनी बहू को देखने के लिए बहुत उत्सुक हैं।” राजा तुरंत मान गया और अपनी बेटी को बुलवाया। भव्य वस्त्र पहने और अपने सेवकों के दल से घिरी हुई पर्ववती आई और उसने अपनी सास को प्रणाम किया। उसे देखते ही रानी ने सोचा, “यह लड़की बहुत सुंदर है और मेरा बेटा बदसूरत है। अगर वह उसे देख लेगी, तो एक दिन भी नहीं रुकेगी बल्कि भाग जाएगी। मुझे कोई उपाय सोचना होगा।” मद्दा राजा को संबोधित करते हुए उसने कहा, “मेरी बहू मेरे बेटे के योग्य है: लेकिन हमारे परिवार में एक पुरानी परंपरा है। अगर वह इस रीति-रिवाज का पालन करेगी, तो हम उसे उसकी दुल्हन बना लेंगे।” “तुम्हारी यह परंपरा क्या है?” “हमारे परिवार में गर्भवती होने तक पत्नी को दिन के उजाले में अपने पति को देखने की अनुमति नहीं है। अगर वह इसका पालन करेगी, तो हम उसे ले लेंगे।” राजा ने अपनी बेटी से पूछा, “मेरी प्यारी, क्या तुम ऐसा कर पाओगी?” "जी, प्रिय पिता," उसने उत्तर दिया। तब राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) ने मद्दा राजा को बहुत साजो-सामान दिया और उसके साथ प्रस्थान किया। मद्दा राजा ने अपनी पुत्री को सेवकों के एक विशाल दल के साथ भेजा। कुसावती पहुँचकर ओक्काका (इक्ष्वाकु) ने नगर को सजाने, सभी कैदियों को रिहा करने

और अपने पुत्र को राजा के रूप में औपचारिक रूप से अभिषेक करने तथा पाभवति को अपनी मुख्य पत्नी नियुक्त करने के बाद ढोल की थाप से राजा कुसा के शासन की घोषणा की। भारत भर के सभी राजाओं, जिनकी पुत्रियाँ थीं, ने उन्हें राजा कुसा के दरबार में भेजा, और जिनके पुत्र थे, वे उनसे मित्रता की इच्छा रखते हुए अपने पुत्रों को उनके सेवक के रूप में भेजते थे। बोधिसत्व के पास नर्तकियों का एक विशाल दल था और उन्होंने भव्यता से शासन किया। परन्तु उन्हें दिन में पाभवति से मिलने की अनुमति नहीं थी, और न ही पाभवति को उनसे मिलने की अनुमति थी, परन्तु रात में वे एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप से मिल सकते थे। उस समय पाभवति के शरीर से असाधारण (*9) तेज निकला, लेकिन बोधिसत्व अंधेरा रहते ही राजकक्ष से निकल गए। कुछ दिनों बाद उन्होंने अपनी माता से कहा कि वे दिन में पाभवति को देखने के लिए तरस रहे हैं। माता ने उनका अनुरोध अस्वीकार करते हुए कहा, "यह तुम्हारी इच्छा नहीं है, बल्कि उसके गर्भ धारण करने तक प्रतीक्षा करो।" उन्होंने बार-बार उनसे विनती की। तब माता ने कहा, "ठीक है, हाथी के अस्तबल में जाओ और हाथी के रखवाले का वेश धारण करके वहाँ खड़े हो जाओ। मैं उसे वहाँ ले आऊँगी, ताकि तुम उसे जी भर कर देख सको, लेकिन ध्यान रखना कि तुम उसे अपनी पहचान न बता सको।" वे मान गए और हाथी के अस्तबल में चले गए। महारानी ने हाथी उत्सव की घोषणा की और पाभवति से कहा, "चलो, हम तुम्हारे स्वामी के हाथी देखने चलते हैं।" उन्हें वहाँ ले जाकर उन्होंने एक-एक हाथी का नाम लेकर उन्हें दिखाया। तभी, जब पाभवति अपनी माता के पीछे चल रही थीं, राजा ने हाथी के गोबर के ढेर से उनकी पीठ पर प्रहार किया। वह क्रोधित हो गई और बोली, "मैं राजा से तुम्हारा हाथ कटवा दूंगी," और अपने शब्दों से उसने महारानी को नाराज कर दिया, जिन्होंने उसकी पीठ सहलाकर उसे शांत किया।दूसरी बार राजा उससे मिलने के लिए बेचैन हुए और पहले की तरह ही घोड़े के अस्तबल में एक नौकर का वेश बनाकर उसे घोड़े की लीद से मारा। तब भी जब वह क्रोधित हुई तो उसकी सास ने उसे शांत किया। एक दिन पाभवती ने अपनी सास से कहा कि वह भगवान के दर्शन करना चाहती है। जब उसकी माँ ने यह कहकर उसकी विनती ठुकरा दी, "नहीं, ऐसा न हो," तो उसने बार-बार विनती की, और अंत में उसकी माँ ने कहा, "ठीक है, कल मेरा पुत्र शहर में जुलूस निकालेगा। आप अपनी खिड़की खोलकर उसे देख सकती हैं।" ऐसा कहने के बाद, अगले दिन उसने शहर को सजाया और राजकुमार जयमपति को राजसी वस्त्र पहनाकर हाथी पर सवार होकर शहर में विजय जुलूस निकालने का आदेश दिया। पाभवती के साथ खिड़की पर खड़ी होकर उसने कहा, "अपने स्वामी की महिमा देखो।" उसने कहा, "मुझे एक ऐसा पति मिला है जो मेरे योग्य है," और वह अत्यंत प्रसन्न थी। लेकिन उसी दिन, हाथी के रखवाले के वेश में, महान पुरुष जयमपति के पीछे बैठे थे और पाभवति को जितना चाहें उतना निहार रहे थे। अपने हृदय की प्रसन्नता में वे हाथों से इशारे कर रहे थे। जब हाथी उनके पास से गुजर गया, तो महारानी माँ ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने अपने पति को देखा है। "जी हाँ, महाराज, लेकिन उनके पीछे एक हाथी का रखवाला बैठा था, एक बहुत ही बदतमीज़ आदमी, जिसने मुझे हाथों से इशारे किए। ऐसे बदसूरत, अशुभ प्राणी को राजा के पीछे क्यों बैठने देते हैं?" "प्रिय, राजा के पीछे रक्षक का बैठना उचित है।" "यह हाथी का रखवाला," उन्होंने सोचा, "बड़ा दुस्साहसी है, और राजा का ज़रा भी आदर नहीं करता। क्या यह राजा कुश हो सकता है? निस्संदेह वह बदसूरत है, और इसीलिए वे मुझे उसे देखने नहीं देते।" तो उन्होंने अपनी कुबड़ी नर्स से फुसफुसाकर कहा, "जाओ, प्रिय, तुरंत पता लगाओ कि राजा आगे बैठे थे या पीछे।" “मुझे यह कैसे पता चलेगा?” “यदि वह राजा है, तो वह हाथी से सबसे पहले उतरेगा: तुम्हें इस संकेत से पता चल जाएगा।” वह दूर जाकर खड़ी हो गई और उसने देखा कि महापुरुष सबसे पहले उतरे, और उसके बाद राजकुमार जयमपति। महापुरुष ने चारों ओर देखा, पहले एक तरफ और फिर दूसरी तरफ, कुबड़ी बूढ़ी औरत को देखकर वह तुरंत समझ गया कि वह क्यों आई होगी, और उसे बुलवाकर सख्ती से हिदायत दी कि वह उसका रहस्य किसी को न बताए, और उसे जाने दिया। वह आई और अपनी स्वामिनी को बताया, “जो आगे बैठा था, वह सबसे पहले उतरा,” और पाभवति ने उसकी बात मान ली। राजा को एक बार फिर उससे मिलने की तीव्र इच्छा हुई और उसने अपनी माता से इसका प्रबंध करने की विनती की। माता उसे मना नहीं कर सकी और बोली, “ठीक है, तो अपना वेश बदलकर बगीचे में जाओ।” वह गया और कमल के तालाब में गर्दन तक डूब गया, पानी में खड़ा होकर उसने अपना सिर कमल के पत्ते से ढका और चेहरा उसके फूल से ढक लिया। और शाम को उसकी माँ पाभवति को बगीचे में ले आई और कहने लगी, "इन पेड़ों को देखो, या इन पक्षियों या हिरणों को देखो,इस प्रकार वह उसे बहलाती-फुसलाती रही, जब तक कि वह कमल-कुंड के किनारे नहीं पहुँच गई। जब उसने कुंड को पाँच प्रकार के कमलों से ढका देखा, तो उसे स्नान करने की तीव्र इच्छा हुई और वह अपनी सहेलियों के साथ कुंड के किनारे चली गई। आनंद लेते हुए उसने एक कमल देखा और उसे तोड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। तभी राजा ने कमल का पत्ता एक तरफ रखकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "मैं राजा कुश हूँ।" उसका चेहरा देखकर वह चिल्लाई, "कोई जिन्न मुझे पकड़ रहा है," और वहीं बेहोश हो गई। तब राजा ने उसका हाथ छोड़ दिया। होश में आने पर उसने सोचा, "लोग कहते हैं कि राजा कुश ने मेरा हाथ पकड़ा था, और उसी ने मुझे हाथी के अस्तबल में हाथी की लीद से मारा था, और घोड़े के अस्तबल में घोड़े की लीद से मारा था, और उसी ने हाथी के पीछे बैठकर मेरा मज़ाक उड़ाया था। ऐसे बदसूरत, घिनौने पति से मेरा क्या लेना-देना है?" अगर मैं जीवित रही, तो मैं दूसरा पति ढूंढ लूंगी।” इसलिए उसने अपने साथ आए सलाहकारों को बुलाया और कहा, “मेरा रथ तैयार करो। आज ही मैं रवाना हो जाऊंगी।” उन्होंने यह बात राजा को बताई और राजा ने सोचा, “अगर वह बच नहीं पाई, तो उसका दिल टूट जाएगा: उसे जाने दो।” मैं अपनी शक्ति से उसे वापस लाऊंगा।” इसलिए उसने उसे जाने दिया, और वह सीधे अपने पिता के नगर लौट गई। और वह महान प्राणी उद्यान से नगर में प्रवेश करके अपने भव्य महल में चढ़ गया। सचमुच, पिछले जन्म की किसी इच्छा के कारण ही वह बोधिसत्व से घृणा करती थी, और उसके किसी पूर्व कर्म के कारण ही वह इतना कुरूप था। कहते हैं, पुराने समय में, बनारस के एक उपनगर में, ऊपरी और निचली गलियों में, एक परिवार के दो पुत्र और एक पुत्री थी। दोनों पुत्रों में बोधिसत्व छोटा पुत्र था, और पुत्री का विवाह बड़े पुत्र से हुआ था, परन्तु छोटा पुत्र अविवाहित (*11) अपने भाई के साथ रहता था। एक दिन इस घर

में उन्होंने कुछ बहुत ही सुंदर केक बनाए, और बोधिसत्व वन में गए हुए थे; इसलिए उनके लिए एक केक अलग रखकर उन्होंने बाकी बाँट लिए और स्वयं खा लिए। उसी क्षण एक पच्चेकबुद्ध भिक्षा मांगने द्वार पर आया। बोधिसत्व की भाभी ने सोचा कि वह युवा स्वामी के लिए एक और केक बनाएँगी और उन्होंने उनका केक लेकर पच्चेकबुद्ध को दे दिया, और ठीक उसी क्षण वह वन से लौट आए। तब उन्होंने कहा, "हे स्वामी, क्रोधित न हों, मैंने आपका भाग पच्चेकबुद्ध को दे दिया है।" उन्होंने कहा, "अपना भाग खाने के बाद मेरा भाग दे दो, और मेरे लिए एक और केक अवश्य बनाओगी!" और वह क्रोधित हो गए और जाकर भिखारी के कटोरे से केक ले लिया। वह अपनी माँ के घर गईं और चंपक के फूल के रंग का कुछ ताजा पिघला हुआ घी (स्पष्ट मक्खन) लेकर कटोरा भर दिया, और उससे प्रकाश की एक तेज किरण निकली। यह देखकर उन्होंने प्रार्थना की, "हे परम पूज्य, मैं जहाँ कहीं भी जन्म लूँ, मेरा शरीर प्रकाश से परिपूर्ण हो और मैं अत्यंत सुंदर होऊँ, और मुझे फिर कभी इस व्यभिचारी के साथ एक ही स्थान पर न रहना पड़े।"इस प्रकार, उस प्राचीन प्रार्थना के फलस्वरूप उसने उसे स्वीकार नहीं किया। बोधिसत्व ने केक को वापस कटोरे में डालते हुए प्रार्थना की: "हे प्रभु, चाहे वह सौ मील (4.23 किमी) दूर ही क्यों न रहती हो, मुझे उसे अपनी दुल्हन बनाकर ले जाने की शक्ति प्रदान करें।" क्रोधित होकर केक लेने के कारण ही वह जन्म से इतना कुरूप था।

पाभवति के चले जाने से कुशा इतना गहरे शोक में डूब गया कि अन्य स्त्रियाँ, यद्यपि उसकी हर प्रकार से सेवा कर रही थीं, उसकी ओर देखने की हिम्मत भी नहीं कर पा रही थीं, और पाभवति के बिना उसका सारा महल मानो वीरान सा लग रहा था। तब उसने सोचा, "अब तक तो वह सागला नगर पहुँच चुकी होगी," और सूर्योदय होते ही उसने अपनी माता को ढूँढा और कहा, "प्रिय माता, मैं जाकर पाभवति को ले आता हूँ। आप मेरे राज्य पर शासन करेंगी," और उसने पहला श्लोक कहा:

यह लोक असीम आनंद और परमानंद से भरा है,
राजसी वस्त्र और सोने का खजाना
मैं कहता हूँ, यह राज्य मेरे लिए तुम पर शासन करे:
मैं पभवती को खोजने जाता हूँ।

उसकी माता ने उसकी बातें सुनकर कहा, “बेटा, तुम्हें बहुत सावधान रहना चाहिए: स्त्रियाँ सचमुच अपवित्र स्वभाव की होती हैं।” उसने एक सोने के कटोरे में तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन भर दिए और कहा, “यह तुम्हारे लिए यात्रा में खाने के लिए है,” और उससे विदा ली। कटोरा लेकर और माता को तीन बार प्रणाम करके उसने कहा, “अगर मैं जीवित रहा, तो आपसे फिर मिलूंगा,” और इस तरह वह राजमहल की ओर चल पड़ा। फिर उसने पाँचों प्रकार के शस्त्र धारण किए और एक हजार सिक्के एक थैले में रखकर अपना भोजन का कटोरा और एक कोकण वीणा ली और शहर छोड़कर अपनी यात्रा पर निकल पड़ा। दोपहर तक वह बहुत बलवान और चुस्त-दुरुस्त था और उसने पचास मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर ली थी और भोजन करने के बाद, बचे हुए आधे दिन में उसने पचास मील (4.23 किमी) की दूरी और तय कर ली, इस प्रकार एक ही दिन में उसने सौ मील (4.23 किमी) की यात्रा पूरी कर ली। शाम को उन्होंने स्नान किया और फिर सगला नगर में प्रवेश किया। जैसे ही उन्होंने नगर में कदम रखा, उनके पुण्य के प्रभाव से पभवति अपने पलंग पर चैन से नहीं सो सकीं और उठकर जमीन पर लेट गईं। बोधिसत्व यात्रा से बहुत थक गए थे और सड़क पर भटकते हुए एक स्त्री ने उन्हें देखा और अपने घर में विश्राम करने के लिए आमंत्रित किया। उनके पैर धोने के बाद, उसने उन्हें बिस्तर दिया। जब वे सो रहे थे, तब उसने उनके लिए भोजन तैयार किया और उन्हें जगाकर खिलाया। वे उससे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे हजार सिक्के और सोने का कटोरा भेंट किया। अपने पांच प्रकार के शस्त्र वहीं छोड़कर उन्होंने कहा, "मुझे कहीं जाना है," और अपना वीणा लेकर वे एक हाथी के अस्तबल में गए और हाथी पालकों से कहा, "मुझे यहाँ रहने दीजिए, मैं आपके लिए संगीत बजाऊंगा।" उन्होंने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी और वे अलग जाकर लेट गए। जब उनकी थकान दूर हो गई, तो वे उठे और अपना वीणा खोलकर बजाने और गाने लगे, यह सोचकर कि शहर में रहने वाले सभी लोग इसे सुनें। पाभवति, जो जमीन पर लेटी हुई थीं, ने इसे सुना और सोचा, "यह ध्वनि केवल उनकी वीणा से ही आ सकती है," और उन्हें विश्वास हो गया कि राजा कुश उन्हीं के लिए आए हैं। मद्दा के राजा ने भी इसे सुनकर सोचा, "यह बहुत मधुर बजाते हैं। कल मैं उन्हें बुलवाऊंगा और उन्हें अपना संगीतकार बनाऊंगा।" बोधिसत्व ने सोचा, "अगर मैं यहाँ रुका रहा तो पाभवति को देखना मेरे लिए असंभव होगा: यह मेरे लिए उपयुक्त स्थान नहीं है," और जल्दी से सुबह-सुबह वहाँ से चले गए और एक भोजनालय में सुबह का भोजन करने के बाद उन्होंने अपनी वीणा वहीं छोड़ दी और राजा के कुम्हार के पास जाकर उसके शिष्य बन गए। एक दिन जब उन्होंने घर को कुम्हार की मिट्टी से भर दिया, तो उन्होंने पूछा कि क्या उन्हें कुछ बर्तन बनाने चाहिए और जब कुम्हार ने उत्तर दिया, "हाँ, बनाओ," तो उन्होंने मिट्टी का एक टुकड़ा चाक पर रखा और उसे घुमाया। एक बार जब इसे चालू कर दिया गया, तो यह दोपहर तक तेजी से चलता रहा। सभी प्रकार के छोटे-बड़े बर्तन बनाने के बाद,उसने विशेष रूप से पाभवति के लिए एक बर्तन बनाना शुरू किया जिस पर विभिन्न आकृतियाँ बनी हुई थीं। सचमुच बुद्धों के उद्देश्य पूरे होते हैं। उसने निश्चय किया कि केवल पाभवति ही इन आकृतियों को देखेंगी। जब उसने बर्तनों को सुखाकर पका लिया, तो महल उनसे भर गया। कुम्हार विभिन्न नमूनों के साथ महल गया। राजा ने उन्हें देखकर पूछा, "मैंने बनाया है, महाराज।" "मुझे यकीन है कि तुमने नहीं बनाया। किसने बनाया है?" "मेरे शिष्य ने, महाराज।" "तुम्हारा शिष्य नहीं, बल्कि तुम्हारा गुरु। उससे अपना हुनर सीखो। अब से वह मेरी बेटियों के लिए बर्तन बनाए।" और उसने उसे एक हजार सिक्के देते हुए कहा, "उसे ये दे दो, और ये सभी छोटे बर्तन मेरी बेटियों को भेंट कर दो।" वह बर्तन उनके पास ले गया और कहा, "ये

तुम्हारे मनोरंजन के लिए बनाए गए हैं।" वे सभी उन्हें लेने के लिए उपस्थित थीं। तब कुम्हार ने पाभवति को वह बर्तन दिया जो उस महान व्यक्ति ने विशेष रूप से उनके लिए बनाया था। उसे लेते ही उसने तुरंत अपनी और कुबड़ी नर्स की आकृति पहचान ली और जान गई कि यह केवल राजा कुशाग्र की ही रचना हो सकती है। क्रोधित होकर उसने कहा, "मुझे यह नहीं चाहिए: इसे चाहने वालों को दे दो।" तब उसकी बहनों ने उसे क्रोधित देखकर हंसते हुए कहा, "तुम्हें लगता है कि यह राजा कुशाग्र की रचना है। इसे कुम्हार ने बनाया है, उसने नहीं। इसे ले लो।" उसने उन्हें यह नहीं बताया कि वह स्वयं वहाँ आया था और उसने ही इसे बनाया था। कुम्हार ने बोधिसत्व को हज़ार सिक्के दिए और कहा, "मेरे पुत्र, राजा तुमसे प्रसन्न हैं। अब से तुम उनकी पुत्रियों के लिए पात्र बनाओगे और मैं उन्हें उनके पास ले जाऊंगा।" उसने सोचा, "यद्यपि मैं यहाँ रहता हूँ, तो भी मेरे लिए पाभवती को देखना असंभव है," और उसने उसे पैसे लौटा दिए और राजा के सेवक टोकरी बनाने वाले के पास गया। उसका शिष्य बनकर उसने पाभवती के लिए ताड़ के पत्तों का पंखा बनाया और उस पर एक सफेद छतरी (राजशाही के प्रतीक के रूप में) चित्रित की। उसने भोज-कक्ष को विषय बनाकर (*13) अन्य अनेक आकृतियों के साथ पाभवती की खड़ी हुई आकृति भी बनाई। टोकरी बनाने वाला कुश की कारीगरी की ये और अन्य वस्तुएँ महल में ले गया। राजा ने उन्हें देखकर पूछा कि इन्हें किसने बनाया है और पहले की तरह ही उस व्यक्ति को एक हजार सिक्के भेंट करते हुए कहा, "बुनाई की ये वस्तुएँ मेरी बेटियों को दे देना।" और उसने वह पंखा जो विशेष रूप से उसके लिए बनाया गया था, पाभवति को दे दिया। इस मामले में भी किसी ने उस पर बनी आकृतियों को नहीं पहचाना, लेकिन पाभवति ने उन्हें देखकर जान लिया कि यह राजा की कारीगरी है और कहा, "जो चाहे ले ले," और क्रोधित होकर उसने पंखा ज़मीन पर फेंक दिया। इस पर सब लोग उस पर हँसे। टोकरी बनाने वाला धन लेकर आया और बोधिसत्व को दे दिया। यह सोचकर कि यह उसके रहने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है, उसने धन टोकरी बनाने वाले को लौटा दिया और राजा के माली के पास जाकर उसका शिष्य बन गया। तरह-तरह की मालाएँ बनाते हुए उसने पाभवति के लिए एक विशेष माला बनाई, जिस पर विभिन्न आकृतियाँ उकेरी गई थीं।माली उन्हें महल ले गया। जब राजा ने उन्हें देखा, तो उन्होंने पूछा कि ये मालाएँ किसने बनाई हैं? "मैंने बनाई हैं, महाराज।" "मुझे यकीन है कि तुमने नहीं बनाईं। किसने बनाईं?" "मेरे शिष्य ने, महाराज।" "वह तुम्हारा शिष्य नहीं, बल्कि तुम्हारा गुरु है। उससे अपना हुनर सीखो। अब से वह मेरी बेटियों के लिए फूलों की मालाएँ बनाएगा, और उसे ये एक हजार सिक्के दे दो।" और उसे सिक्के देते हुए उसने कहा, "ये फूल मेरी बेटियों को दे दो।" और माली ने बोधिसत्व द्वारा विशेष रूप से बनाई गई पुष्पमाला पाभवति को भेंट की। यहाँ भी विभिन्न आकृतियों के बीच अपनी और राजा की छवि देखकर उसने कुशा की कारीगरी पहचान ली और क्रोध में पुष्पमाला को ज़मीन पर फेंक दिया। उसकी सभी बहनें, पहले की तरह, उस पर हँस पड़ीं। माली ने भी एक हजार सिक्के लिए और बोधिसत्व को दे दिए, और उन्हें सारी घटना बताई। उसने सोचा, "यह जगह भी मेरे लिए नहीं है," और माली को पैसे लौटाकर वह राजा के रसोइए के यहाँ प्रशिक्षु के रूप में काम करने चला गया। एक दिन रसोइए राजा के लिए तरह-तरह के व्यंजन ले जाते समय बोधिसत्व को अपने लिए पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दे दी। उसने उसे इस तरह पकाया कि उसकी गंध पूरे शहर में फैल गई। राजा ने उसे सूंघा और पूछा कि क्या वह रसोई में और मांस पका रहा है। बोधिसत्व ने कहा, "नहीं महाराज, मैंने अपने प्रशिक्षु को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी है। अवश्य ही आपको उसी की गंध आ रही होगी।" राजा ने उसे मंगवाया और उसका एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उसकी सात हजार नसें जागृत हो उठीं और उनमें झनझनाहट पैदा हो गई। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा हुई कि उसने बोधिसत्व को एक हजार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने प्रशिक्षु से भोजन पकवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा प्रशिक्षु उनका भोजन मेरी बेटियों के पास लाएगा।" रसोइया जाकर उसे सब बता दिया। यह सुनकर उसने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती को देख पाऊंगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को हज़ार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं पाभवती के महल में, राजा की पुत्रियों के लिए भोजन डंडे पर लादकर चढ़ गया। पाभवती ने उसे बोझ लेकर चढ़ते देखा और सोचा, "यह दासों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूं और कहीं और न जाकर यहीं रुककर मुझे देखता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूंगी और उसे भगा दूंगी, उसे एक पल भी यहां नहीं रहने दूंगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़कर दूसरे हाथ से कुंडी दबा दी, और उसने दूसरा श्लोक दोहराया:महाराज। "वह आपका शिष्य नहीं, बल्कि आपका गुरु है। उससे अपना हुनर सीखिए।" अब से वह मेरी बेटियों के लिए फूलों की मालाएँ बनाएगा, और उसे ये एक हजार सिक्के दे दो"; और उसे सिक्के देते हुए उसने कहा, "ये फूल मेरी बेटियों को दे दो।" और माली ने पाभवति को वह माला भेंट की जो बोधिसत्व ने विशेष रूप से उसके लिए बनाई थी। यहाँ भी विभिन्न आकृतियों के बीच अपनी और राजा की एक आकृति देखकर उसने कुशा की कारीगरी पहचान ली और क्रोध में आकर माला को ज़मीन पर फेंक दिया। उसकी सभी बहनें, पहले की तरह, उस पर हँसीं। माली ने भी एक हजार सिक्के लिए और बोधिसत्व को देते हुए उन्हें सारी घटना बताई। उन्होंने सोचा, "यह जगह भी मेरे लिए नहीं है," और माली को सिक्के लौटाकर वे राजा के रसोइए के यहाँ प्रशिक्षु के रूप में काम करने चले गए। अब एक दिन रसोइए राजा के लिए तरह-तरह के व्यंजन ले जाते समय बोधिसत्व को अपने लिए पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दे दी। उन्होंने उसे इस तरह पकाया कि उसकी गंध पूरे शहर में फैल गई। राजा ने उसे सूंघा और पूछा कि क्या वह रसोई में कुछ और मांस पका रहे थे। "नहीं, महाराज, लेकिन मैंने अपने प्रशिक्षु को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी।" "ज़रूर यही गंध है जो तुम्हें आ रही है।" राजा ने उसे मंगवाया और एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उसकी सात हज़ार नसें जागृत हो उठीं और उनमें झनझनाहट पैदा हो गई। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उसने उसे एक हज़ार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शिष्य से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास

लाओगे, जबकि तुम्हारा शिष्य उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर उसने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती को देख पाऊँगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हज़ार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं पाभवती के महल में एक डंडे पर भोजन लेकर चढ़ गया। पाभवती ने उसे बोझ लेकर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो दासों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिलकुल भी उपयुक्त नहीं है।" लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर वह यहीं रुका रहेगा, मुझे घूरता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़े हुए दूसरे हाथ से कुंडी को दबाते हुए, उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:महाराज। "वह आपका शिष्य नहीं, बल्कि आपका गुरु है। उससे अपना हुनर सीखिए।" अब से वह मेरी बेटियों के लिए फूलों की मालाएँ बनाएगा, और उसे ये एक हजार सिक्के दे दो"; और उसे सिक्के देते हुए उसने कहा, "ये फूल मेरी बेटियों को दे दो।" और माली ने पाभवति को वह माला भेंट की जो बोधिसत्व ने विशेष रूप से उसके लिए बनाई थी। यहाँ भी विभिन्न आकृतियों के बीच अपनी और राजा की एक आकृति देखकर उसने कुशा की कारीगरी पहचान ली और क्रोध में आकर माला को ज़मीन पर फेंक दिया। उसकी सभी बहनें, पहले की तरह, उस पर हँसीं। माली ने भी एक हजार सिक्के लिए और बोधिसत्व को देते हुए उन्हें सारी घटना बताई। उन्होंने सोचा, "यह जगह भी मेरे लिए नहीं है," और माली को सिक्के लौटाकर वे राजा के रसोइए के यहाँ प्रशिक्षु के रूप में काम करने चले गए। अब एक दिन रसोइए राजा के लिए तरह-तरह के व्यंजन ले जाते समय बोधिसत्व को अपने लिए पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दे दी। उन्होंने उसे इस तरह पकाया कि उसकी गंध पूरे शहर में फैल गई। राजा ने उसे सूंघा और पूछा कि क्या वह रसोई में कुछ और मांस पका रहे थे। "नहीं, महाराज, लेकिन मैंने अपने प्रशिक्षु को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी।" "ज़रूर यही गंध है जो तुम्हें आ रही है।" राजा ने उसे मंगवाया और एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उसकी सात हज़ार नसें जागृत हो उठीं और उनमें झनझनाहट पैदा हो गई। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उसने उसे एक हज़ार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शिष्य से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा शिष्य उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर उसने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती को देख पाऊँगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हज़ार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं पाभवती के महल में एक डंडे पर भोजन लेकर चढ़ गया। पाभवती ने उसे बोझ लेकर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो दासों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिलकुल भी उपयुक्त नहीं है।" लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर वह यहीं रुका रहेगा, मुझे घूरता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़े हुए दूसरे हाथ से कुंडी को दबाते हुए, उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:यहाँ भी, अनेक आकृतियों के बीच अपनी और राजा की एक आकृति देखकर उसने कुशा की कारीगरी पहचान ली और क्रोधित होकर माला को ज़मीन पर फेंक दिया। उसकी सभी बहनें, पहले की तरह ही, उस पर हँस पड़ीं। माली ने भी हज़ार सिक्के लिए और बोधिसत्व को देते हुए उन्हें सारी घटना बताई। बोधिसत्व ने सोचा, "यह जगह मेरे लिए नहीं है," और माली को पैसे लौटाकर वे राजा के रसोइए के यहाँ प्रशिक्षु के रूप में काम करने चले गए। एक दिन रसोइए राजा के लिए तरह-तरह के व्यंजन ले जाते समय बोधिसत्व को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दे दी। उन्होंने उसे इस तरह पकाया कि उसकी गंध पूरे शहर में फैल गई। राजा ने उसे सूंघा और पूछा कि क्या वह रसोई में और मांस पका रहे हैं। बोधिसत्व ने कहा, "नहीं महाराज, मैंने अपने प्रशिक्षु को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी। शायद यही वह गंध है जो आपको आ रही है।" राजा ने उसे मंगवाया और उसका एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उसकी सात हजार नसें जागृत हो उठीं और उनमें रोमांच भर गया। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उसने उसे एक हजार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शिष्य से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा शिष्य उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा ने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती के दर्शन कर पाऊंगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हजार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं एक डंडे पर राजा की बेटियों के लिए भोजन लेकर उस महल में चढ़ गया जहाँ पाभवती रहती थी। पभवति ने उसे बोझ लेकर ऊपर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो गुलामों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिलकुल भी उपयुक्त नहीं है। लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर यहीं रुककर मुझे देखता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़कर दूसरे हाथ से कुंडी दबा दी, और उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:यहाँ भी, अनेक आकृतियों के बीच अपनी और राजा की एक आकृति देखकर उसने कुशा की कारीगरी पहचान ली और क्रोधित होकर माला को ज़मीन पर फेंक दिया। उसकी सभी बहनें, पहले की तरह ही, उस पर हँस पड़ीं। माली ने भी हज़ार सिक्के लिए और बोधिसत्व को देते हुए उन्हें सारी घटना बताई। बोधिसत्व ने सोचा, "यह जगह मेरे लिए नहीं है," और माली को पैसे लौटाकर वे राजा के रसोइए के यहाँ प्रशिक्षु के रूप में काम करने चले गए। एक दिन रसोइए राजा के लिए तरह-तरह के व्यंजन ले जाते समय बोधिसत्व को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दे दी। उन्होंने उसे इस तरह पकाया कि उसकी गंध पूरे शहर में फैल गई। राजा ने उसे सूंघा और पूछा कि क्या वह रसोई में और मांस पका रहे हैं। बोधिसत्व ने कहा, "नहीं महाराज, मैंने अपने प्रशिक्षु को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी। शायद यही वह गंध है जो

आपको आ रही है।" राजा ने उसे मंगवाया और उसका एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उसकी सात हजार नसें जागृत हो उठीं और उनमें रोमांच भर गया। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उसने उसे एक हजार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शिष्य से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा शिष्य उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा ने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती के दर्शन कर पाऊंगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हजार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं एक डंडे पर राजा की बेटियों के लिए भोजन लेकर उस महल में चढ़ गया जहाँ पाभवती रहती थी। पभवति ने उसे बोझ लेकर ऊपर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो गुलामों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिलकुल भी उपयुक्त नहीं है। लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर यहीं रुककर मुझे देखता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़कर दूसरे हाथ से कुंडी दबा दी, और उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:लेकिन मैंने अपने शागिर्द को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी। अवश्य ही, आपको उसी की गंध आ रही होगी।" राजा ने उसे मंगवाया और उसका एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उनकी सात हजार स्वाद इंद्रियां जागृत हो उठीं और उनमें झनझनाहट पैदा हो गई। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उन्होंने शागिर्द को एक हजार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शागिर्द से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा शागिर्द उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा ने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती को देख पाऊंगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हजार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं एक डंडे पर राजा की बेटियों के लिए भोजन लेकर उस महल में चढ़ गया जहाँ पाभवती रहती थी। पाभवती ने उसे बोझ लेकर ऊपर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो दासों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है।" लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर वह यहीं रुका रहेगा, मुझे घूरता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़े हुए दूसरे हाथ से कुंडी को दबाते हुए, उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:लेकिन मैंने अपने शागिर्द को पकाने के लिए मांस की एक हड्डी दी थी। अवश्य ही, आपको उसी की गंध आ रही होगी।" राजा ने उसे मंगवाया और उसका एक टुकड़ा अपनी जीभ पर रखा, जिससे उनकी सात हजार स्वाद इंद्रियां जागृत हो उठीं और उनमें झनझनाहट पैदा हो गई। राजा को उत्तम भोजन की इतनी लालसा थी कि उन्होंने शागिर्द को एक हजार सिक्के दिए और कहा, "अब से तुम मेरे और मेरी बेटियों के लिए अपने शागिर्द से भोजन बनवाओगे, और मेरा भोजन तुम स्वयं मेरे पास लाओगे, जबकि तुम्हारा शागिर्द उनका भोजन मेरी बेटियों के लिए लाएगा।" रसोइया गया और उसने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा ने सोचा, "अब मेरी इच्छा पूरी हो गई: अब मैं पाभवती को देख पाऊंगा।" प्रसन्न होकर उसने रसोइया को एक हजार सिक्के लौटा दिए और अगले दिन उसने राजा के लिए भोजन तैयार करके भेजा और स्वयं एक डंडे पर राजा की बेटियों के लिए भोजन लेकर उस महल में चढ़ गया जहाँ पाभवती रहती थी। पाभवती ने उसे बोझ लेकर ऊपर चढ़ते देखा और सोचा, "यह तो दासों और दिहाड़ी मजदूरों का काम कर रहा है, जो इसके लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है।" लेकिन अगर मैं चुप रही, तो वह सोचेगा कि मैं उसे पसंद करती हूँ और कहीं और न जाकर वह यहीं रुका रहेगा, मुझे घूरता रहेगा। मैं तुरंत उसे गाली-गलौज और अपमान करूँगी और उसे भगा दूँगी, उसे यहाँ एक पल भी नहीं रहने दूँगी।" इसलिए उसने दरवाजा आधा खुला छोड़ दिया और एक हाथ से पैनल को पकड़े हुए दूसरे हाथ से कुंडी को दबाते हुए, उसने दूसरी पंक्ति दोहराई:

कुसा, दिन-रात तुम्हारे लिए
इस बोझ को उठाना उचित नहीं है।
कृपया जल्दी से कुसावती लौट आइए;
मैं तुम्हारा कुरूप रूप देखने को तैयार नहीं हूँ।
उन्होंने सोचा, "मुझे पाभवति के शब्द मिल गए हैं," और प्रसन्न होकर उन्होंने तीन श्लोक दोहराए:

हे पभावती, तुम्हारी सुंदरता के जादू में बंधा हुआ।
मुझे अपनी जन्मभूमि में कोई खास आकर्षण नहीं दिखता;
मद्दा का सुंदर राज्य हमेशा से मेरा आनंद रहा है।
मैंने अपना मुकुट उतार दिया, ताकि मैं तुम्हारी प्रिय दृष्टि में रह सकूँ।
हे कोमल नेत्रों वाली कन्या, सुंदर पभवती,
यह कौन सा पागलपन है जो मुझ पर हावी हो जाता है?
जिस भूमि पर मेरा जन्म हुआ, उसे भली-भांति जानते हुए,
मैं लगभग पागल होकर पूरी पृथ्वी पर भटकता रहता हूँ।

चमकीले रंग की छाल से ढका हुआ और सुनहरे क्षेत्र से घिरा हुआ,
हे सुंदर कन्या, मुझे तुम्हारा प्रेम चाहिए, न कि कोई सांसारिक सिंहासन।
जब उसने ऐसा कहा, तो उसने सोचा, "मैं उसका अपमान कर रही हूँ, यह सोचकर कि शायद उसमें आक्रोश पैदा हो जाए, लेकिन वह मानो अपने शब्दों से मुझे शांत करने की कोशिश कर रहा है। मान लो अगर वह कहे, 'मैं राजा कुश हूँ,' और मेरा हाथ पकड़ ले, तो उसे कौन रोक सकता है? और कोई हमारी बातें सुन भी सकता है।" इसलिए उसने दरवाजा बंद कर दिया और अंदर से कुंडी लगा दी (*14)। और उसने अपना डंडा उठाया और दूसरी राजकुमारियों के लिए भोजन ले आया। पाभवती ने अपने कुबड़ वाले दास को राजा कुश द्वारा पकाया गया भोजन लाने के लिए भेजा। वह भोजन लेकर आई और बोली, "अब खाओ।" पाभवती ने कहा, "मैं उसका पकाया हुआ भोजन नहीं खाऊँगी। तुम इसे खाओ और जाओ अपने लिए भोजन लाओ, पकाओ और यहाँ लाओ, लेकिन किसी को मत बताना कि राजा कुश आए हैं।" अब से कुबड़ वाला दास राजकुमारी का हिस्सा लाता और खाता था और अपना हिस्सा पाभवती को दे देता था। उस समय राजा कुश, जो पाभवति को देख नहीं पा रहे थे, सोचने लगे, "पता नहीं पाभवति को मुझसे कोई स्नेह है या नहीं। मैं उसकी परीक्षा लूँगा।" इसलिए राजकुमारियों को भोजन देने के बाद, उन्होंने अपना भोजन का बोझ उठाया और बाहर जाकर पाभवति के कक्ष के द्वार पर अपने पैर पटके, जिससे बर्तन आपस में टकराए और वे कराहते हुए ढेर हो गए (*15) और बेहोश हो गए। उनकी कराह सुनकर पाभवति ने अपना द्वार खोला और उन्हें बोझ के नीचे दबा हुआ देखकर सोचा, "यह राजा है, पूरे भारत का प्रमुख शासक, और मेरे लिए दिन-रात पीड़ा सहता है, और अब, इतने कोमल पालन-पोषण के बावजूद, वह अपने साथ लाए भोजन के बोझ तले गिर पड़ा है। पता नहीं वह अभी भी जीवित है या नहीं।" अपने कक्ष से बाहर निकलकर उन्होंने गर्दन झुकाकर उनके मुँह की ओर देखा, उनकी साँसों को देखने के लिए। उन्होंने अपने मुँह में थूक भर लिया और उसे पाभवति पर गिरा दिया। उसने उसका अपमान करते हुए अपने कमरे में प्रवेश किया और आधा खुला दरवाजा छोड़कर खड़ी होकर इस छंद को दोहराया:

दुर्भाग्य (*16) उसी का है, जिसकी इच्छाएं हमेशा अस्वीकृत होती रहती हैं।
हे राजा, आप जिस प्रेम से अभी तक प्रतिदान न किए गए प्रेम को भी आकर्षित करते हैं।
लेकिन क्योंकि वह उससे बेइंतहा प्यार करता था, इसलिए चाहे वह उसे कितना भी अपमानित और गाली दे, उसने कोई नाराजगी नहीं दिखाई बल्कि इस छंद को दोहराया:

जो कोई भी अपनी प्रिय वस्तु को प्राप्त कर लेता है, चाहे वह प्रिय हो या अप्रिय,
हम केवल सफलता की प्रशंसा करते हैं, हार तो दुख का कारण है।
जब वह अभी भी बोल ही रहा था, तब उसने बिना रुके दृढ़ स्वर में कहा, मानो उसे भगा देने का इरादा रखती हो, और इस छंद को दोहराया:

साथ ही चट्टान की सतह को कुदाल की तरह भंगुर लकड़ी (*17) से खोदना,
या फिर किसी जाल में हवा को पकड़ लें, जैसे अनिच्छुक नौकरानी को आकर्षित करना।
यह सुनकर राजा ने तीन छंद दोहराए:

तुम पत्थर की तरह कठोर हृदय के हो, लेकिन बाहर से इतने कोमल दिखते हो।
हालांकि मैं आपके प्यार के लिए मुकदमा करने आया हूं, फिर भी मेरा स्वागत नहीं किया गया।
जब तुम मेरे प्रति तिरछी नज़रें डालती हो, हे अभिमानी महिला, उदास चेहरे के साथ,
तो फिर मैं शाही मद्दा के महलों में एक रसोइया के अलावा कुछ नहीं हूँ।
लेकिन हे रानी, यदि आप दयावश मुझ पर मुस्कुरा दें,
अब मैं खाना नहीं पकाऊँगा, मैं एक बार फिर कुसावती का स्वामी हूँ।
उसकी बातें सुनकर उसने सोचा, "वह अपनी हर बात में बहुत हठी है। मुझे उसे यहाँ से भगाने के लिए कोई झूठ गढ़ना होगा," और उसने यह पंक्ति कही:

यदि ज्योतिषी सच बोलते थे, तो वे यही बात सच कहते थे:
"तुम्हारे सात टुकड़े कर दिए जाएं, इससे पहले कि तुम राजा कुशा से विवाह करो।"
यह सुनकर राजा ने उसका खंडन करते हुए कहा, "हे देवी, मैंने भी अपने राज्य में ज्योतिषियों से परामर्श लिया था और उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि सिंह स्वर वाले राजा कुश के सिवा आपके लिए कोई और पति नहीं है, और अपने ज्ञान से प्राप्त संकेतों के आधार पर मैं भी यही कहता हूँ," और उसने एक और श्लोक दोहराया:

यदि मैंने और यहां मौजूद अन्य भविष्यवक्ताओं ने सच कहा है,
मुझे बचाओ, राजा कुसा, तुम किसी और को अपना स्वामी नहीं मानोगे।

उसकी बातें सुनकर उसने कहा, "उसे शर्मिंदा नहीं किया जा सकता। मुझे क्या फर्क पड़ता है कि वह भाग जाए या न भागे?" और दरवाजा बंद करके उसने खुद को दिखाने से इनकार कर दिया। और वह अपना बोझ उठाकर नीचे चला गया। उस दिन से वह उसे देख भी नहीं सका और अपने रसोइए के काम से बुरी तरह तंग आ गया। नाश्ते के बाद वह लकड़ियाँ काटता, बर्तन धोता और अपने डंडे पर पानी लाता, और फिर अनाज के ढेर पर लेटकर आराम करता। सुबह जल्दी उठकर वह चावल की दलिया और इसी तरह की चीजें पकाता, फिर खाना परोसता और पाभवति के प्रति अपने तीव्र प्रेम के कारण यह सब कष्ट सहता। एक दिन उसने कुबड़ी को रसोई के दरवाजे से गुजरते देखा और उसे आवाज़ दी। पाभवति के डर से वह उसके पास आने की हिम्मत नहीं कर पाई, बल्कि जल्दी में होने का नाटक करते हुए आगे बढ़ गई। इसलिए वह जल्दी से उसके पास दौड़ा और चिल्लाया, "कुबड़ी।" वह मुड़ी और रुक गई, और बोली, "कौन है यहाँ? मैं तुम्हारी बात नहीं सुन सकती।" फिर उसने कहा, "तुम और तुम्हारी प्रेमिका दोनों बहुत हठी हो। तुम्हारे पास इतने लंबे समय से रहने के बावजूद, हमें उसकी सेहत के बारे में कोई खबर नहीं मिल पा रही है।" उसने कहा, "क्या आप मुझे कोई उपहार देंगे?" उसने उत्तर दिया, "अगर मैं ऐसा करूँ, तो क्या तुम पाभवति को मनाकर मुझे उसके सामने ला सकोगी?" उसके सहमत होने पर उसने कहा, "अगर तुम ऐसा कर सको, तो मैं तुम्हारा कुबड़ापन ठीक कर दूँगा और तुम्हारे गले में एक आभूषण दूँगा," और उसे लुभाते हुए उसने पाँच श्लोक कहे:

मैं तुम्हें सोने का हार दूंगा।
कुसावती पहुँचने पर,
यदि सुडौल अंगों वाली (*19) पभावती
उसे बस मेरी तरफ देखना चाहिए।
मैं तुम्हें सोने का हार दूंगा।
कुसावती पहुँचने पर,
यदि सुडौल अंगों वाली पभावती
उन्हें बस मुझसे बात करने की कृपा करनी चाहिए।
मैं तुम्हें सोने का हार दूंगा।
कुसावती पहुँचने पर,
यदि सुडौल अंगों वाली पभावती
उसे बस मुझ पर मुस्कुराना चाहिए।
मैं तुम्हें सोने का हार दूंगा।
कुसावती पहुँचने पर,
यदि सुडौल अंगों वाली पभावती
मुझे देखकर उन्हें खुशी से हंसना चाहिए।
मैं तुम्हें सोने का हार दूंगा।
कुसावती पहुँचने पर,
यदि सुडौल अंगों वाली पभावती
मुझे प्यार से स्पर्श करना चाहिए।

उनकी बात सुनकर उसने कहा, "महाराजा, चले जाइए: कुछ ही दिनों में मैं उसे आपके हवाले कर दूंगी। आप देखेंगे कि मैं कितनी शक्तिशाली हो सकती हूँ।" ऐसा कहकर उसने अपनी कार्ययोजना तय कर ली और पाभवति के पास जाकर उसने ऐसा दिखाया जैसे वह उसका कमरा साफ कर रही हो, और एक भी गंदगी का टुकड़ा न छोड़ते हुए, यहाँ तक कि अपने जूते भी उतारकर, उसने पूरे कमरे की सफाई की। फिर उसने द्वार पर (दहलीज से काफी दूर रहते हुए) अपने लिए एक ऊँची चौकी लगाई और पाभवति के लिए एक छोटी सी चौकी पर चादर बिछाकर कहा, "आओ, मेरी प्रिय, मैं तुम्हारे सिर में जूँ ढूँढती हूँ," और उसे वहाँ बिठाकर उसका सिर अपनी गोद में रखवाकर, थोड़ा सा खुजलाते हुए और यह कहते हुए, "अरे! यहाँ तो बहुत सारी जूँ हैं," उसने अपने सिर से कुछ जूँ निकालकर राजकुमारी के सिर पर रख दीं, और उस महान सत्ता के प्रति स्नेह भरे शब्दों में इस श्लोक में उनकी स्तुति की:

इस शाही महिला को कुसा को एक बार फिर देखकर कोई खुशी नहीं होती।
हालांकि, उसे कुछ भी नहीं चाहिए, इसलिए वह एक साधारण किराए के व्यक्ति के वेतन पर रसोइया के रूप में काम करता है।

पभवति कुबड़ी पर क्रोधित हो गई। इसलिए बूढ़ी औरत ने उसकी गर्दन पकड़कर उसे कमरे के अंदर धकेल दिया, और खुद बाहर रहकर उसने दरवाजा बंद कर दिया और दरवाजे को खींचने वाली रस्सी को पकड़कर खड़ी हो गई (*20)। पभवति उस तक पहुँचने में असमर्थ होकर दरवाजे के पास खड़ी रही, उसे कोसती रही और एक और श्लोक बोला:

यह कुबड़ा गुलाम निःसंदेह,
ऐसा शब्द बोलने के लिए,

उसकी जीभ काट देनी चाहिए
सबसे तेज धार वाली तलवार से।

तो कुबड़ा भालू नीचे लटकती रस्सी को पकड़े खड़ा रहा और बोला, "अरे निकम्मे, बदतमीज़ प्राणी, तेरे सुंदर रूप से किसी का क्या भला होगा? क्या हम तेरे सौंदर्य पर पलकर जीवित रह सकते हैं?" और ऐसा कहते हुए उसने बोधिसत्व के गुणों का बखान किया, कुबड़े भालू की कर्कश आवाज में तेरह छंदों में चिल्लाते हुए।

हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उसकी महिमा महान है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उसके पास अपार धन है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनकी शक्ति सर्वोपरि है, इसलिए वही करो जो उनकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनका शासन सर्वोपरि है, इसलिए वही करो जो उनकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
वह महान राजा है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न हो।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उसकी आवाज सिंह समान है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उसकी वाणी स्पष्ट है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनकी आवाज गहरी है, इसलिए वही करो जो उन्हें अच्छा लगे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनकी वाणी मधुर है, इसलिए वही करो जो उनकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनकी आवाज मधुर है, इसलिए वही करो जो उन्हें अच्छा लगे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
उनकी सौ कलाएँ हैं, इसलिए वही करो जो उनकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
वह एक योद्धा राजा है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न करे।
हे पाभवति, उसका आदर उसके बाहरी रूप या कद से मत करो।
यह राजा कुसा है, इसलिए वही करो जो उसकी दृष्टि में प्रसन्न हो।

उसकी बात सुनकर पाभवति ने कुबड़ वाले को धमकाते हुए कहा, "कुबड़ वाले, तू बहुत जोर से दहाड़ रहा है। अगर मैंने तुझे पकड़ लिया, तो तुझे बता दूँगी कि तेरी एक रखैल है।" उसने उत्तर दिया, "तेरे प्रति दया भाव से मैंने तेरे पिता को राजा कुश के आगमन की सूचना नहीं दी। खैर, आज मैं राजा को बता दूँगी," और ऊँची आवाज़ में बोलकर उसने उसे डरा दिया। पाभवति ने यह सोचकर कि कोई सुन न ले, कुबड़ वाले को शांत कर दिया। सात महीने तक कठोर बिस्तर और घटिया भोजन से तंग आकर बोधिसत्व को पाभवति का दर्शन न हो पाने पर उसने सोचा, "मुझे उसकी क्या आवश्यकता है? यहाँ सात महीने रहने के बाद भी मैं उसका दर्शन तक नहीं कर पाया। वह बहुत कठोर और निर्दयी है। मैं जाकर अपने माता-पिता से मिलूँगा।" इसी क्षण इंद्र ने इस मामले पर विचार करते हुए पाया कि कुश कितना असंतुष्ट है, और उसने सोचा, "सात महीने बाद भी वह पाभवति को देख तक नहीं पाया। मैं उसे पाभवति से मिलवाने का कोई उपाय ढूँढूँगा।" इसलिए उसने राजा मद्दा के दूतों को यह कहकर सात राजाओं के पास भेजा कि, “पभवति ने राजा कुश को त्याग दिया है और घर लौट आई है। तुम सब आओ और उससे विवाह करो।” उसने यही संदेश सातों राजाओं को अलग-अलग भेजा। वे सब अपने साथ बड़ी संख्या में अनुयायियों को लेकर नगर में पहुँचे, और एक-दूसरे के आने का कारण नहीं जानते थे। उन्होंने एक-दूसरे से पूछा, “तुम यहाँ क्यों आए हो?” और जब उन्हें स्थिति का पता चला, तो वे क्रोधित हो गए और बोले, “क्या वह अपनी बेटी का विवाह हम सातों से करेगा? देखो उसका व्यवहार कितना बुरा है। वह हमारा उपहास करते हुए कहता है, “उससे विवाह करो।” या तो वह पभवति का विवाह हम सातों से करे, या फिर हमसे युद्ध करे।” और उन्होंने राजा मद्दा को यह संदेश भेजा और नगर को सशस्त्र कर दिया। संदेश सुनकर राजा मद्दा घबरा गया और अपने मंत्रियों से सलाह मशवरा करते हुए बोला, “अब हम क्या करें?” तब उनके मंत्रियों ने उत्तर दिया, “महाराज, ये सात राजा पाभवति को लेने आए हैं। यदि आप उसे देने से इनकार करते हैं, तो वे दीवार तोड़कर नगर में प्रवेश करेंगे और

हमें नष्ट करने के बाद आपके राज्य पर कब्जा कर लेंगे। जब तक दीवार अक्षुण्ण खड़ी है, तब तक हम पाभवति को उनके पास भेज दें"; और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

वे गर्वित हाथियों की तरह कवच पहने खड़े हैं।
इससे पहले कि वे हमारी दीवारों को रौंद डालें, नौकरानी को जल्दी से भेज दो।
यह सुनकर राजा ने कहा, "यदि मैं पाभवति को उनमें से किसी के भी पास भेज दूँ, तो बाकी सब मुझसे युद्ध करेंगे। उसे उनमें से किसी को भी सौंपना असंभव है। पूरे भारत के प्रमुख राजा को हराने के बाद, उसे घर लौटने का उचित पुरस्कार मिले। मैं उसे मार डालूँगा और उसके शरीर के सात टुकड़े काटकर एक-एक टुकड़ा सातों राजाओं को भेज दूँगा।" ऐसा कहकर उसने एक और श्लोक दोहराया:

मेरी इच्छा है कि पाभवति के सात टुकड़े कर दिए जाएं।
इन सात राजाओं में से प्रत्येक के लिए एक-एक टुकड़ा, जो उसके पिता को मारने आए थे।
उनकी यह बात महल में हर जगह फैल गई। उनकी परिचारिकाएँ आईं और पाभवति को बताया, "लोग कहते हैं कि राजा तुम्हें सात टुकड़ों में काटकर सात राजाओं के पास भेज देंगे।" वह अत्यंत भयभीत हो गईं और अपनी सीट से उठकर अपनी बहनों के साथ अपनी माता के राजकक्ष में चली गईं।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

सांवले रंग की होने के बावजूद आकर्षक दिखने वाली रानी उठी और रेशमी वस्त्र पहने अपनी दासियों के समूह के आगे बढ़ी, जो बहुत रो रही थीं।

वह अपनी मां के सामने आई और उन्हें प्रणाम करते हुए फूट-फूटकर रोने लगी:

पाउडर से सुशोभित यह चेहरा, यहाँ एक शीशे में प्रतिबिंबित हो रहा है।
हाथीदांत का हैंडल बड़ी खूबसूरती से लगा हुआ था, कितना आकर्षक था वो!
हर पंक्ति में मासूमियत और पवित्रता का भाव व्यक्त किया गया है,
किसी एकांत जंगल में योद्धा राजकुमारों द्वारा ठुकराया गया वह जल्द ही विश्राम करेगा।
बालों की ये काली लटें, राजसी ढंग से कुंडलित,
स्पर्श करने में कोमल और उत्तम चंदन के तेल से सुगंधित।
श्मशान भूमि भले ही ढकी हुई हो, गिद्ध जल्द ही उसे ढूंढ लेंगे।
और वे अपने पंजों से चीरते-फाड़ते हैं और हवा में बिखेर देते हैं।
ये भुजाएँ जिनकी उंगलियों के सिरे तांबे की तरह गहरे लाल रंग से रंगे हुए हैं,
सर्वोत्तम चंदन के तेल में नहाया हुआ और मुलायम रुई से ढका हुआ,
अलग-थलग कर दिया गया और अभिमानी राजाओं द्वारा किसी एकांत जंगल में फेंक दिया गया,
एक भेड़िया जहां भी छिपना चाहेगा, उसे पकड़कर ले जाएगा।
मेरे स्तन खजूर की तरह हैं जो पकने पर ताड़ के पेड़ों पर फूल जाते हैं।
चंदन की सुगंध से महकते हुए काशी के पुरुष मोहित हो गए:
मुझे लगता है कि जल्द ही कोई सियार उन पर झपट्टा मारेगा और उन्हें खींचेगा।
ठीक वैसे ही जैसे एक छोटा बच्चा अपनी माँ की छाती से लिपटता है।
मेरी ये कूल्हे, सुगठित और चौड़ी, एक भरपूर सांचे में ढली हुई,
शुद्ध सोने से बनी चमकीले रंग की कमरबंद से घिरी हुई,
अलग-थलग कर दिया गया और अभिमानी राजाओं द्वारा किसी एकांत जंगल में फेंक दिया गया,
एक भेड़िया जहां भी छिपना चाहेगा, उसे पकड़कर ले जाएगा।
कुत्ते, भेड़िये, सियार और ऐसे ही अन्य जानवर शिकारी जानवर कहलाते हैं।
यदि एक बार वे पाभवति का सेवन कर लें, तो उन्हें कोई क्षय नहीं हो सकता।
क्या दूर-दूर से आए योद्धा राजाओं को आपकी बेटी के शरीर को मारने की अनुमति दी जानी चाहिए?
मेरी हड्डियों से विनती है, उन्हें किसी गुप्त तरीके से आग में जला दो।
फिर उसके पास एक बगीचा बनाएं और उसमें कनिकारा का पेड़ लगाएं।
और जब सर्दियों के अंत में यह खिलता है, माँ, मुझे याद करते हुए,
फूल की ओर इशारा करते हुए कहिए, "बिल्कुल ऐसी ही थीं प्यारी पभवती।"

इस प्रकार, मृत्यु के भय से भयभीत होकर वह अपनी माता के समक्ष व्यर्थ ही विलाप करती रही। तब मद्दा राजा ने आदेश दिया कि जल्लाद अपनी कुल्हाड़ी और तख्ते के साथ आए (*21)। उसके आने की खबर पूरे महल में फैल गई। उसके आगमन की सूचना पाकर महारानी माता अपने सिंहासन से उठीं और दु:ख से व्याकुल होकर राजा के समक्ष उपस्थित हुईं।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

घातक घेरे के भीतर रखी तलवार और ढाल को देखकर, देवी के समान सुंदर राजसी महिला उठी और राजा की तलाश करने लगी।

तब रानी ने यह श्लोक कहा:

इसी तलवार से मद्दा राजा अपनी सुंदर पुत्री की हत्या करेगा।
और उसके क्षत-विक्षत अंगों को टुकड़ों में बांटकर प्रतिद्वंद्वी सरदारों के पास शिकार के रूप में भेज दिया जाता था।
राजा ने उसे शांत करने का प्रयास किया और कहा, "हे देवी, आप ये क्या कह रही हैं? आपकी पुत्री ने भारत के सर्वोपरि राजा को उसकी कुरूपता का बहाना बनाकर ठुकरा दिया और मृत्यु को अपना भाग्य मानकर, जिस रास्ते से वह गई थी, उस पर उसके पैरों के निशान पूरी तरह मिटने से पहले ही घर लौट आई। अब उसे अपनी सुंदरता से उपजे ईर्ष्या के परिणाम भुगतने दो।" राजा की बात सुनकर रानी अपनी पुत्री के पास गई और विलाप करते हुए बोली:

आपने मेरी बात नहीं सुनी, जब मैंने आपको अपने भले के लिए सलाह दी थी।
आज तुम यमलोक में जाओगे, तुम्हारा शरीर रक्त से लथपथ होगा।
हर इंसान का यही हश्र हुआ, या इससे भी बदतर अंत हुआ।
जो व्यक्ति अच्छी सलाह को अनसुना कर देता है, वह मित्र की चेतावनियों की भी उपेक्षा करता है।
यदि आज कोई वीर राजकुमार आपके स्वामी से विवाह करे,
सोने और रत्नों से सजे क्षेत्र में, कुसा की भूमि में जन्मा,
आप बहुत सारे दोस्तों के साथ यमलोक नहीं गए होंगे।
जब ढोल बजते हैं और हाथियों की तेज चिंघाड़ गूंजती है,
राजमहलों में, इस दुनिया में इससे अधिक आनंद और कहाँ मिल सकता है?
जब घोड़े हिनहिनाते हैं (*22) और संगीतकार राजाओं के लिए कोई उदास गीत बजाते हैं,
राजमहलों में इस तरह के आनंद के साथ भला तुलना करने लायक क्या हो सकता है?
जब मोर और बगुले की चीखों से दरबार गूंज उठता है,
और कोयल की पुकार, मैं निवेदन करता हूँ, ऐसी खुशी और कहाँ मिल सकती है?
इन सभी छंदों में उससे इस प्रकार बात करने के बाद उसने सोचा, "काश आज राजा कुश यहाँ होते, तो वे इन सात राजाओं को भगा देते और मेरी बेटी को उसके कष्टों से मुक्त करने के बाद उसे अपने साथ ले जाते," और उसने इस छंद को दोहराया:

वह कहाँ है जो शत्रु राज्यों को कुचल देता है और अपने दुश्मनों को वश में कर लेता है?
कुसा, जो श्रेष्ठ और बुद्धिमान हैं, हमें हमारे दुखों से मुक्ति दिलाएंगे।
तब पाभवति ने सोचा, "मेरी मातृभाषा कुश की स्तुति करने के लिए पर्याप्त नहीं है। मैं उन्हें बता दूँगी कि वह यहाँ रसोइया का काम करते हुए रह रहे हैं," और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

वह विजेता जो अपने सभी शत्रुओं को कुचल देता है, देखो! वह यहाँ है;
कुसा, तुम इतने महान और इतने बुद्धिमान हो कि तुम्हारे सभी शत्रु मेरे लिए जान देने को तैयार हो जाएंगे।
तब उसकी माँ ने सोचा, "वह मृत्यु के भय से भयभीत है और बड़बड़ा रही है," और फिर यह छंद बोला:

क्या तुम पागल हो गए हो, या मूर्ख की तरह यूं ही बेतरतीब ढंग से बोल रहे हो?
अगर कुसा वापस आ गया है, तो कृपया हमें इसके बारे में क्यों नहीं बताया?
यह सुनकर पभवति ने सोचा, "मेरी माँ मेरी बात पर विश्वास नहीं करती। उन्हें नहीं पता कि वह लौट आया है और सात महीने से यहाँ रह रहा है। मैं उन्हें यह साबित कर दूँगी"; और अपनी माँ का हाथ पकड़कर उसने खिड़की खोली और हाथ फैलाकर उसकी ओर इशारा करते हुए यह श्लोक दोहराया:

अरे माँ, रसोइए को देखो, कमर को अच्छे से कस कर रखा है!
वह अपने बर्तनों को धोने के लिए झुकता है, जहाँ शाही युवतियाँ निवास करती हैं।

तब कुशा ने सोचा, “आज मेरी दिली इच्छा पूरी होगी। सचमुच, पाभवति मृत्यु के भय से भयभीत है और मेरे यहाँ आने की खबर सबको बता देगी। मैं अपने बर्तन धोकर रख देता हूँ”; और वह पानी लेकर आया और बर्तन धोने लगा। तब उसकी माँ ने उसे समझाते हुए यह श्लोक कहा:

क्या तुम नीच कुल की हो या फिर शाही खानदान की दासी की सेवा करोगी?
क्या किसी गुलाम को अपना सच्चा प्यार बनाना, मद्दा के लिए घोर अपमान की बात है?
तब पाभवति ने सोचा, "मुझे लगता है मेरी माँ को यह नहीं पता कि वह मेरे लिए ही इस तरह यहाँ रह रहा है," और उसने एक और श्लोक कहा:

मैं नीच जाति का नहीं हूँ, न ही मैं अपने शाही नाम को कलंकित करूँगा, मैं शपथ लेता हूँ।
आपको शुभकामनाएं, वह कोई दास नहीं बल्कि राजा ओक्काका (इक्ष्वाकु) का उत्तराधिकारी है।
और अब उनकी प्रसिद्धि की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा:

वह बीस हजार ब्राह्मणों का भोजन कराता है, किसी का गुलाम नहीं, मैं शपथ लेता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
वह निश्चित रूप से बीस हजार हाथियों को जुताई में बांधता है, कोई गुलाम नहीं, मैं कसम खाता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
वह बीस हजार घोड़ों को जोतता है, कोई गुलाम नहीं, मैं कसम खाता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
वह बीस हजार रथों को जुताता है, किसी को गुलाम नहीं बनाता, मैं कसम खाता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
वह निश्चित रूप से बीस हजार शाही बैलों को जुए में बांधता है, कोई गुलाम नहीं, मैं कसम खाता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
वह निश्चित रूप से बीस हजार शाही गायों का दूध दुहता है, कोई गुलाम नहीं, मैं कसम खाता हूँ।
वहां खड़े हुए आपको ओक्काका (इक्ष्वाकु) के राजपुत्र ही दिखाई दे रहे हैं।
इस प्रकार उसने छह श्लोकों में उस महान सत्ता की महिमा का गुणगान किया। तब उसकी माता ने सोचा, "वह तो बड़े विश्वास से बोल रही है। ऐसा ही होगा," और उस पर विश्वास करके वह राजा के पास गई और उसे सारी कहानी सुनाई। राजा बड़ी जल्दी से पाभवति के पास आया और पूछा, "क्या यह सच है कि राजा कुश आ गए हैं?" "जी, पिताजी। आज से सात महीने हो गए हैं कि वह आपकी बेटियों के लिए रसोइया का काम कर रहे हैं।" उस पर विश्वास न करते हुए उसने कुबड़ी से पूछताछ की और उससे सारी बात सुनकर उसने अपनी बेटी को फटकारा और यह श्लोक बोला:

जैसे हाथी मेंढक का रूप धारण कर लेता है,
 जब यह सर्वशक्तिमान राजकुमार यहाँ आया,
यह आपकी गलती थी और आपने गलत सलाह दी थी।
 इसे अपने माता-पिता से छिपाना, प्रिये।
इस प्रकार उन्होंने अपनी पुत्री को फटकारा और फिर शीघ्रता से कुशा चले गए तथा औपचारिक अभिवादन और अभिवादन के बाद, अपनी गलती स्वीकार करते हुए, उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

इसमें हम पहचानने में असफल रहे
महाराज, इस वेश में,
यदि, महाराज, हमने आपको ठेस पहुंचाई हो,
हम विनम्रतापूर्वक क्षमा की प्रार्थना करते हैं।
यह सुनकर उस महान प्राणी ने सोचा, "यदि मैं उससे कठोर शब्दों में बात करूँ तो उसका हृदय तुरंत टूट जाएगा। मैं उससे सांत्वना के शब्द बोलूँगा"; और अपने थालों के बीच खड़े होकर उन्होंने यह श्लोक कहा:

मेरे लिए रसोई के नौकर की भूमिका निभाना बहुत गलत था, मैं यह स्वीकार करता हूं।
आप निश्चिंत रहें, इसमें आपकी कोई गलती नहीं थी कि मैं अनजान था।
इस प्रकार स्नेहपूर्ण शब्दों से संबोधित किए जाने के बाद, राजा महल में चढ़े और पाभवती को बुलाकर उनसे क्षमा मांगने के लिए कहा, और उन्होंने यह श्लोक कहा:

जाओ, भोली लड़की, महान राजा कुसा से क्षमा पाने की लालसा रखो।
उसका क्रोध शांत हो गया, शायद वह प्रसन्न हो, शायद उसने आपकी जान बचा ली हो।
अपने पिता की बात सुनकर वह अपनी बहनों और दासियों के साथ उनके पास गई। जब पिता अपने मजदूर के वेश में खड़े थे, तो उन्होंने उसे अपनी ओर आते देखा और सोचा, "आज मैं पाभवति का अभिमान चूर-चूर कर दूंगा और उसे कीचड़ में अपने पैरों तले गिरा दूंगा।" और वहाँ लाया सारा पानी ज़मीन पर उंडेलकर उन्होंने खलिहान के बराबर जगह को कीचड़ से भर दिया। पाभवति पास आई और उनके पैरों पर गिर पड़ी और कीचड़ में लोटते हुए उनसे क्षमा मांगी।

गुरु ने बात स्पष्ट करने के लिए यह श्लोक कहा:

देवी समान पाभवति ने अपने पिता के वचन का पालन किया: उन्होंने नम्र सिर झुकाकर पराक्रमी स्वामी कुश के चरणों को थाम लिया।

फिर उसने ये पंक्तियाँ बोलीं:

हे राजा, आपसे अलग होकर मेरे दिन और रात (*23) बीत गए हैं:
देखिए, मैं आपके चरणों को चूमने के लिए झुकता हूँ। कृपया क्रोध छोड़ दें।
मैं आपसे वादा करता हूँ, यदि आप मेरी बात ध्यान से सुनें,
मैं अपने किसी भी कार्य से फिर कभी भी आपको नाराज नहीं करूंगा, मेरे प्रभु।
लेकिन यदि तुम मेरी प्रार्थना को अस्वीकार कर दोगे, तो मेरे पिता तुम्हें मार डालेंगे।
और उसने अपनी बेटी को, अंग-अंग करके, योद्धा राजाओं के शिकार के रूप में भेज दिया।
यह सुनकर राजा ने सोचा, "अगर मैं उससे कहूँ, 'यह तुम्हें देखना है,' तो उसका दिल टूट जाएगा। मैं उसे सांत्वना के शब्द कहूँगा," और उसने कहा:

हे सुंदर महिला, मैं आपकी बात मानूंगा, जहाँ तक मेरे लिए संभव होगा;
मेरे हृदय में कोई क्रोध नहीं है। भय न करो, पभवति।
सुनो, हे राजसी कन्या, मैं भी अपने वादे को पूरा करता हूँ;
मैं भविष्य में कभी भी अपने किसी भी कार्य से किसी को ठेस नहीं पहुंचाऊंगा।
हे सुंदरी, तुम्हारे प्रेम के लिए मैं अनेकों दुःख सहने को तैयार हूँ।
और पाभवती से विवाह करने के लिए कई मद्दा सरदारों को मार डाला।
कुसा, स्वर्ग के राजा इंद्र की एक सेविका को अपने पास देखकर राजसी गर्व से फूल गया और सोचने लगा, "जब तक मैं जीवित हूँ, क्या कोई और आकर मेरी दुल्हन को ले जाएगा?" और महल के प्रांगण में सिंह की तरह उत्तेजित होकर उसने कहा, "इस नगर में रहने वाले सभी लोग मेरे आने की खबर सुनें," और नाचते-नाचते, चिल्लाते और ताली बजाते हुए उसने कहा, "अब मैं उन्हें जीवित पकड़ लूँगा, जाकर उनसे कहूँगा कि मेरे रथों में घोड़े लगाएँ," और उसने निम्नलिखित श्लोक दोहराया:

जाओ, जल्दी से मेरे प्रशिक्षित घोड़ों को कई रंगीन रथों से जोड़ दो।
और मुझे देखो, मैं साहसपूर्वक तेजी से आगे बढ़ता हूँ, दुश्मनों को दूर-दूर तक तितर-बितर करने के लिए।
अब उसने पाभवति को विदाई देते हुए कहा, "तुम्हारे शत्रुओं को पकड़ना मेरी ज़िम्मेदारी है। तुम जाओ, स्नान करो, सज-धज कर अपने महल में जाओ।" मद्दा के राजा ने अपने सलाहकारों को उसकी सुरक्षा के लिए भेजा। उन्होंने रसोई के द्वार पर उसके चारों ओर एक घेरा लगा दिया और उसके लिए नाई का इंतज़ाम किया। जब उसकी दाढ़ी कट गई, उसके बाल धो दिए गए और वह अपने पूरे वैभव के साथ अपने अंगरक्षकों से घिरा हुआ था, तब उसने कहा, "मैं महल में जाऊंगा।" वहाँ से चारों ओर देखते हुए उसने ताली बजाई, और जहाँ भी उसकी नज़र गई, धरती काँप उठी, और उसने पुकार कर कहा, "अब देखो मेरी शक्ति कितनी महान है।"

विषय को स्पष्ट करने के लिए गुरु ने निम्नलिखित श्लोक कहा:

राजा मद्दा के दरबार की महिलाओं ने उसे वहाँ खड़े देखा।
जैसे कोई दहाड़ता हुआ शेर, वह अपने दोनों हाथों से हवा में प्रहार करता है।
तब मद्दा राजा ने उसे एक हाथी भेजा जो आक्रमण के दौरान भी अविचलित रहने के लिए प्रशिक्षित था (*24), और उस पर उत्तम साज-सज्जा थी। कुश सफेद छत्र धारण किए हाथी की पीठ पर सवार हुए और उन्होंने पभवती को वहाँ लाने का आदेश दिया। उन्हें अपने पीछे बैठाकर वे पूर्वी द्वार से शहर से बाहर निकल गए, उनके साथ चारों भुजाओं की पूरी सेना थी (*25)। शत्रु की सेना को देखते ही वे पुकार उठे, "मैं राजा कुश हूँ: जो भी अपने प्राणों को प्रिय समझते हैं, वे मेरे सामने पेट के बल लेट जाएँ।" उन्होंने तीन बार सिंह की गर्जना की और अपने शत्रुओं को पूर्णतः कुचल दिया।

गुरु ने मामले को समझाते हुए कहा:

हाथी की पीठ पर सवार रानी अपने स्वामी के पीछे-पीछे चल रही थी, तभी शेर की दहाड़ के साथ कुशा युद्ध के लिए नीचे उतरा।

जब कुशा की शेर जैसी दहाड़ इतनी तेज सुनाई देती है, तो सभी जानवर और योद्धा राजा दहशत और भय से मैदान से भाग जाते हैं।

जीवनरक्षक, सैनिक, घुड़सवार और पैदल सैनिक, कई रथ चालकों के साथ, कुसा की आवाज पर टूट पड़ते हैं (*26) और भाग जाते हैं, सभी भय से लकवाग्रस्त हो जाते हैं।

सक्का (इंद्र) अत्यंत प्रसन्न होकर युद्ध के अग्रभाग में देख रहे थे, और उन्होंने राजा कुसा को एक रत्न भेंट किया, जिसका नाम वेरोचना रखा गया।

युद्ध जीतने के बाद, राजा कुसा ने जादुई रत्न ले लिया और फिर हाथी की पीठ पर सवार होकर मद्दा के नगर की ओर फिर से निकल पड़ा।

वह राजाओं को जीवित पकड़ता है और उन्हें जंजीरों में बांधकर अपने साथ ले जाता है, और अपने राजपिता से कहता है, "देखिए, मेरे स्वामी, आपके शत्रु।"

देखो, अब वे तुम्हारी दया पर निर्भर हैं, युद्ध में घायल होकर पीड़ा सह रहे हैं।
आपकी इच्छा के अनुसार या तो आप उन सभी को मार डालेंगे या उन्हें फिर से मुक्त कर देंगे।"
राजा ने कहा:

ये दुश्मन मेरे नहीं, बल्कि तुम्हारे हैं। ये सब तुम्हारे ही हैं।
आप ही हमारे सर्वोपरि स्वामी हैं, जो हमें मार भी सकते हैं और मुक्त भी कर सकते हैं।
इस प्रकार कहे जाने पर, उस महान सत्ता ने सोचा, "एक बार मर जाने पर मैं इन पुरुषों का क्या करूँ? इनका यहाँ आना व्यर्थ न जाए। पाभवति की राजा मद्दा की सात छोटी बहनें हैं। मैं इन सात राजकुमारों से उनका विवाह करा दूँगा," और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

ये सातों बेटियाँ स्वर्ग की अप्सराओं के समान अत्यंत सुंदर हैं।
इन्हें अपने होने वाले दामादों, इन सात राजाओं को एक-एक करके दे दो।
तब राजा ने कहा:

आप हम सब पर और उन पर सर्वोच्च हैं, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप ही समर्पित हैं।
हे प्रभु, आप ही हमारे सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं, अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें दीजिए।
इसलिए उसने उन सभी को सुंदर वस्त्र पहनाए और प्रत्येक राजा से एक-एक करके उनका विवाह करा दिया।

विषय को स्पष्ट करने के लिए गुरु ने पाँच श्लोक कहे:

इसलिए सिंह-स्वर वाले राजा मद्दा की पुत्रियों में से कुसा ने सात राजकुमारों में से प्रत्येक को एक-एक दासी दी, और वीर योद्धाओं को सुंदर दासियाँ दीं।

कुशाराज के हाथों से प्राप्त वरदान से प्रसन्न होकर, ये सातों राजकुमार अपने-अपने देश लौट गए।

अपने जादुई रत्न को चमकीला बनाकर, पराक्रमी वीर राजा कुसा, सुंदर पभवती को कुसावती के पास वापस ले आए।

एक ही रथ में सवार होकर शाही जोड़ा घर लौटा, दोनों में से कोई भी दूसरे से कम सुंदर नहीं था, क्योंकि दोनों ही समान रूप से सुंदर थे।

माता अपने पुत्र से मिलने आई। अब से पति और पत्नी शांति और समृद्धि के राज्य में सुखी जीवन व्यतीत करने लगे।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए सत्यों का खुलासा किया और जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के अंत में पथभ्रष्ट भाई (भिक्षु) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हो गया:- "उस समय पिता और माता राजपरिवार के सदस्य थे, छोटा भाई आनंद था, कुबड़ा खुज्जुत्तारा था, पाभवति राहुल की माता थी, सेवकों का समूह बुद्ध के अनुयायी थे, राजा कुसा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) कुसा की कहानी को "ब्यूटी एंड द बीस्ट" की कहानी के यूरोपीय संस्करणों से जोड़ा जा सकता है।

(2) कुसिनारा का पूर्व नाम।

(3) इस अंश में नाचम शब्द का प्रयोग नर्तकियों के समूह के संदर्भ में किया गया प्रतीत होता है। 'चुल्ला', 'मज्झिमा', 'जेत्था' जैसे विशेषण स्त्री की आयु पर उपयुक्त नहीं हो सकते; बल्कि ये संभवतः उनके पद या योग्यता को दर्शाते हैं, जैसे कि 'चुल्ला-मज्झिमा-महा-शीलम' के संदर्भ में। ये स्त्रियाँ निस्संदेह किसी न किसी रूप में राजा के दरबार से जुड़ी हुई हैं या उनके हरम की सदस्य हैं: अन्यथा राजा शायद ही उनमें से किसी से जन्मे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मानता। स्त्रियों की बांझपन दूर करने की इच्छा से संबंधित कामुक अनुष्ठानों के संदर्भ में पाठक कोलमैन की 'हिंदुओं की पौराणिक कथा', पृष्ठ 378, और डुबोइस और ब्यूचैम्प की 'हिंदू रीति-रिवाज और प्रथाएँ', भाग III, अध्याय IV, पृष्ठ 600 देख सकते हैं।

(4)हरयति, महावग्ग I. 63 और 64, जातक, संख्या देखें। 143, नहीं. 171. वैदिक हृणयति, हृनीते।

(5) शायद इसका नाम लाल कमल (कोकनाड़ा) के रंग से या उस नाम के देश से पड़ा हो। जातक, क्रमांक 157 में यह एक महल के नाम के रूप में आता है।

(6) पियादशी के नौवें शिलालेख में 'अवहा' पुत्र का विवाह है, पुत्री के विवाह (विवाह) के विपरीत। जातक, क्रमांक 452; क्रमांक 316 और क्रमांक 71

(7) संस्कृत प्रतिहारयति, स्वयं की घोषणा करना। जाट सं. 266 और 295 देखें।

(8)अकामखांता पढ़ना.

(9)अबोहारिका, स्कट अव्यवाहरिका। जाट देखें. नहीं। 309

(10)हत्थ-विकारा महावग्ग चतुर्थ. 1. 4 में आता है, लेकिन वहाँ सटीक अर्थ स्पष्ट नहीं है।

(11)अदरभरणे पढ़ना। एक अन्य पाठ "काफी लड़का होना" देता है।

(12) अविज्झी. जाट. सं. 313, अविज्झीत्व, घूमना.

(13)वत्थम पढ़ना.

(14) शाब्दिक रूप से, "बोल्ट में पिन लगाकर, वह अंदर ही रही।" देखें कुलावग्गा, VI. 2. 1.

(15)अवकुज्जा. देखें. जाट. सं. 13.

(16) संस्कृत अवृद्धि के स्थान पर अब्बुद्धि पढ़ना। अवृत, "अनुशासनहीन" के स्थान पर अब्बुत की तुलना करें। टीका में अभूति दिया गया है, जिसका वैदिक और महाकाव्य संस्कृत में अर्थ "विपदा" है।

(17)कनिकारा, टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम।

(18)अम्माना, लगभग चार बुशेल का एक माप, मिल. IV. 1, 19.

(19) शाब्दिक रूप से "हाथी की सूंड जैसी जांघों के साथ।"

(20) भारतीय दरवाजे के तंत्र के लिए कुल्लवग्गा, संख्या देखें। 2, यहाँ की तरह अविंजनारज्जु के स्थान पर वहाँ अविंचनराजजू पढ़ा जाता है।

(21)धम्मगंथिका या धम्मगंडिका जातक क्रमांक में आता है। 150, नहीं. 124, नहीं. 41, नहीं. 176. देखिये. कुलवग्गा, विनय ग्रंथ, पं. iii. बंगाली में गांडी एक "अपराधी के चारों ओर घेरा" है, और यह अर्थ ऊपर उद्धृत कुछ अंशों के संदर्भ में उपयुक्त है।

(22)हिंसाती पढ़ना, स्पष्ट रूप से हेसाती के बराबर है।

(23) शायद रत्या के स्थान पर हमें रत्यो को रत्तियो के समतुल्य पढ़ना चाहिए।

(24)अनंजकरणम के लिए देखें। जाट. नहीं। 415., नहीं. 325, नहीं. 308

(25) हाथी, घुड़सवार सेना, रथ और पैदल सेना।

(26)खुन्दंती, संस्कृत मूल क्षुद के पाली समकक्ष की एक अनूठी घटना, जिसे संस्कृत व्याकरणविदों द्वारा वैकल्पिक रूप से अनुनासिक (7वें) संयुग्मन के रूप में अनुमति दी गई है। मुलर की पाली व्याकरण। पृ. 103. यह टिप्पणी प्रोफेसर बेंडाल को समर्पित है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सोना-नंद-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----II-532-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 532
सोना-नंद-जातक

"देवदूत या संगीतकार-देवता," आदि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए सुनाई थी, जिसमें एक भिक्षु (भाई) का ज़िक्र था जो अपनी माता का सहारा था। इसके पीछे की परिस्थितियाँ वही थीं जो साम (*1) जन्म में वर्णित हैं। लेकिन इस बार गुरु ने कहा, "भाइयों, इस भिक्षु से नाराज़ मत होइए। पुराने समय के ऋषियों को भले ही पूरे भारत पर शासन करने का प्रस्ताव दिया गया था, उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया और अपने माता-पिता का सहारा बने": और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस नगर ब्रह्मवद्धन कहलाता था। उस समय मनोज (*2) नामक एक राजा वहाँ शासन करता था, और एक ब्राह्मण धनाढ्य, जिसके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी, का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। उसकी ब्राह्मण पत्नी ने अपने पति के कहने पर पुत्र की कामना की। तब ब्रह्मलोक से बोधिसत्व उसकी कोख में आ गए, और जन्म के समय उनका नाम नन्हा सोना रखा गया। जब वह दौड़ने-भागने लायक हुआ, तभी एक और प्राणी ब्रह्मलोक छोड़कर उसकी कोख में आ गया, और जन्म के समय उनका नाम नन्द रखा गया। जैसे ही उन्हें वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, ब्राह्मण ने अपने पुत्रों की सुंदरता देखकर अपनी पत्नी से कहा, "हे देवी, हम अपने पुत्र, नन्हे सोना का विवाह करेंगे।" पत्नी ने तुरंत सहमति दे दी और अपने पुत्र को यह बात बताई। उन्होंने कहा, "गृहस्थी जीवन से ही मैं संतुष्ट हूँ। जब तक तुम जीवित रहोगी, मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा, और तुम्हारी मृत्यु के बाद मैं हिमालय में जाकर संन्यासी बन जाऊँगा।" उसने यही बात ब्राह्मण को भी बताई, और जब उन्होंने बार-बार उससे बात की, पर उसे मना नहीं पाए, तो उन्होंने युवा नंदा से कहा, "प्रिय पुत्र, क्या तुम कोई आश्रम स्थापित करोगे?" उसने उत्तर दिया, "मैं उस चीज़ को नहीं अपनाऊँगा जिसे मेरे भाई ने त्याग दिया है, मानो वह कफ का ढेर हो (*3)। मैं भी तुम्हारी मृत्यु के बाद अपने भाई के साथ संन्यासियों में शामिल हो जाऊँगा।" माता-पिता ने सोचा, "यदि वे, जो अभी इतने छोटे हैं, इस प्रकार देह की वासनाओं का त्याग कर देते हैं, तो हम सबको संन्यासी जीवन अपनाना कितना अधिक चाहिए," और उन्होंने कहा, "प्रिय पुत्र, मरने के बाद संन्यासी बनने की बात क्यों करें? हम सब व्रत लेंगे।" राजा को अपना उद्देश्य बताकर उन्होंने अपनी सारी संपत्ति दान में दे दी, अपने दासों को मुक्त कर दिया और अपने परिवार में उचित और उपयुक्त हिस्सा बाँट दिया। फिर वे चारों ब्रह्मवद्धन नगर से निकलकर हिमालय क्षेत्र में एक रमणीय उपवन में, पाँच प्रकार के कमलों से ढकी एक झील के पास, एक आश्रम बनाकर वहाँ तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों भाई अपने माता-पिता की देखभाल करते थे। वे सुबह सवेरे उनके दाँत साफ करने के लिए लकड़ी के टुकड़े और कुल्ला करने के लिए पानी लाते थे। वे कुटिया, कोठरी और सब कुछ साफ करते थे, उन्हें पीने का पानी देते थे, खाने के लिए जंगल से मीठे बेर लाते थे, स्नान के लिए गर्म या ठंडा पानी उपलब्ध कराते थे, उनकी जटाएँ संवारते थे, उनके पैरों में शैम्पू करते थे और इसी तरह की सभी सेवाएँ प्रदान करते थे। समय बीतने के साथ-साथ, ऋषि नंदा ने सोचा, "मुझे अपने माता-पिता के लिए सभी प्रकार के फल भोजन के रूप में उपलब्ध कराने होंगे," इसलिए उन्होंने कल या उससे पहले परसों जो भी साधारण फल एकत्र किए थे (*4), वे सुबह जल्दी लाकर अपने माता-पिता को खाने के लिए देते थे। वे उसे खाते और कुल्ला करने के बाद उपवास रखते थे।लेकिन बुद्धिमान सोना बहुत दूर गया और मीठे और पके फल लाकर उन्हें भेंट किए। तब उन्होंने कहा, "प्रिय पुत्र, हमने आज सुबह तुम्हारे छोटे भाई द्वारा लाए गए फल खा लिए हैं और

अब हम उपवास कर रहे हैं। हमें अभी इस फल की आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार उसके फल खाए नहीं गए बल्कि बर्बाद हो गए, और अगले दिन और उसके बाद भी यही सिलसिला चलता रहा। इस प्रकार अपनी पांच अलौकिक शक्तियों के बल पर वह फल लाने के लिए बहुत दूर तक यात्रा करता रहा, लेकिन उन्होंने उसे खाने से इनकार कर दिया। तब उस महान प्राणी ने सोचा, "मेरे माता-पिता बहुत कमजोर हैं, और नंदा उनके लिए हर तरह के कच्चे या अधपके फल लाता है, और इस तरह वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहेंगे। मैं उसे ऐसा करने से रोकूंगा।" इसलिए उसने नंदा से कहा, "नंदा, अब से जब भी तुम उनके लिए फल लाओ, तो मेरे आने तक प्रतीक्षा करना, और हम दोनों एक साथ उन्हें भोजन देंगे।" यद्यपि उससे ऐसा कहा गया था, फिर भी केवल अपने पुण्य की इच्छा रखते हुए, नंदा ने अपने भाई की बातों पर ध्यान नहीं दिया। भगवान ने सोचा, "नंदा ने मेरी अवज्ञा करके अनुचित कार्य किया है: मैं उसे यहाँ से भेज दूँगा (*6)।" फिर यह सोचकर कि वह स्वयं अपने माता-पिता की देखभाल करेगा, उसने कहा, "नंदा, तुम शिक्षा के योग्य नहीं रहे और बुद्धिमानों की बातों पर ध्यान नहीं देते। मैं बड़ा हूँ। मेरे माता-पिता मेरी जिम्मेदारी हैं: मैं ही उनकी देखभाल करूँगा। तुम यहाँ नहीं रह सकते: कहीं और चले जाओ," और उसने उंगली चटकाकर उसे फटकारा। इस प्रकार विदा होने के बाद, नंदा अपने भाई के सामने और नहीं रह सका, और विदाई लेकर वह अपने माता-पिता के पास आया और उन्हें सारी घटना बताई। फिर पत्तों से बनी अपनी कुटिया में लौटकर, उन्होंने अपना ध्यान उस रहस्यमयी घेरे पर केंद्रित किया और उसी दिन उन्होंने पाँच अलौकिक शक्तियों और आठ सिद्धियों को प्राप्त कर लिया। उन्होंने सोचा, "मैं सिनेरु पर्वत की तलहटी से बहुमूल्य रेत लाकर अपने भाई की कुटिया में छिड़क कर उनसे क्षमा मांग सकता हूँ, और यदि फिर भी वे शांत न हों, तो मैं अनोत्तट्टा झील से जल लाकर उनसे क्षमा मांगूंगा, और यदि फिर भी वे शांत न हों, मान लीजिए कि मेरा भाई देवदूतों के कारण मुझे क्षमा न करे, तो मैं चारों महाराजों और सक्का (इंद्र) को लाकर उनसे क्षमा मांगूंगा, और यदि फिर भी वे शांत न हों, तो मैं भारत के प्रमुख राजा मनोज और बाकी सभी राजाओं को लाकर उनसे क्षमा मांगूंगा। और ऐसा होने पर, मेरे भाई के पुण्य का यश पूरे भारत में फैल जाएगा और सूर्य और चंद्रमा के समान चमक उठेगा।" इसी बीच, अपनी जादुई शक्ति से वह ब्रह्मवद्धन नगर में राजा के महल के द्वार पर अवतरित हुआ और राजा को संदेश भेजा, "एक तपस्वी आपसे मिलना चाहता है।" राजा ने कहा, "एक तपस्वी को मुझसे मिलने की क्या आवश्यकता है? वह भोजन के लिए आया होगा।" उसने उसे चावल भेजे, परन्तु उसने उन्हें ग्रहण नहीं किया। फिर उसने छिले हुए चावल, वस्त्र और जड़ें भेजीं, परन्तु उसने उन्हें भी ग्रहण नहीं किया।अंततः उसने एक दूत को यह पूछने के लिए भेजा कि वह क्यों आया है, और दूत के उत्तर में उसने कहा, "मैं राजा की सेवा करने आया हूँ।" यह सुनकर राजा ने संदेश भेजा, "मेरे पास बहुत सारे सेवक हैं, इसे तपस्वी के रूप में अपना कर्तव्य निभाने के लिए कहो।" यह सुनकर उसने कहा, "मैं अपनी शक्ति से पूरे भारत पर शासन करने की शक्ति प्राप्त करूँगा और उसे आपके राजा को सौंप दूँगा।" यह सुनकर राजा ने सोचा, "सचमुच तपस्वी बुद्धिमान होते हैं: वे ज़रूर कुछ चतुर तरकीबें जानते होंगे।" तब उसने उसे अपने समक्ष बुलाया, उसे बैठने के लिए जगह दी और प्रणाम करते हुए पूछा, "हे पूज्यवर, क्या आप, जैसा कि हमें बताया गया है, पूरे भारत पर शासन प्राप्त करेंगे और उसे मुझे सौंप देंगे?" "जी महाराज।" "आप इसे कैसे करेंगे?" "महाराज, किसी का भी खून बहाए बिना, यहाँ तक कि एक नन्ही मक्खी का खून भी नहीं, और आपके खजाने को बर्बाद किए बिना, मैं अपनी जादुई शक्ति से शासन का अधिकार प्राप्त करूँगा और इसे आपको सौंप दूँगा। बस, बिना एक पल भी विलंब किए, आपको आज ही शीघ्र चलना होगा।" राजा ने उनकी बात पर विश्वास किया और सेना के एक दल के साथ चल पड़े। यदि सेना को गर्मी लगती, तो ऋषि नंदा अपनी जादूई शक्ति से छाया बनाकर उसे ठंडा कर देते। यदि वर्षा होती, तो वे सेना पर वर्षा नहीं गिरने देते। वे गर्म हवा को रोकते। वे रास्ते में पड़े ठूंठों और कांटों को हटाकर हर प्रकार के खतरे को दूर करते। उन्होंने सड़क को कसीना अनुष्ठान में प्रयुक्त वृत्त के समान समतल बनाया, और एक चमड़ा बिछाकर उस पर पालथी मारकर हवा में बैठ गए, और इस प्रकार सेना के आगे-आगे चलने लगे। इस प्रकार, सर्वप्रथम वह अपनी सेना के साथ कोसल राज्य में आया और नगर के निकट अपना शिविर लगाकर कोसल के राजा को संदेश भेजा कि या तो वह युद्ध करे या उसके अधीन हो जाए। राजा क्रोधित हुआ और बोला, "तो फिर क्या, मैं राजा नहीं हूँ? मैं तुमसे युद्ध करूँगा"; और वह शीघ्र ही अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा, और दोनों सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। ऋषि नंदा ने जिस हिरण की खाल पर वे बैठे थे, उसे दोनों सेनाओं के बीच फैला दिया, और दोनों पक्षों के योद्धाओं द्वारा चलाए गए सभी बाणों को उसमें समाहित कर लिया, और किसी भी सेना में एक भी सैनिक बाण से घायल नहीं हुआ, और जब उनके पास मौजूद सभी बाण समाप्त हो गए, तो दोनों सेनाएँ असहाय खड़ी रह गईं। ऋषि नंदा कोसल के राजा के पास गए और उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, "महाराज, भयभीत न हों। आपको कोई खतरा नहीं है: राज्य आपका ही रहेगा। केवल राजा मनोज के अधीन हो जाइए।" राजा ने नंदा की बात पर विश्वास किया और ऐसा करने के लिए सहमत हो गया। फिर नंदा ने उसे मनोज के समक्ष ले जाकर कहा, "महाराज, कोसल का राजा आपके समक्ष आत्मसमर्पण करता है: राज्य उसी का रहने दीजिए।" मनोज ने सहर्ष सहमति दी और आत्मसमर्पण स्वीकार कर, वह दोनों सेनाओं के साथ अंग राज्य की ओर अग्रसर हुआ और अंग पर विजय प्राप्त की, फिर उसी नाम के राज्य में मगध पर विजय प्राप्त की, और इस प्रकार उसने समस्त भारत के राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया, और उनके साथ वह सीधे ब्रह्मवद्धन नगर लौट आया। अब उसकी आयु सात वर्ष और सात महीने थी।सात दिनों तक उसने इन सभी राजाओं के राज्य अपने अधिकार में लिए, और प्रत्येक राजनगर से उसने हर प्रकार का भोजन, कठोर और नरम, मंगवाया, और एक सौ एक राजाओं को अपने साथ लेकर सात दिनों तक भव्य भोज किया। ऋषि नंदा ने सोचा, "जब तक राजा सात दिनों तक शासन के सुख का आनंद न ले लें, मैं उन्हें दर्शन नहीं दूंगा।" उत्तरी कुरु देश में भिक्षा मांगने के बाद, वे सात दिनों तक हिमालय में, स्वर्ण गुफा के प्रवेश द्वार पर रहे। सातवें दिन मनोज ने उनकी महान महिमा और शक्ति का चिंतन करने के बाद सोचा, "यह महिमा मुझे मेरे माता-पिता या किसी और ने नहीं दी। यह तपस्वी नंदा के माध्यम से उत्पन्न हुई है, और निश्चित रूप से अब सात दिन हो गए हैं जब मैंने उन्हें देखा था। भला वह मित्र कहाँ है

जिसने मुझे यह महिमा दी?" और उसने ऋषि नंदा को याद किया। और नंदा ने यह जानकर कि उन्हें याद किया गया है, आकर हवा में उनके सामने खड़े हो गए। राजा ने सोचा, "मुझे नहीं पता कि यह तपस्वी मनुष्य है या देवता। यदि वह मनुष्य है, तो मैं उसे पूरे भारत पर शासन करने की शक्ति दूंगा, लेकिन यदि वह देवता है, तो मैं उसे एक देवदूत के समान सम्मान दूंगा," और इसे सिद्ध करने के लिए उसने पहला श्लोक कहा:

क्या आप देवदूत हैं या संगीतकार-देवता, या क्या हम आपको संयोगवश देख रहे हैं?
सक्का (इंद्र), शहरों के प्रति उदार हो सकता है, या नश्वर जन्म का हो सकता है।
क्या आपको जादुई शक्तियां प्राप्त हैं? आपका नाम जानना हमें अत्यंत प्रसन्नता होगी।
उनकी बातें सुनकर नंदा ने अपने स्वभाव का वर्णन करते हुए दूसरी पंक्ति दोहराई:

न तो मुझे, न ही संगीतकार-देवता को, और न ही सक्का (इंद्र) को आप देखते हैं:
मैं एक नश्वर प्राणी हूँ जिसके पास जादुई शक्तियाँ हैं। यही सच मैं तुम्हें बताता हूँ।
यह सुनकर राजा ने सोचा, "वह कहता है कि वह एक मनुष्य है; फिर भी वह मेरे लिए उपयोगी रहा है। मैं उसे वह महान सम्मान देकर संतुष्ट करूँगा जो मैं उसे दे रहा हूँ," और उसने कहा:

आपने हमें बेहतरीन सेवा प्रदान की है, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।
मूसलाधार बारिश के बीच भी हम पर एक बूंद भी नहीं गिरी।
जब झुलसा देने वाली हवाएं चलीं, तब आपने हमारे लिए ठंडी छाया बनाई।
घातक शाफ्ट (*7) से आपने हमें ढाल बनाया, हमारे अनगिनत दुश्मनों के बीच।
इसके बाद आपने अनेक सुखी राज्यों में मुझे संप्रभु स्वामी के रूप में स्थापित किया।
सौ से अधिक राजा हमारे वचन के आज्ञाकारी हो गए।
हमारे खजानों में से आप जो भी चुनना चाहें, हम खुशी-खुशी छोड़ देते हैं।
घोड़ों या हाथियों से जुते हुए रथ, या बेहद सुंदर वस्त्रों से सजी अप्सराएँ,
या यदि आप एक सुंदर महल चाहते हैं, तो वह आपका ही होगा।
अंग लोकों में या मगध में, यदि आप जीने से प्रसन्न हैं,
अवंती और असाका पर शासन करना—यह भी हम सहर्ष प्रदान करते हैं।
हाँ, हम अपने राज्य के आधे हिस्से को भी खुशी-खुशी छोड़ देते हैं।
बस एक शब्द कह दीजिए, जो कुछ भी आप चाहते हैं, वह तुरंत आपका हो जाएगा।
यह सुनकर ऋषि नंदा ने अपनी इच्छा बताते हुए कहा:

मुझे किसी राज्य की, न किसी नगर या भूमि की लालसा है।
और न ही मैं आपके हाथों अपार धन-दौलत अर्जित करना चाहता हूँ।
"लेकिन अगर तुम्हारे मन में मेरे लिए जरा भी स्नेह है," उसने कहा, "तो मेरी इस एक बात को मान लो।"

आपके प्रभुत्व के अधीन मेरे वृद्ध माता-पिता निवास करते हैं।
किसी एकांत वन कोठरी में पवित्र शांति का आनंद लेना।
इन वृद्ध ऋषियों से मुझे कोई पुण्य प्राप्त करने की अनुमति नहीं है।
यदि आप और आपके परिवार वाले मेरी ओर से पैरवी करेंगे, तो सोना अपना क्रोध शांत कर देगा।
तब राजा ने उससे कहा:

हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।
लेकिन वे कौन हैं जिन्हें मैं आपकी विनती को आगे बढ़ाने के लिए साथ ले जाऊं?
ऋषि नंदा ने कहा:

सौ से अधिक गृहस्थ, जिनमें धनी ब्राह्मण भी शामिल हैं, मैं उनका नाम लेता हूँ।
और ये सभी महान कुल के और प्रसिद्ध योद्धा सरदार,
राजा मनोजा के साथ, मेरी मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं।
तब राजा ने कहा:

जाओ, घोड़ों और हाथियों को जोतकर रथ में जोड़ दो।

जाओ, मेरे झंडे हवा में उड़ा दो, गाड़ी के खंभों और डंडों से।
मैं उस जगह की तलाश में जाता हूँ जहाँ कोसिया (*8), साधु, दूर निवास करता है।
फिर राजा अपनी चार गुना सेना के साथ उस स्थान की खोज में निकल पड़ा जहाँ वह एक रमणीय कुटिया में निवास करता था, एक सौम्य और शांत साधु।

ये श्लोक पूर्ण ज्ञान से प्रेरित हैं।

जिस दिन राजा आश्रम पहुँचे, उस दिन ऋषि सोना ने सोचा, "मेरे छोटे भाई के हमसे बिछड़ने के बाद से सात वर्ष, सात महीने और सात दिन से अधिक समय बीत चुका है। वह अब कहाँ हो सकता है?" और दिव्य दृष्टि से देखते हुए उन्होंने उसे देखा और मन ही मन कहा, "वह एक सौ एक राजाओं और चौबीस सेनाओं के दल के साथ मुझसे क्षमा मांगने आ रहा है। इन राजाओं और उनके सेवकों ने मेरे छोटे भाई द्वारा किए गए अनेक चमत्कार देखे हैं, और मेरी अलौकिक शक्ति से अनभिज्ञ होकर वे मेरे बारे में कहते हैं, "यह झूठा तपस्वी अपनी शक्ति का अधिक अनुमान लगाता है और स्वयं को हमारे प्रभु के बराबर समझता है।" ऐसे घमंड से वे नरक में जाने के लिए अभिशप्त होंगे। मैं उन्हें अपनी जादुई शक्तियों का एक नमूना दिखाऊंगा," और अपने कंधे से चार इंच की दूरी पर एक डंडा हवा में रखकर, वे राजा के निकट से गुजरते हुए, अनोत्तट्टा झील से जल लाने के लिए अंतरिक्ष में चले गए। लेकिन ऋषि नंदा ने जब उन्हें आते देखा, तो स्वयं को प्रकट करने का साहस नहीं किया, बल्कि जहाँ वे बैठे थे वहीं गायब होकर भाग गए और हिमालय में छिप गए। हालांकि, राजा मनोज ने जब सोना को एक तपस्वी के आकर्षक वेश में आते देखा, तो उन्होंने यह श्लोक कहा:

इतनी तेज गति से हवा में उड़ते हुए उसके लिए पानी लाने कौन जाता है?
लकड़ी का खंभा उससे लगभग चार इंच की दूरी पर था?
इस प्रकार संबोधित किए जाने पर उस महान सत्ता ने दो छंद कहे:

मैं सोना हूँ; मैं कभी भी तपस्वी जीवन से विचलित नहीं होती।
मैं दिन-रात बिना थके अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता हूँ।
मैं उनके भोजन के लिए जंगल से बेर और जड़ें इकट्ठा करता हूँ।
मुझे हमेशा याद रहता है कि कैसे उन्होंने एक समय मुझे फायदा पहुंचाया था।
यह सुनकर राजा ने उससे मित्रता करने की इच्छा से एक और श्लोक कहा:

हम प्रसन्नतापूर्वक उस आश्रम तक पहुँचेंगे जहाँ कोसिया निवास करती थी।
हे सोना, हमें वह रास्ता दिखाओ जो हमें उसकी कोठरी तक ले जाएगा।
तब उस महान सत्ता ने अपनी अलौकिक शक्ति से आश्रम तक जाने वाला एक मार्ग बनाया और यह श्लोक बोला:

यही मार्ग है: हे राजा, गहरे हरे रंग के उस समूह को भलीभांति जानो;
वहाँ काले पेड़ों के झुरमुट के बीच में आश्रम दिखाई देता है।
इस प्रकार उस महान ऋषि ने इन योद्धा राजाओं को उपदेश दिया, और फिर
एक बार फिर उसने हवा में उड़ान भरी और जल्दी से घर की ओर चल पड़ा।
इसके बाद आश्रम की तलाशी लेने के बाद उसने अपने पिता के विश्राम स्थल की खोज की।
और उस वृद्ध संत को जगाकर उसने उन्हें बैठने के लिए जगह दी।
"आइए," वह चिल्लाया, "हे पवित्र ऋषि, कृपया यहाँ बैठिए, मैं आपसे विनती करता हूँ, क्योंकि महान प्रसिद्धि वाले उच्च कुल के राजा इस मार्ग से गुजरेंगे।"

अपने बेटे को इस प्रकार अपनी उपस्थिति के लिए विनती करते हुए सुनकर बूढ़े व्यक्ति ने
वह अपनी झोपड़ी से जल्दी से बाहर आया और दरवाजे के पास बैठ गया।
ये श्लोक पूर्ण ज्ञान से प्रेरित हैं।

और ऋषि नंदा राजा के पास ठीक उसी समय पहुँचे जब बोधिसत्व आश्रम पहुँचे थे। वे अपने साथ अनोतत्ता से जल लाए थे और नंदा ने आश्रम से कुछ ही दूरी पर अपना डेरा डाला। राजा ने स्नान किया और अपने पूरे वैभव के साथ वस्त्र धारण किए, और एक सौ एक राजाओं के साथ भव्यता से ऋषि नंदा के साथ आश्रम में प्रवेश किया, ताकि बोधिसत्व से अपने भाई को क्षमा करने की विनती कर सकें। तब बोधिसत्व के पिता ने राजा को आते देख बोधिसत्व से पूछताछ की और बोधिसत्व ने उन्हें सारी बात समझा दी।

गुरु ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा:

उसे समस्त वैभव के साथ निकट खड़ा देखकर, राजाओं के एक समूह से घिरा हुआ, वृद्ध द्रष्टा ने इस प्रकार कहा:

कौन यहाँ ढोल, शंख और ढोल की थाप के साथ मार्च कर रहा है?
राजाओं के दिलों को खुश करने वाला संगीत? यहाँ विजय का संदेश लेकर कौन आया है?
इस वैभवशाली आभा में कौन आता है, सोने की पगड़ी धारण किए हुए?
तेज बिजली की तरह चमकीला, और तीरों से लैस, एक युवा और साहसी नायक?
जो अत्यंत तेजस्वी और गौरवशाली, सुनहरे रंग से जगमगाते चेहरे के साथ आता है,
क्या आप भट्टी में जलते हुए बबूल की लकड़ी के अंगारों की तरह देख रहे हैं?
जो व्यक्ति इस तरह से अपना छाता ऊँचा करके आता है,
क्या यह स्पष्ट रूप से उभरी हुई पसलियों के साथ सूर्य की तीव्र किरणों को रोकती है?
यह कौन है, जिसने अपने बगल में याक की पूंछ से बना पंखा फैला रखा है?
क्या वह किसी ज्ञानी ऋषि की तरह हाथी की पीठ पर सवार दिखाई देता है?
कौन आता है सफेद पैराशूटों की शान और वैभव के साथ?
और क्या कुलीन नस्ल के कवचधारी घोड़े, बाएं और दाएं घेरा बनाकर खड़े होंगे?
जो यहाँ सौ या उससे अधिक राजाओं से घिरा हुआ आता है,
क्या उनके आगे और पीछे महान राजाओं का एक दल था?
हाथियों के साथ, रथों के साथ और घुड़सवार एवं पैदल सेना के साथ,
कौन युद्ध की सारी शान-शौकत के साथ, चार गुना (*10) सेना की वर्दी में आता है?
जो अपने मार्ग का अनुसरण करने वाली विशाल सेनाओं के साथ आता है,
क्या वे अटूट और असीम हैं, जैसे समुद्र की लहरें?
मनोज, राजाओं का राजा, नंदा के साथ यहाँ आया है।
मानो स्वर्ग के स्वामी इंद्र हमारे इस एकांतवास में आए हों।
उसकी सेना अत्यंत शक्तिशाली है, और वह आज्ञाकारी होकर उसका अनुसरण करती है।
समुद्र की लहरों की तरह अटूट, असीम।
गुरु ने कहा:

उत्तम रेशम के वस्त्र पहने, चंदन के तेल से तर किए हुए, ये राजा निंदक भाव से संतों के पास पहुंचते हैं।

तब राजा मनोज ने अभिवादन करते हुए अलग स्थान पर बैठकर, मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए दो श्लोक कहे:

हे पवित्र पुरुषों, हमें आशा है कि आप समृद्ध और कुशल होंगे।
आपके निवास स्थान पर अनाज इकट्ठा करने के लिए है और जड़ और फल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।
क्या आप मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं?
या फिर क्या आपको जंगली जानवरों से सुरक्षा प्राप्त है?
फिर उन्होंने प्रश्न और उत्तर के रूप में इन छंदों का पाठ किया:

हम आपको धन्यवाद देते हैं, महाराज, और इस प्रकार उत्तर देते हैं: हम समृद्ध हैं और कुशल मंगल हैं।
हमारे निवास स्थान पर अनाज इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त अनाज है और जड़ और फल बहुतायत में उपलब्ध हैं।
हम मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से परेशान नहीं होते।
और जंगली जानवरों से हमें यहां सुरक्षा प्राप्त है।
यहां संन्यासियों की तरह रहने वाले लोगों के लिए सुपारी बहुत उपयोगी है।
मेरी जानकारी के अनुसार, यहाँ आज तक कोई भी हानिकारक बीमारी नहीं पाई गई है।
स्वागत है (*11), हे राजा, एक सुखद संयोग ने आपको इस मार्ग पर निर्देशित किया है।
आप कितने महान और गौरवशाली हैं: कृपया बताइए, आपका काम क्या है?
टिंडूक और पियाल के पत्ते, और कसुमरी मिठाई,
और शहद जैसे फल, हे राजा, हमारे पास जो सबसे अच्छे फल हैं, उन्हें ले लो और खाओ।
और पहाड़ी पर छिपी एक गुफा से निकलता यह ठंडा पानी,
हे महान सम्राट, इसे ग्रहण करें, यदि आपकी इच्छा हो तो पी लें।
आपका दान मुझे और सभी को स्वीकार है, लेकिन कृपया

हमारे मित्र, बुद्धिमान नंदा, जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे ध्यान से सुनें।
हम सभी नंदा के अनुयायी आपसे विनती करते हुए आपके पास आते हैं।
गरीब नंदा की विनम्र विनती को सहर्ष सुनने की याचना करना।
इस प्रकार संबोधित किए जाने पर ऋषि नंदा अपने आसन से उठे और अपने पिता, माता और भाई को प्रणाम किया, तथा अपने अनुयायियों से संवाद करते हुए बोले:

देश के लगभग सौ लोग और महान ख्याति प्राप्त ब्राह्मण,
और ये सभी महान योद्धा सरदार, अपने नाम से प्रसिद्ध,
हमारे महान स्वामी राजा मनोजा सहित सभी लोग मेरे इस दावे का समर्थन करते हैं।
इस आश्रम में एकत्रित हुए यक्षों,
और वन की आत्माएं, बूढ़ी और जवान (*12), मेरी कही हुई बातों पर ध्यान देती हैं।
इन सभी को मेरा नमन अर्पित है, इसके बाद मैं इस पवित्र ऋषि के संबोधन पर आगे बढ़ता हूँ।
आपने पहले मुझमें एक भाई को अपने दाहिने हाथ के समान अधिकार दिया था।
मैं आपसे यही वरदान मांगता हूँ कि मैं अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा कर सकूँ।
हे महान संत, मेरे इस पवित्र कार्य में बाधा डालना बंद करो।
आपने लंबे समय से हमारे माता-पिता की सेवा की है;
भले लोग ऐसे कार्यों को पसंद करते हैं - तो बदले में मुझे भी ऐसा क्यों न करने दिया जाए?
और इस प्रकार प्राप्त पुण्य के कारण स्वर्ग का मार्ग मेरे लिए सुगम हो जाता है।
कुछ अन्य लोग भी हैं जो जानते हैं कि कर्तव्य का मार्ग इसी में निहित है।
हे ऋषि, जैसा कि आप स्वयं जानते हैं, यही स्वर्ग का मार्ग है।
और फिर भी एक पवित्र व्यक्ति मुझे इस प्रकार के पुण्य से वंचित करता है।
जब मैं अपनी सेवा से अपने माता-पिता को परम सुख प्रदान करूंगा।
इस प्रकार नंदा द्वारा संबोधित किए जाने पर, उस महान सत्ता ने कहा, "तुमने उसकी बातें सुन लीं; अब मेरी बात सुनो," और उन्होंने ये श्लोक कहे:

मेरे भाई के साथ जो भी हैं, मेरी बात एक-एक करके सुनो;
जो कोई भी अपने पूर्वजों की प्राचीन परंपरा को अस्वीकार करता है,
बड़ों के विरुद्ध पाप करने के कारण, वह नरक में पुनर्जन्म लेकर जलेगा।
लेकिन जो लोग पवित्र परंपराओं में निपुण हैं, वे सत्य के मार्ग को जान सकते हैं।
नैतिक नियमों का पालन करने से कभी भी दुखों के संसार में नहीं जाना पड़ेगा।
भाई-बहन, माता-पिता, सभी पारिवारिक बंधनों से जुड़े हुए हैं।
सबसे बड़े बेटे पर लगा दायित्व हमेशा बना रहेगा।
सबसे बड़े पुत्र होने के नाते, मैं इस भारी जिम्मेदारी को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।
और जिस प्रकार एक पायलट अपने जहाज की रक्षा करता है, मैं अपने अधिकार का कभी त्याग नहीं करूंगा।
यह सुनकर सभी राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "आज हमें पता चला कि परिवार के शेष सभी सदस्यों का दायित्व सबसे बड़े सदस्य पर होता है," और उन्होंने ऋषि नंदा का त्याग कर उस महान सत्ता के प्रति समर्पित हो गए और उनकी स्तुति करते हुए दो श्लोकों का पाठ किया:

हमें ज्ञान उस लौ की तरह मिला है जो आधी रात के अंधेरे में चमकती है।
फिर भी पवित्र कोसिया ने हमें सही मार्ग दिखाया है।
जिस प्रकार सूर्यदेव अपनी किरणों से पूरे समुद्र को प्रकाशित करते हैं,
जीवित प्राणियों के रूप को दर्शाना, चाहे वे अच्छे हों या बुरे।
इसलिए पवित्र कोसिया मुझे और आपको सही मार्ग दिखाता है।
इस प्रकार, यद्यपि इन राजाओं ने ऋषि नंदा के अद्भुत कार्यों को देखकर लंबे समय तक उन पर विश्वास किया था, फिर भी उस महान सत्ता ने ज्ञान की शक्ति से उनके विश्वास को नष्ट कर दिया और उन्हें अपने वचनों को स्वीकार करवाकर, उन सभी को अपना परम आज्ञाकारी सेवक बना लिया। तब ऋषि नंदा ने सोचा, "मेरा भाई बुद्धिमान और चतुर है तथा शास्त्रों में पारंगत है। उसने इन राजाओं को पराजित कर दिया है और उन्हें अपने पक्ष में कर लिया है। उसके सिवा मेरा कोई और आश्रय नहीं है। मैं केवल उसी से प्रार्थना करूंगा।" और उन्होंने यह श्लोक कहा:

क्योंकि आप मेरी विनती भरी मनोवृत्ति और न ही मेरे फैले हुए हाथ पर ध्यान नहीं देते।
मैं आपका विनम्र दास बनकर आपके आदेश की प्रतीक्षा करूंगा।
स्वाभाविक रूप से उस महान सत्ता के मन में नंदा के प्रति कोई क्रोध या शत्रुता का भाव नहीं था, परन्तु उन्होंने ऐसा इसलिए किया था ताकि उसके अहंकार को कम किया जा सके, क्योंकि उसने अत्यधिक घमंड से बात की थी। परन्तु अब उसकी बातें सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए और उस पर कृपा करते हुए बोले, "अब मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ और तुम्हें अपने माता-पिता की देखभाल करने की अनुमति देता हूँ," और उसके गुणों का बखान करते हुए उन्होंने कहा:

नंदा, तुम सच्चे धर्म को भली-भांति जानते हो, क्योंकि संतों ने तुम्हें यही सिखाया है।
"अच्छा होना ही महान कार्य है"—आपने मुझे बहुत प्रसन्न किया।
मेरे आदरणीय माता-पिता, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ: मेरी बात ध्यान से सुनो।
आप पर बोझ होने का आरोप कभी किसी भी तरह से महसूस नहीं किया गया।
मैंने लंबे समय तक अपने माता-पिता की सेवा की है, उनकी खुशी के लिए।
अब नंदा आकर विनम्रतापूर्वक आपसे अपनी बारी में सेवा करने की विनती करता है।
तुम दोनों संतों में से जो भी नंदा की सेवा करना चाहे,
बस एक शब्द बोलो और वह आकर केवल तुम्हारी सेवा करेगा।
तब उसकी माताजी अपनी सीट से उठकर बोलीं, "प्यारी सोना, तुम्हारा छोटा भाई बहुत दिनों से घर से अनुपस्थित था। अब जब वह लौट आया है, तो मैं स्वयं उससे पूछने का साहस नहीं करती, क्योंकि हम पूरी तरह से तुम पर निर्भर हैं, लेकिन तुम्हारी अनुमति से मुझे इस पवित्र युवक को अपनी बाहों में लेने और उसके माथे पर चुंबन करने की अनुमति दी जाए," और अपनी बात स्पष्ट करने के लिए उन्होंने यह श्लोक कहा:

सोना, प्यारे बेटे, जिस पर हम भरोसा करते हैं, अगर तुम इसकी अनुमति दो,
उन्हें एक बार फिर गले लगाकर मैं पवित्र नंदा चुंबन दूंगी।
तब उस महान पुरुष ने उससे कहा, "हे प्रिय माता, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ: जाओ और अपने पुत्र नंदा को गले लगाओ, उसके सिर को सूंघो और चूमो, और अपने हृदय के दुःख को शांत करो।" अतः वह ऋषि नंदा के पास गई और समस्त सभा के समक्ष उन्हें गले लगाकर उनके सिर को सूंघा और चूमा, जिससे उसके हृदय का दुःख समाप्त हो गया, और उस महान पुरुष से संवाद करते हुए उसने यह श्लोक कहा:

जिस प्रकार विस्फोट से बोधि वृक्ष की कोमल शाखाएँ हिल जाती हैं,
नंदा को आखिरकार आते देख मेरा दिल खुशी से झूम उठा।
नंदा, मुझे लगता है, जैसे मैं सपने में वापस लौटकर उसे देख रहा हूँ,
मैं आधे पागल और आधे उल्लास से चिल्लाता हूँ, "नंदा मेरे पास वापस आ गया है।"
लेकिन अगर जागने पर मुझे पता चले कि मेरी नंदा जा चुकी है,
मेरी आत्मा पहले से भी अधिक दुःख का शिकार हो जाएगी।
आज नंदा आखिरकार अपने प्रिय माता-पिता के पास लौट आया है।
मेरे पति और मुझे समान रूप से प्रिय, वह हमारे साथ ही अपना घर बनाता है।
यद्यपि नंदा अपने पिता को प्रिय है, फिर भी वह जहाँ चाहे वहाँ रहे।
तुम अपने पिता की इच्छाओं का ध्यान रखो—नंदा मेरी इच्छाओं को पूरा करेगा।
उस महान प्राणी ने अपनी माता की बात मान ली और कहा, "ऐसा ही हो," और उन्होंने अपने भाई को संबोधित करते हुए कहा, "नंदा, तुम्हें बड़े पुत्र का हिस्सा मिला है; सचमुच एक माता सबसे बड़ी शुभचिंतक होती है। उसकी देखभाल में सावधान रहना," और माता के गुणों का गुणगान करते हुए उन्होंने दो श्लोक कहे:

दयालु, करुणामयी, हमारी शरणस्थली वह जिसने हमें अपने स्तनों से दूध पिलाया।
माँ स्वर्ग का मार्ग है, और वह तुम्हें सबसे अधिक प्यार करती है।
उन्होंने हमारा पालन-पोषण बड़े प्यार से किया; वे अच्छे गुणों से परिपूर्ण हैं।
माँ स्वर्ग का मार्ग है, और सबसे अच्छी बात यह है कि वह आपसे प्यार करती है।
इस प्रकार उस महान पुरुष ने दो श्लोकों में माता के गुणों का वर्णन किया, और जब उनकी माता पुनः अपने आसन पर बैठ गईं, तो उन्होंने कहा, "हे नंदा, तुम्हारी माता ने बहुत कष्ट सहे हैं। हम दोनों का पालन-पोषण हमारी माता ने अत्यंत पीड़ापूर्वक किया है। अब तुम उनकी सावधानीपूर्वक देखभाल करना और उन्हें खट्टे बेर न खिलाना," और उपस्थित लोगों के बीच यह स्पष्ट करने के लिए कि अत्यंत कठिन कार्य माता के भागी हैं, उन्होंने कहा:

संतान प्राप्ति की चाह में वह प्रार्थना करते हुए प्रत्येक पवित्र मंदिर के समक्ष घुटने टेकती है।
बदलते मौसम खगोलीय परंपरा का गहन अध्ययन और अवलोकन करते हैं।
समय बीतने के साथ-साथ गर्भावस्था के दौरान उसकी कोमल इच्छाएं बढ़ती जाती हैं।
और जल्द ही बेहोश बच्चा एक प्यारे दोस्त को जानने लगता है।
वह अपने खजाने को एक वर्ष या उससे कम समय के लिए अत्यंत सावधानी से सुरक्षित रखती है।
फिर इसे आगे बढ़ाया जाता है और उस दिन से एक माँ का नाम इसे धारण करेगा।
वह अपने दूध से भरे स्तनों और लोरी से परेशान बच्चे को शांत करती है।
अपने कंबल की गर्म बाहों में लिपटे हुए उसके कष्ट जल्द ही दूर हो जाते हैं।
उस बेचारे मासूम की देखभाल करते हुए, वरना हवा या गर्मी उसे परेशान कर देगी।
उसे उसकी ममतामयी नर्स कहा जा सकता है, क्योंकि वह अपने बेटे की इस प्रकार देखभाल करती है।
उसके माता-पिता ने उसके लिए क्या-क्या सामान रखा है, "शायद।"
वह सोचती है, "मेरे प्यारे बच्चे, एक दिन यह सब तुम्हें भी मिल जाएगा।"
"मेरे प्यारे बेटे, ये करो या वो करो," चिंतित माँ रोते हुए कहती है।
और जब वह जवान होकर पुरुष बन जाता है, तब भी वह शोक मनाती है और आहें भरती है।
वह बेपरवाही में रात को पड़ोसी की पत्नी से मिलने जाता है।
वह गुस्से से भड़क उठी और परेशान होकर बोली, "वह उजाले में ही क्यों नहीं लौट रहा है?"
यदि कोई बच्चा इस प्रकार चिंता और कष्टों से पाला-पोसा जाए और उसकी माँ उसकी उपेक्षा करे,
उसके साथ धोखा करना, उसका क्या हश्र होगा, मैं पूछता हूँ, लेकिन वह किस नरक की उम्मीद कर सकता है?
यदि किसी बच्चे का पालन-पोषण बड़ी चिंता और परिश्रम से हुआ हो और उसके पिता उसकी उपेक्षा करें,
उसके साथ धोखा करना, उसका क्या हश्र होगा, मैं पूछता हूँ, लेकिन वह किस नरक की उम्मीद कर सकता है?
ऐसा कहा जाता है कि जो लोग धन से अत्यधिक प्रेम करते हैं, उनका धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।
जो व्यक्ति अपनी माँ की उपेक्षा करता है, उसे जल्द ही इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है।
ऐसा कहा जाता है कि जो लोग धन से अत्यधिक प्रेम करते हैं, उनका धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।
जो अपने पिता की उपेक्षा करता है, उसे जल्द ही इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा।
आनंद, बेफिक्र सहजता, हंसी और खेल, यही हमारी सच्ची विरासत है।
उस व्यक्ति के बारे में जो वृद्धावस्था में अपनी माँ की लगन से देखभाल करता है।
आनंद, बेफिक्र सहजता, हंसी और खेल, यही हमारी सच्ची विरासत है।
उस व्यक्ति के बारे में जो वृद्धावस्था में अपने पिता की लगन से देखभाल करता है।
उपहार (*13), प्रेमपूर्ण वाणी, दयालु सेवाभाव, अनुग्रह के साथ
उचित समय और स्थान पर दिखाई गई मन की शांत उदासीनता—
ये सद्गुण संसार के लिए रथ के पहिये के समान ही महत्वपूर्ण हैं।
इन कमियों के बावजूद, बच्चों के लिए माँ का नाम आकर्षक रहेगा।
माता को भी पिता के समान आदरपूर्वक ताज पहनाया जाना चाहिए।
ऋषि-मुनि उस व्यक्ति को पसंद करते हैं जिसमें ये गुण पाए जाते हैं।
अत: माता-पिता, जो सभी प्रशंसा के पात्र हैं, एक उच्च स्थान के हकदार हैं।
प्राचीन ऋषियों द्वारा ब्रह्मा कहलाए गए। उनकी ख्याति इतनी महान थी।
अपने बच्चों से दयालु माता-पिता को पूरा सम्मान मिलना चाहिए।
जो बुद्धिमान है वह सच्ची और नेक सेवा से उनका सम्मान करेगा।
उसे उन्हें उपयुक्त भोजन, पेय पदार्थ, बिस्तर और वस्त्र उपलब्ध कराने चाहिए।
उन्हें स्नान कराना चाहिए, तेल लगाना चाहिए और उनके पैरों को विधिपूर्वक धोना चाहिए।
इन ऋषियों जैसी दयालु सेवाओं के लिए उनकी प्रशंसा करना उचित है।
इस संसार में और मृत्यु के बाद स्वर्ग में, उसे अनेक आनंद प्राप्त होंगे।

इस प्रकार, मानो वह सिनेरु पर्वत को हिला देने वाले हों, उस महान सत्ता ने अपना उपदेश समाप्त किया। उनकी बातें सुनकर सभी राजा और उनके अनुयायी आस्तिक हो गए। फिर उन्होंने उन्हें पाँच नैतिक नियमों में स्थापित किया और दान-पुण्य और इसी प्रकार के सद्गुणों में तत्पर रहने की सलाह देकर विदा किया, और वे सभी अपने-अपने राज्यों पर विधिपूर्वक शासन करने के बाद अपने जीवन के अंत में स्वर्ग चले गए। ऋषि सोना और नंदा, जब तक जीवित रहे, अपने माता-पिता की सेवा करते रहे और ब्रह्मलोक के लिए नियत हुए।

गुरु (बुद्ध) ने यहाँ अपना उपदेश समाप्त किया और सत्यों को प्रकट करते हुए जन्म की पहचान बताई:- सत्यों के अंत में, अपनी माता का स्नेह करने वाले भिक्षु (भाई) प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि में स्थापित हुए:- "उस समय माता-पिता महान राजा के दरबार के सदस्य थे, ऋषि नंदा आनंद थे, राजा मनोज सारिपुत्र थे, एक सौ एक राजा अस्सी प्रमुख वरिष्ठ और कुछ अन्य थे, चौबीस पूर्ण सेनाएँ बुद्ध के शिष्य थे, लेकिन ऋषि सोना मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)सं. 540.

(2) जातक, संख्या 397.

(3)खेलम पढ़ना.

(4) पाठ संभवतः दूषित है; शायद paraha, para(m)aho में छिपा हुआ है। देखें pare, जाट. सं. 279, सं. 423, "परसों," लेकिन जाट. सं. 481 में इसका अर्थ "परसों" प्रतीत होता है।

(5)पतिमनेति, प्रतीक्षा करना। जातक संख्या 258, संख्या 288, संख्या 203, मिल. I. 14

(6)पनामेती को बर्खास्त करना। मिल. I. 258, कुल्लवग्गा, XII। 2.3, जाट. नहीं। 28

(7) सरत्तनम पढ़ना.

(8) सोना और उसके पिता का पारिवारिक नाम।

(9)वम्भेति

(10) हाथी, घुड़सवार सेना, रथ और पैदल सेना।

(11)ये पंक्तियाँ क्रमांक 503, सत्तिगुम्बा जातक में आती हैं।

(12) भूतभव्यनी, पूर्ण विकसित और भ्रूण देवता: भव्य के लिए, देवताओं (देवदूतों) का एक वर्ग, विष्णु पुराण, III. 12 देखें।

(13)चाइल्डर्स राजाओं के संबंध में चार संगहवत्थु इस प्रकार बताते हैं: उदारता, सौहार्द, परोपकारी शासन और निष्पक्षता।

पुस्तक XXI. असितिनिपता:

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुलहंस-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-533-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 533
कुल्लाहंस-जातक। (*1)

"अन्य सभी पक्षी, आदि।" यह कथा गुरु ने बाँस के वन में रहते हुए सुनाई थी, कि कैसे पूज्य आनंद ने अपने प्राण त्याग दिए। जब तथागत (बुद्ध) को मारने के लिए धनुर्धारियों को रिश्वत दी गई, और देवदत्त (*2) द्वारा इस कार्य पर भेजा गया पहला धनुर्धारी लौटकर बोला, "हे परम पूज्य, मैं भगवान बुद्ध का प्राण नहीं छीन सकता: वे महान अलौकिक शक्तियों से परिपूर्ण हैं," तो देवदत्त ने उत्तर दिया, "हे परम पूज्य, आपको तपस्वी गौतम (बुद्ध) को मारने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं उनका प्राण छीन लूँगा।" जब तथागत (बुद्ध) गिद्ध शिखर (*3) द्वारा पश्चिम की ओर डाली गई छाया में चल रहे थे, तब देवदत्त पर्वत की चोटी पर चढ़ गया और उसने गुलेल से छोड़े

गए एक शक्तिशाली पत्थर को यह सोचकर फेंका, "इस पत्थर से मैं तपस्वी गौतम (बुद्ध) को मार डालूँगा," लेकिन दो पर्वत चोटियों के आपस में मिलने से पत्थर रुक गया, और उसका एक टुकड़ा उड़कर भगवान बुद्ध के पैर पर लगा, जिससे खून बहने लगा और तीव्र पीड़ा होने लगी। जीवक ने चाकू से तथागत (बुद्ध) के पैर को चीरकर दूषित खून निकाला और उस पर औषधीय औषधि लगाकर उसे ठीक कर दिया। गुरु अपने सेवकों से घिरे हुए, पहले की तरह ही, बुद्ध के सभी महान आकर्षण के साथ विचरण करते रहे। तो देवदत्त ने उसे देखकर सोचा, "सचमुच कोई भी मनुष्य गौतम (बुद्ध) के उत्कृष्ट सौंदर्य को देखकर उनके पास जाने का साहस नहीं करेगा, परन्तु राजा का हाथी नलगिरि तो एक क्रूर और हिंसक जानवर है और बुद्ध के गुणों, धर्ममार्ग और सभा के बारे में कुछ भी नहीं जानता। वह तपस्वी का नाश करेगा।" अतः वह राजा के पास गया और उसे यह बात बताई। राजा ने तुरंत सुझाव मान लिया और अपने हाथीपालक को बुलाकर उससे कहा, "महाराज, कल आप नलगिरि को शराब पिलाकर मदमस्त कर दें और सूर्योदय होते ही उसे उस गली में छोड़ दें जहाँ तपस्वी गौतम (बुद्ध) आते-जाते हैं।" देवदत्त ने हाथीपालक से पूछा कि हाथी सामान्य दिनों में कितनी शराब पीता है, और जब उसने उत्तर दिया, "आठ घड़े," तो देवदत्त ने कहा, "कल उसे सोलह घड़े शराब पिलाएँ और उसे उस गली की ओर भेज दें जहाँ तपस्वी गौतम (बुद्ध) आते-जाते हैं।" "बहुत अच्छा," हाथीपालक ने कहा। राजा ने पूरे शहर में ढोल बजवाकर ऐलान किया, "कल नालगिरि को शराब पिलाकर मदहोश कर दिया जाएगा और शहर में छोड़ दिया जाएगा। शहर के सभी लोग सुबह जल्दी अपना काम निपटा लें और उसके बाद कोई भी सड़क पर न निकले।" देवदत्त महल से नीचे उतरकर हाथी के अस्तबल में गए और रखवालों से कहा, "मैं तुमसे कहता हूँ, हम ऊँचे पद से भी किसी को नीच बना सकते हैं और नीच पद से ऊँचा उठा सकते हैं। अगर तुम सम्मान के लिए तरसते हो, तो कल सुबह जल्दी नालगिरि को सोलह घड़े तेज़ शराब पिलाओ, और जब तपस्वी गौतम (बुद्ध) उस रास्ते से गुजरें,हाथी को नुकीले कोड़ों से घायल करो, और जब वह क्रोध में आकर अपना अस्तबल तोड़ दे, तो उसे उस गली की ओर भगाओ जहाँ गौतम (बुद्ध) अक्सर चलते थे, और इस प्रकार उस तपस्वी का नाश करो।" वे तुरंत ऐसा करने के लिए सहमत हो गए। यह अफवाह पूरे शहर में फैल गई। बुद्ध, धर्ममार्ग और भिक्षुत्व से जुड़े हुए गृहस्थ शिष्यों ने यह सुनकर गुरु के पास आकर कहा, "हे परम पूज्य, देवदत्त राजा के बहुत करीब है और कल वह नालगिरी को उस गली में छोड़ देगा जहाँ आप चलते हैं। कल भिक्षा मांगने के लिए शहर मत जाओ, यहीं रहो। हम मठ में भिक्षुओं के लिए भोजन की व्यवस्था करेंगे, जिनके मुखिया बुद्ध होंगे।" गुरु ने सीधे "मैं कल भिक्षा मांगने के लिए शहर नहीं जाऊंगा" कहे बिना उत्तर दिया, "कल मैं चमत्कार करूंगा और नालगिरी को वश में कर लूंगा और गलत अनुयायियों को कुचल दूंगा।" और राजगृह नगर में भिक्षा मांगने के लिए अपना चक्कर लगाए बिना, मैं भिक्षुओं के एक समूह के साथ नगर छोड़कर सीधे बाँस के वन में जाऊँगा, और राजगृह नगर के लोग वहाँ अनेक कटोरे भोजन लेकर जाएँगे और कल मठ के भोजन कक्ष में भोजन की व्यवस्था होगी।" इस प्रकार गुरु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। और यह जानकर कि तथागत (बुद्ध) उनकी इच्छा के अनुसार चल दिए हैं, वे भोजन के कटोरे लेकर नगर से निकल पड़े और बोले, "हम अपने दान मठ में ही बाँटेंगे।" और गुरु ने (हमेशा की तरह) पहले पहर में धर्म का उपदेश दिया, मध्य पहर में कठिन प्रश्नों का हल किया, अंतिम पहर के पहले भाग में सिंह की तरह अपनी दाहिनी ओर लेट गए, और दूसरे भाग में उन्होंने मोक्ष प्राप्ति (सम्मोहन) में समय बिताया, तीसरे भाग में, मानवता के कष्टों के प्रति गहरी करुणा की समाधि में प्रवेश करते हुए, उन्होंने दिव्य अंतर्दृष्टि से दूर से ही समस्त मानवता का अवलोकन किया, उन नए शिष्यों की खोज में जो मार्ग के लिए तैयार थे। दुखों से मुक्ति, सांसारिक पुनर्जन्मों से छुटकारा, अर्थात् निर्वाण, शाश्वत जीवन/मोक्ष (*4) की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चलते हुए, और यह देखकर कि नालगिरि हाथी पर विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप चौरासी हजार प्राणी धर्ममार्ग को स्पष्ट रूप से समझ पाएंगे, भोर होते ही, अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद, उन्होंने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, आज राजगृह नगर के चारों ओर स्थित अठारह मठों में रहने वाले सभी भिक्षुओं से कहो कि वे मेरे साथ उस नगर में चलें।" वरिष्ठ भिक्षु ने ऐसा ही किया, और सभी भिक्षु बांस के वन में एकत्रित हो गए। भिक्षुओं के एक विशाल समूह के साथ गुरु राजगृह नगर में प्रवेश कर गए और हाथीपालक अपने निर्देशों के अनुसार आगे बढ़े और वहाँ लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई। भक्तों ने सोचा, "आज भगवान हाथी बुद्ध और इस पशु जगत के हाथी के बीच एक भयंकर युद्ध होगा। हम बुद्ध के अतुलनीय कौशल से नालगिरि की पराजय देखेंगे।"और वे ऊपर चढ़कर ऊपरी मंजिलों, छतों और घरों की छतों पर खड़े हो गए। लेकिन अविश्वासी और गलत विश्वासियों ने सोचा, "नालागिरी एक क्रूर, हिंसक प्राणी है, और बुद्धों और उनके गुणों के बारे में कुछ नहीं जानता। आज वह तपस्वी गौतम (बुद्ध) के महिमामय स्वरूप को कुचल देगा और उनकी मृत्यु का कारण बनेगा। आज हम अपने शत्रु की पीठ देखेंगे।" और वे ऊपरी मंजिलों और अन्य ऊँचे स्थानों पर खड़े हो गए। और हाथी ने भगवान बुद्ध को अपनी ओर आते देख लोगों को भयभीत कर दिया, घरों को ध्वस्त कर दिया और अपनी सूंड उठाकर गाड़ियों को चूर-चूर कर दिया, और उत्तेजना से अपने कान और पूंछ खड़ी करके, वह किसी ऊँचे पर्वत की तरह भगवान बुद्ध की दिशा में दौड़ पड़ा। उसे देखकर भाइयों ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे पूज्यवर, यह नालगिरी, एक क्रूर और हिंसक प्राणी, और मनुष्यों का हत्यारा, इस मार्ग से आ रहा है (*5)। वास्तव में वह बुद्धों और उनके गुणों के बारे में कुछ नहीं जानता।" "हे शुभ भगवान बुद्ध, कृपया वापस चले जाएं।" "भयभीत न हों," उन्होंने कहा, "मैं नालगिरि पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ।" तब पूज्य सारिपुत्र ने गुरु से प्रार्थना करते हुए कहा, "हे परम पूज्य, जब किसी पिता की सेवा करनी होती है, तो वह उनके सबसे बड़े पुत्र पर डाला गया बोझ होता है।" मैं इस प्राणी को वश में कर लूँगा।" तब गुरु ने कहा, "सारिपुत्र, बुद्ध की शक्ति एक बात है, उनके शिष्यों की शक्ति दूसरी बात," और उन्होंने सारिपुत्र के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा, "तुम्हें यहीं रहना है।" अस्सी प्रमुख भिक्षुओं की भी यही प्रार्थना थी, पर उन्होंने सबकी प्रार्थना ठुकरा दी। तब पूज्य आनंद, गुरु के प्रति अपने प्रबल स्नेह के कारण, इस बात से सहमत नहीं हो सके और रोते हुए बोले, "यह हाथी पहले मुझे मार डाले," और वे गुरु के सामने खड़े हो गए, तथागत (बुद्ध) के लिए अपना प्राण बलिदान करने को

तैयार। तब गुरु ने उनसे कहा, “चले जाओ, आनंद, मेरे सामने मत खड़े रहो।” गुरु ने कहा, “हे प्रभु, यह हाथी भयंकर और हिंसक है, मनुष्यों का वध करने वाला है, जैसे किसी चक्र की शुरुआत में ज्वाला होती है।” पहले उसे मुझे मार डालने दो, उसके बाद वह तुम्हारे पास आए।” और यद्यपि उनसे तीसरी बार कहा गया, फिर भी वरिष्ठ भिक्षु उसी स्थान पर डटे रहे और पीछे नहीं हटे। तब भगवान बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग करते हुए उन्हें पीछे धकेल दिया और भिक्षुओं के बीच में खड़ा कर दिया। उसी क्षण एक स्त्री ने नलगिरि को देखकर मृत्यु के भय से भयभीत होकर भागते समय अपने कूल्हे पर लिए हुए बच्चे को तथागत (बुद्ध) और हाथी के बीच गिरा दिया और बच निकली। हाथी उस स्त्री का पीछा करते हुए बच्चे के साथ वहाँ पहुँचा, जिसने ज़ोर से रोना शुरू कर दिया। गुरु, जो स्पष्ट रूप से आज्ञा दी गई दानशीलता (*6) से प्रेरित थे, और ब्रह्मा के समान मधुर स्वर में नलगिरि को पुकारते हुए बोले, “हे! नलगिरि, जिन्होंने तुम्हें सोलह घड़े शराब पिलाकर पागल किया है, उन्होंने ऐसा इसलिए तो नहीं किया कि तुम किसी और पर हमला करो,लेकिन तुमने ऐसा इसलिए किया क्योंकि तुम्हें लगा कि तुम मुझ पर हमला करोगे। व्यर्थ में इधर-उधर भागकर अपनी शक्ति बर्बाद मत करो, बल्कि यहाँ आओ।" गुरु की वाणी सुनकर उसने अपनी आँखें खोलीं और भगवान बुद्ध का तेजस्वी रूप देखा, और वह अत्यंत व्याकुल हो गया तथा बुद्ध की शक्ति से मादक पेय का नशा उतर गया। अपनी सूंड छोड़कर और कान झटकते हुए वह तथागत (बुद्ध) के चरणों में गिर पड़ा। तब गुरु ने उसे संबोधित करते हुए कहा, "नालागिरि, तुम एक क्रूर हाथी हो, मैं बुद्ध हाथी हूँ। अब से क्रूर और हिंसक मत बनो, न ही मनुष्यों का वध करो, बल्कि दान के भाव का अभ्यास करो।" ऐसा कहकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ फैलाकर हाथी के माथे को सहलाया और उसे इन शब्दों में धर्म का मार्ग सिखाया:

(*7) यदि तुम इस हाथी पर हमला करने का साहस करो,
एक भयानक विपत्ति जिस पर आप जल्द ही शोक मनाएंगे।
इस हाथी पर प्रहार करना तुम्हारा भाग्य तय कर देगा।
आने वाले संसारों में दुख की अवस्था में होना।
पागलपन और मूर्खतापूर्ण लापरवाही से दूर रहो।
लापरवाह मूर्ख कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं कर पाएगा।
यदि परलोक में तुम स्वर्ग का सुख प्राप्त कर लो,
इस मामले में आप वही करें जो सही हो।

हाथी का पूरा शरीर आनंद से झकझोर रहा था, और यदि वह केवल चौपाया न होता, तो वह प्रथम मार्ग (सम्मोहन) की सिद्धि प्राप्त कर लेता। इस चमत्कार को देखकर लोग खुशी से चिल्ला उठे और उंगलियां चटकाने लगे। उन्होंने आनंद में आकर हाथी पर तरह-तरह के आभूषण फेंके और उसके पूरे शरीर को ढक दिया। तब से नालगिरि को धनपालक (खजाने का रक्षक) के नाम से जाना जाने लगा। धनपालक से हुई इस मुलाकात के अवसर पर चौरासी हजार प्राणियों ने अमरत्व का अमृत पिया। और गुरु ने धनपालक को पंच नैतिक नियमों में स्थापित किया। हाथी ने अपनी सूंड से भगवान बुद्ध के चरणों की धूल उठाकर अपने सिर पर छिड़की, और झुके हुए शरीर के साथ पीछे हटते हुए जब तक बुद्ध दृष्टि में रहे, उन्हें प्रणाम करता रहा, फिर मुड़कर हाथी के बाड़े में चला गया। तब से वह बिल्कुल शांत हो गया और उसने किसी को हानि नहीं पहुंचाई। गुरु ने अपनी इच्छा पूर्ण होते देख निश्चय किया कि खजाना उन्हीं के पास रहे जिन्होंने उसे हाथी पर लादा था। उन्होंने सोचा, "आज मैंने एक बड़ा चमत्कार किया है। इस नगर में भिक्षा मांगने के लिए घूमना उचित नहीं है।" गलत विश्वासियों को वश में करने के बाद, भिक्षुओं के एक समूह से घिरे हुए, वे एक विजयी योद्धा सरदार की तरह तेजी से नगर से निकल पड़े और सीधे बांस के वन की ओर चल दिए। नगरवासी अपने साथ उबले हुए चावल, पेय और कुछ ठोस भोजन लेकर मठ गए और बड़े पैमाने पर भिक्षादान का कार्य शुरू किया। उस दिन शाम को, जब वे सत्य के हॉल में बैठे थे, तब भिक्षुओं ने एक विषय शुरू किया और कहा, “आदरणीय आनंद ने तथागत (बुद्ध) के लिए अपने प्राणों का बलिदान देकर एक अद्भुत कार्य किया। नालगिरि को देखकर, गुरु द्वारा तीन बार मना किए जाने के बावजूद, उन्होंने जाने से इनकार कर दिया। हे सज्जनों, वास्तव में उस वरिष्ठ भिक्षु ने एक अद्भुत कार्य किया।” गुरु ने सोचा, “यह चर्चा आनंद के गुणों पर केंद्रित है, मुझे इसमें उपस्थित होना चाहिए,” इसलिए वे अपने सुगंधित कक्ष से उठकर आए और उनसे पूछा, “भाइयों, आप यहाँ किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” जब उन्होंने उत्तर दिया, “अमुक विषय पर,” तो उन्होंने कहा, “न केवल अभी, बल्कि पहले भी, आनंद ने पशु रूप में जन्म लेकर भी मेरे लिए अपने प्राणों का त्याग किया था,” और ऐसा कहते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले महिंसक राज्य में शकुल नगर के एक राजा शकुल ने अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया। उस समय नगर से कुछ ही दूरी पर स्थित एक शिकारी गाँव में एक शिकारी पक्षियों को फँसाकर नगर में बेचकर अपना जीवन यापन करता था। नगर के निकट ही मानुसिया नामक एक कमल-झील थी, जिसका घेरा बारह मील (4.23 किमी) था और वह पाँच प्रकार के कमलों से आच्छादित थी। वहाँ विभिन्न प्रकार के पक्षियों का झुंड आता-जाता रहता था और शिकारी वहाँ निःसंकोच अपने फंदे लगाता था। उसी समय धतरत्थ हंसों का राजा, अपने छियानवे हजार हंसों के दल के साथ, चित्तकूट पर्वत पर स्थित स्वर्ण गुफा में रहता था और उसका सेनापति सुमुख था।

एक दिन कुछ सुनहरे हंसों का झुंड मनुसिया झील पर आया और भरपूर चारागाह में जी भरकर चरने के बाद, वे सुंदर चित्तकुटा की ओर उड़ गए और धतरत्थ राजा से कहा, “महाराज, मनुष्यिया नाम की एक कमल-झील है, जो मनुष्यों के निवास स्थानों के बीच स्थित एक समृद्ध चारागाह है। हम वहाँ चरने जाएँगे।” राजा ने उत्तर दिया, “मनुष्यों के निवास स्थान खतरनाक हैं: इसे अपने लिए उपयुक्त न समझें।” यद्यपि उन्होंने जाने से इनकार कर दिया, फिर भी विनती करने पर उन्होंने कहा, “यदि आपकी इच्छा हो, तो हम जाएँगे,” और अपने साथियों के साथ वे उस झील की ओर चल पड़े। हवा से उतरते ही जैसे ही उन्होंने जमीन पर पैर रखा, उनका पैर एक फंदे में फंस गया। फंदे ने मानो लोहे के शिकंजे में जकड़कर उनके पैर को जकड़ लिया। फिर फंदे को तोड़ने के इरादे से उसने उसे खींचा, पहले चमड़ी फटी, फिर मांस फटा, और अंत में नसें कट गईं, जब तक कि फंदा हड्डी तक नहीं पहुँच गया और खून बहने लगा तथा असहनीय दर्द होने लगा। उसने सोचा, "अगर मैं पकड़े जाने की चीख निकाल दूँ, तो मेरा परिवार घबरा जाएगा और बिना भोजन के भूखा-प्यासा उड़ जाएगा और कमजोरी से पानी में गिर जाएगा।" इसलिए उसने दर्द सहन किया और जब उसके परिवार ने पेट भर खा लिया और हंसों की तरह आनंद ले रहे थे, तब उसने पकड़े गए पक्षी की तरह जोर से चीख मारी। यह सुनकर हंस मृत्यु के भय से भयभीत हो गए और चित्तकुटा की दिशा में उड़ गए। उनके जाते ही हंसों के सरदार सुमुख ने सोचा, "क्या इसका मतलब यह है कि महान राजा के साथ कुछ भयानक घटित हुआ है?"

मैं पता लगाऊंगा कि यह क्या है," और पूरी गति से उड़ते हुए, हंसों की पीछे हटती सेना के अग्रभाग में उस महान प्राणी को न देखकर, उसने पक्षियों के विशाल समूह में उसकी तलाश की और वहाँ भी उसे न पाकर उसने कहा, "निस्संदेह कुछ भयानक घटित हुआ है," और वह वापस मुड़ा और उसने उस महान प्राणी को एक फंदे में फंसा हुआ, खून से लथपथ और अत्यधिक पीड़ा से पीड़ित, कीचड़ भरे मैदान पर पड़ा पाया। और वह नीचे उतरा और जमीन पर बैठ गया और उस महान प्राणी को सांत्वना देने का प्रयास करते हुए कहा, "भयभीत न हों, महाराज: मैं अपने प्राणों का बलिदान देकर आपको फंदे से मुक्त कर दूंगा।"

फिर उसकी परीक्षा लेने के लिए उस महान सत्ता ने पहला श्लोक बोला:

मेरी परवाह किए बिना, बाकी सभी पक्षी जल्दी से उड़ गए;
एक कैदी किस तरह की दोस्ती को जान सकता है? जल्दी चलो, देर मत करो।
इसके बाद ये छंद आए (*8):

चाहे मैं तुम्हारे साथ जाऊं या रहूं, मुझे एक दिन मरना ही है।
मैंने कल्याणकारी योजनाओं में आपका साथ दिया है, लेकिन आपके कारण होने वाली पीड़ा में शायद मैं उड़ न पाऊं।
या तो मुझे तुम्हारे साथ मरना होगा, या फिर दुख भरी जिंदगी जीनी होगी।
अपने नुकसान का शोक मनाने के बजाय तुरंत मर जाना कहीं बेहतर था।
महाराज, आपको ऐसी दयनीय स्थिति में छोड़ना उचित नहीं है;
नहीं, मुझे आपके भाग्य में जो भी लिखा हो, उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।
जाल में फंसे व्यक्ति का क्या हश्र होगा सिवाय उस क्रूर भाले के?
आप होश में रहते हुए और स्वतंत्र रहते हुए यह प्रस्ताव कैसे प्रस्तुत कर सकते हैं?
हे पक्षी, इसमें तुम्हें और मुझे क्या लाभ है, यह तुम समझ पाते हो?
या फिर, अगर हम दोनों की मृत्यु हो जाए तो हमारे परिवार का क्या होगा?
सुनहरे पंखों वाले, रात में लिपटे हुए, तुम्हारा सार्थक कर्म होगा;
यदि ऐसे बलिदान का खुलासा हो जाए तो इससे क्या नैतिक संदेश मिलेगा?
हे पक्षियों के राजा, क्या तुम नहीं देखते कि आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होते हैं?
न्याय का उचित सम्मान करने से मनुष्यों को यह पता चलता है कि उनका सच्चा हित क्या हो सकता है।
सही को देखकर और उन सभी अच्छाइयों को देखकर जो सही से अभी भी उत्पन्न हो सकती हैं,
तुम्हारे प्रेम में मैं खुशी-खुशी अपना प्राण त्याग दूंगा।
सही मार्ग का ध्यान रखने वाला व्यक्ति कभी भी पीड़ित मित्र का साथ नहीं छोड़ता।
अपने जीवन को बचाने के लिए भी, ऐसा कार्य करना बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसनीय माना जाता है।
आपने अपना कर्तव्य बखूबी निभाया, और मैं आपके प्रेम को पहचानता हूँ।
यदि तुम वह काम करना चाहते हो जिसे मैं सबसे अधिक पसंद करता हूँ, तो तुरंत चले जाओ।
शायद समय के साथ, मेरे प्रभाव में मेरे परिवार को बांधने वाले बंधन टूट जाएं,
अधिक जानकारी और नियंत्रण के साथ, यह अधिकार एक दिन आपको मिल सकता है।
इस प्रकार जब ये महान पक्षी आपस में उच्च विचारों का आदान-प्रदान कर रहे थे, तो उन्हें देखो,
किसी बिस्तर पर पड़े हुए पीड़ित के लिए मृत्यु के समान, यह साहसी शिकारी प्रकट हुआ।

उसके मित्र अपने शत्रु को भली-भांति पहचानते हैं, जिससे उन्हें भय लगता है।
जब वह उनके पास आया तो वे काफी देर तक चुपचाप और बिना हिले-डुले बैठे रहे।
हंसों को इधर-उधर उड़ते और अंतरिक्ष में गायब होते देखना,
जहां ये महान पक्षी बैठे थे, वहां उनका शत्रु तेजी से उस स्थान की ओर बढ़ा।
और जैसे ही वह पूरी गति से दौड़ा और नियति स्थल पर पहुंचा,
यह सोचकर शिकारी कांप उठा और चिल्लाया, "क्या वे पकड़े गए या नहीं?"
एक पक्षी को उसने जाल में फंसा हुआ देखा, दूसरे पक्षी को उसने पाया
अपने बंदी मित्र को देखते हुए, जो स्वयं जंजीरों और बंधनों से मुक्त हो चुका था।
अपने मन में असमंजस और संदेह से भरे हुए उसने उस महान जोड़े को देखा, -वे पूरी तरह से विकसित थे, दो आकर्षक पक्षी--और इस प्रकार उसने उनके बारे में अच्छी बातें कहीं।

यह मानते हुए कि जाल में फंसा व्यक्ति कभी उड़ नहीं सकता (*9),
हे शक्तिशाली पक्षी, तुम अभी भी स्वतंत्र होकर उसके साथ रहने का निश्चय क्यों करते हो?
यह पक्षी तुम्हारे लिए क्या मायने रखता है, जो बाकी सब के उड़ जाने के बाद भी चला जाता है?
हालांकि तुम स्वतंत्र हो, फिर भी पिंजरे में बंद पक्षी के बगल में अकेले बैठे हो?
(*10)0 पक्षियों का शत्रु, मेरा मित्र और राजा, वह मेरे जीवन के समान प्रिय है;
मैं उसे कभी नहीं छोड़ूंगी—नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगी, जब तक कि मृत्यु मुझे अपने पास न बुला ले।
यह पक्षी शिकारी के गुप्त जाल को कैसे नहीं देख पाया?
शक्तिशाली सरदारों का कार्य खतरे से सावधान रहना है।
(*11)जब किसी व्यक्ति पर विनाश आ पड़ता है और मृत्यु का समय निकट आ जाता है,
भले ही आप इसके करीब आ जाएं, लेकिन न तो कोई जाल बिछा पाएंगे और न ही कोई फंदा।
हे पवित्रजनों, हर प्रकार के जाल अक्सर व्यर्थ ही बिछाए जाते हैं।
अंततः मृत्यु के क्षण में एक व्यक्ति छिपे हुए जाल में फंस जाता है और मारा जाता है।
इस प्रकार उसने उससे बातचीत करके शिकारी का हृदय नरम किया और उस महान सत्ता से जीवन की भीख मांगते हुए यह श्लोक कहा:

क्या यही आपके साथ मैत्रीपूर्ण बातचीत का सुखद पहलू (*12) है?
और क्या आप कृपया हमारी जान बख्श देंगे और हम दोनों को रिहा कर देंगे?
सुमुखा के मधुर शब्दों से मोहित होकर शिकारी ने यह श्लोक कहा:

तुम मेरे कैदी नहीं हो; जल्दी से यहाँ से चले जाओ;
मैं तुम्हारा खून नहीं बहाऊंगा; तुम बेदाग होकर कई दिनों तक जीवित रहोगे।
फिर सुमुखा ने चार श्लोक दोहराए:

अगर मेरा यह दोस्त मर जाए तो मुझे जीने की कोई इच्छा नहीं रहेगी।
एक से संतुष्ट होकर, उसे मुक्त जाने दो, और बदले में मेरा मांस खाओ।
हम दोनों की उम्र, लंबाई और शारीरिक बनावट लगभग एक जैसी है;
अगर आप मुझे उसके बदले में ले लें तो इसमें आपका कोई नुकसान नहीं है।
इसे इस नजरिए से देखो और मुझ पर अपनी भूख मिटाओ;
पहले मुझे फंदे में बांधो, फिर पक्षियों के इस राजा को मुक्त छोड़ दो।
इस प्रकार तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी और मेरी हृदय की मनोकामना भी सिद्ध हो जाएगी।
और जब तक जीवन कायम रहेगा, हंसों और तुम्हारे बीच शांति बनी रहेगी।
इस प्रकार, धर्म के उपदेश से उस शिकारी का हृदय तेल में डूबे रुई के समान कोमल हो गया, और उसने उस महान सत्ता को अपने स्वामी के दास के समान समर्पित करते हुए कहा:

अपने सभी ऋषियों, मित्रों, सेवकों और परिवार के सदस्यों को साक्षी मानो।
केवल तुम्हारे माध्यम से ही पक्षियों के इस राजा को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।
आप जैसा मित्र मिलना, जो सब कुछ साझा करने को तैयार हो, यह सौभाग्य नसीब में ही मिलता है।
यह एक आम नियति है, जैसा कि तब हुआ था जब आपका राजा एक घातक जाल में फंस गया था।

इसलिए मैं तुम्हारे मित्र राजा को रिहा करता हूँ, ताकि वह दूर तक तुम्हारा अनुसरण करे।
जल्दी करो, यहाँ से निकल जाओ, अपने परिवार के बीच एक तारे की तरह चमकने के लिए।
ऐसा कहकर शिकारी दयालु हृदय से उस महान प्राणी के पास आया, और उसके बंधन काटकर उसे अपनी बाहों में उठा लिया और पानी से बाहर निकालकर झील के किनारे ताज़ी घास पर लिटा दिया। उसने बड़े ही कोमल भाव से उसके पैर में बंधी हुई फंदे को धीरे से खोलकर दूर फेंक दिया। फिर उस महान प्राणी के प्रति गहरा स्नेह रखते हुए, प्रेम से भरे हृदय से उसने थोड़ा पानी लेकर उसके घाव से खून धोया और बार-बार पोंछा। उसकी दया से बोधिसत्व के पैर का घाव भर गया, नसें नस से, मांस मांस से, चमड़ी चमड़ी से जुड़ गई। नई चमड़ी बन गई और उस पर नए रोएँ उग आए। बोधिसत्व ऐसे हो गए मानो उनका पैर कभी फंसा ही न हो और अपने सामान्य रूप में आनंदित होकर बैठ गए। तब सुमुख ने अपने इस कार्य से उस महान प्राणी को इतना प्रसन्न देखकर, प्रसन्नता में शिकारी की प्रशंसा की।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

राजा की रिहाई से प्रसन्न हंस ने अपने स्वामी के सम्मान में अपने सहायक के कान में ये अत्यंत मधुर शब्द कहे:

"हंटर, तुम अपने सभी दोस्तों और परिवार के साथ खूब खुश रहो।"
मुझे पक्षियों के राजा को मुक्त देखकर खुशी हो रही है।"
शिकारी की इतनी प्रशंसा करने के बाद, सुमुखा ने बोधिसत्व से कहा, "हे प्रभु, इस व्यक्ति ने हमारी बड़ी सेवा की है: यदि उसने हमारी बात न मानी होती, तो वह या तो हमें पालतू पक्षी बनाकर, जिन्हें वह अपने आनंद के लिए रखता और किसी बड़े स्वामी को भेंट करता, या फिर हमें मारकर और बेचकर भोजन के रूप में बहुत धन कमा सकता था। परन्तु उसने अपनी आजीविका की परवाह न करते हुए हमारी बात मानी। आइए हम उसे राजा के समक्ष ले चलें और उसे जीवन भर सुखी बनाएं।" बोधिसत्व इस बात पर सहमत हो गए। तब सुमुखा ने बोधिसत्व से उनकी अपनी भाषा में बातचीत करने के बाद, शिकारी से मनुष्य भाषा में पूछा, "मित्र, तुमने जाल क्यों बिछाए?" और उसके उत्तर देने पर, "लाभ के लिए," सुमुखा ने कहा, "इसलिए, हमें अपने साथ नगर ले चलो और अपने राजा के समक्ष प्रस्तुत करो, और मैं उसे तुम्हें बहुत धन देने के लिए मना लूंगा," और उन्होंने ये श्लोक कहे:

आओ, मैं तुम्हें सिखाऊंगा कि तुम अपने लिए महान लाभ कैसे प्राप्त कर सकते हो।
इस हंस की प्रतिष्ठा पर जरा सा भी दाग लगने की कोई गुंजाइश नहीं है।
जल्दी करो, हमें शाही दरबार में ले चलो, पूरी तरह से स्वस्थ और तंदुरुस्त होकर।
इस भारवाहक डंडे के दोनों सिरों पर स्वतंत्र रूप से खड़े रहो।
और कहो, "हे महाराज, देखिए! हम आपके लिए दो लाल हंस लाए हैं,
एक लॉटरी का कप्तान है, दूसरा उनका राजा है।
मनुष्यों का यह स्वामी इस शाही हंस को देखकर
वह अत्यंत प्रसन्न और आनंदित होकर तुम्हें अपार धन-दौलत प्रदान करेगा।
जब उसने ऐसा कहा, तो शिकारी ने उत्तर दिया, "राजा से मिलने की इच्छा मत रखो। सचमुच राजा कमजोर दिल के होते हैं: वे या तो तुम्हें अपने मनोरंजन के लिए बंदी बना लेंगे या तुम्हें मार डालेंगे।" सुमुख ने कहा, "डरो मत, मेरे मित्र। धर्म के उपदेश से मैंने तुम्हारे जैसे क्रूर प्राणी का हृदय नरम कर दिया है और तुम्हें अपने चरणों में ले आया हूँ, एक शिकारी जिसका हाथ खून से सना है। राजा सचमुच अच्छे और बुद्धिमान होते हैं, और वे अच्छे और बुरे शब्दों में भेद कर सकते हैं। इसलिए जल्दी करो और हमें अपने राजा के समक्ष ले चलो।" शिकारी ने कहा, "ठीक है, मुझसे नाराज मत हो। यदि आप चाहें, तो मैं आपको उनके पास ले जाऊँगा।" तब उसने पक्षियों के जोड़े को अपने डंडे पर बिठाया और दरबार में जाकर उन्हें राजा से मिलवाया, और राजा द्वारा पूछे जाने पर शिकारी ने मामले के सभी तथ्य बता दिए।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

यह सुनकर वह उनके लिए वह चीज लेकर आया जिसकी उन्हें दिल से चाह थी।
और जल्दी से हंसों को, शारीरिक रूप से स्वस्थ और पूरी तरह से ठीक-ठाक, अदालत में ले गए।
वे दोनों खड़े थे, बंधे हुए नहीं थे, और एक-एक उनके लंबे डंडे के दोनों सिरों पर था।
"देखो! ये लो," उसने कहा, "हे महाराज, हम आपके लिए दो लाल हंस लाए हैं।"
एक लॉटरी का कप्तान है, दूसरा उनका राजा है।
हे शिकारी, ये शक्तिशाली पंखों वाले जीव तुम्हारे शिकार कैसे बन गए?
आप चुपके से उनके इतने करीब कैसे पहुंच गए, और उन्हें डराकर भगाए बिना कैसे चले गए?
हे मनुष्यों के स्वामी, प्रत्येक तालाब में फंदा या जाल देखो।

मुझे लगता है कि पक्षियों के हर (*13) ठिकाने में एक घातक जाल बिछाया गया था।
मैंने हंसों के राजा को इसी तरह के किसी छिपे हुए जाल में पकड़ा था।
उसका दोस्त, जो अभी भी स्वतंत्र था, उसके बगल में बैठा रहा और अपने स्वामी की रिहाई की प्रतीक्षा करता रहा।
इस पक्षी ने एक ऐसा कार्य करने का प्रयास किया जो तुच्छ प्राणियों की क्षमता से परे है।
उसने अपने स्वामी को राहत दिलाने के लिए अपनी हर नस को तनाव में डालने का दृढ़ संकल्प किया।
वह वहाँ बैठा था, जीवन जीने के योग्य, अपना जीवन देने में संतुष्ट।
काश, उसके स्वामी को, जिसकी वह प्रशंसा करता था, जीवित रहने की अनुमति मिल जाती।
उनके शब्दों को सुनकर मुझे तुरंत ही दिव्य अवस्था प्राप्त हो गई।
उन्होंने खुशी-खुशी पिंजरे में बंद पक्षी को मुक्त कर दिया और उनसे जगह छोड़ने को कहा।
अपनी रिहाई से प्रसन्न होकर हंस ने अपने स्वामी के सम्मान में अपने सहायक के कान में ये अत्यंत मधुर शब्द कहे:

"हंटर, तुम अपने सभी दोस्तों और परिवार के साथ खूब खुश रहो।"
मुझे पक्षियों के राजा को स्वतंत्र होते देखकर खुशी हो रही है।
आओ, मैं तुम्हें सिखाऊंगा कि तुम अपने लिए महान लाभ कैसे प्राप्त कर सकते हो।
इस हंस की प्रतिष्ठा पर जरा सा भी दाग लगने की कोई गुंजाइश नहीं है।
जल्दी करो, हमें शाही दरबार में ले चलो, पूरी तरह से स्वस्थ और तंदुरुस्त होकर।
इस भारवाहक डंडे के दोनों सिरों पर, बिना बंधे, खड़े रहो।
और कहो, "हे महाराज, देखिए! हम आपके लिए दो लाल हंस लाए हैं,
एक लॉटरी का कप्तान है, दूसरा उनका राजा है।
हे मनुष्यों के स्वामी, इस शाही हंस को देखकर
वह अत्यंत प्रसन्न और आनंदित होकर तुम्हें अपार धन-दौलत प्रदान करेगा।
अत: उनके कहने पर, मेरे नेतृत्व में ये दोनों यहाँ आए हैं।
हालांकि मेरे लिए वे दोनों अपने पहाड़ी घर की तलाश करने के लिए स्वतंत्र थे।
इस बेचारे पक्षी का यही हश्र हुआ, हालांकि वह बहुत ही नेक था।
इतना अधिक कि उसने मुझ जैसे क्रूर शिकारी को भी दया से भर दिया।
हे मनुष्यों के स्वामी, मैं इस हंस को आपके लिए भेंट के रूप में लाता हूँ।
शिकारियों के बीच शायद ही कोई उनके जैसा मिल पाता था।
वहाँ खड़े होकर उसने सुमुखा के गुणों का बखान किया। फिर राजा शकुल ने हंस-राजा को एक कीमती सिंहासन और सुमुखा को एक बहुमूल्य सोने की कुर्सी भेंट की। जब वे बैठ गए, तो उसने उन्हें सोने के बर्तनों में भुना हुआ अनाज, शहद, गुड़ आदि परोसा। भोजन समाप्त होने पर उसने हाथ फैलाकर ईश्वर से धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की और स्वयं सोने की कुर्सी पर बैठ गया। उसके अनुरोध पर हंस-राजा ने उससे मधुर वार्तालाप किया।

गुरु ने सब कुछ स्पष्ट करने के लिए कहा:

अब राजा को एक सुंदर सुनहरी कुर्सी पर बैठे देखकर,
हंस ने मधुर स्वर में उसकी सुंदरता का बखान किया।
हे प्रभु, क्या आप स्वस्थ हैं और सब कुछ ठीक है?
मुझे विश्वास है कि आपका राज्य समृद्ध है और न्यायपूर्ण शासन से संचालित होता है।
हे हंसों के राजा, मेरा स्वास्थ्य अच्छा है और मैं पूरी तरह से स्वस्थ हूँ;
मेरा राज्य बहुत समृद्ध है और न्यायपूर्ण शासन से संचालित होता है।
क्या आपके पास ऐसे सच्चे सलाहकार हैं जो हर तरह के दाग या दोष से मुक्त हों?
क्या आप अपने नेक उद्देश्य और नाम के लिए, यदि आवश्यक हो तो, मरने के लिए तैयार हैं?
मुझे सलाह देने के लिए सच्चे पुरुष मौजूद हैं, जो हर तरह के दाग या दोष से मुक्त हैं।
अपने नेक उद्देश्य और नाम के लिए, यदि आवश्यक हो तो, मरने को तैयार हूँ।
क्या आपकी पत्नी आपके समान कुल की, आज्ञाकारी और वाक्पटु है?
क्या वह संतानोत्पत्ति से संपन्न है, सुंदर दिखती है, उसका नाम अच्छा है, और वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करती है?
मेरी पत्नी मेरे समतुल्य कुल की है, आज्ञाकारी है और वाक्पटु है।
संतान की देवी, सुंदर रूप, सुसंस्कृत नाम, अपने स्वामी के प्रति आज्ञाकारी।
जब बोधिसत्व ने अपने सौहार्दपूर्ण अभिवादन के शब्द समाप्त कर दिए, तो राजा ने उनसे फिर बातचीत करते हुए कहा:

जब किसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने आपको आपके सबसे घातक शत्रु के सामने ला खड़ा किया,
हे पक्षी, क्या तुमने उसके हाथों भीषण पीड़ा सहन की?
क्या उसने दौड़कर आकर आपको अपनी लाठी से पीटा था? मैं यह जानना चाहता हूँ।
मैंने सुना है कि ऐसे घिनौने प्राणियों का यही हाल होता है।
मुझे याद है कि मैं कभी खतरे में नहीं था, और मैं इसके लिए आभारी हूं।
और न ही उन्होंने हमारे साथ किसी भी तरह से शत्रुओं जैसा व्यवहार किया।
शिकारी, कांपते और आश्चर्यचकित होते हुए, हमसे प्रश्न करने के लिए तैयार था, और पक्षियों में सबसे बुद्धिमान सुमुख ने जवाब दिया।

उनकी बातें सुनकर वह तुरंत ही कृपा की अवस्था में पहुँच गए, उन्होंने खुशी-खुशी मुझे जाल से मुक्त कर दिया और हमें उस स्थान से चले जाने के लिए कहा।

हे राजा, आपसे मिलने आना सुमुखा की इच्छा थी।
हमें लगा कि इस तरह हमारा मित्र शिकारी अपार धन अर्जित कर सकता है।
आपका हार्दिक स्वागत है, महोदय। निश्चिंत रहिए, मुझे आपको यहाँ देखकर बहुत खुशी हुई।
और अपने शिकारी मित्र को सांसारिक साजो-सामान से भरपूर होने दो।
और ऐसा कहकर राजा ने एक सलाहकार पर दृष्टि डाली और जब उसने पूछा, "महाराज, आपकी क्या इच्छा है?" तो उसने कहा, "इस शिकारी के बाल और दाढ़ी मुंडवा दें और उसे स्नान और अभिषेक के बाद उत्तम वस्त्र पहनाकर यहाँ ले आएं।" और जब ऐसा किया गया और शिकारी को वापस लाया गया, तो राजा ने उसे एक ऐसा गाँव भेंट किया जो प्रतिवर्ष एक लाख सिक्के उत्पन्न करता था, साथ ही दो सड़कों से सटे एक घर, एक शानदार रथ और बहुत सारा पीला सोना भी दिया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

धनवान राजा ने शिकारी को भरपूर आशीर्वाद दिया, और फिर मधुर स्वर में लाल हंस ने संबोधित किया।

तब उस महान सत्ता ने राजा को धर्म का उपदेश दिया, और उनकी व्याख्या सुनकर राजा प्रसन्न हुआ, और धर्म के उपदेशक के प्रति सम्मान प्रकट करने के उद्देश्य से उसने उन्हें सफेद छत्र भेंट किया और अपना राज्य उन्हें सौंप दिया और ये श्लोक कहे:

जो कुछ भी मेरे पास कानूनी रूप से है, जो कुछ भी मैं विधिवत दावा करता हूं,
यदि तुम अपने दिल की इच्छा का नाम लोगे, तो वह तुम्हारे वश में आ जाएगा।
चाहे दान के लिए हो या अपने निजी उपयोग के लिए,
मैं अपना सारा साजो-सामान तुम्हें सौंपता हूँ, अपना सिंहासन भी तुम्हारे लिए छोड़ता हूँ।
तब उस महान सत्ता ने राजा द्वारा दिया गया सफेद छाता लौटा दिया। राजा ने सोचा, "मैंने हंस-राजा द्वारा उपदेशित धर्म को तो सुन लिया है, परन्तु इस सुमुख की तो शिकारी ने इतनी प्रशंसा की है कि उसके शब्द शहद के समान मधुर हैं, मुझे भी उससे धर्म का उपदेश सुनना होगा।" अतः उससे बातचीत करते हुए उसने एक और श्लोक कहा:

यदि बुद्धिमान और विद्वान सुमुखा अपनी स्वतंत्र इच्छा के बारे में बात करे
एक-दो शब्द, मेरी खुशी और भी बढ़ जाएगी।
तब सुमुख ने कहा:

मैं आपकी उपस्थिति में, सही ढंग से, ऐसा नहीं कर सका, मेरे प्रभु।
मानो मैं कोई नाग राजकुमार हूँ, एक शब्द भी न बोलूँ।
इसके लिए लाल हंसों का मुखिया, और हे पराक्रमी राजा, आप भी।
कई आधारों पर मेरे द्वारा दी गई श्रद्धांजलि को उचित ठहराया जा सकता है।
मैं तो एक मामूली कर्मचारी हूँ, महाराज, इसलिए शायद ही हस्तक्षेप कर सकूँ।
जब महामहिमों के बीच उच्च स्तरीय बहस चल रही हो।
राजा ने उसकी बात सुनकर मन ही मन प्रसन्न होकर कहा, "शिकारी ने आपकी प्रशंसा की है, और निश्चय ही आपके जैसा कोई दूसरा नहीं हो सकता, आप धर्म के इतने मधुर उपदेशक हैं," और उन्होंने ये पंक्तियाँ दोहराईं:

शिकारी ने इस पक्षी की बुद्धिमत्ता की सही ही प्रशंसा की थी:
ऐसा विवेक मन से अनुशासनहीन व्यक्ति में नहीं पाया जाता। (*14)

मैंने ऐसे महान प्राणी देखे हैं, जो उच्चतम प्रकृति से धन्य हैं।
निश्चित रूप से इन सबमें यह अद्वितीय पक्षी सबसे अच्छा है (*15)।
आपके उदात्त रूप और मधुर वाणी ने मुझ पर ऐसा जादू कर दिया,
मेरी बस यही इच्छा है कि आप दोनों मेरे साथ लंबा समय बिताएं।
तब उस महान सत्ता ने राजा की प्रशंसा करते हुए कहा:

आपने हमारे साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा कोई व्यक्ति अपने सबसे प्रिय मित्र के साथ करता है:
महोदय, आपने हम जैसे गरीब पक्षियों पर इतनी दया दिखाई।
फिर भी हमारे परिवार के दायरे में एक बहुत बड़ा खालीपन है जिसका हमें अफसोस करना होगा।
और कई पक्षी हमारा चेहरा फिर कभी न देखकर बेहद दुखी होते हैं।
हे राजा, आपने हमारे दुःखों को दूर करने के लिए हमें मुक्त किया है।
अतः विनम्रतापूर्वक विदा लेते हुए हम अपने दोस्तों को एक बार फिर देखने के लिए उड़ान भरते हैं।
मुझे आपके महामहिम से परिचय प्राप्त करके बहुत खुशी हुई।
मुझे उम्मीद है कि अब से मेरे दोस्तों को डरने की कम वजह होगी।
जब उन्होंने ऐसा कहा तो राजा ने उन्हें जाने को कहा। और उस महान सत्ता ने राजा को पाँच प्रकार के दुर्गुणों से होने वाले कष्ट और सद्‌गुणों से मिलने वाले आशीर्वाद के बारे में बताया और उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा, "नैतिक नियमों का पालन करो और अपने राज्य पर धार्मिकता से शासन करो, और चार प्रकार के मेल-मिलाप (*16) से अपनी प्रजा का दिल जीत लो," और फिर वह चित्तकुटा के लिए रवाना हो गए।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

इस प्रकार धतरत्थ राजा ने मनुष्यों के स्वामी से कहा, फिर उसने पंखों की अधिकतम गति से इन हंसों के भीतर उनके मित्रों और परिवार की खोज की।

अपने सरदारों को मनुष्यों के आवासों से सुरक्षित और स्वस्थ लौटते देख, पंखों वाले पक्षियों के झुंड ने शोरगुल के साथ उनका स्वागत किया।

इस प्रकार अपने स्वामी के चारों ओर चक्कर लगाते हुए, जिन पर उन्हें पूरा भरोसा था, इन लाल हंसों ने अपने राजा को पूरा सम्मान दिया और उनकी रिहाई पर खुशी मनाई।

अपने राजा की यात्रा करते हुए इन हंसों ने उनसे पूछा, "महाराज, आप कैसे बच निकले?" राजा ने उन्हें सुमुख की सहायता से अपनी मुक्ति और शकुल राजा और शिकारी की कार्रवाई के बारे में बताया। यह सुनकर हंसों के झुंड ने प्रसन्नता से गीत गाते हुए कहा, "हमारे समूह के सेनापति सुमुख, शकुल राजा और शिकारी की जय हो। वे सुखी और दुःखमुक्त रहें।"

विषय को स्पष्ट करने के लिए, गुरु ने अंतिम श्लोक को दोहराया:

इस प्रकार जिनके हृदय प्रेम से भरे होते हैं, वे अपने कार्यों में सफल होते हैं, ठीक वैसे ही जैसे ये हंस सुरक्षित रूप से अपने मित्रों के पास लौट आए।

गुरु ने यहाँ अपनी कहानी समाप्त करते हुए कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), न केवल अभी, बल्कि प्राचीन काल में भी, आनंद ने मेरे लिए अपने प्राण त्यागे थे," और उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "उस समय चन्ना शिकारी थे, सारिपुत्र राजा थे, आनंद सुमुख थे, बुद्ध के अनुयायी नब्बे हजार हंस थे, और मैं स्वयं हंसों का राजा था।"

फुटनोट:

(1) इस हंस-जातक, क्रमांक 502 से तुलना करें। पवित्र हंसों की कहानी।

(2) देवदत्त की कहानी के लिए, cf. कुल्लवग्गा, VII.

(3)कुलवग्गा, VII..3.8 में संगत परिच्छेद में, पचचय्या के स्थान पर पच्चयायम (संस्कृत प्रा-च्चया) पढ़ा जाता है।

(4)बोधनेय्या

(5) रचा, संस्कृत रथ्य, एक वाहन मार्ग या गली। जाट. सं. 346

(6) ओडिसाकमेट्टा. जाट. सं. 61, सं. 146 देखें

(7)ये छंद कुलवग्गा, VII में पाए जाते हैं। 3. 12.

(8)कैद हंस-राजा और उसके वफादार दोस्त सुमुखा के बीच संवाद के रूप में। बाद में शिकारी हस्तक्षेप करता है।

(9) कुरुते दिसम, उड़ जाना। पाठ देसम, विद्वान दिसम, जैसा कि मीटर द्वारा आवश्यक है।

(10) यह दोहा खंड IV में पहले आता है।

(11) यह दोहा इससे पहले तीन बार आता है।

(12)सुखुद्रय, जाट। नहीं। 451, नहीं. 389, दुक्खुद्रय नं. 398, कटुकुद्रय नं. 241

(13) yam yad ayatanam पढ़ना.

(14)अकात्ता, स्कट अक्रितातनियन, देखें नं। 296

(15)उत्तमसत्व, "सर्वश्रेष्ठ प्राणी," सत्त्व=सत्त, यानी सत्त्व।

(16) संगाहावत्थु,

***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-534-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 534
महाहंस-जातक। (*1)

"देखो, पक्षी जा रहे हैं," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने बाँस के वन में निवास करते हुए, वरिष्ठ भिक्षु आनंद के संन्यास के बारे में सुनाई थी। प्रारंभिक कहानी बिल्कुल वैसी ही है जैसी पहले बताई जा चुकी है, लेकिन इस बार गुरु ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए निम्नलिखित कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में संयमा नामक राजा की पत्नी का नाम खेमा था। उस समय चित्तकूट पर्वत पर बोधिसत्व अपने साथ नब्बे हजार हंसों का झुंड लेकर निवास करते थे। एक दिन सुबह होते ही रानी खेमा को एक दर्शन हुआ। कुछ सुनहरे रंग के हंस आए और राजसिंहासन पर बैठकर मधुर स्वर में धर्म का उपदेश देने लगे। रानी सुनती और प्रशंसा करती रहीं, और अभी धर्म के उपदेश से उनकी तृप्ति भी नहीं हुई थी कि उजाला हो गया, और हंसों ने अपना उपदेश समाप्त कर खुली खिड़की से बाहर निकल गए। रानी जल्दी से उठीं और बोलीं, "इन्हें पकड़ो, हंसों को पकड़ो, इससे पहले कि वे भाग जाएं," और हाथ फैलाते-फैलाते उनकी नींद खुल गई। उनकी यह बात सुनकर उनकी दासियों ने पूछा, "हंस कहां गए?" और धीरे से हंस पड़ीं। इस क्षण रानी को अहसास हुआ कि यह एक सपना है, और उसने सोचा, "मैं वह चीज़ नहीं देख रही जो है ही नहीं: इस दुनिया में सोने के हंस ज़रूर होंगे, लेकिन अगर मैं राजा से कहूँ, 'मैं सोने के हंसों द्वारा धर्म का उपदेश सुनने के लिए उत्सुक हूँ,' तो वह कहेंगे, 'हमने आज तक कोई सोने का हंस नहीं देखा; हंसों द्वारा उपदेश जैसी कोई बात नहीं होती,' और वह इस मामले में कोई प्रयास नहीं करेंगे: लेकिन अगर मैं कहूँ, 'यह मेरी दिली इच्छा है,' तो वह हर संभव तरीके से उनकी खोज करेंगे और इस तरह मेरे दिल की इच्छा पूरी हो जाएगी।" इसलिए बीमार होने का बहाना बनाकर उसने अपने सेवकों को निर्देश दिए और लेट गई। राजा जब अपने सिंहासन पर बैठे, तो उन्हें रानी खेमा अपने सामान्य समय पर दिखाई नहीं दीं,

इसलिए उन्होंने पूछा कि रानी खेमा कहाँ हैं, और यह सुनकर कि वह बीमार हैं, वह उनके पास गए और पलंग के एक किनारे बैठकर उनकी पीठ छुई और पूछा कि क्या वह बीमार हैं। “महाराज,” उसने कहा, “मैं बीमार नहीं हूँ, बस एक गर्भवती महिला की तरह मेरी कुछ इच्छाएँ जाग उठी हैं।” “बताइए, देवी, आपको क्या चाहिए, मैं जल्दी ही आपके लिए ले आता हूँ।” “महाराज, मेरी बहुत इच्छा है कि मैं एक सुनहरे हंस द्वारा दिए गए उपदेश को सुनूँ, जब वह राजसिंहासन पर सफेद छतरी के नीचे बैठा हो, और मैं उसे सुगंधित मालाएँ और इसी तरह के सम्मान चिन्ह भेंट कर अपना आभार व्यक्त करूँ। अगर मुझे यह मिल जाए, तो अच्छा है; वरना मेरे जीवन में कोई जीवन नहीं है।” तब राजा ने उसे दिलासा देते हुए कहा, “अगर मनुष्य जगत में ऐसी कोई चीज है, तो तुम्हें वह जरूर मिलेगी; चिंता मत करो।” रानी के कक्ष से आगे बढ़ते हुए उन्होंने अपने मंत्रियों से सलाह ली और कहा, "देखो, रानी खेमा कहती हैं, 'यदि मुझे कोई सोने की हंसनी धर्म का उपदेश देती हुई सुनाई दे, तो मैं जीवित रहूंगी, अन्यथा मैं मर जाऊंगी'; कृपया बताइए, क्या कोई सोने की हंसनी होती है?" "महाराज," उन्होंने उत्तर दिया, "हमने उन्हें न तो कभी देखा है और न ही उनके बारे में सुना है।" "कौन जानेगा?" "ब्राह्मण, महाराज," राजा ने ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे पूछा, "क्या सोने की हंसनी जैसी कोई चीज होती है जो धर्म का उपदेश देती है (*2)?" "जी महाराज, हमें परंपरा से पता चला है कि मछली, केकड़े, कछुए, हिरण,मोर, हंस, ये सभी सुनहरे रंग के पाए जाते हैं। इनमें से, कहते हैं कि धतरत्था हंसों का परिवार बुद्धिमान और विद्वान होता है। पुरुषों सहित सात ऐसे प्राणी हैं जिनका रंग सुनहरा है। राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने पूछा, "ये विद्वान लाल हंस कहाँ रहते हैं?" "हमें नहीं पता, महाराज।" "तो फिर कौन जानेगा?" जब उन्होंने उत्तर दिया, "शिकारियों का कबीला," तो उन्होंने अपने राज्य के सभी शिकारियों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा, "मेरे मित्रों, धतरत्थ वंश के सुनहरे हंस कहाँ रहते हैं?" तब एक शिकारी ने कहा, "हमें पीढ़ी दर पीढ़ी परंपरा से पता चला है, महाराज, कि वे हिमालय में, चित्तकूट पर्वत पर रहते हैं।" "क्या आप उन्हें पकड़ने का तरीका जानते हैं?" "मुझे नहीं पता, महाराज।" उन्होंने अपने बुद्धिमान ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें बताया कि चित्तकूट पर्वत पर सुनहरे हंस हैं, और फिर उनसे पूछा कि क्या वे उन्हें पकड़ने का कोई तरीका जानते हैं। उन्होंने कहा, "महाराज, हमें जाकर उन्हें पकड़ने की क्या आवश्यकता है?" "एक योजना बनाकर हम उन्हें शहर के पास लाएंगे और पकड़ लेंगे।" "यह योजना क्या है?" "महाराज, शहर के उत्तर में, तीन मील (4.23 किमी) चौड़ी एक झील खुदवाएं, जो एक सुरक्षित और शांत स्थान हो। उसमें पानी भरकर, सभी प्रकार के अनाज बोएं और झील को पांच प्रकार के कमलों से ढक दें। फिर इसे एक कुशल शिकारी की देखरेख में सौंप दें और किसी को भी इसके पास आने की अनुमति न दें। चारों कोनों पर तैनात लोगों के माध्यम से इसे एक पवित्र झील घोषित करवाएं। यह सुनकर सभी प्रकार के पक्षी वहां उतरेंगे। और ये हंस, एक-दूसरे से इस झील की सुरक्षा के बारे में सुनकर, वहां आएंगे और फिर आप उन्हें बालों के फंदों से फंसाकर पकड़ सकते हैं।" यह सुनकर राजा ने बताए गए स्थान पर वैसी ही झील खुदवाई, और एक कुशल शिकारी को बुलाकर उसे एक हजार सिक्के भेंट किए और कहा, "अब से अपना काम छोड़ दें: मैं आपकी पत्नी और परिवार का भरण-पोषण करूंगा।" इस शांत झील की सावधानीपूर्वक रक्षा करते हुए और सभी को इससे दूर रखते हुए, इसके चारों कोनों पर इसे अभयारण्य घोषित करवाओ, और कहो कि यहाँ आने-जाने वाले सभी पक्षी मेरे हैं, और जब सुनहरे हंस आएँ तो तुम्हें बड़ा सम्मान मिलेगा।” इन प्रोत्साहन भरे शब्दों के साथ राजा ने उसे अभयारण्य झील का प्रभारी बना दिया। उस दिन से शिकारी ने राजा के आदेशानुसार कार्य किया और उस स्थान की रखवाली की, और झील में शांति बनाए रखने वाले के रूप में वह शिकारी खेमा (शांति) के नाम से जाना जाने लगा। तब से सभी प्रकार के पक्षी वहाँ आने लगे, और एक-दूसरे को यह बताने से कि झील शांत और सुरक्षित है, विभिन्न प्रकार के हंस आने लगे। सबसे पहले घास के हंस आए, फिर उनकी सूचना पर पीले हंस आए, उसके बाद लाल हंस, सफेद हंस और ओका हंस आए। उनके आने पर खेमाका ने राजा को इस प्रकार सूचना दी: “महाराज, पाँच प्रकार के हंस आए हैं,और वे लगातार झील में भोजन करते रहते हैं। अब जबकि पाका हंस आ चुके हैं, कुछ ही दिनों में स्वर्ण हंस भी आ जाएँगे: महाराज, चिंता करना छोड़ दें।” यह सुनकर राजा ने ढोल बजाकर नगर में यह घोषणा करवाई कि कोई भी वहाँ न जाए, और जो कोई भी ऐसा करेगा उसके हाथ-पैर काट दिए जाएँगे और उसके घर का सारा सामान लूट लिया जाएगा; और तब से कोई भी वहाँ नहीं गया। अब पाका हंस चित्तकुट से कुछ ही दूरी पर स्वर्ण गुफा में रहते हैं। वे बहुत शक्तिशाली पक्षी हैं और धतरत्थ हंस परिवार की तरह ही उनके शरीर का रंग विशिष्ट होता है, लेकिन पाका हंसों के राजा की पुत्री स्वर्ण रंग की है। इसलिए उसके पिता ने यह सोचकर कि वह धतरत्थ राजा के लिए उपयुक्त है, उसे उनकी पत्नी बनाकर भेज दिया। वह अपने स्वामी की दृष्टि में प्रिय और अनमोल थी, और इसी कारण हंसों के दोनों परिवार बहुत मित्रवत हो गए। अब एक दिन बोधिसत्व की सेवा में रहने वाले हंसों ने पाका हंसों से पूछा, “आप अपना यह रंग कहाँ से ला रहे हैं?” "अभी खाना खाया?" "हम बनारस के पास एक शांत जगह पर भोजन कर रहे हैं; लेकिन तुम कहाँ घूम रहे हो?" "अमुक जगह पर," उन्होंने उत्तर दिया। "तुम हमारे अभयारण्य में क्यों नहीं आते? यह एक सुंदर झील है, जो हर तरह के पक्षियों से भरी है, पाँच प्रकार के कमलों से ढकी है, और विभिन्न प्रकार के अनाज और फलों से भरपूर है, और कई प्रकार की मधुमक्खियों के झुंडों से भिनभिनाती है। इसके चारों कोनों पर एक आदमी हमेशा के लिए खतरे से सुरक्षा की घोषणा करता है। किसी को भी पास आने की अनुमति नहीं है: किसी को नुकसान पहुँचाना तो दूर की बात है।" इस तरह उन्होंने शांत झील की प्रशंसा की। पाका हंसों की बात सुनकर उन्होंने सुमुखा से कहा, "वे हमें बताते हैं कि बनारस के पास एक ऐसी शांत झील है: वहाँ पाका हंस भोजन करने जाते हैं।" "क्या आप धतरत्था के राजा को बताएँगे, और यदि वह हमें अनुमति दे, तो हम भी वहाँ जाकर भोजन करेंगे।" सुमुखा ने राजा से कहा, जिस पर राजा ने सोचा, "मनुष्य सचमुच प्रलोभनों से भरे हुए हैं और चालाकी से काम करते हैं: इसके पीछे कोई कारण अवश्य होगा। इतने लंबे समय तक ऐसी कोई झील नहीं थी: इसे हमें फंसाने के लिए अभी बनाया गया होगा।" और उसने सुमुखा से कहा, "कृपया वहाँ जाने को अपनी स्वीकृति न दें। यह झील उन्होंने सद्भावना से नहीं बनाई थी; इसे हमें फंसाने के लिए बनाया गया था।" मनुष्य निःसंदेह क्रूर और अनेक विद्याओं

में निपुण हैं: अपने ही क्षेत्र में रहो। सुनहरे हंसों ने दूसरी बार सुमुख से कहा कि वे शांति की झील देखने के लिए उत्सुक हैं और सुमुख ने उनकी इच्छा राजा को बता दी। महापुरुष ने सोचा, "मेरे कारण मेरा परिवार नाराज़ न हो: हम वहाँ जाएँगे।" अतः नब्बे हज़ार हंसों के साथ वह वहाँ गए और हंसों की तरह भोजन किया और आनंद लिया, फिर चित्तकुटा लौट आए। खेमाका ने उनके भोजन करने और विदा होने के बाद बनारस के राजा को उनके आगमन की सूचना दी। राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "मित्र खेमाका, एक-दो हंस पकड़ने का प्रयास करो और मैं तुम्हें महान सम्मान प्रदान करूँगा।"इन शब्दों के साथ उसने उसका खर्च चुकाया और उसे विदा कर दिया। वहाँ लौटकर शिकारी एक कंकालनुमा बर्तन में बैठ गया और हंसों की गतिविधियों को देखने लगा। बोधिसत्व सचमुच सभी लोभ से मुक्त होते हैं। इसलिए, महापुरुष, जहाँ से वे उतरे थे, वहाँ से शुरू करके, उचित क्रम में धान खाने लगे। बाकी सभी इधर-उधर भटकते रहे, इधर-उधर खाते रहे। तो शिकारी ने सोचा, "यह हंस लोभ से मुक्त है: मुझे इसी को पकड़ना चाहिए।" अगले दिन हंसों के झील पर उतरने से पहले, वह पास ही एक जगह पर गया और अपने बर्तन के ढांचे में छिपकर वहीं बैठा रहा और ढांचे की एक दरार से देखता रहा। उसी क्षण महापुरुष नब्बे हजार हंसों के साथ उसी स्थान पर उतरे जहाँ वे कल उतरे थे, और कल के चारागाह की सीमा पर बैठकर चरने लगे। शिकारी ने अपने पिंजरे की एक दरार से देखते हुए और पक्षी की असाधारण सुंदरता को देखकर सोचा, "यह हंस एक गाड़ी जितना बड़ा है, सुनहरे रंग का है और इसकी गर्दन लाल रंग की तीन पट्टियों से घिरा हुआ। गले से नीचे जाती तीन रेखाएँ पेट के मध्य से होकर गुजरती हैं, जबकि अन्य तीन पट्टियाँ पीठ को अलग करती हैं, और उसका शरीर लाल ऊन के धागे से बनी डोरी पर रखे सोने के ढेर की तरह चमकता है। यही उनका राजा होना चाहिए, और यही वह है जिसे मैं पकडूंगा। और हंस-राजा, एक विस्तृत मैदान में चरने के बाद, पानी में मस्ती करने लगा और फिर अपने झुंड से घिरा हुआ चित्तकुटा लौट आया। उसने छह दिनों तक इसी तरह भोजन किया। सातवें दिन खेमाका ने काले घोड़े के बालों की एक बड़ी मजबूत रस्सी बनाई और एक छड़ी पर फंदा लगाया, और यह निश्चित रूप से जानते हुए कि हंस-राजा कल उसी स्थान पर उतरेगा, उसने फंदे वाली छड़ी को पानी में गाड़ दिया।जबकि तीन धारियाँ पीठ पर नीचे की ओर जाती हैं और उसका शरीर लाल ऊन के धागे से बनी डोरी पर टिके सोने के ढेर की तरह चमकता है। यही उनका राजा होना चाहिए, और यही वह है जिसे मैं पकडूंगा। और हंस-राजा एक विस्तृत मैदान में चरने के बाद पानी में खेलने लगा और फिर अपने झुंड से घिरा हुआ चित्तकुटा लौट आया। उसने छह दिनों तक इसी तरह भोजन किया। सातवें दिन खेमाका ने काले घोड़े के बालों की एक बड़ी मजबूत रस्सी बनाई और एक छड़ी पर फंदा लगाया, और यह जानते हुए कि हंस-राजा कल उसी स्थान पर आएगा, उसने फंदे वाली छड़ी को पानी में गाड़ दिया।जबकि तीन धारियाँ पीठ पर नीचे की ओर जाती हैं और उसका शरीर लाल ऊन के धागे से बनी डोरी पर टिके सोने के ढेर की तरह चमकता है। यही उनका राजा होना चाहिए, और यही वह है जिसे मैं पकडूंगा। और हंस-राजा एक विस्तृत मैदान में चरने के बाद पानी में खेलने लगा और फिर अपने झुंड से घिरा हुआ चित्तकुटा लौट आया। उसने छह दिनों तक इसी तरह भोजन किया। सातवें दिन खेमाका ने काले घोड़े के बालों की एक बड़ी मजबूत रस्सी बनाई और एक छड़ी पर फंदा लगाया, और यह जानते हुए कि हंस-राजा कल उसी स्थान पर आएगा, उसने फंदे वाली छड़ी को पानी में गाड़ दिया।

अगले दिन हंसों का राजा नीचे उतरते समय अपना पैर फंदे में फंसा बैठा। फंदे ने मानो लोहे के पट्टे से उसके पैर को जकड़ लिया था। पक्षी ने फंदे को तोड़ने की सोचकर उसे घसीटा और पूरी ताकत से उस पर प्रहार किया। पहले उसकी सुनहरी त्वचा पर खरोंचें आईं, फिर लाल ऊन के रंग का मांस कट गया, उसके बाद नसें टूट गईं और अंत में उसका पैर (*3) लगभग टूट ही गया था, लेकिन एक राजा के लिए घायल शरीर शोभा नहीं देता, इसलिए उसने संघर्ष करना छोड़ दिया। जब उसे असहनीय दर्द होने लगा, तो उसने सोचा, "अगर मैं पकड़े जाने की चीख निकालूंगा, तो मेरा परिवार घबरा जाएगा और ठीक से भोजन न मिलने के कारण वे उड़ जाएंगे, और आधे भूखे रहकर पानी में गिर जाएंगे।" इसलिए दर्द सहते हुए वह फंदे में ही फंसा रहा, धान चरने का नाटक करता रहा, लेकिन जब झुंड ने पेट भर खा लिया और हंसों की तरह आनंद लेने लगे, तो उसने पकड़े जाने की ज़ोरदार चीख निकाली। यह सुनकर हंस पहले बताए अनुसार उड़ गए। सुमुख ने भी, पहले बताए अनुसार, इस मामले पर विचार करते हुए, हंसों के तीन मुख्य समूहों में महापुरुष को न पाकर सोचा, "सचमुच राजा पर कोई भयानक विपत्ति आ पड़ी है," और वह लौटकर बोला, "हे महाराज, भयभीत न हों, मैं अपने प्राणों का बलिदान देकर आपको मुक्त करूँगा," और कीचड़ पर बैठकर महापुरुष को सांत्वना दी। महापुरुष ने सोचा, "नब्बे हजार हंस मुझे छोड़कर भाग गए और केवल यही एक लौटा है। मुझे आश्चर्य है कि जब शिकारी आएगा, तो क्या सुमुख भी मुझे छोड़कर भाग जाएगा।" और उसकी परीक्षा लेने के लिए, रक्त से लथपथ होकर, फंदे से बंधी छड़ी के सहारे, उसने तीन श्लोक दोहराए:

देखो, पक्षी जा रहे हैं, लाल हंस, सब डर से कांप रहे हैं।
हे सुनहरे पीले रंग की सुमुखा, यहाँ से चली जाओ! तुम्हें यहाँ क्या चाहिए?
मेरे दोस्तों और परिवार ने मुझे छोड़ दिया, वे सब मुझसे दूर चले गए;
वे बिना सोचे-समझे उड़ जाते हैं। तुम अकेले क्यों रह गए?
हे महान पक्षी, उड़ो! कैदियों के साथ कैसी संगति हो सकती है?
सुमुखा, उड़ो! मौका मत गंवाओ (*4), जबकि तुम अभी भी आज़ाद हो सकते हो।
यह सुनकर सुमुख ने सोचा, "यह हंस-राजा मेरे वास्तविक स्वभाव से अनभिज्ञ है; वह सोचता है कि मैं चापलूसी करने वाला मित्र हूँ। मैं उसे दिखाऊंगा कि मैं कितना प्रेममय हूँ," और उसने चार श्लोक दोहराए:

नहीं, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, हे शाही हंस, जब मुसीबत करीब आएगी।
लेकिन मैं यहीं रुकूंगा, और तुम्हारे साथ ही जिऊंगा या मरूंगा।
हे राजसी पक्षी, जब संकट निकट आएगा, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा।
न ही मैं दूसरों के साथ ऐसे नीच कृत्य में शामिल होऊंगा, नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा।
मैं दिल और आत्मा से तुम्हारे साथ एक हूं, मेरे पुराने साथी और दोस्त।
हे महान राजा, अपने सभी भाग्य में सर्वश्रेष्ठ, साहसी नेता के रूप में प्रसिद्ध।
आपके दोस्तों और परिवार के पास लौटते हुए मैं क्या कह सकता हूँ?
अगर मैं तुम्हें तुम्हारे भाग्य पर छोड़ दूं और बिना परवाह किए उड़ जाऊं?
नहीं, मैं जीने से बेहतर मरना पसंद करूंगा, इतनी तुच्छ भूमिका निभाने के लिए।
जब सुमुख ने इस प्रकार चार श्लोकों में सिंह की गर्जना का उच्चारण किया, तो उस महान सत्ता ने अपने गुणों को प्रकट करते हुए कहा:

हे सुमुख, तुम्हारा स्वभाव ही यही है, सही मार्ग पर स्थिर रहना।
अपने स्वामी और मित्र को कभी न त्यागें और न ही भागकर सुरक्षा की तलाश करें।
आपको देखकर मेरे मन में भय का कोई विचार नहीं उठता।
इस दयनीय स्थिति में भी, आप मुझे बचाने का कोई न कोई रास्ता जरूर ढूंढ लेंगे।
जब वे इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, तभी झील के किनारे खड़ा शिकारी हंसों को तीन समूहों में उड़ते हुए देखकर हैरान रह गया। यह सोचकर कि इसका क्या अर्थ हो सकता है, उसने उस स्थान की ओर देखा जहाँ उसने फंदा लगाया था और वहाँ उसने बोधिसत्व को उस डंडे पर झुके हुए देखा जिससे फंदा बंधा हुआ था। अत्यंत प्रसन्न होकर उसने अपनी कमर कसी और एक गदा लेकर जल्दी से पास आया और पक्षियों के सामने खड़ा हो गया, मानो किसी चक्र की शुरुआत में आग जल रही हो, उसका सिर पक्षियों से ऊपर उठा हुआ था और उसकी एड़ी कीचड़ में गड़ी हुई थी।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

जब ये महान पक्षी आपस में उच्च विचारों का आदान-प्रदान कर रहे थे, तभी देखो! वे सब बड़ी तेजी से, हाथों में लाठी लिए, इस साहसी शिकारी के पास आ आए।

उसे देखकर विश्वासयोग्य सुमुख राजा के सामने खड़ा हो गया, उसके चिंतित स्वामी ने उसकी परेशानी में उसे दृढ़ता से प्रोत्साहित किया (*5)।

हे श्रेष्ठ पक्षी, भयभीत मत हो, क्योंकि भय तुम जैसे प्राणी को शोभा नहीं देता।
मैं न्याय को अपनी दलील बनाकर इस दिशा में उचित प्रयास करूंगा।
और जल्द ही मेरे वीरतापूर्ण कार्य से तुम एक बार फिर मुक्त हो जाओगे।
इस प्रकार सुमुख ने उस महान प्राणी को सांत्वना दी और शिकारी के पास जाकर मधुर मानवीय स्वर में पूछा, "मित्र, तुम्हारा नाम क्या है?" तब उसने उत्तर दिया, "हे स्वर्ण रंग के हंसों के राजा, मेरा नाम खेमाका है।" सुमुख ने कहा, "मित्र, यह मत सोचो कि तुम्हारे द्वारा बिछाए गए घोड़े के बालों के फंदे में कोई साधारण हंस फँस गया है। नब्बे हजार हंसों का सरदार, धतरत्थ राजा, तुम्हारे जाल में फँसा है। वह बुद्धिमान और गुणी है और सुलह के मार्ग पर चलता है। उसे मृत्युदंड नहीं दिया जाना चाहिए। वह जो कुछ भी तुम्हारे लिए करने वाला था, मैं वह सब करूँगा। मैं भी स्वर्ण रंग का हूँ और उसके लिए अपना प्राण दे दूँगा। यदि तुम उसके पंख लेना चाहते हो, तो मेरे ले लो; या यदि तुम उसकी कोई और वस्तु, जैसे खाल, मांस, नस या हड्डी, लेना चाहते हो, तो मेरे शरीर से ले लो। फिर, यदि तुम उसे पालतू पक्षी बनाना चाहते हो, तो मुझे जीवित रहते हुए बेचकर पालतू पक्षी बना लो, या यदि तुम धन कमाना चाहते हो, तो मुझे बेचकर कमा लो: उसे मत मारो, क्योंकि वह बुद्धि और ऐसे ही गुणों से संपन्न है। यदि तुम उसे मारोगे, तो तुम नरक और इसी प्रकार के कष्टों से कभी नहीं बच पाओगे।" इस प्रकार शिकारी को नरक के भय से भयभीत करके और उसे अपने मधुर प्रवचन सुनने के लिए विवश करके, सुमुख एक बार फिर पास आया और बोधिसत्व के पास खड़ा होकर उन्हें सांत्वना देने लगा। सुमुख के शब्दों को सुनकर शिकारी ने सोचा, "यह तो मात्र एक पक्षी है, फिर भी यह वह कर सकता है जो मनुष्यों के लिए असंभव है। क्योंकि मनुष्य मित्रता में स्थिर नहीं रह सकते। ओह! यह कितना बुद्धिमान, वाक्पटु और पवित्र प्राणी है!" उसका पूरा शरीर आनंद और परमानंद (सम्मोहन) से कांप उठा, और आश्चर्य से उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसने अपनी छड़ी छोड़ दी और सूर्य की पूजा करने वाले की तरह अपने दोनों हाथों को माथे पर उठाकर सुमुख के गुणों का बखान करने लगा।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

पक्षी की इतनी सुंदर वाणी सुनकर शिकारी चौंक गया।

बाल खड़े करके और हाथ जोड़कर उन्होंने विधिवत श्रद्धांजलि अर्पित की।
इससे पहले ऐसा कभी सुना या देखा नहीं गया था कि मानव भाषा का प्रयोग किया जाए,
किसी मनुष्य को उसकी अपनी भाषा में सबसे उत्कृष्ट सत्य का उपदेश देना चाहिए।
(*8) यह पक्षी तुम्हारे लिए क्या है, कि जब बाकी सब उड़कर चले गए,
हालांकि आप स्वतंत्र हैं, फिर भी यहाँ पिंजरे में बंद पक्षी के अलावा आप अकेले रह गए हैं?
जब दुष्ट शिकारी ने सुमुख से यह प्रश्न पूछा, तो सुमुख ने सोचा, "वह नरम पड़ रहा है: उसके हृदय को और अधिक नरम करने के लिए मैं अब उसे अपनी खूबी दिखाऊंगा," और उसने कहा:

वह मेरा राजा है, हे पक्षियों के शत्रु, मैं उसका सेनापति प्रमुख हूँ;
मैं उसे उसके भाग्य पर नहीं छोड़ सकता, जबकि मैं खुद सुरक्षा के लिए उड़ान भरूं।
इस महान भाग्य के स्वामी को यहाँ अकेले ही नष्ट न होने दें;
मुझे उन्हीं के पास अपना सुख मिलता है: मैं उन्हें ही अपना स्वामी मानती हूँ।
कर्तव्य के प्रति उनके इस मधुर प्रवचन को सुनकर शिकारी अत्यंत प्रसन्न हुआ और आश्चर्य से उसके बाल खड़े हो गए। उसने सोचा, "यदि मैं इस सद्गुण और इसी प्रकार के अच्छे गुणों से संपन्न शाही हंस को मार डालूँ, तो मैं कभी भी चारों दुखों से मुक्त नहीं हो पाऊँगा: बनारस का राजा मेरे साथ जो चाहे करे; मैं इस बंदी को सुमुख को मुफ्त उपहार के रूप में दे दूँगा और उसे जाने दूँगा।" और उसने यह श्लोक कहा:

आप कितने महान हैं, कि आप उस व्यक्ति का सम्मान करते हैं जिसके माध्यम से आप आज भी जीवित हैं;
जहां चाहो वहां उड़ो: मैं अब अपने प्रभु को उसकी स्वतंत्रता सौंपता हूं।
ऐसा कहकर शिकारी दयालु भाव से उस महान पुरुष के पास आया और छड़ी मोड़कर पक्षी को कीचड़ पर लिटा दिया, और छड़ी खींचकर उसे फंदे से मुक्त कर दिया। फिर वह पक्षी को झील से लाया और उसे कुछ ताज़ी कुश घास पर लिटाकर उसके पैर में बंधी हुई रस्सी को धीरे से खोल दिया। उस महान पुरुष के प्रति गहरी श्रद्धा से प्रेरित होकर, उसने दयालु भाव से कुछ पानी लिया और बार-बार पोंछकर खून साफ किया। फिर उसकी दानशीलता की शक्ति से नसें नसें से, मांस मांस से और चमड़ी चमड़ी से जुड़ गईं, और पैर पहले जैसा हो गया, दूसरे पैर से अलग नहीं दिखता था, और बोधिसत्व अपनी मूल अवस्था में आनंदित होकर बैठ गए। सुमुख ने राजा को अपने इस कार्य से इतना प्रसन्न देखकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव किया और सोचा, “इस व्यक्ति ने हमारी बड़ी सेवा की है, पर हमने उसके लिए कुछ नहीं किया। यदि वह हमें राजा के राज्य मंत्रियों के लिए पकड़कर उनके पास ले जाता, तो उसे बड़ी धनराशि प्राप्त होती, और यदि वह हमें अपने लिए पकड़ता, तो वह हमें बेचकर भी बड़ा लाभ कमा सकता था: मैं उससे कुछ प्रश्न पूछूंगा।” अतः राजा की सेवा करने की इच्छा से उसने यह प्रश्न पूछा और कहा

यदि आपने अपने स्वार्थ के लिए हमारे लिए यह जाल बिछाया है,
हम आपसे बिना सोचे-समझे या परवाह किए अपनी स्वतंत्रता स्वीकार करते हैं।
लेकिन हे साहसी शिकारी, हमें मुक्त करने में,
राजा की अनुमति के बिना, यह निश्चित रूप से डकैती के अलावा और कुछ नहीं था।
यह सुनकर शिकारी ने कहा, "मैंने तुम्हें अपने लिए नहीं पकड़ा, मुझे बनारस के राजा सम्यम ने काम पर रखा था।" फिर उसने उन्हें पूरी कहानी सुनाई, रानी के दर्शन से लेकर उस समय तक जब राजा को हंसों के आने की खबर मिली और उन्होंने कहा, "मित्र खेमाका, एक-दो हंस पकड़ने की कोशिश करो, मैं तुम्हें बड़ा सम्मान दूंगा," और उसे यात्रा के लिए भोजन सामग्री के साथ भेज दिया।

यह सुनकर सुमुख ने सोचा, “इस शिकारी ने अपनी जीविका की परवाह किए बिना हमें मुक्त करके बड़ी मुसीबत मोल ले ली है। यदि हम यहाँ से चित्तकुटा लौटेंगे, तो न तो धतरत्थ राजा की अलौकिक बुद्धि प्रकट होगी और न ही मेरी मित्रता का कार्य, न ही शिकारी को सम्मान मिलेगा, न ही राजा पाँच नैतिक नियमों में दृढ़ होगा और न ही रानी की इच्छा पूरी होगी।” तब उसने उत्तर दिया, “मित्र, ऐसा होने पर तुम हमें जाने नहीं दे सकते: हमें राजा के समक्ष प्रस्तुत करो, वह हमारे साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार करेगा।”

इसे स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने यह छंद बोला:

तुम राजा के सेवक हो; इसलिए उसकी इच्छाओं को पूरा करो;
राजा सम्यामा (*9) अपनी इच्छा के अनुसार हमारे साथ व्यवहार करेंगे।
यह सुनकर शिकारी ने कहा, “हे महाराज, राजा से मिलने की इच्छा न करें। राजा सचमुच खतरनाक होते हैं। वे या तो आपको पालतू हंस बना देंगे या फिर आपको मार डालेंगे।” तब सुमुखा ने कहा, “मित्र शिकारी, हमारे बारे में चिंता न करें। धर्म के उपदेश से मैंने आप जैसे क्रूर व्यक्ति को भी कोमल बना दिया। तो मैं राजा के मामले में ऐसा क्यों न करूँ? राजा बुद्धिमान होते हैं और बड़ी बातें समझते हैं: जल्दी

करो और हमें राजा के पास ले चलो। और हमें ले जाते समय बंदी बनाकर मत ले जाना, बल्कि फूलों के पिंजरे में रखकर ले जाना। धतरत्थ राजा के लिए सफेद कमलों से ढका एक बड़ा पिंजरा बनवाओ, और मेरे लिए लाल कमलों से ढका एक छोटा पिंजरा बनवाओ, और उन्हें आगे और मुझे थोड़ा नीचे पीछे रखकर हमें शीघ्रता से राजा के समक्ष प्रस्तुत करो।" सुमुखा की बातें सुनकर शिकारी ने सोचा, "राजा को देखकर सुमुखा मुझे बहुत सम्मान देना चाहता होगा," और अत्यंत प्रसन्न होकर उसने कोमल सरकंडों के पिंजरे बनाए और उन्हें कमलों से ढककर पहले से वर्णित तरीके से पक्षियों के साथ निकल पड़ा।

मामले को स्पष्ट करने के लिए, मास्टर ने कहा:

शिकारी ने निर्देशानुसार उन्हें दोनों हाथों से पकड़ लिया।
पीले सुनहरे रंग की त्वचा वाले इन लाल हंसों को उनके पिंजरे में रखा गया है।
हंसों का राजा और सुमुखा, जिनके पंख चमकीले दिखाई देते हैं,
शिकारी ने उन्हें पिंजरे में सुरक्षित पाया और उन्हें लेकर चल पड़ा।
जैसे ही शिकारी उनके साथ रवाना हुआ, धतरत्था हंस को अपनी पत्नी, पाका हंस-राजा की पुत्री, की याद आ गई और उसने अपने आवेश में आकर सुमुखा को संबोधित करते हुए इस प्रकार शोक व्यक्त किया।

मामले को स्पष्ट करने के लिए, मास्टर ने कहा:

राजा को जब सुमुख ले जाया गया तो उन्होंने इस प्रकार कहा;

"मेरी सुंदर और दयालु (*10) पत्नी, मुझे लगता है, अब मेरे लिए शोक मना रही है,
अगर उसे पता चल जाए कि मैं मर गया हूँ, तो मुझे डर है कि उसकी जान भी जा सकती है।
जैसे कोई बगुला एकांत सागर के किनारे अपने साथी के लिए शोक मना रहा हो,
सुहेमा—जिसकी त्वचा सोने के समान उज्ज्वल है—उसका स्वामी फिर भी विलाप करेगा (*11)।"
यह सुनकर सुमुख ने सोचा, "यह हंस, जो दूसरों को सलाह देने के लिए तत्पर तो है, लेकिन एक स्त्री के कारण, वासना के वश में आकर ऐसे बड़बड़ाता है जैसे पानी गर्म हो जाता है (*12), या जैसे पक्षी किनारे से उड़कर अनाज के खेत को चट कर जाते हैं। क्या होगा यदि मैं अपनी बुद्धि से उसे स्त्री जाति के दोषों के बारे में स्पष्ट कर दूं और उसे होश में ला दूं?" और उसने कहा:

वह एक महान और असाधारण विचारक, अपनी तरह का एक नेता,
मादा पक्षी के लिए शोक करना मानसिक दृढ़ता की कमी दर्शाता है।
क्योंकि हवा किसी भी गंध को अपने साथ ले जाती है, चाहे वह अच्छी हो या बुरी।
या फिर लालची बच्चा, मानो अंधा हो, कच्चा या अच्छी तरह पका हुआ खाना खा लेता है।
हे मूर्ख, सही निर्णय क्षमता के बिना तुम देख नहीं सकते।
प्रत्येक आपात स्थिति में क्या करना चाहिए या किन चीजों से बचना चाहिए।
तुम आधे पागल होकर नारी जाति को हर तरह की सुंदरता से परिपूर्ण बताते हो।
फिर भी, शराबी के शराब पीने के स्थान पुरुषों के लिए उतने ही आम हैं।
दु:ख, रोग, विपत्ति, ये सब सबसे कठोर जंजीरों की तरह बांधते हैं।
मृगतृष्णा, छल, मृत्यु का जाल मन में गहराई से बैठा हुआ है--
ऐसी स्त्रियाँ ही होती हैं: जो उन पर भरोसा करता है वह अपने आप में सबसे नीच होता है।
तब धतरत्थ हंस, नारी जाति के प्रति अपने मोह में, बोला, "तुम नारी जाति के गुणों को नहीं जानते, परन्तु ऋषि जानते हैं: वे आलोचना के योग्य नहीं हैं।" और स्पष्टीकरण देते हुए उसने कहा:

जिस सत्य को ऋषियों ने सिद्ध किया है, उसे दोष देने का साहस कौन कर सकता है?
इस दुनिया में महिलाएं महान शक्ति और प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए ही जन्म लेती हैं।
वे इश्कबाजी के लिए बने हैं, उनके लिए प्रेम के आनंद निर्धारित हैं।
उनके भीतर बीज अंकुरित होते हैं, वह स्रोत जहाँ से समस्त जीवन का पोषण होता है।
जिनसे मनुष्य को सांस लेने में भी कठिनाई होती है, उन्हें अस्वीकार किया जा सकता है।
सुमुखा, क्या तुम ही अकेली हो जो स्त्रियों के तौर-तरीकों से भली-भांति परिचित हो?
क्या तुम्हें यह देर से मिली समझ केवल भय से प्रेरित होकर ही प्राप्त हुई?
खतरे का सामना करते हुए हर व्यक्ति भय के बीच भी बहादुरी से डटा रहता है।
संकट के समय सभी ऋषि-मुनि हमें नुकसान से बचाने का प्रयास करते हैं।

राजकुमार तब खुशी-खुशी उन्हें सलाह देने के लिए एक बहादुर नायक को चुन लेंगे।
दुर्भाग्य के आघात से बचाव के लिए, अच्छी सलाह देना और मजबूत बचाव करना आवश्यक है।
मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि शाही रसोइये आज हमारे क्षत-विक्षत अंगों को न भूनें।
जिस प्रकार बांस अपने फल से जान लेता है, उसी प्रकार सुनहरे पंख हमें भी मार सकते हैं।
तुम अपनी स्वतंत्र इच्छा के बंदी होकर मुझसे भाग नहीं पाओगे।
खतरे की घड़ी में शब्दों का प्रयोग बंद करो, उठो, एक पुरुषोचित भूमिका निभाओ।
उस महान प्राणी ने नारी जाति की प्रशंसा करते हुए सुमुख को मौन कर दिया (*14), लेकिन उसकी पीड़ा देखकर, उसने उसे शांत करने के लिए यह श्लोक दोहराया:

न्याय को अपना आधार बनाकर उचित प्रयास करें।
और हे मेरे प्रिय मित्र, अपने वीरतापूर्ण कार्य से मुझे मेरा जीवन लौटा दो।
तब सुमुख ने सोचा, "वह मृत्यु के भय से बहुत भयभीत है; वह मेरी शक्तियों को नहीं जानता। बनारस के राजा से मिलने और उनसे थोड़ी बातचीत करने के बाद, मुझे पता चल जाएगा कि मुझे क्या करना है: इस बीच मैं अपने राजा को सांत्वना दूंगा," और उसने यह श्लोक कहा:

हे श्रेष्ठ पक्षी, भयभीत मत हो, क्योंकि भय तुम जैसे प्राणी को शोभा नहीं देता।
मैं न्याय को अपना आधार बनाकर उचित प्रयास करूंगा।
और जल्द ही मेरे वीरतापूर्ण कार्य से तुम एक बार फिर स्वतंत्र हो जाओगे।
जब वे पक्षी भाषा में बातें कर रहे थे, शिकारी को उनकी एक भी बात समझ नहीं आई, लेकिन उन्हें अपने डंडे पर बिठाकर वह बनारस में प्रवेश कर गया। उसके पीछे बहुत से लोग चल रहे थे, जो आश्चर्य और विस्मय से भर कर विनती की मुद्रा में हाथ फैलाए खड़े थे। महल के द्वार पर पहुँचकर शिकारी ने राजा को अपने आगमन की सूचना दी।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

अपना बोझ ढोने वाला शिकारी महल के द्वार के पास पहुंचा;
"राजा को मेरी सूचना दो," वह चिल्लाया, "लाल हंस यहाँ है।"
द्वारपाल ने जाकर उसके आगमन की सूचना दी। राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, "उसे तुरंत यहाँ आने दो।" दरबारियों की भीड़ से घिरे और सफेद छतरी से ढके सिंहासन पर विराजमान राजा ने खेमाका को अपने भार के साथ मंच पर आते देखा। सुनहरे रंग के हंसों को देखकर उन्होंने कहा, "मेरी मनोकामना पूरी हो गई है।" उन्होंने अपने दरबारियों को आदेश दिया कि शिकारी की पूरी सेवा की जाए।

मामले को स्पष्ट करने के लिए, मास्टर ने कहा:

इन पवित्र रूप और शुभ चिह्नों वाले पक्षियों को देखकर, राजा संयमा ने अपने सलाहकारों को इन शब्दों से संबोधित किया:

शिकारी को मांस और पेय, नरम भोजन, बहादुरों के वस्त्र दो।
और लाल सोने का इतना भंडार, जितना मनुष्य का हृदय तरस सकता है।"
अत्यंत प्रसन्न होकर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "जाओ और शिकारी को सजाओ और उसे मेरे पास वापस लाओ।"
अतः दरबारी उसे महल से नीचे लाए, उसके बाल और दाढ़ी संवारे, और जब उसने स्नान कर लिया, अभिषेक कर लिया और उसे उत्तम वस्त्र पहना दिए गए, तो वे उसे राजा के समक्ष ले आए। तब राजा ने उसे बारह गाँव दिए, जिनसे प्रतिवर्ष एक लाख सिक्के प्राप्त होते थे, एक रथ जोतकर दिया गया, एक बड़ा सुसज्जित घर और बहुत बड़ा सम्मान प्रदान किया। इतना बड़ा सम्मान पाकर शिकारी ने अपने कार्य का स्पष्टीकरण देते हुए कहा, "महाराज, यह कोई साधारण हंस नहीं है जिसे मैं आपके लिए लाया हूँ; यह नब्बे हजार हंसों का राजा है, जिसका नाम धतरत्था है, और यह मुख्य सेनापति है, सुमुखा।" तब राजा ने पूछा, "मित्र, तुमने इन्हें कैसे पकड़ा?"

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

शिकारी को अत्यंत प्रसन्न देखकर काशी के राजा ने कहा,

"अगर, खेमाका, झील पर हजारों हंस भोजन करते थे,
एक जैसे पक्षियों के समूह के बीच, कृपया बताएं कि आपने यह योजना कैसे बनाई।
इस प्यारे पक्षी को चुनकर उसे जिंदा पकड़ना?
शिकारी ने उत्तर देते हुए कहा:

(*15)सात लंबे दिनों तक मैंने व्यर्थ ही चिंतापूर्वक उस स्थान को चिह्नित किया,
उस सुंदर हंस के पदचिह्न की खोज में, जो एक बर्तन के भीतर छिपा हुआ है (*16)।
आज मुझे वह चारागाह मिल गया जहाँ हंस जाता था।
और मैंने तुरंत वहाँ जाल बिछाया और देखो! वह जल्दी ही फँस गया।
यह सुनकर राजा ने सोचा, "द्वार पर खड़ा यह व्यक्ति जो अपनी कहानी सुना रहा था, उसने तो केवल धतरत्थ राजा के आगमन की ही बात की थी, और अब भी वह केवल इसी की बात कर रहा है। इसका क्या अर्थ हो सकता है?" और उसने यह श्लोक कहा:

शिकारी, तुम तो सिर्फ एक की बात कर रहे हो, लेकिन यहाँ मुझे दो पक्षी दिखाई दे रहे हैं;
यह कोई गलती है, आप मेरे पास यह दूसरा पक्षी क्यों लाए?
तब शिकारी ने कहा, "मेरे इरादे में कोई बदलाव नहीं आया है, और न ही मैं दूसरे हंस को किसी और को भेंट करने के लिए उत्सुक हूं: इसके अलावा, मेरे बिछाए जाल में केवल एक ही हंस फंसा था," और स्पष्टीकरण देते हुए उसने कहा:

हंस की छाती पर लाल सोने जैसी धारियाँ बनी हुई थीं।
मैं अपने जाल में फंसा हुआ, हे राजा, आपके आदेश पर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।
यह शानदार पक्षी, जो अभी भी स्वतंत्र था, बंदी के पास बैठा था।
इस दौरान उसने अपने मित्र को विनम्र मानवीय शब्दों से प्रोत्साहित करने का प्रयास किया।
फिर उन्होंने सुमुखा के गुणों का बखान किया। “जैसे ही उन्हें पता चला कि धतरत्था हंस फँस गया है, वे वहीं रुक गए और अपने मित्र को सांत्वना दी। मेरे आने पर वे मुझसे मिलने आए और हवा में स्थिर होकर मुझसे मानवीय भाषा में मधुरता से बातें करने लगे और धतरत्था के गुणों का वर्णन करने लगे। इस प्रकार मेरा हृदय प्रसन्न करने के बाद वे एक बार फिर अपने मित्र के सामने खड़े हो गए। तब, महाराज, सुमुखा के शब्दों को सुनकर मेरा मन बदल गया और मैंने धतरत्था को मुक्त कर दिया। इस प्रकार धतरत्था का फंदे से मुक्त होना और इन हंसों के साथ मेरा यहाँ आना, सब सुमुखा की कृपा से ही संभव हुआ।” यह सुनकर राजा सुमुखा से प्रवचन सुनने के लिए उत्सुक हो गया, और जब शिकारी अभी भी उसे सम्मान दे ही रहा था, तभी सूर्यास्त हो गया, दीपक जलाए गए, और योद्धा सरदारों और अन्य लोगों की भीड़ जमा हो गई, और रानी खेमा कई नर्तकियों के दल के साथ राजा के दाहिनी ओर बैठ गई, और इस समय राजा ने सुमुखा को बोलने के लिए प्रेरित करने की इच्छा से यह श्लोक कहा:

सुमुखा, तुम चुप क्यों रहती हो? क्या यह भय के कारण है, मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ?
क्या मेरी राजसी उपस्थिति में आपके पास कहने के लिए एक शब्द भी नहीं है?
यह सुनकर सुमुखा ने निडरता दिखाते हुए कहा:

हे काशी स्वामी, मुझे आपके शाही समारोह के बीच बोलने से कोई भय नहीं है।
और यदि उपयुक्त अवसर आ जाए, तो मैं शब्दों से परहेज नहीं करूंगा।
यह सुनकर राजा ने उसे और अधिक बोलने के लिए उकसाने और उसका अपमान करने की इच्छा से कहा:

मुझे कवचधारी तीरंदाज, पहिया (*17), चमड़े की ढाल दिखाई नहीं देती।
न तो घुड़सवार सेना का कोई दल, न पैदल सेना का कोई दस्ता, न गाड़ियाँ, न पैदल सेना।
मुझे न तो पीला सोना दिखाई देता है, न ही भव्य इमारतों से सुसज्जित कोई शहर।
चारों ओर खाई से घिरी कोई निगरानी मीनार नहीं थी,
जिसमें सुमुखा की रक्षा से डरने की कोई बात नहीं होगी।
जब राजा ने इस प्रकार पूछा कि वह भयभीत क्यों नहीं है, तो सुमुख ने इस श्लोक में उत्तर दिया:

मुझे किसी गार्ड के लिए एस्कॉर्ट नहीं चाहिए, मुझे किसी शहर या धन की आवश्यकता नहीं है।
पथहीन आकाश के बीच हम एक रास्ता खोजते हैं और आकाश में यात्रा करते हैं।
यदि तुम सत्य में दृढ़ हो, तो हम तुम्हें सहर्ष शिक्षा देंगे।
बुद्धिमानी और सूक्ष्म वाणी में आपके भले के लिए कुछ उपयोगी सबक।
लेकिन यदि तुम झूठे हो, कपटी हो, नीच प्रवृत्ति के हो,
इस हंटर के वाक्पटुतापूर्ण शब्द आप पर व्यर्थ ही प्रभाव डालते हैं।
यह सुनकर राजा ने कहा, "तुम मुझे झूठा और नीच क्यों कहते हो? मैंने क्या किया है?" तब सुमुख ने कहा, "अच्छा, मेरी बात सुनो," और उसने इस प्रकार कहा:

ब्राह्मणों के कहने पर ही आपने यह खेमा, यश का सरोवर बनाया था।

और पक्षियों को दो बार पांच अंकों की प्रतिरक्षा की घोषणा की।
इस शांत और निर्मल तालाब में, जहाँ से निर्मल और शुद्ध धाराओं का जल प्रवाहित होता है,
पक्षियों को हमेशा प्रचुर मात्रा में भोजन मिलता था और वे सुरक्षित जीवन जीते थे।
यह शोर सुनकर हम उस खूबसूरत दृश्य को देखने आए।
और हम तुम्हारे जाल में फंस गए, अफसोस! तुम्हारा वादा झूठा निकला।
लेकिन झूठ की आड़ में पापपूर्ण लालच का प्रत्येक कृत्य
मनुष्य या देवदूत (परमेश्वर) के रूप में पुनर्जन्म का अधिकार खो देता है, और सीधे नरक की ओर ले जाता है।
इस प्रकार उसने अपने सेवकों के बीच भी राजा को लज्जित कर दिया। तब राजा ने उससे कहा, "सुमुख, मैंने तुम्हें इसलिए नहीं पकड़ा कि मार डालूँ और तुम्हारा मांस खाऊँ, बल्कि तुम्हारी बुद्धिमत्ता सुनकर मैं तुम्हारी वाक्पटुता सुनने के लिए उत्सुक हुआ," और बात स्पष्ट करते हुए उसने कहा:

हे सुमुख, मेरा कोई पाप नहीं था, न ही मैंने लालच के कारण तुम्हें अपने वश में किया।
आपकी बुद्धिमत्ता और गहन चिंतन की ख्याति ही उस कृत्य का कारण बनी।
"अगर संयोग से वे यहाँ कोई सच्ची और मददगार बात कह दें,"
इसलिए मैंने शिकारी से कहा कि वह तुम्हें पकड़कर यहाँ ले आए, हे पक्षी।
यह सुनकर सुमुख ने कहा, "महाराज, आपने गलत कार्य किया है," और उन्होंने इस प्रकार कहा:

मृत्यु के निकट आने के भय से हम सत्य का एक शब्द भी नहीं बोल सके।
और न ही मृत्यु की अंतिम पीड़ा में हमारी अंतिम सांस के समय।
नकली पक्षी से या जानवर से, कौन किसका पीछा करेगा?
या फिर किसी उपदेशक के जाल में फंसने पर, वह किसी भी बुरी चीज से नहीं बच पाएगा।
और जो कोई भी बुरे कर्म करने के इरादे से नेक बातें कहता है,
इस लोक में और परलोक में भी, आनंद से पीड़ामय स्थान में परिवर्तन होता है।
गौरव के क्षण में अतिप्रसन्न न हो, संकट में भयभीत न हो।
अपनी कमियों को सुधारें, मुश्किल समय में भी अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए कड़ी मेहनत करें।
ऋषि-मुनि जीवन के अंतिम चरण में पहुँच गए, मृत्यु उनके सामने थी।
पृथ्वी पर धार्मिक मार्ग का अनुसरण करने के बाद, वे स्वर्ग की ओर अपना मार्ग अपनाते हैं।
हे प्रभु, यह सुनकर धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहो और तुरंत मुक्ति पाओ।
यह शाही धतरत्था पक्षी, हंसों का एक आदर्श उदाहरण है।
यह सुनकर राजा ने कहा:

जाओ, उनके चरणों के लिए पानी और एक ठोस सिंहासन ले आओ।
देखो! मैंने पिंजरे से पृथ्वी के सबसे श्रेष्ठ पक्षी को मुक्त कर दिया है।
अपने साहसी, सक्षम और बुद्धिमान कप्तान के साथ,
उसे अपने राजा के साथ सुख-दुख में हमेशा सहानुभूति रखना सिखाया गया था।
निःसंदेह, ऐसा व्यक्ति अपने स्वामी के समान ही सुख-शांति का पात्र है।
जिस प्रकार वह उसके साथ जीवन और मृत्यु दोनों को साझा करने के लिए तैयार था।
राजा की बातें सुनकर उन्होंने उनके लिए कुर्सियाँ मंगवाईं और जब वे वहाँ बैठे तो उन्होंने सुगंधित जल से अपने पैर धोए और सौ गुना शुद्ध किए गए तेल से उनका लेप किया।

गुरु ने इस मामले को समझाते हुए कहा:

राजसी पक्षी आठ पैरों वाले, चमकते हुए सिंहासन पर बैठा था, जो पूरी तरह से ठोस सोने का बना था और उस पर काशी का कपड़ा बिछा हुआ था, एक शानदार दृश्य।

और फिर उनके राजा सुमुखा, उनके भरोसेमंद और बहादुर सेनापति, बाघ की खाल से ढके और सोने से सजे पलंग पर बैठे।

उनके लिए अनेक काशी सरदारों ने सोने के कटोरे भरकर लाए, उत्तम भोजन के उत्तम उपहार, जो उनके राजा की ओर से भेंट थे।

जब उन्हें भोजन परोसा गया, तो काशी के राजा ने उनका स्वागत करते हुए स्वयं एक सोने का कटोरा लिया और उन्हें भेंट किया। उन्होंने उसमें से शहद, भुना हुआ अनाज खाया और चीनी का पानी पिया। तब उस महान सत्ता ने राजा की भेंट और उसमें निहित कृपा को देखकर उनसे मैत्रीपूर्ण वार्तालाप किया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

यह सोचते हुए कि "काशी के इस स्वामी ने हमें कितने उत्तम उपहार दिए हैं," राजाओं के तौर-तरीकों में निपुण पक्षी ने इस प्रकार पूछताछ की:

हे प्रभु, क्या आप स्वस्थ हैं और सब कुछ ठीक है?
मुझे विश्वास है कि आपका राज्य समृद्ध है और न्यायपूर्वक शासित है।
हे हंसों के राजा, मेरा स्वास्थ्य अच्छा है और मैं पूरी तरह से स्वस्थ हूँ;
मेरा राज्य बहुत समृद्ध है और न्यायपूर्ण शासन से संचालित होता है।
क्या आपके पास ऐसे सच्चे सलाहकार हैं जो हर तरह के दाग और दोष से मुक्त हों?
क्या आप अपने नेक उद्देश्य और नाम के लिए, यदि आवश्यक हो तो, मरने के लिए तैयार हैं?
मुझे सलाह देने के लिए सच्चे पुरुष मौजूद हैं, जो हर तरह के दाग और दोष से मुक्त हैं।
अपने नेक उद्देश्य और नाम के लिए, यदि आवश्यक हुआ तो, मरने को भी तैयार हूँ।
क्या आपकी पत्नी आपके समान कुल की, आज्ञाकारी और वाक्पटु है?
क्या वह संतानोत्पत्ति से संपन्न है, सुंदर दिखती है, उसका नाम अच्छा है, और वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करती है?
मेरी पत्नी मेरे समतुल्य कुल की है, आज्ञाकारी है और वाक्पटु है।
संतान की देवी, सुंदर रूप, सुसंस्कृत नाम, अपने स्वामी के प्रति आज्ञाकारी।
और क्या आपका राज्य सुखमय है, सभी प्रकार के उत्पीड़न से मुक्त है?
क्या यह मनमानी के अधीन नहीं, बल्कि निष्पक्षता से शासित है?
मेरा राज्य सुखमय स्थिति में है, सभी प्रकार के उत्पीड़न से मुक्त है।
किसी मनमानी के प्रभाव में नहीं, बल्कि निष्पक्षता से शासित।
देश से बुरे लोगों को निकाल दो, अच्छे लोगों का सम्मान बढ़ाओ।
या क्या तुम धर्म से विमुख होकर बुरे मार्गों का अनुसरण करोगे?
मैं बुरे लोगों को देश से निकाल देता हूँ, अच्छे लोगों को सम्मान दिलाता हूँ।
मैं हर प्रकार की बुराई से दूर रहता हूँ और धार्मिक मार्ग का अनुसरण करता हूँ।
हे राजा, जीवन की अवधि पर ध्यान दें, यह कितनी जल्दी बीत जाती है।
या फिर क्या वे पागलपन के नशे में चूर होकर परलोक को भय से मुक्त मानते हैं?
हे पक्षी, मैंने जीवन की अवधि पर ध्यान दिया है, यह कितनी जल्दी बीत जाती है।
और, दस सद्गुणों में दृढ़ रहकर, परलोक से कभी भयभीत न हों।
दान-पुण्य, न्याय, पश्चाताप, नम्र स्वभाव, सौम्य मिजाज
शांति, दया, धैर्य, दान, और निर्मल नैतिकता—
मेरी आत्मा में दृढ़ता से विराजमान ये गुण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।
जिससे मुझे अपार आनंद और खुशी की भरपूर फसल मिलती है।
लेकिन सुमुखा, हालांकि हमारे द्वारा किए गए बुरे कामों से अनजान थी, फिर भी उसने कठोर और क्रोधित स्वर में शब्द कहे।

इस पक्षी द्वारा गलत तरीके से दिए गए अंडे की वजह से मुझे कुछ ऐसी बातें पता नहीं थीं जिनका मुझे जिम्मा उठाना पड़ा।
भाषा कठोर थी। इस संदर्भ में, मुझे लगता है कि बुद्धिमत्ता का अभाव था।
यह सुनकर सुमुख ने सोचा, "यह गुणी राजा क्रोधित है, क्योंकि मैंने उसे फटकारा है; मैं उसकी क्षमा प्राप्त करूँगा," और उसने कहा:

हे मनुष्यों के स्वामी, मैंने आपके विरुद्ध पाप किया और उतावलेपन में शब्द बोल दिए।
लेकिन जब इस शाही हंस को पकड़ा गया तो मेरा दिल मानो टूट गया।
जैसे पृथ्वी सभी जीवित प्राणियों को धारण करती है, जैसे पिता अपने पुत्र को धारण करता है,
हे सर्वशक्तिमान राजा, क्या आप हमारे द्वारा किए गए अपराध को क्षमा करेंगे?
तब राजा ने पक्षी को उठाया और उसे गले लगाया, और उसे एक सुनहरे सिंहासन पर बैठाकर उसकी गलती स्वीकार कर ली और कहा:

हे पक्षी, मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ कि तुम कभी भी अपने वास्तविक स्वभाव को नहीं छिपाते।
(*20)आप मेरी हठी इच्छा को तोड़ देते हैं; मुझे लगता है आप धर्मी हैं।
और इन शब्दों के साथ, महान सत्ता द्वारा विधि की व्याख्या और सुमुख के सीधे-सादे शब्दों से अत्यंत प्रसन्न होकर, राजा ने सोचा, "जब कोई प्रसन्न हो, तो उसे अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए कार्य करना चाहिए," और अपने राजसी वैभव को पक्षियों को अर्पित करते हुए उसने कहा:

चांदी, सोना और मोती, कीमती रत्न और बहुमूल्य सामान जो भी हो।
काशी के शाही शहर में स्थित यह वस्तु मेरे महल में यहीं संग्रहित है।
तांबा और लोहा, सीप और मोती, और अनगिनत रत्न,
हाथीदांत, पीली चंदन की लकड़ी, हिरण की खाल और कीमती वस्त्र
यह धन और सर्वाधिकार मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।
और इसी प्रकार के शब्दों से दोनों पक्षियों को श्वेत छत्र से आदर देते हुए उन्होंने अपना राज्य उन्हें सौंप दिया। फिर उस महान सत्ता ने राजा से बातचीत करते हुए कहा:

हे मनुष्यों के स्वामी, क्योंकि आप हमें सम्मानित करने में प्रसन्न हैं, इसलिए प्रसन्न होइए।
हमारे गुरु बनकर हमें उन दस शाही गुणों की शिक्षा दें।
और फिर यदि आपकी स्वीकृति और सहमति से हम संयोगवश जीत जाते हैं,
हम आपसे औपचारिक रूप से विदा लेंगे और अपने परिजनों से मिलने जाएंगे।
उन्होंने उन्हें जाने की अनुमति दी, और जब बोधिसत्व अभी भी धर्म का उपदेश दे ही रहे थे, तभी सूर्य उदय हो गया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

काशी के राजा ने पूरी रात गहन चिंतन में बिताई।
तब उन्होंने उस महान पक्षी के अनुरोध पर तुरंत अपनी सहमति दे दी।
जब उन्हें प्रस्थान की अनुमति मिल गई, तो बोधिसत्व ने कहा, "सावधान रहो और अपने राज्य पर धर्मपूर्वक शासन करो," और राजा को पाँच नैतिक नियमों में स्थापित किया। राजा ने उन्हें सोने के थालों में शहद और चीनी-पानी के साथ भुना हुआ अनाज परोसा, और जब उन्होंने भोजन समाप्त कर लिया, तो सुगंधित मालाओं और इसी तरह की भेंटों से उनका सम्मान करने के बाद, राजा ने स्वयं बोधिसत्व को सोने के पिंजरे में ऊँचा उठा लिया, और रानी खेमा ने सुमुखा को ऊँचा उठा लिया। फिर सूर्योदय के समय उन्होंने खिड़की खोली और "महोदय, चले जाओ," कहकर उन्हें छोड़ दिया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

फिर जैसे ही सूरज उगने लगा और दिन का उजाला होने लगा (*21), जल्द ही वे उनकी दृष्टि से नीले आकाश की गहराई में पूरी तरह से गायब हो गए।

उनमें से एक, महान प्राणी, स्वर्ण पिंजरे से उड़कर हवा में स्थिर हो गया और बोला, "हे महाराज, चिंता न करें, बल्कि सतर्क रहें और हमारी सलाह मानें।" इस प्रकार उसने राजा को सांत्वना दी और सुमुख को अपने साथ लेकर सीधे चित्तकुटा की ओर चल पड़ा। स्वर्ण गुफा से निकले वे नब्बे हजार हंस ऊंचे पठार पर आकर बैठ गए और उन दोनों पक्षियों को आते देख उनसे मिलने और उन्हें घर तक पहुंचाने के लिए निकल पड़े। इस प्रकार अपने परिवार के झुंड के साथ वे चित्तकुटा के पठार पर पहुंच गए।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

अपने सरदारों को मनुष्यों के आवासों से सुरक्षित और स्वस्थ लौटते देख, पंखों वाले पक्षियों के झुंड ने शोरगुल के साथ उनका स्वागत किया।

इस प्रकार अपने स्वामी के चारों ओर चक्कर लगाते हुए, जिन पर उन्हें पूरा भरोसा था, इन लाल हंसों ने अपने राजा को पूरा सम्मान दिया और उनकी रिहाई पर खुशी मनाई।

अपने राजा की यात्रा करते हुए, इन हंसों ने उनसे पूछा, "महाराज, आप कैसे बच निकले?" राजा ने उन्हें सुमुख की सहायता से अपनी मुक्ति और राजा संयम और उनके दरबारियों की कार्रवाई के बारे में बताया। यह सुनकर हंसों के झुंड ने प्रसन्नतापूर्वक गीत गाते हुए कहा, "हमारे समूह के सेनापति सुमुख की जय हो, और राजा और शिकारी की भी जय हो। वे सुखी और दुःखमुक्त रहें।"

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

इस प्रकार, जिनके हृदय प्रेम से भरे होते हैं, वे अपने कार्यों में सफल होते हैं।
ये हंस सुरक्षित रूप से अपने दोस्तों के पास वापस उड़ गए।
इसका पूरा विवरण कुल्लाहमसा जन्म ग्रंथ में दिया गया है।

गुरु (बुद्ध) ने यहाँ अपनी कथा समाप्त की और जन्म की पहचान बताई: "उस समय शिकारी चन्ना था, रानी खेमा भिक्षुणी खेमा थी, राजा सारिपुत्र था, राजा के सेवकों का समूह बुद्ध के अनुयायी थे, सुमुख आनंद था, और हंस-राजा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)चुल्लमसा-जातक

(2) एक पाठ से आचार्य का कथन मिलता है, "मेरे स्वामियों, क्या यहाँ कोई सोने की हंस हैं?"

(3) क्रिया 1. पदो चिज्जेय्या को लेते हुए। पाठ में बहुवचन पद गलत होना चाहिए, क्योंकि शाही हंस का केवल एक पैर फंसा हुआ था।

(4)मा अनिघया हपेसी, जाट. सं. 424 देखें, हपेति यहाँ अधिक सामान्य कर्म कारक के बजाय कर्म कारक के साथ निर्मित है।

(5)अपरिब्रुहयी। अर्थ के लिए जाट सं. 31 और 191 देखें।

(6) यो वा सो वा के इस प्रयोग के लिए जाट. सं. 38, सं. 313, सं. 31 देखें

(7) संगहक, जाट. सं. 262, सं. 110, को "संघवत्थुस नामक चार राजसी गुणों के माध्यम से सामंजस्य स्थापित करने" के रूप में समझाया गया है।

(8) यह पंक्ति पिछली कहानी में आती है

(9) सम्यामा नो को पढ़ना

(10) शाब्दिक रूप से "जांघ पर शुभ चिह्नों के साथ।"

(11)रोदिस्साती के लिए रुच्छिति, जाट. सं. 80 देखें

(12) मूर्खतापूर्ण बात की तुलना यहाँ उबलते पानी की आवाज़ से या शायद बर्तन के नीचे कांटों की चटकने की आवाज़ से, और साथ ही अनाज के खेत पर झपट्टा मारते पक्षियों के शोर से की गई है।

(14) "उत्तर देने के लिए तैयार न होना" के अर्थ में अप्पतिभाना के लिए जाट. सं. 304, सं. 246 देखें।

(15)यहाँ पाठ असंतोषजनक है, जिसमें अदनानी दिया गया है, जबकि टीकाकार की व्याख्या में "चारागाह" दिया गया है, मानो यह अदनानी हो, इसलिए अदनेसनम शायद अदनेसनम होना चाहिए, जाट. सं. 223, घसेसनम देखें।

(16)घाटास्सिटो.

(17) यह संभवतः कोई हथियार या रक्षात्मक कवच का टुकड़ा है।

(20)खिलम् पभिन्दति वाक्यांश के लिए, सुत्त निपाता, 973 देखें

(21)रत्या विवासने। रतिया के लिए नोट रत्या। रेखा जाट में होती है। नहीं। 241

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **सुधाभोजन-जातक**

***स्रोत** : एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----॥-535-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 535
सुधाभोजन-जातक (*1)

"मैं फेरीवाला नहीं हूँ," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए एक उदार भिक्षु के बारे में सुनाई थी। कहा जाता है कि वह श्रावस्ती नगर में रहने वाला एक कुलीन परिवार का व्यक्ति था, जिसने गुरु द्वारा उपदेशित धर्ममार्ग सुनकर धर्म परिवर्तन किया और संन्यासी जीवन अपना लिया। नैतिक गुणों में परिपूर्ण और धूत नियमों (*2) से युक्त, तथा अपने साथी भिक्षुओं के प्रति प्रेम से परिपूर्ण, वह दिन में तीन बार उत्साहपूर्वक बुद्ध, धर्ममार्ग और सभा की सेवा करता था, और अपने आचरण में अनुकरणीय तथा दानशील था। शिष्टता और विनम्रता के दायित्वों को पूरा करते हुए, वह जो कुछ भी प्राप्त करता, जब तक कोई प्राप्तकर्ता होता, तब तक देता रहता, यहाँ तक कि स्वयं भूखा भी हो जाता। उसकी उदारता और दानशील स्वभाव की चर्चा भिक्षुओं की सभा में दूर-दूर तक होती रही। एक दिन सत्य के हॉल में यह चर्चा शुरू हुई कि एक भिक्षु इतने उदार और दानशील थे कि यदि उन्हें केवल हथेली भरने लायक पेय भी मिले, तो वे निस्वार्थ भाव से उसे अपने साथी भिक्षुओं को दे देते थे—उनकी इच्छा बोधिसत्व के समान थी। गुरु ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से उनकी बातें सुन लीं और अपने सुगंधित कक्ष से निकलकर पास आकर पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। और जब उन्होंने उत्तर दिया, "यह ऐसा था," तो उन्होंने कहा, "भाइयों, यह भाई बहुत उदार नहीं था, बल्कि इतना कंजूस था कि घास के तिनके की नोक पर तेल की एक बूंद तक नहीं देता था। इसलिए मैंने उसका परिवर्तन कराया और उसे आत्म-त्यागी बनाया तथा दान के फलों की प्रशंसा करके उसे दान देने में दृढ़ रूप से स्थापित किया; यहाँ तक कि जब उसे हथेली भरने लायक पानी मिलता था, तो वह कहता था, "मैं एक बूंद भी बिना दान दिए नहीं पीऊँगा," और उसे मेरे हाथों से वरदान प्राप्त हुआ, और उसके दान देने के फलस्वरूप वह उदार हृदय और दान के प्रति समर्पित हो गया," और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब बनारस के राजा ब्रह्मदत्त थे, तब एक धनी गृहस्थ रहते थे जिनके पास अस्सी करोड़ (10 मिलियन) की संपत्ति थी। राजा ने उन्हें कोषाध्यक्ष का पद दिया। राजा द्वारा सम्मानित और देशवासियों द्वारा समान रूप से आदरणीय होने के कारण, वे एक दिन अपनी इस सांसारिक समृद्धि का आनंद ले रहे थे। उन्होंने सोचा, "यह वैभव मुझे पिछले जन्म में आलस्य और पाप कर्मों से नहीं मिला, बल्कि पुण्य कर्मों से प्राप्त हुआ है; इससे मुझे भविष्य में मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त होगा।" इसलिए उन्होंने राजा से मिलने की इच्छा जताई और उनसे कहा, "हे महाराज, मेरे घर में अस्सी करोड़ (10 मिलियन) का खजाना है: इसे स्वीकार कीजिए।" जब राजा ने कहा, "मुझे तुम्हारी संपत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है; मेरे पास प्रचुर धन है: अब से इसे ले लो और जो चाहो करो," तो उन्होंने कहा, "हे महाराज, क्या मैं अपना धन दान में दे सकता हूँ?" राजा ने कहा, "जैसा चाहो वैसा करो": और उसने छह भिक्षागृह बनवाए, एक-एक नगर के चारों द्वारों पर, एक नगर के केंद्र में और एक अपने निवास स्थान के द्वार पर। प्रतिदिन छह लाख सिक्कों के व्यय से उसने बड़े पैमाने पर भिक्षादान का कार्य शुरू किया। अपने जीवनकाल में वह भिक्षा देता रहा और अपने पुत्रों को यह निर्देश देता रहा, "ध्यान रखना कि तुम मेरी इस भिक्षा देने की परंपरा को न तोड़ो।" अपने जीवन के अंत में उसका पुनर्जन्म सक्का (इंद्र) के रूप में हुआ। उसके पुत्र ने भी इसी प्रकार भिक्षा देते हुए चंदा का पुनर्जन्म लिया, चंदा के पुत्र का नाम सूर्य, सूर्य के पुत्र का नाम मतली और मतली के पुत्र का नाम पंचसिखा। अब पंचसिखा का पुत्र, जो छठी पीढ़ी में था, कोषाध्यक्ष मच्छरिकोसिया (कई करोड़पति कंजूस) था और उसके पास अभी भी अस्सी करोड़ (10 मिलियन) रुपये की संपत्ति थी। लेकिन उसने सोचा, "मेरे पूर्वज मूर्ख थे। उन्होंने बड़ी मेहनत से जमा की गई दौलत लुटा दी, लेकिन मैं अपने खजाने की रक्षा करूँगा। मैं किसी को एक पैसा भी नहीं दूँगा।" और उसने भिक्षागृह को तोड़कर जला दिया और पक्का कंजूस बन गया। तब भिखारी उसके द्वार पर जमा हो गए और बाहें फैलाकर ऊँची आवाज़ में चिल्लाए, "हे महाधन, अपने पूर्वजों की परंपरा को मत तोड़ो, बल्कि दान दो।" यह सुनकर लोगों ने उसे कोसते हुए कहा, "मच्छरिकोसिया ने अपने परिवार की परंपरा को नष्ट कर दिया है।" शर्मिंदा होकर उसने पहरा बिठा दिया ताकि भिखारी उसके द्वार पर न खड़े हो सकें, और इस प्रकार पूरी तरह से बेसहारा हो जाने पर उन्होंने फिर कभी उसके दरवाजे की ओर नहीं देखा। तब से वह धन इकट्ठा करता रहा (*4), लेकिन न तो उसने स्वयं उसका आनंद लिया और न ही अपनी पत्नी और बच्चों के साथ साझा किया। वह लाल पाउडर मिले चावल खाकर गुजारा करता था, जिसे खट्टी दलिया के साथ परोसा जाता था, और वह खुरदुरे वस्त्र पहनता था, जो केवल बेर की जड़ों और डंठलों के रेशों से बने होते थे, अपने सिर को पत्तों की छतरी से ढकता था, और वह थके-हारे बैलों से जुते एक पुराने, पागल रथ पर सवार होता था। इस प्रकार इस दुष्ट व्यक्ति का सारा धन मानो किसी कुत्ते द्वारा पाया गया नारियल था (*5) ।एक दिन जब वह राजा से मिलने जा रहा था, तो उसने सोचा कि वह अपने साथ उप-कोषाध्यक्ष (*6) को भी ले जाएगा। जैसे ही वह उसके घर पहुँचा, उसने देखा कि उप-कोषाध्यक्ष अपनी

पत्नी और बच्चों के बीच बैठा है और पिसी हुई चीनी से मीठा किया हुआ और ताज़ा घी में पका हुआ चावल का दलिया खा रहा है (*7)। मच्छरिकोसिया को देखकर वह अपनी कुर्सी से उठा और बोला, "हे उच्च कोषाध्यक्ष, आइए और इस पलंग पर बैठिए और मेरे साथ थोड़ा चावल का दलिया खाइए।" जब उसने चावल का दलिया देखा, तो उसके मुँह में पानी आ गया और उसे खाने की तीव्र इच्छा हुई, लेकिन उसके मन में यह विचार आया, "यदि मैं दलिया खा लूँ, तो जब उप-कोषाध्यक्ष मेरे घर आएगा, तो मुझे उसे आतिथ्य के बदले कुछ देना पड़ेगा और इस तरह मेरा पैसा बर्बाद हो जाएगा। मैं इसे नहीं खाऊँगा।" बार-बार आग्रह करने पर भी उसने मना कर दिया और कहा, "मैंने भोजन कर लिया है; मैं तृप्त हूँ।" लेकिन जब उप-कोषाध्यक्ष भोजन का आनंद ले रहे थे, तो वे मुँह में पानी लिए उन्हें देखते रहे, और भोजन समाप्त होने पर वे उनके साथ महल चले गए। घर लौटकर उन्हें चावल की दलिया खाने की तीव्र इच्छा हुई, लेकिन उन्होंने सोचा, "अगर मैं कहूँ कि मुझे चावल की दलिया खानी है, तो बहुत से लोग भी इसे खाना चाहेंगे और बहुत सारा चावल और अन्य सामग्री बर्बाद हो जाएगी। मैं किसी को एक शब्द भी नहीं कहूँगा।" इसलिए वे दिन-रात दलिया के बारे में सोचते रहे, लेकिन अपने पैसे खर्च होने के डर से उन्होंने किसी को नहीं बताया और अपनी इच्छा को अपने तक ही सीमित रखा। लेकिन सहन न कर पाने के कारण वे धीरे-धीरे पीले पड़ते गए, और अपने धन के बर्बाद होने के डर से उन्होंने अपनी इच्छा के बारे में किसी से बात नहीं की, और कुछ समय बाद बहुत कमजोर होकर वे बिस्तर पर लेट गए। तभी उनकी पत्नी उनसे मिलने आईं और उनकी पीठ सहलाते हुए पूछा, "क्या स्वामी जी बीमार हैं?" "आप बीमार हैं!" वे चिल्लाए, "मैं बिल्कुल ठीक हूँ।" "महाराज, आपका चेहरा पीला पड़ गया है। क्या आपके मन में कुछ चल रहा है? क्या राजा आपसे नाराज़ हैं या आपके बच्चों ने आपका अपमान किया है? या क्या आपको किसी चीज़ की तीव्र इच्छा हो रही है?" "हाँ, मुझे एक तीव्र इच्छा हो रही है।" "बताइए क्या है महाराज।" "क्या आप इसे गुप्त रख सकते हैं?" "हाँ, मैं किसी भी ऐसी इच्छा के बारे में चुप रहूँगा जिसे गुप्त रखना चाहिए।" फिर भी, अपनी संपत्ति के बर्बाद होने के डर से उनमें उसे बताने का साहस नहीं था, लेकिन उसके बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने कहा, "मेरी प्रिय, एक दिन मैंने उप-कोषाध्यक्ष को घी, शहद और पिसी हुई चीनी से बनी चावल की दलिया खाते देखा, और उस दिन से मुझे भी वैसी ही दलिया खाने की तीव्र इच्छा हो रही है।" "बेचारे, क्या तुम्हारी हालत इतनी खराब है? मैं बनारस के सभी निवासियों के लिए पर्याप्त दलिया बना दूँगी।" तब उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने उनके सिर पर डंडे से वार किया हो। उस पर क्रोधित होकर उसने कहा, "मैं भली-भांति जानता हूँ कि तुम बहुत धनी हो। यदि यह तुम्हारे परिवार से आता है, तो तुम पूरे शहर को चावल का दलिया बनाकर खिला सकती हो।"“तो फिर मैं एक ही गली के निवासियों के लिए पर्याप्त खाना बनाऊँगा।” “तुम्हें उनसे क्या लेना-देना है? उन्हें अपना खाना खाने दो।” “तो फिर मैं इधर-उधर से चुने गए सात परिवारों के लिए पर्याप्त खाना बनाऊँगा।” “वे तुम्हें क्या लेते हैं?” “तो फिर मैं इस घर के नौकरों के लिए खाना बनाऊँगा।” “वे तुम्हें क्या लेते हैं?” “तो फिर मैं सिर्फ अपने परिवार के लिए खाना बनाऊँगा।” “वे तुम्हें क्या लेते हैं?” “तो फिर मैं खाना बनाऊँगा, महाराज, आपके और मेरे लिए।” “और कृपया बताइए, आप कौन हैं? आपके मामले में यह जायज़ नहीं है।” “मैं खाना सिर्फ आपके लिए बनाऊँगा, महाराज।” “कृपया मेरे लिए मत बनाइए: अगर आप इसे घर में बनाएँगे, तो बहुत से लोग इसे ढूँढ़ेंगे।” लेकिन मुझे बस एक माप छिला हुआ चावल, एक चौथाई दूध, एक पौंड (*8) चीनी, एक बर्तन शहद और एक खाना पकाने का बर्तन दे दो, और मैं जंगल में जाकर वहाँ अपना दलिया पकाकर खाऊँगी।” उसने ऐसा ही किया, और एक दास को यह सब लाने के लिए कहकर उसे फलाँ स्थान पर जाकर खड़े होने का आदेश दिया। फिर दास को आगे भेजकर, उसने अकेले ही अपने लिए एक घूंघट बनाया और इस वेश में वह वहाँ गया और नदी के किनारे एक झाड़ी के नीचे उसने एक चूल्हा बनवाया और अपने लिए लकड़ी और पानी मंगवाया और उसने दास से कहा, “जाओ और सड़क पर खड़े हो जाओ और, अगर तुम किसी को देखो, तो मुझे इशारा करना, और जब मैं तुम्हें बुलाऊँ तो मेरे पास वापस आ जाना।” दास को भेजकर उसने आग जलाई और अपना दलिया पकाया। उसी क्षण स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) के शानदार शहर, दस हजार मील (x 4.23 किमी) के विस्तार और साठ मील (x 4.23 किमी) लंबी सुनहरी सड़क, और वेजयंत (*9) को देखते हुए... हजार मील (4.23 किमी) ऊँचा, और सुधम्म (*10) जो पाँच सौ मील (4.23 किमी) में फैला हुआ है, और उसका पीले संगमरमर का सिंहासन, जो साठ मील (4.23 किमी) तक फैला हुआ है, और उसका सफेद छाता जिस पर सोने की माला है, जिसकी परिधि पाँच मील (4.23 किमी) है, और स्वयं उसके साथ पच्चीस करोड़ अप्सराओं का एक भव्य समूह है—मैं कहता हूँ, अपनी इस सारी महिमा को देखते हुए उसने सोचा, "मैंने ऐसा क्या किया होगा कि मुझे यह सम्मान प्राप्त हुआ?" और उसने अपने मन में बनारस के प्रधान कोषाध्यक्ष रहते हुए स्थापित किए गए दान-पुण्य को देखा, और फिर उसने सोचा, "मेरे वंशज कहाँ पैदा हुए?" और इस विषय पर विचार करते हुए उसने कहा, "मेरा पुत्र चंदा देवदूत रूप में पैदा हुआ था, और उसका पुत्र सूर्य था।" और उन सभी के जन्म को देखकर, "पंचसिखा के पुत्र का क्या भाग्य रहा है?" और अंतर्दृष्टि से उसने देखा कि वंश की परंपरा का नाश हो चुका है, और उसके मन में यह विचार आया, "यह दुष्ट कंजूस न तो स्वयं अपनी संपत्ति का आनंद लेता है और न ही दूसरों को कुछ देता है: इसने वंश की परंपरा को नष्ट कर दिया है। जब वह मरेगा तो नरक में पुनर्जन्म लेगा।"उसे शिक्षा देकर और अपनी परंपरा को पुनः स्थापित करके मैं उसे दिखाऊंगा कि देवताओं (देवदूतों) के नगर में पुनर्जन्म कैसे लिया जाता है।" इसलिए उसने चंदा और बाकी लोगों को बुलाया और कहा, "आओ, हम मनुष्यों के निवास स्थानों पर चलते हैं: हमारे परिवार की परंपरा को मच्छरकोसिया ने नष्ट कर दिया है, भिक्षागृह जला दिए गए हैं और वह न तो स्वयं धनवान है और न ही दूसरों को कुछ देता है, लेकिन अब दलिया खाने की इच्छा से और यह सोचकर कि "यदि इसे घर में पकाया जाए, तो दलिया किसी और को भी देना पड़ेगा," वह जंगल में चला गया है और अकेले ही पका रहा है। हम जाकर उसका धर्म परिवर्तन करवाएंगे और उसे भिक्षा देने के फल सिखाएंगे। लेकिन यदि हम सब मिलकर उससे एक साथ भोजन मांगें, तो वह वहीं मर जाएगा।" मैं पहले जाता हूँ और जब मैं उनसे दलिया माँगकर बैठ जाऊँगा, तब तुम एक-एक करके ब्राह्मणों का वेश धारण करके उनसे भीख

माँगना।" ऐसा कहकर वे स्वयं ब्राह्मण का वेश धारण करके उनके पास पहुँचे और चिल्लाए, "अरे! बनारस का रास्ता कहाँ है?" तब मच्छरिकोसिया ने कहा, "क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? क्या तुम्हें बनारस का रास्ता भी नहीं पता? तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? यहाँ से चले जाओ।" सक्का (इंद्र), मानो उसने सुना ही न हो, उनके पास आकर पूछने लगा कि उसने क्या कहा। तब वह चिल्लाया, "अरे, बहरे बूढ़े ब्राह्मण, तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? वहाँ जाओ।" तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "तुम इतना क्यों चिल्ला रहे हो? यहाँ मुझे धुआँ और आग दिखाई दे रही है, और चावल का दलिया पक रहा है। ब्राह्मणों के स्वागत का कोई अवसर होगा। जब ब्राह्मणों को भोजन कराया जा रहा होगा, मैं भी थोड़ा खा लूँगा।" आप मुझे क्यों भगा रहे हैं (*11)?" "यहाँ ब्राह्मणों का कोई मनोरंजन नहीं है। आप चले जाइए।" "तो फिर आप इतने क्रोधित क्यों हैं? जब आप भोजन कर लेंगे, तो मैं थोड़ा सा ले लूँगी।" उन्होंने कहा, "मैं आपको उबले हुए चावल का एक टुकड़ा भी नहीं दूँगा। यह थोड़ा सा भोजन केवल मुझे जीवित रखने के लिए पर्याप्त है, और यह भी मैंने भीख माँगकर प्राप्त किया है। आप जाकर अपना भोजन कहीं और ढूँढ़ लें"—और यह उन्होंने अपनी पत्नी से चावल माँगने के संदर्भ में कहा—और उन्होंने यह श्लोक बोला:यह कहकर वह स्वयं ब्राह्मण का वेश धारण करके उसके पास आया और चिल्लाया, "हे! बनारस का रास्ता कहाँ है?" तब मच्छरिकोसिया ने कहा, "क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? क्या तुम्हें बनारस का रास्ता भी नहीं पता? तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? यहाँ से चले जाओ।" सक्का (इंद्र), मानो उसने सुना ही न हो, उसके पास आकर पूछने लगा कि उसने क्या कहा। तब वह चिल्लाया, "अरे, बहरे बूढ़े ब्राह्मण, तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? वहाँ जाओ।" तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "तुम इतना क्यों चिल्ला रहे हो? यहाँ मुझे धुआँ और आग दिखाई दे रही है, और चावल की दलिया पक रही है। ब्राह्मणों के भोज का कोई अवसर होगा। जब ब्राह्मणों को भोजन कराया जाएगा, मैं भी थोड़ा लूँगा। मुझे क्यों भगा रहे हो?" "यहाँ ब्राह्मणों का कोई भोज नहीं है। तुम चले जाओ।" "तो फिर तुम इतने क्रोधित क्यों हो?" जब तुम खाना खा लोगी, तो मैं थोड़ा सा ले लूँगा। उसने कहा, "मैं तुम्हें उबले हुए चावल का एक टुकड़ा भी नहीं दूँगा। यह थोड़ा सा भोजन मुझे बस जीवित रखने के लिए ही काफी है, और यह भी मैंने भीख माँगकर ही प्राप्त किया है। तुम जाओ और अपना भोजन कहीं और ढूँढ़ लो।" - और यह बात उसने अपनी पत्नी से चावल माँगने के संदर्भ में कही - और उसने यह छंद बोला:यह कहकर वह स्वयं ब्राह्मण का वेश धारण करके उसके पास आया और चिल्लाया, "हे! बनारस का रास्ता कहाँ है?" तब मच्छरिकोसिया ने कहा, "क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? क्या तुम्हें बनारस का रास्ता भी नहीं पता? तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? यहाँ से चले जाओ।" सक्का (इंद्र), मानो उसने सुना ही न हो, उसके पास आकर पूछने लगा कि उसने क्या कहा। तब वह चिल्लाया, "अरे, बहरे बूढ़े ब्राह्मण, तुम इस रास्ते क्यों आ रहे हो? वहाँ जाओ।" तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "तुम इतना क्यों चिल्ला रहे हो? यहाँ मुझे धुआँ और आग दिखाई दे रही है, और चावल की दलिया पक रही है। ब्राह्मणों के भोज का कोई अवसर होगा। जब ब्राह्मणों को भोजन कराया जाएगा, मैं भी थोड़ा लूँगा। मुझे क्यों भगा रहे हो?" "यहाँ ब्राह्मणों का कोई भोज नहीं है। तुम चले जाओ।" "तो फिर तुम इतने क्रोधित क्यों हो?" जब तुम खाना खा लोगी, तो मैं थोड़ा सा ले लूँगा। उसने कहा, "मैं तुम्हें उबले हुए चावल का एक टुकड़ा भी नहीं दूँगा। यह थोड़ा सा भोजन मुझे बस जीवित रखने के लिए ही काफी है, और यह भी मैंने भीख माँगकर ही प्राप्त किया है। तुम जाओ और अपना भोजन कहीं और ढूँढ़ लो।" - और यह बात उसने अपनी पत्नी से चावल माँगने के संदर्भ में कही - और उसने यह छंद बोला:

मैं किसी फेरीवाले से कुछ भी खरीद या बेच नहीं सकता।
मेरे पास देने या उधार देने के लिए कोई सामान नहीं है:
चावल की यह भिक्षा प्राप्त करना कठिन था।
यह हम दोनों के लिए पर्याप्त नहीं है।
यह सुनकर सक्का (इंद्र) ने कहा, "मैं भी मधुर स्वर में तुम्हारे लिए एक श्लोक दोहराऊंगा; सुनो," और यद्यपि उसने यह कहते हुए उसे रोकने का प्रयास किया, "मैं तुम्हारा श्लोक नहीं सुनना चाहता," फिर भी सक्का (इंद्र) ने कुछ श्लोक दोहरा दिए:

कम में से कम ही देना चाहिए, और सीमित साधनों से भी कम ही देना चाहिए।
बहुत कुछ देने से बहुत कुछ मिलता है; कुछ न देने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, कोसिया, जो तुम्हारे पास है, उसमें से दान करो:
अकेले भोजन न करो, अकेले भोजन करने वाले को कोई सुख नहीं मिलता।
दान के द्वारा आप दिव्य मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं।
उनकी बात सुनकर इंद्र ने कहा, "यह आपकी कृपा है, ब्राह्मण; जब दलिया पक जाएगा, तो आपको थोड़ा सा मिलेगा। कृपया बैठ जाइए।" इंद्र एक तरफ बैठ गए। उनके बैठते ही चंदा भी पास आकर उसी तरह बातचीत शुरू कर दी, हालांकि मच्छरिकोसिया उन्हें रोकने की कोशिश करते रहे, उन्होंने कुछ श्लोक बोले:

तुम्हारा बलिदान व्यर्थ है और तुम्हारे हृदय की लालसा भी व्यर्थ है।
क्या आपको खाना खाते समय मेहमान को थोड़ा सा हिस्सा देने में कंजूसी करनी चाहिए?
इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, कोसिया, जो तुम्हारे पास है, उसे दान करो, इत्यादि।

उनकी बात सुनकर कंजूस ने बड़ी अनिच्छा से कहा, "ठीक है, बैठ जाइए, आपको थोड़ा दलिया मिलेगा।" तो वह जाकर इंद्र के पास बैठ गया। फिर सूर्य भी उसी प्रकार पास आया और उसी तरह बातचीत शुरू करते हुए, हालांकि कंजूस ने उसे रोकने की कोशिश की, उसने कुछ श्लोक कहे:

तुम्हारा बलिदान सच्चा हो और तुम्हारे हृदय की लालसा व्यर्थ न हो।
आपको अपना भोजन अकेले नहीं खाना चाहिए, बल्कि अपने मेहमान को भी थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए।
तो मैं तुम्हें बताता हूँ, कोसिया, इत्यादि।
उनकी बात सुनकर कंजूस ने बड़ी अनिच्छा से कहा, "ठीक है, बैठ जाओ, तुम्हें थोड़ा मिलेगा।" तो सूर्या चंदा के पास जाकर बैठ गया। फिर मताली भी उसी तरह पास आया और कंजूस के रोकने के बावजूद बातचीत शुरू करते हुए ये पंक्तियाँ बोलीं:

गया की धारा के उफान या झील को कौन उपहार अर्पित करता है जो उसे धोता है?
या फिर टिंबारू या डोना मंदिर, जहां तेज लहरें बहती हैं।
इस संदर्भ में, वह अपने हृदय के त्याग और लालसा का फल प्राप्त करता है।
यदि वह किसी मेहमान के साथ भोजन साझा करता है तो वह अलग बैठकर भोजन नहीं करता है।
तो मैं तुम्हें बताता हूँ, कोसिया, इत्यादि।
उनकी बातें सुनकर, मानो किसी पर्वत शिखर के आभास से अभिभूत होकर, उन्होंने अनिच्छा से कहा, "ठीक है, बैठ जाइए, आपको थोड़ा मिलेगा।" मताली आकर सूरिया के पास बैठ गए। फिर पंचसिखा भी उसी प्रकार पास आए और कंजूस के रोकने के बावजूद, बातचीत शुरू करते हुए कुछ पंक्तियाँ बोलीं:

जैसे मछली लालच से कांटे को निगल जाती है, वैसे ही मछली भी कांटे को निगल जाती है।
क्या वह व्यक्ति है जो मेहमान के आने पर अकेले ही भोजन करेगा?
तो मैं तुम्हें बताता हूँ, कोसिया, इत्यादि।
यह सुनकर मच्छरिकोसिया ने बड़ी पीड़ा से कराहते हुए कहा, "ठीक है, बैठ जाओ, तुम्हें थोड़ा मिलेगा।" तब पंचसिखा जाकर मतली के पास बैठ गया। और जैसे ही ये पाँचों ब्राह्मण बैठे, दलिया पक चुका था। फिर कोसिया ने चूल्हे से दलिया निकालकर ब्राह्मणों से अपने पत्ते लाने को कहा। वे बैठे ही रहे और हाथ फैलाकर हिमालय की एक लता के पत्ते ले आए। उन्हें देखकर कोसिया ने कहा, "मैं तुम्हें इन बड़े पत्तों में दलिया नहीं दे सकता: बबूल और इसी तरह के पेड़ों के पत्ते ले आओ।" उन्होंने ऐसे पत्ते इकट्ठा किए और हर पत्ता योद्धा की ढाल जितना बड़ा था। तब उसने चम्मच से सबको थोड़ा-थोड़ा दलिया खिलाया। जब तक उसने आखिरी व्यक्ति को परोसा, तब तक बर्तन में काफी दलिया बचा था। पाँचों ब्राह्मणों को परोसने के बाद वह स्वयं बर्तन पकड़े बैठ गया। उसी क्षण पंचसिखा उठा और अपना असली रूप बदलकर कुत्ते में परिवर्तित हो गया और उनके सामने आकर खड़ा हो गया और पेशाब करने लगा। प्रत्येक ब्राह्मण ने अपने दलिया को पत्ते से ढक दिया। कुत्ते के पेशाब की एक बूंद कोसिया के हाथ के पिछले हिस्से पर गिरी। ब्राह्मण अपने घड़ों में पानी भरकर दलिया में मिलाते हुए खाने का नाटक करने लगे। कोसिया ने कहा, "मुझे भी थोड़ा पानी दे दो और हाथ धोने के बाद मैं कुछ खा लूँगा।" उन्होंने कहा, "अपने लिए पानी ले आओ और हाथ धो लो।" कोसिया ने कहा, "मैंने तुम्हें दलिया दिया है; मुझे थोड़ा पानी दे दो।" "हम भिक्षावृत्ति का धंधा नहीं करते (*12)।" कोसिया ने कहा, "ठीक है, तो इस बर्तन की रखवाली करो और हाथ धोने के बाद मैं वापस आऊँगा," और वह नदी किनारे उतर गया। उसी क्षण कुत्ते ने बर्तन में पेशाब भर दिया। कोसिया ने उसे पेशाब करते हुए देखकर एक बड़ी छड़ी उठाई और उसके पास आकर उसे धमकाने लगा। अब वह कुत्ता एक जोशीले घोड़े में बदल गया और उसका पीछा करते हुए उसने कई रंग धारण किए। कभी वह काला, कभी सफेद, कभी सुनहरा, कभी धब्बेदार। कभी लंबा, कभी छोटा। इस प्रकार अनेक रूपों में वह मच्छरिकोसिया का पीछा करता रहा, जो मृत्यु के भय से भयभीत होकर ब्राह्मणों के पास आया, जबकि वे हवा में उड़कर स्थिर हो गए। उनकी अलौकिक शक्ति को देखकर उसने कहा:

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों, जो वायु में खड़े हैं,
तुम्हारा यह शिकारी कुत्ता इस तरह अजीबोगरीब ढंग से क्यों पहने हुए है?
एक ही व्यक्ति होते हुए भी उसके हजारों भिन्न रूप हैं।
और मुझे सच-सच बताओ, ब्राह्मणों, तुम कौन हो?
यह सुनकर स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा:

चंदा और सूर्या दोनों यहाँ हैं!
और मताली, जो स्वर्ग का सारथी है,
मैं सक्का (इंद्र) हूँ, तैंतीस देवदूतों का प्रधान देवदूत।
और पंचसिखा तुम्हारा पीछा कर रही है।

पंचसिखा की प्रसिद्धि का गुणगान करते हुए सक्का (इंद्र) ने यह श्लोक कहा:

तबला, ढोल और डफली बजाकर वे उसे नींद से जगाते हैं।
और जैसे ही वह जागता है, मधुर संगीत उसके हृदय को आनंद से भर देता है।
उनकी बात सुनकर कोसिया ने पूछा, "मनुष्य किन कर्मों से इस प्रकार की स्वर्गीय महिमा प्राप्त करते हैं?" "जो दान नहीं करते, जो दुष्ट और कंजूस हैं, वे स्वर्गलोक नहीं पहुँचते, बल्कि नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।" और इसे दर्शाते हुए इंद्र ने कहा:

जो भी जन्म से कंजूस और अनुदार होते हैं,
या पुरोहितों और पवित्र ब्राह्मणों का तिरस्कार,
अब उनका पार्थिव शरीर त्याग दिया गया था,
मृत्यु द्वारा विलीन होकर नरक में रहो।
और यह दर्शाने के लिए कि धर्मपरायण लोग किस प्रकार देवदूतों के लोक को प्राप्त करते हैं, उन्होंने निम्नलिखित श्लोक बोलते हुए कहा:

जो सत्य के प्रति समर्पित है, वही स्वर्ग को जीतेगा।
दान दें और स्वयं को पाप से दूर रखें।
और, उनके शरीर को एक तरफ रख दिया गया
मृत्यु के क्षय से, स्वर्ग में निवास करो।
इन शब्दों के बाद सक्का (इंद्र) ने कहा, "कोसिया, हम दलिया के लिए तुम्हारे पास नहीं आए हैं, बल्कि तुम्हारे प्रति दया और करुणा की भावना से आए हैं," और उसे स्पष्ट करने के लिए उसने कहा:

आप, यद्यपि पूर्व जन्मों में हमारे समान थे,
कंजूस व्यक्ति क्रोध और पाप का पात्र होता है;
हम तुम्हारे ही लिए धरती पर आए हैं।
आपको पाप के विनाश से बचाने के लिए—नरक में पुनर्जन्म से बचाने के लिए।
यह सुनकर कोसिया ने सोचा, "ये लोग तो मेरे शुभचिंतक हैं; मुझे नरक से निकालकर स्वर्ग में स्थान देंगे।" और अत्यंत प्रसन्न होकर उसने कहा:

इस प्रकार तुम मेरा भला चाहते हो।
मैं भी आपकी सलाह का पालन करूंगा, जितना मुझे समझ में आया है।
अब से मैं कंजूसी के मार्ग को त्याग दूंगा, पाप कर्मों से दूर रहूंगा।
सभी का दान दो, यहाँ तक कि एक प्याला भी, बिना साझा किए (*13), पानी बहाओ।
इस प्रकार निरंतर दान देते रहने से, सक्का (इंद्र), मेरी संपत्ति शीघ्र ही कम हो जाएगी।
तब मैं पवित्र दीक्षा (तपस्या) लूंगा, और हर तरह की वासनाएँ (*14) भाग जाएँगी।
मच्छरिकोसिया को धर्म परिवर्तन कराने के बाद, इंद्र ने उन्हें दान के फल सिखाए और उन्हें आत्म-त्यागी बनाया। जब उन्होंने धर्म का उपदेश देकर उन्हें पाँचों नैतिक गुणों में स्थापित कर दिया, तो वे अपने साथ आए देवदूतों के साथ देव-नगर लौट गए। मच्छरिकोसिया भी बनारस नगर गए और राजा से अनुमति लेकर उनसे अपने खजाने को जितने भी पात्र मिलें, उनसे भरकर भिखारियों को देने को कहा। फिर वे हिमवत (हिमालय) से दाहिनी ओर चले और गंगा नदी और एक प्राकृतिक झील के बीच में पत्तों की कुटिया बनाकर तपस्वी बन गए और कंदों और जंगली बेरों का भोजन करने लगे।

वहाँ वे वृद्धावस्था तक रहे। उस समय इंद्र की चार पुत्रियाँ थीं - आशा, विश्वास, महिमा और सम्मान। वे अपने साथ कई सुगंधित मालाएँ लेकर अनोटत्ता झील पर आईं और जल में क्रीड़ा करने लगीं। क्रीड़ा करने के बाद वे मनोशिला पर्वत पर बैठ गईं। ठीक उसी समय ब्राह्मण तपस्वी नारद दिन की भीषण गर्मी से आराम करने के लिए तैंतीस देवताओं के महल में गए और नंद वन में चित्तकूट की छाया में एक निवास स्थान बनाया। धूप से बचने के लिए अपने हाथ में मूंगा वृक्ष का फूल लिए वे स्वर्ण गुफा में गए, जहाँ वे मनोशिला पर्वत की चोटी पर निवास करते थे। अप्सराओं ने उनके हाथ में वह फूल देखकर उनसे वह फूल माँग लिया।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

गंधमादन की भव्य ऊँचाई में,
ये अप्सराएँ महान सक्का (इंद्र) की देखरेख में प्रसन्न होती हैं;

उनके लिए एक विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त संत
वह हाथ में एक बड़ी शाखा लिए हुए आया।
यह शाखा, जिस पर इतने शुद्ध और मधुर फूल खिले हैं
इसे देवताओं और स्वर्गदूतों के लिए उपयुक्त माना जाता है:
न तो कोई दानव, न ही कोई नश्वर जन्म।
इस अमूल्य फूल पर दावा किया जा सकता है।
फिर आस्था, आशा, महिमा, सम्मान, ये सब
सोने जैसी चमड़ी वाली चार दासियाँ उठीं,
और, सभी अप्सराओं में असाधारण रूप से स्वीकार किया गया,
ब्राह्मण नारद ने संबोधित करते हुए कहा,
"हे ऋषि, हमें यह मूंगा फूल दीजिए,"
यदि फिर भी देना आपके बस में है,
हम सक्का (इंद्र) के स्वरूप स्वरूप आपका सम्मान करेंगे।
और तुम सब बातों में धन्य होगे।
जब नारद ने उनकी प्रार्थना सुनी,
उसने तुरंत ही एक भयंकर झगड़ा खड़ा कर दिया:
मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है; आप जिसे अनुमति देते हैं
तुम्हारी रानी बनने के लिए मुझे डाल पर दावा करना होगा।"
उसकी बात सुनकर चारों अप्सराओं ने यह श्लोक बोला:

हे नारद, आप सर्वोच्च हैं।
आप किसे वरदान देंगे?
जिसे तुम ऐसा उपहार दोगे,
हममें से सर्वश्रेष्ठ की गिनती की जाएगी।
उनकी बातें सुनकर नारद ने उनसे कहा:

उचित व्यक्ति (*15), ऐसी सलाह सही नहीं है;
कौन सा ब्राह्मण विवाद इसे भड़काने की हिम्मत करेगा?
अपनी खोज को परियों के स्वामी के पास ले जाओ,
अगर आपको पता चल जाए कि कौन सबसे बुरा है और कौन सबसे अच्छा।
तब गुरु ने यह श्लोक कहा:

सौंदर्य के अभिमान और क्रोध से पागल होकर, धूर्त ऋषि द्वारा उत्तेजित होकर,

वे परियों के स्वामी सक्का (इंद्र) के पास जाते हैं, यह जानने के लिए कि उन सब में सबसे अच्छा कौन है।

जब वे यह सवाल पूछ रहे थे,

अपनी खोज में इतनी तल्लीन अप्सराओं ने सक्का (इंद्र) को आदरपूर्वक संबोधित करते हुए कहा, "तुम सब सौंदर्य में समान हो, फिर कौन विवाद करके अपनी शांति भंग करना चाहती हो?"

इस प्रकार उनके द्वारा संबोधित किए जाने पर उन्होंने कहा:

नारद, विश्वभ्रमणशील, पराक्रमी ऋषि,
सत्य की खोज करने वाला, सदा सत्य के प्रति समर्पित,
इस प्रकार गंधमादन की ऊँचाई पर हमसे बात की गई;
"हे आत्माओं के स्वामी, सक्का (इंद्र) के पास सीधे जाओ।"
अगर आपको यह जानना अच्छा लगे कि कौन पहले है और कौन आखिरी, तो आप खुशी से बता देंगे।
यह सुनकर इंद्र ने सोचा, "यदि मैं कहूँ कि मेरी इन चार पुत्रियों में से एक अन्य पुत्रियों से अधिक गुणी है, तो बाकी पुत्रियाँ क्रोधित हो जाएँगी। यह मेरे लिए निर्णय करने योग्य मामला नहीं है; मैं इन्हें हिमालय में रहने वाले तपस्वी कोसिया के पास भेजूँगा: वे इनके लिए इस

प्रश्न का निर्णय करेंगे।" अतः उन्होंने कहा, "मैं तुम्हारा निर्णय नहीं कर सकता। हिमालय में कोसिया नाम का एक तपस्वी है: मैं उसे अपने अमृत (देवताओं का पेय) का एक प्याला भेजूँगा। वह बिना किसी के साथ बाँटे कुछ भी नहीं खाता, और दान करते समय वह गुणी को ही देता है, जिससे वह विवेकपूर्ण प्रतीत होता है। तुममें से जो भी उसके हाथों से भोजन ग्रहण करेगी, वह तुममें श्रेष्ठ होगी।" और ऐसा कहकर उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

वह ऋषि जो विशाल जंगल में निवास करता है
बिना साझा किए किसी भी भोजन को नहीं छुऊंगा;
कोसिया निर्णय क्षमता के साथ उपहार प्रदान करता है,
जिसे वह देता है, उसमें पहला स्थान उसी का होता है।
अतः उसने मताली को बुलाया और उसे तपस्वी के पास भेजा, और उसे भेजते समय उसने निम्नलिखित श्लोक दोहराया:

हिमवत (हिमालय) की ढलानों पर जहाँ गंगा बहती है
दक्षिण दिशा में एक संत निवास करते हैं:
अमृत (देवताओं का पेय), मताली, संत के पास ले जाओ,
खाने-पीने के कारण उसकी हालत बिगड़ती जा रही है और वह कमजोर होता जा रहा है।
तब गुरु ने कहा:

देवदूत के आदेश पर मतली गए, वे हजार घोड़ों वाले रथ पर सवार हुए; वे अगोचर होकर शीघ्र ही आश्रम के पास पहुँचे और ऋषि को अमृतमय (दिव्य) भोजन अर्पित किया।

कोसिया ने उसे लिया और खड़े-खड़े ही कुछ पंक्तियाँ बोल दीं:

मैंने बलिदान की लौ उठाई (*16),
वह सूर्य जो सभी अंधकार को दूर भगाकर प्रशंसा की ओर ले जाता है,
सक्का (इंद्र) जो आध्यात्मिक जगत पर सर्वोच्च हैं, जो विद्यमान हैं--
और कौन?--मेरे हाथों में देवताओं का अमृत (पेय) रखा गया है।
वह मोती की तरह सफेद था, अतुलनीय।
सुगंधित, शुद्ध और अत्यंत सुंदर।
मैंने अपनी आँखों से पहले ऐसा कभी नहीं देखा था;
किस ईश्वर (देवदूत) ने मेरे हाथों में यह दिव्य भोजन रखा है?
तब मताली ने कहा:

हे महान ऋषि, मैं सक्का (इंद्र) द्वारा भेजा गया हूँ।
आपको दिव्य पोषण प्रदान करने की जल्दी में:
मेरी विनती है, इस उत्तम भोजन को बिना किसी भय के खाएं।
आप यहाँ मताली को देख सकते हैं, जो स्वर्ग का सारथी है।
इसे खाने से बारह बुराइयाँ नष्ट हो जाती हैं।
प्यास, भूख, असंतोष, थकान और दर्द
सर्दी, गर्मी, क्रोध, शत्रुता, विवाद, निंदा, आलस्य--
यह दिव्य सार आपको निगल जाएगा, बिना किसी अनिच्छा के।
यह सुनकर कोसिया ने यह स्पष्ट करने के लिए कि उसने प्रतिज्ञा ली है, यह श्लोक कहा:

मुझे लगा कि अकेले खाना खाना गलत है, इसलिए मैंने एक दिन प्रतिज्ञा ली।
किसी भी भोजन को न छूना, जब तक कि मैं उसका कुछ हिस्सा किसी और को न दे दूं।
अकेले भोजन करना कभी भी नेक मन वाले पुरुषों द्वारा स्वीकार्य नहीं होता।
जो दूसरों के साथ सुख साझा नहीं करता, उसे सुख नहीं मिल सकता।
और जब मताली ने उनसे पूछा, "हे प्रभु, आपने दूसरों को हिस्सा दिए बिना भोजन करने में क्या बुराई पाई कि आपने यह प्रतिज्ञा ली?" तो उन्होंने उत्तर दिया:

जो भी व्यभिचार करता है या स्त्री जाति के साथ दुराचार करता है, वह हत्या का दोषी है।

जो पवित्र पुरुषों को कोसते और अपमानित करते हैं या मित्र आत्माओं को धोखा देते हैं,
और कंजूस, सबसे बुरे तो ये हैं—काश मैं कभी भी उनके साथ न गिना जाऊं।
मेरे द्वारा साझा न किया गया पानी की एक बूंद भी कभी स्पर्श नहीं करेगी।
मेरे उपहार पुरुषों और महिलाओं दोनों पर समान रूप से प्रवाहित होते रहेंगे।
ऋषि-मुनि उन सभी की प्रशंसा करेंगे जो अपनी संपत्ति दान में देंगे।
इस संसार में सभी उदार लोग निर्दयी मार्गों से दूर रहें।
सभी द्वारा अनुमोदित, वे सदा अच्छे और सच्चे व्यक्ति माने जाएंगे।
यह सुनकर मताली उनके सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुईं। उसी क्षण ये चार अप्सराएँ दिशाओं के चारों ओर खड़ी थीं। पूर्व में महिमा, दक्षिण में आशा, पश्चिम में विश्वास और उत्तर में सम्मान।

गुरु ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

सुनहरे रंग की चार अप्सराएँ, आशा, गौरव, विश्वास और सम्मान नाम से, इंद्र के कहने पर पृथ्वी की ओर भेजी गईं, और कोसिया की कुटिया की ओर उनके कदम बढ़े।

लौ की तरह चमकती हुई आकृति वाली दासियाँ पृथ्वी के चारों दिशाओं में आईं; मताली (अब एक देवदूत) के समक्ष, ऋषि ने इस प्रकार संबोधित करते हुए अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव किया।

"तुम कौन हो, अप्सरा, भोर के तारे के समान?"
क्या यह पूर्वी आकाश को दूर तक रोशन कर रहा है?
सोने के वस्त्रों से सजी आपकी आकृति (*17)
हे स्वर्ग की कन्या, मुझे अपना नाम बताओ।
मैं गौरव हूं, मनुष्य का सम्मानित मित्र हूं।
निष्पाप आत्मा रक्षा करने के लिए तत्पर रहती है:
इस भोजन पर दावा करने के लिए, देखो! मैं यहाँ हूँ;
हे महान ऋषि, मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।
मैं जिसे चाहूँ उसे आनंद प्रदान करता हूँ
और उसके दिल की सारी इच्छाएं पूरी कर दे;
हे महायाजक, मेरा नाम महिमा है, यह जान लो।
मुझे अपना दिव्य भोजन प्रदान करो।
यह सुनकर कोसिया ने कहा:

पुरुष कुशल, गुणी, बुद्धिमान हो सकते हैं,
अपनी सारी बुद्धि का उपयोग करके उत्कृष्ट प्रदर्शन करना,
लेकिन आपके बिना वे कभी सफल नहीं हो सकते;
इसके लिए मैं तुम्हारे इस बुरे कर्म को दोषी ठहराता हूँ।
एक और आलसी, लालची, देखो,
चाहे वह नीच जाति का हो और बदसूरत ही क्यों न हो:
आपकी देखभाल से धन्य और अतिरिक्त रूप से समृद्ध
वह कुलीन परिवार में जन्मे एक व्यक्ति को अपना सेवक बना लेता है।
हे महिमा, मैं तुम्हें झूठा और मूर्ख मानता हूँ।
मूर्खों को लुभाने और बुद्धिमानों को नीचा दिखाने में लापरवाह;
वास्तव में बैठने या पानी के बर्तन पर आपका कोई दावा नहीं है।
यह भोजन बिल्कुल भी स्वादिष्ट नहीं है। चले जाओ, मुझे तुम पसंद नहीं हो।
तो क्या वह एकदम से नजरों से ओझल हो गई? फिर होप से बात करते हुए उसने कहा:

तुम कौन हो, हे सुंदर लड़की, जिसके दांत इतने शुद्ध और सफेद हैं?
चमकीले सोने की अंगूठियों और चमकदार कंगन से सजी हुई,
पानी से चमकते वस्त्र में लिपटा हुआ और अपने सिर पर पहने हुए

कुसा के गुच्छे से खिलाई गई लाल लौ जैसी एक टहनी?
जैसे कोई जंगली हिरणी शिकारी के तीर से बाल-बाल बच जाती है,
तुम चारों ओर ऐसे बेसुध आँखों से देख रहे थे जैसे कोई प्राणी स्तब्ध हो।
हे कोमल निगाहों वाली दासी, यहाँ तुम्हारा कौन सा साथी है?
क्या तुम निर्भय होकर एकांत वनक्षेत्र में विचरण करते हो?
फिर उसने यह छंद बोला:

यहां मेरा कोई साथी नहीं है; मैं सक्का (इंद्र) के स्वर्गलोक से आया हूँ।
मासक्कासारा ने पुकारा, मैं देवदूतों की संतान हूँ, आता हूँ:
दिव्य भोजन प्राप्त करने के लिए अब आपको आशा दिखाई देती है;
हे परम पूज्य, सुनिए और मुझे यह वरदान प्रदान कीजिए।
यह सुनकर कोसिया ने कहा, "वे मुझसे कहते हैं कि जिसे आप प्रसन्न करते हैं, उसे आप आशा की पूर्ति करके आशा प्रदान करते हैं, और जिसे आप प्रसन्न नहीं करते, उसे आप आशा प्रदान नहीं करते। इस स्थिति में सफलता आपके माध्यम से उसे प्राप्त नहीं होती, बल्कि आप उसका विनाश करते हैं।" और उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा:

व्यापारी आशा के बल पर दूर-दूर तक खजाने की खोज करते हैं।
और समुद्र की लहरों पर सवार होकर यात्रा करना:
कभी-कभी वे वहां डूब जाते हैं और फिर कभी ऊपर नहीं उठते।
या फिर वे अपनी खोई हुई संपत्ति से बचने के लिए खेद व्यक्त करते हैं।
किसान उम्मीद के साथ अपने खेतों की जुताई और खेती करते हैं।
वे बीज बोते हैं और अपनी पूरी कुशलता से श्रम करते हैं;
लेकिन अगर कोई महामारी या सूखा मिट्टी को प्रभावित करे तो
उनकी सारी मेहनत का उन्हें कोई फल नहीं मिलेगा।
आशा से प्रेरित होकर, सुख-सुविधा पसंद करने वाले लोग हिम्मत रखें।
और अपने स्वामी के लिए एक मर्दाना भूमिका निभाएं।
चारों ओर से शत्रुओं के अत्याचारों से घिरे वे गिर पड़े
और अपने स्वामी के लिए लड़ते हुए वे अपनी जान तक गंवा देते हैं।
अपने परिवार के लिए अनाज भंडार और धन का त्याग करना,
आशा के माध्यम से स्वर्गीय आनंद को प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हुए,
वे लंबे समय तक कठोर तपस्या करते हैं।
और बुरे मार्गों से दुख की अवस्था में पहुँच जाते हैं।
मानव जाति को धोखा देने वाले, तुम्हारा प्रयास व्यर्थ है।
इस वरदान के लिए आपकी व्यर्थ लालसा को रोकें,
आपको बैठने या पानी के बर्तन पर कोई दावा करने की आवश्यकता नहीं है:
स्वादिष्ट भोजन तो दूर की बात है। चले जाओ, मुझे तुम पसंद नहीं हो।
अस्वीकार किए जाने पर वह भी तुरंत ही दृष्टि से ओझल हो गई। फिर फेथ से बात करते हुए उसने यह छंद कहा:

वैभवशाली वस्त्रों से सजी प्रसिद्ध अप्सरा,
अशुभ पश्चिम दिशा की ओर खड़े होकर,
आपका रूप स्वर्ण वस्त्रों से सुशोभित है,
हे सम्मानित दासी, अपना नाम बताइए।
फिर उसने एक श्लोक दोहराया:

मेरा नाम फेथ है, मनुष्य की सम्मानित मित्र।
निष्पाप आत्मा रक्षा करने के लिए तत्पर रहती है:
इस भोजन पर दावा करने के लिए, देखो! मैं यहाँ हूँ;
हे महान ऋषि, मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।
तब कोसिया ने कहा, "वे मनुष्य जो पहले एक की और फिर दूसरे की बातों पर विश्वास करके यह या वह करते हैं, वे वह काम अधिक बार करते हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए, और वास्तव में यह सब तुम्हारे कारण ही होता है," और उन्होंने इन छंदों को दोहराया:

आस्था के बल पर कभी-कभी लोग स्वेच्छा से दान देते हैं।
आत्मसंयम, संयम और परहेज का प्रदर्शन करें:
कभी-कभी फिर भी वे आपकी कृपा से ही गिर पड़ते हैं।
इसके अलावा निंदा करना, झूठ बोलना, धोखा देना और चोरी करना भी शामिल है।
जिनकी पत्नियाँ पवित्र, वफादार और उच्च कोटि की हों,
एक व्यक्ति सतर्क और समझदार हो सकता है,
ऐसे में उसकी भावनाओं पर अच्छा नियंत्रण रखना संभव हो सकता है।
फिर भी वह किसी वेश्या पर अपना पूरा भरोसा रख सकता है।
हे आस्था, तेरे कारण ही व्यभिचार हर जगह फैला हुआ है।
अच्छाई को त्यागकर (*18) तुम पापी जीवन जीते हो।
आपको बैठने या पानी के बर्तन पर कोई दावा करने की आवश्यकता नहीं है:
बहुत कम स्वादिष्ट भोजन। चले जाओ, मुझे तुम पसंद नहीं हो।
वह भी तुरंत ही दृष्टि से ओझल हो गई। लेकिन उत्तर दिशा में खड़ी कोसिया, ऑनर से बात करते हुए, इन दो पंक्तियों को दोहराती रही:

जैसे घृणा भरी रात के किनारे पर भोर की किरण चमकती है,
इस प्रकार तुम्हारी सुंदरता मेरी आंखों के सामने प्रकट हुई;
हे अत्यंत सुंदर रूप वाली दिव्य अप्सरा,
कृपया अपना नाम और अपना परिचय बताएं।
जैसे किसी कोमल पौधे (*19) की तरह जिसकी जड़ों को पोषण मिलता है
उस मिट्टी पर जिस पर विनाशकारी लपटें फैल चुकी हैं,
ग्रीष्म ऋतु की हवाओं से इसके लाल पत्तों की बहुतायत झड़ जाती है,
तुम मुझे इतनी शर्मिंदगी भरी नजरों से क्यों देख रहे हो?
बोलने की तीव्र इच्छा होते हुए भी, वहाँ मौन खड़े रहना?
फिर उसने यह छंद कहा:

मुझे गर्व है, मनुष्य का प्रिय मित्र होने का।
जो धर्मी मनुष्यों की सहायता करते हैं;
देखो, मैं इस भोजन पर अपना दावा करने आया हूँ।
फिर भी मैं अपनी इच्छा को व्यक्त करने का साहस मुश्किल से ही कर पाता हूँ;
किसी महिला के लिए मुकदमा करना शर्मनाक माना जाता है।
यह सुनकर तपस्वी ने दो छंद दोहराए:

आपको भीख मांगने और मुकदमा करने की कोई जरूरत नहीं है।
आपको जो भी अधिकार और हक है, उसे प्राप्त करें:
मैं तुम्हें वह वरदान देता हूँ जिसकी तुमने कभी कामना भी नहीं की थी।
वह भोजन स्वीकार करें जिसे आप खुशी-खुशी खाना चाहते थे।
हे स्वर्ण वस्त्रधारी अप्सरा, कृपा करो, मैं निवेदन करता हूँ।
आज अपनी कोठरी में दावत करने के लिए:
सर्वप्रथम आपको दुर्लभ और चुनिंदा व्यंजनों से सम्मानित करते हुए,
मैं भी इस स्वादिष्ट भोजन को साझा करना चाहूंगा।
इसके बाद दिव्य ज्ञान से प्रेरित कुछ छंद आते हैं:

इस प्रकार, हे गौरवशाली अप्सरा, सम्मान ने उसके आदेश पर ऐसा किया।
कोसिया के घर में उनका अतिथि के रूप में स्वागत किया गया:
उसमें फल और बारहमासी धाराएँ अधिक हैं,
और इसके परिसर में अनेक संत पाए जाते हैं।
यहां घने समूह में फूलदार झाड़ियाँ (*21) दिखाई देती हैं,
आम, पीपल, ब्रेडफ्रूट, जूडास ट्री;
यहां साल और चमकीले गुलाब-सेब के फूल मैदान की शोभा बढ़ाते हैं।

वहां अंजीर और बरगद के पेड़ अपनी पवित्र छाया प्रदान करते हैं।
यहां अनेकों सुगंधित फूल हवा को महकाते हैं,
यहां हमें मटर और सेम, पैनिक और चावल मिलते हैं:
हर जगह केले के भरपूर गुच्छे दिखाई दे रहे हैं।
और बांस के सरकंडे घने जाल में उगते हैं।
उत्तर दिशा की ओर, चिकने और समतल किनारे से घिरा हुआ,
और सबसे शुद्ध धाराओं से पोषित, एक पवित्र तालाब देखें।
वहाँ प्रसन्न मछलियाँ (*22) शांति से अपनी इच्छा से खेलती हैं,
और भरपूर भोजन के बीच वे तृप्त होकर आनंद लेते हैं।
वहाँ सुखी पक्षी शांतिपूर्वक प्रचुर भोजन का आनंद लेते हैं।
हंस, बगुले, ओस्प्रे (मछली बाज), यहां तक कि दुर्लभ पंखों वाले मोर भी।
वहां कोयल और तीतर के साथ लाल हंस भी मौजूद हैं।
यहां शेर, बाघ और जंगली सूअर अपनी प्यास बुझाने के लिए आते हैं।
भालू, लकड़बग्घे और भेड़िये अपने लिए पानी पीने की जगह बनाने के आदी हैं।
यहां भैंस, गैंडा और गयाल भी मौजूद हैं।
हिरण, बारहसिंगा, सूअरों के झुंड और लाल हिरण तथा अन्य हिरणों के साथ,
और खरगोश जैसे कानों वाली बिल्लियाँ भारी संख्या में दिखाई देती हैं।
पर्वत की ढलानें चमकीले रंगों से ढकी हुई हैं और विभिन्न रंगों के फूलों से सराबोर हैं।
और प्रत्येक वनक्षेत्र में गूंजने वाले पक्षियों के गीत की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।
इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कोसिया के आश्रम की प्रशंसा की। और अब देवी सम्मान के प्रवेश के तरीके को दर्शाने के लिए उन्होंने कहा:

वह सुंदर स्त्री एक शाखा पर झुकी हुई थी, जो पूरी तरह से हरे पत्तों से ढकी हुई थी।
बिजली की तरह अचानक एक गरजता हुआ बादल उस दृश्य पर आ गिरा।
उसके लिए एक सुरुचिपूर्ण सोफा (*23) रखा गया था, जिसके सिरहाने पर समृद्ध पर्दे लगे थे।
ये सभी सुगंधित कुसा घास से बने हैं, जिन पर हिरण की खाल बिछाई गई है।
और इस प्रकार, हे स्वर्गिक अप्सरा, सम्मान से पवित्र संन्यासी ने कहा:
"आपके आनंद के लिए पलंग तैयार है; कृपया बैठ जाइए।"
तब तपस्वी ने झरने से शुद्ध जल लिया।
ताजा तोड़े गए पत्तों को जल्दी से लाया,
और यह जानते हुए कि उसकी अंतरात्मा क्या चाहती है
उसने उसे वह अमृतमय (दिव्य) भोजन सहर्ष प्रदान किया।
जैसे ही उसने अपने हाथों में स्वागत उपहार को दबाया,
इस प्रकार प्रसन्न हुई अप्सरा ने संत से कहा:
"मेरी आराधना करो और तुमने ही मुझे विजय दिलाई है।"
देखो! अब मैं एक बार फिर अपने जन्मस्थान स्वर्ग की तलाश करूंगा।
नौकरानी प्रसिद्धि के घमंड में चूर हो गई।
कोसिया के आशीर्वाद से इंद्र वापस आ गए।
"और देखो," वह चिल्लाई, "हजार आँखों वाले देवता (देवदूत) को।"
देवताओं का अमृत (पेय) यहाँ है—मुझे ही पुरस्कार प्रदान करो।
तब सक्का (इंद्र) और उनके देवदूतों के समूह ने भेंट चढ़ाई।
उस असाधारण दिव्य कन्या को उचित सम्मान।
और जैसे ही वह अपने नए सिंहासन पर बैठी,
उनकी उपस्थिति में देवता (देवदूत) और मनुष्य श्रद्धापूर्वक विराजमान हो जाते थे।
इस प्रकार उनका सम्मान करते हुए सक्का (इंद्र) के मन में यह विचार आया, "कोसिया ने दूसरों को अमृत देने से इनकार करके केवल इसी को क्यों दिया?" इसका कारण जानने के लिए उन्होंने मताली को पुनः भेजा।

विषय को स्पष्ट करते हुए गुरु ने इस श्लोक को दोहराया:

अतः सक्का (इंद्र), तैंतीस देवताओं के स्वामी,

एक बार फिर मताली को संबोधित करते हुए,
उन्होंने कहा, "जाओ और संत से स्पष्टीकरण मांगो।"
देवताओं के पेय (अमृत) को सम्मान क्यों मिलना चाहिए?
उनके वचन का पालन करते हुए मतली, वेजयंत (*24) नामक रथ पर सवार होकर वहाँ से चले गए।

गुरु ने इस मामले को समझाते हुए कहा:

तब मताली ने हवा में यात्रा करने के लिए एक रथ रवाना किया।
सभी साज-सज्जा के साथ, भव्यता में अद्भुत और सुंदर,
इसका स्तंभ सोने का बना है, उत्तम रूप से शुद्ध किए गए सोने का, और इसका पूरा ढांचा निर्मित है।
अलंकरण विस्तृत है और उस पर सोने की परत चढ़ी हुई है।
सोने से बने मोरों की आकृतियाँ काफी संख्या में चित्रित थीं।
घोड़े, गाय, हाथी, बाघ और तेंदुए भी।
यहां हिरण और बारहसिंगे ऐसे दिखाई देते हैं मानो लड़ाई के लिए तैयार हों।
यहां कीमती पत्थरों से उकेरी गई नीलकंठ चिड़ियों और अन्य पक्षियों की उड़ती हुई मूर्तियां हैं।
उन्होंने उसमें सुनहरे रंग के एक हजार शाही घोड़े जोत दिए।
प्रत्येक हाथी युवा हाथी की तरह बलवान था, जिसे देखना एक शानदार दृश्य था;
उनके स्तन सुनहरे जाल से ढके हुए थे, और उन पर फूलों की मालाएं सजी हुई थीं।
ढीले निशान (*25) के साथ, मात्र एक शब्द पर, हवा की तरह तेज़ वे दौड़े।
मतली के रूप में यह भव्य रथ एक छलांग के साथ ऊपर चढ़ गया।
दसों दिशाओं में आकाश उस ध्वनि से गूंज उठा:
और जब वह हवा में यात्रा कर रहा था, तो उसने दुनिया को हिलाकर रख दिया।
और आकाश, समुद्र और धरती, अपनी सारी चट्टानों और जंगलों के साथ कांप उठे।
जल्द ही वह आश्रम पहुँच गया और कहना चाहता था
उस पवित्र व्यक्ति के प्रति उचित सम्मान दिखाते हुए उन्होंने अपना एक कंधा खुला छोड़ दिया।
और उस ब्राह्मण ऋषि से बात करते हुए, जो एक बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति थे,
पवित्र परंपराओं में अच्छी तरह से प्रशिक्षित, मताली ने इस प्रकार शुरुआत की:
हे कोसिया, अब स्वर्ग के राजा इंद्र के वचन सुनो।
वह जो कुछ भी जानने के लिए उत्सुक है, उसके बारे में मैं यह संदेश लेकर आया हूँ!
"हालांकि होप एंड फेथ एंड ग्लोरी के दावों को आप शायद न पहचानें,
मैं निवेदन करता हूँ, सम्मान को केवल आपके हाथों ही पुरस्कार क्यों मिलना चाहिए?
उनकी बातें सुनकर तपस्वी ने यह श्लोक कहा:

हे मताली, मेरी महिमा हो, तुम आंशिक रूप से दुष्ट प्रतीत होते हो।
हे देवताओं (देवदूतों) के सारथी, फेथ एक धूर्त दासी साबित होती है।
आशा हमेशा एक धोखेबाज होती है जो धोखा देने के अपने वादे से प्यार करती है।
पवित्र सद्गुणों के मार्ग में ही सम्मान दृढ़ता से स्थापित होता है।
और अब उसके सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए उसने कहा:

जो लड़कियां अभी भी अपने घरों में रहती हैं, उनकी हमेशा अच्छी तरह से रक्षा की जाती है।
वे महिलाएं जो अब अपनी युवावस्था पार कर चुकी हैं, और वे जो अभी भी अपने पतियों के साथ रहती हैं,
सभी के हृदय में शारीरिक वासना उत्पन्न होनी चाहिए।
ऑनर की आवाज सुनकर वे अपने विचार को रोक देते हैं और पापी वासना मर जाती है।
जहां युद्ध के अग्रभाग में बाण और भाले तेजी से और बेरोकटोक आगे बढ़ रहे हों,
और हार में जब साथी गिर जाते हैं या पलटकर भाग जाते हैं,
ऑनर की आवाज सुनकर वे अपनी जान की कीमत पर भी अपनी उड़ान रोक देते हैं।
(*26)और घबराए हुए वे एक बार फिर संघर्ष को फिर से शुरू कर देते हैं।
जिस प्रकार किनारा समुद्र की लहरों के तेज प्रवाह को रोक देता है,
इसलिए सम्मान भी अक्सर दुष्ट लोगों के मार्ग को नियंत्रित करता है।

तब, मताली, इंद्र के पास शीघ्र लौटकर सब कुछ स्पष्ट कर दो।
समस्त विश्व के संत सम्मान के नाम का आदर करते हैं।
यह सुनकर मताली ने यह श्लोक दोहराया:

कोसिया, यह किसने तुम्हें यह सुझाव दिया था?
क्या यह महान इंद्र (देवदूतों के राजा), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), या प्रजापति (*27) हो सकते हैं?
हे महान ऋषि, यह सम्मान निश्चित रूप से इंद्र की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।
और देवदूतों की दुनिया में वह मूल्य के मामले में सबसे आगे है।
जब वह बोल ही रहा था कि उसी क्षण कोसिया का पुनर्जन्म हो गया। तब मताली ने उससे कहा, "कोसिया, तुम्हारा जीवन चक्र (*28) समाप्त हो रहा है; तुम्हारा दान-पुण्य (*29) समाप्त हो गया है। मनुष्यलोक से तुम्हारा क्या लेना-देना? अब हम देवदूतों के लोक में चलेंगे," और उसे वहाँ ले जाने का विचार करके उसने यह श्लोक कहा:

हे संत, अब आओ और तुरंत उस रथ पर सवार हो जाओ जो मुझे अत्यंत प्रिय है।
और मैं तुम्हें उस स्वर्ग में ले चलता हूँ जहाँ तैंतीस राज करते हैं।
इंद्र तुम्हारे लिए बहुत तरस रहे हैं, तुम इंद्र के ही समान हो।
आज तुम इंद्र के साथ संगति करने का मार्ग पा लोगे।
जब मताली अभी बोल ही रहे थे कि कोसिया माता-पिता के हस्तक्षेप के बिना ही देवताओं (देवदूतों) के बीच प्रकट हुए (*30) और दिव्य रथ पर सवार होकर खड़े हो गए। तब मताली उन्हें इंद्र के समक्ष ले गए। इंद्र ने उन्हें देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और अपनी पुत्री सम्मान को उनकी मुख्य पत्नी बनाकर उन्हें दे दिया तथा उन्हें शासन करने की असीम शक्ति प्रदान की।

परिस्थितियों को देखकर गुरु ने कहा, "यह कुछ महानतम प्राणियों का पुण्य है जो इस प्रकार शुद्ध हुआ है," और उन्होंने अंतिम श्लोक दोहराया:

इस प्रकार, पवित्र पुरुषों के कर्मों से ही सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं।
और पुण्य कर्मों का फल सदा बना रहता है।
जिसने भी सम्मान के लिए दिए गए उस अमृतमय (दिव्य) भोजन को देखा,
सीधे-सीधे स्वर्ग के स्वामी इंद्र के साथ संगति करने के लिए चले गए।

गुरु ने अपने प्रवचन का समापन इन शब्दों से किया, "केवल अभी ही नहीं, भिक्षुओं, बल्कि पुराने समय में भी मैंने इस कंजूस व्यक्ति को परिवर्तित किया था जो एक पक्का कंजूस था," और ऐसा कहते हुए उन्होंने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय उप्पलावन्ना अप्सरा सम्मान थीं, एक उदार भिक्षु कोसिया थे, अनुराद्ध पंचसिखा थे, आनंद मतली, कश्यप सूर्य, मोग्गल्याना चंदा, सारिपुत्र नारद, और मैं स्वयं सक्का (इंद्र) था।"

फुटनोट:

(1) इल्लिसा-जातक क्रमांक 78 की तुलना करें।

(2)जाट. सं. 483

(3) सरनिया, जाट. सं. 224

(4)समग्रति, जाट। नं.413, नं. 36, और संग्रहा, जाट। नहीं। 222

(5) स्पष्टतः एक कहावत है जो 'बेकार संपत्ति' को दर्शाती है।

(6)अनुसेत्थी यहाँ स्पष्ट रूप से लॉर्ड हाई ट्रेजरर के अधीनस्थ किसी अधिकारी को दर्शाता है।

(7)मधुरा के लिए हमें शायद मधु, शहद पढ़ना चाहिए, जो पाठ के अगले पृष्ठ पर दलिया की सामग्री में से एक के रूप में आता है।

(8)अच्चरा वजन या क्षमता का माप होना चाहिए। क्या यह अच्चेरा (मराठी) आधा शेर के समान हो सकता है?

(9) सक्का (इंद्र) का महल।

(10) सक्का (इंद्र) का न्याय कक्ष।

(11) निच्चुभाती जाट. सं. 302

(12) भिक्षा के आदान-प्रदान के लिए कोई भी व्यवस्था निषिद्ध थी।

(13)दत्व पढ़ने के लिए 'दत्व, यानी अदत्व।

(14) यथोधिका, प्रत्येक अपने-अपने स्थान पर। जातक क्रमांक 381 और 437 देखें।

(15)सुगत्ते। यद्यपि चारों को संबोधित करते हुए, नारद एक अप्सरा को अलग करते हैं।

(16) उदग्गिहुत्त की तुलना उदायुध से करें, ऊपर उठाए हुए हथियार से।

(17)वेल्ली, जाट. सं. 402 और 405, संभवतः पोशाक का कोई भाग है। समवेल्ली, सं. 306 से तुलना करें, जिसे विद्वान ने कच्चा बताया है। देखें कुल्लवग्ग, x. 16

(18)रिंचति, जातक नं. 146

(19)इपोमोआ.

(21) कई वृक्ष और पौधे जो केवल वानस्पतिक नामों से ही ज्ञात हैं, उन्हें छोड़ दिया गया है।

(22) अनेक मछलियों के नाम।

(23) कोच्च के लिए विनय ग्रंथों को देखें

(24) सक्का (इंद्र) का रथ। जाट. 202, क्रमांक 254, क्रमांक 355, क्रमांक 103 देखें। अन्यत्र यह सक्का (इंद्र) के महल का नाम है, जैसा कि क्रमांक 386 में है।

(25)asamgita, ie nissanga

(26) विद्वान इसे इस प्रकार समझेंगे: "और अपने बचाए हुए स्वामी के चारों ओर इकट्ठा होकर एक बार फिर संघर्ष को नवप्रवर्तित करें।"

(27) वही तीन देवता (देवदूत) जाट. 568 में आते हैं। यहाँ प्रजापति ब्रह्मा से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

(28) जातक 106

(29) दानधम्म की तुलना देयधम्म से करें, जो बौद्ध शिलालेखों में धार्मिक दान के लिए प्रयुक्त सामान्य शब्द है।

(30) ओपपतिका एक ऐसा प्राणी है जो माता-पिता के हस्तक्षेप के बिना और मानो अकारण ही अस्तित्व में आता है और संयोग से प्रकट होता प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में कहीं और मृत्यु प्राप्त कर चुके प्राणी के कर्मों के कारण।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **कुनाला-जातक**
स्रोत *: एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-536-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 536
कुणाला-जातक (*1)

"यह उस घटना की रिपोर्ट और प्रसिद्धि है।" यह कहानी गुरु ने कुणाला झील के किनारे रहते हुए सुनाई थी, जिसमें पाँच सौ भिक्षुओं का जिक्र था जो असंतोष से व्याकुल थे। कहानी क्रमानुसार इस प्रकार है: शाक्य (बुद्ध का वंश) और कोलिया जनजातियों ने कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) और कोलिया शहरों के बीच बहने वाली रोहिणी नदी को एक ही बांध से नियंत्रित कर रखा था और उसी के सहारे अपनी फसलें उगाते थे। जेठमूल (*2) माह में जब फसलें मुरझाने लगीं, तो दोनों शहरों के निवासी मजदूर इकट्ठा हुए। तब कोलिया के लोगों ने कहा, "यदि दोनों ओर से पानी निकाला जाए, तो भी यह हमारे और आपके लिए पर्याप्त नहीं होगा। परन्तु हमारी फसलें एक बार पानी देने से ही फल-फूलेंगी; तो हमें पानी दीजिए।" कपिलवस्तु के लोगों ने कहा, “जब आप अपने भंडारों को अनाज से भर लेंगे, तब हममें लाल सोना, पन्ना और तांबे के सिक्के लेकर, टोकरियाँ और बोरियाँ भरकर आपके दरवाज़ों पर झपटने की हिम्मत नहीं होगी। हमारी फसलें भी एक बार पानी देने से ही फल-फूल जाएँगी; हमें पानी दीजिए।” उन्होंने कहा, “हम नहीं देंगे।” बाकी लोगों ने कहा, “हम भी नहीं देंगे।” बात इतनी बढ़ गई कि उनमें से एक उठा और दूसरे को घूंसा मारा, फिर उसने तीसरे को मारा और इस तरह एक-दूसरे पर वार करते हुए और उनके शाही परिवारों के वंश पर गंदी टिप्पणी करते हुए उन्होंने हंगामा और बढ़ा दिया। कोलिया के मज़दूरों ने कहा, “अपने कपिलवस्तु के लोगों को यहाँ से भगाओ, जो कुत्तों, सियार और ऐसे ही जानवरों की तरह अपनी ही बहनों के साथ रहते हैं। उनके हाथी और घोड़े, उनकी ढालें और भाले हमारे सामने क्या काम आएँगे?” शाक्य मजदूरों ने उत्तर दिया, “नहीं, हे अभागे कुष्ठ रोगियों (*3)! अपने बच्चों के साथ यहाँ से चले जाओ। हे दरिद्र और कुटिल प्राणियों, जो जंगली जानवरों की तरह खोखले बेर के पेड़ (कोली) में अपना जीवन यापन करते हैं। उनके हाथी, घोड़े, भाले और ढालें हमारे विरुद्ध क्या कार्य करेंगी?” अतः वे गए और ऐसे कार्यों के लिए नियुक्त सलाहकारों को यह बात बताई, और उन्होंने अपने-अपने कबीलों के राजकुमारों को इसकी सूचना दी। तब शाक्यों ने कहा, “हम उन्हें दिखाएंगे कि अपनी बहनों के साथ सहवास करने वाले पुरुष कितने बलवान और शक्तिशाली होते हैं,” और वे युद्ध के लिए तैयार होकर शीघ्रता से आगे बढ़े। और कोलियों ने कहा, “हम उन्हें दिखाएंगे कि बेर के खोखले पेड़ में रहने वाले कितने बलवान और शक्तिशाली होते हैं,” और वे भी युद्ध के लिए तैयार होकर शीघ्रता से आगे बढ़े। लेकिन अन्य शिक्षक कहानी इस प्रकार सुनाते हैं, "जब शाक्यों और कोलियाओं की दासियाँ नदी से पानी लाने आईं और अपने सिर पर रखे कपड़े के कुंडल ज़मीन पर फेंककर बैठ गईं और मजे से बातें करने लगीं, तो एक स्त्री ने दूसरी स्त्री का कपड़ा यह सोचकर ले लिया कि वह उसका अपना है; और जब इस बात पर झगड़ा हुआ, और दोनों ने कपड़े के कुंडल पर अपना दावा किया, तो धीरे-धीरे दोनों शहरों के लोग, दास और मजदूर, सेवक, मुखिया, सलाहकार और वायसराय,वे सब युद्ध के लिए तैयार होकर तेज़ी से आगे बढ़े। लेकिन कई टीकाओं में मिलने और अधिक तर्कसंगत होने के कारण पहले संस्करण को दूसरे की तुलना में स्वीकार किया जाना चाहिए। अब शाम का समय था जब वे युद्ध के लिए तैयार होकर तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगर में रह रहे थे, और भोर में संसार का चिंतन करते हुए उन्होंने उन्हें युद्ध के लिए निकलते देखा, और उन्हें देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि क्या उनके वहाँ जाने से झगड़ा समाप्त हो जाएगा, और उन्होंने मन बना लिया और सोचा, "मैं वहाँ जाऊँगा और इस झगड़े को समाप्त करने के लिए तीन जन्म कथाएँ सुनाऊँगा, और उसके बाद झगड़ा समाप्त हो जाएगा।" फिर दो जन्म कथाएँ सुनाकर, मिलन के आशीर्वादों को समझाते हुए, मैं उन्हें अत्तदंड (*4) सूत्र का उपदेश दूँगा और मेरे उपदेश सुनने के बाद दोनों नगरों के लोग मेरे समक्ष ढाई सौ युवकों को लाएँगे, और मैं उन्हें शिष्यों के पवित्र संघ में शामिल करूँगा और वहाँ एक विशाल सभा होगी।” इस प्रकार अपने कक्ष में अंतिम संस्कार करने के बाद, वे श्रावस्ती नगर में भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाने गए, और लौटकर, भोजन करने के बाद, शाम को वे अपने सुगंधित कक्ष से बाहर निकले और किसी से एक शब्द भी कहे बिना, अपना कुंड और वस्त्र लेकर अकेले ही दो सेनाओं के बीच हवा में पालथी मारकर बैठ गए। और यह देखकर कि यह उन्हें चौंकाने और अंधकार उत्पन्न करने का अवसर है, वे वहाँ अपने बालों से (गहरे नीले) (*5) किरणें उत्सर्जित करते हुए बैठ गए। फिर जब उनके हृदय व्याकुल थे, तो उन्होंने स्वयं को प्रकट किया और छह रंगों की किरणें उत्सर्जित कीं। कपिलवस्तु के लोगों ने भगवान बुद्ध को देखकर सोचा, “हमारे गुरु, हमारे महान सपूत, आ गए हैं।” क्या उसने हम पर डाले गए युद्ध के दायित्व को देखा होगा? "अब जब गुरुजी आ गए हैं, तो हमारे लिए शत्रु के किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हथियार उठाना असंभव है," और उन्होंने अपने हथियार फेंक दिए और कहा, "कोलियों को हमें मार डालने दो या जिंदा जला देने दो।" कोलियों ने ठीक वैसा ही किया। फिर भगवान बुद्ध अवतरित हुए और रेत के बिस्तर पर एक रमणीय स्थान पर स्थापित भव्य बुद्ध सिंहासन पर विराजमान हुए, और वे बुद्ध के अतुलनीय वैभव से चमक उठे। राजाओं ने भी भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिए। तब गुरुजी, यद्यपि वे यह भलीभांति जानते थे, ने पूछा, "हे महाराजो, तुम यहाँ क्यों आए हो?" "हे परम पूज्य," उन्होंने उत्तर दिया, "हम न तो इस नदी को देखने आए हैं, न ही आनंद लेने, बल्कि युद्ध छेड़ने आए हैं।" "झगड़ा किस बात पर है, महाराज?" "जल के बारे में।" "जल का क्या मूल्य है?" "बहुत कम, परम पूज्य।" "पृथ्वी का क्या मूल्य है?" "यह अमूल्य है।" "योद्धाओं के क्या मूल्य हैं?" "वे भी अमूल्य हैं।" "तुम्हें कुछ तुच्छ जल के कारण उच्च पदस्थ सरदारों को नष्ट करने की इच्छा क्यों है?" "सचमुच, इस झगड़े में कोई समाधान नहीं है, लेकिन महाराज, एक वृक्ष-परी और एक काले शेर के बीच हुए झगड़े के कारण यह द्वेष उत्पन्न हो गया है।"जो इस वर्तमान युग तक पहुँच चुका है," और इन शब्दों के साथ उन्होंने उन्हें फंदना (*6) जन्म के बारे में बताया। फिर उन्होंने कहा, "एक दूसरे का अंधाधुंध अनुसरण (*7) नहीं होना चाहिए। हिमालय के एक क्षेत्र में, जो तीन हजार लीग (x 4.23 किमी) तक फैला हुआ है, चौपायों का एक समूह, एक खरगोश के कहने पर एक दूसरे का अनुसरण करते हुए, सभी एक विशाल समुद्र में जा गिरे। इसलिए एक के बाद एक ऐसा नहीं होना चाहिए," और ऐसा कहकर उन्होंने दद्दभा (*8) जन्म की कथा सुनाई। इसके अलावा उन्होंने कहा, "कभी-कभी कमजोर लोग बलवानों की कमजोरियाँ देख लेते हैं, तो कभी-कभी बलवान लोग कमजोरों की कमजोरियाँ देख लेते हैं, और एक बार एक बटेर, एक मुर्गी ने एक राज हाथी को मार डाला था," और उन्होंने

लतुकीका (*9) जन्म की कथा सुनाई। इस प्रकार झगड़े को शांत करने के लिए उन्होंने तीन जन्म कथाएँ सुनाईं, और एकता के प्रभावों को समझाने के लिए उन्होंने दो जन्म कथाएँ सुनाईं। "जो लोग एकता में एक साथ रहते हैं, उनके लिए किसी को भी आक्रमण का कोई अवसर नहीं मिलता," और ऐसा कहकर उन्होंने रुक्खधम्म (*10) जन्म की कथा सुनाई। उन्होंने यह भी कहा, "जो लोग एकता में थे, उनके विरुद्ध आक्रमण का कोई रास्ता नहीं मिल सकता था, लेकिन जब वे आपस में झगड़ते थे, तो एक शिकारी उनका विनाश कर उनके साथ चला जाता था: वास्तव में झगड़े में कोई संतोष नहीं है," और इन शब्दों के साथ उन्होंने वट्टक जन्म (*11) की कथा सुनाई। इस प्रकार इन पाँच जन्म कथाओं को सुनाने के बाद, उन्होंने अपनी बात समाप्त की। अत्तदंड सूत्र का पाठ करते हुए, राजाओं ने विश्वास करते हुए कहा, "यदि गुरुदेव न आते, तो हम एक दूसरे को मार डालते और रक्त की नदियाँ बहा देते। गुरुदेव की कृपा से ही हम जीवित हैं। यदि गुरुदेव ने गृहस्थ जीवन अपनाया होता, तो चार महान द्वीप-महाद्वीपों का साम्राज्य, साथ ही दो हजार छोटे द्वीप, उनके हाथों में आ जाते और उनके एक हजार से अधिक पुत्र होते। इसके अलावा, उनके साथ योद्धा सरदारों का एक दल भी होता। परन्तु पहले ही इस महिमा का उल्लेख किया जा चुका है, इसलिए उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया और पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया।" अब भी उन्हें योद्धा सरदारों के दल के साथ विचरण करने दो।" इस प्रकार दोनों राज्यों ने उन्हें ढाई सौ राजकुमार भेंट किए। भगवान बुद्ध ने उन्हें भिक्षु दीक्षा देने के बाद एक विशाल वन में शरण ली। अगले दिन से वे उनके साथ दोनों नगरों में भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाने लगे, कभी कपिलवस्तु में तो कभी कोलिया में, और दोनों नगरों के लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। इन पुरुषों में, जिन्होंने अपनी इच्छा से नहीं बल्कि गुरु के प्रति आदर के कारण दीक्षा ली थी, आध्यात्मिक असंतोष उत्पन्न हो गया। और उनकी पूर्व पत्नियों ने उनके असंतोष को और बढ़ाने के लिए उन्हें इस प्रकार के संदेश भेजे, जिससे वे और भी असंतुष्ट हो गए। भगवान बुद्ध ने अंतर्दृष्टि से उनकी असंतुष्टि को समझा और सोचा, "ये भिक्षु, मेरे जैसे बुद्ध के साथ रहते हुए भी असंतुष्ट हैं। मुझे आश्चर्य है कि किस प्रकार का उपदेश उनके लिए लाभदायक होगा"; और उन्होंने कुणाल के धार्मिक प्रवचन के बारे में सोचा। तब उनके मन में यह विचार आया,"मैं इन भाइयों को हिमालय ले जाऊँगा और कुणाल कथा के माध्यम से स्त्री जाति से जुड़े पापों को समझाकर और उनकी असंतुष्टि दूर करके, उन्हें पवित्रता का पहला चरण प्रदान करूँगा।" अतः सुबह वे अपने अंतर्वस्त्र और भिक्षापात्र तथा वस्त्र लेकर कपिलवस्तु में परिक्रमा करने गए, और लौटकर दोपहर का भोजन करने के बाद, उन्होंने इन पाँच सौ भाइयों को संबोधित करते हुए पूछा, "क्या आपने हिमालय के रमणीय क्षेत्र को पहले कभी देखा है?" उन्होंने कहा, "नहीं, महाराज?" "क्या आप हिमालय की तीर्थयात्रा पर जाएँगे?" "महाराज, हमारे पास कोई अलौकिक शक्तियाँ नहीं हैं; हम कैसे जाएँगे?" "परन्तु यदि कोई आपको अपने साथ ले जाए, तो क्या आप जाएँगे?" "जी महाराज।" गुरु ने अपनी चमत्कारिक शक्ति से उन सभी को अपने साथ हवा में उठा लिया और हिमालय में पहुंचा दिया। आकाश में खड़े होकर उन्होंने हिमालय के रमणीय क्षेत्र में स्थित विभिन्न पर्वतों, स्वर्ण पर्वत, रत्न पर्वत, लाल पर्वत, काला पर्वत, पठार पर्वत, क्रिस्टल पर्वत, पांच महान नदियों और झीलों, कन्नामुंडका, रथकारा, सिहाप्पपाता, छद्दंता, तियाग्गला, अनोटत्ता और कुणाला, कुल सात झीलों को दिखाया। हिमालय एक विशाल क्षेत्र है, जिसकी ऊंचाई पांच सौ मील (4.23 किमी) और चौड़ाई तीन हजार लीग (4.23 किमी) है। अपनी अपार शक्ति से उन्होंने उन्हें इस स्थान का यह मनमोहक भाग दिखाया, और वहाँ बने हुए निवास स्थान, चौपाये जानवर, शेरों, बाघों, हाथियों आदि के झुंड दिखाए—पवित्र बाड़े और अन्य उद्यान, फूलदार और फलदार वृक्ष, सभी प्रकार के पक्षियों के झुंड, जल और भूमि के पौधे, हिमालय के पूर्व में एक स्वर्णिम पठार, पश्चिम में एक लाल पठार। इन मनमोहक क्षेत्रों को देखते ही इन भाइयों की अपनी पूर्व पत्नियों के लिए तीव्र लालसा समाप्त हो गई। फिर गुरु अपने इन भाइयों के साथ हिमालय के पश्चिम में स्थित एक पथरीले पठार पर, जो साठ मील (x 4.23 किमी) चौड़ा था, लाल घाटी में, जो तीन मील (x 4.23 किमी) लंबी थी, सात मील (x 4.23 किमी) में फैले एक साल के वृक्ष के नीचे, जो युगों तक फैला हुआ था, उतरे। गुरु, अपने इन भाइयों के साथ, छह रंगों की किरणें बिखेरते हुए, सागर की गहराइयों को मथते हुए और सूर्य के समान प्रज्वलित होते हुए, अपने आसन पर विराजमान हुए और शहद के समान मधुर स्वर में अपने भाइयों को संबोधित करते हुए बोले: "भाइयों, मुझसे किसी ऐसे चमत्कार के बारे में पूछिए जो आपने इस हिमालय में पहले कभी नहीं देखा हो।" उसी क्षण दो चित्तीदार कोयल अपने मुँह में दोनों सिरों से एक छड़ी पकड़े हुए, उसके मध्य में अपने स्वामी को विदा कर बैठीं। आठ कोयल आगे, आठ पीछे, आठ दाईं ओर, आठ बाईं ओर, आठ नीचे और आठ ऊपर, इस प्रकार अपने स्वामी की छाया में उड़ती हुई उनका साथ दे रही थीं। इन भाइयों ने पक्षियों के इस झुंड को देखकर गुरु से पूछा, "हे प्रभु, इन पक्षियों का क्या अर्थ है?" गुरु ने कहा, "भाइयों,"यह हमारे परिवार की एक प्राचीन परंपरा है, जिसे मैंने स्थापित किया है; पुराने समय में वे इसी प्रकार मेरा मार्गदर्शन करते थे। उस समय इन पक्षियों का एक विशाल समूह था। साढ़े तीन हज़ार मादा पक्षी मेरा मार्गदर्शन करते थे। धीरे-धीरे झुंड कम होता गया और अब ऐसा दिखता है जैसा आप देख रहे हैं।" "महाराज, वे किस प्रकार के जंगल में आपका मार्गदर्शन करते थे?" तब गुरु ने कहा, "अच्छा, सुनो भाइयों," और याद करते हुए उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई और इस प्रकार उन्हें शिक्षा दी।

यह उस क्षेत्र की रिपोर्ट और प्रसिद्धि है: एक ऐसा क्षेत्र जिसकी मिट्टी से हर तरह की जड़ी-बूटियाँ उगती हैं, जो फूलों के कई गुच्छों से ढका हुआ है, जहाँ हाथी, गायल, भैंस, हिरण, याक, चित्तीदार मृग, गैंडा, बारहसिंगा, शेर, बाघ, तेंदुआ, भालू, भेड़िया, लकड़बग्घा, ऊदबिलाव (*12), कदली मृग, जंगली बिल्ली, लंबे कान वाला खरगोश विचरण करते हैं, जहाँ अनगिनत विभिन्न प्रकार के हाथियों के झुंड निवास करते हैं, और जहाँ विभिन्न प्रकार के हिरण (*13) आते-जाते रहते हैं, और जहाँ घोड़े के मुख वाले यक्ष, परियाँ, जिन्न और राक्षस रहते हैं, जो घने वृक्षों से ढका हुआ है जिनके शीर्ष फूलों से खिले हुए हैं, डंठल वाले और ऊँचे खड़े हैं, और बिना गूदे वाले (*14) हैं, जहाँ सैकड़ों पक्षियों की खुशी से भरी चीखें गूंजती हैं, जिनमें ओस्प्रे (मछली बाज), तीतर, मोर, फ़ीज़ेंट और भारतीय कोयल शामिल हैं। (*15),

सैकड़ों खनिज पदार्थों, काजल, आर्सेनिक, पीले ऑर्पिमेंट, सिंदूर, सोने और चांदी से सजा और ढका हुआ—ऐसे ही रमणीय वन में कुणाल पक्षी रहता था: वह अत्यंत चमकीला और चमकीले पंखों से ढका हुआ था। इस कुणाल पक्षी की सेवा में तीन हजार पांच सौ मादा पक्षी थीं। तभी दो पक्षियों ने अपने मुंह में एक छड़ी पकड़कर कुणाल पक्षी को अपने बीच बिठाया और उड़ गए, क्योंकि उन्हें डर था कि लंबी दूरी तय करने में थकान के कारण वह अपनी जगह से हिलकर गिर न जाए। पांच सौ युवा पक्षी नीचे उड़ रहे थे, क्योंकि उन्होंने सोचा, "यदि यह कुणाल पक्षी अपने ठिकाने से गिर जाए, तो हम उसे अपने पंखों में पकड़ लेंगे।" अन्य पांच सौ पक्षी उसके ऊपर उड़ रहे थे, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं गर्मी से कुणाल झुलस न जाए। पांच सौ पक्षी उसके दोनों ओर उड़ रहे थे, ताकि ठंड या गर्मी, घास या धूल, हवा या ओस उसके पास न आ सके। उसके आगे पाँच सौ पक्षी उड़ते हैं, अन्यथा चरवाहों, पशुपालकों, घास काटने वालों, लकड़ी इकट्ठा करने वालों या वनपालों को कुनाला पर लाठी या टूटे मिट्टी के बर्तनों से, मुट्ठी या पत्थर से, डंडे या चाकू या कंकड़ से प्रहार करना चाहिए, अन्यथा कुनाला झाड़ी या लता या पेड़ से, खंभे या चट्टान से या किसी शक्तिशाली पक्षी से टकरा जाएगा। पाँच सौ पक्षी उसके पीछे उड़ते हैं, कोमल, दयालु शब्दों में, मधुर स्वर में उससे बात करते हैं, अन्यथा कुनाला वहाँ बैठे-बैठे ऊब जाएगा। पाँच सौ पक्षी इधर-उधर उड़ते हैं, विभिन्न प्रकार के पेड़ों से तरह-तरह के फल लाते हैं, अन्यथा कुनाला भूख से व्याकुल हो जाएगा। फिर पक्षी कुनाला को उसकी संतुष्टि के लिए एक बगीचे से दूसरे बगीचे, एक नदी के किनारे से दूसरे नदी के किनारे, एक पर्वत शिखर से दूसरे पर्वत शिखर, एक आम के बाग से दूसरे आम के बाग, एक सेब के बाग से दूसरे सेब के बाग, एक फल के बाग से दूसरे फल के बाग, एक नारियल के बागान से दूसरे नारियल के बागान तक तेजी से ले जाते हैं। अतः कुनाला प्रतिदिन इन पक्षियों के साथ चलते हुए उन्हें इस प्रकार फटकारता है: "नष्ट हो जाओ, तुम नीच प्राणियों, हाँ, पूरी तरह नष्ट हो जाओ, तुम चोर, बेईमान प्राणियों, तुम निर्दयी, चंचल और कृतघ्न हो, हवा की तरह जहाँ चाहो वहाँ चले जाओ।"

इन शब्दों के बाद गुरु ने कहा, "निःसंदेह, भाइयों, जब मैं पशु रूप में था, तब भी मैं स्त्रियों की कृतघ्नता, प्रलोभन, दुष्टता और अनैतिकता को भली-भांति जानता था, और उस समय तो मैं उनके वश में होने के बजाय उन्हें अपने नियंत्रण में रखता था।" और इन शब्दों से जब उन्होंने इन भाइयों की आध्यात्मिक असंतुष्टि दूर कर दी, तो गुरु चुप हो गए। उसी क्षण दो काली कोयल इस स्थान पर आईं, अपने स्वामी को डंडे पर ऊँचा उठाकर, जबकि चार-चार कोयलें उसके नीचे और चारों ओर उड़ रही थीं। उन्हें देखकर भाइयों ने गुरु से उनके बारे में पूछा और उन्होंने कहा, "भाइयों, पुराने समय में मेरा एक मित्र था, एक शाही कोयल, जिसका नाम पुन्नमुख था, और उसके परिवार में यही परंपरा थी।" और भाइयों के प्रश्न के उत्तर में, ठीक पहले की तरह, उन्होंने कहा:

इसी हिमालय पर्वतमाला के पूर्वी भाग में, कोमल और शांत पर्वतीय ढलानों से निकलने वाली हरी-भरी धाराएँ बहती हैं; एक सुगंधित, मनमोहक, उज्ज्वल स्थान पर, कमलों की सुंदरता से खिले हुए, नीले, सफेद और सौ पत्तों वाले कमल, सफेद लिली और स्वर्ग के वृक्ष से युक्त, सभी प्रकार के वृक्षों (*16) और पुष्पयुक्त झाड़ियों और लताओं से सुशोभित, हंसों, बत्तखों और हंसों की गर्जना से गूंजते हुए, भिक्षुओं और तपस्वियों के समूहों द्वारा बसे हुए, और जादुई या अलौकिक शक्तियों से युक्त लोगों द्वारा आबाद, और उच्च देवदूतों, राक्षसों, भूतों, दानवों, स्वर्गीय संगीतकारों, परियों और शक्तिशाली सर्पों से आबाद—वास्तव में ऐसे ही मनमोहक वन-वनस्पति में राजसी कोयल पुन्नमुख निवास करती थी। उसकी आवाज बहुत मधुर थी, और उसकी खिलखिलाती आँखें आनंद से मदहोश किसी व्यक्ति की आँखों के समान थीं। पुन्नामुख नाम की इस कोयल के समूह में तीन हज़ार पाँच सौ मादा पक्षी चल रही थीं। तब दो पक्षियों ने अपने मुँह में एक छड़ी पकड़ी और पुन्नामुख को उसके बीच में बिठाकर, थकान के डर से हवा में उड़ गईं। (और पहले जैसा ही)। (*17) तब पुन्नामुख, दिन में इन पक्षियों के साथ, उनकी प्रशंसा करते हुए बोला, "शाबाश, मेरी बहनों! तुम्हारा यह कार्य उच्च कुल की स्त्रियों को शोभा देता है, क्योंकि तुम अपने स्वामी की सेवा कर रही हो।" तब सचमुच पुन्नामुख नाम की कोयल उस स्थान के पास आई जहाँ कुणाला बैठा था, और कुणाला की सेवा में बैठी स्त्रियों ने उसे देखा, और जब वह अभी दूर ही था, वे पुन्नामुख के पास आईं और उससे बोलीं: "मित्र पुन्नामुख, कुणाला एक उग्र पक्षी है और उसकी ज़बान कठोर है। शायद तुम्हारी मदद से हम उससे मीठी बातें सुन लें।" "शायद, देवियों," उसने कहा। ऐसा कहकर वह कुनाला के पास आया और विनम्रतापूर्वक अभिवादन करने के बाद एक तरफ आदरपूर्वक बैठ गया और कुनाला से कहा, "हे मित्र कुनाला, तुम इन उच्च कुल की स्त्रियों के साथ इतना बुरा व्यवहार क्यों करते हो, जबकि वे स्वयं सुसंस्कृत हैं? हे मित्र कुनाला, जो स्त्रियाँ स्वयं शिष्ट हैं, उनसे भी मधुरता से बात करनी चाहिए, तो फिर शिष्ट स्त्रियों से तो और भी अधिक।" इतना कहकर कुनाला ने पुन्नमुख को इस प्रकार अपशब्द कहे, "नष्ट हो जा, दुष्ट, जी हाँ, पूरी तरह नष्ट हो जा। तेरे जैसा कौन मिलेगा जो स्त्रियों की प्रार्थनाओं से पिघल जाए (*18)?" इस प्रकार फटकार सुनकर कोयल पुन्नमुख मुड़ गई। फिर कुछ ही समय बाद पुन्नमुख को भयंकर रोग हो गया और उसे रक्तस्राव होने लगा, जिससे वह मृत्यु के निकट पहुँच गया। तब कोयल पुन्नमुख की सेवा में उपस्थित पक्षियों के मन में यह विचार आया: "यह कोयल बीमार है; शायद इसे रोग से मुक्ति मिल जाए।" इसलिए उसे अकेला छोड़कर वे कुनाला नामक पक्षी के पास आ गए। कुनाला ने दूर से इन पक्षियों को आते देखा और उन्हें देखकर उनसे कहा, "हे दुष्टो, तुम्हारा स्वामी कहाँ है?" उन्होंने कहा, "मित्र कुनाला, पुन्नामुख बीमार है: शायद वह अपनी बीमारी से ठीक हो जाए।"जब उन्होंने ऐसा कहा, तो कुनाला पक्षी ने उन्हें श्राप देते हुए कहा, "नष्ट हो जाओ, तुम दुष्टों, जी हाँ, पूरी तरह नष्ट हो जाओ, तुम चोर, बेईमान, लापरवाह, चंचल प्राणी हो, तुम पर की गई दया के लिए कृतघ्न हो, हवा की तरह जहाँ चाहो उड़ जाते हो।" ऐसा कहकर वह कोयल पुन्नमुख के पास आया और उससे कहा, "हे! मित्र पुन्नमुख।" "हे! मित्र कुनाला," उसने उत्तर दिया। तब कुनाला पक्षी ने कोयल पुन्नमुख

को अपने पंखों और चोंच से पकड़ लिया और उसे उठाकर उसे तरह-तरह की औषधियाँ पिलाईं। इससे कोयल की बीमारी ठीक हो गई। और जब पुन्नमुख ठीक हो गया, तो पक्षी लौट आए और कुनाला ने कुछ दिनों तक पुन्नमुख को जंगली फल खाने को दिए, और जब वह ठीक हो गया, तो उसने कहा, “अब मित्र, तुम फिर से ठीक हो गए हो; अपने साथी पक्षियों के साथ रहो, और मैं अपने घर लौट जाता हूँ।” तब पुन्नमुख ने उससे कहा, “जब मैं बहुत बीमार था, तब वे मुझे छोड़कर उड़ गए थे।” मुझे इन दुष्टों की कोई आवश्यकता नहीं है।” यह सुनकर उस महान प्राणी ने कहा, “अच्छा, मित्र, मैं तुम्हें स्त्रियों की दुष्टता के बारे में बताऊंगा,” और वह पुन्नमुख को लेकर हिमालय की ढलान पर स्थित लाल घाटी में ले गया और सात मील (4.23 किमी) चौड़ी साल की एक चिनार की चट्टान पर बैठ गया, जबकि पुन्नमुख अपने अनुयायियों के साथ एक तरफ बैठ गया। पूरे हिमालय में एक दिव्य घोषणा हुई, “आज हिमालय में लाल चिनार की चट्टान पर बैठे पक्षियों के राजा कुणाल, बुद्ध के सभी आकर्षण के साथ धर्म का उपदेश देंगे: उनकी बात सुनो।” एक दूसरे को यह घोषणा करने से, छह कामावकार लोकों के देवताओं (देवदूतों) को इसके बारे में पता चला और वे अधिकतर एकत्रित हो गए: जंगल में कई देवता, सर्प, गरुड़ और गिद्धों ने भी इस तथ्य की घोषणा की। उस समय गिद्धों के राजा आनंद, दस हजार अनुयायियों के साथ, वहाँ उपस्थित हुए। गिद्ध शिखर पर गिद्ध रहते थे। शोर सुनकर उन्होंने सोचा, "मैं धर्म का उपदेश सुनूंगा," और अपने अनुयायियों के साथ आकर एक तरफ बैठ गए। हिमालय क्षेत्र में रहने वाले पांच अलौकिक शक्तियों से युक्त तपस्वी नारद, अपने दस हजार तपस्वियों के साथ, इस दिव्य घोषणा को सुनकर, सोचे, "मेरे मित्र कुणाल, कहते हैं, स्त्रियों के दोषों के बारे में बोलेंगे: मुझे भी उनका प्रवचन सुनना चाहिए," और एक हजार तपस्वियों के साथ वे अपनी अलौकिक शक्ति से वहां गए और एक तरफ अलग बैठ गए। वहां बुद्धों के उपदेश सुनने के लिए एकत्रित होने वाली विशाल सभा जैसी भीड़ थी। तब उस महान सत्ता ने, अपने पूर्व जन्मों को याद रखने वाले के ज्ञान से, पुन्नमुख को प्रत्यक्ष साक्षी बनाकर, अपने पूर्व जन्म में देखी गई एक घटना का वर्णन किया, जो स्त्रियों के दोषों से संबंधित थी। गुरु ने बात स्पष्ट करते हुए कहा: तब पक्षी कुणाल ने हाल ही में रोग से ठीक हुई कोयल पुन्नमुख को इस प्रकार संबोधित किया: "मित्र पुन्नमुख, मैंने कान्हा को देखा है,वह स्त्री जिसके दो माता-पिता थे (*19) और पाँच पति थे (*20), और जिसका स्नेह छठे पुरुष, एक सिरविहीन (*21), अपंग बौने पर था।" यहाँ भी हमारे पास एक और श्लोक है:

प्राचीन कथा कान्हा में कहा गया है,
पाँच राजकुमारों से एक अकेली दासी का विवाह हुआ था,
फिर भी वह और अधिक की लालसा से तृप्त नहीं हुई
और एक कुबड़ा बौना के साथ वेश्यावृत्ति करने लगी।
"मैंने देखा है, मित्र पुन्नमुख, सच्चतपवी नामक एक महिला तपस्वी का, जो श्मशान में रहती थी और अपना चौथा भोजन भी त्याग देती थी। उसने एक सुनार के साथ पाप किया। मैंने यह भी देखा है, मित्र पुन्नमुख, वेनतेय्या की पत्नी काकाती (*22) का, जो समुद्र के बीच में रहती थी और फिर भी नटकुवेरा के साथ पाप किया। मैंने देखा है, मित्र पुन्नमुख, सुनहरे बालों वाली कुरंगवी (*23) का, जो एलकमारा से प्रेम करती थी, फिर भी चालंगकुमार और धनंतवासी के साथ पाप किया। मुझे यह भी ज्ञात है कि ब्रह्मदत्त की माता (*24) ने कोसल के राजा को त्यागकर पंचलचंद के साथ पाप किया। ये और अन्य स्त्रियाँ पथभ्रष्ट हुईं, और किसी को भी स्त्रियों पर भरोसा नहीं करना चाहिए और न ही उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। जैसे पृथ्वी समस्त संसार के प्रति निष्पक्ष है, सभी के लिए धन धारण करती है, सभी प्रकार और परिस्थितियों के मनुष्यों (अच्छे और बुरे) के लिए घर है, सर्वस्थायी, अविचल, अचल है, वैसे ही महिलाओं के साथ ऐसा ही होता है (बुरे अर्थ में)। एक पुरुष को उन पर भरोसा नहीं करना चाहिए।

जैसे शेर कच्चे मांस और खून पर भोजन करता है,
अपने पाँच (*25) भयंकर पंजों से भोजन के लिए ललचाता है,
दूसरों को चोट पहुँचाने में ही उसे सबसे अधिक आनंद मिलता है—
वैसी ही हैं स्त्रियाँ। हे मनुष्य, इनसे सावधान रहो।
हे मित्र पुन्नमुख, सचमुच, ये प्राणी मात्र वेश्याएँ, देह व्यापार करने वाली या गली में घूमने वाली औरतें नहीं हैं, बल्कि ये वेश्याएँ नहीं बल्कि हत्यारिनें हैं। मेरा तात्पर्य इन वेश्याओं, देह व्यापार करने वाली और गली में घूमने वाली औरतों (*26) से है। ये गुंथे हुए बालों वाले लुटेरों के समान हैं, विषैले पेय के समान हैं, अपनी ही प्रशंसा करने वाले व्यापारियों के समान हैं, हिरण के सींग के समान टेढ़ी हैं, साँपों के समान दुष्ट जीभ वाली हैं, ढके हुए गड्ढे के समान हैं, नरक के समान अतृप्त हैं, राक्षसी के समान तृप्त न होने वाली हैं, सर्वतृप्त यम के समान हैं, ज्वाला के समान सब कुछ भस्म करने वाली हैं, नदी के समान अपने सामने सब कुछ बहा ले जाने वाली हैं, हवा के समान जहाँ चाहे बहने वाली हैं, नेहरू पर्वत (*27) के समान अविभेदकारी हैं, विषैले वृक्ष के समान बारहमासी फल देने वाली हैं। यहाँ एक और श्लोक भी आता है:

जैसे विषैला पेय या लुटेरा गिर पड़ा हो, हिरण के सींग की तरह टेढ़ा,
सर्प की तरह दुष्ट जीभ वाले (*28) हैं वे, व्यापारी की तरह डींग मारने वाले,
वे ढके हुए गड्ढे की तरह हत्यारे हैं, नरक के अतृप्त पेट की तरह,
लालची जिन्न की तरह या उस मौत की तरह जो सबको अपने साथ ले जाती है।

वे ज्वाला की तरह भस्म करने वाले हैं, हवा या बाढ़ की तरह शक्तिशाली,
नेरू के सुनहरे शिखर की तरह जो निश्चित रूप से अच्छे और बुरे को भ्रमित करता है (*29),
विषैले वृक्ष की तरह हानिकारक, वे पांच गुना विनाश लाते हैं
, घरेलू सामान पर, धन और हर कीमती चीज को बर्बाद करने वाले।

कहते हैं कि एक समय की बात है, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी सेना के बल पर कोसल राज्य पर कब्जा कर लिया, उसके राजा की हत्या कर दी और उसकी गर्भवती रानी को बनारस ले गए और उससे विवाह कर लिया। कुछ समय बाद रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया। राजा की अपनी कोई संतान न थी, इसलिए वह बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "हे सुंदरी, मुझसे कोई वरदान मांगो।" रानी ने वरदान स्वीकार कर लिया, लेकिन अपना चुनाव गुप्त रखा। इस प्रकार उस राजकुमारी का नाम कान्हा रखा गया। जब वह बड़ी हुई, तो उसकी माता ने कहा, "प्रिय पुत्री, तुम्हारे पिता ने मुझे वरदान दिया था, जिसे मैंने स्वीकार तो कर लिया, लेकिन अपना चुनाव गुप्त रखा। अब तुम जो चाहो चुन लो।" स्त्री-प्रियता के आवेश में आकर उसने माता से कहा, "मुझे और कुछ नहीं चाहिए; उन्हें मेरे लिए पति चुनने हेतु एक सभा आयोजित करने को कहिए।" माता ने यह बात राजा को बताई। राजा ने कहा, "जो चाहे, उसे मिल जाए," और उन्होंने पति चुनने हेतु एक सभा का आयोजन करवाया। महल के प्रांगण में बहुत से पुरुष अपने वैभवशाली वस्त्रों में सजे-धजे एकत्र हुए। कान्हा, जो हाथ में फूलों की टोकरी लिए ऊपरी जालीदार खिड़की से बाहर देख रही थी, उनमें से किसी को भी पसंद नहीं कर पाई। तभी राजा पांडु के कुल के अज्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिल और सहदेव, ये पाँचों पांडु के पुत्र, तक्षशिला में विश्वप्रसिद्ध गुरु से कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने के बाद, स्थानीय रीति-रिवाजों को जानने के उद्देश्य से यात्रा करते हुए बनारस पहुँचे। नगर में हलचल सुनकर और जब लोगों ने उनसे पूछा कि यह सब क्या है, तो वे पाँचों एक पंक्ति में खड़े हो गए, मानो सोने की कई मूर्तियाँ हों। कान्हा ने उन्हें देखते ही उन पाँचों पर मोहित हो गई और उनके सिर पर फूलों की माला डालकर कहा, "प्रिय माता, मैं इन पाँचों पुरुषों को चुनती हूँ।" रानी ने यह बात राजा को बताई। राजा ने उसे चुनाव का विकल्प दिया था, इसलिए उसने यह नहीं कहा, "तुम ऐसा नहीं कर सकती," बल्कि वह बहुत नाराज़ हुआ। हालाँकि, जब उसने उनके वंश और उनके पुत्रों के बारे में पूछा, तो उसे पता चला कि वे राजा पांडु के पुत्र हैं। उसने उनका बहुत सम्मान किया और अपनी पुत्री का विवाह उनसे करवा दिया। अपने प्रेम के बल पर उसने अपने सात मंजिला महल में इन पाँचों राजकुमारों का दिल जीत लिया। अब उसके पास एक कुबड़ा लंगड़ा सेवक था, और जब उसने प्रेम के बल पर पाँचों राजकुमारों का दिल जीत लिया, तो जैसे ही वे महल से चले गए, उसने अवसर पाकर और कामवासना से प्रेरित होकर उस कुबड़े दास के साथ पाप किया। उससे बात करते हुए उसने कहा, "तुम्हारे जैसा प्रिय मुझे कोई नहीं; मैं इन राजकुमारों को मार डालूँगी और तुम्हारे पैरों को उनके गले के खून से मढ़ दूँगी।" और जब वह राजभाई में सबसे बड़े के साथ होती, तो वह कहती, "तुम मुझे उन चारों से अधिक प्रिय हो। तुम्हारे लिए मैं अपना प्राण भी बलिदान कर दूँगी।"मेरे पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य केवल तुम्हें ही दूंगी।" लेकिन जब वह दूसरों के साथ होती, तो उसका व्यवहार बिल्कुल वैसा ही होता। वे उससे बहुत प्रसन्न थे, यह सोचकर कि, "वह हमसे प्रेम करती है और इसी कारण शासन करने की शक्ति हमारी होगी।" एक दिन वह बीमार पड़ गई, और उसके चारों ओर इकट्ठा होकर, एक व्यक्ति उसका सिर छू रहा था, और बाकी सभी उसका हाथ या पैर थामे बैठे थे, जबकि कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। अपने सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना, जो उसका सिर छू रहा था, को उसने अपने सिर से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं है: जब तक मैं जीवित रहूंगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूंगी और मेरे पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य तुम्हें ही दूंगी," और इस प्रकार उसने उसका दिल जीत लिया। दूसरों को भी उसने हाथ या पैर से इसी तरह का इशारा किया। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने अपनी जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "केवल तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूंगी।" वे सभी, उसके द्वारा पहले कही गई बातों के कारण, समझ गए थे कि उसका क्या अर्थ है। यह संकेत। लेकिन जबकि बाकी सभी ने अपने लिए दिए गए संकेत को पहचान लिया, राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ, इस संकेत से कोई न कोई संकेत जरूर दिया जा रहा है, और इस कुबड़ वाले व्यक्ति के साथ कोई न कोई घनिष्ठता जरूर है"; इसलिए अपने भाइयों के साथ बाहर जाकर उसने पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली महिला को मेरे लिए सिर से संकेत करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम इसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "इसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से दिए गए संकेत का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसी तरह उसने मुझे भी एक संकेत दिया।" क्या तुम उस कुबड़ी को जीभ हिलाकर दिए गए इशारे का मतलब जानते हो? "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ी को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सबका उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "औरतें बुरी और दुष्ट होती हैं। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, नफरत करने लायक, कुबड़ी के साथ चली जाती है।" भला कौन बुद्धिमान ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा? इस प्रकार अनेक बार स्त्री-पुरुषों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हम वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे स्वयं द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली

परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का विवरण दिया गया है।लेकिन जब वह दूसरों के साथ होती, तो उसका व्यवहार बिल्कुल वैसा ही होता। वे उससे बहुत प्रसन्न थे, यह सोचकर कि, "वह हमसे स्नेह करती है और इसी कारण शासन करने की शक्ति हमारी होगी।" एक दिन वह बीमार पड़ गई, और उसके चारों ओर इकट्ठा होकर, एक व्यक्ति उसका सिर छू रहा था, और बाकी सभी उसका हाथ या पैर थामे बैठे थे, जबकि कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। अपने सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना, जो उसका सिर छू रहा था, को उसने अपने सिर से एक संकेत दिया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं है: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य तुम्हें सौंप दूँगी," और इस प्रकार उसने उसका दिल जीत लिया। दूसरों को भी उसने हाथ या पैर से इसी तरह के संकेत दिए। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने अपनी जीभ से एक संकेत दिया, जिसका अर्थ था, "केवल तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके द्वारा पहले कही गई बातों के कारण, वे सभी इस संकेत का अर्थ समझ गए थे। लेकिन बाकी सभी ने इस संकेत को पहचान लिया। राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो उसने सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ होगा। इस इशारे से कोई संकेत जरूर दिया जा रहा होगा, और इस कुबड़ वाले आदमी से कोई न कोई घनिष्ठ संबंध जरूर होगा।" इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली उस स्त्री को मेरे लिए सिर से इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम उसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "उसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से दिए गए उस इशारे का क्या मतलब था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसी तरह उसने मुझे भी इशारा किया।" क्या तुम उस कुबड़ी को जीभ हिलाकर दिए गए इशारे का मतलब जानते हो? "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ी को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सबका उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "औरतें बुरी और दुष्ट होती हैं। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, नफरत करने लायक, कुबड़ी के साथ चली जाती है।" भला कौन बुद्धिमान ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा? इस प्रकार अनेक बार स्त्री-पुरुषों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, “हम वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं,” और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे स्वयं द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय “मैंने देखा” शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का विवरण दिया गया है।लेकिन जब वह दूसरों के साथ होती, तो उसका व्यवहार बिल्कुल वैसा ही होता। वे उससे बहुत प्रसन्न थे, यह सोचकर कि, "वह हमसे स्नेह करती है और इसी कारण शासन करने की शक्ति हमारी होगी।" एक दिन वह बीमार पड़ गई, और उसके चारों ओर इकट्ठा होकर, एक व्यक्ति उसका सिर छू रहा था, और बाकी सभी उसका हाथ या पैर थामे बैठे थे, जबकि कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। अपने सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना, जो उसका सिर छू रहा था, को उसने अपने सिर से एक संकेत दिया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं है: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य तुम्हें सौंप दूँगी," और इस प्रकार उसने उसका दिल जीत लिया। दूसरों को भी उसने हाथ या पैर से इसी तरह के संकेत दिए। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने अपनी जीभ से एक संकेत दिया, जिसका अर्थ था, "केवल तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके द्वारा पहले कही गई बातों के कारण, वे सभी इस संकेत का अर्थ समझ गए थे। लेकिन बाकी सभी ने इस संकेत को पहचान लिया। राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो उसने सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ होगा। इस इशारे से कोई संकेत जरूर दिया जा रहा होगा, और इस कुबड़ वाले आदमी से कोई न कोई घनिष्ठ संबंध जरूर होगा।" इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली उस स्त्री को मेरे लिए सिर से इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम उसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "उसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से दिए गए उस इशारे का क्या मतलब था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसी तरह उसने मुझे भी इशारा किया।" क्या तुम उस कुबड़ी को जीभ हिलाकर दिए गए इशारे का मतलब जानते हो? "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ी को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सबका उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "औरतें बुरी और दुष्ट होती हैं। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, नफरत करने लायक, कुबड़ी के साथ चली जाती है।" भला कौन बुद्धिमान ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा? इस प्रकार अनेक बार स्त्री-पुरुषों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, “हम वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं,” और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे स्वयं द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय “मैंने देखा” शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का विवरण दिया गया है।यह सोचते हुए कि, "वह हमसे स्नेह करती है और इसी कारण शासन करने की शक्ति हमारी होगी।" एक दिन वह बीमार पड़ गई, और सब उसके चारों ओर इकट्ठा हो गए। एक व्यक्ति उसका सिर छू रहा था, और बाकी सब उसका हाथ या पैर थामे बैठे थे, जबकि कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। अपने सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना, जो उसका सिर छू रहा था, को उसने अपने सिर से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य तुम्हें सौंप दूँगी।" इस प्रकार उसने

अज्जुना का दिल जीत लिया। बाकी सभी को भी उसने हाथ या पैर से इसी तरह का इशारा किया। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने अपनी जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "केवल तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, वे सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जबकि बाकी सभी ने अपने लिए दिए गए संकेत को पहचान लिया, राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ, इस संकेत से कोई न कोई इशारा जरूर दिया जा रहा है, और इस कुबड़ वाले से कोई न कोई घनिष्ठ संबंध जरूर है"; इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली स्त्री को मेरे लिए सिर हिलाकर संकेत करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम इसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "इसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से दिए गए संकेत का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसने मुझे भी उसी तरह संकेत दिया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ वाले को जीभ हिलाकर जो संकेत दिया, उसका क्या अर्थ था?" "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ वाले को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बातें सुनीं, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित और कुबड़ा पुरुष के साथ क्यों चली जाती है? भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?" इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हमारा वैवाहिक जीवन भोग-विलास से भर गया है," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का वर्णन दिया गया है।यह सोचते हुए कि, "वह हमसे स्नेह करती है और इसी कारण शासन करने की शक्ति हमारी होगी।" एक दिन वह बीमार पड़ गई, और सब उसके चारों ओर इकट्ठा हो गए। एक व्यक्ति उसका सिर छू रहा था, और बाकी सब उसका हाथ या पैर थामे बैठे थे, जबकि कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। अपने सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना, जो उसका सिर छू रहा था, को उसने अपने सिर से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं राज्य तुम्हें सौंप दूँगी।" इस प्रकार उसने अज्जुना का दिल जीत लिया। बाकी सभी को भी उसने हाथ या पैर से इसी तरह का इशारा किया। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने अपनी जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "केवल तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, वे सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जबकि बाकी सभी ने अपने लिए दिए गए संकेत को पहचान लिया, राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ, इस संकेत से कोई न कोई इशारा जरूर दिया जा रहा है, और इस कुबड़ वाले से कोई न कोई घनिष्ठ संबंध जरूर है"; इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली स्त्री को मेरे लिए सिर हिलाकर संकेत करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम इसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "इसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से दिए गए संकेत का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसने मुझे भी उसी तरह संकेत दिया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ वाले को जीभ हिलाकर जो संकेत दिया, उसका क्या अर्थ था?" "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ वाले को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बातें सुनीं, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित और कुबड़ा पुरुष के साथ क्यों चली जाती है? भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?" इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हमारा वैवाहिक जीवन भोग-विलास से भर गया है," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का वर्णन दिया गया है।कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। उसके सिर को छू रहे सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना को उसने सिर से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं तुम्हें ही राज्य सौंप दूँगी।" इस प्रकार उसने अज्जुना का दिल जीत लिया। उसने हाथ या पैर से भी इसी तरह के इशारे किए। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जबकि बाकी सभी ने अपने लिए किए गए इशारे को पहचान लिया, राजकुमार अज्जुना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो सोचा, "मेरे मामले की तरह, दूसरों के मामले की तरह, इस इशारे से कोई संकेत अवश्य दिया गया है, और इस कुबड़े राजकुमार के साथ कोई घनिष्ठ संबंध अवश्य है।" तो अपने भाइयों के साथ बाहर जाकर उसने पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली उस स्त्री को मुझे सिर हिलाकर इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम उसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "उसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से किए गए उस इशारे का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसने मुझे भी उसी तरह इशारा किया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ा को जीभ हिलाकर जो इशारा किया उसका क्या अर्थ था?" "हम नहीं

जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। “अरे! ज़रूर,” उन्होंने कहा, “स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित, कुबड़ा पुरुष के साथ क्यों चली जाती है? भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?” इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, “विवाह जीवन से हमारा मन भर गया है,” और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय “मैंने देखा” शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का वर्णन दिया गया है।कुबड़ा राजकुमार उसके चरणों में बैठा था। उसके सिर को छू रहे सबसे बड़े भाई, राजकुमार अज्जुना को उसने सिर से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम्हारे सिवा मुझे कोई प्रिय नहीं: जब तक मैं जीवित रहूँगी, तुम्हारे लिए ही जीवित रहूँगी और अपने पिता की मृत्यु के बाद मैं तुम्हें ही राज्य सौंप दूँगी।" इस प्रकार उसने अज्जुना का दिल जीत लिया। उसने हाथ या पैर से भी इसी तरह के इशारे किए। लेकिन कुबड़ा राजकुमार को उसने जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूँगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जबकि बाकी सभी ने अपने लिए किए गए इशारे को पहचान लिया, राजकुमार अज्जुना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकतें देखीं, तो सोचा, "मेरे मामले की तरह, दूसरों के मामले की तरह, इस इशारे से कोई संकेत अवश्य दिया गया है, और इस कुबड़े राजकुमार के साथ कोई घनिष्ठ संबंध अवश्य है।" तो अपने भाइयों के साथ बाहर जाकर उसने पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली उस स्त्री को मुझे सिर हिलाकर इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम उसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "उसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से किए गए उस इशारे का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसने मुझे भी उसी तरह इशारा किया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ा को जीभ हिलाकर जो इशारा किया उसका क्या अर्थ था?" "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। “अरे! ज़रूर,” उन्होंने कहा, “स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित, कुबड़ा पुरुष के साथ क्यों चली जाती है? भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?” इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, “विवाह जीवन से हमारा मन भर गया है,” और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय “मैंने देखा” शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का वर्णन दिया गया है।लेकिन कुबड़ा को उसने अपनी जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूंगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, वे सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जहाँ बाकी सभी ने अपने लिए किए गए इशारे को पहचान लिया, वहीं राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकत देखी, तो सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ, इस इशारे से कोई संकेत जरूर दिया जा रहा है, और इस कुबड़ा से कोई घनिष्ठ संबंध जरूर है।" इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली स्त्री को मेरे लिए सिर से इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम इसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "इसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से किए गए इशारे का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसी तरह उसने मुझे भी इशारा किया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ा को जीभ से जो इशारा किया, उसका क्या अर्थ था?" “हमें नहीं पता।” तब उसने उनसे कहा, “उसने उसके साथ भी पाप किया है।” जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा राजकुमार को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। “अरे! सच में,” उन्होंने कहा, “स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित, कुबड़ा राजकुमार के साथ चली गई। भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?” इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, “हमने वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं,” और वे हिमालय में शरण लेने चले गए, और कसीना संस्कार से गुजरने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन था, और इसी कारण वह अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय “मैंने देखा” शब्दों से शुरू करता था। पुराने समय में देखी गई अन्य चीजों का वर्णन करते समय उन्होंने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में दी गई एक घटना की व्याख्या दी गई है।लेकिन कुबड़ा को उसने अपनी जीभ से इशारा किया, जिसका अर्थ था, "तुम ही मुझे प्रिय हो: तुम्हारे लिए ही मैं जीवित रहूंगी।" उसके पहले कहे गए शब्दों के कारण, वे सभी इस इशारे का अर्थ समझ गए थे। लेकिन जहाँ बाकी सभी ने अपने लिए किए गए इशारे को पहचान लिया, वहीं राजकुमार अजजूना ने जब हाथ, पैर या जीभ की हरकत देखी, तो सोचा, "जैसा मेरे साथ हुआ, वैसा ही दूसरों के साथ भी हुआ, इस इशारे से कोई संकेत जरूर दिया जा रहा है, और इस कुबड़ा से कोई घनिष्ठ संबंध जरूर है।" इसलिए वह अपने भाइयों के साथ बाहर गया और पूछा, "क्या तुमने पाँच पतियों वाली स्त्री को मेरे लिए सिर से इशारा करते देखा?" "हाँ, हमने देखा।" "क्या तुम इसका अर्थ जानते हो?" "हम नहीं जानते।" "इसका अर्थ ऐसा था: क्या तुम जानते हो कि हाथ या पैर से किए गए इशारे

का क्या अर्थ था?" "हाँ, हम जानते हैं।" "उसी तरह उसने मुझे भी इशारा किया। क्या तुम जानते हो कि उसने कुबड़ा को जीभ से जो इशारा किया, उसका क्या अर्थ था?" "हमें नहीं पता।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा राजकुमार को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "स्त्री जाति दुष्ट और दुष्ट है। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, घृणित, कुबड़ा राजकुमार के साथ चली गई। भला कौन समझदार स्त्री ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा?" इस प्रकार अनेक प्रकार से स्त्रियों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हमने वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए, और कसीना संस्कार से गुजरने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन था, और इसी कारण वह अपने द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करता था। पुराने समय में देखी गई अन्य चीजों का वर्णन करते समय उन्होंने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में दी गई एक घटना की व्याख्या दी गई है।"उसी तरह उसने मुझे भी एक संकेत दिया। क्या तुम जानते हो कि उसने अपनी जीभ हिलाकर कुबड़ा को क्या संकेत दिया था?" "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "औरतें बुरी और दुष्ट होती हैं। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, नफरत करने लायक, कुबड़ा आदमी के साथ चली जाती है।" भला कौन बुद्धिमान ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा? इस प्रकार अनेक बार स्त्री-पुरुषों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हम वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे स्वयं द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का विवरण दिया गया है।"उसी तरह उसने मुझे भी एक संकेत दिया। क्या तुम जानते हो कि उसने अपनी जीभ हिलाकर कुबड़ा को क्या संकेत दिया था?" "हम नहीं जानते।" तब उसने उनसे कहा, "उसने उसके साथ भी पाप किया है।" और जब उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, तो उसने कुबड़ा को बुलवाया और उससे पूछा, और उसने उसे सब कुछ बता दिया। जब उन्होंने उसकी बात सुनी, तो उन सभी का उसके प्रति प्रेम टूट गया। "अरे! सच में," उन्होंने कहा, "औरतें बुरी और दुष्ट होती हैं। हम जैसे कुलीन और सौभाग्यशाली पुरुषों को छोड़कर, वह इस घिनौने, नफरत करने लायक, कुबड़ा आदमी के साथ चली जाती है।" भला कौन बुद्धिमान ऐसी निर्लज्ज और दुष्ट स्त्री की संगति में आनंद पाएगा? इस प्रकार अनेक बार स्त्री-पुरुषों की निंदा करते हुए पाँचों राजकुमारों ने सोचा, "हम वैवाहिक जीवन से तंग आ चुके हैं," और वे हिमालय में शरण लेने चले गए। कसीना की रस्म पूरी करने के बाद, अंत में उन्हें उनके कर्मों का फल मिला। पक्षी-राजा कुणाल राजकुमार अज्जुन थे, और इसी कारण वे स्वयं द्वारा देखी गई किसी भी बात का वर्णन करते समय "मैंने देखा" शब्दों से शुरू करते थे। पुरानी घटनाओं का वर्णन करते समय भी वे इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, और यहाँ पहली परिचयात्मक कहानी में वर्णित एक घटना का विवरण दिया गया है।

कहते हैं, एक समय की बात है, सच्चतपवी नाम की एक श्वेत (*31) नन ने बनारस के पास एक कब्रिस्तान में पत्तों की एक कुटिया बनवाई थी। वहाँ रहते हुए वह पाँच में से चार समय का भोजन त्याग देती थी और पूरे शहर में उसकी प्रसिद्धि चाँद या सूर्य की तरह फैल गई थी। बनारस के निवासी, यदि छींकते या लड़खड़ाते तो कहते, "सच्चतपवी की जय हो।" अब एक त्योहार के पहले दिन, कुछ सुनारों ने एक जगह पर तंबू लगाया जहाँ भीड़ जमा थी। वे मछली, मांस, शराब, इत्र, मालाएँ आदि लेकर शराब पीने लगे। तभी एक सुनार, जो शराब का आदी था, उल्टी करते हुए बोला, "सच्चतपवी की जय हो।" उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा, "अरे! अंधे मूर्ख, तुम एक कमजोर दिमाग वाली स्त्री का सम्मान कर रहे हो—अरे! तुम मूर्ख हो।" तो उसने उत्तर दिया, "मित्र, ऐसा मत बोलो, और न ही ऐसा कर्म करो जो नरक की ओर ले जाए।" तब उस ज्ञानी पुरुष ने कहा, "अरे मूर्ख, चुप रहो। मुझसे एक हजार सिक्कों की शर्त लगाओ और आज से सातवें दिन, ठीक इसी स्थान पर, मैं तुम्हारे हाथों में सच्चतपवी को सुंदर वस्त्रों में सजे-धजे और शराब के नशे में चूर करके सौंप दूँगा और मैं भी उसके साथ शराब पीऊँगा: क्योंकि स्त्रियाँ इतनी चंचल होती हैं।" उसने कहा, "तुम ऐसा नहीं कर पाओगे," और एक हजार सिक्कों की शर्त ले ली। उसने यह बात दूसरे सुनारों को बताई, और अगली सुबह, तपस्वी का वेश धारण करके, वह ज्ञानी पुरुष श्मशान में गया, और उसके निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर सूर्य की आराधना कर रही थी। भिक्षा मांगने जाते समय उसने उसे देखा और सोचा, "यह अवश्य ही कोई चमत्कारिक शक्तियों वाला तपस्वी होगा। मैं श्मशान के एक तरफ रहती हूँ, लेकिन वह बीच में: उसका हृदय पवित्र शांति से भरा होगा। मैं उसे प्रणाम करूँगी।" इसलिए वह उसके पास गई और उसे प्रणाम किया, लेकिन उसने न तो उसकी ओर देखा और न ही कुछ बोला। अगले दिन भी उन्होंने वैसा ही व्यवहार किया। लेकिन तीसरे दिन जब उसने उन्हें प्रणाम किया, तो उन्होंने नज़रें नीचे करके कहा, "चली जाओ।" चौथे दिन उन्होंने उससे नरमी से बात की और कहा, "भीख मांगते-मांगते थक नहीं गई हो?" उसने सोचा, "मुझे तो अच्छा अभिवादन मिला है," और प्रसन्न होकर चली गई। पाँचवें दिन उसे और भी नरम अभिवादन मिला और कुछ देर बैठने के बाद उसने उन्हें प्रणाम किया और अपने रास्ते चली गई। लेकिन छठे दिन वह आई और जब वे वहाँ बैठे थे, तो उसने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा, "बहन, आज बनारस में ये इतना शोर-शराबा किस बात का है?" उसने उत्तर दिया, "हे प्रभु, क्या

आप नहीं जानते कि शहर में कोई उत्सव मनाया जा रहा है और ये वहाँ मौज-मस्ती करने वालों की आवाज़ है?" अनजान होने का नाटक करते हुए उन्होंने कहा, "हाँ, मुझे तो यही शोर सुनाई दे रहा है।" फिर उन्होंने पूछा, "बहन, तुम कितने भोजन नहीं करती हो?" "चार, प्रभु, और आप कितने भोजन नहीं करते?" "सात, बहन," लेकिन यह बात उसने झूठ बोली, क्योंकि वह दिन-रात खाता रहता था। फिर उसने पूछा,"आपको धार्मिक व्रत लिए कितने वर्ष हो गए?" जब उसने कहा, "बारह, और आपको संन्यास लिए कितने वर्ष हो गए?" तो उसने उत्तर दिया, "यह छठा वर्ष है।" फिर उसने पूछा, "बहन, क्या आपको पवित्र शांति प्राप्त हो गई है?" "नहीं, महोदय। क्या आपको हो गई है?" "हमें भी नहीं," उसने कहा। "बहन, हमें न तो इंद्रिय सुख का आनंद मिलता है, न ही त्याग का सुख। नरक की गर्मी से हमें क्या लेना-देना? आइए हम भाग्य के मार्ग पर चलें: मैं गृहस्थ बनूंगा, और चूंकि मेरे पास मेरी माता का खजाना है, इसलिए मुझे कोई हानि नहीं होगी।" उसकी बात सुनकर, अस्थिरता की चाहत में, उसके मन में उसके लिए प्रेम जागृत हुआ और उसने कहा, "मुझे भी, महोदय, आध्यात्मिक असंतोष है: यदि आप मुझे अस्वीकार नहीं करते हैं, तो मैं भी आपके साथ गृहस्थी बसाऊंगी।" तब उसने उससे कहा, "मैं तुम्हें अस्वीकार नहीं करूंगा: तुम मेरी पत्नी बनोगी।" फिर वह उसे नगर ले आया और उसके साथ सहवास करने लगा। और उसके साथ शराबखाने में जाकर उसने खुद भी खूब शराब पी और उसे नशे में धुत अपने दोस्तों के हवाले कर दिया। इस तरह उस दूसरे व्यक्ति ने हज़ार सिक्कों की शर्त हार दी, और सुनार से उसे कई पुत्र और पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। उस समय कुनाला सुनार था (*32) और कहानी सुनाते हुए उसने "मैंने देखा" शब्दों से शुरुआत की।

दूसरी कथा अतीत की एक कहानी है, जिसका विस्तृत वर्णन काकाती (*33) जन्म कथा के चौथे खंड में मिलता है। उस समय कुणाल गरुड़ थे, और यही कारण है कि उन्होंने अपने द्वारा देखे गए दृश्य का वर्णन करते हुए "मैंने देखा" शब्दों से शुरुआत की। तीसरी कथा में, एक समय ब्रह्मदत्त ने कोसल के राजा को मारकर उसके राज्य पर कब्जा कर लिया। उसकी गर्भवती रानी को अपने साथ ले जाकर वह बनारस लौट आया, और यद्यपि वह उसकी स्थिति जानता था, फिर भी उसने उसे अपनी रानी बना लिया। जब उसका प्रसव हुआ, तो उसने सोने की मूर्ति के समान एक पुत्र को जन्म दिया। रानी ने सोचा, "जब वह बड़ा होगा, तो बनारस का राजा कहेगा, 'वह मेरे शत्रु का पुत्र है: वह मेरे लिए क्या है?' और उसे मार डालेगा। नहीं, मेरे पुत्र को शत्रु के हाथों मरने न दो।" इसलिए उसने उसकी दाई से कहा, "हे प्रिय, इस बच्चे को मोटे कपड़े से ढक दो और जाकर उसे श्मशान भूमि में रख दो।" दाई ने ऐसा ही किया और स्नान करने के बाद घर लौट गई। कोसल के राजा भी मृत्यु के बाद उस बालक के संरक्षक देवदूत के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए। उनकी दिव्य शक्ति से उस स्थान पर अपनी बकरियों की देखभाल कर रहे एक चरवाहे की बकरी ने उस बच्चे को देखकर उससे स्नेह कर लिया और उसे दूध पिलाने के बाद थोड़ी देर के लिए इधर-उधर भटकती रही, फिर दो-तीन या चार बार वापस आकर उसे दूध पिलाया। चरवाहे ने बकरी को ऐसा करते देखा तो वह उस स्थान पर आया और बच्चे को देखकर उससे स्नेह कर बैठा और उसे अपनी पत्नी के पास ले आया। उसकी पत्नी निःसंतान थी और इसलिए उसके पास बच्चे को पिलाने के लिए दूध नहीं था। इसलिए बकरी उसे दूध पिलाती रही। उस दिन से प्रतिदिन दो-तीन बकरियां मरने लगीं। चरवाहे ने सोचा, "अगर हम इसी तरह इस बच्चे की देखभाल करते रहे तो हमारी सारी बकरियां मर जाएंगी। यह हमारे लिए क्या है?" फिर उसने उसे एक मिट्टी के बर्तन में लिटाया, उसे दूसरे बर्तन से ढक दिया, और उसके पूरे चेहरे पर, बिना कोई जगह छोड़े, सेम के आटे से लेप कर उसे नदी में फेंक दिया। बच्चा नदी के बहाव के साथ बहता चला गया और राजा के महल के पास नदी के निचले किनारे पर एक निम्न जाति के कबाड़साजे ने उसे पाया, जो अपनी पत्नी के साथ वहाँ चेहरा धो रहा था। वह जल्दी से दौड़ा, बर्तन को पानी से बाहर निकाला और किनारे पर रख दिया। "यह क्या है?" उसने सोचा, और बर्तन को खोलकर बच्चे को पाया। उसकी पत्नी भी निःसंतान थी और उसे भी उससे स्नेह हो गया। इसलिए वह उसे घर ले आई और उसकी देखभाल करने लगी। जब वह सात या आठ साल का था, तो उसके माता-पिता उसे अपने साथ महल ले जाते थे। जब वह सोलह साल का हुआ, तो लड़का अक्सर महल में पुरानी चीजें ठीक करने जाता था। और राजा और रानी की पत्नी की एक बेटी हुई जिसका नाम कुरंगवी था, जो असाधारण रूप से सुंदर थी। उसे देखते ही वह उस युवक के प्यार में पड़ गई, और किसी और की परवाह न करते हुए वह लगातार उसके काम करने की जगह पर जाने लगी। बार-बार एक-दूसरे को देखने से वे दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो गए।राजमहल परिसर में गुप्त रूप से गुप्त संबंध स्थापित किए गए। कुछ समय बाद सेवकों ने राजा को इसकी सूचना दी। क्रोधित होकर राजा ने अपने सलाहकारों को बुलाया और कहा, "इस नीच जाति के व्यक्ति ने अमुक अपराध किया है: विचार करो कि इसके साथ क्या किया जाना चाहिए।" सलाहकारों ने उत्तर दिया, "इसका अपराध गंभीर है; सभी प्रकार की सजा देने के बाद हमें इसे मृत्युदंड देना होगा।" इसी क्षण बालक के पिता (कोसल के राजा), जो उसके संरक्षक देवदूत बन गए थे, ने युवक की माता के शरीर पर अधिकार कर लिया और दिव्य शक्ति के प्रभाव में आकर राजा के पास आकर बोली, "महाराज, यह युवक नीच जाति का नहीं है। यह कोसल के राजा से मेरा पुत्र है। मैंने अपने पुत्र के मृत होने का दावा करके आपसे झूठ बोला था। यह जानते हुए कि वह आपके शत्रु का पुत्र है, मैंने उसे एक दाई को सौंप दिया और श्मशान भूमि में छोड़ दिया। फिर एक बकरी चराने वाला उसकी देखभाल करता रहा, लेकिन जब उसकी सारी बकरियाँ मरने लगीं, तो उसने उसे नदी में फेंक दिया। नदी के बहाव के साथ बहकर वह यहाँ आ गया, जहाँ उसे हमारे महल में पुराने कबाड़ की मरम्मत करने वाले नीच जाति के व्यक्ति ने पाया और उसका पालन-पोषण किया। यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है, तो इन सभी लोगों को बुलाकर उनसे पूछताछ कर लीजिए।" राजा ने सभी को बुलाया, सबसे पहले दाई को। पूछताछ करने पर जब उसे पता चला कि सब कुछ वैसा ही है जैसा उसने बताया था, तो वह यह जानकर प्रसन्न हुआ कि युवक कुलीन कुल का है। उसने उसे स्नान करने और उत्तम वस्त्र पहनने का निर्देश दिया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। बकरियों की मृत्यु का कारण बनने के कारण, लोगों ने उसका नाम

इलाकामारा (बकरी की कमजोरी) रख दिया। फिर राजा ने उसे एक वाहन और सेना दी और यह कहते हुए विदा किया, "जाओ और अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लो।" अतः वह कुरंगवी के साथ चल पड़ा और सिंहासन पर विराजमान हो गया। तब बनारस के राजा ने सोचा, "यह तो बिलकुल अशिक्षित है," और उसे कलाओं की शिक्षा देने के लिए उसने चालंगकुमार को उसका शिक्षक बनाकर भेजा। चालंगकुमार को अपना शिक्षक स्वीकार करके राजा ने उसे सेनापति का पद प्रदान किया। कुछ समय बाद कुरंगवी ने चालंगकुमार के साथ दुर्व्यवहार किया। सेनापति का एक सेवक था जिसका नाम धनन्तेवासी था। उसने अपने हाथों से कुरंगवी को वस्त्र और अन्य आभूषण भिजवाए, और कुरंगवी ने भी उसके साथ कुटिलता की। दुष्ट स्त्रियाँ इतनी दुष्ट और अनैतिक होती हैं कि मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता। यह बात उस महान पुरुष ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए सिखाई, क्योंकि उस समय वे चालंगकुमार थे, और इसलिए उन्होंने जो घटना बताई वह उन्होंने स्वयं देखी थी।उस स्त्री ने युवक की माता के शरीर पर अधिकार कर लिया और दिव्य शक्ति के प्रभाव में आकर राजा के पास आकर बोली, "महाराज, यह युवक नीच जाति का नहीं है। यह कोसल के राजा से मेरा पुत्र है। मैंने आपसे झूठ बोला था जब मैंने कहा था कि मेरा बेटा मर गया है। मैं जानती थी कि वह आपके शत्रु का पुत्र है, इसलिए मैंने उसे एक दाई को सौंप दिया और श्मशान में छोड़ दिया। फिर एक बकरी चराने वाला उसकी देखभाल करता रहा, लेकिन जब उसकी सारी बकरियाँ मरने लगीं, तो उसने उसे नदी में फेंक दिया। नदी के बहाव से बहकर वह यहाँ आ गया और हमारे महल में पुराने कबाड़ की मरम्मत करने वाले नीच जाति के व्यक्ति को मिला, जिसने उसे पाला-पोसा। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो इन सभी लोगों को बुलाकर उनसे पूछताछ कर लीजिए।" राजा ने सभी को बुलाया, सबसे पहले दाई को। पूछताछ करने पर जब उसे पता चला कि सब कुछ वैसा ही है जैसा उसने बताया था, तो वह यह जानकर प्रसन्न हुआ कि युवक कुलीन कुल का है। उसने उसे स्नान करने और उत्तम वस्त्र पहनने का निर्देश दिया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। बकरियों की मृत्यु का कारण बनने के कारण, लोगों ने उसका नाम इलाकामारा (बकरी की कमजोरी) रख दिया। फिर राजा ने उसे एक वाहन और सेना दी और यह कहते हुए विदा किया, "जाओ और अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लो।" अतः वह कुरंगवी के साथ चल पड़ा और सिंहासन पर विराजमान हो गया। तब बनारस के राजा ने सोचा, "यह तो बिलकुल अशिक्षित है," और उसे कलाओं की शिक्षा देने के लिए उसने चालंगकुमार को उसका शिक्षक बनाकर भेजा। चालंगकुमार को अपना शिक्षक स्वीकार करके राजा ने उसे सेनापति का पद प्रदान किया। कुछ समय बाद कुरंगवी ने चालंगकुमार के साथ दुर्व्यवहार किया। सेनापति का एक सेवक था जिसका नाम धनन्तेवासी था। उसने अपने हाथों से कुरंगवी को वस्त्र और अन्य आभूषण भिजवाए, और कुरंगवी ने भी उसके साथ कुटिलता की। दुष्ट स्त्रियाँ इतनी दुष्ट और अनैतिक होती हैं कि मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता। यह बात उस महान पुरुष ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए सिखाई, क्योंकि उस समय वे चालंगकुमार थे, और इसलिए उन्होंने जो घटना बताई वह उन्होंने स्वयं देखी थी।उस स्त्री ने युवक की माता के शरीर पर अधिकार कर लिया और दिव्य शक्ति के प्रभाव में आकर राजा के पास आकर बोली, "महाराज, यह युवक नीच जाति का नहीं है। यह कोसल के राजा से मेरा पुत्र है। मैंने आपसे झूठ बोला था जब मैंने कहा था कि मेरा बेटा मर गया है। मैं जानती थी कि वह आपके शत्रु का पुत्र है, इसलिए मैंने उसे एक दाई को सौंप दिया और श्मशान में छोड़ दिया। फिर एक बकरी चराने वाला उसकी देखभाल करता रहा, लेकिन जब उसकी सारी बकरियाँ मरने लगीं, तो उसने उसे नदी में फेंक दिया। नदी के बहाव से बहकर वह यहाँ आ गया और हमारे महल में पुराने कबाड़ की मरम्मत करने वाले नीच जाति के व्यक्ति को मिला, जिसने उसे पाला-पोसा। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो इन सभी लोगों को बुलाकर उनसे पूछताछ कर लीजिए।" राजा ने सभी को बुलाया, सबसे पहले दाई को। पूछताछ करने पर जब उसे पता चला कि सब कुछ वैसा ही है जैसा उसने बताया था, तो वह यह जानकर प्रसन्न हुआ कि युवक कुलीन कुल का है। उसने उसे स्नान करने और उत्तम वस्त्र पहनने का निर्देश दिया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। बकरियों की मृत्यु का कारण बनने के कारण, लोगों ने उसका नाम इलाकामारा (बकरी की कमजोरी) रख दिया। फिर राजा ने उसे एक वाहन और सेना दी और यह कहते हुए विदा किया, "जाओ और अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लो।" अतः वह कुरंगवी के साथ चल पड़ा और सिंहासन पर विराजमान हो गया। तब बनारस के राजा ने सोचा, "यह तो बिलकुल अशिक्षित है," और उसे कलाओं की शिक्षा देने के लिए उसने चालंगकुमार को उसका शिक्षक बनाकर भेजा। चालंगकुमार को अपना शिक्षक स्वीकार करके राजा ने उसे सेनापति का पद प्रदान किया। कुछ समय बाद कुरंगवी ने चालंगकुमार के साथ दुर्व्यवहार किया। सेनापति का एक सेवक था जिसका नाम धनन्तेवासी था। उसने अपने हाथों से कुरंगवी को वस्त्र और अन्य आभूषण भिजवाए, और कुरंगवी ने भी उसके साथ कुटिलता की। दुष्ट स्त्रियाँ इतनी दुष्ट और अनैतिक होती हैं कि मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता। यह बात उस महान पुरुष ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए सिखाई, क्योंकि उस समय वे चालंगकुमार थे, और इसलिए उन्होंने जो घटना बताई वह उन्होंने स्वयं देखी थी।बकरियों की मृत्यु का कारण बनने के कारण लोगों ने उसका नाम इलाकामारा (बकरी की कमजोरी) रख दिया। तब राजा ने उसे एक वाहन और सेना दी और यह कहकर विदा किया, "जाओ और अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लो।" अतः वह कुरंगवी के साथ चल पड़ा और सिंहासन पर विराजमान हो गया। तब बनारस के राजा ने सोचा, "यह तो बिलकुल अनपढ़ है," और उसे कलाओं की शिक्षा देने के लिए उसने चालंगकुमार को उसका गुरु बनाकर भेजा। उसे गुरु मानकर राजा ने उसे सेनापति का पद दे दिया। कुछ समय बाद कुरंगवी ने उसके साथ दुराचार किया। सेनापति का एक सेवक था जिसका नाम धनंतवासी था, और उसने अपने हाथों से कुरंगवी को वस्त्र और अन्य आभूषण भेजे, और कुरंगवी ने उसके साथ भी दुराचार किया। दुष्ट स्त्रियाँ इतनी दुष्ट और अनैतिक होती हैं कि मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता। यह बात उस महान सत्ता ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए सिखाई, क्योंकि उस समय वे चालंगकुमार थे, और इसलिए उन्होंने जो घटना सुनाई वह उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखी थी।बकरियों की मृत्यु का कारण बनने के कारण लोगों ने उसका नाम इलाकामारा (बकरी की कमजोरी) रख दिया। तब राजा ने

उसे एक वाहन और सेना दी और यह कहकर विदा किया, "जाओ और अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लो।" अतः वह कुरंगवी के साथ चल पड़ा और सिंहासन पर विराजमान हो गया। तब बनारस के राजा ने सोचा, "यह तो बिलकुल अनपढ़ है," और उसे कलाओं की शिक्षा देने के लिए उसने चालंगकुमार को उसका गुरु बनाकर भेजा। उसे गुरु मानकर राजा ने उसे सेनापति का पद दे दिया। कुछ समय बाद कुरंगवी ने उसके साथ दुराचार किया। सेनापति का एक सेवक था जिसका नाम धनंतवासी था, और उसने अपने हाथों से कुरंगवी को वस्त्र और अन्य आभूषण भेजे, और कुरंगवी ने उसके साथ भी दुराचार किया। दुष्ट स्त्रियाँ इतनी दुष्ट और अनैतिक होती हैं कि मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता। यह बात उस महान सत्ता ने अतीत की एक कहानी सुनाते हुए सिखाई, क्योंकि उस समय वे चालंगकुमार थे, और इसलिए उन्होंने जो घटना सुनाई वह उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखी थी।

पांचवीं कथा के अनुसार, एक समय की बात है, कोसल के एक राजा ने बनारस राज्य पर कब्जा कर लिया और अपनी रानी को, जो उस समय गर्भवती थी, अपनी पत्नी बना लिया और फिर अपने नगर लौट गया। कुछ समय बाद रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा की अपनी कोई संतान नहीं थी, इसलिए उसने पुत्र को बहुत प्यार किया और उसे हर प्रकार की शिक्षा दी। जब पुत्र वयस्क हुआ, तो उसने उसे अपने पिता के राज्य का कार्यभार संभालने के लिए विदा कर दिया। पुत्र गया और वहाँ शासन करने लगा। तब पुत्र की माता ने अपने पुत्र को देखने की तीव्र इच्छा व्यक्त करते हुए कोसल के राजा से विदा ली और एक बड़े दल के साथ बनारस के लिए रवाना हुई और दोनों राज्यों के बीच स्थित एक नगर में रहने लगी। उस नगर में पंचलचंद नामक एक सुंदर ब्राह्मण युवक रहता था। पंचलचंद उसके लिए एक उपहार लाया। उसे देखते ही वह उससे प्रेम करने लगी और उसके साथ अनैतिक संबंध बनाने लगी। कुछ दिन वहाँ बिताने के बाद, वह बनारस गई और अपने पुत्र से मिली। वापस लौटने पर उसने उसी नगर में अपना निवास स्थान बनाया और अपने प्रेमी के साथ अनेक दिन व्यभिचार करने के बाद वह कोसल नगर चली गई। इसके तुरंत बाद, अपने पुत्र से मिलने का कोई बहाना बनाकर, उसने राजा से विदा ली और आने-जाने में उसी नगर में दो सप्ताह तक अपने प्रेमी के साथ दुराचार करती रही। हे संपुन्नमुख, स्त्रियाँ कितनी दुष्ट और कपटी होती हैं! और अतीत की यह कहानी सुनाते हुए उसने इन शब्दों से आरंभ किया, "इस कथा का भी यही अर्थ है।" इसके बाद, धर्म का प्रचार करते हुए, उसने अनेक तरीकों से कहा, "मित्र संपुन्नमुख, चार वस्तुएँ ऐसी हैं जो कुछ परिस्थितियों में हानिकारक सिद्ध होती हैं—मैं कहता हूँ, इन्हें पड़ोसी के घर में नहीं रखना चाहिए—एक बैल, एक गाय, एक रथ, एक पत्नी। एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने घर को इन चारों वस्तुओं से मुक्त रखेगा।"

पड़ोसियों को बैल, गाय या रथ उधार न दें,
न ही किसी मित्र के घर पत्नी को सौंपें:
वे कौशल की कमी के कारण रथ तोड़ देते हैं, और
अत्यधिक दौड़ाने के कारण बैल को मार डालते हैं।
गाय का दूध जरूरत से ज्यादा दुहा जाता है। कुछ ही समय बाद,
रिश्तेदार के घर में पत्नी की तबीयत खराब हो जाती है।

हे पुन्नमुख, छह ऐसी बातें हैं जो कुछ परिस्थितियों में हानिकारक सिद्ध होती हैं—बिना डोरी वाला धनुष, किसी रिश्तेदार के परिवार में रहने वाली पत्नी, जहाज (*34), टूटी धुरी वाला रथ, अनुपस्थित मित्र, दुष्ट साथी—ये सभी कुछ परिस्थितियों में हानिकारक सिद्ध होते हैं। हे पुन्नमुख, वास्तव में आठ कारणों से एक स्त्री अपने पति से घृणा करती है: गरीबी के कारण, बीमारी के कारण, बुढ़ापे के कारण, नशे के कारण, मूर्खता के कारण, लापरवाही के कारण, हर तरह के काम में व्यस्त रहने के कारण, और अपनी पत्नी के प्रति अपने सभी कर्तव्यों की उपेक्षा करने के कारण—वास्तव में, इन्हीं आठ कारणों से एक स्त्री अपने स्वामी से घृणा करती है। यहाँ यह श्लोक भी आता है:

यदि पति गरीब, बीमार, बूढ़ा, शराबी या लापरवाह विचारों वाला हो,
सुस्त हो या अपने व्यवसाय की चिंताओं से परेशान हो,
या अप्रिय पाया जाए - तो ऐसी पत्नी ऐसे पति को कुछ भी नहीं समझती।

वास्तव में, नौ आधारों पर एक स्त्री दोषी होती है: यदि वह पार्कों, उद्यानों और नदी तटों पर जाना पसंद करती है, परिवार या अजनबियों के घरों में जाना पसंद करती है, सज्जनों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों का प्रयोग करती है, यदि वह शराब पीती है, इधर-उधर देखती रहती है या अपने दरवाजे के सामने खड़ी रहती है—मैं कहता हूँ, इन नौ आधारों पर एक स्त्री दोषी होती है। इसके अतिरिक्त, यहाँ निम्नलिखित श्लोक भी आता है:

एक महिला, जिसने स्मार्ट कपड़े की बनियान पहनी हुई है, शराब पी रही है, संभवतः
बगीचे, पार्क, नदी किनारे, किसी मित्र या अजनबी के घर घूम रही है।
उसके दरवाजे के सामने खड़े होकर, व्यर्थ दृष्टि से इधर-उधर घूरते हुए,
नौ ऐसे तरीकों से भ्रष्ट होकर शीघ्र ही सद्गुण के मार्ग से भटक जाता है।

सचमुच, मित्र पुन्नमुख, एक स्त्री चालीस अलग-अलग तरीकों से एक पुरुष की भरपाई करती है (*35)। वह खुद को समेटती है, झुकती है, उछल-कूद करती है, शरमाती है, अपनी उंगलियों के सिरों को आपस में दबाती है, एक पैर दूसरे पर रखती है, छड़ी से ज़मीन खरोंचती है, अपने लड़के को ऊपर-नीचे नचाती है, खेलती है और लड़के से खेलवाती है, चूमती है और उससे चुमवाती है, खाती है और उसे खिलाती है, कुछ देती है या कुछ मांगती है, जो कुछ भी होता है उसकी नकल करती है, ऊँची या नीची आवाज़ में बोलती है, कभी अस्पष्ट बोलती है, कभी स्पष्ट, नृत्य, गीत और संगीत से, आँसुओं या नखरे से, या अपने अलंकरण से उसे आकर्षित करती है, हँसती है या घूरती है, अपनी पोशाक हिलाती है या अपनी कमरबंद सरकाती है, अपनी टांग दिखाती है या ढकती है, अपने स्तन, बगल, नाभि दिखाती है, अपनी आँखें बंद करती है, अपनी भौंहें उठाती है, अपने होंठ दबाती है, अपनी जीभ बाहर निकालती है, अपने कपड़े ढीले करती है या कसती है, अपने सिर के आभूषण ढीले करती है या कसती है। सचमुच, इन चालीस तरीकों से वह पुरुष को संतुष्ट करती है। हे मित्र पुन्नमुख, एक दुष्ट स्त्री की पहचान पच्चीस अलग-अलग तरीकों से होती है: वह अपने पति के घर से अनुपस्थित रहने की प्रशंसा करती है, उसके लौटने पर प्रसन्न नहीं होती, उसकी आलोचना करती है, उसकी प्रशंसा में मौन रहती है, उसके हित के लिए नहीं बल्कि उसे हानि पहुँचाने के लिए कार्य करती है, उसके हित में जो भी करना चाहिए वह करती है और जो करना चाहिए उससे विमुख रहती है, वह कपड़े पहने ही बिस्तर पर जाती है और उससे मुँह फेरकर लेटती है, वह करवटें बदलती रहती है, बहुत शोर मचाती है, लंबी आहें भरती है, उसे दर्द होता है, उसे बार-बार शौच जाना पड़ता है, वह विकृत व्यवहार करती है, किसी अजनबी की आवाज सुनकर ध्यान से सुनती है, वह अपने पति की संपत्ति को बर्बाद करती है, वह पड़ोसियों के साथ घनिष्ठ संबंध रखती है, वह बाहर घूमती है, वह गलियों में भटकती है, वह व्यभिचार की दोषी है, अपने पति की अवहेलना करते हुए उसके मन में बुरे विचार होते हैं। हे मित्र पुन्नमुख, इन पच्चीस तरीकों से ही दुष्ट स्त्री की पहचान होती है। इसके अतिरिक्त, यहाँ यह कथन भी मिलता है:

वह अपने पति की अनुपस्थिति को स्वीकार नहीं करती और न ही उसके जाने पर शोक मनाती है,
न ही उसके लौटने की आशा से प्रसन्न होती है।
वह कभी भी अपने पति की प्रशंसा में कुछ नहीं कहती।
ये वे लक्षण हैं जो दुष्ट स्त्री के तौर-तरीकों को निश्चित रूप से दर्शाते हैं।
अनुशासनहीन होकर, वह अपने स्वामी के विरुद्ध कोई शरारत रचेगी,
उसकी रुचि की उपेक्षा करके वह काम करेगी जो उसे नहीं करना चाहिए,
मुँह फेरे वह उसके बगल में पूरी तरह से सजी-धजी लेटी रहेगी,
ऐसे ही संकेतों से उसकी दुष्टता निश्चित रूप से स्वीकार की जाती है।
बेचैन होकर वह करवटें बदलती रहती है और एक पल भी स्थिर नहीं रहती (*36),
या लंबी आह भरती है और कराहती है, बीमार होने का नाटक करती है,
मानो प्रकृति की पुकार पर वह बिस्तर से कई बार उठेगी,
ऐसे संकेतों से कोई व्यक्ति उसकी दुष्टता को पहचान सकता है।
वह अपने सभी कार्यों में कुटिल है, वह वह काम करती है जिससे उसे बचना चाहिए,
और अजनबी की बात सुनती है, भले ही वह उससे कृपा की भीख मांगे, वह
अपने पति की संपत्ति किसी और प्रेम को पाने के लिए बेधड़क खर्च कर देती है,
ऐसे संकेतों से उसकी दुष्टता सबके सामने स्पष्ट हो जाती है।
उसके स्वामी ने जो धन-दौलत बड़ी मेहनत से जमा की थी,
जो सामान बड़ी तकलीफ से इकट्ठा किया था, देखो, वो उसे तेजी से लुटा रही है।
पड़ोसियों के साथ उसकी बहुत ज्यादा घनिष्ठता हो जाएगी,
और ऐसे संकेतों से स्त्रियों की दुष्टता का अंदाजा लगाया जा सकता है।
बाहर कदम रखते ही देखो वह कैसे सड़कों पर चलती है,
और अपने स्वामी के साथ घोर अनादर का व्यवहार करती है:
व्यभिचार से भी पीछे नहीं हटती, हृदय और मन से भ्रष्ट है—
ऐसे ही संकेतों से हम पाते हैं कि सभी स्त्रियाँ कितनी दुष्ट हैं।
अक्सर वह अपने ही दरवाजे पर सारी मर्यादाओं को धता बताकर,
निर्लज्जतापूर्वक राहगीरों के सामने अपने आप को उजागर कर देती है।
इस बीच वह व्याकुल मन से चारों ओर देखती है—
ऐसे ही संकेतों से स्त्रियों की दुष्टता का पता चलता है।
जैसे पेड़ों के झुरमुट लकड़ी से बने होते हैं, जैसे नदियाँ घुमावदार रास्तों से बहती हैं,
वैसे ही, उन्हें अवसर दो, सभी गलत रास्ते पर चली जाएँगी।
हाँ, उन्हें अवसर और गोपनीयता प्रदान करें,

और हर एक स्त्री सदाचार के मार्ग से भटक जाएगी:
इस प्रकार सभी व्यभिचारी स्त्रियाँ सिद्ध होंगी, यदि समय और स्थान अनुकूल हों,
और यहाँ तक कि कुबड़ा बौना भी पाप करेगा, यदि अन्य प्रेमी असफल हो जाएँ।
पुरुषों की प्रसन्नता के लिए सेवा करने वाली स्त्रियों पर किसी को भी संदेह नहीं करना चाहिए,
वे हृदय से दुर्बल और वासना में बेलगाम होती हैं।
उन्हें सुख की स्त्रियाँ कहना उचित ही है, वे सबसे नीच होती हैं, और
आम लोगों के लिए किसी स्नानघर के समान होती हैं।
इसके अलावा उन्होंने कहा: एक समय की बात है, बनारस में कंदारी नाम का एक राजा रहता था, जो बहुत सुंदर था। उसके सलाहकार प्रतिदिन उसके लिए एक हजार डिब्बे इत्र लाते थे, और इस इत्र से वे महल को सजाते-संवारते थे। फिर वे उन डिब्बों को तोड़कर सुगंधित लकड़ियाँ बनाते थे और उनसे खाना पकाते थे। उसकी पत्नी का नाम किन्नरा था, जो बहुत सुंदर थी, और उसका पुजारी पंचालचंद भी उसी उम्र का और बहुत बुद्धिमान था। राजा के महल के पास की दीवार में एक गुलाब-सेब का पेड़ था, जिसकी शाखाएँ दीवार पर लटकती थीं, और उसकी छाया में एक बदसूरत, कुरूप लंगड़ा रहता था। एक दिन रानी किन्नरा ने अपनी खिड़की से बाहर देखते हुए उसे देखा और उस पर मोहित हो गई। रात में, अपने आकर्षण से राजा का दिल जीतने के बाद, जैसे ही वह सो जाता, वह चुपके से उठती और सोने के बर्तन में तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन रखकर, उसे कमर पर रखकर, कपड़े की रस्सी के सहारे खिड़की से नीचे उतरती, और गुलाब-एप्पल के पेड़ पर चढ़कर उसकी एक शाखा से नीचे उतरकर उस अपाहिज को स्वादिष्ट व्यंजन खिलाती और उसके साथ सुख भोगती, फिर उसी रास्ते से महल में वापस जाती और पूरे शरीर पर इत्र लगाकर राजा के पास लेट जाती। इस तरह वह लगातार उस अपाहिज के साथ दुराचार करती रहती और राजा को इसकी भनक तक नहीं लगती थी। एक दिन राजा शहर का चक्कर लगाने के बाद अपने महल में प्रवेश कर रहा था, तभी उसने उस दयनीय अपाहिज को गुलाब-एप्पल के पेड़ की छाया में पड़ा देखा और अपने पुजारी से कहा, "ज़रा इस भूत जैसे आदमी को देखो।" "जी महाराज?" "क्या यह संभव है, मेरे मित्र, कि कोई भी वासना से प्रेरित स्त्री ऐसे घृणित प्राणी के पास आए?" उसकी बात सुनकर लंगड़ा व्यक्ति गर्व से फूल गया और सोचने लगा, "इस राजा ने क्या कहा? मुझे लगता है कि इसे अपनी रानी के मुझसे मिलने आने की कोई खबर नहीं है।" और उसने अपने हाथ जोड़कर गुलाब-सेब के पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहा, "हे मेरे स्वामी, इस वृक्ष के रक्षक, आपके सिवा किसी को इसके बारे में पता नहीं है।" पुजारी ने उसकी इस हरकत को देखकर सोचा, "सचमुच राजा की मुख्य पत्नी इसी वृक्ष की सहायता से आती है और उसके साथ दुराचार करती है।" इसलिए उसने राजा से कहा, "महाराज, रात में जब आप रानी के संपर्क में आते हैं तो क्या होता है?"

“मुझे और कुछ नज़र नहीं आता,” उसने कहा, “सिवाय इसके कि दोपहर के समय उसका शरीर ठंडा पड़ गया है।” “महाराज, अन्य स्त्रियों के साथ जो भी हो, आपकी रानी किन्नरा उसके साथ दुराचार करती है।” “यह क्या कह रहे हो, मेरे मित्र? क्या इतनी सुंदर स्त्री इस घिनौने प्राणी के साथ आनंद उठाएगी?” “तो महाराज, इसे परख कर देखिए।” “ठीक है,” राजा ने कहा, और रात के भोजन के बाद वह उसके साथ लेट गया, ताकि इसकी परीक्षा ले सके। सोने के सामान्य समय पर, उसने सोने का नाटक किया, और उसने पहले की तरह ही व्यवहार किया। राजा उसके पीछे-पीछे गुलाब-सेब के पेड़ की छाया में खड़ा हो गया। लंगड़ा रानी पर क्रोधित था और बोला, “तुम आने में बहुत देर कर चुकी हो,” और अपने हाथ से उसके कान में जंजीर मार दी। तब उसने कहा, “प्रभु क्रोधित न हों; मैं राजा के सोने का इंतज़ार कर रही थी,” और ऐसा कहकर उसने मानो घर में एक पत्नी का फर्ज निभाया। लेकिन जब उसने उसे मारा, तो शेर के सिर के समान बना कान का आभूषण उसके कान से गिरकर राजा के चरणों में जा गिरा। राजा ने सोचा, "मेरे लिए यही सबसे अच्छा होगा," और वह उसे अपने साथ ले गया। अपने प्रेमी के साथ दुराचार करने के बाद वह पहले की तरह लौट आई और राजा के पास लेट गई। राजा ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अगले दिन आदेश दिया, "रानी किन्नरा को मेरे दिए हुए सभी आभूषण पहनकर आना चाहिए।" उसने कहा, "मेरा शेर के सिर वाला आभूषण सुनार के पास है," और आने से इनकार कर दिया। जब दूसरा संदेश भेजा गया, तो वह केवल एक कान का आभूषण पहनकर आई। राजा ने पूछा, "तुम्हारा कान का आभूषण कहाँ है?" "सुनार के पास।" उसने सुनार को बुलवाया और कहा, "आप इस महिला को उसका कान का आभूषण क्यों नहीं दे रहे हैं?" "महाराज, मेरे पास नहीं है।" राजा क्रोधित हो गया और बोला, "हे दुष्ट, नीच स्त्री! तेरा सुनार मेरे जैसा ही पुरुष होना चाहिए।" ऐसा कहते हुए उसने कान की बाली उसके सामने फेंक दी और पुजारी से कहा, "मित्र, तुमने सही कहा; जाओ और उसका सिर कटवा दो।" उसने उसे महल के एक कोने में बंद कर दिया और राजा के पास आकर बोला, "महाराज, रानी किन्नरा पर क्रोधित न हों: सभी स्त्रियाँ एक समान होती हैं। यदि आप देखना चाहते हैं कि स्त्रियाँ कितनी अनैतिक होती हैं, तो मैं आपको उनकी दुष्टता और छल दिखा दूँगा। आइए, हम वेश बदलकर देश चलें।" राजा तुरंत मान गया और अपना राज्य अपनी माता को सौंपकर अपने पुजारी के साथ यात्रा पर निकल पड़ा। जब वे एक मील (4.23 किमी) की यात्रा करके मुख्य सड़क के किनारे बैठे, तो एक धनी व्यक्ति, जो अपने पुत्र के लिए विवाह समारोह आयोजित कर रहा था, ने दुल्हन को एक बड़ी गाड़ी में बिठाया और उसके साथ एक बड़ा दल चल रहा था। यह देखकर पुजारी ने कहा, "अगर आप चाहें तो इस लड़की को अपने साथ दुराचार करने के लिए मजबूर कर सकते हैं।" "क्या कहते हो मेरे दोस्त? इस बड़े अंगरक्षक दल के साथ यह असंभव है।"“तो फिर इसे देखिए, महाराज?” और आगे बढ़कर उसने मुख्य सड़क से कुछ दूर एक तंबू के आकार का पर्दा लगाया और राजा को उसके अंदर बिठाकर स्वयं सड़क के किनारे बैठकर रोने लगा। तब उस सज्जन ने यह देखकर पूछा, “मित्र, आप क्यों रो रहे हैं?” उसने कहा, “मेरी

पत्नी गर्भवती थी और मैं उसे उसके घर ले जाने के लिए यात्रा पर निकला था, लेकिन रास्ते में ही उसे प्रसव पीड़ा होने लगी और वह पर्दों के अंदर कष्ट में है। उसके साथ कोई स्त्री नहीं है और मैं उसके पास नहीं जा सकता। मुझे नहीं पता कि क्या होगा।" "उसके साथ एक स्त्री होनी चाहिए: रोइए मत, यहाँ बहुत सी स्त्रियाँ हैं; उनमें से कोई न कोई उसके पास जाएगी।" "तो फिर इस लड़की को आने दीजिए; यह लड़की के लिए शुभ संकेत होगा।" उसने सोचा, "वह जो कह रहा है वह सच है: यह मेरी बहू के लिए शुभ होगा।" उसे अनेक पुत्र और पुत्रियाँ प्राप्त होंगी," और वह उसे वहाँ ले गया। तंबू के भीतर जाते ही उसे राजा से पहली नज़र में ही प्रेम हो गया और उसने उसके साथ दुराचार किया, और राजा ने उसे अपनी मुहरबंद अंगूठी दे दी। जब काम पूरा हो गया और वह तंबू से बाहर आई तो लोगों ने उससे पूछा, "उसने किसे जन्म दिया है?" "एक लड़का जो सोने के रंग का है?" तो वह सज्जन उसे लेकर चला गया। पुजारी राजा के पास आया और बोला, "महाराज, आपने देखा है कि एक युवती भी इतनी दुष्ट है। अन्य स्त्रियाँ कितनी अधिक दुष्ट होंगी?" "महोदय, क्या आपने उसे कुछ दिया?" "हाँ, मैंने उसे अपनी अंगूठी दी।" "मैं उसे इसे रखने नहीं दूँगा।" और वह जल्दी से उनके पीछे गया और रथ को पकड़ लिया, और जब उन्होंने पूछा, "इसका क्या मतलब है?" तो उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी गई अंगूठी लेकर चली गई है: अंगूठी लौटा दो, महोदया।" अंगूठी देते हुए उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मारते हुए कहा, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस इतना ही काफी है; अब हम कहीं और चलते हैं, महाराज।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? चलो वापस चलते हैं।" तो वे सीधे बनारस अपने घर चले गए। पुजारी ने कहा, "महाराज, सभी स्त्रियों का यही हाल है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट है।" "रानी किन्नरा को क्षमा कर दो।" अपने पुजारी की प्रार्थना पर उसने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु उसे महल से निकाल दिया। और जब उसने उसे निकाल दिया, तो उसने दूसरी रानी चुनी, और लंगड़ी को भगा दिया तथा गुलाब-बाँह की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाल पंचालचंद था। अतः अपने आँखों देखे हुए प्रसंग को उदाहरण के रूप में बताते हुए उसने यह श्लोक कहा:"मित्र, तुम क्यों रो रहे हो?" उसने कहा, "मेरी पत्नी गर्भवती थी और मैं उसे उसके घर ले जाने के लिए यात्रा पर निकला था, लेकिन रास्ते में ही उसे प्रसव पीड़ा होने लगी और वह तम्बू के अंदर कष्ट में है। उसके साथ कोई स्त्री नहीं है और मैं उसके पास नहीं जा सकता। मुझे नहीं पता कि क्या होगा।" "उसके साथ एक स्त्री होनी चाहिए: रोओ मत, यहाँ बहुत सी स्त्रियाँ हैं; उनमें से कोई न कोई उसके पास जाएगी।" "तो फिर इस लड़की को आने दो; यह लड़की के लिए शुभ संकेत होगा।" उसने सोचा, "वह जो कह रहा है वह सच है: यह मेरी बहू के लिए शुभ होगा। उसे अनेक पुत्र और पुत्रियों का आशीर्वाद मिलेगा," और वह उसे वहाँ ले आया। तम्बू के अंदर जाते ही उसे राजा से पहली नज़र में ही प्रेम हो गया और उसने उसके साथ अनुचित व्यवहार किया, और राजा ने उसे अपनी मुहरबंद अंगूठी दे दी। जब यह सब हो गया और वह तम्बू से बाहर आई तो लोगों ने उससे पूछा, "उसने किसे जन्म दिया है?" "एक लड़का, सुनहरे रंग का?" तो वह सज्जन उसे लेकर चले गए। पुजारी राजा के पास आया और बोला, "महाराज, आपने देखा है कि एक युवती भी इतनी दुष्ट है। अन्य स्त्रियाँ कितनी दुष्ट होंगी? कृपया बताइए, क्या आपने उसे कुछ दिया?" "हाँ, मैंने उसे अपनी अंगूठी दी।" "मैं उसे इसे रखने नहीं दूँगा।" और वह जल्दी से उनके पीछे गया और रथ को पकड़ लिया, और जब उन्होंने पूछा, "इसका क्या अर्थ है?" तो उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी गई अंगूठी लेकर चली गई है: अंगूठी लौटा दो, महोदया।" अंगूठी देते समय उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मारते हुए कहा, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस करो; अब हम कहीं और चलते हैं, महाराज।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? चलो वापस चलते हैं।" तो वे सीधे बनारस अपने घर चले गए। पुजारी ने कहा, "हे महाराज, सभी स्त्रियों का यही हाल होता है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट होता है। रानी किन्नरा को क्षमा कर दीजिए।" पुजारी की प्रार्थना पर उन्होंने किन्नरा को क्षमा कर दिया, परन्तु उसे महल से निकाल दिया। उसे निकालने के बाद उन्होंने दूसरी रानी चुनी, और लंगड़ी को भगा दिया तथा गुलाब-बाँह की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाल पंचालचंद थे। अतः अपने आँखों देखे हुए प्रसंग को उदाहरण के रूप में बताते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:"मित्र, तुम क्यों रो रहे हो?" उसने कहा, "मेरी पत्नी गर्भवती थी और मैं उसे उसके घर ले जाने के लिए यात्रा पर निकला था, लेकिन रास्ते में ही उसे प्रसव पीड़ा होने लगी और वह तम्बू के अंदर कष्ट में है। उसके साथ कोई स्त्री नहीं है और मैं उसके पास नहीं जा सकता। मुझे नहीं पता कि क्या होगा।" "उसके साथ एक स्त्री होनी चाहिए: रोओ मत, यहाँ बहुत सी स्त्रियाँ हैं; उनमें से कोई न कोई उसके पास जाएगी।" "तो फिर इस लड़की को आने दो; यह लड़की के लिए शुभ संकेत होगा।" उसने सोचा, "वह जो कह रहा है वह सच है: यह मेरी बहू के लिए शुभ होगा। उसे अनेक पुत्र और पुत्रियों का आशीर्वाद मिलेगा," और वह उसे वहाँ ले आया। तम्बू के अंदर जाते ही उसे राजा से पहली नज़र में ही प्रेम हो गया और उसने उसके साथ अनुचित व्यवहार किया, और राजा ने उसे अपनी मुहरबंद अंगूठी दे दी। जब यह सब हो गया और वह तम्बू से बाहर आई तो लोगों ने उससे पूछा, "उसने किसे जन्म दिया है?" "एक लड़का, सुनहरे रंग का?" तो वह सज्जन उसे लेकर चले गए। पुजारी राजा के पास आया और बोला, "महाराज, आपने देखा है कि एक युवती भी इतनी दुष्ट है। अन्य स्त्रियाँ कितनी दुष्ट होंगी? कृपया बताइए, क्या आपने उसे कुछ दिया?" "हाँ, मैंने उसे अपनी अंगूठी दी।" "मैं उसे इसे रखने नहीं दूँगा।" और वह जल्दी से उनके पीछे गया और रथ को पकड़ लिया, और जब उन्होंने पूछा, "इसका क्या अर्थ है?" तो उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी गई अंगूठी लेकर चली गई है: अंगूठी लौटा दो, महोदया।" अंगूठी देते समय उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मारते हुए कहा, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस करो; अब हम कहीं और चलते हैं, महाराज।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? चलो वापस चलते हैं।" तो वे सीधे बनारस अपने घर

चले गए। पुजारी ने कहा, "हे महाराज, सभी स्त्रियों का यही हाल होता है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट होता है। रानी किन्नरा को क्षमा कर दीजिए।" पुजारी की प्रार्थना पर उन्होंने किन्नरा को क्षमा कर दिया, परन्तु उसे महल से निकाल दिया। उसे निकालने के बाद उन्होंने दूसरी रानी चुनी, और लंगड़ी को भगा दिया तथा गुलाब-बाँह की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाल पंचालचंद थे। अतः अपने आँखों देखे हुए प्रसंग को उदाहरण के रूप में बताते हुए उन्होंने यह श्लोक कहा:"अच्छा, तो इस लड़की को आने दो; यह लड़की के लिए शुभ संकेत होगा।" उसने सोचा, "वह जो कह रहा है वह सच है: यह मेरी बहू के लिए शुभ होगा। उसे कई पुत्र और पुत्रियाँ प्राप्त होंगी," और वह उसे वहाँ ले आया। तंबू के अंदर जाते ही उसे राजा से पहली नज़र में ही प्रेम हो गया और उसने उसके साथ दुराचार किया, और राजा ने उसे अपनी मुहरबंद अंगूठी दे दी। जब काम पूरा हो गया और वह तंबू से बाहर आई तो लोगों ने उससे पूछा, "उसने किसे जन्म दिया है?" "सोने के रंग का एक लड़का?" तो वह सज्जन उसे लेकर चला गया। पुजारी राजा के पास आया और बोला, "महाराज, आपने देखा है कि एक युवती भी इतनी दुष्ट है। अन्य स्त्रियाँ कितनी अधिक दुष्ट होंगी?" "महोदय, क्या आपने उसे कुछ दिया?" "हाँ, मैंने उसे अपनी अंगूठी दी।" "मैं उसे इसे रखने नहीं दूँगा।" और वह जल्दी से उनके पीछे गया और रथ को पकड़ लिया, और जब उन्होंने पूछा, "इसका क्या मतलब है?" तो उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी गई अंगूठी लेकर चली गई है: अंगूठी लौटा दो, महोदया।" अंगूठी देते हुए उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मारते हुए कहा, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस इतना ही काफी है; अब हम कहीं और चलते हैं, महाराज।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? चलो वापस चलते हैं।" तो वे सीधे बनारस अपने घर चले गए। पुजारी ने कहा, "महाराज, सभी स्त्रियों का यही हाल है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट है।" "रानी किन्नरा को क्षमा कर दो।" अपने पुजारी की प्रार्थना पर उसने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु उसे महल से निकाल दिया। और जब उसने उसे निकाल दिया, तो उसने दूसरी रानी चुनी, और लंगड़ी को भगा दिया तथा गुलाब-बाँह की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाल पंचालचंद था। अतः अपने आँखों देखे हुए प्रसंग को उदाहरण के रूप में बताते हुए उसने यह श्लोक कहा:"अच्छा, तो इस लड़की को आने दो; यह लड़की के लिए शुभ संकेत होगा।" उसने सोचा, "वह जो कह रहा है वह सच है: यह मेरी बहू के लिए शुभ होगा। उसे कई पुत्र और पुत्रियाँ प्राप्त होंगी," और वह उसे वहाँ ले आया। तंबू के अंदर जाते ही उसे राजा से पहली नज़र में ही प्रेम हो गया और उसने उसके साथ दुराचार किया, और राजा ने उसे अपनी मुहरबंद अंगूठी दे दी। जब काम पूरा हो गया और वह तंबू से बाहर आई तो लोगों ने उससे पूछा, "उसने किसे जन्म दिया है?" "सोने के रंग का एक लड़का?" तो वह सज्जन उसे लेकर चला गया। पुजारी राजा के पास आया और बोला, "महाराज, आपने देखा है कि एक युवती भी इतनी दुष्ट है। अन्य स्त्रियाँ कितनी अधिक दुष्ट होंगी?" "महोदय, क्या आपने उसे कुछ दिया?" "हाँ, मैंने उसे अपनी अंगूठी दी।" "मैं उसे इसे रखने नहीं दूँगा।" और वह जल्दी से उनके पीछे गया और रथ को पकड़ लिया, और जब उन्होंने पूछा, "इसका क्या मतलब है?" तो उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी गई अंगूठी लेकर चली गई है: अंगूठी लौटा दो, महोदया।" अंगूठी देते हुए उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मारते हुए कहा, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस इतना ही काफी है; अब हम कहीं और चलते हैं, महाराज।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? चलो वापस चलते हैं।" तो वे सीधे बनारस अपने घर चले गए। पुजारी ने कहा, "महाराज, सभी स्त्रियों का यही हाल है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट है।" "रानी किन्नरा को क्षमा कर दो।" अपने पुजारी की प्रार्थना पर उसने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु उसे महल से निकाल दिया। और जब उसने उसे निकाल दिया, तो उसने दूसरी रानी चुनी, और लंगड़ी को भगा दिया तथा गुलाब-बाँह की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाल पंचालचंद था। अतः अपने आँखों देखे हुए प्रसंग को उदाहरण के रूप में बताते हुए उसने यह श्लोक कहा:"इसका क्या अर्थ है?" उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी अंगूठी लेकर चली गई है: हे महिला, अंगूठी लौटा दो।" अंगूठी लौटाते हुए उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मार दी और बोली, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस इतना ही काफी है; महाराज, अब हम कहीं और चलते हैं।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? हमें वापस लौटना चाहिए।" इसलिए वे सीधे बनारस लौट गए। पुजारी ने कहा, "महाराज, सभी स्त्रियों का यही स्वभाव है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट है। रानी किन्नरा को क्षमा कर दीजिए।" पुजारी की प्रार्थना पर उन्होंने उसे क्षमा कर दिया, लेकिन उसे महल से निकाल दिया। और जब उन्होंने उसे वहाँ से निकाल दिया, तो उन्होंने दूसरी रानी को चुना, और लंगड़ी को भगा दिया और गुलाब-बहुल की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाला पंचालचंद थे। अतः उन्होंने अपने द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखी गई घटना का वर्णन करते हुए, उदाहरण के रूप में यह श्लोक कहा:"इसका क्या अर्थ है?" उसने कहा, "यह लड़की मेरी ब्राह्मण पत्नी द्वारा तकिये पर रखी अंगूठी लेकर चली गई है: हे महिला, अंगूठी लौटा दो।" अंगूठी लौटाते हुए उसने ब्राह्मण के हाथ पर खरोंच मार दी और बोली, "ले लो, बदमाश।" इस प्रकार ब्राह्मण ने कई तरीकों से राजा को दिखाया कि कई अन्य स्त्रियाँ भी दुराचार की दोषी हैं, और कहा, "यहाँ बस इतना ही काफी है; महाराज, अब हम कहीं और चलते हैं।" राजा पूरे भारत में घूमे, और उन्होंने कहा, "सभी स्त्रियाँ एक जैसी होती हैं। वे हमारे लिए क्या हैं? हमें वापस लौटना चाहिए।" इसलिए वे सीधे बनारस लौट गए। पुजारी ने कहा, "महाराज, सभी स्त्रियों का यही स्वभाव है; उनका स्वभाव इतना दुष्ट है। रानी किन्नरा को क्षमा कर दीजिए।" पुजारी की प्रार्थना पर उन्होंने उसे क्षमा कर दिया, लेकिन उसे महल से निकाल दिया। और जब उन्होंने उसे वहाँ से निकाल दिया, तो उन्होंने दूसरी रानी को चुना, और लंगड़ी को भगा दिया और

गुलाब-बहुल की शाखा को काटने का आदेश दिया। उस समय कुणाला पंचालचंद थे। अतः उन्होंने अपने द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखी गई घटना का वर्णन करते हुए, उदाहरण के रूप में यह श्लोक कहा:

कंदारी और किन्नरा की कथा से इतना स्पष्ट होता है कि
सभी स्त्रियाँ अपने घर में आनंद नहीं पा पातीं।
इस प्रकार एक पत्नी अपने पति को, चाहे वह कितना भी बलवान और शक्तिशाली क्यों न हो, त्याग देती है
और किसी भी अन्य पुरुष के साथ, चाहे वह लंगड़ा ही क्यों न हो, गलत राह पर चल पड़ती है।

एक और कहानी यह है: एक समय की बात है, बनारस के राजा बाका ने अपने राज्य पर विधिपूर्वक शासन किया। उस समय बनारस के पूर्वी द्वार के पास रहने वाले एक गरीब व्यक्ति की एक पुत्री थी जिसका नाम पंचपा (*37) था। कहा जाता है कि पिछले जन्म में वह एक गरीब व्यक्ति की पुत्री के रूप में मिट्टी गूंथ रही थी और दीवार पर प्लास्टर कर रही थी। तभी एक पच्चेकबुद्ध ने सोचा, "इस पहाड़ी गुफा को साफ-सुथरा बनाने के लिए मुझे मिट्टी कहाँ से मिलेगी? यह मुझे बनारस में मिल जाएगी।" इसलिए अपना लबादा ओढ़कर और हाथ में कटोरा लेकर वह शहर में गया और उस स्त्री से कुछ दूरी पर खड़ा हो गया। वह क्रोधित थी और उसे देखकर सोचने लगी, "अपने दुष्ट हृदय में वह भीख के साथ-साथ मिट्टी भी माँग रहा है।" पच्चेकबुद्ध बिना हिले-डुले वहीं खड़ा रहा। जब उसने देखा कि वह हिल नहीं रहा है, तो उसका मन बदल गया, और उसे फिर से देखकर उसने कहा, "पुजारी, आपके पास मिट्टी नहीं है," और उसने मिट्टी का एक बड़ा टुकड़ा लिया और उसे उसके कटोरे में डाल दिया, और उस मिट्टी से उसने अपनी गुफा को साफ-सुथरा कर दिया। और उस मिट्टी के टुकड़े के इनाम के तौर पर, उसका शरीर छूने में कोमल हो गया, लेकिन उसके क्रोधित रूप के कारण उसके हाथ, पैर, मुंह, आंखें और नाक बेहद बदसूरत हो गए, और इसलिए लोग उसे पंचपापा (पांच दोष) के नाम से जानने लगे। अब बनारस का राजा एक बार रात में शहर में घूम रहा था और इस जगह पर आया, और वह गांव की लड़कियों के साथ खेल रही थी, और राजा को न पहचानकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया। उसके स्पर्श के परिणामस्वरूप राजा ने अपना सारा नियंत्रण खो दिया, और मानो उसे किसी दिव्य स्पर्श का अनुभव हुआ हो, और वासना से भर कर उसने उसका हाथ पकड़ लिया, हालांकि वह देखने में बेहद बदसूरत थी, और पूछा कि वह किसकी बेटी है। जब उसने उत्तर दिया, "द्वार के पास रहने वाले की बेटी," (*38) और उसने सुना कि वह अविवाहित है, तो उसने कहा, "मैं तुम्हारा पति बनूँगा: जाओ और अपने माता-पिता से सहमति ले लो।" वह अपने माता-पिता के पास गई और बोली, "एक आदमी मुझसे शादी करना चाहता है।" उनके सहमत होने पर, और यह कहने पर कि, "वह भी एक गरीब, दयनीय प्राणी होगा, अगर वह आप जैसी स्त्री से शादी करना चाहता है," वह आई और उसे बताया कि उसके माता-पिता सहमत हो गए हैं। इसलिए वह उसी घर में उसके साथ रहने लगा, और सुबह-सुबह अपने महल की ओर चल पड़ा। उस दिन से राजा लगातार भेस बदलकर वहाँ आता था, और किसी दूसरी स्त्री की ओर देखता भी नहीं था। अब एक दिन उसके पिता को खूनी दस्त हो गए। उनकी बीमारी का इलाज दूध, घी (स्पष्ट मक्खन), शहद और चीनी से बनी चावल की दलिया की निरंतर आपूर्ति थी, और यह उनकी गरीबी के कारण वे प्राप्त नहीं कर सके। तब माँ ने बेटी से कहा, "मेरी प्यारी, क्या तुम्हारा पति हमारे लिए कुछ चावल की दलिया ला सकता है?" “प्यारी माँ,” उसने कहा, “मेरे पति तो हमसे भी ज़्यादा गरीब होंगे; लेकिन अगर ऐसा है भी, तो मैं उनसे पूछ लूँगी: चिंता मत करो।” इतना कहकर, उसके लौटने के समय के आसपास, वह मानो बहुत दुखी होकर बैठ गई। जब राजा आया तो उसने पूछा कि वह इतनी उदास क्यों है, और बात सुनकर उसने कहा, “मेरी प्यारी,मुझे यह शक्तिशाली औषधि कहाँ से मिलेगी?” और उसने सोचा, “मैं इस तरह बार-बार यहाँ नहीं आ सकता; आने-जाने में होने वाले जोखिम पर विचार करना चाहिए; लेकिन अगर मैं उसे दरबार में ले जाऊँ, उसकी कोमल स्पर्श क्षमता से अनजान रहते हुए, तो वे मेरा मज़ाक उड़ाएँगे और कहेंगे, “हमारे राजा एक प्रेतनी के साथ लौटे हैं।” लेकिन अगर मैं पूरे शहर को उसके स्पर्श से अवगत करा दूँ, तो मैं अपने ऊपर होने वाले सभी आरोपों से बच जाऊँगा।” इसलिए उसने उससे कहा, “मेरी प्रिय, परेशान मत हो: मैं तुम्हारे पिता के लिए चावल का दलिया लाता हूँ,” और ऐसा कहकर, उसके साथ आनंद लेने के बाद वह अपने महल लौट गया। अगले दिन उसने उसके लिए चावल का दलिया उबलवाया, और कुछ पत्ते लेकर उनसे दो टोकरियाँ बनाईं, एक में उसने दलिया रखा, और दूसरी में एक रत्नजड़ित मुकुट रखकर उन्हें बंद कर दिया। और रात को वह आया और बोला, “मेरी प्रिय, हम गरीब हैं: मैंने इसे बड़ी मुश्किल से प्राप्त किया है।” तुम्हें अपने पिता से कहना है, "आज इस टोकरी से चावल का दलिया खाओ, और कल उस टोकरी से।" उसने वैसा ही किया। उसके पिता ने थोड़ा सा दलिया खाकर ही तृप्त हो गए, क्योंकि यह बहुत पौष्टिक था। बचा हुआ दलिया उसने अपनी माँ को दे दिया और खुद भी खा लिया। तीनों बहुत प्रसन्न हुए और रत्नजड़ित मुकुट वाली टोकरी उन्होंने अगले दिन के लिए रख दी। राजा अपने महल पहुँचकर अपना चेहरा धोकर बोला, "मेरा मुकुट लाओ।" उनके यह कहने पर कि "हमें यह नहीं मिल रहा है," उसने कहा, "पूरे शहर में खोजो।" उन्होंने खोजा, लेकिन फिर भी नहीं मिला। "तो फिर," उसने कहा, "शहर के बाहर गरीबों के घरों में खोजो, सबसे पहले पत्तों से भरी टोकरियों में।" उन्होंने खोजा और एक घर में रत्नजड़ित मुकुट मिला। "इस स्त्री के माता-पिता चोर हैं," चिल्लाते हुए उन्होंने उन्हें बाँधकर राजा के पास लाया। तब उसके पिता ने कहा, "महाराज, हम चोर नहीं हैं; एक आदमी हमारे लिए यह रत्न लाया था।" "वह कौन था?" राजा ने पूछा। “मेरे दामाद,” उसने उत्तर दिया। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ है, तो उसने कहा, “मेरी बेटी जानती है।” फिर उसने उससे बात की। “मेरी प्यारी,” उसने कहा, “तुम जानती हो कि तुम्हारा पति कौन है।” “मैं नहीं जानती।” “अगर ऐसा है, तो हम बर्बाद हो गए।” “प्रिय पिता, वह अंधेरा होने पर आता है और उजाला होने से पहले चला जाता है, इसलिए मैं उसका चेहरा नहीं जानती, लेकिन मैं उसे उसके हाथ के स्पर्श से पहचान सकती हूँ।” उसके पिता ने यह बात राजा के

अधिकारियों को बताई, और उन्होंने राजा को बता दी। राजा ने पूरी बात से अनभिज्ञ होने का नाटक करते हुए कहा, “ठीक है, उस स्त्री को महल के प्रांगण में एक तंबू के पर्दे में रख दो और पर्दे में एक आदमी के हाथ जितना बड़ा छेद कर दो और नागरिकों को इकट्ठा करो, और चोर को उसके हाथ के स्पर्श से पहचानो।” अधिकारियों ने वैसा ही किया जैसा उसने उनसे कहा था। उसके पास जाकर और उसे देखकर वे घृणा से भर गए, और कहा,“वह एक प्रेत है,” और घृणा के मारे उन्होंने उसे छूने की हिम्मत नहीं की। लेकिन वे उसे महल के प्रांगण में एक पर्दे के पीछे ले आए और सभी नागरिकों को इकट्ठा किया। जैसे ही कोई व्यक्ति उस छेद से अपना हाथ बाहर निकालता, वह उसका हाथ पकड़कर कहती, “यह वह आदमी नहीं है।” लोग उसके दिव्य स्पर्श से इतने मोहित हो गए कि वे उससे अलग नहीं हो सके। उन्होंने सोचा, “यदि वह दंड के योग्य है, भले ही हमें उसे लाठी से मारना पड़े, फिर भी हम उसके लिए कोई भी दासतापूर्ण कार्य करने को तैयार हैं, और उसे अपनी विवाहित पत्नी के रूप में घर ले जाएंगे।” तब राजा के आदमियों ने उन्हें पीटा और भगा दिया, और वे सभी, वायसराय से शुरू होकर, पागलों की तरह व्यवहार करने लगे। तब राजा ने कहा, “क्या मैं ही वह आदमी हो सकता हूँ?” और अपना हाथ आगे बढ़ाया। उस स्त्री ने उसका हाथ पकड़कर जोर से चिल्लाया, “मैंने चोर को पकड़ लिया है।” राजा ने अपने आदमियों से पूछा, “जब उसने तुम्हारा हाथ पकड़ा, तो तुमने क्या सोचा?” उन्होंने राजा को सब कुछ स्पष्ट-स्पष्ट बता दिया। तब राजा ने कहा, "इसीलिए मैंने उन्हें उसे अपने घर लाने के लिए कहा था। यदि उन्हें उसके स्पर्श के बारे में कुछ भी पता न होता, तो वे मेरा तिरस्कार करते। अब जब तुम सबने मुझसे सच्चाई जान ली है, तो बताओ कि वह किसके घर में पत्नी के रूप में रहेगी?" उन्होंने कहा, "महाराज, आपके घर में।" तब, विधिपूर्वक जल छिड़काव के साथ, राजा ने उसे अपनी मुख्य पत्नी के रूप में स्वीकार किया और उसके माता-पिता को अपार शक्ति प्रदान की। तब से अपने मोह में डूबे राजा ने न तो उसके बारे में कोई पूछताछ की और न ही किसी अन्य स्त्री की ओर देखा। अन्य रानियों ने उसके रहस्य को जानने का प्रयास किया। एक दिन उसने सपने में कुछ संकेत देखा कि वह दो राजाओं की मुख्य रानी होगी, और उसने अपना सपना राजा को बताया। राजा ने स्वप्न व्याख्याकारों को बुलाया और पूछा, "उसने जो सपना देखा है उसका क्या अर्थ है?" अब उन्हें दूसरी स्त्रियों से रिश्वत मिल गई थी, और उन्होंने कहा, "रानी का एकदम सफेद हाथी की पीठ पर बैठना आपकी मृत्यु का संकेत है, और हाथी की पीठ पर सवार होकर चंद्रमा को छूना इस बात का संकेत है कि वह आपके विरुद्ध किसी शत्रु राजा को लाएगी।" "तो फिर क्या किया जाए?" उसने पूछा। "महाराज, आप उसे मार नहीं सकते, बल्कि आपको उसे एक जहाज पर बिठाकर नदी में बहा देना चाहिए।" राजा ने रात में उसे भोजन, वस्त्र और आभूषणों के साथ जहाज पर बिठाया और नदी में बहा दिया। जैसे-जैसे वह नदी के साथ बहती हुई जहाज में जा रही थी, उसका सामना राजा पवारिया से हुआ, जो नदी में आनंद ले रहा था। उसके सेनापति ने उसे देखकर कहा, "यह जहाज मेरा है।" राजा ने कहा, "इसका माल मेरा है," और जब जहाज उनके पास पहुँचा और उन्होंने उस स्त्री को देखा तो उसने कहा, "तुम कौन हो, जो बिल्कुल प्रेत जैसी दिखती हो?" उसने मुस्कुराते हुए कहा कि वह राजा बाका की मुख्य पत्नी है, और उसने उसे अपनी पूरी कहानी सुनाई।और वह पूरे भारत में पंचपपा के नाम से प्रसिद्ध थी। तब राजा ने उसका हाथ पकड़कर उसे जहाज से बाहर निकाला, और हाथ पकड़ते ही उसके स्पर्श से वह वासना से भर उठा, और अपनी अन्य पत्नियों को स्त्री कहलाने के योग्य नहीं समझा, और उसे मुख्य रानी का पद दिया, और वह उसे अपने प्राणों के समान प्रिय थी। बाका ने यह सब सुनकर कहा, "मैं उसे अपनी रानी नहीं बनने दूँगा," और सेना जुटाकर नदी के दूसरी ओर एक बंदरगाह में डेरा डाला, और यह संदेश भेजा कि पावरिया या तो अपनी पत्नी को सौंप दे या युद्ध करे। उसका प्रतिद्वंद्वी युद्ध के लिए तैयार था, लेकिन दोनों राजाओं के सलाहकारों ने कहा, "एक स्त्री के लिए मरने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके पहले पति होने के नाते वह बाका की है, लेकिन उसके द्वारा उसे जहाज से बचाने के कारण वह पावरिया की है। इसलिए उसे सात-सात दिनों के लिए बारी-बारी से दोनों के घर में रहने दिया जाए।" काफी विचार-विमर्श के बाद उन्होंने दोनों राजाओं को इस विचार के लिए राजी कर लिया, और वे दोनों अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने नदी के दोनों किनारों पर नगर बसाए और वहाँ निवास करने लगे। उस स्त्री ने दोनों राजाओं की प्रधान पत्नी का पद स्वीकार कर लिया, और वे दोनों उस पर मोहित हो गए। वह उनमें से एक के घर में सात दिन रही, फिर एक नाव से दूसरे के घर चली गई। नदी के मध्य में उसने नाव चलाने वाले नाविक, जो एक लंगड़ा और गंजा बूढ़ा व्यक्ति था, के साथ दुर्व्यवहार किया। उस समय पक्षियों का राजा कुनाला, बाका था, और उसने इस घटना को अपनी आँखों से देखी हुई घटना के रूप में वर्णित किया, और इसे समझाने के लिए उसने इस श्लोक को दोहराया:और वे दोनों उस पर मोहित हो गए थे। वह उनमें से एक के घर में सात दिन रही, फिर एक जहाज से दूसरे के घर चली गई, और जब वह नदी के बीच में थी, तो उसने जहाज के नाविक, एक लंगड़े और गंजे बूढ़े आदमी के साथ दुर्व्यवहार किया। उस समय पक्षियों का राजा कुनाला बाका था, और इसलिए उसने इसे अपनी आँखों से देखी हुई घटना के रूप में बताया, और इसे समझाने के लिए उसने इस श्लोक को दोहराया:और वे दोनों उस पर मोहित हो गए थे। वह उनमें से एक के घर में सात दिन रही, फिर एक जहाज से दूसरे के घर चली गई, और जब वह नदी के बीच में थी, तो उसने जहाज के नाविक, एक लंगड़े और गंजे बूढ़े आदमी के साथ दुर्व्यवहार किया। उस समय पक्षियों का राजा कुनाला बाका था, और इसलिए उसने इसे अपनी आँखों से देखी हुई घटना के रूप में बताया, और इसे समझाने के लिए उसने इस श्लोक को दोहराया:

पवारिका और बका की पत्नी भी,
(दो ऐसे राजा जिनकी वासना की कोई सीमा नहीं थी)
अपने समर्पित पति के दास के साथ पाप करती है;
वह किस नीच दुष्ट के साथ दुराचार नहीं करेगी?

एक और कहानी: एक समय की बात है, ब्रह्मदत्त की पत्नी, पिंगियानी, ने अपनी खिड़की खोली और बाहर देखा तो उसे एक दूल्हा दिखाई दिया। जब राजा सो गए, तो वह खिड़की से नीचे उतर गई और उसके साथ दुराचार किया। फिर वह वापस महल में चढ़ गई और इत्र लगाकर राजा के साथ लेट गई। एक दिन राजा ने सोचा, "मुझे आश्चर्य है कि आधी रात को रानी का शरीर हमेशा ठंडा क्यों रहता है: मुझे इसकी जांच करनी चाहिए।" तो एक दिन उसने सोने का नाटक किया और उठकर उसके पीछे गया और उसे एक दूल्हे के साथ दुराचार करते हुए देखा। वह वापस अपने कमरे में गया और देखा कि व्यभिचार करने के बाद वह भी आकर पलंग पर लेट गई। अगले दिन राजा ने अपने मंत्रियों के सामने उसे बुलाया और उसके दुराचार का खुलासा करते हुए कहा, "सभी स्त्रियाँ एक समान पापी हैं।" उसने उसका अपराध क्षमा कर दिया, हालाँकि इसके लिए उसे मृत्युदंड, कारावास, अंग-भंग या चीर-फाड़ की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसने उसे उच्च पद से हटा दिया और किसी और को अपनी रानी बना लिया। उस समय कुणाल राजा ब्रह्मदत्त थे, और इसीलिए उन्होंने यह कहानी इस प्रकार सुनाई जैसे उन्होंने इसे स्वयं अपनी आँखों से देखा हो, और उदाहरण के तौर पर उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

सुंदर पिंगियानी ब्रह्मदत्त की प्रिय पत्नी थी
, जो पृथ्वी के सर्वविजयी स्वामी थे,
फिर भी उसने अपने समर्पित पति के दास के साथ पाप किया,
और व्यभिचार के कारण राजा और बेईमानी दोनों को खो दिया।
पुरानी कहानियों में महिलाओं के पापों का वर्णन करने के बाद, एक और तरीके से, उनके कुकर्मों के बारे में बात करते हुए, उन्होंने कहा:

स्त्रियाँ बेचारी, कमजोर प्राणी हैं, कृतघ्न और धोखेबाज हैं।
अगर कोई पुरुष उन पर मोहित न हो तो वह उनकी बातों पर विश्वास नहीं करेगा।
वे कर्तव्य की पुकार या कृतज्ञता की निवेदन पर जरा भी ध्यान नहीं देते,
माता-पिता के प्रेम और भाईचारे के बंधनों के प्रति असंवेदनशील रहते हैं,
न्याय के हर नियम का उल्लंघन करते हुए, वे निर्लज्जतापूर्वक
अपने सभी कार्यों में अपने हृदय की इच्छा का पालन करते हैं।
चाहे वे उसके साथ कितने ही समय तक रहें, चाहे वह कितना ही दयालु और प्रेममय हो, चाहे
उसका हृदय कितना ही कोमल हो और वह उनके लिए जीवन के समान प्रिय हो,
संकट और संकट के समय में वे उसे छोड़ ही देंगे और छोड़ना ही पड़ेगा,
क्योंकि मैं महिलाओं पर कभी भरोसा नहीं कर सकता।
कितनी बार स्त्री का मन चंचल बंदर की तरह पाया जाता है,
या किसी पेड़ की छाया की तरह जो ऊँचाई (*39) या गहराई पर पड़ती है,
स्त्री के हृदय में बसा उद्देश्य भी कितना परिवर्तनशील होता है,
जैसे पहिए का टायर बिना रुके या आराम किए तेज़ी से घूमता है।
जब भी वे सोच-समझकर चारों ओर देखते हैं और
किसी धनी व्यक्ति को अपने वश में करने और उसे अपना शिकार बनाने का रास्ता पाते हैं, तो
वे ऐसे भोले-भाले लोगों को मीठी-मीठी बातों से अपने वश में कर लेते हैं,
ठीक वैसे ही जैसे कंबोडियाई घुड़सवार जड़ी-बूटियों से सबसे उग्र घोड़े को भी वश में कर लेता है।

लेकिन अगर वे सावधानीपूर्वक चारों ओर देखने के बावजूद उसकी संपत्ति पर कब्जा करने और उसे अपना शिकार बनाने का रास्ता नहीं देख पाते ,
तो वे उसे भगा देते हैं, मानो वह सबसे दूर के किनारे पर पहुँच गया हो
और उस नौका को छोड़ देता है जिसकी उसे फिर कभी आवश्यकता नहीं होगी।
भयंकर भस्म कर देने वाली ज्वाला की तरह वे उसे अपने आलिंगन में जकड़ लेते हैं,
या फिर बाढ़ की धारा की तरह उसे बहा ले जाते हैं;
वे उस व्यक्ति को भी उतना ही लुभाते हैं जितना कि उससे जिसे वे प्यार करते हैं,
ठीक वैसे ही जैसे कोई जहाज पास और दूर के किनारों को समान रूप से गले लगाता है।
वे एक या दो लोगों से संबंधित नहीं हैं, वे खुले बाड़े की तरह हैं,
जैसे कोई जाल से हवा पकड़ सकता है, जैसे महिलाएं अपना दबदबा बनाए रखती हैं।
नदी, सड़क, या पीने के पानी का शेड (*40), सभा भवन या सराय की तरह,
वैसे ही सभी के लिए महिलाएं स्वतंत्र हैं, कोई सीमा उनके पाप की जाँच नहीं करती।

वे काले सर्प के सिर की तरह गिरे हुए हैं, आग की तरह भूखे हैं,
गायों की तरह उत्तम घास चुनने वाले, वे तीव्र इच्छाओं के प्रेमी हैं।
हाथी, काले सर्प और घी से जलने वाली ज्वाला से,
राजा नियुक्त पुरुष और स्त्री से हमें दूर रहना चाहिए।
जो भी सावधान रहेगा, इन सभी को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानेगा।
वास्तव में, इनके स्वभाव को जानना अत्यंत कठिन है।
जो महिलाएं बहुत चतुर हों या देखने में बहुत सुंदर हों,
और जिनकी कई पुरुष प्रशंसा करते हों—उन सभी से बचना चाहिए:
पड़ोसी की पत्नी और वह जो किसी धनी पुरुष को अपना जीवनसाथी बनाना चाहती हो,
इस तरह की पांचों महिलाओं से किसी भी पुरुष को संबंध नहीं बनाना चाहिए।

जब उन्होंने ऐसा कहा तो लोगों ने उस महान व्यक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा, "वाह, बहुत खूब!" और इन उदाहरणों में स्त्रियों के दोषों का वर्णन करने के बाद वे चुप हो गए। उन्हें सुनकर गिद्ध राजा आनंद ने कहा, "मेरे मित्र कुणाल, मैं भी अपने ज्ञान के बल पर स्त्रियों के दोषों का वर्णन करूँगा," और उन्होंने उनका वर्णन करना शुरू कर दिया। भगवान बुद्ध ने उदाहरण देते हुए कहा: "तब, सचमुच, गिद्ध राजा आनंद ने कुणाल पक्षी के कथन के आरंभ, मध्य और अंत को चिह्नित करते हुए, इस समय ये श्लोक कहे:

भले ही इस दुनिया में सोने के गहनों से परिपूर्ण पुरुष को
स्त्री का स्नेह प्राप्त हो,
फिर भी अवसर मिलने पर वह उसे अपमानित भी कर सकती है।
सावधान रहो, अन्यथा तुम ऐसी दुष्ट स्त्रियों के हाथों में पड़ जाओगे।
वह मर्दाना जोश (*41) दिखा सकता है, सांसारिक कलंक से मुक्त हो सकता है,
उसका प्रेमी शायद आकर्षण और प्रेममय हो,
मुसीबत और संकट के समय में वाह उसे छोड़ ही देगी, और उसे छोड़ना ही पड़ेगा,
लेकिन स्त्री जाति होने के नाते मैं कभी उस पर भरोसा नहीं कर सकती।
उसे इस बात पर भरोसा नहीं करना चाहिए कि "मुझे लगता है कि वह मुझे पसंद करती है,"
और न ही उसे इस बात पर भरोसा करना चाहिए कि उसके सामने उसकी आँखों से अक्सर आँसू बहते हैं;
वे उस आदमी को भी उतना ही लुभाती हैं जितना कि उस आदमी को जिसे वे प्यार करती हैं,
ठीक वैसे ही जैसे एक जहाज पास और दूर के किनारों को समान रूप से गले लगाता है।
बहुत पहले पत्तों और शाखाओं से बिखरे हुए कूड़ेदान पर भरोसा मत करो (*42),
अपने पूर्व मित्र पर भरोसा मत करो, जो संयोगवश अब शत्रु बन गया है,
किसी राजा पर भरोसा मत करो क्योंकि तुम सोचते हो, "वह कभी मेरा साथी था,
किसी महिला पर भरोसा मत करो, भले ही उसने तुम्हें दस बच्चे दिए हों।
स्त्रियाँ सब सुख-सुविधाओं की चाहने वाली और वासना में बेलगाम होती हैं,
नैतिक नियमों का उल्लंघन करने वाली होती हैं: ऐसी स्त्रियों पर भरोसा न करें।
पत्नी अपने पति के सामने असीम प्रेम का दिखावा कर सकती है;
उस पर भरोसा न करें: आम स्त्रियाँ किसी भी फिसलन स्थल की तरह होती हैं।
अंग-भंग करने या जान से मारने को तैयार, वे किसी भी चीज़ से पीछे नहीं हटते,
और गला काटने के बाद उसका खून भी पी जाते हैं:
कोई भी व्यक्ति उन पर अपना प्रेम न जताए, वे नीच वासनाओं के प्राणी हैं,
कामुक और किसी गंगा के घाट की तरह साधारण।
वे अपनी वाणी में असत्य और सत्य में कोई भेद नहीं करते,
जैसे गायें उत्तम घास चुनती हैं, वैसे ही वे धनी प्रेमियों की तलाश करते हैं।
एक आदमी को वे अपनी नज़रों और मुस्कान से लुभाते हैं, दूसरे को अपनी चाल से,
कुछ को वे अजीब वेश बदलकर आकर्षित करते हैं (*43), दूसरों को मीठी बातों से।
बेईमान, क्रूर और कठोर हृदय वाली, जिनके शब्द चीनी की तरह मीठे होते हैं,
वे अपने विवाहित पतियों को धोखा देने के लिए हर संभव तरीका जानती हैं।
निःसंदेह सभी स्त्रियाँ अपवित्र हैं, उनकी शर्म की कोई सीमा नहीं है,
वे आवेशित और निर्भीक हैं, ज्वाला की तरह सब कुछ भस्म कर देती हैं।
स्त्रियाँ इस प्रकार निर्मित नहीं होतीं कि किसी पुरुष से प्रेम करें और किसी से घृणा करें;

वे उस पुरुष को भी उतना ही लुभाती हैं जिससे वे घृणा करती हैं, जितना कि उस पुरुष को जिसे वे प्यार करती हैं,
ठीक वैसे ही जैसे एक जहाज पास और दूर के किनारों को समान रूप से गले लगाता है।
यह महिलाओं के प्रति प्रेम या घृणा का मामला नहीं है, बल्कि
वे सोने के लिए पुरुष को ऐसे गले लगाती हैं जैसे परजीवी पेड़ को।
एक आदमी शव जला सकता है या मंदिरों से सूखे फूल भी इकट्ठा कर सकता है (*44),
घोड़े या हाथी का रखवाला बन सकता है, या बैलों की देखभाल कर सकता है,
फिर भी ऐसी नीची जातियों की औरतें पैसे के लिए दौड़ेंगी।
कुलीन कुल में जन्मे व्यक्ति को वे गरीब के समान ही छोड़ देते हैं, जैसे कि वह कोई नीच और बहिष्कृत व्यक्ति हो;
ऐसे व्यक्ति को वे सड़ते हुए मांस के समान मानते हैं; यदि वह अमीर हो, तो वे उसे तुरंत कहीं और भेज देते हैं।
इस प्रकार, गिद्धों के राजा आनंद ने अपने ज्ञान के अनुसार ही स्त्री-पुरुषों के दुर्गुणों का वर्णन किया और फिर मौन धारण किया। नारद ने भी उनकी बातें सुनकर, अपने ज्ञान के अनुसार ही, उनके दुर्गुणों का वर्णन किया। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने कहा: "तब नारद ने गिद्धों के राजा आनंद की बातों का आरंभ, मध्य और अंत सुनकर, इस बिंदु पर इन श्लोकों को दोहराया:

चार चीजें कभी संतुष्ट नहीं कर सकतीं—मेरी इन बातों को ध्यान से सुनो—
सागर, राजा, ब्राह्मण, स्त्री जाति, हे पक्षियों के राजा, ये चारों।
पृथ्वी पर बहने वाली सभी धाराएँ जो अपना घर पाती हैं, वे सागर को नहीं भर सकतीं,
यद्यपि सभी धाराएँ उसके जल में मिल सकती हैं, फिर भी कुछ कमी रह जाती है।
एक ब्राह्मण (*45) अपने वेदों और अपनी पौराणिक परंपरा का अध्ययन करता है,
फिर भी उसे पवित्र ज्ञान की कमी है और वह अधिक से अधिक की लालसा रखता है।
एक राजा विजय द्वारा संसार, उसके पर्वतों, समुद्रों और सब कुछ पर अधिकार कर लेता है,
उसमें छिपे अनंत खजाने उसे अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं,
फिर भी वह समुद्र पार के संसारों के लिए आहें भरता है, क्योंकि वह इसे बहुत छोटा मानता है।
एक महिला के आठ पति हो सकते हैं, जो उसकी इच्छा के प्रति आज्ञाकारी हों,
सभी वीर नायक हों, प्रेम के कर्तव्यों को पूरा करने में सक्षम हों,
फिर भी वह नौवें पति के प्रति अपना प्रेम रखती है, क्योंकि उसे अभी भी कुछ कमी महसूस होती है।
स्त्रियाँ ज्वाला की तरह अपने शिकार को भस्म कर देती हैं,
स्त्रियाँ बाढ़ की तरह सब कुछ बहा ले जाती हैं,
स्त्रियाँ काँटों की तरह चुभती हैं,
स्त्रियाँ अक्सर सोने के लालच में भटक जाती हैं।
वह आदमी जो जाल से हवा को पकड़ सकता है,
या अकेले ही समुद्र से पानी निकाल सकता है,
एक हाथ से ताली बजा सकता है, जिसने कभी हिम्मत करके
अपने विचारों को किसी सुंदर स्त्री की ओर बढ़ने दिया हो।
महिलाओं के साथ, चतुर दुष्ट महिलाओं के साथ, सत्य निश्चित रूप से एक दुर्लभ पाया जाता है,
उनके तरीके समुद्र में मछलियों की तरह ही पेचीदा होते हैं (*46)।
मीठी बातें करने वाले, संतुष्ट न कर पाने वाले, नदियों की तरह जिन्हें भरना मुश्किल होता है,
वे नीचे-नीचे डूबते जाते हैं: जो महिलाएं उन्हें जानती हैं उन्हें उनसे दूर ही भाग जाना चाहिए।
वे स्त्री-द्वेषियों को बहकाकर सबसे पवित्र व्यक्ति को भी पतन की ओर ले जाती हैं,
वे नीचे की ओर डूबती जाती हैं: जो स्त्री-पुरुषों को जानते हैं उन्हें सबसे दूर भाग जाना चाहिए।
और वे जिसकी भी सेवा सोने या लालसा के लिए करते हैं,
उसे धधकती आग में डाले गए ईंधन की तरह जला देते हैं।
जब नारद ने इस प्रकार स्त्रियों के दुर्गुणों पर प्रहार किया, तो उस महान प्राणी ने विशेष उदाहरणों के माध्यम से एक बार फिर उनके बुरे गुणों की व्याख्या की।

इसे दर्शाने के लिए गुरु ने कहा, "तो सचमुच कुणाला पक्षी ने नारद के वचनों की शुरुआत, मध्य और अंत को जानने के बाद, उस समय इन श्लोकों को दोहराया:

एक बुद्धिमान व्यक्ति भी तेज तलवार से लैस पिशाच शत्रु से बात करने का साहस कर सकता है ,

वह भयंकर सांप पर हमला कर सकता है, लेकिन
उसे कभी भी किसी स्त्री के साथ अकेले में बात करने का साहस नहीं करना चाहिए।
स्त्री के आकर्षण से पुरुष की बुद्धि पराजित हो जाती है;
वाणी, मुस्कान, नृत्य और गीत ही उनके एकमात्र हथियार हैं:
वे अस्थिर आत्माओं को सताती हैं, जैसे पहले
दुष्ट राक्षसों ने गोबलिन द्वीप में व्यापारियों को मार डाला था।
शराब और मांस के आदी, व्यक्ति
अपनी भूख या वासना को नियंत्रित करने की व्यर्थ कोशिश करता है,
जैसे गहरे समुद्र के किसी पौराणिक राक्षस की तरह,
वे किसी व्यक्ति की सारी संपत्ति अपने पेट में गड़ा देते हैं।
कामवासना के पांच गुना साम्राज्य पर उनका अधिकार है,
उनका बढ़ता हुआ अहंकार अनियंत्रित है जिसे कोई रोक नहीं सकता:
जैसे नदियाँ सभी सागर में अपना मार्ग खोज लेती हैं,
वैसे ही लापरवाह आत्माएँ स्त्रियों का शिकार बन जाती हैं।
जिस पुरुष में ये स्त्रियाँ आनंदित होती हैं,
अपने लोभ या कामुक इच्छा से प्रेरित होकर,
हाँ, ऐसे ही तीव्र वासना से प्रज्वलित होकर,
वे उसे आग में ईंधन की तरह भस्म कर देती हैं।
यदि वे किसी अमीर व्यक्ति को जानते हैं, तो वे उस पर टूट पड़ते हैं
और उसे, उसकी सारी संपत्ति समेत, उठा ले जाते हैं।
इस प्रकार वासना से भरे हुए वे अपने हथियार उसके चारों ओर इस प्रकार फैलाते हैं,
जैसे लताएँ किसी जंगल के साल के पेड़ से चिपक जाती हैं।
विम्बा (*48) फल लाल होंठ (*49) की तरह, इतना चमकीला और रंगीन,
वे मनुष्य के विरुद्ध कई रणनीति आजमाते हैं,
कभी हँसी से हमला करते हैं, कभी मुस्कान से,
जैसे संवर (*50), कई प्रलोभनों का स्वामी।
सोने और गहनों से सजी महिलाएं,
पति के परिवार द्वारा उचित सम्मान के साथ स्वीकार की जाती हैं,
हालांकि उनके स्वामी की इच्छा के पाप से सख्ती से सावधान रहती हैं,
उसके जैसे ही राक्षस का पेट भीतर पहुँचाया जाता है (*51)।
एक आदमी बहुत प्रसिद्ध और बुद्धिमान हो सकता है,
सभी लोगों की नज़रों में आदरणीय और सम्मानित हो सकता है, फिर भी स्त्री के प्रभाव में आकर
वह राहु (ग्रहण) (*52) की बुरी शक्ति से ग्रहण लगे चंद्रमा से
अधिक चमक नहीं पाएगा ।
क्रोधित शत्रु द्वारा शत्रु पर किया गया प्रतिशोध,
या जैसा अत्याचारी अपने पीड़ितों के साथ करते हैं,
हाँ, इससे भी बदतर भाग्य उन सभी पर छाया रहता है
जो अपनी वासना के कारण स्त्री के प्रभाव में आकर गिर पड़ते हैं।
किसी व्यक्ति को खरोंचने या बाल खींचने,
पीटने, लकड़ी की छड़ियों से पीटने, घूंसे मारने या लात मारने की धमकी दी जाती है,
फिर भी वह स्त्री किसी नीच कुल के प्रेमी के पास जाती है,
उसमें उसी तरह आनंद लेती है जैसे सड़े हुए मांस में मक्खियाँ उड़ती हैं।
राजमार्गों और शाही महल में महिलाओं से दूर रहो,
शाही शहर में हो या छोटे कस्बे में,
एक अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति खुश होगा,
नामुची द्वारा बिछाए गए इस जाल से बचता है (*53)।
जो अच्छे तपस्वी नियम को शिथिल करता है,
नीच और घृणित आचरण करने के लिए, बेचारा मूर्ख,

स्वर्ग को नरक से बदल देगा, उनके समान
जो दोषरहित रत्न को दोषयुक्त रत्न से बदल देते हैं। (*54)
वह इस दुनिया और अगली दुनिया में तिरस्कृत है
, और दुष्ट स्त्रियों द्वारा जानबूझकर नाराज होकर,
लापरवाही से ठोकर खाता हुआ, बार-बार गिरता हुआ जाता है,
जैसे कोई दुष्ट गधा रथ समेत बेकाबू होकर दौड़ता है।
अब लोहे के भालों के रेशम-कपास के उपवन में (*55),
अब पतापना में वह गायब हो जाता है,
अब किसी क्रूर रूप में विचरण करते हुए देखा जाता है,
प्रेतलोक में जहाँ से वह कभी नहीं निकल सकता।
नंदना (*56) में प्रेम का स्वर्गीय खेल और क्रीड़ा,
पृथ्वी पर सम्राट का सर्वव्यापी प्रभुत्व,
स्त्री के कारण खो जाता है, और उसके कारण हाय!
सभी लापरवाह आत्माएं दुख की अवस्था में चली जाती हैं।
स्वर्गिक क्रीड़ा और खेल-कूद को प्राप्त करना कठिन नहीं है,
न ही पृथ्वी पर विश्वव्यापी सम्राट का प्रभुत्व,
इनसे सुनहरे घरों में अप्सराएँ भी जीत ली जाती हैं,
जिन्होंने बहुत पहले ही वासना से मुक्ति पा ली थी।
इंद्रियों के लोक से पुनर्जन्म लेकर
साकार जगत में प्रवेश करना, उच्चतर शक्तियों से परिपूर्ण होना,
अर्हतों (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) के लोक में पुनर्जन्म द्वारा ही संभव है,
उन लोगों द्वारा जिन्होंने कामवासना में लिप्त होकर कर्म किए हैं।
वह आनंद जो सभी प्रकार के दर्द से परे है,
अविचल, बिना शर्त, अनंत,
वह उन शुद्ध आत्माओं द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो अब निर्वाण में हैं और
जिन्होंने बहुत पहले ही कामवासना से विरक्त हो चुके हैं।
इस प्रकार, परमपिता बुद्ध ने उन्हें शाश्वत निर्वाण की प्राप्ति कराकर अपना उपदेश समाप्त किया। हिमालय में स्थित कल्पित बौने, शक्तिशाली सर्प और अन्य सभी, तथा आकाश में विराजमान देवदूत, सभी ने तालियाँ बजाते हुए कहा, "वाह! बुद्ध के समान ही मधुरता से कहा है!" आनंद (गिद्धों का राजा), नारद (ब्राह्मण देवदूत), पुन्नामुख (राजा कोयल), सभी अपने-अपने अनुयायियों के साथ अपने-अपने स्थानों पर लौट गए, और परमपिता बुद्ध भी अपने निवास स्थान पर चले गए। परन्तु अन्य समय-समय पर लौटकर परमपिता बुद्ध से उपदेश ग्रहण करते रहे और उनकी सलाह का पालन करते हुए स्वर्ग के मार्ग पर अग्रसर हुए।

गुरु ने यहाँ अपना पाठ समाप्त किया और जन्म की पहचान करते हुए अंतिम श्लोक को दोहराया:

उदयी राजसी कोयल थी, आनंद गिद्ध राजा,
अच्छा सारिपुत्र नारद, कुणाल मैं जो गाता हूं।
इस प्रकार आपको इस जन्म को समझना चाहिए।

ये भिक्षु जब आए तो गुरु की अलौकिक शक्ति से आए और अपनी शक्ति से लौट गए। गुरु ने उन्हें घने वन में समाधि की अवस्था प्राप्त करने का तरीका बताया और उसी दिन उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त कर लिया। वहाँ देवदूतों की एक विशाल सभा थी, इसलिए भगवान बुद्ध ने उन्हें महासमयसूत्र (एक विशाल समूह को दिया जाने वाला उपदेश) सुनाया।

फुटनोट:

(1)जाट देखें. संख्या 74, रुक्खधम्म-जातक

(2) मई और जून.

(3) गौतम (बुद्ध) के परिवार के विवरण के लिए बुद्धघोष के दृष्टांतों के अध्याय XXVI के रोजर्स के अनुवाद की तुलना करें।

(4)सुट्टा-निपाता, IV. 15, पृ. 173.

(5)nilaramsim vissajjetva.

(6)जाट. संख्या 475.

(7)परपत्ती, जाट. 77

(8)जाट. संख्या 322.

(9)जाट. संख्या 357.

(10)जाट. संख्या 74.

(11) क्रमांक 33 सम्मोदमन-जातक, जिसे पाठ में वट्टक-जातक कहा जाता है।

(12)उदरक्का. रूप के लिए मार्जाराका, एक बिल्ली की तुलना करें।

(13) पाठ में निर्दिष्ट।

(14)अमज्जा. इस शब्द के लिए तैत्तिरीय संहिता, VII की तुलना करें। 5. 12, 2.

(15) तीन पक्षियों के नाम छोड़े गए हैं, परभूत, सेलवाका, भीमकारा।

(16) यहाँ अनुवाद में वृक्षों आदि की एक लंबी सूची छोड़ दी गई है, जो अधिकतर, यदि बिल्कुल भी, लैटिन में उनके वानस्पतिक समकक्षों द्वारा ज्ञात हैं।

(17) इसके बाद एक लंबा अंश दिया गया है जो पहले ही दिया जा चुका है।

(18) विद्वान इस अंश को इस प्रकार समझते हैं। शायद इसका अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है, "तुम्हारे द्वारा वर्णित यह (पूर्ण उदाहरण) कौन है, तुम तो जोरू के गुलाम प्राणी हो?"

(19)अर्थात कोसल और काशी के राजा, वास्तविक और कथित पिता।

(20)पांचों पतियों के नाम दिए गए हैं: अज्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिथिला, सहदेव।

(21) मतलब, "सिर उसके शरीर में कुचला हुआ।"

(22)जाट. संख्या 327.

(23)टॉनी की कथा सरित सागर, II की तुलना करें। 491-492.

(24)माता ओहाय कोसलराजनम् पढ़ना।

(25) शेर का मुख पाँचवाँ पंजा है।

(26)विद्वान गमानियो को वेसियो के समकक्ष मानते हैं।

(27)जाट. खंड संख्या 379, नेरु जातक. नेरु पर्वत की तरह, सभी वस्तुओं पर एक समान सुनहरा रंग प्रतिबिंबित होता है।

(28) दुज्जिव्हा के लिए दुज्जिव्हा "दोहरी जीभ वाला" पढ़ा जाता है।

(29) नवसमकटा शायद ही सही हो। टीका में नेरु निब्बिसेकरा को विशेषण दिया गया है। एक पाठ नवसमगटा देता है, जिसका अर्थ है जहाज की तरह तेज गति से चलना।

(30)स्वयंवर एक राजकुमारी द्वारा कई दूल्हों में से सार्वजनिक रूप से पति का चुनाव करने की प्रक्रिया थी। महाभारत में हमें पांचाल के राजा की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर का वर्णन मिलता है, जो बाद में पांचों पांडु राजकुमारों की सर्वसम्मत पत्नी बनीं।

(31)शेतसामणि। जैन धर्म में श्वेत वस्त्रधारी तपस्वियों का एक संप्रदाय है जिसे श्वेतंबर कहा जाता है।

(32) तुलपुट्टो पढ़ना.

(33) क्रमांक 327

(34) ऐसा लगता है कि अन्य संज्ञाओं की तरह इसके लिए भी कुछ योग्यता विशेषण की आवश्यकता है।

(35)accavadati.

(36) कुमकुमी, कुमकुमियजाता नहीं पाया जाता। विद्वान कहते हैं कोलाहलं करोति।

(37)बुद्धघोष के दृष्टांतों की तुलना करें, अध्याय XIX. स्पर्श की कहानी।

(38) द्वारवासी, जिसका अर्थ शायद किसी गरीब इलाके का निवासी हो। द्वारगामा, शहर के द्वार के बाहर का गाँव, एक उपनगर।

(39)कन्ना, जाहिरा तौर पर स्कट स्कन्ना, लेकिन किसी ने उम्मीद की होगी कि परिसर पक्कन्ना होगा।

(40) पापा, सड़क किनारे स्थित एक झोपड़ी जहाँ यात्रियों को पानी उपलब्ध कराया जाता है। जाट. सं. 302

(41)उत्थाहाका. देखें धम्मपद 280, अनुत्थाहनो,

(42) इस डर से कि कहीं उसमें कोई साँप न छिपा हो।

(43) टीकाकार इस उदाहरण के रूप में नलिनिका की कहानी, क्रमांक 526 का उल्लेख करता है।

(44)पुप्पचड्डक, एक निम्न जाति का आदमी जो मंदिरों से सूखे फूल हटाता है, थेरा-गाथा, वी. 620, मिलिंद के प्रश्न, वी. 4, खंड II.

(45) प्रपत्र अधियनम के लिए संख्या की तुलना करें। 24, खदियानम, नं.143, अनुमोदियानम, नं. 505, परिभुंजियाना.

(46)ये पंक्तियाँ पहले आती हैं.

(48)मोमोर्डिका मोनाडेल्फ़ा.

(49)विम्बोष्ठ.

(50)संवर, एक राक्षस का नाम।

(51)नहीं. 436, समुग्गा-जातक।

(52) राहु, एक टाइटन जिसे चंद्रमा को निगलने और ग्रहण का कारण बनने वाला माना जाता है।

(53) मृत्यु, रोग और पुनर्जन्म के दुष्ट देवता मारा का एक नाम

(54)चेदागामीमानी.

(55) समकिच्च-जातक की तुलना करें

(56) नंदन, इंद्र के स्वर्ग में एक उद्यान।

स्रोत: *एच.टी. फ्रांसिस द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित*

पिछला <<<<-----||-537-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 537
महा-सुतसोमा-जातक (*1)

"सुंदर स्वादों के स्वामी," इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए वरिष्ठ भिक्षु अंगुलिमाला (*2) के बारे में सुनाई (जिन्होंने गृहस्थ जीवन में सैकड़ों लोगों की हत्या की थी और अंगुलियों की माला धारण करके घूमते थे)। उनके जन्म और भिक्षु बनने की प्रक्रिया का पूर्ण वर्णन अंगुलिमाला-सूत्र में मिलता है। सत्य के एक कर्म से उन्होंने एक प्रसूति से पीड़ित महिला का जीवन बचाया, जिसके बाद उन्हें सहजता से भोजन प्राप्त होने लगा और वैराग्य (ध्यान) का अभ्यास करके उन्होंने अर्हतत्व (बुद्ध के समान ज्ञान) प्राप्त किया और अस्सी महान भिक्षुओं में से एक के रूप में पहचाने गए। उस समय सत्य के हॉल में यह विषय शुरू हुआ और कहा गया, "हे भगवान बुद्ध ने कितना बड़ा चमत्कार किया है कि उन्होंने शांतिपूर्वक और बिना किसी हिंसा का प्रयोग किए अंगुलिमाला जैसे क्रूर और रक्तरंजित लुटेरे को परिवर्तित और विनम्र बना दिया: हे बुद्ध वास्तव में महान कार्य करते हैं!" सुगंधित कक्ष में बैठे गुरु ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से कही गई बातों को ग्रहण किया और यह जानते हुए कि आज उनका आगमन अत्यंत उपयोगी होगा और एक महान शिक्षा का विवेचन होगा, बुद्ध की अतुलनीय कृपा से वे सत्य के हॉल में गए और वहाँ अपने लिए आरक्षित आसन पर बैठकर उन्होंने पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं; और जब उन्होंने उन्हें विषय बताया तो उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओं, अब जब मैंने सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मैंने उसका धर्मांतरण कर दिया है। मैंने उसे अपने पिछले जन्म में भी, जब मेरा ज्ञान सीमित था, तब भी वश में किया था," और इन शब्दों के साथ उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कोरव्य नामक एक राजा ने धर्मपरायण शासन किया। उनकी प्रमुख रानी के पुत्र के रूप में एक बोधिसत्व का जन्म हुआ, और सोमा रस के प्रति उनके प्रेम के कारण उनका नाम सुतसोमा रखा गया। जब वे वयस्क हुए, तो उनके पिता ने उन्हें विश्वप्रसिद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला भेज दिया। गुरु की फीस लेकर वे वहाँ के लिए रवाना हुए। बनारस में भी, काशी के राजा के पुत्र राजकुमार ब्रह्मदत्त को उनके पिता ने इसी उद्देश्य से भेजा था और वे भी उसी मार्ग पर चल पड़े। यात्रा के दौरान सुतसोमा विश्राम करने के लिए नगर द्वार के पास एक हॉल में एक बेंच पर बैठ गए। राजकुमार ब्रह्मदत्त भी आए और उनके साथ उसी बेंच पर बैठ गए। सौहार्दपूर्ण अभिवादन के बाद सुतसोमा ने उनसे पूछा, "मित्र, आप अपनी यात्रा से थक गए हैं। आप कहाँ से आए हैं?" उनके यह कहने पर कि "बनारस से," उन्होंने पूछा कि वे किसके पुत्र हैं। "ब्रह्मदत्त के पुत्र।" "और आपका नाम क्या है?" "राजकुमार ब्रह्मदत्त।" "आप किसलिए आए हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "कलाओं का प्रशिक्षण लेने।" तब राजकुमार ब्रह्मदत्त ने कहा, "आप भी यात्रा से थक गए हैं," और उनसे भी उसी प्रकार प्रश्न किया। सुतसोमा ने उन्हें अपने बारे में सब कुछ बताया। दोनों ने सोचा, "हम दो राजकुमार एक ही गुरु से कलाओं का प्रशिक्षण लेने जा रहे हैं," और दोनों में मित्रता हो गई। फिर नगर में प्रवेश करके वे गुरु के घर गए और उन्हें प्रणाम किया। अपने बारे में बताने के बाद उन्होंने कहा कि वे कलाओं का प्रशिक्षण लेने आए हैं। गुरु ने उनकी बात सहर्ष स्वीकार कर ली। उन्हें शिक्षा शुल्क देकर उन्होंने अपनी पढ़ाई शुरू की। केवल वे ही नहीं, बल्कि उस समय भारत में मौजूद एक सौ एक अन्य राजकुमारों ने भी गुरु से शिक्षा प्राप्त की। सुतासोमा, जो वरिष्ठ शिष्य थे, शीघ्र ही अध्यापन में निपुण हो गए। उन्होंने अन्य शिष्यों से मिले बिना ही सोचा, "यह मेरा मित्र है," और केवल राजकुमार ब्रह्मदत्त के पास गए। वे उनके निजी शिक्षक (*4) बन गए और शीघ्र ही उन्हें शिक्षा प्रदान करने लगे, जबकि अन्य शिष्यों ने धीरे-धीरे ही ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने भी लगन से अध्ययन करने के बाद अपने गुरु को विदाई दी और सुतासोमा के साथ प्रस्थान किया। तब सुतासोमा ने उनके सामने खड़े होकर उन्हें विदा करते हुए कहा, "अपने-अपने पिताओं को अपनी विद्वता का प्रमाण देने के बाद तुम सब अपने-अपने राज्य में स्थापित हो जाओगे। स्थापित होने पर मेरी आज्ञाओं का पालन करना।" "गुरुजी, वे क्या हैं?" "अमावस्या और पूर्णिमा (*5) के दिन उपोसथ व्रत रखना और किसी भी प्राणी का वध न करना।" वे सहर्ष सहमत हो गए। बोधिसत्व ने अपने प्रत्यक्ष दर्शन से भविष्यवाणी की शक्ति से जान लिया था कि भविष्य में बनारस के राजकुमार के लिए बड़ा खतरा उत्पन्न होगा, इसलिए उचित परामर्श के बाद उन्होंने उन्हें विदा कर दिया।और वे सब अपने-अपने देशों में लौट गए, और अपने पिताओं के सामने अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के बाद अपने-अपने राज्यों के उत्तराधिकारी बने। इस बात को बताने और यह दर्शाने के लिए कि वे सुतासोमा की सलाह का पालन कर रहे हैं, उन्होंने उपहार सहित सुतासोमा को पत्र भेजे। महापुरुष ने स्थिति का पता चलने पर उनके पत्रों का उत्तर दिया और उनसे आस्था में दृढ़ रहने का आग्रह किया। उनमें से एक, बनारस का राजा, बिना मांस के अपना चावल का भोजन कभी नहीं खाता था, और किसी विशेष दिन वे उसका मांस निकालकर एक

तरफ रख देते थे। एक दिन जब मांस इस प्रकार रखा हुआ था, रसोइए की लापरवाही से राजा के महल के अच्छे नस्ल के कुत्तों ने उसे खा लिया। रसोइए को मांस नहीं मिला, तो उसने मुट्ठी भर सिक्के लिए और चारों ओर घूमकर मांस प्राप्त करने में असफल रहा और कहा, "यदि मैं बिना मांस के भोजन परोसूँ, तो मैं मर जाऊँगा। मैं क्या करूँ?" लेकिन यह सोचकर कि "अभी भी कोई उपाय है," वह देर शाम एक कब्रिस्तान में गया जहाँ शव रखे जाते थे और अभी-अभी मरे हुए एक व्यक्ति की जांघ से कुछ मांस लेकर उसे अच्छी तरह भूनकर भोजन के रूप में परोसा। जैसे ही मांस का एक टुकड़ा राजा की जीभ के सिरे पर रखा गया, उसके स्वाद की सात हज़ार नसों में झनझनाहट दौड़ गई और पूरे शरीर में हलचल मच गई। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि उसने पहले भी यह भोजन खाया था। कहा जाता है कि इससे ठीक पहले वाले जन्म में यक्ष (राक्षस) के रूप में उसने बहुत सारा मानव मांस खाया था, इसलिए यह उसे अच्छा लगा (*6)। राजा ने सोचा, "अगर मैं इसे चुपचाप खा लूँगा, तो वह मुझे नहीं बताएगा कि यह कौन सा मांस है," इसलिए थूकते हुए उसने एक टुकड़ा ज़मीन पर गिरा दिया। जब रसोइए ने कहा, "महाराज, आप इसे खा सकते हैं; इसमें कोई खराबी नहीं है," तो उसने अपने सभी सेवकों को पीछे हटने का आदेश दिया और कहा, "मुझे पता है कि यह ठीक है, लेकिन यह कौन सा मांस है?" "वही जो महाराज ने पहले खाया है।" "क्या पहले कभी इस मांस का स्वाद ऐसा नहीं था?" "आज तो यह अच्छी तरह से पका है, महाराज।" "क्या आपने इसे पहले भी ठीक इसी तरह पकाया था?" फिर उसे चुप देखकर राजा ने कहा, "या तो मुझे सच बताओ, नहीं तो तुम मर जाओगे।" इसलिए उसने क्षतिपूर्ति का आश्वासन मांगते हुए पूरी सच्चाई बता दी। राजा ने कहा, "इस बारे में एक शब्द भी मत कहो। तुम्हें सामान्य भुना हुआ मांस खाना है और मानव मांस केवल मेरे लिए पकाना है।" "महाराज, यह तो वाकई एक कठिन मामला है।" "डरिए मत: कोई कठिनाई नहीं है।" "मुझे यह लगातार कहाँ से मिलेगा?" "क्या जेल में बहुत सारे लोग नहीं हैं?" तब से उसने इस सुझाव पर अमल करना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद, जब कैदी उसे नहीं मिले, तो उसने कहा, "अब मैं क्या करूँ?" राजा ने कहा, "सड़क पर एक हजार सिक्कों का एक गट्ठा फेंक दो और जो भी उसे उठाए उसे चोर की तरह पकड़कर मार डालो।" उसने ऐसा ही किया। कुछ समय बाद,पैसे के पैकेट को देखे बिना भी जब उसे कोई प्राणी नहीं मिला, तो उसने कहा, "अब मैं क्या करूँ?" "जब रात के पहरेदार ढोल बजाते हैं, तब शहर लोगों से भरा होता है। तब किसी घर की दीवार के दरार (*7) में या चौराहे पर खड़े होकर, किसी आदमी को मार गिराओ और उसका कुछ मांस ले जाओ।" उस दिन से वह कुछ चर्बीदार मांस लेकर आने लगा और कई जगहों पर लाशें मिलने लगीं। रोने की आवाज़ सुनाई दी, "मैंने अपने पिता को खो दिया है, मैंने अपनी माँ को खो दिया है, या भाई या बहन को।" शहर के लोग घबरा गए और कहने लगे, "ज़रूर किसी शेर या बाघ या राक्षस ने इन लोगों को खा लिया होगा।" लाशों की जाँच करने पर उन्हें एक गहरा घाव दिखाई दिया और उन्होंने कहा, "ज़रूर कोई आदमी ही इनका मांस खा रहा होगा!" लोग महल के प्रांगण में इकट्ठा हुए और शिकायत की। राजा ने पूछा, "क्या बात है, मेरे मित्रों?" उन्होंने कहा, "महाराज, इस शहर में कोई आदमखोर डाकू है: उसे पकड़वा दीजिए।" “मुझे कैसे पता चलेगा कि वह कौन है? क्या मुझे शहर की रखवाली करनी होगी?” लोगों ने कहा, “राजा को शहर की कोई परवाह नहीं है: हम सेनापति कलाहत्थी को इसकी सूचना देंगे।” उन्होंने उससे कहा, “आपको इस डाकू को ढूंढना होगा।” उसने उत्तर दिया, “सात दिन प्रतीक्षा करो, मैं डाकू को ढूंढकर तुम्हारे हवाले कर दूंगा।” लोगों को विदा करते हुए उसने अपने अधिकारियों को आदेश दिया, “मेरे मित्रों, लोग कहते हैं कि इस शहर में एक आदमखोर डाकू है। तुम अलग-अलग जगहों पर घात लगाकर उसे पकड़ लो।” उन्होंने कहा, “ठीक है,” और उस दिन से उन्होंने पूरे शहर को घेर लिया। अब रसोइया एक घर की दीवार में बने छेद में छिपा हुआ था और उसने एक औरत को मार डाला और अपनी टोकरी में मांस के टुकड़े भरने लगा। इसलिए अधिकारियों ने उसे पकड़ लिया और उसकी बांहें पीछे बांधकर जोर से चिल्लाए, “हमने आदमखोर डाकू को पकड़ लिया है।” लोगों की भीड़ उनके चारों ओर जमा हो गई। फिर उसे बुरी तरह पीटकर और मांस से भरी टोकरी उसके गले में बांधकर वे उसे सेनापति के सामने ले आए। उसे देखकर सेनापति ने सोचा, "क्या यह आदमी खुद यह मांस खाता है, या इसे दूसरे मांस में मिलाकर बेचता है, या किसी और के कहने पर लोगों को मारता है?" और इस मामले की छानबीन करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:शवों की जांच करने पर उन्हें एक गहरा घाव दिखाई दिया और वे बोले, "यह तो किसी नरभक्षी का काम होगा!" लोग महल के प्रांगण में एकत्रित हुए और शिकायत दर्ज कराई। राजा ने पूछा, "क्या बात है, मेरे मित्रों?" उन्होंने कहा, "महाराज, इस शहर में कोई नरभक्षी डाकू है: उसे पकड़वा दीजिए।" राजा ने पूछा, "मुझे कैसे पता चलेगा कि वह कौन है? क्या मुझे शहर की रखवाली करनी होगी?" लोगों ने कहा, "राजा को शहर की कोई परवाह नहीं है: हम इसकी सूचना सेनापति कलाहत्थी को देंगे।" उन्होंने कलाहत्थी को बताया और कहा, "आपको इस डाकू की तलाश करनी होगी।" राजा ने उत्तर दिया, "सात दिन प्रतीक्षा कीजिए, मैं डाकू को ढूंढकर आप लोगों के हवाले कर दूंगा।" लोगों को विदा करते हुए उन्होंने अपने अधिकारियों को आदेश दिया, "मेरे मित्रों, लोग कहते हैं कि इस शहर में एक नरभक्षी डाकू है।" तुम अलग-अलग जगहों पर घात लगाकर उसे पकड़ो।” उन्होंने कहा, “ठीक है,” और उस दिन से उन्होंने पूरे शहर को घेर लिया। रसोइया एक घर की दीवार में बने छेद में छिपा हुआ था और उसने एक औरत को मार डाला और अपनी टोकरी में मांस के टुकड़े भरने लगा। इसलिए अधिकारियों ने उसे पकड़ लिया और उसकी पिटाई की, और उसके हाथ पीछे बांधकर जोर से चिल्लाए, “हमने आदमखोर लुटेरे को पकड़ लिया है।” लोगों की भीड़ उनके चारों ओर जमा हो गई। फिर उसे बुरी तरह पीटकर और मांस से भरी टोकरी उसकी गर्दन पर बांधकर वे उसे सेनापति के सामने ले आए। उसे देखकर सेनापति ने सोचा, “क्या यह आदमी खुद यह मांस खाता है या इसे दूसरे मांस में मिलाकर बेचता है, या किसी और के कहने पर लोगों को मारता है?” और इस मामले की जांच करते हुए उसने पहला छंद कहा:शवों की जांच करने पर उन्हें एक गहरा घाव दिखाई दिया और वे बोले, "यह तो किसी नरभक्षी का काम होगा!" लोग महल के प्रांगण में एकत्रित हुए और शिकायत दर्ज कराई। राजा ने पूछा, "क्या बात है, मेरे मित्रों?" उन्होंने कहा, "महाराज, इस शहर में कोई नरभक्षी डाकू है: उसे पकड़वा दीजिए।" राजा ने पूछा, "मुझे कैसे पता चलेगा कि वह कौन है? क्या मुझे शहर की

रखवाली करनी होगी?" लोगों ने कहा, "राजा को शहर की कोई परवाह नहीं है: हम इसकी सूचना सेनापति कलाहत्थी को देंगे।" उन्होंने कलाहत्थी को बताया और कहा, "आपको इस डाकू की तलाश करनी होगी।" राजा ने उत्तर दिया, "सात दिन प्रतीक्षा कीजिए, मैं डाकू को ढूंढकर आप लोगों के हवाले कर दूंगा।" लोगों को विदा करते हुए उन्होंने अपने अधिकारियों को आदेश दिया, "मेरे मित्रों, लोग कहते हैं कि इस शहर में एक नरभक्षी डाकू है।" तुम अलग-अलग जगहों पर घात लगाकर उसे पकड़ो।" उन्होंने कहा, "ठीक है," और उस दिन से उन्होंने पूरे शहर को घेर लिया। रसोइया एक घर की दीवार में बने छेद में छिपा हुआ था और उसने एक औरत को मार डाला और अपनी टोकरी में मांस के टुकड़े भरने लगा। इसलिए अधिकारियों ने उसे पकड़ लिया और उसकी पिटाई की, और उसके हाथ पीछे बांधकर जोर से चिल्लाए, "हमने आदमखोर लुटेरे को पकड़ लिया है।" लोगों की भीड़ उनके चारों ओर जमा हो गई। फिर उसे बुरी तरह पीटकर और मांस से भरी टोकरी उसकी गर्दन पर बांधकर वे उसे सेनापति के सामने ले आए। उसे देखकर सेनापति ने सोचा, "क्या यह आदमी खुद यह मांस खाता है या इसे दूसरे मांस में मिलाकर बेचता है, या किसी और के कहने पर लोगों को मारता है?" और इस मामले की जांच करते हुए उसने पहला छंद कहा:लोगों की भीड़ उनके चारों ओर जमा हो गई। फिर उसे बुरी तरह पीटकर और मांस से भरी टोकरी उसके गले में बांधकर वे उसे सेनापति के सामने ले आए। उसे देखकर सेनापति ने सोचा, "क्या यह आदमी खुद यह मांस खाता है, या इसे दूसरे मांस में मिलाकर बेचता है, या किसी और के कहने पर लोगों को मारता है?" और इस मामले की छानबीन करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:लोगों की भीड़ उनके चारों ओर जमा हो गई। फिर उसे बुरी तरह पीटकर और मांस से भरी टोकरी उसके गले में बांधकर वे उसे सेनापति के सामने ले आए। उसे देखकर सेनापति ने सोचा, "क्या यह आदमी खुद यह मांस खाता है, या इसे दूसरे मांस में मिलाकर बेचता है, या किसी और के कहने पर लोगों को मारता है?" और इस मामले की छानबीन करते हुए उसने पहला श्लोक कहा:

बेहतरीन स्वादों के उस्ताद, गंभीर जरूरत क्या है?
किसने आपको यह घिनौना काम करने के लिए उकसाया है?
क्या तुम्हें खाने के लिए भोजन चाहिए या धन कमाने के लिए?
क्या ये गुमराह दुष्ट लोग थे जिन्होंने इन पुरुषों और महिलाओं की हत्या की?
आगे आने वाले श्लोक स्पष्ट रूप से संबंधित हैं और इन्हें शास्त्र के संदर्भ के अनुसार अलग-अलग वक्ताओं द्वारा उच्चारित समझा जाना चाहिए:

न तो पत्नी के लिए, न बच्चे के लिए, न दोस्तों के लिए, न परिवार के लिए, न धन-दौलत के लिए।
और न ही मैंने इस महिला की हत्या अपने लिए की;
हे मेरे दयालु स्वामी, इस देश के सम्राट,
मानव मांस खाता है: मैंने उसके आदेश पर पाप किया।
यदि इस प्रकार अपने स्वामी के लालच को संतुष्ट करने के लिए रिश्वत ली जाए
तुम इस घिनौने कृत्य के दोषी हो।
आइए, भोर होते ही राजा की खोज करें।
और उसके चेहरे पर आरोप लगा दिया।
हे कालाहत्थी, आदरणीय प्रभु,
तो मैं आपके वचन के अनुसार ही करूंगा।
मैं सुबह तड़के राजा की तलाश करूंगा।
और उसके चेहरे पर यह आरोप लगा दिया।
अतः सेनापति ने उसे कसकर बांधकर लिटा दिया, और भोर होते ही उसने अपने अधिकारियों से सलाह ली। जब वे सब एकमत हुए, तो उसने हर दिशा में पहरेदार तैनात कर दिए। शहर पर पूरी तरह नियंत्रण पाने के बाद, उसने मांस से भरी टोकरी रसोइए के गले में बांध दी और उसे लेकर महल चला गया। पूरे शहर में अफरा-तफरी मच गई। राजा ने कल सुबह नाश्ता तो कर लिया था, लेकिन रात का खाना नहीं खाया था और पूरी रात बैठे-बैठे ही बिताई थी, हर पल रसोइए के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सोचा, "आज भी कोई रसोइया नहीं आया, और शहर में इतना शोरगुल है। आखिर ये सब क्या हो रहा है?" खिड़की से बाहर देखते हुए उसने उस आदमी को घसीटते हुए देखा, जैसा कि बताया गया था। यह सोचकर कि सब कुछ पता चल गया है, उसने हिम्मत जुटाई और अपने सिंहासन पर बैठ गया। तभी कलाहत्ती पास आया और उससे प्रश्न किए, और राजा ने उन्हें उत्तर दिए।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

अब सूर्योदय हो चुका था और दिन की शुरुआत ही हुई थी, तभी काला अपने रसोइए के साथ दरबार की ओर चल पड़ा, और राजा के पास आकर उसने कुछ इस तरह के शब्द कहे।

"महाराज, क्या यह सच है कि इस रसोइए को सड़क पर भेज दिया गया है?"

और वे पुरुष और महिलाएं जिन्हें आपके लिए मांस उपलब्ध कराने के लिए मारा गया?
"काला, यह सच है; यह मेरे अनुरोध पर किया गया था।"
तो फिर मेरे कहने पर उसने जो किया उसके लिए उसे क्यों दोषी ठहराया जाए?
यह सुनकर सेनापति ने सोचा, "यह स्वयं अपने मुख से ही स्वीकार कर रहा है; ओह, यह दुष्ट! इतने समय से यह मनुष्यों का मांस खा रहा है: मैं इसे रोकूंगा," और उसने कहा, "महाराज, ऐसा मत कीजिए; मनुष्यों का मांस मत खाइए।" "कलाहत्थी, आप क्या कह रहे हैं? मैं इसे नहीं छोड़ सकता।" "महाराज, यदि आप इसे नहीं छोड़ेंगे, तो आप स्वयं और अपने राज्य दोनों को नष्ट कर देंगे।" "भले ही मेरा राज्य नष्ट हो जाए, मैं इसे नहीं छोड़ सकता।" तब सेनापति ने उसे समझाने के लिए एक उदाहरण के रूप में एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, समुद्र में छह विशालकाय मछलियाँ थीं। उनमें आनंद, तिमांडा और अज्जोहारा थे - ये तीनों पाँच सौ मील (4.23 किमी) लंबी थीं - तितिमिति, मिंगला और तिमिरपिंगला - ये एक हजार मील (4.23 किमी) लंबी थीं - और ये सभी चट्टानी सेवल (*8) नामक जलीय शैवाल खाती थीं। इनमें से आनंद समुद्र के एक किनारे पर रहता था और बहुत सी मछलियाँ उसे देखने आती थीं। एक दिन उन्होंने सोचा, "दो पैरों और चार पैरों वाले जीवों में राजा होते हैं, लेकिन हमारा कोई राजा नहीं है: हम इस मछली को अपना राजा बनाएंगे।" और सभी ने एकमत होकर आनंद को अपना राजा बना लिया, और उस दिन से मछलियाँ शाम और सुबह उसे प्रणाम करने आने लगीं। अब एक दिन आनंद एक पर्वत पर चट्टानी सेवल खा रहा था और अनजाने में उसने एक मछली को सेवल समझकर खा लिया। उसका मांस उसे स्वादिष्ट लगा, और यह सोचकर कि आखिर यह इतना मीठा क्या हो सकता है, उसने उसे अपने मुँह से निकाला और देखा कि वह मछली का एक टुकड़ा है। उसने सोचा, "इतने लंबे समय तक अज्ञानता में मैंने इसे कभी नहीं खाया: शाम और सुबह जब मछलियाँ मुझे प्रणाम करने आती हैं, तो मैं उनमें से एक या दो को खा जाऊँगा, क्योंकि अगर मैं उन्हें खाते हुए देखकर यह बात ज़ाहिर कर दूँ, तो एक भी मछली मेरे पास नहीं आएगी, बल्कि सब भाग जाएँगी।" इसलिए छिपकर उसने पीछे से आती हुई मछलियों पर हमला किया और उन्हें खा गया। जैसे-जैसे मछलियों की संख्या कम होती गई, वे सोचने लगीं, "हमारे जैसे जीवों पर यह खतरा किस ओर से आ रहा है?" तभी उनमें से एक ऋषि ने सोचा, "मैं आनंद के इस काम से संतुष्ट नहीं हूँ: मैं पता लगाऊँगा कि वह क्या कर रहा है," और जब मछलियाँ आनंद को प्रणाम करने आईं, तो ऋषि आनंद के कान के लोब में छिप गए। आनंद ने मछलियों को विदा करके पीछे रह गई मछलियों को खा लिया। बुद्धिमान मछली ने यह देखकर बाकी मछलियों को सूचना दी और वे सब घबराकर भाग गईं। उस दिन से आनंद मछली के स्वाद की लालसा में अन्य सभी प्रकार के भोजन को त्यागने लगा। भूख से बीमार होकर उसने सोचा, "वे आखिर कहाँ चली गईं?" और उनकी तलाश करते हुए उसने एक पर्वत देखा और सोचा, "मुझे लगता है कि मछलियाँ मुझसे डरकर इस पर्वत के पास रह रही हैं। मैं इसे घेर लूँगा और इस पर नज़र रखूँगा।" इस प्रकार उसने अपने सिर और पूंछ से पर्वत को चारों ओर से घेर लिया और सोचा, "अगर वे यहाँ रहती हैं, तो वे भागने की कोशिश करेंगी।" तभी उसकी नज़र अपनी पूंछ पर पड़ी जो पर्वत के चारों ओर लिपटी हुई थी, और उसने सोचा, "यह मछली पर्वत के पास रहती है और मुझसे बचने की कोशिश कर रही है।" क्रोध में आकर उसने अपनी ही पूंछ को पकड़ लिया, जो पचास मील (4.23 किमी) लंबी थी, और यह सोचकर कि उसने एक मछली पकड़ ली है, उसने उसे चबाने की आवाज़ के साथ निगल लिया, असहनीय दर्द से तड़पते हुए। खून की गंध से मछलियाँ इकट्ठा हो गईं और आनंद की पूंछ से थोड़ा-थोड़ा मांस खींचकर उसके सिर तक पहुँचने लगीं। इतने बड़े मृत शरीर के कारण वह मुड़ नहीं सका और वहीं उसकी मृत्यु हो गई।और वहाँ हड्डियों का एक पहाड़ जितना बड़ा ढेर था। अंतरिक्ष में यात्रा कर रहे पवित्र तपस्वियों, पुरुष और स्त्री, ने उसे देखा और लोगों को इसके बारे में बताया। और पूरे भारत के निवासी इसके बारे में जान गए। उदाहरण के तौर पर, कालाहत्ती ने यह कहानी सुनाई और कहा:

आनंद ने सारी मछलियाँ खा लीं और जब उसके साथी भाग गए,
उसने अपनी ही पूंछ को लालच से तब तक खाया जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो गई।
भोग-विलास का गुलाम किसी और सुख को नहीं जानता।
बेचारा लापरवाह मूर्ख, आने वाले कष्टों के प्रति कितना अंधा है वह!
उसके बच्चे, दोस्त और परिवार बर्बाद हो जाएंगे, वह नीचा पड़ेगा।
फिर वह मुड़कर स्वयं को विदारक कर लेता है, राक्षसी लालच का शिकार बन जाता है।
हे राजा, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इन बातों को ध्यानपूर्वक सुनें।
मनुष्यों का मांस मत खाओ; अपने घृणित उद्देश्य को त्याग दो।
अन्यथा शायद आपको भी उस मछली की तरह ही भयानक भाग्य का सामना करना पड़े।
और हे मनुष्यों के स्वामी, अपने राज्य को उजाड़ छोड़ दो।
यह सुनकर राजा ने कहा, "कलाहत्थी, मैं भी तुम्हारी तरह एक उदाहरण जानता हूँ," और उदाहरण के तौर पर उसने मानव मांस के प्रति अपने लालच की एक पुरानी कहानी सुनाई और कहा:

सुजाता के बेटे और वारिस ने कुछ गुलाब-सेबों के लिए जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया।
उन दोनों के बिछड़ने से लड़का इतना दुखी हुआ कि वह लेट गया और उसकी मृत्यु हो गई।
तो, काला, मैं, जिसने अब लंबे समय से सर्वोत्तम व्यंजनों का आनंद लिया है,
अगर यह नश्वर शरीर विफल हो जाता है, तो मुझे लगता है कि जीवन परवाह करना बंद कर देगा।
कहते हैं कि एक समय की बात है, बनारस में सुजाता नाम का एक जमींदार अपने उद्यान में रहता था और हिमालय से नमक और सिरका लेने आए पाँच सौ तपस्वियों की सेवा करता था। उनके घर में हमेशा भोजन तैयार रहता था, लेकिन ये तपस्वी कभी-कभी भिक्षा मांगने के लिए देश में तीर्थयात्रा पर जाते थे और खाने के लिए बड़े-बड़े गुलाब-मुर्गे के टुकड़े लाते थे। जब वे अपने लाए हुए गुलाब-मुर्गे खा रहे थे, तब सुजाता ने सोचा, "आज तीसरा या चौथा दिन है कि ये साधु यहाँ नहीं आए हैं। आखिर कहाँ चले गए होंगे?" इसलिए अपने छोटे बेटे का हाथ पकड़कर वह उनके पास भोजन करते समय गया। उसी समय एक नवोदित साधु बड़ों को कुल्ला करने के लिए पानी दे रहा था और थोड़ा सा गुलाब-मुर्गे खा रहा था। सुजाता ने तपस्वियों को प्रणाम किया और जब वे बैठ गए तो उन्होंने पूछा, "आदरणीय साधुओं, आप क्या खा रहे हैं?" "बड़े-बड़े गुलाब-मुर्गे के टुकड़े, साहब।" यह सुनकर लड़के को प्यास लगी, इसलिए तपस्वियों के समूह के नेता ने उसे एक छोटा टुकड़ा दिया। लड़के ने उसे खाया और उसके कोमल स्वाद से इतना मोहित हो गया कि वह बार-बार उनसे एक और टुकड़ा माँगता रहा। धर्म का उपदेश सुन रहे उस सज्जन ने कहा, "रो मत; घर पहुँचकर तुम्हें एक टुकड़ा खाने को मिलेगा," इस प्रकार उन्होंने लड़के को यह कहकर बहलाया कि कहीं उसके रोने से साधु थक न जाएँ। लड़के को दिलासा देकर उन्होंने तपस्वियों के समूह से विदा ली और घर लौट गए। घर पहुँचते ही लड़का लगातार "मुझे एक टुकड़ा दो" चिल्लाता रहा। तपस्वियों ने भी कहा, "हम यहाँ बहुत समय से रुके हैं," और हिमालय के लिए रवाना हो गए। पार्क में लड़का न पाकर तपस्वियों ने उसे आम, गुलाब सेब, केले और अन्य फलों के टुकड़ों का एक उपहार भेजा, जो सभी पिसी हुई चीनी में मिलाए गए थे। जैसे ही यह मिश्रण उसकी जीभ के सिरे पर रखा गया, इसने घातक जहर का काम किया। सात दिनों तक उसने कुछ नहीं खाया और फिर उसकी मृत्यु हो गई। राजा ने यह कहानी उदाहरण के तौर पर सुनाई। तब कालहत्थी ने सोचा, "यह राजा तो बड़ा पेटू है: मैं उसे और उदाहरण सुनाऊँगा," और उसने कहा, "महाराज, ऐसा करना बंद कर दीजिए।" "यह असंभव है," उसने कहा। "यदि आप ऐसा करना बंद नहीं करेंगे, तो धीरे-धीरे आप अपने परिवार से विमुख हो जाएँगे और आपका राजसी वैभव छिन जाएगा।" एक समय की बात है, इसी बनारस में एक ब्राह्मण परिवार था जो पाँच नैतिक नियमों का पालन करता था। इस परिवार में एक इकलौता पुत्र था, जो अपने माता-पिता का प्रिय और लाडला था, एक बुद्धिमान बालक और तीनों वेदों का ज्ञाता था। वह अपने ही हमउम्र युवकों के एक समूह के साथ घूमता था। समूह के अन्य सदस्य मछली, मांस और इसी तरह का भोजन खाते और शराब पीते थे। वह बालक न तो मांस खाता था और न ही शराब पीता था। उनके मन में यह विचार आया, "यह बालक शराब न पीकर अपने मन पर ध्यान नहीं देता: चलो इसे शराब पिलाने की कोई योजना बनाते हैं।"जब वे सब एकत्रित हुए, तो उन्होंने कहा, "मेरे मित्र, चलो एक उत्सव मनाते हैं।" उसने कहा, "तुम लोग शराब पीते हो, लेकिन मैं नहीं।" तुम मेरे बिना चले जाओ।" “मित्र, हम तुम्हारे लिए थोड़ा दूध पीने को लाते हैं।” उसने सहमति जताते हुए कहा, “ठीक है।” बदमाश बगीचे में गए और एक पत्ते के प्याले में थोड़ी सी मादक शराब बाँधकर उसे कमल के पत्तों के बीच रख दिया। जब वे पीने लगे तो उन्होंने लड़के को थोड़ा दूध दिया। एक बदमाश चिल्लाया, “हमें थोड़ा कमल का रस लाओ,” और जब उसे वह लाया गया, तो उसने कमल में रखे पत्ते के प्याले के तल में एक छेद किया और उसे अपने मुँह से लगाकर चूस लिया। बाकी बदमाशों ने भी थोड़ा-थोड़ा रस मंगवाया और पी लिया। लड़के ने पूछा कि यह क्या है और उसने कमल का रस समझकर कुछ तेज़ शराब पी ली। फिर उन्होंने उसे भुना हुआ मांस दिया और उसने वह भी खा लिया। और जब बार-बार शराब पीने से वह नशे में चूर हो गया, तो उन्होंने उससे कहा, “यह कमल का रस नहीं है: यह मादक शराब है।” “इतने लंबे समय तक,” उसने कहा, “मुझे कभी पता ही नहीं चला कि मीठा स्वाद क्या होता है।” “मुझे और तेज़ शराब लाओ!” वे शराब लाए और उसे एक बार फिर पिलाई, क्योंकि वह बहुत प्यासा था। फिर जब उसने और माँगी, तो उन्होंने कहा कि सब खत्म हो गई है। उसने कहा, “आओ, मैं कहता हूँ! मुझे और लाओ,” और उन्हें अपनी अंगूठी दे दी। दिन भर उनके साथ शराब पीने के बाद, अब वह पूरी तरह नशे में था और उसकी आँखें लाल थीं, वह काँप रहा था और बड़बड़ा रहा था, फिर वह घर गया और लेट गया। तब उसके पिता को पता चला कि उसने शराब पी थी, जब शराब का असर खत्म हो गया, तो उन्होंने उससे कहा, “मेरे बेटे, तुमने ब्राह्मण परिवार का सदस्य होकर तेज़ शराब पीकर बहुत बड़ी गलती की है: फिर कभी ऐसा मत करना।” “प्रिय पिताजी, मेरा अपराध क्या है?” “तेज़ शराब पीना।” “आप क्या कहते हैं, पिताजी?” मैंने अपने पूरे जीवन में कभी इतनी मीठी चीज नहीं खाई।" ब्राह्मण ने बार-बार उससे विनती की कि वह इसे छोड़ दे। "मैं ऐसा नहीं कर सकता," उसने कहा। तब ब्राह्मण ने सोचा, "अगर ऐसा हुआ तो हमारी पारिवारिक परंपरा नष्ट हो जाएगी और हमारी संपत्ति भी नष्ट हो जाएगी," और उसने यह श्लोक दोहराया:उन्होंने उससे कहा, "यह कमल का रस नहीं है, यह तो शराब है।" उसने कहा, "इतने लंबे समय तक मुझे मीठा स्वाद पता ही नहीं था। मुझे और शराब लाओ!" वे शराब लाए और उसे एक बार फिर पिलाई, क्योंकि वह बहुत प्यासा था। फिर जब उसने और माँगी, तो उन्होंने कहा कि सब खत्म हो गया है। उसने कहा, "आओ, मुझे और लाओ!" और उन्हें अपनी अंगूठी दे दी। दिन भर उनके साथ शराब पीने के बाद, अब वह पूरी तरह नशे में था और उसकी आँखें लाल थीं, वह काँप रहा था और बड़बड़ा रहा था। फिर वह घर गया और लेट गया। जब शराब का असर खत्म हो गया, तो उसके पिता को पता चला कि उसने शराब पी है और उन्होंने उससे कहा, "बेटा, तुमने ब्राह्मण परिवार का सदस्य होकर शराब पीकर बहुत बड़ी गलती की है: फिर कभी ऐसा मत करना।" "पिताजी, मेरा गुनाह क्या है?" "शराब पीना।" "क्या कहते हो पिताजी? मैंने अपने पूरे जीवन में कभी इतनी मीठी चीज नहीं चखी।" ब्राह्मण ने बार-बार उससे शराब छोड़ने की विनती की।

“मैं यह नहीं कर सकता,” उसने कहा। फिर ब्राह्मण ने सोचा, “यदि ऐसा है, तो हमारी पारिवारिक परंपरा नष्ट हो जाएगी और हमारी संपत्ति भी नष्ट हो जाएगी,” और उसने यह श्लोक दोहराया:उन्होंने उससे कहा, "यह कमल का रस नहीं है, यह तो शराब है।" उसने कहा, "इतने लंबे समय तक मुझे मीठा स्वाद पता ही नहीं था। मुझे और शराब लाओ!" वे शराब लाए और उसे एक बार फिर पिलाई, क्योंकि वह बहुत प्यासा था। फिर जब उसने और माँगी, तो उन्होंने कहा कि सब खत्म हो गया है। उसने कहा, "आओ, मुझे और लाओ!" और उन्हें अपनी अंगूठी दे दी। दिन भर उनके साथ शराब पीने के बाद, अब वह पूरी तरह नशे में था और उसकी आँखें लाल थीं, वह काँप रहा था और बड़बड़ा रहा था। फिर वह घर गया और लेट गया। जब शराब का असर खत्म हो गया, तो उसके पिता को पता चला कि उसने शराब पी है और उन्होंने उससे कहा, "बेटा, तुमने ब्राह्मण परिवार का सदस्य होकर शराब पीकर बहुत बड़ी गलती की है: फिर कभी ऐसा मत करना।" "पिताजी, मेरा गुनाह क्या है?" "शराब पीना।" "क्या कहते हो पिताजी? मैंने अपने पूरे जीवन में कभी इतनी मीठी चीज नहीं चखी।" ब्राह्मण ने बार-बार उससे शराब छोड़ने की विनती की। “मैं यह नहीं कर सकता,” उसने कहा। फिर ब्राह्मण ने सोचा, “यदि ऐसा है, तो हमारी पारिवारिक परंपरा नष्ट हो जाएगी और हमारी संपत्ति भी नष्ट हो जाएगी,” और उसने यह श्लोक दोहराया:

एक ब्राह्मण वंश का वंशज, जो एक सुंदर लड़का भी था।
तुम्हें वह शापित पदार्थ नहीं पीना चाहिए जिसका सेवन कोई ब्राह्मण नहीं कर सकता।
और इन शब्दों के बाद उन्होंने कहा, "मेरे प्यारे बेटे, इससे दूर रहो, नहीं तो मैं तुम्हें अपने घर से निकाल दूंगा और अपने राज्य से निर्वासित कर दूंगा।" लड़के ने कहा, "फिर भी, मैं शराब नहीं छोड़ सकता," और उसने दो पंक्तियाँ दोहराईं:

चूंकि, पिताजी, आप मुझे इस बेहतरीन स्वाद से सहर्ष वंचित करना चाहते हैं,
इसे पाने के लिए, यह जहां भी मिले, मैं कितनी भी दूर जाऊंगा।
मैं शीघ्र ही यहाँ से विदा हो जाऊँगा और तुम्हारे साथ फिर कभी नहीं रहूँगा।
फिलहाल तो मुझे देखकर ही तुम्हें घृणा होती है, ऐसा मुझे लगता है।
इसके अलावा उन्होंने कहा, "मैं शराब पीने से परहेज नहीं करूंगा: जो चाहो करो।" तब ब्राह्मण ने कहा, "ठीक है, जैसे तुम हमें छोड़ रहे हो, वैसे ही हम भी तुम्हें छोड़ देंगे," और इस श्लोक को दोहराया:

हमें यकीन है कि हमें कुछ और बेटे मिल जाएंगे जो हमारी संपत्ति के उत्तराधिकारी बनेंगे और हम उन पर दावा कर सकेंगे।
जाओ, बदमाश, जहाँ हम तुम्हारा शापित नाम फिर कभी न सुन सकें।
फिर उसने अपने पुत्र को दरबार में ले जाकर उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और घर से निकाल दिया। बाद में वह युवक, जो एक गरीब और निर्धन व्यक्ति था, मोटे वस्त्र पहनकर और हाथ में भिक्षापात्र लेकर भीख माँगने लगा और एक दीवार के सहारे लेटकर उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना को राजा को सबक सिखाने के लिए कालहत्थी ने बताया, "हे महाराज, यदि आप हमारी बात नहीं मानेंगे, तो वे आपको राज्य से निर्वासित कर देंगे," और ऐसा कहकर उसने यह श्लोक कहा:

अतः हे मनुष्यों के राजा, मेरी आज्ञा का पालन करते हुए ध्यानपूर्वक सुनो।
या फिर उस शराबी युवक की तरह तुम्हें भी देश से निकाल दिया जाएगा?
कलाहत्थी द्वारा दिए गए उदाहरण के बावजूद भी राजा अपनी इस आदत से बाज नहीं आया और एक और कहानी सुनाते हुए उसने कहा:

ऐसा कहा जाता है कि सुजाता, सिद्ध संतों (*9) की शिष्या थीं।
एक दिव्य कन्या के प्रति प्रेम के कारण भोजन और पेय से परहेज किया।
जैसे घास के तिनके पर पड़ी ओस की बूंद से लेकर समुद्र के पानी तक,
क्या मानवीय प्रेम की तुलना किसी दैवीय सत्ता के प्रति प्रेम से की जा सकती है?
तो, काला, मैं, जिसने अब लंबे समय से सर्वोत्तम व्यंजनों का आनंद लिया है,
अगर यह नश्वर शरीर विफल हो जाता है, तो मुझे लगता है कि जीवन परवाह करना बंद कर देगा।
यह कहानी बिल्कुल वैसी ही है जैसी पहले बताई जा चुकी है।

कहते हैं कि सुजाता ने जब देखा कि बड़े गुलाब-सेब के टुकड़े खाने के बाद तपस्वी वापस नहीं लौटे, तो उन्होंने सोचा, "पता नहीं ये वापस क्यों नहीं आ रहे। अगर कहीं चले गए हैं, तो मैं पता लगाऊंगा; नहीं तो मैं इनका उपदेश सुनूंगा।" इसलिए वे उद्यान गए और समूह के नेता द्वारा दिए गए धर्म के उपदेश सुने। सूर्यास्त के समय, यद्यपि उन्हें विदा किया जा चुका था, उन्होंने कहा, "मैं आज यहीं रुकूंगा," और संतों के समूह को प्रणाम करके वे अपने पत्तों के बने आश्रम में चले गए और लेट गए। रात में स्वर्ग के राजा सक्का (इंद्र), देवदूतों के एक दल और अपनी दासियों के साथ तपस्वियों के समूह को प्रणाम करने आए, और पूरा आश्रम प्रकाश से जगमगा उठा। सुजाता को आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है, इसलिए वह उठ खड़ी हुई और अपने पत्तों से बने झोपड़े की एक दरार से झाँककर देखा कि

सक्का (इंद्र) अप्सराओं के एक समूह के साथ मंडली को प्रणाम करने आए हैं। उन्हें देखते ही सुजाता का मन आवेश से भर उठा। सक्का (इंद्र) एक आसन पर बैठ गए और धर्म पर प्रवचन सुनने के बाद अपने घर लौट गए। अगले दिन ज़मींदार ने तपस्वियों को प्रणाम किया और पूछा, "आदरणीय महोदय, रात में आपको प्रणाम करने कौन आया था?" "सक्का (इंद्र), महोदय।" "और उनके चारों ओर कौन बैठी थीं?" "वे अप्सराएँ कहलाती हैं।" तपस्वियों के समूह को प्रणाम करके वह घर चले गए और वहाँ पहुँचते ही मूर्खतापूर्ण ढंग से "मुझे एक अप्सरा दो" चिल्लाने लगे। उनके आसपास खड़े उनके रिश्तेदार सोचने लगे कि कहीं उन पर किसी बुरी आत्मा का साया तो नहीं है, और उन्होंने उंगलियाँ चटकाईं। उन्होंने कहा, "मैं उंगलियों के चटकने की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि स्वर्गीय अप्सराओं (*10) की बात कर रहा हूँ।" और जब वे सज-धज कर उनके पास एक पत्नी या यहाँ तक कि एक शाही नर्तकी और वेश्या को लाए और कहा, "यह एक अप्सरा है," तो उन्होंने कहा, "यह अप्सरा नहीं है, यह एक स्त्री है," और अपनी मूर्खतापूर्ण चीख जारी रखी, "मुझे एक अप्सरा दो," और बिना कुछ खाए-पिए उनकी मृत्यु हो गई। यह सुनकर कलाहत्थी ने कहा, "यह राजा बहुत लालची है: मैं इसे सुधार दूँगा।" और उन्होंने कहा, "स्वर्ग में चहचहाने वाले सुनहरे हंस भी अपने परिवार का मांस खाने से मर गए," और इसे समझाने के लिए उन्होंने दो श्लोक दोहराए:

ठीक वैसे ही जैसे ये धतरत्थ हंस हवा में उड़ते हैं
वे सभी इसलिए मर गए क्योंकि वे अत्यंत अप्राकृतिक भोजन पर जीवित थे।
हे मनुष्यों के राजा, मेरी बातों को ध्यान से सुनो।
इस गैरकानूनी भोजन को खाने के लिए, वे आपको भी भगा देंगे।

कहते हैं, एक समय की बात है, चित्तकुटा पर्वत पर स्थित स्वर्ण गुफा में नब्बे हजार हंस रहते थे। बरसात के चार महीनों तक वे बाहर नहीं निकलते थे। अगर वे बाहर निकलते, तो उनके पंख पानी से भर जाते और वे लंबी उड़ान नहीं भर पाते और समुद्र में गिर जाते। इसलिए वे बाहर नहीं निकलते थे। लेकिन बरसात का मौसम नजदीक आने पर वे एक प्राकृतिक झील से जंगली धान इकट्ठा करते और अपनी गुफा को उससे भरकर चावल खाते थे। गुफा में प्रवेश करते ही, गुफा के प्रवेश द्वार पर रथ के पहिये जितना बड़ा एक उन्नानाभी मकड़ी हर महीने जाला बुनती थी, जिसका हर धागा गाय की लगाम (रस्सी) जितना मोटा होता था। हंस एक छोटे हंस को दो भाग भोजन देते थे, यह सोचकर कि वह जाला तोड़ देगा। जब आसमान साफ होता, तो वह छोटा हंस उनके आगे आकर जाला काट देता और बाकी सभी हंस उसी तरह भाग जाते। एक बार बरसात का मौसम पांच महीने तक चला और हंसों का भोजन कम पड़ गया। उन्होंने आपस में सलाह मशवरा किया और कहा, "अगर हमें जीना है तो अंडे लेने ही होंगे।" पहले उन्होंने अंडे खाए, फिर हंस के बच्चे और उसके बाद बूढ़े हंस। पाँच महीने बाद बारिश रुक गई, मकड़ी ने पाँच जाले बुन लिए थे, और अपने परिवार के सदस्यों का मांस खाने से हंस कमज़ोर हो गए थे। जिस जवान हंस को दुगुना भोजन मिला था, उसने जालों पर प्रहार करके चार जाल तोड़ दिए, लेकिन पाँचवाँ नहीं तोड़ सका और वहीं अटक गया। इसलिए मकड़ी ने उसका सिर काट दिया और उसका खून पी लिया। पहले एक, फिर दूसरा आया और जाले पर प्रहार किया, और मकड़ी ने कहा, "देखो, एक और उसी जगह अटक गया है," और उन सभी का खून चूस लिया, और कहते हैं कि उसी समय धतरत्था हंसों का परिवार विलुप्त हो गया। राजा एक और उदाहरण देने के लिए उत्सुक थे, लेकिन नागरिकों ने उठकर कहा, "महाराज, आप क्या करने वाले हैं? अब जब आपने नरभक्षी दुष्ट को पकड़ लिया है, तो आप आगे कैसे बढ़ेंगे? यदि वह अपना अपराध नहीं छोड़ता है, तो उसे उसके राज्य से निकाल दें।" और उन्होंने राजा को एक शब्द भी नहीं बोलने दिया। जनता की बातें सुनकर राजा भयभीत हो गए और कुछ नहीं कह सके। एक बार फिर सेनापति ने उनसे कहा, "महाराज, क्या आपके लिए अपना अपराध छोड़ना संभव होगा?" राजा ने कहा, "असंभव।" तब सेनापति ने अपने सभी पुत्रों और पुत्रियों को, जो पूरी शान-शौकत से सजे हुए थे, एक तरफ खड़ा कर दिया और कहा, "महाराज, अपने परिवार के इस घेरे, सलाहकारों के इस समूह और अपने शाही वैभव को देखिए: आप निराश न हों, बल्कि मनुष्य का मांस खाना छोड़ दें।" राजा ने कहा, "यह सब मुझे मनुष्य के मांस से अधिक प्रिय नहीं है।" "तो महाराज, इस नगर और राज्य से चले जाइए।" “कलाहत्थी,” उसने कहा, “मुझे अपना राज्य नहीं चाहिए; मैं जाने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मुझ पर एक कृपा कीजिए; मुझे मेरी तलवार और मेरा रसोइया दे दीजिए।” तो उन्होंने उसे एक तलवार, मनुष्य का मांस पकाने का एक बर्तन और एक टोकरी दे दी।और उसके रसोइए को साथ लेकर उन्होंने उसे राज्य से निष्कासित कर दिया। अपने रसोइए को लेकर वह शहर से निकलकर एक जंगल में गया और बरगद के पेड़ की तलहटी में रहने लगा। वह जंगल से होकर जाने वाली सड़क पर अपना ठिकाना बनाता और आदमियों को मारकर उनके शव रसोइए को दे देता। रसोइए मांस पकाकर परोसता और दोनों इसी तरह अपना जीवन यापन करते। जब वह तेज़ी से आगे बढ़ता और चिल्लाता, "देखो, मैं आदरणीय डाकू!" तो कोई भी उसका सामना नहीं कर पाता और सब ज़मीन पर गिर पड़ते। वह जिसे भी पकड़ता, एड़ी ऊपर करके या नीचे करके, उसे अपने रसोइए को दे देता। एक दिन उसे जंगल में कोई आदमी नहीं मिला। जब वह लौटा तो रसोइए ने पूछा, "महाराज, यह क्या है?" उसने उसे बर्तन अंगीठी पर रखने को कहा। "लेकिन मांस कहाँ है महाराज?" "अरे! मैं कुछ मांस ढूँढ़ लूँगा," उसने कहा। रसोइए ने सोचा, "मैं तो गया काम से," और कांपते हुए उसने आग जलाई और बर्तन अंगीठी पर रख दिया। तभी आदमखोर ने तलवार के एक ही वार से उसे मार डाला और उसका मांस पकाकर खा गया। उसके बाद से वह बिलकुल अकेला हो गया और उसे अपना खाना खुद ही पकाना पड़ता था। पूरे भारत में यह अफवाह फैल गई, "आदमखोर राहगीरों की हत्या करता है।" उसी समय एक धनी ब्राह्मण, जो पाँच सौ गाड़ियों का व्यापार करता था, पूर्व से पश्चिम की ओर यात्रा कर रहा था और उसने सोचा, "ये लोग कहते हैं कि ये आदमखोर लुटेरा रास्ते में लोगों की हत्या करता है। पैसे देकर मैं जंगल

से होकर निकल जाऊंगा।" तो उसने जंगल के प्रवेश द्वार पर रहने वाले लोगों को एक हजार सिक्के दिए और उनसे उसे सुरक्षित जंगल से पार कराने का अनुरोध किया और उनके साथ आगे बढ़ गया। उसने अपने पूरे काफिले को अपने आगे खड़ा किया, और स्नान करके, अभिषेक करके और उत्तम वस्त्र पहनकर, सफेद बैलों द्वारा खींची जाने वाली एक आरामदायक गाड़ी में बैठ गया, और अपने काफिले के साथ सबसे पीछे चल रहा था। आदमखोर एक पेड़ पर चढ़कर मनुष्यों की तलाश में था, लेकिन यद्यपि उसे काफिले के बाकी लोगों में से किसी को खाने की भूख नहीं थी, ब्राह्मण को देखते ही उसके मुंह में उसे खाने की तीव्र इच्छा जाग उठी। जब ब्राह्मण उसके पास आया, तो उसने अपना नाम पुकारते हुए कहा, "देखो, मैं हूँ, आदमखोर डाकू," और अपनी तलवार लहराते हुए, मानो किसी की आँखों में रेत भर रहा हो, वह उन पर झपटा और कोई भी उसका सामना नहीं कर सका, बल्कि सभी जमीन पर गिर पड़े। उसने ब्राह्मण को उसकी आरामदायक गाड़ी में बैठे हुए पैर से पकड़कर, सिर नीचे की ओर करके, उसकी पीठ पर पटक दिया और उसके सिर को अपनी एड़ियों से टकराते हुए उसे उठाकर ले गया। उठ खड़े हुए लोग एक-दूसरे से चिल्लाए, "अरे! मेरे साथी, उठो! हमें ब्राह्मण के हाथों से एक हजार सिक्के मिले हैं। हममें से कौन है जो मनुष्य जैसा दिखता है? चलो, हम सब, बलवान हो या दुर्बल, थोड़ी देर के लिए उसका पीछा करें।" उन्होंने उसका पीछा किया और आदमखोर रुक गया और पीछे मुड़कर देखा।किसी को न देखकर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा। उसी क्षण एक साहसी व्यक्ति पूरी गति से दौड़ता हुआ उसके पास आ पहुँचा। उसे देखकर डाकू बाड़ फांदकर बबूल के एक टुकड़े (*11) पर पैर रख बैठा, जिससे उसके पैर के तलवे में चोट लग गई और वह लंगड़ाते हुए खून से लथपथ चलने लगा। तब उसका पीछा करने वाले ने यह देखकर कहा, "मैंने उसे घायल कर दिया है: तुम मेरे पीछे आओ, मैं उसे पकड़ लूँगा।" उन्होंने उसकी कमजोरी देखकर उसका पीछा करना शुरू कर दिया। जब डाकू ने देखा कि उसका पीछा किया जा रहा है, तो उसने ब्राह्मण को छोड़ दिया और अपनी जान बचाई। ब्राह्मण के अंगरक्षकों ने उसे पकड़ते ही सोचा, "इस डाकू से हमारा क्या लेना-देना है?" और वापस मुड़ गए। लेकिन नरभक्षी अपने बरगद के पेड़ की तलहटी में जाकर, शाखाओं के बीच लेट गया और वृक्ष की आत्मा से प्रार्थना करते हुए बोला, “हे वृक्ष की अप्सरा, यदि आप सात दिनों के भीतर मेरा घाव भर दें, तो मैं आपके तने को भारत के एक सौ एक राजकुमारों के गले के रक्त से स्नान कराऊंगा, और वृक्ष को चारों ओर से उनके अंतर्वस्त्रों से लटकाकर पाँच प्रकार के मीठे मांस का बलिदान चढ़ाऊंगा।” अब, कुछ भी न खाने-पीने के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया, और सात दिनों के भीतर उसका घाव भर गया। उसने पहचान लिया कि उसका उपचार वृक्ष की अप्सरा की कृपा से हुआ है, और कुछ दिनों में उसने मनुष्य का मांस खाकर अपनी शक्ति वापस पा ली और सोचा, “आत्मा ने मेरी बहुत सहायता की है। मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।” अपनी तलवार लेकर वह तेजी से वृक्ष की तलहटी से आगे बढ़ा और राजाओं को लाने के इरादे से चल पड़ा। अब, एक यक्ष (राक्षस), जो पिछले जन्म में उसका साथी था और उसके साथ मिलकर मनुष्य का मांस खाता था, ने उसे देख लिया। यह जानते हुए कि वह पिछले जन्म में उसका मित्र था, उसने उससे पूछा, "क्या तुम मुझे पहचान नहीं रहे, मित्र?" यक्ष ने कहा, "नहीं।" तब उसने उसे अपने पिछले जन्म के एक किस्से के बारे में बताया। नरभक्षी ने उसे पहचान लिया और स्नेहपूर्वक अभिवादन किया। जब उससे पूछा गया कि उसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ है, तो उसने अपने जन्मस्थान के बारे में बताया और यह भी बताया कि उसे उसके राज्य से कैसे निकाला गया था और अब वह कहाँ रह रहा है। उसने यह भी बताया कि वह एक छर्रे से घायल हो गया था और अब वह वृक्ष-परी से किए अपने वादे को पूरा करने के लिए एक अभियान पर जा रहा है। उसने कहा, "मुझे तुम्हारी मदद से इस मुश्किल से पार पाना है: हम साथ चलेंगे, मेरे मित्र।" "मैं नहीं जा सकता, लेकिन मैं आपकी एक सेवा कर सकता हूँ। मुझे एक ऐसा मंत्र अवश्य आता है जिसके शब्द अमूल्य हैं। यह शक्ति, फुर्ती और प्रतिष्ठा में वृद्धि सुनिश्चित करता है। यह मंत्र सीख लीजिए।" वह तुरंत मान गया, और जिन्न ने उसे मंत्र दिया और चला गया। नरभक्षी ने मंत्र को कंठस्थ कर लिया, और उस समय से वह हवा की तरह तेज और बहुत साहसी हो गया। सात दिनों के भीतर उसने एक सौ एक राजाओं को पार्कों और अन्य स्थानों की ओर जाते हुए पाया और हवा की गति से उन पर झपट पड़ा।अपना नाम पुकारते हुए, उछल-कूद करते हुए और चिल्लाते हुए उसने उन्हें बहुत डरा दिया। फिर उसने उनके पैर पकड़कर उन्हें सिर नीचे की ओर झुकाए रखा और एड़ियों से उनके सिर पर प्रहार करते हुए उन्हें हवा की गति से उड़ा ले गया। इसके बाद उसने उनकी हथेलियों में छेद किए और उन्हें एक रस्सी से बरगद के पेड़ पर लटका दिया। हवा उनके पैरों की उंगलियों के ठीक ज़मीन को छूते ही उन पर प्रहार करती थी, जिससे वे पेड़ पर ऐसे लटके हुए थे जैसे टोकरी में मुरझाए फूलों की मालाएँ घूम रही हों। लेकिन उसने सोचा, "सुतासोमा मेरे निजी गुरु थे: भारत को पूरी तरह से उजाड़ न होने दें," और उसे नहीं लाया। पेड़ को भेंट चढ़ाने के विचार से उसने आग जलाई और एक डंडा तेज करते हुए बैठ गया। यह देखकर वृक्ष-अप्सरा ने सोचा, "वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को ठीक नहीं किया: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊँगी।" इसलिए वह गई और चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह इंद्र के पास गईं और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं यह नहीं कर सकता, लेकिन मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो यह कर सकता है।" उसने पूछा, "वह कौन है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मनुष्यों और देवदूतों के लोक में, उनके अलावा कोई और नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु के राजकुमार सुतसोमा हैं। वे इस व्यक्ति को वश में करेंगे और उसे विनम्र बनाएंगे, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेंगे, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेंगे और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेंगे। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उनसे कहें कि पहले सुतसोमा को लाएँ और फिर वृक्ष को उनका बलिदान अर्पित करें।" "ठीक है," वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके तेजी से उस नरभक्षी के पास पहुँच गई। कदमों की आहट सुनकर उसने सोचा, "क्या कोई राजा बच निकला है?" ऊपर देखकर उसने सोचा, "तपस्वी निश्चय ही क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं इसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूर्ण संख्या प्राप्त कर

लूँगा और अपना यज्ञ (*12) अर्पित करूँगा।" वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "मैं एक समय में पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के अभ्यस्त होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," उसने पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उन्होंने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोलते हो," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:फिर उसने उनके पैर पकड़कर उन्हें सिर नीचे की ओर झुकाए रखा और एड़ियों से उनके सिर पर प्रहार करते हुए उन्हें हवा की गति से उड़ा ले गया। इसके बाद उसने उनकी हथेलियों में छेद किए और उन्हें एक रस्सी से बरगद के पेड़ पर लटका दिया। हवा के झोंके से उनके पैर की उंगलियां ज़मीन को छूते ही टकराने लगीं और वे पेड़ पर ऐसे लटके रहे जैसे टोकरी में मुरझाए फूलों की मालाएं घूम रही हों। लेकिन उसने सोचा, "सुतासोमा मेरे निजी गुरु थे: भारत को पूरी तरह उजाड़ न होने दें," और वह उन्हें नहीं लाया। पेड़ को भेंट चढ़ाने के विचार से उसने आग जलाई और एक डंडा तेज करते हुए बैठ गया। यह देखकर वृक्ष-परी ने सोचा, "वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को ठीक नहीं किया: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊंगी।" इसलिए वह गई और उसने चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह इंद्र के पास गईं और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं यह नहीं कर सकता, लेकिन मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो यह कर सकता है।" उसने पूछा, "वह कौन है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मनुष्यों और देवदूतों के लोक में, उनके अलावा कोई और नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु के राजकुमार सुतसोमा हैं। वे इस व्यक्ति को वश में करेंगे और उसे विनम्र बनाएंगे, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेंगे, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेंगे और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेंगे। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उनसे कहें कि पहले सुतसोमा को लाएँ और फिर वृक्ष को उनका बलिदान अर्पित करें।" "ठीक है," वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके तेजी से उस नरभक्षी के पास पहुँच गई। कदमों की आहट सुनकर उसने सोचा, "क्या कोई राजा बच निकला है?" ऊपर देखकर उसने सोचा, "तपस्वी निश्चय ही क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं इसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूर्ण संख्या प्राप्त कर लूँगा और अपना यज्ञ (*12) अर्पित करूँगा।" वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "मैं एक समय में पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के अभ्यस्त होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," उसने पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उन्होंने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोलते हो," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:फिर उसने उनके पैर पकड़कर उन्हें सिर नीचे की ओर झुकाए रखा और एड़ियों से उनके सिर पर प्रहार करते हुए उन्हें हवा की गति से उड़ा ले गया। इसके बाद उसने उनकी हथेलियों में छेद किए और उन्हें एक रस्सी से बरगद के पेड़ पर लटका दिया। हवा के झोंके से उनके पैर की उंगलियां ज़मीन को छूते ही टकराने लगीं और वे पेड़ पर ऐसे लटके रहे जैसे टोकरी में मुरझाए फूलों की मालाएं घूम रही हों। लेकिन उसने सोचा, "सुतासोमा मेरे निजी गुरु थे: भारत को पूरी तरह उजाड़ न होने दें," और वह उन्हें नहीं लाया। पेड़ को भेंट चढ़ाने के विचार से उसने आग जलाई और एक डंडा तेज करते हुए बैठ गया। यह देखकर वृक्ष-परी ने सोचा, "वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को ठीक नहीं किया: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊंगी।" इसलिए वह गई और उसने चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह इंद्र के पास गईं और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं यह नहीं कर सकता, लेकिन मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो यह कर सकता है।" उसने पूछा, "वह कौन है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मनुष्यों और देवदूतों के लोक में, उनके अलावा कोई और नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु के राजकुमार सुतसोमा हैं। वे इस व्यक्ति को वश में करेंगे और उसे विनम्र बनाएंगे, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेंगे, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेंगे और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेंगे। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उनसे कहें कि पहले सुतसोमा को लाएँ और फिर वृक्ष को उनका बलिदान अर्पित करें।" "ठीक है," वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके तेजी से उस नरभक्षी के पास पहुँच गई। कदमों की आहट सुनकर उसने सोचा, "क्या कोई राजा बच निकला है?" ऊपर देखकर उसने सोचा, "तपस्वी निश्चय ही क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं इसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूर्ण संख्या प्राप्त कर लूँगा और अपना यज्ञ (*12) अर्पित करूँगा।" वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "मैं एक समय में पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के अभ्यस्त होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक

जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," उसने पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उन्होंने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोलते हो," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:इसके बाद उसने उनके हाथों की हथेलियों में छेद किए और उन्हें एक रस्सी से बरगद के पेड़ पर लटका दिया। हवा के झोंके से उनके पैर ज़मीन को छूते ही झटकने लगे और वे पेड़ पर ऐसे लटके रहे जैसे टोकरी में मुरझाए फूलों की मालाएँ घूम रही हों। लेकिन उसने सोचा, "सुतासोमा मेरे निजी गुरु थे: भारत को पूरी तरह उजाड़ न होने दें," और उसे नहीं लाया। पेड़ को भेंट चढ़ाने के विचार से उसने आग जलाई और एक डंडा तेज़ करने के लिए बैठ गया। यह देखकर वृक्ष-अप्सरा ने सोचा, "वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को ठीक नहीं किया: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊँगी।" इसलिए वह गई और चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह सक्का (इंद्र) के पास गई और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं ऐसा नहीं कर सकता, लेकिन मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो ऐसा कर सकता है।" उसने कहा, "वह कौन है?" “मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संसार में,” उसने उत्तर दिया, “और कोई नहीं है, सिवाय कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु के राजकुमार सुतसोमा के। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उससे कहें कि पहले सुतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को उसका बलिदान अर्पित करे।” “ठीक है,” वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके शीघ्रता से उस नरभक्षी के निकट पहुँच गया। पदचिन्हों की आहट सुनकर उसने सोचा, “क्या कोई राजा बच निकला है?” ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, “तपस्वी निश्चित रूप से क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूँगा और अपना बलिदान अर्पित करूँगा (*12)।” वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "एक समय था जब मैं पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," वह पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोल रहे हो," और उसने यह श्लोक दोहराया:इसके बाद उसने उनके हाथों की हथेलियों में छेद किए और उन्हें एक रस्सी से बरगद के पेड़ पर लटका दिया। हवा के झोंके से उनके पैर ज़मीन को छूते ही झटकने लगे और वे पेड़ पर ऐसे लटके रहे जैसे टोकरी में मुरझाए फूलों की मालाएँ घूम रही हों। लेकिन उसने सोचा, "सुतासोमा मेरे निजी गुरु थे: भारत को पूरी तरह उजाड़ न होने दें," और उसे नहीं लाया। पेड़ को भेंट चढ़ाने के विचार से उसने आग जलाई और एक डंडा तेज़ करने के लिए बैठ गया। यह देखकर वृक्ष-अप्सरा ने सोचा, "वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को ठीक नहीं किया: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊँगी।" इसलिए वह गई और चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह सक्का (इंद्र) के पास गई और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "मैं ऐसा नहीं कर सकता, लेकिन मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो ऐसा कर सकता है।" उसने कहा, "वह कौन है?" “मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संसार में,” उसने उत्तर दिया, “और कोई नहीं है, सिवाय कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु के राजकुमार सुतसोमा के। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उससे कहें कि पहले सुतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को उसका बलिदान अर्पित करे।” “ठीक है,” वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके शीघ्रता से उस नरभक्षी के निकट पहुँच गया। पदचिन्हों की आहट सुनकर उसने सोचा, “क्या कोई राजा बच निकला है?” ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, “तपस्वी निश्चित रूप से क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूँगा और अपना बलिदान अर्पित करूँगा (*12)।” वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "एक समय था जब मैं पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," वह पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोल रहे हो," और उसने यह श्लोक दोहराया:और उसे नहीं लाया। वृक्ष को बलि चढ़ाने के विचार से उसने अग्नि प्रज्वलित की और बैठकर एक डंडा तराशने लगा। यह देखकर वृक्ष-परी ने सोचा, “वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को नहीं भरा: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊंगी।” इसलिए वह गई और चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह सक्का (इंद्र) के पास गई और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, “मैं ऐसा

नहीं कर सकता, लेकिन मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो ऐसा कर सकता है।” उसने पूछा, “वह कौन है?” उन्होंने उत्तर दिया, “मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संसार में, उनके अलावा कोई और नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु का राजकुमार सुतसोमा है। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा और इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, और उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा।” यदि तुम राजाओं के जीवन को बचाना चाहते हो, तो उससे कहो कि पहले सूतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को अपना बलिदान अर्पित करे।” “ठीक है,” वृक्ष-आत्मा ने कहा और तपस्वी का वेश धारण करके तेज़ी से उस नरभक्षी के पास पहुँचा। पदचाप सुनकर उसने सोचा, “क्या कोई राजा बच निकला है?” ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, “तपस्वी तो क्षत्रिय ही होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूँगा और अपना बलिदान अर्पित करूँगा (*12)।” वह उठा और तलवार हाथ में लेकर तपस्वी का पीछा किया, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, “मैं एक समय में पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है।” इसका कारण क्या हो सकता है?” फिर सोचते हुए, “तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: अगर मैं उसे खड़े होने के लिए कहूँ और वह खड़ा हो जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा,” उसने पुकार कर कहा, “खड़े हो जाइए, हे पूज्यवर।” “मैं खड़ा हूँ,” उसने उत्तर दिया, “आप भी खड़े होने का प्रयास कीजिए।” फिर उसने कहा, “अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, लेकिन आप झूठ बोल रहे हैं,” और उसने इस श्लोक को दोहराया:और उसे नहीं लाया। वृक्ष को बलि चढ़ाने के विचार से उसने अग्नि प्रज्वलित की और बैठकर एक डंडा तराशने लगा। यह देखकर वृक्ष-परी ने सोचा, “वह मुझे बलि चढ़ाने की तैयारी कर रहा है, लेकिन मैंने उसके घाव को नहीं भरा: अब वह एक बड़ा नरसंहार करेगा। क्या किया जाए? मैं उसे रोक नहीं पाऊंगी।” इसलिए वह गई और चारों महान राजाओं को यह बात बताई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। जब उन्होंने कहा कि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वह सक्का (इंद्र) के पास गई और उन्हें पूरी कहानी सुनाई और उनसे उसे रोकने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, “मैं ऐसा नहीं कर सकता, लेकिन मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता हूँ जो ऐसा कर सकता है।” उसने पूछा, “वह कौन है?” उन्होंने उत्तर दिया, “मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संसार में, उनके अलावा कोई और नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु का राजकुमार सुतसोमा है। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा और इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, और उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा।” यदि तुम राजाओं के जीवन को बचाना चाहते हो, तो उससे कहो कि पहले सूतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को अपना बलिदान अर्पित करे।” “ठीक है,” वृक्ष-आत्मा ने कहा और तपस्वी का वेश धारण करके तेज़ी से उस नरभक्षी के पास पहुँचा। पदचाप सुनकर उसने सोचा, “क्या कोई राजा बच निकला है?” ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, “तपस्वी तो क्षत्रिय ही होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूँ, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूँगा और अपना बलिदान अर्पित करूँगा (*12)।” वह उठा और तलवार हाथ में लेकर तपस्वी का पीछा किया, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, “मैं एक समय में पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है।” इसका कारण क्या हो सकता है?” फिर सोचते हुए, “तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: अगर मैं उसे खड़े होने के लिए कहूँ और वह खड़ा हो जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा,” उसने पुकार कर कहा, “खड़े हो जाइए, हे पूज्यवर।” “मैं खड़ा हूँ,” उसने उत्तर दिया, “आप भी खड़े होने का प्रयास कीजिए।” फिर उसने कहा, “अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, लेकिन आप झूठ बोल रहे हैं,” और उसने इस श्लोक को दोहराया:“और कोई नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु का राजकुमार सुतसोमा है। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उससे कहें कि पहले सुतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को उसका बलिदान अर्पित करे।” “ठीक है,” वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके तेजी से गया और नरभक्षी के पास पहुंचा। कदमों की आहट सुनकर उसने सोचा, “क्या कोई राजा बच निकला है?” ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, “तपस्वी निश्चित रूप से क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूं, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूंगा और अपना बलिदान अर्पित करूंगा (*12)।” वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "एक समय था जब मैं पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," वह पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोल रहे हो," और उसने यह श्लोक दोहराया:“और कोई नहीं है, लेकिन कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में कुरु का राजकुमार सुतसोमा है। वह इस व्यक्ति को वश में करेगा और उसे विनम्र बनाएगा, इन राजाओं के जीवन की रक्षा करेगा, उसे मानव मांस खाने की बीमारी से मुक्त करेगा और पूरे भारत पर अमृत की वर्षा करेगा। यदि आप राजाओं के जीवन की रक्षा के लिए उत्सुक हैं, तो उससे कहें कि पहले सुतसोमा को लाए और फिर वृक्ष को उसका बलिदान अर्पित करे।” “ठीक

है," वृक्ष-आत्मा ने कहा और एक तपस्वी का वेश धारण करके तेजी से गया और नरभक्षी के पास पहुंचा। कदमों की आहट सुनकर उसने सोचा, "क्या कोई राजा बच निकला है?" ऊपर देखकर उसे देखकर उसने सोचा, "तपस्वी निश्चित रूप से क्षत्रिय होते हैं। यदि मैं उसे पकड़ लूं, तो मैं एक सौ एक राजाओं की पूरी संख्या पूरी कर लूंगा और अपना बलिदान अर्पित करूंगा (*12)।" वह उठा और हाथ में तलवार लिए तपस्वी का पीछा करने लगा, परन्तु तीन मील (4.23 किमी) तक पीछा करने के बावजूद वह उसे पकड़ नहीं सका, और उसके शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगीं। उसने सोचा, "एक समय था जब मैं पूरी गति से दौड़ते हुए हाथी, घोड़े या रथ का पीछा करके उसे पकड़ लेता था, परन्तु आज अपनी पूरी शक्ति से दौड़ने के बावजूद मैं इस तपस्वी को नहीं पकड़ पा रहा हूँ जो अपनी स्वाभाविक गति से चल रहा है। इसका कारण क्या हो सकता है?" फिर यह सोचकर, "तपस्वी आज्ञा मानने के आदी होते हैं: यदि मैं उसे रुकने के लिए कहूँ और वह रुक जाए, तो मैं उसे पकड़ लूँगा," वह पुकारा, "रुको, हे पूज्यवर।" "मैं खड़ा हूँ," उसने उत्तर दिया, "तुम भी खड़े होने का प्रयास करो।" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोल रहे हो," और उसने यह श्लोक दोहराया:उसने उत्तर दिया, "क्या तुम भी खड़े होने का प्रयास करते हो?" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोलते हो," और उसने इस श्लोक को दोहराया:उसने उत्तर दिया, "क्या तुम भी खड़े होने का प्रयास करते हो?" फिर उसने कहा, "अरे! तपस्वी तो अपनी जान बचाने के लिए भी झूठ नहीं बोलते, परन्तु तुम झूठ बोलते हो," और उसने इस श्लोक को दोहराया:

हालांकि मैं तुम्हें खड़े होने के लिए कहता हूं, फिर भी तुम आगे की ओर उड़ते हो।
और "देखो! मैं खड़ा हूँ" चिल्लाते हुए, मुझे लगता है कि तुम झूठ बोल रहे हो:
यह अनुचित है; हे पुजारी, यह तलवार आपको ही धारण करनी होगी।
बगुले के पंख से सुसज्जित एक हानिरहित शाफ्ट होना (*13)।
तब अप्सरा ने दो छंद कहे:

मैं धर्मपरायणता में समर्पित हूँ।
न ही मैं अपना नाम या परिवार बदलूं।
यहां लुटेरे क्षण भर के लिए ही ठहरते हैं।
जल्द ही उन्हें नरक की पीड़ाओं का सामना करना पड़ेगा।
यहां साहसी और बंदी बनो, महान सुतासोमा लाओ
और उसके बलिदान से ही तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे, हे राजा।
इन शब्दों के साथ अप्सरा ने तपस्वी का वेश उतार दिया और अपने असली रूप में प्रकट हो गई, आकाश में सूर्य के समान चमकती हुई। नरभक्षी ने उसकी बातें सुनकर और उसका रूप देखकर पूछा कि वह कौन है। जब उसने उत्तर दिया कि वह इस वृक्ष की आत्मा के रूप में पुनर्जीवित हुई है, तो वह प्रसन्न हुआ और यह सोचकर, "मैंने अपने संरक्षक देवता के दर्शन कर लिए हैं," उसने कहा, "हे स्वर्ग के स्वामी, सुतासोमा के कारण विचलित न हों, बल्कि एक बार फिर अपने वृक्ष में प्रवेश करें।" आत्मा उसकी आँखों के सामने वृक्ष में प्रवेश कर गई। उसी क्षण सूर्य अस्त हो गया और चंद्रमा उदय हो गया। वेदों और उनके सहायक ग्रंथों में पारंगत तथा आकाशीय पिंडों की गतिविधियों से भलीभांति परिचित नरभक्षी ने आकाश की ओर देखकर सोचा, "कल फुस्सा नक्षत्र होगा; सुतसोमा उद्यान में स्नान करने आएगा और तब मैं उस पर हाथ रखूंगा। परन्तु चूंकि उसके चारों ओर कड़ी सुरक्षा होगी और समस्त भारत के निवासी तीन मील (4.23 किमी) के दायरे में उसकी रक्षा के लिए आएंगे, इसलिए पहले पहर में, सुरक्षाकर्मियों के तैनात होने से पहले, मैं मिगाचिरा उद्यान में जाकर राजकुंड में उतरूंगा और वहां खड़ा हो जाऊंगा।" अतः वह कमल के पत्ते से अपना सिर ढककर तालाब में उतर गया और वहां खड़ा हो गया। उसकी इस महान महिमा के कारण मछलियां, कछुए और अन्य जीव पीछे हट गए और बड़ी संख्या में जल के किनारे तैरने लगे। यह पूछा जा सकता है कि उसकी यह महिमा कहां से आई? उसके पूर्व जन्म की भक्ति से। क्योंकि जिस समय कश्यप बुद्ध थे, उन्होंने टिकट के आधार पर दूध का वितरण शुरू किया था। इसी कारण वह अत्यंत शक्तिशाली हो गया, और उसने भिक्षुओं की सभा से ठंड से बचने के लिए आग जलाने हेतु एक कक्ष बनवाया, तथा आग, लकड़ी और लकड़ी काटने के लिए कुल्हाड़ी का प्रबंध किया। इसके फलस्वरूप वह प्रसिद्ध हो गया। अब जब वह भोर होते-होते उद्यान में चला गया, तो उन्होंने चारों ओर तीन मील (4.23 किमी) की दूरी तक पहरा नियुक्त किया, और राजा सुतसोमा सुबह नाश्ते के बाद, उत्तम साज-सज्जा वाले हाथी पर सवार होकर, चार भुजाओं की पूर्ण सेना के साथ, शहर से शीघ्रतापूर्वक निकल पड़ा। उसी क्षण तक्षशिला से नंदा नामक एक ब्राह्मण, अपने साथ सौ सिक्कों के मूल्य के चार श्लोक लेकर, एक सौ बीस मील (4.23 किमी) की यात्रा करके शहर पहुँचा, और एक उपनगर में रहने लगा। सूर्योदय के समय शहर में प्रवेश करते ही उसने राजा को पूर्वी द्वार से निकलते देखा, और हाथ उठाकर उसने पुकारा, "राजा की जय हो!" राजा दूरदर्शी थे, इसलिए वे घोड़े पर सवार होकर जा रहे थे, तभी उन्होंने एक ऊंचे स्थान पर खड़े ब्राह्मण का फैला हुआ हाथ देखा। हाथी पर सवार होकर राजा उनके पास आए और इस प्रकार बोले:

मैं जानना चाहता हूँ कि आपका जन्म किस क्षेत्र में और क्यों हुआ?
हे ब्राह्मण, यहाँ आकर कहो;

यह कहते हुए, आज मैं आपको यह अनुमति देता हूँ
आपकी प्रार्थना, चाहे वह कुछ भी हो।
तब ब्राह्मण ने उसे उत्तर दिया:

हे महान राजा, आपके लिए चार श्लोक।
समुद्र जितना गहरा है, उतना ही महत्वपूर्ण है।
मैं इन्हें यहाँ लाया हूँ; इन्हें ध्यान से सुनो।
वे अपने सबसे महत्वपूर्ण रहस्य बताते हैं।
“महाराज,” उन्होंने कहा, “बुद्ध कश्यप द्वारा मुझे सिखाए गए ये चार श्लोक प्रत्येक सौ सिक्कों के बराबर हैं, और यह सुनकर कि आपको सोम रस का अर्पण (*14) प्रिय है, मैं आपको सिखाने आया हूँ।” राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, “गुरुजी, आपने अच्छा कार्य किया है, परन्तु मेरे लिए पीछे हटना संभव नहीं है। आज, क्योंकि यह फुस्सा युति है, मेरे सिर धोने का दिन है: जब मैं लौटूँगा तो आपकी बात सुनूँगा। मुझसे असंतुष्ट न हों।” और ये कहकर उन्होंने अपने सलाहकारों से कहा, “जाओ और किसी ब्राह्मण के घर में एक पलंग तैयार करो और छायादार भोजन कक्ष की व्यवस्था करो,” और वे अपने उद्यान में चले गए। यह उद्यान अठारह भुजाओं जितनी ऊँची दीवार से घिरा हुआ था और चारों ओर एक-दूसरे से सटकर खड़े हाथियों द्वारा सुरक्षित था। फिर घोड़े, फिर रथ, और अंत में धनुर्धर और अन्य पैदल सैनिक—वहाँ लाई गई सेना एक विशाल अशांत सागर के समान थी। राजा ने अपने भारी आभूषण उतार दिए, दाढ़ी बनवा ली और शैम्पू कर लिया, फिर पूरे वैभव के साथ कमल के सरोवर में स्नान किया। जल से बाहर आकर वे स्नान वस्त्र पहने खड़े हो गए, और उन्हें सुगंधित मालाएँ पहनाई गईं। नरभक्षी ने सोचा, "जब राजा पूरी तरह से वस्त्र पहने होंगे, तो वे भारी होंगे। मैं उन्हें तभी पकड़ूंगा जब वे हल्के होंगे।" इसलिए वे बिजली की गति से चिल्लाते, उछलते-कूदते और अपने सिर के ऊपर तलवार घुमाते हुए अपना नाम पुकारते हुए बोले, "हे! मैं हूँ, नरभक्षी डाकू!" और उन्होंने अपनी उंगली माथे पर रखी (*15) और जल से बाहर निकल आए। जैसे ही उन्होंने उनकी पुकार सुनी, हाथी सवार अपने हाथियों के साथ, घुड़सवार अपने घोड़ों के साथ और रथ चालक अपने रथों के साथ जमीन पर गिर पड़े, और सभी ने अपने हथियार गिरा दिए और पेट के बल लेट गए। नरभक्षी ने सुतासोमा को पकड़ लिया और उसे सीधा खड़ा रखा। बाकी राजाओं को उसने पैर से पकड़कर सिर नीचे की ओर झुका दिया और उनके सिर को अपनी एड़ियों से टकराते हुए उन्हें अपने साथ ले गया, लेकिन बोधिसत्व के पास पहुँचकर वह नीचे झुका और उन्हें उठाकर अपने कंधों पर बिठा लिया। यह सोचकर कि द्वार से होकर जाना एक घुमावदार रास्ता होगा, वह अपने सामने वाली दीवार पर अठारह भुजाओं जितनी ऊँची दीवार को फांदकर आगे बढ़ा और मदमस्त हाथियों के सिर को रौंदता चला गया, मानो उन पर पर्वत शिखर हों। फिर वह घोड़ों की पीठ पर चला - जो हवा की तरह तेज और अनमोल थे - उन्हें भी नीचे गिरा दिया। फिर जब उसने शानदार रथों के आगे के भाग पर कदम रखा, तो वह मानो किसी लट्टू को घुमा रहा हो (*16) या मानो गहरे हरे फलक (*17) के पौधे या बरगद के पत्तों को कुचल रहा हो, और एक ही झटके में उसने तीन मील (x 4.23 किमी) की दूरी तय कर ली। फिर यह सोचकर कि क्या कोई सुतासोमा को बचाने के लिए आ रहा है, उसने देखा और किसी को न देखकर धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। सुतासोमा के बालों से उस पर गिरती बूंदों को देखकर उसने सोचा,"ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो मृत्यु के भय से मुक्त होकर जी रहा हो: मुझे लगता है कि सुतासोमा भी इसी भय से रो रहा है," और उसने कहा:

परंपराओं में पारंगत पुरुष, जिनमें उच्च विचार उत्पन्न होते हैं,
ऐसे लोग कभी नहीं रोते, वे विद्वान और बुद्धिमान होते हैं;
सभी को इसमें शरण और ठहरने का स्थान मिलता है।
इस प्रकार ऋषि-मुनि दुःख को दूर भगा सकते हैं।
क्या यह आपका परिवार, पत्नी, बच्चा, या शायद आप स्वयं हैं?
आपके अनाज के भंडार, आपका सोना और चांदी का खजाना--
सुतासोमा, तुम्हारे आंसू किस वजह से बहे?
हे कुरु देव, आपका उत्तर हमें अवश्य पता होना चाहिए।
सुतासोमा ने कहा:

नहीं, मैं अपने लिए आंसू नहीं बहा रही हूँ।
न ही मेरी पत्नी या बच्चे के लिए, न मेरे राज्य के लिए और न ही मेरी संपत्ति के लिए।
मैं प्राचीन संतों के बताए मार्ग का अनुसरण करता हूँ।
और एक अधूरे वादे के लिए मैं रोता हूँ।
मैंने एक ब्राह्मण को वचन दिया था।
मैंने अपने राज्य में किस समय शक्ति के साथ शासन किया;
मैं उस वचन को सहर्ष निभाऊंगा और फिर,
मेरी इज्जत बच गई, मैं फिर से आपके पास लौट आऊंगा।

तब आदमखोर ने कहा:

अगर कोई भी हो तो मैं विश्वास नहीं करूंगा।
सौभाग्यवश मृत्यु के मुंह से मुक्त हो गया,
वह उसे उसके शत्रु के हवाले करने के लिए वापस लौटेगा;
अगर मैं तुम्हें जाने दूं, तो तुम भी ऐसा नहीं करोगे।
अगर आप खूंखार आदमखोर से बचकर आएँ तो,
मीठी कामनाओं से भरी, आपके शाही घर के लिए,
प्रिय, जीवन अपने समस्त आकर्षणों के साथ तुम्हें पुनः प्राप्त हो जाए।
आखिर तुम मेरे पास वापस क्यों आओगे?
यह सुनकर उस महान सत्ता ने निडर शेर की तरह कहा:

यदि निर्दोष हो तो मनुष्य मृत्यु को प्राथमिकता देगा।
किसी अपमानजनक टिप्पणी से घिरे जीवन के लिए;
क्या उसे अपनी जान बचाने के लिए झूठ बोलना चाहिए?
यह उसे नरक की पीड़ाओं से नहीं बचा पाएगा।
(*18) हवा किसी ऊंचे पहाड़ को जल्दी हिला सकती है,
या फिर सूर्य और चंद्रमा आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ें,
हाँ, हे प्रभु, नदियाँ ऊपर की ओर बह सकती हैं।
इससे पहले कि मैं झूठ का एक भी शब्द बोलने का दोषी हो जाऊं।
हालांकि उसने ऐसा कहा, फिर भी नरभक्षी ने उस पर विश्वास नहीं किया। तब बोधिसत्व ने सोचा, "वह मुझ पर विश्वास नहीं करता; मैं शपथ लेकर उसे विश्वास दिलाऊंगा," और कहा, "हे नरभक्षी, मुझे अपनी पीठ से नीचे उतार दो और मैं शपथ लेकर तुम्हें विश्वास दिला दूंगा।" इन शब्दों के बाद नरभक्षी ने उसे नीचे उतार दिया और जमीन पर रख दिया, और शपथ लेते हुए उसने कहा:

देखो! जैसे ही मैं इस भाले और तलवार को छूता हूँ
मैं आपको अपना दृढ़ वचन देता हूँ।
मुझे रिहा कर दो और मैं कर्ज मुक्त हो जाऊंगा।
मेरी इज्जत बच गई, मैं तुम्हें लौटाता हूँ।
तब नरभक्षी ने सोचा, "यह सुतसोमा क्षत्रिय नियमों का उल्लंघन करने की सजा के तहत शपथ लेता है। मुझे इससे क्या चाहिए? खैर, मैं भी एक क्षत्रिय राजा हूँ। मैं अपनी भुजा से रक्त निकालकर वृक्ष की आत्मा को अर्पित करूँगा। यह तो बहुत ही कायर है।" और उसने कहा:

आपने एक ब्राह्मण से जो प्रतिज्ञा की थी,
आपने अपने राज्य में किस समय शक्ति के साथ शासन किया?
मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उस वचन का पालन करें और फिर,
आपकी प्रतिष्ठा बच गई, मेरे पास वापस लौट आइए।
तब उस महान सत्ता ने कहा, "मेरे मित्र, चिंता मत करो। जब मैं सौ सिक्कों के बराबर मूल्य वाले चारों श्लोक सुन लूँगा और धर्म के उपदेशक को भेंट चढ़ा दूँगा, तब मैं भोर होते ही लौट आऊँगा।" और फिर उसने यह श्लोक कहा:

मैंने एक बार एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी,
मैंने अपने राज्य में किस समय शक्ति के साथ शासन किया,
मैं पहले उस वचन का पालन करूंगा और फिर,
मेरी इज्जत बच गई, मैं फिर से आपके पास लौट आऊंगा।
तब नरभक्षी ने कहा, “तुमने क्षत्रिय रीति-रिवाजों का उल्लंघन करने की शपथ ली है। ध्यान रहे कि तुम उसी के अनुसार कार्य करो।”
“मेरे नरभक्षी मित्र,” उसने कहा, “तुम मुझे बचपन से जानते हो: मैंने कभी मजाक में भी झूठ नहीं बोला, और अब जब मैं सिंहासन पर विराजमान हूँ और सही-गलत जानता हूँ, तो मैं झूठ क्यों बोलूँ? मुझ पर भरोसा रखो, मैं तुम्हारे लिए भेंट अर्पित करूँगा।” उसकी बात पर विश्वास करके उसने कहा, “ठीक है, महाराज, आप जाइए, और यदि आप वापस नहीं आते हैं, तो कोई भेंट नहीं हो सकती और आत्मा आपके बिना इसके लिए सहमत नहीं है: मेरी भेंट के मार्ग में कोई बाधा न डालें,” और उसने उस महान प्राणी को जाने दिया। जैसे चंद्रमा राहु (ग्रहण) के चंगुल से बच निकलता है और एक युवा हाथी की शक्ति से वह शीघ्र ही नगर पहुँच गया। और उसके सैनिकों ने सोचा,

"राजा सुतासोमा बुद्धिमान और धर्म के मधुर उपदेशक हैं। यदि वे उससे एक-दो शब्द कह लें तो वह आदमखोर को परिवर्तित कर देगा और शेर के मुँह से भागते हुए उग्र हाथी की तरह लौट आएगा।" और यह सोचकर कि "लोग हमें धिक्कारेंगे और कहेंगे, 'अपने राजा को आदमखोर के हवाले करने के बाद क्या तुम हमारे पास वापस आ रहे हो?'" वे शहर की दीवारों के बाहर डेरा डाले रहे, और जब उन्होंने उसे दूर से आते देखा तो वे उससे मिलने के लिए बाहर गए और मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए पूछा, "महाराज, क्या आप उस आदमखोर से बुरी तरह तंग नहीं आ गए थे?" "उस आदमखोर ने," उसने कहा, "ऐसा कुछ किया है जो मेरे माता-पिता ने कभी नहीं किया।" "इतना क्रूर और हिंसक प्राणी होने के बावजूद, मेरे धर्म के उपदेश सुनने के बाद उसने मुझे जाने दिया।" फिर उन्होंने राजा को सजाया-संवारा और हाथी पर बिठाकर नगर में ले गए। उन्हें देखकर नगरवासी प्रसन्न हुए, और धर्म के प्रति उनकी लगन के कारण, वे अपने माता-पिता से मिलने नहीं गए, बल्कि यह सोचकर कि "समय आने पर उनसे मिल लूँगा," वे अपने महल में प्रवेश कर अपने सिंहासन पर बैठ गए। फिर उन्होंने ब्राह्मण को बुलाया और उसे मुंडवाने का आदेश दिया। जब उसके बाल और दाढ़ी मुंडवा लिए गए, उसे नहलाया गया, अभिषेक किया गया और उत्तम वस्त्र पहनाए गए, तो वे उसे राजा के पास ले आए। जब ब्राह्मण को प्रस्तुत किया गया, तो सूतसोमा ने स्वयं स्नान किया और अपना भोजन ब्राह्मण को देने का आदेश दिया, और भोजन करने के बाद उन्होंने स्वयं भोजन किया। फिर उन्होंने ब्राह्मण को एक कीमती सिंहासन पर बैठाया और उनके प्रति आदर दिखाने के लिए सुगंधित मालाएँ और इसी प्रकार की वस्तुएँ भेंट कीं, और स्वयं एक नीची चौकी पर बैठकर उनसे प्रार्थना की, " "गुरुजी, हम उन छंदों को सुनना चाहते हैं जो आप हमारे लिए लाए हैं।"

इस पर प्रकाश डालते हुए गुरु ने कहा:

खूंखार नरभक्षी के चंगुल से छूटकर वह उड़ जाता है।
अपने ब्राह्मण मित्र से वह चिल्लाता है, "हम खुशी-खुशी ऐसा करेंगे।"
"सौ-सौ के मूल्य वाले छंद सुनो,"
यदि आप हमें पढ़ाने की कृपा करें तो यह हमारे भले के लिए होगा।
जब बोधिसत्व ने उनसे निवेदन किया, तो ब्राह्मण ने अपने हाथों को इत्र से धोकर, एक थैली से एक सुंदर पुस्तक निकाली और उसे दोनों हाथों में लेकर कहा: "हे महाराज, मेरी चार श्लोक सुनिए, प्रत्येक श्लोक सौ सिक्कों के बराबर मूल्यवान है; ये मुझे कश्यप बुद्ध द्वारा सिखाए गए हैं, और ये कामवासना, अहंकार और इसी प्रकार के दुर्गुणों का नाश करते हैं, और मनुष्य को इच्छाओं का निवारण, इंद्रियों का संहार, यहाँ तक कि शाश्वत शक्तिशाली निर्वाण, कामवासना का नाश, जन्म-मृत्यु के चक्र का टूटना और आसक्ति का जड़ से उखाड़ फेंकते हैं।" और इन शब्दों के साथ, अपनी पुस्तक की ओर देखते हुए, उन्होंने इन श्लोकों को दोहराया:

हे सुतासोमा, एक बार संतों के साथ एकांतवास करो।
और कभी भी बुरे पुरुषों से शादी मत करो, और तुम्हें शांति मिलेगी।
पवित्र पुरुषों का साथ होना निश्चित है, क्योंकि मित्र तो ऐसे ही होते हैं।
पवित्र पुरुषों से सच्ची शिक्षा सीखें और प्रतिदिन बेहतर विकास करें।
जैसे-जैसे राजपरिवार की रंगी हुई गाड़ियाँ धुंधली होकर फीकी पड़ने लगती हैं,
इसी प्रकार हमारे कमजोर शरीर भी शीघ्र ही कमजोर हो जाते हैं और तेजी से क्षय होने लगते हैं।
लेकिन पवित्र पुरुषों का विश्वास अटल रहता है और कभी पुराना नहीं होता।
अच्छे लोग युगों-युगों तक अच्छे लोगों को इसका प्रचार करते रहेंगे।
हमारे ऊपर आकाश दूर तक फैला हुआ है, नीचे धरती दूर तक फैली हुई है।
और असीम सागर के पार दूर-दूर तक फैली हुई भूमियाँ हैं, यह हम जानते हैं।
लेकिन इन सबसे भी कहीं अधिक महान और व्यापक पहुंच वाला।
क्या यह शिक्षा अच्छी है या बुरी, चाहे वह संत प्रचार करें या पापी?
इस प्रकार ब्राह्मण ने उन्हें वे चार श्लोक सिखाए, जिनमें से प्रत्येक का मूल्य सौ सिक्कों के बराबर था, ठीक वैसे ही जैसे उन्हें कश्यप बुद्ध ने सिखाए थे, और फिर मौन रहे। उन्हें सुनकर महानुभाव प्रसन्न हुए और बोले, "मेरी यात्रा व्यर्थ नहीं गई," और यह सोचते हुए कि, "ये श्लोक केवल किसी शिष्य या संत के शब्द नहीं हैं, न ही किसी कवि की रचना, बल्कि असीम ज्ञानी व्यक्ति द्वारा कहे गए हैं; मुझे आश्चर्य है कि इनका मूल्य क्या है। यदि कोई सात अनमोल वस्तुओं से भरकर ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) तक फैला हुआ पूरा संसार भी दे दे, तो भी इन श्लोकों का पर्याप्त प्रतिफल नहीं होगा। निश्चय ही मैं उन्हें कुरु राज्य में स्थित सात मील (4.23 किमी) के इंद्रप्रस्थ नगर का शासन प्रदान कर सकता हूँ, जो तीन सौ मील (4.23 किमी) में फैला हुआ है। निःसंदेह राजा बनना उनका नियति है।" लेकिन अपनी उस शक्ति के बल पर, जिससे वह किसी व्यक्ति के रूप-रंग से उसका भविष्य जान सकता था, उसने उसमें ऐसे कोई संकेत नहीं पाए। फिर उसने सेनापति और ऐसे ही अन्य पदों के बारे में सोचा, पर उसे यह भी नहीं लगा कि वह किसी गाँव का मुखिया बनने के योग्य है। इसके बाद, धन प्राप्ति के विषय में विचार करते हुए और एक करोड़ (10 मिलियन) धन से शुरुआत करते हुए, उसने पाया कि उसे चार हज़ार सिक्के मिलने वाले हैं। उसे इतनी ही राशि से सम्मानित करने के लिए उसने उसे एक-एक हज़ार सिक्कों से भरे चार थैले दिए और उससे पूछा, "गुरुजी, जब आप अन्य राजकुमारों को ये श्लोक सिखाते हैं, तो आपको कितना मिलता है?" "प्रत्येक के लिए सौ,

महाराज," उसने कहा, "तो इनका मूल्य केवल सौ सिक्के ही है।" उस महान सत्ता ने कहा, "गुरुजी, आप उन वस्तुओं के अमूल्य मूल्य से अनभिज्ञ हैं जिन्हें आप बेचते हैं। अब से इन्हें एक हज़ार सिक्कों के बराबर ही समझें," और ऐसा कहकर उसने यह श्लोक दोहराया:

इनकी कीमत केवल सैकड़ों में नहीं, बल्कि हजारों में है।
तो यहाँ के ब्राह्मण चार हजार लोगों को ले जाओ और जल्दी से उनके साथ चले जाओ।
फिर उन्होंने उसे एक आरामदायक रथ भेंट किया और अपने आदमियों को आदेश देते हुए कहा, "इस ब्राह्मण को उसके घर तक सुरक्षित पहुँचा दो," और इस प्रकार उसे विदा कर दिया। उसी क्षण तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई दी और "वाह वाह! राजा सुतसोमा ने इन श्लोकों का बहुत सम्मान किया है, सौ सिक्कों के मूल्य वाले श्लोक को हजार सिक्कों के बराबर समझा है।" की आवाजें सुनाई दीं। राजा के माता-पिता ने शोर सुनकर पूछा कि इसका क्या अर्थ है, और सच्चाई जानने पर, धन की लालसा के कारण वे राजा से क्रोधित हो गए, लेकिन ब्राह्मण को विदा करने के बाद वह उनके पास गया और उन्हें प्रणाम किया। तब उसके पिता ने कहा, "मेरे पुत्र, तुम एक कुख्यात लुटेरे के हाथों से बच निकले हो," और उसे देखकर प्रसन्न होने के बजाय, धन के लालच में उन्होंने पूछा, "क्या यह सच है कि तुमने चार श्लोक सुनने के लिए चार हजार सिक्के दिए?" और जब उसने यह स्वीकार किया, तो उसके पिता ने यह श्लोक दोहराया:

प्रत्येक श्लोक का मूल्य अस्सी सिक्के हो सकता है।
या फिर इनका मूल्य सौ तक भी पहुंच सकता है।
लेकिन, सुतासोमा, आपको स्वयं ही इसका स्वामित्व प्राप्त करना होगा।
हजार के बराबर अर्थ रखने वाला एक श्लोक अज्ञात है।
तब उस महान सत्ता ने उन्हें चीजों को एक अलग नजरिए से देखने के लिए प्रेरित करते हुए कहा, "प्रिय पिता, मुझे धन में वृद्धि की नहीं, बल्कि ज्ञान में वृद्धि की इच्छा है," और उन्होंने ये श्लोक कहे:

पवित्र परंपराओं में वृद्धि मेरी सबसे बड़ी इच्छा है
और संतों की मित्रता की आकांक्षा रखो;
कोई भी नदी सागर के खालीपन को नहीं भर सकती।
इसलिए मैं अच्छे शब्दों को आत्मसात करता हूँ, फिर भी मेरी भूख तृप्त नहीं होती।
जैसे-जैसे लकड़ी और घास के लिए आग की लपटें अनियंत्रित रूप से भड़कती हैं,
और समुद्र, जो धाराओं से पोषित होते हैं, निश्चित रूप से और अधिक की लालसा रखते हैं।
हे प्रभुओं के पराक्रमी स्वामी, ऋषि भी ऐसा ही करते हैं।
उत्सुक लोग अच्छे शब्दों को ध्यान से सुनते हैं।
अगर मैंने कभी अपने ही गुलाम के मुंह से यह सुना हो
यदि गहन अर्थ से परिपूर्ण छंद सुने जाएं,
मैं उनके शब्दों को उचित सम्मान के साथ स्वीकार करूंगा।
अच्छी और सच्ची शिक्षाओं से भी असंतुष्ट।
इतना कहने के बाद उसने कहा, "सिर्फ पैसों के लिए मुझे दोष मत दो। मैं यहाँ शपथ लेकर आया हूँ कि सत्य जानने के बाद लौट जाऊँगा। अब मैं इस राक्षस के पास वापस जा रहा हूँ; क्या तुम शासन करने की यह शक्ति स्वीकार करते हो?" और उसे यह शक्ति सौंपते हुए उसने यह छंद कहा:

यह राज्य सोने के सारे खजाने समेत तुम्हारा है।
राजकीय शोभा और असीम आनंद और प्रसन्नता के अलंकृत वस्त्र।
दोष क्यों दूं, क्या मुझे इंद्रिय सुखों से दूर भाग जाना चाहिए?
और आदमखोर के हाथों मरना?
इस क्षण राजा के पिता का हृदय प्रचंड हो उठा और उन्होंने कहा, "हे मेरे प्रिय सुतासोमा, यह क्या कह रहे हो? मैं चारों भुजाओं वाली पूरी सेना लेकर आऊंगा (*19) और डाकू को पकड़ लूंगा," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

हमारी रक्षा के लिए, देखो! वीर सैनिक आ रहे हैं।
कुछ लोग हाथियों पर सवार थे, कुछ रथों पर।
ये पैदल सैनिक हैं, ये धनुष से लैस घुड़सवार हैं--
हमारी सेना को संगठित करो और हमें अपने शत्रु को मार गिराने दो।
तब उसके माता-पिता, जिनकी आँखों में आँसू भरे थे, उससे विनती करते हुए बोले, "मत जाओ, मेरे बेटे, नहीं, तुम नहीं जा सकते।" सोलह हज़ार नर्तकियाँ और उसके साथी विलाप करते हुए बोले, "हमें असहाय छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं, महाराज?" और पूरे शहर में

कोई भी अपने भावों को रोक नहीं सका और सब कहने लगे, "वे कहते हैं कि वह आदमखोर को वचन देकर आया है, और अब जब उसने सौ-सौ सिक्कों के चार श्लोक सुन लिए हैं और धर्म के उपदेशक को उचित सम्मान दिया है और अपने माता-पिता को विदाई दी है, तो वह एक बार फिर लुटेरे के पास लौट जाएगा।" और पूरा शहर स्तब्ध रह गया। अपने माता-पिता की बात सुनकर उसने यह श्लोक दोहराया:

हमारे नरभक्षी शत्रु का यह कृत्य आश्चर्यजनक है।
मुझे जिंदा पकड़कर छोड़ देना।
उनके अतीत के मैत्रीपूर्ण कार्यों को याद करते हुए
मैं अपनी ली गई शपथ का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ?
अपने माता-पिता को दिलासा देते हुए उन्होंने कहा, "प्रिय पिता और माता, मेरे बारे में चिंता न करें: मैंने एक नेक काम किया है, और छह इंद्रियों की इच्छाओं पर नियंत्रण (*20) कोई कठिन बात नहीं है," और अपने माता-पिता को विदाई देते हुए उन्होंने बाकी लोगों को सलाह दी और इस तरह चले गए।

मास्टर ने मामले को स्पष्ट करते हुए कहा:

माता-पिता को विदाई देते हुए उन्होंने कुछ उपयोगी सलाह भी दी।
उन्होंने नगरवासियों और सैनिकों को सीधी सलाह दी।
फिर अपने वचन के अनुरूप झूठ बोलने से इनकार कर दिया।
और वह आदमखोर की ओर वापस चला गया।
तब नरभक्षी ने सोचा, "यदि मेरा मित्र सुतासोमा लौटना चाहता है, तो उसे लौटने दो, अन्यथा नहीं, और मेरी वृक्ष-आत्मा जो चाहे करे, और मैं इन राजकुमारों को मृत्युदंड दूंगा और उनके मांस का पांच मीठे पदार्थों के साथ अर्पण करूंगा।" अतः उसने एक चिता खड़ी की और आग प्रज्वलित की, यह सोचकर कि वह कोयले के लाल होने तक प्रतीक्षा करेगा, और जब वह बैठकर अपनी सीख को तेज कर रहा था, सुतासोमा लौट आया। तब नरभक्षी उसे देखकर प्रसन्न हुआ और पूछा, "मेरे मित्र, क्या तुम जाकर अपना काम पूरा कर चुके हो?" महान प्राणी ने कहा, "जी महाराज, मैंने कश्यप बुद्ध द्वारा ब्राह्मण को सिखाए गए श्लोक सुने हैं, और मैंने सत्य के उपदेशक को उचित सम्मान दिया है, और इसलिए मैं अपना कर्तव्य पूरा करके लौट आया हूं।" इसे समझाने के लिए, उसने यह श्लोक दोहराया:

मैंने एक बार एक ब्राह्मण की दुर्दशा पर अपनी बात रखी थी।
मैंने अपने राज्य में किस समय शक्ति के साथ शासन किया,
और अब जब मैंने अपना वादा निभा दिया है
और मैंने अपनी प्रतिष्ठा बचा ली है, मैं लौट आया हूँ, मेरे स्वामी।
तो मुझे मार डालो और अपने वृक्ष-आत्मा को अर्पित कर दो।
या फिर अपनी घिनौनी वासना को शांत करने के लिए मनुष्य के मांस का सेवन करो।
यह सुनकर नरभक्षी ने सोचा, "इस राजा को ज़रा भी डर नहीं है; यह तो मृत्यु के सारे भय को दूर करते हुए बोल रहा है। मुझे आश्चर्य है कि यह शक्ति कहाँ से आती है। इसके अलावा और कुछ नहीं हो सकता। वह कहता है, 'मैंने कश्यप बुद्ध द्वारा सिखाए गए श्लोक सुने हैं।' यह अलौकिक शक्ति उन्हीं से आनी चाहिए। मैं उसे ये श्लोक मेरे सामने बुलवाऊँगा, और इस तरह मैं भी सारे भय से मुक्त हो जाऊँगा।" और ऐसा निश्चय करके उसने यह श्लोक दोहराया:

आग से अभी भी धुआं निकल रहा है: हालांकि मैं थोड़ी देर कर रहा हूँ,
मुझे अपने शिकार को खाने का अधिकार नहीं खोना चाहिए।
अंगारों पर मांस भूनने पर वह अच्छी तरह से भुन जाता है;
ये शब्द सौ टुकड़ों के बराबर हैं, आओ, बताओ।
यह विचार सुनकर उस महान सत्ता ने कहा, "यह नरभक्षी पापी है: मैं इसे कुछ फटकार लगाऊंगा और अपने शब्दों से इसे लज्जित करूंगा।"

हे नरभक्षी, तू एक दुष्ट प्राणी है।
शारीरिक वासना के कारण अपने सिंहासन से गिर पड़े;
ये छंद मेरे लिए सही होने की घोषणा करते हैं,
लेकिन मैं यह पूछना चाहता हूँ कि सही और गलत में सहमति कैसे हो सकती है?
दुष्ट लुटेरे के लिए, जिसके हाथ हिंसा से रंगे हुए हैं,

सत्य या सही का स्रोत कहाँ से आता है? पवित्र परंपरा से क्या लाभ होता है?
इन शब्दों में संबोधित किए जाने पर भी नरभक्षी क्रोधित नहीं हुआ। ऐसा क्यों था? यह उस महान सत्ता में विद्यमान दान की अपार शक्ति के कारण था। इसलिए उसने कहा, "हे मित्र सुतासोमा, क्या केवल मैं ही अधर्मी हूँ?" और उसने इस श्लोक को दोहराया:

वह आदमी जो किसी जानवर का शिकार करके उसका स्वादिष्ट मांस बनाता है,
और जो किसी मनुष्य को मारता है, वह अपने साथी का मांस खाता है।
मृत्यु के बाद दोनों ही मामलों में दोषी पाए जाने वालों की गिनती लगभग एक जैसी ही होती है:
तो फिर बुराई के लिए सिर्फ मुझे ही क्यों दोषी ठहराया जाए?
यह सुनकर उस महान सत्ता ने उसकी गलत धारणा का खंडन करते हुए यह श्लोक दोहराया:

पांच पंजों वाले जीवों में से एक योद्धा राजकुमार पांचों सचेत पंजों को खा सकता है।
हे राजा, तुम दुष्ट हो, क्योंकि तुम वर्जित मांस खाते हो।
इस फटकार को सुनकर, जब उसे बचने का कोई और रास्ता नहीं दिखा, तो उसने अपने अपराध को छिपाने की कोशिश की और इस छंद को दोहराया:

क्या तुम खूंखार आदमखोर से बचकर आए हो?
आपके शाही घर के लिए मीठी लालसाओं से भरा हुआ,
और फिर एक बार फिर दुश्मन के हवाले अपनी जान कर दो?
आप वाकई खगोलीय परंपरा में काफी पारंगत हैं!
तब उस महान प्राणी ने कहा, "मित्र, मुझ जैसे व्यक्ति को क्षत्रिय (योद्धाओं) की परंपरा का भली-भांति ज्ञान होना चाहिए। मैं इसे भली-भांति जानता हूँ, परन्तु मैं अपने कर्मों को उसके अनुरूप नहीं रखता," और उन्होंने यह श्लोक कहा:

क्षत्रिय शिक्षा में पारंगत सभी (*21)
नरक में अधिकतर लोग शापित जीवन जीने के लिए अभिशप्त होते हैं।
इसलिए मुझे क्षत्रिय परंपरा से घृणा है।
और मैं अपने वचन का पालन करते हुए यहाँ लौट आया:
हे भयानक स्वामी, अपना बलिदान चढ़ाओ और मुझे खा जाओ।
आदमखोर ने कहा:

आलीशान महल, विशाल एकड़ भूमि, घोड़े और गायें,
इत्र, कीमती वस्त्र और कई रखैलें,
हे सर्वशक्तिमान प्रभु, आप इन सभी को धारण करते हैं।
सच में, आपको इसमें कौन सा आशीर्वाद दिखाई देता है?
बोधिसत्व ने कहा:

इस दुनिया की सारी मिठाइयों में से जो मुझे मिल सकती हैं
सत्य के आनंद से बढ़कर कोई और आनंद मुझे नहीं दिखता:
ब्राह्मण और पुरोहित जो सत्य में निवास करते हैं,
जन्म, मृत्यु, पलायन, दूसरी ओर पहुंचना।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने उसे सत्य के आशीर्वाद के बारे में बताया। तब नरभक्षी ने खिले हुए कमल या पूर्णिमा के चंद्रमा के समान तेजस्वी उनके चेहरे को देखकर सोचा, "यह सुतसोमा मुझे अंगारों का ढेर तैयार करते और सींक तेज करते हुए देख रहा है, फिर भी जरा भी भयभीत नहीं है। क्या यही इन सौ सिक्कों के बराबर जादुई शक्ति है या यह किसी अन्य सत्य से उत्पन्न होती है? मैं उनसे पूछूंगा।" और प्रश्न के रूप में उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

क्या तुम खूंखार आदमखोर से बचकर आए हो?
आपके राजसी घर के लिए मीठी लालसाओं से भरा हुआ,
और फिर एक बार फिर अपने दुश्मन से मिलने लौटना?
हे राजकुमार, आपको मृत्यु का भय तो बिल्कुल भी नहीं हो सकता।
अपने वचन का पालन करो और सांसारिक वासनाओं का त्याग करो।
उस महान सत्ता ने उत्तर देते हुए कहा:

मैंने अनगिनत सद्‌गुणों का दावा किया है,
मेरी उदार भेंटें प्रसिद्धि के लिए जानी जाती हैं।
मैंने परलोक के लिए एक रास्ता साफ रखा है:
जो आस्था में स्थिर रहता है, वह मृत्यु से भयभीत क्यों होता है?
मैंने अनगिनत सद्‌गुणों का दावा किया है,
मेरी उदार भेंटें प्रसिद्धि के लिए जानी जाती हैं।
मुझे कोई पछतावा नहीं है, मैं स्वर्ग की ओर अपना रास्ता चुनूंगा।
इसलिए बलिदान करो और फिर अपने शिकार को खा जाओ।
मैंने अपने माता-पिता को अत्यंत स्नेह और स्नेह से संजोकर रखा है।
मेरे नियम को अत्यंत निष्पक्ष होने के कारण प्रशंसा मिलती है।
मैंने परलोक के लिए एक रास्ता साफ रखा है:
जो आस्था में स्थिर रहता है, वह मृत्यु से भयभीत क्यों होता है?
मैंने अपने माता-पिता को अत्यंत स्नेह और स्नेह से संजोकर रखा है।
मेरे नियम को अत्यंत निष्पक्ष होने के कारण प्रशंसा मिलती है।
मुझे कोई पछतावा नहीं है, मैं स्वर्ग की ओर अपना रास्ता चुनूंगा।
इसलिए बलिदान करो और फिर अपने शिकार को खा जाओ।
मेरे द्वारा की गई सेवा के लिए, दोस्तों और परिवार को धन्यवाद।
मेरा शासन न्यायसंगत था और मुझे सभी की प्रशंसा प्राप्त हुई।
मुझे कोई पछतावा नहीं है, मैं स्वर्ग की ओर अपना रास्ता चुनूंगा।
इसलिए बलिदान करो और फिर अपने शिकार को खा जाओ।
मैंने कई बार बहुत से लोगों को उपहार दिए, जिनकी मैंने आपूर्ति की थी।
जी हां, पुरोहित और ब्राह्मण पूरी तरह संतुष्ट थे।
मैंने परलोक के लिए एक रास्ता साफ रखा है:
जो आस्था में स्थिर रहता है, वह मृत्यु से भयभीत क्यों होता है?
मैंने कई बार बहुत से लोगों को उपहार दिए, जिनकी मैंने आपूर्ति की थी।
जी हां, पुरोहित और ब्राह्मण पूरी तरह संतुष्ट थे।
मुझे कोई पछतावा नहीं है, मैं स्वर्ग की ओर अपना रास्ता चुनूंगा।
इसलिए बलिदान करो और फिर अपने शिकार को खा जाओ।
यह सुनकर नरभक्षी ने सोचा, "यह राजा सुतासोमा तो अच्छा और बुद्धिमान है: अगर मैं इसे खा लूँ, तो मेरी खोपड़ी सात टुकड़ों में फट जाएगी, या धरती अपना मुँह खोलकर मुझे निगल जाएगी," और भयभीत होकर उसने कहा, "मेरे मित्र, तुम उस तरह के मनुष्य नहीं हो जिसे मैं खाऊँ," और उसने यह छंद दोहराया:

वह जानबूझकर जहर का प्याला पी लेता था।
या फिर भयंकर और क्रूर आग उगलने वाला सर्प, उठा ले,
हाँ, उसके सिर के सात टुकड़े हो जाएँगे।
जो झूठ नहीं बोल सकता, उसे खाने की हिम्मत कौन करता है?
इस प्रकार उन्होंने परमपिता को संबोधित करते हुए कहा, "आप मानो एक घातक विष हैं; आपको कौन ग्रहण करेगा?" और उन श्लोकों को सुनने के लिए उत्सुक होकर उन्होंने उनसे उन्हें सुनाने की विनती की। जब पवित्र वस्तुओं के प्रति उचित आदर प्रकट करने के लिए परमपिता ने यह कहकर उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी कि वे इतने निर्दोष नैतिक श्लोकों के योग्य नहीं हैं, तो उन्होंने कहा, "पूरे भारत में ऐसा कोई ऋषि नहीं है, क्योंकि जब वे मेरे हाथों से मुक्त हुए तो वे गए और इन श्लोकों को सुना, और धर्म के उपदेशक को उचित आदर देने के बाद वे अपने माथे पर मृत्यु लिखी हुई लेकर वापस आए। ये श्लोक अत्यंत उत्कृष्ट हैं।" और उन्हें सुनने की और भी अधिक आदरपूर्ण इच्छा से भरकर उन्होंने परमपिता से विनती की और इस श्लोक को दोहराया:

सत्य को सुनकर मनुष्य शीघ्र ही अच्छे और बुरे में अंतर कर पाता है;
शायद इन शब्दों को सुनकर मेरा हृदय सत्य के आनंद से भर जाए।
तब उस महान प्राणी ने सोचा, "अब नरभक्षी सुनने के लिए उत्सुक है: मैं उसे ये श्लोक प्रकट करूँगा," और उसने कहा, "अच्छा, मेरे मित्र, ध्यान से सुनो," और उसका ध्यान आकर्षित करके उसने ठीक उसी प्रकार इन श्लोकों की स्तुति की, जैसे उसे ब्राह्मण नंदा ने

सिखाए थे, जबकि छहों लोकों के देवता (देवदूत) एक साथ जोर से चिल्ला उठे, और स्वर्ग में देवदूतों ने तालियाँ बजाईं, और इस प्रकार उस महान प्राणी ने नरभक्षी को सत्य का उपदेश दिया।

हे सुतासोमा, एक बार संतों के साथ एकात्म हो जाओ (*22)।
इन श्लोकों को महान सत्ता द्वारा इतनी कुशलता से प्रस्तुत किए जाने और स्वयं उनके ज्ञान के कारण, नरभक्षी ने सोचा, "ये श्लोक मानो असीम ज्ञान से परिपूर्ण बुद्ध के वचन हैं," और उसका संपूर्ण शरीर पाँच प्रकार के आनंद से भर उठा, और उसे बोधिसत्व के प्रति कोमल दया का भाव हुआ और उसने उन्हें एक ऐसे पिता के समान माना जो उन्हें राजसी श्वेत छत्रछाया प्रदान करने के लिए तत्पर था। और उसने सोचा, "मुझे सुतासोमा को देने के लिए पीले सोने की कोई भेंट नहीं दिखती, परन्तु प्रत्येक श्लोक के लिए मैं उन्हें एक वरदान दूंगा," और उसने यह श्लोक कहा:

अर्थ से परिपूर्ण और स्पष्ट लहजे में
हे राजकुमार, आपके महान शब्द मेरे कानों तक पहुँचते हैं।
मैं हृदय से इतना प्रसन्न हूँ कि आनंदित हूँ।
मेरे प्रिय मित्र, आपके लिए चार वरदान हैं, जिनमें से आप अपनी पसंद का चुनाव कर सकते हैं।
तब उस महान सत्ता ने उसे फटकारा और कहा, "तुम मुझे क्या वरदान दोगे?" और उसने यह श्लोक दोहराया:

अपनी नश्वर अवस्था में, जो सीखने में विफल रहती है,
या अच्छाई और बुराई में, स्वर्ग और नरक में अंतर कर सकूँ,
शारीरिक इच्छाओं का गुलाम, वह कैसे
क्या आप जैसे नीच व्यक्ति को मनुष्य के लिए किसी वरदान का ज्ञान है?
मान लीजिए मैं कहूँ "मुझे यह वरदान दीजिए" और फिर
आपको अपना वादा वापस लेना चाहिए।
जो बुद्धिमान है वह जानबूझकर जोखिम क्यों उठाएगा?
तो क्या झगड़े का खतरा इतना कम है, महोदय?
तब आदमखोर ने कहा, "वह मुझ पर विश्वास नहीं करता; मैं उसे विश्वास दिलाऊंगा," और उसने यह छंद दोहराया:

किसी को भी वरदान देने का दावा नहीं करना चाहिए और फिर
उसने जो वादा किया था, झूठे आदमी, उसे वापस ले लो:
मेरे मित्र, इन वरदानों में से सभी निडर लोग ही चुनते हैं;
मैं यह बात मान लूंगा, भले ही इसके बदले मुझे अपना जीवन ही खोना पड़े।
तब उस महान सत्ता ने सोचा, "इसने तो बड़े साहस से बात की है और यह मेरी बात मानेगा; मैं इसका प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ। लेकिन अगर मैं पहली ही वरदान के रूप में यह चुन लूँ कि वह मनुष्य का मांस न खाए, तो वह बहुत दुखी होगा। मैं पहले तीन और वरदान चुनूँगा, और उसके बाद यह चुनूँगा," और उसने कहा:

जो किसी संत के साथ आमने-सामने रहता है (*23) वह हमेशा संत से सहमत होता है,
इसी प्रकार एक ऋषि अपने साथी ऋषि को प्रसन्न करने में हमेशा तत्पर रहता है:
इसलिए मैं आपसे सौ वर्ष तक स्वस्थ और सुरक्षित रहने का अनुरोध करता हूँ:
यह उन सभी वरदानों में से पहला है जो मैं सहर्ष आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ।
यह सुनकर नरभक्षी ने सोचा, "यह आदमी, जिसे मैंने सत्ता से बेदखल कर दिया है, अब मेरे लिए लंबी उम्र की कामना कर रहा है, उस कुख्यात लुटेरे के लिए जो इंसानी मांस का भूखा है और उसे नुकसान पहुंचाना चाहता है। आह! यह तो मेरा शुभचिंतक है।" और वह मन ही मन खुश हुआ, यह जाने बिना कि यह वरदान उसे धोखा देकर उसके भले के लिए चुना गया था, और वरदान देते हुए उसने यह श्लोक कहा:

जो व्यक्ति किसी संत के आमने-सामने रहता है, वह संत से सहमत होता है।
इसी प्रकार एक ऋषि अपने साथी ऋषि को प्रसन्न करने में हमेशा तत्पर रहता है:
आप मुझे पचास वर्षों तक सुरक्षित और स्वस्थ देखना चाहेंगे:
देखो! तुम्हारी प्रार्थना पर मैं तुम्हें यह पहला वरदान सहर्ष प्रदान करता हूँ।
तब बोधिसत्व ने कहा:

ये योद्धा सरदार तुम्हारे हाथों में बंदी हैं,

अनुष्ठानिक जल छिड़काव द्वारा अनेक देशों में राजाओं के रूप में सम्मानित,
पृथ्वी के इन शक्तिशाली स्वामियों को तुम्हें नहीं खाना चाहिए:
इसके लिए मैं दूसरी विनती करता हूँ।
इस प्रकार उसने दूसरा वरदान चुनकर सौ से अधिक क्षत्रियों के लिए जीवन का वरदान प्राप्त किया, और नरभक्षी ने उसे वरदान देते हुए कहा:

ये योद्धा सरदार मेरे हाथों में बंदी हैं,
अनुष्ठानिक जल छिड़काव द्वारा अनेक देशों में राजाओं के रूप में सम्मानित,
मैं इन शक्तिशाली स्वामियों को नहीं खाऊंगा, कसम खाता हूँ:
आपकी प्रार्थना के फलस्वरूप यह दूसरा वरदान भी प्रदान कर दूं।
क्या इन राजाओं ने उनकी बातें सुनीं? उन्होंने पूरी बात नहीं सुनी। क्योंकि जब नरभक्षी ने आग जलाई, तो धुएँ और लपटों से पेड़ को किसी भी तरह की क्षति के डर से वह उससे एक कदम पीछे हट गया, और महान सत्ता आग और पेड़ के बीच में बैठकर उससे बातें कर रही थी, और इसलिए इन राजाओं ने उनकी पूरी बात नहीं सुनी, बल्कि आंशिक रूप से ही सुनी, और उन्होंने एक-दूसरे को दिलासा देते हुए कहा, "डरो मत: अब सुतासोमा नरभक्षी को परिवर्तित कर देगा," और इसी क्षण महान सत्ता ने यह श्लोक कहा:

तुमने सौ से अधिक राजाओं को बंदी बना रखा है।
सभी को हाथों से बांधकर लटका दिया गया था और वे दर्द से रो रहे थे।
फिर प्रत्येक को उसके अपने-अपने राज्य में वापस लौटा दो:
यह तीसरा वरदान है जो मैं आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ।
इस प्रकार, भगवान ने अपने तीसरे विकल्प में इन क्षत्रियों को उनके अपने-अपने राज्य में वापस भेजने का निर्णय लिया। ऐसा क्यों? क्योंकि राक्षस, यदि वह उन्हें न खाता, तो उनकी शत्रुता के भय से या तो उन सभी को गुलाम बनाकर जंगल में रहने के लिए मजबूर कर देता, या उन्हें मार डालता और उनके शवों को प्रदर्शित कर देता, या उन्हें सीमावर्ती देश में ले जाकर गुलामों के रूप में बेच देता; इसलिए उन्होंने वरदान के रूप में उन्हें उनके अपने-अपने राज्यों में वापस भेजने का निर्णय लिया, और नरभक्षी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए यह श्लोक कहा:

मैंने सौ से अधिक राजाओं को बंदी बना रखा है।
सभी को हाथों से बांधकर लटका दिया गया था और वे दर्द से रो रहे थे।
मैं उन सभी को उनके मूल स्थानों पर पुनः स्थापित कर दूंगा:
यह तीसरा वरदान भी तुम्हें मुझसे प्राप्त होगा।
अब अपना चौथा विकल्प चुनते हुए बोधिसत्व ने यह श्लोक कहा:

तुम्हारा क्षेत्र विचलित और भयभीत है।
गुफाओं में बहुत से लोग उन्हें आपकी नजरों से छिपाकर रखते हैं।
हे राजा, मनुष्य का मांस खाने से परहेज़ करो।
यह चौथा वरदान है जो मैं आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ।
जब उसने ऐसा कहा, तो नरभक्षी ने ताली बजाई और हंसते हुए कहा, "मित्र सुतासोमा, यह तुम वास्तव में क्या कह रहे हो? मैं तुम्हें यह वरदान कैसे दे सकता हूँ? यदि तुम कोई और वरदान पाने के लिए उत्सुक हो, तो कुछ और चुन लो," और उसने यह श्लोक कहा:

मुझे तो यह खाना बहुत पसंद आया;
इसी कारण से मैं जंगल में छिप गया था।
तो फिर मैं ऐसे सुखों से कैसे दूर रहूँ?
महोदय, अपने चौथे वरदान के लिए कृपया पुनः चयन करें।
तब उस महान सत्ता ने कहा, "क्योंकि तुम मनुष्य के शरीर से प्रेम करते हो, इसलिए कहते हो, 'मैं इससे परहेज नहीं कर सकता।' वास्तव में जो व्यक्ति सुखदायक होने के कारण बुराई करता है, वह मूर्ख है," और उसने इस श्लोक को दोहराया:

(*24) आप जैसे राजा को अपनी इच्छा नहीं लेनी चाहिए
न ही सुख-सुविधाओं के लिए अपने प्राणों का बलिदान करे।
जीवन अपने उच्चतम अर्थों में, सर्वश्रेष्ठ उपहार है, इसे प्राप्त करें
और भविष्य के सुख तुम अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त करोगे।

जब उस महान प्राणी ने ये शब्द कहे, तो नरभक्षी भय से व्याकुल हो गया और सोचने लगा, "मैं न तो सुतासोमा के निर्णय का खंडन कर सकता हूँ और न ही मानव मांस से परहेज कर सकता हूँ। आख़िर मैं क्या करूँ?" और आँखों में आँसू भरकर उसने ये पंक्तियाँ दोहराईं:

मुझे पुरुष का शरीर पसंद है: तुम्हें भी यह जानना चाहिए।
हे महान सुतासोमा, ऐसा ही है।
मैं इससे कभी परहेज नहीं कर सकता।
महोदय, किसी और बात पर विचार करें और फिर से चुनाव करें।
तब बोधिसत्व ने कहा:

जो कोई भी अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करेगा
और सुख-सुविधाओं के लिए अपने जीवन का भी बलिदान कर देते हैं।
वह शराबी की तरह जहर का प्याला खाली कर देगा।
और इस प्रकार आगे चलकर उसे अंतहीन पीड़ा सहनी पड़ती है।
जो जानबूझकर यहाँ के सुख से दूर रहेगा,
कर्तव्य के कठिन मार्ग का अनुसरण करना,
जैसे कोई पीड़ा में डूबा हुआ व्यक्ति उपचार के प्याले को खाली कर देता है,
इस प्रकार वह परलोक में परमानंद की अनुभूति करता है।
इस प्रकार बोलने के बाद, नरभक्षी ने अत्यंत शोक करते हुए इस छंद को दोहराया:

हमारी इंद्रियों से उत्पन्न होने वाले पांच प्रकार के आनंद
और प्यारे माता-पिता को भी त्याग देना,
इसी कारण मैं इस जंगल में रहने आया हूँ;
तो फिर मैं आपकी मांगी हुई वरदान कैसे दे सकता हूँ?
तब उस महान सत्ता ने यह श्लोक कहा:

ऋषि-मुनि कभी भी वाणी में कपट नहीं दिखाते।
हम जानते हैं कि अच्छे लोग अपने वादे के पक्के होते हैं:
"मित्र, कोई वरदान चुन लो," तुमने मुझसे यही कहा था;
अब आप इसके जवाब में जो कहेंगे, वह शायद ही सहमत होगा।
एक बार फिर, रोते हुए, उस आदमखोर ने यह छंद बोला:

दोष, बदनामी और लज्जा का मिलाजुला रूप,
दुराचार, वासना और हर प्रकार के पाप
मैंने मनुष्य का मांस खाने के लिए ये सब किया:
तो फिर मैं आपको यह वरदान क्यों प्रदान करूं?
तब उस महान सत्ता ने कहा:

किसी को भी वरदान देने का दावा नहीं करना चाहिए और फिर
उसने जो वादा किया था, झूठे आदमी, उसे वापस ले लो:
मेरे मित्र, इन वरदानों में से सभी निडर लोग ही चुनते हैं;
मैं यह बात मान लूंगा, भले ही इसके बदले मुझे अपना जीवन ही खोना पड़े।
जब उसने नरभक्षी द्वारा वरदान देने का साहस जुटाने के लिए पहली बार कहे गए श्लोक की ओर इशारा किया, तो उसने यह श्लोक कहा:

अच्छे लोग जीवन त्याग देंगे, लेकिन सही को कभी नहीं।
अपने ही विरोध के बावजूद भी वे अपने वचन के प्रति सच्चे रहे;
यदि आप, श्रेष्ठ राजा, कोई वरदान देने का वादा करें,
अपने काम को परिपूर्ण करें और इसे जल्द ही सही ढंग से होते हुए देखें (*25)।
जिसने अपने किसी अंग को बचाने के लिए बहुमूल्य खजाना दे दिया
बचाने के लिए वह अपना अंग, अपनी जान तक कुर्बान कर देगा।

हाँ, धन-दौलत, शरीर-कलियाँ, जीवन और सब कुछ त्याग दूँगा,
केवल अधिकार और उसके दावों को याद रखना।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने इन साधनों द्वारा नरभक्षी को सत्य में स्थापित किया, और अब उसे सम्मान के योग्य ठहराने के लिए उसने यह श्लोक कहा:

जिसके मुख से सत्य सिद्ध हो सके,
हां, सभी अच्छे पुरुष अपने संदेह दूर करेंगे।
वह वास्तव में एक शरणस्थल है, एक विश्रामस्थल है, एक ठिकाना है;
बुद्धिमान व्यक्ति का उसके प्रति प्रेम कभी कम नहीं होना चाहिए।
इन श्लोकों को दोहराने के बाद उन्होंने कहा, "मेरे नरभक्षी मित्र, यह उचित नहीं है कि तुम इतने श्रेष्ठ गुरु के वचनों का उल्लंघन करो। जब तुम छोटे थे, तब मैं भी तुम्हारा निजी गुरु था और मैंने तुम्हें बहुत शिक्षा दी थी। अब बुद्ध के सामर्थ्य से मैंने तुम्हें सौ-सौ सिक्कों के मूल्य के श्लोक सुनाए हैं: इसलिए तुम्हें मेरी बात माननी चाहिए।" यह सुनकर नरभक्षी ने सोचा, "सुतासोमा मेरे गुरु और विद्वान थे, और मैंने उन्हें वरदान चुनने का विकल्प दिया था। मैं क्या करूँ? किसी भी व्यक्ति के जीवन में मृत्यु निश्चित है। मैं मनुष्य का मांस नहीं खाऊँगा, बल्कि उन्हें उनका वरदान दूँगा।" आँखों से आँसू बहते हुए वह उठा और राजा सुतासोमा के चरणों में गिर पड़ा, और वरदान देते हुए उसने यह श्लोक दोहराया:

मुझे यह भोजन मीठा और स्वादिष्ट लगा।
इसी कारण से मैं जंगल में छिप गया था;
लेकिन अगर आप मुझसे यह काम करने को कहें,
हे मेरे मित्र और राजा, मैं तुम्हें यह वरदान प्रदान करता हूँ।
तब उस महान सत्ता ने कहा, “ऐसा ही हो, मित्र; नैतिक आचरण में दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के लिए तो मृत्यु भी वरदान है। हे प्रभु, मैं आपका यह वरदान स्वीकार करता हूँ। आज से ही आप आध्यात्मिक मार्गदर्शक के मार्ग पर स्थापित हो चुके हैं, और इस कारण मैं आपसे यह विनती करता हूँ; यदि आप मुझसे प्रेम रखते हैं, तो हे प्रभु, पाँच नैतिक नियमों को स्वीकार कीजिए।” “बहुत अच्छा,” उसने उत्तर दिया, “हे मित्र, मुझे ये नैतिक नियम सिखाइए।” “तो फिर मुझसे सीखिए, हे प्रभु।” अतः उसने पाँच विश्रामों से उस महान सत्ता को प्रणाम किया और एक अलग स्थान पर बैठ गया, और उस महान सत्ता ने उसे नैतिक नियमों में स्थापित कर दिया। उस क्षण पृथ्वी पर निवास करने वाले देवता एकत्रित हुए और बोले, “अविची नरक के निवासियों से लेकर निराकार लोकों के सर्वोच्च देवताओं में से कोई भी ऐसा नहीं है जो महापुरुष के प्रति स्नेह उत्पन्न करके इस नरभक्षी को मानव मांस खाने से रोक सके। हे! सुतसोमा ने चमत्कार कर दिखाया है!” और उन्होंने जयजयकार की, जिससे जंगल उनकी तेज आवाजों से गूंज उठा। इस शोर को सुनकर चारों महाराजों ने भी जयजयकार की और एक सर्वव्यापी गर्जना हुई जो ब्रह्मा लोक (प्रधान देवदूतों) तक पहुँच गई। वृक्ष पर लटके राजाओं ने भी जयजयकार की यह आवाज सुनी और अपने निवास स्थान पर खड़ी वृक्ष अप्सरा ने भी जयजयकार की। इस प्रकार देवदूतों की आवाज सुनाई दी, परन्तु उनका रूप अदृश्य था। राजाओं ने जयजयकार सुनकर सोचा, “सुतसोमा के कारण ही हमारा जीवन बचा है: सुतसोमा ने नरभक्षी को परिवर्तित करके चमत्कार कर दिखाया है (*27),” और उन्होंने बोधिसत्व की स्तुति की। नरभक्षी ने महापुरुष के चरणों में प्रणाम करने के बाद अलग खड़े हो गए। तब महापुरुष ने उनसे कहा, "मित्र, इन योद्धा राजकुमारों को छोड़ दो।" उन्होंने सोचा, "मैं इनका शत्रु हूँ; यदि मैं इन्हें छोड़ दूँ, तो ये कहेंगे, 'इसे पकड़ो, यह हमारा शत्रु है,' और मुझे हानि पहुँचाएँगे, परन्तु यदि मैं अपना प्राण भी खो दूँ, तो भी मैं उस नैतिक नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता जिसे मैंने सुतासोमा से ग्रहण किया है: मैं उनके साथ जाऊँगा और इन्हें छोड़ दूँगा और इस प्रकार मुझे सुरक्षा प्राप्त होगी।" तब बोधिसत्व को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा, "सुतासोमा, हम साथ चलेंगे और योद्धा राजकुमारों को छोड़ देंगे," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

आप ही मेरे शिक्षक और मेरे मित्र हैं, एक ही व्यक्ति में।
देखिए, महोदय, आपने जो पूछा था, मैंने वह कर दिया है:
क्या आप बदले में वही करेंगे जो मैंने आपसे पूछा है?
और हम सीधे जाकर इन राजकुमारों को मुक्त करा देंगे।
तब बोधिसत्व ने उससे कहा:

मैं ही आपका शिक्षक और आपका मित्र हूँ, एक ही व्यक्ति में।
और आपने सचमुच मेरी विनती का जवाब दे दिया है, महोदय:
मैं भी वही करूंगा जो आपने मुझसे करने को कहा है।
और हम सीधे जाकर इन राजकुमारों को मुक्त करा देंगे।
और उनके पास आकर उसने कहा

इस पेड़ पर लटके तुम्हारे आंसू तेजी से बह रहे हैं
उस राक्षस की वजह से जिसने तुम्हारे साथ इतना अन्याय किया है,
फिर भी हम आपसे एक वादा सहर्ष स्वीकार करेंगे।
इस राजा पर कभी हाथ न लगाना।
तब उन्होंने उत्तर दिया:

इस पेड़ पर लटका हुआ, दर्द से रो रहा है
हम उस राक्षस से घृणा करते हैं जिसने हम पर अत्याचार किया है।
लेकिन क्या हम सभी एक पक्का वादा करेंगे?
अगर हम जीवित रहना चाहते हैं, तो उसे नुकसान न पहुंचाएं।
तब बोधिसत्व ने कहा, "ठीक है, मुझे यह वादा दो," और उन्होंने इस श्लोक को दोहराया:

जिस प्रकार स्नेही माता-पिता अपने बच्चों के प्रति स्नेह रखते हैं,
दयालु और कोमल प्रेम का प्रदर्शन,
ऐसा पिता भी हमेशा साबित हो सके
और आप उसे बच्चों की तरह प्यार करें।
वे भी इससे सहमत होकर इस छंद को दोहराते हुए बोले:

जिस प्रकार स्नेही माता-पिता अपने बच्चों के प्रति स्नेह रखते हैं,
दयालु और कोमल प्रेम का प्रदर्शन,
ऐसा पिता भी हमेशा साबित हो सके
और हम उसे बच्चों की तरह अत्यंत प्रेम करें।
इस प्रकार उस महान प्राणी ने उनसे वचन लिया और नरभक्षी को बुलाकर कहा, "आओ और इन राजकुमारों को मुक्त करो।" नरभक्षी ने अपनी तलवार उठाई और एक राजा के बंधन काट दिए। चूंकि वह राजा सात दिनों से उपवास कर रहा था और पीड़ा से पागल हो गया था, इसलिए बंधन कटते ही वह जमीन पर गिर पड़ा। यह देखकर उस महान प्राणी का दिल दया से भर गया और उसने कहा, "मेरे नरभक्षी मित्र, इन्हें इस तरह मत काटो।" उसने दोनों हाथों से एक राजा को मजबूती से पकड़कर अपने सीने से लगा लिया और कहा, "अब इसके बंधन काट दो।" तब उस नरभक्षी ने अपनी तलवार से बंधन काट दिए और उस महान प्राणी ने, जो अपार शक्ति से संपन्न था, उसे अपने सीने पर लिटा दिया और अपने पुत्र की तरह कोमलता से उसे जमीन पर सीधा लिटा दिया। इस प्रकार उसने उन सबको ज़मीन पर लिटा दिया, और उनके घावों को धोने के बाद उसने धीरे से उनके हाथों से रस्सियाँ खींच दीं, जैसे किसी बच्चे के कान से धागा निकाला जाता है, और जमे हुए खून को धोकर घावों को हानिरहित बना दिया। फिर उसने नरभक्षी से कहा, "मेरे मित्र, पेड़ की कुछ छाल पत्थर पर कूटकर मेरे पास ले आओ।" और जब वह उसे ले आया, तो उसने सत्य का कार्य किया और उनकी हथेलियों को रगड़ा, और उसी क्षण उनके घाव ठीक हो गए। नरभक्षी ने कुछ छिले हुए चावल लिए और उन्हें रोगनिरोधक के रूप में पकाया, और उन दोनों ने मिलकर उसे सौ से अधिक योद्धा राजकुमारों को रोगनिरोधक के रूप में पीने के लिए दिया, और इस प्रकार वे सभी संतुष्ट हो गए और सूर्य अस्त हो गया। अगले दिन भोर में, दोपहर में और शाम को भी वे उन्हें चावल का पानी पीने के लिए देते रहे, लेकिन तीसरे दिन उन्होंने उन्हें उबले हुए चावल का दलिया दिया, और इसी तरह तब तक देते रहे जब तक वे स्वस्थ नहीं हो गए। तब उस महान प्राणी ने उनसे पूछा कि क्या वे घर लौटने के लिए पर्याप्त बलवान हैं, और जब उन्होंने उत्तर दिया कि वे यात्रा करने में सक्षम हैं, तो उसने कहा, "आओ, मेरे नरभक्षी मित्र, चलो अपने राज्य के लिए प्रस्थान करें।" लेकिन रोते हुए वह उस महान प्राणी के चरणों में गिर पड़ा और बोला, "हे मेरे मित्र, क्या आप इन राजाओं को लेकर चले जाएँगे, लेकिन मैं यहीं जड़ों और जंगली बेरों पर जीवन व्यतीत करता रहूँगा।" "यहाँ क्या करोगे, मेरे मित्र? तुम्हारा राज्य तो रमणीय है: जाओ और बनारस पर राज करो।" "मित्र, यह क्या कह रहे हो? मेरे लिए वहाँ जाना असंभव है: उस शहर के सभी निवासी मेरे शत्रु हैं। वे मेरा अपमान करेंगे और कहेंगे, 'इस व्यक्ति ने मेरी माँ या मेरे पिता को खा लिया; "इस लुटेरे को पकड़ो," और वे मुझे मिट्टी के एक ढेले से मार डालेंगे, लेकिन अगर आपने मुझे नैतिक नियम में दृढ़ता से स्थापित कर दिया है, तो मैं किसी और को नहीं मार सकता, अपनी जान बचाने के लिए भी नहीं। मैं नहीं जाऊंगा। मानव मांस न खाने के कारण मैं कब तक जीवित रहूंगा? और अब मैं तुम्हें फिर कभी नहीं देखूंगा," और वह रोते हुए बोला, "क्या तुम जा रहे हो?" और उस महान सत्ता ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा, "मेरे मित्र, मेरा नाम सुतासोमा है: मैंने इससे पहले तुम्हारे जैसे ही एक क्रूर दुष्ट को वश में किया है,और यदि तुम मुझसे पूछो कि बनारस में तुम्हें क्या कहानी सुनानी है, तो मैं या तो तुम्हें वहाँ स्थापित करूँगा, या अपने राज्य को विभाजित करके उसका आधा भाग तुम्हें सौंप दूँगा।" "तुम्हारे नगर में भी मेरे शत्रु हैं," उसने कहा। सुतासोमा ने सोचा, "मेरे वचन का पालन करके इस व्यक्ति ने एक कठिन कार्य पूरा कर लिया है: किसी न किसी प्रकार मुझे उसे उसकी पूर्व गौरवशाली स्थिति में स्थापित करना ही होगा," और उसे लुभाने के लिए उसने उसके नगर की महान महिमा का गुणगान किया और कहा:

आपने कभी हर प्रकार के जानवरों और पक्षियों का मांस साझा किया था।
कुशल रसोइयों द्वारा तैयार किया गया यह व्यंजन वास्तव में एक सुरुचिपूर्ण भोजन था।
इंद्र को अमृतमय (दिव्य) भोजन का स्वाद चखने से जो आनंद प्राप्त हुआ, वैसा आनंद इससे भी प्राप्त हुआ।
इस जंगल में अकेले आनंद लेने के लिए सब कुछ क्यों छोड़ दें?
पतली कमर वाली ये कुलीन महिलाएं, भव्य रूप से सजी हुई,
आपके आसपास पहले, भीड़भाड़ वाली कंपनी, दबाव में,
जब आप, इंद्र की तरह अपने देवताओं (देवदूतों) के बीच प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े—
उन्हें इस जंगल में अकेले आनंद लेने के लिए क्यों छोड़ दिया जाए?
हे राजा, एक समय आप विशाल पलंग के बीच में आराम से लेटे हुए थे।
आपके चारों ओर ऊनी चादरों का ढेर लगा हुआ है,
और तुम्हारे सिर के नीचे लाल तकिया और साफ-सुथरी सफेद चादरें--
इसे ऐसे ही क्यों छोड़ दें, इस जंगल में अकेले ही आनंद लेने के लिए?
वहां अक्सर आधी रात को ढोल की थाप सुनाई देती थी।
और मानवीय ध्वनियों से परे की ध्वनियाँ (*28) कानों पर पड़तीं,
संगीत और गीत का सामंजस्यपूर्ण संयोजन, प्रसन्नतापूर्ण वातावरण को प्रेरित करता है--
इस जंगल में अकेले आनंद लेने के लिए सब कुछ क्यों छोड़ दें?
आपके पास एक मनमोहक उद्यान है जिसमें बहुतायत से फूल खिलते हैं।
मिगासिरा, जो अपने पार्क और शहर के लिए भी प्रसिद्ध है,
वहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और रथ खड़े थे--
उन सबको छोड़कर अकेले इस जंगल में आनंद लेने के लिए क्यों छोड़ दिया जाए?
उस महान प्राणी ने सोचा, "संयोगवश, यह व्यक्ति बहुत पहले खाए गए स्वादिष्ट भोजन की याद करके मेरे साथ आने के लिए उत्सुक होगा," और इसलिए उसने पहले उसे भोजन का लालच दिया, फिर उसकी भावनाओं को जगाया, तीसरे स्थान पर बिस्तर का विचार, चौथे स्थान पर गीत, नृत्य और संगीत, पांचवें स्थान पर एक उद्यान और शहर की याद दिलाकर—इन सभी विचारों से उसने उसे लुभाते हुए कहा, "आओ, महाराज, मैं तुम्हारे साथ बनारस चलूँगा और तुम्हें वहाँ अच्छी तरह स्थापित करूँगा और उसके बाद अपने राज्य लौट आऊँगा; लेकिन यदि हम बनारस राज्य प्राप्त करने में असफल रहे, तो मैं तुम्हें अपने राज्य का आधा भाग दे दूँगा। वनवास से तुम्हारा क्या लेना-देना? बस वही करो जो मैं कहता हूँ।" सुतासोमा की बातें सुनकर वह नरभक्षी उसके साथ जाने के लिए उत्सुक हो गया और सोचने लगा, "सुतासोमा मेरी भलाई के लिए चिंतित है और दयालु है। उसने पहले मुझे सद्‌गुणों में स्थापित किया और अब कहता है कि वह मुझे मेरी पुरानी महिमा लौटा देगा, और वह ऐसा करने में सक्षम होगा। मुझे उसके साथ चलना चाहिए। जंगल से मेरा क्या लेना-देना है?" और मन ही मन प्रसन्न होकर वह अपने पुण्य कर्मों के कारण सुतासोमा की प्रशंसा करने के लिए उत्सुक हो गया और उसने कहा, "मित्र सुतासोमा, एक गुणी मित्र से मिलने से बेहतर कुछ नहीं है, एक दुष्ट मित्र से मिलने से बुरा कुछ नहीं है," और उसने ये पंक्तियाँ दोहराईं:

महीने के कृष्ण पक्ष में चंद्रमा दिन-प्रतिदिन घटता जाता है,
इसलिए, हे राजा, दुष्टों से मित्रता करना क्षय की तरह क्षीण हो जाएगा;
इस प्रकार मेरी मुलाकात उस रसोइए से हुई, जो सबसे नीच किस्म का आदमी था।
मैंने बुरे कर्म किए, जिनके लिए मुझे समय आने पर नरक में जाना पड़ेगा।
जैसे महीने के साफ आधे भाग में चंद्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है,
अतः, हे राजा, अच्छे लोगों के साथ मित्रता कभी क्षीण नहीं होगी।
अतः, हे सुतासोमा, मैं तुम्हारे साथ रहता हूँ, तुम्हें यह अवश्य ही पता होना चाहिए।
धर्मपरायण कर्म करने के बाद सभी सुखी स्वर्ग में जाएंगे।
जैसे शुष्क भूमि पर बाढ़ का भारी जल बह जाता है
ये सदा क्षणभंगुर और अस्थाई होते हैं।
हे राजा, दुष्टों का संघ भी ऐसा ही होता है।
सूखी जमीन पर पानी की तरह, एक क्षणभंगुर चीज।
लेकिन जब बाढ़ का भारी पानी समुद्र पर बहता है
लंबे समय तक टिकने वाले तत्व हमेशा से ही पाए जाते रहे हैं।
हे राजा, अच्छे पुरुषों का संघ भी ऐसा ही होता है।
समुद्र के पानी की तरह, यह भी एक चिरस्थायी चीज है।

कोई भी क्षणभंगुर वस्तु अच्छाई का संयोजन नहीं है।
जब तक जीवन में ऐसा भाईचारा कायम रहेगा,
लेकिन बुरे लोगों का गठबंधन जल्द ही टूट जाता है।
सद्गुण के मार्ग से बुरे लोग बहुत भटक जाते हैं।
इस प्रकार उस नरभक्षी ने सात श्लोकों में उस महान सत्ता की स्तुति की। लेकिन वह नरभक्षी और उन राजाओं को लेकर एक सीमावर्ती गाँव में गया। गाँव वालों ने उस महान सत्ता को देखकर शहर जाकर सूचना दी। राजा के मंत्री सेना लेकर आए और उस महान सत्ता के साथ उसे ले गए। इस दल के साथ वह बनारस राज्य में पहुँचा। रास्ते में गाँव के लोग उपहार लेकर उसके पीछे-पीछे चले और एक विशाल दल उसके साथ बनारस पहुँचा। उस समय नरभक्षी का पुत्र राजा था और कलाहत्ती सेनापति था। शहर के लोगों ने राजा को सूचना देते हुए कहा, "हे महाराज, हमें पता चला है कि सुतासोमा ने नरभक्षी को वश में कर लिया है और वह उसे अपने साथ यहाँ लाया है। हम उसे शहर में प्रवेश नहीं करने देंगे।" उन्होंने तुरंत शहर के द्वार बंद कर दिए और हथियार लेकर खड़े हो गए। जब उस महान प्राणी को पता चला कि द्वार बंद है, तो उसने नरभक्षी और सौ से अधिक राजाओं को वहीं छोड़ दिया और अपने कुछ सलाहकारों के साथ आकर पुकारा, "मैं राजा सुतसोमा हूँ, द्वार खोलो।" अधिकारी जाकर राजा को यह बात बता गए और राजा ने उन्हें तुरंत द्वार खोलने का आदेश दिया। इस प्रकार महान प्राणी नगर में प्रवेश कर गया। राजा और कालाहत्ती उससे मिलने बाहर आए और उसे अपने साथ महल के शिखर पर ले गए। महान प्राणी राजसिंहासन पर विराजमान होकर नरभक्षी की मुख्य पत्नी और अपने शेष सलाहकारों को बुलाया और कालाहत्ती से कहा, "कालाहत्ती, तुम राजा को नगर में प्रवेश क्यों नहीं करने दे रहे हो?" कालाहत्ती ने उत्तर दिया, "वह दुष्ट राजा, जब इस नगर में राजा के रूप में शासन कर रहा था, उसने अनेक पुरुषों को खा डाला और क्षत्रियों के लिए निषिद्ध कार्य किए और पूरे भारत को तहस-नहस कर दिया: यही कारण है कि हम ऐसा कर रहे हैं।" “यह मत समझो,” उसने उत्तर दिया, “कि वह अब इस तरह व्यवहार करेगा। मैंने उसका परिवर्तन कर दिया है और उसे नैतिक नियमों में स्थापित कर दिया है। वह अपनी जान बचाने के लिए भी किसी को हानि नहीं पहुँचाएगा: तुम्हें उससे कोई खतरा नहीं है; इस तरह व्यवहार मत करो। वास्तव में बच्चों को अपने माता-पिता की देखभाल करनी चाहिए: जो अपने माता-पिता का स्नेह करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं, बाकी नरक जाते हैं।” इस प्रकार उसने राजा के पुत्र को संबोधित किया, जब वह उसके पास एक नीची चौकी पर बैठा था। और उसने सेनापति को उपदेश देते हुए कहा, “कलाहत्थी, तुम राजा के मित्र और अनुयायी हो, और उसने तुम्हें महान शक्ति प्रदान की है; तुम्हें भी राजा के हित में कार्य करना चाहिए।” और रानी को संबोधित करते हुए उसने कहा, “हे रानी, तुम एक कुलीन वंश से आई हो और राजा से प्रधान पत्नी का पद प्राप्त किया है और उससे कई पुत्र और पुत्रियों की संतान पाई है; तुम्हें भी राजा के हित में कार्य करना चाहिए।” और, इस विषय को समाप्त करते हुए, धर्म का उपदेश देते हुए उसने कहा:

किसी भी राजा को उस पर विजय प्राप्त नहीं करनी चाहिए जो निश्चित रूप से अक्षुण्ण (*29) होना चाहिए,
किसी भी मित्र को विश्वासघात करके दूसरे मित्र पर विजय प्राप्त नहीं करनी चाहिए;
मेरी राय में, जो स्त्री अपने स्वामी से भयभीत रहती है, वह सच्ची पत्नी नहीं है।
और न ही वे बच्चे जो बूढ़े पिता का पालन-पोषण नहीं करते।
कोई भी सभागृह ऐसा नहीं होता जिसमें बुद्धिमान लोग उपस्थित न हों।
और वे लोग बुद्धिमान नहीं हैं जो सत्य का प्रचार दूर-दूर तक नहीं करते।
बुद्धिमान वे हैं जो कामवासना, घृणा और त्रुटि का त्याग कर बैठते हैं।
और सत्य का प्रचार दूर-दूर तक मनुष्यों तक करने में कभी असफल न हों।
मूर्खों के बीच बैठा ऋषि यदि मौन रहे तो कोई उसे तुरंत बुद्धिमान नहीं समझ पाता।
वह बोलता है और निर्वाण के सभी शिक्षक उसे पहचान लेते हैं।
सत्य का प्रचार करो, सत्य की महिमा करो और ऋषियों का ध्वज ऊंचा उठाओ।
संतों का प्रतीक उनकी महान वाणी है, सत्य ही उनका ध्वज है।
सत्य के उनके प्रवचन को सुनकर राजा और सेनापति अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, “चलो, हम महान राजा को यहाँ लाते हैं।” ढोल बजाकर नगर में घोषणा करने के बाद उन्होंने नगरवासियों को बुलाया और कहा, “डरो मत; लोगों का कहना है कि राजा धर्म में स्थापित हो गए हैं: चलो, हम उन्हें यहाँ लाते हैं।” अतः बड़ी संख्या में लोग और उनके नेतृत्व में महापुरुष राजा के साथ गए और उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने नाई बुलाए और जब उनके बाल और दाढ़ी काट दिए गए, उन्होंने स्नान कर लिया और बड़े वस्त्र पहन लिए, तो उन्होंने उन्हें कीमती पत्थरों के ढेर पर बिठाया, उनका अभिषेक किया और फिर उन्हें नगर में ले गए। नरभक्षी राजा ने सौ से अधिक क्षत्रियों और महापुरुष राजा को बड़ा आदर दिया, और यह खबर पूरे भारत में फैल गई कि मनुष्यों के स्वामी सुतसोमा ने नरभक्षी राजा को परिवर्तित कर सिंहासन पर पुनः स्थापित कर दिया है। इंद्रप्रस्थ नगरवासियों ने राजा को वापस बुलाने के लिए संदेश भेजा। महान पुरुष वहाँ केवल एक माह रुके और राजा को संबोधित करते हुए कहा, "मित्र, हम जा रहे हैं; ध्यान रखना कि तुम अच्छे कार्यों में तत्पर रहो और नगर के द्वार तथा अपने महल के द्वार पर पाँच भिक्षागृह बनवाओ तथा दस राजसी गुणों का पालन करो और बुरे मार्गों से विमुख रहो।" सौ से अधिक राजसी नगरों से एक विशाल सेना एकत्रित हुई और इस दल के साथ वे बनारस से आगे बढ़े। नरभक्षी भी उनके साथ जा रहा था

और रास्ते में बीच में रुक गया। महान पुरुष ने जिनके पास घोड़े नहीं थे, उन्हें सवारी के लिए घोड़े दिए और फिर उन सभी को विदा कर दिया। उन्होंने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और उचित अभिवादन और आलिंगन के बाद वे सभी अपने-अपने लोगों के पास लौट गए। महान पुरुष भी इंद्रप्रस्थ पहुँचकर बड़े वैभव के साथ नगर में प्रवेश किया, जिसे उसके निवासियों ने मानो देवताओं (देवदूतों) के नगर की तरह सजाया था। अपने माता-पिता को प्रणाम करने और उन्हें देखकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के बाद वे महल के शिखर पर चढ़ गए। अपने राज्य में न्यायपूर्ण शासन करते हुए उनके मन में यह विचार आया, "वृक्ष-आत्मा ने मेरी बहुत सहायता की; मैं सुनिश्चित करूँगा कि इसे धार्मिक भेंट चढ़ाई जाए।" अतः उन्होंने बरगद के वृक्ष के पास एक विशाल झील बनवाई और वहाँ कई परिवारों को बसाकर एक गाँव की स्थापना की। यह गाँव बढ़कर अस्सी हज़ार दुकानों वाला एक बड़ा गाँव बन गया। वृक्ष की शाखाओं के सबसे दूर के छोर से शुरू करते हुए उन्होंने वृक्ष की जड़ों के चारों ओर की भूमि को समतल किया और उसके चारों ओर मेहराबों और फाटकों से सुसज्जित एक बाड़ (*30) लगाई; इस प्रकार वृक्ष की आत्मा को प्रसन्न किया गया। और गाँव के उस स्थान पर बसे होने के कारण जहाँ राक्षस का धर्म परिवर्तन हुआ था, वह स्थान बढ़कर कम्मासदम्मा नगर बन गया। और सभी राजाओं ने, ईश्वर की सलाह का पालन करते हुए, दान-पुण्य आदि जैसे अच्छे कर्म किए और स्वर्ग की प्राप्ति की।

गुरु ने यहाँ अपना धार्मिक उपदेश समाप्त करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, केवल अब ही नहीं, मैं अंगुलिमाला का धर्मांतरण कर रहा हूँ; पूर्व में भी मैंने उसका धर्मांतरण किया था और उसने मेरे जन्म को पहचाना था।" "उस समय नरभक्षी राजा अंगुलिमाला था, कालाहत्ती सारिपुत्र था, ब्राह्मण नंदा आनंद था, वृक्ष-आत्मा कश्यप था, सक्का (इंद्र) अनुरुद्ध था, शेष राजा बुद्ध के अनुयायी थे, राजा के पिता और माता महान राजा के परिवार के सदस्य थे, और कहा जाता है कि राजा सुतसोमा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1) सुतसोमा, जाट की कहानी। क्रमांक 513, जयाद्दिसा-जातक, और कैरिया-पिटक, III। 12

(2) अंगुलिमाल की कहानी के लिए अंगुलिमालसुत्तम (मज्झिमा निकाय, संख्या 86, खंड II. pt. I. पृष्ठ 97) देखें

(3)पादेसनानम्। देखें शिक्षासमुच्चय, स्व प्रदेशिका, 1. स्थानीय, प्रांतीय, 2. सीमित, जैसे प्रदेशिकायनम, महाव्युत्पत्ति।

(4)पित्तियाचरिया। यह शब्द जाट. 100 में आता है, और दोनों अंशों में इसका अर्थ सहायक शिक्षक प्रतीत होता है, जो गुरु के शिक्षण का पूरक होता है।

(5) पक्खदिवास, यानी दो प्रमुख पाक्षिक उपवास दिवसों के लिए, जाट. 292, 342 और 97 देखें।

(6) जातक कथाओं में यक्ष नामक राक्षसों का उल्लेख बार-बार मानव मांस खाने के रूप में मिलता है। नरभक्षण के केवल वही मामले मिलते हैं जिनमें मनुष्य या तो यक्ष (राक्षस) द्वारा पाले-पोसे गए हों या पिछले जन्म में यक्ष रहे हों, जैसा कि इस कथा में वर्णित है।

(7)घरासंधि के साथ, घर की दीवार में छेद, तुलना करें मनु, 9. 276.

(8) जलीय पौधा वैलिसनेरिया.

(9)भवित्त के लिए धम्म संगानी की तुलना करें

(10) पाली में यहाँ शब्द 'अच्चरा' के दो अर्थों पर एक खेल है, एक स्वर्गीय अप्सरा और उंगलियों का चटकना।

(11) इस वाक्य की संरचना बहुत स्पष्ट नहीं है, भले ही कोई खानुम को धानुम, जाट 88 के रूप में कर्ता कारक मान ले। शायद खानुम पित्थिपडेना निक्खामी का अर्थ है, उसने दूसरे पैर के ऊपरी हिस्से को रगड़कर किरच को निकाल दिया।

(12) चूंकि सुतासोमा पीछे छूट गई थी, एक और पीड़ित अभी भी संख्या पूरी करना चाहता था।

(13) एक तीर पर बगुले का पंख लगा हुआ था।

(14)सुता। शब्द के दोहरे अर्थ, रस और पवित्र साहित्य पर एक खेल।

(15) बोधिसत्व के प्रति श्रद्धा के प्रतीक के रूप में।

(16)बलरामायण, अधिनियम IX की तुलना करें। श्लोक 51, भ्रमरकाभ्रमं भ्रम्यते रथः।

(17) फलक, मेसुवा रॉक्सबर्गी पौधा, या यह कमल के बीज-फली हो सकते हैं। जाट.304 और जाट. 68 में, हमें फलकत्थरसायना मिलता है, जो फलक के पत्तों का बिस्तर है।

(18)ये आयतें पहले भी आ चुकी हैं।

(19) हाथी, घुड़सवार सेना, रथ और पैदल सेना।

(20) जातक, 234 देखें

(21)क्षत्रिय शिक्षा में यह माना जाता है कि मनुष्य अपने हितों की पूर्ति के लिए बुराई करने में न्यायसंगत है।

(22) यहाँ पहले से दिए गए चार छंदों का अनुसरण किया जाता है

(23) सक्खी। टीकाकार इसका अनुवाद "मित्र" करता है, जाहिरा तौर पर v.1. सखी से।

(24) ये आयतें दोहराई जाती हैं

(25) अवकरोही यहाँ और जाट. 280 में, का अर्थ "भुगतान करना, पूरा करना" होना चाहिए, लेकिन जाट. 495 और 500 में अवकरेय का अर्थ "भुगतान न करना" प्रतीत होता है। क्या यह संभव है कि दत्वना अवकरेय के स्थान पर हमें दत्व न अवकरेय पढ़ना चाहिए?

(27) अर्थ स्पष्ट है, लेकिन damento की संरचना अनियमित है।

(28) निप्पुरिसा। यह शब्द संगीत पर लागू होता है और इसका अर्थ है "मानव नहीं," "मनुष्यों द्वारा निर्मित नहीं," बल्कि गंधर्वों द्वारा, या स्वर्गीय संगीतकारों द्वारा।

(29) टीकाकार इसे किसी पुरुष का पिता या माता बताता है।

(30)वेदिका। इस शब्द पर सेनार्ट के महावस्तु, I, और विनय ग्रंथों, III. 104 और 162 में चर्चा की गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> जातक >> **मुगा-पक्खा-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-538-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 538
मुगा-पक्खा जातक (*1)

“बुद्धि का प्रदर्शन न करो,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जाटवन में महान त्याग के विषय में सुनाई थी। एक दिन सत्य के हॉल में बैठे भिक्षु भगवान बुद्ध के महान त्याग की प्रशंसा में चर्चा कर रहे थे। जब गुरु आए और उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, तो यह सुनकर उन्होंने कहा, “नहीं, भिक्षुओं, अपने राज्य को त्यागने के बाद संसार का यह त्याग कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि जब मैंने सभी सिद्धियों का पूर्ण अभ्यास कर लिया था; क्योंकि इससे पहले, जब मेरी बुद्धि अभी अपरिपक्व थी और मैं अभी भी सिद्धियों को प्राप्त कर रहा था, तब मैंने अपना राज्य त्याग दिया और संसार का त्याग कर दिया।” और उनके अनुरोध पर उन्होंने उन्हें अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में काशिराज राजा न्यायपूर्वक शासन कर रहे थे। उनकी सोलह हजार पत्नियाँ थीं, परन्तु उनमें से किसी ने भी पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दिया। कुश जातक (*2) के अनुसार, नगरवासी एकत्रित हुए और कहने लगे, “हमारे राजा के पास वंश को आगे बढ़ाने के लिए कोई पुत्र नहीं है”; और उन्होंने राजा से पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का अनुरोध किया। राजा ने अपनी सोलह

हजार पत्नियों को पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का आदेश दिया; परन्तु यद्यपि उन्होंने चंद्रमा और अन्य देवताओं की पूजा की और प्रार्थना की, फिर भी उन्हें पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। अब उनकी प्रमुख रानी चंदादेवी, जो मददास के राजा की पुत्री थीं, पुण्य कर्मों में लीन थीं, इसलिए उन्होंने उनसे भी पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का अनुरोध किया। अतः पूर्णिमा के दिन उन्होंने उपोसथ व्रत ग्रहण किया और एक छोटी सी पलंग पर लेटकर अपने पुण्यमय जीवन के चिंतन में उन्होंने सत्य की प्रतिज्ञा की, "यदि मैंने कभी भी आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं किया है, तो मेरी इस प्रतिज्ञा की सत्यता से मुझे पुत्र प्राप्ति हो।" उनकी भक्ति की शक्ति से इंद्र का जीवन प्रज्वलित हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण का पता लगाकर कहा, "चंदादेवी पुत्र की कामना करती हैं, मैं उन्हें पुत्र प्रदान करूँगा।" इस प्रकार, जब वे एक उपयुक्त पुत्र की खोज कर रहे थे, तब उनकी दृष्टि बोधिसत्व पर पड़ी। बोधिसत्व ने बनारस में बीस वर्ष शासन करने के बाद उषाद नरक में पुनर्जन्म लिया था, जहाँ उन्होंने अस्सी हजार वर्षों तक कष्ट भोगा था, और फिर तैंतीस देवदूतों के लोक में जन्म लिया था। वहाँ अपने निर्धारित समय तक रहने के बाद, वे उस लोक से विदा हो गए और उच्चतर देवदूतों के लोक में जाने की इच्छा रखते थे। सक्का (इंद्र) उनके पास गए और बोले, "मित्र, यदि तुम मनुष्यलोक में जन्म लेते हो, तो तुम सभी गुणों का पूर्ण अभ्यास करोगे और मानवजाति को लाभ होगा। अब काशिराज की यह प्रमुख रानी चंदा पुत्र की कामना कर रही है, तुम उसके गर्भ में जन्म लो।" उन्होंने सहमति दी और पाँच सौ देवताओं के साथ आए, और स्वयं रानी के गर्भ में ही उत्पन्न हुए, जबकि अन्य देवता राजा के मंत्रियों की पत्नियों के गर्भ में उत्पन्न हुए। रानी का गर्भ हीरे से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था; जब उन्हें इसका एहसास हुआ, तो उन्होंने राजा को बताया, जिन्होंने अजन्मे बच्चे की सुरक्षा के लिए हर संभव उपाय किए; और अंत में उन्होंने एक शुभ लक्षणों वाले पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन मंत्रियों के घरों में पाँच सौ युवा रईसों का जन्म हुआ। उस समय राजा अपने शाही आसन पर अपने मंत्रियों से घिरे बैठे थे, तभी यह घोषणा हुई, "हे महाराज, आपके घर पुत्र का जन्म हुआ है"; यह सुनकर उनके मन में पितृ प्रेम जागृत हुआ, और उनकी त्वचा को भेदते हुए उनकी हड्डियों तक पहुँच गया; उनके भीतर आनंद का संचार हुआ और उनका हृदय प्रसन्न हो गया। उन्होंने अपने मंत्रियों से पूछा, "क्या आप मेरे पुत्र के जन्म से प्रसन्न हैं?" "महाराज, आप क्या कह रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम पहले असहाय थे, अब हमें सहायता मिली है, हमें स्वामी प्राप्त हुआ है।" राजा ने अपने मुख्य सेनापति को आदेश दिया, "मेरे पुत्र के लिए सेवकों का एक दल तैयार किया जाना चाहिए।"पता लगाओ कि आज मंत्रियों के घरों में कितने युवा कुलीन पैदा हुए हैं।" उसने पाँच सौ को देखा और जाकर राजा को बताया। राजा ने पाँच सौ युवा कुलीनों के लिए शाही वस्त्र भेजे, और पाँच सौ दाइयाँ भी भेजीं। इसके अलावा, उसने बोधिसत्व के लिए चौंसठ दाइयाँ भेजीं, जो सभी बहुत लंबी होने के दोषों से मुक्त थीं, उनके स्तन लटके हुए नहीं थे, और मीठे दूध से भरे हुए थे। यदि कोई बच्चा बहुत लंबी दाई की गोद में बैठकर दूध पीता है, तो उसकी गर्दन बहुत लंबी हो जाएगी; यदि वह बहुत छोटी दाई की गोद में बैठता है, तो उसकी कंधे की हड्डी दब जाएगी; यदि दाई बहुत पतली हो, तो बच्चे की जांघों में दर्द होगा; यदि बहुत मोटी हो, तो बच्चा धनुषाकार टांगों वाला हो जाएगा (*3); बहुत काली दाई का शरीर बहुत ठंडा होता है, बहुत गोरी दाई का बहुत गर्म; लटके हुए स्तनों वाली दाई का दूध पीने वाले बच्चों की नाक की नोक चपटी हो जाती है; कुछ कुछ दाइयों का दूध खट्टा होता है, कुछ का कड़वा, (और पहले जैसा ही)। इसलिए, इन सभी दोषों से बचने के लिए, उन्होंने चौंसठ ऐसी दाइयाँ उपलब्ध कराईं जिनका दूध मीठा था और उनमें ये दोष नहीं थे; और बोधिसत्व को पूर्ण आदर देने के बाद, उन्होंने रानी को वरदान भी दिया। रानी ने वरदान स्वीकार कर लिया और उसे अपने मन में संजो कर रखा। बालक का नामकरण करते समय, उन्होंने विभिन्न लक्षणों को पढ़ने वाले ब्राह्मणों को पूर्ण आदर दिया और पूछा कि क्या कोई खतरा मंडरा रहा है। उन्होंने बालक के लक्षणों की उत्कृष्टता देखकर उत्तर दिया, "हे राजा, राजकुमार में भविष्य के सौभाग्य के सभी लक्षण हैं, वह न केवल एक महाद्वीप पर बल्कि चारों महाद्वीपों पर शासन करने में सक्षम है, कोई खतरा दिखाई नहीं देता।" राजा प्रसन्न होकर बालक का नाम तेमियाकुमारो रखा, क्योंकि उसके जन्म के दिन काशी राज्य में भारी वर्षा हुई थी और वह भीगकर पैदा हुआ था।बच्चे का नामकरण करते समय, उन्होंने विभिन्न लक्षणों को पढ़ने वाले ब्राह्मणों का बहुत सम्मान किया और पूछा कि क्या कोई खतरा मंडरा रहा है। लक्षणों की उत्कृष्टता देखकर, उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, राजकुमार में भविष्य के सौभाग्य के सभी लक्षण हैं; वह न केवल एक महाद्वीप पर बल्कि चारों महाद्वीपों पर शासन करने में सक्षम है; कोई खतरा दिखाई नहीं देता।" राजा प्रसन्न हुए और जब उन्होंने लड़के का नाम निर्धारित किया, तो उन्होंने उसका नाम तेमियाकुमारो रखा, क्योंकि उसके जन्म के दिन काशी राज्य में हर जगह बारिश हुई थी और वह भीगा हुआ पैदा हुआ था।बच्चे का नामकरण करते समय, उन्होंने विभिन्न लक्षणों को पढ़ने वाले ब्राह्मणों का बहुत सम्मान किया और पूछा कि क्या कोई खतरा मंडरा रहा है। लक्षणों की उत्कृष्टता देखकर, उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, राजकुमार में भविष्य के सौभाग्य के सभी लक्षण हैं; वह न केवल एक महाद्वीप पर बल्कि चारों महाद्वीपों पर शासन करने में सक्षम है; कोई खतरा दिखाई नहीं देता।" राजा प्रसन्न हुए और जब उन्होंने लड़के का नाम निर्धारित किया, तो उन्होंने उसका नाम तेमियाकुमारो रखा, क्योंकि उसके जन्म के दिन काशी राज्य में हर जगह बारिश हुई थी और वह भीगा हुआ पैदा हुआ था।

जब वह एक महीने का था, तो उसे सजा-संवारकर राजा के पास लाया गया। राजा ने अपने प्यारे बच्चे को देखकर उसे गले लगाया और अपनी गोद में बिठाकर उसके साथ खेलने लगा। उसी समय चार डाकुओं को उसके सामने लाया गया; उनमें से एक को उसने कांटों से जड़े कोड़ों की एक हजार मार की सजा सुनाई, दूसरे को जंजीरों में जकड़कर कैद करने की, तीसरे को भाले से घायल करने की और चौथे को सूली पर चढ़ाने की सजा दी। बोधिसत्व अपने पिता के शब्दों को सुनकर भयभीत हो गया और मन ही मन सोचने लगा, "अरे! मेरे पिता राजा होने के कारण एक ऐसे जघन्य अपराध के दोषी हो रहे हैं जो मनुष्यों को नरक में ले जाता है।" अगले दिन उसे एक सफेद छतरी के नीचे एक आलीशान पलंग पर लिटाया गया। थोड़ी देर की नींद के बाद जब वह जागा, तो उसने आंखें खोलकर सफेद छतरी

और राजसी वैभव देखा, जिससे उसका भय और भी बढ़ गया; और वह सोचने लगा, "मैं इस महल में कहाँ से आ गया हूँ?" अपने पिछले जन्मों की यादों से उसे याद आया कि वह एक बार देवताओं (देवदूतों) के लोक से आया था और उसके बाद उसने नरक में कष्ट सहा था, और फिर वह उसी नगर का राजा था। जब वह मन ही मन सोच रहा था, "मैं बीस वर्षों तक राजा रहा और फिर मैंने उस्सादा नरक में अस्सी हजार वर्षों तक कष्ट सहा, और अब मैं फिर से इस लुटेरों के घर में जन्म ले रहा हूँ, और मेरे पिता ने, जब चार लुटेरों को उनके सामने लाया गया, तो ऐसा क्रूर भाषण दिया जिससे नरक में जाना ही होगा; यदि मैं राजा बनता हूँ तो मुझे फिर से नरक में जन्म लेना होगा और वहाँ भीषण पीड़ा सहनी होगी," तो वह अत्यंत भयभीत हो गया, उसका सुनहरा शरीर हाथ से कुचले हुए कमल की तरह पीला और मुरझा गया, और वह सोचने लगा कि वह लुटेरों के उस घर से कैसे बच निकले। फिर छतरी में रहने वाली एक देवी, जो पिछले जन्म में उसकी माता थी, ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "डरो मत, मेरे बच्चे तेमिया; यदि तुम सचमुच भागना चाहते हो, तो अपंग होने का नाटक करो, भले ही तुम वास्तव में अपंग न हो; बहरे न होते हुए भी बहरे होने का नाटक करो, और गूंगे न होते हुए भी गूंगे होने का नाटक करो। इन लक्षणों को अपनाकर बुद्धि का कोई संकेत मत दिखाओ।" इस प्रकार उसने पहला श्लोक कहा।

"मेरे बच्चे, बुद्धि का प्रदर्शन मत करो, सबकी नजरों में मूर्ख बनो।"
सबकी घृणा का पात्र बनकर संतुष्ट रहो, इसी प्रकार अंततः तुम्हें पुरस्कार प्राप्त होगा।"
उसके शब्दों से सांत्वना पाकर उसने दूसरा छंद बोला।

"हे देवी, मैं आपकी इच्छा का पालन करूंगा, आप जो भी मुझे आदेश दें वही सर्वोत्तम है।"
माँ, तुम मेरी भलाई चाहती हो, तुम बस मुझे सुखी देखना चाहती हो।"
और इसलिए उन्होंने इन तीन गुणों का अभ्यास किया। राजा ने अपने पुत्र का दुख दूर करने के लिए पाँच सौ युवा सरदारों को उसके पास बुलवाया; बच्चे दूध के लिए रोने लगे, लेकिन बोधिसत्व नरक के भय से राजा के पास यह सोचकर रोए नहीं कि प्यास से मरना राज्य करने से बेहतर है। दाईयों ने यह बात रानी चंदा को बताई और उन्होंने राजा को बताई; राजा ने शकुन और संकेतों के ज्ञाता ब्राह्मणों को बुलवाया और उनसे सलाह ली। उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, आपको उचित समय बीत जाने के बाद ही राजकुमार को दूध पिलाना चाहिए; तब वह रोएगा और उत्सुकता से स्तन पकड़कर अपनी इच्छा से दूध पिएगा।" इसलिए उन्होंने उचित समय बीत जाने के बाद ही उसे दूध पिलाया, कभी-कभी तो एक बार दूध नहीं पिलाया, और कभी-कभी पूरे दिन दूध नहीं पिलाया। लेकिन नरक के भय से ग्रस्त होकर, प्यासा होने के बावजूद, वह दूध के लिए नहीं रोया। तब माँ या दाईयों ने उसे दूध पिलाया, हालाँकि वह रोया नहीं, और कहा, "लड़का भूखा है।" दूसरे बच्चे दूध न मिलने पर रोने लगे, लेकिन वह न तो रोया, न सोया, न अपने हाथ-पैर मोड़े, और न ही उसने कोई आवाज़ सुनी। तब उसकी नर्सों ने सोचा, "विकलांगों के हाथ-पैर तो उसके जैसे नहीं होते, गूंगों के जबड़े उसके जैसे नहीं होते, बहरों के कान उसके जैसे नहीं होते; इसके पीछे कोई कारण तो होगा, चलो इसकी जाँच करते हैं।" इसलिए उन्होंने उसे दूध पिलाने का निश्चय किया और पूरे एक दिन तक उसे दूध नहीं दिया; प्यास से तड़पने के बावजूद उसने दूध के लिए कोई आवाज़ नहीं निकाली। तब उसकी माँ ने कहा, "मेरा बच्चा भूखा है, उसे दूध दो।" और उसने उन्हें दूध पिलाने के लिए मजबूर किया। इस तरह उसे बीच-बीच में दूध पिलाते हुए उन्होंने एक साल तक उसे परखा, लेकिन उसकी कमजोरी का पता नहीं चल पाया। फिर उन्होंने कहा, "दूसरे बच्चों को केक और स्वादिष्ट भोजन पसंद हैं, चलो उसे भी वही खिलाते हैं।" उन्होंने पाँच सौ बच्चों को उसके पास बिठाया और तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन लाकर उसके पास रख दिए, और उन्हें अपनी पसंद का भोजन लेने को कहकर वे खुद छिप गए। दूसरे बच्चे आपस में झगड़ते और एक-दूसरे को मारते रहे और केक छीनकर खा गए, लेकिन बोधिसत्व ने मन ही मन कहा, "हे तेमिया, अगर तुम नरक में जाना चाहते हो तो केक और उत्तम भोजन खा लो," और इसलिए नरक के भय से उन्होंने उनकी ओर देखा तक नहीं। इस प्रकार, भले ही उन्होंने पूरे एक साल तक उन्हें केक और उत्तम भोजन से आज़माया, फिर भी उन्हें उनकी कमजोरी का पता नहीं चला। फिर उन्होंने कहा, "बच्चों को तरह-तरह के फल पसंद होते हैं," और वे तरह-तरह के फल लाए और उन्हें आज़माया; दूसरे बच्चे उनके लिए आपस में लड़े और उन्हें खा गए, लेकिन उन्होंने उनकी ओर देखा तक नहीं, और इस तरह पूरे एक साल तक उन्होंने उन्हें तरह-तरह के फलों से आज़माया। फिर उन्होंने कहा, "दूसरे बच्चों को खिलौने पसंद होते हैं"; इसलिए उन्होंने सोने और हाथियों की दूसरी मूर्तियाँ उनके पास रख दीं; बाकी बच्चों ने उन्हें लूट की तरह छीन लिया, लेकिन बोधिसत्व ने उनकी ओर देखा तक नहीं।और इस प्रकार पूरे एक वर्ष तक उन्होंने उसे खिलौनों से आज़माया। फिर उन्होंने कहा, "चार साल के बच्चों के लिए एक विशेष भोजन होता है, हम उसे इससे आज़माएंगे"; इसलिए वे तरह-तरह का भोजन लाए; अन्य बच्चों ने उसे तोड़-तोड़ कर खाया; लेकिन बोधिसत्व ने मन ही मन कहा, "हे तेमिया, पिछले जन्मों में जब तुम्हें भोजन नहीं मिला, उसका कोई हिसाब नहीं है," और नरक के भय से उन्होंने उनकी ओर देखा तक नहीं; अंत में उनकी माँ ने, जिनका हृदय लगभग फट चुका था, उन्हें अपने हाथों से भोजन कराया। फिर उन्होंने कहा, "पाँच साल के बच्चे आग से डरते हैं, हम उसे इससे आज़माएंगे"; इसलिए, कई दरवाजों वाला एक बड़ा घर बनवाकर और उसे ताड़ के पत्तों से ढककर, उन्होंने उसे अन्य बच्चों से घेरकर बीच में बिठा दिया और उसमें आग लगा दी। अन्य बच्चे चीखते हुए भाग गए, लेकिन बोधिसत्व ने मन ही मन कहा कि यह नरक की यातना से बेहतर है, और पूरी तरह उदासीन होकर स्थिर रहे, और जब आग उनके पास आई तो वे उन्हें वहाँ से ले गए। फिर उन्होंने कहा, "छह साल के बच्चे जंगली हाथी से डरते हैं"; इसलिए उन्होंने एक प्रशिक्षित हाथी को प्रशिक्षित करवाया, और जब उन्होंने बोधिसत्व को अन्य बच्चों के साथ महल के प्रांगण में बैठाया, तो उन्होंने उसे छोड़ दिया। वह चिंघाड़ता हुआ

और अपनी सूंड से ज़मीन पर प्रहार करता हुआ आया और दहशत फैला दी; अन्य बच्चे अपनी जान के डर से इधर-उधर भाग गए, लेकिन बोधिसत्व नरक के भय से वहीं बैठे रहे, और प्रशिक्षित जानवर ने उन्हें उठाया और ऊपर-नीचे किया, और उन्हें चोट पहुँचाए बिना चला गया। जब वे सात साल के थे, और अपने साथियों से घिरे बैठे थे, तो उन्होंने कुछ दाँत निकाले हुए और मुँह बाँधे हुए साँपों को छोड़ दिया; अन्य बच्चे चीखते हुए भाग गए, लेकिन बोधिसत्व नरक के भय को याद करके स्थिर रहे और बोले, "भयंकर साँप के मुँह से मरना बेहतर है"; फिर सर्पों ने उसके पूरे शरीर को घेर लिया और उसके सिर पर अपने फन फैला दिए, फिर भी वह गतिहीन रहा। इस प्रकार, बार-बार कोशिश करने के बावजूद भी वे उसकी कमजोरी का पता नहीं लगा सके। तब उन्होंने कहा, "लड़कों को सामाजिक समारोह पसंद होते हैं"; इसलिए, उसे महल के प्रांगण में पाँच सौ लड़कों के साथ बिठाकर, उन्होंने नृत्यकला करने वाले कलाकारों का एक समूह इकट्ठा करवाया; अन्य लड़कों ने नृत्यकला करने वाले कलाकारों को देखकर "वाह!" चिल्लाया और ज़ोर से हँसे, लेकिन बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा कि यदि वह नरक में जन्म लेता तो उसे कभी हँसी या आनंद नहीं मिलता, इसलिए वह नरक के बारे में सोचते हुए गतिहीन रहा और उसने नृत्य की ओर देखा तक नहीं। इस प्रकार बार-बार कोशिश करने पर भी उन्हें उसकी कोई कमजोरी नहीं मिली। तब उन्होंने कहा, "हम तलवार से उसकी परीक्षा लेंगे"; इसलिए उन्होंने उसे महल के प्रांगण में अन्य लड़कों के साथ बिठा दिया, और जब वे खेल रहे थे, तभी एक आदमी उन पर झपटा, हाथ में क्रिस्टल जैसी तलवार लहराते हुए, चिल्लाता और उछलता हुआ बोला, "काशी के राजा का यह शैतान का बच्चा कहाँ है? मैं इसका सिर काट डालूँगा।"बाकी लोग उसे देखकर डर से चीखते हुए भाग गए, लेकिन बोधिसत्व नरक के भय के कारण बेहोशी की हालत में बैठे रहे। उस आदमी ने तलवार से उसका सिर रगड़ा और उसे काटने की धमकी दी, फिर भी वह डरा नहीं सका और अंत में चला गया। इस प्रकार, बार-बार कोशिश करने के बावजूद, वे उसकी कमजोरी का पता नहीं लगा सके। जब वह दस साल का था, तो यह जांचने के लिए कि क्या वह सचमुच बहरा है, उन्होंने पलंग के चारों ओर एक पर्दा लटका दिया और चारों तरफ छेद कर दिए और उसके नीचे शंख रख दिए, बिना उसे दिखाए। अचानक उन्होंने शंख बजाए, एक तेज आवाज हुई; लेकिन मंत्री, चारों तरफ खड़े होकर और पर्दे के छेदों से देखते हुए, पूरे दिन उसमें विचारों की कोई उलझन, हाथ-पैर की कोई हलचल या यहाँ तक कि एक भी झटका नहीं देख सके। इसलिए एक साल बीतने के बाद, उन्होंने एक और साल तक ढोल बजाकर उसकी कोशिश की; लेकिन फिर भी, बार-बार कोशिश करने के बावजूद, वे उसकी कमजोरी का पता नहीं लगा सके। तब उन्होंने कहा, "हम उसकी कोशिश करेंगे।" "दीपक के साथ"; इसलिए रात के समय यह देखने के लिए कि क्या वह अंधेरे में हाथ-पैर हिलाता है, उन्होंने कुछ बर्तनों में दीपक जलाए, और बाकी सभी दीपक बुझाकर उन्हें कुछ देर के लिए अंधेरे में रख दिया, और फिर अचानक बर्तनों में रखे दीपकों को उठाकर एक साथ आग लगा दी, और उसके व्यवहार को देखा; लेकिन इस तरह पूरे एक साल तक बार-बार कोशिश करने के बावजूद, उन्होंने उसे एक बार भी हिलते हुए नहीं देखा। फिर, उन्होंने कहा, "हम उसे गुड़ से आजमाएंगे"; इसलिए उन्होंने उसके पूरे शरीर पर गुड़ मल दिया और उसे मक्खियों से भरी जगह पर लिटा दिया और मक्खियों को भगा दिया; मक्खियों ने उसके पूरे शरीर को ढक लिया और उसे ऐसे काटा जैसे सुई चुभो रही हों, लेकिन वह बिल्कुल उदासीन होकर स्थिर रहा; इस तरह उन्होंने एक साल तक उसकी कोशिश की, लेकिन उन्हें उसमें कोई कमजोरी नहीं मिली। फिर जब वह चौदह साल का हुआ, तो उन्होंने कहा, "यह युवक अब बड़ा हो गया है, साफ चीजों से प्यार करता है और गंदी चीजों से घृणा करता है, हम उसे गंदी चीजों से आजमाएंगे"; इसलिए उस समय से उन्हें स्नान करने, मुँह धोने या शरीर के किसी भी प्रकार के शुद्धिकरण करने की अनुमति नहीं दी गई, यहाँ तक कि उनकी दयनीय स्थिति हो गई और वे एक रिहा कैदी की तरह दिखने लगे। जब वे मक्खियों से ढके हुए लेटे थे, तो लोग उनके चारों ओर आकर उनका अपमान करते हुए कहने लगे, "हे तेमिया, अब तुम बड़े हो गए हो, तुम्हारी सेवा कौन करेगा? क्या तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम यहाँ क्यों लेटे हो? उठो और स्वयं को शुद्ध करो।" लेकिन वे गुथा नरक की यातनाओं को याद करते हुए चुपचाप अपनी दयनीय स्थिति में लेटे रहे; और यद्यपि उन्होंने एक वर्ष तक बार-बार उनकी परीक्षा ली, फिर भी उन्हें उनमें कोई कमजोरी नहीं मिली। तब उन्होंने उनके बिस्तर के नीचे आग के बर्तन रख दिए और कहा, "जब वे गर्मी से व्याकुल होंगे, तो शायद वे दर्द सहन न कर पाएंगे और तड़पने के कुछ लक्षण दिखाएंगे"; उनके शरीर पर फोड़े निकलते हुए प्रतीत हुए, लेकिन बोधिसत्व ने स्वयं को अनदेखा करते हुए कहा, "अविची नरक की आग सौ मील (4.23 किमी) तक फैलती है, यह गर्मी सौ गुना है।""उससे हज़ार गुना बेहतर," यह कहकर वह स्थिर रहा। तब उसके माता-पिता ने दुखी मन से उन आदमियों को वापस बुलाया और उसे आग से बाहर निकाला, और उससे विनती करते हुए कहा, "हे राजकुमार तेमिया, हम जानते हैं कि तुम जन्म से अपंग नहीं हो, क्योंकि अपंगों के पैर, चेहरा या कान तुम्हारे जैसे नहीं होते; हमने बहुत प्रार्थनाओं के बाद तुम्हें अपने बच्चे के रूप में पाया है, अब हमें नष्ट मत करो, बल्कि हमें जंबूद्वीप (भारत) के सभी राजाओं के अभिशाप से बचाओ"; लेकिन, उनकी इतनी विनती के बावजूद, वह स्थिर पड़ा रहा, मानो उसने उनकी बात सुनी ही न हो। तब उसके माता-पिता रोते हुए चले गए; और कभी-कभी उसके पिता या उसकी माता अकेले वापस आकर उससे विनती करते; और इस प्रकार उन्होंने पूरे एक वर्ष तक बार-बार उसकी परीक्षा ली, लेकिन उन्हें उसमें कोई कमजोरी नहीं मिली। फिर जब वह सोलह वर्ष का हुआ, तो उन्होंने सोचा, "चाहे कोई अपंग हो या बहरा-गूंगा, फिर भी ऐसा कोई नहीं है, जो बड़ा होकर सुखदायक चीजों में आनंद न ले और अरुचिकर चीजों से घृणा न करे; यह सब स्वाभाविक है और सही समय पर होता है, जैसे फूल खिलना। हम उसके सामने नाटक करवाएंगे और इस तरह उसकी परीक्षा लेंगे। इसलिए उन्होंने कुछ ऐसी स्त्रीयों को बुलाया जो अत्यंत सुंदर और देवदूतों की पुत्रियों के समान थीं, और उन्होंने वादा किया कि उनमें से जो भी राजकुमार को हंसा सकेगी या उसे पापपूर्ण विचारों में उलझा सकेगी, वही उसकी मुख्य रानी बनेगी। फिर उन्होंने राजकुमार को सुगंधित जल से स्नान कराया और उसे देवदूतों के पुत्रों के समान सजाया-संवारा, और उसे देवदूतों के निवास स्थान जैसे शाही कक्षों में तैयार किए गए शाही पलंग पर लिटाया। उसके भीतरी कक्ष को सुगंधित मालाओं, फूलों की मालाओं, धूप, मलहम, मादक

पेय आदि की मिश्रित सुगंध से भरकर वे एकांतवास में चली गईं। इस बीच, स्त्रियाँ उसके चारों ओर जमा हो गईं और नाच-गाना और तरह-तरह के मीठे शब्दों से उसे प्रसन्न करने का भरसक प्रयास किया; लेकिन उसने अपनी पूर्ण बुद्धि से उन्हें देखा और इस भय से अपनी साँसें रोक लीं कि कहीं वे उसके शरीर को न छू लें, जिससे उसका शरीर बिल्कुल अकड़ गया। जब वे उसे छू नहीं सकीं, तो उन्होंने उसके माता-पिता से कहा, "उसका शरीर बिल्कुल अकड़ गया है, वह पुरुष नहीं है, बल्कि उसे मरना होगा।" "एक जिन्न बनो।" इस प्रकार, हालांकि उसके माता-पिता ने बार-बार उसकी परीक्षा ली, फिर भी उसमें कोई कमजोरी नहीं पाई। इस प्रकार, हालांकि उन्होंने सोलह वर्षों तक सोलह बड़ी परीक्षाओं और कई छोटी परीक्षाओं से उसकी परीक्षा ली, फिर भी वे उसमें कोई कमजोरी नहीं ढूंढ पाए। तब राजा, बहुत नाराज होकर, ज्योतिषियों को बुलाया और कहा, "राजकुमार के जन्म के समय आपने कहा था कि उसमें सौभाग्य और शुभ लक्षण हैं, उसके सामने कोई बाधा नहीं है; लेकिन वह अपंग, बहरा और गूंगा पैदा हुआ है; आपके शब्द तथ्यों से मेल नहीं खाते।" "महाराज," उन्होंने उत्तर दिया, "आपके गुरुओं से कुछ भी छिपा नहीं है, लेकिन हम जानते थे कि यदि हम आपको बताते कि इतनी शाही प्रार्थनाओं का बच्चा पूरी तरह से दुर्भाग्यशाली होगा, तो आप कितने दुखी होंगे; इसलिए हमने यह नहीं कहा।" "अब क्या किया जाए?" "हे राजा, यदि यह राजकुमार इसी घर में रहता है,तीन खतरे मंडरा रहे हैं, अर्थात् आपका जीवन, आपकी राजसत्ता या रानी; इसलिए बेहतर होगा कि कुछ अशुभ घोड़ों को एक अशुभ रथ में जोतकर, उसे उसमें बिठाकर पश्चिमी द्वार से ले जाया जाए और श्मशान में दफना दिया जाए। राजा, इन खतरों से भयभीत होकर, मान गए। जब रानी चंदादेवी ने यह खबर सुनी तो वह राजा के पास आईं, "हे स्वामी, आपने मुझे वरदान दिया था और मैंने उसे अभी तक स्वीकार नहीं किया है, कृपया अब मुझे दे दीजिए।" "ले लीजिए, रानी।" "राज्य मेरे पुत्र को दे दीजिए।" "मैं नहीं दे सकती, रानी; आपका पुत्र तो पूरी तरह से अशुभ है।" "तो यदि आप उसके जीवन के बदले नहीं देंगी, तो उसे सात वर्षों के लिए दे दीजिए।" "मैं नहीं दे सकती, रानी।" "तो उसे छह वर्षों के लिए, पांच, चार, तीन, दो, एक वर्ष के लिए दे दीजिए।" "इसे उसे सात महीने, छह, पाँच, चार, तीन, दो महीने, एक महीने, आधे महीने के लिए दे दो।" "मैं नहीं दे सकता, हे रानी।" "तो इसे उसे सात दिनों के लिए दे दो।" "ठीक है," राजा ने कहा, "अपनी इच्छा पूरी करो।" तो उसने अपने बेटे को सजाया-संवारा, और शहर को रंग-बिरंगे ढंग से सजाकर, ढोल की थाप पर यह घोषणा की गई, "यह राजकुमार तेमिया का राज्य है," और उसे हाथी पर बिठाकर, उसके सिर पर सफेद छत्र थामे हुए, विजयपूर्वक शहर के चारों ओर घुमाया गया। जब वह लौटा और अपने शाही पलंग पर लेटा, तो उसने पूरी रात उससे विनती की, "हे मेरे बच्चे, राजकुमार तेमिया, तुम्हारे कारण सोलह वर्षों से मैं रोई हूँ और सोई नहीं हूँ: और मेरी आँखें सूख गई हैं, और मेरा हृदय दुःख से छलनी है; मैं जानती हूँ कि आप सचमुच अपंग या बहरे-गूंगा नहीं हैं, मुझे पूरी तरह से बेसहारा मत बनाइए।" इस प्रकार वह पाँच दिनों तक प्रतिदिन उनसे विनती करती रही। छठे दिन राजा ने सारथी सुनंदा को बुलाया और उससे कहा, "कल सुबह जल्दी कुछ अशुभ घोड़ों को एक अशुभ रथ में जोतकर, राजकुमार को उसमें बिठाकर, पश्चिमी द्वार से बाहर ले जाओ और श्मशान में चारों ओर से एक गड्ढा खोदो; उसे उसमें फेंक दो, और फावड़े के पिछले हिस्से से उसका सिर फोड़कर उसे मार डालो, फिर उस पर धूल बिखेर दो और ऊपर मिट्टी का ढेर बना दो, और स्वयं स्नान करके यहाँ आ जाओ।" उस छठी रात रानी ने राजकुमार से विनती की, "हे मेरे बालक, काशी के राजा ने आदेश दिया है कि तुम्हें कल श्मशान में दफनाया जाए, कल तुम निश्चित रूप से मर जाओगे, मेरे पुत्र।" जब बोधिसत्व ने यह सुना, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "हे तेमिया, तुम्हारी सोलह वर्षों की मेहनत पूरी हो गई है," और वे प्रसन्न हुए; परन्तु उनकी माता का हृदय मानो दो टुकड़ों में बँट गया था। फिर भी वे उनसे बात नहीं करना चाहते थे, अन्यथा उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। उस रात के अंत में, सुबह तड़के, सारथी सुनंदा ने रथ को जोता और उसे द्वार पर खड़ा किया, और राजशय कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा, "हे रानी, क्रोधित न हों, यह राजा का आदेश है।" ऐसा कहकर,जब रानी अपने पुत्र को गले लगाए लेटी थी, तभी बोधिसत्व ने अपने हाथ के पिछले हिस्से से उसे धक्का देकर दूर कर दिया और राजकुमार को फूलों के गुच्छे की तरह उठाकर महल से नीचे आ गया। रानी अपने कमरे में सीना पीटते हुए और ज़ोर-ज़ोर से विलाप करते रह गई। तब बोधिसत्व ने उसकी ओर देखा और सोचा, "यदि मैं नहीं बोलूंगा तो वह हृदयविहीन होकर मर जाएगी," यद्यपि वह बोलना चाहता था, उसने सोचा, "यदि मैं बोलूंगा तो सोलह वर्षों का मेरा प्रयास व्यर्थ हो जाएगा; परन्तु यदि मैं नहीं बोलूंगा तो मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार करूंगा।" तब सारथी ने उसे रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊंगा," वह रथ को पूर्वी द्वार तक ले गया और पहिया दहलीज से टकरा गया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वह हृदय से और भी प्रसन्न हो गया। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से वह तीन मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ एक जंगल का अंत सारथी को श्मशान घाट जैसा प्रतीत हुआ; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से हटाकर किनारे पर रोक दिया और नीचे उतरकर बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बना ली और उसे नीचे रख दिया, फिर एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे कर्मों का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं और न ही पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा, और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, हवा से भरी चमड़े की थैली की तरह धरती ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह नीचे उतरा और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसे लगा कि वह इस तरह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर सकता है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया और मन ही मन कहा कि वह उससे लड़ सकता है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता

है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवताओं (देवदूतों) के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जहाँ सारथी खुदाई कर रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:और राजकुमार को फूलों के गुच्छे की तरह उठाकर महल से नीचे आ गईं। रानी अपने कमरे में सीना पीटते हुए और ज़ोर-ज़ोर से विलाप करते रह गईं। तब बोधिसत्व ने उनकी ओर देखा और सोचा, "यदि मैं नहीं बोलूंगा तो वह हृदयविहीन होकर मर जाएगी," लेकिन यद्यपि वे बोलना चाहते थे, उन्होंने सोचा, "यदि मैं बोलूंगा तो सोलह वर्षों का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा; परन्तु यदि मैं नहीं बोलूंगा तो मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार करूंगा।" तब सारथी ने उन्हें रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊंगा," वह रथ को पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकरा गया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वे और भी प्रसन्न हो गए। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से वह तीन मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ एक जंगल का अंत सारथी को श्मशान घाट जैसा प्रतीत हुआ; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से हटाकर किनारे पर रोक दिया और नीचे उतरकर बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बना ली और उसे नीचे रख दिया, फिर एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे कर्मों का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं और न ही पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा, और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, हवा से भरी चमड़े की थैली की तरह धरती ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह नीचे उतरा और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसे लगा कि वह इस तरह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर सकता है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया और मन ही मन कहा कि वह उससे लड़ सकता है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवताओं (देवदूतों) के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जहाँ सारथी खुदाई कर रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:और राजकुमार को फूलों के गुच्छे की तरह उठाकर महल से नीचे आ गईं। रानी अपने कमरे में सीना पीटते हुए और ज़ोर-ज़ोर से विलाप करते रह गईं। तब बोधिसत्व ने उनकी ओर देखा और सोचा, "यदि मैं नहीं बोलूंगा तो वह हृदयविहीन होकर मर जाएगी," लेकिन यद्यपि वे बोलना चाहते थे, उन्होंने सोचा, "यदि मैं बोलूंगा तो सोलह वर्षों का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा; परन्तु यदि मैं नहीं बोलूंगा तो मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार करूंगा।" तब सारथी ने उन्हें रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊंगा," वह रथ को पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकरा गया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वे और भी प्रसन्न हो गए। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से वह तीन मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ एक जंगल का अंत सारथी को श्मशान घाट जैसा प्रतीत हुआ; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से हटाकर किनारे पर रोक दिया और नीचे उतरकर बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बना ली और उसे नीचे रख दिया, फिर एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे कर्मों का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं और न ही पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा, और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, हवा से भरी चमड़े की थैली की तरह धरती ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह नीचे उतरा और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसे लगा कि वह इस तरह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर सकता है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया और मन ही मन कहा कि वह उससे लड़ सकता है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवताओं (देवदूतों) के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जहाँ सारथी खुदाई कर रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:तब बोधिसत्व ने उसकी ओर देखा और सोचा, "यदि मैं नहीं बोलूंगा तो वह हृदय विदारक होकर मर जाएगी," परन्तु यद्यपि वह बोलना चाहता था, उसने सोचा, "यदि मैं बोलूंगा तो सोलह वर्षों का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा; परन्तु यदि मैं नहीं बोलूंगा तो मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार करूंगा।" तब सारथी ने उसे रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊंगा," वह उसे पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकराया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वह और भी प्रसन्न हो गया। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो वह देवताओं

(देवदूतों) की शक्ति से तीन कुंड (x 4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ सारथी को एक जंगल का अंत ऐसा दिखाई दिया मानो वह कोई कब्रिस्तान हो; इसलिए, इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से किनारे मोड़ दिया और सड़क के किनारे रोककर नीचे उतरा। उसने बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बनाई और नीचे रख दी। फिर उसने एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदना शुरू किया। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं, न पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई। जब वह नीचे उतर गया और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसने महसूस किया कि उसमें एक दिन में इस तरह सौ मील (4.23 किमी) चलने की शक्ति है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" अत: उसने रथ के पिछले भाग को पकड़ लिया और उसे ऐसे उठा लिया मानो वह बच्चों का खिलौना रथ हो, और मन ही मन कहा कि वह उससे मुकाबला करने की शक्ति रखता है; और जैसे ही उसे इसका आभास हुआ, उसके मन में स्वयं को सजाने-संवारने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। अत: विश्वकर्मा गया और उसने राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेट दिया और उसे सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:तब बोधिसत्व ने उसकी ओर देखा और सोचा, "यदि मैं नहीं बोलूंगा तो वह हृदय विदारक होकर मर जाएगी," परन्तु यद्यपि वह बोलना चाहता था, उसने सोचा, "यदि मैं बोलूंगा तो सोलह वर्षों का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा; परन्तु यदि मैं नहीं बोलूंगा तो मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार करूंगा।" तब सारथी ने उसे रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊंगा," वह उसे पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकराया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वह और भी प्रसन्न हो गया। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो वह देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से तीन कुंड (x 4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ सारथी को एक जंगल का अंत ऐसा दिखाई दिया मानो वह कोई कब्रिस्तान हो; इसलिए, इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से किनारे मोड़ दिया और सड़क के किनारे रोककर नीचे उतरा। उसने बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बनाई और नीचे रख दी। फिर उसने एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदना शुरू किया। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं, न पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई। जब वह नीचे उतर गया और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसने महसूस किया कि उसमें एक दिन में इस तरह सौ मील (4.23 किमी) चलने की शक्ति है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" अत: उसने रथ के पिछले भाग को पकड़ लिया और उसे ऐसे उठा लिया मानो वह बच्चों का खिलौना रथ हो, और मन ही मन कहा कि वह उससे मुकाबला करने की शक्ति रखता है; और जैसे ही उसे इसका आभास हुआ, उसके मन में स्वयं को सजाने-संवारने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। अत: विश्वकर्मा गया और उसने राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेट दिया और उसे सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार (*7) करूँगा।" तब सारथी ने उन्हें रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊँगा," वह रथ को पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकराया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वे और भी प्रसन्न हो गए। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो वह देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से तीन कुंड (x 4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ सारथी को एक जंगल का अंत ऐसा दिखाई दिया मानो वह कोई कब्रिस्तान हो; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से मोड़ दिया, और सड़क के किनारे रोककर नीचे उतरा और बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी में बाँध दिए और नीचे रख दिए, और फिर एक फावड़ा लेकर एक गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यही मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं और न ही पैर, क्या वे मेरे वश में हैं या नहीं? तब वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह उतर गया और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसने महसूस किया कि वह इस तरह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर सकता है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" तब उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने की गाड़ी की तरह उठा लिया और मन ही मन कहा कि उसमें उससे लड़ने की शक्ति है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागी। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है।" जब उसका लक्ष्य पूरा हो गया, तो वह सजना-संवरना चाहता है, उसे मानवीय अलंकरण से क्या लेना-देना है?

और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। अतः विश्वकर्मा गया और उसने राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर उसे सक्का (इंद्र) के समान दिव्य और मानवीय आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:मैं स्वयं और अपने माता-पिता का उद्धार (*7) करूँगा।" तब सारथी ने उन्हें रथ में बिठाया और यह कहते हुए, "मैं रथ को पश्चिमी द्वार तक ले जाऊँगा," वह रथ को पूर्वी द्वार तक ले गया, और पहिया दहलीज से टकराया। बोधिसत्व ने यह ध्वनि सुनकर कहा, "मेरी इच्छा पूरी हो गई है," और वे और भी प्रसन्न हो गए। जब रथ नगर से बाहर निकला, तो वह देवताओं (देवदूतों) की शक्ति से तीन कुंड (x 4.23 किमी) की दूरी तय कर गया, और वहाँ सारथी को एक जंगल का अंत ऐसा दिखाई दिया मानो वह कोई कब्रिस्तान हो; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर, उसने रथ को सड़क से मोड़ दिया, और सड़क के किनारे रोककर नीचे उतरा और बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी में बाँध दिए और नीचे रख दिए, और फिर एक फावड़ा लेकर एक गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यही मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं और न ही पैर, क्या वे मेरे वश में हैं या नहीं? तब वह उठा और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उसका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह उतर गया और कई बार आगे-पीछे चला, तो उसने महसूस किया कि वह इस तरह एक दिन में सौ मील (4.23 किमी) की दूरी तय कर सकता है। तब उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" तब उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने की गाड़ी की तरह उठा लिया और मन ही मन कहा कि उसमें उससे लड़ने की शक्ति है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागी। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है।" जब उसका लक्ष्य पूरा हो गया, तो वह सजना-संवरना चाहता है, उसे मानवीय अलंकरण से क्या लेना-देना है? और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। अतः विश्वकर्मा गया और उसने राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर उसे सक्का (इंद्र) के समान दिव्य और मानवीय आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के समस्त शौर्य से परिपूर्ण होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:वहाँ एक जंगल का अंत सारथी को श्मशान घाट जैसा प्रतीत हुआ; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर उसने रथ को सड़क से हटाकर सड़क के किनारे रोक दिया और नीचे उतरकर बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बना ली और उसे नीचे रख दिया, फिर एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं, न पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठे और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उनका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह नीचे उतर गए और कई बार आगे-पीछे चले, तो उन्हें लगा कि उनमें एक दिन में इस प्रकार सौ मील (4.23 किमी) चलने की शक्ति है। फिर उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया, और मन ही मन कहा कि वह उससे लड़ सकता है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के सभी शौर्य से ओतप्रोत होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:वहाँ एक जंगल का अंत सारथी को श्मशान घाट जैसा प्रतीत हुआ; इसलिए इसे उपयुक्त स्थान समझकर उसने रथ को सड़क से हटाकर सड़क के किनारे रोक दिया और नीचे उतरकर बोधिसत्व के सभी आभूषण उतारकर एक गठरी बना ली और उसे नीचे रख दिया, फिर एक फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा। तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मेरे परिश्रम का समय है; सोलह वर्षों से मैंने न तो हाथ हिलाए हैं, न पैर, क्या वे मेरे वश में हैं?" इसलिए वह उठे और अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से, बाएं हाथ को दाहिने हाथ से और पैरों को दोनों हाथों से रगड़ा और रथ से नीचे उतरने का निश्चय किया। जैसे ही उनका पैर नीचे पड़ा, धरती हवा से भरे चमड़े के थैले की तरह ऊपर उठी और रथ के पिछले हिस्से को छू गई; जब वह नीचे उतर गए और कई बार आगे-पीछे चले, तो उन्हें लगा कि उनमें एक दिन में इस प्रकार सौ मील (4.23 किमी) चलने की शक्ति है। फिर उसने सोचा, "यदि सारथी मुझसे भिड़ जाए, तो क्या मुझमें उससे लड़ने की शक्ति होगी?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया, और मन ही मन कहा कि वह उससे लड़ सकता है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के सभी शौर्य से ओतप्रोत होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:क्या मुझमें उससे मुकाबला करने की शक्ति है?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़

लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया, और मन ही मन कहा कि उसमें उससे मुकाबला करने की शक्ति है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने-संवारने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के सभी शौर्य से ओतप्रोत होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:क्या मुझमें उससे मुकाबला करने की शक्ति है?" इसलिए उसने रथ के पिछले हिस्से को पकड़ लिया और उसे बच्चों के खिलौने वाली गाड़ी की तरह उठा लिया, और मन ही मन कहा कि उसमें उससे मुकाबला करने की शक्ति है; और जैसे ही उसे इसका एहसास हुआ, उसके मन में खुद को सजाने-संवारने की इच्छा जागृत हुई। उसी क्षण सक्का (इंद्र) का महल गर्म हो गया। सक्का (इंद्र) ने कारण जानकर कहा, "राजकुमार तेमिया की इच्छा पूरी हो गई है, वह सजाना चाहता है, उसे मनुष्य के श्रृंगार से क्या लेना-देना है?" और उसने विश्वकर्मा को दिव्य आभूषण लेकर जाने और काशी के राजा के पुत्र को सजाने का आदेश दिया। इसलिए वह गया और राजकुमार को दस हजार वस्त्रों से लपेटकर सक्का (इंद्र) की तरह दिव्य और मनुष्य के आभूषणों से सजाया। राजकुमार, देवदूतों के राजा के सभी शौर्य से ओतप्रोत होकर, उस गड्ढे के पास गया जिसे सारथी खोद रहा था, और किनारे पर खड़े होकर उसने तीसरा श्लोक बोला:

"हे सारथी, इतनी जल्दी में क्यों हो? और किसलिए तुम वह गड्ढा खोद रहे हो?"
मेरे सवाल का ईमानदारी से जवाब दो, तुम इससे क्या करना चाहते हो?
सारथी बिना ऊपर देखे गड्ढा खोदता रहा और उसने चौथा श्लोक बोला:

"हमारे राजा ने अपने इकलौते बेटे को अपंग और गूंगा पाया है, बिलकुल मूर्ख।"
और मुझे यह गड्ढा खोदने और उसे लोगों की नजरों से दूर दफनाने के लिए भेजा गया है।"
बोधिसत्व ने उत्तर दिया:

मैं न तो बहरा हूँ, न गूंगा, मेरे मित्र, न ही अपंग हूँ, न ही लंगड़ा हूँ;
यदि तुम मुझे इस जंगल में दफनाओगे, तो तुम पर बहुत बड़ा अपराध लगेगा।
मेरी इन भुजाओं और पैरों को देखो, और मेरी आवाज और मैं जो कहता हूँ उसे सुनो;
यदि तुम मुझे इस जंगल में दफनाओगे, तो आज तुम पर बहुत बड़ा अपराध लगेगा।"
तब सारथी ने कहा, "यह कौन है? जब से मैं यहाँ आया हूँ, तब से ही यह ऐसा हो गया है जैसा यह खुद को बताता है।" इसलिए उसने गड्ढा खोदना बंद कर दिया और ऊपर देखा; और उसकी अद्भुत सुंदरता को देखकर, और यह न जानते हुए कि वह कोई देवता (देवदूत) है या मनुष्य, उसने यह श्लोक कहा:

"क्या आप कोई दिव्य संगीतकार हैं या कोई देवता (देवदूत), या आप ही सक्का (इंद्र), सभी के स्वामी हैं?"
आप कौन हैं? आप किसके पुत्र हैं? जब हम आपको पुकारेंगे तो आपका क्या नाम रखेंगे?
तब बोधिसत्व ने स्वयं को प्रकट करते हुए और धर्म का उपदेश देते हुए बोलना शुरू किया।

मैं न तो कोई दिव्य संगीतकार हूँ, न ही कोई देवदूत, न ही सक्का (इंद्र), सभी का स्वामी (*8);
मैं काशी के राजा का पुत्र हूँ जिसे तुम निर्दयता से दफना दोगे।
मैं उसी राजा का पुत्र हूँ जिसके शासन में तुम सेवा करते हो और फलते-फूलते हो।
यदि तुम आज मुझे यहाँ जिंदा दफनाओगे तो तुम्हें बहुत बड़ा अपराध बोध होगा।
यदि मैं किसी पेड़ के नीचे बैठकर आराम करता हूँ जबकि वह अपनी छाया और आश्रय प्रदान करता है (*9),
मैं एक भी शाखा नहीं तोड़ूंगा, केवल पापी ही अपने मित्रों को हानि पहुंचाता है।
आश्रय देने वाला वृक्ष—वह राजा है—; मैं उस वृक्ष की फैली हुई शाखा हूँ;
और तुम, हे यात्री, हे सारथी, जो इसकी छाया में बैठकर विश्राम करते हो;
यदि तुम मुझे इस जंगल में दफनाओगे, तो तुम्हारे सिर पर भारी अपराध का बोझ पड़ेगा।"
लेकिन बोधिसत्व के ऐसा कहने पर भी उस व्यक्ति ने विश्वास नहीं किया। तब बोधिसत्व ने उसे समझाने का निश्चय किया और अपने मित्रों के सम्मान में दस गाथाओं का पाठ करते हुए उन्होंने अपने स्वर और देवताओं (देवदूतों) की स्तुति से वनों को गुंजायमान कर दिया।

जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह दूर-दूर तक भटक सकता है।

बहुत से लोग खुशी-खुशी उसकी सेवा करेंगे, उसे भोजन की व्यवस्था की जाएगी।
वह चाहे शहर में हो या कस्बे में, जिस भी इलाके में घूमता है,
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, उसे सम्मान और प्रसिद्धि प्राप्त होती है।
कोई लुटेरा उसे चोट पहुंचाने की हिम्मत नहीं करता, कोई योद्धा उसका तिरस्कार नहीं करता;
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह सभी शत्रुओं से बच जाता है।
घर लौटने पर सबका स्वागत हुआ, कोई चिंता उसके हृदय को क्षीण नहीं कर रही थी।
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार होता है, वही समस्त परिवार में सर्वश्रेष्ठ होता है।
वह सम्मान देता भी है और सम्मान प्राप्त भी करता है; वह सम्मान लेता भी है और देता भी है;
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, उसे सभी से भरपूर प्रतिफल प्राप्त होता है।
जो व्यक्ति दूसरों को उचित सम्मान देता है, वही दूसरों द्वारा सम्मानित होता है।
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह स्वयं प्रसिद्धि और प्रशंसा प्राप्त करता है।
वह अग्नि की तरह प्रज्वलित होता है और दिव्य प्रकाश बिखेरता है।
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह नई चमक के साथ दमक उठेगा।
उसके बैलों की संख्या निश्चित रूप से बढ़ती है, उसकी संतान कभी न रुकने वाली वृद्धि करती है।
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह निश्चय ही अपने कर्मों का फल पाता है।
यदि वह किसी पर्वत की चोटी से, या किसी पेड़ से, या किसी गुफा से गिर जाए,
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, उसे निश्चित रूप से विश्राम स्थान मिल जाता है।
बरगद का पेड़ हवा का सामना करते हुए, अपनी जड़ों से घिरी शाखाओं से घिरा हुआ है।
जो अपने मित्रों के प्रति वफादार रहता है, वह शत्रुओं के सारे क्रोध को विफल कर देता है।
यद्यपि सुनंदा ने इस प्रकार प्रवचन दिया, फिर भी वह उसे पहचान नहीं पाई और न ही पूछा कि वह कौन है; परन्तु जैसे ही वह रथ के पास पहुँची, रथ और राजकुमार द्वारा धारण किए गए आभूषणों को देखने से पहले ही, उसने उसे देखते ही पहचान लिया और उसके चरणों में गिरकर हाथ जोड़कर यह श्लोक बोला:

"आइए, मैं आपको वापस आपके उचित घर ले चलूँगा, हे राजकुमार;
सिंहासन पर बैठो और राजा की तरह व्यवहार करो, इस जंगल में क्यों भटक रहे हो?
उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

मुझे न तो सिंहासन चाहिए, न ही धन-दौलत, मुझे न ही दोस्त चाहिए, न ही परिवार।
क्योंकि मैंने केवल बुरे कर्मों से ही वह सिंहासन प्राप्त किया है।"
सारथी ने कहा:

"हे राजकुमार, आपके स्वागत के लिए एक लबालब भरा प्याला तैयार किया जाएगा।"
और आपके माता-पिता अपनी खुशी में मुझे बहुत सारे उपहार देंगे।
राजपरिवार की पत्नियां, सभी राजकुमार, वैश्य (व्यापारी) और ब्राह्मण (पुजारी) दोनों,
मुझे किसी भी उत्कृष्ट उपहार से, चाहे वह अपने पूर्ण अर्थ में हो, कोई असुविधा नहीं होगी।
हाथी और रथ पर सवार होने वाले, पैदल सैनिक, शाही अंगरक्षक,
जब तुम घर लौट आओगे, तो मुझे अवश्य ही इनाम देना।
ग्रामीण और शहरी लोग हर्षोल्लासपूर्वक एकत्रित होंगे।
और जब वे अपने राजकुमार को लौटते हुए देखेंगे तो मुझे उपहार देंगे।
उस महान सत्ता ने कहा:

"माता-पिता की वजह से, शहर और कस्बे की वजह से मैं दुखी रह गया।"
राजकुमारों ने मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया, मेरा अपना कोई घर नहीं है।
मेरी मां ने मुझे जाने की छुट्टी दे दी, मेरे पिता ने मेरी इच्छा छोड़ दी।
इस एकांत वन में ही मैंने तपस्वी की प्रतिज्ञा ली थी।
जब उस महान सत्ता ने अपने गुणों को याद किया, तो उनके मन में आनंद का संचार हुआ और उन्होंने समाधि की अवस्था में विजयगान गाया।

"जो लोग जल्दी नहीं करते, उनके दिल की चाहत भी सफलता दिलाती है।"

हे सारथी, जान लो कि आज मैंने पूर्ण पवित्रता प्राप्त कर ली है।
जो लोग जल्दबाजी नहीं करते, वे भी सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं;
मैं पूर्ण पवित्रता से परिपूर्ण होकर जाता हूँ, परिपूर्ण और किसी से भयभीत नहीं।
सारथी ने उत्तर दिया:

"आपके शब्द, मेरे स्वामी, मधुर हैं, आपकी वाणी खुली और स्पष्ट है;
जब तुमने माता-पिता को पास ही देखा था, तब तुम चुप क्यों रहे?
उस महान सत्ता ने कहा:

मैं जोड़ों की कमी के कारण अपंग नहीं हूँ, न ही कानों की कमी के कारण बहरा हूँ।
मैं बोलने में असमर्थ होने के कारण गूंगा नहीं हूँ, जैसा कि अब स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।
मुझे अच्छी तरह याद है कि एक पुराने जन्म में मैंने राजा की भूमिका निभाई थी।
लेकिन जब मैं उस संपत्ति से गिरा तो मैंने खुद को नरक में पाया।
मैंने उस सिंहासन पर बैठकर लगभग बीस वर्ष विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किए।
लेकिन नरक में अस्सी हजार साल बिताने से उस अपराध का प्रायश्चित हो गया।
राजसी ठाठ-बाठ के मेरे पूर्व अनुभव ने मेरे पूरे दिल को भय से भर दिया था;
मैं वहां से चुप हो गया, हालांकि मैंने अपने माता-पिता को पास ही देखा था।
मेरे पिता ने मुझे अपनी गोद में बिठा लिया, लेकिन उनके स्नेहपूर्ण खेल के बीच ही,
मैंने उसके कठोर आदेश सुने, "इस बदमाश को तुरंत मार डालो,"
मैंने उसे टुकड़े-टुकड़े होते देखा, जाओ, उस दुष्ट को बिना देरी किए सूली पर चढ़ा दो।"
ऐसी धमकियाँ सुनकर मैं अपंग और गूंगा बनने की कोशिश ही कर सकता हूँ,
और स्वेच्छा से एक मूर्ख की तरह बेबस होकर गंदगी में लोटपोट हो रहा है।
यह जानते हुए कि जीवन बहुत छोटा है और दुखों से भरा है,
इसके लिए कौन दूसरे के खिलाफ अपना क्रोध भड़कने देगा?
कौन इसके लिए किसी दूसरे पर अपना प्रतिशोध बरसने देगा?
सत्य को समझने की शक्ति के अभाव और सही के प्रति अंधता के कारण (*12)?"
तब सुनंदा ने सोचा, "यह राजकुमार अपने सारे राजसी वैभव को सड़ते हुए मांस की तरह त्यागकर, अडिग होकर वन में प्रवेश कर गया है, और तपस्वी बनने के अपने संकल्प में अडिग है। इस दयनीय जीवन से मेरा क्या लेना-देना? मैं भी उसके साथ तपस्वी बन जाऊँगा"; इस प्रकार उसने यह श्लोक कहा:

मैं भी तुम्हारे साथ तपस्वी जीवन जीना पसंद करूंगा;
मुझे बुलाओ, हे राजकुमार, क्योंकि मैं तुम्हारे जैसा ही बनना चाहता हूँ।
जब ऐसा अनुरोध किया गया, तो उस महान प्राणी ने सोचा, "यदि मैं उसे तुरंत तपस्वी जीवन में प्रवेश दे दूं, तो मेरे माता-पिता यहाँ नहीं आ पाएंगे और इस प्रकार उन्हें हानि होगी, और घोड़े, रथ और आभूषण नष्ट हो जाएंगे, और मुझ पर कलंक लगेगा, क्योंकि लोग कहेंगे, 'वह तो भूत है, क्या उसने सारथी को खा लिया है?'" अतः स्वयं को कलंक से बचाने और अपने माता-पिता के कल्याण की व्यवस्था करने की इच्छा से, उन्होंने घोड़े, रथ और आभूषण उसे सौंप दिए और यह श्लोक कहा:

"पहले रथ को बहाल करो, अब तुम स्वतंत्र व्यक्ति नहीं हो।"
वे कहते हैं, "पहले अपने कर्ज चुकाओ, फिर तपस्वी की प्रतिज्ञा लो।"
सारथी ने मन ही मन सोचा, "अगर मैं शहर चला जाऊं और वह इस बीच कहीं और चला जाए तो उसके माता-पिता मेरी खबर सुनकर उसे देखने मेरे साथ वापस आ जाएंगे; और अगर वे उसे वहां नहीं पाएंगे तो मुझे दंडित करेंगे; इसलिए मैं उसे अपनी स्थिति बताऊंगा और उससे यहीं रहने का वादा लूंगा"; इस प्रकार उसने दो छंद बोले:

"चूंकि मैंने आपका अनुरोध पूरा कर दिया है, राजकुमार, मैं आपसे निवेदन करता हूँ,
कृपया मेरी बात मानें।
जब तक मैं राजा को न ले आऊं, तब तक यहीं रुको, कृपा के साथ यहीं रहो।
वह तुम्हारा चेहरा देखकर प्रसन्न होगा।
उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"ठीक है, जैसा आप कहते हैं, सारथी;"
मुझे भी अपने पिता को यहाँ देखकर खुशी होगी।
जाओ और मेरे पूरे परिवार को सलाम करो, और ले जाओ
मेरे माता-पिता के लिए एक विशेष संदेश।"
उस व्यक्ति ने आदेशों का पालन किया:

उन्होंने अपने पैर जोड़े और सभी उचित सम्मानों का निर्वहन किया।
अपने गुरु के आदेशानुसार उसने यात्रा शुरू की।
उसी क्षण चंदादेवी ने अपनी जाली खोली और जब वह यह सोच रही थी कि क्या उसके बेटे के बारे में कोई खबर है और उस सड़क की ओर देख रही थी जिससे सारथी लौटता, तो उसने उसे अकेले आते देखा और फूट-फूटकर रोने लगी।

गुरु ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"खाली रथ और अकेले सारथी को देखकर,
मां की आंखें आंसुओं से भरी थीं, उसका हृदय भय से व्याकुल था:
"रथवान वापस आता है, मेरा बेटा मारा गया है;
वह वहाँ लेटा हुआ है, मिट्टी फिर से मिट्टी में मिल गई है।
अफसोस! हमारे सबसे कट्टर दुश्मन शायद खुश हो जाएं!
अपने हत्यारे को सुरक्षित वापस आते हुए देखकर।
गूंगा, अपंग, मान लो, क्या वह एक बार भी नहीं रो सकता?
क्या वह जमीन पर असहाय होकर संघर्ष कर रहा था?
क्या उसके हाथ-पैर तुम्हें दूर नहीं धकेल सकते थे?
हालांकि वह गूंगा और अपंग था, फिर भी वह जमीन पर पड़ा था?
सारथी ने कहा:

"मेरी बात के लिए मुझे क्षमा करने का वादा करो, महोदया।"
और मैं तुम्हें वह सब बताऊंगा जो मैंने देखा और सुना।
रानी ने उत्तर दिया:

"मैं अपने हर शब्द के लिए क्षमा का वादा करता हूँ;"
आपने जो कुछ भी देखा या सुना है, मुझे विस्तार से बताएं।
तब सारथी बोला:

वह अपंग नहीं है, वह बहरा नहीं है, उसकी वाणी स्पष्ट और निर्बाध है;
राजपरिवार के भय के कारण वह घर पर काल्पनिक भूमिकाएँ निभाता था।
उन्हें अच्छी तरह याद है कि एक पुराने जन्म में उन्होंने राजा की भूमिका निभाई थी।
लेकिन जब वह उस संपत्ति से गिर गया तो उसने खुद को नरक में पाया।
उन्होंने उस सिंहासन पर लगभग बीस वर्ष विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किए।
लेकिन नरक में अस्सी हजार साल बिताने से उस अपराध का प्रायश्चित हो गया।
राजसी जीवन का उनका पूर्व अनुभव उनके पूरे हृदय को भय से भर देता था;
इसलिए वह चुप रहा, जबकि उसने अपने माता-पिता को पास ही देखा था।
उसके सभी अंग बिल्कुल स्वस्थ थे, वह बेदाग लंबा और चौड़ा था।
उनकी वाणी स्पष्ट है, उनकी बुद्धि अभी भी अक्षुण्ण है, वे मोक्ष (निर्वाण) के मार्ग पर विचरण कर रहे हैं।
यदि आप अपने बेटे को देखना चाहते हैं, तो तुरंत मेरे साथ आइए।
आप राजकुमार तेमिया को एकदम शांत और स्वतंत्र देखेंगे।
लेकिन जब राजकुमार ने सारथी को विदा कर दिया, तो उन्होंने संन्यासी बनने की इच्छा व्यक्त की। उनकी इच्छा जानकर, सक्का (इंद्र) ने विश्वकर्मा को यह कहते हुए भेजा, "राजकुमार तेमिया संन्यासी बनना चाहते हैं, जाइए और उनके लिए पत्तों की एक कुटिया और संन्यासी के लिए आवश्यक वस्तुएँ तैयार कीजिए।" विश्वकर्मा ने तुरंत कार्य किया और तीन कुंड (4.23 किमी) के एक वनक्षेत्र में रात्रि और दिन के लिए अलग-अलग कमरों वाली एक कुटिया, एक तालाब, एक गड्ढा और फलदार वृक्षों से सुसज्जित एक आश्रम बनाया।

उन्होंने संन्यासी के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ तैयार कीं और फिर अपने स्थान पर लौट आए। जब बोधिसत्व ने इसे देखा, तो वे जान गए कि यह सक्का (इंद्र) का उपहार है। अतः वह कुटिया में प्रवेश करके अपने वस्त्र उतारकर लाल छाल के वस्त्र, ऊपरी और निचले दोनों, धारण कर लिए, काले हिरण की खाल को एक कंधे पर डाल लिया, अपनी जटाएँ बाँध लीं और कंधे पर एक डंडा और हाथ में एक लाठी लेकर कुटिया से बाहर निकल गया। फिर वह तपस्वी के पूर्ण वस्त्र धारण किए हुए बार-बार इधर-उधर चलने लगा और विजयपूर्वक "हे आनंद, हे आनंद" का उद्घोष करते हुए कुटिया में लौट आया; और फटी हुई चटाई (*13) पर बैठकर उसने पाँच पारलौकिक इंद्रियों का अनुभव किया। फिर शाम को बाहर जाकर पास के एक करा (*14) वृक्ष से कुछ पत्ते तोड़कर, उसने उन्हें सक्का (इंद्र) द्वारा दिए गए एक पात्र में बिना नमक, छाछ या मसाले के पानी में भिगोया और उन्हें अमृत (देवताओं का पेय) मानकर खाया, और फिर, चारों परिपूर्ण अवस्थाओं पर चिंतन करते हुए, उसने वहीं निवास करने का संकल्प लिया।

इसी बीच, काशी के राजा ने सुनंदा की बातें सुनकर अपने सेनापति को बुलाया और उसे यात्रा की तैयारी करने का आदेश देते हुए कहा:

"घोड़ों को रथों से जोतकर, हाथियों की कमरबंद बांधकर आओ;
शंख और ढोल की ध्वनि दूर-दूर तक गूंजे, और ढोल की तेज आवाज सुनाई दे।
कर्कश ढोल की गूंज हवा में गूंजने दो, खड़खड़ाते ढोल मधुर प्रतिध्वनि उत्पन्न करने दो,
इस पूरे शहर से कहो कि मेरे पीछे आओ, मैं अपने बेटे से एक बार फिर मिलने जा रहा हूँ।
राजमहल की महिलाएं, हर राजकुमार, वैश्य और ब्राह्मण, सभी लोग,
सभी ने अपने रथों के घोड़ों को जोत लिया है, मैं अपने बेटे का स्वागत करने जा रहा हूँ।
हाथी सवारों, शाही अंगरक्षकों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों में से प्रत्येक को,
सभी लोग एक समान रूप से जाने की तैयारी करें, मैं अपने बेटे का स्वागत करने जा रहा हूँ।
ग्रामीण और शहरी लोग हर गली में भीड़ के रूप में इकट्ठा हों,
सभी लोग एक समान रूप से जाने की तैयारी करें, मैं एक बार फिर अपने बेटे से मिलने जा रहा हूँ।
इस प्रकार आदेश मिलने पर रथ चालकों ने घोड़ों को जोता और रथों को महल के द्वार तक लाकर राजा को सूचना दी।

गुरु ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"महल के द्वार पर सर्वश्रेष्ठ नस्ल के सिंधी घोड़े जुते हुए खड़े थे;
रथ चालक यह खबर लेकर आए, "महाराज, दल आपकी उपस्थिति की प्रतीक्षा कर रहा है।"
राजा ने कहा:

"सभी अनाड़ी घोड़ों को बाहर छोड़ दो, हमारे काफिले में कोई कमजोर घोड़ा नहीं होना चाहिए।"
(उन्होंने सारथी से कहा, "ध्यान रखना, उस तरह के घोड़े मत लाना।")
राजसभा के यही आदेश थे, और रथ चालकों ने उनका पालन किया।
जब राजा अपने पुत्र के पास गए, तो उन्होंने चारों जातियों, अठारह संघों और अपनी पूरी सेना को एकत्रित किया, और इस सभा को आयोजित करने में तीन दिन लगे। चौथे दिन, जुलूस में ले जाने योग्य सभी सामान लेकर वे अपने आश्रम की ओर बढ़े, जहाँ उनके पुत्र ने उनका स्वागत किया और उन्होंने भी उन्हें उचित अभिवादन दिया।

गुरु ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"तब उनका शाही रथ तैयार हुआ, राजा बिना देरी किए उसमें सवार हो गए और अपनी पत्नियों से चिल्लाकर बोले—"मेरे साथ चलो!"

याकस्टेल पंखे और पगड़ी शिखा के साथ, और शाही सफेद धूप की छाया के साथ, वह बेहतरीन सोने से सजे शाही रथ (*16) में सवार हुए।

तब राजा अपने सारथी के साथ तुरंत रवाना हुए और शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ तेमिया शांतिपूर्वक निवास कर रहा था।

जब तेमिया ने उसे पूरी तरह तेजस्वी और तेजस्वी रूप में आते देखा, जो योद्धाओं के दल से घिरा हुआ था, तो उसने कहा:

"पिताजी, आशा है आप कुशल मंगल होंगे, आपके पास आपको सुनाने के लिए कोई अच्छी खबर होगी।"
मुझे उम्मीद है कि सभी शाही रानियां, मेरी माताएं भी, स्वस्थ होंगी।
"हां, मैं ठीक हूँ, मेरे बेटे, मुझे तुम्हें एक अच्छी खबर सुनानी है।"
और सभी राजसी रानियाँ, आपकी माताएँ, सभी स्वस्थ हैं।"

मुझे उम्मीद है कि आप कोई भी तेज पेय नहीं पीते, सभी प्रकार की शराब से दूर रहें।
क्या तुम्हारा मन सदा धर्मपरायण कर्मों और दान के प्रति सच्चा रहता है?
"हाँ, मैं कभी भी तेज शराब को हाथ नहीं लगाता, मैं हर तरह की शराब से परहेज करता हूँ।"
मेरा मन सदा धर्मपरायण कर्मों और दान-पुण्य के प्रति निष्ठावान रहता है।
मुझे उम्मीद है कि घोड़े और हाथी स्वस्थ और स्वस्थ होंगे।
कोई दर्दनाक शारीरिक बीमारी नहीं, कोई कमजोरी नहीं, कोई समस्या नहीं?
"हाँ, हाथी ठीक हैं, घोड़े भी स्वस्थ और मजबूत हैं।"
कोई दर्दनाक शारीरिक बीमारी नहीं, कोई कमजोरी नहीं, कोई समस्या नहीं।"
"सीमावर्ती क्षेत्र, केंद्रीय भाग के रूप में, पूरी तरह से आबादी वाला और शांतिपूर्ण है।"
खजाने और खजाने तो पूरी तरह भरे हुए हैं—बताइए, इनका क्या होगा?
अब आपका स्वागत है, महाराज, आपका स्वागत है!
वे एक पलंग बिछा दें, ताकि उस पर राजा बैठ सकें।
महान सत्ता के प्रति सम्मान के कारण राजा सोफे पर नहीं बैठता था (*17)।

उस महान सत्ता ने कहा, "यदि वह अपने राजसी सिंहासन पर न बैठे, तो उसके लिए पत्तों का पलंग बिछा दिया जाए," इस प्रकार उन्होंने एक श्लोक कहा:

"तुम्हारे लिए बिछाई गई इन पत्तों की पलंग पर बैठो, क्योंकि यह उचित है।"
वे इस स्थान से पानी लेकर आपके पैरों को अच्छी तरह धोएंगे।
राजा ने आदरपूर्वक पत्तों के आसन को भी स्वीकार नहीं किया, बल्कि जमीन पर बैठ गए। तब बोधिसत्व पत्तों की कुटिया में प्रवेश कर गए, और एक कर पत्ता (*18) निकालकर राजा को आमंत्रित करते हुए एक श्लोक बोला:

"मेरे पास नमक नहीं है; मैं केवल इसी पत्ते पर जीवित रहता हूँ, हे राजा।"
आप यहां मेरे मेहमान बनकर आए हैं, कृपया मेरे द्वारा लाया गया भोजन स्वीकार करें।
राजा ने उत्तर दिया:

मुझे पत्ते नहीं चाहिए, वो मेरा भोजन नहीं है; मुझे शुद्ध पहाड़ी चावल का एक कटोरा दो।
सूप को स्वादिष्ट बनाने के लिए मांस के हल्के स्वाद के साथ पकाया गया (*19)।"
उसी क्षण राजसी महिलाओं से घिरी हुई रानी चंदादेवी आईं और अपने प्रिय पुत्र के चरणों को भिक्षापूर्वक प्रणाम करने के बाद, आँसुओं से भरी आँखों से एक तरफ बैठ गईं। राजा ने उनसे कहा, "हे देवी, देखो तुम्हारे पुत्र का भोजन क्या है," और कुछ पत्ते उनके हाथ में दिए तथा अन्य महिलाओं को भी थोड़े दिए, जिन्होंने उन्हें लेकर कहा, "हे मेरे स्वामी, क्या आप सचमुच ऐसा भोजन करते हैं? आप तो बड़ी कठिनाई सहते हैं," और बैठ गईं। तब राजा ने कहा, "हे मेरे पुत्र, यह मुझे अद्भुत प्रतीत होता है," और उन्होंने एक श्लोक कहा:

मुझे तो यह बहुत ही अजीब लगता है कि आपने मुझे इस तरह अकेला छोड़ दिया।
तुम इतने घटिया भोजन पर जीते हो और फिर भी तुम्हारा रंग नहीं उतरा है।"
राजकुमार ने इस प्रकार उत्तर दिया:

"यहाँ बिछे पत्तों के इस बिस्तर पर मैं सचमुच अकेला लेटा हूँ।"
यह एक आरामदायक बिस्तर है और इसलिए मेरा रंग नहीं फीका पड़ा है;
तलवारों से घिरे हुए, कोई क्रूर पहरेदार सख्ती से खड़े होकर देख नहीं रहे हैं।
यह एक आरामदायक बिस्तर है और इसलिए मेरा रंग नहीं फीका पड़ा है;
मैं न तो बीते समय का शोक मनाता हूँ और न ही भविष्य के लिए रोता हूँ।
मैं वर्तमान को उसी रूप में स्वीकार करता हूँ जैसा वह आता है, और इसलिए मेरे रंग स्थिर रहते हैं।
निराशाजनक अतीत या भविष्य की किसी अनिश्चित आवश्यकता के बारे में शोक मनाते हुए,
इससे एक युवक की ऊर्जा उसी तरह सूख जाती है जैसे किसी ताज़ी हरी नरकट को काटने से सूख जाती है।
राजा ने मन ही मन सोचा, "मैं उसे राजा नियुक्त करूँगा और अपने साथ ले जाऊँगा"; इसलिए उसने ये छंद कहे और उसे राज्य में भागीदार बनने के लिए आमंत्रित किया:

मेरे हाथी, मेरे रथ, घुड़सवार और पैदल सेना,
और हे प्रिय पुत्र, मैं अपने सभी सुंदर महल तुम्हें देता हूँ।

मैं अपनी रानी के सभी आवास, उनकी सारी शान-शौकत और गौरव सहित, अर्पित करता हूँ।
तुम ही हमारे एकमात्र राजा होगे, तुम्हारे सिवा कोई और नहीं होगा।
नृत्य और गायन में निपुण और हर मनोदशा के लिए प्रशिक्षित सुंदर महिलाएं
जब आपकी आत्मा को शांति और आनंद से भर दिया जाए, तो इस जंगल में क्यों रुके रहना?
तुम्हारे शत्रुओं की पुत्रियाँ गर्व से तुम्हारी सेवा करने के लिए आएंगी;
जब वे तुम्हें पुत्र उत्पन्न कर दें, तब जाकर संन्यासी बन जाना।
हे मेरे प्रथम पुत्र और मेरे उत्तराधिकारी, अपने युग के प्रथम वैभव में आओ।
अपने राज्य का भरपूर आनंद लें, आप इस आश्रम में क्या करते हैं?
बोधिसत्व ने कहा:

नहीं, युवक को संसार छोड़कर उसकी व्यर्थताओं से दूर भाग जाना चाहिए।
तपस्वी का जीवन युवाओं के लिए सबसे उपयुक्त होता है, यही सलाह सभी बुद्धिमान लोग देते हैं।
नहीं, उस युवक को संसार छोड़कर एकांतवासी और अकेला ही चले जाने दो;
मैं संन्यासी का जीवन अपनाऊंगा, मुझे न तो वैभव की जरूरत है और न ही सिंहासन की।
मैं उस लड़के को देखता हूँ, जो मासूमियत से "पिताजी", "माताजी" चिल्लाता है।
उनका भी एक बेटा होता है, और फिर वह भी बूढ़ा होकर मर जाता है।
इस प्रकार, अपनी युवावस्था में वह युवती कोमल और देखने में सुंदर हो जाती है।
लेकिन वह जल्द ही हरे बांस के पेड़ की तरह मृत्यु के हाथों कटकर नष्ट हो जाती है।
सभी पुरुष और महिलाएं, चाहे वे कितने भी युवा क्यों न हों, शीघ्र ही मर जाते हैं, जो वास्तव में
क्या वह काल्पनिक यौवन से धोखा खाकर नश्वर जीवन पर भरोसा करेगा?
जैसे-जैसे रात ढलकर सुबह होती है, जीवन का दायरा भी सिमटता जाता है;
जैसे सूखते पानी में मछली का क्या अर्थ होता है, वैसे ही मनुष्य की यौवन का क्या अर्थ है?
हमारी यह दुनिया दर्द से घायल सी है, जिस पर हमेशा किसी की नजर रहती है।
वे उद्देश्यपूर्ण ढंग से आगे बढ़ते हैं, तो ताज या सिंहासन की बात क्यों करें?
"कौन इस दुनिया पर इतनी तीव्रता से प्रहार करता है? कौन चुपचाप देखता रहता है?"
और कौन इस प्रकार जानबूझकर पतन की ओर जाता है? मुझे इस रहस्य का हल बताओ।
इस संसार पर मृत्यु का ही अधिकार है, बुढ़ापा ही हमारे द्वार पर पहरा देता है।
और ये रातें ही हैं जो बीत जाती हैं और देर-सवेर अपना उद्देश्य पूरा कर लेती हैं।
जैसे कोई महिला दिन भर करघे पर बैठकर बुनाई करती रहती है,
उसका काम धीरे-धीरे कम होता जा रहा है, इसलिए हम अपना जीवन व्यर्थ ही बर्बाद कर रहे हैं।
जैसे-जैसे नदी का प्रवाह तेज होता जाता है, बिना पीछे मुड़े,
अतः मनुष्य का जीवन निरंतर आगे बढ़ता रहा;
और जैसे-जैसे नदी अपने किनारों से उखड़े हुए पेड़ों को बहा ले जाती है,
तो क्या हम बुढ़ापे और मृत्यु के कारण विनाश की ओर धकेल दिए गए हैं?
महान सत्ता के प्रवचन सुनते हुए राजा को घर में बिताए जीवन से घृणा होने लगी और वह संसार को त्यागने के लिए तरसने लगा; और उसने कहा, "मैं शहर वापस नहीं जाऊंगा, मैं यहीं तपस्वी बन जाऊंगा; यदि मेरा पुत्र शहर जाएगा तो मैं उसे सफेद छत्र दूंगा," - इसलिए उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने उसे एक बार फिर अपना राज्य संभालने के लिए आमंत्रित किया।

मेरे हाथी, मेरे रथ, घुड़सवार और पैदल सेना,
और हे प्रिय पुत्र, मैं अपने सभी सुंदर महल तुम्हें देता हूँ।
मैं अपनी रानी के सभी आवास, उनकी सारी शान-शौकत और गौरव सहित, अर्पित करता हूँ।
तुम ही हमारे एकमात्र राजा होगे, तुम्हारे सिवा कोई और नहीं होगा।
नृत्य और गायन में निपुण और हर मनोदशा के लिए प्रशिक्षित सुंदर महिलाएं
यह जंगल आपकी आत्मा को शांति और आनंद से भर देगा, तो फिर यहाँ क्यों रुके रहना?
तुम्हारे शत्रुओं की पुत्रियाँ गर्व से तुम्हारी सेवा करने के लिए आएंगी;
जब वे तुम्हें पुत्र उत्पन्न कर दें, तब जाकर संन्यासी बन जाना।
मेरे खजाने और मेरे कोष, पैदल सैनिक और घुड़सवार सेना,
और हे प्रिय पुत्र, मैं अपने सभी सुंदर महल तुम्हें देता हूँ।

दासों की टुकड़ियाँ आपकी सेवा में तत्पर रहेंगी, और रानियाँ आपको गले लगाने के लिए तैयार रहेंगी।
अपने सिंहासन का आनंद लें, आपको अच्छी सेहत मिले, इस वीरान जगह पर क्यों समय बर्बाद कर रहे हैं?
लेकिन उस महान सत्ता ने यह दिखाकर जवाब दिया कि उसे राज्य की कितनी कम इच्छा थी।

"धन की खोज क्यों करें, वह तो टिकेगा नहीं; पत्नी को क्यों आकर्षित करें, वह तो जल्द ही मर जाएगी।"
जवानी के बारे में क्यों सोचना, यह तो जल्द ही बीत जाएगी; और बुढ़ापा हमेशा करीब खड़ा रहेगा।
जीवन में कौन-कौन से सुख मिल सकते हैं? सुंदरता, खेल, धन-दौलत या शाही व्यवहार?
मेरे लिए पत्नी या बच्चे का क्या महत्व है? मैं हर बंधन से मुक्त हो चुका हूँ।
यह बात मैं जानता हूँ, मैं जहाँ भी जाता हूँ, भाग्य मुझे देखता रहता है और कभी सोता नहीं है;
जो मृत्यु के शिकंजे को महसूस करता है, उसके लिए धन या सुख का क्या लाभ? (*20)
आज जो करना है वो कर लो, कल की धूप की गारंटी कौन दे सकता है?
मृत्यु एक ऐसी महानायक है जो किसी को भी अपनी गारंटी नहीं देती।
चोर हमारी दौलत चुराने के लिए घात लगाए बैठे रहते हैं, मैं हर बंधन से मुक्त हो गया हूँ;
वापस जाओ और अपना ताज वापस ले लो; मुझे राजा के राज्य से क्या लेना-देना है?
महापुरुष का प्रवचन और उसका व्यावहारिक उपदेश समाप्त हुआ, और जब उन्होंने इसे सुना तो न केवल राजा और रानी चंदा बल्कि सोलह हजार राजपत्नियों ने भी तपस्वी जीवन अपनाने की इच्छा व्यक्त की। राजा ने ढोल बजाकर नगर में यह घोषणा करवाई कि जो भी उनके पुत्र के साथ तपस्वी बनना चाहते हैं, वे ऐसा कर सकते हैं; उन्होंने अपने खजाने के द्वार खुलवा दिए और एक सोने की थाली पर शिलालेख लिखवाकर उसे एक बड़े बांस के खंभे पर स्थापित करवाया, जिसमें लिखा था कि उनके खजाने के कलश कुछ निश्चित स्थानों पर रखे जाएंगे और जो चाहें उन्हें ले सकते हैं। नगरवासी भी अपने घरों के द्वार खुले छोड़कर, मानो कोई खुला बाजार हो, राजा के चारों ओर उमड़ पड़े। राजा और सभी ने महापुरुष के समक्ष एक साथ तपस्वी जीवन की प्रतिज्ञा ली। सक्का (इंद्र) द्वारा निर्मित एक आश्रम तीन मील (4.23 किमी) तक फैला हुआ था। महापुरुष शाखाओं और पत्तों से बनी झोपड़ियों से होकर गुजरे और उन्होंने बीच वाली झोपड़ियों को स्त्रियों के लिए नियुक्त किया क्योंकि वे स्वभाव से संकोची थीं, जबकि बाहरी झोपड़ियों को पुरुषों के लिए नियुक्त किया। व्रत के दिन वे सब जमीन पर खड़े रहे और विश्वकर्मा द्वारा सृजित वृक्षों के फल एकत्र करके खाए तथा तपस्वी जीवन के नियमों का पालन किया। परम पुरुष, जो प्रत्येक के मन को भलीभांति जानते थे, चाहे वे कामवासना, द्वेष या क्रूरता के विचारों में लिप्त हों, आकाश में बैठ गए और प्रत्येक को विधि का उपदेश दिया, और जैसे-जैसे वे सुनते गए, उनकी इंद्रियां और उपलब्धियां शीघ्र ही विकसित होती गईं।

पड़ोसी राजा को जब पता चला कि काशिराज संन्यासी बन गए हैं, तो उसने बनारस में अपना शासन स्थापित करने का निश्चय किया। वह शहर में दाखिल हुआ और उसे सुशोभित देखकर महल में गया। वहाँ सात प्रकार के कीमती पत्थर देखकर उसे लगा कि इस सारी संपत्ति के साथ किसी प्रकार का खतरा जरूर मंडरा रहा है। उसने कुछ शराबी दोस्तों को बुलवाया और उनसे पूछा कि राजा किस द्वार से निकले हैं। उन्होंने बताया, "पूर्वी द्वार से।" तो वह स्वयं उसी द्वार से निकले और नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। महानुभाव को उनके आने का आभास हो गया और वे उनसे मिलने गए, आकाश में बैठकर उन्हें विधि का उपदेश दिया। तब आक्रमणकारी ने अपने सभी साथियों के साथ संन्यास की प्रतिज्ञा ली; और यही बात एक अन्य राजा के साथ भी हुई। इस प्रकार तीन राज्य त्याग दिए गए; हाथी और घोड़े जंगलों में बेकाबू होकर भटकने के लिए छोड़ दिए गए, रथ जंगलों में टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए, और खजानों का धन, रेत के समान गिनकर, आश्रम में बिखेर दिया गया। वहाँ के सभी निवासियों ने आठ प्रकार की परमानंदमयी ध्यान विधियाँ प्राप्त कीं; और अपने जीवन के अंत में ब्रह्मलोक (परमलोक) के लिए नियत हुए। जी हाँ, हाथी और घोड़े जैसे जानवर भी ऋषियों के दर्शन से शांत होकर अंततः देवदूतों के छह लोकों में पुनर्जन्म लेकर गए।

गुरु ने अपना उपदेश समाप्त करते हुए कहा, "न केवल अभी बल्कि पहले भी मैंने एक राज्य छोड़कर संन्यासी का जीवन व्यतीत किया था।" फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: "छतरी में बैठी देवी उप्पलावन्ना थीं, सारथी सारिपुत्र थे, माता-पिता राजपरिवार थे, दरबार बुद्ध की सभा थी, और ज्ञानी मुगपक्खा मैं स्वयं था (*21)।"

सीलोन द्वीप पर आने के बाद, मंगना के निवासी वरिष्ठ भिक्षु खुद्दकतिस्सा, वरिष्ठ भिक्षु महावंसक, कटकन्धकारा (*22) में रहने वाले वरिष्ठ भिक्षु फुस्सदेव, उपरिमंदकमला के निवासी वरिष्ठ भिक्षु महारक्षित, भग्गरी के निवासी वरिष्ठ भिक्षु महातिस्सा, वामत्तपभरा के निवासी वरिष्ठ भिक्षु महाशिव, कलवेला के निवासी वरिष्ठ भिक्षु महामलियादेव, इन सभी वरिष्ठ भिक्षुओं को कुद्दलक जन्म (*23), मुगपक्खा जन्म (*24), अयोगरा जन्म (*25), और हत्थिपला जन्म (*26) की सभा में बाद में आने वाले भिक्षु कहा जाता है। इसके अलावा, मद्धा के निवासी वरिष्ठ भिक्षु महानगा और वरिष्ठ भिक्षु मलियमकदेव ने परिनिर्वाण के दिन टिप्पणी की, "महोदय, मुगपक्खा

जन्म की सभा आज विलुप्त हो गई है।" "किस कारण से?" "उस समय मुझे मादक पेय की बुरी लत लग गई थी, और जब मैं अपने साथ शराब पीने वालों को नहीं ला सका, तो मैंने संसार का त्याग कर संन्यासी बनने का निर्णय सबसे अंत में लिया।"

फुटनोट:

(1) बहरे अपंग की कहानी।

(2) संख्या 531

(3)खालमकापाडो?

(4) एक और पाठ है, "दूध।"

(7) प्रो. कोवेल द्वारा अनुवादित "मैं अपने पिता और माता के साथ-साथ स्वयं की भी मृत्यु का कारण बनूंगा"

(8)पेटवत्थु

(9)जाट. 340 , पेटवत्थु.

(12) विजय की चार पंक्तियाँ यहाँ दोहराई गई हैं।

(13)कत्थथराके, अथारो एक "गलीचा" है।

(14)कैंथियम पार्विफ्लोरम.

(16)उपधिरथम्: विद्वान्। सुवन्नापादुकारथम् अरुयहंतु, इमे तयो पदे पुट्टस्सा तत्थ' एव अभिषेककरनत्थय पञ्च राजकाकुधभंडानि गन्हासा ति।

(17) पढ़ें: pallamke na nisidi

(18) वृक्ष कैंथियम पार्विफ्लोरम का पत्ता।

(19)सं. 299.

(21) यहाँ एक बाद में जोड़ा गया भाग बताता है कि कैसे कुछ पुजारी इस जन्म में तपस्वी जीवन अपनाने में दूसरों से बाद में थे, देखें जाट. IV. 490.

(22)देखें सू. 190.

(23)सं. 70,

(24) संख्या 538

(25)सं. 510.

(26) संख्या 509

स्रोत : ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।

जातक क्रमांक 539
महाजनक-जातक

“प्रयास करने वाले तुम कौन हो?” इत्यादि। यह कथा गुरुजी ने जेतवन मठ में रहते हुए महान त्याग के विषय में सुनाई थी। एक दिन भिक्षु (भाई) सत्य के हॉल में बैठकर तथागत (बुद्ध) के महान त्याग पर चर्चा कर रहे थे। गुरुजी आए और उन्होंने देखा कि वे इसी विषय पर चर्चा कर रहे हैं; इसलिए उन्होंने कहा, “तथागत (बुद्ध) ने यह पहली बार नहीं किया है, उन्होंने पहले भी यह किया था।” और इसके साथ ही उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, विदेह राज्य के मिथिला में महाजनक नामक एक राजा रहता था। उसके दो पुत्र थे, अरित्तजनक और पोलजनक; उसने बड़े पुत्र को उपसराय और छोटे पुत्र को सेनापति बनाया। बाद में, जब महाजनक की मृत्यु हो गई, तो अरित्तजनक राजा बनकर अपने भाई को उपसराय बना दिया। एक दिन एक दास राजा के पास गया और उसे बताया कि उपसराय उसे मारना चाहता है। राजा ने बार-बार वही कहानी सुनकर संदेह किया और पोलजनक को जंजीरों में बांधकर महल से कुछ ही दूरी पर स्थित एक घर में पहरेदारों के साथ कैद करवा दिया। राजकुमार ने दृढ़ निश्चय से कहा, "यदि मैं अपने भाई का शत्रु हूँ, तो मेरी जंजीरें न खोली जाएँ और न ही दरवाजा खोला जाए; अन्यथा, मेरी जंजीरें खोल दी जाएँ और दरवाजा खोल दिया जाए।" यह कहते ही जंजीरें टूट गईं और दरवाजा खुल गया। वह निकल पड़ा और सीमावर्ती गाँव में जाकर वहीं बस गया। गाँव वालों ने उसे पहचान लिया और उसकी सेवा करने लगे, जिससे राजा उसे गिरफ्तार नहीं कर सका। कुछ समय बाद वह सीमावर्ती क्षेत्र का स्वामी बन गया और उसके पास अब एक बड़ा अनुयायी दल था। उसने मन ही मन सोचा, "अगर मैं पहले अपने भाई का शत्रु नहीं था, तो अब मैं उसका शत्रु अवश्य हूँ।" और वह एक विशाल सेना लेकर मिथिला गया और शहर के बाहरी इलाके में डेरा डाला। गाँव वालों ने सुना कि राजकुमार पोलाजनका आ गया है, और उनमें से अधिकांश अपने हाथियों और अन्य सवारी पशुओं के साथ उसके पास पहुँच गए, और अन्य शहरों के निवासी भी उनके साथ इकट्ठा हो गए। उसने अपने भाई को संदेश भेजा, "मैं पहले तुम्हारा शत्रु नहीं था, लेकिन अब मैं तुम्हारा शत्रु अवश्य हूँ; या तो राजसी छत्र मुझे सौंप दो या युद्ध करो।" जब राजा युद्ध करने गया, तो उसने अपनी प्रमुख रानी को विदाई दी। “हे देवी,” उसने कहा, “युद्ध में विजय और पराजय का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि मेरी मृत्यु हो जाए, तो गर्भ में पल रहे बच्चे की सावधानीपूर्वक रक्षा करना।” इतना कहकर वह चला गया; और कुछ ही समय बाद पोलाजनका के सैनिकों ने युद्ध में उसे मार डाला। राजा की मृत्यु की खबर से पूरे शहर में अफरा-तफरी मच गई। रानी को जब पता चला कि राजा मर गया है, तो उसने जल्दी से अपना सोना और कीमती खजाना एक टोकरी में रखा और उसके ऊपर एक कपड़ा बिछाकर कुछ भुने हुए चावल फैला दिए; फिर उसने कुछ गंदे कपड़े पहनकर और अपना रूप बदलकर टोकरी को अपने सिर पर रखा और दिन के एक असामान्य समय पर बाहर निकल गई, और किसी ने उसे पहचाना नहीं। वह उत्तरी द्वार से निकली; लेकिन उसे रास्ता नहीं पता था, क्योंकि वह पहले कभी कहीं नहीं गई थी और दिशाओं का भी उसे ज्ञान नहीं था; इसलिए, चूंकि उसने केवल कालचम्पा नामक एक शहर के बारे में सुना था, वह बैठ गई और लोगों से पूछने लगी कि क्या कोई कालचम्पा शहर जा रहा है। अब उसके गर्भ में कोई साधारण बच्चा नहीं था, बल्कि वह परम सिद्धियों को प्राप्त करने के बाद पुनर्जन्म लिया हुआ महान प्राणी था, और उसकी महिमा से सक्का (इंद्र) का सारा संसार कांप उठा। सक्का (इंद्र) सोचने लगा कि इसका कारण क्या हो सकता है।और उसने सोचा कि उसके गर्भ में किसी महान गुणी प्राणी का जन्म हुआ होगा, और उसे जाकर उसे देखना चाहिए; इसलिए उसने एक ढका हुआ रथ बनाया और उसमें पलंग बिछाया और उस घर के द्वार पर खड़ा हो गया जहाँ वह बैठी थी, मानो कोई बूढ़ा व्यक्ति रथ चला रहा हो, और उसने पूछा कि क्या कोई कालचम्पा जाना चाहता है। "मैं वहाँ जाना चाहती हूँ, पिताजी।" "तो इस रथ में चढ़िए, देवी, और बैठ जाइए।" "पिताजी, मैं गर्भवती हूँ, और मैं चढ़ नहीं सकती; मैं पीछे-पीछे आऊँगी, लेकिन मुझे मेरी टोकरी के लिए जगह दीजिए।" "क्या कह रही हो, माँ? मेरे जैसा रथ चलाना तो कोई नहीं जानता; डरिए मत, बस चढ़ जाइए और बैठ जाइए।" अपनी दिव्य शक्ति से उसने धरती को ऊपर उठाया जैसे ही वह चढ़ रही थी, और उसे रथ के पिछले हिस्से से छू लिया। वह चढ़ गई और पलंग पर लेट गई, और उसे पता चल गया कि यह कोई देवता (देवदूत) होगा। जैसे ही वह दिव्य पलंग पर लेटी, वह सो गई। तीस मील (4.23 किमी) की दूरी तय करने के बाद, सक्का (इंद्र) एक नदी के पास पहुँचे और उन्होंने माँ को जगाते हुए कहा, "माँ, नीचे उतरकर नदी में स्नान करो; पलंग के सिरहाने पर एक चादर है, उसे ओढ़ लो; और रथ में खाने के लिए एक रोटी है, उसे खा लो।" माँ ने ऐसा ही किया और फिर लेट गईं। शाम को जब वे चंपा पहुँचीं और द्वार, मीनार और दीवारों को देखा, तो उन्होंने पूछा कि यह कौन सा शहर है। उन्होंने उत्तर दिया, "माँ, चंपा शहर।" "पिताजी, आप क्या कह रहे हैं? क्या हमारे शहर से चंपा की दूरी साठ मील (4.23 किमी) नहीं है?" "हाँ, माँ, लेकिन मुझे सीधा रास्ता पता है।" तब उन्होंने माँ को दक्षिणी द्वार से नीचे उतारा; "माँ, मेरा गाँव आगे है, क्या तुम शहर में प्रवेश करो?" इतना कहकर सक्का (इंद्र) आगे बढ़े और गायब होकर अपने स्थान पर चले गए।उसने ऐसा ही किया और फिर लेट गई। शाम को जब वह चम्पा पहुँची और उसने द्वार, मीनार और दीवारें देखीं, तो उसने पूछा कि यह कौन सा शहर है। उसने उत्तर दिया, "चम्पा शहर, माँ।" "आप क्या कहते हैं, पिताजी? क्या हमारे शहर से चम्पा की दूरी साठ मील (4.23 किमी) नहीं है?" "हाँ, माँ, लेकिन मुझे सीधा रास्ता पता है।" तब उसने उसे दक्षिणी द्वार से नीचे उतारा; "माँ, मेरा गाँव आगे है, क्या तुम शहर में प्रवेश करोगी?" ऐसा कहकर

सक्का (इंद्र) आगे बढ़ गया और गायब होकर अपने स्थान पर चला गया।उसने ऐसा ही किया और फिर लेट गई। शाम को जब वह चम्पा पहुँची और उसने द्वार, मीनार और दीवारें देखीं, तो उसने पूछा कि यह कौन सा शहर है। उसने उत्तर दिया, "चम्पा शहर, माँ।" "आप क्या कहते हैं, पिताजी? क्या हमारे शहर से चम्पा की दूरी साठ मील (4.23 किमी) नहीं है?" "हाँ, माँ, लेकिन मुझे सीधा रास्ता पता है।" तब उसने उसे दक्षिणी द्वार से नीचे उतारा; "माँ, मेरा गाँव आगे है, क्या तुम शहर में प्रवेश करोगी?" ऐसा कहकर सक्का (इंद्र) आगे बढ़ गया और गायब होकर अपने स्थान पर चला गया।

रानी एक विशेष कक्ष में बैठ गईं। उसी समय चंपा में रहने वाला एक ब्राह्मण, जो भजन गाता था, अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ स्नान करने जा रहा था। उसने देखा कि रानी वहाँ अत्यंत सुंदर और आकर्षक रूप से बैठी हैं। गर्भ में पल रहे शिशु के कारण, उन्हें देखते ही उनके मन में उनके लिए एक छोटी बहन जैसा स्नेह उत्पन्न हो गया। अपने शिष्यों को बाहर रोककर वह अकेले कक्ष में गए और रानी से पूछा, "बहन, आप किस गाँव में रहती हैं?" रानी ने कहा, "मैं मिथिला के राजा अरित्तजनक की प्रधान रानी हूँ। उन्होंने पूछा, 'आप यहाँ क्यों आई हैं?' रानी ने कहा, "राजा को पोलजनक ने मार डाला है, और मैं भयवश अपने अजन्मे बच्चे को बचाने के लिए यहाँ आई हूँ।' 'क्या इस शहर में आपका कोई रिश्तेदार है?' रानी ने कहा, 'कोई नहीं है, पिता जी।' 'चिंता मत कीजिए; मैं एक महान कुल का उत्तरी ब्राह्मण हूँ, दूर-दूर तक प्रसिद्ध शिक्षक हूँ। मैं आपकी देखभाल अपनी बहन की तरह करूँगा। मुझे अपना भाई कहिए और मेरे पैर थामकर जोर से रोइए।" वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और उनके चरणों में गिर पड़ी, और दोनों ने एक-दूसरे को सांत्वना दी। उनके शिष्य दौड़ते हुए आए और उनसे पूछा कि यह सब क्या है। उन्होंने कहा, "यह मेरी सबसे छोटी बहन है, जिसका जन्म उस समय हुआ जब मैं दूर था।" "हे गुरु, शोक न करें, अब आपने उसे आखिरकार देख लिया है।" उन्होंने एक भव्य रथ मंगवाया और उसे उसमें बैठाकर अपने घर भेज दिया, और उनसे कहा कि वे उनकी पत्नी को बता दें कि यह उनकी बहन है और उसे सब कुछ करना है। उनकी ब्राह्मण पत्नी ने उसे गर्म पानी से नहलाया और उसके लिए पलंग तैयार किया और उसे लिटा दिया। ब्राह्मण ने स्नान किया और घर लौट आए; और भोजन के समय उन्होंने उनसे अपनी बहन को बुलाने के लिए कहा और उसके साथ भोजन किया, और घर में उसकी देखभाल की। कुछ समय बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया, और उन्होंने उसका नाम उसके दादा के नाम पर राजकुमार महाजनक रखा। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ और लड़कों के साथ खेलता था, जब वे अपने शुद्ध क्षत्रिय जन्म का दावा करके उसे चिढ़ाते थे, तो वह अपनी श्रेष्ठ शक्ति और साहस से उन्हें करारा प्रहार करता था। जब वे जोर से चिल्लाते और उनसे पूछा जाता कि उन्हें किसने मारा है, तो वे जवाब देते, "विधवा के बेटे ने।" राजकुमार ने सोचा, "ये हमेशा मुझे विधवा का बेटा कहते हैं, मैं अपनी माँ से इसके बारे में पूछूंगा"; इसलिए एक दिन उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ, मैं किसका बेटा हूँ?" माँ ने उसे धोखा देते हुए कहा कि ब्राह्मण उसका पिता है। जब उसने एक और दिन उन्हें पीटा और उन्होंने उसे विधवा का बेटा कहा, तो उसने जवाब दिया कि ब्राह्मण उसका पिता है; और जब उन्होंने पलटकर पूछा, "ब्राह्मण से तुम्हारा क्या लेना-देना है?" तो उसने सोचा, "ये लड़के मुझसे कहते हैं 'ब्राह्मण से तुम्हारा क्या लेना-देना है?' मेरी माँ मुझे यह बात नहीं समझाएगी, वह अपनी इज्जत के लिए मुझे सच नहीं बताएगी, चलो, मैं उससे सच उगलवाऊंगा।" इसलिए जब वह उसका दूध पी रहा था, तो उसने उसका स्तन काट लिया और उससे कहा, "मुझे बताओ कि मेरा पिता कौन है, अगर तुम नहीं बताओगी तो मैं तुम्हारा स्तन काट दूंगा।" माँ उसे धोखा देने में असमर्थ रही, इसलिए उसने कहा,"मेरे बच्चे, तुम मिथिला के राजा अरित्तजनक के पुत्र हो; तुम्हारे पिता को पोलजनक ने मार डाला था, और मैं तुम्हें बचाने के लिए इस नगर में आई थी, और ब्राह्मण ने मुझे अपनी बहन की तरह माना और मेरी देखभाल की।" उस समय से, विधवा का पुत्र कहे जाने पर उसे क्रोध नहीं आता था; और सोलह वर्ष की आयु से पहले ही उसने तीनों वेद और सभी विद्याएँ सीख ली थीं; और सोलह वर्ष की आयु तक वह बहुत सुंदर हो गया था। तब उसने मन ही मन सोचा, "मैं अपने पिता का राज्य छीन लूँगा"; इसलिए उसने अपनी माता से पूछा, "क्या तुम्हारे पास धन है? यदि नहीं, तो मैं व्यापार करके धन कमाऊँगा और अपने पिता का राज्य छीन लूँगा।" "पुत्र, मैं खाली हाथ नहीं आई हूँ, मेरे पास राज्य प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मोती, रत्न और हीरे हैं - इन्हें ले लो और सिंहासन पर कब्जा कर लो; व्यापार मत करो।" "माँ," उसने कहा, "मुझे वह धन दे दो, लेकिन मैं उसका आधा ही लूँगा और सुवन्नाभूमि (संभवतः थाईलैंड) जाकर वहाँ से अपार धन प्राप्त करूँगा और फिर राज्य पर कब्ज़ा कर लूँगा।" उसने माँ से आधा धन लाने को कहा और अपना सारा सामान इकट्ठा करके कुछ व्यापारियों के साथ सुवन्नाभूमि जाने वाले एक जहाज़ पर रख दिया और अपनी माँ को विदाई देते हुए कहा कि वह उस देश के लिए रवाना हो रहा है। "मेरे बेटे," माँ ने कहा, "समुद्र में सफलता की संभावना कम है और खतरे बहुत हैं, मत जाओ, तुम्हारे पास राज्य पर कब्ज़ा करने के लिए पर्याप्त धन है।" लेकिन उसने अपनी माँ से कहा कि वह जाएगा, इसलिए उसने विदाई ली और जहाज़ पर सवार हो गया। उसी दिन पोलजनक के शरीर में एक बीमारी फैल गई और वह अपने बिस्तर से उठ नहीं सका। सात कारवां अपने पशुओं (*1) के साथ जहाज़ पर सवार थे; सात दिनों में जहाज ने सात सौ लीग (4.23 किमी) की दूरी तय की, लेकिन अपनी यात्रा में अत्यधिक उग्रता के कारण वह टिक नहीं सका: उसके तख्ते टूट गए, पानी का स्तर बढ़ता गया, और जहाज समुद्र के बीचोंबीच डूबने लगा जबकि चालक दल रोते-बिलखते और अपने-अपने देवताओं (देवदूतों) का आह्वान करते रहे। लेकिन उस महान सत्ता ने न तो रोया, न शोक मनाया और न ही किसी देवता का आह्वान किया, बल्कि यह जानते हुए कि जहाज का अंत निश्चित है, उसने कुछ चीनी और घी (स्पष्ट मक्खन) को मला, और पेट भरकर भोजन करने के बाद, उसने अपने दो साफ वस्त्रों पर तेल लगाया और उन्हें कसकर अपने चारों ओर लपेट लिया और मस्तूल से टेक लगाकर खड़ा हो गया। जब जहाज डूबा तो मस्तूल सीधा खड़ा रहा। जहाज पर सवार भीड़ मछलियों और कछुओं का भोजन बन गई, और चारों ओर का पानी खून के रंग का हो गया; लेकिन महापुरुष, मस्तूल पर खड़े होकर, मिथिला की दिशा का पता लगाकर, मस्तूल के शीर्ष से ऊपर की ओर उड़े

और अपनी शक्ति से मछलियों और कछुओं को पार करते हुए जहाज से 140 भुजाओं की दूरी पर गिरे। उसी दिन पोलाजनक का निधन हो गया। उसके बाद महापुरुष ने रत्नजड़ित लहरों को पार किया, मानो सोने के ढेर की तरह अपना मार्ग बनाते हुए, उन्होंने एक सप्ताह को एक दिन की तरह गुजार दिया।और जब उसने फिर से तट देखा तो उसने खारे पानी से अपना मुँह धोया (*2) और उपवास रखा। उस समय, विश्व के चार रक्षकों ने मणिमेखला नामक देवदूतों की एक पुत्री को समुद्र का रक्षक नियुक्त किया था। उन्होंने उससे कहा, "जिन प्राणियों में माता के प्रति आदर जैसे गुण होते हैं, वे समुद्र में गिरने के योग्य नहीं होते; ऐसे प्राणियों का ध्यान रखना।" लेकिन उन सात दिनों तक उसने समुद्र की ओर नहीं देखा था, क्योंकि कहा जाता है कि दिव्य सुख के आनंद में उसकी स्मृति कमजोर हो गई थी, और कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि वह किसी दिव्य सभा में उपस्थित होने गई थी। अंत में, उसने देखा और मन ही मन कहा, "यह सातवाँ दिन है जब मैंने समुद्र की ओर नहीं देखा है, वहाँ कौन आ रहा है?" जब उसने उस महान प्राणी को देखा तो उसने मन ही मन सोचा, "यदि राजकुमार महाजनक समुद्र में मर गए होते तो मैं दिव्य सभा में प्रवेश कर जाती!" (*3) अत: एक अलंकृत रूप धारण करके वह बोधिसत्व से कुछ ही दूरी पर हवा में खड़ी हो गई और उनकी शक्तियों का परीक्षण करते हुए पहले श्लोक का उच्चारण किया।

"तुम कौन हो, जो यहाँ समुद्र के बीचोंबीच, धरती से दूर, पूरी ताकत से संघर्ष कर रहे हो?"
वह कौन सा मित्र है जिस पर आप सबसे अधिक भरोसा करते हैं और जो आपकी मदद करने के लिए हमेशा तैयार रहता है?
बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "सागर में यह मेरा सातवां दिन है, मैंने अपने अलावा किसी दूसरे प्राणी को नहीं देखा है, कौन हो सकता है जो मुझसे बात कर रहा है?" इसलिए, आकाश की ओर देखते हुए, उन्होंने दूसरा श्लोक कहा:

"संसार में अपने कर्तव्य को जानते हुए, हे देवी, जब तक मैं कर सकता हूँ, कड़ी मेहनत करनी चाहिए।"
यहां समुद्र के बीचोंबीच, धरती से दूर, मैं एक पुरुष की तरह अपनी पूरी कोशिश करता हूं।"
अच्छी शिक्षा सुनने की इच्छा से उसने उससे तीसरा श्लोक कहा:

"यहाँ इस गहरे और असीम वीरान इलाके में जहाँ किनारा कहीं भी दिखाई नहीं देता,
तुम्हारे सारे प्रयास व्यर्थ हैं, तुम्हें यहीं समुद्र के बीचोंबीच मरना होगा।"
बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "तुम ऐसा क्यों कहते हो? यदि मैं अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद मर जाऊं, तो भी मैं दोष से बच जाऊंगा," और उन्होंने एक श्लोक कहा:

जो व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार सब कुछ करता है, वह अपने परिवार के प्रति अपराधबोध से मुक्त होता है।
स्वर्ग के स्वामी ने भी उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया और उन्हें कोई पछतावा नहीं हुआ।
तब देवी ने एक श्लोक बोला:

"ऐसे प्रयासों का क्या फायदा, जहाँ व्यर्थ परिश्रम ही एकमात्र लाभ हो?"
जहां जीतने पर कोई इनाम नहीं मिलता, और सारी पीड़ा के बदले सिर्फ मौत मिलती है?
तब बोधिसत्व ने उसकी विवेकहीनता को दर्शाने के लिए ये श्लोक कहे:

जो यह सोचता है कि जीतने के लिए कुछ नहीं है और जब तक संभव हो तब तक युद्ध नहीं करेगा,
चाहे नुकसान कितना भी हुआ हो, दोष उसी का हो या उसके कमजोर दिल का ही नतीजा था।
इस संसार में मनुष्य अपनी योजनाएँ बनाते हैं और अपना काम वैसे ही करते हैं जैसे उन्हें सर्वोत्तम लगता है।
योजनाएँ सफल हो सकती हैं या असफल भी हो सकती हैं, बाकी सब कुछ अज्ञात भविष्य ही तय करता है।
हे देवी, क्या आप नहीं देखतीं? आज यहाँ हमारे अपने कर्म ही निर्णायक हैं;
बाकी सब डूब गए, मैं बच गया, और तुम मेरे साथ खड़े हो।
इसलिए मैं समुद्र को पार करके तट तक पहुंचने के लिए हमेशा अपनी पूरी कोशिश करूंगा;
जब तक मुझमें शक्ति बनी रहेगी, मैं कड़ी मेहनत करता रहूंगा।
और तब तक हार नहीं मानूंगा जब तक मैं और प्रयास करने में सक्षम न रहूं।"
देवी ने उनके सशक्त शब्दों को सुनकर प्रशंसा में एक श्लोक कहा:

"तुम जो इस भयंकर, असीम सागर के बीच बहादुरी से लड़ते रहते हो।"
और न ही वह निर्धारित कार्य से पीछे हटता है, बल्कि कर्तव्य की पुकार पर प्रयासरत रहता है।
जहां तुम्हारा मन चाहे वहां जाओ, न तो कोई बाधा आने दो और न ही कोई रुकावट।

फिर उसने उससे पूछा कि वह उसे कहाँ ले जाए, और उसके उत्तर "मिथिला नगर" पर, उसने उसे माला की तरह ऊपर उछाला और दोनों बाहों में थामकर उसे अपनी गोद में लिटा लिया, मानो वह उसका प्रिय बच्चा हो, और हवा में उछल पड़ी। सात दिनों तक बोधिसत्व सोता रहा, उसका शरीर नमक की फुहार से भीगा हुआ था और दिव्य स्पर्श से रोमांचित था। फिर वह उसे मिथिला ले आई और उसे आम के बाग में एक अनुष्ठानिक पत्थर पर दाहिनी ओर लिटा दिया, और उसे बाग की देवियों की देखरेख में छोड़कर अपने निवास स्थान पर चली गई। अब पोलाजनक का कोई पुत्र नहीं था: उसकी केवल एक ही पुत्री थी, बुद्धिमान और विद्वान, जिसका नाम शिवलीदेवी था। मृत्युशय्या पर उनसे पूछा गया था, "हे राजा, जब आप देवदूत बन जाएँगे, तो हम राज्य किसे सौंपेंगे?" और उसने कहा, "इसे उसे दो जो राजकुमारी, मेरी पुत्री सिवली को प्रसन्न कर सके, या जो जानता हो कि चौकोर पलंग का सिरहाना कौन सा है, या जो उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा सके जिसे हज़ार पुरुषों की शक्ति की आवश्यकता होती है, या जो सोलह महान खजाने निकाल सके।" "हे राजा, हमें खजानों की सूची बताइए।" तब राजा ने उसे दोहराया:

"उगते सूरज का खजाना, उसके अस्त होते सूरज का खजाना,"
बाहर का खजाना, भीतर का खजाना, और वह खजाना जो न तो बाहर है और न ही भीतर,
चढ़ाई पर, उतरने पर, चार साल के स्तंभ, योजन चक्र,
दांतों का सिरा, पूंछ का सिरा, केबुका, पेड़ों के सिरे,
ये सोलह अनमोल खजाने हैं, और ये वहीं रहते हैं जहाँ ये पाए जाते हैं।
"वह धनुष जो हजारों पुरुषों को, बिस्तर को, और महिला के दिल को प्रसन्न करने का काम सौंपता है।"
इन खजानों के अलावा, राजा ने अन्य खजानों की भी एक सूची दोहराई। उनकी मृत्यु के बाद मंत्रियों ने उनका अंतिम संस्कार किया और सातवें दिन वे सब एकत्रित होकर विचार-विमर्श करने लगे: "राजा ने कहा था कि राज्य उसे दिया जाएगा जो उनकी पुत्री को प्रसन्न कर सके, परन्तु कौन उन्हें प्रसन्न कर पाएगा?" उन्होंने कहा, "सेनापति राजा का प्रिय है," इसलिए उन्होंने उसे आदेश भेजा। वह तुरंत राजद्वार पर आया और राजकुमारी को बताया कि वह वहाँ खड़ा है। राजकुमारी, उसके आने का कारण जानते हुए और यह परखने के इरादे से कि क्या उसमें राजसी छत्र धारण करने की बुद्धि है, उसे आने का आदेश दिया। आदेश सुनकर और उसे प्रसन्न करने की इच्छा से, वह सीढ़ियों के नीचे से तेजी से दौड़ा और उसके पास खड़ा हो गया। फिर उसकी परीक्षा लेने के लिए, राजकुमारी ने कहा, "जल्दी से समतल जमीन पर दौड़ो।" वह आगे की ओर उछला, यह सोचकर कि वह राजकुमारी को प्रसन्न कर रहा है। राजकुमारी ने उससे कहा, "यहाँ आओ।" वह पूरी गति से आया। राजकुमारी ने उसकी बुद्धिहीनता देखी और कहा, "आओ और मेरे पैर मल दो।" उसे प्रसन्न करने के लिए, वह बैठ गया और उसके पैर मल दिए। फिर उसने अपने पैर से उसकी छाती पर वार किया और उसे पीठ के बल गिरा दिया, और उसने अपनी दासियों को इशारा किया, "इस अंधे और बेसुध मूर्ख को मारो और उसका गला पकड़कर उसे बाहर फेंक दो"; और उन्होंने वैसा ही किया। "तो, सेनापति?" उन्होंने कहा; उसने उत्तर दिया, "कोई बात नहीं, वह इंसान नहीं है।" फिर कोषाध्यक्ष गया, लेकिन उसने उसे भी उसी तरह शर्मिंदा किया। इसी तरह कैशियर, छाता रखने वाला, तलवार चलाने वाला: उसने उन सभी को शर्मिंदा किया। फिर लॉटरी ने विचार-विमर्श किया और कहा, "कोई भी राजकुमारी को प्रसन्न नहीं कर सकता: उसे उसे दे दो जो उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा सके जिसे हजार पुरुषों की शक्ति की आवश्यकता होती है।" लेकिन कोई भी उस पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सका। फिर उन्होंने कहा, "उसे उसे दे दो जो जानता हो कि चौकोर पलंग का सिरहाना कौन सा है।" लेकिन कोई भी नहीं जानता था। "तो उसे उसे दे दो जो सोलह महान खजाने निकाल सके।" लेकिन कोई भी उन्हें नहीं निकाल सका। फिर उन्होंने आपस में सलाह की, "राजा के बिना राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती; क्या किया जाए?" तब कुल पुरोहित ने उनसे कहा, "चिंता मत करो; हमें उत्सव रथ भेजना ही होगा, उत्सव रथ से जो राजा प्राप्त होगा, वह समस्त भारत पर शासन करने में सक्षम होगा।" अतः वे सहमत हो गए, और नगर को सजाकर, उत्सव रथ में कमल के रंग के चार घोड़े जोतकर, उन पर चादर बिछाकर और राजसी पाँच ध्वज लगाकर, उन्होंने रथ को चार समूहों (हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सैनिक) की सेना से घेर लिया। अब, जिस रथ में सवार होता है, उसके आगे वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं, और जिसके पीछे कोई सवार नहीं होता, उसके पीछे वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं; अतः कुल पुरोहित ने उनसे वाद्ययंत्र पीछे बजाने का आदेश दिया, और रथ की पट्टा और चाबुक पर सोने का रस छिड़ककर, रथ को उस व्यक्ति के पास जाने का आदेश दिया, जो राज्य पर शासन करने के योग्य हो।रथ महल के चारों ओर घूमा और ढोल-नगाड़े वाली सड़क पर आगे बढ़ा। सेनापति और अन्य राजकीय अधिकारियों को लगा कि रथ उनकी ओर आ रहा है, लेकिन वह उन सभी के घरों के पास से गुजरा और शहर का चक्कर लगाकर पूर्वी द्वार से बाहर निकलकर उद्यान की ओर चला गया। जब उन्होंने रथ को इतनी तेज़ी से जाते देखा, तो उन्होंने उसे रोकने का सोचा; लेकिन जब कुलपुजारी ने कहा, "इसे मत रोको; इसे सौ मील (4.23 किमी) तक जाने दो," तो रथ उद्यान में प्रवेश कर गया और अनुष्ठानिक पत्थर के चारों ओर घूमकर रुक गया, मानो सवार होने के लिए तैयार हो। कुलपुजारी ने बोधिसत्व को वहाँ लेटे हुए देखा और मंत्रियों से कहा, "महोदय, मैं किसी को पत्थर पर लेटा हुआ देख रहा हूँ; हम नहीं जानते कि वह श्वेत छत्र के योग्य ज्ञान रखता है या नहीं; यदि वह पवित्र गुणों वाला प्राणी है तो वह हमारी ओर नहीं देखेगा, लेकिन यदि वह अपशगुन का प्राणी है तो वह घबराकर उठ खड़ा होगा और कांपते हुए हमारी ओर देखेगा; तब सभी वाद्ययंत्र बजाओ।" फिर उन्होंने सैकड़ों वाद्ययंत्र बजाए, ऐसा लगा जैसे समुद्र का शोर हो। उस शोर से महान सत्ता जाग उठीं और अपना सिर ढककर चारों ओर देखा तो उन्हें वह विशाल समूह दिखाई दिया; यह समझकर कि यह वही सफेद छतरी है जो उनके पास आई है, उन्होंने फिर से अपना सिर ढक लिया और करवट लेकर बाईं ओर लेट गए। कुलपुजारी ने उनके पैर ढके और निशान देखकर कहा,

"एक महाद्वीप की तो बात ही छोड़िए, वह चारों महाद्वीपों पर शासन कर सकते हैं," इसलिए उन्होंने वाद्ययंत्रों को फिर से बजाने का आदेश दिया।

बोधिसत्व ने अपना चेहरा ढकने वाला वस्त्र हटा दिया और मुड़कर अपनी दाहिनी ओर लेट गए तथा भीड़ की ओर देखने लगे। कुलपुजारी ने लोगों को सांत्वना दी, हाथ जोड़कर नीचे झुके और कहा, "उठिए, मेरे स्वामी, राज्य आपका है।" उन्होंने उत्तर दिया, "राजा कहाँ हैं?"

“वह मर गया है।” “क्या उसका कोई पुत्र या भाई नहीं है?” “कोई नहीं, महाराज।” “ठीक है, मैं राज्य संभाल लूँगा”; यह कहकर वह उठा और पत्थर की पटिया पर पालथी मारकर बैठ गया। फिर उन्होंने वहीं उसका राज्याभिषेक किया और उसे राजा महाजनक कहा जाने लगा। इसके बाद वह रथ पर सवार हुआ और राजसी वैभव के साथ नगर में प्रवेश करके महल में गया और सेनापति और अन्य अधिकारियों के लिए अलग-अलग स्थान निर्धारित करके चबूतरे पर विराजमान हुआ। अब राजकुमारी ने राजा के पहले व्यवहार से ही उसकी परीक्षा लेने की इच्छा से एक दूत को उसके पास भेजा और कहा, "राजा के पास जाओ और उनसे कहो, 'राजकुमारी सिवली तुम्हें बुला रही हैं, जल्दी जाओ।' बुद्धिमान राजा ने मानो उसकी बात अनसुनी कर दी और महल का वर्णन जारी रखा, "यह ऐसा और ऐसा ही अच्छा होगा।" राजा का ध्यान आकर्षित करने में असमर्थ होकर वह चला गया और राजकुमारी से कहा, "महाराज ने आपकी बात सुनी, लेकिन वह केवल महल का वर्णन करते रहे और आपकी बिल्कुल भी परवाह नहीं की।" राजकुमारी ने मन ही मन सोचा, "वह जरूर एक महान आत्मा वाला व्यक्ति होगा," और दूसरा और तीसरा दूत भेजा। अंत में राजा अपनी इच्छा से, अपनी सामान्य गति से, शेर की तरह जम्हाई लेते हुए महल में चढ़ गया। जैसे ही वह पास आया, राजकुमारी उसके राजसी रूप के सामने स्थिर नहीं रह सकी; और पास आकर उसने उसे सहारा देने के लिए अपना हाथ दिया। राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया और चबूतरे पर चढ़ गया, और सफेद छतरी के नीचे शाही पलंग पर बैठकर उसने मंत्रियों से पूछा, "जब राजा की मृत्यु हुई, तो क्या उसने कुछ छोड़ा था?" क्या आपके पास कोई निर्देश हैं?” तब उन्होंने उसे बताया कि राज्य उसे दिया जाएगा जो राजकुमारी सिवली को प्रसन्न कर सके। “जब मैं पास आया तो राजकुमारी सिवली ने मुझे सहारा देने के लिए अपना हाथ दिया; अतः मैं उसे प्रसन्न करने में सफल रहा; मुझे कुछ और बताओ।” “उसने कहा कि राज्य उसे दिया जाएगा जो यह तय कर सके कि चौकोर पलंग का सिरहाना कौन सा है।” राजा ने उत्तर दिया, “यह बताना कठिन है, लेकिन एक युक्ति से इसका पता लगाया जा सकता है,” इसलिए उसने अपने सिर से एक सोने की सुई निकाली और राजकुमारी के हाथ में देते हुए कहा, “इसे इसकी जगह पर रख दो।” उसने उसे लिया और पलंग के सिरहाना में रख दिया। इसी प्रकार कहावत में भी कहा गया है, “उसने उसे तलवार दी (*4)।” उस संकेत से वह जान गया कि सिरहाना कौन सा है, और मानो उसने यह पहले कभी नहीं सुना हो, उसने पूछा कि वे क्या कह रहे हैं, और जब उन्होंने इसे दोहराया, तो उसने उत्तर दिया, “यह जानना कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सिरहाना कौन सा है”; और ऐसा कहते हुए, उसने पूछा कि क्या कोई और परीक्षा है। “महाराज, उसने हमें आदेश दिया है कि राज्य उसे दिया जाए जो उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा सके जिसे चलाने के लिए हजार पुरुषों की शक्ति की आवश्यकता होती है।” जब वे उसके आदेश पर उसे ले आए, तो उसने पलंग पर बैठे-बैठे ही उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी, मानो वह कपास की कलकल करने वाला किसी स्त्री का धनुष हो (*5)। “मुझे कुछ और बताओ,” उसने कहा। “उसने हमें आदेश दिया कि हम राज्य उसे सौंप दें जो सोलह महान खजाने निकाल सके।”“क्या कोई सूची है?” और उन्होंने पहले बताई गई सूची को दोहराया। जैसे-जैसे वह सुनता गया, अर्थ उसके लिए आकाश में चंद्रमा की तरह स्पष्ट होता गया। “आज समय नहीं है, हम खजाना कल ले लेंगे।” अगले दिन उसने मंत्रियों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा, “क्या आपके राजा ने पच्चेक-बुद्धों को भोजन कराया था?” जब उन्होंने सकारात्मक उत्तर दिया, तो उसने मन ही मन सोचा, “यह सूर्य नहीं हो सकता, लेकिन पच्चेक-बुद्धों को सूर्य के समान होने के कारण सूर्य कहा जाता है; "खजाना वहीं होना चाहिए जहाँ वह उनसे मिलने जाया करता था।" फिर उसने उनसे पूछा, "जब पच्चेक-बुद्ध आए, तो वह उनसे कहाँ मिलने जाया करता था?" उन्होंने उसे फलाँ जगह बताई; इसलिए उसने उनसे उस जगह को खोदकर वहाँ से खजाना निकालने को कहा, और उन्होंने ऐसा ही किया। "जब वह उनके जाने के बाद उनके पीछे गया, तो उसने कहाँ खड़े होकर उन्हें विदाई दी?" उन्होंने उसे बताया, और उसने उनसे वहाँ से खजाना निकालने को कहा, और उन्होंने ऐसा ही किया। उन सभी ने हजारों जयकारे लगाए और अपने दिल की खुशी और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "जब वे पहले सूर्योदय के बारे में सुनते थे, तो वे सूर्योदय की दिशा में खुदाई करते हुए इधर-उधर भटकते थे, और जब वे सूर्यास्त के बारे में सुनते थे, तो वे सूर्यास्त की दिशा में खुदाई करते हुए जाते थे, लेकिन असली धन तो यहाँ है, असली चमत्कार तो यहीं है।" जब उन्होंने कहा, "अंदर का खजाना," तो उसने महल के बड़े द्वार के भीतर की दहलीज से खजाना निकाला; "बाहर का खजाना," - उसने बाहर की दहलीज से खजाना निकाला; "न तो भीतर का खजाना," - उसने "न ही भीतर का खजाना," - "और बाहर भी नहीं,"—उसने दहलीज के नीचे से खजाना निकाला; "चढ़ने के समय,"—उसने उस स्थान से खजाना निकाला जहाँ शाही हाथी पर चढ़ने के लिए सोने की सीढ़ी लगाई गई थी; "उतरने के समय,"—उसने उस स्थान से खजाना निकाला जहाँ शाही हाथी के कंधों से लोग उतरे थे; "चार बड़े साल के खंभे,"—शाही पलंग के चार बड़े पैर थे, जो साल की लकड़ी से बने थे, जहाँ दरबारी जमीन पर प्रणाम करते थे, और उनके नीचे से उसने खजाने से भरे चार घड़े निकाले; "एक योजन के चारों ओर,"—अब योजन रथ का जुआ होता है, इसलिए उसने जुए की लंबाई के बराबर शाही पलंग के चारों ओर खुदाई की और वहाँ से खजाने के घड़े निकाले; "दांतों के अंत में खजाना,"—उस स्थान पर जहाँ शाही हाथी खड़ा था, उसने "उसके दो दांतों" के सामने से दो खजाने निकाले; "उसकी पूंछ के अंत में,"—उस स्थान पर जहाँ शाही

घोड़ा खड़ा था वह खड़ा हुआ और अपनी पूंछ के विपरीत दिशा से घड़े निकाल लाया; "केबुका में"; अब पानी को केबुका कहा जाता है; इसलिए उसने शाही झील का पानी निकलवाया और वहाँ एक खजाना प्रकट किया; "पेड़ों के सिरों पर खजाना," - उसने शाही बगीचे में बड़े साल के पेड़ों के नीचे दोपहर में पड़ने वाली छाया के घेरे के भीतर दफन खजाने के घड़े निकाले।इस प्रकार सोलह खजाने निकालकर राजा ने पूछा कि क्या और कुछ है, तो लोगों ने उत्तर दिया "नहीं"। लोग प्रसन्न हुए। राजा ने कहा, "मैं इस धन को दान के मुख में अर्पित करूँगा"; अतः उसने नगर के मध्य में और चारों द्वारों पर पाँच भिक्षागृह बनवाए और दान का व्यापक वितरण किया। फिर उसने अपनी माता और कालचम्पा के ब्राह्मण को बुलवाया और उनका भव्य आदर किया।

अपने शासनकाल के आरंभिक दिनों में, अरित्तजनक के पुत्र राजा महाजनक ने विदेह के समस्त राज्यों पर शासन किया। “लोग कहते हैं कि राजा बुद्धिमान हैं, हम उनसे मिलने जाएँगे,” इसलिए सारा नगर उनसे मिलने के लिए उत्सुक था और विभिन्न स्थानों से लोग उपहार लेकर आए; उन्होंने नगर में एक भव्य उत्सव का आयोजन किया, महल की दीवारों को अपने हाथों के आभापत्रों से मढ़ दिया (*6), इत्र और फूलों की मालाएँ टांगीं, भुने हुए अनाज, फूल, इत्र और धूप फेंककर वातावरण को अंधकारमय कर दिया और खाने-पीने की हर तरह की व्यवस्था कर दी। राजा को भेंट अर्पित करने के लिए वे चारों ओर एकत्रित होकर खड़े हो गए, और कठोर एवं नरम भोजन, तथा सभी प्रकार के पेय और फल लाए, जबकि राजा के मंत्रियों का समूह एक तरफ, ब्राह्मणों का समूह दूसरी तरफ, धनी व्यापारी और अन्य लोग, तथा सबसे सुंदर नर्तकियाँ बैठी थीं; उत्सव गीतों में निपुण ब्राह्मण स्तुतिगान गायकों ने अपने हर्षोल्लास भरे गीत ऊँची आवाज़ में गाए, सैकड़ों वाद्ययंत्र बजाए गए, राजा का महल एक विशाल ध्वनि से भर गया मानो वह युगंधर सागर के केंद्र में हो (*7);-- उनकी दृष्टि जहाँ भी जाती, वह स्थान काँप उठता। श्वेत छत्र के नीचे बैठे बोधिसत्व ने सक्का (इंद्र) की महिमा के समान भव्य वैभव देखा और उन्हें विशाल सागर में अपने संघर्ष याद आए; "साहस धारण करना ही उचित है, यदि मैंने विशाल सागर में साहस न दिखाया होता, तो क्या मैं कभी इस महिमा को प्राप्त कर पाता?" यह याद आते ही उनके मन में आनंद उमड़ आया और वे विजयघोष कर उठे (*8)। इसके बाद उन्होंने दस राजसी कर्तव्यों का पालन किया और धर्मपूर्वक शासन किया तथा पच्चेक-बुद्धों की सेवा की। समय बीतने पर रानी शिवली ने एक पुत्र को जन्म दिया जो सभी शुभ लक्षणों से परिपूर्ण था और उन्होंने उसका नाम दिघावु-कुमार रखा। जब वह बड़ा हुआ तो उसके पिता ने उसे वायसराय बना दिया। एक दिन जब माली राजा के लिए तरह-तरह के फल और फूल लाया, तो राजा उन्हें देखकर प्रसन्न हुआ और उसने राजा को सम्मान का पाठ पढ़ाया और कहा कि वह बगीचे को सजाए और स्वयं दर्शन करने आएगा। माली ने राजा को यह सूचना दी और वह अपने शाही हाथी पर सवार होकर अपने सेवकों से घिरा हुआ बगीचे के द्वार से अंदर आया। द्वार के पास ही दो चमकीले हरे आम के पेड़ थे, एक पर फल नहीं थे, जबकि दूसरा बहुत मीठे फलों से लदा हुआ था। चूंकि राजा ने फल नहीं खाए थे, इसलिए किसी ने भी उन्हें तोड़ने का साहस नहीं किया। राजा ने अपने हाथी पर सवार होकर एक फल तोड़ा और खा लिया। जैसे ही आम उसकी जीभ के अंतिम छोर को छूआ, मानो एक दिव्य स्वाद उत्पन्न हुआ और उसने मन ही मन सोचा, "वापस आकर मैं कई और आम खाऊंगा।" लेकिन जब एक बार यह पता चला कि राजा ने पेड़ का पहला फल खा लिया है, तो वायसराय से लेकर हाथी के रखवालों तक सभी लोग इकट्ठा हो गए और कुछ फल खाए, और जिन्होंने फल नहीं खाए थे उन्होंने लाठियों से शाखाओं को तोड़ दिया और पत्तों को नोच डाला, यहाँ तक कि वह पेड़ पूरी तरह से टूट-फूट गया, जबकि दूसरा पेड़ रत्नों के पहाड़ की तरह सुंदर खड़ा रहा।जब राजा बाग से बाहर आए, तो उन्होंने उसे देखा और अपने मंत्रियों से उसके बारे में पूछा। मंत्रियों ने उत्तर दिया, “भीड़ ने देखा कि महाराज ने पहला फल खा लिया है और उन्होंने उसे लूट लिया है। लेकिन इस दूसरे पेड़ का एक पत्ता भी नहीं झड़ा है और न ही इसका रंग बदला है।” “इसका रंग इसलिए नहीं झड़ा क्योंकि इस पर फल नहीं लगे थे।” राजा बहुत भावुक हो गए, “यह पेड़ बिना फल के भी हरा-भरा है, जबकि इसका साथी फल के कारण टूट-फूट गया है। यह राज्य फलदार पेड़ के समान है, लेकिन तपस्वी जीवन बंजर पेड़ के समान है; भय तो संपत्ति के मालिक को होता है, न कि उसके पास कुछ भी न होने को। मैं फलदार पेड़ के समान होने के बजाय बंजर पेड़ के समान होऊंगा, अपनी सारी शान-शौकत छोड़कर, संसार का त्याग कर तपस्वी बन जाऊंगा।” यह दृढ़ निश्चय करके, वह नगर में प्रवेश किया और महल के द्वार पर खड़े होकर अपने सेनापति को बुलवाया और उससे कहा, "हे सेनापति, आज से मेरे चेहरे को केवल एक सेवक ही देखे जो मेरा भोजन लाए और दूसरा जो मुझे पानी और टूथब्रश दे, और मेरे पुराने मुख्य न्यायाधीशों को अपने साथ ले जाकर उनकी सहायता से मेरे राज्य का शासन चलाए: मैं अब से महल के शीर्ष पर एक बौद्ध भिक्षु का जीवन व्यतीत करूँगा।" ऐसा कहकर वह अकेले ही महल के शीर्ष पर चला गया और एक बौद्ध भिक्षु के रूप में रहने लगा। समय बीतने पर लोग प्रांगण में एकत्रित हुए और जब उन्होंने बोधिसत्व को नहीं देखा तो उन्होंने कहा, "यह हमारे पुराने राजा जैसा नहीं है," और उन्होंने दो श्लोक दोहराए:और उन्होंने दो छंद दोहराए:और उन्होंने दो छंद दोहराए:

"हमारे राजा, समस्त पृथ्वी के स्वामी, अब पहले जैसे नहीं रहे।"
आज वह किसी भी आनंदमय गीत पर ध्यान नहीं देता और न ही नर्तकों को देखने की परवाह करता है;
हिरण, बगीचा और हंस उसकी खोई हुई नजर को आकर्षित करने में असफल रहते हैं।
वह चुपचाप, स्तब्ध होकर बैठा रहता है और राज्य की चिंताओं को अपने ऊपर से गुजरने देता है।
उन्होंने बटलर और सेवक से पूछा, "क्या राजा कभी आपसे बात करते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "कभी नहीं।" फिर उन्होंने बताया कि कैसे राजा, ध्यान (मौन और विचारों में वैराग्य) में लीन होकर, सभी इच्छाओं से विरक्त होकर, अपने पुराने मित्रों, पच्चेक-बुद्धों को याद

कर रहे थे, और मन ही मन कह रहे थे, "मुझे उन प्राणियों का निवास स्थान कौन दिखाएगा जो सभी आसक्तियों से मुक्त और सभी गुणों से परिपूर्ण हैं?" और उन्होंने अपने गहन भावों को तीन श्लोकों में व्यक्त किया:

"सभी की नजरों से छिपा हुआ, आनंद में लीन, सभी बंधनों और नश्वर भय से मुक्त,"
किसके सुंदर उद्यान में, वृद्ध और युवा, एक साथ वे दिव्य द्रष्टा निवास करते हैं?
उन्होंने सभी इच्छाओं को त्याग दिया है, मैं उन सुखी और गौरवशाली संतों को आशीर्वाद देता हूँ।
एक ऐसी दुनिया के बीच जहाँ भावनाओं को त्याग दिया गया है, वे शांति और भावहीनता से विचरण करते हैं।
वे सब मृत्यु के जाल और छल-कपट से बच निकले हैं।
सभी बंधनों से मुक्त होकर वे अपनी इच्छा से विचरण करते हैं, हे मुझे कौन बताएगा कि वे कहाँ हैं?
महल में इस प्रकार तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए चार माह बीत गए, और अंततः उनका मन संसार त्यागने की ओर दृढ़ हो गया: उनका अपना घर उन्हें संसार के विभिन्न रूपों के बीच स्थित नरकों में से एक प्रतीत हुआ (*9), और तीनों लोक-पद्धतियाँ (*10) उन्हें आग की लपटों में घिरी हुई दिखाई दीं। इसी मनोस्थिति में वे मिथिला का वर्णन करने लगे, और सोचने लगे, "वह समय कब आएगा जब मैं इस मिथिला को, जो इंद्र के महल की तरह सुशोभित है, छोड़कर हिमवत (हिमालय) जा सकूँ और वहाँ तपस्वी का वस्त्र धारण कर सकूँ?"

मैं इस मिथिला को कब छोड़ूंगा, चाहे वह कितना भी विशाल और शानदार क्यों न हो?
वास्तुकारों द्वारा नियमों और रेखाओं को इस तरह से व्यवस्थित किया गया है कि वे देखने में सुंदर लगें।
दीवारों, फाटकों और बुर्जों से घिरा हुआ, चारों ओर सड़कों से घिरा हुआ,
घोड़ों, गायों और रथों से भरी भीड़ के साथ, तालाबों और उद्यानों को सजाया गया था,
विदेह की सुप्रसिद्ध राजधानी, अपने शूरवीरों और योद्धाओं की सेनाओं से रंगीन,
बाघ की खाल से बने वस्त्र पहने, झंडे लहराते और हथियार फहराते हुए,
इसके ब्राह्मण काशी वस्त्र पहने हुए, चंदन से सुगंधित और रत्नों से सजे हुए हैं।
इसके महल और उनकी सभी रानियाँ राजसी वस्त्रों और मुकुटों से सजी हुई!
मैं कब उन्हें छोड़कर आगे बढ़ूंगा, तपस्वी के एकांत आनंद को प्राप्त करने के लिए?
अपने चिथड़े और पानी का घड़ा लिए, वह सुखी जीवन कब शुरू होगा?
मैं कब जंगलों में घूमूंगा और उनके स्वादिष्ट फल खाऊंगा?
एकांत में अपने हृदय को उसी प्रकार लयबद्ध करना जैसे कोई सात तारों वाले वीणा को लयबद्ध करता है (*12),
वर्तमान या भविष्य के लाभ की आशा से अपनी आत्मा को मुक्त करते हुए,
जैसे मोची(*13) अपने जूते को आकार देता है
खुरदुरे सिरों को काट देता है और इसे सादा छोड़ देता है(*14)
उनका जन्म ऐसे समय में हुआ था जब मनुष्य 10,000 वर्ष की आयु तक जीवित रहते थे; इसलिए 7,000 वर्षों तक शासन करने के बाद, अपने जीवन के शेष 3,000 वर्ष रहते हुए ही वे संन्यासी बन गए। संन्यासी जीवन अपनाने के बाद भी वे आम के वृक्ष को देखने के चार महीने बाद तक एक घर में ही रहे; लेकिन यह सोचकर कि महल से संन्यासी का घर बेहतर होगा, उन्होंने चुपके से अपने सेवक को बाजार से कुछ पीले वस्त्र और एक मिट्टी का पात्र लाने का आदेश दिया। फिर उन्होंने एक नाई को बुलवाया और उससे अपने बाल और दाढ़ी कटवाई; उन्होंने एक पीला वस्त्र भीतरी वस्त्र के रूप में, दूसरा ऊपर का वस्त्र के रूप में और तीसरा अपने कंधे पर लपेट लिया, तथा अपने पात्र को एक थैली में रखकर कंधे पर लटका लिया; फिर अपनी छड़ी लेकर वे पच्चेक-बुद्ध के विजयी कदमों से ऊपरी मंजिल पर कई बार आगे-पीछे चले। उस दिन वह वहीं ठहरे रहे, परन्तु अगले दिन सूर्योदय होते ही वे नीचे उतरने लगे। रानी सिवली ने सात सौ प्रिय रखेलों को बुलवाया और उनसे कहा, "राजा को देखे हुए बहुत समय हो गया है, पूरे चार महीने हो गए हैं, आज हम उनसे मिलेंगे, तुम सब सज-धज कर, अपनी सुंदरता और आकर्षण का प्रदर्शन कर, और उन्हें वासना के जाल में फंसाने का प्रयास करो।" सभी सजी-धजी रखेलों के साथ रानी राजा से मिलने महल गईं; परन्तु यद्यपि उन्होंने राजा को नीचे आते देखा, पर उन्हें पहचान नहीं पाईं, और यह सोचकर कि कोई पच्चेक-बुद्ध राजा को उपदेश देने आए हैं, उन्होंने प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं; और बोधिसत्व महल से नीचे उतरे। लेकिन जब रानी महल में चढ़ी और उसने राजा के मधुमक्खी के रंग के बालों को राजसी पलंग पर पड़ा देखा, और उसके कक्ष की वस्तुओं को भी उसी पलंग पर पड़ा देखा, तो वह चिल्लाई, "वह कोई पच्चेक-बुद्ध नहीं थे, वह तो हमारे प्रिय स्वामी ही होंगे, हम उनसे वापस आने की विनती करेंगे।" अतः वह ऊपरी मंजिल से नीचे उतरकर महल के प्रांगण में पहुँची, और वहाँ की सभी रानियों ने अपने बाल खोलकर अपनी पीठ पर गिरा लिए और अपने हाथों से अपनी छाती पीटते हुए राजा के पीछे-पीछे विलाप करते हुए बोलीं, "हे महान राजा, आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?" सारा शहर व्याकुल हो गया, और सभी लोग राजा के पीछे-पीछे रोते हुए चले, "लोग कहते हैं कि हमारे राजा तपस्वी बन गए हैं, हमें ऐसा न्यायप्रिय शासक फिर कभी कैसे मिलेगा?"

फिर गुरु ने स्त्रियों के रोने का वर्णन करते हुए और राजा के उन सबको छोड़कर चले जाने का वर्णन करते हुए ये छंद कहे:

वहाँ सात सौ रानियाँ खड़ी थीं, अपनी भुजाएँ फैलाकर पीड़ा और विनती कर रही थीं।
अपने सभी आभूषणों से सजे हुए, उन्होंने पूछा, "महान राजा, आप हमें इस तरह क्यों छोड़ रहे हैं?"
लेकिन उन सात सौ सुंदर, कोमल और दयालु रानियों को छोड़कर, महान राजा
उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ, बिना डगमगाए, अपनी प्रतिज्ञा के मार्गदर्शन का पालन किया।
शाही वैभव और राज्य के पुराने प्रतीक, उद्‌घाटन प्याले (*15) को छोड़कर,
वह आज अपना मिट्टी का घड़ा लेकर एक नए करियर की शुरुआत करने जा रहा है।"
सिसकती हुई शिवली ने राजा को रोकने में असमर्थ पाकर, एक नए उपाय के रूप में सेनापति को बुलवाया और उनसे राजा के सामने, उस दिशा में स्थित पुराने घरों और खंडहरों के बीच आग जलाने और घास-पत्ते इकट्ठा करके विभिन्न स्थानों पर घना धुआँ करने का अनुरोध किया। उन्होंने ऐसा ही किया। फिर वह राजा के पास गईं और उनके चरणों में गिरकर दो छंदों में उन्हें बताया कि मिथिला आग की लपटों में घिरी हुई है।

भयंकर आग भड़क उठी है, भंडार और खजाने जल रहे हैं।
चांदी, सोना, रत्न, सीप और मोती, ये सभी बारी-बारी से उपभोग किए जाते हैं;
कीमती वस्त्र, हाथी दांत, तांबा, चमड़ा, सब कुछ एक ही निर्दयी भाग्य का सामना करता है;
"हे राजा, वापस लौट आओ और बहुत देर होने से पहले अपनी संपत्ति बचा लो।"
बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे रानी, तुम क्या कह रही हो? जिनके पास धन है, उनकी संपत्ति जलाई जा सकती है, लेकिन मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

"जिनके पास अपना कुछ भी नहीं है, वे बिना किसी चिंता या आह के जी सकते हैं।"
मिथिला के महल जल सकते हैं, लेकिन मेरी कोई भी चीज उससे नहीं जलेगी (*16)।"
ऐसा कहकर वह उत्तरी द्वार से बाहर चले गए, और उनकी रानियाँ भी बाहर चली गईं। रानी सिवली ने उनसे पूछा कि गाँव कैसे नष्ट हो रहे हैं और भूमि कैसे उजाड़ रही है; तो उन्होंने उन्हें दिखाया कि कैसे सशस्त्र पुरुष इधर-उधर भाग रहे हैं और विभिन्न दिशाओं में लूटपाट कर रहे हैं, जबकि अन्य, लाल लाख से सने हुए, घायल या मृत अवस्था में तख्तों पर ले जाए जा रहे हैं। लोगों ने चिल्लाकर कहा, "हे राजा, जब आप राज्य की रक्षा कर रहे हैं, तब वे आपकी प्रजा को लूट रहे हैं और मार रहे हैं।" तब रानी ने राजा से वापस लौटने की विनती करते हुए एक श्लोक दोहराया:

"जंगली वनवासी भूमि को उजाड़ देते हैं, लौटते हैं और हम सभी को बचाते हैं;
"अपने उस राज्य को, जिसे तुमने त्याग दिया है, निराशाजनक विनाश में गिरने न दो।"
राजा ने सोचा, "जब तक मैं शासन कर रहा हूँ, कोई लुटेरा राज्य को लूटने के लिए विद्रोह नहीं कर सकता, यह अवश्य ही शिवलीदेवी का आविष्कार होगा," इसलिए उसने शिवलीदेवी की बात न समझते हुए इन श्लोकों को दोहराया:

"जिनके पास अपना कुछ नहीं है, वे बिना किसी चिंता या आह के जी सकते हैं।"
राज्य भले ही उजाड़ पड़ा हो, लेकिन इससे मेरी किसी चीज को कोई नुकसान नहीं होगा।
जिनके पास अपना कुछ भी नहीं है, वे बिना किसी चिंता या आह के जी सकते हैं।
आभासर देवता की तरह परम आनंद में मग्न होकर (*17)
उसके ऐसा कहने के बाद भी लोग उसके पीछे-पीछे चलते रहे। तब उसने मन ही मन कहा, "ये लौटना नहीं चाहते, मैं इन्हें वापस भेज दूँगा।" इसलिए लगभग आधा मील चलने के बाद वह वापस मुड़ा और मुख्य मार्ग पर खड़े होकर अपने मंत्रियों से पूछा, "यह किसका राज्य है?" "आपका, हे राजा।" "तो जो भी इस रेखा को पार करे, उसे दंडित करो," ऐसा कहकर उसने अपनी छड़ी से एक रेखा खींच दी। कोई भी उस रेखा को पार नहीं कर सका; और उस रेखा के पीछे खड़े लोग ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। रानी भी उस रेखा को पार नहीं कर सकी और राजा को अपनी ओर पीठ करके आगे बढ़ते देख वह अपने दुःख को रोक नहीं पाई और अपना सीना पीटते हुए, गिरकर ज़बरदस्ती रेखा पार कर गई। लोग चिल्लाए, "रेखा रक्षकों ने रेखा तोड़ दी है," और वे रानी के पीछे-पीछे चल दिए। महान पुरुष उत्तरी हिमवत (हिमालय) की ओर चल पड़ा। रानी भी उसके साथ गई, अपने साथ पूरी सेना और सवारी के लिए जानवर भी ले गई। लोगों को रोकने में असमर्थ राजा साठ मील (4.23 किमी) की यात्रा पर आगे बढ़ गया। उस समय, नारद नामक एक तपस्वी, जो हिमालय में स्थित स्वर्ण गुफा में रहते थे, पाँचों अलौकिक शक्तियों से परिपूर्ण थे। सात दिनों तक समाधि में रहने के बाद, वे समाधि से उठे और विजयोन्माद से चिल्ला रहे थे, "हे आनंद, हे आनंद!" और अपनी दिव्य दृष्टि से यह देखने के लिए भारत में खोज करते हुए कि क्या कोई इस आनंद की तलाश में है, उन्होंने महाजनक को देखा, जो संभावित बुद्ध थे। उन्होंने सोचा, "राजा ने महान त्याग किया है, लेकिन वे रानी सिवली के नेतृत्व में उनका अनुसरण करने वाले लोगों को वापस नहीं रोक सकते, वे उनके मार्ग में बाधा डाल सकते हैं, और मैं उन्हें उनके संकल्प को और अधिक दृढ़ करने के लिए एक सलाह दूंगा"; इसलिए अपनी दिव्य शक्ति से वे राजा के सामने हवा में खड़े हो गए और उनके संकल्प को मजबूत करने के लिए इस प्रकार बोले:

"यह सारा शोरगुल और कोलाहल किस कारण से है, मानो किसी गांव में छुट्टी का माहौल हो?"
यह भीड़ यहाँ क्यों इकट्ठी हुई है? क्या तपस्वी कृपया इसका उत्तर देंगे?
राजा ने उत्तर दिया:

मैंने सीमा पार कर ली है और सांसारिक जीवन को त्याग दिया है।
इसी वजह से ये सारे लोग यहाँ आए हैं;
मैं उन्हें प्रसन्न मन से विदा करता हूँ:
आपको तो सब पता है, फिर मुझसे क्यों पूछ रहे हो?
फिर तपस्वी ने अपने संकल्प की पुष्टि करने के लिए एक श्लोक दोहराया:

"यह मत सोचो कि तुम इस शरीर के साथ अभी भी कष्ट में हो, तब तक पार कर चुके हो;"
अभी भी कई दुश्मन सामने हैं, आपने अभी तक अपनी जीत हासिल नहीं की है।"
उस महान सत्ता ने कहा:

न तो ज्ञात सुख और न ही अज्ञात सुख मेरी समर्पित आत्मा को झुकाने की शक्ति रखते हैं।
"कौन सा दुश्मन मुझे मेरे रास्ते से रोक सकता है जब मैं अंत की ओर बढ़ता रहूं?"
फिर उन्होंने बाधाओं का वर्णन करते हुए एक श्लोक दोहराया:

"नींद, आलस्य, सुख की ओर मुड़े हुए भटकते विचार, अत्यधिक भोजन, असंतुष्ट मन--"
शरीर इन अंतरंग मेहमानों को अपने साथ लाता है, आपको अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा।"
तब उस महान सत्ता ने इस श्लोक में उनकी प्रशंसा की:

"बुद्धिमान ब्राह्मण, आपके चेतावनी भरे शब्द हैं, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं, अजनबी।"
कृपया मेरे प्रश्न का उत्तर दें; आप कौन हैं, बताइए, और आपका नाम क्या है?
नारद ने उत्तर दिया:

"जान लो मैं नाम से नारद हूँ, एक कश्यप (*18); मेरा स्वर्गिक विश्राम"
मैं बस आपको यह बताने के लिए निकला था कि बुद्धिमानों की संगति करना सबसे अच्छा है।
चारों सिद्धियों का अभ्यास करें, इस अभ्यास में आपको सर्वोच्च आनंद मिलेगा;
जिस भी चीज की आपको अभी भी कमी है, उसे धैर्य और शांत भाव से पूरा करें;
अहंकार के उच्च विचार हों, अहंकार के निम्न विचार हों, न यह, न वह, ये सब ऋषि को शोभा नहीं देता;
अपने तीर्थयात्रा के रक्षक के रूप में सद्गुण, ज्ञान और कानून को अपनाएं।
फिर नारद आकाश से होते हुए अपने निवास स्थान पर लौट गए। उनके जाने के बाद, मिगाजिना नामक एक अन्य तपस्वी, जो अभी-अभी समाधि से उठे थे, ने उस महान सत्ता को देखा और उन्हें सलाह देने का निश्चय किया ताकि वे लोगों को विदा कर दें; इसलिए वे उनके ऊपर आकाश में प्रकट हुए और इस प्रकार बोले:

घोड़े और हाथी, और वे जो शहर या गाँव में रहते हैं,
हे जनक, आपने उन सबको छोड़ दिया है: मिट्टी का कटोरा आपको अच्छी तरह संतुष्ट करता है।
कहो, क्या तुम्हारी प्रजा या तुम्हारे मित्र, तुम्हारे मंत्री या तुम्हारे प्रिय रिश्तेदार हैं?
क्या विश्वासघात से आपका दिल इतना आहत हुआ है कि आपने यहाँ शरण लेने का फैसला किया है?
बोधिसत्व ने उत्तर दिया:

"हे द्रष्टा, कभी भी, किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी बहाने से,
क्या मैंने किसी मित्र के साथ कोई गलत काम किया है और न ही किसी मित्र ने मेरे साथ कोई गलत काम किया है?
मैंने संसार को पीड़ा से त्रस्त, दुख और पाप से अंधकारमय देखा;
मैंने इसके पीड़ितों को बांधकर मारते हुए देखा, जो असहाय रूप से इसके चंगुल में फंसे हुए थे;
मैंने स्वयं को चेतावनी दी और यहीं से तपस्वी जीवन की शुरुआत हुई।
और अधिक जानने की इच्छा से तपस्वी ने उससे पूछा:

"कोई भी व्यक्ति तब तक तपस्वी जीवन का चुनाव नहीं करता जब तक कि कोई शिक्षक उसे मार्ग न दिखाए।"

अभ्यास से या सिद्धांत से: आपका पवित्र गुरु कौन था, बताइए।
उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"हे द्रष्टा, मैंने आज तक कभी ऐसे शब्द नहीं सुने जिन्होंने मेरे हृदय को स्पर्श किया हो।"
ब्राह्मण या तपस्वी के मुख से, मुझसे तपस्वी का मार्ग चुनने के लिए कहा जा रहा है।"
फिर उन्होंने उसे विस्तार से बताया कि उन्होंने सांसारिक जीवन क्यों त्याग दिया था:

"गर्मी के एक दिन मैं अपने शाही उद्यान में पूरे गर्व के साथ घूम रहा था,"
चारों ओर गीतों और मधुर वाद्ययंत्रों की गूंज सुनाई दे रही थी।
और वहाँ मैंने एक आम का पेड़ देखा, जो दीवार के पास जड़ पकड़ चुका था।
यह पूरी तरह से टूटा-फूटा और उन असभ्य भीड़ द्वारा लूटा हुआ खड़ा था जो इसके फलों की तलाश में आई थी।
चौंककर मैंने अपने शाही परिधान छोड़ दिए और उत्सुकता भरी नजरों से देखने के लिए रुक गया।
इस फलदार वृक्ष के विपरीत, पास ही में एक बंजर वृक्ष उग रहा था।
फलदार वृक्ष वहाँ उदास खड़ा था, उसके सारे पत्ते झड़ गए थे, उसकी शाखाएँ नंगी थीं।
वह बंजर वृक्ष हरा-भरा और मजबूत खड़ा था, उसकी पत्तियां हवा में लहरा रही थीं।
हम राजा उस फलदार वृक्ष के समान हैं, जिसके अनेक शत्रु हमें गिराने के लिए तत्पर रहते हैं।
और हमसे उस सुखद फल को छीन लेते हैं जो हम थोड़े समय के लिए दिखाते हैं।
हाथी को उसके दांत के लिए और पैंथर को उसकी खाल के लिए मार दिया जाता है।
अंत में बेघर और दोस्तविहीन हो जाने पर धनी लोग अपनी दौलत को ही अपनी कमजोरी पाते हैं;
वे दो वृक्ष मेरे शिक्षक थे, उन्हीं से मैंने अपना पाठ सीखा।
राजा की बात सुनकर मिगाजिना ने उन्हें गंभीर होने के लिए प्रोत्साहित किया और अपने निवास स्थान पर लौट गया।

जब वह चला गया, तो रानी सिवली राजा के चरणों में गिर पड़ी और बोली,

रथों में सवार हों या हाथियों पर, पैदल सैनिक हों या घुड़सवार, सभी एक साथ हों,
आपकी प्रजा एक साथ विलाप करती है, "हमारे राजा हमें छोड़कर चले गए हैं!"
हे प्रभु, सर्वप्रथम उनके दुखी हृदयों को सांत्वना दीजिए और उनके स्थान पर अपने पुत्र को शासक के रूप में ताज पहनाइए;
फिर, यदि आप चाहें, तो संसार को त्यागकर तीर्थयात्री के एकाकी मार्ग पर चलें।"
बोधिसत्व ने उत्तर दिया:

मैंने अपनी सारी प्रजा, मित्र, रिश्तेदार, घर और जन्मभूमि सब कुछ पीछे छोड़ दिया है;
लेकिन विदेह वंश के कुलीन, दिघावु ने कमान संभालने के लिए प्रशिक्षित किया था।
हे मिथिला की रानी, भयभीत न हों, वे आपका हाथ थामने के लिए निकट ही उपस्थित रहेंगे।
रानी ने कहा, "हे राजा, आप तो तपस्वी बन गए हैं, मैं क्या करूँ?" तब उन्होंने उससे कहा, "मैं तुम्हें सलाह देता हूँ, मेरी बात मानो";
इसलिए उन्होंने उससे इस प्रकार कहा:

"यदि तुम मेरे पुत्र को शासन करना सिखाओगे, तो वह विचार, वचन और कर्म से पापी होगा,"
तुम्हारा अंत बुरा ही होगा—यही तुम्हारा भाग्य तय है;
ज्ञानी लोग कहते हैं कि दान में प्राप्त भिखारी का हिस्सा ही हमारी एकमात्र आवश्यकता है।
इस प्रकार उसने उसे सलाह दी, और वे दोनों बातें करते-करते सूर्यास्त हो गया।

रानी ने एक उपयुक्त स्थान पर डेरा डाला, जबकि राजा एक पेड़ की जड़ में जाकर रात वहीं बिताई और अगले दिन स्नान करने के बाद अपने रास्ते पर चल दिए। रानी ने सेना को पीछे आने का आदेश दिया और उनके पीछे-पीछे चलीं। भिक्षा मांगने के समय वे थुना नामक नगर में पहुँचे। उस समय नगर में एक व्यक्ति कसाईखाने से मांस का एक बड़ा टुकड़ा खरीदकर उसे कोयलों पर भूनकर ठंडा होने के लिए एक तख्ते पर रख रहा था; लेकिन जब वह किसी और काम में व्यस्त था, तो एक कुत्ता उसे लेकर भाग गया। वह व्यक्ति नगर के दक्षिणी द्वार तक उसका पीछा करता रहा, लेकिन थककर वहीं रुक गया। राजा और रानी अलग-अलग कुत्ते के आगे आ रहे थे, जिसे देखकर कुत्ता घबराकर मांस गिरा कर भाग गया। महान सत्ता ने यह देखा और सोचा, "उसने इसे गिरा दिया और अनदेखा करके चला गया, असली मालिक अज्ञात है, इससे अच्छा मांस का कोई दूसरा उपहार नहीं है: मैं इसे खाऊंगा।" इसलिए उसने अपनी मिट्टी की थाली निकाली और मांस उठाकर उसे पोंछा, फिर थाली में रखकर एक सुखद स्थान पर गया जहाँ पानी था और उसे खा लिया। रानी ने मन ही मन सोचा, "यदि राजा राज्य के योग्य होता तो वह कुत्ते का धूल भरा बचा हुआ मांस नहीं खाता; वह वास्तव में मेरा पति नहीं है"; और

उसने ऊँचे स्वर में कहा, "हे महान राजा, क्या आप ऐसा घिनौना टुकड़ा खा रहे हैं?" उसने उत्तर दिया, "यह तुम्हारी अपनी अंधता है जो तुम्हें इस मांस के टुकड़े का विशेष महत्व देखने से रोक रही है"; इसलिए उसने उस स्थान की सावधानीपूर्वक जाँच की जहाँ वह गिरा था, और उसे अमृत (देवताओं का पेय) मानकर खाया, फिर अपना मुँह, हाथ और पैर धोए।

तब रानी ने निंदा भरे शब्दों में उसे संबोधित किया:

"भोजन का समय आ जाए तो उपवास रखने पर व्यक्ति की मृत्यु हो जाएगी।"
फिर भी, इस सब के बावजूद, एक नेक आत्मा को इस तरह के घिनौने भोजन का स्वाद चखना पसंद नहीं आएगा;
तुमने जो किया वह उचित नहीं है, तुम पर शर्म है, हे राजा, मैं कहता हूँ, तुम पर शर्म है;
कुत्ते का बचा हुआ खाना खाकर तुमने बहुत ही घिनौना काम किया है।
उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"मेरे विचार से, गृहस्वामी या कुत्ते का बचा हुआ भोजन वर्जित भोजन नहीं है।"
"यदि भोजन वैध साधनों से प्राप्त किया गया हो, तो वह सभी भोजन शुद्ध और वैध है, महारानी।"
बातें करते-करते वे नगरद्वार पर पहुँचे। वहाँ कुछ लड़के खेल रहे थे और एक लड़की एक छोटी सी सूप की टोकरी में रेत छान रही थी। उसके एक हाथ में एक कंगन था और दूसरे में दो; ये दोनों कंगन आपस में खनक रहे थे, तीसरा कंगन शांत था। राजा ने यह सब देखा और मन ही मन सोचा, "शिवाली मेरा पीछा करती रहती है; पत्नी तपस्वी की कमजोरी होती है, और लोग मुझे दोष देते हैं और कहते हैं कि सांसारिक जीवन त्यागने के बाद भी मैं अपनी पत्नी को नहीं छोड़ सकता; यदि यह लड़की बुद्धिमान है, तो वह शिवाली को बता पाएगी कि उसे वापस क्यों लौट जाना चाहिए और मुझे क्यों छोड़ देना चाहिए। मैं उसकी कहानी सुनूंगा और शिवाली को विदा कर दूंगा।" इसलिए उसने उससे कहा:

"अपनी माँ की देखरेख में दुबकी हुई, बच्ची, तुम्हारे ऊपर ये गहने बंधे हुए हैं,"
एक हाथ इतना संगीतमय क्यों है जबकि दूसरा कभी कोई आवाज नहीं निकालता?
लड़की ने जवाब दिया:

"वैरागी, मैं इस हाथ में एक के बजाय दो कंगन पहनता हूँ।"
उनकी आवाज उनके संपर्क से आती है, यह उस पल से तय होता है जब यह किया जाता है।
लेकिन मेरे दूसरे हाथ पर ध्यान दीजिए: उस पर एक ही कंगन था।
वह अपनी जगह पर स्थिर रहता है और कोई आवाज नहीं करता, शांत रहता है क्योंकि वहां कोई और नहीं होता।
दूसरा झनझनाता है और कर्कश ध्वनि उत्पन्न करता है, जो अकेला होता है वह कर्कश ध्वनि उत्पन्न नहीं कर सकता;
क्या आप खुश रहेंगे? अकेले रहिए; अकेले रहने वाले ही खुश रहते हैं।
लड़की की बातें सुनकर उसने इस विचार को अपनाया और रानी को संबोधित किया:

"सुनो वो क्या कहती है; ये नौकरानी मुझे शर्म से चूर कर देगी।"
यदि मैं आपकी विनती मान लूँ, तो दोष दूसरे पर ही आएगा।
यहां दो रास्ते हैं: क्या आप एक रास्ता चुनेंगे, या दूसरा रास्ता मैं स्वयं चुनूंगा;
अब से मुझे पति मत कहना, तुम मेरी पत्नी नहीं हो: अलविदा।"
रानी ने उसकी बात सुनकर उससे दाहिनी ओर का बेहतर रास्ता लेने को कहा, जबकि उसने बायां रास्ता चुना; लेकिन थोड़ी दूर जाने के बाद, अपने दुख को रोक न पाने के कारण, वह फिर उसके पास आई, और वह और राजा एक साथ शहर में प्रवेश कर गए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा: "ये शब्द कहते हुए वे थुना नगर में प्रवेश कर गए।"

उनके प्रवेश करने के बाद, बोधिसत्व भिक्षा मांगने के लिए आगे बढ़े और एक बाणकार के घर के द्वार पर पहुँचे, जबकि सिवली एक तरफ खड़े थे। उस समय बाणकार ने कोयले के बर्तन में एक बाण को गर्म किया था और उसे खट्टी चावल की दलिया से गीला किया था, और एक आँख बंद करके दूसरी आँख से बाण को सीधा कर रहा था। बोधिसत्व ने सोचा, "यदि यह व्यक्ति बुद्धिमान है, तो वह घटना का स्पष्टीकरण दे सकेगा, मैं उससे पूछूंगा"; इसलिए वे उसके पास गए।

गुरु ने एक श्लोक में घटी घटना का वर्णन किया:

"वह एक तीर बनाने वाले के घर भिक्षा मांगने आया; वह आदमी एक आंख बंद करके खड़ा था।"
और दूसरी तरफ से उसने हाथ में मौजूद तीर को आकार देने की कोशिश की।

तब उस महान सत्ता ने उससे कहा:

"एक आंख को सबसे करीब रखें और दूसरी आंख को बगल में रखकर देखें, क्या यह सही है?"
मैं आपसे अनुरोध करता हूं, कृपया अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करें; क्या आपको लगता है कि इससे आपकी दृष्टि में सुधार होता है?
उसने जवाब दिया:

"दोनों आंखों का विस्तृत क्षितिज केवल दृश्य को विचलित करने का काम करता है;
लेकिन अगर आपको एक भी लाइन मिल जाए, तो आपका लक्ष्य तय हो जाता है, आपकी दृष्टि सही हो जाती है।
यह दूसरी चीज है जो घड़े बनाती है, जो अकेली होती है वह घड़े नहीं बना सकती;
क्या आप खुश रहेंगे? अकेले रहिए; अकेले रहने वाले ही खुश रहते हैं।
इन सलाहों के बाद वह चुप हो गया। महान प्राणी अपने भ्रमण पर आगे बढ़ा और विभिन्न प्रकार का भोजन एकत्र करके नगर से बाहर निकल गया और पानी से सुसज्जित एक सुखद स्थान पर बैठ गया; और अपना सारा काम निपटाने के बाद उसने अपना कटोरा अपने थैले में रख दिया और सिवली को संबोधित किया:

"तुम तीर बनाने वाले की बात सुनो: उस लड़की की तरह, वह मेरे सिर को शर्म से दबा देगा।"
यदि मैं आपकी विनती मान लूँ, तो दोष दूसरे पर ही आएगा।
यहां दो रास्ते हैं: क्या आप एक रास्ता चुनेंगे, या दूसरा रास्ता मैं स्वयं चुनूंगा;
अब से मुझे पति मत कहना, तुम मेरी पत्नी नहीं हो: अलविदा।"
इस भाषण के बाद भी वह उनके पीछे-पीछे चलती रही; लेकिन वह राजा को वापस लौटने के लिए राजी नहीं कर सकी, और लोग उसके पीछे-पीछे चल दिए। अब पास ही एक जंगल था और महाजन ने पेड़ों का एक घना इलाका देखा। वह रानी को वापस लौटवाना चाहते थे, और उन्होंने सड़क के पास कुछ मुंजा घास देखी; इसलिए उन्होंने उसकी एक टहनी काट ली और उससे कहा, "देखो, शिवली, यह टहनी फिर से नहीं जुड़ सकती, इसलिए हमारा संबंध फिर कभी नहीं जुड़ सकता"; और उन्होंने यह आधा श्लोक दोहराया; "एक पूर्ण विकसित मुंजा घास की तरह, हे शिवली, अकेले रहो।" जब उसने यह सुना, तो उसने कहा, "अब से मेरा राजा महाजनक से कोई संबंध नहीं होगा"; और अपने दुःख को नियंत्रित न कर पाने के कारण, उसने अपने दोनों हाथों से अपनी छाती पीटी और सड़क पर बेहोश होकर गिर पड़ी। बोधिसत्व ने उसे बेहोश देखकर, अपने पदचिह्नों को सावधानीपूर्वक मिटाते हुए जंगल में प्रवेश किया। उनके मंत्री आए और उसके शरीर पर पानी छिड़का और उसके हाथों और पैरों को मल दिया, और अंत में उसे होश आ गया। उसने पूछा, "राजा कहाँ हैं?" उन्होंने कहा, "क्या तुम नहीं जानती?" वह चिल्लाई, "उन्हें ढूँढ़ो!" लेकिन वे इधर-उधर दौड़े, फिर भी उन्हें राजा नहीं मिले। इसलिए उसने बहुत रोया और जहाँ राजा खड़े थे, वहाँ एक स्तूप बनवाकर, फूल और इत्र से पूजा की और लौट आई। बोधिसत्व हिमवत (हिमालय) में प्रवेश कर गए और सात दिनों के भीतर उन्होंने सभी ज्ञान और सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं और फिर कभी मनुष्यलोक नहीं लौटे। रानी ने उन स्थानों पर भी स्तूप बनवाए जहाँ राजा ने बाण बनाने वाले से, कन्या से, मांस खाया था, मिगजिना और नारद से, और फूल और इत्र से पूजा की; फिर सेना से घिरी हुई वह मिथिला में प्रवेश कर गई और आम के बाग में अपने पुत्र का राज्याभिषेक करवाया और उसे सेना के साथ नगर में प्रवेश कराया। लेकिन उन्होंने स्वयं एक ऋषि का तपस्वी जीवन अपनाकर उस उद्यान में निवास किया और रहस्यमय ध्यान की प्राप्ति के लिए पूर्वानुमेय अनुष्ठानों का अभ्यास किया, अंततः उन्होंने समाधि प्राप्त कर ली और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक में जन्म लेने के लिए नियत हो गईं।

गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "तथागत (बुद्ध) ने यह पहली बार नहीं किया है; उन्होंने पहले भी ऐसा किया था।" ऐसा कहकर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय समुद्र देवी उप्पलावन्ना थीं, नारद सारिपुत्र थे, मिगजिन मोग्गल्याना थे, कन्या राजकुमारी खेमा थीं, बाण निर्माता आनंद थे, शिवली राहुल की माता थीं, राजकुमार दिघावु राहुल थे, माता-पिता राजपरिवार के सदस्य थे, और मैं स्वयं राजा महाजनक था।"

फुटनोट:

(1)सत्तजमघसत्थानी (सं. 283)। पाठ -सतनी का अर्थ होगा "700 पैर," यानी 350 पुरुष (?).

(2) लोनोडकेना पढ़ना

(3)"ना, या यह एक प्रश्न है?"

(4)तो कथासरित्सागर में नाग-स्त्री नायक को तलवार और घोड़ा देती है।

(6)हत्थत्थरादिहि, पिस्तापंकांगुला

(7) यह मेरु के चारों ओर चट्टान के सात संकेंद्रित वृत्तों के बीच स्थित समुद्रों में से एक है।

(10) कमलोक, रूपब्रह्मलोक और अरूपब्रह्मलोक।

(11) एक लंबा विवरण, पुनरावृत्तियों से भरा हुआ, यहाँ बहुत संक्षिप्त किया गया है।

(12)महावग्ग, खंड 1, 16 देखें।

(13) रथकारो शब्द का प्रयोग "लकड़ी के जूते" का सुझाव दे सकता है, लेकिन बुद्ध ने इन्हें वर्जित किया था, देखें महावग्ग, श्लोक 6।

(15) राजा के राज्याभिषेक में प्रयुक्त स्वर्ण कलशों के लिए देखें रामय. II. 15, कथासरित. XV. 77.

(16)ये पंक्तियाँ विभिन्न आकृतियों में लौकिक प्रतीत होती हैं, धम्मपद, 200; महाभ. बारहवीं. 9917, 529, 664एस1.

(17)स्वर्गीय प्राणी, "प्रकाशमान," प्रधान देवदूत

(18)नारद को कभी-कभी मुनि काच्यप का पुत्र कहा जाता है; विष्णु पुराण

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **साम-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-540-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 540
समा-जातक

“जिन्होंने, जैसा कि मैंने भरा,” इत्यादि। यह कथा गुरु ने जेतवन मठ में एक ऐसे भिक्षु के बारे में सुनाई, जो अपनी माता का भरण-पोषण करता था। कहते हैं कि श्रावस्ती नगर में एक धनी व्यापारी था, जिसकी संपत्ति अठारह करोड़ (10 मिलियन) थी; उसका एक पुत्र था जो अपने माता-पिता का प्रिय और प्रियतम था। एक दिन वह युवक घर की छत पर गया और खिड़की खोलकर सड़क पर नीचे देखा; और जब उसने देखा कि बड़ी भीड़ अपने हाथों में इत्र और मालाएँ लिए जेतवन मठ की ओर धर्मोपदेश सुनने जा रही है, तो उसने कहा कि वह भी जाएगा। अतः उसने इत्र और मालाएँ मंगवाईं, और मठ गया, और सभा में वस्त्र, औषधियाँ, पेय पदार्थ आदि वितरित करके तथा भगवान बुद्ध को इत्र और मालाएँ अर्पित करके, वह एक तरफ बैठ गया। धर्म मार्ग के बारे में सुनकर, इच्छा के बुरे परिणामों और संन्यासी जीवन अपनाने से मिलने वाले आशीर्वादों को जानकर, जब सभा समाप्त हुई तो उन्होंने भगवान बुद्ध से दीक्षा मांगी, लेकिन उन्हें बताया गया कि तथागत (बुद्ध) माता-पिता की अनुमति के बिना किसी को दीक्षा नहीं देते; इसलिए वे चले गए और एक सप्ताह तक बिना भोजन किए रहे, और अंततः अपने माता-पिता की सहमति प्राप्त करके वापस लौटे और दीक्षा के लिए विनती की। गुरु ने एक भिक्षु को भेजा जिसने उन्हें दीक्षा दी; और दीक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने बहुत सम्मान और लाभ प्राप्त किया; उन्होंने अपने गुरुओं और प्रशिक्षकों का स्नेह जीता, और शिष्यत्व के पूर्ण पवित्र आदेश प्राप्त करके उन्होंने पांच वर्षों में धर्म मार्ग में महारत हासिल कर ली। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं यहाँ विचलित होकर रह रहा हूँ, यह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है," और वे रहस्यवादी अंतर्दृष्टि के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उत्सुक हो गए; अपने गुरु से ध्यान की शिक्षा प्राप्त करने के बाद, वह एक सीमावर्ती गाँव में चले गए और जंगल में रहने लगे। वहाँ उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की साधना में लगन लगाई, लेकिन बारह वर्षों तक अथक परिश्रम और प्रयास करने के बावजूद उन्हें कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। समय बीतने के साथ-साथ उनके माता-पिता भी गरीब होते चले गए, क्योंकि जो लोग उनकी ज़मीन किराए पर देते थे या उनके लिए व्यापार करते थे, उन्हें जब पता चला कि परिवार में कोई पुत्र या भाई नहीं है जो भुगतान ले सके, तो वे जो कुछ भी हाथ लगा, उसे लेकर भाग गए। घर के नौकर और मजदूर भी सोना-सिक्का लेकर भाग गए, जिससे अंत में दोनों की हालत बहुत खराब हो गई और उनके पास पानी डालने के लिए एक घड़ा भी नहीं बचा। अंत में उन्होंने अपनी संपत्ति बेच दी और बेघर होकर घोर विपत्ति में भिक्षा मांगने के लिए फटे-पुराने कपड़ों में भटकने लगे और हाथों में टूटे हुए मिट्टी के बर्तन लिए घूम रहे थे। उसी समय जेतवन मठ से एक भिक्षु उनके घर आए। उन्होंने आतिथ्य सत्कार के कर्तव्यों का पालन किया और चुपचाप बैठे हुए सबसे पहले पूछा कि वे कहाँ से आए हैं; और यह जानकर कि वे जेतवन मठ से आए हैं, उन्होंने गुरु और प्रमुख शिष्यों के स्वास्थ्य के बारे में पूछा और

फिर उनके माता-पिता के बारे में जानकारी मांगी, "मुझे बताइए, महोदय,श्रावस्ती नगर के फलां व्यापारी परिवार के कल्याण के बारे में पूछो। "हे मित्र, उस परिवार का हालचाल मत पूछो।" "क्यों नहीं, महोदय?" "कहते हैं कि उस परिवार में एक पुत्र था, परन्तु वह धर्म मार्ग पर चलकर संन्यासी बन गया, और उसके सांसारिक जीवन त्यागने के बाद से वह परिवार बर्बाद हो गया है; और इस समय वे दोनों वृद्ध अत्यंत दयनीय अवस्था में हैं और भिक्षा मांगते हैं।" दूसरे की बात सुनकर वह विचलित हुए बिना नहीं रह सका, और उसकी आँखों में आँसू भर आए और वह रोने लगा। जब दूसरे ने उससे पूछा कि वह क्यों रो रहा है, तो उसने उत्तर दिया, "हे महोदय, वे मेरे अपने माता-पिता हैं, मैं उनका पुत्र हूँ।" "हे मित्र, तुम्हारे कारण तुम्हारे माता-पिता बर्बाद हो गए हैं, क्या तुम जाकर उनकी देखभाल करोगे?" उसने मन ही मन सोचा, "बारह वर्षों से मैंने परिश्रम किया है, परन्तु न तो मार्ग प्राप्त कर सका हूँ और न ही फल: मैं अयोग्य हूँ; संन्यासी जीवन से मेरा क्या लेना-देना है?" मैं गृहस्थ बनूंगा और अपने माता-पिता का सहारा बनूंगा, अपनी सारी संपत्ति दान कर दूंगा, और इस प्रकार अंततः स्वर्ग के लिए नियत हो जाऊंगा।" ऐसा निश्चय करके उन्होंने जंगल में अपना निवास स्थान वरिष्ठ भिक्षु को सौंप दिया, और अगले दिन प्रस्थान किया और क्रमिक रूप से श्रावस्ती शहर से कुछ ही दूरी पर स्थित जेतवन मठ के पीछे वाले मठ तक पहुंचे। वहां उन्हें दो रास्ते मिले, एक जेतवन मठ की ओर जाता था, दूसरा श्रावस्ती शहर की ओर। वहां खड़े होकर उन्होंने सोचा, "क्या मैं पहले अपने माता-पिता के दर्शन करूं या बुद्ध के?" फिर उन्होंने मन ही मन कहा, "पुराने दिनों में मैंने अपने माता-पिता के दर्शन लंबे समय तक किए थे, अब से मुझे बुद्ध के दर्शन का अवसर शायद ही कभी मिलेगा; मैं आज पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के दर्शन करूँगा और विधि का पाठ सुनूँगा, और फिर कल सुबह अपने माता-पिता से मिलूँगा।" इस प्रकार वह श्रावस्ती नगरी जाने का मार्ग छोड़कर शाम को जेतवन मठ पहुँच गया। उसी दिन भोर होते ही, गुरु ने संसार को देखते हुए इस युवक की क्षमताओं को पहचान लिया, और जब वे उससे मिलने आए तो उन्होंने मतिपोसक-सूत्र (*1) में माता-पिता के गुणों की प्रशंसा की। जब वे वरिष्ठों की सभा के अंत में खड़े होकर सुन रहे थे, तो उन्होंने सोचा, "यदि मैं गृहस्थ बन जाऊँ तो मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण कर सकता हूँ; परन्तु गुरु यह भी कहते हैं, "एक तपस्वी पुत्र सहायक हो सकता है"; मैं गुरु के दर्शन किए बिना ही चला गया था, और इस अपूर्ण दीक्षा में मैं असफल रहा; अब मैं गृहस्थ बने बिना, संन्यासी रहते हुए अपने माता-पिता का भरण-पोषण करूँगा।" इसलिए उन्होंने अपना टिकट और टिकट के साथ भोजन और दलिया लिया और बारह वर्षों तक वन में एकांतवास करने के बाद उन्हें ऐसा लगा मानो उन्होंने कोई पाप कर दिया हो जिसके लिए उन्हें निष्कासन का सामना करना पड़े। सुबह वे श्रावस्ती नगर गए और मन ही मन सोचने लगे, "पहले दलिया लूँ या अपने माता-पिता से मिलूँ?" उन्होंने सोचा कि निर्धनता में उनके घर खाली हाथ जाना उचित नहीं होगा; इसलिए उन्होंने पहले दलिया लिया और फिर उनके पुराने घर के द्वार पर गए ।जब उसने देखा कि वे शोरबा में दिए गए भिक्षादान के बाद सामने वाली दीवार के पास बैठे हैं, तो वह अचानक दुःख से भर उठा और उसकी आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने उसे देखा तो सही, पर पहचान नहीं पाए; तब उसकी माँ ने सोचा कि कोई भिक्षा माँगने आया है, और उससे कहा, "हमारे पास तुम्हें देने के लिए कुछ नहीं है, कृपया आगे बढ़ो।" जब उसने उसकी बात सुनी, तो उसने अपने हृदय में भरे दुःख को दबा लिया और पहले की तरह ही आँसुओं से भरी आँखों से खड़ा रहा, और जब उसे दूसरी और तीसरी बार भी कहा गया, तब भी वह खड़ा ही रहा। अंत में पिता ने माँ से कहा, "उसके पास जाओ; क्या यह तुम्हारा बेटा है (*2)?" वह उठी और उसके पास गई और उसे पहचानकर उसके चरणों में गिर पड़ी और विलाप करने लगी, और पिता भी उसके साथ रोने लगा, और दुःख का एक ज़ोरदार विस्फोट हुआ। अपने माता-पिता को देखकर वह खुद को संभाल नहीं पाया और फूट-फूट कर रोने लगा; फिर, अपने भावों को काबू में करके उसने कहा, "दुःख मत करो, मैं तुम्हारा सहारा बनूँगा"; तो उन्हें दिलासा देकर और दलिया पिलाकर एक तरफ बिठाकर, वह फिर गया और उनसे भोजन की भीख माँगकर उन्हें दिया, फिर अपने लिए भीख माँगने गया और भोजन समाप्त करके थोड़ी दूर पर रहने लगा। उस दिन से वह इसी प्रकार अपने माता-पिता की देखभाल करता रहा; वह अपने लिए प्राप्त होने वाली सारी भीख उन्हें दे देता था, यहाँ तक कि पखवाड़े भर के वितरण में मिलने वाली भी, और वह अपने लिए भीख लेने के लिए अलग से जाता और उसे खाता; और बरसात के मौसम के लिए जो भी भोजन उसे मिलता, वह उन्हें दे देता, जबकि उनके पुराने वस्त्र लेकर दरवाजे बंद करके उन्हें रंगता और स्वयं पहनता था: परन्तु उसे भीख मिलने के दिन कम ही आते थे और भीख न मिलने के दिन अनेक थे, और उसके भीतरी और बाहरी वस्त्र बहुत खुरदुरे हो गए थे। अपने माता-पिता की देखभाल करते-करते वह धीरे-धीरे बहुत पीला और दुबला हो गया और उसके मित्रों और निकट संबंधियों ने उससे कहा, "तुम्हारा रंग पहले तो चमकीला हुआ करता था, लेकिन अब तुम बहुत पीले पड़ गए हो, क्या तुम्हें कोई बीमारी हो गई है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे कोई बीमारी नहीं हुई है, बस एक बाधा आ गई है," और उन्होंने उन्हें पूरी कहानी सुनाई। "महोदय," उन्होंने कहा, "गुरुजी हमें भक्तों की भेंट को व्यर्थ करने की अनुमति नहीं देते, आप भक्तों की भेंट को आम लोगों को देकर गैरकानूनी काम कर रहे हैं।" यह सुनकर वे लज्जित होकर चले गए। लेकिन इससे संतुष्ट न होकर वे गुरुजी के पास गए और कहा, "महोदय, फलां व्यक्ति ने भक्तों की भेंट को व्यर्थ कर दिया और उसे आम लोगों को खिलाने में इस्तेमाल किया।" गुरुजी ने उस सन्यासी युवक को बुलवाया और उससे कहा, "क्या यह सच है कि तुम, एक तपस्वी होकर, भक्तों की भेंट लेकर आम लोगों का भरण-पोषण करते हो?" उसने स्वीकार किया कि यह सच है। तब गुरुजी ने उसके कार्य की प्रशंसा करते हुए और अपने एक पुराने कार्य के बारे में बताते हुए कहा, "जब तुम आम लोगों का भरण-पोषण करते हो तो किसका करते हो?" "अपने माता-पिता का," उसने उत्तर दिया। तब गुरुजी,उन्हें और अधिक प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने तीन बार कहा, "शाबाश, शाबाश"; "तुम उस मार्ग पर चल रहे हो जिस पर मैं तुमसे पहले चल चुका हूँ: पुराने समय में, भिक्षा माँगते हुए मैंने अपने माता-पिता का भरण-पोषण किया था।" तपस्वी इससे उत्साहित हो गया। भिक्षुओं के अनुरोध पर, गुरु ने अपने पूर्व कार्यों को बताने के लिए उन्हें पुराने समय की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले, बनारस से कुछ ही दूरी पर, नदी के निकटवर्ती किनारे पर, शिकारियों का एक गाँव था, और दूसरा गाँव नदी के दूसरी ओर था; प्रत्येक गाँव में पाँच सौ परिवार रहते थे। अब इन दोनों गाँवों में दो शिकारी सरदार रहते थे जो घनिष्ठ मित्र थे; और उन्होंने अपने यौवनकाल में यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि उनमें से एक को पुत्री और दूसरे को पुत्र हो, तो वे दोनों का विवाह करा देंगे। समय बीतने पर निकटवर्ती गाँव के सरदार को पुत्र और दूरवर्ती गाँव के सरदार को पुत्री हुई; पहले सरदार का नाम दुकुलका रखा गया क्योंकि जन्म के समय उसे उत्तम वस्त्र में लपेटकर लाया गया था (*3), जबकि दूसरी का नाम परिका रखा गया क्योंकि वह नदी के दूसरी ओर पैदा हुई थी। दोनों देखने में सुंदर और सुनहरे रंग के थे; और यद्यपि वे शिकारियों के गाँव में पैदा हुए थे, उन्होंने कभी किसी भी जीवित प्राणी को नुकसान नहीं पहुँचाया। जब दुकुलका सोलह वर्ष का हुआ, तो उसके माता-पिता ने उससे कहा, "हे पुत्र, हम तुम्हारे लिए एक दुल्हन लाएँगे"; लेकिन ब्रह्मलोक से नव-प्रवेशित उस शुद्ध प्राणी ने अपने दोनों कान बंद कर लिए और कहा, "मैं घर में नहीं रहना चाहता, ऐसी बात मत करो"; और यद्यपि उन्होंने तीन बार यही बात दोहराई, फिर भी उसने इस संबंध में कोई इच्छा नहीं जताई। परिका ने भी, जब उसके माता-पिता ने उससे कहा, "हमारे मित्र का पुत्र सुंदर और स्वर्ण-रंग का है, हम तुम्हें उससे विदा करने जा रहे हैं," तो उसने भी यही उत्तर दिया और अपने कान बंद कर लिए, क्योंकि वह भी ब्रह्मलोक से आई थी। दुकुलक ने उसे गुप्त रूप से संदेश भेजा, "यदि तुम अपने पति के साथ पत्नी के रूप में रहना चाहती हो, तो किसी दूसरे परिवार में चली जाओ, क्योंकि मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं है," और उसने भी उसे ऐसा ही संदेश भेजा। लेकिन चाहे वे कितने भी अनिच्छुक क्यों न हों, माता-पिता ने विवाह संपन्न कर दिया। परन्तु वे दोनों प्रधान देवदूत ब्रह्म की तरह अलग-अलग रहे, कामवासना के सागर में नहीं उतरे। दुकुलक ने कभी मछली या हिरण का वध नहीं किया, यहाँ तक कि उसके पास लाई गई मछली भी उसने कभी नहीं बेची। अंत में उनके माता-पिता ने उनसे कहा, “यद्यपि तुम शिकारी परिवार में जन्मे हो, फिर भी तुम्हें घर में रहना और किसी भी जीवित प्राणी को मारना पसंद नहीं है; तुम क्या करोगे?” उन्होंने उत्तर दिया, “यदि आप मुझे अनुमति देंगे, तो मैं आज ही संन्यासी बन जाऊँगा।” उन्होंने तुरंत दोनों को अनुमति दे दी। उन्हें विदाई देकर वे गंगा के किनारे-किनारे चलते हुए हिमवत (हिमालय) क्षेत्र में प्रवेश कर गए, जहाँ मिगासम्मत नदी पर्वत से नीचे बहकर गंगा में मिलती है; फिर गंगा को छोड़कर वे मिगासम्मत के किनारे-किनारे ऊपर की ओर चले गए। उसी क्षण इंद्र का महल अत्यधिक गर्म हो गया। कारण जानकर सक्का (इंद्र) ने विश्वकर्मा को आदेश दिया, "हे विश्वकर्मा, दो महान प्राणियों ने सांसारिक जीवन त्यागकर हिमवत (हिमालय) में प्रवेश किया है, हमें उनके लिए एक निवास स्थान खोजना होगा, जाओ और मिगासम्मता नदी से एक चौथाई मील दूर उनके लिए पत्तों की एक कुटिया बनाओ और तपस्वी जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराओ और यहाँ वापस आओ।" अतः वह गया और मुगपक्ष जन्म (*4) में वर्णित अनुसार सब कुछ तैयार किया।और सभी अप्रिय शोर मचाने वाले जानवरों को भगाकर और पास में एक पगडंडी बनाकर वह अपने घर लौट आया। उन्होंने पगडंडी देखी और उस पर चलकर आश्रम तक पहुँचे। जब दुकुलक आश्रम में गए और वहाँ एक तपस्वी के जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ देखीं, तो उन्होंने कहा, "यह हमें सक्का (इंद्र) का उपहार है"; इसलिए उन्होंने अपना बाहरी वस्त्र उतारकर लाल छाल का वस्त्र धारण किया और अपने कंधे पर एक काला हिरण का खाल डाला और अपने बालों को एक गाँठ में बाँधकर एक तपस्वी का वेश धारण किया, और परिका को दीक्षा देकर, वे उसके साथ वहाँ रहने लगे, और इंद्रिय सुख के संसार से संबंधित सभी परोपकारी भावों का अभ्यास किया (*5)। उनके परोपकारी भावों के प्रभाव से सभी पक्षियों और जानवरों ने एक-दूसरे के प्रति केवल दयालु भाव रखे, उनमें से किसी ने भी दूसरे को हानि नहीं पहुँचाई। परी जल और भोजन लाती है, आश्रम की सफाई करती है और सारे काम करती है। वे दोनों तरह-तरह के फल इकट्ठा करके खाते हैं और फिर अपने-अपने पत्तों से बने घरों में जाकर तपस्वी जीवन के नियमों का पालन करते हैं। सक्का (इंद्र) उनकी जरूरतों का ख्याल रखते हैं। एक दिन उन्होंने देखा कि उन पर कोई खतरा मंडरा रहा है, "उनकी दृष्टि चली जाएगी।" इसलिए वे दुकुलका के पास गए; और एक तरफ बैठकर उन्हें प्रणाम करने के बाद बोले, "हे प्रभु, मुझे आप पर एक खतरा दिखाई दे रहा है, आपको अपना ख्याल रखने के लिए एक पुत्र की आवश्यकता है: संसार के मार्ग पर चलें।" "हे सक्का (इंद्र), आप ऐसी बात क्यों कह रहे हैं? जब हम घर में रहते थे तब भी हम शारीरिक संबंध से विमुख रहते थे; क्या अब जब हम जंगल में आकर तपस्वी जीवन जी रहे हैं, तब भी हम ऐसा कर सकते हैं?" "ठीक है, अगर तुम मेरी बात नहीं मानोगे, तो उचित समय पर परी की नाभि को अपने हाथ से स्पर्श करो।" उन्होंने ऐसा करने का वादा किया। और सक्का (इंद्र) ने उन्हें प्रणाम करने के बाद अपने निवास स्थान पर लौट गए। उस महान प्राणी ने परी को यह बात बताई, और उचित समय पर उन्होंने अपने हाथ से उनकी नाभि को छुआ। तब बोधिसत्व स्वर्गलोक से अवतरित होकर उनके गर्भ में प्रवेश कर गए और वहीं गर्भ धारण किया। दसवें महीने के अंत में उन्होंने सुनहरे रंग के पुत्र को जन्म दिया, और उन्होंने उसका नाम सुवन्नासमा रखा। (अब दूसरे पर्वत पर किन्नरी अप्सराओं ने परी का पालन-पोषण किया था।) माता-पिता ने शिशु को नहलाया और उसे पत्तों के ढेर में रखकर विभिन्न प्रकार के फल एकत्र करने चले गए। उनके जाने के बाद किन्नरों ने शिशु को अपनी गुफाओं में ले जाकर नहलाया, और पर्वत की चोटी पर जाकर उसे विभिन्न फूलों से सजाया, और पीले रंग के ऑर्पिमेंट, लाल आर्सेनिक और अन्य रंगों से उसके विश्वास के चिह्न बनाए, और फिर उसे वापस कुटिया में उसके पलंग पर ले आए; और जब परी घर लौटीं तो उन्होंने शिशु को दूध पिलाया। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, वे उसे बहुत प्यार करते रहे, और जब वह लगभग सोलह वर्ष का हुआ, तो वे उसे झोपड़ी में छोड़कर जंगल से जड़ें और फल लाने के लिए बाहर जाया करते थे। बोधिसत्व ने सोचा,“एक दिन कोई न कोई खतरा जरूर आएगा”; वह उनके जाने के रास्ते पर नजर रखता था। एक दिन शाम को वे जड़-फल इकट्ठा करके घर लौट रहे थे, तभी आश्रम से कुछ ही दूर एक घना बादल छा गया। उन्होंने एक पेड़ की जड़ों में

शरण ली और चींटियों के टीले पर खड़े हो गए; उस टीले में एक सांप रहता था। उनके शरीर से पानी टपक रहा था, जिसकी गंध पसीने की गंध सांप की नाक तक पहुँच गई, और क्रोधित होकर उसने अपनी साँस छोड़ी और उन्हें वहीं पर मार दिया, जिससे वे दोनों अंधे हो गए और एक-दूसरे को देख नहीं पा रहे थे। दुकुलका ने पाली को पुकारा, “मेरी आँखें चली गई हैं, मैं तुम्हें देख नहीं सकता”; और पाली ने भी यही शिकायत की। “हमारे पास जीवन नहीं बचा है,” उन्होंने कहा, और वे शोक मनाते हुए इधर-उधर भटकने लगे, उन्हें रास्ता नहीं मिल रहा था। “हमने पहले कौन सा पाप किया होगा?” उन्होंने सोचा। पहले वे एक चिकित्सक के परिवार में पैदा हुए थे, और चिकित्सक ने एक धनी व्यक्ति का आँखों की बीमारी का इलाज किया था, लेकिन रोगी ने उन्हें कोई शुल्क नहीं दिया था; क्रोधित होकर उसने अपनी पत्नी से कहा, "हम क्या करें?" पत्नी भी क्रोधित थी और बोली, "हमें उसका पैसा नहीं चाहिए; कुछ दवा बनाओ और उसे औषधि का नाम दो और उससे उसकी एक आँख फोड़ दो।" वह मान गया और उसने उसकी सलाह मानी, और इस पाप के कारण उन दोनों की दोनों आँखें अंधी हो गईं।

तब उस महान प्राणी ने सोचा, "अन्य दिनों में मेरे माता-पिता हमेशा इसी समय लौट आते थे, मुझे नहीं पता कि उनके साथ क्या हुआ है, मैं जाकर उनसे मिलूंगा"; इसलिए वह उनसे मिलने गया और एक आवाज़ निकाली। उन्होंने आवाज़ पहचान ली और जवाब में एक आवाज़ करते हुए, लड़के के प्रति अपने स्नेह से कहा, "हे समा, यहाँ खतरा है, पास मत आओ।" तब उसने उन्हें एक लंबा डंडा दिया और उसका सिरा पकड़ने को कहा, और उन्होंने उसे पकड़कर उसके पास आ गए। तब उसने उनसे पूछा, "तुम्हारी दृष्टि कैसे चली गई?" "बारिश के समय हमने एक पेड़ की जड़ों में शरण ली और चींटियों के टीले पर खड़े हो गए, और इससे हम अंधे हो गए।" यह सुनकर वह समझ गया कि क्या हुआ था। "वहाँ ज़रूर कोई साँप रहा होगा, और उसने गुस्से में आकर ज़हरीली साँस छोड़ी होगी"; और जब उसने उनकी ओर देखा तो वह रोया भी और हँसा भी। तब उन्होंने उससे पूछा कि वह क्यों रो रहा है और हँस रहा है। “तुम्हारी आँखों की रोशनी इतनी कम उम्र में चली गई, इस बात पर मुझे रोना आया, लेकिन यह सोचकर मुझे खुशी हुई कि अब मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा; दुखी मत हो, मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा।” फिर वह उन्हें वापस आश्रम ले गया और उसने दिन और रात के कमरों, बाड़ों और सभी अलग-अलग कमरों को अलग करने के लिए चारों ओर रस्सियाँ बाँध दीं; और उस दिन से उसने उन्हें अंदर ही रहने के लिए कहा, जबकि वह स्वयं जंगल की जड़ें और फल इकट्ठा करता, और सुबह उनके कमरों की सफाई करता, और मिगासममाता नदी से पानी लाता, और उनके लिए भोजन और नहाने का पानी और दाँत साफ करने के लिए ब्रश तैयार करता, और उन्हें तरह-तरह के मीठे फल देता, और उनके मुँह धोने के बाद वह स्वयं भोजन करता। भोजन करने के बाद उसने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और हिरणों के झुंड से घिरा हुआ फल इकट्ठा करने के लिए जंगल में चला गया। पर्वत में किन्नरों के एक समूह के साथ फल इकट्ठा करने के बाद वह शाम को लौटा, और एक बर्तन में पानी गर्म करके उन्हें स्नान करने और पैर धोने की अनुमति दी। फिर वह टूटे हुए मिट्टी के बर्तन में गर्म कोयले भरकर लाया और उनके अंगों को भाप दी। उनके बैठने पर उसने उन्हें तरह-तरह के फल दिए और अंत में अपना भोजन स्वयं खाया और बचा हुआ भोजन अलग रख दिया। इस प्रकार उसने अपने माता-पिता की देखभाल की।

उस समय बनारस में पिलियाक्खा नामक एक राजा का शासन था। हिरण के मांस की अत्यधिक लालसा के कारण उसने राज्य अपनी माता को सौंप दिया और पाँचों प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित होकर हिमवत (हिमालय) क्षेत्र में आया। वहाँ वह हिरणों का शिकार करता और उनका मांस खाता हुआ मिगासम्मता नदी तक पहुँचा और अंत में उस स्थान पर पहुँचा जहाँ साम (एक प्रकार का जानवर) जल भरने आता था। वहाँ हिरणों के पदचिह्न देखकर उसने रत्नों के रंग की शाखाओं से अपना आश्रय बनाया और धनुष पर विषैला बाण लगाकर घात लगाकर बैठ गया। संध्या में उस महान प्राणी ने अपने फल एकत्र करके आश्रम में रखे और अपने माता-पिता को प्रणाम करते हुए कहा, "मैं स्नान करके जल लेने जाता हूँ।" उसने अपना घड़ा लिया और अपने हिरणों के समूह से घिरा हुआ, झुंड में से दो हिरणों को अलग किया और घड़ा उनकी पीठ पर रखकर, हाथ से उनका मार्गदर्शन करते हुए स्नान स्थल की ओर चल पड़ा। अपने आश्रय में छिपे राजा ने उसे आते देखा और मन ही मन कहा, "यहाँ भटकते-भरे मैंने आज तक कोई मनुष्य नहीं देखा; क्या वह कोई देवता (देवदूत) है या नाग? अब अगर मैं ऊपर जाकर उससे पूछूँ, तो यदि वह देवता (देवदूत) है तो वह स्वर्ग में उड़ जाएगा, और यदि वह नाग है तो वह पृथ्वी में समा जाएगा। लेकिन मैं हमेशा हिमवत (हिमालय) में नहीं रहूँगा, और एक दिन मैं बनारस लौटूँगा, और मेरे मंत्री मुझसे पूछेंगे कि क्या मैंने हिमवत (हिमालय) में अपने शिकार के दौरान कोई नया चमत्कार नहीं देखा। यदि मैं उन्हें बताऊँ कि मैंने फलाँ-फलाँ प्राणी देखा है, और वे मुझसे उसका नाम पूछें, तो यदि मुझे उत्तर देना पड़े कि मुझे नहीं पता, तो वे मुझे दोष देंगे; इसलिए मैं उसे घायल कर दूँगा और उसे अपंग कर दूँगा, और फिर उससे पूछूँगा।" इसी बीच जानवर पहले नीचे गए और पानी पीकर स्नान-स्थान से ऊपर आ गए; फिर बोधिसत्व एक परम ज्ञाता की तरह धीरे-धीरे जल में उतर गए, मानो वे नियमों के पूर्ण ज्ञाता हों। वे पूर्ण शांति प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने वस्त्र धारण कर लिए, हिरण की खाल को एक कंधे पर डाल लिया और जल-कलश उठाकर उसे भरकर अपने बाएं कंधे पर रख लिया। इसी क्षण राजा ने तीर चलाने का समय देखकर विषैला बाण चलाया और बोधिसत्व के दाहिनी ओर घायल हो गए, तथा बाण बाईं ओर से निकल गया। हिरणों का झुंड उन्हें घायल देखकर भयभीत होकर भाग गया, परन्तु सुवन्नासमा घायल होते हुए भी यथासंभव जल-कलश को संभाले रहे और होश में आकर धीरे-धीरे जल से बाहर आ गए। उन्होंने रेत खोदकर एक तरफ ढेर कर दी और अपने माता-पिता की कुटिया की ओर सिर करके, चांदी की थाली के समान रंग की रेत पर एक सुनहरी प्रतिमा की तरह लेट गए।

फिर उन्होंने सारी परिस्थितियों पर विचार किया। "हिमवत (हिमालय) के इस क्षेत्र में मेरा कोई शत्रु नहीं है, और न ही मेरी किसी से कोई दुश्मनी है।" ये शब्द कहते ही उसके मुँह से खून बहने लगा और राजा को देखे बिना ही उसने ये श्लोक उसे संबोधित किया:

"जब मैं अपना घड़ा भर रहा था, तभी घात लगाकर उसने मुझे घायल कर दिया।"
ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य, मेरा अज्ञात हमलावर कौन हो सकता है?”
फिर उसने अपने शरीर को भोजन के रूप में व्यर्थ बताने के लिए एक और छंद जोड़ा:

"तुम मेरे मांस को भोजन के लिए नहीं ले सकते, तुम मेरी खाल का उपयोग नहीं कर सकते।"
तुम मुझे अपने लक्ष्य के लायक क्यों समझते हो; तुम्हें इससे क्या लाभ होने की उम्मीद थी?
और फिर एक और व्यंक्ति ने उससे उसका नाम पूछा, (पहले की तरह ही)।

"तुम कौन हो, बताओ, तुम किसके पुत्र हो? और मैं तुम्हें किस नाम से पुकारूँ?"
आप वहां घात लगाकर क्यों बैठे हैं? मेरे सवालों का सच-सच जवाब दीजिए।
जब राजा ने यह सुना, तो उसने मन ही मन सोचा, "यद्यपि वह मेरे विषैले तीर से घायल होकर गिर पड़ा है, फिर भी वह न तो मेरा अपमान करता है और न ही मुझे दोष देता है; वह मुझसे कोमल शब्दों में बात करता है मानो मेरे हृदय को शांत कर रहा हो, मैं उसके पास जाऊँगा"; अतः वह गया और उसके निकट खड़ा होकर बोला:

मैं कासिस वंश का स्वामी हूँ, मेरा नाम राजा पिलियाक्खा है; और यहाँ,
देह की लालसा में अपना सिंहासन छोड़कर, मैं जंगल के हिरणों का शिकार करने के लिए भटकता हूँ।
मैं तीरंदाजी में निपुण हूँ, मेरा हृदय दृढ़ है और मैं आसानी से नहीं बदलता;
एक बार अगर कोई नाग मेरी सीमा में आ गया तो वह मेरे तीर से बच नहीं सकता।"
इस प्रकार अपनी खूबियों की प्रशंसा करते हुए, उसने दूसरे व्यंक्ति से उसका नाम और परिवार के बारे में पूछा:

"पर तुम कौन हो? तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारा नाम क्या है? अपना नाम बताओ;"
अपने पिता का नाम और परिवार बताइए, अपने पिता और अपने परिवार के बारे में बताइए।
उस महान प्राणी ने सोचा, "अगर मैं उससे कहूँ कि मैं देवताओं (देवदूतों) या किन्नरों में से हूँ, या मैं क्षत्रिय या इसी तरह की जाति का हूँ, तो वह मुझ पर विश्वास कर लेगा; लेकिन सच ही बोलना चाहिए," इसलिए उसने कहा:

"जब मैं जीवित था, लोग मुझे समा कहकर पुकारते थे; मैं एक बहिष्कृत शिकारी का बेटा हूँ।"
लेकिन यहाँ तुम मुझे दयनीय हालत में जमीन पर पड़ा हुआ देख रहे हो।
तुम्हारे उस विषैले बाण से घायल होकर, मैं किसी हिरण की तरह असहाय पड़ा हूँ।
तुम्हारी घातक कुशलता का शिकार, मेरे खून में लथपथ मैं यहाँ पड़ा हूँ।
तुम्हारे लिंग ने मेरे शरीर को भेद दिया है, मैं हर सांस के साथ खून की उल्टी कर रही हूँ।
फिर भी, कमजोर और दुर्बल होकर, मैं आपसे पूछता हूँ, आप अपने घात से मेरी मृत्यु क्यों चाहते हैं?
तुम मेरे मांस को भोजन के लिए नहीं ले सकते, तुम मेरी खाल का उपयोग नहीं कर सकते;
तुम मुझे अपना लक्ष्य क्यों नहीं बना सके? तुम्हें इससे क्या लाभ होने की उम्मीद थी?
जब राजा ने यह सुना, तो उसने असली सच्चाई नहीं बताई, बल्कि एक झूठी कहानी गढ़कर कहा:

"एक हिरण मेरी सीमा के भीतर आ गया था, मैंने सोचा कि वही मेरा इनाम होगा।"
लेकिन तुम्हें देखकर वह डर के मारे भाग गया, इसलिए मेरे मन में तुम्हारे लिए कोई क्रोधित विचार नहीं आया।
तब उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "हे राजा, आप क्या कहते हैं? इस समस्त हिमवत (हिमालय) में एक भी हिरण ऐसा नहीं है जो मुझे देखकर भाग जाए।"

"जबसे मेरे सोचने-समझने के शुरुआती साल शुरू हुए, जहाँ तक मेरी याददाश्त जाती है,
कोई भी शांत हिरण या शिकारी जानवर डर के मारे मेरे रास्ते से भागने की कोशिश नहीं करता।
जब से मैंने छाल से बनी अपनी पोशाक पहनी और अपने बचपन के दिनों को पीछे छोड़ दिया
न तो कोई शांत हिरण और न ही कोई शिकारी जानवर मुझे अपने रास्ते से गुजरते हुए देखकर भागा है।
नहीं, ये भयानक जिन्न मेरे मित्र हैं, जो मेरे साथ इस जंगल की छाया में घूमते हैं।
तो फिर, जैसा कि आप कहते हैं, मुझे देखकर यह हिरण डरकर क्यों भाग गया?

जब राजा ने उसकी बात सुनी, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैंने इस निर्दोष प्राणी को चोट पहुँचाई है और झूठ बोला है, अब मैं सच कबूल करता हूँ।" इसलिए उसने कहा:

"समा, तुम्हें वहां किसी हिरण ने नहीं देखा, मैं बेवजह झूठ क्यों बोलूं?"
मैं क्रोध और लालच से अभिभूत था और मैंने वह तीर चलाया, वह मैं ही था।"
फिर उसने दोबारा सोचा, "सुवन्नासमा इस जंगल में अकेले नहीं रह रहे होंगे, उनके रिश्तेदार ज़रूर यहीं रहते होंगे; मैं उनसे उनके बारे में पूछूंगा।" इस प्रकार उसने एक श्लोक कहा:

"दोस्त, तुम आज सुबह कहाँ से आए? तुम्हें अपना पानी का घड़ा लाने के लिए किसने कहा?"
और इसे नदी के किनारे से भरें और इस भार को इतनी दूर तक वापस ले जाएं?
यह सुनकर उसे तीव्र पीड़ा हुई और उसके मुंह से खून बहने लगा, तभी उसने एक छंद कहा:

"मेरे माता-पिता उस जंगल में रहते हैं, वे अंधे हैं और मेरी देखभाल पर निर्भर हैं।"
मैं उन्हीं के लिए नदी किनारे पानी भरने आया हूँ।
फिर उन्होंने उनकी दयनीय स्थिति पर शोक व्यक्त करते हुए आगे कहा:

"उनका जीवन एक टिमटिमाती चिंगारी मात्र है (*6), उनका भोजन अधिक से अधिक एक सप्ताह की आपूर्ति है,
जो पानी मैं लाया हूँ, उसके बिना वे अंधे, कमजोर और असहाय होकर मर जाएंगे।
मैं मृत्यु के दर्द के बारे में नहीं सोचता, वह तो सभी का सामान्य भाग्य है;
मेरे पिता का चेहरा फिर कभी न देख पाना—यही बात मेरे दिल को दहला देती है (*7)।
बहुत लंबा, दुखद और थका देने वाला समय, मेरी माँ वहाँ अपने कष्टों को सहन करेगी।
आधी रात को और भोर में उसके आँसू नदी की तरह बहेंगे (*8)।
बहुत लंबा, दुखद और थका देने वाला समय, मेरे पिता वहां अपने कष्टों को सहेंगे।
आधी रात को और सुबह तड़के उसके आंसू नदी की तरह बहेंगे।
वे जंगल में भटकते हुए अपने देर से आने वाले बेटे की शिकायत करेंगे।
अब भी मेरे कदमों की आहट सुनने या मेरे सुखदायक स्पर्श को महसूस करने की उम्मीद थी—व्यर्थ।
यह विचार एक दूसरे तीर की तरह है जो पहले से भी अधिक गहराई तक प्रवेश करता है।
अफसोस! मैं यहाँ मरणासन्न अवस्था में पड़ा हूँ, और मेरी नियति है कि मैं उनका चेहरा फिर कभी नहीं देख पाऊँगा।
राजा ने उसके रोने की आवाज़ सुनकर मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति अपनी अत्यधिक भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा से अपने माता-पिता का सहारा रहा है, और अब अपने सारे दुख के बीच भी वह केवल उन्हीं के बारे में सोच रहा है। मैंने ऐसे पवित्र व्यक्ति के साथ अन्याय किया है, मैं उसे कैसे सांत्वना दे सकता हूँ? जब मैं नरक में जाऊँगा तो मेरा राज्य मेरे किस काम आएगा? मैं उसके माता-पिता की रक्षा करूँगा जैसे उसने उनकी की थी; इस प्रकार उसकी मृत्यु उनके लिए प्रतिकार होगी।" फिर उसने निम्नलिखित छंदों में अपना संकल्प व्यक्त किया:

हे शुभ मुख वाले समा, निराशा को अपने मन पर हावी न होने दें।
देखो, मैं स्वयं तुम्हारे माता-पिता की इस अकेले दुख की घड़ी में उनकी सेवा करूंगा।
मुझे धनुष चलाने का अच्छा अभ्यास है, मेरा वादा पुख्ता है।
मैं तुम्हारी जगह काम करूंगा और जंगल में तुम्हारे माता-पिता की देखभाल करूंगा।
मैं हिरणों के बचे हुए भोजन, जड़ों और फलों की तलाश करूंगा ताकि उनकी जरूरतों को पूरा किया जा सके;
मैं स्वयं उन दोनों की सेवा करूंगा, सचमुच उनका घरेलू दास बनकर।
वे किस जंगल में हैं? हे समा, मुझे बताओ, क्योंकि मैंने मन्नत मानी है।
मैं उनकी रक्षा और समर्थन करूंगा, जैसा कि आपने अब तक किया है।"
उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "यह अच्छा है, हे राजा, तो आप उनका समर्थन करें," और फिर उन्होंने उसे रास्ता दिखाया:

"जहां मेरा सिर पड़ा है, वहां पेड़ों के बीच से होकर दो सौ धनुष की लंबाई का एक रास्ता गुजरता है।"
यह आपको मेरे माता-पिता की झोपड़ी तक ले जाएगा, जाइए, अगर आप चाहें तो वहां उनकी देखभाल कीजिए।
इस प्रकार मार्ग दिखाकर और अपने माता-पिता के प्रति प्रेम में धैर्यपूर्वक अपार पीड़ा सहन करके, उन्होंने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अंतिम निवेदन किया कि वे उनकी देखभाल करेंगे।

"हे काशी राजा, आपको सम्मान मिले, क्योंकि आप इस प्रकार अपने मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं।"

हे मेरे माता-पिता असहाय और अंधे हैं, मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप उन दोनों की रक्षा और देखभाल करें।
हे काशी राजा, आपको मेरा प्रणाम। मैं सादर हाथ जोड़ता हूँ।
मेरी ओर से मेरे माता-पिता को वह संदेश पहुंचा देना जो मैंने तुम्हें दिया है।
राजा ने यह दायित्व स्वीकार कर लिया, और इस प्रकार अपना अंतिम संदेश देने के बाद, महान सत्ता अचेत हो गई। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने कहा:

जब शुभ मुख वाले समा ने राजा से ये शब्द कहे,
तीर के जहर से बेहोश होकर वह ऐसे अचेत पड़ा था मानो मर गया हो।
अब तक जब तक उसने ये शब्द कहे थे, तब तक वह हाँफते हुए बोल रहा था; लेकिन यहाँ उसकी वाणी रुक गई, क्योंकि उसके शरीर, हृदय, विचार और प्राण शक्तियाँ विष के तीव्र प्रभाव से एक-एक करके प्रभावित होने लगीं (*9), उसका मुँह और आँखें बंद हो गईं, उसके हाथ-पैर अकड़ गए और उसका पूरा शरीर खून से लथपथ हो गया। राजा ने कहा, "अभी तक तो वह मुझसे बात कर रहा था, अचानक उसकी साँसें क्यों रुक गईं? ये क्रियाएँ अब बंद हो गई हैं, उसका शरीर अकड़ गया है, निश्चय ही समा मर गया है"; और अपने दुःख को नियंत्रित न कर पाने के कारण उसने अपने सिर पर हाथ पटका और ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगा।

यहां गुरु ने बात को और स्पष्ट करने के लिए ये श्लोक कहे:

राजा ने बड़े दुख से विलाप किया, "जब तक यह विपत्ति नहीं आई थी, तब तक मुझे पता ही नहीं था कि मैं कभी बूढ़ा होऊंगा या मर जाऊंगा, अब मुझे यह बात अच्छी तरह से पता चल गई है, हाय! बहुत अच्छी तरह से।"

अब मुझे समझ आ गया है कि सभी मनुष्य नश्वर हैं; क्योंकि समा को भी मरना पड़ा था।
जिसने अंतिम व्यक्ति को, उसकी मृत्यु की पीड़ा में भी, अच्छी सलाह दी;
नरक ही मेरा निश्चित और अटल अंत है, वह मृत संत वहां मौन पड़ा है;
हर गांव में, मैं जिनसे भी मिलता हूं, वे एक स्वर में मेरे अपराध का बखान करते हैं।
लेकिन इस सुनसान, निर्जन जंगल में मेरा नाम जानने वाला कौन होगा?
इस वीरान सन्नाटे में मुझे मेरी शर्मिंदगी की याद कौन दिलाएगा?
उस समय, गंधमादन पर्वत पर रहने वाली बहुसोदरी नामक देवियों की पुत्री, जो इससे पहले अपने सातवें जन्म में उस महान प्राणी की माता रह चुकी थी, एक माँ के स्नेह से लगातार उसका स्मरण कर रही थी; परन्तु उस दिन अपने दिव्य आनंद में डूबी होने के कारण उसे उसकी याद नहीं आई; और उसकी सहेलियों ने बस इतना कहा कि वह देवियों की सभा में गई है (और इसलिए चुप रही)। ठीक उसी क्षण जब वह अचेत हुआ, अचानक उसका स्मरण करते हुए उसने मन ही मन कहा, “मेरे पुत्र का क्या हुआ?” और फिर उसने देखा कि राजा पिलियाक्खा ने मिगासम्मत नदी के किनारे उसे विषैले बाण से घायल कर दिया था और वह एक रेतीले टीले पर पड़ा था, जबकि राजा जोर-जोर से विलाप कर रहा था। “यदि मैं उसके पास न जाऊँ, तो मेरा पुत्र सुवन्नसमा वहीं मर जाएगा और राजा का हृदय टूट जाएगा, और समा के माता-पिता भूख और प्यास से मर जाएँगे। परन्तु यदि मैं वहाँ जाऊँ, तो राजा जल का घड़ा लेकर उसके माता-पिता के पास जाएगा, और उनकी बातें सुनकर उन्हें उनके पुत्र के पास ले जाएगा, और मैं और वे मिलकर एक दृढ़ प्रार्थना करेंगे जिससे समा के शरीर में व्याप्त विष का प्रभाव समाप्त हो जाएगा, और तब मेरा पुत्र जीवित हो जाएगा और उसके माता-पिता को दृष्टि प्राप्त हो जाएगी, और राजा समा का उपदेश सुनकर दान-पुण्य करेगा और स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करेगा; अतः मैं तुरंत वहाँ जाऊँगी।” ऐसा करके वह गई, और आकाश में अदृश्य होकर, मिगासम्मता नदी के किनारे खड़ी होकर, उसने राजा से विचार-विमर्श किया।

यहां गुरु ने बात को और स्पष्ट करने के लिए ये श्लोक कहे:

"गंधम पर्वत पर दृष्टि से छिपी हुई देवी,
उस पर दया करके मैंने ये छंद उसके कानों में कहे;
"तुमने एक दुष्ट कर्म किया है, तुम पर इसका भारी दोष है।"
माता-पिता और पुत्र सभी निर्दोष थे, तुम्हारे एक तीर ने तीनों को मार डाला;
आओ, मैं तुम्हें बताता हूँ कि अपने अपराधबोध से मुक्ति और विश्राम कैसे प्राप्त करें;
जंगल में अंधे जोड़े की देखभाल करो, इससे तुम्हारी पापी आत्मा को आशीर्वाद मिलेगा।"
जब उसने उसकी बातें सुनीं, तो उसे उसकी बात पर विश्वास हो गया कि यदि वह जाकर माता-पिता की सहायता करेगा, तो उसे स्वर्ग प्राप्त होगा; अतः उसने निश्चय किया, "राज्य से मेरा क्या लेना-देना? मैं जाकर उनकी सेवा में अपना जीवन समर्पित करूँगा।" बहुत रोने के बाद उसने अपने दुःख पर विजय प्राप्त की, और यह सोचकर कि समा वास्तव में मर गया है, उसने उसके शरीर को सभी प्रकार के

फूलों से आदर दिया और उस पर जल छिड़का, और तीन बार उसके चारों ओर घूमकर, अपना दाहिना भाग उसकी ओर करके, चारों दिशाओं में आदर किया। फिर उसने कलश उठाया, अपना मुख दक्षिण की ओर किया और भारी मन से अपने मार्ग पर चल पड़ा।

यहां गुरु ने व्याख्या का यह श्लोक जोड़ा:

दुर्भाग्यवश उस युवक के लिए शोक मनाते हुए, राजा ने फूट-फूटकर आंसू बहाए और फिर पानी का घड़ा उठाकर अपना चेहरा दक्षिण दिशा की ओर कर लिया।

स्वभाव से बलवान राजा ने जल का घड़ा उठाया और दृढ़ निश्चय के साथ आश्रम की ओर बढ़े और अंततः बुद्धिमान दुकुला की कुटिया के द्वार पर पहुँच गए। कुटिया में बैठे बुद्धिमान दुकुला ने पास आते कदमों की आहट सुनी और संशय में सोचते हुए ये दो पंक्तियाँ कहीं:

"ये किसके कदमों की आहट है जो मैं सुन रहा हूँ? कोई इस रास्ते से आ रहा है।"
यह समा के कदमों की आवाज नहीं है, आप कौन हैं, कृपया मुझे बताएं, महोदय, मैं आपसे निवेदन करता हूं।
जब राजा ने उसकी बात सुनी, तो उसने मन ही मन सोचा, "अगर मैं उन्हें बता दूं कि मैंने उनके बेटे को मार डाला है और अपने शाही स्वरूप को प्रकट न करूं, तो वे क्रोधित हो जाएंगे और मुझसे कठोर भाषा में बात करेंगे, और तब मेरा क्रोध उनके विरुद्ध भड़क उठेगा और मैं उनके साथ कोई अत्याचार करूंगा, और यह पाप होगा; लेकिन ऐसा कोई नहीं है जो राजा के बारे में सुनकर भयभीत न हो, इसलिए मैं अपने आप को उनके सामने प्रकट कर दूंगा"; अतः उसने घड़ा उस स्थान पर रख दिया जहाँ पानी का घड़ा रखा जाना चाहिए था, और झोपड़ी के द्वार पर खड़े होकर बोला:

मैं कासिस वंश का स्वामी हूँ, मेरा नाम राजा पिलियाक्खा है; और यहाँ,
देह की लालसा में अपना सिंहासन छोड़कर, मैं जंगल के हिरणों का शिकार करने के लिए भटकता हूँ।
मैं तीरंदाजी में निपुण हूँ, मेरा हृदय दृढ़ है और मैं आसानी से नहीं बदलता;
एक बार अगर कोई नाग मेरी सीमा में आ गया तो वह मेरे तीर से बच नहीं सकता।"
उस बुद्धिमान व्यक्ति ने उसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और उत्तर दिया (*10):

"स्वागत है, हे राजा, एक सुखद संयोग ने आपको इस मार्ग पर ला खड़ा किया है।"
आप कितने महान और गौरवशाली हैं: कृपया बताइए, आपका काम क्या है?
तिंडूक और पियाल के पत्ते, और कसुमरी मिठाई, यद्यपि थोड़ी-थोड़ी हैं, फिर भी हे राजा, हमारे पास जो सबसे अच्छा है, वही लो और खाओ।

और पहाड़ी पर छिपी एक गुफा से निकलता यह ठंडा पानी,
हे महान सम्राट, इसे ग्रहण करो, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो पी लो।
जब राजा ने उसका स्वागत सुना तो उसने मन ही मन सोचा, "उसे सीधे यह कहना उचित नहीं होगा कि मैंने अभी-अभी उसके बेटे को मार डाला है; मैं उससे ऐसे बात करना शुरू करूँगा जैसे मुझे इसके बारे में कुछ पता ही न हो और फिर उसे बताऊँगा"; इसलिए उसने उससे कहा

"एक अंधा आदमी जंगल में कैसे भटक सकता है? ये फल तुम्हारे दरवाजे तक कौन लाया?"
जिसने इतनी विविध वस्तुओं का संग्रह किया, उसकी नजरें तो बहुत तेज रही होंगी।
बूढ़े व्यक्ति ने राजा को यह समझाने के लिए दो छंद दोहराए कि उसने और उसकी पत्नी ने फल नहीं तोड़े थे, बल्कि उनका बेटा उन्हें फल लाकर दिया था:

"हमारा बेटा समा उम्र में छोटा है, ज्यादा लंबा नहीं है लेकिन देखने में सुंदर है।"
उसके सिर पर मुकुट की तरह लंबे काले बाल स्वाभाविक रूप से कुत्ते की पूंछ (*11) की तरह घुंघराले होते हैं।
वह फल लेकर आया और फिर हमारा पानी का घड़ा भरने के लिए तेजी से चला गया;
वह अभी यहीं वापस आ जाएगा, नदी का रास्ता ज्यादा दूर नहीं है।"
राजा ने उत्तर दिया:

"समा, तुम्हारा वह कर्तव्यनिष्ठ पुत्र,
जिसे आप इतना सुंदर, इतना अच्छा बताते हैं,
मैंने उसे मार डाला है:
उसके काले घुंघराले बाल वहीं पड़े हैं।

खून से लथपथ।"

पास ही परिका की पत्तों की झोपड़ी थी, और जब वह वहाँ बैठी थी तो उसने राजा की आवाज सुनी, और यह जानने के लिए उत्सुक होकर बाहर गई कि क्या हुआ था, और रस्सी की सहायता से दुकुला के पास जाकर उसने कहा:

"मुझे बताओ, दुकुला, यह कौन है जो कह रहा है कि समा की हत्या कर दी गई है?"
"हमारी समा की हत्या कर दी गई," - ऐसी बुरी खबर सुनकर मेरा दिल मानो दो टुकड़ों में बंट गया।
जैसे आंधी के झटके से पेड़ से टूटकर गिर पड़ी हुई कोमल युवा पेपुल की कोंपल,
हमारे समा की हत्या कर दी गई, यह खबर सुनकर मेरा दिल पीड़ा से छलनी हो गया है।
बूढ़े व्यक्ति ने उसे सलाह दी:

"यह काशी भूमि का राजा है, उसके क्रूर धनुष ने उसे मार डाला है, मुझे पता है।"
नदी किनारे हमारा समा है, लेकिन हमें रुककर उसे शाप नहीं देना चाहिए।"
परिका ने उत्तर दिया:

"हमारा प्यारा बेटा, हमारी जिंदगी का एकमात्र सहारा, जिसके लिए हमने इतने लंबे समय तक तरसा और इंतजार किया,"
मैं उस व्यक्ति के प्रति अपने गुस्से को कैसे नियंत्रित करूँ जिसने यह अन्याय किया है?
बूढ़े व्यक्ति ने हैरानी से कहा:

"एक प्यारा बेटा, हमारी जिंदगी का एकमात्र सहारा, जिसकी हमें लंबे समय से चाह थी और जिसका हम लंबे समय से इंतजार कर रहे थे!"
लेकिन सभी बुद्धिमान लोग हमें गलत काम करने वाले के प्रति क्रोध करने से मना करते हैं।
तब वे दोनों अपने सीने पीटते हुए विलाप करने लगे और बोधिसत्व के गुणों की प्रशंसा करने लगे। तब राजा ने उन्हें सांत्वना देने का प्रयास किया:

"मैं आपसे विनती करता हूँ कि अपनी प्रिय समा के दुर्भाग्यपूर्ण भाग्य पर अधिक मत रोइए;
देखो, मैं तुम दोनों की सेवा करूंगा, पूरी तरह से निराश होकर शोक मत मनाओ;
मुझे धनुष चलाने का अच्छा अभ्यास है, मेरा वादा पुख्ता है।
देखो, मैं तुम दोनों की सेवा करूंगा और इस सुनसान जंगल में तुम्हारी देखभाल करूंगा।
मैं हिरण के बचे हुए हिस्से, और तुम्हारी सभी जरूरतों के लिए जड़ें और फल ढूंढूंगा;
देखो, मैं तुम दोनों की सेवा करूंगा, मैं सचमुच तुम्हारा घरेलू दास हूं।
उन्होंने उससे विरोध जताया:

"हे मनुष्यों के राजा, यह उचित नहीं है, यह बिल्कुल अनुचित होगा।"
आप हमारे स्वामी और सच्चे राजा हैं: हम आपके चरणों में नमन करते हैं।"
यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, "यह तो अद्भुत बात है, मुझ जैसे पापी के विरुद्ध भी कोई कठोर शब्द नहीं बोलता, बल्कि मेरा स्नेहपूर्वक स्वागत करता है"; और उसने यह श्लोक कहा:

"हे वनपालों, इस बात की घोषणा करो, यह स्वागत सच्ची श्रद्धा है;"
अब से आप मेरे पिता हैं, और आप मेरे लिए माता समान हैं।
उन्होंने आदरपूर्वक हाथ उठाकर प्रार्थना की, "हमें आपसे किसी भी प्रकार की सेवा की आवश्यकता नहीं है, कृपया हमें अपने हाथ का सिरा आगे बढ़ाकर मार्गदर्शन करें; और हमें हमारी समाधि दिखाएँ," और उन्होंने दोहे कहे:

"हे काशी-राजा, आप अपने राज्य की समृद्धि के स्वामी हैं, आपकी जय हो!"
हमें उस स्थान पर ले चलो जहाँ हमारा प्रिय पुत्र समा लेटा हुआ था।
वहाँ उसके पैरों पर गिर पड़े, उसके चेहरे, आँखों, हर अंग को छूते हुए (*12),
हम मृत्यु के आने की प्रतीक्षा करेंगे, जब तक हम उसके निकट हैं तब तक धैर्य रखेंगे।"
जब वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, तभी सूर्य अस्त हो गया। तब राजा ने सोचा, "यदि मैं उन्हें अभी वहाँ ले जाऊँ, तो वे यह दृश्य देखकर टूट जाएँगे; और यदि मेरे कारण तीन व्यक्ति इस प्रकार मर गए, तो मैं निश्चित रूप से नरक में जाऊँगा, इसलिए मैं उन्हें वहाँ नहीं जाने दूँगा"; अतः उसने ये पंक्तियाँ कहीं:

"एक ऐसा क्षेत्र जो शिकारी जानवरों से भरा हुआ है, मानो दुनिया की सबसे चरम सीमा हो।"
वहीं पर समा इस प्रकार स्थित है मानो चंद्रमा जमीन पर गिर गया हो।
शिकारी जानवरों से भरा एक क्षेत्र, मानो दुनिया की सबसे चरम सीमा हो।
वहीं पर समा इस प्रकार लेटी है मानो सूर्य जमीन पर गिर पड़ा हो।
दुनिया के सबसे दूर छोर पर वह धूल से ढका और खून से सना हुआ पड़ा है;
"अपनी कुटिया में ही रहना बेहतर है, जंगल के खतरों को न आजमाएं।"
उन्होंने अपनी निर्भीकता दिखाने के लिए इस छंद में उत्तर दिया:

जंगली जीवों को जो चाहे करने दो, हजारों-लाखों की संख्या में, उन्हें झुंड बनाकर हमला करने दो।
हमें जंगली जानवरों से कोई डर नहीं है, वे हमें किसी भी तरह का नुकसान नहीं पहुंचा सकते।
अत: राजा उन्हें रोकने में असमर्थ होकर, उनका हाथ पकड़कर उन्हें वहाँ ले गया।

जब उसने उन्हें पास बुलाया, तो उसने उनसे कहा, "यह तुम्हारा बेटा है।" तब उसके पिता ने उसका सिर अपनी छाती से लगा लिया और उसकी माँ ने उसके पैर अपने हाथों में ले लिए, और वे बैठ कर शोक मनाने लगे।

विषय को स्पष्ट करने के लिए गुरु ने ये श्लोक कहे (*13):

धूल से ढके और हृदय में गहरे घाव लिए, अपने माता-पिता को इस प्रकार लेटे हुए देखकर, मानो कोई सूर्य या चंद्रमा आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, माता-पिता ने अपने हाथ ऊपर उठा लिए और कड़वी चीखों के साथ विलाप करने लगे।

"हे समा, क्या तुम गहरी नींद में सो रही हो? क्या तुम क्रोधित हो? या क्या हम तुम्हें भूल गए हैं?"
या फिर, क्या किसी बात ने आपके मन को परेशान कर दिया है कि आप चुपचाप लेटे हुए हैं और कोई जवाब नहीं दे रहे हैं?
अब हमारे उलझे बालों को कौन संवारेगा और धूल-मिट्टी कौन साफ करेगा?
जब समा नहीं रहेगी, तो उस बेचारे नेत्रहीन दंपति के पास रहने का एकमात्र सहारा क्या होगा?
अब हमारे लिए फर्श कौन साफ करेगा, या हमें गर्म या ठंडा पानी कौन लाएगा?
"जब हम असहाय, अंधे और बूढ़े होकर बैठे हैं, तो हमारे लिए जंगल की जड़ें और फल कौन लाएगा?"
बहुत देर तक रोने के बाद माँ ने अपने सीने पर हाथ मारा और अपने दुख पर गहराई से विचार करते हुए मन ही मन कहा, "यह सब मेरे बेटे के लिए मात्र शोक है, वह जहर के प्रभाव से बेहोश हो गया है, मैं उससे जहर निकालने के लिए सत्य की प्रतिज्ञा करूंगी"; अतः उसने सत्य का कार्य किया और निम्नलिखित छंदों को दोहराया:

"यदि यह सच है कि पुराने समय में समा हमेशा सदाचारी जीवन जीती थी,
तब शायद उसकी नसों में मौजूद यह जहर अपनी भयावह शक्ति खो दे और हानिरहित हो जाए।
यदि पुराने दिनों में वह सच बोलता था और दिन-रात अपने माता-पिता की सेवा करता था,
तब शायद उसकी नसों में मौजूद यह जहर पराजित होकर धीरे-धीरे खत्म हो जाए।
हमने और उनके पिता ने अतीत में जो भी पुण्य अर्जित किया है,
यह विष की शक्ति पर विजय प्राप्त करे और हमारा प्रिय पुत्र न मरे (*14)।"
जब उसकी माँ ने इस प्रकार गंभीर दावा किया, तो समा वहीं लेटे-लेटे करवट बदल ली। फिर उसके पिता ने भी उन्हीं शब्दों में गंभीर दावा किया; और जब वह अभी बोल ही रहे थे, समा घूमकर दूसरी तरफ लेट गया (*15)।

तब देवी ने अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। गुरु ने स्पष्टीकरण देते हुए निम्नलिखित श्लोक कहे:

"गंधमदन पर्वत पर दृष्टि से छिपी हुई देवी"
समा की दया से प्रेरित होकर, सत्य का एक गंभीर कार्य किया;
"इस गंधमद पर्वत पर मैंने अपना जीवन लंबे समय तक अकेले ही व्यतीत किया है।"
घने जंगलों में, जहाँ हर पेड़ की अपनी एक अलग सुगंध होती है,
और पृथ्वी पर रहने वाला कोई भी प्राणी मेरे दिल के सबसे करीब नहीं है।
चूंकि यह सच है, इसलिए उसके शरीर से विष की सारी शक्ति समाप्त हो जाए।
इस प्रकार दया से प्रेरित होकर उन सभी ने बारी-बारी से अपनी गंभीर गवाही दी।
देखो, उनकी दृष्टि में समा उछल पड़ी, पहले की तरह ही युवा, सुंदर और बलवान।

इस प्रकार, महानुभाव का घाव से ठीक होना, उनके माता-पिता की दृष्टि का पुनः प्राप्ति और भोर का दिखना, ये चारों चमत्कार देवी की अलौकिक शक्ति से एक ही क्षण में आश्रम में घटित हुए। माता-पिता यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए कि उनकी दृष्टि पुनः प्राप्त हो गई है और समा स्वस्थ हो गए हैं। तब समा ने ये श्लोक कहे:

"मैं तुम्हारा समा हूँ, सुरक्षित और स्वस्थ, मुझे अपने सामने देखो और आनंदित हो जाओ।"
अपने आंसू पोंछ लो और अब और मत रोओ, बल्कि प्रसन्न स्वर में मेरा अभिवादन करो।
आपका भी स्वागत है, हे पराक्रमी राजा, आपकी आज्ञाओं पर भाग्य की कृपा बनी रहे;
आप हमारे सम्राट हैं: हमें बताइए कि आप हमसे क्या चाहते हैं।
हम अपने मेहमानों के लिए तिन्दुकास, पियाल्स, मधुकास जैसे अपने सर्वोत्तम फल लाते हैं।
स्वाद में शहद के समान मीठे फल, जो भी आपको सबसे अच्छा लगे, खाइए।
हे कृपालु प्रभु, यह ठंडा पानी पहाड़ी की गुफाओं से लाया गया है।
पहाड़ी झरने का पानी प्यास बुझाने का सबसे अच्छा तरीका है, अगर आपको प्यास लगी है तो जी भरकर पी लें।
इस चमत्कार को देखकर राजा भी आश्चर्यचकित रह गया:

मैं असमंजस और अचंभित हूँ, मुझे समझ नहीं आ रहा कि किस तरफ जाऊं।
एक घंटे पहले मैंने तुम्हें मृत देखा था, जो अब यहाँ जीवित और स्वस्थ खड़ा है!
समा ने मन ही मन सोचा, "इस राजा ने मुझे मृत समझा, मैं उसे अपने जीवित होने का स्पष्टीकरण दूंगा"; इसलिए उसने कहा:

"एक ऐसा व्यक्ति जो अपनी सभी शक्तियों से परिपूर्ण हो, जिसके मन में एक भी विचार या भावना न भटकी हो,"
क्योंकि बेहोशी ने उनका खेल रोक दिया है, जिस जीवित व्यक्ति को वे मृत समझ रहे हैं, वह अब मृत है।"
फिर राजा को पूरे मामले का वास्तविक अर्थ समझाने की इच्छा से, उसने उसे विधि सिखाने के लिए दो श्लोक और जोड़े:

"वे मनुष्य जो धर्म के मार्ग का अनुसरण करते हैं और संकट में पड़े अपने माता-पिता की सेवा करते हैं,
देवता (देवदूत) उनकी भक्ति को देखते हैं और उनकी बीमारियों को ठीक करने के लिए आते हैं।
वे मनुष्य जो धर्म के मार्ग का अनुसरण करते हैं
और संकट में फंसे अपने माता-पिता की सेवा करें।
इस संसार में देवता (देवदूत) प्रशंसा करते हैं
उनके कर्मों का फल उन्हें स्वर्ग में मिलेगा।
यह सुनकर राजा मन ही मन सोचने लगा, "यह तो अद्भुत चमत्कार है: जो अपने माता-पिता का स्नेह करता है, उसके बीमार होने पर देवता (देवदूत) भी उसे ठीक कर देते हैं; यह समा तो अत्यंत महिमामय है"; फिर उसने कहा:

मैं दिन-प्रतिदिन और अधिक असमंजस में हूँ, मुझे समझ नहीं आ रहा कि किस दिशा में जाऊं।
समा, मैं सहायता के लिए आपके पास आता हूँ, समा, आप ही मेरी शरण बनो।
तब उस महान सत्ता ने कहा, "हे राजा, यदि तुम देवताओं (देवदूतों) के लोक में पहुँचकर वहाँ दिव्य सुख का अनुभव करना चाहते हो, तो तुम्हें इन दस कर्तव्यों का पालन करना होगा," और उन्होंने इनके विषय में ये श्लोक कहे:

"हे योद्धा राजा, सर्वप्रथम अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो;"
इस जीवन में पूर्ण किया गया कर्तव्य आप परलोक में लेकर जाएँगे (*17)।
हे योद्धा राजा, अपने बच्चों और अपनी पत्नी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो;
इस जीवन में अपने कर्तव्य पूर्ण करने के बाद, आप उन्हें परलोक ले जाएंगे।
अपने मित्रों और मंत्रियों के प्रति कर्तव्य, अपने विभिन्न हथियारों से लैस आपके सैनिकों के प्रति,
कस्बों और गांवों तक, तुम्हारा राज्य अपनी सभी प्रजा सहित,
हे राजा, तपस्वियों, ब्राह्मण संतों, पक्षियों और पशुओं के प्रति कर्तव्य।
इस जीवन में अपने कर्तव्य पूर्ण करने के बाद, आप उन्हें परलोक ले जाएंगे।
कर्तव्य पूर्ण करने से सुख मिलता है, जी हाँ, इंद्र, ब्रह्मा, उनके समस्त समूह को।
कर्तव्य का पालन करके ही उन्होंने अपना सुख प्राप्त किया: किसी भी कीमत पर कर्तव्य का पालन करना चाहिए।"
इस प्रकार, महान सत्ता ने उन्हें राजा के दस कर्तव्यों का उपदेश देने के बाद, उन्हें कुछ और शिक्षाएँ दीं और पाँच नियम सिखाए। राजा ने सिर झुकाकर उपदेश स्वीकार किया और आदरपूर्वक विदा लेकर बनारस चले गए। वहाँ उन्होंने अनेक दान दिए और अनेक पुण्य कर्म

किए, तथा अपने दरबारियों के साथ स्वर्गलोक चले गए। बोधिसत्व भी अपने माता-पिता सहित, अलौकिक शक्तियों और समाधि की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करके ब्रह्मलोक चले गए।

पाठ के बाद, गुरु ने कहा, "हे भिक्षुओं, बुद्धिमानों में अपने माता-पिता का सहारा देना एक प्राचीन परंपरा है।" फिर उन्होंने सत्यों की व्याख्या की (जिसके बाद भिक्षु ने प्रथम मार्ग का फल (सम्मोहन) प्राप्त किया) और जन्म का वर्णन किया: "उस समय राजा आनंद थे, देवी उप्पलावन्ना थीं, इंद्र अनुरुद्ध थे, पिता कश्यप थे, माता भद्दकपिलानी थीं और सुवन्नासमा मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(1)प्रश्न ब्राह्मण-संयुक्त, II. 9.

(2) को के स्थान पर खो पढ़ना। प्रो. कोवेल, गच्चा को छोड़कर, अनुवाद करते हैं: "यह कौन है जो तुम्हारे अपने बेटे के समान है?"

(3)दुकुला.

(4) विश्वकर्मा अन्य जन्मों में भी इस कर्तव्य का पालन करते हैं: देखें क्रमांक 303

(5)ब्रह्मलोक के विपरीत।

(6) विद्वान ने usa को "भोजन" या ushma के रूप में समझाया है। विद्वान ने इसे एक विकल्प के रूप में भी दिया है। हालाँकि, पाली में यह शब्द usma या usuma के रूप में आता है।

(7) यह श्लोक दो बार कहा गया है।

(8) शाब्दिक रूप से वे केवल नदी की तरह सूखेंगे।

(9)उपत्तितभवंगा पढ़ें?

(10)चार छंदों को दोहराते हुए।

(11) देखें. हितोप, II. 135. "सम्मान प्राप्त करने के बावजूद, एक बुरा आदमी हमेशा अपनी स्वाभाविक आदत पर लौट आता है; जैसे कुत्ते की पूंछ, जो तमाम दवाओं और मलहमों के बाद भी मुड़ी हुई रहती है।" मैंने सुनाग्गा- पढ़ा।

(12) विद्वान भुजा को भुंजति से जोड़ते प्रतीत होते हैं। लेकिन क्या इन शब्दों का अर्थ "हमारे चेहरे, बांहों और आंखों पर प्रहार करना" हो सकता है? सुम्ह, सुम्भ का अर्थ है "मारना"। देखें "चोट पहुँचाना"। पाठ में अनुवाद स्पष्ट रूप से सही है; "उसका" न कि "हमारा": लेकिन संसुम्भमन के अर्थ का संकेत देने के लिए विद्वान के नोट "वत्तेन्टा" के अलावा और कुछ नहीं है।

(13) छोड़े गए छंद, पुनरावृत्तियों से भरे हुए।

(14)आठ छंदों को तीन में संकुचित किया गया।

(15) गद्य कथा अक्सर पद्य में दोहराई जाती है, इसलिए उसे छोड़ दिया जाता है।

(17)देखें, महावग्ग, I. 281.

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **निमि-जातक**

अंतर्वस्तु

- 1स्रोत: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा पुरातन अनुवाद से रूपांतरित किया गया।
  - 1.1निमि-जातक।
  - 1.2पाली संस्करण (रोमन, अंग्रेजी)

○ 1.3पाली संस्करण (देवनागरी, संस्कृत/हिन्दी लिपि)
***स्रोत**: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-541-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 541 (*1)
निमि-जातक।
"देखो ये सफेद बाल," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने मिथिला के पास मखदेव के आम के उद्यान में रहते हुए एक मुस्कान के बारे में सुनाई थी। एक दिन शाम को, गुरु अपने कई भिक्षुओं के साथ इस आम के उद्यान में टहल रहे थे, तभी उनकी नज़र एक सुंदर स्थान पर पड़ी। अपने अतीत के बारे में बताने की इच्छा से उन्होंने अपने चेहरे पर मुस्कान बिखेरी। जब पूज्य आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "आनंद, इस स्थान पर मैं एक बार राजा मखदेव के समय में गहन ध्यान में लीन था।" फिर उनके अनुरोध पर वे एक आसन पर बैठ गए और अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, विदेह राज्य में, और मिथिला नगर में, मखदेव नाम का एक राजा था (*2)। चौरासी हजार वर्षों तक उसने युवावस्था में अपनी इच्छा का पालन किया, चौरासी हजार वर्षों तक वह वायसराय रहा, चौरासी हजार वर्षों तक वह राजा रहा।

अब उसने अपने नाई से कहा कि जब भी उसके सिर पर सफेद बाल दिखाई दें, तो उसे तुरंत सूचित करे। कुछ समय बाद जब नाई ने सफेद बाल देखे और उसे बताया, तो उसने नाई से उन्हें चिमटे से खींचकर अपने हाथ पर रखने को कहा। मृत्यु को अपने माथे पर मंडराते देख, उसने सोचा, "अब मेरे लिए संसार छोड़ने का समय आ गया है।" इसलिए उसने नाई को एक गाँव चुनने की छूट दी और अपने बड़े बेटे को बुलवाकर उसे शासन संभालने को कहा, क्योंकि वह स्वयं संसार त्यागने वाला था। "क्यों, महाराज?" उसने पूछा। राजा ने उत्तर दिया:

"देखो, मेरे सिर पर ये सफेद बाल दिखाई दे रहे हैं।"
साल दर साल अपने जीवन के कुछ पलों को जी भर कर जी लो:
  वे ईश्वर के दूत हैं, जो हमें याद दिलाते हैं
संसार का त्याग करने का समय निकट आ गया है।
इन शब्दों के साथ उन्होंने विधिपूर्वक जल छिड़काव करके अपने पुत्र को राजा बनाया और उसे इस प्रकार कार्य करने के निर्देश देकर नगर छोड़ दिया; और एक भाई का जीवन अपनाकर चौरासी हजार वर्षों तक उन्होंने चारों श्रेष्ठों का पालन-पोषण किया और फिर ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में उनका पुनर्जन्म हुआ।

उनके पुत्र ने भी उसी प्रकार संसार का त्याग कर ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में देह त्याग दी। उनके पुत्र ने भी ऐसा ही किया; और इसी प्रकार एक के बाद एक, चौरासी हजार से दो कम राजकुमारों तक—जिनके सिर में एक भी सफेद बाल दिखाई दिया, वे इस आम के उद्यान में तपस्वी बन गए, और चारों देवताओं का पालन-पोषण करके ब्रह्मा के स्वर्ग में जन्म लिया। इस वंश में सबसे पहले जन्म लेने वाले राजा मखदेव, ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में खड़े होकर अपने परिवार की स्थिति पर दृष्टि डाली और यह देखकर प्रसन्न हुए कि चौरासी हजार से दो कम राजकुमारों ने संसार का त्याग कर दिया है। उन्होंने सोचा, "क्या अब निर्वाण होगा या नहीं?" यह देखकर कि निर्वाण नहीं होगा, उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं ही अपने वंश को पूर्ण करेंगे। तदनुसार, वे वहाँ से आए और मिथिला नगर में राजा की पत्नी के गर्भ में गर्भ धारण किया। उनके नामकरण दिवस पर, ज्योतिषियों ने उनके चिह्नों को देखकर कहा, "महाराज, यह राजकुमार आपके परिवार को पूर्ण करने के लिए पैदा हुआ है। आपके संन्यासियों का यह परिवार अब और आगे नहीं बढ़ पाएगा।" यह सुनकर राजा ने कहा, "यह बालक मेरे परिवार को रथ के पहिये के घेरे की तरह पूर्ण करने के लिए पैदा हुआ है!" इसलिए उन्होंने उसका नाम नेमी (*3)-कुमार, या राजकुमार घेरा रखा।

बचपन से ही वह बालक दान-पुण्य, सद्गुणों और व्रत के पालन में लीन था। फिर, हमेशा की तरह, उसके पिता ने उसके बाल सफेद होते देखे, अपने नाई को एक गाँव दे दिया, उसे राजा बना दिया, स्वयं आम के उद्यान में संन्यासी बन गए और ब्रह्मा के स्वर्ग (देवदूतों के स्वर्ग) के लिए नियत हो गए। राजा निमि ने दान-पुण्य के प्रति अपनी श्रद्धा में पाँच भिक्षागृह बनवाए, एक नगर के चारों द्वारों पर और एक नगर के मध्य में, और उनमें भरपूर दान दिया: प्रत्येक भिक्षागृह में उन्होंने एक लाख सिक्के, अर्थात् प्रतिदिन पाँच लाख सिक्के वितरित किए; उन्होंने निरंतर पाँच नियमों का पालन किया; चंद्र दिवसों (*4) पर उन्होंने व्रत रखा; उन्होंने लोगों को दान-पुण्य और अच्छे कार्यों

के लिए प्रोत्साहित किया; उन्होंने स्वर्ग का मार्ग दिखाया, उन्हें मृत्यु के भय से भयभीत किया और धर्म के मार्ग का उपदेश दिया। उनके उपदेशों का पालन करते हुए, दान देते हुए और भलाई करते हुए, वे एक-एक करके परलोक चले गए और देवदूतों के लोक में जन्म लिया: वह लोक भर गया, नरक मानो खाली हो गया। फिर तैंतीस के स्वर्ग में, देवदूतों का समूह सुधम्म नामक दिव्य सभा कक्ष में एकत्रित हुआ और जोर से पुकारने लगा—"हमारे गुरु, राजा निमि को प्रणाम! उनके द्वारा, बुद्ध के ज्ञान से, हमने इस अनंत दिव्य आनंद को प्राप्त किया है!" इस प्रकार उन्होंने उस महान सत्ता के गुणों का गुणगान किया। मनुष्यों के लोक में भी वह स्तुतिगान ऐसे फैल गया, जैसे तेल गहरे समुद्र की सतह पर फैल जाता है।

गुरु ने उपस्थित भिक्षुओं को निम्नलिखित शब्दों में यह बात समझाई:

"यह दुनिया में एक चमत्कार था कि अच्छे राजा निमी के दिनों में कितने अच्छे, योग्य और बुद्धिमान पुरुष उत्पन्न हुए।"

अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले विदेह के राजा ने दान दिया; और दान देते समय उसके मन में यह विचार आया:

"पवित्र जीवन या दान देना, इनमें से कौन अधिक फलदायी है? कौन जानता है (*5)?"
उसी क्षण इंद्र का सिंहासन गर्म हो गया। इंद्र ने कारण समझकर देखा कि वह वहीं कुछ सोच रहे हैं। उन्होंने कहा, "मैं इस समस्या का समाधान करूंगा।" वे तुरंत इधर-उधर गए और महल को प्रकाश से जगमगा दिया। फिर वे अपने कक्ष में प्रवेश कर, वहीं चमकते हुए खड़े रहे और राजा के अनुरोध पर सब कुछ स्पष्ट कर दिया।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"देवताओं (देवदूतों) के शक्तिशाली सम्राट, हजार आंखों वाले,
वह उसके विचार को समझता है; उसके प्रकाश के सामने अंधेरा उड़ जाता है।
महान निमी ने वासवा से बात की, और उसके पूरे शरीर में सिहरन दौड़ गई:

"तुम कौन हो? या तो कोई अर्धदेव हो या फिर सक्का (इंद्र) का ही स्वरूप हो।"
क्योंकि मैंने ऐसी महिमा न कभी देखी है और न सुनी है जैसी मैं देख रहा हूँ।"
तब वासावा ने निमी से बात की, यह जानते हुए कि उसका शरीर कांप रहा था:

मैं सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) का राजा हूँ; मैं आपसे मिलने आया हूँ;
हे राजा, जो चाहो मांग लो, और भय से कांपना मत।
फिर निमी ने वासावा से बात की और यह निमंत्रण दिया:

"हे सर्वशक्तिमान स्वामी, मेरे लिए इस प्रश्न का उत्तर दीजिए:
पवित्र जीवन जीना या दान देना, इनमें से कौन सा अधिक फलदायी होगा?
तब वासवा ने निमी से बात करते हुए उसके प्रश्न का उत्तर दिया और उसे, जो नहीं जानता था, पवित्र जीवन का फल बताया:

"वह जन्म से क्षत्रिय हैं, जो तीसरे दर्जे में पवित्र जीवन जीते हैं।"
एक देवता (देवदूत), मध्य में; और पहला पूर्ण पवित्रता लाता है।"
किसी भी चैरिटी संस्था के लिए इन राज्यों में जीत हासिल करना आसान नहीं है।
सांसारिक जीवन त्याग चुके संन्यासी तपस्या के द्वारा ही विजय प्राप्त करते हैं।
इन श्लोकों के माध्यम से उन्होंने पवित्र जीवन की महान फलदायकता को समझाया, और फिर अन्य श्लोकों का पाठ किया, जिनमें उन राजाओं के नाम लिए गए जो अतीत में महान दान देकर इंद्रियों के दायरे से बाहर निकलने में असमर्थ रहे थे।

"दुदीपा, सागर, सेला, मुकलिंडा, भागिरसा,
उसिनारा और अट्ठाका, अस्सका, और पुथुज्जना,
जी हाँ, राजाओं और ब्राह्मणों, क्षत्रिय सरदारों, अनेकों ने।
उनके तमाम बलिदानों के बावजूद, पेटा की दुनिया से परे कोई नहीं आया।"
इस प्रकार यह समझाते हुए कि दान-पुण्य की तुलना में पवित्र जीवन कितना अधिक फलदायी है, उन्होंने उन तपस्वियों का वर्णन किया जिन्होंने पवित्र जीवन के द्वारा पेटा लोक को पार करके ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में जन्म लिया था, और कहा:

"ये पवित्र संन्यासी जिन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया था,

सात ऋषि, जो इस दुनिया से विदा हो गए: यमहानु,
सोमयागा, मनोजवा, समुद्दा,
माघ, और भरत, और कलिकरा:
चार अन्य: कश्यप, अंगिरसा,
अकित्ती, किसावच्चा, इनके अलावा ये सब।
अब तक उन्होंने परंपरा के अनुसार पवित्र जीवन के महान फल का वर्णन किया था; लेकिन अब वे आगे बढ़े और उन्होंने स्वयं जो देखा था उसका वर्णन किया:

"सिडा उत्तर में एक नदी है, जो नौगम्य (*6) और गहरी है:
इसके बारे में, नरकटों की आग की तरह, सुनहरे ऊंचे पहाड़ चमकते हैं,
लताओं से लथपथ और सुगंधित पौधों से सजी नदी और पहाड़ियाँ भी।
एक समय की बात है, वहाँ दस हजार संन्यासी रहते थे।
मैं महान हूं, जिसने संयम और आत्म-नियंत्रण का व्रत रखा।
दान देना: एकांत में तब देखभाल की गई (*7) प्रत्येक दृढ़ आत्मा।
जाति हो या न हो, मैं ईमानदार व्यक्ति की जरूरत पड़ने पर उसकी सेवा करूंगा।
प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों और कार्यों से बंधा हुआ है।
धर्मपरायणता के अलावा, सभी जातियाँ निश्चित रूप से नरक में जाएंगी:
सभी जातियां धर्मपरायण होने और अच्छे कर्म करने पर शुद्ध हो जाती हैं।
इसके बाद उन्होंने कहा, "परन्तु, हे महाराज, यद्यपि पवित्र जीवन दान-पुण्य से कहीं अधिक फलदायी है, फिर भी ये दोनों ही महान पुरुषों के विचार हैं: आप दोनों में सजग रहें, दान दें और सद्गुणों का पालन करें।" यह सलाह देकर वे अपने स्थान पर चले गए।

तब देवदूतों के समूह ने कहा: "महाराज, हमने आपको कुछ समय से नहीं देखा; आप कहाँ थे?" "महोदय, मिथिला के राजा निमि के मन में एक शंका उत्पन्न हुई, और मैं उस प्रश्न का समाधान करने और उन्हें संदेह से मुक्त करने के लिए गया था।" और फिर उन्होंने उस घटना का काव्यात्मक वर्णन किया:

"यहाँ उपस्थित सभी महोदय, मेरी बात ध्यान से सुनें:
धर्मी पुरुषों में जाति और गुणों में बहुत भिन्नता होती है।
वहाँ राजा निमी हैं, बुद्धिमान और अच्छे, जिन्होंने बेहतर पक्ष को चुना--
विदेह के राजा ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और बड़े-बड़े उपहार दिए।
और जब उसने ये उदार उपहार दिए, तो यह संदेह उत्पन्न हुआ:
कौन सा अधिक फलदायी है—पवित्र जीवन या दान देना? कौन जानता है?
इसलिए उन्होंने बिना किसी चूक के राजा के गुणों का वर्णन किया। इससे देवताओं के मन में उस राजा को देखने की तीव्र इच्छा जागी; और उन्होंने कहा, "महाराज, राजा निमि हमारे गुरु हैं; उनके उपदेशों का पालन करके, उनके द्वारा किए गए प्रयासों से, हमने देवत्व का आनंद प्राप्त किया है। हम उन्हें देखना चाहते हैं—महाराज, उन्हें बुलवाइए और हमें दर्शन दीजिए!" सक्का (इंद्र) ने सहमति दी और मतली को भेजा: "मित्र मतली, मेरे राजसी रथ को जोतकर मिथिला जाओ, राजा निमि को दिव्य रथ में बिठाकर यहाँ ले आओ।" मतली ने आज्ञा का पालन किया और प्रस्थान किया। जब सक्का (इंद्र) देवताओं (देवदूतों) से बात कर रहे थे, मतली को आदेश दे रहे थे और अपना रथ भेज रहे थे, तब मनुष्यों की समझ के अनुसार एक महीना बीत चुका था। यह पूर्णिमा का पवित्र दिन था: राजा निमि पूर्वी खिड़की खोलकर ऊपरी मंजिल पर अपने दरबारियों से घिरे हुए, सद्गुणों का चिंतन कर रहे थे; और जैसे ही पूर्व में चंद्रमा का चक्र उदय हुआ, यह रथ प्रकट हुआ। लोगों ने अपना रात्रि भोज कर लिया था और अपने दरवाजों पर आराम से बैठकर आपस में बातें कर रहे थे। "अरे वाह, आज तो दो चाँद हैं!" वे चिल्लाए। जब वे बातें कर रहे थे, तो रथ उनकी नज़र में आ गया। "नहीं, यह चाँद नहीं है," उन्होंने कहा, "बल्कि एक रथ है!" कुछ देर बाद मताली के एक हज़ार घोड़ों का दल और सक्का (इंद्र) का रथ प्रकट हुआ, और वे सोचने लगे कि यह किसके लिए होगा? आह, उनका राजा धर्मात्मा था; उसके लिए ही सक्का (इंद्र) का दिव्य रथ भेजा गया होगा; सक्का (इंद्र) उनके राजा से मिलना चाहता होगा। इसलिए वे प्रसन्न होकर चिल्लाए:

"दुनिया में एक ऐसा अजूबा, जो मन को आनंद से कंपकंपा दे।"
"महिमामय विदेह के लिए दिव्य रथ दर्शन के लिए प्रकट होता है!"
लोगों के लगातार बातें करते रहने के बीच, हवा की तरह तेज गति से मताली आया, जिसने रथ को मोड़ा और खिड़की की चौखट के पास रोक दिया, और राजा को अंदर आने के लिए कहा।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"शक्तिशाली मताली, सारथी"
अब स्वर्ग से विदेह के राजा को बुलाया गया है।
जो मिथिला में रहता था: "आओ, हे महाराज,
हे जगत के स्वामी, इस रथ पर सवार होकर:
इंद्र और सभी देवता (देवदूत), तैंतीस,
आपसे सुधम्म हॉल में मुलाकात होगी।
राजा ने सोचा, "मैं देवताओं (देवदूतों) का निवास स्थान देखूंगा, जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा; और मैं मताली पर दया दिखाऊंगा," इसलिए उसने अपनी स्त्रियों और सभी लोगों को संबोधित करते हुए कहा—"मैं जल्द ही लौट आऊंगा: तुम सावधान रहना, भलाई करना और दान देना।" फिर वह रथ में सवार हो गया।

गुरु ने इसे समझाने के लिए कहा (*8):

तब विदेह का राजा पूरी तेजी से उठा।
और वह रथ की ओर गया और उसमें बैठ गया।
जब वह उसमें था, तब मताली ने इस प्रकार कहा:
"हे महाराज, मैं आपको किस मार्ग से ले जाऊं?"
दुष्ट कहाँ रहते हैं, और भले लोग कहाँ रहते हैं?
इस पर राजा ने सोचा—"मैंने इन दोनों जगहों को पहले कभी नहीं देखा है, और मैं दोनों को देखना चाहूंगा।" उसने उत्तर दिया:

"मटाली, दिव्य सारथी, मैं दोनों स्थानों को देखूंगा:
दोनों ही स्थान ऐसे हैं जहाँ धर्मी लोग निवास करते हैं, और जहाँ दुष्ट लोग रहते हैं।
मताली ने सोचते हुए कहा, "दोनों को एक साथ नहीं देखा जा सकता; मैं उससे प्रश्न पूछूंगी," और फिर एक श्लोक सुनाया:

"हे महान सम्राट, हे महान राजा—आप सबसे पहले कौन सा स्थान देखना चाहेंगे?"
वह स्थान जहाँ धर्मी लोग निवास करते हैं, या जहाँ दुष्ट लोग रहते हैं?
तब राजा ने यह सोचकर कि वह किसी भी हालत में स्वर्ग जाएगा ही, और वह नरक देखना भी चुन सकता है (*9), अगला श्लोक पढ़ा:

"मैं पापी मनुष्यों का स्थान देखना चाहता हूँ; कृपया मुझे नरक में जाने दो;"
जहां वे लोग निवास करते हैं जिन्होंने कभी क्रूरतापूर्ण कार्य किए थे और जहां दुष्ट लोग रहते हैं।"
फिर उसने उसे वेतरानी (*10), नरक की नदी दिखाई।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा;

"मातलि ने राजा वेतरणी को दिखाया,
एक दुर्गंधयुक्त नदी, जो संक्षारक खारे पानी से भरी हुई है।
गर्म, चारों ओर आग की जलती हुई लपटों से ढका हुआ।
वेतरानी में प्राणियों को इतनी पीड़ा में देखकर राजा भयभीत हो गया और उसने मताली से पूछा कि उन्होंने क्या पाप किए हैं। मताली ने उसे बताया।

गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

"तब निमी ने जब लोगों को गिरते देखा, तो
मताली ने पूछा, इस भीषण नदी-बाढ़ में
"इसे देखकर मुझे भय लग रहा है, सारथी।"
मुझे बताओ, इन मनुष्यों ने क्या पाप किया है?
"किसे नदी में फेंका जाता है?" उसने उत्तर दिया।
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"जीवन के संसार में जो स्वयं बलवान हैं,"
फिर भी कमजोरों को दुख पहुंचाओ, उन पर अत्याचार करो, पाप करो।

ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
उन्हें वेतरानी नदी में फेंक दिया जाता है।
इस प्रकार मताली ने राजा के प्रश्न का उत्तर दिया। जब राजा ने वेतरानी नामक नरक को देखा, तो उसने उस स्थान को लुप्त कर दिया और रथ को आगे बढ़ाते हुए उसे वह स्थान दिखाया जहाँ कुत्तों और अन्य जानवरों द्वारा जानवरों को नोचा जाता है। उसने राजा के प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया।

गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

"काले कुत्ते और चित्तीदार गिद्ध, कौवों के झुंड"
बेहद भयानक, उन पर हमला करो। जब मैं देखता हूँ,
मुझे डर सता रहा है। बताओ, मताली,
हे सारथी, इन्होंने क्या पाप किया है?
"कौवे किसका शिकार करते हैं?" मताली ने उत्तर दिया।
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
ये देहाती लोग हैं, कंजूस हैं, गंदी ज़बान वाले हैं।
ब्राह्मणों और तपस्वियों को, जो कष्ट पहुंचाते हैं;
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
क्या यहाँ जो कौवे दिख रहे हैं वे शिकार हैं?
उनके बाकी सवालों के जवाब भी इसी तरह दिए जाते हैं।

उनके शरीर आग की लपटों में जल रहे थे, वे नीचे गिर पड़े थे।
गरम चूर्णों से कूटा हुआ: जब मैं देखता हूँ,
मुझे डर सता रहा है। बताओ, मताली,
हे सारथी, इन्होंने क्या पाप किए हैं?
वहाँ कौन पड़े हैं जिन्हें लाल-गरम टुकड़ों से पीटा गया है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"ये लोग इस संसार में पापी मनुष्य थे,"
जिन्होंने निर्दोषों को दुख पहुंचाया और सताया,
वे दोनों पुरुष और महिलाएं, पापी थे।
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
अब वहीं पड़े रहो, उन लाल-गरम टुकड़ों से पीटे हुए।
"अन्य लोग अंगारों के गड्ढे में संघर्ष कर रहे हैं,"
दहाड़ते हुए, उनके शरीर झुलस गए: जब मैं देखता हूँ,
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
हे सारथी, इन्होंने क्या पाप किया है?
"वहाँ आग के गड्ढे में कौन संघर्ष कर रहा है?"
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
ये वे लोग हैं जो लोगों की भीड़ के सामने
गवाह को रिश्वत दी और कर्ज चुकाने से इनकार कर दिया;
और इस प्रकार लोगों का विनाश करते हुए, हे शक्तिशाली राजा,
इन क्रूर प्राणियों ने पाप किया, और उन्होंने
अब वहीं कोयले के गड्ढे में तड़पते हुए पड़े रहो।"
धधकती और जलती हुई, सब एक ही अग्नि का गोला।
मुझे लोहे का एक विशाल और बड़ा कड़ाहा दिखाई देता है:
इसे देखते ही मुझे भय लगने लगता है।
मताली, मुझे बताओ, हे दिव्य सारथी--
इन मनुष्यों ने ऐसा कौन सा पाप किया कि वे यहाँ सिर के बल गिरे

उन्हें लोहे के कड़ाहे में फेंक दिया जाता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"जिस किसी ने भी ब्राह्मण या तपस्वी को दुख पहुंचाया हो,
पापी पुरुषों के लिए, और वह एक गुणी पुरुष है।
वे क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
अब सीधे लोहे के कटोरे में गिर जाओ।"
उन्होंने उनकी गर्दन मरोड़कर उन्हें पानी में फेंक दिया।
कड़ाही को उबलते पानी से भर देना!
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
क्या वे बुरी तरह से घायल सिर के साथ वहीं पड़े रहते हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
ये वे दुष्ट लोग हैं जो दुनिया में
हे महामहिम राजा, तुमने पक्षियों को पकड़ा और उन्हें नष्ट कर दिया;
और इस प्रकार, अन्य जीवों को नष्ट करते हुए, वे
इन क्रूर कृत्यों से पाप उत्पन्न हुआ।
और वे वहाँ पड़े हैं, उनकी गर्दनें मरोड़ी हुई हैं।"
"वहाँ एक नदी बहती है, गहरी, जिसके किनारे उथले हैं।"
आसान पहुंच: ये रहे पुरुष।
गर्मी से झुलस जाओ, और पियो: लेकिन जैसे ही वे पीते हैं,
पानी भूसे में बदल जाता है (*11); जिसे देखकर,
मुझे डर सता रहा है। बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
क्या वे पानी पीते ही भूसे में बदल जाते हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"ये वे लोग हैं जिन्होंने अच्छे अनाज को भूसे के साथ मिलाया था।"
और उसने इसे एक बेईमान खरीदार को बेच दिया;
अतः अब वह गर्मी से झुलसकर प्यास से बेहाल हो गया है।
जैसे ही वे पानी पीते हैं, वह भूसे में बदल जाता है।
वे नुकीले कांटों, भालों और तीरों से छेद करते हैं।
दोनों ओर जोर-जोर से रोने वाले वे लोग:
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
क्या वे भाले से छलनी होकर वहाँ पड़े हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
ये लोग इस संसार में दुष्ट पुरुष थे।
जिन्होंने दूसरों की चीज़ें लेकर अपना जीवन यापन किया--
बकरियां, भेड़ें, गायें, बैल, अनाज, खजाना, चांदी, सोना:
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
अब वहां भाले से छलनी होकर पड़े हुए हैं।
"ये लोग कौन हैं जिन्हें मैंने गर्दन से जकड़ा हुआ देखा है?"
कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गए, कुछ पूरी तरह से छलनी हो गए:
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?

क्या वे वहां छोटे-छोटे टुकड़ों में फटे पड़े हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,

पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
मछुआरे और कसाई, जंगली सूअर के शिकारी,
मवेशियों, बैलों और बकरियों के हत्यारे, जिन्होंने हत्या की
और शवों को वधशाला में रख दिया।
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
वे वहां छोटे-छोटे टुकड़ों में फटे पड़े हैं।"
"गंदगी और गोबर की झील, दुर्गंधयुक्त,
बुरी गंध से अपवित्र, जहाँ भूखे लोग
इसमें जो कुछ भी है उसे खा लो! जब मैं ऐसा देखूंगा,
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
वहाँ मैं किसे गंदगी और मैल खाते हुए देख रहा हूँ?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"ये द्वेषपूर्ण व्यक्ति (*12) हैं, जो हानि पहुँचाने के लिए
कुछ अन्य लोगों के साथ रहते थे और उनके दोस्तों को नुकसान पहुंचाते थे:
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और अब,
बेचारे मूर्ख, उन्हें खाने के लिए गोबर और गंदगी ही मिलती है।"
"झील खून से भरी हुई है, और दुर्गंधयुक्त है।"
दुर्गंधयुक्त, अपवित्र, जहाँ गर्मी से झुलसा हुआ हो
पुरुष इसका पेय पीते हैं! जिसे देखकर मुझे लगता है,
मुझे डर सता रहा है; बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
क्या अब उन्हें उस रक्त का अंश पीना होगा?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"जिन्होंने किसी माता या पिता की हत्या की है,"
जिनका उन्हें आदर करना चाहिए; बहिष्कृत करना
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
क्या वे लोग हैं जो रक्त का अंश पीते हैं?
"देखो, वह जीभ, कांटे से छेदी हुई, ढाल की तरह"
सौ चुभन भरी बातों में फँसे हुए; और वे कौन हैं?
जो जमीन पर मछली की तरह उछलने के लिए संघर्ष करते हैं,
और जब मैं उसे देखता हूँ तो वह एक भयंकर, बदसूरत सींक की तरह लगता है।
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
मुझे वहां कौन दिख रहा है जो फंदा निगल रहा है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
ये वे लोग हैं जो बाज़ार में मौजूद हैं।
लाभ के लालच में वे मोलभाव करते हैं और चीजों को सस्ता कर देते हैं।
बेईमानी का अभ्यास किया है, और इसे छिपाकर रखा है।
जैसे कोई मछली को कांटे में फंसाता है: लेकिन बेईमानों के लिए
उसके सभी कर्मों के कारण कोई सुरक्षा नहीं है:
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे

वे वहां लेटे हुए कांटा निगल रहे हैं।"
"झुकी हुई और टूटी हुई महिलाएं, अपनी बाहें फैला रही थीं।"
और विलाप करते हुए, दयनीय अवस्था में, रक्त के धब्बों से लथपथ,
जैसे मवेशी अस्तबल में खड़े हों, वैसे ही कमर तक पानी में खड़े रहें।
मिट्टी में धंसा हुआ, ऊपरी तना आग की लपटों में घिरा हुआ!
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन महिलाओं ने कौन सा पाप किया है?
अब वे सब धरती में दफन हो चुके हैं।
कमर तक पानी में डूबा हुआ, धड़ का ऊपरी हिस्सा आग की लपटों से घिरा हुआ?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
वे जब संसार में थे तब कुलीन कुल के थे।
उन्होंने अपवित्र जीवन व्यतीत किया, दुष्ट कर्म किए।
वे गद्दार थीं, अपने पतियों को छोड़कर चली गईं, और इसके अलावा
उन्होंने अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए अन्य कार्य भी किए;
उन्होंने अपना पूरा जीवन प्रेम-प्रसंग में बिताया; इसलिए अब
"तेज रोशनी में खड़े रहो, कमर तक धरती में धंसे हुए।"
वे लोगों को पैरों से क्यों पकड़ते हैं?
और उन्हें सीधे नरक में फेंक दें (*13)?
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन लोगों ने कौन सा पाप किया है?
कि उन्हें सीधे नरक में धकेल दिया जाता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
संसार में इन लोगों ने बुराई की, बहकाया।
दूसरे की पत्नी ने उसकी सबसे कीमती चीज चुरा ली।
तो अब उन्हें सीधे नरक में फेंक दिया गया है।
वे अनगिनत वर्षों तक कष्ट भोगते हैं।
नरक में पापी के लिए कोई सुरक्षा नहीं है।
लेकिन वह हमेशा अपने कर्मों के परिणाम भुगतता रहता है।
ये क्रूर प्राणी पाप के लिए जीते थे, और वे
अब उन्हें सीधे नरक में फेंक दिया गया है।"
इन शब्दों के साथ, सारथी मताली ने उस नरक को भी गायब कर दिया और रथ को आगे बढ़ाते हुए उसे गलत विश्वासियों के लिए यातना का नरक दिखाया। अनुरोध करने पर उसने उसे उसका अर्थ समझाया।

मैंने अनेक और विविध कारण देखे हैं
इन नरकों में सबसे भयानक है उन्हें देखना।
मुझे डर सता रहा है: बताओ, मताली,
उन मनुष्यों ने कौन सा पाप किया है?
उन्हें यह असहनीय पीड़ा क्यों सहनी पड़ती है?
इतना तीखा, इतना क्रूर, इतना असहनीय?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
पाप किस प्रकार पकता है और फल देता है, इसका वर्णन करते हुए:
"दुनिया में दुष्ट और पथभ्रष्ट विश्वासी कौन थे?"
जिन्होंने झूठे भ्रम में अपना विश्वास रखा,
उन्होंने दूसरों को भी अपने गलत विश्वासों में शामिल कर लिया।
वे अपनी गलत धारणाओं से पाप उत्पन्न करते हैं।
इसलिए इस अत्यधिक पीड़ा को सहना ही होगा।

इतना तीखा, इतना क्रूर, इतना असहनीय।"
अब स्वर्ग में देवता (देवदूत) सुधम्म हॉल में राजा के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इंद्र ने सोचा, "मातली को आने में बहुत समय लगेगा।" उन्हें इसका कारण समझ में आया, इसलिए उन्होंने कहा, "मातली मार्गदर्शक बनकर राजा को सभी नरक दिखा रहे हैं और बता रहे हैं कि किस पाप के कारण उन्हें किस नरक में जाना पड़ा। इसलिए उन्होंने एक युवा देवदूत को शीघ्रता से बुलाया और उससे कहा, "जाओ, मातली से कहो कि राजा को जल्दी यहाँ ले आए। वह राजा निमि का जीवन व्यर्थ कर रहे हैं; उन्हें सभी नरकों का चक्कर नहीं लगाना चाहिए।" युवा देवदूत शीघ्रता से गए और अपना संदेश दिया। जब मातली ने यह सुना, तो उन्होंने कहा, "हमें देर नहीं करनी चाहिए।" फिर उन्होंने राजा को एक ही पल में चारों दिशाओं के सभी महान नरक दिखाते हुए एक श्लोक सुनाया:

"हे महामहिम सम्राट, अब आपने वह स्थान देख लिया है।"
पापियों का, और जहाँ क्रूर पुरुषों को भेजा जाता है,
और दुष्ट लोग कहाँ जाते हैं: हे महाराज,
आओ, हम स्वर्ग के राजा के पास शीघ्रता से चलें।
यह कहकर राजा ने रथ को स्वर्ग की ओर मोड़ दिया। स्वर्ग की ओर जाते हुए राजा ने आकाश में देवी बिरानी का महल देखा, जिसके शिखर रत्नों और सोने से जड़े थे, अत्यंत भव्यता से सजा हुआ था, जिसमें कमलों से ढका एक उद्यान और एक झील थी, और चारों ओर उस स्थान के अनुरूप वृक्ष थे। वहाँ सामने की ओर एक गुंबददार कक्ष में देवी एक दीवान पर विराजमान थीं, और उनके साथ एक हजार अप्सराएँ थीं, जो एक खुली खिड़की से बाहर देख रही थीं। राजा ने मताली से पूछा कि वह कौन हैं, और मताली ने उन्हें इसका उत्तर दिया।

"पांच शिखरों वाले इस महल को देखें:
वहाँ, मालाओं से सजा हुआ, एक सोफा पड़ा है।
एक अत्यंत शक्तिशाली महिला, जो पदभार ग्रहण करती है
हर प्रकार की भव्यता और अद्भुत शक्ति।
इसे देखकर मुझे आनंद आता है, सारथी।
लेकिन मताली, मुझे बताओ, उसने कौन-कौन से अच्छे काम किए हैं?
वह इस स्वर्गिक महल में खुश है।
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"क्या आपने कभी बिरानी की दुनिया में आपके बारे में सुना है?"
एक ब्राह्मण का घर में जन्मा दास, जिसे एक बार प्राप्त हुआ था
सही समय पर आए एक अतिथि ने उनका स्वागत किया।
जैसे एक माँ अपने बेटे की देखभाल करती है; और इसलिए अब,
उदार और पवित्र, इस हवेली में सुखी जीवन व्यतीत करता है।"
ये कहकर मताली रथ को आगे ले गया और उसे देवदूत सोनादिन्ना के सात स्वर्णमय महल दिखाए। जब दूसरे ने उन्हें और देवदूत की महिमा को देखा, तो उसने स्पष्टीकरण मांगा, जो मताली ने दिया।

"वहाँ सात महल हैं, जो निर्मल और उज्ज्वल चमक रहे हैं।"
जहां एक शक्तिशाली, भव्य वस्त्रधारी प्राणी निवास करता है,
जो अपनी पत्नियों के साथ उनमें निवास करता है। आनंद।
इसे देखकर मेरा मन भावुक हो जाता है: बताओ, मताली,
इस मनुष्य ने ऐसा क्या अच्छा कार्य किया कि वह
क्या वह इस स्वर्गिक महल में सुखी रूप से रहता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
यह बताते हुए कि फल कितने अच्छे से पकते हैं और फल देते हैं:
"यह कभी सोनादिन्ना थी, जिसने दिया था।"
शाही उदारता से, और संन्यासियों के लिए
सात आश्रम: उनकी सभी जरूरतों को पूरा करने की लालसा थी
उन्होंने निष्ठापूर्वक व्यवस्था की। वे भोजन लाए।
लेटने के लिए बिस्तर, पहनने के लिए कपड़े और रोशनी।
ईमानदार जीवन जीने वाले उन पुरुषों से संतुष्ट,

वह एक दिन का उपवास रखता था, और हर पखवाड़े में भी उपवास रखता था।
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;
उदार, संयमित, वह पवित्र मार्गों पर चला (*14),
अतः अब वह आनंद के इस महल में निवास करता है।
इस प्रकार उसने सोनादिन्ना के कार्यों का वर्णन किया; फिर अपने रथ को आगे बढ़ाते हुए उसने एक क्रिस्टल से निर्मित महल दिखाया: उसकी ऊँचाई पच्चीस लीग (4.23 किमी) थी, उसमें सात कीमती धातुओं से बने सैकड़ों स्तंभ और सैकड़ों शिखर थे, वह जालीदार संरचनाओं और छोटी घंटियों से सजा हुआ था, सोने और चांदी का एक ध्वज लहरा रहा था, उसके बगल में कई चमकीले फूलों से भरा एक उद्यान और उपवन था, जिसमें लिली की एक सुंदर झील थी, और वहाँ गायन और संगीत में निपुण अप्सराएँ बहुतायत में थीं। तब राजा ने यह देखकर अप्सराओं के कार्यों के बारे में पूछा, और दूसरी ने उसे बताया।

"क्रिस्टल से बना वह महल, चमकता हुआ,
शिखरों की ऊंचाई बढ़ने के साथ,
खाने-पीने की भरपूर व्यवस्था और भीड़ के साथ
नृत्य और गायन में निपुण सुंदर महिलाओं में से!
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इन महिलाओं ने कितना अच्छा काम किया कि अब वे स्वर्ग में हैं!
वे इस आनंदमय महल में निवास करते हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"ये महिलाएं हमेशा पवित्र मार्गों पर चलती रहीं।"
निष्ठावान ननें पवित्र दिनों का पालन करती थीं।
उदार, संयमित और सतर्क, हृदय से शांत,
अब आप उस महल में खुश रहें जिसे आपने देखा है।
उसने रथ को आगे बढ़ाया और रत्नों से जड़ा एक महल दिखाया: वह एक समतल स्थान पर ऊँचा, रत्नों के पर्वत के समान चमकीला, दिव्य संगीत बजाने और गाने वाले देवदूतों से भरा हुआ था। यह देखकर राजा ने पूछा कि इन देवदूतों के क्या कार्य थे, और दूसरे ने उत्तर दिया।

"रत्नों से बना महल, चमकता हुआ,
सममित, संतुलित, देखने में सुंदर।
जहां चारों ओर सबसे दिव्य धुनें हैं,
गीत, नृत्य, ढोल और तबला की गूंज सुनाई देती है:
मैंने इससे पहले इतना सुंदर दृश्य कभी नहीं देखा।
मैंने इससे मधुर ध्वनि कभी नहीं सुनी, कसम से!
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
अब मुझे समझ में आ रहा है कि इन मनुष्यों ने क्या अच्छा काम किया था।
क्या आप इस आनंदमय स्वर्गिक महल में खुश हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"ये लोग मनुष्यों की दुनिया में साधारण भाई थे:
पार्क और कुएँ उपलब्ध कराए गए हों, या पानी लाया गया हो।
कुएँ के पास बने शेड में, शांत संत भोजन करते थे।
कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ और बिस्तर, हर जरूरत का सामान मिल गया।
इन ईमानदार और नेक पुरुषों से संतुष्ट होकर,
जो उपवास का दिन रखता था, और प्रत्येक पखवाड़े में
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;
उदार और संयमित, वे पवित्र मार्ग पर चलते थे।
और अब इस आनंदमय महल में निवास करो।"

इस प्रकार इन व्यक्तियों के कर्मों का वर्णन करने के बाद, वह आगे बढ़ा और उसे एक और क्रिस्टल महल दिखाया: जिसमें कई शिखर थे, चारों ओर तरह-तरह के फूल और सुंदर वृक्ष थे, जिनमें विभिन्न प्रकार के पक्षियों के गीत गूंज रहे थे, और जिसके किनारे शुद्ध जल की एक नदी बह रही थी, जो अप्सराओं के समूह से घिरे एक गुणी व्यक्ति का निवास स्थान बन गई थी। यह देखकर राजा ने उसके कर्मों के बारे में पूछा; और दूसरे ने उसे बताया।

"क्रिस्टल से बना वह महल, चमकता हुआ,
इसकी चोटियाँ ऊँचाई में ऊपर उठ गईं,
खाने-पीने की भरपूर व्यवस्था और भीड़ के साथ
नृत्य और गायन में निपुण सुंदर महिलाओं में से,
और नदियाँ, जिनके किनारे अनेक फूल और वृक्ष हैं—
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इस नश्वर प्राणी ने अपने जीवन में ऐसा क्या अच्छा कार्य किया कि वह
क्या वह इस स्वर्गिक महल में आनंदित होता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"किम्बिला में वह एक गृहस्थ था,"
उदार, उद्यान और कुएँ दिए, और निष्ठापूर्वक
पानी लाया गया, और शांत संतों ने भोजन किया।
कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ और बिस्तर, हर जरूरत का सामान मिल गया।
इन ईमानदार और नेक पुरुषों से संतुष्ट होकर,
वह एक दिन का उपवास रखता था, और हर पखवाड़े में भी उपवास रखता था।
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;
उदार, संयमी, वह पवित्र मार्ग पर चलता था।
और अब वह आनंद के इस महल में निवास करता है।"
इस प्रकार उसने उस व्यक्ति के कार्यों का वर्णन किया और आगे बढ़ गया। फिर उसने एक और क्रिस्टल का महल दिखाया: यह पिछले महल से भी अधिक फल, फूल और वृक्षों के झुंडों से घिरा हुआ था। इसे देखकर राजा ने पूछा कि उस भाग्यशाली व्यक्ति के क्या कर्म थे, और दूसरे ने उसे बताया।

"रत्नों से निर्मित वह महल, जगमगाता हुआ,
इसकी चोटियाँ ऊँचाई में ऊपर उठ गईं,
खाने-पीने की भरपूर व्यवस्था और भीड़ के साथ
नृत्य और गायन में निपुण सुंदर महिलाओं में से,
और नदियाँ, जिनके किनारे अनेक वृक्ष और फूल लगे हुए हैं,
शाही और हाथी के पेड़, और आम, साल,
गुलाब सेब मीठा, और टिंडूक, पियाल छाया,
और बाग के सभी फलदार वृक्ष—
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इस नश्वर प्राणी ने अपने जीवन में ऐसा क्या अच्छा कार्य किया कि वह
क्या वह इस स्वर्गिक महल में आनंदित होता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"मिथिला में वह एक गृहस्थ था।"
उदार, उद्यान और कुएँ दिए, और निष्ठापूर्वक
पानी लाया गया, और शांत संतों ने भोजन किया।
उन्हें कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ और बिस्तर मिल गए, उनकी सभी जरूरतें पूरी हो गईं।
इन ईमानदार और नेक पुरुषों से संतुष्ट होकर,
वह एक दिन का उपवास रखता था, और हर पखवाड़े में भी उपवास रखता था।
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;

उदार, संयमी, वह पवित्र मार्ग पर चलता था।
और अब वह आनंद के इस महल में निवास करता है।"
इस प्रकार उसने उस व्यक्ति के कार्यों का भी वर्णन किया और आगे बढ़ गया। फिर उसने पहले महल की तरह ही रत्नों से सुसज्जित एक और महल दिखाया और राजा के अनुरोध पर वहाँ रहने वाले एक देवता (देवदूत) के कार्यों के बारे में बताया।

"रत्नों से बना महल, चमकता हुआ,
सममित, संतुलित, देखने में सुंदर।
जहां चारों ओर सबसे दिव्य धुनें हैं,
गीत, नृत्य, ढोल और तबला की गूंज सुनाई देती है:
मैंने इससे पहले इतना सुंदर दृश्य कभी नहीं देखा।
मैंने इससे मधुर ध्वनि कभी नहीं सुनी, कसम से!
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इन मनुष्यों ने क्या अच्छा काम किया, जिन्हें अब मैं देख रहा हूँ
क्या आप इस आनंदमय स्वर्गिक महल में खुश हैं?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
वह एक समय बनारस का गृहस्थ था।
उदार, उद्यान और कुएँ दिए, और निष्ठापूर्वक
पानी लाया गया, और शांत संतों ने भोजन किया।
उन्हें कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ और बिस्तर मिल गए, उनकी सभी जरूरतें पूरी हो गईं।
इन ईमानदार और नेक पुरुषों से संतुष्ट होकर,
वह एक दिन का उपवास रखता था, और हर पखवाड़े में भी उपवास रखता था।
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;
उदार, संयमी, वह पवित्र मार्ग पर चलता था।
और अब वह आनंद के इस महल में निवास करता है।"
फिर आगे बढ़ते हुए, उसने सोने का एक महल दिखाया, जो अपनी पूरी शक्ति में सूर्य के समान था, और राजा के अनुरोध पर उसने उसे वहां रहने वाले देवता (देवदूत) के कारनामों के बारे में बताया।

"आग की लपटों से बने उस महल को देखो,"
सूर्य की तरह लाल, जबकि वह और ऊपर उठता है!
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इस नश्वर प्राणी ने अपने जीवन में ऐसा क्या अच्छा कार्य किया कि वह
क्या वह इस स्वर्गिक महल में आनंदित होता है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
वह एक समय श्रावस्ती शहर में रहने वाला एक गृहस्थ था।
उदार, उद्यान और कुएँ दिए, और निष्ठापूर्वक
पानी लाया गया, और शांत संतों ने भोजन किया।
उन्हें कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ और बिस्तर मिल गए, उनकी सभी जरूरतें पूरी हो गईं।
इन ईमानदार और नेक पुरुषों से संतुष्ट होकर,
वह एक दिन का उपवास रखता था, और हर पखवाड़े में भी उपवास रखता था।
आठवां, चौदहवां और पंद्रहवां दिन;
उदार, संयमी, वह पवित्र मार्ग पर चलता था।
और अब वह आनंद के इस महल में निवास करता है।"
जब उसने इन आठ महलों का वर्णन किया, तो देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) ने सोचा कि मताली को आने में बहुत समय लग रहा है, इसलिए उसने एक और तेज देवदूत को संदेश के साथ भेजा। मताली ने संदेश सुनकर समझा कि अब और देर नहीं करनी चाहिए; इसलिए उसने पलक झपकते ही कई महल दिखाए और राजा को उनमें रहने वालों के कर्मों का वर्णन किया।

"हवा में कई धधकते महल दिखाई दे रहे हैं,"

बादलों के बीच बिजली की चमक!
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
इन मनुष्यों ने क्या अच्छा काम किया, जिन्हें अब मैं देख रहा हूँ
क्या तुम वहां स्वर्गिक महल में आनंद मना रहे हो?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"अच्छा जीवन जीने वाला, सुशिक्षित, आस्था से परिपूर्ण,"
उन्होंने गुरु की शिक्षाओं के अनुसार कार्य किया;
असीम ज्ञानी (बुद्ध) द्वारा बताए गए जीवन जीने से
वे उन घरों में आए थे जिन्हें आप अब देख रहे हैं।"
इस प्रकार आकाश में बने इन महलों को दिखाने के बाद, वह इन शब्दों के साथ सक्का (इंद्र) के समक्ष आने के लिए चल पड़ा:

"तुमने आकाश में अच्छे और बुरे लोगों के स्थान देखे हैं;
अब हम देवताओं (देवदूतों) के सम्राट के पास चलें।
ये कहते हुए वह आगे बढ़ा और उसे वे सात पहाड़ियाँ दिखाईं जो सिनेरू के चारों ओर एक घेरा बनाती हैं; यह समझाने के लिए कि राजा ने इन्हें देखकर मताली से क्या प्रश्न किया, गुरु ने कहा:

"राजा दिव्य रथ में सवार होकर अपने मार्ग पर यात्रा कर रहे थे।"
हजारों घोड़ों द्वारा खींचे जाने पर, उसने दूर स्थित पर्वत चोटियों को देखा।
सिदा सागर में, उसने पूछा, "मुझे बताओ ये कौन सी पहाड़ियाँ हैं।"
निमी के इस प्रश्न पर देवदूत मताली ने उत्तर दिया:

"शक्तिशाली पहाड़ियाँ सुदस्सरा, काराविका, इसाधारा,
युगंधार, नेमिन्धर, विनताका, अस्सकन्ना।
ये पहाड़ियाँ सिदंतारा में हैं, इसलिए वे वहीं स्थित हैं।
जिसे आप, हे पराक्रमी राजा, आकाश में ऊँचा उठते हुए देखते हैं।
इस प्रकार उसने चार महान राजाओं का स्वर्ग दिखाया और आगे बढ़ता रहा, यहाँ तक कि वह तैंतीस देवताओं के स्वर्ग के विशाल चित्तकूट द्वार के चारों ओर स्थित इंद्र की मूर्तियों को भी दिखा सका। यह देखकर राजा ने प्रश्न किया और दूसरे ने उत्तर दिया।

"यह जगह इतनी सुंदर, भव्य और सजी-धजी है,"
मानो इंद्र की मूर्तियों से घिरा हुआ हो
बाघों द्वारा संरक्षित—जैसा कि मैं इस दृश्य को देख रहा हूँ,
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
मैं जो देख रहा हूँ उसका नाम क्या है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"यह स्थान चित्तकुटा है जिसे आप देख रहे हैं।"
स्वर्ग के राजा के स्थान का प्रवेश द्वार,
खूबसूरत पहाड़ों का प्रवेश द्वार:
विस्तृत, अलंकृत और व्यवस्थित
इंद्र की मूर्तियों के साथ, जैसे बाघों द्वारा पहरा दिया जाता है।
हे बुद्धिमान राजा, प्रवेश करो! इस निर्मल स्थान में प्रवेश करो।
इन शब्दों के साथ मताली राजा को भीतर ले गया; ऐसा कहा जाता है--

"स्वर्गीय रथ में यात्रा करते हुए,
हजार घोड़ों द्वारा खींचा गया, शक्तिशाली राजा
मैंने वह स्थान देखा जहाँ सभी देवता (देवदूत) एकत्रित होते हैं।
और जब वह रथ में स्थिर खड़े होकर आगे बढ़ रहा था, तो उसने सुधम्मा में देवताओं (देवदूतों) के जमावड़े का स्थान देखा और मताली से प्रश्न किया, जिसने उत्तर दिया।

"जैसे शरद ऋतु में आकाश पूरी तरह नीला होता है,"
और नज़ारे के लिहाज़ से वह रत्नजड़ित हवेली भी वैसी ही है।
मुझे खुशी का अनुभव होता है: बताओ, मताली,
यह कौन सी हवेली है जो अब मुझे दिखाई दे रही है?
तब सारथी मतली ने उत्तर दिया,
अच्छे फल पकने और फल देने की प्रक्रिया का वर्णन:
"यह सुधम्म है, जहाँ देवता (देवदूत) एकत्रित होते हैं।"
सुंदर स्तंभों द्वारा समर्थित, बारीक ढंग से निर्मित,
आठ भुजाओं वाला, दुर्लभ रत्नों और आभूषणों से निर्मित,
जहां तैंतीस लोग अपने मुखिया के साथ निवास करते हैं,
भगवान इंद्र, सुख के बारे में सोचते हुए
हे देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों: इस सुंदर स्थान में प्रवेश करो।
हे महान सम्राट, जहाँ देवता (देवदूत) निवास करते हैं!
देवता (देवदूत) उनके आगमन की प्रतीक्षा में बैठे रहे; और जब उन्हें राजा के आने का आभास हुआ, तो वे दिव्य पुष्प और सुगंध लेकर महान चित्तकूट द्वार तक उनका स्वागत करने गए; और उन्हें पुष्प और सुगंध भेंट करके सुधम्म हॉल में ले आए। राजा रथ से उतरकर देवताओं (देवदूतों) के हॉल में प्रवेश किया, और देवताओं (देवदूतों) ने उन्हें आसन प्रदान किया, सक्का (इंद्र) को भी वैसा ही आसन दिया और सभी सुख-सुविधाओं का सत्कार किया।

इसकी व्याख्या करते हुए गुरु ने कहा (*15):

"देवताओं (देवदूतों) ने राजा को आते देखा: और फिर, अपने अतिथि का स्वागत करने के लिए,
रोते हुए बोला—"स्वागत है, महान सम्राट, जिनसे मिलकर हमें बहुत खुशी हुई!"
हे राजा! हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप देवताओं (देवदूतों) के राजा के पास बैठें।
और सक्का (इंद्र) ने मिथिला नगर के राजा वेदेह का स्वागत किया।
जी हां, वासावा ने उन्हें सभी सुखों का प्रस्ताव दिया और उनसे बैठने का अनुरोध किया।
"विश्व के शासकों के बीच, हमारे देश में आपका स्वागत है:
हे राजा, उन देवताओं (देवदूतों) के साथ निवास करो, जिनके पास सभी इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार है।
अमर सुखों का आनंद लें, जहाँ 33 का स्थान है।"
इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने उसे दिव्य सुखों की पेशकश की; और राजा ने अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया (*16):

"जैसे जब कोई रथ दिया जाता है, या जब मांग पर सामान दिया जाता है,"
किसी दूसरे के हाथों से प्राप्त आनंद का अनुभव करना भी ऐसा ही है।
मुझे दूसरों के हाथों से मिले आशीर्वाद की परवाह नहीं है।
जब मैं अपने कर्मों के आधार पर खड़ा होता हूँ, तो मेरी संपत्ति मेरी ही होती है और केवल मेरी ही होती है।
मैं जाकर मनुष्यों का बहुत भला करूंगा, पूरे देश में दान दूंगा।
सद्गुणों का पालन करेंगे, संयम और आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करेंगे:
जो इस प्रकार कार्य करता है वह सुखी रहता है और उसे पश्चाताप का कोई भय नहीं होता।
इस प्रकार उस महान सत्ता ने मधुर ध्वनि में देवताओं (देवदूतों) को उपदेश दिया; और उपदेश देते हुए वे सात दिन तक मनुष्यों की समझ के अनुसार रहे और देवताओं (देवदूतों) की संगति को आनंदित किया। और देवताओं (देवदूतों) के बीच खड़े होकर उन्होंने मताली के गुणों का वर्णन किया।

"मटाली नामक सारथी एक अत्यंत दयालु व्यक्ति है।"
उन्होंने मुझे स्पष्ट रूप से वे स्थान दिखाए जहाँ अच्छे लोग रहते हैं और जहाँ बुरे लोग रहते हैं।
तब राजा ने सक्का (इंद्र) से विदा लेते हुए कहा कि वे मनुष्यलोक जाना चाहते हैं। तब सक्का (इंद्र) ने कहा, "मित्र मताली, राजा निमि को तुरंत मिथिला ले चलो।" उन्होंने रथ तैयार किया; राजा ने देवदूतों के समूह से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, उनसे विदा ली और रथ में सवार हो गए। मताली रथ को पूर्व दिशा में मिथिला की ओर ले गए। वहाँ रथ को देखकर भीड़ प्रसन्न हुई कि उनके राजा लौट रहे हैं। मताली ने मिथिला नगर का दाहिनी ओर चक्कर लगाया और उसी खिड़की पर राजा को उतारा, विदा ली और अपने स्थान पर लौट गए। बड़ी संख्या में लोग राजा के चारों ओर जमा हो गए और उनसे पूछा कि देवदूतों का लोक कैसा है। राजा ने देवदूतों और उनके राजा

सक्का (इंद्र) के सुख का वर्णन करते हुए उन्हें दान देने और अच्छे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें उस दिव्य स्थान में जन्म मिलेगा।

बाद में, जब उनके नाई को एक सफेद बाल मिला और उसने उन्हें बताया, तो उन्होंने नाई से उस सफेद बाल को अलग रखने को कहा; फिर उन्होंने नाई को एक गाँव दे दिया, और संसार का त्याग करने की इच्छा से अपने पुत्र को उसके स्थान पर राजा बना दिया। जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने संसार का त्याग क्यों किया, तो उन्होंने यह श्लोक सुनाया, "देखो, ये सफेद बाल"; और पूर्व राजाओं की तरह उन्होंने भी संसार का त्याग कर उसी आम के बाग में निवास किया, चार गुणों का विकास किया, और ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) में जाने के लिए नियत हुए।

गुरु ने अंतिम श्लोक में संसार के त्याग का ही वर्णन किया है।

"मिथिला के राजा निमी ने ऐसा कहा,
और एक महान बलिदान देने के बाद,
मैंने आत्मसंयम के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है।
और उनके पुत्र, जिनका नाम कालरा जनक था, ने भी संसार का त्याग कर अपने वंश का अंत कर दिया।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने कहा—"तो, भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब तथागत (बुद्ध) ने सांसारिक जीवन त्यागा है; उन्होंने पहले भी ऐसा किया था।" फिर उन्होंने जन्म का वर्णन किया: "उस समय, अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, आनंद मातली थे, चौरासी राजा बुद्ध के अनुयायी थे, और राजा निमि मैं स्वयं था।"

फुटनोट:

(2) क्रमांक 9 देखें

(3) नीचे, निमी.

(4)pakkhadivasesu.

(5) विद्वान का कहना है कि यह संदेह उन्हें रात में हुआ और वे निर्णय नहीं कर सके।

(6) विद्वान ने कहा, "क्योंकि पानी इतना नाजुक है कि मोर का पंख भी नहीं तैरेगा, बल्कि नीचे डूब जाएगा।"

(7) विद्वान रचना को पूरा करने के लिए उपत्थहिम जोड़ता है। वह यह समझाने के लिए एक लंबी उबाऊ कहानी जोड़ता है कि यह कैसे हुआ।

(8) निम्नलिखित प्रकरण का समग्र स्वरूप स्पष्ट है।

(9) नरक का वर्णन

(10) विद्वान इस क्षेत्र की भयावहता का लंबा वर्णन देता है।

(11)"और सब जल उठता है": विद्वान.

(12)करणिका: "करणकारक."

(13) "दम धधकते अंगारों से भरा एक खाई": विद्वान।

(14) देखें 320, 202

(15)सं. 225

(16)सं. 225 , 257.

पाली संस्करण (रोमन, अंग्रेजी)
(tipitaka.org से)

[541] 4. निमिजातकवन्ना

अच्चेरन्वत लोकस्मि नति इदं सत्था मिथिलां उपनिस्साय माघदेवाम्बवने विहारन्तो सितापटुकम्मं अरब कथेसि। एकादिवसंहि सत्था सयानहसामये संबाहुलेहि भिक्खुहि सद्धिं तस्मि अम्बवने कारिकां कारमाणो एकं रमणीयं भूमिप्पदेसं दिस्व अत्तनो पुब्बाकार्यं कथेतुकामो हुत्वा सीतापत्तुकम्मं कत्वा अयस्माता आनंदत्थेरेण सीतापत्तुकम्मकारणं पुत्थो "आनंद, अयं भूमिपदेसो पुब्बे माया मघदेवराजकाले झनकीधं किआंतेन अज्झावुथपुब्बो'ति वत्वा तेन याचितो पन्नत्तसने निसीदित्वा अतीतं अहारी।

अतिते विदेहरथे मिथिलानगरे मघदेवो नाम राजा रज्जन करेसि। तो चतुरास्तिवस्सासहसानि कुमारकिधं किधि, चतुरास्तिवस्सासहसानि उपराजजं करेसि, चतुरसतिवाससाहस्सानि रज्जनं कारेंटो " यदा मे सम्मा कप्पाका, सिरस्मिं पलितानि पस्सेयसि, तदा मे अरोसेयसि'ति आहा। अपराभागे कप्पको पालितानि दिस्वा राननो अरोसेसि। राजा पालितं सुवनासांडासेना उद्धरापेत्वा हत्थतले पतिथपेत्वा पलितं ओलोकेत्वा मक्कुराजेना अगनत्वा नालते लग्गं विया मरणं सम्पासमानो "इदानी मे पब्बजिटकालो"ति कप्पकस्सा गमवरं दत्वा जेत्थपुत्तं पक्कोसपेतवा" ताता, रज्जन पतिच्चा, अहं पब्बाजिस्सामि"ति वट्वा" किं करना देवाति वुट्टे -

"उत्तममंगरुहा मयहं, इमे जाता वयोहारा;

पतुभूता देवदूता, पब्बज्जासमायो ममा'ति। –

वत्वा पुत्तं रज्जे अभिसिंचित्वा "तत्, त्वमपि एवरुपं पालितं दिस्वव पब्बजेयसि'ति तं ओवदित्वा नगरा निक्खमित्वा अंबवने इसिपबज्जं पब्बजित्वा चतुरासितिवस्ससहसानि चत्तारो ब्रह्मविहारे भवेत्वा ब्रह्मलोके निब्बति। पुत्तोपिस्सा एतेनेवा उपायेन पब्बजित्वा ब्रह्मलोकपरायणो अहोसि। तथा तस्स पुत्तो, तथा तस्स पुत्तोति एवं द्वीहि उनानि चतुरासितिखट्टियसहसानि सीसे पलितं दिस्वव इमस्मि अम्बवने पब्बजित्वा चत्तरो ब्रह्मविहारे भवेत् ब्रह्मलोके निब्बतिंसु.

तेसां सब्बापथमं निब्बत्तो माघदेवराज ब्रह्मलोके थितोवा अत्तनो वंशं ओलोकेनतो द्वीही उनानि चतुरासीतिखट्टियासाहस्सानि पब्बजितनि दिस्वा तुथमानसो हुत्वा "इतो नु खो परं पवत्तिसति, न पवत्तिससति ओलोकेंटो अप्पवत्तनभवं नात्वा "मम वंसं अहमेव घटेस्सामि"ति सिंतेत्वा ततो कैवित्व मिथिलानगरे रणनो अग्गमहेसिया कुच्चिमहि पतिसंधिम् गनहित्वा दशमासच्चयेन मातु कुच्चितो निक्खमि। राजा तस्स नामग्गहनादिवसे नेमित्तके ब्राह्मणे पक्कोसपेत्व पुच्चि। ते तस्स लक्खानि ओलोकेत्वा "महाराजा, अयं कुमारो तुम्हाकं वंशं घटेनतो उप्पन्नो। तुम्हाकान्हि वांसो पब्बजितावंसो, इमास्सा परतो नागामिस्साति'ति वादिन्सु। तं सुत्वा राजा "अयं कुमारो रथचक्कनेमि विया मम वंशं घटेनतो जातो, तस्मा तस्स निमिकुमारो'ति नामं करिस्सामि'ति सिंतेत्वा' निमिकुमारो"तिस्सा नामं आकाशी.

तो दाहरकालतो पठया दाने सिले उपोसथकम्मे च अभिरतो अहोसि। अथस्सा पिता पुरिमानयेनेव पलितं दिस्व कप्पकस्सा गमवरं दत्वा पुत्तस्सा रज्जं निय्यदेत्वा अम्बवने पब्बजित्वा ब्रह्मलोकपरायणो अहोसि। निमिरजा पण दानज्झासयताय कटुसु नगरद्वारेसु नगरमज्जे चति पंचसु ठानेसु पंच दानसलयो करापेत्वा महादानं पवत्तेसि। एकेकाय दानसलाय सतासहस्सं सतासहस्सं कत्वा देवासिकं पंच पंच कहापानसत्साहसानि परिच्चजी, निच्चं पंच सिलनि रक्खी, पक्खदिवासेसु उपोसाथं समाधियि, महाजनमपि दनादिसु पुन्नेसु समादपेसि, सग्गमग्गं अचिक्खित्वा निर्याभयेन तज्जेत्व धम्मं देसेसि। तस्स ओवदे थिता मनुस्सा दानादिनि पुन्नानि कत्वा ततो काटा देवलोके निब्बतिंसु, देवलोको पारिपुरी, निरायो तुच्चो विया अहोसी। तदा तवतिंसभावने देवसंघ सुधम्मयं देवासाभायं सन्निपतित्व "अहो, वात महकं अकारियो निमिराज, तं निस्साय मायां इमं बुद्धाननेपि अपरिच्छिंदनीयं दिब्बासम्पत्ति अनुभवमा'ति त्वा महासत्तस्सा गुणे वाणयिन्सु। मनुस्सालोकेपि महासमुद्दपिथे असित्तेतेलम् विया महासत्तस्सा गुणकथा पत्थरि। सत्थ तमत्थं अविभूतं कत्वा भिक्खुसंघस्स कथेंटो अहा -

"अच्चेरं वात लोकस्मि, उपज्जन्ति विकक्खना;

यदा अहु निमिराज, पण्डितो कुसलत्थिको।

422 .

"राजा सब्बविदेहानां, अदा दानं अरिंदमो;

तस्स तं ददातो दानं, संकप्पो उदपज्जथा;

दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमं सु महप्फला'न्ति।

तथा यदा **अहु** ति भिक्खवे, यदा पण्डितो अत्तनो च परेसान्च कुसलत्थिको निमिराज अहोसि, तदा देवमनुस्सा " अच्चेरं वात, भो, इवरूपपि नाम अनुप्पन्ने बुद्धानाने महाजनस्सा बुद्धकिकचं साधयमना लोकस्मि विकक्खना उप्पजंति एवम् तस्स गुणकथं कथेसुन्ति अथो। "यथा अहु"तिपि पठो।" तस्सत्थो – यथा अहु निमिराज पण्डितो कुसलत्थिकोयेव, तथारूपा महाजनस्सा बुद्धकिच्चन साधयमाना उपप्पजंति विकक्खना। यं तेसं उप्पन्नं, तं अच्चेरं वात लोकस्मिन्ति। इति सत्था संयमेव अच्चैरियाजातो एवमः। **सब्बविदेहन** न्ति सब्बविदेहरथवासिनं। **कतमं सु** ति एतेसु दविसु कतमं नु खो महाप्फलन्ति अथो।

तो किरा पन्नरसिउपोसथदिवास उपोसथिको हुत्वा सब्बाभरणनि ओमुञ्चित्वा सिरिसायनपिथे निपन्नोवा द्वे यम निद्दं ओक्कमित्वा पच्चिमयामे पबुद्धो पल्लकं अभुजित्व "अहं" महाजनस्सा अपरिमाणं दानमपि देमि, सिलमपि रक्खामि, दानस्सा नु खो महन्तं फलं, उदाहु ब्रह्मचर्यस्सा'ति सिन्तेत्वा अत्तनो कण्खं चिंदितुं नासक्खि। तस्मिं खाने सक्कस्सा भवनं उन्हाकारं दस्सेसि। सक्को अवज्जेनतो तं तथा वितक्केंतं दिस्वा " कनखमस्सा चिंदिस्सामि'ति एककोवा सिघं आगंत्वा सकलनिवासनं एकोभासं कत्वा सिरिगभं पविसित्वा ओभासं फरित्वा आकाशे तत्त्व तेन पुत्थो ब्याकासी। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

423 .

"तस्सा संकप्पमनन्या, मघावा देवकुंजरो;

सहस्सनेत्तो पतुराहु, वन्नेन विहानं तमम्।

424 .

"सलोमहत्थो मनुजिंदो, वासवं अवचा निमि;

देवता नुसी गन्धब्बो, अदु सक्को पुरिन्ददो।

425 .

"ना च मे तदिसो वनो, दित्थो वा यदि वा सुतो;

अचिक्खा मे त्वं भद्दन्ते, कथं जनेमु तं मयां।

426 .

"सलोमहत्थं न्त्वाना, वासवो अवचा निमिं;

सक्कोहमस्मि देविन्दो, आगतोस्मि तावंतिके;

अलोमहंथो मनुजिंदा, पुच्च पन्हां यमिच्छसि।

427 .

"तो च तेन कटोकासो, वासवं अवचा निमि;

पुच्चामि तं महाराज, सब्बभूतानमिस्सर;

'दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमांसु महप्फलम्'।

428 .

''तो पुत्थो नरदेवेन, वासवो अवचा निमिं;

विपाकं ब्रह्मचर्यस्स, जनं अक्खासिजानतो।

429 .

''हिनेण ब्रह्मचर्येण, खत्तिये उपपज्जति;

मज्झिमेन च देवतां, उत्तमेना विसुज्जति।

430 .

''न हेते सुलभा काया, यकायोगेन केनसी;

ये काये उपपज्जन्ति, अनागारा तपस्सिनो'ति।

तत्थ **सलोमहठो** ति भिक्खवे, सो निमिराज ओभासं दिस्व आकाशं ओलोकेनतो तं दिब्बाभरणपपतिमन्दितं दिस्ववा भयेन लोमहठो हुत्वा ''**देवता नुसि गंधब्बो**'' तिआदिना पुच्छी। **अलोमहत्थो** ति निब्भयो अहथथलोमो हुत्वा पुच्च, महाराजति। **वासवं अवचा** ति तुथमानसो हुत्वा सक्कं अवोका। **जनं अक्खासिजानतो** ति भिक्खवे, सो सक्को अतिते अत्ताना पक्कक्खतो दिट्ठपुब्बं ब्रह्मचर्यस्स विपकं जानंतो तस्स अजानतो अक्खासी।
हिनेना तिदिसु पुथुतिथायतेन मेथुनवीरतिमत्तं सिलं हीनं नाम, तेन खट्टियकुले उपपज्जति। झानस्स उपाकर्मत्तं मज्झिमं नाम, तेन देवतां उपपज्जति। अट्ठसमापत्तिनिबत्तनं पण उत्तमं नाम, तेन ब्रह्मलोके निब्बत्तति, तं बहिरका निब्बान्ति कथेंति। तेनाहा ''विसुज्जति''ति। इमस्मिं पण बुद्धसासने परिशुद्धसिलस्स भिक्खुनो अनंतारं देवनिकायं पत्थेनतस्सा ब्रह्मक्रियाचेतना हिनतया हीनं नाम, तेन यथापत्थिते देवलोके निब्बत्तति। परिशुद्धसिलस्स भिक्खुनो अट्ठसमापत्तिनिबत्तनं मज्झिमं नाम, तेन ब्रह्मलोके निब्बत्तति। परिशुद्धसिलस्स विपश्यनां वद्धहेत्वा अरहट्टुप्पति उत्तमं नाम, तेन विसुज्जति। इति सक्को ''महाराजा, दानतो सतगुणेन सहस्सगुणेन सतसहसगुणेन ब्रह्मकार्यवासोवा महाप्फालो'ति वनेति। **काया** ति ब्रह्मघटा। **याचयौगेना** ति याचनयुत्तकेण यान्यायुत्तकेण वती उभयत्थापि दयाकससेवेतम् नामम्। **तपस्सिनो** ति तपनिसिताका।

इमाया गाथाय ब्रह्मचैर्यवसस्सेव महफलाभवं दीपेत्वा इदानी ये अतिते महादानं दत्वा कामवचरं अतिक्कमितुं नासक्खिन्सु, ते राजनो दस्सेंतो अहा -

431 .

''दुदीपो सागरो सेलो, मुजाकिंडो भगीरसो;

उसिंडारो कसापो सीए, असाको सीए पुथुज्जनो।

432 .

''एते कैन्ने च राजनो, खटिया ब्राह्मण बाहु;

पुथुयान्नं यजित्वान, पेटत्तं नतिवत्तिसु'न्ति।

तस्सत्थो - महाराज, पुब्बे बरनसियां दुदीपो नाम राजा दानं दत्वा मरणचक्केन छिन्नो कामवाचर्येव निब्बति। तथा सागरादयो अठ्ठाति एते च अण्णे च बहु राजनो सेवा खट्टिय ब्राह्मण च पुथुयानं यजित्वान अनेकप्पाकारं दानं दत्वा कामवचरभूमिसंखतं पेटत्तं नातिवत्तिन्सुति अथो। कामवकारदेवता हि रूपादिनो किलेसवत्थुस्सा कारण परं पच्चासिनातो कपनतया ''पेटा'ति वुक्कन्ति। वुट्टमपि चेताम् -

''ये अदुतीय न रमन्ति एकिका, विवेकजं ये न लभन्ति पीतिम्;

किंचापि ते इंदासमानभोगा, ते वे पराधीनसुखा वरका'ति।

एवमपि दानफलतो ब्रह्मकार्यफलस्सेव महन्तभावं दस्सेत्वा इदानि ब्रह्मचैर्यवसेन पेटभवनं अतिक्कमित्वा ब्रह्मलोके निब्बत्ततापसे दस्सेन्तो अहा -

433 .

"अथ यिमे अवत्तिन्सु, अंगारा तपस्सिनो;

सत्तिसयो यामहानु, सोमयामो मनोजावो।

434 .

"समुद्दो माघो भारतो च, इसी कलपुरक्खतो;

अंगिरसो कस्सपो च, किसावच्चो अकत्ती चा"ति।

तत्थ **अवत्तिन्सु** ति कामवचरं अतिक्कमिन्सु। **तपस्सिनो** ति सिलातापञ्चेव समापत्तितपञ्च निस्सिता। **सत्तिसयो** ति यामहानुादयो सत्त भतारोवा संधायः। अंगिरसादिहि चतुहि सद्धिं एकादसेते अवत्तिन्सु अतिक्कमिन्सुति अथो।

एवं तव सुतवसनेव दानफलतो ब्रह्मचैर्यवससेव महप्फलतं वनेत्वा इदानि अत्ताना दिट्ठपुब्बं अहरंतो अहा -

435 .

"उत्तरेण नादि सीदा, गंभीरा दुरतिक्कमा;

नादग्गिवना जोतंति, सदा कांचनपब्बता।

436 .

"परुढकच्छ तगार, रुढ़कच्छ वन नागा;

तत्रासुं दशसहस्सा, पोराणा इसयो शुद्ध।

437 .

"अहं सेठोस्मि दानेन, संयमेन दमेन च;

अनुत्तरं वातं कत्वा, पकिराचारी समाहिते।

438 .

"जातिमंतं अजक्कन्च, अहं उजुगतं नरं;

अतिवेलं नमस्सिस्सं, कम्मबंधु हि मनावा।

439 .

"सब्बे वना अधम्मत्था, पतन्ति निरयं अधो;

सब्बे वना विसुज्जन्ति, चरित्त्वा धम्ममुत्तमा'न्ति।

तथा उत्तरेण **ति** महाराज, अतिते उत्तरहिमवंते द्विन्नं सुवन्नपब्बतानं अंतरे पवत्ता सीदा नाम नदी गंभीरा नवाहिपि दुरतिक्कमा अहोसि। कौन सा कारण? सा हि अतिसुखुमोदका, सुखुमत्ता उदकस्सा अन्तमसो मोरापिन्च-मत्तमपि तत्थ पतितं नं सन्तहति, ओसीदित्वा हेट्ठुलमेव गच्छति। तेनेवा सा सीदा नाम अहोसी। ते पना तस्सा तिरेसु कांचनपब्बता सदा नादग्गिवना हुत्वा जोतंति ओभासन्ति। **परुढकच्छ तगरा** ति तस्स पना नदिया तीरे कच्छ परुधतगारा अहेसुम तगरगन्धसुगन्धिनो। **रुढाकच्चा वाना नागा** ती ये तत्थ अण्णेपि पब्बता, तेसाम्पि अंतरे कच्च्च रुधावना एहेसुं, पुप्फाफलुपगारुक्खासंचन्नति अथो। **तत्रसु** न्ति तस्मिं एवम् रमणीये भूमिभागे दससहस्सा इसयो

एहेसुं। ते सब्बेपि अभिनासमापत्तिलाभिनोवा। तेसु भिक्खाचारवेलाय केचि उत्तरकुरुं गच्छन्ति, केचि महाजम्बूदीपे जम्बुफलम् आहारन्ति, केचि हिमवन्तयेव मधुरफलाफलनि अहारित्वा खादन्ति, केचि जम्बूदीपतले तं तं नागरं गच्छन्ति। एकोपि रसतन्हाभिभूतो नत्थि, झानासुखनेव वित्तिनामेंटि। तदा एको तपसो आकाशेन बाराणासिं गन्त्वा सुनीवत्थो सुपारुतो पिण्डया कैरान्तो पुरोहितस्स गेहद्वारं पापुनि। तो तस्स उपासमे पसीदित्वा एंटोनिवेसनं अनेत्वा भोजन्वा कटिपाहं पतिजग्गन्तो विसासे उप्पन्ने "भंते, तुम्हें कुहिं वसथा"ति पुच्चि। "असुकत्थाने नामवुसो"ति। "किं पना तुम्हें एककोवा तथा वसथ, उदाहु अण्णेपि अत्थि"ति? "किं वदेसि, आवुसो, तस्मिं पदे दससहस्सा इसायो वसंती, सब्बेवा अभिनासमापत्तिलाभिनो"ति। तस्स तेसं गुणं सुत्वा पब्बज्जय चित्तं नामि। अथ नं सो अहा - "भंते, ममपि तत्थ नेत्वा पब्बजेथा'ति। "आवुसो, त्वं राजपुरिसो, न तं सक्का पब्बाजेतु'न्ति। "तेन हि, भंते, अज्जाहं राजनं आपुच्चिसामि, तुम्हें स्वेपि आगच्छेयथा"ति। सो अधिवाससि ।

इतारोपि भुत्तपत्रसो राजनं उपसंकमित्वा "इच्छामहं, देवा, पब्बजितु"न्ति आहा। "किं करण पब्बजिस्ससि'ति? "कामेसु दोसं नेक्खम्मे च अनिसंसं दिस्वती।" "तेना ही पब्बाजाही, पब्बाजीतोपि मां दस्सेयसी"ति। तो "साधु"ति संपतिचित्व अत्तनो गेहं गन्त्वा पुत्तदारं अनुसासीत्व सब्बं सपतेयं दस्सेत्व अत्तनो पब्बजीतपरिक्खारं गहेत्वा तपसस्सा अगमणमग्गं ओलोकेंटोवा निसिडी. तपसोपि तथेव अकासेनागन्त्वा अन्तोनगरं पविसीत्व तस्स गेहं पविसी। तो तं सक्कच्चं परिविसीत्वा भंते, मया कथं कट्ब'न्ति अहा। तो तं बहिनगरं नेत्वा हत्थे आदया अत्तनो अनुभावेन तत्थ नेत्वा पब्बाजेत्वा पुनादिवसे तं तत्थेव थपेत्वा भट्टं अहरित्व दत्वा कसिनपरिकमं अचिक्खि। तो कतिपहेनेव अभिनासमापत्तियो निब्बत्तेत्वा संयमेव पिण्डया चरति।

तो अपराभागे " अहं रणनो अत्तनं दस्सेतुं पतिन्नं अदासीं, दस्सेस्सामस्सा अत्तन"न्ति सिंतेत्वा तपसे वंदित्वा अकासेना बाराणसीं गन्त्वा भिक्खं चरंतो राजद्वारं पापुनि। राजा तं दिस्व संजनित्वा एंटोनिवेसनं पवेसेत्व सक्करं कत्वा भंते, कुहिं वसथा"ति पुच्चि। "उत्तरहिमवन्तपदेसे कञ्चनपब्बतान्तरे पवत्तया सिदानदिया तीरे, महाराज"ति। "किं पना, भंते, एककोवा तत्थ वसथ, उदाहु अण्णेपि अत्थि"ति। "किं वदेसि, महाराज, तथा दशसहस्सा इसयो वसंती, सब्बेव अभिनासमापत्तिलाभिनो"ति? राजा तेसं गुणं सुत्वा सब्बेसं भिक्खं दातुकामो अहोसि। अथ नं राजा अहा - "भन्ते, अहं तेसंं इसिनं भिक्खं दातुकामोऽहि, किं करोमिति?" "महाराज, ते इसायो जिव्हाविन्येयारसे अगिद्धा, न सक्का इधानेतु"न्ति। "भंते, तुम्हें निस्साय ते भोजेस्सामि, उपायं मे अचिक्खा'ति। "तेन ही, महाराज, ससे तेसं दानं दातुकामोसि, इतो निक्खमित्वा सिदानादितिरे वसंतो तेसं दानं देहि"ति।

तो "साधु"ति संपतिचित्वा सब्बुपकरणानि गाहापेत्वा चतुरंगिनिया सेनाय सद्धिं निक्खमित्वा अत्तनो रजजसिमं पापुनि।" अथ नं तपसो अत्तनो अनुभावेन सद्धिं सेनाय सिदानादितिरं नेत्वा नदीतिरे खंडावरं करापेत्वा अकासेना अत्तनो वासनात्थानं गन्त्वा पुनादिवसे पच्चागामी। अथ नं राजा सक्कच्चं भोजन्वा "स्वे, भंते, दससहस्से इसयो आदया इधेव अगाच्छता"ति आहा। तो "साधु"ति संपतिचित्वा गन्त्वा पुनादिवसे भिक्खाचारवेलाय तेसंं इसिनं अरोसेसि" मारिसा, बरणसिराजा 'तुम्हाकं भिक्खं दशमीति' आगन्त्वा सिदानादितिरे निसिन्नो स्वे वो निमंतेति, तस्सानुकम्पाय खंडावरं गन्त्वा भिक्खं गंहत्था'ति। ते "साधु'ति संपतिचित्वा अकासेना गन्त्वा खंडवारस्स अविदुरे ओटरिंसु। राजा ते दिसवा पक्कुग्गमणं कत्वा खंडवारं पवेसेत्वा पणनत्तसनेसु निसिडापेट्वा इसिगनं पणितेनहारेण संतप्पेत्वा तेसां इरियापथे पसन्नो स्वतानायपि निमन्तेसि। एतेनुपायेन दासन्नं तपससाहस्सानां दासवस्सासहसानि दानं अदासि। ददन्तो च तस्मिनयेव पदे नगरं मपेत्वा सस्साकम्मं करेसि। न खो पना, महाराज, तदा सो राजा आन्नो अहोसि, अथा खो **अहं सेठोस्मि दानेना,** अहमेव हि तदा दानेना सेठो हुत्वा तं महादानं दत्वा इमं पेटालोकं अतिक्कमित्वा ब्रह्मलोके निब्बत्तितुं नासक्खिः। मया दिन्नं पना दानं भुंजित्वा सब्बेव ते तपसा कामवचरं अतिक्कमित्वा ब्रह्मलोके निब्बत्ता, इमिनापेटं वेदितब्बां "ब्रह्मचैर्यवासोवा महप्पलो"ति।
एवं दानेन अत्तनो सेठभावं पकासेत्व इतरेहि तीहि पदेहि तेसं इसिनां गुणं पकासेति। तथा **संयमेना** ति सिलेना। **दमेना** ति इंद्रियादमेना। **अनुत्तारा** नति एतेहि गुणेहि निरंतरं उत्तमं वतं समाधानं चरित्र्वा। **पकिराचारि** ति गानं पकिरीत्वा पतिक्खीपित्वा पहाय एककारिके, एकिभावं गतेति अथो। **समाहिते** ति उपचारप्पनासमाधिहि समाहितचित्ते। एवररूपे अहं तपस्सिनो उपतःहंति दस्सेति। **अहं उजुगत** नति अहं, महाराज, तेसां दशसहस्नानं इसिनां अंतरे कायवंकादीनं आभावेन उजुगतं एकमपि नरं हिनजक्को वा होतु जातिसंपनो वा, जातिम् अविचारेत्व तेसं गुनेसु पसन्मनसो हुत्वा सब्बमेव अतिलं नमस्सिस्सं, निक्ककालमेव नमस्सीसन्ति वदति। कौन सा कारण? **कम्मबन्धु हि मानवावा** ति, सत्ता हि नामते कम्मबंधु कम्मपतिसारणा, तेनेव कारणेन सब्बे वनाति वेदितब्बा।

एवांचा पना वत्वा "किंचापि, महाराज, दानतो ब्रह्मचर्यमेव महप्फलं, द्वेपि पनेते महापुरिसवितक्कव, तस्मा दविसुपि अप्पमत्तोवा हुत्वा दनानचा देहि, सिलाञ्च रक्खाहि" तं ओवदित्वा सकात्थानमेव गतो। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

440 .

"इदं वत्वान् मघावा, देवराज सुजमपति;

वेदेहमनुससित्वा, सग्गकायं अपक्कमी'ति।

तत्थ **अपक्कमि** ति पक्कमि, सुधम्मदेवसभायं निस्न्नामेव अत्तनं दस्सेसिति अथो।

अथ नं देवगण अहंसु "महाराजा, ननु न पन्नयित्था, कुहिं गतत्था"ति? "मारिसा मिथिलायं निमिराणनो एक कंखा उप्पज्जि, तस्स पन्हं कठेत्व तं राजनं निक्कंखं कट्वा अगतोमहि'ति वत्वा पुना तं कारणं' गाथाय कथेतुं अहा -

441 .

"इमं भोन्तो निसामेथा, यावंतेत्था समागता;

धम्मिकाणं मनुस्नानं, वाणं उच्चवचं बहुम्।

442 .

"यथा अयं निमिराज, पण्डितो कुसलत्थिको;

राजा सब्बविदेहानां, अदा दानं अरिंदमो।

443 .

"तस्सा तं ददातो दानं, संकप्पो उदपज्जथा;

दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमं सु महप्फला'न्ति।

तत्थ **इमा** नति धम्मिकाणं कल्याणं धम्मनां मनुस्नानं मया वुच्चमानं सिलवसेन उच्चं दानवसेन अवचं बहुं इमं वनं निसामेथा सुनाथाति अथो. **यथा अय** न्ति अयं निमिराज यथा अतिविय पण्डितोति।

इति सो अपरिहापेत्वा रणनो वनं कथेसि। तं सुत्वा देवसंघ राजनं दथुकामा हुत्वा "अम्हकं निमिरजा अकारियो, तस्सोवदे थत्वा तं निस्साय अम्हेहि अयं दिब्बासंपत्ति लद्धा, मयं दथुकामम्हा, तं पक्कोसापेहि, महाराज'ति वडिंसु। सक्को "साधु"ति संपतिचित्वा मतलिं पक्कोसपेत्वा"सम्मा मतलि, वेजयन्तरथं योजेत्वा मिथिलां गन्त्वा निमिराजनं दिब्बयने अरोपेत्व अनेहि"ति आहा। तो "साधु'ति सम्पतिच्छित्वा रथं योजेत्वा पयासि।' सक्कस्सा पण देवेहि सद्धिं कथेंतस्सा मतलिं अनापेंतस्सा च रथं योजेन्तास्सा च मनुस्सागणनाया मासो अतिक्कनतो। इति निमिराणो पुननमयं उपोसथिकस्सा पचिनसिहापंजरं विवर्तित्वा महताले निसिदित्वा अमाक्कगणपरिवुतस्सा सिलं पक्कवेक्खनतस्सा पचिनलोकधातुतो उग्गच्छेनतेन चंडमंडलेन सद्धिन्येव सो रथो पन्नयति। मनुषसा भुट्टसयामासा घरद्वारेसु निसिडित्वा सुखकथं कथेंता "अज्ज दवे चंदा उग्गता"अहंसु। अथ नेसं सल्लपंतननिवे रथो पकतो अहोसि। महाजनो" नायं, कैंडो, रथो"ति वत्वा अनुक्कमेन सिंधवसाहसयुत्ते मतलिसांगहाके वेजयंतराथे च पकते जाते" कस्सा नु खो इदं दिबबयानं अगाच्छति"ति सिंतेत्वा "ना कसासी" अण्णास्सा, अम्हाकं राजा धम्मिको, साक्केन वेजयन्तरथो पेसिटो भविस्सति, अम्हाकं राणोनोवा अनुच्चविको'ति तुथप्पाहाथो गथमहा -

444 .

"अब्भूतो वात लोकस्मिः, उप्पज्जि लोमहंसनो;

दिब्बो रथो पतुराहु, वेदेहस्सा यस्स्सिनो'ति।

तथा **अब्भूतो** ति अब्भूतपुब्बो। अच्चैरियोति ते विम्हयवसेनेवमहंसु।

तस्स पना महाजनस्सा एवं कथेन्टससेवा मतलि वातवेगेना अगन्त्वा रथं निवत्तेत्व सिहापंजरौम्मारे पच्चभागेन थपेत्वा आरोहणसज्जं कत्वा आरोहणत्थाय राजनं निमन्तेसि । तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

445 .

"देवापुत्टो महिद्धिको, मातलि देवसारथि;

निमंतयित्थ राजनं, वेदेहं मिथिलग्गहं।

446 .

"एहिमां रथमारुयः, राजसेठ दिसम्पति;

देवा दस्सानकामा ते, तावतिंसा सैनदका;

सरमना हि ते देवा, सुधम्मयं समाचरे'ति।

तत्थ **मिथिलग्गहा** नति मिथिलायां पतिहिततेघं, चतुहि वा संगहवत्थुहि मिथिलायां संगहाकं। **समच्चरे** ति तवेव गुणकथं कथेंता निसिन्नति।

तं सुत्वा राजा " आदिथपुब्बं देवलोकाञ्च पसिस्सामि, मतलिस्सा च मे संगहो काटो भविस्सति, गच्छिसामि'ति सिन्तेत्वा अन्तेपुरञ्च महाजनञ्च अमान्तेत्वा' अहं नसीरसेवा अगामिस्सामि, तुम्हें अप्पमत्ता दानादिनि पुनानि करोथा'ति वत्वा रथं अभिरुहि। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

447 .

"ततो राजा तरमाणो, वेदेहो मिथिलाग्गहो;

असना वुथहित्वाना, पमुखो रथमारुहि।

448 .

" अभिरूढं रथं दिब्बं, मातलि एतदब्रवि;

केन तां नेमि मग्गेना, राजसेठ दिसम्पति;

येन वा पपकम्मंता, पुनाकम्मा च ये नारा"ति।

तथा **पमुखो** ति उत्तमो, अभिमुखो वा, महाजनस्सा पिथिं दत्वा अरुधोति अथो। **येना वा** ती येना मग्गेना गन्त्वा यत्थ पापाकम्मंता वसंती, तं ठानं सक्का दथुं, येना वा गन्त्वा ये पुन्नकम्मा नारा वसंती, तेसां ठानं सक्का दथुं, एतेसु दविसु केना मग्गेना तां नेमि। इदं सो सक्केन अनानत्तोपि अत्तनो दुतविसेसादासनत्थं अहा।

अथ नं राजा "माया द्वे ठानानि अदित्थपुब्बानि, द्वेपि पसिस्सामि"ति चिंत्वा अहा -

449 .

"उभयेनेव मां नेहि, मातलि देवसारथि;

येन वा पपकम्मंता, पुनाकम्मा च ये नारा"ति।

ततो मातलि " द्वेपि एकपाहारेनेव न सक्का दस्सेतुं, पुच्चिसामि न"न्ति पुच्चन्तो पुना गथमः -

450 .

" केन तं पथमं नेमि, राजसेठ दिसम्पति;

येन वा पपकम्मंता, पुनाकम्मा च ये नारा"ति।

निरयाकण्डं

ततो राजा " अहं अवस्सं देवलोकं गमिस्सामि, निरयं तव पसिस्सामि" चिन्तेत्वा अनंतरं गतामह -

451 .

"निराये तव पासामि, अवासे पापकम्मिनं;

न्हानानि लुद्दकम्मनं, दुस्सीलानांच य गति'ति।

तथा **या गति** ति या एतेसं निब्बति, तन्च पसामिति।

अथस्सा वेतरनिं नदीं तव दस्सेसि। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

452 .

"दस्सेसि मतलि रणनो, दुग्गं वेतरनिं नादिं;

कुथितं खरसंयुत्तं, तत्तं अग्गिसिखुपमा'न्ति।

तत्थ **वेतरनिं** नति भिक्खवे, मातलि राणो कथं सुत्वा निरायाभिमुखं रथं पेसेट्वा कम्मपच्चये उतुना समुत्थितं वेतरनिं नदीं तव दस्सेसि। तत्थ निरयपाला जलितानि असिसत्तितोमराभिंदिवलमुग्गरादिनि अवुधानि गहेत्वा नेरायिकासत्ते पहरन्ति विज्झन्ति विहेथेन्ति। ते तं दुक्खं असहंता वेतरनीयं पतन्ति। सा उपरि भिंडीवलप्पमनाहि सकान्तकाहि वेट्टलताहि संचन्न। ते तत्थ बहुनि वाससहसानि पचिंसु। तेसु पज्जलंतेसु खुरधातिखिनेसु कंतकेसु खंडखंडिका होन्ति। तेसं हेत्था तल्लक्खनधप्पमनानि पज्जलितयसुलानि उत्थाहन्ति। नेरायिकसत्ता बहुं अद्धानं वित्तिनामेत्वा वेत्तालताहि गतित्वा सुलेसु पतित्वा विद्धासिररा सुलेसु अवुणितमच्चा विया सिरं पक्कन्ति। तानि सुलानिपि पज्जलन्ति, नेरायिकासत्तपि पज्जलन्ति। सुलाणं हेत्था उदकापित्थे जलितानि खुराधारसादिसानि तिखिनानि अयोपोक्खरापट्टनि होन्ति। ते सुलेहि गतित्व अयपोक्खरापत्तेसु पतित्व सिरं दुक्खवेदनं अनुभवन्ति। ततो खरोडके पतन्ति, उदकं पज्जलति, नेरायिकासत्तपि पज्जलन्ति, धूमोपि उत्थाहति। उदकस्सा पण हेत्था नदीतलं खुराधारहि संचन्नं। ते "हेत्था नु खो किदिसा"न्ति उदाके निमुज्जित्वा खुरधरासु खंडाखंडिका होन्ति। ते तं महादुक्खं अधिवासेतुं असक्कोंता महंतं भेरवं विरावंता विकारन्ति। कदाचि अनुसोतं बुयहंति, कदाचि पतिसोतं। अथा ने तीरे सीता निरयपाला उसुस्सत्तितोमरादिनी उक्खीपित्वा मच्छे विया विज्झन्ति। ते दुक्खवेदनाप्पत्त महावीरवं रवन्ति। अथ ने पज्जलितेहि अयबासीसेहि उद्धारित्वा परिकद्धित्वा पज्जलितायपथवीयं निपज्जपेत्वा तेसं मुखे तत्तं अयोगुढहं पक्खिपन्ति।

इति निमिराजा वेतरनीयं महादुक्खपिदिते नेरायिकासत्ते दिस्वा भितात्सितो संकम्पितहदायो हुत्वा "किं नमेते सत्त पापकम्मं अकांशु"ति मतलिं पुच्चि। सोपिस्सा बयाकासी. तमत्थं पाकसेन्टो अहा -

453 .

"निमि हवे मतलिज्जभासथ, दिस्व जनं पतमानं विदुग्गे;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना वेतरनिं पतन्ति।

454 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

455 .

"ये दुब्बले बलवंता जीवलोके, हिं शांति रोसेन्ति सुपापधम्म;

ते लुड्ढकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना वेतरनिं पतन्ति'ति।

तथा **विंदति** अहं अत्तानो अनिसारो हुत्वा भयसंतको विया जातो। **दिस्वा** ति पतमानं दिसवा । **जन** नति भिक्खवे, सो मतलि सयं जानन्तो तस्स अजानतो अक्खासी। **दुब्बले** ती शरीरबलभोगबलानाबलविरहिते। **बलवंता** ति तेहि बलेहि समन्नागता। **हिंसान्ति** ति पणिप्पहरादिहि किलामेंटि। **रोसेन्ति** ति नानप्पकारेहि अक्कोसावत्थुहि अक्कोसंति घण्टेन्ति। **पसावेत्वा** ति जनेत्वा, कत्वति अत्थो।

एवं मातलि तस्स पन्हं ब्याकारित्वा राणा वेतरनिराय दिट्ठे तं पदेसं अंतरधापेत्वा पुरतो रथं पेसेत्वा सुनखाधि खादान्थानां दस्सेत्वा तं दिस्व भीतेन रन्ना पन्हां पुठो ब्याकासी। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

456 .

"सम च सोना सबला च गिज्जा, काकोलसंघ अदन्ति भेरवा;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किम्माकांसु पापं, येमे जेन काकोलसंघ अदन्ति।

457 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

458 .

"ये केसीमे मैकचारिनो कादरिया, परिभासाका समानब्राह्मणं;

हिं शांति रोसेन्ति सुपाधम्म, ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं;

तेमे जेन काकोलसंघा अदन्ति'ति।

इतो परेसु पन्हेसु सेवा ब्याकरानेसु च एसेवा नयो। तथा **समां** ति रत्तवन्ना। **सोना** ति सुनखा. **सबला च** ति कबरवन्ना च, सेतकादपितलोहितवन्ना चति एवं पञ्चवन्नासुनाखे दस्सेति। ते किरा महाहत्थिपमना जलितयापथवीयं नेरायिकासत्ते मिगे विया अनुबंधित्वा पिण्डिकमंससेसु दणसित्वा तेसं तिगावुतप्पमण शरीरं जलितयापथवीयम् पतेत्वा महरावं रवंतानां द्वीहि पुरीमापदेहि उरं अक्कमित्वा अथिहिमेव सेसेत्वा मानसं लुन्चित्वा खादन्ति। **गिज्झा** ती महाभांडसाकट्टप्पमना लोहटुंडा गिज्झा। एते तेसं कणायसदिसेहि तुंदेहि अथिनि भिंडित्वा अथिमिंजं खदन्ति। **काकोलसंघ** ति लोहतुण्डकाकागना। ते अतिविय भयनका दिट्ठे दित्थे खदन्ति। **येमे जेन** ती ये इमे नेरायिकासत्ते काकोलसंघ खदन्ति, इमे नु मक्का कि नाम पापं अकांसुति पुच्ची। **मैकचारिनो** ति अणनेसां अदायका। **कादरिया** ति पारे दंतेपि पतिसेधका तद्धमच्चरिनो। **समानब्राह्मणां** न्ति समितबहितपापानम्।

459 .

"सजोतिभूत पथविं कामन्ति, तत्तेहि खंडेहि च पोथयन्ति;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना खंडहता सयन्ति।

460 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

461 .

"ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो, नाराणच नारीच अपापधम्मम्;

हिं शांति रोसेन्ति सुपाधम्म, ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं;

तेमे जना खंडहता सयन्ति"ति।

तथा **सजोतिभूता** ति पज्जलितशरीरा। **पथवि** न्ति पज्जलितं नवयोजनाबहालं अयपथविम्। **कामंती** ति अक्कमन्ति. **खंडेहि च पोथयन्ति** ति निरयपाला अनुबन्धित्वा तलप्पमनेहि जलितायक्कन्धेहि जंघादिसु पहारित्वा पतेत्वा तेहेव खंडेहि पोथयन्ति, कुन्नविकुणं करोन्ति। **सुपापधम्मिनो** ति अत्तना सुथु पापधम्म हुत्वा। **अपापादम्म** न्ति सिलाचरादिसम्पन्नं, निरापराधं वा।
462 .

"अंगारकासुं अपरे फुणन्ति, नारा रुदंता परिदधगत्ता;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किं मकांसु पापं, येमे जना अंगारकासुं फुन्ति।

463 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

464 .

"ये केचि पुगया धनस्सा हेतु, सक्खिं करित्वा इणं जपयन्ति;

ते जपयित्वा जानतां जानिंदा, ते लुद्दकम्मा पसावेत्व पापं;

तेमे जना अंगारकासुं फुअन्ति'ति।

तथा **अंगारकासु** न्ति सम्मा मातलि, के नामेते अपरे वाजं अपविसंतियो गावो विया संपरिवारेत्व निरयपालेहि जलितायगुसेहि पोथियामाना अंगारकासुं पतन्ति। तत्र च नेसं याव कटिप्पमना निमुग्गानं महतिहि अयापच्छि आदया उपरिअंगारे ओकिरन्ति, अथ ने अंगारे संपतिच्छितुम असक्कोंता रोदंता दड्ढागट्टा फुअन्ति विधुन्ति, कम्बलेण वा अत्तनो सिसे अंगारे फुअन्ति ओकिरान्तिति अथो। **पुगया धनस्सा** ति ओकासे सति दानं वा दस्सामा, पूजां वा पवत्तेस्सामा, विहारं वा करिस्सामति संकधित्वा थपितस्सा पुगसंतकासा धनस्सा हेतु। **जपयन्ति** तं धनं यथारुचि खदित्वा गणजेठकाणं लांजं दत्वा "असुकाठने एत्तकं वैयाकरणं गतं, असुकाठने अम्हेहि एत्तकं दिन्न'न्ति कुत्साक्खिं करित्वा तं इणं जपयंति विनार्सेति।
465 .

"सजोतिभूत जलिता पदित्ता, पदिस्सति महति लोहकुम्भी;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना अवंसीरा लोहकुम्भिं पतन्ति।

466 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

467 .

"ये सिलवन्तं समानं ब्राह्मणं वा, हिंसान्ति रोसेन्ति सुपापधम्म;

ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना अवंसीरा लोहकुम्भि पतन्ति'ति।

तत्थ **पदित्ता** तिदित्ता. **महति** ति पब्बतप्पमना कप्पेण संहितलोहरसेण संपुन्ना। **अवंसीरा** ति भयाणकेहि निरयपलेहि उद्धापदे अधोसिरे कत्वा खिपियामाना तं लोहकुम्भिं पतन्ति। **सिलवंता** न्ति सिलाकारागुणसम्पन्नं।
468 .

"लुण्कान्ति गिवं अथ वेथयित्वा, उन्होदकास्मि पकिलेदयित्वा;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जाना लुत्तसिरा सयान्ति।

469 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

470 .

"ये जीवलोकस्मि सुपाधम्मिनो, पक्खि गहेत्वाना विहेथयन्ति ते;

विहेथयित्वा सकुणं जानिंदा, ते लुद्दकम्मा पसावेत्व पापं;

तेमे जना लुत्तसिरा सया"न्ति।

तत्था **लुन्कांति** ति उप्पेन्ति. **अथ वेथयित्वा** ति जलितलोहयोतेहि अधोमुखं वेथयित्वा। **उन्होदकास्मि** न्ति कप्पेन संहितलोहौदाकास्मिः। **पकिलेदयित्वा** ति तेमेत्वा खिपित्वा। इदं वुट्टं होति - सम्मा मतलि, येसं इमे निरयपाला जलितलोहयोतेहि गिवं वेथेत्वा तिगावुतप्पमणं शरीरं ओनामेत्व तं गिवं संपरिवत्कम् लुञ्चित्वा जलितयादंडेहि आदया एकस्मिं जलितलोहरसे पक्खिपित्वा तुतहहत्था होन्ति, तया च गिवया लुन्चिताय पुना सीसेना सद्धिं गिव उप्पज्जतियेव। किं नमते कम्मं करिंसु? एते हि मे दिस्व भयं उपज्जति. **पक्खि गहेत्वाना विहेथयन्ति** ति महाराज, ये जीवलोकस्मिं सकुणे गहेत्वा पक्खे लुन्चित्वा गिवं वेठेत्वा जीविताक्खयं पपेत्वा खदंति वा विक्किन्ति वा, ते इमे लुत्तसिरा सयंतीति.

471 .

"पहुततोया अनिगाधकुला, नदी अयं संदति सुप्पतित्था;

घम्मभितत्त मनुजा पिवन्ति, पिटान्च तेसं भूसा होति पानी।

472 .

"भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकंसु पापं, पिटानचा तेसं भुसा होति पानी।

473 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

474 .

"ये शुद्धधानं पलसेन मिसं, अशुद्धकम्मा कायिनो ददन्ति;

घम्मभितत्तन पिपासितानं, पितांच तेसं भूसा होति पाणि'ति।

तत्थ **अनिगाधकुला** ति अगमभिरातिरा। **सुप्पतित्था** ति शोभनेहि तित्थेहि उपेता। **भूसा होति** ति विहिभुसं संपज्जति। **पाणि** ति पणियं। तस्मिं किरा पदेसे पहुतासलीला रमणीय नादि संदति, नेरायिकासत्ता अग्गिसंतापेण तत्त पिपासं संधारेतुं असक्कोंता बह पग्गयहा जलीतलोहपथविं मद्दंता तम् नदीं ओटरन्ति, तंखाणिनेव तीरा पज्जलन्ति, पणियं भूसपलासभवं आपज्जित्वा पज्जलति। ते पिपासां संधारेतुं असक्कोंता तं जलितं भूसपालसं खादन्ति। तं तेसं सकलासिरं झपेत्वा अधोभागेन निक्खमति। ते तं दुक्खं अधिवासेतुं

असक्कोंता बाहा पग्गयः कांदन्ति। **शुद्धधान्न** न्ति विहिआदिसत्तविधं परिशुद्धधान्नं। **पलासेन मिस्सा** नति पलासेना वा भुसेना वा वलुकामत्तिकादिहि वा मिस्साकम कटवा। **अशुद्धकम्मा** ति किलिट्ठकायवाचिमनोकम्मा। **कयिनो** ति "शुद्धधान्नं दशमी"ति कैयिकास्सा हत्थतो मूलं गहेत्व तथरूपं अशुद्धधनां ददन्ति।
475 .

"उसुहि सत्तिहि च तोमरेहि, दुभयानि पस्सनि तुदन्ति कन्दताम्;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना सतिहता सयन्ति।

476 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

477 .

"ये जीवलोकस्मि असाधुकम्मिनो, आदिन्नमादाय करोन्ति जीविकाम्;

धन्नं धनं राजतं जटारूपं, अजेकञ्चपि पसुं महिंसं;

ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना सतिहता सयान्ति'ति।

तत्थ **दुभयानि** ति उभयानि। **तुदन्ति** ति विज्जन्ति। **कन्दता** न्ति कन्दन्तानां। फरुसा निरयपाला अरण्ये लुदा मिगं विया संपरिवारेत्वा उसुअधिहि नानावुधेहि द्वे पासानि तुदन्ति, शरीरं चिददावचिद्दं पुराणापन्नं विया ख्याति। **आदिन्नामादायति** परसंतकं सविन्नाकाविन्नाकं संधिच्चेदादि सेवा वा वांचनाय च गहेत्वा जीवकं कप्पेन्ति।
478 .

"गिवय बधा किसा इमे पुनेके, अण्णे विकान्ता बिलाकाता सयन्ति;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना बिलाकाता सयन्ति।

479 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

480 .

"ओरभिका सुकारिका च मचिका, पसुं महिंसाचा अजेकंका;

हन्त्वाना सुनेसु पसारयिन्सु, ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं;

तेमे जना बिलाकाता सयन्ति'ति।

तत्था **गिवय बद्ध** ति महन्तेहि जलितलोहायोतेहि गिवय बंधित्वा अकाधित्व अयपथवीयं पतेत्वा नानावुधेहि कोट्टियामाने दिस्व पुच्चि। **अन्ने विकान्ता** ती अन्ने पण खण्डखण्डिकां चिन्ना। **बिलाकाता** ति जलितेसु अयफलाकेसु थपेत्वा मानसं विया पोत्थनिया कोटितेत्वा पुंजकता हुत्वा सयन्ति। **मच्छिका** ति मच्छघातका. **पसु** न्ति गाविं. **सुनेसु पसारयिन्सु** ति मानसं विक्किनित्वा जीविकाकप्पनत्थं सुनापनेसु थापेसुं।

481 .

"रहदो अयं मुत्तकारिसपुरो, दुग्गंधरूपो असुचि पूति वति;

खुदापरेता मनुजा अदन्ति, भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा;

पुच्चामि तं मातलि देवसारथि, इमे नु मक्का किमाकांसु पापं;

येमे जना मुत्तकारिसभक्खा ।

482 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासि जानतो।

483 .

"ये केचिमे करणिका विरोसाका, परेसं हिंसा सदा निविथा;

ते लुद्दकम्मा पसावेत्व पापं, मित्तद्दुनो मिढमदन्ति बला'ति;

तत्थ **खुदापरेता मनुजा अदन्ति** ती एते नेरायिका सत्ता चटकेन फूटहा खुदं सहितं असक्कोंता पक्कुथितां धूमायंतं पज्जलंतं कप्पेन संहितं पुराणमीढं पिंडं पिंडं कत्वा अदन्ति खादन्ति। **करणिका** ति करणकारका। **विरोसाका** ति मित्तसुहज्जनमपि विहेथका। **मित्तद्दुणो** ती ये तेसन्नेव गेहे खदित्वा भुञ्जित्वा पन्नत्तसने निसीदित्वा सयित्वा पुना मासकहापनं नाम आहारपेंती, लांजं गहन्ति, ते मित्तदुसाका बाला एवरूपं मिधं खादन्ति, महाराजति।

484 .

"रहदो अयं लोहितापुब्बापुरो, दुग्गंधरूपो असुचि पुति वति;

घम्मभितत्त मनुजा पिवन्ति, भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा;

पुच्चामि तं मातलि देवसारथि, इमे नु मक्का किमाकांसु पापं;

येमे जना लोहितापुब्बभक्खा।

485 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

486 .

"ये मातरं वा पितरं वा जीवलोके, पारजिका अरहन्ते हनन्ति;

ते लुड्डकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना लोहितापुब्बाभक्खा'ति।

तत्थ **घम्मभितत्ता** ति संतापेण पीडिता। **पराजिका** ति परजिता जाराजिणे मातापित्रो घटेत्वा गिहिभयेव पराजिकं पत्त। **अरहंते** ति पूजाविसेस्सा अनुच्चविके। **हनंती** ति दुक्काराकारके मातापितो मारेन्ति। अपिका अरहंते'ति पदेन बुद्धसावकेपि संगनहति।

अपारस्मिम्पि उस्सदानिरये निरयपाल नेरायिकाणं तलप्पमणेन जलितायाबसीसेना जिव्हाम् विज्जित्वा अकाधित्व ते सत्ते जलितायपथवीयं पतेत्वा उपाभचम्मं विया पथरित्वा संकुसतेन हनन्ति । ते थले खित्तमच्च विया फंदन्ति, तन्च दुक्खं सहितुं असक्कोंता रोदंता परिदेवंता मुखेन खेदं मुन्कन्ति। तस्मिं राजा मतलिना दासिते अहा -

487 .

"जीव च पस्सा बासीसेन विद्धं, विहतं यथा संकुसतेन चम्मं;

फंदन्ति मच्छव थलामहि खित्ता, मुनकन्ति खेदं रुदमाना किमते।

488 .

"भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नू मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना वङ्कघास्ता सयन्ति'ति।

489 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

490 .

"ये केचि संधानगता मनुस्सा, अघेन अघघं कायं हापयन्ति;

कुएँन कुट्टं धनलोभहेतु, चन्नं यथा वरिचरण वधाय।

491 .

"न हि कूटकारिस्सा भवन्ति तना, सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्स;

ते लुद्दकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना वङ्काघस्ता सयन्ति'ति।

तथा **किमते** ति किंकारणा एते। **वङ्काघस्ता** ति गिलिताबाशिसा। **संधानगता** ति संधानं मरियादं गता, अग्घापनकत्थाने स्थितति अथो। **अग्घेन अग्घा** न्ति तं अघघं लांजं गहेत्वा हत्थियासादीनं वा जतरूपराजतादीनं वा तेसं तेसं सविनानाकाविनाकाणां अघघं हापेंती. **काया** नति तं हपेंटा कायिकाणं कायं हपेन्ति, सते दतब्बे पणनासां दपेन्ति, इतरं तेहि सद्धिं विभाजित्वा गन्हन्ति। **कुएँन कुन्ती तुलाकुतादिसु** तं तं कुत्तम्। **धनलोभहेतु** ति धनलोभेन एतं कुटकम्मं करोन्ति। **चन्नं यथा वरिचरण वधाय ति** तं पण कम्मं करोन्तपि मधुरवाचय तथा कटभवं पतिच्चन्नं कत्वा यथा वरिचरण मच्छं वधाय उपगच्छन्त बैसिसं अमीसेन पतिच्चन्नं कत्वा तां वधेन्ति, एवम् पतिच्चन्नं कत्वा तं कम्मं करोंती। **न हि कुट्टकारिस्सा** ति पतिच्चन्नं मम कम्मं, न तं कोचि जानाति मन्नमानस्स हि कुत्तकारिस्स तना नाम न होन्ति। सो तेहि कम्मेहि पुरक्खतो पतितहं न लभाति।

492 .

"नारी इमा संपरिभिन्नगट्टा, पग्गयहा कंदंती भुजे दुजक्का;

सम्मक्खिता लोहितापुब्बलित्ता, गावो यथा अघातेन विकान्ता;

ता भूमिभागस्मि सदा निखता, खंडातिवत्तन्ति सजोतिभूता।

493 .

"भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमा नु नारियो किमाकांसु पापं, या भूमिभागस्मि सदा निखता;

खंडातिवत्तन्ति सजोतिभूता।

494 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

495 .

"कोलिथियायो इधा जीवलोके, अशुद्धकम्मा असतम् अचरुम्;

ता दित्तरूपा पति विप्पाहाय, अन्नं अचारुं रतिखिधाहेतु;

ता जीवलोकस्मिं रामापयित्वा, खंडातिवत्तन्ति सजोतिभूत'ति।

तथा नारी ति इत्थियो. **संपरिभिन्नगट्टा** ति सुत्तु समंततो भिन्नासिरा। **दुजक्का** ति दुज्जतिका विरूपा जेगुच्चा। **अघाताने** ति गावघाटठाणे। **विकान्ता** ति चिन्नसीसा गावो विया पुब्बालोहितालित्ता हुत्वा। **सदा निखता** ति निच्चं जलितयापथवीयं कटिमट्टं पवेसेत्वा निखणित्वा थपित्वा विया शीता। **खंडातिवत्तन्ति** ति सम्मा मतलि, ता नारियो एते पब्बतक्कंधा अतिक्कमन्ति। तसं किरा एवं कटिप्पमानं पविसीत्वा हितकाले पुरत्तिमया दिसाय जलितयापब्बतो समुत्थहित्वा असनि विया विरावंतो आगन्त्वा शरीरारं सण्हकारणि विया पिसंतो गच्छति. तस्मिं अतित्तिव पछिमपस्से थिथे पुना च तसं शरीरं पातु भवति। ता दुक्खं अधिवासेतुं असक्कोन्तियो बाहा पग्गयः कान्दन्ति। सेसदिसासु वुथितेसु जलितपब्बतेसुपि एसेवा नयो। द्वे पब्बता समुथया उच्छुघटिकां विया पियेन्ति, लोहितं पक्कुथितां संदति। कदाचि तयो पब्बता समुथया पियेन्ति। कदाचि चत्तारो पब्बता समुथया तसं शरीरं पियेन्ति। तेनाहा "खंडहतिवत्तन्ति"।
कोलिथियायो ति कुले पतिथिता कुलधितरो। **असतं अचारु** न्ति असन्नतकम्मं करिण्सु। **दित्तारूपा** ति शतरूपा धुत्तजातिका हुत्वा। **पति विपहया** ति अत्तनो पतिं पजाहित्वा। **अचारु** न्ति अगमंसु। **रतिखिधाहेतु** ति कामरतिहेतु सेवा खिदाहेतु च। **रामापयित्वा** ति परपुरीसेहि सद्धिमं अत्तानो चित्तं रामापयित्वा इधा उपपन्ना। अथ तसं शरीरं इमे खंडातिवत्तन्ति सजोतिभूति।
496 .

"पड़े गहेत्वा किस्सा इमे पुनेके, अवंसीरा नरके पत्यन्ति;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना अवंसीरा नरके पत्यन्ति।

497 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

498 .

"ये जीवलोकस्मि असाधुक्कम्मिनो, परसा दारणि अतिक्कमन्ति;

ते तदिसा उत्तमभांडथेना, तेमे जना अवंसीरा नरके पत्यन्ति।

499 .

"ते वासपुगानि बहुनि तत्थ, निरयेसु दुक्खं वेदानां वेद्यन्ति;

न हि पापकारिस्सा भवन्ति तना, सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्सा;

ते लुद्दकम्मा पसावेत्व पापं, तेमे जना अवंसीरा नरके पत्यन्ति'ति।

तत्थ **नरके** ती जलितांगरापुणे महावते। ते किरा वाजं अपविसंतियो गावो विया निरयपलेहि नानावुधानि गहेत्वा विज्जीमान पोथियामाना यदा तं नरकं उपगच्छन्ति, अथा ते निरयपाल उद्धनपादे कट्वा तथा पतयन्ति खिप्यन्ति। एवं ते पतियामाने दिस्व पुच्चन्तो एवमाः। **उत्तमभंडाथेना** ति मनुस्सेहि पियायितस्स वरभांडस्स थेनका।

इवांचा पना वत्वा मतलिसांगहाको तं निरयं अंतरधापेत्वा रथं पुरतो पेसेट्वा मिच्चादिथिकाणं पच्चनत्थानां निरयं दस्सेसि। तेन पुत्थो कसा वियाकासी।

500 .

"उच्चवाचमे विविधा उपक्कमा, निरयेसु डिस्संति सुघोरारूपा;

भयंहि मां विंदति सुता दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु पापं, येमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा;

खरा कटुका वेदना वेद्यन्ति।

501 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पापकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

502 .

"ये जीवलोकस्मिं सुपापदिथिनो, विशासकम्मानि करोन्ति मोहा;

पराञ्च दिथिसु समादपेंती, ते पापदिथिं पसावेत्व पापं;

तेमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा, खारा कटुका वेदाना वेदयन्ति'।

तथा **उच्चावचामे** ति उच्च अवचा इमे, खुद्दाका च महंता बिल्ली अथो। **उपक्कमा** ति करणप्पयोगा। **सुपापदिथिनो** ति "नत्थि दिन्न"न्तिआदिकाय दासवत्थुकाय मिच्चादिठिया सुत्थु पापदिथिनो। **विस्सासकम्मानि** ति तय दिठिया विसासेन तन्निसिता हुत्वा नानाविधानि पापकम्मानि करोन्ति। **तेमे** ति ते इमे जना एवरुपं दुक्खं अनुभवन्ति।

इति रणनो मिच्छदिथिकानं पक्कननिरायं असिक्खि। देवलोकेपि देवगणा रणनो अगमनमग्गं ओलोकायमाना सुधम्मयं देवसाभायं निसिदिंसुयेव। सक्कोपि "किं नु खो, मातलि, चिरायति उपधारेंतो तम् कारणं नात्वा" मातलि, अत्तनो दुतविसेसं दस्सेतुं 'महाराजा, असुकाम्मं कत्वा असुकानिराय नमः पचंति'ति निरये दस्सेंतो विकारति, निमिराणो पना अप्पमेव आयु ख्येथा, निरयदस्सणं नस्सा परियंतं गच्चेय्यति एकं महाजवं देवपुत्तं पसेसि " त्वं 'सिघं' राजनं गहेत्वा अगाच्छतु'ति मतलिस्सा वदेही'ति। तो "साधु'ति संपतिचित्वा जवेण गन्त्वा अरोसेसि।' मातलि, तस्सा वचनं सुत्वा "न सक्का सिरयितु"न्ति रणनो एकपाहारेनेव कैटुसु दिसासु बाहु निराये दस्सेत्वा गतमहा -

503 .

"विद्तानि ते महाराज, आवासं पापकम्मिनाम्;

न्हानानि लुद्दकम्मनं, दुस्सीलानांच या गति;

उय्याहि दानी राजिसि, देवराजस्सा संतिके'ति।

तस्सत्थो - महाराज, इमं पापकम्मिनं सत्तनं आवासं दिव्वा लुद्दकम्मनांच ठानानि तय विदितानी। दुस्सिलानंच या गति निब्बति, सपि ते विदिता। इदानि देवराजस्सा संतिके दिब्बासम्पत्तिं दस्सानत्थं उय्याहि गच्छहि, महाराजति।

निरायकाण्डं निहितम्।

सग्गकण्डं

एवञ्च पना वत्वा मतलि देवलोकाभिमुखं रथं पसेसि। राजा देवलोकं गच्छन्तो द्वादशयोजनिकां मणिमयं पंचथुपिकां सब्बालंकारापटिमांदिताम् उय्यनापोक्खरनिसम्पन्नं कप्परुक्खपरिवुतम् बिराणिया देवधिताय आकाशस्थकविमानं दिस्व, तन्च देवधीतरं

अंतोकुतागारे सयानपिथे निस्सिन्नं अच्चरासहस्सपरिवुताम् मणिसिहपञ्जरं विवर्तित्वा ओलोकेंतिं दिव्वा मतलिं पुच्चन्तो गथमः। इटारोपिसा बयाकासी.

504 .

"पंचथुपं असंतुष्टं विमानं, मलपिंडधा सयानस्सा मज्झे;

तत्थच्चति नारी महानुभव, उच्चवाचं इधि विकुब्बमना।

505 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु नारी किमाकासी साधुं, या मोदति सग्गपत्ता विमाने।

506 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

507 .

"यदि ते सुता बिरानी जीवलोके, अमयदासि अहु ब्राह्मणस्स;

स पत्तकालं अतिथिं विदित्वा, मतव पुत्तं सकिमाभिनंदि;

संयम सविभाग च, स विमानस्मि मोदति'।

तत्थ **पंचथुप** न्ति पंचहि कुटागारेहि समन्नागतम्। **मलापिन्धा** ति मलादिहि सब्बाभरणेहि पतिमन्दितति अथो। **तत्थच्चति** तस्मिन विमाने अच्छति। **उच्चवाचं इधि विकुब्बमना** ती नानाप्पाकारं देविद्धिं दशयमना। **दिस्वा** ति एतं दिस्वा थितां मम् वित्ती विंदति पतिलाभाति, वितिसंतको विया होमि तुथिय अतिभूतत्तति अथो। **अमयदासि** ति गेहदासीय कुच्चिमि जतदासि। **अहु ब्राह्मणस्स** ति सा किरा कस्सपादसबलस्स काले एकस्स ब्राह्मणस्स दासी अहोसी। **स पत्तकाल** न्ति तेन ब्राह्मणेन अट्ठ शालकभट्टनि संघस्स परिच्चत्तनि एहेसुं। तो गेहं गन्त्वा "स्वे पत्थया एकेकस्सा भिक्खुस्सा एकेकं कहापनघनकं कट्वा अट्ठा सालकभट्टनि संपदेय्यासी"ति ब्राह्मणी आहा। स"सामि, भिक्खु नाम धुत्तो, नाहं सक्खिसस्मि'ति पतिक्खिपि। धितारोपिस्सा पटिक्खिपिंसु। तो दासिं " सक्खिस्ससि अम्मा'ति आहा । सा " सक्खिसामि अय्या'ति संपतिचित्व सक्कक्कं यागुखज्जकभट्टदिनी संपदेत्वा सलकं लभित्वा अगतं पट्टकालं अतिथिं विदित्वा हरितगोमायुपलित्ते कटपुप्पुपहारे सुपन्नत्तसने निसिदापेत्वा यथा नाम विप्पवसा अगतं पुत्तं माता साकिं अभिनंदति, तथा निक्ककालं अभिनंदति, सक्कक्कम परिविसति, अत्तनो सैंटाकैम्पी कोई बात नहीं. **संयम साविभागा च** ती सा सिलावती अहोसि चागावती च, तस्मा तेना सिलेना सेवा कागेना च इमास्मि विमान मोदति। अथ वा **संयमा** ति इन्द्रियदमना।

एवांचा पना वत्वा मतलि पुरतो रथं पेसेट्वा सोनादिन्नादेवपुत्तस्स सत्त कनकविमनानि दस्सेसि। तो तानि च तस्सा च सिरिसम्पतिं दिस्व तेन कटकम्मं पुच्चि। इटारोपिसा बयाकासी.

508 .

"दद्दल्लमना आभेंति, विमान सत्ता निम्मिता;

तत्थ यक्खो महिद्धिको, सब्बाभरणभूसितो;

समंता अनुपरियति, नारिगणपुरक्खतो।

509 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु मको किमाकासी साधुं, यो मोदति सग्गापत्तो विमाने।

510 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

511 .

"सोनादिन्नो गहपति, एसा दानपति आहु;

एसा पब्बाजितुद्दिसा, विहारे सत्त करै।

512 .

"सक्कक्कं ते उपत्थसि, भिक्खवो तत्थ वासिके;

अच्छादनञ्च भत्तञ्च,

सेनासनं पदीपियं;अदासि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

513 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अट्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

514 .

"उपोसाथं उपवासि, सदा सिलेसु संवुतो;

संयम संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति"।

तत्थ **दद्दल्लमना** ति जलमना। **आभेन्ति** ति तरुणासूरियो विया ओभासन्ति। **तथा** ति तेसु पतिपतिया ऋतहित्सु सत्तसु विमानसु। **यक्खो** ती एको देवापुट्टो। **सोनादिन्नो** ति महाराज, अयं पुब्बे कस्सापादसबालास्सा काले काशीरथे अन्नतरस्मि निगमे सोनादिन्नो नामा गहपति दानपति अहोसी। तो पब्बाजिते उदिस्सा सत्ता विहारकुटियो करेत्व तत्थ वासिके भिक्खु बिल्ली पकायेहि सक्कक्कं उपथसि, उपोसथंका उपवासि, निक्कम सिलेसु च सवुतो अहोसी। तो ततो चवित्व इधुपापन्नो मोदतिति अथो। एत्था च **पतिहारियपक्खा** नति इदं पना अट्ठामिउपोसथस्स पक्कुग्गमनानुगमनवसेन सत्तमिनावमियो, चतुद्दसीपन्नरसीनं पक्कुग्गमनानुगमनवसेना तेरसिपपतिपदे च संध्या वुट्टं।

एवं सोनादिन्नस्सा कटकम्मं कथेत्वा पुरतो रथं पेसत्वा फलिकाविमानं दस्सेसि। तं उब्बेधातो पञ्चविसतियोजनं अनेकसतेहि सत्तरतनमयथंभेहि समन्नागतं, अनेकसताकुतागारपतिमन्दितं, किंकिनिकाजलापरिखित्तम्, समुस्सितसुवन्नराजतममयधजं, नानापुप्पविचित्तौय्यनवनविभूषितं, रमणीयपोक्खराणिसमन्नागतं, नक्कागीतवादादिसु चेकाहि अच्चराहि संपरिकिनन। तं दिस्व राजा तसं आचारणं कटकम्मं पुच्चि, इतारोपिस्सा बयाकासि।

515 .

"पभासति मिदं ब्यमहं, फलिकासु सुनिमितं;

नारिवरगणाकिनं, कूटागरावरोचितं;

उपेतं अन्नपनेहि, नक्कागितेहि चुभयं।

516 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मच्चा किमाकांसु साधुं, या मोदारे सग्गपत्ता विमाने।

517 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

518 .

"या कासि नारियो इधा जीवलोके, सिलवंतियो उपासिका;

दाने रता निक्कं पसनचित्त, सच्चे सीता उपोसथे अप्पमत्ता;

संयम संविभागा च, ता विमानस्मि मोदारे'ति।

तत्थ **ब्यम्हा** नति विमानं, पसादोति वुट्टं होति। **फलिकासु** ति फलिकाभित्तिसु। **नारिवारागणाकिन्न** न्ति वरानारिगणेहि अकिन्नं। **कूटागरावरोचि** न्ति वरकुतागारेहि ओचितं समोचितं, वधितन्ति अथो। **उभय** नति उभयेहि। **''या काचि''** ती इदं किंचपि अनियामेत्वा वुट्टं, ता पना कस्सापबुद्धसासने बरणासियां उपासिका हुत्वा गणबंधनेन एतानि वुट्टप्पाकरानि पुनानि कत्वा तं दिब्बासम्पत्तिं पत्तति वेदितब्बा।

अथस्सा सो पुरतो रथं पेसेत्वा एकं रमणीयं मणिविमानं दस्सेसि। तं समे भूमिभागे पतिहितं उब्बेधसम्पन्नं मणिपब्बतो विया ओभासमानं तिट्ठति, दिब्बगीतावादितनिन्नदितं बहुहि देवपुत्तेहि संपरिकिननं। तं दिस्व राजा तेसं देवपुत्तनं कटकम्मं पुच्चि, इतारोपिस्सा बयाकासी।

519 .

"पभासति मिदं ब्यामहं, वेसूरीयसु निम्मितं;

उपेतं भूमिभागेहि, विभत्तं भगसो मितां।

520 .

"आडांबरा मुदिंगा च, नक्कागीता सुवादिता;

दिब्बा सदा निच्चरन्ति, सवनिया मनोरमा।

521 .

"नाहं इवंगतं जातु, एवांसुरुचिरं शुद्ध;

सद्दां समभिजानामि, दिट्ठं वा यदि वा सुतम्।

522 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु साधुं, ये मोदारे सग्गपत्ता विमाने।

523 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

524 .

"ये केचि मक्का इधा जीवलोके, सिलवंता उपासका;

अरामे उद्पाणे च, पापा संकमनानि च;

अरहंते सतीभूते, सक्कक्कं पतिपादयुम्।

525 .

"चिवरं पिण्डपताञ्च, पचायं सयानासनं;

अदंसु उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

526 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अठ्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

527 .

"उपोसाथं उपवसुं, सदा सिलेसु संवुता;

संयम साविभागा च, ते विमानस्मि मोदारे'ति।

तत्थ **वेसूरीयसु** ति वेसूरीयभित्तिसु। **भूमिभागेहि** ति रमणीयेहि भूमिभागेहि उपेतम्। **अंडंबरा मुदिंगा चा** ति एते द्वे एत्था वज्जन्ति। **नक्कागिता सुवादिता** ति नानाप्पाकरणि नक्कानि सेवा गीतानि च अपरेसमपि तुरीयानां सुवादितानि चेत्थ पवत्तन्ति। **एवांगत** न्ति एवम् मनोरमभवं गतम्। **''ये केचि''** ती इदम्पि कामं अनिमेत्वा वुट्टं, ते पना कस्सापबुद्धकाले बाराणशिवसिनो उपासका हुत्वा गणबंधनेन एतानि पुनानि कट्वा तं संपत्तिं पत्तति वेदितब्बा. तत्थ **पतिपादयु** न्ति पतिपादयिन्सु, तेसं अडंसुति अथो। **पकाय** नति गिलानपच्चयं। **अदंसु** ति एवं नानप्पाकारकं दानं अदंसुति।

इतिस्सा सो तेसं कटकम्मं अचिक्खित्वा पुरतो रथं पेसेट्वा अपरमपि फलिकाविमानं दस्सेसि। तं अनेकुतागारापटिमनदितम्, नानाकुसुमसांचन्नदिब्बतरुणवनपतितिराय, विविधविहंगमनिन्नदितया निम्मलसलिलय नादिया परिक्खित्तम्, अच्चरागणपरिवुत्सेकस्सा पुन्नवतो निवासभूतं। तं दिस्व राजा तस्स कटकम्मं पुच्चि, इतारोपिस्सा बयाकासी।

528 .

"पभासति मिदं ब्यमहं, फलिकासु सुनिमितं;

नारिवरगणाकिन्नं, कूटागरावरोचितं।

529 .

" उपेतं अन्नपनेहि, नक्कागितेहि चुभयं;

नज्जो चनुपरियति, नानापुप्पदुमायुता।

530 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु मको किम्कासि साधुं, यो मोदति सग्गापत्तो विमाने।

531 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

532 .

"मिथिलायां गहपति, एसा दानपति आहु;

अरामे उद्पाणे च, पापा संकमनानि च;

अरहंते सतीभूते, सक्कक्कं पतिपादायि।

533 .

"चिवरं पिण्डपताञ्च, पचायं सयानासनं;

अदासि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

534 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अट्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

535 .

"उपोसाथं उपवासि, सदा सिलेसु संवुतो;

संयम संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति"।

तत्थ **नज्जो** ति वचनविपल्लसो, एका नदी तं विमानं परिक्खिपित्वा गताति अथो। **नानापुप्पादुमायुता** ति सा नदी नानापुप्पेहि दुमेहि अयुता। **मिथिलाय** नति एसा महाराज, कस्सपबुद्धकाले मिथिलानगरे एको गहपति दानपति अहोसी। तो एतानि आरामरोपनादिनि पुनानि कत्वा इमं संपत्तिं पत्तोति।

एवमस्सा तेन कटकम्मं अचिक्खित्वा पुरतो रथं पेसेट्वा अपरमपि फलिकाविमानं दस्सेसि। तं पुरिमविमानतो अतिरेकाया नानापुप्फलसंचन्नय तरुणवनाघटाय समानागतम्। तं दिस्व राजा तय संपत्तिया समन्नागतस्स देवपुत्तस्स कतकम्मं पुच्चि, इतारोपिस्सा बयाकासी।

536 .

"पभासति मिदं ब्यमहं, फलिकासु सुनिमितं;

नारिवरगणाकिन्नं, कूटागरावरोचितं।

537 .

" उपेतं अन्नपनेहि, नक्कागितेहि चुभयं;

नज्जो चनुपरियति, नानापुप्पदुमायुता।

538 .

"राजायताना कपित्था च, अम्बा शाला च जंबुयो;

तिंदुका च पियाला च, दुमा निकफला बाहु।

539 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु मको किमाकासी साधुं, यो मोदति सग्गापत्तो विमाने।

540 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

541 .

"मिथिलायां गहपति, एसा दानपति आहु;

अरामे उद्पाणे च, पापा संकमनानि च;

अरहंते सतीभूते, सक्कक्कं पतिपादायि।

542 .

"चिवरं पिण्डपताञ्च, पचायं सयानासनं;

अदासि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

543 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अठ्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

544 .

"उपोसाथं उपवासि, सदा सिलेसु संवुतो;

संयम संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति"।

तथा **मिथिलाय** नति एसा, महाराज, कस्सपबुद्धकाले विदेहरथे मिथिलानगरे एको गहपति दानपति अहोसी। तो एतानि पुन्नानि कत्वा इमं संपत्तिं पत्तोति।

एवमस्सा तेन कटकम्मं अचिक्खित्वा पुरतो रथं पेसेत्वा पुरीमासादिसामेव अपरमपि वेसूरीयविमानं दस्सेत्व तत्थ सम्पत्तिं अनुभवंतस्सा देवपुत्तस्सा कटकम्मम पुठो अचिक्खि।

545 .

"पभासति मिदं ब्यामहं, वेसूरीयसु निम्मितं;

उपेतं भूमिभागेहि, विभत्तं भगसो मितां।

546 .

"आडांबरा मुदिंगा च, नक्कागीता सुवादिता;

दिब्या सदा निच्चरन्ति, सवनिया मनोरमा।

547 .

"नाहं इवंगतं जातु, एवांसुरुचिरं शुद्ध;

सद्दां समभिजानामि, दिट्ठं वा यदि वा सुतम्।

548 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु मको किमाकासी साधुं, यो मोदति सग्गापत्तो विमाने।

549 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

550 .

"बाराणसियां गहपति, एसा दानपति आहु;

अरामे उद्पाणे च, पापा संकमनानि च;

अरहंते सतीभूते, सक्कक्कं पतिपादायि।

551 .

"चिवरं पिण्डपताञ्च, पचायं सयानासनं;

अदासि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

552 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अठ्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

553 .

"उपोसाथं उपवासि, सदा सिलेसु संवुतो;

संयम संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति"।

अथस्सा पुरतो रथं पेसेत्वा बालसूर्यसन्निभं कनकविमानं दस्सेत्व तत्थ निवासिनो देवपुत्तस्सा संपत्तिं पुथो अचिक्खि।

554 .

"यथा उदयमादिको, होति लोहितको मह;

तथुपमं इदं ब्यमहं, जतरूपस्स निम्मितं।

555 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

अयं नु मको किमाकासी साधुं, यो मोदति सग्गापत्तो विमाने।

556 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

557 .

"सावत्थियं गहपति, एसा दानपति आहु;

अरामे उद्पाणे च, पापा संकमनानि च;

अरहंते सतीभूते, सक्कक्कं पतिपादायि।

558 .

"चिवरं पिण्डपताञ्च, पचायं सयानासनं;

अदासि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा।

559 .

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्सा अठ्ठमि;

पातिहारियपक्खाञ्च, अष्टांगसुसमागतम्।

560 .

"उपोसाथं उपवासि, सदा सिलेसु संवुतो;

संयम संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति"।

तत्थ **उदयमादिक्को** ति उग्गच्छन्तो आदिको। **सावत्थिया** न्ति कस्सपबुद्धकाले सावत्थिनगारे एको गहपति दानपति अहोसि। तो एतानि पुन्नानि कत्वा इमं संपत्तिं पत्तोति।

एवं तेन इमेसं अट्ठन्नं विमानं कथितकाले साक्को देवराजा "मातलि, अतिविय सिरायति" अपरमपि जवनादेवपुत्तं पसेसि। तो वेजेना गंटवा अरोसेसी। तो तस्स वचनं सुत्वा "न सक्का इदानि सिरयितु"न्ति कैटुसु दिसासु एकप्पाहारेनेव बहुनि विमाननि दस्सेसि। रन्ना च तत्थ संपत्तिं अनुभावन्तानं देवपुत्तनं कटकम्मं पुत्थो असिक्खि।

561 .

" वेहयासामे बाहुका, जातरूपस्सा निम्मिता;

दद्दल्लमना आभेंति, विज्जुवबभघनन्तरे।

562 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमे नु मक्का किमाकांसु साधुं, ये मोदारे सग्गपत्ता विमाने।

563 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

564 .

"सद्धया सुनिविथया, सद्धम्मे सुप्पवेदिते;

अकांसु सत्थु वचनं, सम्मासंबुद्धसासने;

तेसं एतानि ठानानि, यानि त्वं राजा पाससि'ति।

तथा **वेहयासामे** ति वेहयासा इमे आकाश्येव सन्हिता। आकाशस्थकविमना इमेति वदति। **विज्जुवभभघनन्तरे** ति घनवलाहकांतरे जलमना विज्जु विया। **सुनिविथया** ति मग्गेन अगतत्ता सुप्पतिथिताय। इदं वुत्तं होति - महाराज, एते शुद्ध निय्यनिके कस्सपबुद्धसासने पब्बजित्वा परिशुद्धशिला समानधम्मं करोंता सोतापत्तिफलं सच्चिकत्व अरहतं निब्बत्तेतुं असक्कोंता ततो काटा इमेसु कनकविमानेसु उप्पन्ना। एतेसं कस्सपबुद्धसावकानं तानि ठानानि, यानि त्वं, महाराज, पस्ससिति।

एवमस्सा अकासथकविमानिन दस्सेत्वा सक्कस्सा संतिकां गमनत्थाय उसहं करोन्तो अहा -

565 .

"विद्तानि ते महाराज, आवासं पापकम्मिनाम्;

अथो कल्याणकम्मनं, ठानानि विदितानि ते;

उय्याहि दानी राजिसि, देवराजस्सा संतिके'ति।

तत्थ **अवास** नति महाराज, तया पथममेव नेरयिकाणं आवासं दिव पापकम्मनां थननानि विदितनि, इदानि पण अकाशथकविमाननि पसंतेना अथो कल्याणकम्मनं थनानि विदितानि, इदानि देवराजस्सा संतिके संपत्तिं दथुं उय्याहि गच्छहिती।

एवञ्च पना वत्वा पुरतो रथं पेसेट्वा सिनेरुं परिवारेत्व थिते सत्त परिभंदपब्बते दस्सेसि। ते दिस्वा रन्ना मतलिस्सा पुत्थभवं अविकारान्तो सत्था अहा -

566 .

"सहस्सयुत्तं हयवहिं, दिब्बयानमधिथितो;

ययामानो महाराज, अद्दा सिदान्तरे नागे;

डिसवानामन्तयी सुताम्, इमे के नाम पब्बता'ति।

तत्थ **हयवहि** न्ति हयेहि वाहियामानं। **दिब्बयानामाधीतितो** ति दिब्बयाने थितो हुत्वा। **अड्डा** ति अड्डा. **सीदान्तरे** ति सीदामहासमुद्दस्स अन्तरे। तस्मिं किरा महासमुद्दे उदकं सुखुमं, मोरापिंचमत्तमपि पक्खितं पतितहातुं न सक्कोति सिदतेव, तस्मा सो "सिदामहासमुद्दो"ति वुकाति। तस्सा अंतरे. **नगे** ती पबेट. **के नामा** ती के नाम नामेना इमे पब्बताति.

एवं निमिराण्णा पुत्थो मातलि देवापुट्टो अहा -

568 .

"सुदास्सणो कराविको, ईसाधारो युगन्धरो;

नेमिन्धारो विनताको, अस्सकाणो गिरि ब्रहा।

569 .

"एते सिदान्तरे नागा, अनुपुब्बसमुग्गता;

महाराजनमावसा, यानि त्वं राजा पाससि'ति।

तत्थ **सुदस्सणो** ति अयं, महाराज, एतेसं सब्बबहिरो सुदस्सणो पब्बतो नामा, तदनंतरे कराविको नाम, सो सुदस्सणतो उच्चतारो। उभिन्नंपि पण तेसं अंतरे एकोपि सीदंतरामहासमुद्दो। कराविकस्स अनंतरे इसाधारो नाम, सो कराविकतो उच्चतरो। तेसाम्पि अन्तरे एको सीदन्तरामहासमुद्दो। इषाधरस्स अनन्तरे युगन्धारो नाम, सो इषाधरतो उच्चतरो। तेसाम्पि अन्तरे एको सीदन्तरामहासमुद्दो। युगन्धरस्सा अनन्तरे नेमिन्धरो नाम, सो युगन्धरतो उच्चतरो। तेसाम्पि अन्तरे एको सीदन्तरामहासमुद्दो। नेमिन्धरस्सा अनन्तरे विनताको नाम, सो नेमिन्धरतो उच्चतरो। तेसाम्पि अन्तरे एको सीदन्तरामहासमुद्दो। विनतकस्सा अनन्तरे अस्सकाणो नाम, सो विनतकतो उच्चतरो। तेसाम्पि अन्तरे एको सीदन्तरामहासमुद्दो। **अनुपुब्बसमुग्गता** ति एते सिदंतरामहासमुद्दे सत्ता पब्बता अनुपतिपतिया समुग्गता सोपानसदिसा हुत्वा स्थिति। **यानि** ति ये त्वं, महाराज, इमे पब्बते पस्ससि, एते चतुन्नं महाराजनं अवसति।

एवमस्सा चतुमहाराजिकादेवलोकं दस्सेत्वा पुरतो रथं पेसेत्वा तावतिंसभवनस्सा चित्तकूटद्वारकोठकम् परिवारेत्वा इण्डपतिमा दस्सेसि। तं दिसवा राजा पुच्ची, इतारोपिसा ब्याकासी।

570 .

"अनेकरुपं रुचिरं, नानाचित्रं पकासति;

अकिन्नं इंदसदिसेहि, ब्याग्घेहेव सुरक्खितं।

571 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमं नु द्वारं किमभान्नमाहु, मनोरमं दिसाति दुरतोवा।

572 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

573 .

"चित्रकूटोऽति यं आहु, देवराजपवेसनम्;

सुदस्सानस्स गिरीनो, द्वारन्हेतं पकासति।

574 .

"अनेकरुपं रुचिरं, नानाचित्रं पकासति;

अकिन्नं इन्दसदिसेहि, ब्याग्घेहेव सुरक्खितं;

पविसेतेन राजिसि, अराजं भूमिमक्कमा'ति।

तथा **अनेकरूपा** न्ति अनेकजातिकाम्। **नानाचित्र** न्ति नानारत्नचित्रम्। **पकासति ति** किं नाम एतं पन्नयति। **अकिन्न** न्ति संपरिपुणं। **ब्याग्घेहेव सुरक्खिता** नति यथा नाम ब्याग्घे वा सीहेहि वा महावनं, एवं इन्दसदिशेव सुरक्खितम्। तासांच पना इंदपतिमानं अरक्खनत्थाय थपितभावो एकाकनिपते **कुलवकजाताके** (जा. 1.1.31) वुत्तानयेन गहेतब्बो। **किंमभन्नमहु** ति किन्नम वदन्ति। **पवेसां** न्ति निक्खमानप्पवेसनत्थाय निम्मितं। **सुदस्सानस्सा** ति सोभनादासनस्सा सिनेरुगिरिनो। **द्वारं हेत न्ति** एतं सिनेरुमत्थके पतितिहितस्स

दाससहस्सयोजनिकास्सा देवनगरस्स द्वारं पकासति, द्वारकोठको पन्नयति अथो। **पविसेतेना** ति एतेन द्वारेण देवनगरं पविसा। **अराजं भूमिमक्कमा** ति अराजं सुवन्नराजतमनिमयं नानापुप्पेहि समाकिनं दिब्बभूमिं दिब्बयानेन अक्कमा, महाराजति।

एवञ्च पना वत्वा मतलि राजनं देवानगरं पवेसेसि। तेन वुट्टं -

575 .

"सहस्सयुत्तं हयवहिं, दिब्बयानमधिथितो;

ययामानो महाराज, अद्दा देवसभं इदा'अन्ति।

तो दिब्बयाने थितोवा गच्चन्तो सुधम्मदेवसभं दिस्व मतलिं पुच्चि, सोपिस्सा असिक्खि।

576 .

"यथा सारदे आकाशे, नीलोभासो पदिस्सति;

तथुपमं इदं ब्यमहं, वेसूरीयसु निम्मितं।

577 .

"वित्ति हि मां विंदति सुता दिस्व, पुच्छमि तं मातलि देवसारथी;

इमं नु ब्यामहं किमभान्नमाहु, मनोरमं दिसाति दुरतोवा।

578 .

"तस्सा पुठो वियाकासि, मातलि देवसारथि;

विपाकं पुन्नकम्मनं, जनं अक्खासिजानतो।

579 .

"'सुधम्मा' इति यं आहु, पास्सा डिसटे सभा;

वेसूरीयरुचिरा चित्र, धारयंती सुनिम्मिता।

580 .

"अथांसा सुकता थम्भा, सब्बे वेसूरीयमाया;

यत्थ देवा तवतिंसा, सब्बे इन्दपुरोहिता।

581 .

"अत्थं देवमनुस्सानं, चिंतायंता समाचरे;

पविसेतेन राजिसि, देवानां अनुमोदनन्ति।

तथा **इदा** निपातमत्तं, देवसभं अडसति अथो। **पाससा** ति पासा एसा. **वेशुरिया रुचिरा** ती रुचिरावेसूरिया। **चित्र** ति नानारत्नविचित्र। **धारयन्ति** ति इमं सभं एते अट्ठहंसादिभेदा सुकता थम्भा धारयन्ति। **इंदपुरोहिता** ति इंदं पुरोहितं शुद्धेचरितं कत्वा परिवारेत्वा हितं देवमनुस्सनं अत्थं चिंतायंता अचंति। **पविसेतेना** ति इमिना मग्गेन यत्था देवा अन्नमन्नं अनुमोदंता अचंति, तं ठानं देवानां अनुमोदनं पविसा।

देवापि खो तस्सगमनमग्गं ओलोकेंटव निसिदिंसु। ते "राजा अगतो'ति सुत्वा दिब्बगंधवसापुफ्हत्था याव चित्तकुटद्वारकोठका पतिमग्गं गन्त्वा महासत्तं दिब्बगंधमालादि पूज्यन्ता सुधम्मदेवसभं अनैयिन्सु। राजा रथ ओटरित्वा देवसभाहं पविसी। देवा आसनेन निमंतयिन्सु। सक्कोपि आसनेन सेवा कामेहि च निमन्तेसि। तमत्थं पकासेन्टो सत्था अहा -

582 .

"तं देव पतिनन्दिन्सु, दिस्व राजनमगतम्;

स्वागतं ते महाराज, अथो ते अदुरगतं;

निसिदा दानी राजिसि, देवराजस्सा संतिके।

583 .

"सक्कोपि पतिनंदित्था, वेदेहं मिथिलग्गहं;

निमन्तयित्थ कामेहि, आसनेन च वसावो।

584 .

"साधु खोसि अनुप्पत्तो, आवासं वसवत्तिनं;

वासा देवेसु राजिसि, सब्बाकामसमसिद्धिसु;

तवतिंसेसु देवेसु, भुञ्ज कामे अमानुसे'ति।

तत्थ **पतिनंदिंसु** ति संपियायिन्सु, हत्थातुथव हुत्वा संपतिचिंसु। **सब्बाकामसमिद्धिसु** ति सब्बेसं कामनां समिद्धियुतेसु।

एवं सक्केन दिब्बाकामेहि सेवा आसनेन च निमंतितो राजा पतिक्खिपंतो अहा -

585 .

"यथा यचितकं यानं, यथा याचितकं धनं;

एवं सम्पदामेवेतं, यं परतो दानपच्चय।

586 .

"न चाहमेतमिच्छामि, यं परतो दानपच्चया;

सयंकातानि पुन्नानि, तम मे अवेनिकं धनं।

587 .

"सोहं गन्त्वा मनुस्सेसु, काहामि कुसलं बहुम्;

दानेन समाचर्याय, संयमेन दमेन च;

यं कत्वा सुखितो होति, न च पच्चानुतापति'ति।

तत्थ **यं परतो दानापच्चया** ति यं परतो तस्स परसा दानापच्चया तेन दिन्नत्ता लब्भाति, तं यचितकसादिसं होति, तस्मा नहं एतं इच्छामि। **सयांकातानि** ति यानि पना मया अत्ताना कतानि पुनानि, तमेव मम परेहि असाधारणत्ता अवेनिकं धनं अनुगमियाधनं। **समाचर्याय** ति तीहि द्वारेहि समाचर्याय। **संयमेन** ति सिलरक्खानेन। **दमेना** ति इंद्रियादमेना।

एवं महासत्तो देवानां मधुरसद्देन धम्मं देसेसि। धम्मं देसन्तोयेव मनुस्सगणनाय सत्त दिवसानि तत्त्वा देवगणं कोसेत्वे देवगणमज्जे थितोवा मतलिसा गुनां कथेंटो अहा -

588 .

"बहुपकारो नो भवं, मातलि देवसारथी;

यो मे कल्याणकम्मनं, पापानां पतिदासयि'ति।

तथा **यो मे कल्याणकम्मनं, पापानां पतिदासयि** ति यो एसा मयहं कल्याणकम्मन देवानांच पापनि ठानानि दस्सेसिति अथो।

सग्गकांडं निहितं।

अथ राजा सक्कं अमांतेत्वा "इच्छामहं, महाराज, मनुस्सलोकं गन्तु"न्ति आहा। सक्को " तेन हि, सम्मा मतलि, निमिराजनं तत्थेव मिथिलां नेहि'ति आहा। तो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा रथं उपथपेसि। राजा देवगणेहि सद्धिमं सम्मोदित्वा देवे निवत्तपेत्व रथं अभिरुहि। मातलि रथं पेसेन्टो पचिनादिसाभागेन मिथिलां पापुनि। महाजनो दिब्बरथं दिस्व' राजा नो अगतो'ति पमुदितो अहोसि। मातलि मिथिलां पादक्खिनं कत्वा तस्मिन्येव सिहपञ्जरे महासत्तं ओतरेत्व "गच्छमहं, महाराज"ति आपुच्छित्वा सकथनामेव गतो। महाजनोपि राजनं परिवारेत्व "किदिसो, देवा, देवलोको"ति पुच्चि। राजा देवतानच सक्कस्सा च देवराननो संपत्तिं वन्नेत्वा "तुम्हेपि दानादिनि पुनानि करोथा, एवं तस्मि देवलोके निब्बतिसथा"ति महाजनस्सा धम्मं देसेसि।

तो अपराभागे कप्पकेण पलितस्सा जाताभावे अरोकिते पलितं सुवन्नसंदासेना उद्धरापेत्वा हत्थे थापेत्वा कप्पकस्सा गमवरं दत्वा पब्बजितुकामो हुत्वा पुत्तस्स रज्जां पेटीचापेसी. तेना च कस्मा, देवा, पब्बाजिस्ससि'ति वुट्टे -

"उत्तममंगरुहा मयहं, इमे जाता वयोहारा;

पहुभूता देवदूता, पब्बज्जासमायो ममा'ति। —

गाथां वत्वा पुरीमराजनो विया पब्बजित्वा तस्मिनयेव अम्बवने विहारन्तो चत्तारो ब्रह्मविहारे भवेत्वा ब्रह्मलोकुपगो अहोसि। तस्सेवं पब्बजिताभवं अविकारोंतो सत्थ ओसनागतमहा -

589 .

"इदं वत्वा निमिराज, वेदेहो मिथिलग्गहो;

पुथुयान्नं यजित्वान, संयमं अज्झुपागमि'ति।

तत्थ **इदं वत्वा** ति "उत्तममंगरुहा मयहा'न्ति इमां गथं वत्वा। **पुथुयान्नं यजित्वाना** ति महादानं दत्वा। **संयमं अज्झुपागामी** ति सिलसंयम उपगतो।

पुत्तो पनास्सा काराजनको नाम तं वंशं उपचिंदि।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा' न, भिक्खवे, इदानेव, पुब्बेपि तथागतो महाभिनिक्खमानं निक्खन्तोयेव"ति वट्वा जातकं समोधनेसि " तदा सक्को अनुरुद्धो अहोसि, मातलि आनंदो, चतुरासिति खत्तियसहसानि बुद्धपरिसा, निमिराज पण अहमेव सम्मासंबुद्धो अहोसिं'न्ति।

निमिजातकवन्ना चतुत्था।

---

[541] 4. निमिजातकवन्नना

चूमेरं वत लोकस्मिन्ति इदं सत्था मिथिलां उपनिस्साय माघदेवअम्बवने विहरन्तो सितपतटुकम्मं अर्भ कथेसि। एकदिवसहि सत्था सायंषसमये सम्भुलेहि भिक्खुहि सद्धिं तस्मिं अम्बवने चारिकं चरमाणो एकं रमानीयं भूमिप्पदेसं दिस्वा अत्तनो पुब्बचरियां कत्थेतुकामो हुत्वा सितपातुकम्मं कत्वा अस्मता अंडथेरेन सितपातुकम्मकारं पुत्थो " आनंद, अयं भूमिप्पदेसो पुब्बे माया माघदेवराजकाले झांकीळहं कीळन्तेन अज्जवुत्थपुब्बो"ति वत्वा तेन याचितो पञ्चत्तसने निसीदित्वा अतीतं अहरि।

अस्ते विदेहर्त्थे मिथिलंकारे मेघदेवो नाम राजा रजं करेसि। सो चतुरासिटिवस्ससहसानि कुमारकीळहं कीळि, चतुरासिटिवस्ससहस्सानि उपराजजं करेसि, चतुरासिटिवस्ससहसानि रजजं करेन्तो "यदा मे सम्म कप्पक, सिरस्मिं पलितानि पपेयसि, तदा मे अरोचेयासी"ति अह। अपरभागे कप्पको पलितानि दिस्वा रञ्जो अरोचेसि। राजा पलितं सुवन्नसंदासेन उद्धरापेत्वा हत्थतले पतित्थापेत्वा पलितं ओलोकेत्वा मच्छचुराजेण आगन्त्वा नलाते लग्गं वि मरणं संपसस्मानो " इदानी मे पब्बजितकालो"ति कप्पकस गमवरं दत्वा जेट्ठपुत्तं पकोसपेत्वा "तात, राजदजं पतिच्छ, अहं पब्बजीसामी"ति वत्वा "किं कारण देवा"ति वुत्ते -

"उत्तमङ्गगुरुहा म्यहं, इमे द वयोहरा।

पातुभूता देवदूता, पब्बज्जासमयो मम"ति॥ —

वत्वा पुत्तं रजदजे अभिसिंचित्वा "तात, त्वमपि एवरूपं पलितं दिसवव पब्जेयसी"ति तं ओवदित्वा नगरा निखमित्वा अंबवने इसिपब्बजं पब्बजित्वा चतुरासिटिवस्ससहस्सानि चत्तारो ब्रह्मविहारे भवेत्वा ब्रह्मलोके निब्बति। पुत्तोपिस्स एतेनेव मयेन पब्बजित्वा ब्रह्मलोकपरायणो अहोसि। तथा तस्स पुत्तो, तथा तस्स पुत्तोति एवं द्वीहि ऊनानि चतुरासीतिखत्तियसहस्सानि सीसे पलितं दिस्वाव इमस्मिं अंबवने पब्बजित्वा चत्तारो ब्रह्मविहारे भवेत्वा ब्रह्मलोके निब्बिंसत्तु।

तेसं सब्बप्तमं निब्बत्तो मेघदेवराजा ब्रह्मलोके थितोव अट्टनो वंसं ओलोकेंतो द्वीहि ओनानि चतुरासीतिखट्टियसहसनि पब्बजितानि दिस्वा तुत्थमानसो हुत्वा "इतो नु खो परं पवत्तिस्सति, न पवत्तिस्स्ति"ति ओलोकेंतो अप्पवत्तनभावं नत्वा "मम वंसं अहमेव" घटेस्सामि"ति चिन्तेत्वा ततो चित्वा मिथिलकांगे रञ्जन्यो अग्गमहेसिया कुच्छिम्हि पतिसंधिं गणित्वा दशमासच्चयेन मातु कुच्छितो निक्कमि। राजा तस्स नामगघनदैसे नेमित्तके ब्राह्मणे पकोकोसापेत्वा पुच्छि। ते तस्स लक्षणानि ओलोकेत्वा "महाराज, अयं कुमारो तुम्हाकं वंशं घटेनतो उप्प संज्ञाओ। तुम्हाक्ञ्हि वंसो पब्बजितवंसो, इमस्स परतो नागमिस्सति"ति वदिंसु। तं सुत्व राजा" अयं कुमारो रथच त्रकनेमि विय मम वंसं घटेनतो जातो, तस्मा तस्स 'निमिकुमारोऽति नामं करिसामि"ति चिन्तेत्वा "निमिकुमारो"तिस्स नामं अकासि।

सो दहरकलतो पट्ठय दाने सीले उपोस्थकम्मे च अभिरतो अहोसि। अथस पिता पुरिमनयेनेव पलितं दिस्वा कप्पकस गमवरं दत्वा पुत्तस्स रजदजं नियादेत्वा अंबवने पब्बजित्वा ब्रह्मलोकपरायणो अहोसि। निमिराजा पण दंज्जसयताय चतुसु नगरद्वारेसु नगरमझे चाति पञ्च दंसलायो करापेत्वा महादानं पवत्तेसि। एकेकाय दंसलाय सत्सहस्सं सत्सहस्सं कत्वा देवसिकं पञ्च पञ्च कहापंसत्सहस्सानि परिच्छदचि, निचदचं पञ्च सीलनि राखी, पक्खदिवससु उपोस्थं समदियि, मजामपि दानादिसु पण्डनेसु समादपेसि, सग्गमग्गं अचिक्खित्वा निर्यभयेन तजदजेत्वा धम्मं देसेसि। तस्स ओवादे थिता मनुष्सा दानादिनि पुञ्जानि कत्वा ततो चुता देवलोके निब्बत्तिंसु, देवलोको परिपूरि, निर्योतुष्टो विय अहोसि। तदा तावतिंसभवने देवसङ्घा सुधम्मयं देवसभायं स ज्ञानपतित्व "अहो, वत अम्हाकं आचार्यो निमिराजा, तं निस्साय मयं इमं बुद्धदन्नेनपि अपरिच्छिंदनीयं दिब्बसम्पत्तिं अनुभवमा"ति वत्वा महासत्तस्स गुणे वन्यायंसु। मनुस्सलोकेपि महासमुद्दपिट्ठे असित्ततेलं विय महासत्तस्स गुणकथा स्टोनरि। सत्था तमथं अविभूतं कत्वा भिक्खुसङ्घस्स कथेंतो अह -

420.

"अच्छेरं वत लोकस्मिं, उप्पज्ज़न्ति विचक्खना।

यदा अहु निराजमिया, पण्डितो कुसलथिको॥

422.

"राजा सब्बिदेहं, अदा दानं अरिन्दमो।"

तस्स तं ददतो दानं, सङ्कप्पो उदपज्जज्थ।

दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमं सु महप्फल"न्ति॥

तत्थ यदा आहुति भिक्खवे, यदा पंडितो अत्तनो च परेसञ्च कुसलथटिको निमिराज अहोसि, तदा देवमनुस्सा " अच्छेरं वत, भो, एवरूपापि नाम अनुप्प साइने बुद्धान्ने बौद्धस्स बुद्धकिचाचं साधयमना लोकस्मिं विचखना उपप्पज्जन्ति"ति एव तस्स गुणकथं कथेसुन्ति अथो। "यथा अहु"तिपि पाठो। तस्सत्थो - यथा अहु निमिजा पण्डितो कुसलथिकोयेव, तथारूपा महास्स्स बुद्धकिचं साधयमना उप्जदजन्ति विचखना। यं तेसं उप्प सत्यं, तं अच्छेरं वत लोकस्मिन्ति। इति सत्था संयमेव अचरियजातो एवमः। सब्बविदेहहन्ति सब्बविदेहत्तवासिनं। कतमं सुति एतेसु दविसु कतमं नु खो महप्फलन्ति अथो।

सो किर प साइनरसीउपोस्थदिवसे उपोस्थिको हुत्वा सब्बाभरणानि ओमुञ्चित्वा सिरिसयनपिट्ठे निप सयानोव द्वे यामे निद्दं ओक्रममित्वा पछिमायामे पबुद्धो पल्लङ्कं अभुजित्वा "अहं समाजस्स अपरिमणं दानमपि देमि, सीलमपि रक्खामि, दानस्स नु खो महंतं फलं, उदाहु ब्रह्मचर्यस्स'ति चिन्तेत्वा अत्तनो कङ्खं छिन्दितुं नासक्खि। तस्मिं खने सक्रक्स भवनं उन्हाकारं दस्सेसि। सक्राको अवजज्जेनतो तं तथा विटब्रेकेंटं दिस्वा "कङखमस्स चिन्नदिस्सामी"ति एककोव सीघं आगन्त्वा सकलनिवेसनं एकतोभासं कत्वा सिरिगभं पविसीत्वा ओभासं भरित्वा आकासे तत्वा तेन पुत्थो ब्याकासि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

4.25.

"तस्स सङ्कप्पमञ्जाय, मघवा देवकुंजरो।

सहस्सनेत्तो पतुरहु, वन्नेन विहानं तमं॥

4.

"सलोमहत्तो मनुजिंदो, वासवं अवचा निमि।"

देवता नुसि गन्धब्बो, अदु त्राटक सको पुरिन्ददो॥

425.

"न च मे तदिसो वन्नो, दित्थो वा इफ वा सुतो।

अचिक्ख मे त्वं भद्दन्ते, कथं जानेमु तं मयं॥

4.

"सलोमहत्तं ञत्वान, वस्वो अवचा निमिं।

सट्रकोहमस्मि देविन्दो, आगतोस्मि त्वन्तिके।

अलोमहत्तो मनुजिन्द, पुच्छ पञ्चं यमिच्छसि॥

4.

"सो च तेन कटोकासो, वासवं अवचा निमि।

पुच्छमि तं महाराज, सब्बभूतानमिस्सर।

'दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमांसु महप्फलं'॥

4

"सो पुत्थो नरदेवेन, वस्वो अवचा निमिं।

विपाकं ब्रह्मचार्य, जानं अक्खासिजानतो॥

4

"हीनेन ब्रह्मचरियेन, खत्तये उपपज्जति।"

मज्झिमेन च देवतां, उत्तमेन विसुज्जति॥

430.

"न हेते सहजा काया, याचयोगेन केन्चि।

ये काये उपपज्जन्ति, अनागारा तपस्सिनो"ति॥

तत्थ सलोमहट्ठोति भिक्खवे, सो निमिराजा ओभासं दिस्वा आकासं ओलोकेंतो तं दिब्बाभरणपतिमण्डितं दिस्वाव भयेन लोमहट्ठो "देवता नुसि हु गन्धब्बो"तिआदिना पुच्छि। अलोमहत्थोति निब्भयो अहत्थलोमो हुत्वा पुच्छ, महाराजाति। वासवं अवचाति तुत्थमानसो हुत्वा सट्टकं अवोच। जानं अक्खासिजानतोति भिक्खवे, सो सक्को अस्ते अत्तना पच्चचकतो दिट्ठपुब्बं ब्रह्मचर्य विपाकं जानंतो तस्स अजानतो अक्खासी।

हीनेनातिआदिसु पुथुतिथायत्ने मेथुनविरातिमत्तं सीलं हीनानं नाम, तेन खट्टियकुले उपपजदजति। जानस्स उपचारमत्तं मज्झिमं नाम, तेन देवतां उपपज्जति। अट्ठसमापत्तिनिब्बत्तनं पन उत्तमं नाम, तेन ब्रह्मलोके निब्बत्तति, तं बहिरका निब्बान्ति कथेंन्ति। तेनाः "विसुज्झति"ति। इमस्मिं पन बुद्धसासने परिसुद्धसीलस भिक्खुनो अञ्जन्तरं देवनिकायं पत्थेनतस्स ब्रह्मचर्यचेतना सत्याय हीनं नाम, तेन यथापथिते देवलोके निब्बत्तति। परिसुद्धसिलस्स भिक्खुनो अट्ठसमापत्तिनिब्बत्तनं मज्झिमं नाम, तेन ब्रह्मलोके निब्बत्तति। परिसुद्धसिलस्स विपस्सनं वन्नजेत्वा अरहत्तुपत्ति उत्तमं नाम, तेन विसुज्झतिति। इति सतारको "महाराज, दंतो सतगुणेन सहस्सगुणेन सत्सहसगुणेन ब्रह्मचर्यवासोव महप्फलो"ति वन्नेति। कायाति ब्रह्मघात। याचयोगेनाति याचनयुत्तकेन यञ्जयुत्तकेन वती उभयत्थापि दक्षवेतं नामं। तपस्सिनोति तपनिस्सित्का।

इमाय गाथाय ब्रह्मचर्यवासस्सेव महफलभावं दीपेत्वा इदानि ये अस्ते महादानं दत्व कामावचरं अतिक्रममितुं नासखिंसु, ते राजानो दस्सेंतो अह -

4

"दुदीपो सागरो सेलो, मुजकिंडो भागिरसो।"

उसिन्द्रो कस्सपो च, असको च पुथुज्जनो॥

44वीं.

"एते चञ्चे च राजानो, क्षत्रिय ब्राह्मण बहु।"

पुथुयञ्चं यजित्वान, पेत्तत्तं नातिवत्तिसुऽन्ति॥

तस्सत्थो - महाराज, पुब्बे बारांसियं दुदीपो नाम राजा दानं दत्वा मर्नच ब्रेकेन छिन्नो कामावचरेयेव निब्बति। तथा सागरादयो अट्ठाति एते च अञ्जने च बहु राजानो चेव खत्तिया ब्राह्मणा च पुथुयञ्जं यजित्वान अनेकापकारं दानं दत्त्वा कामावचरभूमिसङ्खातं पेटत्तं नातिविंत्सुति अथो। कामावचरदेवता हि रूपादिनो किलेसवथुसस कारण परं पच्चासीसनतो कपांताय "पेटा"ति वुच्चचन्ति। वुट्टमपि चेतनं -

"ये अदुत्या न रमन्ति एकिका, विवेकजं ये न लभन्ति पीतिं।

किञ्चादपि ते इन्दस्मानभोगा, ते वे पराधीनसुखा वरका"ति॥

एम्पि दानफलतो ब्रह्मचर्यफलासेव महन्तभावं दस्सेत्वा इदानि ब्रह्मचर्यवसेन पेतभवनं अति त्रिकमित्वा ब्रह्मलोके निब्बत्ततापसे दस्सेन्तो अह -

4

"अथ यिमे अवत्तिन्सु, अनागारा तपस्सिनो।"

सत्तिसयो यामहनु, सोमयामो मनवो॥

4

"समुद्दो माघो भरतो च, इसि कालपुरक्खतो।"

अङ्गीरसो कस्सपो च, किसवच्छो अकति चा"ति॥

तत् अवत्तिनसुति कामावचरं अतिगतिंसु। तपस्सिनोति सीलतपञ्चेव समापत्तितपञ्च निस्सीता। सत्तिसयोति यम्हानुदयो सत्त भतरोव सन्ध्याः। अङ्गीरसादिहि चतुहि सद्धिं एकादसेते अवत्तिंसु अति लैक्टामिंसुति अथो।

एवं तव सुतवसेनेव दानफलतो ब्रह्मचर्यवसस्सेव महप्फलतं वन्नेत्वा इदानि अत्तना दिट्ठपुब्बं आहारन्तो अह -

4.

"उत्तरेन नदी सीडा, गहराई दुरति ट्रैकमा।

नळग्गिवन्ना जोतन्ति, सदा कंचनपब्बता॥

4 .

"परोळहकच्छ तगरा, रुळहकच्छ वना नागा।

तत्रासुं दससहस्स, पोराना इसयो पूरे॥

4

"अहं सेट्ठोस्मि दानेन, संयमेन दमेण च।

अनुत्तरं वतं कत्वा, पकिरचारी सम्मिलिते॥

40

"जातिमन्तं अजचदचञ्च, अहं उजुगतं नरं।

अतिवेलं नमस्सिसं, कम्मबन्धु हि मानवा॥

4.

"सब्बे वन्ना अधम्मत्था, पतन्ति निरयं अधो।

सब्बे वन्ना विसुज्जन्ति, चरित्वा धम्ममुत्तम"न्ति॥

तथा उत्तरेणति महाराज, अस्ते उत्तरहिमवन्ते द्वि न्याजं सुवन्नपब्बतनं अंतरे पवत्ता सीदा नाम नदी नावाहिपी दुरतिकालकमा अहोसि। कौन सा कारण? सा हि अतिसुखुमोदका, सुखुमत्ता उदकस अंतमसो मोरपञ्च-मत्तमपि तथा पतितं नं संथाति, ओमादित्वा हेत्थतलमेव गच्छति। तेनेव सा सीदा नाम अहोसि। ते पन तस्सा तीरेसु कांचनपब्बता सदा नळगिवन्ना हुत्वा जोतन्ति ओभासन्ति। पुरुळहकच्छ तगरति तस्सा पन नादिया तीरे कच्छा पुरुळहतगरा अहेसुं तगरगंधसुगंधिनो। रुळहकच्छ वाना नागाति ये तत् अञ्जनेपि पब्बता, तेसम्पि अंतरे कच्छ रुळहवना अहेसूं, पुप्फफलूपगुरुक्षासञ्च साइनाति अत्थो। तत्रासुन्ति तस्मिं एवं रमणीये भूमिभागे दससहस्स इसयो अहेसुं। ते सब्बेपि अभिज्ञानसमापत्तिलाभिनोव। तेसु भिक्खाचारवेलाय केचि उत्तरकुरुं गच्छन्ति, केचि महाजम्बूदीपे जम्बुफलं अहरन्ति, केचि हिमवन्तयेव मधुरफलानि अहित्वा भोजन्ति, केचि जम्बूदीप्तले तं तं नगरं गच्छन्ति। एकोपि रसतन्हाभिभूतो नत्थि, झानसुखेनेव वीतिनामेन्ति। तदा एको तापसो आकासेन बाराणसिं गन्त्वा सुनिवत्थो सुपारुतो पिण्डाय चरन्तो पुरोहितस्स गेहद्वारं पापुनि। सो तस्स उपसमे पसीदित एनेवा अंतोनिवेसनं त्वा भोजनेत्वा कतिपहं पतिजगन्तो विस्सासे उप्प संज्ञाए "भन्ते, आपार कुहिं वस्था"ति पुच्छि। असुकाट्ठाने नामवुसो'ति। "किं पन हर एककोव तथा वसथ, उदाहु अञ्चेपि अथि"ति? "किं वदेसि, आवुसो, तस्मिं पदेसे दशसहस्स इसयो वसन्ति, सब्बेव अभिज्ञानसमापत्तिलाभिनो"ति। तस्स तेसं गुणं सुत्वा पब्बज्जाय चित्तं नमि। अथ नं सो अह - "भंते, ममपि तथ नेत्वा पब्बजेथा"ति। "अवुसो, तवं राजपुरिसो, न तं सक्राका पब्बजेतु"न्ति। "तेन हि, भन्ते, अजदजाहं राजानं अपुच्छिस्सामि, अराम स्वेपि आगच्छेयथा"ति। सो अधिवाससि.

इतरोपि भूतपातरासो राजनं उपसङ्कमित्वा "इच्छामहं, देव, पब्जितु"न्ति अह। "पब्ब्जिससी" का कारण क्या है? "कामेसु दोसं नेखम्मे च अनिसं दिस्वति।" "तेन हि पब्बजाहि, पब्बजितोपि मन दस्सेयसी"ति। सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा अत्तनो गेहं गन्त्वा पुत्तदारं अनुसासित्वा सब्बं सपतेयं दस्सेत्वा अत्तनो पब्बजितपरिखारं गहेत्वा तपस्सस आगमनमग्गं ओलोकेन्तोव निसीदि। तपसोपि तथेव आकासेनागन्त्वा अन्तोनगरं पविसीत्व तस्स गेहं पविसी। सो तं सचित्रचं चं परिविसित्वा "भन्ते, मया कथं कैटब्ब"न्ति अह। सो तं बहिनगरं नेत्वा हत्थे आद्य अत्तनो अनुभावेन तत् नेत्वा पब्बजेत्वा पुनादैसे तं तत्थेव ओकेत्वा भट्टं अहारित्वा दत्वा कसिनपरिकमं अचिक्खि। सो कटिपाहनेव अभिज्ञानसमापत्तियो निब्बतेत्वा संयमेव पिंडाय चरति।

सो अपरभागे "अहं रञ्जनो अत्तानं दस्सेतुं पतिञ्जन अदासिं, दस्सेस्सामस्स अत्तान"न्ति चिन्तेत्वा तापसे वंदित्वा आकासेन बाराणसिं गन्त्वा भिक्खं चरन्तो राजद्वारं पापुनि। राजा तं दिस्वा संजानित्वा अंतोनिवेसनं पवेसेत्वा स चक्रं कत्वा "भन्ते, कुहिन वस्था"ति पुच्छि। "उत्तरहिमवन्तपदेसे कञ्चनपब्बतन्तरे पवत्तय सीदानदिया तीरे, महाराजा"ति। "किं पन, भन्ते, एककोव तथा वस्थ, उदाहु अञ्जेपि अथि"ति। "किं वदेसि, महाराज, तथा दशसहस्स इसयो वसन्ति, सब्बेव अभिज्ञानसमापत्तिलाभिनो"ति? राजा तेसं गुणं सुत्वा सब्बेसं भिक्खं दातुकामो अहोसि। अथ नं राजा अह - "भन्ते, अहं तेसंइसेनं भिक्खं दातुकामोहि, किं करोमोति?" "महाराज, ते इसयो जिव्हाविञ्जनीयरसे अगिद्धा, न सफ्राका इधानेतु"न्ति। "भन्ते, हार निस्साय ते भोजेस्सामि, उपायं मे अचिक्खथा"ति। "तेन हि, महाराज, सचे तेसं दानं दातुकामोसि, इतो निकमित्वा सीदानदीतीरे वसंतो तेसं दानं देहि"ति।

सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा स ब्झपकानानि गहापेत्वा चतुर्ङ्गिनीय सेनाय सद्धिं निक्खमित्वा अत्तनो रजदजसीमं पापुनि। अथ नं तापसो अत्तनो अनुभावेन सद्धिं सेनाय सीदानदीतिरं नेत्वा नदीतीरे खंडावारं करापेत्वा आकासेन अत्तनो वसनत्थानं गन्त्वा पुनदिवसे पच्चचागमि। अथ नं राजा सच्चरचं भोजनेत्व " स्वे, भंते, दशहस्से इसयो आदय इधेव आगच्छथा"ति अह। सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा गन्त्वा पुनदायसे भिक्खाचारवेलाय तेसंयकेनं अरोचेसि "मारिसा, बाराणसिराजा 'तुम्हाकं भिक्खं दशमी'ति अगन्त्वा सीदानदितिरे निसि साइनो स्वे वो निमंतेति, तस्सानुकम्पाय खंडावारं गन्त्वा भिक्खं गंहथा"ति। ते "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा आकासेन गन्त्वा खन्धावारस्स अविदूरे ओतारिंसु। राजा ते दिसवा पच्चचुग्मनं कत्वा खंडावारं पवेसेत्वा पञ्जन्तासनेसु निसीदापेत्वा इसिगं पणितेनहारेण सन्तप्तपेत्वा तेसं इरियपथे पस साइनो स्वातनयपि निमन्तेसि। एतेनुपायेन दससत्साहस्सनि दानं अदासि। ददन्तो च तस्मिनयेव पदेसे नगरं मापेत्वा सस्कम्मं करेसि। न खो पन, महाराज, तदा सो राजा अंजनो अहोसि, अथ खो अहं सेत्थोस्मि दानेन, अहमेव हि तदा दानेन सेत्थो हुत्वा तं महादानं दत्वा इमं पेटलोकं अति त्रिकमित्वा ब्रह्मलोके निब्बत्तितुं नासखिन। मया दी साइनाणं पन दानं भुञ्जित्वा सब्बेव ते तपसा कामावचरं अति तृक्तमित्वा ब्रह्मलोके निब्ता, इमिनापेटं वेदितब्बं "ब्रह्मचर्यवासोव महप्फलो"ति।

एवं दानेन अत्तनो सेत्थभावं पाकसेत्वा इतरेहि तेहि पदेहि ते संशयेनं गुणं पकासेति। तथा संयमेनाति सीलेन। दमेनाति इन्द्रियदमेन। अनुत्तरन्ति एतेहि गुणेहि कृष्णं उत्तमं वतं समादानं चरित्वा। पकिरचारीति गणं पकिरीत्वा पतिक्खिपित्वा पहाय एकचारिके, एकीभावं गतेति अथो। समग्रेति उपचारप्पनासमाधिहि समग्रचित्ते। एवरूपे अहं तपस्सिनो उपत्थहिन्ति दस्सेति। अहं उजुगतन्ति अहं, महाराज, तेसं दशसहासनं एकेनं अंतरे कायवङकादीनं अभावेन उजुगतं एकम्पि नरं हीनजच्चो हो वातु जातिसम्प नयनो वा, जातिं अविचारेत्व तेसं गुणेसु पस साइनमानसो हुत्वा सब्बमेव अतिलवेलं नमस्सिसं, निच्चमकालमेव नमस्सिसन्ति वदति। कौन सा कारण? कम्म बंध्दु हि मानवति, सत्या हि नामेते कम्म बंध्दु कम्मपतिस्त्रणा, तेनेव कारणेन सब्बे वन्नाति वेदितब्बा।

एवञ्च पन वत्वा "किञ्चदापि, महाराज, दन्तो ब्रह्मचर्यमेव महप्फलं, द्वेपि पनेते महापुरिसवित् त्रकाव, तस्मा द्वीसुपि अप्पमत्तोव हुत्वा दञ्च देहि, सीलनदच रक्खाहि"ति तं ओवदित्वा सकत्थानमेव गतो। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

440.

"इदं वत्वान् मेघवा, देवराजा सुजम्पति।

वेदेहमनुससित्वा, सग्गकायं अपफ्राकामी"ति॥

तत्थ अपतर्कमीति पचित्रमी, सुधम्मदेवसभायं निसि नारामेव अत्तनं दस्सेसीति अथो।

अथ नं देवगण अहंसु "महाराज, ननु न पञ्चयित्थ, कुहिन गतथा"ति? "मारिसा मिथिलायं निमिरञ्चो एका कङ्खा उप्पजजि, तस्स पञ्हं कथेत्वा तं राजानं निक्रमकखं कत्वा आगतोम्हि"ति वत्वा पुन तं कारणं पौराणिकाय कथेतुं अह -

4

"इमं भोन्तो निसामेथे, यवन्तेत्थ समागता।

धम्मिकानं मनुस्सानं, वन्नं उच्छवाचं बहुम्॥

4

"यथा अयं निमिराजा, पण्डितो कुसलथिको।

राजा सब्बविदेहं, अदा दानं अरिंदमो॥

4

"तस्स तं ददतो दानं, सङ्कप्पो उदपजदज्थ।

दानं वा ब्रह्मचर्यं वा, कतमं सु महप्फल"न्ति॥

तत्थ इमन्ति धम्मिकानं कल्याणधम्मनं मनुस्सानं मया वुचदचमानं सीलवसेन उचदचं दानवसेन अवचं बहुं इमं वन्नं निसामेथ सुनथाति अथो। यथा अयन्ति अयं निमिरजा यथा अतिविय पण्डितोति।

इति सो अपरिहापेत्वा रञ्जनो वन्नं कथेसि। तं सुत्वा देवसङ्घा राजानं दत्थुकामा हुत्वा "अम्हाकं निमिरजा आचार्यो, तस्सोवादे तत्व तं निस्साय अम्हेहि अयं दिब्बसंपत्ति लद्धा, मयं दट्ठुकामम्हा, तं पककोसापेहि, महाराजा"ति वदिंसु। सक्रोको "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा मतलिं पफ्रकोसापेत्वा "सम् मतलि, वेजयन्तरथं योजेत्वा मिथिलां गन्त्वा निमिराजं दिब्बयाने आरोपेत्वा अनेहि"ति अह। सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा रथं योगेत्व पसि। सक्राक्स पन देवेहि सद्धिं कथेन्टस्स मतलिं अनापेन्टस्स च रथं योगेनतस्स च मनुस्सगणनाय मासो अतित्रक्तकन्तो। इति निमिरनधनो पुन्नमायं उपोस्थिकस्स पाचीनसिहपञ्जरं विवरित्वा महतले निसिदित्वा अमचचगणपरिवुत्स्स सीलं पच्च्डचवेखन्तस्स्स पाचीनलोकधातुतो उग्गच्छन्तेन चाण्डामण्डलेन सद्धिनयेव सो रथो पञ्चनयति। मनुषा भुत्तसयमसा घरद्वारेसु निसीदित्वा सुखकथं कथेंता "अज्ज द्वे चंदा उग्गता"ति अहंसु। अथ नेसं सल्लल्पनतनदंजेव रथो पाकतो अहोसि। माजो "नायं, चंदो, रथो"ति वत्वा अणुकमेन सिन्धवसहस्सुते मटालिसङ्गाहके वेजयन्तरथे च पाकते जाते "कस्स नु खो इदं दिब्बयानं आगच्छति"ति चिन्तेत्वा "नकस्चि अंडनासस, अम्हाकं राजा धम्मिको, सक्राकेन वेजयन्तरथो पेसिटो भाविस्ति, अम्हाकं राञ्जनोव अनुच्छविको'ति तुट्ठप्पहत्थो गातः -

444.

"अब्भुतो वत लोकस्मिं, उप्पजजि लोमहंसनो।"

दिब्बो रथो पतुरहु, वेदेहस्स यससिनो"ति॥

तथा अब्भुतोति अभूतपुब्बो। अच्छरियोति ते विम्हयवसेनेवमहंसु।

तस् पन महास्स एवं कथेंन्तस्सेव मतलि वातवेगेन आगन्त्वा रथं निवत्तेत्वा सीहपञ्जरउम्मारे पच्चभागेन ओमेकेत्वा आरोहणसज्जं कत्वा आरोहणथय राजानं निमन्तेसि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

4

"देवपुतत्तो महीधिचो, मातलि देवसारथि।"

निमन्तयित्थ राजानं, वेदेहं मिथिलग्गहं॥

444.

"एहिमं रथमारुयः, राजसेट्ठ दिसम्पति।"

देवा दस्सनकामा ते, तावतिंसा सिन्दका।

सरमाणा हि ते देवा, सुधम्मयं समाचरे"ति॥

तत्थ मिथिलगघन्ति मिथिलायां पतिट्थितगेहं, चतुहि वा सङ्गहवत्थुहि मिथिलायां सङ्गाहकं। समच्छरेति तवेव गुणकथं कथेंता निसिन्दनाति।

तं सुत्वा राजा" आदित्थपुब्बं देवलोकाञ्च पस्सीसामि, मतालिस्स च मे सङ्गहो कटो भविष्यसति, गच्छिसामि"ति चिन्तेत्वा अन्तेपुरन्दच राजजञ्च अमान्तेत्वा "अहं नचिस्राव आगमिस्सामि, मार अप्पमत्ता दानादिनि पुञ्जानानि करोथा"ति त्व्वा रथं अभिरुहि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

44.

"ततो राजा तरमानो, वेदेहो मिथिलग्गहो।

आसना वुट्ठहित्वान, पमुखो रथमारुहि॥

4.

"अभिरूळहं रथं दिब्बं, मातलि एतद्ब्रवि।"

केन टैन नेमि मग्गेन, राजसेट्ठ दिसम्पति।

येन वा पापकमन्ता, पुञ्चकम्मा च ये नरा"ति॥

तथा पमुखोति उत्तमो, अभिमुखो वा, महोजोसस पिट्ठिं दत्वा अरूळधोति अथो। येन वती येन मग्गेन गन्त्वा यथा पापकमन्ता वसन्ति, तं थानं सफ्राका दट्ठुं, येन वा गन्त्वा ये पुञ्चकम्मा नरा वसन्ति, तेसं ठानं सफ्राका दत्थुं, एतेसु दविसु केन मग्गेन तं नेमि। इदं सो सक्राकेन अनानत्तोपि अत्तनो दुतविसेसदस्सनथं अह।

अथ नं राजा "माया दवे थानानि आदित्थपुब्बानि, द्वेपि पस्सिस्सामि"ति चिंतात्वा अह -

4

"उभयेनेव मन नेहि, मातलि देवसारथि।

येन वा पापकमन्ता, पुञ्चकम्मा च ये नरा"ति॥

ततो मातलि "द्वेपि एकपहारेनेव न सफ्राका दस्सेतुं, पुच्छिस्सामि न'न्ति पुच्छन्तो पुन गथाः -

4

"केन तं पथमं नेमि, राजसेट्ठ दिसम्पति।"

येन वा पापकमन्ता, पुञ्चकम्मा च ये नरा"ति॥

निराकण्डं

ततो राजा "अहं अवसं देवलोकं गमिस्सामि, निरयं तव पस्सिस्सामि"ति चिन्तेत्वा अनंतरं गातः -

4.

"निरये तव पस्सामि, आवासे पापकम्मिनं।

ठानानि लुद्दकम्मानं, दुसिलानञ्च या गति"ति॥

तत्थ या गतिति या एतेसं निब्बति, तंदच पसमामिति।

अथस्स वेतरनिं नदीं तव दस्सेसि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

4

"दस्सेसि मातलि रञ्जो, दुग्गं वेतरनिं नादिं।

कुथितं खरसंयुत्तं, तत्तं अग्गिसीकूपम्"न्ति॥

तत्थ वेतरनिंति भिक्खवे, मातलि रञ्जनो कथं सुत्व निरयाभिमुखं रथं पेसेत्वा कम्मपच्छदचये उतुना समुत्थितं वेतरनिं नदीं तव दस्सेसि। तत् निरयपाला जलितानि असिस्टत्तितोमरभिन्दिवालमुग्गरादिनि अवुधानि गहेत्वा नेर्यिकसत्ते पहिरन्ति विज्झन्ति विहेथेन्ति। ते तं दुक्खं अशंता वेतरण्यं पतन्ति। सा उपरि भिन्दिवलप्पमनाहि सकान्तकाहि वेत्तलताहि सञ्छ संझ्रा। ते तत्थ बहुनि वस्ससहस्सनि पच्चिंसु। तेसु पज्जलन्तेसु खुरधारातिखिनेसु कांतकेसु खंडखंडिका होन्ति। तेसं हेत्था तलक्खान्धप्पमनानि पज्जलितअयसूलानि उत्त्थन्ति। नेरायिकसत्ता बहुं अधानं वीतिनामेत्वा वेत्तलताहि गळित्वा सुलेसु पतित्वा विद्धसेरिरा सुलेसु अवुनितमच्चा विय चिरं पच्चचन्ति। तानि सुलानिपि पज्जलन्ति, नेर्यिकसत्तपि पज्जलन्ति। सुलानं हेत्था उदकपिट्ठे जलितानि कुर्धारासदिसानि तिखिनानि अयोपोखर्पत्तानि होन्ति। ते सुलेहि गळित्वा अयपोखरपत्तेसु पतित्वा चिरं दुक्खवेदनं अनुभवन्ति। ततो खारोदके पतन्ति, उदकं पज्जल्ति, नेरायिकसत्तापि पजजलन्ति, धूमोपि उत्त्थहति। उदकस्स पन हेत्था नदीतलं कुर्धाराहि सञ्छ संज्ञां। ते "हेत्था नु खो किदिस"न्ति उदके निमुज्जित्वा कुर्धारासु खंडखंडिका होन्ति। ते तं महादुःखं अधिवासेतुं अस त्रैकोन्ता महन्तं भेरवं विरवंता विचरन्ति। कदाचि अनुसोतं वुयहन्ति, कदाचि पतिसोतं। अथ ने तीरे थिता निरयपला उसुसत्तितोमरादिनि उखिपित्वा मच्छे विय विज्झन्ति। ते दुक्खेदान्नप्पत्ता महावीरवं रवन्ति। अथ ने पज्जलितहि अयबळिसेहि उद्धरित्वा परिकन्नित्वा पज्जलितयपथवियं निपजज्जपेत्वा तेसं मुखे तत्तं अयोगुळहं पक्खिपन्ति।

इति निमिराजा वेतरनीयं महादुक्खपिळिते नेर्यिकसत्ते दिस्वा भीतत्सितो सङ्कम्पितहदयो हुत्वा "किं नामेते सत्य पापकम्मं अकांसु"ति मतलिं पुच्छि। सोपिस बयाकासी। तमत्थं पकासेनतो आह -

4

"निमी हवे मतलिमज्झाभासथ, दिस्वा जनं पत्मानं विदुग्गे।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदा किमकांसु पापं, येमे जना वेतरनिं पतन्ति॥

444.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

45.

"ये डुब्बले बलवंता जीवलोके, हिं शांति रोसेन्ति सुपपदम्मा।"

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना वेतरनिं पतन्ति"ति॥

तत्थ विन्दतीति अहं अत्तनो अनिस्सारो हुत्वा भयसंतको विय जातो। दिस्वति पत्मानं दिस्वा। जानन्ति भिक्खवे, सो मतलि सयं जानन्तो तस्स अजानतो अक्खासी। दुब्बलेति शरीरबलभोगबलानाबलविरहिते। बलवंतति तेहि बलेहि सम नारायणागता। हिंसान्तीति पाणिप्परादिहि किल्मेन्ति। रोसेन्तिति नानप्पकारेहि लैक्ट एकोसवथुहि एकोसन्ति घटेन्ति। पस्वेत्वति जनेत्वा, कत्वति अथो।

एवं मतलि तस्स पंघं ब्याकरित्वा रञ्जनया वेतरनिनिरये दित्थे तं पदेसं अंतधापेत्वा पुर्तो रथं पेसेत्वा सुनखाधिहि खादनत्थानं दस्सेत्वा तं दिस्वा भीतेन रञ्जञ्च पञ्चं पुत्थो ब्याकासि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

40

"सामा च सोना सबला च गिज्झा, कलोसङ्घा अदन्ति भेरवा।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मच्छचा किन्मकंसु पापं, येमे जने कलोलसाङ्घा अदन्ति॥

4

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4वीं.

"ये केचिमेस्मातिनो कादारिया, परिभास्का समन्ब्राह्मणां।

हिं शांति रोसेन्ति सुपापदम्मा, ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं।

तेमे जने कलोलसाङ्घा अदन्ति"ति॥

इतो परेसु पंघेसु चेव ब्याकानेसु च एसेव नयो। तत् समाति रत्तवन्ना। सोनाति सुनखा। सबला चाति कवरवन्ना च, सेत्काळपीतलोहितवन्ना चाति एवं पञ्चवन्नसुनखे दस्सेति। ते किर महाहत्थिपमना जलितअयपथवियं नेर्यिकसत्ते मिगे विय अनुबन्धित्वा पिण्डिकमंसेसु दंसित्वा तेसं तिगावुत्पमानं सरीरं जलितअयपथवियं सतात्वा महरावं रवन्तानं द्वीहि पुरिमपादेहि उरं अक्रामित्वा अट्ठिमेव सेसेत्वा मंसं लुञ्चित्वा खान्ति। गिज्झति महाभंडसकटप्पमना लोहटुंडा गिज्झा। एते तेसं कन्यादिसेहि तुंदेहि अट्ठिनी भिन्दित्वा अत्थिमिञ्जं खादन्ति। कालकोलसङ्घाटी लोहटुंडकाकगना। ते अतिविय भयानक दिट्ठे दित्थे खादन्ति। येमे जनेति ये इमे नेर्यिकसत्ते काकोलसाङ्घा खादन्ति, इमे नु मच्छदा किं नाम पापं अकंसुति पुच्छि। मच्छरिनोति अञ्जेसं अदेका। कादारियाति परे दंतेपि पतिसेधका तद्धमच्छरिनो। समब्राह्मणन्ति समितबाहितपापनं।

4 50.

"सजोतिभूता पथविं कामन्ति, तत्तेहि खंडेहि च पोथयन्ति।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकंसु पापं, येमे जना खंडहता सयन्ति॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4

"ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो, नृञ्च नारिञ्च अपापधम्मं।

हिं शांति रोसेन्ति सुपापदम्मा, ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं।

तेमे जना खंडहता स्यन्ति"ति॥

तथा सजोतिभूताति पज्जलितशरीरा। पथविन्ति पज्जलितं नवयोजनाभलं अयपथविं। कामन्तिति अकामन्ति। खंडेहि च पोथयन्ति निरायपाला अनुबंधित्वा तलप्पमनेहि जलितअयखखंडेहि जङ्घादिसु पहरित्वा सहतत्वा तेहेव खंडेहि पोथयन्ति, चुन्नविचुन्नं करोन्ति। सुपापधम्मिनोति अत्तना सुत्थु पापधम्मा हुत्वा। अपापधम्मन्ति सीलचारादिसंप नासिकं, निरापराधं वा।

4

"अंगारकासुं अपरे फुन्न्ति, नरा रुदंता परिदन्नगत्ता।"

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदा किं मकंसु पापं, येमे जना अङ्गारकासुं फुन्ति॥

466.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4

"ये केचि पुगाय धनसए, सखिं कारित्वा इणं जपयन्ति।

ते जपयित्वा जनतं जनिंद, ते लुद्दकम्मा पस्वेत्व पापं।

तेमे जना अङ्गारकासुं फुअन्ति"ति॥

तथा अंगारकासुंति सम्म मातलि, के नामेते अपरे वजं अपविसंतियो गावो विय सम्पूरेत्वा निरयपलेहि जलितअयगुळेहि पोथियमाना अंगारकासुं पतन्ति। तत्र च नेसं याव कतिप्पमना निमुग्गानं महतिहि अयपच्छिहि आद्य उपरीअंगरे ओकिरन्ति, अथ ने अंगारे सम्पतिचितुं असक्राकोन्टा रोदंता दन्नगता फुन्ति विधुन्ति, कम्मबलेन वा अट्टनो सीसे अङ्गारे फुन्ति ओकिरान्तिति अथो। पुगाय धनस्सति ओकासे सति दानं वा दशसम, पूजं वा पवत्तेस्साम, विहारं वा करिष्माति संकन्नित्वा योगितस्स पुगसन्तकस धनस्स। जपयन्तिति तं धनं यथारुचि खादित्वा गंजेट्ठकानं लञ्जजं दत्वा "असुकट्ठाने एत्तकं वयकरणं गतं, असुकट्ठाने अम्हेहि एत्तकं दी दर्शन"न्ति कोटसुखिं कारित्वा तं इणं जपयन्ति विनाशेन्ति।

4.

"सजोतिभूता जलिता पदित्ता, पडिसस्ति महति लोहकुंभी।"

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकांसु पापं, येमे जना अवंसिरा लोहकुंभिं पतन्ति॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4

"ये सीलवन्तं समानं ब्राह्मणं वा, हिंसान्ति रोसेन्ति सूपापधम्मा।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना अवंसिरा लोहकुंभिं पतन्ति"ति॥

तथा पदित्ताातिआदित्ता। महतीति पब्बतप्पमना कप्पेन संतितलोहरसेन सम्पुन्ना। अवंसिरति भयानकहि निरयपलेहि उद्धनपादे अधोसिरे कत्वा किपियमना तं लोहकुंभिं पतन्ति। सीलवन्तन्ति सीलआचारगुणसंप नासिकं।

चार सौ

"लुञ्चन्ति गीवं अथ वेथयित्वा, अन्होधोदकस्मिं पकिलेदयित्वा।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकंसु पापं, येमे जना लुत्तसिरा सयन्ति॥

46.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

400

"ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो, पक्खी गहेत्वान विहेथयन्ति ते।

विहेथयित्वा सकुणं जनिंद, ते लुद्दकम्मा पस्वेत्व पापं।

तेमे जना लुत्तसिरा सय"न्ति॥

तत्थ लुञ्चन्तिति उप्पातेन्ति। अथ वेथयित्वति जलितलोहयोत्तेहि अधोमुखं वेथयित्वा। उंधोदकस्मिन्ति कप्पेन सन्थितलोहौदकस्मिं। पाकिलेदयित्वति तेमेत्वा खिपित्वा। इदं वुत्तं होति - सम्म मतलि, येसं इमे निरयपाला जलितलोहयोतेहि गीवं वेथेत्वा तिगावुतप्पमनं शरीरं ओनामेत्वा तं गीवं संपरिवत्कं लुञ्चित्वा जलितअयदन्देही आद्य एकस्मिं जलितलोहरसे पक्खिपित्वा तुत्थहत्था होन्ति, तय च गिवे लुञ्चित्वा पुन सीसेन सद्धिं गीवा उप्पजदजत्येव। किं नामेते कम्मं करिंसु? एते हि मे दिस्वाभयं उप्पजदजतिति। पक्खी गहेत्वान् विहेथयन्ति महाराज, ये जीवलोकस्मिं सकुने गहेत्वा पक्खे लुञ्चित्वा गीवं वेथेत्वा सजीवखयं पपेत्वा भोजन्ति वा वि त्रैकिन्ति वा, ते इमे लुत्तसिरा सयन्तिति।

450.

"पहुतोतोया अनिगाधकोला, नदी अयं सन्दति सुप्पतिथा।"

घम्माभित्ता मनुजा पिवन्ति, पीतञ्च तेसं भुस होति पाणि॥

4.

"भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकंसु पापं, पीतंडच तेसं भुस होति पानी॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4.

"ये शुद्धधनं पलासेन मिस्सं, असुद्धकम्मा कयिनो ददन्ति।

घम्माभित्तन पिपासितानं, पितञ्च तेसं भुस होति पानी"ति॥

तत्थ अनिगाधकोलति अगमभिर्तीरा। सुप्पतिथाति शोभनेहि तिथेहि उपेता। भुसासति विहिभुसं संपजजति। पानीति पानीयं। तस्मिं किर पदेसे पहुत्सलिला रमणीय नदी सन्दति, नेरायिक्ससत्ता अग्गिसन्तापेन तत्ता पिपासं संधारेतुं अस त्राकोन्टा बाहा पग्गयः जललोहपथविं मद्दन्ता तं नादिं ओतरन्ति, तङ्खन्नदनेव तीरा पज्जलन्ति, पानीयं भुसपलासभावं अपज्जित्वा पज्जल्ति। ते पिपासं संधारेतुं असत्रकोन्ता तं जलितं भुस्पलासं खादन्ति। तं तेसं सकल शरीरेरं झपेत्वा अधोभागेन निक्खमति। ते तं दुक्खं अधिवासेतुं असत्रकोन्ता बाहा पग्गयः कन्दन्ति। सुद्धधाञ्जन्ति वीहिआदिसत्तविधं परिशुद्धधनं। पलासेन मिस्संति पलासेन वा भुसेन वा वालुकामट्टिकादिहि वा मिस्सकं कत्वा। असुद्धकम्माति किलिट्ठकायवचीमनोकम्मा। कायिनोति "शुद्धधन्नं दशमी"ति कायिकस्स हत्थतो मूलं गहेत्वा तथारूपं अशुद्धधन्न ददन्ति।

450.

"उसुहि सत्तीहि च तोमरेहि, दुभयानि पस्सानि तुदन्ति कन्दतं।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकंसु पापं, येमे जना सत्तिहता सयन्ति॥

46.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

477.

"ये जीवलोकस्मिं असाधुकम्मिनो, आदि सत्यनामदाय करोन्ति जीविकं।

धन्नं धनं रजतं जातरूपं, अजेळकञ्चापि पसुं महिंसं।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना सत्तिहता सयन्ति"ति॥

तत् दुभयनिति उभयानि। तुदन्ति विज्जन्ति। कन्दतन्ति कन्दन्तानं। फ़रुसा निरयपाला अरञ्जे लुड्डा मिगं विय सम्पुरेत्वा उसुअधिहि नानावुधेहि द्वे पस्सानि तुदन्ति, शरीरं चिद्दवछिद्दं पुराणपन्नं विय खायति। आदि संज्ञामादायतिपरसंतकं सविञ्जानकाविञ्जानकं सन्धिच्छेदादिहि चेव वञ्चनाय च गहेत्वा जीविकं कप्पेन्ति।

4.

"गिवय बधा किस्स इमे पुनेके, अञ्जने विकंता बिलकता सयन्ति।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदाचा किमकंसु पापं, येमे जना बिल्कटा सयन्ति॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4.

"ओरभिका सुकरिका च मच्छिका, पसुं महिंसदच अजेळकञ्च।

हन्त्वान सुनेसु पसारयिन्सु, ते लुद्दकम्मा पस्वेत्व पापं।

तेमे जना बिलकता सायन्ति"ति॥

तत् गीवाय बद्दति महान्तेहि जलितलोहयोतेहि गीवाय बंधित्वा आकन्नित्वा अयपथवियं सीतत्व नानावुधेहि कोट्टियमाने दिस्वा पुच्छि। अञ्जे विकंताति अञ्जे पण खंडखंडिकं छिन्नना। बिल्कति जलितेसु अयफलकेसु ओकेटत्वा मनसं विय पोथनिया कोट्टत्वा पुंजक्ता हुत्वा सयन्ति। मच्छिकाति मच्छघातका। पसुन्ति गाविं। सुनेसु पसारयिनसुति मनसं विकिनित्वा जीविककप्पनथं सुनापनेसु योगेसूं।

4

"रहदो अयं मुत्तकरिस्पुरो, दुग्गन्धरूपो असुचि पूति वति।

स्वयंपरेता मनुजा अदन्ति, भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा।

पुच्छमि तं मातलि देवसारथि, इमे नु मच्छ किमकांसु पापं।

येमे जना मुत्तकरिसभक्खा॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासि जानतो॥

4.

"ये केचिमे कारणिका विरोस्का, परेसं हिंसाय सदा निवित्था।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, मित्तद्दुनो मळहम्दन्ति बाला"ति।

तत्थ खयअपरेता मनुजा अदन्तिति एते नेर्यिका सत्ता चटकेन फुत्था खुदं सहितुं असट्रैकोन्टा पक्कुथितं धूमयन्तं पज्जलन्तं कप्पेन संथितं पुराणमीळहं पिण्डं पिण्डं कत्वा अदन्ति खादन्ति। कारणकारक। विरोसकाति मित्तसुहज्जनमपि विहेथका। मित्तद्दुनोति ये तेस्ञ्जनेव गेहे खादित्वा भुञ्जित्वा पञ्चत्तसने निसीदित्वा सयित्वा पुन मासखापणं नाम अहारापेन्ति, लञ्जं गहन्ति, ते मित्तदुस्का बाला एवरूपं मिळहं खादन्ति, महारति।

4 सप्ताह.

"रहदो अयं लोहितपुब्बपूरो, दुग्गन्घरूपो असुचि पूति वति।

घम्माभित्ता मनुजा पिवन्ति, भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा।

पुच्छमि तं मातलि देवसारथि, इमे नु मच्छ किमकांसु पापं।

येमे जना लोहितपुब्बक्खा॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

466

"ये मातरं वा पितरं वा जीवलोके, पारजिका अरहन्ते हनन्ति।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना लोहितपुब्बभक्खा"ति॥

तत्थ घम्माभितत्तति सन्तापेन पीळिता। पारजिकाति पराजय जराजिणे मातापितरो घटेत्वा गिहिभावयेव पराजिकं पतन। अरहंतेति पूजाविसस्स अनुच्छविके। हनन्तीति दुकराकारके मातापितरो मारेन्ति। अपिच "अरहन्ते"ति पदेन बुद्धसावकेपि सङ्गन्हाति।

अप्परसमिम्पि उस्सदनिरये निरयपला नेरायिकानं तलप्पमनेन जलितअयबळिसेन जिव्हं विज्जित्वा आक्कनित्वा ते सत्ते जलितययपथवियं सत्त्वा उषभचम्मं विय पत्थरित्वा सङकुसतेन हनन्ति। ते थले हितमच्चा वि फंदन्ति, तंदच दुक्खं सहितुं असक्कोकोंता रोदंता परिदेवन्ता मुखेन खेलं मुञ्चन्ति। तस्मिन राजा मतलिना दाससिते आह -

4.

"जिव्ह च पस्स बळिसेन विद्धं, विहतं यथा सङकुसतेन चम्मं।

फंदन्ति मचाव थलम्हि खित्ता, मुञ्चन्ति खेलं रुदमाना किमेते॥

4.

"भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मच्छचा किमकांसु पापं, येमे जना वङ्कघस्ता सयन्ति"ति॥

4 सप्ताह

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4

"ये केचि सन्धानगता मनुषा, अघेन अघं कायं हापयन्ति।

कूटेन कूटं धनलोभेतु, च प्रयोगं यथा वारिचरं वधाय॥

4

"न हि कूटकारिस्स भवन्ति ताना, सकेहि कम्मेहि पुरखत्स्स।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना वङ्कघस्ता सयन्ति"ति॥

तत् किमेतेति किंकराना एते। वङ्कघस्ताति गिलित्बळिसा। सन्धानगताति सन्धानं मरियादं गता, अघपनकट्ठथ थैनेति अथो। अग्घेन अघ्ति तं तं अघघं लन्दजं गहेत्वा हत्थीअस्सादिनं वा जातरूपराजतादिनं वा तेसं तेसं सविञ्चनकाविञ्चन्दनाकानं अघघं हापेन्ति। कयन्ति तं हापेन्ता कायिकानं कयं हापेन्ति, सते दातब्बे पन्नसं दापेन्ति, इतरं तेहि सद्धिं विभजित्वा गहन्ति। कूटेन कूटन्ति तुलाकूटादिसु तं तं कूटनं। धनलोभेतुति धनलोबेन एतं कुटकम्मं करोन्ति। च संज्ञां यथा वारिचरं वधायति तं पन कम्मं करोन्तपि मधुरवाचय तथा कतभावं पतिच्छ संज्ञां कत्वा यथा वारिचरं मच्छं वधाय उपगच्छनता बसीसं अमीसेन पतिच्छ संज्ञां कत्वा तं वधेन्ति, एवं पतिच्छ संज्ञां कत्वा तं कम्मं करोन्ति। न हि कूटकारिस्सति पतिच्छ सान्निध्यं मम कमं, न तं कोचि जानाति मञ्जमानस्स हि कूटकारिस्स तना नाम न होन्ति। सो तेहि कम्मेहि पुरखतो पतित्थं न लभाति।

4

"नारी इमा संपरिभि संज्ञागत्ता, पग्गयः कन्दन्ति भुजे दुजच्चा।"

सम्मक्खिता लोहितपुब्बलित्ता, गावो यथा प्रभावणे विकास।

ता भूमिभागस्मिं सदा निखाता, खंधातिवतन्ति सजोतिभूता॥

4.

"भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमा नु नारीओमकांसु पापं, या भूमिभागस्मिं सदा निखाता।

खंडातीवत्तन्ति सजोतिभूता॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

44 वीडियो.

"कोलिथियायो इध जीवलोके, असुद्धकम्मा असतं आचारुं।

ता दित्तरूपा पति विप्पय, अञ्चं आचार्यं रतिखिद्दहेतु।

ता जीवलोकस्मिं रामपयित्वा, खंडातिवतन्ति सजोतिभूता"ति॥

तत् नारीति इथियो। सम्परिभि प्रयोगगत्ताति सुत्थु समन्ततो भि प्रयोग शरीरा। दुजच्चाति दुजदस्तका विरूपा जेगुच्चा। अस्रनेति गावघटत्थाने। विकंताति छी संज्ञासीसा गावो विय पुब्बलोहितलित्ता हुत्वा। सदा निखताति निचदचं जलितयपथवियं कटिमत्तं पवेसेत्वा निखनित्वा थपिता विय थिता। खण्डातिवतत्तन्तीति सम्म मतलि, ता नारियो एते पब्बतखन्धा अति रकमन्ति। तासं किर एवं कटिप्पमनं पविसीत्वा थितकाले पुरथिमय दिसाय जलितअयपब्बतो समुत्थित्वा असनि विय विरवंतो आगन्त्वा शरीरं संहककरणि विय पिसंतो गच्छति। तस्मिन अतिवत्तित्वा पछिमपस्से थिते पुन: च तासं शरीरं पातु भवति। ता दुक्खं अधिवासेतुं असत्रकोन्तियो बाहा पग्गयः कन्दन्ति। सेसादिसासु वुट्ठिटेसु जलितपब्बतेसुपि एसेव नयो। द्वे पब्बता समुत्थाय उच्छुघटिकं विय पेन्ति, लोहितं पक्कुथितं सन्दति। कदाचि तैयो पब्बता समुत्थाय पेन्ति। कदाचि चत्तारो पब्बता समुत्थाय तासं शरीरं पेन्ति। तेनाः "खण्डातिवतन्ति"ति।

कोलिथियायोति कुले पतिट्ठिता कुलधीत्रो। असतं आचारुन्ति असञ्जन्तकम्मं करिन्सु। दित्तरूपाति सत्रूपा धुत्तजातिका हुत्वा। पति विप्पयति अत्तनो पतिं पजहित्वा। अचरुन्ति अगमंसु। रतिखिद्दहेतुति कामरतिहेतु चेव खिद्दहेतु च। रामपयित्वति परपुरिसेहि सद्धिं अत्तनो चित्तं रामपयित्वा इध उपपन्न। अथ तासं शरीरं इमे खंडातिवतन्ति सजोतिभूति।

4

"पदे गहेत्वा किस्स इमे पुनेके, अवंसिरा नरके पतयन्ति।

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मच्छचा किमकंसु पापं, येमे जना अवंसिरा नरके पतयन्ति॥

4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

4.

"ये जीवलोकस्मिं असाधुकम्मिनो, परस्स दाराणि अतिचक्रमन्ति।

ते तदिसा उत्तमभंडथेना, तेमे जना अवंसिरा नरके पतयन्ति॥

4.

"ते वस्सपूगानि बहुनि तथा, निर्येसु दुक्खं वेदनं वेदयन्ति।

न हि पापकारिस्स भवन्ति ताना, सकेहि कम्मेहि पुरखतस्स।

ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं, तेमे जना अवंसिरा नरके पतयन्ति"ति॥

तत् नरकेति जलितङ्गारपुन्ने महावते। ते किर वजं अपविसंतियो गावो विय निरयपालेहि नानावुधानि गहेत्वा विज्जियमाना पोथियमाना यदा तं हेलं उपगच्छन्ति, अथ ते निरयपाला उद्धनपादे कत्वा तथा पतयन्ति खिपन्ति। एवं ते पाटियमाने दिस्वा पुच्छन्तो एवमः। उत्तमाभण्डेथेनति मनुस्सेहि पियायित्स्स् वरभण्डस्स थेनका।

एवेंदच पन वत्वा मतलिसङगाहको तं निरयं अंतधापेत्वा रथं पुतो पेसेत्वा मिच्चादिट्ठिकानं पच्चनत्थानं निरयं दस्सेसि। तेन पुत्थो चस्स वियाकासि।

.

"उच्चाचावचामे विविध उपात्रकमा, निरयेसु दिसंति सुघोररूपा।"

भयंहि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।

इमे नु मचदा किमकांसु पापं, येमे जना अदमत्ता दुक्खा तिब्बा।

कटुका वेदना वेदयन्ति॥

50.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पापकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

52.

"ये जीवलोकस्मिं सुपापदिट्ठिनो, विस्सास्कम्मानि करोन्ति मोहा।

पञ्च दिट्ठिसु समादपेन्ति, ते पापदिट्ठिं पस्वेत्व पापं।

तेमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा, खर कटुका वेदना वेदयन्ति"ति॥

तत् उच्चचावचामेति उच्छचा अवचा इमे, कुद्दका च महंत चाति अथो। उपखंडकमति कारणप्पयोगा। सुपापदिट्ठिनोति "नत्थि दि प्रयोग"न्तिआदिकाय दसवत्थुकाय मिचादिट्ठिया सुत्थु पापदिट्ठिनो। विस्सासकम्मानिति तय दिट्ठिया विस्सासेन त संज्ञासिता हुत्वा नानाविधानि पापकम्मानि करोन्ति। तेमेति ते इमे जना एवरूपं दुक्खं अनुभवन्ति।

इति राञ्चो मिच्छदिट्ठिकानं पच्च्चन्निरयं अचिक्खि। देवलोकेपि देवगण रञ्चो आगमनमग्गं ओलोक्यमाना सुधम्मयं देवसभयं निसिदिनसुयेव। सतारकोपि "किं नु खो, मातलि, चिरायति"ति उपधारेन्तो तं कारणं ञत्वा "मातलि, अत्तनो दूतविसेसं दस्सेतुं 'महाराज, असुककम्मं कत्वा असुकनिरये नाम पच्चन्ति'ति निराये दस्सेन्तो विचारति, निमिरनदनो पन अप्पमेव आयु खियेथ, निर्यादस्सोणं नास्स परियन्तं गच्छेया"ति एकं महजवं देवपुत्तं पेसेसि "त्वं 'सीघं राजानं गहेत्वा आगच्छतू'ति मलिस्स वदेही"ति। सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा जवेन गन्त्वा अरोचेसि। मतलि, तस्स वचनं सुत्वा "न सक्रोका चिरायितु"न्ति रञ्जनो एकपहारेणेव चतुसु दिसासु बहु निरये दस्सेत्वा गातः -

500.

"विदितानि ते महाराज, आवासं पापकम्मिनं।

ठानानि लुद्दकम्मानं, दुसिलानञ्च या गति।

उयाहि दानि कांतिसि, देवराजस्स शांतिके"ति॥

तस्सत्थो - महाराज, इमं पापकम्मिनं सत्यानं आवासं दिस्वा लुद्दकम्मनंदच थानानि तया विदितानि। दुस्सिलानञ्च या गति निब्बति, सापि ते विदिता। इदानि देवराजस्स शांतिके दिब्बसंपत्तिं दशसनथं उयाहि गच्छहि, महाराजाति।

निरयकन्दं निश्चितं।

सग्गकण्डं

एवञ्च पन वत्वा मातलि देवलोकाभिमुखं रथं पेसेसि। राजलोक देवकं गच्छन्तो द्वादसयोजनिकं मणिमायं पञ्चत्तूपिकं सब्बाळङ्कारपतिमण्डितं उयानपोखरणिसम्प दर्शनं कप्परुखपरिवुतं बिरण्य देवधीताय आकाशत्थकविमानं दिस्वा, तंदच देवधीतरं अन्तोकूटागरे स्यनपिट्ठे निसि दर्शनं अच्छरासहस्सपरिवुतं मनसिहपञ्जरं विवरित्वा ओलोकेन्तिं दिस्वा मतलिं पुच्छन्तो गातः। इट्रोपिस बयाकासी।

5

"पञ्चत्तूपं दिस्स्तिदं विमानं, मंगलापिळंधा सयांस्स माज्झे।"

तत्थच्छति नारी महानुभावा, उच्छदावचं इद्धि विकुब्बमाना॥

पांच-पांच.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं नारी किमकासि साधुं, या मोदति सग्गपत्ता विमानते॥

5

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

57.

"यदि ते सुता बिराणी जीवलोके, आमायदासी अहु ब्राह्मणस्स।

स पत्तकालं अतिथिं विदित्वा, माताव पुत्तं सकिमाभिनन्दि।

संयमा संविभागा च, सा विमानस्मि मोदति"ति॥

तत्थ पञ्चत्तुपन्ति पञ्चहि कुटागारेहि सम सत्यागत्। मंगलपिळन्धति मंगलदिहि सब्बाभरणेहि पतिमण्डितातति अथो। तत्थच्छतीति तस्मिं विमान्ते अच्छति। उच्छदावचं इद्धि विकुब्बमानति नानप्पकारं देविद्धिं दशस्यामना। दिसवति एतं दिशव थितं मन वित्ति विन्दति पाटिलभति, वित्तसन्तको विय होमि तुत्थिया अतिभूततति अथो। आमायदासीति गेहदसिया कुच्छिमहि जतदासि। आहु ब्राह्मणस्सति सा किर कस्सपदसबलस काले एकस्स ब्राह्मणस्स दासी अहोसि। स पत्तकालन्ति तेन ब्राह्मणेन अट्ठ सालकभट्टानि संघस्स परिच्चत्तानि अहेसुं। सो गेहं गन्त्वा "स्वे पत्थय एकेकस भिक्खुस एकेकं कहापंघनकं कत्वा अट्ठ सलाकभट्टानि सम्पादेयसी"ति ब्राह्मणिं अह। सा" सामि, भिक्खु नाम धुत्तो, नहं सक्खिसामि"ति पतिक्खिपि। धीतरोपिस्स पतिक्खिपिंसु। सो दासिं " सखिस्ससि अम्मा"ति आह। सा "सक्खिसामि अयय"ति सम्पतिच्छित्वा सप्तचचं यागुखजजकभत्तादिनि सम्पादेत्वा सलकं लभित्वा आगतं पत्तकालं अतिथिं विदित्वा हरितगोमायुपलित्ते कतपुप्फुपहारे सुपञ्चत्तसने निसीदापेट्वा यथा नाम विप्पवासा आगतं पुत्तं माता साकिं अभिनन्दति, तथा निच्चदच्चलं अभिनन्दति, सचित्रचं चं परिविसति, अत्तनो सन्तकम्पि किञ्चदचि देति। संयमा संविभाग चाति सा सीलवती अहोसि चागवती च, तस्मा तेन सीलेन चेव चागेन च इमस्मिं एरतेते मोदति। अथ वा संयमति इन्द्रियदमना।

एवेंदच पन वत्वा मतलि पुरतो रथं पेसेत्वा सोणदि नारायणदेवपुत्तस्स सत्त कनकविमाननि दस्सेसि। सो तानि च तस्स च सिरिसमपत्तिं दिस्वा तेन कटकमं पुच्छि। इट्रोपिस बयाकासी।

5

" दद्दल्लमना आभेन्ति, विमान सत्त निम्मिता।

तत्थ यक्खो महिद्धिको, सब्बाभरणभूसितो।

समन्ता अनुप्रियति, नारीगणपुरोखतो॥

50वीं.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं मचछो किमकासि साधुं, यो मोदति सग्गपत्तो विमानते॥

51.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

511.

"सोनदि नासिको गहपति, एस दानपति आहु।

एस पब्बजितुद्दिस्स, विहारे सत्त कार्यि॥

511.

"सत्रकाचचं ते उपत्थसि, भिक्खवो तत्थ वसिके।"

अच्छादन्नच भत्तनदच, सेनासनं पदीपियं।

अदासि उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

5.25.

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

544.

" उपोस्थं उपवसी, सदा सीलेसु संवुतो।

संयमा संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति॥

तत्थ दद्दललमनाति जलमाना। एभेन्तिति युवासूर्यो वय ओभासन्ति। तथाति तेसु पतिपतिया थितेसु सत्तसु विमानेसु। यखोति एको देवपुत्तो। सोणदि साइनोति महाराज, अयं पुब्बे कस्सपादसबलस काले कासिरथे अञ्जन्तरस्मिं निगमे सोणदि साइनो नाम गहपति दानपति अहोसि। सो पब्बजिते उद्दिस् सत्त विहारकुटियो कैरेत्वा तथा वासिके भिक्खु चतुहि पच्चचयेहि सत्क्रमकच्छं उपत्थसि, उपोस्थानच उपवसि, निचदचं सीलेसु च संवु अहोसि। सो ततो चित्वा इधुपप संज्ञाओ मोदतीति अथो। एत्थ च पतिहारियपक्खन्ति इदं पन अट्ठमीउपोस्थस्स पच्च्चुग्गमनानुगमनवसेन सत्तमिनवमियो, चातुद्दसिप नयनरसीनं पच्चुग्गमनुगमनवसेन तेरसीपतिपदे च संधाय वुत्तं।

एवं सोणदि नासासस कतकम्मं कथेत्वा पुरतो रथं पेसेट्वा फलिकविमानं दस्सेसि। तं उब्बेधतो पञ्चवीसतियोजनं अनेकसतेहि सत्तरतनमयथंभेहि सम सत्यागतं, अनेकसत्गुणागारपतिमण्डितं, किङ्किनिकजालापरिखित्तं, समुस्सितसुवन्नरजतमयधजं, नानापुफविचित्तौयन्नवनविभूसितं, रमण्यपोखरानिज्म सोयागतं, नच्चदचगीतवादितादिसु चेकाहि अच्छरहि संपरिकिन्नं। तं दिस्वा राजा तासं अचरनं कतकम्मं पुच्छि, इट्रोपिस ब्याकसि।

51.

"पभासति मिदं ब्यम्हं, फलिकासु सुनिम्मितं।

नारीवर्गाकिन्नं, कूटागर्वरोचितं।

उपेतं अ नासापनेहि, नचदचगीतेहि छुभयं॥

5

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

इमे नु मच्चचा किमकंसु साधुं, या मोदरे सग्गपत्ता विमानते॥

51.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

511.

"या काचि नारियो इध जीवलोके, सीलवंतियो उपासिका।

दान राता निच्च्वं पस संज्ञाचित्ता, सच्चेचे थिता उपोस्थे अप्पमत्ता।

संयमा संविभागा च, ता विमानस्मि मोदरे"ति॥

तथा बम्भ्न्ति विमानं, पासदोति वुत्तं होति। फलिकासुति फलिकाभित्तसु। नारीवर्गाकिन्ति अन्यरिगणेहि अकिन्नं। कूटागर्वरोचितन्ति वरकूटागरेहि ओचितं समोचितं, वन्नितन्ति अथो। उभयन्ति उभयेहि। "या काची"ति इदं किञ्चादपि अनोमेत्वा वुत्तं, ता पन कस्पबुद्धसासने बारांसियं उपासिका हुत्वा गणबंधनेन एतानि वुत्तप्पकाराणि पुंजनानि कत्वा तं दिब्बसम्पत्तिं रूपति वेदितब्बा।

अथस्स सो पुरतो रथं पेसेत्वा एकं रमणियं मणिविमानं दस्सेसि। तं समे भूमिभागे पतिट्ठितं उब्बेधसम्प संज्ञां मणिपब्बतो विय ओभास्मानं तिट्ठति, दिब्बगीतवादितनि नासादितं बहुहि देवपुत्तेहि संपरिकिनं। तं दिस्वा राजा तेसं देवपुतानां कतकम्मं पुच्छि, इतरोपिस ब्याकसि।

511.

"पभासति मिदं ब्यम्हं, वेळुरियासु निम्मितं।

उपेतं भूमिभागेहि, विभत्तं भगसो मितं॥

520.

"आअम्बरा मुदिंगा च, नच्चगीता सुवादिता।"

डिब्बा सदा निच्छरन्ति, सवनिया मनोरमा॥

520.

"नहं एवगतं जातु, एवसुरुचिरं संपूर्ण।

सद्दं समाभिजानामि, दिट्ठं वा यदि वा सुतं॥

522.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

इमे नू मच्छचा किमकंसु साधुं, ये मोदरे सग्गपत्ता विमानते॥

5.25.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5.

"ये केचि मचदाचा इध जीवलोके, सीलवंता उपासका।

आरामे उद्पाने च, पापा सङकमनानि च।

सचित्रचं अरहंते सीतिभूते, सचित्रचं अरहंते पतिपदायुं॥

522.

"चिवरं पिण्डपातञ्च, पच्चचयं सयनासनं।

अदंसु उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

5 2000.

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

5

" उपोस्थं उपवसुं, सदा सीलेसु संवुता।

संयमा संविभागा च, ते विमानस्मि मोदरे"ति॥

तत्थ वेळुरियासुति वेळुरियाभितिसु। भूमिभागेहिति रमणीयेहि भूमिभागेहि उपेतं। आम्बरा मुडिङ्गा चाति एते द्वे एत्थ वज्जन्ति। नचदचगीता सुवादितााति नानप्पकाराणि नचचानि चैव गीतानि च अपरेसम्पि तुरियनं सुवादितानि चेत्थ पवत्तन्ति। एवंगतन्ति एवं मनोरमभावं गतं। "ये केचि"ति इदम्पि कामं अनोमेत्वा वुत्तं, ते पन कस्पबुद्धकाले बरणसिवासिनों उपासका हुत्वा गणबंधनेन एतानि पुंजनानि कत्वा तं सागरं पत्रति वेदितब्बू। तत् पतिपदायुन्ति पतिपदायिन्सु, तेसं अदंसुति अथो। पचचयन्ति गिलानपच्चयं। अदंसूति एवं नानप्पकारकं दानं अदंसूति।

इतिस्स सो तेसं कतकम्मं अचिक्खित्वा पुरतो रथं पेसेट्वा अपरमपि फलिकविमानं दस्सेसि। तं अनेककूटागारपतिमण्डितं, नानाकुसुमसञ्च संज्ञादिब्बतरुणवनपतिमण्डितितरय, विविधविहंगमनि नारायणादित्य निम्मलसलिलय नादिया परिक्खित्तं, अचरगणपरिवुतस्सेकस पुञ्जनवतो निवासभूतं। तं दिस्वा राजा तस्स कतकम्मं पुच्चि, इट्रोपिस ब्याकासि।

5

"पभासति मिदं ब्यम्हं, फलिकासु सुनिम्मितं।

नारीवर्गाकिन्नं, कूटागर्वरोचितं॥

5

" उपेतं अ अन्नानानेहि, नचदचगीतेहि दुभयं।

नन्दजो चानुपरियति, नानापुप्फदुमायुता॥

530.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं मचछो किंमकासि साधुं, यो मोदति सग्गपत्तो विमानते॥

5 सप्ताह

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5वीं शताब्दी.

"मिथिलायं गहपति, एस दानपति आहु।

आरामे उद्पाने च, पापा सङकमनानि च।

सचित्रचं अरहंते सीतिभूते, सचित्रचं पतिपादयि॥

5.

"चिवरं पिण्डपातञ्च, पच्चचयं सयनासनं।

अदासि उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

5

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

5.

" उपोस्थं उपवसी, सदा सीलेसु संवुतो।

संयमा संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति॥

तत्थ नज्जोति वचनविपलसो, एका नदी तं विमानं परिक्खिपित्वा गतति अथो। नानापुप्फदुमायुताति सा नदी नानापुप्फेहि दुमेहि आयुता। मिथिलायन्ति एस महाराज, कस्पबुद्धकाले मिथिलानगरे एको गहपति दानपति अहोसि। सो एतानि आरामोपनादिनि पुञ्जानि कत्वा इमं असंयमं पत्तोति।

एवमस्स तेन कतकम्मं अचिक्खित्वा पुर्तो रथं पेसेत्वा अपरमपि फलिकविमानं दस्सेसि। तं पुरीमविमानतो अतिरेकाय नानापुप्फफलसञ्च नारायनय युवावनघटाय सम प्रयोगगतं। तं दिस्वा राजा तये गद्दाय सम नासागतस्स देवपुत्तस्स कतकम्मं पुच्चि, इतरोपिस्स ब्याकासि।

5

"पभासति मिदं ब्यम्हं, फलिकासु सुनिम्मितं।

नारीवर्गाकिन्नं, कूटागर्वरोचितं॥

5

" उपेतं अ अन्नानानेहि, नचदचगीतेहि दुभयं।

नज्दजो चानुपरियति, नानापुप्फदुमायुता॥

5वीं.

"राजायतना कपित्था च, अम्बा साला च जम्बुयो।

तिन्दुका च पियाला च, दुमा नीचफला बहु॥

5.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं मचछो किमकासि साधुं, यो मोदति सग्गपत्तो विमानते॥

5-4.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5

"मिथिलायं गहपति, एस दानपति आहु।

आरामे उद्पाने च, पापा सङ्कमनानि च।

सचित्रचं अरहंते सीतिभूते, सचित्रचं पतिपादयि॥

5

"चिवरं पिण्डपातञ्च, पच्चचयं सयनासनं।

अदासि उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

5

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

5.

" उपोस्थं उपवसी, सदा सीलेसु संवुतो।

संयमा संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति॥

तथा मिथिलायन्ति एस, महाराज, कस्सपबुद्धकाले विदेहेरत्थे मिथिलनगरे एको गहपति दानपति अहोसि। सो एतानि पुञ्जानि कत्वा इमं अधिकारं पत्तोति।

एवमस्स तेन कतकम्मं अचिक्खित्वा पुरतो रथं पेसेट्वा पुरिम्सदिसमेव अपरमपि वेळुरियाविमानं दस्सेत्वा तत्थ देवतां अनुभवन्तसस देवपुत्तस्स कतकमं पुत्थो अचिखि।

544.

"पभासति मिदं ब्यम्हं, वेळुरियासु निम्मितं।

उपेतं भूमिभागेहि, विभत्तं भगसो मितं॥

5

"आअम्बरा मुदिंगा च, नच्चगीता सुवादिता।"

दिब्या सदा निच्छरन्ति, सवनिया मनोरमा॥

5.

"नहं एवगतं जातु, एवसुरुचिरं संपूर्ण।

सद्दं समाभिजानामि, दिट्ठं वा यदि वा सुतं॥

5

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं मचछो किमकासि साधुं, यो मोदति सग्गपत्तो विमानते॥

5

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5

"बारांसियं गहपति, एस दानपति आहु।

आरामे उद्पाने च, पापा सङकमनानि च।

सचित्रचं अरहंते सीतिभूते, सचित्रचं पतिपादयि॥

5.55.

"चिवरं पिण्डपातञ्च, पच्चचयं सयनासनं।

अदासि उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

5

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

5

" उपोस्थं उपवसी, सदा सीलेसु संवुतो।

संयमा संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति॥

अथस्स पुरतो रथं पेसेत्वा बालसूरियस नायगिभं कनकविमानं दस्सेत्वा तथा निवासिनो देवपुत्तसस्स् महत्वं पुत्थो अचिक्खि।

554.

"यथा उदयमादिच्चो, होति लोहितको महा।"

तथुपमं इदं बम्हं, जातरूपस्स निम्मितं॥

54.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

अय नुं मचछो किमकासि साधुं, यो मोदति सग्गपत्तो विमानते॥

5.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5

" सावथ्यं गहपति, एस दानपति आहु।

आरामे उद्पाने च, पापा सङकमनानि च।

सचित्रचं अरहंते सीतिभूते, सचित्रचं पतिपादयि॥

5.

"चिवरं पिण्डपातञ्च, पच्चचयं सयनासनं।

अदासि उजुभुतेसु, विप्पस नारायणेन चेतसा॥

559.

"चतुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।

पतिहरियापकञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥

5- ...

" उपोस्थं उपवसी, सदा सीलेसु संवुतो।

संयमा संविभागा च, सो विमानस्मि मोदति॥

तत्थ उदयमादिच्छोति उग्गच्छन्तो आदिचच्छो। सावत्थिन्ति कस्सपबुद्धकाले सावथिंगरे एको गहपति दानपति अहोसि। सो एतानि पुञ्जानि कत्वा इमं अधिकारं पत्तोति।

एवं तेन इमेसं अट्ठ साइनं हवाईं हवाईं प्रसारितान् काले काले सको देवराजा "मातलि, अतिविय चिरायति"ति अपरमपि जवनदेवपुत्तं पेसेसि। सो वेगेन गन्त्वा अरोचेसि। सो तस्स वचनं सुत्वा "न सका इदानि चिरायितु"न्ति चतुसु दिसासु एकप्पाहारेणेव बहुनि इतानि दस्सेसि। रंजना च तथा परमात्मनं अनुभवन्तानं देवपुतानं कतकम्मं पुत्थो अचिक्खि।

5 सप्ताह.

" वेहायसामे बहुका, जातरूपस्स निम्मिता।"

दद्दलल्लमना आभेन्ति, विजजुवबभघनन्तरे॥

5

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

इमे नू मच्छचा किमकंसु साधुं, ये मोदरे सग्गपत्ता विमानते॥

5वीं शताब्दी.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5

"सद्धाय सुनिविट्ठाय, सद्धम्मे सुप्पवेदिते।

अकांसु सत्थु वचनं, सम्मासंबुद्धसासने।

तेसं एतानि थानानि, अर्थात त्वं राज पस्सी"ति॥

तत् वेहयसमेति वेहयसा इमे आकाशयेव संतिता। आकाशस्थकविमान इमेति वदति। विज्जुवब्भघ्नन्तरेति घनवल्हकन्तरे जलमाना विज्जु विय। सुनिविट्ठयाति मग्गेन् आगत्ता सुप्पतिट्ठिताय। इदं वुत्तं होति - महाराज, एते पूरे नियैनिके कस्पबुद्धसासने पब्बजित्वा परिसुद्धसिला समंधम्मं करोन्टा सोतापत्तिफलं सच्चिकत्व अरहत्तं निब्बेतुं असकोन्ता ततो चुता इमेसु कनकविमानेसु उप्प सयामा। एतेसं कस्सपबुद्धसावकानं तानि थानानि, अर्थात त्वं, महाराज, पस्सेति।

एवमस्स अकासत्थकविमाननानि दस्सेत्वा सस्कस सन्तिकं गणमथय उस्साहं करोन्तो अह -

5.

"विदितानि ते महाराज, आवासं पापकम्मिनं।

अथो कल्याणकम्मानं, थानानि विदितानि ते।

उयाहि दानि कांतिसि, देवराजस्स शांतिके"ति॥

तत्थ आवासन्ति महाराज, तय पथममेव नेरायिकानं आवासं दिस्वा पापकम्मानं थानानि विदितानि, इदानि पन अकासत्थ्कविमाननि पसंतेन अथोकम्मानं थानानि विदितानि, इदानि देवराजस्स संतिके श्रीं दत्थुं उयाहि गच्छहिती।

एवेंदच पन वत्वा पुरतो रथं पेसेत्वा सिनेरुं परिवारत्व थिते सत्त परिभाण्डपब्बते दस्सेसि। ते दिस्वा रंजना मैटलिस पुत्थभावं अविक्रोन्तो सत्था अह -

5.

" सहस्स्युत्तं हयवाहिं, दिब्ब्यानमधिट्ठितो।

ययमानो महाराजा, अद्दा सीदन्तरे नगे।

दिस्वानामन्त्यै सुतं, इमे के नाम पब्बता"ति॥

तत् हयवाहिन्ति हयेहि वाह्यमानं। दिब्बायानमधिट्ठितोति दिब्बायाणे थितो हुत्वा। अद्दति अद्दस। सीदन्तरेति सीदामहासमुद्दस्सन् अन्तरे। तस्मिं किर महासमुद्दे उदकं सुखुमं, मोरपञ्चमत्तमपि पखित्तं पतित्थतुं न सद्दकोति सीदतेव, तस्मा सो "सीदामहासमुद्दो"ति वुच्चदचति। तस्स अंतरे. नगेति पब्बते। के नामति के नाम नामेन इमे पब्बतति।

एवं निमिरञ्जा पुत्थो मातलि देवपुत्तो आह -

5.

"सुदस्सनो कर्विको, ईसाधरो युगन्धरो।

नेमिन्धरो विनतको, असस्कन्नो गिरी ब्रहा॥

56.

"एते सीदांत्रे नागा, अनुपुब्बसमुग्गता।"

महाराजानमावासा, अर्थात त्वं राज पस्सी"ति॥

तत्थ सुदस्सनोति अयं, महाराज, एतेसं सब्बाहिरो सुदस्सणो पब्बतो नाम, तदनन्तरे कर्विको नाम, सो सुदस्सन्तो उच्चचतरो। उभि साइनाजम्पि पन तेसं अंतरे एकोपि सीदन्तरमहासमुद्दो। कर्विकस्स अनंत्रे ईसधरो नाम, सो कर्विकतो उच्चचत्रो। तेसम्पि अन्तके एको

सीदन्तरामहासुद्दो। इशधरस्स अनंत्रे युगंधरो नाम, सो इशधरतो उच्चचत्रो। तेसम्पि अन्तके एको सीदन्तरामहासुद्दो। युगांधरस अनंत्रे नेमिन्धरो नाम, सो युगान्धरतो उच्चतरो। तेसम्पि अन्तके एको सीदन्तरामहासुद्दो। नेमिन्धरस अनंत्रे विनतको नाम, सो नेमिन्धरतो उच्चचत्रो। तेसम्पि अन्तके एको सीदन्तरामहासुद्दो। विनायकस्स अनंत्रे असस्कन्नो नाम, सो विनायकतो उच्चचत्रो। तेसम्पि अन्तके एको सीदन्तरामहासुद्दो। अनुपुब्बसमुग्गताति एते सीदन्तरामहासमुद्दे सत्त पब्बता अनुपतिपतिया समुग्गता सोपानसदिसा हुत्वा थिता। अर्थात ये त्वं, महाराज, इमे पब्बते पस्सासि, एते चतुन्नं महाराजानं आवासति।

एवमस्स चातुम्हारिकदेवलोकं दस्सेत्वा पुरतो रथं पेसेत्वा तावतिंसभवनस्स चित्तकोटोद्वारकोथकं परिवारेत्वा थिता इंदपतिमा दस्सेसि। तं दिस्वा राजा पुच्छि, इट्रोपिस्स ब्याकासि।

500

"अनेकरूपं रुचिरं, नानाचित्रं पकासति।

अकिन्नं इन्दसदिसेहि, ब्यघघेव सुखितं॥

5.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

इमं नु द्वारं किमभंजनमाहु, मनोरमं दिस्सति दूरतोव॥

5.

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5.

"चित्रकूटोऽति यं आहु, देवराजपवेसनं।

सुदास्सनस्स गिरिनो, द्वारञ्हेतं पकासति॥

5.

"अनेकरूपं रुचिरं, नानाचित्रं पकासति।

अकिन्नं इंदसदिसेहि, ब्यघघेव सुखितं।

पविसेतेन कांतिसि, अर्जन भूमिमक्रोकामा"ति॥

तथा अनेकरूपन्ति अनेकजातिकं। नानाचित्रन्ति नानारत्नचित्रं। पकासतीति किं नाम एतं पञ्चयति। अकिन्नन्ति सम्परिपुन्नं। बग्घेहेव सुखितन्ति यथा नाम बग्घेहि वा सीहेहि वा महावन्, एवं इन्दसदिसेहेव सुखितं। तस्नदच पन इंदपतिमानं अरखणथय ऑपितभावो एक्कनिपते कुलावकजातके (जा॰ 1..31) वुत्तनयेन घेटब्बो। किंमभंजन्माहुति किं प्रयोगं वदन्ति। पवेसनन्ति निक्कमनपवेसनथय निम्मितं। सुदस्संस्सति शोभनदस्संस्स सिनेरुगिरिनो। द्वारं हेतन्ति एतं सिनेरुमत्थके पतिट्ठित्स्स दसहस्सयोजनिकस्स देवनगरस्स द्वारं पकासति, द्वारकोट्ठको पञ्ञायति अथो। पविसेतेनाति एतेन द्वारेण देवनगरं पविस। जं भूमिम त्रिकमाति अरजं सुवन्न अरजत्मनिमयं नानापुप्फेहि समाकिन्नं दिब्बभूमिं दिब्बयानेन अलंकृत, महाराजाति।

एवञ्च पन वत्वा मतलि राजानं देवनगरं पवेसेसि। तेन वुट्टं -

550.

" सहस्स्युत्तं हयवाहिं, दिब्ब्यानमधिट्ठितो।

यायमानो महाराजा, अद्दा देवसभं इद"न्ति॥

सो दिब्बयने थितोव गच्छन्तो सुधम्मदेवसभं दिस्वा मतलिं पुच्छि, सोपिस्स अचिक्खि।

56.

"यथा सर्दे आकासे, नीलोभासो पदिस्स्ति।"

तथुपमं इदं ब्यम्हं, वेळुरियासु निम्मितं॥

577.

"वित्ती हि मं विन्दति सुत दिस्वा, पुच्छमि तं मातलि देवसारथि।"

इमं नु ब्यमहं किमभंजनमाहु, मनोरमं दिस्सति दूरतोव॥

500

"तस्स पुत्थो व्याकासि, मातलि देवसारथि।

विपाकं पुञ्जकम्मानं, जानं अक्खासिजानतो॥

5.

"'सुधम्मा' इति यं आहु, पपेसा दिस्सते सभा।

वेळुरियारुचिरा चित्रा, धारयन्ति सुनिम्मिता॥

5.

"अट्ठंसा सुकता थम्भा, सब्बे वेलुरियामाया।

यथा देवा तावतिंसा, सब्बे इन्दपुरोहिता॥

5

"अथं देवमनुस्सानं, चिन्तयंता समाचरे।

पविसेतेन राकांसि, देवानं मोहनन्ति॥

तत्थ इदन्ति निपातमत्तं, देवसभं अद्दसति अथो। पस्सेसाति पास एसा। वेळुरिया रुचिराति रुचिरवेळुरिया। चित्राति नानारत्नविचित्रा। धारयन्तिति इमं सभं एते अत्थत्सादिभेदा सुकता थम्भा धारयन्ति। इंदपुरोहिताति इंदं पुरोहितं पूर्णचारिकं कत्वा परिवारेत्व थिता देवमनुस्सानं अथं चिन्तयंता अच्छन्ति। पविसेतेनाति इमिना मग्गेन यथा देवा अञ्जनमञ्जं मंउरता अच्छन्ति, तं ठाणं देवानं मोहरं पविस।

देवापि खो तस्सागमनमग्गं ओलोकेंताव निसिदिंसु। ते "राजा आगतो"ति सुत्वा दिब्बगन्धवासपुप्फहत्था यव चित्तमग्गं गन्त्वा महासत्तं दिब्बगन्धमालादिहि पूजयन्ता सुधम्मदेवसभं अनायंसु। राजा रथा ओतारित्वा देवसभां पविसी। देवा अरासेन निमन्तयिन्सु। सत्कोपि आसनेन चेव कामेहि च निमन्तेसि। तमथं पकसेन्तो सत्था अह -

5.

"तं देवा पतिनन्दिंसु, दिस्वा राजानमगतं।

स्वागतं ते महाराज, अथो ते अदुरागतं।

निसिद दानि कांतिसि, देवराजस्स शांतिके॥

5वीं वर्षगांठ।

"सत्रकोपि पतिन्नदित्थ, वेदेहं मिथिलग्गहं।

निमन्तयित्थ कामेहि, आसनेन च वस्वो॥

5 प्रतिशत.

" साधु खोसि अनुप्पत्तो, आवासं वस्वत्तिनं।

वस देवेसु कांतिसि, सब्बकामसमिद्धिसु।

तावतिंसेसु देवेसु, भुञ्ज कामे अमानुसे"ति॥

तत्थ पतिनन्दिनसुति सम्पियियिन्सु, हत्थतुत्थैव हुत्वा सम्पतिचिंसु। सब्बकामसमिद्धिसुति सब्बेसं कामानं समिद्धियुत्तेसु।

एव स त्रैकेन दिब्बकामेहि चेव आसनेन च निमन्तितो राजा पतिक्खिपन्तो अह -

5वीं सदी.

"यथा याचितकं यानं, यथा याचितकं धनं।

एवं सम्पदमेवेतं, यं परतो दानपच्चया॥

5वीं शताब्दी.

"न इच्छामेतमिच्छामि, यं परतो दानपच्चया।

संयक्तानि पुञ्जानि, तं मे आवेनिकं धनं॥

5

"सोहं गन्त्वा मनुस्सेसु, काहामि कुसलं बहुम्।

दानेन समाचरियै, संयमेन दमेण च।

यं कत्वा सुखितो होति, न च पच्छनुत्प्पति"ति॥

तत् यं परतो दानपचचयति यं परतो तस्स परस्स दानपचचया तेन दीन सत्यं लब्भति, तं यचित्कसदिसंति हो, तस्मा नाहं एतं इच्छामि। सयंकतानीति अर्थात पन मया अत्तना कतानि पुंजनानि, तमेव मम परेहि एकांत आवेनिकं धनं अनुगमियधनं। समचरियायति तेहि द्वारेहि समचरियाय। संयमेनाति सीलरखणेन। दमेनाति इन्द्रियदमेन।

एवं महासत्तो देवानां मधुरसद्देन धम्मं देसेसि। धम्मं देसेनतोयेव मनुसस्गणनाय सत्त दयानि तत्वा देवगणं कोसेत्वा देवगणमझे थितोव मालिस्स गुणं कथेंन्तो अह -

5

"बहूपकारो नो भवं, मातलि देवसारथि।"

यो मे कल्याणकम्मानं, पापानं पतिदस्सी"ति॥

तत्थ यो कल्याण मेकम्मानं, पापानं पतिदस्थ्यति यो एस म्यहं कल्याणकम्मानं देवान्नदच थानानि पापकम्मानं नेरायिकानंदच पापानि थानानि दस्सेसीति अथो।

सग्गकांडं निश्चितं।

अथ राजा सचित्रकं अम्नतेत्वा "इच्छामहं, महाराज, मनुस्स्लोकं गन्तु"न्ति अह। सचित्रको "तेन हि, सम्म मतलि, निमिरजां तत्थेव मिथिलां नेही"ति अह। सो "साधु"ति सम्पतिच्छित्वा रथं उपत्थापसि। राजा देवगणेहि सद्धिं सम्मोदित्वा देवे निवत्तपेत्वा रथं अभिरुहि। मातलि रथं पेसेनतो पाचिनदिसाभागेन मिथिलां पापुनि। माजमो दिब्बरथं दिस्वा "राजा नो आगतो"ति पमुदितो अहोसि। मातलि मिथिलां पदखिनं कत्वा तस्मिनयेव सीहपञ्जरे महासत्तं ओटरेत्वा "गच्छामहं, महाराजा"ति आपुच्छित्वा सकत्थानमेव गतो। महाजनोपि राजानं परिवारेत्व "किदिसो, देव, देवलोको"ति पुच्छि। राजा देवतानदच सक्कस्स च देवाराञ्चो राजां वन्नेत्वा "तुम्हेपि दानादिनि पुञ्जनि करोथ, एवं तस्मिं देवलोके निब्बत्तिस्सथा"ति महाजनस्स धम्मं देसेसि।

सो अपरभागे कप्पकेन पलितस्स जातभावे अरोचिते पलितं सुवन्नसंदासेन उद्धरापेट्वा हत्थे ओकेतेत्वा कप्पकस गमवरं दत्वा पब्बजीतुकामो हुत्वा पुत्तस्स राजजं पतिचापेसि। तेन च " कस्मा, देव, पब्बजिससी"ति वुत्ते -

"उत्तमङ्गुरुहा म्यहं, इमे द वयोहरा।

पाहुभूता देवदूता, पब्बज्जासमयो मम"ति॥ —

गथं वत्वा पुरीमराजनो विय पब्बजित्वा तस्मिनयेव अम्बवने विहरन्तो चत्तारो ब्रह्मविहारे भवेत्वा ब्रह्मलोकोपगो अहोसि। तस्सेवं पब्बजितभावं अविक्रोन्तो सत्था ओसंगथमः -

5 प्रतिशत

"इदं वत्वा निमिराजा, वेदेहो मिथिलग्गहो।

पुथुयञ्चं यजित्वान, संयमं अज्झुपागमी"ति॥

तत्थ इदं वत्वति "उत्तमङगुरुहा मयह"न्ति इमं गथं वत्वा। पुथुयञ्चं यजित्वानाति महादानं दत्वा। संयमं अज्झुपागमिति सीलसंयमं उपगतो।

पुत्तो पनस्स काळराजनको नाम तं वसं उपचिंदि।

सत्था इमं धम्मदेसनं अहारित्वा "न, भिक्खवे, इदानेव, पुब्बेपि तथागतो महाभिनिखमनं निखंतोयेवा"ति वत्वा जातकं समोधनसि "तदा सत्को अनुरुद्धो अहोसि, मतलि आनंदो, चतुरासीति खत्तियसहस्सनि बुद्धपरिसा, निमिराजा पन अहमेवमाससम्बुद्धो अहोसि"न्ति।

निमिजातकवन्ना चतुत्था।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **द-खंडाला-जातक**
***स्रोत**: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----॥-542-॥----->>>> अगला

जातक क्रमांक 542
खंडाहाला जातक

"पुप्पवती में एक समय राज करता था," गुरु ने गिज्जकुट पर्वत पर रहते हुए देवदत्त के विषय में यह कथा सुनाई। इसका सार समुदाय में फूट डालने के पाप से संबंधित खंड में निहित है; इसे देवदत्त के आचरण का पूर्ण अध्ययन करके ही समझा जा सकता है, उनके संन्यासी बनने से लेकर राजा बिम्बिसार की हत्या तक। बिम्बिसार की हत्या करने के तुरंत बाद, देवदत्त राजा बिम्बिसार के पुत्र, राजा अजातशत्रु के पास गए और उनसे कहा, "हे राजा, आपकी इच्छा पूरी हो गई है, परन्तु मेरी अभी तक पूरी नहीं हुई है।" राजा ने उत्तर दिया, "तुम्हारी इच्छा क्या है?" "मैं दशबल (बुद्ध) की हत्या करवाना चाहता हूँ और फिर स्वयं बुद्ध बनना चाहता हूँ।" "अच्छा, तो हमें क्या करना चाहिए?" "हमें कुछ धनुर्धारियों को एकत्रित करना होगा।" राजा मान गया और उसने पाँच सौ धनुर्धारियों को इकट्ठा किया, जो सभी बिजली की गति से तीर चलाने में सक्षम थे। इनमें से उसने इक्कीस (130) को चुना और उन्हें देवदत्त की सेवा में भेजा और उन्हें अपने आदेशों का पालन करने को कहा। उसने उनमें से प्रमुख को बुलाया और उससे कहा, "मेरे मित्र, तपस्वी गौतम (बुद्ध) गिज्जकूट पर्वत पर निवास करते हैं: वे दिन में एक निश्चित समय पर अपने विश्राम स्थल पर आते-जाते हैं; तुम वहाँ जाओ और उन्हें विषैले बाण से

घायल करो, और उन्हें मारकर इस मार्ग से वापस आ जाओ।" फिर उसने दो धनुर्धारियों को उस मार्ग से भेजा और उनसे कहा, "तुम्हें अपने मार्ग से एक व्यक्ति मिलता है, उसे मार डालो और इस मार्ग से वापस आ जाओ।" फिर उसने चार धनुर्धारियों को उसी निर्देश के साथ उस मार्ग से भेजा, और उसके बाद इसी प्रकार अट्ठाईस और सोलह को भेजा। यदि तुम पूछो कि उसने ऐसा क्यों किया, तो उसने यह अपनी दुष्टता को छिपाने के लिए किया। इसलिए धनुर्धारियों के इस श्रेष्ठ व्यक्ति ने अपनी तलवार बाईं ओर और बाण पेटी पीठ पर बाँध ली, और मेढ़े के सींग से बना धनुष लेकर तथागत (बुद्ध) के पास गया; परन्तु जब उसने उन्हें घायल करने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी, बाण लगा दिया और प्रत्यंचा खींची, तो वह उसे छोड़ नहीं सका। उसका पूरा शरीर अकड़ गया, मानो कुचल गया हो, और वह मृत्यु के भय से भयभीत खड़ा रहा। जब गुरु ने उसे देखा, तो उन्होंने कोमल स्वर में कहा, "डरो मत, इधर आओ।" उसने तुरंत अपने शस्त्र फेंक दिए और भगवान बुद्ध के चरणों में सिर रखकर कहा, "हे प्रभु, पाप ने मुझे एक बच्चे, मूर्ख या पापी की तरह वश में कर लिया है; मैं आपके गुणों को नहीं जानता था, और मैं उस अंधे बूढ़े देवदत्त के आदेश पर आपका प्राण लेने आया था: कृपया मुझे क्षमा करें।" उसे क्षमा मिल गई और वह एक तरफ बैठ गया। तब गुरु ने उन्हें धम्म (निर्वाण की ओर ले जाने वाले सत्य) का ज्ञान कराया और उन्हें प्रथम श्रेणी का मोक्ष (सोतपान-धारा विजेता) प्राप्त कराया। फिर उन्होंने उन्हें देवदत्त द्वारा बताए गए मार्ग के अलावा किसी अन्य मार्ग से लौटने को कहा; और स्वयं अपने गुप्त मार्ग से नीचे उतरकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। जब पहला धनुर्धारी नहीं लौटा, तो बाकी दो धनुर्धारी उससे मिलने के लिए उसी रास्ते से आए और यह देखकर आश्चर्यचकित हुए कि उसे इतनी देर क्यों हो गई, अंततः उन्होंने बुद्ध को देखा और उनके पास गए।और उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे उनके एक ओर बैठ गए। फिर उन्होंने उन्हें भी धम्म (निर्वाण की ओर ले जाने वाले सत्य) का ज्ञान दिया और उन्हें प्रथम श्रेणी का मोक्ष (सोतपना-प्रमुख) प्राप्त कराया, और उन्हें देवदत्त द्वारा बताए गए मार्ग के अलावा किसी अन्य मार्ग से लौटने को कहा। इसी प्रकार, जब अन्य लोग आए और एक-एक करके बैठ गए, तो उन्होंने उन्हें भी प्रथम श्रेणी का मोक्ष (सोतपना-प्रमुख) प्राप्त कराया और उन्हें दूसरे मार्ग से विदा कर दिया। तब सबसे पहले लौटने वाला धनुर्धारी देवदत्त के पास गया और उनसे कहा, "गुरुजी, मैं उस असीम ज्ञानी को मार नहीं सका, वह सर्वशक्तिमान, अलौकिक शक्तियों वाले भगवान बुद्ध हैं।" इस प्रकार उन सभी ने यह पहचान लिया कि उन्होंने असीम ज्ञानी (बुद्ध) के माध्यम से ही अपने जीवन की रक्षा की है, और उन्होंने उनके अधीन तपस्वी जीवन को अपनाया और अर्हत (बुद्ध के समान प्रबुद्ध) बन गए। यह घटना भिक्षु संघ की सभा में फैल गई, और एक दिन वे सत्य के हॉल में इस पर चर्चा करने लगे; "भाइयों, क्या आपने सुना है कि देवदत्त ने भगवान बुद्ध के प्रति अपनी शत्रुता में कई लोगों की जान लेने की कोशिश की, और कैसे उन सभी ने गुरु की कृपा से अपनी जान बचाई?" तभी गुरु आए और पूछा, "भाइयों, आप यहाँ बैठे-बैठे किस बारे में बात कर रहे हैं?" और जब उन्होंने बताया, "यह पहली बार नहीं है," तो उन्होंने कहा; "उसने इससे पहले भी मेरे प्रति अपनी शत्रुता में कई लोगों की जान लेने की कोशिश की थी"; और उन्होंने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।उसने कहा, "इससे पहले भी उसने मेरे प्रति अपनी शत्रुता के कारण कई लोगों की जान लेने की कोशिश की थी"; और उसने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।उसने कहा, "इससे पहले भी उसने मेरे प्रति अपनी शत्रुता के कारण कई लोगों की जान लेने की कोशिश की थी"; और उसने उन्हें अतीत की एक कहानी सुनाई।

पुराने समय में इस बनारस को पुप्फवती कहा जाता था। वहाँ राजा वासवत्ती के पुत्र एकराज का शासन था और उनके पुत्र चंदकुमार वायसराय थे। खंडाहल नामक एक ब्राह्मण कुलपुजारी थे। वे राजा को सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों में सलाह देते थे और राजा उनकी बुद्धिमत्ता से बहुत प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने उन्हें न्यायाधीश बना दिया। लेकिन वे रिश्वतखोर थे, इसलिए रिश्वत लेकर असली मालिकों को बेदखल कर गलत मालिकों को कब्जा दे देते थे। एक दिन एक व्यक्ति, जो अपना मुकदमा हार गया था, न्यायलय से जोर-जोर से शिकायत करते हुए बाहर आया और जब उसने चंदकुमार को राजा से मिलने जाते देखा, तो वह उनके चरणों में गिर पड़ा। राजकुमार ने उससे पूछा, "महाराज, खंडाहल न्याय करते समय याचिकाकर्ताओं को लूटता है: मैंने रिश्वत देने के बावजूद अपना मुकदमा हार गया हूँ।" राजकुमार ने उसे शांत रहने को कहा और उसे अदालत में ले जाकर विवादित संपत्ति का स्वामी बना दिया। जनता ने तालियाँ बजाकर उसका उत्साहवर्धन किया। जब राजा ने यह सुना और कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "चंदकुमार ने उस मुकदमे का सही फैसला किया है जिसका फैसला खंडाहल ने गलत किया था; इसीलिए इतना शोर मचा था।" जब राजकुमार आया और उसने प्रणाम किया, तो राजा ने उससे कहा, "मेरे पुत्र, लोग कहते हैं कि तुमने अभी-अभी एक मामले का फैसला किया है।" "जी महाराज।" उन्होंने राजकुमार को न्यायाधीश का पद दिया और उसे आदेश दिया कि वह आगे से सभी मुकदमों का फैसला करे। खंडाहल की आमदनी घटने लगी और उसी समय से उसके मन में राजकुमार के प्रति द्वेष पैदा हो गया और वह उसमें कोई न कोई दोष ढूंढने लगा। अब राजा को धार्मिक (धार्मिक) समझ बहुत कम थी; एक दिन भोर में, नींद से जागते ही उन्होंने तैंतीस देवताओं (देवदूतों) का स्वर्ग देखा, जिसका अलंकृत बरामदा, सात कीमती वस्तुओं से बनी दीवारें, साठ योजन का विस्तार, एक हजार योजन की ऊँचाई वाली स्वर्णमयी गलियाँ, वेजयंत और अन्य महलों से सुशोभित, नंदन और अन्य वनों तथा नंदा और अन्य झीलों की समस्त महिमा से युक्त और हर जगह दिव्य प्राणियों से भरा हुआ था। उन्हें उसमें प्रवेश करने की तीव्र इच्छा हुई और उन्होंने सोचा, "जब गुरु खंडाहल आएंगे, तो मैं उनसे देवताओं (देवदूतों) के लोक का मार्ग पूछूंगा और उनके बताए मार्ग से प्रवेश करूंगा।" खंडाहल भोर में महल में आए और

राजा से पूछा कि क्या उनकी रात सुखमयी गुजरी। तब राजा ने उन्हें बैठने का आदेश दिया और अपना प्रश्न पूछा। गुरु ने इस प्रकार वर्णन किया है:

पुप्पवती में एक समय एक दुष्ट राजा का राज था, जिसे अपनी जरूरत के समय
उसने अपने दुष्ट पुजारी खंडाहाला से पूछा, जो नाम का ब्राह्मण था लेकिन कर्मों में नहीं;
आप एक ऐसे द्रष्टा हैं जिन्हें, कहते हैं, समस्त पवित्र ज्ञान प्राप्त हो चुका है।
मुझे वह मार्ग बताओ जिसके यात्री अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग तक पहुंचते हैं।
अब यह एक ऐसा प्रश्न था जिसे सर्वज्ञानी बुद्ध या उनके शिष्यों की अनुपलब्धता में किसी बोधिसत्व से ही पूछा जाना चाहिए था, परन्तु राजा ने इसे खंडाहल से पूछा; ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति जो सात दिनों से रास्ता भटका हो, वह किसी ऐसे व्यक्ति से मार्गदर्शन मांगे जो दो सप्ताह से रास्ता भटका हो। उसने मन ही मन सोचा, "अब समय आ गया है कि मैं अपने शत्रु को मार डालूँ, अब मैं चंदकुमार को मार डालूँगा और अपनी इच्छा पूरी करूँगा।" अतः उसने राजा से कहा:

"अत्यधिक दान देकर, उन लोगों को नष्ट कर दो जो मृत्यु के योग्य नहीं हैं।"
इस प्रकार असाधारण योग्यता वाले पुरुष अंततः जीत हासिल करते हैं और स्वर्ग के आनंद को प्राप्त करते हैं।
राजा ने पूछा:

"वे अनेक उपहार क्या हैं? और कौन है जिसे मारे जाने से बचाया जाना चाहिए?"
मैं उपहार दूंगा, पीड़ितों को मारूंगा, बशर्ते तुम अपना मतलब स्पष्ट कर दो।
फिर उन्होंने अपने कहने का अर्थ समझाया:

"तुम्हारे बेटों, तुम्हारी रानियों को बलि का बकरा बनाया जाना चाहिए, तुम्हारे व्यापारी राजकुमारों का भी पतन होना चाहिए।"
आपके सर्वोत्तम बैल, आपके सर्वोत्तम घोड़े, हाँ, चारों प्रकार के शिकार।
और इस प्रकार, जब उनसे स्वर्ग का मार्ग पूछा गया, तो उन्होंने उत्तर में नरक का मार्ग बताया।

उन्होंने मन ही मन कहा, "अगर मैं चंदकुमार को अकेले ले जाऊँगा तो वे सोचेंगे कि मैंने उससे दुश्मनी के कारण ऐसा किया है"; इसलिए उन्होंने उसे कई लोगों के साथ रखा। जब यह बात फैली तो राजमहल की महिलाओं ने अफवाह सुनकर दहशत फैला दी और तुरंत जोर से चिल्ला उठीं। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने एक श्लोक सुनाया:

शाही परिवार की महिलाओं ने यह खबर सुनी: "राजकुमारों और रानियों का अंत निश्चित है," वे रो पड़ीं।
और अचानक भय की एक कर्कश चीख चारों ओर से आकाश की ओर गूंज उठी।
पूरा राजपरिवार उस तरह व्याकुल था जैसे संसार के अंत में हवा से हिलते साल के पेड़ों का झुरमुट; यहाँ तक कि ब्राह्मण ने भी राजा से पूछा कि क्या उसके लिए यज्ञ करना संभव है। "हे गुरु, आपका क्या तात्पर्य है? यदि मैं यज्ञ करूँ तो मैं देवदूतों के लोक में चला जाऊँगा।" "हे राजा, जो डरपोक और दृढ़ निश्चयी नहीं होते, वे यह यज्ञ नहीं कर सकते। आप इन सबको यहाँ एकत्रित कीजिए, मैं यज्ञकुंड में यज्ञ करूँगा।" अतः राजा पर्याप्त सेना लेकर नगर से बाहर गया और एक समतल तल वाला यज्ञकुंड खुदवाने और उसके चारों ओर बाड़ लगाने का आदेश दिया; क्योंकि प्राचीन ब्राह्मणों ने इस बाड़ को बनवाने का आग्रह किया था, अन्यथा कोई धर्मात्मा तपस्वी या ब्राह्मण आकर यज्ञ को रोक सकता था।

राजा ने एक घोषणा भी करवाई, "मैं अपने पुत्रों, पुत्रियों और पत्नियों की बलि देकर देवताओं (देवदूतों) के लोक में जाऊंगा, तुम जाकर उन्हें यह सूचना दो और उन सबको यहाँ ले आओ"; और उसने तुरंत अपने पुत्रों को लाने का आदेश दिया।

"चंदा और सूर्या (*1) को मेरी इच्छा के बारे में चेतावनी दो, फिर भद्दासेना को भी।"
इसके बाद सूरा और वामागोत्ता का नंबर आएगा, उन सबको मरना होगा: मेरा इरादा अटल है।"
अतः वे सबसे पहले चंदकुमार के पास गए और बोले, "हे राजकुमार, तुम्हारे पिता तुम्हें मारकर स्वर्ग जाना चाहते हैं; उन्होंने हमें तुम्हें पकड़ने के लिए भेजा है।" "किसके आदेश पर उन्होंने मुझे पकड़ने का आदेश दिया है?" "खंडाहल के आदेश पर।" "क्या वे केवल मुझे ही पकड़ना चाहते हैं या मेरे साथ दूसरों को भी?" "तुम्हारे साथ दूसरों को भी, क्योंकि वे चार प्रकार के बलिदान चढ़ाना चाहते हैं।" उन्होंने मन ही मन सोचा, "उनकी दूसरों से कोई दुश्मनी नहीं है, परन्तु वे केवल मुझसे ही शत्रुता के कारण अनेकों को मृत्युदंड देना चाहते हैं, क्योंकि मैं उनके अन्यायपूर्ण निर्णय से उन्हें लूटपाट करने से रोकता हूँ; मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने पिता से मिलूँ और उनसे बाकी सभी को छुड़ा लूँ।" अतः उन्होंने उनसे कहा, "मेरे पिता के आदेश का पालन करो।" वे उन्हें महल के प्रांगण में ले गए और उन्हें अकेले बिठा दिया, फिर वे अन्य तीन (*2) को लाए और उन्हें पास बिठाकर राजा को सूचित किया। तब राजा ने उनसे अपनी पुत्रियों को लाने और उन्हें भी दूसरों के पास बिठाने को कहा।

"उपसेनी और कोकिला, मुदिता, नंदा, प्रत्येक बारी-बारी से,
राजकुमारियों को उनके विनाश के बारे में बता दो, उन सबको मरना ही होगा: मेरा इरादा अटल है।"
अत: वे गए और उन्हें रोते-बिलखते हुए लाए और उनके भाइयों के पास रख दिया। तब राजा ने अपनी पत्नियों को पकड़ने का आदेश देने के लिए एक श्लोक पढ़ा:

"विजया को बताओ, सबसे पहले मेरी रानियों, सुनंदा, केसिनी, बारी-बारी से।"
अपनी सारी सुंदरता और आकर्षण के बावजूद, उन सबको मरना ही होगा: मेरा इरादा अटल है।"
फिर वे उन्हें भी जोर-जोर से विलाप करते हुए लाए और राजकुमारों के पास रख दिया। तब राजा ने एक श्लोक पढ़ा और उन्हें अपने चारों व्यापारियों को पकड़ने का आदेश दिया:

"पुन्नामुख और भद्दिया, सिंगला, वड्ढा, प्रत्येक बारी-बारी से,
मेरे व्यापारियों तक मेरा आदेश पहुंचा दो, उन सबको मरना होगा: मेरा इरादा अटल है।"
राजा के अधिकारी गए और उन्हें ले आए। जब राजा के पुत्रों और पत्नियों को लाया गया तो नागरिकों ने एक शब्द भी नहीं कहा; परन्तु व्यापारियों का परिवार बहुत फैला हुआ था, और जब उन्हें पकड़ा गया तो पूरे शहर में हलचल मच गई। उन्होंने बलि दिए जाने का ज़ोरदार विरोध किया और अपने रिश्तेदारों के साथ राजा के समक्ष उपस्थित हुए। तब व्यापारियों ने अपने परिवार से घिरे हुए राजा से अपने जीवन को बख़्शने की विनती की। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने कहा:

व्यापारियों ने तीखा विरोध जताया।
अपने बेटों और पत्नियों से घिरे हुए,
"सिर्फ़ बालों की चोटी रहने दो, सिर मुंडवा लो।"
हमें अपना गुलाम बना लो, लेकिन हमारी जान बख्श दो।"
फिर भी, उनकी विनती के बावजूद, उन्हें दया नहीं मिली। अंततः राजा के अधिकारियों ने बाकी लोगों को पीछे हटने के लिए मजबूर किया और व्यापारियों को राजकुमारों के पास खड़ा कर दिया।

तब राजा ने हाथियों और अन्य जानवरों को लाने का आदेश दिया:

"मेरे सभी हाथियों को यहाँ लाओ, जो अतुलनीय शक्ति और उच्च मूल्य के हैं।"
मेरे सबसे अच्छे घोड़े और खच्चर, उन सभी को बलिदान कर दिया जाए;
मेरे बैल, झुंड के सरदार, एक उत्कृष्ट भेंट होंगे;
और सभी पुरोहितों को तदनुसार उनके उपहार प्राप्त होंगे।
कल के उदय के प्रकाश के विरुद्ध बलिदान के लिए तैयार हो जाओ;
और राजकुमारों से कहो कि वे जी भरकर दावत करें, अपने जीवन की इस आखिरी रात का आनंद लें।"
राजा के माता-पिता अभी जीवित थे, इसलिए कुछ लोग उनके पास गए और उन्हें उनके पुत्र के प्रस्तावित बलिदान के बारे में बताया। शोक में व्याकुल होकर वे अपने हृदय को थामकर राजा के सामने रोते हुए बोले, "हे पुत्र, क्या यह सच है कि तुम ऐसा बलिदान देने जा रहे हो?"

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

"मां ने अपना शाही घर छोड़ दिया, 'मेरे बेटे, इस भयानक चीज का क्या मतलब है?'"
क्या तुम्हारे इस क्रूर बलिदान के लिए तुम्हारे चारों बेटों को मौत के घाट उतारना होगा?
राजा ने उत्तर दिया:

"जब मैं चंदा को खो दूंगी तो मैं सब कुछ खो दूंगी; लेकिन उसे और उन्हें मैं छोड़ दूंगी।"
क्योंकि इस महान बलिदान के द्वारा ही मुझे स्वर्गिक जीवन प्राप्त होगा।
उनकी मां ने कहा:

"मेरे बच्चे, अपने बेटों की बलि देना कभी भी स्वर्ग के सुख की ओर नहीं ले जा सकता।"
ऐसी झूठी बातों पर ध्यान मत दो; नरक और अंधकार का मार्ग यही है।
सिद्ध सिद्ध मार्ग अपनाओ: अपनी सारी संपत्ति दान में दे दो।
और पृथ्वी पर किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुँचाओ—यही स्वर्ग का निश्चित मार्ग है।

राजा ने उत्तर दिया:

मुझे अपने गुरु के शब्दों का पालन करना होगा, मेरे पुत्रों को तो निश्चित रूप से मार डाला जाएगा।
इनसे बिछड़ना वाकई बहुत मुश्किल है, लेकिन इसके बदले मुझे स्वर्ग ही मिलेगा।
इसलिए माँ अपने शब्दों से उसे समझाने में असफल होकर चली गई। फिर पिता को खबर मिली और वह विरोध करने आया।

शिक्षक ने घटना का वर्णन किया:

पिता वासवत्ती आए: "अजीब खबर सुनकर मेरी आत्मा भयभीत हो गई!"
क्या आपके इस घिनौने अनुष्ठान को पूरा करने के लिए आपके चारों बेटों को मौत के घाट उतारना ही होगा?
वही संवाद दोहराया जाता है और बूढ़ा राजा, अपने बेटे को मनाने में असमर्थ होकर, विदाई के शब्दों के रूप में ये दोहराते हुए चला जाता है:

अपनी क्षमता के अनुसार सब कुछ दें और कभी भी अपनी मर्जी से किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुंचाएं;
और अपने बेटों को अंगरक्षक बनाकर तुम धरती को हर बुराई से बचाते हो।"
तब चंदकुमार ने मन ही मन सोचा, "मेरे अकेले कारण इतने सारे लोगों पर यह सारा दुख आ पड़ा है, मैं अपने पिता से विनती करूंगा और इन सबको मृत्यु के कष्ट से मुक्ति दिलाऊंगा"; इसलिए उसने अपने पिता से इस प्रकार कहा:

"हमें खंडाहाला के गुलाम बनने दो, लेकिन हमारी जान बख्श दो और हमें मारो मत।"
अगर उसकी यही इच्छा रही तो हम उसके घोड़ों और हाथियों को जंजीरों में बांधकर रखेंगे।
हमें खंडाहाला के गुलाम बनने दो, लेकिन हमारी जान बख्श दो और हमें मार मत डालो।
हम उसके अस्तबल और बाड़े साफ करेंगे, और अगर उसकी यही इच्छा हो तो जंजीरों में बंधकर भी काम करेंगे।
आप जिसे चाहें हमें गुलाम बना सकते हैं, हम आपके हाथों में गुलामों के समान हैं;
या फिर हमें अपने राज्य से निर्वासित कर दो ताकि हम परदेसियों में भीख मांगकर अपना पेट पालें।"
राजा ने उनकी चीखें सुनीं और उसका हृदय टूट गया; उसकी आँखों में आँसू भर आए और उसने उन सभी को मुक्त करने का आदेश दिया: "कोई भी मेरे पुत्रों को नहीं मारेगा, मुझे देवदूतों की दुनिया की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"उनकी जान बचाने की ये दयनीय गुहारें मेरा दिल तोड़ देती हैं, जाओ उन्हें मुक्त करो।"
राजकुमारों को रिहा कर दो, उन्हें जाने दो: अब मुझे और बलिदान नहीं करना है।"
राजा की बात सुनकर उन्होंने राजकुमारों से लेकर पक्षियों तक सभी को मुक्त कर दिया। खंडाहल यज्ञगृह में व्यस्त था, तभी एक व्यक्ति ने उससे कहा, "हे दुष्ट खंडाहल, राजा ने राजकुमारों को मुक्त कर दिया है; क्या तुम जाकर अपने ही पुत्रों को मार डालोगे और उनके गले के रक्त से बलि चढ़ाओगे?" "राजा क्या कर रहा था?" वह चिल्लाया और जल्दी से दौड़कर उससे बोला:

मैंने तुम्हें पहले ही चेतावनी दी थी कि यह बलिदान कठिन और मुश्किल साबित होगा;
जब यह अनुष्ठान इतनी अच्छी तरह से शुरू हो चुका है तो इसे रोकने के लिए हस्तक्षेप क्यों किया जाए?
जो लोग इस प्रकार की भेंट चढ़ाते हैं, वे स्वर्ग जाने के एक निश्चित मार्ग से होकर गुजरते हैं;
या फिर वे लोग जो दूसरों को ऐसा करते देखकर दिल से इसकी सराहना करते हैं।"
क्रोधित ब्राह्मण के शब्दों को सुनकर, अंधे राजा ने धर्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए अपने पुत्रों को वापस लाने का आदेश दिया। तब चंदकुमार ने अपने पिता से तर्क किया:

"हमारे जन्म के समय ब्राह्मण ने हमारे मार्ग पर व्यर्थ ही आशीर्वाद क्यों दिए?"
जब यह हमारी नियति थी कि हम आपके क्रोध के निर्दोष शिकार बनकर मरें?
जब हम अभी बच्चे थे, इतने छोटे थे कि इस आघात को महसूस नहीं कर सकते थे, तब आपने हमें क्यों बख्श दिया?
हमें आज ही मरना है, क्योंकि हम जवानी के सुखों को जान चुके हैं।
कल्पना कीजिए कि हम कवच पहने हुए घोड़े या हाथी पर सवार होकर युद्ध के मैदान में जा रहे हैं।
और फिर यहाँ बलि के रूप में मारे गए पीड़ितों के रूप में—क्या यह सही हो सकता है?
किसी विद्रोही सरदार के खिलाफ लड़ाई में या किसी जंगल में, जैसे कि मैं
जिनकी सेवा करने की आदत थी, अब तुम उन्हें बिना किसी कारण या वजह के मार रहे हो।
उन जंगली पक्षियों को देखो जो पेड़ों के बीच घोंसला बनाते हैं और दिन भर गाते रहते हैं।
वे अपने बच्चों से प्यार करते हैं और उनकी अच्छी तरह देखभाल करते हैं—और क्या आप अपने बच्चों को मार डालेंगे?

और यह भी मत सोचो कि मेरे जाने के बाद तुम्हारा वह कपटी ब्राह्मण मित्र तुम्हारी जान बख्शेगा;
हे राजा, अब आपकी बारी आएगी: मैं अकेला नहीं मरूंगा।
राजा इन ब्राह्मणों को गाँव देते हैं, उत्तम नगर उनके उपहार होते हैं।
वे प्रत्येक परिवार का भरण-पोषण करते हैं और एक बड़ी विरासत अर्जित करते हैं;
और हे महाराज, ये वही सहायक हैं जिन्हें वे सबसे आसानी से धोखा देते हैं;
मेरी बात मानो, ब्राह्मण संप्रदाय हमेशा अविश्वासी और कृतघ्न होते हैं (*3)।"
अपने बेटे की फटकार सुनकर राजा ने हैरानी से कहा:

"उनकी जान बचाने की ये दयनीय गुहारें मेरा दिल तोड़ देती हैं, जाओ उन्हें मुक्त करो।"
राजकुमारों और बाकी सबको रिहा कर दो, अब मुझे और बलिदान नहीं देना है।"
खंडाहला पहले की तरह फिर से दौड़कर आया और अपने पुराने विरोध को दोहराया; और राजकुमार ने फिर से अपने पिता से तर्क किया:

"यदि अपने पुत्रों का बलिदान करने वाले, मरने के बाद, सभी महिमामंडित होते हैं,
तब ब्राह्मण अपनी भेंट चढ़ाए; राजा मार्गदर्शक के रूप में उसका अनुसरण करे।
यदि पुत्रों का बलिदान करने वाले मरने के बाद सीधे स्वर्ग जाते हैं,
ब्राह्मण स्वयं को और अपने पूरे परिवार को अर्पण क्यों नहीं करता?
नहीं, बल्कि जो लोग ऐसे बलिदानों की बलि देते हैं, वे सब नरक में जाएंगे।
और जो लोग इस कृत्य को स्वीकार करने का साहस करेंगे, वे भी अंत में नष्ट हो जाएंगे।
जब राजकुमार ने ये शब्द कहते हुए पाया कि वह अपने पिता को मना नहीं सकता, तो वह राजा के चारों ओर खड़े लोगों की ओर मुड़ा और उनसे इस प्रकार कहा:

"यहाँ मौजूद माता-पिता चुपचाप देखते हुए कैसे खड़े रह सकते हैं, और कोई भी..."
अपने बच्चों से इतना प्यार करने के कारण, क्या राजा को अपने बेटे की हत्या करने से रोका जा सकता है?
मुझे राजा का कल्याण पसंद है, मुझे आपके दिलों में खुशी देखना अच्छा लगता है।
और क्या तुममें से कोई भी विरोध की आवाज उठाने वाला नहीं मिला?
लेकिन किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा। तब राजकुमार ने अपनी पत्नियों से कहा कि वे जाकर राजा से दया दिखाने की विनती करें:

"हे कुलीन महिलाओं, जाओ, अपनी प्रार्थनाओं के साथ राजा से विनती करो, उसके पुजारी से विनती करो,"
अपने उन निर्दोष पुत्रों को बख्शने के लिए, जो युद्ध की सबसे कठिन परीक्षा में सिद्ध हो चुके थे;
राजा से विनती करो, पुजारी से विनती करो, कि इन निर्दोष पुत्रों को बख्श दिया जाए।
जिनके नाम विश्व भर में प्रसिद्ध हैं, जो उनके देश और समय की शान हैं।"
वे राजा के पास गए और उससे दया दिखाने की विनती की; लेकिन राजा ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। तब राजकुमार ने स्वयं को असहाय महसूस करते हुए विलाप करना शुरू कर दिया:

"काश, मेरा जन्म दरबारों के एकांत में हुआ होता,"
किसी मोची, सफाईकर्मी या समाज से बहिष्कृत व्यक्ति की छत के नीचे,
मुझे अपने जीवन के अंतिम दिन शांति से बिताने चाहिए थे।
न ही वह राजा की इच्छा का शिकार होकर मरा।
फिर उसने कहा:

"जाओ, तुम सब औरतें एक समूह में, खांदहला के पतन से पहले नीचे झुक जाओ,"
और उससे कहो कि तुमने उसका कोई नुकसान नहीं किया है, तुम पूरी तरह निर्दोष हो।"
ये शिक्षक के शब्द हैं:

"जब सेला अपने भाइयों को राजा द्वारा सजा सुनाए जाते हुए देखती है तो वह जोर-जोर से विलाप करती है।"
"लोग कहते हैं कि मेरे पिता स्वर्ग की कामना करते हैं, और यही वास्तव में उनका बलिदान है।"
लेकिन राजा ने उसकी ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। तब राजकुमार के पुत्र वासुला ने अपने पिता का दुःख देखकर कहा, "मैं अपने दादा से विनती करूँगा, मैं उनसे अपने पिता का जीवनदान करवाऊँगा," और वह राजा के चरणों में गिरकर रोने लगा।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

फिर वासुला अनिश्चित कदमों से इधर-उधर सिंहासन की ओर बढ़ी।
"हे पिता, हम बच्चों पर दया करो, हमें असहाय और अकेला मत छोड़ो।"
राजा ने उसका विलाप सुना, और उसका हृदय मानो दो टुकड़ों में बंट गया, उसने आँखों में आँसू लिए लड़के को गले लगाया और उससे कहा, "हिम्मत रखो, मेरे बच्चे, मैं तुम्हारे पिता को तुम्हें सौंप दूँगा," और उसने अपने आदेश दिए:

"ये रहे तुम्हारे पिता, वासुला; तुम्हारे शब्द मुझ पर हावी हो गए हैं, वे स्वतंत्र हैं।"
राजकुमारों को रिहा कर दो, उन्हें जाने दो, अब मुझे और बलिदान नहीं देना है।"
फिर से खंडाहला ने अपने पुराने विरोध के साथ मोर्चा संभाला, और एक बार फिर राजा ने आँख बंद करके उसकी बातों पर विश्वास कर लिया और अपने बेटों को वापस पकड़ने का आदेश दे दिया।

तब खंडाहल ने मन ही मन सोचा, "यह दयालु राजा अब अपने पुत्रों को पकड़ता है और अब उन्हें छोड़ देता है; अब वह अपने बच्चों के कहने पर उन्हें फिर से छोड़ देगा; मैं उसे यज्ञकुंड में ले जाऊंगा।" अतः उसने उसे वहाँ जाने के लिए प्रेरित करने हेतु एक श्लोक दोहराया:

"बलिदान तैयार कर लिया गया है, सबसे कीमती खजाने दे दिए गए हैं:
हे राजा, इसे अर्पित करो और स्वर्ग के सर्वश्रेष्ठ आनंदों को प्राप्त करो।
जब वे बोधिसत्व को यज्ञकुंड में ले गए तो राजसी महिलाएं एक समूह में बाहर निकल गईं।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"राजकुमार चंदा की सात सौ रानियाँ, अपनी युवावस्था की पूरी चमक में दमक रही थीं,
बिखरे बालों और रोती आंखों के साथ, वह नायक के पीछे-पीछे उसकी मृत्यु की ओर चल पड़ी;
और अन्य महिलाएं स्वर्ग से आई हुई आत्माओं की तरह समूह में शामिल हो गईं।
बिखरे बालों और नम आंखों के साथ, वह नायक के पीछे-पीछे चल रही थी।
तब वे सब जोर-जोर से रोने लगे:

"कान की बालियों, अगरबत्ती, चंदन के साथ, महंगी काशी रेशम में,"
वहाँ चंदा, सूर्या (*4) को बलिदान के लिए ले जाया जा रहा है।
अपनी मां के दिल को पीड़ा से छलनी करते हुए, नागरिकों को उदासी से भरते हुए,
देखो चंदा, सूर्या को वहाँ क्रूरतापूर्वक उनकी मौत की ओर ले जाया जा रहा है।
काशी के सफेद वस्त्रों में लिपटे और सबसे उत्तम सुगंधों से स्नान और सुगंधित,
देखो चंदा, वहां सूर्या को राजा के आदेश पर बलि के रूप में ले जाया जा रहा है।
जो लोग कभी हाथियों पर सवार होते थे, वे हर किसी के लिए एक शानदार दृश्य थे।
देखो, हमारी चंदा, सूर्या वहाँ पैदल चलकर मरने जा रही है।
जो लोग रथों, खच्चरों या सोने से सजे घोड़ों पर सवार होने के आदी थे,
वहाँ हमारे चंदा, सूर्या (*5) को देखो, रात होने से पहले मरने के लिए पैदल ही परिश्रम कर रहे हैं।"
जब रानियाँ इस प्रकार शोक मना रही थीं, तब अधिकारी बोधिसत्व को शहर से बाहर ले गए। पूरा शहर बड़े उत्साह के साथ उनके साथ निकला। लेकिन जब इतने सारे लोग निकले, तो द्वार इतने चौड़े नहीं थे कि उन्हें निकलने की जगह मिल सके; और ब्राह्मण को आशंका हुई कि कहीं कुछ हो न जाए, इसलिए उसने द्वार बंद करने का आदेश दिया। इस प्रकार लोगों को निकलने का कोई रास्ता नहीं मिला; लेकिन भीतरी द्वार के पास एक बगीचा था, और वे वहाँ एकत्रित होकर राजकुमार के भाग्य पर ज़ोर-ज़ोर से शोक मनाने लगे; और उनकी आवाज़ सुनकर आकाश में पक्षियों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हो गया। नागरिकों ने सामूहिक विलाप किया और इस प्रकार पक्षियों को संबोधित किया:

"पक्षियों, क्या तुम मांस खाना चाहोगे? तो पुप्पावती के पूर्वी द्वार की ओर उड़ जाओ।"
वहां पागल राजा घृणा से अंधा होकर अपने चार बहादुर बेटों की बलि दे रहा है।
हे पक्षियों, क्या तुम मांस का भोज करना चाहते हो? तो पुप्पावती के पूर्वी द्वार की ओर उड़ जाओ।
वहाँ पागल राजा अपनी अंधी नफरत में चार बेटियों की बलि दे रहा है (*6)।"
इस प्रकार सभी लोग बगीचे में शोक मनाते रहे। फिर वे बोधिसत्व के घर गए, जुलूस में उसके चारों ओर घूमते हुए और रानियों के कमरों, मीनारों और बगीचों, उपवनों और झीलों और हाथियों के अस्तबलों को देखते हुए विलाप करते रहे (*7)।

"निरंतर गांव एकांत वन की ओर मुड़ जाते हैं;
यदि एक बार हमारे राजकुमारों ने अपना रक्त बहा दिया, तो हमारी राजधानी भी उजाड़ हो जाएगी।
शहर से बाहर निकलने का कोई रास्ता न मिलने पर, वे शहर की दीवारों के भीतर शोक मनाते हुए भटकते रहे।

इसी बीच बोधिसत्व को यज्ञकुंड में ले जाया गया। तब उनकी माता, रानी गौतमी, राजा के चरणों में गिर पड़ीं और आँसू बहाते हुए उनसे अपने पुत्र के जीवन को बख्शने की विनती करने लगीं।

मैं अपने शोक में पागल हो जाऊँगा, धूल से ढका हुआ, क्षत-विक्षत, उदास।
यदि मेरे पुत्र चंदा (*8) की मृत्यु हो गई, तो शोक मनाते-करते मेरी सांसें रुक जाएंगी।"
जब राजा से कोई जवाब नहीं मिला, तो उसने राजकुमार की चारों पत्नियों को गले लगाया और उनसे कहा, "मेरा बेटा आपसे नाराज़ होकर चला गया होगा, आप उसे वापस लौटने के लिए क्यों नहीं मनातीं?"

"आप लोग खड़े-खड़े एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक बातें क्यों नहीं करते?"
और एक-दूसरे का हाथ थामे खुशी से उसके चारों ओर नाचें।
जब तक उसका दुख दूर न हो जाए और वह आपके आदेश पर ठीक न हो जाए,
भला कौन तुम्हारे जैसा नृत्य कर सकता है, चाहे सारी धरती छान मारी जाए?
फिर जब उसे कोई और उपाय नहीं सूझा तो उसने शाही महिलाओं के साथ शोक मनाना बंद कर दिया और खंडाहला को कोसना शुरू कर दिया।

"अब हे क्रूर पुजारी, तेरी माता को इस सारी कड़वी पीड़ा का अनुभव हो।"
जब मैं अपनी प्यारी चंदा को मरते हुए देखता हूँ तो मेरा दिल टूट जाता है (*9)।
अब हे क्रूर पुजारी, तेरी पत्नी को सारी पीड़ा सहनी पड़े।
जब मैं अपने प्यारे सूर्या को मरते हुए देखता हूँ तो मेरी आत्मा दहक उठती है;
हे क्रूर पुजारी, आज वह अपने बेटों और पति को मरते हुए देखे।
दुनिया के गौरव और शान को भी वे निर्दोष शेर जैसे दिल वाले लोग मार डालेंगे।"
तब बोधिसत्व ने यज्ञकुंड में अपने पिता से विनती की (*10):

कुछ स्त्रियाँ पुत्रों की कामना करती हैं और उनके लिए प्रार्थना करती हैं तथा स्वर्ग को भेंट और उपहार अर्पित करती हैं।
वे बेटों और पोतों के लिए भी तरसते हैं, लेकिन उनके घरों को खुशियों से भरने के लिए कोई नहीं दिया जाता;
हे प्रभु, प्रार्थना के उत्तर में दी गई इस क्षमा के बावजूद हमें इस प्रकार निर्दयतापूर्वक मत मारो।
और न ही हमारी माँ की तमाम देखभाल के बावजूद हमें कोई बलिदान चढ़ाओ।"
जब उसे अपने पिता से कोई जवाब नहीं मिला, तो वह अपनी माँ के चरणों में विलाप करने गिर पड़ा:

"तुमने अपने बेटे की कोमलता से देखभाल की है, लेकिन अब तुम्हारे हिस्से में जो आया है वह बहुत कठिन है।"
मैं आपके पवित्र चरणों में नमन करता हूँ: मेरे पिता पर सभी आशीर्वाद हों।
मुझे अपने पैर एक बार फिर चूमने दो, मुझे गले लगाओ, माँ, इससे पहले कि हम अलग हो जाएं।
यह एक लंबी यात्रा है जो मैं तय कर रहा हूँ, और यह तुम्हारे दिल के लिए एक गहरा दुख है।"
तब उसकी माँ ने विलाप करते हुए अपने गीत गाए:

"मेरे प्रिय पुत्र, अपने सिर पर कमल के पत्तों का मुकुट बांध लो।"
चंपक के फूलों से आपकी मर्दाना सुंदरता और भी निखरती है।
अंतिम बार अपने आप को उन सभी अनमोल और दुर्लभ मलहमों से अभिषेक करें।
पुराने जमाने में राजा के दरबार में होने वाले उत्सवों में आप वही पहना करते थे।
मेरे बेटे, आखिरी बार चमकीले काशी रेशम के सुंदर वस्त्र पहन लो।
और वे गहने और मोती पहनें जो आपको उत्सव के दिन पहनने चाहिए।
तब उनकी प्रमुख रानी, चंदा, उनके चरणों में गिर पड़ी और घोर विलाप करने लगी:

"यह भूमि का स्वामी, यह संप्रभु राजा, जिसकी इच्छा उसके समस्त राज्य में पूरी होती है,"
अपने देश की सारी संपत्ति का इकलौता वारिस होने के बावजूद, उसे अपने बेटे से कोई स्नेह नहीं है।
जब राजा ने उसकी बात सुनी तो उसने उत्तर दिया:

"मेरे पुत्र प्रिय हैं, मैं स्वयं प्रिय हूं, और आप, मेरी रानियां, भी प्रिय हैं;"
मैं अपने बेटे की बलि इसलिए देता हूँ क्योंकि मैं स्वर्ग जाना चाहता हूँ, नरक नहीं।
चंदा ने हैरानी से कहा:

"हे राजा, दया करके पहले मुझे मार डालो, न कि पीड़ा से मेरा हृदय चीर दो।"
आपका बेटा दोनों गुणों से परिपूर्ण है, वह हर मायने में संपूर्ण है।
हम दोनों को एक साथ ढेर पर मार डालो, और मुझे वहीं जाने दो जहाँ चंदा जाती है:
आपको असीम पुण्य प्राप्त होगा, दो आत्माएं स्वर्ग की शांति में प्रवेश करेंगी।
राजा ने उत्तर दिया:

समय से पहले मृत्यु की कामना मत करो; तुम्हारे पास वीर साले हैं;
"वे तुम्हें सांत्वना देंगे, हे बड़ी-बड़ी आँखों वाली, उस प्यारे राजकुमार के लिए जिसे तुमने अब खो दिया है।"
फिर उसने अपने हाथों से अपनी छाती पीटी, और जहर पीने की धमकी दी, और अंत में वह जोर-जोर से रोने लगी:

इस राजा के आसपास कोई मित्र या सलाहकार नहीं हैं।
कौन हिम्मत कर सकता है उसे ऐसा न करने की चेतावनी देने की?
उसके पास एक भी वफादार सेवक नहीं है।
कौन हिम्मत कर सकता है उसे अपने बेटे की हत्या न करने के लिए मनाने की?
उनके अन्य पुत्रों में भी उतनी ही बहादुरी झलकती है।
उन्हें अर्पित कर चंदा को मुक्त कर दिया जाए।
मुझे टुकड़ों में काट दो, मुझे बलि चढ़ा दो, लेकिन मेरे सबसे बड़े बेटे, मेरे योद्धा को बख्श दो।
वह व्यक्ति जिसका संसार आदर करता था, युद्ध में शेर जैसा साहस रखने वाला।"
इस प्रकार अपने मन को शोक में डुबो देने और कोई सांत्वना न मिलने पर, वह बोधिसत्व के पास गई और उनके पास खड़ी होकर रोने लगी, जब तक कि उन्होंने उससे कहा, "हे चंदा, अपने जीवनकाल में मैंने तुम्हें सामाजिक समारोहों में अनेक प्रकार के मोती और रत्न भेंट किए हैं; अब आज मैं तुम्हें अपने शरीर का यह अंतिम आभूषण देता हूँ; कृपया इसे स्वीकार करो।"

चंदा फूट-फूटकर रोने लगी और उसने निम्नलिखित पंक्तियाँ बोलीं:

"कभी उनके कंधे फूलों से जगमगाते थे, जो उनके मुकुट की तरह लटकते थे।"
आज वह क्रूर, तेज, चमकीली तलवार उन पर अपनी काली छाया फैला रही है।
जल्द ही तलवार उस निर्दोष शाही गर्दन पर आ गिरेगी।
आह! मेरे दिल को लोहे के बंधनों से बांधना होगा, नहीं तो यह टूटने के अलावा और क्या कर सकता है?
अगरबत्ती और चंदन से सजे वस्त्र पहने, कीमती रेशम और कई अंगूठियां पहने हुए,
हे चंदा-सूर्या, राजा के लिए उचित बलिदान के रूप में चिता पर जाओ।
अगरूम के साथ, चंदन के साथ, रेशमी वस्त्रों और कीमती रत्नों के साथ,
हे चंदा-सूर्या, उस चिता पर जाओ, जो महान राजा का योग्य बलिदान है।
भेंट के लिए स्नान किया हुआ, रेशम और रत्नों से सजी हुई, आने वाले प्रहार की प्रतीक्षा में,
जाओ, चंदा-सूर्या, उस ढेर की ओर, जहाँ लोगों के दिलों को पीड़ा से भर दिया जाएगा।
जब वह इस प्रकार शोक मना रही थी, तब यज्ञगृह में सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। वे राजकुमार को लाए और उसकी गर्दन आगे की ओर झुकाकर उसे उचित स्थान पर बिठा दिया। खंडाहाला ने सोने का कटोरा पास रखा और तलवार लेकर खड़ा हो गया, और बोला, "मैं इसकी गर्दन काट दूँगा।" जब रानी काना ने यह देखा, तो उसने मन ही मन कहा, "मेरे पास कोई और सहारा नहीं है, मैं अपने स्वामी को सत्य की अपनी पूरी शक्ति से आशीर्वाद दूँगी," और उसने हाथ जोड़कर सभा के बीच चलते हुए सत्य की दृढ़तापूर्वक घोषणा की।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

"जब अनुष्ठान के लिए सब कुछ तैयार हो जाता है और चंदा बैठकर प्रहार की प्रतीक्षा करती है,
पंचाल राजा की पुत्री सभा में उपस्थित सभी उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के बीच से गुजरी:
"यहाँ ब्राह्मण अपने छल से एक घृणित उद्देश्य की पूर्ति कर रहा है,
इसलिए, आशा है कि मेरे प्रिय प्रभु मुझे कुछ ही समय में पुनः प्राप्त कर लेंगे।
इस स्थान पर मौजूद सभी आत्माएं—भूत, जिन्न, परियां—मेरी बात सुनें।

मेरी आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन करो और मुझे मेरे स्वामी से मिला दो।
हे इस स्थान को सुशोभित करने वाले सभी देवताओं (देवदूतों), मैं आपके चरणों में नतमस्तक होता हूँ।
मेरी बेबसी में मेरी रक्षा करो, मेरी पुकार पर दया करो।"
देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने उसकी चीख सुनकर और जो कुछ हुआ था उसे देखकर लोहे का एक धधकता हुआ गोला उठाया और राजा को डराकर सभा को तितर-बितर कर दिया।

शिक्षक ने दृश्य का वर्णन किया है:

"एक दिव्य प्राणी ने पुकार सुनी और सही की मदद करने के लिए पृथ्वी पर आया।"
धधकते लोहे के पिंड को घुमाते हुए, अत्याचारी के हृदय में भय भर दिया,
"हे अत्याचारी, मुझे जानो कि मैं कौन हूँ; मेरे हथियार पर ध्यान दो,"
अपने निर्दोष बड़े बेटे को, जो युद्धक्षेत्र का शेर है, हानि न पहुँचाओ।
पृथ्वी पर ऐसा अपराध कहाँ देखा गया है, जिसमें तुम्हारे पुत्रों और उनकी पत्नियों को वध के लिए सौंप दिया गया हो?
आपके सभी श्रेष्ठ नागरिकों के साथ, जो मेरे सर्वोच्च स्वर्ग को भरने के योग्य हैं?
तब अत्याचारी और उसके मंत्री ने निर्दोष पीड़ितों को मुक्त कर दिया, और सारी भीड़ ने लाठी-पत्थर उठा लिए, और उन्मादपूर्ण उल्लास में आकर खंडाहाला को उसकी क्रूरता का तुरंत बदला लेने पर मजबूर कर दिया।

जब उन्होंने मंत्री की हत्या कर दी, तो विशाल भीड़ ने राजा को स्वयं मार डालने का प्रयास किया; परन्तु इंद्र ने उन्हें आलिंगन में ले लिया और उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। पर्चा ने निर्णय किया कि वे राजा को बख्श देंगे, "पर हम उन्हें इस नगर में शासन या निवास नहीं देंगे, हम उन्हें बहिष्कृत कर देंगे और इस नगर से बाहर उनका निवास स्थान तय करेंगे।" अतः उन्होंने राजा के राज वस्त्र उतार दिए और उन्हें पीले वस्त्र पहनाए, उनके सिर पर पीला कपड़ा डाला और उन्हें बहिष्कृत करके एक बहिष्कृत बस्ती में भेज दिया। और जिन लोगों ने किसी भी प्रकार से यज्ञ में सहायता की थी या उसका समर्थन किया था, वे सभी अपने हिस्से के रूप में नरक में गए।

शिक्षक ने यह श्लोक कहा:

"जिन लोगों ने ऐसा घिनौना काम किया, वे सीधे नरक में गए, कोई भी वहां से लौट नहीं सका।"
जिस किसी पर भी इस प्रकार के कलंक का जरा सा भी निशान हो, उसे स्वर्ग में परलोक ही प्राप्त होगा।
महान लोगों ने दुष्टता के उन दो राक्षसों को दृष्टि से ओझल करवाकर राज्याभिषेक की सामग्री लाई और राजकुमार चंदा का राजा के रूप में अभिषेक किया।

जब सभी कैदियों को रिहा कर दिया गया, तो एक विशाल सभा एकत्रित हुई।
भव्य धूमधाम और उत्सव के साथ चंदा को राजा के रूप में अभिषेक किया गया;
देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों की एक विशाल सभा ने कपड़े और झंडे लहराए और उनकी स्तुति में गीत गाए।
समृद्धि, शांति और सुखद दिनों के एक नए और खुशहाल शासनकाल की शुरुआत।
पुरुष, महिलाएं, देवी-देवता (देवदूत) सभी एक महान उत्सव में शामिल हुए।
हर घर में सुख और शांति का माहौल छा गया और हर कैदी को रिहा कर दिया गया।
बोधिसत्व ने अपने पिता की सभी ज़रूरतों का ध्यान रखा, लेकिन उन्हें नगर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। जब उनका सारा भत्ता समाप्त हो जाता था, तो वे बोधिसत्व के पास जाया करते थे, जब बोधिसत्व सार्वजनिक उद्यानों या अन्य सार्वजनिक कार्यक्रमों में मनोरंजन के लिए जाते थे। ऐसे समय में वे अपने पुत्र को प्रणाम करने के लिए हाथ नहीं जोड़ते थे, क्योंकि वे मन ही मन कहते थे, "मैं ही सच्चा राजा हूँ," बल्कि वे उन्हें संबोधित करते थे, "हे गुरु, दीर्घायु हों।" जब उनसे पूछा जाता था कि उन्हें क्या चाहिए, तो वे बता देते थे, और बोधिसत्व उन्हें वह राशि देने का आदेश देते थे।

जब गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त किया, तो उन्होंने आगे कहा, "भाइयों (भिक्षुओं), यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने केवल मेरे कारण अनेक लोगों को मारने का प्रयास किया है; उसने पहले भी ऐसा ही किया था।" फिर उन्होंने जन्म का विवरण दिया: "उस समय देवदत्त खंडाहल थे, महामाया (बुद्ध की दिवंगत माता) रानी गौतमी थीं, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) चंदा थीं, राहुल (बुद्ध के पुत्र) वासुला थे, उप्पलावन्न सेला थे, वाम वंश के कश्यप सूर थे, मोग्गल्याण चंदसेना थे, सारिपुत्र राजकुमार सूरिया थे और मैं स्वयं चंदराज था।"

फुटनोट:

(1) विद्वान आगे कहते हैं कि ये रानी गौतम के पुत्र थे, लेकिन शायद चंदा-सूरिया केवल एक ही नाम है; आगे देखें। अंतिम सारांश में दो राजकुमारों का विशेष रूप से उल्लेख और पहचान की गई है।

(2) क्या यह "चार" नहीं होना चाहिए?

(3) फिर वह छह छंदों को दोहराता है, "आइए हम खंडाहाला के गुलाम बनें," ..(और पहले जैसा ही)

(4) यह देखना दिलचस्प है कि गद्य में केवल एक ही राजकुमार है, लेकिन छंदों में दो राजकुमार प्रतीत होते हैं।

(5)चार रानियों, गृहस्थों, हाथियों, घोड़ों, बैलों और चार प्रकार के बलिदानों के पूर्ण बलिदान के बारे में छह श्लोक यहाँ छोड़ दिए गए हैं।

(6) यहां 15 छंदों को छोड़ दिया गया है, वे केवल दोहराते हैं

(7)इस श्लोक को चंदा के स्थान पर सूरिया नाम से दोहराया गया है।

(8)सं. 285

(9) छूटी हुई पंक्तियाँ दोहराई गईं

(10)तस्सु.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **भूरिदत्त-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----II-543-II----->>>> अगला

जातक क्रमांक 543
भूरिदत्त-जातक

“जो भी रत्न हों,” इत्यादि। यह कथा गुरुजी ने श्रावस्ती नगर में रहते हुए कुछ गृहस्थ भिक्षुओं के बारे में सुनाई, जो व्रत रखते थे। कहा जाता है कि एक व्रत के दिन वे सुबह जल्दी उठे, व्रत धारण किया, दान दिया और भोजन के बाद अपने हाथों में इत्र और मालाएँ लेकर जेतवन मठ गए, और धर्ममार्ग का उपदेश सुनने के समय एक तरफ बैठ गए। गुरुजी सत्य के हॉल में आकर, सजे हुए बुद्ध-आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं की सभा को देखने लगे। तथागत (बुद्ध) भिक्षुओं या अन्य लोगों में से उन लोगों से बात करना पसंद करते हैं, जिनके संदर्भ में कोई धार्मिक प्रवचन होता है; इसलिए उस अवसर पर, क्योंकि वे जानते थे कि इन गृहस्थ भिक्षुओं के संबंध में पूर्व शिक्षकों के बारे में एक धार्मिक प्रवचन होगा, उनसे बातचीत करते समय उन्होंने उनसे पूछा, “हे गृहस्थ भिक्षुओं, क्या आप व्रत रखते हैं?” उनके सकारात्मक उत्तर देने पर उन्होंने कहा, "हे गृहस्थ भाइयों, यह उचित और सराहनीय है; परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि आप, जिनके पास मुझ जैसा बुद्ध गुरु है, व्रत रखते हैं। प्राचीन काल के ऋषि, जिनके पास कोई गुरु नहीं था, उन्होंने भी महान यश का त्याग कर व्रत रखा था।" और ऐसा कहकर उन्होंने उनके अनुरोध पर अतीत की एक पुरानी कथा सुनाई।

एक समय की बात है, ब्रह्मदत्त बनारस में राज्याभिषेक कर रहे थे, उन्होंने अपने पुत्र को वायसराय बनाया था; परन्तु जब उन्होंने अपने पुत्र की अपार ख्याति देखी, तो उन्हें संदेह हुआ कि कहीं वह भी राज्य पर कब्जा न कर लें। अतः उन्होंने अपने पुत्र से कहा, “तुम यहाँ से चले जाओ और जहाँ चाहो वहाँ निवास करो, और मेरी मृत्यु के बाद वंशानुगत राज्य ग्रहण कर लेना।” राजकुमार ने आज्ञा का पालन किया और अपने पिता को प्रणाम करके यमुना नदी की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने नदी और समुद्र के बीच पत्तों की एक कुटिया बनाई और वहीं रहने लगे, जड़ और फल खाकर अपना जीवन यापन करने लगे। उसी समय, समुद्र के नीचे नागलोक में रहने वाली एक युवती, जिसका पति मर चुका था और जिसने अपने कामुक आवेगों के कारण अन्य नागों को उनके पतियों के साथ सुखी देखकर नागलोक छोड़ दिया था, समुद्र तट पर भटक रही थी। तभी उसने राजकुमार के पदचिह्न देखे और उनका अनुसरण करते हुए पत्तों की कुटिया देखी। संयोगवश, राजकुमार विभिन्न प्रकार के फलों की खोज में बाहर गए हुए थे। वह कुटिया में दाखिल हुई और लकड़ी का पलंग और बाकी फर्नीचर देखकर मन ही मन सोचने लगी, "यह किसी तपस्वी का निवास स्थान है। मैं इसकी परीक्षा लूंगी कि यह

आस्थावान तपस्वी है या नहीं। यदि यह आस्थावान तपस्वी है और आत्म-त्यागी है, तो यह मेरे सजे हुए पलंग को स्वीकार नहीं करेगा; लेकिन यदि यह हृदय से सुखप्रिय है और आस्थावान तपस्वी नहीं है, तो यह मेरे पलंग पर लेटेगा; तब मैं इसे अपना पति बना लूंगी और यहीं निवास करूंगी।" अतः वह नागलोक लौट गई और दिव्य फूल और सुगंधित पदार्थ एकत्र करके फूलों का पलंग सजाया। फूलों की आहुति देकर और सुगंधित पाउडर छिड़ककर कुटिया को सजाकर वह नागलोक चली गई। जब राजकुमार शाम को लौटा और कुटिया में दाखिल हुआ, और उसने जो कुछ किया था, उसे देखकर उसने कहा, "यह पलंग किसने सजाया है?" जब उसने तरह-तरह के फल खाए, तो वह बोला, "ओह, ये मीठी सुगंध वाले फूल, ये बिस्तर कितना सुंदर सजाया गया है!" और प्रसन्नता से भर उठा, क्योंकि वह हृदय से सच्चा तपस्वी नहीं था, इसलिए वह फूलों के बिस्तर पर लेट गया और गहरी नींद सो गया। अगले दिन वह सूर्योदय के समय उठा और अपनी कुटिया से पत्तों की सफाई किए बिना ही फल इकट्ठा करने चला गया। उसी क्षण नाग स्त्री आई और मुरझाए हुए फूलों को देखकर तुरंत समझ गई, "यह व्यक्ति सुख का प्रेमी है, आस्थावान तपस्वी नहीं; मैं इसे पकड़ लूंगी"; इसलिए उसने पुराने फूल ले लिए और नए फूल लाकर एक नया बिस्तर बिछाया, कुटिया को पत्तों से सजाया और ढके हुए रास्ते में फूल आदि बिखेर दिए और फिर नागलोक लौट गई। उसने उस रात भी उसी फूलों के बिस्तर पर विश्राम किया और अगले दिन मन ही मन सोचा, "इस कुटिया को कौन सजा रहा है?" इसलिए वह फल इकट्ठा करने नहीं निकला, बल्कि कुटिया से कुछ दूर छिपा रहा। नाग स्त्री, इत्र और फूल इकट्ठा करके, आश्रम के रास्ते पर आई। नाग की अपार सुंदरता को देखकर राजकुमार तुरंत उससे प्रेम करने लगा, औरबिना किसी को दिखाई दिए, वह उस झोपड़ी में दाखिल हुआ जब वह पलंग तैयार कर रही थी और उससे पूछा कि वह कौन है। "हे स्वामी, मैं एक नाग स्त्री हूँ।" "क्या तुम्हारा कोई पति है?" "मैं विधवा हूँ, मेरा कोई पति नहीं है; और तुम कहाँ रहती हो?" "मैं बनारस के राजा का पुत्र ब्रह्मदत्तकुमार हूँ; लेकिन तुम नागों का निवास छोड़कर क्यों भटक रही हो?" "हे स्वामी, मैंने अन्य नाग स्त्रियों को पतियों के साथ सुखी देखकर कामुक भावनाओं से असंतुष्ट होकर यहाँ से चली आई और पति की तलाश में भटक रही हूँ।" "मैं भी आस्था से संन्यासी नहीं हूँ, लेकिन मैं यहाँ रहने आई हूँ क्योंकि मेरे पिता ने मुझे घर से निकाल दिया था; चिंता मत करो, मैं तुम्हारा पति बनूँगा और हम यहाँ सद्भाव से रहेंगे।" उसने तुरंत सहमति दे दी; और तब से वे वहाँ सद्भाव से साथ रहने लगे। अपनी जादुई शक्ति से उसने एक आलीशान घर बनवाया और एक कीमती पलंग लाकर बिस्तर बिछाया। तब से वह न तो जड़ वाली सब्जियां खाता था और न ही फल, बल्कि दिव्य मांस और पेय का सेवन करता था। कुछ समय बाद वह गर्भवती हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सागर-ब्रह्मदत्त रखा गया। जब बच्चा चलने-फिरने लायक हुआ, तो उसने एक पुत्री को जन्म दिया, और क्योंकि वह समुद्र तट पर पैदा हुई थी, इसलिए उसका नाम समुद्दजा रखा गया। बनारस में रहने वाला एक वनपाल उस स्थान पर आया, और प्रणाम करने पर उसने राजकुमार को पहचान लिया। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद उसने कहा, "महाराज, मैं राजा के परिवार को बता दूँगा कि आप यहाँ रह रहे हैं," और वह तदनुसार शहर चला गया। उसी समय राजा का निधन हो गया, और मंत्रियों ने उसे दफना देने के बाद सातवें दिन एकत्रित होकर विचार-विमर्श किया, "राजा के बिना राज्य नहीं चल सकता; हमें नहीं पता कि राजकुमार कहाँ रहता है और न ही पता है कि वह जीवित है या मृत, हम उत्सव रथ भेजेंगे और इस प्रकार एक राजा प्राप्त करेंगे।" उसी समय वनपाल शहर आया, और समाचार सुनकर मंत्रियों के पास गया और उन्हें बताया कि वहाँ आने से पहले वह तीन-चार दिन राजकुमार के पास ही रहा था। मंत्रियों ने उनका आदर किया और उनके मार्गदर्शन में वहाँ गए, और सौहार्दपूर्ण अभिवादन के बाद राजकुमार को बताया कि राजा की मृत्यु हो गई है और उनसे राज्य संभालने का अनुरोध किया। राजकुमार ने मन ही मन सोचा, "मैं नाग स्त्री का विचार जानूँगा"; इसलिए वह उनके पास गए और बोले, "देवी, मेरे पिता की मृत्यु हो गई है और उनके मंत्री मुझे राजसी छत्रछाया देने आए हैं; आइए हम चलें और हम दोनों बारह योजन के क्षेत्र में बनारस पर शासन करेंगे, और आप सोलह हजार रानियों में प्रमुख होंगी।" "महाराज, मैं नहीं जा सकती।" "क्यों?" "हमारे पास घातक विष है और हम छोटी-छोटी बातों पर आसानी से क्रोधित हो जाते हैं; और सौतन का क्रोध एक गंभीर बात है; यदि मैं कुछ देख या सुन लूँ और उस पर क्रोधित दृष्टि डालूँ, तो वह पल भर में भूसे की तरह बिखर जाएगा; इसलिए मैं नहीं जा सकती।" राजकुमार ने अगले दिन उनसे फिर पूछा; और तब उन्होंने कहा, "मैं स्वयं किसी भी कीमत पर नहीं जाऊँगी।"लेकिन ये मेरे पुत्र युवा नाग नहीं हैं; क्योंकि ये तुम्हारे बच्चे हैं, इसलिए मनुष्य जाति के हैं; यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो, तो इनकी रक्षा करना। लेकिन क्योंकि ये जलीय स्वभाव के हैं और इसलिए नाज़ुक हैं, यदि ये सड़क मार्ग से जाएँगे और हवा और धूप का भार सहन करेंगे तो मर जाएँगे; इसलिए मैं एक नाव खोखली करके उसमें पानी भर दूँगा, और तुम उन्हें पानी में खेलने देना और जब तुम उन्हें शहर ले आओ, तो महल परिसर में एक झील तैयार करवाना। इस तरह उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा।" ये कहकर, राजकुमार को प्रणाम करके और उनके चारों ओर आदरपूर्वक परिक्रमा करके, उन्होंने अपने पुत्रों को गले लगाया और उन्हें अपनी छाती से लगा लिया, उनके सिर चूमे और उन्हें राजकुमार को सौंप दिया, और बहुत आँसू बहाते हुए और सिसकते हुए तुरंत नागलोक चली गईं। राजकुमार भी दुःख से व्याकुल होकर, आँखों में आँसू भरकर घर से बाहर निकले और आँखें पोंछकर मंत्रियों के पास गए, जिन्होंने कहा, "महाराज, चलिए अपने नगर चलते हैं।" उन्होंने उन्हें एक नाव खोखली करके उसे एक गाड़ी पर रखकर पानी से भरने का आदेश दिया। "पानी की सतह पर विभिन्न रंगों और सुगंधों के फूल बिखेर दो, क्योंकि मेरे पुत्रों का स्वभाव जलीय है और वे वहाँ आनंदपूर्वक खेलते हुए बहेंगे"; और मंत्रियों ने ऐसा ही किया। जब राजा बनारस पहुँचे तो उन्होंने सजे-धजे नगर में प्रवेश किया और सोलह हजार नर्तकियों, अपने मंत्रियों और अन्य अधिकारियों से घिरे हुए चबूतरे पर बैठ गए; और सात दिनों तक एक भव्य भोज आयोजित करने के बाद, उन्होंने अपने पुत्रों के लिए एक झील तैयार करवाई, जहाँ वे वे लगातार खेलते-कूदते रहते थे। लेकिन एक दिन जब झील में पानी छोड़ा गया, तो एक कछुआ उसमें घुस गया, और बाहर निकलने का कोई रास्ता न देखकर वह पानी की सतह पर तैरने लगा; और जब लड़के खेल रहे थे, तो वह पानी से बाहर निकला और अपना सिर बाहर निकालकर उन्हें देखा और फिर पानी में डूब

गया। जब उन्होंने उसे देखा तो वे डर गए और अपने पिता के पास दौड़े और उनसे कहा, "हे पिता, एक यक्ष (राक्षस) ने हमें झील में डरा दिया है।" राजा ने कुछ आदमियों को उसे पकड़ने का आदेश दिया, और उन्होंने जाल फेंककर कछुए को पकड़ लिया और राजा को इसके बारे में बताया। जब राजकुमारों ने उसे देखा, तो वे चिल्लाए, "हे पिता, यह एक राक्षस है।" राजा अपने बेटों के प्रेम के कारण कछुए पर क्रोधित हो गए, और सेवकों को उसे दंडित करने का आदेश दिया। कुछ ने कहा, "यह राजा का शत्रु है, इसे ओखली और मूसल से पीसकर चूर-चूर कर देना चाहिए," दूसरों ने कहा, "चलो इसे तीन बार पकाकर खा लें," दूसरों ने कहा, "इसे गर्म कोयलों पर सेंकें," दूसरों ने कहा, "इसे... "इसे एक बर्तन में पकाकर खाया जाए"; लेकिन एक मंत्री, जो पानी से डरता था, बोला, "इसे यमुना के भंवर में फेंक देना चाहिए, यह वहाँ पूरी तरह नष्ट हो जाएगा, इसके लिए ऐसा कोई दंड नहीं है।" कछुए ने उसकी बात सुनकर अपना सिर बाहर निकाला और बोला, "मित्र, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है कि तुम मेरे लिए ऐसे दंड की बात कर रहे हो? बाकी दंड तो मैं सह सकता हूँ।"लेकिन यह आखिरी वाला तो हद से ज्यादा क्रूर है, इसका जिक्र तक मत करो।" जब राजा ने उसकी बात सुनी, तो उसने कहा, "इसी को कार्रवाई में लाना है," इसलिए उसने उसे यमुना के भंवर में फेंकने का आदेश दिया; वहाँ उसे एक धारा मिली जो नागों के निवास स्थान की ओर जाती थी, और वह उसी धारा से उनके स्थान पर चला गया। उस समय नाग राजा धतरत्थ (*1) के कुछ युवा पुत्र उस धारा में खेल रहे थे, और जब उन्होंने उसे देखा तो वे चिल्लाए, "उस दास को पकड़ो।" कछुए ने सोचा, "मैं बनारस के राजा के हाथों से बचकर इन क्रूर नागों के हाथों में आ गया हूँ; मैं कैसे बच निकलूँ?" फिर उसने एक योजना सोची, और एक झूठी कहानी बनाकर उसने उनसे कहा, "तुम लोग जो राजा धतरत्थ के दरबारी हो, इस तरह क्यों बोल रहे हो? मैं चित्तकुला नाम का एक कछुआ हूँ, और मैं बनारस के राजा का दूत बनकर धतरत्थ के पास आया हूँ; "हमारे राजा ने मुझे भेजा है क्योंकि वे अपनी पुत्री का विवाह राजा धतरत्थ से करना चाहते हैं, मुझे उनसे मिलवाइए," और वे प्रसन्न होकर उसे ले गए और राजा के पास जाकर सारी बात समझाई। राजा ने उन्हें उसे लाने का आदेश दिया; परन्तु उसे देखकर अप्रसन्न हुए और बोले, "ऐसे तुच्छ शरीर वाले दूत नहीं बन सकते।" यह सुनकर कछुए ने अपने गुणों का बखान करते हुए उत्तर दिया, "राजा को ताड़ के वृक्ष जितने ऊँचे दूतों की क्या आवश्यकता है? छोटा शरीर हो या बड़ा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, असली बात तो यह है कि जहाँ भेजा जाए वहाँ कार्य को पूरा करने की क्षमता हो। हे महाराज, हमारे राजा के पास अनेक दूत हैं; मनुष्य अपना काम सूखी भूमि पर करते हैं, पक्षी हवा में और मैं जल में, क्योंकि मैं चित्तकुला नामक राजा का प्रिय हूँ और मेरा एक विशेष पद है, मेरा उपहास मत करो।" तब राजा धतरत्थ ने उससे पूछा कि उसे राजा ने क्यों भेजा है, और उसने उत्तर दिया, "राजा ने मुझसे कहा कि उसने जंबुद्वीप (भारत) के सभी राजाओं से मित्रता कर ली है, और अब वह नाग राजा धतरत्थ से मित्रता करने के लिए अपनी पुत्री समुद्दजा को देना चाहता है; ये कहकर उसने मुझे भेजा, और तुम भी देर न करो, तुरंत मेरे साथ एक दल भेजो और दिन तय करके लड़की को ले आओ।" राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसका बहुत सम्मान किया और उसके साथ चार नाग युवकों को भेजा, और उनसे कहा कि राजा की बात सुनकर एक दिन तय कर लें और फिर लौट आएं। वे कछुए को अपने साथ लेकर नागों के निवास से चले गए। कछुए ने यमुना और बनारस के बीच एक कमल-कुंड देखा, और किसी चतुराई से भागने की इच्छा से उसने कहा, "हे नाग युवकों, हमारे राजा, उनकी रानी और पुत्र ने मुझे राजा के महल जाते समय पानी से निकलते हुए देखा था, और उन्होंने मुझसे कुछ कमल और कमल की जड़ें मांगी थीं; मैं उनके लिए कुछ इकट्ठा कर लूंगा; मुझे यहीं जाने दो, और अगर तुम मुझे न देखो, तो राजा के पास चले जाना, मैं तुमसे वहीं मिलूंगा।" उन्होंने उस पर विश्वास किया और उसे जाने दिया, और वह छिप गया; और बाकी लोग, क्योंकि वे उसे देख नहीं पाए, उन्होंने सोचा कि वह राजा के पास चला गया होगा।और वे युवकों के वेश में महल की ओर चल पड़े। राजा ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उनसे पूछा कि वे कहाँ से आए हैं। "महाराज, धतरत्थ से।" "किसलिए?" "हे महाराज, हम उनके दूत हैं; धतरत्थ आपकी कुशलक्षेम पूछते हैं और आपकी हर इच्छा पूरी करेंगे; और वे आपसे निवेदन करते हैं कि आप हमें अपनी पुत्री समुद्दजा को उनकी रानी के रूप में दे दें।" इसे समझाने के लिए उन्होंने पहला श्लोक दोहराया:

धतरत्था के महल में जो भी गहने संग्रहित हों,
ये सब आपके हैं, उनका शाही वरदान; हमें अपनी पुत्री हमारे स्वामी के लिए दे दीजिए।"
जब राजा ने यह सुना तो उसने दूसरे श्लोक में उत्तर दिया:

"आज तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखा गया जिसने अपनी बेटी का विवाह नाग राजा से किया हो।"
ऐसे मुकाबले बिल्कुल अनुपयुक्त थे, हम ऐसी बात सोच भी कैसे सकते थे?
युवकों ने उत्तर दिया, "यदि धतरत्था के साथ गठबंधन आपको इतना अनुचित लगता है, तो आपने अपने सेवक कछुए चित्तकुला को हमारे राजा के पास अपनी पुत्री समुद्दजा को देने की पेशकश करने के लिए क्यों भेजा? ऐसा संदेश भेजने के बाद अब आप हमारे राजा का अपमान कर रहे हैं, तो हम जानते हैं कि आपके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने धमकी भरे लहजे में दो श्लोक कहे:

"हे राजा, यदि तुम अपना प्राण बलिदान कर दो, तो तुम्हारा सिंहासन और राज्य क्या हैं?"
क्रोधित नाग के सामने समस्त नश्वर वैभव मिट जाता है;
तुम एक बेचारे नश्वर प्राणी हो जो वहाँ खड़े हो, और अपने अहंकार (आत्मप्रेम) के कारण बर्बाद हो गए।
वह राजा वरुण के शाही पुत्र यमुना को तिरस्कार भरी दृष्टि से देखेगा (*2)।"

फिर राजा ने दो छंद दोहराए:

मैं तुम्हारे उस राजा, धतरत्था, जो व्यापक रूप से प्रसिद्ध है, का अपमान नहीं करता।
वह कई नागों का राजा है, वह अधिकार से राजसी मुकुट धारण करता है;
लेकिन चाहे वह कितना भी महान और श्रेष्ठ क्यों न हो, वह विदेह के क्षत्रिय वंश से आया था।
मेरी बेटी का वंश शुद्ध है, उसे मेरी संतान का सपना भी नहीं देखना चाहिए।
हालांकि नागा युवकों की इच्छा थी कि वे उसे अपनी सांसों के झोंके से वहीं मार डालें, फिर भी उन्होंने सोचा कि चूंकि उन्हें विवाह का दिन तय करने के लिए भेजा गया था, इसलिए उस व्यक्ति को मरा हुआ छोड़कर चले जाना उचित नहीं होगा; इसलिए वे तुरंत आंखों से ओझल हो गए और बोले, "हम चले जाएंगे और राजा को बता देंगे।" उनके राजा ने उनसे पूछा कि क्या वे राजकुमारी को लाए हैं। वे क्रोधित होकर बोले, "हे राजा, आप हमें बिना कारण इधर-उधर क्यों भेज रहे हैं? यदि आप हमें मारना चाहते हैं, तो हमें यहीं मार डालिए। यह आपका अपमान और मानहानि करता है, और अपने जन्म के अहंकार में अपनी बेटी को सर्वोच्च स्थान पर बिठाता है।" इस प्रकार कही और अनकही बातों को दोहराते हुए उन्होंने राजा के क्रोध को भड़का दिया। राजा ने उन्हें अपनी सेना को इकट्ठा करने का आदेश देते हुए कहा:

"असतारस और कंबालास (*3), सभी नागाओं को बुलाओ;
उन्हें बनारस की ओर जाने दो, लेकिन किसी को भी, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, कोई नुकसान न पहुंचाओ।
तब नागों ने उत्तर दिया, "यदि किसी को हानि नहीं पहुँचानी है, तो यदि हम वहाँ जाएँ तो हम क्या करेंगे?" उसने दो श्लोकों में उन्हें बताया कि उन्हें क्या करना है और वह स्वयं क्या करेगा:

पानी की टंकियों और महलों के ऊपर, सार्वजनिक सड़कों और पेड़ों की चोटियों पर,
प्रवेश द्वारों के ऊपर मालाओं के रूप में सजी हुई लटकनें हवा में लहराती रहें;
मैं श्वेत शरीर और श्वेत हुड पहनकर पूरे शहर को हथियारों से लैस कर दूंगा।
और अपनी घेराबंदी की रेखाओं को और करीब लाते हुए, प्रत्येक काशी के हृदय में भय भर दूं।"
नागों ने ऐसा ही किया। शिक्षक ने जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस प्रकार किया:

चारों ओर सांपों को देखकर, महिलाएं कांपती हुई भीड़ में जमा हो गईं।
और जैसे ही राक्षस भय से अपने फन फुलाते हैं, वे चीखते और विलाप करते हैं;
बनारस शहर इन हिंसक आक्रमणकारी गिरोहों के सामने नतमस्तक हो गया।
सभी ने हाथ उठाकर विनती और प्रार्थना की, "उसे वह बेटी दे दो जिसकी वह मांग कर रहा है।"
जब राजा पलंग पर लेटे थे, तब उन्होंने अपनी पत्नियों और नागरिकों के विलाप सुने। चारों युवकों की धमकियों से मृत्यु के भय से वे तीन बार बोले, "मैं धतरत्थ को अपनी पुत्री समुद्दजा दे दूंगा।" यह सुनकर सभी नाग राजा एक मील (4.23 किमी) दूर चले गए और वहाँ अपना डेरा डालकर देवताओं (देवदूतों) का एक भव्य नगर बनाया तथा एक भेंट भेजकर कहा, "जैसा वह कहता है, अपनी पुत्री भेज दे।" राजा ने भेंट प्राप्त कर उसे लाने वालों को यह कहकर विदा किया, "तुम लोग जाओ, मैं अपनी पुत्री को अपने मंत्रियों के हाथों भेज दूंगा।" फिर उन्होंने अपनी पुत्री को बुलवाया और उसे छत पर ले जाकर एक खिड़की खोली और उससे कहा, "पुत्री, इस सजे-धजे नगर को देखो; कहते हैं कि तुम वहाँ के एक राजा की मुख्य रानी बनोगी। नगर दूर नहीं है, जब तुम्हें घर की याद आए तो तुम वापस आ सकती हो, लेकिन अभी तुम्हें वहाँ जाना होगा।" फिर उसने परिचारकों से राजकुमारी का सिर धुलवाया और उसे हर तरह के आभूषणों से सजाया, उसे एक रथ में बिठाया और अपने मंत्रियों की देखरेख में विदा किया। नाग राजा उससे मिलने आए और उसका भव्य आदर किया। मंत्री नगर में गए और राजकुमारी को सौंप कर बहुत सारा धन लेकर लौट आए। राजकुमारी को महल में ले जाया गया और दिव्य रूप से सजे पलंग पर लिटाया गया; और नाग कन्याओं ने कुबड़ी और अन्य विकृत आकृतियाँ धारण करके उसकी सेवा की, मानो वे मानव परिचारिकाएँ हों। जैसे ही वह दिव्य पलंग पर लेटी, उसे एक दिव्य कोमल स्पर्श का अनुभव हुआ और वह सो गई। धतरत्थ ने राजकुमारी को ग्रहण करने के बाद अपने समस्त दल के साथ तुरंत गायब होकर नाग लोक में प्रवेश किया। जब राजकुमारी जागी और उसने सुशोभित स्वर्गीय पलंग, सोने और रत्नों से जड़े महल आदि, उद्यान, तालाब और नागलोक को देखा, जो स्वयं देवताओं (देवदूतों) के एक सुशोभित नगर के समान था, तो उसने कुबड़ा और अन्य परिचारिकाओं से पूछा, "यह नगर कितना भव्य रूप से सुशोभित है, यह हमारे नगर जैसा नहीं है; यह किसका है?" "हे देवी, यह आपके स्वामी का है, यह कम गुणों वाले लोगों को नहीं मिलता, आपने इसे अपने महान गुणों के कारण प्राप्त किया है।" तब धतरत्थ ने नाग नगर में, जो पाँच सौ योजन में फैला हुआ था, ढोल बजाने का आदेश दिया और यह घोषणा की कि जो कोई भी समुद्दजा के सामने अपने सर्प स्वरूप का कोई भी संकेत प्रकट करेगा, उसे दंडित किया जाएगा; इसलिए किसी ने भी उसके सामने सर्प के रूप में प्रकट होने का साहस नहीं किया। अतः वह इस विचार के साथ उसके साथ स्नेहपूर्वक और सद्भाव से रहने लगी कि यह मनुष्यों का लोक है (*4)।

II.

समय बीतने पर धतरत्थ की रानी गर्भवती हुई और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसके सुंदर रूप के कारण उन्होंने उसका नाम सुदस्सन रखा। फिर उसने एक और पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम दत्ता रखा गया, जो एक बोधिसत्व था। फिर उसने एक और पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सुभागा रखा गया, और चौथे पुत्र को अरित्था नाम दिया गया। इन चारों पुत्रों को जन्म देने के बावजूद, वह यह नहीं जानती थी कि यह नागों का लोक है। लेकिन एक दिन उन्होंने अरित्था से कहा, "तुम्हारी माता एक स्त्री है, नाग नहीं।" अरित्था ने मन ही मन कहा, "मैं इसे सिद्ध करूँगा।" इसलिए एक दिन अपनी माता का दूध पीते हुए उसने सर्प का रूप धारण कर लिया और अपनी पूंछ से उसके पैर के पिछले हिस्से पर प्रहार किया। जब उसकी माता ने उसका सर्प रूप देखा, तो वह भय से चीख उठी और उसे जमीन पर पटक दिया, और अपने नाखून से उसकी आंख पर प्रहार किया जिससे खून बहने लगा। राजकुमारी की चीख सुनकर राजा ने पूछा कि वह क्यों चिल्लाई। जब उसे अरित्था की करतूत का पता चला, तो वह धमकी देते हुए बोला, "इस दास को पकड़ो और मार डालो।" राजकुमारी, राजा के क्रोधी स्वभाव को जानते हुए, अपने पुत्र के प्रति प्रेम से बोली, "हे स्वामी, मैंने अपने पुत्र की आँख पर प्रहार किया है, कृपया उसे क्षमा कर दीजिए।" यह सुनकर राजा ने कहा, "मैं क्या करूँ?" और उसे क्षमा कर दिया। उसी दिन राजकुमारी को पता चला कि यह नागों का जीवन-यातना था, और तब से अरित्था को हमेशा कनारित्था (या एक आँख वाला अरित्था) कहा जाने लगा।

अब चारों राजकुमार समझदार हो गए। तब उनके पिता ने उन्हें सौ योजन वर्ग का एक-एक राज्य दिया; वे महान वैभवशाली थे और प्रत्येक की सेवा में सोलह हजार नाग कन्याएँ विराजमान थीं। अब उनके पिता का राज्य केवल सौ योजन वर्ग का था और तीनों पुत्र हर महीने अपने माता-पिता से मिलने जाते थे। परन्तु बोधिसत्व हर पखवाड़े जाते थे और नागलोक में उठे किसी प्रश्न का उत्तर देते थे और फिर अपने पिता के साथ महान राजा विरुपाक्खा (*5) से मिलने जाते थे, जहाँ वे उनसे उस प्रश्न पर चर्चा करते थे। एक दिन जब विरुपाक्खा नाग सभा के साथ देवताओं (देवदूतों) के लोक में गए और वहाँ सक्का (इंद्र) की सेवा में बैठे थे, तब देवताओं (देवदूतों) के बीच एक प्रश्न उठा जिसका उत्तर कोई नहीं दे सका, परन्तु महान सिंहासन पर विराजमान उस महान सत्ता ने उसका उत्तर दिया। तब देवताओं (देवदूतों) के राजा ने उन्हें दिव्य फूलों और फलों से सम्मानित किया और उनसे कहा, "हे दत्ता, आप पृथ्वी के समान विशाल बुद्धि से संपन्न हैं; अब से आपको भूरिदत्त कहा जाए," और उन्होंने उन्हें यह नाम दिया।

उस समय से वह सक्का (इंद्र) को प्रणाम करने जाया करता था, और जब वह उनके दरबार की अत्यंत मनमोहक भव्यता और अप्सराओं को देखता, तो उसे स्वर्गलोक की याद आती, "इस मेंढक खाने वाले नाग-स्वरूप से मेरा क्या लेना-देना? मैं नागलोक लौट जाऊंगा और व्रत रखूंगा तथा उन नियमों का पालन करूंगा जिनसे देवदूतों में जन्म प्राप्त होता है।" इन्हीं विचारों के साथ नागलोक लौटते समय उसने अपने माता-पिता से कहा, "हे मेरे पिता और माता, मैं व्रत रखूंगा।" "हे पुत्र, अवश्य रखो; परन्तु व्रत रखते समय बाहर मत जाना, बल्कि नागलोक के इस एक खाली महल में ही रखना, क्योंकि बाहर नागों का भय है।" उसने स्वीकार कर लिया; अतः उसने खाली महल के उद्यानों और बगीचों में ही व्रत रखा। लेकिन नाग कन्याएँ अपने वाद्ययंत्रों के साथ उसकी सेवा करती रहीं, और उसने मन ही मन सोचा, "यदि मैं यहाँ रहूँगा तो मेरा व्रत कभी पूरा नहीं होगा, मैं मनुष्यों के निवास स्थान पर जाकर व्रत रखूँगा।" इसलिए बाधा के भय से उसने अपने माता-पिता को बताए बिना अपनी पत्नी से कहा, "हे देवी, यदि मैं मनुष्यों के निवास स्थान पर जाऊँ तो यमुना के किनारे एक बरगद का वृक्ष है, मैं पास ही एक चींटी के टीले की चोटी पर अपने शरीर को समेट लूँगा और व्रत के चारों भागों (*6) के साथ व्रत रखूँगा, और वहाँ लेटकर व्रत रखूँगा; और जब मैं वहाँ रात भर विश्राम कर लूँ और व्रत रख लूँ तो आपकी दस स्त्रियाँ हर सुबह वाद्ययंत्रों के साथ आएँ, और मुझे इत्र और फूलों से सजाकर गीत और नृत्य करते हुए नागों के निवास स्थान पर वापस ले जाएँ।" इन शब्दों के साथ वह गया और चींटियों के टीले के ऊपर अपना शरीर समेट लिया, और ज़ोर से कहते हुए, "जो चाहे मेरी खाल, मांस, हड्डियाँ या खून ले ले," उसने चार भागों वाले उपवास का व्रत लिया और लेट गया, केवल सिर और पूंछ वाले शरीर को धारण करके, और उपवास रखा। भोर होते ही नाग कन्याएँ आईं, और जैसा उन्हें आदेश दिया गया था, उन्होंने उसे नागों के निवास स्थान पर ले गईं; और जब वह इस प्रकार उपवास रख रहा था, तब तक एक लंबा समय बीत गया (*7)।

III.

उस समय बनारस के द्वार के पास एक गाँव में रहने वाला एक ब्राह्मण (*8) अपने पुत्र सोमदत्त के साथ जंगल में जाकर फंदे, जाल और खूंटे गाड़कर जंगली जानवरों का शिकार करता था और उनका मांस डंडे पर लादकर बेचता था, जिससे उसकी आजीविका चलती थी। एक दिन वह एक छोटी छिपकली भी नहीं पकड़ पाया, और उसने अपने पुत्र से कहा, "अगर हम खाली हाथ घर लौटेंगे तो तुम्हारी माँ क्रोधित हो जाएँगी, चलो कुछ तो पकड़ लें"; अतः वह उस चींटी के टीले की ओर गया जहाँ बोधिसत्व लेटे हुए थे, और यमुना में पानी पीने जा रहे हिरण के पदचिह्नों को देखकर उसने कहा, "पुत्र, यह हिरणों का निवास स्थान है, तुम वापस जाकर प्रतीक्षा करो, मैं पानी पीने आए किसी हिरण को घायल कर देता हूँ"; अतः वह अपना धनुष लेकर एक वृक्ष के नीचे हिरण की प्रतीक्षा करने लगा। शाम के समय एक हिरण पानी पीने आया, उसने उसे घायल कर दिया; लेकिन वह तुरंत नहीं गिरा, बल्कि तीर के बल से प्रेरित होकर खून बहते हुए भाग गया। पिता और पुत्र उसका पीछा करते हुए उस स्थान तक पहुँचे जहाँ वह गिरा था, उसका मांस उठाया और जंगल से निकलकर

सूर्यास्त के समय उस बरगद के पेड़ पर पहुँचे। "यह सही समय नहीं है, हम आगे नहीं जा सकते, हम यहीं रुकेंगे," ऐसा कहकर उन्होंने मांस को एक तरफ रख दिया और पेड़ पर चढ़कर शाखाओं के बीच लेट गए। ब्राह्मण भोर में जागा और हिरण की आवाज सुनने के लिए उत्सुक था, तभी नाग कन्याएँ आईं और बोधिसत्व के लिए पुष्पमय पलंग तैयार किया। उन्होंने अपना सर्प शरीर त्याग दिया और सभी प्रकार के आभूषणों से सजे दिव्य शरीर को धारण करके एक सक्का (इंद्र) के रूप में अपने पुष्पमय पलंग पर विराजमान हो गए।

नाग कन्याओं ने उन्हें इत्र और मालाओं से सम्मानित किया, अपने दिव्य वाद्ययंत्र बजाए और नृत्य-गीत प्रस्तुत किए। जब ब्राह्मण ने यह आवाज़ सुनी तो उसने कहा, "यह कौन है? मैं पता लगाता हूँ"; और उसने अपने पुत्र को पुकारा, परन्तु पुकारने पर भी वह नहीं जागा। "उसे सोने दो, वह थका हुआ है, मैं स्वयं अकेला जाता हूँ"; अतः वह वृक्ष से नीचे उतरा और पास पहुँचा, परन्तु नाग कन्याओं ने उसे देखकर अपने सभी वाद्ययंत्रों सहित पृथ्वी में समाहित हो गईं और नागों के निवास स्थान पर चली गईं, और बोधिसत्व अकेले रह गए। ब्राह्मण ने पास खड़े होकर उनसे इन दो श्लोकों में प्रश्न किया:

"यह लाल आंखों वाला युवक कौन है, जो यहां दिखाई दे रहा है?"
उसके कंधे चौड़े थे और उनके बीच पर्याप्त जगह थी।
और ये दस लड़कियां जो उसकी रक्षा करती हैं, वे क्या हैं?
सुंदर वस्त्रों से सजी, सोने के कंगन पहने हुए!
इस हरे-भरे जंगल के बीच तुम कौन हो?
क्या यह आग की तरह चमकदार है जिसे अभी-अभी घी से सजाया गया हो?
क्या आप सक्का (इंद्र) हैं या यक्ष (राक्षस), मान लीजिए?
या फिर कोई प्रख्यात नाग राजकुमार, जिसका प्रभाव बहुत अधिक हो?
जब उस महान प्राणी ने उसकी बात सुनी तो उसने सोचा, "अगर मैं कहूँ कि मैं सक्कों (इंद्रों) में से एक हूँ तो वह मुझ पर विश्वास कर लेगा, क्योंकि वह एक ब्राह्मण है; लेकिन मुझे आज केवल सच ही बोलना है," इसलिए उसने अपने नाग जन्म की कहानी इस प्रकार सुनाई:

"मैं शक्ति में महान, विषैली श्वास से अजेय नाग हूं।"
एक समृद्ध भूमि, जहाँ सभी पुत्र मौजूद हैं, मेरे क्रोधित डंक से मृत्यु हो सकती है;
जैसा कि मैं दावा करता हूं, मेरी मां समुद्दुद्दजा, धतरत्था हैं,
मैं सुदस्सन का सबसे छोटा भाई हूँ, और मेरा नाम भूरिदत्ता है।"
लेकिन जब उस महान प्राणी ने यह कहा, तो उसने सोचा, "यह ब्राह्मण क्रूर और निर्दयी है, यह मुझे किसी सपेरे के हाथों धोखा दे सकता है, और इस प्रकार मेरे व्रत में बाधा डाल सकता है; क्या होगा यदि मैं इसे नाग राज्य ले जाऊं और वहां इसका बहुत सम्मान करूं, और इस प्रकार बिना किसी रुकावट के अपना व्रत जारी रखूं?" इसलिए उसने उससे कहा, "हे ब्राह्मण, मैं तुम्हारा बहुत सम्मान करूंगा, नागों के रमणीय निवास पर आओ, चलो तुरंत वहां चलते हैं।" "मेरे स्वामी, मेरा एक पुत्र है, यदि वह भी साथ आए तो मैं भी चलूंगा।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "जाओ, ब्राह्मण, और उसे ले आओ," और उसने उसे अपने जीवन के बारे में इस प्रकार बताया:

"झील भयानक और अंधेरी है, अंतहीन तूफान इसके पानी को उछालते रहते हैं।"
वह मेरा घर है: वहां मेरी सभी प्रजा मेरी बात सुनती है और कोई भी मेरी प्रार्थना का विरोध नहीं करता;
गहरे नीले रंग की लहरों के नीचे डूब जाओ, मोर और बगुले पुकार रहे हैं,
गोता लगाएँ और वहाँ नियमों का पालन करने वालों के लिए संचित आनंद का अनुभव करें।"
ब्राह्मण (पुजारी) ने जाकर अपने पुत्र को यह बात बताई और उसे ले आया, और उस महान सत्ता ने उन दोनों को लेकर यमुना के किनारे जाकर वहाँ खड़े होकर कहा:

"हे ब्राह्मण, अपने पुत्र सहित, भयभीत न हों; मेरी बात मानें, आप जीवित रहेंगे।"
मैं अपने घर में सम्मानित और प्रसन्न हूं, और मुझे वे सभी सुख प्राप्त हैं जो मैं दे सकता हूं।
ऐसा कहकर उस महान सत्ता ने अपनी शक्ति से पिता और पुत्र को नागों के निवास स्थान पर पहुँचाया, जहाँ उन्हें दिव्य सुख प्राप्त हुआ; उन्होंने उन्हें दिव्य समृद्धि प्रदान की और उनमें से प्रत्येक को चार सौ नाग कन्याएँ दीं, और उन्होंने अपार समृद्धि का आनंद लिया। बोधिसत्व ने लगन से अपना उपवास जारी रखा, और प्रत्येक पखवाड़े वे अपने माता-पिता को प्रणाम करने और धर्म पर प्रवचन देने जाते; फिर ब्राह्मण के पास जाकर उन्होंने उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा और उनसे कहा, "आप जो चाहें बताएँ, बिना किसी असंतोष के आनंद लें"; और सोमदत्त को भी स्नेहपूर्वक प्रणाम करने के बाद वे अपने घर चले गए। नाग लोक में एक वर्ष रहने के बाद, ब्राह्मण अपने पूर्व कर्मों के अभाव के कारण असंतुष्ट होने लगा और मनुष्यलोक में लौटने की लालसा करने लगा; नागों का निवास स्थान उसे नरक के समान, सजा हुआ महल जेल के समान, और आभूषणों से सजी नाग कन्याएँ यक्ष कन्याओं के समान प्रतीत हुईं। उसने मन ही

मन सोचा, "मैं असंतुष्ट हूँ, मैं सोमदत्त के विचार जानूँगा"; तो वह उसके पास गया और बोला, "क्या तुम असंतुष्ट नहीं हो, मेरे पुत्र?" "मैं असंतुष्ट क्यों होऊँ? हमें ऐसी कोई भावना नहीं रखनी चाहिए। क्या आप असंतुष्ट हैं, पिताजी?" "हाँ, मेरे पुत्र?" "क्यों?" "क्योंकि मैं तुम्हारी माता और तुम्हारे भाई-बहनों को नहीं देख पा रहा हूँ; आओ, मेरे पुत्र, हम चलें।" उसने उत्तर दिया कि वह नहीं जाएगा, लेकिन पिता के बार-बार आग्रह करने पर वह अंततः मान गया। ब्राह्मण ने सोचा, "मैंने अपने पुत्र की सहमति तो प्राप्त कर ली है, लेकिन अगर मैं भूरिदत्त को बता दूँ कि मैं असंतुष्ट हूँ, तो वह मुझ पर और अधिक सम्मान बरसाएगा, और मैं नहीं जा पाऊँगा। मेरा उद्देश्य केवल एक ही तरीके से पूरा हो सकता है। मैं उसकी समृद्धि का वर्णन करूँगा और फिर उससे पूछूँगा, "तुम यह सारी शान-शौकत छोड़कर मनुष्यों के लोक में व्रत रखने क्यों जा रहे हो?" जब वह उत्तर देगा, "स्वर्ग प्राप्ति के लिए," तो मैं उससे कहूँगा, "हम जैसे लोगों की तुलना में तो कहीं अधिक उचित है, जिन्होंने जीवित प्राणियों का वध करके अपना जीवन यापन किया है।" मैं भी मनुष्यों के संसार में जाऊँगा, अपने परिवार से मिलूँगा, और फिर संसार को छोड़कर तपस्वियों के धार्मिक मार्ग का अनुसरण करूँगा," और तब वह मुझे जाने देगा।" ऐसा निश्चय करके, एक दिन जब दूसरा व्यक्ति उसके पास आया और उससे पूछा कि क्या वह असंतुष्ट है, तो उसने उसे आश्वासन दिया कि ऐसी कोई कमी नहीं है जिसे वह पूरा कर सके, और अपने जाने के इरादे का कोई ज़िक्र किए बिना, पहले तो उसने केवल दूसरे की समृद्धि का वर्णन निम्नलिखित छंदों में किया:

चारों ओर की जमीन को समतल कर दो, जिस पर टैगारा के फूल सफेद पड़ गए हों।
लाल रंग से रंगे कीड़ों के झुंड, फर्श के लिए सबसे चमकीली हरियाली,
प्रत्येक जंगल में पवित्र तीर्थस्थल और हंसों से भरी झीलें जो आंखों को मंत्रमुग्ध कर देती हैं,
गिरे हुए कमल के पत्ते सतह पर कालीन की तरह बिखरे पड़े हैं,
हजार स्तंभों वाले महल जिनमें ऐसे हॉल हैं जहाँ स्वर्ग की अप्सराएँ नृत्य करती हैं,
उनके सभी स्तंभ रत्नों से जड़े हुए हैं, जिनके कोण सूर्य की रोशनी में चमकते हैं;--
आपने अपने गुणों के बल पर एक शानदार घर जीता है।
जब हर नई इच्छा का पता चलते ही सारी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं;
तुम महान सक्का (इंद्र) के महलों से ईर्ष्या क्यों नहीं करते? उनके सबसे भव्य दरबार तुम्हारे दरबारों के सामने क्या हैं?
आपके महल और भी भव्य हैं और और भी अधिक चमकदार वैभव से जगमगाते हैं।"
उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "ऐसा मत कहो, ब्राह्मण; सक्का (इंद्र) की तुलना में हमारी महिमा मेरु पर्वत के सामने एक सरसों के दाने के समान प्रतीत होती है, हम तो उनके सेवकों के भी बराबर नहीं हैं," और उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

हमारी सर्वोच्च सोच भी इसकी कल्पना नहीं कर सकती।
सक्का (इंद्र) के सिंहासन के चारों ओर शाही वैभव,
या उनके दरबार में चार रीजेंट (*9),
प्रत्येक अपने-अपने निर्धारित क्षेत्र में।
जब उसने उसे अपने शब्दों को दोहराते हुए सुना, "तुम्हारा यह महल सक्का (इंद्र) का महल है," तो उसने कहा, "यह मेरे मन में है, और वेजयंत (*10) प्राप्त करने की मेरी इच्छा के कारण ही मैं उपवास का पालन करता हूँ," - फिर उसने एक श्लोक दोहराया, जिसमें उसने अपनी हार्दिक इच्छा का वर्णन किया:

मुझे परम अमर संतों के घर की तीव्र लालसा है।
इसलिए मैं उस चींटी के टीले की चोटी पर निरंतर उपवास रखता हूँ।
यह सुनकर ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "अब मुझे अपना अवसर मिल गया है," और प्रसन्नता से भर कर उसने दो श्लोक दोहराते हुए प्रस्थान की अनुमति मांगी:

"जब मैं अपने बेटे के साथ उस जंगल के खुले मैदान में गया था, तो मैंने भी हिरणों की तलाश की थी।"
घर पर मेरे जिन दोस्तों को मैं छोड़ आया हूँ, उन्हें नहीं पता कि मैं जीवित हूँ या मर गया हूँ;
हे भूरिदत्त, हमें चलने दो, हे काशी वंश के गौरवशाली स्वामी।
चलिए, हम यहाँ से प्रस्थान करें और अपने परिवारों से उनके पैतृक स्थान पर एक बार फिर मिलें।
बोधिसत्व ने उत्तर दिया:

"मेरी यही इच्छा है कि आप हमारे साथ रहें और यहाँ सुखद समय बिताएँ;"
मनुष्यों की इस उच्चतर दुनिया में आपको हमारे जैसी शांतिपूर्ण जगह कहाँ मिलेगी?
लेकिन क्या आप कुछ समय के लिए कहीं और ठहरकर भी हमारे सुखों का आनंद लेना चाहेंगे?
तो अब मैं आपसे विदा लेता हूँ, जाइए, अपने दोस्तों से मिलिए और जितना चाहें उतना खुश रहिए।

और मन ही मन सोचते हुए, “यदि वह मेरे द्वारा यह सुख प्राप्त कर लेता है, तो वह निश्चित रूप से किसी और को नहीं बताएगा, मैं उसे अपना वह रत्न दूंगा जो सभी इच्छाओं को पूरा करता है,” उसने उसे वह रत्न दे दिया और कहा:

"इस दिव्य रत्न को धारण करने वाला व्यक्ति अपने बच्चों और अपने खेत को देखता है;
"हे ब्राह्मण, इसे ले लो और चले जाओ, इसे ले जाने वाले को कभी कोई हानि नहीं होती।"
ब्राह्मण ने उत्तर दिया:

"मैं आपकी बातों को अच्छी तरह समझता हूँ, जैसा कि आप देख सकते हैं, मैं बूढ़ा हो गया हूँ।"
मैं तपस्वी जीवन अपना लूंगा, अब मेरे लिए जीवन के सुखों का क्या महत्व है?
बोधिसत्व ने कहा:

"यदि तुम असफल हो जाओ और अपना वचन तोड़ दो तो जीवन के सामान्य सुखों को एक बार फिर से तलाश लो।"
और फिर आकर मुझे ढूंढो, मैं तुम्हें भरपूर भंडार दूंगा।"
ब्राह्मण ने उत्तर दिया:

"हे भूरिदत्त, मैं आपके द्वारा दिए गए प्रस्ताव को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ;
अगर कभी ऐसी स्थिति आई तो मैं आपकी सहायता मांगने के लिए वापस आऊंगा।
उस महान प्राणी ने देखा कि उसकी वहाँ रहने की कोई इच्छा नहीं है, इसलिए उसने कुछ युवा नागों को उसे मनुष्यलोक में ले जाने का आदेश दिया। गुरु ने जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस प्रकार किया:

तब भूरिदत्त ने अपने चार युवा नागों को आदेश दिया, 'जाओ,
इस ब्राह्मण को अपने संरक्षण में लें और उसे वहां ले जाएं जहां वह जाना चाहता है।"
चारों सेवकों ने ये शब्द सुने और तुरंत ही अपने स्वामी के आदेश का पालन किया गया:
वे ब्राह्मण को उस स्थान पर लाए और उसे वहीं छोड़कर अकेले लौट गए।
फिर ब्राह्मण चलते-चलते अपने पुत्र सोमदत्त से बोला, “सोमदत्त, हमने यहाँ एक हिरण और वहाँ एक सूअर को घायल कर दिया है।” रास्ते में एक झील देखकर वह बोला, “सोमदत्त, चलो स्नान करते हैं।” तो दोनों ने अपने दिव्य आभूषण और वस्त्र उतार दिए और उन्हें एक गठरी में लपेटकर किनारे पर रख दिया और स्नान किया। उसी क्षण आभूषण गायब हो गए और नागलोक में लौट गए, और उनके पुराने पीले वस्त्र उनके शरीर पर लिपट गए, और उनके धनुष, बाण और भाले पहले जैसे हो गए। सोमदत्त विलाप करते हुए बोला, “पिताजी, हम बर्बाद हो गए।” लेकिन उसके पिता ने उसे दिलासा देते हुए कहा, “चिंता मत करो; जब तक हिरण हैं, हम जंगल में हिरण मारकर जीविका कमा लेंगे।” सोमदत्त की माता ने उनके आने की खबर सुनी और उनसे मिलने जाकर उन्हें घर ले आई और उन्हें भोजन और पेय से तृप्त किया। जब ब्राह्मण ने भोजन कर लिया और सो गया, तो उसने अपने पुत्र से पूछा, “तुम इतने समय से कहाँ थे?” "हे माता, नाग राजा भूरिदत्त हमें नागलोक ले गए थे, और अब हम असंतुष्ट होकर वापस आ गए हैं।" "क्या तुम कोई रत्न लाए हो?" "नहीं, माता।" "उन्होंने तुम्हें कोई रत्न क्यों नहीं दिया?" "माता, भूरिदत्त ने मेरे पिता को एक ऐसा रत्न दिया था जो सभी मनोकामनाएं पूरी करता है, लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया।" "किस कारण से?" "वे कहते हैं कि वे संन्यासी बनने जा रहे हैं।" "क्या, मुझे इतने लंबे समय तक बच्चों का बोझ उठाने और नागलोक में रहने के बाद, अब वे संन्यासी बनने जा रहे हैं?" क्रोध में आकर उसने चावल तलने वाले चम्मच से उसकी पीठ पर प्रहार किया और उसे डांटते हुए कहा, "हे दुष्ट ब्राह्मण, तुमने संन्यासी बनने की बात कहकर उस कीमती रत्न को क्यों ठुकरा दिया, और यहाँ आकर संन्यासी बनने की प्रतिज्ञा क्यों नहीं ली?" मेरे घर से सीधे चले जाओ।" लेकिन उसने उससे कहा, "हे महिला, क्रोधित मत हो, जब तक जंगल में हिरण हैं, मैं तुम्हारा और तुम्हारे बच्चों का भरण-पोषण करूँगा।" इसलिए अगले दिन वह अपने बेटे के साथ जंगल में गया और वहाँ पहले की तरह ही जीविका चलाता रहा (*11)।

IV.

उस समय, हिमालय के विशाल दक्षिणी महासागर क्षेत्र में स्थित हिमवत पर्वत पर रेशम-कपास के वृक्ष में रहने वाला एक गरूला पक्षी अपने पंखों की फड़फड़ाहट से जल को ऊपर उठाता हुआ नाग क्षेत्र पर झपटा और एक नाग राजा का सिर पकड़ लिया। परन्तु यह वह समय था जब गरूला नागों को पकड़ना नहीं जानते थे; उन्होंने यह विधि पांडारा जातक (*12) में सीखी थी। अतः उसने नाग का सिर तो पकड़ा, पर जल को बिखेरे बिना उसे लटकाए हिमवत पर्वत की चोटी तक ले गया। काशी का एक वृद्ध ब्राह्मण, जो हिमवत पर्वत में तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहा था, पत्तों से बनी अपनी कुटिया में रहता था। उसकी कुटिया के अंत में एक विशाल बरगद का वृक्ष था, और वह दिन के समय उसकी जड़ में अपना निवास स्थान बनाता था। गरूला नाग को बरगद की चोटी तक ले गया, और नाग ने नीचे लटकते हुए बचने के प्रयास में अपनी पूंछ एक शाखा से लपेट ली। गरुड़ को इस बात का पता नहीं था, इसलिए वह अपनी अपार शक्ति से आकाश में उड़ गया और बरगद के पेड़ को जड़ समेत उठा ले गया (*13)। फिर वह नाग को रेशम-कपास के पेड़ के पास ले गया

और अपनी चोंच से उस पर प्रहार करके उसका पेट चीर दिया। उसने उसकी चर्बी खाकर उसके शरीर को समुद्र के बीचोंबीच फेंक दिया। बरगद का पेड़ गिरते ही ज़ोरदार आवाज़ करने लगा। पक्षी यह सोचकर नीचे देखने लगा कि यह कैसी आवाज़ है। पेड़ को देखकर उसने मन ही मन सोचा, "मैं इसे कहाँ से उठाकर लाया हूँ?" और यह पहचानते हुए कि यह वही बरगद का पेड़ है जो साधु के ढके हुए मार्ग के अंत में था, उसने सोचा, "यह पेड़ उनके लिए बहुत उपयोगी था, क्या इसका कोई बुरा परिणाम होगा? मैं उनसे पूछकर जानूँगा।" इसलिए वह एक युवा शिष्य के वेश में उनके पास गया; उस समय साधु मिट्टी को समतल कर रहे थे। गरुड़ों के राजा ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। उन्होंने ऐसा दिखाया मानो उन्हें स्वयं इस बात का ज्ञान न हो, कि उस स्थान पर पहले क्या उगता था। उन्होंने उत्तर दिया, "एक गरुला नाग को अपने भोजन के लिए ले जा रहा था, नाग ने बचने के लिए अपनी पूंछ बरगद के पेड़ की एक शाखा से लपेट ली; लेकिन पक्षी ने अपनी प्रबल शक्ति से ऊपर की ओर छलांग लगाई और उड़ गया, जिससे पेड़ उखड़ गया; यह वही स्थान है जहाँ से वह उखड़ा है।" "पक्षी को क्या दोष लगा?" "यदि उसने अनजाने में ऐसा किया, तो यह केवल अज्ञानता थी, पाप नहीं।" "नाग का क्या हुआ?" "उसने पेड़ को नुकसान पहुँचाने के इरादे से नहीं पकड़ा था, इसलिए उसे भी कोई दोष नहीं है।" गरुला तपस्वी से प्रसन्न हुआ और बोला, "मेरे मित्र, मैं गरुलाओं का राजा हूँ, और मुझे आपके प्रश्न के उत्तर से प्रसन्नता हुई है। अब आप यहाँ जंगल में रहते हैं और मुझे अमूल्य आलमबायना मंत्र आता है। मैं इसे आपके पाठ के शुल्क के रूप में आपको देता हूँ, कृपया इसे स्वीकार करें।" "मुझे मंत्रों के बारे में पर्याप्त जानकारी है, आप जा सकते हैं।" लेकिन वह उस पर दबाव डालता रहा और अंततः उसे इसे स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया, इसलिए उसने उसे मंत्र दिया और उसे औषधीय जड़ी-बूटियों के बारे में समझाया और चला गया।

उस समय बनारस में एक गरीब ब्राह्मण गहरे कर्ज में डूब गया था और अपने लेनदारों के दबाव में आकर उसने मन ही मन कहा, "यहाँ क्यों रहूँ? मुझे यकीन है कि जंगल में जाकर मर जाना बेहतर होगा।" इसलिए वह अपना घर छोड़कर कई यात्राएँ करते हुए उस आश्रम में पहुँचा। उसने आश्रम में प्रवेश किया और अपने कर्तव्यों का लगन से पालन करके उस तपस्वी को प्रसन्न किया। तपस्वी ने मन ही मन कहा, "यह ब्राह्मण तो मेरा बहुत भला कर रहा है, मैं इसे वह दिव्य मंत्र दूँगा जो गरुड़ों के राजा ने मुझे दिया था।" तब उसने उससे कहा, "हे ब्राह्मण, मैं आलमबायन मंत्र जानता हूँ, मैं तुम्हें यह मंत्र दूँगा, क्या तुम इसे स्वीकार करोगे?" दूसरे ने उत्तर दिया, "शांति, मेरे मित्र, मुझे किसी मंत्र की आवश्यकता नहीं है," लेकिन दूसरे ने बार-बार आग्रह किया और अंततः उसे मना लिया; तब उसने उसे मंत्र दे दिया और उसे इसके लिए आवश्यक सरल बातें समझाईं और इसके उपयोग की पूरी विधि बताई।

ब्राह्मण ने मन ही मन कहा, "मुझे जीविका का साधन मिल गया है"; अतः कुछ दिन वहाँ रहने के बाद, उसने गठिया का बहाना बनाया और तपस्वी से क्षमा माँगकर उनसे सम्मानपूर्वक विदा ली और वन से प्रस्थान किया। वह कई चरणों से होते हुए यमुना नदी के तट पर पहुँचा, जहाँ से वह मुख्य मार्ग पर मंत्र का जाप करते हुए आगे बढ़ा। ठीक उसी समय भूरिदत्त की सेवा में तपे हुए एक हजार नाग युवक उस रत्न को लिए हुए थे जो सभी मनोकामनाएँ पूरी करता है। वे नागलोक से निकलकर एक रेतीले टीले पर रुक गए थे और रात भर उसकी चमक में जल में खेलने के बाद, सुबह होते ही उन्होंने अपने सभी आभूषण पहन लिए और रत्न की चमक कम करते हुए (*14) बैठ कर उसकी रक्षा करने लगे। ब्राह्मण मंत्र जपते हुए उस स्थान पर पहुँच गया। मंत्र सुनकर वे भयभीत हो गए, कहीं वे गरुड़ राजा न आ जाएँ, और रत्न लेने के लिए रुके बिना ही धरती में समा गए और नागलोक भाग गए। ब्राह्मण ने रत्न देखकर कहा, "मेरा मंत्र तुरंत सफल हो गया है"; और उसने प्रसन्नतापूर्वक रत्न उठाया और अपने रास्ते चला गया। उसी समय, एक बहिष्कृत ब्राह्मण अपने पुत्र सोमदत्त के साथ हिरण का शिकार करने के लिए जंगल में प्रवेश कर रहा था। जब उसने दूसरे के हाथ में रत्न देखा, तो उसने अपने पुत्र से कहा, "क्या यह वही रत्न नहीं है जो भूरिदत्त ने हमें दिया था?" "हाँ," उसके पुत्र ने कहा, "यह वही है।" "अच्छा, मैं उसे इसके बुरे गुणों के बारे में बताकर उसे धोखा दूंगा और रत्न अपने लिए ले लूँगा।" "हे पिता, जब भूरिदत्त ने आपको रत्न दिया था तब आपने उसे रखा नहीं था: यह ब्राह्मण निश्चित रूप से आपको धोखा देगा, इस बारे में चुप रहें।" "रहने दो, मेरे पुत्र; तुम देखोगे कि कौन सबसे अच्छा धोखा दे सकता है, वह या मैं।" इसलिए वह आलमबायना के पास गया और उससे बात की:

"तुम्हें यह अनमोल रत्न कहाँ से मिला, जो सौभाग्य लाता है और देखने में भी सुंदर है?"
लेकिन क्या इसमें कुछ ऐसे संकेत और निशान हैं, जिनसे मैं इसे पहचान सकूँ?
आलमबायना ने निम्नलिखित श्लोक में उत्तर दिया:

"आज सुबह जब मैं टहल रहा था तो मैंने उस रत्न को वहीं पड़ा हुआ देखा।"
उसके हजार लाल आंखों वाले रक्षक सब भाग गए और उसे वहीं छोड़कर चले गए ताकि वह मेरा शिकार बन सके।"
उस बहिष्कृत व्यक्ति के पुत्र ने, उसे धोखा देने की इच्छा से, तीन छंदों में उसे उस रत्न के बुरे गुणों के बारे में बताया, ताकि वह उसे स्वयं प्राप्त कर सके:

"ध्यानपूर्वक देखभाल की गई, अच्छी तरह से सम्मानित की गई, और सावधानीपूर्वक पहनी या रखी गई।"
यह अपने मालिक को सभी अच्छी चीजें प्रदान करता है, चाहे उसकी इच्छाएं कितनी भी बड़ी क्यों न हों;
लेकिन अगर वह इसका अनादर करता है और इसे लापरवाही से पहनता या रखता है,

उसे इसे पाकर बहुत पछतावा होगा, इससे उसे केवल दुख ही मिलेगा।
इसके बाद अगर आपके पास करने को कुछ नहीं है, तो क्या आपके पास ऐसी वस्तु को संभालने का कौशल नहीं है?
इसे मुझे दे दो और बदले में सौ पाउंड पीला सोना ले लो।"
तब आलमबायना ने उत्तर में एक श्लोक कहा:

"मैं अपने इस अनमोल रत्न को नहीं बेचूंगा, चाहे इसके बदले में गायें या गहने ही क्यों न दिए जाएं।"
इसके निशान और चिह्नों को मैं भली-भांति जानता हूँ, और इसे मुझसे कभी खरीदा नहीं जा सकता।"
ब्राह्मण ने कहा:

यदि गायें या रत्न भी आपसे वह रत्न न खरीदें जो आप पहनते हैं,
आप इसे कितने में बेचेंगे? कृपया मुझे सही-सही जवाब दें।
अलाम्बायाना ने उत्तर दिया:

जो मुझे बता सके कि पराक्रमी नाग अपने अभिमान में कहाँ पाया जाता है,
मैं उसे यह रत्न दूंगा, जिसकी किरणें चारों ओर फैलती हैं।
ब्राह्मण ने कहा:

"क्या यह गरुड़ राजा है, जो आज ब्राह्मण के वेश में आया है?"
क्या वह भोजन की तलाश में नाग को अपना शिकार बनाना चाहता था?
अलाम्बायाना ने उत्तर दिया:

"मैं कोई पक्षी-राजा नहीं हूँ, न ही कोई गरुड़ पक्षी कभी मेरी दृष्टि में आया है।"
मैं एक ब्राह्मण डॉक्टर हूं, दोस्त, और सांप और सांप के काटने का इलाज करना मेरा पेशा है।"
ब्राह्मण ने कहा:

"तुम्हारे पास कौन सी विशेष शक्ति है, या क्या तुमने कोई सूक्ष्म कौशल सीखा है?"
जिससे आपको उन साँपों को संभालने की यह प्रतिरक्षा मिलती है जिनके दाँत जानलेवा हो सकते हैं?
उन्होंने उत्तर देते हुए अपनी शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया:

"जंगल में रहने वाले साधु कोसिया ने लंबी और कष्टदायी तपस्या को भलीभांति संपन्न किया।"
और अंत में एक गारुला ने उसे सर्प-मंत्र के बारे में बताया।
वह परम पवित्र ऋषि, जो एकांत पर्वत शिखर पर एकांतवास में रहते थे,
मैंने पूरी लगन से सेवा की और दिन-रात अथक परिश्रम किया;
और अंत में, मेरी वर्षों की निष्ठापूर्ण सेवा के प्रतिफल के रूप में।
मेरे परम पूज्य गुरु ने मुझे स्वर्गिक रहस्य प्रकट किया।
इस सर्वशक्तिमान मंत्र पर भरोसा रखते हुए, मैं सबसे भयंकर सांपों से भी नहीं डरता;
मैं उनके सबसे घातक डंकों का प्रतिकार करता हूँ, मैं आलमबायना द्रष्टा हूँ।"
उसकी बात सुनकर, उस बहिष्कृत ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "यह आलमबायना नाग को दिखाने वाले को रत्नों का मोती देने को तैयार है; मैं उसे भूरिदत्त दिखाऊंगा और इस प्रकार रत्न प्राप्त कर लूंगा"; इसलिए उसने अपने पुत्र से परामर्श करते हुए यह श्लोक कहा:

"चलो इस अनमोल रत्न को सुरक्षित कर लें, मेरे बेटे; आओ, सोमदत्ता, जल्दी करें।"
और न ही हमें अपना भाग्य उस मूर्ख (*15) की तरह खोना चाहिए जिसने अपनी छड़ी से अपने भोजन का बर्तन तोड़ दिया था।"
सोमदत्ता ने उत्तर दिया:

"जब तुम उस अजनबी के रास्ते में आए, तो उसने तुम्हें उचित सम्मान के बारे में समझाया।"
और क्या अब तुम उसकी इस सौहार्दपूर्ण स्वागत का बदला चुकाने के लिए उसे लूट लोगे?
यदि आपको धन चाहिए तो पहले की तरह भूरिदत्त से ही मांग करें;
उससे मांगो, वह खुशी-खुशी तुम्हारे दिल की हर इच्छा पूरी कर देगा, और उससे भी अधिक देगा।"
ब्राह्मण ने कहा:

जो कुछ सौभाग्य से प्राप्त हुआ है, वह कटोरे या हाथ में पहले से ही मौजूद है।

इसे तुरंत खा लो और कोई सवाल मत पूछो, अन्यथा तुम्हें दिया गया इनाम खोना पड़ेगा।
सोमदत्ता ने उत्तर दिया:

धरती उसके लिए तड़प रही है, अंत में नरक की सबसे भयंकर आग उस गद्दार का इंतजार कर रही है।
या फिर, भयंकर भूख से व्याकुल होकर, वह व्यक्ति जो अपने मित्र को धोखा देता है, एक जीवित मृत्यु की कामना करता है।
भूरिदत्त से पूछो, यदि तुम धन चाहते हो तो वह तुम्हें तुम्हारी मनोकामना पूरी कर देगा;
लेकिन अगर तुम पाप करोगे, तो मुझे डर है कि तुम्हारा पाप तुम्हें जल्द ही पकड़ लेगा।"
ब्राह्मण ने कहा:

लेकिन, एक महंगे बलिदान के माध्यम से ब्राह्मण पाप कर सकते हैं और फिर भी पवित्र हो सकते हैं;
हम महान बलिदान देंगे और इस प्रकार शुद्ध होकर पाप से बच जाएंगे।"
सोमदत्ता ने कहा:

"अपनी अपशब्द बंद करो, मैं नहीं रुकूंगा, इसी क्षण मैं जा रहा हूँ।"
मैं तुम्हारे इस तुच्छ हृदय के दर्द में तुम्हारा साथ एक कदम भी नहीं दूंगा।"
ऐसा कहकर, उस ज्ञानी युवक ने अपने पिता की सलाह को ठुकराते हुए, ऊँची आवाज़ में कहा, जिससे आस-पास के देवता भी चौंक गए, "मैं ऐसे पापी के साथ नहीं जाऊँगा," और अपने पिता के देखते ही भाग गया; और हिमवत (हिमालय) की गहराइयों में जाकर, वहाँ एक तपस्वी बन गया, और अपनी इंद्रियों और उपलब्धियों का अभ्यास करके और रहस्यमय ध्यान में सिद्धि प्राप्त करके, उसने ब्रह्मलोक में जन्म लिया। गुरु ने इसे निम्नलिखित श्लोक में समझाया है:

"इस प्रकार, महान सोमदत्त ने अपने पिता को वहीं खड़े-खड़े फटकारा।"
उस स्थान की आत्माओं को चौंकाते हुए, वह मुड़ा और जंगल से तेजी से निकल गया।
उस बहिष्कृत ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "सोमदत्त अपने घर के सिवा और कहाँ जाएगा?" और जब उसने देखा कि आलमबायना थोड़ा नाराज़ है, तो उसने उससे कहा, "चिंता मत करो, आलमबायना, मैं तुम्हें भूरिदत्त से मिलवा दूँगा।" अतः वह उसे लेकर उस स्थान पर गया जहाँ नागराज व्रत रखता था; और जब उसने भूरिदत्त को चींटियों के टीले पर फनों को सिकोड़कर लेटे हुए देखा, तो वह थोड़ी दूरी पर खड़ा हो गया और हाथ बढ़ाकर दो श्लोक बोले:

"इस सर्प-राजक को वहीं पकड़ लो जहां वह लेटा है और फिर उस अनमोल रत्न को छीन लो।"
उसके सिर पर एक मुकुट की तरह चमकता हुआ, लेडीबर्ड की तरह चमकदार रंग का एक मुकुट है।
चींटियों के टीले पर देखो! वह बिना किसी भय के लेटा हुआ है।
वहां रुई के ढेर की तरह फैल जाओ, उसे पकड़ लो इससे पहले कि उसे पता चले कि तुम पास हो।"
उस महान प्राणी ने अपनी आँखें खोलीं और उस बहिष्कृत को देखकर सोचा, "मैं इस व्यक्ति को अपने नाग घर ले गया और उसे खूब समृद्धि दी, लेकिन इसने मेरे दिए हुए रत्न को स्वीकार नहीं किया और अब यह एक सपेरे के साथ यहाँ आया है। लेकिन अगर मैं उसके विश्वासघात के लिए उससे क्रोधित होता, तो मेरे नैतिक चरित्र को ठेस पहुँचती। अब मेरा सर्वप्रथम कर्तव्य है कि मैं व्रत के चारों चरणों का पालन करूँ, जो अक्षुण्ण रहना चाहिए; इसलिए चाहे आलमबायना मुझे टुकड़ों में काट दे, पका दे या सींक पर टांग दे, मुझे किसी भी हालत में उससे क्रोधित नहीं होना चाहिए।" इस प्रकार अपनी आँखें बंद करके और संकल्प के सर्वोच्च आदर्श का पालन करते हुए, उन्होंने अपना सिर अपने फनों के बीच रख लिया और पूर्णतः गतिहीन होकर लेट गए (*16)।

वी

तब उस बहिष्कृत ब्राह्मण ने कहा, "हे आलमबायना, इस नाग को पकड़ो और मुझे यह रत्न दो।" आलमबायना नाग को देखकर प्रसन्न हो गया और रत्न की जरा भी परवाह न करते हुए उसे उसके हाथ में फेंक दिया और कहा, "ले लो, ब्राह्मण"; लेकिन रत्न उसके हाथ से फिसल गया और गिरते ही जमीन में समा गया और नागलोक में खो गया। ब्राह्मण ने खुद को तीन चीजों से वंचित पाया - अनमोल रत्न, भूरिदत्त की मित्रता और उसका पुत्र - और जोर-जोर से विलाप करते हुए अपने घर चला गया, "मैंने सब कुछ खो दिया, मैं अपने पुत्र की बात नहीं मानूंगा।" लेकिन आलमबायना ने पहले अपने शरीर पर दिव्य औषधि लगाई और थोड़ा सा भोजन करके स्वयं को मजबूत किया, फिर दिव्य मंत्र का उच्चारण किया और बोधिसत्व के पास जाकर उनकी पूंछ पकड़ ली, और उन्हें कसकर पकड़े हुए उनका मुंह खोला और स्वयं एक औषधि खाकर उसमें थूक दिया। शुद्ध स्वभाव वाले नाग राजा ने नैतिक नियमों का उल्लंघन करने के भय से अपने भीतर क्रोध की भावना को नहीं आने दिया, और यद्यपि उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, फिर भी पूरी तरह नहीं खोलीं (*17)। नाग को जादुई औषधि पिलाने के बाद, उन्होंने उसकी पूंछ पकड़कर उसका सिर नीचे की ओर झुकाया और उसे हिलाकर निगला हुआ भोजन उगलवा दिया। फिर उन्होंने उसे जमीन पर पूरी लंबाई में फैला दिया। इसके बाद, उन्होंने उसे तकिए की तरह हाथों से दबाकर उसकी

हड्डियों को चूर-चूर कर दिया, और फिर उसकी पूंछ पकड़कर उसे ऐसे पीटा जैसे कोई कपड़ा पीट रहा हो। इतना दर्द सहने के बावजूद भी उस महान प्राणी को क्रोध नहीं आया।

शिक्षक ने इसका वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया है:

"जादुई शक्ति वाली औषधियों के बल पर और दुष्टतापूर्ण कौशल से मंत्रों का जाप करके,"
उसने उसे निर्भयतापूर्वक पकड़ लिया और अपने वश में कर लिया और उसे अपनी इच्छा के अधीन कर लिया।
इस प्रकार महापुरुष को असहाय बनाकर, उसने लताओं से भरी एक टोकरी तैयार की और उसे उसमें फेंक दिया; पहले तो उसका विशाल शरीर उसमें नहीं जा रहा था, लेकिन एड़ियों से लात मारकर उसने उसे जबरदस्ती अंदर डाल दिया। फिर, एक गाँव में जाकर, उसने टोकरी को गाँव के बीचोंबीच रख दिया और ज़ोर से चिल्लाया, "जो भी नाग नृत्य देखना चाहता है, वह यहाँ आ जाए"; और सभी ग्रामीण उसके चारों ओर जमा हो गए। फिर उसने नाग राजा को बाहर आने के लिए बुलाया, और महापुरुष ने सोचा, "आज भीड़ को प्रसन्न करने और नृत्य करने में ही मेरी भलाई है; शायद उसे खूब धन मिल जाए और वह प्रसन्न होकर मुझे जाने दे; वह मुझसे जो भी करवाए, मैं वह करूँगा।" इसलिए जब आलमबायना ने उसे टोकरी से बाहर निकाला और उसे फूलने के लिए कहा, तो उसने अपना पूरा आकार धारण कर लिया; और जब उसने उसे छोटा, गोल या टीले की तरह ढेर होने (*18) के लिए कहा, या एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस, बीस या सौ तक कोई भी संख्या में फन धारण करने के लिए कहा, या ऊँचा या नीचा होने के लिए कहा, या अपने शरीर को दृश्यमान या अदृश्य करने के लिए कहा, या नीला, पीला, लाल, सफेद या गुलाबी होने के लिए कहा, या पानी निकालने के लिए कहा, या पानी और धुआँ निकालने के लिए कहा, तो उसने आदेशानुसार ये सभी रूप धारण कर लिए और अपनी नृत्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इसे देखने वाला कोई भी व्यक्ति अपने आँसू नहीं रोक सका और लोग सोने के सिक्के, सोना, वस्त्र, आभूषण आदि लेकर आए, जिससे उसे अकेले उस गाँव में ही एक लाख सिक्के प्राप्त हुए।

पहले तो, जब उसने उस महान प्राणी को पकड़ लिया था, तो उसका इरादा उसे तब छोड़ने का था जब उसे एक हजार सिक्के मिल जाएँ; लेकिन जब उसने इतनी कमाई कर ली, तो उसने कहा, "मैंने एक छोटे से गाँव में इतना सारा धन कमा लिया है, शहर में तो मेरा कितना बड़ा धन होगा!" इसलिए, अपने परिवार को वहाँ बसाने के बाद, उसने रत्नों से लदी एक टोकरी बनवाई, और उस महान प्राणी को उसमें डालकर, एक आलीशान रथ पर सवार होकर अपने दल के साथ चल पड़ा। रास्ते में आने वाले हर गाँव और कस्बे में उसने उसे नचाया, और अंत में वे बनारस पहुँचे। उसने नागराज को शहद और भुना हुआ अनाज दिया, और उसके खाने के लिए मेंढक मारे; लेकिन उसने भोजन नहीं लिया, क्योंकि उसे अपनी कैद से मुक्त न होने का डर था (*19); लेकिन फिर भी उसने भोजन नहीं लिया, तो दूसरे ने उसे अपने करतब दिखाने के लिए मजबूर किया, और शहर के द्वार पर स्थित चार गाँवों से शुरुआत की, जहाँ उसने एक महीना बिताया। फिर पंद्रहवें दिन उपवास के दिन उसने राजा को बताया कि वह उस दिन नाग के नृत्य कौशल का प्रदर्शन करेगा। परिणामस्वरूप राजा ने ढोल बजाकर घोषणा की और एक बड़ी भीड़ इकट्ठा की, और महल के प्रांगण में मचान की परतें खड़ी की गईं (*20)।

VI.

लेकिन जिस दिन बोधिसत्व को आलम्बना ने पकड़ लिया, उस दिन उस महान प्राणी की माता ने स्वप्न में देखा कि लाल आँखों वाला एक काला आदमी तलवार से उसकी बांह काट रहा है और खून से लथपथ उसे ले जा रहा है। वह भय से उछल पड़ी, लेकिन अपनी दाहिनी बांह को छूकर उसने महसूस किया कि यह केवल एक स्वप्न था। तब उसने मन ही मन सोचा, "मैंने एक बुरा और भयानक स्वप्न देखा है; यह मेरे चारों पुत्रों, राजा धतरत्थ या मुझ पर आने वाली किसी विपत्ति का संकेत है।" लेकिन तभी उसका ध्यान विशेष रूप से बोधिसत्व पर केंद्रित हो गया: "अब बाकी सब नागलोक में रह रहे हैं, लेकिन वह नियमों का पालन करने और व्रत रखने की प्रतिज्ञा लेकर मनुष्यलोक में चला गया है; इसलिए मुझे आश्चर्य है कि कहीं कोई सपेरा या गरुला उसे पकड़ तो नहीं रहा है।" वह उसके बारे में बार-बार सोचती रही, और अंत में पखवाड़े भर बाद वह पूरी तरह से निराश हो गई और बोली, "मेरा पुत्र मेरे बिना पूरा पखवाड़ा भी नहीं जी सका, अवश्य ही उसके साथ कोई विपत्ति आ गई होगी।" एक महीना बीत जाने के बाद भी उसकी आँखों से आँसू लगातार बहते रहे, वह अपने दुख में डूबी हुई थी और उस रास्ते को देखती रहती थी जिससे वह वापस आएगा, और लगातार कहती रहती थी, "ज़रूर अब वह घर आ रहा होगा, ज़रूर अब वह घर आ रहा होगा।" तभी उसका बड़ा बेटा सुदस्सना एक महीने की अनुपस्थिति के बाद अपने माता-पिता से मिलने अपने साथ कई सेवकों को लेकर आया। उसने अपने सेवकों को बाहर ही छोड़ दिया और महल में प्रवेश किया। अपनी माँ को प्रणाम करने के बाद वह एक तरफ खड़ा हो गया; लेकिन माँ ने उससे कुछ नहीं कहा, वह भूरिदत्त के लिए शोक मनाती रही। उसने मन ही मन सोचा, "जब भी मैं लौटा हूँ, मेरी माँ हमेशा प्रसन्न हुई हैं और मेरा गर्मजोशी से स्वागत किया है, लेकिन आज वह बहुत दुखी हैं; इसका क्या कारण हो सकता है?" इसलिए उसने अपनी माँ से पूछा:

"आप मुझे पूरी सफलता के साथ आते हुए देखते हैं, मेरी हर इच्छा पूरी हुई है;
फिर भी आपमें खुशी के कोई लक्षण नहीं दिखते, और आपका पूरा चेहरा उदास है।

कमल के फूल की तरह काला, जिसे बेरहमी से तोड़ दिया गया हो और जो हाथ में ही मुरझाकर गिर जाता है;
क्या विदेश से लौटने पर आप मेरा यही स्वागत करते हैं?
उसके ये शब्द सुनकर भी वह चुप रही। तब सुदस्साना ने सोचा, "क्या किसी ने उसका अपमान या मानहानि की है?" इसलिए उसने उससे प्रश्न पूछते हुए एक और श्लोक कहा:

क्या किसी ने तुम्हें डांटा है या तुम किसी गुप्त पीड़ा से व्याकुल हो?
तो क्या इसलिए जब तुम मुझे दोबारा देखते हो तब भी तुम्हारा चेहरा उदास रहता है?
उसने इस प्रकार उत्तर दिया:

"मेरे बेटे, ठीक एक महीने पहले इसी दिन मैंने एक बुरा सपना देखा था;
एक आदमी आया और उसने मेरी बांह काट दी जब मैं अपने बिस्तर पर सो रहा था।
और वह खून बहते हुए अंग को ले गया, मेरे आँसू भी उसके हाथ को रोक नहीं सके।
उस क्रूर दृश्य को देखने के बाद से मेरे हृदय में घोर भय का भाव व्याप्त है।
दिन हो या रात, मुझे एक पल की भी शांति या खुशी नहीं मिली है।
यह कहते हुए वह फूट-फूटकर विलाप करने लगी, "मुझे मेरा प्यारा बेटा, तुम्हारा सबसे छोटा भाई कहीं नहीं दिख रहा; उसके साथ कोई बुरी घटना घट गई होगी," और वह चिल्लाई:

"वह व्यक्ति जिसकी सेवा करने में सुंदर युवतियां गर्व महसूस करती थीं,"
उनके सुनहरे जालों से सजे बाल, हाय! भूरिदत्ता अब नहीं रहे;
जिसकी रक्षा बलवान सैनिक अपनी खींची हुई तलवारों के साथ एक वीर दल के साथ करते थे,
कनिकारा के फूलों की तरह चमक रहा है, अफसोस! मैं उसे व्यर्थ ही ढूंढ रहा हूँ!
मुझे तुम्हारे भाई का पता लगाना होगा और यह जानना होगा कि वह कहाँ रहने लगा है।
अपनी तपस्वी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए, और यह जानने की कोशिश करते हुए कि सब ठीक है या नहीं।"
ये शब्द कहकर वह अपने साथ-साथ उसके सेवकों के समूह के साथ रवाना हो गई।

भूरिदत्ता की पत्नियाँ उसे चींटियों के टीले पर न पाकर चिंतित नहीं हुईं, क्योंकि उन्होंने सोचा कि वह निश्चित रूप से अपनी माँ के घर गया होगा; लेकिन जब उन्होंने सुना कि उनकी माँ अपने बेटे को न पाकर रोती हुई आ रही हैं, तो वे उनसे मिलने गईं और उनके चरणों में गिरकर जोर-जोर से रोने लगीं, "हे देवी, आज एक महीना हो गया जब हमने आखिरी बार आपके बेटे को देखा था।"

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

भूरिदत्त की पत्नियों ने वहाँ उसकी माँ को पास आते देखा।
और उन्होंने अपने हाथ फैलाकर अत्यंत कड़वी आवाज में रोना शुरू कर दिया;
"भूरिदत्ता, आपका बेटा, एक महीने पहले यहाँ से चला गया, हमें नहीं पता कहाँ गया।"
वह जीवित है या मृत, हम अपनी निराशा में यह नहीं बता सकते।
मां सड़क के बीचोंबीच अपनी बहुओं के साथ रोने लगी और फिर उनके साथ महल में चली गई, और वहां अपने बेटे के बिस्तर को देखकर उसका दुख फूट पड़ा।

"जैसे कोई अकेला पक्षी जिसका बच्चा मारा गया हो, जब वह अपना खाली घोंसला देखता है,
इसलिए, जब मैं भूरिदत्ता को व्यर्थ में ढूंढता हूँ, तो मेरा हृदय दुःख से भर जाता है।
मेरे हृदय की गहराई में उनके लिए मेरा शोक तीव्र और निरंतर ज्वाला बनकर जल रहा है।
ठीक उसी तरह जैसे एक लोहार भट्टी को अपने साथ हर जगह ले जाता है जहाँ उसे जाना होता है।
जब वह इस तरह रो रही थी, भूरिदत्ता का घर मानो समुद्र की खोखली गर्जना जैसी एक निरंतर ध्वनि से भर गया था। कोई भी विचलित हुए बिना नहीं रह सका, और पूरा वातावरण प्रलय के तूफान से घिरे साल के जंगल जैसा प्रतीत हो रहा था।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

"तूफान में गिरे हुए साल के पेड़ों की तरह, जिनकी शाखाएँ टूट गई हों, जड़ें उखड़ गई हों,"
इसलिए माता, पत्नियां और बच्चे उस एकांत निवास स्थान में उदास पड़े रहे।

अपने माता-पिता से मिलने आए भाई अरित्था और सुभागा ने भी शोर सुना और भूरिदत्ता के बैठक कक्ष में प्रवेश किया और अपनी मां को सांत्वना देने की कोशिश की।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

"तब अरित्था और सुभागा, सहायता और सांत्वना देने के लिए उत्सुक होकर आते हैं,
भूरिदत्ता के घर में उठती हुई भीषण मातम की आवाज़ें सुनकर;
"माँ, शांत हो जाओ, तुम्हारा रोना-धोना बंद हो जाए, यही सभी जीवित प्राणियों का भाग्य है।"
ये सब जन्म-जन्मांतर तक अवश्य ही गुजरते हैं: सभी बातों में नियम बदलो, शोक मत करो।
समुद्दजा ने उत्तर दिया:

"मेरे बेटे, मैं यह बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, यही सभी जीवित प्राणियों का भाग्य है।"
लेकिन अब मुझे कोई सामान्य हानि नहीं हुई है, इस तरह दुखी होकर मैं शोक करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता;
सचमुच, अगर मैं उसे न देखूँ, जो मेरा अनमोल रत्न और मेरी आत्मा का आनंद है,
मेरे भूरिदत्ता, मैं आज रात ही अपने इस कष्टमय जीवन का अंत कर दूंगा।
उसके बेटों ने उत्तर दिया:

"शोक मत करो, प्यारी माँ, अपना शोक शांत करो, हम अपने भाई को वापस लाएंगे;"
हम चारों ओर फैली विशाल पृथ्वी पर उसके पदचिह्नों का अनुसरण करेंगे।
पहाड़ियों और घाटियों को पार करते हुए, गांवों, कस्बों और शहरों से होते हुए, जब तक वह मिल न जाए,
हम आपको दस दिनों के भीतर उसे सुरक्षित वापस लाने का वादा करते हैं।"
तब सुदस्सन ने सोचा, "यदि हम तीनों एक ही दिशा में जाएँगे तो बहुत विलंब होगा: हमें तीन अलग-अलग स्थानों पर जाना होगा, एक देवताओं के लोक में, एक हिमवत (हिमालय) में और एक मनुष्यों के लोक में। परन्तु यदि कनारित्त मनुष्यों के लोक में गया तो वह उस गाँव या नगर को आग लगा देगा जहाँ उसे भूरिदत्त दिखाई देगा, क्योंकि वह क्रूर स्वभाव का है, उसे वहाँ भेजना उचित नहीं होगा।" अतः उसने उससे कहा, "तुम देवताओं के लोक में जाओ; यदि देवताओं (देवदूतों) ने उसे अपने लोक में धर्म का मार्ग सिखाने के लिए भेजा है, तो तुम उसे वहाँ से ले आओ।" परन्तु उसने सुभाग से कहा, "तुम हिमवत (हिमालय) जाओ और पाँचों नदियों में भूरिदत्त को खोजकर वापस आओ।" लेकिन जब उन्होंने स्वयं मनुष्यों के संसार में जाने का निश्चय किया, तो उन्होंने सोचा, "यदि मैं एक युवक के रूप में जाऊँगा तो लोग मेरा अपमान करेंगे; मुझे एक तपस्वी के रूप में जाना चाहिए, क्योंकि तपस्वी मनुष्यों को प्रिय और स्वागत योग्य होते हैं।" अतः उन्होंने तपस्वी का वेश धारण किया और अपनी माता को विदाई देने के बाद चल पड़े।

बोधिसत्व की एक बहन थी, जिसका नाम अच्चिमुखी था और जो उनसे बहुत प्रेम करती थी। जब उसने सुभगा को जाते हुए देखा, तो उसने उनसे कहा, "भाई, मैं बहुत दुखी हूँ, मैं आपके साथ चलूँगी।" "बहन," उन्होंने उत्तर दिया, "तुम मेरे साथ नहीं जा सकतीं, क्योंकि मैंने तपस्वी का वेश धारण कर लिया है।" "मैं एक छोटी मेंढक बन जाऊँगी और तुम्हारी जटाओं में चली जाऊँगी।" सुभगा के सहमत होने पर, वह एक छोटी मेंढक बन गई और उनकी जटाओं में लेट गई। सुभगा ने शुरू से ही उन्हें खोजने का निश्चय कर लिया था, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि उन्होंने व्रत कहाँ रखा था और सबसे पहले वहीं गए। जब उन्होंने वहाँ उस स्थान पर रक्त देखा जहाँ अलंबना ने बोधिसत्व को पकड़ा था और जहाँ अलंबना ने लताएँ रखी थीं, तो उन्हें विश्वास हो गया कि बोधिसत्व को किसी सपेरे ने पकड़ा है। व्यथित होकर और आँखों में आँसू भरकर, वे अलंबना के पदचिह्नों का अनुसरण करने लगे। जब वह उस गाँव में आया जहाँ उसने पहली बार नृत्य का प्रदर्शन किया था, तो उसने लोगों से पूछा कि क्या किसी सपेरे ने वहाँ फलाँ-फलाँ साँप के साथ अपने करतब दिखाए थे? “हाँ, आलमबाना ने एक महीने पहले ये करतब दिखाए थे।” “क्या उसे इससे कुछ लाभ हुआ?” “हाँ, उसे इसी एक जगह पर एक लाख सिक्के मिले।” “अब वह कहाँ गया है?” “फलाँ गाँव।” वह चल पड़ा और जाते-जाते रास्ता पूछता हुआ अंत में महल के द्वार पर पहुँचा। ठीक उसी समय आलमबाना वहाँ पहुँच गया, स्नान और अभिषेक किया हुआ, उत्तम वस्त्र का चोगा पहने हुए (*24), और अपने सेवक से रत्नजड़ित टोकरी उठवा रहा था। एक बड़ी भीड़ जमा हो गई, राजा के लिए एक आसन लगाया गया, और उसने महल के भीतर रहते हुए ही संदेश भेजा, “मैं आ रहा हूँ, उसे नागों के राजा को नचाने दो।” फिर आलमबाना ने रत्नजड़ित टोकरी को एक बहुरंगी कालीन पर रखा, और इशारा करते हुए कहा, “यहाँ आओ, हे नाग-राजा।” उस समय सुदस्सन भीड़ के किनारे पर खड़े थे, जबकि महान प्राणी ने अपना सिर बाहर निकालकर चारों ओर लोगों को देखा। नाग दो कारणों से भीड़ को देखते हैं: यह देखने के लिए कि कोई गरुल या अभिनेता आस-पास तो नहीं है; यदि वे किसी गरुल को देखते हैं, तो वे भयवश नृत्य नहीं करते; यदि किसी अभिनेता को देखते हैं, तो वे लज्जावश नृत्य नहीं करते। देखते-देखते महान प्राणी ने भीड़ के दूसरे भाग में अपने भाई को देखा, और अपनी आँखों में भरे आँसुओं को रोकते हुए, वे टोकरी से बाहर निकले और अपने भाई के पास गए। उन्हें आते देख भीड़ भयवश पीछे हट गई और सुदस्सन अकेले रह गए; इसलिए वे उनके पास गए और अपना सिर उनके चरणों में रखकर रोने लगे; सुदस्सन भी रोने

लगे। अंत में महान प्राणी का रोना बंद हुआ और वे टोकरी में चले गए। आलम्बना ने मन ही मन कहा, "इस नाग ने तपस्वी को काट लिया होगा, मुझे उसे सांत्वना देनी चाहिए"; इसलिए वे उनके पास गए और बोले:

"यह मेरे हाथ से फिसल गया और पूरी ताकत से तुम्हारे पैर को जकड़ लिया।"
क्या इसने गलती से आपको काट लिया? घबराइए मत, इसके काटने से कोई नुकसान नहीं होता।
सुदस्सन उनसे कुछ बात करना चाहता था, इसलिए उसने उत्तर दिया:

"तुम्हारा यह सांप मुझे नुकसान नहीं पहुंचा सकता।"
मुझे पता है, मैं उसका मुकाबला कर सकता हूँ;
आप जहां चाहें खोज लें, आपको कुछ नहीं मिलेगा।
जो मुझ जैसे सांप को भी वश में कर सके।
अलम्बाना को पता नहीं था कि वह कौन है, इसलिए उसने गुस्से से जवाब दिया:

"ब्राह्मण के वेश में यह बदमाश आज मुझे चुनौती दे रहा है।"
सभा में उपस्थित सभी लोग मेरी बात सुनें और हम दोनों को निष्पक्ष मौका दें।"
तब सुदस्सना ने उत्तर में एक श्लोक कहा:

"मेंढक मेरा चैंपियन होगा, और तुम्हारा चैंपियन सांप हो सकता है।"
दांव पर पांच हजार सिक्के रखे जाएं, और हम अपनी ताकत दिखाएं।"
अलम्बाना ने उत्तर दिया:

मैं साधनों से संपन्न व्यक्ति हूं, और तुम एक दिवालिया मसखरे हो;
आपकी तरफ से कौन ज़मानत देगा, और जमा राशि कहां से मिलेगी?
यह मेरी जमानत है, यह वह हिस्सा है जो मुझे शर्त हारने की स्थिति में मिलेगा;
पांच हजार सिक्के मेरी शक्तियों को प्रदर्शित करेंगे, आपकी चुनौती पूरी हो गई है।"
सदासना ने उसकी बात सुनी और कहा, "ठीक है, चलो हम पाँच हज़ार सिक्कों के लिए अपनी शक्ति दिखाते हैं"; और वह निडर होकर राजमहल में गया और अपने ससुर राजा के पास जाकर उसने यह श्लोक कहा:

"हे महान सम्राट, मेरी बात सुनो, सौभाग्य कभी भी तुम्हारे कदमों को न छोड़े।"
क्या आप मेरी ओर से ज़मानत देंगे? दांव पर पाँच हज़ार सिक्के हैं।
राजा ने मन ही मन सोचा, "यह तपस्वी इतनी बड़ी रकम मांग रहा है, इसका क्या मतलब हो सकता है?" इसलिए उसने उत्तर दिया:

"क्या यह तुम्हारे पिता द्वारा छोड़ा गया कोई कर्ज है या यह सब तुम्हारा अपना है?"
आप मुझसे इस तरह का अभूतपूर्व ऋण मांगने आए हैं?
सुदासाना ने दो श्लोक दोहराए:

"अलंबना मुझे अपने सांप से पीटता था;
मैं अपने मेंढक से उसके ब्राह्मण होने के अभिमान को चूर-चूर कर दूंगा।
हे राजा, अपने समस्त अनुयायियों के साथ प्रकट होइए।
और देखो, यहाँ उसकी कैसी पिटाई होने वाली है।"
राजा मान गया और तपस्वी के साथ बाहर चला गया। जब आलमबाना ने उसे देखा, तो उसने सोचा, "इस तपस्वी ने राजा को अपने पक्ष में कर लिया है, यह राजपरिवार का कोई मित्र अवश्य होगा"; इसलिए वह डर गया और यह कहते हुए उसके पीछे चलने लगा:

मैं आपको नीचा नहीं दिखाना चाहता, मैं बिल्कुल भी घमंड नहीं करूंगा;
लेकिन तुम इस सांप से बहुत ज्यादा नफरत करते हो, और तुम्हारा अहंकार टूट सकता है।"
सुदस्सन ने दो श्लोक कहे:

मैं आपको अपमानित करने का प्रयास नहीं कर रहा हूँ,
एक ब्राह्मण, या आपके कौशल को तुच्छ समझना;
लेकिन किस कारण से भीड़ को इस प्रकार राजी किया जाए?
क्या ये ऐसे हानिरहित सांप हैं जो मार नहीं सकते?

अगर लोग आपकी असली कीमत को उतनी ही अच्छी तरह जान पाते जितना मैं स्पष्ट रूप से देख सकता हूँ,
सोने की बात क्यों करें?—थोड़ा सा भोजन ही आपके लाभ की सीमा होगी।"
अलम्बाना क्रोधित हो गया और बोला:

"हे गधे की खाल में लिपटे तपस्वी, बिना कंघी किए और देखने में गंदे,"
तुम मेरे इस सांप का अपमान करने की हिम्मत करते हो और कहते हो कि यह काट नहीं सकता;
पास आकर देखें और इसके कार्यों को आजमाएं, यदि आवश्यक हो तो अनुभव से सीखें;
मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि इसका हानिरहित डंक आपको धूल का ढेर बना देगा।"
तब सुदस्सन ने उनका उपहास करते हुए एक श्लोक कहा:

"हो सकता है कि कोई चूहा या पानी का सांप काट ले।"
और यदि तुम उसे क्रोधित करो तो उसका विष वहीं छोड़ दो;
लेकिन आपका लाल सिर वाला सांप बिल्कुल हानिरहित है।
यह काटेगा नहीं, चाहे कितना भी थूक दे।
अलम्बाना ने दो छंदों में उत्तर दिया:

मुझे उन पवित्र संतों ने बताया है जिन्होंने निरंतर तपस्या की थी,
जो लोग इस जीवन में दान करते हैं, वे मरने के बाद स्वर्ग जाएंगे;
मैं आपको सलाह देता हूं कि यदि आपके पास कुछ भी देने के लिए है तो तुरंत दान कर दें।
यह सांप तुम्हें चूर-चूर कर देगा, तुम्हारे पास जीने के लिए बहुत कम समय बचा है।"
सुदस्सना ने कहा:

मैंने भी पवित्र संतों से सुना है कि दान देने वाले स्वर्ग जाएंगे;
जब तक आपके पास दान करने योग्य कुछ भी हो, तब तक दान कर दें।
यह मेरी कोई साधारण सांप नहीं है, यह तुम्हें अपनी शेखी बघारने वाली आवाज कम करने पर मजबूर कर देगी;
नाग राजा की पुत्री, और मेरी सौतेली बहन,
अच्चिमुखी, उसके मुख से ज्वालाएं निकलती हैं; उसका जहर सबसे घातक ज्ञात जहरों में से एक है।"
फिर उसने भीड़ के बीच में उसे पुकारा, "हे अच्चिमुखी, मेरी जटाओं से बाहर आओ और मेरे हाथ पर खड़ी हो जाओ"; और उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया; और जब उसने उसकी आवाज़ सुनी तो वह उसके बालों में लेटी हुई ही मेंढक की तरह तीन बार चिल्लाई, और फिर बाहर आकर उसके कंधे पर बैठ गई, और उछलकर उसके हाथ की हथेली पर विष की तीन बूँदें गिरा दीं और फिर उसकी जटाओं में वापस चली गई। सुदस्सन विष को पकड़े खड़ा रहा और तीन बार चिल्लाया, "यह देश नष्ट हो जाएगा, यह देश पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा"; उसकी आवाज़ बारह मील (4.23 किमी) तक फैले पूरे बनारस में गूँज उठी। राजा ने पूछा कि इसे कौन नष्ट करेगा। "हे राजा, मुझे कोई ऐसी जगह नहीं दिखती जहाँ मैं यह विष गिरा सकूँ।" "यह धरती ही काफी बड़ी है, इसे वहीं गिरा दो।" "यह संभव नहीं है," उसने उत्तर दिया, और उसने एक श्लोक दोहराया:

"यदि मैं इसे जमीन पर गिरा दूं, तो हे राजा, मेरी बात सुनो,"
घास, लताएँ और जड़ी-बूटियाँ सूखकर नष्ट हो जाएँगी।
"तो फिर, इसे आकाश में फेंक दो।" "यह भी संभव नहीं है," उसने कहा, और उसने एक छंद दोहराया:

"हे राजा, यदि मैं आपकी आज्ञा मानकर उसे आकाश में फेंक दूं,"
सात लंबे साल बीतने तक न तो आसमान से बारिश होगी और न ही बर्फ गिरेगी।
"तो इसे पानी में फेंक दो।" "यह संभव नहीं है," उसने कहा, और उसने एक पंक्ति दोहराई:

"यदि यह पानी में गिर जाए, तो हे राजा, मेरी बात सुनो,"
मछलियाँ और कछुए मर जाएँगे और समुद्र में रहने वाले सभी जीव-जंतु भी मर जाएँगे।"
तब राजा ने कहा, "मैं पूरी तरह से असमंजस में हूँ, क्या आप हमें इस भूमि को नष्ट होने से बचाने का कोई उपाय बता सकते हैं?" "हे राजा, यहाँ एक के बाद एक तीन गड्ढे खुदवाएँ।" राजा ने वैसा ही किया। सुदस्सन ने बीच वाले गड्ढे को औषधियों से, दूसरे को गोबर से और तीसरे को दिव्य औषधियों से भर दिया; फिर उसने विष की बूँदें बीच वाले गड्ढे में गिरा दीं। एक ज्वाला फूट पड़ी, जिससे गड्ढा धुएँ से भर गया; यह ज्वाला फैलकर गोबर वाले गड्ढे में जा पहुँची, फिर दोबारा फूटकर दिव्य औषधियों से भरे गड्ढे में जा पहुँची और उन सबको भस्म कर दिया, और फिर स्वयं बुझ गई। आलमबायन उस गड्ढे के पास खड़ा था, और विष की गर्मी उसे लगी, उसकी त्वचा का रंग

तुरंत उड़ गया और वह एक सफेद कुष्ठ रोगी बन गया। भयभीत होकर उसने तीन बार कहा, "मैं नागराज को मुक्त करूँगा।" उसकी यह बात सुनकर बोधिसत्व रत्नजड़ित टोकरी से बाहर आए, और सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित रूप धारण करके, वे इंद्र के साक्षात वैभव के साथ खड़े हो गए। सुदस्सन और अच्चिमुखी भी वहीं खड़े थे। तब सुदस्सन ने राजा से कहा, “क्या आप नहीं जानते कि ये किसके बच्चे हैं?” “मैं नहीं जानता।” “आप हमें नहीं जानते, लेकिन आप यह जानते हैं कि काशी के राजा ने अपनी पुत्री समुद्दजा को धतरत्थ को दे दिया था।” “मैं अच्छी तरह जानता हूँ, क्योंकि वह मेरी सबसे छोटी बहन थी।” “हम उसके पुत्र हैं, और आप हमारे मामा हैं।” तब राजा ने उन्हें गले लगाया, उनके सिर चूमे और रोए, और उन्हें महल में ले गए और उनका बहुत सम्मान किया। भूरिदत्त के प्रति पूरी दया दिखाते हुए उन्होंने उससे पूछा कि अलंबना ने उसे कैसे पकड़ा, जबकि उसके पास इतना भयानक विष था। सुदस्सन ने पूरी कहानी सुनाई और फिर कहा, “हे महाराज, एक राजा को अपने राज्य पर इस प्रकार शासन करना चाहिए,” और उन्होंने अपने मामा को धर्म का मार्ग सिखाया। फिर उन्होंने कहा, “हे मामा, हमारी माता भूरिदत्त को देखने की लालसा में बहुत कमजोर हो रही हैं, हम उनसे और अधिक समय तक दूर नहीं रह सकते।” “ठीक है, आप जा सकते हैं; लेकिन मैं भी अपनी बहन को देखना चाहता हूँ; मैं उसे कैसे देखूँ?” "हे चाचा जी, हमारे दादाजी, काशी के राजा कहाँ हैं?" "वे मेरी बहन के बिना नहीं रह सके, इसलिए उन्होंने अपना राज्य त्याग दिया और संन्यासी बन गए, और अब वे फलाँ-फलाँ जंगल में रह रहे हैं।" "चाचा जी, मेरी माँ आपसे और मेरे दादाजी से मिलने के लिए तरस रही हैं; हम उन्हें लेकर अपने दादाजी के आश्रम जाएँगे, और फिर आप भी उनसे मिल पाएँगे।" इस प्रकार उन्होंने एक दिन तय किया और महल से प्रस्थान किया; और राजा, अपनी बहन के पुत्रों से विदा होकर रोते हुए लौट आए; और वे पृथ्वी में समाहित होकर नागलोक चले गए (*25)।

सातवीं।

जब महापुरुष उनके बीच आए, तो पूरा शहर एक समान विलाप से भर गया। वे स्वयं टोकरी में एक महीने रहने से थक गए थे और बीमार पड़ गए; उनसे मिलने आने वाले नागों की कोई सीमा नहीं थी, और वे उनसे बात करते-करते थक गए। इसी बीच, कनारित्थ, जो देवदूतों के लोक में गए थे और वहाँ महापुरुष को नहीं पाया, सबसे पहले वापस लौटे; इसलिए उन्हें महापुरुष के बीमार निवास का द्वारपाल बना दिया गया, क्योंकि उनका मानना था कि वे भावुक हैं और नागों की भीड़ को दूर रख सकते हैं। सुभागा ने भी पूरे हिमवत (हिमालय) और उसके बाद विशाल सागर और अन्य नदियों की खोज करने के बाद, अपनी यात्रा के दौरान यमुना की खोज में आए। लेकिन जब उस बहिष्कृत ब्राह्मण ने देखा कि आलमबाना कुष्ठ रोगी हो गया है, तो उसने मन ही मन सोचा, "वह भूरिदत्त को परेशान करने के कारण कुष्ठ रोगी हो गया है; अब मैंने भी रत्न के लालच में आकर उसे धोखा दिया है, जबकि वह मेरा सहायक था, आलमबाना के हाथों, और इस अपराध का फल मुझे भुगतना पड़ेगा। इससे पहले कि ऐसा हो, मैं यमुना नदी में जाकर पवित्र स्नानागार में अपने पाप को धो डालूँगा।" अतः वह यह कहते हुए जल में उतर गया कि वह अपने विश्वासघात के पाप को धो डालेगा। उसी क्षण सुभागा वहाँ आया और उसकी बातें सुनकर मन ही मन बोला, "इस दुष्ट ने एक रत्न के लालच में मेरे भाई को, जिसने उसे धनवान बनने का ऐसा साधन दिया था, आलमबाना के हाथों धोखा दिया; मैं उसका जीवन नहीं बख्शूँगा।" अतः उसने अपनी पूंछ उसके पैरों में लपेटकर उसे पानी में घसीट लिया और उसे नीचे दबाए रखा; फिर जब उसकी साँसें रुक गईं तो उसने उसे थोड़ी देर के लिए शांत रहने दिया, और जब दूसरे ने अपना सिर ऊपर उठाया तो उसने उसे फिर से पानी में घसीट लिया और नीचे दबाए रखा; उसने यह बात कई बार दोहराई, अंत में उस बहिष्कृत ब्राह्मण ने अपना सिर उठाया और कहा:

मैं यहाँ पायगा की पवित्र बाढ़ में इस पवित्र स्थान पर स्नान कर रहा हूँ;
मेरे अंग पवित्र बूंदों से भीगे हुए हैं, कौन सा क्रूर राक्षस मेरा खून चाहता है?
सुभागा ने उन्हें निम्नलिखित श्लोक में उत्तर दिया:

"लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में वह व्यक्ति इस क्रोधी और अभिमानी काशी के पास आया था,"
और उसने उसे अपनी शक्तिशाली कुंडलियों से लपेट लिया, उस यशस्वी सर्प-राजा ने।
मैं ही उनका पुत्र हूँ, जो अब तुम्हें धारण किए हुए हूँ: मेरा नाम सुभागा, ब्राह्मण है।
ब्राह्मण ने सोचा, "भूरिदत्त का भाई मेरी जान नहीं बख्शेगा, लेकिन अगर मैं उसके माता-पिता की प्रशंसा करके उसे दया भाव से भर दूं और फिर अपनी जान की भीख मांगूं तो क्या होगा?" इसलिए उसने यह श्लोक पढ़ा:

"कासी के वंशज (*27) शाही वंश दिव्य,
आपकी माता उसी प्रतिष्ठित वंश से हैं।
तुम सबसे नीच ब्राह्मण के गुलाम को भी नहीं छोड़ोगे।
निर्मम लहर के नीचे डूबकर मर जाना।"
सुभागा ने सोचा, "यह दुष्ट ब्राह्मण मुझे धोखा देकर मुझे जाने के लिए मनाना चाहता है, लेकिन मैं उसे उसकी जान नहीं दूंगा"; इसलिए उसने उसे उसके पुराने कर्मों की याद दिलाते हुए उत्तर दिया:

"एक प्यासा हिरण पानी पीने के लिए पास आया—तुम्हारे वृक्ष-द्वार से तुम्हारा तीर नीचे की ओर गिरा:
भय और पीड़ा में आपका शिकार भाग गया, एक ऐसी प्रेरणा से प्रेरित होकर जो उसकी अपनी नहीं थी;
घने जंगल में तुमने उसे गिरते देखा और उसे अपनी लाठी पर लादकर ले गए।
जहां बरगद की शाखाएँ घनी होकर मुख्य तने के चारों ओर गुच्छों में उगती थीं;
तोते शाखाओं पर खेल रहे थे, कोकिल का मधुर गीत गूंज रहा था।
नीचे फैली हरी घास का मैदान मानो विश्राम के लिए आमंत्रित कर रहा हो;
लेकिन वहाँ तुम्हारी क्रूर दृष्टि ने मेरे भाई को देखा, जो शाखाओं के बीच में था
गर्मी के मौसम में रंग-बिरंगे परिधानों में सजे-धजे वह अपने अनुयायियों के साथ शोभायमान थे।
उसने आनंद में तुम्हें कोई हानि नहीं पहुंचाई, परन्तु तुमने द्वेषवश उसकी हत्या कर दी।
एक निर्दोष पीड़ित, देखो आज वही अपराध तुम्हारे सिर पर लौट आया है।
मैं तुम्हारी जान एक घंटे भी नहीं बख्शूंगा, तुम्हें मेरे किए का पूरा बदला चुकाना होगा।"
तब ब्राह्मण ने सोचा, "वह मुझे मेरी जान नहीं देगा, लेकिन मुझे भागने की पूरी कोशिश करनी चाहिए"; इसलिए उसने निम्नलिखित श्लोक कहा:

अध्ययन, प्रार्थना करना, पवित्र अग्नि में आहुति देना,
ये तीन बातें ब्राह्मण के जीवन को मनुष्यों के क्रोध से सुरक्षित रखती हैं।
यह सुनकर सुभागा झिझकने लगा और मन ही मन सोचने लगा, "मैं उसे नागलोक ले जाकर अपने भाइयों से इस बारे में पूछूंगा"; इसलिए उसने दो श्लोक दोहराए:

"यमुना की पवित्र धारा के नीचे, जो सुदूर हिमालय की तलहटी तक फैली हुई है,
नागों की राजधानी के गहरे हिस्से में धतरत्थ का सिंहासन स्थित है;
वहाँ मेरे सभी वीर भाई निवास करते हैं, मैं आपकी विनती उन्हीं के समक्ष प्रस्तुत करूँगा।
और जैसा उनका फैसला होगा, वैसा ही तुम्हारा अंतिम फैसला होगा।"
फिर उसने उसकी गर्दन पकड़ ली और उसे जोर-जोर से गाली-गलौज करते हुए हिलाया और उसे महान सत्ता के महल के द्वार तक ले गया (*28)।

आठवीं।

द्वारपाल बने कनारित्थ वहाँ बैठे थे, और जब उन्होंने देखा कि दूसरे को इतनी बेरहमी से घसीटा जा रहा है, तो वे उनके पास गए और बोले, "सुभागा, उसे चोट मत पहुँचाओ; सभी ब्राह्मण ब्रह्मा के पुत्र हैं; यदि उन्हें पता चला कि हम उनके पुत्र को चोट पहुँचा रहे हैं, तो वे क्रोधित हो जाएँगे और हमारे समस्त नागलोक को नष्ट कर देंगे। संसार में ब्राह्मण सर्वोच्च स्थान पर हैं और उनका बहुत सम्मान है; आप उनके सम्मान को नहीं जानते, पर मैं जानता हूँ।" क्योंकि कहते हैं कि कनारित्थ ने इससे ठीक पहले जन्म में यज्ञ करने वाले ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया था, इसलिए उन्होंने इतनी दृढ़ता से बात की। इसके अलावा, अपने पूर्व अनुभवों से यज्ञ परंपरा में निपुण होने के कारण, उन्होंने सुभागा और नाग सभा से कहा, "आओ, मैं तुम्हें यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के चरित्र का वर्णन करता हूँ," और उन्होंने आगे कहा:

वेद और यज्ञ, ये दोनों ही अत्यंत मूल्यवान और गरिमामयी वस्तुएँ हैं।
चाहे वे कितने भी तुच्छ क्यों न हों, ब्राह्मणों के अधिकार के रूप में उन पर अधिकार है;
यह उनका बड़ा सम्मान है और जो व्यक्ति अपने तिरस्कार से उनका अपमान करता है,
वह अपनी संपत्ति खो देता है और धर्म के मार्ग से भटक जाता है, और अपराधबोध से ग्रस्त और दुखी जीवन जीता है।"
तब कनारित्थ ने सुभाग से पूछा कि क्या वह जानता है कि संसार किसने बनाया है; और जब सुभाग ने अपनी अज्ञानता स्वीकार की, तो उसने यह श्लोक सुनाकर यह दर्शाया कि संसार का सृजन ब्रह्मा ने किया था, जो ब्राह्मणों के दादा थे।

उन्होंने ब्राह्मणों को अध्ययन और आदेश के लिए बनाया।
उन्होंने क्षत्रियों को बनाया; वैश्य भूमि जोतते हैं;
सुद्दास ने अपने सेवकों को बाकी लोगों की आज्ञा मानने के लिए बाध्य किया;
इस प्रकार, शुरू से ही सब कुछ प्रभु के आदेशानुसार चलता रहा।
फिर उन्होंने कहा, "इन ब्राह्मणों के पास महान शक्तियां हैं, और जो इन्हें प्रसन्न करता है और इन्हें उपहार देता है, उसका कोई पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि वह सीधे देवदूतों के लोक में जाता है"; और उन्होंने इन श्लोकों को दोहराया:

"कुबेर, सोम, वरुण, प्राचीन काल के,
धाता, विधाता, और सूर्य और चंद्रमा,
उन्होंने कई बार बलिदान अर्पित किए।
और उन्होंने अपने ब्राह्मण पुरोहितों को हर प्रकार का वरदान दिया।
उस विशालकाय अज्जुन ने भी इतना कष्ट पहुंचाया था।
जिसके विशाल शरीर के चारों ओर कभी हजारों भुजाएँ फैली हुई थीं,
प्रत्येक जोड़ी अपने-अपने धमकी भरे धनुष के साथ,
पवित्र अग्नि पर उचित भेंटें अर्पित की गईं।
फिर उन्होंने ब्राह्मणों की महिमा का वर्णन किया और बताया कि उन्हें ही सर्वोत्तम उपहार दिए जाने चाहिए।

"वह प्राचीन राजा जिसने उन्हें इतना बढ़िया भोज दिया था
प्राचीन कथाओं के अनुसार, अंततः वह एक देवता (देवदूत) बन गया।
राजा मुजालिंडा लंबे समय तक अग्नि की पूजा करते रहे।
उसने जितना घी डाला, उससे उसकी प्यास बुझाई;
और अंत में उसे वह पुरस्कार मिला जो उसने अर्जित किया था।
उसे स्वर्ग का वह मार्ग मिल गया जिसकी वह तलाश कर रहा था।
उन्होंने इस पाठ को समझाने के लिए इन छंदों को भी दोहराया:

दुजिपा कुल मिलाकर एक हजार वर्ष तक जीवित रहे।
उनके आह्वान पर असंख्य रथ और सेनाएँ हाजिर हो जाती थीं;
लेकिन अंततः उन्होंने एक तपस्वी का जीवन जी लिया।
और वह अपने आश्रम से स्वर्ग की ओर चल पड़ा।
सगर सारी पृथ्वी विजय रथ में,
और उन्होंने एक स्वर्ण बलि स्तंभ स्थापित किया;
उससे अधिक श्रद्धापूर्वक अग्नि की पूजा कोई नहीं करता था।
और वह भी देवता के पद तक पहुंचा।
अंगा, काशी के स्वामी, द्वारा दिए गए दूध और दही
अपनी लंबी भेंटों में इतनी उदारता से अर्पित करते हुए,
उनकी बाढ़ से गंगा सागर में तब्दील हो गई।
अंततः वह सक्का (इंद्र) के दरबार में पहुंचा।
स्वर्ग लोक में महान सक्का (इंद्र) का सेनापति,
सोमा-अर्पण के द्वारा ही सम्मान प्राप्त हुआ;
जो अब अमर शक्तियों का संयोजन करता है
वह हम जैसे ही पाप से सने नश्वर लोगों में से एक था।
ब्रह्मा, महान सृष्टिकर्ता, जिन्होंने सृष्टि की रचना की।
उनकी वेदी के प्रांगण में स्थित पर्वतीय स्थलचिह्न,
जिसकी आज्ञा का पालन करते हुए गंगा ने अपने मार्ग का मार्ग तय किया।
उन्होंने बलिदान के द्वारा ही अपना महान पुरस्कार प्राप्त किया।
फिर उसने उससे कहा, "भाई, क्या तुम जानते हो कि यह समुद्र खारा और पीने लायक नहीं कैसे हो गया?" "मैं नहीं जानता, अरित्था।"
"तुम तो सिर्फ ब्राह्मणों को चोट पहुँचाना जानते हो, मेरी बात सुनो।" फिर उसने एक श्लोक दोहराया:

"एक संन्यासी छात्र, जो प्रार्थना और मंत्रों में पारंगत है,"
मैंने सुना है कि एक बार वह किनारे पर खड़ा था;
उसने समुद्र को छुआ, और फिर समुद्र ने उसे निगल लिया।
और उस दिन के बाद से इसे पीना असंभव हो गया है।"
"ये सभी ब्राह्मण ऐसे ही हैं"; और उन्होंने एक और श्लोक कहा:

"जब सक्का (इंद्र) ने पहली बार अपना राजसिंहासन ग्रहण किया,
ब्राह्मणों के प्रति उनकी विशेष कृपा स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी;

पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उन्होंने अपनी रस्म का प्रचार किया।
और अंततः उन्हें अपना स्वयं का वेद मिल गया।"
इस प्रकार अरित्थ ने ब्राह्मणों, उनके यज्ञों और वेदों का वर्णन किया।

जब नागों ने उनकी बातें सुनीं, तो वे बोधिसत्व के बीमार बिस्तर पर उनसे मिलने आए और आपस में कहने लगे, "यह तो अतीत की कोई कथा सुना रहा है," और ऐसा प्रतीत हुआ कि वे झूठी शिक्षा को स्वीकार करने के खतरे में हैं। बोधिसत्व ने बिस्तर पर लेटे-लेटे यह सब सुना और नागों ने उन्हें इसके बारे में बताया; तब बोधिसत्व ने सोचा, "अरित्थ झूठी कथा सुना रहा है, मैं उसके प्रवचन को रोककर सभा में सही विचार रखूंगा।" अतः वे उठे, स्नान किया, अपने सभी आभूषण पहने और मंच पर बैठकर सभी नागों को एकत्रित किया। फिर उन्होंने अरित्थ को बुलवाया और उससे कहा, "अरित्थ, तुमने ब्राह्मणों और वेदों का वर्णन करते समय झूठ बोला है, क्योंकि वेदों की इन सभी विधि-विधानों द्वारा बलि देना उचित नहीं माना जाता और इससे स्वर्ग नहीं मिलता, देखो तुम्हारे शब्दों में कितना असत्य है"; अतः उन्होंने विभिन्न प्रकार के बलिदानों का वर्णन करने वाली इन गाथाओं को दोहराया:

"वेदों का यह अध्ययन ज्ञानी व्यक्ति का परिश्रम है।"
वह प्रलोभन जो पीड़ितों को लुभाता है और उन्हें भ्रष्ट कर देता है;
एक ऐसा मृगतृष्णा जो लापरवाह नजरों को आकर्षित करने के लिए बना था,
लेकिन समझदार व्यक्ति इसे सुरक्षित रूप से अनदेखा करके आगे बढ़ जाता है।
वेदों में उद्धार करने की कोई गुप्त शक्ति नहीं है।
गद्दार, कायर या बेईमान;
हालांकि, पिछले कई वर्षों से आग की अच्छी देखभाल की जा रही थी,
अंततः अपने दुष्ट स्वामी को निराश छोड़कर चला जाता है।
यद्यपि पृथ्वी के सभी वृक्षों को एक विशाल ढेर में जमा कर दिया गया था
आग के अतृप्त बच्चे को संतुष्ट करने के लिए,
फिर भी क्या यह और अधिक पाने की लालसा रखेगा, क्या यह अब भी अतृप्त रहेगा?
एक नागा भला अपना पेट कैसे भर सकता है?
दूध में लगातार बदलाव होते रहते हैं, इसलिए जहां दूध रखा गया हो, वहां बदलाव होना स्वाभाविक है।
मक्खन और दही प्राकृतिक रूप से बनते हुए दिखाई देते हैं;
और परिवर्तन की वही प्यास आग में भी व्याप्त है।
एक बार जागृत होने पर यह और भी ऊँचाई पर चढ़ता चला जाता है।
सूखी या नई लकड़ी में आग नहीं भड़कती।
आग को प्रकट होने से पहले प्रयास की आवश्यकता होती है;
यदि सूखी ताजी लकड़ी स्वयं जल सकती,
प्रत्येक जंगल में बारी-बारी से स्वतःस्फूर्त रूप से आग लग जाती थी।
अगर वह योग्यता के आधार पर जीत जाता है तो आग को और हवा कौन देगा?
लकड़ी और भूसे का ढेर, गुण एक ही है।
जब रसोइये आग जलाते हैं या लोहार अपना काम करते हैं
या फिर वे लोग जो मृतकों के शवों को जलाते हैं।
लेकिन कोई भी नहीं, चाहे वह कितनी भी लगन से प्रार्थना करे
या फिर आग को और भड़काने के लिए चारों ओर ईंधन का ढेर लगा देता है।
क्या वह अपने अभिनय से कोई पुण्य कमाता है?
आग से उठने वाले धुएं के गुबार के बावजूद, वह जल्द ही बुझ जाती है।
यदि अग्नि वह सम्मानित प्राणी होती जैसा आप सोचते हैं,
क्या वह इस प्रकार कूड़े और दुर्गंध के साथ रहना चाहेगा?
सड़े हुए मांस को घृणित आनंद के साथ खाते हुए,
जहां लोग दहशत के मारे उस दृश्य से तेजी से भाग जाते हैं?
कुछ लोग शिखर वाली ज्वाला को देवता (देवदूत) के रूप में पूजते हैं।
बर्बर लोग जल को वह उच्च नाम देते हैं;
लेकिन दोनों ही अपने रास्ते से भटक गए हैं:
इनमें से कोई भी देवता (देवदूत) कहलाने योग्य नहीं है।

आग की पूजा करना, जो सभी कामों में सबसे आम और थकाऊ काम है,
हर पुकार के प्रति संवेदनहीन, अंधे और बहरे,
और फिर स्वयं पापमय जीवन जीने लगता है।
कोई यह सपना कैसे देख सकता है कि स्वर्ग जैसी कोई चीज जीत सकती है?
इन ब्राह्मणों को अपनी आजीविका के लिए जिन चीजों की आवश्यकता होती है, वे सभी
और इसलिए वे हमें बताते हैं कि ब्रह्मा अग्नि की पूजा करते हैं;
जिसने सब कुछ योजनाबद्ध किया है, वह अजन्मा क्यों ऐसा करे?
क्या वह स्वयं अपने हाथों से बनाई गई रचना की पूजा करता है?
उनकी अपनी शिक्षाएँ और नियम, बेतुके और व्यर्थ।
हमारे पूर्वजों ने धन और शक्ति प्राप्त करने की कल्पना की थी;
उन्होंने ब्राह्मणों को अध्ययन और नेतृत्व के लिए बनाया।
उन्होंने क्षत्रियों को बनाया; वैश्य भूमि जोतते हैं;
सुद्दास ने अपने सेवकों को बाकी लोगों की आज्ञा मानने के लिए बाध्य किया;
इस प्रकार, शुरू से ही सब कुछ उनके उच्च आदेश पर चलता रहा।
हम इन नियमों को अपनी आंखों के सामने लागू होते हुए देखते हैं।
ब्राह्मणों के अलावा कोई और यज्ञ नहीं करता।
केवल क्षत्रिय ही शासन करते हैं।
वैश्य लोग हल चलाते हैं, शुद्धों को आज्ञा माननी पड़ती है।
ये लालची झूठे लोग छल फैलाते हैं।
और मूर्ख लोग उन्हीं मनगढ़ंत कहानियों पर विश्वास कर लेते हैं जिन्हें वे दोहराते हैं;
जिसकी आंखें हैं वह इस घिनौने दृश्य को देख सकता है;
ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) अपने प्राणियों का सुधार क्यों नहीं करते?
यदि उसकी व्यापक शक्ति को कोई सीमा नहीं रोक सकती,
वह आशीर्वाद देने के लिए अपना हाथ इतनी कम बार क्यों बढ़ाते हैं?
उसके सभी प्राणी पीड़ा भोगने के लिए अभिशप्त क्यों हैं?
वह सभी को सुख क्यों नहीं देता?
धोखाधड़ी, झूठ और अज्ञानता का प्रचलन क्यों है?
झूठ की जीत क्यों होती है, जबकि सत्य और न्याय विफल हो जाते हैं?
मैं तुम्हारे ब्रह्मा को अन्यायियों में से एक मानता हूँ।
किसने ऐसी दुनिया बनाई जिसमें बुराई को पनाह दी जाती है?
वे पुरुष शुद्ध माने जाते हैं जो केवल हत्या करते हैं।
मेंढक, केंचुए, मधुमक्खियाँ, साँप या कीड़े-मकोड़े, जो भी उन्हें पसंद हो।
ये तुम्हारी बर्बर प्रथाएं हैं जिनसे मुझे घृणा है।
जैसे कंबोजा (*30) भीड़ अनुकरण कर सकती है।
यदि हत्या करने वाले को निर्दोष माना जाए
और यदि पीड़ित को सुरक्षित स्वर्ग भेज दिया जाए,
ब्राह्मणों को मारने दो—तो सब ठीक हो जाएगा—
और वे लोग जो उनकी कही बातों को सुनते हैं।
हमें कोई भी मवेशी मरने की गुहार करता हुआ नहीं दिख रहा है।
ताकि उन्हें एक नया और बेहतर जीवन प्राप्त हो सके।
बल्कि वे अनिच्छा से अपनी मृत्यु की ओर बढ़ते हैं।
और व्यर्थ संघर्षों में वे अपनी अंतिम सांस भी दे देते हैं।
इस पद, पीड़ित और आघात को छिपाने के लिए
ब्राह्मणों ने अपने सर्वोत्तम विचारों को खुलकर व्यक्त किया;
"यह पद प्रचुरता की गाय के समान होगा"
आपके दिल की सभी इच्छाओं को पूरा करना;
लेकिन अगर पीड़ित के चारों ओर लकड़ी इस प्रकार फैल जाए
जैसा उन्होंने कहा था, वह खजाने से भरा हुआ था।

हमारे लिए चांदी, सोने और रत्नों से परिपूर्ण,
स्वर्ग के अनभिज्ञ आनंदों की प्रचुरता के साथ,
वे केवल अपने लिए ही पेशकश करते।
और उन्होंने धनाढ्यों को अपने पास ही रखा।
ये क्रूर धोखेबाज, जितने अज्ञानी हैं उतने ही नीच भी हैं।
वे सरल लोगों को धोखा देने के लिए लंबी-लंबी धोखाधड़ी की साजिशें रचते हैं,
अपनी संपत्ति भेंट करो, नाखून, दाढ़ी और बाल काट लो।
और तुम्हें अपने हृदय की सबसे प्रिय प्रार्थना प्राप्त होगी।"
प्रस्ताव देने वाला, अपनी इच्छानुसार सरलता से,
वह अपना पर्स लेकर आता है, लोग जल्दी से उसके चारों ओर जमा हो जाते हैं।
उल्लू के चारों ओर मंडराने वाले कौवों की तरह, शरारत करने पर तुले हुए,
और अंत में उसे दिवालिया और पूरी तरह से कंगाल छोड़ दें।
वह ठोस सिक्का जो पहले उसके पास था,
ऐसे वादों के बदले में जिनका कोई परीक्षण नहीं कर सकता।
जैसे लालची अजनबी (*31) जिन्हें शासन करने वालों ने भेजा है
किसानों की कमाई को जब्त करने के लिए,
ये जहां कहीं भी बुरी नजर से घात लगाकर घूमते हैं, वहां लूटपाट करते हैं।
कोई कानून उन्हें दोषी नहीं ठहराता, फिर भी उन्हें मौत की सजा मिलनी चाहिए।
पुजारियों को ब्यूटेआ की एक शाखा पकड़नी होगी
प्राचीन काल से चली आ रही पवित्र रस्म के एक भाग के रूप में;
इसे इंद्र की दाहिनी भुजा कहा जाता है; लेकिन यदि ऐसा होता तो,
क्या इंद्र अपने राक्षस शत्रु पर विजय प्राप्त कर पाएंगे?
इंद्र की अपनी भुजा ही उसे बेहतर सहायता प्रदान कर सकती है।
यह कोई व्यर्थ का दिखावा नहीं था जिसने इतने सारे लोगों को भयभीत कर दिया था।
"प्रत्येक पर्वत श्रृंखला जिसकी रक्षा अब कोई राज्य करता है
यह कभी प्राचीन यज्ञशाला (अग्नि-पूजा वेदी स्थल) में एक ढेर हुआ करता था।
और धैर्यवान हाथों वाले धर्मनिष्ठ उपासक
किसी महान स्वामी के आदेश पर टीला बनाया गया था।
इसलिए ब्राह्मण कहते हैं, यह बहुत बुरा है, यह व्यर्थ का घमंड है।
पहाड़ों को बहुत ऊँचा उठाने के लिए अन्य कीमत चुकानी पड़ती है;
और ईंटों के ढेर में, चाहे आप कितनी भी खोजबीन कर लें, उसमें ये सब कुछ है
टाइल की खुदाई करने वाले मजदूरों के दर्द के लिए लोहे की कोई नसें नहीं हैं।
प्राचीन काल में सुप्रसिद्ध एक संत,
किंवदंती के अनुसार, वह समुद्र तट पर प्रार्थना कर रहा था;
वह वहीं डूब गया और चूंकि यही नियति उस पर आ पड़ी
समुद्र की लहरों का पानी पीने योग्य नहीं रहा है।
नदियों ने अपने विद्वानों को इच्छानुसार डुबो दिया है।
सैकड़ों की संख्या में और उन्होंने अपने जल को स्थिर रखा है;
उनकी धाराएँ बहती रहती हैं और उनका स्वाद कभी खराब नहीं होता।
यह अभिशाप केवल समुद्र पर ही क्यों पड़े?
और वे खारे पानी की धाराएँ जो धरती पर बहती हैं
किसी अभिशाप से उत्पन्न न हों, बल्कि स्वयं खोदने वाले के हाथ को धारण करें।
आरंभ में न तो महिलाएं थीं और न ही पुरुष;
सबसे पहले मन ने ही मानव जाति को प्रकाश में लाया, और फिर,
हालांकि दौड़ में सभी ने बराबर की शुरुआत की थी,
(*32) उनकी विभिन्न असफलताओं के कारण उन्हें जल्द ही स्थान बदलना पड़ा;
अतीत में योग्यता की कोई कमी नहीं थी।
लेकिन वर्तमान दोष जिन्होंने उन्हें पहला या आखिरी बनाया।

एक चतुर निम्न जाति का लड़का अपनी बुद्धि का प्रयोग करेगा,
और भजन पढ़ो, न ही उसके सिर का मुकुट फटा हुआ पाओ;
ब्राह्मणों ने वेदों का निर्माण अपने ही नुकसान पर किया।
जब दूसरों ने वह ज्ञान प्राप्त कर लिया जो उन्होंने खो दिया था।
इस प्रकार वाक्यों का निर्माण और स्मरण रटने के द्वारा किया जाता है।
ऐसे मीट्रिक रूपों में जिन्हें आसानी से भुलाया नहीं जा सकता,
अस्पष्टता मूर्ख मन को लुभाती है।
वे बिना सोचे-समझे हर बात को मान लेते हैं।
ब्राह्मण हिंसक शिकारी जानवरों की तरह नहीं होते।
ये बाघ नहीं, बल्कि जंगल के शेर हैं;
वे गायों और बैलों से काफी मिलते-जुलते हैं।
बाहर से अलग दिखने के बावजूद, वे अंदर से उतने ही नीरस हैं।
यदि विजयी राजा युद्ध करना बंद कर दे
और अपने मित्रों के साथ शांति से रहो और सही मार्ग का अनुसरण करो।
अपने हृदय में उमड़ने वाली उन भावनाओं पर विजय प्राप्त करते हुए,
उनकी प्रजा कितनी सुखमयी होगी!
ब्राह्मणों का वेद, क्षत्रियों की नीति,
दोनों ही मनमाने और भ्रामक हों।
वे अंधे होकर सड़क पर अपना रास्ता टटोलते हुए आगे बढ़ते हैं।
किसी भीषण बाढ़ के कारण पानी बह गया।
ब्राह्मण की वेद में, क्षत्रिय की नीति में,
एक गुप्त अर्थ जिसे हम दोनों समझ सकते हैं;
क्योंकि अंततः हानि, लाभ, गौरव और शर्म सब कुछ संभव है।
चारों जातियों को एक समान स्पर्श करो, सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करो।
गृहस्थों के रूप में आजीविका अर्जित करने के लिए
सभी कार्यों को वैध और अच्छा मानो।
तो आज के हमारे इस पतित युग में ब्राह्मणों का क्या होगा?
किसी भी तरह से जीविका कमा लेंगे।
गृहस्थ लाभ के लालच से प्रेरित होता है।
वह अंधाधुंध अनुसरण करता है, आनंद के मार्ग में खिंचा चला जाता है।
हर तरह का धंधा आजमाने वाला, कपटी और मूर्ख।
हाय! ज्ञान के नियमों से कितना दूर गिर गया!

इस प्रकार, महान पुरुष ने उनके तर्कों का खंडन करते हुए अपनी शिक्षा स्थापित की, और जब नागों की सभा ने उनका प्रवचन सुना तो वे आनंद से भर गए। महान पुरुष ने निर्वासित ब्राह्मण को नागलोक से मुक्त कराया और उसे एक भी अपमानजनक शब्द से आहत नहीं किया। सागर-ब्रह्मदत्त ने भी नियत दिन को बीतने नहीं दिया, बल्कि अपनी पूरी सेना के साथ अपने पिता के निवास स्थान पर चले गए। महान पुरुष ने ढोल बजाकर यह घोषणा की कि वे अपने मामा और दादा से मिलने जा रहे हैं, और यमुना नदी पार करके सबसे पहले बड़े धूमधाम और वैभव के साथ उस आश्रम में गए, और उनके शेष भाई और उनके माता-पिता बाद में आए। उस समय सागर-ब्रह्मदत्त ने महान पुरुष को पहचान न कर, जब वे अपने विशाल सेवकों के समूह के साथ आ रहे थे, तो अपने पिता से पूछा:

ये ढोल किसके हैं? ये ढोल किसके हैं?
शंख, और वे वाद्ययंत्र, जिनकी आवाज़
हवा में गहरी संगीतमय गूंज उठती है
और क्या इससे सम्राट का हृदय प्रसन्न होता है?
यह युवक कौन है जो तीर-कोश और धनुष से लैस होकर वहाँ मार्च कर रहा है?
क्या उसने अपने सिर पर बिजली की तरह चमकता हुआ सोने का मुकुट पहन रखा है?
वह कौन है जो वहां आ रहा है, जिसकी युवावस्था की सहजता चमक रही है?
क्या यह बबूल की उस लकड़ी की तरह है जो लोहार की भट्टी में स्थिर प्रकाश से चमकती है?
जिसकी सुनहरी रंग की चमकीली छतरी दोपहर की तेज धूप में भी सूरज को मात दे देती है।

क्या उसके बगल में एक मक्खी-फड़फड़ाने वाला यंत्र बड़े करीने से लटका हुआ है, जो किसी भी समय हरकत के लिए तैयार है?
सुनहरी छड़ियों पर मोर की पूंछें उसके चेहरे के पास लहराती हुई देखें, रंगों का मिश्रण (*34)
उसके माथे पर चमकीली बालियां इस प्रकार सुशोभित हैं जैसे आकाश में बिजली की लपटें उठती हैं।
किस नायक की वो लंबी, चौड़ी आंखें हैं, भौंहों के बीच ऊन का वो गुच्छा है?
वे दांत कलियों या सीपियों की तरह सफेद थे, उनकी पंक्ति इतनी निर्दोष और इतनी समरूप थी।
वे लाख से रंगे हाथ, वे प्यारे होंठ, वह स्वर्ग में सूर्य की तरह चमकता है;
जैसे कोई लंबा साल का पेड़, फूलों से लथपथ, किसी पर्वत शिखर पर अकेला खड़ा हो,
अपने सभी राक्षस शत्रुओं को पराजित करने के बाद, इंद्र विजय वस्त्रों में सजे हुए हैं।
वह कौन है जो हमारी नजरों के सामने अचानक प्रकट होता है, अपने आवरण को हटाकर अपना निशान छोड़ता है,
उसके हाथ में जड़ा हुआ रत्नजड़ित हैंडल और समृद्ध कारीगरी वैभव से जगमगा रही थी।
अब वह अपने सोने के जूते उतारता है, जो विभिन्न प्रकार के धागों से अलंकृत हैं,
और, श्रद्धापूर्वक झुककर, ऋषि के सिर पर सम्मान अर्पित करता है?
इस प्रकार अपने पुत्र सागर-ब्रह्मदत्त द्वारा पूछे जाने पर, अलौकिक ज्ञान और शक्ति से परिपूर्ण तपस्वी ने उत्तर दिया, "हे मेरे पुत्र, ये राजा धतरत्थ के पुत्र हैं, तुम्हारी बहन के नाग पुत्र हैं"; और उन्होंने इस गाथा को दोहराया:

"ये सभी धतरत्थ के पुत्र हैं, जो शक्ति में गौरवशाली और प्रसिद्धि में महान हैं।"
वे सभी समुद्दजा का आदर करते हैं और उन्हें सर्वमान्य माता मानते हैं।"
जब वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, नागों का समूह आया और तपस्वी के चरणों को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। समुद्दजा ने भी अपने पिता को प्रणाम किया और फिर रोते हुए नागों के साथ नागलोक लौट गईं। सागर-ब्रह्मदत्त कुछ दिनों तक वहाँ रहे और फिर बनारस चले गए, और समुद्दजा नागलोक में परास्त हो गईं। बोधिसत्व ने जीवन भर नियमों का पालन किया और व्रत के सभी कर्तव्यों को पूरा किया, और अंत में नागों के समूह के साथ स्वर्ग के सिंहासन भरने के लिए चले गए।

पाठ के बाद गुरु ने कहा, "इस प्रकार, बुद्ध के जन्म से पहले के समय के धर्मनिष्ठ शिष्यों, ज्ञानी पुरुषों ने नाग राज्य की महिमा का त्याग कर उपवास के कर्तव्यों का कड़ाई से पालन किया"; और फिर उन्होंने अपने जन्म का वर्णन किया: "उस समय महान राजा का परिवार मेरे पिता और माता थे, देवदत्त बहिष्कृत ब्राह्मण थे, आनंद सोमदत्त थे, उप्पलावन्न अच्चिमुखी थे, सारिपुत्र सुदस्सन थे, मोग्गल्याना सुभागा थे, सुनक्खत्त कनारित्थ थे, और मैं स्वयं भूरिदत्त था।"

फुटनोट:

(1) नाग राजा.

(2)वरुण को नाग राजा कहा जाता है

(3)नागा जनजातियों के नाम।

(4) "नागारा-खण्डं निश्चितम्।"

(5) विरुक्खा के लिए अनुमान।

(6) क्रमांक 390 में चतुरंगसमन्नगतं ब्रह्मचरियवासं वसिम पढ़ा गया है, जिसका अर्थ है "ईर्ष्या, नशे, इच्छा और क्रोध से मुक्त"। (परन्तु देखें मजज. निक. I. 77) उपोसथ व्रत के संबंध में नहीं पाया गया; क्रमांक 318 में इसके आठ विभाजन मान्यता प्राप्त हैं। चतुरोसथ जातक, क्रमांक 441, इस विषय पर प्रकाश डालता; परन्तु उचित स्थान पर केवल इसका नाम ही उल्लेखित है।

(7)"उपोसथ-खण्डं निट्ठितम्।"

(8) उसे बाद में आलमबायना कहा जाता है।

(9)चार लोकपाल।

(10) सक्का (इंद्र) का स्वर्ग।

(11)"वनप्पवेसन-खण्डं नित्थितम्।"

(12)जाट. 518.

(13)बीडी समुलो, "जड़ें और सब कुछ,"

(14)या "उनके बीच अपनी शान लाने का कारण।"

(15) हितोपाद. IV., कहानी 8.

(16)"सिला-खंडम नित्थितम."

(17) क्या उनकी पूरी निगाह अपराधी को अंधा कर देती?

(18)Bs. vappito, vappo से? पाठ vippito पढ़ता है.

(19) खाने से होने वाले अपराध के कारण।

(20) किलान-खण्डं निट्ठितं

(23) ओसैपिसांति (sqrtavacap) पढ़ें।

(24) मत्तसतकम पढ़ें

(25)नागर-पवेसन-खंडं निश्चितम्।

(27) पाठ में कामसस्सा लिखा है, "काशी के राजा का दूसरा नाम" (स्कोल.)।

(28) "महासत्तास्स परियेसन-खण्डं निट्ठितम्।"

(30) कम्बोज उत्तर-पश्चिमी जनजाति थे जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने अपने मूल आर्य रीति-रिवाज खो दिए थे और बर्बर हो गए थे, देखें मनु, X. 44.

(31)ए-कसिया.

(32) वोसग्गविभंगम का अर्थ "व्यवसाय का अंतर" हो सकता है।

(34) उसकी मूंछें? या इसे शाब्दिक रूप से लिया जाना चाहिए?

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **महानारदकस्सप-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-544-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 544
महानारदकश्यप-जातक

"विदेहों का एक राजा था," इत्यादि। यह कथा गुरु ने लत्थिवना आनंद उद्यान के मठ में रहते हुए उरुवेला-कश्यप के धर्मांतरण के संबंध में सुनाई थी। अब, जिस गुरु ने धर्ममार्ग के गौरवशाली शासन की शुरुआत की, उन्होंने उरुवेला-कश्यप और अन्य तपस्वियों का धर्मांतरण करने के बाद, पहले तपस्वी रहे एक हजार भिक्षुओं से घिरे हुए, लत्थिवना मठ के आनंद उद्यान में मगध के राजा को प्रतिज्ञा देने के लिए राजी करने के उद्देश्य से आए (*1); और उस समय, जब एक लाख बारह हजार अनुयायियों के साथ आए मगध के राजा ने बुद्ध को प्रणाम करने के बाद विराजमान हो गए, तो उनके अनुयायियों ब्राह्मणों और गृहस्थों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ, "क्या उरुवेला-

कश्यप ने स्वयं को महान समना के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखा है, या महान समना ने स्वयं को उरुवेला-कश्यप के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में रखा है?" तब भगवान बुद्ध ने मन में सोचा, "मैं उन्हें दिखाऊंगा कि कश्यप ने स्वयं को मेरे आध्यात्मिक मार्गदर्शन में समर्पित कर दिया है," और उन्होंने यह श्लोक कहा:

"हे उरुवेला निवासी, तुमने ऐसा क्या देखा कि तुम, जो अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध हो (*2), तुमने अपनी पवित्र अग्नि का त्याग कर दिया? मैं तुमसे, कश्यप, यह प्रश्न पूछता हूँ, तुम्हारा अग्नि यज्ञ क्यों त्याग दिया गया?"

तब बुद्ध के अर्थ को समझने वाले वरिष्ठ भिक्षु ने इस श्लोक में उत्तर दिया:

"बलिदान केवल रूपों, ध्वनियों, स्वादों, इंद्रिय सुखों और स्त्रियों की बात करते हैं; और यह जानते हुए कि ये सभी चीजें भौतिक अस्तित्व के तत्वों में पाई जाती हैं, इसलिए ये सब अशुद्ध हैं, मैंने बलिदानों या चढ़ावों में कोई आनंद नहीं लिया।"

और यह दिखाने के लिए कि वह एक शिष्य है, उसने बुद्ध के चरणों में अपना सिर रखकर कहा, "भगवान बुद्ध मेरे गुरु हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।" ऐसा कहकर वह सात बार हवा में उठा, एक ताड़ के पेड़ की ऊँचाई तक, दो ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक, और इसी तरह सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक, और फिर नीचे आकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। जब सभी लोगों ने वह चमत्कार देखा, तो उन्होंने गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए कहा, "हे बुद्ध की शक्ति महान है; अपने दृढ़ विश्वास से भरे होने के बावजूद, और स्वयं को संत मानते हुए भी, उरुवेला-कश्यप ने भ्रम के बंधनों को तोड़ दिया और तथागत (बुद्ध) द्वारा परिवर्तित हो गया।" गुरु ने कहा, "यह आश्चर्य की बात नहीं है कि मैंने, जिसने अब अनंत ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसे परिवर्तित कर दिया; प्राचीन काल में जब मैं नारद नामक ब्रह्मा था और अभी भी वासना के अधीन था, तब मैंने इस व्यक्ति के भ्रम के बंधनों को तोड़ दिया और उसे विनम्र बना दिया"; और ऐसा कहकर उन्होंने श्रोताओं के अनुरोध पर निम्नलिखित कहा:

प्राचीन काल में, विदेह राज्य के मिथिला में अंगती नामक एक धर्मात्मा राजा शासन करता था। उसकी मुख्य रानी के गर्भ में रुजा नाम की एक सुंदर और दयालु पुत्री का जन्म हुआ, जो अत्यंत गुणवान थी और जिसने एक लाख युगों तक प्रार्थना की थी। उसकी अन्य सोलह हजार पत्नियाँ बांझ थीं। यह पुत्री उसे अत्यंत प्रिय और आकर्षक हो गई। वह प्रतिदिन उसे विभिन्न प्रकार के फूलों और सुंदर वस्त्रों से भरी पच्चीस टोकरियाँ भेजता था और उनसे उसे सजाने का अनुरोध करता था; और वह उसे हर पखवाड़े एक हजार वस्तुएँ भेजता था और उससे दान करने का अनुरोध करता था क्योंकि भोजन और पेय की प्रचुरता थी। उसके तीन मंत्री थे, विजया, सुनामा और अलता; और एक दिन जब चौथे महीने की पूर्णिमा का पर्व आया, और नगर और महल देवताओं (देवदूतों) के नगर की तरह सजाए गए थे, तब उन्होंने विधिवत स्नान किया, तेल लगाया और सभी प्रकार के आभूषण पहने। जब वे अपने मंत्रियों के साथ एक खुली खिड़की के पास चबूतरे पर खड़े थे और उन्होंने साफ आकाश में गोल चंद्रमा को ऊपर उठते देखा, तो उन्होंने अपने मंत्रियों से पूछा, "यह साफ रात कितनी सुहावनी है, हम किस मनोरंजन से अपना मनोरंजन करें?"

शिक्षक ने इस प्रकार मामले को समझाया:

"विदेह वंश में अंगती नाम का एक क्षत्रिय राजा था, जिसके पास कई रथ थे, वह धनी था और उसकी सेना विशाल थी। एक दिन वर्षा ऋतु के चौथे महीने की पूर्णिमा की पंद्रहवीं रात को, पहले पहर के समाप्त होने से पहले, उसने अपने मंत्रियों, विजया, सुनामा और सेनापति अलाटका को इकट्ठा किया। ये सभी बुद्धिमान, पुत्रों के पिता, हमेशा मुस्कुराते हुए और अनुभवी थे। विदेह राजा ने उनसे पूछा, "तुममें से प्रत्येक अपनी इच्छा व्यक्त करो। आज चौथे महीने की पूर्णिमा है, चारों ओर चाँदनी है; आज रात हम क्या मनोरंजन करेंगे?"

राजा द्वारा पूछे जाने पर, प्रत्येक ने अपने मन की इच्छा के अनुसार उत्तर दिया।

शिक्षक ने इस प्रकार मामले को समझाया:

तब सेनापति अलाता ने राजा से कहा, “आइए हम एक वीर सेना एकत्रित करें; असंख्य सैनिकों के साथ युद्ध में उतरें; जो अब तक स्वतंत्र रहे हैं, उन्हें अपने अधीन कर लें; मेरा यही मत है, आइए हम उस पर विजय प्राप्त करें जो अब तक अजेय है।” अलाता की बात सुनकर सुनामा ने कहा, “हे राजा, आपके सभी शत्रु यहाँ एकत्रित हैं, उन्होंने अपनी शक्ति त्याग दी है और विनम्रता से व्यवहार कर रहे हैं; आज मुख्य उत्सव है; युद्ध मुझे प्रसन्न नहीं करता। तो वे हमारे लिए मांस, पेय और सभी प्रकार का भोजन लाएँ: हे राजा, आप नृत्य, गीत और संगीत का आनंद लें।” सुनामा की बात सुनकर विजया ने कहा, “हे महान राजा, सभी सुख-सुविधाएँ सदा आपके साथ हैं; इन्हें प्राप्त करना कठिन नहीं है, ताकि आप अपनी सभी इच्छाओं को पूरा कर सकें: परन्तु यदि ये सदा प्राप्त भी हों, तो भी यह संकल्प मुझे स्वीकार्य नहीं है।” आइए हम किसी समना या ब्राह्मण की प्रतीक्षा करें जो पवित्र परंपरा में पारंगत हो, जो आज हमारे मनोकामना के विषय में हमारे

संदेह को दूर कर सके (*3)।" विजया के वचन सुनकर राजा अंगती ने कहा, "विजया का यह कथन मुझे भी प्रसन्न करता है। आइए हम किसी समना या ब्राह्मण की प्रतीक्षा करें जो पवित्र परंपरा में पारंगत हो, जो आज हमारे मनोकामना के विषय में हमारे संदेह को दूर कर सके। क्या आप सब इस संकल्प का पालन करेंगे; हम किस गुरु की प्रतीक्षा करेंगे? आज पवित्र ग्रंथ और उसके अर्थ में पारंगत कौन हमारे मनोकामना के विषय में हमारे संदेह को दूर करेगा?" विदेह के वचन सुनकर अलत ने उत्तर दिया, "हिरण-जग में एक नग्न तपस्वी है, जिसे सभी बुद्धिमान मानते हैं, गुण, कश्यप वंश का, प्रसिद्ध, विविध प्रवचन देने वाला और शिष्यों का एक बड़ा समूह है; "हे राजा, उसकी प्रतीक्षा करो, वह हमारे संदेह को दूर करेगा।" अलाता की बात सुनकर राजा ने अपने सारथी को आदेश दिया, "हम हिरण-जंगल जाएंगे, यहाँ जुते हुए रथ को लाओ।"

फिर उन्होंने हाथीदांत और चांदी की सजावट से बने उनके रथ को जोता, जिसका साजो-सामान चमकीला और साफ-सुथरा था, मानो निर्मल रात (*4) की तरह सफेद और बेदाग था। उसमें चार सिंधी घोड़े जोते गए, जो कमल के समान सफेद, हवा के समान तेज, सुप्रशिक्षित और सोने के मुकुट पहने हुए थे। सफेद छत्र, सफेद रथ, सफेद घोड़े और सफेद पंखा भी सफेद था। विदेह राजा अपने सलाहकारों के साथ जब निकले तो वे चंद्रमा के समान चमक रहे थे। भाले और तलवारों से लैस कई बुद्धिमान और बलवान पुरुष घोड़ों पर सवार होकर वीर राजा के पीछे-पीछे चल रहे थे। मानो पल भर में दूरी तय करके रथ से उतरकर विदेह अपने मंत्रियों के साथ पैदल गुना की ओर बढ़े; और राजा ने वहां पहले से एकत्रित ब्राह्मणों और धनी पुरुषों को भी हटाने का आदेश नहीं दिया, हालांकि उन्होंने उनके लिए कोई जगह नहीं छोड़ी थी।

उस मिश्रित सभा से घिरे हुए राजा एक तरफ बैठ गए और अभिवादन किया।

शिक्षक ने इस प्रकार मामले को समझाया:

फिर राजा एक नरम गद्दे पर एक तरफ बैठ गए, जो गिलहरी की कोमल, रंग-बिरंगी खालों से ढका था और उस पर एक नरम तकिया रखा था। राजा ने बैठते ही मित्रता और शिष्टाचार के साथ उनसे पूछा, "क्या आपकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी हैं? क्या आपकी प्राण शक्ति क्षीण तो नहीं हो रही? क्या आपका जीवन सुखमय है? क्या आपको भिक्षा मिलती है? क्या आपके चलने-फिरने में कोई बाधा नहीं है? क्या आपकी दृष्टि ठीक है?" गुना ने अपने कर्तव्यों के प्रति सजग विदेह को विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मेरी सभी आवश्यकताएँ पूरी हैं, और ऊपर बताई गई दोनों बातें मेरी इच्छा के अनुरूप हैं। आप भी, क्या आपके पड़ोसी आप पर भारी तो नहीं पड़ते? क्या आपका स्वास्थ्य उतना अच्छा है जितना आपको चाहिए? क्या आपका रथ आपको सुचारू रूप से चला सकता है?" क्या आपको शरीर को प्रभावित करने वाली कोई बीमारी नहीं है? राजा ने इस सौहार्दपूर्ण अभिवादन को सुनकर विधि का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से उनसे विधि के अर्थ और पाठ तथा सही आचरण के नियमों के बारे में पूछा। "हे कश्यप, मनुष्य को अपने माता-पिता, गुरु, पत्नी और बच्चों के प्रति विधि का पालन कैसे करना चाहिए? उसे वृद्धों, सामनों और ब्राह्मणों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए? उसे अपनी सेना और देश के लोगों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए? उसे विधि का पालन करके अंततः स्वर्ग कैसे प्राप्त करना चाहिए? और कुछ लोग अधर्म के कारण नरक में कैसे गिर जाते हैं?"

असीम ज्ञान से परिपूर्ण बुद्धों, शिष्यों या ऋषियों में से किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के अभाव में, राजा ने अपने सभी उचित शाही प्रश्न एक निर्धन, नग्न भिक्षु से पूछे जो कुछ नहीं जानता था और एक बच्चे की तरह अंधा था; और जब उससे प्रश्न पूछे गए, तो उसने उचित उत्तर देने के बजाय अवसर का लाभ उठाते हुए "हे राजा, सुनो" कहा और अपनी ही झूठी शिक्षा का प्रचार किया, ठीक वैसे ही जैसे कोई चलते हुए बैल को लात मारता है या दूसरे के भोजन पात्र में कूड़ा फेंकता है।

शिक्षक ने इस प्रकार मामले को समझाया:

विदेह राजा की बातें सुनकर कश्यप ने उत्तर दिया, "हे राजा, सुनिए, यह एक सत्य और अचूक कथन है। विधि का पालन करने से कोई फल नहीं मिलता, न अच्छा न बुरा; हे राजा, कोई दूसरा लोक नहीं है, भला वहाँ से कौन लौटकर आया है? कोई पूर्वज नहीं हैं, तो पिता-माता कैसे हो सकते हैं? कोई गुरु नहीं है, जो वश में नहीं हो सकता उसे कौन वश में करेगा? सभी प्राणी समान हैं, कोई ऐसा नहीं है जिसे सम्मान देना या ग्रहण करना चाहिए; बल या साहस जैसी कोई चीज नहीं है, तो शक्ति या वीरता कैसे हो सकती है?"

सभी प्राणियों का भाग्य पहले से ही निर्धारित है, ठीक वैसे ही जैसे रस्सी जहाज के पीछे-पीछे चलती है। हर इंसान को वही मिलता है जो उसे मिलना तय है, तो फिर देने का क्या फायदा? हे राजा, देने में कोई लाभ नहीं, देने वाला असहाय और कमजोर होता है; दान मूर्ख देते हैं और बुद्धिमान स्वीकार करते हैं; कमजोर मूर्ख जो खुद को बुद्धिमान समझते हैं, वे समझदारों को दान देते हैं।

इस प्रकार दान देने की निरर्थकता का वर्णन करने के बाद, उन्होंने परलोक में पाप के परिणामों को उत्पन्न करने की शक्तिहीनता का वर्णन किया:

सात ऐसे तत्व हैं जो अविनाशी और अहानिकारक हैं: अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, सुख, दुःख और आत्मा। इन सातों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो इन्हें नष्ट या विभाजित कर सके, और न ही ये कभी नष्ट हो सकते हैं; हथियार भी इन तत्वों के बीच हानिरहित रूप से चल जाते हैं। जो व्यक्ति तेज तलवार से किसी का सिर काट देता है, वह इन तत्वों को विभाजित नहीं करता: तो फिर बुराई करने का क्या परिणाम होगा? सभी प्राणी चौरासी महायुगों से गुजरकर शुद्ध होते हैं; उस अवधि के आने तक संयमी व्यक्ति भी शुद्ध नहीं होता। उस अवधि के आने तक, चाहे उन्होंने कितना भी सद्‌गुणों का पालन किया हो, वे शुद्ध नहीं होते, और चाहे वे कितने ही पाप करें, वे उस सीमा को पार नहीं कर पाते। हम चौरासी महायुगों के माध्यम से एक-एक करके शुद्ध होते हैं: हम अपने भाग्य से आगे नहीं जा सकते, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र अपने तट से आगे नहीं जा सकता।

इस प्रकार विनाश के पैरोकार ने किसी भी मिसाल का हवाला दिए बिना अपनी उग्रता से अपनी शिक्षा को लागू किया (*5)

कश्यप की बातें सुनकर अलत ने उत्तर दिया, "आपकी बात मुझे भी सही लगती है। मुझे भी अपना पिछला जन्म याद है। मैं एक नगर में पिंगला नाम का गौ-हत्यारा शिकारी था। मैंने समृद्ध बनारस में अनेक पाप किए, अनेक प्राणियों को मारा, भैंसें, सूअर और बकरियाँ। उस जन्म के बाद, मेरा जन्म एक सेनापति के समृद्ध परिवार में हुआ; सचमुच पाप का कोई बुरा फल नहीं होता, मुझे नरक में नहीं जाना पड़ा।"

वहाँ बीजाका नाम का एक दास था, जो फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए था और व्रत रखे हुए था। वह गुना की बातें सुनने आया था। जब उसने कश्यप के वचन और अलता का उत्तर सुना, तो उसने गहरी आहें भरीं और फूट-फूटकर रोने लगा। विदेह के राजा ने उससे पूछा, "तुम क्यों रो रहे हो? तुमने क्या देखा या सुना है? तुम अपना दुख क्यों प्रकट कर रहे हो?"

बीजाका ने उत्तर दिया, "मुझे कोई पीड़ा नहीं है: हे राजा, मेरी बात सुनिए। मुझे भी अपना पिछला जन्म याद है, जो सुखमय था; मैं साकेत नगर में भावसेत्थी नाम का एक व्यक्ति था, जो सद्‌गुणों का पालन करता था, पवित्र था, दान देता था और ब्राह्मणों और धनी पुरुषों द्वारा सम्मानित था; और मुझे अपने द्वारा किए गए किसी भी बुरे कर्म का स्मरण नहीं है। लेकिन जब मैं उस जीवन से निकला, तो मेरा जन्म एक निर्धन वेश्या के गर्भ में हुआ और मेरा जन्म एक दुखमय जीवन में हुआ। परन्तु दुखमय होकर भी मैं शांत मन रखता हूँ और अपने भोजन का आधा भाग जिसे भी चाहिए उसे दे देता हूँ। मैं चौदहवें और पंद्रहवें दिन उपवास करता हूँ और कभी भी किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता और चोरी से दूर रहता हूँ। परन्तु मेरे सभी अच्छे कर्म फलदायी नहीं होते; जैसा कि अलत कहते हैं, मुझे लगता है कि सद्‌गुण व्यर्थ है। मैं जीवन में एक अकुशल पासा खेलने वाले की तरह हारता हूँ; अलत एक कुशल पासा खेलने वाले की तरह जीतते हैं; मुझे स्वर्ग जाने का कोई द्वार नहीं दिखता; इसीलिए जब मैंने यह सुना तो मैं रोया। कश्यप ने जो कहा।

बीजाका की बातें सुनकर राजा अंगती ने कहा, "स्वर्ग का कोई द्वार नहीं है; केवल भाग्य के भरोसे रहो। चाहे सुख हो या दुख, यह सब भाग्य पर निर्भर है: अंततः सभी को जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति मिलेगी; भविष्य की चिंता मत करो। मैं भी पिछले जन्मों में सौभाग्यशाली रहा और ब्राह्मणों और धनी पुरुषों की सेवा करता रहा, परन्तु जब मैं विधानों का पालन कर रहा था, तब मुझे स्वयं कोई सुख नहीं मिला।"

इतना कहकर उन्होंने विदा ली: "हे पूज्य कश्यप, इतने समय तक मैं उदासीन रहा, परन्तु अब अंततः मुझे एक गुरु मिल गया है, और अब से आपके उपदेशों का अनुसरण करते हुए मैं केवल सुख में ही आनंद लूंगा, और सद्‌गुणों पर प्रवचन सुनना भी मुझे नहीं रोक पाएगा। आप जहाँ हैं वहीं ठहरिए, मैं अब प्रस्थान करता हूँ; आशा है भविष्य में फिर मिलेंगे।"

इतना कहकर विदेह का राजा अपने घर चला गया।

जब राजा पहली बार गुना से मिलने गए, तो उन्होंने आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया और फिर अपना प्रश्न पूछा; लेकिन जब वे चले गए, तो उन्होंने कोई अभिवादन नहीं किया: क्योंकि गुना अपने नाम के अनुरूप नहीं थे, अपनी अयोग्यता (*6) के कारण, उन्हें कोई अभिवादन नहीं मिला, और न ही उन्हें कोई भिक्षा मिली। इसलिए जब रात बीत गई और अगला दिन आ गया, तो राजा ने अपने मंत्रियों को इकट्ठा किया और उनसे कहा, "आनंद के सभी तत्व तैयार करो, अब से मैं केवल सुख की खोज में लगा रहूंगा, मेरे सामने कोई अन्य कार्य नहीं उठाया जाएगा, फलां व्यक्ति न्याय प्रशासन संभाले," और उन्होंने तदनुसार स्वयं को सुख में लीन कर लिया।

शिक्षक ने इस प्रकार मामले को समझाया:

जब रात से दिन हुआ तो अंगती ने अपने मंत्रियों को बुलाया और उनसे कहा, "चंदाका महल में मेरे लिए हमेशा सुख-सुविधाओं की व्यवस्था रखें; कोई भी सार्वजनिक या गुप्त मामलों से संबंधित संदेश लेकर न आए। विजया, सुनामा और सेनापति अलाटका, जो तीनों ही विधि के ज्ञाता हैं, इन मामलों का निर्णय करें।" यह सुनकर राजा ने केवल सुख-सुविधाओं के बारे में सोचा और ब्राह्मणों और धनी लोगों की संगति में समय बिताना बंद कर दिया।

चौदहवीं रात को राजा की प्रिय पुत्री, जिसका नाम रुजा था, ने अपनी धाय माँ से कहा, “मुझे जल्दी से मेरे आभूषण पहना दो, मेरी सहेलियों को मेरी सेवा करने दो; कल पंद्रहवाँ पवित्र दिन है, मैं राजमहल में जाऊँगी।” वे उसके लिए एक माला, कीमती चंदन, रत्न, सीप, मोती और बहुमूल्य वस्तुएँ तथा विभिन्न रंगों के वस्त्र लाए; और जब वह सोने की कुर्सी पर बैठी, तो उसकी कई परिचारिकाएँ उसे घेरकर, उसकी सुंदरता को निखारते हुए, उसे सजाती रहीं।

फिर अपने समूह के बीच, सभी प्रकार के आभूषणों से जगमगाती हुई, रुजा ने चंदाका महल में ऐसे प्रवेश किया जैसे बिजली बादल में प्रवेश करती है। राजा के पास पहुँचकर और उन्हें पूरे आदर के साथ प्रणाम करके (*7), वह सोने से जड़ी कुर्सी पर एक तरफ बैठ गई।

जब राजा ने उसे अपने समूह से घिरा हुआ देखा, मानो स्वर्ग की अप्सराओं का कोई समूह उससे मिलने आया हो, तो उसने उससे कहा: "क्या तुम महल परिसर में बने तालाब में आनंद ले रही हो? क्या वे हमेशा तुम्हारे लिए तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन लाते हैं? क्या तुम और तुम्हारी सहेलियाँ लगातार तरह-तरह की मालाएँ इकट्ठा करके अपने लिए गुच्छे बनाती रहती हो, खेल-खेल में? क्या तुम्हें किसी चीज की कमी है? तो उन्हें लाने दो, हे उतावली (*8) जो चाहो मांग लो, चाहे वह चाँद जितना मुश्किल से मिले।"

उनके शब्द सुनकर रूजा ने अपने पिता को उत्तर दिया:

"हे राजा, मेरे स्वामी की उपस्थिति में मेरी हर इच्छा पूरी हो जाती है। कल पंद्रहवाँ पवित्र दिन है, मेरे लिए एक हजार सिक्के लाओ, ताकि मैं उन सभी को भिक्षुओं को दान कर सकूँ।"

रुजा की बातें सुनकर राजा अंगती ने उत्तर दिया:

"तुमने बहुत धन व्यर्थ ही बर्बाद कर दिया है। तुम व्रत रखते हो और न खाते हो, न पीते हो; व्रत रखने का यह कर्तव्य तुम्हें नियति से मिला है, इससे कोई पुण्य नहीं मिलता। (*9) हे रुजा, जब तक तुम हमारे साथ रहते हो, भोजन त्याग मत करो; इस संसार के सिवा कोई दूसरा संसार नहीं है, व्यर्थ में क्यों कष्ट सह रहे हो?"

तब अपनी सुंदरता से दमकती रुजा ने जब उसकी बातें सुनीं, तो भूतकाल और भविष्यकाल के नियम को भलीभांति जानते हुए उसने उत्तर दिया: “मैंने अतीत में सुना है और अपनी आँखों से देखा है कि जो बच्चों का अनुसरण करता है, वह स्वयं बच्चा बन जाता है। मूर्खों की संगति में रहने वाला मूर्ख गहरे कुकर्म में डूब जाता है। अलता और बीजाका का धोखा खाना उचित है; परन्तु आप तो विद्वान, बुद्धिमान और कुशल राजा हैं; आप बच्चों के योग्य ऐसे नीच सिद्धांत में कैसे पड़ गए? यदि मनुष्य मात्र जन्म-मृत्यु के चक्र से शुद्ध हो जाता है, तो गुण का तपस्या भी व्यर्थ है; जैसे पतंगा जलती हुई मोमबत्ती की ओर उड़ता है, वैसे ही मूर्ख ने नग्न भिक्षु का जीवन अपना लिया है। यह मानकर कि अंत में सभी जन्म-जन्म के द्वारा शुद्ध हो जाएँगे, अपनी घोर अज्ञानता में अनेक लोग अपने कर्मों को भ्रष्ट कर लेते हैं; और पूर्व पापों के फल में फँसकर वे मछली की तरह काँटे से निकलना कठिन पाते हैं।”

हे राजा, मैं आपके मामले में एक दृष्टांत सुनाता हूँ; बुद्धिमान लोग कभी-कभी दृष्टांतों से ही सत्य सीखते हैं। जैसे व्यापारियों का जहाज़, ज़रूरत से ज़्यादा माल लादने के कारण, समुद्र में डूब जाता है, वैसे ही मनुष्य, थोड़ा-थोड़ा करके पाप जमा करता हुआ, नरक में डूबता चला जाता है। हे राजा, अलाता का वर्तमान भार वह नहीं है जो वह अभी जमा कर रहा है; क्योंकि जो वह अभी जहाज़ पर लाद रहा है, वह आगे चलकर नरक में डूब जाएगा। पहले अलाता के कर्म धर्मपरायण थे, और उन्हीं के फलस्वरूप वह इस समृद्धि का आनंद ले रहा है। उसका वह पुण्य अब व्यर्थ हो रहा है, क्योंकि वह पूरी तरह से बुराई में लिप्त है; सीधा मार्ग छोड़कर वह टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर बेतहाशा दौड़ रहा है।

जैसे तराजू को तौल-घर (*10) में ठीक से लटकाने पर वजन डालने पर उसका सिरा ऊपर की ओर झूलता है, वैसे ही मनुष्य भी अपने भाग्य को अंत में ऊपर उठाता है यदि वह थोड़ा-थोड़ा करके पुण्य के हर टुकड़े को इकट्ठा करता है, जैसे वह दास बीजाका पुण्य पर ध्यान केंद्रित करता है और स्वर्ग के बारे में बहुत अधिक सोचता है।

दास बीजक को अब जो दुःख भोगना पड़ रहा है, उसमें उसे अपने पूर्व कर्मों का फल भोगना पड़ रहा है। नैतिक सद्गुणों के प्रति समर्पित होने के कारण वह पाप मिट रहा है, परन्तु उसे कश्यप के कुटिल मार्गों पर न चलना चाहिए।

फिर उसने पाप करने की बुराई और योग्य मित्रों का अनुसरण करने के अच्छे परिणामों को दर्शाना शुरू किया (*11):

राजा जिस भी मित्र का सम्मान करता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सद्गुणों में लिप्त हो या गुणों में, राजा उसके वश में हो जाता है। जैसा मित्र वह अपने लिए चुनता है और जिसका अनुसरण करता है, वैसा ही वह स्वयं बन जाता है; यही घनिष्ठता की शक्ति है। निरंतर संपर्क में रहने वाला व्यक्ति अपने साथी को प्रभावित करता है, एक घनिष्ठ मित्र अपने साथी को, ठीक वैसे ही जैसे विषैला तीर एक साफ

तीरदान को अपवित्र कर देता है। बुद्धिमान को दुष्टों का मित्र नहीं बनना चाहिए, क्योंकि इससे दूषित होने का भय रहता है। यदि कोई व्यक्ति दुर्गंधयुक्त मछली को कुश घास के गट्ठे से बांध दे, तो घास में दुर्गंध आ जाएगी, मूर्ख के साथ घनिष्ठता का यही हाल है; परन्तु यदि कोई व्यक्ति लोबान को साधारण पत्ते में बांध दे, तो उसमें सुगंध आ जाएगी, बुद्धिमान के साथ घनिष्ठता का यही हाल है। इसलिए, अपने कर्मों की परिपक्वता को फलों की टोकरी की परिपक्वता के समान जानते हुए, बुद्धिमान को दुष्टों का अनुसरण नहीं करना चाहिए, बल्कि भले लोगों का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि दुष्ट नरक की ओर ले जाते हैं, जबकि भले लोग हमें स्वर्ग की ओर ले जाते हैं।

राजकुमारी ने इन छह श्लोकों में धर्मपरायणता पर प्रवचन देने के बाद अपने पिछले जन्मों में झेले गए दु:खों का वर्णन किया:

मुझे भी अपने सात जन्म याद हैं, और इस जीवन से विदा होने पर मुझे सात और जन्म लेने होंगे। हे राजा, मेरा सातवाँ पिछला जन्म मगध के राजगृह नगर में एक लोहार के पुत्र के रूप में हुआ था। मेरा एक दुष्ट साथी था और मैंने बहुत बुरे कर्म किए; हम अमर समझकर दूसरे पुरुषों की पत्नियों को भ्रष्ट करते फिरते थे। वे कर्म राख से ढकी आग की तरह जमा रहे। अन्य कर्मों के फलस्वरूप मेरा जन्म वंश देश में कोसंबी के एक व्यापारी परिवार में हुआ, जो महान, समृद्ध और धनी था। मैं इकलौता पुत्र था, जिसका पालन-पोषण और सम्मान निरंतर होता रहा। वहाँ मैंने एक मित्र का अनुसरण किया जो अच्छे कर्मों में समर्पित, बुद्धिमान और पवित्र ज्ञान से परिपूर्ण था, और उसने मुझे अच्छे गुणों का ज्ञान दिया। मैंने कई चौदहवीं और पंद्रहवीं रातों तक उपवास किया; और वह कर्म जल में रखे खजाने की तरह जमा रहा। परन्तु मगध में किए गए बुरे कर्मों का फल अंततः विषैले जहर की तरह मुझ पर आ पड़ा। हे राजा, मैं वहाँ से बहुत समय के लिए रोरुवा नरक में चला गया। मैंने अपने कर्मों का फल भुगता; याद करके आज भी दुख होता है। वहाँ कई वर्षों तक कष्टदायी जीवन बिताने के बाद, मैं भेन्नाकाटा में एक बधिया बकरी बन गया। मैं धनवानों के बेटों को अपनी पीठ पर और गाड़ियों में ढोता था; यह दूसरे पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने का नियतिपूर्ण परिणाम था।

उसके बाद जंगल में एक बंदर के गर्भ में मेरा जन्म हुआ; और मेरे जन्म के दिन उन्होंने मुझे झुंड के सरदार को दिखाया, जिसने कहा, "मेरे बेटे को मेरे पास लाओ," और मेरे चीखने के बावजूद उसने मेरे अंडकोषों को अपने दांतों से पकड़कर काट डाला। उसने इसे कविता में वर्णित किया।

"हे राजा, इस जन्म के बाद, मेरा जन्म एक विशाल जंगल में बंदर के रूप में हुआ; झुंड के क्रूर सरदार ने मुझे अपंग कर दिया: यह दूसरे पुरुषों की पत्नियों के पीछे जाने का नियत परिणाम था।"

फिर उन्होंने अन्य जन्मों का वर्णन करना शुरू किया:

हे राजा, मेरा अगला जन्म दसन्ना वंश में एक बैल के रूप में हुआ, नपुंसक लेकिन फुर्तीला और सुंदर दिखने वाला, और मैंने लंबे समय तक रथ खींचा: यह अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने का घातक परिणाम था। उस जन्म के बाद मेरा जन्म वज्जी वंश (*12) में एक परिवार में हुआ, लेकिन मैं न तो पुरुष थी और न ही स्त्री, क्योंकि पुरुष के रूप में जन्म लेना बहुत कठिन है;—यह अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने का घातक परिणाम था। हे राजा, इसके बाद मेरा जन्म नंदन वन में हुआ, तैंतीस देवताओं के स्वर्ग में एक सुंदर रंग की अप्सरा के रूप में, विभिन्न रंगों के वस्त्रों और आभूषणों से सजी और रत्नजड़ित बालियाँ पहने हुए, नृत्य और गायन में निपुण, सक्का (इंद्र) के दरबार में परिचारिका के रूप में। वहाँ रहते हुए मुझे ये सभी जन्म और साथ ही वे सात भविष्य के जन्म भी याद आए जो मुझे यहाँ से जाने पर अनुभव करने होंगे। कोसंबी में मैंने जो अच्छा कर्म किया था, उसका फल मुझे मिल रहा है, और इस जन्म के बाद मैं या तो देवताओं (देवदूतों) के बीच ही जन्म लूँगी या मनुष्यों के बीच। हे राजा, सात जन्मों तक मेरा आदर और पूजा होगी, परन्तु छठे जन्म तक मैं अपने स्त्रीत्व से मुक्त नहीं हो पाऊँगी। परन्तु हे राजा, मेरा सातवाँ जन्म होगा, देवताओं (देवदूतों) के एक समृद्ध पुत्र के रूप में, अंत में मैं एक दिव्य शरीर में पुरुष देवता के रूप में जन्म लूँगी। आज भी नंदन में स्वर्ग के वृक्ष से मालाएँ एकत्रित की जा रही हैं, और जावा नामक देवताओं (देवदूतों) का एक पुत्र मेरे लिए माला ढूँढ़ रहा है। मेरे वर्तमान जीवन के ये सोलह वर्ष स्वर्ग में एक क्षण के समान हैं - सौ नश्वर शरद ऋतुएँ स्वर्ग के एक दिन और रात के समान हैं। इस प्रकार हमारे कर्म असंख्य जन्मों में भी हमारा पीछा करते हैं, चाहे अच्छा हो या बुरा, कोई भी कर्म व्यर्थ नहीं जाता।

फिर उन्होंने सर्वोच्च कानून की शिक्षा दी:

जो जन्म-जन्मांतर तक निरंतर उत्थान की इच्छा रखता है, वह दूसरे की पत्नी से उसी प्रकार विमुख रहे जैसे धुले हुए पैर वाला मनुष्य कीचड़ से विमुख रहता है। जो जन्म-जन्मांतर तक निरंतर उत्थान की इच्छा रखता है, वह भगवान की उपासना उसी प्रकार करे जैसे उनके सेवक इंद्र की उपासना करते हैं। जो स्वर्गिक सुख, स्वर्गिक जीवन, यश और सुख की कामना रखता है, वह पापों से विमुख रहे और त्रिविध विधि का पालन करे। तन, वाणी और मन से सजग और बुद्धिमान होकर, वह अपने सर्वोपरि हित का अनुसरण करे, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। संसार में यशस्वी जन्म लेकर समस्त सुखों में पले-बढ़े सभी प्राणी निःसंदेह पूर्वकाल में सदाचारी जीवन व्यतीत

करते थे; समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। हे राजा, क्या आप यह सोचते हैं कि किस कारण आपने अपनी इन पत्नियों को स्वर्ग की अप्सराओं के समान, सुंदर ढंग से सजी-धजी और सोने के जालों से सुसज्जित रखा है?

इस प्रकार उसने अपने पिता को सलाह दी। शिक्षक ने इस प्रकार मामला समझाया:

"इस प्रकार कन्या रुजा ने अपने पिता को प्रसन्न किया, उसने भ्रमित व्यक्ति को सही मार्ग दिखाया और श्रद्धापूर्वक उसे धर्म का उपदेश दिया।"

सुबह से ही रात भर अपने पिता को धर्म का उपदेश देते हुए उसने उनसे कहा, "हे राजा, किसी झूठे विश्वासी की बातों पर ध्यान न दें, बल्कि मुझ जैसे किसी अच्छे मित्र (*13) की बातों को सुनें, जो आपको बताता है कि यह संसार है और दूसरा संसार है, और हर अच्छे या बुरे कर्म का फल निश्चित होता है, इसलिए गलत मार्ग पर न चलें।" फिर भी वह अपने पिता को उनकी झूठी शिक्षा से मुक्त नहीं कर सकी: वे केवल उसकी मीठी बातों से प्रसन्न हुए, क्योंकि सभी माता-पिता स्वाभाविक रूप से अपने प्रिय बच्चों की बातें सुनना पसंद करते हैं, लेकिन वे अपने पुराने विचारों को नहीं छोड़ते। इसी प्रकार शहर में हलचल मच गई, "राजा की पुत्री रूजा धर्म का उपदेश देकर गलत विचारों को दूर करने का प्रयास कर रही है," और लोग प्रसन्न हुए, "बुद्धिमान राजकुमारी आज उन्हें झूठी शिक्षा से मुक्त कर देगी और नागरिकों के लिए समृद्धि का द्वार खोलेगी।" यद्यपि वह अपने पिता को समझा नहीं सकी, फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने ठान लिया कि किसी न किसी तरह वह अपने पिता को सच्ची खुशी दिलाएगी। उसने अपने हाथ जोड़कर सिर पर रखे और दसों दिशाओं में प्रणाम करने के बाद, उसने आराधना करते हुए कहा, "इस संसार में धर्मात्मा समन और ब्राह्मण हैं जो संसार का पालन-पोषण करते हैं, प्रधान देवता हैं, महामहिम ब्रह्मा हैं, वे आएं और मेरे पिता को उनके गलत विश्वास को त्यागने के लिए प्रेरित करें; और यदि वे स्वयं ऐसा करने में असमर्थ हों, तो वे मेरी शक्ति और सद्गुण से आएं और इस गलत विश्वास को दूर करके समस्त संसार का कल्याण करें।" उस समय के महामहिम ब्रह्मा नारद नामक बोधिसत्व थे; और बोधिसत्व अपनी दया, करुणा और शासन करने की शक्ति से समय-समय पर संसार पर दृष्टि डालते हैं ताकि धर्मात्मा और दुष्ट प्राणियों को देख सकें। उस दिन जब वह संसार पर नज़र गड़ाए हुए थे, तब उन्होंने राजकुमारी को अपने पिता को गलत विश्वास से मुक्त कराने की इच्छा से प्रधान देवताओं की आराधना करते देखा, और उन्होंने मन ही मन सोचा, "मेरे सिवा कोई और गलत शिक्षा को दूर नहीं कर सकता। मुझे आज ही आना चाहिए और राजकुमारी पर दया करके राजा और उनकी प्रजा को सुख देना चाहिए। मैं किस वेश में जाऊँ? तपस्वी मनुष्यों को प्रिय और आदरणीय होते हैं और उनके वचन ग्रहण करने योग्य माने जाते हैं; मैं तपस्वी का वेश धारण करूँगा।" अतः उन्होंने एक आकर्षक मानव रूप धारण किया, जिनका रंग स्वर्णमय था, बाल उलझे हुए थे और उनमें एक सुनहरी सुई चुभी हुई थी। और उसने बाहर और भीतर से लाल रंग का फटा हुआ वस्त्र पहना, और एक कंधे पर चांदी से बनी और सोने के तारों से सजी काली मृग की खाल लटका रखी थी, और मोतियों की माला से लटका हुआ सोने का भिक्षापात्र ले रखा था, और अपने कंधों पर तीन स्थानों से मुड़ा हुआ सोने का भार ढोने वाला डंडा (*14) लाद रखा था, और मोतियों की माला से बंधा हुआ मूंगे का पानी का घड़ा उठा रखा था, वह इस वस्त्र के साथ आकाश में चंद्रमा की तरह चमकते हुए चला गया।चंदा महल की छत पर प्रवेश करने के बाद वह राजा के सामने आकाश में खड़ा हो गया।

शिक्षक ने इसे इस प्रकार समझाया:

"तब नारद (प्रधान देवदूतों के लोक से) मनुष्यों के पास आए और जंबूद्वीप (भारत) का अवलोकन करते हुए उन्होंने राजा अंगती को देखा। तब वे राजा के सामने महल में खड़े हो गए, और रुजा ने उन्हें देखकर आए हुए दिव्य ऋषि को प्रणाम किया।"

तब ब्रह्मा की महिमा से आहत होकर राजा अपने सिंहासन पर नहीं रह सका, बल्कि नीचे उतरकर जमीन पर खड़ा हो गया और उससे उसके आने का कारण, नाम और परिवार के बारे में पूछा।

गुरु ने इसे इस प्रकार समझाया:

तब राजा भयभीत होकर अपने सिंहासन से नीचे उतर आए और नारद से इस प्रकार प्रश्न पूछते हुए बोले, "हे दिव्य स्वरूप वाले, रात्रि को प्रकाशित करने वाले चंद्रमा के समान, आप कहाँ से आए हैं? कृपया मुझे अपना नाम और परिवार बताइए, मनुष्य जगत में लोग आपको किस नाम से पुकारते हैं?"

तब उसने मन ही मन सोचा, "यह राजा दूसरे लोक में विश्वास नहीं करता, मैं उसे दूसरे लोक के बारे में बताऊंगा," इसलिए उसने एक श्लोक कहा:

"मैं देवताओं (देवदूतों) से चंद्रमा की तरह रात को रोशन करते हुए आया हूँ, जैसा कि आपने पूछा है, मैं आपको अपना नाम और परिवार बताता हूँ: वे मुझे नारद और कश्यप के नाम से जानते हैं।"

तब राजा ने मन ही मन सोचा, "समय आने पर मैं उससे दूसरे लोक के बारे में पूछूंगा; मैं अभी उससे इस चमत्कार का उद्देश्य पूछूंगा।"

"हे नारद, जिस तरह से आप इस अद्‌भुत ढंग से जाते और खड़े होते हैं, मैं आपसे पूछता हूँ, इसका क्या अर्थ है; यह चमत्कार किस कारण से हुआ है?"

नारद ने उत्तर दिया:

सत्य, धर्मपरायणता, आत्मसंयम और उदारता, ये पुराने दिनों में मेरे प्रसिद्ध गुण थे; इन्हीं गुणों का लगन से पालन करके मैं जहाँ भी जाना चाहता हूँ, वहाँ सहजता से पहुँच जाता हूँ।

जब वह इस प्रकार बोल रहा था, तब भी राजा, अपनी बुरी शिक्षाओं की कट्टरता के कारण किसी अन्य संसार में विश्वास करने में असमर्थ होकर, विस्मय से बोला, "क्या अच्छे कर्मों का कोई प्रतिफल होता है?" और एक श्लोक दोहराया:

"जब आप अच्छे कर्मों से प्राप्त होने वाली शक्ति के बारे में बात करते हैं तो आप आश्चर्य व्यक्त करते हैं; यदि ये बातें वैसी ही हैं जैसा आप कहते हैं, हे नारद, तो इस प्रश्न का उत्तर सत्य-सत्य दीजिए।"

नारद ने उत्तर दिया:

"हे राजा, मुझसे पूछिए; यह आपका काम है; आपके मन में जो भी शंका है, मैं निश्चित रूप से तर्क, बुद्धि और प्रमाणों के द्वारा उसका समाधान कर दूंगा।"

राजा ने कहा:

"हे नारद, मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ; मेरे प्रश्न का गलत उत्तर न दें; क्या वास्तव में देवता (देवदूत) या पूर्वज होते हैं, क्या लोगों के कहने के अनुसार कोई दूसरा लोक है?"

नारद ने उत्तर दिया:

"स्वयं देवता (देवदूत) और पूर्वज मौजूद हैं, जैसा कि लोग कहते हैं, एक दूसरा संसार भी है; लेकिन मनुष्य लालची और सुख-भोग में लिप्त होने के कारण अपने भ्रम में उस दूसरे संसार के बारे में नहीं जानते।"

यह सुनकर राजा हँस पड़ा और उसने एक श्लोक कहा:

"यदि आप वास्तव में मानते हैं, नारद, कि परलोक में मृतकों के लिए एक निवास स्थान है, तो मुझे यहाँ पाँच सौ सिक्के दें, और मैं आपको परलोक में एक हजार सिक्के दूंगा।"

तब उस महान सत्ता ने सभा के बीच में ही उसे फटकारते हुए उत्तर दिया:

"अगर मुझे पता होता कि तुम गुणी और उदार हो, तो मैं तुम्हें पाँच सौ रुपये दे देता; लेकिन अगर तुम निर्दयी नरक में रह रहे हो, तो परलोक में तुमसे हज़ार रुपये कौन माँगेगा? यहाँ जब कोई व्यक्ति सद्‌गुण से विमुख, पाप प्रेमी, आलसी और क्रूर होता है, तो बुद्धिमान लोग उसे ऋण नहीं देते: ऐसे ऋणी से कोई प्रतिफल नहीं मिलता। जब लोग जानते हैं कि दूसरा व्यक्ति कुशल, सक्रिय, गुणी और उदार है, तो वे उसे अपने द्वारा दिए गए लाभों का लालच देकर उधार लेने के लिए आमंत्रित करते हैं; जब वह अपना काम पूरा कर लेता है, तो वह उधार ली गई राशि लौटा देता है।"

इस प्रकार फटकार प्राप्त करने पर राजा उत्तर देने के लिए तैयार नहीं था।

लोग प्रसन्न होकर चिल्लाए, “हे राजकुमारी, आप चमत्कारिक शक्ति से परिपूर्ण हैं, आप आज राजा को उनकी झूठी शिक्षाओं से मुक्त करेंगी,” और सारा शहर उत्साह से भर गया। फिर उस महान सत्ता की शक्ति से मिथिला के सात मील (4.23 किमी) के दायरे में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं बचा जिसने उनके धार्मिक उपदेश न सुने हों। तब उस महान सत्ता ने सोचा, “इस राजा ने अपनी झूठी शिक्षाओं को बहुत दृढ़ता से पकड़ रखा है; मैं उसे नरक के भय से डराकर उन्हें त्यागने पर मजबूर करूँगा, और फिर मैं उसे देवताओं (देवदूतों) के स्वर्ग से सांत्वना दूँगा”; इसलिए उन्होंने उससे कहा, “हे राजा, यदि तुम इन शिक्षाओं को नहीं त्यागोगे, तो तुम अनंत यातनाओं वाले नरक में जाओगे,” और उन्होंने विभिन्न नरकों का वर्णन करना शुरू किया।

"जब तुम यहाँ से जाओगे तो देखोगे कि कौवों के झुंड तुम्हें घसीट रहे हैं और तुम्हें खा रहे हैं, जैसे तुम नरक में हो, और कौवे, गिद्ध और बाज तुम्हें नोच रहे हों, तुम्हारा शरीर फटा हुआ और खून टपक रहा हो: परलोक में कौन तुम्हें हज़ार टुकड़ों में तड़पाएगा?"

कौवे के नरक का वर्णन करने के बाद, उन्होंने कहा, "यदि तुम वहाँ नहीं रहोगे, तो तुम तीन मंडलों के बीच स्थित नरक में रहोगे," और उन्होंने उसका वर्णन करने के लिए एक छंद कहा:

"वहाँ घोर अंधकार है, न चाँद है न सूरज, एक ऐसा नरक जो हमेशा क्रोधित और भयानक रहता है; इसे न रात कहा जा सकता है न दिन: ऐसी जगह में पैसा ढूँढ़ते हुए कौन भटकेगा?"

फिर उस मध्यवर्ती नरक का पूर्ण वर्णन करने के बाद, उन्होंने कहा, "हे राजा, यदि तुम अपनी झूठी शिक्षाओं का त्याग नहीं करोगे, तो तुम्हें न केवल यह बल्कि अन्य यातनाएँ भी सहनी पड़ेंगी," और उन्होंने एक श्लोक कहा:

"विशालकाय आकार के दो कुत्ते सबाला और समा, जो शक्तिशाली और बलवान हैं, अपने लोहे के दांतों से उसे खा जाते हैं जिसे यहां से भगा दिया जाता है और वह दूसरे लोक में चला जाता है।"

इसके बाद के नरकों पर भी यही नियम लागू होता है; इसलिए इन सभी लोकों और उनके रक्षकों का वर्णन विभिन्न गाथाओं के एक सारगर्भित, सामान्य रूप से लिखित संस्करण में किया जाना चाहिए, जैसा कि पूर्ववर्ती वृत्तांत में किया गया है।

"जब वह इस प्रकार यातना के क्रूर जानवरों द्वारा नोचा जा रहा है, उसका शरीर फटा हुआ है और खून टपक रहा है, तो परलोक में कौन उसे हजार टुकड़ों में तड़पाएगा?"

तीरों और तेज भालों से कलुपकलाओं ने शत्रु बनकर उस व्यक्ति पर प्रहार किया और उसे नरक में घायल कर दिया जिसने पहले बुराई की थी।

जब वह नरक में इस प्रकार पेट और बगल में बुरी तरह घायल होकर भटक रहा होगा, उसकी आंतें क्षत-विक्षत हो चुकी होंगी, उसका शरीर फटा हुआ होगा और खून टपक रहा होगा, तो परलोक में कौन उससे हजार टुकड़े मांगेगा?

आकाश से भाले, तीर, बरछी, नुकीले कांटे और तरह-तरह के हथियार बरसते हैं, जलते हुए अंगारों की तरह लपटें गिरती हैं, क्रूर मनुष्य पर पत्थर के गोले बरसते हैं।

नरक में असहनीय गर्म हवा चलती है, वहाँ क्षणिक सुख भी नहीं मिलता; बीमार, बिना किसी आश्रय के इधर-उधर भटकता हुआ, परलोक में कौन उससे हज़ार टुकड़े मांगेगा?

रथों में जकड़े हुए, धधकती भूमि पर कदम रखते हुए, कोड़ों और लाठियों से धकेले जाते हुए, परलोक में कौन उससे हजार टुकड़े छीनने की हिम्मत करेगा?

जब वह नुकीले रेज़रों से जड़े एक भयानक धधकते पहाड़ पर चढ़ता है, उसका शरीर घावों से भरा हुआ और खून से लथपथ है, तो परलोक में कौन उससे हज़ार टुकड़े मांगेगा?

जब वह जलते हुए कोयलों के एक भयानक, धधकते ढेर पर पहाड़ की तरह चढ़ता है, उसका शरीर पूरी तरह से जला हुआ है, वह दयनीय स्थिति में है और रो रहा है, तो परलोक में कौन उससे हजार टुकड़े मांगेगा?

वहाँ बादलों के ढेर जैसी ऊँची झाड़ियाँ हैं, जो काँटों से भरी हैं, जिनमें लोहे के नुकीले कांटे लगे हैं जो पुरुषों का खून चूसते हैं, और जो पुरुष दूसरों की पत्नियों के पीछे जाते हैं उन्हें यम के सेवकों द्वारा हाथों में भाले लिए हुए आगे बढ़ाया जाता है।

जब वह खून से लथपथ, घावों और चोटों से ग्रस्त, दर्द से कराहते हुए, गहरी गर्म आहें भरते हुए, अपने पूर्व अपराधों का प्रायश्चित करते हुए, उस भयानक रेशम-कपास के पेड़ पर चढ़ता है, तो उससे उसका पुराना कर्ज कौन मांगेगा?

बादलों के ढेर जैसे ऊंचे जंगल हैं, जिन पर तलवारों जैसे पत्ते लगे हैं, और लोहे के चाकुओं से लैस हैं जो मनुष्यों का खून पीते हैं; जब वह लोहे के पत्तों वाले पेड़ पर चढ़ता है, तेज तलवारों से कटा हुआ, उसका शरीर घावों से भरा और खून टपक रहा है, तो परलोक में कौन उससे हजार टुकड़े मांगेगा?

जब वह लोहे के पत्तों के उस नरक से बचकर वेतरानी नदी में गिर जाएगा, तो उससे उसका पुराना कर्ज कौन मांगेगा?

वेतरानी नदी बहती रहती है, क्रूर (*15) उबलते पानी से भरी और लोहे के कमलों और नुकीले पत्तों से ढकी हुई; जैसे ही वह खून से लथपथ और कटे हुए अंगों के साथ वेतरानी की धारा में तेजी से बहता है, जहाँ आराम करने के लिए कुछ भी नहीं है, कौन उससे उसका कर्ज मांगेगा?

जब राजा ने उस महान सत्ता से नरक का यह वर्णन सुना, तो वह व्याकुल होकर और शरण की तलाश में, उससे इस प्रकार बोला:

"मैं काँप रहा हूँ जैसे कोई पेड़ काटा जा रहा हो; मेरा मन व्याकुल है, मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं किस ओर मुड़ूँ; मैं भय से व्याकुल हूँ, मेरा डर बहुत गहरा है, जब मैं आपके द्वारा उच्चारित इन छंदों को सुनता हूँ। जैसे जलती हुई वस्तु को पानी में डुबोया जाता है, या तूफानी सागर में किसी द्वीप की तरह, या अंधेरे में किसी दीपक की तरह, आप ही मेरी शरण हैं, हे ऋषि।"

हे ऋषि, मुझे पवित्र ग्रंथ और उसका अर्थ सिखाइए; निश्चय ही अतीत पूर्णतः पापमय रहा है; हे नारद, मुझे पवित्रता का मार्ग सिखाइए, ताकि मैं नरक में न गिरूँ।

तब उस महान सत्ता ने उसे पवित्रता का मार्ग सिखाने के लिए, धर्म का अनुसरण करने वाले विभिन्न पूर्व राजाओं के उदाहरण देकर उसे यह बात बताई:

धतरत्थ वेस्समित्त और अत्तका, यमतग्गी और उसिन्नारा और राजा शिवी, ये और अन्य राजा, ब्राह्मणों और समनों की लगन से सेवा करते हुए, सभी इंद्र के स्वर्ग में गए; हे राजा, आप अधर्म से बचकर धर्म का पालन करें। उन्हें अपने महल में हाथों में भोजन लेकर यह घोषणा करने दें, “कौन भूखा या प्यासा है? किसे माला या मरहम चाहिए? कौन नंगा आदमी विभिन्न रत्नों से सजे वस्त्र पहनेगा? कौन अपनी यात्रा के लिए छाता और कोमल जूते ले जाएगा?” उन्हें अपने नगर में सुबह-शाम जोर से यह घोषणा करने दें। बूढ़े आदमी, बूढ़े बैल और घोड़े को काम में न लगाएं: प्रत्येक को उचित सम्मान दें; जब वह बलवान था, उसने अपने कर्तव्य का निर्वाह किया।

इस प्रकार, महान सत्ता ने राजा को उदारता और अच्छे आचरण के विषय में उपदेश देने के बाद, यह देखकर कि राजा रथ से तुलना किए जाने पर प्रसन्न होगा, उसे हर इच्छा को पूरा करने वाले रथ के रूपक के तहत कानून का उपदेश देना शुरू किया।

"तुम्हारा शरीर रथ कहलाता है, जो तेज गति से चलता है और सारथी के रूप में मन से सुसज्जित है: सभी चोटों से परहेज इसका धुरी है, उदारता इसका आवरण है, पैरों से सावधानीपूर्वक चलना पहिये की परिधि है, हाथों से सावधानीपूर्वक संचालन रथ का किनारा है; पेट पर सतर्कता पहिये का नाम है, जीभ पर सतर्कता पहिये की खड़खड़ाहट को रोकना है। इसके सभी अंग सत्यपरक वाणी से परिपूर्ण हैं, निंदा के अभाव से यह सुदृढ़ रूप से जुड़ा हुआ है, इसका ढांचा मैत्रीपूर्ण शब्दों से परिपूर्ण है और सुविचारित वाणी से सुगठित है; विश्वास और संपत्ति की इच्छा के अभाव से सुगठित है, विनम्रता के आदरपूर्ण अभिवादन को रथ के ध्रुव के रूप में, कोमलता और नम्रता के स्तंभ को, आत्म-संयम की रस्सी को, पांच नैतिक नियमों के अनुसार, क्रोध के अभाव की कुंजी (?) को, और धर्म के सफेद छाते को, उचित ऋतुओं के पूर्ण ज्ञान से संचालित, तीन छड़ियों (*17) को अपने आश्वस्त मन में तैयार रखते हुए।" आत्मविश्वास, नम्र वाणी को बंधन मानकर, और अहंकार से मुक्त होकर, अनासक्त विचारों के सहारे, ज्ञान का अनुसरण करते हुए, और धूल से मुक्त होकर, ध्यान को अपना चाबुक और दृढ़ता को अपनी लगाम बनाओ; मन अपने सभी प्रशिक्षित घोड़ों के साथ आत्म-संयम के मार्ग पर चलता है, इच्छा और वासना एक बुरा मार्ग है, परन्तु आत्म-संयम सीधा मार्ग है। जैसे घोड़ा रूप, ध्वनि और गंध के पीछे दौड़ता है, वैसे ही बुद्धि चाबुक चलाती है और आत्मा सारथी। यदि कोई अपने रथ के साथ चलता है, यदि वह इस शांति और दृढ़ता को समर्पित करता है, तो वह सभी इच्छाओं को प्राप्त करेगा, हे राजा, वह कभी नरक में नहीं जाएगा।

अतः, हे राजा, मैंने आपको सुख के उस मार्ग का विभिन्न तरीकों से वर्णन किया है, जिसके बारे में मैंने नारद से प्रार्थना की थी कि वह मुझे बताए ताकि मैं नरक में न गिरूँ (*18)।"

इस प्रकार उन्हें विधि का ज्ञान देकर, उनकी झूठी शिक्षाओं को दूर करके और उन्हें नैतिक नियमों में स्थापित करके, उन्होंने उन्हें आदेश दिया कि अब से वे बुरे मित्रों से दूर रहें, गुणी मित्रों का अनुसरण करें और अपने चलने-फिरने पर ध्यान दें; फिर उन्होंने राजकुमारी के गुणों की प्रशंसा की और राजमहल तथा राजपत्नियों को प्रोत्साहित किया, और फिर उनकी उपस्थिति में बड़े वैभव के साथ ब्रह्मा के लोक (परम स्वर्ग) में प्रवेश कर गए।

गुरु ने अपना पाठ समाप्त करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, न केवल अभी, बल्कि पहले भी मैंने उरुवेला-कश्यप को परिवर्तित किया और उसे जकड़े हुए गलत विश्वास के जाल को काटा"; ऐसा कहते हुए उन्होंने जन्म का उल्लेख किया और अंत में ये श्लोक कहे:

"देवदत्त अलता थे, भद्दाजी सुनामा थे, सारिपुत्र विजय थे, मोगल्लना बीजक थे, लिच्छवी राजकुमार सुनक्खलता नग्न तपस्वी गुण थे; आनंद राजा को परिवर्तित करने वाले रुजा थे, और उरुवेला-कश्यप झूठी शिक्षाओं को धारण करने वाले राजा थे, और बोधिसत्व महान ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) थे; इस प्रकार आप जन्म की कथा को समझते हैं।"

फुटनोट:

(1) उसने वेलुवाना मनोरंजन उद्यान को बिरादरी, महाव, संख्या 22 को दे दिया।

(2)या शायद "आप, एक तपस्वी और एक शिक्षक।"

(3)ise.

(4)डोसिना.

(5)? nippadesato.

(6)गुणो अत्तानो अगुणताया शब्दों पर एक नाटक है।

(7)विनय रतम् का प्रयोग क्रिया-विशेषण रूप में लगता है।

(8) विद्वान कुड्डमन.उखी को महिलाओं द्वारा चेहरे के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले सरसों के लेप (सासापाकुड्डेना..सासापाकाक्केना) के संदर्भ में बताते हैं।

(9) यहाँ बीजक का उल्लेख करते हुए एक दोहा छोड़ दिया गया है, "बी. कश्यप की बात सुनकर रोया।" स्पष्टतः वे इस स्थान से संबंधित नहीं हैं।

(10) अस्पष्ट.

(11)सं. 435

(12)वे मगध के सामने गंगा के उत्तरी तट पर रहते हैं।

(13) अच्छा मित्र बौद्ध धर्म का एक समरूप केंद्र है।

(14) गर्दन और कंधों के लिए उपयुक्त?

(15)खरा का अर्थ "ठोस" हो सकता है।

(16)silesito?

(17) तपस्वी ने तिदंडम ले रखा था, तीन छड़ियों का एक बंडल, संदर्भ अस्पष्ट है।

(18) अस्पष्ट.

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **विधुरपंडित-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-545-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 545
विधुरापंडित-जातक

“तुम पीले, दुबले-पतले और दुर्बल हो,” इत्यादि। गुरु ने जेतवन मठ में रहते हुए, ज्ञान की पूर्णता के विषय में यह कथा सुनाई। एक दिन भिक्षुओं ने सत्य कक्ष में चर्चा करते हुए कहा, “महोदय, गुरु के पास महान और व्यापक ज्ञान है, वे तत्पर और बुद्धिमान हैं, वे तीक्ष्ण बुद्धि वाले हैं और अपने विरोधियों के तर्कों को कुचलने में सक्षम हैं, वे अपनी बुद्धि की शक्ति से क्षत्रिय ऋषियों द्वारा पूछे गए कठिन प्रश्नों को उलट देते हैं और उन्हें मौन कर देते हैं, और उन्हें तीन शरणों और नैतिक नियमों में स्थापित करके, उन्हें अमरता के मार्ग पर अग्रसर करते हैं।” गुरु आए और पूछा कि भिक्षु किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं; और यह सुनकर उन्होंने कहा, “हे भाइयों, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि तथागत (बुद्ध), जिन्होंने ज्ञान की पूर्णता प्राप्त कर ली थी, अपने विरोधियों के तर्कों को विफल कर क्षत्रियों और अन्य को परिवर्तित कर दें। क्योंकि पूर्वकाल में, जब वे सर्वोच्च ज्ञान की खोज में थे, तब वे बुद्धिमान थे और अपने विरोधियों के तर्कों को कुचलने में सक्षम थे। जी हाँ, विदुरकुमार के समय में, साठ मील (4.23 किमी) ऊँचे काले पर्वत के शिखर पर, मैंने अपनी बुद्धि के बल पर यक्ष (राक्षस) सेनापति पुन्नक को परिवर्तित किया और उसे मौन कर दिया तथा उससे अपना प्राण त्यागने को विवश किया”; और ऐसा कहकर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

बहुत समय पहले कुरु राज्य के इंद्रप्रस्थ नगर में धनंजय-कोरब्बा नामक राजा शासन करते थे। उनका एक मंत्री था जिसका नाम विधुरापंडित था, जो उन्हें सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों के विषय में उपदेश देता था। अपनी मधुर वाणी और धर्मोपदेश देने की अपार क्षमता के कारण वे जंबूद्वीप (भारत) के सभी राजाओं को अपने मधुर प्रवचनों से इस प्रकार मोहित कर लेते थे जैसे हाथी अपने प्रिय वीणा से मोहित हो जाते हैं। वे उन्हें अपने-अपने राज्यों में जाने नहीं देते थे, बल्कि उसी नगर में वैभवपूर्वक निवास करते हुए बुद्ध के समान पूर्ण शक्ति से लोगों को धर्म का उपदेश देते थे। बनारस में चार धनी ब्राह्मण गृहस्थ मित्र थे। उन्होंने कर्मों के कष्टों को देखकर हिमालय में जाकर तपस्वी जीवन व्यतीत किया और आध्यात्मिक साधना में लीन होकर वहाँ दीर्घकालीन वनों की जड़ों और फलों का सेवन करते हुए रहे। फिर नमक और मसाले की प्राप्ति के लिए वे अंग राज्य के कालचम्पा नगर में भिक्षा मांगने आए। वहाँ उनके चार मित्र गृहस्थ उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उनके भिक्षापात्र ग्रहण करके अपने-अपने घर में उन्हें उत्तम भोजन कराया। उनका वचन लेकर उन्होंने अपने बगीचे में उनके लिए आवास की व्यवस्था की। इस प्रकार चारों तपस्वियों ने गृहस्थों के घरों में भोजन किया और दिन व्यतीत करने के लिए चले गए। एक तैंतीस देवताओं के स्वर्ग, दूसरा नागों के लोक, तीसरा सुपन्नों के लोक और चौथा कोरव्य राजा के मिगाचिरा उद्यान में चला गया। अब, जिसने अपना दिन देवदूतों के लोक में बिताया, उसने सक्का (इंद्र) की महिमा देखकर अपने सेवक को उसका पूर्ण वर्णन किया, और इसी प्रकार जिसने अपना दिन नाग और सुपन्न लोक में बिताया, और इसी प्रकार जिसने अपना दिन कोरव्य राजा धनंजय के उद्यान में बिताया; प्रत्येक ने अपने-अपने राजा की महिमा का पूर्ण वर्णन किया। अतः इन चारों सेवकों ने इन स्वर्गिक लोकों की कामना की, और दान और अन्य पुण्य कर्म करने के बाद, अपने जीवन के अंत में, एक का जन्म सक्का (इंद्र) के रूप में हुआ, दूसरे का जन्म नाग लोक में पत्नी और बच्चे के साथ हुआ, तीसरे का जन्म सिंबली झील के महल में सुपन्न राजा के रूप में हुआ, और चौथे का जन्म राजा धनंजय की मुख्य रानी से हुआ; जबकि चारों तपस्वी ब्रह्म लोक (प्रधान देवदूतों) में जन्मे। कोरव्य राजकुमार बड़ा हुआ, और अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने उनका राज्य संभाला और धर्मपरायणता से शासन किया, परन्तु वह जुए में अपनी कुशलता के लिए प्रसिद्ध था। उन्होंने विधुरापंडित के उपदेश सुने, दान दिया, नैतिक नियमों का पालन किया और उपवास रखा। एक दिन जब उन्होंने उपवास रखा, तो वे ध्यान लगाने के लिए उद्यान में गए और एक सुखद स्थान पर बैठकर तपस्वी के कर्तव्यों का पालन किया। सक्का (इंद्र) ने भी उपवास रखने का निश्चय किया, तो उन्होंने पाया कि देवदूतों के लोक में बाधाएँ हैं, इसलिए वे मनुष्यों के लोक में उसी उद्यान में गए और...एक सुखद स्थान पर बैठकर, उन्होंने तपस्वी के कर्तव्यों का पालन किया। नागों के राजा वरुण ने भी उपवास करने का निश्चय किया था, लेकिन उन्होंने नागलोक में बाधाएँ देखीं, इसलिए वे उसी उद्यान में गए और एक सुखद स्थान पर बैठकर तपस्वी के कर्तव्यों का पालन किया। सुपन्न राजा ने भी उपवास करने का निश्चय किया था, लेकिन उन्होंने सुपन्नलोक में बाधाएँ देखीं, इसलिए वे उसी उद्यान में गए और एक सुखद स्थान पर बैठकर तपस्वी के कर्तव्यों का पालन किया। फिर ये चारों, संध्याकाल में अपने-अपने स्थानों से उठकर, राजसी झील के किनारे खड़े होकर, एक साथ आए और एक-दूसरे को देखा, और अपने पुराने स्नेह से भर कर, उन्होंने अपनी पूर्व मित्रता को जागृत किया और एक-दूसरे का अभिवादन करते हुए बैठ गए। सक्का (इंद्र) राजसी आसन पर बैठ गए, और अन्य सभी अपनी-अपनी गरिमा के अनुसार बैठ गए। तब सक्का (इंद्र) ने उनसे कहा, "हम चारों राजा हैं, अब हममें से प्रत्येक का सर्वोत्कृष्ट गुण क्या है?" तब नागराज वरुण ने उत्तर दिया, "मेरा सद्‌गुण तुम तीनों से श्रेष्ठ है," और जब उन्होंने पूछा कि क्यों, तो उन्होंने कहा, "यह सुपन्न राजा हमारा शत्रु है, चाहे हम जन्म से पहले हों या जन्म के बाद, फिर भी जब मैं उसे अपने वंश का इतना विनाशकारी शत्रु देखता हूँ तो मुझे कभी क्रोध नहीं आता; इसलिए मेरा सद्‌गुण श्रेष्ठ है"; और फिर उन्होंने चतुपोसथ जातक का पहला श्लोक कहा।

"वह नेक इंसान जो क्रोध के पात्र व्यक्ति के प्रति क्रोध नहीं रखता और जो कभी अपने भीतर क्रोध उत्पन्न नहीं होने देता, जो क्रोधित होने पर भी उसे प्रकट नहीं होने देता, उसे ही वास्तव में तपस्वी कहते हैं।"

"ये मेरे गुण हैं; इसलिए मेरा सद्‌गुण श्रेष्ठ है।"

यह सुनकर सुपन्ना राजा ने कहा, "यह नाग मेरा मुख्य भोजन है; लेकिन चूंकि मैं इतना भोजन सामने देखकर भी अपनी भूख सहन करता हूँ और भोजन के लिए कोई बुराई नहीं करता, इसलिए मेरा सद्‌गुण श्रेष्ठ है," और उन्होंने यह श्लोक कहा:

"जो भूख को सहते हुए भी पेट को सिकोड़ता है, जो संयमी संन्यासी नियमों के अनुसार खाता-पीता है और भोजन के लिए कोई बुराई नहीं करता, उसे ही वास्तव में तपस्वी कहते हैं।"

तब देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने कहा, "मैंने अनेक प्रकार की स्वर्गीय महिमा, सुख के सभी तात्कालिक स्रोतों को त्यागकर मनुष्य जगत में अपने सद्‌गुणों को बनाए रखने के लिए आया हूँ, अतः मेरे सद्‌गुण श्रेष्ठ हैं"; और उन्होंने यह श्लोक कहा:

"खेल-कूद और सुख-सुविधाओं का त्याग करके, वह संसार में कोई झूठ नहीं बोलता, वह सभी बाहरी आडंबर और शारीरिक इच्छाओं से विमुख रहता है, ऐसे व्यक्ति को ही वास्तव में तपस्वी कहते हैं।"

इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने अपने सद्‌गुण का वर्णन किया।

तब राजा धनंजय ने कहा, "मैंने आज अपना दरबार और सोलह हजार नर्तकियों वाला हरम त्याग दिया है, और मैं एक बगीचे में तपस्वी के कर्तव्यों का पालन करता हूँ; इसलिए मेरा सद्‌गुण श्रेष्ठ है"; और उन्होंने यह श्लोक जोड़ा:

जो पूर्ण ज्ञान के साथ अपनी सभी निजी वस्तुओं और कामवासना की सभी क्रियाओं का त्याग कर देते हैं, जो आत्मसंयमित, दृढ़ निश्चयी, निस्वार्थ और इच्छा से मुक्त होते हैं, उन्हें ही वास्तव में तपस्वी कहा जाता है।

इस प्रकार उन सभी ने अपने-अपने गुणों को श्रेष्ठ बताया और फिर धनंजय से पूछा, “हे महाराज, क्या आपके दरबार में कोई ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है जो इस शंका का समाधान कर सके?” धनंजय ने कहा, “जी हाँ, हे राजाओं, मेरे पास विदुर-पंडित हैं, जो अतुलनीय उत्तरदायित्व का पद संभालते हैं और सभ्य एवं धार्मिक मार्ग का उपदेश देते हैं, वे हमारी शंका का समाधान करेंगे, हम उनके पास जाएँगे।” धनंजय तुरंत सहमत हो गए। अतः वे सभी उद्यान से बाहर निकले और धार्मिक सभा भवन की ओर बढ़े, तथा भवन को सजाने का आदेश देकर उन्होंने बोधिसत्व को एक ऊँचे आसन पर बैठाया और उन्हें मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे ज्ञानी! हमारे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है, क्या आप उसका समाधान करेंगे?”

"हे परम बुद्धिमान मंत्री जी, हम आपसे विनती करते हैं: हमारी बातों में विवाद उत्पन्न हो गया है, क्या आप आज हमारी उलझनों पर विचार करके उनका समाधान करेंगे, क्या आप आज हमें अपने संदेह से मुक्ति दिला सकते हैं?"

उनकी बातें सुनकर उस बुद्धिमान व्यक्ति ने उत्तर दिया, "हे राजाओं, मैं कैसे जानूँ कि आपने अपने वाद-विवाद में जो छंद कहे हैं, वे आपके सद्‌गुण के विषय में अच्छे हैं या बुरे?" और उसने यह छंद जोड़ा:

वे बुद्धिमान पुरुष जो वास्तविक स्थिति को जानते हैं और उचित समय पर बुद्धिमानी से बोलते हैं, वे चाहे कितने भी बुद्धिमान क्यों न हों, उन श्लोकों का अर्थ कैसे समझा सकते हैं जो उन्हें सुनाए ही नहीं गए हैं? नाग राजा कैसे बोलते हैं, विनता के पुत्र गरुला कैसे बोलते हैं? गंधर्वों के राजा क्या कहते हैं? या कुरुओं के सबसे श्रेष्ठ राजा कैसे बोलते हैं?

तब उन्होंने उससे यह श्लोक कहा:

नाग राजा संयम का उपदेश देते हैं, विनता के पुत्र गरुला सौम्यता का, गंधर्वों के राजा शारीरिक वासना से परहेज का, और कुरुओं के सबसे श्रेष्ठ राजा धार्मिक (धार्मिक) पूर्णता में सभी बाधाओं से मुक्ति का उपदेश देते हैं।

तब उस महान सत्ता ने उनकी बातें सुनकर यह श्लोक कहा:

"ये सभी बातें सही ढंग से कही गई हैं, इनमें से कुछ भी गलत नहीं है; और जिसमें ये बातें पहिये के केंद्र में तीलियों की तरह ठीक से फिट बैठती हैं, वही इन चार गुणों से संपन्न होता है, जिसे वास्तव में तपस्वी कहा जाता है।"

इस प्रकार उस महान सत्ता ने उन सभी के गुणों को एक समान बताया। तब उन चारों ने यह सुनकर अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और उनकी स्तुति में यह श्लोक कहा:

"आप सर्वश्रेष्ठ हैं, आप अतुलनीय हैं, आप बुद्धिमान हैं, धर्मी मार्ग के रक्षक और ज्ञाता हैं: अपनी बुद्धि से समस्या को समझकर, आप अपनी कुशलता से संदेहों को उसी प्रकार तराशते हैं जैसे हाथीदांत का कारीगर अपनी आरी से हाथीदांत को तराशता है।"

इस प्रकार चारों उनके प्रश्न के उत्तर से प्रसन्न हुए। तब इंद्र ने उन्हें रेशमी वस्त्र, गरुला ने सोने की माला, नागराज वरुण ने रत्न और धनंजय ने हजार गायें आदि भेंट कीं; तब धनंजय ने उनसे इस श्लोक में कहा:

"मैं तुम्हें एक हजार गायें, एक बैल और एक हाथी, और ये दस रथ जो उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचे जाते हैं, और सोलह उत्कृष्ट गाँव देता हूँ, क्योंकि मैं इस प्रश्न के तुम्हारे समाधान से पूरी तरह प्रसन्न हूँ।"

फिर इंद्र और अन्य सभी ने महान सत्ता को पूर्ण आदर देकर अपने-अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान किया। यहीं पर चार वक्त के उपवास का यह भाग समाप्त होता है।

II.

नाग राजा की रानी विमला थीं; जब उन्होंने देखा कि उनके गले में कोई रत्नजड़ित आभूषण नहीं है, तो उन्होंने उनसे पूछा कि वह कहाँ है। उन्होंने उत्तर दिया, "ब्राह्मण चंदा के पुत्र विदुर-पंडित का उपदेश सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई और मैंने उन्हें वह रत्न भेंट किया। केवल मैंने ही नहीं, बल्कि इंद्र ने भी उन्हें रेशमी वस्त्र भेंट किया, सुपन्ना राजा ने उन्हें सोने की माला दी, और धनंजय राजा ने एक हजार बैल और अन्य कई वस्तुएँ भेंट कीं।" "मुझे लगता है कि वे विधि-विद्या में निपुण हैं।" "देवी, आप क्या कह रही हैं? ऐसा लगता है मानो जंबूद्वीप (भारत) में बुद्ध प्रकट हुए हों! जंबूद्वीप (भारत) के सौ राजा उनके मधुर शब्दों से मोहित होकर अपने राज्यों में नहीं लौटते, बल्कि अपने प्रिय वीणा की ध्वनि से मोहित जंगली हाथियों की तरह वहीं ठहर जाते हैं, यही उनकी वाक्पटुता का सार है!" जब उसने उनकी महानता का वर्णन सुना तो उसके मन में उनके प्रवचन सुनने की तीव्र इच्छा जागी और उसने मन ही मन सोचा, "यदि मैं राजा से कहूँ कि मैं उनके प्रवचन सुनने के लिए तरस रही हूँ और उन्हें यहाँ बुलाने का अनुरोध करूँ, तो वे उन्हें मेरे पास नहीं लाएँगे; यदि मैं बीमार होने का बहाना करूँ और एक बीमार स्त्री की तरह अपनी इच्छा व्यक्त करूँ तो क्या होगा?" इसलिए उसने अपनी सेविकाओं को इशारा किया और बिस्तर पर लेट गई। जब राजा उससे मिलने आए और उसे वहाँ नहीं पाया तो उन्होंने सेविकाओं से पूछा कि विमला कहाँ है। उन्होंने उत्तर दिया कि वह बीमार है, और जब वे उससे मिलने गए तो वे उसके बिस्तर के किनारे बैठ गए और एक श्लोक का पाठ करते हुए उसके शरीर को सहलाने लगे।

"पीली, दुबली-पतली और कमजोर, तुम्हारा रंग और रूप पहले ऐसा नहीं था, हे विमला, मेरे प्रश्न का उत्तर दो, यह शरीर का दर्द क्या है जो तुम्हें सता रहा है?"

उसने उसे निम्नलिखित शब्दों में बताया:

"स्त्रियों में एक स्नेह होता है, उसे लालसा कहते हैं, हे राजा; हे नागों के सम्राट, मैं विदुर का हृदय बिना छल के यहाँ लाने की कामना करती हूँ।"

उसने उसे उत्तर दिया:

"तुम्हें चाँद, सूरज या हवा की बहुत याद आती है; विदुर के दर्शन मात्र ही मुश्किल से हो पाते हैं: कौन उन्हें यहाँ ला पाएगा?"

जब उसने उसकी बातें सुनीं, तो वह चिल्लाई, "अगर मुझे यह नहीं मिला तो मैं मर जाऊंगी," इसलिए वह अपने पलंग पर घूम गई और अपनी पीठ दिखाते हुए अपने वस्त्र के किनारे से अपना चेहरा ढक लिया। नाग राजा अपने कक्ष में गया और अपने पलंग पर बैठ गया और सोचने लगा कि विमला विदुर का हृदय पाने के लिए कितनी दृढ़ है; "अगर उसे उसका हृदय नहीं मिला तो वह मर जाएगी; मैं उसके लिए इसे कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?" तभी उसकी पुत्री इरंदती, एक नाग राजकुमारी, अपने पिता को प्रणाम करने के लिए पूरी सुंदरता और आभूषणों के साथ आई और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ खड़ी हो गई। उसने देखा कि उसकी शांति भंग है, और उसने उससे कहा, "आप बहुत व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है?"

"हे पिता, आप इतने चिंतित क्यों हैं? आपका चेहरा हाथ से तोड़े गए कमल के समान क्यों है? आप क्यों दुखी हैं? हे राजा, चले जाइए! शत्रुओं पर विजय पाने वाले, शोक न कीजिए।"

अपनी पुत्री की बातें सुनकर नाग राजा ने उत्तर दिया:

"हे इरंदती, तेरी माता विदुर का हृदय चाहती है, विदुर के दर्शन मात्र से ही वह प्रसन्न हो जाता है, उसे यहाँ कौन ला सकेगा?"

तब उसने उससे कहा, "पुत्री, मेरे दरबार में कोई ऐसा नहीं है जो विदुर को यहाँ ला सके; तुम अपनी माता को जीवनदान दो और किसी ऐसे पति की तलाश करो जो विदुर को यहाँ ला सके।"

इसलिए उसने आधे श्लोक के साथ उसे विदा कर दिया, जिससे उसकी बेटी के प्रति अनुचित विचारों का संकेत मिलता है:

"तुम एक ऐसे पति की तलाश करो, जो विदुर को यहाँ लाए।" और जब उसने अपने पिता के ये शब्द सुने, तो वह रात में चली गई और अपनी तीव्र इच्छाओं को पूरा करने लगी।

चलते-चलते उसने हिमालय के सभी रंग, सुगंध या स्वाद वाले फूलों को इकट्ठा किया, और पूरे पर्वत को एक अनमोल रत्न की तरह सजाकर उस पर फूलों का पलंग बिछाया, और एक मधुर नृत्य करने के बाद एक मधुर गीत गाया।

"कौन सा गंधर्व या राक्षस, कौन सा नाग, कौन सा किंपुरासा या मनुष्य, या कौन सा ऋषि, जो सभी इच्छाओं को पूरा करने में सक्षम हो, पूरी रात मेरा पति बनेगा?"

उस समय महान राजा वेसवना के भतीजे, पुन्नका नामक यक्ष (राक्षस) सेनापति, तीन मील (4.23 किमी) लंबे जादुई सिंध घोड़े पर सवार होकर, काले पर्वत की लाल आर्सेनिक सतह पर तेजी से यक्षों के एक समूह की ओर बढ़ रहे थे, तभी उन्होंने उस स्त्री का गीत सुना। पिछले जन्म में सुनी हुई उस स्त्री की आवाज उनके शरीर और नसों को भेदते हुए उनकी हड्डियों तक समा गई; और उससे मोहित होकर, वे अपने सिंध घोड़े पर बैठे-बैठे ही वापस मुड़े और उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, "हे देवी, मैं अपने ज्ञान, पवित्रता और शांति से आपको विदुर का हृदय दिला सकता हूँ, आप चिंता न करें," और उन्होंने यह श्लोक जोड़ा:

"निराश हो जाओ, मैं तुम्हारा पति बनूंगा, मैं तुम्हारा पति बनूंगा, हे निर्दोष आंखों वाली: वास्तव में मेरा ज्ञान ऐसा है, निश्चिंत हो जाओ, तुम मेरी पत्नी बनोगी।"

तब इरंदती ने अपने पिछले जन्म के प्रेम प्रसंग के पुराने अनुभव से प्रेरित होकर उत्तर दिया, "चलो, मेरे पिता के पास चलते हैं, वह तुम्हें इस मामले के बारे में समझा देंगे।"

चमकीले वस्त्रों से सजी, मालाओं से ढकी और चंदन से अभिषेक की हुई, उसने यक्ष (राक्षस) का हाथ पकड़ा और अपने पिता के समक्ष चली गई।

और पुन्नका उसे वापस लाकर उसके पिता नाग राजा के पास गया और उससे अपनी पत्नी के रूप में उसे मांगा।

"हे नागों के सरदार, मेरी बात सुनो, अपनी पुत्री के लिए उचित भेंट स्वीकार करो; मैं इरंदती मांगता हूँ: उसे मुझे सौंप दो। सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ खच्चर और रथ, सौ पूरी तरह से रत्नों से भरी हुई गाड़ियाँ, हे नाग राजा, ये सब ले लो और मुझे अपनी पुत्री इरंदती दे दो।"

तब नाग राजा ने उत्तर दिया:

"जब तक मैं अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और परिचितों से सलाह न ले लूं, तब तक प्रतीक्षा करें; बिना सलाह लिए किया गया कोई भी काम बाद में पछतावे का कारण बनता है।"

तब नाग राजा अपने महल में प्रवेश करके अपनी पत्नी से सलाह मशवरा करते हुए बोले, "यह पुन्नका यक्ष (राक्षस) मुझसे इरंदती मांग रहा है; क्या हम उसे बहुत धन के बदले में दे दें?"

विमला ने उत्तर दिया:

"हमारे इरंदती को धन या खजाने से नहीं जीता जा सकता; यदि वह अपने गुणों के बल पर ऋषि का हृदय यहाँ ले आए, तो राजकुमारी को उसी धन से जीता जा सकता है, हमें और किसी खजाने की आवश्यकता नहीं है।"

तब नाग वरुण अपने महल से बाहर निकले और पुन्नक से परामर्श करके उसे इस प्रकार संबोधित किया:

"हमारी इरंदती को धन या खजाने से नहीं जीता जा सकता; यदि आप अपनी योग्यता के बल पर इसे प्राप्त करते हैं और ऋषि का हृदय यहाँ लाते हैं, तो राजकुमारी उस धन से ही जीत ली जाएगी, हमें और किसी खजाने की आवश्यकता नहीं है।"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"जिसे कुछ लोग ऋषि कहते हैं, दूसरे उसे मूर्ख कहते हैं; हे नाग, क्योंकि वे इस विषय पर अलग-अलग राय रखते हैं, मुझे बताओ कि तुम किसे ऋषि कहते हो?"

नाग राजा ने उत्तर दिया:

"यदि आपने कोरव्य राजा धनंजय के मंत्री विदुर के बारे में सुना हो, तो उस ऋषि को यहाँ लाएँ और इरंदती को अपनी वैध पत्नी बनाएँ।"

वरुण के ये शब्द सुनकर यक्ष (राक्षस) अत्यंत प्रसन्न होकर उछल पड़ा; और उसने तुरंत अपने सेवक से कहा, "मेरे उत्तम नस्ल के घोड़े को तैयार करके यहाँ लाओ।"

सोने के कान, माणिक के खुर और पिघले हुए सोने का कवच पहने हुए, वह व्यक्ति सिंध के घोड़े को इस प्रकार काठी पहनाकर लाया; और पुन्नका उस पर सवार होकर आकाश से होते हुए वेसवना के पास गया और उसे अपने साहसिक कार्य के बारे में बताया, इस प्रकार नाग जगत का वर्णन किया गया है; इसका वर्णन इस प्रकार है:

"पुन्नक अपने घोड़े पर सवार होकर, जो देवताओं (देवदूतों) को ले जाने के लिए उपयुक्त एक बलवान घोड़ा था, स्वयं समृद्ध रूप से सुसज्जित होकर और अपनी दाढ़ी और बालों को संवारकर आकाश में चला गया।"

नाग कन्या इरंदती को पाने की लालसा से व्याकुल पुन्नका, तेजस्वी राजा वेसवना कुबेर के पास जाकर इस प्रकार उनसे बोला:

"वहाँ भोगवती नामक महल है जिसे स्वर्ण घर कहा जाता है, जो नाग राज्य की राजधानी है और इसके स्वर्ण नगर में निर्मित है।"

होंठ और गर्दन की आकृति वाले निगरानी बुर्ज, जिनमें माणिक और बिल्ली की आंख जैसे रत्न जड़े हैं, संगमरमर से बने और सोने से समृद्ध महल, और सोने से जड़े रत्नों से ढके हुए महल।

आम, तिलक-पेड़ और गुलाब-सेब, सत्तपन्ना, मुकलिंडा और केतका, पियाका, उद्दालका और सहस, और ऊपर खिले फूलों के साथ सिंदुवारित्स,

चंपक, नागमलिका, भगिनीमाला और बेर के पेड़, ये सभी अलग-अलग प्रकार के पेड़ अपनी शाखाओं को झुकाकर नाग महल की सुंदरता में चार चांद लगाते हैं।

वहाँ बहुमूल्य पत्थरों से बना एक विशाल खजूर का पेड़ है जिस पर सुनहरे फूल खिलते हैं जो कभी मुरझाते नहीं हैं, और वहाँ नाग राजा वरुण निवास करते हैं, जो जादुई शक्तियों से संपन्न हैं और अलौकिक जन्म से उत्पन्न हुए हैं।

वहाँ उसकी रानी विमला निवास करती है, जिसका शरीर सुनहरी लता के समान है, वह युवा कला के पौधे की तरह लंबी है, और उसके स्तन निम्बा फलों के समान हैं, जो देखने में सुंदर हैं।

गोरी त्वचा वाली और लाख के रंग से रंगी हुई, किसी सुरक्षित स्थान पर खिलते हुए कनिकारा वृक्ष की तरह, देवलोक में रहने वाली अप्सरा की तरह, घने बादल से चमकती बिजली की तरह।

व्याकुल और एक विचित्र लालसा से भरी हुई, वह विदुर का हृदय पाने की इच्छा रखती है। "मैं इसे उन्हें दे दूंगी, हे राजा, वे इसके बदले मुझे इरंदति देंगे।"

वेसवना की अनुमति के बिना जाने की हिम्मत न होने के कारण, उसने उन्हें सूचित करने के लिए इन श्लोकों को दोहराया। लेकिन वेसवना ने उसकी बात नहीं सुनी, क्योंकि वे देवताओं के दो पुत्रों (देवदूतों) के बीच एक महल को लेकर हुए विवाद को सुलझाने में व्यस्त थे। पुन्नका यह जानते हुए कि उसकी बात नहीं सुनी गई, विवाद में विजयी हुए दो व्यक्तियों में से एक के पास ही रुका रहा। विवाद का निपटारा करने के बाद, वेसवना ने पराजित व्यक्ति के बारे में कोई विचार नहीं किया, बल्कि दूसरे से कहा, "जाओ और अपने महल में निवास करो।" "जाओ" कहते ही, पुन्नका ने देवताओं के कुछ पुत्रों (देवदूतों) को साक्षी बनाकर बुलाया और कहा, "देखो, मुझे मेरे मामा ने भेजा है," और तुरंत अपना घोड़ा लाने का आदेश दिया और उस पर सवार होकर चल पड़ा।

शिक्षक ने जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस प्रकार किया:

पुन्नक ने प्राणियों के तेजस्वी स्वामी वेसवना कुबेर को विदाई देते हुए, वहाँ खड़े अपने सेवक को आदेश दिया, “मेरे उत्तम नस्ल के घोड़े को यहाँ लाओ।” सोने के कानों, माणिक के खुरों और पिघले हुए सोने के कवच से सुसज्जित उस घोड़े पर सवार होकर पुन्नक आकाश में विचरण करने चला गया। पुन्नक, देवदूत को ले जाने वाले उस घोड़े पर सवार होकर, जो सुशोभित था और जिसकी दाढ़ी-मूंछें सुव्यवस्थित थीं, अंतरिक्ष में चला गया।

हवा में उड़ते हुए उसने सोचा, "विदुर-पंडित के पास बहुत सारे सेवक हैं और उन्हें बलपूर्वक नहीं पकड़ा जा सकता, परन्तु धनंजय कोरव्य जुए में अपनी कुशलता के लिए प्रसिद्ध है। मैं उसे जुए में परास्त कर विदुर-पंडित को पकड़ लूँगा। अब उसके घर में बहुत सारे रत्न हैं: वह मामूली रकम के लिए नहीं खेलेगा; मुझे एक कीमती रत्न लाना होगा, राजा साधारण रत्न स्वीकार नहीं करेगा। अब राजगृह नगर के पास वेपुल्ला पर्वत पर सर्वशक्तिमान सम्राट का एक अनमोल रत्न है; मैं उसे ले लूँगा और राजा को जुए के लिए लुभाकर उसे परास्त कर लूँगा।" उसने ऐसा ही किया।

शिक्षक ने पूरी कहानी बताई:

वह अंग के दूर स्थित रमणीय राजग्रह नगर में गया, जो खाद्य पदार्थों से समृद्ध और भोजन-पेय पदार्थों से भरपूर था। यह नगर इंद्र की राजधानी मसाक्कासर के समान था, जो मोरों और बगुले के स्वरों से गूंजता था, सुंदर दरबारों से परिपूर्ण था और हर प्रकार के पक्षियों से आबाद था, ठीक वैसे ही जैसे हिमवत पर्वत फूलों से ढका होता है। इसलिए पुन्नक ने किंपुरिसों से आबाद चट्टानों के ढेर वाले वेपुल्ला पर्वत पर चढ़कर उस तेजस्वी रत्न की खोज की और अंत में उसे पर्वत के मध्य में पाया।

जब उसने उस शानदार बहुमूल्य रत्न को इस प्रकार प्रकाश बिखेरते हुए, अपनी सुंदरता से इतनी भव्यता से जगमगाते हुए, आकाश में बिजली की तरह चमकते हुए देखा, तो उसने तुरंत उस अनमोल रत्न, लापिस लाजुली को उठा लिया, और अपने असाधारण घोड़े पर सवार होकर, स्वयं भी उत्कृष्ट सौंदर्य से परिपूर्ण, आकाश में अंतरिक्ष में तेजी से आगे बढ़ा।

वह इंद्रप्रस्थ नगर गया और कुरुओं के दरबार में उतरा; निर्भीक यक्ष (राक्षस) ने वहां एकत्रित सौ योद्धाओं को बुलाया।

"कौन हमसे राजाओं का पुरस्कार छीनना चाहता है? या योग्यता की प्रतियोगिता में हम किसे परास्त करेंगे? हम कौन सा असाधारण रत्न जीतेंगे? या हमारा सबसे उत्तम खजाना कौन जीतेगा?"

इस प्रकार उसने चार पंक्तियों में कोरव्य की प्रशंसा की। तब राजा ने मन ही मन सोचा, "मैंने पहले कभी ऐसा वीर नहीं देखा जिसने ऐसे शब्द कहे हों; यह कौन हो सकता है?" और उसने उससे इस श्लोक में पूछा:

"तुम्हारा जन्मस्थान किस राज्य में है? ये किसी कोरव्य के शब्द नहीं हैं: तुम अपने रूप और स्वरूप में हम सब से श्रेष्ठ हो; मुझे अपना नाम और परिवार बताओ।"

दूसरे विचार में उसने कहा, "यह राजा मेरा नाम पूछता है: अभी तो मैं सेवक पुन्नका हूँ; लेकिन अगर मैं उसे बताऊँ कि मैं पुन्नका हूँ, तो वह कहेगा, 'यह तो सेवक है, मुझसे इतनी निर्भीकता से क्यों बात करता है?' और वह मेरा तिरस्कार करेगा; मैं उसे अपने पिछले जन्म का नाम बता दूँगा।" इस प्रकार उसने एक श्लोक कहा:

"हे राजा, मेरा नाम कच्चायना है; लोग मुझे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति कहते हैं; मेरा परिवार और मित्र अंगा में हैं; मैं यहाँ मनोरंजन के लिए आया हूँ।"

तब राजा ने उससे पूछा, "खेल में हारने पर तुम क्या दोगे? तुम्हारे पास क्या है?" और उसने यह छंद कहा:

"उस युवक के पास कौन से रत्न हैं, जिन्हें उसे हराने वाला जुआरी जीत सकता है? एक राजा के पास अनेक रत्न होते हैं, तुम जैसे गरीब आदमी भला उन्हें कैसे चुनौती दे सकते हो?"

तब पुन्नका ने उत्तर दिया:

"यह मेरा एक आकर्षक रत्न है, यह एक शानदार रत्न है जो धन लाता है; और जो जुआरी मुझे हराएगा, उसे यह असाधारण घोड़ा मिलेगा जो सभी शत्रुओं को परेशान करता है।"

जब राजा ने उसकी बात सुनी, तो उसने उत्तर दिया

"हे युवक, एक रत्न से क्या लाभ होगा? और एक उत्तम नस्ल के घोड़े से क्या फायदा? एक राजा के पास अनेक बहुमूल्य रत्न होते हैं, और कई असाधारण घोड़े हवा की तरह तेज होते हैं।"

III.

जब उसने राजा का भाषण सुना, तो उसने कहा, "हे राजा, आप ऐसा क्यों कहते हैं? एक घोड़ा है, और हज़ार-हज़ार घोड़े भी हैं; एक रत्न है, और हज़ार रत्न भी हैं; परन्तु सारे घोड़े मिलकर भी इसके बराबर नहीं हैं; इसकी गति देखिए।" ऐसा कहकर वह घोड़े पर सवार हुआ और उसे दीवार के ऊपर से सरपट दौड़ाया, और सात मील (4.23 किमी) लंबी नगर की दीवार मानो गर्दन से गर्दन टकराते घोड़ों से घिरी हुई थी, और फिर कुछ समय बाद न तो घोड़ा और न ही यक्ष (राक्षस) दिखाई देने लगा, और उसके पेट पर बंधी लाल कपड़े की एक पट्टी मानो पूरी दीवार पर फैल गई हो। फिर वह घोड़े से उतरा, और उसे घोड़े की गति देखकर बताया कि अब वह उसे कुछ नया दिखाने को कह रहा है: और देखो, उसने घोड़े को नगर के बगीचे में पानी की सतह पर सरपट दौड़ाया, और घोड़ा बिना खुर गीले किए कूद गया; फिर उसने उसे कमल के पत्तों पर चलाया, और जब उसने ताली बजाई और अपना हाथ फैलाया तो घोड़ा आकर उसकी हथेली पर खड़ा हो गया। तब उसने कहा, "हे राजा, यह वास्तव में एक अनमोल घोड़ा है।" "हाँ, हे युवक, यह वास्तव में अनमोल है।" "अच्छा, इस अनमोल घोड़े को थोड़ी देर के लिए एक तरफ रख दो, अब इस अनमोल रत्न की शक्ति देखो।"

"हे पुरुषों में श्रेष्ठ, मेरे इस असाधारण रत्न को देखो; इसमें स्त्रियों के शरीर और पुरुषों के शरीर हैं; इसमें पशुओं के शरीर हैं और पक्षियों के शरीर हैं, नाग राजाओं और सुपन्नों के शरीर हैं, सभी इस रत्न में सृजित हैं।"

"हाथियों की सेना, रथों की सेना, घोड़े, पैदल सैनिक और झंडे, इस रत्न में निर्मित इस संपूर्ण सेना को देखें; हाथी सवार, राजा के अंगरक्षक, रथों से लड़ने वाले योद्धा, पैदल लड़ने वाले योद्धा और युद्ध में एकत्रित सैनिक, इस रत्न में निर्मित सभी को देखें।"

"इस रत्न में निर्मित नगर को देखो, जो मजबूत नींवों, अनेक द्वारों और दीवारों से सुसज्जित है, और जिसमें कई रमणीय स्थान हैं जहाँ चारों सड़कें मिलती हैं। स्तंभ और खाइयाँ, सलाखें और बोल्ट, पहरेदार मीनारें और द्वार, सब कुछ इस रत्न में निर्मित है।"

"द्वारों के नीचे सड़कों पर पक्षियों के विभिन्न झुंड देखें, हंस, बगुले, मोर, लाल हंस और ओस्प्रे (मछली बाज); कोयल, चित्तीदार पक्षी, मोर, जीवजीवक, हर प्रकार के पक्षी एक साथ एकत्रित होकर रत्न की रचना करते हुए दिखाई देते हैं।"

"भव्य दीवारों वाले एक अद्भुत शहर को देखो, जो आश्चर्य से रोंगटे खड़े कर देता है, लहराते झंडों से मनमोहक, और जिसकी रेत सोने जैसी है, नियमित रूप से खंडों में विभाजित आश्रमों को देखो, और विभिन्न घरों और उनके आंगनों को देखो, जिनके बीच सड़कें और संकरी गलियां हैं।"

"देखो, शराबखाने और सराय, कसाईखाने और रसोइयों की दुकानें, और वेश्याएं और व्यभिचारी, ये सब रत्न में ही बने हैं। माला बुनने वाले, धोबी, ज्योतिषी, कपड़ा व्यापारी, सोने का काम करने वाले, जौहरी—देखो, ये सब रत्न में ही बने हैं।"

"इस रत्न में निर्मित ढोल, तबला, शंख, डफ और डफ तथा सभी प्रकार के झांझ देखें।"

"झांझ और वीणा, नृत्य और गीत का बेहतरीन प्रदर्शन, संगीत वाद्ययंत्र और घंटे, ये सब गहने में रचे गए हैं।"

"यहां कूदने वाले और पहलवान भी हैं, और बाज़ीगरों, शाही कवियों और नाइयों का एक अद्भुत दृश्य इस रत्न में रचा गया है।"

"यहां पुरुषों और महिलाओं की भीड़ जमा है, इस रत्न में निर्मित सीटों की कई परतों को देखें।"

"भीड़ में पहलवानों को अपनी दोहरी भुजाओं से प्रहार करते हुए देखो, प्रहार करने वालों और प्रहार सहने वालों को देखो, जो रत्न में निर्मित हैं।"

"पहाड़ों की ढलानों पर विभिन्न प्रकार के हिरणों, शेरों, बाघों, जंगली सूअरों, भालुओं, भेड़ियों और लकड़बग्घों के झुंड देखें; गैंडे, गयाल, भैंस, लाल हिरण, रुरु, मृग, जंगली सूअर, निमका और हॉग, चित्तीदार कदली-हिरण, बिल्लियाँ, खरगोश, सभी प्रकार के बहुत सारे जानवर, रत्न में निर्मित हैं।"

"सुनहरी रेत से पक्की, स्वच्छ जलधाराओं से भरी और मछलियों की प्रचुरता वाली नदियाँ यहाँ पाई जाती हैं; मगरमच्छ, समुद्री राक्षस, डॉल्फ़िन, कछुए, पथिन, पावुसा, वलज और मुंजरोहित भी यहाँ मौजूद हैं।"

"देखो, इस रत्न में सभी प्रकार के पेड़ बने हुए हैं, जो विभिन्न पक्षियों से भरे हुए हैं, और एक जंगल है जिसकी शाखाएँ नीलमणि से बनी हैं।"

चारों दिशाओं में फैली हुई झीलों को भी देखो, जो अनेक पक्षियों से भरी हैं और चौड़ी पपड़ियों वाली मछलियों से भरपूर हैं। पृथ्वी को समुद्र से घिरा हुआ देखो, जो हर जगह जल से भरा है और अनेक वृक्षों से आच्छादित है, ये सब रत्न में सृजित हैं।

"देखो, सामने विदेह, पीछे गोयनीय, कुरु और जंबूद्वीप (भारत) सभी इस रत्न में निर्मित हैं।"

"सूर्य और चंद्रमा को देखो, जो चारों ओर चमक रहे हैं, जैसे वे रत्न में निर्मित माउंट सिनेरू के चारों ओर घूम रहे हैं।"

"सिनरू और हिमवत (हिमालय) और चमत्कारी समुद्र और रत्न में निर्मित दुनिया के चार रक्षकों को देखो।"

"इस रत्न में निर्मित पार्कों और जंगलों, चट्टानों और पहाड़ों को देखें, जो देखने में मनमोहक हैं और विचित्र राक्षसों से भरे हुए हैं।"

"इंद्र के उद्यान फारुसाका, चित्तलता, मिसाका, और नंदना, और उनके महल वेजयंत, सभी को गहना में निर्मित देखा गया है।

"इंद्र का महल सुधम्म, तैंतीस का स्वर्ग, पूर्ण रूप से खिले हुए दिव्य वृक्ष परिच्छत्त और इंद्र का हाथी एरवन, ये सभी रत्न में निर्मित हैं। यहाँ देवताओं की कन्याएँ (देवदूत) आकाश में बिजली की तरह उड़ती हुई, नंदन में विचरण करती हुई, ये सभी रत्न में निर्मित हैं।"

"देखो, स्वर्ग की अप्सराएँ स्वर्ग के पुत्रों को मोहित कर रही हैं, और स्वर्ग के पुत्र इधर-उधर भटक रहे हैं, ये सब रत्न में सृजित हैं।"

"देखो, इस रत्न में नीलमणि से ढके एक हजार से अधिक महल हैं, जो सभी चमकीले रंगों से सजे हैं। और इस रत्न में तावतिंसा, यम, तुषिता और परानिमित्त लोक के प्राणी भी विराजमान हैं। देखो, यहाँ पारदर्शी जल से भरी निर्मल झीलें हैं, जो दिव्य मूंगा वृक्षों, कमलों और जलमुर्गियों से ढकी हैं।"

इस रत्न में दस सफेद रेखाएँ और दस सुंदर गहरे नीले रंग की रेखाएँ हैं; इक्कीस भूरी और चौदह पीली। बीस सुनहरी रेखाएँ, बीस चाँदी की और तीस लाल रंग की दिखाई देती हैं। सोलह काली हैं, पच्चीस मजीठ के रंग की हैं, ये बंधुका के फूलों के साथ मिश्रित हैं और नीले कमलों से सजी हुई हैं।

"हे राजा, पुरुषों में श्रेष्ठ, इस उज्ज्वल, ज्वाला के समान रत्न को देखो, जो अपने सभी भागों में परिपूर्ण है, यह जीतने वाले के लिए नियत पुरस्कार है।"

IV.

पुन्नका ने ऐसा कहकर आगे कहा, “हे महाराज, यदि आप मुझे बाजी में हरा दें तो मैं आपको यह अनमोल रत्न भेंट करूँगा, पर आप मुझे क्या देंगे?” “मेरे शरीर और सफेद छत्र को छोड़कर, जो कुछ मेरे पास है, वही इनाम होगा।” “तो महाराज, देर न करें—मैं बहुत दूर से आया हूँ—खेल कक्ष तैयार करें।” तब राजा ने अपने मंत्रियों को आदेश दिया और उन्होंने तुरंत हॉल तैयार किया और राजा के लिए उत्तम रेशे के कपड़े का कालीन और अन्य राजाओं के लिए कुर्सियाँ तैयार कीं, और पुन्नका के लिए एक उपयुक्त आसन नियुक्त करके राजा से कहा कि समय आ गया है। तब पुन्नका ने एक श्लोक में राजा को संबोधित किया:

"हे राजा, अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बढ़ो, तुम्हारे पास ऐसा कोई अनमोल रत्न नहीं है: चलो हम निष्पक्ष व्यवहार और हिंसा के अभाव से विजय प्राप्त करें, और जब तुम जीत जाओ तो अपनी हिस्सेदारी चुका दो।"

तब राजा ने उत्तर दिया, "हे युवक, राजा होने के नाते मुझसे भयभीत मत हो; हमारी पराजय या पराजय निष्पक्ष व्यवहार और हिंसा के अभाव से ही होगी।" तब पुन्नक ने एक श्लोक कहा, मानो अन्य राजाओं को साक्षी बनाकर यह प्रकट किया हो कि विजय केवल निष्पक्ष व्यवहार से ही प्राप्त की जा सकती है।

"हे उच्च पंचाल और सुरसेना, हे मच्छों और मद्दों, केकाकों सहित, -ये सभी देखें कि यह प्रतियोगिता कपट रहित है, कोई भी हमारी सभा में हस्तक्षेप नहीं करेगा।"

फिर सौ राजाओं के साथ राजा पुन्नक को लेकर खेल के मैदान में गए और सभी उपयुक्त सीटों पर बैठ गए। उन्होंने सोने के पासे चांदी के तख्ते पर रखे। तब पुन्नक ने जल्दी से कहा, "हे राजा, पासे खेलने में चौबीस मौके होते हैं, इन्हें मलिका, सवता, बहुला, शांति, भद्रा आदि कहते हैं। आपको जो पसंद हो, चुन लीजिए।" राजा मान गए और उन्होंने बहुला चुना, पुन्नक ने सवता चुना। तब राजा ने कहा, "हे युवक, क्या तुम पहले पासा फेंकोगे?" पुन्नक ने कहा, "हे राजा, पहला मौका मेरा नहीं है, आप ही फेंकिए।" राजा मान गए। अब, इससे एक जन्म पहले, उनकी माता उनकी संरक्षक देवी थीं और उनकी शक्ति से राजा खेल में जीतते थे। माता पास ही खड़ी थीं, और राजा ने देवी को याद करते हुए खेल का गीत गाया और अपने हाथ में पासे घुमाकर हवा में उछाल दिए। पुन्नक की शक्ति से पासे इस प्रकार गिरे कि राजा हार गए। राजा ने अपनी कुशल बाजी से पहचान लिया कि पासे उसके विरुद्ध गिर रहे हैं। उसने उन्हें हवा में ही पकड़कर आपस में मिला दिया और फिर से हवा में उछाला, लेकिन उसने पाया कि वे फिर से उसके विरुद्ध गिर रहे हैं और उसने उन्हें वैसे ही पकड़ लिया। तब

पुन्नका ने मन ही मन सोचा, "यह राजा, मेरे जैसे यक्ष (राक्षस) के साथ खेलते हुए भी, गिरते हुए पासों को आपस में मिला देता है और फिर उन्हें उठा लेता है, इसका कारण क्या हो सकता है?" तब, संरक्षक देवी की शक्ति को पहचानकर, उसने क्रोधित होकर अपनी आँखें चौड़ी कर लीं और उसे देखा। वह भयभीत होकर भाग गई और कांपते हुए चक्कवाला पर्वत की चोटी पर शरण ली। राजा ने जब तीसरी बार पासे उछाले, तो यद्यपि वह जानता था कि वे उसके विरुद्ध गिरेंगे, पुन्नका की शक्ति के कारण वह अपना हाथ बढ़ाकर उन्हें पकड़ नहीं सका और वे राजा के विरुद्ध गिरे। तब पुन्नका ने पासे उछाले और वे उसके पक्ष में गिरे। फिर जब उसे पता चला कि वह जीत गया है, तो उसने ज़ोर से ताली बजाई और तीन बार कहा, "मैं जीत गया, मैं जीत गया," और उस आवाज़ से सारा जंबुद्वीप (भारत) रोमांचित हो गया। शिक्षक ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया:

कुरुओं के राजा और यक्ष (राक्षस) पुन्नक खेल के नशे में चूर होकर मैदान में उतरे; राजा ने हारने वाली बाज़ी खेली और यक्ष (राक्षस) पुन्नक ने जीतने वाली बाज़ी। राजाओं और प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति में दोनों के बीच प्रतियोगिता हुई, जिसमें यक्ष (राक्षस) ने सबसे शक्तिशाली व्यक्ति को भी हरा दिया और वहाँ ज़ोरदार शोर मच गया।

राजा अपनी हार से नाराज थे, और पुन्नका ने उन्हें सांत्वना देने के लिए एक श्लोक दोहराया:

"हे राजा, विजय और पराजय दोनों ही संघर्षरत पक्षों में से किसी एक की होती है; हे राजा, आपने महान पुरस्कार खो दिया है; पराजित होकर, अब इसकी कीमत चुकाइए।"

फिर उसने उससे निम्नलिखित श्लोक को लेने के लिए कहा:

"हे कच्चना, पृथ्वी पर मेरे पास जो भी रत्न हैं, उनमें से सर्वश्रेष्ठ धन ले लो और जहाँ चाहो वहाँ जाओ।"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"हाथी, बैल, घोड़े, रत्न और बालियां, पृथ्वी पर जो भी रत्न हैं, उनमें मंत्री विदुर सर्वश्रेष्ठ हैं, मैंने उन्हें अपने वश में कर लिया है, उन्हें मेरे पास लौटा दो।"

राजा ने कहा:

"वह मेरा सेवक है, मेरी शरण और सहायता है, मेरा आश्रय है, मेरा किला और मेरा रक्षक है; मेरे उस सेवक की तुलना धन से नहीं की जा सकती; मेरा वह सेवक मेरे जीवन के समान है।"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"तुम्हारे और मेरे बीच एक लंबी बहस होगी, चलो हम उसके पास जाकर उससे पूछें कि वह क्या चाहता है, उसे हमारे बीच इस मामले का फैसला करने दो, फिर जो भी वह तय करे वही हम दोनों का फैसला होगा।"

राजा ने उत्तर दिया:

"सचमुच तुम सत्य कहते हो; हे युवक, तुम कोई अन्याय नहीं करते, चलो हम तुरंत जाकर उससे पूछें: इस तरह हम दोनों संतुष्ट हो जाएंगे।"

ऐसा कहकर राजा सौ राजाओं को लेकर पुन्नका प्रसन्नतापूर्वक न्यायलय की ओर चल पड़ा; और ऋषि अपने आसन से उठकर राजा को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। तब पुन्नका ने उस महान पुरुष को संबोधित करते हुए कहा, "हे ज्ञानी, आप न्याय में दृढ़ हैं, आप जीवन के बदले भी झूठ नहीं बोलेंगे; आपकी प्रसिद्धि की गूंज पूरे विश्व में फैली हुई है। मैं आज जान लूंगा कि आप वास्तव में न्याय में दृढ़ हैं या नहीं," और ऐसा कहकर उसने एक श्लोक कहा:

"क्या देवताओं (देवदूतों) ने सचमुच आपको कुरुओं के बीच न्यायप्रिय सलाहकार विदुर के रूप में नियुक्त किया है? क्या आप राजा के दास हैं या रिश्तेदार? विदुर, संसार में आपका क्या महत्व है?"

तब उस महान प्राणी ने मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति मुझसे यह प्रश्न पूछता है; लेकिन मैं उसे यह नहीं बता सकता कि मैं राजा का रिश्तेदार हूँ या राजा से श्रेष्ठ हूँ या राजा के लिए कुछ भी नहीं हूँ।"

इस संसार में सत्य के साक्षात कोई रक्षक नहीं; सत्य ही बोलना चाहिए।" इसलिए उसने दो श्लोक कहे जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वह राजा का न तो कोई रिश्तेदार था और न ही उसका कोई उच्च अधिकारी, बल्कि उसके चार दासों में से एक था:

कुछ अपनी माँ की संतान होते हैं, कुछ पैसे देकर गुलाम बनाए जाते हैं, कुछ अपनी इच्छा से गुलाम बनते हैं, और कुछ डर के मारे गुलाम बन जाते हैं। मनुष्य में गुलामों के ये चार प्रकार हैं। मैं सचमुच जन्म से ही गुलाम हूँ: मेरा सुख और दुख राजा की देन है, मैं राजा का गुलाम हूँ, भले ही मैं किसी और के पास जाऊँ, वह मुझे हक़दार के तौर पर तुम्हें दे देगा, हे नौजवान।

यह सुनकर पुन्नका अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने ताली बजाते हुए कहा:

"आज यह मेरी दूसरी जीत है; आपके मंत्री ने पूछे जाने पर आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया है; सचमुच सर्वश्रेष्ठ राजा भी अन्यायी होता है; यह निर्णय सही ढंग से लिया गया है, लेकिन आप इसे मुझे नहीं दे रहे हैं।"

यह सुनकर राजा उस महान व्यक्ति पर क्रोधित हो गया और बोला, "मुझ जैसे सम्मान देने वाले को भी तुम महत्व नहीं देते, तुम इस युवक को महत्व देते हो जो तुम्हारी नजरों में आ गया है"; फिर पुन्नका की ओर मुड़कर और यह कहते हुए, "यदि वह दास है तो उसे ले जाओ और चले जाओ," उसने निम्नलिखित श्लोक कहा:

"यदि उसने हमारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है, 'मैं दास हूँ, रिश्तेदार नहीं,' तो हे कच्चना, इस अनमोल खजाने को ले लो, इसे ले लो और जहाँ चाहो वहाँ चले जाओ।"

लेकिन जब राजा ने ऐसा कहा, तो उसने सोचा, "यह युवक ऋषि को अपने साथ ले जाएगा और जहाँ चाहेगा वहाँ चला जाएगा; उसके जाने के बाद मुझे धार्मिक विषयों पर मीठी-मीठी बातें सुनना मुश्किल हो जाएगा; क्या होगा यदि मैं उसे उसके उचित स्थान पर बिठाकर गृहस्थ जीवन से संबंधित कोई प्रश्न पूछूँ?" इसलिए उसने उससे कहा, "हे ऋषि, आपके जाने के बाद मुझे धार्मिक विषयों पर मीठी-मीठी बातें सुनना मुश्किल हो जाएगा; क्या आप एक सुशोभित मंच पर बैठकर, अपने उचित स्थान पर आकर, गृहस्थ जीवन से संबंधित एक प्रश्न का उत्तर देंगे?" ऋषि मान गए, और एक सुशोभित मंच पर बैठकर उन्होंने राजा द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर दिया; और प्रश्न यह था:

"हे विदुर, जो अपने घर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, उसका जीवन सुखमय कैसे होगा? उसे अपने लोगों के बीच कृपा कैसे प्राप्त होगी? वह दुखों से कैसे मुक्त होगा? और सत्य का वचन बोलने वाला वह युवक परलोक में जाकर सभी दुःखों से कैसे बच पाएगा?" तब ज्ञान और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण, वास्तविक लक्ष्य को जानने वाले और निरंतर आगे बढ़ने वाले, समस्त शिक्षाओं के ज्ञाता विदुर ने ये शब्द कहे:

उसे किसी और के साथ पत्नी साझा नहीं करनी चाहिए; उसे अकेले में उत्तम भोजन नहीं करना चाहिए; उसे व्यर्थ की बातों में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि इससे ज्ञान नहीं बढ़ता। गुणी, अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान, लापरवाह नहीं, शीघ्र विवेकशील, विनम्र, कठोर हृदय नहीं, दयालु, स्नेही, सौम्य, मित्र बनाने में कुशल, दान देने के लिए तत्पर, ऋतु के अनुसार व्यवस्था करने में समझदार, उसे भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भोजन और पेय से निरंतर संतुष्ट करना चाहिए। उसे धर्म की लालसा रखनी चाहिए और पवित्र ग्रंथों का स्तंभ बनना चाहिए, हमेशा प्रश्न पूछने के लिए तत्पर रहना चाहिए और गुणी विद्वानों का आदरपूर्वक ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार गृहस्थ जीवन जीने वाले व्यक्ति का जीवन समृद्ध होगा, उसे अपने लोगों के बीच स्नेह प्राप्त होगा; वह दुखों से मुक्त होगा; और इस प्रकार सत्य बोलने वाला युवक परलोक में जाकर सभी दुखों से मुक्त होगा।

इस प्रकार गृहस्थ जीवन से संबंधित प्रश्न का उत्तर देने के बाद, उस महान सत्ता ने अपने आसन से नीचे उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने भी उन्हें पूर्ण आदर दिया और सौ राजाओं से घिरे हुए अपने निवास स्थान पर चले गए।

जब वह महान प्राणी लौटा, तो पुन्नका ने उससे कहा:

"चलो, मैं अब चलता हूँ; तुम्हें राजा ने मुझे सौंपा है; केवल इस कर्तव्य का पालन करो—यही प्राचीन नियम है।"

ऋषि विदुर ने उत्तर दिया:

"मैं यह जानता हूँ, हे युवक; मैं तुम्हारे द्वारा जीता गया था; राजा ने मुझे तुम्हें सौंप दिया था; मुझे तीन दिनों के लिए अपने घर में ठहरने दो, जबकि मैं अपने बेटों को सलाह देता हूँ।"

जब पुन्नक ने यह सुना, तो उसने मन ही मन सोचा, "ऋषि ने सत्य कहा है; इससे मुझे बहुत लाभ होगा; यदि उन्होंने मुझे सात दिन या यहाँ तक कि पखवाड़े भर के लिए वहाँ ठहरने की अनुमति माँगी होती, तो मैं तुरंत सहमत हो जाता"; इस प्रकार उसने उत्तर दिया:

"यह लाभ मुझे भी मिले, चलो हम वहां तीन दिन रहें; महोदय, अपने घर में जो भी आवश्यक हो, वह करें; आज ही अपने बेटों और पत्नी को निर्देश दें, ताकि आपके जाने के बाद वे सुखी रहें।"

इतना कहकर पुन्नका उस महान प्राणी के साथ उसके घर चला गया।

शिक्षक ने घटना का वर्णन इस प्रकार किया:

"खुशी से सहमत होते हुए और उत्सुकता से विधुरा के साथ यक्ष (राक्षस) चला गया; और श्रेष्ठ संतों ने हाथियों और उत्तम नस्ल के घोड़ों के साथ उसका अपने घर में स्वागत किया।"

अब उस महान सत्ता के तीन ऋतुओं के लिए तीन महल थे, उनमें से एक का नाम कोंचा, दूसरे का नाम मयूरा और तीसरे का नाम पियाकेत था; उनके बारे में यह श्लोक कहा गया था:

"वह कोंचा, मयूरा और पियाकेत गए, जो देखने में अत्यंत रमणीय थे और वहां भोजन की प्रचुरता थी, ठीक वैसे ही जैसे इंद्र का अपना महल मसाक्कासर था।"

उनके आगमन के बाद, उन्होंने भव्य महल की सातवीं मंजिल पर एक विश्राम कक्ष और एक ऊँचा चबूतरा बनवाया। उन्होंने राजसी पलंग बिछाया और खाने-पीने की सभी प्रकार की उत्तम साज-सज्जा करवाई। फिर उन्होंने पुन्नाका को देवताओं की पुत्रियों के समान पाँच सौ स्त्री भेंट की और कहा, "इन्हें अपनी सेविकाएँ बनाइए, यहाँ निश्चिंत रहिए।" इसके बाद वे अपने निवास स्थान पर चले गए। उनके जाने के बाद, इन स्त्रियों ने अपने-अपने वाद्ययंत्र लिए और पुन्नाका की सेवा में विभिन्न प्रकार के नृत्य प्रस्तुत किए।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"देवताओं (देवदूतों) के बीच अप्सराओं की तरह सजी ये स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं और उनसे बात करती हैं, बारी-बारी से हर एक स्त्री उनसे बेहतर होती जाती है।"

कानून के रक्षक ने उसे भोजन, पेय और सुंदर स्त्रियाँ प्रदान करने के बाद, केवल उसके सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए, उसे उसकी पत्नी के समक्ष प्रस्तुत किया।

फिर उसने अपनी पत्नी से कहा, जो चंदन और सुगंधित इत्र से सजी हुई थी और शुद्ध सोने के आभूषण की तरह खड़ी थी, "आओ, सुनो, महिला; अपने बेटों को यहाँ बुलाओ, हे तांबे के रंग की आँखों वाली सुंदर स्त्री।"

अनुज्जा ने अपने पति की बातें सुनकर अपनी बहू से, जो गोरी आंखों वाली और तांबे जैसे नाखूनों वाली थी, कहा, "हे सेता, जो अपने कंगन कवच की तरह पहनती हो और नीली कमल के समान हो, जाओ, मेरे बेटों को यहाँ बुलाओ।"

अपनी सहमति जताकर और महल के एक कोने से दूसरे कोने तक जाकर उसने सभी मित्रों और पुत्र-पुत्रियों को इकट्ठा किया और कहा, "तुम्हारे पिता तुम्हें एक सलाह देना चाहते हैं, यह उनका तुम्हारा अंतिम दर्शन होगा।" जब युवा राजकुमार धम्मपाल-कुमार ने यह सुना तो वह रोने लगा और अपने छोटे भाइयों से घिरा हुआ अपने पिता के सामने गया। जब पिता ने उन्हें देखा, तो वे अपनी शांति बनाए रखने में असमर्थ हो गए और आँसुओं से भरी आँखों से उन्हें गले लगाया, उनके सिर चूमे और अपने बड़े पुत्र को एक क्षण के लिए अपने हृदय से लगा लिया। फिर, उसे अपनी गोद से उठाकर राजकक्ष से बाहर जाकर, वे ऊँचे चबूतरे पर बने पलंग के बीच में बैठ गए और अपने हजार पुत्रों को संबोधित किया।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

जब उनके पुत्र पास आए, तो विधि के रक्षक ने बिना कांपे उनके माथे चूमे और उनसे ये शब्द कहे, "राजा ने मुझे इस युवक को सौंप दिया है। मैं उसके अधीन हूँ, परन्तु आज मैं अपनी इच्छा का पालन करने के लिए स्वतंत्र था। अब वह मुझे ले जाएगा और जहाँ चाहेगा जाएगा, और मैं तुम्हें सलाह देने आया हूँ, क्योंकि यदि मैंने तुम्हें मोक्ष (निर्वाण) न दिया होता तो मैं कैसे जाता? यदि कुरुक्षेत्र में रहने वाला राजा जनसंध तुमसे अत्यंत गंभीरता से पूछे, "प्राचीन काल में भी तुम किसे प्राचीन मानते हो? क्या तुम्हारे पिता ने सर्वप्रथम शिक्षा दी

थी?" और यदि वह फिर कहे, "तुम सब मेरे समतुल्य हो, तुममें से कौन राजा से बढ़कर नहीं है?" तो क्या तुम आदरपूर्वक प्रणाम करके उसे उत्तर दोगे, "ऐसा मत कहो, हे महाराज, यह विधि नहीं है; नीच कुल का सियार राजसी बाघ के समतुल्य कैसे हो सकता है?"

उनके इस प्रवचन को सुनकर पुत्र-पुत्रियाँ, सभी रिश्तेदार, मित्र, सेवक और आम लोग अपनी शांति बनाए रखने में असमर्थ हो गए और जोर से चिल्ला उठे; और उस महान सत्ता ने उन्हें सांत्वना दी।

वी

फिर उन सभी रिश्तेदारों के पास आकर और उन्हें चुप देखकर उन्होंने कहा, "बच्चों, शोक मत करो, सभी भौतिक वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, सम्मान का अंत दुर्भाग्य में होता है; फिर भी मैं तुम्हें सम्मान प्राप्त करने का एक उपाय बताता हूँ, अर्थात् राजा का दरबार; इसे ध्यानपूर्वक सुनो।" फिर बुद्ध की जादुई शक्ति से उन्होंने उन्हें राज दरबार में प्रवेश कराया।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

तब विदुर ने अपने मित्रों, शत्रुओं, परिवार और घनिष्ठ मित्रों को सभी चीजों से विरक्त मन और इच्छा से संबोधित करते हुए कहा, "आओ, प्रियजनों, बैठो और मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें राजसी जीवन के बारे में बताता हूँ, कि कैसे राजा के दरबार में प्रवेश करने वाला व्यक्ति सम्मान प्राप्त कर सकता है। राजा के दरबार में प्रवेश करने पर वह अज्ञात रहते हुए सम्मान प्राप्त नहीं करता, न ही कोई कायर, मूर्ख या लापरवाह व्यक्ति सम्मान प्राप्त करता है। जब राजा उसके नैतिक गुणों, उसकी बुद्धिमत्ता और उसके हृदय की पवित्रता को जान लेता है, तब वह उस पर भरोसा करना सीखता है और उससे अपने रहस्य नहीं छुपाता।"

जब उसे कोई काम करने के लिए कहा जाए, तो एक सुव्यवस्थित तराजू की तरह, जो समतल और संतुलित हो, उसे संकोच नहीं करना चाहिए; यदि वह तराजू की तरह हर बोझ उठाने के लिए तैयार है, तो वह राजा के दरबार में निवास कर सकता है।

दिन हो या रात, बुद्धिमान व्यक्ति को राजा के कार्य में कभी संकोच नहीं करना चाहिए; ऐसा व्यक्ति ही राजा के दरबार में निवास कर सकता है। जो बुद्धिमान व्यक्ति राजा के कार्य में दिन हो या रात, हर कार्य को पूर्णतः संपन्न करता है, वही राजा के दरबार में निवास करने योग्य है।

जो राजा के लिए बने और सुसज्जित मार्ग को देखकर भी, सलाह दिए जाने पर भी, उस पर चलने से परहेज करता है, वही राजा के दरबार में रहने योग्य है। उसे किसी भी हालत में राजा के समान सुखों का आनंद नहीं लेना चाहिए, उसे हर बात में राजा का अनुसरण करना चाहिए; ऐसा व्यक्ति ही राजा के दरबार में रहने योग्य है। उसे राजा के समान वस्त्र, मालाएँ या इत्र नहीं लगाना चाहिए; उसे राजा के समान आभूषण नहीं पहनने चाहिए और न ही राजा की तरह बोलना चाहिए; उसे हमेशा अलग वस्त्र धारण करने चाहिए; ऐसा व्यक्ति ही राजा के दरबार में रहने योग्य है। यदि राजा अपने मंत्रियों के साथ क्रीड़ा करे या अपनी पत्नियों से घिरा हो, तो मंत्री को राजसी महिलाओं के बारे में कोई संकेत नहीं देना चाहिए। जो अहंकारी नहीं है, कमजोर नहीं है, जो बुद्धिमान है और अपनी इंद्रियों को वश में रखता है, जो अंतर्दृष्टि और दृढ़ संकल्प से युक्त है, ऐसा व्यक्ति ही राजा के दरबार में रहने योग्य है।

राजा की पत्नियों के साथ क्रीड़ा न करे और न ही उनसे एकांत में बात करे; राजा के खजाने से धन न ले; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है। नींद को अधिक महत्व न दे, अत्यधिक शराब न पिए, और न ही राजा के जंगल में हिरण का शिकार करे; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है। राजा की कुर्सी, पलंग, आसन, हाथी या रथ पर न बैठे; अपने आप को विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति समझकर, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है। बुद्धिमानी से राजा से न तो बहुत दूर रहे और न ही बहुत पास, और राजा के सामने तैयार रहे, ताकि वह अपने स्वामी को कुछ सुना सके। राजा को सामान्य व्यक्ति न समझें; राजा को किसी और के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए; राजा आसानी से क्रोधित हो जाते हैं, जैसे जौ के रेशे से आँख को चोट पहुँचती है। बुद्धिमान व्यक्ति, अपने आप को सम्मानित समझते हुए, कभी भी संशयपूर्ण राजा से कठोर भाषा में बात करने का साहस न करे। यदि उसे अवसर मिले, तो वह उसका लाभ उठाए; लेकिन राजाओं पर भरोसा न करे। उसे आग की तरह सतर्क रहना चाहिए, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है। यदि शासक अपने पुत्र या भाई को अपने राज्य में कुछ गाँव या कस्बे या कुछ लोगों को अपने आश्रित के रूप में उपहार में देता है, तो उसे चुपचाप प्रतीक्षा करनी चाहिए, न कि उसे बुद्धिमान या मूर्ख कहना चाहिए।

यदि राजा अपने हाथी-चालक, अंगरक्षक, रथ-सैनिक या पैदल सैनिक के पराक्रम की कहानियाँ सुनकर उनका वेतन बढ़ा दे, तो उसे इसमें बाधा नहीं डालनी चाहिए; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने पेट को धनुष के समान छोटा रखेगा, परन्तु वह बाँस के समान लचीला होगा; उसे राजा का विरोध नहीं करना चाहिए, इसलिए वह राजा के दरबार में रह सकता है। उसे अपने पेट को धनुष के समान छोटा रखना चाहिए और मछली के समान अपनी जीभ को नियंत्रित रखना चाहिए; उसे संयमी, साहसी और बुद्धिमान होना चाहिए; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में रह सकता है।

उसे अपनी शक्ति खोने के डर से किसी स्त्री के पास बार-बार नहीं जाना चाहिए; मूर्ख व्यक्ति खांसी, अस्थमा, शारीरिक पीड़ा और बचकानेपन का शिकार होता है। उसे बहुत ज्यादा नहीं हंसना चाहिए, न ही हमेशा चुप रहना चाहिए; उसे उचित समय आने पर संक्षिप्त और संयमित भाषण देना चाहिए। क्रोध न करने वाला, जल्दी नाराज न होने वाला, सत्यवादी, विनम्र, निंदा न करने वाला, उसे मूर्खतापूर्ण बातें नहीं बोलनी चाहिए; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है।

प्रशिक्षित, शिक्षित, आत्मसंयमी, व्यापार में अनुभवी, संयमी, सौम्य, सावधान, पवित्र और कुशल, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है। बड़ों के प्रति विनम्र व्यवहार, आज्ञाकारी, आदरपूर्ण, दयालु और सहृदय, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है। उसे किसी विदेशी राजा द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए भेजे गए जासूस से दूर रहना चाहिए; उसे केवल अपने स्वामी की ही शरण लेनी चाहिए और किसी अन्य राजा की पूजा नहीं करनी चाहिए।

जो व्यक्ति गुणी और विद्वान भिक्षुओं और ब्राह्मणों का आदर करे, उनकी सेवा करे, वह राजा के दरबार में निवास कर सकता है। जो व्यक्ति गुणी और विद्वान भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भोजन और पेय पदार्थ से तृप्त करे, वह राजा के दरबार में निवास कर सकता है। जो व्यक्ति गुणी और विद्वान भिक्षुओं और ब्राह्मणों के निकट आकर उनकी सेवा करे, और इसी से अपना वास्तविक भला चाहे।

उसे भिक्षुओं या ब्राह्मणों को पहले से दिए गए किसी भी दान से वंचित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, और न ही भिक्षुओं को भिक्षा देते समय किसी प्रकार से बाधा डालनी चाहिए। जो धर्मात्मा हो, बुद्धिमान हो, व्यापारिक व्यवस्थाओं में निपुण हो, और समय-समय पर सही-सही ज्ञान रखता हो, वह राजा के दरबार में निवास कर सकता है। जो व्यापार में ऊर्जावान हो, सावधान और कुशल हो, और अपने कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने में सक्षम हो, वह राजा के दरबार में निवास कर सकता है।

खलिहान, घर, पशुओं और खेत का बार-बार निरीक्षण करते हुए, उसे अनाज को सावधानीपूर्वक नापकर अपने भंडारों में रखना चाहिए और घर में खाना पकाने के लिए भी सावधानीपूर्वक नापकर रखना चाहिए। (उसे) ऐसे पुत्र या भाई को नियुक्त या पदोन्नत नहीं करना चाहिए जो सद्‌गुणों में दृढ़ न हो; ऐसे बच्चे अपने शरीर के सच्चे सदस्य नहीं होते, उन्हें मृत के समान माना जाना चाहिए; उसे उन्हें वस्त्र और भोजन उपलब्ध कराना चाहिए और उन्हें भोजन ग्रहण करते समय बैठाकर रखना चाहिए। उसे उच्च पदों पर ऐसे सेवकों और प्रतिनिधियों को नियुक्त करना चाहिए जो सद्‌गुणों में दृढ़ हों, व्यापार में कुशल हों और आपात स्थिति में कार्य करने में सक्षम हों।

जो गुणी, लोभ रहित और अपने राजा के प्रति समर्पित हो, कभी उससे विदा न हो और उसका हित चाहता हो, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है। जो राजा की इच्छा को जानता हो, उसके विचारों का पालन करता हो और उसका कोई भी कार्य राजा के विरुद्ध न हो, ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है। वह राजा को इत्र लगाएगा और स्नान कराएगा, उसके पैर धोते समय अपना सिर झुकाएगा; पराजित होने पर क्रोधित नहीं होगा; ऐसा व्यक्ति राजा के दरबार में निवास कर सकता है।

वह जल से भरे घड़े को प्रणाम करेगा, या कौवे को आदरपूर्वक नमस्कार करेगा; हाँ, वह सभी याचिकाकर्ताओं को दान देगा और सदा बुद्धिमान और श्रेष्ठ रहेगा; वह अपना पलंग, अपना वस्त्र, अपना रथ, अपना घर, अपना निवास स्थान सब कुछ दान कर देगा और सभी प्राणियों पर बादलों की तरह आशीर्वाद बरसाएगा। हे महोदय, यही राजा के दरबार में रहने का तरीका है; इसी प्रकार मनुष्य को व्यवहार करना चाहिए और राजा की कृपा प्राप्त करनी चाहिए तथा उसके शासकों से सम्मान अर्जित करना चाहिए।

VI.

तीन दिन बीत गए और वह इसी तरह अपने बेटों, पत्नियों, मित्रों और अन्य लोगों से बातें करता रहा। फिर, समय पूरा हो जाने पर, सुबह तड़के, स्वादिष्ट भोजन करने के बाद, उसने कहा, "मैं राजा से विदा लेकर उस युवक के साथ चलता हूँ"; इस प्रकार वह अपने रिश्तेदारों के समूह से घिरा हुआ राजा के महल में गया और राजा को प्रणाम करके एक तरफ खड़ा हो गया, और उसने अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण और व्यावहारिक सलाह दी।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

अपने परिवार के सदस्यों को इस प्रकार सलाह देने के बाद, ज्ञानी व्यक्ति अपने मित्रों से घिरे हुए राजा के पास गए। राजा के चरणों को सिर झुकाकर प्रणाम करने और सम्मानपूर्वक आदर करने के बाद, विदुर ने हाथ जोड़कर राजा से कहा, “यह युवक मुझे अपनी इच्छा के अनुसार काम में लेना चाहता है, इसलिए मुझे अपने साथ ले जा रहा है; मैं अपने परिवार के हित में बोल रहा हूँ, हे शत्रु-विजेता, मेरी बात सुनो। क्या आप मेरे पुत्रों और मेरे घर में जो भी संपत्ति है, उसकी देखभाल करेंगे, ताकि मेरे जाने के बाद मेरे सगे-संबंधी नष्ट न हो जाएँ? जैसे पृथ्वी काँपती है तो उस पर जो कुछ भी है वह काँपता है, और जैसे पृथ्वी स्थिर रहती है तो सब कुछ स्थिर रहता है, वैसे ही मैं देखता हूँ कि मेरे पतन के साथ मेरा परिवार भी नष्ट हो जाएगा; यही मेरी गलती थी।”

जब राजा ने यह सुना, तो उसने कहा, "हे ऋषि, आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता; आप मत जाइए; मैं किसी बहाने से उस युवक को बुलवाऊंगा, फिर हम उसे मार डालेंगे और मामले को दबा देंगे"; और इसके उदाहरण के रूप में उसने एक श्लोक दोहराया:

"तुम नहीं जा सकते, यही मेरा संकल्प है; इस कटिया को परास्त करके मार डालने के बाद, तुम यहीं रहो, यही मुझे सर्वोत्तम लगता है; हे अपार ज्ञान से परिपूर्ण, तुम यहाँ से मत जाओ।"

जब उस महान सत्ता ने यह सुना तो उन्होंने कहा, "ऐसा इरादा तुम्हारे योग्य नहीं है," और फिर उन्होंने आगे कहा,

"अधर्म पर अपना ध्यान मत लगाओ, सांसारिक और आध्यात्मिक भलाई के प्रति समर्पित रहो; ऐसे नीच और पापी कर्म पर धिक्कार है, जिसे करने के बाद मनुष्य नरक में जाता है।"

यह न्याय नहीं है, यह उचित कार्य नहीं है; हे मनुष्यों के स्वामी, एक राजा एक गरीब दास के समान सर्वोच्च सत्ता रखता है, जो उसे मारने या जलाने के लिए उकसाता है या स्वयं अपने कर्मों से उसे मार डालता है; मुझे उस पर कोई क्रोध नहीं है और मैं वहां से चला जाता हूँ।

ऐसा कहकर उस महान व्यक्ति ने आदरपूर्वक राजा को प्रणाम किया और राजा की पत्नियों और उनके अधिकारियों का हौसला बढ़ाया; फिर वे महल से बाहर चले गए, जबकि वे अपना धैर्य बनाए रखने में असमर्थ होकर फूट-फूट कर रोने लगे; और नगर के सभी निवासी चिल्लाए, "ऋषि उस युवक के साथ जा रहे हैं, आइए, हम उन्हें जाते हुए देखेंगे," और उन्होंने राजा के दरबार में उन्हें देखा। फिर उन्होंने भी आपस में कहा, "दुःख मत करो, सभी भौतिक चीजें क्षणभंगुर हैं, दान और अन्य अच्छे कार्यों में तत्पर रहो," और फिर वे लौटकर अपने-अपने घर चले गए।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

अपने सबसे बड़े बेटे को गले लगाने और अपने दिल में उमड़ रहे दर्द को काबू में करने के बाद, आँसुओं से भरी आँखों से वह महल में दाखिल हुआ।

अब महल में एक हजार बेटे, एक हजार बेटियां, एक हजार पत्नियां और सात सौ शाही नर्तकियां और वेश्याएं थीं, और इन सबके साथ-साथ अन्य नौकर, परिचारक, रिश्तेदार और दोस्त भी इधर-उधर गिरे पड़े थे, जिससे महल एक साल के जंगल की तरह लग रहा था जिसके पेड़ उस भयंकर हवा के प्रकोप से बिखरे पड़े थे जो दुनिया के अंत की सूचना देती है।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"विधुरा के पुत्र और पत्नियां महल में ऐसे गिरे पड़े हैं जैसे हवा से हिलकर चकनाचूर हो गए साल के पेड़।"

विदुर के महल में एक हजार पत्नियां और सात सौ दासियां बाहें फैलाकर विलाप कर रही थीं। हरम की महिलाएं, राजकुमारियां, वैश्य और ब्राह्मण विदुर के महल में बाहें फैलाकर विलाप कर रहे थे। हाथी-चालक, अंगरक्षक सैनिक, रथ-सवार और पैदल सैनिक विदुर के महल में बाहें फैलाकर विलाप कर रहे थे। देश और नगरों के लोग एकत्रित होकर विदुर के महल में बाहें फैलाकर विलाप कर रहे थे।

उस महान प्राणी ने विशाल सभा को सांत्वना देने और शेष सभी कार्य संपन्न करने के बाद, हरम की महिलाओं को प्रोत्साहित करने और आवश्यक सभी बातों को समझाने के बाद, पुन्नका के पास जाकर उसे सूचित किया कि उसने वह सब कुछ कर दिया है जो किया जाना था।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

घर के सभी कार्य संपन्न करने और अपने मित्रों, सलाहकारों, साथियों, पत्नियों, पुत्रों और रिश्तेदारों सहित सभी लोगों को निर्देश देने के बाद, घर के बाहर के उन कार्यों की व्यवस्था करने के बाद जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता थी, और उन्हें घर में मौजूद भंडार, खजाने और चुकाए जाने वाले ऋणों के बारे में सूचित करने के बाद, उन्होंने पुन्नका से कहा, "तुम मेरे घर में तीन दिन रह चुके हो, मैंने अपने घर में सभी आवश्यक कार्य कर दिए हैं, मैंने अपने पुत्रों और पत्नियों को निर्देश दे दिए हैं, अब हम तुम्हारी इच्छा के अनुसार कार्य करें, हे कच्चाना।"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"हे अपनी इच्छा के साक्षी, यदि आपने अपने पुत्रों, अपनी पत्नियों और अपने आश्रितों को निर्देश दे दिए हैं, तो अफसोस! आप यहाँ ऐसे खड़े हैं जैसे पार जाने वाले हों: आपके सामने एक लंबी यात्रा है। निडर होकर अपने महान घोड़े की पूंछ पकड़ लें, जीवितों के संसार का यह आपका अंतिम दर्शन है।"

तब उस महान सत्ता ने उससे कहा:

"मैं किससे डरूं, जब मैंने शरीर, वाणी या विचार से उसे कोई हानि नहीं पहुंचाई है, जिससे मुझे कोई दुर्भाग्य प्राप्त हो सके?"

तब उस महान प्राणी ने निडर शेर की तरह ऊँची आवाज़ में कहा, "यह मेरा वस्त्र है - मेरी अनुमति के बिना इसे मत उतारो"; और फिर, अपने पूर्ण संकल्प से प्रेरित होकर, और अपने वस्त्रों को कसकर धारण करके, उसने घोड़े की पूंछ को सुलझाया और दोनों हाथों से उसे मजबूती से पकड़कर, अपने दोनों पैरों से घोड़े की जांघों को दबाया और उससे कहा,

"मैंने पूंछ पकड़ ली है, हे युवक, तुम आगे बढ़ो जैसा चाहो।" उसी क्षण पुन्नका ने बुद्धिवान घोड़े को संकेत दिया और वह ऋषि को लेकर आकाश में उड़ गया।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"विदुर को ले जा रहा अश्वराज आकाश में चला गया और पेड़ों की शाखाओं या चट्टानों के संपर्क में आए बिना शीघ्र ही काले पर्वत पर पहुँच गया।"

जब पुन्नका उस महान आत्मा को अपने साथ लेकर चले गए, तो ऋषि के पुत्र और अन्य दर्शक पुन्नका के निवास स्थान पर गए; लेकिन जब उन्हें वह महान आत्मा नहीं मिली, तो वे जोर-जोर से रोने लगे और ऐसे गिर पड़े मानो उनके पैर काट दिए गए हों।

जब उन्होंने उस महान प्राणी को देखा और सुना, जो बिना किसी कारण के आकाश में चला गया, और जब उन्होंने विलाप किया, तो वे सभी अपने नागरिकों के साथ विलाप करते हुए राजा के द्वार पर गए। राजा ने रोने की तेज़ आवाज़ सुनकर अपनी खिड़की खोली और उनसे पूछा कि वे क्यों शोक मना रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, वह कोई ब्राह्मण युवक नहीं था, बल्कि एक यक्ष (राक्षस) था जो ब्राह्मण के वेश में आया था और ऋषि को ले गया था; उसके बिना हमारा जीवन नहीं है; यदि वह सातवें दिन तक नहीं लौटा, तो हम सैकड़ों, हाँ, हजारों गाड़ियों में लकड़ी इकट्ठा करेंगे और सब आग में प्रवेश कर जाएँगे।"

जब राजा ने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "ऋषि अपनी मधुर वाणी से शीघ्र ही युवक को अपने धार्मिक प्रवचनों से बहला लेंगे और उसे अपने चरणों में गिरा देंगे, और शीघ्र ही लौटकर तुम्हारे आँसुओं से भीगे चेहरों पर मुस्कान लाएँगे, शोक मत करो"; और उन्होंने एक श्लोक दोहराया:

"वह द्रष्टा बुद्धिमान, विद्वान और कुशल है; वह शीघ्र ही स्वयं को मुक्त कर लेगा; भयभीत न हों, वह वापस आएगा।"

इसी बीच, पुन्नाका ने उस महान प्राणी को काले पर्वत की चोटी पर स्थापित करने के बाद मन ही मन सोचा, "जब तक यह व्यक्ति जीवित रहेगा, मेरे लिए समृद्धि की कोई संभावना नहीं है; मैं इसे मार डालूंगा, और इसके हृदय का मांस लेकर नागलोक जाऊंगा और उसे विमला को दे दूंगा, और इस प्रकार उसकी पुत्री इरंदती को प्राप्त करके मैं देवदूतों के लोक में आसीन हो जाऊंगा।"

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

जब वह वहां पहुंचा तो उसने मन ही मन सोचा, "बुद्धिमान प्राणी विभिन्न स्तरों में मौजूद होते हैं; मुझे उसके जीवन का कोई उपयोग नहीं है, मैं उसे मार डालूंगा और उसका दिल निकाल लूंगा।"

फिर उसने सोचा, "क्या होगा अगर मैं उसे अपने हाथों मारे बिना, उसे किसी भयानक रूप में दिखाकर उसका नाश कर दूं?" अतः एक भयानक राक्षस का रूप धारण करके वह उसके पास गया और उसे नीचे गिरा दिया, और उसे अपने मुँह में पकड़कर ऐसा दिखाया मानो उसे निगलने ही वाला हो; परन्तु उस विशालकाय प्राणी का एक बाल भी नहीं उठा। फिर वह एक शेर और एक क्रोधित हाथी के रूप में आया, और उसने अपने दाँतों और सूंडों से उस पर हमला करने की धमकी दी; और जब दूसरे ने फिर भी कोई भय नहीं दिखाया, तो उसने एक विशाल सर्प का रूप धारण किया जो एक बड़ी नाद के समान था, और फुफकारते हुए और अपने शरीर को उसके चारों ओर लपेटते हुए उसके सिर को अपने फन से ढक लिया, परन्तु दूसरे ने भय का कोई संकेत नहीं दिखाया। फिर उसने कहा, "जैसे वह पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर नीचे गिरता है, मैं उसे गिरने से टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा," - अतः उसने एक प्रचंड हवा चलाई; परन्तु उसके एक बाल का सिरा भी नहीं हिला। फिर उसने उसे पर्वत की चोटी पर बिठा दिया और स्वयं हाथी का रूप धारण करके पर्वत को जंगली खजूर

के पेड़ की तरह हिलाने लगा, परन्तु तब भी उसके सिर का एक बाल भी अपनी जगह से नहीं हिला। फिर उसने कहा, "मैं किसी भयानक ध्वनि से उसके हृदय को भय से फाड़ दूँगा"; अतः वह पर्वत के भीतर प्रवेश कर गया और एक प्रचंड गर्जना करते हुए आकाश और पृथ्वी को एक ही ध्वनि से भर दिया; परन्तु फिर भी उस महान सत्ता ने कोई भय नहीं जताया; क्योंकि वह जानता था कि जो यक्ष, शेर, हाथी और नाग का रूप धारण करके आया था, जिसने हवा और वर्षा से पर्वत को हिला दिया था, और जो पर्वत में प्रवेश करके इतनी गर्जना कर चुका था, वह केवल एक मनुष्य ही था, और कुछ नहीं। तब यक्ष ने मन ही मन सोचा, "मैं उसे बाहरी आक्रमणों से नहीं मार पाऊँगा, मैं उसे केवल अपने हाथों से ही नष्ट करूँगा।" अतः उसने उस महान प्राणी को पर्वत की चोटी पर स्थापित किया और स्वयं पर्वत की तलहटी में जाकर पर्वत के केंद्र से इस प्रकार ऊपर उठा जैसे किसी छिद्रित रत्न में सफेद धागा पिरो रहा हो, और गर्जना करते हुए उसने उस महान प्राणी को हिंसक रूप से पकड़ लिया और उसे चारों ओर घुमाया, और उसका सिर नीचे की ओर आकाश में फेंक दिया जहाँ उसे पकड़ने के लिए कुछ भी नहीं था। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है:

वहाँ जाकर और पर्वत के भीतर प्रवेश करके दुष्ट मन वाले कटियाना ने उसे सिर नीचे करके संसार के खुले विस्तार में लटका दिया। जब वह वहाँ नरक के भयानक कगार पर लटका हुआ था, जिसे देखना और पार करना अत्यंत कठिन था, तब कर्म में श्रेष्ठ पुन्नक ने निडर होकर उससे कहा: "तुम स्वभाव से बुरे हो, यद्यपि तुम क्षण भर के लिए एक उदात्त रूप में दिखाई देते हो, तुम संयमित होने का वेश धारण किए हुए भी पूर्णतः कामुक हो, तुम एक क्रूर और राक्षसी कर्म कर रहे हो, तुम्हारे स्वभाव में कुछ भी अच्छा नहीं है। मुझे मारने का तुम्हारा क्या कारण है, जब तुम मुझे इस कगार से नीचे फेंकते हुए देखना चाहते हो? तुम्हारा रूप तुम्हें किसी अलौकिक शक्ति के रूप में दर्शाता है, मुझे बताओ कि तुम किस प्रकार के देवदूत हो।"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"आपने संयोगवश यक्ष (राक्षस) पुन्नका के बारे में सुना होगा, वह राजा कुबेर का मंत्री है। वरुण नाम का एक पृथ्वी-शासक नाग है, जो शक्तिशाली, पवित्र और सौंदर्य एवं बल से परिपूर्ण है; मैं उसकी छोटी बहन, इरंदती नामक नाग कन्या को पाने की इच्छा रखता हूँ; उस सुंदर स्त्री के प्रेम में मैंने आपको मारने का निश्चय कर लिया है, हे ऋषि।"

उस महान प्राणी ने सोचा, "यह संसार एक गलतफहमी के कारण बर्बाद हो रहा है, नाग कन्या का प्रेमी मेरी मृत्यु क्यों चाहेगा? मैं इस मामले की पूरी सच्चाई जानूंगा," इसलिए उन्होंने एक श्लोक कहा:

"हे यक्ष (राक्षस), धोखे में मत पड़ो; बहुत से लोग गलतफहमी के कारण नष्ट हो जाते हैं; उस सुंदर कन्या के प्रति तुम्हारे प्रेम का मेरी मृत्यु से क्या संबंध है? आओ, हमें पूरी बात सुनाओ।"

तब पुन्नका ने उससे कहा, "उस शक्तिशाली नाग की पुत्री के प्रति अपने प्रेम में मैंने उसके परिवार से परामर्श किया, और जब मैंने उसका हाथ मांगा तो मेरे ससुर ने मुझसे कहा कि वे जानते हैं कि मैं एक नेक भावना से प्रेरित हूँ। "हम तुम्हें सुंदर शरीर और आँखों वाली, सुंदर मुस्कान वाली और चंदन से सुगंधित अंगों वाली वह कन्या देंगे, यदि तुम मुझे निष्पक्ष युद्ध में जीता हुआ ऋषि का हृदय ला कर दो; कन्या को इसी पुरस्कार से जीता जा सकता है, इसके अलावा हम कोई और भेंट नहीं मांगते। इसलिए मैं भ्रमित नहीं हूँ, सुनो, हे कर्म करने वाले; मुझे कुछ भी गलत नहीं लगा है; नाग मुझे निष्पक्ष युद्ध में जीते हुए तुम्हारे हृदय के बदले नाग कन्या इरंदती देंगे। इसी कारण मैं तुम्हें मारना चाहता हूँ, इसी तरह मुझे तुम्हारी मृत्यु की आवश्यकता है। यदि मैं तुम्हें यहाँ से नरक में फेंक दूँ तो मैं तुम्हें मार डालूँगा और तुम्हारा हृदय ले लूँगा।"

जब उस महान पुरुष ने यह सुना तो उन्होंने सोचा, "विमला को मेरे हृदय की कोई आवश्यकता नहीं है। वरुण ने धर्म पर प्रवचन सुनने और मुझे अपना रत्न भेंट करने के बाद घर जाकर धर्ममार्ग के विषय में मेरी शिक्षा की शक्ति का वर्णन किया होगा, और विमला को मेरे वचन सुनने की तीव्र इच्छा हुई होगी। पुन्नक को वरुण ने किसी गलतफहमी के कारण आदेश दिया होगा, और इसी गलतफहमी से प्रभावित होकर उसने यह सारी विपत्ति उत्पन्न की है। अब एक ऋषि के रूप में मेरा गुण परम सत्यों को प्रकाश में लाने और उनका पता लगाने की मेरी क्षमता में निहित है। यदि पुन्नक मुझे मार डाले तो इससे क्या लाभ होगा? आओ, मैं उससे कहूँगा, 'युवक, मैं अच्छे पुरुषों द्वारा अनुसरण किए जाने वाले धर्ममार्ग को जानता हूँ; मेरे मरने से पहले, मुझे पर्वत की चोटी पर बिठा दो और मुझसे अच्छे पुरुषों के धर्ममार्ग के बारे में सुनो; और उसके बाद जो चाहो करो'; और अच्छे पुरुषों के धर्ममार्ग के बारे में बताने के बाद मैं उसे अपना प्राण लेने दूँगा।" इस प्रकार उन्होंने सिर झुकाए हुए यह श्लोक कहा:

"हे कटियाना, अगर तुम्हें मेरे दिल की जरूरत है तो मुझे थाम लो; मैं आज तुम्हें भले आदमी के सारे नियम बता दूँगा।"

तब पुन्नका ने सोचा, "यह धार्मिक मार्ग न तो देवताओं (देवदूतों) को बताया गया होगा और न ही मनुष्यों को; मैं उन्हें ऊपर उठाऊंगा और भले लोगों का धार्मिक मार्ग सुनूंगा"; इसलिए उन्होंने उस महान प्राणी को उठाया और पर्वत की चोटी पर स्थापित कर दिया।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

पुन्नका ने कुरुओं में से सर्वश्रेष्ठ अच्छे कर्म करने वाले को शीघ्रता से पर्वत की चोटी पर बिठाकर, उच्च ज्ञान के गुरु से, जो एक पीपल के पेड़ को देखते हुए बैठे थे, पूछा, "मैं तुम्हें खाई से ऊपर लाया हूँ, मुझे आज तुम्हारे हृदय की आवश्यकता है, इसलिए आज मुझे अच्छे मनुष्य के सभी नियम बताओ।"

उस महान सत्ता ने कहा:

"तुमने मुझे खाई में गिरने से बचाया है; यदि तुम्हें मेरे दिल की जरूरत है, तो मैं आज तुम्हें अच्छे आदमी के सभी नियम बता दूंगा।"

तब उस महान प्राणी ने कहा, "मेरा शरीर मैला है, मैं स्नान करूंगा।" यक्ष (राक्षस) मान गया, इसलिए वह कुछ पानी लाया, और जब वह स्नान कर रहा था, तो उसने उस महान प्राणी को कुछ दिव्य वस्त्र और इत्र दिए, (पहले की तरह) और जब वह सज-धज कर तैयार हो गया, तो उसने उसे कुछ दिव्य भोजन दिया। जब उसने भोजन कर लिया, तो उस महान प्राणी ने काले पर्वत की चोटी को अलंकरणों से ढक दिया, और एक भव्य रूप से सजा हुआ आसन तैयार किया, और उस पर बैठकर एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें बुद्ध की विजयपूर्ण महारत के साथ अच्छे व्यक्ति के कर्तव्य का वर्णन किया गया था।

"हे युवक, उस मार्ग का अनुसरण करो जिस पर पहले से ही लोग चल चुके हैं; अपने गंदे हाथों को दूर रखो, अपने मित्रों के प्रति कभी विश्वासघात मत करो, और अपवित्र स्त्रियों के प्रभाव में मत पड़ो।"

यक्ष (राक्षस) इन चार नियमों को इतनी संक्षिप्तता से समझने में असमर्थ होकर विस्तार से पूछने लगा:

"जो रास्ता पहले ही तय हो चुका हो, उस पर कोई कैसे चल सकता है? गीले हाथ को कोई कैसे जला सकता है? व्यभिचारी स्त्री कौन है? अपने मित्र के साथ विश्वासघात कौन करता है? कृपया मुझे इसका अर्थ समझाएँ।"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"जो व्यक्ति अजनबी बनकर आए और पहले कभी न देखा हो, उसे बैठने के लिए भी आमंत्रित करता है, उसे अपने कार्यों का अनुसरण करना चाहिए; बुद्धिमान लोग उसे उस मार्ग का अनुसरण करने वाला कहते हैं जिस पर पहले से ही लोग चल चुके हैं।"

जिस किसी के घर में कोई व्यक्ति एक रात भी ठहरता है और वहाँ भोजन-पानी ग्रहण करता है, उसे उसके विरुद्ध अपने मन में कोई बुरा विचार नहीं रखना चाहिए; जो अपने मित्र के साथ विश्वासघात करता है, वह निर्दोष हाथ जलाता है। जो व्यक्ति उस वृक्ष की शाखा नहीं तोड़ता जिसकी छाया में वह बैठता या लेटता है, वह दुष्ट अपने मित्र के साथ विश्वासघात करता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी चुनी हुई स्त्री को धन-संपत्ति से भरी यह धरती दे दे, तब भी अवसर मिलने पर वह उसका तिरस्कार करेगी; उसे व्यभिचारी स्त्रियों के वश में नहीं आना चाहिए। इस प्रकार जो व्यक्ति पहले से ही पार किए गए मार्ग पर चलता है, वह गीले हाथ जलाता है; यही व्यभिचारी स्त्री है; यही वह है जो अपने मित्र के साथ विश्वासघात करती है; ऐसा व्यक्ति धर्मी है, अधर्म को त्याग दो।

इस प्रकार उस महान सत्ता ने बुद्ध के विजयपूर्ण प्रभुत्व के साथ यक्ष (राक्षस) को एक अच्छे मनुष्य के चार कर्तव्य बताए, और जब पुन्नक ने उन्हें सुना तो उसने सोचा, "इन चार कथनों में ऋषि केवल अपने जीवन की ही माँग कर रहे हैं; क्योंकि उन्होंने वास्तव में मेरा स्वागत किया, यद्यपि मैं पहले अज्ञात था; मैं उनके घर में तीन दिन रहा और उनसे बहुत सम्मान प्राप्त किया; मैं उनके साथ यह अन्याय एक स्त्री के कारण कर रहा हूँ; मैं अपने मित्रों के प्रति हर तरह से विश्वासघाती हूँ; यदि मैं ऋषि को हानि पहुँचाऊँगा, तो मैं एक अच्छे मनुष्य के कर्तव्य का पालन नहीं करूँगा; मुझे नाग कन्या की क्या आवश्यकता है? मैं उन्हें इंद्रप्रस्थ ले जाऊँगा और वहाँ के निवासियों के रोते हुए चेहरों को प्रसन्न करूँगा और उन्हें वहाँ के सभा भवन में बैठाऊँगा।" फिर उन्होंने ज़ोर से कहा:

"मैं तीन दिन आपके घर में रहा, मुझे भोजन और पेय पदार्थ परोसे गए, आप मेरे मित्र थे, मैं आपको जाने देता हूँ, हे परम बुद्धिमान ऋषि, आप अपनी इच्छा से अपने घर जा सकते हैं। हाँ, नाग जाति से संबंधित सब कुछ नष्ट हो जाए, मुझे नाग कन्या से बहुत हो गया है; आपके अपने ही सुविचारित शब्दों से, हे ऋषि, आप आज मेरे द्वारा दी जाने वाली धमकी से मुक्त हो गए हैं।"

उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "हे युवक, मुझे मेरे घर मत भेजो, बल्कि मुझे नागलोक ले चलो," और उन्होंने यह श्लोक कहा:

"आओ, यक्ष (राक्षस), मुझे अपने ससुर के पास ले चलो, और मेरे साथ सर्वोत्तम व्यवहार करो; मैं उन्हें एक ऐसा शाही नाग महल दिखाऊंगा जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा होगा।"

पुन्नका ने कहा:

"बुद्धिमान व्यक्ति को उस चीज़ की ओर नहीं देखना चाहिए जो मनुष्य के कल्याण के लिए न हो; तो फिर, हे परम बुद्धि के द्रष्टा, आप अपने शत्रुओं के बीच क्यों जाना चाहते हैं?"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"सचमुच मैं सब कुछ जानता हूँ; बुद्धिमान व्यक्ति को इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए; लेकिन मैंने कभी कोई बुराई नहीं की है, इसलिए मुझे मृत्यु के आने का भय नहीं है।"

"और तो और, धर्म के मार्ग पर मेरे प्रवचन से आप जैसे क्रूर प्राणी का भी मन बदल गया और आप नरम पड़ गए, और अब आप कहते हैं, 'नाग कन्या से मेरा मन भर गया है, आप अपने घर चले जाइए'; अब नाग राजा का मन बदलना मेरा कर्तव्य है, तो मुझे वहाँ ले चलिए।" यह सुनकर पुन्नका ने सहमति जताते हुए कहा:

"आओ, मेरे साथ उस अद्वितीय वैभवशाली संसार को देखो जहाँ नाग राजा, नलिनी में राजा वेसवना की तरह नृत्य और गीत के बीच निवास करते हैं। नाग कन्याओं की टोलियों से परिपूर्ण, दिन-रात उनके क्रीड़ाओं में मग्न, मालाओं से लदी और फूलों से सुशोभित, यह आकाश में बिजली की तरह चमकता है। भोजन और पेय से, नृत्य और गीत से और संगीत वाद्ययंत्रों से परिपूर्ण; भव्य वस्त्रों से सजी कन्याओं से परिपूर्ण, यह वस्त्रों और आभूषणों से जगमगाता है।"

तब पुन्नक ने कुरुओं में श्रेष्ठ कर्म करने वाले ऋषि को अपने पीछे आसन पर बैठाया और उस विशिष्ट ऋषि को नाग राजा के महल में ले गए। जब वे उस अद्वितीय वैभवशाली स्थान पर पहुँचे, तो ऋषि पुन्नक के पीछे खड़े हो गए; और नाग राजा ने उनके बीच सामंजस्य देखकर अपने दामाद को उसी प्रकार संबोधित किया जैसे उन्होंने पहले किया था।

"तुम पहले मनुष्य जगत में ऋषि के हृदय की खोज में गए थे; क्या तुम अद्वितीय ज्ञान वाले ऋषि को लेकर सफलतापूर्वक यहाँ लौट आए हो?"

पुन्नका ने उत्तर दिया:

"जिसकी तुम कामना करते हो, वह आ गया है; वह कर्तव्यनिष्ठा से मेरा रक्षक है, जिसे मैंने धार्मिक साधनों से प्राप्त किया है; उसे देखो जब वह तुम्हारे सामने बोलता है; अच्छे लोगों से मेलजोल सुख लाता है।"

नाग राजा ने उस महान प्राणी को देखकर एक श्लोक का उच्चारण किया:

"यह नश्वर प्राणी, मुझे देखकर, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था और मृत्यु के भय से व्याकुल होकर, अपने डर के मारे मुझसे बात नहीं करता; यह एक बुद्धिमान व्यक्ति के समान नहीं है।"

इस प्रकार, जब नाग राजा इस विचार को मन में संजो रहा था, तब उस महान प्राणी ने उससे यह बात कही, यद्यपि उसने प्रत्यक्ष रूप से यह नहीं कहा था कि वह उसका सम्मान नहीं करेगा, क्योंकि उस महान प्राणी को अपने असीम ज्ञान से सभी प्राणियों के साथ सर्वोत्तम व्यवहार करने का तरीका पता था।

"हे नाग, मैं भयभीत नहीं हूँ, न ही मुझे मृत्यु का भय सताता है; पीड़ित को अपने जल्लाद से बात नहीं करनी चाहिए, न ही जल्लाद को अपने पीड़ित से बात करने के लिए कहना चाहिए।"

तब नाग राजा ने उस महान सत्ता की स्तुति में एक श्लोक का उच्चारण किया:

"जैसा कि आपने कहा, हे ऋषि, आप सत्य कहते हैं; पीड़ित को अपने जल्लाद को संबोधित नहीं करना चाहिए और न ही जल्लाद को अपने पीड़ित से उसे संबोधित करने के लिए कहना चाहिए।"

तब उस महान प्राणी ने नाग राजा से विनम्रतापूर्वक कहा:

"आपकी यह शान, वैभव, शक्ति और नाग वंश नश्वर हैं; हे नागराज, मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ कि आपने यह महल कैसे प्राप्त किया? क्या यह बिना किसी कारण के प्राप्त हुआ या किसी पूर्व स्थिति के फलस्वरूप? क्या यह आपने स्वयं बनाया या देवताओं (देवदूतों) द्वारा प्रदत्त? हे नागराज, मुझे यह समझाइए कि आपने यह महल कैसे जीता।"

नाग राजा ने उत्तर दिया:

"यह बिना किसी कारण के प्राप्त नहीं हुआ, न ही यह किसी पूर्व स्थिति का विकास था; न तो यह मेरे द्वारा बनाया गया था और न ही देवताओं (देवदूतों) द्वारा दिया गया था; मेरा यह महल मेरे अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त हुआ है।"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"यह कौन सी पवित्र प्रतिज्ञा थी, कौन सी धार्मिक साधना थी? यह किस अच्छे कर्म का फल था, यह वैभव, महिमा, शक्ति, तुम्हारा नाग जन्म और यह महान महल, हे नाग?"

नाग राजा ने उत्तर दिया:

"पुरुषों के संसार में मैं और मेरी पत्नी दोनों ही आस्थावान और उदार थे; मेरा घर एक भोजगृह में बदल दिया गया था, और वहाँ पुरोहितों और ब्राह्मणों का स्वागत किया जाता था। मैंने वहाँ मालाएँ, इत्र, मलहम, दीपक, पलंग, विश्राम स्थल, वस्त्र, बिस्तर, भोजन और पेय पदार्थ निःशुल्क दान किए। यही मेरी प्रतिज्ञा और पवित्रता का अभ्यास था, और यही उस अच्छे आचरण का फल है, यही वैभव, महिमा, नाग जन्म और यह भव्य महल, हे ऋषि।"

उस महान सत्ता ने कहा:

"यदि तुमने इस प्रकार यह महल प्राप्त कर लिया है, तो तुम पवित्र कर्मों और पुनर्जन्म के फल के बारे में जानते हो; इसलिए पूरी लगन से सद्गुणों का अभ्यास करो ताकि तुम फिर से महल में जन्म ले सको।"

नाग राजा ने उत्तर दिया:

"हे पवित्र पुरुष, यहाँ कोई पुजारी या ब्राह्मण नहीं हैं जिन्हें हम भोजन और पेय दे सकें; कृपया मुझे यह बताइए, मैं फिर से महल में कैसे रह सकता हूँ?"

उस महान सत्ता ने कहा:

"यहाँ नागों का जन्म हुआ है, उनके पुत्र, पत्नियाँ और आश्रित हैं; उनके प्रति कभी भी, न तो वचन से और न ही कर्म से कोई पाप करो। हे नाग, तुम भी वचन और कर्म से निर्मल रहो, तभी तुम जीवन भर यहाँ एक महल में निवास करोगे और फिर देवदूतों के लोक में प्रस्थान करोगे।"

नाग राजा ने महान संत के धार्मिक प्रवचन सुनकर मन ही मन सोचा, "ऋषि अधिक समय तक अपने घर से दूर नहीं रह सकते; मैं उन्हें विमला से मिलवाऊंगा और उन्हें उनके अच्छे वचन सुनाऊंगा, जिससे उनकी तीव्र इच्छा शांत होगी, और मैं राजा धनंजय को प्रसन्न करूंगा, तब ऋषि को घर भेजना उचित होगा"; इसलिए उन्होंने कहा:

"निश्चित रूप से, श्रेष्ठ राजा आपकी अनुपस्थिति में शोक मना रहा है, जिसका आप घनिष्ठ सेवक हैं; एक बार आपको पाकर, भले ही अब वह व्यथित और बीमार हो, वह व्यक्ति फिर से सुख प्राप्त कर लेगा।"

उस महान सत्ता ने नाग की प्रशंसा की:

"आप सचमुच अच्छे लोगों के पवित्र शब्द कह रहे हैं, जो सही शिक्षा का एक असाधारण उदाहरण है; जीवन के ऐसे संकटों में मुझ जैसे लोगों का चरित्र प्रकट होता है।"

तब नाग राजा और भी प्रसन्न होकर एक श्लोक बोला:

"क्या तुम्हें निःसंदेह अगवा किया गया? क्या उसने तुम्हें खेल में हराया? वह कहता है कि उसने तुम्हें ईमानदारी से जीता - तुम उसके अधिकार में कैसे आए?"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

पुन्नका ने पासे के खेल में मेरे स्वामी और राजा को हरा दिया; हारने के बाद उसने मुझे दूसरे को सौंप दिया; इस प्रकार मेरी जीत न्यायसंगत तरीके से हुई, न कि अन्याय से।

ऋषि के इन महान शब्दों को सुनकर महान नाग अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने महान ज्ञान के स्वामी का हाथ पकड़कर उनकी पत्नी के समक्ष जाकर कहा, "हे विमला, जिनके कारण तुम्हारा चेहरा पीला पड़ गया और तुम्हारी आँखों में भोजन का स्वाद फीका पड़ गया, वह सूर्य, जिनके हृदय के कारण तुम पर यह विपत्ति आई है, उनकी बातें ध्यान से सुनो, तुम उन्हें फिर कभी नहीं देख पाओगी।"

विमला ने जब महान ज्ञान के स्वामी को देखा, तो उसने आदरपूर्वक अपने हाथों की दस उंगलियां जोड़ लीं और इस प्रकार पूर्ण आनंद से परिपूर्ण मन से श्रेष्ठ कुरुओं को संबोधित किया।

"यह नश्वर प्राणी, मुझे देखकर, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था और मृत्यु के भय से व्याकुल होकर, अपने डर के मारे मुझसे बात नहीं करता; यह एक बुद्धिमान व्यक्ति के समान नहीं है।"

"हे नागी, मैं भयभीत नहीं हूँ, न ही मुझे मृत्यु का भय सताता है; पीड़ित को अपने जल्लाद से बात नहीं करनी चाहिए, न ही जल्लाद को अपने पीड़ित से बात करने के लिए कहना चाहिए।"

इस प्रकार नाग कन्या ने ऋषि से वही प्रश्न पूछा जो नाग वरुण ने उनसे पहले पूछा था; और ऋषि ने अपने उत्तर से उसे उसी प्रकार संतुष्ट किया जैसे उन्होंने पहले वरुण को संतुष्ट किया था।

ऋषि ने देखा कि नाग राजा और नाग कन्या दोनों उनके उत्तरों से प्रसन्न हैं, और वे भयभीत हुए बिना वरुण से बोले, "हे नाग, भयभीत मत हो; यह शरीर तुम्हारे लिए जो भी उपयोगी हो, और जो भी यह अपने हृदय और शरीर से कर सकता है, मैं स्वयं तुम्हारी इच्छा के अनुसार उसे पूरा करूंगा।"

नाग राजा ने उत्तर दिया:

"ऋषियों का सार उनका ज्ञान है, आज हम आपके ज्ञान से प्रसन्न हैं; वह व्यक्ति जिसका नाम पूर्णता का प्रतीक है, आज अपनी दुल्हन को ले जाए और आज आपको कुरुओं का स्वामी बनाए।"

इस प्रकार कहने के बाद, वरुण ने इरंदति को पुन्नक को सौंप दिया और पुन्नक ने प्रसन्नतापूर्वक उस महान सत्ता के समक्ष अपने हृदय की अभिव्यक्ति कर दी।

इस प्रकार उस महान सत्ता ने इस विषय का वर्णन किया है:

नाग कन्या इरंदती को पाकर पुन्नका अत्यंत प्रसन्न और आनंदित हो उठा। उसने पूर्ण आनंद से भरे स्वर में कुरुओं में श्रेष्ठ विदुर को संबोधित करते हुए कहा, "आपने मुझे पत्नी प्रदान की है, हे विदुर, मैं आपका कर्तव्य निभाऊंगा; मैं यह रत्न-वृक्ष आपको अर्पित करता हूं और आज ही आपको कुरुओं का स्वामी बना दूंगा।"

फिर उस महान सत्ता ने एक और श्लोक में उसकी प्रशंसा की:

“आपकी प्रिय पत्नी के साथ आपकी मित्रता दीर्घायु हो, और प्रसन्नता से मुझे यह रत्न भेंट करें और मुझे इंद्रप्रस्थ ले चलें।” तब पुन्नक ने श्रेष्ठ कर्मशील कुरुओं को अपने सामने आसन पर बिठाया और परम ज्ञान के स्वामी पुन्नक को इंद्रप्रस्थ ले गए। मनुष्य का मन जितनी तीव्र गति से चल सकता है, पुन्नक की गति उससे भी कहीं अधिक तीव्र थी; और पुन्नक श्रेष्ठ कुरुओं को इंद्रप्रस्थ ले गए।

तब उसने उससे कहा: "अपने सामने इंद्रप्रस्थ नगर और उसके रमणीय आमों के बागों और क्षेत्रों को देखो; मेरी पत्नी है, और तुम्हें अपना घर मिल गया है।"

उसी दिन सुबह राजा ने एक सपना देखा, जो इस प्रकार था: राजा के महल के द्वार पर एक विशाल वृक्ष खड़ा था, जिसका तना ज्ञान का प्रतीक था, शाखाएँ गुणों के समान थीं, और फल गाय के पाँच पवित्र उत्पादों के समान थे। वृक्ष पर अलंकृत साज-सज्जा वाले हाथी और घोड़े सवार थे; और बड़ी संख्या में लोग हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा कर रहे थे। तभी एक काले रंग का व्यक्ति, जो लाल वस्त्र पहने हुए था, लाल फूलों की बालियाँ धारण किए हुए था, और हाथ में हथियार लिए हुए था, आया और लोगों के आग्रह के बावजूद वृक्ष को जड़ से काट डाला, उसे घसीटकर ले गया और चला गया। फिर वापस आकर उसे उसी स्थान पर दोबारा लगा दिया और चला गया। तब राजा ने स्वप्न को समझकर मन ही मन कहा, “ऋषि विदुर ही उस विशाल वृक्ष के समान हैं; वह युवक, जिसने ऋषि को उठाया था,

उस व्यक्ति के समान है जिसने लोगों के आग्रह के बावजूद वृक्ष को जड़ से काट डाला था; और निश्चय ही वह लौटकर आएंगे और उन्हें सत्यमहल के द्वार पर स्थापित करके चले जाएंगे। हम आज फिर से ऋषि के दर्शन करेंगे।" अतः उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक पूरे नगर को सजाने और सत्यमहल को तैयार करवाने तथा रत्नों से सजे मंडप में एक मंच बनवाने का आदेश दिया; और स्वयं सौ राजाओं, उनके सलाहकारों, अनेक नागरिकों और देशवासियों से घिरे हुए उन्होंने सबको यह कहकर सांत्वना दी, "भयभीत न हों, आप आज फिर से ऋषि के दर्शन करेंगे"; और वे स्वयं सत्यमहल में ऋषि के लौटने की प्रतीक्षा में विराजमान हो गए। तब पुन्नक ऋषि को नीचे लाए और उन्हें सत्यमहल के द्वार पर सभा के मध्य में स्थापित किया, और फिर इरंदति के साथ अपने स्वर्गलोक चले गए।

शिक्षक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

"कुलीन वंश के पुन्नक ने कुरु वंश के श्रेष्ठ पुन्नक को धार्मिक सभा के बीच में बिठाकर, अपने उत्तम घोड़े पर सवार होकर आकाश में विचरण किया। जब राजा ने उन्हें देखा, तो प्रसन्नता से भर उठे और उन्हें बाहों में भर लिया, और बिना किसी भय के उन्हें सभा के बीच में अपने सामने सिंहासन पर बैठा दिया।"

फिर उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन करने के बाद उन्होंने स्नेहपूर्वक उनका स्वागत किया और एक श्लोक कहा:

"आप हमें एक सुसज्जित रथ की तरह मार्गदर्शित करते हैं, कुरु आपको देखकर प्रसन्न होते हैं; मुझे उत्तर दीजिए और बताइए, वह युवक आपको क्यों जाने दिया?"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"हे महान राजा, जिसे आप युवक कहते हैं, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, हे वीरों में श्रेष्ठ; यदि आपने यक्ष (राक्षस) पुन्नक के बारे में सुना हो, तो वह राजा कुबेर का मंत्री था। वरुण नाम का एक नाग राजा है, जो शक्तिशाली, बलवान और उदात्त व्यक्तित्व वाला है। पुन्नक उसकी छोटी पुत्री, नाग कन्या इरंदती से प्रेम करता है। उसने अपनी प्रेमिका के लिए मेरी मृत्यु की योजना बनाई, इस प्रकार उसने अपनी पत्नी को प्राप्त किया और मुझे जाने की अनुमति मिल गई तथा रत्न प्राप्त हो गया।"

नागराज मेरे द्वारा मनुष्य के चारों लक्ष्यों से संबंधित प्रश्न के उत्तर से प्रसन्न होकर मुझे एक रत्न भेंट करके सम्मानित किया। जब वह नागलोक लौटे, तो उनकी रानी विमला ने उनसे रत्न के बारे में पूछा। उन्होंने धर्ममार्ग के विषय में मेरे शिक्षण कौशल का वर्णन किया, और विमला, ऐसा प्रवचन सुनने की इच्छा से, मेरे हृदय के लिए तरसने का नाटक करने लगीं। नागराज, उनकी वास्तविक इच्छा को न समझकर, अपनी पुत्री इरंदती से बोले, "तुम्हारी माता विदुर के हृदय के लिए तरस रही हैं, एक ऐसे कुलीन व्यक्ति को खोजो जो उनके लिए वह हृदय ला सके।" जब वह किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश कर रही थीं, तो उनकी नज़र यक्ष (राक्षस) पुन्नका पर पड़ी, जो वेसवना की बहन का पुत्र था। और यह जानकर कि पुन्नका उनसे प्रेम करता है, उन्होंने उसे अपने पिता के पास भेज दिया, जिन्होंने उससे कहा, "यदि तुम विदुर का हृदय मेरे लिए ला सको, तो वह तुम्हें मिल जाएगी।" अतः वह वेपुल्ला पर्वत से वह रत्न लाकर, जो किसी सर्वशक्तिमान सम्राट का हो सकता था, मेरे साथ जुए में बैठा और मुझे अपने खेल में जीत कर वहीं रुक गया। तीन दिन तक मैं अपने घर में रहा। फिर उसने मुझे अपने घोड़े की पूंछ पकड़ने के लिए मजबूर किया और मुझे हिमवत (हिमालय) के पेड़ों और पहाड़ों से टकराया, लेकिन वह मुझे मार नहीं सका। फिर वह हवाओं के सातवें क्षेत्र में बवंडर पर सवार होकर आगे बढ़ा और मुझे साठ मील (4.23 किमी) ऊंचे काले पर्वत की चोटी पर रख दिया; वहां उसने शेर और अन्य रूपों में मुझ पर हमला किया, लेकिन वह मुझे मार नहीं सका। तब अंत में उसके अनुरोध पर मैंने उसे बताया कि मुझे कैसे मारा जा सकता है। फिर मैंने उसे अच्छे आदमी के कर्तव्यों के बारे में बताया, और जब उसने उन्हें सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे यहां लाना चाहता था। तब मैं उसे लेकर नागलोक गया और मैंने राजा और विमला को धर्म का मार्ग बताया, और सारा दरबार बहुत प्रसन्न हुआ; और मेरे वहां छह दिन रहने के बाद राजा ने इरंदती को पुन्नक को दे दिया। उसे पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे उपहार के रूप में कई रत्न भेंट किए। फिर राजा के आदेश पर उसने मुझे अपने द्वारा बनाए गए एक जादुई घोड़े पर सवार किया। अपनी इच्छा से, वह मुझे यहाँ लाया और मुझे दरबार के बीचोंबीच बिठा दिया, और फिर इरंदती के साथ अपने नगर चला गया। इस प्रकार, हे राजा, उस सुंदर कन्या के लिए, जिससे वह प्रेम करता था, उसने मेरी मृत्यु की योजना बनाई और इस प्रकार मेरे द्वारा उसने अपनी पत्नी को प्राप्त किया। जब राजा ने धर्म मार्ग पर मेरा प्रवचन सुना, तो वह प्रसन्न हुआ और मुझे जाने दिया। मुझे पुन्नक से यह रत्न प्राप्त हुआ जो सभी इच्छाओं को पूरा करता है और जो सर्वशक्तिशाली सम्राट के योग्य है; इसे स्वीकार करो, हे महाराज," और ऐसा कहकर उसने रत्न राजा को दे दिया। फिर राजा ने सुबह नागरिकों को अपना स्वप्न बताने की इच्छा से उन्हें इस प्रकार घटनाक्रम समझाया:

मेरे द्वार के सामने एक वृक्ष उगा था, उसका तना ज्ञान था और शाखाएँ नैतिक सद्गुण; वह प्राकृतिक और विकसित हर रूप में परिपक्व हुआ, उसके फल गाय के पाँचों उत्पाद थे, और वह हाथियों और मवेशियों से आच्छादित था। लेकिन जब वह नृत्य, गीत और वाद्ययंत्रों

की गूँज से गूंज रहा था, तभी एक आदमी आया और उसे जड़ से काटकर ले गया; फिर वह हमारे इस महल में आया, इस वृक्ष को अपना सम्मान दें।

जो भी मेरे माध्यम से आनंदित हैं, वे आज अपने कार्यों से इसे प्रकट करें; भरपूर मात्रा में उपहार लाएँ और इस वृक्ष को अपना सम्मान अर्पित करें।

मेरे राज्य में जितने भी बंदी हों, उन सबको उनकी गुलामी से मुक्त कर दो; जिस प्रकार इस वृक्ष को उसकी गुलामी से मुक्त किया गया है, उसी प्रकार दूसरों को भी बंधन से मुक्त करो।

वे इस महीने को छुट्टी में बिताएँ, अपने हल टांग दें; वे ब्राह्मणों को मांस और चावल का भोज दें; वे एकांत में शराब पिएँ, और फिर भी पूर्ण संयमी प्रतीत हों, उनके प्याले छलक रहे हों। वे राजमार्ग पर अपने मित्रों को आमंत्रित करें, और राज्य में कड़ी निगरानी रखें ताकि कोई भी अपने पड़ोसी को नुकसान न पहुँचाए, इस वृक्ष को अपना सम्मान दें।

जब उसने ऐसा कहा,

रानियों, राजकुमारों, वैश्यों और ब्राह्मणों ने ऋषि के लिए बहुत सारा भोजन और पेय पदार्थ लाया।

"हाथियों पर सवार, अंगरक्षक, रथों पर सवार, पैदल सैनिक, ऋषि के लिए बहुत सारा भोजन और पेय लेकर आए। देश और शहर के लोग भीड़ में इकट्ठा होकर ऋषि के लिए बहुत सारा भोजन और पेय लेकर आए। विशाल सभा ऋषि को देखकर आनंद से भर उठी; ऋषि के आने पर विजयोत्सव के रूप में वस्त्र लहराए गए।"

एक महीने बाद उत्सव समाप्त हो गया: महान सत्ता ने अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, विशाल सभा को धर्म का मार्ग सिखाया, राजा को सलाह दी और इस प्रकार अपना जीवनकाल पूरा किया और स्वर्ग के लिए नियत हो गए। उनके उपदेशों का पालन करते हुए और अपने राजा का अनुसरण करते हुए, कुरा राज्य के सभी निवासियों ने दान दिया और अच्छे कर्म किए और अपने जीवन के अंत में स्वर्ग चले गए।

गुरु ने अपना प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, “केवल अभी ही नहीं, बल्कि पहले भी बुद्ध ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके साधनों को लक्ष्य के अनुरूप ढालने में निपुणता दिखाई थी। फिर उन्होंने जन्म का वर्णन करते हुए कहा: “उस समय ऋषि के माता-पिता राजपरिवार (बहुदेव के माता-पिता, जिन्होंने कपिलवस्तु राज्य पर शासन किया) थे, सबसे बड़ी रानी राहुल की माता (बहुदेव की पत्नी) थीं, सबसे बड़ा पुत्र राहुल (बहुदेव का पुत्र) था, नाग राजा वरुण सारिपुत्र थे, गरुल राजा मोग्गल्याण थे, सक्का (इंद्र) अनुरुद्ध थे, राजा धनंजय आनंद थे और ज्ञानी विदुर मैं स्वयं था।”

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **द-महा-उम्मग्गा-जातक**
स्रोत : *ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-546-||----->>>> अगला

जातक क्रमांक 546
महा-उम्मग्ग-जातक

"पांचाल के राजा ब्रह्मदत्त," आदि। गुरु (बुद्ध), जेतवन मठ में रहते हुए, ज्ञान की पूर्णता के बारे में यह बताया। एक दिन भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में बैठकर बुद्ध की ज्ञान की पूर्णता का वर्णन किया: "भाइयों, असीम ज्ञान से परिपूर्ण बुद्ध, जिनकी बुद्धि विशाल, तत्पर, तीव्र, तीक्ष्ण और भ्रामक शिक्षाओं को कुचलने वाली है, ने अपने ज्ञान की शक्ति से ब्राह्मण कुटदंत और अन्य, तपस्वी सबिया और अन्य, चोर अंगुलिमाला (पहले जैसा ही), यक्ष अलावक (पहले जैसा ही), देवता सक्का (इंद्र) और अन्य, और ब्राह्मण बका (पहले जैसा ही) को परिवर्तित किया, उन्हें विनम्र बनाया, और उनमें से बहुतों को तपस्वी के रूप में दीक्षित किया और उन्हें मोक्ष के मार्ग की सफलता में स्थापित किया।" शिक्षक उनके पास आए और पूछा कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं, और जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने उत्तर

दिया, "बुद्ध न केवल अब असीम रूप से ज्ञानी हैं, बल्कि अतीत में भी, जब उनका ज्ञान पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुआ था, तब भी वे ज्ञान और बुद्धि की खोज में लगे हुए थे, और वे सर्वज्ञान से परिपूर्ण थे," और फिर उन्होंने अतीत की एक कहानी सुनाई।

पुराने समय में, मिथिला में वेदेह नामक एक राजा राज करता था, और उसके चार ऋषि थे जो उसे धर्ममार्ग का उपदेश देते थे: सेनाक, पुक्कुश, कविन्द और देविन्द। जब बोधिसत्व अपनी माता के गर्भ में थे, तब राजा ने भोर में यह स्वप्न देखा: राजमहल के चारों कोनों में दीवार के बराबर ऊँचे अग्नि के चार स्तंभ प्रज्वलित हुए, और उनके बीच में जुगनू के आकार की एक ज्वाला उठी, और उसी क्षण वह अचानक अग्नि के चारों स्तंभों से भी बड़ी होकर ब्रह्मालोक (प्रधान देवदूतों) जितनी ऊँची उठी और पूरे संसार को प्रकाशित कर दिया; यहाँ तक कि जमीन पर पड़ा सरसों का एक दाना भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। मनुष्य और देवदूतों के संसार ने पुष्पमालाओं और धूप से उसकी पूजा की; बहुत से लोग इस ज्वाला से गुजरे, लेकिन उनकी त्वचा का एक बाल भी नहीं झुलसा। यह दृश्य देखकर राजा भयभीत हो गया और सोचने लगा कि आगे क्या होगा, और भोर की प्रतीक्षा करने लगा। सुबह जब चारों ज्ञानी पुरुष आए तो उन्होंने उससे पूछा कि क्या वह अच्छी तरह सोया था। उसने उत्तर दिया, "मैं कैसे अच्छी तरह सो सकता हूँ, जब मैंने ऐसा सपना देखा है?" तब पंडित सेनाक ने उत्तर दिया, "हे महाराज, भयभीत न हों, यह एक शुभ सपना है, आप समृद्ध होंगे।" और जब उनसे व्याख्या करने को कहा गया, तो उन्होंने आगे कहा, "हे महाराज, एक पाँचवें ऋषि का जन्म होगा जो हम चारों से श्रेष्ठ होंगे; हम चारों अग्नि के चार स्तंभों के समान हैं, परन्तु हमारे बीच से मानो अग्नि का पाँचवाँ स्तंभ उदय होगा, जो अद्वितीय होगा और देवताओं (देवदूतों) या मनुष्यों के संसार में अतुलनीय पद को ग्रहण करेगा।" "वह इस समय कहाँ है?" "हे महाराज, वह या तो शरीर धारण करेगा या अपनी माता के गर्भ से बाहर आएगा"; इस प्रकार उन्होंने अपने ज्ञान से वह बताया जो उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा था और राजा ने उस समय से उनके शब्दों को याद रखा। अब मिथिला के चारों द्वारों पर चार बाजार नगर थे, जिन्हें पूर्वी नगर, दक्षिणी नगर, पश्चिमी नगर और उत्तरी नगर कहा जाता था। पूर्वी नगर में सिरिवद्धक नामक एक धनी व्यक्ति रहता था, और उसकी पत्नी का नाम सुमनादेवी था। जिस दिन राजा ने दर्शन देखा, उसी दिन तैंतीसवें स्वर्ग से महापुरुष आया और सुमनादेवी के गर्भ में धारण किया; और उस स्वर्ग से हज़ार अन्य देवदूत आए और उस गाँव के विभिन्न धनी व्यापारियों के परिवारों में गर्भ धारण किया, और दसवें महीने के अंत में सुमनादेवी ने स्वर्ण रंग के एक शिशु को जन्म दिया। उसी क्षण इंद्र ने मानव जगत पर दृष्टि डालते हुए महापुरुष का जन्म देखा; और मन ही मन यह कहते हुए कि वह देवदूतों और मनुष्यों के जगत में यह घोषणा करेगा कि बुद्ध के इस अंकुर का जन्म हुआ है, वह शिशु के जन्म के समय प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुआ और उसके हाथ में एक औषधीय जड़ी बूटी का टुकड़ा रखा, और फिर अपने जीवन में लौट गया। महापुरुष ने उसे अपनी बंद मुट्ठी में मजबूती से थाम लिया; और जब वह अपनी माता के गर्भ से आया तो उसे जरा भी पीड़ा नहीं हुई।लेकिन वह पवित्र जलपात्र से पानी की तरह आसानी से बेहोश हो गया। जब उसकी माँ ने उसके हाथ में औषधीय जड़ी बूटी का टुकड़ा देखा, तो उसने उससे कहा, "मेरे बच्चे, यह क्या है जो तुमने पकड़ा है?" उसने उत्तर दिया, "यह एक औषधीय पौधा है, माँ," और उसने उसे उसके हाथ में रख दिया और उससे कहा कि इसे ले लो और उन सभी को दे दो जो किसी भी बीमारी से पीड़ित हैं। प्रसन्नता से भर कर उसने यह बात व्यापारी सिरिवद्धक को बताई, जो सात वर्षों से सिरदर्द से पीड़ित था। प्रसन्नता से उसने मन ही मन कहा, "यह बच्चा अपनी माँ के गर्भ से औषधीय पौधा लिए हुए निकला और जन्म लेते ही अपनी माँ से बात करने लगा; इतने असाधारण गुण वाले व्यक्ति द्वारा दी गई औषधि का बहुत महत्व होगा"; इसलिए उसने उसे चक्की पर घिसा और थोड़ा सा अपने माथे पर लगाया, और सात वर्षों से चला आ रहा उसका सिरदर्द कमल के पत्ते से पानी की तरह तुरंत गायब हो गया। प्रसन्नता से झूमते हुए उसने कहा, "यह तो अद्भुत प्रभाव वाली औषधि है"; यह खबर चारों ओर फैल गई कि महान पुरुष अपने हाथ में औषधि लेकर पैदा हुए हैं, और सभी बीमार व्यापारी के घर उमड़ पड़े और औषधि मांगने लगे। उन्होंने थोड़ी सी औषधि चक्की पर पीसकर पानी में मिलाकर सभी को थोड़ी-थोड़ी दी, और जैसे ही प्रभावित शरीर को वह दिव्य औषधि छूती, सभी रोग ठीक हो जाते, और प्रसन्न रोगी व्यापारी सिरिवद्धक के घर में औषधि के अद्भुत गुणों का बखान करते हुए चले गए। बच्चे का नामकरण करते समय व्यापारी ने मन ही मन सोचा, "मेरे बच्चे का नाम उसके पूर्वजों में से किसी एक के नाम पर रखने की आवश्यकता नहीं है; उसका नाम औषधि के नाम पर ही रखा जाए," इसलिए उसने उसका नाम ओषध कुमार रखा। फिर उसने दोबारा सोचा, "मेरा पुत्र महान गुणों से परिपूर्ण है, वह अकेला पैदा नहीं होगा, उसके साथ ही कई अन्य बच्चे भी पैदा होंगे।" जब उसने पूछताछ करके जाना कि उसके साथ हजारों अन्य लड़के भी पैदा हुए हैं, तो उसने उन सभी के लिए दाईयाँ भेजीं और उन्हें कपड़े दिए। उसने यह निश्चय किया कि वे उसके पुत्र के सेवक होंगे और उसने उनके लिए एक उत्सव मनाया। उसने लड़कों को सजाया-संवारा और उन्हें प्रतिदिन उसकी सेवा में बुलाया। महान प्राणी उनके साथ खेलते-खेलते बड़ा हुआ और जब वह सात वर्ष का हुआ तो वह सोने की मूर्ति के समान सुंदर हो गया। जब वह गाँव में उनके साथ खेल रहा था, तो कुछ हाथी और अन्य जानवर वहाँ से गुजरे और उनके खेल में बाधा डाली। कभी-कभी बच्चे बारिश और गर्मी से परेशान हो जाते थे। एक दिन जब वे खेल रहे थे, अचानक तेज बारिश शुरू हो गई। जब हाथी के समान बलवान महान प्राणी ने इसे देखा, तो वह एक घर में भाग गया। अन्य बच्चे उसके पीछे भागे और एक-दूसरे के पैरों पर गिर पड़े, जिससे उनके घुटनों और अन्य अंगों में चोट लग गई। फिर उसने मन ही मन सोचा, "यहाँ खेलने के लिए एक हॉल बनाया जाना चाहिए, हम इस तरह नहीं खेलेंगे," और उसने लड़कों से कहा, "चलो यहाँ एक हॉल बनाते हैं जहाँ हम हवा, तेज धूप या बारिश के समय खड़े हो सकें, बैठ सकें या लेट सकें।"तुममें से हर एक अपना-अपना पैसा लेकर आए।" हज़ारों लड़कों ने

वैसा ही किया और उस महान सत्ता ने एक कुशल बढ़ई को बुलवाया और उसे पैसा देकर उस जगह पर एक हॉल बनाने को कहा। उसने पैसा लिया, ज़मीन समतल की, खंभे गाड़े और नापने की रेखा खींची, लेकिन वह उस महान सत्ता की बात नहीं समझ पाया; इसलिए उसने बढ़ई को बताया कि उसे रेखा कैसे खींचनी है ताकि वह ठीक से काम कर सके। बढ़ई ने जवाब दिया, “मैंने इसे अपने व्यावहारिक अनुभव के अनुसार खींचा है, मैं इसे किसी और तरीके से नहीं कर सकता।” “अगर तुम्हें इतना भी नहीं पता तो तुम हमारा पैसा लेकर हॉल कैसे बना सकते हो?” "रेखा लो, मैं नापकर तुम्हें दिखाऊंगा," उसने बढ़ई से रेखा पकड़वाई और खुद योजना निकाली, और वह ऐसी लग रही थी मानो विश्वकर्मा ने बनाई हो। फिर उसने बढ़ई से कहा, "क्या तुम इस तरह योजना बना पाओगे?" "मैं नहीं बना पाऊंगा, महोदय।" "क्या तुम मेरे निर्देशों के अनुसार बना पाओगे?" "मैं बना पाऊंगा, महोदय।" फिर उस महान व्यक्ति ने हॉल को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि एक भाग में आम अजनबियों के लिए जगह थी, दूसरे में दरिद्रों के लिए आवास, तीसरे में दरिद्र महिलाओं के लिए प्रसव कक्ष, चौथे में विदेशी बौद्ध पुजारियों और ब्राह्मणों के लिए आवास, चौथे में अन्य प्रकार के पुरुषों के लिए आवास, और चौथे में विदेशी व्यापारियों के लिए अपना माल रखने की जगह थी, और इन सभी कमरों के दरवाजे बाहर की ओर खुलते थे। वहाँ उसने खेल-कूद के लिए एक सार्वजनिक स्थान, एक न्यायलय और धार्मिक सभाओं के लिए एक हॉल भी बनवाया। जब काम पूरा हो गया तो उसने चित्रकारों को बुलाया और स्वयं उनकी परीक्षा लेकर उन्हें सुंदर चित्र बनाने का काम सौंपा, जिससे हॉल एक सुंदर हॉल जैसा बन गया। इंद्र का स्वर्गिक महल सुधम्म था। फिर भी उन्हें लगा कि महल अभी पूरा नहीं हुआ है, "मुझे एक तालाब भी बनवाना चाहिए," इसलिए उन्होंने एक वास्तुकार को बुलाने के लिए जमीन खुदवाने का आदेश दिया और उससे विचार-विमर्श करने और उसे धन देने के बाद, उन्होंने उससे एक हजार मोड़ों वाला और सौ स्नान घाटों वाला तालाब बनवाया। तालाब पांच प्रकार के कमलों से ढका हुआ था और स्वर्गिक उद्यान नंदन के तालाब की तरह सुंदर था। इसके किनारे उन्होंने विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए और नंदन के समान एक उद्यान बनवाया। और इस महल के पास उन्होंने भिक्षुओं, बौद्धों और ब्राह्मणों, अजनबियों और आसपास के गांवों के लोगों के लिए सार्वजनिक रूप से भिक्षा वितरण की व्यवस्था की।"यदि आपको इतनी भी जानकारी नहीं है तो आप हमारा पैसा लेकर हॉल कैसे बना सकते हैं?" "रेखा लो, मैं नापकर तुम्हें दिखाऊंगा," उसने बढ़ई से रेखा पकड़वाई और खुद योजना निकाली, और वह ऐसी लग रही थी मानो विश्वकर्मा ने बनाई हो। फिर उसने बढ़ई से कहा, "क्या तुम इस तरह योजना बना पाओगे?" "मैं नहीं बना पाऊंगा, महोदय।" "क्या तुम मेरे निर्देशों के अनुसार बना पाओगे?" "मैं बना पाऊंगा, महोदय।" फिर उस महान व्यक्ति ने हॉल को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि एक भाग में आम अजनबियों के लिए जगह थी, दूसरे में दरिद्रों के लिए आवास, तीसरे में दरिद्र महिलाओं के लिए प्रसव कक्ष, चौथे में विदेशी बौद्ध पुजारियों और ब्राह्मणों के लिए आवास, चौथे में अन्य प्रकार के पुरुषों के लिए आवास, और चौथे में विदेशी व्यापारियों के लिए अपना माल रखने की जगह थी, और इन सभी कमरों के दरवाजे बाहर की ओर खुलते थे। वहाँ उसने खेल-कूद के लिए एक सार्वजनिक स्थान, एक न्यायलय और धार्मिक सभाओं के लिए एक हॉल भी बनवाया। जब काम पूरा हो गया तो उसने चित्रकारों को बुलाया और स्वयं उनकी परीक्षा लेकर उन्हें सुंदर चित्र बनाने का काम सौंपा, जिससे हॉल एक सुंदर हॉल जैसा बन गया। इंद्र का स्वर्गिक महल सुधम्म था। फिर भी उन्हें लगा कि महल अभी पूरा नहीं हुआ है, "मुझे एक तालाब भी बनवाना चाहिए," इसलिए उन्होंने एक वास्तुकार को बुलाने के लिए जमीन खुदवाने का आदेश दिया और उससे विचार-विमर्श करने और उसे धन देने के बाद, उन्होंने उससे एक हजार मोड़ों वाला और सौ स्नान घाटों वाला तालाब बनवाया। तालाब पांच प्रकार के कमलों से ढका हुआ था और स्वर्गिक उद्यान नंदन के तालाब की तरह सुंदर था। इसके किनारे उन्होंने विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए और नंदन के समान एक उद्यान बनवाया। और इस महल के पास उन्होंने भिक्षुओं, बौद्धों और ब्राह्मणों, अजनबियों और आसपास के गांवों के लोगों के लिए सार्वजनिक रूप से भिक्षा वितरण की व्यवस्था की।"यदि आपको इतनी भी जानकारी नहीं है तो आप हमारा पैसा लेकर हॉल कैसे बना सकते हैं?" "रेखा लो, मैं नापकर तुम्हें दिखाऊंगा," उसने बढ़ई से रेखा पकड़वाई और खुद योजना निकाली, और वह ऐसी लग रही थी मानो विश्वकर्मा ने बनाई हो। फिर उसने बढ़ई से कहा, "क्या तुम इस तरह योजना बना पाओगे?" "मैं नहीं बना पाऊंगा, महोदय।" "क्या तुम मेरे निर्देशों के अनुसार बना पाओगे?" "मैं बना पाऊंगा, महोदय।" फिर उस महान व्यक्ति ने हॉल को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि एक भाग में आम अजनबियों के लिए जगह थी, दूसरे में दरिद्रों के लिए आवास, तीसरे में दरिद्र महिलाओं के लिए प्रसव कक्ष, चौथे में विदेशी बौद्ध पुजारियों और ब्राह्मणों के लिए आवास, चौथे में अन्य प्रकार के पुरुषों के लिए आवास, और चौथे में विदेशी व्यापारियों के लिए अपना माल रखने की जगह थी, और इन सभी कमरों के दरवाजे बाहर की ओर खुलते थे। वहाँ उसने खेल-कूद के लिए एक सार्वजनिक स्थान, एक न्यायलय और धार्मिक सभाओं के लिए एक हॉल भी बनवाया। जब काम पूरा हो गया तो उसने चित्रकारों को बुलाया और स्वयं उनकी परीक्षा लेकर उन्हें सुंदर चित्र बनाने का काम सौंपा, जिससे हॉल एक सुंदर हॉल जैसा बन गया। इंद्र का स्वर्गिक महल सुधम्म था। फिर भी उन्हें लगा कि महल अभी पूरा नहीं हुआ है, "मुझे एक तालाब भी बनवाना चाहिए," इसलिए उन्होंने एक वास्तुकार को बुलाने के लिए जमीन खुदवाने का आदेश दिया और उससे विचार-विमर्श करने और उसे धन देने के बाद, उन्होंने उससे एक हजार मोड़ों वाला और सौ स्नान घाटों वाला तालाब बनवाया। तालाब पांच प्रकार के कमलों से ढका हुआ था और स्वर्गिक उद्यान नंदन के तालाब की तरह सुंदर था। इसके किनारे उन्होंने विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए और नंदन के समान एक उद्यान बनवाया। और इस महल के पास उन्होंने भिक्षुओं, बौद्धों और ब्राह्मणों, अजनबियों और आसपास के गांवों के लोगों के लिए सार्वजनिक रूप से भिक्षा वितरण की व्यवस्था की।इस प्रकार वह महल इंद्र के स्वर्गिक महल सुधम्म के समान बन गया। फिर भी उन्हें लगा कि महल अभी पूर्ण नहीं हुआ है, "मुझे एक तालाब भी बनवाना चाहिए," इसलिए उन्होंने एक वास्तुकार के लिए भूमि खुदवाने का आदेश दिया और उससे विचार-विमर्श करने और उसे धन देने के बाद, उन्होंने उससे एक हजार मोड़ों वाला और सौ स्नान घाटों वाला तालाब बनवाया। जल पांच प्रकार के कमलों से ढका हुआ

था और स्वर्गिक उद्यान नंदन के तालाब के समान सुंदर था। इसके किनारे उन्होंने विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए और नंदन के समान एक उद्यान बनवाया। और इस महल के पास उन्होंने बौद्धों और ब्राह्मणों, अजनबियों और आसपास के गांवों के लोगों सहित सभी संतों के लिए सार्वजनिक रूप से भिक्षा वितरण की व्यवस्था की।इस प्रकार वह महल इंद्र के स्वर्गिक महल सुधम्म के समान बन गया। फिर भी उन्हें लगा कि महल अभी पूर्ण नहीं हुआ है, "मुझे एक तालाब भी बनवाना चाहिए," इसलिए उन्होंने एक वास्तुकार के लिए भूमि खुदवाने का आदेश दिया और उससे विचार-विमर्श करने और उसे धन देने के बाद, उन्होंने उससे एक हजार मोड़ों वाला और सौ स्नान घाटों वाला तालाब बनवाया। जल पांच प्रकार के कमलों से ढका हुआ था और स्वर्गिक उद्यान नंदन के तालाब के समान सुंदर था। इसके किनारे उन्होंने विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए और नंदन के समान एक उद्यान बनवाया। और इस महल के पास उन्होंने बौद्धों और ब्राह्मणों, अजनबियों और आसपास के गांवों के लोगों सहित सभी संतों के लिए सार्वजनिक रूप से भिक्षा वितरण की व्यवस्था की।

उनके इन कार्यों की चर्चा हर जगह फैल गई और भीड़ उस स्थान पर उमड़ पड़ी, और वह महान व्यक्ति हॉल में बैठकर वहां आए सभी याचिकाकर्ताओं की अच्छी या बुरी परिस्थितियों के सही और गलत पर चर्चा करते और प्रत्येक पर अपना निर्णय देते थे, और यह उस सुखद समय के समान हो गया जब कोई बुद्ध संसार में प्रकट होते हैं।

उस समय, जब सात वर्ष बीत चुके थे, राजा वेदेह को याद आया कि चार ऋषियों ने कहा था कि एक पाँचवाँ ऋषि जन्म लेगा जो ज्ञान में उनसे भी श्रेष्ठ होगा। उन्होंने मन ही मन पूछा, "वह अब कहाँ है?" और उन्होंने अपने चार सलाहकारों को नगर के चारों द्वारों पर भेजा और उनसे उसका पता लगाने को कहा। जब वे अन्य तीन द्वारों से निकले तो उन्हें उस महान व्यक्ति का कोई निशान नहीं मिला, लेकिन जब वे पूर्वी द्वार से निकले तो उन्होंने महल और उसकी विभिन्न इमारतें देखीं और उन्हें तुरंत विश्वास हो गया कि केवल एक बुद्धिमान व्यक्ति ही इस महल का निर्माण कर सकता था या करवा सकता था। उन्होंने लोगों से पूछा, "इस महल का निर्माण किस वास्तुकार ने किया?" लोगों ने उत्तर दिया, "यह महल किसी वास्तुकार ने अपनी शक्ति से नहीं बनवाया, बल्कि व्यापारी सिरिवद्धा के पुत्र महोसाधा पंडित के निर्देश पर बनवाया गया है।" "उनकी आयु कितनी है?" "उन्होंने अभी-अभी सात वर्ष पूरे किए हैं।" सलाहकार ने उस दिन से लेकर अब तक की सभी घटनाओं पर विचार किया जिस दिन राजा ने स्वप्न देखा था और उसने मन ही मन कहा, "यह व्यक्ति राजा के स्वप्न की पूर्ति करता है।" उसने एक दूत को राजा के पास यह संदेश देकर भेजा: "पूर्वी बाज़ार नगर में रहने वाले व्यापारी सिरिवद्धा के सात वर्षीय पुत्र महोषधा ने ऐसा महल, तालाब और उद्यान बनवाया है, क्या मैं उसे आपके समक्ष लाऊं या नहीं?" यह सुनकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और सेनाक को बुलवाया। उन्होंने सेनाक को सारी बात समझाकर पूछा कि क्या उन्हें इस ऋषि को बुलवाना चाहिए। लेकिन सेनाक, उपाधि से ईर्ष्या करते हुए, बोले, "हे राजा, केवल महल और ऐसी चीजें बनवाने मात्र से कोई व्यक्ति ऋषि नहीं कहलाता; ये चीजें तो कोई भी बनवा सकता है, यह तो मामूली बात है।" राजा ने यह सुनकर मन ही मन सोचा, "इसके पीछे कोई गुप्त कारण अवश्य होगा," और चुप रहे। फिर उन्होंने दूत को यह आदेश देकर वापस भेज दिया कि सलाहकार कुछ समय तक वहीं रुकें और ऋषि की अच्छी तरह से जांच-पड़ताल करें। पार्षद वहीं रुका रहा और उसने ऋषि के कार्यों की सावधानीपूर्वक जांच की, और यह जांच या परीक्षण के मामलों की श्रृंखला है:

1. "**मांस का टुकड़ा** ।" एक दिन जब भगवान खेल-कूद के लिए जा रहे थे, तभी एक बाज़ कसाईखाने की पटिया से मांस का एक टुकड़ा उठाकर हवा में उड़ गया। कुछ लड़कों ने उसे देखकर उसे गिराने का निश्चय किया और उसका पीछा करने लगे। बाज़ अलग-अलग दिशाओं में उड़ने लगा और वे ऊपर देखते हुए उसके पीछे-पीछे पत्थर और अन्य वस्तुएँ फेंकते-फेंकते थक गए। तब ऋषि ने उनसे कहा, "मैं इसे गिरा दूँगा।" उन्होंने उनसे ऐसा करने की विनती की। उन्होंने उन्हें देखने के लिए कहा; और फिर स्वयं ऊपर देखते हुए हवा की गति से दौड़े और बाज़ की परछाई पर चलकर ज़ोर से ताली बजाई। उनकी उस ज़ोरदार आवाज़ से मानो बाज़ का पेट आर-पार हो गया और डर के मारे उसने मांस गिरा दिया। भगवान ने परछाई को देखकर जान लिया कि मांस गिर गया है और ज़मीन पर गिरने से पहले ही उसे हवा में पकड़ लिया। इस चमत्कार को देखकर लोग ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने और ताली बजाने लगे। मंत्री ने यह सुनकर राजा को एक संदेश भेजा कि ऋषि ने किस प्रकार पक्षी से मांस छुड़वा दिया। राजा ने यह सुनकर सेनाक से पूछा कि क्या उसे दरबार में बुलाया जाए। सेनाक ने सोचा, "उसके आने से मेरी सारी यश-विजय नष्ट हो जाएगी और राजा मेरा नामोनिशान मिटा देगा, मुझे उसे यहाँ नहीं आने देना चाहिए"; इसलिए ईर्ष्यावश उसने कहा, "वह इतना बड़ा ऋषि नहीं है, यह तो बस एक छोटी सी बात है"; और राजा निष्पक्ष होकर संदेश भेजा कि मंत्री जहाँ है वहीं उसकी परीक्षा ले।

2. "**मवेशी** ।" यवमज्जक गाँव में रहने वाले एक व्यक्ति ने दूसरे गाँव से कुछ मवेशी खरीदे और उन्हें घर ले आया। अगले दिन वह उन्हें चराने के लिए एक मैदान में ले गया और एक मवेशी की पीठ पर सवार हो गया। थककर वह नीचे उतरा और ज़मीन पर बैठ गया और सो गया। इसी बीच एक चोर आया और मवेशियों को उठाकर ले गया। जब वह जागा तो उसने अपने मवेशी नहीं देखे, लेकिन चारों ओर देखने पर उसे चोर भागता हुआ दिखाई दिया। वह उछलकर चिल्लाया, "तुम मेरे मवेशियों को कहाँ ले जा रहे हो?" "ये मेरे मवेशी हैं, और मैं इन्हें अपनी मनचाही जगह ले जा रहा हूँ।" झगड़ा सुनकर वहाँ बड़ी भीड़ जमा हो गई। जब ऋषि ने हॉल के द्वार से गुजरते हुए शोर सुना, तो उन्होंने उन दोनों को बुलवाया। उनका व्यवहार देखकर वे तुरंत समझ गए कि चोर कौन है और असली मालिक कौन। लेकिन हालांकि उन्हें पूरा यकीन था, फिर भी उन्होंने उनसे पूछा कि वे किस बात पर झगड़ रहे हैं। मालिक ने कहा, "मैंने ये मवेशी फलां गांव के एक व्यक्ति से खरीदे थे और उन्हें घर लाकर घास के मैदान में छोड़ दिया था। इस चोर ने देखा कि मैं ध्यान नहीं दे रहा हूँ और

आकर उन्हें ले गया। चारों ओर देखने पर मुझे वह दिखाई दिया और मैंने उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया। फलां गांव के लोग जानते हैं कि मैंने मवेशी खरीदे और ले गया हूँ।" चोर ने जवाब दिया, "यह आदमी झूठ बोल रहा है, ये मेरे घर में ही पैदा हुए थे।" ऋषि ने कहा, "मैं तुम्हारे मामले का निष्पक्ष फैसला करूंगा; क्या तुम मेरे फैसले का पालन करोगे?" और उन्होंने ऐसा करने का वादा किया। फिर लोगों का दिल जीतने के बारे में सोचते हुए उन्होंने पहले चोर से पूछा, "तुमने इन मवेशियों को क्या खिलाया है और क्या पिलाया है?" "इन्हें चावल की दलिया पिलाई गई है और तिल का आटा और राजमा खिलाया गया है।" फिर उन्होंने असली मालिक से पूछा, जिसने कहा, "महाराज, मुझ जैसे गरीब आदमी को चावल की दलिया और बाकी चीजें कैसे मिल सकती हैं? मैंने तो इन्हें घास खिलाई है।" पंडित ने सभा बुलाई और खसखस के बीज मंगवाकर उन्हें ओखली में पीसकर पानी से गीला करके पशुओं को खिलाया। पशुओं ने केवल घास ही उगली। उन्होंने सभा को यह बात समझाई और फिर चोर से पूछा, "क्या तुम चोर हो?" चोर ने स्वीकार किया कि वह चोर था। पंडित ने उससे कहा, "तो अब से ऐसा पाप मत करना।" परन्तु बोधिसत्व के सेवकों ने उस व्यक्ति को उठाकर उसके हाथ-पैर काट दिए और उसे असहाय कर दिया। तब ऋषि ने उसे उपदेश देते हुए कहा, "यह कष्ट तुम्हें केवल इसी जन्म में आया है, परन्तु भविष्य में तुम्हें विभिन्न नरकों में घोर पीड़ा सहनी पड़ेगी, इसलिए अब से ऐसे कर्म त्याग दो।" उन्होंने उसे पंच आज्ञाओं का उपदेश दिया। मंत्री ने घटना का विवरण राजा को भेजा। राजा ने सेनाक से पूछा, परन्तु सेनाक ने प्रतीक्षा करने को कहा, "यह तो केवल पशुओं का मामला है और कोई भी इसका निर्णय कर सकता है।" राजा ने निष्पक्ष होकर वही आदेश भेजा। (यह बात आगे आने वाले सभी मामलों में समझी जानी चाहिए; हम सूची के अनुसार प्रत्येक मामले को क्रम से प्रस्तुत करेंगे।)

3. "**धागे का हार**।" एक गरीब औरत ने अलग-अलग रंगों के कई धागों को एक साथ बांधकर एक हार बनाया था, जिसे उसने अपने गले से उतारकर अपने कपड़ों पर रख लिया और पंडित द्वारा बनवाए गए तालाब में नहाने चली गई। एक युवती ने उसे देखकर उस हार को पाने की इच्छा की, उसने हार उठा लिया और माँ से कहा, "माँ, यह बहुत सुंदर हार है, इसे बनाने में कितना खर्च आया होगा? मैं भी अपने लिए ऐसा ही एक हार बनाऊँगी। क्या मैं इसे अपने गले में पहनकर इसका आकार देख सकती हूँ?" माँ ने उसे अनुमति दे दी और उसने हार अपने गले में पहनकर भाग गई। यह देखकर बड़ी उम्र की औरत जल्दी से पानी से बाहर आई और अपने कपड़े पहनकर उसके पीछे भागी और उसका कपड़ा पकड़कर चिल्लाई, "तुम मेरे बनाए हुए हार को लेकर भाग रही हो।"

दूसरी ने उत्तर दिया, "मैं तुम्हारा कुछ नहीं ले रही, यह तो वह हार है जो मैं अपने गले में पहनती हूँ"; यह सुनकर वहाँ बड़ी भीड़ जमा हो गई। ऋषि लड़कों के साथ खेल रहे थे, तभी उन्होंने उन्हें सभागार के द्वार से गुजरते हुए झगड़ते सुना और पूछा कि शोर किस बात का है। जब उन्हें झगड़े का कारण पता चला, तो उन्होंने दोनों को बुलवाया और चोरनी के शांत स्वभाव से तुरंत पहचान लिया कि कौन है, और उनसे पूछा कि क्या वे उनके निर्णय का पालन करेंगी। दोनों के सहमत होने पर, उन्होंने चोरनी से पूछा, "तुम इस हार में कौन सा इत्र लगाती हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं हमेशा इसे सब्बसंहारक से सुगंधित करती हूँ।" तब उन्होंने दूसरी से पूछा, जिसने उत्तर दिया, "मुझ जैसी गरीब औरत को सब्बसंहारक कहाँ से मिलेगा? मैं तो हमेशा इसे पियांगु के फूलों से बने इत्र से सुगंधित करती हूँ।" तब ऋषि ने पानी का एक पात्र मंगवाया और उसमें हार डाल दिया। फिर उन्होंने एक इत्र विक्रेता को बुलवाया और उसे पात्र को सूंघकर यह पता लगाने को कहा कि उसमें से क्या सुगंध आ रही है। उन्होंने पियांगू फूल की गंध को सीधे पहचान लिया और उस श्लोक का उद्धरण दिया जो पहले ही पहली पुस्तक में दिया जा चुका है:

"यह कोई सर्वभक्षी नहीं है; केवल कंगू में ही गंध होती है।"
उस दुष्ट स्त्री ने झूठ बोला; सच तो उस बुद्धिमान व्यक्ति ने बताया।
उस महान सत्ता ने वहां मौजूद सभी लोगों को सारी परिस्थितियाँ बताईं और उनमें से प्रत्येक से बारी-बारी से पूछा, "क्या तुम चोर हो? क्या तुम चोर नहीं हो?" और दोषी को कबूल करवा लिया, और उसी क्षण से उनकी बुद्धिमत्ता लोगों को ज्ञात हो गई।

4. "**सूती धागा।**" एक स्त्री जो कपास के खेतों की रखवाली करती थी, एक दिन देख रही थी। उसने कुछ साफ कपास ली और उससे महीन धागा कातकर एक गोला बनाया और उसे अपनी गोद में रख लिया। घर जाते समय उसने मन ही मन सोचा, "मैं महान ऋषि के सरोवर में स्नान करूंगी," इसलिए उसने गोले को अपने वस्त्र पर रखा और स्नान करने के लिए सरोवर में उतर गई। एक दूसरी स्त्री ने उसे देखा और उसे पाने की लालसा से उसे उठा लिया और बोली, "यह धागे का सुंदर गोला है; मैं पूछती हूँ, क्या तुमने इसे स्वयं बनाया है?" तो उसने हल्के से उंगलियां चटकाईं और उसे अपनी गोद में रख लिया, मानो उसे और करीब से देख रही हो, और उसे लेकर चली गई। (यह कहानी पहले की तरह पूरी बताई जानी है।) ऋषि ने चोर से पूछा, "जब तुमने गोला बनाया था तो उसमें क्या डाला था?" उसने उत्तर दिया, "एक कपास का बीज।" फिर उन्होंने दूसरी से पूछा, और उसने उत्तर दिया, "एक तिम्बारू का बीज।" जब भीड़ ने सबकी बात सुन ली, तो उसने रुई के गोले को खोला और उसके अंदर से एक तिम्बारू का बीज निकाला, जिससे चोरनी को अपना गुनाह कबूल करना पड़ा। बड़ी संख्या में लोग बेहद प्रसन्न हुए और मामले के निपटारे के तरीके पर तालियाँ बजाकर खुशी जाहिर की।

5. "**पुत्र**।" एक स्त्री अपने पुत्र को लेकर ऋषि के तालाब में चेहरा धोने गई। पुत्र को नहलाने के बाद उसने उसे अपने वस्त्रों में लपेट लिया और स्वयं चेहरा धोकर नहाने चली गई। उसी क्षण एक स्त्री ने बच्चे को देखा और उसे खाने की इच्छा से उसने स्त्री का वस्त्र पकड़ लिया और कहा, "हे मित्र, यह कितना सुंदर बच्चा है, क्या यह तुम्हारा पुत्र है?" फिर उसने माँ से दूध पिलाने की अनुमति माँगी और माँ की सहमति मिलने पर उसने बच्चे को गोद में लेकर कुछ देर खेला और फिर उसे लेकर भागने की कोशिश की। स्त्री उसके पीछे दौड़ी

और उसे पकड़कर चिल्लाई, "मेरे बच्चे को कहाँ ले जा रही हो?" स्त्री ने उत्तर दिया, "बच्चे को क्यों छू रही हो? यह मेरा है।" वे झगड़ती हुई सभाघर के द्वार से गुजरीं और शोर सुनकर ऋषि ने उन्हें बुलवाया और पूछा कि क्या बात है। जब उन्होंने पूरी कहानी सुनी, यद्यपि वे उसकी लाल, बिना पलक झपकाए आँखों से तुरंत समझ गए थे कि उनमें से एक स्त्री है, फिर भी उन्होंने उनसे पूछा कि क्या वे उनके निर्णय का पालन करेंगी। उनके ऐसा करने का वादा करने पर, ऋषि ने एक रेखा खींची और बच्चे को रेखा के बीच में लिटा दिया और जिन्न से बच्चे को हाथों से और माँ को पैरों से पकड़ने को कहा। फिर उन्होंने उनसे कहा, "इसे पकड़ो और खींचो; बच्चा उसी का है जो इसे खींचकर ला सकती है।" दोनों ने खींचा, और बच्चा दर्द से कराह उठा और ज़ोर से रोया। तब माँ, जिसका हृदय मानो फटने वाला था, ने बच्चे को छोड़ दिया और रोने लगी। ऋषि ने उन दोनों से पूछा, "क्या बच्चे के प्रति माँ का हृदय कोमल है या उस स्त्री का जो माँ नहीं है?" उन्होंने उत्तर दिया, "माँ का हृदय।" "क्या वह माँ है जिसने बच्चे को थामे रखा या वह जिसने उसे छोड़ दिया?" उन्होंने उत्तर दिया, "वह जिसने उसे छोड़ दिया।" "क्या तुम जानते हो कि वह कौन है जिसने बच्चे को चुराया है?" "हम नहीं जानते, हे ऋषि।" "वह एक जिन्न है, उसने उसे खाने के लिए पकड़ा है।" जब उन्होंने पूछा कि उसे कैसे पता चला, तो उसने उत्तर दिया, "मैंने उसे उसकी बिना पलक झपकाए लाल आँखों से, उसकी परछाई न बनने से, उसकी निर्भीकता और निर्दयता से पहचाना।" फिर उसने उससे पूछा कि वह क्या है, और उसने स्वीकार किया कि वह एक जिन्न है। "तुमने बच्चे को क्यों पकड़ा?" "उसे खाने के लिए।" "अंधे मूर्ख," उसने कहा, "तुमने पुराने समय में पाप किया था और इसलिए तुम जिन्न के रूप में पैदा हुई थी; और अब भी तुम पाप करती जा रही हो, अंधे मूर्ख।" फिर उसने उसे प्रोत्साहित किया और उसे पाँच नियमों में स्थापित किया और उसे विदा कर दिया; और माँ ने उसे आशीर्वाद दिया, और यह कहते हुए, "हे मेरे स्वामी, आपकी आयु दीर्घायु हो," अपने बेटे को लेकर चली गई।

6. "**काली गेंद**एक आदमी था जिसका नाम गोलाकला था। उसके छोटे कद के कारण उसे गोला और काले रंग के कारण काला नाम मिला था। वह एक घर में सात साल तक काम करता रहा और उसकी एक पत्नी हुई, जिसका नाम दिघताला था। एक दिन उसने उससे कहा, "पत्नी, कुछ मिठाई और खाना बनाओ, हम तुम्हारे माता-पिता से मिलने चलते हैं।" पहले तो उसने मना कर दिया और कहा, "मुझे माता-पिता से क्या लेना-देना है?" लेकिन तीसरी बार कहने पर वह मान गया और कुछ केक बनाने को तैयार हो गया। कुछ खाने-पीने का सामान और एक उपहार लेकर वह उसके साथ यात्रा पर निकल पड़ा। रास्ते में उसे एक छोटी सी नदी मिली जो ज्यादा गहरी नहीं थी, लेकिन पानी से डरने के कारण वे उसे पार करने की हिम्मत नहीं कर पाए और किनारे पर खड़े हो गए। तभी दिघपित्थी नाम का एक गरीब आदमी नदी के किनारे चलते हुए वहाँ आया। उसे देखकर उन्होंने पूछा कि नदी गहरी है या उथली। यह देखकर कि वे पानी से डरते हैं, उसने बताया कि नदी बहुत गहरी है और उसमें बहुत सी खतरनाक मछलियाँ हैं। "तो फिर तुम कैसे जाओगे?" "क्या मैं इसे पार कर सकता हूँ?" "यहाँ रहने वाले मगरमच्छों और राक्षसों से मेरी दोस्ती हो गई है, इसलिए वे मुझे नुकसान नहीं पहुँचाते।" "हमें अपने साथ ले चलो," उन्होंने कहा। जब वह मान गया, तो उन्होंने उसे कुछ खाने-पीने का सामान दिया; और जब उसने अपना भोजन समाप्त कर लिया, तो उसने उनसे पूछा कि वह पहले किसे पार ले जाए। "पहले अपनी बहन को ले जाओ और फिर मुझे," गोलाकला ने कहा। तब उस आदमी ने उसे अपने कंधों पर बिठाया और खाने-पीने का सामान और उपहार लेकर नदी में उतर गया। थोड़ी दूर जाकर वह झुककर चलने लगा। गोलाकला, जब किनारे पर खड़ा था, तो मन ही मन सोचने लगा, "यह नदी ज़रूर बहुत गहरी होगी; अगर दिघापित्थी जैसे आदमी के लिए भी यह इतनी कठिन है, तो मेरे लिए तो यह पार करना नामुमकिन होगा।" जब दूसरे ने स्त्री को नदी के बीच में पहुँचा दिया, तो उसने उससे कहा, "देवी, मैं तुम्हारा ख्याल रखूँगा, और तुम सुंदर वस्त्रों, आभूषणों, नौकरों और नौकरानियों के साथ शान से रहोगी; यह बेचारा बौना तुम्हारे लिए क्या करेगा?" सुनो, मैं क्या कहता हूँ। उसने उसकी बात सुनी और अपने पति से प्रेम करना छोड़ दिया, और अजनबी पर मोहित होकर उसने सहमति जताते हुए कहा, "यदि तुम मुझे नहीं छोड़ोगे, तो मैं तुम्हारी बात मान लूँगी।" जब वे दूसरे किनारे पर पहुँचे, तो उन्होंने मनोरंजन किया और गोलाकला को वहीं रुकने के लिए कहकर छोड़ दिया। जब वह वहीं खड़ा देखता रहा, तो उन्होंने मांस और पेय खा-पी कर चले गए। जब उसने यह देखा, तो वह चिल्लाया, "उन्होंने दोस्ती कर ली है और मुझे यहाँ छोड़कर भाग रहे हैं।" वह इधर-उधर भागता रहा और थोड़ा पानी में चला गया, फिर डर के मारे वापस आ गया, और फिर उनके व्यवहार पर क्रोधित होकर उसने एक हताश छलांग लगाई और कहा, "मुझे जीने दो या मरने दो," और जब वह पूरी तरह से पानी में पहुँच गया, तो उसने पाया कि पानी कितना उथला है। इसलिए उसने पानी पार किया और उसका पीछा करते हुए चिल्लाया, "अरे दुष्ट चोर,"मेरी पत्नी को कहाँ ले जा रहे हो?" दूसरे ने उत्तर दिया, "वह तुम्हारी पत्नी कैसे है? वह तो मेरी है"; और उसने उसे गर्दन से पकड़कर घुमाया और फेंक दिया। दूसरे ने दिघताला का हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रुको, कहाँ जा रहे हो? तुम मेरी पत्नी हो जिसे मैंने सात साल घर में काम करके पाया है"; और इस प्रकार बहस करते हुए वह हॉल के पास आ गया। वहाँ एक बड़ी भीड़ जमा हो गई। महापुरुष ने पूछा कि यह शोर किस बात का है, और उन्हें बुलवाकर और सबकी बात सुनकर पूछा कि क्या वे उसके निर्णय का पालन करेंगे। दोनों के सहमत होने पर, उसने दिघपित्थी को बुलवाया और उसका नाम पूछा। फिर उसने उसकी पत्नी का नाम पूछा, लेकिन वह उसका नाम न जानते हुए कोई दूसरा नाम बता बैठा।

फिर उन्होंने उससे उसके माता-पिता के नाम पूछे और उसने बता दिए, लेकिन जब उन्होंने उससे उसकी पत्नी के माता-पिता के नाम पूछे तो वह न जानते हुए कुछ और नाम बता बैठा। ऋषि ने उसकी कहानी समझ ली और उसे वहाँ से हटवा दिया। फिर उन्होंने दूसरे को बुलवाया और उसी तरह सबसे सबके नाम पूछे। वह सच्चाई जानता था, इसलिए उसने सही-सही नाम बताए। फिर उन्होंने उसे भी हटवा दिया और दिघताला को बुलवाया और उससे उसका नाम पूछा, उसने बता दिया। फिर उन्होंने उससे उसके पति का नाम पूछा और वह न

जानते हुए गलत नाम बता बैठी। फिर उन्होंने उससे उसके माता-पिता के नाम पूछे और उसने सही-सही बताए, लेकिन जब उन्होंने उससे उसके पति के माता-पिता के नाम पूछे तो वह बेतरतीब ढंग से बोलती रही और गलत नाम बता दिए। फिर ऋषि ने बाकी दो को बुलवाया और लोगों से पूछा, "क्या इस स्त्री की कहानी दिघपित्थी या गोलकला से मेल खाती है?" उन्होंने उत्तर दिया, "गोलकला से।" फिर उन्होंने अपना फैसला सुनाया, "यह आदमी उसका पति है, दूसरा चोर है"; और जब उन्होंने उससे पूछताछ की तो उसने कबूल कर लिया कि उसने चोर का काम किया था।

7. "**रथ** ।" एक व्यक्ति रथ में बैठा था, वह अपना चेहरा धोने के लिए नीचे उतरा। उसी समय सक्का (इंद्र) विचार कर रहे थे और जब उन्होंने ऋषि को देखा तो उन्होंने निश्चय किया कि वे बुद्ध के भ्रूण स्वरूप महोषधा की शक्ति और ज्ञान का प्रचार करेंगे। अतः वे मनुष्य के रूप में नीचे उतरे और रथ के पीछे-पीछे चलने लगे। रथ में बैठे व्यक्ति ने पूछा, "आप क्यों आए हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "आपकी सेवा करने।" व्यक्ति मान गया और मूत्र त्याग के लिए रथ से उतरकर एक तरफ चला गया। तुरंत ही सक्का (इंद्र) रथ में सवार होकर तेजी से चल दिए। रथ का स्वामी अपना काम पूरा करके लौटा; और जब उसने सक्का (इंद्र) को रथ लेकर तेजी से जाते देखा, तो वह तेजी से उनके पीछे दौड़ा और चिल्लाया, "रुको, रुको, मेरा रथ कहाँ ले जा रहे हो?" सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया, "तुम्हारा रथ कोई और होगा, यह मेरा है।" इस प्रकार वाद-विवाद करते हुए वे सभागार के द्वार पर पहुँचे। ऋषि ने पूछा, "यह क्या है?" और उन्होंने उसे बुलवाया: जब वह आया, तो उसकी निर्भीकता और उसकी न झपकती आँखों से ऋषि जान गए कि यह सक्का (इंद्र) है और दूसरा उसका स्वामी है। फिर भी उन्होंने झगड़े का कारण पूछा और उनसे कहा, "क्या तुम मेरे निर्णय का पालन करोगे?" उन्होंने कहा, "हाँ।" उन्होंने आगे कहा, "मैं रथ चलवाऊँगा, और तुम दोनों को पीछे से पकड़कर रखना होगा: स्वामी नहीं छोड़ेगा, दूसरा छोड़ देगा।" फिर उन्होंने एक व्यक्ति को रथ चलाने को कहा, और उसने ऐसा किया, बाकी लोग पीछे से पकड़े रहे। स्वामी थोड़ी दूर गया, फिर आगे दौड़ने में असमर्थ होकर उसने छोड़ दिया, लेकिन सक्का (इंद्र) रथ के साथ दौड़ते रहे। जब उन्होंने रथ को वापस बुलाया, तो ऋषि ने लोगों से कहा: "यह व्यक्ति थोड़ी दूर दौड़ा और छोड़ दिया; दूसरा रथ के साथ दौड़ा और वापस आ गया, फिर भी उसके शरीर पर पसीने की एक बूँद भी नहीं है, न ही वह हाँफ रहा है, वह निर्भीक है, उसकी आँखें नहीं झपकतीं, यह सक्का (इंद्र) है, देवताओं (देवदूतों) का राजा।" फिर उसने पूछा, "क्या आप देवताओं (देवदूतों) के राजा हैं?" "हाँ।" "आप यहाँ क्यों आए हैं?" "हे ऋषि, अपनी बुद्धिमत्ता का प्रचार करने!" "तो फिर," उसने कहा, "ऐसा दोबारा मत करना।" तब सक्का (इंद्र) ने हवा में स्थिर खड़े होकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और ऋषि की प्रशंसा करते हुए कहा, "यह तो बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय है!" फिर वह अपने स्थान पर चला गया। तब मंत्री बिना बुलाए राजा के पास गया और बोला, "हे महान राजा, रथ प्रश्न का इस प्रकार हल हुआ: और यहाँ तक कि सक्का (इंद्र) भी उनके द्वारा पराजित हो गया; आप मनुष्यों में श्रेष्ठता क्यों नहीं पहचानते?" राजा ने सेनाक से पूछा, "सेनक, क्या तुम क्या कहते हो, क्या हम ऋषि को यहाँ बुलाएँ?" सेनाक ने उत्तर दिया, "केवल यही ऋषि की पहचान नहीं है। कुछ समय प्रतीक्षा करो: मैं उनकी परीक्षा लेकर पता लगाऊँगा।"

8. "**खंभा** ।" एक दिन, ऋषि की परीक्षा लेने के उद्देश्य से, वे एक बबूल का खंभा लाए, और उसमें से लगभग एक बित्ता काटकर, उसे एक खराद कारीगर से अच्छी तरह चिकना करवाया, और उसे पूर्वी बाज़ार नगर भेज दिया, साथ में यह संदेश भी भेजा: "बाज़ार नगर के लोग ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हैं। वे पता लगाएँ कि इस खंभे का शीर्ष कौन सा है और जड़ कौन सी है। यदि वे पता नहीं लगा पाए, तो एक हज़ार सिक्कों का जुर्माना है।" लोग इकट्ठा हुए, लेकिन पता नहीं लगा सके, और उन्होंने अपने प्रबंधक से कहा, "शायद ऋषि महोसाधा को पता हो; उन्हें बुलवाकर पूछिए।" प्रबंधक ने ऋषि को उनके खेल के मैदान से बुलवाया, और उन्हें सारी बात बताई कि वे पता नहीं लगा पाए, लेकिन शायद वे पता लगा सकें। ऋषि ने मन ही मन सोचा, "राजा को यह जानने से कुछ लाभ नहीं होगा कि शीर्ष कौन सा है और जड़ कौन सी है; निस्संदेह यह मेरी परीक्षा लेने के लिए भेजा गया है।" उन्होंने कहा, "इसे यहाँ लाओ, मेरे मित्रों, मैं पता लगाऊँगा।" उसे हाथ में लेकर, उन्होंने जान लिया कि शीर्ष कौन सा है और जड़ कौन सी है; फिर भी, लोगों को प्रसन्न करने के लिए, उन्होंने पानी का एक घड़ा मंगवाया और छड़ी के मध्य में एक डोरी बाँधी, और डोरी के सिरे से पकड़कर उसे पानी की सतह पर लटका दिया। जड़ भारी होने के कारण पहले डूब गई। तब उन्होंने लोगों से पूछा, "क्या पेड़ की जड़ भारी होती है या उसका ऊपरी भाग?" "जड़, महाराज!" "देखो, यह भाग पहले डूबता है, और इसलिए यही जड़ है।" इस संकेत से उन्होंने जड़ को ऊपरी भाग से अलग किया। लोगों ने जड़ और ऊपरी भाग में अंतर बताकर उसे राजा के पास वापस भेज दिया। राजा प्रसन्न हुए और पूछा, यह किसने पता लगाया? उन्होंने कहा, "ऋषि महोषधा, जो अग्रभागी सिरिवद्धि के पुत्र हैं।" "सेनक, क्या हम उन्हें बुलवाएँ?" उन्होंने पूछा। "प्रभु, महाराज," उन्होंने उत्तर दिया, "चलिए, हम उनसे दूसरे तरीके से जाँच करते हैं।"

9. "**सिर।** " एक दिन दो सिर लाए गए, एक स्त्री का और एक पुरुष का; इन्हें पहचान के लिए भेजा गया, और पहचान न होने पर एक हजार सिक्कों का जुर्माना लगाया गया। गाँव वाले निर्णय नहीं कर पाए और उन्होंने ईश्वर से पूछा। उन्होंने देखते ही पहचान लिया, क्योंकि कहते हैं कि पुरुष के सिर की जोड़ियाँ सीधी होती हैं और स्त्री के सिर की जोड़ियाँ टेढ़ी होती हैं। इसी संकेत से उन्होंने बता दिया कि कौन सा सिर किसका है; और उन्हें राजा के पास वापस भेज दिया गया। बाकी कहानी पहले जैसी ही है।

10. "**सांप** ।" एक दिन एक नर और एक मादा सांप को लाया गया और ग्रामीणों के पास भेजा गया ताकि वे तय कर सकें कि कौन सा नर है और कौन सा मादा। उन्होंने एक ऋषि से पूछा, और उन्होंने देखते ही पहचान लिया; क्योंकि नर सांप की पूंछ मोटी होती है, मादा की पतली; नर सांप का सिर मोटा होता है, मादा का लंबा; नर की आंखें बड़ी होती हैं, मादा की छोटी; नर का सिर गोल होता है, मादा का छोटा। इन लक्षणों से उन्होंने नर और मादा में अंतर किया। बाकी सब पहले जैसा ही है।

11. "**मुर्गा** ।" एक दिन पूर्वी बाज़ार कस्बे के लोगों को यह संदेश भेजा गया: "हमें एक सफेद बैल भेजो, जिसके पैरों में सींग हों, सिर पर कूबड़ हो, और जो नियमित रूप से तीन बार बांग देता हो; अन्यथा एक हजार सिक्कों का जुर्माना है।" एक भी न जानते हुए, उन्होंने एक ज्ञानी व्यक्ति से पूछा। उन्होंने कहा: "राजा चाहते हैं कि आप उन्हें एक मुर्गा भेजें। इस प्राणी के पैरों में सींग होते हैं; सिर पर कूबड़ होता है; और यह नियमित रूप से तीन बार बांग देता है। तो उन्हें वैसा ही मुर्गा भेजो जैसा उन्होंने बताया है।" उन्होंने एक मुर्गा भेज दिया।
12. "**रत्न** ।" जो रत्न इंद्र ने राजा कुश को दिया था, वह अष्टकोणीय था। उसका धागा टूट गया था और कोई भी पुराने धागे को निकालकर नया धागा नहीं लगा पा रहा था। एक दिन ग्रामीणों ने यह रत्न भेजा और साथ में निर्देश दिया कि पुराना धागा निकालकर नया लगा दें; लेकिन वे न तो यह कर पाए और न ही वह, और अपनी परेशानी बताते हुए उन्होंने ऋषि को बताया। उन्होंने उनसे कहा कि वे भयभीत न हों और शहद का एक टुकड़ा मांगा। उन्होंने शहद से रत्न के दोनों छिद्रों को भर दिया और ऊन का एक धागा मोड़कर उसके सिरे पर भी शहद लगा दिया। उन्होंने उसे छिद्र में थोड़ा अंदर तक डाला और चींटियों के आने-जाने वाली जगह पर रख दिया। शहद की गंध से चींटियां अपने बिल से बाहर आईं और पुराने धागे को खाकर ऊन के धागे के सिरे को काटकर दूसरे सिरे से खींच लिया। जब उन्होंने देखा कि धागा आर-पार हो गया है, तो उन्होंने उनसे कहा कि इसे राजा को भेंट करें। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए कि धागा कैसे लगाया गया था।
13. "**बछड़े का जन्म** ।" शाही बैल को कुछ महीनों तक खूब खिलाया-पिलाया गया, जिससे उसका पेट फूल गया। उसके सींग धोए गए, तेल से अभिषेक किया गया और हल्दी से स्नान कराया गया। फिर उसे पूर्वी बाज़ार नगर भेजा गया और यह संदेश दिया गया: "तुम ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हो। राजा का शाही बैल, गर्भवती है; उसे सौंप दो और बछड़े के साथ वापस भेज दो, अन्यथा एक हजार सिक्कों का जुर्माना है।" गाँव वाले असमंजस में पड़ गए और ऋषि से प्रार्थना की; जिन्होंने एक प्रश्न का उत्तर दूसरे से देना उचित समझा और पूछा, "क्या तुम्हें कोई ऐसा साहसी व्यक्ति मिल सकता है जो राजा से बात कर सके?" उन्होंने उत्तर दिया, "यह कोई कठिन काम नहीं है।" अतः उन्होंने उसे बुलाया, और उस महान सत्ता ने कहा—"हे मेरे सज्जन, अपने बाल कंधों पर खोलकर महल के द्वार पर जाओ और विलाप करते हुए पीड़ा से रोते रहो। राजा के सिवा किसी को उत्तर मत देना, केवल विलाप करना; और यदि राजा तुम्हें बुलाकर विलाप का कारण पूछे, तो कहना, "सात दिनों से मेरा पुत्र प्रसव पीड़ा से पीड़ित है और जन्म नहीं दे पा रहा है; हे मेरी सहायता करो! मुझे बताओ कि मैं उसे कैसे जन्म दे सकूँ!" तब राजा कहेगा, "यह कैसी मूर्खता है! यह असंभव है; पुरुष बच्चे पैदा नहीं करते।" तब तुम्हें कहना, "यदि यह सच है, तो पूर्वी बाज़ार नगर के लोग आपके शाही बैल को बछड़ा कैसे दे सकते हैं?" जैसा उससे कहा गया, उसने वैसा ही किया। राजा ने पूछा कि यह व्यंग्य किसने सोचा था; और यह सुनकर कि यह ऋषि महोषध ने सोचा था, वह प्रसन्न हुआ।
14. "**उबले हुए चावल** ।" एक और दिन, ऋषि की परीक्षा लेने के लिए, यह संदेश भेजा गया: "पूर्वी बाज़ार नगर के लोगों को आठ शर्तों के तहत पके हुए उबले हुए चावल हमें भेजने होंगे, और ये शर्तें हैं - चावल के बिना, पानी के बिना, बर्तन के बिना, चूल्हे के बिना, आग के बिना, लकड़ी के बिना, और किसी स्त्री या पुरुष द्वारा सड़क के रास्ते से न ले जाए जाएं। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो एक हजार सिक्कों का जुर्माना है।" लोग व्याकुल होकर ऋषि के पास गए; जिन्होंने कहा, "चिंता मत करो, कुछ टूटे हुए चावल लो, क्योंकि वह चावल नहीं है; बर्फ लो, क्योंकि वह पानी नहीं है; एक मिट्टी का कटोरा लो, जो बर्तन नहीं है; लकड़ी के कुछ टुकड़े काटो, जो चूल्हा नहीं हैं; उचित आग के बजाय रगड़कर आग जलाओ; लकड़ी के बजाय पत्ते लो; अपने खट्टे चावल पकाओ, उसे एक नए बर्तन में डालो, अच्छी तरह दबाओ, उसे एक हिजड़े के सिर पर रखो, जो न तो पुरुष है और न ही स्त्री, मुख्य सड़क छोड़कर एक पगडंडी पर जाओ, और उसे राजा के पास ले जाओ।" उन्होंने ऐसा ही किया; और जब राजा को पता चला कि इस प्रश्न का समाधान किसने किया है, तो वह प्रसन्न हुआ।
15. "**रेत** ..." एक दिन, ऋषि की परीक्षा लेने के लिए, उन्होंने ग्रामीणों को यह संदेश भेजा: "राजा झूले पर आनंद लेना चाहते हैं, और पुरानी रस्सी टूट गई है; आपको रेत की रस्सी बनानी होगी, अन्यथा एक हजार सिक्कों का जुर्माना देना होगा।" वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें, और उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की, जिन्होंने देखा कि यह एक प्रतिप्रश्न का अवसर है। उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया; और दो-तीन चतुर वक्ताओं को बुलवाकर उन्हें राजा से यह कहने को कहा: "महाराज, ग्रामीणों को नहीं पता कि रेत की रस्सी मोटी होनी चाहिए या पतली; उन्हें पुरानी रस्सी का एक टुकड़ा भेजें, जो एक बित्ता या चार उंगलियों जितना लंबा हो; वे इसे देखेंगे और उसी आकार की रस्सी बना लेंगे।" यदि राजा उत्तर दें, "मेरे घर में कभी रेत की रस्सी नहीं थी," तो उन्हें उत्तर देना था, "यदि महाराज रेत की रस्सी नहीं बना सकते, तो ग्रामीण कैसे बना सकते हैं?" उन्होंने ऐसा ही किया; और राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए कि ऋषि ने इस प्रतिप्रश्न के बारे में सोचा था।
16. "**तालाब** ।" एक और दिन, संदेश आया: "राजा उसके साथ पानी में खेलना चाहता है; आपको मुझे पांचों प्रकार की कमलों से ढका हुआ एक नया तालाब भेजना होगा, अन्यथा एक हजार सिक्कों का जुर्माना है।" उन्होंने यह बात ऋषि को बताई, जिन्होंने समझ लिया कि उन्हें एक जवाबी टिप्पणी की आवश्यकता है। उसने कई वाक्पटु पुरुषों को बुलवाया और उनसे कहा: "जाओ और पानी में तब तक खेलो जब तक तुम्हारी आँखें लाल न हो जाएँ, गीले बालों और गीले कपड़ों में, पूरे शरीर पर कीचड़ लगे हुए, हाथों में रस्सियाँ, लाठियाँ और पत्थर लिए महल के द्वार पर जाओ; राजा को अपने आने की सूचना भेजो, और जब तुम्हें अंदर आने दिया जाए तो उनसे कहो, महाराज, जैसा कि महाराज ने पूर्वी बाज़ार नगर के लोगों को आपके लिए एक तालाब भेजने का आदेश दिया था, हम आपकी पसंद के अनुसार एक बड़ा तालाब लाए थे; लेकिन जंगल में रहने की आदी होने के कारण, जैसे ही उसने शहर को उसकी दीवारों, खाईयों और पहरेदार मीनारों के साथ देखा, वह डर गई और रस्सियाँ तोड़कर जंगल में भाग गई: हमने उस पर पत्थर फेंके और लाठियों से पीटा

लेकिन उसे वापस नहीं ला सके। तो हमें वह पुराना तालाब दे दो जिसके बारे में कहा जाता है कि महाराज जंगल से लाए थे, और हम उन्हें एक साथ जोड़कर दूसरा तालाब वापस ले आएंगे। राजा कहेंगे, मैंने कभी जंगल से कोई तालाब नहीं मंगवाया, और न ही कभी वहाँ कोई तालाब भेजा जिसे जोड़कर लाया जाए।" एक और! फिर आपको कहना होगा, "अगर ऐसा है, तो ग्रामीण आपको टैंक कैसे भेज सकते हैं?" उन्होंने ऐसा ही किया; और राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए कि ऋषि ने इस बारे में सोचा था।

17. "**पार्क।**" एक दिन फिर राजा ने संदेश भेजा: "मैं पार्क में खेलना चाहता हूँ, और मेरा पार्क पुराना हो गया है। पूर्वी बाज़ार नगर के लोगों को मुझे पेड़ों और फूलों से भरा एक नया पार्क भेजना होगा।" ऋषि ने पहले की तरह उन्हें आश्वस्त किया और अपने आदमियों को उसी तरह बात करने के लिए भेजा जैसा ऊपर बताया गया था।

18.तब राजा प्रसन्न हुए और सेनाक से बोले, “सेनाक, क्या हम ऋषि को बुलवाएँ?” परन्तु सेनाक, राजा की समृद्धि से ईर्ष्या करते हुए बोले, “केवल समृद्धि ही ऋषि की पहचान नहीं होती; प्रतीक्षा कीजिए।” यह सुनकर राजा ने मन ही मन सोचा, “ऋषि महोषधा तो बचपन से ही बुद्धिमान थे और मुझे बहुत प्रिय हैं। इन सभी रहस्यमयी परीक्षाओं और व्यंग्य-प्रवचनों में उन्होंने बुद्ध के समान उत्तर दिए हैं। फिर भी सेनाक जैसा बुद्धिमान व्यक्ति मुझे अपने पास बुलाने नहीं दे रहा। सेनाक की मुझे क्या परवाह? मैं उसे यहाँ लाऊँगा।” अतः वे अपने शाही घोड़े पर सवार होकर अपने दल-भाँति गाँव के लिए निकल पड़े। परन्तु जाते-जाते घोड़े का पैर एक गड्ढे में पड़ गया और उसकी टांग टूट गई; अतः राजा उस स्थान से वापस नगर लौट आए। तब सेनाक राजा के समक्ष उपस्थित हुए और बोले, “महाराज, क्या आप ऋषि को वापस लाने के लिए पूर्वी बाजार नगर गए थे?” “जी महाराज,” राजा ने कहा। सेनाक ने कहा, “महाराज, आपने मुझे महत्वहीन समझा है। मैंने आपसे कुछ समय प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया था; लेकिन आप जल्दी में चले गए और आते ही आपके शाही घोड़े की टांग टूट गई।” राजा को इस पर कोई जवाब नहीं मिला। एक दिन फिर उन्होंने सेनाक से पूछा, “क्या हम ऋषि को बुलवाएँ, सेनाक?” “यदि ऐसा है, महाराज, तो आप स्वयं न जाइए, बल्कि एक दूत भेजिए और कहिए, हे ऋषि! जब मैं आपको लेने जा रहा था, तो मेरे घोड़े की टांग टूट गई: हमें एक बेहतर और उत्तम घोड़ा भेजिए। यदि वह पहला विकल्प चुनेगा तो स्वयं आएगा, यदि दूसरा, तो वह अपने पिता को भेजेगा। तब उसकी परीक्षा लेना मुश्किल होगा।” राजा ने यह संदेश लेकर एक दूत भेजा। ऋषि ने यह सुनकर समझ लिया कि राजा स्वयं और अपने पिता से मिलना चाहते हैं। अतः वह अपने पिता के पास गया और उन्हें प्रणाम करते हुए बोला, “पिताजी, राजा आपसे और मुझसे मिलना चाहते हैं। आप पहले एक हजार व्यापारियों के साथ जाइए; और जब आप जाइए, तो खाली हाथ मत जाइए, बल्कि चंदन की एक पेटी में ताजा घी भरकर ले जाइए। राजा आपसे स्नेहपूर्वक बात करेंगे और आपको गृहस्थ आसन देंगे; आप उसे ग्रहण करके बैठ जाइए। जब आप बैठ जाएँगे, मैं आऊँगा; राजा मुझसे भी स्नेहपूर्वक बात करेंगे और मुझे भी ऐसा ही आसन देंगे। तब मैं आपकी ओर देखूँगा; आप संकेत समझकर अपने आसन से उठकर कहेंगे, हे ज्ञानवान पुत्र महोसाधा, इस आसन पर बैठ जाइए। तब प्रश्न हल होने के लिए तैयार हो जाएगा।” उसने ऐसा ही किया। महल के द्वार पर पहुँचकर उसने राजा को अपने आगमन की सूचना दी, और राजा के निमंत्रण पर वह अंदर गया, राजा को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। राजा ने उससे स्नेहपूर्वक बात की और पूछा कि उसका ज्ञानवान पुत्र महोसाधा कहाँ है। “मेरे पीछे आ रहा हूँ, महाराज।” राजा को उसके आने की खबर सुनकर प्रसन्नता हुई और उसने पिता को उपयुक्त स्थान पर बैठने के लिए कहा। उसने एक स्थान ढूँढ़ा और वहाँ बैठ गया। इसी बीच, महान सत्ता ने अपने पूरे वैभव को धारण किया और हज़ार युवकों के साथ एक भव्य रथ पर सवार होकर आई। जैसे ही वह नगर में प्रवेश किया, उसने एक खाई के किनारे एक गधा देखा।और उन्होंने कुछ बलवान पुरुषों को गधे का मुँह बाँधने का आदेश दिया ताकि वह शोर न करे, उसे एक थैले में डालकर अपने कंधों पर उठा लें। उन्होंने वैसा ही किया; बोधिसत्व अपने विशाल दल के साथ नगर में प्रवेश कर गए। लोग उनकी प्रशंसा करते-करते थक नहीं रहे थे। वे चिल्लाए, “यह तो ज्ञानी महोषद हैं, व्यापारी सिरिवद्धक के पुत्र; कहते हैं कि यही वह हैं जो जन्म से ही हाथ में पुण्य की जड़ी बूटी लिए हुए थे; यही वह हैं जिन्होंने अपने सामने रखी अनेकों समस्याओं के उत्तर जान लिए थे।” महल के समक्ष पहुँचकर उन्होंने अपने आने की सूचना भेजी। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुए और बोले, “मेरे पुत्र ज्ञानी महोषद को शीघ्र आने दीजिए।” अतः वे अपने सेवकों के साथ महल में प्रवेश कर राजा को प्रणाम करके एक तरफ खड़े हो गए। राजा उन्हें देखकर प्रसन्न हुए और उनसे मधुरता से बात की, और उन्हें बैठने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने को कहा। उन्होंने अपने पिता की ओर देखा, और उनके पिता ने यह संकेत समझकर अपनी कुर्सी से उठकर उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित किया, जिस पर वे बैठ गए। यह देखकर वहाँ मौजूद मूर्ख लोग, सेनाक, पुक्कुसा, कविंदा, देविंदा और अन्य, उसे वहाँ बैठे देखकर ताली बजाने लगे और ज़ोर से हँसने लगे और चिल्लाए, "यह वही अंधा मूर्ख है जिसे लोग बुद्धिमान कहते हैं! इसने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठा है! इसे बुद्धिमान कहना उचित नहीं है।" राजा भी निराश हो गया। तब उस महान सत्ता ने कहा, "हे महाराज! क्या आप दुखी हैं?" "जी हे महाराज, मैं दुखी हूँ। आपके बारे में सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई थी, परन्तु आपको देखकर प्रसन्नता नहीं हुई।" "क्यों?" "क्योंकि आपने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठे हैं।" "क्या, महाराज! क्या आप सोचते हैं कि हर मामले में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?" "जी महाराज।" "क्या आपने मुझे बेहतर घोड़ा या अधिक उत्तम घोड़ा लाने के लिए संदेश नहीं भेजा था?" ऐसा कहकर वह उठा और उन युवकों की ओर देखकर बोला, "जो गधा तुम लाए हो उसे अंदर लाओ।" उस गधे को राजा के सामने रखकर उसने पूछा, “महाराज, इस गधे की कीमत क्या है?” राजा ने कहा, “यदि यह उपयोगी है, तो इसकी कीमत आठ रुपये है।” “पर यदि इससे एक शुद्ध नस्ल की सिंधी घोड़ी से खच्चर का बच्चा पैदा हो, तो उसकी कीमत क्या होगी?” “वह अनमोल होगा।” “महाराज, आप ऐसा क्यों कहते हैं? क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा कि हर मामले में पिता, पुत्रों से श्रेष्ठ होता है? आपके अपने ही कथन के अनुसार गधा खच्चर के बच्चे से अधिक मूल्यवान है। क्या आपके बुद्धिमानों ने यह न जानकर मुझ पर ताली नहीं बजाई और हँसे नहीं? आपके बुद्धिमानों की यह कैसी

बुद्धिमत्ता है! आपने उन्हें कहाँ से प्राप्त किया?” और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उसने राजा को प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में संबोधित किया:जो जन्म से ही अपने हाथ में पुण्य की जड़ी बूटी लिए हुए था; वही है जिसने अपनी परीक्षा लेने वाली अनेक समस्याओं के उत्तर जाने। महल के समक्ष पहुँचकर उसने अपने आने की सूचना भेजी। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ और बोला, "मेरे पुत्र, ज्ञानी महोषद, शीघ्र अंदर आएँ।" अतः वह अपने सेवकों के साथ महल में प्रवेश किया और राजा को प्रणाम करके एक तरफ खड़ा हो गया। राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ और उससे मधुरता से बात की, और उसे बैठने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने को कहा। उसने अपने पिता की ओर देखा, और उसके पिता ने यह संकेत समझकर अपनी कुर्सी से उठकर उसे बैठने के लिए आमंत्रित किया, जिस पर वह बैठ गया। इस पर वहाँ उपस्थित मूर्ख पुरुष, सेनाक, पुक्कुसा, कविन्द, देविन्द और अन्य, उसे वहाँ बैठे देखकर तालियाँ बजाने लगे और ज़ोर से हँसने लगे और चिल्लाए, "यह वही अंधा मूर्ख है जिसे ज्ञानी कहते हैं! इसने अपने पिता को कुर्सी से उठवा दिया है, और स्वयं वहाँ बैठा है! इसे ज्ञानी कहना उचित नहीं है।" राजा भी निराश हो गया। तब उस महान सत्ता ने कहा, "हे मेरे स्वामी! क्या तुम दुखी हो?" “जी, महाराज, मैं दुखी हूँ। आपके बारे में सुनकर मुझे खुशी हुई थी, लेकिन आपको देखकर मुझे खुशी नहीं हुई।” “क्यों?” “क्योंकि आपने अपने पिता को उनकी गद्दी से उठाकर खुद वहाँ बैठा दिया है।” “क्या, महाराज! क्या आप सोचते हैं कि हर हाल में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?” “जी, महाराज।” “क्या आपने मुझे बेहतर घोड़ा या अधिक उत्तम घोड़ा लाने के लिए संदेश नहीं भेजा था?” ऐसा कहकर वह उठे और युवकों की ओर देखकर बोले, “जो गधा लाए हो, उसे अंदर लाओ।” उस गधे को राजा के सामने रखकर उन्होंने पूछा, “महाराज, इस गधे की कीमत क्या है?” राजा ने कहा, “यदि यह उपयोगी है, तो इसकी कीमत आठ रुपये है।” “लेकिन यदि इससे एक शुद्ध नस्ल की सिंधी घोड़ी से खच्चर का बच्चा पैदा हो, तो उसकी कीमत क्या होगी?” “यह अनमोल होगा।” “ऐसा क्यों कहते हैं, महाराज? क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा कि हर हाल में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?” तुम्हारे ही कहे अनुसार गधे का मूल्य खच्चर के बच्चे से अधिक है। क्या तुम्हारे बुद्धिमानों ने यह न जानने पर मेरा मज़ाक नहीं उड़ाया? तुम्हारे बुद्धिमानों की यह कैसी बुद्धिमत्ता है! तुमने इन्हें कहाँ से प्राप्त किया? और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उसने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:जो जन्म से ही अपने हाथ में पुण्य की जड़ी बूटी लिए हुए था; वही है जिसने अपनी परीक्षा लेने वाली अनेक समस्याओं के उत्तर जाने। महल के समक्ष पहुँचकर उसने अपने आने की सूचना भेजी। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ और बोला, "मेरे पुत्र, ज्ञानी महोषद, शीघ्र अंदर आएँ।" अतः वह अपने सेवकों के साथ महल में प्रवेश किया और राजा को प्रणाम करके एक तरफ खड़ा हो गया। राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ और उससे मधुरता से बात की, और उसे बैठने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने को कहा। उसने अपने पिता की ओर देखा, और उसके पिता ने यह संकेत समझकर अपनी कुर्सी से उठकर उसे बैठने के लिए आमंत्रित किया, जिस पर वह बैठ गया। इस पर वहाँ उपस्थित मूर्ख पुरुष, सेनाक, पुक्कुसा, कविन्द, देविन्द और अन्य, उसे वहाँ बैठे देखकर तालियाँ बजाने लगे और ज़ोर से हँसने लगे और चिल्लाए, "यह वही अंधा मूर्ख है जिसे ज्ञानी कहते हैं! इसने अपने पिता को कुर्सी से उठवा दिया है, और स्वयं वहाँ बैठा है! इसे ज्ञानी कहना उचित नहीं है।" राजा भी निराश हो गया। तब उस महान सत्ता ने कहा, "हे मेरे स्वामी! क्या तुम दुखी हो?" “जी, महाराज, मैं दुखी हूँ। आपके बारे में सुनकर मुझे खुशी हुई थी, लेकिन आपको देखकर मुझे खुशी नहीं हुई।” “क्यों?” “क्योंकि आपने अपने पिता को उनकी गद्दी से उठाकर खुद वहाँ बैठा दिया है।” “क्या, महाराज! क्या आप सोचते हैं कि हर हाल में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?” “जी, महाराज।” “क्या आपने मुझे बेहतर घोड़ा या अधिक उत्तम घोड़ा लाने के लिए संदेश नहीं भेजा था?” ऐसा कहकर वह उठे और युवकों की ओर देखकर बोले, “जो गधा लाए हो, उसे अंदर लाओ।” उस गधे को राजा के सामने रखकर उन्होंने पूछा, “महाराज, इस गधे की कीमत क्या है?” राजा ने कहा, “यदि यह उपयोगी है, तो इसकी कीमत आठ रुपये है।” “लेकिन यदि इससे एक शुद्ध नस्ल की सिंधी घोड़ी से खच्चर का बच्चा पैदा हो, तो उसकी कीमत क्या होगी?” “यह अनमोल होगा।” “ऐसा क्यों कहते हैं, महाराज? क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा कि हर हाल में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?” तुम्हारे ही कहे अनुसार गधे का मूल्य खच्चर के बच्चे से अधिक है। क्या तुम्हारे बुद्धिमानों ने यह न जानने पर मेरा मज़ाक नहीं उड़ाया? तुम्हारे बुद्धिमानों की यह कैसी बुद्धिमत्ता है! तुमने इन्हें कहाँ से प्राप्त किया? और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उसने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:“यह वही अंधा मूर्ख है जिसे लोग बुद्धिमान कहते हैं! इसने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठा है! इसे बुद्धिमान कहना उचित नहीं है।” राजा भी निराश हो गया। तब उस महान सत्ता ने कहा, “हे महाराज! क्या आप दुखी हैं?” “जी हे महाराज, मैं दुखी हूँ। आपके बारे में सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई थी, परन्तु आपको देखकर प्रसन्नता नहीं हुई।” “क्यों?” “क्योंकि आपने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठ गए हैं।” “क्या, महाराज! क्या आप सोचते हैं कि हर मामले में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?” “जी महाराज।” “क्या आपने मुझे बेहतर घोड़ा या उत्तम घोड़ा लाने का संदेश नहीं भेजा था?” ऐसा कहकर वह उठा और युवकों की ओर देखकर बोला, “जो गधा तुम लाए हो उसे अंदर लाओ।” उस गधे को राजा के सामने रखकर उसने पूछा, “महाराज, इस गधे का क्या मूल्य है?” राजा ने कहा, “यदि यह उपयोगी है, तो इसका मूल्य आठ रुपये है।” "पर यदि वह एक शुद्ध नस्ल की सिंधी घोड़ी से खच्चर का बच्चा पैदा करे, तो उसकी कीमत क्या होगी?" "वह अनमोल होगा।" "महाराज, आप ऐसा क्यों कहते हैं? क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा कि हर मामले में पिता, पुत्रों से श्रेष्ठ होता है? आपके अपने ही कथन के अनुसार गधा खच्चर के बच्चे से अधिक मूल्यवान है। क्या आपके बुद्धिमानों ने यह न जानने पर मेरे ऊपर ताली नहीं बजाई और हँसे नहीं? आपके बुद्धिमानों की यह कैसी बुद्धिमत्ता है! आपने उन्हें कहाँ से प्राप्त किया?" और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उन्होंने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:“यह वही अंधा मूर्ख है जिसे लोग बुद्धिमान कहते हैं! इसने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठा है! इसे बुद्धिमान कहना उचित नहीं है।” राजा भी निराश हो गया। तब उस महान सत्ता ने कहा, “हे महाराज! क्या आप दुखी हैं?” “जी हे महाराज, मैं दुखी हूँ।

आपके बारे में सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई थी, परन्तु आपको देखकर प्रसन्नता नहीं हुई।" "क्यों?" "क्योंकि आपने अपने पिता को सिंहासन से उठा दिया है और स्वयं वहाँ बैठ गए हैं।" "क्या, महाराज! क्या आप सोचते हैं कि हर मामले में पिता पुत्रों से श्रेष्ठ होता है?" "जी महाराज।" "क्या आपने मुझे बेहतर घोड़ा या उत्तम घोड़ा लाने का संदेश नहीं भेजा था?" ऐसा कहकर वह उठा और युवकों की ओर देखकर बोला, "जो गधा तुम लाए हो उसे अंदर लाओ।" उस गधे को राजा के सामने रखकर उसने पूछा, "महाराज, इस गधे का क्या मूल्य है?" राजा ने कहा, "यदि यह उपयोगी है, तो इसका मूल्य आठ रुपये है।" "पर यदि वह एक शुद्ध नस्ल की सिंधी घोड़ी से खच्चर का बच्चा पैदा करे, तो उसकी कीमत क्या होगी?" "वह अनमोल होगा।" "महाराज, आप ऐसा क्यों कहते हैं? क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा कि हर मामले में पिता, पुत्रों से श्रेष्ठ होता है? आपके अपने ही कथन के अनुसार गधा खच्चर के बच्चे से अधिक मूल्यवान है। क्या आपके बुद्धिमानों ने यह न जानने पर मेरे ऊपर ताली नहीं बजाई और हँसे नहीं? आपके बुद्धिमानों की यह कैसी बुद्धिमत्ता है! आपने उन्हें कहाँ से प्राप्त किया?" और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उन्होंने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:"ये तुम्हें कहाँ से मिले?" और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उसने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:"ये तुम्हें कहाँ से मिले?" और उन चारों के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए उसने प्रथम पुस्तक के इस श्लोक में राजा को संबोधित किया:

"हे श्रेष्ठ राजा, क्या आप यह मानते हैं कि पिता हमेशा पुत्र से श्रेष्ठ होता है?"
तो क्या गधा खच्चर से श्रेष्ठ है; गधा खच्चर का जनक है।

यह कहने के बाद, उसने आगे कहा, "महाराज, यदि पिता पुत्र से श्रेष्ठ है, तो मेरे पिता को अपनी सेवा में ले लीजिए; यदि पुत्र पिता से श्रेष्ठ है, तो मुझे ले लीजिए।" राजा प्रसन्न हुआ; और समस्त सभा ने हज़ार बार तालियाँ बजाकर और प्रशंसा करते हुए कहा—"बुद्धिमान व्यक्ति ने प्रश्न का सही हल निकाल लिया है!" उंगलियाँ चटकाने और हज़ार दुपट्टे लहराने की आवाज़ गूंजी; चारों निराश हो गए।

अब माता-पिता के महत्व को बोधिसत्व से बेहतर कोई नहीं जानता। यदि कोई उनसे पूछे कि उन्होंने ऐसा क्यों किया, तो उनका जवाब यह था कि उन्होंने अपने पिता का अपमान करने के लिए ऐसा नहीं किया, बल्कि जब राजा ने संदेश भेजा, "बेहतर घोड़ा भेजो या अधिक उत्कृष्ट घोड़ा भेजो," तो उन्होंने ऐसा उस समस्या को हल करने, अपनी बुद्धिमत्ता को मान्यता दिलाने और चारों ऋषियों की चमक फीकी करने के लिए किया।

राजा प्रसन्न हुए; और सुगंधित जल से भरा सोने का कलश लेकर व्यापारी के हाथ पर जल डालते हुए बोले, "पूर्वी बाज़ार नगर को राजा की ओर से उपहार स्वरूप आनंदित कीजिए। अन्य व्यापारी इसके अधीन रहें।" यह कहकर उन्होंने बोधिसत्व की माता को सभी प्रकार के आभूषण भेजे। गधे के प्रश्न के बोधिसत्व द्वारा हल किए जाने से प्रसन्न होकर राजा ने बोधिसत्व को अपना पुत्र बनाने की इच्छा व्यक्त की और पिता से कहा, "हे महाराज, मुझे इस महान पुरुष को अपना पुत्र बना दीजिए।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "महाराज, यह अभी बहुत छोटा है; अभी इसके मुँह से दूध की गंध आती है; परन्तु जब यह बड़ा होगा, तब यह आपके साथ रहेगा।" राजा ने कहा, "हे महाराज, अब से आपको इस बालक से अपना लगाव त्याग देना होगा; आज से यह मेरा पुत्र है। मैं अपने पुत्र का पालन-पोषण कर सकता हूँ, इसलिए आप जाइए।" फिर उन्होंने उसे विदा कर दिया। उन्होंने राजा के प्रति सम्मान व्यक्त किया, उनके पुत्र को गले लगाया, उसे बाहों में भरकर उसके सिर पर चुंबन किया और उसे अच्छी सलाह दी। पुत्र ने भी अपने पिता को विदाई दी, उनसे चिंता न करने की विनती की और उन्हें विदा कर दिया।

तब राजा ने ऋषि से पूछा कि क्या वे महल के अंदर भोजन करेंगे या बाहर। ऋषि ने सोचा कि इतने सारे सेवकों के साथ महल के बाहर भोजन करना ही बेहतर होगा, इसलिए उन्होंने यही उत्तर दिया। तब राजा ने उन्हें एक उपयुक्त घर दिया और हजार युवकों सहित सभी के भरण-पोषण का प्रबंध करते हुए उन्हें सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कीं। उस समय से ऋषि राजा की सेवा में लग गए।

19. अब राजा ने ऋषि की परीक्षा लेने की इच्छा की। उस समय दक्षिणी द्वार के पास एक झील के किनारे स्थित ताड़ के पेड़ पर कौवे के घोंसले में एक कीमती रत्न था, और उस रत्न का प्रतिबिंब झील में दिखाई देता था। लोगों ने राजा को बताया कि झील में एक रत्न है। राजा ने सेनाक को बुलवाया और कहा, "लोग कहते हैं कि झील में एक रत्न है; हम उसे कैसे प्राप्त करें?" सेनाक ने कहा, "सबसे अच्छा तरीका है कि झील का पानी निकाल दिया जाए।" राजा ने उसे ऐसा करने का आदेश दिया; और उसने कई लोगों को इकट्ठा किया, और पानी और कीचड़ निकाला, और तल की मिट्टी खोदी—पर उसे कोई रत्न नहीं दिखाई दिया। लेकिन जब झील फिर से भर गई, तो रत्न का प्रतिबिंब फिर से दिखाई दिया। सेनाक ने फिर से वही किया, और उसे कोई रत्न नहीं मिला। तब राजा ने ऋषि को बुलवाया और कहा, "झील में एक रत्न दिखाई दिया है। सेनाक ने सारा पानी और मिट्टी निकाल दी है और ज़मीन खोद दी है, लेकिन वह नहीं मिला। लेकिन जैसे ही झील भरती है, वह फिर से प्रकट हो जाता है। क्या आप उसे ढूंढ सकते हैं?" ऋषि ने उत्तर दिया, "महाराज, यह कोई कठिन कार्य नहीं है, मैं उसे आपके लिए ढूंढ लाऊंगा।" राजा इस वचन से प्रसन्न हुए और अपने साथ बहुत से लोगों को लेकर ऋषि के ज्ञान की शक्ति देखने के लिए झील पर गए। महान ऋषि किनारे पर खड़े होकर देखने लगे। उन्होंने देखा कि रत्न झील में नहीं, बल्कि पेड़ पर होना चाहिए। उन्होंने ज़ोर से कहा, "महाराज, झील में कोई रत्न नहीं है।" "क्या! क्या वह पानी में दिखाई नहीं दे रहा?" तब उन्होंने पानी की एक बाल्टी मंगवाई और कहा, "अब महाराज, देखिए—क्या यह रत्न बाल्टी और झील दोनों में दिखाई नहीं दे रहा?" "तो फिर

रत्न कहाँ है?” "महाराज, झील और बाल्टी दोनों में जो प्रतिबिंब दिखाई दे रहा है, वही असली रत्न है, लेकिन रत्न तो इस ताड़ के पेड़ पर कौवे के घोंसले में है: एक आदमी को भेजकर उसे नीचे भिजवाइए।" राजा ने वैसा ही किया: वह आदमी रत्न को नीचे ले आया, और ऋषि ने उसे राजा के हाथ में रख दिया। सभी लोगों ने ऋषि की प्रशंसा की और सेनाक का उपहास किया—"एक कीमती रत्न पेड़ पर कौवे के घोंसले में है, और सेनाक बलवान पुरुषों से झील खुदवाता है! निश्चय ही एक बुद्धिमान व्यक्ति को महोषधा के समान होना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने महान ऋषि की प्रशंसा की; और राजा उनसे प्रसन्न होकर उन्हें अपने गले से मोतियों की माला भेंट की, और हजार बालकों को मोतियों की मालाएँ दीं, और उन्हें और उनके सेवकों के समूह को बिना किसी औपचारिकता के उनकी सेवा करने का अधिकार प्रदान किया।

एक दिन राजा ऋषि के साथ उद्यान में गए; तभी मेहराबदार द्वार के ऊपर रहने वाले एक गिरगिट ने राजा को आते देखा और नीचे आकर ज़मीन पर लेट गया। यह देखकर राजा ने पूछा, "हे महाराज, यह क्या कर रहा है?" "महाराज, आपका आदर कर रहा है।" "यदि ऐसा है, तो इसकी सेवा व्यर्थ न जाए; इसे कुछ दान दीजिए।" "महाराज, दान इसके किसी काम का नहीं; इसे तो बस कुछ खाने को चाहिए।" "और यह क्या खाता है?" "मांस, महाराज।" "इसे कितना मिलना चाहिए?" "एक छोटे सिक्के के बराबर, महाराज।" "एक छोटे सिक्के के बराबर तो राजा का दान कुछ भी नहीं है," राजा ने कहा, और उन्होंने एक आदमी को आदेश देकर भेजा कि वह गिरगिट के लिए नियमित रूप से आधा आना के बराबर मांस लाए और उसे दे। इसके बाद ऐसा ही किया गया। लेकिन एक उपवास के दिन, जब कोई पशु वध नहीं किया जाता, तो उस आदमी को मांस नहीं मिला; इसलिए उसने आधे आना के सिक्के में छेद किया, उसे धागे में पिरोया और गिरगिट के गले में बाँध दिया। इससे गिरगिट को बहुत गर्व हुआ। उस दिन राजा फिर उद्यान में गया; परन्तु गिरगिट ने राजा को पास आते देख, धन के घमंड में राजा के बराबर हो गया और मन ही मन सोचने लगा—"हे वेदेह, तुम भले ही बहुत धनी हो, पर मैं भी हूँ।" इसलिए वह नीचे नहीं उतरा, बल्कि मेहराब पर ही लेटा रहा और अपना सिर सहलाता रहा। यह देखकर राजा ने कहा, "हे महाराज, यह प्राणी आज हमेशा की तरह नीचे नहीं उतरा; क्या कारण है?" और उसने पहला श्लोक सुनाया:

"गिरगिट मेहराब पर नहीं चढ़ता था: समझाओ, महोसाधा।"
गिरगिट इतना अड़ियल क्यों हो गया है?

ऋषि ने समझा कि उस व्यक्ति को इस उपवास के दिन, जब किसी जानवर को मारा नहीं जा रहा था, मांस नहीं मिल पा रहा होगा, और वह प्राणी अपने गले में लटके सिक्के के कारण घमंडी हो गया होगा; इसलिए उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:

गिरगिट को वह मिल गया है जो उसे पहले कभी नहीं मिला था, आधा आना का सिक्का; इसलिए
वह मिथिला के स्वामी वेदेह से घृणा करता है।

राजा ने उस व्यक्ति को बुलवाया और उससे पूछताछ की, और उसने सारी बात सच-सच बता दी। तब राजा उस ऋषि से पहले से भी अधिक प्रसन्न हुआ, जो (ऐसा प्रतीत होता था) बिना कोई प्रश्न पूछे, बुद्ध के समान सर्वोच्च ज्ञान से गिरगिट के रहस्य को भलीभांति जानता था; इसलिए उसने उसे चारों द्वारों से प्राप्त राजस्व दे दिया। गिरगिट से क्रोधित होकर उसने दान बंद करने का विचार किया, लेकिन ऋषि ने उसे बताया कि यह उचित नहीं है और उसे ऐसा करने से रोक दिया।

मिथिला में रहने वाला एक बालक पिंगुत्तरा तक्षशिला आया और एक प्रसिद्ध गुरु के अधीन अध्ययन करने लगा। उसने शीघ्र ही अपनी शिक्षा पूरी कर ली। फिर लगन से अध्ययन करने के बाद उसने गुरु से विदा लेकर जाने का निश्चय किया। परन्तु गुरु के परिवार में यह रिवाज था कि यदि कोई पुत्री विवाह योग्य हो तो उसे सबसे बड़े शिष्य को दे दिया जाता था। गुरु की पुत्री अप्सरा के समान सुंदर थी, इसलिए उन्होंने कहा, "पुत्र, मैं अपनी पुत्री तुझे दे रहा हूँ और तू उसे अपने साथ ले जा।" यह बालक दुर्भाग्यशाली था, परन्तु वह कन्या अत्यंत भाग्यशाली थी। जब उसने उसे देखा तो उसे उससे कोई लगाव नहीं हुआ; परन्तु यद्यपि उसने ऐसा कहा, फिर भी गुरु के वचन का अनादर न करते हुए वह मान गया और ब्राह्मण ने पुत्री का विवाह उससे कर दिया। रात्रि हुई और वह सजी हुई पलंग पर लेट गया; जैसे ही वह पलंग पर आई, वह कराहते हुए उठा और ज़मीन पर लेट गया। वह उठी और उसके बगल में लेट गई, फिर वह उठा और दोबारा लेट गया। जब वह दोबारा बिस्तर पर आई तो वह उठ खड़ा हुआ—क्योंकि दुर्भाग्य और सौभाग्य का मेल नहीं होता। इसलिए लड़की बिस्तर पर ही रही और वह ज़मीन पर पड़ा रहा। इस तरह उन्होंने सात दिन बिताए। फिर उसने अपने गुरु से विदा ली और उसे अपने साथ लेकर चला गया। रास्ते में उन दोनों के बीच एक भी बातचीत नहीं हुई। दोनों दुखी होकर मिथिला पहुँचे। कस्बे से कुछ दूर पिंगुत्तरा ने फलों से लदा एक अंजीर का पेड़ देखा और भूख से चढ़कर कुछ अंजीर खा लिए। लड़की भी भूखी थी, वह पेड़ के नीचे आई और बोली—"मेरे लिए भी कुछ फल नीचे गिरा दो।" "क्या!" उसने कहा, "क्या तुम्हारे हाथ-पैर नहीं हैं? खुद चढ़कर ले लो।" वह भी चढ़कर खाने लगी। जैसे ही उसने देखा कि वह चढ़ गई है, वह जल्दी से नीचे आया और पेड़ के चारों ओर कांटे जमा कर दिए और मन ही मन कहने लगा—"आखिरकार मैंने इस बेचारी औरत से छुटकारा पा लिया।" वह नीचे नहीं उतर सकी और जहाँ बैठी थी वहीं बैठी रही। अब राजा, जो जंगल में समय बिता रहे थे, शाम के समय अपने हाथी पर सवार होकर शहर लौट रहे थे, तभी उनकी नज़र उस स्त्री पर पड़ी और वे उससे मोहित हो गए। उन्होंने यह पूछने के लिए संदेश भेजा कि क्या उसका कोई पति है। उसने उत्तर दिया, "हाँ, मेरा एक पति है, जिसे मेरे परिवार ने मुझे सौंपा था; लेकिन वह चला गया है और मुझे यहाँ अकेला छोड़ गया है।" दरबारी ने यह बात राजा को

बताई, जिस पर राजा ने कहा, "खजाना तो राजमहल का है।" उसे नीचे उतारा गया और हाथी पर बिठाकर महल ले जाया गया, जहाँ रानी के रूप में उस पर आशीर्वाद का जल छिड़का गया। वह राजा की प्रियतम थी; और उसका नाम उदुम्बरा या अंजीर की रानी रखा गया क्योंकि राजा ने उसे पहली बार अंजीर के पेड़ पर देखा था।

इसके एक दिन बाद, नगर द्वार के पास रहने वालों को राजा के उद्यान में घूमने जाने के लिए सड़क साफ़ करनी पड़ी; और पिंगुत्तरा, जिसे अपनी आजीविका कमानी थी, ने अपने कपड़े समेटे और कुदाल से सड़क साफ़ करने का काम शुरू कर दिया। सड़क साफ़ होने से पहले ही राजा और रानी उदुम्बरा रथ में सवार होकर आ गए; और रानी ने उस बेचारे को सड़क साफ़ करते देख अपनी खुशी नहीं रोक पाई और उसे वहाँ देखकर मुस्कुरा दी। राजा को उसकी मुस्कान देखकर गुस्सा आया और उसने पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। रानी ने कहा, "महाराज, वह सड़क साफ़ करने वाला मेरा पूर्व पति है, जिसने मुझे अंजीर के पेड़ पर चढ़ाया और फिर उसके चारों ओर कांटे जमा कर दिए और मुझे वहीं छोड़ दिया; जब मैंने उसे देखा तो मैं अपनी किस्मत पर विजय महसूस करने से खुद को रोक नहीं पाई और उस बेचारे को वहाँ देखकर मुस्कुरा दी।" राजा ने कहा, "झूठ बोल रही हो, तुम किसी और पर हँसी हो, और मैं तुम्हें मार डालूँगा!" और उसने अपनी तलवार निकाल ली। रानी घबरा गई और बोली, "महाराज, कृपया अपने बुद्धिमानों से पूछिए!" राजा ने सेनाका से पूछा कि क्या वह उसकी बात पर विश्वास करता है। सेनाका ने कहा, "नहीं, महाराज, मैं विश्वास नहीं करता, क्योंकि भला कोई ऐसी स्त्री को, जिसे एक बार पा लेने के बाद, छोड़ दे?" यह सुनकर वह पहले से भी अधिक भयभीत हो गई। लेकिन राजा ने सोचा, "सेनाका को इसके बारे में क्या पता है? मैं ऋषि से पूछूंगा"; और उन्होंने यह श्लोक सुनाते हुए उनसे पूछा:

"यदि कोई स्त्री सदाचारी और सुंदर हो,
और कोई पुरुष उसे न चाहे—क्या तुम इस पर विश्वास करते हो महोसाधा?
ऋषि ने उत्तर दिया:

"हे राजा, मुझे इस पर पूरा विश्वास है: वह व्यक्ति एक अभागा और बदनसीब होगा;
सौभाग्य और दुर्भाग्य कभी एक साथ नहीं मिल सकते।
इन शब्दों से राजा का क्रोध शांत हुआ, उनका हृदय प्रसन्न हुआ और उन्होंने कहा, "हे ज्ञानी! यदि आप यहाँ न होते, तो मैं उस मूर्ख सेनाक की बातों पर विश्वास कर लेता और इस अनमोल स्त्री को खो देता: आपने मेरी रानी की रक्षा की है।" उन्होंने ऋषि को एक हजार सिक्के भेंट किए। तब रानी ने राजा से आदरपूर्वक कहा, "महाराज, इस ज्ञानी व्यक्ति के कारण ही मेरा जीवन बचा है; मुझे यह वरदान दीजिए कि मैं उन्हें अपने सबसे छोटे भाई के समान मान सकूँ।" "जी, मेरी रानी, मैं सहमत हूँ, वरदान दिया जाता है।" "तो, महाराज, आज से मैं अपने भाई के बिना कोई भी उत्तम भोजन नहीं खाऊँगी, आज से हर मौसम में मेरा द्वार उनके लिए मीठे व्यंजन भेजने के लिए खुला रहेगा - यही वरदान मैं चाहती हूँ।" "यह वरदान भी आपको मिलेगा, मेरी रानी," राजा ने कहा। यहीं पर सौभाग्य और दुर्भाग्य का प्रश्न समाप्त होता है।

एक दिन, राजा नाश्ते के बाद लंबी सैर पर टहल रहे थे, तभी उन्होंने एक दरवाजे से एक बकरी और कुत्ते को आपस में दोस्ती करते देखा। यह बकरी हाथियों के अस्तबल के पास फेंकी गई घास को उनके हाथ लगने से पहले ही खा लेती थी; हाथी के रखवाले उसे पीट-पीटकर भगा देते थे; और जब वह मिमियाते हुए भाग रही थी, तो एक आदमी तेजी से उसके पीछे भागा और उसकी पीठ पर डंडे से वार किया। दर्द से कराहती हुई बकरी महल की बड़ी दीवार के पास एक बेंच पर लेट गई। वहीं एक कुत्ता था जो जीवन भर शाही रसोई की हड्डियों, खाल और कचरे पर पला-बढ़ा था। उसी दिन रसोइए ने खाना तैयार कर परोसा और जब वह अपने शरीर से पसीना पोंछ रहा था, तभी कुत्ते को मांस और मछली की गंध सहन नहीं हुई और वह रसोई में घुस गया, ढक्कन हटाकर मांस खाने लगा। लेकिन बर्तनों की आवाज सुनकर रसोइए दौड़ा और कुत्ते को देखा: उसने दरवाजे पर दस्तक दी और डंडों और पत्थरों से उसे पीटा। कुत्ते ने मुंह से मांस गिरा दिया और भौंकते हुए भाग गया; रसोइए ने उसे भागते देख उसका पीछा किया और छड़ी से उसकी पीठ पर ज़ोर से मारा। कुत्ता अपनी पीठ झुकाकर और एक पैर उठाकर उस जगह पहुंचा जहां बकरी लेटी थी। तब बकरी बोली, "दोस्त, तुम अपनी पीठ क्यों झुका रहे हो? क्या तुम्हें पेट दर्द हो रहा है?" कुत्ते ने जवाब दिया, "तुम भी अपनी पीठ झुका रहे हो, क्या तुम्हें पेट दर्द हो रहा है?" उसने अपनी कहानी सुनाई। तब बकरी बोली, "अच्छा, क्या तुम फिर कभी रसोई में जा पाओगे?" "नहीं, यह मेरी जान के बराबर है। क्या तुम फिर कभी अस्तबल में जा पाओगे?" "तुम्हारे जितना नहीं, यह मेरी जान के बराबर है।" खैर, वे सोचने लगे कि वे कैसे गुज़ारा करेंगे। तब बकरी बोली, "अगर हम साथ रह सकें तो मेरे पास एक उपाय है।" "बताओ।" "अच्छा, महोदय, आपको अस्तबल जाना होगा; हाथी के रखवाले आपकी ओर ध्यान नहीं देंगे, क्योंकि वे सोचते हैं कि यह घास नहीं खाता; और आपको मेरे लिए घास लानी होगी। मैं रसोई में जाता हूँ, और रसोइया मेरी ओर ध्यान नहीं देगा, यह सोचकर कि मैं मांस नहीं खाता, इसलिए मैं आपके लिए मांस ला दूँगा।" "यह तो बढ़िया योजना है," दूसरे ने कहा, और उन्होंने सौदा कर लिया: कुत्ता अस्तबल गया और अपने दाँतों में घास का एक गट्ठा लेकर आया और उसे दीवार के पास रख दिया; दूसरा रसोई में गया और अपने मुँह में मांस का एक बड़ा टुकड़ा लेकर उसी जगह पर आ गया। कुत्ते ने मांस खाया और बकरी ने घास; और इस तरह इस चतुराई भरे तरीके से वे दीवार के पास सद्भाव से एक साथ रहने लगे। जब राजा ने उनकी मित्रता देखी तो उसने सोचा—"मैंने ऐसा पहले कभी नहीं देखा। यहाँ दो जन्मजात शत्रु मित्रता से रह रहे हैं। मैं इसे अपने बुद्धिमानों

के सामने प्रश्न के रूप में रखूँगा; जो इसे नहीं समझ पाएँगे उन्हें मैं राज्य से निकाल दूँगा, और यदि कोई इसका उत्तर दे देगा तो मैं उसे अतुलनीय ऋषि से मिलवाऊँगा और उसका पूरा सम्मान करूँगा। आज समय नहीं है; लेकिन कल जब वे मुझसे मिलने आएँगे तो मैं उनसे यह प्रश्न पूछूँगा।"इसलिए अगले दिन जब ज्ञानी पुरुष उससे मिलने आए, तो उसने अपना प्रश्न इन शब्दों में पूछा:

"दो जन्मजात शत्रु, जो दुनिया में पहले कभी एक-दूसरे के सात कदम के करीब भी नहीं आ सकते थे, अब मित्र बन गए हैं और अविभाज्य हैं। इसका कारण क्या है?"

इसके बाद उन्होंने एक और छंद जोड़ा:

"यदि आज दोपहर से पहले तुम इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके, तो मैं तुम सबको देश निकाला दे दूंगा। मुझे अज्ञानी लोगों की कोई आवश्यकता नहीं है।"

अब सेनाक पहले आसन पर और ऋषि अंतिम आसन पर बैठे थे; ऋषि मन ही मन सोच रहे थे, "यह राजा इतना मंदबुद्धि है कि स्वयं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता, उसने कुछ तो देखा होगा। यदि मुझे एक दिन का समय मिल जाए तो मैं इस पहेली को हल कर दूंगा। सेनाक इसे एक दिन के लिए टालने का कोई न कोई उपाय जरूर ढूंढ लेगा।" अन्य चार ऋषि कुछ भी नहीं देख पा रहे थे, मानो वे किसी अंधेरे कमरे में हों: सेनाक ने बोधिसत्व की ओर देखा कि वे क्या करेंगे, बोधिसत्व ने सेनाक को देखा। महोसाधा के हावभाव से सेनाक ने उनकी मनस्थिति का अंदाजा लगा लिया; उन्होंने देखा कि यह ऋषि भी प्रश्न को नहीं समझ पा रहे हैं, वे आज इसका उत्तर नहीं दे सकते, बल्कि एक दिन का समय चाहते हैं; वे उनकी यह इच्छा पूरी करेंगे। इसलिए वे जोर से हँसे और आश्वस्त करते हुए बोले, "क्या, महाराज, यदि हम आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाए तो आप हम सबको निर्वासित कर देंगे?" "जी महाराज।" "अरे, आप जानते हैं कि यह एक जटिल प्रश्न है, और हम इसे हल नहीं कर सकते; कृपया थोड़ा इंतजार कीजिए। भीड़ में जटिल प्रश्न का हल नहीं निकाला जा सकता। हम इस पर विचार करेंगे, और फिर आपको समझाएंगे। तो हमें एक मौका दीजिए।" उन्होंने महान सत्ता पर भरोसा करते हुए ऐसा कहा, और फिर ये दो श्लोक पढ़े:

"भीड़ में, जहाँ लोगों का शोरगुल होता है, हमारा मन भटक जाता है, हमारे विचार एकाग्र नहीं हो पाते और हम प्रश्न का हल नहीं निकाल पाते। परन्तु अकेले में, शांत मन से, वे अलग जाकर इस विषय पर विचार करेंगे, एकांत में दृढ़ता से इसका समाधान निकालेंगे, हे मनुष्यों के स्वामी।"

राजा, हालांकि उनकी बातों से नाराज़ था, फिर भी उन्हें धमकाते हुए बोला, "ठीक है, सोच-विचार करके मुझे बताओ; अगर नहीं बताया तो मैं तुम्हें देश निकाला दे दूंगा।" चारों ज्ञानी पुरुष महल से चले गए, और सेनाक ने दूसरों से कहा, "मित्रों, राजा ने जो प्रश्न पूछा है वह बहुत ही नाजुक है; अगर हम इसका हल नहीं निकाल पाए तो हमारे लिए बहुत बड़ा खतरा है। इसलिए अच्छा भोजन करो और ध्यान से सोचो।" इसके बाद वे सब अपने-अपने घर चले गए। ऋषि उठे और रानी उदंबरा को ढूंढने लगे, और उनसे पूछा, "हे रानी, राजा आज और कल ज्यादातर कहाँ थे?" "महाराज, वे लंबी पगडंडी पर इधर-उधर टहल रहे थे और खिड़की से बाहर देख रहे थे।" "अहा," बोधिसत्व ने सोचा, "उन्होंने वहाँ कुछ तो देखा होगा।" तो वे उस जगह गए और बाहर देखा तो उन्हें बकरी और कुत्ते की हरकतें दिखाई दीं। "राजा का प्रश्न हल हो गया!" उन्होंने निष्कर्ष निकाला, और घर चले गए। बाकी तीनों को कुछ पता नहीं चला, और वे सेनाक के पास आए, जिन्होंने पूछा, "क्या तुम्हें प्रश्न का उत्तर मिल गया?" "नहीं, गुरुजी।" "अगर ऐसा हुआ तो राजा तुम्हें देश निकाला दे देंगे, और तुम क्या करोगे?" "लेकिन तुमने तो इसका हल निकाल लिया है?" "बिल्कुल नहीं, मैंने नहीं।" "अगर तुम इसका हल नहीं निकाल पाए, तो हम कैसे निकालेंगे? हमने राजा के सामने शेरों की तरह दहाड़ लगाई थी और कहा था, चलो सोचते हैं और हल निकाल लेते हैं; और अब अगर हम नहीं निकाल पाए, तो वह क्रोधित हो जाएंगे। हम क्या करें?" "यह प्रश्न हमारे हल करने के लिए नहीं है: निःसंदेह ऋषि ने इसका सौ तरीकों से हल निकाल लिया होगा।" "तो चलो उनके पास चलते हैं।" तो वे चारों बोधिसत्व के द्वार पर आए और अपने आने की सूचना दी, और अंदर आकर उनसे विनम्रता से बात की; फिर एक तरफ खड़े होकर उन्होंने महान सत्ता से पूछा, "महोदय, क्या आपने प्रश्न का हल निकाल लिया है?" "अगर मैंने नहीं निकाला, तो कौन निकालेगा? बेशक मैंने निकाला है।" "तो हमें भी बता दीजिए।" उन्होंने मन ही मन सोचा, "अगर मैं उन्हें नहीं बताऊंगा, तो राजा उन्हें देश निकाला दे देंगे और मुझे सात अनमोल वस्तुएँ देकर सम्मानित करेंगे। लेकिन इन मूर्खों को नष्ट न होने दें - मैं उन्हें बताऊंगा।" अतः उसने उन्हें नीची सीटों पर बिठाया और प्रणाम करने के लिए हाथ ऊपर उठाने को कहा। राजा ने वास्तव में क्या देखा था, यह बताए बिना उसने चार श्लोक रचे और उन्हें पाली भाषा में एक-एक श्लोक सिखाया, ताकि राजा के कहने पर वे उसे सुना सकें। फिर उसने उन्हें विदा कर दिया। अगले दिन वे राजा से मिलने गए और जहाँ बैठने को कहा गया था, वहाँ बैठ गए। राजा ने सेनाक से पूछा, "क्या तुमने प्रश्न का उत्तर दे दिया है, सेनाक?" "महाराज, यदि मैं नहीं जानता तो कौन जान सकता है?" "तो मुझे बताओ।" "सुनिए, महाराज," और उसने सिखाए गए श्लोक को सुनाया।

"युवा भिखारी और युवा राजकुमार भेड़ का मांस पसंद करते हैं और उसमें आनंद लेते हैं; वे कुत्ते का मांस नहीं खाते। फिर भी भेड़ और कुत्ते के बीच मित्रता हो सकती है।"

सेनाक ने श्लोक का पाठ तो किया, पर उसे उसका अर्थ नहीं पता था; परन्तु राजा को पता था क्योंकि उसने वह दृश्य देखा था। "सेनाक ने अर्थ जान लिया है," उसने सोचा; और फिर पुक्कुसा की ओर मुड़कर उससे पूछा। "क्या? क्या मैं बुद्धिमान नहीं हूँ?" पुक्कुसा ने पूछा, और उसने वही श्लोक सुनाया जो उसे सिखाया गया था।

"वे घोड़े की पीठ को ढकने के लिए बकरी की खाल उतार लेते हैं, लेकिन कुत्ते की खाल का इस्तेमाल नहीं करते: फिर भी भेड़ और कुत्ते के बीच दोस्ती हो सकती है।"

वह भी इस मामले को नहीं समझ पाया, लेकिन राजा को लगा कि वह समझ गया है क्योंकि उसने वह चीज़ देखी थी। फिर उसने कविंदा से पूछा और उसने भी अपनी कविता सुनाई:

"मेढ़े सींगों वाले मेढ़े के पास सींग होते हैं, कुत्ते के पास बिल्कुल नहीं होते; एक घास खाता है, दूसरा मांस: फिर भी मेढ़े और कुत्ते के बीच दोस्ती हो सकती है।"

“उसे भी पता चल गया है,” राजा ने सोचा और देविंदा की ओर मुड़ गया; जिसने दूसरों के साथ मिलकर अपनी सिखाई हुई पंक्ति का पाठ किया।

"भेड़ घास और पत्ते दोनों खाती है, कुत्ता न तो घास खाता है और न ही पत्ते; कुत्ता खरगोश या बिल्ली को खा जाएगा: फिर भी भेड़ और कुत्ते के बीच दोस्ती हो सकती है।"

इसके बाद राजा ने ऋषि से पूछा, "मेरे पुत्र, क्या तुम यह प्रश्न समझते हो?" "महाराज, अविची से भवग्ग तक, निम्नतम नरक से उच्चतम स्वर्ग तक, इसे और कौन समझ सकता है?" "तो मुझे बताइए।" "सुनिए, महाराज"; और उन्होंने इन दो श्लोकों का पाठ करके इस तथ्य के बारे में अपना ज्ञान स्पष्ट किया:

"चार पैरों पर आठ आधे पैर और आठ खुरों वाला मेढ़ा, बिना किसी की नज़र में आए, दूसरे के लिए मांस लाता है, और दूसरा उसके लिए घास लाता है। विदेह के मुखिया, मनुष्यों के स्वामी ने अपनी छत से भोंक-भौं और भरपेट मेढ़े के बीच भोजन के आदान-प्रदान को देखा।"

राजा को यह ज्ञात नहीं था कि अन्य लोगों को बोधिसत्व के माध्यम से ज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिए वह यह सोचकर प्रसन्न हुआ कि सभी पाँचों ने अपनी-अपनी बुद्धि से पहेली का हल निकाल लिया है, और उसने यह श्लोक पढ़ा:

"मेरे घर में इतने बुद्धिमान पुरुषों का होना मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है। उन्होंने गहन और सूक्ष्म विषय को अपने उत्कृष्ट शब्दों से समझ लिया है, ये चतुर पुरुष!"

इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "एक अच्छा काम दूसरे अच्छे काम को जन्म देता है," और अगले छंद में उन्होंने अपनी बात दोहराई:

"मैं प्रत्येक को एक रथ और एक मादा खच्चर देता हूँ, प्रत्येक को एक समृद्ध गाँव देता हूँ, जो बहुत ही उत्तम है; ये सब मैं सभी बुद्धिमान पुरुषों को देता हूँ, जो उनके महान भाषण से प्रसन्न हैं।"

यह सब उसने दे दिया। बारहवीं पुस्तक में बकरी का प्रश्न यहीं समाप्त होता है।

लेकिन रानी उदुंबरा जानती थीं कि बाकी लोगों को इस प्रश्न का ज्ञान ऋषि से ही मिला था; और उन्होंने सोचा, "राजा ने तो पाँचों को एक ही इनाम दे दिया, जैसे कोई मटर और सेम में फर्क न करता हो। मेरे भाई को तो विशेष इनाम मिलना चाहिए था।" इसलिए वह गईं और राजा से पूछा, "महाराज, आपके लिए इस पहेली का हल किसने निकाला?" "पाँच ज्ञानी पुरुषों ने, महोदया।" "लेकिन महाराज, उन चारों को यह ज्ञान किससे मिला?" "मुझे नहीं पता, महोदया।" "महाराज, उन्हें क्या पता! यह तो ऋषि ने बताया था—जिन्होंने चाहा कि ये मूर्ख उनके कारण बर्बाद न हों, और उन्हें यह प्रश्न बताया। फिर आप सबको एक ही इनाम दे रहे हैं। यह ठीक नहीं है; आपको ऋषि के लिए अलग से पुरस्कार देना चाहिए।" राजा इस बात से प्रसन्न हुए कि ऋषि ने यह नहीं बताया कि उन्हें यह ज्ञान उनसे मिला था, और उन्हें बहुत बड़ा इनाम देने की इच्छा से उन्होंने सोचा, "कोई बात नहीं: मैं अपने बेटे से दूसरा प्रश्न पूछूंगा, और जब वह उत्तर देगा, तो मैं उसे बड़ा इनाम दूंगा।" इस बारे में सोचते हुए उन्हें गरीब और अमीर के प्रश्न का विचार आया।

एक दिन जब पाँचों ज्ञानी पुरुष उनसे मिलने आए और आराम से बैठ गए, तो राजा ने कहा, "सेनाका, मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।" "जी महाराज, पूछिए।" तब उन्होंने 'गरीब और अमीर का प्रश्न' नामक श्लोक का पहला छंद सुनाया।

"बुद्धिमान और धनहीन, या धनी और बुद्धिहीन—मैं तुमसे यह प्रश्न पूछता हूँ, सेनाका: इन दोनों में से बुद्धिमान व्यक्ति किसे बेहतर मानते हैं?"

यह प्रश्न सेनाका के परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा था, इसलिए उसने तुरंत उत्तर दिया:

"हे राजा, सचमुच, बुद्धिमान और मूर्ख, शिक्षित और अशिक्षित, सभी धनी लोगों की सेवा करते हैं, चाहे वे उच्च कुल के हों और धनी व्यक्ति निम्न कुल का। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान व्यक्ति विनम्र होता है, और धनी व्यक्ति श्रेष्ठ होता है।"

राजा ने यह उत्तर सुना; फिर अन्य तीनों से पूछे बिना, उन्होंने पास बैठे ऋषि महोसाधा से कहा:

"हे महान ज्ञानवान महोसाधा, जो धर्म के समस्त मार्ग को जानते हैं, मैं आपसे भी यही पूछता हूँ: धनवान मूर्ख या कम धन-संपत्ति वाला बुद्धिमान, इन दोनों में से चतुर लोग किसे बेहतर मानते हैं?"

तब उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "हे राजा, सुनो:

मूर्ख व्यक्ति यह सोचकर पाप करता है कि "इस संसार में मैं श्रेष्ठ हूँ"; वह इस संसार की ओर देखता है, परलोक की ओर नहीं, और दोनों में ही उसे हानि उठानी पड़ती है। यह देखकर मैं कहता हूँ: धनवान मूर्ख से बुद्धिमान श्रेष्ठ है।

यह सुनकर राजा ने सेनाक की ओर देखा और कहा, "देखो, महोसाधा तो कहता है कि बुद्धिमान ही श्रेष्ठ होता है।" सेनाक ने कहा, "महाराज, महोसाधा तो बच्चा है; अभी भी उसके मुँह से दूध की गंध आती है। वह क्या जान सकता है?" और उसने यह श्लोक सुनाया:

विज्ञान से धन नहीं मिलता, न ही परिवार या सुंदरता से। उस मूर्ख गोरिमांडा को देखो, वह खूब तरक्की कर रहा है, क्योंकि भाग्य उस पर मेहरबान है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान कंजूस होता है, धनवान बेहतर होता है।

यह सुनकर राजा ने कहा, "अब क्या हुआ, मेरे पुत्र महोसाधा?" उसने उत्तर दिया, "हे स्वामी, सेनाक को क्या पता? वह चावल के ढेर में बैठे कौवे के समान है, दूध पीने की कोशिश कर रहे कुत्ते के समान है: वह स्वयं को तो देखता है, पर उस डंडे को नहीं देखता जो उसके सिर पर गिरने ही वाला है। सुनिए, मेरे स्वामी," और उसने यह श्लोक सुनाया:

"कम बुद्धि वाला व्यक्ति धनवान होने पर मदहोश हो जाता है; विपत्ति आने पर वह स्तब्ध रह जाता है; चाहे भाग्य अच्छा हो या बुरा, वह चिलचिलाती धूप में मछली की तरह तड़पने लगता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान व्यक्ति धनी मूर्ख से श्रेष्ठ है।"

"तो फिर, महाराज!" यह सुनकर राजा ने कहा। सेनाक ने कहा, "महाराज, इसे क्या पता? मनुष्यों की तो बात ही छोड़िए, पक्षी तो फलदार सुंदर वृक्ष की ओर आकर्षित होते हैं," और उसने यह श्लोक सुनाया:

"जैसे जंगल में पक्षी चारों ओर से मीठे फल वाले वृक्ष पर इकट्ठा होते हैं, वैसे ही धनवान व्यक्ति जिसके पास खजाना और दौलत है, उसके लाभ के लिए भीड़ उमड़ पड़ती है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान मितव्ययी होता है, धनवान बेहतर होता है।"

"तो, मेरे पुत्र, अब क्या?" राजा ने पूछा। ऋषि ने उत्तर दिया, "उस तोंद वाले को क्या पता? सुनो, मेरे स्वामी," और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"शक्तिशाली मूर्ख के लिए हिंसा से धन कमाना अच्छा नहीं है; चाहे वह कितना भी जोर से दहाड़े, मूर्ख को सीधे नरक में घसीट लिया जाता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान धनी मूर्ख से श्रेष्ठ है।"

फिर राजा ने पूछा, "तो, सेनाका?" जिस पर सेनाका ने उत्तर दिया:

"गंगा में गिरने वाली सभी धाराएँ अपना नाम और प्रकार खो देती हैं। समुद्र में गिरने वाली गंगा का कोई भेद नहीं रह जाता। इसलिए संसार धन-दौलत के प्रति समर्पित है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान तुच्छ होता है, धनी श्रेष्ठ होता है।"

फिर राजा ने कहा, "अच्छा, ऋषि?" और उन्होंने कुछ छंदों में उत्तर दिया, "सुनिए, राजा!"

"जिस विशाल सागर की उसने बात की, जिसमें अनगिनत नदियाँ बहती रहती हैं, वह सागर जो लगातार तट से टकराता रहता है, फिर भी उसे पार नहीं कर सकता, चाहे वह कितना भी विशाल सागर क्यों न हो। मूर्ख की वाक्पटुता भी ऐसी ही है: उसकी समृद्धि बुद्धिमान से कहीं अधिक है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान समृद्ध मूर्ख से श्रेष्ठ है।"

"तो, सेनाक?" राजा ने कहा। "सुनो, हे राजा!" उसने कहा और यह श्लोक सुनाया:

"उच्च पद पर बैठा धनी व्यक्ति भले ही आत्म-संयम से रहित हो, लेकिन यदि वह दूसरों से कुछ कहता है, तो उसके परिवार में उसकी बात का महत्व होता है; परन्तु धनहीन व्यक्ति के लिए बुद्धिमत्ता का ऐसा प्रभाव नहीं होता। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान शिष्ट होता है, धनी श्रेष्ठ होता है।"

“तो, मेरे पुत्र?” राजा ने फिर कहा। “सुनो, महाराज! उस मूर्ख सेनाका को क्या पता?” और उसने यह श्लोक सुनाया:

"दूसरों के हित में या अपने हित में मूर्ख और कम बुद्धि वाला व्यक्ति झूठ बोलता है; वह सभा में लज्जित होता है, और परलोक में विपत्ति में जाता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: धनी मूर्ख से बुद्धिमान श्रेष्ठ है।"

तब सेनाका ने एक श्लोक का पाठ किया:

"यदि कोई व्यक्ति बहुत बुद्धिमान हो, पर यदि उसके पास चावल या अनाज न हो और वह निर्धन हो, तो यदि वह कुछ कहे, तो उसके परिवार में उसकी बात का कोई महत्व नहीं होता, और ज्ञान से समृद्धि नहीं मिलती। इसलिए मैं कहता हूँ: बुद्धिमान भी तुच्छ होता है, धनी श्रेष्ठ होता है।"

फिर राजा ने कहा, "इस बारे में तुम्हारा क्या कहना है, मेरे पुत्र?" ऋषि ने उत्तर दिया, "सेनाका को क्या पता? वह इस लोक को देखता है, परलोक को नहीं," और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"महान बुद्धिमान व्यक्ति न तो अपने लिए और न ही दूसरों के लिए झूठ बोलता है; वह सभा में सम्मानित होता है और आगे चलकर सुख की ओर जाता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: बुद्धिमान मूर्ख धनी से श्रेष्ठ है।"

तब सेनाका ने एक श्लोक का पाठ किया:

"अमीर परिवारों में हाथी, गाय, घोड़े, रत्नजड़ित बालियां, स्त्रियां पाई जाती हैं; ये सब बिना किसी अलौकिक शक्ति के अमीर आदमी के आनंद के लिए हैं। यह देखकर मैं कहता हूं: बुद्धिमान तुच्छ होता है, अमीर बेहतर होता है।"

ऋषि ने कहा, "वह क्या जानता है?" और बात को समझाते हुए उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"मूर्ख, जो बिना सोचे-समझे काम करता है और मूर्खतापूर्ण बातें बोलता है, जो नासमझ होता है, भाग्य उसे उसी प्रकार त्याग देता है जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुल उतार फेंकता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: धनवान मूर्ख से बुद्धिमान श्रेष्ठ होता है।"

तब राजा ने पूछा, "अब क्या?" तब सेनाक ने कहा, "हे प्रभु, यह छोटा लड़का क्या जान सकता है? सुनो!" और उसने यह श्लोक सुनाया, यह सोचकर कि वह ऋषि को चुप करा देगा:

"हे पूज्यवर, हम पाँच ज्ञानी पुरुष हैं, जो आदरपूर्वक आपकी सेवा में तत्पर हैं; और आप हमारे स्वामी और स्वामी हैं, जैसे सक्का (इंद्र), समस्त प्राणियों के स्वामी, देवदूतों के राजा। यह देखकर मैं कहता हूँ: ज्ञानी तुच्छ होता है, धनी श्रेष्ठ होता है।"

जब राजा ने यह सुना तो उन्होंने सोचा, "सेनाका के बारे में तो यह बात बड़ी चतुराई से कही गई है; मुझे आश्चर्य है कि क्या मेरा पुत्र इसका खंडन कर पाएगा और कुछ और कह पाएगा।" इसलिए उन्होंने उससे पूछा, "हे ज्ञानी महोदय, अब क्या?" परन्तु सेनाका के इस तर्क का खंडन बोधिसत्व के सिवा कोई नहीं कर सका; अतः उस महान सत्ता ने यह कहकर खंडन किया, "हे महाराज, इस मूर्ख को क्या पता? यह तो केवल स्वयं को ही देखता है और ज्ञान की श्रेष्ठता को नहीं जानता। सुनिए, महाराज," और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर में धनवान मूर्ख तो बुद्धिमान व्यक्ति का गुलाम ही होता है; जब बुद्धिमान व्यक्ति चतुराई से उनका हल निकाल लेता है, तब मूर्ख भ्रमित हो जाता है। यह देखकर मैं कहता हूँ: धनवान मूर्ख से बुद्धिमान श्रेष्ठ होता है।"

मानो उसने सिनेरू पर्वत के चरणों से सुनहरी रेत पर चाँद निकाला हो, मानो उसने आकाश में पूर्णिमा का चाँद लाया हो, वैसे ही वह इस तर्क पर अड़ा रहा, वैसे ही उस महान सत्ता ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया। तब राजा ने सेनाका से कहा, "अच्छा, सेनाका, अगर तुम कर सकते हो तो कर लो!" परन्तु जैसे किसी ने अपने भंडार का सारा अनाज खत्म कर दिया हो, वह चुपचाप बैठा रहा, व्याकुल, दुखी।

यदि वह कोई और तर्क दे पाता, तो हजार श्लोकों से भी यह जन्म पूरा नहीं हो पाता। परन्तु जब उसे कोई उत्तर नहीं मिला, तो उस महान सत्ता ने ज्ञान की प्रशंसा में यह श्लोक जारी रखा, मानो वह एक गहरी बाढ़ उंडेल रहा हो:

"सचमुच, ज्ञान को अच्छे लोगों द्वारा महत्व दिया जाता है; धन को इसलिए प्रिय माना जाता है क्योंकि मनुष्य भोग-विलास में लिप्त रहते हैं। बुद्धों का ज्ञान अतुलनीय है, और धन कभी भी ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं हो सकता।"

यह सुनकर राजा उस महान प्राणी द्वारा प्रश्न के समाधान से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उस पर धन की भारी वर्षा की और एक श्लोक का पाठ किया:

"मैंने जो भी पूछा, उन्होंने मुझे उत्तर दिया, हे महोसाधा, धर्म के एकमात्र उपदेशक। एक हजार गायें, एक बैल और एक हाथी, दस रथ जो उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचे जाते हैं, और सोलह उत्तम गाँव, ये सब मैं आपको भेंट करता हूँ, आपके प्रश्न के उत्तर से प्रसन्न होकर।"

यहां अमीर और गरीब का प्रश्न (पुस्तक XX) समाप्त होता है।

उस दिन से बोधिसत्व का वैभव चरम पर था, और रानी उदंबरा ही सब कुछ संभालती थीं। जब वे सोलह वर्ष के हुए, तो रानी ने सोचा, "मेरा छोटा भाई बड़ा हो गया है, और उसका वैभव भी बहुत है; हमें उसके लिए एक पत्नी ढूंढनी चाहिए।" उन्होंने राजा से यह कहा, और राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा, उसे बता दो।" रानी ने राजा को बताया, और राजा मान गए। रानी ने कहा, "तो चलो, हम तुम्हारे लिए एक दुल्हन ढूंढते हैं, मेरे पुत्र।" बोधिसत्व ने सोचा, "अगर वे मेरे लिए पत्नी चुन लें तो भी मैं संतुष्ट नहीं होऊंगा; मैं अपने लिए खुद ही ढूंढ लूंगा।" और उन्होंने कहा, "महोदया, कुछ दिनों तक राजा को मत बताना, मैं अपनी पसंद की पत्नी ढूंढने जाता हूं, और फिर आपको बताता हूं।" रानी ने उत्तर दिया, "ऐसा ही करो, मेरे पुत्र।" उन्होंने रानी से विदा ली, और अपने घर जाकर अपने साथियों को सूचना दी। फिर उन्होंने किसी तरह एक दर्जी से वस्त्र प्राप्त किए, और अकेले उत्तरी द्वार से उत्तर नगर की ओर निकल गए। उस स्थान पर एक बूढ़ा और जर्जर व्यापारी परिवार रहता था, और उस परिवार में एक बेटी थी, अमारा, जो सुंदर, बुद्धिमान और सौभाग्यशाली थी। उस सुबह तड़के, वह अपने पिता के खेत जोतने के लिए निकली थी, ताकि उन्हें अपने द्वारा पकाया हुआ चावल का दलिया दे सके, और संयोग से वह उसी रास्ते से जा रही थी। जब उस महान प्राणी ने उसे आते देखा तो उसने सोचा, "यह स्त्री सौभाग्यशाली है! यदि यह अविवाहित है तो यह मेरी पत्नी होनी चाहिए।" उसने भी जब उसे देखा तो सोचा, "यदि मैं ऐसे पुरुष के घर में रह सकूँ, तो मैं अपने परिवार को फिर से बसा सकती हूँ।" उस महान प्राणी ने सोचा, "वह विवाहित है या नहीं, मुझे नहीं पता: मैं उससे हाथ के इशारे से पूछूँगा, और यदि वह बुद्धिमान है तो वह समझ जाएगी।" इसलिए दूर खड़े होकर उसने अपनी मुट्ठी भींच ली। वह समझ गई कि वह उससे पूछ रहा है कि क्या उसका पति है, और उसने अपना हाथ फैला दिया। तब वह उसके पास गया और उसका नाम पूछा। उसने कहा, "मेरा नाम वह है जो न है, न था, और न कभी होगा।" "महोदया, इस संसार में कुछ भी अमर नहीं है, और आपका नाम अमर, अमर होना चाहिए।" "जी हाँ, स्वामी।" "महोदया, आप यह दलिया किसके लिए ले जा रही हैं?" "पुराने समय के देवता (देवदूत) के लिए।" "पुराने समय के देवता माता-पिता होते हैं, और निस्संदेह आपका मतलब आपके पिता से है।" "हाँ, स्वामी।" "आपके पिता क्या करते हैं?" "वे एक से दो बनाते हैं।" अब, एक से दो बनाना ही हल चलाना है। "वे हल चला रहे हैं, महोदया।" "जी हाँ, स्वामी।" "और आपके पिता कहाँ हल चला रहे हैं?" "जहाँ जाने वाले फिर कभी नहीं आते।" "वह स्थान जहाँ से जाने वाले फिर कभी नहीं आते, वह कब्रिस्तान है: वे कब्रिस्तान के पास हल चला रहे हैं।" "जी हाँ, स्वामी।" "क्या आप आज फिर आएंगी, महोदया?" "अगर मैं आऊँगी तो नहीं आऊँगी, अगर मैं नहीं आऊँगी तो आऊँगी।" "मुझे लगता है, महोदया, आपके पिता नदी के किनारे हल चला रहे हैं, और अगर बाढ़ आई तो आप नहीं आएंगी, अगर नहीं आई तो आप आएंगी।" इस बातचीत के बाद,अमारा नाम की महिला ने उन्हें दलिया पीने के लिए दिया। भगवान ने मना करना उचित न समझते हुए कहा कि वे थोड़ा सा लेना चाहेंगे। फिर उन्होंने दलिया का घड़ा नीचे रख दिया; और भगवान ने सोचा, "अगर वह पहले घड़ा धोए बिना और मुझे हाथ धोने के लिए पानी दिए बिना मुझे दलिया देंगी, तो मैं उन्हें छोड़कर चला जाऊंगा।" लेकिन उन्होंने घड़े में से पानी निकाला और उन्हें हाथ धोने के लिए दिया, घड़ा खाली ही ज़मीन पर रख दिया, उनके हाथों में नहीं, घड़े में दलिया को हिलाया और घड़े में भर दिया। लेकिन उसमें चावल बहुत कम थे, और भगवान ने कहा, "हे महोदया, इसमें तो चावल बहुत कम हैं!" "हमारे पास पानी नहीं था, स्वामी।" "आपका मतलब है कि जब आपके खेत में फसल उग रही थी, तब आपको पानी नहीं मिला?" "हाँ, स्वामी।" तो उन्होंने अपने पिता के लिए थोड़ा दलिया रख लिया और थोड़ा सा बोधिसत्व को दे दिया। उन्होंने दलिया पिया, कुल्ला किया और कहा, "महोदया, मैं आपके घर जाऊंगा; कृपया मुझे रास्ता दिखाइए।" उन्होंने प्रथम ग्रंथ में दिए गए एक श्लोक का पाठ करके ऐसा किया:

"केक और दलिया के रास्ते, और फूल से लदे दो पत्तों वाले पेड़ के रास्ते, जिस हाथ से मैं खाता हूँ, उसी हाथ से मैं तुम्हें जाने के लिए कहता हूँ, न कि उस रास्ते से जिससे मैं नहीं खाता: वही बाज़ार-नगर का रास्ता है, वह गुप्त मार्ग जिसे तुम्हें खोजना होगा।"

गुप्त मार्ग का प्रश्न यहीं समाप्त होता है।

वह बताए गए रास्ते से घर पहुँचा; और अमारा की माँ ने उसे देखकर बैठने के लिए कहा। "क्या मैं आपको थोड़ा दलिया दूँ, स्वामी?" उसने पूछा। "धन्यवाद, माँ—बहन अमारा ने मुझे थोड़ा सा दिया है।" वह तुरंत समझ गई कि वह उसकी बेटी के कहने पर आया होगा।

जब उस महान व्यक्ति ने उनकी गरीबी देखी, तो कहा, "माँ, मैं एक दर्जी हूँ: क्या आपके पास कुछ सिलने के लिए है?" "जी, स्वामी जी, लेकिन कोई भुगतान नहीं।" "भुगतान की कोई आवश्यकता नहीं है, माँ; कपड़े ले आइए, मैं उन्हें सिल दूँगा।" वह उनके लिए कुछ पुराने कपड़े ले आई, और जैसे-जैसे वह कपड़े लाती गई, बोधिसत्व उन्हें सिलते गए। आप जानते हैं, ज्ञानी व्यक्ति का व्यवसाय हमेशा अच्छा चलता है। फिर उन्होंने कहा, "जाओ, गली के लोगों को बताओ।" उसने गाँव में यह बात फैला दी; और एक ही दिन में बोधिसत्व ने अपने सिलाई के काम से एक हजार सिक्के कमा लिए। उस बूढ़ी औरत ने उनके लिए दोपहर का भोजन पकाया, और शाम को पूछा कि उसे कितना पकाना चाहिए। "माँ, इस घर में रहने वाले सभी लोगों के लिए पर्याप्त।" उसने कुछ करी और मसालों (मिठाइयों) के साथ चावल पकाया।

शाम को अमारा जंगल से लौटी, उसके सिर पर लकड़ियों का गट्ठा और कमर पर पत्ते थे। उसने लकड़ियाँ सामने के दरवाजे के सामने फेंक दीं और पीछे के दरवाजे से अंदर आ गई। उसके पिता बाद में लौटे। भगवान ने स्वादिष्ट भोजन किया; लड़की ने अपने खाने से पहले अपने माता-पिता को भोजन परोसा, उनके और बोधिसत्व के पैर धोए। कई दिनों तक वे वहीं रहकर उसकी देखभाल करते रहे। फिर एक दिन उसकी परीक्षा लेने के लिए उन्होंने कहा, "मेरी प्यारी अमारा, आधा माप चावल लो और उससे मेरे लिए दलिया, एक केक और उबले हुए चावल बनाओ।" वह तुरंत मान गई; और उसने चावल छीले; बड़े दानों से उसने दलिया बनाया, मध्यम दानों को उबाला और छोटे दानों से केक बनाया, उसमें उचित मसाले (मिठाइयाँ) मिलाईं। उसने दलिया और मसाले (मिठाइयाँ) भगवान को दिए; जैसे ही उन्होंने उसका एक निवाला लिया, उन्हें उसका उत्तम स्वाद महसूस हुआ: फिर भी उसकी परीक्षा लेने के लिए उन्होंने कहा, "महोदया, अगर आपको खाना बनाना नहीं आता तो आपने मेरे चावल क्यों खराब कर दिए?" और उसने उसे ज़मीन पर थूक दिया। लेकिन वह नाराज़ नहीं हुई; उसने उसे केक देते हुए कहा, "अगर दलिया अच्छा नहीं है तो केक खा लो।" उसने उसके साथ भी ऐसा ही किया, और उबले हुए चावल को फिर से ठुकराते हुए कहा, "अगर तुम्हें खाना बनाना नहीं आता तो तुमने मेरी संपत्ति क्यों बर्बाद की?" मानो गुस्से में आकर उसने तीनों को एक साथ मिलाया और उसके सिर से नीचे तक पूरे शरीर पर मल दिया, और उसे दरवाजे पर बैठने को कहा। "बहुत अच्छा, मालिक," उसने बिना किसी गुस्से के कहा और बैठ गई। यह देखकर कि उसमें ज़रा भी घमंड नहीं है, उसने कहा, "इधर आओ, मालकिन।" पहले ही शब्द पर वह आ गई।

जब महान पुरुष आए, तो वे अपने साथ एक हजार रुपये और पान की थैली में एक वस्त्र लाए थे। उन्होंने वह वस्त्र निकालकर उसके हाथों में देते हुए कहा, "महोदया, अपनी सहेलियों के साथ स्नान कीजिए और इसे पहनकर मेरे पास आइए।" उसने वैसा ही किया। ऋषि ने उसके माता-पिता को अपने द्वारा लाए या कमाए गए सारे पैसे दे दिए, उन्हें सांत्वना दी और उसे अपने साथ शहर ले गए। वहाँ उसकी परीक्षा लेने के लिए उन्होंने उसे द्वारपाल के घर में बैठाया और द्वारपाल की पत्नी को अपनी योजना बताकर अपने घर चले गए। फिर उन्होंने अपने कुछ आदमियों को बुलवाया और कहा, "मैंने फलाँ घर में एक स्त्री को छोड़ा है; तुम अपने साथ एक हजार सिक्के ले जाओ और उसकी परीक्षा लो।" उन्होंने उन्हें पैसे दिए और भेज दिए। उन्होंने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "यह मेरे स्वामी के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं है।" आदमी वापस आए और परिणाम बताया। उन्होंने उन्हें फिर से भेजा, और तीसरी बार भी; और चौथी बार उन्होंने उन्हें उसे जबरदस्ती घसीटकर ले जाने को कहा। उन्होंने ऐसा ही किया, और जब उसने उस महान हस्ती को उसके पूरे वैभव में देखा, तो वह उसे पहचान नहीं पाई, बल्कि उसे देखते हुए मुस्कुराई और साथ ही रो भी पड़ी। उसने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। उसने उत्तर दिया, "गुरुजी, आपकी महिमा देखकर मैं मुस्कुराई और सोचा कि यह महिमा आपको बिना किसी कारण के नहीं मिली है, बल्कि पिछले जन्म में किसी अच्छे कर्म के फल स्वरूप मिली है: देखिए, अच्छाई का फल! मैंने सोचा और मुस्कुराई। लेकिन यह सोचकर मैं रो पड़ी कि अब आप उस संपत्ति के विरुद्ध पाप करेंगे जिसकी देखभाल और देखरेख कोई और करता है, और नरक में जाएँगे: इसी बात पर मुझे दया आई और मैं रो पड़ी।" इस परीक्षा के बाद उसने उसकी पवित्रता जान ली और उसे उसी स्थान पर वापस भेज दिया। दर्जी का वेश धारण करके वह उसके पास वापस गया और वहीं रात बिताई।

अगली सुबह वह महल गए और रानी उदंबरा को सारी बात बताई; रानी ने राजा को सूचित किया और अमारा को तरह-तरह के आभूषणों से सजाकर, एक भव्य रथ में बिठाकर, बड़े सम्मान के साथ उन्हें महापुरुष के महल में ले गईं और एक भव्य उत्सव मनाया। राजा ने बोधिसत्व को एक हजार सिक्कों के बराबर उपहार भेजा: नगर के सभी लोगों ने, द्वारपालों से लेकर आगे तक, उपहार भेजे। देवी अमारा ने राजा द्वारा भेजे गए उपहारों को दो हिस्सों में बाँटकर एक हिस्सा राजा को वापस भेज दिया; इसी तरह उन्होंने नागरिकों द्वारा भेजे गए सभी उपहारों को भी बाँटकर आधा-आधा लौटा दिया, इस प्रकार उन्होंने लोगों का दिल जीत लिया। उस समय से महापुरुष उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और राजा को सांसारिक और आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान देते रहे।

एक दिन सेनाक ने अपने पास आए तीन अन्य लोगों से कहा, “मित्रों, हम इस साधारण व्यक्ति के पुत्र महोसाधा के लिए पर्याप्त नहीं हैं; और अब उसने अपने से भी अधिक चतुर पत्नी ढूंढ ली है। क्या हम उसके और राजा के बीच दरार पैदा करने का कोई उपाय ढूंढ सकते

हैं?” “हमें क्या पता, गुरुजी—आपको ही निर्णय लेना होगा।” “कोई बात नहीं, एक उपाय है। मैं राजचिह्न से रत्न चुरा लूँगा; तुम, पुक्कुसा, उसका सोने का हार ले लो; तुम, कविंदा, उसका ऊनी वस्त्र ले लो; तुम, देविंदा, उसकी सोने की चप्पल ले लो।” उन चारों ने ये काम करने का उपाय ढूंढ लिया। फिर सेनाक ने कहा, “अब हमें उन्हें बिना उसकी जानकारी के उसके घर में ले जाना होगा।” इसलिए सेनाक ने रत्न को खजूर के एक बर्तन में रखा और एक दासी के द्वारा भेज दिया, और कहा, “यदि कोई और इस खजूर के बर्तन को लेना चाहे, तो मना कर दे, लेकिन बर्तन समेत महोसाधा के घर वालों को दे दे।” वह उसे लेकर ऋषि के घर गई और इधर-उधर घूमते हुए रोने लगी, "क्या आपके पास खजूर नहीं हैं?" लेकिन द्वार पर खड़ी अमारा ने यह देखा: उसने गौर किया कि लड़की कहीं और नहीं जा रही है, ज़रूर कोई बात होगी; इसलिए उसने अपने नौकरों को इशारा करके बुलाया और लड़की से कहा, "इधर आओ, लड़की, मैं खजूर ले आती हूँ।" जब वह आई, तो मालकिन ने अपने नौकरों को बुलाया, लेकिन किसी ने जवाब नहीं दिया, इसलिए उसने लड़की को उन्हें लाने के लिए भेज दिया। जब वह गई हुई थी, अमारा ने बर्तन में हाथ डाला और रत्न पा लिया। जब लड़की लौटी तो अमारा ने उससे पूछा, "तुम किसकी नौकरानी हो, लड़की?" "पंडित सेनाक की दासी।" फिर उसने उसका नाम और उसकी माँ का नाम पूछा और कहा, "ठीक है, मुझे कुछ खजूर दे दो।" "अगर आपको चाहिए, माँ, तो ले लो, बर्तन समेत—मुझे कोई भुगतान नहीं चाहिए।" "तो जाओ," अमारा ने कहा और उसे विदा कर दिया। फिर उसने एक पत्ते पर लिखा, "अमुक महीने के अमुक दिन गुरु सेनाक ने राजा के मुकुट से एक रत्न अमुक कन्या के हाथों उपहार स्वरूप भेजा।" पुक्कुसा ने चमेली के फूलों के डिब्बे में छिपाकर सोने का हार भेजा; कविंदा ने सब्जियों की टोकरी में वस्त्र भेजा; देविंदा ने भूसे के गट्ठे में सोने की चप्पल भेजी। उसने उन सभी को प्राप्त किया और नाम समेत एक पत्ते पर लिख लिया, जिसे उसने महान सत्ता को बताकर रख दिया। फिर वे चारों पुरुष महल में गए और बोले, "हे महाराज! क्या आप अपना रत्नजड़ित मुकुट नहीं पहनेंगे?" "हाँ, मैं पहनूँगा—लाओ," राजा ने कहा। लेकिन उन्हें न तो रत्न मिला और न ही अन्य वस्तुएँ। तब उन चारों ने कहा, "हे महाराज, आपके आभूषण महोसाधा के घर में हैं, और वह उनका उपयोग करता है: वह साधारण व्यक्ति का पुत्र आपका शत्रु है!" इस प्रकार उन्होंने राजा पर कलंक लगाया। फिर उसके शुभचिंतकों ने जाकर महोसाधा को बताया; और उसने कहा, "मैं राजा के पास जाकर पता लगाऊंगा।" वह राजा से मिलने गया, जो क्रोधित था और बोला, "मैं इसे नहीं जानता! यह यहाँ क्या चाहता है?" उसने उसे मिलने की अनुमति नहीं दी। जब ऋषि को पता चला कि राजा क्रोधित है, तो वह घर लौट गया।राजा ने उसे पकड़ने के लिए दूत भेजे; शुभचिंतकों से सुनकर ऋषि ने अमारा को संकेत दिया कि अब उसके जाने का समय आ गया है। इसलिए वह भेस बदलकर दक्षिण नगर भाग गया, जहाँ उसने एक कुम्हार के घर में कुम्हार का काम किया। पूरे नगर में उसके भाग जाने की खबर फैल गई। सेनाका और अन्य तीन ने जब उसके जाने की सूचना सुनी, तो उन्होंने एक-एक करके सभी को बिना बताए अमारा को पत्र भेजे, जिसमें लिखा था: "कोई बात नहीं: क्या हम बुद्धिमान नहीं हैं?" अमारा ने चारों पत्र ले लिए और प्रत्येक को उत्तर दिया कि वे सही समय पर आएँ। जब वे आए, तो अमारा ने उन्हें तरकश से दाढ़ी मुंडवा दी और उन्हें खुले मैदान में फेंक दिया, उन्हें घावों से तड़पाया और चटाई में लपेटकर राजा को संदेश भेज दिया। उन्हें और चारों कीमती वस्तुओं को साथ लेकर वह राजा के प्रांगण में गई और वहाँ राजा को प्रणाम करते हुए बोली, “हे महाराज, ज्ञानी महोषद चोर नहीं हैं; ये रहे चोर। सेनाक ने रत्न चुराया, पुक्कुसा ने सोने का हार चुराया, देविन्द ने सोने की चप्पल चुराई: फलाँ महीने के फलाँ दिन फलाँ दासी के हाथों ये चारों वस्तुएँ भेंट के रूप में भेजी गई थीं। इस पत्ते को देखिए। जो आपका है, उसे ले लीजिए और चोरों को बाहर निकाल दीजिए।” इस प्रकार इन चारों को अपशब्द कहते हुए वह घर लौट गई। परन्तु राजा इस बात से व्याकुल था, और चूँकि बोधिसत्व जा चुके थे और कोई अन्य ज्ञानी पुरुष उपस्थित नहीं था, इसलिए उसने कुछ नहीं कहा, परन्तु उन्हें स्नान करके घर जाने को कहा।

राजमहल में निवास करने वाली देवी को बोधिसत्व के प्रवचन की आवाज सुनाई नहीं दी, तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इसका कारण क्या हो सकता है। कारण का पता चलने पर उन्होंने ऋषि को वापस लाने का निश्चय किया। रात में वे छत्र के एक छिद्र से प्रकट हुईं और राजा से चार प्रश्न पूछे, जो 'देवी के प्रश्न' (चौथे खंड) में "वह हाथों और पैरों से प्रहार करता है" से शुरू होने वाले श्लोकों में मिलते हैं। राजा उत्तर नहीं दे सके और उन्होंने ऐसा कहा, लेकिन अपने ज्ञानियों से पूछने का प्रस्ताव रखा और एक दिन का समय मांगा। अगले दिन उन्होंने उन्हें बुलाने के लिए संदेश भेजा, लेकिन उन्होंने उत्तर दिया, "हम अपने सिर मुंडवाए हुए चेहरे के साथ सड़क पर दिखने में शर्म महसूस करते हैं।" इसलिए उन्होंने उन्हें सिर पर पहनने के लिए चार टोपियां भेजीं। (कहा जाता है कि इन टोपियों की उत्पत्ति यहीं से हुई है।) तब वे आए और जहाँ उन्हें बैठने के लिए कहा गया था, वहाँ बैठ गए। राजा ने कहा, "सेनाका, कल रात मेरे छत्र में निवास करने वाली देवी ने मुझसे चार प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर मैं नहीं दे सका, लेकिन मैंने कहा कि मैं अपने ज्ञानियों से पूछूंगा। कृपया मेरे लिए उनका उत्तर दीजिए।" और फिर उन्होंने पहला श्लोक सुनाया:

"वह हाथों और पैरों से प्रहार करता है, और चेहरे पर घूंसे मारता है; फिर भी, हे राजा, वह प्रिय है, और पति से भी अधिक प्रिय हो जाता है।"

सेनाका हकलाते हुए जो भी पहले आया, वही बोल पड़ा, "कैसे वार करता है, किसे वार करता है," और उसे कुछ भी समझ नहीं आया; बाकी सब चुप थे। राजा बहुत दुखी था। जब रात में देवी ने उससे फिर पूछा कि क्या उसे पहेली का हल मिल गया है, तो उसने कहा, "मैंने अपने चार बुद्धिमानों से पूछा, और वे भी नहीं बता सके।" देवी ने उत्तर दिया, "वे क्या जानते हैं? बुद्धिमान महोषधा के सिवा कोई इसे हल नहीं कर सकता। यदि तुम उसे बुलवाकर इन प्रश्नों का हल नहीं करवाओगे, तो मैं इस अग्नि-तलवार से तुम्हारा सिर काट दूंगी।"

उसे इतना डराने के बाद देवी ने आगे कहा, "हे राजा, जब तुम्हें आग चाहिए हो तो जुगनू मत फूँको, और जब तुम्हें दूध चाहिए हो तो सींग से दुह मत निकालो।" फिर उसने पाँचवें ग्रंथ का जुगनू वाला प्रश्न दोहराया।

जब प्रकाश बुझ जाता है, तो रात में आग की तलाश में जाने वाला कोई भी व्यक्ति जुगनू को आग समझ सकता है? यदि वह उस पर गोबर और घास बिखेर दे, तो यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है; वह उसे जला नहीं सकता। इसी प्रकार, यदि कोई जानवर गाय के सींग से दूध दुहे जहाँ से दूध नहीं निकलता, तो उसे कोई लाभ नहीं मिलता। मनुष्य अनेक तरीकों से लाभ प्राप्त करते हैं, शत्रुओं को दंडित करके और मित्रों के प्रति दया दिखाकर। सेना के प्रमुखों को अपने पक्ष में करके और मित्रों की सलाह से, पृथ्वी के स्वामी पृथ्वी और उसकी संपूर्ण संपत्ति पर अधिकार कर लेते हैं।

"वे तुम्हारी तरह नहीं हैं, जो जुगनू को आग समझकर उस पर फूंक मारते हो: तुम उस व्यक्ति की तरह हो जो पास में आग देखकर जुगनू पर फूंक मारता है, उस व्यक्ति की तरह हो जो तराजू को गिराकर हाथ से तौलता है, उस व्यक्ति की तरह हो जो दूध पाने के लिए सींग से दूध दुहता है, जब तुम सेनाक और उनके जैसे लोगों से गहरे प्रश्न पूछते हो। उन्हें क्या पता? वे जुगनू के समान हैं, महाषोद एक प्रचंड अग्नि के समान ज्ञान से प्रज्वलित हैं। यदि तुम इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोजोगे, तो तुम मरे हुए होगे।" इस प्रकार राजा को भयभीत करके वह गायब हो गई।

इस कारण राजा, मृत्यु भय से व्याकुल होकर, अगले दिन अपने चार दरबारियों को रथों पर सवार होकर नगर के चारों द्वारों से होते हुए भेजने का आदेश दिया, और उन्हें आदेश दिया कि वे जहाँ कहीं भी उनके पुत्र, ज्ञानी महोसाधा को पाएँ, उनका पूर्ण आदर करें और उन्हें शीघ्र वापस ले आएँ। इनमें से तीन दरबारियों को ऋषि नहीं मिले; परन्तु चौथा दरबारी जो दक्षिणी द्वार से गया, उसने दक्षिण नगर में उस महान व्यक्ति को पाया, जो मिट्टी लाकर और अपने स्वामी का चाक घुमाकर, मिट्टी से सना हुआ, भूसे के गट्ठे पर बैठा, थोड़े से सूप में डूबे हुए चावल के गोले खा रहा था। अब उसने ऐसा इसलिए किया: उसने सोचा कि राजा को उस पर सत्ता हथियाने का संदेह हो सकता है, परन्तु यदि उसे पता चलता कि वह कुम्हार का काम करके जीविका चला रहा है, तो यह संदेह दूर हो जाएगा। जब राजा ने दरबारी को देखा, तो वह समझ गया कि वह अपने लिए आया है; उन्हें समझ आ गया था कि उनकी समृद्धि फिर से लौट आएगी और उन्हें देवी अमरा द्वारा तैयार किया गया हर तरह का उत्तम भोजन मिलेगा। इसलिए उन्होंने अपने हाथ में पकड़ी चावल की लोई गिरा दी, खड़े हुए और अपना मुँह धोया। उसी क्षण दरबारी वहाँ आ गया: यह सेनाक के गुट का सदस्य था, इसलिए उसने उससे अशिष्टता से कहा: "हे ज्ञानी गुरु, सेनाक ने जो कहा वह उपयोगी जानकारी थी। आपकी समृद्धि चली गई, आपका सारा ज्ञान व्यर्थ हो गया; और अब आप मिट्टी से सने हुए पुआल के गट्ठे पर बैठे हैं और इस तरह भोजन कर रहे हैं!" और उन्होंने भूरी-पन्हा या ज्ञान का प्रश्न, दसवें खंड से यह श्लोक सुनाया:

"क्या यह सच है, जैसा कि लोग कहते हैं, कि आप गहन ज्ञान वाले व्यक्ति हैं? इतनी समृद्धि, चतुराई और बुद्धिमत्ता आपके किसी काम नहीं आती, क्योंकि इस तरह आप महत्वहीन हो जाते हैं, जबकि आप बस थोड़ा सा सूप पीते हैं।"

तब उस महान सत्ता ने कहा, "अंधे मूर्ख! अपनी बुद्धि की शक्ति से जब मैं चाहूँगा, तब उस समृद्धि को बहाल करूँगा"; और उन्होंने कुछ श्लोक पढ़े।

मैं कष्ट सहकर कल्याण को परिपक्व करता हूँ, मैं उचित और अपूर्व समयों में भेद करता हूँ, अपनी इच्छा से छिपता हूँ; मैं लाभ के द्वार खोलता हूँ; इसलिए मैं उबले हुए चावल से संतुष्ट हूँ। जब मुझे प्रयास का समय दिखाई देता है, अपनी योजनाओं से लाभ को परिपक्व करते हुए, मैं शेर की तरह वीरतापूर्वक व्यवहार करूँगा, और उस महान शक्ति से तुम मुझे फिर देखोगे।

तब दरबारी ने कहा, “हे महाराज, छत्र में निवास करने वाले देवता ने राजा से एक प्रश्न पूछा है, और राजा ने चारों ज्ञानी पुरुषों से पूछा, लेकिन उनमें से कोई भी इसका उत्तर नहीं दे सका! इसलिए राजा ने मुझे आपके पास भेजा है।” “तो फिर,” महान पुरुष ने कहा, “क्या तुम ज्ञान की शक्ति नहीं देखते? ऐसे समय में समृद्धि किसी काम की नहीं, केवल ज्ञानी व्यक्ति ही काम आता है।” इस प्रकार उन्होंने ज्ञान की प्रशंसा की। तब दरबारी ने महान पुरुष को राजा द्वारा दिए गए हजार सिक्के और वस्त्र सौंप दिए, ताकि वे उसे स्नान कराकर तुरंत वस्त्र पहना सकें। कुम्हार यह सोचकर भयभीत हो गया कि ऋषि महोसाधा उसका कारीगर था, लेकिन महान पुरुष ने उसे दिलासा देते हुए कहा, “भयभीत न हों, मेरे स्वामी, आपने मेरी बहुत सहायता की है।” तब उन्होंने उसे हजार सिक्के दिए; और मिट्टी के दाग लगे हुए ही रथ पर सवार होकर नगर चले गए। दरबारी ने राजा को अपने आगमन की सूचना दी। “हे पुत्र, आपने ऋषि को कहाँ पाया?” "महाराज, वह दक्षिण नगर में कुम्हार का काम करके अपनी जीविका कमाता था; परन्तु जैसे ही उसे पता चला कि आपने उसे बुलवाया है, वह बिना नहाए, शरीर पर कीचड़ लगे हुए ही आ गया।" राजा ने सोचा, "यदि वह मेरा शत्रु होता तो वह शान-शौकत और सेवकों के दल के साथ आता; वह मेरा शत्रु नहीं है।" तब उसने आदेश दिया कि उसे अपने घर ले जाया जाए, नहलाया जाए, सजाया जाए और उचित शान-शौकत के साथ वापस आने को कहा जाए। ऐसा ही किया गया। वह लौटा, अंदर आया, राजा को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। राजा ने उससे स्नेहपूर्वक बात की, फिर उसकी परीक्षा लेने के लिए यह श्लोक कहा:

कुछ लोग धनवान होने के कारण पाप नहीं करते, परन्तु कुछ लोग कलंक के भय से पाप नहीं करते। यदि तुम्हारा मन बहुत धन की इच्छा रखता, तो तुम भी ऐसा कर सकते थे। तुम मुझे हानि क्यों नहीं पहुँचाते?

बोधिसत्व ने कहा:

बुद्धिमान लोग धन के सुख के लिए पाप कर्म नहीं करते। भले ही वे दुर्भाग्य से पीड़ित हों और उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाए, वे मित्रता या शत्रुता के कारण अपने अधिकार का त्याग नहीं करते।

राजा ने फिर से इस श्लोक का पाठ किया, जो एक क्षत्रिय का रहस्यमय कथन है:

जो कोई भी व्यक्ति किसी भी कारण से, चाहे छोटा हो या बड़ा, अपने आप को नीची स्थिति से ऊपर उठाता है, वह उसके बाद धार्मिकता के मार्ग पर चलता है।

और उस महान सत्ता ने वृक्ष के उदाहरण के साथ इस श्लोक का पाठ किया:

"जिस वृक्ष की छाया में मनुष्य को बैठकर विश्राम करना चाहिए, उसकी शाखा काटना विश्वासघात है। हम झूठे मित्रों से घृणा करते हैं।"

फिर उसने आगे कहा, "महाराज, यदि किसी पेड़ की इस्तेमाल की हुई शाखा को काटना विश्वासघात है, तो किसी मनुष्य की हत्या करने वाले के बारे में हम क्या कहेंगे? महाराज, आपने मेरे पिता को अपार धन दिया है और मुझ पर कृपा की है: मैं आपके साथ विश्वासघात कैसे कर सकता हूँ?" इस प्रकार अपनी पूरी निष्ठा प्रदर्शित करते हुए उसने राजा को उनके दोष के लिए फटकारा।

जब कोई व्यक्ति किसी को सही मार्ग बताता है या उसके संदेह दूर करता है, तो दूसरा व्यक्ति उसका रक्षक और शरणस्थल बन जाता है; और एक बुद्धिमान व्यक्ति इस मित्रता को नष्ट नहीं करेगा।

फिर राजा को संबोधित करते हुए उन्होंने ये दो छंद कहे:

"मैं आलसी, कामुक और उदासीन व्यक्ति से घृणा करता हूँ।"
झूठा तपस्वी एक दुष्ट तपस्वी होता है।
एक दुष्ट राजा बिना सुने ही किसी मामले का फैसला कर देगा;
ऋषि का क्रोध कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।
योद्धा राजकुमार गहन विचार-विमर्श के बाद सुविचारित निर्णय देता है।
जब राजा सही निर्णय लेते हैं, तो उनकी प्रसिद्धि सदा अमर रहती है।
जब उन्होंने ऐसा कहा, तो राजा ने उस महान सत्ता को फैले हुए सफेद छाते के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया, और स्वयं एक नीची चौकी पर बैठकर बोले: "हे ज्ञानी, सफेद छाते में निवास करने वाली देवी ने मुझसे चार प्रश्न पूछे। मैंने चारों ज्ञानी पुरुषों से परामर्श किया, लेकिन वे उनका उत्तर नहीं दे सके: हे मेरे पुत्र, मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए!" "हे महाराज, चाहे वह छाते की देवी हों, या वे चारों महान राजा हों, या जो भी हों; जो भी प्रश्न पूछे, मैं उसका उत्तर दूंगा।" इस प्रकार राजा ने देवी के समान ही प्रश्न पूछा और कहा:

वह हाथों और पैरों से प्रहार करता है, वह चेहरे पर घूंसे मारता है; और हे राजा, वह पति से भी अधिक प्रिय है।

जब उस महान प्राणी ने प्रश्न सुना, तो उसका अर्थ इतना स्पष्ट हो गया मानो आकाश में चंद्रमा उदय हो गया हो। "सुनो, हे राजा!" उन्होंने कहा, "जब कोई बच्चा अपनी माँ की गोद में खुशी-खुशी खेलता है और हाथों-पैरों से अपनी माँ को पीटता है, उसके बाल खींचता है, मुट्ठी से उसके चेहरे पर मारता है, तो माँ कहती है, नन्हे बदमाश, मुझे क्यों पीट रहे हो? और प्रेम से वह उसे अपने सीने से लगा लेती है, अपने स्नेह को रोक नहीं पाती, और उसे चूमती है; और ऐसे समय में वह उसे अपने पिता से भी अधिक प्रिय होता है।" इस प्रकार उन्होंने इस प्रश्न को स्पष्ट किया, मानो उन्होंने आकाश में सूर्य को उदय कर दिया हो; और यह सुनकर देवी ने राजमहल के छिद्र से अपने शरीर का आधा भाग प्रकट किया और मधुर स्वर में कहा, "प्रश्न का हल हो गया!" फिर उन्होंने उस महान प्राणी को दिव्य सुगंधों और फूलों से भरा एक कीमती डिब्बा भेंट किया और अंतर्धान हो गईं। राजा ने भी उन्हें फूल आदि भेंट किए और दूसरा श्लोक सुनाते हुए उनसे दूसरा प्रश्न पूछा:

वह उसकी जमकर निंदा करती है, फिर भी उसे अपने पास रखना चाहती है: और हे राजा, वह पति से भी अधिक प्रिय है।

महान सत्ता ने कहा, "महाराज, सात वर्ष का बच्चा, जो अब अपनी माँ की आज्ञा मान सकता है, जब उसे खेत या बाज़ार जाने के लिए कहा जाता है, तो वह कहता है, यदि आप मुझे यह या वह मिठाई देंगी तो मैं चला जाऊँगा; माँ कहती है, लो मेरे बेटे, और उसे मिठाई दे

देती है; फिर वह मिठाई खाकर कहता है, हाँ, आप घर की ठंडी छाँव में बैठिए और मैं आपके काम से बाहर जाऊँ! वह मुँह बनाता है, या इशारों से उसका मज़ाक उड़ाता है, और नहीं जाता। माँ क्रोधित हो जाती है, एक छड़ी उठाती है और चिल्लाती है--तुम जो मैं देती हूँ उसे खा लेते हो और फिर खेत में मेरे लिए कुछ नहीं करते! वह उसे डरा देती है, वह पूरी गति से भाग जाता है; वह उसका पीछा नहीं कर पाती और चिल्लाती है--निकल जाओ, चोर तुम्हें टुकड़े-टुकड़े कर दें! इस प्रकार वह उसे जितना चाहे उतना बुरा-भला कहती है; लेकिन जो उसके मुँह से निकलता है वह उसे बिल्कुल नहीं चाहती, और इसलिए वह चाहती है कि वह उसके पास रहे। वह पूरे दिन खेलता रहता है, और शाम को घर आने की हिम्मत न करके वह माँ के घर चला जाता है।" कोई रिश्तेदार। माँ उसके आने का इंतज़ार करते हुए सड़क पर देखती रहती है, लेकिन वह नहीं आता, और यह सोचकर कि वह लौटने की हिम्मत नहीं करेगा, उसका हृदय पीड़ा से भर जाता है; आँखों से आँसू बहते हुए वह अपने परिवार के घरों में उसे ढूँढती है, और जब उसे अपना बेटा दिखता है तो वह उसे गले लगाती है, चूमती है और दोनों बाहों से कसकर पकड़ लेती है, और पहले से कहीं अधिक प्रेम करती है, रोते हुए पूछती है, क्या तुमने मेरी बात गंभीरता से ली? इस प्रकार, महाराज, एक माँ क्रोध के क्षण में अपने बेटे से और भी अधिक प्रेम करती है। इस प्रकार उसने दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया: देवी ने उसे पहले की तरह ही भेंट चढ़ाई और राजा ने भी। फिर राजा ने उससे एक अन्य श्लोक में तीसरा प्रश्न पूछा:

वह बिना कारण के उसका अपमान करती है और बिना वजह उसे फटकारती है; फिर भी, हे राजा, वह पति से भी अधिक प्रिय है।

महान सत्ता ने कहा, "महाराज, जब दो प्रेमी एकांत में प्रेम का आनंद लेते हैं, और उनमें से एक दूसरे से कहता है, 'तुम्हें मेरी परवाह नहीं है, मुझे पता है तुम्हारा दिल कहीं और है!' यह सब झूठ और निराधार है, वे एक दूसरे को कोसते और फटकारते हैं, तब वे एक दूसरे के और भी प्रिय हो जाते हैं। यही प्रश्न का अर्थ है।" देवी ने पहले की तरह ही भेंट चढ़ाई, और राजा ने भी; फिर राजा ने उनसे चौथा श्लोक सुनाते हुए एक और प्रश्न पूछा।

"भोजन-पानी, वस्त्र और आवास तो सभी अच्छे लोग अपने साथ ले जाते हैं; फिर भी, हे राजा, वे पति से भी अधिक प्रिय होते हैं।"

उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, यह प्रश्न धर्मात्मा ब्राह्मण भिक्षुओं के विषय में है। जो परिवार इस लोक और परलोक में विश्वास रखते हैं, वे उन्हें दान देते हैं और दान देने में प्रसन्न होते हैं। जब वे ऐसे ब्राह्मणों को दान ग्रहण करते और खाते हुए देखते हैं, और सोचते हैं, "ये तो हमसे ही भीख मांगने आए थे, हमारा ही भोजन खा रहे हैं," तो उनके मन में इनके प्रति स्नेह बढ़ जाता है। इस प्रकार वे सचमुच दान ग्रहण करते हैं और दान को अपने कंधे पर धारण करके प्रिय हो जाते हैं।" इस प्रश्न का उत्तर मिलने पर देवी ने पहले की तरह ही भेंट देकर अपनी स्वीकृति व्यक्त की और सात अनमोल वस्तुओं से भरा एक कीमती संदूक महापुरुष के चरणों में रखकर उनसे इसे स्वीकार करने की प्रार्थना की। राजा भी प्रसन्न हुए और उन्हें सेनापति बना दिया। इसके बाद महापुरुष की महिमा महान हो गई। यहीं पर देवी का प्रश्न समाप्त होता है।

फिर उन चारों ने कहा, "यह साधारण सा आदमी तो बड़ा हो गया है: अब हम क्या करें?" सेनाका ने उनसे कहा, "ठीक है, मुझे एक योजना सूझी है। चलो उस आदमी के पास चलते हैं और उससे पूछते हैं, किसी को भी राज़ बताना उचित नहीं है? अगर वह कहे, किसी को नहीं, तो हम राजा के सामने उसकी शिकायत करेंगे और कहेंगे कि वह देशद्रोही है।" तो वे चारों उस ज्ञानी व्यक्ति के घर गए, उसे प्रणाम किया और कहा, "ज्ञानी महोदय, हम आपसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं।" "पूछो," उन्होंने कहा। सेनाका ने पूछा, "ज्ञानी महोदय, मनुष्य को किसमें दृढ़ रहना चाहिए?" "सत्य में।" "यह हो जाने के बाद, आगे क्या करना चाहिए?" "उसे धन कमाना चाहिए।" "उसके बाद क्या?" "उसे अच्छी सलाह सीखनी चाहिए।" "उसके बाद क्या?" "उसे अपना राज़ किसी को नहीं बताना चाहिए।" "धन्यवाद, महोदय," उन्होंने कहा और प्रसन्न होकर चले गए, यह सोचते हुए, "आज हम उस आदमी को वापस देखेंगे!" फिर वे राजा के समक्ष उपस्थित हुए और उनसे कहा, "महाराज, यह व्यक्ति आपका गद्दार है!"

राजा ने उत्तर दिया, "मुझे आप पर विश्वास नहीं है, वह कभी मेरे साथ विश्वासघात नहीं करेगा।" "मान लीजिए महाराज, क्योंकि यह सच है! लेकिन यदि आपको विश्वास नहीं है, तो उससे पूछिए कि रहस्य किसे बताया जाना चाहिए; यदि वह विश्वासघाती नहीं है, तो वह कहेगा, फलां व्यक्ति को; लेकिन यदि वह विश्वासघाती है तो वह कहेगा, रहस्य किसी को नहीं बताया जाना चाहिए; जब आपकी इच्छा पूरी हो जाए, तब आप बोल सकते हैं। तब हम पर विश्वास कीजिए, और संदेह करना छोड़ दीजिए।" तदनुसार, एक दिन जब सभी एक साथ बैठे थे, तो उन्होंने 'ज्ञानी व्यक्ति का प्रश्न' पुस्तक के XX भाग का पहला श्लोक सुनाया।

"पांचों ज्ञानी पुरुष अब एक साथ हैं, और मेरे मन में एक प्रश्न उठता है: सुनो। किसे कोई रहस्य प्रकट किया जाना चाहिए, चाहे वह अच्छा हो या बुरा?"

यह सुनकर सेनाका ने राजा को अपने पक्ष में लाने के इरादे से इस श्लोक को दोहराया:

"हे पृथ्वी के स्वामी, अपने मन की बात कहिए! आप हमारे सहारा हैं और हमारे बोझ उठाते हैं। पांच बुद्धिमान पुरुष आपकी इच्छा और अभिलाषा को समझेंगे और फिर बोलेंगे, हे मनुष्यों के स्वामी!"

तब राजा ने अपनी मानवीय दुर्बलता के बावजूद यह श्लोक पढ़ा:

यदि कोई स्त्री सदाचारी, वफादार, अपने पति की इच्छा और मर्जी के प्रति आज्ञाकारी और स्नेही हो, तो पत्नी को अच्छा हो या बुरा, कोई भी रहस्य बता देना चाहिए।

"अब राजा मेरे पक्ष में है!" सेनाक ने सोचा और प्रसन्न होकर उसने एक श्लोक दोहराया, जिसमें उसने अपने आचरण का स्पष्टीकरण दिया।

"जो व्यक्ति संकट में पड़े बीमार व्यक्ति की रक्षा करता है और उसका आश्रय और सहारा बनता है, वह अपने मित्र को कोई रहस्य बता सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा।"

तब राजा ने पुक्कुसा से पूछा, "पुक्कुसा, तुम्हें क्या लगता है? किसे कोई रहस्य बताना चाहिए?" और पुक्कुसा ने यह श्लोक सुनाया:

"चाहे भाई बूढ़ा हो या जवान या बीच की उम्र का, यदि वह गुणी और भरोसेमंद हो, तो ऐसे भाई को कोई भी रहस्य बताया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा।"

इसके बाद राजा ने कविंदा से पूछा, और उसने यह श्लोक सुनाया:

"जब कोई पुत्र अपने पिता के हृदय के प्रति आज्ञाकारी होता है, एक सच्चा पुत्र, महान बुद्धि वाला पुत्र, तो उस पुत्र को कोई भी रहस्य प्रकट किया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा।"

फिर राजा ने देविन्द से पूछा, जिसने यह श्लोक सुनाया:

"हे मनुष्यों के स्वामी! यदि कोई माता अपने पुत्र को स्नेहपूर्वक पालती है, तो वह अपनी माता को कोई भी रहस्य बता सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा।"

उनसे पूछने के बाद राजा ने पूछा, "हे विद्वान, आप इस बारे में क्या सोचते हैं?" और उन्होंने यह श्लोक सुनाया:

"रहस्य को गुप्त रखना अच्छा है, रहस्य को प्रकट करना प्रशंसनीय नहीं है। समझदार व्यक्ति को इसे तब तक अपने तक ही रखना चाहिए जब तक यह पूरा न हो जाए; लेकिन इसके पूरा होने के बाद वह जब चाहे बोल सकता है।"

जब ऋषि ने यह कहा तो राजा अप्रसन्न हो गए। फिर राजा ने सेनाक की ओर देखा और सेनाक ने राजा की ओर। बोधिसत्व ने यह देखा और समझ गए कि इन चारों ने पहले भी राजा के सामने उनकी निंदा की थी, और यह प्रश्न उनकी परीक्षा लेने के लिए पूछा गया होगा। अब जब वे बात कर रहे थे, सूर्य अस्त हो चुका था और दीपक जल रहे थे। उन्होंने सोचा, "राजाओं के मार्ग कितने कठिन होते हैं, आगे क्या होगा कोई नहीं बता सकता; मुझे शीघ्र ही यहाँ से निकलना चाहिए।" अतः वे अपने आसन से उठे, राजा को प्रणाम किया और यह सोचते हुए चले गए, "इन चारों में से एक ने कहा कि यह बात किसी मित्र को बतानी चाहिए, एक ने भाई को, एक ने पुत्र को, एक ने माता को: उन्होंने कुछ किया या देखा होगा; या मुझे लगता है कि उन्होंने दूसरों से सुना होगा कि उन्होंने क्या देखा है। अच्छा, अच्छा, मैं आज पता लगा लूँगा।" उनके मन में यही विचार था। अन्य दिनों में, ये चारों महल से बाहर आकर महल के द्वार पर रखे एक कुंड पर बैठते और घर जाने से पहले अपनी योजनाओं पर चर्चा करते थे। इसलिए ऋषि ने सोचा कि यदि वह उस कुंड के नीचे छिप जाए तो शायद उन्हें उनके रहस्य पता चल जाएँ। उन्होंने कुंड को उठाया, उसके नीचे एक चटाई बिछवाई और अंदर घुस गए। उन्होंने अपने साथियों को निर्देश दिया कि जब चारों बुद्धिमान अपनी चर्चा समाप्त करके चले जाएँ तो उन्हें बुला लाएँ। साथियों ने वादा किया और चले गए। इसी बीच सेनाक राजा से कह रहा था, "महाराज, आप हम पर विश्वास नहीं करते, अब आप क्या सोचते हैं?" राजा ने बिना जाँच-पड़ताल किए इन षड्यंत्रकारियों की बात मान ली और भयभीत होकर पूछा, "हे बुद्धिमान सेनाक, अब हम क्या करें?" "महाराज, बिना किसी को बताए, उसे मार डालो।" "हे सेनाक, मेरे हितों की परवाह सिर्फ तुम्हें है। अपने साथियों को साथ लेकर द्वार पर प्रतीक्षा करो, और सुबह जब वह मुझसे मिलने आए, तो तलवार से उसका सिर काट दो।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी कीमती तलवार उन्हें दे दी। "बहुत खूब, महाराज, डरिए मत, हम उसे मार डालेंगे।" वे यह कहते हुए बाहर निकले, "हमने अपने शत्रु की पीठ देख ली!" और चरनी पर बैठ गए। तब सेनाका ने कहा, "मित्रों, इसे कौन मारेगा?" बाकी लोगों ने कहा, "आप, हमारे गुरुजी," और यह ज़िम्मेदारी उन्हें सौंप दी। तब सेनाका ने कहा, "मित्रों, आपने कहा था कि फलां व्यक्ति को एक रहस्य बताया जाना चाहिए: क्या यह कुछ ऐसा था जो आपने किया था, या देखा था, या सुना था?" "छोड़िए, गुरुजी: जब आपने कहा कि एक रहस्य किसी मित्र को बताया जा सकता है, तो क्या यह कुछ ऐसा था जो

आपने किया था?" "इससे आपको क्या लेना-देना?" उन्होंने पूछा। "कृपया हमें बताइए, गुरुजी," उन्होंने दोहराया। उन्होंने कहा, "यदि राजा को यह रहस्य पता चल गया, तो मेरी जान चली जाएगी।" "डरिए मत, गुरुजी, यहाँ कोई नहीं है जो आपका रहस्य उजागर करेगा, हमें बताइए, गुरुजी।" तब, चरनी पर थपथपाते हुए, सेनाका ने कहा, "क्या होगा यदि वह देहाती इस चरनी के नीचे हो!" "हे गुरुजी! अपनी सारी शान-शौकत के बावजूद वह इस तरह की जगह पर नहीं आएगा! वह अपनी समृद्धि के नशे में चूर हो गया होगा। आइए, हमें बताइए।" सेनाका ने अपना रहस्य बताया और कहा,"क्या तुम इस शहर में फलां वेश्या को जानते हो?" "जी हां, गुरुजी।" "क्या वह अब कहीं दिखाई देती है?" "नहीं, गुरुजी।" "साल के जंगल में मैंने उसके साथ संबंध बनाया और बाद में उसके गहने लेने के लिए उसे मार डाला। मैंने उन गहनों को एक गठरी में बांधकर अपने घर ले गया और उन्हें फलां मंजिल के फलां कमरे में हाथी के दांत पर लटका दिया: लेकिन जब तक वह उड़ नहीं जाता, मैं उनका उपयोग नहीं कर सकता। मैंने यह अपराध अपने एक मित्र को बताया है और उसने किसी को नहीं बताया; इसीलिए मैंने कहा था कि एक रहस्य मित्र को बताया जा सकता है।" ऋषि ने सेनाक का यह रहस्य सुना और उसे याद रखा। तब पुक्कुसा ने अपना रहस्य बताया। "मेरी जांघ पर कुष्ठ रोग का एक धब्बा है। सुबह मेरा छोटा भाई उसे धोता है, उस पर मरहम लगाता है और पट्टी बांधता है, और किसी को नहीं बताता। जब राजा का हृदय कोमल होता है, तो वह पुकारता है, 'इधर आओ, पुक्कुसा', और अक्सर अपना सिर मेरी जांघ पर रख देता है। लेकिन अगर उसे पता चल जाए तो वह मुझे मार डालेगा। मेरे छोटे भाई के सिवा कोई नहीं जानता; और इसीलिए मैंने कहा था, भाई को रहस्य बताया जा सकता है।" कविंदा ने अपना रहस्य बताया। "जहाँ तक मेरी बात है, कृष्ण पक्ष के व्रत के दिन नरदेव नाम का एक जिन्न मुझ पर हावी हो जाता है, और मैं पागल कुत्ते की तरह भौंकता हूँ। मैंने अपने बेटे को यह बात बताई; और जब वह मुझे जिन्न के वश में देखता है, तो मुझे घर के अंदर बंद कर देता है, और फिर दरवाजा बंद करके मुझे छोड़ देता है, और मेरी आवाज़ों को छिपाने के लिए लोगों का एक समूह इकट्ठा करता है। इसीलिए मैंने कहा था कि बेटे को रहस्य बताया जा सकता है।" तब उन तीनों ने देविंदा से पूछा, और उसने अपना रहस्य बताया। मैं राजा के रत्नों का निरीक्षक हूँ; और मैंने एक अद्भुत शुभ रत्न चुराया, जो सक्का (इंद्र) ने राजा कुश को उपहार में दिया था, और उसे अपनी माँ को दे दिया। जब मैं दरबार जाता हूँ तो वह बिना किसी को बताए मुझे वह रत्न सौंप देती है; और उस रत्न के कारण महल में प्रवेश करते ही मुझमें सौभाग्य की भावना व्याप्त हो जाती है। राजा आप सभी से पहले मुझसे बात करते हैं, और मुझे प्रतिदिन आठ रुपये, सोलह रुपये, बत्तीस रुपये या चौंसठ रुपये खर्च करने के लिए देते हैं। यदि राजा को पता चल जाए कि मैंने वह रत्न छिपा रखा है तो मैं मर जाऊँगा! इसीलिए मैंने कहा था कि एक रहस्य माँ को बताया जा सकता है।मेरे छोटे भाई के सिवा कोई नहीं जानता; और इसीलिए मैंने कहा था, "भाई को रहस्य बताया जा सकता है।" कविंदा ने अपना रहस्य बताया। "जहाँ तक मेरी बात है, कृष्ण पक्ष के व्रत के दिन नरदेव नाम का एक जिन्न मुझ पर हावी हो जाता है, और मैं पागल कुत्ते की तरह भौंकता हूँ। मैंने अपने बेटे को यह बात बताई; और जब वह मुझे जिन्न के वश में देखता है, तो मुझे घर के अंदर बंद कर देता है, और फिर दरवाजा बंद करके मुझे वहीं छोड़ देता है, और मेरी आवाज़ों को छिपाने के लिए लोगों का एक समूह इकट्ठा कर लेता है। इसीलिए मैंने कहा था कि बेटे को रहस्य बताया जा सकता है।" तब उन तीनों ने देविंदा से पूछा, और उसने अपना रहस्य बताया। "मैं राजा के रत्नों का निरीक्षक हूँ; और मैंने एक अद्भुत शुभ रत्न चुराया, जो शक्का (इंद्र) ने राजा कुश को उपहार में दिया था, और उसे अपनी माँ को दे दिया। जब मैं दरबार जाता हूँ तो वह बिना किसी को बताए मुझे वह रत्न सौंप देती है; और उस रत्न के कारण महल में प्रवेश करते ही मुझ पर सौभाग्य की आत्मा का साया छा जाता है।" राजा तुम सब से पहले मुझसे बात करता है और मुझे हर दिन आठ रुपये, सोलह रुपये, बत्तीस रुपये या चौंसठ रुपये खर्च करने के लिए देता है। अगर राजा को पता चल गया कि मैंने वह रत्न छिपा रखा है तो मैं मर जाऊंगा! इसीलिए मैंने कहा था कि एक रहस्य माँ को बताया जा सकता है।मेरे छोटे भाई के सिवा कोई नहीं जानता; और इसीलिए मैंने कहा था, "भाई को रहस्य बताया जा सकता है।" कविंदा ने अपना रहस्य बताया। "जहाँ तक मेरी बात है, कृष्ण पक्ष के व्रत के दिन नरदेव नाम का एक जिन्न मुझ पर हावी हो जाता है, और मैं पागल कुत्ते की तरह भौंकता हूँ। मैंने अपने बेटे को यह बात बताई; और जब वह मुझे जिन्न के वश में देखता है, तो मुझे घर के अंदर बंद कर देता है, और फिर दरवाजा बंद करके मुझे वहीं छोड़ देता है, और मेरी आवाज़ों को छिपाने के लिए लोगों का एक समूह इकट्ठा कर लेता है। इसीलिए मैंने कहा था कि बेटे को रहस्य बताया जा सकता है।" तब उन तीनों ने देविंदा से पूछा, और उसने अपना रहस्य बताया। "मैं राजा के रत्नों का निरीक्षक हूँ; और मैंने एक अद्भुत शुभ रत्न चुराया, जो शक्का (इंद्र) ने राजा कुश को उपहार में दिया था, और उसे अपनी माँ को दे दिया। जब मैं दरबार जाता हूँ तो वह बिना किसी को बताए मुझे वह रत्न सौंप देती है; और उस रत्न के कारण महल में प्रवेश करते ही मुझ पर सौभाग्य की आत्मा का साया छा जाता है।" राजा तुम सब से पहले मुझसे बात करता है और मुझे हर दिन आठ रुपये, सोलह रुपये, बत्तीस रुपये या चौंसठ रुपये खर्च करने के लिए देता है। अगर राजा को पता चल गया कि मैंने वह रत्न छिपा रखा है तो मैं मर जाऊंगा! इसीलिए मैंने कहा था कि एक रहस्य माँ को बताया जा सकता है।

उस महान सत्ता ने उनके सभी रहस्यों को ध्यानपूर्वक नोट कर लिया; लेकिन उन्होंने अपने रहस्यों को इस प्रकार उजागर किया मानो उन्होंने अपने पेट फाड़कर आंतें बाहर निकाल दी हों, फिर वे आसन से उठे और यह कहते हुए चले गए, "जल्दी आना मत भूलना, हम उस देहाती को मार डालेंगे।"

उनके जाने के बाद ऋषि के सेवक आए और कुंड को ऊपर उठाकर उस महान व्यक्ति को घर ले गए। उन्होंने स्नान किया, वस्त्र बदले और भोजन किया; और यह जानते हुए कि उनकी बहन रानी उदुंबरी उस दिन महल से उन्हें संदेश भेजेंगी, उन्होंने एक भरोसेमंद व्यक्ति

को निगरानी के लिए तैनात किया और उससे कहा कि महल से आने वाले किसी भी व्यक्ति को तुरंत अंदर आने की सूचना दे। फिर वे अपने पलंग पर लेट गए।

उस समय राजा भी अपने पलंग पर लेटे हुए ऋषि के गुणों को याद कर रहे थे। “ऋषि महोषधा ने सात वर्ष की आयु से ही मेरी सेवा की है और कभी मेरा कोई अन्याय नहीं किया। जब देवी ने मुझसे प्रश्न पूछे, तो ऋषि के बिना मैं मृत समान होता। प्रतिशोधी शत्रुओं की बातों को मानना, उन्हें तलवार देना और एक असाधारण ऋषि को मारने के लिए कहना, यह मैं कभी नहीं कर सकता था। कल के बाद मैं उन्हें फिर कभी नहीं देख पाऊंगा!” वे व्याकुल थे, उनके शरीर से पसीना बह रहा था, शोक से उनका हृदय अशांत था। रानी उदंबरी, जो उनके साथ पलंग पर बैठी थीं, उन्हें इस अवस्था में देखकर पूछा, “क्या मैंने आपके विरुद्ध कोई अपराध किया है? या किसी अन्य बात से मेरे स्वामी को दुःख हुआ है?” और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

"हे महाराज, आप क्यों परेशान हैं? हमें तो मनुष्यों के स्वामी की वाणी सुनाई नहीं दे रही! आप इस तरह नीचे क्यों देख रहे हैं? हे स्वामी, मेरी ओर से कोई अपराध नहीं है।"

फिर राजा ने एक श्लोक दोहराया:

उन्होंने कहा, “बुद्धिमान महोसाधा को मार डालना चाहिए”; और मैंने सबसे बुद्धिमान को मृत्युदंड दिया है। इस पर विचार करते हुए मैं नीचे देख रहा हूँ। हे मेरी रानी, आपमें कोई दोष नहीं है।

यह सुनकर रानी को गहरा दुख हुआ; और उसने सोचा, "राजा को सांत्वना देने का एक उपाय मेरे पास है: जब वह सो जाएंगे, मैं अपने भाई को संदेश भेजूंगी।" फिर उसने राजा से कहा, "महाराज, आपके ही प्रयासों से उस देहाती के पुत्र को इतनी शक्ति मिली; आपने ही उसे सेनापति बनाया था। अब लोग कहते हैं कि वह आपका शत्रु बन गया है। कोई भी शत्रु तुच्छ नहीं होता; उसे मारना ही होगा, इसलिए शोक न करें।" इस प्रकार उसने राजा को सांत्वना दी; उनका शोक शांत हुआ और वे सो गए। फिर रानी उठी और अपने कक्ष में जाकर उसने एक पत्र लिखा, "महोसाधा, चारों ज्ञानी पुरुषों ने आपकी निंदा की है; राजा क्रोधित हैं, और उन्होंने कल आपको द्वार पर ही मार डालने का आदेश दिया है। कल सुबह महल मत आना; या यदि आना ही है, तो शहर पर अधिकार करने की शक्ति के साथ आना।" उसने पत्र को मिठाई के अंदर रखा, धागे से बांधा, एक नए बर्तन में रखा, उसमें सुगंध लगाई, उसे बंद किया और एक दासी को देते हुए कहा, "यह मिठाई लो और मेरे भाई को दे दो।" दासी ने वैसा ही किया। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वह रात में कैसे निकल गई; क्योंकि राजा ने रानी को पहले ही यह वरदान दे दिया था, इसलिए किसी ने उसे रोका नहीं। बोधिसत्व ने उपहार ग्रहण किया और उस स्त्री को विदा किया, जो लौटकर आई और बताया कि उसने उपहार पहुंचा दिया है। तब रानी राजा के पास जाकर लेट गई। बोधिसत्व ने मिठाई खोली, पत्र पढ़ा, उसे समझा और विचार करने के बाद कि क्या करना चाहिए, विश्राम करने चले गए।

सुबह तड़के, अन्य चार ज्ञानी पुरुष तलवार लिए द्वार पर खड़े थे, लेकिन ऋषि को न देखकर वे नीचे देखने लगे और राजा के पास चले गए। राजा ने कहा, "क्या वह देहाती मारा गया?" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, हमने उसे नहीं देखा।" सूर्योदय के समय उस महान पुरुष ने पूरे शहर को अपने अधिकार में ले लिया, जगह-जगह पहरेदार तैनात किए, और पुरुषों के एक विशाल समूह और भव्यता से सुसज्जित रथ में महल के द्वार पर आए। राजा एक खुली खिड़की से बाहर देख रहे थे। तब उस महान पुरुष ने अपने रथ से उतरकर उन्हें प्रणाम किया; और राजा ने सोचा, "यदि वह मेरा शत्रु होता, तो वह मुझे प्रणाम नहीं करता।" तब राजा ने उन्हें बुलवाया और अपने सिंहासन पर बैठ गए। उस महान पुरुष ने अंदर आकर एक तरफ बैठ गए: चारों ज्ञानी पुरुष भी वहीं बैठ गए। तब राजा ने ऐसा दिखाया जैसे उन्हें कुछ पता ही न हो और कहा, "मेरे पुत्र, कल तुम हमें छोड़कर चले गए थे और अब तुम फिर आ गए हो; तुम मेरे साथ इतना लापरवाह व्यवहार क्यों कर रहे हो?" और उन्होंने यह श्लोक दोहराया:

"शाम को तुम गए थे, अब तुम आ गए हो। तुमने क्या सुना? तुम्हारे मन में किस बात का भय था? हे परम बुद्धिमान, तुम्हें किसने आज्ञा दी? आओ, हम वचन सुनने के लिए उत्सुक हैं: मुझे बताओ।"

उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "महाराज, आपने चार ज्ञानियों की बात सुनी और मेरी मृत्यु का आदेश दिया, इसीलिए मैं नहीं आया," और उसे फटकारते हुए इस श्लोक को दोहराया:

"बुद्धिमान महोसाधा को मार डालना चाहिए": यदि तुमने यह बात कल रात चुपके से अपनी पत्नी को बताई थी, तो तुम्हारा रहस्य उजागर हो गया और मैंने इसे सुन लिया।"

जब राजा ने यह सुना तो उसने क्रोधित होकर अपनी पत्नी की ओर देखा, यह सोचते हुए कि उसने तुरंत ही इसकी सूचना भेज दी होगी। यह देखकर उस महान सत्ता ने कहा, "हे स्वामी, आप रानी से क्यों क्रोधित हैं? मैं भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल सब जानता

हूँ। मान लीजिए कि रानी ने आपका रहस्य बता दिया: मुझे सेनाक, पुक्कुसा और बाकी सब के रहस्य किसने बताए? लेकिन मैं उनके सभी रहस्य जानता हूँ"; और उसने सेनाक का रहस्य इस श्लोक में बताया:

"सेनाका ने साल के बाग में जो पापपूर्ण और दुष्ट कर्म किया था, उसने अपने एक मित्र को गुप्त रूप से बताया था, वह रहस्य उजागर हो गया है और मैंने उसे सुन लिया है।"

सेनाका को देखकर राजा ने पूछा, "क्या यह सच है?" "महाराज, यह सच है," उसने उत्तर दिया, और राजा ने उसे जेल में डालने का आदेश दिया। तब ऋषि ने पुक्कुसा का रहस्य इस श्लोक में बताया:

"हे मनुष्यों के राजा, पुक्कुसा नामक व्यक्ति में एक ऐसा रोग है जिसे राजा का स्पर्श भी उचित नहीं है; उसने यह बात अपने भाई को गुप्त रूप से बताई थी। वह रहस्य उजागर हो गया है और मैंने उसे सुन लिया है।"

राजा ने उसे देखकर पूछा, "क्या यह सच है?" "जी हां, महाराज," उसने कहा; और राजा ने उसे भी कारावास में भेज दिया। तब ऋषि ने कविंदा का रहस्य इस श्लोक में बताया:

"नरदेव के वश में आया हुआ वह व्यक्ति दुष्ट स्वभाव का है और रोगग्रस्त है। उसने यह बात अपने बेटे को गुप्त रूप से बताई थी: यह रहस्य उजागर हो गया है और मैंने इसे सुन लिया है।"

“क्या यह सच है, कविंदा?” राजा ने पूछा; और उसने उत्तर दिया, “यह सच है।” तब राजा ने उसे भी कारावास में भेज दिया। ऋषि ने अब इस श्लोक में देविंदा का रहस्य बताया:

"वह आठ फलकों वाला अनमोल रत्न, जो सक्का (इंद्र) ने तुम्हारे दादाजी को दिया था, अब देविन्दा के पास है, और उसने यह बात अपनी माँ को गुप्त रूप से बताई थी। वह रहस्य उजागर हो गया है और मैंने उसे सुन लिया है।"

“क्या यह सच है, देविंदा?” राजा ने पूछा; और उसने उत्तर दिया, “हाँ, यह सच है।” इसलिए उसने उसे भी कारावास में डाल दिया। इस प्रकार बोधिसत्व की हत्या की साजिश रचने वाले सभी लोग एक साथ कैद में थे। बोधिसत्व ने कहा, “इसीलिए मैं कहता हूँ कि मनुष्य को अपना रहस्य किसी को नहीं बताना चाहिए; जिन्होंने रहस्य बताने की बात कही, वे सब पूरी तरह से बर्बाद हो गए।” और उन्होंने उच्चतर शिक्षा का प्रचार करते हुए ये श्लोक सुनाए:

किसी रहस्य को गुप्त रखना हमेशा अच्छा होता है, और उसे प्रकट करना उचित नहीं है। जब कोई काम पूरा न हो तो बुद्धिमान व्यक्ति को उसे अपने तक ही रखना चाहिए; जब उसका लक्ष्य पूरा हो जाए तो वह जो चाहे कह सकता है। किसी गुप्त बात को प्रकट नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे खजाने की तरह संभाल कर रखना चाहिए; क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति के लिए गुप्त बात प्रकट करना उचित नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति किसी स्त्री को, शत्रु को, स्वार्थ से बहकाए जाने वाले व्यक्ति को, या स्नेह के कारण कोई रहस्य नहीं बताता। जो व्यक्ति किसी अज्ञात रहस्य को प्रकट करता है, विश्वास टूटने के डर से उसे दूसरे का गुलाम बनकर रहना पड़ता है। जितने अधिक लोग किसी व्यक्ति के रहस्य को जानते हैं, उतनी ही उसकी चिंताएँ होती हैं; इसलिए किसी को भी रहस्य प्रकट नहीं करना चाहिए। दिन में अकेले में बात करो; रात में दबे स्वर में कहो; क्योंकि सुनने वाले शब्द सुन लेते हैं, इसलिए शब्द जल्दी ही बाहर आ जाते हैं।

जब राजा ने महानुभावों को बोलते सुना तो वह क्रोधित हो गया और सोचने लगा, “ये लोग, जो स्वयं अपने राजा के साथ विश्वासघात कर चुके हैं, अब मुझे भी विश्वासघाती बता रहे हैं!” तब उसने कहा, “इन्हें नगर से बाहर निकाल दो और इनके सिर सूली पर चढ़ा दो या फोड़ दो!” इसलिए उनके हाथ पीछे बांध दिए गए और हर गली के कोने पर उन्हें सौ-सौ कोड़े मारे गए। लेकिन जब उन्हें घसीटा जा रहा था, तब ऋषि ने कहा, “महाराज, ये आपके वरिष्ठ मंत्री हैं, इनकी गलती माफ कर दीजिए!” राजा मान गया और उन्हें अपना दास बना लिया। फिर उसने उन्हें तुरंत मुक्त कर दिया। तब राजा ने कहा, “ठीक है, ये मेरे राज्य में नहीं रहेंगे,” और उन्हें निर्वासित करने का आदेश दिया। लेकिन ऋषि ने उनसे उनके घोर पाप के लिए क्षमा मांगी और उन्हें शांत किया और उनके पद बहाल करने के लिए राजी किया। राजा ऋषि से बहुत प्रसन्न हुआ: यदि शत्रुओं के प्रति उनकी यह दया थी, तो दूसरों के प्रति उनकी दया कैसी होगी! तब से वे चारों ज्ञानी पुरुष, जैसे कि सांपों के दांत निकाल दिए गए हों और उनका जहर निकल गया हो, एक शब्द भी नहीं बोल सके, ऐसा हमें बताया जाता है।

यहां पांच बुद्धिमान पुरुषों का प्रश्न और मानहानि की कहानी समाप्त होती है।

इसके बाद वह राजा को सांसारिक और आध्यात्मिक विषयों में उपदेश देने लगे; और उन्होंने सोचा, "मैं वास्तव में राजा का सफेद छाता हूँ; मैं ही राज्य का संचालन करता हूँ: इसलिए मुझे सतर्क रहना चाहिए।" उन्होंने नगर के लिए एक विशाल प्राचीर बनवाई। प्राचीर के

साथ-साथ द्वारों पर पहरेदार मीनारें बनवाई गईं, और पहरेदार मीनारों के बीच उन्होंने तीन खाईयाँ खुदवाईं—एक जल खाई, एक मिट्टी की खाई और एक सूखी खाई। नगर के भीतर उन्होंने सभी पुराने भवनों का जीर्णोद्धार करवाया: बड़े-बड़े तटबंध खोदे गए और जल भंडार बनाए गए; सभी भंडारगृह अनाज से भर दिए गए। सभी विशेष पुजारियों को हिमवत (हिमालय) से मिट्टी और खाने योग्य कमल के बीज लाने पड़ते थे। जलमार्गों की सफाई की गई, और नगर के बाहर स्थित पुराने भवनों का भी जीर्णोद्धार किया गया। यह भविष्य के खतरों से बचाव के लिए किया गया था। विभिन्न स्थानों से आने वाले व्यापारियों से पूछा जाता था कि वे कहाँ से आए हैं; और उनके उत्तर देने पर उनसे पूछा जाता था कि उनके राजा को क्या पसंद है; यह बताने पर उनके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार किया जाता था। फिर उसने एक सौ एक सैनिकों को बुलवाया और उनसे कहा, “मेरे सैनिकों, ये उपहार एक सौ एक राजनगरों में ले जाओ और उन्हें उनके संबंधित राजाओं को देकर उन्हें प्रसन्न करो; वहाँ उनकी सेवा में रहो, उनकी गतिविधियों और योजनाओं को सुनो और मुझे संदेश भेजो। मैं तुम्हारी पत्नियों और बच्चों की देखभाल करूँगा।” उसने कुछ के लिए बालियाँ, कुछ के लिए सोने की चप्पलें और कुछ के लिए सोने के हार भेजे, जिन पर अक्षर खुदे हुए थे, जिन्हें उसने अपने उद्देश्य के अनुसार प्रकट होने के लिए नियुक्त किया था। सैनिक इधर-उधर गए और राजाओं को ये उपहार देते हुए कहा कि वे उनकी सेवा में रहने आए हैं। जब उनसे पूछा गया कि वे कहाँ से आए हैं, तो उन्होंने उस स्थान के अलावा अन्य स्थानों के नाम बताए जहाँ से वे वास्तव में आए थे। उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, वे वहाँ सेवा में रहे और विश्वासयोग्य साबित हुए।

एकाबला राज्य में शंखपाल नाम का एक राजा था, जो शस्त्र एकत्र कर सेना तैयार कर रहा था। उसके पास आए एक व्यक्ति ने ऋषि को संदेश भेजा, “यहाँ यही खबर है, पर उसका इरादा क्या है, यह मुझे नहीं पता; किसी को भेजकर सच्चाई का पता लगाइए।” तब उस महान ऋषि ने एक तोते को बुलाया और कहा, “मित्र, जाकर पता लगाओ कि राजा शंखपाल एकाबला में क्या कर रहा है, फिर पूरे भारत में यात्रा करके मुझे खबर लाओ।” उन्होंने उसे शहद और अनाज खिलाया, मीठा पानी पिलाया, पंखों के जोड़ों पर सौ-हजार गुना शुद्ध तेल लगाया, पूर्वी खिड़की के पास खड़े होकर उसे छोड़ दिया। तोता उस व्यक्ति के पास गया और सच्चाई का पता लगाया। भारत से लौटते समय वह कम्पिला राज्य के उत्तरा पंचाल नगर में पहुँचा। वहाँ चूलानी-ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा शासन कर रहा था, जिसका आध्यात्मिक और सांसारिक सलाहकार एक बुद्धिमान और विद्वान ब्राह्मण केवत्त था। एक सुबह ब्राह्मण भोर में जागा और दीपक की रोशनी में अपने भव्य कक्ष को निहारते हुए उसकी शान-शौकत को देखकर सोचने लगा, "यह वैभव किसका है? केवल चुलानी-ब्रह्मदत्त का। ऐसा वैभव प्रदान करने वाला राजा पूरे भारत का सर्वोपरि राजा होना चाहिए और मैं उसका प्रधान पुरोहित बनूंगा।" इसलिए वह सुबह-सुबह राजा के पास गया और जब राजा ने उससे पूछा कि क्या वह अच्छी तरह सोया है, तो उसने कहा, "महाराज, मुझे कुछ कहना है।" "बताइए, गुरुजी।" "महाराज, यह रहस्य नगर में नहीं बताया जा सकता, चलिए उद्यान में चलते हैं।" "ठीक है, गुरुजी।" राजा उसके साथ उद्यान में गया और सेवकों को बाहर छोड़कर पहरा बिठा दिया। राजा भी ब्राह्मण के साथ उद्यान में प्रवेश कर राजसी आसन पर बैठ गया। यह देखकर तोते ने सोचा कि कुछ तो गड़बड़ है; "आज मुझे कुछ ऐसा पता चलेगा जो मेरे बुद्धिमान गुरु को अवश्य बताया जाएगा।" तो वह उड़कर उद्यान में आया और राजसी साल के वृक्ष की पत्तियों के बीच बैठ गया। राजा ने कहा, "शिक्षक, बोलिए।" उसने कहा, "महाराज, मेरी बात ध्यान से सुनिए; यह योजना केवल चार कानों के लिए है। महाराज, यदि आप मेरी सलाह मानेंगे, तो मैं आपको पूरे भारत का प्रधान राजा बना दूंगा।" राजा ने उत्सुकता से उसकी बात सुनी और प्रसन्न होकर उत्तर दिया, "मेरे गुरु, बताइए, मैं ऐसा ही करूंगा।" "मेरे स्वामी, आइए हम एक सेना तैयार करें और पहले एक छोटे शहर को घेर लें। फिर मैं पिछले द्वार से शहर में प्रवेश करूँगा और राजा से कहूँगा, महाराज, आपके लड़ने का कोई लाभ नहीं है: बस हमारे साथ खड़े हो जाइए; आप अपना राज्य रख सकते हैं, लेकिन यदि आप हमारी शक्तिशाली सेना से लड़ेंगे, तो आप पूरी तरह से पराजित हो जाएँगे। यदि वह मेरी सलाह मानता है, तो हम उसका स्वागत करेंगे; यदि नहीं, तो हम उससे लड़ेंगे और उसे मार डालेंगे, और दो सेनाओं के साथ जाकर एक और शहर पर कब्जा कर लेंगे, और फिर एक और, और इस तरह हम पूरे भारत पर प्रभुत्व प्राप्त करेंगे और विजय का प्याला पिएँगे। फिर हम एक सौ एक राजाओं को अपने शहर में लाएँगे, और पार्क में एक शराबखाना बनाएँगे, और उन्हें वहाँ बैठाएँगे, और उन्हें विषैला पेय पिलाएँगे।"और इसलिए उन सबको मार डालो और गंगा में फेंक दो। इस प्रकार हमें एक सौ एक राजधानियाँ प्राप्त हो जाएँगी, और तुम समस्त भारत के प्रधान राजा बन जाओगे।” “बहुत खूब, मेरे गुरु,” उसने कहा, “मैं ऐसा ही करूँगा।” “महाराज, यह योजना केवल चार वर्षों के लिए है, इसके बारे में किसी और को पता नहीं चलना चाहिए। देर न करें, तुरंत कार्य शुरू करें।” राजा इस सलाह से प्रसन्न हुए और उन्होंने ऐसा करने का निश्चय किया। तोते ने, जिसने उनकी सारी बातचीत सुन ली थी, केवट्टा के सिर पर गोबर का एक गोला ऐसे गिरा दिया मानो वह किसी टहनी से गिरा हो। “यह क्या है?” वह मुँह खोलकर ऊपर देखते हुए चिल्लाया: जिस पर पक्षी ने उसके मुँह में एक और गोला गिरा दिया और चिल्लाते हुए उड़ गया, “क्री क्री! हे केवट्टा, तुम सोचते हो कि तुम्हारी योजना केवल चार वर्षों के लिए है, लेकिन अब यह छह वर्षों के लिए है; समय आने पर यह आठ वर्षों तक और सैकड़ों वर्षों तक चलेगा!” “पकड़ो उसे, पकड़ो उसे!” वे चिल्लाए; लेकिन वह हवा की तरह तेज उड़कर मिथिला पहुंचा और उस ज्ञानी व्यक्ति के घर में प्रवेश कर गया। तोते की यह आदत थी: यदि किसी स्थान से कोई खबर केवल ऋषि के कानों तक ही सीमित होती, तो वह उनके कंधे पर बैठ जाता; यदि रानी अमरा को भी उसे सुनना होता, तो वह उनकी गोद में बैठ जाता; यदि सभी को सुनना होता, तो वह जमीन पर बैठ जाता। इस बार वह कंधे पर बैठा, और यह देखकर सभी लोग पीछे हट गए, क्योंकि वे इसे गुप्त समझ रहे थे। ऋषि उसे सबसे ऊपरी मंजिल पर ले गए और उससे पूछा, “मेरे प्रिय, तुमने क्या देखा, क्या सुना?” उसने कहा, “मेरे स्वामी, मैंने पूरे भारत के किसी अन्य राजा में ऐसा कोई खतरा नहीं देखा; लेकिन केवल उत्तरा पंचाल

नगर में चुलानी-ब्रह्मदत्त के पुजारी केवट्टा ने अपने राजा को उद्यान में ले जाकर उनके चारों कानों के लिए एक योजना बताई: "मैं डालियों के बीच बैठा था और मैंने उसके मुँह में गोबर का एक गोला गिरा दिया, और देखो मैं यहाँ हूँ!" फिर उसने ऋषि को वह सब बताया जो उसने देखा और सुना था। "क्या राजा मान गए?" ऋषि ने पूछा। "हाँ, मान गए," तोते ने कहा। इसलिए ऋषि ने पक्षी की उचित देखभाल की और उसे मुलायम गद्दी से सजे अपने सोने के पिंजरे में रख दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि केवट्टा नहीं जानता कि मैं बुद्धिमान महोषद हूँ। मैं उसे अपनी योजना पूरी नहीं करने दूँगा।" फिर उन्होंने नगर में रहने वाले सभी गरीब लोगों को बाहर निकाल दिया, और राज्य के सभी हिस्सों, ग्रामीण इलाकों और उपनगरीय गाँवों से धनी परिवारों को लाकर नगर में बसाया, और बड़ी मात्रा में अनाज इकट्ठा किया।ऊपर की ओर देखते हुए, उसका मुँह चौड़ा खुला हुआ था: तभी पक्षी ने एक और तोता अपने मुँह में डाला और चिल्लाते हुए उड़ गया, "क्री क्री! हे केवट्टा, तुम सोचते हो कि तुम्हारी योजना केवल चार कानों के लिए है, लेकिन अब यह छह कानों के लिए है; समय आने पर यह आठ कानों के लिए और सैकड़ों कानों के लिए होगी!" "पकड़ो उसे, पकड़ो उसे!" वे चिल्लाए; लेकिन वह हवा की तरह तेज उड़कर मिथिला पहुँचा और उस ज्ञानी व्यक्ति के घर में प्रवेश कर गया। तोते की यह आदत थी: यदि किसी स्थान से कोई खबर केवल ऋषि के कानों के लिए होती, तो वह उनके कंधे पर बैठ जाता; यदि रानी अमरा को भी उसे सुनना होता, तो वह उनकी गोद में बैठ जाता; यदि सभा को भी उसे सुनना होता, तो वह जमीन पर बैठ जाता। इस बार वह कंधे पर बैठा, और यह देखकर सभा गुप्त जानकारी समझकर पीछे हट गई। ऋषि उसे सबसे ऊपरी मंजिल पर ले गए और उससे पूछा, "अच्छा, मेरे प्रिय, तुमने क्या देखा, क्या सुना?" उसने कहा, "हे प्रभु, पूरे भारत में मैंने किसी और राजा में कोई खतरा नहीं देखा; केवल उत्तरा पंचाल नगर में चुलानी-ब्रह्मदत्त के पुजारी केवत्त ने ही अपने राजा को उद्यान में ले जाकर उनके चारों कानों के लिए एक योजना बताई: मैं डालियों के बीच बैठा था और मैंने उसके मुँह में गोबर का एक गोला डाल दिया, और देखो मैं यहाँ हूँ!" फिर उसने ऋषि को वह सब बताया जो उसने देखा और सुना था। "क्या राजा मान गया?" ऋषि ने पूछा। "हाँ, मान गया," तोते ने कहा। इसलिए ऋषि ने पक्षी की उचित देखभाल की और उसे मुलायम गद्दी से सजे उसके सोने के पिंजरे में रख दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि केवत्त नहीं जानता कि मैं बुद्धिमान महोषद हूँ। मैं उसे अपनी योजना पूरी नहीं करने दूँगा।" फिर उन्होंने नगर में रहने वाले सभी गरीब लोगों को बाहर निकाल दिया, और पूरे राज्य, ग्रामीण इलाकों और आसपास के गाँवों से धनी परिवारों को नगर में लाकर बसाया, और बड़ी मात्रा में अनाज इकट्ठा किया।ऊपर की ओर देखते हुए, उसका मुँह चौड़ा खुला हुआ था: तभी पक्षी ने एक और तोता अपने मुँह में डाला और चिल्लाते हुए उड़ गया, "क्री क्री! हे केवट्टा, तुम सोचते हो कि तुम्हारी योजना केवल चार कानों के लिए है, लेकिन अब यह छह कानों के लिए है; समय आने पर यह आठ कानों के लिए और सैकड़ों कानों के लिए होगी!" "पकड़ो उसे, पकड़ो उसे!" वे चिल्लाए; लेकिन वह हवा की तरह तेज उड़कर मिथिला पहुँचा और उस ज्ञानी व्यक्ति के घर में प्रवेश कर गया। तोते की यह आदत थी: यदि किसी स्थान से कोई खबर केवल ऋषि के कानों के लिए होती, तो वह उनके कंधे पर बैठ जाता; यदि रानी अमरा को भी उसे सुनना होता, तो वह उनकी गोद में बैठ जाता; यदि सभा को भी उसे सुनना होता, तो वह जमीन पर बैठ जाता। इस बार वह कंधे पर बैठा, और यह देखकर सभा गुप्त जानकारी समझकर पीछे हट गई। ऋषि उसे सबसे ऊपरी मंजिल पर ले गए और उससे पूछा, "अच्छा, मेरे प्रिय, तुमने क्या देखा, क्या सुना?" उसने कहा, "हे प्रभु, पूरे भारत में मैंने किसी और राजा में कोई खतरा नहीं देखा; केवल उत्तरा पंचाल नगर में चुलानी-ब्रह्मदत्त के पुजारी केवत्त ने ही अपने राजा को उद्यान में ले जाकर उनके चारों कानों के लिए एक योजना बताई: मैं डालियों के बीच बैठा था और मैंने उसके मुँह में गोबर का एक गोला डाल दिया, और देखो मैं यहाँ हूँ!" फिर उसने ऋषि को वह सब बताया जो उसने देखा और सुना था। "क्या राजा मान गया?" ऋषि ने पूछा। "हाँ, मान गया," तोते ने कहा। इसलिए ऋषि ने पक्षी की उचित देखभाल की और उसे मुलायम गद्दी से सजे उसके सोने के पिंजरे में रख दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि केवत्त नहीं जानता कि मैं बुद्धिमान महोषद हूँ। मैं उसे अपनी योजना पूरी नहीं करने दूँगा।" फिर उन्होंने नगर में रहने वाले सभी गरीब लोगों को बाहर निकाल दिया, और पूरे राज्य, ग्रामीण इलाकों और आसपास के गाँवों से धनी परिवारों को नगर में लाकर बसाया, और बड़ी मात्रा में अनाज इकट्ठा किया।फिर उसने ऋषि को वह सब बताया जो उसने देखा और सुना था। ऋषि ने पूछा, "क्या राजा मान गए?" तोते ने कहा, "हाँ, मान गए।" ऋषि ने पक्षी की उचित देखभाल की और उसे मुलायम गद्दियों से सजे उसके सोने के पिंजरे में रख दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि केवट्टा नहीं जानता कि मैं ज्ञानी महोषध हूँ। मैं उसे अपनी योजना पूरी नहीं करने दूँगा।" फिर उन्होंने शहर में रहने वाले सभी गरीब लोगों को बाहर निकाल दिया और राज्य के सभी हिस्सों, ग्रामीण इलाकों और आसपास के गाँवों से शक्तिशाली अमीर परिवारों को लाकर शहर में बसा दिया और बड़ी मात्रा में अनाज इकट्ठा किया।फिर उसने ऋषि को वह सब बताया जो उसने देखा और सुना था। ऋषि ने पूछा, "क्या राजा मान गए?" तोते ने कहा, "हाँ, मान गए।" ऋषि ने पक्षी की उचित देखभाल की और उसे मुलायम गद्दियों से सजे उसके सोने के पिंजरे में रख दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे लगता है कि केवट्टा नहीं जानता कि मैं ज्ञानी महोषध हूँ। मैं उसे अपनी योजना पूरी नहीं करने दूँगा।" फिर उन्होंने शहर में रहने वाले सभी गरीब लोगों को बाहर निकाल दिया और राज्य के सभी हिस्सों, ग्रामीण इलाकों और आसपास के गाँवों से शक्तिशाली अमीर परिवारों को लाकर शहर में बसा दिया और बड़ी मात्रा में अनाज इकट्ठा किया।

और चुलानी-ब्रह्मदत्त ने केवट्टा के सुझावानुसार कार्य किया: वह अपनी सेना लेकर एक नगर को घेर लिया। केवट्टा ने जैसा सुझाव दिया था, वैसे ही वह नगर में गया और राजा को मामले की व्याख्या करके उसे अपने पक्ष में कर लिया। फिर दोनों सेनाओं को मिलाकर चुलानी-ब्रह्मदत्त ने केवट्टा की सलाह का पालन करते हुए दूसरे राज्य की ओर प्रस्थान किया, और अंततः उसने वेदेह राजा को छोड़कर भारत के सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया। बोधिसत्व द्वारा भेजे गए सैनिक लगातार संदेश भेजते रहे, "ब्रह्मदत्त ने फलां-फलां

नगरों पर कब्जा कर लिया है, सावधान रहो": जिस पर उसने उत्तर दिया, "मैं यहाँ सावधान हूँ, तुम भी बिना लापरवाही किए सतर्क रहो।" सात वर्ष, सात महीने और सात दिनों में ब्रह्मदत्त ने वेदेह को छोड़कर पूरे भारत पर अधिकार कर लिया। तब उसने केवट्टा से कहा, "गुरुजी, आइए हम मिथिला में वेदेह के राज्य पर कब्जा कर लें!" “महाराज,” उसने कहा, “हम उस नगर पर कभी अधिकार नहीं कर पाएंगे जहाँ बुद्धिमान महोसाधा रहते हैं: वे इस प्रकार के कौशल में परिपूर्ण हैं, धूर्तता में बहुत निपुण हैं।” फिर उन्होंने महापुरुष के गुणों का वर्णन ऐसे किया मानो उन्होंने चंद्रमा पर बैठकर उनका गुणगान किया हो। स्वयं धूर्तता में निपुण होने के कारण उन्होंने कहा, “मिथिला राज्य बहुत छोटा है, और समस्त भारत का राज्य हमारे लिए पर्याप्त है।” इस प्रकार उन्होंने राजा को सांत्वना दी; परन्तु अन्य राजकुमारों ने कहा, “नहीं, हम मिथिला राज्य पर विजय प्राप्त करेंगे और विजय का प्याला पिएंगे!” केवट्टा ने उन्हें रोकते हुए कहा होता, “वेदेह का राज्य लेने से क्या लाभ होगा? वह राजा तो पहले से ही हमारा है। वापस लौट आओ।” यही उनकी सलाह थी: उन्होंने उनकी बात मानी और वापस लौट गए। महापुरुष के दूतों ने उन्हें संदेश भेजा कि ब्रह्मदत्त एक सौ एक राजाओं के साथ मिथिला जा रहा था, तभी वह वापस लौट आया और अपने नगर चला गया। उन्होंने उत्तर में संदेश भेजा कि वे देखें कि वह क्या करता है।

अब ब्रह्मदत्त ने केवत्त से विचार-विमर्श किया कि आगे क्या किया जाए। विजय का प्याला पीने की आशा में उन्होंने उद्यान को सजाया और सेवकों को हजारों घड़ों में मदिरा रखने तथा हर प्रकार की मछली और मांस तैयार करने का आदेश दिया। यह खबर ऋषि के सेवकों ने भी उन्हें भेजी। अब उन्हें राजाओं को विष देने की योजना का पता नहीं था, परन्तु महापुरुष को तोते से पता चल गया था; उन्होंने तदनुसार उन्हें संदेश भेजा कि वे उन्हें इस उत्सव के लिए निर्धारित दिन बताएँ, और उन्होंने ऐसा ही किया। तब उन्होंने सोचा, "यह उचित नहीं है कि मुझ जैसे बुद्धिमान व्यक्ति के जीवित रहते इतने सारे राजाओं को मार डाला जाए। मैं उनकी सहायता करूँगा।" उसने अपने दस हजार जन्मजात योद्धाओं को बुलवाया और कहा, "मित्रों, मुझे पता चला है कि चूलानी-ब्रह्मदत्त एक दिन अपने उद्यान को सजाना चाहते हैं और एक सौ एक राजाओं के साथ मदिरापान करना चाहते हैं। तुम सब वहाँ जाओ और राजाओं के लिए रखी सीटों पर किसी के बैठने से पहले, चूलानी-ब्रह्मदत्त के बगल वाली सम्मान की सीट पर बैठ जाओ और कहो, 'यह हमारे राजा के लिए है।' जब वे पूछें कि तुम किसके आदमी हो, तो उन्हें बताना कि तुम राजा वेदेह के हो। वे बहुत शोर मचाएंगे और कहेंगे, 'क्या! हम सात साल, सात महीने और सात दिन से राज्यों को जीत रहे हैं, और हमने एक बार भी तुम्हारे राजा वेदेह को नहीं देखा! यह कैसा राजा है? जाओ उसके लिए अंत में एक सीट ढूंढो!' तब तुम उनसे झगड़ा करते हुए कहोगे, 'ब्रह्मदत्त के सिवा कोई राजा हमारे राजा से बड़ा नहीं है! अगर हम अपने राजा के लिए एक सीट भी नहीं दिलवा पाए, तो हम तुम्हें अभी खाने-पीने नहीं देंगे!' इसलिए चिल्लाते और उछलते-कूदते हुए, शोर मचाकर उन्हें डराओ, अपने बड़े-बड़े डंडों से सारे बर्तन तोड़ दो, खाना बिखेर दो।" और उसे खाने के लिए अनुपयुक्त बना दो, भीड़ में अपनी पूरी गति से घुस जाओ, और देवताओं (देवदूतों) के नगर पर आक्रमण करने वाले दानवों की तरह शोर मचाते हुए जोर से पुकारो, “हम मिथिला नगर के बुद्धिमान महोषध के सेवक हैं: पकड़ सको तो पकड़ लो! इस प्रकार उन्हें दिखाओ कि तुम वहाँ हो, और फिर मेरे पास लौट आओ।” उन्होंने आज्ञा मानने का वादा किया और विदा ली; और पाँचों शस्त्रों से लैस होकर चल पड़े। वे नंदनवन के समान सजे-धजे उद्यान में प्रवेश किया और उसकी भव्यता, एक सौ एक राजाओं के लिए सजी हुई वेदी, फैले हुए सफेद छत्र और बाकी सब कुछ देखा। उन्होंने महापुरुष के निर्देशानुसार सब कुछ किया और भीड़ में अफरा-तफरी मचाने के बाद मिथिला लौट आए।

राजा के आदमियों ने उसे सारी घटना बताई: ब्रह्मदत्त क्रोधित था क्योंकि राजकुमारों को विष देने की उसकी इतनी अच्छी योजना विफल हो गई थी; राजकुमार क्रोधित थे क्योंकि उन्हें विजय का प्याला नहीं मिला था; और सैनिक क्रोधित थे क्योंकि उन्हें मुफ्त में शराब पीने का मौका नहीं मिला था। इसलिए ब्रह्मदत्त ने राजकुमारों से कहा, "आओ, मित्रों, हम मिथिला चलें और राजा वेदेह का सिर तलवार से काट कर पैरों तले रौंद दें, फिर वापस आकर विजय का प्याला पिएं! जाओ अपनी सेनाओं को तैयार रहने को कहो।" फिर केवत्त से अलग जाकर उसने उसे इसके बारे में बताया, "देखो, हम उस शत्रु को पकड़ लेंगे जिसने हमारी इस अच्छी योजना को चुनौती दी है। एक सौ एक राजकुमारों और अठारह पूरी सेनाओं के साथ हम उस नगर पर आक्रमण करेंगे। आओ, मेरे गुरु!" लेकिन ब्राह्मण इतना बुद्धिमान था कि वह जानता था कि वे ऋषि महोषद को कभी नहीं पकड़ पाएंगे, बल्कि उन्हें केवल अपमान ही मिलेगा; राजा को मनाना होगा। तब उसने कहा: “महाराज! वेदेह के इस राजा में कोई सामर्थ्य नहीं है; शासन व्यवस्था ऋषि महोषद के हाथों में है, और वे अत्यंत शक्तिशाली हैं। उनकी रक्षा में, जैसे शेर अपनी मांद की रक्षा करता है, मिथिला पर कोई कब्जा नहीं कर सकता। हम केवल अपमानित होंगे: जाने का विचार भी न करें।” परन्तु राजा, सैनिक के अभिमान और साम्राज्य के नशे में चूर होकर, चिल्लाया, “यह क्या करेगा!” और एक सौ एक राजकुमारों और अठारह पूर्ण सेनाओं के साथ प्रस्थान कर गया। केवट्टा, उसे अपनी सलाह मानने के लिए राजी नहीं कर सका, और यह सोचकर कि उसे रोकना व्यर्थ है, उसके साथ चला गया।

लेकिन वे योद्धा एक ही रात में मिथिला पहुँच गए और ऋषि को सारी घटना बता दी। और जिन लोगों को उन्होंने पहले सेवा में भेजा था, उन्होंने उन्हें संदेश भेजा कि चुलानी-ब्रह्मदत्त एक सौ एक राजाओं के साथ राजा वेदेह पर कब्जा करने के लिए आ रहा है; उन्हें सतर्क रहना चाहिए। संदेश एक के बाद एक आते रहे: "आज वह फलाँ स्थान पर है, आज फलाँ स्थान पर है, आज वह नगर पहुँचेगा।" यह सुनकर ऋषि ने अपनी सतर्कता दोगुनी कर दी। और राजा वेदेह ने चारों ओर यह खबर सुनी कि ब्रह्मदत्त नगर पर कब्जा करने के लिए आ रहा है। अब ब्रह्मदत्त ने संध्याकाल में एक लाख मशालों की रोशनी से नगर को घेर लिया। उसने हाथियों, रथों और घोड़ों की बाड़ से नगर को घेर लिया और नियमित अंतराल पर सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी तैनात कर दी: वहाँ सैनिक खड़े होकर चिल्ला रहे थे, उंगलियां

चटका रहे थे, दहाड़ रहे थे, नाच रहे थे और जोर-जोर से रो रहे थे। मशालों की रोशनी और कवच की चमक से सात मील (4.23 किमी) में फैला पूरा मिथिला नगर प्रकाश की एक जगमगाहट में डूब गया था। हाथियों, घोड़ों, रथों और मनुष्यों के शोर से धरती तक दहक उठी थी। चारों ज्ञानी पुरुषों ने ध्वनि की लहरें सुनीं और यह न समझ पाने पर कि यह क्या है, राजा के पास जाकर कहा, "महाराज, बहुत शोर हो रहा है, और हम नहीं जानते कि यह क्या है: क्या राजा इसकी जाँच करेंगे?" यह सुनकर राजा ने सोचा, "निस्संदेह ब्रह्मदत्त आ गया है"; और उसने एक खिड़की खोली और बाहर देखा। जब उसने देखा कि वह सचमुच आ गया है, तो राजा भयभीत हो गया और उनसे कहा, "हम तो मर चुके हैं! कल वह हम सबको निःसंदेह मार डालेगा!" इसलिए वे आपस में बैठकर बातें करने लगे। लेकिन जब उस महान प्राणी ने देखा कि वह आ गया है, तो सिंह के समान निर्भीक होकर उसने पूरे नगर में पहरेदार तैनात कर दिए और फिर राजा का हौसला बढ़ाने के लिए महल में चला गया। राजा का अभिवादन करते हुए वह एक तरफ खड़ा हो गया। राजा उसे देखकर उत्साहित हुआ और सोचने लगा, "बुद्धिमान महोसाधा के सिवा कोई मुझे इस संकट से नहीं बचा सकता!" और उसने उससे इस प्रकार कहा:

"पांचाल का ब्रह्मदत्त अपनी पूरी सेना के साथ आया है; हे महोषद, पांचाल की यह सेना अनंत है! पीठों पर बोझ लादे हुए सैनिक, पैदल सैनिक, युद्ध में निपुण सैनिक, विनाश के लिए तैयार सैनिक, ढोल और शंखों की गूँज, यहाँ लोहे के हथियारों के उपयोग में निपुणता है, यहाँ ध्वज और कवचधारी योद्धा, सिद्ध योद्धा और वीर हैं! यहाँ दस ऋषि हैं, जो ज्ञान में बलिष्ठ और गुप्त योजनाओं में निपुण हैं, और ग्यारहवीं, राजा की माता, पांचाल की सेना को प्रोत्साहित कर रही हैं। यहाँ एक सौ एक योद्धा-राजकुमार उपस्थित हैं, जिनके राज्य उनसे छीन लिए गए हैं, पांचाल के सैनिकों द्वारा भयभीत और पराजित किए गए हैं। वे जो कहते हैं, राजा के लिए करते हैं; पांचाल के साथ वे निर्बाब से चलते हैं, उसकी शक्ति में हैं। राज नगर मिथिला इस सेना द्वारा तीन भागों में विभाजित होकर चारों ओर से घेर लिया गया है। मानो यह चारों ओर से तारों से घिरा हुआ है। हे महोषद, सोचो! मुक्ति कैसे मिलेगी?"

जब उस महान सत्ता ने यह सुना, तो उसने सोचा, "यह राजा अपने जीवन के लिए बहुत भयभीत है। बीमार का आश्रय चिकित्सक होता है, भूखे का भोजन, और प्यासे का पानी, परन्तु मैं ही उसका आश्रय हूँ। मैं ही उसे सांत्वना दूँगा।" फिर, लाल रंग के ऊंचे पहाड़ों पर दहाड़ते हुए शेर की तरह, उसने पुकारा, "महोदय, भयभीत न हों, बल्कि अपनी राजसत्ता का आनंद लें। जैसे मैं पत्थर से कौवे को या धनुष से बंदर को डराता हूँ, वैसे ही मैं उस विशाल सेना को तितर-बितर कर दूँगा, और उन्हें अपना एक लंगोट भी नहीं छोडूँगा।" और उसने यह श्लोक पढ़ा:

"अपने पैर फैलाओ, खाओ और आनंद मनाओ: ब्रह्मदत्त पांचाल की सेना छोड़कर भाग जाएगा।"

राजा को प्रोत्साहित करने के बाद, ज्ञानी पुरुष बाहर आया और उसने पूरे शहर में उत्सव के ढोल बजवाए और घोषणा की—"शांत रहो! डरो मत। मालाएँ, सुगंध और इत्र, भोजन और पेय पदार्थ जुटाओ और सात दिन का अवकाश मनाओ। लोग जहाँ चाहें रहें, खूब पिएं, गाएँ, नाचें और आनंद मनाएँ, चिल्लाएँ, जयकार करें और उंगलियाँ चटकाएँ: सब कुछ मेरे खर्चे पर। मैं ज्ञानी महोषधा हूँ: मेरी शक्ति देखो!" इस प्रकार उसने नगरवासियों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने वैसा ही किया: और बाहर से लोगों ने गाने और संगीत की आवाज़ सुनी। लोग पिछले द्वार से अंदर आए। अब, शत्रु को छोड़कर, अजनबियों को देखते ही गिरफ्तार करना उनका रिवाज नहीं था; इसलिए प्रवेश द्वार बंद नहीं किया गया था। इसलिए इन लोगों ने लोगों को आनंद मनाते हुए देखा। और कुलानी-ब्रह्मदत्त ने नगर में शोर सुना और अपने दरबारियों से कहा, "देखो, हमने इस नगर को अठारह बड़ी सेनाओं से घेर लिया है, और लोग न तो भयभीत हैं और न ही चिंतित: बल्कि आनंद और प्रसन्नता से भरे हुए हैं, वे उंगलियां चटका रहे हैं, मौज-मस्ती कर रहे हैं, उछल-कूद कर रहे हैं और गा रहे हैं। इसका क्या अर्थ है?" तब विदेश सेवा के लिए भेजे गए लोगों ने झूठा दावा करते हुए कहा, "महाराज, हम किसी काम से पीछे से नगर में प्रवेश कर गए थे, और लोगों को मौज-मस्ती में मग्न देखकर हमने पूछा, जब भारत के सभी राजा आपके नगर को घेरे हुए हैं, तो आप इतने लापरवाह क्यों हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "जब हमारे राजा बालक थे, तब उनकी इच्छा थी कि जब भारत के सभी राजा नगर को घेर लें, तब वे उत्सव मनाएं; और अब उनकी यह इच्छा पूरी हो गई है: इसलिए उन्होंने एक घोषणा जारी करवाई, और स्वयं महल में उत्सव मना रहे हैं।" इससे राजा क्रोधित हो गए; और उसने अपनी सेना की एक टुकड़ी को इन आदेशों के साथ भेजा: "शहर में चारों ओर फैल जाओ, खाइयों को भर दो, दीवारों को तोड़ दो, द्वार-मीनारों को ध्वस्त कर दो, शहर में प्रवेश करो, लोगों के सिरों को कद्दू की तरह गाड़ी पर फेंक दो, और मुझे राजा वेदेह का सिर यहाँ लाओ।" तब सर्वांगीण हथियारों से लैस शक्तिशाली योद्धा द्वार तक पहुँचे, ऋषि के आदमियों ने उन पर जलते हुए बाण, कीचड़ की बौछार और पत्थर फेंककर उनकी सहायता की। जब वे खाई में दीवार को तोड़ने का प्रयास कर रहे थे, तब द्वार-मीनारों में मौजूद लोगों ने बाणों, भालों और बरछियों से उन पर कहर बरपाया। ऋषि के आदमियों ने हाथों के इशारों और संकेतों से ब्रह्मदत्त के आदमियों का उपहास और उपहास किया, और चिल्लाते हुए कहा, "अगर तुम हमें नहीं हरा सकते, तो खा लो!" और ताड़ी (बीयर) के कटोरे और मांस या मछली से लदी सीखें आगे बढ़ाते हुए, जिन्हें उन्होंने स्वयं खाया और पिया, और दीवारों पर चलने लगे। बाकी सभी असफल होकर कुलानी-ब्रह्मदत्त के पास लौट आए और बोले, "महाराज, जादूगर के सिवा कोई अंदर नहीं जा सका।" राजा चार-पाँच दिन तक इंतज़ार करते रहे, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वे अपना मनचाहा काम कैसे लें। फिर उन्होंने केवत्त से पूछा, "गुरुजी, हम नगर पर कब्ज़ा नहीं कर सकते, कोई भी उसके पास नहीं पहुँच सकता! क्या करें?" "चिंता मत कीजिए महाराज। नगर में पानी बाहर से आता है, हम पानी की आपूर्ति रोक देंगे और इस तरह नगर पर कब्ज़ा कर लेंगे। वे पानी की कमी से

थक जाएँगे।"और द्वार खोल देंगे।" "यही योजना है," राजा ने कहा। इसके बाद, उन्होंने लोगों को पानी के पास जाने से रोक दिया। ज्ञानी व्यक्ति के जासूसों ने एक पत्ते पर लिखा और उसे एक तीर पर बाँध दिया, और इस प्रकार उन्हें संदेश भेजा। अब उन्होंने पहले ही आदेश दे दिया था कि जो कोई भी तीर पर बंधा हुआ पत्ता देखे, उसे उनके पास लाना है। एक व्यक्ति ने यह देखा और उसे ऋषि के पास ले गया, जिन्होंने संदेश पढ़ा। "यह नहीं जानता कि मैं ऋषि महोषध हूँ," उन्होंने सोचा। साठ भुजाओं की लंबाई के बाँस के डंडे लाकर, उन्होंने उन्हें दो भागों में चीर दिया, गांठें हटा दीं, और फिर से जोड़ दिया, चमड़े से ढक दिया और मिट्टी से लेप दिया। फिर उन्होंने हिमवत (हिमालय) से ऋषियों द्वारा लाई गई मिट्टी और लिली के बीज मंगवाए, उन्होंने तालाब के किनारे मिट्टी में बीज बोए, बाँस को उसके ऊपर रखा और उसे पानी से भर दिया। एक ही रात में वह उग आया और फूल गया, बाँस के ऊपर एक फ़ैदम (6 फीट) तक बढ़ गया। फिर उन्होंने उसे खींच लिया उसने उसे उठाया और अपने आदमियों को आदेश दिया कि वे उसे ब्रह्मदत्त के पास ले जाएं। उन्होंने डंठल को लपेटकर दीवार के ऊपर फेंक दिया और चिल्लाते हुए कहा, "हे ब्रह्मदत्त के सेवकों! भूख से मत मरो। लो, फूल पहनो और डंठल से अपना पेट भर लो!" उस ज्ञानी व्यक्ति के एक जासूस ने उसे उठाया और राजा के पास लाकर कहा, "देखिए, महाराज, इस लिली का डंठल: इतना लंबा डंठल पहले कभी नहीं देखा गया!" राजा ने कहा, "इसे नापो।" उन्होंने नापा और पाया कि यह साठ फीट के बजाय अस्सी फीट (6 फीट) लंबा है। राजा ने पूछा, "यह कहाँ उगा?" एक ने मनगढ़ंत कहानी सुनाई: "एक दिन, महाराज, मुझे थोड़ी सी ताड़ी पीने की प्यास लगी, तो मैं शहर के पिछले रास्ते से गया और मैंने लोगों के खेलने के लिए बने बड़े तालाब देखे। एक नाव में कई लोग फूल तोड़ रहे थे। यह वहीं तालाब के किनारे उगा था; लेकिन जो गहरे पानी में उगते हैं, वे सौ भुजाओं जितने ऊँचे होते हैं।" यह सुनकर राजा ने केवट्टा से कहा, "गुरुजी, हम पानी रोककर उन्हें नहीं पकड़ सकते; यह प्रयास छोड़ दीजिए।" "ठीक है," केवट्टा ने कहा, "तो हम उनका भोजन रोककर उन्हें पकड़ेंगे; नगरी को अपना भोजन बाहर से मिलता है।" "बहुत अच्छा, गुरुजी।" ऋषि ने पहले की तरह यह बात समझ ली और सोचा, "यह नहीं जानता कि मैं ऋषि महोसाधा हूँ!" उन्होंने प्राचीर पर मिट्टी बिछाई और उसमें धान बो दिया। अब बोधिसत्वों की इच्छाएँ हमेशा पूरी होती हैं: एक ही रात में धान उग आया और प्राचीर के ऊपर से निकल गया। यह देखकर ब्रह्मदत्त ने पूछा, "मित्र, प्राचीर के ऊपर यह हरा-भरा क्या है?" ऋषि के एक दूत ने, मानो राजा के मुख से शब्द पकड़ लिए हों, उत्तर दिया, "महाराज, किसान के पुत्र महोसाधा ने आने वाले खतरे को भांपते हुए, पूरे राज्य से अनाज इकट्ठा किया और अपने भंडार भर लिए, और बचा हुआ अनाज प्राचीर पर फेंक दिया।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि गर्मी से गर्म और बारिश में भीगने वाला यह चावल वहां पौधों के रूप में विकसित हुआ।एक दिन मैं किसी काम से पीछे के रास्ते से अंदर गया और प्राचीर पर रखे चावल के ढेर में से मुट्ठी भर चावल उठाकर गली में गिरा दिए। इस पर लोग मुझ पर हँसे और बोले, "लगता है तुम्हें भूख लगी है! इसमें से कुछ चावल अपने वस्त्र के कोने में बाँध लो, घर ले जाओ, पकाओ और खा लो।" यह सुनकर राजा ने केवट्टा से कहा, "गुरुजी, चावल काटकर हम इस स्थान पर कब्जा नहीं कर सकते; यह तरीका सही नहीं है।" "तो महाराज, हम इसे बाहर से आने वाली लकड़ी की आपूर्ति काटकर जीतेंगे।" "ठीक है गुरुजी।" बोधिसत्व को पहले की तरह ही इसकी जानकारी मिल गई; और उन्होंने लकड़ी का एक ढेर बना दिया, जो चावल के ढेर से भी आगे की बात साबित करता था। लोग ब्रह्मदत्त के आदमियों पर हँसे और बोले, "अगर तुम्हें भूख लगी है, तो लो, खाना पकाने के लिए कुछ है," और ऐसा कहते हुए उन्होंने लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे नीचे फेंक दिए। राजा ने पूछा, "प्राचीर के ऊपर दिखाई देने वाली यह लकड़ी क्या है?" जासूसों ने कहा, "किसान के बेटे ने आने वाले खतरे को भांपते हुए लकड़ियाँ इकट्ठा कीं और उन्हें घरों के पीछे बने शेडों में जमा कर दिया; जो लकड़ियाँ बच गईं उन्हें उसने किले की दीवार के किनारे ढेर कर दिया।" तब राजा ने केवट्टा से कहा, "गुरुजी, हम लकड़ियाँ काटकर उस स्थान पर कब्जा नहीं कर सकते; यह योजना अब बस करो।" "कोई बात नहीं, महाराज, मेरे पास एक और योजना है।" "वह योजना क्या है, गुरुजी? मुझे आपकी योजनाओं का कोई अंत नहीं दिखता। हम विदेह पर कब्जा नहीं कर सकते; चलिए अपने शहर वापस चलते हैं।" "महाराज, यदि यह कहा जाए कि चुलानी-ब्रह्मदत्त एक सौ एक राजकुमारों के साथ भी विदेह पर कब्जा नहीं कर सका, तो हम अपमानित होंगे। महोसाधा ही एकमात्र बुद्धिमान व्यक्ति नहीं है, मैं भी एक बुद्धिमान व्यक्ति हूँ: मैं एक रणनीति अपनाऊँगा।" "क्या रणनीति है, गुरुजी?" "हम विधि का युद्ध लड़ेंगे।" "इसका क्या अर्थ है?" "महाराज, कोई सेना नहीं लड़ेगी। दोनों राजाओं के दो ऋषि एक स्थान पर प्रकट होंगे, और उनमें से जो दूसरे को प्रणाम करेगा वह पराजित होगा।" महोसाधा को इस बात का ज्ञान नहीं है। मैं बड़ा हूँ और वह छोटा है, और जब वह मुझे देखेगा तो मुझे प्रणाम करेगा। इस प्रकार हम वेदेह पर विजय प्राप्त करेंगे, और यह हो जाने पर हम घर लौट आएंगे। इस प्रकार हमारा अपमान नहीं होगा। यही धर्मयुद्ध का अर्थ है।" लेकिन बोधिसत्व को यह रहस्य पहले की तरह ही पता चल गया। उन्होंने सोचा, "यदि मैं केवट्टा को इस प्रकार मुझ पर विजय प्राप्त करने दूँ, तो मैं ऋषि नहीं रहूँगा।" ब्रह्मदत्त ने कहा, "शानदार योजना": और उन्होंने एक पत्र लिखकर वेदेह को पीछे से भेजा, जिसमें लिखा था: "कल दोनों ऋषियों के बीच धर्मयुद्ध होगा; और जो लड़ने से इनकार करेगा, उसे पराजित माना जाएगा।" यह पत्र प्राप्त होने पर वेदेह ने ऋषि को बुलवाया और उन्हें बताया। उन्होंने उत्तर दिया, "अच्छा, महाराज: पश्चिमी द्वार के पास धर्मयुद्ध के लिए स्थान तैयार करने और वहाँ एकत्रित होने का संदेश भेजें।" इसलिए उन्होंने दूत को पत्र दिया, और अगले दिन उन्होंने केवट्टा की पराजय देखने के लिए धर्मयुद्ध का स्थान तैयार किया। लेकिन एक सौ एक राजकुमार, जो भविष्य में होने वाली घटनाओं से अनजान थे, केवट्टा को बचाने के लिए उसे घेर लिया।ये राजकुमार तैयार स्थान पर गए और पूर्व दिशा की ओर मुख करके खड़े हो गए, जहाँ ऋषि केवट्टा भी विराजमान थे। सुबह-सुबह बोधिसत्व ने सुगंधित जल से स्नान किया, एक लाख सिक्कों के मूल्य का काशी वस्त्र पहना और पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर, भव्य नाश्ते के बाद अपने अनुयायियों के साथ महल के द्वार पर गए। प्रवेश करने की अनुमति मिलने पर उन्होंने राजा को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। राजा ने कहा, "हे ऋषि महोसाधा, नमस्कार! मैं युद्ध स्थल जा रहा हूँ।" ऋषि ने पूछा, "महाराज, मैं केवट्टा को एक रत्न से परास्त करना चाहता हूँ; मुझे

अष्टकोणीय रत्न चाहिए।" ऋषि ने कहा, "ले लो, मेरे पुत्र।" उन्होंने रत्न लिया और विदा लेकर अपने सहपाठियों, अपने हजार योद्धाओं से घिरे हुए, नब्बे हजार सिक्कों के मूल्य के उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचे गए भव्य रथ में सवार हुए और दोपहर के भोजन के समय द्वार पर पहुँचे।

केवट्टा उनके आने की प्रतीक्षा में खड़ा था और "अब वह आ रहे हैं, अब वह आ रहे हैं" कहते हुए अपनी गर्दन को इतना लंबा कर रहा था कि मानो वह और लंबी हो गई हो, और धूप में पसीने से तरबतर था। महानुभाव अपने सेवकों के साथ, उमड़ते हुए सागर की तरह, जागृत सिंह की तरह, निर्भीक और शांत होकर, द्वार खुलवाकर नगर से बाहर आए; उत्तेजित सिंह की तरह अपने रथ से उतरकर वे आगे बढ़े। एक सौ एक राजकुमारों ने उनकी महिमा देखकर हजारों जयकारे लगाए, "देखो, श्रीवद्ध के पुत्र ऋषि महोषद आ गए हैं, जिनकी बुद्धि का साक्षात भारत में कोई सानी नहीं!" और वे सक्का (इंद्र) की तरह अपने देवदूतों के दल से घिरे हुए, अद्वितीय वैभव और वैभव में, हाथ में अनमोल रत्न लिए, केवट्टा के सामने खड़े थे। केवट्टा ने उन्हें देखते ही स्थिर रहने की शक्ति खो दी, बल्कि आगे बढ़कर उनसे मिलने गए और बोले, "ऋषि महोसाधा, हम दोनों ऋषि हैं, और यद्यपि मैं इतने समय से आपके निकट ही रह रहा हूँ, आपने मुझे आज तक कोई उपहार भी नहीं भेजा। ऐसा क्यों?" महान पुरुष ने कहा, "हे ज्ञानी, मैं आपके लिए एक उपयुक्त उपहार की तलाश में था, और आज मुझे यह रत्न मिला है। कृपया इसे स्वीकार करें; संसार में इसके जैसा कोई दूसरा रत्न नहीं है।" दूसरे ने रत्न को अपने हाथ में चमकता हुआ देखकर सोचा कि वह इसे भेंट करना चाहते हैं, और अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा, "तो मुझे दे दीजिए।" महान पुरुष ने कहा, "ले लीजिए," और रत्न को उनके फैले हुए हाथ की उंगलियों के सिरों पर रख दिया। लेकिन ब्राह्मण अपनी उंगलियों में रत्न का भार नहीं संभाल सका, और वह फिसलकर बोधिसत्व के चरणों में गिर गया; ब्राह्मण उसे पाने के लालच में दूसरे के चरणों में झुक गया। तब उस महान पुरुष ने उसे उठने नहीं दिया, बल्कि एक हाथ से उसके कंधे और दूसरे हाथ से उसकी कमर पकड़कर चिल्लाया, "उठो गुरु, उठो, मैं तुमसे छोटा हूँ, तुम्हारा पोता बनने लायक छोटा; मुझे प्रणाम मत करो।" यह कहते हुए उसने बार-बार अपना चेहरा और माथा ज़मीन पर रगड़ा, जब तक कि वह खून से लथपथ नहीं हो गया। फिर उसने कहा, "अंधे मूर्ख, क्या तूने मुझसे प्रणाम पाने की कल्पना की थी?" और उसका गला पकड़कर उसे दूर फेंक दिया। वह बीस पाद (6 फीट) दूर गिरा; फिर उठा और भाग गया। तब उस महान पुरुष के आदमियों ने रत्न उठा लिया, लेकिन बोधिसत्व के शब्दों की गूंज, "उठो, उठो, मुझे प्रणाम मत करो!" भीड़ के शोर में भी गूंज उठी। सभी लोग एक स्वर में चिल्लाए, "ब्राह्मण केवट्टा ने ऋषि के चरणों में प्रणाम किया!" और सभी राजाओं, ब्रह्मदत्त और अन्य सभी ने केवट्टा को महापुरुष के चरणों में सिर झुकाए देखा। उन्होंने सोचा, "हमारे ऋषि ने महापुरुष को प्रणाम किया है; अब तो हम हार गए! वह हम सबका अंत कर देगा"; और वे सब अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर उत्तरा पंचाल की ओर भागने लगे। बोधिसत्व के सैनिकों ने उन्हें भागते देख फिर से शोर मचाना शुरू कर दिया, चिल्लाते हुए,"कुलानी-ब्रह्मदत्त अपने एक सौ एक राजकुमारों के साथ भाग रहा है!" यह सुनकर राजकुमार और भी भयभीत हो गए और दौड़कर विशाल सेना को तितर-बितर कर दिया; वहीं बोधिसत्व के सैनिक चिल्लाते-चिल्लाते और भी शोर मचाते रहे। महापुरुष अपने सेवकों के साथ नगर लौट गए; वहीं ब्रह्मदत्त की सेना तीन मील (4.23 किमी) तक पराजित होकर भागती रही। केवट्टा घोड़े पर सवार होकर सेना के पास आया, अपने माथे से खून पोंछते हुए, और चिल्लाया, "अरे, भागो मत! मैंने इस देहाती को प्रणाम नहीं किया! रुको, रुको!" लेकिन सेना नहीं रुकी और केवट्टा का उपहास करते हुए, उसका अपमान किया, "पापी पुरुष! दुष्ट ब्राह्मण! तू धर्मयुद्ध करेगा और फिर अपने पोते की उम्र के एक लड़के के सामने झुकेगा! क्या यह तेरे लिए बिल्कुल अनुचित नहीं है!" उन्होंने उसकी बात नहीं सुनी और आगे बढ़ते रहे। वह सेना में घुस गया और चिल्लाया, "अरे, तुम सब मेरी बात मानो, मैंने उसके सामने सिर नहीं झुकाया, उसने मुझे एक रत्न से धोखा दिया!" इस प्रकार, उसने किसी न किसी तरह राजकुमारों को मना लिया और उन्हें अपने ऊपर विश्वास दिलाकर बिखरी हुई सेना को एकजुट कर लिया।

यह सेना इतनी विशाल थी कि यदि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति एक पत्थर या मुट्ठी भर मिट्टी लेकर खाई में फेंकता, तो खाई भर जाती और किले की दीवार जितनी ऊँची मिट्टी का ढेर बन जाता। परन्तु हम जानते हैं कि बोधिसत्वों की इच्छाएँ पूर्ण होती हैं; और उनमें से किसी ने भी शहर की ओर एक पत्थर या मुट्ठी भर मिट्टी नहीं फेंकी। वे सब अपने-अपने स्थान पर लौट गए। तब राजा ने केवट्टा से पूछा, "हे गुरु, हमें क्या करना चाहिए?" "हे स्वामी, किसी को भी पीछे से बाहर न आने दें और सभी रास्ते बंद कर दें। जो लोग बाहर नहीं आ पाएँगे, वे हतोत्साहित होकर द्वार खोल देंगे। इस प्रकार हम अपने शत्रुओं को पकड़ लेंगे।" ऋषि को पहले की तरह ही इस मामले की जानकारी दी गई और उन्होंने सोचा, "यदि वे यहाँ लंबे समय तक रहे तो हमें शांति नहीं मिलेगी; उनसे छुटकारा पाने का कोई उपाय खोजना होगा। मैं उन्हें भगाने की रणनीति बनाऊँगा।" अतः उन्होंने ऐसे मामलों में निपुण व्यक्ति की खोज की और अनुकेवट्टा नामक व्यक्ति को पाया। उन्होंने उससे कहा, "हे गुरु, मेरे पास एक बात है जिसे मैं चाहता हूँ कि आप पूरा करें।" "मैं क्या करूँ, हे विद्वान महोदय? मुझे बताइए।" "किले की प्राचीर पर खड़े हो जाओ, और जब हमारे सैनिक असावधान दिखें, तो तुरंत ब्रह्मदत्त के सैनिकों को रोटी, मछली, मांस और अन्य भोजन नीचे गिरा दो, और कहो, लो, यह और यह खाओ, निराश मत हो; कुछ दिन और यहीं रुकने की कोशिश करो; जल्द ही लोग पिंजरे में बंद मुर्गियों की तरह हो जाएंगे और अपने आप द्वार खोल देंगे, और तब तुम वेदेह और उस दुष्ट किसान के बेटे को पकड़ पाओगे। जब हमारे सैनिक यह सुनेंगे, तो वे तुम्हें कठोर फटकार लगाते हुए ब्रह्मदत्त की सेना के सामने हाथ-पैर बांध देंगे, और बांस से पीटने का नाटक करेंगे, और तुम्हें नीचे खींच लेंगे, और तुम्हारे बालों में पांच गांठें बांधकर तुम्हें ईंटों के चूर्ण से लेप देंगे, तुम्हारे ऊपर कनवेरा की माला डालेंगे, तुम्हें तब तक पीटेंगे जब तक तुम्हारी पीठ पर निशान न पड़ जाएं, तुम्हें प्राचीर पर ले जाएंगे, तुम्हें बांध देंगे,

और रस्सी से ब्रह्मदत्त के सैनिकों को नीचे गिरा देंगे, चिल्लाते हुए, जाओ, गद्दार! फिर तुम्हें ब्रह्मदत्त के सामने ले जाया जाएगा, और वह तुमसे तुम्हारा अपराध पूछेगा; आपको उससे कहना होगा, "हे महाराज, एक समय मैं बहुत सम्मानित था, लेकिन किसान के पुत्र ने मुझे मेरे राजा के समक्ष देशद्रोही बताकर मेरा सब कुछ लूट लिया। जिसने मुझे बर्बाद किया था, उसे मैं एक सिर छोटा करना चाहता था, और आपके सैनिकों की निराशा पर दया करके मैंने उन्हें भोजन और पानी दिया। इसके लिए, अपने हृदय में पुरानी दुश्मनी लिए उसने मुझ पर यह विनाश लाद दिया। हे महाराज, आपके अपने सैनिक सब जानते हैं।" इस प्रकार, किसी न किसी तरह आपको राजा का विश्वास जीतना होगा, और फिर उससे कहना होगा, "महाराज, अब आप मुझे पा चुके हैं, अब चिंता न करें। अब वेदेह और किसान का पुत्र मर चुके हैं! मैं इस शहर की दीवारों के मजबूत और कमजोर स्थानों को जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि खाई में मगरमच्छ कहाँ हैं और कहाँ नहीं; शीघ्र ही मैं शहर को आपके हाथों में ले आऊँगा।" राजा आप पर विश्वास करेगा और आपका सम्मान करेगा, और सेना को आपके अधीन कर देगा। फिर आपको सेना को उन स्थानों पर ले जाना होगा जहाँ साँप और मगरमच्छ रहते हैं; मगरमच्छों के भय से सेना को आगे बढ़ाना होगा। नीचे जाने से इनकार कर देगा।तब आपको राजा से कहना होगा, “हे महाराज, आपकी सेना किसान के पुत्र द्वारा भ्रष्ट कर दी गई है; उनमें से एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, यहाँ तक कि शिक्षक केवट्टा और राजकुमार भी, जिसे रिश्वत न दी गई हो। वे केवल आपकी रक्षा करते हुए घूमते हैं, वे सभी किसान के पुत्र के चेले हैं, और मैं अकेला ही आपका वफादार हूँ। यदि आप मुझ पर विश्वास न करें, तो राजाओं को पूरी वर्दी में आपके सामने आने का आदेश दें; फिर उनके वस्त्र, उनके आभूषण, उनकी तलवारें, जो सभी किसान के पुत्र द्वारा दिए गए हैं और जिन पर उसका नाम खुदा हुआ है, उनकी जाँच करें और स्वयं को आश्वस्त करें।” राजा ऐसा करेगा, और सुनिश्चित करेगा, और भयभीत होकर राजकुमारों को विदा कर देगा। तब वह आपसे पूछेगा कि क्या किया जाए? और आपको उत्तर देना होगा, “हे महाराज, किसान का पुत्र बहुत चालाक है, और यदि आप यहाँ कुछ दिन रुके तो वह पूरी सेना पर विजय प्राप्त कर लेगा और आपको बंदी बना लेगा। देर न करें, बल्कि आज रात मध्य पहर में ही घोड़े लेकर निकल पड़ें, ताकि हम शत्रु के हाथों न मरें।” राजा आपकी सलाह मान लेगा। और जब वह भाग जाए, तो तुम्हें लौटकर मेरे लोगों को बताना होगा।” इस पर अनुकेवट्टा ने उत्तर दिया, “अच्छा, महाराज, मैं आपकी बात मानूंगा।” “ठीक है, तो तुम्हें कुछ मार सहनी पड़ेगी।” “महाराज, मेरे शरीर के साथ जो चाहो करो, बस मेरी जान और मेरे अंगों को बख्श दो।”

अनुकेवट्टा के परिवार के प्रति पूर्ण सम्मान दिखाने के बाद, उसने अनुकेवट्टा के साथ इस प्रकार दुर्व्यवहार करवाया और उसे ब्रह्मदत्त के आदमियों के हवाले कर दिया। राजा ने उसकी परीक्षा ली, उस पर भरोसा किया, उसे सम्मानित किया और सेना का नेतृत्व उसे सौंप दिया; वह सेना को उन स्थानों पर ले गया जहाँ साँप और मगरमच्छ भरे हुए थे; और मगरमच्छों से भयभीत होकर और प्राचीरों पर खड़े सैनिकों द्वारा फेंके गए तीरों, भालों और बरछियों से घायल होकर, सैनिक वहीं मर गए, जिसके बाद कोई भी इतना साहसी नहीं था कि वहाँ जा सके। तब अनुकेवट्टा राजा के पास पहुँचा और उससे कहा, "हे महाराज, आपके लिए लड़ने वाला कोई भी सैनिक नहीं है: सभी को रिश्वत दी गई है। यदि आप मुझ पर विश्वास नहीं करते हैं, तो राजकुमारों को बुलवाएँ और उनके वस्त्रों और साजो-सामान पर लिखे शिलालेख देखें।" राजा ने ऐसा ही किया; और उनके सभी वस्त्रों और साजो-सामान पर शिलालेख देखकर, उसे यकीन हो गया कि वास्तव में उन्होंने रिश्वत ली थी। "गुरुजी," उसने कहा, "अब क्या किया जाए?" "महाराज, कुछ नहीं किया जा सकता; यदि आप देर करेंगे, तो किसान का पुत्र आपको पकड़ लेगा। महाराज, यदि शिक्षक केवट्टा माथे पर घाव लिए घूम रहा है, तो भी उसने रिश्वत ली है; उसने वह कीमती रत्न लिया और आपको तीन मील (4.23 किमी) तक पराजित कराया, फिर आपका विश्वास जीतकर आपको वापस ले आया। वह गद्दार है! मैं एक रात भी उसकी आज्ञा नहीं मानूंगा; आज रात मध्याह्न में ही आप भाग जाएं। मेरे सिवा आपका कोई मित्र नहीं है।" "तो, गुरुजी, आप मेरा घोड़ा और रथ तैयार कर दीजिए।" यह देखकर कि राजा निश्चित रूप से भागने पर आमादा है, उन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और कहा कि वह किसी बात से न डरे; फिर वे बाहर गए और जासूसों को बताया कि राजा आज रात भागने वाला है, उन्हें सोने की चिंता नहीं करनी चाहिए। इसके बाद उन्होंने राजा के घोड़े को तैयार किया, लगाम इस प्रकार बांधी कि जितना अधिक वह खींचेगा, घोड़ा उतनी ही तेजी से दौड़ेगा; और आधी रात को उन्होंने कहा, "महाराज, आपका घोड़ा तैयार है; देखिए, समय आ गया है।" राजा घोड़े पर सवार हुए और भाग गए। अनुकेवत्ता भी घोड़े पर सवार हो गया, मानो उसके साथ जाने के लिए, लेकिन थोड़ी दूर जाकर वह वापस मुड़ गया; और राजा का घोड़ा, लगाम की व्यवस्था के अनुसार, राजा के कहने पर आगे बढ़ता रहा। फिर अनुकेवत्ता सेना के बीच आया और ऊँची आवाज़ में चिल्लाया, "कुलानी-ब्रह्मदत्ता भाग गया है!" जासूस और उनके सेवक भी चिल्ला उठे। शोर सुनकर अन्य राजकुमार भयभीत होकर सोचने लगे, "ऋषि महोषध ने द्वार खोलकर बाहर आ गए होंगे; हम सब मर जाएँगे!" अपने उपयोग और आनंद की सभी वस्तुओं पर एक नज़र डालते ही वे भाग गए। लोग और भी ज़ोर से चिल्लाए, "राजकुमार हार गए हैं!" शोर सुनकर द्वार और मीनारों पर खड़े सभी लोग चिल्लाए और तालियाँ बजाईं। तब भीतर और बाहर सारा शहर एक भयंकर गर्जना से गूंज उठा, मानो धरती फट गई हो या गहरा सागर टूट गया हो, जबकि उस विशाल सेना के असंख्य झुंड, जानलेवा आतंक में, बिना किसी शरण या बचाव के, जोर-जोर से चिल्ला रहे थे।"महोसाधा ने ब्रह्मदत्त को उसके सौ एक राजाओं सहित पकड़ लिया!" वे हार मानकर भाग गए, यहाँ तक कि अपने वस्त्र भी फेंक दिए। शिविर खाली था। चुलानी-ब्रह्मदत्त अपने सौ एक सरदारों के साथ अपने नगर में प्रवेश कर गया।

अगली सुबह, सैनिकों ने शहर के द्वार खोल दिए और अंदर चले गए। वहाँ मौजूद भारी मात्रा में माल देखकर उन्होंने महापुरुष को सूचना दी और पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए। महापुरुष ने कहा, "जो माल वे छोड़ गए हैं, वह हमारा है। राजकुमारों का माल हमारे राजा को दे दो, और केवट्टा और अन्य आम लोगों का माल मुझे ला दो; बाकी सब नागरिक ले लें।" कीमती गहने और मूल्यवान सामान निकालने में आधा महीना लगा, और बाकी सामान निकालने में चार महीने। महापुरुष ने अनुकेवट्टा को बहुत सम्मान दिया। उस दिन से मिथिला के नागरिकों के पास भरपूर सोना हो गया।

ब्रह्मदत्त और वे राजा उत्तरापंचल नगर में एक वर्ष से रह रहे थे; एक दिन केवट्टा ने दर्पण में अपना चेहरा देखते हुए अपने माथे पर निशान देखा और सोचा, "यह तो उस किसान के पुत्र का काम है: उसने मुझे उन सभी राजाओं के सामने हंसी का पात्र बना दिया!" उसे क्रोध आ गया। "मैं उसकी पीठ कैसे देख पाऊंगा?" उसने सोचा। "अरे, एक योजना है। हमारे राजा की पुत्री, पंचालचंडी, दिव्य अप्सरा के समान अत्यंत सुंदर है; मैं उसे राजा वेदेह को दिखाऊंगा। वह मछली की तरह कांटे में फंस जाएगा: मैं उसे और उसके साथ महोषद को पकड़ लूंगा, उन दोनों को मार डालूंगा और विजय का प्याला पीऊंगा!" इस संकल्प के साथ वह राजा के पास पहुंचा। "महाराज," उसने कहा, "मेरे पास एक विचार है।" "जी गुरु, आपके इस विचार ने मुझे एक बार कपड़े तक फाड़ दिए थे। अब आप क्या करेंगे? चुप रहो।" "महाराज, ऐसी योजना पहले कभी नहीं बनी।" "तो बोलिए।" "महाराज, हमें अकेले में रहना होगा।" "ठीक है।" ब्राह्मण उसे ऊपरी मंजिल पर ले गया और बोला, "महाराज! मैं राजा वेदेह को अपनी इच्छा से आकर्षित करके यहाँ लाऊँगा और मार डालूँगा।" "अच्छा उपाय है, गुरुजी, लेकिन हम उसकी इच्छा को कैसे जगाएँगे?" "महाराज, आपकी पुत्री पंचालचंडी अत्यंत सुंदर है; हम कवियों से उसके आकर्षण और गुणों का काव्य करवाएँगे और उन काव्यों को मिथिला में गवाएँगे। जब हम देखेंगे कि वह मन ही मन कह रहा है, 'यदि शक्तिशाली राजा वेदेह इस सुंदर कन्या को नहीं पा सकता, तो उसका राज्य उसके लिए क्या है?' और वह इस विचार के आकर्षण में फँस गया है, तब मैं जाकर एक दिन तय करूँगा; मेरे द्वारा तय किए गए दिन वह काँटे में फँसी मछली की तरह आएगा, और उसके साथ किसान का बेटा भी होगा; तब हम उन्हें मार डालेंगे।" यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और सहमत हो गया: "अच्छा उपाय है, गुरुजी! हम ऐसा ही करेंगे।"

लेकिन राजा के पलंग की रखवाली करने वाले एक मैना पक्षी ने इस बात पर ध्यान दिया।

तब राजा ने प्रतिभाशाली कवियों को बुलवाया, उन्हें भरपूर धन दिया और अपनी पुत्री के बारे में बताते हुए उसकी सुंदरता पर कविता लिखने को कहा। उन्होंने अत्यंत मधुर गीत रचे और राजा को सुनाए। राजा ने उन्हें भरपूर पुरस्कार दिया। संगीतकारों ने कवियों से ये गीत सीखे और सार्वजनिक रूप से गाए, जिससे ये गीत दूर-दूर तक फैल गए। जब गीत दूर-दूर तक फैल गए, तो राजा ने गायकों को बुलवाया और कहा, "मेरे बच्चों, रात में कुछ पक्षियों के साथ वृक्षों पर चढ़ जाओ, वहाँ बैठकर गाओ और सुबह उनके गले में घंटियाँ बाँध दो, उन्हें उड़ने दो और फिर नीचे आने दो।" उसने ऐसा इसलिए किया ताकि संसार कहे कि स्वयं देवता (देवदूत) पाँचाल के राजा की पुत्री की सुंदरता का गुणगान करते हैं। फिर राजा ने इन कवियों को बुलवाया और उनसे कहा, "मेरे बच्चों, इस आशय की कविताएँ रचो कि ऐसी राजकुमारी पूरे भारत में मिथिला के राजा वेदेह के सिवा किसी राजा के लिए नहीं है, राजा की महिमा और कन्या की सुंदरता की प्रशंसा करते हुए।" उन्होंने ऐसा ही किया और इसकी सूचना दी; राजा ने उन्हें अच्छा भुगतान किया और मिथिला जाकर उसी तरह गाने को कहा। वे रास्ते में ये गीत गाते हुए मिथिला गए और वहाँ सार्वजनिक रूप से गाए। लोगों की भीड़ ने गीत सुने और ज़ोरदार तालियों के बीच उनका अच्छा भुगतान किया। रात में वे पेड़ों पर चढ़कर गाते और सुबह पक्षियों के गले में घंटियाँ बाँध देते, इससे पहले कि वे नीचे उतरें। लोगों ने हवा में घंटियों की आवाज़ सुनी और पूरे शहर में यह खबर फैल गई कि स्वयं देवता (देवदूत) राजा की पुत्री की सुंदरता का गुणगान कर रहे हैं। यह सुनकर राजा ने कवियों को बुलवाया और अपने महल में उनसे मुलाकात की। राजा को यह विश्वास दिलाया गया कि वे उन्हें राजा चुलानी की विलक्षण पुत्री भेंट करना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने उन्हें अच्छा भुगतान किया और वे वापस आकर ब्रह्मदत्त को यह बात बताई। तब केवत्त ने उनसे कहा, "महाराज, अब मेरे जाने और दिन का प्रबंध करने का समय हो गया है।" "बहुत अच्छा, गुरुजी, आपको अपने साथ क्या ले जाना है?" "एक छोटा सा उपहार।" उन्होंने वह उपहार दे दिया। दूसरा व्यक्ति अपने साथ बड़ी संख्या में अनुयायियों को लेकर वेदेह के राज्य की ओर चल पड़ा। उसके आगमन की खबर फैलते ही सारा शहर शोरगुल मचाने लगा: “लोग कहते हैं कि राजा मणि और वेदेह मित्रता करेंगे; चुलानी अपनी पुत्री हमारे राजा को देगा, और लोग कहते हैं कि केवट्टा विवाह का दिन तय करने आ रहा है।” राजा वेदेह ने भी यह सुना; और उस महान सत्ता ने भी यह सुनकर सोचा, “मुझे उसका आना पसंद नहीं है; मुझे इसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करनी होगी।” इसलिए उसने चुलानी के साथ रहने वाले जासूसों को संदेश भेजा। उन्होंने उत्तर दिया, “हमें यह बात पूरी तरह समझ नहीं आई। राजा और केवट्टा राजशय में बैठकर बातें कर रहे थे; लेकिन राजशय की रखवाली करने वाले मैना को इसकी जानकारी हो जाएगी।” यह सुनकर उस महान सत्ता ने सोचा: “ताकि हमारे शत्रुओं को कोई लाभ न मिले, मैं पूरे शहर को विभाजित कर दूंगा और उसे सजाऊंगा, और केवट्टा को इसे देखने नहीं दूंगा।” अतः उसने नगर के द्वार से महल तक और महल से अपने घर तक, सड़क के दोनों ओर जालीदार संरचना बनवाई और पूरी सड़क को चटाइयों से ढक दिया।शहर को चित्रों से सजाया गया था, ज़मीन पर फूल बिखेरे गए थे, जगह-जगह पानी से भरे घड़े रखे गए थे, झंडे और बैनर टांगे गए थे। जब केवट्टा शहर में दाखिल हुआ तो उसे ये सजावटें दिखाई नहीं दीं; उसने सोचा कि राजा ने उसके लिए ही इसे सजाया है, और वह समझ नहीं पाया कि ऐसा इसलिए किया गया था ताकि वह इसे देख न सके। जब वह राजा के सामने आया, तो उसने अपना उपहार भेंट किया

और विनम्रतापूर्वक अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गया। फिर सम्मानपूर्वक स्वागत के बाद, उसने अपने आने का कारण बताने के लिए दो श्लोक पढ़े।

"एक राजा जो आपकी मित्रता चाहता है, वह आपको ये अनमोल वस्तुएँ भेजता है: अब उस स्थान से योग्य और मधुर वाणी वाले दूतों को आने दें; उन्हें ऐसे कोमल शब्द बोलने दें जो सुख प्रदान करें, और पांचाल और विदेह के लोग एक हो जाएँ।"

“महाराज,” वह आगे बोले, “वे मेरी जगह किसी और को भेज सकते थे, लेकिन उन्होंने मुझे भेजा, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि कोई और इस कहानी को मेरे जितना मधुरता से नहीं सुना सकता। जाइए, गुरुजी,” उन्होंने कहा, “राजा को इस पर कृपा करने के लिए मनाइए और उन्हें अपने साथ वापस ले आइए। अब जाइए, महाराज, और आपको एक उत्तम और सुंदर राजकुमारी प्राप्त होगी, और हमारे राजा और आपके बीच मित्रता स्थापित होगी।” राजा इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए; उन्हें असाधारण सुंदरता वाली राजकुमारी प्राप्त होने का विचार आकर्षित कर गया, और उन्होंने उत्तर दिया, “गुरुजी, विधि युद्ध में आपके और बुद्धिमान महोसाधा के बीच विवाद हुआ था। अब जाइए और मेरे पुत्र से मिलिए; आप दोनों बुद्धिमानों को अपने मतभेद सुलझाने होंगे; और आपस में बात करने के बाद वापस आ जाइए।” केवट्टा ने ऋषि से मिलने जाने का वादा किया और वे चले गए।

उस दिन, उस महान व्यक्ति ने पापी व्यक्ति से बात न करने का निश्चय करके सुबह थोड़ा घी पिया; उन्होंने फर्श पर गीला गोबर छिड़का और खंभों पर तेल लगाया; एक संकरे पलंग को छोड़कर सभी कुर्सियाँ और आसन हटा दिए गए, जिस पर वे लेटे थे। उन्होंने अपने सेवकों को इस प्रकार आदेश दिया: "जब ब्राह्मण बात करना शुरू करे, तो कहना, 'ब्राह्मण, ऋषि से बात मत करो; उन्होंने आज घी का सेवन किया है।' और जब मैं उनसे बात करने का प्रयास करूँ, तो मुझे रोकते हुए कहना, 'हे स्वामी, आपने घी का सेवन किया है - बात मत करो।'" इन निर्देशों के बाद, महान व्यक्ति ने स्वयं को लाल वस्त्र से ढक लिया और सात द्वार-स्तंभों पर सेवकों को तैनात करने के बाद अपने पलंग पर लेट गए। केवट्टा पहले द्वार पर पहुँचकर पूछा, 'ज्ञानी व्यक्ति कहाँ है?' तब सेवकों ने उत्तर दिया, “ब्राह्मण, शोर मत करो; यदि तुम अंदर जाना चाहते हो, तो चुपचाप जाओ। आज ऋषि ने घी ग्रहण किया है, और वे शोर सहन नहीं कर सकते।” अन्य द्वारों पर भी उन्होंने यही बात कही। जब वे सातवें द्वार पर पहुँचे, तो वे ऋषि के समक्ष प्रवेश कर गए, और ऋषि ने बोलने का आभास दिया: परन्तु उन्होंने कहा, “महाराज, बात मत कीजिए; आपने घी की अधिक मात्रा ग्रहण की है—इस अभागे ब्राह्मण से क्यों बात करें?” अतः उन्होंने उन्हें रोक दिया। दूसरा अंदर आया, परन्तु बैठने की जगह नहीं मिली, न पलंग के पास खड़े होने की। वह गीले गोबर पर से होकर खड़ा हुआ। तब एक ने उसकी ओर देखा और अपनी आँखें मलीं, एक ने अपनी भौंहें उठाईं, एक ने अपनी कोहनी खुजलाई। यह देखकर वह क्रोधित हुआ और बोला, “महाराज, मैं जा रहा हूँ।” दूसरे ने कहा, “हा, अभागे ब्राह्मण, शोर मत करो! यदि तुमने शोर किया, तो मैं तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ दूँगा!” भयभीत होकर उसने पीछे मुड़कर देखा, तभी एक अन्य ने उसे बांस की छड़ी से पीठ पर मारा, दूसरे ने उसका गला पकड़कर उसे धक्का दिया, तीसरे ने उसकी पीठ पर थप्पड़ मारे, जब तक कि वह डर के मारे, जैसे कोई हिरण पैंथर के मुंह से निकलता है, भाग गया और महल लौट आया।

अब राजा ने सोचा, "आज मेरा बेटा यह खबर सुनकर प्रसन्न होगा। दोनों बुद्धिमानों के बीच धर्म के विषय में कितनी चर्चा होगी! आज उनका मेल-मिलाप हो जाएगा और मुझे लाभ होगा।" इसलिए जब उसने केवट्टा को देखा, तो उसने एक श्लोक सुनाया और उनसे हुई उनकी बातचीत के बारे में पूछा।

"केवट्टा, महोसधा के साथ आपकी मुलाकात कैसी रही? कृपया मुझे बताएं। क्या महोसधा का मन बदल गया, क्या वह खुश हुआ?"

इस पर केवट्टा ने उत्तर दिया, "महाराज, आप उसे बुद्धिमान व्यक्ति समझते हैं, लेकिन उससे कम अच्छा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है," और उसने एक श्लोक सुनाया:

"वह स्वभाव से नीच व्यक्ति है, मनुष्यों का स्वामी! अप्रिय, हठी, दुष्ट स्वभाव का, गूंगे या बहरे के समान: उसने एक शब्द भी नहीं कहा।"

इससे राजा को अप्रसन्नता हुई, परन्तु उन्होंने कोई दोष नहीं पाया। उन्होंने केवट्टा और उनके सेवकों को उनकी सभी आवश्यक वस्तुएँ और रहने के लिए एक घर प्रदान किया और उन्हें विश्राम करने के लिए कहा। उन्हें विदा करने के बाद राजा ने मन ही मन सोचा, "मेरा पुत्र बुद्धिमान है और शिष्टाचार भली-भांति जानता है; फिर भी उसने इस व्यक्ति से शिष्टाचारपूर्वक बात नहीं की और उससे मिलना भी नहीं चाहा। निश्चय ही उसे भविष्य में किसी आशंका का कारण अवश्य दिखाई दिया होगा!" और उन्होंने स्वयं एक छंद की रचना की:

"यह संकल्प सचमुच समझना बहुत कठिन है; इस बलवान व्यक्ति ने एक स्पष्ट परिणाम का पूर्वाभास कर लिया है। इसलिए मेरा शरीर कांप रहा है: कौन अपना सब कुछ खोकर अपने शत्रु के हाथों में पड़ जाएगा?"

“निःसंदेह मेरे पुत्र ने ब्राह्मण के आगमन में कुछ बुराई देखी होगी। वह यहाँ किसी मित्रतापूर्ण उद्देश्य से नहीं आया होगा। वह मुझे अपनी इच्छा से आकर्षित करना चाहता होगा, और मुझे अपने नगर ले जाकर वहाँ बंदी बनाना चाहता होगा। ऋषि ने अवश्य ही आने वाले किसी खतरे को भांप लिया होगा।” जब वह इन विचारों पर घबराते हुए मन ही मन विचार कर रहे थे, तभी चार ज्ञानी पुरुष अंदर आए। राजा ने सेनाक से कहा, “सेनाक, क्या तुम सोचते हो कि मुझे उत्तरा पंचाल नगर जाकर राजा चुलानी की पुत्री से विवाह करना चाहिए?” सेनाक ने उत्तर दिया, “हे महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं! जब भाग्य आपका साथ दे, तो उसे कौन दंड देकर भगाएगा? यदि आप वहाँ जाकर उससे विवाह करेंगे, तो पूरे भारत में चुलानी-ब्रह्मदत्त के सिवा आपका कोई सानी नहीं होगा, क्योंकि आपने प्रधान राजा की पुत्री से विवाह किया होगा। राजा जानता है कि अन्य राजकुमार उसके ही आदमी हैं, और केवल वेदेह ही उसके सानी है, इसलिए वह अपनी असाधारण पुत्री आपको देना चाहता है। जैसा वह कहता है वैसा ही करो, और हमें भी वस्त्र और आभूषण प्राप्त होंगे।” जब राजा ने दूसरों से पूछा, तो सबने एक ही बात कही। जब वे इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, तभी ब्राह्मण केवट्टा अपने कमरे से राजा से विदा लेने और जाने के लिए निकला; और उसने कहा, "महाराज, मैं यहाँ और नहीं रुक सकता, मैं जाना चाहता हूँ, हे पुरुषों के राजकुमार!" राजा ने उसका आदर किया और उसे जाने दिया।

जब उस महान प्राणी को उसके जाने का समाचार मिला, तो उसने स्नान किया, वस्त्र बदले और राजा की सेवा में जाकर उसे प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। राजा ने सोचा, "मेरे पुत्र, हे बुद्धिमान महोसाधा, महान और बुद्धिमान हैं; वे भूत, वर्तमान और भविष्य जानते हैं; वे जानते होंगे कि मुझे जाना चाहिए या नहीं"; फिर भी, भावनाओं में बहकर वे अपने पहले संकल्प पर कायम नहीं रहे, बल्कि उन्होंने अपना प्रश्न एक श्लोक में पूछा:

"छहों ऋषि एक ही मत रखते हैं, और वे ज्ञान में सर्वोच्च ऋषि हैं। जाऊं या न जाऊं, यहीं रहूं—महोसाधा, मुझे भी अपना मत बताओ।"

इस पर ऋषि ने सोचा, "यह राजा अत्यधिक लालची है: अंधा और मूर्ख होकर इन चारों की बातें सुन रहा है। मैं उसे जाने की हानि बताकर उसे मनाऊंगा।" अतः उन्होंने चार श्लोक दोहराए:

"हे महाराज, क्या आप जानते हैं? शक्तिशाली और बलवान राजा चुलानी-ब्रह्मदत्त हैं, और वे चाहते हैं कि आप उन्हें मार डालें, जैसे शिकारी छल से हिरण को पकड़ता है। जैसे भोजन के लिए ललचाई मछली चारे में छिपे कांटे को नहीं पहचानती, या मनुष्य अपनी मृत्यु को नहीं पहचानता, वैसे ही हे राजा, इच्छाओं के लालच में डूबे हुए, आप चुलानी की पुत्री को नहीं पहचानते, हे मनुष्य, आप अपनी मृत्यु को नहीं पहचानते। पांचाल जाइए, और थोड़े ही समय में आप स्वयं को नष्ट कर लेंगे, जैसे सड़क पर फंसा हिरण बड़े खतरे में पड़ जाता है।"

इस कठोर फटकार से राजा क्रोधित हो गया। उसने सोचा, “यह आदमी मुझे अपना दास समझता है, यह भूल जाता है कि मैं एक राजा हूँ। यह जानता है कि प्रधान राजा ने मुझे अपनी पुत्री भेंट करने के लिए भेजा है, और शुभकामनाओं का एक शब्द भी नहीं कहता, बल्कि भविष्यवाणी करता है कि मुझे एक मूर्ख हिरण या काँटे में फँसी मछली या सड़क पर फँसे हिरण की तरह पकड़ा और मार डाला जाएगा!” और तुरंत ही उसने एक श्लोक पढ़ा:

"मैं मूर्ख था, मैं बहरा और गूंगा था, जो आपसे उच्च मामलों पर सलाह लेता था। आप अन्य पुरुषों की तरह बातें कैसे समझ सकते हैं, जब आप हल की पूंछ पकड़कर बड़े हुए हैं?"

इन अपमानजनक शब्दों के साथ, उसने कहा, "यह देहाती आदमी मेरी किस्मत में बाधा डाल रहा है! इसे भगाओ!" और उससे छुटकारा पाने के लिए उसने यह छंद बोला:

"इस आदमी की गर्दन पकड़ो और मेरे राज्य को इससे मुक्त कराओ, जो मुझे रत्न प्राप्त करने से रोकने की बात करता है।"

लेकिन राजा का क्रोध देखकर उसने सोचा, "यदि इस राजा के कहने पर कोई मुझे हाथ या गर्दन से पकड़ ले या मुझे छू ले, तो मैं मृत्यु तक अपमानित हो जाऊँगा; इसलिए मैं स्वयं चला जाऊँगा।" अतः उसने राजा को प्रणाम किया और अपने घर चला गया। राजा ने केवल क्रोध में कहा था, परन्तु बोधिसत्व के आदर में उसने किसी को भी अपने वचन का पालन करने का आदेश नहीं दिया। तब उस महान प्राणी ने सोचा, "यह राजा मूर्ख है, इसे अपने लाभ-हानि का ज्ञान नहीं है। यह प्रेम में डूबा हुआ है; और उस राजकुमारी को पाने के लिए दृढ़ संकल्पित है, यह आने वाले खतरे को नहीं देख रहा; यह अपने विनाश की ओर अग्रसर होगा। मुझे इसके वचनों को अपने मन में नहीं रखना चाहिए। यह मेरा महान सहायक है, और इसने मुझे बहुत सम्मान दिया है। मुझे इस पर विश्वास रखना चाहिए। परन्तु पहले मैं तोते को भेजकर तथ्य पता करूँगा, फिर मैं स्वयं जाऊँगा।" अतः उसने तोते को भेज दिया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

फिर वह वेदेह के सामने से निकलकर अपने दूत, चतुर तोते मथारा से बोला, “आओ, मेरे हरे तोते, मेरी एक सेवा करो। पांचाल के राजा के पास एक मैना है जो उनके पलंग की रखवाली करता है; उससे सब कुछ पूछो, क्योंकि वह सब कुछ जानता है, राजा और कोसिया के सारे रहस्य जानता है।” चतुर तोते मथारा ने बात मानी और मैना पक्षी के पास गया। फिर इस चतुर तोते मथारा ने अपने सुंदर पिंजरे में बैठी मधुर आवाज वाली मैना से कहा, “क्या तुम अपने सुंदर पिंजरे में ठीक हो? क्या तुम खुश हो, हे वेस्सा (तोता)? क्या तुम्हें तुम्हारे सुंदर पिंजरे में भुने हुए मक्के दिए जाते हैं?” “मैं ठीक हूँ, महोदय, वास्तव में, मैं खुश हूँ, मुझे भुने हुए मक्के दिए जाते हैं, हे चतुर तोते। आप क्यों आए हैं, महोदय, और आपको क्यों भेजा गया है? मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा या आपके बारे में नहीं सुना।”

यह सुनकर उसने सोचा: "अगर मैं कहूँ कि मैं मिथिला से आया हूँ, तो वो कभी मुझ पर विश्वास नहीं करेगी। रास्ते में मैंने शिवी राज्य में अरित्थपुरा नगर देखा; इसलिए मैं एक झूठी कहानी बनाऊँगा कि शिवी राजा ने मुझे यहाँ भेजा है," और उसने कहा--

"मैं राजा सिवी के महल में उनका बटलर था, और वहीं से उस धर्मात्मा राजा ने कैदियों को गुलामी से मुक्त किया।"

तब उस महिला ने उसे सोने के बर्तन में रखे हुए शहद वाले अनाज और शहद का पानी दिया और कहा, "महोदय, आप बहुत दूर से आए हैं: यहाँ क्या आया है?" उसने रहस्य जानने की इच्छा से एक कहानी गढ़ी और कहा,

"एक बार मुझे एक मधुर आवाज वाली मैना चिड़िया से शादी करनी पड़ी, और एक बाज ने मेरी आंखों के सामने उसे मार डाला।"

फिर उसने पूछा, "लेकिन बाज़ ने तुम्हारी पत्नी को कैसे मारा?" उसने उसे यह कहानी सुनाई। "सुनिए, महोदया। एक दिन हमारे राजा ने मुझे जल भोज में आमंत्रित किया। मैं और मेरी पत्नी उनके साथ गए और खूब मौज-मस्ती की। शाम को हम उनके साथ महल लौट आए। अपने पंख सुखाने के लिए, मैं और मेरी पत्नी एक खिड़की से उड़कर एक चोटी पर बैठ गए। उसी क्षण जब हम चोटी से उतर रहे थे, एक बाज़ हम पर झपटा। अपनी जान के डर से मैं तेज़ी से उड़ गया; लेकिन वह भारी थी और तेज़ी से नहीं उड़ सकती थी; इसलिए मेरी आँखों के सामने ही उसने उसे मार डाला और ले गया। राजा ने मुझे उसकी मृत्यु पर रोते हुए देखा और मुझसे कारण पूछा। जो कुछ हुआ था, उसे सुनकर उन्होंने कहा, "बस करो, मित्र, रोना बंद करो, बल्कि दूसरी पत्नी ढूंढो।" मैंने उत्तर दिया, "महाराज, मुझे किसी और दुष्ट और दुष्ट से विवाह करने की क्या आवश्यकता है? अकेले रहना ही बेहतर है।" उन्होंने कहा, "मित्र, मैं तुम्हारी पत्नी के समान एक गुणी पक्षी को जानता हूँ; राजा कुलानी का दरबारी उसी की तरह एक मैना है। जाओ और उसकी इच्छा पूछो, और उसे जवाब देने दो, और अगर वह तुम्हें पसंद करती है तो आकर मुझे बताओ; फिर मैं या मेरी रानी बड़े धूमधाम से जाकर उसे वापस ले आएंगे।" ये शब्द कहकर उसने मुझे भेजा, और इसीलिए मैं आया हूँ।" और उसने कहा:

"उसके प्रति प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ: यदि तुम मुझे अनुमति दो तो हम साथ रह सकते हैं।"

ये शब्द सुनकर वह अत्यंत प्रसन्न हुई; लेकिन अपनी भावनाओं को प्रकट किए बिना, उसने अनिच्छा से कहा:

"तोते को तोते से प्रेम करना चाहिए, और मैना को मैना से: तोते और मैना के बीच मिलन कैसे हो सकता है?"

यह सुनकर दूसरे ने सोचा, "वह मुझे अस्वीकार नहीं कर रही है; वह तो बस अपनी बड़ाई कर रही है। वास्तव में वह मुझसे प्यार करती है, इसमें कोई शक नहीं। मैं कुछ दृष्टांत सुनाकर उसे मुझ पर विश्वास दिलाऊंगा।" इसलिए उसने कहा—

"प्रेमी जिससे भी प्रेम करे, चाहे वह नीची जाति की चंदाली ही क्यों न हो, सब एक समान हैं: प्रेम में कोई भिन्नता नहीं होती।"

उन्होंने आगे कहा, "यह कहकर उन्होंने पुरुषों के जन्म में मौजूद अंतरों की सीमा को दर्शाया।"

"शिवि के राजा की माता का नाम जाम्बवती है, और वह वासुदेव कान्हा की प्रिय रानी थीं।"

शिवी की माता, जाम्बवती, चांडाल जाति की थीं और वे कन्हगण वंश के दस बंधुओं में सबसे बड़े वासुदेव की प्रिय रानी थीं। कथा के अनुसार, एक दिन वासुदेव द्वारवाटी (द्वारका) से निकलकर उद्यान में गए; रास्ते में उन्होंने एक अत्यंत सुंदर कन्या को देखा, जो अपने चांडाल गाँव से नगर की ओर किसी कार्य से जा रही थी। उन्हें उस पर प्रेम हो गया और उन्होंने उसका जन्म पूछा; यह जानकर कि वह चांडाल (निम्न जाति) है, वे व्यथित हो गए। यह जानकर कि वह अविवाहित है, वे तुरंत वापस लौट आए और उसे अपने घर ले आए, उसे बहुमूल्य वस्तुओं से सुशोभित किया और उसे अपनी प्रधान रानी बना लिया। जाम्बवती ने शिवी को जन्म दिया, जिसने अपने पिता की मृत्यु के बाद द्वारवाटी (द्वारका) पर शासन किया।

यह उदाहरण देने के बाद उन्होंने आगे कहा, "इस प्रकार उनके जैसा राजकुमार भी चांडाल स्त्री से संबंध बना सकता है; और हम, जो केवल पशु जगत के प्राणी हैं, क्या करें? यदि हम आपस में संबंध बनाना चाहें, तो और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।" और उन्होंने एक और उदाहरण इस प्रकार दिया:

"राठवती नामक एक परी भी वच्छ से प्रेम करती थी, और वह मनुष्य उस जानवर से प्रेम करता था। प्रेम में कोई भिन्नता नहीं होती।"

"वच्छा उसी नाम के एक तपस्वी थे, और उनकी प्रेम कहानी कुछ इस प्रकार है। पुराने समय में, एक ब्राह्मण, जिसने वासनाओं की बुराई देखी थी, ने अपार धन त्याग कर तपस्वी जीवन व्यतीत किया और हिमवत (हिमालय) में अपने द्वारा बनाई गई पत्तों की कुटिया में रहने लगा। इस कुटिया से कुछ ही दूरी पर एक गुफा में कई परियां और एक मकड़ी रहती थी। यह मकड़ी अपना जाला बुनती थी और इन परियों के सिर फोड़कर उनका खून पीती थी। परियां कमजोर और डरपोक थीं, मकड़ी शक्तिशाली और बहुत जहरीली थी: वे उसका कुछ नहीं कर सकती थीं, इसलिए वे तपस्वी के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और बताया कि कैसे एक मकड़ी उन्हें मार रही है और उन्हें कोई उपाय नहीं दिख रहा है; इसलिए उन्होंने उनसे मकड़ी को मारकर उन्हें बचाने की विनती की। लेकिन तपस्वी ने उन्हें यह कहते हुए भगा दिया, "मुझ जैसे मनुष्य किसी का जीवन नहीं लेते!" इन परियों में से एक, राहवती नाम की अविवाहित स्त्री, उसे अच्छे वस्त्र पहनाकर तपस्वी के पास लाई और कहा, "उसे "आपकी दासी बन जाइए, और हमारे शत्रु को मार डालिए।" जब साधु ने उसे देखा तो उसे उससे प्रेम हो गया, और उसने उसे अपने साथ रख लिया, और गुफा के मुँह पर मकड़ी का इंतज़ार करने लगा, और जब वह भोजन के लिए बाहर आई तो उसने उसे गदा से मार डाला। इस प्रकार वह परी के साथ रहा और उससे पुत्र-पुत्रियों का पिता बना, और फिर उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार परी ने उससे प्रेम किया।

इस उदाहरण का वर्णन करते हुए तोते ने कहा, "सन्यासी वच्छ, हालांकि एक मनुष्य थे, एक परी के साथ रहते थे, जो पशु जगत से संबंधित थी; हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते, जबकि हम दोनों पक्षी हैं?"

जब उसने उसकी बात सुनी तो उसने कहा, "मेरे स्वामी, दिल हमेशा एक जैसा नहीं रहता: मुझे अपने प्रियतम से बिछड़ने का डर है।" लेकिन वह बुद्धिमान और स्त्रियों के आकर्षण से भलीभांति परिचित था, इसलिए उसने इस श्लोक से उसकी परीक्षा ली:

"सचमुच मैं जा रहा हूँ, हे मधुर स्वर वाली मायना। यह एक अस्वीकृति है; निस्संदेह तुम मुझे तुच्छ समझती हो।"

यह सुनकर उसे लगा मानो उसका हृदय टूट जाएगा; लेकिन उसके सामने उसने ऐसा दिखाया मानो वह नवजागृत प्रेम से प्रज्वलित हो रही हो, और डेढ़ श्लोक सुनाए:

"हे बुद्धिमान तोते मथारा, जल्दबाजी करने वालों को भाग्य का आशीर्वाद नहीं मिलता। यहीं ठहरो जब तक तुम राजा को न देख लो, ढोल की आवाज न सुन लो और हमारे राजा की शान-शौकत न देख लो।"

शाम होते ही उन्होंने साथ में आनंद लिया; और वे मित्रता, सुख और आनंद में डूबे रहे। तब तोते ने सोचा, "अब वह मुझसे रहस्य नहीं छिपाएगी; अब मुझे उससे पूछना ही होगा और जाना होगा।--मैना," उसने कहा। "क्या बात है, मेरे स्वामी?" "मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ; क्या मैं कहूँ?" "बताइए, मेरे स्वामी।" "कोई बात नहीं, आज त्योहार है; मैं किसी और दिन देख लूँगा।" "यदि यह त्योहार के लिए उपयुक्त है, तो कहिए, यदि नहीं, तो मेरे स्वामी, कुछ मत कहिए।" "हाँ, यह तो त्योहार के दिन के लिए उपयुक्त बात है।" "तो बोलिए।" "यदि आप सुनेंगे, तो मैं बोलूँगा।" फिर उसने डेढ़ छंदों में रहस्य पूछा:

"यह आवाज़ पूरे इलाके में इतनी ज़ोर से सुनाई दी—पांचाल के राजा की पुत्री, तारे के समान तेजस्वी—वह उसे विदेहों को सौंप देगा, और यही उनका विवाह होगा!"

यह सुनकर उसने कहा, "मेरे स्वामी! त्योहार के दिन आपने अत्यंत अशुभ बात कह दी!" "मैं कहता हूँ शुभ, आप कहती हैं अशुभ: इसका क्या अर्थ है?" "मैं आपको नहीं बता सकती, मेरे स्वामी।" "महोदया, जिस क्षण से आप मुझे वह रहस्य बताने से इनकार करती हैं जिसे आप जानती हैं, हमारा सुखद संबंध समाप्त हो जाता है।" उसके द्वारा विनती किए जाने पर उसने उत्तर दिया, "तो, मेरे स्वामी, सुनिए:-"

"हे मथरा, तुम्हारे शत्रुओं का भी वैसा विवाह न हो जैसा पांचाल और विदेह के राजाओं का होने वाला है।"

फिर उसने पूछा, "आप ऐसा क्यों पूछ रही हैं, महोदया?" उसने उत्तर दिया, "अब सुनिए, मैं आपको इसके नुकसान के बारे में बताऊंगी," और उसने एक और छंद दोहराया:

"पांचाल का शक्तिशाली राजा विदेह को अपनी ओर आकर्षित करेगा और फिर उसे मार डालेगा; वह उसकी मित्र नहीं रहेगी।"

तो उसने सारा रहस्य बुद्धिमान तोते को बता दिया; और बुद्धिमान तोते ने यह सुनकर केवट्टा की प्रशंसा की: "यह गुरु तो बुद्धि का धनी है; राजा को मारने की यह योजना अद्भुत है। लेकिन हमारे लिए इतनी बुरी बात क्या है? चुप रहना ही सबसे अच्छा है।" इस प्रकार उसने अपनी यात्रा का फल प्राप्त किया। और उसके साथ रात बिताने के बाद उसने कहा, "देवी, मैं सिवी देश जाऊंगा और राजा को बताऊंगा कि मुझे एक प्यारी पत्नी कैसे मिली"; और उसने इन शब्दों के साथ विदा ली:

"अब मुझे केवल सात रातों के लिए छुट्टी दीजिए, ताकि मैं सिवी के शक्तिशाली राजा को बता सकूँ कि मुझे एक मयनाह के साथ रहने की जगह कैसे मिली है।"

इस कारण, हालांकि वह उससे अलग होने को तैयार नहीं थी, फिर भी इनकार करने में असमर्थ होकर, उस महिला ने अगली पंक्ति का पाठ किया:

"अब मैं तुम्हें सात रातों के लिए छुट्टी देता हूँ; यदि सात रातों के बाद तुम मेरे पास नहीं लौटे, तो मैं स्वयं को कब्र में जाते हुए देखूँगा; जब तुम लौटोगे तब तक मैं मर चुका होऊँगा।"

दूसरे ने कहा, "हे देवी, ये आप क्या कह रही हैं! अगर सात दिन बाद भी मैं आपसे न मिलूँ, तो मैं कैसे जी पाऊँगा?" उसने ये बात अपने मुँह से तो कह दी, लेकिन मन ही मन सोचा, "जीऊँ या मरूँ, मुझे तुम्हारी क्या परवाह?" वह उठा और थोड़ी दूर शिवी देश की ओर उड़ने के बाद, मुड़कर मिथिला चला गया। फिर जब उस महान आत्मा ने उसे ऊपरी मंजिल पर ले जाकर उससे उसका हालचाल पूछा, तो वह उसके कंधे पर उतर गया और उसे सब कुछ बता दिया। दूसरे ने पहले की तरह ही उसका पूरा सम्मान किया।

गुरु ने इसे इस प्रकार समझाया:

और फिर बुद्धिमान तोते मथारा ने महोसाधा से कहा: "यह मयना की कहानी है।"

यह सुनकर उस महान प्राणी ने सोचा: “राजा जाएगा, मैं जाऊँगा या नहीं, और यदि वह गया तो उसका पूर्ण विनाश होगा। और यदि मैं उस राजा के प्रति द्वेष रखकर, जिसने मुझे इतना धन दिया, उसका भला न करूँ, तो मैं अपमानित होऊँगा। जब मुझ जैसा बुद्धिमान व्यक्ति मौजूद है, तो वह क्यों नष्ट हो? मैं राजा के सामने जाऊँगा और चुलानी से मिलूँगा; और मैं सब कुछ ठीक से व्यवस्थित करूँगा, और राजा वेदेह के निवास के लिए एक नगर बनवाऊँगा, और एक मील लंबा एक संकरा मार्ग, और आधा मील (4.23 किमी) लंबी एक विशाल सुरंग बनवाऊँगा; और मैं राजा चुलानी की पुत्री को नियुक्त करूँगा और उसे राजा की दासी बनाऊँगा; और जब हमारा नगर एक सौ एक राजाओं और उनकी एक लाख अठारह हजार की सेना से घिरा होगा, तब भी मैं अपने राजा को, जैसे चंद्रमा को राहु के चंगुल से बचाया जाता है, बचाऊँगा और उसे घर वापस लाऊँगा। उसकी वापसी मेरे हाथों में है।” जब उसने ऐसा सोचा, तो उसके शरीर में आनंद की लहर दौड़ गई, और इस आनंद के बल पर उसने यह इच्छा व्यक्त की:

"मनुष्य को हमेशा उसी के हित के लिए काम करना चाहिए जिसके घर में उसका पेट भरता है।"

इस प्रकार स्नान और अभिषेक करके वह बड़े ठाठ-बाठ से महल में गया और राजा को प्रणाम करके एक तरफ खड़ा हो गया। राजा ने पूछा, "महाराज, क्या आप उत्तरापंचल नगर जा रहे हैं?" राजा ने कहा, "जी हां, मेरे पुत्र; यदि मैं पंचलचंडी को प्राप्त नहीं कर सकता, तो मेरा राज्य मेरे लिए क्या है? मुझे मत छोड़ो, मेरे साथ चलो। वहां जाने से मुझे दो लाभ होंगे: मैं सबसे प्रिय स्त्री को प्राप्त करूंगा और राजा से मित्रता स्थापित करूंगा।" तब उस ज्ञानी व्यक्ति ने कहा, "ठीक है, महाराज, मैं आगे जाकर आपके लिए जीविका का प्रबंध करूंगा; जब मैं संदेश भेजूं तो आप आ जाना।" यह कहकर उसने दो श्लोक दोहराए:

"हे मनुष्यों के स्वामी, मैं सर्वप्रथम पांचाल के राजा के सुंदर नगर में जाकर, प्रतापी वेदेह के लिए आवास का निर्माण करूंगा। जब मैं प्रतापी वेदेह के लिए आवास का निर्माण कर लूँ, तो हे पराक्रमी योद्धा, मेरे संदेश भेजने पर अवश्य आना।"

यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए कि उनका पुत्र उनका साथ नहीं छोड़ेगा, और बोले, “मेरे पुत्र, यदि तुम आगे जाओगे तो क्या चाहोगे?” “महाराज।” “जितने चाहो ले लो, मेरे पुत्र।” पुत्र ने आगे कहा, “महाराज, चारों कारागार खुलवा दीजिए, और डाकुओं को बांधने वाली जंजीरें तोड़ दीजिए, और इन्हें भी मेरे साथ भेज दीजिए।” “जैसा आप चाहें, मेरे पुत्र,” उन्होंने उत्तर दिया। उस महान सत्ता ने कारागार खुलवाए, और ऐसे वीर योद्धाओं को प्रकट किया जो जहाँ कहीं भी भेजे जाने पर अपना कर्तव्य निभाने में सक्षम थे, और उनसे अपनी सेवा करने का अनुरोध किया; उन्होंने उन पर विशेष कृपा दिखाई, और अपने साथ अठारह टुकड़ियाँ ले गए, जिनमें राजमिस्त्री, लोहार, बढ़ई, चित्रकार, सभी कलाओं और शिल्पों में कुशल पुरुष, उनके तेज धार वाले कुल्हाड़े, फावड़े, कुदाल और कई अन्य औजार शामिल थे। इस प्रकार वह एक विशाल सेना के साथ शहर से बाहर निकल पड़े।

गुरु ने इसे इस श्लोक के माध्यम से समझाया:

"महोसाधा पांचाल के राजा के बड़े नगर की ओर आगे बढ़े, ताकि वेदेह के लिए आवास का निर्माण कर सकें।"

अपने मार्ग में, उस महान सत्ता ने प्रत्येक मील (4.23 किमी) के छोर पर एक गाँव बसाया और प्रत्येक गाँव का प्रभार एक दरबारी को सौंपते हुए ये निर्देश दिए: "राजा के पंचाल-चंडी के साथ लौटने पर, उनके शत्रुओं को रोकने और उन्हें शीघ्रता से मिथिला पहुँचाने के लिए हाथी, घोड़े और रथ तैयार रखें।" गंगा के तट पर पहुँचकर, उन्होंने आनंदकुमार को बुलाया और उनसे कहा, "आनंद, तीन सौ कारीगरों को लेकर ऊपरी गंगा जाओ, उत्तम लकड़ी प्राप्त करो, तीन सौ जहाज़ बनवाओ, उनसे नगर के लिए लकड़ी का भंडार कटवाओ, जहाज़ों को हल्की लकड़ी से भर दो और शीघ्र लौट आओ।" स्वयं एक जहाज़ में गंगा पार करके, उन्होंने अपने उतरने के स्थान से दूरियों को नापते हुए सोचा—"यह आधा मील (4.23 किमी) है, यहाँ बड़ी सुरंग होगी: इस स्थान पर हमारे राजा के रहने के लिए नगर होगा; इस स्थान से महल तक, एक मील लंबा, छोटा मार्ग होगा।" इस प्रकार उन्होंने स्थान निर्धारित किया; और फिर शहर में प्रवेश किया।

जब राजा कुलानी ने बोधिसत्व के आने की खबर सुनी, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए; क्योंकि उन्होंने सोचा, "अब मेरी मनोकामना पूरी होगी; अब जब वे आ गए हैं, तो वेदेह के आने में देर नहीं लगेगी: तब मैं उन दोनों को मार डालूंगा और पूरे भारत में एक राज्य स्थापित करूंगा।" सारा नगर उत्साह से भर गया: "लोग कहते हैं, ये वही बुद्धिमान महोषद हैं, जिन्होंने एक सौ एक राजाओं को कौवे की तरह पत्थर से डराकर भगा दिया!" महान पुरुष महल के द्वार की ओर बढ़े, जबकि नगरवासी उनकी सुंदरता को निहार रहे थे; फिर रथ से उतरकर उन्होंने राजा को संदेश भेजा। राजा ने कहा, "उन्हें आने दीजिए"; और वे अंदर आए, राजा को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब राजा ने उनसे विनम्रतापूर्वक पूछा, "मेरे पुत्र, राजा कब आएंगे?" "जब मैं उन्हें बुलवाऊंगा, महाराज।" "लेकिन फिर आप क्यों आए हैं?" "हमारे राजा के लिए एक निवास स्थान बनवाने, महाराज।" "अच्छा, मेरे पुत्र।" उन्होंने अंगरक्षकों के लिए भत्ता दिया, और महामहिम के प्रति सम्मान का भाव समझाया, उन्हें एक घर आवंटित किया और कहा: "मेरे पुत्र, जब तक तुम्हारा राजा न आ जाए, यहीं रहो, और आलसी मत बनो, बल्कि जो करना चाहिए वह करो।" लेकिन जैसे ही वह महल में दाखिल हुए, वे सीढ़ियों के नीचे खड़े होकर सोचने लगे, "यहाँ छोटी सुरंग का द्वार होना चाहिए"; और फिर उनके मन में यह बात आई, "राजा ने मुझे उनके लिए वह सब कुछ करने को कहा है जो करना आवश्यक है; मुझे ध्यान रखना होगा कि सुरंग खोदते समय यह सीढ़ी गिर न जाए।" इसलिए उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, जैसे ही मैं अंदर आया, सीढ़ियों के नीचे खड़े होकर और नए काम को देखते हुए, मैंने बड़ी सीढ़ी में एक खामी देखी। यदि आपको अनुमति हो, तो मुझे बता दीजिए और मैं इसे ठीक कर दूंगा।" "अच्छा, मेरे पुत्र, ऐसा ही करो।" उन्होंने उस स्थान का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, और निर्धारित किया कि सुरंग का निकास कहाँ होना चाहिए; फिर उसने सीढ़ी हटा दी, और मिट्टी को उस जगह गिरने से रोकने के लिए, उसने लकड़ी का एक चबूतरा बनाया, और इस तरह सीढ़ी को मजबूती से टिका दिया ताकि वह गिर न जाए। राजा ने अनजाने में ही इसे अपने प्रति सद्भावना से किया गया कार्य समझा। दूसरे ने वह दिन मरम्मत की देखरेख में बिताया, और अगले दिन उसने राजा से कहा, "महाराज, यदि मुझे पता चल जाए कि हमारे राजा कहाँ रहेंगे, तो मैं सब कुछ ठीक कर सकता हूँ और उसकी देखभाल कर सकता हूँ।" "बहुत अच्छा, बुद्धिमान महाराज: मेरे महल को छोड़कर, शहर में जहाँ चाहें उनके रहने के लिए जगह चुन लें।" "महाराज, हम अजनबी हैं, आपके कई चहेते हैं: यदि हम उनके घरों पर कब्जा कर लें, तो आपके सैनिक हमसे झगड़ा करेंगे। हम क्या करें?" "महाराज, उनकी बात न सुनें, बल्कि वह जगह चुनें जो आपको पसंद हो।" "महाराज, वे बार-बार शिकायतें लेकर आपके पास आएंगे, और यह आपको अच्छा नहीं लगेगा; लेकिन यदि आप चाहें, तो हमारे आदमियों को तब तक पहरा देने दें जब तक हम घरों पर कब्ज़ा न कर लें, और वे दरवाज़े से अंदर नहीं आ पाएंगे, बल्कि वापस चले जाएंगे। इस प्रकार आप और हम दोनों संतुष्ट रहेंगे।" राजा मान गए।उस महान सत्ता ने सीढ़ियों के ऊपर और नीचे, मुख्य द्वार पर, हर जगह अपने पहरेदार तैनात कर दिए और आदेश दिया कि कोई भी वहाँ से न गुज़रे। फिर उसने अपने आदमियों को महारानी माँ के घर जाने और उसे गिराने का नाटक करने का आदेश दिया। जब उन्होंने द्वारों और दीवारों से ईंटें और मिट्टी गिराना शुरू किया, तो महारानी माँ को खबर मिली और उन्होंने पूछा, "तुम लोग मेरा घर क्यों तोड़ रहे हो?" "ऋषि महोषधा इसे गिराकर अपने राजा के लिए एक महल बनाना चाहते हैं।" "अगर ऐसा है, तो तुम यहाँ रह सकती हो।" "हमारे राजा के सेवकों का दल बहुत बड़ा है; यह जगह ठीक नहीं है, और हम उनके लिए एक बड़ा घर बनाएंगे।" "तुम मुझे नहीं जानते: मैं महारानी माँ हूँ, और अब मैं अपने बेटे के पास जाकर इस बारे में देखूंगी।" "हम राजा के आदेश पर काम कर रहे हैं; अगर रोक सकते हो तो रोक लो!" वह क्रोधित हो गईं और बोलीं, "अब मैं देखूंगी कि तुम्हारे साथ क्या किया जाता है," और महल के द्वार की ओर चल पड़ीं; लेकिन उन्होंने उसे अंदर नहीं जाने दिया। "भाइयों, मैं राजा की माता हूँ!" "ओह, हम आपको जानते हैं; लेकिन राजा ने हमें किसी को भी अंदर न आने देने का आदेश दिया है। चले जाओ!" वह महल में प्रवेश नहीं कर सकी और अपने घर को देखती रही। तभी एक आदमी ने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रही हो? यहाँ से चली जाओ!" उसने उसका गला पकड़कर उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसने सोचा, "यह सचमुच राजा का आदेश होगा, अन्यथा वे ऐसा नहीं कर पाते: मैं ऋषि से मिलने जाऊँगी।" उसने उससे पूछा, "पुत्र महोसाधा, तुम मेरा घर क्यों गिरा रहे हो?" लेकिन उसने उससे कुछ नहीं कहा। तभी एक राहगीर ने कहा, "आपने क्या कहा, महोदया?" "मेरे पुत्र, ऋषि मेरा घर क्यों गिरा रहे हैं?" "राजा वेदेह के लिए एक घर बनाने के लिए।" "क्यों, मेरे पुत्र! इस पूरे शहर में क्या उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिल सकती? यह रिश्वत लो, एक लाख सिक्के, और उन्हें कहीं और घर बनाने दो।" "बहुत अच्छा, महोदया, हम

आपके घर को अकेला छोड़ देंगे; लेकिन किसी को मत बताना कि आपने यह रिश्वत दी है, कहीं ऐसा न हो कि कोई और अपने घरों को बख्शने के लिए हमें रिश्वत देने की कोशिश करे।" "मेरे बेटे! अगर किसी को पता चल गया कि महारानी को रिश्वत देने की ज़रूरत पड़ी, तो शर्म मेरी होगी! मैं किसी को नहीं बताऊंगी।" उस आदमी ने बात मान ली और एक लाख सिक्के लेकर उस घर से चला गया। फिर वह केवट्टा के घर गया; केवट्टा महल के द्वार पर गया और बाँस की लाठियों से अपनी पीठ छिलवाई, लेकिन अंदर न जा पाने पर उसने भी एक लाख सिक्के दे दिए। इस तरह, शहर के सभी हिस्सों में घरों पर कब्ज़ा करके और रिश्वतें लेकर, उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के प्राप्त किए।"तुम मेरा घर क्यों तोड़ रहे हो?" "ऋषि महोषधा इसे गिराकर अपने राजा के लिए एक महल बनाना चाहते हैं।" "अगर ऐसा है, तो तुम यहीं रह सकती हो।" "हमारे राजा के सेवकों का दल बहुत बड़ा है; यह जगह ठीक नहीं है, हम उनके लिए एक बड़ा घर बनाएंगे।" "तुम मुझे नहीं जानते: मैं महारानी माँ हूँ, और अब मैं अपने बेटे के पास जाकर इस बारे में बात करूंगी।" "हम राजा के आदेश पर काम कर रहे हैं; अगर रोक सकते हो तो रोको!" वह क्रोधित हो गई और बोली, "अब मैं देखूंगी कि तुम्हारे साथ क्या किया जाए," और महल के द्वार की ओर बढ़ी; लेकिन उन्होंने उसे अंदर नहीं जाने दिया। "भाइयों, मैं राजा की माँ हूँ!" "ओह, हम तुम्हें जानते हैं; लेकिन राजा ने हमें किसी को भी अंदर न आने देने का आदेश दिया है। चले जाओ!" वह महल में प्रवेश नहीं कर पाई और अपने घर को देखती रही। तभी एक आदमी ने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रही हो?" "यहाँ से जाओ!" उसने उसका गला पकड़कर उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसने सोचा, "सचमुच यह राजा का आदेश होगा, वरना वे ऐसा नहीं कर पाते: मैं ऋषि से मिलने जाऊंगी।" उसने उससे पूछा, "पुत्र महोसाधा, तुम मेरा घर क्यों गिरा रहे हो?" लेकिन उसने उससे कुछ नहीं कहा। तभी एक राहगीर ने कहा, "क्या कहा, महोदया?" "मेरे पुत्र, ऋषि मेरा घर क्यों गिरा रहे हैं?" "राजा वेदेह के लिए एक घर बनाने के लिए।" "अरे, मेरे पुत्र! इस पूरे शहर में क्या उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिल रही? यह रिश्वत लो, एक लाख सिक्के, और उन्हें कहीं और घर बनाने दो।" "ठीक है, महोदया, हम आपके घर को छोड़ देंगे; लेकिन किसी को मत बताना कि आपने यह रिश्वत दी है, कहीं और भी अपने घर बख्शने के लिए हमें रिश्वत न दें।" "मेरे पुत्र! अगर यह बात फैल गई कि महारानी को रिश्वत देने की ज़रूरत पड़ी, तो शर्म मेरी होगी!" मैं किसी को नहीं बताऊंगा।" उस व्यक्ति ने सहमति जताई और एक लाख सिक्के लेकर उस घर से चला गया। फिर वह केवट्टा के घर गया; केवट्टा महल के द्वार पर गया और बाँस की लाठियों से अपनी पीठ छिलवाई, लेकिन प्रवेश न मिलने पर उसने भी एक लाख सिक्के दे दिए। इस प्रकार, शहर के सभी हिस्सों में घरों पर कब्जा करके और रिश्वत लेकर, उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के प्राप्त किए।"तुम मेरा घर क्यों तोड़ रहे हो?" "ऋषि महोषधा इसे गिराकर अपने राजा के लिए एक महल बनाना चाहते हैं।" "अगर ऐसा है, तो तुम यहीं रह सकती हो।" "हमारे राजा के सेवकों का दल बहुत बड़ा है; यह जगह ठीक नहीं है, हम उनके लिए एक बड़ा घर बनाएंगे।" "तुम मुझे नहीं जानते: मैं महारानी माँ हूँ, और अब मैं अपने बेटे के पास जाकर इस बारे में बात करूंगी।" "हम राजा के आदेश पर काम कर रहे हैं; अगर रोक सकते हो तो रोको!" वह क्रोधित हो गई और बोली, "अब मैं देखूंगी कि तुम्हारे साथ क्या किया जाए," और महल के द्वार की ओर बढ़ी; लेकिन उन्होंने उसे अंदर नहीं जाने दिया। "भाइयों, मैं राजा की माँ हूँ!" "ओह, हम तुम्हें जानते हैं; लेकिन राजा ने हमें किसी को भी अंदर न आने देने का आदेश दिया है। चले जाओ!" वह महल में प्रवेश नहीं कर पाई और अपने घर को देखती रही। तभी एक आदमी ने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रही हो?" "यहाँ से जाओ!" उसने उसका गला पकड़कर उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसने सोचा, "सचमुच यह राजा का आदेश होगा, वरना वे ऐसा नहीं कर पाते: मैं ऋषि से मिलने जाऊंगी।" उसने उससे पूछा, "पुत्र महोसाधा, तुम मेरा घर क्यों गिरा रहे हो?" लेकिन उसने उससे कुछ नहीं कहा। तभी एक राहगीर ने कहा, "क्या कहा, महोदया?" "मेरे पुत्र, ऋषि मेरा घर क्यों गिरा रहे हैं?" "राजा वेदेह के लिए एक घर बनाने के लिए।" "अरे, मेरे पुत्र! इस पूरे शहर में क्या उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिल रही? यह रिश्वत लो, एक लाख सिक्के, और उन्हें कहीं और घर बनाने दो।" "ठीक है, महोदया, हम आपके घर को छोड़ देंगे; लेकिन किसी को मत बताना कि आपने यह रिश्वत दी है, कहीं और भी अपने घर बख्शने के लिए हमें रिश्वत न दें।" "मेरे पुत्र! अगर यह बात फैल गई कि महारानी को रिश्वत देने की ज़रूरत पड़ी, तो शर्म मेरी होगी!" मैं किसी को नहीं बताऊंगा।" उस व्यक्ति ने सहमति जताई और एक लाख सिक्के लेकर उस घर से चला गया। फिर वह केवट्टा के घर गया; केवट्टा महल के द्वार पर गया और बाँस की लाठियों से अपनी पीठ छिलवाई, लेकिन प्रवेश न मिलने पर उसने भी एक लाख सिक्के दे दिए। इस प्रकार, शहर के सभी हिस्सों में घरों पर कब्जा करके और रिश्वत लेकर, उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के प्राप्त किए।हम आपको जानते हैं; लेकिन राजा ने हमें किसी को भी अंदर आने देने का आदेश नहीं दिया है। चले जाओ!" वह महल में प्रवेश नहीं कर सकी और अपने घर को देखती रही। तभी एक आदमी ने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रही हो? यहाँ से चली जाओ!" उसने उसका गला पकड़कर उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसने सोचा, "यह सचमुच राजा का आदेश होगा, नहीं तो वे ऐसा नहीं कर पाते: मैं ऋषि से मिलने जाऊंगी।" उसने उससे पूछा, "पुत्र महोसाधा, तुम मेरा घर क्यों गिरा रहे हो?" लेकिन वह उससे बात नहीं किया। तभी एक राहगीर ने कहा, "क्या कहा आपने, महोदया?" "मेरे पुत्र, ऋषि मेरा घर क्यों गिरा रहे हैं?" "राजा वेदेह के लिए एक घर बनाने के लिए।" "क्यों, मेरे पुत्र! इस पूरे शहर में क्या उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिल रही? यह रिश्वत लो, एक लाख सिक्के, और उन्हें कहीं और घर बनाने दो।" "ठीक है, महोदया, हम आपके घर को छोड़ देंगे; लेकिन किसी को मत बताना कि तुमने यह रिश्वत दी है, कहीं ऐसा न हो कि कोई और अपने घर बख्शने के लिए हमें रिश्वत देने की कोशिश करे। "मेरे बेटे! अगर किसी को पता चल गया कि महारानी को रिश्वत देनी पड़ी, तो शर्म मेरी होगी! मैं किसी को नहीं बताऊंगा।" उस आदमी ने बात मान ली और एक लाख सिक्के लेकर उस घर से निकल गया। फिर वह केवट्टा के घर गया; केवट्टा महल के द्वार पर गया और बाँस की लाठियों से अपनी पीठ छिलवाई, लेकिन अंदर न जा पाने पर उसने भी एक लाख सिक्के दे दिए। इस तरह, शहर के हर हिस्से में घरों पर कब्ज़ा करके और रिश्वतें लेकर उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने

के सिक्के जमा कर लिए ।हम आपको जानते हैं; लेकिन राजा ने हमें किसी को भी अंदर आने देने का आदेश नहीं दिया है। चले जाओ!" वह महल में प्रवेश नहीं कर सकी और अपने घर को देखती रही। तभी एक आदमी ने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रही हो? यहाँ से चली जाओ!" उसने उसका गला पकड़कर उसे ज़मीन पर पटक दिया। उसने सोचा, "यह सचमुच राजा का आदेश होगा, नहीं तो वे ऐसा नहीं कर पाते: मैं ऋषि से मिलने जाऊंगी।" उसने उससे पूछा, "पुत्र महोसाधा, तुम मेरा घर क्यों गिरा रहे हो?" लेकिन वह उससे बात नहीं किया। तभी एक राहगीर ने कहा, "क्या कहा आपने, महोदया?" "मेरे पुत्र, ऋषि मेरा घर क्यों गिरा रहे हैं?" "राजा वेदेह के लिए एक घर बनाने के लिए।" "क्यों, मेरे पुत्र! इस पूरे शहर में क्या उन्हें रहने के लिए कोई और जगह नहीं मिल रही? यह रिश्वत लो, एक लाख सिक्के, और उन्हें कहीं और घर बनाने दो।" "ठीक है, महोदया, हम आपके घर को छोड़ देंगे; लेकिन किसी को मत बताना कि तुमने यह रिश्वत दी है, कहीं ऐसा न हो कि कोई और अपने घर बख्शने के लिए हमें रिश्वत देने की कोशिश करे। "मेरे बेटे! अगर किसी को पता चल गया कि महारानी को रिश्वत देनी पड़ी, तो शर्म मेरी होगी! मैं किसी को नहीं बताऊंगा।" उस आदमी ने बात मान ली और एक लाख सिक्के लेकर उस घर से निकल गया। फिर वह केवट्टा के घर गया; केवट्टा महल के द्वार पर गया और बाँस की लाठियों से अपनी पीठ छिलवाई, लेकिन अंदर न जा पाने पर उसने भी एक लाख सिक्के दे दिए। इस तरह, शहर के हर हिस्से में घरों पर कब्ज़ा करके और रिश्वतें लेकर उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के जमा कर लिए।और रिश्वत लेकर उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के प्राप्त किए।और रिश्वत लेकर उन्होंने नौ करोड़ (10 मिलियन) सोने के सिक्के प्राप्त किए।

इसके बाद वह महान पुरुष पूरे शहर में घूमे और महल लौट आए। राजा ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें कोई जगह मिली? उन्होंने कहा, "महाराज, सब देने को तैयार हैं; लेकिन जैसे ही हम उस पर कब्ज़ा करते हैं, वे दुखी हो जाते हैं। हम किसी भी तरह की अप्रियता का कारण नहीं बनना चाहते। शहर के बाहर, लगभग एक मील दूर, शहर और गंगा के बीच एक जगह है जहाँ हम अपने राजा के लिए महल बना सकते हैं।" यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए; क्योंकि उन्होंने सोचा, "शहर के अंदर लोगों से लड़ना खतरनाक है, वहाँ मित्र और शत्रु में अंतर करना असंभव है; लेकिन शहर के बाहर लड़ना आसान है, इसलिए शहर के बाहर ही मैं उन्हें मार डालूँगा।" फिर उन्होंने कहा, "अच्छा, मेरे पुत्र, तुमने जो जगह देखी है, वहीं महल बनाओ।" राजा ने कहा, "हम बनाएंगे, महाराज। लेकिन आपके लोग लकड़ी, जड़ी-बूटियाँ या ऐसी ही अन्य चीजों की तलाश में उस जगह पर न आएं जहाँ हम महल बना रहे हैं; यदि वे ऐसा करते हैं, तो निश्चित रूप से झगड़ा होगा, और यह हम दोनों में से किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा।" "बहुत अच्छा, मेरे पुत्र, उस तरफ़ सभी का प्रवेश वर्जित कर दो।" "महाराज, हमारे हाथी पानी में खेलना पसंद करते हैं; यदि पानी गंदा हो जाए, और लोग शिकायत करें कि महोषधा के आने के बाद से हमें पीने के लिए साफ़ पानी नहीं मिल रहा है, तो आपको इसे सहन करना होगा।" राजा ने उत्तर दिया, "हाथियों को खेलने दो।" फिर उसने ढोल बजाकर घोषणा की: "जो कोई भी यहाँ से उस स्थान पर जाएगा जहाँ ऋषि महोषधा भवन बना रहे हैं, उस पर एक हज़ार सिक्कों का जुर्माना लगाया जाएगा।"

तब उस महान व्यक्ति ने राजा से विदा ली और अपने सेवकों के साथ नगर से बाहर निकलकर उस स्थान पर नगर निर्माण शुरू किया जिसे अलग रखा गया था। गंगा के दूसरी ओर उन्होंने गग्गली नामक एक गाँव बसाया; वहाँ उन्होंने अपने हाथियों, घोड़ों, रथों, गायों और बैलों को ठहराया। वे नगर निर्माण में जुट गए और प्रत्येक को उसका कार्य सौंप दिया। सभी कार्यों का वितरण करने के बाद, उन्होंने एक विशाल सुरंग का निर्माण शुरू किया; जिसका मुहाना गंगा के तट पर था। साठ हज़ार योद्धा उस विशाल सुरंग की खुदाई कर रहे थे: वे चमड़े के बोरों में मिट्टी भरकर नदी में डालते थे, और जब भी मिट्टी डाली जाती थी, हाथी उसे पैरों तले रौंद देते थे, जिससे गंगा का पानी मटमैला हो जाता था। नगरवासियों ने शिकायत की कि महोषध के आने के बाद से उन्हें पीने के लिए स्वच्छ जल नहीं मिल रहा है; नदी का पानी मटमैला हो गया है, और अब क्या किया जाए? तब उस ज्ञानी व्यक्ति के जासूसों ने उन्हें बताया कि महोषध के हाथी पानी में खेल रहे थे और कीचड़ को हिला रहे थे, जिसके कारण नदी का पानी मटमैला हो गया था। बोधिसत्वों की इच्छाएँ सदा पूर्ण होती हैं; इसलिए सुरंग में सभी जड़ें और पत्थर धरती में समा गए। छोटी सुरंग का प्रवेश द्वार उसी शहर में था; सात सौ आदमी छोटी सुरंग खोद रहे थे; वे चमड़े के बोरों में मिट्टी भरकर शहर में डालते थे, और हर बार मिट्टी डालने के बाद उसे पानी में मिलाकर दीवार बनाते थे और उसका उपयोग अन्य कार्यों में करते थे। बड़ी सुरंग का प्रवेश द्वार शहर में था: इसमें अठारह हाथ ऊँचा एक द्वार लगा था, जिसमें मशीनरी लगी थी, जिससे एक कील दबाने पर सभी बंद हो जाते थे। सुरंग के दोनों ओर ईंटें बनी थीं और प्लास्टर किया गया था; छत तख्तों से ढकी थी और सीमेंट से लेप करके सफेदी की गई थी। कुल मिलाकर अस्सी बड़े द्वार और चौंसठ छोटे द्वार थे, जो एक कील दबाने पर बंद और खुल जाते थे। दोनों ओर सैकड़ों दीपक-कोठर लगे थे, जिनमें मशीनरी लगी थी, जिससे एक को खोलने पर सभी खुल जाते थे, और एक को बंद करने पर सभी बंद हो जाते थे। दोनों ओर एक सौ एक योद्धाओं के लिए एक सौ एक कक्ष थे: प्रत्येक में विभिन्न रंगों का पलंग बिछा था, प्रत्येक में सफेद छायादार एक विशाल पलंग था, प्रत्येक में विशाल पलंग के पास एक सिंहासन था, प्रत्येक में एक अत्यंत सुंदर स्त्री की मूर्ति थी - उन्हें छुए बिना कोई यह नहीं बता सकता था कि वे मनुष्य नहीं हैं। इसके अलावा, दोनों ओर की सुरंग में, कुशल चित्रकारों ने सभी प्रकार के चित्र बनाए थे: इंद्र की महिमा, शिनेरु पर्वत के क्षेत्र, समुद्र और महासागर, चारों महाद्वीप, हिमवत (हिमालय), अनोत्तट्टा झील, लाल रंग का पर्वत, सूर्य और चंद्रमा, चार महान राजाओं का स्वर्ग, इंद्रियों के छह स्वर्ग और उनके विभाजन - ये सभी सुरंग में दिखाई देते थे। फर्श चांदी की थाली के समान सफेद रेत से ढका था, और छत पर खिले हुए कमल थे। दोनों ओर सभी

प्रकार के मंडप थे; जगह-जगह फूलों और सुगंधित कलियों की मालाएँ लटकी हुई थीं।इस प्रकार उन्होंने सुरंग को तब तक सजाया जब तक वह सुधम्म के दिव्य हॉल की तरह नहीं दिखने लगी।

अब उन तीन सौ कारीगरों ने तीन सौ जहाज़ बनाकर उनमें पहले से तैयार सामान लाद दिया और उन्हें नीचे लाकर ऋषि को बताया। ऋषि ने उन जहाज़ों को नगर में इस्तेमाल किया और उन्हें गुप्त स्थान पर रख दिया ताकि वे ऋषि के आदेश पर उन्हें बाहर निकाल सकें। नगर में जल-खाई, दीवार, द्वार और मीनार, राजकुमार और प्रजा के आवास, हाथी-बस्ती, तालाब, सब कुछ बनकर तैयार हो गया। इस प्रकार बड़ी सुरंग और छोटी सुरंग, और सारा नगर, चार महीनों में बनकर तैयार हो गया। चार महीने पूरे होने पर, ऋषि ने राजा को अपने पास आने के लिए एक दूत भेजा।

जब राजा ने यह संदेश सुना, तो वह प्रसन्न हुआ और एक बड़े दल के साथ रवाना हुआ।

गुरु ने कहा:

"तब राजा ने चार भागों में विभाजित सेना के साथ असंख्य रथों वाले समृद्ध नगर कामपिलिया की यात्रा के लिए प्रस्थान किया।"

उचित समय पर वह गंगा नदी पर पहुँच गया। तब उस महान शक्ति ने उसका स्वागत करने के लिए प्रस्थान किया और उसे अपने द्वारा निर्मित नगर में ले गए। राजा ने महल में प्रवेश किया, भव्य भोजन किया और थोड़ी देर विश्राम करने के बाद शाम को राजा कुलानी को अपने आगमन की सूचना देने के लिए एक दूत भेजा।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"तब उसने वहाँ पहुँचकर ब्रह्मदत्त को संदेश भेजा: 'हे महामहिम, मैं आपके चरणों को प्रणाम करने आया हूँ। कृपया मुझे उस सुंदर, कृपालु स्त्री से विवाह करने का वरदान दें, जो अपनी दासियों से परिपूर्ण है।'"

कुलानी यह संदेश सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और सोचने लगा, "अब मेरा शत्रु कहाँ जाएगा? मैं उन दोनों के सिर फोड़ दूँगा और विजय का प्याला पी लूँगा!" लेकिन उसने दूत को केवल अपनी प्रसन्नता का ही वर्णन किया और उसका आदर करते हुए निम्नलिखित श्लोक सुनाया:

"स्वागत है वेदेह, आपका आगमन शुभ हो! शुभ मुहूर्त का पता लगाइए, और मैं आपको अपनी सुंदर पुत्री, अपनी दासियों के साथ, प्रदान करूँगी।"

दूत वापस वेदेह के पास गया और बोला, "महाराज कहते हैं: "इस शुभ अवसर के लिए उपयुक्त समय का पता लगाइए, और मैं आपको अपनी पुत्री दे दूंगा।" वेदेह ने उस व्यक्ति को यह कहकर वापस भेज दिया, "आज का दिन ही शुभ समय है!"

गुरु ने इसे इस प्रकार समझाया:

तब राजा वेदेह ने शुभ मुहूर्त पूछा; शुभ मुहूर्त मिलने पर उन्होंने ब्रह्मदत्त को संदेश भेजा: "मुझे वह सुंदर, आकर्षक और दासियों से परिपूर्ण स्त्री दे दो।" राजा चुलानी ने कहा: "मैं तुम्हें वह सुंदर, आकर्षक और दासियों से परिपूर्ण स्त्री दे देता हूँ।"

लेकिन "मैं उसे अभी, इसी वक्त भेजूँगा" कहकर उसने झूठ बोला: और उसने एक सौ एक राजाओं को आदेश दिया: "अपनी अठारह शक्तिशाली सेनाओं के साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, और आओ: हम अपने दोनों शत्रुओं के सिर काट देंगे, और विजय का प्याला पिएँगे!" और उसने अपनी माता रानी तलता, अपनी रानी नंदा, अपने पुत्र पंचालचंदा, अपनी पुत्री पंचालचंडी और स्त्रियों को महल में ठहराया, और स्वयं आ गया।

बोधिसत् ने राजा वेदेह के साथ आई विशाल सेना का बड़े ही आतिथ्य सत्कार से स्वागत किया: कुछ लोग मादक पेय पी रहे थे, कुछ मछली और मांस खा रहे थे, कुछ लंबी यात्रा से थके हुए थे; लेकिन राजा वेदेह, सेनाक और अन्य ज्ञानी पुरुषों के साथ अपने दरबारियों के बीच एक बड़े चबूतरे पर बैठे थे। लेकिन राजा चुलानी ने तीन अंतरालों पर चार पंक्तियों में शहर को घेर लिया और लाखों मशालें जला दीं, और वे सूर्योदय होते ही शहर पर कब्जा करने के लिए तैयार खड़े रहे। यह जानकर, महान सत्ता ने अपने तीन सौ योद्धाओं को आदेश दिया: "छोटी सुरंग से जाओ, और उस सुरंग से राजा की माता और पत्नी, उनके पुत्र और पुत्री को लाओ; उन्हें बड़ी सुरंग से ले जाओ, लेकिन उन्हें बड़ी सुरंग के द्वार से बाहर मत निकलने दो; जब तक हम न आएं, उन्हें सुरंग में सुरक्षित रखो, लेकिन जब हम आएं, तो उन्हें सुरंग से बाहर निकालो और उन्हें मुख्य प्रांगण में रखो।" ये आदेश प्राप्त करने के बाद, वे छोटी सुरंग से गए, और सीढ़ियों के नीचे बने चबूतरे को ऊपर धकेल दिया; उन्होंने सीढ़ियों के ऊपर और नीचे तथा छत पर तैनात पहरेदारों, कुबड़ों और वहाँ मौजूद सभी

लोगों को पकड़ लिया, उनके हाथ-पैर बाँध दिए, मुँह बंद कर दिए और उन्हें इधर-उधर छिपा दिया; राजा के लिए तैयार किया गया कुछ भोजन खाया, बाकी नष्ट कर दिया और छत पर चले गए। उस दिन रानी तलता, भविष्य की आशंकाओं से घिरी हुई, ने रानी नंदा और उनके पुत्र-पुत्री को अपने साथ एक पलंग पर सुलाया था। ये योद्धा कक्ष के द्वार पर खड़े होकर उन्हें पुकारने लगे। रानी बाहर आईं और बोलीं, "क्या बात है, मेरे बच्चों?" उन्होंने कहा, "महोदया, हमारे राजा ने वेदेह और महोषध को मार डाला है और पूरे भारत में एक राज्य स्थापित कर लिया है, और सौ एक राजकुमारों से घिरे हुए वे भव्यता से मजे कर रहे हैं: उन्होंने हमें आप चारों को भी उनके पास लाने के लिए भेजा है।" वे सीढ़ियों के नीचे आ गए। जब वे लोग उन्हें सुरंग में ले गए, तो उन्होंने कहा: "हम इतने समय से यहीं रह रहे हैं और इससे पहले कभी इस गली में नहीं आए!" उन आदमियों ने जवाब दिया, "इस गली में लोग रोज़ नहीं जाते; यह उत्सव की गली है, और क्योंकि आज उत्सव का दिन है, इसलिए राजा ने हमें आपको इसी रास्ते से लाने को कहा है।" और उन्होंने इस बात पर विश्वास कर लिया। फिर कुछ आदमी उन चारों को ले गए, बाकी महल लौट गए, खजाना तोड़कर अपनी मनचाही सभी कीमती चीजें ले गए। वे चारों बड़े सुरंग से आगे बढ़े, और उसे देवताओं (देवदूतों) के भव्य महल जैसा देखकर उन्होंने सोचा कि यह राजा के लिए बनाया गया होगा। फिर उन्हें नदी से कुछ ही दूरी पर एक जगह पर लाया गया, और सुरंग के अंदर एक सुंदर कक्ष में रखा गया: कुछ लोग उनकी निगरानी करते रहे, बाकी ने जाकर बोधिसत्व को उनके आने की सूचना दी।

बोधिसत्व ने मन ही मन सोचा, "अब मेरी मनोकामना पूरी होगी।" अत्यंत प्रसन्न होकर वे राजा के समक्ष गए और एक तरफ खड़े हो गए। राजा, इच्छा से व्याकुल होकर सोच रहे थे, "अब तो वह अपनी पुत्री को भेजेगा ही, अब, अब!" और उठकर उन्होंने खिड़की से बाहर देखा। शहर हजारों मशालों की रोशनी से जगमगा रहा था और चारों ओर एक विशाल सेना खड़ी थी! भय और संदेह से वे चिल्लाए, "यह क्या है?" और अपने विद्वान साथियों को एक श्लोक सुनाया।

"हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिक, कवचधारी सेना वहाँ खड़ी है, मशालें प्रकाश से जगमगा रही हैं; हे बुद्धिमानों, इनका क्या अर्थ है?"

इस पर सेनाका ने उत्तर दिया, "महाराज, चिंता न करें: बहुत सारी मशालें जल रही हैं; मुझे लगता है राजा अपनी पुत्री को आपके पास ला रहे हैं।" और पुक्कुसा ने कहा, "निस्संदेह वह आपके आगमन पर सम्मान दिखाना चाहते हैं, इसीलिए वे अपने साथ एक अंगरक्षक लाए हैं।" उन्होंने राजा को जो मनचाहा कहा। लेकिन राजा ने आदेश के शब्द सुने—"यहाँ एक टुकड़ी तैनात करो, वहाँ एक अंगरक्षक तैनात करो, सतर्क रहो!" और उन्होंने सैनिकों को हथियारबंद देखा; जिससे वे अत्यंत भयभीत हो गए, और ईश्वर से कुछ सुनने की लालसा में उन्होंने एक और श्लोक पढ़ा:

"हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिक, कवचधारी सेना वहाँ खड़ी है, मशालें प्रकाश से जगमगा रही हैं: वे क्या करेंगे, हे विद्वान?"

तब उस महान प्राणी ने सोचा, "मैं पहले इस अंधे मूर्ख को थोड़ी देर के लिए डराऊंगा, फिर मैं अपनी शक्ति दिखाऊंगा और उसे दिलासा दूंगा।" इसलिए उसने कहा,

"महाराज, शक्तिशाली कुलानिया आपको देख रहा है, ब्रह्मदत्त गद्दार है: वह सुबह आपको मार डालेगा।"

यह सुनकर सब भयभीत हो गए: राजा का गला सूख गया, थूकना बंद हो गया, उसका शरीर जलने लगा; भयभीत होकर और सिसकते हुए उसने दो श्लोक पढ़े:

"मेरा दिल धड़क रहा है, मेरा मुंह सूख रहा है, मुझे आराम नहीं मिल रहा है, मैं आग में झुलसे हुए और फिर धूप में रखे गए व्यक्ति की तरह हूं। जैसे लोहार की आग भीतर ही जलती है और बाहर दिखाई नहीं देती, वैसे ही मेरा दिल भीतर ही जल रहा है और बाहर दिखाई नहीं देता।"

जब उस महान सत्ता ने यह विलाप सुना, तो उसने सोचा, "इस अंधे मूर्ख ने पहले भी मेरी बात नहीं मानी; मैं इसे और भी अधिक दंड दूंगा," और उसने कहा:

"हे योद्धा, तुम लापरवाह हो, सलाह नहीं मानते, नासमझ हो; अब अपने चतुर सलाहकारों को ही तुम्हें बचाने दो। जो राजा अपने सुख-सुविधाओं में लिप्त होकर बुद्धिमान और निष्ठावान सलाहकार की सलाह नहीं मानता, वह जाल में फंसे हिरण के समान है। जैसे मछली चारा के लालच में अपने चारों ओर लिपटे मांस में छिपे कांटे को नहीं पहचानती, अपनी मृत्यु को नहीं जानती: वैसे ही हे राजा, तुम भी उस मछली की तरह कामवासना में लिप्त हो और कुलनेय्या की पुत्री को अपनी मृत्यु नहीं मानते। यदि तुम पांचाल जाओगे, (मैंने कहा,) तो तुम शीघ्र ही अपना सुख खो दोगे, जैसे राजमार्ग पर फंसा हिरण बड़ी मुसीबत में पड़ जाता है। हे स्वामी, एक दुष्ट व्यक्ति तुम्हारी गोद में सांप की तरह काटेगा; किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को उससे मित्रता नहीं करनी चाहिए; दुष्ट व्यक्ति की संगति अशुभ होती है। हे स्वामी, जो भी व्यक्ति गुणी और शिक्षित हो, वही बुद्धिमान व्यक्ति का मित्र होना चाहिए: अच्छे व्यक्ति की संगति सुखद होती है।"

फिर इस बात पर जोर देने के लिए कि किसी व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, उसने राजा द्वारा पहले कहे गए शब्दों को याद किया और आगे कहा--

"हे राजा, तू कितना मूर्ख है, बहरा और गूंगा, जिसने मुझमें ही सबसे अच्छी सलाह पर दोष निकाला, यह पूछते हुए कि मैं कैसे जान सकता हूँ कि दूसरे के लिए क्या अच्छा है, जबकि मैं हल चलाते हुए पला-बढ़ा हूँ? तूने कहा था, उस आदमी की गर्दन पकड़ कर उसे मेरे राज्य से बाहर निकाल दे, जो अपनी बातों से मुझे एक अनमोल वस्तु प्राप्त करने से रोकने की कोशिश करता है!"

इन दो श्लोकों का पाठ करने के बाद उसने कहा, "महाराज, मैं, एक साधारण ग्रामीण, कैसे जान सकता हूँ कि सेनाक और अन्य ज्ञानी पुरुषों की तरह क्या अच्छा है? यह मेरा काम नहीं है। मैं तो केवल ग्रामीण का काम जानता हूँ, लेकिन यह बात सेनाक और उनके जैसे लोगों को ज्ञात है; वे बुद्धिमान सज्जन हैं, और आज वे आपको चारों ओर से घेरने वाली अठारह शक्तिशाली सेनाओं से बचाएँ; और मैंने उनसे कहा कि वे मुझे गला पकड़कर फेंक दें। अब आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?" इस प्रकार उन्होंने उसे निर्दयतापूर्वक फटकारा। जब राजा ने यह सुना, तो उसने सोचा, "ऋषि मेरे किए हुए पापों का वर्णन कर रहे हैं। उन्हें बहुत पहले ही आने वाले खतरे का ज्ञान हो गया था, इसीलिए वे मुझे इतनी कठोर चेतावनी दे रहे हैं। लेकिन उन्होंने इतना समय व्यर्थ नहीं बिताया होगा; निश्चित रूप से उन्होंने मेरी सुरक्षा का प्रबंध किया होगा।" इस प्रकार दूसरे से बात करते हुए, उन्होंने दो श्लोक पढ़े:

"महोसाधा, बुद्धिमान लोग अतीत को बार-बार याद नहीं दिलाते; तुम मुझे बंधे हुए घोड़े की तरह क्यों कोड़े मार रहे हो? यदि तुम्हें मुक्ति या सुरक्षा दिखाई दे, तो मुझे दिलासा दो: मेरे विरुद्ध अतीत को क्यों उछाल रहे हो?"

तब उस महान सत्ता ने सोचा, "यह राजा बहुत अंधा और मूर्ख है, और मनुष्यों के बीच अंतर नहीं जानता: मैं कुछ समय तक इसे यातना दूंगा, फिर इसे बचा लूंगा"; और उसने कहा--

"अब मनुष्यों के लिए कुछ करने का समय नहीं बचा है, यह बहुत कठिन और मुश्किल है: मैं तुम्हें बचा नहीं सकता, और तुम्हें स्वयं निर्णय लेना होगा। ऐसे हाथी हैं जो हवा में उड़ सकते हैं, जादुई, शानदार: जिनके पास ऐसे हाथी हैं वे उन्हें लेकर जा सकते हैं। ऐसे घोड़े भी हैं जो हवा में उड़ सकते हैं, जादुई, शानदार: जिनके पास ऐसे घोड़े हैं वे उन्हें लेकर जा सकते हैं। पक्षी भी हैं, और जिन्न भी हैं, जो ऐसा ही करते हैं। लेकिन अब मनुष्यों के लिए कुछ करने का समय नहीं बचा है, यह बहुत कठिन और मुश्किल है: मैं तुम्हें बचा नहीं सकता, और तुम्हें स्वयं निर्णय लेना होगा।"

यह सुनकर राजा चुपचाप बैठे रहे; परन्तु सेनाक ने सोचा, "राजा और हम सब के लिए ऋषि के सिवा कोई और सहायता नहीं है; परन्तु राजा इतना भयभीत हैं कि वे उन्हें उत्तर नहीं दे पाएंगे। तो मैं उनसे ही पूछूंगा।" और उन्होंने दो श्लोकों में उनसे पूछा:

"विशाल सागर में जब मनुष्य को किनारा दिखाई नहीं देता, तब भी जब उसे सहारा मिल जाता है तो वह आनंद से भर उठता है। उसी प्रकार, हे महोषधा, आप हमारे और राजा के लिए दृढ़ आधार हैं; आप हमारे सर्वश्रेष्ठ सलाहकार हैं; हमें कष्टों से मुक्ति दिलाइए।"

उस महान सत्ता ने इस श्लोक में उनसे यह कहा:

"पुरुषों के लिए अब कार्रवाई करना बहुत देर हो चुकी है, यह बहुत कठिन और मुश्किल है: मैं तुम्हें बचा नहीं सकता, और तुम्हें खुद फैसला करना होगा, सेनाका।"

राजा को कोई रास्ता नहीं सूझा और वह इतना भयभीत हो गया कि वह उस महान सत्ता से एक शब्द भी नहीं कह सका; लेकिन यह सोचकर कि शायद सेनाक के पास कोई योजना हो, उसने इस श्लोक में उससे पूछा:

"मेरी बात सुनो: तुम इस बड़े खतरे को देख रहे हो, और अब सेनाका, मैं तुमसे पूछता हूँ—तुम्हें क्या लगता है कि यहाँ क्या किया जाना चाहिए?"

सेनाका ने सोचते हुए कहा, "राजा योजना पूछे: अच्छी हो या बुरी, मैं उसे एक योजना बताऊँगा," और फिर एक श्लोक सुनाया:

"चलो हम दरवाजे में आग लगा दें, तलवार उठा लें, एक दूसरे को घायल कर दें, और जल्द ही हम मर जाएंगे: ब्रह्मदत्त हमें तड़प-तड़प कर मौत न दे।"

यह सुनकर राजा क्रोधित हो उठा; उसने सोचा, "यह तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों की अंतिम संस्कार की चिता के लिए काफी होगा।" फिर उसने पुक्कुसा और बाकी लोगों से पूछा, जो अपनी-अपनी तरह मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे थे; परंपरा के अनुसार, यह कहानी इस प्रकार है:

"यह बात सुनो: तुम इस बड़े खतरे को देख रहे हो। अब मैं पुक्कुसा से पूछता हूँ—तुम्हें क्या लगता है कि यहाँ क्या किया जाना चाहिए?" "हम विष खाकर मर जाएँ, और हम शीघ्र ही मर जाएँगे: ब्रह्मदत्त हमें तड़प-तड़प कर न मार डाले।" "अब मैं कविंदा से पूछता हूँ।" "हम फंदा लगाकर मर जाएँ, हम ऊँचाई से कूद जाएँ, ब्रह्मदत्त हमें तड़प-तड़प कर न मार डाले।" "अब मैं देविंदा से पूछता हूँ।" "हम दरवाजे में आग लगा दें, हम तलवार उठाएँ, हम एक-दूसरे को घायल कर दें, और हम शीघ्र ही मर जाएँगे: मैं हमें नहीं बचा सकता, लेकिन महोसाधा आसानी से ऐसा कर सकता है।"

देविंदा ने सोचा, "राजा क्या कर रहे हैं? यहाँ आग है, और वे जुगनू पर फूँक मार रहे हैं! महोषधा के सिवा कोई और हमें बचा नहीं सकता: फिर भी वे उसे छोड़कर हमसे पूछते हैं! हम इसके बारे में क्या जानते हैं?" ऐसा सोचते हुए, और कोई दूसरा उपाय न देखकर, उन्होंने सेनाक द्वारा प्रस्तावित योजना को दोहराया, और दो श्लोकों में उस महान सत्ता की स्तुति की।

"मेरा तात्पर्य यह है, महाराज: आइए हम सब उस ज्ञानी व्यक्ति से प्रार्थना करें; और यदि हमारे सभी प्रयासों के बावजूद महोसाधा हमें आसानी से नहीं बचा सकते, तो आइए हम सेनाक की सलाह का पालन करें।"

यह सुनकर राजा को बोधिसत्व के साथ किए गए अपने दुर्व्यवहार की याद आ गई, और उनसे बात करने में असमर्थ होने के कारण, उन्होंने उनके सामने इस प्रकार शोक व्यक्त किया:

जैसे कोई केले या रेशम के पेड़ में रस खोजता है, उसे कुछ नहीं मिलता; वैसे ही हम भी इस समस्या का हल ढूंढते-ढूंढते निराश हो गए हैं। हमारी स्थिति बहुत खराब है, जैसे हाथी ऐसी जगह पर हों जहाँ पानी न हो, निकम्मे और मूर्ख लोगों के बीच, जिन्हें कुछ नहीं पता। मेरा दिल धड़क रहा है, मेरा मुँह सूख रहा है, मुझे आराम नहीं मिल रहा, मैं आग में झुलसे हुए और फिर धूप में रखे हुए व्यक्ति की तरह हूँ। जैसे लोहार की आग अंदर ही अंदर जलती है और बाहर दिखाई नहीं देती, वैसे ही मेरा दिल अंदर ही अंदर जल रहा है और बाहर दिखाई नहीं दे रहा।

तब ऋषि ने सोचा, "राजा अत्यंत व्याकुल हैं: यदि मैं उन्हें सांत्वना न दूं, तो वे हृदयविहीन होकर मर जाएंगे।" अतः उन्होंने उन्हें सांत्वना दी।

गुरु ने इसे समझाते हुए कहा:

तब अच्छे गुणों को परखने वाले बुद्धिमान ऋषि महोषध ने वेदेह को दुखी देखकर उनसे कहा, "हे राजा, भयभीत न हों, हे रथों के स्वामी; मैं आपको राहु ग्रहण में फंसे चंद्रमा की तरह, राहु ग्रहण में फंसे सूर्य की तरह, कीचड़ में धंसे हाथी की तरह, टोकरी में बंद सांप की तरह, जाल में फंसी मछली की तरह मुक्त कर दूंगा; मैं आपको आपके रथों और आपकी सेना सहित मुक्त कर दूंगा; मैं पांचाल को पत्थर से डराकर भगा दूंगा, जैसे कौआ डर जाता है। ऐसे ज्ञान या सलाहकार का क्या लाभ जो संकट में होने पर आपको उससे मुक्त न कर सके?"

यह सुनकर उसे तसल्ली मिली: "अब मेरी जान सुरक्षित है!" उसने सोचा; बोधिसत्व के सिंहवत स्वर में बोलने पर सब प्रसन्न हो गए। तब सेनाक ने पूछा, "हे ज्ञानी, आप हम सबको कैसे बचाएंगे?" "एक सजी हुई सुरंग से," उसने कहा, "तैयार हो जाओ।" इतना कहकर उसने अपने आदमियों को सुरंग खोलने का आदेश दिया।

"आओ, पुरुषों, उठो और प्रवेश द्वार खोलो: वेदेह अपने दरबार के साथ सुरंग से होकर गुजरेगा।"

वे उठे और सुरंग का द्वार खोल दिया, और पूरी सुरंग देवताओं (देवदूतों) के अलंकृत हॉल की तरह प्रकाश की तेज रोशनी से जगमगा उठी। गुरु ने इसका स्पष्टीकरण देते हुए कहा:

"ज्ञानी व्यक्ति की आवाज सुनकर, उसके अनुयायियों ने सुरंग का दरवाजा और यांत्रिक बोल्ट खोल दिए।"

उन्होंने महान सत्ता को बताया कि द्वार खुल गया है, और उन्होंने राजा को आदेश दिया: "हे महाराज, समय हो गया है! चबूतरे से नीचे आ जाइए।" राजा नीचे आ गए, सेनाक ने अपना सिर का वस्त्र उतारा और अपना वस्त्र बाँधा। महान सत्ता ने उनसे पूछा कि उन्होंने क्या किया; उन्होंने उत्तर दिया, "हे ज्ञानी, जब कोई व्यक्ति सुरंग से गुजरता है, तो उसे अपनी पगड़ी उतारनी चाहिए और अपने वस्त्रों को कसकर लपेटना चाहिए।" दूसरे ने उत्तर दिया, "सेनाक, यह मत सोचो कि तुम्हें सुरंग में घुटनों के बल रेंगना होगा। यदि तुम हाथी पर जाना चाहते हो, तो अपने हाथी पर सवार हो जाओ: हमारी सुरंग विशाल है, अठारह हाथ ऊँची, चौड़े द्वार वाली; तुम जैसे चाहो वैसे सज-धज कर राजा के आगे चलो।" तब बोधिसत्व ने सेनाक को पहले भेजा और स्वयं अंत में गए, राजा बीच में थे, और इसका कारण यह था: सुरंग में खाने-पीने की चीजों का संसार था, और लोग सुरंग को निहारते हुए खा-पी रहे थे और कह रहे थे, "जल्दी मत जाओ, बल्कि

इस सजी हुई सुरंग को निहारो।" लेकिन वह महान प्राणी राजा को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हुए पीछे-पीछे चलने लगा, जबकि राजा देवताओं (देवदूतों) के हॉल की तरह सजी हुई सुरंग को निहारता रहा।

गुरु ने इसे समझाते हुए कहा,

"सबसे आगे सेनाक, उसके पीछे महोषध और बीच में राजा वेदेह अपने दरबारियों के साथ चल रहे थे।"

अब जब राजा के आने का पता चला, तो लोग दूसरे राजा की माता और पत्नी, पुत्र और पुत्री को सुरंग से बाहर लाए और उन्हें विशाल प्रांगण में बिठा दिया; राजा भी बोधिसत्व के साथ सुरंग से बाहर आए। जब इन चारों ने राजा और ऋषि को देखा, तो वे भय से मरणासन्न हो गए और डर के मारे चीखने लगे—"निःसंदेह हम अपने शत्रुओं के हाथों में हैं! ये तो उस ज्ञानी पुरुष के सैनिक ही होंगे जो हमें पकड़ने आए हैं!" और राजा चुलानी, इस डर से कि कहीं वेदेह भाग न जाए—अब वह गंगा से लगभग एक मील दूर थे—शांत रात में उनकी चीख सुनकर कहना चाहते थे, "यह तो रानी नंदा की आवाज जैसी है!" लेकिन उन्हें डर था कि ऐसा सोचने पर उनका उपहास उड़ाया जाएगा, इसलिए उन्होंने कुछ नहीं कहा। उसी क्षण, उस महान सत्ता ने राजकुमारी पंचालचंडी को खजाने के ढेर पर बिठाया और विधिपूर्वक जल छिड़काव करते हुए कहा, "महाराज, यह वही है जिसके लिए आप आए हैं; इसे अपनी रानी बनाइए!" वे तीन सौ जहाज़ बाहर लाए; राजा विशाल प्रांगण से आया और एक भव्य रूप से सजे हुए जहाज पर सवार हो गया, और ये चारों भी उसके साथ सवार हो गए। गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

सुरंग से निकलकर वेदेह जहाज पर सवार हो गए, और जहाज पर पहुँचते ही महोसाधा ने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा, “हे स्वामी, ये आपके ससुर हैं, हे मनुष्यों के स्वामी, ये आपकी सास हैं: जैसा आप अपनी माता का सत्कार करते हैं, वैसा ही अपनी सास का सत्कार करें। जैसे वे सगे भाई हों, हे रथों के स्वामी, पंचलचंदा की रक्षा करें। पंचलचंदी एक राजसी राजकुमारी हैं, जिनके लिए बहुत प्रेम है; उनसे प्रेम करें, वे आपकी पत्नी हैं, हे रथों के स्वामी।”

राजा मान गए। लेकिन उस महान सत्ता ने महारानी के बारे में कुछ क्यों नहीं कहा? क्योंकि वह एक बूढ़ी औरत थीं। यह सब बोधिसत्व ने तट पर खड़े होकर कहा। तब राजा, बड़ी मुसीबत से मुक्त होकर, जहाज में आगे बढ़ने की इच्छा से बोले, "मेरे पुत्र, तुम तट पर खड़े होकर बोल रहे हो": और एक श्लोक सुनाया--

"जल्दी से नाव पर चढ़ो: तुम किनारे पर क्यों खड़े हो? हम खतरे और मुसीबत से बच गए हैं; अब, महोसाधा, चलो चलते हैं।"

उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी, मेरा आपके साथ जाना उचित नहीं है," और उसने कहा,

"यह उचित नहीं है, महाराज, कि मैं, जो एक सेना का नेता हूँ, अपनी सेना को छोड़कर स्वयं आ जाऊँ। शहर में छूटी हुई इस पूरी सेना को मैं ब्रह्मदत्त की सहमति से वापस ले आऊँगा।"

"इन लोगों में से कुछ लंबी यात्रा के बाद थकान से सो रहे हैं, कुछ खा-पी रहे हैं और हमारे जाने से अनभिज्ञ हैं, कुछ बीमार हैं, जिन्होंने मेरे साथ चार महीने काम किया है, और मेरे कई सहायक भी हैं। मैं एक भी आदमी को पीछे छोड़कर नहीं जा सकता; नहीं, मैं लौटूँगा, और ब्रह्मदत्त की सहमति से उस पूरी सेना को बिना किसी लड़ाई के वापस ले आऊँगा। हे महाराज, आप बिना कहीं रुके पूरी गति से जाइए; मैंने मार्ग पर हाथियों और रथों की कतारें लगा दी हैं, ताकि आप थके हुए लोगों को पीछे छोड़ सकें और बाकी तरोताजा लोगों के साथ शीघ्र ही मिथिला लौट सकें।" फिर राजा ने एक श्लोक पढ़ा:

"एक छोटी सी सेना एक विशाल सेना के सामने कैसे जीत हासिल करेगी? कमजोर बलवानों के हाथों नष्ट हो जाएगा, हे बुद्धिमान!"

तब बोधिसत्व ने एक श्लोक का पाठ किया:

"सलाह से लैस एक छोटी सेना बिना सलाह वाली एक बड़ी सेना को जीत लेती है, एक राजा कई राजाओं पर विजय प्राप्त करता है, उगता सूरज अंधेरे को जीत लेता है।"

इन शब्दों के साथ, उस महान सत्ता ने राजा को प्रणाम किया और उन्हें विदा कर दिया। राजा को याद आया कि कैसे उन्हें शत्रुओं के हाथों से मुक्ति मिली थी और राजकुमारी को जीतकर उन्होंने अपने दिल की इच्छा पूरी कर ली थी। बोधिसत्व के गुणों के बारे में सोचते हुए, प्रसन्नता और आनंद से भरे भाव से उन्होंने सेनाक को उस ज्ञानी व्यक्ति के गुणों का वर्णन इस श्लोक में किया:

"हे सेनाक, सच्ची खुशी बुद्धिमानों के साथ रहने से मिलती है। जैसे पिंजरे से पक्षी और जाल से मछली मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही महोषधा ने हमें तब मुक्त किया जब हम मेरे शत्रुओं के हाथों में थे।"

इस पर सेनाका ने एक और उत्तर देते हुए ऋषि की प्रशंसा की:

"फिर भी, महाराज, बुद्धिमानों में सुख होता है। जैसे पिंजरे से पक्षी और जाल से मछली निकल आती हैं, वैसे ही महोषधा ने हमें तब मुक्त किया जब हम अपने शत्रुओं के हाथों में थे।"

फिर वेदेह ने नदी पार की और एक मील (4.23 किमी) की दूरी पर उन्हें वह गाँव मिला जो बोधिसत्व ने तैयार किया था; वहाँ बोधिसत्व द्वारा नियुक्त लोगों ने हाथी और अन्य वाहन उपलब्ध कराए और उन्हें भोजन और पानी दिया। जब हाथी या घोड़े और वाहन थक गए तो उन्होंने उन्हें वापस भेज दिया और नए वाहन लेकर अगले गाँव की ओर चल दिए; इस प्रकार उन्होंने सौ मील (4.23 किमी) की यात्रा पूरी की और अगली सुबह वे मिथिला में थे।

लेकिन बोधिसत्व सुरंग के द्वार पर गए; और अपने कंधे पर टंगी तलवार को निकालकर सुरंग के द्वार पर रेत में गाड़ दिया; फिर वे सुरंग में प्रवेश कर शहर में गए, सुगंधित जल से स्नान किया, उत्तम भोजन किया और अपने बड़े पलंग पर विश्राम किया, यह सोचकर प्रसन्न हुए कि उनके हृदय की इच्छा पूरी हो गई है। रात समाप्त होने पर, राजा कुलानी ने सेना को आदेश दिया और शहर की ओर चल पड़े। गुरु ने इसका इस प्रकार वर्णन किया:

"शक्तिशाली चुलानिया ने पूरी रात निगरानी रखी और सूर्योदय के समय उपकारी के पास पहुंचा। अपने उत्तम हाथी पर सवार होकर, बलवान और साठ वर्ष के चुलानिया, पांचाल के शक्तिशाली राजा ने अपनी सेना को संबोधित किया; रत्नजड़ित कवच से सुसज्जित, हाथ में बाण लिए, उन्होंने अपने असंख्य सैनिकों को संबोधित किया।"

फिर उनका वर्णन उनके प्रकार के अनुसार करना—

"हाथियों पर सवार पुरुष, अंगरक्षक, रथ चालक, पैदल सैनिक, तीरंदाजी में कुशल पुरुष, धनुर्धर, सभी एक साथ एकत्रित हुए थे।"

अब राजा ने उन्हें वेदेह को जीवित पकड़ने का आदेश दिया:

साठ वर्ष के शक्तिशाली हाथी दांत भेजो, उन्हें वेदेह द्वारा भव्यता से निर्मित नगर को रौंद डालने दो। धनुष से चलाए गए बाण इधर-उधर बरसाओ, बछड़ों के दांतों के समान नुकीले, हड्डियों तक को भेदने वाले बाण। कवचधारी, अलंकृत शस्त्रों से सुसज्जित वीरों को हाथी का सामना करने के लिए तैयार होकर आगे आने दो। तेल में सने भाले, जिनकी नोकें अग्नि के समान चमक रही हैं, सौ तारों के नक्षत्र के समान जगमगा रहे हैं। ऐसे वीरों के आक्रमण के सामने, शक्तिशाली शस्त्रों से सुसज्जित, कवचधारी, जो कभी पीछे नहीं हटते, वेदेह कैसे बच पाएगा, चाहे वह पक्षी की तरह उड़ भी जाए? मेरे उनतीस हजार योद्धा, सभी चयनित पुरुष, जिनके समान मैंने कभी नहीं देखा, मेरी समस्त शक्तिशाली सेना।

"साठ वर्ष के विशाल दांत वाले हाथियों को देखो, जिन पर काठी सजी है, जिनकी पीठ पर तेजस्वी और सुंदर राजकुमार विराजमान हैं; वे अपनी पीठ पर ऐसे तेजस्वी हैं जैसे नंदन में देवता (देवदूत), शानदार आभूषणों, भव्य वस्त्रों और आलिंगनों से सुसज्जित: शेट-मछली के रंग की तलवारें, अच्छी तरह से तेल लगी हुई, चमकीली, बलवान पुरुषों द्वारा मजबूती से पकड़ी हुई, उत्तम रूप से निर्मित, बहुत तेज, चमकदार, बेदाग, तपी हुई इस्पात से बनी, मजबूत।"

शक्तिशाली योद्धाओं द्वारा समर्थित, जो बार-बार प्रहार करते हैं। सुनहरे अलंकृत वस्त्रों और रक्त लाल कमरबंदों में वे घने बादल में बिजली की तरह चमकते हैं। ध्वज लहराते कवचधारी वीर, तलवार और ढाल चलाने में कुशल, तलवार की मूठ को थामे हुए, निपुण सैनिक, हाथी की पीठ पर सवार शक्तिशाली योद्धा, इनके बीच घिरे होने पर तुम्हारे पास बचने का कोई रास्ता नहीं है; मुझे ऐसी कोई शक्ति नहीं दिखती जिससे तुम मिथिला पहुँच सको।

इस प्रकार उसने वेदेह को वहीं पकड़ने की सोचकर उसे धमकी दी; और अपने हाथी को चाबुक मारते हुए, सेना को पकड़ने, प्रहार करने और मार डालने का आदेश देते हुए, राजा चुलानी उपकारी नगर में बाढ़ की तरह आ पहुँचा।

तब उस महान प्राणी के जासूसों ने सोचा, "पता नहीं क्या होगा?" और अपने सेवकों के साथ उन्हें घेर लिया। ठीक उसी समय बोधिसत्व अपने पलंग से उठे, अपनी शारीरिक आवश्यकताओं का ध्यान रखा, और नाश्ते के बाद सज-धज कर, एक लाख सिक्कों के मूल्य का काशी वस्त्र पहना, एक कंधे पर लाल वस्त्र डाला, सात रत्नों से जड़ा अपना भेंट दंड धारण किया, पैरों में सोने की चप्पलें पहनीं, और किसी दिव्य अप्सरा की तरह यक्षपत्ती के पंखे से हवा करते हुए चबूतरे पर आए, और खिड़की खोलकर राजा चुलानी को दर्शन दिए, जैसे वे देवदूतों के राजा की शान से इधर-उधर विचरण कर रहे हों। राजा चुलानी उनकी सुंदरता देखकर विचलित हो गए, और उन्होंने तुरंत अपने हाथी को आगे बढ़ाया, यह सोचकर कि उन्हें अभी ले जाना चाहिए। ऋषि ने सोचा, "वे यहाँ इतनी जल्दी आ गए हैं, यह सोचकर

कि वेदेह को पकड़ लिया गया है; उन्हें नहीं पता कि उनके अपने बच्चे ले जाए गए हैं, और हमारे राजा चले गए हैं। मैं अपना चेहरा सोने के दर्पण की तरह दिखाऊंगा, और उनसे बात करूंगा।" खिड़की पर खड़े होकर उसने शहद जैसी मीठी आवाज में ये शब्द कहे:

"तुम इतनी जल्दी में अपना हाथी क्यों लेकर आए हो? तुम बड़े प्रसन्न होकर आए हो; तुम्हें लगता है कि तुम्हें जो चाहिए वो मिल गया है। उस धनुष को नीचे फेंक दो, उस तीर को रख दो, उस हीरे-जवाहरात और मूंगे से जड़े चमकदार कवच को उतार दो।"

जब उसने उस आदमी की आवाज सुनी, तो उसने सोचा, "यह देहाती आदमी मेरा मजाक उड़ा रहा है; आज मैं देखूंगा कि इसके साथ क्या किया जाता है"; फिर उसने उसे धमकी देते हुए कहा,

"आपकी शांत मुद्रा प्रसन्नता दर्शाती है, आप मुस्कुराते हुए बोलते हैं। मृत्यु के क्षण में ही ऐसी सुंदरता देखने को मिलती है।"

जब वे आपस में बातें कर रहे थे, तो सैनिकों ने उस महान व्यक्ति की सुंदरता पर ध्यान दिया; उन्होंने कहा, "हमारे राजा, बुद्धिमान महोषध से बात कर रहे हैं; यह किस बारे में हो सकता है? आइए हम उनकी बातें सुनें।" इसलिए वे राजा के पास आए। लेकिन जब राजा ने बोलना समाप्त कर दिया, तो ऋषि ने उत्तर दिया, "तुम नहीं जानते कि मैं बुद्धिमान महोषध हूँ। मैं तुम्हें मुझे मारने नहीं दूँगा। तुम्हारी योजना विफल हो गई है; जो तुमने और केवट्टा ने अपने मन में सोचा था, वह पूरा नहीं हुआ, बल्कि वही पूरा हुआ जो तुमने अपने मुख से कहा।" और उन्होंने इसे समझाते हुए कहा,

"हे राजा, तुम्हारी गर्जना व्यर्थ है! हे योद्धा, तुम्हारी योजना विफल हो गई है! राजा को पकड़ना तुम्हारे लिए उतना ही कठिन है जितना किसी तेज़ घोड़े को पकड़ना। हमारे राजा कल अपने दरबारियों और सेवकों के साथ गंगा पार कर गए। तुम उस कौवे की तरह होगे जो राजसी हंस का पीछा कर रहा हो।"

फिर, निर्भीक शेर की तरह, उन्होंने इन शब्दों में एक उदाहरण प्रस्तुत किया:

"रात के समय, सियार यहूदा वृक्ष को फूलते हुए देखकर, फूलों को मांस का ढेर समझकर झुंड बनाकर इकट्ठा हो जाते हैं, ये नीच जानवर। रात के पहर बीत जाने और सूर्योदय होने पर, वे यहूदा वृक्ष को फूलते हुए देखते हैं और अपनी इच्छा खो देते हैं, ये नीच जानवर। ठीक वैसे ही, हे राजा, आपने वेदेह को घेर लिया है, फिर भी आप अपनी इच्छा खो देंगे और चले जाएंगे, जैसे सियार यहूदा वृक्ष से चले गए थे।"

जब राजा ने उसके निर्भीक शब्द सुने, तो उसने सोचा, "यह देहाती तो बोलने में बहुत साहसी है: निःसंदेह वेदेह बच निकला होगा।" वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने सोचा, "बहुत समय पहले, इस देहाती के कारण मेरे पास ओढ़ने के लिए एक चिथड़ा तक नहीं था; अब इसके कारण मेरा शत्रु, जो मेरे हाथों में था, बच निकला है। सचमुच इसने मुझे बहुत हानि पहुँचाई है, और मैं इससे दोनों का बदला लूँगा।" फिर उसने इस प्रकार आदेश दिया:

"उसके हाथ-पैर, कान-नाक काट डाल, क्योंकि उसने मेरे शत्रु वेदेह को मेरे हाथों से छुड़ाया; उसका मांस काटकर सींकों पर पका, क्योंकि उसने मेरे शत्रु वेदेह को मेरे हाथों से छुड़ाया। जैसे बैल की खाल जमीन पर फैला दी जाती है, या शेर या बाघ की खाल खूंटियों से ठोंक दी जाती है, वैसे ही मैं उसे खूंटियों से ठोंक कर कीलों में छेद दूंगा, क्योंकि उसने मेरे शत्रु वेदेह को मेरे हाथों से छुड़ाया।"

यह सुनकर महान प्राणी मुस्कुराया और सोचने लगा, "यह राजा नहीं जानता कि उसकी रानी और परिवार को मैंने मिथिला पहुँचाया है, इसीलिए वह मेरे बारे में ये सारे आदेश दे रहा है। लेकिन क्रोध में आकर वह मुझे तीर से घायल कर सकता है, या कुछ ऐसा कर सकता है जिससे उसे प्रसन्नता हो; इसलिए मैं उसे पीड़ा और दुख से भर दूँगा, और उसे उसके हाथी की पीठ पर बेहोश कर दूँगा, और साथ ही उसे इसके बारे में बता दूँगा।" फिर उसने कहा:

यदि तुम मेरे हाथ-पैर, कान-नाक काट दोगे, तो वेदेह पंचलचंद, पंचलचंडी, रानी नंदा, तुम्हारी पत्नी और बच्चों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करेगा। यदि तुम मेरा मांस काटकर सींकों पर पकाओगे, तो वेदेह पंचलचंद, पंचलचंडी, रानी नंदा, तुम्हारी पत्नी और बच्चों का मांस भी वैसा ही पकाएगा। यदि तुम मुझे खूंटियों से बांधकर नुकीली कीलों से छेद दोगे, तो वेदेह पंचलचंद, पंचलचंडी, रानी नंदा, तुम्हारी पत्नी और बच्चों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करेगा। वेदेह और मेरे बीच यही गुप्त समझौता हुआ है। जैसे चमड़े के कारीगरों द्वारा सावधानीपूर्वक बनाई गई सौ परतों की ढाल तीरों से बचाव करती है; वैसे ही मैं वेदेह के लिए सुख लाता हूँ और उसके कष्टों को दूर करता हूँ, और तुम्हारे कुटिल मार्गों को उसी प्रकार रोकता हूँ जैसे ढाल तीर को रोकती है।

यह सुनकर राजा ने सोचा, "यह गंवार देहाती क्या बकवास कर रहा है? जैसा मैंने उसके साथ किया, वैसा ही राजा वेदेह मेरे परिवार के साथ करेगा? उसे नहीं पता कि मैंने अपने परिवार की सुरक्षा के लिए कड़ी निगरानी रखी है, लेकिन वह तो बस तुरंत मौत के डर से मुझे धमका रहा है। मुझे उसकी बातों पर विश्वास नहीं है।"

उस महान सत्ता ने भविष्यवाणी की कि उन्हें लगता है कि वह डर के मारे बोल रहा है, और उन्होंने समझाने का निश्चय किया। इसलिए उन्होंने कहा

"आओ, महाराज, देखो तुम्हारे भीतरी कमरे खाली हैं: पत्नी, बच्चे, माता, हे योद्धा, उन्हें एक सुरंग से ले जाकर वेदेह के हवाले कर दिया गया है।"

तब राजा ने सोचा, "ऋषि बड़ी दृढ़ता से बोल रहे हैं। मैंने रात में गंगा के किनारे रानी नंदा की वाणी सुनी थी; ऋषि बहुत बुद्धिमान हैं, शायद वे सच कह रहे हैं!" उन्हें गहरा दुःख हुआ, परन्तु उन्होंने साहस जुटाकर अपने दुःख को छुपाते हुए एक दरबारी को पूछताछ के लिए भेजा और यह श्लोक सुनाया:

"आओ, मेरे भीतरी कमरों में प्रवेश करो और पता लगाओ कि उस आदमी के शब्द सत्य हैं या झूठ।"

दूत अपने सेवकों के साथ गया, और दरवाजा खोलकर अंदर प्रवेश किया; वहाँ उसने देखा कि हाथ-पैर बंधे हुए और मुँह में कपड़ा ठूंसा हुआ, खूंटियों से लटके हुए भीतरी कमरों के पहरेदार, बौने और कुबड़ वाले लोग थे; टूटे हुए बर्तन बिखरे पड़े थे, जिनमें भोजन और पेय पदार्थ थे; खजाने के दरवाजे टूटे हुए थे और खजाना लूटा हुआ था; शयनकक्ष के दरवाजे खुले थे और खुली खिड़कियों से कौवों का एक झुंड अंदर आ गया था; यह एक वीरान गाँव या लाशों के ढेर जैसा लग रहा था। उसने महल को इस दयनीय अवस्था में देखा; और उसने राजा को यह खबर देते हुए कहा,

"फिर भी, महाराज, जैसा कि महोसाधा ने कहा था: आपका आंतरिक महल खाली है, जैसे कौवों से आबाद एक जलतटीय गाँव।"

अपने चारों प्रियजनों के बिछड़ने के शोक से कांपते हुए राजा ने कहा, "यह दुःख मुझ पर इस देहाती के कारण आया है!" और जैसे किसी साँप को डंडे से चोट लगी हो, वैसे ही वह बोधिसत्व पर अत्यंत क्रोधित हुआ। जब महापुरुष ने उसका रूप देखा, तो उसने सोचा, "इस राजा का बहुत गौरव है; यदि वह कभी क्रोध में आकर कहे, 'मुझे फलां से क्या चाहिए?' तो वह एक योद्धा के अभिमान में आकर मुझे हानि पहुँचा सकता है। मान लो कि मैं रानी नंदा की सुंदरता का वर्णन उसके सामने इस तरह करूँ जैसे उसने उसे कभी देखा ही न हो; तब उसे रानी नंदा की याद आ जाएगी, और वह समझ जाएगा कि यदि वह मुझे मार डाले तो वह इस अनमोल स्त्री को कभी वापस नहीं पा सकेगा। तब अपनी पत्नी के प्रति प्रेम के कारण वह मुझे कोई हानि नहीं पहुँचाएगा।" अतः ऊपरी मंजिल पर सुरक्षा के लिए खड़े होकर, उसने अपने लाल वस्त्र के नीचे से अपना सुनहरा हाथ निकाला, और जिस मार्ग से रानी नंदा जा रही थी, उसकी ओर इशारा करते हुए, उसने रानी नंदा की सुंदरता का इस प्रकार वर्णन किया:

"इस ओर, महाराज," हर अंग से सुंदर स्त्री चली, उसके होंठ सोने की थालियों जैसे, उसकी आवाज़ जंगली हंस के संगीत जैसी। "इस ओर उसे लाया गया था, महाराज, हर अंग से सुंदर स्त्री, रेशमी वस्त्रों में लिपटी, सांवली, सुनहरे रंग की कमरबंद के साथ। उसके पैर लाल, देखने में सुंदर, सोने और रत्नों से सजी कमरबंद के साथ, कबूतर जैसी आँखों वाली, पतली, बिम्बा फल जैसे होंठों वाली, और पतली कमर वाली, उच्च कुल की, लता या बलिदान स्थल जैसी पतली कमर वाली, उसके बाल लंबे, काले और सिरे पर थोड़े घुंघराले, उच्च कुल के, हिरण के बच्चे जैसे, सर्दियों में आग की लौ जैसे। पहाड़ की दरारों में कम सरकंडों के नीचे छिपी नदी की तरह, नाक और जांघों से सुंदर, असाधारण, टिंडूक फल जैसे स्तनों वाली, न बहुत लंबे, न बहुत छोटे, न बाल रहित और न बहुत बाल वाले।"

जब उस महान सत्ता ने उसकी सुंदरता की इस प्रकार प्रशंसा की, तो राजा को ऐसा लगा मानो उसने उसे पहले कभी देखा ही न हो: उसके मन में तीव्र लालसा उत्पन्न हुई, और उस महान सत्ता ने इसे भांपते हुए एक श्लोक का पाठ किया:

"हे महाराज, आप नंदा की मृत्यु से प्रसन्न हैं: अब मैं और नंदा यमराज के समक्ष जाएंगे।"

इन सब बातों में उस महान पुरुष ने केवल नंदा की ही प्रशंसा की, और इसका कारण यह था: लोग कभी भी दूसरों से उतना प्रेम नहीं करते जितना अपनी प्रिय पत्नी से करते हैं; और उन्होंने केवल नंदा की ही प्रशंसा इसलिए की क्योंकि उनका मानना था कि यदि राजा उन्हें याद रखेंगे तो वे अपने बच्चों को भी याद रखेंगे। जब उस बुद्धिमान महान पुरुष ने मधुर स्वर में नंदा की प्रशंसा की, तो ऐसा लगा मानो रानी नंदा स्वयं राजा के समक्ष खड़ी हों। तब राजा ने सोचा: "महोसाधा के सिवा कोई और मेरी पत्नी को वापस नहीं ला सकता और मुझे नहीं दे सकता": जैसे ही उन्हें याद आया, वे शोक में डूब गए। इस पर उस महान पुरुष ने कहा, "हे महाराज, चिंता न करें: रानी, पुत्र और माता सब लौट आएंगे; मेरी वापसी ही एकमात्र शर्त है। हे महाराज, निश्चिंत हो जाइए!" इस प्रकार उन्होंने राजा को सांत्वना दी;

और राजा ने कहा, “मैंने अपने नगर की इतनी सावधानी से रक्षा की, मैंने उपकारी नगर को इतनी बड़ी सेना से घेर लिया, फिर भी इस बुद्धिमान व्यक्ति ने मेरे संरक्षित नगर से रानी, पुत्र और माता को निकालकर वेदेह के हवाले कर दिया! जब हम नगर को घेरे हुए थे, तब उसने किसी को भी पता चले बिना वेदेह को उसकी सेना और वाहन के साथ भेज दिया! क्या वह जादू जानता है, या आँखों को धोखा देने की कला जानता है?” और उसने उससे इस प्रकार प्रश्न किया:

"क्या तुम जादू-टोना सीखते हो, या तुमने मेरी आँखों पर जादू कर दिया है कि तुमने मेरे शत्रु वेदेह को मेरे हाथों से छुड़ा लिया?"

यह सुनकर उस महान प्राणी ने कहा: "महाराज, मैं जादू जानता हूँ, क्योंकि जिन बुद्धिमान पुरुषों ने जादू सीखा है, वे खतरे के समय स्वयं को और दूसरों को भी बचाते हैं।"

"हे महाराज, ज्ञानी पुरुष इस संसार में जादू सीखते हैं; वे स्वयं को उद्धार दिलाते हैं, ज्ञानी पुरुष सलाह से परिपूर्ण होते हैं। मेरे पास ऐसे युवक हैं जो बाधाओं को तोड़ने में निपुण हैं; जिस मार्ग से उन्होंने मुझे बनाया, उसी मार्ग से वेदेह मिथिला चला गया है।"

इससे संकेत मिला कि वह सजी हुई सुरंग से गया था; इसलिए राजा ने कहा, "यह भूमिगत मार्ग क्या है?" और इसे देखने की इच्छा व्यक्त की। महान सत्ता ने उसकी नज़र से समझ लिया कि वह यही देखना चाहता है, और उसे दिखाने की पेशकश की।

"हे राजा, आओ देखो, एक अच्छी तरह से बनी सुरंग, हाथियों या घोड़ों, रथों या पैदल सैनिकों के लिए पर्याप्त बड़ी, अच्छी तरह से प्रकाशित, एक अच्छी तरह से निर्मित सुरंग।"

फिर उन्होंने आगे कहा, “महाराज, मेरे ज्ञान से निर्मित इस सुरंग को देखिए: यह ऐसी चमकीली है मानो इसमें सूर्य और चंद्रमा उदय हो रहे हों, अस्सी बड़े दरवाजों और चौंसठ छोटे दरवाजों से सुशोभित, एक सौ एक शयनकक्षों और सैकड़ों दीपक-कुंडों से सुसज्जित; मेरे साथ आनंद और प्रसन्नता से आइए और अपने अंगरक्षकों के साथ उपकारी नगर में प्रवेश कीजिए।” इन शब्दों के साथ उन्होंने नगर का द्वार खुलवा दिया; और राजा एक सौ एक राजकुमारों के साथ अंदर आ गए। महापुरुष ऊपरी मंजिल से नीचे उतरे, राजा को प्रणाम किया और उन्हें उनके सेवकों के साथ सुरंग में ले गए। जब राजा ने इस सुरंग को देवताओं (देवदूतों) के सजे-धजे नगर के समान देखा, तो उन्होंने बोधिसत्व की स्तुति की।

"जिस वेदेह के घर या राज्य में आप जैसे बुद्धिमान पुरुष हों, महोसाध, उसके लिए यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है!"

तब उस महान सत्ता ने उन्हें एक सौ एक शयनकक्षों के बारे में समझाया: एक का द्वार खुलता तो सभी खुल जाते, और एक बंद होता तो सभी बंद हो जाते। राजा पहले सुरंग को देखते हुए अंदर गए, फिर ज्ञानी पुरुष उनके पीछे गए; सभी सैनिक भी सुरंग में प्रवेश कर गए। लेकिन जब ज्ञानी पुरुष को पता चला कि राजा सुरंग से बाहर आ गए हैं, तो उन्होंने एक हैंडल तक जाकर सुरंग का द्वार बंद कर दिया, जिससे बाकी लोग बाहर नहीं आ सके: तब अस्सी बड़े द्वार, चौंसठ छोटे द्वार, एक सौ एक शयनकक्षों के द्वार और सैकड़ों दीपक-कुंडों के द्वार सब एक साथ बंद हो गए; और पूरी सुरंग नरक के समान अंधेरी हो गई। सभी सैनिक भयभीत हो गए।

अब उस महान प्राणी ने वह तलवार उठाई, जिसे उसने कल सुरंग में प्रवेश करते समय छिपाया था: वह ज़मीन से अठारह भुजाओं की ऊँचाई पर उछला, नीचे उतरा और राजा की भुजा पकड़कर तलवार लहराई, और उसे डराते हुए चिल्लाया—"महाराज, भारत के सभी राज्य किसके हैं?" "आपके, हे ज्ञानी महाराज! मुझे छोड़ दीजिए!" राजा ने उत्तर दिया, "महोदय, भयभीत न हों। मैंने आपको मारने की इच्छा से तलवार नहीं उठाई, बल्कि अपनी बुद्धिमत्ता दिखाने के लिए उठाई है।" फिर उसने अपनी तलवार राजा को सौंप दी, और जब राजा ने उसे ले लिया, तो दूसरे ने कहा, "यदि आप मुझे मारना चाहते हैं, महाराज, तो मुझे इसी तलवार से अभी मार दीजिए; यदि आप मुझे छोड़ना चाहते हैं, तो छोड़ दीजिए।" "हे ज्ञानी महाराज," उसने उत्तर दिया, "मैं आपको सुरक्षा का आश्वासन देता हूँ, भयभीत न हों।" इस प्रकार तलवार पकड़े हुए, दोनों ने पूरी ईमानदारी से मित्रता स्थापित की। तब राजा ने बोधिसत्व से कहा, "हे ज्ञानी महाराज, आपकी बुद्धिमत्ता को देखते हुए, आप राज्य पर कब्ज़ा क्यों नहीं कर लेते?" "महाराज, अगर मैं चाहता तो आज ही भारत के सारे राज्य जीत लेता और सारे राजाओं को मार डालता; परन्तु बुद्धिमान का काम दूसरों को मारकर यश प्राप्त करना नहीं है।" "महाराज, बहुत से लोग संकट में हैं, बाहर निकलने में असमर्थ हैं; सुरंग का द्वार खोल दीजिए और उनकी जान बचा लीजिए।" उन्होंने द्वार खोल दिया: पूरी सुरंग प्रकाश से जगमगा उठी, लोगों को राहत मिली, सारे राजा अपने-अपने सेवकों के साथ बाहर आए और ऋषि के पास पहुँचे, जो राजा के साथ विशाल प्रांगण में खड़े थे। तब उन राजाओं ने कहा: "महाराज, आपने हमारी जान बचाई है; अगर द्वार थोड़ी देर और बंद रहता तो सब वहीं मर जाते।" "हे मेरे स्वामियों, यह पहली बार नहीं है जब मैंने आपकी जान बचाई है।" "कब, महाराज?" "क्या आपको याद है जब हमारे शहर को छोड़कर भारत के सारे राज्य जीत लिए गए थे, और जब आप विजय का प्याला पीने के लिए उत्तरा पंचाल के उद्यान में गए थे?" "जी महाराज।" “तब इस राजा ने केवट्टा के साथ मिलकर दुष्टतापूर्ण तरीके से भोजन और पेय में विष मिला दिया था और तुम्हारी हत्या करने की योजना बनाई थी; परन्तु मैं नहीं चाहता था कि तुम मेरे सामने इस तरह कष्ट सहो; इसलिए मैंने अपने आदमियों

को भेजा और उन्होंने सारे बर्तन तोड़ दिए, उनकी योजना को विफल कर दिया और तुम्हें जीवनदान दिया।" वे सब भयभीत होकर कुलानी से पूछने लगे, "क्या यह सच है, महाराज?" "जी हाँ, मैंने जो किया वह केवट्टा की सलाह पर ही किया; ऋषि सत्य कहते हैं।" तब वे सब उस महान पुरुष को गले लगाकर बोले, "हे ज्ञानी, आप हम सबके मोक्षदाता (निर्वाण) हैं, आपने हमारे जीवन को बचाया है।" सबने आदरपूर्वक उन्हें आभूषण भेंट किए। ऋषि ने राजा से कहा, "भयभीत न हों, महाराज; गलती एक दुष्ट मित्र के साथ संगति में थी। राजाओं से क्षमा मांगिए।" राजा ने कहा, "मैंने यह काम एक बुरे आदमी के कारण किया था: यह मेरी गलती थी; मुझे क्षमा कीजिए, मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा।" उन्हें क्षमा मिल गई; उन्होंने एक-दूसरे के सामने अपनी गलतियों को स्वीकार किया और मित्र बन गए। तब राजा ने हर प्रकार के भोजन, इत्र और मालाओं की प्रचुर मात्रा में मंगवाई, और वे सब सात दिनों तक सुरंग में आनंद लेते रहे।और उसने नगर में प्रवेश किया और उस महान सत्ता का बहुत सम्मान किया; और एक सौ एक राजकुमारों से घिरे राजा ने एक विशाल सिंहासन पर विराजमान होकर ऋषि को अपने दरबार में रखने की इच्छा से कहा,

"सहयोग करो, सम्मान करो, भोजन और वेतन का दुगुना भत्ता दो और अन्य महान वरदान मैं देता हूँ; इच्छानुसार खाओ और आनंद लो: लेकिन वेदेह के पास वापस मत जाओ; वह तुम्हारे लिए क्या कर सकता है?"

लेकिन ऋषि ने इन शब्दों में अपनी बात समाप्त की:

"जब कोई लाभ के लिए अपने संरक्षक, अपने स्वामी को त्याग देता है, तो यह स्वयं के लिए और दूसरे के लिए भी कलंक है। जब तक वेदेह जीवित है, मैं किसी और का आदमी नहीं बन सकता; जब तक वेदेह रहता है, मैं किसी और के राज्य में नहीं रह सकता।"

तब राजा ने उससे कहा, "जी, जब आपके राजा देवत्व प्राप्त कर लें, तो मुझसे वादा कीजिए कि आप यहाँ आएंगे।" "यदि मैं जीवित रहा, तो अवश्य आऊंगा, महाराज।" इस प्रकार राजा ने सात दिनों तक उसका बहुत सम्मान किया, और उसके बाद जब वह विदा लेने गया, तो उसने एक श्लोक पढ़ा और उसे यह और वह देने का वादा किया:

"मैं तुम्हें एक हजार निक्खा सोना, काशी में अस्सी गाँव, चार सौ दासियाँ और सौ पत्नियाँ देता हूँ। अपनी सारी सेना लेकर शांति से जाओ, महोसाधा।"

और उसने उत्तर दिया: "महाराज, आप अपने परिवार की चिंता न करें। जब मेरे राजा अपने देश लौटे, तो मैंने उनसे कहा कि वे रानी नंदा को अपनी माता के समान और पंचलचंदा को अपने छोटे भाई के समान मानें, और मैंने आपकी पुत्री का विवाह उनसे जल छिड़काव की विधि से संपन्न कराया। मैं शीघ्र ही आपकी माता, पत्नी और पुत्र को वापस भेज दूँगा।" "अच्छा!" राजा ने कहा, और अपनी पुत्री के लिए दहेज, दास-दासियाँ, वस्त्र और आभूषण, सोना और कीमती धातु, सजे हुए हाथी, घोड़े और रथ दिए। फिर उन्होंने सेना को आदेश दिया:

"हाथियों और घोड़ों को दुगुनी मात्रा में भोजन दिया जाए, रथ चालकों और पैदल सैनिकों को भोजन और पेय से संतुष्ट किया जाए।"

इतना कहकर उन्होंने ऋषि को इन शब्दों के साथ विदा किया:

"जाइए, महाराज, हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकों को साथ लेकर; राजा वेदेह आपको मिथिला वापस ले जाएं।"

इस प्रकार उन्होंने ऋषि को बड़े सम्मान के साथ विदा किया। एक सौ एक राजाओं ने भी उस महानुभाव का आदर किया और उन्हें बहुमूल्य उपहार दिए। उनके साथ सेवा कर रहे जासूसों ने ऋषि को घेर लिया। वे एक विशाल दल के साथ रवाना हुए; और रास्ते में उन्होंने उन गांवों से कर वसूलने के लिए लोगों को भेजा जो राजा चुलानी ने उन्हें सौंपे थे। फिर वे वेदेह राज्य पहुंचे।

सेनाक ने रास्ते में एक आदमी को तैनात किया था, ताकि वह देखे कि राजा चुलानी आते हैं या नहीं, और किसी के आने की सूचना उन्हें दे। उसने तीन मील (4.23 किमी) की दूरी पर महापुरुष को देखा और लौटकर बताया कि ऋषि एक विशाल दल के साथ लौट रहे हैं। यह खबर लेकर वह महल गया। राजा ने भी ऊपरी मंजिल की खिड़की से बाहर झाँकते हुए उस विशाल समूह को देखा और भयभीत हो गया। "महापुरुष का दल तो छोटा है, यह तो बहुत बड़ा है: क्या स्वयं चुलानी आए हैं?" उसने यह प्रश्न इस प्रकार पूछा:

"हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिक, एक विशाल सेना दिखाई दे रही है, चार भागों में बंटी हुई, देखने में भयानक; इसका क्या अर्थ है, सज्जनों?"

सेनाका ने उत्तर दिया:

"सबसे बड़ी खुशी तो वह है जो आप देख रहे हैं, महाराज: महोसाधा अपने पूरे दल के साथ सुरक्षित है।"

इस पर राजा ने कहा, "सेनाका, बुद्धिमान व्यक्ति की सेना तो छोटी है, यह तो बहुत बड़ी है।" "महाराज, राजा कुलानी इससे प्रसन्न हुए होंगे, इसीलिए उन्होंने यह सभा इसे सौंपी होगी।" राजा ने ढोल बजाकर पूरे शहर में घोषणा की:

"ज्ञानी व्यक्ति के आगमन के स्वागत के लिए शहर को सजाया जाए।"

नगरवासियों ने आज्ञा का पालन किया। वह ज्ञानी व्यक्ति नगर में प्रवेश करके राजा के महल में पहुँचा; तब राजा उठा, उसने उसे गले लगाया और अपने सिंहासन पर लौटकर उससे मधुरता से बातें कीं।

"जैसे चार आदमी एक शव को कब्रिस्तान में छोड़ देते हैं, वैसे ही हम तुम्हें कामपिलिया राज्य में छोड़कर लौट आए। लेकिन तुमने—किस रंग से, किस साधन से, या किस चतुराई से अपनी जान बचाई?"

उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"वेदेह, मैंने एक उद्देश्य से दूसरे पर विजय प्राप्त की; हे योद्धा, मैंने योजना से भी बढ़कर योजना बनाई; और मैंने राजा को उसी प्रकार घेर लिया जैसे सागर भारत को घेरे रहता है।"

इससे राजा प्रसन्न हुए। फिर दूसरे ने उन्हें राजा कुलानी द्वारा दिए गए उपहार के बारे में बताया:

"मुझे एक हजार निक्खा सोना दिया गया, और काशी में अस्सी गाँव, चार सौ दासी औरतें, और सौ पत्नियाँ दी गईं, और मैं अपनी पूरी सेना के साथ सुरक्षित घर लौट आया हूँ।"

तब राजा अत्यंत प्रसन्न और आनंदित होकर उस महान सत्ता के गुणों की प्रशंसा में यह भक्तिपूर्ण भजन गाया:

"सच्ची खुशी बुद्धिमानों के साथ रहने से मिलती है। जैसे पिंजरे में बंद पक्षी और जाल में फंसी मछलियाँ आज़ाद हो जाती हैं, वैसे ही महोषधा ने हमें तब आज़ाद किया जब हम अपने शत्रुओं के चंगुल में थे।"

सेनाका ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:

"फिर भी, महाराज, बुद्धिमान व्यक्ति के साथ सुख होता है। जैसे पिंजरे से पक्षी और जाल से मछलियाँ मुक्त हो जाती हैं, वैसे ही महोषधा ने हमें तब मुक्त किया जब हम अपने शत्रुओं के हाथों में थे।"

तब राजा ने पूरे शहर में उत्सव का ढोल बजाना शुरू किया: "सात दिनों तक उत्सव मनाया जाए, और जो भी मेरे प्रति सद्भावना रखते हैं, वे इस ज्ञानी व्यक्ति का आदर और सेवा करें।" गुरु ने इसका इस प्रकार अर्थ समझाया:

"सभी प्रकार के वीणा, ढोल और तबले बजाएं, मगध के शंख गूंजें, ढोल हर्षोल्लास से बजें।"

आम तौर पर नगरवासी और ग्रामीण लोग, ऋषि का सम्मान करने के लिए उत्सुक होकर, घोषणा सुनकर बड़े हर्षोल्लास से झूम उठे। गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

"स्त्रियों और दासियों, वैश्य और ब्राह्मण पत्नियों ने ऋषि के लिए भरपूर भोजन और पेय पदार्थ लाए। हाथी चालक, जलरक्षक, सारथी, पैदल सैनिक, सभी ने ऐसा ही किया; और देश-गाँवों से एकत्रित सभी लोगों ने भी ऐसा ही किया। लोग ऋषि के लौटने से प्रसन्न थे, और उनके स्वागत में शॉल हवा में लहराए गए।"

उत्सव के अंत में, महान पुरुष महल में गए और बोले, "महाराज, राजा चुलानी की माता, पत्नी और पुत्र को तुरंत वापस भेज दिया जाए।" "बहुत अच्छा, मेरे पुत्र, उन्हें वापस भेज दो।" इस प्रकार उन्होंने उन तीनों का पूर्ण आदर किया और अपने साथ आए समूह का भी स्वागत किया; इस प्रकार उन्होंने उन तीनों को अपने विशेष सैनिकों के साथ वापस भेजा, और राजा द्वारा उन्हें दी गई सौ पत्नियों और चार सौ दासियों को रानी नंदा के साथ भेजा, और अपने साथ आए दल को भी भेजा। जब यह विशाल दल उत्तरा पंचाल नगर पहुँचा, तो राजा ने अपनी माता से पूछा, "क्या राजा वेदेह ने आपके साथ अच्छा व्यवहार किया, मेरी माता?" "मेरे पुत्र, तुम क्या कह रहे हो? उन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया मानो मैं कोई देवी हूँ।" तब उन्होंने बताया कि रानी नंदा के साथ माता जैसा और पंचालचंद के साथ छोटे भाई जैसा व्यवहार किया गया था। इससे राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने एक बहुमूल्य उपहार भेजा; और तब से दोनों मित्रता और सौहार्दपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे।

पंचालचंडी राजा की बहुत प्रिय थीं; और दूसरे वर्ष में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। दसवें वर्ष में राजा वेदेह का देहांत हो गया। बोधिसत्व ने उनके लिए राजसी छत्र उठाया और उनके दादा, राजा चुलानी के पास जाने की अनुमति मांगी। बालक ने कहा, "हे महाराज, मुझे बचपन में मत छोड़िए; मैं आपका पिता तुल्य आदर करूंगा।" पंचालचंडी ने कहा, "हे महाराज, यदि आप चले गए तो हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा; आप मत जाइए।" लेकिन उन्होंने उत्तर दिया, "मैंने वचन दिया है; मेरे पास जाने के अलावा कोई चारा नहीं है।" अतः जनता के विलाप के बीच वे अपने सेवकों के साथ उत्तरा पंचाल नगर में आ गए। उनके आगमन की सूचना पाकर राजा उनसे मिलने आए और भव्य समारोहों के साथ उन्हें नगर में प्रवेश कराया, उन्हें एक बड़ा घर दिया और पहले दिए गए अस्सी गांवों के अतिरिक्त एक और उपहार दिया; और उन्होंने उस राजा की सेवा की। उस समय भेरी नामक एक धर्मपरायण स्त्री महल में नियमित रूप से भोजन करती थीं; वह बुद्धिमान और विद्वान थीं, और उन्होंने इससे पहले कभी उस महान सत्ता को नहीं देखा था; रानी नंदा को खबर मिली थी कि ज्ञानी महोसाधा राजा की सेवा कर रहे हैं। राजा ने भी उन्हें पहले कभी नहीं देखा था, लेकिन उन्होंने सुना था कि भेरी नाम की एक धर्मपरायण स्त्री महल में भोजन करती हैं। रानी नंदा बोधिसात से बहुत नाराज़ थीं, क्योंकि उन्होंने उन्हें उनके पति के प्रेम से वंचित कर दिया था और उन्हें परेशान किया था। इसलिए उन्होंने अपनी पाँच भरोसेमंद स्त्रियों को बुलवाया और कहा, "इस ज्ञानी पुरुष की कोई गलती ढूंढो और राजा से उसका झगड़ा करवाने की कोशिश करो।" वे सब मिलकर उनके विरुद्ध कोई अवसर ढूंढने लगीं। एक दिन भोजन करने के बाद जब वह धर्मपरायण स्त्री जा रही थीं, तो उन्होंने राजा से मिलने जाते हुए बोधिसात को आँगन में देखा। उन्होंने रानी को प्रणाम किया और वहीं रुक गए। रानी ने सोचा, "ये तो ज्ञानी पुरुष हैं: मैं देखूंगी कि ये ज्ञानी हैं या नहीं।" इसलिए उन्होंने हाथ के इशारे से उनसे एक प्रश्न पूछा: बोधिसात की ओर देखते हुए उन्होंने अपना हाथ खोला। उनका इरादा यह जानने का था कि क्या राजा दूसरे देश से लाए गए इस ज्ञानी पुरुष का ठीक से ख्याल रखते हैं या नहीं। जब बोधिसात ने देखा कि वह इशारे से उनसे प्रश्न पूछ रही हैं, तो उन्होंने मुट्ठी भींचकर उत्तर दिया: उनका तात्पर्य था, "महामहिम, राजा मुझे एक प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यहाँ लाए हैं, और अब वे अपनी मुट्ठी कसकर बंद रखते हैं और मुझे कुछ नहीं देते।" वह समझ गईं; और अपना हाथ आगे बढ़ाकर उन्होंने अपना सिर सहलाया, मानो कह रही हों, "हे ज्ञानी, यदि आप अप्रसन्न हैं, तो आप मेरी तरह तपस्वी क्यों नहीं बन जाते?" इस पर महापुरुष ने अपना पेट सहलाया, मानो कह रहे हों, "महामहिम, मुझे बहुतों का भरण-पोषण करना है, और इसीलिए मैं तपस्वी नहीं बनता।" इस मौन प्रश्न के बाद वह अपने जीवन में लौट गईं, और महापुरुष ने उन्हें प्रणाम किया और राजा के पास चले गए। अब रानी की विश्वासपात्रियों ने यह सब एक खिड़की से देखा; और राजा के सामने आकर उन्होंने कहा, "महाराज, महोसाधा ने तपस्वी भेरी के साथ मिलकर आपके राज्य पर कब्जा करने की साजिश रची है, और वह आपका शत्रु है।" इस प्रकार उन्होंने उन पर निंदा की।"तुमने क्या सुना या देखा है?" राजा ने पूछा। उन्होंने कहा, "महाराज, जब तपस्वी भोजन के बाद बाहर जा रही थी, तो उसने महापुरुष को देखकर अपना हाथ खोला; मानो कोई कह रहा हो, "क्या तुम राजा को हथेली या खलिहान की तरह कुचलकर राज्य पर कब्जा नहीं कर सकते?" और महोसाधा ने मुट्ठी भींच ली, मानो कोई तलवार पकड़े हो, मानो कोई कह रहा हो, "कुछ ही दिनों में मैं उसका सिर काट दूंगा और उसे अपने वश में कर लूंगा।" उसने अपने सिर को हाथ से रगड़कर इशारा किया, "उसका सिर काट दो"; महापुरुष ने अपने पेट को रगड़कर इशारा किया, "मैं उसे दो टुकड़ों में काट दूंगा।" महाराज, सावधान रहें! महोसाधा को मृत्युदंड दिया जाना चाहिए।" यह सुनकर राजा ने सोचा, "मैं इस बुद्धिमान व्यक्ति को हानि नहीं पहुंचा सकता; मैं उस तपस्वी से प्रश्न करूँगा।" अगले दिन, भोजन के समय, वह आया और पूछा, "महोदया, क्या आपने बुद्धिमान महोसाधा को देखा है?" "जी महाराज, कल, जब मैं भोजन के बाद बाहर जा रही थी।" "क्या आप दोनों के बीच कोई बातचीत हुई?" "बातचीत? नहीं; लेकिन मैंने उनकी बुद्धिमत्ता के बारे में सुना था, और इसे परखने के लिए मैंने मूक संकेतों से, हाथ बंद करके, उनसे पूछा कि क्या राजा उनके प्रति उदार थे या कंजूस, क्या उन्होंने उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया या नहीं। उन्होंने मुट्ठी बंद कर ली, जिसका अर्थ था कि उनके स्वामी ने उन्हें एक वादा पूरा करने के लिए यहाँ भेजा था, और अब उन्हें कुछ नहीं दे रहे थे। फिर मैंने अपना सिर खुजलाया, यह जानने के लिए कि यदि वे संतुष्ट नहीं थे तो उन्होंने तपस्वी क्यों नहीं बन गए; उसने अपने पेट पर हाथ फेरा, जिसका अर्थ था कि उसे बहुतों का पेट भरना था, बहुतों का पेट भरना था, इसलिए वह संन्यासी नहीं बना। "और क्या महोसाधा एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं?" "जी हाँ, महाराज: सारी पृथ्वी पर उनके समान बुद्धिमान कोई नहीं है।" उसका वृत्तांत सुनकर राजा ने उसे विदा कर दिया। उसके जाने के बाद ऋषि राजा से मिलने आए; और राजा ने उनसे पूछा, "क्या आपने संन्यासी भेरी को देखा है?" "जी हाँ, महाराज, मैंने उन्हें कल जाते हुए देखा था, और उन्होंने मुझे मूक संकेतों से एक प्रश्न पूछा, और मैंने तुरंत उनका उत्तर दिया।" और उन्होंने वही कहानी सुनाई जो भेरी ने सुनाई थी। राजा ने उस दिन अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें सेनापति का पद दिया और उन्हें पूर्ण प्रभार सौंप दिया। उनका यश महान था, राजा के बाद दूसरे स्थान पर। उन्होंने सोचा: "राजा ने मुझे अचानक ही अत्यधिक प्रसिद्धि दे दी है; राजा तो ऐसा तब भी करते हैं जब वे किसी को मारना चाहते हैं। मान लीजिए मैं राजा की परीक्षा लेकर देखूँ कि क्या वह मेरे प्रति सद्भावना रखते हैं या नहीं।" यह बात और कोई नहीं जान पाएगा; लेकिन तपस्वी भेरी ज्ञान से परिपूर्ण हैं, और वे कोई न कोई रास्ता ज़रूर निकाल लेंगी।" इसलिए वे कुछ फूल और सुगंध लेकर तपस्वी के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद बोले, "महोदया, आपने राजा को मेरे गुणों के बारे में बताया था, इसलिए राजा ने मुझे बहुत सारे शानदार उपहार दिए हैं; लेकिन क्या वे ऐसा ईमानदारी से कर रहे हैं या नहीं, यह मुझे नहीं पता। अच्छा होगा यदि आप मेरे लिए राजा के मन का पता लगा सकें।" उन्होंने ऐसा करने का वादा किया; और अगले दिन, जब वे महल जा रही थीं,जल-राक्षस दकाराक्षस का प्रश्न उसके मन में आया। तब उसे यह विचार आया: "मुझे जासूस की तरह नहीं बनना चाहिए, बल्कि प्रश्न पूछने का अवसर ढूँढ़ना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि क्या राजा उस ज्ञानी व्यक्ति के प्रति सद्भावना रखते हैं।" अतः वह चली गई। भोजन के बाद वह चुपचाप बैठ गई, और राजा ने उसे प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। तब

उसने सोचा, "यदि राजा ऋषि के प्रति दुर्भावना रखते हैं, और प्रश्न पूछे जाने पर वे अनेक लोगों के सामने अपनी दुर्भावना प्रकट करते हैं, तो यह ठीक नहीं होगा; मैं उनसे एकांत में प्रश्न पूछूँगी।" उसने कहा, "महाराज, मैं आपसे एकांत में बात करना चाहती हूँ।" राजा ने अपने सेवकों को विदा कर दिया। उसने कहा, "मैं महाराज से एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ।" "पूछिए, महोदया, और यदि मुझे उत्तर पता होगा तो मैं उत्तर दूँगा।" तब उसने दकाराक्षस के प्रश्न का पहला श्लोक सुनाया।

"यदि आप सात लोग समुद्र में यात्रा कर रहे हों, और मानव बलि की तलाश में कोई राक्षस जहाज पर कब्जा कर ले, तो आप उन्हें किस क्रम में सौंपेंगे और खुद को जल-राक्षस से बचाएंगे?"

राजा ने पूरी ईमानदारी से एक और छंद में उत्तर दिया:

"सबसे पहले मैं अपनी माँ को, फिर अपनी पत्नी को, फिर अपने भाई को, चौथे स्थान पर अपने मित्र को, पाँचवें स्थान पर अपने ब्राह्मण को, छठे स्थान पर स्वयं को त्याग दूँगा, लेकिन मैं महोसाधा को कभी नहीं त्यागूँगा।"

इस प्रकार तपस्वी ने महान सत्ता के प्रति राजा की सद्भावना का पता लगाया; परन्तु इससे उनके गुणों का प्रकटीकरण नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने कुछ और सोचा: "एक बड़ी सभा में मैं इन अन्य लोगों के गुणों की प्रशंसा करूंगी, और राजा इसके बदले में ज्ञानी पुरुष के गुणों की प्रशंसा करेंगे; इस प्रकार ज्ञानी पुरुष के गुण आकाश में चमकते चंद्रमा के समान स्पष्ट हो जाएंगे।" अतः उन्होंने महल के सभी निवासियों को एकत्रित किया, और उनकी उपस्थिति में वही प्रश्न पूछा और वही उत्तर प्राप्त किया; फिर उन्होंने कहा, "महाराज, आप कहते हैं कि आप पहले अपनी माता को अर्पित करेंगे: परन्तु माता का बहुत गुण होता है, और आपकी माता अन्य माताओं के समान नहीं हैं, वे अत्यंत उपयोगी हैं।" और उन्होंने कुछ छंदों में उनके गुणों का वर्णन किया।

"उसने तुम्हारा पालन-पोषण किया, तुम्हें बड़ा किया, और लंबे समय तक तुम्हारे प्रति दयालु रही। जब चम्भी ने तुम्हें अपमानित किया, तो उसने बुद्धिमत्ता से तुम्हारा भला देखा और तुम्हारी जगह एक नकली को रखकर तुम्हें हानि से बचाया। ऐसी माँ, जिसने तुम्हें जीवन दिया, तुम्हारी अपनी माँ जिसने तुम्हें अपने गर्भ में धारण किया, भला तुम उसे जल-राक्षस के हवाले कैसे कर सकते हो?"

इस पर राजा ने उत्तर दिया, "मेरी माता के अनेक गुण हैं, और मैं उन पर अपने अधिकार को स्वीकार करता हूँ, परन्तु मेरे गुण तो उनसे भी कहीं अधिक हैं," और फिर उन्होंने कुछ छंदों में उनकी कमियों का वर्णन किया:

"एक युवती की तरह वह ऐसे गहने पहनती है जिनका उसे उपयोग नहीं करना चाहिए, वह द्वारपालों और पहरेदारों का समय से पहले उपहास करती है, बिना पूछे प्रतिद्वंद्वी राजाओं को संदेश भेजती है; और इन दोषों के लिए मैं उसे जल-राक्षस को सौंप देना चाहता हूँ।"

"ठीक है महाराज; फिर भी आपकी पत्नी में बहुत गुण हैं," और उसने अपने गुणों का वर्णन इस प्रकार किया:

वह स्त्रियों में श्रेष्ठ है, वह अत्यंत मधुर वाणी वाली, समर्पित, गुणी है, जो तुम्हारी परछाई की तरह तुमसे चिपकी रहती है, क्रोध न करने वाली, समझदार, बुद्धिमान है, जो तुम्हारा भला देखती है: भला तुम अपनी पत्नी को जल-राक्षस के हवाले क्यों करोगे?

उन्होंने उसकी कमियों का वर्णन किया:

अपनी कामुक मोहकता से उसने मुझे बुरी शक्तियों के वश में कर लिया है, और वह अपने बेटों के लिए वह सब मांगती है जो उसे नहीं मांगना चाहिए। आवेश में आकर मैं उसे अनेकों उपहार दे देता हूँ; मैं वह सब त्याग देता हूँ जिसे देना बहुत कठिन होता है, और बाद में मुझे घोर पश्चाताप होता है: उस गलती के लिए मैं अपनी पत्नी को जल-राक्षस को सौंप देना चाहता हूँ।

तपस्वी ने कहा, "ऐसा ही हो: लेकिन तुम्हारा छोटा भाई राजकुमार तिखिनमंती तुम्हारे लिए उपयोगी है; तुम उसे क्या दोष देना चाहते हो?"

"जिसने लोगों को समृद्धि दी, और जब तुम विदेश में रह रहे थे तब तुम्हें वापस घर ले आया, जिस पर अपार धन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, असाधारण धनुर्धर और वीर, तिखिनमंती: तुम किस दोष के लिए अपने भाई को जल-राक्षस के हवाले करोगे?"

राजा ने अपनी गलती का वर्णन किया:

वह सोचता है, "मैंने लोगों को समृद्धि दी, जब वह विदेश में रह रहा था तो मैं उसे वापस घर लाया, अपार धन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, मैं एक असाधारण धनुर्धर और वीर हूँ, और सलाह देने में भी तेज हूँ, मेरे कारण ही वह राजा बना।" वह अब मेरी सेवा में नहीं आता, महोदया, जैसा वह पहले आता था; यही वह दोष है जिसके लिए मैं अपने भाई को जल-राक्षस को सौंप दूँगा।

तपस्वी ने कहा, "तुम्हारे भाई की गलती तो यही थी: लेकिन राजकुमार धनुशेख तुम्हारे प्रति प्रेम में समर्पित हैं और बहुत उपयोगी हैं"; और उन्होंने उनके गुणों का वर्णन किया।

"एक ही रात में तुम और धनुशेखव दोनों यहाँ पैदा हुए, दोनों को पंचाल कहा जाता था, मित्र और साथी: जीवन भर वह तुम्हारा अनुसरण करता रहा, तुम्हारा सुख-दुख उसका था, दिन-रात पूरी लगन और सावधानी से तुम्हारी सेवा करता रहा: भला तुम अपने मित्र को जल-राक्षस के हाथों क्यों सौंपोगे?"

तब राजा ने अपनी गलती का वर्णन किया:

"महोदया, जीवन भर वह मेरे साथ मौज-मस्ती करता रहा है, और आज भी उसी कारण से हद से ज़्यादा मनमानी करता है। अगर मैं अपनी पत्नी से चुपके से बात करता हूँ, तो वह बिना बुलाए और बिना बताए आ जाता है। उसे ज़रा सा भी मौका दे दो, वह बेशर्मी और बदतमीज़ी से पेश आता है। यही वह गलती है जिसके लिए मैं अपने दोस्त को जल-राक्षस को सौंप दूँगा।"

तपस्वी ने कहा, "उसकी गलती तो यही थी; लेकिन पुजारी आपके लिए बहुत उपयोगी है," और उसने उसके गुणों का वर्णन किया:

"वह चतुर है, सभी शकुनों और ध्वनियों को जानता है, संकेतों और सपनों में निपुण है, आने-जाने का ज्ञान रखता है, पृथ्वी, वायु और तारों में मौजूद सभी संकेतों को समझता है: भला जल-राक्षस के सामने ब्राह्मण का क्या दोष होगा?"

राजा ने अपनी गलती का स्पष्टीकरण दिया:

"भीड़ में भी वह मुझे खुली आँखों से घूरता है; इसलिए मैं इस सिकुड़ी हुई भौंहों वाले बदमाश को जल-राक्षस को सौंप दूँगा।"

तब तपस्वी ने कहा, "हे महाराज, आप कहते हैं कि आप जल-राक्षस को अपनी माता से आरंभ करते हुए ये पाँचों दे देंगे, और आप अपनी महान महिमा को ध्यान में रखे बिना बुद्धिमान महोषधा के लिए अपना प्राण दे देंगे: आपको उसमें क्या गुण दिखाई देता है?" और उसने ये श्लोक सुनाए:

"हे महाराज, आप अपने दरबारियों के बीच समुद्र से घिरे एक विशाल महाद्वीप में निवास करते हैं, जहाँ समुद्र ही आपकी रक्षा करने वाली दीवार है: पृथ्वी के स्वामी, एक शक्तिशाली साम्राज्य के स्वामी, विजयी, एकमात्र सम्राट, आपकी महिमा महान है। आपके पास सोलह हजार स्त्री हैं जो गहनों और आभूषणों से सजी हैं, सभी राष्ट्रों की स्त्रियाँ, दिव्य कन्याओं के समान तेजस्वी। इस प्रकार आपकी हर आवश्यकता पूरी होती है, हर इच्छा तृप्त होती है, आप सुख और आनंद में दीर्घ जीवन व्यतीत करते हैं। तो फिर किस कारण से आप ऋषि की रक्षा के लिए अपना बहुमूल्य प्राण बलिदान करते हैं?"

यह सुनकर उन्होंने उस बुद्धिमान व्यक्ति के गुणों की प्रशंसा में निम्नलिखित श्लोक पढ़े:

"महोदया, जब से महोसाधा मेरे पास आए हैं, मैंने इस दृढ़ पुरुष को कभी कोई छोटी सी भी गलती करते नहीं देखा। अगर मैं कभी उनसे पहले मर जाऊं, तो वे मेरे बेटों और पोतों को सुख देंगे। वे सब कुछ जानते हैं, अतीत और भविष्य। इस निष्पाप पुरुष को मैं जल-राक्षस के हवाले नहीं करूंगा।"

इस प्रकार इस जन्म का उचित अंत हुआ। तब तपस्वी ने सोचा: "ज्ञानी व्यक्ति के गुणों को प्रकट करना इतना ही काफी नहीं है; मैं उन्हें नगर के सभी लोगों को बताऊंगी, जैसे कोई समुद्र की सतह पर सुगंधित तेल छिड़कता है।" अतः राजा को अपने साथ लेकर वह महल से नीचे उतरी और महल के प्रांगण में एक आसन तैयार करके उन्हें वहाँ बैठाया; फिर लोगों को इकट्ठा करके उसने राजा से जल-राक्षस का प्रश्न फिर से शुरू से पूछा; और जब राजा ने ऊपर वर्णित अनुसार उत्तर दिया, तो उसने लोगों को इस प्रकार संबोधित किया:

"हे पंचाल गणो, चुलानी ने जो कहा है, उसे सुनो। ज्ञानी पुरुष की रक्षा के लिए वह अपना बहुमूल्य प्राण बलिदान कर देता है। अपनी माता, पत्नी, भाई, मित्र और स्वयं का प्राण भी पंचाल बलिदान करने को तैयार है। ज्ञान की शक्ति कितनी अद्‌भुत, कितनी चतुर और कितनी बुद्धिमान है, इस संसार में भलाई के लिए और परलोक में सुख के लिए।"

इसलिए, जैसे कोई खजाने के ढेर पर सबसे ऊँची चोटी रखता है, वैसे ही उसने महान सत्ता के गुणों के प्रदर्शन पर शिखर रखा।

जल-राक्षस का प्रश्न यहीं समाप्त होता है, और महान सुरंग की पूरी कहानी भी यहीं समाप्त होती है।

यह जन्म की पहचान है:

"उप्पलवन्नी भेरी थी, शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) बुद्धिमान व्यक्ति के पिता थे, महामाया (बुद्ध की मृत जन्म देने वाली मां) उनकी मां थी, सुंदर बिंबा (बुद्ध की पत्नी) अमारा थी, आनंद तोता था, सारिपुत्र कुलानी था, महोषध दुनिया का स्वामी था: इस प्रकार जन्म को समझें। देवदत्त केवट्टा था, कुलनंदिका तलता थी, सुंदरी पंचालचंडी थी, यास्सिका रानी थी, अंबाथा कविंदा थी, पोट्टपाडा पुक्कुसा थी, पिलोतिका देविंदा थी, सक्का सेनाका थी, दित्थमंगलिका रानी उदुंबरा थी, कुंडली मयना पक्षी थी, और लालुदायि वेदेहा थी।"

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> जातक >> **वेसंतरा-जातक**
स्रोत *: ई.बी. कोवेल और डब्ल्यू.एच.डी. राउज़ द्वारा किए गए पुरातन अनुवाद से रूपांतरित।*

पिछला <<<<-----||-547-अंत ||

जातक क्रमांक 547
वेस्सन्तरा-जातक

"दस वरदान," इत्यादि। यह कहानी गुरु ने कपिलवस्तु (बुद्ध के पिता शुद्धोदन का राज्य) के पास बरगद के वन में रहते हुए, बारिश की बौछार के बारे में सुनाई थी।

जब परम पूज्य धर्मचक्र (निर्वाण/मोक्ष की ओर ले जाने वाला धर्ममार्ग) को घुमाते हुए गुरु बुद्ध उचित समय पर राजगृह नगर पहुँचे, जहाँ उन्होंने शीतकाल व्यतीत किया, और उनके साथ 20 हजार संत थे, तब उन्होंने कपिलवस्तु में प्रवेश किया। इस पर शाक्य (बुद्ध के वंश) के राजकुमार अपने वंश के मुखिया के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए। उन्होंने भगवान बुद्ध के निवास स्थान का निरीक्षण किया और कहा, "यह बरगद का वन कितना रमणीय है, इंद्र के योग्य है।" फिर उन्होंने इसकी सुरक्षा के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ कीं; और सुगंधित फूलों के गुलदस्ते हाथों में लेकर उनका स्वागत करने के लिए तैयार होकर, उन्होंने सबसे पहले नगर के सभी छोटे लड़कों और लड़कियों को सर्वोत्तम वस्त्रों में भेजा, फिर राजकुमारों और राजकुमारियों को, और इन सभी ने स्वयं गुरु बुद्ध को सुगंधित फूलों और चूर्णों से आदर दिया, और भगवान बुद्ध को बरगद उद्यान तक ले गए; जहाँ भगवान बुद्ध ने 20 हजार संतों से घिरे हुए, अपने लिए निर्धारित स्थान पर विराजमान हुए। शाक्य वंश (बुद्ध का वंश) अभिमानी और हठी था; वे मन ही मन सोचते थे, "सिद्धार्थ हमसे छोटे हैं; वे हमारे छोटे भाई, हमारे भतीजे, हमारे पोते हैं," और उन्होंने छोटे राजकुमारों से कहा, "आप उन्हें प्रणाम कीजिए; हम आपके पीछे बैठेंगे।" जब वे वहाँ बिना प्रणाम किए बैठे रहे, तो भगवान बुद्ध ने उनके मन की मंशा को भांपते हुए मन में सोचा, "मेरा परिवार मुझे प्रणाम नहीं करता; अच्छा, मैं उन्हें ऐसा करने पर मजबूर करूँगा।" अतः उन्होंने अपने भीतर दिव्य शक्ति पर आधारित समाधि (सम्मोहन) की अवस्था उत्पन्न की, वायु में विलीन हो गए, और मानो अपने चरणों की धूल उनके सिर पर झाड़ते हुए, गाँठदार आम के वृक्ष के नीचे हुए दो चमत्कारों के समान एक चमत्कार किया। इस चमत्कार को देखकर राजा (शुद्धोदन, गौतम बुद्ध के पिता) ने कहा, "हे भगवान, आपके जन्म के दिन जब मैंने आपके चरणों को ब्राह्मण कालदेवल के सिर पर रखा हुआ देखा, जो आपको प्रणाम करने आए थे, तब मैंने भी आपको प्रणाम किया था, और यह पहली बार था। हल चलाने के उत्सव के दिन जब आप एक रसभरी के पेड़ की छाया में राजसी आसन पर बैठे थे, तब जब मैंने देखा कि पेड़ की छाया हिल नहीं रही है, तब मैंने आपके चरणों को प्रणाम किया था; और यह दूसरी बार था। और अब फिर से, मैं एक ऐसा चमत्कार देख रहा हूँ जो मैंने पहले कभी नहीं देखा, और आपके चरणों को प्रणाम कर रहा हूँ: यह तीसरी बार है।" लेकिन जब राजा ने इस प्रकार प्रणाम किया, तो एक भी शाक्यों शांत नहीं बैठ सका और संयम नहीं रख सका, सभी ने एक साथ प्रणाम किया।

भगवान बुद्ध ने अपने परिवार से श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने के बाद आकाश से नीचे आकर निर्धारित आसन पर विराजमान हुए। उनके बैठते ही उनके परिवार के सभी सदस्य ज्ञानी हो गए और शांति से बैठ गए। तभी एक विशाल बादल उठा और मूसलाधार वर्षा हुई: लाल रंग की वर्षा ज़ोरदार आवाज़ के साथ बरसी। जो भी भीगना चाहते थे, वे भीग गए, परन्तु जो नहीं भीगना चाहते थे, उन पर एक बूँद भी नहीं गिरी। यह देखकर सभी चकित रह गए और एक दूसरे से कहने लगे, “देखो, यह कितना अद्भुत है! कितना चमत्कार है! बुद्धों की शक्ति को, जिनके परिवार पर ऐसी वर्षा हो रही है!” यह सुनकर बुद्ध ने कहा, “हे भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मेरे परिवार पर इतनी मूसलाधार वर्षा हुई है।” फिर उनके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, शिवी राज्य के जेतुत्तरा नगर में शिवी नामक एक राजा का राज्य था। उनका एक पुत्र था जिसका नाम संजय था। जब पुत्र वयस्क हुआ, तो राजा ने राजा मद्दा की पुत्री फुसती को उनके पास लाया और राज्य उन्हें सौंप दिया, तथा फुसती को उनकी रानी बना दिया। संसार से उनका पूर्व संबंध इस प्रकार था: इस युग के इक्यावनवें युग में, विपस्सी (पूर्व में बुद्ध) नामक एक गुरु का जन्म हुआ। जब वे बंधुमती नगर के निकट खेमा के हिरण-जलाशय में रह रहे थे, तब एक राजा ने बंधुमा राजा को एक लाख सिक्कों के मूल्य का एक स्वर्ण पुष्पांजलि और बहुमूल्य चंदन भेजा। राजा की दो पुत्रियाँ थीं; और उन्हें यह उपहार देने की इच्छा से, उन्होंने चंदन बड़ी पुत्री को और स्वर्ण पुष्पांजलि छोटी पुत्री को दे दी। परन्तु दोनों ने इन उपहारों को अपने लिए उपयोग करने से इनकार कर दिया; गुरु को आदरपूर्वक अर्पित करने के इरादे से उन्होंने राजा से कहा, “हे पिता, हम दशबल (विपस्सी बुद्ध) को यह चंदन और यह स्वर्ण पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।” राजा ने इस पर सहमति दे दी। अतः बड़ी राजकुमारी ने चंदन को पीसकर एक स्वर्ण पेटी में भर दिया; और छोटी बहन ने स्वर्ण पुष्पांजलि को स्वर्ण हार में बदलवाकर स्वर्ण पेटी में रख दिया। फिर वे दोनों हिरण-जग में स्थित आश्रम की ओर चल पड़ीं; और बड़ी बहन ने आदरपूर्वक दशबल (विपस्सी बुद्ध) के स्वर्ण शरीर पर चंदन का चूर्ण छिड़का, शेष चूर्ण उनकी कुटिया में बिखेर दिया, और यह प्रार्थना की: “हे प्रभु, भविष्य में मैं आप जैसे बुद्ध की माता बनूँ।” छोटी बहन ने आदरपूर्वक दशबल (विपस्सी बुद्ध) के स्वर्ण शरीर पर स्वर्ण पुष्पांजलि से बना स्वर्ण-स्त्री हार पहनाया, और प्रार्थना की, “हे प्रभु, जब तक मैं संतत्व प्राप्त न कर लूँ, यह आभूषण मेरे शरीर से कभी अलग न हो।” और प्रभु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

इन दोनों ने अपने जीवन के अंत के बाद देवदूतों के लोक में जन्म लिया। बड़ी बहन, देवदूतों के लोक से मनुष्य लोक में और फिर वापस देवदूतों के लोक में जाकर, इक्यावनवें युग के अंत में रानी माया बनीं, जो वर्तमान बुद्ध (गौतम) की माता हैं। छोटी बहन भी इसी प्रकार देवदूतों के लोक से मनुष्य लोक में और फिर वापस मनुष्य लोक में आकर, दशाबल कश्यप के समय में राजा किकी की पुत्री बनीं; और गर्दन और कंधों पर हार के समान सुंदर आकृति के साथ जन्मीं, मानो किसी चित्रकार द्वारा चित्रित की गई हों, उनका नाम उराच्छदा रखा गया। जब वे सोलह वर्ष की थीं, तब उन्होंने गुरु का एक पवित्र वचन सुना और प्रथम मार्ग (सम्मोहन) का फल प्राप्त किया, और उसी दिन उन्होंने संतत्व प्राप्त किया, संघ में प्रवेश किया और निर्वाण प्राप्त किया।

राजा किकी की सात और बेटियाँ थीं, जिनके नाम इस प्रकार थे:

"समानी, समाना, पवित्र बहन गुट्टा, भिक्खुदासिका, और धम्म और सुधम्मा, और बहनों में से सातवीं संघदासी।"

बुद्ध के इस अवतार में, ये बहनें थीं--

"खेमा, उप्पलावन्ना, तीसरी थीं पताकारा,
गौतमा (बुद्ध की पालक माता और महामाया की बहन), धम्मदिन्ना,
और छठी थीं महामाया (बुद्ध की दिवंगत जन्म माता),
और बहनों के इस समूह में सातवीं थीं विशाखा।"

अब इनमें से फुसती सुधम्मा बनीं; जिन्होंने अच्छे कर्म किए और दान दिया, और बुद्ध विपस्सी को चंदन की भेंट चढ़ाने के फल से उनका शरीर उत्तम चंदन से आच्छादित हो गया। फिर मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के लोकों के बीच विचरण करते हुए, अंततः वे देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) की प्रधान रानी बनीं। जब उनका जीवनकाल समाप्त हो गया, और पाँचों प्रथागत चिन्ह दिखाई देने लगे, तो देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने यह जानकर कि उनका समय समाप्त हो गया है, उन्हें भव्यतापूर्वक नंदनवन के उद्यान में ले गए; फिर जब वे एक अलंकृत आसन पर विराजमान हुईं, तो उनके बगल में बैठे हुए उन्होंने उनसे कहा: "प्रिय फुसती, मैं तुम्हें दस वरदान देता हूँ: चुन लो।" इन शब्दों के साथ, उन्होंने इस हजार श्लोकों वाले महान वेसंतरा जन्म का पहला श्लोक कहा:

"हे सुंदर देवी फुसती, मैं तुम्हें दस वरदान देता हूँ:
पृथ्वी पर जो कुछ भी तुम्हारी दृष्टि में अनमोल हो, उसे चुन लो।"
इस प्रकार महान वेसंतारा में उपदेश के द्वारा वह देवताओं (देवदूतों) के लोक में स्थापित हो गई।

लेकिन अपने पुनर्जन्म की परिस्थितियों से अनभिज्ञ होने के कारण वह बेहोश सी हो गई और उसने दूसरा श्लोक कहा:

हे देवदूतों के राजा, आपकी महिमा हो! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है
कि मुझे इस सुंदर स्थान से हवा के झोंके की तरह पेड़ गिराने के लिए भेज दिया गया है?
और इंद्र ने उसकी निराशा को भांपकर दो श्लोक कहे:

"प्रिय, क्या तुम अब भी वैसे ही हो जैसे पहले थे, और क्या तुमने कोई पाप नहीं किया है?
मैं इसलिए बोल रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे सारे पुण्य अब समाप्त हो चुके हैं।"

अब तुम्हारा प्रस्थान निकट है, मृत्यु का समय नजदीक आ रहा है;
मैं तुम्हें दस वरदान देता हूँ, जिनमें से तुम्हें चुनना है; तो मरने से पहले चुन लो।
सक्का (इंद्र) के ये शब्द सुनकर और यह आश्वस्त होकर कि उसे मरना ही होगा, उसने वरदानों का चयन करते हुए कहा:

"सभी प्राणियों के स्वामी, राजा सक्का (इंद्र) ने मुझे वरदान दिया है:
मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूँ: मेरी यही कामना है कि मेरा जीवन शिव के राज्य में हो।"

हे उदार ईश्वर, मुझे काली आँखें, हिरण के बच्चे जैसी काली पुतलियाँ और काली भौहें मिलें, और मेरा नाम फुसती हो: यही वरदान मैं चाहता हूँ।
मुझे एक ऐसा पुत्र चाहिए, जो राजाओं द्वारा पूजनीय हो, प्रसिद्ध हो, गौरवशाली हो, आकर्षक हो,
उदार हो, निस्वार्थ हो, और प्रार्थना को ध्यान से सुनने वाला हो।
और जब तक बच्चा मेरे गर्भ में है, तब तक मेरा शरीर ढीला न पड़े,
यह एक सुंदर ढंग से गढ़े गए धनुष की तरह पतला और आकर्षक बना रहे।
फिर भी, सक्का (इंद्र), मेरे स्तन दृढ़ रहें, और मेरे बाल सफेद न हों;
मेरा शरीर निष्कलंक रहे, मैं मृत्युदंड से ग्रस्त लोगों को मुक्त कर सकूँ।
बगुले की चीखों और मोरों की पुकार के बीच, सुंदर स्त्रियों की प्रतीक्षा में,
कवि और गायक हमारी प्रशंसा में गीत गाते हुए, शॉल हवा में लहराते हुए।
जब रंगे हुए दरवाजे पर दस्तक देते हुए नौकर ने जोर से पुकारा,
"भगवान राजा सिवी पर कृपा करें! भोजन के लिए आओ!" मैं उनकी घोषित रानी हूँ।"
सक्का (इंद्र) ने कहा:

"हे मेरी प्रिय देवी, जान लो कि ये वरदान जो मैंने तुम्हें दिए हैं,
शिवी राज्य में, हे सुंदरी, वे सभी दस वरदान पूर्ण होंगे।"
"देवताओं (देवदूतों) के राजा, महान सुजामपति,
जिन्हें वासव कहा जाता है, ने प्रसन्न होकर फुसती को वरदान दिया।"
जब उसने इस प्रकार अपने वरदान चुन लिए, तो उसने वह संसार त्याग दिया और राजा मद्दा की रानी के गर्भ में जन्म लिया; और जब वह पैदा हुई, तो उसका शरीर चंदन की सुगंध से महक रहा था, इसलिए उसके जन्म के दिन उसका नाम फुसती रखा गया। वह बड़ी संख्या में परिचारिकाओं के बीच पली-बढ़ी और सोलह वर्ष की आयु में वह सौंदर्य में सबसे अधिक प्रख्यात हो गई। उस समय शिवी राजा के पुत्र राजकुमार संजय को श्वेत छत्र दिया जाना था; राजकुमारी को उनकी दुल्हन बनने के लिए बुलाया गया और उसे सोलह हजार स्त्रियों की मुखिया बनाकर रानी बनाया गया; इसी कारण कहा जाता है--

"इसके बाद जन्मी राजकुमारी फुसती को
जेतुत्तरा नगर ले गया, और वहाँ शीघ्र ही उसका विवाह संजय से हो गया।"
संजय उससे बेहद प्रेम करता था। अब इंद्र को अंतर्दृष्टि से याद आया कि उसने फुसती को दिए अपने दस वरदानों में से नौ पूरे कर लिए थे। उसने सोचा, "पर एक वरदान अधूरा रह गया है, एक सुंदर पुत्र; मैं इसे उसके लिए पूरा करूंगा।" उस समय इंद्र तैंतीसवें स्वर्ग में थे और उनका समय पूरा हो चुका था; यह जानकर इंद्र उनके पास गए और बोले, "हे पूज्यवर, आपको मनुष्यलोक में प्रवेश करना होगा; बिना विलंब किए आपको शिवी राजा की रानी फुसती के गर्भ में जन्म लेना होगा।"

इन शब्दों के साथ, महापुरुष और पुनर्जन्म लेने वाले साठ हज़ार देवदूतों की सहमति लेकर, वह अपने स्थान पर चले गए। महापुरुष वहाँ अवतरित हुए और उनका पुनर्जन्म हुआ, और साठ हज़ार देवदूत साठ हज़ार दरबारी परिवारों में जन्म लिए। जब महापुरुष उनके गर्भ में थे, तब फुसती ने गर्भवती होकर छह भिक्षागृह बनवाने की इच्छा व्यक्त की, एक चारों द्वारों पर, एक नगर के मध्य में और एक उनके अपने द्वार पर; ताकि वह प्रतिदिन छह लाख भिक्षादान कर सकें। राजा को जब फुसती के बारे में पता चला, तो उन्होंने ज्योतिषियों से परामर्श लिया, जिन्होंने कहा, "महाराज, आपकी पत्नी के गर्भ में एक भिक्षादान-समृद्धि का जन्म हुआ है, जो भिक्षादान से कभी तृप्त नहीं होगी।" यह सुनकर वे प्रसन्न हुए और उन्होंने पहले बताए अनुसार भिक्षादान करने का नियम बना लिया।

बोधिसत्व के जन्म के समय से ही, राजा के राजस्व की कोई सीमा नहीं थी; राजा की अच्छाई के प्रभाव से, पूरे भारत के राजा उन्हें उपहार भेजते थे।

गर्भवती रानी अपने साथ दस महीने पूरे होने तक अपने विशाल दल के साथ रहीं, फिर उन्होंने शहर घूमने की इच्छा जताई। उन्होंने राजा को सूचना दी, जिन्होंने शहर को देवताओं (देवदूतों) के शहर की तरह सजाया। उन्होंने रानी को एक भव्य रथ में बिठाया और शहर में विधिपूर्वक जुलूस निकाला। जब वे वेस्सा क्षेत्र के मध्य में पहुँचे, तो रानी को प्रसव पीड़ा होने लगी। उन्होंने राजा को बताया, और राजा ने तुरंत एक प्रसव कक्ष बनवाया और रानी को वहाँ ले गए; और फिर उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया; इसी कारण कहा जाता है--

"उसने मुझे दस महीने अपने गर्भ में रखा; फिर जुलूस निकाला गया;
और फुसाती में वेस्सा स्ट्रीट में मुझे बिस्तर पर लाया गया।"
महान पुरुष अपनी माता के गर्भ से शुद्ध, खुली आँखों से प्रकट हुए और जन्म लेते ही उन्होंने अपनी माता की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "माँ, मैं कुछ भेंट करना चाहता हूँ; क्या आपके पास कुछ है?" माता ने उत्तर दिया, "हाँ, मेरे पुत्र, जो चाहो दे दो," और उनके बढ़े हुए हाथ में एक हजार सिक्कों से भरा थैला रख दिया। महान पुरुष ने जन्म लेते ही तीन बार बात की: उम्मागग जन्म में, इस जन्म में और अपने अंतिम जन्म में। उनके नामकरण दिवस पर, क्योंकि उनका जन्म वेस्सा गली में हुआ था, इसलिए उनका नाम वेसंतारा रखा गया; इसी कारण ऐसा कहा जाता है:

"मेरा नाम न तो मेरी माँ की तरफ से आया है और न ही मेरे पिता की तरफ से;
क्योंकि मेरा जन्म वेस्सा स्ट्रीट में हुआ था, इसलिए मेरा नाम वेसंतारा है।"
उनके जन्मदिन पर ही, एक उड़ने वाली मादा हाथी एक बच्चे को लेकर आई, जो शुभ माना जाता था, पूरी तरह सफेद था, और उसे शाही अस्तबल में छोड़ गई। चूंकि यह प्राणी महापुरुष की आवश्यकता पूरी करने आया था, इसलिए उसका नाम पक्काया रखा गया। राजा ने महापुरुष के लिए चार गुना साठ दाई नियुक्त कीं, जो न तो बहुत लंबी थीं और न ही बहुत छोटी, और हर तरह से दोषरहित थीं, और जिनका दूध मीठा था; उन्होंने उनके साथ जन्मे साठ हजार बच्चों के लिए भी दाई नियुक्त कीं, और इस प्रकार वे साठ हजार बच्चों के इस विशाल समूह से घिरे हुए बड़े हुए। राजा ने एक लाख सिक्कों से जड़ा एक राजकुमार का हार बनवाया और अपने बेटे को दिया; लेकिन चार या पांच साल की उम्र में ही उसने वह हार अपनी दाईयों को दे दिया, और जब उन्होंने उसे वापस देने की इच्छा जताई तो उसने उसे वापस नहीं लिया। उन्होंने यह बात राजा को बताई, जिस पर राजा ने कहा, "मेरे बेटे ने जो दिया है वह अच्छा दिया है; इसे ब्राह्मण का उपहार ही रहने दो," और दूसरा हार बनवाया। लेकिन राजकुमार ने अपनी बाल्यावस्था में ही इसे भी अपनी दाईयों को दे दिया, और ऐसा नौ बार हुआ।

जब वह आठ वर्ष का था, अपने पलंग पर लेटा हुआ, लड़का मन ही मन सोच रहा था: "मैं जो कुछ भी देता हूँ, वह बाहर से आता है, और इससे मुझे संतुष्टि नहीं मिलती; मैं अपना कुछ देना चाहता हूँ। यदि कोई मेरा हृदय मांगे, तो मैं अपना सीना चीरकर उसे निकाल कर दे दूँगा; यदि कोई मेरी आँखें मांगे, तो मैं अपनी आँखें निकाल कर दे दूँगा; यदि कोई मेरा मांस मांगे, तो मैं अपने शरीर का सारा मांस काटकर दे दूँगा।" और इस प्रकार उसने अपने पूरे अस्तित्व और हृदय की गहराई से सोचा; यह पृथ्वी, चालीस हजार क्वाड्रिलियन मील (x 4.23 किमी) विस्तार और दो लाख लीग (x 4.23 किमी) गहराई वाली, एक विशाल पागल हाथी की तरह गरजते हुए काँप उठी; पर्वतों का मुखिया सिनेरू गर्म भाप में एक छोटे पौधे की तरह झुक गया, और नाचता हुआ प्रतीत हुआ, और जेटुत्तरा शहर की ओर झुका हुआ खड़ा था; पृथ्वी के गरजने पर आकाश बिजली और बारिश से गरज उठा; दोमुँही बिजली चमकी; सागर में हलचल मच गई: देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) ने ताली बजाई, महाब्रह्मा ने स्वीकृति का संकेत दिया, ब्रह्मा के लोक (प्रधान देवदूतों) में भी हलचल मच गई; इसी कारण यह भी कहा जाता है:

"जब मैं छोटा लड़का था, केवल आठ साल का,
अपनी छत पर बैठकर मैं दान और भेंट के बारे में सोचता था।"
अगर कोई मुझसे खून, शरीर, दिल या आंख मांगे,
या खून, शरीर, आंख या दिल मांगे, तो मैं उसे दे दूंगी, यही मेरी पुकार थी।
और अपने पूरे मन से मैंने ऐसे विचार किए कि "
अविचलित पृथ्वी भी पहाड़ों, जंगलों और पेड़ों के साथ कांप उठी।"
सोलह वर्ष की आयु तक बोधिसत्व ने सभी विद्याओं में पारंगत हो गए थे। तब उनके पिता ने उन्हें राजा बनाने की इच्छा से उनकी माता से परामर्श किया; राजा मद्दा के परिवार से उनकी चचेरी बहन मद्दी को सोलह हजार सेविकाओं के साथ लाया गया और उन्हें उनकी रानी बनाया गया तथा राज्याभिषेक के जल से उनका अभिषेक किया गया। राज्य प्राप्त करने के समय से ही उन्होंने बहुत दान दिया, प्रतिदिन छह लाख सिक्के दान करते थे।

कुछ समय बाद रानी मद्दी ने एक पुत्र को जन्म दिया, और उन्होंने उसे सोने के झूले में लिटाया, इसलिए उसका नाम राजकुमार जली रखा गया। जब वह चलने-फिरने लायक हुआ, तब रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया, और उन्होंने उसे काले चमड़े में लिटाया, इसलिए उसका नाम कन्हाजिना रखा गया। हर महीने, भगवान अपने भव्य हाथी पर सवार होकर अपने छह भिक्षागृहों में छह बार दर्शन करने आते थे।

उस समय कलिंग राज्य में सूखा पड़ा था: अनाज नहीं उगा, भयंकर अकाल था, और लोग गुज़ारा करने में असमर्थ होकर लूटपाट करने लगे थे। अभाव से पीड़ित होकर लोग राजा के प्रांगण में एकत्रित हुए और उन्हें फटकारा। यह सुनकर राजा ने कहा, "क्या बात है, मेरे बच्चों?" उन्होंने बताया। राजा ने उत्तर दिया, "अच्छा, मेरे बच्चों, मैं वर्षा लाऊंगा," और उन्हें विदा कर दिया। उन्होंने पुण्य का वचन लिया और व्रत का पालन किया, लेकिन वे वर्षा नहीं ला सके; इसलिए उन्होंने नागरिकों को बुलाया और उनसे कहा, "मैंने पुण्य का वचन लिया था, और सात दिन व्रत का पालन किया, फिर भी मैं वर्षा नहीं ला सका: अब क्या किया जाए?" उन्होंने उत्तर दिया, "यदि आप वर्षा नहीं ला सकते, महाराज, तो जेतुत्तरा नगर में राजा संजय के पुत्र वेस्संतरा दान-पुण्य में लगे हुए हैं; उनके पास एक शानदार सफेद हाथी है, और वे जहाँ भी जाते हैं, वर्षा होती है; ब्राह्मणों को भेजकर उस हाथी को मंगवाएं और उसे यहाँ लाएं।" राजा मान गए; ब्राह्मणों को इकट्ठा करके उसने उनमें से आठ को चुना, उन्हें यात्रा के लिए भोजन सामग्री दी और कहा, "जाओ और वेसंतारा का हाथी ले आओ।" इस कार्य पर ब्राह्मण समय पर जेतुत्तरा नगर के लिए रवाना हुए; भिक्षागृह में उनका सत्कार हुआ; उन्होंने अपने शरीर पर धूल छिड़की और मिट्टी मली; और पूर्णिमा के दिन, राजा का हाथी मांगने के लिए वे पूर्वी द्वार पर उस समय गए जब राजा भिक्षागृह में आए थे। सुबह सवेरे, राजा भिक्षागृह जाने के इरादे से सोलह घड़े सुगंधित जल से स्नान करके अपना उपवास तोड़ा और अपने भव्य, अलंकृत हाथी पर सवार होकर पूर्वी द्वार की ओर चल पड़े। ब्राह्मणों को वहाँ कोई अवसर नहीं मिला और वे दक्षिणी द्वार पर एक टीले पर खड़े होकर पूर्वी द्वार पर राजा को भिक्षा देते हुए देखने लगे। जब राजा दक्षिणी द्वार पर आए, तो उन्होंने हाथ फैलाकर पुकारा, "महान वेसंतारा की जय हो!" जब उस महान सत्ता ने ब्राह्मणों को देखा, तो उसने हाथी को उस स्थान पर ले जाकर खड़ा कर दिया जहाँ वे खड़े थे, और उसकी पीठ पर बैठकर पहला श्लोक बोला:

"बालों से भरी बगलें, बालों से भरे सिर, दागदार दांत और सिर पर धूल के साथ,
हे ब्राह्मणों, अपने हाथों को फैलाकर, तुम किस चीज की लालसा करते हो?"
इस पर ब्राह्मणों ने उत्तर दिया:

"हे राजकुमार, क्या आपके लोगों के पास कोई अनमोल वस्तु है? हम
उस अद्वितीय और असाधारण हाथी की लालसा रखते हैं जिसके दांत किसी भी खंभे के समान हों।"
जब उस महान प्राणी ने यह सुना, तो उसने सोचा, "मैं अपने सिर से लेकर नीचे तक सब कुछ देने को तैयार हूँ, और वे जो मांग रहे हैं वह मेरे बस से बाहर की बात है; मैं उनकी इच्छा पूरी करूँगा"; और हाथी की पीठ से उसने उत्तर दिया:

मैं ब्राह्मणों की चाहत की वस्तु देता हूँ, और कभी वापस नहीं लेता;
यह उत्तम पशु, सवारी के लिए उपयुक्त, भयंकर दांतों वाला हाथी है।
और इस प्रकार सहमति देते हुए:

"राजा, जो अपनी प्रजा का रक्षक था, उसकी पीठ से उतरा,
और प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों को उनकी कमी की वस्तुएँ प्रदान कीं।"
हाथी के चारों पैरों पर सजे आभूषण चार लाख रुपये के थे, दोनों तरफ के आभूषण दो लाख रुपये के, पेट के नीचे का कंबल एक लाख रुपये का, पीठ पर मोतियों, सोने और रत्नों के जाल थे, तीन जाल तीन लाख रुपये के, दोनों कानों में दो लाख रुपये के, पीठ पर एक लाख रुपये का गलीचा, माथे पर एक लाख रुपये का आभूषण, तीन लबादे तीन लाख रुपये के, छोटे कान के आभूषण दो लाख रुपये के, दोनों दांतों पर दो लाख रुपये के, सूंड पर सौभाग्य का आभूषण एक लाख रुपये का, पूंछ पर एक लाख रुपये का, इसके अलावा शरीर पर सजे अनमोल आभूषण 22 लाख रुपये के, चढ़ने की सीढ़ी एक लाख रुपये की, भोजन का पात्र एक लाख रुपये का, कुल मिलाकर 22 लाख रुपये के: इसके अलावा चंदोवे पर सजे छोटे-बड़े रत्न, मोतियों के हार में जड़े रत्न, डंडे में जड़े रत्न, गले में मोतियों का हार, माथे पर सजे रत्न। उसने सभी अनमोल गोले, हाथी भी अनमोल, हाथी समेत सात अनमोल वस्तुएँ ब्राह्मणों को दीं; इसके अतिरिक्त पाँच सौ सेवक, घोड़ों की देखभाल करने वाले और अस्तबल के कर्मचारी भी दिए: और उस दान के साथ ही भूकंप आया, और ऊपर बताए गए अन्य अपशकुन भी घटित हुए।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"तब भयंकर भय का अनुभव हुआ, रोंगटे खड़े हो गए;
जब विशाल हाथी को दिखाया गया तो धरती भय से कांप उठी।"
तब भयंकर भय का अनुभव हुआ, रोंगटे खड़े हो गए;
जब विशाल हाथी को लाया गया, तो शहर भय से कांप उठा।

"जब शिवी के समर्थक राजा द्वारा विशाल हाथी भेंट किया गया, तो पूरा शहर एक गूंजती हुई जोरदार गर्जना से भर गया।"

जेतुत्तरा नगर कांप उठा। कहा जाता है कि ब्राह्मणों ने दक्षिणी द्वार पर हाथी का स्वागत किया, उसकी पीठ पर सवार हुए और भीड़ के बीच से नगर के मध्य से गुजरे। भीड़ ने उन्हें देखकर कहा, "हे ब्राह्मणों, हमारे हाथी पर सवार होकर आप हमारा हाथी क्यों ले जा रहे हैं?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, "महान राजा वेस्सन्तरा ने हमें हाथी दिया है: आप कौन हैं?" और इस प्रकार भीड़ को तिरस्कारपूर्ण इशारे करते हुए वे नगर से गुजरे और देवताओं की सहायता से उत्तरी द्वार से बाहर निकल गए। नगर के लोग बोधिसत्व से क्रोधित होकर जोर-जोर से निंदा करने लगे।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"उस भयानक और प्रचंड आवाज पर,
जब विशाल हाथी को भेजा गया तो धरती भय से कांप उठी।"
उस भयानक और प्रचंड आवाज को सुनकर,
जब विशाल हाथी को बुलाया गया तो पूरा शहर कांप उठा।

जब शिवी के समर्थक राजा ने विशाल हाथी भेंट किया, तो वह आवाज इतनी तेज और शक्तिशाली थी कि सब कुछ भयानक रूप से गूंज उठा।
इस उपहार से भयभीत होकर नागरिकों ने राजा से प्रार्थना की। इसलिए कहा जाता है:

"तब राजकुमार और ब्राह्मण, वैश्य और उगा, बड़े और छोटे, महावत और पैदल सैनिक, सारथी और सैनिक, सभी एक-एक करके,

देश के जमींदार और सभी सिवी लोग वहाँ से गुज़रे। हाथी को जाते देख राजा ने उनसे इस प्रकार कहा:

"महाराज, आपका राज्य बर्बाद हो गया है: आपका पुत्र वेसंतारा
हमारे उस हाथी को, जिसे हर कोई पूजता है, इस प्रकार क्यों त्याग दे?"
हम अपने रक्षक हाथी को क्यों दें, जिसके बड़े-बड़े दांत हैं, जो विशाल और सफेद है,
और जो हर लड़ाई में जीत-हार का सही स्थान चुनना जानता है?
रत्नों और याक की पूंछ के पंखे से सुसज्जित; जिसने सभी शत्रुओं को कुचल दिया;
लंबे दांतों वाला, उग्र, बर्फ से ढके केलासा पर्वत के समान सफेद;
अलंकृत वस्त्रों और सफेद छतरी के साथ, राजा की सवारी के योग्य,
आसन और सारथी के साथ, उसने यह अनमोल वस्तु भेंट कर दी है।
यह कहने के बाद उन्होंने फिर कहा:

जो कोई भी भोजन, पेय पदार्थ, वस्त्र, अग्नि और परिवहन का दान करता है,
वह एक उचित और उपयुक्त दान है, ब्राह्मणों के लिए वह उपयुक्त है।
हे संजय, अपने प्रजाजनों के मित्र, बताइए कि ऐसा क्यों किया गया?
हमारे ही वंश के राजकुमार, वेसंतारा, आपके पुत्र ने ऐसा क्यों किया?
सिवी के लोग अगर ऐसा करने से इनकार करते हैं,
तो मुझे लगता है कि लोग आपके बेटे और आपके खिलाफ कार्रवाई करेंगे।"
यह सुनकर राजा को संदेह हुआ कि वे वेसंतारा को मारना चाहते हैं; और उसने कहा:

"हाँ, मेरा देश न रहे, मेरा राज्य न रहे,
मैं किसी निर्दोष राजकुमार को उसके राज्य से निर्वासित नहीं करूँगा,
न ही जनता की आवाज़ मानूँगा: वह मेरा वास्तविक पुत्र है।"
हाँ, मेरा देश न रहे, मेरा राज्य न रहे,
मैं किसी निर्दोष राजकुमार को उसके राज्य से निर्वासित नहीं करूँगा,
और न ही जनता की बात मानूँगा: वह मेरा ही पुत्र है।
नहीं, मैं उसे कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा; वह अब भी अत्यंत नेक है;
और यह मेरे लिए शर्म की बात होगी, और इससे बहुत दुख होगा।
वेसंतारा, मेरे प्यारे पुत्र, मैं तलवार से उसे कैसे मार सकता हूँ?
सिवी के लोगों ने उत्तर दिया:

"वह न तो दंड का पात्र था, न तलवार का, न ही कारावास का,
बल्कि उसे राज्य से निर्वासित कर वामका के पर्वत पर निवास करने के लिए भेज दिया जाए।"
राजा ने कहा:

"जनता की इच्छा देखो! और मैं उस इच्छा का विरोध नहीं करता।
लेकिन जाने से पहले उसे एक सुखद रात यहीं रहने दो।"
इस एक रात के बाद, जब अगला दिन आएगा, तो
सभी लोग मिलकर आएं और उसे भगा दें।
वे केवल एक रात के लिए राजा के प्रस्ताव पर सहमत हो गए। फिर राजा ने उन्हें जाने दिया और अपने बेटे को संदेश भेजने के लिए एक दूत को नियुक्त किया, जो वेसंतारा के घर गया और उसे सारी घटना बताई।

इसे स्पष्ट करने के लिए, निम्नलिखित छंद कहे गए:

"उठो, साथियों, तुरंत यहाँ से चले जाओ, और राजकुमार को मेरा वचन बता दो।
सभी लोग, और नागरिक, क्रोधित होकर, एकमत से,
मेरे पुत्र, उगा और राजकुमार, वैश्य और ब्राह्मण भी,
महावत और रक्षक, सारथी और पैदल सैनिक, सभी
नागरिक, सभी ग्रामीण, सब यहाँ एक साथ दौड़ कर आए हैं।
इस एक रात के बाद, जब अगला दिन आएगा,
वे सब मिलकर तुम्हें निर्वासित कर देंगे।
सिवी के राजा द्वारा भेजा गया यह व्यक्ति अपने काम पर तेज़ी से आगे बढ़ा, एक सुगंधित और उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित हाथी पर सवार होकर।

सिर पानी से भीगा हुआ, कानों में रत्नजड़ित बालियां, और वह उस प्यारे शहर की ओर चल पड़ा, जहाँ वह वेसंतारा का निवास स्थान था।

फिर उसने अपने देश में निवास करते हुए सुखी राजकुमार को देखा, जो देवताओं (देवदूतों) के राजा वासव के समान था; उसके चारों ओर दरबारी खड़े थे।

वह व्यक्ति जल्दी से वहाँ गया और राजकुमार से बोला— "महाराज, मैं बुरी खबर लाया हूँ: हे प्रभु, मुझ पर क्रोधित न हों!"

अत्यंत आदरपूर्वक, पीड़ा से रोते हुए, उसने राजा से कहा:

"आप मेरे स्वामी हैं, महाराज, और आप ही मुझे सब कुछ देते हैं:
मुझे अब आपको एक बुरी खबर सुनानी है: क्या आप मुझे कुछ सांत्वना देंगे?"
सभी लोग और नागरिक, क्रोधित होकर, एकमत से,
उगाह और राजकुमार, वैश्य और ब्राह्मण, सभी झुक गए हैं।
महावत और रक्षक, रथ चालक, पैदल सैनिक,
सभी नागरिक और ग्रामीण लोग अब एक साथ भाग गए हैं।
इस एक रात के बाद, जब अगला दिन आएगा, तो
सभी लोग झुंड बनाकर आएंगे और तुम्हें भगा देंगे।"
उस महान सत्ता ने कहा:

"लोग मुझसे नाराज़ क्यों हैं? मुझे तो कोई अपराध नज़र नहीं आता।
बताओ, भले आदमी, वे मुझे किस कारण से देश निकाला देना चाहते हैं?"
एजेंट ने कहा:

"उग्ग और वैश्य, सारथी और ब्राह्मण, महावत और रक्षक, सारथी और पैदल सैनिक, सभी वहां दौड़ते हैं,
सभी आपके दान देने से क्रोधित हैं, और इसलिए आपको निर्वासित करते हैं।"
यह सुनकर, उस महान सत्ता ने पूर्ण संतोष के साथ कहा:

मैं अपनी आंखें और दिल तक दे दूंगा: जो मेरा नहीं है, उसे क्यों न दूं,
या सोना या खजाना, कीमती पत्थर, या मोती, या उत्तम रत्न?
अगर कोई मुझसे कुछ मांगे तो मैं अपना हाथ, अपना दाहिना हाथ भी दे दूंगा,
एक पल भी संकोच नहीं करूंगा: उपहार देना ही मेरी खुशी है।
अब लोग मुझे देश निकाला दे दें, लोग मुझे मार डालें,
या मुझे सात बार काट डालें, क्योंकि मैं उपहार देना कभी बंद नहीं करूंगा।
यह सुनकर दूत ने फिर से बात की, न तो राजा का संदेश था और न ही जनता का, बल्कि अपने मन से निकला एक और आदेश था:

"यह सिवी लोगों की इच्छा है; उन्होंने मुझसे आपको यह बताने के लिए कहा है:
जहाँ कोंटिमारा नदी अरंजारा पहाड़ी से बहती थी,
वहीं से प्रस्थान करें, जहाँ निर्वासित लोग, महोदय, जाने के आदी हैं।"
हमें बताया जाता है कि उन्होंने यह बात किसी देवता की प्रेरणा से कही थी।

यह सुनकर बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "ठीक है, मैं उसी मार्ग से जाऊँगा जिस मार्ग से अपराध करने वाले जाते हैं; परन्तु मुझे तो नागरिक किसी अपराध के लिए निर्वासित नहीं करते, वे मुझे हाथी के दान के कारण निर्वासित करते हैं। इस स्थिति में मैं सात सौ का महान दान देना चाहता हूँ, और मैं नागरिकों से इसके लिए एक दिन की मोहलत देने का अनुरोध करता हूँ। कल मैं अपना दान दूँगा, और परसों चला जाऊँगा।"

"इसलिए मैं भी उसी रास्ते से जाऊंगा जिस रास्ते से वे लोग जाते हैं जो अपराध करते हैं:
लेकिन पहले एक दान देने के लिए, मैं उनसे एक रात और एक दिन उधार देने की प्रार्थना करता हूं।"
"बहुत बढ़िया," एजेंट ने कहा, "मैं इसकी सूचना नागरिकों को दूंगा," और वह चला गया।

उस व्यक्ति के चले जाने पर, उस महान सत्ता ने अपने एक सेनापति को बुलाकर उससे कहा, "कल मैं सात सौ का उपहार देने वाला हूँ। तुम्हें सात सौ हाथी, उतनी ही संख्या में घोड़े, रथ, कन्याएँ, गायें, पुरुष दास और स्त्री दास तैयार रखने होंगे, और हर प्रकार का भोजन और पेय, यहाँ तक कि मादक पेय भी, जो कुछ भी देने योग्य हो, उपलब्ध कराना होगा।" इस प्रकार सात सौ के महान उपहार की व्यवस्था करने के बाद, उन्होंने अपने दरबारियों को विदा किया और अकेले मद्दी के निवास स्थान पर चले गए; वहाँ शाही पलंग पर बैठकर उन्होंने उसे संबोधित करना शुरू किया।

गुरु ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

इस प्रकार राजा ने मद्दी से कहा, "वह अत्यंत सुंदर स्त्री थी।"

"जो कुछ भी मैंने तुम्हें दिया है, चाहे वह सामान हो या अनाज, सावधान रहना,
चाहे वह सोना हो या खजाना, कीमती पत्थर और इसके अलावा भी बहुत कुछ,
तुम्हारे पिता का दहेज, इस सारे खजाने को छिपाने के लिए एक जगह ढूंढ लेना।"
तब मैडी ने राजा से कहा, वह राजकुमारी अत्यंत सुंदर है:

"हे मेरे स्वामी, इसे छिपाने के लिए मुझे जगह कहाँ मिलेगी? मुझे बताइए कहाँ?"
वेसंतारा ने कहा:

"उचित अनुपात में अपनी संपत्ति अच्छे काम करने वालों को दान के रूप में दें,
इसे रखने के लिए इससे बेहतर कोई जगह नहीं है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"
वह मान गई, और इसके अलावा उसने उसे इस प्रकार प्रोत्साहित किया:

"हे मद्दी, अपने बेटों और अपने पति के माता-पिता दोनों के प्रति दयालु रहो,
अपने होने वाले पति की सेवा करो, बिना किसी अनिच्छा के।"
और अगर मेरे जाने के बाद कोई भी पुरुष तुम्हारा पति बनने की इच्छा न रखे, तो
तुम अपने लिए पति की तलाश कर लेना, लेकिन केवल इच्छा से ही कमजोर मत पड़ जाना।
तब मद्दी ने सोचा, "मुझे आश्चर्य क्यों हो रहा है कि वेसंतारा मुझसे ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?" और उसने उनसे पूछा, "हे मेरे स्वामी, आप मुझसे ऐसी बात क्यों कह रहे हैं जो आपको नहीं कहनी चाहिए?" उस महान प्राणी ने उत्तर दिया, "हे देवी, हाथी के दान के कारण

शिवी के लोग मुझसे क्रोधित हैं और मुझे राज्य से निष्कासित कर रहे हैं: कल मुझे सात सौ हाथियों का दान देना है, और उसके अगले दिन मैं नगर से प्रस्थान करूँगा।" और उन्होंने कहा:

"कल मैं एक भयानक जंगल में जाऊंगा, जो शिकारी जानवरों से भरा हुआ है
: और क्या मैं उसमें जीवित रह पाऊंगा, कौन कह सकता है?"
फिर राजकुमारी मद्दी बोलीं, फिर उस सुंदर स्त्री ने बोलना शुरू किया:

"ऐसा नहीं है! यह एक दुष्ट शब्द है! इसे कहने की हिम्मत मत करो! हे
मेरे राजा, यह उचित और सही नहीं है कि आप अकेले यात्रा करें:
आप जिस भी यात्रा पर जाएंगे, मैं भी आपके साथ रहूंगा।"
मुझे तुम्हारे साथ मरने या तुमसे अलग जीने का विकल्प दो,
मृत्यु ही मेरा विकल्प है, जब तक कि मैं तुम्हारे साथ वहीं न रह सकूँ जहाँ तुम हो।
एक प्रचंड, भयंकर ज्वाला प्रज्वलित करो, जितनी भयंकर हो सकती है,
वहाँ मैं तुम्हारे बिना जीने की बजाय मरना पसंद करूँगा।
हाथी के ठीक पीछे अक्सर उसकी मादा पाई जाती है,
जो पहाड़ी दर्रों या जंगलों से होते हुए, ऊबड़-खाबड़ या समतल जमीन पर चलती है।
इसलिए मैं अपने बेटों के साथ आपका अनुसरण करूंगा, आप मुझे जहाँ भी ले जाएँ,
और न ही आप मुझे बोझ या भोजन कराने में मुश्किल पाएँगे।"
इन शब्दों के साथ ही उसने हिमालय क्षेत्र की प्रशंसा करना शुरू कर दिया, मानो उसने उसे स्वयं देखा हो:

जब तुम अपने प्यारे बेटों को देखोगे और
हरे-भरे जंगल के नीचे उनकी चहचहाहट सुनोगे, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
अपने प्यारे बेटों को खेलते हुए देखकर, और हरे-भरे जंगल के नीचे उनकी चहचहाहट सुनकर
, तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
जब तुम अपने प्यारे बेटों को देखोगे और
हमारे सुंदर घर में उनकी मीठी-मीठी बातें सुनोगे, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
अपने प्यारे बेटों को खेलते हुए देखकर और हमारे सुंदर घर में उनकी चहचहाहट सुनकर
, तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
अपने बेटों को चमकीले रंग के कपड़े पहने देखकर, उन्हें
हमारे सुंदर घर में फूल लाते हुए देखकर, आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
अपने बेटों को खिलखिलाते हुए खेलते देखकर, उन्हें
हमारे सुंदर घर में फूल लाते हुए देखकर, आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
जब तुम अपने नाचते हुए लड़कों को हमारे सुंदर घर में फूलों की माला लाते देखोगे
, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
जब तुम उन्हें नाचते-खेलते देखोगे, और
हमारे सुंदर घर में फूलों की माला लाते देखोगे, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
साठ वर्ष का हाथी, जो अकेले ही
जंगल में भटकता है, आपको यह भुला देगा कि आप कभी राजा थे।
साठ वर्ष का हाथी, शाम
और सुबह के समय घूमते हुए, आपको यह भुला देगा कि आप कभी राजा थे।
जब तुम उस हाथी को देखोगे जिसे उसके प्रजाजनों का झुंड लेकर आ रहा है,
साठ वर्ष के उस हाथी को, और उसकी चिंघाड़ सुनोगे,
तो उस आवाज को सुनकर तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
वनभूमि के खुले मैदान, दहाड़ते जानवर और हर वो चीज जिसकी आप कामना करते हैं
, जब आप उसे देखेंगे तो आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
शाम को आने वाले हिरण, वसंत में खिलने वाले तरह-तरह के फूल,
नाचते हुए मेंढक—आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
जब तुम नदियों की गर्जना सुनोगे, परियों के गीत सुनोगे, तो
यकीन मानो, तुम यह बात पूरी तरह भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।

जब तुम पर्वतीय गुफा में रहने वाले उल्लू की चीख सुनोगे, तो
यकीन मानो, तुम यह बात पूरी तरह भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
गैंडा और भैंस, जो जंगल में गड़गड़ाहट पैदा करते हैं,
शेर और बाघ—तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
जब आप पहाड़ की चोटी पर मोर को
मोरनियों से पहले नाचते और उछलते हुए देखेंगे, तो आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
अंडे से निकले मोर को
मोरनियों के सामने नाचते और अपने खूबसूरत पंख फैलाते हुए देखकर, आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।

बैंगनी गर्दन वाले मोर को मोरनियों के सामने नाचते और उछलते हुए देखकर आप भूल जाएंगे कि आप कभी राजा थे।
जब सर्दियों में तुम पेड़ों को फूलों से लदे देखोगे,
उनकी मीठी सुगंध को महसूस करोगे, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
जब सर्दियों में तुम देखोगे कि सभी पौधे खिल रहे हैं,
बिंबजला, कुटजा और कमल
अपनी सुगंध बिखेर रहे हैं, तब तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
जब सर्दियों में तुम जंगल को फूलों से भरा देखोगे
और कमलों को खिलते देखोगे, तो तुम भूल जाओगे कि तुम कभी राजा थे।
इस प्रकार मद्दी ने इन छंदों में हिमवत (हिमालय) की स्तुति की, मानो वह वहीं निवास कर रही हो। यहीं हिमवत (हिमालय) की स्तुति समाप्त होती है।

अब रानी फुसती ने सोचा, "मेरे बेटे को कठोर आदेश दिया गया है: वह क्या करेगा? मैं जाकर पता लगाती हूँ।" वह एक ढकी हुई गाड़ी में सवार होकर गई और उनके कमरे के द्वार पर खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी और फूट-फूटकर रोने लगी।

इसका वर्णन करते हुए गुरु ने कहा:

उसने राजकुमारी और उसके बेटे के बीच हुई बातचीत सुनी, फिर उसने उस महान और गौरवशाली रानी के लिए गहरे शोक का इजहार किया।

"ज़हर पीना बेहतर है, किसी चट्टान से कूद जाना बेहतर है,
या फिर अपने गले में फंदा डालकर मर जाना बेहतर है:
वे मेरे निर्दोष पुत्र वेसंतारा को क्यों निर्वासित कर रहे हैं?"
इतना अध्ययनशील और लोभ से मुक्त, सभी आने वालों को दान देने वाला,
अपने प्रतिद्वंद्वी राजाओं द्वारा सम्मानित, महान और गौरवशाली प्रसिद्धि वाला,
मेरे निर्दोष पुत्र वेसंतारा को क्यों निर्वासित कर रहे हैं?
उनके माता-पिता का समर्थन, जो बड़ों का सम्मान करते थे,
वे मेरे निर्दोष पुत्र वेसंतारा को क्यों निर्वासित कर रहे हैं?
राजा और रानी के प्रिय, अपने सभी मित्रों और परिवार के प्रिय,
अपने मित्रों, राज्य और उसमें रहने वाले सभी लोगों के प्रिय,
मेरे निर्दोष पुत्र वेसंतारा को क्यों निर्वासित कर रहे हैं?
इस भीषण शोक के बाद, उसने अपने बेटे और उसकी पत्नी को सांत्वना दी और राजा के सामने जाकर बोली:

"जैसे आम जमीन पर गिर जाते हैं, जैसे पैसा बर्बाद और खर्च हो जाता है,
वैसे ही तुम्हारा राज्य गिर जाएगा, यदि वे निर्दोषों को निर्वासित करेंगे।"
Like a wild goose with crippled wing, when all the water's gone,
Deserted byyour courtiers, you will live in pain alone.
मैं आपसे सच कहता हूँ, हे शक्तिशाली राजा: अपनी भलाई को व्यर्थ न जाने दें,
और न ही निर्दोष को निर्वासित करें, क्योंकि लोग रो रहे हैं।
यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया:

"आपका बेटा, जनता का ध्वजवाहक, अगर मैं उसे निर्वासन में भेज दूं तो भी मुझे डर लगेगा, लेकिन
मैं अपने शाही कर्तव्य का पालन करूंगा, जो मुझे अपने जीवन से भी अधिक प्रिय है।"
यह सुनकर रानी शोक व्यक्त करते हुए बोलीं:

"एक समय था जब पुरुषों के समूह बड़े-बड़े झंडे लहराते हुए उनके साथ चलते थे,
मानो फूलों से भरे जंगल हों: आज वे अकेले जाते हैं।"
चमकीले पीले वस्त्र, गांधार
(कंधार सहित अफगानिस्तान और पाकिस्तान के निकट) बनाना,

एक समय था जब उसके चारों ओर रोशनी चमकती थी,
या लाल रंग की दमक उठती थी, जब वह चलता था: आज वह अकेला जाता है।
पुराने समय में वह रथ, हाथगाड़ी और हाथी से यात्रा करता था:
आज राजा वेसंतारा को पैदल ही रास्ते तय करने होंगे।
चंदन की सुगंध से महकते हुए, नृत्य और गीत से जागृत होकर, वह
खुरदरी खालें कैसे पहनता था, कुल्हाड़ी, घड़ा और थैला कैसे ढोता था?
वे पीले वस्त्र क्यों नहीं लाएंगे, चमड़े के वस्त्र क्यों नहीं,
और छाल के कपड़े क्यों नहीं, ताकि वह विशाल जंगलों में प्रवेश कर सके?
एक निर्वासित राजा छाल का वस्त्र कैसे पहन सकता है,
राजकुमारी मद्दी छाल और घास के वस्त्र कैसे धारण करेगी?
मद्दी, जो कभी बनारस के कपड़े (रेशम) और लिनेन पहनती थी,
और उत्तम कोडुम्बरा पहनती थी, वह अब छाल और घास कैसे धारण करेगी?
जो राजकुमारी हाथगाड़ी या रथ में बैठकर इधर-उधर जाती थी
, वह आज पैदल कैसे जा सकती है?
कोमल हाथों और पैरों से प्रसन्न होकर वह खड़ी थी:
सुंदर राजकुमारी कांपते हुए जंगल में कैसे जा सकती है?
कोमल हाथों और कोमल पैरों से वह सुखमय जीवन जीती थी:
उसके द्वारा पहनी जाने वाली सबसे अच्छी चप्पलें भी हाल ही में उसके पैरों को चुभने लगी थीं;
आज वह सुंदर स्त्री कैसे चल सकती है?
एक समय था जब वह हजारों दासियों के बीच मालाओं के साथ चलती थी:
अब वह सुंदर स्त्री अकेले जंगल के मैदानों में कैसे चल सकती है?
अगर कभी वह सियार की दहाड़ सुनती तो वह पूरी तरह से भयभीत हो जाती:
वह डरपोक सुंदर प्राणी अब जंगल के खुले मैदान में कैसे चल सकती है?
इंद्र के राजवंश की वह स्त्री जो कभी डरकर पीछे हट जाती थी,
किसी उल्लू की आवाज सुनकर कांपने लगती थी,
अब वह डरपोक सुंदर स्त्री जंगल के खुले मैदान में कैसे चल सकती है?
जैसे कोई पक्षी अपने घोंसले को खाली देखता है, सारे बच्चे मर चुके होते हैं,
वैसे ही जब मैं उस खाली जगह को देखूंगा तो लंबे समय तक पीड़ा से जलता रहूंगा।
जैसे कोई पक्षी अपने घोंसले को खाली देखता है, सारे बच्चे मर चुके होते हैं, वैसे ही
मैं भी दुबली-पतली होकर बड़ी हो जाऊंगी और अपने प्यारे बेटे को फिर कभी नहीं देख पाऊंगी।
जैसे कोई पक्षी अपने घोंसले को खाली और अपने सभी बच्चों को मरा हुआ देखकर विचलित हो जाता है, वैसे ही
मैं भी विचलित होकर इधर-उधर भागने लगूंगा, अगर मुझे अपने प्यारे बेटे की झलक फिर कभी न दिखे।
जैसे जब कोई चील अपना घोंसला खाली देखती है, अपने बच्चों को मरा हुआ पाती है,
वैसे ही जब मैं उस खाली जगह को देखता हूँ तो मुझे लंबे समय तक पीड़ा होती रहेगी।
जैसे जब कोई चील अपना घोंसला खाली देखती है, अपने बच्चे को मरा हुआ पाती है, वैसे ही
मैं भी दुबली-पतली, पीली पड़ जाऊंगी और अपने प्यारे बेटे को फिर कभी नहीं देख पाऊंगी।
जैसे कोई चील अपना घोंसला खाली और अपने बच्चे को मरा हुआ देखती है, वैसे ही
मैं भी व्याकुल होकर भाग जाऊंगी, अगर मुझे अपने प्यारे बेटे को फिर कभी देखने का मौका न मिले।
जैसे लाल हंस किसी ऐसे तालाब के किनारे बैठे हों जिसका पानी सूख गया हो, वैसे ही

मैं अपने प्यारे बेटे को फिर कभी न देख पाने के दर्द में लंबे समय तक जीवित रहूंगी।
जैसे तालाब से पानी सूख जाने पर किनारे पर लाल हंस होते हैं, वैसे ही
मैं भी दुबली-पतली होकर बड़ी हो जाऊंगी और अपने प्यारे बेटे को फिर कभी नहीं देख पाऊंगी।
जैसे लाल हंस किसी ऐसे तालाब के किनारे बैठ जाते हैं जिसमें से पानी सूख गया हो,
मैं भी विचलित होकर उड़ जाऊंगी, अगर मुझे अपने प्यारे बेटे की झलक फिर कभी न दिखे।
और यदि आप मेरे निर्दोष पुत्र को राज्य से निकाल देते हैं, तो
मेरी इतनी शिकायत के बावजूद, मुझे लगता है कि मेरा जीवन समाप्त हो गया है।"
इस मामले को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"रानी को दर्द से विलाप करते हुए सुनकर, महल की सभी महिलाएं तुरंत एक साथ अपनी बाहें फैलाकर उनके शोक में शामिल होने के लिए चली गईं।"

और राजकुमार के महल में, चारों ओर स्त्रियाँ और बच्चे ऐसे पड़े थे जैसे पेड़ ज़मीन पर गिर पड़े हों।

और जब रात समाप्त हुई और अगले दिन सूर्योदय हुआ, तब राजा वेसंतारा ने अपने उपहार बांटना शुरू किया।

"भूखे को भोजन दो, जिन्हें पीने की आवश्यकता है उन्हें पेय दो, जिन्हें वस्त्र चाहिए उन्हें वस्त्र दो, प्रत्येक की इच्छा के अनुसार।"

"यहाँ से कोई भी प्रेमी निराश होकर वापस न जाए, सभी का सम्मान करें, और किसी को भी खाने-पीने की कमी न होने दें।"

और इसलिए वे खुशी और उल्लास से भरे हुए बड़ी संख्या में एकत्रित हो गए, क्योंकि सिवी के महान और सहायक राजा जाने की तैयारी कर रहे थे।

उन्होंने एक विशाल, फलों से लदे पेड़ को काट डाला, जब उन्होंने निर्दोष वेसंतारा को देश से निकाल दिया।

उन्होंने एक मनोकामना पूरी करने वाले वृक्ष को काट डाला, जिस पर हर वरदान मौजूद था, जब उन्होंने निर्दोष वेसंतारा को देश से निकाल दिया।

उन्होंने वरदानों से परिपूर्ण वृक्ष को काट डाला, जब उन्होंने निर्दोष वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया।

उस दिन बूढ़े और जवान, और उन दोनों के बीच के सभी लोग रोए और विलाप किया, अपनी बाहें फैलाकर, जब राजा जाने की तैयारी कर रहा था, जिसने सिवी के राज्य का पालन-पोषण किया था।

उस दिन बुद्धिमान स्त्रियाँ, हिजड़े, राजा की पत्नियाँ रोईं और विलाप किया, अपनी बाहें फैलाकर, जब राजा जाने की तैयारी कर रहा था, जिसने सिवी के राज्य का पालन-पोषण किया था।

और उस दिन शहर की सभी स्त्रियाँ रोईं और विलाप किया, जब सिवी के महान और सहायक राजा जाने की तैयारी कर रहे थे।

ब्राह्मणों और तपस्वियों ने भी, और जरूरतमंदों ने भीख मांगते हुए, अपनी बाहें फैलाकर जोर से कहा, "यह एक दुष्ट कर्म है!"

जब राजा ने अपनी उदारता का प्रदर्शन किया, तब वह पूरे शहर के सामने उपस्थित रहा, और जनता के फैसले के अनुसार, उसे निर्वासन में भेज दिया गया।

उसने सात सौ हाथी दिए, जो सभी वैभवशाली ढंग से सजे हुए थे, सोने की कमरबंद से बंधे हुए थे, और सुनहरे चमकीले अलंकृत वस्त्रों से सजी हुई काठी थी।

प्रत्येक अपने-अपने महावत के साथ, हाथ में नुकीला हुक लिए हुए: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

उन्होंने सात सौ घोड़े भी दिए, चमकीले वस्त्रों से सजे हुए, सिंध के घोड़े, और सभी शुद्ध नस्ल के, तेज दौड़ने वाले।

प्रत्येक पर एक साहसी सहायक सवार है, जिसके हाथों में तलवार और धनुष है: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

सात सौ रथ आपस में जुड़े हुए, झंडे लहराते हुए, बाघ की खाल और पैंथर की खाल से सजे हुए, एक भव्य दृश्य।

प्रत्येक रथ बख्तरबंद रथ चालकों द्वारा संचालित है, सभी के हाथों में धनुष है: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

उसने सात सौ स्त्रियाँ भी दीं, जिनमें से प्रत्येक रथ पर खड़ी थी, ये स्त्रियाँ सोने की जंजीरों और आभूषणों से सजी हुई थीं।

सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित, पतली कमर और सुडौल शरीर के साथ, घुमावदार भौंहों, हंसमुख और चमकदार मुस्कान और आकर्षक कूल्हों के साथ: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

उसने सात सौ गायें भी दीं, साथ में चांदी के दूध के बर्तन भी: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

उसने सात सौ महिला दासियाँ दीं, उतने ही पुरुष भी, जिन्हें वह अपनी सेवा में रख सकता था: देखो, अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

उसने गाड़ियाँ, घोड़े, औरतें, हाथी सब कुछ दिया, फिर भी, देखो अब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया है!

यह एक अत्यंत भयानक घटना थी, जिससे रोंगटे खड़े हो गए, जब राजा वेसंतारा को देश से निर्वासित कर दिया गया!

अब एक देवता ने पूरे भारत के राजाओं को यह समाचार सुनाया कि वेस्संतरा उच्च कुल की कन्याओं और इसी प्रकार की अन्य कन्याओं का बड़ा दान दे रहे हैं। इसलिए क्षत्रिय दिव्य शक्ति से रथ में सवार होकर आए और प्राप्त कन्याओं आदि को लेकर लौट गए। इस प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस्स और सुद्ध, सभी ने प्रस्थान करने से पहले उनके हाथों से उपहार ग्रहण किए। वे शाम ढलने तक उपहार बांट ही रहे थे कि अपने माता-पिता से मिलने और उसी रात प्रस्थान करने के लिए अपने निवास स्थान पर लौट गए। भव्य रथ में सवार होकर वे अपने माता-पिता के निवास स्थान की ओर चल पड़े और उनके साथ मद्दी भी अपने माता-पिता से विदा लेने के लिए गए। उस महान सत्ता ने अपने पिता का अभिवादन किया और उनके आने की सूचना दी।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

"धर्मी राजा संजय को प्रणाम कहना: उनसे कहना
कि चूंकि उन्होंने मुझे निर्वासित कर दिया है, इसलिए मैं वामका पर्वत की ओर जा रहा हूँ।"
हे महापुरुष, भविष्य में जिन प्राणियों को जाना जाएगा, वे
अपनी अतृप्त इच्छाओं के साथ यमराज के घर जाएंगे।
मैंने अपने लोगों के साथ गलत किया, अपने हाथों से उदारतापूर्वक दान दिया,
इसलिए सभी लोगों के फैसले के अनुसार मुझे इस भूमि से निर्वासित कर दिया गया है।
अब मैं उस पाप का प्रायश्चित तेंदुए से भरे जंगल में करूंगा:
यदि तुम बाहरी आवरण में प्रवेश करोगे, तब भी मैं भलाई करूंगा।
ये चार श्लोक उस महान सत्ता ने अपने पिता को संबोधित किए; और फिर उसने अपनी माता की ओर मुड़कर इन शब्दों के साथ संसार छोड़ने की अनुमति मांगी:

"माँ, मैं तुमसे विदा लेता हूँ: मैं एक निर्वासित व्यक्ति हूँ।
मैंने अपने लोगों के साथ अन्याय किया, उदारतापूर्वक अपने हाथों से दान दिया, और
जनता के फैसले के अनुसार मुझे इस भूमि से निर्वासित किया जा रहा है।"
अब मैं उस पाप का प्रायश्चित तेंदुए से भरे जंगल में करूंगा:
यदि तुम बाहरी आवरण में प्रवेश करोगे, तब भी मैं भलाई करूंगा।
इसके जवाब में फुसाती ने कहा:

"मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ, मेरे बेटे, और मेरा आशीर्वाद भी लो:
मैडी और लड़कों को पीछे छोड़ दो, क्योंकि वह तुम्हारे लिए ठीक नहीं है;
सुंदर गोल-मटोल अंग और पतली कमर, उसे तुम्हारे साथ जाने की क्या ज़रूरत है?"
वेसंतारा ने कहा:

"मैं किसी दासी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं ले जाऊंगा:

लेकिन यदि वह चाहती है, तो उसे आने दो; यदि नहीं, तो उसे यहीं रहने दो।"
अपने बेटे की बात सुनकर राजा ने उससे विनती करना शुरू कर दिया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

फिर राजा ने अपनी बहू से कहना शुरू किया:
"मैं आपसे विनती करता हूँ कि चंदन की सुगंध से महके हुए अंगों पर धूल और गंदगी न लगने दें।"
" बनारस के उत्तम वस्त्रों के स्थान पर छाल के रेशों से बने लट्ठे मत पहनो;
हे राजकुमारी, मत जाओ! वन जीवन वास्तव में बहुत कठिन है।"
तब तेजस्वी और सुंदर राजकुमारी मद्दी से उसके ससुर ने कहा:
"मैं वेसंतारा के बिना रहना नहीं चाहती, मुझे कोई सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा।"
तब सिवी के शक्तिशाली और सहायक राजा ने उससे फिर इस प्रकार कहा:

"आओ, मद्दी, सुनो, मैं तुम्हें जंगलों के कष्टों के बारे में बताता हूँ।
कीड़ों और मक्खियों, भृंगों और मधुमक्खियों के झुंड
उस जंगल के जीवन में तुम्हें डंक मारेंगे, जिससे तुम गंभीर रूप से बीमार हो जाओगे।"
नदी के किनारे रहने वाले लोग अन्य विपत्तियों के बारे में सुनते हैं जो उनका इंतजार कर रही हैं:
बोआ-कॉन्स्ट्रिक्टर (यह सच है कि यह विषरहित है, लेकिन शक्तिशाली और विशाल है)।
यदि कोई मनुष्य या कोई जानवर पास आएगा, तो वह उसे मजबूती से पकड़ लेगा,
और उसे कई तहों में लपेटकर अपने छिपने के स्थान पर घसीट ले जाएगा।
फिर कुछ अन्य खतरनाक जानवर भी होते हैं जिनके बाल काले और उलझे हुए होते हैं;
वे किसी आदमी को पकड़ने के लिए पेड़ों पर चढ़ सकते हैं: इस जानवर को भालू कहा जाता है।
सोतुम्बारा नदी के किनारे भैंस निवास करती है;
जो अपने बड़े नुकीले सींगों से जोरदार प्रहार कर सकती है।
इन विशाल गायों के झुंड को जंगल में विचरण करते देख,
कोई बेचारी गाय अपने बछड़े को ढूंढ रही हो, तो मैडी क्या करेगी?
जब पेड़ों पर बंदरों की भीड़ जमा होती है, तो वे
तुम्हारी अज्ञानता और उनके भद्दे रूप से डर जाएंगे, मैडी।
एक समय था जब सियार की दहाड़ तुम्हें बहुत डरा देती थी:
अब वामका पहाड़ी पर रहते हुए, मद्दी, तुम क्या करोगे?
आप ऐसी जगह क्यों जाएंगे? दोपहर के समय भी,
जब सभी पक्षी आराम करने के लिए शांत हो जाते हैं, तब भी जंगल की गर्जना जारी रहती है।
तब सुंदर मद्दी ने राजा से बात की और इस प्रकार उत्तर दिया:

"जहाँ तक इन भयानक चीजों का सवाल है, जिन्हें आपने दिखाने की कोशिश की है,
मैं उन सभी को खुशी-खुशी स्वीकार करता हूँ; मैंने जाने का निश्चय कर लिया है।"
पहाड़ियों और जंगलों की सारी घास के बीच से, सरकंडे के झुंडों के बीच से,
मैं अपने सीने के बल पर अपना रास्ता बनाऊंगा, और वास्तव में शिकायत नहीं करूंगा।
जो स्त्री अपने पति को सुखी रखना चाहती है, उसे अपने सभी कर्तव्यों का पालन करना चाहिए;
गोबर के गोले बनाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, उपवास के लिए भी तैयार रहना चाहिए।
उसे आग को ध्यान से संभालना होगा, पानी को साफ करना होगा,
लेकिन विधवापन भयानक है: हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
सबसे तुच्छ बात भी उसे नाराज कर देती है; वह फिर भी बचे हुए भोजन से ही काम चलाती है:
क्योंकि विधवापन बहुत भयानक होता है—हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
धूल में गिराकर दम घोंट दिया गया, बालों से बेरहमी से खींचा गया—
कोई भी उन्हें कितना भी नुकसान पहुंचा सकता है, सब बस खड़े होकर देखते रहते हैं।
हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
पुरुष विधवा के पुत्रों को बेरहमी और घिनौने ढंग से नोचते हैं,
चाहे वे कितने भी सुंदर और आकर्षक क्यों न हों, जैसे कौवे उल्लू को चोंच मारते हैं।

हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
धन-दौलत से भरे, चांदी से जगमगाते घर में भी,
भाई-भाई और दोस्त दोनों की ओर से कड़वी बातें कभी बंद नहीं होतीं।
हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
जलहीन नदियाँ नंगी होती हैं, राजा विहीन राज्य
नंगा होता है। एक विधवा के दस भाई हों, फिर भी वह नंगी ही होती है।
हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊँगी।
ध्वज रथ का चिन्ह है, आग धुएँ से पहचानी जाती है,
राज्य राजाओं से, और विवाहित पत्नी अपने पति से।
हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊँगी।
जो पत्नी अपने पति के सुख-दुख में उसका साथ देती है, चाहे वह अमीर हो या गरीब,
उसकी प्रसिद्धि की प्रशंसा स्वयं देवता (देवदूत) करते हैं, संकट में वह सुरक्षित रहती है।
मैं अपने पति का अनुसरण करूंगी, पीला वस्त्र धारण करूंगी,
पृथ्वी की रानी बनने की मुझे कोई परवाह नहीं।
हे विधवापन कितना भयानक है! हे महान सम्राट, मैं जाऊंगी।
उन महिलाओं में बिल्कुल भी दिल नहीं होता, वे कठोर और भावनाहीन होती हैं,
जो अपने पतियों के कष्ट में होने पर कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठाना चाहती हैं।
जब सिवी भूमि के महान स्वामी को निर्वासन में भेजा जाएगा, तो
मैं उनके साथ जाऊँगा; क्योंकि वे ही समस्त आनंद और समस्त संतोष प्रदान करते हैं।"
तब पराक्रमी राजा ने सुंदर और तेजस्वी मद्दी से कहा:

"परन्तु अपने दोनों छोटे बेटों को यहीं छोड़ देना: हे शुभ देवी, वे वहाँ क्या करेंगे
? हम उनकी रक्षा करेंगे और उनका पूरा ध्यान रखेंगे।"
तब राजकुमारी मद्दी ने राजा को उत्तर दिया,
"मेरी जली और कन्हाजिना मेरे दिल के सबसे प्रिय हैं:
वे जंगल में मेरे साथ रहेंगे और मेरे दर्द को कम करेंगे।"
इस प्रकार दिए गए उत्तर ने सम्राट को महान बना दिया, इस प्रकार सिवी के समर्थक राजा ने कहा:
"अब तक उनका भोजन उत्तम चावल और अच्छी तरह से पका हुआ स्वादिष्ट भोजन रहा है:
यदि उन्हें जंगली पेड़ों के फल खाने पड़ें, तो बच्चे क्या करेंगे?"
अब तक वे चांदी की सजी हुई या सोने की थालियों में
खाना खाते थे; लेकिन अब बच्चे सूखी पत्तियों से क्या करेंगे?
अब तक वे बनारस के कपड़े (रेशम) या लिनन पहनते आए हैं:
अगर उन्हें घास या छाल से बने कपड़े पहनने पड़ें, तो बच्चे क्या करेंगे?
अब तक वे घोड़ों की गाड़ियों या पालकी (हाथ से चलने वाली गाड़ी) में सफर करते आए हैं।
जब उन्हें पैदल दौड़ना पड़ेगा, तो बच्चे क्या करेंगे?
अब तक वे छज्जेदार कक्ष में सुरक्षित रूप से सोते थे:
पेड़ों की जड़ों के नीचे लेटने पर बच्चे क्या करेंगे?
अब तक वे तकियों, कालीनों या कढ़ाईदार बिस्तरों पर आराम करते थे:
घास के बिस्तर पर लेटे हुए बच्चे क्या करेंगे?
अब तक इन पर मीठी खुशबू और इत्र छिड़का गया है:
जब ये सब धूल और गंदगी से ढक जाएंगे, तो बच्चे क्या करेंगे?
जब मोर के पंख और याक की पूंछ के पंखे अब तक उन्हें हवा देते रहे हैं,
कीड़े-मकोड़ों और मक्खियों से परेशान होकर बच्चे क्या करेंगे?
जब वे आपस में बातें कर रहे थे, भोर हो गई और भोर के बाद सूर्य उदय हुआ। वे महानुभाव के लिए चार सिंधी घोड़ों की जोड़ी वाला एक भव्य रथ लेकर आए और उसे द्वार पर खड़ा कर दिया। मद्दी ने अपने पति के माता-पिता को प्रणाम किया और अन्य महिलाओं से विदा लेकर अपने दो बेटों के साथ वेसंतारा के आगे गई और रथ में बैठ गई।

इस मामले को समझाते हुए गुरु ने कहा:

तब मद्दी ने राजा को उत्तर दिया, हे सुंदर और तेजस्वी स्त्री:

"हे मेरे स्वामी, हमारे लिए शोक न करें और न ही इतना परेशान हों:
बच्चे हमारे साथ हर जगह जाएंगे जहाँ हम जाएंगे।"
इन्हीं शब्दों के साथ मैडी चली गई, वह सुंदर और तेजस्वी महिला: मुख्य सड़क पर, और अपने दो बच्चों के साथ वह अपने रास्ते पर आगे बढ़ गई।

तब राजा वेसंतारा स्वयं, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, अपने माता-पिता दोनों को प्रणाम करते हैं और दाहिनी ओर परिक्रमा करते हैं।

फिर, चार घोड़ों की टीम द्वारा खींचे जा रहे तेज रथ पर सवार होकर, वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर वामका की चोटी की ओर तेजी से चल पड़ा।

फिर राजा वेसंतारा को उस ओर ले गए जहाँ भारी भीड़ उमड़ी हुई थी, और चिल्लाए—"हम चलते हैं! मेरे परिवार पर ईश्वर की कृपा बनी रहे—आपका भला हो!"

भीड़ को संबोधित करते हुए, उस महान व्यक्ति ने उन्हें सावधान रहने, दान देने और अच्छे कर्म करने की सलाह दी। जब वह जा रहे थे, तो बोधिसत्व की माता ने कहा, "यदि मेरे पुत्र की दान देने की इच्छा हो, तो वह दे," और उनके लिए दोनों ओर दो रथ भेजे, जो आभूषणों से भरे हुए थे और सात अनमोल वस्तुओं से लदे हुए थे। उन्होंने रास्ते में मिले भिखारियों को अठारह उपहारों में अपना सब कुछ बाँट दिया, यहाँ तक कि अपने शरीर पर पहने हुए आभूषणों का समूह भी। जब वे शहर से दूर चले गए, तो उन्होंने मुड़कर उसे देखने की इच्छा की; तब उनकी इच्छा के अनुसार पृथ्वी रथ के आकार तक फट गई, और घूमकर रथ को शहर की ओर ले आई, और उन्होंने वह स्थान देखा जहाँ उनके माता-पिता रहते थे। इसके बाद भूकंप और अन्य चमत्कार हुए; इसी कारण कहा जाता है:

"जब वह शहर से आगे बढ़ा, तो उसने मुड़कर फिर देखा: और इसलिए, बरगद के पेड़ की तरह विशाल सिनेरू पर्वत कांप उठा।"

और देखते हुए उसने एक श्लोक बोला ताकि मद्दी भी देखे:

"देखो, मद्दी, देखो वह सुंदर जगह जहाँ से हम अभी आए हैं—
सिवी के राजा का निवास स्थान और हमारा पैतृक घर!"
तब उस महान पुरुष ने अपने समय में जन्मे साठ हज़ार दरबारियों और बाकी लोगों की ओर देखकर उन्हें वापस लौटने का आदेश दिया; और रथ चलाते हुए आगे बढ़ते हुए उन्होंने मद्दी से कहा, "हे देवी, ध्यान से देखो कि कहीं कोई वर तो पीछे नहीं आ रहा।" वह देखती रही। अब चार ब्राह्मण, जो सात सौ दान के समय उपस्थित नहीं हो पाए थे, शहर में आए थे; और यह देखकर कि दान का वितरण हो चुका है, उन्होंने पता लगाया कि राजकुमार चले गए हैं। उन्होंने पूछा, "क्या वह अपने साथ कुछ ले गए हैं?" "हाँ: एक रथ।" इसलिए उन्होंने घोड़े माँगने का निश्चय किया। मद्दी ने उन पुरुषों को आते देखा। "हे स्वामी, भिखारी!" उसने कहा; उस महान पुरुष ने रथ रोक दिया। वे आए और घोड़े माँगे: उस महान पुरुष ने उन्हें दे दिए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"तब चार ब्राह्मण उसके पास पहुँचे और घोड़ों के लिए विनती की: उसने तुरंत घोड़े दे दिए - प्रत्येक भिखारी को एक घोड़ा मिला।"

घोड़ों को हटा दिया गया, रथ का जुआ हवा में लटका रह गया; लेकिन ब्राह्मणों के जाते ही लाल हिरण के वेश में चार देवता (देवदूत) आए और उसे पकड़ लिया। उस महान सत्ता ने, जो उन्हें देवता (देवदूत) के रूप में जानती थी, यह श्लोक कहा:

"देखो, मैडी, कितनी अद्भुत चीज़ है—एक चमत्कार है, मैडी, देखो!
ये चतुर घोड़े, लाल हिरण के आकार में, मुझे आकर्षित कर रहे हैं!"
लेकिन जब वह ऊपर जा रहा था, तभी एक और ब्राह्मण आया और उसने रथ मांगा। उस महान सत्ता ने अपनी पत्नी और बच्चों को रथ से उतार दिया और उसे रथ दे दिया; और रथ देते ही देवता (देवदूत) गायब हो गए।

रथ के उपहार की व्याख्या करते हुए गुरु ने कहा:

"पांचवां व्यक्ति वहाँ आया और राजा से रथ माँगा: राजा ने उसे भी दे दिया, और उसे अपने पास रखने की कोई लालसा नहीं हुई।"

तब राजा वेसंतारा ने अपने लोगों को रथ से उतरने का आदेश दिया और रथ उस व्यक्ति को दे दिया जो इस कार्य के लिए आया था।

इसके बाद वे सब पैदल ही आगे बढ़ गए। तब उस महान सत्ता ने मद्दी से कहा:

"मद्दी, तुम कन्हाजिना को ले जाओ, क्योंकि वह हल्की और जवान है,
लेकिन जाली भारी लड़का है, इसलिए मैं उसे साथ ले आऊंगा।"
फिर उन्होंने दोनों बच्चों को उठाया और उन्हें अपनी कमर पर लादकर ले गए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"वह अपने बेटे को गोद में लिए हुए था और वह अपनी बेटी को, वे आगे बढ़ते गए, रास्ते में खुशी और पूर्ण संतोष के साथ बातें करते हुए।"

जब रास्ते में उन्हें कोई मिलने आता, तो वे वामका पहाड़ी का रास्ता पूछते और उन्हें पता चलता कि वह बहुत दूर है। इसलिए कहा जाता है:

"जब भी वे रास्ते में आने वाले यात्रियों से मिलते, तो वे उनसे उनके रास्ते का पता पूछते और यह भी पूछते कि वामका पर्वत कहाँ स्थित है।"

रास्ते में उन्हें देखकर सभी यात्री दर्द से रोने लगे और उन्हें उनके कठिन कार्य के बारे में बताया: "रास्ता लंबा है," वे कहते हैं।

सड़क के दोनों किनारों पर लगे पेड़ों पर तरह-तरह के फल देखकर बच्चे खुशी से रोने लगे। फिर ईश्वर की कृपा से पेड़ों ने अपने फल झुका दिए ताकि बच्चे उन तक पहुँच सकें, और उन्होंने सबसे पके फल चुनकर बच्चों को दे दिए। तब मद्दी चिल्लाई, "अद्‌भुत!" ऐसा कहा जाता है:

जब भी बच्चे ढलान पर फलों से लदे पेड़ देखते थे, तो वे फलों के लिए रोने लगते थे।

लेकिन जब उन्होंने बच्चों को रोते देखा, तो ऊंचे पेड़ शोक में झुक गए और अपनी शाखाओं को उनके हाथों के सामने झुका दिया, ताकि वे फल तोड़ सकें।

तब मैडी खुशी से जोर से चिल्लाई, "वह सुंदर और तेजस्वी महिला, इस चमत्कार को देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

यहां दिखाए गए चमत्कार को देखकर रोंगटे खड़े हो सकते हैं: राजा वेसंतारा की शक्ति से पेड़ स्वयं झुक जाते हैं!

जेतुत्तरा नगर से सुवन्नागिरितला नामक पर्वत पाँच मील (4.23 किमी) दूर है; वहाँ से कोन्तिमारा नदी पाँच मील (4.23 किमी) दूर है, और उससे भी पाँच मील (4.23 किमी) आगे अरंजरागिरि पर्वत है, फिर पाँच मील (4.23 किमी) आगे दुन्निवित्था नामक ब्राह्मण गाँव है, और वहाँ से दस मील (4.23 किमी) दूर उनके मामा का नगर है: इस प्रकार जेतुत्तरा से यात्रा तीस मील (4.23 किमी) की थी। देवताओं (देवदूतों) ने यात्रा को छोटा कर दिया, जिससे वे एक ही दिन में उनके मामा के नगर पहुँच गए। ऐसा कहा जाता है:

"यक्खाओं ने बच्चों की दुर्दशा पर दया करते हुए यात्रा को छोटा कर दिया, और इस प्रकार वे रात होने से पहले सेता राज्य पहुँच गए।"

वे नाश्ते के समय जेतुत्तरा से निकले और शाम को सेता राज्य और उसके चाचा के शहर पहुंचे।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

वे सेता की ओर चल पड़े, एक लंबी और महान यात्रा पर, एक ऐसा राज्य जो भोजन और पेय से समृद्ध, समृद्ध और शक्तिशाली था।

उनके चाचा के नगर में साठ हजार क्षत्रिय निवास करते थे। महापुरुष नगर में प्रवेश नहीं किए, बल्कि नगर के द्वार पर स्थित एक सभागार में बैठ गए। मद्दी ने महापुरुष के चरणों से धूल झाड़कर उन्हें मला; फिर वेसंतारा के आगमन की सूचना देने के उद्देश्य से वह सभागार से आगे बढ़ीं और उनके दर्शन के लिए खड़ी हो गईं। नगर में आने-जाने वाली स्त्रियों ने उन्हें देखा और उनके पास आ गईं।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"उस शुभ महिला को वहाँ देखकर उसके चारों ओर स्त्रियाँ उमड़ पड़ीं। वह कोमल महिला! अब उसे पैदल ही चलना होगा।"

एक समय था जब वह कुलीन महिला पालकी (हाथ से चलने वाली गाड़ी) या रथ में सवार होती थी: अब मद्दी को पैदल ही जाना पड़ता है; जंगल ही उसका निवास स्थान है।

तब सभी लोगों ने जब देखा कि मद्दी, वेसंतारा और बच्चे इस अशोभनीय तरीके से आए हैं, तो वे राजा के पास गए और उन्हें सूचना दी; और साठ हजार राजकुमार रोते-बिलखते उनके पास आए।

इसे समझाने के लिए गुरु ने कहा:

उन्हें देखकर सेता राजकुमार विलाप और शोक करते हुए आए।
“हे स्वामी, आपको नमस्कार! हमें आशा है कि आप समृद्ध और कुशल होंगे,
और आपके पिता और उनके राज्य के बारे में आपके पास कोई शुभ समाचार होगा।”
हे महामहिम, आपकी सेना कहाँ है? और आपका राजसम्मंत्रित रथ कहाँ है?
बिना रथ, बिना घोड़े के आप इतनी दूर तक यात्रा कर चुके हैं:
क्या आप अपने शत्रुओं से पराजित हुए हैं कि यहाँ अकेले रह गए हैं?
तब उस महान सत्ता ने राजकुमारों को अपने आने का कारण बताया:

"धन्यवाद, महोदय; निश्चिंत रहें कि मैं समृद्ध और कुशल हूं;
और मुझे अपने पिता और उनके राज्य के बारे में अच्छी खबर सुनानी है।"
मैंने उद्धारक हाथी को दिया, जो नुकीले दांतों वाला, विशाल और सफेद था,
जो हर लड़ाई में अनुकूल स्थिति चुनने का ज्ञान रखता था;
उसके रत्न, और उसकी याक की पूंछ का पंखा; जिसने शत्रुओं को कुचल दिया,
लंबे दांतों वाला, उग्र, बर्फ से ढके केलासा पर्वत के समान सफेद;
सजावटी वस्त्रों और सफेद छतरी के साथ, राजा के लिए उपयुक्त सवारी करते हुए,
जोंक और सारथी के साथ: हाँ, मैंने यह अनमोल वस्तु दान कर दी।
इसलिए लोग क्रोधित हो गए, मेरे पिता को बुरा लगा:
इसलिए उन्होंने मुझे देश निकाला दे दिया, और अब मैं वामका पहाड़ी पर जा रहा हूँ।
मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मुझे रहने के लिए कोई जगह बताएँ।
राजकुमारों ने उत्तर दिया:

"अब आपका स्वागत है, हे शक्तिशाली राजा, और बिना किसी संदेह के:
यहाँ जो कुछ भी है, उसके स्वामी बनिए और अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग कीजिए।"
जड़ी-बूटियाँ, जड़ें, शहद, मांस और चावल, सबसे सफेद और सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले लें:
हे राजा, इनका भरपूर आनंद लें, और आप हमारे अतिथि होंगे।
वेसंतारा ने कहा:

"आपके द्वारा दिए गए उपहार मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।
लेकिन अब राजा ने मुझे निर्वासित कर दिया है; मैं वामका पहाड़ी जा रहा हूँ।
मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मुझे रहने के लिए कोई स्थान बताएँ।"
राजकुमारों ने कहा:

"हे शक्तिशाली राजा, सेता में यहीं ठहरिए, जब तक कि एक संदेश न भेजा जाए,
जिसमें सिवी देश के राजा को वह सब बताया जाए जो हमें पता चला है।"
फिर भीड़ में उसके पीछे-पीछे चलने वाले लोग,
सभी खुशी और आत्मविश्वास से भरे हुए थे: यह मैं आपको बताना चाहता हूँ।
उस महान सत्ता ने कहा:

"मैं नहीं चाहता कि तुम राजा को यह बताने के लिए संदेश भेजो कि मैं यहाँ हूँ:
इस मामले में वह राजा नहीं है: मुझे डर है कि उसके पास कोई शक्ति नहीं है।"
महल के लोग और नगरवासी सभी क्रोधित होकर इकट्ठा हो गए,
सभी इस बात से उत्सुक थे कि मेरे कारण वे राजा को नष्ट कर दें।

राजकुमारों ने कहा:

"यदि उस राज्य में इतनी भयानक घटना घटित हो जाए, तो
सेता लोगों से घिरे हुए यहीं रहो, और हमारे राजा बनो।"
यह राज्य समृद्ध और धनी है, यहाँ की जनता बलवान और महान है:
महोदय, कृपया हमारे साथ रहें और हमारे इस राज्य का शासन संभालें।
वेसंतारा ने कहा:

"हे सेता देश के पुत्रों, मेरी बात सुनो!
मैं निर्वासित होकर जा रहा हूँ, इसलिए यहाँ रुकने का मेरा कोई इरादा नहीं है, न ही यहाँ राज करने का।"
सिवी के सभी लोग यह जानकर बेहद नाराज होंगे
कि आपने मुझे राजा के रूप में अभिषेक किया है, जबकि मैं निर्वासित होकर जा रहा हूँ।
यदि आप ऐसा करते हैं, तो यह बहुत ही अप्रिय बात होगी,
सिवी लोगों से झगड़ा करना: मुझे झगड़ा करना पसंद नहीं है।
आपके द्वारा दिए गए उपहार मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।
परन्तु अब राजा ने मुझे निर्वासित कर दिया है: मैं वामका पर्वत जा रहा हूँ।
आपसे निवेदन है कि मुझे रहने के लिए कोई स्थान बताएँ।
इस प्रकार, इतने सारे अनुरोधों के बावजूद, उस महान सत्ता ने राज्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राजकुमारों ने उनका बहुत सम्मान किया; लेकिन वे नगर में प्रवेश नहीं करना चाहते थे; इसलिए उन्होंने उस कक्ष को सजाया-संवारा जहाँ वे ठहरे थे, और उसके चारों ओर एक बड़ा पलंग लगाकर चारों ओर कड़ी निगरानी रखी। एक दिन और एक रात वे उस कक्ष में पहरेदारों की निगरानी में रहे; और अगले दिन, सुबह तड़के, राजकुमारों द्वारा परोसे गए स्वादिष्ट भोजन के बाद, वे कक्ष से निकले, और साठ हज़ार क्षत्रिय उनके साथ पंद्रह मील (4.23 किमी) तक गए, फिर जंगल के प्रवेश द्वार पर खड़े होकर उन्होंने उनकी शेष पंद्रह मील (4.23 किमी) की यात्रा का वर्णन किया।

"हाँ, हम आपको बताएंगे कि कैसे संसार छोड़ने वाला राजा
अच्छा, अपनी पवित्र अग्नि के पास शांतिप्रिय और सर्वथा शांत हो सकता है।"
हे पराक्रमी राजा, वह पथरीला पर्वत गंधमादन है,
जहाँ आप अपने बच्चों और पत्नी के साथ रह सकते हैं।
सेता जनजाति के लोग, जिनके चेहरे आंसुओं से भीगे हुए हैं और आंखों से आंसू बह रहे हैं,
आपको उत्तर दिशा में सीधे जाने की सलाह देते हैं, जहां इसकी ऊंची चोटियां उठती हैं।
वहाँ आपको विपुल पर्वत दिखाई देगा (और आपके साथ आशीर्वाद हो),
जो अनेक वृक्षों से सुहावना है और नीचे ठंडी छाया प्रदान करता है।
जब तुम वहाँ पहुँचोगे, तो तुम्हें (तुम्हारे साथ एक आशीर्वाद के रूप में)
केतुमती नदी दिखाई देगी, जो एक गहरी नदी है और पहाड़ी से निकलती है।
मछलियों से भरा हुआ, एक सुरक्षित आश्रय स्थल, इसकी गहरी बाढ़ बहती है:
वहाँ तुम पानी पियोगे, वहाँ स्नान करोगे और अपने बच्चों के साथ खेलोगे।
और वहाँ, एक रमणीय पहाड़ी पर, ठंडी छाया में, आपको
शहद जैसे मीठे फलों से लदा हुआ एक भव्य बरगद का वृक्ष दिखाई देगा।
फिर आपको नालिका पर्वत दिखाई देगा, और वह एक प्रेतबाधित भूमि है:
क्योंकि वहां पक्षी एक साथ गाते हैं और कई वन परियां रहती हैं।
उत्तर की ओर और आगे बढ़ने पर मुकालिंडा झील है,
जिस पर नीले और सफेद रंग के लिली के फूल एक आवरण बनाते हैं।
फिर एक घना जंगल, बादल की तरह, जिसमें चलने के लिए घास का मैदान है,
फूलों और फलों से लदे पेड़, ऊपर घनी छाया,
प्रवेश करते हैं: एक शेर शिकार की तलाश में है जिससे वह अपना पेट भर सके।
जब जंगल फूलों से भरा होता है, तो वहां गीतों की बौछार सुनाई देती है,
कई चमकीले पंखों वाले पक्षियों की चहचहाहट इधर-उधर गूंजती है।
और यदि तुम उन पर्वतीय जलप्रपातों का अनुसरण करते हुए उनके उद्‌गम स्थल तक पहुँचोगे, तो
तुम्हें खिले हुए फूलों से ढकी एक झील मिलेगी।

मछलियों से भरा हुआ, एक सुरक्षित रिसॉर्ट, अंतहीन गहरा पानी,
चौकोर और शांत, मीठी सुगंध से भरपूर, अप्रिय गंध से रहित:
वहाँ उत्तर दिशा की ओर थोड़ा हटकर पत्तों से घिरी एक कोठरी बना लो,
और उस कोठरी से भोजन की तलाश में आगे बढ़ो।
इस प्रकार राजकुमारों ने उसे पंद्रह लीग (4.23 किमी) की यात्रा के बारे में बताया और उसे जाने दिया। लेकिन वेसंतारा में किसी भी प्रकार के खतरे से बचने और किसी भी शत्रु को कोई अवसर न देने के उद्देश्य से, उन्होंने अपने देश के एक बुद्धिमान और कुशल व्यक्ति को उसके आने-जाने पर नज़र रखने का निर्देश दिया; जिसे उन्होंने जंगल के प्रवेश द्वार पर छोड़ दिया और अपने शहर लौट गए।

वेसंतारा अपनी पत्नी और बच्चों के साथ गंधमादना के लिए रवाना हुए; उस दिन वहाँ कुछ दिन बिताने के बाद, उत्तर दिशा की ओर मुख करके वे विपुल पर्वत की तलहटी से होते हुए केतुमती नदी के किनारे विश्राम करने के लिए रुके, जहाँ उन्होंने वनपाल द्वारा उपलब्ध कराया गया भरपूर भोजन किया। वहाँ उन्होंने स्नान किया और पानी पिया, तथा अपने मार्गदर्शक को एक सोने की बाली भेंट की। शांत मन से उन्होंने नदी पार की और पर्वत पर समतल स्थान पर खड़े बरगद के वृक्ष के नीचे कुछ देर विश्राम करने के बाद, उसके फल खाकर वे उठे और नालिका नामक पहाड़ी की ओर चल पड़े। आगे बढ़ते हुए, वे मुचलिंडा झील के किनारे-किनारे उसके उत्तर-पूर्वी कोने तक पहुँचे; वहाँ से एक संकरे रास्ते से वे घने जंगल में प्रवेश कर गए और वहाँ से गुजरते हुए, पर्वत से निकलने वाली नदी के प्रवाह का अनुसरण करते हुए वे चौकोर झील तक पहुँचे।

इस समय, देवताओं के राजा सक्का (इंद्र) ने नीचे देखा और जो कुछ हुआ था उसे देखा। उन्होंने सोचा, "महान प्राणी हिमवत (हिमालय) में प्रवेश कर चुके हैं, और उन्हें रहने के लिए कोई स्थान चाहिए होगा।" इसलिए उन्होंने विश्वकर्मा को आदेश दिया: "कृपा करके जाओ और वामका पर्वत की घाटियों में एक रमणीय स्थान पर एक आश्रम बनाओ।" विश्वकर्मा गए और उन्होंने दो ढके हुए रास्तों वाले दो आश्रम बनाए, रात्रि और रात्रि के लिए कमरे बनाए; रास्तों के किनारे उन्होंने फूलों के वृक्षों की कतारें और केले के बाग लगाए और संन्यासियों के लिए सभी आवश्यक चीजें तैयार कीं। फिर उन्होंने एक शिलालेख लिखा, "जो कोई संन्यासी बनना चाहता है, ये उसके लिए हैं," और सभी अमानवीय प्राणियों और कर्कश आवाज वाले जानवरों और पक्षियों को भगाकर वे अपने स्थान पर चले गए।

जब उस महान पुरुष ने एक मार्ग देखा, तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह किसी संन्यासी की बस्ती की ओर जाता होगा। उन्होंने मद्दी और दोनों बच्चों को आश्रम के प्रवेश द्वार पर छोड़ दिया और अंदर चले गए; शिलालेख देखकर उन्होंने पहचान लिया कि सक्का (इंद्र) की दृष्टि उन पर है। उन्होंने द्वार खोला और अंदर प्रवेश किया, अपने धनुष और तलवार को उतारकर, अपने वस्त्रों के साथ संन्यासी का वेश धारण किया, लाठी उठाई और ढके हुए मार्ग पर चलकर आगे-पीछे टहलते हुए पच्चेक बुद्ध की शांति के साथ अपनी पत्नी और बच्चों के पास पहुँचे। मद्दी उनके चरणों में गिर पड़ी और रोने लगी; फिर उनके साथ आश्रम में प्रवेश करके वह अपनी कुटिया में गई और संन्यासी का वेश धारण किया। इसके बाद उन्होंने अपने बच्चों को भी ऐसा ही करने को कहा। इस प्रकार चारों महान संन्यासी वामका पर्वत की एकांत भूमि में निवास करने लगे।

तब मद्दी ने महापुरुष से वरदान माँगा। “हे प्रभु, आप जंगली फल लाने के लिए बाहर जाने के बजाय यहीं बच्चों के साथ रहें; और मुझे जाने दें।” तब से वह जंगल से जंगली फल लाकर तीनों को खिलाने लगी। बोधिसत्व ने भी उससे वरदान माँगा। “मद्दी, अब हम संन्यासी हैं; और स्त्री पवित्रता की दुश्मन है। इसलिए अब से समय से पहले मेरे पास मत आना।” उसने स्वीकार कर लिया।

ईश्वर की करुणा से, यहाँ तक कि उनके सीमा क्षेत्र से तीन मील (4.23 किमी) के दायरे में रहने वाले सभी जंगली जानवर भी एक-दूसरे के प्रति दयालु हो गए। प्रतिदिन सुबह होते ही, मद्दी उठती, उनके लिए पीने का पानी और खाने का भोजन लाती, मुँह धोने के लिए पानी और टूथब्रश लाती, कुटिया की सफाई करती, दोनों बच्चों को उनके पिता के पास छोड़कर, टोकरी, फावड़ा और हुक लेकर जंगली जड़ों और फलों की ढुलाई के लिए जंगल जाती, जिनसे वह अपनी टोकरी भर लेती। शाम को लौटकर वह कुटिया में जंगली फल रखती, बच्चों को नहलाती; फिर चारों कुटिया के द्वार पर बैठकर फल खाते। इसके बाद मद्दी अपने दोनों बच्चों को लेकर अपनी कुटिया में चली जाती। इस प्रकार वे सात महीने तक पर्वत की गहराई में रहे।

उस समय, कलिंग राज्य में, दुन्निवित्था नामक ब्राह्मण गाँव में, जुजक नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा माँगकर सौ रुपये प्राप्त किए और उन्हें एक ब्राह्मण परिवार के पास जमा कर दिया, और अधिक धन कमाने के लिए निकल गया। उसके लंबे समय तक अनुपस्थित रहने के कारण, परिवार ने वह धन खर्च कर दिया; दूसरा परिवार वापस आया और उन्हें डाँटा, लेकिन वे धन लौटा नहीं सके, इसलिए उन्होंने अपनी पुत्री अमिततताापना को उसे दे दिया। वह पुत्री को अपने साथ कलिंग के दुन्निवित्था ले गया और वहाँ रहने लगा। अमिततताापना ब्राह्मण की अच्छी तरह से सेवा करती थी। कुछ अन्य युवा ब्राह्मणों ने उसकी कर्तव्यनिष्ठा देखकर अपनी पत्नियों को यह कहकर ताना मारा: "देखो, वह एक बूढ़े व्यक्ति की कितनी अच्छी तरह से सेवा करती है, जबकि तुम अपने युवा पतियों की परवाह नहीं

करती!" इससे पत्नियों ने उसे गाँव से निकालने का निश्चय कर लिया। इसलिए वे नदी किनारे और हर जगह भीड़ बनाकर उसका अपमान करती थीं।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"एक बार कलिंग में, जुजाका नामक एक ब्राह्मण ने अपना जीवन व्यतीत किया, जिसकी पत्नी अमितततापना नाम की एक बहुत ही युवा लड़की थी।"

जो महिलाएं पानी के घड़े लेकर नदी तक आई थीं, वे उस पर शर्म करने के लिए उमड़ पड़ीं और उसके नाम को बुरी तरह कोसने लगीं।

"तुम्हारी माँ सचमुच एक 'शत्रु' थी, तुम्हारे पिता भी एक 'शत्रु' थे,
जिन्होंने एक बूढ़े, थके-हारे आदमी को तुम्हारे जैसी जवान पत्नी से शादी करने की अनुमति दी।"
तुम्हारे लोगों ने एक गुप्त साजिश रची, एक बुरी, नीच, क्रूर योजना,
एक सुंदर युवती की शादी एक बूढ़े, थके-हारे आदमी से करवाने की।
तुम्हारा जीवन कितना घृणित होगा, तुम्हारी कम उम्र में ही,
एक बूढ़े पति से शादी करना; नहीं, मृत्यु कहीं बेहतर होगी।
मेरी प्यारी बच्ची, ऐसा लगता है कि तुम्हारे माता-पिता निर्दयी थे,
क्योंकि उन्हें इतनी सुंदर युवती के लिए कोई दूसरा पति नहीं मिल सका।
आपकी अग्नि-आहुति और आपकी नौवीं आहुति सब व्यर्थ हो गईं,
यदि किसी बूढ़े, थके-हारे आदमी के हाथों इतनी जवान पत्नी मिल गई।
आपने कभी न कभी किसी ब्राह्मण या तपस्वी का अपमान किया होगा,
किसी गुणी या विद्वान व्यक्ति का, किसी निर्मल संन्यासी का,
यदि किसी बूढ़े और कमजोर आदमी के हाथों आपकी जवान पत्नी का भंडाफोड़ हुआ हो।
भाले का वार दर्दनाक होता है, सांप का ज्वालामय डंक पीड़ादायक होता है:
लेकिन एक थका हुआ पति देखना कहीं अधिक कष्टदायक होता है।
एक बूढ़े पति के साथ न तो कोई खुशी हो सकती है, न कोई आनंद,
न कोई सुखद बातचीत: उसकी हंसी भी देखने में भद्दी लगती है।
जब पुरुष और महिलाएं, युवा आपस में बातचीत करते हैं, तो
वे हृदय में संजोए सभी कष्टों का अंत कर देते हैं।
तुम वो लड़की हो जिसे मर्द चाहते हैं, तुम जवान हो और सुंदर हो:
एक बूढ़ा आदमी तुम्हें कैसे खुशी दे सकता है? घर जाओ और वहीं इंतजार करो!
जब उसने उनका उपहास सुना, तो वह पानी का घड़ा लेकर रोते हुए घर चली गई। "तुम क्यों रो रही हो?" पति ने पूछा; और उसने इस छंद में उत्तर दिया:

"मैं घर पानी नहीं ला सकती, औरतें मेरा इतना मजाक उड़ाती हैं:
क्योंकि मेरे पति बहुत बूढ़े हैं, इसलिए जब मैं जाती हूं तो वे मेरा मजाक उड़ाती हैं।"
जुजाका ने कहा:

"तुम्हें घर से पानी लाने की ज़रूरत नहीं है, तुम्हें मेरी सेवा करने की ज़रूरत नहीं है:
नाराज़ मत हो, मेरी प्रियतमा: क्योंकि मैं खुद चला जाऊंगा।"
महिला ने कहा:

"क्या तुम पानी लाओगे? नहीं, बिलकुल नहीं! यह हमारा सामान्य तरीका नहीं है।
मैं तुम्हें साफ-साफ बता दूं, अगर तुम ऐसा करोगे, तो मैं तुम्हारे साथ नहीं रुकूंगा।"
जब तक आप इस तरह का काम करने के लिए कोई गुलाम या नौकरानी नहीं खरीदते,
मैं आपको साफ-साफ बता देती हूं कि मैं चली जाऊंगी और आपके साथ नहीं रहूंगी।"
जुजाका ने कहा:

"मैं गुलाम कैसे खरीद सकता हूँ? मेरे पास न कोई हुनर है, न अनाज, न धन-दौलत:
आइए, क्रोधित न हों, मेरी मालकिन: मैं आपका काम खुद कर लूँगा।"

महिला ने कहा:

"अब सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैंने उन्हें क्या कहते सुना है।
वामका पर्वत पर राजा वेसंतारा रहते हैं।"
हे पति, वेसंतारा जाओ और उससे एक दास मांगो;
राजकुमार तुम्हें तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी कर देगा।
जुजाका ने कहा:

मैं एक बूढ़ा, थका हुआ आदमी हूँ; रास्ता ऊबड़-खाबड़ और लंबा है;
लेकिन चिंता मत करो, रोओ मत—और मैं बिल्कुल भी मजबूत नहीं हूँ:
लेकिन गुस्सा मत करो, मेरी प्रियतमा: मैं काम खुद कर लूँगा।
महिला ने कहा:

"तुम उस सैनिक की तरह हो जो लड़ाई से पहले ही हार मान लेता है: लेकिन क्यों?
और क्या तुम कोशिश करने से पहले ही यह स्वीकार करते हो कि तुम हार चुके हो?"
जब तक आप इस तरह का काम करने के लिए कोई दासी या नौकरानी नहीं खरीदते,
मैं आपको साफ-साफ बता देती हूँ, मैं चली जाऊँगी, मैं आपके साथ नहीं रहूँगी।
यह आपके लिए बहुत अप्रिय और कष्टदायक होगा।
जब मैं किसी और की बाहों में खुश होऊंगी, तो तुम मुझे जल्द ही देखोगे,
मौसम के बदलाव या चंद्रमा के बदलाव के अनुसार रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजी हुई।
और जैसे-जैसे आपके जीवन के अंतिम वर्षों में आप मेरी अनुपस्थिति पर शोक मनाएंगे,
आपकी झुर्रियां और आपके सफेद बाल और भी अधिक बढ़ते जाएंगे।
इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

और अब भय से ग्रस्त ब्राह्मण अपनी पत्नी की इच्छा के आगे झुक जाता है; तब अपने प्रेम से पीड़ित होकर, आपने उसे यह कहते हुए सुना होगा:

"मेरे लिए रास्ते का सामान लाओ: मेरे लिए कुछ शहद का केक बनाओ,
कुछ बन्नॉक भी तैयार करो, और जौ की रोटी को पकने के लिए रख दो।"
और फिर मैं अपने साथ दो बराबर दासों को लाऊंगा,
जो बिना थके दिन-रात तुम्हारी सेवा करेंगे।"
उसने जल्दी से राशन तैयार किया और उसे सूचित किया कि काम हो गया है। इस बीच उसने अपनी कुटिया की कमजोर जगहों की मरम्मत की, दरवाज़ा बंद किया, जंगल से लकड़ी लाई, घड़े में पानी भरा, सभी बर्तनों में पानी भरा और तपस्वी का वस्त्र पहनकर उससे कहा, "ध्यान रखना कि अनुचित समय पर बाहर मत जाना और मेरे लौटने तक सावधान रहना।" फिर जूते पहनकर उसने राशन का थैला कंधे पर रखा, अपनी पत्नी के चारों ओर दाहिनी ओर घूमा और नम आँखों से विदा हो गया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"यह हो जाने पर, ब्राह्मण अपने जूते पहनता है; फिर तुरंत उठकर, उसके चारों ओर दाहिनी ओर चलते हुए अपनी पत्नी को अलविदा कहता है।"

इसलिए वह पवित्र वस्त्र पहने, आँखों में आँसू लिए, धनी सिवी राजधानी की ओर एक दास की खोज में निकल पड़ा।

जब वह उस शहर में आया, तो उसने वहां मौजूद लोगों से पूछा कि वेसंतारा कहाँ है।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"जब वह आगे बढ़ा, तो उसने आस-पास जमा लोगों से पूछा—
"बताइए, राजा वेसंतारा कहाँ हैं? राजकुमार कहाँ मिल सकते हैं?"
उसके चारों ओर एकत्रित लोगों ने उसे उत्तर दिया:
"तुम्हारे जैसे लोगों के कारण ही वह बर्बाद हो गया है; क्योंकि लगातार दान देने के कारण ही

उसे समस्त लोक से निकाल दिया गया है और वह वामका पर्वत में निवास करता है।"
तुम जैसे लोगों के कारण ही वह बर्बाद हुआ है; क्योंकि लगातार देते रहने के कारण
उसने अपनी पत्नी और बच्चों को खो दिया और अब वामका पहाड़ी पर रहता है।
"तो तुमने हमारे राजा को मार डाला, और अब फिर यहाँ आ गए हो! यहीं खड़े रहो!" और उन्होंने लाठियों, पत्थरों, लातों और घूंसे से उसे भगा दिया। लेकिन देवताओं (देवदूतों) ने उसे वामका पहाड़ी के सही रास्ते पर निर्देशित किया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"इसलिए, पत्नी द्वारा फटकारे जाने पर, वह लालच और वासना के प्रभाव में आकर, उस जंगल में अपनी गलती का प्रायश्चित करने गया जहाँ जंगली जानवर और तेंदु शिकार करते हैं।"

अपनी लाठी, भिक्षापात्र और बलि का चम्मच लेकर, वह उस जंगल में खोजबीन करने लगा जहाँ सभी वरदानों के दाता निवास करते थे।

जंगल में पहुँचते ही, भेड़िये उसके रास्ते में उमड़ पड़े: वह एक तरफ कूद गया, और भ्रमित होकर रास्ते से बहुत दूर भटक गया।

इस बेलगाम लोभ वाले ब्राह्मण ने जब स्वयं को भटका हुआ पाया, और वामका का मार्ग पूरी तरह खो गया, तो उसने ये पंक्तियाँ कहना शुरू किया।

"कौन मुझे वेसंतारा के बारे में बताएगा, वह सर्वविजयी राजकुमार,
भय के समय शांति देने वाला, महान और शक्तिशाली राजा?"
दूल्हों के आश्रय का स्थान, जैसे पृथ्वी सभी जीवित प्राणियों के लिए है,
कौन मुझे महान और शक्तिशाली राजा वेसंतारा के बारे में बताएगा?
कृपा चाहने वाले सभी लोग उसके पास वैसे ही जाते हैं जैसे नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं:
मुझे वेसंतारा, उस महान और शक्तिशाली राजा के बारे में कौन बताएगा?
एक शांत और सुखद झील की तरह, जिसका पानी ताजा और ठंडा है,
जिस पर लिली के फूल फैले हुए हैं, जिनकी लताएँ शांत तालाब को ढक लेती हैं:
कौन मुझे महान और शक्तिशाली राजा वेसंतारा के बारे में बताएगा?
जैसे सड़क पर एक विशाल अंजीर का पेड़ होता है, जो वहाँ उगकर
थके हुए यात्रियों को अपनी छाया में विश्राम देता है:
कौन मुझे वेसंतारा के बारे में बताएगा, वह महान और शक्तिशाली राजा?
बरगद, साल या आम के पेड़ की तरह, जो रास्ते में
थके हुए यात्रियों को अपनी छाया में आराम करने की जगह देता है:
कौन मुझे महान और शक्तिशाली राजा वेसंतारा के बारे में बताएगा?
मेरी शिकायत कौन सुनेगा, चारों ओर फैला जंगल?
मुझे खुशी है कि वह कहाँ मिल सकता है!
मेरी शिकायत कौन सुनेगा, इस घने जंगल में?
अगर कोई बता सके कि वह कहाँ मिल सकता है, तो यह बहुत बड़ी कृपा होगी।
अब पहरा देने के लिए तैनात व्यक्ति, जो वनपाल के रूप में जंगल में घूम रहा था, ने यह दुख भरी चीख सुनी; और उसने सोचा—

“यहाँ एक ब्राह्मण वेस्संतारा के निवास स्थान के बारे में पुकार रहा है; वह किसी अच्छे उद्देश्य से यहाँ नहीं आया होगा। वह निश्चित रूप से मद्दी या बच्चों को माँगेगा। खैर, मैं उसे मार डालूँगा।” यह कहकर वह उस व्यक्ति के पास पहुँचा और जैसे ही उसने अपना धनुष निकाला, उसे इन शब्दों से धमकाया—“ब्राह्मण, मैं तुम्हारी जान नहीं बख्शूँगा!”

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

जंगल में भटक रहे शिकारी ने यह विलाप सुना और कहा:

"तुम्हारे जैसे लोगों के कारण ही वह बर्बाद हो गया है; क्योंकि लगातार दान देने के कारण ही
उसे समस्त लोक से निकाल दिया गया है और वह वामका पर्वत में निवास करता है।"
तुम जैसे लोगों के कारण ही वह बर्बाद हुआ है; क्योंकि लगातार देते रहने के कारण
उसने अपनी पत्नी और बच्चों को खो दिया और अब वामका पहाड़ी पर रहता है।

अगर तुम घर छोड़कर जंगलों में राजकुमार की तलाश में जाना चाहते हो, तो तुम सरासर निकम्मे मूर्ख हो, ठीक वैसे ही जैसे कोई सारस मछली की तलाश में जाता है।
इसलिए, मेरे वीर पुरुष, मैं तुम्हारे जीवन को नहीं बख्शूंगा; और इसलिए
जब मेरा तीर मेरे धनुष से निकलेगा, तो वह तुम्हारा रक्त पिएगा।
मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा, तुम्हारा दिल और जिगर निकाल लूंगा,
जैसे सड़क के पक्षियों को आत्माओं के लिए बलिदान किया जाता है, मैं तुम्हें बलिदान कर दूंगा।
मैं तुम्हारा मांस ले लूंगा, तुम्हारी चर्बी ले लूंगा, तुम्हारा दिल और दिमाग ले लूंगा,
और तुम्हारी मृत्यु होते ही तुम बलिदान हो जाओगे।
तुम एक स्वीकार्य बलिदान, एक बड़ी भेंट बनोगे;
और तब तुम राजा की पत्नी और बच्चों को नष्ट नहीं करोगे।"
ये शब्द सुनकर वह व्यक्ति बुरी तरह भयभीत हो गया और उसने झूठा जवाब दिया।

"राजदूत का कोई अंग नहीं छिना चाहिए, और कोई भी व्यक्ति उसकी हत्या नहीं कर सकता:
यह एक बहुत पुराना नियम है; इसलिए, यदि आप चाहें तो सुनिए।"
लोगों को अपने किए पर पछतावा है, उसके पिता उसे याद करते हैं,
उसकी माँ शोक से व्याकुल है—उसकी आँखें धुंधली होती जा रही हैं।
मैं उनका राजदूत बनकर वेसंतारा को लेकर आया हूँ:
मेरी बात सुनो, और मुझे बताओ कि क्या तुम जानते हो कि मुझे राजा कहाँ मिल सकता है।
तब उस व्यक्ति को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि वह वेसंतारा को लेने आया है; उसने अपने कुत्तों को बांधा और ब्राह्मण को नीचे बुलाया, और उसे टहनियों के ढेर पर बैठाकर यह श्लोक सुनाया:

"मैं दूत और राजकुमार से प्रेम करता हूँ: और मैं तुम्हें
स्वागत का उपहार देता हूँ—हिरण की टांग और शहद का घड़ा भी;
हमारे सहायक को कैसे ढूँढना है, मैं तुम्हें बताऊँगा कि क्या करना है।"
ऐसा कहकर उस व्यक्ति ने ब्राह्मण को भोजन दिया, जिसमें शहद से भरा एक लौकी और हिरण की भुनी हुई टांग शामिल थी, और उसे विदा करते हुए अपना दाहिना हाथ उठाकर उस स्थान की ओर इशारा किया जहाँ महान सत्ता निवास करती थी: और उसने कहा--

"हे ब्राह्मण, उस पथरीले पर्वत के ऊपर गंधमदन पर्वत है,
जहाँ आज भी राजा वेसंतारा अपनी पत्नी और बच्चों के साथ निवास करते हैं।"
ब्राह्मण के वस्त्र पहने, हुक और चम्मच लिए, तपस्वी के जटाधारी बालों के साथ,
वह चमड़ी से ढके हुए जमीन पर लेटा हुआ है और सावधानीपूर्वक अग्नि की देखभाल कर रहा है।
उधर देखो, पहाड़ की ढलान पर हरे-भरे, फलों से लदे पेड़,
जबकि गहरे रंग की पर्वत चोटियाँ ऊपर उठती हुई बादलों में छिप जाती हैं।
वहाँ झाड़ियाँ, लताएँ, होरौर, साल और कई अन्य पेड़
हवा में ऐसे झूमते हैं जैसे कोई नशे में धुत आदमी हो, जिन्हें कोई भी देख सकता है।
पेड़ों की कतारों के ऊपर ऊँचाई पर पक्षी एक साथ गाते हैं,
नज्जुहा, कोयल, उनके झुंड, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते हैं।
पत्तों से भरी टहनियों के बीच भीड़ लगाकर वे अजनबी को आने के लिए कहते हैं,
अतिथि का स्वागत करते हैं, उन सभी को प्रसन्न करते हैं जो जंगल को अपना घर बनाते हैं,
जहाँ अब राजा वेसंतारा अपने बच्चों के साथ निवास करते हैं।
ब्राह्मण के वस्त्र पहने, हुक और चम्मच लिए, तपस्वी के जटाधारी बालों के साथ,
वह चमड़ी से ढके हुए जमीन पर लेटा है और बड़ी सावधानी से अग्नि की देखभाल कर रहा है।
इसके अलावा उन्होंने आश्रम की प्रशंसा करते हुए कहा:

"आम, गुलाब सेब, कटहल, साल, सभी प्रकार के चेरी बेर,
बो, गोल्डन टिंडूक, और भी बहुत कुछ, जिनमें बरगद भी शामिल है;
ढेरों अंजीर, सभी नीचे उग रहे हैं, सभी पके हुए, बेहद मीठे,
खजूर, स्वादिष्ट अंगूर और शहद, जितना आप खा सकते हैं उतना।

आम के कुछ पेड़ फूलों से लदे हैं, कुछ पर फल अभी-अभी लगे हैं,
कुछ फल पूरी तरह से पके और हरे हैं, जबकि कुछ अभी कच्चे हैं।
एक व्यक्ति पेड़ों के नीचे खड़ा होकर उन्हें उगते ही तोड़ सकता है:
पके और कच्चे दोनों प्रकार के फलों में सबसे उत्तम स्वाद, रंग और सुगंध दिखाई देती है।
उस महान और अद्भुत दृश्य को देखकर मेरी आंखों में आंसू आ जाते हैं,
मानो वह स्वर्ग हो जहां देवता (देवदूत) निवास करते हैं, आनंद का बगीचा हो।
उस ऊंचे जंगल में ताड़, खजूर और नारियल के पेड़ उगते हैं,
फूलों की मालाएं झंडों की तरह लहराती हैं,
हर रंग और रंग के फूल आकाश में तारों की तरह खिलते हैं।
आबनूस, एलोवेरा, तुरही के फूल और कई अन्य पेड़,
बबूल, बेर, मेवे और सब कुछ जितना घना हो सकता है उतना घना है।
पास ही में एक झील है जो नीले और सफेद लिली के फूलों से ढकी हुई है,
मानो देवताओं (देवदूतों) के बगीचे में हो, आनंद के बगीचे में।
और वहाँ कोयल अपने गीत से पहाड़ियों को गूंजने देती हैं,
फूलों के ऋतु में खिलने के नशे में चूर।
लिली के फूलों पर बूंद-बूंद करके शहद का रस गिरता देखो,
और दक्षिण और पश्चिम से बहती हुई ठंडी हवाओं को महसूस करो,
जब तक कि फूलों का पराग चारों ओर न फैल जाए।
झील के किनारे खूब सारे पके हुए चावल और बेर गिरते हैं,
जिन्हें मछलियाँ, केकड़े और कछुए बड़े चाव से खोजते हैं,
और फूलों से शहद दूध या घी की तरह टपकता है।
पेड़ों के बीच से अक्सर एक हल्की हवा बहती है, जहाँ हर तरह की सुगंध पाई जाती है,
और ऐसा लगता है कि यह हवा चारों ओर के जंगल को फूलों से मदहोश कर देती है।
सुगंधित फूलों के चारों ओर मधुमक्खियाँ भिनभिनाती हुई झुंड में उड़ती हैं,
वहाँ कई रंगों के पक्षी एक साथ उड़ते हैं, सभी और कुछ,
आनंद से कूकते और चहकते हुए, प्रत्येक अपने साथी के साथ आते हैं।
"ओह प्यारी चिकी, खुशमिजाज!" वे चहचहाते हैं और ट्वीट करते हैं--
ओह प्यारी, प्रिय, मेरी प्यारी छोटी सी मीठी!"
फूलों की मालाएँ ऐसे सजी हैं जैसे ध्वज फहराते हैं,
हर रंग और प्रकार के फूल खिले हैं, मीठी सुगंध हवा में तैर रही है,
जहाँ राजा वेसंतारा अपने बच्चों के साथ निवास करते हैं।
ब्राह्मणों के वस्त्र पहने, काँटे और चम्मच लिए, तपस्वी की जटाओं में
लिपटे, वे चमड़ी से ढके हुए जमीन पर लेटे हैं और बड़ी सावधानी से अग्नि की देखभाल कर रहे हैं।
इस प्रकार उस ग्रामीण ने उस स्थान का वर्णन किया जहाँ वेसंतारा रहता था; और जुजाका ने प्रसन्न होकर इस श्लोक में उसे प्रणाम किया:

"शहद में भीगी हुई जौ की रोटी का यह टुकड़ा
और अच्छी तरह से पके हुए शहद के केक के टुकड़े स्वीकार करो: मैं तुम्हें यह खाने के लिए देता हूँ।"
इस पर उस ग्रामीण ने उत्तर दिया:

"मैं आपका धन्यवाद करता हूँ, लेकिन मुझे कोई आवश्यकता नहीं है: आप अपना भंडार अपने पास रखें;
और मेरा भंडार ले लें; फिर हे ब्राह्मण, जहाँ चाहो वहाँ चले जाओ।"
सीधा आगे एक आश्रम की ओर जाने वाला मार्ग है,
जहाँ अच्चत नामक एक तपस्वी निवास करता है, जिसके दाँत काले हैं, सिर मैला है,
ब्राह्मणों के वस्त्र पहने, काँटे और चम्मच से तपस्वी के जटाधारी बाल हैं,
वह चमड़ी से ढका हुआ जमीन पर लेटकर बड़ी सावधानी से अग्नि की देखभाल करता है:
वहाँ जाओ, उससे मार्ग पूछो, और वह तुम्हें शीघ्रता से मार्ग दिखाएगा।
यह सुनकर ब्राह्मण चेता के चारों ओर दाहिनी ओर घूमा और अत्यंत प्रसन्न हृदय से अच्चता की खोज में चल पड़ा।

तब भारद्वाज चलते-चलते उस ऋषि के स्थान के निकट पहुँचे और उनसे इस प्रकार विनम्रतापूर्वक बात की:

"हे पवित्र पुरुष, मुझे विश्वास है कि आप समृद्ध और कुशल हैं,
आपके निवास स्थान में अनाज की भरपूर फसल और फल-सब्जियां प्रचुर मात्रा में हैं।"
क्या आप मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं,
या जंगली जानवरों से आपको कोई खतरा नहीं रहा है?
तपस्वी ने कहा:

"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, ब्राह्मण—हाँ, मैं समृद्ध और स्वस्थ हूँ,
मेरे निवास स्थान में खाने के लिए अनाज और भरपूर मात्रा में जड़ और फल हैं।"
मुझे मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से कोई परेशानी नहीं होती,
और जंगली शिकारी जानवरों से मुझे यहाँ कोई खतरा नहीं होता।
इस धरती पर मैंने जितने भी साल बिताए हैं,
उनमें से मेरी जानकारी में आज तक यहाँ कोई भी हानिकारक बीमारी नहीं पाई गई है।
हे ब्राह्मण, आपका स्वागत है! ईश्वर आपको इस मार्ग पर ले आए, इसके लिए ईश्वर आपको आशीर्वाद दें।
आइए, आशीर्वाद के साथ प्रवेश करें, और कृपया अपने चरण धो लें।
तिंडूक और पियाल के पत्ते, और कसुमारी की मिठाई,
और शहद जैसे फल, ब्राह्मण, मेरे पास जो सबसे अच्छे हैं, उन्हें ले लो और खाओ।
और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, पहाड़ी पर छिपी हुई इस गुफा से निकलने वाला यह शीतल जल,
यदि आपकी इच्छा हो तो इसे ग्रहण करें।
जुजाका ने कहा:

"आपकी भेंट और आहुति स्वीकार है, महोदय।
मैं संजय के पुत्र की तलाश में हूँ, जिसे
शिवी के लोगों ने एक बार बहुत दूर निर्वासित कर दिया था: यदि आप जानते हैं कि वह कहाँ रहता है, तो कृपया बताएँ।"
तपस्वी ने कहा:

"महाराज, आप सिवी के राजा को अच्छे इरादे से नहीं खोज रहे हैं:
मुझे लगता है कि आपकी असली इच्छा उनकी पत्नी पर टिकी है।"
" दासी के लिए कन्हाजिना, सेवक के लिए जली,
या यदि संभव हो तो तुम माँ को उसके बच्चों सहित ले आओ,
राजकुमार को यहाँ कोई सुख-सुविधा नहीं है, न धन है न भोजन, मेरे सेवक।"
यह सुनकर जुजाका ने कहा:

मैं किसी का बुरा नहीं चाहता, न ही किसी से कोई वरदान मांगने आया हूँ:
परन्तु अच्छे लोगों को देखना अच्छा लगता है, उनके साथ रहना सुखद होता है।
मैंने इस सम्राट को कभी नहीं देखा, जिसे उसकी प्रजा ने भगा दिया था;
मैं उससे मिलने आया हूँ; यदि आप जानते हैं कि वह कहाँ रहता है, तो कृपया बताएँ।
दूसरे ने उसकी बात मान ली। "अच्छा, मैं तुम्हें बताता हूँ; बस आज यहीं मेरे साथ रहो।" इसलिए उसने उसे जंगली फल और जड़ें खिलाकर उसका सत्कार किया; और अगले दिन, हाथ बढ़ाकर, उसने उसे रास्ता समझाया। (फिर वह ऊपर दिए गए श्लोक, पृष्ठ 274, "श्री ब्राह्मण--सावधानी से" का पाठ करता है और आगे कहता है:)

"उस सुंदर स्थान पर मिर्च के पेड़ की पत्तियाँ दिखाई देती हैं,
धूल कभी ऊपर नहीं उड़ती, घास हमेशा हरी रहती है।"
मोर की गर्दन जैसी घास, छूने में मुलायम रुई जैसी,
कभी चार इंच से ज्यादा नहीं बढ़ती, लेकिन हमेशा उतनी ही बढ़ती है जितनी ज़रूरी होती है।
कपित्था, आम, गुलाब सेब और पके अंजीर नीचे लटक रहे हैं;
उस सुंदर जंगल में वे सभी पेड़ उगते हैं जिनके फल खाने में अच्छे होते हैं।
वहाँ नीले रंग की तरह मीठी, स्वच्छ और सुगंधित धाराएँ बहती हैं,

जिनमें मछलियों के झुंड ऊपर-नीचे खेलते हुए जाते हैं।
एक रमणीय स्थान पर एक झील स्थित है, जिसमें नीले और सफेद रंग के लिली के फूल खिले हैं,
बिल्कुल पास में, जैसे स्वर्ग में आनंद का बगीचा हो।
उस झील में तीन प्रकार की लिली पाई जाती हैं, जो देखने में बेहद खूबसूरत लगती हैं, उनके
रंग अलग-अलग हैं: कुछ नीली हैं, कुछ गहरे लाल रंग की हैं, और कुछ सफेद हैं।
इस प्रकार उन्होंने लिली के फूलों से भरी चौकोर झील की प्रशंसा की, और फिर मुकालिंडा झील की प्रशंसा करते रहे:

"वहाँ के फूल लिनन की तरह कोमल हैं, वे नीले और सफेद लिली के फूल,
और अन्य जड़ी-बूटियाँ वहाँ उगती हैं: झील का नाम मुकालिंडा है।"
और वहाँ आपको असंख्य खिले हुए फूल दिखाई देंगे, जो
गर्मी और सर्दी दोनों में घुटने तक ऊँचे होते हैं।
रंग-बिरंगे फूल हमेशा हवा में अपनी सुगंध बिखेरते रहते हैं,
और आप उस सुगंध से आकर्षित होकर मधुमक्खियों की भिनभिनाहट सुन सकते हैं।
जल के किनारे चारों ओर कतार में
आबनूस, तुरही के फूल और ऊंचे कदंबा के पेड़ खड़े हैं।
छह पंखुड़ियों वाले और कई अन्य पेड़ जिन पर फूल खिले हुए हैं,
और झील के चारों ओर पत्तों के गुच्छे दिखाई देते हैं।
वहाँ हर आकार और प्रकार के पेड़ हैं, हर रंग के फूल हैं,
ऊँची-नीची सभी झाड़ियाँ और पौधे दूर-दूर तक फैले हुए हैं।
सफेद, नीले और लाल फूलों की मीठी सुगंध हवा में फैल जाती है,
जो उस कुटिया के चारों ओर उगते हैं जिसमें आग जलाई जाती है।
पानी के किनारे के चारों ओर कई पौधे और पेड़ उगते हैं,
जो मधुमक्खियों की भिनभिनाहट से गूंजते हुए कांपते हैं।
उस तट पर उगने वाले सभी सुंदर फूलों की सुगंध
एक या दो सप्ताह या उससे अधिक समय तक बनी रहेगी यदि आप उन्हें संभाल कर रखें।
इस झील में तीन प्रकार के लौकी उगते हैं, जो सभी अलग-अलग हैं, और कुछ के
फल पानी के घड़े जितने बड़े होते हैं, जबकि अन्य के फल ढोल जितने बड़े होते हैं।
सरसों, हरा लहसुन, तोड़ने के लिए नीले लिली और पूरी तरह खिले हुए फूल,
चमेली, मीठा चंदन, पेड़ों पर फैली विशाल लताएँ उगती हैं।
मीठी चमेली, कपास, नील और अनेक नामों वाले पौधे, जैसे कि
जलकुटी, तुरही का फूल, चारों ओर सुनहरी लौ की जीभों की तरह उगते हैं।
हाँ, पानी में या ज़मीन पर उगने वाले हर प्रकार के फूल,
देखो, वे इस सुंदर झील में और इसके आसपास खड़े हैं।
वहां मगरमच्छ और हर तरह के जलीय जीव रहते हैं,
लाल हिरण और अन्य जानवर पानी की तलाश में वहां जाते हैं।
हल्दी, कपूर, पैनिक-सीड, मुलेठी का पौधा और सभी
सबसे सुगंधित बीज और घासें बहुत लंबे डंठलों के साथ उगती हैं।
वहाँ शेर, बाघ, हाथी साथी की तलाश में हैं,
लाल और चित्तीदार हिरण, सियार, कुत्ते और हिरण के बच्चे तेज चाल से दौड़ रहे हैं।
याक, मृग, उड़ने वाली लोमड़ी, बड़े और छोटे बंदर,
भालू, बैल और अन्य शक्तिशाली जानवर झुंड में एक साथ आते हैं:
गैंडा, नेवला, गिलहरी, जंगली सूअर, कुत्ता, सियार, भैंस,
लोरिस, खरगोश, चित्तीदार पैंथर, भेड़िया और छिपकली, ये रहे:
मकड़ियां, सांप, रोएंदार जीव और हर तरह के पक्षी,
जो चहचहाते और चहकते हुए अपनी आवाजें चारों ओर बिखेरते हैं:
बाज़, वुडकॉक, बगुला, पाइपर, उल्लू, बांसुरी की आवाज़ वाला कोयल,
तीतर, हंस, ओस्प्रे (मछली बाज़), फ़ीज़ेंट पक्षी,
सारस और रेडबैक भी इसी राह पर चलते हैं।

वहाँ सुंदर रंगों वाले जीव अपने साथियों के लिए मधुर गीत गाते हैं,
सफेद गुच्छेदार, नीली गर्दन वाले, मोर के रंग के अपने सुंदर पंख फड़फड़ाते हैं।
मुझे उनके हज़ारों नामों को विस्तार से सुनाने की कोशिश क्यों करनी चाहिए?
हर तरह के पक्षी की कल्पना करो और उन्हें अपनी कविता में जोड़ो।
वहाँ एक मधुर समूह अपने हजारों गीत गाता है
और मुकालिंडा झील के चारों ओर के वातावरण को सुखद ध्वनि से भर देता है।
जंगल हाथियों, मृगों और हिरणों से भरा हुआ है,
जहाँ सभी पेड़ों से बड़ी-बड़ी लताएँ लटकती हुई दिखाई देती हैं।
वहाँ सरसों उगती है, गन्ना उगता है, कई प्रकार के चावल उगते हैं,
और फलियाँ और अन्य पौधे और जड़ी-बूटियाँ भी उगती हैं, जो सभी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं।
वहाँ से पगडंडी सीधे उसके निवास स्थान तक ले जाती है
जहाँ न भूख है, न प्यास है और न ही कोई अरुचि है,
जहाँ अब राजा वेसंतारा अपने बच्चों के साथ निवास करते हैं।
ब्राह्मण के वस्त्र पहने, हुक और चम्मच लिए, तपस्वी के जटाधारी बालों के साथ,
वह चमड़ी से ढके हुए जमीन पर लेटा है और बड़ी सावधानी से अग्नि की देखभाल कर रहा है।
यह सुनकर ब्राह्मण उसके चारों ओर से दाहिनी ओर चलकर
वेसंतारा की खोज में निकल पड़ा, उसका हृदय अत्यंत प्रसन्न था।
जुजाका, साधु अक्काता द्वारा बताए गए मार्ग पर आगे बढ़ा और चौकोर झील पर पहुँचा। उसने सोचा, "अब शाम ढल चुकी है। मद्दी अब तक जंगल से लौट आई होगी, और स्त्रियाँ तो हमेशा रास्ते में आती ही हैं। कल जब वह जंगल में चली जाएगी, तो मैं वेसंतारा के पास जाऊँगा और उससे बच्चों के बारे में पूछूँगा, और उसके लौटने से पहले ही मैं वहाँ से चला जाऊँगा।" इसलिए वह पास ही स्थित एक समतल पहाड़ी पर चढ़ गया और एक सुखद स्थान पर लेट गया। अगली सुबह भोर में, मद्दी ने एक सपना देखा, और उसका सपना कुछ इस प्रकार था: पीले वस्त्रों से ढके एक काले आदमी ने, जिसके दोनों कानों में लाल फूल थे, पत्तों की झोपड़ी में प्रवेश किया, मद्दी के बालों को पकड़कर उसे बाहर घसीटा, उसे पीछे की ओर जमीन पर पटक दिया, और उसकी चीखों के बीच उसकी दोनों आँखें निकाल लीं, दोनों भुजाएँ काट दीं, उसका सीना चीर दिया, और खून से लथपथ उसका दिल निकालकर ले गया। वह भयभीत होकर जाग उठी और सोचने लगी—"मैंने एक बुरा सपना देखा है; यहाँ मेरे सपने की व्याख्या करने के लिए वेसंतारा के सिवा कोई नहीं है, इसलिए मैं उससे ही पूछूँगी।" फिर वह महापुरुष की कुटिया में गई और उसने दरवाजा खटखटाया। "कौन है?" "मैं, महाराज, मद्दी।" "देवी, आप यहाँ असमय क्यों आ गई हैं और हमारा वादा क्यों तोड़ दिया है?" "महापुरुष, मैं इच्छा से नहीं आई हूँ; बल्कि मैंने एक बुरा सपना देखा है।" "तो मुझे बताओ, मद्दी।" उसने जैसा सपना देखा था, वैसा ही बताया: महापुरुष सपने का अर्थ समझ गया। "मेरे दान की पूर्णता पूरी होने वाली है," उसने सोचा: "आज एक वर मेरे बच्चों को माँगने आया है। मैं मद्दी को दिलासा दूँगा और उसे जाने दूँगा।" इसलिए उसने कहा, "तुम्हारा मन शायद बेचैन नींद या अपच से विचलित हो गया होगा; डरने की कोई बात नहीं।" इस छल से उसने उसे दिलासा दिया और उसे जाने दिया। और जब रात ढल गई, तो उसने वह सब किया जो करना आवश्यक था, बच्चों को गले लगाया और चूमा, और कहा, "कल रात मुझे एक बुरा सपना आया था; सावधान रहना, मेरे प्यारे बच्चों!" फिर उसने उन्हें उस महान शक्ति के हवाले कर दिया, उनसे उनकी देखभाल करने की विनती की, अपनी टोकरी और औजार लिए, अपने आंसू पोंछे, और फल और जड़ें लाने के लिए जंगल की ओर चल पड़ी।

लेकिन जुजाका ने सोचा कि अब वह चली गई होगी, इसलिए वह पहाड़ी से नीचे उतरकर आश्रम की ओर जाने वाले रास्ते पर चल पड़ा। और वह महान पुरुष अपनी कुटिया से बाहर आया और सोने की मूर्ति जैसी एक शिला पर बैठ गया। "अब तो वर आएगा!" वह एक शराबी की तरह, जो पानी के लिए तरस रहा हो, सोचने लगा और उस रास्ते को देखने लगा जिससे वह आएगा, उसके बच्चे उसके पैरों के पास खेल रहे थे। और जैसे ही उसने रास्ते पर नीचे देखा, उसने ब्राह्मण को आते हुए देखा; मानो सात महीनों से दिए गए अपने दान का बोझ उठाते हुए, वह खुशी से चिल्लाया—"ब्राह्मण, कृपया पास आइए!" और बालक जली को उसने यह श्लोक संबोधित किया:

"जाली, उठो और खड़ी हो जाओ: देखो, मेरे सामने एक ब्राह्मण है!
पुराने दिन फिर लौट आए हैं, और मुझे आनंद से भर देते हैं!"
यह सुनकर लड़का कहता है:

"जी हां, मेरे पिता, मैं उस ब्राह्मण को देख रहा हूँ जिसे आप देख रहे हैं;
वह मानो वरदान मांगने आया है; वह अवश्य ही हमारा अतिथि होगा।"
और इन शब्दों के साथ, उनका सम्मान करते हुए, लड़का अपनी सीट से उठा और ब्राह्मण से मिलने गया, और उनका सामान देने की पेशकश की। ब्राह्मण ने उसे देखा और सोचा, "यह ज़रूर वेस्सन्तारा का पुत्र जली होगा: मैं शुरू से ही इससे सख्ती से बात करूँगा।"

इसलिए उसने अपनी उंगलियाँ उसकी ओर इशारा करते हुए कहा—"चले जाओ, चले जाओ!" लड़के ने सोचा, "यह तो वाकई एक कठोर व्यक्ति है!" और उसके शरीर को देखकर उसने उसमें एक पुरुष के अठारह दोष देखे। लेकिन ब्राह्मण बोधिसत्व के पास आया और विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन करते हुए कहा, "

"हे पवित्र पुरुष, हमें विश्वास है कि आप समृद्ध और कुशल हैं,
आपके निवास स्थान में अनाज की भरपूर फसल हो और जड़ और फल भी प्रचुर मात्रा में हों।"
क्या आप मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं,
या जंगली जानवरों से आपको कोई खतरा नहीं रहा है?
बोधिसत्व ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, ब्राह्मण, और उत्तर देता हूँ: हम समृद्ध हैं और कुशल हैं,
हमारे पास अनाज इकट्ठा करने के लिए है और जहाँ हम रहते हैं वहाँ भरपूर मात्रा में जड़ें और फल हैं।"
मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से हमें कोई परेशानी नहीं होती,
और जंगली शिकारी जानवरों से हमें यहाँ सुरक्षा प्राप्त है।
सात महीने हम इस जंगल में सुखपूर्वक रहे हैं, और हमने
एक बार भी किसी ब्राह्मण को नहीं देखा, जैसा कि हम अब आपको देखते हैं, आप ईश्वर के समान हैं,
विल्वा-डंडा, माचिस की डिब्बी और जलपात्र लिए हुए।
हे ब्राह्मण, आपका स्वागत है! सौभाग्यवश आप इस मार्ग पर आए;
आइए, आशीर्वाद के साथ प्रवेश करें, और कृपया अपने चरण धो लें।
तिंडूक और पियाल के पत्ते, कसुमरी की मिठाई,
और शहद जैसे फल, ब्राह्मण, मेरे पास जो सबसे अच्छा है, उसे ले लो और खाओ।
और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, पहाड़ी पर छिपी इस गुफा से निकलने वाला यह शीतल जल,
यदि आपकी इच्छा हो तो इसे ग्रहण करें।
इन शब्दों के बाद, उस महान प्राणी ने सोचा: "यह ब्राह्मण बिना किसी कारण के इस विशाल वन में नहीं आया है; मैं उससे शीघ्र ही कारण पूछूंगा"; और उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:

"अब मुझे बताओ कि इसका क्या कारण हो सकता है, वह वजह क्या हो सकती है,
जो तुम्हें इस विशाल जंगल में ले आई है? मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि मुझे इसका कारण बताओ।"
जुजाका ने कहा:

"जैसे एक बड़ी बाढ़ कभी सूखती नहीं,
वैसे ही आप, जिनसे मैं विनती करने आया हूँ—कृपया मुझे अपने बच्चे दे दीजिए!"
यह सुनकर महान सत्ता अत्यंत प्रसन्न हुई और बोली, मानो कोई अपने फैले हुए हाथ में हजार सिक्कों से भरा पर्स रख रहा हो।

"मैं देता हूँ, वापस नहीं लेता: तुम उनके स्वामी रहोगे। लेकिन मेरी रानी
आज सुबह हमारे लिए भोजन लेने गई हैं; शाम को वह दिखाई देंगी।"
आज रात यहीं ठहरो: सुबह की रोशनी तुम्हें तुम्हारे रास्ते पर ले जाएगी।
वह उन्हें धोएगी, इत्र लगाएगी और फूलों की माला पहनाएगी।
आज रात यहीं ठहरिए: सुबह की रोशनी आपको आपके रास्ते पर ले जाएगी।
वे दोनों फूलों से सजे होंगे, मीठी खुशबू से महकेंगे;
उन्हें ले जाइए, और खाने के लिए खूब सारे फल और जड़ें ले जाइए।
जुजाका ने कहा:

"नहीं, हे सर्वशक्तिमान सम्राट, मैं जाऊंगा; मैं यहां रुकना नहीं चाहता:
मैं जाऊंगा, अन्यथा रास्ते में कोई बाधा मुझे रोक देगी।"
महिलाएं उदार दानदाता नहीं होतीं, वे हमेशा रोकने की कोशिश करती हैं,
वे तरह-तरह के चालाकी भरे मंत्र जानती हैं, और हमेशा असफल हो जाती हैं।
जो विश्वास से दान देता है, उसे अपनी माँ का चेहरा न देखने दो,
अन्यथा वह बाधाएँ उत्पन्न करेगी: हे राजा, मैं तेज़ गति से चलूँगा।

मुझे अपने बच्चे दे दो; उन्हें उनकी माँ का चेहरा न देखने दो:
क्योंकि जो विश्वास के साथ दान देता है, उसका पुण्य तेजी से बढ़ता है।
मुझे अपने बच्चे दे दो; उन्हें अपनी माँ का चेहरा न देखने दो:
जो मुझ जैसे को धन देता है, वह सीधे स्वर्ग की ओर जाता है।
वेसंतारा ने कहा:

"यदि आप मेरी पत्नी को नहीं देखना चाहते, तो वह एक वफादार पत्नी है!
जाली और कन्हाजिना को उनके दादा के पास जाकर देखने दीजिए।"
जब ये सुंदर, मधुर वाणी वाले बच्चे उसकी दृष्टि में आएंगे, तो
वह तुम्हें प्रचुर धन, आनंद और परम प्रसन्नता प्रदान करेगा।
जुजाका ने कहा:

मुझे अपने माल के नष्ट होने का डर है: हे राजकुमार, मैं आपसे विनती करता हूँ, मेरी बात सुनिए!
मुझे डर है कि राजा मुझे दंडित कर सकता है, मार सकता है या बेच सकता है;
धन और नौकरों के बिना, मेरी पत्नी मेरा कितना उपहास करेगी और मेरा मज़ाक उड़ाएगी!
वेसंतारा ने कहा:

जब ये सुंदर, मधुर वाणी वाले बच्चे उसकी दृष्टि में आएंगे, तो
सिवी जाति के पालक राजा, जो हमेशा सही का पक्ष लेते हैं,
तुम्हें प्रचुर धन-दौलत देंगे, जो सुख और आनंद से भरपूर होगी।
जुजाका ने कहा:

"नहीं, नहीं, मैं वह काम नहीं करूंगा जो आप सुझा रहे हैं:
मैं बच्चों को अपनी पत्नी के पास नौकरों की तरह सेवा के लिए ले जाऊंगा।"
ये कठोर शब्द सुनकर बच्चे झोपड़ी के पीछे दुबक गए और भागकर झाड़ियों के एक झुंड के पास छिप गए। वहाँ भी उन्हें लगा मानो जुजाका ने उन्हें पकड़ लिया हो: कांपते हुए वे कहीं स्थिर नहीं रह पा रहे थे, इधर-उधर भागते रहे, जब तक कि वे चौकोर झील के किनारे नहीं पहुँच गए; वहाँ उन्होंने छाल से बने वस्त्रों को कसकर अपने चारों ओर लपेट लिया और पानी में कूद पड़े, अपने सिर कमल के पत्तों के नीचे छिपाकर वहीं खड़े रहे।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"इसलिए जाली और कन्हाजिना पीछा करने वाले व्यक्ति की आवाज सुनने के लिए गहरे संकट में इधर-उधर भागने लगे ।"
जब जुजाका ने बच्चों को न देखकर बोधिसत्व को फटकारा, तो उसने कहा, "हे वेसंतरा! अभी जब आपने मुझे बच्चे दिए, और जैसे ही मैंने आपको बताया कि मैं जेतुत्तरा नगर नहीं जाऊँगा, बल्कि बच्चों को अपनी पत्नी का सेवक बनाऊँगा, आपने उन्हें कोई संकेत दिया और उन्हें वहाँ मासूमियत से बैठे-बैठे भगा दिया! मेरे विचार से ऐसा झूठा संसार में कोई नहीं है।" महान बोधिसत्व व्याकुल हो गए। उन्होंने सोचा, "वे भाग गए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है," और जोर से कहा, "चिंता मत कीजिए, मैं उन्हें ले आता हूँ।" इसलिए वे उठे और कुटिया के पीछे गए; यह देखकर कि वे जंगल की ओर भाग गए होंगे, वे उनके पदचिह्नों का पीछा करते हुए झील के किनारे तक गए, और फिर पानी में उतरने के स्थान पर एक पदचिह्न देखकर वे समझ गए कि वे पानी में चले गए होंगे: इसलिए उन्होंने पुकारा, "जाली, मेरे बच्चे!" और ये दो श्लोक पढ़े:

"मेरे प्रिय पुत्र, यहाँ आओ, मेरी आदर्श स्थिति को पूरा करो;
अब आओ और मेरे हृदय को सांत्वना दो, और मेरी इच्छा का पालन करो।"
हे मेरे, अस्तित्व के सागर पर मुझे सुरक्षित पार कराने वाली मेरी नौका बनो,
जन्म और देवदूतों के संसारों से परे मैं पार जाऊंगा और मुक्त हो जाऊंगा।
"आओ, जली, मेरे बच्चे!" उन्होंने पुकारा; और उनकी आवाज़ सुनकर बालक ने सोचा, "ब्राह्मण मेरे साथ जो चाहे करे, मैं अपने पिता से झगड़ा नहीं करूँगा!" उसने अपना सिर उठाया, कमल के पत्तों को हटाया और पानी से बाहर आकर उस महान पुरुष के दाहिने पैर पर गिर पड़ा; टखने को गले लगाकर वह रोने लगा। तब उस महान पुरुष ने कहा, "मेरे बच्चे, तुम्हारी बहन कहाँ है?" उसने उत्तर दिया, "पिताजी, संकट के समय सभी प्राणी अपनी रक्षा स्वयं करते हैं।" उस महान पुरुष ने समझ लिया कि बच्चों ने आपस में कोई समझौता किया होगा, और उन्होंने दो श्लोक पढ़ते हुए पुकारा, "यहाँ आओ, कान्हा!"

"यहाँ आओ, मेरी प्रियतमा, मेरी परिपूर्ण अवस्था को पूरा करो,
अब आओ और मेरे हृदय को सांत्वना दो, और मेरी इच्छा का पालन करो।"
हे मेरे जहाज, जो मुझे अस्तित्व के सागर के पार सुरक्षित ले जाए,
मनुष्यों और देवताओं (देवदूतों) के संसारों से परे, मैं पार कर जाऊँगा और मुझे मुक्त कर देगा!
उसने मन ही मन सोचा, "मैं अपने पिता से झगड़ा नहीं करूँगी"; और पल भर में वह बाहर आई और अपने पिता के बाएँ पैर पर गिरकर उनकी टखने को पकड़ कर रोने लगी। उनके आँसू कमल के पत्ते जैसे लाल रंग के भगवान के चरणों पर गिरे; और उनके आँसू उनकी सुनहरी पीठों पर गिरे। तब भगवान ने अपने बच्चों को उठाया और उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "मेरे पुत्र जली, क्या तुम नहीं जानते कि मैंने तुम्हें खुशी-खुशी विदा किया है? ऐसा करो जिससे मेरी इच्छा पूरी हो।" और उसी क्षण उन्होंने बच्चों का मूल्य लगा दिया, जैसे मवेशियों का मूल्य लगाया जाता है। अपने पुत्र से उन्होंने कहा, "पुत्र जली, यदि तुम मुक्त होना चाहते हो, तो ब्राह्मण को एक हजार सोने के सिक्के देने होंगे। परन्तु तुम्हारी बहन अत्यंत सुंदर है; यदि कोई नीच कुल का व्यक्ति ब्राह्मण को इतना दे दे उसे मुक्त कराने के लिए, तो वह उसके जन्मसिद्ध अधिकार का हनन करेगा। केवल राजा ही सौ-सौ की संख्या में सब कुछ दे सकता है; इसलिए यदि तुम्हारी बहन मुक्त होना चाहती है, तो वह ब्राह्मण को सौ-सौ पुरुष और सौ स्त्री दास, हाथी, घोड़े, बैल और सोने के सिक्के, प्रत्येक सौ-सौ की संख्या में दे।" इस प्रकार उन्होंने बच्चों का मूल्य निर्धारित किया, उन्हें सांत्वना दी और उन्हें आश्रम ले गए। फिर उन्होंने अपने जलपात्र में जल लिया और ब्राह्मण को पास बुलाकर जल उंडेलते हुए प्रार्थना की कि उन्हें अनंत ज्ञान प्राप्त हो। "मेरे पुत्र से सौ गुना, हजार गुना, लाख गुना भी प्रिय अनंत ज्ञान है!" उन्होंने पृथ्वी को कंपकंपाते हुए कहा और ब्राह्मण को अपने बच्चों का यह अनमोल उपहार दिया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"शिवि देश के पितृवत राजा ने तब अपने दोनों बच्चों को लिया
और ब्राह्मण को यह सबसे कीमती उपहार बिना किसी अनिच्छा के दिया।"
तब दहशत और भय का माहौल छा गया, और धरती कांप उठी,
जब राजा ने हाथ जोड़कर दोनों बच्चों को सौंप दिया;
तब दहशत और भय का माहौल छा गया, और धरती कांप उठी,
जब शिवी राजा ने अपने बच्चों को ब्राह्मण को बिना किसी अनिच्छा के सौंप दिया।
जब उस महान प्राणी ने उपहार दिया, तो वह बच्चों को देखते हुए प्रसन्न हुआ, यह सोचकर कि उसने कितना अच्छा उपहार दिया है। फिर जुजाका जंगल में गया और एक लता तोड़कर उससे लड़के का दाहिना हाथ लड़की के बाएं हाथ से बांध दिया और लता के सिरों से पीटते हुए उन्हें भगा दिया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"उस निर्दयी ब्राह्मण ने लता का एक टुकड़ा काट लिया; ऐसा करने के बाद,
उसने उस लता से उनके हाथ बांध दिए और बच्चों को घसीटते हुए ले गया।"
और फिर ब्राह्मण ने, हाथ में लाठी लिए, लता को कसकर पकड़े हुए,
उन्हें पीटा और उनके पिता के सामने उन्हें भगाते हुए आगे बढ़ने के लिए मजबूर किया।
जहां उसने उन्हें मारा, वहां उनकी त्वचा छिल गई, खून बहने लगा; चोट लगने पर वे एक दूसरे से पीठ सटाकर लड़खड़ा गए। लेकिन एक ऊबड़-खाबड़ जगह पर वह आदमी ठोकर खाकर गिर पड़ा: अपने कोमल हाथों से बच्चों ने हल्के बंधन को तोड़ दिया और रोते हुए उस महान सत्ता की ओर भाग गए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"इस प्रकार मुक्त हुए बच्चे ब्राह्मण से भाग जाते हैं;
लड़का अपने पिता के चेहरे को देखता है, उसकी आँखों में आँसू हैं।"
फिर हवा में उड़ते अंजीर के पत्ते की तरह वह छोटा लड़का कांप उठा,
अपने पिता के पैरों को गले लगाते हुए उसने अपनी बाहें उनके पैरों में डाल दीं और बोला
"पिताजी, क्या आप माताजी के अनुपस्थित रहने पर हमारा निपटारा कर देंगे?
हे भगवान, उनके आने तक हमें मत दीजिए! उनके लौटने तक, हे भगवान, यहीं रुकिए!"
और क्या तुम माताजी के अनुपस्थित रहने पर हमारा निपटारा कर दोगे?
अरे, उनके लौटने तक प्रतीक्षा करो, फिर चाहो तो हमें दे दो!
फिर ब्राह्मण हम दोनों को बेच दे, फिर ब्राह्मण हमें मार डाले!

उसका पैर विशाल है, उसके नाखून फटे हुए हैं, उसका मांस लटक रहा है,
लंबा निचला होंठ और टूटी हुई नाक, सब कुछ कांप रहा है, भूरे रंग का है।
तोंद निकला हुआ, कमर टूटी हुई, भद्दी तिरछी आँखों वाला,
धब्बों और झुर्रियों से भरा हुआ, पीले बालों वाला, खूनी रंग की दाढ़ी वाला।
पीला, ढीले जोड़ों वाला, क्रूर, विशालकाय, बकरियों की खाल से सजा हुआ,
एक टेढ़ा और अमानवीय प्राणी, एक अत्यंत भयानक दृश्य;
क्या वह एक इंसान है, या कोई भयानक नरभक्षी? और क्या तुम
इस जिन्न को जंगल में आकर तुमसे यह वरदान माँगते हुए चुपचाप देख सकते हो?
क्या तुम्हारा हृदय लोहे से जकड़ा हुआ पत्थर का टुकड़ा है, जो
इस लालची आदमी की परवाह नहीं करता, जिसे दया नहीं आती, जो
हमें बांधकर गायों की तरह भगा देता है? कम से कम मैं तो यही अपील करूंगा।
वह बहन कान्हा, जिसे अभी तक कोई परेशानी नहीं हुई है, यहीं रह सकती है,
अब वह झुंड से बिछड़े हुए हिरण के बच्चे की तरह रो रही है।
इस पर उस महान सत्ता ने एक शब्द भी उत्तर नहीं दिया। तब बालक ने अपने माता-पिता के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए कहा:

"मुझे मृत्यु के दर्द की परवाह नहीं है, यह तो सबका भाग्य है:
अपनी माँ का चेहरा फिर कभी न देख पाना, यही बात मुझे सबसे ज्यादा भयभीत करती है।"
मुझे मृत्यु के दर्द की परवाह नहीं है, वह तो सबका भाग्य है:
अपने पिता का चेहरा फिर कभी न देख पाना, यही बात मुझे सबसे ज्यादा भयभीत करती है।
मेरे माता-पिता लंबे समय तक शोक मनाएंगे और विलाप करेंगे, वे लंबे समय तक अपने दुख को सहेंगे,
आधी रात और सुबह उनके आंसू नदी की तरह बहेंगे, वे
कन्हाजिना को फिर कभी नहीं देख पाएंगे, जिसे वे बहुत प्यार करते थे।
झील के चारों ओर झुके हुए गुलाब-सेब के पेड़ों के उन समूहों को,
और जंगल के सभी फलों को, हम आज त्याग देते हैं।
अंजीर का पेड़ और कटहल, चौड़ा बरगद और जंगल में उगने वाला हर पेड़,
हाँ! आज हम जंगल के सभी फलों का त्याग करते हैं।
वे वहां एक रमणीय उद्यान की तरह खड़े हैं, वहां ठंडी नदी बहती है,
वह स्थान जहां कभी हम खेला करते थे, आज हम उसे त्याग देते हैं।
जो फल हम कभी खाया करते थे, जो फूल हम पहना करते थे,
जो उस पहाड़ी पर उगते थे, आज हम उन्हें त्याग देते हैं।
और वे सभी प्यारे-प्यारे खिलौने जिनके साथ हम कभी वहां खेलते थे,
घोड़े, बैल, हाथी, आज हम उन सबको त्याग देते हैं।"
इन सब रोने-धोने के बावजूद, जुजाका आई और उसे उसकी बहन के साथ भगा ले गई।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

जब बच्चों को ले जाया जा रहा था, तो उन्होंने अपने पिता से कहा:

"हे पिता! हमारी माताजी के लिए शुभकामनाएं दीजिए और आपका दिन मंगलमय हो!
ये बैल, घोड़े, हाथी जिनके साथ हम खेला करते थे,
इन्हें माताजी को दे दीजिए, इससे उनका कुछ दुख कम हो जाएगा।"
ये बैल, घोड़े, हाथी जिनके साथ हम खेला करते थे,
जब वह उन्हें देखेगी, तो उसका दुख कुछ हद तक कम हो जाएगा।
अब अपने बच्चों के कारण उस महान पुरुष को बहुत पीड़ा हुई और उसका हृदय व्याकुल हो उठा; वह बुरी तरह कांपने लगा, मानो कोई हाथी शेर के चंगुल में फंस गया हो, मानो चंद्रमा राहु (ग्रहण) के जबड़ों में समा गया हो। सहन न कर पाने के कारण वह आँखों से आँसू बहाते हुए कुटिया में चला गया और फूट-फूटकर रोने लगा।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"योद्धा राजकुमार वेसंतारा ने इस प्रकार अपना उपहार दिया और चला गया, और वहाँ उसकी हरी-भरी छाया में वह उदास होकर शोक मनाने लगा।"

आगे जो छंद दिए गए हैं, वे उस महान सत्ता के शोकगीत हैं।

"हे जब सुबह या शाम को मेरे बच्चे
भूख या प्यास से व्याकुल होकर भोजन के लिए रोते हैं, तो उनकी कमी कौन पूरी करेगा?"
उनके नन्हे-मुन्ने कांपते हुए पैर नंगे बदन सड़क पर कैसे चलेंगे
? कौन उनका हाथ पकड़कर उन्हें धीरे से आगे ले जाएगा?
मैं चुपचाप खड़ा था और अपने निर्दोष साथियों पर प्रहार कर रहा था, फिर भी उस ब्राह्मण को शर्म क्यों नहीं आई
? मैं तो उसे निर्लज्ज कहता हूँ!
जिस व्यक्ति में थोड़ी भी शर्म होगी, वह किसी दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करेगा, चाहे
वह मेरा गुलाम का नौकर ही क्यों न हो, और मैं कितना भी नीचा गिर गया होता।
मैं उसे देख नहीं सकती, लेकिन वह मेरे प्यारे बच्चों को डांटता और पीटता है,
जबकि मैं जाल में फंसी मछली की तरह असहाय यहाँ खड़ी हूँ।
बच्चों के प्रति स्नेह के कारण ये विचार उस महान पुरुष के मन में आए; ब्राह्मण द्वारा अपने बच्चों को बेरहमी से पीटने का दृश्य देखकर उनका दर्द कम नहीं हो रहा था। उन्होंने उस व्यक्ति का पीछा करके उसे मार डालने और बच्चों को वापस लाने का निश्चय किया। लेकिन उन्होंने सोचा, नहीं: यह एक गलती होगी; दान देना और फिर बच्चों के भारी कष्ट के कारण पछताना, यह धर्मात्माओं का मार्ग नहीं है। और अगले दो श्लोक इसी विषय पर प्रकाश डालते हैं।

"उसने अपनी तलवार अपने बाएं हाथ पर बांध ली, उसने अपने धनुष को सुसज्जित किया;
मैं अपने बच्चों को वापस लाऊंगा; उन्हें खोना बहुत बड़ा दुख है।"
लेकिन अगर मेरे बच्चे मर भी जाएं तो भी दुःख महसूस करना अनुचित है:
भला कौन भले लोगों के रीति-रिवाजों को जानता है, फिर भी बदले में दान मांगता है?
इसी बीच जुजाका बच्चों को पीटते हुए उन्हें आगे ले जा रहा था। तब लड़के ने विलाप करते हुए कहा:

"वह कहावत कितनी सच लगती है जो लोग अक्सर कहते हैं:
जिसकी अपनी माँ नहीं होती, वह बापहीन भी होता है।"
हमारे लिए जीवन का कोई महत्व नहीं है: हमें मरने दो; अब हम उसके गुलाम हैं,
इस क्रूर, लालची, हिंसक व्यक्ति के, जो हमें अपनी गाय की तरह हांकता है।
झील के चारों ओर झुके हुए गुलाब-सेब के पेड़ों के ये समूह,
और जंगल की सारी हरियाली, हे कान्हा, हम त्याग देते हैं।
अंजीर का वृक्ष, कटहल का वृक्ष, बरगद का वृक्ष, और हर वह वृक्ष जो उगता है,
हाँ, सभी प्रकार के फल, हे कान्हा, हम उन सभी का त्याग करते हैं।
वे वहाँ एक रमणीय उद्यान की तरह खड़े हैं, वहाँ शीतल नदी बहती है;
वह स्थान जहाँ कभी हम खेला करते थे, हे कान्हा, हम उसे त्याग देते हैं।
जो फल हम कभी खाया करते थे, जो फूल हम पहना करते थे,
जो उस पहाड़ी पर उगते हैं, हे कान्हा, हम उन्हें त्याग देते हैं।
और वे सभी प्यारे-प्यारे खिलौने जिनके साथ हम कभी वहाँ खेलते थे,
घोड़े, बैल, हाथी, हे कान्हा, हम उन सबको त्याग देते हैं।
ब्राह्मण फिर से एक ऊबड़-खाबड़ जगह पर गिर पड़ा: उसके हाथ से रस्सी छूट गई, और बच्चे घायल पक्षियों की तरह कांपते हुए बिना रुके अपने पिता के पास वापस भाग गए।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"अब जाली और कन्हाजिना, इस प्रकार ब्राह्मण द्वारा ले जाए जाने पर, किसी तरह मुक्त हो गए, और फिर वे भागते चले गए।"

लेकिन जुजाका झट से उठा और रस्सी और लाठी हाथ में लिए उनके पीछे-पीछे गया, मानो दुनिया के अंत में आग उगल रहा हो; "तुम सचमुच भागने में बहुत चतुर हो," उसने कहा; और उसने उनके हाथ बांध दिए और उन्हें वापस ले आया।

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"और इस प्रकार ब्राह्मण ने अपनी रस्सी और अपना डंडा उठाया, और उन्हें पीटते हुए वापस ले आया, जबकि राजा को देखने के लिए विवश होना पड़ा।"

जब उन्हें ले जाया जा रहा था, कन्हाजिना पीछे मुड़ी और अपने पिता से विलाप करने लगी। इसका कारण बताते हुए गुरु ने कहा:

तब कन्हाजिना ने कहा, "हे मेरे पिता, कृपया देखिए—
यह ब्राह्मण मुझे ऐसे पीट रहा है जैसे मैं घर का ही गुलाम हूँ!"
ब्राह्मण तो सदाचारी जीवन जीने वाले पुरुष होते हैं: वह ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। वह तो
ब्राह्मण के वेश में एक राक्षस है, जो हमें खाने के लिए ले जा रहा है।
क्या तुम रुककर हमें राक्षस का भोजन बनते देख सकते हो?
जब उनकी छोटी बेटी कांपते हुए विलाप करने लगी, तो उस महान आत्मा के मन में गहरा दुःख उत्पन्न हुआ: उनका हृदय प्रचंड हो उठा; उनकी नाक इतनी बड़ी नहीं थी कि वे गर्म सिसकियाँ भर सकें; उनकी आँखों से खून की बूँदों जैसे आँसू बहने लगे। तब उन्होंने सोचा: "यह सारा दर्द स्नेह से उत्पन्न हुआ है, किसी और कारण से नहीं; मुझे इस स्नेह को शांत करना होगा और स्थिर रहना होगा।" इस प्रकार अपने ज्ञान की शक्ति से उन्होंने उस तीव्र दुःख को दूर किया और हमेशा की तरह शांत बैठ गए।

जब वे अभी पहाड़ों के प्रवेश द्वार तक ही पहुँचे थे, तब भी लड़की विलाप करती रही:

"मेरे ये छोटे-छोटे पैर दर्द से कराह रहे हैं, जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं वह कठिन है,
ब्राह्मण हमें आगे बढ़ाता जा रहा है, सूरज डूब रहा है।"
पहाड़ियों और जंगलों पर, और उनमें निवास करने वालों पर, हम पुकारते हैं,
हम सभी आत्माओं को आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं।
इस झील में बसे हुए हैं; इसके पेड़-पौधे, जड़ें और लताएँ, और हम प्रार्थना करते हैं
कि हमारी माता स्वस्थ रहें: लेकिन ब्राह्मण हमें भगा देता है।
यदि वह हमारे पीछे आना चाहती है, तो उसे देर नहीं करनी चाहिए।
जिस रास्ते से हम जा रहे हैं, वह सीधा आश्रम की ओर जाता है;
और यदि वह इस रास्ते का अनुसरण करे, तो वह जल्द ही हमें पा लेगी।
हे जंगली फलों और जड़ों को इकट्ठा करने वाले, हे गुंथे हुए बालों वाले,
खाली आश्रम को देखकर तुम्हें बहुत निराशा होगी।
हमारी माँ अपनी खोज में बहुत देर तक लगी रही, उसे अवश्य ही बहुत बड़ा खजाना मिला होगा,
कौन जानता है कि एक क्रूर और लालची आदमी ने हमें बांध रखा है,
एक बहुत ही क्रूर आदमी, जो अब हमें मवेशियों की तरह इधर-उधर भगाता है।
आह, अगर हमारी माँ शाम को आई होती, और वे संयोग से मिल गए होते,
अगर उसने उसे शहद मिले फलों का भोजन कराया होता,
जब उसका भोजन तैयार हो जाता था, तब वह हमें बेरहमी से नहीं भगाता था:
वह हमें बेरहमी से भगाता था, और हमारे कदमों की आवाज गूंजती रहती थी!"
इसलिए बच्चे अपनी माँ के लिए पीड़ा में तड़पते हुए शोक मनाते थे।
अब जब राजा ने अपने प्रिय बच्चों को ब्राह्मण को सौंप दिया, तो पृथ्वी एक भयंकर शोर से गूंज उठी, जिसकी आवाज ब्रह्मा के स्वर्ग (प्रधान देवदूतों के स्वर्ग) तक भी पहुंची और हिमवत (हिमालय) में रहने वाले देवताओं के हृदयों को भेद गई। जब राजा ने बच्चों को ले जाते हुए उनके रोने की आवाज सुनी, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मद्दी सुबह जल्दी आश्रम आ गई और अपने बच्चों को नहीं देखा, तो वह वेसंतरा से इसके बारे में पूछेगी; जब उसे पता चलेगा कि उन्हें सौंप दिया गया है, तो उसकी तड़प बहुत बढ़ जाएगी; वह उनके पीछे दौड़ेगी और बड़ी मुसीबत में पड़ जाएगी। इसलिए उन्होंने तीन देवताओं (देवदूतों) को शेर, बाघ और तेंदुए का रूप धारण करने और उसका मार्ग अवरुद्ध करने का निर्देश दिया, ताकि वह सूर्यास्त तक, चाहे कितनी भी बार पूछे, वापस न लौट सके; वह केवल चांदनी रात में ही वापस लौट सके, और शेरों और अन्य जंगली जानवरों के हमलों से उसकी रक्षा की जा सके।"

इस बात को समझाते हुए गुरु ने कहा:

"एक शेर, एक बाघ और एक तेंदुआ, झाड़ियों के तीन प्राणी, जिन्होंने यह तेज आवाज सुनी, उन्होंने एक दूसरे से इस प्रकार कहा:

"राजकुमारी को भोजन की तलाश से शाम को वापस न लौटने दें, अन्यथा जंगली जानवर उसे हमारे वन राज्य में मार डालेंगे।"

यदि शुभ माता शेर, तेंदुए या बाघ को मार डालें, तो हे राजकुमार जली कहाँ होंगे? हे कन्हाजिना, आज आप माता-पिता और बच्चों दोनों की रक्षा कहाँ करेंगे?

वे मान गए और देवताओं (देवदूतों) के वचनों का पालन किया। शेर, बाघ और तेंदुआ बनकर वे उस रास्ते के पास लेट गए जिससे होकर उसे जाना था। अब मद्दी मन ही मन सोच रही थी, "कल रात मैंने एक बुरा सपना देखा; मैं अपने फल और जड़ें इकट्ठा करूँगी और सुबह जल्दी आश्रम पहुँच जाऊँगी।" काँपते हुए वह जड़ों और फलों की तलाश करने लगी: उसके हाथ से फावड़ा गिर गया, उसके कंधे से टोकरी गिर गई, उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी, फलदार पेड़ बंजर और बंजर पेड़ फलदार दिखाई देने लगे, उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह सिर के बल खड़ी है या पैरों के बल। "आज इस अजीबोगरीब घटना का क्या अर्थ हो सकता है!" उसने सोचा और कहा--

"मेरा फावड़ा नीचे गिर गया, मेरी दाहिनी आंख में अब एक धड़कन महसूस हो रही है,
फलदार पेड़ निष्फल प्रतीत होते हैं, मेरे चारों ओर सब कुछ डगमगाता हुआ प्रतीत होता है!"
और जब वह शाम को दिन का काम खत्म करके जाने के लिए मुड़ी, तो सूर्यास्त के समय जंगली जानवरों ने उसके घर लौटने के रास्ते में बाधा डाली।

"मुझे लगता है कि आश्रम बहुत दूर है, सूरज ढल रहा है
और मुझे पता है कि उनके पास खाने के लिए सारा भोजन वही है जो मैं लाती हूँ।
और वहाँ मेरा राजकुमार पत्तों से घिरी झोपड़ी में बिल्कुल अकेला बैठा है,
भूखे बच्चों को दिलासा दे रहा है: और मैं वापस नहीं लौट रही हूँ।"
शाम के भोजन का समय हो गया है, ओह! मैं परेशान हूँ! बहुत देर हो गई है:
मेरे बच्चे पानी या दूध के लिए प्यासे हैं और मेरा इंतजार कर रहे हैं;
वे मुझसे मिलने आते हैं, बछड़ों की तरह अपनी माँ को ढूंढते हुए;
झील के ऊपर जंगली हंस के बच्चों की तरह—ओह, मैं कितना अभागा हूँ!
यही एकमात्र रास्ता है, जिसके चारों ओर तालाब और गड्ढे हैं:
और अब जब मैं घर की ओर जा रहा हूँ तो मुझे कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता।
हे वनों के पराक्रमी सम्राटों, हे राजसी प्राणियों, मैं पुकारता हूँ,
अब धर्म में भाई बनो, और मुझे सुरक्षित जाने दो!
मैं एक निर्वासित राजकुमार की पत्नी हूँ, एक गौरवशाली राजकुमार की पत्नी;
जैसे सीता ने राम के लिए किया, वैसे ही मैं अपने पति की परवाह करती हूँ।
जब तुम शाम को घर लौटोगे, तो अपने बच्चों को देखोगे:
इसलिए जाली और कन्हाजिना को एक बार फिर मुझे सौंप दो!
यहां प्रचुर मात्रा में जड़ें और फल हैं, मेरे पास चबाने के लिए बहुत सारा भोजन है:
आधा मैं अब आपको अर्पित करता हूँ: हे मुझे सुरक्षित जाने दो!
हे मेरे पिता, हे राजा, और हे मेरी माता, हे रानी—मेरी पुकार सुनो!
अब धर्म में मेरे भाई बनो, और मुझे सुरक्षित जाने दो!
तब देवताओं (देवदूतों) ने समय देखकर यह समझा कि उसे जाने देने का समय आ गया है; और वे उठकर चले गए। गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

"जिन जानवरों ने उसे इस प्रकार अत्यंत पीड़ा के साथ विलाप करते सुना, उन्होंने मधुर और कोमल स्वर में कहा, और वे चले गए और उसे जाने दिया।"

जब जानवर चले गए, तो वह आश्रम लौट आई। अब पूर्णिमा की रात थी; और जब वह उस ढके हुए रास्ते के अंत तक पहुँची, जहाँ वह अपने बच्चों को देखने की आदी थी, और उन्हें वहाँ नहीं देखा, तो वह चिल्लाई:

"धूल से सने बच्चे, घर के पास ही, मुझसे यहाँ मिलने के आदी हो चुके हैं,
जैसे बछड़े अपनी माँ गाय को ढूंढते हैं, जैसे पक्षी झील के ऊपर उड़ते हैं।"
छोटे हिरणों की तरह, कान खड़े किए हुए, वे रास्ते में मुझसे मिलते हैं:
खुशी और उल्लास से वे उछलते-कूदते और खेलते हैं:
लेकिन जाली और कन्हाजिना को मैं आज नहीं देख पा रहा हूँ।

जैसे बकरी और शेरनी अपने बच्चों को छोड़कर, जैसे कोई चिड़िया अपना पिंजरा छोड़कर
भोजन की तलाश में जाती है, वैसे ही मैंने भी उनकी भूख मिटाने के लिए ऐसा किया है:
लेकिन जाली और कन्हाजिना को मैं आज नहीं देख सकता।
उनके निशान यहाँ हैं, घर के पास ही, पहाड़ी पर साँपों की तरह,
मिट्टी के छोटे-छोटे ढेर जो उन्होंने चारों ओर बनाए थे, अभी भी वहीं हैं:
लेकिन जाली और कन्हाजिना को मैं आज नहीं देख सकता।
सब कुछ धूल से ढका हुआ है, मेरे बच्चे मेरे पास दौड़कर आते थे,
कीचड़ से सने हुए, लेकिन अब वास्तव में मैं उनमें से किसी को भी नहीं देख सकता।
जैसे बच्चे अपनी माँ का स्वागत करने के लिए घर से भागते हैं, वैसे ही वे भी भाग गए;
जैसे मैं जंगल से लौटा था; आज मुझे वे दिखाई नहीं दे रहे हैं।
वे यहाँ खेल रहे थे, यहाँ यह पीला विल्वा फल गिरा:
लेकिन जाली और कन्हाजिना को मैं आज नहीं देख पा रहा हूँ।
मेरे ये स्तन दूध से भरे हैं, मेरा दिल भी टूट जाएगा:
लेकिन आज मैं जाली और कन्हाजिना को नहीं देख सकती।
वे मेरी कमर से लिपटे रहते थे, एक मेरी छाती से लटकता रहता था:
शाम के विश्राम के समय वे धूल से सने हुए मुझसे कैसे मिलते थे!
लेकिन आज मैं जाली और कन्हाजिना को नहीं देख पा रही हूँ।
एक समय यह आश्रम हमारा मिलन स्थल हुआ करता था:
लेकिन अब मुझे यहाँ कोई बच्चे नहीं दिखते, पूरी जगह घूमती रहती है।
मेरे बच्चे मर गए होंगे! यह जगह इतनी शांत हो गई है—
कौवे भी नहीं कांव-कांव कर रहे, पक्षी भी चुप हो गए हैं।
इस प्रकार शोक मनाते हुए वह उस महान व्यक्ति के पास आई और फलों की टोकरी नीचे रख दी। उसे चुपचाप बैठे हुए और उसके साथ कोई संतान न देखकर उसने कहा:

"तुम चुप क्यों हो? वो सपना फिर से मेरे मन में आ रहा है:
पक्षी और कौवे कोई आवाज नहीं कर रहे हैं, मेरे बच्चे मारे गए होंगे!"
हे महोदय, क्या उन्हें किसी जंगली जानवर ने अगवा कर लिया है?
या फिर वे घने सुनसान जंगल में भटक गए हैं?
क्या मीठी-मीठी बातें करने वाले सोते हैं? क्या वे अपने काम में सफल होते हैं?
क्या वे मौज-मस्ती या खेल-कूद में दूर-दूर तक भटक गए हैं?
मुझे उनके हाथ-पैर नहीं दिख रहे, उनके बाल नहीं दिख रहे:
क्या कोई पक्षी झपटा? या उन्हें कौन उड़ा ले गया?
इस पर उस महान सत्ता ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब उसने पूछा, "मेरे स्वामी, आप मुझसे बात क्यों नहीं करते? मेरी क्या गलती है?" और कहा:

"यह तीर के घाव की तरह है, और उससे भी कहीं अधिक दर्दनाक है
(लेकिन आज मैं जाली और कन्हाजिना को नहीं देख सकता!)"
यह दूसरा घाव है जो तुमने मेरे दिल पर मारा है,
जिसे मैं और मेरे बच्चे नहीं देख सकते, जिसके बारे में तुम्हारे पास कहने के लिए कुछ नहीं है।
और इसलिए, हे राजकुमार! चूंकि आज रात आप कोई जवाब नहीं देंगे,
मुझे लगता है कि मेरे दिन सचमुच समाप्त हो गए हैं, और आप मुझे मरते हुए देखेंगे।
उस महान प्राणी ने सोचा कि कठोर शब्दों से वह बच्चों के दर्द को कम कर लेगा, और उसने यह श्लोक पढ़ा:

"ओ मद्दी, जन्म से ही राजकुमारी, जिसकी महिमा इतनी महान है,
तुम सुबह-सुबह भोजन करने गई थीं: इतनी देर से क्यों लौटीं?"
उसने उत्तर दिया:

"क्या तुमने शेर और बाघ की ज़ोरदार दहाड़ नहीं सुनी
, जब वे झील के किनारे अपनी प्यास बुझाने के लिए खड़े थे?"

जैसे ही मैं जंगल में चल रहा था, मुझे वह संकेत मिला जिसे मैं अच्छी तरह जानता था:
मेरा फावड़ा मेरे हाथ से गिर गया, और मेरी बांह से टोकरी गिर गई।
तब आहत और भयभीत होकर, मैंने एक-एक करके सभी दिशाओं की पूजा की,
प्रार्थना की कि इससे कुछ अच्छा ही हो, प्रार्थना में अपने हाथ फैलाए हुए:
और यह कि कोई शेर, तेंदुआ, लकड़बग्घा, भेड़िया या भालू
मेरी बेटी या मेरे बेटे को नोच न सके, परेशान न कर सके या नष्ट न कर सके।
एक शेर, एक बाघ और एक तेंदुआ, तीन खूंखार जानवर घात लगाकर बैठे थे
और मुझे घर लौटने के रास्ते से रोक रहे थे: इसीलिए मुझे देर हो गई।
सूर्योदय तक उस महान सत्ता ने उससे बस इतना ही कहा, जिसके बाद मद्दी ने लंबे समय तक विलाप किया।

मैंने अपने पति और अपने बच्चों की दिन-रात देखभाल की है,
जैसे एक शिष्य अपने गुरु की देखभाल करता है, जब वह सही करने की कोशिश करता है।
बकरियों की खाल से बने वस्त्रों में लिपटे हुए, मैं जंगल से जंगली जड़ें और फल लाया,
और हर दिन और हर रात आपकी सुविधा के लिए उनकी देखभाल की।
मैं तुम्हारे लिए पीले विल्वा फल लाया हूँ, मेरी नन्ही बच्ची और नन्हे बच्चे,
और साथ ही जंगल के कई पके हुए फल भी लाया हूँ, ताकि तुम खेल सको और खुश हो सको।
हे राजकुमार, इस सुनहरे पीले रंग की कमल की जड़ और कमल के डंठल को
अपने बच्चों के साथ मिलाओ और अपना हिस्सा भी खाओ।
अपनी प्रेमिका को सफेद लिली दो, जाली को नीली लिली दो,
और उन्हें मालाओं से सजे नृत्य करते देखो: हे सिवी, उन्हें बुलाओ!

हे महान सम्राट! जब कन्हाजिना मधुर स्वर में गाते हुए हमारे निवास स्थान में प्रवेश कर रहे हैं, तो कृपया ध्यान से सुनें ।
जब से हमें निर्वासित किया गया है, सुख और दुख हम सब मिलकर साझा करते आए हैं:
हे उत्तर दो! क्या तुमने मेरे कन्हाजिना और जली को देखा है?
मैंने कितने ही पवित्र ब्राह्मणों को नाराज किया होगा,
जो पवित्र जीवन जीते थे, गुणी थे और पवित्र परंपराओं से परिपूर्ण थे,
कि आज मैं जली और कन्हाजिना को देख भी नहीं सकता!
इस शोक पर उस महान सत्ता ने एक शब्द भी उत्तर नहीं दिया। जब उन्होंने कुछ नहीं कहा, तो वह कांपते हुए चाँदनी में अपने बच्चों को ढूंढने लगी; और जहाँ कहीं भी वे खेलते थे, गुलाब के पेड़ों के नीचे या कहीं और, वह उन्हें ढूंढती रही, रोती रही और कहती रही:

"झील के चारों ओर झुके हुए गुलाब-सेब के पेड़ों के ये समूह,
और जंगल के सभी फल--मेरे बच्चे यहाँ नहीं हैं!"
अंजीर का पेड़ और कटहल, चौड़ा बरगद, और जंगल में उगने वाला हर पेड़,
हाँ, जंगल के सभी फल—मेरे बच्चे यहाँ नहीं हैं!
वे वहां एक रमणीय उद्यान की तरह खड़े हैं, वहां ठंडी नदी बहती है,
वह स्थान जहां कभी वे खेला करते थे - लेकिन अब वे यहां नहीं हैं।
जो फल वे कभी खाया करते थे, जो फूल वे पहना करते थे,
जो उस पहाड़ी पर उगते हैं—वहाँ बच्चे नहीं हैं!
और वे सारे छोटे खिलौने जिनसे वे कभी खेलते थे, वे सब वहाँ हैं -
बैल, घोड़े, हाथी - बच्चे वहाँ नहीं हैं!
यहां कई खरगोश और उल्लू थे, काले और धब्बेदार हिरण थे,
जिनके साथ बच्चे खेला करते थे, लेकिन वे खुद यहां नहीं हैं!
अपने खूबसूरत पंखों वाले मोर, बगुले और हंस,
जिनके साथ बच्चे खेला करते थे, लेकिन वे खुद यहाँ नहीं हैं!
अपने प्रिय बच्चों को आश्रम में न पाकर, वह फूलों के एक झुंड में प्रवेश कर गई और उन्हें इधर-उधर ढूंढते हुए बोली:

"वन की वनस्पतियाँ, जो हर मौसम में खिलने वाले फूलों से भरी रहती हैं,
जहाँ कभी बच्चे खेला करते थे, लेकिन वे खुद यहाँ नहीं हैं!"
वे सुंदर झीलें जो लाल हंसों की पुकार सुनती हैं,

जहाँ सफेद कमल और नीले कमल खिलते हैं और मूंगे जैसे पेड़ उगते हैं,
जहाँ कभी बच्चे खेलते थे, लेकिन अब वहाँ कोई बच्चा नहीं है।"
लेकिन उसे कहीं भी बच्चे दिखाई नहीं दिए। फिर वह उस महान सत्ता के पास लौटी, जिसका चेहरा नीचे की ओर झुका हुआ था, और उससे बोली:

"तुमने जलाने के लिए लकड़ी नहीं काटी, आग नहीं जलाई,
और पहले की तरह पानी भी नहीं लाया: तुम यूं ही क्यों बैठे हो?"
जब मैं अपनी मांद में लौटता हूँ तो मेरी सारी मेहनत समाप्त हो जाती है,
लेकिन आज मुझे जली और कन्हाजिना दिखाई नहीं दे रहे हैं!
फिर भी वह महान सत्ता मौन बैठी रही; और उसकी चुप्पी से दुखी होकर, घायल पक्षी की तरह कांपते हुए, वह उन स्थानों पर फिर से गई जहाँ उसने पहले खोज की थी, और लौटकर बोली:

"हे मेरे पति, मुझे समझ नहीं आ रहा कि उनकी मृत्यु किसके कारण हुई है:
कौवे भी कांव-कांव नहीं कर रहे, पक्षी भी चुप हैं।"
फिर भी उस महान सत्ता ने एक शब्द भी नहीं कहा। और वह, अपने नन्हे-मुन्नों के लिए तड़पते हुए, तीसरी बार उन्हीं स्थानों पर हवा की तरह तेज़ी से खोजबीन करने लगी: एक ही रात में उसने उन्हें खोजते हुए पंद्रह मील (4.23 किमी) की दूरी तय की। फिर रात का अंत हुआ और सूर्योदय के समय वह फिर उस महान सत्ता के पास लौटी और उनके सामने शोक मनाते हुए खड़ी हो गई। गुरु ने इसका अर्थ इस प्रकार समझाया:

"जब वह खोज में हर जंगल और हर पहाड़ी को पार कर चुकी थी, तब
वह अपने पति के पास लौट आई और शोक में खड़ी रही।"
"पहाड़ों, जंगलों, गुफाओं में मुझे यह नहीं दिख रहा कि उनकी मृत्यु किसके कारण हुई है:
कौवे भी कांव-कांव नहीं कर रहे, पक्षी भी चुप हैं।"
फिर उच्च प्रतिष्ठा की धनी महिला, राजपरिवार की राजकुमारी मद्दी,
शोक मनाते हुए बाहें फैलाकर धरती पर गिर पड़ी।
“वह मर गई!” महान पुरुष ने सोचा और कांप उठा। “आह, मद्दी के मरने के लिए यह जगह ठीक नहीं है! अगर वह जेटुत्तरा नगर में मरी होती, तो बड़ा धूमधाम होता, दो राज्य हिल जाते। लेकिन मैं जंगल में अकेला हूँ, और मैं क्या कर सकता हूँ?” उस पर गहरा संकट छा गया; फिर थोड़ा संभलकर उसने अपनी क्षमता के अनुसार कुछ करने का निश्चय किया। उठकर उसने मद्दी के हृदय पर हाथ रखा और उसे अभी भी गर्म पाया: वह एक घड़े में पानी लाया और यद्यपि पिछले सात महीनों से उसने उसके शरीर को स्पर्श नहीं किया था, फिर भी अपनी पीड़ा में वह तपस्वी का कर्तव्य नहीं निभा सका, और आँखों में आँसू लिए उसने मद्दी का सिर उठाया और अपनी गोद में रख लिया, उस पर पानी छिड़का और बैठते हुए उसके चेहरे और छाती को छुआ। फिर थोड़ी देर बाद मद्दी को होश आया और वह घबराकर उठी और महान पुरुष को प्रणाम करते हुए पूछा, “मेरे स्वामी वेसंतरा, बच्चे कहाँ गए?” उन्होंने कहा, "मैंने इन्हें एक ब्राह्मण को दे दिया है।" गुरु ने इस प्रकार समझाया:

जब वह बेहोश होकर मरणासन्न रूप से गिर पड़ी तो उसने उस पर पानी छिड़का,
और जब उसे होश आया तो उसने कहा:-
उसने उससे पूछा, "मेरे प्रिय, यदि तुमने बच्चों को किसी ब्राह्मण को सौंप दिया था, तो तुमने मुझे सारी रात बिना कुछ कहे रोते रहने क्यों दिया?" उस महान प्राणी ने उत्तर दिया:

"मैंने तुरंत कुछ नहीं कहा, क्योंकि मैं तुम्हें दुख नहीं पहुँचाना चाहता था।
एक गरीब बूढ़ा ब्राह्मण भीख मांगने आया था, इसलिए
मैंने भिक्षा देने के बदले में बच्चों को दे दिया: डरो मत, हे मद्दी! फिर से सांस लो।"
हे मद्दी, ज्यादा शोक मत करो, बल्कि मेरी ओर देखो:
हम उन्हें फिर से जीवित वापस लाएंगे, और हम खुश होंगे।
अच्छे लोगों को मांगने पर हमेशा देना चाहिए, चाहे बेटे हों, पशु हों, धन हो या अनाज।
मैडी, खुश हो जाओ! बच्चों से बड़ा उपहार और कुछ नहीं हो सकता।
मद्दी ने जवाब दिया:

मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है! बच्चों से बड़ा कोई उपहार नहीं हो सकता।

देने से मन को शांति मिलती है; मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि ऐसा ही फिर से करें।
" हे सिवी भूमि के सर्वशक्तिमान पिता तुल्य राजा, आपने
स्वार्थी लोगों की दुनिया के बीच उदारतापूर्वक उपहार दिए।"
इस पर उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "मद्दी, तुम ऐसा क्यों कहती हो? यदि मैं अपने बच्चों को देकर अपने मन को शांति न दे पाता, तो ये चमत्कार मेरे साथ न घटित होते।" फिर उन्होंने मद्दी को पृथ्वी के सभी कंपन और अन्य घटनाओं के बारे में बताया। तब मद्दी प्रसन्न होकर इन चमत्कारों का वर्णन इन शब्दों में किया:

धरती कांप उठी, और वह ध्वनि उच्चतम आकाश को भर गई,
बिजली चमकी, गरज ने पहाड़ियों में गूंज पैदा कर दी!
तब नारद और पब्बत दोनों बहुत प्रसन्न हुए,
हाँ, इंद्र सहित सभी तैंतीस देवता (देवदूत) उस आवाज को सुनकर प्रसन्न हुए।
इस प्रकार राजपरिवार में जन्मी, उच्च कोटि की राजकुमारी मद्दी ने
उसके साथ हर्षोल्लास किया: "बच्चों से बड़ा उपहार और कोई नहीं हो सकता।"
इस प्रकार उस महान सत्ता ने अपने उपहार का वर्णन किया; और इस प्रकार मद्दी ने भी उस कहानी को दोहराते हुए कहा कि उन्होंने एक महान उपहार दिया है, और वह उसी उपहार में आनंदित होकर बैठी रही: इस अवसर पर गुरु ने "इस प्रकार मद्दी," इत्यादि श्लोक को दोहराया।

जब वे आपस में बातें कर रहे थे, तब सक्का (इंद्र) ने सोचा: "कल वेस्संतरा ने अपने बच्चों को जुजाक को दे दिया, और धरती कांप उठी। अब मान लो कि कोई दुष्ट प्राणी आकर राजा से अतुलनीय, गुणी मद्दी को मांग ले और उसे अपने साथ ले जाए, राजा को अकेला छोड़कर: वह असहाय और निर्धन रह जाएगा। तो फिर, मैं ब्राह्मण का रूप धारण करके मद्दी की भीख मांगूंगा। इस प्रकार मैं उसे पूर्णता की सर्वोच्च ऊंचाई तक पहुंचाऊंगा; मैं यह सुनिश्चित करूंगा कि उसे किसी और को न दिया जा सके और फिर मैं उसे वापस दे दूंगा।" इस प्रकार भोर होते ही सक्का (इंद्र) उसके पास गए। गुरु ने इसे इस प्रकार समझाया:

और जब रात समाप्त हुई, भोर होते ही,
ब्राह्मण रूप में सक्का (इंद्र) सबसे पहले उनके पास पहुंचे।
"हे पवित्र पुरुष, मुझे विश्वास है कि आप समृद्ध और कुशल हैं,
आपके निवास स्थान में अनाज की भरपूर फसल है, और जड़ और फल भी प्रचुर मात्रा में हैं।"
क्या आप मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं,
या जंगली जानवरों से आपको कोई खतरा नहीं रहा है?
उस महान सत्ता ने उत्तर दिया:

"धन्यवाद, ब्राह्मण—हाँ, मैं समृद्ध और स्वस्थ हूँ,
मेरे पास अनाज इकट्ठा करने के लिए है, और जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ फल और जड़ें प्रचुर मात्रा में हैं।"
मुझे मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से कोई परेशानी नहीं होती,
और जंगली शिकारी जानवरों से मुझे यहाँ कोई खतरा नहीं होता।
मैं यहाँ सात दुख भरे महीने बिता चुका हूँ, और तुम, दूसरे ब्राह्मण, को
अपने हाथ में बकरी की लाठी लिए इस वनभूमि तक पहुँचते हुए पाया।
हे ब्राह्मण, आपका स्वागत है! सौभाग्य से आप इस मार्ग पर आए;
आइए, आशीर्वाद के साथ प्रवेश करें, और कृपया अपने चरण धो लें।
तिंडूक और पियाल के पत्ते, और कसुमारी की मिठाई,
और शहद जैसे फल, ब्राह्मण, मेरे पास जो सबसे अच्छा है, उसे ले लो और खाओ।
और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! पहाड़ी पर छिपी इस गुफा से निकलने वाला यह शीतल जल
, यदि आपकी इच्छा हो तो इसे ग्रहण करें।
जब वे आपस में सुखद बातचीत कर रहे थे, तब उसने उसके आने का कारण पूछा:

"और अब किस कारण या किस वजह से आप इस रास्ते पर आए?
आप इन घने जंगलों में क्यों खोज रहे थे? कृपया मुझे यह बताएं।"
तब सक्का (इंद्र) ने उत्तर दिया: "हे राजा, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, परन्तु मैं आपकी पत्नी मद्दी को माँगने आया हूँ; कृपया उसे मुझे दे दीजिए," और उसने यह श्लोक दोहराया:

"जैसे एक बड़ी बाढ़ कभी सूखती नहीं और अपने आप में भरपूर होती है,
वैसे ही, जिनसे मैं विनती करने आया हूँ, कृपया मुझे अपनी पत्नी दे दीजिए, मैं आपसे विनती करता हूँ।"
इस पर उस महान सत्ता ने यह उत्तर नहीं दिया—"कल मैंने अपने बच्चों को एक ब्राह्मण को सौंप दिया, मैं मद्दी को तुम्हें कैसे सौंप सकता हूँ और जंगल में अकेला रह जाऊँ!" नहीं, ऐसा लगा मानो उसने अपने हाथ में हज़ार सिक्कों से भरा थैला रख लिया हो: उदासीन, अनासक्त, मन में किसी भी प्रकार की आसक्ति के बिना, उसने इस श्लोक से पर्वत को प्रतिध्वनित कर दिया:

"मैं थका हुआ हूँ, और इसे छुपाता भी नहीं हूँ: फिर भी अपनी अनिच्छा के बावजूद,
मैं देता हूँ, और पीछे नहीं हटता: क्योंकि उपहारों में मेरा हृदय आनंदित होता है।"
यह सुनकर, उसने तुरंत एक घड़े में पानी निकाला और उसे अपने हाथ पर डाला, और मद्दी को ब्राह्मण को सौंप दिया। उसी क्षण, पहले घटित हुए सभी शगुन फिर से दिखाई और सुनाई दिए। गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

"तब शिवी राज्य के राजा ने एक जल-कलश उठाया और मद्दी को लेकर सीधे ब्राह्मण के हाथ में सौंप दिया।"

तब दहशत और भय का माहौल छा गया, तब धरती कांप उठी, जब उसने मद्दी को अपने आगंतुक के लिए सौंप दिया।

मैडी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं आई, वह रोई नहीं, बल्कि चुपचाप देखती रही, सोचती रही, कि इसका कारण वही सबसे अच्छी तरह जानता है।

"मैंने जाली और कन्हाजिना दोनों को किसी और को सौंप दिया,
और मद्दी को भी, जो मेरी समर्पित पत्नी थी, और यह सब ज्ञान की खातिर किया।"
मेरी निष्ठावान पत्नी मुझे नापसंद नहीं है, न ही मेरे बच्चे नापसंद हैं,
परन्तु मेरे विचार में पूर्ण ज्ञान कहीं अधिक प्रिय है।
तब उस महान सत्ता ने मद्दी के चेहरे की ओर देखा कि वह इस पर कैसी प्रतिक्रिया दे रही है; और उसने उनसे पूछा कि वे उसकी ओर क्यों देख रहे हैं, और शेरनी जैसी आवाज में इन शब्दों में जोर से पुकारी:

"मैं जन्म से ही उसकी पत्नी थी, वह अब भी मेरा स्वामी है:
वह जिसे चाहे उसे दे सकता है, बेच सकता है या मार सकता है।"
तब सक्का (इंद्र) ने उसके उत्कृष्ट संकल्प को देखकर उसकी प्रशंसा की; और गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया: "इसी कारण सक्का (इंद्र) ने, उसकी इच्छाओं के झुकाव को देखकर कहा: "मनुष्य और दैवीय, सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त कर ली गई है।"

धरती कांप उठी, और उसकी आवाज़ उच्चतम आकाश में गूंज उठी, बिजली चमकी, गरज ने पहाड़ियों में गूंज पैदा कर दी।

अब नारद और पब्बत ने यह शक्तिशाली वाणी सुनी, जी हाँ, इस कठिन कार्य पर तैंतीस देवता (देवदूत) प्रसन्न हुए।

अच्छे लोगों की तरह करना, उनकी तरह देना मुश्किल है; बुरे लोग अच्छे लोगों के जीवन की नकल शायद ही कर पाते हैं।

और इसलिए, जब अच्छाई और बुराई पृथ्वी से मिट जाती हैं, तो बुरे लोग नीचे नरक में जन्म लेते हैं, और अच्छे लोग स्वर्ग में जन्म लेते हैं।

यह श्रेष्ठ वाहन है: पत्नी और संतान दोनों को दिया गया, इसलिए उसे अब और नीचे न उतरना चाहिए, बल्कि यह स्वर्ग में फलदायी हो।

जब इस प्रकार सक्का (इंद्र) ने अपनी स्वीकृति व्यक्त कर दी, तो उसने सोचा, "अब मुझे यहाँ और देर नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसे वापस देकर चले जाना चाहिए"; और उसने कहा:

"महोदय, अब मैं आपको आपकी सुंदर और प्यारी पत्नी मैडी वापस देता हूँ,
एक उत्तम जोड़ी, और एक अत्यंत सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए उपयुक्त।"
जैसे पानी और सीप के बीच अटूट बंधन होता है,
वैसे ही आप और मैडी के बीच मन और हृदय का सामंजस्य है।
दोनों माता-पिता की ओर से समान वंश और परिवार के होने के कारण,
आप यहाँ एक वन आश्रम में एक साथ निवास करते हैं,
ताकि आप जहाँ भी वन में निवास करते हैं, वहाँ अच्छे कार्य करते रहें।
इतना कहकर उन्होंने एक वरदान देने की पेशकश की:

"मैं सक्का (इंद्र), देवताओं (देवदूतों) का राजा हूँ, यहाँ आपके दर्शन के लिए आया हूँ:
हे राजसी ऋषि, एक वरदान चुनिए, मैं आपको आठ वरदान देता हूँ।"
जैसे ही उन्होंने बोलना शुरू किया, वे सुबह के सूरज की तरह चमकते हुए हवा में ऊपर उठ गए। फिर बोधिसत्व ने अपने वरदानों का चयन करते हुए कहा:

"सक्का (इंद्र), जो समस्त पृथ्वी के स्वामी हैं, ने मुझे वरदान दिया है।"
हे मेरे पिता, कृपया मुझसे सुलह कर लें, मुझे जल्द ही वापस बुला लें
और मुझे मेरे राजसी सिंहासन पर बिठा दें: यही मेरी पहली वरदानी है।
मैं किसी भी व्यक्ति को मृत्युदंड न दूं, चाहे वह दोषी ही क्यों न हो:
दोषी ठहराए गए व्यक्ति को मैं मृत्यु से मुक्त कर दूं: यही दूसरा वरदान मैं चाहता हूं।
मेरी तीसरी वरन्तु है कि सभी लोग सहायता के लिए केवल मेरी ओर देखें, चाहे
वे युवा हों, वृद्ध हों या मध्यम आयु वर्ग के हों।
क्या मैं अपने पड़ोसी की पत्नी की तलाश न करूँ, अपनी पत्नी से संतुष्ट रहूँ,
और न ही किसी स्त्री की इच्छा के अधीन रहूँ: यही चौथा वरदान मैं चाहता हूँ।
हे इंद्र, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरे प्रिय पुत्र को दीर्घायु प्रदान करें,
जो धर्म के मार्ग पर चलकर संसार को विजय प्राप्त करे: यह मेरा पाँचवाँ वरदान है जिसकी मैं कामना करता हूँ।
फिर हर रात के अंत में, दिन के उदय के समय,
दिव्य भोजन प्रकट हो: यही छठा वरदान है जिसकी मैं कामना करता हूँ।

मेरी सातवीं प्रार्थना है कि दान देने के साधन कभी कम न पड़ें, और मैं हमेशा हार्दिक प्रसन्नता और संतोष के साथ दान देता रहूँ।
अतः मुक्त होकर मुझे सीधे स्वर्ग में पहुंचा दिया जाए, ताकि मुझे
फिर कभी पृथ्वी पर जन्म न लेना पड़े: यही मेरी आठवीं वरदान है।
जब देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने उनकी बात सुनी, तो उन्होंने कहा:

"जिस पिता से तुम प्यार करते हो, वह लंबे समय तक अपने बेटे को देखने की कामना करेगा।"
इस संबोधन के साथ, सक्का (इंद्र) अपने स्थान पर लौट गया। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने कहा:

"परमेश्वर, देवदूतों के राजा, सुजामपति ने कहा,
वरदान देने के बाद वह सीधे स्वर्ग लौट गए।"
अब बोधिसत्व और मद्दी उस आश्रम में सुखपूर्वक रहते थे जो सक्का (इंद्र) ने उन्हें दिया था; परन्तु जुजक अपने बच्चों के साथ साठ मील (4.23 किमी) की यात्रा पर निकल पड़ा। देवता बच्चों की रक्षा करते थे; सूर्यास्त के समय जुजक बच्चों को सरकंडों से बाँधकर जमीन पर लिटा देता था, परन्तु क्रूर और जंगली जानवरों के भय से वह स्वयं एक वृक्ष पर चढ़कर शाखाओं के बीच बैठ जाता था। तब एक देवता (देवदूत) वेसंतारा के रूप में और एक देवी मद्दी के रूप में बच्चों के पास आते; वे बच्चों को मुक्त करते, उनके हाथ-पैर साफ करते, उन्हें नहलाते और वस्त्र पहनाते, उन्हें भोजन देते और उन्हें एक दिव्य पलंग पर विश्राम कराते: फिर भोर होते ही वे उन्हें फिर से बाँध देते और गायब हो जाते। इस प्रकार देवताओं (देवदूतों) की सहायता से बच्चे बिना किसी क्षति के अपनी यात्रा पर लौट आए। जुजाका को भी देवताओं (देवदूतों) का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, और कलिंग राज्य जाने के इरादे से वह पंद्रह दिनों में जेतुत्तरा नगर पहुँच गया। उसी रात, शिवी राजा संजय ने एक स्वप्न देखा, और उनका स्वप्न इस प्रकार था: जब वह ऊँचे दरबार में बैठे थे, एक व्यक्ति आया और उनके हाथ में दो फूल दिए, जिन्हें उन्होंने एक-एक कान पर लटका लिया; और उनसे पराग उनके सीने पर गिर गया। जब वह सुबह उठे, तो उन्होंने अपने ब्राह्मणों से इसका अर्थ पूछा। उन्होंने कहा, "महाराज, आपके कुछ योद्धा, जो लंबे समय से अनुपस्थित थे, लौटेंगे।" इसलिए अगली सुबह, कई लज़ीज़ पकवानों का आनंद लेने के बाद, वह अपने दरबार में बैठे, और देवताओं ने उस ब्राह्मण को लाकर महल के प्रांगण में बिठा दिया। क्षण भर में राजा ने बच्चों को देखा, और कहा:

"यह किसका चेहरा है जो पीला चमक रहा है, सूखा हुआ मानो आग से झुलस गया हो,
किसी सोने के कंगन की तरह - मानो मशाल से झुलसकर पूरी तरह मुरझा गया हो?"
शरीर से एक जैसे, चेहरे पर एक जैसे निशान—ये बच्चे कौन हो सकते हैं?
जैसे जाली लड़का है, और कन्हाजिना लड़की।
वे दो छोटे शेर के शावकों की तरह हैं जो अपनी गुफा से नीचे उतरे हैं,
और एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं: और खड़े होने पर वे सुनहरे प्रतीत होते हैं।"

तीन श्लोकों में उनकी इस प्रकार प्रशंसा करने के बाद राजा ने एक दरबारी को उनके पास भेजा और उसे निर्देश दिया कि उन्हें उसके पास ले आए। दरबारी शीघ्र ही उन्हें ले आया; और राजा ने ब्राह्मण से कहा:

"हे भारद्वाज, मुझे बताइए कि आप इन बच्चों को कहाँ से लाए हैं?"
जुजाका ने कहा:

"दो सप्ताह पहले किसी ने मुझे ये चीजें दी थीं, मैं उसके काम से बहुत खुश था।"
राजा ने कहा:

"तुमने किन मीठी बातों या सत्य के शब्दों से उसे विश्वास दिलाया?
ये बच्चे, जो सभी उपहारों में सर्वोच्च हैं, तुम्हें किससे प्राप्त हुए?"
जुजाका ने कहा:

"वनभूमि में रहने वाले राजा वेसंतारा ने
उन्हें दास के रूप में दिया, जो पृथ्वी की तरह सभी दावेदारों को स्वतंत्र रूप से दे देते हैं।"
यह राजा वेसंतारा ही थे जिन्होंने अपने लोगों को मुझे दास के रूप में दे दिया,
जिनके पास सभी चाहने वाले जाते हैं, जैसे सभी नदियाँ समुद्र की ओर बहती हैं।"
यह सुनकर दरबारियों ने वेसंतारा की आलोचना की:

"यदि वह घर पर होता, तो किसी भी अच्छे राजा द्वारा ऐसा करना अनुचित होता:
जब उसे जंगल में निर्वासित कर दिया गया था, तब वह अपने बच्चों को कैसे दे पाता?"
हे सभी सज्जनों, जो यहाँ एकत्रित हैं, मेरी बात सुनो,
राजा अपने बच्चों को किसी और के हाथों की सेवा में कैसे सौंप सकता है?
वह पुरुष या स्त्री दास, घोड़ा, खच्चर, रथ
या हाथी दे सकता है: लेकिन अपने ही बच्चों को कैसे दे सकता है?
लेकिन यह सुनकर लड़का अपने पिता के आरोप को सहन नहीं कर सका; बल्कि मानो उसने अपनी भुजा से उस पर्वत सिनेरू को उठा लिया हो जो हवा के झोंके से अभिभूत था, उसने यह श्लोक सुनाया:

"दादाजी, वह कैसे दे सकता है, जब उसके पास न तो कोई
गुलाम है, न पुरुष और न महिला, न हाथी, न घोड़ा, न खच्चर, न रथ?"
राजा ने कहा:

"बच्चों, मैं तुम्हारे पिता के उपहार की प्रशंसा करता हूँ: मैं निंदा का एक शब्द भी नहीं कहता।
लेकिन जब उन्होंने तुम्हें विदा किया तो उनके दिल में क्या हुआ होगा?"
लड़के ने उत्तर दिया:

"उसका दिल पूरी तरह से दुखों से भरा हुआ था, और उसमें भयंकर आग जल रही थी,
उसकी आंखें रोहिणी की तरह लाल थीं, और उनसे आंसू की बूँदें गिर रही थीं।"
फिर कान्हाजीना बोलीं और बोलीं:

"पिताजी, इस ब्राह्मण को देखिए—
यह अपने घर के गुलाम की तरह लताओं से मेरी पीठ पीटता है।
यह कोई ब्राह्मण नहीं है, प्रिय पिताजी! ब्राह्मण तो धर्मात्मा होते हैं;
यह तो ब्राह्मण के वेश में एक जिन्न है, जो हमें खाने के लिए भगा रहा है।
आप हमें इस क्रूरता के साथ भगाते हुए कैसे देख सकते हैं?"
जब राजा ने देखा कि ब्राह्मण उन्हें जाने नहीं दे रहा है, तो उसने एक श्लोक पढ़ा:

"तुम राजा और रानी की संतान हो, तुम्हारे माता-पिता राजसी हैं:
एक समय था जब तुम मेरी गोद में चढ़ते थे; अब तुम दूर क्यों खड़े हो?"
लड़के ने उत्तर दिया:

"हम एक राजा और रानी की संतान हैं, हमारे माता-पिता राजसी हैं,
लेकिन अब हम एक ब्राह्मण के गुलाम हैं, और इसलिए हम दूर खड़े रहते हैं।"
राजा ने कहा:

"मेरे प्यारे बच्चों, ऐसा मत बोलो; मेरा हृदय गर्मी से प्यासा है,
मेरा शरीर धधकती आग के समान है, यह आसन बेचैन है।"
मेरे प्यारे बच्चों, ऐसा मत बोलो; तुम मुझे बहुत दुखी करते हो।
आओ, मैं तुम्हें कीमत देकर खरीद लूँगी, तुम अब गुलाम नहीं रहोगे।
मुझे सच-सच बताओ, मैं ब्राह्मण को कीमत चुकाने के लिए तैयार हूँ—
तुम्हारे पिता ने तुम्हें विदा करते समय तुम्हारी क्या कीमत तय की थी?
लड़के ने उत्तर दिया:

"मेरी बहन को मुक्त कराने के लिए, उसने हाथियों और बाकी सभी चीजों के लिए सौ-सौ का मूल्य तय किया था, जो मेरी कीमत थी: एक हजार टुकड़े। "
राजा ने बच्चों की कीमत चुकाने को कहा।

"उठो, कोषाध्यक्ष, ब्राह्मण को तुरंत भुगतान करो, और कीमत बताओ:
सौ नर और मादा दास, और बाड़े से मवेशी,
सौ हाथी और बैल, एक हजार पाउंड सोना।"
कोषाध्यक्ष ने ब्राह्मण को तुरंत भुगतान कर दिया, और तुरंत ही कीमत बता दी गई:
सौ नर और मादा दास, और बाड़े से मवेशी,
सौ बैल और हाथी, और एक हजार पाउंड सोना।
इस पर उसने उसे सात मंजिला महल भेंट किया; ब्राह्मण का वैभव भव्य था! उसने अपना सारा खजाना एक तरफ रख दिया और अपने महल में जाकर अपने उत्तम पलंग पर लेट गया और उत्तम मांस खाने लगा।

फिर बच्चों को नहलाया गया, खाना खिलाया गया और कपड़े पहनाए गए; दादाजी ने एक बच्चे को अपनी गोद में उठाया, दादीजी ने दूसरे को। इसे समझाते हुए गुरु ने कहा:

"बच्चों को खरीदा गया, अच्छी तरह से धोया और कपड़े पहनाए गए, उन्हें खूब सजाया गया और खिलाया गया, और उन्हें उनके दादा-दादी की गोद में बिठाया गया," फिर राजा ने कहा:

"जाली, हमें विश्वास है कि तुम्हारे माता-पिता दोनों समृद्ध और सुखी हैं, उनके पास अनाज इकट्ठा करने के लिए है और जहां वे रहते हैं वहां भरपूर मात्रा में जड़ें और फल हैं।"

क्या वे मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं, और क्या उन्हें जंगली जानवरों से सुरक्षा प्राप्त है?

लड़के ने उत्तर दिया:

"हे महाराज, मैं आपका धन्यवाद करता हूँ और इस प्रकार उत्तर देता हूँ: मेरे माता-पिता दोनों स्वस्थ हैं,
उनके निवास स्थान पर अनाज इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त अनाज और जड़ और फल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।"
मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से उन्हें कोई परेशानी नहीं होती,
और जंगली शिकारी जानवरों से उन्हें कोई खतरा नहीं होता।
वह जंगली कंद और मूली खोदती है, कैटमिंट और जड़ी-बूटियाँ खोजती है,
बेर, मेवे और विल्वा फल से वह हमेशा हमारे लिए भोजन ढूंढती है।
और जब वह जंगली फल और जड़ें लाती है, चाहे वे कुछ भी हों,
हम सब मिलकर रात को खाते हैं और दिन भर कड़ी मेहनत करते हैं।
हमारी माँ दुबली-पतली और पीली पड़ गई है, क्योंकि वह हमारे लिए भोजन की तलाश में भटकती रही है,
भीषण गर्मी और तेज हवाओं के संपर्क में आकर, उस जंगली जंगल में जहाँ जानवर घूमते रहते थे।
जैसे हाथ में पकड़ा हुआ कोमल कमल का फूल मुरझा जाता है:

जंगल की घाटियों में भटकने से उसके बाल पतले हो गए हैं।
उसकी बगलों में जमी हुई गंदगी है, उसके बाल जूड़े में बंधे हैं,
वह आग जलाती है, और जानवरों की खाल से बने वस्त्र पहने जमीन पर सोती है।
इस प्रकार अपनी माँ की कठिनाइयों का वर्णन करने के बाद, उसने अपने दादाजी से इन शब्दों में कहा:

"यह संसार का रिवाज है कि प्रत्येक पुरुष अपने पुत्र से प्रेम करता है;
परन्तु एक मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि आपने ऐसा नहीं किया है।"
राजा ने अपनी गलती स्वीकार की:

"निर्दोषों को बर्बाद करना वास्तव में मेरा गलत कार्य था,
जब मैंने जनता की आवाज पर अपने बेटे को देश निकाला दे दिया।"
फिर मेरी सारी संपत्ति, मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब
उसका हो जाए; और वेसंतारा आकर सिवी देश पर शासन करे।"
लड़के ने उत्तर दिया:

"मेरे कहने पर भी वह नहीं लौटेगा, सिवी देश का मुखिया:
तो तुम स्वयं जाओ और अपने बेटे को अपने हाथों से आशीर्वाद दो।"
तब सेनापति संजय ने अपने सेनापति से इस प्रकार कहा:

"मेरे घोड़े, रथ, हाथी और सैनिक तैयार होकर जाएं,
और लोगों को आने दें, सभी पुजारी वहां मौजूद रहें।"
साठ हजार योद्धा सरदार, हथियारों से लैस और खूबसूरती से सजे हुए,
नीले, भूरे या सफेद रंग के वस्त्रों में, रक्त लाल मुकुटों के साथ, वहां उपस्थित हों।
जैसे आत्माओं से भरी पहाड़ियाँ, जहाँ बहुतायत में पेड़ उगते हैं,
दिव्य पौधों से उज्ज्वल और मधुर होती हैं, वैसे ही यहाँ हवाएँ बहती हैं।
चौदह हजार हाथी लाओ, सभी सोने के अलंकृत वस्त्रों से सजे हुए,
भाले और हुक लिए हुए सारथी के साथ: उतने ही घोड़े भी लाओ।
सिंध के घोड़े, सभी उत्तम नस्ल के, और बहुत तेज गति से चलने वाले,
प्रत्येक पर एक बहादुर सहायक सवार है, जो तलवार और धनुष धारण किए हुए है।
चौदह हजार रथों को जोतकर अच्छी तरह सजाया जाए,
उनके पहिए लोहे की पट्टियों से अच्छी तरह से गढ़े जाएं और उन सभी पर सोने की जड़ाई की जाए।
उन्हें वहां झंडे, ढालें और कवच तैयार करने दो,
और साथ ही धनुष भी, वे योद्धा जो प्रहार करते हैं और कभी असफल नहीं होते।
इस प्रकार राजा ने अपनी सेना की संरचना का वर्णन किया; और उसने जेतुत्तरा से वामका पर्वत तक जाने वाली सड़क को आठ रॉड की चौड़ाई तक समतल करने और उसे इस प्रकार सजाने का आदेश दिया। उसने कहा:

चारों ओर लाजा के फूल और सुगंधित मालाएं बिखेर दो, और
जिस मार्ग से वह जाए उस पर पुण्य भेंटें चढ़ाओ।
प्रत्येक गाँव से सौ घड़े शराब लाएँ, उन लोगों के लिए जो चाहें,
और उन्हें उस सड़क के किनारे रख दें जिससे मेरा बेटा जाएगा।
वहाँ मांस और केक तैयार रखें, मछली से अच्छी तरह सजा हुआ सूप तैयार रखें,
और उन्हें उस सड़क के किनारे रख दें जिससे मेरा बेटा जाएगा।

मेरे बेटे के जाने वाले रास्ते के किनारे शराब, तेल, घी, दूध, बाजरा,
चावल और दही के अनेक व्यंजन रखे जाएं।
वहाँ रसोइये और मिठाई बनाने वाले हों, और गाने या बजाने वाले पुरुष हों,
नर्तक और कलाबाज हों, ढोल बजाने वाले हों, ताकि उदासी और चिंता दूर हो जाए।
वीणा से ध्वनि निकलती है, कर्कश ध्वनि वाले शंख से, और लोग
ढोल, तबला और हर प्रकार के ड्रम पर गुनगुनाते रहें।

इस प्रकार राजा ने सड़क की तैयारी का वर्णन किया।

लेकिन ब्राह्मण जुजाका ने अत्यधिक भोजन कर लिया और वह उसे पचा नहीं सका, इसलिए उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। राजा ने उसके अंतिम संस्कार की व्यवस्था की: ढोल बजाकर पूरे शहर में घोषणा की गई, लेकिन कोई रिश्तेदार नहीं मिला, और उसकी संपत्ति फिर से राजा के पास चली गई।

सातवें दिन, सभी लोग एकत्रित हुए। राजा ने बड़े धूमधाम से जाली को मार्गदर्शक बनाकर प्रस्थान किया। गुरु ने इसका वर्णन इस प्रकार किया:

"तब उस विशाल जनसमूह ने, उस देश की सेना ने, वामका पहाड़ी की ओर प्रस्थान किया, और जली ने दल का नेतृत्व किया।"

साठ वर्ष के हाथी ने तुरही की आवाज निकाली, जब उसकी कमर की बेल्ट बांधी गई तो उस शक्तिशाली जानवर ने जोर से तुरही बजाई।

फिर रथों के पहिए जोर से खड़खड़ाए, फिर घोड़े जोर से हिनहिनाए, जैसे ही विशाल सेना आगे बढ़ी, धूल का बादल उठ खड़ा हुआ।

हर जरूरत पूरी होने पर सेना पूरे जोश के साथ आगे बढ़ी, और जाली ने वामका पहाड़ी की ओर सेना का मार्गदर्शन किया।

वे उस विशाल जंगल में प्रवेश कर गए, जो पक्षियों और पेड़ों से भरा हुआ था, जिसमें हर प्रकार के फूल और मनचाहे फल मौजूद थे।

जब जंगल फूलों से भरा होता है, तो वहां गीतों की बौछार सुनाई देती है, कई चमकीले पंखों वाले पक्षियों की चहचहाहट इधर-उधर गूंजती है।

वे दिन-रात चलते रहे और अपनी लंबी यात्रा के अंत तक पहुँच गए, और उस जिले में प्रवेश कर गए जहाँ वेसंतारा निवास करता था।

मुकालिंडा झील के किनारे, राजकुमार जली ने उन्हें एक शिविर लगाने का आदेश दिया: उन्होंने चौदह हजार रथों को उस मार्ग की ओर मुंह करके खड़ा किया जिससे वे आए थे, और शेरों, बाघों, गैंडों और अन्य जंगली जानवरों को दूर रखने के लिए जगह-जगह पहरेदार तैनात किए। हाथियों आदि का बहुत शोर था; यह सुनकर महान सत्ता भयभीत हो उठी और सोचने लगी—"क्या उन्होंने मेरे पिता को मार डाला है और मेरे पीछे यहाँ आए हैं!" मद्दी को अपने साथ लेकर वह एक पहाड़ी पर चढ़ गया और सेना का जायजा लिया। इसका स्पष्टीकरण देते हुए गुरु ने कहा:

वेसंतारा ने पास आती हुई इस सभा का शोर सुना; वह एक पहाड़ी पर चढ़ गया और भय से भर कर सेना को देखने लगा।

ओ सुनो, मैडी, जंगल गर्जना की आवाज़ से भरे हुए हैं,
घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ सुनाई दे रही है, चारों ओर झंडे दिखाई दे रहे हैं।
क्या वे शिकारी हो सकते हैं, जो गड्ढों, शिकार के जालों या चाकुओं के साथ
जंगल में जंगली जानवरों का शिकार करते हैं और चिल्लाकर उनकी जान लेते हैं?
इसलिए हम, निर्दोष होते हुए भी, इस जंगली जंगल में निर्वासित होकर,
एक क्रूर मौत की उम्मीद करते हैं, क्योंकि अब हम दुश्मन के हाथों में पड़ गए हैं।"
ये शब्द सुनकर उसने सेना की ओर देखा और यह सोचकर कि यह उनकी अपनी सेना है, उसने उसे सांत्वना देने के लिए यह श्लोक सुनाया:

सब ठीक हो जाएगा: तुम्हारे शत्रु तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकते,
ठीक वैसे ही जैसे आग की कोई लपट समुद्र को नहीं बुझा सकती।
तब उस महान प्राणी को तसल्ली हुई और वह मद्दी के साथ पहाड़ी से नीचे उतरकर अपनी कुटिया के सामने बैठ गया। गुरु ने उसे यह समझाया:

"तब राजा वेसंतारा इस कारण पर्वत से नीचे उतरे,
और अपनी पत्तों से ढकी कुटिया के सामने बैठ गए और अपने मन को शांत करने का आदेश दिया।"
उसी क्षण संजय ने अपनी रानी को बुलवाया और उससे कहा, "मेरी प्रिय फुसती, यदि हम सब एक साथ जाएँगे तो बहुत बड़ा झटका लगेगा, इसलिए मैं पहले अकेला जाता हूँ। जब तुम्हें लगे कि वे शांत और आश्वस्त हो गए हैं, तब तुम अपने साथ कुछ लोगों को लेकर आ सकती हो।" थोड़ी देर बाद उसने जली और कन्हाजिना को आने को कहा। उसने अपने रथ को उसी रास्ते की ओर मोड़ा जिससे वह

आया था, और यहाँ-वहाँ पहरा बिठाकर अपने सजे-धजे हाथी पर सवार होकर अपने पुत्र को खोजने चला गया। गुरु ने इसका इस प्रकार वर्णन किया:

"उसने अपनी सेना को इकट्ठा किया, अपने रथ को सड़क की ओर मोड़ा, और उस जंगल की खोज की जहाँ उसका बेटा एकांत में रह रहा था।"

अपने हाथी पर सवार होकर, अपने एक कंधे पर अपना वस्त्र डाले, अपने ऊपर उठे हाथों को जोड़ते हुए, वह अपने पुत्र को सिंहासन सौंपने के लिए चला गया।

फिर उसने सुंदर राजकुमार को देखा, जो निडर और दृढ़ इच्छाशक्ति वाला था, पत्तों से बनी अपनी झोपड़ी के सामने बैठा ध्यानमग्न था।

वेसंतारा और मद्दी तब अपने पिता का अभिवादन करने गए, जैसे ही उन्होंने उन्हें पास आते देखा, वे अपने बेटे को देखने के लिए उत्सुक हो गए। तब मद्दी ने प्रणाम किया, अपना सिर उनके चरणों में रख दिया, तब उन्होंने उन्हें गले लगाया; अपने हाथों से उन्हें प्यार से सहलाया।

फिर शोक में रोते और विलाप करते हुए राजा ने उनसे दयालुतापूर्वक बात की।

"मुझे आशा और विश्वास है, मेरे पुत्र, कि तुम समृद्ध और कुशल हो,
जहाँ तुम रहते हो वहाँ तुम्हें भरपूर अनाज और फल और जड़ वाली सब्जियां मिलें।"
क्या आप मक्खियों, मच्छरों और रेंगने वाले कीड़ों से बहुत परेशान हुए हैं,
और क्या आपको जंगली जानवरों से सुरक्षा मिली है?
उस महान प्राणी ने अपने पिता को उत्तर दिया:

"मेरे स्वामी, हमें जो जीवन जीना पड़ा वह एक दयनीय जीवन था;
हमें जैसे-तैसे गुजारा करना पड़ा, जो कुछ हम इकट्ठा कर पाते थे वही खाना पड़ता था।"
विपत्ति मनुष्य को उसी प्रकार तोड़ देती है, जैसे सारथी
घोड़े को वश में करता है: हे राजा, विपत्ति ने हमें यहाँ वश में कर लिया है।
लेकिन हमारे माता-पिता की अनुपस्थिति ने ही हमारे शरीर को दुबला-पतला बना दिया है
, हे राजा, हमें निर्वासित कर दिया है और हमें जंगलों में रहने के लिए मजबूर कर दिया है।"
इसके बाद उसने अपने बच्चों के बारे में पूछा।

लेकिन जली और कन्हाजिना, तुम्हारे अभागे वारिस, जिन्हें अब
एक क्रूर, निर्दयी ब्राह्मण किसी गाय की तरह हांक रहा है,
यदि आप इन शाही बच्चों के बारे में कुछ भी जानते हैं, तो कृपया बताएं,
जैसे एक चिकित्सक सांप के काटने से पीड़ित व्यक्ति को ठीक करने का प्रयास करता है।
The king said:

"जाली और कन्हाजिना, तुम्हारे दोनों बच्चे, अब बिक चुके हैं:
मैंने ब्राह्मण को पैसे दे दिए हैं: इसलिए निश्चिंत रहो, मेरे बेटे, डरने की कोई बात नहीं है।"
यह सुनकर उस महान प्राणी को सांत्वना मिली और उसने अपने पिता से प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं।

"मुझे आशा है, प्रिय पिताजी, आप स्वस्थ होंगे, और अब आपको कोई परेशानी नहीं आएगी,
और मेरी माँ तब तक नहीं रोएगी जब तक उसकी आँखें दुखने न लगें।"
राजा ने उत्तर दिया:

"धन्यवाद, मेरे बेटे, मैं बिल्कुल ठीक हूँ, और अब कोई परेशानी नहीं है।
तुम्हारी माँ भी तब तक नहीं रोती जब तक उसकी आँखें दुखने न लगें।"
उस महान सत्ता ने कहा:

"मैं आशा करता हूँ कि राज्य में सब ठीक है, ग्रामीण इलाकों में शांति है,
सभी जानवर काम करने के लिए स्वस्थ हैं, और बारिश के बादल थमते नहीं हैं।"

राजा ने उत्तर दिया:

"ओह हाँ, राज्य में सब ठीक है, ग्रामीण इलाका शांत है,
सभी जानवर काम करने के लिए स्वस्थ हैं, बारिश के बादल थम नहीं रहे हैं।"
जब वे सब आपस में बातें कर रहे थे, तो रानी फुसाती को यह विश्वास हो गया कि वे सब चिंता से मुक्त हो गए होंगे, और वह अपने बेटे के पास एक बड़े समूह के साथ आईं।

गुरु ने इसे इस प्रकार समझाया:

"जब वे इस प्रकार आपस में बात कर रहे थे, तभी वहाँ मौजूद माँ को नंगे पैर दरवाजे की ओर आते हुए देखा गया, हालाँकि वह एक रानी थी।"

फिर वेसंतारा और मद्दी अपनी माँ से मिलने गईं, और मद्दी दौड़कर अपनी माँ के चरणों में सिर रख दिया।

दूर से बच्चों को सुरक्षित और स्वस्थ देखकर मैडी ने उन्हें रोते हुए देखा, जैसे छोटे बछड़े अपनी मालकिन को देखकर जोर से अभिवादन करते हैं।

और मैडी ने उन्हें सुरक्षित और स्वस्थ देखा: मानो वह किसी आवेश में हो, वह कांपते हुए दौड़ी और उन स्तनों को दूध से भरा हुआ महसूस किया जिनसे वे दूध पी रहे थे।

उस क्षण पहाड़ कांप उठे, धरती हिल गई, विशाल सागर व्याकुल हो उठा, पर्वतों के राजा सिनेरु झुक गए: देवताओं (देवदूतों) के छह निवास स्थान एक ही प्रचंड ध्वनि से गूंज उठे। देवताओं (देवदूतों) के राजा सक्का (इंद्र) ने देखा कि छह राजसी व्यक्ति और उनके सेवक जमीन पर बेहोश पड़े हैं, और उनमें से कोई भी उठकर दूसरों पर पानी नहीं छिड़क सकता; इसलिए उन्होंने वर्षा करने का निश्चय किया। उन्होंने ऐसा किया, जिससे जो भीगना चाहते थे वे भीग गए, और जो नहीं चाहते थे उन पर एक बूंद भी नहीं गिरी, बल्कि पानी कमल के पत्ते से बहने वाले पानी की तरह बह गया। वह वर्षा कमल के गुच्छे पर गिरने वाली वर्षा के समान थी। छह राजसी व्यक्ति होश में आ गए, और सभी लोग इस चमत्कार को देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि कैसे वर्षा परिवार पर हुई और विशाल पृथ्वी कांप उठी। गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

"जब एक ही परिवार के रक्त के ये लोग मिले, तो एक जोरदार आवाज गूंजी, जिससे चारों ओर की पहाड़ियाँ गूंज उठीं और विशाल पृथ्वी कांप उठी।"

ईश्वर ने एक विशाल बादल भेजा जिससे उसने वर्षा की बौछार भेजी, जब राजा वेसंतारा अपने परिवार से फिर से मिले।

राजा, रानी, पुत्र, बहू और पोते, सभी वहाँ उपस्थित थे। जब वे मिले तो उनके रोंगटे खड़े हो गए। लोगों ने तालियाँ बजाईं और राजा से ज़ोर-ज़ोर से प्रार्थना की।

उन्होंने वेसंतारा और मद्दी, दोनों को एक साथ पुकारा:

"आप ही हमारे स्वामी, राजा और रानी बनें, और हमारी पुकार सुनें!"
तब उस महान सत्ता ने अपने पिता से कहा:

"तुम और जनता, देशवासियों और नगरवासियों ने मुझे निर्वासित कर दिया,
जब मैं अपने राजसी सिंहासन पर न्यायपूर्वक शासन कर रहा था।"
राजा ने अपने बेटे की नाराजगी को शांत करने के लिए उत्तर दिया:

"निर्दोषों को बर्बाद करना वास्तव में मेरा गलत कार्य था,
जब मैंने जनता की आवाज पर अपने बेटे को देश निकाला दे दिया।"
इस श्लोक का पाठ करने के बाद, उन्होंने अपने दुःख से मुक्ति पाने के लिए एक और श्लोक जोड़ा:

"पिता या माता के दर्द को दूर करने के लिए, या बहन के दर्द को कम करने के लिए,
एक आदमी को कभी भी अपना जीवन देने में संकोच नहीं करना चाहिए।"

बोधिसत्व, जो अपने राजत्व को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक थे, लेकिन सम्मान प्राप्त करने के लिए इस बारे में ज्यादा कुछ नहीं कह रहे थे, अब सहमत हो गए; जिस पर उनके साठ हजार दरबारी, उनके जन्म के साथी, खुशी से चिल्ला उठे--

"हे महान राजा, अब धोने का समय आ गया है—धूल और गंदगी धो डालो!"
लेकिन उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "थोड़ा रुको।" फिर वे अपनी कुटिया में गए, और अपने संन्यासी वस्त्र उतारकर रख दिए। इसके बाद वे कुटिया से बाहर आए और बोले, "यह वह स्थान है जहाँ मैंने साढ़े नौ महीने तपस्या में बिताए हैं, जहाँ मैंने दान में पूर्णता प्राप्त की है, और जहाँ पृथ्वी कांप उठी थी।" उन्होंने कुटिया के चारों ओर तीन बार सही दिशा में परिक्रमा की और उसके सामने पाँचों बार प्रणाम किया। फिर उन्होंने उनके बाल और दाढ़ी संवारे और उन पर आशीर्वाद का जल उंडेला, और वे देवदूतों के राजा की तरह अपनी पूरी महिमा में चमक उठे। ऐसा कहा जाता है।

"तब राजा वेसंतारा ने धूल और गंदगी धो डाली।"

उनकी महिमा महान थी: जहाँ भी उन्होंने देखा, वह स्थान काँप उठा; शुभ शब्दों में निपुण लोगों ने उनका उच्चारण किया; उन्होंने हर प्रकार के वाद्य यंत्र उठा लिए; विशाल सागर पर गरज जैसी ध्वनि गूंजी; कीमती हाथी को उत्तम साज-सज्जा से सजाया गया, और राजकुमार की तलवार से सुसज्जित होकर वह उस पर सवार हुए, जबकि उनके साठ हजार दरबारी, उनके जन्म के साथी, भव्य समारोह में उनके चारों ओर जमा हो गए।

उन्होंने मद्दी से स्नान किया, उसे सजाया और आशीर्वाद के जल से अभिषेक किया, और जल डालते हुए वे जोर से बोले, "वेसंतारा आपकी रक्षा करे!" और अन्य शुभ संकेत वाले शब्द कहे। गुरु ने इसका इस प्रकार अर्थ समझाया:

"धुले हुए सिर और बड़े-बड़े वस्त्रों और राजसी आभूषणों के साथ, वह अपनी भयानक तलवार लिए अपने साथी हाथी पर सवार था।"

और फिर साठ हजार सरदार, जो देखने में अत्यंत सुंदर थे, उनके जन्म के साथी, अपने स्वामी के चारों ओर आए और उन्हें सम्मानपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित की।

फिर महिलाओं ने मद्दी को स्नान कराया और सबने मिलकर प्रार्थना की-- "वेसंतारा और संजय आप सबकी सदा रक्षा करें!"

इस प्रकार पुनः स्थापित होकर और अपने अतीत की परेशानियों को भूलकर, उन्होंने अपने सुखद स्वामी की भूमि में खूब आनंद मनाया।

इस प्रकार पुनः स्थापित होकर और अतीत को भूलकर, प्रसन्न और आनंदित होकर वह महिला अपने प्यारे बच्चों के साथ चली गई।

तो उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने बच्चों से कहा:

"मैं दिन में केवल एक बार भोजन करता था, मैं जमीन पर सोता था,
यही तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम की प्रतिज्ञा थी जब तक कि तुम मिल न जाओ।"
लेकिन अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई है, और अब मैं फिर से विनती करता हूँ,
हमने जो भी अच्छा कार्य किया है, उसकी आप दोनों को सदा रक्षा करें,
और महान राजा संजय आप दोनों की सदा रक्षा करें।
मेरे पिता या मेरे द्वारा किए गए किसी भी अच्छे कार्य
के कारण, आप कभी बूढ़े नहीं होते, अमर हो जाते हैं।
रानी फुसती ने यह भी कहा, "अब से मेरी बहू को ये वस्त्र पहनाए जाएँ और ये आभूषण पहनाए जाएँ!" उसने ये वस्त्र बक्सों में भरकर उसे भेजे। गुरु ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

"मद्दी की सास ने उसे सूती, रेशमी, लिनेन और इतने महीन कपड़े के वस्त्र भेजे थे, जिनसे उसकी सुंदरता और भी निखर गई थी।"

मैडी को उसकी सास ने हार और कंगन, माथे का आभूषण, पैरों की चूड़ी और गहनों से सजी अंगूठियां भेजी थीं, जिनसे उसकी सुंदरता और भी निखर गई थी।

और जब राजकुमारी मेले से गुजरते हुए अपने आभूषणों का अवलोकन कर रही थी, तो वह ऐसे चमक उठी जैसे नंदना में सजी देवियाँ चमकती हैं।

सिर धुले, गहने पहने और बड़े-बड़े वस्त्र धारण किए हुए, वह तैंतीस के सामने किसी स्वर्गीय अप्सरा की तरह चमक रही थी।

जैसे जब सिट्टलता के बाग में हवा से केले का पेड़ लहराता है, तब सुंदर होठों वाली राजकुमारी उस पेड़ की तरह ही प्यारी लगती थी।

जैसे कोई चमकीले पंखों वाली चिड़िया हवा में उड़ती है, वैसे ही अपने प्यारे होंठों और सुंदरता से उसने सबको चकित कर दिया।

वे एक शानदार युवा हाथी लाए, जो शक्तिशाली और बलवान था, जिसे न तो भाला और न ही युद्ध का शोर डरा सकता था, जिसके दांत लंबे थे।

वह उस विशाल और बलवान हाथी पर सवार होती है, जिसे न तो भाला और न ही युद्ध का शोर डरा सकता था, जिसके दांत लंबे थे।

अतः वे दोनों बड़े धूमधाम से शिविर की ओर चल पड़े। राजा संजय और उनके असंख्य अनुयायियों ने पूरे एक महीने तक पर्वतीय और वनीय खेलों में आनंद लिया। उस दौरान, महापुरुष की कृपा से, उस विशाल वन में किसी भी जंगली जानवर या पक्षी ने कोई क्षति नहीं पहुँचाई। गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

वेसंतारा की महिमा की कसम, उस विशाल जंगल में, किसी भी जानवर या पक्षी ने दूसरे को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया, सभी ने भलाई की।

और जब वह जाने लगा, तो सभी पक्षी, जानवर और जंगल के सभी प्राणी एकमत होकर उसके साथ चले गए; परन्तु जब वह जंगल से चला गया, तो सभी मधुर ध्वनियाँ शांत हो गईं।

एक महीने के उत्सव के बाद, संजय ने अपने सेनापति को बुलाया और कहा, "हम जंगल में बहुत समय बिता चुके हैं; क्या मेरे पुत्र की वापसी के लिए मार्ग तैयार है?" सेनापति ने उत्तर दिया, "जी, महाराज, अब जाने का समय हो गया है।" उन्होंने वेस्संतरा को संदेश भेजा और अपनी सेना के साथ, अपने पूरे दल के साथ, वामका पर्वत के मध्य से जेतुत्तरा नगर तक तैयार किए गए मार्ग पर चल पड़े। गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

"राजकीय मार्ग नवनिर्मित था, फूलों और झंडों से खूबसूरती से सजा हुआ था, जहाँ से वह जंगल के खुले मैदान में रहता था, वहाँ से लेकर जेटुत्तरा शहर तक।"

उसके साठ हजार साथी आसपास थे, और लड़के-लड़कियां, ब्राह्मण और वैश्य, सभी जेतुत्तरा नगर की ओर घर लौट रहे थे।

वहां कई हाथी के महावत, रथ चालक और पैदल सैनिक, साथ ही राजरक्षकों का पूरा दल जेतुत्तरा जा रहा था।

खोपड़ी या खाल पहने योद्धा, तलवारों से लैस कवचधारी पुरुष, राजकुमार की रक्षा के लिए जेतुत्तरा शहर की ओर आगे बढ़े।

राजा ने साठ लीग (4.23 किमी) की यह यात्रा दो महीने में पूरी की। फिर वे जेतुत्तरा में प्रवेश कर गए, जिसे उनके स्वागत के लिए सजाया गया था, और महल में चले गए। गुरु ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया:

फिर वे ऊँची दीवारों और मेहराबों वाले सुंदर शहर में प्रवेश कर गए, गीत और नृत्य के साथ, भोजन और पेय प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे।

सिवी भूमि में अपने उच्च ख्याति प्राप्त राजकुमार का स्वागत करने पर देश और शहर के लोग अत्यंत प्रसन्न थे।

सभी ने दानदाता के आने पर अपने रुमाल हवा में लहराए; अब ढोल की थाप से कैदियों की रिहाई की घोषणा की जा रही है।

अतः राजा वेसंतारा ने बिल्लियों सहित सभी प्राणियों को मुक्त कर दिया; और जिस दिन वे नगर में प्रवेश कर रहे थे, शाम को उन्होंने सोचा, "जब सूर्योदय होगा, तो मेरे लौटने की खबर सुनकर आने वाले सभी लोग आएंगे, और मैं उन्हें क्या भेंट करूँ?" उसी क्षण इंद्र का सिंहासन प्रचंड हो गया: उन्होंने विचार किया और कारण समझ गए। उन्होंने सात प्रकार के रत्नों की मूसलाधार वर्षा की, जिससे महल के आगे-पीछे के हिस्से कमर तक और पूरा नगर घुटनों तक रत्नों से भर गया। अगले दिन, उन्होंने विभिन्न परिवारों को अलग-अलग स्थान आवंटित किए और उन्हें रत्न चुनने के लिए कहा; शेष रत्नों को उन्होंने एकत्रित करवाकर अपने खजाने में रख दिया; और उनके खजाने में भविष्य में हमेशा बांटने के लिए पर्याप्त धन था। गुरु ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की:

"जब वेसंतरा, सिवी के संरक्षक राजा, वापस लौटे, तो देवता (देवदूत) ने उस स्थान पर बहुमूल्य सोने की वर्षा की।"

अतः जब राजकुमार वेसंतारा ने अपने उदार दान दिए, तो अंततः उनकी मृत्यु हो गई और वे पूर्णतः बुद्धिमान होकर स्वर्ग सिधार गए।

जब गुरु ने वेसंतारा के हजार श्लोकों वाले इस प्रवचन को समाप्त किया, तो उन्होंने जन्म का वर्णन इस प्रकार किया: "उस समय, देवदत्त जुजक थे, चिंचा नाम की स्त्री अमिततततापानी थीं, चन्ना चेतपुत्त थे, सारिपुत्र तपस्वी अच्चुत थे, अनुरुद्ध सक्का (इंद्र) थे, राजा शुद्धोदन (बुद्ध के पिता और कपिलवस्तु के राजा) राजा संजय थे, महामाया (बुद्ध की दिवंगत माता) फुसती थीं, राहुल की माता (बुद्ध की पत्नी) रानी मद्दी थीं, राहुल (बुद्ध के पुत्र) राजकुमार जली थे, उप्पलावन्ना कन्हाजिना थे, बुद्ध के अनुयायी शेष लोग थे, और राजा वेसंतारा मैं स्वयं था।"

निद्देसा

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा

अंतर्वस्तु

1निद्देसा
1.1भाग 1: महा निद्देसा
1.2भाग 2: Cūlạ Niddesa
2अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
3मूल पाली संस्करण
3.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
3.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

निद्देसा

निद्देसा (संस्कृत निर्देश) सुत्त निपात के कुछ भागों पर टीका के रूप में है। परंपरा के अनुसार, इसकी रचना बुद्ध के शिष्य सारिपुत्त ने की थी। यह दो भागों में विभाजित है:
महा निद्देसा, जो अठक वग्ग ("आठवाँ अध्याय," खंड 4) पर टीका है;
और चुल्ला या चुला निद्देसा, जो परायण वग्ग ("दूर तट का मार्ग अध्याय," खंड 5) और खग्गविसना सुत्त ("गैंडे के सींग पर प्रवचन," खंड 1.3) पर टीका है।

स्रोत: https://zacanger.com/niddesa/

परिचय
भाग 1: महा निद्देसा
निद्देसा: अष्टम अध्याय की व्याख्या
1. इच्छा
2. गुफा
3. बुराई
4. शुद्धता
5. सर्वोच्च
6. वृद्धावस्था
7. तिस्सा मेत्तेय्या
8.पसूरा
9.मागंदिया
10. विघटन से पहले
11. झगड़े और बहस

12. छोटा दर्रा
13. ग्रेटर पास
14. त्वरित निर्देश
15. जिसने दंड उठाया है
16. सारिपुत्त

भाग 2: Cūḷa Niddesa

दूर तट तक जाने के मार्ग की व्याख्या

प्रस्तावना
1.अजीता
2. तिस्सा मेत्तेय्या
3.पुण्णका
4. मेट्टागू
5.धोताका
6. उपासिव
7.नंदा
8. हेमाका
9. तोदेय्या
10. कप्पा
11.Jatukanṇī
12. भद्रावुधा
13. उदय
14.पोसाला
15. मोगराज
16.पिंगिया
17. दूर तट तक जाने के मार्ग की प्रशंसा करना
18. सुदूर तट तक जाने के मार्ग का पाठ

निद्देसा:2.ख गैंडे के सूत्र की व्याख्या

पहला अध्याय
दूसरा अध्याय
तीसरा अध्याय
चौथा अध्याय

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

महा निद्देसा
परम पूज्य, अरहंत, प्रबुद्ध को नमस्कार।

अष्टम अध्याय की व्याख्या
1. इच्छा
(शीर्षकों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है; अध्याय का पूरा शीर्षक होगा "इच्छा के बारे में अष्टक की व्याख्या"।)

1. जब वह कुछ चाहता है, और यदि वह उसके लिए सफल हो जाता है, तो यह सच है कि वह खुश है: जो मरने वाला है उसे वह मिल गया जो वह चाहता था।

“जब वह इच्छा करता है”: “इच्छा” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और अपवित्रता की इच्छा। वस्तुओं की इच्छाएँ क्या हैं? मनभावन रूप, मनभावन ध्वनि, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद, मनभावन स्पर्श, बिस्तर, वस्त्र, नौकरानियाँ, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गायें, घोड़े, खच्चर, खेत, घर, सोना, सोने के सिक्के, गाँव और कस्बे, राजधानियाँ, देश, क्षेत्र, खजाने, गोदाम; हर वह चीज़ जो लालच से दूषित हो सकती है, वस्तुओं की इच्छा है।

इसके अतिरिक्त, अतीत की इच्छाएँ, भविष्य की इच्छाएँ, वर्तमान की इच्छाएँ, आंतरिक इच्छाएँ, बाह्य इच्छाएँ, आंतरिक और बाह्य इच्छाएँ, निम्न इच्छाएँ, मध्यम इच्छाएँ, उच्च इच्छाएँ, दुखमय संसार की इच्छाएँ, मानवीय इच्छाएँ, स्वर्ग की इच्छा, अतीत से चली आ रही इच्छा, सृजित इच्छा, असृजित इच्छा, दूसरों द्वारा सृजित इच्छा, अपने पास मौजूद इच्छा, अपने पास न होने वाली इच्छा, पोषित होने की इच्छा, पोषित न होने की इच्छा, इच्छाओं के संसार की सभी इच्छाएँ, भौतिक संसार की सभी इच्छाएँ, अभौतिक संसार की सभी इच्छाएँ, प्यास पर आधारित, लालसा को विषय बनाकर, ताकि लोग धर्म की चाह रखें; ताकि वे धर्म की लालसा से संक्रमित हो जाएँ; इच्छाओं के रूप में धर्म से मदहोश हो जाएँ, इन्हें भौतिक इच्छाएँ कहा जाता है।

प्रदूषण की इच्छा क्या है? इच्छा की इच्छा, लोभ की इच्छा, लोभ करने की इच्छा, इरादे की इच्छा, लोभ के इरादे की इच्छा, यानी इच्छा की इच्छा, इच्छा का लोभ, इच्छा का आनंद, इच्छा का प्रेम, इच्छा का उत्साह, इच्छा का आकर्षण, इच्छा का आवेग, इच्छा का बंधन, इच्छा का आसक्ति, इच्छा का आवरण।

“इच्छा की उन जड़ों को देखकर, जो विचार (इच्छा) से उत्पन्न होना चाहती हैं, मैं उनके बारे में नहीं सोचूंगा, इसलिए इच्छा का अस्तित्व नहीं होगा।” [जात.8.421]

इन्हें अपवित्रता की इच्छा कहा जाता है। “जब वह इच्छा करता है”: जब वह इच्छा करता है, जब वह चाहता है, जब वह लेता है, जब वह प्रार्थना करता है।

“यदि यह उसके लिए सफल हो”: “यदि यह उसके लिए हो,” उस क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ परिवार, भिक्षु, स्वर्ग या व्यक्ति के लिए। “वह,” जिसे वस्तुओं की इच्छाएँ कहा जाता है: वांछनीय रूप, वांछनीय ध्वनियाँ...(विलुप्त)। “सफलता,” वह प्राप्त करता है, सफल होता है, पाता है, हासिल करता है, अपना बनाता है।

“यह सच है कि वह प्रसन्न है”: “यह सच है,” यह निर्णायक भाषा है, निर्विवाद भाषा है, आत्मविश्वास से भरी भाषा है, निःसंदेह दोहराने वाली भाषा है, आदेशात्मक भाषा है, अचूक भाषा है, यह निश्चितता का शब्द है, जो “वास्तव में” है। “सुख” पाँच इच्छाओं से संबंधित हृदय के आनंद, हँसी, प्रसन्नता, संतुष्टि, उत्साह और उल्लास को संदर्भित करता है। “मन,” मन, हृदय, शुद्ध मन, मन का मूल, चेतना, चेतना का भावार्थ, उस चेतना के अनुरूप, इसे मन कहा जाता है। यह मन आनंद, सहअस्तित्व, अंतर्मिश्रण, अनुरूपता, सहधारणा, सहविलीनता, एक ही स्थान और एक ही वस्तु से जुड़ा हुआ है। “वह वास्तव में प्रसन्न है,” वह वास्तव में प्रसन्न है; उसमें आनंद, हँसी, प्रसन्नता, उत्साह और उल्लास है।

“वे जो अपनी इच्छा पूरी होने पर भी अनिवार्य रूप से मर जाते हैं”: “प्राप्त करने के बाद”, “प्राप्त करने के बाद”, “हासिल करने के बाद”, “प्राप्त करने के बाद”, “अधिकार प्राप्त करने के बाद”। “वे लोग जो अनिवार्य रूप से मर जाते हैं” चेतन प्राणी हैं, मनुष्य हैं, विद्यार्थी ब्राह्मण हैं, लोग हैं, व्यक्ति हैं, जीवन हैं, जन्म लेने वाले हैं, चेतन हैं, इंद्र में हैं, मनु से जन्मे हैं। “जो चाहता है”, वह जो भी चाहता है, जो भी स्वीकार करता है, जो भी आशा करता है, जो भी इच्छा करता है, जो भी प्रार्थना करता है, रूप के लिए, या ध्वनि के लिए, या गंध के लिए, या स्वाद के लिए, या स्पर्श के लिए।

2 · यदि आप इच्छा करने वाले हैं: उन इच्छाओं के प्रति स्नेह उत्पन्न होता है, यदि वे इच्छाएँ क्षीण (कमजोर) हो जाती हैं, तो आपको ऐसा कष्ट होगा जैसे किसी तीर से भेद दिया गया हो।

“यदि तुम ही वह हो जो इच्छा रखते हो”: “यदि तुम वही हो,” चाहे वह क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, ...(अंतःखंडित)। “जो इच्छा रखता है,” जो इच्छा करता है, स्वीकार करता है, चाहता है और इच्छा में प्रार्थना करता है, और इच्छा और लालसा से बह जाता है, जैसे कोई गाड़ी, रथ, मवेशी, बकरी, मेढ़े, ऊंट, गधे और घोड़े की गाड़ी, बह जाती है, परिवहन करती है और संभालती है। उसी प्रकार, वह इच्छा और लालसा से बह जाता है, ले जाया जाता है और बह जाता है।

“उत्पन्न इच्छा के प्रति आसक्ति”: “इच्छा”, सभी इच्छाओं की इच्छाएँ, इच्छाओं का लोभ, इच्छाओं का आनंद, इच्छाओं की प्यास, इच्छाओं का प्रेम, इच्छाओं का अधिकार, इच्छाओं का उत्साह, इच्छाओं का मोह, इच्छाओं की बाढ़, इच्छाओं का बंधन, इच्छाओं का आसक्ति और इच्छाओं का आवरण, उसकी इच्छाओं की इच्छा जागृत होती है, उत्पन्न होती है, जन्म लेती है और प्रकट होती है। सभी सजीव प्राणियों, मनुष्यों, विद्यार्थी ब्राह्मणों, लोगों, व्यक्तियों, जीवन, जन्म लेने वालों, सजीव प्राणियों, इंद्रास्थि प्राप्त करने वालों और मनु से जन्म लेने वालों के लिए।

“वे इच्छाएँ कमज़ोर हो जाती हैं”: जैसे-जैसे वे इच्छाएँ कमज़ोर होती हैं, या वह सभी इच्छाओं से विमुख हो जाता है। वे इच्छाएँ कैसे कमज़ोर होती हैं? जब वह धन धारण करता है, तो राजा उसे ले लेते हैं, या चोर उसे ले लेते हैं, या आग उसे जला देती है, या पानी उसे बहा ले जाता है, या अयोग्य वारिस उसे ले जाते हैं, या भंडार में नहीं मिलता, या अन्याय से नष्ट हो जाता है, या परिवार में किसी फिजूलखर्ची करने वाले के कारण होता है, जहाँ धन बिखर जाता है या नष्ट हो जाता है; ये आठ अनित्यता की अवस्थाएँ हैं, यही उन इच्छाओं का क्षय, गिरावट, हानि, पतन, लुप्त होना, टूटना है। वह सभी इच्छाओं से कैसे विमुख हो रहा है? जब वह उस धन को धारण करता है, तो वह मर जाता है और नष्ट हो जाता है, इसलिए वह उन इच्छाओं से विमुख हो जाता है, लुप्त हो जाता है, खो जाता है, कमज़ोर हो जाता है, लुप्त हो जाता है, टूट जाता है।

“चोर और राजा इसे छीन लेते हैं, आग जलाकर नष्ट कर देती है, और अंत में व्यक्ति शरीर और संपत्ति छोड़कर चला जाता है। बुद्धिमान लोग, यह जानकर, अपनी संपत्ति का उपयोग और दान करें; दान और उपयोग करने के बाद, वे निर्दोष स्वर्ग में जाएंगे।” [एस.एन.1.41]

“वह ऐसे पीड़ा झेल रहा है मानो उसे तीर से जमीन में छेद कर दिया गया हो”: यदि उसे लोहे का तीर, हड्डी का तीर, दाँतों का तीर, सींगों का तीर या लकड़ी का तीर लग जाए, तो वह परेशान, क्रोधित, सताया हुआ, व्याकुल हो जाता है और बीमार व दुखी हो जाता है। इसी प्रकार, वस्तुओं की इच्छाओं के परिवर्तन और उतार-चढ़ाव से दुःख, उदासी, पीड़ा, चिंता और निराशा उत्पन्न होती है, और वह इच्छा या चिंता के तीरों से घायल हो जाता है; वह परेशान, क्रोधित, सताया हुआ, व्याकुल हो जाता है और बीमार व चिंतित हो जाता है।

3. जो लोग हर तरह की इच्छा से बचते हैं, जैसे किसी सांप के सिर पर पैर रखने से बचते हैं, वे सचेत रहकर इस दुनिया के प्रेम से परे चले जाते हैं।

“जो कोई भी इच्छा से बचता है”: “क्या,” क्या है, जैसे प्रयास, जैसे व्यवस्था, जैसे प्रकार, जहाँ भी वह पहुँचा है, जहाँ वह क्षत्रिय है, या ब्राह्मण है, ..., या व्यक्ति है। “इच्छाओं से बचना” और “इच्छाएँ,” दो प्रकार की इच्छाएँ हैं: .... “इच्छाओं से बचना,” इच्छाओं से बचने के दो तरीके हैं: दमन या विच्छेद। इच्छाओं को दबाने से कैसे बचा जाए? जब आप देखते हैं कि “कम आनंद के साथ धर्म का स्वाद लेना, इच्छा एक कंकाल के समान है,” तो इच्छाओं को पूरी तरह से दबाने से बचें; जब आप धर्म को जलाते हैं, तो इच्छा घास की मशाल के समान होती है, ...; जब आप देखते हैं कि “धर्म को तीव्र ज्वाला से गर्म करना, इच्छा कोयले की आग के गड्ढे के समान है,” ...; जब आप देखते हैं कि “अस्थायी विद्रोह, इच्छा सपने देखने जैसी है” ...; जब आप देखते हैं कि “अस्थायी धर्म, इच्छा उधार ली गई वस्तु के समान है,” ...; जब आप देखते हैं कि “विनाश, धर्म का विनाश, इच्छा एक वृक्ष के समान है” ....; जब तुम “टूटी-फूटी और चकनाचूर धार्मिकता” देखते हो, तो इच्छा कसाईखाने के समान होती है...; जब तुम “भेदी धार्मिकता” देखते हो, तो इच्छा तलवार और भाले के समान होती है...; जब तुम “डर से धार्मिकता का भय” देखते हो, तो इच्छा सांप के सिर के समान होती है...।

बुद्ध ध्यान (स्मरण) का अभ्यास करते समय, इच्छाओं से बचें; धम्म ध्यान का अभ्यास करते समय...; संघ ध्यान का अभ्यास करते समय...; उपदेश ध्यान का अभ्यास करते समय...; उदारता का ध्यान...; देवता ध्यान (देवतानुस्सतिं)...; श्वास का ध्यान...; मृत्यु ध्यान...; शरीर के प्रति पूर्ण जागरूकता; मौन और आत्मसंतुष्टि का अभ्यास करते समय, इच्छा से बचें।

प्रथम ध्यान का अभ्यास करते समय, इच्छाओं से बचें; द्वितीय ध्यान का अभ्यास करते समय...; तृतीय ध्यान का अभ्यास करते समय...; चतुर्थ ध्यान का अभ्यास करते समय...; शून्यता के क्षेत्र में निवास का अभ्यास करते समय (पहला/प्रथम अमूर्त ध्यान)...; ज्ञान की असीमता में (छठा ध्यान)...; शून्यता में (सातवां ध्यान)...; यह दमन द्वारा इच्छा से बचना है।

इच्छाओं से मुक्ति कैसे प्राप्त करें? सोतापन्न मार्ग का अभ्यास करने पर दुख भोगना पड़ता है; सकदागामी मार्ग का अभ्यास करने पर स्थूल इच्छाओं से मुक्ति मिलती है; अनागामी मार्ग का अभ्यास करने पर सूक्ष्म इच्छाओं से मुक्ति मिलती है; और अरहंत मार्ग का अभ्यास करने पर हर पहलू से, पूर्णतः, बिना किसी अवशेष के, इच्छा का पूर्णतया त्याग हो जाता है। यही है इच्छाओं से मुक्ति।

“यह ऐसा है जैसे अपने पैर सांप के सिर पर रख देना”: सांप (सप्पो) को सांप (अही) कहा जाता है। सांप का क्या अर्थ है? “चढ़ना और चलना” सांप है; “झुकना और चलना” टेढ़ा-मेढ़ा चलना है; “छाती पर चलना” छाती पर चलने वाला है; “सिर नीचे करके चलना” घात लगाकर हमला करने वाला है; “सिर झुकाकर रेंगना” रेंगने वाला है; “गुफा में सोना” गुफा (कब्र) में रहने वाला है; “दांत को हथियार के

रूप में इस्तेमाल करना" दांत को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने वाला है; "जहर भयानक है" अत्यधिक विषैला है; "दोहरी जीभ वाला" दो जीभों वाला है; "दूसरी जीभ से स्वाद चखना" दूसरी जीभ से स्वाद चखने वाला है। जो जीना चाहता है और मरना नहीं चाहता, जो सुख चाहता है और दुख से घृणा करता है, वह अपने पैरों से सांप के सिर पर हर जगह से बचकर निकलेगा। ठीक इसी प्रकार, जो व्यक्ति सुख चाहता है और कड़वाहट से घृणा करता है, वह हर प्रकार की इच्छा से बचता है, उससे दूर रहता है और उससे विमुख होता है।

"वह इस संसार में प्रेम से परे, सचेतनता से परे है": "वह," जो हर जगह इच्छाओं से बचता है। प्रेम को प्यास कहा जाता है, जो लोभ, वासना, सहमति, अनुरूपता, आनंद, पसंद, चाहत, इच्छा, मोह, लेना, अत्यधिक लोभ, बंधन, कीचड़, अशांति, पाखंड, (पुनर्जन्म) मूल कारण, (कड़वा) उर्वरता, सिलाई (लालसा), जाल, नदी, बंधन, रस्सी, लगाव, संचय, साथी, इच्छा, अस्तित्व का मार्ग, इच्छा वन (जंगल), घनिष्ठता, प्रेम, प्रत्याशा, संबंध, आकांक्षा, आकांक्षा की अवस्था, रूप की इच्छा, ध्वनि की इच्छा, गंध, स्वाद, स्पर्श, प्राप्ति की इच्छा, मनुष्य की इच्छाएँ (धन), पुत्र की इच्छा, जीने की इच्छा, इच्छा की अवस्था, प्रार्थना, लोभ, लोभपूर्ण रूप, लोभ की अवस्था धारण करना, पूछताछ (लाभ के लिए), दक्षता की इच्छा, अवैध लोभ, अनुचित लोभ, इच्छा, आशा, ईर्ष्या, पूर्ण आशा, इच्छा की इच्छा, अस्तित्व की इच्छा, शून्यता की इच्छा, सजीव प्यास, निराकार प्यास, विलुप्ति की प्यास, रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास, गंध की प्यास, स्वाद की प्यास, स्पर्श की प्यास, धम्म की प्यास है। तेज धारा, लगाम, बंधन, चिपकाव, बाधाएं, आवरण, बंधन, साथ ही अपवित्रताएं, संभावित परेशानियां, उलझाव, लताएं, कंजूसी, पीड़ा के मूल, पीड़ा के कारण, पीड़ा का घटित होना, राक्षस का जाल, राक्षस का कांटा, राक्षस का भोजन (लालच), राक्षस का क्षेत्र, राक्षस का निवास, राक्षस का बंधन, प्यास की नदी, प्यास का जाल, प्यास की रस्सी, प्यास का सागर, लालसा, लोभ और अस्वास्थ्य की जड़।

प्रेम: प्रेम का अर्थ क्या है? प्रेम का अर्थ है "फैलाव", "विस्तार", "व्यापकता", "आकर्षित करना", "पकड़ना", "धोखाधड़ी", "विषाक्त जड़", "विषाक्त फल", "विषाक्त प्रयोग", या फिर, विशाल लालसा: रूप में..., ध्वनि में..., गंध में..., स्वाद में..., स्पर्श में..., घर में..., लोगों (समूहों) में, आवास में, लाभ में, प्रसिद्धि में, प्रशंसा में, सुख में..., वस्त्रों में..., भोजन में, बैठने की जगह में..., रोगी की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतों में, इच्छा के क्षेत्र में, रूप के क्षेत्र में, निराकार के क्षेत्र में, पाने की इच्छा में, रूप में, निराकार में, इच्छा के क्षेत्र में, पाने की जिज्ञासा में, न पाने की इच्छा में, एक समूह में, चार समूहों में, पांच समूहों में, भूतकाल में, भविष्यकाल में, वर्तमान में, धर्मों में विस्तारित आसक्तियाँ जो देखी, सुनी, महसूस की और जानी जा सकती हैं।

"संसार में": दुख के संसार में, मनुष्य के संसार में, स्वर्ग के संसार में, समुच्चय के संसार में, लोकों के संसार में, अस्तित्व के संसार में। "सचेत रहना" का अर्थ है चार प्रकार से सचेत रहना: जब अभ्यास शरीर में सचेत हो, ...विषय में सचेत हो, ...मन में सचेत हो, ...धम्म पर सचेत हो, तो यही सचेतनता है।

और चार तरीकों से: मन से विमुख होने की अवस्था ही सचेतनता है, मन के प्रति किए जाने वाले धम्म की अवस्था ही सचेतनता है, मन द्वारा बाधित होने वाले धम्म की अवस्था ही सचेतनता है, और सचेतनता को न भूलने की अवस्था ही सचेतनता है।

और चार तरीकों से: सचेतनता की अवस्था, सचेतनता में बने रहने की अवस्था, सचेतनता का अनुभव करने की अवस्था और सचेतनता का कम न होने की अवस्था।

और चार प्रकार से: सचेतनता की अवस्था ही सचेतनता है, मौन अवस्था ही सचेतनता है, स्थिर अवस्था ही सचेतनता है, और धम्म की अवस्था ही सचेतनता है; बुद्ध का सचेतन, धम्म का सचेतन, संघ का सचेतन, उपदेशों का सचेतन, दान का सचेतन, आकाश को मन मानकर; (अंदर आने वाली) श्वास और (बाहर जाने वाली) श्वास के साथ, मृत्यु के साथ मन, शरीर के साथ मन, मौन के साथ मन;

सामान्य मन, स्मरण में मन, स्मरण की अवस्था, भटकने से बचने की अवस्था, न भूलने की अवस्था, मन का मूल, मन की शक्ति, सचेतनता का आधार, और बिना विभाजक वाला मार्ग, ये सभी सचेतनता कहलाते हैं। इस विचार को धारण करना, पूर्णतः उसमें लीन होना, इस विचार को प्राप्त करना, पूर्णतः उसमें लीन होना, इस विचार को धारण करना, ये सभी सचेतन कहलाते हैं।

"वह इस संसार में प्रेम को सचेतन रूप से पार कर जाता है": संसार में प्रेम, या संसार का प्रेम, वह सचेतन रूप से पार करता है, उससे परे जाता है, उसे पार करता है, उससे आगे निकल जाता है और उस पर विजय प्राप्त करता है।

4. खेत, जमीन या सोना, मवेशी, घोड़े, गुलाम, नौकर, स्त्रियाँ, रिश्तेदार; विभिन्न इच्छाएँ रखना, लालच में लिप्त लोग।

"खेत, ज़मीन या सोना": "खेत" से तात्पर्य धान के खेत, धान के खेत, मटर के खेत, चौड़ी फली के खेत, जौ के खेत, गेहूं के खेत और अलसी के खेत से है। "ज़मीन" से तात्पर्य आवासीय भूमि, गोदाम की ज़मीन, सामने का आंगन, पीछे का आंगन, बगीचा या निवास स्थान से है। "सोना" को मुद्रा कहा जाता है।

"गाय, घोड़े, दास, नौकर": "गाय (बैल)" को गाय (बैल) कहा जाता है। "घोड़ों" को पशुधन कहा जाता है, इत्यादि। "दास" चार प्रकार के होते हैं: घर में जन्मे दास, पैसे देकर खरीदे गए दास, स्वयं दास बने दास, या अनैच्छिक रूप से दास बने दास।

"स्त्रियाँ, रिश्तेदार, विभिन्न इच्छाएँ": "स्त्रियाँ" से तात्पर्य उन महिलाओं (पत्नी) से है जो उनकी अपनी हैं। "रिश्तेदार" चार प्रकार के रिश्तेदार होते हैं: रिश्तेदार वे होते हैं जो एक ही उपनाम साझा करते हैं, (साथी) शास्त्र संबंधी (पवित्र) रिश्तेदार भी रिश्तेदार होते हैं, (साथी) कुशल रिश्तेदार (व्यापार में) भी रिश्तेदार होते हैं। "विभिन्न इच्छाएँ" अनेक इच्छाएँ हैं: ये विभिन्न इच्छाएँ वांछनीय रूपों से प्रभावित होती हैं...(अंशित)।

"लोग लोभ का अनुसरण करते हैं": "कौन," .... "लोग," .... "लोभ का अनुसरण करते हैं," प्रदूषण की इच्छा के साथ, वह लालची है, इच्छा रखता है, और वस्तुओं की इच्छा से बंधा हुआ है।

5 · (यहाँ तक कि) शक्तिहीन भी उसे जीत लेते हैं, सभी खतरे उसे कुचल देते हैं, फिर दुख उसका पीछा करता है, जैसे टूटे हुए जहाज में पानी।

"कमजोर उसे जीत लेते हैं": कमजोर, दुर्बल, कम शक्तिशाली, कम बलवान, हीन, नीच, घटिया इरादे वाले, तुच्छ प्रदूषण, ये प्रदूषण उस व्यक्ति को पूरी तरह से जीत लेते हैं, पराजित कर देते हैं, कुचल देते हैं, समाप्त कर देते हैं। या, कमजोर, दुर्बल, ...: कोई भी व्यक्ति जिसमें विश्वसनीयता, शक्ति, बुद्धि, एकाग्रता या ज्ञान नहीं है, लज्जित, वे लोग जो प्रदूषण द्वारा उस व्यक्ति को जीत लेते हैं, पराजित कर देते हैं, कुचल देते हैं, समाप्त कर देते हैं और समाप्त कर देते हैं।

"सभी खतरे उसे कुचल देते हैं": खतरे दो प्रकार के होते हैं: प्रत्यक्ष खतरा और अप्रत्यक्ष खतरा। प्रत्यक्ष खतरे क्या हैं? शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, कुत्ते, भेड़िये, बाइसन, हाथी, सांप, बिच्छू, कनखजूरे, या चोर या गुंडे जो बुरे काम करते हैं या करने को तैयार हैं; आंखों की बीमारियां, कान की बीमारियां, नाक..., जीभ, शरीर, सिर, बाहरी कान, मुंह, दांतों की बीमारियां; खांसी, घरघराहट, नाक के बाहरी रोग, बुखार, वृद्धावस्था, पेट के रोग, कोमा, दस्त, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, ट्यूमर, दाद, फेफड़ों के रोग, मिर्गी, खुजली, गठिया दाद, खरोंच (रोग), सूखी और फटी त्वचा, रक्त पित्त रोग, मधुमेह, बवासीर, दाने (फोड़े), बवासीर (अल्सर), पित्ताशय के रोग, कफ के रोग, हवा के

कारण, (तीन) मौसम परिवर्तन के कारण, अनुचित मुद्रा के कारण, अचानक हमले, कर्म, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, मक्खी, मच्छर, सूर्य, सांप आदि के संपर्क में आने से होने वाले रोग; इन्हें स्पष्ट खतरे कहा जाता है।

छिपे हुए खतरे क्या हैं? शरीर के बुरे कर्म, वाणी के बुरे कर्म, इरादे के बुरे कर्म, इच्छा का आवरण, द्वेष का आवरण, नींद का आवरण, पदावनति और पश्चाताप का आवरण, संदेह का आवरण, लोभ, घृणा, अज्ञानता, क्रोध, द्वेष, बुराई को छुपाना, प्रभुत्व (मनमानी, हुक्म चलाना, अत्याचार), ईर्ष्या, कंजूसी, छल, चालाकी, हठ, वासना, अहंकार, पाखंड, आराम करना (विश्राम करना), सभी प्रकार के प्रदूषण, सभी बुरे कर्म, सभी परेशानियाँ, सभी प्रकार की चिंताजनक गर्मी, सभी प्रकार की गर्मी और सभी अस्वास्थ्यकर कर्म, ये सभी छिपे हुए गुप्त खतरे कहलाते हैं।

"खतरा," खतरे का क्या अर्थ है? "हर जगह जीत हासिल करना" खतरा है; "पीछे हटने का मार्ग दिखाना" खतरा है; "वहाँ रहना" खतरा है। "हर जगह जीत हासिल करना" खतरा कैसे है? वे खतरे जो किसी व्यक्ति को जीत लेते हैं, पराजित कर देते हैं, अभिभूत कर देते हैं, समाप्त कर देते हैं और कुचल देते हैं, वे ही "हर जगह जीत हासिल करना" के रूप में संकट हैं।

“मार्गदर्शन द्वारा पश्चात्ताप” किस प्रकार खतरनाक है? वे बाधाएँ और पश्चात्ताप जो संकट में पड़े उत्तम धर्म की ओर ले जाते हैं; कौन सा उत्तम धर्म? सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, वह मार्ग जो उलटा नहीं जाता, वह मार्ग जो विरोधाभास नहीं करता (विरोधाभास रहित मार्ग), अर्थपूर्ण मार्ग, वह मार्ग जिसमें धर्म धर्म का अनुसरण करता है, सभी नियम परिपूर्ण हैं, मूलों की रक्षा करना, भोजन की सही मात्रा जानना, संयम और सजगता में निपुणता, सही ज्ञान के साथ लगन से अभ्यास करना, चार प्रकार की सजगता, चार प्रकार की परिश्रम, चार दिव्य आधार (इद्धिपाद), पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान, पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ; इन सद्गुणी धर्मों से विमुख करने वाली बाधाएँ और पश्चात्ताप, यही “मार्गदर्शन द्वारा पश्चात्ताप” के रूप में खतरनाक है।

वहाँ निवास करना किस प्रकार खतरनाक है? वहाँ ये दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म व्यक्तियों को नियंत्रित करने के लिए उत्पन्न हुए, जैसे गुफाओं में बिल खोदने वाले जानवर; पानी में रहने वाले जलीय जीव; जंगल में रहने वाले वन जीव; पेड़ों पर रहने वाले वृक्षवासी जीव। इसी प्रकार, ये दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म परस्पर निर्भरता को जन्म देते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा: [SN.35.151] "भिक्षुओं! शिष्यों और गुरुओं वाले भिक्षु दुख और बेचैनी में रहते हैं। और, भिक्षुओं! शिष्यों और गुरुओं वाले भिक्षु दुख और बेचैनी में कैसे रहते हैं? (आँखों से देखने के बाद,) गाँठ के साथ आने वाले बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्मों की स्मृतियों और इरादों को जन्म देते हैं। 'वे उसमें निवास करते हैं; बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्म उसमें निवास करते हैं और प्रवेश करते हैं (अधिकार प्राप्त करते हैं)।' इसलिए, उसे 'शिष्य रखने वाला' कहा जाता है। 'वे उसे जीत लेते हैं; बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्म उसे जीत लेते हैं।' इसलिए, उसे 'गुरु' कहा जाता है।"

इसके अलावा, भिक्षुओं! कान से ध्वनि सुनने के बाद..., नाक से गंध सूंघने के बाद..., जीभ से स्वाद चखने के बाद..., शरीर से स्पर्श का अनुभव करने के बाद..., चेतना से धम्म का ज्ञान प्राप्त करने के बाद... भिक्षुओं! इस प्रकार भिक्षु अपने शिष्यों और गुरुओं के साथ दुख और बेचैनी में रहते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा [इत.88]: “भिक्षुओं! तीन प्रकार की आंतरिक गंदगी होती है: आंतरिक शत्रु, आंतरिक दुश्मन, आंतरिक हत्यारे और आंतरिक शिकायतें। भिक्षुओं! लोभ आंतरिक गंदगी है, आंतरिक दुश्मन है...; भिक्षुओं! दुःख...; भिक्षुओं! आसक्ति...। भिक्षुओं! ये तीन प्रकार की आंतरिक गंदगी हैं: आंतरिक शत्रु, आंतरिक दुश्मन, आंतरिक हत्यारे और आंतरिक शिकायतें।”

लोभ किसी लाभ का कारण नहीं है, लोभ हृदय को कंपकंपा देता है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। लोभी व्यक्ति लाभों को नहीं जानता, लोभी व्यक्ति धर्म को नहीं देख पाता, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो लोभ से पराजित हो सकता है। क्रोध किसी लाभ का कारण नहीं है, क्रोध हृदय को कंपकंपा देता है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। क्रोधित व्यक्ति लाभों को नहीं जानता, क्रोधित व्यक्ति धर्म को नहीं देख पाता, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो पराजित हो सकता है। मूर्खता किसी लाभ का कारण नहीं है, मूर्खता हृदय को कंपकंपा देती है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। मूर्ख लाभों को नहीं जानते, मूर्ख धर्म को नहीं देख पाते, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो पराजित हो सकता है।

भगवान बुद्ध ने कहा [सं. 3.2]: "हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर तीन धर्म उत्पन्न होते हैं, तो हानि, पीड़ा और बेचैनी उत्पन्न होती है। वे तीन कौन से हैं? हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर लोभ उत्पन्न होता है, तो हानि, पीड़ा और बेचैनी उत्पन्न होती है; हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर आक्रमण उत्पन्न होता है... हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर मूर्खता उत्पन्न होती है, ... ।"

"एक लालची, घृणास्पद, मूर्ख, द्वेषपूर्ण व्यक्ति स्वयं को उसी प्रकार हानि पहुँचाता है, जैसे अनेक फल मिलकर पेड़ के हृदय को क्षति पहुँचाते हैं।"

भगवान बुद्ध ने कहा: [SN.10.3] "यहीं से लोभ और क्रोध, दुख, सुख और भय उत्पन्न होते हैं (शाब्दिक रूप से शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं); यहीं से इरादा उत्पन्न होता है, जैसे कोई छोटा लड़का कौवे को जाने देता है।"

"दुख उसे कुचल देते हैं": वे दुख उस व्यक्ति को जीत लेते हैं, पराजित कर देते हैं, अभिभूत कर देते हैं, समाप्त कर देते हैं और कुचल देते हैं।

"इसके बाद, दुख उसका पीछा करता है": "इसके बाद," विपत्ति व्यक्ति का पीछा करती है; जीवन व्यक्ति का पीछा करता है; बुढ़ापा..., बीमारी..., मृत्यु..., शोक, निराशा, नरक का कष्ट, पशु जगत का कष्ट, प्रेतलोक का कष्ट, मानवीय कष्ट...; गर्भ में प्रवेश करने का कष्ट..., माँ के गर्भ का कष्ट, जन्म के बंधन का कष्ट, जन्म, दूसरों द्वारा दिया गया कष्ट, स्वयं द्वारा लाया गया कष्ट, दूसरों के उत्पीड़न का कष्ट...; आँखों के रोग, कानों के रोग..., और मक्खी, मच्छर, सूर्य और साँप के संपर्क का दर्द...; माँ, पिता, भाई, बहन को खोने का दर्द, पुत्र, पुत्री को खोने का दर्द, परिवार का नुकसान, संपत्ति का नुकसान, बीमारी से हानि, पुण्य का नुकसान, दृष्टि का नुकसान...।

"जैसे पानी टूटे हुए जहाज के लिए होता है": जैसे टूटा हुआ जहाज पानी में होता है, वैसे ही पानी उसका पीछा करता है, उसके साथ चलता है और उसका अनुयायी बन जाता है; आगे से पानी उसका पीछा करता है, उसके साथ चलता है और उसका अनुयायी बन जाता है; पीछे से..., नीचे से..., बगल से...। ठीक उसी तरह, दुख पीछा करते हैं, व्यक्ति का अनुसरण करते हैं, उसका अनुयायी बन जाते हैं; जीवन का दुख पीछा करता है...(अंतःखंडित)।

6. इसलिए जो लोग हमेशा सचेत रहते हैं, और सभी इच्छाओं से बच सकते हैं, वे इन इच्छाओं को त्यागकर धारा को पार कर सकते हैं, जैसे जहाज से पानी निकालकर दूसरे किनारे तक पहुँचना।

इसलिए, एक व्यक्ति जो हमेशा सचेत रहता है: इसलिए; कारण; वजह; स्थिति; कारण, जब आप इच्छाओं में यह दोष देखते हैं। "व्यक्ति," .... "हमेशा," हमेशा; सब कुछ; हर समय; स्थिर; शाश्वत; निरंतर; लगातार; निर्बाध; क्रमिक रूप से; जैसे पानी की लहरें

बिना अंतराल के उठती हैं; लगातार साथ और स्पर्शित; दोपहर से पहले, दोपहर, रात के पहले (पहर), आधी रात और रात के आखिरी (पहर); अमावस्या में, उजाले में और बरसात के मौसम में, सर्दी, गर्मी; जवानी में, मध्यम आयु में और बुढ़ापे में। "सचेत," ....

"सभी इच्छाओं से बचा जा सकता है": "इच्छा," .... "सभी इच्छाओं से बचा जा सकता है," सभी इच्छाओं से दो तरीकों से बचा जा सकता है: उन्हें दबाकर या उनसे नाता तोड़कर...।

"जो लोग इस उफान से बच सकते हैं": "वे लोग," जो वस्तुओं की इच्छा को जान लेते हैं, अपवित्रता की इच्छा को त्याग देते हैं, त्याग देते हैं, भगा दिए जाते हैं, समाप्त कर देते हैं और उसका अस्तित्व समाप्त कर देते हैं; इच्छा की इच्छा को त्याग से ढक देते हैं, त्याग के बाद, बेदखली के बाद, अंत के बाद और उसका अस्तित्व समाप्त कर देते हैं; द्वेष का आवरण..., नींद का आवरण..., पदावनति और पछतावे का आवरण..., संदेह का आवरण..., ...उसे अस्तित्वहीन कर देने के बाद, इच्छा का उफान, अस्तित्व का उफान, देखने का उफान, अज्ञान का उफान, वह पार कर सकते हैं, उससे आगे निकल सकते हैं, उसे पार कर सकते हैं और उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

"जैसे कोई जहाज से पानी निकालकर दूसरे किनारे पर पहुँच जाता है": जैसे किसी भार से लदे भारी जहाज को निकालकर, उसका पानी निकालकर, हल्के जहाज में भर दिया जाता है, तो वह आसानी से दूसरे किनारे पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति वस्तुओं की इच्छा को जान लेता है, जब वह अशुद्धता की इच्छा का त्याग कर देता है, ..., ...जब वह उसे अस्तित्वहीन कर देता है, तो वह आसानी से दूसरे किनारे पर पहुँच जाता है। दूसरे किनारे को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, लालसा, लोभ का अंत, और निर्वाण। "दूसरे किनारे पर जा सकता है," दूसरे किनारे पर पहुँच सकता है; दूसरे किनारे पर आ सकता है; दूसरे किनारे की गवाही दे सकता है। "जो कोई दूसरे किनारे पर पहुँच गया है," जो कोई दूसरे किनारे पर जाना चाहता है, वही दूसरे किनारे पर पहुँच गया है; जो कोई दूसरे किनारे पर जाता है, वही दूसरे किनारे पर पहुँच गया है; जो कोई दूसरे किनारे पर पहुँच गया है, वही वह व्यक्ति है जो दूसरे किनारे पर पहुँच गया है।

भगवान बुद्ध ने कहा: [SN.35.238] "मैं दूसरे तट पर पहुँच गया हूँ, और ब्राह्मण ऊँचे स्थान पर खड़ा है। भिक्षुओं!" 'ब्राह्मण' अरहंत का पर्यायवाची है। उसने दूसरे तट तक पहुँचने का प्रमाण दिया है; दूसरे तट पर रहने वाले; अभ्यास द्वारा दूसरे तट तक पहुँचने वाले; ...साक्ष्य देकर; ...सभी धर्मों के ज्ञान द्वारा; ...सभी दुखों के ज्ञान द्वारा; ...सभी अशुद्धियों का त्याग करके; ...चार पवित्र मार्गों के अभ्यास द्वारा; विनाश का साक्षी देने वाले दूसरे तट तक पहुँचते हैं; जो दूसरे तट तक पहुँचने की प्रतीक्षा करता है, वह उपदेशों में मुक्त होकर सर्वोच्च प्राप्ति करता है; पवित्र संकल्प में मुक्त होकर वह दूसरे पक्ष तक पहुँच चुका है; पवित्रता की सीमाओं पर, सर्वोच्च प्राप्ति; पवित्र मुक्ति पर, सर्वोच्च प्राप्ति, वह दूसरे तट तक पहुँच चुका है; जो दूसरे तट तक पहुँच चुके हैं, वे परम (लक्ष्य) तक पहुँच चुके हैं; ...परम..., अंत; ...सीमा (परम); ...समाप्त करने वाला; ...बचाव; ...शरण; ...आश्रय; ...कोई भय नहीं; ...कोई मृत्यु नहीं; ...अमरता; ...अमरता प्राप्त करने वाला व्यक्ति। निर्वाण प्राप्त कर लिया है। जो निर्वाण प्राप्त कर लेता है, वह अवतरित हो चुका है, अभ्यास कर चुका है, यात्रा पूर्ण कर चुका है, दिशा तक पहुँच चुका है, अंत तक पहुँच चुका है; ब्रह्म की रक्षा करने वाले, सर्वोच्च दृष्टि प्राप्त करने वाले, मार्ग का अभ्यास करने वाले, अशुद्धता का त्याग करने वाले, अविचल रहने वाले, निर्वाण की गवाही देने वाले, उन्हीं के लिए ज्ञात हैं, एकत्रित हुए हैं और त्याग कर चुके हैं, और मार्ग का अभ्यास किया है और निर्वाण की गवाही दी है, जो ज्ञात होने योग्य सिद्ध हुए हैं, जो ज्ञात हो सकने वाली बातों को जान चुके हैं, ...जिसका त्याग करना चाहिए उसका त्याग कर चुके हैं, ...जिसका अभ्यास करना चाहिए उसका अभ्यास कर चुके हैं, ...जिसकी गवाही देनी चाहिए उसकी गवाही दे चुके हैं।

वह है जिसकी बाधा दूर हो गई है, जिसकी खाई भर गई है, जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया है, जिसका कोई कुंडी नहीं है, जिसका पवित्र ध्वज गिर गया है, जिसका बोझ हटा दिया गया है, जो अलग हो गया है, जिसकी पाँच शाखाएँ काट दी गई हैं और जिसकी छह शाखाएँ

हैं। जिनके पास एक संरक्षक और चार सहारा हैं, वे हैं जिनके सत्य दूर हो गए हैं, जो त्याग और पूर्णतः क्षय की तलाश में हैं, जिनके कोई अशुद्ध इरादे नहीं हैं, जिन्होंने अपने जीवन को शांत कर लिया है, जो दयालु और मुक्त हैं, जो ज्ञान में मुक्त हैं, सर्वोच्च व्यक्ति, सर्वोच्च व्यक्ति, जिसने सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर ली है, जो न तो रचना करता है और न ही विघटन करता है, न ही संचय करता है और फिर खड़ा रहता है; न तो त्यागता है और न ही आसक्ति रखता है, बल्कि त्यागने के बाद खड़ा रहता है; न तो विलीन करता है और न ही संचय करता है, और विलीन करने के बाद स्थिर रहता है; न बुझाना और न जलाना, बुझाने के बाद खड़े रहना [SN.22.79], अज्ञान की अवस्था है, स्थिर व्यक्ति..., अज्ञान की विलक्षणता..., अज्ञान की बुद्धि..., अज्ञान की मुक्ति समुच्चय..., वे निवासी जो बुद्धि बोध की अज्ञान की मुक्ति की अवस्था में हैं, वे निवासी जिन्होंने वास्तविकता को पूर्ण और भेद दिया है, वे जो विक्षोभ (उन्माद) से गुजर चुके हैं, वे जो प्रदूषण की आग बुझने के बाद खड़े हैं, वे जो अब बिल्कुल नहीं आ रहे हैं, वे जिन्होंने विजय प्राप्त कर ली है, और वे जो उपयोग से मुक्त हो चुके हैं, एक व्यक्ति जो करुणामय और शुद्ध है..., करुणा..., आनंद..., एक व्यक्ति जो शांत और शुद्ध है, एक व्यक्ति जो शुद्ध और सर्व-शुद्ध है, गैर-पहचान की अवस्था, मुक्त अवस्था में रहने वाला, संतुष्ट अवस्था में रहने वाला, परम (सीमा) में रहने वाला, परम क्षेत्र में रहने वाला, परम स्थान में रहने वाला, रुचि के स्थान में परम। उपरोक्त के निवासी, पुनर्जन्म में परम के निवासी, पुनर्जन्म में परम के निवासी, अस्तित्व में परम के निवासी, संसार में परम के निवासी, पुनर्जन्म में परम के निवासी, परम चाल में रहने वाला, अंतिम में सर्वोच्च स्थान रखने वाला, अंतिम (शरीर) में एकत्रित करने वाला, अंतिम शरीर धारण करने वाला अरहंत।

"यह उनका अंतिम है, यह अंतिम मिलन (शरीर) है, जीवन और मृत्यु का चक्र, उनके पुनर्जन्म के बिना।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.2

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

2. गुफा

7 · गुफा में फंसा हुआ, अनेक (अपवित्रताओं) से ढका हुआ, मूर्खता में डूबा हुआ, उस तरह का व्यक्ति (एकांत से) बहुत दूर है, क्योंकि दुनिया में इच्छाओं को छोड़ना आसान नहीं है।

"गुफा में, अनेकों से ढका हुआ": "गुफा," जैसे कोई जानवर एक बंद गुफा में है। गुफा को शरीर कहा जाता है, "शरीर" या "गुफा" या "संचय" या "नाव" या "गाड़ी" या "झंडा" या "चींटी का टीला" या "किला" या "घोंसला" या "झोपड़ी" या "ट्यूमर" या "कलश" (या "हाथी"), ये सभी शरीर हैं, जो "गुफा में फंसा हुआ" के पर्यायवाची हैं; गुफा में वह फंसा हुआ, उलझा हुआ, लटका हुआ, जुड़ा हुआ, स्थिर और अवरुद्ध है, जैसे कोई वस्तु दीवार पर लगे ढेर या हुक पर फंसी या उलझी हुई हो, लटकी हुई, जुड़ी हुई, स्थिर और अवरुद्ध हो। इसी प्रकार, गुफा में वह फंसा हुआ, उलझा हुआ, लटका हुआ, जुड़ा हुआ, स्थिर और अवरुद्ध है।

भगवान बुद्ध कहते हैं: [SN.23.2-3] "राधा! सभी इच्छाएँ, लोभ, आनंद, प्यास, प्रेम, आसक्ति, लगाव, जकड़न, कष्टों की संभावित प्रवृत्ति, वहाँ आसक्ति और वहाँ प्रबल आसक्ति, ये सब 'प्राणी' कहलाते हैं; राधा! ...भावना..., बोध, ...चुनाव, चेतना..., 'सभी प्राणी' कहलाते हैं।" "चेतन प्राणी" "आसक्ति" का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है गुफा में फँस जाना। "अत्यंत व्यापक रूप से आच्छादित," अनेक अशुद्धियों से आच्छादित, लोभ से आच्छादित, ...घृणा, भ्रम, क्रोध, आक्रोश, गुप्त बुराई, प्रभुत्व, ईर्ष्या, कंजूसी, छल, धूर्तता, हठ, वासना, आलस्य, अति आलस्य, सुस्ती, भोग-विलास; सभी अशुद्धियों, सभी बुरे कर्मों, सभी कष्टों, सभी चिरस्थायी गर्मी, सभी जलनों से आच्छादित, सभी बुरी आदतों से आच्छादित, विस्तृत आवरण, ऊपरी आवरण, अवरोध (अवरोध), आवरण, अवरोध, बंद करना, ढकना।

“जो व्यक्ति ठहरता है, वह अज्ञान में डूब जाता है”: जब लोग ठहरते हैं, तो लालची व्यक्ति लालच के कारण ठहरता है; क्रोधी व्यक्ति क्रोध के कारण ठहरता है; मूर्ख व्यक्ति अज्ञान के कारण ठहरता है; बंधा हुआ व्यक्ति अहंकार के कारण ठहरता है; आसक्ति रखने वाला व्यक्ति दृष्टि के कारण ठहरता है; अव्यवस्था में आने वाला व्यक्ति बिखराव के कारण ठहरता है; निष्कर्ष पर न पहुँचने वाला व्यक्ति संदेह के कारण ठहरता है; धैर्य रखने वाला व्यक्ति संभावित विपत्तियों के कारण ठहरता है।

भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! कुछ रूप ऐसे हैं जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है, जो मनभावन, सुंदर, आकर्षक और लोभ से भरे होते हैं। यदि भिक्षु उनमें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें, उनका स्वागत करें और उनसे जुड़े रहें, तो उन्हें यह जानना चाहिए, 'मेरी कुशलता कम हो रही है, इसी को भगवान बुद्ध पतन कहते हैं।' भिक्षुओं! कुछ ध्वनि ऐसी है जिसे कान से सुना जा सकता है..., कुछ गंध ऐसी है जिसे नाक से सुना जा सकता है..., कुछ स्वाद ऐसा है जिसे जीभ से महसूस किया जा सकता है..., कुछ स्पर्श ऐसा है जिसे शरीर द्वारा जाना जा सकता है..., (धर्म) ऐसा है जिसे चेतना द्वारा जाना जा सकता है, जो लोगों में इच्छा उत्पन्न करता है; यदि भिक्षु प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें, उनका स्वागत करें... ।” [SN.35.98]

भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! जब चेतना रूप में लीन रहती है, तो वह रूप में ही स्थिर रहती है, रूप पर टिकी रहती है, रूप द्वारा ही समर्थित होती है, और उसमें आनंद की थोड़ी सी मात्रा होने पर वह बढ़ती और फैलती है। भिक्षुओं! जब चेतना भाव में लीन रहती है..., ...बोध में... ।” [संख्या 22.53]

भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! यदि भौतिक भोजन में लोभ, प्रसन्नता और प्यास हो, तो चेतना स्थापित और विकसित होती है; जहाँ चेतना स्थापित और विकसित होती है, वहाँ नाम और रूप का जन्म होता है; जहाँ नाम और रूप का जन्म होता है, वहाँ कर्म होते हैं; जहाँ कर्मों की वृद्धि होती है, वहाँ पुनर्जन्म का जन्म होता है; जहाँ पुनर्जन्म का जन्म होता है, वहाँ जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; जहाँ जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, भिक्षुओं! मैं कहता हूँ: 'वहाँ दुःख, शोक और निराशा होती है।'” [SN.12.64]

“भिक्षुओं! यदि संपर्क में... भिक्षुओं! यदि संपर्क की इच्छा हो... भिक्षुओं! यदि संपर्क के लिए लोभ, आनंद और प्यास हो..., तो मैं कहता हूँ, ‘दुःख, शोक और निराशा है’।” [SN.12.64]

“मूर्खता में डूबना,” मूर्खता को पाँच इच्छाएँ कहा जाता है: आँखों से पहचाना जा सकने वाला रूप, मनभावन, प्यारा, आकर्षक, दिखने में सुंदर, इच्छाओं से युक्त, और रूप के प्रति लालच; ध्वनि..., गंध..., स्वाद..., स्पर्श...। मूर्खता को पाँच इच्छाएँ क्यों कहा जाता है? अधिकांश दिनों में, लोग पाँच इच्छाओं में मूर्ख, अज्ञानी और भ्रमित हो जाते हैं, मूर्ख, अज्ञानी और भ्रमित होकर, अवरुद्ध, घिरे हुए, अवरुद्ध, बंद, ढके हुए, छिपे हुए हो जाते हैं; इसी कारण मूर्खता को पाँच इच्छाएँ कहा जाता है। “मूर्खता में डूबना,” मूर्खता में डूबना, प्रवेश करना, चुपके से प्रवेश करना और मूर्खता में गिर जाना।

“उस जैसे व्यक्ति के लिए, वह वास्तव में बहुत दूर है”: “दूर,” दूरी तीन प्रकार की होती है: देह दूरी, हृदय दूरी और आसक्ति दूरी। देह दूरी क्या है? यहाँ, भिक्षु निकट और एकांत में रहते हैं: जंगलों में, वृक्षों के नीचे, पहाड़ों में, गुफाओं में, श्मशान में, जंगलों में, खुले मैदानों में, भूसे के ढेरों में, शरीर से दूर रहकर [नी.14, 150], वह अकेले चलते हैं, अकेले खड़े होते हैं, अकेले बैठते हैं, अकेले लेटते हैं, भिक्षा मांगने के लिए अकेले गाँव में प्रवेश करते हैं, अकेले लौटते हैं, किसी शांत स्थान पर अकेले बैठते हैं, अकेले प्रार्थना करते हैं, चलते हैं, ठहरते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं, जीवित रहते हैं, और अकेले जीवन व्यतीत करते हैं, यही शरीर से दूर रहना है।

मन (हृदय) किससे दूर है? प्रथम ध्यान में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन आवरणों से दूर हो जाता है, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन खोज और सेवा से विरक्त हो जाता है, तृतीय ध्यान में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का हृदय सुख से विरक्त हो जाता है, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का हृदय सुख और दुख से विरक्त हो जाता है, असीम शून्य में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन पहले से ही विरोधी विचारों से विरक्त होकर सभी प्रकार की इच्छाओं से दूर हो जाता है, चेतना की असीमता में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का हृदय असीम शून्य से दूर रहना चाहता है, शून्यता में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन चेतना की असीमता से दूर रहने का विचार करता है, और विचारहीन व्यक्ति का मन शून्यता से दूर रहना चाहता है। सोतापन्न व्यक्ति का मन दृश्य, संशय, निषेध, अपवित्रता की संभावित प्रवृत्ति, संशय अपवित्रता की संभावित प्रवृत्ति आदि से विरक्त हो जाता है। अस्तित्व की अशुद्धता उससे दूर हो जाती है। अरहंत का हृदय निराकार लोभ, अहंकार, विरक्ति, विरक्ति और कष्ट की सुप्त प्रवृत्ति, विरक्ति और कष्ट की संभावित प्रवृत्ति और उसी अस्तित्व के प्रदूषण से मुक्त होकर परिवर्तित हो गया है। लोभ, विरक्ति और कष्ट की शेष गांठों से, लोभ, विरक्ति और कष्ट की शेष संभावित प्रवृत्तियों और उनसे विद्यमान प्रदूषण से मुक्त होकर, अरहंत का हृदय निराकार लोभ, अहंकार, त्याग, अज्ञान और अहंकार से उत्पन्न कष्ट की संभावित प्रवृत्ति, लोभ और अपराध की सुप्त प्रवृत्ति, अज्ञान अपराध की सुप्त प्रवृत्ति और उससे विद्यमान प्रदूषण से मुक्त होकर बाहरी और सर्वस्व से दूरी प्राप्त कर लेता है। यही मन से दूरी है।

आसक्ति से दूर रहना क्या है? आसक्ति को अशुद्धता और विभिन्न कर्मों का समूह कहा जाता है; आसक्ति से दूर रहना निर्जीवता, निर्वाण कहलाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्ति का अंत, व्यथा का अंत, और निर्वाण। यही दूर रहना है। शरीर से दूर रहना शरीर के निरंतर वियोग और इच्छा को त्यागने की इच्छा से संबंधित है; मन से दूर रहना हृदय की पवित्रता और परम पवित्रता से संबंधित है; आसक्ति से दूर रहना अनासक्त व्यक्ति से संबंधित है, जो मुक्ति प्राप्त करता है।

"वह सचमुच बहुत दूर है," जहाँ वह गुफा में फंसा हुआ है, इतने सारे लोगों से घिरा हुआ, मूर्खता में इतना डूबा हुआ, वह शरीर से दूर है; हृदय से भी दूर; निर्भरता से भी दूर, बहुत दूर, पास नहीं; उस जगह पर जहाँ से उसे खींचा जा रहा है। "उस तरह के व्यक्ति की तरह," उसी तरह, उसी निवास से संबंधित, उसी तरह का, उसी के समान, जो मूर्खता में डूबा हुआ है।

"क्योंकि संसार की इच्छाओं का त्याग करना आसान नहीं है": "इच्छा," दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और प्रदूषण की इच्छा। वस्तुओं की इच्छाएँ क्या हैं? ...(अधूरा भाग, पिछले अनुभाग देखें)।

प्रदूषण की इच्छा क्या है? ...(विकल्प हटा दिया गया है, पिछले अनुभाग देखें)।

"इच्छा की उन जड़ों को देखकर, जो विचार (इच्छा) से उत्पन्न होना चाहती हैं, मैं उनके बारे में नहीं सोचूंगा, इसलिए इच्छा का अस्तित्व नहीं होगा।" [जात.8.421]

इन्हें प्रदूषण की इच्छा कहा जाता है। "संसार में": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। "क्योंकि इच्छाओं के संसार को त्यागना वास्तव में आसान नहीं है": क्योंकि इच्छाओं के संसार में त्यागना कठिन है, संबंध तोड़ना कठिन है, तोड़ना (जीतना) कठिन है, बंधन तोड़ना कठिन है, सुलझना कठिन है, मुक्त करना कठिन है, भागना कठिन है, विजय प्राप्त करना कठिन है, उड़ान भरना कठिन है और गुजरना कठिन है।

8. अपनी इच्छाओं को पूरा करने के सुख से बंधे होने के कारण, उनसे छुटकारा पाना मुश्किल होता है क्योंकि अन्य लोगों से कोई स्वतंत्रता नहीं होती है। भविष्य की ओर या अतीत की ओर देखते हुए, वे इन इच्छाओं या अतीत की इच्छाओं की प्रतीक्षा करते हैं।

“इच्छा के कारण प्राप्ति के सुख से बंधे रहना”: इच्छा को लालसा कहा जाता है, यानी लोभ..., ये अस्वस्थ मूल हैं। “इच्छा के कारण से”, इच्छा को कारण मानकर, इच्छा को कारण मानकर, इच्छा को मूल कारण मानकर।

“सुख से बंधे रहना,” एक प्रकार का सुख: सुख; दो प्रकार के सुख: सुख और संतुष्टिदायक वस्तुएँ; तीन प्रकार के सुख: यौवन, रोगमुक्ति और जीवन; चार प्रकार के सुख: लाभ, प्रसिद्धि, प्रशंसा और शांति; पाँच प्रकार के सुख: मनभावन रूप, मनभावन ध्वनि, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद, मनभावन स्पर्श; छह प्रकार के सुख: आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन से संबंधित। सुख के आनंद से बंधे रहना: सुख की खुशी से बंधे रहना, संतुष्टि से बंधे रहना, यौवन से बंधे रहना, रोगमुक्ति से बंधे रहना, जीवन से बंधे रहना, लाभ से बंधे रहना, प्रतिष्ठा से बंधे रहना, प्रशंसा से बंधे रहना, आराम से बंधे रहना; मनभावन रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श से बंधे रहना; आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर से बंधे रहना; बंधे रहना, जुड़े रहना, स्थिर रहना, अवरुद्ध रहना।

“इनसे छुटकारा पाना कठिन है क्योंकि ये दूसरों द्वारा मुक्त नहीं होते”: सुखदायक चीजों से छुटकारा पाना कठिन है, या सभी प्राणियों को मुक्त करना कठिन है। चीजों में सुख का अनुभव करना उनके लिए क्यों कठिन है? सुख से छुटकारा पाना कठिन है, संतुष्टिदायक चीजों से छुटकारा पाना कठिन है, यौवन से छुटकारा पाना कठिन है, ...; अलग होना कठिन है, घुलना कठिन है, मुक्त होना कठिन है, खोलना कठिन है, पार पाना कठिन है, गुजरना कठिन है।

प्राणियों को यहाँ से मुक्ति पाना इतना कठिन क्यों है? सजीव प्राणियों के लिए सुख से छुटकारा पाना कठिन है, सुखदायक चीजों से मुक्ति पाना कठिन है, यौवन से मुक्ति पाना कठिन है...; इससे बाहर निकलना कठिन है, पूरी तरह से बाहर निकलना कठिन है, ऊपर उठना कठिन है, पूरी तरह से ऊपर उठना कठिन है, बंधन तोड़ना कठिन है, मुक्ति पाना कठिन है..., इससे गुजरना कठिन है।

“क्योंकि वे दूसरों द्वारा मुक्त नहीं होते,” इसलिए जो स्वयं कीचड़ में गिर गए हैं, वे दूसरों को भी नहीं निकाल सकते जो कीचड़ में गिर गए हैं। भगवान बुद्ध ने कहा: “चुंड! 'मैं स्वयं कीचड़ में हूँ और दूसरों को भी कीचड़ से निकालूँगा।' यह असंभव है। चुंड! 'स्वयं अनियंत्रित, अप्रशिक्षित और निर्वाणहीन होकर दूसरों को भी निर्वाण प्राप्त कराऊँगा।' यह असंभव है।” [एमएन.8]

या फिर, आपके पास कोई अन्य मुक्तिदाता नहीं हैं; जो लोग मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, वे अपनी शक्ति, अपने बल, अपनी ऊर्जा, अपने प्रयासों, अपनी सामर्थ्य, अपनी मानवीय शक्ति, अपनी मानवीय ऊर्जा, अपने मानवीय प्रयासों और अपने सही मार्ग का अनुसरण करते हुए, सही मार्ग के अनुसार और धम्म के अनुसार मार्ग का अनुसरण करते हुए मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान बुद्ध ने भी यही कहा है: [नी.22] “मैं, धोतका, संसार में संदेह करने वाले किसी को भी मुक्त नहीं कर पाऊंगा। जब तुम सर्वश्रेष्ठ धम्म को जान लोगे, तभी तुम इस बाढ़ को पार कर पाओगे।”

यह बात धन्य प्रभु ने भी कही है: [दफ़ी.12, 165] “उसने बुराई की है, वह अपवित्र है; जो बुराई नहीं करता, वह शुद्ध होकर आता है; शुद्धता और अशुद्धता अलग-अलग हैं; एक दूसरे को शुद्ध नहीं बना सकता।”

भगवान बुद्ध ने यह भी कहा: “इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, निर्वाण स्थिर रहता है, निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग स्थिर रहता है, और मेरा उपदेश (शिक्षा) भी स्थिर रहता है। परन्तु जब मेरे शिष्यों को इस प्रकार उपदेश और मार्गदर्शन दिया जाता है, तो उनमें से कुछ निर्वाण की अंतिम अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, और कुछ नहीं। हे ब्राह्मण, मैं यहाँ क्या करूँ? हे ब्राह्मण, तथागत ही मार्गदर्शक हैं। [एमएन.107] बुद्ध ने केवल मार्ग बताया (निर्देशित किया), और जब वे स्वयं उसका अभ्यास करते हैं, तो वे मुक्त हो सकते हैं।”

"भविष्य की, या अतीत की ओर देखना": भविष्य को भविष्य कहा जाता है, और अतीत को अतीत। इसके अलावा, अतीत से चिपके रहने के बाद, भविष्य और वर्तमान पीछे छूट जाते हैं; भविष्य से चिपके रहने के बाद, अतीत और वर्तमान आगे आ जाते हैं। अतीत की ओर देखना कैसा होता है? "अतीत में मेरा ऐसा रूप था," वहाँ आनंद खोजना [MN.132]; "अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं..., अतीत में मेरे ऐसे विचार थे..., अतीत में मेरा ऐसा व्यवहार था..., अतीत में मुझे ऐसा ज्ञान था।" वहाँ आनंद खोजना, यही अतीत की ओर देखना है।

या, "मेरी आँखें वैसी थीं, और मेरा रूप वैसा था।" वहाँ, चेतना इच्छा और लोभ से बंधी होती है; जब चेतना इच्छा और लोभ से बंधी होती है, तो वह आनंदित होती है; जब वह आनंदित होती है, तो यह भी अतीत की अपेक्षा होती है। "मेरे कान वैसे थे, और मेरी आवाज वैसी थी।" ..., "मेरी नाक..., गंध..., ..., ...जीभ, ...स्वाद..., ...शरीर, ...स्पर्श"..., मन..., धर्म...।" वहाँ, चेतना इच्छा और लोभ से बंधी होती है; जब चेतना इच्छा और लोभ से बंधी होती है, तो वह आनंदित होती है; जब वह आनंदित होती है [एम.एन.133], तो यह भी अतीत की अपेक्षा होती है।

या, जो कोई भी पहले महिलाओं के साथ हँसता, बात करता और खेलता था, वह इसका आनंद लेता है, इसकी इच्छा करता है और इसके कारण खुशी प्राप्त करता है [एएन.7.50], जो अतीत की ओर भी देख रहा है।

भविष्य की आशा करना कैसा लगता है? "मैं भविष्य में ऐसा दिखूंगा।" उसमें आनंद की तलाश करना, "भविष्य में मुझे यह अनुभूति होगी... मैं भविष्य में ऐसा सोचूंगा... मैं भविष्य में यह करूंगा... मुझे भविष्य में यह ज्ञान होगा।" उसमें आनंद की तलाश करना, यही भविष्य की आशा करना है।

या, "भविष्य में मेरी आँखें ऐसी होंगी, और मेरा रूप ऐसा होगा।" अनप्राप्त हृदय की आशा रखो, और हृदय की आशा में आनंदित हो; जब तुम उसमें आनंदित होते हो, तो यही भविष्य की अपेक्षा है। "मेरे कान...।" अनप्राप्त हृदय की आशा..., यह भी भविष्य की अपेक्षा है।

या, "मैं इस सद्गुण, निषेध, तपस्या और ब्रह्म के द्वारा स्वर्ग में, या स्वर्गों में से एक में विलीन हो जाऊँगा।" अप्राप्त हृदय की आशा...

"इन इच्छाओं की प्रतीक्षा करना, या अतीत की ओर देखना": "इन इच्छाओं में," वर्तमान की पाँच इच्छाएँ, चाहना, पाना, आकांक्षा करना, लालसा करना और प्रार्थना करना। या अतीत की ओर देखना, उत्सुकता से प्रतीक्षा करना, अतीत की पाँच इच्छाओं के लिए प्रार्थना करना और उनसे विनती करना।

9. जो लालची और इच्छाओं में अति उत्साही होते हैं, वे अज्ञानी होते हैं, और जो कंजूस होते हैं, वे कुटिल मार्ग पर अड़े रहते हैं, जब कष्ट भोगते हैं, तो वे विलाप करते हैं: यहाँ से मरने के बाद हम कहाँ होंगे?

"लालची और इच्छाओं में व्याकुल लोग अज्ञानी होते हैं": "इच्छा," इच्छाएँ दो प्रकार की होती हैं... लालसा को ही लोभ कहते हैं... लोभ, लालसा और वस्तुओं की इच्छा से अशुद्धता की गाँठ में बंधे रहना, मोहित होना, दूषित होना, आसक्त होना, स्थिर होना, अवरुद्ध होना।

जो भी व्यक्ति सभी इच्छाओं की खोज, तलाश और पूछताछ करता है, वह इस प्रकार का व्यक्ति होता है: अधिक गंभीर, लक्ष्य-केंद्रित, मेहनती, इच्छुक और विजय प्राप्त करने वाला, जो अपनी इच्छाओं को बढ़ाता है, वे भावुक होते हैं। जो भी व्यक्ति सभी रूपों में खोज, तलाश और पूछताछ करता है..., जैसे ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श...। जो लोग इस पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इसे अपना लक्ष्य बनाते हैं,

मेहनत करते हैं, इनकी ओर आकर्षित होते हैं, इन पर विजय प्राप्त करते हैं, इन्हें बढ़ाते हैं, वे भी भावुक होते हैं। जो भी व्यक्ति प्यास, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि के कारण इन रूपों में लीन हो जाता है..., वे भी इच्छाओं के प्रति उत्साही होते हैं। जो भी इन रूपों में लीन हो जाता है...। उदाहरण के लिए, आलोचक आलोचना करने के लिए उत्सुक होते हैं, मजदूर काम करने के लिए उत्सुक होते हैं, गांव में घूमने वाले गांव में घूमने के लिए उत्सुक होते हैं और ध्यान करने वाले ध्यान के लिए उत्सुक होते हैं। इसी प्रकार, जो भी व्यक्ति खोजता है..., वे भावुक होते हैं। जहां प्यास, खोज, भिक्षा, भीख मांगने के कारण हर रूप में..., ...ध्वनि में..., गंध में, स्वाद में, स्पर्श में... जो कोई भी इन रूपों में आ जाता है... जो कोई भी इन रूपों में प्रयुक्त होता है..., वे भी इच्छाओं के प्रति उत्साही होते हैं।

"अज्ञान," अधिकतर दिनों में लोग मूर्ख बन जाते हैं...(उद्धृत)। जो लालची और इच्छाओं के प्रति आसक्त होते हैं वे अज्ञानी होते हैं।

"कंजूस लोग कुटिल मार्ग पर अड़े रहते हैं": "कंजूस," "वे पतन की ओर जाते हैं" कंजूस कहलाते हैं; "लालची" को भी कंजूस कहा जाता है; "बुद्ध के शिष्यों के वचनों और शिक्षाओं की परवाह न करना" कंजूसी का एक रूप है। "वे पतन की ओर जाते हैं" कंजूस कैसे कहलाता है? वे नरक में जाते हैं; वे पशुलोक में जाते हैं; वे दुष्टलोक में जाते हैं, यही "उनका पतन" है। "कंजूस व्यक्ति" को कंजूस व्यक्ति क्यों कहा जाता है? कंजूसी पाँच प्रकार की होती है: घर में कंजूसी, धन में कंजूसी, प्रशंसा में कंजूसी, धर्म में कंजूसी, दिखावटी कंजूसी, अवस्था में कंजूसी, लोभ, कंजूसी, तुच्छता और हृदयहीनता। इसके अतिरिक्त, कंजूसी भी कंजूसी है; सांसारिक कंजूसी भी कंजूसी है; विचारों में कंजूसी भी कंजूसी है। इस कंजूसी और असहिष्णुता के कारण लोग अनुदार हो जाते हैं, इसलिए उन्हें कंजूस कहा जाता है। बुद्ध के शिष्यों के शब्दों, भाषा और शिक्षाओं की परवाह न करना कंजूसी कैसे हो सकती है? बुद्ध के शिष्यों के शब्दों, बोलने के तरीके, शिक्षा और उपदेशों की उन्हें परवाह नहीं है, वे सुनना नहीं चाहते, उन्हें सुनने की ज़रूरत नहीं है, वे सुनना नहीं चाहते, उन्हें जानने की ज़रूरत नहीं है।

वे गलत में स्थिर हैं, गलत शारीरिक कर्म में स्थिर हैं, गलत भाषा कर्म में स्थिर हैं, गलत मानसिक कर्म में स्थिर हैं, गलत हत्या में स्थिर हैं, बिना दिए लेने में स्थिर हैं, अधर्मी व्यभिचार में स्थिर हैं, अधर्मी छल में स्थिर हैं, अधर्मी विभाजनकारी भाषा में स्थिर हैं..., अश्लील भाषा में स्थिर हैं..., ललक में स्थिर हैं, द्वेष में स्थिर हैं, दृष्टि में स्थिर हैं, कर्मों में स्थिर हैं, प्रवेश कर चुके हैं, दागदार हैं, की ओर मुड़ चुके हैं, आसक्त हैं, अवरुद्ध हैं।

"जब कष्ट होता है, तो वे रोते हैं।" "जब कष्ट होता है," इसका अर्थ है कि कष्ट चरम पर पहुँच गया है, राक्षस आ गया है, मृत्यु निकट है, और मृत्यु निकट है। "वे रो रहे हैं," वे बड़बड़ाते हैं, रोते हैं, दुखी होते हैं, थके हुए होते हैं, शोक करते हैं, छाती पीटते हैं और चिल्लाते हैं, और भ्रमित हो जाते हैं।

"यहाँ से मरने के बाद हमारा अस्तित्व कहाँ होगा?": "यहाँ से मरने के बाद हमारा अस्तित्व कहाँ होगा? क्या हम नरक में गिरेंगे, पशुवत बनेंगे, प्रेत बनेंगे, क्या हम मनुष्य बनेंगे, क्या हम देवता बनेंगे, साकार बनेंगे, निराकार बनेंगे, विचारक बनेंगे, अविचारक बनेंगे, निर्विचारक बनेंगे?" "क्या हमारा भविष्य में अस्तित्व है? क्या हमारा भविष्य के जीवन में अस्तित्व नहीं है? भविष्य के जीवन में हम क्या होंगे? हमारा भविष्य का जीवन कैसा होगा? भविष्य के जीवन में हम क्या होंगे, और (बाद में) क्या बनेंगे?" संशयवादियों में हलचल मच जाती है, संदेह पैदा होते हैं, वे बड़बड़ाते हैं, रोते हैं...

10 · इसलिए यहाँ लोगों को सीखना चाहिए, और उन्हें यह जानना चाहिए कि दुनिया में कुछ भी "गलत" है, इसलिए किसी को गलत काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि बुद्धिमान लोग कहते हैं कि यह जीवन छोटा है।

अतः लोगों को यहाँ सीखना चाहिए: “इसलिए,” इस कारण, इस वजह, इस परिस्थिति के साथ, जब आप इच्छा में यह दोष देखते हैं, तो “सीखना चाहिए,” सीखने के तीन प्रकार हैं: उपदेश सीखना, मन सीखना, और बुद्धि सीखना।

उपदेशों में क्या जोड़ा जा सकता है? यहाँ भिक्षु एक गुरु है जो पातिमोक्ख के आत्म-संयम से सुरक्षित रहता है। उसके पास पर्याप्त धार्मिकता और उचित परिस्थितियाँ हैं। वह छोटे पापों की भयावहता को देखता है और गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद सीखता है। छोटे उपदेशों का समूह और बड़े उपदेशों का समूह संयम, व्यवहार पर नियंत्रण, आत्म-संयम का प्रवेश, उत्तम धर्म आदि का आधार है; यही उपदेशों के ज्ञान को बढ़ाने का उद्देश्य है।

मन को कैसे बढ़ाया जाए? यहाँ, भिक्षु इच्छाओं और अहितकर धर्म से मुक्त होकर, तर्क और चिंतन के प्रथम ध्यान में निवास करता है, और वैराग्य से आनंद और प्रसन्नता प्राप्त होती है; वह विश्वास और एकाग्रता के साथ तर्क और चिंतन को शांत करता है, और प्रवेश करने के बाद, वह तर्कहीनता में रहता है; आनंद और प्रसन्नता का द्वितीय ध्यान बिना प्रतीक्षा किए उत्पन्न होता है; एकाग्रता, जो आनंद के साथ विलीन होकर शांति में निवास करती है, सचेतनता और सही ज्ञान से परिपूर्ण होती है, और शरीर में सुख का अनुभव करती है। प्रवेश करने के बाद, इस ध्यान में निवास करते हुए, यह पवित्र शिष्य घोषणा करता है: "वह शांत और एकाग्र है" तीसरे ध्यान में, जो "सचेतनता और आनंद में निवास" का है; सुख और दुख के त्याग के साथ, और अतीत के सुख और दुख के निरोध के साथ, प्रवेश करने के बाद, चौथे ध्यान में निवास करता है जहाँ कोई दुख या दुःख नहीं है; यही मन को बढ़ाना है।

ज्ञान बढ़ाना क्या है? यहाँ भिक्षु एक ज्ञानी व्यक्ति है, जिसके पास वह ज्ञान है जो जीवन के उदय और अस्त होने की ओर ले जाता है; पवित्र अंतर्दृष्टि और दुखों का पूर्ण निवारण ही (ज्ञान) है; वह सत्यपूर्वक जानता है, “यह दुख है।” मैं जानता हूँ, “यह दुखों का संग्रह है।” मैं जानता हूँ, “यह दुख है।” मैं जानता हूँ, “यह दुख का मार्ग है।” सत्य को जानना: “ये कष्ट हैं।” सत्य को जानना: “यह कष्टों का संग्रह है।” सत्य को जानना: “यह दुखों का निवारण है।” सत्य को जानना: “यह दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है।” यही ज्ञान बढ़ाना है।

इन तीनों बातों का अध्ययन तब करना चाहिए जब हम किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर हों; जब हम जानते हों; जब हम देखते हों; जब हम आत्मनिरीक्षण करते हों; जब हमारा हृदय स्थिर हो, तब हम निर्णय लेते हों; जब हम विश्वास के साथ निर्णय लेते हों; जब हम ऊर्जावान हों; जब हम सचेत हों; जब हमारा मन एकाग्र हो; जब हम ज्ञान से जानते हों; जब हमें वह ज्ञान हो जो हमें जानना चाहिए; जब हमें ज्ञान प्राप्त हो; जब हमें त्याग करना चाहिए; जब हमें अभ्यास करना चाहिए; जब हमें गवाही देनी चाहिए; जब हमें अभ्यास करना चाहिए, अच्छी तरह से अभ्यास करना चाहिए, और जब हम आगे बढ़ते रहें।

“यहाँ” इस दृष्टिकोण से संबंधित है, इस पसंद से संबंधित है, इस झुकाव से संबंधित है, इस आसक्ति से संबंधित है, इस धर्म से संबंधित है, इस शिक्षा से संबंधित है, इस पवित्र मार्ग से संबंधित है, इस गुरु की शिक्षाओं से संबंधित है, इस व्यक्ति से संबंधित है, इस मानव जगत से संबंधित है; इसे ही “यहाँ” कहा जाता है। “लोग,” प्राणी, मनुष्य...

“तुम्हें संसार में जो कुछ भी ‘गलत’ है, वह सब जानना चाहिए”: “कुछ भी,” सब कुछ पूरी तरह से, हर पहलू में, बिना किसी शेष के, और संपूर्ण आधार। यही सर्वव्यापी भाषा है, जो “कुछ भी” है। “तुम्हें ‘गलत’ को जानना चाहिए,” तुम्हें जानना चाहिए कि शरीर का अनुचित कर्म “गलत” है, तुम्हें जानना चाहिए कि भाषा का अनुचित कर्म “गलत” है, तुम्हें जानना चाहिए कि मानसिक कर्म “गलत” है, तुम्हें जानना चाहिए कि अनुचित हत्या “गलत” है... अन्यायपूर्ण ढंग से दिया और लिया गया... बुराई... झूठ, विभाजनकारी शब्द, अश्लील भाषा, ललक, द्वेष, गलत विचार, गलत व्यवहार, पाँच इच्छाएँ, पाँच गलत आवरण...: इसे जानना चाहिए, इसे पहचानना चाहिए और इसे समझना चाहिए। “संसार में,” दुखमय संसार में...

“इस कारण से गलत काम नहीं करना चाहिए”: गलत शारीरिक कर्मों के कारण गलत काम नहीं करना चाहिए; गलत वाणी के कर्मों के कारण...; गलत सोच, गलत आशा, गलत इच्छा के कारण..., गलत काम नहीं करना चाहिए: इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, पूर्ण रूप से अभ्यास नहीं करना चाहिए, और इसे जारी रखने के बाद भी नहीं रखना चाहिए।

“क्योंकि ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह जीवन छोटा है”: “जीवन” जीवन का अस्तित्व है; जीवन की गति, अस्तित्व और कर्म; जीवन का रक्षक और जीवन का मूल। इसके अतिरिक्त, जीवन दो कारणों से छोटा है: अस्तित्व पर आधारित सीमित जीवन, या प्राकृतिक परिमित जीवन पर आधारित सीमित जीवन। अस्तित्व का सीमित जीवन छोटा कैसे है? अतीत के हृदय क्षण में जीना, (लेकिन) वर्तमान में नहीं जीना, भविष्य में नहीं जीना; भविष्य के हृदय क्षण में जीना, (लेकिन) वर्तमान में नहीं जीना और अतीत में नहीं जीना; वर्तमान हृदय क्षण में जीना, (लेकिन) अतीत में नहीं जीना, भविष्य में नहीं जीना।

जीवन और व्यक्ति, सभी (केवल) सुख और दुख, एक ही हृदय से ग्रहण किए जाते हैं: यह पल भर में बदल सकता है। जहाँ स्वर्ग विद्यमान है, वहाँ चौरासी हजार कष्ट हैं, परन्तु उनमें से कोई भी दो हृदयों द्वारा संयुक्त रूप से नहीं जी सकता। जो भी यहाँ मरता है या जीवित रहता है, उसके सभी तत्व नष्ट हो जाते हैं, चले जाते हैं, सब कुछ है, और उसे पुनः स्थापित नहीं किया जा सकता। जो तुरंत नष्ट हो जाते हैं, जो भविष्य में नष्ट होते हैं, और जो मध्य में नष्ट होते हैं, उनके गुण समान हैं। वह जन्म लेने के अलावा कुछ नहीं कर सकता था, वह अब जीवित है, हृदय के नष्ट होने से संसार मृत हो जाता है, और यही सर्वोच्च हित की शांति है। वे नीचे की ओर बहते हुए घटित होते हैं और परिवर्तन के लिए अभिप्रेत हैं, वे बिना कटे जल प्रवाह की तरह, छह बिंदुओं वाले किनारे के साथ मुड़ते हैं। नष्ट हुए बिना भंडार के आते हैं, और भविष्य में उनका कोई संचय नहीं होगा, और जहाँ कहीं भी उत्पन्न होते हैं, वे शंकु (क्षण) के सिरे पर सरसों के दानों की तरह जीवित रहते हैं। उत्पन्न होने वाले धर्मों के सामने विनाश रखा जाता है, टूटे हुए धर्म बने रहते हैं, और वे नहीं पहले वालों के साथ मिल जाते हैं। वे अदृश्य रूप से आते हैं, वे विनाश को देखते हैं और उससे दूर चले जाते हैं, आकाश में बिजली की तरह, वे उठते हैं और गायब हो जाते हैं।

प्रकृति का सीमित जीवन किस प्रकार कमतर है? जीवन श्वास पर निर्भर है; जीवन आय पर निर्भर है; जीवन ग्रहण और उत्सर्जन पर निर्भर है; जीवन (चार) प्रजातियों पर निर्भर है; जीवन भोजन के पिंडों पर निर्भर है; जीवन ऊष्मा पर निर्भर है; जीवन चेतना पर निर्भर है: ये मूलतः दुर्बल हैं; इनके कारण भी दुर्बल हैं; इन पर निर्भर रहने वाले भी दुर्बल हैं; इन्हें शक्ति के रूप में उपयोग करने वाले भी दुर्बल हैं; इनका सामान्य आधार भी दुर्बल है; ये संबंध भी दुर्बल हैं; ये सह-जन्म लेने वाले भी दुर्बल हैं; इनसे जुड़ी हर चीज भी दुर्बल है; ये एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक रूप से दुर्बल हैं; ये एक दूसरे पर निर्भर नहीं हैं; ये परस्पर विनाशकारी हैं; इनमें कोई परस्पर आश्रय नहीं है, और ये एक दूसरे को सहारा नहीं देते; जो उत्पन्न करते हैं वे अज्ञात हैं।

"कोई भी किसी दूसरे की वजह से गायब नहीं होता, और ये सब वास्तव में नष्ट हो चुके हैं, ये पहले से ही उत्पन्न हुए हैं, और इन्हें उत्पन्न करने वाले पहले ही मर चुके हैं, पहले और बाद वाले ने कभी एक-दूसरे को नहीं देखा है।"

इसके अतिरिक्त, चार देव राजाओं के जीवन की तुलना करने पर, मनुष्यों का जीवन छोटा, महत्वहीन, क्षणिक, तीव्र गति वाला, अल्प, निष्कलंक है। तैंतीस स्वर्गीय देवता...(छोड़ा गया), तुषिता देवता..., निर्मित देवता..., सुखी स्वर्ग देवताओं में रूपांतरित..., वह स्वर्गीय देवताओं में रूपांतरित..., ब्रह्मा देवताओं के जीवन की तुलना में, मनुष्यों का जीवन छोटा, महत्वहीन, क्षणिक, तीव्र गति वाला, अल्प, निष्कलंक और अल्पकालिक है।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! मनुष्य का जीवनकाल अल्प है, और उन्हें परलोक में जाना ही है। बुद्धिमान व्यक्ति को जागृत होना चाहिए, दयालु होना चाहिए और ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना चाहिए। हे भिक्षुओं, सभी जीवित प्राणी मृत हैं! जो वृद्ध जीवित हैं, उनका जीवनकाल (केवल) सौ वर्ष या उससे अधिक है।"

"मनुष्य का जीवनकाल अल्प है, और अच्छे लोगों को इसकी अवहेलना करनी चाहिए, उन्हें ऐसे जीना चाहिए जैसे उनका सिर जल रहा हो, क्योंकि ऐसी कोई मृत्यु नहीं है जो निश्चित रूप से न आए।" [SN.4.10]

"दिन-रात बीतते हैं, जीवन नष्ट हो जाता है, अंततः मरने वाले व्यक्ति का जीवनकाल समाप्त हो जाता है, जैसे छोटी नदी में पानी।" [SN.4.10]

"क्योंकि ज्ञानी लोग कहते हैं कि यह जीवन छोटा है": ज्ञानी वह है जो ऋषि है, और ज्ञान को बुद्धि कहा जाता है, अर्थात् समझ, सरल चयन, अन्वेषण, विधि चयन, पहचान, विवेक, गहन अवलोकन, विद्वत्ता, दक्षता, चतुराई, चिंतन, गहन चिंतन, परीक्षा, व्यापकता, धार्मिक ज्ञान, ज्ञान का दंड, ज्ञान की जड़, ज्ञान की तलवार, ज्ञान का हॉल, ज्ञान की रक्षा, ज्ञान की चमक, ज्ञान का प्रकाश, छल रहित, धर्म का चयन, सही दृष्टिकोण; ज्ञान की अवस्था को ज्ञानी के समान मानो। इसके अतिरिक्त, संचय के ऋषि, लोक के ऋषि, स्थान के ऋषि, आश्रित उत्पत्ति के ऋषि, सजगता के ऋषि, देवताओं के ऋषि, मूल के ऋषि, शक्ति के ऋषि, ज्ञान के ऋषि, मार्ग के ऋषि, फल के ऋषि, निर्वाण के ऋषि, वे ऋषि कहते हैं: "मनुष्यों के लिए जीवन छोटा है, जीवन महत्वहीन है, जीवन क्षणिक है, जीवन तीव्र है, जीवन छोटा है, जीवन दीर्घकालिक नहीं है, जीवन अल्पकालिक है।" वे ऐसा कहते हैं, ऐसा बताते हैं, ऐसा बोलते हैं, ऐसा समझाते हैं, ऐसा कहते हैं।

11 · मैं दुनिया को कांपते हुए देखता हूँ: यह पीढ़ी सभी प्राणियों के बीच प्रेम की लालसा में आती है, हीन लोग मृत्यु के मुख के सामने बड़बड़ाते हैं: वे जिन्होंने सभी प्रकार के अस्तित्व में प्यास को अलग नहीं किया है।

"मैं संसार को कांपते हुए देखता हूँ": "मैंने देखा," मैंने अपनी आँखों से देखा, मैंने आकाश की आँखों से देखा, मैंने अपनी आँखों से देखा, मैंने बुद्ध की आँखों से देखा, मैंने सभी आँखों से देखा, मैं देखता हूँ, मैं निहारता हूँ, मैं चिंतन करता हूँ, मैं अवलोकन करता हूँ। "संसार में": दुखों के संसार में...

"कंपकंपी (धड़कन)," इच्छा की धड़कन से धड़कना; ...देखने का, ...अशुद्धता का, प्रयास का, फल का, बुरे कर्मों का, लोभ का, क्रोध का, अज्ञान का, अहंकार का, देखने से आसक्ति का, अव्यवस्था (बिखराव) का, संदिग्ध विफलता का, चिंताजनक संभावित प्रवृत्तियों का; लाभ, लाभहीनता का, प्रतिष्ठा का, प्रतिष्ठाहीनता का, प्रशंसा का, निंदा का, आनंद का, पीड़ा का, जीवन का, वृद्धावस्था का, बीमारी का, मृत्यु का, उदासी और निराशा का; नरक में गिरने की पीड़ा का, पशुलोक में गिरने की, प्रेतलोक में जाने की, मानवलोक में गिरने की पीड़ा का; गर्भ में प्रवेश करने की पीड़ा से, गर्भ में जड़ जमाने की, जन्म की पीड़ा से, जीने की, दूसरों के हेरफेर की, अपने स्वयं के कार्यों की, दूसरों के कार्यों की पीड़ा से धड़कना; पीड़ा से, कर्मों की पीड़ा से, परिवर्तन के दर्द से धड़कना; नेत्र रोग, कान..., नाक, जीभ, शरीर, सिर... की पीड़ा से धड़कना (छोड़ा गया, सभी कष्टों की सूची के लिए पिछले अनुभाग देखें); मृत माता की पीड़ा से धड़कना... (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)... धड़कता हुआ, पूरी तरह से धड़कता हुआ, फैलता हुआ धड़कता हुआ, कांपता हुआ, देखने के दर्द से थरथराता हुआ, मैंने देखा, मैंने गौर किया, मैंने विचार किया, मैंने अवलोकन किया।

“यह पीढ़ी सभी प्राणियों में प्यासी है”: “पीढ़ी (लोग)” सभी प्राणियों का पर्यायवाची है। “प्यास” रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और धर्मों की लालसा है। “प्यास लगना” का अर्थ है प्यास लगना; प्यास का पीछा करना; प्यास का आना; प्यास से अभिभूत होना, जीत जाना और हृदय का वश में हो जाना। “सभी प्राणियों में” इच्छा, रूप और निराकारता है।

“हीन लोग मृत्यु से पहले शिकायत करते हैं”: “हीन लोग”, “हीन शारीरिक कर्मों वाले” निम्न लोग; “हीन वाणी कर्मों वाले” निम्न लोग; “हीन मानसिक कर्मों वाले” निम्न लोग; “हत्या में निम्न”..., देना और लेना... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)..., “हीन इच्छा रखने वाले” निम्न व्यक्ति; “हीन, नीच, तुच्छ इरादे वाले, महत्वहीन” निम्न व्यक्ति हैं। “मृत्यु के मुख पर शिकायत करना”, “मृत्यु के मुख पर” का अर्थ है राक्षस के मुख पर, मृत्यु के मुख पर, मृत्यु तक पहुँच जाना, शैतान के पास पहुँच जाना, मृत्यु के निकट होना, राक्षस के पास पहुँच जाना, राक्षस के निकट होना; मृत्यु के पास आकर वे शिकायत करते हैं, रोते हैं, दुखी होते हैं, थक जाते हैं, शोक करते हैं, सीना पीटते हैं और रोते हैं, और भ्रमित हो जाते हैं।

“सभी प्रकार के अस्तित्व में प्रेम की प्यास रखने वाले उदासीन लोग”: “प्रेम की प्यास” का अर्थ है रूप की लालसा..., धर्मों की प्यास। यह बार-बार दोहराई जाती है; प्राप्ति की इच्छा के कर्म में, भौतिक अस्तित्व के कर्म में; निराकार अस्तित्व के कर्म में, सजीव अस्तित्व में; निराकार अस्तित्व के कर्म में; बार-बार होने वाली रुचि में, पुनर्जन्म में, व्यक्ति के जन्म में, प्यास को न छोड़ने, प्यास का त्याग न करने, प्यास को न मिटाने, जिन्होंने अभी तक अपनी प्यास नहीं बुझाई है, जिन्होंने अपनी प्यास का त्याग नहीं किया है, जिन्होंने अभी तक प्रेम की प्यास नहीं बुझाई है।

12 · देखो! कांपता हुआ व्यक्ति चीजों को अपना समझता है, जैसे कम पानी में रहने वाली मछली। यह देखकर किसी को कुछ नहीं करना चाहिए (यह काम नहीं करना चाहिए), वहाँ (अस्तित्व से आसक्ति बनाने में) नहीं जाना चाहिए।

“देखो! कांपने वाले लोग चीजों को अपना मान लेते हैं”: “अपने आप से चिपके रहना”, आत्म-आसक्ति दो प्रकार की होती है: प्यासी आत्म-आसक्ति और दृष्टिहीन आत्म-आसक्ति। प्यासी आत्म-आसक्ति क्या है? सभी को सीमाएँ, क्षेत्र, दायरे, हदें कहा जाता है... (अधूरा भाग, पिछले अनुभाग देखें)... यही प्यासी आत्म-आसक्ति है।

देखने से स्वयं को थामे रखना क्या है? शरीर के बीस दृश्य हैं...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)... “देखो! जो लोग कांपते हैं, वे चीजों को अपना समझते हैं”: वे तब कांपते हैं जब वे चीजों को अपना समझते हैं, वे लूटे जाने से डरते हैं, वे तब भी कांपते हैं जब उन्हें लूटा जाता है; वे तब कांपते हैं जब वे परिवर्तनों पर संदेह करते हैं और उनसे डरते हैं, और जब वे बदलते हैं, तब भी वे कांपते हैं, तीव्र रूप से कांपते हैं, पूरी तरह से कांपते हैं, व्यापक रूप से कांपते हैं, कांपते हैं, और परिवर्तन के समय बहुत अधिक कांपते हैं। जब कांप रहे हों..., बहुत अधिक कांप रहे हों, कृपया देखें, कृपया ध्यान दें, कृपया गौर करें।

“जैसे कोई मछली कम पानी में फंसी हो”: जैसे किसी मछली पर कौआ, चील या सारस हमला करते हैं, उसे पकड़ लेते हैं या खा जाते हैं, वैसे ही जब वह कम पानी में होती है, तो वह कांपने लगती है, ज़ोर से कांपने लगती है, और उसका शरीर बुरी तरह कांपने लगता है। ठीक इसी तरह, जब लोगों को उनकी अपनी चीज़ों की तरह समझा जाता है, तो वे लूटे जाने से डरते हैं, और कांपने लगते हैं, बुरी तरह थरथराते हैं।

“इसे देखकर, अनात्म का भी अभ्यास करना चाहिए”: यह दोष: देखने के बाद, देखने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद। “अनन्म का अभ्यास करना चाहिए,” दो प्रकार के आत्म-बोध होते हैं: .... यदि आप प्यासे व्यक्ति के आत्म-बोध से मुक्त हो जाते हैं; यदि आप देखने के आत्म-बोध को काट देते हैं, तो वह आँखों को अपना नहीं मानता,

...कान..., नाक, जीभ, शरीर, मन; ...सभी रूप..., ध्वनियाँ, गंध, स्वाद, स्पर्श, धर्म; घर, समूह (लोगों का), आवास, लाभ, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यकताएँ और चिकित्सा आवश्यकताएँ; इच्छा, रूप, निराकार, पाने की इच्छा, रूप पाने की इच्छा, निराकार पाने की इच्छा, इच्छा क्षेत्र, न पाने की इच्छा; एक समूह, चार समूह, पाँच समूह, भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल; जो धर्म दिखाई देते हैं, सुनाई देते हैं, महसूस किए जा सकते हैं और जिन्हें वह अपना मान सकता है, उनसे वह चिपका नहीं रहता, उनसे आसक्ति नहीं रखता, न ही उन पर पकड़ रखता है; न पकड़ता है, न अभ्यास करता है, न ही दृढ़ रहता है; उसे कार्य करना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, रक्षा करनी चाहिए और जीवित रहना चाहिए।

"अस्तित्व में निरंतर न रहना": "अस्तित्व में रहना", इच्छा में रहना, रूप में रहना, निराकार में रहना। आसक्ति को भोग कहते हैं, जो लोभ है... "अस्तित्व में निरंतर न रहना": अस्तित्व में रहना – क्रिया न करना; इच्छा, प्रेम, लोभ, पसंद से नहीं, जन्म न लेना, उत्पन्न न होना, उत्पन्न न होना, जन्म न लेना।

13. दोनों पक्षों की इच्छाओं को संयमित करने के बाद, लोभ से प्रेरित हुए बिना स्पर्श को पूर्णतः जानते हुए, ऐसा कुछ भी न करते हुए जिसके लिए वह स्वयं को फटकार लगाए, बुद्धिमान लोग जो देखते और सुनते हैं उससे दूषित नहीं होते।

"दोनों पक्षों की इच्छाओं को संयमित करने के बाद": "पक्ष," स्पर्श एक पक्ष है, स्पर्श का संग्रह दूसरा पक्ष है; भूतकाल एक पक्ष है, भविष्यकाल दूसरा पक्ष है; सुख एक पक्ष है, दुख दूसरा पक्ष है; निराकार एक पक्ष है, आकार दूसरा पक्ष है; भीतर के छह अंग एक पक्ष हैं, और बाहर के छह अंग दूसरा पक्ष हैं; शरीर एक पक्ष है, और शरीर का संग्रह दूसरा पक्ष है। "इच्छा," .... "दोनों पक्षों की इच्छाओं को संयमित करने के बाद": दोनों पक्षों की इच्छाओं को संयमित, निष्कासित, समाप्त, त्याग देना चाहिए, और उनका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए।

"स्पर्श (संपर्क, फासा) का अवलोकन करने के बाद, कोई लालच नहीं रहता": "स्पर्श," आँख का स्पर्श, कान का स्पर्श, नाक..., जीभ, शरीर, इरादा, नाम, टकराने वाला स्पर्श [DN.15]; आनंददायक स्पर्श का अनुभव, ...कड़वा स्पर्श, न कड़वा न आनंददायक स्पर्श, अच्छा, बुरा, अविस्मरणीय, इच्छा, रूप, निराकार, खाली, गैर-संपर्क, स्पर्श करने की अनिच्छा, सांसारिक स्पर्श, सांसारिक स्पर्श नहीं, भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल, कोई भी स्पर्श, पूर्ण स्पर्श; इस प्रकार के स्पर्शों को स्पर्श कहा जाता है।

"स्पर्श को जानने के बाद," स्पर्श के तीन प्रकार के ज्ञान के बाद: ज्ञात, परावर्तित और परित्यक्त। ज्ञात ज्ञान क्या है? स्पर्श को जानना: यह आँख का स्पर्श है, यह कान का स्पर्श है..., यह वर्तमान स्पर्श है। वह जानता और देखता है, यही जानना है।

ज्ञान को मापना क्या है? यह जानने के बाद, अनित्यता, दुख, बीमारी, ट्यूमर आदि को मापने की उत्सुकता में, उन्होंने इसे मापने योग्य बना दिया; संचय, विनाश, सुख, कष्ट और त्याग, ये सभी ज्ञान के मापक हैं।

त्याग क्या है? इस प्रकार विचार करने के बाद, स्पर्श की इच्छा को काट दिया जाएगा, त्याग दिया जाएगा, दूर भगा दिया जाएगा, समाप्त कर दिया जाएगा और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! स्पर्श की सभी इच्छाओं और लोभों को काट देना चाहिए। इस प्रकार, संपर्क टूट जाएगा और जड़ें कट जाएंगी, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है।" [सं.22.25] यही त्याग है।

स्पर्श के बाद अवलोकन, इन तीन प्रकार के ज्ञान और स्पर्श के बाद के ज्ञान के साथ। "लालच नहीं है," लालच को तृष्णा कहा जाता है... जो भी व्यक्ति कटकर, विखंडित होकर, शांत होकर, स्थिर होकर, उठने में असमर्थ होकर, और ज्ञान की अग्नि से प्रज्वलित हो

जाता है, वह तृष्णा रहित व्यक्ति कहलाता है। वह प्रत्यक्ष रूप से; ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श में; घर में...(विलुप्त)..., वर्तमान में; जो कुछ आप देखते, सुनते, महसूस करते हैं, उसमें तृष्णा नहीं होती। जिन धर्मों को जाना जा सकता है, वे हैं जो तृष्णा रहित, बंधित नहीं, आसक्त नहीं, निर्दोष, तृष्णा से मुक्त, बिना तृष्णा के, त्यागी हुई तृष्णा और समाप्त तृष्णा वाले हैं। जिन्होंने तृष्णा का त्याग कर दिया है, जिन्होंने तृष्णा को त्याग दिया है, जिन्होंने तृष्णा को छोड़ दिया है, जिनके पास तृष्णा नहीं है, जिन्होंने तृष्णा को समाप्त कर दिया है, जो तृष्णा से मुक्त हो गए हैं, जो भूखे नहीं हैं, जो शांत हो गए हैं, जो प्रसन्न हैं, और जो स्वयं ब्राह्मण के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।

"वह जिस भी बात के लिए खुद को डांटता है, उसे पूरा नहीं करता": "जो भी" का अर्थ कुछ भी है। "खुद को डांटना," दो कारणों से खुद को डांटता है: जो किया गया है और जो नहीं किया गया है। किए गए और न किए गए कार्यों के लिए खुद को डांटने का क्या अर्थ है? "मेरे बुरे आचरण, मेरे अच्छे आचरण।" उसने खुद को डांटा; "बुरे शब्द..., अच्छे शब्द..., ...; बुरी मंशा, अच्छी मंशा; हत्या, हत्या से परहेज; बिना दिए लेना, न देना; व्यभिचार, व्यभिचार से परहेज; झूठ बोलना, झूठ न बोलना; फूट डालने वाली बातें, फूट डालने वाली बातें न करना; अभद्र शब्द...; अपशब्द (गालियां)...; लालच; बुराई (नुकसान); बुरा दृष्टिकोण..., सही दृष्टिकोण नहीं... ।" वह किए गए और न किए गए कार्यों के लिए खुद को डांटता है। या, "मैं नियमों का पूर्ण पालन करने वाला व्यक्ति नहीं हूँ," उसने खुद को डांटा; "मैं जड़ों का रक्षक नहीं हूँ...; ...मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जो खाने की सही मात्रा जानता हो...; मैं संयमी नहीं हूँ, मैं सचेत और सही ज्ञान वाला व्यक्ति नहीं हूँ; मैंने चारों सचेतनता का अभ्यास नहीं किया है; मैंने चारों अच्छे परिश्रमों का अभ्यास नहीं किया है...; मैंने चारों आधारों (इद्धिपाद) का अभ्यास नहीं किया है; मैंने पाँच तत्वों का अध्ययन नहीं किया है; पाँच शक्तियों का अध्ययन नहीं किया है...; सात ज्ञान के कारक; आठ पवित्र मार्ग; ...मैं दुख को नहीं जानता...; ...मैंने संग्रह को नहीं काटा है...; मैंने मार्ग का अभ्यास नहीं किया है; मैंने उस बात की गवाही नहीं दी है जिसकी गवाही देनी चाहिए थी... ।" वह अपने किए और न किए गए कार्यों के लिए स्वयं को फटकारता है, और अपने कर्मों (व्यवहार) को न करने, न उत्पन्न करने, न उत्पन्न होने या न होने के लिए फटकारता है।

"ज्ञानी व्यक्ति अपने देखे और सुने हुए से दूषित नहीं होता": "संलग्नता" दो प्रकार की होती है: ... "ज्ञानी व्यक्ति" वह ज्ञानी, प्रबुद्ध, विशिष्ट और वह ज्ञानी व्यक्ति है जिसने संलग्नता की लालसा का त्याग कर दिया है। मन की संलग्नता को तोड़ने के बाद, व्यक्ति न तो अपने देखे हुए से दूषित होता है, न ही अपनी गंध से, न ही अपने स्पर्श से; न ही अपने स्पर्श से; न तो वह दूषित होता है, न ही अधिक दूषित होता है, न ही अधिक दूषित होता है, न ही अधिक दूषित होता है, न ही अधिक दूषित होता है। वह बंधनों से मुक्त हो चुका है, मुक्त हो चुका है, वह निर्बल हृदय से निवास करता है।

14 · जानने (बोध करने) के बाद, मूसलाधार प्रवाह को पार किया जा सकता है, मुनि अपवित्र नहीं होंगे, बाण निकालकर, बेरोकटोक चलते हुए, वे इस दुनिया और दूसरी दुनिया की इच्छा नहीं रखते।

"जानने और सोचने के बाद": "सोचना," चाहना, द्वेषपूर्ण विचार, हानिकारक, अनुपस्थित, निर्दोष, हानिरहित, कामवासना, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श संबंधी चिंतन और धर्म संबंधी चिंतन। इस प्रकार की किसी भी चिंतन और बोध की अवस्था को चिंतन कहते हैं। "जानने और सोचने के बाद," तीन प्रकार का ज्ञान होता है: ज्ञात, मापन और त्याग।

जानना क्या है? ...(अधूरा भाग)।

मापन क्या है?...

त्याग क्या है?...

"विचार के बाद ज्ञान," इन तीन प्रकार के ज्ञान और चिंतन के बाद। "उथले प्रवाह पर विजय प्राप्त करने में सक्षम," इच्छा के प्रवाह पर, अस्तित्व के प्रवाह पर, दृष्टि के प्रवाह पर, अज्ञान के प्रवाह पर; वह जीवित रह सकता है, पार कर सकता है, आगे बढ़ सकता है, श्रेष्ठ बन सकता है और विजय प्राप्त कर सकता है।

“मुनि को किसी भी वस्तु से अछूता रखा जा सकता है”: “वस्तुएँ,” दो प्रकार की वस्तुएँ होती हैं: प्यास और दृष्टि... यह प्यास की वस्तु है... यह दृष्टि है... “मुनि,” मुनि को ज्ञान कहा जाता है, अर्थात् बुद्धि, समझ... (छोड़ा गया), भ्रम रहित, धम्म, सही दृष्टि, मुनि ज्ञान धारण करने वाला, मुनि। मुनि (परिपूर्ण सद्गुण) तीन प्रकार के होते हैं: शरीर मुनि, वाणी मुनि और अभिशय मुनि।

मुनि का शरीर क्या है? तीनों प्रकार के शरीर और बुरे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; तीनों प्रकार के अच्छे आचरण मुनि की स्थिति हैं; शरीर में मौजूद बुद्धि मुनि की स्थिति है; शरीर का ज्ञान मुनि की स्थिति है; (उच्चतर) ज्ञान के साथ मार्ग पर चलना मुनि का शरीर है; इच्छा और लोभ का त्याग मुनि के समान है; चौथा ध्यान, शरीर का विनाश, मुनि की स्थिति है।

मुनि की भाषा क्या है? भाषा के चार प्रकार के बुरे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषा के चार प्रकार के अच्छे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषाई विषयों का ज्ञान मुनि की स्थिति है; भाषा का ज्ञान मुनि की स्थिति है; और सभी कर्मों के मार्ग का ज्ञान मुनि की स्थिति है; भाषा की इच्छा और लोभ का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषा का द्वितीय ध्यान विराम भाषा मुनि की स्थिति है।

हे मुनि, इरादा क्या है? इरादे और बुरे कर्मों के तीन प्रकार मुनि की स्थिति हैं; अच्छे कर्मों के तीन प्रकार मुनि की स्थिति हैं; मन-विषय में निहित ज्ञान मुनि की स्थिति है; हृदय का ज्ञान मुनि की स्थिति है; ज्ञान के साथ मार्ग पर चलने वाला मुनि की स्थिति है; हृदय की इच्छा और लोभ का मूल्यांकन मुनि की स्थिति है; मन को नष्ट करने की इच्छा मुनि की स्थिति है।

“शरीर मुनि, वाणी मुनि और नीयत मुनि किसी भी प्रकार से कष्टदायी नहीं हैं; मुनि को मुनि का दर्जा प्राप्त है और कहते हैं कि वे ही सब कुछ नष्ट करने वाले हैं। शरीर मुनि, वाणी मुनि और नीयत मुनि किसी भी प्रकार से कष्टदायी नहीं हैं; मुनि को मुनि का दर्जा प्राप्त है और कहते हैं कि वे ही बुराई से मुक्त हुए हैं।”

छह प्रकार के मुनि में मुनि के ये तीन रूप होते हैं: गृहस्थ मुनि, बेघर मुनि, ज्ञानवान मुनि, ज्ञानहीन मुनि, भिक्षु मुनि, और मुनि के मुनि। गृहस्थ कौन हैं? वे गृहस्थ जिन्होंने पदचिह्न देखे हैं और उपदेश सीखे हैं, वे गृहस्थ हैं। बेघर मुनि कौन हैं? वे भिक्षु जिन्होंने पदचिह्न देखे हैं और उपदेश सीखे हैं, वे बेघर मुनि हैं। ज्ञानवान मुनि के लिए सात प्रकार के ज्ञान हैं, अज्ञानी मुनि के लिए अरहंत हैं, और भिक्षु बुद्ध भिक्षु मुनि हैं। मुनि के मुनि को तथागत, अरहंत और प्रबुद्ध कहा जाता है।

“नासमझ मुनि मूर्ख और अज्ञानी होता है। तराजू उठाकर सबसे ऊपर वाला पलड़ा उठा लो और ज्ञानी बन जाओ। सभी बुराइयों से दूर रहो, क्योंकि मुनि उन्हीं बुराइयों के कारण मुनि बने। संसार में जो भी (आंतरिक और बाह्य) योग को समझता है, वही मुनि कहलाता है। जो संसार के भीतर और बाहर सब कुछ जानता है, धर्म के पीछे के अच्छे और बुरे को जानता है, जो स्वर्ग और मनुष्य दोनों का आदर पाता है, वह कलंक और जाल से परे है, वही मुनि है।”

“आसंजन,” आसंजन दो प्रकार के होते हैं:... जब मुनि ने प्यास के आसंजन को तोड़ा, और दृष्टि के आसंजन को तोड़ा, तो वे किसी भी तरह से दूषित नहीं हुए, न ही प्रबल रूप से दूषित हुए, न ही गहन रूप से दूषित हुए, न ही अब और दूषित हुए, न ही गहन रूप से दूषित हुए। वे मुक्त हो गए, विदा हो गए, बंधन से अलग हो गए, वे एक निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करते हैं।

"जिसने चुभने वाले बाण को निकाल लिया है और उसे जाने नहीं देता": "चुभने वाला बाण," सात प्रकार के चुभने वाले बाण हैं: लोभ का बाण, क्रोध का बाण, अज्ञान का बाण, अहंकार का बाण, दृष्टि का बाण, दुःख का बाण, संदेह का बाण। जिसके लिए ये चुभने वाले बाण काट दिए गए हैं, अलग कर दिए गए हैं, शांत कर दिए गए हैं, रुक गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, और ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं, उसे चुभने वाला बाण निकालने वाला कहा जाता है। जिन्होंने बाण निकाल लिया है, बाण हटा दिया है, बाण पूरी तरह से हटा दिया है, बाण त्याग दिया है, बाण से मुक्त हो गए हैं, बाण छोड़ दिया है, जिन्होंने चुभने वाले बाण के बारे में सोचना बंद कर दिया है, जो भूखा नहीं है, जो शांत हो गया है, जो शांत हो गया है, जो सुख का अनुभव करता है, और जो स्वयं को ब्राह्मण के रूप में जीता है।

"चलने वाला," जब चलते हैं, ठहरते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं, जीवन यापन करते हैं। "जो विश्राम नहीं करते" वे आदरणीय कर्ता, नियमित कर्ता, निरंतर कर्ता, जो किसी बात से बंधे नहीं होते, जो अपनी इच्छाओं की उपेक्षा नहीं करते, और जो अच्छे धम्म में अपने दायित्वों की उपेक्षा नहीं करते; "क्या मैं प्रतिज्ञाओं को पूरा कर सकता हूँ, या क्या मैं पूरी की गई प्रतिज्ञाओं को ज्ञान से पोषित कर सकता हूँ?" वह जिसके पास (सही) इरादे, परिश्रम, साहस, कड़ी मेहनत, अविचलितता, सजगता, धार्मिक ज्ञान, उत्साह, दृढ़ता, अभ्यास और अच्छे धम्म में अडिगता है; "मैं अपूर्ण एकाग्रता को कैसे पूरा कर सकता हूँ, या क्या पूर्ण धम्म को हर जगह ज्ञान से पोषित किया जा सकता है?...(छोड़ा गया); मैं अपूर्ण ज्ञान संचय..., मुक्ति संचय..., अपूर्ण मुक्तिदायक ज्ञान बोध समुच्चय को कैसे पूरा कर सकता हूँ... ।" वह जिसके पास (सही) इरादे, परिश्रम...; "मैं अज्ञात दुख को कैसे जान सकता हूँ, या उस अशुद्धि को कैसे दूर कर सकता हूँ जिसे मैंने अभी तक दूर नहीं किया है, या उस मार्ग का अभ्यास कैसे कर सकता हूँ जिसका मैंने अभ्यास नहीं किया है, या क्या आप मेरे मरने से पहले गवाही दे सकते हैं?" वह व्यक्ति जो सही संकल्प, लगन, अभ्यास और अच्छे धर्म में दृढ़ता रखता है।

"इस संसार और अन्य संसारों की इच्छा न रखना": वह इस संसार की इच्छा नहीं रखता: अपनी अवस्था की; वह अन्य संसारों की इच्छा नहीं रखता: अन्य लोगों की अवस्था की। वह इस संसार की इच्छा नहीं रखता: अपने शरीर, भावना, विचार, व्यवहार, ज्ञान की; और अन्य संसारों की भी इच्छा नहीं रखता: अन्य लोगों के शरीर की... वह इस संसार की इच्छा नहीं रखता: छह आंतरिक संसारों की; और अन्य संसारों की भी: छह बाह्य संसारों की। वह इस संसार की इच्छा नहीं रखता: मानव संसार की; अन्य संसारों की भी इच्छा नहीं रखता: स्वर्गीय संसार की। वह इस संसार की इच्छा नहीं रखता: इच्छा, भौतिकता के संसार की; और अन्य संसारों की भी: निराकार (अमूर्तता) के संसार की। रुचि का दूसरा स्थान, या मृत्यु, या पुनर्जन्म, आकस्मिक (अस्तित्व), या पुनर्जन्म, या पुनर्जन्म, वह आशा नहीं रखता, चाहता नहीं, स्वीकार नहीं करता, और न ही प्रार्थना करता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.3

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

3. बुराई

15 · कुछ लोग सचमुच द्वेषपूर्ण हृदय से बोलते हैं, दूसरे सच्चे हृदय से कहते हैं, मुनि उत्पन्न विवाद में नहीं आते, इसलिए मुनि जहाँ कहीं भी हों, निर्जन नहीं होते।

"कुछ लोग द्वेषपूर्ण हृदय से बोलते हैं": वे बाहरी लोग द्वेषपूर्ण हृदय से, शत्रुतापूर्ण हृदय से, विरोध के हृदय से, आघात पहुँचाने वाले हृदय से, प्रतिशोध के हृदय से, हानि पहुँचाने वाले हृदय से, अपमान करने वाले हृदय से, पीठ पीछे झूठ बोलते हुए, भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ का अपमान करते हुए बोलते हैं।

“अन्य लोग इसे सच्चे हृदय से कहते हैं”: जो कोई भी विश्वास करता है, भरोसा करता है, जिसका मन और हृदय सच्चा है, जिसका मन और हृदय तथ्यात्मक है, और जिसका हृदय सत्यनिष्ठ है, जो सत्यनिष्ठा से सोचते हैं, जो निश्चित हृदय से सोचते हैं, जो विकृत हृदय से नहीं सोचते, वे झूठ नहीं बोलते, भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ का अपमान नहीं करते।

“जो विवाद उत्पन्न हुआ है, मुनि वहाँ नहीं पहुँचते”: जो विवाद उत्पन्न हुआ है, जो पैदा हुआ है, जो प्रकट हुआ है: गली-मोहल्ले की बातें, अपमान, निंदा, भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ के झूठे दावे। “मुनि नहीं पहुँचते”: “मुनि,” ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। जो भी विवाद में पहुँचता है, वह दो कारणों से पहुँचता है: या तो वह विवाद में एक कर्ता के रूप में पहुँचता है, या जब उसके बारे में बात की जाती है या उसे निंदा की जाती है, तो वह क्रोधित, अस्वीकृत, हठी, क्रोध, घृणा, असंतोष प्रकट करता है (यह कहते हुए): “मैं इसका निर्माता नहीं हूँ।” जो लोग विवाद में पहुँचते हैं, वे इन्हीं दो कारणों से पहुँचते हैं। मुनि विवाद में दो कारणों से नहीं पहुँचते: या तो मुनि निर्माता नहीं हैं, और विवाद में निर्माता के रूप में नहीं पहुँचते, या जब उनके बारे में बात की जाती है या उन्हें निंदा की जाती है, तो वे क्रोधित नहीं होते, अस्वीकार नहीं करते, हठी नहीं होते, क्रोध, घृणा, असंतोष प्रकट नहीं करते (यह कहते हुए): “मैं इसका निर्माता नहीं हूँ।” मुनि विवाद में न तो आया, न ही आता है, न ही विवाद को अपने हाथ में लेता है, इसके दो कारण हैं।

अत: जहाँ कहीं भी मुनि हैं, वहाँ कोई बंजरपन नहीं है। अतः, उस कारण, उस स्थिति और उस वजह से, हृदय में आक्रमण का अभाव है, उजाड़पन नहीं है, हृदय के पाँच प्रकार के बंजरपन [MN.16] नहीं हैं, तीन प्रकार के बंजरपन [SN.45.166] नहीं हैं: लोभ का बंजरपन, क्रोध का बंजरपन, अज्ञान का बंजरपन; यह न तो विद्यमान है, न ज्ञात है, न खोजा गया है, न ही विच्छेदित है, न ही शांत है, न ही रुका हुआ है, न ही उत्पन्न हो सकता है, न ही ज्ञान की अग्नि से झुलसा हुआ है। चाहे वह कहीं भी हो, चाहे भीतर हो या बाहर, या भीतर और बाहर दोनों जगह हो।

16 · कोई अपने ही दृष्टिकोण को कैसे पार कर सकता है? इच्छा से निर्देशित, (व्यक्तिगत) झुकावों (पसंदों) से तय, अपनी स्वयं की उपलब्धि का प्रदर्शन करते हुए, वास्तव में वह वही कहेगा जो वह जानता है।

“अपने ही विचारों को कैसे पार किया जा सकता है?”: जो कोई सुंदरी नंदा की महिला भिक्षुणियों की हत्या करता है और समण शाक्य की बदनामी करता है, (यह सोचकर): “इस तरह हम लाभ, प्रतिष्ठा, सम्मान वापस पा लेंगे।” जो लोग इस तरह देखते हैं, ऐसे लोग, ऐसे प्रेमी, ऐसे पैरोकार और ऐसे इरादे रखने वाले, वे अपने ही विचारों, अपनी पसंद, अपनी प्रवृत्तियों, अपने मतों, अपने इरादों को पार नहीं कर सकते; तब उन्हें ही अपमान का सामना करना पड़ता है। “यह मेरा अपना विचार कैसे हो सकता है?” या, “संसार शाश्वत है, यही वास्तविक है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।” जो कोई ऐसा कहता है, उसके अपने विचार, उसकी पसंद..., उसके अपने इरादे कैसे पार हो सकते हैं, कैसे उनसे आगे निकल सकते हैं, कैसे उन पर विजय पा सकते हैं? इसका क्या कारण है? उसकी दृष्टि पूर्ण हो जाती है, वह उसमें समा जाती है, उससे जुड़ जाती है और इस प्रकार मान लेती है, “मैं आश्वस्त हो गया हूँ।” मैं इसे इस तरह कैसे पार कर सकता हूँ? “संसार अत्यंत स्थिर है... (अंशित) संसार परिबद्ध है... संसार असीम है... भाग्य ही शरीर है... भाग्य एक शरीर है, भाग्य दूसरा शरीर है... तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं... तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं... मृत्यु के बाद तथागत विद्यमान भी हैं और नहीं भी... मृत्यु के बाद तथागत न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं; यही सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।” जो कोई भी इस प्रकार कहता है, अपने विचारों, अपनी पसंदों आदि को कैसे पार कर सकता है, उनसे आगे निकल सकता है और उन पर विजय प्राप्त कर सकता है? इसका क्या कारण है? उसकी दृष्टि इसी प्रकार पूर्ण, बद्ध, ग्रहण की हुई, बद्ध, आसक्त, ग्रहण की हुई, विश्वास की हुई और समझी हुई है।

“इच्छाओं से प्रेरित, (व्यक्तिगत) झुकावों से स्थिर”: “इच्छाओं से प्रेरित,” वह अपने ही विचारों से बहकाया जाता है, जैसे बैलगाड़ियों, बैलगाड़ियों, बकरीगाड़ियों, मेढ़ों, ऊंटगाड़ियों, गधों और घोड़ों की गाड़ियों से, चलने, ले जाने और ढोने के लिए। उसी प्रकार, वह अपने ही विचारों, अपनी ही पसंदों, अपने ही झुकावों और अपनी ही राय से प्रेरित होकर बहकाया जाता है, ले जाया जाता है, ढोया जाता है।

"(व्यक्तिगत) झुकावों से स्थिर," वह अपने ही विचारों, अपने ही झुकावों और अपनी ही राय से स्थिर, रुका हुआ, अटका हुआ, प्रवेश किया हुआ, कलंकित है, और उसने अपना हृदय (विजयी समाधान की ओर) मोड़ दिया है।

"अपनी स्वयं की उपलब्धि का क्रियान्वयन": अपने द्वारा किए गए कार्य को क्रियान्वित करना; संतोषजनक ढंग से क्रियान्वयन करना; पूर्णतः क्रियान्वयन करना; प्रथम, सबसे सफल, उत्कृष्ट, शीर्ष, सबसे विजयी क्रियान्वयन करना: (मैंने सोचा:) "यह गुरु सर्वज्ञानी हैं।" अपने द्वारा किए गए कार्य का क्रियान्वयन करना; संतोषजनक ढंग से क्रियान्वयन करना, ..., (सोचते हुए:) "यह धम्म अच्छे लोगों द्वारा कहा गया है... (अस्पष्ट), यह समूह अच्छे लोगों का अनुसरण करता है... यह देखना अच्छा है... यह मार्ग अच्छाई पर आधारित है... यह मार्ग त्याग है।" क्रियान्वयन स्वयं द्वारा किया जाता है, संतोषजनक ढंग से क्रियान्वयन किया जाता है..., वह इसे घटित करता है, इसे उत्पन्न करता है, इसे साकार करता है।

"वह वही कहेगा जो वह जानता है": वह वही कहेगा, बताएगा, बात करेगा, समझाएगा और कहेगा जो वह जानता है, "संसार स्थिर है, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।" वह कहेगा, बताएगा, बात करेगा, समझाएगा और कहेगा, "संसार अत्यंत स्थिर है... (अस्पष्ट)..., मृत्यु के बाद तथागत न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।" वह बोलेगा, बताएगा, बात करेगा, समझाएगा।

17. जो व्यक्ति बिना पूछे दूसरों को अपने उपदेशों और निषेधों के बारे में बताता है, कुशल लोग कहते हैं कि वह पवित्र धम्म नहीं है, जो स्वयं अपने बारे में बोलते हैं।

"उनके अपने उपदेश और निषेध": "क्या," क्या है, जैसे प्रयास, जैसे व्यवस्था, जैसे प्रकार, जहाँ कहीं भी आया है, जो क्षत्रिय है, या ब्राह्मण है, या वेस, या शुद्ध है, या घर पर है, या घर से बाहर (सन्यासी), या स्वर्ग में है, या व्यक्ति है। "उपदेश और निषेध," उपदेश और निषेध हैं, निषेध और गैर-उपदेश हैं। उपदेश और निषेध क्या हैं? यहाँ, भिक्षु एक गुरु है, पातिमोक्ख के आत्म-संयम के संरक्षण में पर्याप्त धर्म और अवस्था के साथ रहना, छोटे पापों में भय देखना, और गुरु से ग्रहण करने के बाद सीखना। जहाँ कहीं भी संयम, आत्म-संयम और अहिंसा है, वही उपदेश है; वही निषेध है। आत्म-संयम को उपदेश मानकर; धर्म का पालन निषेध मानकर, उपदेश और निषेध कहलाता है। निषेध और गैर-उपदेश क्या है? आठ शाखाएँ हैं: जंगली शाखा, भिक्षा मांगने वाली शाखा, गोबर साफ करने वाली शाखा, वस्त्रों के लिए तीन छड़ें, दूसरी भिक्षा मांगने वाली छड़ें, खाने के बाद की छड़ें, न खाने वाली छड़ें, अक्सर बैठने (लेटने नहीं) वाली छड़ें, कहीं भी ठहरना, इसे निषेध और नियम का उल्लंघन कहा जाता है। जीवन शक्ति का पालन भी निषेध और नियम कहलाता है: "मैं केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही छोड़ना पसंद करूँगा; यदि शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, तब भी जब तक मनुष्य का धैर्य, शक्ति, जीवन शक्ति और प्रयास निरंतर बने रहें (लक्ष्य प्राप्त न हो जाए), जीवन शक्ति का अंत नहीं होगा।" [SN.12.22] वह समर्पित और परिश्रमी है, इसी प्रकार जीवन शक्ति का पालन निषेध और नियम कहलाता है।

"मैं न तो खाऊंगा, न पीऊंगा, न अपने निवास से बाहर जाऊंगा, न ही अपनी जांघ को गिरने दूंगा (लेटने दूंगा), जब तक प्यास का तीर न सुलग जाए।" [थाग.223]

वह समर्पित और परिश्रमी है, और ऐसी शक्ति का पालन करना निषेध और उपदेश कहलाता है। "जब तक मेरा मन आसक्ति से मुक्त होकर सभी दोषों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मैं इस पद्मासन को नहीं तोड़ूंगा!" [एमएन.32] वह समर्पित और परिश्रमी है, और ऐसी शक्ति का पालन करना निषेध और उपदेश कहलाता है। "जब तक मेरा मन आसक्ति से मुक्त होकर सभी कष्टों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मैं इस आसन से नहीं उठूंगा..., मैं अनुभव से नीचे नहीं उतरूंगा..., मैं घर से बाहर नहीं जाऊंगा..., मैं अर्धछत वाले घर से बाहर

नहीं जाऊंगा..., ...ऊँची इमारत से..., समतल छत वाले घर से, गुफा से, गुफा से, झोपड़ी से, भारी मंडप से, अवलोकन चबूतरे से, गोल घर से, शेड से, व्याख्यान कक्ष से, तंबू से... मैं पेड़ के नीचे से बाहर नहीं जाऊंगा..."

"आज दोपहर से ठीक पहले मैं पवित्र धम्म का ज्ञान प्राप्त करूँगा, उसे पूर्णतः ग्रहण करूँगा, उसे प्राप्त करूँगा, उस तक पहुँचूँगा और उसकी गवाही दूँगा"..., "आज दोपहर..., शाम को..., भोजन से पहले, भोजन के बाद, रात से पहले, आधी रात को, रात के बाद, मृत्यु के समय, श्वेत चंद्रमा के समय, वर्षा ऋतु में, शीत ऋतु में, ग्रीष्म ऋतु में, यौवन में, मध्य आयु में, वृद्धावस्था में, मैं पवित्र धम्म का ज्ञान प्राप्त करूँगा, उसे पूर्णतः ग्रहण करूँगा, उसे प्राप्त करूँगा, उस तक पहुँचूँगा और उसकी गवाही दूँगा।" वह समर्पित और परिश्रमी है, और इस प्रकार के परिश्रम का पालन करना निषेध और उपदेश कहलाता है। "मनुष्य" चेतन प्राणी हैं, मनुष्य हैं, विद्यार्थी ब्राह्मण हैं, लोग हैं, व्यक्ति हैं, जीव हैं, लोगों से जन्मे हैं, इंद्र से जन्मे हैं और मनु हैं।

"अन्य लोगों द्वारा पूछे बिना (उपरोक्त के बारे में) बोलना": "अन्य लोगों से," अन्य क्षत्रिय, ब्राह्मण, ... "पूछा न जाए," प्रश्न न किया जाए, पूछा न जाए, विनती न की जाए, पूछताछ न की जाए, स्पष्टीकरण के लिए न कहा जाए। अपने उपदेशों, निषेधों, या उपदेशों और निषेधों के बारे में बोलो: मैं "पर्याप्त उपदेशों वाला व्यक्ति" हूँ, या "निषेधों में पर्याप्त" हूँ, "उपदेशों और निषेधों में पर्याप्त" हूँ, चाहे जन्म से, या उपनाम से, या अच्छे परिवार से, या कमल के समान रूप और सुंदरता से, या संपत्ति से, या शोध (अधिग्रहण) से, या पेशे से, चाहे कौशल से, या अध्ययन से, या जो आपने सुना है उससे, या तर्क-वितर्क से, या "अपने परिवार से भिक्षु होने से" या "बड़े परिवार से भिक्षु होने से" या "बड़े परिवार से" धनी भिक्षु होने से, या धनी परिवार से भिक्षु होने से, या एक ही घर में रहने वाले भिक्षु होने से और एक भिक्षु के सुप्रसिद्ध या प्रसिद्ध होने से, या वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यकताओं और चिकित्सा आवश्यकताओं पर, या "शिक्षक" होने से, या "वकील" होने से, या "वक्ता" होने से। "जंगल में रहने वाला," या "भीख मांगने वाला," या "गोबर के कपड़े पहनने वाला और झाड़ू लगाने वाला," या "तीन वस्त्रों वाला व्यक्ति," या "दूसरा भिखारी," या "एक बार खाने के बाद न खाने वाला व्यक्ति," या "अक्सर बैठने वाला व्यक्ति (लेटने वाला नहीं)," या "कहीं भी रहने वाला व्यक्ति," या "पहला ध्यान वाला व्यक्ति," या "दूसरे ध्यान को प्राप्त करने वाला," या "तीसरे ध्यान को प्राप्त करने वाला," या "चौथे ध्यान को प्राप्त करने वाला," या "असीम शून्य में प्रतीक्षा करने वाला व्यक्ति (पांचवां/पहला निराकार)," या "असीम चेतना में प्रतीक्षा करने वाला व्यक्ति (छठा)," या "शून्यता में प्रतीक्षा करने वाला लाभकर्ता (सातवां)," "शून्यता में प्रतीक्षा न करने वाला लाभकर्ता (न तो बोध और न ही अबोध)," वह बोलता है, बताता है, बात करता है, समझाता है और कहता है।

"कुशल लोग कहते हैं कि यह पवित्र धर्म नहीं है": "कुशल लोग," जो कुशल हैं, जो इस क्षेत्र में निपुण हैं, जो निपुणों पर निर्भर हैं, जो निपुणों का ध्यान रखते हैं, जो मेहनती और निपुण हैं, जो पवित्र और निपुण हैं, जो मूल और निपुण हैं, जो अच्छे हैं, जो धर्मी हैं, जो मार्ग में निपुण हैं, जो फल में निपुण हैं, जो निर्वाण के निपुण लोग हैं, वे कुशल लोग यह कहते हैं: "यह अज्ञानी धर्म है, यह ऋषि का धर्म नहीं है, यह मूर्ख का धर्म है, यह बुद्धिमान का धर्म नहीं है, यह बुरे लोगों का धर्म है, यह अच्छे लोगों का धर्म नहीं है।" वे ऐसा कहते हैं, बोलते हैं, समझाते हैं और बताते हैं।

"जो कोई अपने बारे में बोलता है": उसे स्वयं कहा जाता है। "अपने बारे में बोलो," अपने बारे में इस तरह बोलो जैसे "मैं एक 'पर्याप्त व्यक्ति' हूँ, या एक 'सीमित व्यक्ति' हूँ, या 'नियम और निषेध ही पर्याप्त हैं' ...(छोड़ा गया)...," वह कहता है, बोलता है, समझाता है, कहता है।

18 · एक मौन भिक्षु, एक पूर्णतः शांत अवस्था में रहने वाला व्यक्ति, उपदेशों में "मैं ऐसा हूँ" कहकर अभिमान नहीं करता, कुशल लोग कहते हैं कि यह पवित्र धम्म है, उसके लिए संसार में कहीं भी कोई वृद्धि नहीं होती।

“मौन भिक्षुओं, जो पूर्णतः शांत अवस्था में हैं”: “मौन,” लोभ शांत हो गया है, इसलिए अवस्था मौन है; क्रोध शांत हो गया है, इसलिए अवस्था मौन है; ...अज्ञान..., ...द्वेष..., ...अहंकार..., (विलुप्त, पिछले खंड देखें)..., सभी अस्वास्थ्यकर कृत्रिम अवस्थाएँ शांत हो गई हैं, स्थिर हो गई हैं, शांत हो गई हैं, बुझ गई अवस्था, शांत अवस्था, दिवंगत अवस्था और समाप्ति अवस्था मौन, स्थिर, शांत, शांत और रुकी हुई हैं। “भिक्षु,” नष्ट हुए सात धर्मों की अवस्था भिक्षु है: दृष्टि नष्ट हो गई है, संदेह नष्ट हो गया है, निषेध नष्ट हो गया है, लोभ नष्ट हो गया है, क्रोध नष्ट हो गया है, भ्रम नष्ट हो गया है, आलस्य नष्ट हो गया है, और वे सभी दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म नष्ट हो गए हैं; प्रदूषण, अन्यों, भय, कड़वे फल, वृद्धावस्था और भविष्य में मृत्यु से परहेज।

भगवान [सं.3.6, 519]: “निर्वाण प्राप्त करने और संशयवादियों से ऊपर उठने के लिए मैंने जिस मार्ग का अभ्यास किया है, उसी मार्ग का अनुसरण करो। शून्यता और अस्तित्व का त्याग करने के बाद, जो पूर्ण हो गया है और जो विरक्त हो गया है, वही भिक्षु है।”

“मौन भिक्षुओं, जो पूर्णतः शांत अवस्था में हैं”: जो लोग लोभ की अवस्था को बुझा देते हैं, वे पूर्णतः शांत अवस्था में होते हैं, ...क्रोध..., ...अज्ञान..., (छोड़ा गया)।

“मैं उपदेशों में ‘मैं ऐसा हूँ’ कहकर घमंड नहीं करता: ‘मैं ऐसा हूँ’, वाक्यों का क्रम; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों की पूर्णता; शब्दों का संयोजन; शब्दों का जुड़ाव; यह दूसरा वाक्य है; यह है ‘मैं ऐसा हूँ’।” मैं उपदेशों में घमंड नहीं करता।” यहाँ एक प्रकार का घमंड है: मैं एक ‘सीमित व्यक्ति’ हूँ... (अंशित)...। इस प्रकार वह घमंड या दिखावा नहीं करता। वह घमंड से मुक्त हो गया है, त्याग कर चुका है, छोड़ चुका है, अलग हो गया है, मुक्त हो गया है, बंधन का त्याग कर चुका है, वह एक स्वतंत्र हृदय से जीता है।

“कुशल लोग कहते हैं कि यह पवित्र धर्म है”: “कुशल लोग,” ..., वे कुशल लोग कहते हैं: “यह धर्म है, यह अधर्मियों का धर्म नहीं है, यह बुद्धिमानों का धर्म है, यह मूर्खों का धर्म नहीं है, यह गुणी पुरुषों का धर्म है, यह अधर्मी पुरुषों का धर्म नहीं है।” वे ऐसा कहते हैं, ऐसा बोलते हैं, ऐसा बताते हैं, ऐसा समझाते हैं, ऐसा कहते हैं।

“उसके लिए संसार में कहीं भी वृद्धि (उछाल, विकास) नहीं होती”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, उन लोगों के लिए जिन्होंने कष्टों को समाप्त कर दिया है। “उछाल,” सात प्रकार के उफान हैं: लोभ, आक्रमण, मोह, आलस्य, दृष्टि, अपवित्रता, कर्म में वृद्धि होती है। उन लोगों के लिए, ये वृद्धि न तो होती है, न ही अस्तित्व में होती है, न ही ज्ञात होती है, और न ही खोजी गई है; विच्छेदित, विखंडित, शांत, अवरुद्ध, उत्पन्न होने में असमर्थ, ज्ञान की अग्नि से झुलसी हुई। “चाहे कहीं भी,” चाहे कहीं भी हो, भीतर या बाहर या (दोनों) भीतर और बाहर। “संसार में,” दुख के संसार में, मनुष्य के संसार में, स्वर्ग के संसार में, समुच्चय के संसार में, लोकों के संसार में, स्थानों के संसार में।

19 · उसके लिए जो भी धर्म निर्धारित हैं, जो मूल्यवान और अशुद्ध हैं, जो स्वयं में लाभ देखता है, वह एक आश्रित है जो मौन को भंग करता है।

“उसके लिए जो भी धर्म निश्चित हैं, जिनका महत्व है”: “स्थिर (अटल) दृष्टिकोण,” दो प्रकार के स्थिर दृष्टिकोण हैं: .... “सक्रिय,” सक्रिय, आडंबरपूर्ण और सहवास करने वाले, सक्रिय हैं। इसके अतिरिक्त, अनित्यता, कर्म, और जन्म-संबंधी धर्म, जैसे कि क्षीणता, अपव्यय, और अन्य धर्म, भी सक्रिय हैं। “जो कुछ भी उसके लिए है” वह बुराई देखने वालों के लिए है। “धर्म” को बासठ बुरे दृष्टिकोण कहा जाता है।

“मूल्यवान होना (और) अशुद्ध होना”: “मूल्यवान होना,” महत्व के दो प्रकार हैं: … उसके लिए, प्यास का महत्व समाप्त नहीं हुआ है, देखने का महत्व समाप्त नहीं हुआ है, प्यास के महत्व की अवस्था समाप्त नहीं हुई है, देखने के महत्व की अवस्था समाप्त नहीं हुई है, वह प्रेम या देखने की प्यास को आगे रखता है और चलता है, प्यास एक झंडे की तरह है, प्यास एक स्तंभ की तरह है, प्यास बढ़ती है, झंडे की तरह देखी जाती है, मीनार की तरह देखी जाती है, वृद्धि की तरह देखी जाती है, प्रेम या देखने की इच्छा का अनुसरण करते हुए। “अस्तित्व,” होना, जाना जाना, पाना, खोजा जाना। “अशुद्ध,” अशुद्ध, अनुचित, अपवित्र, प्रदूषित, दूषित।

“जो अपने आप में लाभ देखता है”: “स्वयं” का अर्थ है स्वयं। उसे बुरी दृष्टि वाला कहा जाता है, और वह अपनी दृष्टि से दो लाभ देखता है: जीवन में लाभ और परलोक में लाभ। इस दृष्टि से जीवन में क्या लाभ है? गुरु की जो दृष्टि होती है, शिष्यों की भी वही दृष्टि होती है। गुरु की उस दृष्टि के कारण शिष्य आदर, प्रशंसा, श्रद्धा और सम्मान करते हैं, जिसके कारण उन्हें वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की आवश्यक वस्तुएँ और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ प्राप्त होती हैं; यह देखने का तात्कालिक लाभ है। इस दृष्टि से परलोक में क्या लाभ है? “यह दर्शन ही नाग (अग्निलोक), स्वर्ण-पंख वाले पक्षी, यक्ष, असुर, गंधर्व, राजा, इंदा, ब्रह्मा या स्वर्ग की अवस्था प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। यह दर्शन शुद्ध, पवित्र और सर्वस्व शुद्ध है; अनासक्ति, मुक्ति, सभी से विरक्ति, उन्हें शुद्ध होते देखना, स्वयं शुद्ध होना; अनासक्त होना, मुक्त होना, मुक्त होना; यह देखना कि मैं शुद्ध हो जाऊँगा, स्वयं शुद्ध हो जाऊँगा; सभी से विरक्ति दूर करना, मुक्त होना और अनासक्त होना।” भविष्य के फल की अपेक्षा के लिए, यह दर्शन का परलोक लाभ है। वह अपने इस दर्शन के दो लाभों को देखता है, निहारता है, ध्यान लगाता है, चिंतन करता है और उनका अवलोकन करता है।

“वह आश्रित है जो शांति को झकझोर देता है”: शांति तीन प्रकार की होती है: परम शांति, क्षणिक शांति और सांसारिक शांति। परम शांति क्या है? परम शांति को निर्वाण कहा जाता है, जहाँ सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं, सभी आश्रित कर्म समाप्त हो जाते हैं, व्यथा, लोभ और अंत का अंत हो जाता है, और निर्वाण ही परम शांति है। क्षणिक शांति क्या है? जो प्रथम ध्यान में प्रवेश करते हैं, उनकी दृष्टि शांत हो जाती है; जो द्वितीय ध्यान में प्रवेश करते हैं, उनकी खोज शांत हो जाती है; जो तृतीय ध्यान में प्रवेश करते हैं, उनका आनंद शांत हो जाता है; जो चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करते हैं, उनका सुख (और दुख) शांत हो जाता है; जो असीम शून्य (पहला/प्रथम अमूर्त) में प्रवेश करते हैं, उनकी कामवासना, विचार और सभी प्रकार की इच्छाएँ शांत हो जाती हैं; जो चेतना की असीमता (छठा) में प्रवेश करते हैं, उनके लिए असीम शून्य शांत हो जाता है। जो लोग शून्यता (सातवें) में प्रवेश करते हैं, उनके लिए कहा जाता है कि ज्ञान की कोई सीमा नहीं रहती और वह मौन हो जाता है; जो लोग अकल्पनीय स्थान (आठवें, न तो बोध और न ही अबोध) में प्रवेश करते हैं और प्रतीक्षा करते हैं, उनके लिए शून्यता मौन हो जाती है, यही मौन का अंश है। सांसारिक मौन क्या है? बासठ बुरे दृष्टिकोण, दृष्टि की स्थिरता को सांसारिक स्थिरता कहा जाता है, और इस अर्थ में यह सांसारिक स्थिरता है: इसका अर्थ "मौन" है। "वह स्थिरता को हिलाने वाला आश्रित है": वह स्थिरता को हिला रहा है, तीव्र गति से हिलाने वाली स्थिरता, गतिशील स्थिरता, अस्थिर स्थिरता, प्रभाव डालने वाली स्थिरता, निर्मित स्थिरता, स्थिर दृष्टिकोण। मौन क्षणिक, सक्रिय और सशर्त है; यह आश्रित, अटका हुआ, आसक्त, फंसा हुआ, पीड़ित और मन-उन्मुख है।

20 · देखने (दृष्टिकोण) के प्रति आसक्ति पर काबू पाना वास्तव में आसान नहीं है: धम्मों में चुने जाने के बाद इसे मजबूती से पकड़ लिया जाता है, इसलिए हर कोई धम्म को अस्वीकार करता है और उन आसक्तियों में धम्म को धारण करता है।

“दृष्टि (नज़रिए) के प्रति आसक्ति पर काबू पाना वाकई आसान नहीं है”: दृष्टि के प्रति आसक्ति, “संसार स्थिर है, यही वास्तविक है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।” दृष्टि (नज़रिए) के निवास स्थान से चिपके रहना; “संसार बहुत स्थिर है…”, …(उद्धृत)… “दृष्टि के प्रति आसक्ति पर काबू पाना वाकई आसान नहीं है”: दृष्टि के प्रति आसक्ति पर काबू पाना वाकई आसान नहीं है, इसे पार करना कठिन है, इससे बचना कठिन है, इससे ऊपर उठना कठिन है, इसे पार करना कठिन है, और इस पर विजय पाना कठिन है।

“धर्मों में से चयन करने के बाद, उसे दृढ़ता से धारण किया जाता है”: “धर्म में,” बासठ बुरे विचारों में। “चयन के बाद,” निर्णय के बाद, न्याय के बाद, मापन के बाद, मूल्यांकन के बाद, निर्णय के बाद, पृथक्करण के बाद, स्पष्टीकरण के बाद। “ग्रहण किया जाना,” सीमित ग्रहण, आंशिक ग्रहण, सर्वोच्च ग्रहण, निश्चित मात्रा का ग्रहण, संचयी ग्रहण: यह सत्य है, सच्चाई है, तथ्य है, शुद्धता है, और उलटा नहीं है, धारण किया जाना, जकड़ा जाना, आसक्ति, ग्रहण किया जाना, समझा जाना माना जाना।

इसलिए हर कोई, उन आसक्तियों में”: “इसलिए,” ... “हर कोई,” .... “उन आसक्तियों में,” देखने (दृष्टिकोण) की उन आसक्तियों में।

“धम्म का त्याग और धारण”: “त्याग,” वह दो कारणों से करता है: या तो दूसरों द्वारा हस्तक्षेप के कारण, या जब वह स्वयं तक न पहुँच पाए तब। दूसरों द्वारा हस्तक्षेप के कारण कैसे त्याग किया जा सकता है? निर्णय: वह गुरु सर्वज्ञानी नहीं है, धम्म को अच्छा नहीं कहा गया है, (उसके) समूह अच्छे कर्म करने वाले नहीं हैं, देखना अच्छा नहीं है, मार्ग अच्छे लोगों द्वारा स्थापित नहीं किया गया है, मार्ग अनासक्त नहीं है, यहाँ कोई पवित्रता, शुद्धि या सर्वगुणितता नहीं है; न ही वह मुक्त, न ही पूर्णतः मुक्त है; यह निम्न, तुच्छ, नीच, मामूली, तुच्छ आशय वाला, महत्वहीन है; और यह “दूसरों द्वारा बाधित” है। इस प्रकार, बाधित होने पर, वह गुरु, धम्म के वर्णन, समूह और सभा का त्याग करता है, मार्ग का त्याग करता है, मार्ग का त्याग करता है, ताकि यह “दूसरों द्वारा बाधित” हो। जब वह स्वयं तक न पहुँच पाए तब कैसे त्याग किया जा सकता है? वह तब अस्वीकार करता है जब उपदेश का पालन नहीं होता, वह तब अस्वीकार करता है जब निषेध का पालन नहीं होता, और जब उपदेश और निषेध दोनों का पालन नहीं होता, तब भी वह इनकार करता है, इसलिए वह तब इनकार करता है जब उसका पालन नहीं होता। “और पकड़ बनाए रखते हुए,” वह गुरु को पकड़ता है, कथा को पकड़ता है, समूह को पकड़ता है, दृश्य को पकड़ता है, मार्ग को पकड़ता है, पथ को पकड़ता है, वह पकड़ बनाए रखता है, दृढ़ रहता है।

21 · जो लोग शुद्ध हो चुके हैं, उनके लिए संसार में ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ हर तरह के विचार हों। शुद्ध होने के बाद जब व्यक्ति छल और अहंकार को त्याग देता है, तो वह किसमें पड़ सकता है?

“जो लोग शुद्ध हो चुके हैं, उनके लिए संसार में ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ अस्तित्व के सभी प्रकार के (गलत) विचार हों”: “शुद्धिकरण,” शुद्धिकरण को ज्ञान कहा जाता है, जो कि ज्ञान है...(उद्धृत) शुद्धिकरण को ज्ञान क्यों कहा जाता है? उस ज्ञान से शरीर के बुरे कर्म दूर हो जाते हैं, शुद्ध हो जाते हैं, पूरी तरह से शुद्ध हो जाते हैं और धुल जाते हैं; वाणी के बुरे कर्म...; द्वेषपूर्ण कर्म..., लोभ...; क्रोध, अज्ञान, ...(उद्धृत)...; सभी अशुद्धियाँ, सभी बुरे कर्म, सभी परेशानियाँ, सभी झुलसा देने वाली गर्मी, सभी गर्मी से होने वाली परेशानियाँ, सभी अस्वास्थ्यकर कर्म दूर हो जाते हैं, धुल जाते हैं, पूरी तरह से धुल जाते हैं और धोने से अलग हो जाते हैं, इसलिए शुद्धिकरण को ज्ञान कहा जाता है।

या फिर, बुरे विचार सही विचारों से दूर हो जाते हैं; बुरे शब्द सही शब्दों से धुल जाते हैं; बुरे कर्म सही कर्मों से धुल जाते हैं; बुरी नियति सही नियति से धुल जाती है; बुरी आत्मा सही प्रयास से धुल जाती है; बुरे विचार सही विचारों से धुल जाते हैं; बुरे कर्म सही एकाग्रता से धुल जाते हैं; बुरी बुद्धि सही बुद्धि से धुल जाती है; बुरी मुक्ति सही मुक्ति से धुल जाती है; पूरी तरह से शुद्ध होकर धुल जाती है।

या फिर, समस्त प्रदूषण, समस्त बुरे कर्म, समस्त कष्ट, समस्त झुलसी हुई गर्मी, समस्त ऊष्मा जनित कष्ट, समस्त अपवित्र कर्म आठ पवित्र मार्गों द्वारा शुद्ध होकर, पूर्णतः शुद्ध होकर और अलग होकर दूर हो जाते हैं, और अरहंत इन शुद्ध किए जा सकने वाले धर्मों को धारण करते हैं, पूर्णतः धारण करते हैं, उनमें प्रवेश करते हैं, पूर्णतः प्रवेश करते हैं, पूर्णतः परिपूर्ण और पूर्णतः संतुष्ट होते हैं। अतः, अरहंत एक शुद्ध व्यक्ति हैं। वे ही हैं जो लोभ, बुराई, प्रदूषण और ऊष्मा (चिड़चिड़ाहट) को दूर करते हैं। “चाहे कहीं भी हो,” चाहे कहीं भी हो, कहीं भी, जहाँ कहीं भी, अंदर या बाहर या (दोनों) अंदर और बाहर। “संसार में,” दुखमय संसार में... (विलुप्त)।

दो प्रकार के स्थिर मत होते हैं: इच्छा के कारण स्थिर मत और देखने के स्थिर मत... (उद्धृत)। "सभी प्रकार के अस्तित्व में," सभी प्रकार के कर्मों में, पुनः प्राप्ति की इच्छा; प्राप्ति की इच्छा में, अस्तित्व का रूप; अस्तित्व के रूप में, पुनः निराकार; निराकार अस्तित्व के कर्म में, बार-बार दोहराना; बार-बार होने वाली रुचि में, पुनर्जन्म; पुनर्जन्म में, व्यक्तिगत जन्म। जो शुद्ध हो चुके हैं, वे संसार में कहीं भी हों, वास्तव में उनके लिए कोई मत नहीं होते, और सभी प्रकार के स्थिर मत भी नहीं होते: जो शुद्ध हो चुके हैं, वे संसार में कहीं भी हों, सभी प्रकार की वस्तुओं का निर्माण, स्थिर, कृत्रिम, मतों के साथ सहवास करना, वह नहीं है, अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, खोजा नहीं गया है, काट दिया गया है, अलग कर दिया गया है, शांत कर दिया गया है, रोक दिया गया है, उठने में असमर्थ है, ज्ञान की अग्नि से जल गया है।

"जो व्यक्ति सफाई करता है, वह छल और अहंकार का त्याग करता है": छल को छल कहा जाता है। यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति शरीर से बुरे कर्म करने के बाद; वाणी से बुरे कर्म करने के बाद; इरादे से बुरे कर्म करने के बाद, बुराई को छिपाने की इच्छा उत्पन्न करता है। वह चाहता है: "वह मुझे (मेरे कर्मों आदि को) न जाने!" वह मुझे जानना नहीं चाहता!" शारीरिक रूप से कड़ी मेहनत करते हुए कहता है, "वह मुझे न जाने!" [AN.6.45] छल, सीमा पार (उल्लंघन), छिपाना, अस्पष्ट करना, रहस्य रखना, छुपाना, छुपाना (हर जगह रहस्य रखना), ढकना, पूरी तरह से ढकना, अप्रकट कार्य और बुरे कर्मों को छुपाना छल कहलाता है।

"अभिमान," एक प्रकार का अभिमान: यही हृदय की पराकाष्ठा है; दो प्रकार...: आत्म-प्रशंसा अभिमान है, दूसरों के प्रति तिरस्कार अभिमान है; तीन: "मैं विजेता हूँ"..., "मैं समान हूँ," "मैं हीन हूँ"; चार: लाभ प्राप्त करना, प्रसिद्धि, प्रशंसा और सुख पाना; पाँच: "मुझे मनचाहा रूप प्राप्त हुआ," "मुझे मनचाही ध्वनि प्राप्त हुई," गंध..., स्वाद..., स्पर्श...; छह प्रकार: आँखों से..., कानों से..., नाक से, जीभ से, शरीर से...मन की संतुष्टि अभिमानी बनाती है; सात: अभिमान, अहंकार, अभिमान और अहंकार, विनम्रता, वृद्धि का अभिमान, आत्म-सत्य का अभिमान, बुराई का अभिमान; आठ: प्राप्ति अभिमानी बनाती है, प्राप्ति न होना..., प्रसिद्धि, प्रसिद्धि न होना, प्रशंसा, निंदा, सुख और दुख; नौ: विजेता सोचता है: "मैं विजेता हूँ"..., विजेता सोचता है: "मैं समान हूँ," विजेता सोचता है: "मैं हीन हूँ"...; और समान व्यक्ति सोचता है: "मैं विजेता हूँ," समान व्यक्ति सोचता है: "मैं एक समान हूँ," समान व्यक्ति सोचता है: "मैं हीन हूँ," हीन व्यक्ति सोचता है: "मैं विजेता हूँ," हीन व्यक्ति सोचता है: "मैं एक समान हूँ," हीन व्यक्ति सोचता है: "मैं हीन हूँ;" दस प्रकार...: यहाँ, किसी विशेष जन्म, या उपनाम, या अच्छे परिवार, या कमल के समान सौंदर्य, या संपत्ति, या शोध (अधिग्रहण), या व्यवसाय, या शिल्प कौशल, या अध्ययन, या सुनी हुई बातों से, या तर्क-वितर्क से, या किसी ऐसी चीज़ से जो किसी को अहंकारी बना दे; जो कोई भी इस प्रकार, इस प्रकार के हृदय अहंकार के साथ, स्थिति को समझते हुए, उच्च प्रशंसा, उच्च अहंकार को ध्वज की तरह, हृदय के घमंड की तरह मानता है, वह अहंकारी कहलाता है। "शुद्ध व्यक्ति छल और अहंकार का त्याग करता है": शुद्ध व्यक्ति द्वारा त्यागने के बाद, त्यागने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त करने के बाद, और उसे अस्तित्वहीन कर देने के बाद।

"वह अनासक्त व्यक्ति है, वह किसमें फँसेगा?": "आसक्ति," आसक्ति दो प्रकार की होती है... उसके लिए प्रेम से आसक्ति टूट गई है; दृष्टि (दर्शन) से आसक्ति टूट गई है, दृष्टि की अवस्था से आसक्ति टूट गई है; अनासक्त लोग किस लोभ, किस घृणा, किस भ्रम, किस अहंकार, किस धारणा, किस संदेह, किस प्रकार की संभावित परेशानी में फँसेंगे और "संक्रमित," या "घृणित," या "अज्ञानी," या "बंधे हुए," या "हमलावर," या "बिखरे हुए अराजकता में आने वाले," या "असंतोषजनक में आने वाले," या "मजबूत में आने वाले" बन जाएँगे? जिस अवस्था में कर्मों का नाश हो जाता है और वे कर्म एक रहस्यमय स्थान पर गिरकर "नरक", "पशु जगत", "भूखे प्रेतों का लोक", "मनुष्य", "स्वर्ग", "रूपित", "रूपहीन", "विचारशील", "विचारहीन", या "न विचारशील" बन जाते हैं, वह कैसी अवस्था होगी? उसका न कोई कारण है, न कोई पूर्वनियति है, और न ही कोई ऐसे कारक हैं जो उसमें समाहित होंगे।

22 · वास्तव में, इसमें शामिल व्यक्ति विभिन्न धर्मों पर विवाद में पड़ गया है, (पर) जो आसक्ति रहित है, उससे भला कौन विवाद कर सकता है? जो लिया और त्यागा जाता है, वह उसके लिए अस्तित्वहीन है, और उसने इस जीवन में सब कुछ (विचारों) को मिटा दिया है।

“सम्मिलित लोग वास्तव में सभी धर्मों में विवाद तक पहुँच चुके हैं”: “सम्मिलित होना,” दो प्रकार का सम्मिलन है: लालसा और दृष्टि... उनके लिए, प्यास का सम्मिलन समाप्त नहीं हुआ है; दृष्टि की सहभागिता अविभाजित नहीं हुई है, अटूट अवस्था में, दृष्टि की सहभागिता की अवस्था धम्म में विवादों तक पहुँच गई है, जिससे वह "संक्रमित," या "घृणित," या "मूर्ख," या "बंधा हुआ," या "धारणशील," या "अव्यवस्था में आने वाला," या "अवांछित में आने वाला," या "धैर्य में आने वाला" बन गया है, जो कि अविभाजित अवस्था है, सृष्टि की अनसुलझी अवस्था है, विवाद के हित में, वह "नरक में गिरने वाले लोग," या "पशु जगत में गिरने वाले," या "भूखे प्रेत जगत में गिरने वाले," या "मनुष्य," या "स्वर्ग," या "निर्मित," या "निराकार," या "चिंतनशील," या "अचिंतनशील व्यक्ति," या "न चिंतनशील और न चिंतनशील व्यक्ति" बन जाता है, वह आता है, धारण करता है, पकड़ता है और बना रहता है।

“अनासक्त व्यक्ति के बारे में क्या और कैसे कहा जा सकता है?”: “आसक्ति,” आसक्ति दो प्रकार की होती है: ... उसके लिए प्यास की आसक्ति समाप्त हो गई है...; किस लालच के साथ..., परेशानी की अंतर्निहित प्रवृत्ति के संदर्भ में, क्या आप कह सकते हैं कि अनासक्त व्यक्ति “संक्रमित,” या “घृणित,” या “अज्ञानी,” या “बंधा हुआ,” या “हमलावर,” या “अव्यवस्था की ओर बढ़ रहा,” या “असंतोष की ओर बढ़ रहा,” या “दृढ़ता की ओर बढ़ रहा” है? उस अवस्था के बारे में क्या कहा जा सकता है जिसमें कर्म समाप्त हो गए हैं... उसके पास कोई कारण नहीं है, कोई भाग्य नहीं है, ऐसे कोई कारक नहीं हैं जिनके बारे में बात की जा सके, चर्चा की जा सके, व्याख्या की जा सके और कहा जा सके।

“उसके लिए लेना और त्यागना अस्तित्वहीन है”: “लेना” “मैं” के लिए है, यह उसके पास नहीं है; “त्यागना” विनाश के लिए है, यह उसके पास नहीं है; “लेना” आसक्ति है, ...और “त्यागना” वह है जिसे छोड़ देना चाहिए...। जो कुछ भी थामे रहना चाहिए, कुछ ऐसा भी है जिसे छोड़ देना चाहिए; जो कुछ भी छोड़ देना चाहिए, कुछ ऐसा भी है जिसे थामे रहना चाहिए। लेना और त्यागना पार हो चुका है, और अरहंत चेतना और ध्यान से परे जा चुका है। वह एक ऐसी अवस्था में उतर चुका है, जिसने अभ्यास किया है, जिसने यात्रा पूरी की है, जिसने पुनर्जन्म के बिना जीवन-मृत्यु के चक्र, उस दिशा को प्राप्त कर लिया है।

“इस जीवन में वह सभी विचारों को मिटा देता है”: उसके लिए, बासठ बुरे विचार काट दिए गए हैं, अलग कर दिए गए हैं, शांत कर दिए गए हैं, रोक दिए गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, ज्ञान की अग्नि से जला दिए गए हैं, और सभी बुरे विचारों को, उसने मिटा दिया है, झटक दिया है, पूरी तरह से झटक दिया है, नीचे गिरा दिया है, त्याग दिया है, भगा दिया है, उनका अंत कर दिया है, उन्हें इस जीवन में अस्तित्वहीन बना दिया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.4

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

4. शुद्धता

23 · मैं पवित्रता देखता हूँ: सर्वोच्च, रोगमुक्त, एक मनुष्य जो देखकर पूर्णतः शुद्ध हो जाता है, जब वह जानता है कि “यह सर्वोच्च है,” जब वह इस मार्ग को जानता है, “वही पवित्र है जो अवलोकन करता है,” वह ज्ञान की ओर लौटता है।

“मैं पवित्रता देखता हूँ: सर्वोच्च, रोगमुक्त”: “मैं पवित्रता देखता हूँ,” मैं पवित्रता देखता हूँ, मैं पवित्रता को निहारता हूँ, मैं पवित्रता का अवलोकन करता हूँ, मैं पवित्रता का निरीक्षण करता हूँ। “सर्वोच्च, रोगमुक्त,” सर्वोच्च, रोगमुक्त, वह जो अभयारण्य तक पहुँचता है, वह जो शरण तक पहुँचता है, वह

जो आश्रय तक पहुँचता है, वह जो भयमुक्त हो जाता है, वह जो निर्जीव अवस्था तक पहुँचता है, वह जो निर्गमन तक पहुँचता है, वह जो निर्वाण तक पहुँचता है।

"दर्शन द्वारा पूर्ण पवित्रता": आँखों से रूप को देखना व्यक्ति की पवित्रता, शुद्धिकरण और पूर्ण पवित्रता को देखना है; वैराग्य, मुक्ति और अनासक्ति, और व्यक्ति शुद्ध, पवित्र और पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है; मुक्त, विरक्त, मुक्त हो जाता है।

"जब वह इस मार्ग को जान लेता है, तब वह जान जाता है कि 'यही सर्वोच्च मार्ग है'": जब यह मार्ग ज्ञात, निश्चित और भलीभांति समझ लिया जाता है, तब "यही सर्वोच्च, प्रथम, श्रेष्ठ, विजयी, शीर्ष, सर्वोच्च है।" जब वह जान लेता है, समझ लेता है, परख लेता है, निर्णय लेता है, अलग करता है और स्पष्ट कर लेता है।

"जो शुद्धता से अवलोकन करता है, वही ज्ञान की ओर लौटता है": जो कोई शुद्धता को देखता है, वही शुद्धता का अवलोकन करता है। वह ज्ञान की ओर लौटता है। जो व्यक्ति दृष्टि से रूप को देखता है, वह ज्ञान की ओर लौटता है; मार्ग की ओर लौटता है, निकास की ओर लौटता है।

24 · यदि कोई देखकर शुद्ध हो जाता है, या यदि वह ज्ञान के द्वारा दुख का त्याग कर देता है, तो ऐसे लोग भी हैं जो शुद्ध होने के लिए अन्य (चीजों) पर निर्भर रहते हैं; यह कहा जाना चाहिए कि वह वास्तव में ऐसा ही वक्ता है।

"यदि कोई देखने से शुद्ध है": अपनी आँखों से रूप देखना... (छोड़ा गया)।

"या यदि वह ज्ञान से दुख का त्याग कर सके": यदि वह अपनी आँखों से देख सके, और यदि कोई जीवन और दुख, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु, शोक, दुःख, निराशा और पीड़ा का त्याग कर दे।

"कुछ लोग दूसरों पर निर्भर होकर शुद्ध होते हैं": अन्य चीजों, अशुद्ध मार्गों, बुरे मार्गों और अस्तित्वहीनता के साथ-साथ, सचेतनता, सभी उचित कर्मों, दिव्य आधारों, जड़ों, शक्तियों, ज्ञान और पवित्र मार्ग की आठ शाखाओं के अतिरिक्त, मनुष्य शुद्ध होता है, पवित्र होता है, सर्वत्र शुद्ध होता है; मुक्त होता है, निर्धन होता है और सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। "निर्भर" वे लोग हैं जिनमें लोभ, घृणा, अज्ञान, आलस्य, प्यास, (बुरे) द्रष्टा, प्रदूषण फैलाने वाले और आसक्ति होती है।

"यह कहना उचित होगा कि वह वास्तव में ऐसा वक्ता है": वह व्यक्ति जो (इन विचारों को) देखता है और बोलता है: इस प्रकार, यह व्यक्ति (गलत दृष्टिकोण वाला) है, विपरीत दृष्टिकोण वाला है। "यह ऐसा वक्ता है," ऐसा वक्ता, कथावाचक, कथनकर्ता, व्याख्याकार, वक्ता है: "संसार स्थिर है, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।" ऐसा वक्ता... "संसार बहुत स्थिर है... (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)...।" ऐसा कथनकर्ता, कथावाचक, वक्ता, व्याख्याकार और वक्ता।

25 ब्राह्मण यह नहीं कहते कि पवित्रता दूसरों (वस्तुओं या विचारों) से आती है, न ही जो वे देखते, सुनते, या उपदेश और निषेधों से, या महसूस करते हैं, पुण्य और पाप से दूषित न होकर, जो कुछ ग्रहण किया है उसे त्यागकर, यहाँ कुछ भी न बनाकर।

"ब्राह्मण अपने देखने, सुनने, उपदेशों और निषेधों या धारणाओं में दूसरों से शुद्ध नहीं होते": "नहीं" का अर्थ निषेध है। "ब्राह्मण," सात धर्मों को त्यागने की अवस्था है, यही ब्राह्मण है: ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)।

भगवान बुद्ध: [सं.3.6, 524] "सभी बुराइयों के नाश होने पर, निष्कलंक, सदाचारी अवस्था में खड़े होकर, पुनर्जन्म से परे जाकर, वे पूर्ण पुरुष बन जाते हैं। जो आश्रित नहीं हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जा सकता है।"

"ब्राह्मण यह नहीं कहते कि पवित्रता दूसरों से आती है," अन्य बातों के साथ..., ब्राह्मण न तो बोलते हैं, न कहते हैं, न बात करते हैं, न ही व्याख्या करते हैं, न ही कुछ कहते हैं।

“जो वे देखते, सुनते, उपदेश और निषेध, या बोध करते हैं।” कुछ समण और ब्राह्मण देखने को पवित्र मानते हैं। वे कुछ रूपों को देखना शुभ मानते हैं और कुछ रूपों को देखना अशुभ मानते हैं। वे किस प्रकार के दृश्य को शुभ मानते हैं? सुबह-सुबह वे शुभ रूप देखते हैं: गौरैया देखना, सुंदर और रंगीन मार्मेलो के पेड़ देखना, गर्भवती महिलाएं, पुरुष के कंधों पर बैठा लड़का, भरे हुए कलश, समण, घोड़े, घोड़ागाड़ी, बैल, सांड; वे मानते हैं कि ऐसी चीजों को देखना शुभ है। वे किस प्रकार के दृश्य को अशुभ मानते हैं? भूसे का ढेर देखना, मक्खन का कलश, खाली कलश, नर्तक, नग्न नकली समण, खच्चर, गधे की गाड़ी, एक लगाम वाली सवारी, एक आंख वाला व्यक्ति, हाथ की विकृति, लंगड़ा व्यक्ति, आधा शरीर, बुजुर्ग और बीमार; उनका मानना है कि ऐसी चीजें देखना अशुभ होता है। ये वे समन और ब्राह्मण हैं जो अपने सामने आने वाली हर चीज को पवित्र मानते हैं।

कुछ समण और ब्राह्मण जो सुनते हैं उसे पवित्र मानते हैं। उनका मानना है कि कुछ ध्वनियाँ सुनना शुभ होता है और कुछ अशुभ। वे किन ध्वनियों को शुभ मानते हैं? सुबह-सुबह उन्होंने एक शुभ ध्वनि सुनी: “समृद्धि,” “अनमोल,” “भरपूर,” “भव्य,” “चिंतामुक्त,” “सद्भावना,” “शुभ नक्षत्र,” “सौभाग्य,” “भाग्यशाली,” या “भाग्य में वृद्धि”; उनका मानना है कि ऐसी ध्वनियाँ सुनना शुभ है। वे किन ध्वनियों को अशुभ मानते हैं? “एक आँख,” “हाथ की विकृति,” “लंगड़ा,” “आधा शरीर,” “वृद्ध,” “रोगी,” “बीमार,” “मृत,” “कटा हुआ,” “टूटा हुआ,” “जला हुआ,” “गायब,” या “कुछ नहीं”; उनका मानना है कि ऐसी ध्वनियाँ सुनना अशुभ है।

कुछ समण और ब्राह्मण उपदेशों को पवित्रता मानते हैं। उनका मानना है कि उपदेश की मात्रा, आत्मसंयम की मात्रा, आत्म-नियंत्रण की मात्रा और अहिंसा की मात्रा ही शुद्ध और पवित्र है...। उग्गाहमान समणमुंडिक ने कहा: हे स्वामी! मैंने सिद्ध किया है कि चार गुणों से युक्त पुरुष ही सत्त्ववान, परम सत्त्ववान और सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने वाले होते हैं, और समण (का अस्तित्व ही नहीं) जो इन गुणों को पार नहीं कर सकता। वे चार गुण कौन से हैं? हे स्वामी! यहाँ, वह बुरे कर्म नहीं करता, बुरे शब्द नहीं बोलता, बुरे इरादे नहीं रखता, बुरा जीवन नहीं जीता, हे स्वामी! मैंने सिद्ध किया है कि इन चार गुणों से युक्त पुरुष ही सत्त्ववान, परम सत्त्ववान, सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त और अतुलनीय समण है। [एमएन.78] इसी प्रकार, कुछ समण और ब्राह्मण उपदेशों को पवित्र मानते हैं।

कुछ समण और ब्राह्मण निषेध को शुद्ध मानते हैं। वे हाथी, घोड़े, गाय, कुत्ते, कौवे, विष्णु, देवताओं की शक्ति, ऋषि, मोती ऋषि, अग्नि, अजगर, स्वर्ण-पंख वाले पक्षी, यक्ष, असुर, गंधर्व, महान राजा, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, ब्रह्मा, देवों और पद की रक्षा (निषेध) करते हैं।

कुछ समण और ब्राह्मण वही पवित्र मानते हैं जो उन्हें शुद्ध लगता है। वे सुबह-सुबह धरती को स्पर्श करते हैं, घास, गोबर, कछुआ, कुदाल, तिलदानी को स्पर्श करते हैं, शुभ तिल चबाते हैं, शुभ तेल चबाते हैं, शुभ लकड़ी चबाते हैं, शुभ मिट्टी से स्नान करते हैं, शुभ वस्त्र पहनते हैं और शुभ सिर का दुपट्टा ओढ़ते हैं।

“जो कुछ तुम देखते हो, सुनते हो, जो कुछ तुम समझते हो, या जो कुछ तुम महसूस करते हो,” ब्राह्मण यह नहीं कहता कि पवित्रता उसके देखने में है; वह यह नहीं कहता कि पवित्रता उसके सुनने में है; वह न तो नियमों से पवित्र है; न ही निषेधों से; और न ही वह अपने अनुभवों से पवित्र है। पवित्रता का अर्थ है पवित्रता; न बताना, न बात करना, न समझाना, न बोलना।

“पुण्य और पाप में दूषित न होना”: पुण्य तीनों लोकों के सभी अच्छे कर्मों को कहा जाता है, और अपराधन (बुराई) सभी अस्वास्थ्यकर कर्मों को कहा जाता है। क्योंकि अच्छे कर्म, अपराधन और अचल कर्म काट दिए गए हैं, जड़ काट दी गई है...(विलुप्त, पिछले खंड देखें), इस स्थिति में, यह पुण्य और पाप में दूषित नहीं है, न ही अधिक दूषित है, न ही गहराई से दूषित है, न ही अब दूषित है, न ही अब गहराई से दूषित है। वह बंधन से मुक्त हो गया है, वह निर्बल हृदय से निवास करता है।

“जो कुछ तुम लेते हो उसे त्याग दो, और यहाँ कुछ भी न बनाओ”: “जो कुछ तुम लेते हो उसे त्याग दो” का अर्थ है अपनी दृष्टि का त्याग करना; “जो कुछ तुम लेते हो उसे त्याग दो” का अर्थ है दृढ़ता का त्याग करना; “जो कुछ तुम लेते हो उसे त्याग दो” का अर्थ है प्रेम और दृष्टि की लालसा के कारण पकड़े रहना; जो कुछ भी थामे हुए हो, चिपके हुए हो, ले रहे हो और जिसके प्रति वफादार हो, वह सब उसके द्वारा त्याग दिया जाता है, थूक दिया जाता है, छोड़ दिया जाता है, खारिज कर दिया जाता है और समाप्त कर दिया जाता है। “जो यहाँ कुछ भी नहीं बनाते,” वह जो पुण्य नहीं कमा रहा है, वह जो जन्म लेने के लिए नहीं बना है, वह जो उत्पन्न होने के लिए नहीं बना है, वह जो उत्पन्न नहीं हो रहा है।

26 · पिछले अनुयायी को काटकर और अगले अनुयायी बनकर, विचलित अनुयायी संबंध न तोड़ने के लिए, वे (विचार, गुरु आदि) उठाते हैं और छोड़ देते हैं, जैसे कोई बंदर शाखा को पकड़ता है और छोड़ देता है।

“पूर्व को त्यागकर बाद के अनुयायी बनना”: पूर्व गुरु के बाद, अन्य गुरुओं के अनुयायी बनना; ...पूर्व विधियों (धम्मों) की कथाएँ...; ...जनसमूह...; ...विचार...; ...मार्ग...। वे जो पूर्णतः आश्रित हैं, अनुयायी, प्रवेशकर्ता, बंधे हुए और वे जो अपना मन (इन चीजों की ओर) मोड़ते हैं।

“विचलित अनुयायी बंधन को पार नहीं कर पाते”: विचलन को लालसा कहते हैं, जो लोभ है... “विचलित अनुयायी,” विचलित अनुयायी, परेशान अनुयायी, जो विचलन से पराजित हो जाता है, पराजित, पराजित, जिसका हृदय लोभ से ग्रस्त हो जाता है। “वे बंधन को पार नहीं कर पाते,” लोभ के बंधन को, घृणा के बंधन को, आलस्य के बंधन को, अपवित्र बंधन को, बुरे कर्मों के बंधन को, वे पार नहीं कर पाते, उससे ऊपर नहीं उठ पाते, उससे आगे नहीं बढ़ पाते, उसे पार नहीं कर पाते, उस पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते।

“वे उठाते हैं और छोड़ देते हैं”: वे एक गुरु को पकड़ते हैं, उसे छोड़ देते हैं और फिर दूसरे गुरुओं को पकड़ते हैं; ...धम्म का वर्णन...; भीड़, दृश्य, मार्ग..., वे पकड़ते हैं और छोड़ देते हैं, लेते हैं और छोड़ देते हैं।

“बंदर की तरह जो एक शाखा को पकड़ता है और उसे छोड़ देता है”: जैसे कोई बंदर जंगलों में घूमता है, एक शाखा को पकड़ता है, उस शाखा को छोड़ देता है और फिर दूसरी शाखा को पकड़ लेता है [SN.12.61]; उसी तरह, अधिकांश समण और ब्राह्मण बहुमत के बुरे विचारों को पकड़ते और छोड़ते हैं, लेते और छोड़ते हैं।

27 · जब कोई व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित कर लेता है, तो वह ऊँच-नीच का पालन करना चाहता है, जबकि ज्ञानी व्यक्ति धम्म ग्रहण करने के बाद ऊँच-नीच नहीं करता।

“जब कोई व्यक्ति स्वयं द्वारा संयमित हो जाता है”: “स्वयं को धारण करना” का अर्थ है स्वयं द्वारा धारण करना (आत्मनिर्भरता)। “निषेध,” ...; उसके द्वारा ग्रहण करने के बाद, धारण करने के बाद, ग्रहण करने के बाद, पकड़ लेने के बाद, आसक्ति के बाद। “मनुष्य,” चेतन प्राणी, मानव...।

“उनका अनुसरण करते हुए और ऊँच-नीच चलते हुए”: वे एक गुरु से दूसरे गुरु के पास गए; एक धर्म से दूसरे धर्म के पास गए; ... “मैं अटक जाना चाहता हूँ,” सोचना चाहता हूँ, द्वेषपूर्ण विचार करना चाहता हूँ, हानि के बारे में सोचना चाहता हूँ, अटक जाने, उलझ जाने, बंध जाने, आसक्त हो जाने, स्थिर हो जाने, बाधाओं के बारे में सोचना चाहता हूँ, जैसे दीवार पर रखी वस्तुएँ या दीवार में लगी कील, जिसका ऊपरी भाग अटक जाता है, उलझ जाता है, बंध जाता है, आसक्त हो जाता है, स्थिर हो जाता है, अवरुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार, सोचना चाहता हूँ, द्वेषपूर्ण विचार, सताया जाना, अटक जाना, उलझ जाना, बंध जाना, आसक्त हो जाना, अवरुद्ध हो जाना, बाधा के रूप में देखा जाना।

“ज्ञानी व्यक्ति द्वारा धम्म (यानी वेदों का धम्म) ग्रहण करने के बाद”: “ज्ञानी व्यक्ति” ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)। “वेदों में,” वेदों को ज्ञान, ज्ञान का मूल, ज्ञान की शक्ति, प्रबुद्धता, अन्वेषण, विपश्यना, चारों लोकों में सही दृष्टि कहा गया है। वेदों में परम (लक्ष्य) तक पहुँचने वालों के लिए, जो परम तक पहुँच चुके हैं, वे अंत तक पहुँच चुके हैं; जो अंत तक पहुँच चुके हैं, वे सीमा (परम) तक पहुँच चुके हैं; जो सीमा तक पहुँच चुके हैं, वे अंत तक पहुँच चुके हैं; जो अंत तक पहुँच चुके हैं, वे आश्रय तक पहुँच चुके हैं; जो आश्रय तक पहुँच चुके हैं, वे शरण तक पहुँच चुके हैं; जो शरण तक पहुँच चुके हैं, वे सुरक्षा तक पहुँच चुके हैं; जो सुरक्षा तक पहुँच चुके हैं, वे भयमुक्त हो चुके हैं; जो भयमुक्त हो चुके हैं, वे मृत्यु से मुक्त हो चुके हैं; जो मृत्यु से मुक्त हो चुके हैं, वे अमरता तक पहुँच चुके हैं; जो अमरता तक पहुँच चुके हैं, वे निर्वाण तक पहुँच चुके हैं; जो निर्वाण तक पहुँच चुके हैं, वे निर्वाण तक पहुँच चुके हैं। या फिर "वेदों तक पहुँचने वाला" वह है जो वेदों को जानता है, या सात धर्मों की ज्ञात अवस्था वह है जो वेदों को जानता है: देखना ज्ञात है, संदेह ज्ञात है, संयम ज्ञात है, लोभ ज्ञात है, घृणा ज्ञात है, अज्ञान ज्ञात है, अहंकार ज्ञात है, और इसके बुरे और अस्वस्थ तरीके ज्ञात हैं: दूषित, फिर से, भयभीत, पीड़ित, भविष्य में जीना और मरना होगा।

भगवान बुद्ध: [सं.3.6, 534] "सभी वेदों का चयन करो, यहाँ विद्यमान सभी समण और ब्राह्मणों से संबंधित वेदों का चयन करो, वह सभी भावों में लोभ से मुक्त है, और सभी वेदों को पार करने के बाद, वह वेदों को भलीभांति जानने वाला है।"

"ज्ञानी व्यक्ति द्वारा धम्म ग्रहण करने के बाद": धम्म को देखने के बाद एकात्मता: "सभी कर्म अनित्य हैं" धम्म को देखने के बाद एकात्मता के रूप में, "सभी कर्म दुखदायी हैं"..., "सभी धर्म अनात्म हैं"..., "सृष्टि अज्ञान पर निर्भर है"..., "चेतना सृष्टि पर आधारित है"..., नाम और रूप..., छह इंद्रिय आधार..., स्पर्श (संपर्क)..., अनुभूति..., (भावना...,) लालसा..., (जन्म...,), जन्म..., वृद्धावस्था और मृत्यु...; अज्ञान की मृत्यु से विनाश, नश्वर होने और नष्ट होने का संकल्प, ज्ञान और नाम से विनाश, नाम और रूप से और छह इंद्रिय आधारों में विनाश, छह इंद्रिय आधारों में स्पर्श से विनाश, स्पर्श का विनाश..., ...प्यास का विनाश..., ...प्यास और प्रेम से..., ...जन्म लेना और मर जाना...; ..."यह दुख है"..., यह दुखों का संग्रह है, यह दुखों का निवारण है, यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है; ये दोष हैं, ये दोषों का संग्रह है, ये दोषों का निवारण है, ये दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है; इन धर्मों को सिद्ध किया जाना चाहिए, इन धर्मों को जाना जाना चाहिए, इन धर्मों का व्यापक प्रचार किया जाना चाहिए, इन धर्मों का त्याग किया जाना चाहिए, इन धर्मों का अभ्यास किया जाना चाहिए, इन धर्मों की गवाही दी जानी चाहिए; छह स्पर्श बिंदुओं का संग्रह, विनाश, सुख, दुख और त्याग..., पाँच स्कंधों का संग्रह..., ...चार प्रमुख प्रजातियों का संग्रह; "धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का विनाश है"..., धर्म को देखने के बाद, मिलन के रूप में।

"ज्ञानी व्यक्ति ऊँच-नीच नहीं करता": वह एक गुरु से दूसरे गुरु के पास नहीं जाता, धर्म के वर्णन से धर्म के वर्णन की ओर नहीं भटकता... (अंशित) "ज्ञानी व्यक्ति," ज्ञानी व्यक्ति महान ज्ञानी, शीघ्र ज्ञानी, अधिक ज्ञानी, अंतर्दृष्टि वाला होता है; जैसे पृथ्वी को विशाल कहा जाता है, वैसे ही उसके पास पृथ्वी के समान विशाल और विस्तृत ज्ञान होता है।

28 · वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसने सभी धर्मों में श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है: जो कुछ भी देखा या सुना जा सकता है, उसे इस संसार में कौन वर्गीकृत कर सकता है, जिसने इस प्रकार देखा और खोला है?

"वही है जिसने सभी धर्मों में सेना छोड़ दी है: जो कुछ वह देखता, सुनता और समझता है": उस सेना को राक्षस सेना कहा जाता है, शारीरिक बुराई को शैतान सेना; वाणी की बुराई को शैतान सेना; इरादे की बुराई को शैतान सेना; घृणा...; अज्ञान...; क्रोध...; ...(छोड़ा गया); सभी बुरे कर्म शैतान सेना हैं।

यह बात भगवान बुद्ध ने कही: [संख्या 3.2] "इच्छा तुम्हारी पहली सेना है, दुःख दूसरी, भूख और प्यास तुम्हारी तीसरी, और प्यास (प्रेम) तुम्हारी चौथी। गहरी नींद तुम्हारी पाँचवीं, भय तुम्हारी छठी, संदेह तुम्हारी सातवीं, और हठ तुम्हारी आठवीं। वह व्यक्ति जिसकी प्रतिष्ठा अच्छी है, और वह प्रतिष्ठा जो उसने गलतियों से अर्जित की है, जो स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों को तुच्छ समझता है। हे शैतान! यह तुम्हारी सेना है, हे दुष्ट (काला) हमलावर, जिनके पास साहस नहीं है वे उसे परास्त नहीं कर सकते, और उन्हें विजय के बाद शांति मिलेगी।"

जब सभी दानव सेना और सभी शत्रुतापूर्ण अशुद्धियाँ चारों पवित्र मार्गों द्वारा पराजित, परास्त, नष्ट, विघटित और दूर कर दी जाती हैं, तब उसे सेना छोड़ने वाला कहा जाता है। वह वह है जो दृष्टि से सेना छोड़ देता है; वह जो श्रवण से सेना छोड़ देता है; वह जो इंद्रियों से सेना छोड़ देता है; वह जो ज्ञान से सेना छोड़ देता है।

"जो इस मार्ग से देखता है, जो खुल गया है": जो इस पवित्रता को देखता है, जो शुद्ध रूप से देखता है, जिसकी दृष्टि शुद्ध है; जो स्पष्ट रूप से देखता है, जो सर्व-शुद्धता से देखता है, या शुद्ध द्रष्टा, जो शुद्ध रूप से देखता है, स्वच्छ रूप से देखता है, स्पष्ट और शुद्ध रूप से देखता है। "खुला हुआ," भोग के आवरण हैं, दृष्टि के आवरण हैं, अपवित्रता के आवरण हैं, बुरे कर्मों के आवरण हैं, अज्ञान के आवरण हैं; वे आवरण खुल गए हैं, नष्ट हो गए हैं, खुल गए हैं, पूरी तरह से खुल गए हैं, कट गए हैं, अलग हो गए हैं, शांत हो गए हैं, समाप्त हो गए हैं, उत्पन्न नहीं हो सकते, ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं। "चलने वाला," चलने वाला, रहने वाला, कर्ता, निरंतर चलने वाला, रक्षक और जीवित रहने वाला।

"इस संसार में कौन उसका वर्गीकरण कर सकता है?": "वर्गीकरण," दो प्रकार के वर्गीकरण हैं: भोग का वर्गीकरण और दृष्टि का वर्गीकरण... उसके लिए भोग का वर्गीकरण समाप्त हो गया है, दृष्टि का वर्गीकरण समाप्त हो गया है... किस प्रकार के लोभ का वर्गीकरण किया जा सकता है, किस

प्रकार के क्रोध का वर्गीकरण किया जा सकता है...? वह अवस्था जिसमें कर्म समाप्त हो गए हैं...? उसका कोई कारण नहीं, कोई भाग्य नहीं... "संसार में," दुख के संसार में...

29 · वे विचारों का निर्माण नहीं करते या उन पर ध्यान नहीं देते, "यह शुद्ध है" नहीं कहते, आसक्ति के बंधन को छोड़कर, वे दुनिया में कहीं भी हों, इच्छाएँ नहीं रखते।

"वे निर्माण नहीं करते और ध्यान भी नहीं देते": "निर्माण," दो प्रकार के निर्माण होते हैं: .... उनके लिए, प्यास का निर्माण समाप्त हो गया है, ... वे निर्माण नहीं करते, न बनाते हैं, न ही उसे उत्पन्न होने देते हैं, न ही लालसा का निर्माण करते हैं और न ही दृष्टि का निर्माण करते हैं। वे निर्माण नहीं करते। "कोई ध्यान नहीं (कोई प्राथमिकता नहीं)," ध्यान दो प्रकार का होता है: .... उनके लिए, प्यास का ध्यान समाप्त हो गया है...।

"वे यह नहीं कहते कि 'यह सचमुच शुद्ध है'": यह सचमुच शुद्ध है, शुद्ध पुनर्जन्म, निष्क्रियता का दृष्टिकोण, निरंतर सिद्धांत, वे कहते नहीं, बताते नहीं, बात नहीं करते, समझाते नहीं, कुछ नहीं कहते।

"आसक्ति के बंधन से मुक्त होने के बाद": "बंधन" चार प्रकार के बंधन हैं: लोभ का बंधन, द्वेष का बंधन, निषेध का बंधन, और '(केवल) यही सत्य है' का बंधन [SN.45.175]। स्वयं के प्रति ललक लोभ का बंधन है, दूसरों के प्रति क्रोध और असंतोष द्वेषपूर्ण शरीर का बंधन है; "अपने नियमों या निषेधों को धारण करना" नियमों और निषेधों का शरीर बंधन है, और स्वयं के प्रति (शरीर बंधन धारण करना [Ni.13,147]) '(केवल) यही वास्तविक बंधन है' का शरीर बंधन है। इसे आसक्ति बंधन क्यों कहा जाता है? इन बंधनों के साथ वे पकड़ते हैं, आसक्ति रखते हैं, थामे रहते हैं, ग्रहण करते हैं, लेते हैं और ग्रहण करते हैं..., सोचते हैं..., करते हैं..., जानते हैं..., अवतार लेते हैं..., मृत्यु लेते हैं..., अस्तित्व में आते हैं..., पुनर्जन्म लेते हैं..., इस चक्र में वे पकड़ते हैं, आसक्ति रखते हैं, थामे रहते हैं, ग्रहण करते हैं और आसक्ति रखते हैं, इसलिए इन्हें आसक्ति बंधन कहा जाता है। "छोड़ने के बाद," बंधन को त्यागने के बाद, बंधन को, बंधन के विस्तार को, उलझाव को, लगाव को, स्थिरता को, बाधाओं को त्यागने के बाद, बंधन से मुक्त होने के बाद; जैसे पालकी, या गाड़ी, ठेला, या रथ जो (लोगों को) ले जाता है, जब लोग उतर जाते हैं, तो उस स्थान से लगाव नष्ट हो जाता है, उसी तरह, बंधन को त्यागने के बाद, यह छोड़ने के बाद है, या बंधन से मुक्त होने के बाद..., स्थिरता, बाधा और बंधन को झटकने के बाद।

"वे दुनिया में कहीं भी हों, इच्छाएँ नहीं करते (इच्छाएँ नहीं रखते)": इच्छाओं को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है... "इच्छाएँ मत करो," इच्छा, वे नहीं करते, न उत्पन्न करते हैं, न पैदा करते हैं, न ही उसे उत्पन्न होने देते हैं। "कहीं भी,"... "दुनिया में,"...

30 · सीमा पार कर चुके ब्राह्मण को, यह जानकर और देखकर कि कुछ लोग लोभी नहीं हैं, और कुछ लोभी नहीं हैं, यहाँ सर्वोच्च कुछ भी नहीं है।

"वह ब्राह्मण जिसने सीमा पार कर ली है, जानने और देखने के बाद भी उसे दृढ़ता से नहीं पकड़ता": "सीमा," चार सीमाएँ हैं: विधर्मी विचार, संशय, कर्मकांडीय अनुष्ठान करना और अंतर्निहित विपत्तियाँ, तथा उनसे उत्पन्न होने वाली अशुद्धियाँ, यह पहली प्रकार की सीमा है; गहन इच्छा बंध, घृणा बंध, इच्छा और लोभ की गहन संभावित प्रवृत्ति, घृणा और विपत्ति की संभावित प्रवृत्ति और उनसे उत्पन्न होने वाली अशुद्धियाँ, यह दूसरी सीमा है; शेष इच्छा और लोभ की बंध, घृणा बंध, इच्छा और लोभ की विपत्तियों की शेष संभावित प्रवृत्तियाँ, घृणा की विपत्तियों की संभावित प्रवृत्तियाँ और उनसे उत्पन्न होने वाली अशुद्धियाँ, यह तीसरी सीमा है; कामवासना, निराकार लोभ, अहंकार, घृणा, अज्ञान, अहंकार की विपत्तियों की अंतर्निहित प्रवृत्ति, लोभ की विपत्तियों की अंतर्निहित प्रवृत्ति, अज्ञान की विपत्तियों की अंतर्निहित प्रवृत्ति और उनसे उत्पन्न होने वाली अशुद्धियाँ, यह चौथी सीमा है। जब इन चारों सीमाओं को पार कर लिया जाता है, पार कर लिया जाता है और चारों पवित्र मार्गों द्वारा इन पर विजय प्राप्त कर ली जाती है, तब कहा जाता है कि उन्होंने सीमाओं को पार कर लिया है। "ब्राह्मण," .... "उसके लिए," अरहंत के लिए, उसके लिए जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं।

"जानने के बाद," मन में जानने के बाद, या पूर्व जन्मों की स्मृतियों के ज्ञान से जानने के बाद। "देखने के बाद," प्रत्यक्ष दृष्टि से देखने के बाद, या दिव्य दृष्टि से देखने के बाद। "वह ब्राह्मण जिसने सीमा पार कर ली है, जानने और देखने के बाद उसे कसकर नहीं पकड़ता": उसके लिए, "यह सर्वोच्च है, प्रथम है, सबसे विजयी है, जीत है, शीर्ष है," पकड़े रहने, चिपके रहने, आसक्त होने, लिए जाने, विश्वास किए जाने के बाद, वह अस्तित्वहीन हो

जाता है, ज्ञात नहीं होता, खोजा नहीं जाता, कट जाता है, अलग हो जाता है, शांत हो जाता है, समाप्त हो जाता है, उठने में असमर्थ हो जाता है, ज्ञान की अग्नि से जल जाता है।

"कुछ लोग लालची नहीं होते, और कुछ लालच से मुक्त नहीं होते": लालची लोगों को पाँचों प्रकार की इच्छाओं से ग्रस्त कहा जाता है: लालची, बंधी हुई, आसक्त, दूषित, आसक्त, स्थिर और अवरुद्ध। जो व्यक्ति लालच से मुक्त होता है, उसे भौतिक और अभौतिक जगत में परम लालची, वासनाग्रस्त, बंधी हुई, आसक्त, दूषित, आसक्त, स्थिर और अवरुद्ध कहा जाता है। "कुछ लोग लालची नहीं होते, और कुछ लालच से मुक्त नहीं होते।" क्योंकि इच्छा, लालच, सृजित लालच और निराकार लालच की जड़ें कट चुकी हैं, जैसे बिना जड़ों का ताड़ का पेड़ भविष्य में निर्जीव हो जाता है, इस स्थिति में, कुछ लोग लालची होते हैं, और कुछ लोग लालची नहीं होते।

"उसके लिए यहाँ कुछ भी सर्वोच्च नहीं है": "उसके लिए," अरहंत के लिए, उस व्यक्ति के लिए जिसने सभी कष्टों को भलीभांति ग्रहण कर लिया है। उसके लिए, "यह सर्वोच्च और प्रथम है...," ऐसा कुछ भी नहीं है, ऐसा कुछ भी अस्तित्व में नहीं है, ऐसा कुछ भी ज्ञात नहीं है..., और वह ज्ञान की अग्नि से झुलस चुका है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.5

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

5. सर्वोच्च

31 · जो लोग "सर्वोच्च" (दृष्टिकोण) में रहते हैं, जो दुनिया में ऊंचे हैं, वहां से वह कहता है कि बाकी सभी "हीन" हैं, इसलिए वह विवाद पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

"सर्वोच्च दृष्टिकोण में रहने वाले": कुछ समण और ब्राह्मण बुरे दृष्टिकोण रखते हैं। वे बासठ बुरे दृष्टिकोणों में से एक को इस प्रकार अपनाते हैं: "यही सर्वोच्च है, पहला है, सबसे विजयी है, श्रेष्ठ है, शीर्ष है।" इसे ग्रहण करने, थामने, उठाने, आसक्ति रखने के बाद, वे इसमें रहते हैं, जैसे परिवार के घर में रहना, पापी व्यक्ति का पाप में रहना, या अपवित्र व्यक्ति का अपवित्रता में रहना। इसी प्रकार, कुछ समण और ब्राह्मण बुरे दृष्टिकोण रखते हैं, और वे बासठ बुरे दृष्टिकोणों में से एक को इस प्रकार अपनाते हैं: "यही सर्वोच्च है... ।" इसे ग्रहण करने के बाद..., और प्रत्येक दृष्टिकोण में यही कहते हैं।

"संसार में जो भी श्रेष्ठ है": "जो भी" का अर्थ है जो भी हो। "श्रेष्ठ है" का अर्थ है श्रेष्ठ, प्रथम और सर्वोपरि, श्रेष्ठ, सर्वोच्च, विजेता, शीर्ष। "यह गुरु सर्वज्ञ है": वह श्रेष्ठ, प्रथम, सर्वोच्च और शीर्ष है; "यह धम्म अच्छे द्वारा कहा गया है...", ...(विलंबित, पिछले खंड देखें)। "मनुष्य" सभी प्राणी हैं, ...(विलंबित, पिछले खंड देखें)। "संसार में" ...(विलंबित, पिछले खंड देखें)।

"वहाँ से उसने कहा कि बाकी सभी लोग 'हीन' हैं": अपने गुरु को छोड़कर, धम्म का वर्णन, समूह, दृष्टिकोण, मार्ग, तरीका, वह सभी असहमति को त्याग देता है, जड़ से उखाड़ फेंकता है और घेर लेता है: "वह गुरु बुद्धिमान नहीं है, धम्म को अच्छा नहीं कहा जाता, ...(अधूरा भाग, पिछले खंड देखें)..., महत्वहीन।" ऐसा कहता है, ऐसा बोलता है, ऐसी बातें करता है, ऐसा समझाता है।

अतः विवाद का समाधान नहीं हो सकता: अतः, ...(विलंबित, पिछले अनुभाग देखें)। "विवाद," झगड़े, विवाद, तर्क-वितर्क और असहमति। "जिसका समाधान नहीं हो सकता," जिसे पार नहीं किया जा सकता, जिसे रोका नहीं जा सकता, जिस पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती।

32 · जो कोई अपने आप में लाभ देखता है, जो कुछ वह देखता है, सुनता है, उपदेशों और निषेधों में, या महसूस करता है, उसे वहाँ कसकर पकड़े रहने के बाद, वह बाकी सब कुछ तुच्छ समझता है।

“जो कोई भी अपने आप में जो कुछ देखता, सुनता, उपदेशों और निषेधों में, या जो कुछ वह महसूस करता है, उसमें लाभ देखता है”: “स्वयं” उसका स्व है... (विलुप्त, पिछले खंड देखें)... वह अपने स्वयं के दर्शन के दो लाभ देखता है..., वह जो कुछ देखता है उसकी पवित्रता के दो लाभ देखता है..., वह जो कुछ सुनता है उसकी पवित्रता के दो लाभ देखता है..., वह उपदेशों की पवित्रता के दो लाभ देखता है..., वह निषेध की पवित्रता के दो लाभ देखता है..., वह पवित्रता के दो लाभ देखता है: वर्तमान जीवन के लाभ और परलोक के लाभ। प्रत्यक्ष पवित्रता का तात्कालिक लाभ क्या है? गुरु जो कुछ भी देखता है, शिष्यों को भी वही मिलता है... (विलुप्त)। परलोक की प्रत्यक्ष पवित्रता का क्या लाभ है? यह दृष्टि ही अजगर (अजगर लोक) की अवस्था में (एक होने के लिए) पर्याप्त है... (विलुप्त)। वह प्रत्यक्ष पवित्रता के दो लाभों को देखता है, निहारता है, मनन करता है और उनका अवलोकन करता है।

“उस चीज़ को कसकर पकड़ने के बाद”: “बस यही” एक बुरी सोच है। “वहाँ,” उनके अपने विचारों में, उनकी पसंद में, उनके झुकावों में, उनकी राय में, “कसकर पकड़ने के बाद,” “यह सर्वोच्च है, पहला है...,” जब वह उसे पकड़ता है, थामता है, उठाता है, उससे लिपट जाता है।

"अन्य सभी चीजों को तुच्छ समझना": वह अन्य गुरुओं, धम्म के वर्णन, समूह, दृश्य, मार्ग, पथ को निम्न, तुच्छ, नीच, मामूली, महत्वहीन समझता है।

33 · कुशल लोग कहते हैं कि यह एक बंधन है: जो दूसरों पर निर्भर होते हैं और जो दूसरों को बुरा समझते हैं, इसलिए भिक्षुओं को जो कुछ वे देखते हैं, सुनते हैं या महसूस करते हैं, उससे आसक्त नहीं होना चाहिए।

“कुशल लोग कहते हैं कि यह एक बंधन है”: “कुशल लोग,” ...(विलंबित भाग देखें, पिछले भाग देखें), वे चतुर लोग कहते हैं: “यह बंधन है, यह आसंजन है, यह बंधन है, और यह एक बाधा है।” वे ऐसा कहते हैं, ...

“जो आश्रित हैं और जो दूसरों को हीन समझते हैं”: “जो कोई भी आश्रित है,” गुरु पर, धम्म के वर्णन में... “दूसरों को हीन समझता है।” वह सोचता है, देखता है..., अन्य गुरुओं को, धम्म के वर्णन को..., तुच्छ समझता है।

अत: भिक्षु को अपने देखे, सुने या महसूस किए गए किसी भी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए। भिक्षु को नियमों और निषेधों का पालन नहीं करना चाहिए। अत: ..., इसी कारण उसे अपने देखे, सुने या महसूस किए गए किसी भी बात, नियमों या निषेधों का पालन नहीं करना चाहिए।

23 · इसे (एक दृष्टिकोण) दुनिया में नहीं बनाया जाना चाहिए, ज्ञान या उपदेश और निषेध द्वारा, किसी को स्वयं को "समान" नहीं मानना चाहिए, न ही हीन या श्रेष्ठ समझा जाना चाहिए।

“इसे संसार में, बुद्धि या उपदेश और निषेध द्वारा नहीं बनाया जाना चाहिए”: इसे आठ स्तरों की बुद्धि, या पाँच दिव्य शक्तियों, या बुरी बुद्धि, या उपदेश, या निषेध, या उपदेश और निषेध द्वारा नहीं बनाया जाना चाहिए; इसे बनाना नहीं चाहिए, इसे उत्पन्न नहीं करना चाहिए, इसे उत्पन्न नहीं करना चाहिए, इसे प्रकट नहीं करना चाहिए। “संसार में,”...

“आपको स्वयं को 'समान' होने के लिए निर्देशित नहीं करना चाहिए”: आपको जन्म, उपनाम, अच्छे परिवार, कमल के समान सुंदरता, संपत्ति, शोध (अधिग्रहण), करियर, कौशल, अध्ययन, शब्द, तर्क या किसी अन्य चीज़ के आधार पर स्वयं को यह विश्वास दिलाने के लिए निर्देशित नहीं करना चाहिए कि “मैं समान हूँ।”

“न ही किसी को हीन या श्रेष्ठ समझना चाहिए”: जन्म के आधार पर आपको यह नहीं समझना चाहिए कि “मैं हीन हूँ।” आपको यह भी नहीं समझना चाहिए कि “मैं श्रेष्ठ हूँ।”

35 · जो कुछ उसने अर्जित किया है, उसे त्यागने के बाद, वह एक अनिच्छुक व्यक्ति बन जाता है, वह बुद्धि पर निर्भर नहीं रहता, वह वास्तव में विभाजित समूह का सदस्य नहीं होता, और वह किसी भी चीज़ (दृष्टिकोण) की ओर नहीं लौटता।

"प्राप्त की हुई चीज़ों का त्याग करके, बिना कुछ ग्रहण किए व्यक्ति बन जाना": "प्राप्त की हुई चीज़ों का त्याग" का अर्थ है देखने के बाद 'मेरा' भाव को छोड़ देना; "प्राप्त की हुई चीज़ों का त्याग" का अर्थ है स्वयं को छोड़ देना; "प्यास, दृष्टि, पकड़, पकड़, आसक्ति, ग्रहण और विश्वास के कारण, त्यागने के बाद, त्यागने के बाद, भगाए जाने के बाद, अंत के बाद और उसे अस्तित्वहीन बना देने के बाद," यह प्राप्त की हुई चीज़ों को त्यागने का परिणाम है। "वह जो ग्रहण नहीं करता," चार प्रकारों में से, वह जो ग्रहण नहीं करता, वह जो पकड़ता नहीं, वह जो आसक्ति नहीं रखता, वह जो दृढ़ नहीं रहता।

"वह बुद्धि पर भी निर्भर नहीं रहता": वह बुद्धि प्राप्त करने के लिए आठ स्तरों का उपयोग नहीं करता, न ही बुद्धि को शक्ति देने के लिए पांच देवताओं का उपयोग करता है, न ही प्रेम की प्यास की निर्भरता को स्थापित करने, उत्पन्न करने, उत्पन्न करने और जन्म देने के लिए या देखने पर निर्भर रहने के लिए बुरी बुद्धि का उपयोग करता है।

"वह वास्तव में विभाजित समूह का सदस्य नहीं है": वह वास्तव में विभाजित, टूटे हुए, दो भागों में बँटे (विरोधाभासी), दो (संदेहों) से उत्पन्न, भिन्न मतों, भिन्न पसंदों, भिन्न झुकावों, भिन्न दावों, भिन्न मतों पर निर्भर, उन लोगों में नहीं है जिन्हें इच्छा होने पर भी व्यवहार नहीं करना चाहिए, जिन्हें चाहत होने पर भी व्यवहार नहीं करना चाहिए, जिन्हें अपमानजनक तरीके से व्यवहार नहीं करना चाहिए, जिन्हें मूर्खतापूर्ण तरीके से व्यवहार नहीं करना चाहिए, और जिन्हें डरना नहीं चाहिए, जो इच्छाओं का पालन नहीं करते, जो व्यवहार नहीं करना चाहते, जो अपमानजनक नहीं हैं, जो मूर्ख नहीं हैं, जो आतंक का पालन नहीं करते, उन्हें लालच के कारण व्यवहार नहीं करना चाहिए, और जो अपमानजनक नहीं हैं, अज्ञानता के कारण नहीं चलते, अहंकार के कारण नहीं चलते, देखने के कारण नहीं चलते, देखने के कारण दूर नहीं जाते, संदेह के कारण नहीं चलते, संभावित परेशानियों के कारण नहीं चलते, और कलह और विधि द्वारा संचालित या निर्देशित नहीं होते, बहकाए या जीते नहीं जाते।

"वह किसी भी विचार की ओर नहीं लौटता": उसके लिए, बासठ बुरे विचार काट दिए गए हैं, अलग कर दिए गए हैं, शांत कर दिए गए हैं, समाप्त हो गए हैं, फिर से उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं, और वह न तो लौटेगा और न ही किसी बुरे विचार की ओर लौटेगा।

36 · उसके लिए यहाँ किसी भी तरफ से कोई प्रतिज्ञा नहीं है: इस लोक में या दूसरे लोक में, सभी प्रकार के अस्तित्व के लिए, उसके लिए कोई भी अस्तित्व नहीं है, जिसे धम्मों में चुने जाने के बाद मजबूती से धारण किया जाता है।

"उसके लिए दोनों तरफ से कोई प्रतिज्ञा नहीं है": "उसके लिए," अरहंत के लिए, उसके लिए जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। "पक्ष," स्पर्श एक पक्ष है...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। प्रतिज्ञाओं को लालसा कहा जाता है, जो लोभ की जड़ हैं...।

"सभी प्रकार के अस्तित्व के लिए": सभी प्रकार के अस्तित्व, ... "यहाँ": स्वयं का अस्तित्व, "दूसरे लोक में": अन्य व्यक्ति; "यहाँ": स्वयं का शरीर और बोध, "दूसरे लोक में": दूसरों का शरीर और बोध; "यहाँ": छह आंतरिक स्थान, "दूसरे लोक में": छह बाह्य स्थान; "यहाँ": मानव जगत, "दूसरे लोक में": स्वर्गीय जगत; "यहाँ": इच्छा जगत, "दूसरे लोक में": भौतिक जगत, निराकार जगत; "यहाँ": इच्छा लोक, भौतिक लोक, "दूसरे लोक में": निराकार लोक। "उसके लिए दोनों ओर से कोई भी प्रतिज्ञा यहाँ नहीं है: सभी प्रकार के अस्तित्व के लिए, यहाँ या दूसरे लोक में": उसके लिए दोनों ओर से कोई भी प्रतिज्ञा, सभी प्रकार के अस्तित्व के लिए, यहाँ या दूसरे लोकों में, लालसाएँ, वे अस्तित्व में नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, खोजी नहीं गई हैं, उन्हें काट दिया गया है, अलग कर दिया गया है, शांत कर दिया गया है, रोक दिया गया है, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, और ज्ञान की अग्नि से जला दी गई हैं।

"उसके लिए, कोई निवास (अस्तित्व) नहीं है": "निवास," दो प्रकार के निवास हैं: प्यास का निवास और दृष्टि का निवास... "उसके लिए," ... "उसके लिए कोई निवास नहीं है": उसके लिए, कोई निवास नहीं है, ज्ञात नहीं है, खोजा नहीं गया है, काट दिया गया है, अलग कर दिया गया है, शांत कर दिया गया है, रुक गया है, उत्पन्न नहीं हो सकता है, और ज्ञान की अग्नि से जल गया है।

“धम्मों में चुने जाने के बाद, इसे दृढ़ता से धारण किया जाता है”: “धम्म में,” बासठ बुरे विचारों में। “चुने जाने के बाद,” ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। “पकड़ने के लिए,” ..., वे नहीं हैं, अस्तित्व में नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, खोजे नहीं गए हैं, काट दिए गए हैं...।

37 · उसके लिए, जो कुछ वह देखता है, सुनता है और महसूस करता है, उस पर सूक्ष्म विचार भी नहीं होते। वह ब्राह्मण जो अपनी दृष्टि (दृष्टिकोण) से चिपका नहीं रहता, उसे इस संसार में कौन वर्गीकृत कर सकता है?

“उसके लिए, जो कुछ उसने देखा, सुना या महसूस किया है, उस पर कोई सूक्ष्म (विस्तृत, बारीक) विचार नहीं हैं।” “उसके लिए,” अरहंत के लिए... उसने कहा कि वह जो देखता है, वह शुद्ध है, या जो सुनता है, वह शुद्ध है, या जो महसूस करता है, वह शुद्ध है; वह अग्रणी स्थिति बनना चाहता है, वृद्धि की स्थिति बनना चाहता है, विवाद करना चाहता है, उत्पन्न होना चाहता है, पूर्णतः उत्पन्न होना चाहता है, निर्मित होना चाहता है, कल्पना करना चाहता है, आशाजनक होना चाहता है, रचा जाना चाहता है और सहवास करना चाहता है; वह नहीं है, अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, खोजा नहीं गया है, और अलग हो गया है...

“ब्राह्मण, जो अपनी दृष्टि नहीं हटाता (विचारों से आसक्त नहीं होता)”: “ब्राह्मण,” .... “ब्राह्मण विचारों को नहीं अपनाता”: ब्राह्मण विचार को नहीं अपनाता, न पकड़ता है, न जकड़ता है और न ही उससे आसक्त होता है।

“इस दुनिया में कौन उसका वर्गीकरण कर सकता है?”: “वर्गीकरण,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “दुनिया में,” ....

38 · वे (विचार) नहीं बनाते, ध्यान नहीं देते (कोई प्राथमिकता नहीं रखते), और उनके लिए धर्म स्वीकार्य नहीं हैं, ब्राह्मण उपदेशों और निषेधों द्वारा निर्देशित नहीं होंगे; जो इस प्रकार दूसरे तट पर पहुँच गए हैं वे वापस नहीं लौटेंगे।

“वे निर्माण नहीं करते और ध्यान नहीं देते”: “निर्माण” के दो प्रकार के निर्माण होते हैं: .... लालसा का निर्माण क्या है? .... सभी एक सौ आठ प्यास के विचार [एएन.4.199], यही लालसा का निर्माण है।

देखने की संरचना क्या है? ... सभी बासठ बुरी दृष्टियों की पहुँच में आ जाते हैं। यही देखने की संरचना है। उनके लिए, प्यास की संरचना कट गई है, देखने की संरचना कट गई है, ... वे न तो किसी संरचना का निर्माण करते हैं, न उत्पन्न करते हैं, न जन्म देते हैं, न ही किसी दृष्टि का निर्माण करते हैं।

“अनदेखापन” और “मूल्यांकन,” ध्यान के दो प्रकार हैं:... उनके लिए प्यास का मूल्य समाप्त हो गया है, देखने का मूल्य समाप्त हो गया है...

“उनके लिए, धम्म स्वीकार्य नहीं हैं”: “धम्मों को बासठ बुरे विचार कहा जाता है।” उनके लिए,” जो अरहंत हैं... “स्वीकार्य नहीं,” “संसार स्थिर है, यही वास्तविक है, और बाकी सब कुछ शून्य है।” स्वीकार्य नहीं; “संसार अत्यंत स्थिर है... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।” ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए।

“ब्राह्मण उपदेशों और निषेधों से निर्देशित नहीं होंगे”:...

“जो लोग इस प्रकार दूसरे किनारे पर पहुँच जाते हैं, वे वापस नहीं लौटते”: उस दूसरे किनारे को निर्वाण कहा जाता है, जो निर्जीव है...।

“अप्रत्यावश्यक,” सोतापन्न मार्ग द्वारा समाप्त किए गए किसी भी प्रकार के प्रदूषण, जिनका अनुभव व्यक्ति अब नहीं करता, न ही लौटता है; ...सकदागामी मार्ग द्वारा...; ...अनगामी मार्ग द्वारा...; ...अरहंत मार्ग द्वारा...। जो लोग दूसरी ओर पहुँच जाते हैं, वे वापस नहीं लौटते। “जो उस प्रकार के हैं,” अरहंत पाँचों रूपों में उस प्रकार के हैं: जो संतुष्ट या असंतुष्ट हैं, वे उस प्रकार के हैं; जो त्यागे गए हैं, वे उस प्रकार के हैं; “मार्गदर्शक” वह है जो उस प्रकार का है; “मुक्ति प्राप्त” वह है जो उस प्रकार का है।

अरहंत संतोष या असंतुष्टि के मामले में कैसे होते हैं? अरहंतों का स्वभाव ऐसा ही होता है, चाहे उन्हें कुछ मिले या न मिले, प्रतिष्ठा में भी ऐसा ही होता है, प्रतिष्ठा में भी ऐसा ही होता है, बदनामी में भी, प्रशंसा में भी, निंदा में भी, सुख में भी, दुख में भी... कुछ लोग कलाई पर मसाला लगाते हैं, और कुछ लोग कुल्हाड़ी से काम करते हैं: उनमें ऐसी स्थिति में कोई लोभ नहीं होता, उनमें कोई घृणा नहीं होती, और उन्होंने लोभ का त्याग कर उसे काट डाला होता है। घृणा, विजय और पराजय पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली होती है, आज्ञाकारिता और विरोध पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली होती है।

एक अरहंत को किस प्रकार "त्याग दिया जाता है"? अरहंत का लोभ त्याग दिया गया है, थूक दिया गया है, मुक्त कर दिया गया है, खारिज कर दिया गया है और काट दिया गया है; ...क्रोध..., ...अज्ञान..., (छोड़ दिया गया); त्याग दिया गया, थूक दिया गया, मुक्त कर दिया गया, त्याग दिया गया, बंद कर दिया गया।

अरहंत किस प्रकार "वह व्यक्ति जो इस चक्र से गुज़र चुका है" कहलाता है? अरहंत की इच्छा की प्रचंड धाराएँ पार हो चुकी हैं; अस्तित्व की प्रचंड धाराएँ पार हो चुकी हैं; देखे गए प्रचंड प्रवाह पार हो चुके हैं; अज्ञान के प्रचंड प्रवाह पार हो चुके हैं; सभी चक्र पार हो चुके हैं, बाहर आ चुके हैं, पार कर चुके हैं, पार कर चुके हैं, विजय प्राप्त कर चुके हैं; वह अवतरित हुआ है, वह अभ्यासी है (वह जिसने यात्रा पूरी की है, वह जो दिशा तक पहुँचा है), जीवन और मृत्यु के चक्र को बिना पुनर्जन्म के पार कर चुका है।

अरहंत किस प्रकार “मुक्त” होते हैं? अरहंत का हृदय लोभ से मुक्त होकर परोपकारी हो जाता है; हृदय क्रोध से मुक्त होकर परोपकारी हो जाता है; ...भ्रम..., (अस्पष्ट)...; मन सभी अहितकर कर्मों से मुक्त होकर परोपकारी हो जाता है।

अरहंत का वर्णन किस प्रकार किया जाता है? अरहंत, यानी “वह व्यक्ति जिसके पास उपदेशों का ज्ञान है”, का वर्णन इस प्रकार किया जाता है: “धर्म में विश्वास रखने वाला”...; जीवन शक्ति से परिपूर्ण...; मन से सचेत...; एकाग्रता में मग्न...; ज्ञान में निपुण...; “तीन प्रकार के मन”...; छह अलौकिक शक्तियाँ...।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.6

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

6. वृद्धावस्था

39 · यह जीवन वास्तव में छोटा है, शायद मृत्यु से पहले सौ साल से भी कम, अगर कोई इससे अधिक जीता है, तो वह (फिर भी) बुढ़ापे से मरेगा।

“यह जीवन वास्तव में छोटा है”: “जीवन” ही जीवन है, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। इसके अतिरिक्त, जीवन दो कारकों के कारण छोटा है: ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। अस्तित्व के आधार पर सीमित जीवन इतने कम क्यों हैं? ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। प्रकृति का सीमित जीवन इतना कम क्यों है? ...(अंशित, पिछले भाग देखें)।

“शायद मृत्यु से सौ साल पहले”: मरना, मर गया, मृत, और जब यह जम जाता है [SN.10.1], ...जबकि एक कोशिका में, ...जब यह मांस का एक टुकड़ा होता है, ...जब मांस दृढ़ होता है, अंगों में, नवजात शिशु भी, प्रसव कक्ष में, आधा महीना, एक महीना, दो महीने, तीन महीने, चार महीने, पांच महीने, छह महीने, सात महीने, आठ महीने, नौ महीने, दस महीने, एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, चार वर्ष, पांच वर्ष, छह वर्ष, सात वर्ष, आठ वर्ष, नौ वर्ष, दस वर्ष, बीस वर्ष, तीस वर्ष, चालीस वर्ष, पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, नब्बे वर्ष, मरना, मृत्यु, विलुप्ति और विनाश।

“जो कोई सौ वर्ष से अधिक जीवित रहता है”: जो कोई सौ वर्ष से अधिक जीवित रहता है, वह एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, ... या चालीस वर्ष तक जीवित रहता है। “उस समय वह वृद्धावस्था से मर जाएगा”: जब वह बूढ़ा, वृद्ध, वृद्ध, कमजोर, टूटे दांतों वाला, सफेद बालों वाला, गंजा, झुर्रियों

वाला, धब्बेदार अंगों वाला, टेढ़ा-मेढ़ा, बैसाखियों पर निर्भर, मर जाता है, विलुप्त हो जाता है, लुप्त हो जाता है और वृद्धावस्था से नष्ट हो जाता है, और वह मृत्यु से बच नहीं पाता।

पके फलों के लिए, सुबह-सुबह गिरने का भय रहता है, जो लोग जीवित हैं और जिनका अंत निश्चित है, उनके लिए अक्सर मृत्यु का भय बना रहता है। कुम्हार द्वारा बनाई गई मिट्टी की तरह, सब कुछ अंततः नष्ट हो जाएगा, और जो लोग मर चुके हैं उनका जीवन भी ऐसा ही है। युवा और बूढ़े, मूर्ख और बुद्धिमान, सभी मृत्यु के वश में हो जाते हैं, सब कुछ मृत्यु के हित में। जो मृत्यु से पराजित होते हैं, जो इस लोक से परलोक की ओर जाते हैं, उनके लिए पिता अपने पुत्र को आश्रय नहीं दे सकता, न ही रिश्तेदार। यहाँ तक कि जो रिश्तेदार देखते हैं, जो चीखते हैं, जो लोग मृत्यु से बच नहीं सकते, वे वध के लिए ले जाए जा रहे गाय की तरह हैं। संसार ऐसा ही है, मृत्यु और वृद्धावस्था से पीड़ित, इसलिए बुद्धिमान दुखी नहीं होते, संसार के सत्य और हित को जानने के बाद। [खंड 3.8, 581-586]

40 · लोग दुखी होते हैं जब वे (चीजों को) अपना समझते हैं, क्योंकि कोई भी स्थायी संपत्ति नहीं होती, यहाँ बिछड़ने को देखकर, किसी को घर में (आम आदमी की तरह) नहीं रहना चाहिए।

“लोग तब दुखी होते हैं जब (चीज़ें) उनकी अपनी मानी जाती हैं”: “लोग,” ...(अस्पष्ट, पिछले भाग देखें)। “स्वयं को अपना मानने” के दो प्रकार होते हैं: ...(अस्पष्ट, पिछले भाग देखें)। वे तब दुखी होते हैं जब उन्हें डर होता है कि उनकी अपनी मानी हुई चीज़ें छीन ली जाएँगी, वे तब भी दुखी होते हैं जब वे छीन ली जाती हैं, वे तब भी दुखी होते हैं जब उन्हें छीन लिया जाता है; वे तब दुखी होते हैं जब उनकी अपनी मानी हुई चीज़ों के (बदलने का) डर होता है, वे तब भी दुखी होते हैं जब वे बदल जाती हैं, वे तब भी दुखी होते हैं जब वे बदल जाती हैं; दुखी, थके हुए, रोते हुए, सीना पीटते हुए और विलाप करते हुए, अराजकता की स्थिति में।

“क्योंकि कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है”: वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं: .... वे सभी वस्तुएँ जिनकी आपको प्यास है, क्षणभंगुर, सक्रिय और परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। वे विनाश, विघटन, क्षीणता, विलुप्ति और परिवर्तन के धर्म हैं। वे सभी वस्तुएँ जो आप देखते हैं, वे भी क्षणभंगुर हैं... (अंशित)। भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! क्या आपने देखा है कि सभी वस्तुएँ स्थिर, बलवान, शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अनंत हैं?” “नहीं, भगवान बुद्ध!” “भिक्षुओं! अच्छा! भिक्षुओं! मैंने भी स्थिर, ठोस, शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अनंत वस्तुओं को नहीं देखा है।” [एमएन.22] स्थायी, ठोस, शाश्वत और अपरिवर्तनीय वस्तुएँ न तो अस्तित्व में हैं, न ही ज्ञात हैं और न ही प्राप्त की जा सकती हैं।

“यहाँ विरह है”: वियोग, जुदाई, अलगाव विद्यमान है, ज्ञात है, प्राप्त है। भगवान बुद्ध ने कहा: “बस करो, आनंद! दुखी मत हो, रोओ मत, आनंद! क्या मैंने यह पहले नहीं कहा था? वियोग, जुदाई और उन सभी चीजों से अलगाव जो तुम्हें प्रिय हैं और सुखद लगती हैं। आनंद! यहाँ, यह कैसे प्राप्त हो सकता है: 'जो कुछ भी जन्म लेता है, विद्यमान होता है, कुछ करता है या भ्रष्ट करता है, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।' यह असंभव है!” [डीएन.16] यह पूर्ववर्ती स्कंधों, लोकों और परिवर्तनशीलता और रूपांतरण से संबंधित है; परवर्ती स्कंधों, लोकों और घूर्णन से संबंधित है।

“इसे इस प्रकार देखकर तुम्हें घर में नहीं रहना चाहिए”: “इस प्रकार, ...” देखने के बाद, देखने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय लेने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद, इस प्रकार, मेरे आसक्ति में। “घर में नहीं रहना चाहिए,” घर की सभी बाधाओं को दूर करने के बाद, बच्चों और पत्नियों की बाधाओं को दूर करने के बाद, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। इसके बाद, तुम्हें अकेले चलना चाहिए, जीना चाहिए, कार्य करना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, रक्षा करनी चाहिए और जीवित रहना चाहिए, जब तुम शून्यता की अवस्था में आने लगो।

41 · जिस बात को लोग “मेरा” समझते हैं, वह भी मृत्यु के समय त्याग दी जाती है। बुद्धिमानों को यह जानकर विश्वासी को उससे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

“वह भी मृत्यु द्वारा त्याग दिया गया”: “मृत्यु,” सभी जीवित प्राणियों का, मृत्यु के कारण, विनाश, विघटन, लुप्त होना, अंत, जीवन का अंत, विभिन्न समूहों का विघटन, शव का त्याग, और सभी जीवित प्राणियों में जीवन के मूल का कट जाना। “वह,” रूप, भावनाएँ, विचार, व्यवहार और चेतना जैसी वस्तुएँ। “त्यागा हुआ,” त्यागा हुआ, लुप्त, छोड़ा हुआ, नष्ट, तबाह। यह भी कहा गया है: [Jat.5.1,2-3]

जब सारा धन उपयोग में न आए, तो दुःख के समय दुखी क्यों नहीं होते? यहाँ तक कि जिन्होंने पहले अपना धन त्याग दिया है, जो लोग निश्चित रूप से मरने वाले हैं, वे भी उसे त्याग देंगे। इच्छा-साधक की संपत्ति बहुत स्थिर होती है, इसलिए दुःख के समय दुखी नहीं होता। चंद्रमा बढ़ता है, भरता है और गायब हो जाता है, और सूर्य अस्त हो जाता है। शत्रु के सांसारिक धर्म का मुझे ज्ञान है, इसलिए दुःख के समय दुखी नहीं होता।

“लोग सोचते हैं कि 'यह मेरा है'”: “यह,” रूप, भावना, सोच, व्यवहार और चेतना जैसी चीज़ें हैं। “लोग” नाम, उपाधियाँ, सामान्य नाम, उपनाम, शब्द, वाक्यांश और नाम हैं। “सोचो 'यह मेरा है',” प्रेम की प्यास से वह सोचता है; देखकर वह सोचता है; अहंकार से वह सोचता है; अपवित्रता से वह सोचता है; बुरे कर्मों से वह सोचता है; (बढ़ाने के) प्रयास से वह सोचता है; प्रतिशोध से वह सोचता है।

“बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है”: यह वह व्यक्ति जानता है जो जानने, समझने, परखने, निर्णय करने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद यह जानता है। बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है।

“आस्तिकों को आत्म-मोह के आगे नहीं झुकना चाहिए”: “आत्म-मोह,” आत्म-मोह दो प्रकार का होता है: ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)। “आस्तिक,” बुद्ध में आस्था रखने वाले, धम्म में आस्था रखने वाले, संघ में आस्था रखने वाले, जो बुद्ध को अपना मानते हैं, वे विश्व देवता से आसक्त रहते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! जो भिक्षु कपटी, मूर्ख, बातूनी, पाखंडी, अभिमानी और अनिश्चित हैं, वे मेरे लिए मेरे (सच्चे) भिक्षु नहीं हैं। भिक्षुओं! जिन्होंने इस धर्म का पालन नहीं किया, वे इस धर्म में वृद्धि या विस्तार नहीं करते। परन्तु भिक्षुओं! जो भिक्षु कपटी नहीं हैं, बातूनी नहीं हैं, बलवान हैं, कठोर नहीं हैं और दृढ़ निश्चयी हैं, वे मेरे लिए मेरे भिक्षु हैं। भिक्षुओं! वे भिक्षु इस धर्म को नहीं छोड़ते, वे इस धर्म में वृद्धि और विस्तार करने आते हैं।”

“धूर्त, हठी, झूठे, पाखंडी, अभिमानी, अनिश्चित, वे प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म में प्रगति नहीं करते। जो कपटी नहीं, बातूनी, दृढ़, कठोर नहीं, सौम्य स्वभाव के होते हैं, वे प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म में प्रगति करते हैं।” [एएन.4.26]

“विश्वासी को उस चीज़ की ओर नहीं झुकना चाहिए जिससे वह चिपका हुआ है”: विश्वासियों को उस प्यासी आत्मा के जुनून के आगे नहीं झुकना चाहिए, न ही उस आत्मा के जुनून के आगे झुकना चाहिए जिसे वह देखता है; उसे नीचे की ओर नहीं झुकना चाहिए, उसकी ओर नहीं झुकना चाहिए, उसकी ओर नहीं झुकना चाहिए; उसे दूसरों की ओर झुकाव रखना चाहिए, उसकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, उसे बढ़ाना नहीं चाहिए।

42 · जैसे जागने वाला व्यक्ति सपनों के मामलों को नहीं देख सकता, वैसे ही लोग अपने प्रियजनों को नहीं देख सकते जो मर चुके हैं।

“सपने में दिखाई देने वाली चीज़ें”: वह चीज़ जो एकत्रित, व्यवस्थित या संकलित होती है। “जागने पर लोग कुछ नहीं देख पाते”: उदाहरण के लिए, जो लोग सपने में चाँद, सूरज, समुद्र, मेरु पर्वत के राजा, हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल सेना, सेना की टुकड़ी, सुंदर बगीचे, सुंदर जंगल... (कुछ भाग हटा दिया गया), रमणीय भूमि..., सुंदर कमल का तालाब देखते हैं, जागने पर उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता।

“ऐसा प्यार पाने वाला व्यक्ति”: “ऐसा” एक लाक्षणिक व्यवस्था है। “प्यार पाने वाला व्यक्ति” से तात्पर्य किसी प्रिय व्यक्ति से है: माँ, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री, मित्र, सहकर्मी, रिश्तेदार या रक्त संबंधी।

“मृतक और मुर्दा, वह देख नहीं सकता”: मृतक को मृतक कहा जाता है, और मुर्दा को वह देख नहीं सकता, पा नहीं सकता, ढूंढ नहीं सकता या हासिल नहीं कर सकता।

43 · उन लोगों को देखा और सुना गया, और उनके नाम से पुकारा गया (उनके नाम से पुकारा गया), मृतक के लिए, केवल नाम ही कहा जा सकता है।

“वे लोग देखे और सुने जाते हैं”: “देखे जाते हैं,” दृष्टि चेतना से उत्पन्न। “सुने जाते हैं,” कान चेतना से उत्पन्न। “वे लोग,” क्षत्रिय, ब्राह्मण...(हटा दिया गया)।

“जहाँ उनका नाम पुकारा जाता है”: “जहाँ उनका नाम पुकारा जाता है,” क्षत्रिय का, ब्राह्मण का, ..., स्वर्गों का, और मनुष्यों का। “नाम” नाम है, ...। “कहा गया,” कहा जा रहा है, पुकारा गया है, बताया गया है, बात की गई है, समझाया गया है, कहा गया है।

“केवल नाम ही कहा जा सकता है”: रूप, भावना, विचार, व्यवहार, चेतना सब कट जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, छूट जाते हैं, विनाश हो जाता है। “कहा जा सकता है,” कहा जा सकता है, बताया जा सकता है, पुकारा जा सकता है, समझाया जा सकता है, बात की जा सकती है। केवल नाम ही कहा जा सकता है। “मृतकों के लिए”: “मृतकों के लिए,” मृतकों के लिए, मरे हुओं के लिए। “लोगों के लिए,” चेतन प्राणियों के लिए, मनुष्यों के लिए, विद्यार्थी ब्राह्मणों के लिए, लोगों के लिए, व्यक्तियों के लिए, जीवन के लिए, जन्म लेने वालों के लिए, इंद्र से जन्म लेने वालों के लिए, और मनु से जन्म लेने वालों के लिए।

44 · जो लालची होते हैं वे कभी दुःख, विलाप और कंजूसी नहीं छोड़ते, इसलिए मुनि, स्थिरता के द्रष्टा, सब कुछ त्याग कर (भटकने) चले जाते हैं।

“लालची लोग जो आसक्त हैं, वे अपने दुःख, विलाप और कंजूसी का त्याग नहीं करते”: “दुःख,” रिश्तेदारों की मृत्यु या संपत्ति की हानि से, ...बीमारी से, ...उपदेशों से, ...दृष्टि से; कुछ हानियों से, कुछ कष्टों से; दुःख, उदासी, शोक, आंतरिक दुःख, आंतरिक दुःख, जलन, आंतरिक जलन और हृदय के तीर से पीड़ित होना। “विलाप,” रिश्तेदारों की मृत्यु से, विलाप, रोना, विलाप करना, दुःख, विलाप, व्यर्थ की बातें, बड़बड़ाना, चीरना, रोने की अवस्था। “कंजूसी,” कंजूसी पाँच प्रकार की होती है: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। लालसा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है, ...। “मैं धारण करता हूँ,” आत्म-धारणा दो प्रकार की होती है, ...। वे अपनी वस्तुओं को देखकर दुखी होते हैं और चोरी होने से डरते हैं, ...। वे अपनी वस्तुओं को देखकर शोक मनाते हैं, ...। वे चीजों की रक्षा करते हैं, उन्हें सुरक्षित रखते हैं, उन्हें अपने पास रखते हैं, उनका सम्मान करते हैं और जब वे चीजों को अपना समझते हैं तो कंजूस हो जाते हैं। वे अपनी चीजों के साथ किए जाने के दुख को नहीं छोड़ते, वे लालच को नहीं छोड़ते, उन्हें अलग नहीं करते, उन्हें भगाते नहीं, उन्हें समाप्त नहीं करते, उन्हें अस्तित्वहीन नहीं बनाते।

इसलिए, हे मुनि, शांतिप्रिय द्रष्टा, वे सब कुछ त्याग कर चलते हैं”: “इसलिए,” इसलिए; ..., तुम्हें इच्छाओं पर यह पीड़ा देखनी चाहिए। इसी कारण। “मुनि,” मुनि को ज्ञान कहा जाता है...। “स्वामित्व” के दो प्रकार के अधिकार हैं: ...। देखी गई सभी चीजों को त्यागने के बाद; त्यागने के बाद, छोड़ने के बाद, भगाने के बाद, अंत करने के बाद; चलना, ठहरना, कार्य करना, आगे बढ़ना, रक्षा करना, जीवित रहना। द्रष्टा, स्थिर द्रष्टा, आश्रय में द्रष्टा, शरण में द्रष्टा, वापसी में द्रष्टा, भय रहित द्रष्टा, मृत्यु रहित द्रष्टा, अमरता वाले द्रष्टा, निर्वाण के द्रष्टा।

45 · जब भिक्षु दूर चले जाते हैं और दूर स्थित आसन के निकट होते हैं, तो वे कहते हैं कि उनके लिए यह उचित है कि वे अपने निवास को किसी को दिखाई न दें।

“जब कोई भिक्षु विमुख हो जाता है”: जो विमुख हो जाते हैं उन्हें सात प्रकार के ज्ञान कहा जाता है, और अरहंत वह है जो विमुख हो जाता है। विमुख होने वालों को सात प्रकार के ज्ञान क्यों कहा जाता है? यहाँ-वहाँ से जो विमुख हैं, जो बचते हैं, जो अवरोधक हैं, जो दमनकारी हैं, जो संयमी हैं, जो रक्षक हैं, जो संरक्षक हैं, वे चलते हैं, जीते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं और जीवित रहते हैं: आँख (द्वार) में, जो दूर रहते हैं, बचते हैं, ...; (कान के द्वार में...;) नाक के द्वार में...; जीभ के द्वार में...; शरीर के द्वार में...। वे चलते हैं, जीते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं और जीवित रहते हैं, जैसे मुर्गी के पंख या नसें आग में फेंक दी जाती हैं, तो वे दूर रहती हैं (पीछे हट जाती हैं), बचती हैं, उलट जाती हैं और खिंचती नहीं हैं [AN.7.49]। इसी प्रकार, इधर-उधर से, जो दूर हैं, जो टालमटोल करते हैं, वे चलते हैं, और जीवित रहते हैं: आँख के द्वार में..., कान के द्वार में..., नाक में..., जीभ में, शरीर में; हृदय दूर है, टालमटोल किया गया है, वे चलते हैं, और जीवित रहते हैं, रक्षक, संरक्षक, वे चलते हैं, चलते हैं, जीते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं, जीवित रहते हैं, जीवित रहते हैं, जैसे मुर्गी के पंख या नसें आग में फेंक दी जाती हैं,...। जो इस कारण से दूर चले जाते हैं, उन्हें सात प्रकार की विद्या कहा जाता है। “भिक्षु होना,” एक विद्वान भिक्षु, या एक गुणी भिक्षु।

“दूर स्थित आसन के निकट होने पर”: जिस स्थान पर वे बैठते हैं, उसे आसन कहते हैं: पलंग, कुर्सी, तकिया, छोटा तकिया, चमड़े का तकिया, घास का तकिया, पत्तों का तकिया, भूसे का तकिया। उस आसन पर अनुचित दृष्टि दूर हो जाती है, अलग हो जाती है और विमुख हो जाती है; अनुचित

ध्वनियों का श्रवण...; गंध...; स्वाद...; स्पर्श...; पाँचों इच्छाएँ त्याग दी जाती हैं, अलग हो जाती हैं और विमुख हो जाती हैं। जो दूर स्थित आसन के निकट होता है, वह निकट होता है, पूर्णतः निकट होता है, आज्ञाकारी होता है, आज्ञा मानने के लिए तत्पर होता है, पूर्णतः आज्ञाकारी होता है और आज्ञाकारिता की ओर अग्रसर होता है।

"उन्होंने कहा कि यह उनके लिए उचित था: वे अपने निवास को प्रकट नहीं होने देते थे": "उचित" तीन प्रकार का उचित होता है: समूह के लिए उचित, धम्म के लिए उचित और पुनर्जन्महीनता के लिए उचित। समूहों के लिए क्या उचित है? यदि अनेक भिक्षु एक-दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण, प्रसन्न, विवादरहित और सद्भाव में रहते हैं, तो वे एक साथ रहते हैं और एक-दूसरे को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हैं। यह समूह के लिए उचित है। धम्म के लिए क्या उचित है? चार चेतना, चार धर्म, चार दिव्य आधार, पाँच शक्तियाँ, पाँच सामर्थ्य, सात ज्ञान के कारक और पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ; ये सभी एक साथ समाहित होते हैं, स्पष्ट होते हैं, स्थिर होते हैं और मुक्ति प्राप्त करते हैं। धम्म के विषय में कोई वाद-विवाद या तर्क-वितर्क नहीं होता। यह धम्म के लिए उचित है। पुनर्जन्महीनता के लिए क्या उचित है? भले ही अनेक भिक्षु निर्वाण के क्षेत्र में निवास कर रहे हों, निर्वाण को इस कारण अपूर्ण या पूर्ण नहीं माना जाता [एएन.8.19], यह पुनर्जन्महीनता के लिए उचित है। "निवास," जो नरक में गिरते हैं, उनके लिए नरक में ही निवास है; पशु जगत में रहने वालों के लिए पशु जगत में ही निवास है; ...मानव जगत में; ...स्वर्ग जगत में। "वे कहते हैं कि यह उचित है: वह अपने निवास को प्रकट नहीं होने देगा": यह उसके लिए उचित है; यह उपयुक्त है; यह समानुपातिक है; यह संगत है; यह आज्ञाकारी है: गुप्त नरक (उनके निवास) में इस प्रकार का कोई भी व्यक्ति प्रकट नहीं होगा; ...पशु जगत...; ...भूखे प्रेतों का जगत...; मानव जगत...; ...स्वर्ग जगत...। वे ऐसा कहते हैं, ऐसा बोलते हैं, इस तरह बात करते हैं, ऐसा समझाते हैं, ऐसा कहते हैं।

46 · मुनि सभी चीजों में अनासक्त व्यक्ति हैं: न तो आकर्षक चीजें, न ही अनाकर्षक चीजें, उन्हें वैसे ही भाती हैं जैसे पानी पत्तियों को दूषित नहीं करता।

"मुनि हर चीज़ से अनासक्त हैं": हर चीज़ को बारह स्थान कहा जाता है: आँखें और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, मन और धर्म। "मुनि," ... "अनासक्त" की दो प्रकार की निर्भरताएँ होती हैं: लालसा की निर्भरता और देखने की निर्भरता...। मुनि जब प्यासी प्रेम की निर्भरता तोड़ देते हैं, जब मुनि देखने की इच्छा की निर्भरता तोड़ देते हैं, तो वे आँखों पर निर्भर नहीं रहते, कानों पर निर्भर नहीं रहते, ...जीभ पर, ..., शरीर पर, मन पर, रूपों पर, ध्वनियों पर, गंधों पर, स्वादों पर, स्पर्शों पर, धर्मों पर, घर पर, समूह (लोगों के), निवास पर, लाभ पर, प्रसिद्धि पर, प्रशंसा पर, सुख पर, वस्त्रों पर, भोजन पर, निवास पर, रोगी की आवश्यकताओं और चिकित्सा आवश्यकताओं पर, इच्छाओं के संसार पर, ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें); जो लोग इन चीजों का पालन नहीं करते, जो इनसे चिपके नहीं रहते, जो इनमें नहीं पड़ते, जो इन पर ध्यान केंद्रित नहीं करते, जो अपना मन इन चीजों की ओर नहीं मोड़ते, वे पहले ही अलग हो चुके हैं, पहले ही जा चुके हैं, मुक्त हो चुके हैं और बंधनमुक्त हो चुके हैं, वह एक अनियंत्रित हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

"न तो प्यारा और न ही अप्रिय": "प्यारा" दो प्रकार का होता है: सजीव प्राणी या कर्म। प्यारे प्राणी क्या हैं? यहाँ, जो भी माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री, मित्र, सहकर्मी या रिश्तेदार हैं, जो उसे प्रिय हैं, या जो उसका भला करना चाहते हैं, या जो बंधन से दूर रहना चाहते हैं, या रक्त संबंधी (रिश्तेदार) हैं, वे प्यारे प्राणी हैं। आकर्षक व्यवहार क्या हैं? मनभावन रूप, मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद, मनभावन स्पर्श, ये प्यारे व्यवहार हैं। अप्रिय प्राणी दो प्रकार के होते हैं: प्राणी या कर्म। अप्रिय प्राणी क्या हैं? यहाँ, जो उसे प्रिय नहीं हैं, जो उसका भला नहीं करना चाहते, जो स्थिर रहना चाहते हैं, जो उन्हें मारना चाहते हैं, वे अप्रिय प्राणी हैं। अप्रिय व्यवहार क्या हैं? अप्रिय रूप, अप्रिय ध्वनियाँ, अप्रिय गंध, अप्रिय स्वाद, अप्रिय स्पर्श, ये अप्रिय व्यवहार हैं। "न तो सुंदर और न ही अप्रिय": "ये मेरे सुंदर प्राणी हैं; ये वांछनीय कर्म हैं।" लालच के कारण किसी को सुंदर न बनाना। "ये मेरे अप्रिय प्राणी हैं; ये अवांछनीय कर्म हैं।" घृणा के कारण किसी को अप्रिय न बनाना; उसे घटित न होने देना, उसे उत्पन्न न होने देना, उसे जन्म न लेने देना।

"उसके लिए रोना और कंजूसी करना वैसा ही है जैसे पानी पत्तियों को दूषित नहीं करता": "उसके लिए," उस व्यक्ति के लिए, उस अरहंत के लिए जिसके कष्ट समाप्त हो गए हैं। "रोना," रिश्तेदारों के बिछड़ने से दुखी होकर... कंजूसी पाँच प्रकार की होती है:...

"जैसे जल पत्तों को अपवित्र नहीं करता," इसलिए पत्तों को कमल के पत्ते कहा जाता है, और जल (वारी) को जल (उदकम्) कहा जाता है। जैसे कमल के पत्तों पर जल अपवित्र होता है, न अधिक अपवित्र, न अधिक दूषित, न दूषित। यही बात उस व्यक्ति, उस अरहंत पर भी लागू होती है जिसने

अपने कष्टों को समाप्त कर दिया है; रोना और शोक अपवित्र नहीं करते... उस व्यक्ति, उस अरहंत के लिए, ये अपवित्रताएँ अपवित्र नहीं करतीं... वह बंधन से मुक्त हो गया है, मुक्त हो गया है, बंधन से अलग हो गया है, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

47 · कमल के पत्ते पर पानी की बूंद की तरह, लाल कमल (फूल) पर पानी की तरह, इस प्रकार, मुनि देखे, सुने और महसूस किए जाने वाले किसी भी चीज़ में अधिक दूषित नहीं होते।

“कमल के पत्ते पर पानी की एक बूँद की तरह”: पानी की एक बूँद को पानी की बूँद कहा जाता है, और कमल के पत्ते (पोक्खरं) को कमल के पत्ते (पदुमपट्टं) कहा जाता है। यह न तो अत्यधिक दूषित है, और न ही निकट से दूषित है। “जैसे पानी लाल कमल को दूषित नहीं करता”: लाल कमल को लाल कमल कहा जाता है, और पानी (वारी) को पानी (उदकं) कहा जाता है। जैसे पानी लाल कमल को दूषित नहीं करता, वैसे ही यह न तो अत्यधिक दूषित है, न ही निकट से दूषित है, और न ही अब पूरी तरह से दूषित है।

“मुनि इस प्रकार अत्यधिक अपवित्र नहीं होते, अर्थात् जो कुछ आप देखते, सुनते और अनुभव करते हैं”: “इस प्रकार” एक लाक्षणिक व्यवस्था है। “मुनि,” ... “आसंजन,” दो प्रकार के आसंजन होते हैं: ... प्यासी प्रेम की आसक्ति को तोड़ने के बाद, बोध के आसंजन को तोड़ने के बाद, मुनि जो कुछ देखते हैं, ...जो कुछ सुनते हैं, ...जो कुछ महसूस करते हैं, ...ज्ञान में अपवित्र नहीं होते...। उन्होंने छोड़ दिया है..., और एक बंधनमुक्त हृदय से निवास करते हैं।

48 · जो इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं, वे देखी, सुनी और महसूस की गई बातों के बारे में नहीं सोचते, वे अन्य चीजों से शुद्ध नहीं होना चाहते, क्योंकि वे न तो दूषित हैं और न ही अदूषित।

“जो लोग इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं, वे इसके बारे में नहीं सोचते, अर्थात् जो कुछ वे देखते, सुनते और समझते हैं”: “शुद्ध होना,” शुद्धिकरण को ज्ञान कहा जाता है, ... शुद्धिकरण को ज्ञान क्यों कहा जाता है? ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

“जो उस तरह से शुद्ध हो जाते हैं, वे जो देखते, सुनते या महसूस करते हैं, उसके बारे में नहीं सोचते”: शुद्ध व्यक्ति देखने के बारे में नहीं सोचता, जो देखता है उसमें नहीं सोचता, जो देखता है उससे नहीं सोचता, यह नहीं सोचता कि 'जो मैं देखता हूँ वह मेरा है;' सुनने के बारे में नहीं सोचता...; ...महसूस करने के बारे में नहीं सोचता...; ...जानने के बारे में नहीं सोचता... [SN.35.30]। भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! 'मैं हूँ,' यह चिंतन है; 'मैं यह हूँ,' यह चिंतन है; 'मैं रहूँगा,' यह चिंतन है; 'मैं नहीं रहूँगा,' यह चिंतन है; 'मैं सृजित होऊँगा,' यह चिंतन है; 'मैं निराकार होऊँगा,' यह चिंतन है; 'मैं चिंतन करता रहूँगा,' यह चिंतन है; 'मैं चिंतन रहित रहूँगा,' यह चिंतन है; 'मैं चिंतन करता रहूँगा, चिंतन नहीं करूँगा,' यह चिंतन है। भिक्षुओं! चिंतन एक रोग है, चिंतन एक ट्यूमर है, चिंतन एक तीर है, चिंतन एक अभिशाप है। भिक्षुओं! इसलिए, यहाँ, 'हमें चिंतन रहित मन से जीना चाहिए।' भिक्षुओं! आपको यही मार्ग सीखना चाहिए।” [SN.35.248]

“अन्य चीजों से शुद्धि की इच्छा न रखना”: जो व्यक्ति शुद्ध हो जाता है, वह अन्य चीजों की इच्छा नहीं रखता, उन्हें स्वीकार नहीं करता, उनकी आशा नहीं करता और न ही उनके लिए प्रार्थना करता है: अशुद्ध मार्गों, बुरे मार्गों और अस्तित्वहीनता के अतिरिक्त, सभी सचेतनता के अतिरिक्त, सही कर्म के अतिरिक्त, दिव्य आधारों के अतिरिक्त, जड़ों के अतिरिक्त, शक्तियों के अतिरिक्त, ज्ञान के अतिरिक्त, पवित्र मार्ग की आठ शाखाओं के अतिरिक्त, शुद्धता, स्वच्छता और पूर्ण पवित्रता प्राप्त होती है; प्रस्थान, मुक्ति, वैराग्य।

“क्योंकि वह न तो दोषयुक्त है और न ही दोषरहित”: सभी अज्ञानी साधारण लोग दोषयुक्त हैं, अच्छे साधारण लोग, जिनमें सात प्रकार के विद्वान भी शामिल हैं, दोषयुक्त हैं, और अरहंत न तो दोषयुक्त है और न ही दोषरहित: वह लोभ के निवारण से लोभ से मुक्ति की अवस्था में, क्रोध के निवारण से घृणा से मुक्ति की अवस्था में, भ्रम के निवारण से अज्ञान से मुक्ति की अवस्था में पहुँच जाता है, वह एक ऐसा व्यक्ति है जो बिना पुनर्जन्म के ही इस अवस्था में उतरकर अभ्यास कर चुका है...।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.7

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

7. तिस्सा मेत्तेय्या

49 · [इस प्रकार, पूज्य तिस्सा मेत्तैया:] हे महोदय, जो लोग कामवासना में लिप्त हैं! कृपया हमें कष्टों के बारे में बताइए। आपके उपदेश सुनकर हम उनसे दूर रहकर सीख लेंगे।

"कामवासना में लिप्त व्यक्ति": जो कोई भी न्याय नहीं करता, अभद्र धर्म, मैला धर्म, अश्लीलता, जल में स्नान, गुप्त संबंध, एकांतवास आदि में लिप्त है, वह कामवासना का धर्म है। [AN.7.50] इसे कामवासना का धर्म क्यों कहा जाता है? यह दो लालची, इच्छा और लोभ से भरे, व्यथित, हृदय से व्याकुल और एक ही स्थिति में पाए जाने वाले व्यक्तियों से संबंधित है। इसीलिए इसे कामवासना का धर्म कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि दो झगड़ालू हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो वाद-विवाद करने वाले हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो चर्चा करने वाले हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो वाद-विवाद करने वाले हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो पैरोकार हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो वक्ता हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है; यदि दो वार्ताकार हों, तो उन्हें "व्यभिचारी" कहा जाता है। इसी प्रकार, यह दो लालची, इच्छा और लोभ से भरे, उलझे हुए, हृदय व्याकुल दो लोगों से संबंधित है, और दोनों लोग एक ही स्थिति में हैं।

"जो कामवासना में लिप्त रहता है": वह व्यक्ति जो लगाम पहनता है, मजबूत लगाम, वह व्यक्ति जो लगाम का सामना करता है, वह व्यक्ति जो पूरी तरह से लगाम का सामना करता है, वह व्यक्ति जो अभ्यास करता है, वह व्यक्ति जो दोहराता है, वह व्यक्ति जो जोर देता है, वह व्यक्ति जो झुकाव की ओर प्रवृत्त होता है, वह व्यक्ति जो वृद्धि करता है, वह व्यक्ति।

"[इस आदरणीय तिस्सा मेत्तेय्या की तरह]": "इस तरह," ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। "आदरणीय," यह प्रेम, आदर और आज्ञाकारिता की भाषा है, जो "आदरणीय" है। "तिस्सा," नाम, उपाधि, सुरक्षा, ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। "मेत्तेय्या," बैठे हुए व्यक्ति का उपनाम, नाम, उपाधि, सुरक्षा और सामान्य नाम। (कुछ अनुवाद तिस्सा और मेत्तेय्या को दो अलग-अलग व्यक्तियों के नाम मानते हैं, लेकिन यह स्पष्ट रूप से गलत है; जैसा कि यहां बताया गया है, तिस्सा उनका व्यक्तिगत नाम है, और मेत्तेय्या उनका उपनाम है। यह तिस्सा मेत्तेय्या संभवतः वही व्यक्ति नहीं है जिसका उल्लेख सुदूर तट के मार्ग खंड के दूसरे सूत्र में है।)

"महोदय! कृपया कष्ट के बारे में बताइए": "कष्ट," झुंझलाहट, चोट, उत्पीड़न, आघात, हानि, आपदा। कृपया कहिए, कृपया समझाइए, कृपया सिखाइए, कृपया सूचित कीजिए, कृपया स्थापित कीजिए, कृपया उजागर कीजिए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए। "महोदय," "यह प्रेम की भाषा है, सम्मान की भाषा है, आज्ञाकारी भाषा है और विनम्रता की भाषा है।"

"आपके उपदेश सुनने के बाद": "आपकी वाणी, भाषा, शिक्षाएँ, नसीहतें, सुनने के बाद, समझने के बाद, बोध करने के बाद।"

"हम एकांतवास (एकांतवास) से सीखेंगे": "एकांतवास" के तीन प्रकार हैं: शरीर से एकांतवास, मन से एकांतवास और निष्ठा से एकांतवास। शारीरिक एकांतवास क्या है? यहाँ भिक्षु एकांतवास के निकट है: वन, वृक्ष, पर्वत, गुफाएँ, श्मशान, जंगल, खुले मैदान, भूसे के ढेर। शरीर से एकांतवास में वह अकेला चलता है, अकेला खड़ा होता है, अकेला बैठता है, अकेला लेटता है, भिक्षा मांगने के लिए अकेले गाँव जाता है, अकेले लौटता है, शांत स्थान पर अकेले बैठता है, अकेले साधना करता है, चलता है, ठहरता है, कर्म करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है, जीवन यापन करता है और अकेले रहता है। यही शारीरिक एकांतवास है।

मन को क्या दूर रख रहा है? प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन आवरणों से दूर हो जाता है, द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन तर्क और चिंतन से दूर हो जाता है, तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन आनंद से दूर हो जाता है, और चतुर्थ ध्यान अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन सुख और दुख से विरक्त हो जाता है; असीम शून्य (प्रथम/अमूर्त) अवस्था में प्रवेश करने वाले

व्यक्ति का मन विचारों से दूर रहने और सभी प्रकार की इच्छाओं से दूर रहने का विचार कर लेता है, चेतना की असीमता (छठी) अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन असीम शून्य से दूर रहने की इच्छा रखता है, शून्यता (सातवीं) अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का मन चेतना की असीमता से दूर रहने का विचार रखता है; (और न-बोध-न-अबोध अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति का) मन विचारों से रहित होता है, और शून्यता से दूर रहना चाहता है।

सोतापन्न व्यक्ति का मन दृश्य, संशय, निषेध, अपवित्रता की संभावित प्रवृत्ति, संदेह और अपवित्रता की संभावित प्रवृत्ति को देखने से बदलकर अस्तित्व के प्रदूषण से दूर हो जाता है। सकदागामी का हृदय कठोर इच्छा और लोभ के बंध, घृणा के बंध, कठोर इच्छा, लोभ और कष्ट की सुप्त प्रवृत्ति, घृणा और कष्ट की संभावित प्रवृत्ति और अस्तित्व के प्रदूषण से बदल जाता है। इच्छा, लोभ और घृणा की शेष बंध, इच्छा, लोभ, घृणा की शेष संभावित प्रवृत्तियों और उनसे विद्यमान प्रदूषण से अरहंत का हृदय निर्मित लोभ, निराकार लोभ, अहंकार, घृणा, अज्ञान और अहंकार से संबंधित कष्टों की सुप्त प्रवृत्ति, लोभ और अपवित्रता की सुप्त प्रवृत्ति और उनसे विद्यमान प्रदूषण से दूर हो जाता है।

आसक्ति का अर्थ क्या है? ज्ञात को अशुद्धियों, विभिन्न स्कंदनों और विभिन्न कर्मों के रूप में मानना; दूरी पर निर्भर रहना निर्जीवता कहलाता है, निर्वाण, अर्थात् समस्त कर्मों का अंत, समस्त निर्भरता का अंत, भोग-विलास का अंत, और निर्वाण, यही दूर रहना है। शरीर से दूर रहना इच्छाओं से दूर रहना है; मन से दूर रहना शुद्धता का अर्थ है, सर्वोच्च पवित्रता को प्राप्त करना; आसक्ति से दूर रहना अनासक्त व्यक्ति का अर्थ है, जो संसार को त्यागने आता है। “हम दूर से सीखेंगे”: जो यहाँ है वह पहले से ही सीखने वाला है। इसके अतिरिक्त, यह धम्म की शिक्षा सुनने वालों द्वारा कहा जाता है।

50 · [धन्य पुरुष: “मत्तेय्या!”] जो लोग कामवासना में लिप्त होते हैं, यहाँ तक कि नियमों को भी भूल जाते हैं, उन्होंने गलत काम किया, उनके लिए यह अपवित्र है।

“कामना में लिप्त व्यक्ति”: ....

“जो कामवासना में लिप्त रहता है”: ....

“मत्तेय्या”: भगवान बुद्ध गद्दी पर बैठने वाले व्यक्ति को उनके उपनाम से पुकारते हैं। “भगवान बुद्ध” आदर का पर्यायवाची है। इसके अतिरिक्त, “लालच का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “दुष्टता का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “अज्ञान का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “अहंकार का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “दृष्टि का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “कांटों का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “अशुद्धियों का नाश करने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “समाप्त हो जाने वाला” भगवान बुद्ध हैं; “शरीर, उपदेश, मन और बुद्धि का अभ्यास करने वाला” भगवान बुद्ध हैं। या फिर, "भगवान जंगलों, वनों और सीमावर्ती आवासों (बैठने के स्थानों) के निकट हैं: शांत, निर्मल, मानवीय वातावरण से दूर, जो अकेले रहते हैं और अकेले बैठने के लिए उपयुक्त हैं" वे भगवान हैं; या फिर, भगवान वे हैं जो वस्त्र, भोजन, आश्रय, बीमारों की जरूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं को बांटते हैं; या फिर, "भगवान वे हैं जिन्हें धर्म का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद, उपदेश, मन और ज्ञान का स्वाद प्राप्त है" वे विश्व भगवान हैं। या “परमेश्वर चार प्रकार के ध्यान, चार असीम गुणों, चार निराकारताओं आदि से युक्त हैं; या “परमेश्वर आठ मोक्षों, आठ विजय स्थलों और नौवें निवास स्थल आदि में सहभागी हैं; जो शुद्ध रूप से विभाजित हैं, वही परमेश्वर हैं; या “परमेश्वर चार चेतना, चार धर्म, चार आधार, पाँच मूल, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक और पवित्र मार्ग की आठ शाखाओं को विभाजित करने वाले हैं।” परमेश्वर दस तथागत शक्ति, चार निर्भीकता, चार अबाधित समाधान, छह जादुई शक्तियाँ और छह ज्ञान विधियाँ रखने वाले हैं।” परमेश्वर ही परमेश्वर हैं। “परमेश्वर,” यह नाम न तो माता ने दिया है; न पिता ने; न भाइयों ने; न बहनों ने; न मित्रों ने; न रिश्तेदारों ने; न तो समणों द्वारा, न ब्राह्मणों द्वारा; न ही स्वर्ग द्वारा। यही परम मुक्ति है; बुद्ध को, जो विश्व पूज्य हैं, और बोधि वृक्ष के नीचे, अपने समस्त ज्ञान, बुद्धि और साक्षी के साथ, अर्थात् भगवान बुद्ध को।

“यद्यपि भूल जाना”: दो प्रकार से आज्ञाओं को भूल जाना: शिक्षाओं की आज्ञाओं को भूलना और मार्ग की आज्ञाओं को भूलना। विद्वान आज्ञा क्या है? जिनके पास सूत्र, गेय्या, वेय्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूत धम्म, वेदल्ल हैं, उनके लिए यही विद्वान आज्ञा है। वह भूल जाता है, पूरी तरह भूल जाता है, जबरदस्ती भूल जाता है, और पराये बन जाता है।

मार्ग के नियम क्या हैं? सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, अविचलित मार्ग, मार्ग का अर्थ, वह मार्ग जिसमें धम्म का अनुसरण किया जाता है, नियमों की पूर्णता, मूलों का रक्षक, उचित मात्रा में भोजन, संयमित अभ्यास, सजगता और सही ज्ञान, चार प्रकार की सजगता, चार प्रकार के धर्म, चार आध्यात्मिक आधार (इद्धिपाद), पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक, पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ - यही मार्ग के नियम हैं। जो व्यक्ति भूल जाता है, पूरी तरह भूल जाता है, दृढ़ता से भूल जाता है, और पूरी तरह से दृढ़ता से भूल जाता है, वह पराभिक हो जाता है।

“गलत कार्य करना”: हत्या करना, बिना कुछ दिए लेना, लोगों के घरों में घुसना, लूटपाट करना, सड़कें अवरुद्ध करना, चोरी करना, पत्नियों का अपहरण करना, झूठ बोलना।

“उसके लिए यह अपवित्र है”: उस व्यक्ति के लिए यह अपवित्र, मूर्खतापूर्ण, अज्ञानी, छलपूर्ण धर्म है, अर्थात्: बुराई का मार्ग है।

51 · पहले अकेले चलने के बाद, जो कोई भी कामवासना में लिप्त होता है, वह संसार में भटकी हुई गाड़ी के समान है; वे कहते हैं कि वह एक बुरा, साधारण आदमी है।

“पूर्व में एकाकी मार्ग पर चलने के बाद”: दो प्रकार से एकाकी मार्ग पर चलने के बाद: भिक्षु के रूप में या जनसमूह का त्याग करके। एक भिक्षु के रूप में एकाकी मार्ग कैसे अपनाया जाता है? घर के सभी बंधनों को तोड़कर, बच्चों और पत्नियों के बंधनों को तोड़कर, रिश्तेदारों के बंधनों को तोड़कर, मित्रों के बंधनों को तोड़कर, भंडारण के बंधनों को तोड़कर, बाल और दाढ़ी काटकर, वस्त्र धारण करके, घर छोड़कर एक गैर-गृहस्थ (सन्यासी) जीवन में प्रवेश करके, एकाकी मार्ग पर चलना चाहिए, जीना चाहिए, कर्म करना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, रक्षा करनी चाहिए और जीवित रहना चाहिए, शून्यता की अवस्था में प्रवेश करने के बाद। इस प्रकार, एक भिक्षु बनने के लिए एकाकी मार्ग पर चलना चाहिए।

भीड़ को त्यागकर अकेले चलना कैसे संभव है? जब वे इस प्रकार भिक्षु बने, तो वे जंगलों में, घने वनों में अकेले थे...; वे अकेले चलते थे, अकेले खड़े रहते थे...; यही भीड़ को त्यागकर अकेले चलना है।

“जो भी कामवासना में लिप्त होता है”: जो भी सही मार्ग पर नहीं है... (अस्पष्ट)..., इसी कारण उसे कामवासना का धर्म कहा जाता है। “जो भी कामवासना में लिप्त होता है”: जो भी बुद्ध, धर्म, संघ का त्याग करके, शिक्षा प्राप्त करके सांसारिक जीवन में लौटता है, कामवासना में लिप्त होता है, कामवासना की ओर मुड़ता है, पूरी तरह से उसमें लिप्त होता है और कामवासना में लिप्त होने की ओर अग्रसर होता है।

“वह संसार में भटकती हुई बैलगाड़ी के समान है”: “बैलगाड़ी,” भटकती हुई, बिना चालक वाली, बिना बनी, बिना प्रशिक्षित हाथी गाड़ी, घोड़ा गाड़ी, बैलगाड़ी, बकरी गाड़ी, मेढ़े की गाड़ी, ऊंट गाड़ी, गधे की गाड़ी; यह एक तरफा रास्ता लेती है, ऊबड़-खाबड़ घास और चट्टानों पर चढ़ती है, बंधी हुई गाड़ियों और सवारी को तोड़ देती है, और चट्टान से गिर जाती है। जैसे भटकती हुई, अनियंत्रित, बिना चालक वाली और बिना प्रशिक्षित बैलगाड़ी तरफा रास्ता लेती है। उसी प्रकार, अशिष्ट व्यक्ति, भटकती हुई बैलगाड़ी की तरह, तरफा रास्ता (बुरा रास्ता) लेता है और बुरी दृष्टि रखता है... (अंतःखंडित) बुरी सोच रखता है। भटकती हुई, बेढंगी, बिना चालक वाली, बिना प्रशिक्षित सवारी ऊबड़-खाबड़ घास और चट्टानों पर चढ़ गई। इसी प्रकार, अशिष्ट व्यक्ति असंतुलित शारीरिक कर्मों पर सवार होकर, अनुचित भाषा कर्मों, अनुचित मानसिक कर्मों, अनुचित हत्या, बिना दिए अपूर्ण रूप से लेने, अनुचित व्यभिचार, अनुचित धोखाधड़ी, अनियमितताओं, अनियमितताओं की अशिष्ट और बुरी भाषा, अनियमितताओं की अपमानजनक भाषा, अनियमितताओं के लोभ, अनियमितताओं की द्वेष भावना, अनियमितताओं के बुरे विचारों और अनियमितताओं की विभिन्न वस्तुओं पर सवार होकर, असंतुलितता की पाँच इच्छाओं पर चढ़ता है और असंतुलितता के आवरणों पर चढ़ता है। जैसे भटकी हुई, बिना चालक वाली, बिना बनी, बिना प्रशिक्षित सवारी सवार सवारी को नष्ट कर देती है, वैसे ही सांसारिक जगत में लौटने वाला व्यक्ति भटकी हुई गाड़ी के समान था। उसने स्वयं को नरक में, पशु जगत में, प्रेतलोक में, मनुष्य जगत में और स्वर्गलोक में नष्ट कर दिया। जैसे कोई बेतरतीब, बेसुरी, बेढंगी, अप्रशिक्षित कार खाई में गिर जाती है, ठीक वैसे ही एक अशिष्ट व्यक्ति जीवन की खाई में, बुढ़ापे की खाई में, बीमारी की खाई में, मृत्यु की खाई में, दुःख और निराशा की खाई में गिर जाता है। “संसार में,” दुःख के संसार में, मानवता के संसार में।

“वे कहते हैं: निम्न साधारण मनुष्य”: “साधारण मनुष्य,” साधारण मनुष्य का क्या अर्थ है? “वे बहुत प्रदूषण फैलाते हैं।” साधारण लोगों के लिए; “बहुत से लोग जो दूर नहीं हुए” साधारण लोग हैं; “जो अनेक स्वामियों के चेहरे देखते हैं” साधारण लोग हैं; “जो अनेक स्वार्थों से बाहर नहीं निकले” साधारण लोग हैं; “उन्होंने अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाईं।” साधारण लोगों के लिए; “वे अनेक प्रकार की उग्र धाराओं में बह गए।” साधारण लोगों के लिए; “वे अनेक प्रकार की यातनाओं से व्याकुल हुए।” साधारण लोगों के लिए; “वे अनेक प्रकार की ऊष्मा से झुलस गए।” साधारण लोगों के लिए; “लालची, व्याकुल, आसक्त, ग्रस्त, दूषित, आसक्त, स्थिर और अनेक पाँच इच्छाओं में अवरुद्ध” साधारण है; “अनेक प्रकार की इच्छाओं से आच्छादित, अवरुद्ध, बंद, ढका हुआ।” साधारण लोगों के लिए। “वे कहते हैं: निम्न दर्जे के साधारण लोग”: वे ऐसा कहते हैं, ऐसा बोलते हैं, ऐसा बात करते हैं, ऐसा समझाते हैं, कहते हैं: निम्न दर्जे के, नीच, घटिया, तुच्छ, महत्वहीन साधारण लोग।

52 · चाहे उसका पिछला गौरव और प्रतिष्ठा कुछ भी हो, वह भले ही त्याग दी जाए, इसे देखकर उसे सीख लेनी चाहिए और अपनी वासना को त्याग देना चाहिए।

“पिछली महिमा और प्रशंसा, यहाँ तक कि वह त्याग भी सकता है”: महिमा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोगों को (उनके पूर्व समण रूप में) वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतों के साथ सम्मानित, आदरित और पूजनीय बनाया जाता है; यही महिमा है। प्रशंसा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग अपने पूर्व समण रूप में प्रशंसा करने आए थे। वे बुद्धिमान, विद्वान, श्रोता और वाक्पटु हैं, वे तर्कों का बचाव करने में निपुण और कुशल हैं: "मंत्रोच्चार करने वाला (शिक्षक)," या "वकील," या "वक्ता," या "जंगल में रहने वाला," या "भिखारी," या "गोबर साफ करने वाला," या "तीन वस्त्र धारण करने वाला," या "दूसरा भिखारी," या "खाने के बाद न खाने वाला," या "आमतौर पर बैठने वाला (लेटने वाला नहीं)," या "कहीं भी रहने वाला," या "प्रथम ध्यान प्राप्त करने वाला," या "द्वितीय ध्यान प्राप्त करने वाला," या "तृतीय ध्यान प्राप्त करने वाला," या "चौथे ध्यान प्राप्त करने वाला," या "असीम शून्य प्राप्त करने वाला," या "असीम चेतना प्राप्त करने वाला," या "शून्यता प्राप्त करने वाला," या "शून्यता में निवास न करने वाला (न तो बोध और न ही अबोध)," यह प्रशंसा है।

“हो सकता है कि उसका त्याग भी हो जाए।” कुछ समय बाद, जब उसने बुद्ध, धम्म, संघ, विद्या का त्याग कर अपवित्रता की ओर लौट आया, तो उसकी वह महिमा और वह प्रतिष्ठा क्षीण हो गई, क्षीण हो गई, खो गई, लुप्त हो गई और चकनाचूर हो गई।

“इसे देखकर उसे सीखना चाहिए, उसे अपनी वासना का त्याग करना चाहिए”: “यह,” पूर्व में समण के रूप में प्राप्त यश और प्रशंसा; बाद में, जब उसने बुद्ध, धम्म, संघ का त्याग कर ज्ञान प्राप्त किया और सांसारिक जीवन में लौट आया, तो न यश है, न प्रतिष्ठा, यही असफलता है। “इसे देखकर,” ...“उसे सीखना चाहिए।” तीन प्रकार की शिक्षाएँ हैं: उपदेशों का ज्ञान बढ़ाना, मन का ज्ञान बढ़ाना और बुद्धि का ज्ञान बढ़ाना। उपदेशों का ज्ञान बढ़ाना क्या है? ...(अस्पष्ट भाग देखें)।

बुद्धि को बढ़ाने का क्या अर्थ है?...

ज्ञान को बढ़ाने का क्या अर्थ है? ... जो कोई भी धम्म के अनुसार कार्य नहीं कर रहा है... (उद्धृत) उसे कामवासना का धम्म कहा जाता है..., इसीलिए इसे कामवासना का धम्म कहा जाता है।

“इसे देखकर उसे सीखना चाहिए, उसे कामवासना का त्याग करना चाहिए।” कामवासना के त्याग, शांत होने, रुकने और समाप्त होने के लिए उसे उपदेशों को बढ़ाना सीखना चाहिए, उसे मन को बढ़ाना सीखना चाहिए और उसे बुद्धि को बढ़ाना सीखना चाहिए। इन तीनों बातों का अध्ययन तब करना चाहिए जब वह किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा हो; जब वह जानता हो; जब वह देखता हो; जब वह आत्मनिरीक्षण कर रहा हो; जब वह हृदय से दृढ़ होकर निर्णय ले रहा हो; जब वह विश्वास के साथ निर्णय ले रहा हो; जब वह ऊर्जावान हो; जब वह सचेत हो; जब वह मन की एकाग्रता उत्पन्न हो; जब वह बुद्धि से जानता हो; जब वह जो जानना चाहिए उसे जान चुका हो; जब वह त्याग कर रहा हो; जब वह अभ्यास कर रहा हो; जब वह गवाही दे रहा हो जो गवाही देनी चाहिए [भजन संहिता 1:41], उसे अभ्यास करना चाहिए, अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए और स्वीकार करने के बाद आगे बढ़ना चाहिए।

53 · वह अपने इरादे से पराजित हो गया, एक दयनीय व्यक्ति की तरह सोचते हुए, दूसरों से यह निंदा सुनकर, ऐसे लोग शर्मिंदा हो जाते हैं।

“वह अपने इरादे से पराजित हो गया, और उसने एक दयनीय व्यक्ति की तरह सोचा”: इच्छा करने का इरादा, द्वेषपूर्ण इरादा, हानि पहुँचाने का इरादा, देखने, छूने, यातना देने, जोड़ने, अधिकार करने, ढकने का इरादा; उसने सोचा, दृढ़ता से सोचा, हर तरह के विचारों से सोचा, वहाँ से जाने के बाद, एक दयनीय व्यक्ति की तरह, एक सुस्त व्यक्ति की तरह, एक अत्यंत मूर्ख व्यक्ति की तरह। जैसे कोई उल्लू डाल पर चूहे की तलाश में बैठा हो और वहाँ से जाने के बाद तरह-तरह के विचारों से सोच रहा हो; जैसे कोई सियार नदी के किनारे मछली की तलाश में हो, ...; जैसे कोई बिल्ली दरारों, नालियों, कूड़े के ढेरों में चूहों की तलाश में हो, ...; जैसे कोई गधा गली में, नाली में, कूड़े के ढेर में बोझ से मुक्त हो गया हो, ... [MN.50]; उसी प्रकार, सांसारिक जीवन में लौटने वाले व्यक्ति का इरादा इच्छा करना, द्वेषपूर्ण इरादा, हानि पहुँचाने का इरादा, देखने, छूने, यातना देने, जोड़ने, अधिकार करने और ढकने का था। वह सोचता है, गहराई से सोचता है, हर तरह के विचारों का इस्तेमाल करता है, और वहां से निकलने के बाद, वह एक दुखी व्यक्ति की तरह, एक सुस्त व्यक्ति की तरह, एक बेहद मूर्ख व्यक्ति की तरह सोचता है।

“दूसरों से यह निंदा सुनकर, ऐसे लोग लज्जित हो जाते हैं”: “दूसरों,” जैसे माता-पिता, शिक्षक, या शिक्षक के समकक्ष, या मित्र, या परिचित, या करीबी व्यक्ति, या सहकर्मी: “भिक्षुओं! जब आप ऐसे महान गुरु को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे सुशिक्षित धम्म में भिक्षु बन जाते हैं, और ऐसे पवित्र समूह में शामिल हो जाते हैं, तो बुरे कामवासना वाले धम्म, बुद्ध, धम्म, संघ का त्याग करके, और शिक्षा प्राप्त करने के बाद, सांसारिक जीवन में लौटना आपके लिए लाभ नहीं है; बल्कि यह आपके लिए बुरा लाभ है। वास्तव में, अच्छे धम्म में आपमें कोई विश्वास नहीं है, अच्छे धम्म में आपमें कोई लज्जा नहीं है, वास्तव में अच्छे धम्म में आपमें कोई शक्ति नहीं है, वास्तव में अच्छे धम्म में आपका कोई विचार नहीं है, और वास्तव में अच्छे धम्म में आपमें कोई ज्ञान नहीं है।” [AN.5.5] वह उनके शब्दों, बोलने के तरीकों, शिक्षाओं और नसीहतों को सुनेगा, समझेगा, भेद करेगा और लज्जित, पीड़ित, आहत और व्याकुल हो जाएगा, और चिंता की स्थिति में आ जाएगा। “उस तरह के व्यक्ति की तरह”: उस तरह का, उस तरह के निवास से संबंधित, उस तरह की चीज, उस तरह का, जो अशिष्टता में लौट आया है।

54 · वह फिर से तलवारें (रक्षात्मक हथियार) बनाता है, जब दूसरों के शब्दों से उकसाया (निंदा किया) जाता है, यह वास्तव में एक बड़ी गुफा है, वह झूठ में कूद जाता है।

“वह दूसरों के शब्दों से प्रेरित होकर फिर से तलवारें बनाता है”: “फिर से,” वाक्य का आगे का भाग; ... “तलवारें (चाकू),” तीन प्रकार के चाकू होते हैं: देहधारी चाकू, वाणीधारी चाकू और अभिकल्पनाधारी चाकू; देहधारी कर्मों के तीन चाकू, वाणीधारी कर्मों के चार चाकू और अभिकल्पनाधारी कर्मों के तीन चाकू। “जब दूसरों द्वारा प्रेरित किया जाता है,” जब किसी अभिभावक, गुरु या शिक्षक द्वारा प्रेरित किया जाता है, ..., तो वह जानबूझकर व्यर्थ कहता है। वह कहता है, “हे महान गुण! मैं एक आनंदित भिक्षु हूँ, (पर) मुझे अपनी माता का सहारा बनना चाहिए, इसलिए मैं सांसारिक जीवन में लौट आया।” वह कहता है: “मुझे अपने पिता का सहारा बनना चाहिए...।” वह कहता है, “...मुझे अपने भाई का पालन-पोषण करना चाहिए, ...मुझे बहनों का पालन-पोषण करना चाहिए..., मुझे अपने बेटे का पालन-पोषण करना चाहिए..., ...मेरी बेटी का..., ...मुझे मित्रों का सहारा बनना चाहिए..., ...सहकर्मियों का..., ...रिश्तेदारों का..., ...खून के रिश्तों (संबंधियों) का, इसलिए मैं सांसारिक जीवन में लौट आया।” यह एक वाणीधारी चाकू है; वह इसे घटित करता है, इसे उत्पन्न करता है, इसे जन्म देता है।

“यह सचमुच एक बड़ी गुफा होगी”: यह उसकी बड़ी गुफा है, बड़ा जंगल है, बड़ा घना जंगल है, बड़ी खतरनाक सड़क है, बड़ा खतरा है, बड़ा मोड़ है, बड़ा कीचड़ है, बड़ी बाधा है, बड़ा बंधन है, अर्थात्: एक जानबूझकर बोला गया झूठ।

“उसने झूठी बातें बोलनी शुरू कर दीं”: झूठी बातों को झूठ कहा जाता है। यहाँ, एक खास तरह का व्यक्ति मंदिर में, या सभा में, या रिश्तेदारों के पास, या समूह में, या महल में आता है और उसे पूछताछ के लिए गवाह के रूप में लाया जाता है: “आओ, महोदय! कृपया मुझे मार्ग के बारे में जो कुछ भी जानते हो, वह बताएँ।” वह बिना जाने कहता है: “मैं जानता हूँ।” या, यदि वह जानता है, तो वह कहता है: “मैं नहीं जानता।” वह उसे देखे बिना कहता है, “मैं देखता हूँ।” या, जब वह उसे देखता है, तो वह कहता है, “मैंने उसे नहीं देखा।” इस तरह, वह जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या दूसरों के स्वार्थ के लिए, या थोड़े से प्रलोभन के कारण व्यर्थ की बातें बोलता है।

या, तीन व्यवहारों को "झूठ" मानते हुए: बोलने से ठीक पहले (सोचते हुए): "मैं झूठ बोलूँगा।" बोलते समय (सोचते हुए): "मैं झूठ बोल रहा हूँ।" बोलते समय (सोचते हुए): "मैंने झूठ बोल दिया है।" या, चार व्यवहारों को मानते हुए: बोलने से ठीक पहले (सोचते हुए): "मैं झूठ बोलूँगा।" बोलते

समय (सोचते हुए): "मैं झूठ बोल रहा हूँ।" बोलते समय (सोचते हुए): "मैंने झूठ बोल दिया है।" विभिन्न आसक्तियों (त्रुटियों) के मत हैं, और इन चार व्यवहारों को झूठ माना जाता है। या, पाँच रूपों..., छह रूपों..., सात रूपों..., आठ रूपों को झूठ मानते हुए: बोलने से पहले... विभिन्न आसक्तियों के (गलत) मत, विभिन्न आसक्तियों की पसंद, विभिन्न आसक्तियों की प्रवृत्तियाँ, विभिन्न आसक्तियों की इच्छाएँ और विभिन्न आसक्तियों का स्वभाव होता है। इन आठ व्यवहारों को झूठ और झूठे शब्द माना जाता है। "वह झूठे भाषण में कूद पड़ा": वह झूठे भाषण में कूद पड़ा, उसमें गोता लगाया, उसमें प्रवेश किया।

55 · (वह) एक प्रसिद्ध बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में जाना जाता था जो अकेला चलता है, लेकिन जब वह कामुक होता है, तो वह एक सुस्त व्यक्ति की तरह इधर-उधर घसीटा जाता है।

"प्रसिद्ध ज्ञानी व्यक्ति": यहाँ, एक विशेष प्रकार के व्यक्ति ने अपने पूर्व जीवन में एक समण के रूप में प्रसिद्धि और प्रशंसा प्राप्त की: .... इस प्रकार, वह ज्ञात और प्रसिद्ध है।

"एकल यात्री": अकेले यात्रा करने के दो तरीके हैं:...

लेकिन जब वह कामवासना से जुड़ जाता है": जो कोई भी न्याय नहीं कर रहा है... "लेकिन जब वह कामवासना से जुड़ जाता है": कुछ समय बाद, वह बुद्ध, धम्म, संघ को त्याग देता है, ज्ञान प्राप्त करता है और फिर सांसारिक दुनिया में लौट आता है, कामवासना में बंध जाता है...

"जैसे कोई सुस्त व्यक्ति घसीटा जा रहा हो": वह दुखी व्यक्ति एक सुस्त व्यक्ति की तरह है, एक अत्यंत मूर्ख व्यक्ति की तरह जिसे घसीटा जा रहा है, इधर-उधर घसीटा जा रहा है, मुसीबतों में फँसा हुआ है: हत्या करना, बिना दिए लेना, ..., झूठ बोलना, जिसके कारण उसे घसीटा गया, इधर-उधर घसीटा गया और वह मुसीबतों में फँस गया। राजा द्वारा पकड़े जाने के बाद, उसे अनेक दंड दिए गए: कोड़े मारना, डंडे से पीटना, बेंत से पीटना, हाथ, पैर, हाथ और पैर, कान, नाक, कान और नाक काटना, खट्टी दलिया के बर्तन से यातना देना, शंख से गंजा करना, राहु के मुख से यातना देना, अग्नि से यातना देना, मोमबत्ती से हाथ जलाना, भूत-प्रेत भगाना, छाल का आवरण चढ़ाना, हिरण से यातना देना, काँटे से मांस काटना, धन का दंड देना, क्षार से स्नान कराना, दरवाजे की कुंडी मरोड़ना, भूसे पर पैर रखना, गर्म तेल में भिगोना, कुत्ते से कटवाना, जीवित रहते हुए छेद करना, तलवार से सिर काटना, जिसके कारण उसे घसीटा गया, इधर-उधर घसीटा गया और वह मुसीबतों में फँस गया।

या, इच्छा और प्यास से त्रस्त होकर, हृदय उस प्रकार ग्रस्त हो जाता है, जैसे जब कोई जहाज समुद्र में कूदता है, ठंड और गर्मी से, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सांपों के संपर्क से पीड़ित होकर भूख और प्यास से मर जाता है; और चला जाता है (विभिन्न स्थानों का उल्लेख यहां किया गया है, जिनमें तक्षशिला, जावा, तांबपन्नी और कई अज्ञात स्थान शामिल हैं - बी. बोधि भी इस सूची को अपनी टिप्पणी से हटा देते हैं); रेगिस्तान के खतरनाक रास्ते पर चला जाता है; घुटनों के बल उस रास्ते पर चला जाता है जिसे पार किया जा सकता है; वह रास्ता जहां बकरियां चलती हैं; वह रास्ता जिसे केवल खंभों के सहारे ही पार किया जा सकता है; वह रास्ता जिसे केवल पैराशूट पकड़कर ही पार किया जा सकता है; वह रास्ता जिसे केवल बांस की झाड़ी काटकर ही पार किया जा सकता है; पक्षियों के रास्ते पर; चूहों के रास्ते पर; टूटी हुई सड़क पर; लताओं से बने रास्ते पर चला जाता है, जिससे वह घिसटता हुआ, इधर-उधर खींचता हुआ, मुसीबत में पड़ जाता है।

जब वह उसे ढूंढ रहा था, तो उसे वह नहीं मिला और न मिलने के कारण वह परेशान हो गया, इसलिए उसे घसीटा गया, इधर-उधर खींचा गया और वह मुसीबत में पड़ गया।

जब उसने खोज की, तो उसे वह मिल गया, और उसे मिली सुरक्षा के कारण वह व्याकुल हो गया: "चाहे राजा मेरी संपत्ति छीन ले, चोर उसे नहीं ले जा सकेंगे, आग उसे जला नहीं पाएगी, पानी उसे बहा नहीं पाएगा, अवांछित वारिस उसे नहीं ले जा सकेंगे।" जब वह इस प्रकार रक्षा और संरक्षण करता है, तो उसकी संपत्ति नष्ट हो जाती है, वह अलगाव में जड़ जमा लेता है और व्याकुल हो जाता है, इसलिए वह घसीटा जाता है, इधर-उधर खींचा जाता है, और मुसीबत में पड़ जाता है।

56 · मुनि, यहाँ, इस कष्ट को पहले और बाद में जानकर, वह अपने आप पर दृढ़ रहेगा और कामवासना में लिप्त नहीं होगा।

“मुनि, यहाँ, इस पीड़ा को जानने से पहले और बाद में”: “यह,” जब वे समण अवस्था में थे, तब उनकी महिमा और प्रशंसा थी, और जब उन्होंने बुद्ध, धम्म, संघ, विद्या का त्याग कर सांसारिक जीवन में वापसी की, तब उनकी महिमा और प्रशंसा नहीं रही। यह प्राप्ति और हानि। “जानने के बाद,” .... “मुनि,” .... “यहाँ,” इस दृष्टिकोण से संबंधित है, इस प्रेम से संबंधित है, इस प्रवृत्ति से संबंधित है, इस आसक्ति से, इस धम्म से, इस शिक्षाप्रद भाषा से, इन शास्त्रों से, इस गुरु की शिक्षाओं से, इस व्यक्ति से, इस मानव जगत से संबंधित है।

“वह अपने आप में दृढ़ रहेगा”: वह दो तरीकों से दृढ़तापूर्वक एकाकी रहेगा: भिक्षु के रूप में या जन-त्याग में। वह भिक्षु के रूप में दृढ़तापूर्वक ऐसा कैसे कर सकता है? घर की सभी बाधाओं को दूर करके, ..., और जीवित रहकर, वह भिक्षु के रूप में दृढ़तापूर्वक एकाकी मार्ग पर चल सकता है।

वह जनमानस को त्यागकर अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक कैसे चल सकता है? जब वह इस प्रकार का भिक्षु होगा, तो वह वनों में एकाकी रहेगा, और जीवित रहेगा, ताकि वह जनमानस का त्याग करके एकाकी कर्म करने के लिए दृढ़ संकल्पित हो सके। वह दृढ़ और एकाकी रहेगा, वह अच्छे धम्म का दृढ़ धारक होगा; वह प्रतिष्ठा का धारक होगा।

“कामवासना में लिप्त नहीं होगा”: जो कोई न्याय नहीं कर रहा है... वह कामवासना के धम्म के निकट नहीं जाएगा और न ही उसमें लिप्त होगा, उसमें भाग नहीं लेगा, उसका उपयोग नहीं किया जाएगा, वह अभ्यास नहीं करेगा, पूर्ण अभ्यास नहीं करेगा, और अभ्यास जारी रखने के बाद उसे रोका नहीं जाएगा।

57 · उसे दूर रहना सीखना चाहिए, यह सभी पवित्रों में सर्वोच्च है, (पर) उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह इसके कारण सबसे विजयी है, उस एक के सामने जो वास्तव में निर्वाण है।

“उसे दूर रहना सीखना चाहिए”: “दूर रहना,” दूर रहने के तीन प्रकार हैं: .... “उसे सीखना चाहिए।” सीखने के तीन प्रकार हैं: .... “उसे दूर रहना सीखना चाहिए”: उसे सीखना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए, अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए और संतुष्ट होने के बाद दूर चले जाना चाहिए।

“यह सभी संतों में श्रेष्ठ है”: सभी संत बुद्ध कहलाते हैं, बुद्धों के शिष्य और भिक्षु। यह संतों में प्रथम, सबसे विजयी, सर्वोच्च, शीर्ष और सबसे ऊँचा है, अर्थात् कर्मों से दूर रहना।

“(पर) उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह इस वजह से सबसे विजयी है”: दूर होने के कारण उसे भेंट स्वीकार नहीं करनी चाहिए, अहंकारी, घमंडी, जिद्दी और अभिमानी नहीं होना चाहिए; उसे इस वजह से कठोर, अकड़ू और सिर ऊंचा करने वाला व्यक्ति नहीं बनना चाहिए।

“वास्तविक निर्वाण के सामने”: निर्वाण के सामने, निकट, पास, ज्यादा दूर नहीं, उसके करीब।

58 · मुनि, जो खाली हैं, जिनकी इच्छा में कोई अपेक्षा नहीं है, वे अपनी इच्छाओं में बंधे हुए लोग उन लोगों से ईर्ष्या करते हैं जो बाढ़ से बच गए हैं।

“मुनि, जो खाली हैं”: खाली, दूर, पृथक, बुरे कर्मों से रहित, दूर, शरीर से पृथक; शब्दों से बुरे कर्म...; ...इरादे से...; लोभ, घृणा, भ्रम, क्रोध, द्वेष, बुराई छुपाना, प्रभुत्व, ईर्ष्या, कंजूसी, पाखंड, धूर्तता, हठ, जुनून, अहंकार, आत्मसंतुष्टि, आराम (प्रयास की कमी), सभी प्रकार की अशुद्धता, सभी प्रकार की बुराई, सभी प्रकार की परेशानियाँ, सभी प्रकार की झुलसन, सभी प्रकार की गर्मी (यातना); ...सभी अस्वास्थ्यकरताओं से रहित, खाली, दूर और पृथक। “मुनि,” .... “चलते समय” का अर्थ है चलना, ठहरना, कार्य करना, आगे बढ़ना, रक्षा करना और जीवित रहना।

“जिनकी इच्छाओं में कोई अपेक्षा नहीं होती”: “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और अशुद्धता की इच्छा... वस्तुओं की इच्छाओं के ज्ञात होने के बाद, त्यागने के बाद, परित्याग करने के बाद, दूर भगाए जाने के बाद, अंत के बाद, उसे अस्तित्वहीन बनाने के बाद, जब वस्तुओं की इच्छा की अपेक्षा नहीं रहती, तब वह व्यक्ति अपनी इच्छाओं का त्याग करने वाला, अपनी इच्छाओं को समाप्त करने वाला, अपनी इच्छाओं को छोड़ने वाला, अपनी इच्छाओं को त्यागने वाला, अपनी इच्छाओं को समाप्त करने वाला, लोभ का त्याग करने वाला, लोभ को छोड़ने

वाला, लोभ का त्याग करने वाला, लोभहीन होने वाला, भूखा-प्यासा न रहने वाला, शांत होने वाला, प्रसन्न रहने वाला और ब्राह्मण के रूप में स्वयं में जीवन यापन करने वाला बन जाता है।

"इच्छाओं में जकड़े हुए लोग उन लोगों से ईर्ष्या करते हैं जो इस उफान से पार पा चुके हैं": "लोग" सभी प्राणियों का पर्यायवाची है। लोग लालची, लोभी, बंधे हुए, आसक्त, दूषित, अपनी इच्छाओं से जुड़े हुए, स्थिर, अवरुद्ध हैं; वे उन लोगों को चाहते हैं, स्वीकार करते हैं, आशा करते हैं, आकांक्षा रखते हैं और उनके लिए प्रार्थना करते हैं जिन्होंने इच्छाओं के उफान को पार कर लिया है; ...दृष्टि के उफान को पार कर लिया है...; ...अज्ञान के उफान को पार कर लिया है...; जो पार कर चुके हैं, बाहर आ चुके हैं, पार कर चुके हैं, पार कर चुके हैं, विजय प्राप्त कर चुके हैं; जो दूसरे किनारे पर पहुँच चुके हैं; जो दूसरे किनारे पर पहुँच चुके हैं, वे परम (लक्ष्य) तक पहुँच चुके हैं; जो परम तक पहुँच चुके हैं, वे अंत तक पहुँच चुके हैं; ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)...; ...निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।

जैसे ऋणी ऋणमुक्त होने की इच्छा रखता है और ईर्ष्या करता है; जैसे बीमार व्यक्ति रोगमुक्त होने की इच्छा रखता है और ईर्ष्या करता है; जैसे बंधनों में जकड़े हुए व्यक्ति बंधनों से मुक्त होने की इच्छा रखते हैं और ईर्ष्या करते हैं; जैसे दास दासता से मुक्त होने की इच्छा रखता है और ईर्ष्या करता है; जैसे कठिन मार्ग पर चलने वाले लोग स्थिरता को अंतिम लक्ष्य मानकर आशा रखते हैं और ईर्ष्या करते हैं। इसी प्रकार, मनुष्य लालची, लोभी, बंधे हुए, आसक्त, दूषित, आसक्त, स्थिर और अपनी इच्छाओं में अवरुद्ध होते हैं। वे उन लोगों की कामना करते हैं, उन्हें स्वीकार करते हैं, उनसे आशा रखते हैं, उनकी आकांक्षा करते हैं और उनके लिए प्रार्थना करते हैं जिन्होंने इच्छाओं के सैलाब को पार कर लिया है; ...; जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.8

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

8. पसूरा
59 · वे कहते हैं: "यहाँ पवित्रता है।" वे कहते हैं कि अन्य धर्मों में पवित्रता नहीं है। जब यह घोषित किया जाता है कि वहाँ जो कुछ भी विद्यमान है वह पवित्र है, तो सभी अपने-अपने सत्यों में स्थिर हो जाते हैं।

"वे कहते हैं: "यहाँ पवित्रता है": उन्होंने कहा, बताया, बात की, समझाया, कहा: यहाँ शुद्ध है, स्वच्छ है, सर्वत्र शुद्ध है; वैराग्य, मुक्ति, अलगाव, वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, कहते हैं: "संसार शाश्वत है, यही वास्तविक है, और बाकी सब व्यर्थ है।" यह शुद्ध है, स्वच्छ है, और सर्वस्व शुद्ध है...; "संसार अत्यंत स्थायी है"... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

"वे कहते हैं कि अन्य धर्मों में कोई शुद्धि नहीं है": अपने गुरु, धर्म के वर्णन, समूह, दृष्टिकोण, मार्ग और पथ को छोड़कर, वह सभी असहमतिपूर्ण सिद्धांतों को त्याग देता है, जड़ से उखाड़ फेंकता है और घेर लेता है: "वह गुरु सर्वज्ञानी नहीं है, ...(अंशित, पिछले खंड देखें)।" वे ऐसा कहते हैं, ...।

जब यह घोषित किया जाता है कि उन पर निर्भर रहने वाले सभी लोग शुद्ध हैं: "जो कोई भी" गुरुओं के सभी कथनों, धम्म, समूहों आदि पर निर्भर रहता है, उनसे आसक्ति रखता है, उनमें प्रवेश करता है, उनसे बंध जाता है और अपना हृदय उनकी ओर मोड़ लेता है। "वहाँ" अपने स्वयं के विचारों में, अपनी पसंदों में, अपनी प्रवृत्तियों में, अपने स्वयं के मतों में। "जब स्वयं को शुद्ध होने का दावा करता है": शुद्ध वक्ता, सुंदर वक्ता, बुद्धिमान वक्ता, दृढ़ वक्ता, विधि का प्रयोग करने वाला वक्ता, तर्कशील वक्ता, विशिष्ट भविष्यवाणियाँ करने वाला वक्ता, प्रमाणित वक्ता, वह वक्ता जो अपने दावों को संभव बनाता है।

"वे सभी अपने-अपने सत्यों में स्थिर हैं": सभी समण और ब्राह्मण अपने-अपने सत्यों में स्थिर, रुके हुए, अटके हुए, फंसे हुए, दूषित और संसार की ओर उन्मुख हैं। "संसार स्थिर है, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।" (सभी) स्थिर, रुके हुए, अटके हुए हैं...

60 · उन दार्शनिकों के जनता (सभा) में चुपके से घुसने के बाद, उन्होंने एक दूसरे (अपने विरोधियों) को मूर्ख समझा, जो दूसरों (गुरुओं, विचारों आदि) पर निर्भर रहते हैं, वे तर्क देते हैं, (एक) अच्छे प्रशंसक की चाहत रखते हुए, कुशल होने का दावा करते हैं।

“वाक्पटु लोगों के जनसमूह में प्रवेश करने के बाद”: “वाक्पटु लोग,” वे लोग जो वाक्पटु हैं, वे लोग जो सिद्धांत चाहते हैं, वे लोग जो सिद्धांत को महत्व देते हैं, वे लोग जो सिद्धांत की खोज करते हैं। “जनसमूह में प्रवेश करने के बाद,” प्रवेश करें, निवेश करें, गहराई में उतरें और क्षत्रिय जनसमूह, ब्राह्मण जनसमूह, गृहस्थ जनसमूह और समण जनसमूह में प्रवेश करें।

“वे अपने विरोधियों को मूर्ख समझते हैं”: “विरोधी” दो लोग हैं, दो झगड़ालू, दो विवाद करने वाले, दो तर्क करने वाले, दो बचाव करने वाले, दो प्रतिद्वंद्वी, दो बातूनी, वे एक दूसरे को मूर्ख, हीन, नीच, घटिया इरादे वाला, महत्वहीन समझते हैं।

“जो लोग दूसरों पर निर्भर रहते हैं, वे ही तर्क देते हैं”: दूसरे गुरु, धम्म की दूसरी व्याख्याएँ, ..., वे उन्हीं पर टिके रहते हैं, उन्हीं में लीन हो जाते हैं, उन्हीं पर ध्यान केंद्रित करते हैं, उन्हीं की ओर मन लगा लेते हैं। मतों को झगड़े, बहस, असहमति, मतभेद, विवाद या “चर्चा” कहा जाता है; वे झगड़े करते हैं, बहस करते हैं, विवाद करते हैं, असहमति जताते हैं, असहमति जताते हैं, निरर्थक चर्चा करते हैं; वे बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं।

“एक अच्छा प्रशंसक, एक कुशल व्यक्ति होने का दावा करने वाला व्यक्ति”: “एक अच्छा प्रशंसक,” एक ऐसा व्यक्ति जो वास्तव में एक अच्छा प्रशंसक है, एक ऐसा व्यक्ति जो प्रशंसा चाहता है, एक ऐसा व्यक्ति जो सराहना चाहता है, एक ऐसा व्यक्ति जो प्रशंसकों को महत्व देता है, और एक ऐसा व्यक्ति जो हर जगह प्रशंसकों की तलाश करता है। वक्ता, बुद्धिमान वक्ता, दृढ़ वक्ता, ...

61 · जनता में बंधन के बारे में बात करते हुए, प्रशंसक चाहने वाले असफलता से डर जाते हैं, फटकार मिलने पर शर्मिंदा हो जाते हैं, और फटकार मिलने पर दोष खोजने लगते हैं।

“जनता के बीच हार्नेस की चर्चा होती है”: क्षत्रिय समुदाय में, या ब्राह्मण समुदाय में, ...(छोड़ा गया), वे हार्नेस, मजबूत हार्नेस के बारे में बात करते हैं, ...(छोड़ा गया)।

“प्रशंसा पाने की चाह रखने वाले लोग असफलता से डरने लगते हैं”: “प्रशंसा पाने की चाह रखने वाले लोग,” जो प्रशंसा और सम्मान चाहते हैं, उन्हें प्रशंसा, प्रशंसा, आशा, प्रार्थना और याचना करने वालों का सहारा मिल सकता है। “असफलता से डरने लगना,” बातचीत शुरू होने से ठीक पहले संदेह और हार के डर से भर जाता है: “क्या मैं विजेता बन पाऊंगा? क्या मैं निराश हो जाऊंगा? मैं तर्क कैसे दूंगा? मैं खंडन कैसे करूंगा? मैं अंतर कैसे करूंगा? मैं बारीकियों को कैसे समझूंगा? मैं उलझन को कैसे सुलझाऊंगा? मैं विभाजन कैसे करूंगा? मैं एक व्यापक सिद्धांत कैसे बनाऊंगा?” इस तरह, बातचीत शुरू होने से पहले ही वह संदेह और असफलता के डर से भर जाएगा।

“निंदा किए जाने पर लज्जित होना”: न्याय करने वालों, आम जनता, जनसमूह के सदस्यों और प्रश्नकर्ताओं को उन्होंने फटकारा: “जो कहा गया है वह विभाजनकारी सिद्धांत है” उन्होंने विभाजनकारीता के लिए इसकी निंदा की; “अन्यायपूर्ण सिद्धांतों और वाक्यांशों की बात करना” उन्होंने सिद्धांतों और शब्दों से इसका खंडन किया; “वे सिद्धांत और शब्द गलत तरीके से लागू किए गए हैं, वे शब्द गलत तरीके से प्रयोग किए गए हैं, और वे अर्थ और शब्द गलत तरीके से लागू किए गए हैं या गलत जगह पर लगाए गए हैं, वे तर्क स्थापित नहीं हैं, वे खंडन अच्छी तरह से नहीं किए गए हैं, वे भेद स्थापित नहीं हैं, बारीकियों के प्रति वे प्रतिक्रियाएं अच्छी तरह से नहीं की गई हैं, वे उलझनें स्थापित नहीं हैं, जो उलझनें सुलझाते हैं वे अच्छी तरह से नहीं किए गए हैं, और वे विनाश स्थापित नहीं हैं, वे व्यापक सिद्धांत अच्छी तरह से काम नहीं करते हैं, सही और गलत की बात करते हैं, बुराई की बात करते हैं, बुराई की व्याख्या करते हैं, बुराई की बात करते हैं।” वे निंदा करते हैं। “निंदा किए जाने पर लज्जित होना”: फटकार किए जाने पर लज्जित होना; परेशान, नाराज, बीमार और उदास होना।

“डांट पड़ने पर वह क्रोधित हो गया और दोष ढूंढने लगा”: डांट पड़ने पर, फटकार लगने पर, प्रशंसा न मिलने पर, प्रशंसा न मिलने पर, वह क्रोधित, अस्वीकृत, जिद्दी, क्रोधी, अरुचिपूर्ण और असंतुष्ट हो गया। “दोष ढूंढने वाला बन गया,” (विरोधी का) दोष ढूंढने वाला, गलती ढूंढने वाला, लापरवाही ढूंढने वाला, खामी ढूंढने वाला, दोष ढूंढने वाला।

62 · जो कुछ भी अपूर्ण कहा जाता है, न्यायाधीश द्वारा फटकारा जाता है, निम्न स्तर के आलोचक रोते हैं, शोक करते हैं और विलाप करते हैं: "वह (विरोधी) मुझसे आगे निकल गया।"

“वे जो कुछ भी कहते हैं वह अधूरा है”: वे जो कुछ भी कहते हैं वह घटिया, नीच, विकृत, अपूर्ण, अपूर्ण होता है; वे ऐसा कहते हैं, ऐसा बताते हैं... ।”

“न्यायाधीश फटकारते हैं”: जो न्याय करते हैं, जनता, ..., वे फटकारते हैं: ...(छोड़ा गया)।

“निम्न स्तर के आलोचक (टीकाकार, वाद-विवाद करने वाले) रोते और शोक करते हैं”: “रोते हुए,” “मैं दूसरी बातों में उलझ गया था; दूसरी बातों के बारे में सोचता था; दूसरी बातों पर विचार करता था; दूसरी बातों के लिए मेरी आलोचना की जा रही थी, वह बड़ा गुट था, जनता थी, अनुयायियों का बड़ा समूह था, और लोगों का यह समूह एकमत नहीं है, और जनता से जुड़ने के लिए मैं बातचीत को और बाधित करूँगा।” इस तरह के कोई भी शब्द, व्यर्थ शब्द, बड़बड़ाना, शोक करना, चीरना, रोना। “उदासी,” (क्योंकि) “उसकी जीत” पर वह दुखी है; “मेरी हार” पर वह दुखी है; “उसके लाभ” पर वह दुखी है; “मेरी असफलताओं” पर वह दुखी है; “उसकी प्रतिष्ठा” पर वह दुखी है; “मेरी गुमनामी” पर वह दुखी है; “उसकी प्रशंसा” पर वह दुखी है; “मेरी निंदा” पर वह दुखी है; “उसकी खुशी” पर वह दुखी है; “मेरे दुख” पर वह दुखी है; “उसे आदर, प्रशंसा, सम्मान और आदर प्राप्त है, साथ ही वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यक वस्तुएँ भी मिलती हैं। मैं एक अनादरित, निष्फल व्यक्ति हूँ, मुझे वस्त्र, भोजन आदि कुछ भी नहीं मिलता।” वह दुखी, थका हुआ, रोता हुआ और भ्रमित हो गया। “घटिया सिद्धांत (तर्क)”, घटिया सिद्धांत, निम्न सिद्धांत, खराब सिद्धांत, अपूर्ण सिद्धांत।

वह विलाप करता है: “उसने मुझे पीछे छोड़ दिया”: “उसने मुझे सैद्धांतिक रूप से पीछे छोड़ दिया, मुझे पराजित कर दिया, मुझे पार कर लिया, मुझे परास्त कर दिया और मुझ पर विजय प्राप्त कर ली।” या, “सैद्धांतिक रूप से, मुझे हराने, मुझे पराजित करने, मेरा अंत करने और मुझे कुचलने के बाद,” वह चलता है, जीता है, कार्य करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है, अपना अस्तित्व बनाए रखता है और अस्तित्व को बनाए रखता है। विलाप को शब्द, अर्थहीन शब्द, बड़बड़ाहट, बार-बार की जाने वाली फुसफुसाहट, वाचालता और रोना कहा जाता है।

63 · ये विवाद जो समणों के बीच उत्पन्न होते हैं, इनमें (विवादों में) अहंकार और निराशा होती है, इसे देखकर टिप्पणी (बहस) बंद कर देनी चाहिए, क्योंकि प्रशंसा (तारीफ) के सिवा कोई लाभ नहीं है।

“समणों के बीच विवाद हुए”: “समण,” यहाँ से जो भी जुलूस में प्रवेश करता है, वह जुलूस में शामिल हो जाता है। समणों के बीच जो कुछ भी उत्पन्न होता है, जन्म लेता है, घटित होता है, घटित होता है और प्रकट होता है; दृष्टि (दृष्टिकोण) को लेकर झगड़े, दृष्टि (दृष्टिकोण) को लेकर बहस, दृष्टि (दृष्टिकोण) को लेकर विवाद, दृष्टि (दृष्टिकोण) को लेकर असहमति।

“इनमें अभिमान और निराशा शामिल हैं”: विजय, पराजय, लाभ, हानि, प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठाहीनता, निंदा, प्रशंसा, कष्ट, सुख, आनंद, अवसाद, संतुष्टि और असंतुष्टि; प्रिय, घृणित, अभिमानी, अवसादग्रस्त, आज्ञाकारी, विरोधी, जीतने पर अभिमानी, पराजय पर अवसादग्रस्त, प्राप्त करने पर अभिमानी, न प्राप्त करने पर अवसादग्रस्त, प्रसिद्धि से अभिमानी हृदय, प्रतिष्ठाहीन हृदय से निराश हृदय, प्रशंसा से अभिमानी हृदय, निंदा से निराश हृदय, सुख से अभिमानी हृदय, कष्ट से अवसादग्रस्त हृदय, आनंद से अभिमानी हृदय, उदासी में अवसादग्रस्त हृदय, उच्चता और अहंकार में अभिमानी हृदय, और विनम्रता में अवसादग्रस्त हृदय।

“इसे देखने के बाद, आपको इसके बारे में बात करना बंद कर देना चाहिए”: “इसे देखने के बाद,” यह परेशानी: देखने (विचारों) के झगड़े में, देखने के तर्क में, ..., देखने के बाद, तौलने के बाद, ... तर्क-वितर्क को झगड़ा, विवाद, असहमति, मतभेद या “बहस” कहा जाता है। उसे बहस नहीं करनी चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए, झगड़ा नहीं करना चाहिए, वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए, उस अस्वस्थ बातचीत, झगड़े

से बहस नहीं करनी चाहिए..., उसे त्याग देना चाहिए, दूर भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, अस्तित्वहीन कर देना चाहिए। उसे तर्क-वितर्क, झगड़े आदि से अलग हो जाना चाहिए, परहेज करना चाहिए, त्याग देना चाहिए, छोड़ देना चाहिए, प्रस्थान करना चाहिए, मुक्त होना चाहिए, बंधन से मुक्त होना चाहिए, उसे एक स्वतंत्र हृदय से जीना चाहिए।

"क्योंकि प्रशंसा के सिवा कोई और लाभ नहीं है": प्रशंसा के सिवा कोई और लाभ नहीं है: चाहे वह स्वयं के लिए हो, या दूसरों के हितों के लिए, या दोनों के लिए, या जीवन के हितों के लिए, या परलोक के हितों के लिए, या स्पष्ट हितों के लिए, या गहरे हितों के लिए, या छिपे हुए हितों के लिए, या अन्यायपूर्ण हितों के लिए, या न्यायपूर्ण हितों के लिए, या जनता के हितों के लिए, या दोषरहित हितों के लिए, या प्रदूषणरहित हितों के लिए, या स्पष्टता के हितों के लिए, या सर्वोच्च हितों के लिए; वे न तो विद्यमान हैं, न ज्ञात हैं, और न ही खोजे जा सकते हैं।

64 · या जनता के बीच सिद्धांत का प्रचार करने के बाद वहाँ उसकी प्रशंसा की गई, जिसके कारण वह हँसेगा और अहंकारी हो जाएगा, उस लाभ को प्राप्त करने के बाद जिसकी उसने कामना की थी।

"या वहाँ उसकी प्रशंसा की जाती है": "वहाँ," उसके अपने विचारों, उसकी पसंद, उसकी प्रवृत्तियों, उसके मतों के लिए उसकी प्रशंसा, सम्मान, आदर किया जाता है।

"जनता के बीच सिद्धांत का प्रचार करने के बाद": खत्तीय जनता या ब्राह्मण जनता के बीच अपने सिद्धांतों का प्रचार और वर्णन करने के बाद...; विस्तृत सिद्धांत का प्रचार, वर्णन, सुदृढ़ीकरण, विस्तार, व्याख्या, भाषण और उसे समझना।

"इसी कारण वह हँसता है और अभिमानी हो जाता है": वह एक आनंदित, हँसमुख, प्रसन्न, प्रसन्न, पूर्णतः संतुष्ट व्यक्ति बन जाता है, या ऐसा व्यक्ति जो अपने दाँत दिखाता है और उस जीत का आनंद लेते हुए हँसता रहता है। "इसी कारण वह हँसा और अभिमानी हो गया": वह विजयी, घमंडी, विजय का झंडा बुलंद करने वाला और अपनी जीत पर गर्व करने वाला बन गया।

"जिस लाभ की उसने कामना की थी, उसे प्राप्त करने के बाद": लाभ की विजय प्राप्त होने, हासिल होने, प्राप्त होने, अधिकार में आने और प्राप्त होने के बाद। "इच्छा करना," इच्छा करना, मन में इच्छा करना, इरादे में इच्छा करना, चेतना में इच्छा करना।

65 · महामहिम को कष्ट होगा, और वह यह बात घमंड और अहंकार से कहेगा, यह देखकर उसे बहस नहीं करनी चाहिए, क्योंकि कुशल लोग कहते हैं कि इस कारण कोई पवित्रता नहीं है।

"उनकी पीड़ा ही उनका महामहिम होगा": "महामहिम," अहंकार, ऊँचा ध्वज, घमंड। "उनकी पीड़ा का स्थान," अर्थात् उनका कष्ट का आधार (नींव), पीड़ा का आधार, उत्पीड़न का आधार, प्रहार का आधार और बुराई का आधार।

"और वह यह बात घमंड और अहंकार से कहेगा": वह व्यक्ति घमंड और अहंकार से बोलता है।

"इसे देखकर उसे बहस नहीं करनी चाहिए": ("इसे देखकर,") यह परेशानी: देखने के झगड़े में, देखने की बहस में, ...; देखने के बाद, नापने के बाद, ...। "उसे बहस नहीं करनी चाहिए," उसे झगड़ा नहीं करना चाहिए, बहस नहीं करनी चाहिए, ...; उसे त्याग देना चाहिए, दूर भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, और इसे अस्तित्वहीन बना देना चाहिए; उसे बहस से दूर हो जाना चाहिए, ..., अलग हो जाना चाहिए, परहेज करना चाहिए, त्याग देना चाहिए, मुक्त हो जाना चाहिए, और एक अप्रतिबंधित हृदय से जीना चाहिए।

"क्योंकि कुशल लोग कहते हैं कि इससे कोई पवित्रता नहीं रहती": "कुशल लोग," ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें); वे कुशल लोग न कहते हैं, न बताते हैं, न बात करते हैं, न समझाते हैं, (कि) वाद-विवाद, झगड़े, ... में पवित्रता, स्वच्छता और पूर्ण शुद्धता है; अलगाव, मुक्ति और वैराग्य है।

66 · जैसे योद्धा राजा के भोजन से पोषित होता है, वैसे ही शत्रु योद्धा से लड़ने के लिए दहाड़ता है, हे वीर! कृपया वहाँ जाओ, मेरे पास पहले यह नहीं था, अर्थात्: (किसी चीज़ से लड़ने के लिए) लड़ना।

“राजा के भोजन से पोषित योद्धा”: “योद्धा,” योद्धा, योद्धा-अभिनेता, डरपोक नहीं, भयभीत नहीं, भयभीत नहीं, और भागने वाला नहीं। “राजा के भोजन से पोषित,” राजा के भोजन से पोषित, राजा के कोमल भोजन से पाला-पोसा और विकसित होता है।

“शत्रु योद्धा को पाने के लिए दहाड़ना”: दहाड़ने वाला (गरज की तरह), चिल्लाने वाला, दहाड़ने वाला आता है, पहुँचता है, (के पास) शत्रु योद्धा, शत्रु, प्रतिद्वंद्वी का दांव, लाभार्थी, आशावान, उत्साही, याचक।

“हे वीर (सूरा - यह पसूरा का संक्षिप्त रूप भी हो सकता है)! कृपया वहाँ जाइए”: कृपया आक्रमण कीजिए, चलिए, दौड़िए और उस दुष्ट की ओर बढ़िए। वह आपका शत्रु योद्धा, दुश्मन और प्रतिद्वंद्वी है।

“(मेरे पास) पहले यह नहीं था, यानी: लड़ने की क्षमता”: पहले, बोधि वृक्ष के नीचे, शत्रुतापूर्ण, विरोधी, शत्रु द्वारा उत्पन्न सभी प्रदूषण, यह नहीं था, अस्तित्व में नहीं था, ज्ञात नहीं था, खोजा नहीं गया था, काट दिया गया था, अलग कर दिया गया था, शांत कर दिया गया था, रोक दिया गया था, उत्पन्न नहीं हो सकता था, ज्ञान की अग्नि से जल गया था। “अर्थात: लड़ने की क्षमता,” अर्थात्, लड़ने के लिए, झगड़े के लिए, बहस करने के लिए...

67 · जब वे इस दृष्टिकोण पर महारत हासिल कर लेते हैं, तो वे तर्क देते हैं, वे कहते हैं: "यह सच है," कृपया उन्हें बताएं कि जब बहस उठती है, तो यहाँ कोई शत्रुतापूर्ण अभिनेता नहीं हैं।

“वे इसे पूरी तरह से सीख लेने के बाद बहस करते हैं”: बासठ बुरी धारणाओं में से किसी एक बुरी धारणा को अपनाने, उस पर अड़े रहने और उसे पकड़ लेने के बाद, वे बहस करते हैं, झगड़ते हैं, ..., : “तुम इस धर्म और उस धर्म को नहीं जानते, मैं इस धर्म और उस धर्म को जानता हूँ; तुम धर्म को जानते हो, धर्म क्या है! तुम दुष्ट हो, मैं धर्मी हूँ; मेरा धर्म सुसंगत है, तुम्हारा असंगत है: पहले क्या कहना चाहिए और बाद में क्या कहना चाहिए (उलट); जिस चीज़ में तुम लंबे समय से निपुण रहे हो, वह उलट गई है; तुम्हारा सिद्धांत (मेरे) सिद्धांत से टूट गया है, अपने सिद्धांत को बचाओ; तुम समझौता कर चुके हो, कृपया इसे अलग कर दो, यदि तुम कर सकते हो।”

वे कहते हैं: 'यह सच है': "दुनिया स्थिर है, यह सच है, और बाकी सब व्यर्थ है।" वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, और कहते हैं कि दुनिया बहुत स्थिर है। ...(कुछ अंश हटा दिया गया)।

“कृपया उन्हें बता दें कि जब बहस छिड़ती है, तो यहाँ कोई शत्रुतापूर्ण पक्षकार नहीं होते”: कृपया उन लोगों को बता दें जिनके विचार बुरे हैं: बहस करने वाले, तर्कों से बहस करने वाले, ...(अस्पष्ट), जो आपके शत्रु योद्धा, दुश्मन, विरोधी हैं। “कृपया उन्हें बता दें कि जब बहस छिड़ती है, तो यहाँ कोई शत्रुतापूर्ण पक्षकार नहीं होते।” जब बहस छिड़ती है, जन्म लेती है, घटित होती है और प्रकट होती है, तो शत्रुतापूर्ण पक्षकार, विरोधी पक्षकार और शत्रु पक्षकार झगड़ा करेंगे, बहस करेंगे, ... जो अस्तित्व में नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, खोजे नहीं गए हैं, और अलग-थलग कर दिए गए हैं..., ज्ञान की अग्नि से झुलस गए हैं।

68 · लेकिन सेना छोड़ने के बाद, जो विरोधियों का सामना नहीं करते, पसूरा! उनमें आपको क्या मिल सकता है? जो यहाँ किसी को भी सर्वोच्च नहीं मानते।

लेकिन जब वे सेना छोड़ देते हैं”: “सेना को दानव सेना कहा जाता है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

जब सभी दानव सेना और सभी शत्रुतापूर्ण अशुद्धियाँ चारों पवित्र मार्गों द्वारा पराजित, नष्ट, विघटित और तितर-बितर हो जाती हैं, तब सेना से विदा होना कहलाता है। वे अरहंत हैं, वे जिन्होंने अपने सभी कष्टों को समाप्त कर दिया है। वे जीवित रहते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं और अस्तित्व बनाए रखते हैं।

“जो लोग विचारों को नहीं देखते और उनका विरोध नहीं करते”: उनके लिए बासठ बुरे विचार काट दिए गए हैं, अलग कर दिए गए हैं, ... वे विरोध नहीं देखते, खंडन नहीं करते, त्याग नहीं देते, पलटवार नहीं करते, (विचारों के) प्रेक्षकों को पीछे नहीं हटाते।

“पसुरा! तुम उनसे क्या पा सकते हो?”: उन अरहंतों से, जिन्होंने अपनी सारी परेशानियाँ टल ली हैं, तुम किस प्रकार के शत्रु योद्धाओं, विरोधियों, दुश्मनों को पा सकते हो?

“जो लोग यहाँ किसी भी चीज़ को सर्वोच्च नहीं मानते”: जो अरहंत हैं और जिन्होंने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं, उनके लिए “यही सर्वोच्च है, प्रथम है, सबसे विजयी है, सर्वश्रेष्ठ है, शीर्ष है,” पकड़ रखने वाले, आसक्त, थामे हुए, लिए हुए, माने हुए, वे नहीं मानते, उनका अस्तित्व नहीं है, वे नहीं जानते, वे खोजे नहीं गए हैं, वे अलग हो गए हैं, विच्छेदित हो गए हैं, ...

69 · आप फिर से चिंतन में आ रहे हैं, आप केवल अपने हृदय की इच्छा से बुराई देखते हैं, जब आप शुद्ध व्यक्ति से मिलते हैं, तो आप निश्चित रूप से आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

“तुम फिर से चिंतन में आ रहे हो”: “फिर से,” वाक्यों का सिलसिला जारी है; ..., जिसका अर्थ है “फिर से”। “चिंतन में आना,” मनन करना, विचार करना, चिंतन करना: क्या मैं विजेता बनूँगा? क्या मैं निराश हो जाऊँगा? ...(अधूरा)। चिंतन करने, विचार करने, मनन करने और मुझ तक पहुँचने, मेरे पास आने, मेरे पास आने और मुझसे मिलने का यह तरीका।

“केवल हृदय की इच्छा से उत्पन्न बुरे विचार”: हृदय, मन, हृदय, श्वेत (शुद्ध), अर्थ, आशय, चेतना, ज्ञान और संबंधित चेतना क्षेत्र: “संसार स्थिर है,” या “संसार अत्यंत स्थिर है”... (छोड़ा गया) या “मृत्यु के बाद तथागत न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान नहीं होते।”

“जब आप शुद्ध व्यक्ति से मिलते हैं, तो निश्चित रूप से आपके लिए आगे बढ़ना असंभव हो जाएगा”: शुद्धि को ज्ञान कहा जाता है, जो कि ज्ञान है, ...(अधूरा भाग, पिछले भाग देखें)। शुद्धि को ज्ञान क्यों कहा जाता है? .... भगवान बुद्ध पूर्णतः इन धर्मों से परिपूर्ण हैं, जो शुद्ध किए जा सकते हैं, इसलिए भगवान बुद्ध ही शुद्ध हैं, वे ही लोभ को दूर करते हैं, वे ही बुराई को दूर करते हैं, वे ही अशुद्धता को दूर करते हैं, वे ही ऊष्मा को दूर करते हैं।

“शुद्ध व्यक्ति से मिलने पर तुम निश्चित रूप से आगे नहीं बढ़ पाओगे”: पसूर (मार्गदर्शक) के लिए शुद्ध व्यक्ति, बुद्ध और भगवान से मिलना, मुलाकात करना, विवाद के बाद चर्चा करना, आपस में बातचीत करना और चर्चा में शामिल होना असंभव है। इसका कारण क्या है? प्रदर्शनकारी पसूर हीन, नीच, तुच्छ, तुच्छ इरादे वाला और महत्वहीन है, जबकि भगवान प्रथम, सबसे विजयी, श्रेष्ठ, सर्वोच्च, सर्वोच्च और सर्वोच्च हैं। उदाहरण के लिए, एक खरगोश के लिए नशे में धुत हाथी से मिलना और मिलने के बाद प्रतिस्पर्धा करना असंभव है; उदाहरण के लिए, एक सियार के लिए शेर से प्रतिस्पर्धा करना, पशु राजा से मिलना और मिलने के बाद प्रतिस्पर्धा करना असंभव है; ...एक छोटा, दूध पीने वाला बछड़ा बैल से नहीं मिल सकता...; ...एक कौआ सुनहरे पंखों वाले पक्षी से नहीं मिल सकता...; ...एक बहिष्कृत व्यक्ति राजा से नहीं मिल सकता...; ...एक कीचड़ का भूत इंदा से नहीं मिल सकता...; ठीक इसी प्रकार, प्रदर्शनकारी पसूरा के लिए प्रतियोगिता के बाद मिलना, विचार-विमर्श करना, बातचीत करना और शुद्धिकृत व्यक्ति, बुद्ध और भगवान से चर्चा करना असंभव है। इसका कारण क्या है? प्रदर्शनकारी पसूरा ही निम्न कोटि का है, ... ज्ञान से लाभान्वित होने वाले, ज्ञान को समझने वाले, चतुर, ज्ञान का विकास करने वाले, निर्भीक सिद्ध होने वाले, चार निर्भीकों को प्राप्त करने वाले, दस शक्तियों को धारण करने वाले, बैल के समान, सिंह के समान, गुणी, अपार धनवान, असीम ज्ञान रखने वाले, असीम प्रतिभा रखने वाले, असीम प्रतिष्ठा रखने वाले, धनी, धनवान, मार्गदर्शक, मध्यस्थ, सांत्वना देने वाले, सूचना देने वाले, विचार करने वाले, दृष्टि प्रदान करने वाले, स्पष्ट करने वाले, भगवान वास्तव में अजन्मे मार्ग के संस्थापक, अजन्मे मार्ग के निर्माता, अघोषित उपदेशक, मार्ग के ज्ञाता हैं; इसके अतिरिक्त, उनके शिष्य वर्तमान में मार्ग के सानिध्य में रहते हैं, और भविष्य में भी इसे धारण करने वाले होंगे।

भगवान बुद्ध वास्तव में ज्ञाता और द्रष्टा हैं, जो सब कुछ जानते और देखते हैं; वे जन्म से ही नेत्रों से युक्त, बुद्धि से युक्त, धर्म से युक्त और ब्रह्म से युक्त हैं; वे धर्म के व्याख्याकार और संवर्धक, अमर दाता, धर्म के राजा, तथागत हैं; ऐसा कोई नहीं है जिसे भगवान बुद्ध न जानते हों, न देखते हों, न अज्ञात हों, न साक्षी हों, न ही बुद्धि से स्पर्श करते हों; भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के सभी कर्म बुद्ध के समक्ष आते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में,

कोई भी धर्म जिसे तर्क द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, उसे जाना जा सकता है: चाहे वह स्वयं का धर्म हो या दूसरों का धर्म हो या दोनों, या वर्तमान धर्म हो या परलोक का धर्म हो या दोनों, या गहरा हो या गुप्त, या जिसका अनुमान लगाया जाना चाहिए या जिसे निर्धारित किया गया हो, या जो दोषरहित हो या प्रदूषण रहित हो, या स्पष्ट और शुद्ध हो या सर्वोच्च हित हो, ये सभी बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं।

सभी शारीरिक कर्म बुद्ध और भगवान के ज्ञान में स्थानांतरित हो जाते हैं; सभी भाषाई कर्म...; सभी मानसिक कर्म...; बुद्ध और भगवान का भूतकाल का ज्ञान अवरोध रहित है; भविष्य...; वर्तमान...; जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह ज्ञान की पहुँच है; सभी ज्ञान अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह परम ज्ञान है; परम ज्ञान वह है जो अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किए गए ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं है; निर्देशित और अनुमानित ज्ञान से परे जाने का कोई मार्ग नहीं है। ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं, जैसे दो बक्से, जिनके ढक्कन पूरी तरह से एक दूसरे के संपर्क में हैं; निचला ढक्कन ऊपरी ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है, और ऊपरी ढक्कन निचले ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है; एक दूसरे से सीमित। (इसी प्रकार,) जो कुछ भी निर्देशित किया जाना चाहिए... (छोड़ा गया); ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं।

बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त धम्म में व्याप्त है, समस्त धम्म बुद्ध ही हैं, भगवान बुद्ध का ध्येय है, आशा है ध्येय है, आशय है ध्येय है, मन का जागरण है, बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त जीवों में व्याप्त है, भगवान बुद्ध समस्त जीवों के आशयों को जानते हैं, कष्टों की संभावित प्रवृत्ति को जानते हैं, व्यवहार को जानते हैं, समाधान को जानते हैं, कम धूल वाले और अधिक धूल वाले जीवों को जानते हैं; जड़ से जुड़े और जड़ से मंद जड़ वाले जीवों को जानते हैं, अच्छे कर्मों को जानते हैं, बुरे कर्मों को जानते हैं, और प्राणियों की शिक्षाप्रदता और अशिक्षाप्रदता को जानते हैं; सक्षम और अक्षम सभी चेतन प्राणियों को जानते हैं, जिनमें स्वर्ग, राक्षस और ब्राह्मण जगत शामिल हैं; समन, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य की पीढ़ियाँ सभी बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं।

जैसे सभी मछलियाँ, कछुए और यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी मछलियाँ निगलने वाली नावें समुद्र में घूमती हैं, वैसे ही स्वर्ग, राक्षस और ब्राह्मण सहित पूरा संसार बुद्ध के ज्ञान में समाहित है; समण, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य सहित सभी पीढ़ियाँ बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं। जैसे कोई पक्षी और यहाँ तक कि सुनहरे पंखों वाले पक्षी भी आकाश में चक्कर लगाते हैं। उसी प्रकार, सारिपुत्त के समान ज्ञान रखने वाले भी बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं। बुद्ध का ज्ञान सर्वव्यापी है और स्वर्ग और मनुष्य (लोकों) से परे है।

वे बुद्धिमान क्षत्रिय, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ, बुद्धिमान समन, बुद्धिमान विरोधी, और दुष्ट विचारों को बुद्धिमानी से प्रकट करने वाले उग्र विद्रोही, तथागत से गुप्त प्रश्न पूछने के लिए बाद में समस्याएँ तैयार करते हैं; भगवान बुद्ध ने उन प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया और तर्क सहित उत्तर दिए, (और) उन्होंने उन्हें त्याग दिया और भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए। उस समय, भगवान बुद्ध ज्ञान से प्रकाशमान थे। [भजन संहिता 21]

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.9

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

9. मागंदिया
70 · तन्हा, आरती और रागा को देखने के बाद, मेरे मन में कामवासना नहीं रही, (तो) यह मूत्र और मल से भरा हुआ क्यों? मैं इसे अपने पैरों से छूना भी नहीं चाहता।

“रामा की पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा (जिनके नाम का अर्थ 'प्यास, घृणा और आसक्ति' है) को देखने के बाद, मेरे मन में कामवासना की कोई इच्छा नहीं रही”: “राक्षस की पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा को देखने के बाद, मेरे मन में कामवासना, लोभ या प्रेम की कोई इच्छा नहीं रही।”

"(तो) मैं इसे क्यों चाहूँ, जो मूत्र और मल से भरा है? मैं इसे पैरों से छूना भी नहीं चाहता": मैं इसे क्यों चाहूँ जो मूत्र से भरा है, मल से भरा है, कफ से भरा है, रक्त से भरा है, हड्डियों और नसों से जुड़ा है, मांस और रक्त से लिपटा है, रक्त वाहिकाओं से ढका है, त्वचा से ढका है, जिसमें एक से अधिक छेद हैं जिनसे रिसाव और मवाद टपकता है, कीड़े-मकोड़े और हर तरह की लार और गंदगी से भरा है; जिसे मैं अपने पैरों से छूना भी नहीं चाहता, साथ रहना या सहवास करना तो दूर की बात है?

71 · यदि आप इस प्रकार का खजाना नहीं चाहते हैं, तो एक ऐसी महिला जिसे कई लोगों के राजा चाहते हैं, आप जीवन, अस्तित्व और पुनर्जन्म के बारे में किस प्रकार के विचार, उपदेश और निषेध सोचते हैं?

(स्रोत के आधार पर, निम्नलिखित व्याख्या या तो इस छंद के नीचे, या पिछले छंद के नीचे दी गई है।)

"यह अविश्वसनीय है: जो स्वर्ग की इच्छा रखते हैं वे पृथ्वी की इच्छाओं को नहीं चाहेंगे, या जो पृथ्वी की इच्छाओं को रखते हैं वे स्वर्ग की इच्छाओं को नहीं चाहेंगे; जो कोई भी दोनों में से किसी को नहीं चाहता, न चाहता है, न प्रार्थना करता है, आपका क्या विचार है, और आप किस विचार को मानते हैं?" (मागंदिया) ने पूछा।

72 · [भगवान: "मागंदिया"] "मैं कहता हूँ कि यह (दृष्टिकोण)" उसके लिए विद्यमान नहीं है, और धम्मों में चुने जाने के बाद इसे कसकर पकड़ लिया गया था, लेकिन जब दृष्टियों में देखने वाले व्यक्ति ने इसे (दृष्टिकोण) नहीं उठाया, तो वह भीतर मौन देखता है।

"मैं कहता हूँ कि यह उसके लिए अस्तित्व में नहीं है": "मैं यह कहता हूँ," मैंने यह कहा; मैंने ऐसा कहा; मैंने इतना कहा; मैंने कहा कि यह इस सीमा में है; मैंने यह बुरा विचार व्यक्त किया: "संसार शाश्वत है... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।" "यह उसके लिए अस्तित्व में नहीं है," यह अस्तित्व में नहीं है। "मैंने कहा कि इस सीमा में" उसके लिए अस्तित्व में नहीं है।

भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण को उनके नाम से "मागंदिया" कहकर पुकारा। "भगवान बुद्ध," एक आदरपूर्ण पर्यायवाची शब्द है... (यह भाग हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)।

"धर्मों में चुने जाने के बाद, इसे दृढ़ता से पकड़ लिया जाता है": "धर्मों में," बासठ बुरे विचारों में। "चुने जाने के बाद," ...(छोड़ दिया गया)। "यह सत्य है," ...; पकड़े जाने, आसक्त होने, लिए जाने, विश्वास किए जाने पर, वह नहीं है, अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, ...।

लेकिन जो विचारों में कमियां देखता है, वह उन्हें नहीं अपनाता: जब मैं विचारों में कमियां देखता हूं, तो मैं उस विचार को पकड़ता नहीं, उससे चिपका नहीं रहता, या मुझे उसे पकड़ना नहीं चाहिए, उससे चिपका नहीं रहना चाहिए, उस पर अड़े नहीं रहना चाहिए।

या फिर, "संसार शाश्वत है, यही वास्तविकता है, और बाकी सब व्यर्थ है।" यह बुराई, जंगल, रेगिस्तान, विकृत और अस्थिर विचार हैं, जो पीड़ा और चिड़चिड़ाहट से भरे हैं। इसमें निराशा है, इसमें पीड़ा है, और यह घृणा, लोभ, शांति, मौन, ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। जब मैं विचारों में दोष देखता हूँ, तो मैं उन्हें पकड़ता नहीं, उन पर मोहित नहीं होता...

या, "दुनिया बहुत स्थिर है..." (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

या फिर, "जो लोग इस विचार को मानते हैं, जो इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, और जो इस मार्ग में रुचि रखते हैं, उनका परलोक इस प्रकार का होगा।" जब मुझे विचारों में कमियां दिखती हैं, तो मैं उन पर विश्वास नहीं करता...

या फिर, "यह दृष्टिकोण नरक-उन्मुख, पशु-उन्मुख और बुराई-उन्मुख है।" जब मैं विभिन्न दृष्टिकोणों में कमियाँ देखता हूँ, तो मैं उन्हें नहीं मानता...

या, “यह दृष्टिकोण क्षणभंगुर, उत्पादक और परिस्थितियों से ग्रस्त है। यह विलुप्ति, विघटन, लुप्त होना और अंत है।” जब मैं विभिन्न अंतर्दृष्टियों में कमियाँ देखता हूँ, तो मैं उन्हें स्वीकार नहीं करता...

“वह अपने भीतर की शांति को देखता है”: अपने भीतर की शांति, अपने भीतर के लोभ की शांति है; घृणा की शांति; अज्ञान की शांति; क्रोध..., द्वेष... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)...; सब शांत, स्थिर, शांत होना, शीतलता, समाप्ति और स्थिरता। जब नहीं, जब सरल; जब चयन करते समय; जब बाध्यकारी रूप से चयन करते समय; जब मापते समय; जब निर्णय करते समय; जब भेद करते समय; जब स्पष्ट करते समय: “सब कुछ अनित्य है” भेद करते समय..., “सभी कर्म दुखदायी हैं”... “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”..., “धर्मों का कोई भी संग्रह नष्ट हो जाता है”...। “देखना,” देखना, भेदना।

73 · [इस प्रकार, मागंदिया:] जहाँ कहीं भी (दृष्टिकोण का) निर्णय हो, मुनि! आप वास्तव में उन्हें उठाकर यह नहीं कहते कि बुद्धिमानों द्वारा “अपने भीतर मौन” के सत्य की घोषणा कैसे की जाती है?

“सभी स्थिर विचारों का निर्णय”: निर्णय को बासठ बुरे विचारों का निर्णय कहा जाता है। “स्थिर विचार,” जो निर्मित, स्थिर, सृजित और सह-अस्तित्व में हैं, या अनित्य, सक्रिय और सशर्त हैं, वे विनाश का धर्म, अपव्यय का तरीका, लुप्त होने का तरीका, विलुप्त होने का तरीका और परिवर्तन का तरीका हैं।

“इस प्रकार मागंदिया”: “इस प्रकार,” वाक्यों का निरंतरता, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “मागंदिया,” नाम, ...।

“मुनि! आप सचमुच उन विचारों को उठाकर यह नहीं कह सकते कि ‘अपने भीतर की शांति’ ही सत्य है”: “वे” बासठ बुरे विचार हैं। “मुनि,” .... “उठाने के बाद,” आप कहते हैं: “जब मैं विचारों में विपत्तियाँ देखता हूँ, तो मैं उन्हें ग्रहण नहीं करूँगा...” और आप कहते हैं: “अपने भीतर की शांति।” “यह सत्य,” सर्वोच्च सत्य है।

“बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा इसका प्रचार कैसे किया जाता है?”: “कैसे?”, संदेह का प्रश्न, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “बुद्धिमान व्यक्ति” का अर्थ है बुद्धिमान व्यक्ति, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “घोषित किया जाना,” अनुभव किया जाना, घोषित किया जाना, समझाया जाना, सिखाया जाना, बताया जाना, स्थापित किया जाना, प्रकट किया जाना, विश्लेषण किया जाना, स्पष्ट किया जाना, समझाया जाना।

74 · [भगवान: “मागंदिया!”] न तो देखने (दृष्टिकोण) पर आधारित, न सुनने (सुनने) पर आधारित, न ही ज्ञान पर आधारित, न ही यह कहा जाता है कि नियमों और निषेधों का पालन करना शुद्ध है, न ही अज्ञान (दृष्टिकोण) के कारण, न सुनने (ज्ञान की कमी), न नियमों, न निषेधों के कारण, बल्कि इन सब का त्याग करने और इन्हें न अपनाने के बाद, मौन रहने वाले इनके प्रति उत्सुक नहीं होंगे यदि वे इनसे आसक्त न रहें।

“न देखना, न सुनना, न ज्ञान”: देखना शुद्ध, पवित्र और सर्व शुद्ध है; पृथक, मुक्त और स्वतंत्र होने के लिए, वह कुछ कहता नहीं, बोलता नहीं, बात नहीं करता, व्याख्या नहीं करता या कुछ कहता नहीं; सुनी हुई बात को शुद्ध मानते हुए, ...; ज्ञान को शुद्ध मानते हुए, ...।

“मागंदिया,” .... “धन्य पुरुष,” ....

“यह भी नहीं कहा गया है कि नियमों और निषेधों का पालन करना पवित्रता है”: नियमों को पवित्र, शुद्ध मानना, ...; निषेधों को पवित्र मानना, ...।

“यह इसलिए भी नहीं है कि कुछ न देखा जाए, कुछ न सुना जाए, कुछ न जाना जाए, नियमों का अभाव हो, निषेध न हों”: देखना वांछनीय है, दस बातें सही दृष्टि हैं: उदारता है, दान है, भेंट हैं, अच्छे और बुरे कर्मों के फल और पुरस्कार हैं, यह संसार है, अन्य लोक हैं, माता-पिता हैं, और जैविक जीवन है, संसार में धर्मात्मा समण और ब्राह्मण हैं जो अपनी बुद्धिमत्ता का प्रमाण देते हैं। सुनना भी वांछनीय है: परलोक की वाणी, सूत्र, गेय्या, वेय्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूत धम्म, वेदल्ल। ज्ञान भी वांछनीय है: कर्म ज्ञान, सच्चे अनुसरण का ज्ञान, अलौकिक ज्ञान, आदि। नियम भी वांछनीय हैं: पातिमोक्ख का आत्म-संयम। इन बातों पर भी रोक लगनी चाहिए: जंगल में रहना, अक्सर भोजन के लिए भीख मांगना, गोबर साफ करने वाले कपड़े पहनना, केवल तीन कपड़े पहनना, दूसरी बार भीख मांगना, खाने के बाद कुछ न खाना, अक्सर बैठे रहना (लेटना नहीं), कहीं भी रहना।

“यह अज्ञान, अनसुनेपन, अज्ञानता, उपदेशहीनता, निषेधहीनता की स्थिति के कारण भी नहीं है”: केवल सही दृष्टि से ही नहीं; केवल सुनने से ही नहीं; केवल ज्ञान से ही नहीं; केवल उपदेशों से ही नहीं, यह केवल अपने भीतर की शांति को प्राप्त करने से रोकना या इन धर्मों के द्वारा अपने भीतर की शांति को प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि इन धर्मों को साधन बनाकर अपने भीतर की शांति को प्राप्त करना, उस तक पहुँचना, उसे पाना और उसकी गवाही देना है।

लेकिन इन्हें त्यागने और न उठाने के बाद”: “ये,” काले धर्म के नाश से उत्पन्न होते हैं, इनके त्याग की इच्छा की जा सकती है; अच्छे धर्म के तीनों लोकों में ऐसी कोई समतुल्य अवस्था नहीं है जिसकी इच्छा की जा सके। जब काले धर्म का नाश हो जाता है और उसकी जड़ें कट जाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों का ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन, निर्जीव हो जाता है, और तीनों लोकों में अन्य के समान अवस्था में होता है, तब वह न तो इन्हें धारण करता है, न पकड़ता है, न इनसे आसक्त रहता है। या, (इन्हें) न धारण करना चाहिए, न पकड़ना चाहिए, न इनसे आसक्त रहना चाहिए। जब प्रेम, दृष्टि और अहंकार की प्यास कट जाती है, तो जड़ कट जाती है, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों का ताड़ का पेड़, वह अस्तित्वहीन हो जाता है, भविष्य में बढ़ने वाला नहीं। यह स्थिति भी ऐसी है कि वह न तो इन्हें उठाता है, न पकड़ता है, न इनसे आसक्त रहता है।

जब पुण्य और पुण्य कर्म तथा अचल कर्म काट दिए जाते हैं, तो जड़ें कट जाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य के लिए अस्तित्वहीन, अजन्मा हो जाता है, इस स्थिति में भी वह किसी चीज को पकड़ता नहीं है, जकड़ता नहीं है या उससे चिपका नहीं रहता है।

“मौन व्यक्ति आसक्ति छोड़ने के बाद अस्तित्व के लिए तरसता नहीं है”: “मौन व्यक्ति,” “लालच शांत होने की अवस्था” मौन अवस्था है; “घृणा शांत होने की अवस्था” मौन अवस्था है; “अज्ञान शांत होने की अवस्था” मौन अवस्था है; क्रोध..., आक्रोश..., (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें), शांत अवस्था, स्थिर अवस्था, बुझने की अवस्था, शीतल अवस्था, विदा अवस्था और रुकी हुई अवस्था मौन, रुकी हुई, शांत, शीतल और रुकी हुई अवस्थाएँ हैं।

“निर्भरता न रखने के बाद,” दो प्रकार की निर्भरता होती है: लालसा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता...(विलंबित, पिछले खंड देखें)। त्याग करने के बाद, जो प्रेम की प्यास तोड़ देता है, मन के त्याग के बाद, जो आँखों से आसक्ति नहीं रखता; ...कानों से; ...नाक, जीभ, शरीर, सभी रूपों, सभी ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शों, धर्मों, घर, समूह, ...(विलंबित, पिछले खंड देखें)..., सभी धर्म जो देखे, सुने, महसूस किए और समझे जा सकते हैं, उनका पालन नहीं किया जाता; पकड़ न रखने के बाद, पकड़ न रखने के बाद, आसक्ति न रखने के बाद। “मैं वहाँ नहीं रहना चाहता,” मैं उसे नहीं चाहता; मैं रूप धारण नहीं करना चाहता; वह निराकारता नहीं चाहता, वह आशा नहीं करेगा; वह प्रार्थना नहीं करेगा।

75 · [इस प्रकार, मागंदिया:] यदि यह सत्य है कि यह देखने, सुनने, ज्ञान से, न ही नियमों और निषेधों के बल पर, न ही न देखने, न सुनने, न ज्ञान से, न ही नियमों या निषेधों के अभाव से शुद्ध नहीं होता, तो मुझे लगता है कि यह भ्रामक विधि है; कुछ लोग (दृष्टिकोण) देखकर शुद्धता की ओर लौटते हैं।

“यदि यह सच है कि यह देखने पर आधारित नहीं है, जो सुना गया है उस पर आधारित नहीं है, ज्ञान पर आधारित नहीं है”: शुद्ध के रूप में देखना, ...(छोड़ा गया)।

“इस मागंदिया की तरह”: ....

“और न ही यह कहा जाता है कि नियमों और निषेधों का पालन करना पवित्रता है”:...

“न तो कुछ न देखने, न कुछ सुनने, न कुछ जानने के कारण, न ही नियमों के अभाव में, न ही निषेधों के अभाव में”:...

“मुझे लगता है कि यह भ्रम का तरीका (धम्म, शिक्षा) है”: यह भ्रम, मूर्खता, अज्ञानता और छल (धोखे) का तुम्हारा तरीका है। मुझे ऐसा लगता है; मुझे ऐसा पता है; मैं ऐसा नहीं करता; मुझे यह पक्का पता है; मुझे यह अच्छी तरह से पता है।

“कुछ लोग दृष्टियों के माध्यम से पवित्रता की ओर लौटते हैं”: कुछ समण और ब्राह्मण शुद्ध दृष्टियों को शुद्ध, स्वच्छ और सर्वस्व शुद्ध रूप में देखने लगते हैं; वैराग्य, मुक्ति, विरक्ति: कुछ समण और ब्राह्मण “संसार स्थिर है, यही सत्य है, और बाकी सब व्यर्थ हैं” की ओर लौटते हैं। दृष्टि शुद्ध, स्वच्छ, सर्वव्यापी रूप से शुद्ध है...; “संसार अत्यंत स्थिर है...”...

76 · [भगवान: “मागंदिया!”] इसे देखकर बार-बार प्रश्न करने के बाद (मागंदिया का अपना दृष्टिकोण), और इसे पकड़कर अज्ञान में आने के बाद, तुम यहाँ से एक सूक्ष्म विचार भी नहीं देख पाते, इसलिए तुम इसे भ्रमित समझते हो।

“देखने और बार-बार प्रश्न पूछने के बाद”: मागंदीय ब्राह्मण ने देखने और प्रश्न पूछने के बाद जोर दिया; आसंजन पर जोर देने के बाद, उन्होंने आसंजन के बारे में पूछा; बंधन पर भरोसा करने के बाद, उन्होंने बंधन के बारे में पूछताछ की; और अवरोध उत्पन्न करने के बाद, वे अवरोधों के बारे में पूछताछ कर रहे थे। बार-बार प्रश्न पूछते रहे।

“मागंदिया,” ....

“दृढ़ता से पकड़े रहने पर अज्ञानता की ओर जाना”: जब भी आप उस विचार को पकड़े रहते हैं, उससे चिपके रहते हैं, उसे थामे रहते हैं, उस पर विश्वास करते हैं और उसे मानते हैं, तो आप अपने विचार के साथ मूर्ख, भ्रमित और अज्ञानी हो जाएंगे; मूर्खता की ओर बढ़ेंगे, भ्रम की ओर बढ़ेंगे, उलझन में पड़ जाएंगे, भ्रम में कूद पड़ेंगे।

“परन्तु यहाँ से सूक्ष्म विचार दिखाई नहीं देते”: यहाँ से, अपने भीतर की शांति से, या मार्ग से, या धम्म की शिक्षाओं से, उसे उचित विचार प्राप्त नहीं हुए, उत्पत्ति के विचार, घटनाओं के विचार, कारणों के विचार, यह सोचते हुए कि “ज्ञान कहाँ से आता है?” यही कारण है कि वह यहाँ से सूक्ष्म विचार नहीं देख पाता। या, “उसे अनित्यता या अनित्यता का विचार प्राप्त नहीं होता; दुख या विस्मृति का विचार; अनात्महीनता या अनात्महीनता का विचार; केवल उत्पन्न होने की इच्छा या केवल ज्ञान, ज्ञान कहाँ से आता है?”

“इसलिए आप इसे भ्रामक समझते हैं”: “इसलिए,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें), को भ्रम, मूर्खता, अज्ञानता, कुतर्क के रूप में स्थापित, देखा, परखा, विचार किया और समझा जाता है।

77 · बराबर या श्रेष्ठ या हीन, जो (यह) सोचता है वह इसके कारण बहस करेगा, जब तीनों प्रकारों में अविचल होता है, तो वह "बराबर, श्रेष्ठ" होने की परवाह नहीं करता।

“बराबर हो या श्रेष्ठ हो या हीन, वह जिसे भी (इनमें से एक) समझता है, उसी कारण से बहस करेगा”: जो कोई भी यह सोचता है कि “मैं समान हूँ” या “मैं विजेता हूँ” या “मैं हीन हूँ,” उस घमंड के साथ, जो उसे देखकर उससे झगड़ा, बहस, विवाद या असहमति जताता है: “तुम इस धर्म को नहीं जानते, ...(अधूरा भाग, पिछले भाग देखें)...।”

जब वह इन तीनों प्रकारों में अविचलित रहता है, तो वह “समान और श्रेष्ठ” नहीं बनना चाहता: उसके लिए, ये तीनों गुण समाप्त हो जाते हैं, विच्छेदित हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, रुक जाते हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हो जाते हैं, और ज्ञान की अग्नि से झुलस जाते हैं; वह अविचलित रहता है, डगमगाता नहीं है, और एक अविचल व्यक्ति बन जाता है: “मैं समान हूँ” या “मैं विजेता हूँ” या “मैं हीन हूँ।” “वह नहीं बनना चाहता” का अर्थ है “मैं” नहीं बनना चाहता।

78 · ब्राह्मण “सत्य” क्यों कहेंगे, या वे किसके साथ “असत्य” पर बहस करेंगे? जब कोई बराबर या असमान नहीं है, तो वे किससे विवाद करेंगे?

“वह ब्राह्मण ऐसा क्यों कहेगा ‘सत्य’”: “ब्राह्मण,” .... “ब्राह्मण ऐसा क्यों कहेगा ‘सत्य’: ब्राह्मण ऐसा क्यों कहता है, बताता है, बात करता है, समझाता है, कहता है: “संसार शाश्वत है, ...?”

“या वह ‘झूठे’ से किससे बहस करेगा?”: “मेरा सत्य है, और तुम्हारा व्यर्थ।” ब्राह्मण किस अहंकार से और किस व्यक्ति से झगड़ा, बहस, विवाद, उपेक्षा करेगा: “तुम इस धर्म को नहीं जानते...।”

जिसके लिए कोई 'समान' या 'असमान' नहीं है: "जो है...", जो एक व्यक्ति है, एक अरहंत है, जिसने कष्टों को समाप्त कर दिया है, जो "मैं समान हूँ" के रूप में अभिमानी नहीं है, "मैं विजेता हूँ" के रूप में अभिमानी नहीं है, और "मैं हीन हूँ" के रूप में अभिमानी नहीं है, वह अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, खोजा नहीं गया है, विच्छेदित हो गया है, ..., ज्ञान की अग्नि से झुलस गया है।

“वह किससे मुकाबला करेगा”: वह किस व्यक्ति से, किस अहंकार और किन विचारों से मुकाबला कर पाएगा, झगड़ा करते हुए, बहस करते हुए, ...: “तुम इस धम्म को नहीं जानते, ...।”

79 · घर छोड़ने के बाद, वह बिना रहने की जगह के एक मुसाफिर बन गया, और मुनि ने गाँव में किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं बनाए। जिनकी इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं, जिनकी कोई अपेक्षा नहीं है, वे दूसरों के साथ वाद-विवाद में संलग्न नहीं होंगे।

एक बार, गृहस्वामी हलिदिकानी पूज्य महाकच्चाना से मिलने गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य महाकच्चाना से कुछ प्रश्न पूछे और फिर एक तरफ बैठ गए। एक तरफ बैठने के बाद गृहस्वामी हलिदिकानी ने पूज्य महाकच्चाना से कहा [SN.22.3]:

"महाकच्चाना! भगवान बुद्ध द्वारा पूछे गए मागंदिया के इन आठ प्रश्नों के समूह में:

'अपना घर छोड़ने के बाद, वह बेघर होकर भटकने लगा। गाँव में मुनि ने किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं बनाए। जिनकी इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं, जिनकी कोई अपेक्षाएँ नहीं हैं, वे दूसरों के साथ वाद-विवाद में संलग्न नहीं होते।'

हे महाकच्चाना, महान सद्गुण! भगवान बुद्ध ने संक्षेप में जिन सिद्धांतों का उल्लेख किया है, उन्हें विस्तार से कैसे समझा जाए?

"गृहस्वामी! रूप का क्षेत्र चेतना का घर है, और जो लोग रूप के लोभ से बंधे होते हैं, उन्हें 'घर वाले यात्री' कहा जाता है; भावना चेतना का घर है, और जो लोग भावना के लोभ से बंधे होते हैं, उन्हें 'घर वाले यात्री' कहा जाता है, गृहस्वामी! यही चेतना का घर है।"

गृहस्वामी! बेघर कौन होता है? गृहस्वामी! इच्छा, लोभ, प्रसन्नता, प्यास, आसक्ति, प्रेम, हृदय आसक्ति, मोह, भौतिक जगत की परेशानियाँ: तथागत के लिए ये सब काट दिए गए हैं, जड़ काट दी गई है, ठीक वैसे ही जैसे ताड़ के पेड़ की जड़ काट दी जाती है, जिससे उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और वह भविष्य में फिर कभी जन्म नहीं लेगा। इसलिए तथागत को 'बेघर' कहा जाता है। गृहस्वामी! भावना, बोध, चुनाव, चेतना, ये सब तथागत के लिए काट दिए गए हैं, इसलिए तथागत को 'बेघर' कहा जाता है। गृहस्वामी! यही बेघर व्यक्ति है।

घर मालिक! रहने की जगह वाला यात्री कौन है? घर मालिक! जो लोग रूप के निवास में विलीन और बंधे रहते हैं, उन्हें 'आवास वाले यात्री' कहा जाता है; ध्वनि में..., गंध में..., स्वाद में..., स्पर्श में..., 'आवास वाला यात्री,' घर मालिक! यही वह है जिसके पास रहने की जगह है।

गृहस्वामी! बिना स्थान के यात्री क्या है? गृहस्वामी! तथागत के लिए निवास स्थान के रूप में व्यभिचार और बंधन का नाश हो चुका है, इसलिए तथागत को 'बिना स्थान का यात्री' कहा जाता है। ध्वनि में ...(विलुप्त), ...धम्म निवास में, ...जो भविष्य में नहीं रहेगा। इसलिए तथागत को 'बिना स्थान का यात्री' कहा जाता है, गृहस्वामी! यह वह है जिसके पास रहने का कोई स्थान नहीं है।

गृहस्वामी! गाँव में घनिष्ठ मित्र कैसे बनते हैं? गृहस्वामी! यहाँ एक विशेष प्रकार का भिक्षु अपने परिवार के सदस्यों के साथ मेलजोल रखते हुए, सुख-दुख बाँटते हुए जीवन व्यतीत करता है: वे जब सुख में होते हैं, जब वे दुखी होते हैं, तब वह स्वयं उनके मामलों और दायित्वों में शामिल होता है, गृहस्वामी! इस प्रकार गाँव में घनिष्ठ मित्र बनते हैं।

गृहस्वामी! गाँव में घनिष्ठ मित्र कैसे नहीं हो सकते? गृहस्वामी! यहाँ एक विशेष प्रकार का भिक्षु अपने परिवार के सदस्यों से सुख-दुख में मेलजोल रखे बिना रहता है: न तो उनकी खुशी में, न ही उनके दुख में, वह स्वयं को उनके मामलों और दायित्वों में शामिल नहीं मानता, गृहस्वामी! इस प्रकार गाँव में कोई घनिष्ठ मित्र नहीं बन पाते।

गृहस्वामी! इच्छाएँ कैसे नहीं त्यागी जातीं? गृहस्वामी! यहाँ, एक विशेष प्रकार का भिक्षु लोभ, वासना, प्रेम, जुनून और इच्छा की प्यास से मुक्त नहीं है, गृहस्वामी! यही वह है जिसने सभी इच्छाओं का त्याग नहीं किया है।

गृहस्वामी! वह कौन है जिसने त्याग कर दिया है? गृहस्वामी! यहाँ, एक विशेष प्रकार का भिक्षु लोभ, प्रेम, इच्छा, चिड़चिड़ी और इच्छा की प्यास से विरक्त है, गृहस्वामी! यही वह है जिसने त्याग कर दिया है।

गृहस्वामी! आशावान कौन है? गृहस्वामी! यहाँ, एक विशेष प्रकार का भिक्षु इस प्रकार सोचता है: 'भविष्य में मेरा यह रूप होगा।' वह वहाँ आनंद की खोज करता है [एमएन.132]; 'ऐसी भावनाएँ होंगी..., ऐसे विचार होंगे..., ऐसे व्यवहार होंगे...' 'भविष्य में मुझे ऐसा ज्ञान प्राप्त होगा।' वह वहाँ आनंद की खोज कर रहा था। गृहस्वामी! यही आशावान है।

गृहस्वामी! वह कौन है जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है? गृहस्वामी! यहाँ, एक विशेष प्रकार का भिक्षु इस प्रकार सोचता है: 'भविष्य में मेरा यही रूप होगा।' वह वहाँ आनंद की तलाश नहीं कर रहा है; वहाँ ऐसी भावनाएँ होंगी...। वह वहाँ आनंद की तलाश नहीं कर रहा है। गृहस्वामी! यही वह है जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है।

गृहस्वामी! लोगों से बहस करने वाला वार्ताकार कौन होता है? गृहस्वामी! यहाँ, कोई इस तरह से बात कर रहा है: 'तुम्हें धम्म का ज्ञान नहीं है...(अधूरा अंश)।' गृहस्वामी! यही वह वार्ताकार है जो लोगों से बहस करता है।

गृहस्वामी! वह वार्ताकार कौन है जो दूसरों से बहस नहीं करता? गृहस्वामी! यहाँ, कोई इस तरह से बात करने वाला नहीं है: 'तुम्हें यह धम्म नहीं पता...' गृहस्वामी! यह वह वार्ताकार है जो दूसरों से बहस नहीं करता। इस प्रकार, गृहस्वामी! भगवान बुद्ध द्वारा मागंदिया में पूछे गए आठ प्रश्नों के समूहों में:

'अपना घर छोड़ने के बाद, वह बेघर होकर भटकने लगा। गाँव में मुनि ने किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं बनाए। जिनकी इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं, जिनकी कोई अपेक्षाएँ नहीं हैं, वे दूसरों के साथ वाद-विवाद में संलग्न नहीं होते।'

गृहस्वामी! भगवान बुद्ध ने संक्षेप में जो कहा है, उसके विस्तृत तर्क को इस प्रकार समझा जाना चाहिए।

80 · संसार में जो एकांत में रहते हैं, वे समर्थ होते हैं, और श्रेष्ठ पुरुष उन बातों को नहीं उठाते और कहते हैं, जैसे जल में खिलने वाला काँटेदार कमल, जो जल और कीचड़ से अछूता रहता है, उसी प्रकार मुनि मौन, लोभ रहित व्यक्ति हैं, और इच्छा और संसार से अछूते हैं।

“संसार में, जो दूर हैं वे ऐसा कर सकते हैं”: उन लोगों से दूर, उन बुरी सोचों से दूर। उन लोगों से दूर जिन्होंने अपने शरीर से बुराई की है, जो खाली हो गए हैं, और जो अलग हो गए हैं; जिन्होंने शब्दों से बुराई की है..., इरादों से बुराई की है..., लालच से बुराई की है...। “कर सकते हैं,” करने में सक्षम, जीने में, कार्य करने में, आगे बढ़ने में, रक्षा करने में, अस्तित्व में रहने में और जीवित रहने में। “संसार में,” मानव जाति के संसार में।

“नेक जन (नाग; जिसका अर्थ हाथी भी होता है) उन बातों को बाद में नहीं दोहराएंगे”: “नेक जन,” “अपराध मत करो”; “मत जाओ”; “मत आओ”। नेक जन के लिए “अपराध न करना” का क्या अर्थ है? अपराधों को बुराई और अस्वास्थ्यकर धर्म कहा जाता है: वे जो दूषित हैं, जो पुनरावर्ती हैं, जो भयभीत करने वाले हैं, जिनके परिणाम भुगतने पड़ते हैं, और जो भविष्य में मृत्यु का कारण बनेंगे।

भगवान [सं.3.6, 527]: 'संसार में कोई अपराध न करो, सभी बंधनों और बंधनों को त्यागकर, किसी भी चीज से चिपके न रहो, इस प्रकार मुक्त लोग ही वास्तव में महान कहलाते हैं।'

"न जाना" एक श्रेष्ठ कार्य कैसे है? एक श्रेष्ठ व्यक्ति न चाहने के कारण नहीं जाता; न भय के कारण; न अहंकार के कारण; न मत के कारण; न संदेह के कारण; न संभावित परेशानियों के कारण; न ही वह झगड़ों (असामंजस्य) से बहककर जाता है, न ही बहकावे में आकर चलता है।

"न आना" श्रेष्ठ कैसे है? सोतापन्न मार्ग द्वारा जो भी अशुद्धि दूर हो जाती है, वह अशुद्धि अब अनुभव नहीं होती, न लौटती है, न वापस जाती है; सकदागामी मार्ग द्वारा...; अनागामी मार्ग द्वारा...; अरहंत मार्ग द्वारा...

"नेक लोग उन बातों को नहीं उठाएंगे और न ही कहेंगे": "नेक लोग उन बुरे विचारों को पकड़ेंगे, उन पर अड़े रहेंगे और फिर बोलेंगे, बताएंगे, बात करेंगे, समझाएंगे या कहेंगे कि दुनिया शाश्वत है... (छोड़ा गया)।" बाद में, बात करना, कहना, समझाना, बोलना।

"जलीय काँटेदार कमल की तरह, जो जल और कीचड़ से अछूता रहता है": जल (एलं) को जल (उदक) कहा जाता है; कमल (अम्बुजं) को कमल (पदुम) कहा जाता है; काँटों को मोटे तने वाला कहा जाता है; जल (वारी) को जल कहा जाता है; कमल (वारीजं) को कमल कहा जाता है; जल (जलं) को जल कहा जाता है; कीचड़ (पंको) को कीचड़ (कद्दमो) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, जल से उत्पन्न होने वाला जलीय कमल जल और कीचड़ से अछूता रहता है, न तो अत्यधिक अछूता रहता है, न ही पूरी तरह से अछूता रहता है, न ही उससे थोड़ा-बहुत अछूता रहता है।

"इस प्रकार के मुनि शांत, लोभी नहीं होते और न ही वे इच्छा और संसार से दूषित होते हैं": "इस प्रकार" एक लाक्षणिक व्यवस्था है। "मुनि," .... "मौन," मुनि मौन हैं (मौन के समर्थक), चिकित्सक हैं, शरण हैं, आश्रय हैं, भयमुक्त हैं, अमर हैं, निर्वाण हैं और निर्वाण हैं। मुनि मौन हैं। "लोभरहित," भोग को भोग कहते हैं, अर्थात् लोभ...। जिनके लिए यह लोभ समाप्त हो जाता है, ..., उन्हें लोभरहित कहा जाता है; वे रूप (आकार) में, ध्वनि में..., गंध में..., ...(छोड़ा गया), ...जो धर्म देखे, सुने, अनुभव किए और जाने जा सकते हैं, वे लोभी नहीं हैं, वे बंधे नहीं हैं, वे आसक्त नहीं हैं और पापी नहीं हैं। जो लोभ से मुक्त हो गए हैं, जिनमें लोभ नहीं है, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिन्होंने लोभ को समाप्त कर दिया है, जो लोभ से मुक्त हो गए हैं, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिनमें लोभ नहीं है, जो भूखे नहीं हैं, जो शांत हो गए हैं, जो प्रसन्न हैं, जो ब्राह्मण के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।

"इच्छा और संसार में दूषित न होना," "इच्छा," .... "संसार में": .... "आसक्ति," .... जब मुनि प्यास और प्रेम की आसक्ति तोड़ देते हैं, दृष्टि की आसक्ति तोड़ देते हैं, तो वे जो देखते हैं उससे दूषित नहीं होंगे; इच्छा और संसार के संसार में वे दूषित नहीं होते, ... उन्होंने छोड़ दिया है, ...

81 · जो व्यक्ति वेदों को जानता है, वह देखने या समझने में अहंकारी नहीं होता, क्योंकि वह दूसरों के बराबर नहीं है (उनके जैसा नहीं है), वह कर्म या सुनी-सुनाई बातों से निर्देशित नहीं होता, वह निवास में अनुयायी नहीं होता।

"वेदों का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति देखने या महसूस करने से अहंकार में नहीं पड़ जाता।" "नहीं" नकारात्मक है। "वेदों का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति।" वेदों को ज्ञान कहा जाता है, ...(अंशित भाग देखें)।

"न देखना," उसके लिए, बासठ बुरी धारणाएँ समाप्त हो चुकी हैं, ..., वह देखने के बहकावे में नहीं आएगा, ..., उस बुरी धारणा को मूल मानकर वापस नहीं लौटेगा। "अनुभूत न होना," अनुभूति के रूप में, या अन्य ध्वनियों में, या जनता की स्वीकृति से, वह अहंकारपूर्वक नहीं आता, नहीं आता, नहीं पकड़ता, नहीं जकड़ता, नहीं चिपकता।

"क्योंकि वह दूसरे के बराबर नहीं है": वह प्यास के कारण, दृष्टि के कारण दूसरे के बराबर नहीं है; वह सर्वोच्च है, वह दूसरी ओर है। उसके लिए प्यास, दृष्टि और अहंकार का नाश हो चुका है... यह स्थिति दूसरे के बराबर नहीं है; दूसरा सर्वोच्च है, और दूसरा दूसरे किनारे पर है।

“कर्म और सुनी-सुनाई बातों से निर्देशित न होना”: “कर्म के वश में न होना,” शुभ कर्म, अशुभ कर्म या अटल कर्म से बहकना, दूर ले जाना या स्थानांतरित होना नहीं। “सुनी-सुनाई बातों से निर्देशित न होना,” पवित्र लोगों की बातों को न सुनना, न ही दूसरों की आवाज़ों से बहकना, न ही जनता की सहमति से बहकना, दूर ले जाना या स्थानांतरित होना नहीं।

“वही है जो निवास में अनुसरण नहीं करता”: “अनुसरण”: अनुसरण दो प्रकार के होते हैं: तृष्णा का अनुसरण और दृष्टि का अनुसरण... (छोड़ा गया)। उसके लिए, तृष्णा का अनुसरण समाप्त हो गया है,... निवास में वह निर्देशित, अपवित्र, संपर्कित, कलंकित या निर्देशित नहीं होता है। उसने छोड़ दिया है,...

82 · जो बंधन तोड़ देते हैं, उनके लिए कोई बंधन नहीं होता, और जो ज्ञान से मुक्त हो जाते हैं, उनके लिए कोई भ्रम नहीं होता, जो कोई भी देखने (बोध करने) और देखने (दृष्टिकोण) को धारण करता है, वे संसार में घर्षण के साथ चलेंगे।

“बंधन तोड़ने वालों के लिए कोई बंधन नहीं रहता”: पवित्र मार्ग के साधकों के लिए, जहाँ समाथा अग्रदूत है, जब प्रारंभिक बंधन समाप्त हो जाता है, जब वे अरहंत की अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, तो अरहंत के लिए, गांठें, भ्रम, सभी प्रकार के आवरण, इच्छाएँ, द्वेषपूर्ण विचार, हानिकारक विचार और दृश्य विचार कट जाते हैं, ...

“ज्ञान के माध्यम से मुक्त हुए लोगों के लिए कोई भ्रम नहीं रहता”: विपश्यना प्रमुख अभ्यास है, इसमें प्रारंभिक अज्ञान का दमन शामिल है, और जब अरहंत अरहंत की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो अरहंत के लिए अज्ञान, बंधन, अहंकार, इच्छा, द्वेष और उत्पीड़न का नाश हो जाता है...

“जो भी विचार रखता है और देखता है, वह कलह उत्पन्न करता है और संसार में विचरण करता है”: जो भी विचार रखता है: इच्छाएँ, द्वेषपूर्ण विचार और हानिकारक विचार, वे अपने विचारों के कारण आपस में कलह और आपसी कलह उत्पन्न करते हैं: राजा और राजा का सिद्धांत, क्षत्रिय और क्षत्रिय..., ब्राह्मण और ब्राह्मण, गृहस्वामी और गृहस्वामी, माता और पुत्र, पुत्र और माता, पिता और पुत्र, पुत्र और पिता, भाई और भाई, बहन और बहन, भाई और बहन, बहन और भाई, मित्र और मित्र। जब वे झगड़ा करते हैं, लड़ते हैं और बहस करते हैं, तो वे एक-दूसरे पर मुक्कों, ढेलों, लाठियों और तलवारों से आक्रमण करते हैं, वहाँ वे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा भोगते हैं [एम.एन.13]। जो लोग यह मानते हैं कि “संसार शाश्वत है”...(उद्धृत अंश), उनमें देखने के कारण टकराव और परस्पर टकराव होता है: गुरु-गुरु के बीच टकराव, धर्म के वर्णनकर्ता-वर्णनकर्ता के बीच टकराव, समूहों-समूहों के बीच टकराव, देखने (दृष्टिकोणों) के बीच टकराव, मार्ग-मार्ग के बीच टकराव और मार्ग-मार्ग के बीच टकराव।

या फिर वे बहस करते हैं, झगड़ते हैं, लड़ते हैं, विवाद करते हैं और असहमत होते हैं: “तुम्हें धम्म का ज्ञान नहीं है...।” उनका व्यवहार और विभिन्न व्यवहारों की अवस्था एक दूसरे से अलग नहीं होती; वे अपने हितों के केंद्र में घर्षण उत्पन्न करते हैं: नरक में घर्षण, पशु जगत में..., प्रेतलोक में..., मनुष्य जगत में..., स्वर्गलोक में घर्षण, स्वार्थ और रुचि..., मृत्यु और पुनर्जन्म..., जन्म और पुनर्जन्म..., अस्तित्व और अस्तित्व..., पुनर्जन्म और पुनर्जन्म..., चक्र और चक्र में घर्षण, एक दूसरे से रगड़ते हुए, बात करते हुए, चलते हुए, ठहरते हुए, कार्य करते हुए, आगे बढ़ते हुए, रक्षा करते हुए, जीवित रहते हुए। “संसार में,”...

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.10

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

10. विघटन से पहले

83 · जिन्हें “मौन” कहा जाता है, वे किस प्रकार के उपदेशों का पालन करते हैं? गौतम! कृपया मुझे इसके बारे में बताइए, (जब) सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में पूछा जाए।

“जिसे ‘मौन’ कहा जाता है, वह किस प्रकार के उपदेश देखता है?”: “देखने वाला” किस प्रकार का दृष्टिकोण रखता है, किस प्रकार की स्थापना करता है, किस प्रकार का विरोधाभासी अवलोकन करता है। “किस प्रकार के उपदेश” किस प्रकार के उपदेश धारण किए जाते हैं, किस प्रकार के उपदेश स्थापित किए जाते हैं, और किस प्रकार के विरोधाभास होते हैं। किस प्रकार के साक्षी के लिए कौन से उपदेश हैं। “जिसे ‘मौन’ कहा जाता है”: उसे शांत व्यक्ति, मौन व्यक्ति, शांत, शीतल और विश्राम करने वाला कहा जाता है। “किस प्रकार का द्रष्टा” जिज्ञासाओं के लिए ज्ञान बढ़ाता है; “किस प्रकार के उपदेश” जिज्ञासाओं के लिए उपदेश बढ़ाते हैं; “मौन” जिज्ञासाओं के लिए मन को बढ़ाते हैं।

“गौतम! कृपया मुझे इसके बारे में बताइए”: “वह,” हर वो बात जो मैं पूछता हूँ; हर वो बात जिसके लिए मैं विनती करता हूँ; हर वो बात जिसके बारे में मैं पूछताछ करता हूँ; हर वो बात जो मुझे स्पष्ट करती है। “गौतम,” वो व्यक्ति जिसे बुद्ध और भगवान उनके नाम से पुकारते हैं। “कृपया बताइए,” कृपया बताइए, कृपया समझाइए, कृपया सिखाइए, कृपया जानकारी दीजिए, कृपया स्थापित कीजिए, कृपया उजागर कीजिए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए।

“(जब) सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में पूछा जाए”: “जिससे पूछा जा रहा है,” जिससे पूछताछ की जा रही है; जिससे पूछा जा रहा है, जिसके बारे में पूछा जा रहा है, जिससे पूछा गया है, जो स्पष्ट करता है। “सर्वोच्च सत्ता,” प्रथम, सबसे विजयी, असाधारण, शीर्ष, सर्वोच्च व्यक्ति।

84 · [धन्य पुरुष, इस प्रकार:] विघटन से पहले, वह एक है जो प्यास से विरक्त है, अतीत पर निर्भर नहीं है, मध्य में नहीं गिना जाता है, उसके लिए (कुछ भी) मूल्यवान (वरीयता) नहीं है।

“शरण से पहले प्यास से विरक्त”: शरीर के विघटन से पहले, आत्मा के विघटन से पहले, शव के त्याग से पहले, जीवन के मूल के कटने से पहले; प्यास रहित, प्यास से मुक्त, जिन्होंने अपनी प्यास त्याग दी है, जो अपनी व्यथाओं से मुक्त हो गए हैं, जिन्होंने अपनी प्यास बुझा दी है, जिन्होंने अपनी प्यास का त्याग कर दिया है; जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिनमें लोभ नहीं है, जिन्होंने लोभ को समाप्त कर दिया है, जो लोभ से मुक्त हो गए हैं, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है; जो भूखे नहीं हैं, जो शीतल हो गए हैं, जो शांत हो गए हैं, जो प्रसन्न हैं, और जो ब्राह्मण के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।

“धन्य प्रभु,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जो अतीत पर निर्भर नहीं रहते”: अतीत को पूर्व जन्म कहा जाता है, अतीत की लालसा का नाश हो चुका है, दृष्टि का नाश हो चुका है, जिस अवस्था में लालसा का नाश हो चुका है, उस नाश की अवस्था को देखते हुए, यही अतीत पर निर्भर न रहना है। इसके अतिरिक्त, “मैं अतीत में ऐसा रूप धारण करता था...”, वहाँ आनंद की खोज करना। “मुझे ऐसी भावनाएँ होती थीं...” ...(अंशित, पिछले भाग देखें)।

“मध्य में क्या नहीं गिना जाना चाहिए”: मध्य को वर्तमान काल कहा जाता है, वर्तमान काल की लालसा समाप्त हो गई है, ..., मन की अवस्था को “संक्रमित” नहीं गिना जाना चाहिए, “घृणित” नहीं गिना जाना चाहिए, “अज्ञानी” नहीं गिना जाना चाहिए, “बंधे हुए व्यक्ति” नहीं गिना जाना चाहिए, “चिपके रहने वाले” नहीं गिना जाना चाहिए, “अराजकता की ओर आने वाले” नहीं गिना जाना चाहिए, “अवांछित की ओर आने वाले” नहीं गिना जाना चाहिए, “धैर्य की ओर आने वाले” नहीं गिना जाना चाहिए, उन कर्मों को त्याग दिया गया है, जब कर्म त्याग दिए गए हैं, तो उन्हें हितों में नहीं गिना जाना चाहिए: “जो नरक (लोक) में गिरता है” या “पशु लोक”, या “भूखे प्रेत लोक”, या “मनुष्य”, या “स्वर्ग”, या “निर्मित”, या “निराकार”, या “सोचने वाला”, या “न सोचने वाला” या “न सोचने वाला” नहीं, उसके गिरने का कोई कारण नहीं है, कोई पूर्वनियति नहीं है, और कोई कारक नहीं है।

“उसके लिए क्या मूल्यवान नहीं है”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, उस व्यक्ति के लिए जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “मूल्यवान” शब्द पर दो प्रकार से ज़ोर दिया जाता है: उत्सुकता पर ज़ोर और देखने पर ज़ोर... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। उसके लिए, लालसा का मूल्य समाप्त हो गया है, देखने का मूल्य समाप्त हो गया है..., वह पहले या बाद में प्यासी प्रेम को नहीं देखता, प्रेम की प्यास ध्वज की तरह नहीं उठाई जाती, प्रेम की प्यास का निर्माण नहीं होता..., बढ़ती नहीं,..., देखना ध्वज नहीं है..., प्यासा न होना या विचारों का अनुसरण न करना, यह उसके लिए मूल्यवान

नहीं है। इसके अलावा, “मुझे भविष्य के जीवन में इस प्रकार का रूप मिलेगा,” इसमें कोई आनंद नहीं है;... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। हृदय को अप्राप्य के लिए कोई आशा नहीं है, हृदय की निराशा के कारण, वह इसे पसंद नहीं करता; जब वह इसे पसंद नहीं करता, तो यह उसके लिए मूल्यवान नहीं होता।

85 · जो क्रोधित नहीं होते, जो भयभीत नहीं होते, जो दिखावा नहीं करते, जो पछताते नहीं, विचारपूर्वक बोलने वाले, जो हार नहीं मानते, वे वास्तव में संयमित वाणी वाले मुनि हैं।

“जो क्रोधित नहीं हैं, जो भयभीत नहीं हैं”: जिसे “क्रोधित नहीं” कहा जाता है, उसके क्रोध की बात सर्वप्रथम की जानी चाहिए (यह अंश स्पष्ट नहीं है: 'अक्कोधनोति यंहि खो वुत्तं. अपि च कोधो ताव वत्तब्बो.')। क्रोध दस रूपों में उत्पन्न होता है: “उसने मेरे विरुद्ध कार्य किया है,” [एएन.9.29] क्रोध उत्पन्न होता है; “वह मेरे व्यवहार के विरुद्ध है,” क्रोध उत्पन्न होता है; “वह मेरे विरुद्ध कार्य करेगा,” क्रोध उत्पन्न होता है; “वह मेरे प्रिय और वांछनीय व्यवहार के प्रति प्रतिकूल रहा है..., प्रतिकूल है..., प्रतिकूल होगा,” क्रोध उत्पन्न होता है; “उसने उस चीज़ से लाभ उठाया है जो मुझे प्रिय नहीं है, अवांछनीय है...,” क्रोध उत्पन्न होता है; या अनुचित क्रोध उत्पन्न होता है। किसी भी प्रकार का क्रोध, शत्रुता, घृणा, अरुचि, बुराई, हृदय की अरुचि, क्रोध की अवस्था, आक्रामकता, क्रूर क्रोध, रोष, अप्रसन्न हृदय, यही क्रोध कहलाता है।

इसके अतिरिक्त, क्रोध की चरम और सूक्ष्म अवस्थाओं को समझना चाहिए: कभी-कभी क्रोध केवल गुस्से की चरम सीमा तक सीमित होता है, लेकिन भौंहें चढ़ाने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल भौंहें चढ़ाने जितना ही होता है, लेकिन दांत पीसने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल दांत पीसने जितना ही होता है, लेकिन मौखिक दुर्व्यवहार जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल मौखिक दुर्व्यवहार के स्तर तक सीमित होता है, लेकिन हथियार खोजने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल चारों दिशाओं में (हथियार की तलाश में) देखने जितना होता है, लेकिन छड़ी उठाने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल छड़ी उठाने जितना होता है, लेकिन छड़ी निकालने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल छड़ी उठाने जितना होता है, लेकिन छड़ी से मारने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल छड़ी से मारने जितना होता है, लेकिन इतना नहीं कि शरीर टूट जाए; कभी-कभी क्रोध केवल टूटने जितना होता है, लेकिन शरीर के हर अंग को नोचने जितना नहीं। कभी-कभी क्रोध केवल शरीर के हर अंग को चीर-फाड़ देने जैसा होता है, लेकिन इतना नहीं कि जान ले ले; कभी-कभी क्रोध केवल जीवन छीन लेने जैसा होता है, लेकिन इतना नहीं कि व्यक्ति स्वयं को ही त्याग दे। जब क्रोधित व्यक्ति दूसरों को मारने के बाद स्वयं को मार डालता है, तो यह स्थिति क्रोध के और भी बढ़ने का संकेत देती है। जिसके लिए यह क्रोध समाप्त हो जाता है, शांत हो जाता है, रुक जाता है, उत्पन्न होने में असमर्थ हो जाता है, और ज्ञान की अग्नि से जल जाता है, उसे क्रोधहीन कहा जाता है। क्रोध का त्याग करना क्रोधहीनता कहलाता है; क्रोध के ज्ञान की अवस्था क्रोधहीनता कहलाती है; क्रोध से मुक्त होना क्रोधहीनता कहलाती है।

“जो भयभीत नहीं हैं,” यहाँ एक प्रकार का व्यक्ति वह है जो भयभीत है, वे जो डरे हुए हैं, और वे जो आतंकित हैं। वे कांपते हैं, भयभीत होते हैं, आतंकित होते हैं, और डर जाते हैं: “मुझे घर नहीं मिल रहा है, या मुझे लोगों का समूह नहीं मिल रहा है, या मुझे आश्रय नहीं मिल रहा है, या मुझे लाभ नहीं मिल रहा है, या मुझे प्रतिष्ठा नहीं मिल रही है, या मुझे प्रशंसा नहीं मिल रही है, या मुझे सुख नहीं मिल रहा है, या मुझे कपड़े नहीं मिल रहे हैं, या मुझे सामूहिक भोजन नहीं मिल रहा है, या मुझे बिस्तर नहीं मिल रहा है, या मुझे रोगी की आवश्यक वस्तुएँ और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतें नहीं मिल रही हैं, या मुझे देखभाल नहीं मिल रही है, या मैं किसी को नहीं जानता।” वह कांप रहा था, भयभीत था, डरा हुआ था, और भयभीत था।

यहां भिक्षु वह है जो भयभीत नहीं होता, जिसे कोई डर नहीं होता और जो निर्भीक होता है। वह कांपता नहीं, डरता नहीं और न ही भयभीत होता है: “मुझे घर नहीं मिल रहा...” वह कांपता नहीं, न ही भयभीत होता है।

“जो दिखावा नहीं करते, जो पछतावा नहीं करते”: यहाँ एक प्रकार का व्यक्ति घमंड और दिखावा कर रहा है: मैं “पर्याप्त व्यक्ति” हूँ, या “नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति” हूँ, या “निषेधों का पालन करने वाला व्यक्ति” हूँ, या “जन्म से, या उपनाम से, या अच्छे परिवार से, या कमल के समान सुंदर रूप से, या संपत्ति से, ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)”, वह घमंड और दिखावा करता है। वह इस तरह घमंड या दिखावा नहीं करता। घमंड और दिखावे से विरक्ति, संयम, त्याग है; वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

“जो पश्चाताप नहीं करते,” “पश्चाताप,” हाथों का अनुचित व्यवहार पश्चाताप है, पैरों का अनुचित व्यवहार भी पश्चाताप है, हाथों और पैरों का अनुचित व्यवहार भी पश्चाताप है, अनुचित विचार को उचित समझना, उचित विचार को अनुचित समझना, असमय विचार को समय पर समझना,

समय पर विचार को असमय समझना, निर्दोष को पाप समझना, पापी को निर्दोष समझना, इसी प्रकार का सारा पश्चाताप, पश्चाताप का मार्ग, पश्चाताप की अवस्था, हृदय का पश्चाताप, मन का भ्रम, यही पश्चाताप कहलाता है।

इसके अतिरिक्त, पछतावा, हृदय का पछतावा और मन की दुविधा दो कारकों से उत्पन्न होती है: जो किया गया है और जो नहीं किया गया है...(विलंबित भाग देखें)। उसे पछतावा है, हृदय का पछतावा है और मन की दुविधा है। यही वह है जो किया गया है और जो नहीं किया गया है, और इसी से पछतावा, हृदय का पछतावा और मन की दुविधा उत्पन्न होती है।

या, "मैं उपदेशों में पूर्णतः पारंगत व्यक्ति नहीं हूँ..." जिसके लिए पश्चाताप समाप्त हो गया हो, शांत हो गया हो, रुक गया हो, और ज्ञान की अग्नि से भस्म हो गया हो, उसे पश्चाताप न करने वाला कहा जाता है।

“विचार करने के बाद बोलने वाला, जो हार नहीं मानता”: विचार करने के बाद, उसे बुद्धिमत्ता कहते हैं, जो बुद्धिमत्ता है, ...(अधूरा)। जब बहुत बातें होती हैं; जब बहुत स्पष्टीकरण होता है; जब बहुत चर्चा होती है, तो वह विचार करता है, खोजबीन करता है, और फिर बोलता है। वह बुराई की बातें नहीं कहता। “जो भटकते नहीं,” कहाँ, क्या भटक रहा है? जहाँ भी हृदय भटक रहा है, वहाँ मौन नहीं है; हृदय बिखरा हुआ है; हृदय भ्रमित है, जिसे भटकना कहते हैं। जिसके लिए यह कट गया है...

“वह वास्तव में संयमित वाणी वाला मुनि है”: यहाँ, भिक्षु अपने शब्दों का त्याग करने के बाद, वह झूठा नहीं, सत्यवादी, सच्चा, विश्वसनीय, भरोसेमंद और संसार के प्रति छलरहित होता है। वाणी त्यागने के बाद, वह एक दूरस्थ वक्ता होता है: यहाँ से सुनकर, वह लोगों को विभाजित करने के लिए वहाँ नहीं बोलता, इस प्रकार, वह विभाजन का मध्यस्थ, सद्भाव का प्रसारक, मेल-मिलाप करने को इच्छुक, मेल-मिलाप पसंद करने वाला और मेल-मिलाप का वक्ता होता है। कठोर और बुरे शब्दों का त्याग करने के बाद, वह कठोर और बुरे शब्दों को छोड़ने वाला होता है; वह कोमल, सुखद, सुंदर और लुभावने, सुरुचिपूर्ण, सुखद और सभी को प्रिय शब्दों का उच्चारण करता है। अश्लील भाषा का त्याग करने के बाद, वह अश्लील भाषा से मुक्त होता है: वह सही समय पर बोलने वाला, तथ्यों का वक्ता, लाभ का वक्ता, धम्म का वक्ता होता है; वह उचित समय पर उचित, तर्कसंगत, संयमित और लाभदायक शब्दों का वक्ता है [एएन.4.198]। उसके चार प्रकार के अच्छे कर्म और चार प्रकार के निर्दोष शब्द हैं। वह बत्तीस पशुवत शब्दों से मुक्त हो चुका है, उनका त्याग कर चुका है, उन्हें छोड़ चुका है, उनसे मुक्त हो चुका है, अपने बंधनों को त्याग चुका है, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

वे दस बातों के बारे में बात करते हैं, अर्थात्: कम इच्छा का सिद्धांत, संतोष का सिद्धांत..., एकांतवास का सिद्धांत..., संवादहीनता का सिद्धांत..., जीवन शक्ति का सिद्धांत..., आज्ञा का सिद्धांत..., निष्कर्ष..., ज्ञान का सिद्धांत..., मुक्ति का सिद्धांत..., मुक्ति ज्ञान का सिद्धांत..., सचेतनता का सिद्धांत..., उचित परिश्रम का सिद्धांत..., दिव्य आधारों का सिद्धांत..., मूल सिद्धांत..., शक्ति का सिद्धांत..., ज्ञानोदय का सिद्धांत..., पथ सिद्धांत..., फल सिद्धांत और निर्वाण सिद्धांत। “आत्म-संयम वाले शब्द” सतर्क, विवेकपूर्ण, संरक्षित, सुरक्षित और मौन होते हैं। “मुनि,”...

86 · भविष्य में कोई बंधन नहीं है, वह अतीत पर शोक नहीं करता, वह स्पर्श को दूर देखता है, और वह (दृष्टिकोण) देखने में निर्देशित नहीं होता।

“भविष्य में बंधनों से मुक्त व्यक्ति”: आसक्ति को भोग कहते हैं, जो लालच है...। उसके लिए, जो लोग इस आसक्ति से मुक्त हैं, जिनकी भोग-विलास समाप्त हो गई है..., वे ही भविष्य में बंधनमुक्त हैं। इसके अतिरिक्त, “भविष्य में मेरा ऐसा रूप होगा।”...(अस्पष्ट)। हृदय में आशा की कमी के कारण, उसे यह पसंद नहीं आता; जब यह पसंद नहीं आता, तो यह भी भविष्य में बंधनमुक्त होने का कारण है। “भविष्य में मेरे कान ऐसे होंगे, और मेरी आवाज ऐसी होगी।”...। इसके अतिरिक्त, “मैं इस सद्गुण, निषेध, तपस्या और ब्रह्म के साथ स्वर्ग या स्वर्गों में से एक में प्रवेश करूँगा।” वह उस चीज़ की आशा नहीं करता जो प्राप्त नहीं होती, और हृदय में आशा की कमी के कारण, उसे यह पसंद नहीं आता।

वह अतीत पर शोक नहीं करता: वह जो बदल गया है उसके लिए दुखी नहीं होता, न ही जो बदल रहा है उसके लिए उदास होता है: "मेरी आँखें बदल गई हैं," वह उदास नहीं है; मेरे कान... वह उदास नहीं है, थका हुआ नहीं है, रो नहीं रहा है, विलाप नहीं कर रहा है, न ही उलझन में पड़ रहा है।

स्पर्श को दूर से देखना: आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शरीर का संपर्क, इरादे का संपर्क, नाम का संपर्क, विपरीत संपर्क [DN.15], एक ऐसा स्पर्श जो सुखद होना चाहिए, एक ऐसा स्पर्श जो कड़वा होना चाहिए, एक ऐसा स्पर्श जो न तो पीड़ा और न ही सुख का अनुभव कराए, अच्छा स्पर्श, अस्वस्थ स्पर्श, स्मरणहीन स्पर्श, इच्छा का स्पर्श, शारीरिक स्पर्श, निराकार स्पर्श, खाली स्पर्श, संपर्कहीनता, अनिच्छुक स्पर्श, सांसारिक स्पर्श, संसार से परे स्पर्श, अतीत, भविष्य, वर्तमान, और स्पर्श की अवस्था, संपर्क, पूर्ण संपर्क, और इस प्रकार पूर्ण संपर्क की अवस्था को स्पर्श कहा जाता है।

स्पर्श को दूर देखना: "मैं", या "जो मेरे पास है", या स्थिरता, या शाश्वतता, या अपरिवर्तनीय विधियों के साथ, वह नेत्र संपर्क को दूर देखता है; ..., वह कान संपर्क को दूर देखता है; ...(छोड़ा गया) "मैं", या "मैं जो हूँ", या "हमेशा", या "शाश्वत", या "अपरिवर्तनीय" से दूर।

या, वह अतीत को भविष्य और वर्तमान से प्रभावित देखता है; वह भविष्य को अतीत और वर्तमान से प्रभावित देखता है; वह वर्तमान को अतीत और भविष्य से प्रभावित देखता है, या, जहाँ वे पवित्र, चिंतामुक्त, संसार से परे, और शून्य से संबंधित स्पर्श करते हैं, वहाँ वह लोभ के स्पर्श को दूर देखता है; क्रोध..., अज्ञान..., (छोड़ा गया)।

"वह देखने में निर्देशित नहीं होता": उसके लिए, बासठ बुरे विचार काट दिए गए हैं, ..., और वह देखने से बहक नहीं जाएगा, बहक नहीं जाएगा, बहक नहीं जाएगा, और न ही उस बुरे विचार को मूल रूप में अपनाएगा।

87 · वे जो पीछे हट गए हैं, षड्यंत्रकारी नहीं हैं, उत्सुक नहीं हैं, कंजूस नहीं हैं, जो अभिमानी नहीं हैं, (नैतिक रूप से) घृणित नहीं हैं, (विभाजनकारी) प्रवचन के इच्छुक नहीं हैं।

"एकाग्र, षड्यंत्र रहित": "एकाग्र," लोभ का त्याग करने की अवस्था एकाग्रता है, ...विरोध..., ...अज्ञान..., ...क्रोध... (छोड़ा गया)। भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! भिक्षु कैसे एकाग्र होते हैं? भिक्षुओं! यहाँ, भिक्षुओं के आत्म-अस्तित्व का अहंकार कट गया है, और जड़ें कट गई हैं, जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़, भविष्य के लिए अस्तित्वहीन हो जाता है, भिक्षुओं! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र होता है। [एएन.4.38]"

"षड्यंत्रकारी न होने" की बात करें तो, षड्यंत्र तीन प्रकार के होते हैं: संसाधनों का उपयोग करने का षड्यंत्र, व्यवहार का षड्यंत्र और लाभ के लिए इधर-उधर की बातें करने का षड्यंत्र।

संसाधनों के उपयोग में छल क्या है? यहाँ, घर के मालिक भिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं के साथ आमंत्रित करते हैं। वह एक दुष्ट इच्छा वाला व्यक्ति है, प्रकृति के प्रति सजग व्यक्ति है और आशावान व्यक्ति है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ हैं। अधिक की आशा में, वस्त्रों को अस्वीकार करते हुए, भोजन देने से इनकार करते हुए, आश्रय देने से इनकार करते हुए, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं से इनकार करते हुए, उसने कहा: "एक समण के लिए उच्च मूल्य के वस्त्रों का क्या अर्थ है!" यह उचित है कि एक समण टीले, कूड़े के ढेर या दुकान के सामने से चिथड़े-चिथड़े कपड़े लेकर कोट बनाए। एक समण के लिए उच्च मूल्य के भोजन का क्या अर्थ है! यह उचित है कि एक समण भिक्षा माँगकर जीवन यापन करे। उच्च मूल्य के आवास में एक समण के लिए क्या है! ...एक समण वह होता है जो वृक्षों के नीचे, टीलों के बीच या खुले में रहता है। ...रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है! ...किण्वित गाय के मूत्र या कुचली हुई हरी सब्ज़ियों से बनी औषधि का प्रयोग करता है। यह जानकर वह मोटे वस्त्र पहनता है; मोटा भोजन ग्रहण करता है; मोटे घरों में रहता है; रोगियों और चिकित्सा संबंधी मोटी-मोटी वस्तुओं का उपयोग करता है। घर के मालिक उसे इस प्रकार जानते थे: "यह समण कम इच्छाओं वाला, संतुष्ट, एकांतप्रिय, भीड़-भाड़ से दूर रहने वाला, ऊर्जावान और आध्यात्मिक गुरु है।" वे उसे वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं के साथ अधिकाधिक आमंत्रित करते हैं। उन्होंने कहा: "तीनों अवस्थाओं में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं: आस्था की अवस्था में नेक लोग हैं, पुण्य और दान की अवस्था में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं, और सहायता के योग्य व्यक्ति की अवस्था में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं। आप विश्वासी हैं, दान मौजूद है, और मैं दान लेने वाला हूँ। यदि मैं इसे स्वीकार नहीं करता, तो आप पुण्य से वंचित हो जाएँगे। यह मेरे लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि दयावश, मैं आपसे स्वीकार करता हूँ।" इसके बाद, वे बहुत से वस्त्र, बहुत से भोजन, बहुत से आवास और बहुत से

रोगियों की ज़रूरत की चीज़ें और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतें स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भौंहें चढ़ाने वाले किसी भी व्यक्ति की भौंहें छल के मार्ग पर हैं, छल की अवस्था में हैं, यह संसाधनों को प्राप्त करने के लिए छल है।

व्यवहार की छल-कपट क्या है? यहाँ कुछ प्रकार के बुरे भोगी हैं, कुछ प्रकृति के भोगी और कुछ मान-सम्मान के भोगी, (विचार): "इस तरह लोग मेरा आदर करेंगे।" वह चलने, खड़े होने, बैठने, लेटने की मुद्रा में बैठता है, इच्छा के लिए चलता है, इच्छा के लिए खड़ा होता है, इच्छा के लिए बैठता है, इच्छा के लिए लेटता है, एकाग्रता में बैठे व्यक्ति की तरह चलता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह खड़ा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह बैठता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह लेटता है, और ध्यानमग्न व्यक्ति के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार के व्यवहारों को स्थापित करना, मजबूत करना और पूर्ण रूप से स्थापित करना; इस व्यंजक व्यक्ति की भौंहें छल-कपट का मार्ग और छल-कपट की अवस्था हैं, यही व्यवहार की छल-कपट है।

लाभ के लिए हर जगह बातें करने का छल क्या है? यहाँ कुछ प्रकार के दुष्ट इच्छाधारी हैं, कुछ प्रकृति की लालसा रखते हैं, और कुछ मान-सम्मान की लालसा रखते हैं (सोचते हैं): "इस तरह लोग मेरा आदर करेंगे।" उन्होंने पवित्र धम्म के अनुसार कहा, "जो कोई इस प्रकार वस्त्र धारण करता है, वह एक शक्तिशाली समण है।" उन्होंने कहा, "जो कोई इस प्रकार का कटोरा धारण करता है..., तांबे का कटोरा धारण करता है..., जल छानने का यंत्र धारण करता है..., चाबियाँ धारण करता है, जूता पहनता है, कमरबंद पहनता है... वह एक महान शक्तिवान समण है।" उन्होंने कहा, "जिसके अनुयायी इस प्रकार के हैं, वह एक शक्तिशाली समण है।" उन्होंने कहा, "जिसके गुरु इस प्रकार के हैं..., भिक्षु के समान व्यक्ति इस प्रकार के हैं..., गुरु, मित्र, परिचित, निकट संबंधी, साथी के समान व्यक्ति इस प्रकार के हैं..., वह एक शक्तिशाली समण है।" उन्होंने कहा: "जो कोई भी इस तरह के आवास में रहता है..., आधे छत वाले घर में, ऊँची इमारत में, समतल घर में, गुफा में, झोपड़ी में, भारी मंडप में, वेधशाला में, गोल घर में, शेड में, व्याख्यान कक्ष में, तम्बू में, पेड़ के नीचे रहता है..., वह महान शक्ति का समण है।"

या फिर वे लोग जो लगातार भौंहें चढ़ाए रहते हैं; निरंतर भौंहें चढ़ाए रहते हैं; जो छल करते रहते हैं; जो लगातार शिकायत करते रहते हैं; जो अपनी ज़ुबान की वजह से सम्मान पाते हैं, जो ऐसी गहरी, गुप्त, सूक्ष्म, अलौकिक और खोखली बातें कहते हैं: "यह समण इस तरह इस शांत निवास में रहता है और प्रतीक्षा करता है।" जो भी इस तरह भौंहें चढ़ाता है, उसकी भौंहें चढ़ाना; छल का मार्ग, छल की अवस्था, यही आसपास की भाषा का छल है।

"जो आशा नहीं रखते, जो कंजूस नहीं हैं": आशा को प्यास कहा जाता है, यह लालच है...। उसके लिए, यह उत्सुकता और प्यास समाप्त हो गई है..., और उसे उत्सुक न होने वाला कहा जाता है, रूप..., ध्वनियाँ..., ...(छोड़ा गया)। "जो कंजूस नहीं हैं," कंजूसी पाँच प्रकार की होती है: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। जिसके लिए यह समाप्त हो गया है, ...।

"जो अहंकारी नहीं हैं, जो घृणा नहीं करते": "अहंकार" तीन प्रकार का होता है: देह अहंकार, वाणी अहंकार और हृदय अहंकार। देह अहंकार क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग संघ में आकर अपना देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं, समूह में आते समय देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं, भोजनालय में देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं, स्नानघर में देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं, घर में प्रवेश करते समय देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं और (अशिष्ट) घर में प्रवेश करते समय देह अहंकार प्रदर्शित करते हैं।

वह संघ में देह-प्रवंचना का प्रदर्शन कैसे करता है? यहाँ संघ में आने वाले कुछ खास तरह के लोग सम्मान का व्यवहार नहीं करते। वे बड़े भिक्षुओं को स्पर्श करते समय खड़े रहते हैं, और जब वे उन्हें स्पर्श करते हैं तो बैठ जाते हैं, बड़े भिक्षुओं के सामने खड़े होते हैं, आगे बैठते हैं, और ऊँची सीटों पर बैठते हैं। सिर ढँककर बैठने के बजाय, वह खड़े होकर बात करता है, और बात करते समय अपने हाथ हिलाता है, इस प्रकार वह संघ में अपनी देह-प्रवंचना का प्रदर्शन करने आया है।

शरीर का प्रदर्शन करने के लिए समूह में आना किस प्रकार का अहंकार है? यहाँ, कुछ विशेष प्रकार के लोग समूह का अनादर करने के लिए आते हैं। जो बड़े भिक्षु बिना जूते के चलते हैं, उनके सामने वह जूते पहनकर चलता है, जो नीची जगहों पर चलते हैं, उनके सामने वह ऊँची जगहों पर चलता है, और जो ज़मीन पर चलते हैं, उनके सामने वह ऊँची जगहों पर चलता है। वह गलियारे से होकर गुजरा, स्पर्श करते समय खड़ा हुआ, स्पर्श करते समय बैठा, आगे खड़ा हुआ, आगे बैठा, ऊँची कुर्सी पर बैठा, सिर लपेटकर बैठा, खड़ा होकर बातें कीं, बाहें हिलाते हुए बातें कीं, यह सब समूह में शरीर का अहंकार दिखाने के लिए किया जाता है।

कैफ़ेटेरिया में शारीरिक आडंबर दिखाना क्या होता है? यहाँ एक खास तरह का व्यक्ति कैफ़ेटेरिया में अशोभनीय व्यवहार करता है। वह वरिष्ठ भिक्षुओं के स्थान पर अतिक्रमण करता है और फिर बैठ जाता है, नए भिक्षुओं के लिए अपनी सीट से रास्ता अवरुद्ध कर देता है, खड़े होकर छूता है, फिर बैठ जाता है, आदि, इस प्रकार वह कैफ़ेटेरिया में अपने शारीरिक आडंबर का प्रदर्शन करता है।

स्नानघर में शरीर का अहंकार कैसे प्रदर्शित किया जाता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति स्नानघर में सम्मान का व्यवहार नहीं करता। वह बड़े भिक्षुओं को छूते समय खड़ा रहता है, छूते समय बैठता है, आगे खड़ा रहता है, ... बिना पूछे लकड़ियाँ हटा देता है, बिना पूछे दरवाजा बंद कर देता है, हाथ हिलाकर बातें करता है, यह सब स्नानघर में शरीर का अहंकार प्रदर्शित करना है।

स्नान में शरीर का अहंकार कैसे प्रदर्शित होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति स्नान स्थल में सम्मानजनक नहीं माना जाता। जब वह वरिष्ठ भिक्षुओं को स्पर्श करता है, तो वह पानी में कूद जाता है, उनके आगे कूद जाता है, स्पर्श होने पर स्नान करता है, आगे स्नान करता है, ऊपर स्नान करता है, स्पर्श होने पर पानी से बाहर निकलता है, आगे पानी से बाहर निकलता है, ऊपर पानी से बाहर निकलता है, यह स्नान में शरीर के अहंकार को प्रदर्शित करने के लिए है।

घर में प्रवेश करते समय देह का अहंकार दिखाना कैसा होता है? यहाँ एक विशेष प्रकार का व्यक्ति (अशिष्ट) घर में प्रवेश करते समय सम्मान का व्यवहार नहीं करता। वह बड़े भिक्षुओं को स्पर्श करते समय, उनके आगे-आगे चलता है, और सही मार्ग से भटककर बार-बार उनके आगे से निकल जाता है। घर में प्रवेश करते समय देह का अहंकार दिखाना ऐसा ही होता है।

किसी (अनैतिक) घर में प्रवेश करते समय शरीर का प्रदर्शन करना किस प्रकार का अहंकार है? यहाँ, जब एक विशेष प्रकार के लोग किसी (अनैतिक) घर में प्रवेश करते हैं, तो प्रवेश करने पर वे कहते हैं, "हे महान गुण! कृपया प्रवेश न करें।" प्रवेश करने पर वे खड़े हो जाते हैं, जबकि उन्हें कहा जाता है, "हे महान गुण! कृपया खड़े न हों।" जब ऐसा कहा जाता है, तो वे बैठ जाते हैं, वे बिना जगह छोड़े प्रवेश करते हैं, वे बिना जगह छोड़े खड़े होते हैं, और वे बिना जगह छोड़े बैठ जाते हैं, जहाँ उस (अनैतिक) परिवार का भीतरी कमरा छिपा हुआ और गुप्त है: गृहिणी, बहू, गृहिणी और कन्या बैठी रहती हैं, जहाँ वे अभद्रता से प्रवेश करते हैं और लड़के के सिर को छूते हैं। यह (अनैतिक) घर में प्रवेश करते समय शरीर के अहंकार को दर्शाता है। यह शरीर के अहंकार का प्रदर्शन है।

शब्दों का अहंकार क्या दर्शाता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग संघ में आने पर शाब्दिक अहंकार प्रदर्शित करते हैं, समूह में आने पर शाब्दिक अहंकार प्रदर्शित करते हैं और (अशिष्ट) परिवार में प्रवेश करने पर शाब्दिक अहंकार प्रदर्शित करते हैं।

संघ में शब्दों का अहंकार कैसे प्रकट होता है? यहाँ कुछ खास तरह के लोग संघ में बिना आदर दिखाए आते हैं। वरिष्ठ भिक्षुओं से पूछने के बाद, या मठ में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं से बिना पूछे ही, उनके प्रश्नों का उत्तर देने और पातिमोक्ख का पाठ करने के बाद, वे खड़े होकर बोलने लगते हैं, हाथ हिलाकर बोलने का इशारा करते हैं; यही संघ में आने का अहंकार है।

किसी समूह में शब्दों का अहंकार कैसे प्रकट किया जा सकता है? यहाँ, कुछ खास तरह के लोग समूह में अनादर करने के लिए आते हैं। बड़े भिक्षुओं से पूछे बिना, या मठ के बगीचे में प्रवेश करने वाले भिक्षुओं से बात करने और उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बिना पूछे ही, वह खड़ा होकर हाथ हिलाते हुए भिक्षुओं से बात करता है। बगीचे में मौजूद भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ भक्त और महिला गृहस्थ भक्त भी बोलते और प्रश्नों का उत्तर देते हैं। वह खड़ा होकर हाथ हिलाते हुए बोलता है। यह समूह में वाणी का अहंकार दिखाने का एक तरीका है।

किसी (अशिष्ट) घर में प्रवेश करते समय वाणी का अहंकार दिखाना क्या होता है? यहाँ, जब कुछ खास तरह के लोग (अशिष्ट) घरों में प्रवेश करते हैं, तो वे महिलाओं या लड़कियों से कहते हैं: "इस व्यक्ति का नाम और उपनाम क्या है? क्या यहाँ दूध का दलिया, भोजन और ठोस भोजन है? हम क्या पिएंगे? हम क्या खाएंगे? हम क्या चबाएंगे? या फिर: आप मुझे क्या देंगी?" वे बुदबुदाते हैं। जो कोई भी इस तरह की वाणी, निरर्थक शब्दों, बुदबुदाहट और अत्यधिक वाचालता में किसी आम आदमी के घर में प्रवेश करता है, वह वाणी का अहंकार दिखाता है। यही शब्दों का अहंकार है।

हृदय का अहंकार क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग जो कुलीन परिवार से नहीं हैं, उनमें से एक अहंकारी व्यक्ति स्वयं को कुलीन भिक्षु के समान समझता है, और एक ऐसा व्यक्ति जो बड़े परिवार से नहीं है, वह स्वयं को और बड़े परिवार को अपने हृदय से एक समान समझता है। जो भिक्षु नहीं बनते, वे समान हैं; जो धनी परिवार से नहीं हैं, वे अहंकारी लोगों के समान हैं; और जो धनी परिवार से नहीं हैं, वे भिक्षु नहीं हैं, वे भिक्षु नहीं हैं, उनके समान हैं। अहंकारी व्यक्ति स्वयं को और सूत्र शिक्षक को अपने हृदय में समान समझता है, और जो धर्म का पालन नहीं करता, ऐसे अहंकारी लोग भी हैं जो कुछ नहीं कहते, जो वनों में नहीं रहते, और जो भोजन के लिए बहुत भीख मांगते हैं... (कुछ भाग हटा दिए गए हैं, पिछले भाग देखें)। यही हृदय का अहंकार है। उसके लिए, वे तीनों प्रकार के अहंकार समाप्त हो जाते हैं, ..., उसे अहंकाररहित कहा जाता है।

"जो घृणित नहीं हैं," कुछ घृणित हैं और कुछ नहीं। घृणित व्यक्ति कौन है? यहाँ, एक निश्चित प्रकार के लोग वे हैं जो नियमों का उल्लंघन करते हैं, जो दुष्ट हैं, जो अपवित्र और संशयी हैं, जो गुप्त रूप से व्यवहार करते हैं, जो समण नहीं हैं लेकिन स्वयं को समण कहते हैं, जो ब्राह्मण नहीं हैं लेकिन स्वयं को ब्राह्मण कहते हैं, जो आंतरिक पतन से ग्रस्त हैं, जिनके व्यक्तित्व बुरे हैं [AN.7.72]। या फिर, वह आसानी से क्रोधित हो जाता है और क्रोध से ग्रसित हो जाता है, और थोड़ा सा बोलने पर ही क्रोधित, आहत, दुखी, विद्रोही, क्रोध, घृणा और असंतोष प्रकट करता है [AN.3.25]। या फिर, वह क्रोधशील, द्वेषी, दुष्ट, दबंग, ईर्ष्यालु, कंजूस, धूर्त, पाखंडी, हठी, अभिमानी, बुरी इच्छाओं वाला, गलत दृष्टिकोण वाला और त्याग न कर पाने वाला व्यक्ति है [AN.6.36]। इसे घृणित व्यक्ति कहा जाता है।

जो व्यक्ति कर्मों में घृणित नहीं है, वह क्या है? यहाँ भिक्षु एक ऐसा गुरु है जो पातिमोक्खा के आत्म-संयम से सुरक्षित रहता है। उसके पास पर्याप्त धार्मिकता और उचित परिस्थितियाँ होती हैं। वह छोटे पापों में भी भयावहता देखता है और गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद सीखता है। [AN.2.37] या, वह ऐसा व्यक्ति है जो आसानी से क्रोधित नहीं होता और हमेशा चिड़चिड़ेपन से मुक्त रहता है। अधिक चर्चा करते समय, वह विचलित, क्रोधित, उत्तेजित नहीं होता, विरोध नहीं करता और कोई द्वेष, घृणा या असंतोष नहीं दिखाता। [MN.135] या, वह आसानी से क्रोधित नहीं होता, द्वेष नहीं रखता, बुराई नहीं छुपाता, अभिमानी नहीं होता, ...(विलुप्त), जो हठी नहीं होते और जो आसानी से त्याग देते हैं, उन्हें घृणित कर्मों में घृणित कहा जाता है। सभी अज्ञानी साधारण लोग घृणित हैं, और आठ संतों सहित गुणी साधारण लोग घृणित नहीं हैं।

"और जो लोग फूट डालने वाली बातों के पक्षधर नहीं हैं": यहाँ "फूट डालने वाली बातें" से तात्पर्य एक विशेष प्रकार के व्यक्ति से है जो फूट डालने वाला वक्ता होता है। जब वह किसी से ऐसी बात सुनता है, तो वह वहाँ जाकर लोगों को बाँटने के लिए बोलता है, या जब वह किसी से ऐसी बात सुनता है, तो वहाँ जाकर उन लोगों को बाँटने के लिए वही बात कहता है; इस प्रकार, वह सद्भाव का नाश करने वाला, फूट फैलाने वाला, अप्रिय, असामंजस्य का वक्ता, असहमति का वक्ता होता है; इसे फूट डालने वाली बातें कहते हैं।

इसके अतिरिक्त, विभाजन के दो कारण हैं: सुंदर बनने की इच्छा, या विभाजन की इच्छा। सुंदर बनने की इच्छा से विभाजन कैसे उत्पन्न होता है? "इसके लिए, मैं सुंदर बनूँगा, मैं आकर्षक बनूँगा, मैं निकट रहूँगा, मैं घनिष्ठ मित्र बनूँगा, मैं दयालु बनूँगा।" इस प्रकार, सुंदर बनने की इच्छा से विभाजन उत्पन्न होता है। विभाजन की इच्छा से विभाजन कैसे उत्पन्न होता है? "ये कैसे भिन्न-भिन्न हो जाएँगे, अलग हो जाएँगे, विभाजित हो जाएँगे, दो प्रकार के हो जाएँगे, विरोधाभासी हो जाएँगे, दो गुट बन जाएँगे, टूट जाएँगे, पुनर्मिलन नहीं करेंगे, पीड़ा और बेचैनी का कारण बनेंगे।" यह विभाजन की इच्छा से उत्पन्न विभाजन है। जो अलग-थलग है, वह (विवाद में) उत्साही नहीं है, अनियंत्रित है, दृढ़ता से नियंत्रित नहीं है, जो पूरी तरह से नियंत्रित नहीं हैं, वे पूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं हैं।

88 · जो संतुष्टि में कोई रिसाव नहीं करते, जो अहंकार में उत्साही नहीं होते, जो कोमल और वाक्पटु होते हैं, अविश्वासी, वह कलंकित नहीं होगा।

"संतोष में रिसाव रहित लोग": संतोषी लोगों को पाँच इच्छाएँ कहा जाता है। संतोषी लोगों को पाँच इच्छाएँ क्यों कहा जाता है? वे पाँच इच्छाएँ जिन्हें अधिकांश लोग चाहते हैं, स्वीकार करते हैं, आशा करते हैं, उत्साह रखते हैं और अभिलाषा रखते हैं, इसी कारण से संतोषी कहलाती हैं। जिसने त्याग नहीं किया है, उसके लिए संतोषी इच्छा उसकी आँखों के रूप से प्रवाहित होती है, उत्पन्न होती है और स्थानांतरित होती है; कान की ध्वनि, नाक की गंध, जीभ के स्वाद, शरीर के स्पर्श आदि से उत्पन्न होने वाली लालसा, मन के धर्म से उत्पन्न होने वाली लालसा प्रवाहित होती है, उत्पन्न होती है और स्थानांतरित होती है। जिसके लिए यह संतोषी लालसा समाप्त हो गई है, उसकी आँखों के रूप से उत्पन्न होने वाली लालसा न तो प्रवाहित होती है, न उत्पन्न होती है और न ही प्रवाहित होती है; कान की ध्वनि के कारण...(विलुप्त)।

“और जो लोग अहंकार के प्रति उत्साही नहीं हैं”: अहंकार क्या है? यहाँ, जन्म से या उपनाम से एक विशेष प्रकार का व्यक्ति... (अधूरा)। पद, उच्चता, गौरव, ध्वज, हृदय का घमंड, यही अहंकार कहलाता है। जिसके लिए यह अहंकार समाप्त हो गया है, ..., वह उत्साही नहीं रहता, नियंत्रित नहीं रहता, ...।

“कोमल और वाक्पटु”: “कोमल,” “कोमल देह कर्म” कोमल है, “कोमल वाणी कर्म” कोमल है, “कोमल मानसिक कर्म” कोमल है, “कोमल जागरूकता” कोमल है, ..., कोमल प्रयास, कोमल चार (इद्धिपाद), ..., “कोमल आठ मार्गों” कोमल है।

“वाक्पटु व्यक्ति” की वाक्पटुता तीन प्रकार की होती है: ज्ञान से, प्रश्न पूछने से और सिद्ध करने से। विद्वान वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग मूलतः शिक्षार्थी होते हैं: सुत्त, गेय्या, वेय्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूत धम्म, वेदल्ल, और वे अपने ज्ञान पर आधारित होकर ही अपने तर्कों का बचाव करते हैं। प्रश्न पूछने वाला वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति अपने हितों, धार्मिक हितों, विशेषताओं, कारणों, संभावना और असंभवता के संदर्भ में प्रश्न पूछता है, और बार-बार प्रश्न पूछने के बाद ही उसे उत्तर मिलता है। सिद्ध वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति चार प्रकार की चेतना, चार प्रकार के धर्म, चार प्रकार के आध्यात्मिक आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात प्रकार के ज्ञानोदय कारक, आठ प्रकार के पवित्र मार्ग, चार प्रकार के समान फल, चार प्रकार के वाद-विवाद और छह प्रकार की जादुई शक्तियों का ज्ञाता होता है। जो लोग कारण, विधि और शब्द को जानते हैं, वे ही ज्ञात कारण के आधार पर तर्क करते हैं; धम्म का तर्क ज्ञात धम्म के आधार पर किया जाता है; और शब्द का तर्क ज्ञात शब्द के आधार पर किया जाता है। इन तीनों प्रकार की बुद्धि के बारे में कोई संदेह नहीं है। बुद्धि को बाधित करने वाला, उसे प्राप्त करना, उसे पूर्णतः प्राप्त करना, उसमें प्रवेश करना, उसे प्राप्त करना, उसे प्राप्त बुद्धि की समझ में बाधा नहीं डालता; ऐसे व्यक्ति को वाद-विवाद करने में सक्षम व्यक्ति कहा जाता है। यदि उसने सीखा, प्रश्न किया और सिद्ध नहीं किया, तो वह क्या उत्तर देगा?

“अविश्वासी, वह अपवित्र नहीं होगा”: “अविश्वासी,” जिसने स्वयं स्वयं को स्वयं-प्रतिनिधित्वित धम्म का सिद्ध कर लिया है, वह किसी अन्य समण, ब्राह्मण, स्वर्ग, मनुष्य या ब्रह्म में विश्वास नहीं करता: “सभी कर्म अनित्य हैं,” उसने स्वयं इसे सिद्ध कर लिया है..., “सभी कर्म दुखदायी हैं”..., “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”..., “कर्म अज्ञान पर आधारित है”..., “अस्तित्व जीवन, आयु और मृत्यु पर आधारित है”..., “अज्ञान से मृत्यु अंतःस्रावी की ओर ले जाती है”..., “जन्म और मृत्यु जीवन और मृत्यु की ओर ले जाते हैं”..., “यह दुख है”..., “ये दोष हैं”..., “यह दोषों की ओर ले जाने वाला मार्ग है”..., “इन धर्मों को जानने के लिए सिद्ध किया जाना चाहिए”..., “इन धर्मों को देखा जाना चाहिए”..., “स्पर्श का एकत्रीकरण, विनाश, सुख, कष्ट, वैराग्य...”, पाँच स्कंधों का एकत्रीकरण..., चार प्रमुख समूह। स्वयं के ज्ञान से ही अनायास, सुख, कष्ट, वैराग्य का औचित्य सिद्ध होता है... “धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का संहार है।” जो स्वयं धर्म को जानता है, स्वयं सिद्ध हो चुका है, वह किसी अन्य समण, ब्राह्मण, स्वर्ग, मनुष्य या ब्रह्म में विश्वास नहीं करता।

भगवान बुद्ध ने कहा [SN.48.44]: “सारिपुत्त! क्या तुम्हें विश्वास है कि जब आस्था की जड़ का बार-बार अभ्यास किया जाता है, तो वह अमर आधार, अमर तट, अमरता का अंत है?; जब प्राण शक्ति की जड़..., मन की जड़..., एकाग्रता की जड़..., जब ज्ञान की जड़...?”

“हे महान गुण! यहाँ, मैं भगवान बुद्ध पर विश्वास नहीं करता कि जब आस्था की जड़..., जब जीवन शक्ति की जड़..., जब मन की जड़..., जब एकाग्रता की जड़..., जब ज्ञान की जड़..., हे महान गुण! यदि यह ज्ञात न हो, देखा न जा सके, खोजा न जा सके, प्रमाणित न हो, ज्ञान से स्पर्श न किया गया हो, तो वे अन्य लोगों के पास इस विश्वास के साथ आएंगे कि जब आस्था की जड़ का अभ्यास किया जाता है..., तो एक अमर आधार, एक अमर परलोक और एक अमर अंत होता है; परन्तु, हे महान गुण! जिन्होंने जाना है, देखा है, खोजा है, प्रमाणित किया है और ज्ञान से स्पर्श किया है, वे आश्वस्त और निर्विवाद हैं कि आस्था की जड़..., और अमरता का अंत होता है। हे महान गुण! मेरे लिए, यह ज्ञात है, देखा है, खोजा गया है, प्रमाणित है, ज्ञान से स्पर्श किया गया है, जहाँ मैं आश्वस्त और निर्विवाद हूँ कि जब आस्था की जड़..., तो एक आधार होता है...।”

“अच्छा! बढ़िया! सारिपुत्त! सारिपुत्त! यदि यह ज्ञात नहीं है, अदृश्य है, अनछुआ है, अनपरीक्षित है, ज्ञान से अछूता है, तो वे दूसरों के पास इस विश्वास के साथ आएंगे कि जब आस्था की जड़..., जब ज्ञान की जड़ का अभ्यास और अधिक अभ्यास किया जा चुका है, तो एक अमर आधार, एक अमर तट और अमरता का अंत है।”

“अविश्वासी और अज्ञात लोग, और वे जिन्होंने पुनर्जन्म को नकार दिया है, अवसर को नष्ट करने वाला और उसे त्यागने वाला, वही वास्तव में श्रेष्ठ व्यक्ति है।” [धम् 97]

“अविश्वासी अपवित्र नहीं होंगे”: सभी अज्ञानी साधारण लोग अपवित्र हैं, भले साधारण लोग, यहाँ तक कि सात प्रकार के विद्वान भी, अपवित्र हैं, और अरहंत न तो अपवित्र हैं और न ही अपवित्रता से मुक्त हैं: जो व्यक्ति अपवित्रता से मुक्त है, उसके लिए लोभ का नाश लोभ से मुक्ति की अवस्था बन जाता है; क्रोध का नाश क्रोध से मुक्ति की अवस्था बन जाता है; भ्रम का नाश भ्रम से मुक्ति की अवस्था बन जाता है, वह व्यक्ति उस अवस्था में उतर चुका है, उसने उस व्यवहार का अभ्यास किया है... (अंतःखंडित), जन्म-मृत्यु के चक्र में, बिना पुनर्जन्म के।

89 · लाभ प्राप्त करना न सीखना, लाभ न होने पर क्रोधित न होना, शत्रुता की लालसा न रखना, और स्वाद में लालची न होना।

“लाभ की अपेक्षा न करना, या लाभ न होने पर क्रोधित होना”: लाभ के लिए कैसे सीखा जाए? भिक्षुओं! यहाँ भिक्षु देखता है कि वह वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का लाभ उठाता है। इस प्रकार सोचते हुए: “यह आदरणीय व्यक्ति वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का लाभ किस आधार पर उठाता है?” उसने इस प्रकार सोचा: “यह आदरणीय व्यक्ति एक सूत्र शिक्षक है, जिसके कारण यह वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का लाभ उठाता है।” लाभ ही कारण है, लाभ ही स्थिति है, और लाभ की उत्पत्ति का कारण भी लाभ ही है, अतः लाभ के लिए सीखना चाहिए।

या, जब भिक्षु देखता है कि (दूसरे) भिक्षु को वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यक वस्तुएँ मिल रही हैं, तो वह इस प्रकार सोचता है: “इस पूज्य भिक्षु को वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यक वस्तुएँ किस लाभ के लिए मिल रही हैं? कौन?” वह इस प्रकार सोचता है: “यह पूज्य भिक्षु धर्म का ज्ञाता है... वक्ता है... अभिधम्म का ज्ञाता है, जिसके कारण इसे वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यक वस्तुएँ मिल रही हैं।” लाभ ही कारण है, लाभ ही पूर्वनियोजित है, लाभ ही लाभ की उत्पत्ति का कारण है, जिससे लाभ से वह परिचित हो जाता है और अभिधम्म सीखता है।

या, जब भिक्षु देखता है कि दूसरे भिक्षु को वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यक वस्तुएँ और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ प्राप्त हो रही हैं, तो वह इस प्रकार सोचता है: “यह भिक्षु वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की आवश्यक वस्तुएँ और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ प्रदान करने वाला कौन है? कौन?” वह इस प्रकार सोचता है: “यह पूजनीय व्यक्ति वन में रहने वाला व्यक्ति है..., एक भिखारी है..., ...(विकल्प हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें), वह व्यक्ति जो कहीं भी रहता है, जिसके कारण इस पूजनीय व्यक्ति को वस्त्र प्राप्त हो रहे हैं...।” लाभ ही कारण है...।

बिना लाभ के कैसे सीखें? "भिक्षुओं! यहाँ भिक्षुओं के लिए लाभ का कारण, लाभ की स्थिति, लाभ का तर्क, लाभ की उत्पत्ति, लाभ की परिपक्वता, केवल आत्म-नियमन (लाभों) के उद्देश्य से, अपने स्वयं के मौन के उद्देश्य से है, ताकि वे निर्वाण के उद्देश्य को प्राप्त कर सकें, ताकि वे शास्त्रों का अध्ययन कर सकें, वे धर्म का अध्ययन कर सकें और वे अभिधम्म का अध्ययन कर सकें।"

या फिर, भिक्षुओं को लाभ की इच्छा होती है, ..., केवल कम इच्छा, संतोष, संयम और एकांतवास के लिए; इस अवस्था के कारण, मैं वनों में रहने वाला बन जाता हूँ, ...एक भिखारी, ...।"

“और जब कुछ हासिल न हो तो गुस्सा करना,” जब कुछ हासिल न हो तो गुस्सा करना कैसा होता है? यहाँ, एक खास तरह के लोग (सोचते हैं): “मुझे घर नहीं मिल रहा, या मुझे कोई समूह नहीं मिल रहा,” ...(अधूरा)। वह गुस्से में है, ठुकराया हुआ है, जिद्दी है, क्रोध, घृणा और असंतोष दिखा रहा है।

जब कोई लाभ न हो तो क्रोधित न होने का क्या तरीका है? यहाँ, भिक्षु (सोचते हैं): “मुझे घर नहीं मिल रहा है...” वे क्रोधित नहीं होते, अस्वीकार नहीं करते, हठ नहीं करते, क्रोध, घृणा या असंतोष नहीं दिखाते।

“शत्रुता की प्यास या स्वाद में लोभ के बिना”: “शत्रुता की प्यास,” नश्वर हृदय का क्रोध, शत्रुता, घृणा, अरुचि, क्रोध, दुष्ट हृदय, आक्रामकता, क्रूर क्रोध, रोष, अप्रसन्न हृदय, यही शत्रुता कहलाती है। जिसके लिए यह क्रोध समाप्त हो जाता है, शांत हो जाता है, रुक जाता है, उत्पन्न होने में असमर्थ हो जाता है, और ज्ञान की अग्नि से जल जाता है, वह शत्रुता रहित व्यक्ति कहलाता है। “प्रेम की प्यास,” रूप की लालसा, ध्वनि की लालसा, गंध की लालसा, स्वाद की लालसा, स्पर्श की लालसा, धम्म की लालसा।

स्वाद में जड़, शाखा, छिलका, पत्ता, फूल, फल, खट्टा, मीठा, कड़वा, तीखा, नमकीन, क्षारीय, कसैला, सुखद, अप्रिय, ठंडा और गर्म स्वाद होते हैं। कुछ समण और ब्राह्मण स्वाद के लोभी होते हैं। वे अपनी जीभ से सर्वोत्तम स्वाद की खोज में भटकते रहते हैं। खट्टा स्वाद मिलने पर वे खट्टापन दूर करने की इच्छा करते हैं, और खट्टापन दूर होने पर खट्टापन की इच्छा करते हैं; ...(अस्पष्ट) मिठास ...(अस्पष्ट); कड़वापन, तीखापन, नमकीन, क्षारीय; खट्टा स्वाद मिलने पर वे कसैलेपन की खोज करते हैं, कसैलेपन मिलने पर वे खट्टे स्वाद की खोज करते हैं; ...सुखद स्वाद..., अप्रिय...; ...अप्रिय..., सुखद...; ...गर्म..., ठंडा...; ...ठंडा..., गर्म। वे स्वाद की लालसा में लीन, लोभी, बंधे हुए, मोहित, दूषित, आसक्त, स्थिर होते हैं। अवरुद्ध होने के कारण, एकमात्र प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए स्वाद, प्यास और प्रेम का अभाव हो जाता है, ... उसने भोजन का तार्किक रूप से निरीक्षण करने के बाद ग्रहण किया: "न तो सुख के लिए, न ही नशे के लिए, न ही सुंदर दिखने के लिए, न ही मान-सम्मान के लिए, बल्कि इस शरीर के अस्तित्व के लिए, हानि को रोकने के लिए और ब्रह्म का पालन-पोषण करने के लिए। इस प्रकार, मैं पूर्व भावनाओं को दूर भगाऊंगा, नई भावनाओं को जागृत नहीं होने दूंगा, स्वस्थ रहूंगा, दोषरहित रहूंगा और शांति से जीवन व्यतीत करूंगा।"

उदाहरण के लिए, यदि वह घाव पर तेल लगाता है, तो केवल मांस बढ़ाने के उद्देश्य से, या यदि वह धुरी पर तेल लगाता है, तो केवल माल परिवहन के उद्देश्य से, या यदि वह अपने पुत्र का मांस खाता है, तो केवल रेगिस्तान पार करने के उद्देश्य से। उसी प्रकार, भिक्षु ने जाँच-परख कर भोजन किया: “न तो आनंद के लिए... (छोड़ दिया) ताकि शांति से रह सकें।” उसने स्वाद की प्यासी लालसा का त्याग किया, उसे दूर भगाया, समाप्त किया और उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया। वह स्वाद और प्यास से विरक्त हो गया है, त्याग कर चला गया है, मुक्त हो गया है, बंधन का त्याग कर गया है, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

90 · शांत स्वभाव वाला, हमेशा सचेत रहने वाला, और स्वयं को न तो बराबर समझने वाला, न श्रेष्ठ और न ही हीन समझने वाला, उसके लिए कोई वृद्धि नहीं होती।

“शांत, सदा सचेत रहने वाला”: “शांत रहने वाले” में शांति की छह शाखाएँ होती हैं: आँखों से रूप देखने के बाद, वह न तो सुखी होता है और न दुःखी, बल्कि शांति से, सचेतनता और धार्मिक ज्ञान के साथ जीवन व्यतीत करता है; कानों से ध्वनि सुनने के बाद... (विलुप्त), चेतना से धम्म का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, ... [डीएन.33, 6]। मनभावन रूप देखने के बाद, वह इच्छा, अरुचि और लोभ उत्पन्न नहीं करता। उसका शरीर पहले से ही स्थिर होता है, उसका मन पहले से ही स्थिर होता है, वह दया से निर्मित और मुक्त होता है, और रूप देखने के बाद वह इच्छाहीन होता है, वह निराश नहीं होता, उसका मन अनियंत्रित नहीं होता, अनजाने में दुःख या द्वेष नहीं होता, उसका शरीर पहले से ही स्थिर होता है, उसका मन स्थिर होता है, और वह दया से निर्मित और मुक्त होता है। कानों से ध्वनि सुनने के बाद... (विलुप्त)।

आँखों से रूप देखने के बाद, शरीर और मन दोनों सुखद और अवांछनीय रूपों में शरीर और मन द्वारा स्थापित और मुक्त हो जाते हैं; कान से ध्वनि सुनने के बाद... [एस.एन.46.6]।

आँखों से रूप देखने के बाद, जो मोह पैदा करता है उससे मोहित मत हो, जो क्रोधित करता है उससे क्रोधित मत हो, जो मूर्खतापूर्ण है उसमें मूर्ख मत बनो, ...विमुख..., ...मस्त..., ...दूषित...; कानों से ध्वनि सुनने के बाद... जो तुम देखते हो उसमें सीमित है; जो तुम सुनते हो उसमें सीमित है; जो तुम समझते हो उसमें सीमित है; जो तुम जानते हो उसमें सीमित है [SN.35.95], जो तुम देखते हो उसमें दूषित मत हो; जो तुम सुनते हो उससे दूषित मत हो; जो तुम जानते हो उससे दूषित मत हो; और जो असंतुष्ट है, (सद्गुण) बिना हानि के, आश्रित नहीं, और जो तुम जानते हो उससे बंधा नहीं, बंधन से मुक्त, वह एक अप्रतिबंधित हृदय से जीता है; जो वह सुनता है उसके संदर्भ में... (लोप दिया गया)।

अरहंतों की आंखें होती हैं, अरहंतों की आंखें रूप देखने के लिए होती हैं, अरहंतों में कोई इच्छा नहीं होती, और अरहंतों का हृदय अच्छा और मुक्त होता है; अरहंतों के कान होते हैं, अरहंत ध्वनियों को सुनने के लिए कानों का उपयोग करते हैं, ...; ...सूंघने के लिए नाक...; ...स्वाद लेने के लिए

जीभ...; ...शरीरों से स्पर्श...; अरहंतों के इरादे होते हैं, अरहंत चेतना के साथ धर्मों को जानते हैं, और अरहंतों में लालच करने की कोई इच्छा नहीं होती, अरहंत का हृदय दयालु और मुक्त होता है [SN.35.232]।

आँखें रूप में आनंदित हैं, और अरहंत को सुलझाया गया है, संरक्षित किया गया है, नियमित किया गया है, सुरक्षित रखा गया है, और इसे नियंत्रित करना सिखाया गया है; कान ध्वनि में आनंदित हैं... ...(छोड़ा गया); (मन) धर्मों में आनंदित होता है, धर्मों में प्रसन्न होता है, और अरहंत को सुलझाया गया है, ..., और इसे आत्म-नियंत्रण सिखाया गया है [एम.एन.75]।

"वश में किया हुआ (नियंत्रित) (हाथी) सभा में लाया जाता है, राजा वश में किए हुए (हाथी) पर सवार होता है; जो व्यक्ति वश में किया गया है, वह लोगों में सर्वोच्च विजेता है, वह जो अपमान सहता है।"

पालतू बनाया गया खच्चर असाधारण होता है, और महान सिंधी घोड़े, और बड़े दांतों वाले हाथी, महान हाथी; स्वयं को वश में करने वाले लोग तो और भी बेहतर होते हैं।

इन पर सवार होकर कोई उस दिशा में नहीं जाता, जहाँ कोई पहुँच नहीं सकता, जैसे कोई वश में किया हुआ व्यक्ति स्वयं को वश में करके जाता है। [ध्वप.321-323]

“वे हर प्रकार के अहंकार में अडिग हैं, मुक्त होकर पुनर्जन्म प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने सुस्थापित साम्राज्यवादी स्थिति प्राप्त कर ली है, वे संसार के विजेता हैं।” [SN.22.76]

“जिन्होंने अपने भीतर और बाहर, संसार में अपनी जड़ों को मजबूत किया है, वे इस और अन्य लोकों को भेदते हैं। जब वे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं, तब वे ही सर्वथा वश में होते हैं।” [सं. 3.6, 521]

“शांत स्वभाव वाला व्यक्ति हमेशा (सचेत) रहता है”: “हमेशा,” हमेशा, सब कुछ; ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “सचेत,” चार प्रकार से सचेत: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें); उसे सचेत कहा जाता है।

“दुनिया में बराबरी की उम्मीद न करना”: न जन्म से, न उपनाम से... (छोड़ा गया)।

“न श्रेष्ठ और न ही हीन”: ...(हटा दिया गया)।

“उसके लिए कोई वृद्धि नहीं है”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, उन लोगों के लिए जिन्होंने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “वृद्धि,” सात प्रकार की वृद्धि होती है: लोभ, घृणा, अज्ञान, अहंकार, दृष्टि, अपव्यय, कर्म; उसके लिए ये वृद्धि विद्यमान नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, खोजी नहीं जा सकतीं, समाप्त हो चुकी हैं, विच्छेदित हो चुकी हैं, शांत हो चुकी हैं, रुक चुकी हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, ज्ञान की अग्नि से भस्म हो चुकी हैं।

91 · उसके लिए निर्भरता की कोई अवस्था नहीं है: धम्म को जानने के बाद, वह एक अनासक्त व्यक्ति बन जाता है, चाहे वह हो या न हो, उसके लिए प्यास नहीं पाई जाती।

“उसके लिए कोई निर्भरता नहीं है”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, वे लोग जिन्होंने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “निर्भरता,” निर्भरता दो प्रकार की होती है: लालसा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता... उसके लिए, प्यास की निर्भरता कट गई है, ..., ज्ञान की अग्नि से जलकर भस्म हो गई है।

“धम्म को जानने के बाद, वह अनासक्त हो जाता है”: “जानने के बाद,” जानने के बाद, समझने के बाद... “सभी कर्म अनित्य हैं” जानने के बाद... “सभी कर्म दुखदायी हैं”... “सभी धर्म अनात्ममय हैं”... “धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश है”... “अनासक्त” के लिए दो प्रकार की निर्भरताएँ हैं: तृष्णा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता... प्यास का त्याग करने के बाद, देखने पर आँखों का पालन न करने के बाद... कानों का...

“अस्तित्व की प्यास उसके लिए नहीं है”: “प्यास,” रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास... “उसके लिए,” अरहंत के लिए... “अस्तित्व की प्यास,” अस्तित्व की प्यास, होने की प्यास। “या नहीं,” मृत्यु को देखना। “अस्तित्व के लिए,” बार-बार अस्तित्व, बार-बार रुचि, बार-बार पुनर्जन्म, बार-बार व्यक्तिगत उद्‌भव। उसके लिए, प्रेम करना या न करना, अस्तित्वहीन है, ज्ञात नहीं है, खोजा नहीं गया है, कट गया है, अलग हो गया है, शांत हो गया है, रुक गया है, उठने में असमर्थ है, ज्ञान की अग्नि से झुलस गया है।

92 · मैं कहता हूँ “वह मौन है”: वह जिसकी इच्छा में कोई अपेक्षा नहीं है, उसकी विभिन्न गांठें नहीं पाई जातीं, उसने प्रेम (प्यास) को पार कर लिया है।

मैं कहता हूँ कि वह 'मौन' है: मौन वह है जो शांत, स्थिर और विश्राम करता है। मैं उसके बारे में कहता हूँ, उसके बारे में बताता हूँ, उसके बारे में बात करता हूँ, उसकी व्याख्या करता हूँ, उसके बारे में बोलता हूँ।

“जिनकी इच्छाओं में कोई अपेक्षा नहीं होती”: “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: ... वस्तुओं की इच्छा को जानने के बाद, त्यागने के बाद, छोड़ने के बाद, दूर भगाने के बाद, अंत के बाद, उसे अस्तित्वहीन बनाने के बाद, जब वस्तुओं की इच्छा में कोई अपेक्षा नहीं रहती, तो वह त्यागी हुई, खारिज की हुई, समाप्त हो जाती है; जो लोभ से मुक्त हो गए हैं, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिन्होंने लोभ को छोड़ दिया है, जो भूखे नहीं हैं, जो शांत हो गए हैं, जो प्रसन्न हैं, और जो ब्राह्मण के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं।

“उसकी गांठें नहीं खोजी गईं”: “गांठें,” चार प्रकार की गांठें हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “उसकी,” अरहंत की, ... “उसकी गांठें नहीं खोजी गईं”: उसके लिए, गांठें अस्तित्वहीन, अज्ञात, अनखोजी हैं, उन्हें काट दिया गया है...।

“उसने प्रेम को पार कर लिया है”: प्रेम को प्यास कहा जाता है, जो लालच है... “प्रेम को पार कर लिया,” प्रेम क्या है? “फैलाव” प्रेम के लिए है; “विस्तार” प्रेम के लिए है; ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “उसने प्रेम को पार कर लिया है”: इस प्रेम की प्यास को उसने पार कर लिया है, उससे आगे निकल गया है, उसे पार कर लिया है, उससे ऊपर उठ गया है, उस पर विजय प्राप्त कर ली है।

93 · उसके बेटे, पशुधन, खेत और घर नहीं मिलते, कुछ भी प्राप्त या अस्वीकृत, वह उसमें नहीं मिलता।

“उसके पुत्र, पशुधन, भूमि और घर नहीं मिलेंगे”: “नहीं” नकारात्मक है। “उसका,” अरहंत का, जिसके कष्ट समाप्त हो गए हैं। “पुत्र,” चार प्रकार के पुत्र हैं: स्वयं से जन्मे पुत्र, खेत में जन्मे पुत्र, दत्तक पुत्र और प्रशिक्षु पुत्र। “पशुधन,” बकरी और भेड़, मुर्गी और सुअर, हाथी, गाय, घोड़ा और खच्चर। “खेतों” में धान के खेत शामिल हैं, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “गृहस्थी” से तात्पर्य आवासीय घरों, गोदाम के सामने वाले आंगन के घरों, पिछवाड़े वाले घरों, बगीचे वाले घरों और आवासीय भूमि से है। “उसका पुत्र, पशुधन, भूमि और गृहस्थी नहीं मिलेंगे”: पुत्र के प्रति उसका लगाव, या पशुधन के प्रति लगाव, या भूमि के प्रति लगाव, या गृहस्थी के प्रति लगाव, वे मौजूद नहीं हैं, और ज्ञात नहीं हैं, अज्ञात हैं, कटे हुए हैं, ...।

“उसमें किसी भी चीज़ को प्राप्त करना या अस्वीकार करना नहीं पाया जाता”: “प्राप्त” उसका अपना दृष्टिकोण है, “अस्वीकृत” एक निर्णय है; उसने “प्राप्त” को नहीं धारण किया है, “अस्वीकृत” को नहीं; जो ग्रहण नहीं किया गया है वह मुक्ति के लिए नहीं है, और जो मुक्ति के लिए नहीं है वह ग्रहण नहीं किया गया है; अरहंत वह है जिसने ग्रहण और मुक्ति, और वृद्धि और पतन को पार कर लिया है, वह वह है जो उस अवस्था में उतर गया है, वह जिसने... (विलुप्त) पुनर्जन्म के बिना जीवन और मृत्यु के चक्र का अभ्यास किया है।

95 · साधारण लोग, समण, ब्राह्मण, दूसरों के बारे में क्या कहा जा सकता है, जिसके लिए इसका कोई महत्व नहीं है, इसलिए वह कही गई बातों के बारे में विचलित नहीं होता।

“साधारण लोगों, समणों और ब्राह्मणों, आप दूसरों के बारे में क्या कह सकते हैं?”: “साधारण लोग,” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “समण,” .... “ब्राह्मण,” जो भी दूसरों को मित्र कहता है। “साधारण लोगों, समणों और ब्राह्मणों, वे दूसरों से क्या कह सकते हैं?” साधारण लोग लोभ से कह सकते हैं; जो घृणा से कह सकता है; जो अज्ञान से कह सकता है; जो अहंकार से कह सकता है; जो भी देखकर कह सकता है; जो भी उत्साह से कह सकता है; जो भी संदेह से कह सकता है; जो कोई यह कह सकता है कि वह “संक्रमित,” या “घृणित,” या “अज्ञानी,” या कष्टों की अंतर्निहित प्रवृत्ति से “बंधा हुआ” है, जो “आसक्ति में आ जाता है,” या “विचलित हो जाता है,” या “असंतोष में आ जाता है,” या “धैर्य में आ जाता है,” जिनके कर्म नष्ट हो गए हैं, और जिन्होंने हित की अवस्था का त्याग कर दिया है, क्या वह यह कह सकता है कि वह “नरक में गिरा हुआ व्यक्ति,” या “पशुवत व्यक्ति,” या “भूखा प्रेतलोक व्यक्ति,” या “मनुष्य,” या “स्वर्ग,” या “रूपहीन व्यक्ति,” या “विचारशील,” या “विचारहीन,” या “न विचारशील और न विचारशील” है? उसके पास कोई कारण नहीं है, कोई पूर्वनिर्धारित स्थिति नहीं है, कोई ऐसा कारक नहीं है जिसके द्वारा वह बोल सके, कह सके, बात कर सके, समझा सके और चर्चा कर सके।

“जिसका महत्व नहीं समझा जाता”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, उन लोगों के लिए जिन्होंने अपने सारे कष्ट भोग लिए हैं। “महत्व,” ध्यान देने के दो प्रकार होते हैं... उसके लिए प्यास का महत्व समाप्त हो गया है... (अंशित भाग देखें)।

इसलिए वह कही गई बातों के बारे में विचलित नहीं होता: इसलिए... कही गई बातों के बारे में: फटकार, आरोप, निंदा, प्रशंसा या निंदा; वह नहीं डगमगाता, नहीं डगमगाता, नहीं हिलता, नहीं कांपता, नहीं थरथराता, और न ही बहुत कांपता है।

95 · जो लोभ से मुक्त और कंजूस नहीं हैं, मुनि यह नहीं कहेंगे कि वे श्रेष्ठ हैं, न ही समतुल्य हैं, न ही हीन हैं, और जो निर्माण नहीं करते वे निर्माणों तक नहीं पहुँचते।

“जो लोभ से मुक्त हो और कंजूस न हो”: भोग को लोभ कहते हैं, यह लोभ है... उसके लिए यह लोभ समाप्त हो जाता है... उसे लोभ से मुक्त कहा जाता है, वह देखने में लोभी नहीं होता... (छोड़ा गया); ब्राह्मण के रूप में निवास करना। “कंजूस न होना” और “बचत करना”, कंजूसी पाँच प्रकार की होती है:... समाप्त होने पर... उसे कंजूस न होने वाला कहा जाता है।

“मुनि यह नहीं कहेंगे कि वे श्रेष्ठों में हैं, न ही समानों में और न ही हीन में”: “मुनि,” .... “श्रेष्ठ,” या “मैं समान हूँ,” या “मैं हीन हूँ” वे नहीं कहते, नहीं बताते, नहीं बोलते, नहीं समझाते, नहीं कहते।

“जो सृजन नहीं करता, वह सृजन तक नहीं पहुँचता”: “संयोजन” के दो रूप होते हैं: इच्छा का सृजन और दृष्टि का सृजन... उसके लिए, प्यास का सृजन समाप्त हो गया है... वह नहीं आता, नहीं पहुँचता, नहीं ग्रहण करता, नहीं थामता, नहीं चिपकता। सृजन तक न पहुँचना। “निष्पादक,” “संयोजन,” दो प्रकार के सृजन होते हैं..., वह न तो सृजन करता है, न उत्पन्न करता है, न जन्म देता है, न उत्पन्न करता है।

96 · उसके लिए संसार में कुछ भी अपना नहीं है, और वह उस चीज़ के लिए शोक नहीं करता जो अस्तित्व में नहीं है, धर्मों में चले बिना, उसे वास्तव में "मौन" कहा जाता है।

“उसके लिए संसार में कोई नहीं है”: अरहंत के अनुसार, “उसके लिए संसार में कोई नहीं है।” उसके लिए, रूप, भावना, विचार, कर्म, चेतना जैसी कोई चीज नहीं है, जिसके बारे में वह सोचे कि “यह मेरा है, या यह किसी और का है।” जिसे पकड़ा जा सके, जिससे चिपका जा सके, जिससे जुड़ा जा सके, जिसे लिया जा सके, जिस पर विश्वास किया जा सके, वह नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है..., ज्ञान की अग्नि से झुलसा हुआ।

“वह उन चीजों के लिए शोक नहीं करता जो अस्तित्व में नहीं हैं”: वह उन चीजों के लिए शोक नहीं करता जो बदल गई हैं: “मेरी आँखें बदल गई हैं” वह दुखी नहीं है; “मेरे कान..., मेरी नाक..., जीभ, शरीर, मन, रूप, आवाजें, गंध, स्वाद, स्पर्श, धर्म, घर, समूह, निवास, लाभ, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, सुख, वस्त्र, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)...” वह दुखी नहीं है, थका हुआ नहीं है, रो नहीं रहा है, सीना पीटकर रो नहीं रहा है, और भ्रमित नहीं हो रहा है।

या, स्पर्श किए जाने पर, यातना दिए जाने पर, मिश्रित होने पर, झूठे कष्टों से ग्रसित होने पर, वह दुखी नहीं होता, थका हुआ नहीं होता, रोता नहीं है, चिल्लाता और विलाप नहीं करता, भ्रमित नहीं होता: स्पर्श किए जाने पर, यातना दिए जाने पर, मिश्रित होने पर, नेत्र रोगों से ग्रसित होने पर, वह दुखी नहीं होता...; ...कान के रोग से...; ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

या फिर, उस अस्तित्वहीन, अज्ञात और अनदेखे (विचार) में: "आह! जो मेरा था, वह सचमुच चला गया। अगर मेरा कुछ था भी, तो वह भी मुझे नहीं मिला।" वह दुखी नहीं है, ...

"धर्मों में न जाना": इच्छा में न जाना, घृणा में न जाना, अज्ञान में न जाना, भय में न जाना, लोभ के कारण न जाना, घृणा के कारण न जाना, आसक्ति के कारण न जाना, दृष्टि के कारण न जाना, त्याग के कारण न जाना, संदेह के कारण न जाना, संभावित कष्टों के कारण न जाना, धर्मों की वाणी से बहक न जाना, बहक न जाना।

"उसे सचमुच 'मौन' कहा जाता है": वह मौन है, रुका हुआ है, शांत है, शीतल है, मौन है। इसलिए उसे इसी नाम से पुकारा जाता है, कहा जाता है, बताया जाता है, समझाया जाता है, वर्णन किया जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.11

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

11. झगड़े और बहस

97 · इतने सारे झगड़े और बहसें, रोना, उदासी और कंजूसी कहाँ से आती हैं? अहंकार, घमंड और फूट कहाँ से आती हैं? आइए! कृपया मुझे इसके बारे में बताइए।

"जहाँ बहुत झगड़े और बहसें होती हैं": "झगड़े" एक ही व्यवहार पर आधारित झगड़े होते हैं, और "बहसें" भी वैसी ही होती हैं। जो भी बहस करता है, वह झगड़ा है; जो भी बहस करता है, वह बहस है। या दूसरे शब्दों में, बहस को झगड़े का पहला भाग कहा जाता है। राजा राजा से बहस करता है, क्षत्रिय क्षत्रिय से बहस करता है, ब्राह्मण ब्राह्मण से बहस करता है, गृहस्वामी गृहस्वामी से बहस करता है, माता पुत्र से बहस करती है, पुत्र माता से बहस करता है, पिता पुत्र से बहस करता है, पुत्र पिता से बहस करता है, भाई भाई से बहस करता है, भाई बहनों से बहस करते हैं, बहनें भाइयों से बहस करती हैं, मित्र मित्रों से बहस करते हैं [एम.एन.13]। झगड़ा क्या है? जो घर में गुटबाजी के शौकीन होते हैं, वे अपने शरीर और शब्दों से झगड़ा करते हैं, और जो नियमों का उल्लंघन करते हैं, वे अपने शरीर और शब्दों से झगड़ा करते हैं।

"कहाँ इतने झगड़े और बहसें होती हैं?": "कहाँ इतने झगड़े और बहसें होती हैं? ये कहाँ से शुरू होती हैं? कहाँ से उत्पन्न होती हैं? कहाँ पैदा होती हैं? इनके कारण क्या हैं? इनका सार क्या है? इनका जन्म कहाँ से हुआ? इनकी जड़ क्या है?" उन्होंने झगड़े और बहस की जड़ के बारे में पूछा; उन्होंने कारण के बारे में पूछा; उन्होंने उत्पत्ति के बारे में पूछा; उन्होंने उत्पत्ति के बारे में पूछा; उन्होंने पूछा और प्रतीक्षा की; उन्होंने पोषण के बारे में पूछा; उन्होंने भाग्य के बारे में पूछा; उन्होंने सार के बारे में पूछा; उन्होंने दृढ़ता से पूछा, विनती की, निवेदन किया और स्पष्टीकरण मांगा।

"रोना, शोक और कंजूसी": "रोना," ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। "शोक," ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। "कंजूसी," ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“अभिमान और अभिमान के साथ निंदा (विभाजनकारी भाषण)”: “अभिमान,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। “अभिमान,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। “विभाजनकारी भाषा,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“ये सब इतनी मात्रा में कहाँ से आते हैं? आइए! कृपया मुझे इसके बारे में बताइए”: ये आठ प्रकार के प्रदूषण, “झगड़ा, बहस, रोना, उदासी, कंजूसी, अहंकार, घमंड और फूट डालने वाली बातें,” इतनी अधिक मात्रा में कहाँ से आते हैं? इनका जन्म कहाँ होता है? ये कहाँ से उत्पन्न होते हैं? ...(अधूरा)। इसकी जड़ क्या है? उन्होंने इन आठ प्रकार के प्रदूषण की जड़ों के बारे में पूछा; उन्होंने कारण पूछा; ...(अधूरा)... “ये कहाँ से आते हैं? आइए! कृपया बताइए”: आइए! कृपया बताइए, कृपया समझाइए, कृपया सिखाइए, कृपया जानकारी दीजिए, कृपया निर्माण कीजिए, कृपया उजागर कीजिए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए।

98 · जो सुंदर है, उससे अनेक झगड़े और बहसें होती हैं, रोना, उदासी और कंजूसी, अहंकार, घमंड, और फूट डालने वाली बातें, झगड़े और बहसें कंजूसी से जुड़ी होती हैं, और विवाद उत्पन्न होने पर फूट डालने वाली बातें होती हैं।

“सुंदरता से बहुत सारे झगड़े, रोना, उदासी और कंजूसी भी होती है”: “सुंदरता,” दो प्रकार की होती है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

वे सुंदर वस्तुओं की चोरी होने के संदेह पर झगड़ा करते हैं, चोरी होने पर भी झगड़ा करते हैं, और चोरी हो जाने के बाद भी झगड़ा करते हैं; ...(अंशित भाग देखें)।

“अहंकार, घमंड और फूट डालने वाले शब्द”: सुंदर वस्तुओं पर निर्भरता उन्हें अहंकारी बनाती है; सुंदर वस्तुओं पर निर्भरता उन्हें घमंडी बनाती है। सुंदर वस्तुओं पर निर्भरता उन्हें अहंकारी कैसे बनाती है? “हम मनभावन रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शों के प्राप्तकर्ता हैं।” यह सुंदर वस्तुओं के साथ अहंकार का उत्पादन है। सुंदर वस्तुओं पर निर्भरता घमंड कैसे पैदा करती है? “हम मनभावन रूपों के प्राप्तकर्ता हैं, ..., और ये अन्य लोग मनभावन रूपों के प्राप्तकर्ता नहीं हैं, ...।” यह सुंदर वस्तुओं पर निर्भरता उन्हें घमंडी बनाती है। “फूट डालने वाली बातें,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“झगड़े और बहस कंजूसी से जुड़े हैं”: झगड़ा, बहस, रोना, शोक, अहंकार, घमंड और फूट डालने वाली बातें; ये सात अशुद्धियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं, मजबूती से जुड़ी हुई हैं और पूरी तरह से जुड़ी हुई हैं।

“और जब कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो फूट डालने वाले शब्द होते हैं”: जब कोई विवाद उत्पन्न होता है, जब वह जन्म लेता है, जब वह प्रकट होता है, तो वह विभाजन पैदा करता है: वह यहाँ से सुनता है और वहाँ बोलता है ताकि इन लोगों को अलग कर सके, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

99 · संसार में सुंदरता का कारण कहाँ है? संसार में लालच कहाँ घूम रहा है? इच्छा और पूर्ति का कारण कहाँ है? क्या किसी को अगला जीवन मिलेगा?

“दुनिया में सुंदरता कहाँ से आती है?”: “सुंदरता कहाँ से आती है? इसका जन्म कहाँ होता है? ...(अंशित)। इसकी जड़ क्या है?” उन्होंने सुंदरता के बारे में पूछा... (अंशित)।

“जो भी लोभी है, वह संसार में घूमता है”: यहाँ “जो...” से तात्पर्य क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ परिवार, भिक्षु, स्वर्ग और मनुष्य से है। “लोभ” सभी लोभ, इच्छा और प्यास की अवस्था है, लोभी, दूषित, कलंकित और अस्वस्थ होने की अवस्था है। “घूमना” का अर्थ है चलना, जीना, कर्म करना, आगे बढ़ना, रक्षा करना और जीवित रहना। “संसार में” का अर्थ है दुख के संसार में, मानव जाति के संसार में, स्वर्ग के संसार में, समुच्चय के संसार में, लोकों के संसार में, स्थानों के संसार में।

“इच्छा और पूर्ति का कारण कहाँ है?”: “इच्छा और पूर्ति का कारण कहाँ है? वे कहाँ से उत्पन्न होते हैं? ...(अस्पष्ट)। इसकी जड़ क्या है?” उन्होंने इच्छा और पूर्ति की जड़ के बारे में पूछा... (अस्पष्ट)। “जिसका अगला जीवन है”: जिस किसी के पास आधार, आश्रय, शरण, वापसी का स्थान, पूर्णता और अगला जीवन है।

100 · संसार में सुंदरता का कारण इच्छा है, हर लालची व्यक्ति संसार में घूमता है, इच्छा और पूर्ति ही यहाँ से कारण है, हर किसी का परलोक है।

“संसार की सुंदरता का कारण इच्छा है”: “इच्छा,” इच्छाओं की सभी इच्छाएँ, इच्छाओं का लोभ, इच्छाओं का आनंद, इच्छाओं की प्यास, इच्छाओं का प्रेम, इच्छाओं का आकर्षण, इच्छाओं की चिंता, इच्छाओं का जुनून, इच्छाओं की बाढ़, इच्छाओं का बंधन, इच्छाओं से आसक्ति, इच्छाओं का आवरण। इसके अतिरिक्त, पाँच प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: खोज की इच्छा, प्राप्ति की इच्छा, ग्रहण करने की इच्छा, संचय करने की इच्छा और खर्च करने की इच्छा। खोज की इच्छा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति ग्रहणशील, आशावान और जन्म लेने की इच्छा रखने वाला होता है। वह सभी रूपों..., सभी ध्वनियों..., सभी गंधों..., सभी स्वादों..., सभी स्पर्शों की खोज करता है। यही सभी खोज की इच्छा है। प्राप्ति की इच्छा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति ग्रहणशील, आशावान और जन्म लेने की इच्छा रखने वाला होता है। वह सभी रूपों...(अधूरा) को ग्रहण करता है। यह प्राप्ति की इच्छा है। उपयोग करने की इच्छा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति ग्रहणकर्ता, आशावान और आकांक्षी है। वह रूप ग्रहण करता है... यह उपयोग करने की इच्छा है। संचय का इरादा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति ठीक वही है जो ग्रहण करता है, आशावान है, जन्म लेने की इच्छा रखता है, वह संपत्ति का संचय करने वाला है (यह सोचते हुए): “विपदाएँ तो आएंगी।” यह संचय करने की इच्छा है। खर्च करने का इरादा क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति ग्रहणकर्ता, आशावान और उत्तरजीवी है। वह अपना धन हाथी सैनिकों, घुड़सवार सैनिकों, रथ सैनिकों, धनुर्धारियों और पैदल सेना पर खर्च करता है (यह सोचते हुए): “ये मेरी रक्षा करेंगे, मेरी सुरक्षा करेंगे और मेरी सेवा करेंगे।” यह खर्च करने की इच्छा है। “सुंदर,” दो प्रकार के सुंदर होते हैं: सजीव प्राणी या कर्म... (छोड़ा गया)। “संसार में सुंदर इच्छा ही उसका कारण है”: सुंदर इच्छा ही उसका कारण है; इच्छा ही उसका संग्रह है; इच्छा ही उसका जन्म है; इच्छा ही उसकी जड़ है।

“लालची हर कोई संसार में घूमता है”: “क्या...” क्षत्रिय, ब्राह्मण, ...(हटा दिया गया)। “लालच,” सभी लालच की अवस्था, ...(हटा दिया गया)। “घूमना,” चलना, जीना, ...। “संसार में”: दुख के संसार में...।

“इच्छा और उसकी पूर्ति यहाँ कारण है”: इच्छा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है, ..., ये अस्वस्थ मूल हैं। “पूर्ति” यहाँ, जब एक विशेष प्रकार का व्यक्ति विभिन्न रूपों की खोज करता है, तो उसे वह रूप प्राप्त होता है और वह उस रूप से परिपूर्ण हो जाता है; ...ध्वनियाँ..., गंध..., स्वाद..., स्पर्श, (...धर्म)..., ...घर..., समूह..., आवास, लाभ, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, वस्त्र, भोजन, आवास, रोगियों की आवश्यकताएँ और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ, सूत्र, धम्म, अभिधम्म, वनवास, नियमित भिक्षावृत्ति, गोबर साफ करने वाले वस्त्र, केवल तीन वस्त्र, द्वितीय भिक्षावृत्ति, भोजन के बाद भोजन न करना, अक्सर बैठना (लेटना नहीं), प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, शून्य की असीमता में निवास करना (पाँचवाँ/प्रथम अमूर्त), चेतना की असीमता में निवास करना (छठा), शून्यता में निवास करना (सातवाँ), न तो बोध में और न ही अबोध में निवास प्राप्त करना (आठवाँ)।

“इच्छाओं से खेतों की जुताई करने वाला, इच्छाओं से बीज बोने वाला, इच्छा से व्यापार शुरू करने वाला, समुद्र के पार माल ढोने वाला, जो भी इच्छाओं के सहारे खड़ा रहता है, (यह सोचते हुए) 'मेरी इच्छा पूरी हो।'” [थाग.530]

किसी इच्छा की पूर्ति को पूर्णता (पूर्ति) कहते हैं। "इच्छा और उसकी पूर्ति यहीं से शुरू होती है": इच्छा और उसकी पूर्ति यहीं से शुरू होती है; कामना ही उसका सार है; कामना ही उसका जीवन है; कामना ही उसकी जड़ है।

“जिस किसी का भी परलोक (अगला जीवन) हो”: ...(हटा दिया गया)।

101 · तो संसार में इच्छा का कारण कहाँ है? और अनेक निर्णय कहाँ से आते हैं? क्रोध, झूठे वचन और संदेह, तथा समणों द्वारा कहे गए अन्य सभी धर्म कहाँ से आते हैं?

“तो फिर संसार में इच्छा का स्रोत कहाँ है?”: “इच्छा कहाँ से आती है? यह कहाँ से उत्पन्न होती है? ...(अधूरा)” वह इच्छा के मूल के बारे में पूछता है...

“और इतने सारे निर्णय कहाँ से आते हैं?”: “निर्णय कहाँ से आते हैं? उनका जन्म कहाँ होता है?...” उन्होंने निर्णय के मूल के बारे में पूछा...

“क्रोध, झूठे शब्द और संदेह”: क्रोध तो क्रोध ही है, ...(अंशित, पिछले अनुभाग देखें)। झूठे शब्दों को झूठ कहते हैं, संदेह को शंका कहते हैं।

“और सभी धर्म जिनका उल्लेख समणों ने किया है”: “और सभी (धर्म),” वे सभी जो क्रोध और असत्य में बोले जाते हैं, संदेह के साथ चलते हैं, सहअस्तित्व में रहते हैं, आपस में घुलमिल जाते हैं, मेल खाते हैं और एक ही निर्भरता स्थान, एक ही लक्ष्य रखते हैं, इन्हें “और सभी धर्म” कहा जाता है। या, अन्य प्रकार के वे सभी अपवित्रताएँ जो अन्य सहभागिता से दूषित होती हैं, इन्हें भी “और सभी धर्म” कहा जाता है। “समणों द्वारा वर्णित,” वे समण जिन्होंने बुराई को शांत किया है, वे ब्राह्मण जिन्होंने बुराई का त्याग किया है, वे भिक्षु जिन्होंने अपवित्रता की जड़ों को नष्ट किया है, वे जिन्होंने सभी बुराई और अस्वास्थ्यकर जड़ों को मुक्त किया है, जिन्होंने कहा, समझाया, सिखाया, बताया, स्थापित किया, उजागर किया, विश्लेषण किया और व्याख्या की।

102 · दुनिया में, वे जिसे "वांछनीय" या "अवांछनीय" कहते हैं, वे इच्छा उत्पन्न करने के लिए उस पर निर्भर करते हैं, भौतिक रूप के अस्तित्व और गैर-अस्तित्व को देखने के बाद, लोग दुनिया में निर्णय लेते हैं।

“इस दुनिया में जहाँ वे 'वांछनीय, अवांछनीय' कहते हैं”: “वांछनीय,” सुखद और वांछनीय बातें। “अवांछनीय,” कष्टदायक और अवांछनीय बातें। “इस दुनिया में, वे जो कुछ भी कहते हैं,” वे जो कुछ भी कहते हैं, वे जो कुछ भी बताते हैं, ...

“इच्छा उत्पन्न करने के लिए उस पर भरोसा करो”: वांछनीय और अवांछनीय पर भरोसा करो; सुख और दुख पर भरोसा करो; सुख और दुःख पर भरोसा करो; वांछनीय और अवांछनीय पर भरोसा करो; घृणा के बाद प्रेम पर भरोसा करो, इच्छा उत्पन्न होती है, घटित होती है, उत्पन्न होती है और जन्म लेती है।

“अस्तित्वहीनता और रूप में अस्तित्व को देखने के बाद”: “रूप में,” चार महा तत्व और उन चार महा तत्वों से निर्मित रूप। रूप का अस्तित्व क्या है? सभी रूपों का अस्तित्व, उत्पत्ति, सृजन, जन्म और प्रकट होना ही रूप का अस्तित्व है। रूप का अस्तित्वहीनता क्या है? सभी रूपों का विलुप्त होना, अपव्यय, विनाश, असंयम, अनित्यता और लुप्त होना ही रूप का अस्तित्वहीनता है। “अस्तित्वहीनता और रूप में अस्तित्व को देखने के बाद”: रूप में अस्तित्व और अस्तित्वहीनता को देखने, मापने, परखने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद।

“संसार में लोग निर्णय लेते हैं”: “निर्णय” दो प्रकार के होते हैं: भोग-विलास का निर्णय और प्रत्यक्ष निर्णय। भोग-विलास का निर्णय क्या है? यहाँ, किसी विशेष प्रकार के व्यक्ति में जो गुण उत्पन्न नहीं हुआ है, वह उत्पन्न नहीं होता, और जो गुण उत्पन्न हो चुका है, वह समाप्त हो जाता है। उसने इस प्रकार सोचा: “मेरा अजन्मा (न उत्पन्न) गुण क्यों नहीं उत्पन्न होता, और जो गुण उत्पन्न हो चुका है, वह समाप्त क्यों हो जाता है?” उसने फिर सोचा: “शराब, फल मदिरा और शराब पीने के कारण मेरा अजन्मा गुण उत्पन्न नहीं होता, और जो गुण उत्पन्न हो चुका है, वह समाप्त हो जाता है; जो साधक समय के अनुकूल न रहने वाले मार्ग पर चलता है, उसका अजन्मा गुण उत्पन्न नहीं होता, और जो धन उत्पन्न हुआ है, वह सब जगह चला जाता है; जो साधक प्रदर्शन में समय बिताते हैं..., जो साधक जुआ और आराम में लिप्त रहते हैं..., जो साधक बुरे मित्रों की संगति में रहते हैं..., जो साधक आलस्य में लिप्त रहते हैं...।” [डीएन.31] ऐसा बुद्धिमानी से करने के बाद, वह छह गुणों की विफलताओं के करीब नहीं पहुँचता; छह गुणों के लाभों के करीब पहुँचना, यह उत्सुकता का निर्णय है।

या फिर वह खेत जोतता है, या खरीद-फरोख्त करता है, या मवेशी चराता है, चोरी करता है, या सरकारी सेवा करता है, या अन्य कौशल का उपयोग करता है, जो प्यास का भी एक निर्णय है। देखने का निर्णय क्या है? यहाँ, जब आँखें प्रकट होती हैं, तो वह अनुभव करता है (जानता है): “मेरा सच्चा स्वरूप प्रकट हुआ है।” जब उसकी आँखें लुप्त हो जाती हैं, तो वह अनुभव करता है: “मेरा सच्चा स्वरूप लुप्त हो गया है; मेरा सच्चा स्वरूप चला गया है।” यह देखने का निर्णय है। जब कान..., नाक..., जीभ..., शरीर..., रूप..., ध्वनि..., स्वाद..., गंध... प्रकट होते हैं... यह भी देखने का निर्णय है; वह इसे प्रकट करता है, उत्पन्न करता है, जन्म देता है। “मनुष्य” सभी प्राणी हैं, ... “संसार में”: ...

103 · क्रोध, झूठे शब्द और संदेह (उत्पन्न होते हैं) जब दो प्रकार के धर्म होते हैं, संदेही को इसे ज्ञान के मार्ग पर सीखना चाहिए; इसे जानने के बाद, धर्मों की व्याख्या समणों द्वारा की जाती है।

"क्रोध, झूठे शब्द और संदेह": "क्रोध"..., झूठे शब्दों को झूठ कहा जाता है, संदेह को शंका कहा जाता है। वांछित कार्यों के बाद क्रोध उत्पन्न होता है; अवांछित वस्तुओं पर निर्भरता के बाद भी क्रोध उत्पन्न होता है। अवांछित कार्यों पर निर्भरता के बाद झूठ उत्पन्न होता है; ...(अस्पष्ट)। संदेह...(अस्पष्ट)।

अवांछित मामलों पर निर्भर रहने के बाद क्रोध कैसे उत्पन्न होता है? अवांछित मामलों पर निर्भर रहने के बाद स्वाभाविक रूप से क्रोध उत्पन्न होता है: "वह मेरे विरुद्ध रहा है... (अंश छोड़ दिया गया है, पिछले अनुभाग देखें)।"

किसी वांछित कार्य पर निर्भर रहने के बाद क्रोध कैसे उत्पन्न होता है? लूटपाट की आशंका होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, ...

अवांछित मामलों पर निर्भर रहने के बाद झूठी बातें कैसे उत्पन्न होती हैं? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति हथकड़ियों में जकड़ा हुआ है, और उस विरक्ति के लिए जानबूझकर व्यर्थ बातें कहता है..., या रस्सियों से बंधा हुआ है..., या बेड़ियों से बंधा हुआ है..., या लताओं से बंधा हुआ है..., या बेलों से बंधा हुआ है..., या बेड़ियों में जकड़ा हुआ है..., या बाड़ की बेड़ियों से बंधा हुआ है..., या गाँवों, कस्बों, शहरों और देशों की बेड़ियों से बंधा हुआ है..., या इलाके की बेड़ियों से बंधा हुआ है, इन बेड़ियों से मुक्त होने के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता है।

आप अपनी इच्छा के आधार पर झूठी बातें कैसे बोलते हैं? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग जानबूझकर मनचाहे रूप, मनचाही गंध आदि के लिए व्यर्थ बातें करते हैं, रोगी की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं के लिए वे जानबूझकर व्यर्थ शब्द बोलते हैं।

अवांछित मामलों पर निर्भरता के बाद संदेह कैसे उत्पन्न हो सकता है? "क्या मेरी आंखों की बीमारी ठीक हो जाएगी? क्या मेरी आंखों की बीमारी ठीक नहीं होगी? क्या मेरे कान की समस्या ठीक हो जाएगी? ...(अधूरा)।"

मनचाही बातों पर भरोसा करने के बाद संदेह कैसे उत्पन्न हो सकता है? "क्या मुझे मनचाहा रूप मिलेगा? क्या मुझे मनचाहा रूप नहीं मिलेगा?..."

"जब दो प्रकार होते हैं, तब ये धर्म होते हैं": जब सुखद और अप्रिय होते हैं; जब सुख और दुख होते हैं; जब आनंद और शोक होते हैं; जब अभाव और अभाव होते हैं; जब प्रेम और घृणा होती है, जब यह ज्ञात होता है, और जब (दोनों) मौजूद होते हैं।

"संदेह करने वाले को ज्ञान के मार्ग पर चलना चाहिए": ज्ञान ही ज्ञान का मार्ग है; ज्ञान का विषय भी ज्ञान का मार्ग है; ज्ञान से उत्पन्न होने वाला धम्म भी ज्ञान का मार्ग है, जैसे पवित्र मार्ग पवित्र मार्ग है; स्वर्ग का मार्ग स्वर्ग का मार्ग है; ब्राह्मण का मार्ग ब्राह्मण मार्ग है; ज्ञान ही ज्ञान का मार्ग है; ज्ञान का विषय भी ज्ञान का मार्ग है; ज्ञान से उत्पन्न होने वाला धम्म भी ज्ञान का मार्ग है।

"अधिगम," अधिगम तीन प्रकार का होता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"संदेही व्यक्ति को ज्ञान के मार्ग पर सीखना चाहिए": संशयी व्यक्ति, वह व्यक्ति जिसे संदेह, भ्रम और झिझक है, ज्ञान तक पहुँचने के लिए, ज्ञान प्राप्त करने के लिए और ज्ञान की गवाही देने के लिए, उसे और अधिक सीखना चाहिए... (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"जानने के बाद, धम्म की व्याख्या समणों द्वारा की जाती है": "जानने के बाद," जानने के बाद, ..., कहा गया, समझाया गया, ...: "सभी कर्म अनित्य हैं" जानने के बाद, ...; "सभी कर्म दुखदायी हैं"...; "सभी धर्म निस्वार्थ हैं"...; "अज्ञान पर आधारित कर्म है"...; "जीवन पूर्वनिर्धारित अवस्था है, और वृद्धावस्था और मृत्यु है"...; "अज्ञान और मृत्यु के साथ, कर्म और मृत्यु है"...; "जन्म और मृत्यु से, वृद्धावस्था और मृत्यु है"...; "यह दुख है"...; "यह दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है"...; "ये कष्ट हैं"...; "यह कष्टों की ओर ले जाने वाला मार्ग है"...; "इन धर्मों को सिद्ध किया जाना चाहिए"...; "इन धर्मों को जाना जाना चाहिए"...; "इन धर्मों का त्याग किया जाना चाहिए"...; "इस धर्म का अभ्यास किया जाना चाहिए"...; "इस धर्म की गवाही दी

जानी चाहिए"...; छह स्पर्श बिंदुओं का संग्रह, विनाश, सुख, कष्ट और त्याग... पांच समुच्चय...; चार प्रमुख...; "धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश है," जानने के बाद, ..., कहे जाने के बाद, ...।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! मैं धर्म का उपदेश ज्ञान के साथ देता हूँ, ज्ञान के बिना नहीं; मैं धर्म का उपदेश कारण और स्थिति के साथ देता हूँ, कारण और स्थिति के बिना नहीं; मैं धर्म का उपदेश दिव्य रूपांतरण के साथ देता हूँ, दिव्य रूपांतरण के बिना नहीं, भिक्षुओं! जब मैं धर्म का उपदेश ज्ञान के साथ देता हूँ, तब उपदेश दिया जाना चाहिए; उपदेश दिया जाना चाहिए, भिक्षुओं! यही आपके लिए संतुष्ट, प्रसन्न और आनंदित होने के लिए पर्याप्त है: भगवान बुद्ध प्रबुद्ध हैं, धर्म अच्छा है, और संघ वह है जो अच्छाई के अनुसार चलता है।" [एएन.3.126] और जब यह भाष्य कहा गया, तो दस हजार लोक कांप उठे [डीएन.1]।

104 · वांछनीय और अवांछनीय का कारण क्या है? जब कोई चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो क्या वह अस्तित्वहीन हो जाती है? अस्तित्वहीनता और अस्तित्व का सत्य क्या है? कृपया मुझे इसका कारण बताइए।

"मनभावन और अवांछनीय का कारण क्या है?": "मनभावन और अवांछनीय का कारण क्या है? वे कहाँ से उत्पन्न होते हैं?..." वह सुखद और अवांछनीय के मूल कारणों की खोज करता है...।

"जब कोई चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो ये चीजें अस्तित्व में नहीं होतीं": जब कोई चीज अस्तित्व में नहीं होती, जब वह ज्ञात नहीं होती, तो वे चीजें अस्तित्व में नहीं होतीं; जब वांछनीय और अवांछनीय चीजों की खोज नहीं होती, तो वे अस्तित्व में नहीं होतीं, घटित नहीं होतीं, उत्पन्न नहीं होतीं, पैदा नहीं होतीं, जन्म नहीं लेतीं।

"अस्तित्वहीनता और अस्तित्व का सत्य": वांछनीय और अवांछनीय अस्तित्व क्या है? कोई भी वांछनीय और अवांछनीय अस्तित्व और घटना, उत्पन्न होती है, जन्म लेती है, घटित होती है और प्रकट होती है। यही वांछनीय और अवांछनीय का अस्तित्व है। अवांछनीय और अवांछनीय का अस्तित्वहीनता क्या है? वांछनीय और अवांछनीय का विनाश, विघटन, अनित्यता और लुप्त होना। वांछनीय और अवांछनीय का अस्तित्वहीनता। "यह सत्य क्या है," जो भी सर्वोच्च सत्य है।

"कृपया मुझे बताइए कि इसका कारण कहाँ है": "यह," मैं जो कुछ भी पूछता हूँ; ...(अंशित)। "कृपया मुझे बताइए," कृपया मुझे बताइए, ...(अंशित)। "कारण कहाँ से है," कारण कहाँ है, संग्रह कहाँ है, जन्म कहाँ है, जड़ कहाँ है।"

105 · वांछनीय और अवांछनीय, स्पर्श ही कारण हैं, और ये तब अस्तित्व में नहीं होते जब स्पर्श अस्तित्व में नहीं होता, अस्तित्वहीनता और अस्तित्व का सत्य, मैं तुम्हें बताता हूँ कि यही कारण है।

"सुखद और अनपेक्षित स्पर्श (संपर्क) इसका कारण है": वह स्पर्श जिससे सुख का अनुभव होना चाहिए, आनंद उत्पन्न करता है, और उस सुखद स्पर्श का विलुप्त होना उस भावना के अनुरूप है: सुख उत्पन्न करने वाले स्पर्श का आनंद नष्ट हो जाता है; वह शांत हो जाता है। पीड़ा उत्पन्न करने वाले स्पर्श से पीड़ा उत्पन्न होती है, और उस पीड़ा का विलुप्त होना उस भावना के अनुरूप है: पीड़ा उत्पन्न करने वाले स्पर्श से उत्पन्न पीड़ा नष्ट हो जाती है; वह शांत हो जाती है। यह भावना के कारण है कि वह स्पर्श जो पीड़ादायक या अप्रिय नहीं है, उत्पन्न होता है, और उस स्पर्श का विलुप्त होना पीड़ादायक या अप्रिय नहीं होना चाहिए। उस भावना के अनुरूप जो महसूस की जानी चाहिए: यह भावना के कारण है कि वह स्पर्श जो पीड़ादायक या अप्रिय नहीं है, उत्पन्न होता है; पीड़ादायक या सुखद न होने के कारण उसका विनाश होता है; वह शांत हो जाता है। "सुखद और अनपेक्षित संपर्क इसका कारण है": सुखदायक और अनपेक्षित संपर्क इसका कारण है; संपर्क इसका संग्रह है; संपर्क इसका जन्म है; संपर्क इसकी जड़ है।

"जब स्पर्श का अस्तित्व नहीं होता, तब इनका अस्तित्व नहीं होता": जब स्पर्श का अस्तित्व नहीं होता, जब इसका ज्ञान नहीं होता, तब इनका अस्तित्व नहीं होता; जब यह पाया नहीं जाता, तब वांछनीय और अवांछनीय का अस्तित्व नहीं होता, वे घटित नहीं होते, उत्पन्न नहीं होते, पैदा नहीं होते, प्रकट नहीं होते।

“अस्तित्वहीनता और अस्तित्व का कारण”: अस्तित्व का दृष्टिकोण ही कारण है; अस्तित्वहीनता का दृष्टिकोण भी कारण है। “यह सत्य” सर्वोच्च सत्य है।

“मैं तुमसे कहता हूँ, यहीं से कारण है”: “यह,” तुम जो भी पूछो; .... “मैं कहता हूँ,” मैं कहता हूँ, ... “यहीं से कारण है,” यहीं से: स्पर्श ही इसका संग्रह है; स्पर्श ही इसका जन्म है; स्पर्श ही इसकी जड़ है।

106 · तो संसार में स्पर्श का कारण क्या है? और अनेक वस्तुएँ कहाँ से आती हैं? जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या उसका कोई आत्म-धारणा नहीं है? जब जो लुप्त हो गया है, क्या उसका कोई स्पर्श नहीं है?

“तो दुनिया में स्पर्श का कारण क्या है?” “स्पर्श की उत्पत्ति कहाँ से होती है?...” उसने स्पर्श के मूल के बारे में पूछा;...

“और ये सारी चीजें कहाँ से आती हैं?”: “चीजें कहाँ से आती हैं? उनका जन्म कहाँ होता है?...” उन्होंने सभी चीजों के मूल के बारे में पूछा;...

“जब जो अस्तित्व में नहीं है, तब क्या आत्म-आसक्ति (स्वयं की गलत धारणा से चिपके रहना) नहीं होती?”: जब कोई चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो वह तब अस्तित्व में नहीं होती जब वह ज्ञात नहीं होती; जब आत्म-आसक्ति अस्तित्व में नहीं होती, तो वह ज्ञात नहीं होती, ..., ज्ञान की अग्नि से जलकर।

“जब कोई चीज लुप्त हो जाती है, तो क्या उसका स्पर्श नहीं रहता”: जब कोई चीज लुप्त हो जाती है; जब उसका अस्तित्व नहीं रहता; जब वह पार हो जाती है; जब वह गुजर जाती है; जब उस पर विजय प्राप्त कर ली जाती है, तो उसका स्पर्श नहीं रहता।

107 · संपर्क नाम और रूप के कारण होता है, चाहने का कारण अधिकार है, जब चाहत अस्तित्वहीन होती है तो कोई आत्म-लगाव नहीं होता, और जब रूप स्पष्ट होता है तो स्पर्श नहीं हो सकता।

“संपर्क नाम और रूप के कारण होता है”: नेत्र-चेतना आँख और रूप से उत्पन्न होती है। तीनों मिलते हैं और स्पर्श करते हैं। आँख और रूप में मौजूद रूप (रूप से संबंधित रूप), नेत्र संपर्क के अतिरिक्त, नाम में भी संगत धर्म होते हैं (नाम से संबंधित), इसलिए यह नाम और रूप के बीच संपर्क के कारण होता है। कान... नाक... जीभ... शरीर... (मन-)चेतना मन और धर्म के कारण उत्पन्न होती है। जब तीनों मिलते हैं, तो संपर्क होता है। (मन) पदार्थ में है। निर्मित धर्म पदार्थ में हैं। नाम में संगत धर्म हैं, इसलिए यह नाम और रूप के बीच संपर्क के कारण होता है।

“इच्छा का कारण अधिकार है”: इच्छा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है... “संपत्ति” दो प्रकार की अधिकारिताएँ हैं: प्यास की अधिकारिताएँ और दृष्टि की अधिकारिताएँ... “इच्छा का कारण अधिकारिताएँ हैं”: हर चीज इच्छा को अपना कारण, इच्छा को अपना कारण, इच्छा को अपनी स्थिति और इच्छा को अपना मूल मानती है।

“जब चाहत का अस्तित्व नहीं होता, तब आत्म-आसक्ति नहीं होती”: चाहत को व्याकुलता कहते हैं, ... आत्म-आसक्ति दो प्रकार की होती है: .... “जब चाहत का अस्तित्व नहीं होता, तब आत्म-आसक्ति नहीं होती”: जब चाहत का अस्तित्व नहीं होता, वह ज्ञात नहीं होती, उसकी खोज नहीं होती, तब आत्म-आसक्ति का अस्तित्व नहीं होता..., वह कट जाती है..., ज्ञान की अग्नि से जल जाती है।

“जब रूप समझ में आ जाता है, तब स्पर्श नहीं रहता”: “रूप,” ...(अंशित)। “जब रूप समझ में आ जाता है,” तो रूप के चारों रूप समझ में आ जाते हैं: जानना, समझना, मापना, काटना और गुजरना। जो ज्ञात है, उसके आधार पर कैसे समझा जाए? वह रूप को जानता है: “कोई भी रूप, सभी रूप चार महान तत्व हैं और चार महान तत्वों से निर्मित हैं।” वह जानता है; जब वह देखता है, तो उसे जानने और समझने से स्पष्टता मिलती है।

मापन और समझ के माध्यम से कैसे समझा जाए? ऐसा करने के बाद, वह रूप को क्षणभंगुर, कड़वा, बीमार, ट्यूमर, तीर, अभिशाप, रोग, दूसरी ओर, भ्रष्ट, आपदा, बुराई, आतंक, विपत्ति, गति, नाशवान, अस्थिर, आश्रयहीन, शरणहीन, वापसीहीन, अनिच्छुक, पाखंडी, खाली, निस्वार्थ, दोष,

परिवर्तन, झूठा, दुर्भाग्यपूर्ण मूल, हत्यारा, कुछ नहीं, कष्टदायक, आशाजनक, जादुई भोजन (लालच), जन्म विधि, वृद्धावस्था विधि, रोग विधि, मृत्यु विधि, शोक और निराशा विधि, प्रदूषण विधि, सभा (सभा), विलुप्ति, सुख, कष्ट और त्याग के रूप में मापता है; इस प्रकार मापन और समझ के माध्यम से समझा जा सकता है।

रूप के विदारण से कैसे स्पष्टता प्राप्त होती है? इस प्रकार विचार करने के बाद, रूप की इच्छा, लोभ, को त्याग दिया जाएगा, दूर भगा दिया जाएगा, समाप्त कर दिया जाएगा और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! रूप के प्रति सभी इच्छाएँ और लोभ का विदारण हो जाएगा। इस प्रकार, वह रूप और उसकी जड़ें कट जाएँगी, जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है।" [SN.22.25] इस प्रकार, रूप के विदारण से स्पष्टता प्राप्त होती है।

रूप से परे जाकर कैसे समझा जा सकता है? चार निराकार लोकों में, रूपों को प्रकट (विलुप्त) किया जाता है, प्रकट (नष्ट) किया जाता है, उनसे होकर गुजरा जाता है, उन्हें पार किया जाता है और उन पर विजय प्राप्त की जाती है, जिससे होकर गुजरने पर वे प्रकट होते हैं। इन चार व्यवहारों से ही इसे समझा जा सकता है।

"जब रूप समझ लिया जाता है, तो उसे छुआ नहीं जा सकता": जब रूप समझ लिया जाता है; जब वह स्पष्ट हो जाता है; जब उसे पार कर लिया जाता है; जब उस पर विजय प्राप्त कर ली जाती है, तो उसे छुआ नहीं जा सकता: आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक..., जीभ, शरीर।

108 · रूप को कैसे समझा जाए (उस पर विजय कैसे पाई जाए)? सुख और दुख को कैसे समझा जाए (उस पर विजय कैसे पाई जाए)? कृपया मुझे इस बारे में बताएं (समझने (विजय पाने) के लिए। हम यह जान लें: यही मेरा उद्देश्य है।

"रूप को कैसे समझा जाए (उस पर विजय कैसे पाई जाए)?": "यह कैसे है?" यह कैसे है; व्यक्ति का तरीका क्या है; क्रिया क्या है; व्यक्ति की गतिविधियाँ क्या हैं; बचाव क्या है; अंत क्या है; इसे स्पष्ट रखने वाला व्यक्ति कैसा है; पार किया जाना; पकड़ा जाना; पराजित होना।

"सुख और दुख को कैसे समझें": सुख और दुख को कैसे समझें; इसे स्पष्ट करें; बाधाओं का सामना करें; उन पर विजय प्राप्त करें।

"कृपया मुझे समझ के बारे में यह बताएं": "यह," मैं जो भी पूछूं; .... "कृपया मुझे बताएं," "कृपया मुझे बताएं, ..." "समझ के बारे में," समझने के बारे में, इसे स्पष्ट करने के लिए, पार करने के लिए, पर काबू पाने के लिए।

"क्या हम यह जान सकते हैं: मेरा यही इरादा है": "क्या हम यह जान सकते हैं," क्या हम यह जान सकते हैं; हमें जानने दो; क्या हम निश्चित रूप से जान सकते हैं; क्या हम इससे गुजर सकते हैं। "क्या यही मेरा इरादा है," क्या यही मेरा इरादा है; क्या यही मेरा हृदय है; क्या यही मेरी चेतना है।

109 · वह ऐसा व्यक्ति है जो बोध के द्वारा नहीं सोचता, ऐसा व्यक्ति जो इच्छा के द्वारा नहीं सोचता, और ऐसा व्यक्ति जो (सोचते हुए) गायब नहीं होता, यह उसके लिए स्पष्ट करता है, क्योंकि झूठे नाम को कारण माना जाता है।

"वह ऐसा व्यक्ति है जो प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं सोचता, और न ही इच्छा से सोचता है": प्रत्यक्ष अनुभव से सोचने वाले व्यक्ति को साधारण जीवन जीने की इच्छा रखने वाला कहा जाता है, परन्तु वह साधारण जीवन जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति नहीं है। जिसके मन में ये विचार आते हैं, उसे पागल और भ्रमित मन वाला व्यक्ति कहा जाता है, परन्तु वह न तो पागल है और न ही भ्रमित हृदय वाला व्यक्ति है।

"और न ही वह जो (विचार करते हुए) विलीन हो जाता है": जो विलीन नहीं होना चाहते, उन्हें विलीन होने वाले और विचारहीन कहा जाता है, परन्तु वह न तो विलीन होने वाला है और न ही विलीन न होना चाहता है। जो विलीन होना चाहता है, उसे चार निराकार (अमूर्त ध्यान) में निवास करने वाला कहा जाता है, परन्तु वह चार निराकार में निवास करने वाला नहीं है।

“रूप को समझने का यही तरीका है”: यहाँ, भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करने के बाद विमुख हो जाता है... (उद्धृत) जब मन इतना तल्लीन, पूर्णतः शुद्ध, पवित्र और निर्मल, अपवित्र, लचीला, कर्म के योग्य, स्थिर या स्थिर अवस्था में होता है, असीम शून्य को प्राप्त करने के लिए, वह निथार होकर अपना मन निराकारता की ओर मोड़ लेता है। यही वह है; इसी प्रकार; कर्ता ऐसा है; आगे बढ़ने वाला ऐसा है; रक्षक ऐसा है; रक्षक ऐसा है; रक्षक स्पष्ट है; इसे स्पष्ट करो; पार किया जाए; पार किया जाए; परास्त किया जाए।

“क्योंकि झूठा नाम ही इसका कारण है”: झूठ का नाम झूठा है: लालसा का झूठा नाम, दृष्टि का झूठा नाम, अहंकार का झूठा नाम; सोच ही इसका कारण है; चाहत ही इसका संग्रह है; चाहत ही इसका जन्म है; सोच ही इसकी जड़ है।

110 · हम आपसे जो भी पूछते हैं, आप हमें बताते हैं; हम आपसे कुछ और पूछना चाहते हैं, आइए! कृपया इसके बारे में बताइए, क्या यहाँ के कुछ ज्ञानी पुरुष इस विषय पर बताते हैं: सर्वोपरि (सर्वोत्तम) यक्ष (आत्मा) की शुद्धता, या वे कुछ और (अलग) कहते हैं?

“हम आपसे जो भी पूछते हैं, आप हमें बताते हैं”: हम आपसे जो भी पूछते हैं, ... “आप हमें बताते हैं,” आपने कहा, ...

“हम आपसे कुछ और बातें पूछना चाहते हैं, आइए! कृपया इसके बारे में बताइए”: हम आपसे कुछ और बातें पूछना चाहते हैं; .... “आइए! कृपया इसके बारे में बताइए,” आइए! कृपया बताइए; कृपया समझाइए; ....

“क्या यहाँ कुछ ज्ञानी पुरुष इस क्षेत्र के बारे में बताते हैं: सर्वोपरि यक्ष की शुद्धता है (Sn के अनुवादों में आम तौर पर 'यक्ष' के स्थान पर 'आत्मा' का प्रयोग किया जाता है, जो शाब्दिक रूप से नहीं लिखा गया है, लेकिन शायद यही सही आशय है)”: कुछ समण और ब्राह्मण कहते हैं, बताते हैं, चर्चा करते हैं, व्याख्या करते हैं कि यह निराकारता आदि ही सर्वोपरि, श्रेष्ठ और सर्वोच्च है। “यक्ष,” चेतन प्राणी... “शुद्ध,” शुद्ध, स्वच्छ, सर्वत्र शुद्ध; वैराग्य, मुक्ति, विरक्ति। “यहाँ के ज्ञानी पुरुष,” यहाँ के ज्ञानी वक्ता, दृढ़ वचन वाले, विधियाँ, तर्क, गुण और आधार रखने वाले, और अपने मतों को सिद्ध करने वाले।

“क्या वे अन्य बातों की चर्चा कर रहे हैं?”: या क्या कुछ समण और ब्राह्मण जो निराकारता से होकर गुजरते हैं, उसे पार करते हैं, उस पर विजय प्राप्त करते हैं और बोलने, बताने, समझाने आदि की प्रतीक्षा करते हैं, वे यह कहते हैं कि इस निराकारता आदि के अलावा अन्य उच्चतर यक्ष भी हैं? क्या वे पूर्णतः शुद्ध, निर्मल, मुक्त और विरक्तिशील हैं?

111 · कुछ बुद्धिमान लोग इस क्षेत्र के बारे में बताते हैं: यक्खा की पहली (सर्वोत्तम) शुद्धता, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो कुशल होने का दावा करते हैं, और वे कहते हैं कि कोई अवशेष नहीं है।

“यहाँ कुछ ऋषि हैं जो इस विषय पर चर्चा करते हैं: यक्ष की प्रथम शुद्धता”: कुछ समण और ब्राह्मण हैं जो निरंतर आलोचक हैं। वे कहते हैं, बताते हैं, चर्चा करते हैं, व्याख्या करते हैं, कहते हैं कि यह निराकार है, इत्यादि। प्रथम, सबसे विजयी, असाधारण, सबसे श्रेष्ठ, शीर्ष। “यक्ष,” चेतन प्राणी, ... “शुद्ध,” .... “यहाँ के ज्ञानी पुरुष,” ....

लेकिन उनमें से कुछ जो कुशल होने का दावा करते हैं, वे उन लोगों के बारे में बताते हैं जो विलुप्त हो चुके हैं और जिनका कोई अवशेष नहीं है। वे समण और ब्राह्मण जो विनाश के सिद्धांत का प्रचार करते हैं और जिन्हें कोई भय नहीं है। वे किसी बात पर प्रसन्न नहीं होते। वे “सभी जीवित प्राणियों के मौन, शांति, समाप्ति, विलुप्ति, ठहराव” के बारे में बताते हैं: जो भी सच्चे आत्म के शरीर के विघटन के बाद से अलग होकर लुप्त हो गया है, वह मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन हो जाता है, और इस स्थिति में उसका कोई अवशेष नहीं रहता। “कुशल की घोषणा करते हुए,” कुशल वक्ता, बुद्धिमान वक्ता, ...

112 · यह जानने के बाद कि “ये आश्रित हैं,” निर्भरता जानने के बाद, अन्वेषक, मुनि, यह जानने के बाद, वह एक मुक्त व्यक्ति बन जाता है, वह तर्कों में नहीं पड़ता, और बुद्धिमान व्यक्ति सभी प्रकार की चीजों (अस्तित्वों) से नहीं मिलता।

“यह जानते हुए कि ‘ये आश्रित हैं’”: “ये” बुरे विचारों वाले हैं। “भरोसा करना,” यह जानने के बाद कि “(ये) आश्रित हैं;” यह जानने के बाद कि “निर्णय पर भरोसा करना;” यह जानने के बाद कि “अक्सर जो देखा जाता है उस पर भरोसा करना,” यह समझने के बाद कि वह तौलता है, तौलता है, न्याय करता है, अलग करता है, स्पष्ट करता है।

“यह जानने के बाद, मुनि निर्भरता के संदर्भ में एक प्रेक्षक हैं”: “मुनि,” ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। मुनि यह जानने के बाद कि “(ये) सामान्य हैं; जब वह “निर्णयों के अनुसार” जान लेते हैं; जब वह “सामान्य निर्णयों के अनुसार” जान लेते हैं, तो वे समझते हैं, ... “वे एक निरीक्षक हैं,” वे एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं, एक प्रबुद्ध व्यक्ति हैं, और एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। “जानने के बाद, वे तर्क करने नहीं आएंगे”: जानने के बाद, समझने के बाद, ... “मुक्त,” जो दयालु और मुक्त हैं, वे वास्तव में उनसे आसक्ति न रखने के कारण मुक्त हैं: “सभी कर्म अनित्य हैं।” यह जानने के बाद कि..., मुक्त होकर, अनासक्त होकर, पूर्णतः वियोग मुक्त होकर, परम राहत प्राप्त होती है, मुक्त व्यक्ति अंततः किसी भी चीज़ से आसक्ति न रखने के कारण ही मुक्त होता है; “सभी कर्म दुखदायी हैं”..., “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”..., “सभी धर्म एक अंत हैं”...। “वह वाद-विवाद करने नहीं आता,” वह झगड़ा नहीं करता, बहस नहीं करता, विवाद नहीं करता, अवहेलना नहीं करता। भगवान बुद्ध ने कहा: “अग्गिवेसना! ऐसा मुक्त भिक्षु किसी भी बात से असहमत नहीं होता, संसार की किसी भी बात पर बहस नहीं करता, आसक्ति नहीं रखता।” [एमएन.74]

“ज्ञानी व्यक्ति सभी प्रकार की चीजों (अस्तित्वों) से नहीं मिलता”: “सभी प्रकार की चीजों से,” कर्म और इच्छाओं से, कर्म और इच्छाओं से, और रूपों से, निराकार अस्तित्व के साथ विद्यमान कर्म से, निराकार अस्तित्व के साथ कर्म से, और बार-बार होने वाले जन्म से, बार-बार होने वाले व्यथा से, बार-बार होने वाले पुनर्जन्म से, और व्यक्ति के बार-बार होने वाले पुनर्जन्म से सामंजस्य नहीं होगा। एकत्र करना, पकड़ना नहीं, थामना नहीं, आसक्ति नहीं। “ज्ञानी व्यक्ति,”...

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.12

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

12. छोटा दर्रा
113 · जो लोग इसे धारण करने के बाद भी अपने-अपने मतों में बने रहते हैं, उनके बारे में कुशल लोग कहते हैं: जो कोई इसे जान लेगा, वह धम्म को जान लेगा, और जो कोई इसे अस्वीकार करता है, वह अपूर्ण है।

“अपने ही विचारों में स्थिर रहने वाले”: कुछ समण और ब्राह्मण बुरे विचारों वाले होते हैं। जब वे बासठ बुरे विचारों में से किसी एक को अपना लेते हैं, पकड़ लेते हैं, धारण कर लेते हैं और उससे चिपके रहते हैं, तो वे अपने-अपने विचारों में रहते हैं, साथ रहते हैं, निवास करते हैं और बने रहते हैं, जैसे कि परिवार में रहना, पापी व्यक्ति का पाप में रहना, या अपवित्र करने वाले का अपवित्रता में रहना। इसी प्रकार, कुछ समण और ब्राह्मण बुरे विचारों वाले होते हैं, जब वे बासठ बुरे विचारों में से किसी एक को अपना लेते हैं, पकड़ लेते हैं, धारण कर लेते हैं और उससे चिपके रहते हैं, तो वे अपने-अपने विचारों में रहते हैं, साथ रहते हैं, निवास करते हैं और बने रहते हैं।

“समझने के बाद, कुशल लोग हर तरह की बातें बताते हैं”: “समझने के बाद,” समझने, थामने, उठाने, पकड़ने के बाद, वे हर तरह की बातें बताते हैं; वे कई तरीकों से बताते हैं; वे आपस में मतभेद रखते हैं; वे व्यक्तिगत रूप से जानकारी देते हैं; वे अलग-अलग तरीके से जानकारी देते हैं (बोलते हैं), वे बताते हैं, वे बात करते हैं, वे समझाते हैं, वे कहते हैं। “कुशल लोग,” कुशल वक्ता, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

जो कोई इस मार्ग को जानता है, वह धम्म को खोज लेता है: जो कोई इस मार्ग को जानता है, वह धम्म को खोज लेता है: जो कोई इस मार्ग को जानता है, वह मार्ग को समझता है, जानता है, देखता है और उसमें प्रवेश करता है।

“जो इसे अस्वीकार करता है वह अपूर्ण है”: जो कोई भी इस धम्म, दृष्टिकोण, मार्ग और पथ को अस्वीकार करता है वह अपूर्ण है; वह अपूर्ण है; वह हीन, नीच, घटिया, तुच्छ इरादे वाला, महत्वहीन है।

114 · इस तरह बोलने के बाद, उन्होंने बहस की, और कहा “विरोधी मूर्ख है, अकुशल है,” तो इन वक्ताओं में से कौन सा सत्य है? क्योंकि ये सभी लोग कुशल होने का दावा करते हैं।

“इस तरह धारण करने के बाद, वे बहस करते हैं”: इस तरह धारण करने के बाद, समझने के बाद, ..., वे बहस करते हैं, झगड़ा करते हैं, विवाद करते हैं और अवहेलना करते हैं: “आप इस धम्म को नहीं जानते, (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)..., कृपया इसे तोड़ दें, यदि आप कर सकते हैं।”

और कहते हैं, 'विरोधी मूर्ख है, अकुशल है': “विरोधी मूर्ख है, हीन है, नीच है, घटिया है, तुच्छ इरादे वाला है, महत्वहीन है, अकुशल है, अज्ञानी है, नासमझ है और उदासीन है।” (वे) इसे इस तरह कहते हैं; इस तरह बताते हैं; इस तरह बात करते हैं; इस तरह समझाते हैं; इस तरह कहते हैं।

“तो इन लोगों में से कौन सा वक्ता सत्य है?”: इन समणों और ब्राह्मणों में से कौन सा वक्ता सत्य, ईमानदार, तथ्यात्मक, सही और भ्रामक नहीं है?

“क्योंकि ये सभी लोग स्वयं को कुशल वक्ता होने का दावा करते हैं”: ये सभी समण और ब्राह्मण कुशल वक्ता हैं, बुद्धिमान वक्ता हैं, ...

115 · यदि वह विरोधी के धम्म को नहीं पहचानता, तो वह मूर्ख है, मूर्ख है, नीच है, सभी मूर्ख और नीच बुद्धिमान हैं: ये सभी लोग अपने-अपने विचारों में रुके हुए हैं।

“यदि आप विरोधी के धम्म को स्वीकार नहीं करते”: जब आप विरोधी के धम्म, दृष्टिकोण, मार्ग, पथ को स्वीकार नहीं करते, समर्थन नहीं करते, सहमत नहीं होते, अनुसरण नहीं करते।

“वह मूर्ख है, मूर्ख है, नीच आदमी है”: विरोधी मूर्ख है, हीन है, आदि, नासमझ है, कम बुद्धिमान है, निम्न स्तर का बुद्धिमान है, महत्वहीन बुद्धिमान है।

“ये सब मूर्ख हैं, अत्यंत नीच बुद्धिमान हैं”: ये समण और ब्राह्मण सब मूर्ख हैं, निम्न कोटि के हैं, ...

“ये सभी लोग अपने विचारों को देखने में ही रुक गए हैं”: ये सभी समण और ब्राह्मण बुरे विचारों को देखने वाले हैं। बासठ बुरे विचारों में से किसी एक को अपनाकर, उससे चिपककर, उसे ग्रहण करके, उससे चिपके रहकर, वे अपने ही विचारों में लीन रहते हैं, जैसे घर में परिवार के साथ रहना...। इसी प्रकार, ये सभी समण और ब्राह्मण बुरे विचारों को देखने वाले हैं...।

116 · परन्तु यदि तुम अपने ही दृष्टिकोण से निर्दोष (शुद्ध) हो जाते हो, तो तुम पूर्णतः शुद्ध, बुद्धिमान, कुशल और सजग हो, तब उन लोगों में कोई हीन व्यक्ति (बुद्धि में) नहीं है, क्योंकि उन लोगों का दृष्टिकोण इसी प्रकार पूर्ण है।

लेकिन यदि तुम अपने ही दृष्टिकोण से निर्दोष हो जाओ (यह सकारात्मक या नकारात्मक दोनों हो सकता है; मैं इसे सकारात्मक मानता हूँ, जैसा कि वी. फॉसबॉल और बी. बोधि भी मानते हैं; निम्नलिखित श्लोक को देखते हुए यह अधिक तर्कसंगत लगता है)”: अपने ही विचारों, अपनी ही पसंदों, अपनी ही प्रवृत्तियों, अपने ही मतों से निर्दोष, शुद्ध रहो, स्वच्छ रहो, न तो प्रदूषित रहो, न ही दूषित रहो।

“जो पूर्णतः शुद्ध और बुद्धिमान है, जो कुशल है, जो ज्ञान से अवगत है”: जो पूर्णतः शुद्ध और बुद्धिमान है, जो प्रकाशमान और बुद्धिमान है, या जो शुद्ध दृष्टि रखता है, शुद्ध द्रष्टा, श्वेत (शुद्ध) द्रष्टा और प्रकाशमान द्रष्टा, वे ही पूर्णतः शुद्ध और बुद्धिमान हैं। “कुशल,” कुशल वे हैं जो बुद्धिमान, चतुर, विशिष्ट और बुद्धिमान हैं। पूर्णतः शुद्ध और बुद्धिमान, कुशल हैं। “बुद्धिमान,” बुद्धिमान वे हैं जो बुद्धिमान हैं, ...

“तब उनमें कोई निम्न स्तर की बुद्धि नहीं होती”: वे निम्न स्तर के नहीं हैं..., समन और ब्राह्मणों में, सभी सर्वश्रेष्ठ, बुद्धिमान, बुद्धि में श्रेष्ठ, परम बुद्धिमान, सबसे बुद्धिमान और बुद्धि में शीर्ष पर हैं।

“क्योंकि उन लोगों के विचार इस प्रकार पूर्ण हो गए हैं”: उन समन और ब्राह्मणों के विचार इस प्रकार पूर्ण, धारण, ग्रहण, ग्रहण, आसक्त, विश्वास और समझे गए हैं।

117 · मैं यह नहीं कहता कि “यह सत्य है,” क्योंकि वे कहते हैं कि विरोधी मूर्ख है, वे अपने विचारों को सत्य मानते हैं, इसलिए वे अपने विरोधियों को “मूर्ख” कहते हैं।

“मैं यह नहीं कहता कि 'यही सत्य है'”: “नहीं” नकारात्मक है। “यह,” बासठ बुरे विचार, यह सत्य है, सही है, ... मैं नहीं बताऊंगा (कहूँगा), मैं नहीं समझाता, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“वे अपने प्रतिद्वंदी को मूर्ख कहते हैं”: एक “प्रतिद्वंदी” दो लोग होते हैं, दो झगड़ालू, दो विवाद करने वाले, दो तर्क करने वाले, दो दावेदार, दो बचाव करने वाले, दो वार्ताकार, वे एक दूसरे से ऐसा कहते हैं, ऐसी बातें करते हैं, ऐसा बोलते हैं, ऐसा समझाते हैं, (विरोधी को) मूर्ख, हीन आदि कहते हैं...

“वे अपने विचारों को सत्य मान लेते हैं”: “संसार स्थिर है, यही सत्य है, और बाकी सब व्यर्थ है।” उनके लिए उनके विचार ही सत्य हैं। “संसार अत्यंत स्थिर है, यही वास्तविकता है, और बाकी सब व्यर्थ है।” ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। “मृत्यु के बाद तथागत न तो विद्यमान होते हैं और न ही असत्य, यही वास्तविकता है, और बाकी सब व्यर्थ है।”

इसलिए वे अपने विरोधियों को 'मूर्ख' कहते हैं: इसलिए; यही कारण है; यही नियति है; यही वजह है; वे अपने विरोधियों को मूर्ख, हीन, आदि के रूप में देखते, समझते और उनका अवलोकन करते हैं...

118 · जहाँ कुछ लोग कहते हैं कि (यह) “सत्य और सही है,” वहीं दूसरे कहते हैं कि “यह पाखंडी और झूठा है।” इस तरह का मत रखने के बाद वे तर्क देते हैं; समण इन विचारों को अलग-अलग क्यों बताते हैं?

“जहां कहीं भी कुछ लोग 'सच्चा, सही' कहते हैं”: प्रत्येक धम्म, दृष्टिकोण, मार्ग, पथ पर कुछ समण और ब्राह्मण यही कहते हैं, यही बताते हैं, यही बात करते हैं, यही समझाते हैं, यही कहते हैं: “यह सत्य है, सही है, ...।”

“दूसरों ने कहा, 'यह पाखंडी और झूठा है'”: धम्म, दृष्टिकोण, मार्ग, पथ के बारे में कुछ समणों और ब्राह्मणों ने कहा, ...: “यह पाखंडी है, यह झूठा है, यह सत्य नहीं है, यह गलत है।”

“इस तरह पकड़ने के बाद, वे बहस करते हैं”: इस तरह पकड़ने के बाद, समझने के बाद, ..., वे बहस करते हैं, झगड़ा करते हैं, ...: “तुम इस धम्म को नहीं जानते, ...”

“समण उन्हें अलग-अलग क्यों बताते हैं?”: क्यों? क्यों? कारण क्या है? वजह क्या है? स्थिति क्या है? समूह क्या है? उत्पत्ति क्या है? मूल कारण क्या है? वे अलग-अलग कहते हैं; वे कई तरीकों से बताते हैं; वे एक-दूसरे से (विवाद में) बात करते हैं; वे व्यक्तिगत रूप से बताते हैं, वे बात करते हैं, वे समझाते हैं, वे कहते हैं।

119 · वास्तव में कोई दूसरा सत्य नहीं है। जो समझते हैं उन्हें किसी भी बात पर बहस नहीं करनी चाहिए। वे अपने सभी सत्यों का प्रचार करते हैं, इसलिए समण उन्हें अलग तरह से बताते हैं।

“यह सत्य है कि एक ही वास्तविकता (सत्य) में कोई दूसरा सत्य नहीं है”: एक ही वास्तविकता को दुखों का निवारण, निर्वाण कहा जाता है, जो सभी कर्मों का निवारण, सभी आसक्तियों का निवारण, भोग-विलास का निवारण और अंत में निर्वाण है। या, एक ही सत्य को मार्ग का सत्य, वैराग्य का सत्य, दुखों का मार्ग और पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ कहा जाता है, अर्थात्: सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ज्ञान और सही एकाग्रता।

“समझदार व्यक्ति को किसी भी बात पर बहस नहीं करनी चाहिए”: चाहे कुछ भी हो, वास्तविकता चाहे जो भी हो। “मनुष्य (व्यक्ति)”, सभी जीवित प्राणियों का पर्यायवाची है। “समझदार (समझदार व्यक्ति)”, जो वास्तव में समझता है, जो जानता है, जो दूसरों को जानता है, जो निश्चित रूप से जानता है, जो समझता है, उसे झगड़ा नहीं करना चाहिए, बहस नहीं करनी चाहिए, ..., उसे इसे जाने देना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए, उसे इसे समाप्त कर देना चाहिए, और उसे अस्तित्वहीन कर देना चाहिए।

“वे सभी प्रकार की वास्तविकताओं (सत्यों) की स्वयं प्रशंसा करते हैं”: वे सभी प्रकार की वास्तविकताओं की प्रशंसा करते हैं, कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं और बोलते हैं; “संसार स्थिर है, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।” वे स्वयं प्रशंसा करते हैं, सूचित करते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं; संसार अत्यंत स्थिर है... (उद्धृत) “मृत्यु के बाद, तथागत न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान, यह सत्य है, और बाकी सब कुछ व्यर्थ है।” वे स्वयं प्रशंसा करते हैं, कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं।

इसलिए समण उन्हें अलग-अलग बातें बताते हैं: इसलिए... वे अलग-अलग बातें बताते हैं; वे सभी अलग-अलग बातें बताते हैं;...

120 · वे लोग, जो इस बारे में बात करते हैं, जो खुद को कुशल होने का दावा करते हैं, वे हर तरह की सच्चाई क्यों बताते हैं? क्या वे वास्तविकताएँ असंख्य और विविध हैं, या वे अनुमानों पर आधारित हैं?

“वे हर तरह की सच्चाई क्यों बताते हैं?”: क्यों, क्यों? इसका क्या कारण है?... वे तरह-तरह की बातें बताते हैं; वे बहुत सी बातें बताते हैं;...

“कुशल होने का दावा करने वाले अच्छे टिप्पणीकार (चर्चाकर्ता)”: “अच्छे टिप्पणीकार,” “वे खंडन करते हैं” अच्छे टिप्पणीकार हैं, या वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं और अपने विचार व्यक्त करते हैं: “दुनिया स्थिर है, ...” “कुशल होने का दावा करते हैं,” ....

“क्या वे वास्तविकताएँ अनेक और विविध हैं”: क्या वे वास्तविकताएँ अनेक, विविध, बहुआयामी, परस्पर (विरोधी) और व्यक्तिगत हैं।

या वे अनुमान का अनुसरण करते हैं: या वे अनुमान और चिंतन के द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं, ले जाते हैं और आगे बढ़ाते हैं। या, वे अनुमानों से प्रभावित होते हैं, जांच-पड़ताल करते हैं और साथ चलते हैं, बोलते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, अपने तर्कों के साथ बोलते हैं।

121 · वास्तविकता वास्तव में असंख्य और विविध नहीं है, सिवाय इसके कि वह दुनिया में अभ्यस्त (स्थायी) चीजों को पहचान लेता है, लेकिन अपने विचारों पर निष्कर्ष निकालने के बाद, उन्होंने कहा कि "सत्य" और "झूठ" के दो धर्म हैं।

“वास्तविकता वास्तव में असंख्य और विविध नहीं है”: वास्तविकता वास्तव में असंख्य, विविध, बहुआयामी, परस्पर (विरोधी), व्यक्तिगत नहीं है।

“संसार में स्थायी चीजों को (गलत तरीके से) पहचानने के बाद ही”: स्थायी आसक्तियों को जानने के अतिरिक्त, संसार में केवल एक ही सत्य है जिसे बताया, समझाया और कहा जा सकता है: दुख और निर्वाण, जो सभी कर्मों का अंत है, ... या, उस एक सत्य को सार कहा जाता है, सार से दुख का मार्ग, आठ श्रेष्ठ मार्ग, अर्थात्: सही दृष्टिकोण, ...

लेकिन दृष्टिकोण पर निष्कर्ष निकालने के बाद, उन्होंने 'सत्य और असत्य' के दो धर्मों का उल्लेख किया: चिंतन करना, खोज करना, चिंतन के बाद चुनाव करना, चिंतन के बाद बुरे विचार उत्पन्न होना, जन्म लेना और उत्पन्न होना; बुरे विचारों के उत्पन्न होने के बाद, वे यह कहते हैं: "मेरा सत्य है, और तुम्हारा असत्य है।"

123 · देखने, सुनने, उपदेशों और निषेधों, या बोध में, इन पर भरोसा करने के बाद, वह एक हल्के अपमानजनक द्रष्टा बन जाता है, निर्णय के बाद (तिरस्कारपूर्ण) हंसी पर आकर, वह कहता है कि उसका विरोधी "मूर्ख, अकुशल" है।

"जो कुछ तुम देखते, सुनते, उपदेश और निषेध, या धारणाएँ, उन पर भरोसा करके अश्लील (अपमानजनक, निंदनीय) दृष्टियाँ धारण करना": जो कुछ तुम देखते हो उसकी पवित्रता; जो कुछ तुम सुनते हो उसकी पवित्रता; ...उपदेशों..., निषेधों, धारणाओं की; भरोसा करने के बाद, निर्भरता के बाद, उठाने के बाद, पकड़ने के बाद, आसक्ति के बाद। "इन पर भरोसा करके, एक हल्के अपमान की दृष्टि धारण करने वाला (दृष्टिकोण) बनना," "अनादर" एक हल्का अपमान की दृष्टि धारण करने वाला है, या "दुःख उत्पन्न करना" भी एक हल्का अपमान की दृष्टि धारण करने वाला है।

"निर्णय लेने के बाद हँसी आना": निर्णय को बासठ बुरी दृष्टियों (दृष्टि का निर्णय) कहा जाता है, देखने के निर्णय में, निर्णय खड़े होने के बाद, स्थापित करने के बाद, उठाने के बाद, पकड़ने के बाद, चिपके रहने के बाद देखता है। "हँसी आना" का अर्थ है एक आनंदित व्यक्ति होना, हँसमुख व्यक्ति होना, प्रसन्न व्यक्ति होना, प्रसन्न व्यक्ति होना, पूर्णतः संतुष्ट व्यक्ति होना, या ऐसा व्यक्ति होना जो अपने दाँत दिखाता रहे और हँसता रहे।

"और वह कहता है कि प्रतिद्वंदी 'मूर्ख, अकुशल' है": "प्रतिद्वंदी मूर्ख है, हीन है, ..." वह इसे इस तरह कहता है; इस तरह बताता है; ....

123 · क्योंकि उसने अपने प्रतिद्वंदी को "मूर्ख" कहा, उसने कहा कि वह एक "कुशल व्यक्ति" है, अपने बारे में बोलते हुए, वह कुशल होने का दावा करता है और दूसरे लोगों को तुच्छ समझता है, (लेकिन) वह (भी) ऐसा कहता है।

"क्योंकि वह अपने प्रतिद्वंदी को 'मूर्ख' समझता है": वह प्रतिद्वंदियों को मूर्ख, हीन और तुच्छ समझता है, क्योंकि वे इसी कारण, इसी स्थिति, इसी वजह से, इसी स्रोत से हीन हैं...

इसलिए वह स्वयं को 'कुशल व्यक्ति' कहता है: वह (ātumāno) स्वयं को (attā) कहता है। वह स्वयं को (attā) उसी कारण, उसी स्थिति, उसी तर्क और उसी मूल से संबोधित करता है: मैं अच्छा, चतुर, बुद्धिमान, प्रबुद्ध, विवेकशील और ज्ञानी हूँ।

"स्वयं के बारे में बोलते हुए, वह स्वयं को कुशल वक्ता होने का दावा करता है": स्वयं को एक कुशल वक्ता, एक बुद्धिमान वक्ता के रूप में प्रस्तुत करना...

"दूसरों को तुच्छ समझते हुए उसने ऐसा कहा": "अपमान" का अर्थ है दूसरों को तुच्छ समझना, या "दुःख पहुँचाना" भी दूसरों को तुच्छ समझना है। "उसने ऐसा कहा," उसने ऐसा बुरा कहा: इस तरह, इस व्यक्ति का दृष्टिकोण गलत है, विपरीत है।

124 · वह उल्लंघन किए गए दृष्टिकोण से परिपूर्ण हो गया, अहंकार से मदहोश हो गया और घमंडी व्यक्ति बन गया, वह अपने ही मन से सशक्त हो गया, क्योंकि उसकी दृष्टि उसी प्रकार परिपूर्ण हो गई थी।

"वह अपने उल्लंघनकारी दृष्टिकोण से परिपूर्ण हुआ": उल्लंघनकारी दृष्टिकोण को बासठ बुरे दृष्टिकोण कहा जाता है। उल्लंघनकारी दृष्टिकोण को बासठ बुरे दृष्टिकोण क्यों कहा जाता है? ये सभी दृष्टिकोण तर्क, विशेषताओं और संभावनाओं से परे हैं। इसी कारण उल्लंघनकारी दृष्टिकोण को बासठ बुरे दृष्टिकोण कहा जाता है। सभी दृष्टिकोण उल्लंघनकारी दृष्टिकोण हैं। सभी दृष्टिकोण उल्लंघनकारी दृष्टिकोण क्यों कहलाते हैं? वे एक दूसरे को पार करते हैं, एक दूसरे से गुजरते हैं और एक दूसरे पर विजय प्राप्त करते हैं, जिससे बुरे दृष्टिकोण उत्पन्न होते हैं; वे उन्हें उत्पन्न करते हैं, उन्हें जन्म देते हैं और उन्हें जन्म देते हैं। इसी कारण सभी दृष्टिकोण उल्लंघनकारी दृष्टिकोण कहलाते हैं। "वह उल्लंघनकारी दृष्टिकोण से परिपूर्ण हुआ": वह उल्लंघनकारी दृष्टिकोण से परिपूर्ण हुआ और सिद्ध हुआ।

"अभिमान में चूर होकर पूर्णता का घमंड करना": अपने ही दृष्टिकोण में चूर होकर, अहंकार से देखना, घमंड करना, हद से ज़्यादा करना। "पूर्णता का घमंड करना", पूर्णता का घमंड करना, परिपूर्णता का घमंड करना।

मैं अपने इरादे से स्वयं को सशक्त बनाता हूँ: मैं अपने हृदय से स्वयं को सशक्त बनाता हूँ: मैं कुशल, बुद्धिमान, ... हूँ।

“क्योंकि उसका दृष्टिकोण इस प्रकार पूर्ण है”: उसका दृष्टिकोण इस प्रकार पूर्ण, धारण किया हुआ, ग्रहण किया हुआ, समझा हुआ, संलग्न, विश्वास किया हुआ और ज्ञात है।

125 · यदि कोई विरोधी शब्दों के कारण नीच व्यक्ति बन जाता है, तो वह भी उसके साथ नीच व्यक्ति बन जाता है, परन्तु यदि वह स्वयं वेदों में ज्ञानवान और बुद्धिमान हो, तो समनों में कोई मूर्ख नहीं होता।

“यदि विरोधी शब्दों के कारण नीच हो जाते हैं”: शब्दों से फटकार, अपमान, अपशब्दों के कारण विरोधी मूर्ख, हीन आदि हो जाते हैं...। “तो वह स्वयं भी नीच बुद्धिमान हो जाता है”: इसके कारण वह भी हीन, नीच आदि हो जाता है...।

लेकिन यदि वह स्वयं वेदों में पारंगत है, तो वह बुद्धिमान है”: लेकिन यदि वह स्वयं वेदों से परिचित है, तो वह बुद्धिमान, प्रबुद्ध, विशिष्ट (पृथक), बुद्धिमान है।

“समणों में कोई मूर्ख नहीं है”: समणों में कोई मूर्ख, हीन आदि नहीं है। वे सभी अत्यंत बुद्धिमान, श्रेष्ठ आदि हैं।

126 · जो कोई भी यहाँ (बाहर से) दूसरे धर्मों के बारे में बताता है, वे शुद्धता से रहित, अपूर्ण हैं, सभी प्रकार के बाहरी (संप्रदायों) ने भी यही कहा, क्योंकि वे अपने स्वयं के विचारों के लालच से दूषित थे।

“जो कोई यहाँ से (बाहर से) दूसरे धर्मों का वर्णन करता है, वे शुद्धता से रहित और अपूर्ण हैं”: जो कोई यहाँ से दूसरे धर्मों, विचारों, मार्गों और पथों का वर्णन करता है, वे शुद्ध पथ के नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी शुद्धता खो दी है, वे भटक गए हैं, वे पतित हैं, वे शुद्ध श्वेत पथ के नहीं हैं, वे उज्ज्वल और शुद्ध पथ के नहीं हैं, वे बौद्धिक रूप से पूरी तरह से वंचित हैं, वे अपूर्ण हैं, वे हीन हैं, ...

“विभिन्न संप्रदाय भी यही कहते हैं”: संप्रदायों को बुरी विचारधाराएँ कहा जाता है, और बाहरी लोगों को बुरी विचारधाराएँ कहा जाता है। सभी प्रकार के संप्रदाय हर तरह की बुरी विचारधाराओं का प्रचार, वर्णन, व्याख्या और प्रसार करते हैं।

“क्योंकि वे अपने ही विचारों के लालच से दूषित हैं”: क्योंकि वे अपने ही विचारों, अपने लालच और अपनी अतिवादिता से दूषित हैं।

127 · उन्होंने कहा “केवल यहीं शुद्धता है,” उन्होंने कहा कि अन्य तरीकों में कोई शुद्धता नहीं है, सभी प्रकार के बाहरी (संप्रदाय) भी इसी तरह से स्थिर हैं, जहाँ वे अपने तरीके में मजबूत होने का दावा करते हैं।

“वे कहते हैं 'केवल यहीं शुद्धता है'”: वे कहते हैं, बताते हैं, ...(छोड़ा गया)।

“वे कहते हैं कि अन्य धर्मों में कोई शुद्धि नहीं है”: अपने गुरु, समूह, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें) को छोड़कर।

“सभी प्रकार के संप्रदाय भी इसी प्रकार स्थिर हैं”: संप्रदायों को बुरे विचार कहा जाता है, और सभी पराक्रमी मार्ग बुरे विचार कहलाते हैं। वे अपने हृदयों की ओर निर्देशित सभी प्रकार के बुरे विचारों में स्थिर, अवरुद्ध, अटके हुए, प्रवेशित, संक्रमित और जकड़े हुए हैं।

“वह कौन है जो स्वयं को अपने तरीके से बलवान घोषित करता है?”: धम्म ही उसका अपना मार्ग है; देखना (दृष्टिकोण) ही उसका अपना मार्ग है; कर्म ही उसका अपना मार्ग है; मार्ग ही उसका अपना मार्ग है; बलवान वक्ता ही स्थापित वक्ता है।

128 · लेकिन अपने ही तरीके से वह बलवान होने का दावा करता है, यहाँ वह किस विरोधी को "मूर्ख" कह सकता है? वही अपने विरोधी को मूर्ख और अपवित्र धर्म का वक्ता कहकर असहमति उत्पन्न करेगा।

लेकिन अपने तरीके से, वह खुद को बलवान होने का दावा करता है": अपना धम्म, अपना दृष्टिकोण, अपना मार्ग, अपना तरीका, अपने तरीके से, व्यक्ति ही बलवान वक्ता, दृढ़ वक्ता, स्थापित वक्ता होता है।

"यहाँ, वह किस प्रतिद्वंदी को 'मूर्ख' कह सकता है?": "यहाँ," अपने स्वयं के विचारों, अपनी पसंदों, अपनी प्रवृत्तियों और अपने मतों के संदर्भ में; वह किसे रख सकता है, किसे देख सकता है, किसे निहार सकता है, किसे देख सकता है, किसे देख सकता है, किन प्रतिद्वंदियों को मूर्ख, किसे हीन, आदि के रूप में देख सकता है...।"

"वही मतभेद पैदा करेगा (यह कहकर): "विरोधी अपवित्र धर्म का मूर्ख वक्ता है": "विरोधी मूर्ख है, नीच है, ..., अपवित्र धर्म है, वे हैं जो धर्म को शुद्ध नहीं करते, वे हैं जो शुद्ध धर्म में व्याप्त नहीं हैं, और वे हैं जो धर्म को शुद्ध नहीं करते।" जो ऐसा कहते हैं, जो ऐसा बोलते हैं, ..., वे स्वयं ही उन्हें लाएंगे; वे कारण बनेंगे; वे उन्हें ले जाएंगे; वे उन्हें इकट्ठा करेंगे; वे उन्हें खींचेंगे; वे उन्हें आकर्षित करेंगे; वे उन्हें थामे रखेंगे; वे उनसे चिपके रहेंगे; वे झगड़े, बहस, विवाद और असहमति में लगे रहेंगे।

129 · स्वयं न्याय करने और मापने के बाद, वह संसार में बहस करने आता है, सभी निर्णयों को त्यागकर, लोग संसार में असहमति में संलग्न नहीं होंगे।

"निर्णय लेने के बाद, स्वयं से मापन करने के बाद": निर्णय को बासठ बुरे विचार कहा जाता है... (उद्धृत)। "स्वयं से मापन करने के बाद," स्वयं से मापन करने के बाद: "यह गुरु सभी में सबसे बुद्धिमान है।" स्वयं से मापन करने के बाद; "यह धर्म अच्छा कहा जाता है..." (उद्धृत, पिछले भाग देखें)।

"बाद में वह संसार में वाद-विवाद करने आता है": बाद को भविष्य कहा जाता है। अपना सिद्धांत स्थापित करने के बाद, वह आया, पहुँचा, पकड़ लिया, आसक्ति दिखाई, झगड़ा करने, वाद-विवाद करने, विवाद करने और असहमति जताने पर अड़ा रहा। इस प्रकार वह संसार में वाद-विवाद करने आया। या, बाद में, अन्य सिद्धांतों के साथ झगड़ा, वाद-विवाद करते हुए: "तुम धर्म को नहीं जानते, ...(अस्पष्ट)।"

"सभी निर्णयों को त्यागने के बाद": निर्णय को बासठ बुरे विचार (दृष्टिकोण के निर्णय) कहा जाता है, देखने (दृष्टिकोण) के निर्णय में, सभी निर्णयों को त्यागने के बाद, त्यागने के बाद, हमेशा के लिए त्यागने के बाद, छोड़ने के बाद, त्यागने के बाद, निष्कासित करने के बाद, समाप्त करने के बाद, इसे अस्तित्वहीन करने के बाद।

"संसार के लोग असहमति में संलग्न नहीं होते": झगड़ा मत करो, बहस मत करो, ... भगवान बुद्ध ने कहा: "अग्गिवेसना! ऐसा मुक्त भिक्षु किसी बात से सहमत नहीं होता, संसार की बातों पर बहस नहीं करता, आसक्ति रहित होता है।" [एमएन.74] "मनुष्य (लोग)," .... "संसार में," ....
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.13

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

13. ग्रेटर पास
130 · जिन लोगों ने ये (विचार) देखे हैं, और जो कहते हैं "यह सच है," क्या वे सभी केवल निंदा के पात्र हैं, या उन्हें वहाँ प्रशंसा भी मिलती है?

“इनमें से किसी को भी देखने वाला”: “कोई भी,” पूर्णतः, प्रत्येक पहलू पूर्णतः, कोई अतिरिक्त नहीं, पूरी पृथ्वी, यह सर्वव्यापकता की भाषा है, “कोई भी।” “देखना (दृष्टिकोण),” कुछ समण और ब्राह्मण बुरे विचारों वाले हैं। नियंत्रण के बाद, ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)।

और जो कहते हैं 'यह वास्तविक है': “दुनिया स्थिर है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।” वे कहते हैं, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“(क्या) उन सभी को केवल फटकार ही मिली”: उन सभी समणों और ब्राह्मणों ने केवल फटकार, केवल डांट, केवल निंदा ही पाई।

“या उन्हें वहाँ भी प्रशंसा मिली”: वहाँ उन्हें अपने विचारों, अपनी पसंदों, अपने झुकावों और अपनी राय के साथ प्रशंसा और सराहना मिली।

131 · यह (प्रशंसा) शांति के लिए छोटी और अपर्याप्त है। मैंने कहा था कि बहस करने के दो परिणाम होते हैं। इसे देखने के बाद, बहस नहीं करनी चाहिए; जो बहस नहीं करता वह स्थिर होता है।

“यह शांति के लिए छोटा और अपर्याप्त है”: “यह छोटा है,” यह कम है; यह घटिया है; यह केवल कुछ है; यह नीच है; यह घटिया इरादा है; यह महत्वहीन है। “शांति के लिए पर्याप्त नहीं,” जो लोभ से संबंधित है वह शांति के लिए है, जो क्रोध से संबंधित है वह शांति के लिए है, ...मूर्खता..., ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)..., सभी अस्वास्थ्यकर कृत्रिम चीजें शांति, मौन, शांत होने, शीतलता, रुकने और समाप्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

मैंने कहा था कि बहस के दो परिणाम होते हैं: देखने का झगड़ा, देखने का तर्क, देखने का विवाद, असहमति देखने का परिणाम, दो परिणाम होते हैं: जीत और हार; लाभ और हानि; प्रतिष्ठा और बदनामी; निंदा और प्रशंसा; दुख और सुख; आनंद और अवसाद; संतुष्टि और असंतुष्टि; प्रेम और घृणा; अभिमान और अवसाद; आज्ञापालन और विरोध। या, “वह कर्म नरक की ओर ले जाएगा, पशु जगत की ओर ले जाएगा, प्रेतलोक की ओर ले जाएगा।” मैंने कहा, मैंने समझाया, मैंने सिखाया, मैंने सूचित किया, मैंने स्थापित किया, मैंने उजागर किया, मैंने विश्लेषण किया, मैंने स्पष्ट किया।

“इसे देखकर उसे बहस नहीं करनी चाहिए”: “इसे देखकर,” यह परेशानी: देखने के झगड़े में, ..., देखने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय लेने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद। “उसे बहस नहीं करनी चाहिए,” उसे झगड़ा नहीं करना चाहिए, बहस नहीं करनी चाहिए, ..., उसे त्याग देना चाहिए, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। उसे झगड़े, बहस, ..., संयम, प्रस्थान, त्याग, मुक्त, स्वतंत्रता से दूर जाना चाहिए, उसे निश्चिंत हृदय से जीना चाहिए।

“जो तर्क नहीं करता, वही स्थिर है”: जो तर्क नहीं करता, उसे निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, लालसा और लोभ का नाश, निर्वाण। देखना, अवलोकन करना, मनन करना और निश्चिंत रूप से स्थिर, आश्रय, शरण, निर्भय, अमर, निर्जीव और निर्वाण है।

132 · इन सांसारिक सामान्य अंतर्दृष्टियों में से किसी के लिए भी, बुद्धिमान लोग इन सभी को प्राप्त नहीं कर पाते, तो अनासक्त व्यक्ति आसक्ति में क्यों आएगा, जब उसे वह पसंद नहीं आता जो वह देखता और सुनता है?

“इनमें से कोई भी सामान्य राय”: “कुछ भी,” पूरी तरह से, ... “सामान्य राय,” सामान्य राय को बासठ बुरी राय की सामान्य राय कहा जाता है। “साधारण,” “साधारण लोगों से उत्पन्न सामान्य राय” साधारण होती हैं, या “सभी प्रकार के लोगों से व्यापक रूप से उत्पन्न सामान्य राय” साधारण होती हैं।

“ज्ञानी व्यक्ति इन सब बातों तक नहीं पहुँच पाता”: ज्ञानी वह है जो संसार को जान चुका है, जो ज्ञानी है। सांसारिक दृष्टिकोण, जो इन सब बातों का मार्गदर्शन करता है, वह उस तक नहीं पहुँच पाता, उसे समझ नहीं पाता, उसे ग्रहण नहीं कर पाता, उससे आसक्त नहीं हो पाता।

“अनासक्त व्यक्ति आसक्ति की ओर क्यों आकर्षित होगा?”: “आसक्ति” दो प्रकार की होती है: ...(विलंबित, पिछले भाग देखें)। उसके लिए प्यास की आसक्ति समाप्त हो चुकी है; ... अनासक्त लोग अपने सच्चे स्वरूप को अभिव्यक्त करने, उसे प्राप्त करने, उसे थामने, उसे ग्रहण करने और

उससे आसक्त होने के लिए क्यों प्रेरित होंगे? भावना..., चिंतन..., कर्म..., ज्ञान..., रुचि..., मृत्यु..., जन्म..., अस्तित्व..., पुनर्जन्म..., वह क्यों अभिव्यक्त होगा, ...?

"जो लोग जो देखते और सुनते हैं, उन्हें पसंद नहीं करते": जो व्यक्ति जो देखे, सुने या महसूस किए गए किसी भी बात को पसंद नहीं करता, न ही अपनी इच्छा (इरादे) में, वह प्रेम नहीं करता और न ही लालची होता है; जो व्यक्ति जन्म से ही उत्पन्न नहीं होता, वह पैदा नहीं होता।

133 · जो लोग उपदेशों को सर्वोच्च मानते हैं, वे कहते हैं कि (स्वयं) संयम ही पवित्र है; जो लोग संयमित होकर प्रकट होते हैं, वे कहते हैं: चलो यहीं सीख लें, फिर पवित्रता प्राप्त होगी; कुशल होने का दावा करते हुए, वे वहाँ (आगे के अस्तित्व में) पहुँच जाएँगे।

"जो लोग उपदेशों को सर्वोच्च मानते हैं, वे कहते हैं कि (स्वयं) संयम शुद्ध है": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"निषेध के बाद प्रकट होने वाले": "निषेध," हाथी निषेध, या घोड़ा निषेध, या मवेशी निषेध, या कुत्ता निषेध, या कौवा निषेध, या विष्णु निषेध, या बलदेव निषेध, या पूर्णतः शुभ (पुण-भद्ध) निषेध, या शुभ रत्न (मणि-भद्ध) निषेध, या अग्नि निषेध, या ड्रैगन निषेध, या स्वर्ण-पंख वाले पक्षी निषेध, या यक्ष निषेध, या असुर निषेध, या गंधर्व निषेध, या राजा निषेध, या चंद्रमा निषेध, या दिन निषेध, या इंदा निषेध, या ब्रह्मा निषेध, या स्वर्ग निषेध, या पद निषेध, उनके आसक्ति के बाद, धारण किए जाने के बाद, लेने के बाद, ग्रहण करने के बाद, ग्रहण करने के बाद, पकड़ने के बाद, आसक्ति के बाद, प्रकट होने के बाद, चिपके रहने के बाद, प्रवेश करने के बाद, संक्रमित होने के बाद, और की ओर निर्देशित होने के बाद।

"यहाँ अध्ययन करें, फिर पवित्रता प्राप्त होगी": "यहाँ," मेरे अपने विचारों, मेरी पसंदों, मेरी प्रवृत्तियों और मेरे मतों के अनुसार। "सीखें," सीखें, अभ्यास करें, अमल में लाएँ और निरंतर सीखते हुए आगे बढ़ें। "यहाँ अध्ययन करें।" "फिर पवित्रता प्राप्त होगी," और फिर पवित्रता, स्वच्छता और सर्वांगीण पवित्रता प्राप्त होगी; वैराग्य, मुक्ति, विरक्ति।

"कुशल घोषित करना, अस्तित्व में लाया जाना": "अस्तित्व में लाया जाना," अस्तित्व में लाया जाना, अस्तित्व में फँस जाना, अस्तित्व की ओर ले जाया जाना, अस्तित्व की ओर निर्देशित होना। "कुशल घोषित करना," कुशल वक्ता, बुद्धिमान वक्ता, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

134 · यदि वह नियमों और निषेधों से भटक गया, तो वह इस व्यवहार में असफल होने के बाद कांपता है, वह पवित्रता के लिए आशा और प्रार्थना करता है, जैसे कोई यात्री अपने घर से भागकर कारवां से अलग हो गया हो।

"यदि वह उपदेशों और निषेधों से भटक गया": वह दो कारणों से उपदेशों और निषेधों से भटक गया: या तो दूसरों ने उसे बाधित किया, या वह तब भटक गया जब वह उन तक नहीं पहुँचा। दूसरों द्वारा बाधित किए जाने पर वह कैसे भटक सकता है? "दूसरों द्वारा बाधा": वह गुरु सर्वज्ञानी नहीं है, ...(विलंबित, पिछले खंड देखें), और तुच्छ है। यही "दूसरों द्वारा बाधा" है। इस प्रकार, गुरु बाधित होने पर भटक जाएगा, और उसके द्वारा बताया गया धर्म भटक जाएगा, समूह भटक जाएगा, दृष्टि भटक जाएगी, मार्ग भटक जाएगा, पथ का पालन भटक जाएगा, इसलिए वह दूसरों द्वारा बाधित हुआ। जब वह नहीं पहुँचा तो वह कैसे भटक सकता है? जब वह उपदेश तक नहीं पहुँचा, जब वह निषेध तक नहीं पहुँचा, जब वह उपदेश और निषेध दोनों तक नहीं पहुँचा, इसलिए निषेध तक न पहुँचने पर वह भटक गया।

"व्यवहार में असफल होने पर वह कांप उठा": "वह कांप उठा," "मैंने नियम या निषेध या दोनों को खो दिया; मेरे द्वारा, मेरे द्वारा उल्लंघन किया गया, मेरे द्वारा उलट दिया गया, मेरे द्वारा खो गया, और मैं अनजाने में उल्लंघनकर्ता हूँ।" वह कांप रहा था, ...(अस्पष्ट)। "कार्य के असफल होने पर," "धन्य या अपाहिज या अचल मेरे द्वारा खो गया; मेरे द्वारा उल्लंघन किया गया; ... ।" वह कांप रहा था, थरथरा रहा था, बहुत कांप रहा था।

"वह पवित्रता चाहता है और उसके लिए प्रार्थना करता है": "वह चाहता है," वह नियमों की पवित्रता के लिए तरसता है, या वह निषेधों की पवित्रता के लिए तरसता है, या वह नियमों और निषेधों दोनों की पवित्रता के लिए तरसता है, वह आशा करता है और प्रार्थना करता है। "और पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है," वह नियमों की पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है, या वह निषेधों की पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है, या वह नियमों और निषेधों दोनों की पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है।

“(जैसे) कोई व्यक्ति जो घर से निकलकर यात्रा कर रहा हो और किसी काफिले से बिछड़ जाए”: जैसे कोई व्यक्ति घर छोड़कर किसी काफिले में सफर करता है और किसी दूर के यात्री या निवासी के रूप में उसका साथ देता है, और काफिला उसे छोड़ देता है, तो वह उस काफिले का पीछा कर सकता है या घर लौट सकता है। उसी प्रकार, बुरी दृष्टि वाला व्यक्ति या तो किसी स्वामी या अन्य स्वामियों को धारण करता है; या उस विधि के वर्णन को धारण करता है, या अन्य विधियों के वर्णन को; या उस समूह को धारण करता है, या अन्य समूहों को; या उस दृष्टि को धारण करता है, या अन्य दृष्टियों को; या उस मार्ग को धारण करता है, या दूसरे मार्ग को; या उस पथ को धारण करता है, या अन्य पथों को, और उनसे चिपका रहता है।

135 · परन्तु सभी नियमों और निषेधों को त्यागने के बाद, और अपराध और निर्दोषता के कार्यों को, “शुद्धता और अशुद्धता,” जो प्रार्थना नहीं करते, त्यागने के बाद मौन को मत पकड़ो।

लेकिन सभी नियमों और निषेधों का त्याग करने के बाद”: नियमों की सारी पवित्रता समाप्त हो जाने के बाद, त्याग दिए जाने के बाद, दूर भगा दिए जाने के बाद, अंत के बाद, उन्हें अस्तित्वहीन बना दिए जाने के बाद; निषेधों की सारी पवित्रता के बाद...; ...नियमों और निषेधों की पवित्रता...।

“और इस दोषी और निर्दोष आचरण के बाद”: दोषी आचरण को काला फल कहा जाता है; निर्दोष आचरण को सफेद फल कहा जाता है। दोषी आचरण और निर्दोष आचरण के समाप्त होने के बाद, त्याग दिए जाने के बाद, निष्कासित किए जाने के बाद, अंत के बाद, इसे अस्तित्वहीन बना दिया जाता है।

“'शुद्ध और अशुद्ध' (वे) प्रार्थना नहीं करते”: “अशुद्धता,” वे अशुद्धता चाहते हैं: वे अस्वस्थ धम्म चाहते हैं; “शुद्ध,” वे शुद्धता चाहते हैं: वे पाँच इच्छाएँ चाहते हैं। वे अशुद्धता चाहते हैं: वे बुराई चाहते हैं, और वे पाँच इच्छाएँ चाहते हैं; वे शुद्धता चाहते हैं: वे बासठ बुरे विचार चाहते हैं। वे अशुद्धता चाहते हैं: वे अस्वस्थ धम्म चाहते हैं, वे पाँच इच्छाएँ चाहते हैं, वे बासठ बुरे विचार चाहते हैं; वे शुद्धता चाहते हैं: वे तीनों लोकों में अच्छे धम्म चाहते हैं। वे अशुद्धता चाहते हैं: वे अस्वस्थ धम्म चाहते हैं, वे पाँच इच्छाएँ चाहते हैं, वे बासठ बुरे विचार चाहते हैं, वे तीनों लोकों में अच्छे धम्म चाहते हैं; वे शुद्धता चाहते हैं: अच्छे साधारण लोग प्रवेश करना चाहते हैं, छात्र अरहंत अवस्था के प्रथम लोक की आशा करते हैं। अरहंत अवस्था प्राप्त कर चुके अरहंत न तो अस्वास्थ्यकर धर्म की इच्छा रखते हैं, न पाँचों इच्छाओं की, न बासठ बुरे विचारों की, न तीनों लोकों के अच्छे धर्म की, और न ही प्रथम अरहंत लोक में प्रवेश करने का निर्णय लेते हैं। जिस पारलौकिकता की वे कामना करते हैं, उस अरहंत ने विकास और पतन को पार कर लिया है; वे एक ऐसी अवस्था में अवतरित हो चुके हैं, एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने... (अंतःखंडित) का अभ्यास किया है, जन्म और मृत्यु के चक्र को बिना पुनर्जन्म के पार कर लिया है।

“जिसने मौन धारण किए बिना संयम बरता है, वह ऐसा कर सकता है”: “जिसने संयम बरता है,” “वह शुद्ध और अशुद्ध से विभाजित हो चुका है, उसने संयम बरता है, त्याग दिया है, छोड़ दिया है, मुक्त हो गया है, वह बंधनमुक्त है, वह निर्बल हृदय से जीता है। वही संयम बरतने वाला है।” वह करने में सक्षम है,” करने में, चलने में, जीने में, कार्य करने में, आगे बढ़ने में, रक्षा करने में, बनाए रखने में, जीवित रहने में। संयम बरतने वाले व्यक्ति के लिए यह संभव है। “मौन धारण न करने के बाद,” मौन को बासठ बुरे विचारों का मौन कहा जाता है। वह न तो धारण करता है, न ग्रहण करता है, और न ही आसक्त होता है।

136 · तपस्या या घृणा पर भरोसा करते हुए, या देखने या सुनने या महसूस करने के बाद भी, आगे बढ़ने के बाद, उन्होंने घोषणा की कि वे शुद्ध हैं, वे जो सभी प्रकार के अस्तित्व में प्यासे हैं।

“तपस्या या घृणा पर निर्भर”: कुछ समण और ब्राह्मण कठोर और घृणाप्रिय होते हैं, कुछ ऐसे होते हैं जिनका मूल कठोरता और घृणा है, कुछ ऐसे होते हैं जो तपस्या और घृणा पर निर्भर रहते हैं, कुछ ऐसे होते हैं जो इनसे विमुख हो जाते हैं, कुछ ऐसे होते हैं जो इनमें लिप्त हो जाते हैं, और कुछ ऐसे होते हैं जो अपना मन इन चीजों की ओर लगाते हैं।

“या देखने, सुनने या महसूस करने के बाद भी”: जो तुम देखते हो उसकी पवित्रता; जो तुम सुनते हो उसकी पवित्रता; जो तुम महसूस करते हो उसकी पवित्रता; निर्भर रहने के बाद, भरोसा करने के बाद, उठाने के बाद, पकड़ने के बाद, आसक्ति के बाद।

आगे बढ़ने के बाद उन्होंने पवित्रता का प्रचार किया: कुछ समण और ब्राह्मण आगे बढ़ने के बाद आलोचक (टीकाकार) हैं। आगे बढ़ने के बाद कौन से समण और ब्राह्मण आलोचक हैं? कुछ समण और ब्राह्मण परम शुद्ध, पुनर्जन्म में शुद्ध, कर्म रहित द्रष्टा, निरंतर टीकाकार हैं। ये समण और ब्राह्मण आगे बढ़ने के बाद टीकाकार हैं। वे प्रशंसा करते हैं, जानकारी देते हैं, बताते हैं, चर्चा करते हैं, व्याख्या करते हैं और कहते हैं कि पुनर्जन्म शुद्ध, स्वच्छ और सर्व-शुद्ध है; वैराग्य, मुक्ति और अनासक्ति है।

"सभी प्रकार के अस्तित्व में प्यास": "प्यासी प्रेम," रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास, गंध की प्यास, स्वाद की प्यास, स्पर्श की प्यास, धम्म की प्यास। "सभी प्रकार के अस्तित्व में," ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें); जो प्यासे हैं, जिन्होंने अपनी प्यास नहीं छोड़ी है, जिन्होंने प्यास मिटाई नहीं है, जिन्होंने अपनी प्यास से मुक्ति नहीं पाई है, जिन्होंने अपनी प्यास नहीं बुझाई है।

137 · बेशक, जो चाहते हैं उनके लिए कई आकांक्षाएँ हैं, लेकिन स्थिर दृष्टि में कांपना भी है, जिनके लिए यहाँ मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं है, वे क्यों कांपेंगे या किस बात की कामना करेंगे?

"आशावान व्यक्ति की अनेक आकांक्षाएँ होती हैं": आशा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है... "आशावान व्यक्ति के लिए," चाहने वाले के लिए, खोज करने वाले के लिए, इच्छा रखने वाले के लिए, प्राप्तकर्ता के लिए, इच्छा करने वाले के लिए और प्रार्थना करने वाले के लिए। "अत्यंत आकांक्षाएँ होती हैं," इच्छा को लालसा कहा जाता है, यह लोभ है...

"स्थिर दृष्टि में भी कांपना": "स्थिर दृष्टि," दो प्रकार की स्थिर दृष्टि होती है: प्यास की स्थिर दृष्टि और देखने की स्थिर दृष्टि...। "स्थिर दृष्टि में भी कांपना": वे तब कांपते हैं जब स्थिर की गई चीजों के चोरी होने का संदेह होता है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"जिनके लिए यहाँ मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं है": "जिनके लिए...", अरहंत के लिए, जिनके सारे कष्ट समाप्त हो चुके हैं। उनके सभी अंत:क्रियाएँ, संपर्क, मृत्यु का समय, हर प्रकार की मृत्यु, भूतपूर्व जीवन, जन्म, विघटन, पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, ये सब उनके लिए नहीं हैं, उनका अस्तित्व नहीं है, वे ज्ञात नहीं हैं, उनका पता नहीं लगाया जा सकता है, वे कट चुके हैं, विच्छेदित हो चुके हैं, शांत हो चुके हैं, रुक चुके हैं, उनका पुनरुत्पादन नहीं हो सकता, वे ज्ञान की अग्नि से भस्म हो चुके हैं।

वह क्यों कांपेगा या किस बात की बेसब्री से प्रतीक्षा करेगा? वह लालच से क्यों कांपेगा? वह क्यों कांप रहा होगा? वह अज्ञान से क्यों कांप रहा होगा? वह अहंकार से क्यों कांप रहा होगा? वह किस प्रकार के व्यवहार से कांपेगा? वह किस प्रकार के संदेह से कांपेगा? वह किन अंतर्निहित विपत्तियों से कांपेगा, जिनके कारण वह "बीमार," या "घृणित," या "मूर्ख," या "बंधा हुआ," या "चिपका हुआ," या "अव्यवस्था में पड़ जाएगा," या "अप्रियता में पड़ जाएगा," या "धैर्य में पड़ जाएगा?" वे रचनाएँ कट चुकी हैं, उनके कर्म कट चुके हैं, वह कांपेगा और "नरक," या "पशु (लोक)," या "भूखा प्रेत," या "व्यक्ति," या "स्वर्ग," या "निर्मित," या "निराकार," या "सोचने वाला," या "न सोचने वाला" या "न सोचने वाला" बन जाएगा? उसके पास न कोई कारण है, न कोई पूर्वनियोजित नियति, न कोई कारक, तो वह क्यों कांपेगा, क्यों थरथराएगा, और क्यों बहुत अधिक कांपेगा? वह क्यों कांपेगा? वह किस बात के लिए उत्सुक होगा? या किस बात की उसे चाह होगी? वह किस बात की प्रतीक्षा करेगा? वह किस बात के लिए उत्सुक होगा; क्या वह आशा करेगा; क्या वह प्रार्थना करेगा?

138 · कुछ लोग धम्म में कहते हैं, "यह सर्वोच्च है," लेकिन दूसरे कहते हैं, "यह निम्न है।" तो इनमें से कौन सा वक्ता सत्य है? क्योंकि ये सभी लोग कुशल होने का दावा करते हैं।

"धम्म में कुछ लोग कहते हैं कि 'यह सर्वोच्च है'": धम्म, दृष्टिकोण, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

लेकिन दूसरे लोगों ने कहा, 'यही तो हीन है।' धम्म के दृष्टिकोण के बारे में...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"तो इन लोगों में से कौन सा वक्ता सत्य है?": इन समणों और ब्राह्मणों में से कौन सा वक्ता सत्य है, ...

“क्योंकि ये सभी लोग स्वयं को कुशल वक्ता बताते हैं”: ये सभी समण और ब्राह्मण कुशल वक्ता हैं, ...

139・वे कहते हैं कि उनका अपना धर्म परिपूर्ण है, और वे कहते हैं कि दूसरों का धर्म निम्नतर है। इस प्रकार तर्क करने के बाद, वे कहते हैं कि उनके अपने मत सत्य हैं।

“यह सच है कि वे कहते हैं कि उनका अपना धम्म पूर्ण है”: उनका अपना धम्म, ..., कुछ समण, ब्राह्मण कहते हैं... : “यह पूर्ण और परिपूर्ण है।”

“और अन्य लोगों का धम्म निम्न स्तर का है”: अन्य लोगों का धम्म, ..., कुछ समण और ब्राह्मण कहते हैं ...: “यह निम्न स्तर का है, ... ।”

“इस तरह पकड़ने के बाद, वे बहस करते हैं”: इस तरह पकड़ने के बाद, समझने के बाद, ..., वे बहस करते हैं, झगड़ा करते हैं, ...: “तुम इस धम्म को नहीं जानते, ...”

उन्होंने कहा कि उनके विचार सत्य हैं: "दुनिया स्थिर है, ..."

140・यदि तुम अपने विरोधी के तिरस्कार से हीन हो जाओ, तो किसी भी धर्म में कोई विजेता नहीं होगा, क्योंकि उनमें से प्रत्येक दूसरों को बताता है कि उनका धर्म घृणित है, और स्वयं को बलवान बताता है।

“यदि अपने प्रतिद्वंदी के तिरस्कार से तुम हीन हो जाओगे”: यदि प्रतिद्वंदी अपने द्वारा तिरस्कृत किए जाने, फटकार लगने, दोषारोपण होने या गाली-गलौज के कारण मूर्ख, हीन, आदि हो जाता है।

“किसी भी धम्म में कोई श्रेष्ठ नहीं होगा”: धम्म में कोई प्रथम, सबसे श्रेष्ठ, उच्चतर, शीर्ष नहीं होगा।

क्योंकि उनमें से प्रत्येक दूसरों को धम्म के बारे में बताता है: अधिकांश लोग बहुसंख्यक धम्मों को हीन बताकर उनका अपमान करते हैं, उन पर आरोप लगाते हैं और उनकी निंदा करते हैं... एक व्यक्ति अधिकांश अन्य धम्मों को हीन बताकर उनका अपमान करता है... एक व्यक्ति यह भी कहता है कि अन्य धम्म हीन है...

“अपने बारे में वे मजबूत (दृढ़, स्थिर) होने का दावा करते हैं”: मेरा अपना धम्म, मेरा अपना दृष्टिकोण, मेरा अपना तरीका, मेरा अपना मार्ग, अपने ही मार्ग पर वह एक सशक्त वक्ता है, एक दृढ़ वक्ता है, जो स्थापित है।

141・जिस धम्म का वे आदर करते हैं, वह सत्य है, (जैसे) वे अपने मार्ग की प्रशंसा करते हैं, कही गई हर बात सत्य हो जाएगी, क्योंकि उन लोगों के लिए पवित्रता उनकी अपनी है।

“जिस धम्म का स्वयं आदर किया जाता है, वही सत्य है”: अपने धम्म का आदर क्या है? अपने गुरु का आदर, पूजा, आराधना और प्रशंसा करना: “यह गुरु सर्वज्ञानी हैं।” यही अपने धम्म का आदर है। अपने धम्म, अपने समूह, अपने विचारों, अपने मार्ग, अपने पथ के बारे में बात करते हुए, आदर, पूजा, आराधना और प्रशंसा करना: “यही मार्ग त्याग है।” यही अपने मार्ग का आदर करना है। “जिस धम्म का स्वयं आदर किया जाता है, वही सत्य है”: “केवल अपने धम्म का आदर ही सत्य, सत्यनिष्ठ, तथ्यात्मक, सही और अपरिवर्तनीय है।”

“वे अपने ही मार्ग की प्रशंसा करते हैं”: धम्म उनका अपना मार्ग है, दृष्टिकोण उनका अपना मार्ग है, रास्ता उनका अपना मार्ग है, पथ उनका अपना मार्ग है, वे अपने ही मार्ग की प्रशंसा और सराहना करते हैं।

“तब कही गई हर बात सत्य हो जाएगी”: कही गई हर बात सत्य, सच, ... हो जाएगी।

“क्योंकि उन लोगों के लिए पवित्रता ही उनकी अपनी विशेषता है”: उन समण और ब्राह्मणों के लिए, वे शुद्ध, स्वच्छ और सर्व-शुद्ध हैं; वैराग्य, मुक्ति और अनासक्ति ही उनकी अपनी विशेषता है।

142 · उन ब्राह्मणों के लिए जो दूसरों द्वारा निर्देशित नहीं होते, (या) धम्म में चयन करने के बाद दृढ़ता से पकड़े रहते हैं, इसलिए वे तर्कों से मुक्त हो गए हैं, क्योंकि वे अन्य धम्मों को सबसे विजयी नहीं मानते।

“अन्य द्वारा निर्देशित न होने वाले ब्राह्मणों के लिए”: “नहीं” नकारात्मक है। “ब्राह्मण,” .... “अन्य द्वारा निर्देशित न होने वाले ब्राह्मणों के लिए”: ब्राह्मणों के लिए, वे जो अन्य द्वारा निर्देशित नहीं होते। ब्राह्मण वे हैं जो अन्य द्वारा निर्देशित नहीं होते, अन्य पर निर्भर नहीं होते, अन्य के ऋणी नहीं होते और अन्य से बंधे नहीं होते। वह (सच्चाई से) जानता और देखता है कि वह अज्ञानी नहीं है, वह सत्यनिष्ठा से जानता है और वह स्मरण रखता है: “सभी कर्म अनित्य हैं” एक ब्राह्मण के लिए जो अन्य द्वारा निर्देशित नहीं होता, ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)।

“धम्म में चुने जाने के बाद, दृढ़ता से धारण करना”: “धम्म में,” बासठ बुरे विचारों में। “चुने जाने के बाद,” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “दृढ़ता से धारण करना,” सीमित धारण, आंशिक धारण, सर्वोच्च धारण, निश्चित मात्रा में धारण, संचित धारण, पूर्णतः संचित धारण: “यह सत्य है, ...।” उन्हें धारण किया जाता है, उनसे आसक्ति होती है, वे जुड़े होते हैं, उन्हें ग्रहण किया जाता है और उन पर विश्वास किया जाता है। वे अस्तित्व में नहीं हैं, वे ज्ञात नहीं हैं, ...।

इसलिए बहस को त्याग दिया गया है: इसलिए... विचारों के बीच का झगड़ा, बहस... दूर हो गया है, पार हो गया है, उस पर विजय प्राप्त कर ली गई है।

“क्योंकि वह अन्य धर्मों को सबसे विजयी नहीं मानता”: धर्म के अतिरिक्त, समस्त धार्मिकता के अतिरिक्त, दिव्य आधारों के अतिरिक्त, जड़ों के अतिरिक्त, शक्तियों के अतिरिक्त, ज्ञानों के अतिरिक्त, पवित्र मार्ग की आठ शाखाओं के अतिरिक्त, उसने प्रथम और सबसे विजयी, श्रेष्ठ, सर्वोच्च, शीर्ष विधि को नहीं देखा, नहीं देखा, नहीं उसका अवलोकन नहीं किया।

143 · (कहते हुए) मुझे पता है, मैं इसे इस तरह देखता हूँ, कुछ लोग विचारों के माध्यम से पवित्रता की ओर लौटते हैं, अगर वह इसे स्वयं देख ले तो वह क्या कर सकता है? बहुत दूर चलने के बाद, वे कहते हैं कि अन्य चीजों में पवित्रता है।

“मैं जानता हूँ, मैं इसे इस तरह देखता हूँ”: “मैं जानता हूँ,” या अपने मन से, या अपने अतीत के ज्ञान से। “मैं देखता हूँ,” मैं अपनी आँखों से देखता हूँ, या स्वर्ग की दृष्टि से। “यह ऐसा ही है।” यह सच है, ...

“कुछ लोग शुद्ध माने जाने वाले विचारों की ओर लौटते हैं”: कुछ समण और ब्राह्मण शुद्ध माने जाने वाले विचारों की ओर लौटते हैं, ...: “संसार स्थिर है, ...”

“यदि वह स्वयं देखे कि वह क्या कर सकता है”: “वह देखता है,” या उसने अपने मन से देखा, या पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान से, उसने प्रत्यक्ष दृष्टि से देखा, या आकाश की दृष्टि से। “उसके लिए, उससे क्या किया जा सकता है,” उसके लिए, उस दृष्टि से, क्या किया गया है? दुख का कोई ज्ञान नहीं, कोई न्याय नहीं, मार्ग का कोई अभ्यास नहीं, बिना परिणाम के गवाही देना नहीं, लोभ का त्याग नहीं, क्रोध का त्याग नहीं, मोह का त्याग नहीं, सभी प्रकार के अपवित्रता का त्याग नहीं, और संसार का कोई नाश नहीं।

“अति करने के बाद, उन्होंने कहा कि वे अन्य तरीकों से शुद्ध थे”: चार ध्यान अवस्थाओं में बने रहने के अतिरिक्त, धर्म के अतिरिक्त, ..., उन्होंने शुद्ध मार्ग, निर्मल मार्ग और शुद्ध श्वेत मार्ग को पार किया, पार किया और उस पर विजय प्राप्त की। उनके कहने, बताने के बाद, ..., सर्व-शुद्ध; वैराग्य...।

या, बुद्धों और बुद्धों के शिष्यों और भिक्षु बुद्धों द्वारा बाह्य मार्ग के अशुद्ध, अस्पष्ट, अपवित्र, अपवित्र और अशुद्ध श्वेत मार्गों को पार करने और उन पर विजय प्राप्त करने के बाद, उन्होंने चार प्रकार की जागरूकता का अभ्यास किया, ..., सूचित करने के लिए, बताने के लिए, ...।

144 · जो लोग इसे देखते हैं, वे नाम और रूप देखते हैं, और जो इसे देखते हैं वे (केवल यही) जानेंगे, वह कमोबेश अपनी इच्छा अनुसार देखे; वास्तव में, कुशल लोग यह नहीं कहते कि वह शुद्ध है।

"जो देखता है, वह नाम और रूप देखता है": जो देखता है, वह इसे या तो अपने मन से, या पूर्व जन्मों की स्मृतियों के ज्ञान से, या प्रत्यक्ष रूप से, या आकाश की दृष्टि से देखता है। वह केवल नाम और रूप को ही स्थिर, सुखी, सच्चे स्वरूप के रूप में देखता है; वह उन धर्मों के संचय, विनाश, सुख, कष्ट या त्याग को नहीं देखता।

"उन्हें देखने के बाद, वे ज्ञात हो जाएँगे": "देखने के बाद," .... जो स्थिर, सुखी, सच्चे स्व, उन धर्मों के एकत्रीकरण, विलीनता, सुख, या कष्ट, या त्याग के रूप में ज्ञात होते हैं, वे ज्ञात हो जाते हैं।

"उसे अपनी इच्छानुसार कमोबेश देखने दो": जब वह अपनी इच्छानुसार कमोबेश नाम और रूप देखता है, तो यह स्थिर, सुखद और सत्य होता है।

"निःसंदेह, कुशल लोग यह नहीं कहते कि यह शुद्ध है": "कुशल लोग," ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)..., या स्वर्ग की दृष्टि से, बोलते नहीं, बताते नहीं, ...: नाम और रूप को शुद्ध देखकर, ...।

145 · जुनूनी आलोचक वास्तव में वे लोग हैं जिन्हें समायोजित करना आसान नहीं है: वे लोग जो निश्चित दृष्टिकोण को महत्व देते हैं, जब यह घोषित किया जाता है कि वहां विश्राम करने वाला हर कोई शुद्ध है, तो शुद्धतावादी उसे उसी तरह देखता है।

"जो लोग किसी बात को लेकर बहुत जुनूनी होते हैं, उनके साथ तालमेल बिठाना आसान नहीं होता": "दुनिया स्थिर है..." जुनूनी लोगों का यही मानना होता है; "दुनिया बहुत ही स्थायी है..." "यह सच है कि तालमेल बिठाना आसान नहीं है।" जुनूनी लोग वे होते हैं जिनके साथ तालमेल बिठाना मुश्किल होता है, जिन्हें समझना मुश्किल होता है, जिनके बारे में बताना मुश्किल होता है, जिन्हें देखना मुश्किल होता है और जिन्हें समझना मुश्किल होता है।

"निश्चित दृष्टिकोण को महत्व देने वाले लोग": निर्मित, निश्चित, बनावटी और साझा दृष्टिकोण, और फिर ध्यान देने के बाद कार्य करना। झंडे के रूप में देखना, मीनार के रूप में देखना, वृद्धि के रूप में देखना, अनुसरण करते हुए दिखना।

जब यह घोषित किया जाता है कि जो कोई भी उस पर निर्भर रहता है वह शुद्ध है": "जो कोई भी उस पर निर्भर रहता है," गुरुओं पर, धम्म पर, ..., निर्भरता, निष्ठा, उसमें लीन होना, स्थिर होना और अपना हृदय उसकी ओर मोड़ना, वही उस पर निर्भर है। "वहाँ" का अर्थ है स्वयं की दृष्टि में, अपनी पसंद में, अपनी प्रवृत्ति में, अपने मत में। "जब इसे (शुद्ध) घोषित किया जाता है" तो वह शुद्ध वक्ता, बुद्धिमान वक्ता, ... होता है।

"शुद्धतावादी वहाँ है, वह इस प्रकार देखता है": "शुद्धतावादी," सर्वव्यापी शुद्धतावादी, स्पष्ट करने वाला, सर्वव्यापी शुद्धतावादी। या, शुद्ध द्रष्टा (दृष्टिकोण का), सर्वव्यापी शुद्ध दृष्टि, शुद्धता देखने वाला, संपूर्ण श्वेतता देखने वाला। "वहाँ," अपने ही दृष्टिकोण में, ... "सत्य," सत्यवादी, ... वह देखता और समझता है।

146 · ब्राह्मण विचार-विमर्श के बाद रचनाएँ नहीं करते, वे (दृष्टिकोण) देखने के लिए यात्री नहीं हैं, न ही ज्ञान के रिश्तेदार हैं, और सांसारिक की सामान्य राय जानने के बाद, वे देखते हैं कि दूसरे इसे कैसे ग्रहण करते हैं (समझते हैं)।

"ब्राह्मण विचार करने के बाद निर्माण में नहीं आते": "नहीं" नकारात्मक है। "ब्राह्मण," .... "निर्माण," ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। विचार करने के बाद, इसे ज्ञान कहा जाता है, ... "ब्राह्मण विचार करने के बाद निर्माण में नहीं आते": ब्राह्मण विचार करने के बाद, जानने के बाद, ... सभी कर्म अनित्य हैं... (छोड़ा गया)। वह इच्छा के निर्माण या बोध के निर्माण में नहीं आते, न पहुँचने के लिए, न पकड़ने के लिए, न लेने के लिए, न आसक्ति के लिए।

"वह दृष्टियों का अनुयायी नहीं है, न ही ज्ञान का संबंधी है": उसके लिए, बासठ बुरी दृष्टियाँ काट दी गई हैं, ..., और वह बहक नहीं जाता, न ही उस बुरी दृष्टि को मूल मानकर उसकी ओर लौटता है। "न ही वह ज्ञान का संबंधी है," न ही ज्ञान की आठवीं श्रेणी का, न ही ज्ञान की पाँच शक्तियों का, न ही वह वासनापूर्ण संबंध स्थापित करता है, उत्पन्न करता है, न ही उत्पन्न करता है।

"और आम लोगों की आम राय जानने के बाद": "जानने के बाद,"... आम राय को बासठ बुरी राय की आम राय कहा जाता है। "आम", "आम लोगों से उत्पन्न आम राय" सांसारिक हैं, या "विभिन्न लोगों से उत्पन्न आम राय" सांसारिक हैं।

"वह देख रहा है और दूसरे उठा रहे हैं": दूसरे अपनी प्यास और देखने के कारण पकड़ रहे हैं, ले रहे हैं और चिपके हुए हैं; अरहंत देखता रहता है, न पकड़ता है, न लेता है और न चिपका रहता है।

147 · मुनि के इस संसार में बंधन छोड़ने के बाद, वे उत्पन्न हुए विवाद में शामिल समूह के सदस्य नहीं थे। मौन व्यक्ति मौन लोगों के बीच शांत रहता है, और वह व्यक्ति जो दूसरों के कुछ उठाने पर भी कुछ नहीं उठाता।

"मुनि ने यह बंधन यहीं संसार में छोड़ दिया": "बंधन," बंधन के चार प्रकार होते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। "मुनि," .... "यहाँ," ....

"उत्पन्न विवादों में समूह में प्रवेश न करना": जो विवाद उत्पन्न हुए हैं, जो पैदा हुए हैं, जो प्रकट हुए हैं, उनमें वे लोग न चलें जो इच्छाओं के अनुसार नहीं चलना चाहिए, जो उत्तेजित हैं, जो भयानक हैं, उन्हें व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो मूर्ख नहीं होने चाहिए, उन्हें व्यवहार नहीं करना चाहिए यदि वे नहीं चाहते, उन्हें व्यवहार नहीं करना चाहिए यदि वे क्रोधित नहीं होते, उन्हें व्यवहार नहीं करना चाहिए यदि वे भयभीत नहीं होते, मूर्ख व्यक्ति को कार्य नहीं करना चाहिए, न तो लोभ के कारण, न घृणा के कारण, न अज्ञान के कारण, न अहंकार के कारण, न दृष्टि के कारण, न व्यभिचार के कारण, न संदेह के कारण, न ही संभावित संकटों के कारण समूह छोड़ें, और न ही कलह और धर्म संबंधी बहस से प्रेरित, निर्देशित, बहकाए या पराजित हों।

"मौन रहने वाला मौन रहने वालों में शांतिप्रिय है": "मौन रहने वाला," ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)। "उन लोगों में जो मौन नहीं हैं," जो मौन नहीं हैं, जो स्थिर नहीं हैं, जो बुझ नहीं रहे हैं, जो शीतल नहीं हो रहे हैं, जो विश्राम नहीं कर रहे हैं। "वह शांत है," अरहंत छह प्रकार की शांति धारण करता है: अपनी आँखों से रूप देखने के बाद, वह न तो प्रसन्न होता है और न ही दुखी, बल्कि शांति से, विचारों और धार्मिक ज्ञान के साथ रहता है; अपने कानों से ध्वनि सुनने के बाद...(विलुप्त); मृत्यु के समय: वह वह है जो अच्छी तरह से वश में है (मौन रहने वाला)।

"जो लोग नहीं उठाते, जबकि दूसरे उठा लेते हैं": दूसरे लोग प्यास और दृष्टि के कारण पकड़े रहते हैं, और अरहंत देखते रहते हैं, ...

148 · पिछली परेशानियों को त्यागकर, नई परेशानियाँ न पैदा करके, जो लोग इच्छा या आसक्ति (हठधर्मिता) तक नहीं पहुँचते, वही बुद्धिमान व्यक्ति है जिसने अपने आप को बुरी राय से मुक्त कर लिया है, और संसार में अपने आप को दूषित या निंदा नहीं करता।

"पिछली परेशानियों को त्याग दो और नई परेशानियाँ पैदा मत करो": पिछली परेशानियाँ अतीत की संवेदना, बोध और चेतना कहलाती हैं। अतीत के उन कर्मों के संबंध में जो प्रदूषण का कारण बन सकते हैं, उन प्रदूषणों को त्यागने के बाद, त्यागने के बाद, हमेशा के लिए त्यागने के बाद, दूर भगाने के बाद, अंत करने के बाद और उन्हें अस्तित्वहीन बना देने के बाद, "नई परेशानियाँ पैदा मत करो," नई परेशानियाँ वर्तमान संवेदना, बोध और चेतना कहलाती हैं। कर्म इच्छा, प्रेम और लोभ का अजन्मा स्रोत है; वे जिन्हें जन्म लेने, उत्पन्न होने, उत्पन्न होने और जन्म लेने की अनुमति नहीं है।

"न तो इच्छा की पूर्ति करने वाला और न ही आसक्त": जो अभाव के कारण नहीं जाता, ...(उद्धृत)। "न ही आसक्त (हठधर्मी)," गैर-"संसार स्थिर है, यह सत्य है, ...(उद्धृत)।"

"वह बुद्धिमान व्यक्ति है जिसने अपने आप को बुरे विचारों से मुक्त कर लिया है": उसके लिए, बासठ बुरे विचार दूर हो चुके हैं, ... अंतर्दृष्टि बंधन से मुक्त है, और वह एक स्वतंत्र हृदय से जीवन व्यतीत करता है। "बुद्धिमान व्यक्ति," ...

"संसार में अपने आप को दूषित न करना, और अपने आप को धिक्कारना नहीं": "संलग्नता," दो प्रकार की संलग्नता होती है: ... उसके लिए, प्यास की संलग्नता टूट गई है, ..., वह दुख के संसार में दूषित नहीं है, मनुष्य के संसार में दूषित नहीं है, स्वर्ग के संसार में दूषित नहीं है, समूह के संसार में दूषित नहीं है, संसार के संसार में दूषित नहीं है, और स्थानों के संसार में दूषित नहीं है; न तो अत्यधिक दूषित है, न ही घनिष्ठ रूप से दूषित है, अब दूषित नहीं है, अब अत्यधिक दूषित नहीं है, अब घनिष्ठ रूप से दूषित नहीं है। उसने बंधन छोड़ दिया है, वह चला गया है, वह मुक्त हो गया है, वह बंधन से अलग हो गया है, वह एक अप्रतिबंधित हृदय से निवास करता है।

"स्वयं को फटकारना नहीं," स्वयं को दो कारणों से फटकारना चाहिए: ...(विलंबित, पिछले अनुभाग देखें)। जो सृजन नहीं करते, जन्म नहीं देते, उत्पन्न नहीं होते, वे स्वयं को फटकारते नहीं हैं।

149 · वह ऐसा व्यक्ति है जिसने सभी धर्मों में अपने सारे बंधनों को त्याग दिया है: जो कुछ भी देखा या सुना जाता है, मुनि का बोझ हल्का हो गया है और वे निर्माण कार्य में नहीं लगते, रुकते नहीं और उनमें कोई इच्छा नहीं होती। [इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा।]

"वही है जिसने सभी धर्मों में सेना को पीछे छोड़ दिया है: जो कुछ भी वह देखता है, सुनता है और समझता है": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"उस मुनि का बोझ हल्का और मुक्त हो गया है": "बोझ" तीन प्रकार के होते हैं: सामूहिक बोझ, अशुद्धता का बोझ और सृजनात्मक बोझ। सामूहिक बोझ क्या है? परिणामी रूप, भावना, विचार, व्यवहार और चेतना, यही सामूहिक बोझ है। अशुद्धता का बोझ क्या है? लोभ, घृणा, अज्ञान... (विलुप्त), सभी अस्वास्थ्यकर कर्म अशुद्धता का बोझ हैं। सृजनात्मक बोझ क्या है? आशीर्वाद, अपराध, गतिहीनता, यही सृजनात्मक बोझ है। क्योंकि सामूहिक बोझ, अशुद्धता का बोझ और सृजनात्मक बोझ कट गए हैं, जड़ें कट गई हैं, जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन हो जाता है, इसे बोझ का उतर जाना, बोझ का गिर जाना, बोझ का हट जाना, बोझ का पूरी तरह से गिर जाना, बोझ का कम हो जाना और बोझ का समाप्त हो जाना कहते हैं।

"मुनि,"...

"मुक्त," मुनि का मन लोभ से मुक्त हो गया है, दयालुता से मुक्त और निर्मल हो गया है; हृदय क्रोध से मुक्त हो गया है..., मन भ्रम से मुक्त हो गया है..., (उतारा गया) मन सभी बुरी आदतों से मुक्त हो गया है, दयालुता और राहत से मुक्त हो गया है।

"जो निर्माण नहीं करता, जो रुकता नहीं, जो आशा नहीं रखता [इस प्रकार, मुहम्मद (ने कहा)]": "निर्माण," दो प्रकार का निर्माण है: .... "जो रुकता नहीं," सभी अज्ञानी साधारण लोग दूषित हैं, अच्छे साधारण लोग, जिनमें सात प्रकार के ज्ञान शामिल हैं, जो प्राप्त होने चाहिए थे लेकिन नहीं प्राप्त हुए, जो प्राप्त होने चाहिए थे लेकिन नहीं प्राप्त हुए, उन्हें गवाही देनी चाहिए, लेकिन जिन्होंने गवाही नहीं दी वे दूर रहते हैं, परहेज करते हैं और बचते हैं। अरहंत अलग हो गया है, परहेज कर चुका है, त्याग चुका है, छोड़ चुका है, प्रस्थान कर चुका है, बंधन से मुक्त हो चुका है, और वह एक निश्चिंत हृदय से जीवन व्यतीत करता है। "जो इच्छा नहीं करते," इच्छा को प्यास कहा जाता है, यह लोभ है, ..., बुरी जड़ें। जो इच्छा करता है, उसकी लालसाएँ कट जाती हैं, ..., उसे इच्छाहीन कहा जाता है।

"हे भगवान," ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)। गैर-निर्माता, निरंतर चलने वाले, खोज न करने वाले के लिए। [इस प्रकार भगवान ने कहा]।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.14

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

14. त्वरित निर्देश

150 · सूर्य के सगे-संबंधियों! हे महान ऋषि! मैं आपसे सुदूर और मौन के लोक के बारे में पूछता हूँ! उसे देखने के बाद भिक्षु निर्वाण कैसे प्राप्त करता है और संसार से अनासक्त कैसे हो जाता है?

"सूर्य के वंशज! मैं तुमसे पूछता हूँ": "जांच," तीन प्रकार की जांच होती हैं: अदृश्य की व्याख्या के बारे में जांच, दृश्य के संगम के बारे में जांच और संदेह के निवारण के बारे में जांच।

अदृश्य के बारे में पूछताछ क्या है? अज्ञात, अदृश्य, अमापनीय, अनपढ़, अस्पष्ट विशेषता के बारे में, अपनी बुद्धि के उद्देश्य से, देखकर, मापकर, परखकर, स्पष्ट रूप से, उसने एक प्रश्न पूछा।

प्रत्यक्ष के संगम के बारे में पूछताछ क्या है? एक ऐसी विशेषता जो ज्ञात, देखी, मापी, परखी, स्पष्ट और समझी गई थी। उसने अन्य बुद्धिमान पुरुषों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछे।

संदेह को दूर करने के लिए पूछताछ क्या है? एक संशयवादी, जन्मजात संशयवादी और जन्मजात संशयवादी पूछता है: "क्या ऐसा है? क्या यह सच नहीं है? तो फिर यह क्या है? यह कैसे है?" वह संदेह को दूर करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछता है।

पूछताछ के अगले तीन प्रकार हैं: मानवीय पूछताछ, गैर-मानवीय पूछताछ और सृजित (निम्मितपुच्छा) की पूछताछ।

मानवीय जिज्ञासा क्या है? बुद्ध, भगवान बुद्ध के दर्शन करने के बाद लोगों ने प्रश्न पूछे: भिक्षुओं, उपासकों, उपासिकाओं, राजाओं, क्षत्रिय, ब्राह्मणों, वेस्स, सुद्धों, गृहस्थों और भिक्षुओं ने।

अमानवीय पूछताछ क्या है? बुद्ध, भगवान के दर्शन करने के बाद, गैर-मनुष्यों ने प्रश्न पूछे: अजगर, सुनहरे पंखों वाले पक्षी, यक्ष, असुर, गंधर्व, राजा, इंद्र, ब्रह्मा, देव।

सृष्टि की जिज्ञासा क्या है? भगवान बुद्ध के मन द्वारा निर्मित सभी भौतिक शरीर और अंग उन्हें देखकर उनके पास आते हैं और प्रश्न पूछते हैं, और भगवान बुद्ध उनका उत्तर देते हैं।

आगे तीन प्रकार की पूछताछ: स्वयं के लाभ के लिए पूछताछ, दूसरों के लाभ के लिए पूछताछ और दोनों के लाभ के लिए पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: वर्तमान हितों के बारे में पूछताछ, भविष्य के हितों के बारे में पूछताछ और सर्वोच्च हितों के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: दोषरहितता के लाभ के लिए पूछताछ, प्रदूषणरहितता के लाभ के लिए पूछताछ और शुद्ध लाभ के लिए पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: अतीत के बारे में पूछताछ, भविष्य के बारे में पूछताछ और वर्तमान के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: स्वयं के भीतर पूछताछ, स्वयं के बाहर पूछताछ और स्वयं के भीतर और बाहर दोनों के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: अच्छे कर्म, बुरे कर्म और अनिर्दिष्ट (अव्यक्तपुच्छा) के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: जनसमूह, अवशेष और संस्थाओं के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: जागरूकता, परिश्रम और आध्यात्मिक सार के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: मूल, शक्ति और ज्ञान के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: मार्ग, फल और निर्वाण के बारे में।

"सूर्य वंश के सदस्य! मैं आपसे पूछता हूँ": मैं आपसे पूछता हूँ; मैं आपसे विनती करता हूँ; कृपया मुझे स्पष्ट करें; कृपया मुझे बताएं। "सूर्य वंश," सूर्य (आदिको) को सूर्य (सूरियो) कहा जाता है, सूर्य का उपनाम गौतम है, भगवान बुद्ध का उपनाम भी गौतम है, भगवान बुद्ध सूर्य उपनाम के रिश्तेदार हैं, सूर्य के उपनाम के रिश्तेदार हैं, इसलिए बुद्ध सूर्य वंश के सदस्य हैं।

"दूर और शांत, महान ऋषि": "दूर," दूरी के तीन प्रकार होते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“महान ऋषि,” महान ऋषि भगवान हैं, और “महान उपदेशों के साधक और अनुयायी” महान ऋषि हैं। ...महान एकाग्रता के..., ...महान मुक्ति के समूह के..., “ज्ञान और अंतर्दृष्टि की महान मुक्ति के साधक और अनुयायी” महान ऋषि हैं; अंधकार द्वारा एकत्रित अंश..., महान उलटफेर का विनाश..., प्यास के बड़े तीर को निकालना..., दृष्टि के संचय का खुलना..., बड़े अहंकार के ध्वज को उठाना..., ...महान कार्य का शांत होना..., बड़ी धारा का शांत होना..., भारी बोझ को उतारना..., महान पुनर्जन्म के चक्र का टूटना..., महान गर्मी का गायब होना..., महान गर्मी का रुकना..., “अपने हृदय में धम्म का ध्वज उठाने वाला साधक और अनुयायी” महान ऋषि बन जाता है; महान बुद्धि..., महान परिश्रम..., महान देवता..., महान जड़ें..., शक्ति..., महान ज्ञान की शाखाएँ..., पवित्र मार्ग की आठ बड़ी शाखाएँ..., “सर्वोच्च लाभ की अमरता, निर्वाण का साधक, उसका अनुसरण करने वाला” महान ऋषि हैं; “शक्तिशाली प्राणियों द्वारा खोजा, अनुसरण किया और तलाशा गया: बुद्ध कहाँ हैं? भगवान कहाँ हैं? देवताओं में भगवान कहाँ हैं? मनुष्यों में बैल राजा कहाँ हैं?”

“देखने के बाद भिक्षु निर्वाण कैसे प्राप्त करता है?”: देखने, नापने, तौलने, परखने, अलग करने, स्पष्ट करने के बाद अपने लोभ को कैसे बुझाया जाए (निर्वाण प्राप्त करने के लिए), अपने क्रोध को कैसे बुझाया जाए, अपने अज्ञान को कैसे बुझाया जाए... (विलुप्त, पिछले भाग देखें), ...सभी अहितकर कर्मों को कैसे नष्ट किया जाए, उन्हें कैसे शांत किया जाए, उन्हें कैसे शांत किया जाए, उन्हें कैसे रोका जाए। “भिक्षु” से तात्पर्य एक भिक्षु, एक गुणी भिक्षु या एक विद्वान भिक्षु से है।

“संसार में आसक्ति रहित बनो”: चारों प्रकार के कर्मों से मुक्त होकर, ऐसा बनो जो ग्रहण न करे, किसी चीज को थामे न रखे, किसी चीज से आसक्त न हो, किसी चीज से चिपका न रहे। “संसार में,” दुख के संसार में, मनुष्य के संसार में, स्वर्ग के संसार में, समुच्चय के संसार में, लोकों के संसार में, अस्तित्व के संसार में। “किसी भी,” किसी भी रूप, भावना, विचार, व्यवहार, चेतना में।

151 · [इस प्रकार भगवान (ने कहा):] झूठे नाम का मूल: विचार करने के बाद, सभी (विचारों) “मैं हूँ” को रोक देना चाहिए, अपने भीतर की किसी भी लालसा को, हमेशा सचेत रूप से उनके समायोजन के लिए सीखना चाहिए।

“[इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा:] झूठे नाम का मूल: विचार करने के बाद, हमें 'मैं हूँ' के सभी विचारों को त्याग देना चाहिए”: कल्पना व्यर्थ (अवधारणा/ज्ञान) का नाम है: प्यासी प्रेम का झूठा नाम, झूठी दृष्टि का नाम। प्रेम की लालसा के भ्रामक नाम का मूल क्या है? अज्ञान ही मूल है; तर्क के मूल के रूप में नहीं; अहंकार के मूल के रूप में; लज्जा रहित मूल के रूप में; लज्जा के मूल के रूप में; पतन के मूल के रूप में, यही नाम की लालसा का झूठा मूल है। देखने के झूठे नाम का मूल क्या है? अज्ञान ही मूल है...।

“धन्य प्रभु,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

विचार करने के बाद, आपको 'मैं हूँ' के सभी भावों को त्याग देना चाहिए: विचार करने के बाद, इसे ज्ञान कहा जाता है... रूप के बारे में "मैं हूँ", "मैं हूँ", अहंकार "मैं हूँ" और इच्छा "मैं हूँ" जैसी परेशानियों का एक अंतर्निहित रुझान है, भावना के बारे में..., विचार के बारे में..., व्यवहार के बारे में..., चेतना "मैं हूँ" के बारे में, अहंकार "मैं हूँ" और इच्छा "मैं हूँ" की परेशानियों का संभावित रुझान है। "[इस भगवान (कहते हुए) की तरह:] झूठे नाम की जड़: विचार करने के बाद, 'मैं हूँ' से संबंधित सभी चीजों को रोक देना चाहिए": विचार करने के बाद, इसे रोका जाना चाहिए, समाप्त किया जाना चाहिए, शांत किया जाना चाहिए, बुझाया जाना चाहिए, सभी झूठे नामों और "मैं हूँ" की जड़ के अहंकार को रोकना चाहिए।

“अपने भीतर की कोई भी प्यास”: “कुछ भी,” .... “प्यास,” रूप की लालसा... “अपने भीतर,” अपने भीतर उस लालसा की प्रतीक्षा। या, अपने भीतर को हृदय कहते हैं: हृदय, मन, हृदय, श्वेत (शुद्ध), आशय, मन का स्थान, मन का मूल, चेतना, चेतना का संचय, चेतना के क्षेत्र के अनुरूप, मन सह-अस्तित्व में है, सह-अस्तित्व में है, और उस लालसा से अंतर्विमग्न है, पत्राचार, सह-अस्तित्व, सह-विलुप्ति, निर्भरता का एक ही स्थान, और एक ही वस्तु।

“उन समायोजनों के लिए, हमें इसे हमेशा सचेतनता के साथ सीखना चाहिए”: “हमेशा,” .... “सचेत (के प्रति),” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“अधिगम,” अधिगम तीन प्रकार का होता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

जो लोग सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं, उन्हें हमेशा सचेत होकर सीखना चाहिए: जो लोग सामंजस्य स्थापित करना, चीजों को मिटाना, छोड़ना, शांत होना, संबंध तोड़ना और रुकना चाहते हैं, उन्हें सिद्धांतों को बढ़ाना सीखना चाहिए... इन तीनों शिक्षाओं को उस दिशा में आगे बढ़ते समय सीखना चाहिए...

152 · जो कोई भी धम्म को सिद्ध कर सकता है और जान सकता है, चाहे वह अपने भीतर हो या बाहर, उसे इसके कारण हठधर्मिता नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि धर्मात्माओं द्वारा इसे मौन नहीं कहा जाता है।

"जो कोई अपने भीतर धम्म के ज्ञान को सिद्ध कर सकता है": वह अपने किसी भी सद्‌गुण को जान सकता है, चाहे वह अच्छा हो या न हो। उसका अपना गुण क्या है? वह किसी कुलीन परिवार का भिक्षु हो सकता है, या किसी धनी परिवार का भिक्षु हो सकता है, या किसी अत्यंत धनी परिवार का भिक्षु हो सकता है, या भिक्षु के ही घर में रहने वाला कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हो सकता है, या यह वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं में योगदान दे सकता है; वह लेखक हो सकता है, या वक्ता हो सकता है... (विस्तार से उद्धृत, पिछले भाग देखें), इसे उसका अपना गुण कहा जाता है। उसके जो भी गुण हों, वह उन्हें जान सकता है, समझ सकता है। "या बाह्य रूप से": वे जो गुरु के समर्थक हैं, या गुरु का गुण।

"आपको इसके कारण धैर्य नहीं रखना चाहिए": आपको अपने या दूसरों के गुणों के आधार पर धैर्य, हठ, अहंकार, घमंड और अभिमान नहीं रखना चाहिए। इसके कारण अहंकार उत्पन्न नहीं होना चाहिए। ऐसा करने से आप एक कठोर, अति कठोर और अहंकारी व्यक्ति बन जाते हैं।

"क्योंकि धर्मात्मा लोग यह नहीं कहते कि यह मौन है": भले लोगों (सतानम्), भले लोगों (सन्तानम्), भले लोगों (सप्पुरिसानम्), बुद्ध, बुद्ध के शिष्यों और भिक्षु बुद्ध को यह नहीं बताया जाता कि यह मौन है, न ही इसकी व्याख्या की जाती है...

153 · किसी को स्वयं को विजेता, हीन या समकक्ष नहीं समझना चाहिए, क्योंकि एक से अधिक रूपों से प्रभावित होने के कारण, किसी को अपना वर्गीकरण नहीं रखना चाहिए।

"इस वजह से उसे विजेता नहीं माना जाना चाहिए": जन्म से नहीं, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

या निम्नतर या समकक्ष": ....

"एक से अधिक रूपों द्वारा स्पर्श (संपर्क) किया जाना": विभिन्न रूपों द्वारा स्पर्श किया जाना, प्रताड़ित किया जाना, संयुक्त होना, प्रेतबाधित होना।

उसे स्वयं का वर्गीकरण नहीं करना चाहिए: उसे 'मैं' कहा जाता है। उसे 'मैं' (स्वयं) का निर्माण, वर्गीकरण और अहंकारपूर्वक भेद नहीं करना चाहिए।

154 · केवल अपने भीतर ही मौन होना चाहिए, भिक्षुओं को दूसरों से मौन नहीं मांगना चाहिए, जो व्यक्ति अपने भीतर मौन है, वह क्या ग्रहण करता है और क्या त्यागता है?

"केवल अपने भीतर ही शांत रहना चाहिए": अपने भीतर के लोभ को शांत करना चाहिए; क्रोध को शांत करना चाहिए; ..., शांत करना चाहिए, शांत करना चाहिए, मौन करना चाहिए और समाप्त करना चाहिए।

"भिक्षुओं को अन्य चीजों से मौन की खोज नहीं करनी चाहिए": अशुद्ध मार्गों, बुरे मार्गों और अविभाज्यता जैसी अन्य चीजों से, ध्यान के अलावा, धर्म के अलावा, किसी को मौन, शांति, स्थिरता, समाप्ति और निश्चिंतता की खोज नहीं करनी चाहिए।

"अपने भीतर का मौन": वह जो अपने भीतर की इच्छाओं को शांत करता है; वह जो घृणा को शांत करता है;...

“न तो अस्वीकृति है और न ही ग्रहण करना”: “ना” नकारात्मक है। “ग्रहण करना” स्वयं के लिए है, लेकिन वह इन्हें धारण नहीं करता, और “अस्वीकार करना” उन चीजों के लिए है जिन्हें छोड़ देना चाहिए, वह उन्हें अस्वीकार नहीं करता। जिस चीज को धारण करना चाहिए, उसके साथ कुछ ऐसा भी है जिसे छोड़ देना चाहिए (जिसे छोड़ना चाहिए, उसके साथ वे चीजें भी हैं जिन्हें धारण करना चाहिए)। उसके लिए, यह धारण और त्याग का पारलौकिक अनुभव है। अरहंत ने विकास और पश्चात्ताप को पार कर लिया है, उन्होंने पुनर्जन्म के बिना जीवन और मृत्यु के चक्र का अभ्यास किया है।

155 · जैसे समुद्र के बीच में, यह स्थिर रहता है और इसमें कोई लहर उत्पन्न नहीं होती। जो लोग इस प्रकार रहते हैं और विचलित नहीं होते, वह भिक्षु चाहे कहीं भी हो, वृद्धि नहीं करेगा।

“जैसे समुद्र के बीच में, बिना लहरें उठे स्थिर रहता है।” समुद्र चौरासी हजार योजन तक ऊंचा और गहरा है। चालीस हजार योजन नीचे का पानी मछलियों और कछुओं से हिलता है, और चालीस हजार योजन ऊपर का पानी हवा से हिलता है, और चालीस हजार योजन के बीच में, पानी न तो हिलता है, न ही बहुत अधिक हिलता है, न ही कांपता है, न ही बहुत अधिक कांपता है, न ही निष्क्रिय है, न ही हलचल पैदा करता है, न ही लहरें उठाता है, न ही झूलता है, न ही घूमता है, वह शांत है; जहां कोई लहरें उत्पन्न नहीं होतीं, वह एक स्थिर समुद्र है।

या फिर, सात पर्वतों के बीच में एक ऐसा समुद्र है, जहाँ का पानी हिलता नहीं है,...

“इस प्रकार, जो जीवित रहता है और विचलित नहीं होता”: “इस प्रकार” एक लाक्षणिक व्यवस्था है। “जो (स्थिर) रहता है,” वह प्राप्त होने पर भी नहीं डगमगाता; न प्राप्त होने पर भी नहीं डगमगाता; प्रसिद्ध होने पर भी नहीं डगमगाता; प्रतिष्ठा न होने पर भी नहीं डगमगाता; प्रशंसा मिलने पर भी नहीं डगमगाता; फटकार मिलने पर भी नहीं डगमगाता; प्रसन्न होने पर भी नहीं डगमगाता; कष्ट सहने पर भी नहीं डगमगाता, यहाँ तक कि तीव्र रूप से भी नहीं डगमगाता...। “जो विचलित नहीं होता,” उसकी विचलितता को प्यास कहा जाता है, जो लोभ है...। जो विचलित होता है, उसकी लालसा समाप्त हो जाती है..., उसे अविचलित कहा जाता है। अविचलित अवस्था को ही अविचलित माना जाता है। वह प्राप्त होने पर भी नहीं डगमगाता;...।

“भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि नहीं होगी चाहे वे कहीं भी हों”: “वृद्धि” में सात प्रकार की वृद्धि होती है: ...(विलंबित, पिछले अनुभाग देखें)। “चाहे कहीं भी हों,” ....

156 · विवेकशील व्यक्ति (खुली आँखों से) कहता है, हे गुरु! कृपया मुझे पथ, पातिमोक्खा, या एकाग्रता के बारे में बताइए।

“विवेकी व्यक्ति बोलता है”: “कथा,” कहना, समझाना, सिखाना, सूचित करना, स्थापित करना, उजागर करना, विश्लेषण करना, स्पष्ट करना। “आँख,” पाँचों आँखें स्पष्ट आँखें हैं: नग्न आँख स्पष्ट आँख है, दिव्य आँख भी स्पष्ट आँख है, स्पष्ट आँख भी स्पष्ट आँख है, बुद्ध की आँख भी स्पष्ट आँख है, और सभी आँखें स्पष्ट आँख हैं।

भगवान बुद्ध नग्न आंखों को "आंखें" क्यों मानते हैं? भगवान बुद्ध की आंखों में पांच रंग हैं: नीला, पीला, लाल, काला और सफेद। उनकी आंखों के बाल नीले, अत्यंत नीले, उत्तम, सुंदर और सन के समान हैं, और अन्य बाल पीले, अत्यंत पीले, सुनहरे और उत्तम, सुंदर हैं, जो बयूर के फूल के समान हैं। भगवान बुद्ध की दोनों आंखें लाल, अत्यंत लाल, सीधी और सुंदर हैं, जो बारिश के बाद जमीन से निकलने वाले कीड़ों के समान लाल हैं, और बीच वाली आंख काली, अत्यंत काली, कोमल, चिकनी, सीधी और नम है। बाहरी आंखें सफेद, अत्यंत सफेद, सफेद, पीली-सफेद, मनभावन और सुंदर हैं, जो ओसाधी नक्षत्र के समान हैं। भगवान बुद्ध की नग्न आंखों से, जो उन्हें पिछले अच्छे कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुई हैं, वे दिन और रात में सब कुछ देखते हैं, जब अंधकार की चार शाखाएं होती हैं: सूर्यास्त, अमावस्या की रात, घने जंगल का अंधकार और घने बादलों का अंधकार। इसी प्रकार, जब चारों शाखाओं का अंधकार छाया रहता है, तब भी वह दिन-रात सब कुछ देख पाता है। उसके दर्शन में न तो कोई दीवार, न पर्दा, न बाड़, न पहाड़, न झाड़ियाँ, न वनक्षेत्र बाधा बनते हैं। यदि तिल पर निशान लगा हो और उसे तिलों से भरी गाड़ी में रख दिया जाए, तो वह उस तिल को चुन सकता है। इस प्रकार, भगवान बुद्ध की स्वाभाविक नंगी आँख शुद्ध है, और भगवान बुद्ध नंगी आँख को आँख के समान मानते हैं।

भगवान बुद्ध दिव्य दृष्टि को "आँखों वाला" क्यों मानते हैं? शुद्ध और दिव्य दृष्टि से, भगवान बुद्ध देखते हैं कि जब सभी प्राणी मरते हैं और चले जाते हैं, तो वे हीन, विजयी, सुंदर, कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होते हैं, यह जानते हुए कि सभी प्राणी अपने कर्मों के अनुसार चलते हैं: "ये प्राणी और राजा शरीर के बुरे कर्म, आचरण के बुरे कर्म, इरादों के बुरे कर्म करते हैं, संतों की निंदा करते हैं, गलत विचार रखते हैं और गलत विचार रखने का कर्म करते हैं, वे मृत्यु के बाद दुख के लोक, नरक में चले जाते हैं; या वे प्राणी, जो शरीर के अच्छे कर्म, वाणी के अच्छे कर्म, इरादों के अच्छे कर्म करते हैं, संतों की निंदा नहीं करते हैं, और कर्म के सही दृष्टिकोण का पालन करते हैं, वे अपने शरीर को नष्ट करके मृत्यु के बाद अच्छाई के लोक और स्वर्ग में चले जाते हैं।" इस प्रकार, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से, उन्होंने देखा कि जब सभी प्राणी मरते और चले जाते हैं, तो हीनता, विजय, सौंदर्य, कुरूपता, सौभाग्य और दुर्भाग्य की अवस्थाओं में, वे कर्म के अनुसार सभी प्राणियों के प्रवाह को जानते हैं। जब वे चाहें, तो भगवान एक लोक, दो लोक, तीन लोक, चार लोक, पांच लोक और दस लोक देख सकते हैं। साथ ही, बीस लोक, तीस लोक, चालीस, पचास, सौ, ये हजार छोटे लोक, दो हजार मध्य लोक, और ये तीन लाख बड़े लोक [एएन.3.81] भी देख सकते हैं। यदि वे चाहें, तो वे इसे देख सकते हैं। इस प्रकार, भगवान की दिव्य आँखें पूर्णतः शुद्ध हैं, और भगवान अपनी दिव्य आँखों को आँखों के समान मानते हैं।

भगवान बुद्ध ज्ञानी आँखों को आँखों वाला क्यों मानते हैं? भगवान बुद्ध महान बुद्धि, व्यापक बुद्धि, तीव्र बुद्धि, तीक्ष्ण बुद्धि, भेदक बुद्धि, सलाह देने वाली बुद्धि हैं: जो कुशल हैं, जिन्होंने बुद्धि का विकास किया है, जिन्होंने निर्बाध सिद्ध किया है, जिन्होंने चार निर्भीकों को प्राप्त किया है, जो दस शक्तियों से युक्त हैं, जो बैल के समान हैं, जो सिंह के समान हैं, जो अपार धनवान हो सकते हैं, जिनके पास असीम बुद्धि है, जिनके पास असीम चमक है, जिनके पास असीम प्रसिद्धि है, जो धनी हैं, जो मार्गदर्शक हैं, जो मध्यस्थ हैं, जो सांत्वना देने वाले हैं, जो सूचना देने वाले हैं, जो दृश्य बनाते हैं, जो स्पष्ट करते हैं, भगवान बुद्ध वास्तव में अजन्मे मार्ग के संस्थापक हैं, अजन्मे मार्ग के निर्माता हैं, जो अनायास उपदेशक हैं; जो मार्ग को जानता है, मार्ग का ज्ञाता है, और उसके शिष्य अब मार्ग के साथ रहते हैं, और भविष्य में भी उसके अनुयायी होंगे।

भगवान बुद्ध वास्तव में सर्वज्ञ और द्रष्टा हैं, जो सब कुछ जानते और देखते हैं; वे जन्म से ही नेत्रों से युक्त, ज्ञान से युक्त, धर्म से युक्त और ब्रह्म से युक्त हैं; वे धर्म के व्याख्याकार और संवर्धक, अमर दाता, धर्म के राजा, तथागत हैं; ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे भगवान बुद्ध ने न जाना हो, न देखा हो, न प्रमाणित किया हो, न ही ज्ञान से स्पर्श किया हो; भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल ज्ञान के क्षेत्र में सभी कर्मों के साथ बुद्ध और भगवान बुद्ध के पास आए; कोई भी व्यक्ति, चाहे उसका नाम कुछ भी हो, जिसे तर्क द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, वह जान सकता है: अपना धर्म, दूसरों का धर्म या दोनों, या वर्तमान जीवन का धर्म या अगले जीवन का धर्म या दोनों, चाहे वह गहरा हो या छिपा हुआ, या जिसे निष्कर्ष निकालने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए, या जिसे निर्धारित करने के लिए निर्देशित किया गया है, या कोई दोष या अशुद्धि नहीं है, या स्पष्ट या सर्वोच्च हित है, सब कुछ बुद्ध के ज्ञान में समाहित है।

सभी शारीरिक कर्म बुद्ध और भगवान के ज्ञान में स्थानांतरित हो जाते हैं; सभी भाषाई कर्म...; सभी मानसिक कर्म...; बुद्ध और भगवान का भूतकाल का ज्ञान अवरोध रहित है; भविष्य...; वर्तमान...; जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह ज्ञान की पहुँच है; सभी ज्ञान अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह परम ज्ञान है; परम ज्ञान वह है जो अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किए गए ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं है; निर्देशित और अनुमानित ज्ञान से परे जाने का कोई मार्ग नहीं है। ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं, जैसे दो बक्से, जिनके ढक्कन पूरी तरह से एक दूसरे के संपर्क में हैं; निचला ढक्कन ऊपरी ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है, और ऊपरी ढक्कन निचले ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है; एक दूसरे से सीमित। (इसी प्रकार,) जो कुछ भी निर्देशित किया जाना चाहिए... (छोड़ा गया); ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं।

बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त धम्म में व्याप्त है, समस्त धम्म बुद्ध ही हैं, भगवान बुद्ध का ध्यान, आशा, इरादा, मन, सभी जीवों में समाहित है। बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त जीवों में व्याप्त है। भगवान बुद्ध समस्त जीवों के इरादों को जानते हैं, संकटों की संभावित प्रवृत्ति, व्यवहार और समाधान, कम धूल वाले और अधिक धूल वाले जीवों, जड़ से जुड़े और सुस्त जड़ वाले जीवों, अच्छे कर्मों और बुरे कर्मों, और जीवों की शिक्षायोग्यता और अशिक्षायोग्यता, सक्षम और अक्षम सभी जीवों, स्वर्गलोक, राक्षस और ब्राह्मणों सहित, सभी बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं।

यदि कोई मछली, कछुआ और यहाँ तक कि बड़ी मछलियाँ निगलने वाली नावें भी समुद्र में घूमती हैं, तो उसी प्रकार स्वर्गलोक, राक्षसलोक और ब्राह्मणलोक सहित सभी पीढ़ियाँ, जिनमें समन, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य सभी शामिल हैं, बुद्ध ज्ञान में घूमती रहती हैं, जैसे कोई पक्षी और यहाँ तक

कि स्वर्ण-पंख वाले पक्षी भी अंतरिक्ष में घूमते हैं। उसी प्रकार, सारिपुत्त के समान ज्ञान रखने वाले भी बुद्ध ज्ञान के क्षेत्र में घूमते रहते हैं। बुद्ध का ज्ञान सर्वव्यापी है और स्वर्ग और मनुष्य से परे है।

वे बुद्धिमान क्षुद्र, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ, बुद्धिमान समन, चतुर विद्रोही, और बुराई पर बुद्धिमानी से कार्य करने वाले तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग, वे बाद में सामने आने वाली समस्याओं को तैयार करते हैं; उन्होंने तथागत के दर्शन किए और गुप्त और छिपे हुए विषय के बारे में पूछा। भगवान बुद्ध ने उन प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया और तर्क सहित उत्तर दिए, और उन्होंने आस-पास के अन्य लोगों को त्यागकर भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए। उस समय, भगवान बुद्ध वहाँ ज्ञान से परिपूर्ण होकर विराजमान थे। इस प्रकार, भगवान बुद्ध अंतर्दृष्टि को आँख के समान मानते हैं।

बुद्ध की आँखें "वही हैं जो आँखों के समान हैं" ऐसा कैसे संभव है? जब भगवान बुद्ध की आँखों से संसार का अवलोकन करते हैं, तो वे कम धूल वाले और अधिक धूल वाले लोगों को देखते हैं; जड़ वाले और कुंद जड़ वाले लोगों को; अच्छे कर्मों वाले और बुरे कर्मों वाले लोगों को; सिखाने में आसान और सिखाने में कठिन लोगों को; अन्य लोकों के विद्यमान पापों और भयों को, और उन लोगों को जो अन्य लोकों में पाप और भय को देखे बिना जीवन व्यतीत करते हैं। जैसे हरे कमल के तालाब, लाल कमल के तालाब और सफेद कमल के तालाब में, कुछ हरे कमल, लाल कमल और सफेद कमल पानी में उगते हैं, पानी की सतह पर रहते हैं, डूबते हैं और पानी के नीचे बढ़ते हैं; कुछ पानी में जन्म लेते हैं और पानी में बढ़ते हैं, और सतह के समान ऊँचाई पर रहते हैं; कुछ पानी से ऊपर उठते हैं और पानी से अछूते रहते हैं। इसी प्रकार, जब भगवान बुद्ध की आँखों से संसार का अवलोकन करते हैं, तो वे कम धूल वाले और अधिक धूल वाले लोगों को देखते हैं; ... [डीएन.14]। भगवान बुद्ध जानते हैं: "यह व्यक्ति लालची है, यह व्यक्ति दुर्व्यवहार करने वाला है, यह व्यक्ति मूर्ख है, यह व्यक्ति मार्गदर्शक है, यह व्यक्ति विश्वासी है और यह व्यक्ति बुद्धिमान है।" भगवान बुद्ध लालची लोगों से बात करते हैं, वे करुणा के मार्ग पर चलने वालों से घृणा करने वालों को सूचित करते हैं, वे उन्हें उचित समय पर धम्म का पाठ करने, प्रश्न पूछने, सुनने और चर्चा करने और गुरुओं के साथ सहजीवन जीने में स्थिर करते हैं। भगवान बुद्ध मार्ग की खोज करने वाले व्यक्ति को सूचित करते हैं, वे विश्वास रखने वालों को बताते हैं: बुद्ध की विवेकशीलता, धम्म का अच्छा स्वभाव, संघ और उनके उपदेशों का अच्छा अभ्यास। भगवान बुद्ध बुद्धिमान अभ्यासियों को विपश्यना सिखाते हैं: अनित्यता, दुख और अनात्म।

"यदि आप किसी पथरीले पर्वत की चोटी पर खड़े हों, तो आप अपने आस-पास के सभी लोगों को देख सकते हैं। उसी प्रकार, जो गुणी और सर्वज्ञ हैं, वे धम्म के ऊंचे भवन पर चढ़ गए हैं। जो लोग चले गए हैं, वे दुखी लोगों को देख रहे हैं, जो जन्म और बुढ़ापे से पराजित हैं। कृपया उठिए! वीरों! युद्ध के मैदान में विजय प्राप्त करने वालों! कारवां के नेताओं! ऋणमुक्त लोगों, संसार में चलो, हे भगवान! कृपया धम्म का उपदेश दीजिए! समझने वाले अवश्य होंगे।" [डीएन.14]

भगवान बुद्ध सभी आँखों को आँखें क्यों मानते हैं? सभी आँखों को सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था कहा जाता है। भगवान बुद्ध आते हैं (उनके पास है), पूरी तरह से आते हैं (उनके पास है), प्रवेश करते हैं, पूरी तरह से प्रवेश करते हैं, उनके पास पर्याप्त ज्ञान है, उनके पास सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था है।

"उनके लिए इस संसार में कुछ भी अदृश्य नहीं है, ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जिसे जाना न जा सके। वे सिद्ध करते हैं कि अस्तित्व में मौजूद हर चीज का मार्गदर्शन अनुमान के आधार पर ही होना चाहिए, क्योंकि तथागत तो मानो सर्वदृष्टि वाले हैं।" [भजन संहिता 1]

"परेशानी से निपटने की स्वतः सिद्ध विधि": "स्वतः सिद्ध विधि," अफवाहों से नहीं, ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। "परेशानी का समायोजन" और "परेशानी"। दो प्रकार के खतरे (परेशानी) हैं: ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"संकट (खतरा)", ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"दुख का नियंत्रण", दुख का नियंत्रण, दुख का त्याग, दुख की मृत्यु, दुख का त्याग, दुख का अंत, निर्जीवता और निर्वाण।

"गुरुजी! कृपया मुझे मार्ग बताइए": "कृपया मुझे मार्ग बताइए," सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें), निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग, कृपया बताइए, कृपया समझाइए, ...। "गुरुजी," वह व्यक्ति भगवान को पुकारता है। या, जो कोई भी उत्तम, शुभ, अच्छे और दोषरहित आचरण का वर्णन करता है, सिखाता है, ...।

“पातिमोक्खा या एकाग्रता”: “पातिमोक्खा” संयम का आधार है, व्यवहार का (स्वयं) अवरोध है, आत्म-नियंत्रण का प्रवेश द्वार है, इत्यादि, अच्छे धर्म की सर्वोच्च उपलब्धि है। “या एकाग्रता” का अर्थ है मन का स्थिर होना, स्थिरता, अविचलित मन, समाथा (विराम), स्थिर मूल, स्थिर बल, एकाग्रता।

157 · अपनी आँखों से अस्थिर (अशांत) न हो, अपने कानों को गाँव के सिद्धांतों (चर्चाओं) से अलग रखो। स्वाद में लालची न बनो, और संसार में किसी भी चीज़ को अपना न मानो।

“अपनी आँखों को अस्थिर मत करो”: अस्थिर आँखों वाला व्यक्ति कौन होता है? यहाँ उन लोगों की एक श्रेणी है जिनकी आँखें बेचैन रहती हैं: “जो दिखने चाहिए वे अदृश्य हो जाते हैं, और जो अदृश्य होने चाहिए वे दिखने लगते हैं।” वह बागों से बागों तक, गाँवों से गाँवों तक, कस्बों से कस्बों तक, शहरों से शहरों तक, देशों से देशों तक, इलाकों से इलाकों तक, लंबी और अनियमित शोभायात्राओं को देखने के लिए घूमता रहा। जो लोग ऐसा करते हैं, वे ही बेचैन आँखों वाले होते हैं।

या फिर, जब भिक्षु किसी के घर में मेहमान होता है, या सड़क पर टहल रहा होता है, तो वह निश्चिंत होकर चलता है: चलते-चलते वह हाथी, घोड़े, बैलगाड़ी, पैदल सेना, लड़के और लड़की को देखता है। स्त्रियों को देखना, पुरुषों को देखना, बाजार को देखना, घर के दरवाजे को देखना, ऊपर देखना, नीचे देखना और चारों दिशाओं में देखना, यह भी बेचैनी भरा होता है।

या, जब भिक्षु अपनी आँखों से किसी रूप को देखता है, तो वह बाहरी रूप और सूक्ष्म रूप का लोभी बन जाता है, क्योंकि जब वह अपनी आँखों की जड़ में रहता है, तो लोभ, दुःख और बुराई उसमें प्रवाहित होने लगती है। वह अपने आत्म-संयम के अनुसार कार्य नहीं करता, आँखों की जड़ों की रक्षा नहीं करता, और आँखों की जड़ों का आत्म-संयम प्राप्त नहीं करता। [SN.35.120]

या यदि कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं ने श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया, तो वे प्रदर्शनों में ठहरते और इस प्रकार देखते रहे: नृत्य, गायन, संगीत, नाटक, प्राचीन काल के बारे में बातें, घंटियाँ, झांझ, ढोल, जादू, लोहे की गेंदें, बांस की छड़ी से खेलना, करतब, हाथी की लड़ाई, घोड़े की लड़ाई, भैंस की लड़ाई, बैल की लड़ाई, बकरी की लड़ाई, मेढ़े की लड़ाई, मुर्गे की लड़ाई, बटेर की लड़ाई, गदा की लड़ाई, मुक्केबाजी, कुश्ती, व्यायाम, अभ्यास, सेना की संरचनाएँ, सैन्य परेड [डीएन.1], आदि, जो इस प्रकार के विभिन्न प्रदर्शनों को देखने में लगे रहते हैं, जो बेचैनी भी है।

आप बेचैन व्यक्ति कैसे नहीं हो सकते? यहाँ, जब भिक्षु अपने घर में मेहमान के रूप में और सड़क पर टहलते हुए दिखाई देते हैं, तो वे सतर्कता से चलते हैं: वे हाथी, घोड़े आदि की ओर नहीं देखते। यह बेचैन व्यक्ति नहीं है।

या फिर, जब भिक्षु अपने नेत्रों से रूप को देख लेता है, तो वह न तो रूप का लोभी बनता है और न ही सूक्ष्म रूप का, क्योंकि जब वह नेत्र के मूल में स्थिर रहता है, तो लोभ, दुःख और बुराई का प्रवाह होता है, और वह अपने आत्मसंयम के अनुसार कार्य करता है, नेत्रों के मूल की रक्षा करता है, और नेत्रों के मूल पर आत्मसंयम प्राप्त करता है, जिससे वह अस्थिर व्यक्ति नहीं बनता।

या फिर, कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं द्वारा श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण करने के बाद, वे प्रदर्शनों को देखने में समय नहीं लगाते थे, अर्थात् नृत्य, गायन आदि। प्रदर्शन देखने से परहेज करने वाला व्यक्ति अशांत नहीं होता।

“आँखों में अस्थिरता न लाओ”: उसे आँखों की अस्थिरता को त्याग देना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए, उसका अंत कर देना चाहिए और उसे अस्तित्वहीन हो जाने देना चाहिए। आँखों की अस्थिरता से अलग होकर, संयमित होकर, पूर्ण रूप से त्यागकर, त्यागकर, मुक्त होकर, बंधनमुक्त होकर, उसे त्याग और संयम के हृदय से जीना चाहिए।

“कानों को ग्राम सिद्धांत से अलग रखा जाना चाहिए”: ग्राम वार्तालापों को बत्तीस पशुवत सिद्धांत कहा जाता है, अर्थात्: राजा सिद्धांत, चोर सिद्धांत, मंत्री सिद्धांत, सेना सिद्धांत, भय सिद्धांत, युद्ध सिद्धांत, भोजन सिद्धांत, पेय सिद्धांत, वस्त्र सिद्धांत, बिस्तर सिद्धांत, माला सिद्धांत, गंध सिद्धांत, आत्मीयता सिद्धांत, ग्राम सिद्धांत, नगर सिद्धांत, शहर सिद्धांत, भूमि सिद्धांत, स्त्री सिद्धांत, (पुरुष सिद्धांत), नायक सिद्धांत, गली सिद्धांत, जल कुआँ

सिद्धांत, पूर्वज आत्मा सिद्धांत, विभिन्न सिद्धांत, विश्व उत्पत्ति सिद्धांत, महासागर उत्पत्ति सिद्धांत, यदि कोई पदार्थ नहीं है [DN.1], आदि। "कानों को ग्राम सिद्धांत से अलग रखा जाना चाहिए": कानों को ग्राम सिद्धांत से अलग रखा जाना चाहिए, इसे रोका जाना चाहिए, इसे आत्म-नियंत्रित किया जाना चाहिए, इसकी रक्षा की जानी चाहिए, इसे संरक्षित किया जाना चाहिए, इसे बंद किया जाना चाहिए, इसे काट दिया जाना चाहिए।

"स्वाद में लालची नहीं होना चाहिए": "स्वाद में," मूल है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"और तुम्हें संसार में किसी भी चीज़ को अपना नहीं मानना चाहिए": आत्म-लगाव दो प्रकार के होते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "कोई भी चीज़," कोई भी रूप, भावना, विचार, व्यवहार, ज्ञान, इत्यादि। "संसार में," ....

158 · स्पर्श किए जाने पर (संपर्क किए जाने पर), भिक्षु को रोना नहीं चाहिए चाहे कहीं भी हो, उसे अस्तित्व के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, और भय से कांपना नहीं चाहिए।

"स्पर्श किए जाने पर": "स्पर्श," रोग के संपर्क में आना। रोग के संपर्क में आने से स्पर्शित होना, प्रताड़ित होना, संलयन होना, ग्रस्त होना; ...आँखों के रोग से..., ...कानों के रोग से..., ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें), हवा, सूर्य और साँप।

"भिक्षुओं को जहाँ कहीं भी हों, रोना नहीं चाहिए": विलाप, रोना, शोक, विलाप, व्यर्थ की बातें, बड़बड़ाना, विलाप जैसी अवस्था उत्पन्न नहीं होनी चाहिए, न ही पैदा होनी चाहिए, न ही उत्पन्न होने देनी चाहिए। "जहाँ कहीं भी,"...

"अस्तित्व के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए": अस्तित्व की इच्छा नहीं होनी चाहिए; रूप की इच्छा नहीं होनी चाहिए; निराकारता की आशा नहीं होनी चाहिए; उसे आशा नहीं करनी चाहिए; उसे अस्तित्व के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए।

"और तुम्हें डर से बहुत कांपना नहीं चाहिए": "जो भयभीत है," जो किसी न किसी रूप में भयभीत है, वही भयभीत है। यह बात भगवान बुद्ध ने कही: "यदि भय और आतंक को त्यागना असंभव है, तो यदि वह आ ही जाए तो क्या होगा?" बाहरी वस्तुएँ शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, कुत्ते, भेड़िये, बाइसन, घोड़े, हाथी, साँप, बिच्छू, कनखजूरा, या चोर या गुंडे हो सकते हैं जो बुरे काम करते हैं या बुरे काम करने को तैयार हैं। या अन्य व्यवहारों का भय हृदय के लिए प्रतीक्षा का भय, भय की कठोर अवस्था, शरीर का भय, हृदय का भय कहलाता है: जीवन का भय, बुढ़ापे का भय, बीमारी का भय, मृत्यु का भय, राजा का भय, चोरों का भय, आग का भय, पानी का भय, आत्म-निंदा का भय, दूसरों का भय, लाठियों का भय, भय का भय, लहरों का भय, अजगरों का भय, भंवरों का भय, मगरमच्छों का भय [AN.4.122], जीविका का भय, बेईमानी का भय, समूह में कायरता का भय, नशा का भय, बुराई के भय का भय, भय की कठोर अवस्था, शरीर के रोंगटे खड़े होने की अवस्था, हृदय के भय का भय। "और तुम्हें डर से बहुत अधिक नहीं कांपना चाहिए": भय के (कारण) को देखने या सुनने के बाद, तुम्हें कांपना नहीं चाहिए, ..., तुम्हें डरना नहीं चाहिए, भयभीत नहीं होना चाहिए, डरपोक नहीं होना चाहिए, भयभीत नहीं होना चाहिए, भागना नहीं चाहिए, भय के डर से मुक्त होकर जीना चाहिए, शरीर के रोंगटे खड़े होने की अवस्था में रहना चाहिए।

159 · (नरम) भोजन, पेय पदार्थ, कठोर भोजन, कपड़े, इन्हें प्राप्त करने के बाद संग्रहित नहीं करना चाहिए, और इन्हें न मिलने पर घबराना नहीं चाहिए।

"भोजन, पेय पदार्थ, ठोस भोजन और वस्त्र": "भोजन" में चावल, दलिया, नूडल्स, मछली और मांस शामिल हैं। "पेय पदार्थों" में आठ प्रकार के पेय हैं: आम का रस, जामुन का रस, केले का रस, प्लांटैन का रस, शहद का रस, अंगूर का रस, कमल की जड़ का रस, लोवी-लोवी का रस। अगले आठ प्रकार के पेय हैं: कोसंबी का रस (इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है, क्योंकि कोसंबी एक शहर का नाम है), खजूर का रस, बेर का रस, घी का पेय, तिल आदि के तेल का पेय, दूध का पेय, ठंडा दलिया पेय, सब्जी आदि के रस का पेय। "ठोस भोजन" में पाउडर से बना ठोस भोजन, बिस्कुट, जड़ से बना ठोस भोजन, चमड़े की सामग्री से बना ठोस भोजन, पत्तों से बना ठोस भोजन, फूलों से बना ठोस भोजन, फलों से बना ठोस भोजन शामिल हैं। "वस्त्र" में छह प्रकार के वस्त्र हैं: लिनन, सूती, रेशम, स्वेटर, बोरी और भांग।

“इसे प्राप्त करने के बाद, इसे जमा न करें”: “इसे प्राप्त करने के बाद,” इसे प्राप्त करने के बाद, इसे हासिल करने के बाद, इसे अपने पास रखने के बाद, इसे पाने के बाद: कोई छल नहीं, कोई बात नहीं, कोई संकेत नहीं, कोई व्यंग्य नहीं, अन्य लाभों के बदले लाभ का आदान-प्रदान नहीं, वस्तुएँ देने के लिए लकड़ी का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए बांस का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए पत्तियों का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए फूलों का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए स्नान वस्त्रों का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए वाशिंग पाउडर का उपयोग न करें, वस्तुएँ दान करने के लिए मिट्टी का उपयोग न करें, दांतों से वस्तुएँ न दें, सफाई के पानी से वस्तुएँ न दें, चापलूसी का उपयोग न करें, शब्दों से बात न करें, निंदा न करें, गृहस्थी का उपयोग न करें, पशु जीवन का उपयोग न करें, ज्योतिष का उपयोग न करें, दूत न बनें, दूत न भेजें, छोटे-मोटे काम न करें, चिकित्सा उपचार का उपयोग न करें, नई नौकरी न बनाएँ, भोजन या बदले में भोजन न दें, और कुछ भी न देकर, वह धर्म के अनुसार धर्मी है, प्राप्त करने के बाद, ..., ग्रहण करने के बाद। "भंडारण नहीं करना चाहिए," भोजन का भंडारण, पेय पदार्थों का भंडारण, कपड़ों का भंडारण, गाड़ियों का भंडारण, बिस्तरों का भंडारण, मसालों का भंडारण, संपत्ति का भंडारण नहीं करना चाहिए, उत्पन्न नहीं करना चाहिए, ..., उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए।

“और जब आपको वो चीज़ें न मिलें तो आपको घबराना नहीं चाहिए”: “मुझे खाना नहीं मिला, या मुझे पानी नहीं मिला, ...(अधूरा भाग, पिछले भाग देखें),” उसे डरना नहीं चाहिए: “मैं कोई मशहूर व्यक्ति नहीं हूँ।” उसे डरपोक नहीं, भयभीत नहीं होना चाहिए...।

160 · भटकने के बजाय ध्यान करने वाला बनो; पछतावा करना बंद कर दो और जाने मत दो, और बैठने और सोने के स्थान में, भिक्षु को शांत स्थान में रहना चाहिए।

“भटकने के बजाय ध्यानमग्न हो जाओ”: “ध्यानमग्न,” प्रथम ध्यान से ध्यानमग्न हो जाओ, द्वितीय ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाओ, और तृतीय..., चतुर्थ..., तर्क और चिंतन से भी ध्यानमग्न हो जाओ, तर्कहीन केवल चिंतन से भी ध्यानमग्न हो जाओ, सुख से भी ध्यानमग्न हो जाओ, और दुःख से भी ध्यानमग्न हो जाओ। ध्यानमग्न आनंद से चलने वाले ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, सचेतनता से चलने वाले ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, मंत्रोच्चार से चलने वाले ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, और शांति से चलने वाले ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है। वह शून्यता से भी ध्यानमग्न हो जाता है, अवस्थाहीन ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, अनिच्छुक ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, सांसारिक ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है, और पारलौकिक ध्यान से भी ध्यानमग्न हो जाता है। वह ध्यान प्रेमी, एकाकी अभ्यासी और सर्वोच्च हितों का प्रशंसक है।

“भटकने वाला नहीं,” भला कोई भटकने वाला कैसे हो सकता है? यहाँ एक खास तरह के लोग भटक रहे हैं: एक बाग से दूसरे बाग तक, ...(अधूरा)।

या फिर भिक्षुओं के बगीचे में भटकता हुआ भिक्षु: बिना किसी लाभ, बिना किसी कारण के, जड़विहीन, चुपचाप भिक्षुओं के कमरे से भिक्षुओं के कमरे तक, निवास से निवास तक, आधी छत वाले मकान से..., ऊंची इमारत से..., समतल मकान से, गुफा से, झोपड़ी से, मंडप से, अवलोकन चबूतरे से, तंबू से, शेड से, व्याख्यान कक्ष से, गोल घर से, पेड़ से, या जहाँ भिक्षु बैठते हैं, वहाँ वह चलता है, जहाँ पहला दूसरा बन जाता है, या दूसरा स्थान तीसरा बन जाता है, या तीसरा स्थान चौथा बन जाता है। वहाँ कई तरह की बातें होती हैं, जैसे: राजाओं का सिद्धांत (चर्चा), ...चोरों का सिद्धांत...।

“भटकने वाला नहीं,” उसे भटकने की प्रवृत्ति का त्याग करना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए, उसका अंत कर देना चाहिए, उसे अस्तित्वहीन बना देना चाहिए। उसे भटकने से अलग रहना चाहिए, संयमी रहना चाहिए, ..., उसे एकाग्र हृदय से जीना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए, कर्म करना चाहिए, ...। उसे एकांत में बैठने को इच्छुक होना चाहिए, एकांत में बैठना पसंद करने वाला व्यक्ति होना चाहिए, आंतरिक शांति का अभ्यास करने वाला होना चाहिए, ध्यान का तिरस्कार न करने वाला व्यक्ति होना चाहिए, एक दर्शक होना चाहिए, और एक खाली घर प्राप्त करने वाला होना चाहिए [एम.एन.32], एक ध्यानी, ध्यान प्रेमी, एकता का अभ्यास करने वाला, सर्वोच्च हित का प्रशंसक होना चाहिए।

“पछतावा करना बंद कर देना चाहिए और जाने नहीं देना चाहिए”: “पछतावा,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“आराम से मत रहो,” एक आदरणीय कर्ता, एक नियमित कर्ता, एक निरंतर कर्ता, एक ऐसा व्यक्ति जिसे अटकने की आदत न हो, जो अपनी इच्छाओं की उपेक्षा न करे, जो जिम्मेदारी की उपेक्षा न करे, और जो अच्छे धम्म का त्याग न करे। “मैं अधूरे उपदेशों को कैसे पूरा करूँ, या क्या मैं पूर्ण

उपदेशों को ज्ञान से पोषित करूँ?" जहाँ अच्छे धम्म में इच्छा, परिश्रम, साहस, कड़ी मेहनत, धैर्य, संकोच न करना, सजगता, धार्मिक ज्ञान, उत्साह, जोश, स्थापना, अभ्यास और दृढ़ता हो; मैं अधूरी एकाग्रता..., अधूरे ज्ञान संचय..., मुक्तिदायक संचय..., मुक्तिदायक ज्ञान दर्शन संचय... को कैसे पूरा करूँ? "मैं अज्ञात के दुख को कैसे समझूँ, या उस अपवित्रता का त्याग कैसे करूँ जिसका मैंने त्याग नहीं किया है, या उस मार्ग का अभ्यास कैसे करूँ जिसका मैंने अभ्यास नहीं किया है, या उसकी गवाही कैसे दूँ जिसकी मैंने गवाही नहीं दी है?" जहाँ इच्छा, परिश्रम, ...

"और बैठने और सोने की जगह में, भिक्षु को शांत स्थान में रहना चाहिए": "और," वाक्य का आगे का भाग... जिस स्थान पर वह बैठता है उसे आसन कहते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। घर, आवास, अर्धछत वाले घर, ऊँची इमारतें, समतल घर और गुफाएँ सोने की जगह कहलाती हैं।

"भिक्षु को शांत स्थान पर रहना चाहिए," यह कम शोर और शांत वातावरण में होना चाहिए...

161 · अधिक सोना नहीं चाहिए, जागते रहना चाहिए और उत्साही रहना चाहिए; आलस्य, छल, हँसी, मनोरंजन, वासना, अलंकरण, उसे त्याग देना चाहिए।

"अधिक नींद नहीं लेनी चाहिए": दिन और रात को छह भागों में विभाजित किया जाना चाहिए, जिनमें से पांच भाग मार्ग की ओर होने चाहिए और एक भाग (चार घंटे) लेटने में व्यतीत होना चाहिए।

"जागते रहो और उत्साही बनो": यहाँ, दिन के समय, भिक्षु शांतिपूर्वक चलने और बैठने से मन को बाधाओं से मुक्त करते हैं। रात के पहले (पश्चात्) में (रात को तीन पश्चों में विभाजित किया गया है), शांतिपूर्वक चलने और बैठने से मन को बाधाओं से शुद्ध करना चाहिए। मध्यरात्रि में, शेर की तरह दाहिनी ओर लेटकर, बाएँ पैर को दाहिने पैर पर रखकर, सचेतनता और धार्मिक ज्ञान में लीन होकर चिंतन करना चाहिए। रात के उत्तरार्ध में, बाधाओं के धर्म से मन को शुद्ध करने के लिए शांतिपूर्वक चलना और बैठना चाहिए। [SN.35.120]

"जागते रहना चाहिए," रखना चाहिए, पूरी तरह रखना चाहिए, आज्ञा माननी चाहिए, आज्ञा मानने के लिए झुकना चाहिए, पूरी तरह आज्ञाकारी होना चाहिए, जागते रहने की ओर निर्देशित होना चाहिए।

उत्साह को जीवन शक्ति कहा जाता है, जो हृदय की जीवन शक्ति, परिश्रम, मेहनत, साहस, दृढ़ता, प्रयास, लगन, विश्राम न करने की भावना, साहस की अवस्था, 'हार न मानने' की अवस्था, जिम्मेदारी का पालन करने की अवस्था, जिम्मेदारी का समर्थन, जीवन शक्ति, जीवन शक्ति का मूल, जीवन शक्ति की शक्ति और सकारात्मक प्रगति का उद्दीपन है। किसी लक्ष्य तक पहुँचने, पूर्णतः पहुँचने, प्रवेश करने, पूर्णतः प्रवेश करने, सक्षम होने, पूर्णतः सक्षम होने और इस उत्साह को धारण करने वाले व्यक्ति को उत्साही कहा जाता है।

"आलस्य, छल, हँसी, मनोरंजन, वासना, सजावट, उसे त्याग देना चाहिए": "आलस्य": आलसी व्यक्ति आलस्य की अवस्था है जिसका उद्देश्य आलस्य है, और हृदय आलस्य से बोधित (पराजित) होता है; आलस्य आलस्य के उद्देश्य से किया जाने वाला आलस्य है।

"धोखा": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"जोर से हंसना": यहाँ एक विशेष प्रकार के लोग अत्यधिक खिलखिलाते हैं। इस पर भगवान बुद्ध कहते हैं, "भिक्षुओं! श्रेष्ठ जनों की शिक्षा में यह बचकाना व्यवहार है, अर्थात् अत्यधिक खिलखिलाना।" [एएन.3.107]

"मनोरंजन" में दो प्रकार के मनोरंजन होते हैं: शारीरिक मनोरंजन और मौखिक मनोरंजन। शारीरिक मनोरंजन क्या है? हाथियों, घोड़ों, गाड़ियों, धनुषों, तलवारों और अन्य हथियारों से खेलना, अष्टकोणीय शतरंज, दस-आंखों वाला शतरंज, हवाई शतरंज और हॉपस्कॉच, साथ ही पत्थर की पहेलियाँ, पासे का बोर्ड, लकड़ी की छड़ी, हाथ, पासे, पत्तों की बांसुरी, खिलौना कुदाल, कलाबाजियाँ, खिलौना पवनचक्कियाँ, खिलौना नापने के उपकरण,

गाड़ी के खेल, खिलौना धनुष और बाण, शब्दों का अनुमान लगाना, विचारों का अनुमान लगाना और कमियों की नकल करना [DN.1], यह शारीरिक मनोरंजन है।

मौखिक मनोरंजन क्या है? मुंह से ढोल बजाने की आवाज़, मुंह से ढोल पर रगड़ने की आवाज़, मुंह से ढोल को गिराने की आवाज़, होंठों को मोड़ने की आवाज़, मुंह से ढोल बजाना, मुंह से ढोल की खोखली आवाज़ की नकल करना, ज़ोरदार जयकार, नर्तकों पर शोर मचाना, गाना और मज़ाक करना मौखिक मनोरंजन है।

कामवासना का धर्म व्यभिचार का नियम है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"सजावट": सजावट दो प्रकार की होती है: गृहस्थों की सजावट और भिक्षुओं की सजावट। परिवार की सजावट क्या है? बाल, दाढ़ी, माला, मसाले, बाम, आभूषण, सहायक वस्तुएँ, वस्त्र, बिस्तर, सिर का दुपट्टा, मालिश, स्नान, दर्पण, नेत्र मरहम लगाना, माला (मसाले), बाम, चेहरे का पाउडर, चेहरे की क्रीम, कंगन, रिबन के आभूषण, छड़ें, बैरल, तलवारें, छतरियाँ, रंगीन जूते, जूड़े, गहने, झाड़ू, लंबे और छोटे सफेद वस्त्र आदि। यह गृहस्थ की सजावट है। भिक्षुओं की सजावट क्या है? वस्त्रों की सजावट, कुंडों की सजावट, बिस्तरों की सजावट, देह की सजावट या आवश्यक वस्तुओं की सजावट, सौंदर्यीकरण (गंभीरता), सजने-संवरने की इच्छा, सुंदर दिखना, लालची अवस्था, उतावली अवस्था, उतावलापन और सतहीपन, यह भिक्षुओं की सजावट है।

"आलस्य, छल, हँसी, मनोरंजन, वासना, अलंकरण, उसे त्याग देना चाहिए": आलस्य..., अलंकरण, अनुयायियों के साथ, लोगों से घिरा हुआ, आवश्यकताओं के साथ, उसे यह सब त्याग देना चाहिए, उसे भगा दिया जाना चाहिए, इसका अंत हो जाना चाहिए, इसे अस्तित्वहीन कर देना चाहिए।

162 · जादू, सपने देखना, संकेत और ज्योतिष में संलग्न नहीं होना चाहिए; जानवरों की आवाजें, गर्भावस्था तकनीकें, चिकित्सा तकनीकें; विश्वासियों को इनमें संलग्न नहीं होना चाहिए।

"जादू-टोना, स्वप्न व्याख्या, राशिफल और ज्योतिष का प्रयोग नहीं करना चाहिए": जादूगर जादू-टोना करते हैं: जब शहर घेराबंदी में हो या युद्ध छिड़ जाए, तो वे शत्रु, शत्रुतापूर्ण लोगों में विपत्ति उत्पन्न करते हैं; हानि पहुंचाते हैं; रोग फैलाते हैं; महामारी फैलाते हैं; पेट दर्द पैदा करते हैं; हैजा फैलाते हैं; पेचिश फैलाते हैं।

स्वप्न व्याख्याकार स्वप्न के बारे में बताते हैं: जो कोई दोपहर से पहले स्वप्न देखता है, उसे ऐसा पुरस्कार मिलता है; जो कोई दोपहर में स्वप्न देखता है, उसे ऐसा पुरस्कार मिलता है; शाम को, पहली रात में, आधी रात में, देर रात; जो कोई दाहिनी ओर, बाईं ओर, सीधा या उल्टा लेटता है; जो कोई चंद्रमा, सूर्य, समुद्र, मेरु पर्वत, हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल सेना, सैन्य टुकड़ियाँ, सुंदर उद्यान, सुंदर वन, सुंदर भूमि, सुंदर कमल का तालाब देखता है..., उसे ऐसा पुरस्कार मिलता है।

सांकेतिक भाषा के व्याख्याकार इन संकेतों के बारे में जानकारी देते हैं: गोलाकार चिन्ह, छड़ी चिन्ह, वस्त्र चिन्ह, तलवार चिन्ह, तीर चिन्ह, धनुष चिन्ह, हथियार चिन्ह, स्त्री चिन्ह, पुरुष चिन्ह, लड़की चिन्ह, लड़का चिन्ह, दासी चिन्ह, दासी चिन्ह, हाथी, घोड़ा, भैंस, गाय राजा, बैल, बकरी, मेढ़ा, मुर्गी, बटेर, छिपकली, कमल का छिलका, कछुए का खोल और हिरण एक ही हैं।

ज्योतिषी नक्षत्रों की व्याख्या करते हैं: अट्ठाईस नक्षत्र हैं। लेखक को इस नक्षत्र में प्रवेश करना चाहिए, इस नक्षत्र को सिर के आभूषण से बांधना चाहिए, इस नक्षत्र को विवाह के लिए बनाना चाहिए, इस नक्षत्र के बीजों का परिवहन करना चाहिए, और इस नक्षत्र में सहवास करना चाहिए।

"जादू-टोना, सपने, संकेत और ज्योतिष में संलग्न नहीं होना चाहिए": जादू-टोना, सपने, संकेत और ज्योतिष में संलग्न नहीं होना चाहिए, इनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, इनका (पूरी तरह से) अभ्यास नहीं करना चाहिए, इन्हें जारी रखने के बाद नहीं रखना चाहिए, या इनका अध्ययन नहीं करना चाहिए, इन्हें याद नहीं करना चाहिए, इन्हें समझना नहीं चाहिए, इनका भेद नहीं करना चाहिए और इनके प्रति समर्पित नहीं होना चाहिए।

“आस्तिकों को पशु ध्वनियों, गर्भाधान तकनीकों और चिकित्सा कौशलों की व्याख्या में संलग्न नहीं होना चाहिए”: पशु ध्वनियों को पशु भाषा कहा जाता है। पशु-फुसफुसाहटें पशुओं के बारे में बताती हैं: वे पक्षियों या चार पैरों वाले पशुओं की गर्जना और पुकार को जानते हैं। इसी प्रकार, पशु-फुसफुसाहटें पशुओं के बारे में बताती हैं। वे गर्भाधान तकनीकों का उपयोग भ्रूण को जीवित रखने के लिए करते हैं, और भ्रूण दो कारणों से जीवित नहीं रह पाता: (परजीवी) कृमियों के कारण या हवा के झटकों के कारण। कीड़ों या हवा के झटकों से बचाव के लिए जड़ी-बूटियाँ दी जाती हैं, और इसी प्रकार, वे गर्भाधान तकनीकों का उपयोग भ्रूण को जीवित रखने के लिए करते हैं। “उपचार” के पाँच प्रकार हैं: नेत्र विज्ञान, शल्य चिकित्सा, आंतरिक चिकित्सा, भूत-प्रेत भगाने की विधि और बाल चिकित्सा। “आस्तिक,” बुद्ध में विश्वास करने वाले, धम्म में विश्वास करने वाले, संघ में विश्वास करने वाले। वह बुद्ध को अपना मानता है, या बुद्ध उस व्यक्ति को धारण करते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा: “भिक्षुओं! छल करने वाले, हठी, निंदा करने वाले, पाखंडी, अहंकारी और अनिश्चित भिक्षुओं! वे भिक्षु मेरे अनुयायी नहीं हैं! उन्होंने इस धर्म को त्याग दिया है, और वे इस धर्म में वृद्धि और विस्तार करने के लिए नहीं आए हैं। परन्तु, भिक्षुओं! छल रहित, बातूनी, बलवान, मूर्ख न होने वाले और दयालु भिक्षुओं! वे भिक्षु मेरे अनुयायी हैं! उन्होंने इस धर्म को नहीं त्यागा, बल्कि वे इस धर्म में वृद्धि और विस्तार करने के लिए आए हैं।”

“धूर्त, हठी, झूठे, पाखंडी, अभिमानी, अनिश्चित, वे प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म में प्रगति नहीं करते। जो कपटी नहीं, बातूनी, दृढ़, कठोर नहीं, सौम्य स्वभाव के होते हैं, वे प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म में प्रगति करते हैं।” [एएन.4.26]

“पशुओं की आवाज़ें, गर्भावस्था संबंधी तकनीकें, चिकित्सा संबंधी तकनीकें, विश्वासियों को इनमें संलग्न नहीं होना चाहिए”: पशुओं की आवाज़ें, गर्भावस्था संबंधी तकनीकें, चिकित्सा संबंधी तकनीकें, इनमें संलग्न नहीं होना चाहिए, इनमें संलग्न होने के लिए इच्छुक नहीं होना चाहिए, इनमें पूरी तरह से संलग्न नहीं होना चाहिए, इनमें संलग्न होने की ओर उन्मुख नहीं होना चाहिए, इनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, इनका अच्छी तरह से अभ्यास नहीं करना चाहिए, और इन्हें धारण करने के बाद जारी नहीं रखना चाहिए, या इन्हें सीखना नहीं चाहिए, इन्हें याद नहीं रखना चाहिए, इन्हें समझना नहीं चाहिए, इनका बोध नहीं करना चाहिए, और इनके प्रति समर्पित नहीं होना चाहिए।

163 · किसी को भी आरोपों से भयभीत नहीं होना चाहिए, और भिक्षुओं को प्रशंसा में अहंकारी या घमंडी नहीं होना चाहिए। लोभ और कंजूसी, क्रोध और फूट, इन सब से उसे छुटकारा पाना चाहिए।

“आरोपों से भयभीत नहीं होना चाहिए”: कुछ लोग जन्म से ही...(अस्पष्ट भाग, पिछले अनुभाग देखें), या तो आम सहमति में, या बहस में, या किसी बात की निंदा में, वे आरोप लगाते हैं, डांटते हैं और फटकारते हैं; जब उन पर आरोप लगाया जाता है, उन्हें डांटा जाता है, उन्हें फटकारा जाता है, तो वे दोषी ठहराए जाने, डांटने, फटकारने, प्रशंसा न करने, प्रशंसा न मिलने पर कांपने, अत्यधिक भयभीत होने आदि से कांपते हैं; व्यक्ति को डरपोक, भयभीत आदि नहीं होना चाहिए।

“भिक्षुओं को अहंकारी या घमंडी नहीं होना चाहिए”: कुछ लोग जन्म से ही प्रशंसा, स्तुति और सम्मान करते हैं, और जब उनकी प्रशंसा, स्तुति और सम्मान किया जाता है, तो वे अहंकारी, घमंडी, अभिमानी और हठी हो जाते हैं; ऐसा नहीं होना चाहिए, और इस कारण से कठोर और बहुत अकड़ू नहीं होना चाहिए, सिर ऊंचा नहीं रखना चाहिए।

“लालच और कंजूसी, क्रोध और असहमतिपूर्ण शब्दों से उसे छुटकारा पाना चाहिए”: “लालच,” यानी लालच की अवस्था, ... कंजूसी पाँच प्रकार की होती है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “क्रोध,” .... “विभाजनकारी भाषा,” ....

164 · भिक्षु को खरीद-फरोख्त में शामिल नहीं होना चाहिए, भिक्षु चाहे जहाँ भी हो उसे फटकार नहीं लगानी चाहिए, उसे गाँव से आसक्त नहीं होना चाहिए, और लाभ के लिए लोगों की चापलूसी नहीं करनी चाहिए।

“व्यापार में संलग्न नहीं होना चाहिए”: धर्म में अस्वीकृत कोई भी व्यापार यहाँ हित में नहीं है। व्यापार में संलग्न कैसे हुआ जा सकता है? पाँच प्रकार के लोगों के बीच, चाहे वे बर्तन हों, वस्त्र हों या अन्य आवश्यक वस्तुएँ, धोखा देने वाली वस्तुएँ बनाना या वृद्धि की इच्छा रखना, खरीद-बिक्री में संलग्न है। खरीद-बिक्री में संलग्न कैसे न हों? पाँच प्रकार के लोगों के बीच, चाहे वे बर्तन हों, वस्त्र हों या अन्य आवश्यक वस्तुएँ, धोखा देने वाली वस्तुएँ न बनाएँ या वृद्धि की इच्छा न रखें, यह व्यापार में संलग्न नहीं है। “व्यापार में संलग्न नहीं होना चाहिए”: व्यापार में संलग्न नहीं होना चाहिए,

स्थापित नहीं करना चाहिए, व्यापार को त्याग देना चाहिए, दूर भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, अस्तित्वहीन हो जाने देना चाहिए। उसे व्यापार से अलग हो जाना चाहिए, त्याग देना चाहिए, बाहर निकल जाना चाहिए, छोड़ देना चाहिए, त्याग देना चाहिए, मुक्त हो जाना चाहिए, उसे त्याग के भाव से जीना चाहिए।

“भिक्षुओं को चाहे वे कहीं भी हों, निंदा नहीं करनी चाहिए”: निंदा का कारण बनने वाला दोष क्या है? कुछ समण और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जिनके पास जादुई शक्तियाँ होती हैं, दिव्य दृष्टि होती है और जो अपने हृदय को जानते हैं। वे दूर से देखते हैं, निकट से नहीं। हृदय हृदय को जानता है। कुछ देवता भी ऐसे होते हैं जिनके पास जादुई शक्तियाँ और दिव्य दृष्टि होती है...। उन्हें स्थूल दोष, मध्यम दोष या सूक्ष्म दोष के कारण फटकारा जाएगा। स्थूल दोष क्या है? देह दोष, वाणी दोष और मन दोष स्थूल दोष कहलाते हैं। मध्यम दोष क्या है? द्वेषपूर्ण खोज, दुर्भावनापूर्ण खोज और हानि की खोज मध्यम दोष कहलाते हैं। सूक्ष्म दोष क्या है? परिवार में खोज, भूमि की खोज, मृतकों की खोज, दूसरों से सहानुभूति की खोज, प्रतिष्ठा की खोज, तिरस्कार से बचने की खोज सूक्ष्म दोष कहलाते हैं। उन्हें स्थूल दोष, मध्यम दोष या सूक्ष्म दोष के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा। उन्हें दोषारोपण नहीं करना चाहिए, दोषारोपण करने वाला प्रदूषण नहीं फैलाना चाहिए, न ही उत्पन्न होना चाहिए, न ही पैदा होना चाहिए और न ही बनाया जाना चाहिए। इसे निंदा का कारण बनने वाले प्रदूषण से अलग किया जाना चाहिए, इससे परहेज किया जाना चाहिए, इसे त्याग दिया जाना चाहिए, ... "चाहे कहीं भी हो," ...

“और गाँव से आसक्त नहीं होना चाहिए”: गाँव से आसक्ति कैसे होती है? यहाँ, भिक्षु अपने परिवार के सदस्यों के साथ मेलजोल करने, सुख-दुख बाँटने के लिए गाँव में रहता है: जब वे खुश होते हैं, और जब वे कष्ट में होते हैं, तो वह उनके मामलों और कर्तव्यों में शामिल होता है [SN.22.3]।

या फिर, भिक्षु दोपहर के समय अपने वस्त्र धारण करता है और लबादा ओढ़ लेता है। वह भीख मांगने के लिए गाँव या कस्बे में प्रवेश करते समय अपने शरीर, वाणी, हृदय, मन, विचार और जड़ों की रक्षा नहीं करता [एसएन. 20.10], वह हर जगह फँस जाता है, हर जगह उलझ जाता है, हर जगह बंध जाता है और हर जगह दुर्भाग्य और विपत्ति का शिकार हो जाता है [एसएन.17.4]।

कोई गाँव से कैसे अलग रह सकता है? यहाँ भिक्षु अपने परिवार के सदस्यों से संवाद के अभाव में रहता है, और उसके सुख-दुख अलग-अलग होते हैं: न तो उनके सुख में, न ही उनके कष्ट में, वह उनके मामलों और कर्तव्यों में शामिल नहीं होता।

या फिर, भिक्षु दोपहर के समय वस्त्र धारण करके आहुति देता है। उसने अपने शरीर, वाणी, हृदय, मन और जड़ों की रक्षा की है। जब वह गाँव या नगर में प्रवेश करता है, तो वह कहीं भी स्थिर नहीं होता, कहीं भी बंधा नहीं होता, और कहीं से भी दुर्भाग्य और विपत्ति का सामना नहीं करता। “और गाँव से आसक्त नहीं होना चाहिए”: गाँव से आसक्त नहीं होना चाहिए, कहीं भी बंधा नहीं होना चाहिए, कहीं भी बंधा नहीं होना चाहिए। उसे लोभ रहित, बंधन रहित, आसक्त, निर्दोष, लोभी से पृथक होना चाहिए, ...(अस्पष्ट), ब्राह्मण के समान जीवन जीना चाहिए।

“लाभ के लिए लोगों की चापलूसी नहीं करनी चाहिए”: चापलूसी क्या है? यह प्रतिष्ठा, बुरी इच्छाओं, लालच, संपत्ति पर ध्यान केंद्रित करने, हर तरह की बातों, छोटी-मोटी बातों, बातचीत, संवाद, उलझाव, पूर्ण उलझाव, झूठी बातें, पूर्ण झूठी बातें, चापलूसी, पूर्ण चापलूसी, वाक्पटुता, पीठ पीछे निंदा, जहां मीठी भाषा, मधुर भाषा, धीमी भाषा और अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, पर आधारित है।

इसके अलावा, लोगों की चापलूसी दो तरीकों से की जा सकती है: स्वयं को विनम्र बनाकर दूसरों को उच्च पद पर स्थापित करना और उनकी चापलूसी करना; या दूसरों को विनम्र बनाकर स्वयं को उच्च पद पर स्थापित करना और उनकी चापलूसी करना। स्वयं को विनम्र बनाकर दूसरों को उच्च पद पर स्थापित करने और उनकी चापलूसी करने का तरीका क्या है? (विचार:) “आप मेरे लिए बहुत सहायक हैं। मैं कपड़े, भोजन, आश्रय, बीमारों की देखभाल और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतों के लिए आप पर निर्भर हूँ। जो कोई भी देता है या देना चाहता है, वह सोचता है कि मैं आप पर निर्भर हूँ। आप जैसे लोगों के कारण मेरे माता-पिता के सभी पुराने नाम मेरे लिए लुप्त हो गए हैं, क्योंकि आप ऐसे व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं जो अक्सर किसी के घर आते-जाते रहते हैं।”

दूसरों को विनम्र कैसे बनाएं, स्वयं को श्रेष्ठ कैसे बनाएं और दूसरों की चापलूसी कैसे करें? (विचार करते हुए:) “मैं तुम्हारे लिए अत्यंत लाभकारी व्यक्ति हूँ। मेरे कारण ही तुम बुद्ध, धम्म और संघ की ओर मुड़े हो। तुम हत्या से मुक्त हो, लेन-देन से मुक्त हो, व्यभिचार से मुक्त हो, झूठी वाणी से

मुक्त हो, मादक पेय, फल मदिरा और मादक पेय के सेवन से मुक्त हो। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा, मुझसे बहुत से प्रश्न पूछो, मैं उपोसथ की व्याख्या करूंगा और मंदिर बनवाऊंगा। परन्तु मुझे त्यागने के बाद तुम अन्य लोगों का आदर, सम्मान और आदर करोगे।"

"हमें लाभ के लिए लोगों की चापलूसी नहीं करनी चाहिए": हमें लाभ को कारण, शर्त या तर्क बनाकर लोगों की चापलूसी नहीं करनी चाहिए, न ही लाभ प्राप्त करने के लिए, न ही दूसरों को लाभ से परिचित कराने के लिए, और न ही लोगों की चापलूसी करने के लिए। उसे चापलूसी छोड़ देनी चाहिए और उसे दूर भगा देना चाहिए, उसका अंत हो जाना चाहिए, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए। उसे चापलूसी से अलग रहना चाहिए, उससे दूर रहना चाहिए, ...

165 · भिक्षुओं को घमंड नहीं करना चाहिए, और उन्हें चुभने वाले शब्द नहीं बोलने चाहिए, अहंकार नहीं सीखना चाहिए, विवादास्पद चर्चाओं के बारे में बात नहीं करनी चाहिए।

"भिक्षुओं को घमंड नहीं करना चाहिए": यहाँ एक विशेष प्रकार के लोग घमंडी और शेखीबाज़ होते हैं, जो अपनी बड़ाई करते हैं: ...(अंश हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)। इस प्रकार उसे घमंड नहीं करना चाहिए, उसे दिखावा नहीं करना चाहिए। घमंड को त्याग देना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए...।

"और व्यंग्यात्मक शब्द नहीं बोलने चाहिए": व्यंग्यात्मक शब्द क्या होते हैं? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग कपड़ों के बारे में, भोजन देने से संबंधित शब्दों में, निवास से संबंधित शब्दों में, और रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतों से संबंधित व्यंग्यात्मक शब्द बोलते हैं।

या, वस्त्रों को कारण बनाकर, भोजन को कारण बनाकर, आश्रय को कारण बनाकर, रोगी की ज़रूरतों और चिकित्सा आवश्यकताओं को कारण बनाकर सत्य कहना भी असत्य है; यह कहना कि वियोग का अर्थ वियोग न होना नहीं है; यह कहना कि बुराई का अर्थ बुराई न होना नहीं है; और यह कहना कि निरर्थक भी ज्ञानवर्धक भाषा बोलता है। या, दूसरों को मन शुद्ध करने का धम्म सिखाना: "अहा! मुझे वास्तव में अपना धम्म सुनना चाहिए। धम्म सुनने के बाद मैं निर्मल और शुद्ध हो जाऊँगा। मेरे निर्मल और शुद्ध कर्मों से निर्मलता उत्पन्न होगी।" "और अपशब्द न बोलें": धम्म की शिक्षाओं के बारे में अपशब्द भी नहीं बोलने चाहिए, नहीं कहने चाहिए... अपशब्दों को त्याग देना चाहिए...

"तुम्हें अहंकार नहीं सीखना चाहिए": "अभिमान," अहंकार तीन प्रकार का होता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"अहंकार करना नहीं सीखना चाहिए", अहंकार करना नहीं सीखना चाहिए; इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, पूरी तरह से अभ्यास नहीं करना चाहिए, और एक बार धारण करने के बाद इसे बदलना नहीं चाहिए। अहंकार को काट देना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए...

"विवादास्पद चर्चाओं पर बात नहीं करनी चाहिए": विवादास्पद चर्चा क्या है? यहाँ, कुछ खास तरह के लोग इस तरह बात कर रहे हैं: "तुम्हें धम्म का ज्ञान नहीं है...(अधूरा अंश)।" भगवान बुद्ध ने कहा: "मोग्गल्लाना! जब कोई विवादास्पद तर्क होता है, तो बेचैनी होना स्वाभाविक है; बेचैनी होने पर व्यक्ति अपना आत्म-नियंत्रण खो देता है (आत्म-नियंत्रण खोने पर मन ध्यान से भटक जाता है)" [एएन.7.61]। हमें विवादों पर कैसे बात नहीं करनी चाहिए? विवादास्पद चर्चाओं पर बात नहीं करनी चाहिए, उनके बारे में चर्चा नहीं करनी चाहिए, उनकी व्याख्या नहीं करनी चाहिए, उनके बारे में बोलना नहीं चाहिए। विवादास्पद चर्चाओं को त्याग देना चाहिए, उन्हें दूर भगा देना चाहिए...।

166 · किसी को झूठी बातों में नहीं बहकना चाहिए, जानबूझकर धोखा नहीं देना चाहिए, और किसी को भी जीवनयापन, ज्ञान, उपदेश और संयम के मामले में दूसरों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

"झूठे भाषण में बहकना नहीं चाहिए": झूठा भाषण, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। "झूठे भाषण में बहकना नहीं चाहिए": झूठे भाषण में बहकना नहीं चाहिए, बहकना नहीं चाहिए, बहकना नहीं चाहिए, झूठे भाषण को त्याग देना चाहिए, भगा देना चाहिए, ...।

“जानबूझकर धोखाधड़ी नहीं करनी चाहिए”: धोखाधड़ी क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग ठग और जालसाज कहलाते हैं। जहाँ धोखाधड़ी, छल, कपट, झूठ और ढोंग होता है, उसे धोखाधड़ी कहते हैं। “जानबूझकर छल नहीं करना चाहिए”: जानबूझकर छल करने के बाद, उसे (निर्माण) नहीं करना चाहिए, उत्पादन नहीं करना चाहिए और न ही उसे उत्पन्न करना चाहिए। उसे अलग हो जाना चाहिए...

“तुम्हें जीवनयापन, ज्ञान, उपदेश और संयम (निषेध) रखने वाले अन्य लोगों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए”: “फिर,” वाक्य का निरंतरता... यहाँ, एक प्रकार का क्रूर जीवन समर्थक अन्य विजयी जीवन समर्थकों का उपहास करता है: “यह कितना समृद्ध है, यह सब कुछ खाता है, अर्थात्: जड़ों, तनों, कलमों या जोड़ों से पौधे, और पाँचवाँ, नियमित बीजों से पौधे, हथौड़े जैसे गर्जनाशील दाँत — इसे समण भी कहा जाता है!” [DN.25, 61] उसने उस क्रूर जीवन से अन्य जीवित बचे लोगों का उपहास किया।

यहां, एक विशेष प्रकार का अद्भुत जीवन जीने वाला व्यक्ति क्रूर जीवन जीने वाले अन्य लोगों का तिरस्कार करता है: “यह अज्ञात अयोग्य व्यक्ति वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का लाभ नहीं उठा सकता।” उसने उस अद्भुत जीवन का उपयोग क्रूर जीवन जीने वालों का तिरस्कार करने के लिए किया। यहां, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति बुद्धिमान है। उसने पूछे गए प्रश्न का उत्तर दिया। उसने इस प्रकार सोचा: “मैं बुद्धिमान हूं, लेकिन ये अन्य लोग बुद्धिमान नहीं हैं।” उसने उस बुद्धिमत्ता से अन्य लोगों का तिरस्कार किया। यहां, एक विशेष प्रकार के व्यक्ति संयम से परिपूर्ण हैं। वे पतिमोक्ख के आत्म-संयम से जीते हैं और सुरक्षित रहते हैं। उनका जीवन पूर्ण धार्मिकता और सुखमय है। वे छोटे पापों में भय देखते हैं और गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद सीखते हैं। वह इस प्रकार सोचता है: “मैं पूर्ण संयम रखने वालों में से हूं, लेकिन ये अन्य भिक्षु नियम तोड़ने वाले और दुष्ट आत्माओं से प्रभावित हैं।” उसने उस संयम से अन्य लोगों का तिरस्कार किया। यहां, एक विशेष प्रकार के लोगों को पर्याप्त भोजन से वंचित रखा गया है: वे जो जंगलों में रहते हैं, या वे जो अक्सर भीख मांगते हैं, ...(अंश हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)। उसने इस प्रकार सोचा: “मुझे पर्याप्त भोजन से वंचित रखा गया है, लेकिन इन अन्य लोगों को पर्याप्त भोजन से वंचित नहीं रखा गया है।” उसने इस प्रतिबंध के कारण अन्य लोगों का तिरस्कार किया। “आपको जीवन, ज्ञान, उपदेशों और संयमों के कारण अन्य लोगों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए”: आपको बुरी आदतों के साथ नहीं जीना चाहिए, या अच्छे से बेहतर जीवन नहीं जीना चाहिए, या ज्ञान, संयम या निषेधों के साथ दूसरों का अपमान और तिरस्कार नहीं करना चाहिए। इससे अहंकार उत्पन्न नहीं होना चाहिए, और इसके कारण कठोर, अति कठोर और सिर ऊंचा नहीं करना चाहिए।

167 · समणों या आम लोगों से बहुत कुछ सुनने के बाद, उकसाए जाने पर, किसी को भी असभ्य तरीके से जवाब नहीं देना चाहिए, क्योंकि मौन रहने वाले पलटवार नहीं करते।

“आम लोगों या साधारण लोगों के अनेक शब्द सुनकर जब आप चिढ़ जाते हैं”: “चिढ़ने पर,” जब आपकी निंदा की जाती है, आपको फटकारा जाता है, आपको परेशान किया जाता है, आपकी बदनामी की जाती है, आपको अपमानित किया जाता है या आपका अपमान किया जाता है। “आम लोग,” .... “साधारण लोग,” .... वे अनेक अप्रिय और अप्रिय शब्द कहेंगे, अपमान करेंगे, निंदा करेंगे, चिढ़ाएंगे, क्रोधित करेंगे, चोट पहुँचाएंगे, कष्ट पहुँचाएंगे, जान से मारेंगे, परेशान करेंगे और हानि पहुँचाएंगे। उनके अनेक अप्रिय और अप्रिय शब्द सुने जाते हैं; समझने के बाद, बोध करने के बाद, विवेक करने के बाद।

“अशिष्ट तरीके से वापस नहीं जाना चाहिए”: “अशिष्टता से,” आपको अशिष्ट और असभ्य तरीके से वापस नहीं जाना चाहिए, आपको बहस में वापस नहीं जाना चाहिए, आपको अपमान करने वाले व्यक्ति के पास वापस नहीं जाना चाहिए, और आपको क्रोधित व्यक्ति को और क्रोधित नहीं करना चाहिए, बहस और झगड़े में वापस जाना चाहिए [SN.7.2], बहस नहीं करनी चाहिए..., उसे हार मान लेनी चाहिए, ...

“क्योंकि मौन रहने वाला पलटवार नहीं करता”: “मौन रहने वाला,” .... “क्योंकि मौन रहने वाले पलटवार नहीं करते”: मौन रहने वाले पलटवार नहीं करते, विरोधियों, शत्रुओं, शत्रुता से लड़ते नहीं, वे इसे उत्पन्न नहीं करते, न ही इसका कारण बनते हैं, और न ही इसे जन्म देते हैं।

168 · इस विधि को जानने के बाद, जो भिक्षु इसे चुनता है उसे हमेशा ध्यानपूर्वक इसका अध्ययन करना चाहिए; यह जानने के बाद कि “मौन” का अर्थ है निःसंयम, उसे गौतम की शिक्षाओं को नहीं छोड़ना चाहिए।

“इस धम्म को जानने के बाद”: इस धम्म की व्याख्या, शिक्षा, वर्णन, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया गया है। जानने के बाद, समझने के बाद, परखने के बाद... या, सही और गलत, (सही) मार्ग और बुरा मार्ग, पापी और निर्दोष, नीच और विजयी, काला और सफेद, ऋषि की निंदा और बुद्धिमान की प्रशंसा, समझने के बाद, तौलने के बाद... या, सही मार्ग, मार्ग का अनुसरण करने वाला मार्ग... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। जानने के बाद...

“भिक्षु जो जाँच-परख कर चयन करते हैं, उन्हें सदा सजगता से सीखना चाहिए”: “जाँच,” जाँच करते समय; कड़ी जाँच करते समय; मापते समय; निर्णय लेते समय; भेद करते समय; स्पष्टीकरण करते समय: “सभी कर्म अनित्य हैं”... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें); ...स्पष्टीकरण करते समय।” चयन करने वाला भिक्षु। “सदा,” .... “सजगता से,” .... “सीखना चाहिए,” ....

“यह जानते हुए कि मृत्यु (विनाश) के बाद 'मौन' होता है”: मृत्यु के बाद लोभ का “मौन” ज्ञात है, ...क्रोध..., अज्ञान..., (छोड़ा गया); जानने और समझने के बाद, ...

“गौतम की शिक्षाओं को नहीं छोड़ना चाहिए”: गौतम की शिक्षाएँ, बुद्ध की शिक्षाएँ, विजेता की शिक्षाएँ, तथागत की शिक्षाएँ, देवताओं की शिक्षाएँ और अरहंत की शिक्षाएँ। “नहीं छोड़ना चाहिए,” एक सम्मानजनक कर्ता होना चाहिए, ...(अंशित)।

169 · क्योंकि वे अजेय विजेता हैं, उन्होंने धर्म को सुनी-सुनाई बातों के बजाय स्वयंसिद्ध रूप से देखा, इसलिए यह सत्य है कि जो लोग धर्म का त्याग नहीं करते, उन्हें सदा आदरपूर्वक भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करना चाहिए। [इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने कहा।]

क्योंकि वह एक अजेय विजेता है: रूप का विजेता, ध्वनि का विजेता, गंध का विजेता, स्वाद का विजेता, स्पर्श का विजेता, धर्म का विजेता, किसी भी अशुद्धि से पराजित नहीं होता; वह उन बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्मों पर विजय प्राप्त करता है; अशुद्धि, अन्य चीजों, भय, कड़वे फल, वृद्धावस्था और भविष्य में मृत्यु से दूर रहता है।

“वह सुनी-सुनाई बातों (अफवाहों) के बजाय स्वयंसिद्ध धम्म को देखता है”: “स्वयं-प्रमाणीकरण” न तो सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है, न ही इस प्रकार के कर्मों पर, न ही विरासत पर, न ही तीन संपत्तियों पर, न ही सैद्धांतिक चिंतन पर, न ही ध्यान पर। उनकी अंतर्दृष्टि उस धम्म में देखी और समझी गई जिसे उन्होंने स्वयं सिद्ध किया और अनुभव किया।

अतः यह वास्तव में भगवान बुद्ध की आज्ञा है: अतः, ... “भगवान बुद्ध की आज्ञा,” भगवान बुद्ध की आज्ञा, गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ, बुद्ध की शिक्षाएँ, विजेता बुद्ध की शिक्षाएँ, तथागत बुद्ध की शिक्षाएँ, देवताओं की शिक्षाएँ, अरहंतों की शिक्षाएँ।

“जो व्यक्ति आराम नहीं करता, उसे सदा आदर करना चाहिए और अपनी पढ़ाई जारी रखनी चाहिए। [इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने कहा]”: “जो व्यक्ति आराम नहीं करता,” एक आदरपूर्ण कर्ता... “सदा,” .... “आदर,” शरीर से, शब्दों से, हृदय से आदर करना, या यूँ कहें कि आदर करना, प्रणाम करना, श्रद्धा करना और सम्मान देना। “अध्ययन का पालन करो,” तीन प्रकार के अध्ययन होते हैं: .... “विश्व सम्मानित,” आदर का पर्यायवाची...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.15

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

15. जिसने दंड उठाया है

170 · लाठी उठाने वालों से उत्पन्न आतंक; कृपया असंतुष्ट लोगों को देखें। मैं तात्कालिकता की भावना के बारे में बात करूँगा; मैं तात्कालिकता की भावना से उत्तेजित हूँ।

"लाठी लेने वाले से उत्पन्न भय": "लाठी" तीन प्रकार की होती है: शारीरिक लाठी, वाणी लाठी और मन लाठी; शारीरिक रूप से किए गए तीन प्रकार के बुरे कर्म, वाणी से किए गए चार प्रकार के बुरे कर्म और बुरी मंशा से उत्पन्न तीन प्रकार की लाठी। "आतंक" दो प्रकार का भय होता है: वर्तमान जीवन का भय और परलोक का भय। वर्तमान जीवन का भय क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग शरीर से बुरे कर्म करते हैं, शब्दों से बुरे कर्म करते हैं और इरादों से बुरे कर्म करते हैं; वे हत्या करते हैं, बिना दिए लेते हैं, आक्रमण करते हैं, लूटपाट करते हैं, पत्नियों का अपहरण करते हैं और झूठ बोलते हैं। पकड़े जाने पर वे राजा के पास जाते हैं: "महाराज! यह चोर है, अपराधी है, कृपया इसे दंड दें।" राजा ने उस पर दोष लगाया। उसने दोष का उपयोग भय उत्पन्न करने के लिए किया। उसे कड़वाहट और दु:ख का अनुभव हुआ। यह भय, कड़वाहट और दु:ख कहाँ से आया? लाठी लेने वाले व्यक्ति से ही यह उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ और प्रकट हुआ।

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं था। राजा ने उसे हथकड़ियों, रस्सियों, बेड़ियों, लताओं, कुडज़ू लताओं से जकड़कर, जंजीरों में डालकर, बाड़ लगाकर, गाँव, कस्बे, शहर, देश या किसी स्थान से बांधकर कैद कर लिया और यहाँ तक कि यह घोषणा भी कर दी: "तुम यहाँ से बाहर नहीं जा सकते।" वह भी इस बंधन से पीड़ा और दुख का अनुभव करता है, यह भय, पीड़ा और दुख कहाँ से उत्पन्न होता है?...

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं है। राजा अपनी संपत्ति उससे ले जाएगा: सैकड़ों, हजारों या एक लाख (धन)। उसे यह भी लगता है...

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने उस पर अनेक दंड लगाए: कोड़े मारना, डंडे से पीटना, बेंत से पीटना, हाथ-पैर काटना, कान काटना, नाक काटना, खट्टी दलिया से भरा बर्तन में डालने की सजा, सिर मुंडवाने की सजा, राहु के मुख में आग लगाने की सजा, मोमबत्ती से हाथ काटने की सजा, भूत-प्रेत भगाने की सजा, छाल के वस्त्र पहनाने की सजा, हिरण जैसी सजा, कांटे से मांस निकालने की सजा, धन से दंडित करना, क्षार से स्नान कराने की सजा, दरवाज़े के ताले को मरोड़ने की सजा, भूसे से पैर रखने की सजा, गर्म तेल से लथपथ करना, कुत्ते से कटवाना, जीवित अवस्था में छेद करना, तलवार से सिर काटना; राजा इन चारों प्रकार के दंडों के स्वामी हैं।

अपने कर्मों और शरीर के विघटन के कारण, मृत्यु के बाद वह दुख, बुराई, निम्न लोक और नरक के संसार में पुनर्जन्म लेता है। जेलरों ने उस पर पाँच प्रकार के दंड लगाए: उन्होंने लाल गर्म लोहे की छड़ को उसकी पहली हथेली से, फिर दूसरी हथेली से और उसके बाद पैर के पहले तलवे से, फिर पैर के दूसरे तलवे से और अंत में छाती के मध्य भाग से गुज़ारा। उसे वहाँ कड़वी, भयंकर, हिंसक और तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है, और जब तक उसका बुरा कर्म नष्ट नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती। यह भय, पीड़ा और दुख कहाँ से उत्पन्न हुआ?

जेलरों ने उसे लिटाकर कुल्हाड़ी से काट डाला... (अंश हटा दिया गया) जेलरों ने उसे पैरों तले दबाकर छोटी कुल्हाड़ी से काट डाला..., जेलरों ने उसे गाड़ी में जोतकर आग लगा दी, जिससे वह जलती हुई, तेज आग में झुलस गया..., जेलरों ने उसे जलते, चमकते कोयले के ज्वालामुखी पर ऊपर-नीचे चढ़ाया..., जेलरों ने उसे ऊपर-नीचे पकड़कर गर्म, धधकते, जलते, लाल चमकते तांबे के बर्तन में फेंक दिया; वह वहाँ झाग में उबल गया, और एक बार ऊपर उठा, एक बार नीचे गया, और एक बार इधर-उधर चला गया। उसे कड़वाहट महसूस हुई...। यह भयावहता, यह पीड़ा कहाँ से आई...। जेलरों ने उसे नरक में फेंक दिया, और नरक में:

चारों कोनों में चार द्वार हैं, जो बराबर भागों में विभाजित हैं, लोहे की दीवारों से घिरे हुए हैं, और ऊपर का भाग लोहे से ढका हुआ है। पृथ्वी लोहे की बनी है, और यह आग की ज्वाला से चमक रही है, जो सौ योजन तक चारों ओर व्याप्त है, सदा विद्यमान है। कष्टदायक जलन भयानक है, तेज लपटों के पास जाना कठिन है, पीड़ा के भय से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पूर्वी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए पश्चिम की ओर प्रहार करता है। पश्चिमी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए पूर्व की ओर प्रहार करता है। उत्तरी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए दक्षिण की ओर प्रहार करता है। दक्षिणी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए उत्तर की ओर प्रहार करता है। नीचे से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए छत की ओर प्रहार करता है। ऊपर से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए छत की ओर प्रहार करता है। ज़मीन। धधकती हुई लोहे की आग, जलने जैसा दर्द, ठीक इसी तरह यह भयानक नरक ऊपर और नीचे से दिखाई देता है। यहाँ प्राणी अत्यंत क्रूर हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े अपराध किए हैं, निरंतर

पापी, बिना मरे यातना भोगते हैं। इस नरक में रहने वाले का शरीर आग के समान है, स्थिर कर्म वाले के लिए, आग में न राख होती है न कालिख। वे पूरब की ओर भागते हैं, फिर वहाँ से पश्चिम की ओर; वे उत्तर की ओर भागते हैं, फिर वहाँ से दक्षिण की ओर; वे जहाँ भी भागते हैं, द्वार बंद हो जाते हैं, वे बाहर जाना चाहते हैं, वे मुक्ति की तलाश करते हैं। वे वहाँ से बाहर नहीं जा सकते, उन्हें यह कर्मों के माध्यम से प्राप्त होती है, क्योंकि उन पापियों के प्रचुर कर्म अभी पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुए हैं।

यह भय, पीड़ा और दुख उसे कहाँ से मिला? यह उसी व्यक्ति से उत्पन्न होता है, जन्म लेता है और प्रकट होता है जो छड़ी उठाता है। इसी प्रकार, नरक की पीड़ा, पशु जगत की पीड़ा, प्रेत जगत की पीड़ा और मनुष्य की पीड़ा कहाँ से उत्पन्न होती है, कहाँ पैदा होती है, कहाँ घटित होती है, कहाँ जन्म लेती है और कहाँ प्रकट होती है? यह उत्पन्न होती है, ...

"कृपया असंतुष्ट लोगों को देखिए": "लोग," ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)। असंतुष्ट लोग झगड़ालू लोग हैं, शत्रुतापूर्ण लोग हैं, विरोध करने वाले लोग हैं, प्रहार करने वाले लोग हैं, पलटवार करने वाले लोग हैं, जिन पर हमला किया जाता है, जिन पर पलटवार किया जाता है, कृपया देखिए, कृपया ध्यान से देखिए, कृपया गौर कीजिए, कृपया अवलोकन कीजिए।

"मैं तात्कालिकता की भावना के बारे में बात करूँगा": तात्कालिकता की भावना भय, आतंक, उत्पीड़न, प्रहार, हानि, आपदा है। "मैं बताऊँगा," मैं घोषणा करूँगा, मैं कहूँगा, मैं समझाऊँगा, मैं सिखाऊँगा, मैं बताऊँगा, मैं निर्माण करूँगा, मैं उजागर करूँगा, मैं विश्लेषण करूँगा, मैं स्पष्ट करूँगा।

"मुझे एक तात्कालिकता की भावना ने उत्तेजित कर दिया": बस अपने आप का अनुसरण करते हुए, मुझे एक तात्कालिकता की भावना ने उत्तेजित कर दिया, भयभीत कर दिया, और एक तात्कालिकता की भावना उत्पन्न कर दी।

171 · धड़कते हुए लोगों को देखकर, जैसे कोई मछली थोड़े से पानी में हो, और एक-दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण हो रही हो; इसे देखकर मेरे मन में भय का संचार हुआ।

"उन लोगों को देखकर जो धड़क रहे हैं": "लोग" सभी प्राणियों का पर्यायवाची है। लोग इच्छा की धड़कन से धड़क रहे हैं...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "देखने के बाद,"...

"जैसे कोई मछली कम पानी वाली जगह पर हो": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण हो जाओ": सभी प्राणी एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण हैं, विरोध करते हैं, प्रहार करते हैं, प्रतिवाद करते हैं, हमला करते हैं, प्रतिवादित होते हैं: राजा और राजा, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"देखने के बाद, मेरे भीतर भय समा गया": "देखने के बाद," देखने के बाद, ... आतंक, उत्पीड़न, आघात, हानि, आपदा समा गई।

172 · दुनिया में कुछ भी ठोस नहीं है, सभी दिशाएँ पूरी तरह से हिल गई हैं, रहने के लिए जगह चाहिए, (लेकिन) मुझे कोई खाली जगह नहीं दिखी।

"संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है": "संसार," नरक लोक, पशु जगत, दुष्ट आत्माओं का जगत, मानव जगत, स्वर्ग लोक, समुच्चय जगत, संसारों का जगत, सजीव जगत, यह संसार, अन्य संसार, ब्रह्म जगत, स्वर्ग लोक, इसे संसार कहते हैं। (वह) नरक लोक सदा स्थिर है, या सुख की स्थिरता, या मेरे की स्थिरता, या स्थिर, या स्थिर, या शाश्वत, या अपरिवर्तनीय धम्म, जो अस्थिर, अविश्वसनीय और पृथक है। पशु जगत... (छोड़ा गया)।

एक और उदाहरण यह है कि सरकंडे दृढ़ नहीं होते, ठोस नहीं होते, और ठोसपन से अलग हो चुके होते हैं, जैसे अरंडी का पौधा दृढ़ नहीं होता, अंजीर..., सफेद सरकंडे..., पलाश का पेड़..., झाग, छाले, सूर्य की ज्वाला, सूखा केला, भ्रम...। इसी प्रकार, नरक लोक...।

“सभी दिशाएँ पूरी तरह से हिल गई हैं”: पूर्व दिशा में सब कुछ हिल गया है, पूरी तरह से हिल गया है, गतिमान है: अनित्यता से विचलित, जन्म के साथ, बुढ़ापे के बाद, रोग से पराजित, मृत्यु से पीड़ित, पीड़ा से ग्रस्त, कोई आश्रय नहीं, कोई शरण नहीं, कोई वापसी नहीं। पश्चिम दिशा में..., उत्तर..., दक्षिण..., पूर्व के मध्य में..., पश्चिम के मध्य में..., उत्तर के मध्य में..., दक्षिण के मध्य में..., निचली दिशा में..., ऊपरी दिशा में..., दसों दिशाओं में...। फिर से, यही कहा गया है:

“भले ही आपका महल उत्तर दिशा को रोशन करते हुए चमक रहा हो, फिर भी रूप की खामी देखकर मन कांप उठता है। इसलिए, बुद्धिमान व्यक्ति रूप से संतुष्ट नहीं होता।” [एस.एन.6.6]

“यह संसार मृत्यु से त्रस्त है, वृद्धावस्था से घिरा है, लालसा के तीर से घायल है, और हमेशा इच्छा की ज्वाला से सुलगता रहता है।” [SN.1.66]

“सारा संसार जल रहा है, सारा संसार धुआँ उगल रहा है, सारा संसार धधक रहा है, सारा संसार काँप रहा है।” [SN.5.7]

“मेरी जगह चाहो”: मेरा निवास, मेरा आश्रय, मेरी शरण, मेरा स्थान, मेरी शरणस्थली, जो चाहते हैं, स्वीकार करते हैं, आशा रखते हैं, उत्सुक हैं और प्रार्थना करते हैं। “(पर) मुझे कोई खाली नहीं दिखा”: मैंने केवल कब्जे में लिए हुए लोगों को देखा, लेकिन खाली लोगों को नहीं देखा: सभी युवा बूढ़ों के कब्जे में हैं, सभी रोगमुक्त लोग रोग से ग्रसित हैं, सारा जीवन मृत्यु से ग्रसित है, सारा लाभ निष्लाप के कब्जे में है, सारी प्रतिष्ठा प्रतिष्ठाहीनता से ग्रसित है, सारी प्रशंसा निंदा से ग्रसित है और सारा सुख दुख से ग्रसित है।

“लाभ और हानि, यश और अपमान, निंदा और प्रशंसा, सुख और दुख, ये धर्म मनुष्य में क्षणिक हैं, शाश्वत नहीं, बल्कि परिवर्तनशील हैं।” [एएन.8.5]

173 · अंत में, सारी शत्रुता देखकर, मुझे अरुचि (नाखुशी) हुई, उस समय, मैंने यहाँ चुभने वाला तीर देखा: जिसे देखना मुश्किल है, जो दिल से जुड़ा है।

लेकिन अंत में, सभी शत्रु”: “फिर भी अंत में,” सभी युवा और वृद्ध इसे समाप्त कर देते हैं, सभी रोगमुक्त और रोगग्रस्त इसे समाप्त कर देते हैं, सभी जीवन और मृत्यु इसे समाप्त कर देते हैं, सभी लाभ और हानि इसे समाप्त कर देते हैं, सभी प्रसिद्धि और बदनामी इसे समाप्त कर देते हैं, सभी प्रशंसा और निंदा इसे समाप्त कर देते हैं, और सभी सुख और दुख इसे समाप्त कर देते हैं। “सभी शत्रु,” युवा लोग बूढ़ों का विरोध करना चाहते हैं, ..., जो प्रशंसा चाहते हैं उन्हें निंदा और विरोध का सामना करना पड़ता है, और जो सुख चाहते हैं उनका विरोध और पिटाई की जाती है, उन पर पलटवार किया जाता है, उन पर हमला किया जाता है, उन पर पलटवार किया जाता है।

“देखने के बाद, मेरा दुख”: “देखने के बाद,” .... “मेरा दुख,” जो कोई खुश नहीं है, जो कोई आनंदित नहीं है, जो कोई असंतुष्ट है, जो कोई भयभीत है।

“उस समय तीर को देखना”: “उस समय,” वाक्य का आगे का भाग... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “यहाँ,” सभी प्राणियों में। “तीर,” सात प्रकार के चुभने वाले तीर होते हैं: लोभ का चुभने वाला तीर, क्रोध का चुभने वाला तीर, पागलपन का चुभने वाला तीर, अहंकार का चुभने वाला तीर, दृष्टि का चुभने वाला तीर, चिंता का चुभने वाला तीर, संदेह का चुभने वाला तीर। “उसने देखा,” उसने देखा और समझा।

“दिखाई न देने वाला, हृदय से जुड़ा हुआ”: “दिखाई न देने वाला,” दिखाई न देने वाला, देखा न जा सकने वाला, प्रबुद्ध होना कठिन, सचेत होना कठिन, सुलभ होना कठिन। “हृदय से जुड़ा हुआ।” हृदय को हृदय कहा जाता है, जो मन, ज्ञान, इंद्रिय, श्वेत (सर्व शुद्ध), मन, चेतना और चेतना के समूह का मूल है, जो चेतना के क्षेत्र के अनुरूप है। “हृदय से जुड़ा हुआ,” हृदय से जुड़ा हुआ, हृदय के साथ चलना, जुड़ा हुआ, सहअस्तित्व, निर्भरता का एक ही स्थान और एक ही वस्तु।

174 · जिसे भी चुभने वाला तीर लगता है, वह चारों दिशाओं में भागता है, परन्तु चुभने वाला तीर निकल जाने के बाद, वह न तो भागता है और न ही डूबता है।

“जिस किसी को भी चुभने वाला तीर लगता है, वह चारों दिशाओं में भागता है”: “चुभने वाला तीर,” चुभने वाले तीर सात प्रकार के होते हैं: .... लालच का तीर क्या है? वह लालच है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

क्रोध का चुभने वाला तीर क्या है? “वह प्रतिकूल रहा है...(विलंबित भाग देखें, पिछले अनुभाग देखें)।” घृणा का जन्म हुआ...(विलंबित भाग) क्रूर क्रोध, रोष और हृदय की अप्रसन्नता।

अज्ञान का चुभने वाला तीर क्या है? दुख में डूबा अज्ञान... अहंकार का भेदक तीर क्या है? “मैं विजेता हूँ” का अहंकार... दृष्टि का भेदक तीर क्या है? शरीर के बीस दृश्य होते हैं... दुख का तीर क्या है? रिश्तेदारों के खोने का दुख... संदेह का तीर क्या है? दुख में डूबा संशय...

“जो कोई भी चुभने वाले तीर से घायल होता है, वह हर दिशा में भागता है”: जो कोई भी चुभने वाले तीर से घायल होता है, भेदा जाता है, छुआ जाता है, यातना दी जाती है, किसी वस्तु से जुड़ता है, और अपने शरीर से, शब्दों से, और इरादे से बुरे कर्म करता है: हत्या करना, बिना दिए लेना, लोगों पर आक्रमण करना, शिकार करना, रास्ता रोकना, लूटपाट करना, पत्नी का अपहरण करना, झूठ बोलना, इस तरह, गोली लगने से घायल होने, भेदे जाने, छुए जाने, यातना दिए जाने, लालची तीर से जुड़ने से, किसी वस्तु से जुड़कर भागता है, इधर-उधर भागता है, इधर-उधर घूमता है, और लगातार इधर-उधर घूमता रहता है। या, गोली लगने से, ..., गर्मी, भूख, प्यास बढ़ जाती है, मक्खी, मच्छर, हवा, धूप और सांपों के संपर्क से यातना होती है, बार-बार भूख और प्यास से मर जाता है; चला जाता है (विभिन्न स्थानों को यहाँ सूचीबद्ध किया गया है, अध्याय सात देखें); रेगिस्तान में खतरनाक सड़क पर चलता है; घुटनों के बल उस सड़क पर चलता है जिसे पार किया जा सकता है; वह सड़क जिस पर बकरियाँ चल सकती हैं; वह सड़क जिस पर भेड़ें चल सकती हैं; वह सड़क जिसे केवल खंभों के सहारे ही पार किया जा सकता है; वह रास्ता जिसे केवल पैराशूट पकड़कर ही पार किया जा सकता है; वह रास्ता जिसे केवल बांस की झाड़ी काटकर ही पार किया जा सकता है; पक्षियों के रास्ते पर चलना; चूहों के रास्ते पर चलना; दरारों वाले रास्ते पर चलना; लताओं वाले रास्ते पर चलना, बार-बार पूछने पर भी उसे नहीं मिलता, न मिलने की भावना में डूबा हुआ, पीड़ा का अनुभव करता है; पूछने पर उसे मिल जाता है, रक्षक भाव में डूबा हुआ, चिंता का अनुभव करता है: “क्या मेरी संपत्ति राजा द्वारा छीन ली जाएगी, चोर उसे नहीं ले जाएंगे, आग उसे नहीं जलाएगी, पानी उसे बहाकर नहीं ले जाएगा, और अयोग्य उत्तराधिकारी उसे नहीं ले जाएंगे।” जब वह इस तरह से रक्षा और संरक्षण करता है, तो उसकी संपत्ति नष्ट हो जाती है, वह वियोग में डूबा हुआ है और पीड़ा का अनुभव करता है, जब वह इस तरह से रक्षा और संरक्षण करता है, तो उसकी संपत्ति नष्ट हो जाती है, वह वियोग में डूबा हुआ है और पीड़ा का अनुभव करता है। इसी तरह गोली मार दी जानी है, ...

क्रोध के तीर से घायल होना..., मोह के तीर से घायल होना..., अहंकार के तीर से घायल होना...

किसी भेदी तीर से घायल, शरीर में छेद हो गया, ..., नग्न घूमने के लिए विवश, (सामान्य) तरीकों की अनदेखी करते हुए, अपने हाथ चाटते हुए, बिना बुलाए आना, बुलाए जाने पर न आना, विशेष रूप से उनके लिए तैयार किया गया भोजन न खाना, कटोरे या बर्तन से भोजन न खाना, भेड़ पालने वाले व्यक्ति से, या फावड़ा या हथियार रखने वाले व्यक्ति से, या जहाँ कोई जोड़ा भोजन कर रहा हो, या गर्भवती महिला से, या स्तनपान कराने वाली महिला से, या जिसके घर में कोई पुरुष हो, या उन स्थानों से जहाँ कुत्ते या मक्खियाँ हों, भोजन न खाना; मछली, मांस, शराब, वाइन, किण्वित दलिया (बीयर) स्वीकार करता है; वह अपना कटोरा लेकर एक परिवार के पास एक निवाला, या दो परिवारों के पास दो निवाले ... (छोड़ा गया), या सात परिवारों के पास सात निवाले के लिए जाता है; या वह अपना जीवन चलाने के लिए एक छोटी थाली (भोजन की) का उपयोग करता है, या दो ..., या सात ...; या दिन में एक बार भोजन करता है, या दो दिनों तक एक बार भोजन करता है, ..., सात दिनों तक एक बार भोजन करता है, या यहाँ तक कि आधे महीने तक एक बार भोजन करता है; वह नियमित अंतराल पर भोजन करने के अभ्यास के प्रति समर्पित जीवन जीता है [DN.8]। इस तरह देखा जाए तो, चुभने वाला तीर, ...

या, चुभने वाले तीर के निशान देखकर, वह सलाद खाने वाला, या खरपतवार खाने वाला, या कच्चा चावल खाने वाला, या पौधे खाने वाला, या खट्टी काई खाने वाला, या चावल की भूसी खाने वाला, या चावल का पानी पीने वाला, या अलसी का पाउडर खाने वाला, या घास खाने वाला, या गाय का

गोबर खाने वाला बन जाता है। वह जंगल की जड़ों और फलों पर, और गिरे हुए फलों पर अपना जीवन यापन करता है। वह लिनन, भांग मिश्रित कपड़ा, कफ़न, गोबर साफ करने वाले कपड़े, छाल, हिरण की खाल, भेड़ की खाल, फूस के कपड़े, छाल के कपड़े, लकड़ी के बुरादे के कपड़े, बालों से बुने हुए कपड़े, जानवरों की खाल के कपड़े, उल्लू के पंखों से बनी जैकेट पहनता है। वह दाढ़ी नोचने वाला है, वह दाढ़ी नोचने के लिए समर्पित साधक के रूप में रहता है, वह खड़ा रहता है, बैठने से इनकार करता है, उकड़ू बैठा रहता है, एक मेहनती साधक है, कांटों पर लेटा रहता है। वह कांटों वाले पलंग पर सोता है, तख्तों वाले पलंग और कठोर फर्श पर। वह खुले में और हर जगह रहने वाला व्यक्ति है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो सड़ा हुआ भोजन खाता है और एक ऐसा साधक है जो सड़ा हुआ भोजन खाने में स्वयं को समर्पित करता है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो पेय पदार्थ नहीं पीता और एक ऐसा साधक है जो पेय पदार्थ नहीं पीता। जो साधक सूर्यास्त से पहले तीन बार जल स्नान करता है, वह इस प्रकार तपस्या और शरीर पर कष्ट के अनेक रूपों में जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार, उसे भेदी तीरों का भी सामना करना पड़ता है, ...

काँटेदार तीर चलाए गए, आर-पार हो गए, छुए गए, यातना दी गई, संयोजित हुए, वश में किए गए और दुखी, थके हुए, रोते हुए, पीटते हुए और विलाप करते हुए, और भ्रम की स्थिति में आ गए। यह धन्य व्यक्ति द्वारा कहा गया है [एम.एन.87]:

"ब्राह्मण! एक समय की बात है, श्रावस्ती नगर में एक स्त्री की माता का निधन हो गया। जब उनका निधन हुआ, तो वह बहुत क्रोधित और हताश हो गईं। वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती रहीं और फिर बोलीं, 'क्या आप मेरी माता को देख पा रहे हैं? क्या आप मेरी माता को देख पा रहे हैं?'"

हे ब्राह्मण! एक समय की बात है, श्रावस्ती नगर में एक स्त्री के पिता का निधन हो गया..., भाई का निधन हो गया..., बहन का निधन हो गया..., पुत्र का निधन हो गया..., पुत्र का निधन हो गया..., पति का निधन हो गया...। उनके निधन पर वह व्याकुल और हताश होकर गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती रही और फिर बोली, 'क्या आपने मेरे पति को देखा? क्या आपने मेरे पति को देखा?'

हे ब्राह्मण! एक समय की बात है, श्रावस्ती नगर में एक व्यक्ति की माता का देहांत हो गया। जब वह मरी तो वह व्यथित और हताश होकर गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकने लगा और फिर बोला, 'क्या तुमने मेरी माता को देखा? क्या तुमने मेरी माता को देखा?'

ब्राह्मण! एक समय की बात है, श्रावस्ती नगर में एक व्यक्ति रहता था जिसके पिता की मृत्यु हो गई थी... (अंशित)।

हे ब्राह्मण! एक बार श्रावस्ती नगर में एक स्त्री अपने उन रिश्तेदारों के घर गई जो उसके पति को ले जाना चाहते थे और फिर उसे किसी और को देना चाहते थे जिसे वह नहीं चाहती थी। तब स्त्री ने अपने पति से कहा, "स्वामी! मेरे रिश्तेदार आपको ले जा रहे हैं (और फिर मुझे किसी और को देना चाहते हैं जिसे मैं नहीं चाहती), और हम दोनों मर जाएँगे।" तब पति ने स्त्री के शरीर के दो टुकड़े कर दिए और यह सोचकर आत्महत्या कर ली: "मृत्यु के बाद भी हम एक जोड़ी बने रहेंगे।" इसी प्रकार, दुख के बाण से घायल हो जाते हैं...

एक को तीर लगा, आर-पार हो गया, छुआ गया, यातना दी गई, मिला दिया गया, संदेह भरे चुभते तीर ने उसे वश में कर लिया और वह संशयवादी बन गया, एक ऐसा संशयवादी जो संदेह में डूब गया, और एक संशयी व्यक्ति: "क्या मैं अपने पिछले जन्म में अस्तित्व में था? क्या मैं अपने पिछले जन्म में अस्तित्व में नहीं था? मेरा पिछला जन्म क्या था? मेरा पिछला जन्म कैसा था? मेरा पिछला जन्म क्या था, और बाद में वह क्या बन गया? क्या मैं भविष्य में अस्तित्व में रहूंगा?..." या, उसके मन में वर्तमान संसार के बारे में संदेह उठेंगे: "क्या मैं अस्तित्व में हूं? क्या मैं नहीं हूं? मैं क्या हूं? मेरी स्थिति कैसी है? ये सजीव प्राणी कहां से आए हैं और कहां जाएंगे?" [SN.12.20] इस प्रकार, चुभता तीर अंदर घुसा, आर-पार हो गया, ...

उसने ये भेदक बाण बनाए। जब उसने ये भेदक बाण बनाए, तो वह इनके कारण पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में दौड़ा। वे भेदक बाण टूटे नहीं, और वह उन्हीं बाणों के साथ अपने लक्ष्य की ओर दौड़ता रहा: नरक की ओर, पशुलोक की ओर, प्रेतों के लोक की ओर, मनुष्यलोक की ओर, स्वर्गलोक की ओर, अपने लक्ष्य से अपने लक्ष्य तक, जन्म-जन्म, जन्म-जन्म, अस्तित्व-अस्तित्व, पुनर्जन्म-जन्म, चक्र-चक्र, दौड़ता-दौड़ता, चलता-फिरता और निरंतर गतिमान रहा।

लेकिन जब भेदन करने वाला तीर निकाल लिया जाता है, तो वह न तो भागता है और न ही डूबता है": परन्तु वह लोभ का भेदन करने वाला तीर, क्रोध का भेदन करने वाला तीर, ..., निकाले जाने के बाद, निकालने के बाद, हटाने के बाद, पूरी तरह से हटाने के बाद, त्यागने के बाद, निकालने के

बाद, समाप्त करने के बाद, अस्तित्व से मिटाने के बाद, वह न तो पूरब भागेगा और न पश्चिम, न उत्तर भागेगा और न दक्षिण। वे भेदन करने वाले तीर काट दिए गए हैं, और उस अवस्था में जब वे भेदन करने वाले तीर काट दिए गए हैं, कोई रुचिकर स्थान की ओर नहीं भागेगा: न नरक की ओर नहीं भागेगा, ..., और निरंतर इधर-उधर घूमता रहेगा। "न डूबना," इच्छा की बाढ़ में न डूबना, क्रोध की बाढ़ में न डूबना, अज्ञान की बाढ़ में न डूबना, न डूबना, पूरी तरह से न डूबना, नीचे की ओर न डूबना, न जाना, नीचे न जाना।

175 · वहाँ शिक्षा का पाठ किया जाता है: संसार में किसी भी बंधन के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए; सभी इच्छाओं को भेदने के बाद, अपने स्वयं के निर्वाण के लिए सीखना चाहिए।

"यहाँ गाए (पाठ किए) जा रहे ज्ञान के लिए: संसार में बंधे हुए किसी भी व्यक्ति के लिए": "ज्ञान," हाथी विज्ञान, अश्व विज्ञान, रथ यात्रा, तीरंदाजी, नेत्र विज्ञान, शल्य चिकित्सा, शरीर का उपचार, भूत-प्रेत भगाना, बाल चिकित्सा का ज्ञान। "गाया जा रहा है," जप किया जा रहा है, पाठ किया जा रहा है, चर्चा की जा रही है, समझाया जा रहा है, बोला जा रहा है। या, जप किया जा रहा है, सीखा जा रहा है, याद किया जा रहा है, समझा जा रहा है, भेद किया जा रहा है, प्राप्त करने के लिए बाध्य है। "बंधे हुए" को पाँच इच्छाएँ कहा जाता है: दृष्टि, जिसे आँख से पहचाना जा सके, वांछनीय, सुंदर, सुखद, इच्छाओं से युक्त, लालची रूप; ध्वनि...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। बंधने को पाँच इच्छाएँ क्यों कहा जाता है? अधिकांश लोग पाँच इच्छाओं को चाहते हैं, स्वीकार करते हैं, आशा करते हैं, आकांक्षा करते हैं और उनके लिए प्रार्थना करते हैं। इसी कारण इन्हें पाँच इच्छाएँ कहा जाता है। "संसार में,"...

"उनमें उत्साह नहीं होना चाहिए": उनमें, या उन अध्ययनों में, या पांच प्रकार की इच्छाओं में, व्यक्ति को उत्साहित नहीं होना चाहिए, उसे लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए, और ऐसा व्यक्ति नहीं बनना चाहिए जो कड़ी मेहनत न करे या उसकी ओर झुकाव न रखे, वृद्धि की ओर न जाए।

"सभी इच्छाओं को भेदने के बाद": "भेदने के बाद" का अर्थ है भेदने के बाद: "सभी कर्म क्षणभंगुर हैं" भेदने के बाद, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। प्रवेश के बाद। "सब कुछ," ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "इच्छा," ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

"अपने निर्वाण के लिए सीखना चाहिए": "अध्ययन," तीन प्रकार के अधिगम हैं: ...(विलंबित भाग देखें)। "अपने निर्वाण के लिए," अपने लोभ को बुझाने के लिए; अपने क्रोध को बुझाने के लिए; अपने मोह को बुझाने के लिए... (विलंबित), शांत, मौन, शांत हो जाओ, शांत हो जाओ, विचारों को रोक दो, तुम्हें उपदेशों को बढ़ाना सीखना चाहिए, तुम्हें मन को बढ़ाना सीखना चाहिए, और तुम्हें बुद्धि को बढ़ाना सीखना चाहिए। इन तीनों विद्याओं को तब सीखना चाहिए जब वे ज्ञात हों (उल्लेखित); जब वे ज्ञात हों, तब उन्हें सीखना चाहिए..., तुम्हें सीखना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए, अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए, और स्वीकार करने के बाद आगे बढ़ना चाहिए।

176 · व्यक्ति को सत्यवादी होना चाहिए, अभिमानी नहीं, छल करने वाला नहीं, विभाजनकारी नहीं, क्रोध रहित, मुनि लोभ और कंजूसी पर विजय प्राप्त कर सकता है।

"सच्चाई का पालन करना चाहिए, अहंकार नहीं": "सच्चाई का पालन करना चाहिए," सत्य का ज्ञान होना चाहिए, सही दृष्टिकोण होना चाहिए, आठ पवित्र मार्गों का अनुसरण करना चाहिए। "अहंकार नहीं," "अहंकार," अहंकार तीन प्रकार का होता है: ...(विकल्प हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)। उसके लिए, ये तीनों अहंकार समाप्त हो जाते हैं, ..., उसे अहंकार रहित कहा जाता है।

"जो छल नहीं करते, और जो फूट डालने वाली बातों का त्याग करते हैं": छल... (विलंबित भाग देखें)। जो इस छल से मुक्त हो गया है, उसे छल न करने वाला कहा जाता है। "फूट डालने वाली बातों से दूर रहो," फूट डालने वाली बातें, ...(विलंबित भाग देखें)। जो इससे मुक्त हो गया है, उसे फूट डालने वाला, फूट डालने से दूर रहने वाला और फूट डालने से अलग रहने वाला कहा जाता है।

"जो क्रोधित नहीं होते, मुनि लोभ और कंजूसी पर विजय प्राप्त कर सकते हैं": उन्हें "क्रोधित नहीं" कहा जाता है, परन्तु केवल क्रोधित लोगों के बारे में ही ऐसा कहा जा सकता है। क्रोध दस रूपों में उत्पन्न होता है: ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)। जिनके लिए क्रोध समाप्त हो जाता है, ..., उन्हें क्रोधित नहीं कहा जाता है। क्रोध की अवस्था को त्यागकर अक्रोधित माना जाता है; क्रोध के ज्ञान की अवस्था को अक्रोधित माना जाता है; "लोभ," अर्थात्

लोभ की अवस्था, ... कंजूसी को पाँच प्रकार की कंजूसी कहा जाता है: .... "मुनि," .... "जो क्रोधित नहीं होते, मुनि लोभ और कंजूसी की बुराई पर विजय प्राप्त कर सकते हैं": मुनि लोभ और कंजूसी की बुराई से बच निकलते हैं, उससे ऊपर उठते हैं, उसे पार करते हैं और उस पर विजय प्राप्त करते हैं।

177 · नींद, आलस्य और सुस्ती पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, और आराम से नहीं रहना चाहिए, अहंकार के साथ नहीं खड़ा होना चाहिए: वह व्यक्ति जिसका मन निर्वाण में है।

"नींद, आलस्य और उनींदापन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए": "नींद" से तात्पर्य शरीर की असहनीय, काम के लिए अनुपयुक्त अवस्था, आलस्य, आंतरिक सुस्ती, उनींदापन, स्वप्न में ऊंघना, स्वप्न में सोना, नींद में सो जाना जैसी स्थिति से है। "आलस्य" ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "उदासी" से तात्पर्य असहनीय, काम के लिए अनुपयुक्त, सुस्त, अलग-थलग, उदास, उनींदा और अज्ञानी होने की स्थिति से है। "नींद, आलस्य और उनींदापन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए": नींद, आलस्य और उनींदापन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, उन पर काबू पाना चाहिए, उन्हें पराजित करना चाहिए, उन्हें पूरी तरह से खत्म कर देना चाहिए, उन्हें कुचल देना चाहिए।

"आराम में नहीं रहना चाहिए": आराम का अर्थ है शरीर के बुरे कर्मों में, वाणी के बुरे कर्मों में, मन के बुरे कर्मों में, या पाँचों इच्छाओं में लिप्त रहना। आराम से मुंह मोड़ा जा सकता है और हृदय को त्यागा जा सकता है। जागृति की अवस्था, अच्छे धर्म के अभ्यास के प्रति अनादर की अवस्था, अनित्यता की अवस्था, निरंतर कार्य करने की अवस्था, आदत से चिपके रहने की अवस्था, इच्छाओं की उपेक्षा करने की अवस्था, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने की अवस्था, अभ्यास न करने की अवस्था, ठीक से अभ्यास न करने की अवस्था, अधिक अभ्यास न करने की अवस्था, स्थापना न करने की अवस्था और त्याग देना। त्याग देने जैसी किसी भी अवस्था को आराम कहते हैं। "आराम में नहीं रहना चाहिए": आराम में नहीं रहना चाहिए, साथ रहना, जीना, ठहरना, ढील देना, अलग हो जाना, दूर भगा दिया जाना, ...

"अहंकार के साथ खड़ा नहीं होना चाहिए": "अहंकार," .... किसी को अहंकार के साथ खड़ा नहीं होना चाहिए, ...

"जिनका मन निर्वाण में लीन है": यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग दाता, दीक्षित, कर्म करने वाले, पीने-पिलाने का पानी देने वाले, धोने का पानी देने वाले, भिक्षुओं के कमरों की सफाई करने वाले, मीनार मंदिर का आदर करने वाले, शिवालय मंदिर में धूप चढ़ाने वाले, शिवालय मंदिर के दाहिनी ओर परिक्रमा करने वाले और तीनों लोकों में कोई भी अच्छा काम करने वाले हैं, (पर) स्वार्थ से नहीं, पुनर्जन्म से नहीं, अवतार से नहीं, अस्तित्व से नहीं, पुनर्जन्म से नहीं, चक्र से नहीं, वह यह सब बंधन से मुक्ति के हित में, निर्वाण की ओर झुकाव रखते हुए, निर्वाण की ओर प्रवृत्त होते हुए करता है। या, जब मन सभी लोकों से मुक्त हो जाता है, तो मन अमर लोक में एकत्रित हो जाता है: यही मौन है, यही विजय है, अर्थात्: सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, जागरूकता, प्यास का अंत, लोभ का अंत, निर्वाण।

ज्ञानी पुरुष आसक्ति के सुख या पुनर्जन्म की लालसा में दान नहीं देते, वे आसक्ति से मुक्ति पाने और पुनर्जन्म से बचने के लिए दान देते हैं। ज्ञानी पुरुष आसक्ति के सुख या पुनर्जन्म की लालसा में विभिन्न ध्यान साधनाएँ नहीं करते, वे आसक्ति से मुक्ति पाने और पुनर्जन्म से बचने के लिए विभिन्न ध्यान साधनाएँ करते हैं। वे अपने आप को मिटाकर दान देने की आशा रखते हैं, उनका हृदय उसी ओर, उसी विजय के मार्ग की ओर उन्मुख होता है। जैसे नदी सागर में समा जाती है, वैसे ही वे दूसरी ओर निर्वाण का अभ्यास करते हैं।

178 · झूठे शब्दों में बहकना नहीं चाहिए, और प्रेम को रूप में नहीं गढ़ना चाहिए। अहंकार को भलीभांति जानना चाहिए, और मनमानी से बचना चाहिए।

"झूठे शब्दों में बहकाया नहीं जाना चाहिए": झूठा शब्द...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। "झूठे शब्दों में बहकाया नहीं जाना चाहिए": झूठे शब्दों में बहकाया नहीं जाना चाहिए; बहकाया नहीं जाना चाहिए, बहकाया नहीं जाना चाहिए, ले जाया नहीं जाना चाहिए। हमें झूठे शब्दों का त्याग करना चाहिए, उन्हें दूर भगाया जाना चाहिए,...।

“रूप में प्रेम उत्पन्न नहीं करना चाहिए”: “रूप” चार महा तत्व हैं और इन चार महा तत्वों से निर्मित रूप हैं। “शारीरिक रूप से स्नेह उत्पन्न नहीं करना चाहिए”: शारीरिक रूप से स्नेह उत्पन्न नहीं करना चाहिए, इच्छा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए, प्रेम उत्पन्न नहीं करना चाहिए, लोभ उत्पन्न नहीं करना चाहिए, उत्पन्न नहीं करना चाहिए, कारण नहीं बनना चाहिए, जन्म नहीं लेना चाहिए।

“अहंकार को भलीभांति जानना चाहिए”: अहंकार का एक प्रकार है: ....

“अहंकार को जानना चाहिए”: जानने के तीन प्रकार होने चाहिए: ज्ञात, मापन और त्याग। ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“मनमानी से परहेज करना चाहिए”: मनमानी क्या है? लालच से ग्रस्त लोग मनमानी करते हैं, क्रोधित लोग घृणा से भरी मनमानी करते हैं, मूर्ख लोग मूर्खतापूर्ण मनमानी करते हैं, बंधे हुए लोग अहंकार से मनमानी करते हैं, कार्यकारी अपने दृष्टिकोण से मनमानी करते हैं, उलझन में पड़ा व्यक्ति मनमानी करता है, अनिर्णायक व्यक्ति संदेह से मनमानी करता है, दृढ़ निश्चयी व्यक्ति अपने व्यवहार की छिपी प्रवृत्ति के बारे में चिंतित रहता है, यह मनमानी है। “मनमानी से परहेज करना चाहिए”: मनमानी से अलग रहना चाहिए, परहेज करना चाहिए, ...

179 · पुराने में आनंद नहीं लेना चाहिए, और नए को पसंद नहीं करना चाहिए; लुप्त होने के कारण दुखी नहीं होना चाहिए, और मोहक चीजों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

अतीत में आनंद नहीं लेना चाहिए: अतीत से तात्पर्य अतीत के रूपों, भावनाओं, विचारों, कार्यों और चेतना से है। अतीत के कार्यों पर आनंद नहीं लेना चाहिए, उनका स्वागत नहीं करना चाहिए, उन पर लालसा नहीं करनी चाहिए, उन्हें देखना नहीं चाहिए, उन पर डटे रहना नहीं चाहिए, उनसे चिपके नहीं रहना चाहिए, उन्हें छोड़ देना चाहिए, उन्हें दूर भगा देना चाहिए, आदि।

“नए में रुचि उत्पन्न नहीं करनी चाहिए”: नया से तात्पर्य वर्तमान रूप, भावना, विचार, व्यवहार और चेतना से है। वर्तमान व्यवहारों में लालसा और दृष्टि के कारण रुचि और इच्छा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए; प्रेम, लोभ आदि उत्पन्न नहीं करने चाहिए, उन्हें जन्म नहीं देना चाहिए, उन्हें जीवन में नहीं आने देना चाहिए।

“जो लुप्त हो रहा है, उसके कारण दुखी नहीं होना चाहिए”: जब कुछ लुप्त हो रहा हो, खो रहा हो, घट रहा हो, क्षीण हो रहा हो, छूट रहा हो, कम हो रहा हो और विलुप्त हो रहा हो, तो दुखी नहीं होना चाहिए, थका हुआ नहीं होना चाहिए, शोक नहीं करना चाहिए, रोना नहीं चाहिए, सीना पीटकर रोना नहीं चाहिए, भ्रमित नहीं होना चाहिए: जब आँखें गायब हो जाएँ, खो जाएँ, कमज़ोर हो जाएँ, ..., कान में... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

“आकर्षक चीज़ों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए”: आकर्षण को लालसा कहते हैं, जो लोभ है... आकर्षण को प्यास क्यों कहते हैं? जो कोई भी प्यास और प्रेम से उसे खींचता है, पकड़ता है, लेता है, जकड़ता है, उससे चिपकता है... (अधूरा), इसी कारण उसे लालसा कहते हैं। “आकर्षक चीज़ों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए”: प्यास पर निर्भर नहीं होना चाहिए। प्यास को काट देना चाहिए...

180 · मैं कहता हूँ कि लोभ एक "महान जलप्रपात" है, मैंने कहा कि इच्छा एक जलप्रपात है, वस्तु का स्थिर दृष्टिकोण, इच्छा के कीचड़ पर काबू पाना कठिन है।

मैंने कहा कि लोभ एक 'महान जलप्रपात' है: लालसा को लालसा कहा जाता है, वही लोभ है, ... महान जलप्रपात को लालसा कहा जाता है, वही लोभ है, ... मैं कहता हूँ कि लोभ एक 'महान जलप्रपात' है: मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, ... कि लोभ एक "महान जलप्रपात" है।

“मैंने कहा कि उत्सुकता जल्दबाजी है”: उत्सुकता को लालसा कहा जाता है, ... जल्दबाजी को भी लालसा कहा जाता है, ... “मैंने कहा कि उत्सुकता जल्दबाजी है”: मैंने कहा, ...कि वह उत्सुकता “जल्दबाजी” है।

“स्थिर विचार”: स्थिर विचारों को लालसा भी कहा जाता है, ...

“इच्छाओं के कीचड़ से पार पाना कठिन है”: इच्छाओं का कीचड़, इच्छाओं का दलदल, इच्छाओं का प्रदूषण, इच्छाओं का कीचड़ और इच्छाओं की बाधाएं पार पाना कठिन है, उनसे पार पाना कठिन है, उनसे बचना कठिन है, उन्हें पार करना कठिन है।

181 · मुनि सत्य से विचलित नहीं होते, ब्राह्मण उच्च स्थान पर खड़े होते हैं, सब कुछ काट देने के बाद, उन्हें वास्तव में मौन कहा गया।

“मुनि सत्य से विचलित नहीं होते”: जो सत्य से विचलित नहीं होते; जो सही दृष्टि से विचलित नहीं होते; जो अष्टमार्ग से विचलित नहीं होते। “मुनि,”...

“ब्राह्मण उच्च भूमि पर विराजमान”: उच्च भूमि को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् समस्त कर्मों का अंत... “ब्राह्मण,” ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)। “ब्राह्मण उच्च भूमि पर विराजमान”: वे उच्च भूमि पर, द्वीप पर, आश्रय में, शरण में, निर्भय स्थान पर, अमरता में, निर्वाण में विराजमान हैं।

“सब कुछ काट डालने के बाद”: सब कुछ बारह स्थानों के नाम से जाना जाता है: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। क्योंकि उसके भीतर और बाहर की इच्छा और लोभ काट डाले गए हैं, जड़ें काट डाली गई हैं, जैसे बिना जड़ों का ताड़ का पेड़, जो अस्तित्वहीन हो जाता है, जो भविष्य में जन्म नहीं लेगा। इस स्थिति में, सब कुछ त्याग दिया जाता है, थूक दिया जाता है, मुक्त कर दिया जाता है, काट दिया जाता है, अलग कर दिया जाता है। प्रेम और दृष्टि की प्यास और अहंकार के कट जाने के कारण, जड़...। यह स्थिति भी वह स्थिति है जहाँ सब कुछ त्याग दिया जाता है...। क्योंकि आशीर्वाद और अनाशीकरण कर्म और गतिहीनता काट डाली जाती है...। इस स्थिति में, सब कुछ त्याग दिया जाता है...।

“उसे सचमुच मौन कहा जाता है”: उसे “मौन, रुका हुआ, बुझा हुआ, शांत, विश्राम करने वाला” कहा जाता है, उसके बारे में बात की जाती है, समझाया जाता है, कहा जाता है।

182 · वह वास्तव में एक बुद्धिमान व्यक्ति है, वह वेदों का ज्ञाता है, वह धम्म को जानने के बाद अनासक्त हो जाता है, वह संसार में सही ढंग से कार्य करता है, वह यहाँ किसी भी चीज़ की अपेक्षा नहीं करता है।

“वह वास्तव में एक बुद्धिमान व्यक्ति है, वह वेदों का ज्ञाता है”: “बुद्धिमान व्यक्ति” ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)। “वेदों का ज्ञाता,” वेद ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)।

“धम्म को जानने के बाद, अनासक्त होना”: “जानने के बाद,” .... “अनासक्त” पर दो प्रकार की निर्भरता है: ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। जो लोग धर्म का पालन नहीं करते, जो उससे जुड़े नहीं रहते, जो ज्ञान के धर्मों में नहीं पड़ते, जो अपना मन (इन बातों की ओर) नहीं मोड़ते, वे धर्म से मुक्त हो चुके हैं, वे बंधन से अलग हो चुके हैं, वे बंधनमुक्त हृदय से जीवन व्यतीत करते हैं।

“वही है जो संसार में सही काम करता है”: क्योंकि उसके भीतर और बाहर की इच्छा और लोभ काट दिए गए हैं, उसकी जड़ें काट दी गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ अस्तित्वहीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता, इसी स्थिति में वह संसार में सही ढंग से चलता है, जीता है, कार्य करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है... आशीर्वाद और अपराध तथा गतिहीनता के कट जाने के कारण...

“उसे यहाँ किसी चीज़ की लालसा नहीं है”: आशा को लालसा कहा जाता है, ... उसके लिए, यह लालसा, यह लालसा समाप्त हो गई है, ..., उसे किसी चीज़ की लालसा नहीं है: क्षत्रिय, या ब्राह्मण, या वेस, या शुद्ध, या गृहस्थ, या भिक्षु, या स्वर्गीय (प्राणी), या मनुष्य।

183 · जो कोई भी यहाँ इच्छा और बंधनों से परे है, जिन्हें संसार में पार करना कठिन है, वह शोक या चिंता नहीं करता: वे जिन्होंने प्रवाह को काट दिया है, वे जिनके पास कोई गांठ नहीं है।

“जो कोई भी यहाँ इच्छाओं और बंधनों को पार कर लेता है, जिन्हें संसार में पार करना कठिन है”: “कौन,” किस प्रकार का, समान प्रयास, समान व्यवस्था, समान प्रकार, प्रत्येक स्थान जहाँ वह पहुँचा है, प्रत्येक क्षत्रिय जिसके पास धम्म है, या ब्राह्मण, …. “इच्छा,” …. “बंधन,” सात प्रकार के बंधन हैं: लोभ के बंधन… “संसार में”: …. “संसार में वह बंधन जिसे पार करना कठिन है,” सभी इच्छाएँ और बंधन: जिन्हें पार करना कठिन है, जिन्हें पार करना कठिन है, जिनसे बचना कठिन है, जिन्हें पार करना कठिन है, वह पार करता है, पार करता है, पार करता है, विजय प्राप्त करता है।

“वह दुखी या चिंतित नहीं है”: वह उन चीजों पर शोक नहीं करता जो बदल गई हैं, या जो बदल रही हैं: …(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “या चिंतित,” चिंता मत करो, याद मत करो, सोचो मत, मनन मत करो, गहराई से मत सोचो। या, जन्म न लेना, बूढ़ा न होना, मरना न, पुनर्जन्म न लेना।

“जिनने प्रवाह को रोक दिया है और जिन पर कोई बंधन नहीं है”: प्रवाह को प्यास कहते हैं, … उनके लिए प्रवाह, लालसा, रुक जाती है… “मुक्त व्यक्ति,” लोभ का बंधन, घृणा का बंधन, अज्ञान का बंधन, अहंकार का बंधन, मतों का बंधन, अपवित्रता का बंधन, बुरे कर्मों का बंधन। उनके लिए ये सभी बंधन टूट जाते हैं…

184 · इससे पहले जो कुछ भी हो, कृपया उसे मुरझाने दें, इसके बाद कुछ भी न रखें, यदि आप मध्य में नहीं टिके रहेंगे, तो आप एक मौन जीवन जिएंगे।

“जो कुछ भी पहले हुआ है, कृपया उसे नष्ट होने दें”: अतीत में हुए प्रदूषण के कारण जो प्रदूषण हुआ है, कृपया उसे सुखा दें, कृपया उसे नष्ट होने दें, कृपया उसे पूरी तरह से सुखा दें, कृपया उसके बीज न बनने दें, कृपया उसे जाने दें, कृपया उसे दूर भगा दें, कृपया उसे समाप्त कर दें, कृपया उसे अस्तित्वहीन कर दें। या, अतीत में किए गए कर्मों का जो फल अभी तक नहीं मिला है, कृपया उन्हें नष्ट होने दें…

“कृपया बाद में कुछ भी न चाहो”: बाद को भविष्य कहा जाता है। कोई भी लालच, कोई भी घृणा, …, इनमें से कोई भी क्रिया भविष्य में उत्पन्न हो सकती है। इसलिए, न चाहो, न बनाओ, न पैदा करो, न उत्पन्न करो, न इसे जन्म दो, कृपया त्याग दो, …।

“यदि तुम मध्य में स्थित को नहीं पकड़ोगे”: मध्य में स्थित को वर्तमान रूप, भावना, विचार, क्रिया और चेतना कहा जाता है। वर्तमान क्रियाओं के संबंध में, तुम लालसा, दृष्टि आदि के कारण उन्हें पकड़ नहीं पाओगे; त्याग दोगे, दूर भगा दोगे…।

“तुम एक मौन जीवन जिओगे”: लोभ की मौन अवस्था, शांति की अवस्था, मौन की अवस्था, शांत अवस्था, …, शांत अवस्था, बुझी हुई अवस्था, गैर-ज्वलनशील अवस्था, ठंडी अवस्था, विदा अवस्था, रुकी हुई अवस्था, मौन, शांत, ठंडी, रुकी हुई अवस्था के रूप में, तुम जीते हो, कार्य करते हो, आगे बढ़ते हो, रक्षा करते हो और जीवित रहते हो।

185 · सभी नामों और रूपों में, वह उन्हें अपना नहीं मानता, और जो अस्तित्व में नहीं है उसके लिए उसे कोई दुख नहीं है, वह दुनिया में कुछ भी नहीं खोता।

“सभी नामों और रूपों में, वह उन्हें अपना मानता है”: “सब कुछ,” …. “नाम,” चार निराकार समुच्चय। “रूप,” चार महा तत्व और उन चार महा तत्वों से व्युत्पन्न कोई भी रूप। “उसके लिए सब कुछ,” अरहंत के लिए, उसके लिए जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “अपना माना जाना,” आत्मधारणा के दो प्रकार हैं: …(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। “सभी नामों और रूपों में, वह उन्हें अपना नहीं मानता”: सभी नामों और रूपों में, चाहे कोई उन्हें धारण करे, वे विद्यमान नहीं होते, ज्ञात नहीं होते, खोजे नहीं जाते, और त्याग दिए गए होते हैं, ….

“उन चीजों की चिंता मत करो जो मौजूद नहीं हैं”: …(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

वह संसार में कभी नहीं हारता: चाहे वह रूप हो, भावना हो, विचार हो, कर्म हो, चेतना हो, जो कुछ भी उसे प्रतीत होता है, वह कहता है, "यह मेरा है, या यह दूसरों का है।" जो लोग किसी चीज को पकड़ते हैं, लेते हैं और उस पर विश्वास करते हैं, उनके लिए उसमें हानि होती है।

यह भी कहा गया है: [Jat.5.1,1-3]

जब रथ, रत्न और बालियाँ खो जाती हैं, जब पुत्र और पत्नी बिछड़ जाते हैं, जब सारा धन व्यर्थ हो जाता है, तो दुःख के समय तुम दुखी क्यों नहीं होते? यहाँ तक कि जिन्होंने पहले अपना धन त्याग दिया है, जो लोग निश्चित रूप से मरने वाले हैं, वे भी उसे त्याग देंगे, इच्छा-साधक की संपत्ति बहुत स्थिर होती है, इसलिए मैं दुःख के समय दुखी नहीं होता। चंद्रमा बढ़ता है, भरता है और गायब हो जाता है, और सूर्य अस्त हो जाता है, शत्रु के सांसारिक धर्म का मुझे ज्ञान है, इसलिए मैं दुःख के समय दुखी नहीं होता।

जो कुछ भी उसे रूप में दिखाई देता है, ... जो लोग उसे धारण नहीं करते, ग्रहण नहीं करते और उस पर विश्वास नहीं करते, उन्हें कोई हानि नहीं होती। यह भी कहा गया है [SN.2.18]: “समण! क्या तुम प्रसन्न हो?” “मित्र! तुम्हें क्या मिला?” “तो फिर, समण! क्या तुम दुखी हो?” “मित्र! तुमने क्या खोया?” “तो फिर, समण! क्या तुम न प्रसन्न हो और न दुखी?” “हाँ, मित्र!”

"बहुत समय बाद, अंततः, मैंने परिनिर्वाण के ब्राह्मण को देखा, वे भिक्षु जो सुख-सुविधाओं से रहित हैं और संसार के प्रति अपने आसक्ति को त्याग देते हैं।"

186 · जिसके पास “यह मेरा है” या दूसरों का भी नहीं है, उसे पकड़ने के लिए कुछ नहीं मिलता, और वह “मेरा कुछ भी नहीं है” पर शोक नहीं करता।

“जिसके पास ‘यह मेरा है’ या यहाँ तक कि दूसरों का भी नहीं है”: “कोई भी” अरहंत है, जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। उसके लिए, चाहे वह भौतिकता हो, भावना हो, विचार हो, व्यवहार हो, चेतना हो, आदि कुछ भी हो, “यह मेरा है, या यह किसी और का है”। पकड़े जाना, जकड़ा जाना, आसक्त होना, धारण किया जाना, लिया जाना और विश्वास किया जाना, ये सब उसके लिए अस्तित्वहीन हैं, अज्ञात हैं, अज्ञात हैं, विच्छेदित हैं...

भगवान बुद्ध ने कहा [SN.12.37]: “भिक्षुओं! यह शरीर न तो तुम्हारा है, न ही दूसरों का, भिक्षुओं! यह पुराना कर्म है, जिसे सृजित, विचार द्वारा सृजित, और अनुभव किया जा सकता है। वहाँ, भिक्षुओं! वहाँ वे पवित्र शिष्य हैं जिन्होंने तर्क-आधारित उत्पत्ति के बारे में सुना है: 'इस प्रकार, जब यह विद्यमान होता है, तो वह होता है; जब यह उत्पन्न होता है, तो वह उत्पन्न होता है; जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह नहीं होता; जब यह विसर्जित होता है, तो दूसरा विसर्जित हो जाता है: अज्ञान कर्म की पूर्व शर्त है; कर्म ज्ञान की पूर्व शर्त है; ... (अंशित); यह संपूर्ण दुख का सार है। परन्तु यह अज्ञान के साथ लुप्त हो जाता है। यह विसर्जन के साथ विसर्जन है; यह संपूर्ण दुख समूह का विसर्जन है।'”

भगवान बुद्ध ने कहा: [सं.5.15-नि.32] “हे मोगराज, संसार को निःसंकोच देखो, सदा ध्यान से देखो। अपने आप को दृष्टि से ओझल करके, इस प्रकार मृत्यु को पार किया जा सकता है। जो इस प्रकार संसार को देखते हैं, उन्हें मृत्यु का राजा नहीं देख सकता।”

भगवान बुद्ध ने भी यही कहा है: [SN.22.33] "भिक्षुओं! जो कुछ भी तुम नहीं हो, उसे त्याग दो! यदि तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक लाभ और सुखदायी होगा। और, भिक्षुओं! जो तुम्हारा नहीं है? भिक्षुओं! जो तुम्हारा नहीं है, उसे जाने दो! उसे जाने दो, वह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक लाभ और सुखदायी होगा; स्वीकार करो..., सोचो..., करो..., यदि वे तुम्हें नहीं जानते, तो उसे जाने दो! उसे जाने दो...।"

भिक्षुओं! क्या आप सोचते हैं कि इस जंगल में लोग घास, ईंधन की लकड़ी, टहनियाँ, पत्ते ले जाएँगे, जलाएँगे या जो चाहें करेंगे? आप ऐसा सोचेंगे: 'लोग हमें ले जाते हैं, जलाते हैं या जो चाहें करते हैं?' 'नहीं, हे महान पुण्य! इसका क्या कारण है? हे महान पुण्य! क्योंकि यह मैं नहीं हूँ, न ही यह मेरा है।' 'इसी प्रकार, भिक्षुओं! जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो! उसे दान कर दो, ... और, भिक्षुओं! जो तुम्हारा नहीं है? ....' यह भी कहा जाता है:

“यह विशुद्ध रूप से धर्मों का उद्भव है, विशुद्ध रूप से कर्मों की निरंतरता है। जो इसे सत्यनिष्ठा से देखते हैं, ग्राम प्रधान, उन्हें कोई भय नहीं होता। संसार एक ही घास और वृक्षों से बना है; जब इसे ज्ञान से देखते हैं, तो पुनर्जन्म न होने के अलावा और कुछ नहीं मांगना चाहिए।” [थग.715-717]

वजीरा भिक्खुनी ने मारा से यह कहा: [एसएन.5.10]

“तुम ‘सभी प्राणियों’ जैसी कल्पना क्यों करते हो? राक्षस! क्या यही तुम्हारा दुष्ट विचार है? यह तो अनेक कर्मों का साधारण संकलन है, और यहाँ किसी भी सजीव प्राणी का पता नहीं चला है। जैसे भागों के समूह को रथ कहा जाता है, वैसे ही जब समूह होते हैं, तो ‘सभी प्राणियों’ की पहचान हो जाती है। केवल दुख की उत्पत्ति होती है, दुख का अस्तित्व और उसका अंत होता है; दुख के सिवा कुछ भी उत्पन्न नहीं होता, और दुख के सिवा कुछ भी नष्ट नहीं होता।”

भगवान बुद्ध ने यह भी कहा: [SN.35.246] “इसी प्रकार, भिक्षुओं! भिक्षु शारीरिकता की खोज तब तक करते हैं जब तक कि शारीरिकता के सभी रुचिकर स्थान उनकी पहुँच में न आ जाएँ; भावना..., चिंतन..., कर्म..., चेतना की खोज तब तक करते हैं जब तक कि चेतना के सभी रुचिकर स्थान प्राप्त न हो जाएँ, जब वह शारीरिकता की खोज करता है, जब तक कि सभी भावना..., चिंतन..., कर्म..., ज्ञान की खोज तब तक करते हैं जब तक कि चेतना के सभी रुचिकर स्थान समयबद्ध न हो जाएँ, जहाँ भी उसके लिए 'मैं', या 'मेरा' या 'मैं हूँ' का अस्तित्व नहीं रह जाता।”

आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे महानुभाव! 'संसार शून्य है, संसार शून्य है' कहे जाने को किस स्थिति को 'संसार शून्य है' कहा जाता है?” “आनंद! क्योंकि मैं या मेरा स्वरूप शून्य है, इसीलिए इसे 'संसार शून्य है' कहा जाता है।” आनंद! मुझमें या मेरे भीतर क्या शून्य है? आनंद! मुझमें या मेरे भीतर आँखें शून्य हैं, मेरे रूप शून्य हैं, और आँखें शून्यता हैं, और नेत्र संपर्क शून्यता है, अर्थात्, नेत्र संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी चीज़ या तो सुख है, या दुख है, या अप्रिय है या अप्रिय नहीं है, वह शून्यता है। कान शून्य हैं..., ध्वनि शून्य है..., नाक शून्य है..., गंध शून्य है..., जीभ शून्य है..., स्वाद शून्य है..., शरीर शून्य है..., स्पर्श शून्य है..., मन शून्य है..., धम्म शून्यता है..., चेतना शून्यता है..., चेतना शून्यता है, अर्थात्, मानसिक स्पर्श से उत्पन्न होने वाली हर चीज़, चाहे वह सुख हो, दुख हो, या दुख न हो या अप्रिय हो, वह भी मुझे या मेरे अस्तित्व को शून्य मानना है। आनंद! क्योंकि मैं या मेरा अस्तित्व शून्यता है, इसलिए इसे 'संसार शून्य है' कहा जाता है।

“उसमें ‘मैं जो हूँ’ से चिपके रहने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती”: “मैं चिपका हुआ हूँ,” मुझसे चिपके रहने के दो प्रकार हैं: ... प्यास के आत्म-पकड़ का त्याग करने के बाद, ...वही है जिसमें आत्म-पकड़ का पता नहीं चला या पाया गया, वे जो नहीं पहुँचे, वे जिन्होंने ग्रहण नहीं किया।

“वह इस बात पर शोक नहीं करता कि 'मेरा कुछ नहीं है'”: वह उन चीजों के लिए शोक नहीं करता जो बदल गई हैं, ...

187 · जो ईर्ष्यालु नहीं हैं, जो लालच का पालन नहीं करते, जो विचलित नहीं होते, सब कुछ में समान हैं, मैं उसे लाभ कहता हूँ, जब अविचल के बारे में पूछा जाता है।

“ईर्ष्यालु, लोभरहित, अविचलित और सर्वत्र समतुल्य”: ईर्ष्या क्या है? ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “लोभ नहीं है,” ....

“अविचलित, सर्वत्र समतुल्य”: अशांति...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)। “सभी स्थानों में समतुल्य,” सब कुछ बारह स्थानों कहलाता है: .... क्योंकि भीतर और बाहर की इच्छा और लोभ का नाश हो गया है, ..., यह स्थिति जो सब कुछ है, त्याग दी गई है, थूक दी गई है, मुक्त कर दी गई है, काट दी गई है, अलग कर दी गई है। क्योंकि प्रेम और दृष्टि की प्यास और अहंकार का नाश हो गया है, ..., उसे सर्वत्र समतुल्य कहा जाता है। वह सभी चीजों में ऐसा ही है, तटस्थ और शांत।

“जब मुझसे अविचल व्यक्ति के बारे में पूछा जाता है, तो मैं इसे लाभ कहता हूँ”: जब मुझसे अविचल व्यक्ति के बारे में प्रश्न पूछा जाता है; पूछताछ की जाती है; अनुरोध किया जाता है; तो मैं चार लाभों के बारे में बात करता हूँ: वह विचलित नहीं होता, हर चीज में समतुल्य होता है, मैं बताता हूँ, मैं समझाता हूँ...।

188 · जो विचलित नहीं होता, जो जानता है, वह कुछ नहीं करता, अपने प्रयासों से मुक्त होकर, वह हर जगह स्थिरता देख सकता है।

"जो विचलित नहीं होता, जो जानता है": विचलित होना... विचलित न होने की अवस्था में भी, वह उसे पाकर विचलित नहीं होता; (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "जो जानता है," वह जानता है, ..., और भेद करता है। "सभी कर्म क्षणभंगुर हैं": ....

"कुछ करने को नहीं है": कर्मों को आशीर्वाद, अपराह और अटल कर्म कहा जाता है। क्योंकि आशीर्वाद, अपराह और अटल कर्म समाप्त हो चुके हैं, ...

"प्रयासों (कठिनाई) से बच निकलना": प्रयासों को आशीर्वाद, अपुष्टि आदि कहा जाता है...

"वह हर जगह स्थिरता देखता है": लोभ भय का जनक है, क्रोध भय का जनक है, अज्ञान भय का जनक है... (अधूरा अंश), प्रदूषण भय का जनक है। लोभ और भय के जनक को त्याग दिया गया है... वह हर जगह स्थिरता देखता है, हर जगह भय नहीं, हर जगह आपदा नहीं, हर जगह खतरा नहीं, और हर जगह उत्पीड़न नहीं।

189 · उन्हीं में, उन्हीं में, और उन्हीं में श्रेष्ठ, मुनि यह नहीं कहते कि वह है; वह मौन पुरुष है, वह पहले से ही कंजूसी से मुक्त है; वह न लेता है और न ही मना करता है। [इस प्रकार, भगवान बुद्ध ने कहा।]

"समानों के बीच, निम्न लोगों के बीच और श्रेष्ठ लोगों के बीच, मुनि नहीं कहते": "मुनि," ... "मैं विजेता हूँ," या "मैं समान हूँ," या "मैं निम्न हूँ," वह नहीं कहते, नहीं बोलते, नहीं बात करते, नहीं समझाते, नहीं कहते।

"वह मौन है, वह जो कंजूसी से मुक्त हो चुका है": "मौन," .... "वह कंजूसी से मुक्त हो चुका है"। कंजूसी पाँच प्रकार की होती है: ....

"वह न तो लेता है, न ही इनकार करता है। [इस प्रकार भगवान (ने कहा)]": "वह नहीं लेता," वह नहीं लेता, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। वह नहीं लेता। "इनकार नहीं करता," ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "भगवान," ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 1.16

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

16. सारिपुत्त

190 · [आदरणीय सारिपुत्त ने ऐसा कहा:] मैंने पहले कभी नहीं देखा था, न ही किसी ने इसके बारे में सुना था; ऐसे वाक्पटु शब्दों के स्वामी, तुषित स्वर्ग से आए स्वामी।

"मैंने पहले कभी नहीं देखा": इससे पहले मैंने भगवान को इन आँखों और इस स्वरूप में कभी नहीं देखा था: जब भगवान तैंतीस दिनों के लोक में पीले रंग के वृक्ष के नीचे विराजमान थे, जब मैं वर्षा ऋतु में वहाँ बसा, तब वे देवताओं के एक समूह से घिरे हुए थे और रत्नजड़ित सीढ़ी से बिखरे हुए शहर में उतरे। यह दृश्य पहले कभी नहीं देखा गया था।

"[इस आदरणीय सारिपुत्त की तरह]": "इस तरह," वाक्य का निरंतरता; वाक्य का जुड़ाव; वाक्य का समापन; शब्दों का संयोजन; शब्दों का संबंध; यह वाक्यों का क्रम है, जो "इस तरह" है। "आदरणीय," यह प्रेम, आदर और आज्ञाकारिता की भाषा है। "सारिपुत्त," नाम, उपाधि, सुरक्षा, उपनाम, शब्द, वाक्यांश, संबोधन।

"या किसी ने नहीं सुना": "नहीं" नकारात्मक है। "या," वाक्य का निरंतरता; वाक्य का संबंध; .... "कोई भी," क्षत्रिय, या ब्राह्मण, या वेस, या शुद्ध, या गृहस्थ, या भिक्षु, या स्वर्ग, या मनुष्य।

"ऐसे बुद्धिमान (अद्‌भुत) शब्दों के उस्ताद": "ऐसे बुद्धिमान शब्द, अच्छे शब्द, प्यारे शब्द, सुखद शब्द, (जैसे) प्यारे पक्षियों की मधुर गर्जना। इसके अलावा, भगवान बुद्ध के मुख से निकलने वाली वाणी में आठ (विशेषताएं) हैं: स्पष्ट, ज्ञानवर्धक, सुंदर, सुरुचिपूर्ण, संक्षिप्त, शांत, गहन और भव्य। भगवान बुद्ध अपनी वाणी से भीड़ को सजग करते हैं, और उनकी वाणी भीड़ से बाहर नहीं होती, और भगवान बुद्ध ब्रह्मा की वाणी के समान हैं, एक सुंदर पक्षी की ध्वनि के समान हैं।"

"हे स्वामी," भगवान बुद्ध स्वामी हैं, कारवां के नेता हैं, जैसे कारवां का नेता सभी प्राणियों को खतरे के क्षेत्र से पार कराता है: उन्हें चोरों, जानवरों, भुखमरी, पानी की कमी के खतरे से पार कराता है, उन्हें पार कराता है, उन्हें पार कराता है, उन्हें स्थिरता के अंतिम स्थान तक पहुंचाता है। उसी प्रकार, भगवान बुद्ध कारवां के नेता हैं, जो सभी प्राणियों को खतरे के क्षेत्र से पार करा सकते हैं: उन्हें जीवन, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, पीड़ा, चिंता, निराशा, लोभ, क्रोध, अज्ञान, अहंकार, दृष्टि (विचार), प्रदूषण, बुराई के खतरे के क्षेत्र से पार कराता है; लोभ के घने जंगल से, क्रोध के जंगल से, (कुछ भाग हटा दिया गया है); वह उन्हें बाहर निकालता है, उन्हें पार कराता है, उन्हें स्थिरता, निर्जीवता और निर्वाण तक पहुंचाता है।

या यूं कहें कि भगवान ही मार्गदर्शक, मध्यस्थ, दिलासा देने वाले, सूचना देने वाले, इसे सोच-समझकर करने वाले, इसे देखने वाले और इसे स्पष्ट करने वाले हैं।

या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के संस्थापक, अजन्मे मार्ग के निर्माता, अघोषित उपदेशक हैं; वे मार्ग को जानने वाले, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के परिचित हैं, और उनके शिष्य वर्तमान में मार्ग पर चल रहे हैं और भविष्य में भी मार्ग के स्वामी होंगे।

"तुषिता स्वर्ग से भगवान": "तुषिता स्वर्ग से भगवान की मृत्यु के बाद, वे बुद्धि और ज्ञान के साथ गर्भ में प्रवेश कर गए।"

या, स्वर्ग के देवता संतुष्ट कहलाते हैं, वे प्रसन्न, सुखी, प्रसन्न, आनंदित और प्रसन्न हैं, जो जन्म से ही स्वर्ग में आए हैं। या, अरहंत संतुष्ट कहलाते हैं, ...(अस्पष्ट), वे जो पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं, वे स्वामी जो अरहंत बने। हे गुरुओं! भगवान बुद्ध ही गुरु हैं, समूह के गुरु ही गुरु हैं, समूह के स्वामी ही गुरु हैं, समूह के संरक्षक ही गुरु हैं, समूह को शिक्षा देने वाले गुरु ही गुरु हैं, समूह को उपदेश देने वाले गुरु ही गुरु हैं, निडर होकर समूह से मिलने गए गुरु ही गुरु हैं, समूह जिसे सुनना, समझना और हृदय से जानना चाहता है, उसे गुरु ही गुरु हैं, समूह के बुरे दिखने पर उसे अच्छाई स्थापित करने वाले गुरु ही गुरु हैं, भिक्षुओं के गुरु हैं, भिक्षुणियों के गुरु हैं, पुरुष गृहस्थ भक्तों के गुरु हैं, स्त्री गृहस्थ भक्तों के गुरु हैं, राजाओं के गुरु हैं, क्षत्रियों के गुरु हैं, ब्राह्मणों के गुरु हैं, व्यषियों के गुरु हैं, शुद्धों के गुरु हैं, स्वर्ग के गुरु हैं, ब्रह्मा के गुरु हैं, संघ के गुरु हैं, और सभी के गुरु हैं। समुदाय। "आओ," आ गया, पूरी तरह से आ गया, बिखरे हुए शहर में।

191 · देवताओं सहित संसार, यदि कोई इसे देखता है, तो वह सभी अंधकार को दूर भगाता है और अकेले ही आनंद प्राप्त करता है।

"देवताओं सहित संसार": देवताओं, राक्षसों, ब्रह्मा, समण और ब्राह्मणों सहित सभी पीढ़ियों, स्वर्ग और मनुष्यों सहित संसार।

"यदि कोई आँखों से देखे": जब भगवान बुद्ध तैंतीस देवताओं के लोक में मूंगा वृक्ष के नीचे बैठकर धर्म का उपदेश दे रहे थे, तो जैसा देवताओं ने देखा, वैसा ही मनुष्यों ने देखा; जैसा मनुष्यों को दिखाई दिया, वैसा ही देवताओं को दिखाई दिया। या फिर, जैसे कुछ समण और ब्राह्मण गुरु, जो गुरु नहीं हैं, उन्हें ऐसा ही समझा जाता है। जो लोग कारावास के आदी हो चुके हैं; जो चुप नहीं रहते, उन्हें चुप माना जाता है; जो चुप नहीं रहते, उन्हें निर्वाण प्राप्त माना जाता है; जो निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाए हैं, उन्हें निर्वाण प्राप्त मान लिया जाता है, इत्यादि।

“मिट्टी से बनी नकली बालियों की तरह, सोने से ढका हुआ आधा पैसा तांबे का, दुनिया भर के भ्रमण और सांचों से ढका हुआ, भीतर से शुद्ध नहीं, बाहर से बहुत चमकदार।” [SN.3.11]

भगवान बुद्ध ऐसे नहीं दिखते। भगवान बुद्ध को सत्य, सच्चाई, तथ्य, शुद्धता, यथार्थता और वास्तविकता से परिपूर्ण माना जाता है; जो मौन रहते हैं उन्हें मौन ही माना जाता है, और जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं उन्हें निर्वाण प्राप्त ही माना जाता है। बुद्ध और भगवान बुद्ध व्यवहारों का सृजन नहीं करते, बल्कि आकांक्षाओं से भरे लोगों का सृजन करते हैं।

या फिर, भगवान की वाणी स्पष्ट है, उनकी स्तुति की आवाज की प्रशंसा है, चाहे वह नाग का राज्य हो, स्वर्ण-पंख वाले पक्षी का राज्य हो, यक्ष का राज्य हो, असुर का राज्य हो, गंधर्व का राज्य हो, राजा का राज्य हो, इंदा का राज्य हो, ब्रह्मा का राज्य हो, देवताओं का राज्य हो, इत्यादि।

या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध के पास दस शक्तियाँ, चार निर्भीकताएँ, चार अचूक समाधान, छह महाज्ञान, शक्तियाँ, छह बुद्ध धर्म (चाहि बुद्धधम्मेहि), प्रतिष्ठा, बल, सद्गुण, जीवन शक्ति और बुद्धि है। उन्होंने सब कुछ देखा और जाना है।

“दूर से अच्छे लोग हिमालय की तरह दिखाई देते हैं, बुरे लोग यहाँ रात में फेंके गए तीरों की तरह नहीं दिखते।” [Dph.21, 304]

“आँखें,” भगवान पाँच आँखों को 'जिनके पास आँखें हैं' के रूप में मानते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“सारा अंधकार दूर भगाने के बाद”: लोभ का अंधकार, घृणा का अंधकार, अज्ञान का अंधकार, अहंकार का अंधकार, दृष्टिहीनता का अंधकार, अपवित्रता का अंधकार, बुरे कर्मों का अंधकार, अंधत्व का अंधकार, दृष्टिहीनता का अंधकार, बुद्धिहीनता का अंधकार, कष्टदायी गुट, वह सब जो निर्वाण की ओर नहीं ले जाता; उसे दूर करने, हटाने, त्यागने, त्यागने, भगाने, समाप्त करने और उसे अस्तित्वहीन कर देने के बाद।

“अकेले आनंद प्राप्त करना”: “अकेले”, भगवान अकेले ही भिक्षु बन गए हैं, बिना साथी के धर्म ही अकेला है, प्रेम की प्यास का धर्म ही अकेला है, “हमेशा लोभ से दूर रहना” अकेला है, “हमेशा क्रोध से दूर रहना” अकेला है, “हमेशा हृदय से दूर रहना” का अर्थ है अकेला, “हमेशा अपवित्रता से मुक्त रहना” का अर्थ है अकेला, “बिना मोड़ वाले मार्ग को पार कर लिया है” का अर्थ है अकेला, और “एकल ज्ञान प्राप्त कर लिया है” का अर्थ है अकेला।

भगवान बुद्ध अकेले ही भिक्षु कैसे बने? जब भगवान बुद्ध युवा थे, तब वे काले बालों वाले युवक थे और यौवन के सुख से परिपूर्ण थे। जीवन के आरंभ में, माता-पिता की अनिच्छा के बावजूद, वे आँसू बहाते, आहें भरते हुए भी, अपने रिश्तेदारों को त्याग देते हैं, घर के सभी बंधनों को तोड़ देते हैं, अपने बच्चों, पत्नी, परिवार, मित्र, भंडार आदि के बंधनों को तोड़ देते हैं, बाल मुंडवाकर वस्त्र धारण कर लेते हैं और घर से निकलकर एक निर्जन भिक्षु के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं, संपत्तिहीन अवस्था में चले जाते हैं, फिर अकेले ही जीवन व्यतीत करते हैं, कर्म करते हैं, रक्षा करते हैं और जीवित रहते हैं।

भगवान बुद्ध अकेले बिना साथी के कैसे रह सकते हैं? जब वे ऐसे भिक्षु थे, तब वे जंगलों, घने वनों और सीमावर्ती आवासों (बैठने के स्थानों) में अकेले रहते थे: शांत, वातावरण से दूर, अकेले रहते थे, अकेले बैठने के लिए उपयुक्त; वे अकेले चलते, अकेले खड़े होते, अकेले बैठते, अकेले लेटते, भिक्षा मांगने के लिए अकेले गाँव जाते, अकेले आगे बढ़ते, अकेले लौटते, शांत स्थान पर अकेले बैठते, अकेले कर्म करते, अकेले रहते, चलते, आगे बढ़ते, पहरा देते और अकेले ही अपना जीवन यापन करते।

भगवान बुद्ध प्यासी प्रेम की पीड़ा से अकेले कैसे निपट सकते हैं? वे इतने अकेले और बिना साथी के थे, जब वे अनिच्छा, उत्साह और स्वयं के प्रयासों से जीवन व्यतीत कर रहे थे। नेरांजरा नदी के किनारे बोधि वृक्ष के नीचे, उन्होंने परिश्रम और प्रयास से सेना सहित राक्षस (मारा), दुष्ट दानव और उनके रिश्तेदारों का नाश किया; उसके बाद, उन्होंने जाल में फँसे, तीव्र गति से बहने वाले, उलझे हुए प्यासे प्रेम को त्याग दिया, भगा दिया, समाप्त कर दिया और उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया।

“जिन लोगों का साथी प्यासी प्रेम होता है, वे लंबे समय तक पुनर्जन्म लेते हैं, ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, अन्य अवस्थाओं में पहुँच जाते हैं, पुनर्जन्म से परे नहीं जा पाते। इस प्रकार के कष्ट को जानकर: लालसा ही दुख का मूल है, प्यासी प्रेम से विमुख होकर, बिना कुछ ग्रहण किए, भिक्षुओं को सचेतन होकर आगे बढ़ना चाहिए।” [इत.15/स्न.3.12,745-746]

भगवान बुद्ध "सदालोभ से दूर" रहने की अवस्था में अकेले कैसे हो सकते हैं? लोभ का त्याग करना ही एकांत है, क्रोध का त्याग करना ही एकांत है, भ्रम का त्याग करना ही एकांत है, अपवित्रता का त्याग करना ही एकांत है।

भगवान बुद्ध, जिन्होंने “बिना मोड़ वाले मार्ग को पार किया है”, अकेले कैसे हो सकते हैं? बिना मोड़ वाले मार्ग को चार पवित्र मार्ग कहा जाता है... (अस्पष्ट) आठ पवित्र मार्ग।

“जो जीवन की मृत्यु (पुनर्जन्म) को देखता है, जो करुणामय है, जो बिना मोड़ वाले मार्ग को जानता है, इसी मार्ग से उन्होंने अतीत में बाढ़ पार की, भविष्य में भी पार करेंगे, और वर्तमान में भी पार कर रहे हैं।” [SN.47.18]

भगवान बुद्ध की “एकमात्र ज्ञान प्राप्ति” का अर्थ अकेले रहना कैसे है? ज्ञान प्राप्ति को बुद्धि, बुद्धि का मूल, बुद्धि की शक्ति, चयन का ज्ञान, अन्वेषण, विपश्यना, चारों लोकों का सही दृष्टिकोण कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने यह अनुभव किया कि “सभी कर्म अनित्य हैं,” ...“धर्मों का प्रत्येक संग्रह नष्ट हो जाता है।” या, जो कुछ भी अनुभव किया जाना चाहिए, जिसके प्रति सचेत होना चाहिए, जिसे जागृत किया जाना चाहिए, जिसे प्रबुद्ध किया जाना चाहिए, जिसे बोध किया जाना चाहिए, जिसे स्पर्श किया जाना चाहिए, जिसकी गवाही दी जानी चाहिए, वह सब उस चेतना, जागृति, ज्ञान प्राप्ति, उपलब्धि, पहुंच और गवाही के प्रति सचेत है।

“आनंद प्राप्त करने के लिए,” “आनंद,” संयम का आनंद, वियोग का आनंद, मौन का आनंद, ज्ञानोदय का आनंद, वह प्राप्त करता है, पहुँचता है, हासिल करता है, और गवाही देता है।

192 · जो प्रबुद्ध है, जो आश्रित नहीं है, जो ऐसा है, जो छल नहीं करता, मैं भगवान के पास आया हूँ, यहाँ मौजूद कई बंधे हुए लोगों में से जरूरतमंदों की ओर से एक प्रश्न लेकर।

“जो प्रबुद्ध है, जो किसी पर निर्भर नहीं है, जो ऐसा है”: “प्रबुद्ध” वह है जो संसार में प्रतिष्ठित है, जो एकाकी है, और जिसका कोई गुरु नहीं है, जो अब तक अनसुने धम्म से प्रबुद्ध है। सत्य सभी ज्ञान की अवस्थाओं तक पहुँचने, शक्ति में स्वतंत्रता की अवस्था तक पहुँचने के लिए विद्यमान है। “प्रबुद्ध” का क्या अर्थ है? “जो सत्य को अनुभव करता है” वह प्रबुद्ध है, “जीव को जागरूक करता है”..., सर्वज्ञान की अवस्था..., सर्वदृष्टि की अवस्था..., और जो दूसरों द्वारा निर्देशित नहीं है, वह प्रबुद्ध है। जो प्रवाहित हो चुके हैं वे प्रबुद्ध हैं, जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर दिया है उन्हें प्रबुद्ध कहा जाता है, जिनके कोई कष्ट नहीं हैं..., जो हमेशा लोभ से मुक्त रहे हैं वे प्रबुद्ध हैं, और जो हमेशा घृणा से मुक्त रहे हैं वे भी प्रबुद्ध हैं। ज्ञानी व्यक्ति के लिए, "जो सदा अज्ञान से दूर रहा हो" वही ज्ञानी व्यक्ति है, "जो सदा अपवित्रता से मुक्त रहा हो"..., वह जिसने बिना चौराहे के मार्ग पार किया हो..., और वह जो बिना उपदेश दिए स्वयं ही ज्ञानी हो गया हो। ज्ञानी व्यक्ति के लिए, मृत्यु से मुक्त अवस्था ही ज्ञानी व्यक्ति है, और ज्ञानी अवस्था ही ज्ञानी व्यक्ति है। "ज्ञानी व्यक्ति" यह नाम न तो माता ने दिया है, न पिता ने, न भाई-बहनों ने, न मित्रों ने, न ब्राह्मणों ने; न स्वर्ग ने, यही परम मुक्ति है; बुद्ध, भगवान बुद्ध और बोधि वृक्ष के ज्ञान और साक्ष्य को समस्त ज्ञान और बुद्धि के साथ प्राप्त करना ही ज्ञानी व्यक्ति है।

“निर्भर” के लिए दो प्रकार की निर्भरता होती है: तृष्णा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता। तृष्णा की निर्भरता क्या है? सभी को सीमाएँ (क्षेत्र के रूप में), एक दायरा, एक सीमा कहा जाता है, जिसे ग्रहण किया जाना है, जिसे अपना माना जाना है: यह मेरा है, यह मेरा है, इसका इतना भाग मेरा है, और यह दायरा मेरा है; मेरा रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, जमीन पर पड़ी वस्तुएँ, वस्त्र, दासियाँ और पुरुष सेवक, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गायें और घोड़े, खच्चर, खेत, घर, सोना, सोने के सिक्के, गाँव, कस्बे, राजधानियाँ, स्थान, खजाने, गोदाम, सारी भूमि, क्योंकि वे प्यासे हैं और उन्हें अपना मानते हैं, सभी एक सौ आठ प्यासी प्रवृत्तियाँ [AN.4.199], यही तृष्णा पर निर्भरता है।

दृष्टियों को नकारना क्या है? शरीर की बीस दृष्टियाँ हैं, दस बुरी दृष्टियाँ हैं, दस पार्श्व दृष्टियाँ हैं, इस प्रकार की सभी दृष्टियाँ बुरी दृष्टियाँ हैं, जंगल (उलझी हुई) दृष्टियाँ हैं, रेगिस्तान (बंजर) दृष्टियाँ हैं, विकृत दृष्टियाँ हैं, विचलित दृष्टियाँ हैं; बंधी हुई दृष्टि से आसक्ति, स्वीकृति, पकड़, जकड़न, वह स्थान जहाँ बुरा मार्ग, बुरा स्वभाव, बाहरी मार्ग निर्भर करते हैं, विपरियेस की जकड़न, विपरीत (विपरीत) की जकड़न, विपल्लास (विपरीत), बुराई की पकड़, बुराई की जकड़न, असत्य में सत्य (देखने) की पकड़, ये सभी बासठ बुरी दृष्टियों की पहुँच में आती हैं, जो दृष्टि को नकारना है।

बुद्ध और भगवान के लिए, तृप्ति की निर्भरता समाप्त हो गई है, दृष्टि की निर्भरता समाप्त हो गई है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"जो लोग ऐसे हैं," भगवान पांच पहलुओं से ऐसे ही हैं: जो संतुष्ट या असंतुष्ट हैं वे ऐसे ही हैं, जो त्यागे गए हैं वे ऐसे ही हैं, जो इससे गुजर चुके हैं वे ऐसे ही हैं, और "मुक्त" लोग ऐसे ही हैं।

भगवान बुद्ध संतुष्ट हों या असंतुष्ट, वे कैसे ऐसे हो सकते हैं? वे प्राप्त करने में भी वैसे ही हैं; न प्राप्त करने में भी वैसे ही हैं; प्रतिष्ठा प्राप्त करने में भी वैसे ही हैं; प्रतिष्ठा न होने में भी वैसे ही हैं; प्रशंसा और निंदा में भी वैसे ही हैं; सुख और दुख में भी वैसे ही हैं। कुछ लोग कलाई पर मसाला लगाते हैं, और कुछ लोग कुल्हाड़ी से काम करते हैं: उन्हें ऐसा होने में कोई लोभ नहीं है; उन्हें ऐसा होने में कोई घृणा नहीं है; उन्होंने लोभ और घृणा का त्याग कर दिया है; उन्होंने विजय और पराजय पर विजय प्राप्त कर ली है; उन्होंने आज्ञापालन और विरोध दोनों को पार कर लिया है।

भगवान बुद्ध का "त्याग" किस प्रकार हुआ? भगवान बुद्ध का लोभ त्याग दिया गया, थूक दिया गया, मुक्त कर दिया गया, काट दिया गया और विरक्त कर दिया गया; ...क्रोध..., अज्ञान, द्वेष, बुराई छिपाना, प्रभुत्व, कंजूसी, पाखंड, धूर्तता, हठ, वासना, अहंकार, घमंड, आलस्य, सुस्ती, सभी प्रकार की अशुद्धियाँ, सभी बुराइयाँ, सभी कष्ट, सभी प्रकार की चिड़चिड़ी गर्मी (यातना), सभी प्रकार की चिड़चिड़ाहट, सभी बुरे कर्म त्याग दिए गए, थूक दिए गए, मुक्त कर दिए गए, त्याग दिए गए और विरक्त कर दिए गए।

भगवान बुद्ध को किस प्रकार "पार कर लिया गया" है? सांसारिक इच्छाओं की उग्र धाराएँ पार हो चुकी हैं; अस्तित्व की बाढ़ें पार हो चुकी हैं; दृष्टि की बाढ़ें पार हो चुकी हैं; अज्ञान की उग्र धाराएँ पार हो चुकी हैं; सभी चक्रों को पार कर लिया है, सभी पार कर लिए हैं, सभी बाधाओं को पार कर लिया है, सभी पर विजय प्राप्त कर ली है; वही अवतरित हुआ है, वही अभ्यासी है, वही यात्रा पूर्ण कर चुका है, वही दिशा तक पहुँच गया है, वही अंत तक पहुँच गया है, वही ब्रह्म की रक्षा करता है, वही सर्वोच्च दृष्टि तक पहुँच गया है, वही मार्ग का अभ्यास करता है, वही अशुद्धियों को दूर करता है, वही अविचल है, वही विनाश का साक्षी है; उसके लिए दुख ज्ञात है, उसने संगति का त्याग कर दिया है, उसने मार्ग का अभ्यास किया है, विनाश का साक्षी है; वही ज्ञात सिद्ध हुआ है, ज्ञान ज्ञात हो सकता है; जिसने त्याग का वचन त्याग दिया है, जिसने अभ्यास का वचन ग्रहण किया है, और जिसने गवाही दी है। वह है जिसकी बाधा दूर हो गई है, जिसकी खाई भर गई है, जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया है, जिसका कोई बंधन नहीं है, जिसका पवित्र ध्वज गिर गया है, जिसका बोझ हटा दिया गया है, जो अलग हो गया है, जिसकी पाँच शाखाएँ काट दी गई हैं, और जिसकी छह शाखाएँ हैं। जिनके एक संरक्षक और चार सहारे हैं, वे वे हैं जिनके सत्य दूर हो गए हैं, जो त्याग और पूर्ण क्षय की तलाश में हैं, जिनके कोई अशुद्ध इरादे नहीं हैं, जिन्होंने अपने जीवन को शांत कर लिया है, जो दयालु और मुक्त हैं, जो ज्ञान से मुक्त हैं; सर्वोच्च पुरुष, सर्वोच्च पुरुष, जिसने सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर ली है, न तो रचना करता है और न ही विघटन करता है, न ही संचय करके खड़ा होता है; न तो त्यागता है और न ही आसक्ति रखता है, बल्कि त्यागने के बाद खड़ा रहता है; न तो निथारता है और न ही संचय करता है, निथारने के बाद खड़ा रहता है; न बुझाने वाला, न जलने वाला, बुझने के बाद स्थिर रहने वाला [SN.22.79], वह व्यक्ति जो उपदेशों को सीखने की अवस्था में नहीं है, और जो ज्ञानहीन निवास की अवस्था में है, वह निवासी जो बिना ज्ञान के ज्ञान की अवस्था में है, वह निवासी जो ज्ञान की प्रचुरता के बावजूद अज्ञान की अवस्था में है, वह निवासी जो बिना ज्ञान के मुक्ति की अवस्था में है, ज्ञान की अवस्था में है, और सत्य की पूर्णता और अंतर्दृष्टि के बाद स्थिर रहने वाला है, वे जो विक्षोभ (लालसा) से मुक्त हो चुके हैं, वे जो अशुद्धता की आग बुझने के बाद स्थिर रहते हैं, वे जो अब बिल्कुल नहीं आते, वे जिन्होंने (विजय) प्राप्त कर ली है, वे जो उपयोग से मुक्त हैं, करुणा के शुद्ध निवासी, दया के शुद्ध निवासी, आनंद के शुद्ध निवासी, शांति के शुद्ध निवासी, सभी के शुद्ध निवासी, समानता की अवस्था में, सर्वव्यापी रूप से शुद्ध निवासी, वे जो मुक्त हो चुके हैं, वे जो परिपूर्ण हो चुके हैं, वे जो परम (सीमा) में हैं, वे जो संसार में हैं।और जो परम सत्ता में निवास करते हैं, जो अंतिम जन्म स्थान पर निवास करते हैं, जो अंतिम पुनर्जन्म में निवास करते हैं, जो जीवन के अंतिम छोर पर निवास करते हैं (अस्तित्व के अंत में निवास करते हैं, पुनर्जन्म के अंत में निवास करते हैं, अंतिम शरीर में निवास करते हैं, अंतिम चक्र में निवास करते हैं, अंतिम यात्रा में निवास करते हैं, अंत में सर्वोच्च सत्ता में निवास करते हैं), अंतिम सभा (शरीर) में निवास करते हैं, जो अंतिम शरीर धारण करने वाले देवता हैं।

"यह उनका अंतिम है, यह अंतिम मिलन (शरीर) है, जीवन और मृत्यु का चक्र, उनके पुनर्जन्म के बिना।"

भगवान बुद्ध का हृदय इस प्रकार कैसे "मुक्त" हुआ? भगवान बुद्ध का हृदय लोभ से मुक्त, निर्मल और परोपकारी हो गया है; ...क्रोध से मुक्त...; (अंशित)...

भगवान बुद्ध का वर्णन किस प्रकार किया गया है? भगवान बुद्ध ने "नियमों में उपदेश धारण करने वाले" का वर्णन इसी प्रकार किया है; "विश्वासियों" का वर्णन भी इसी प्रकार किया है; "जो जीवन शक्ति से परिपूर्ण" हैं... ...मन में विचार रखने वाले... ...एकाग्रचित्त, ज्ञान से परिपूर्ण, "तीन मन वाले", "छह अलौकिक शक्तियों वाले", "दस शक्तियों में दस शक्तियाँ रखने वाले"...; यही भगवान बुद्ध का ऐसा स्वरूप है। प्रबुद्ध, जो आश्रित नहीं, ऐसा ही व्यक्ति।

"जो भगवान बुद्ध के पास आते हैं, वे छल-कपट रहित हैं": "छल-कपट रहित", छल-कपट के तीन प्रकार: ...(विलंबित, पिछले भाग देखें)। बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए, संसाधनों का उपयोग करने के छल, व्यवहार के छल और लाभ के लिए इधर-उधर की बातें करने के छल, ये तीनों प्रकार के छल-कपट समाप्त हो गए हैं, शांत हो गए हैं, रुक गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं और ज्ञान की अग्नि से भस्म हो गए हैं, इसलिए बुद्ध छल-कपट रहित हैं।

"जो गुरु के पास आता है," गुरु, ...

"यहाँ, अनेक बंधुआ लोगों से संबंधित": अनेक क्षत्रियों से संबंधित, ... "बंधुआ से संबंधित," बंधुआ से संबंधित, परिचारक से संबंधित, सेवक से संबंधित, शिष्यों से संबंधित।

"जरूरतमंद सवाल लेकर आते हैं": मैं जरूरत पड़ने पर सवाल लेकर आता हूँ, मैं सवाल पूछने के लिए आता हूँ, और मैं सवाल सुनने के लिए आता हूँ। या, सवाल से जुड़ी जिज्ञासाएँ जरूरतमंद होती हैं, जो सवाल पूछना चाहते हैं, और जो सुनना चाहते हैं, उन्हें आने, संपर्क करने और मिलने की जरूरत होती है। या, जब आपके पास कोई सवाल हो, तो आप बता सकते हैं और आपके पास मेरे पूछे गए सवाल का जवाब देने का पर्याप्त कारण है, कृपया इस बोझ को उठाएँ।

193 · जब भिक्षु को निष्कासित किया जाता है, खाली आसन के निकट, या किसी वृक्ष के नीचे, किसी टीले के बीच, या किसी गुफा में,

"जब एक भिक्षु को घृणा होती है": "एक भिक्षु," एक गुणी भिक्षु, या एक विद्वान भिक्षु। "घृणा होना," जन्म से घृणा, वृद्धावस्था से घृणा, ...बीमारी, ...मृत्यु, दुःख, पीड़ा, चिंता, निराशा, नरक लोक, पशु लोक, प्रेत लोक, मानव लोक, जन्म के कष्ट में जड़े रहना, गर्भ में, जन्म में, जन्म से बंधे होने का कष्ट, ...प्रयास का कष्ट, दूसरों के प्रयासों का कष्ट; ...आँखों की बीमारी, कान की बीमारी, ...नाक..., जीभ, शरीर, सिर, बाहरी कान, मुँह, दाँत, खाँसी, साँस फूलना, बाहरी नाक, बुखार, वृद्धावस्था, पेट की बीमारी, बेहोशी, पेचिश, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, ट्यूमर, दाद, फेफड़ों की बीमारी, मिर्गी, खुजली, गठिया, खरोंच (त्वचा रोग), सूखी और फटी त्वचा, खून बहना, पित्ताशय, मधुमेह, बवासीर, चकत्ते (फोड़े), अल्सर; पित्त के कारण होने वाली बीमारी, ...थूक के कारण, ...हवा के कारण, (तीन) समूह, ऋतुओं का परिवर्तन, अनुचित मुद्रा, अचानक बीमारी, ...कर्म से उत्पन्न, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र; ...मक्खी, मच्छर, हवा, सूर्य, सांप के संपर्क में आना; ...माता का शोक, ...पिता, भाई, बहन, परिवार, संपत्ति का शोक, बीमारी का नुकसान, सद्गुण का नुकसान, दृष्टि का नुकसान; घृणा, व्यथ, चिंता और घृणा होना।

"मानवरहित सीट के करीब": जिस स्थान पर वह बैठता है उसे सीट कहा जाता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"या पेड़ के नीचे या टीले के बीच": पेड़ के नीचे का भाग पेड़ के नीचे होता है, और टीला टीले के बीच का भाग होता है। "या गुफा में": पहाड़ पहाड़ है, गुफा गुफा (कंकाल) है, और गुफा गुफा (कंकाल) है; पहाड़ के भीतरी भाग को पहाड़ की गुफा कहा जाता है।

194 · सभी प्रकार के सोने के स्थानों में कितनी भयानक (चीजें) हैं, (जिनके कारण) भिक्षु को शांत स्थान में नहीं कांपना चाहिए?

“सभी प्रकार के सोने के स्थानों में”: सभी प्रकार के स्थानों में, सभी प्रकार के, निम्न और विजयी, पवित्र और दुष्ट। घर, आवास, आधी छत वाले घर, ऊँची इमारतें, समतल घर और गुफाएँ सोने के स्थान कहलाते हैं। “कितनी भयानक (चीजें) हैं”: “कितनी,” कितनी चहचहाहटें, गर्जनाएँ, ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। या, “कितनी,” कितनी, कितनी संख्या में, किस हद तक। “भयानक”: शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, कुत्ते, भेड़िये, बाइसन, हाथी, साँप, बिच्छू, कनखजूरे, या चोर या गुंडे जो बुरे काम करते हैं या बुरे काम करने को तैयार हैं।

“(ए) भिक्षु को उन चीजों के कारण नहीं कांपना चाहिए”: “उन चीजों के कारण,” क्योंकि उसे उन भयानक (चीजों) को देखने या सुनने के बाद नहीं कांपना चाहिए, (तेज कंपन) नहीं होना चाहिए, बहुत अधिक नहीं कांपना चाहिए, डरना नहीं चाहिए, भयभीत नहीं होना चाहिए, पूरी तरह से भयभीत नहीं होना चाहिए, डरना नहीं चाहिए, कायर नहीं होना चाहिए, भयभीत नहीं होना चाहिए, डरना नहीं चाहिए, भागना नहीं चाहिए, भय से मुक्त होकर, शरीर के रोंगटे खड़े होकर निवास करना चाहिए।

“एक शांत जगह”: एक ऐसी जगह जहाँ कोई शोर न हो, एक शांत जगह, मानवीय वातावरण से दूर, एकांत में, अकेले बैठने के लिए उपयुक्त।

195 · संसार में कितने खतरे हैं, उन लोगों के लिए जो उस दिशा में नहीं गए हैं, जिनके बीच भिक्षुओं को विजय प्राप्त करनी चाहिए, सीमा पर रहते हुए?

“दुनिया में कितने खतरे हैं”: “कितने,” .... “खतरा,” दो प्रकार के खतरे हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “दुनिया में,” मानव जगत में।

“जो लोग उस दिशा में यात्रा नहीं कर चुके हैं”: “जिस दिशा में यात्रा नहीं की गई है” उसे निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, जो सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, लालसा का अंत, निर्वाण है। वह दिशा जिसमें पहले यात्रा नहीं की गई है, न कि वह दिशा जिसमें पहले यात्रा की जा चुकी है; यह लंबी यात्रा।

जैसे तेल से लदे कटोरे को किनारे तक ले जाना, ठीक वैसे ही, जो लोग पहले कभी उस दिशा में नहीं गए हैं, उन्हें अपने हृदय की रक्षा करनी चाहिए। जो लोग पहले कभी उस दिशा में नहीं गए, जो चले हैं, जो आगे बढ़े हैं।

“भिक्षुओं को उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए”: “उन,” उन संकटों पर उसे विजय प्राप्त करनी चाहिए, उन्हें पराजित करना चाहिए, उन्हें अभिभूत करना चाहिए, उनका अंत करना चाहिए, उन्हें कुचल देना चाहिए।

सीमा पर निवास: सीमा पर, किनारे पर, सीमांत पर, पहाड़ के पास, या जंगल के पास, या नदी के पास, या पानी के पास, जहाँ खेती या बुवाई नहीं होती है, मानवीय सीमाएँ, पार करने के बाद, लोग उस स्थान के पास नहीं पहुँचेंगे।

196 · कौन सी भाषा होनी चाहिए? कौन सा राज्य होना चाहिए? किस प्रकार के नियम और निषेध लागू किए जाने चाहिए, जो भिक्षु के स्वयं के प्रयास से संबंधित हों?

“भाषा कैसी होनी चाहिए?”: “भाषा किस प्रकार की होनी चाहिए, किस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए, किस प्रकार का भाव और किस प्रकार का विरोधाभास होना चाहिए।” उन्होंने वाणी की शुद्धता के बारे में पूछा। वाणी की शुद्धता क्या है? यहाँ, भिक्षु द्वारा अपने शब्दों का त्याग करने के बाद, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। ...सावधान, विवेकपूर्ण, सतर्क, संरक्षित और आत्म-संयमित शब्द ही शुद्ध शब्द हैं। व्यक्ति को इसी प्रकार की वाणी की शुद्धता धारण करनी चाहिए।

“यहाँ किस प्रकार का राज्य होना चाहिए?”: “यहाँ एक ऐसा राज्य होना चाहिए जो कैसा दिखता हो, किस प्रकार की व्यवस्था हो, किस प्रकार का हो और किस प्रकार का विरोधाभास हो।” उन्होंने राज्य के बारे में पूछा। यहाँ व्यवस्था की स्थिति और गैर-राज्य की स्थिति है।

अपुष्टता क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग वेश्याओं, विधवाओं, अविवाहित महिलाओं, हिजड़ों या भिक्षुणियों [एएन.5.102] के साथ रहते हैं, या कोई शराबखाने में होता है, वह राजाओं, उच्च अधिकारियों, बाहरी लोगों और शिष्यों के साथ अनुचित संपर्क में रहता है। या, जो अविश्वासी हैं, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ भक्त, स्त्री गृहस्थ भक्त, वे लोग जिनका कोई विश्वास नहीं है, वे लोग जो जल के स्रोत के समान हैं, अपशब्द बोलने वाले और निंदा करने वाले, वे लोग जो लाभ की इच्छा नहीं रखते, वे लोग जो शांति की इच्छा नहीं रखते, यदि वह स्थिर घरों के निकट रहना चाहता है, तो वह ऐसे घरों के निकट जाता है, उनसे मित्रता करता है और उनका दौरा करता है।

या, जब भिक्षु अपने घर में आगंतुक होता है, सड़क पर टहल रहा होता है, तो वह असुरक्षित रूप से चलता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

या, भिक्षु रूप का और सूक्ष्म रूप का भी भक्षक बन जाएगा...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

या यदि कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं ने श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

पांचों इच्छाएँ भी अरुचिकर अवस्थाएँ हैं। भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! अनुचित अवस्था या अन्य अवस्था में मत चलो। भिक्षुओं! जो अनुचित अवस्था या अन्य अवस्था में चलते हैं, उन्हें राक्षस का अवसर मिलेगा, राक्षस को उनका लाभ मिलेगा। भिक्षुओं! भिक्षुओं की अनुचित अवस्थाएँ और अन्य अवस्थाएँ क्या हैं? अर्थात्: पाँच इच्छाएँ, कौन सी पाँच? वह रूप जो आँखों से देखा जा सकता है, जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, लुभावनी और लोभी है; ध्वनि..., गंध, जीभ, स्पर्श... [SN.47.7]। भिक्षुओं! इसे भिक्षु की अनुचित अवस्था, अन्य अवस्थाएँ कहा जाता है।"

यात्रा क्या है? यहाँ भिक्षु किसी वेश्या, विधवा, अविवाहित स्त्री, हिजड़े, भिक्षुणी या शराबखाने में नहीं होता। वह राजाओं, उच्च अधिकारियों, विदेश मंत्रियों और विदेशी शिष्यों के साथ उचित रूप से संपर्क में रहता है। या, जो भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ भक्तों, स्त्री गृहस्थ भक्तों में आस्था रखते हैं, जो सच्चे विश्वासी हैं, जो जलस्रोत के समान हैं, जिनके पास वस्त्र और प्रकाश हैं, जो शुभचिंतक हैं, जो लाभ चाहते हैं, जो सुख चाहते हैं, जो बंधन और स्थिर घर छोड़ना चाहते हैं, वह उनके निकट जाता है, उनसे मित्रता करता है और उनके घरों में जाता है।

या फिर, जब भिक्षु उसके घर पर मेहमान बनकर आता है, तब...

या, भिक्षु द्वारा अपनी आँखों से रूप देखने के बाद, ...

या यदि कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं ने श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया, तो...

चार प्रकार की जागरूकता मन की अवस्था है। भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! भिक्षु की उचित अवस्था, उसके पिता और दादा की अवस्था क्या है? अर्थात्: चार प्रकार की जागरूकता, वे कौन सी हैं? भिक्षुओं! यहाँ, भिक्षु शरीर में रहते हुए शरीर का अवलोकन करता है (उत्साह, धार्मिक ज्ञान और जागरूकता के साथ, लोभ और संसार की चिंताओं को नियंत्रित कर सकता है); भाव में..., हृदय में..., धर्म में...। भिक्षुओं! यही भिक्षु की उचित अवस्था है, उसके पिता और दादा की अवस्था।" इसे यात्रा की अवस्था भी कहा जाता है। व्यक्ति को ऐसी ही स्थिति में रहना चाहिए।

"किस प्रकार के नियम और निषेध होने चाहिए?": "किस प्रकार के नियम और निषेध होने चाहिए, किस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए, किस प्रकार का और किस प्रकार का अंतर होना चाहिए?" उन्होंने नियमों और निषेधों की पवित्रता के बारे में पूछा। नियम और निषेध क्या हैं? ...(अधूरा भाग, पिछले अनुभाग देखें)।

"यह भिक्षु के स्वयं के प्रयास से संबंधित है": "यह स्वयं के प्रयास से संबंधित है," यह सक्रिय ऊर्जा से संबंधित है, उस व्यक्ति से संबंधित है जिसने धैर्य प्राप्त कर लिया है, दृढ़ प्रयास से, उस व्यक्ति से जो इच्छा की उपेक्षा नहीं करता है, और उस व्यक्ति से जो अच्छे धम्म में दायित्व की उपेक्षा नहीं करता है। या, स्वयं से संबंधित लक्ष्य स्वयं के हितों में, सत्य में, गुणों में, तर्क और अतर्क में उत्पन्न होता है: "सभी कर्म अनित्य हैं" स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं; "सभी कर्म दुखदायी हैं"...; "सभी कर्म आत्महीन हैं"...; "अज्ञान पर आधारित कर्म ही आत्म-उत्पत्ति का कारण हैं," "जन्म और मृत्यु

वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनते हैं," "अज्ञान के कारण होने वाली मृत्यु कर्मों और मृत्यु की ओर ले जाती है," "जन्म और मृत्यु मृत्यु और मृत्यु की ओर ले जाते हैं," "यह दुख है," "यह दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है," "यह कष्ट है," "यह कष्टों की ओर ले जाने वाला मार्ग है," "इन धर्मों का ज्ञान होना चाहिए," "इन धर्मों की गवाही देनी चाहिए," प्रवेश द्वार के छह स्पर्श, संचय, संहार, सुख, कष्ट और वैराग्य...; पाँच स्कंध..., चार प्रमुख स्कंध; "धर्मों का कोई भी संग्रह संहार है" यह कथन स्वयं द्वारा ही कहा गया है। "भिक्षु से संबंधित," जो किसी भिक्षु का हो, या जो किसी भिक्षु से सीखता हो।

197 · उसे क्या सीखना चाहिए, समर्पण, बुद्धिमत्ता और सचेतनता के साथ, जैसे एक लोहार चांदी से काम करता है, क्या उसे अपनी गंदगी से छुटकारा पाना चाहिए?

"उठाने के बाद उसे क्या सीखना चाहिए": उसे समझने, थामने, लेने और उठाने के बाद क्या सीखना चाहिए।

"समर्पित (एकमात्र), बुद्धिमान, सचेत": "समर्पित," एक ही अवस्था में मन, विचलित न होने वाला मन, स्थिर मन, समाधि, स्थिर जड़, एकाग्रता, सही एकाग्रता।" "बुद्धिमान," ...(हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)। "सचेत," ...(हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)। "स्वीकार करने के बाद उसे क्या सीखना चाहिए?" उसने उपदेश ज्ञान को जोड़ने के बारे में पूछा। "विशेष रूप से," उसने और अधिक सीखने के लिए कहा। "बुद्धि," उसने बुद्धि ज्ञान के बारे में पूछा।

"जैसे एक लोहार चांदी का काम करता है, वैसे ही उसे अपनी गंदगी दूर करनी चाहिए": लोहार को सुनार कहा जाता है, और चांदी को सोना (कीमती धातु) कहा जाता है। जैसे एक लोहार सोने का काम करता है, वैसे ही वह स्थूल गंदगी को फूँककर, हवा देकर और पिघलाकर [AN.3.102] हटाता है, और मध्यम गंदगी को फूँककर, हवा देकर और घोलकर हटाता है, और महीन गंदगी को फूँककर, हवा देकर और घोलकर हटाता है। इसी प्रकार, भिक्षु अपनी स्थूल अशुद्धियों को फूँककर, हवा देकर और घोलकर हटाते हैं, उन्हें काट कर, दूर भगाकर, समाप्त करके और उनका अस्तित्व समाप्त कर देते हैं। ...मध्यम अशुद्धियाँ..., ...सूक्ष्म अशुद्धियाँ...

या, भिक्षुओं, आग को फूँकें, प्रज्वलित करें, लोभ की गंदगी, क्रोध की गंदगी, अज्ञान की गंदगी, अहंकार की गंदगी, दृष्टि की गंदगी, अपवित्रता की गंदगी, बुरे कर्मों की गंदगी, अंधता की गंदगी, दृष्टिहीनता की गंदगी, भ्रम की गंदगी, जो बुद्धि को नष्ट करती है, परेशान करने वाले गुटों की गंदगी, और जो निर्वाण की ओर नहीं ले जाती, उसे नष्ट करें [एएन.3.72]; त्याग दें, भगा दें, समाप्त कर दें, और उन्हें अस्तित्वहीनता में भेज दें।

या, सही दृष्टिकोण का उपयोग करके, उसे मिटा देना। सही इच्छाशक्ति, बुरी इच्छाशक्ति, सही वाणी, बुरी वाणी, सही कर्म, बुरे कर्म, भाग्य, शब्द, प्रयास, विचार, एकाग्रता, ज्ञान; सकारात्मक मुक्ति का उपयोग करके उसे मिटा देना।

या फिर, हमारे लिए आठ पवित्र मार्ग हैं, जिनसे आग को हवा दी जा सके, उसे प्रज्वलित किया जा सके, समस्त प्रदूषण, समस्त बुरे कर्म, समस्त कष्ट, समस्त झुलसा देने वाली गर्मी, समस्त जलन, समस्त अस्वास्थ्यकर कर्मों को नष्ट किया जा सके, उन्हें दूर भगाया जा सके, उनका अंत किया जा सके और उन्हें अस्तित्वहीन बना दिया जा सके।

198 · [भगवान: "सारिपुत्त!"] घृणा करने वालों के लिए, निर्जन आसन और विश्राम स्थल के निकट रहना ही वास्तव में शांति है। जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, वह धम्म का अनुसरण करेगा, मैं यह बात तुम्हारे लिए, क्योंकि मैं इसे जानता हूँ, कह रहा हूँ।

"जिनको घृणा होती है..., उनके लिए शांति है": "जिनको घृणा होती है," जिनको घृणा होती है, ...(अंशित)। "वही शांति है," जो भी शांति से जीवन व्यतीत करेगा, उसे मैं बताऊंगा। सुखी जीवन क्या है? सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, ...(अंशित, पिछले भाग देखें), यही निर्वाण का मार्ग है।

"[भगवान: 'सारिपुत्त!']": उस व्यक्ति को उसके नाम से पुकारना। "भगवान," ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

जो ज्ञान की इच्छा रखता है, वह धम्म का अनुसरण करता है। ज्ञान को बुद्धि, बुद्धि का मूल, बुद्धि की शक्ति, धम्म ज्ञान, अन्वेषण, विपश्यना, सही दृष्टिकोण और चारों मार्गों पर चलने वाला प्रबुद्ध व्यक्ति कहा जाता है। जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, जो जागृत होना चाहते हैं, जो पाना चाहते हैं, जो पहुंचना चाहते हैं और जो गवाही देना चाहते हैं।

"धम्म के अनुसार": ज्ञान प्राप्ति का मार्ग क्या है? वह मार्ग जो सही है, ..., और उचित ज्ञान का मार्ग है। इसे ही ज्ञान प्राप्ति का निम्नलिखित धम्म कहा जाता है।

"मैं तुम्हारे लिए यह कहूंगा, जो जानता है": "यह," मार्ग के अनुसार। "मैं कहूंगा," मैं कहूंगा, मैं समझाऊंगा, मैं सिखाऊंगा, मैं बताऊंगा, मैं स्थापित करूंगा, मैं उजागर करूंगा, मैं विश्लेषण करूंगा, मैं स्पष्ट करूंगा। "जानकार के रूप में," ज्ञाता के रूप में, निश्चित ज्ञाता के रूप में, जिसने गहरी समझ प्राप्त की है, न सुनी-सुनाई बातों से, न अफवाहों से, न विरासत से, न शास्त्रों की शिक्षाओं से, न तार्किक निष्कर्ष से, न तर्क से, न सैद्धांतिक चिंतन से, न चिंतन के बाद प्राप्त अंतर्दृष्टि से, उस विधि से जो व्यक्तिगत रूप से सिद्ध और स्वयं सिद्ध है, मैं यह कहूंगा।

199 · बुद्धिमान व्यक्ति को पाँच प्रकार के भयों से नहीं डरना चाहिए, विचारशील और संयमित भिक्षु को: मक्खियाँ, पतंगे, साँप, मानव संपर्क, चार पैरों वाले जानवर।

"बुद्धिमान व्यक्ति को पाँच भयों से नहीं डरना चाहिए": बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो बुद्धिमान है, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। बुद्धिमान व्यक्ति को पाँच भयों से नहीं डरना चाहिए, उसे भयभीत नहीं होना चाहिए, कांपना नहीं चाहिए, डरना नहीं चाहिए, ...।

"सजग और संयमित भिक्षु": "भिक्षु," ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)। "सजग," .... "संयमित," "संयमित कर्म" में चार प्रकार की सीमाएँ होती हैं: संयम की सीमाएँ, मूल आत्म-नियंत्रण की सीमाएँ, सही मात्रा में आहार जानने की सीमाएँ और संयम में विशेषज्ञता की सीमाएँ।

संयम की सीमा क्या है? यहाँ भिक्षु एक गुरु है जो पातिमोक्ख के आत्म-संयम से सुरक्षित रहता है। उसके पास पर्याप्त धार्मिकता और उचित परिस्थितियाँ हैं। वह छोटे पापों की भयावहता को देखता है और गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनसे सीखता है। आंतरिक पतन की स्थिति का परीक्षण करते समय, वह आत्म-संयम के आंतरिक नियमों का पालन करता है, सीमाओं का उल्लंघन नहीं करता। यही आत्म-संयम का नियम है।

आत्मसंयम की सीमा क्या है? यहाँ, भिक्षु जब रूप को अपनी आँखों से देखता है, तो वह रूप का लोभी नहीं बन जाता, सूक्ष्म रूप का लोभी नहीं बन जाता... (उद्धृत) वह अपनी आँखों के आधार पर आत्मसंयम प्राप्त करता है। कानों से ध्वनि सुनने के बाद..., नाक से सूंघने के बाद..., जीभ से स्वाद लेने के बाद..., शरीर से स्पर्श करने के बाद..., चेतना से धम्म को जानने के बाद..., क्योंकि जब मन की जड़ सुरक्षित नहीं रहती, तो लोभ, दुःख और बुराई का प्रवाह होता है। वह अपने आत्मसंयम के अनुसार कार्य करता है, मन की जड़ की रक्षा करता है, और मन की जड़ पर आत्मसंयम प्राप्त करता है। जब वह अग्नि विधि का अध्ययन करता है, तो वह आंतरिक आत्मसंयम की सीमाओं का अभ्यास करता है और उन्हें भंग नहीं करता। यही मूल आत्मसंयम की सीमा है।

आहार संबंधी ज्ञान की सीमा क्या है? यहाँ भिक्षु निरीक्षण के बाद भोजन ग्रहण करता है: "न तो आनंद के लिए, न ही नशे के लिए, न ही सुंदर शरीर के लिए, न ही मान-सम्मान के लिए, बल्कि इस शरीर के अस्तित्व और पालन-पोषण के लिए, हानि को रोकने के लिए, और ब्रह्म का समर्थन करने के लिए। इस प्रकार, मैं पूर्व भावनाओं को दूर करूँगा, नई भावनाओं को जागृत नहीं होने दूँगा, स्वस्थ रहूँगा, दोषरहित रहूँगा और शांति से जीवन व्यतीत करूँगा।" धुरों पर तेल लगाने, घावों को ढकने [SN.35.239], और पुत्र के मांस के उपमा [SN.12.63] की जाँच करते समय, उसने सही मात्रा जानने के लिए आंतरिक सीमा का अभ्यास किया, सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया, यही आत्म-संयम के रूप में आहार की सही मात्रा जानने की सीमा है।

संयम में एकाग्रता की सीमा क्या है? यहाँ, दिन के दौरान, भिक्षु शांतिपूर्वक चलने और बैठने से मन को बाधाओं से मुक्त करता है। रात्रि के पहले पहर में, शांतिपूर्वक चलने और बैठने से मन को बाधाओं से शुद्ध करना चाहिए। मध्यरात्रि में, सिंह की तरह दाहिनी ओर लेटकर, (बाएँ) पैर को (दाएँ) पैर पर रखकर, सचेतनता और धार्मिक ज्ञान के साथ चिंतन करना चाहिए। पश्चात रात्रि में, शांत रूप से चलने और बैठने से मन को बाधाओं से शुद्ध

करना चाहिए [SN.35.120]। जब सद्गुणी रात्रिकालीन आत्मनिरीक्षण करता है [MN.131], तो वह आंतरिक संयमित सीमाओं पर ध्यान केंद्रित करता है, सीमाओं को तोड़े बिना; यही आत्मसंयम का मूल है।

"मक्खियाँ, पतंगे, साँप": छोटी मक्खियों को मक्खी कहते हैं। बाकी सभी मक्खियों को पतंगा कहते हैं। सभी मक्खियों को पतंगा क्यों कहते हैं? क्योंकि वे उड़ती हैं और बार-बार काटती हैं, इसलिए सभी मक्खियों को पतंगा कहते हैं। रेंगने वाले साँपों को साँप कहते हैं।

"मनुष्यों से संपर्क, चार पैरों वाले जानवरों से संपर्क": चोर और गुंडे जो बुरे काम करते हैं या बुरे काम करने की तैयारी करते हैं, उन्हें मनुष्यों से संपर्क कहा जाता है। वे भिक्षु से प्रश्न पूछ सकते हैं, चर्चा में शामिल हो सकते हैं, गाली दे सकते हैं, निंदा कर सकते हैं, क्रोधित कर सकते हैं, परेशान कर सकते हैं, चोट पहुँचा सकते हैं, कष्ट दे सकते हैं, मार सकते हैं, चिढ़ा सकते हैं या नुकसान पहुँचा सकते हैं। मनुष्यों द्वारा किया गया कोई भी संपर्क कष्टदायी होता है। "चार पैरों वाले जानवर," जैसे शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, कुत्ते, भेड़िये, बाइसन और हाथी, भिक्षु को कुचल सकते हैं, खा सकते हैं, चोट पहुँचा सकते हैं, कष्ट दे सकते हैं, मार सकते हैं, चिढ़ा सकते हैं या नुकसान पहुँचा सकते हैं। चार पैरों वाले जानवरों से होने वाली चिड़चिड़ाहट सभी चार पैरों वाले जानवरों के लिए भय का कारण होती है।

200 · आपको अन्य अभ्यासकर्ताओं (अन्य शिक्षाओं के) से डरना नहीं चाहिए: उनमें कई भयानक चीजें देखने के बाद भी, सभी खतरों पर विजय प्राप्त करना अधिक महत्वपूर्ण है, हे अच्छे साधकों।

"दूसरे धम्मों के अनुयायियों से भयभीत न हों, चाहे आप उनमें अनेक भयानक बातें देखें": दूसरे धम्मों के अनुयायी, वे सभी जिन्होंने अभी तक बुद्ध, धम्म या संघ में विश्वास नहीं किया है, दूसरे धम्मों के अनुयायी कहलाते हैं। वे भिक्षु से प्रश्न पूछ सकते हैं, चर्चा में शामिल हो सकते हैं, या अपमान, निंदा, चिढ़ाने, क्रोधित करने, पीड़ा पहुँचाने, कष्ट देने, हत्या करने, परेशान करने या चोट पहुँचाने का कार्य कर सकते हैं। इनमें से अनेक बातें भयानक हैं। यह देखकर भी भिक्षु को भयभीत नहीं होना चाहिए...

"हे साधकों, हमें सभी खतरों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए": "इसके अलावा," ऐसी चीजें हैं जिन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, जिन्हें पराजित करना चाहिए, जिन्हें पूरी तरह से दबा देना चाहिए और जिन्हें समाप्त कर देना चाहिए, जिन्हें कुचल देना चाहिए। "खतरा," दो प्रकार के खतरे हैं: .... "हे साधक," सही मार्ग ..., और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग, खोजना, सभी संकटों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, उन्हें पराजित करना चाहिए, ...

201 · बीमारी और भूख से पीड़ित होने पर, व्यक्ति को ठंड और गर्मी सहन करनी चाहिए, बेघर व्यक्ति इन सभी चीजों से प्रभावित होता है, और उसे जीवन शक्ति और कड़ी मेहनत में मजबूत होना चाहिए।

"बीमारी और पीड़ा से संपर्क, भूख से संपर्क": बीमारी और पीड़ा से संपर्क को रोग से संपर्क कहा जाता है। रोग से प्रभावित होना, पीड़ा सहना, उससे जुड़ जाना, उस पर हावी हो जाना: आँखों के रोगों से प्रभावित होना, पीड़ा सहना, उससे जुड़ जाना, उस पर हावी हो जाना; कान के रोगों से प्रभावित होना...(अंशित)। भूख को भूख कहा जाता है। भूख से प्रभावित होना, पीड़ा सहना, उससे जुड़ जाना, उस पर हावी हो जाना।

"शीत और सर्दी सहन करनी चाहिए": "शीत" दो कारणों से होती है: आंतरिक उत्तेजना के कारण या बाहरी मौसमों के कारण। "गर्मी" दो कारणों से होती है: आंतरिक उत्तेजना के कारण या बाहरी मौसमों के कारण। "सहन करना चाहिए": सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मक्खियों, मच्छरों, हवाओं, धूप और सांपों के संपर्क में आने जैसी किसी भी स्थिति में सहन करना चाहिए। अपमान, निंदा और शारीरिक पीड़ा, चाहे वह तीव्र, हिंसक, अवांछनीय, अत्यंत अवांछनीय, जानलेवा आदि हो, सहन करना चाहिए।

"जो बेघर है, वह इन चीजों से प्रभावित होता है": "वह इन चीजों से प्रभावित होता है," बीमारी से प्रभावित होगा, ... "विभिन्न प्रकार की (उन चीजों से)," "सभी प्रकार के व्यवहारों से प्रभावित होगा।" वह इन चीजों से प्रभावित होता है। "बेघर," चेतना द्वारा संचय का अवसर नहीं मिलता। [SN.22.3]। या, शरीर, शब्दों और इरादों में बुरे काम करने का अवसर न मिलना।

“ऊर्जावान, मेहनती, दृढ़ रहना चाहिए”: नश्वर हृदय की जीवंतता, परिश्रम, मेहनत, साहस, प्रयास, धैर्य, पीछे न हटने की भावना, दृढ़ता, निरंतर, बिना शिथिल हुए साहस, इच्छा की अवस्था का त्याग न करना, जिम्मेदारी की अवस्था में लापरवाही न करना, जिम्मेदारी का आधार, जीवंतता, जीवंतता का मूल, जीवंतता की शक्ति और सही प्रगति को जीवंतता और प्रयास कहा जाता है। “जीवंतता, प्रयास, दृढ़ रहना चाहिए”: जीवंतता, प्रयास, दृढ़ रहना चाहिए, दृढ़ रहना चाहिए, दृढ़ धारक होना चाहिए, एक स्थापित धारक होना चाहिए।

202 · तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए और व्यर्थ की बातें नहीं करनी चाहिए, और कमजोर और बलवान दोनों के साथ दयालुता से पेश आना चाहिए। जब भी मन विचलित हो, उसे यह जानना चाहिए कि उसे "अंधकारमय पक्ष" को दूर करना चाहिए।

“चोरी न करो, व्यर्थ की बातें न करो”: यहाँ, भिक्षु द्वारा देने और लेने से इनकार करने के बाद, उसे वह होना चाहिए जिसने न दिया हो और न लिया हो, वह जो दिया गया हो, और जिन्हें दिया गया है उनसे अपेक्षा की जानी चाहिए; उन्हें चोरी न करने और पवित्र जीवन जीने के लिए प्रेरित होना चाहिए। “व्यर्थ की बातें न करो”: यहाँ, भिक्षु द्वारा झूठ का त्याग करने के बाद, उसे झूठ बोलने वालों, सच बोलने वालों, सत्यवादी, विश्वसनीय, भरोसेमंद और संसार को धोखा न देने वालों से मुक्त होना चाहिए।

“कमजोर और बलवान दोनों को दया भाव से स्पर्श करना चाहिए”: “दया” का अर्थ है सभी प्राणियों के प्रति दया, करुणा, करुणा, सहानुभूति, दया, निःस्वार्थता, द्वेष रहित, हानि रहित, और अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति। “कायर (कमजोर)” वे हैं जो कांपते हैं, प्यास से कांपते हैं, और वे जो भय से मुक्त हैं, साथ ही वे जो भय से मुक्त होने से भयभीत हैं। उन्हें कायर क्यों कहा जाता है? वे कांपते हैं, भयभीत होते हैं, आतंकित होते हैं, और इसी कारण उन्हें कायर कहा जाता है। “बलवान” वे हैं जो कांपने और प्यास से मुक्त हैं, और वे जो भय से मुक्त हैं। उन्हें बलवान क्यों कहा जाता है? वे कांपते या डरते नहीं, न आतंकित होते हैं, न भयभीत होते हैं, इसीलिए उन्हें बलवान कहा जाता है। "कमजोर और बलवान दोनों को दयालुता से स्पर्शित और परिपूर्ण होना चाहिए, दयालुता से चलने वाले हृदय से, विशालता, उत्कृष्टता, असीमता से, और बिना किसी द्वेष के, पूरे संसार को एक निर्दोष हृदय से भर देना चाहिए और वहीं निवास करना चाहिए।"

“जब भी मन अशांत हो, उसे जानना चाहिए”: “जब भी” का अर्थ है जब भी। “मन” से तात्पर्य सभी प्रकार के मन, इरादे, हृदय, शुद्ध मन, मूल मन, चेतना, चेतना का संचय और उससे संबंधित चेतना से है। शरीर से बुराई करने पर मन अशांत, उत्तेजित, गतिशील, प्रभाव डालने वाला, अस्थिर, घूमने वाला और बेचैन हो जाता है; शब्दों से बुराई करने पर...(अस्पष्ट), ...इरादे से..., लोभ, पीड़ा, अज्ञानता, ...(अस्पष्ट)। “जब भी मन अशांत हो, उसे जानना चाहिए”: उसे मन की अशांत अवस्था को जानना और समझना चाहिए।

“उसे ‘अंधकारमय पक्ष’ से दूर भगा देना चाहिए”: “अंधकार” का अर्थ है राक्षस के रिश्तेदार, अंधकार का स्वामी, वह जो अपनी सीमा तक पहुँच चुका है, और बहिष्कृत। अंधकारमय पक्ष शैतान का पक्ष है, शैतान का फँसाने का जाल है, शैतान का काँटा है, राक्षस का भोजन है, राक्षस का क्षेत्र है, राक्षस का निवास स्थान है, राक्षस की यात्रा अवस्था है, और राक्षस का बंधन है। इसे मिटा देना चाहिए। या, अंधकारमय पक्ष शैतान का पक्ष है, अस्वास्थ्यकर पक्ष है, वह पक्ष है जो पीड़ा का कारण बनता है, वह पक्ष है जो नरक की ओर ले जाता है, वह पक्ष है जो पशु जगत की ओर ले जाता है, और वह पक्ष है जो प्रेतलोक की ओर ले जाता है। उसे त्याग देना चाहिए, भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए और इसे मिटा देना चाहिए।

203 · किसी को क्रोध या अहंकार के वश में नहीं आना चाहिए; अपनी जड़ों को खोदकर स्थिर खड़े रहना चाहिए, दूसरे, चाहे वह वांछनीय हो या अवांछनीय, जीवित रहने वाले को वास्तव में विजय प्राप्त करनी चाहिए।

“क्रोध या अहंकार के वश में नहीं आना चाहिए”: “क्रोध,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। “अहंकार,” ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। “क्रोध और अहंकार के वश में नहीं आना चाहिए”: क्रोध और अहंकार के वश में नहीं आना चाहिए, क्रोध और अहंकार को त्याग देना चाहिए, दूर भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए और उसका अस्तित्व ही समाप्त कर देना चाहिए।

“उनकी जड़ों को उखाड़ फेंकने के बाद, उन्हें स्थिर खड़े रहना चाहिए”: क्रोध की जड़ क्या है? अज्ञान ही जड़ है, तर्क भी जड़ है, अहंकार जड़ है, लज्जाहीनता जड़ है, हठ जड़ है। यही क्रोध की जड़ है। अहंकार की जड़ क्या है? अज्ञान ही जड़ है, ... यही अहंकार की जड़ है। “उनकी जड़ों को उखाड़ फेंकने के बाद, उन्हें स्थिर खड़े रहना चाहिए”: क्रोध और अहंकार की जड़ों को उखाड़ फेंकने के बाद, उखाड़ फेंकने के बाद, निकालने के बाद,

हटाने के बाद, पूरी तरह से हटाने के बाद, काटने के बाद, भगाने के बाद, समाप्त करने के बाद, अस्तित्वहीन करने के बाद, व्यक्ति को स्थिर खड़े रहना चाहिए, और पूरी तरह से स्थिर खड़े रहना चाहिए।

“द्वितीय, चाहे प्रिय हो या अप्रिय, जीवित रहने वालों को ही विजय प्राप्त करनी चाहिए”: “द्वितीय,” वाक्यों का क्रम; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों की पूर्णता; शब्दों का संयोजन; वाक्यांशों का संबंध; यही वाक्यों का क्रम है, जो “द्वितीय” है। “सुंदर,” सुंदरता दो प्रकार की होती है: ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। “वास्तव में,” यही निर्णायक भाषा है, निर्विवाद भाषा है, आत्मविश्वास से भरी भाषा है, अद्वैत है, निर्विवाद पठन है, आदेशात्मक भाषा है, त्रुटिरहित भाषा है (असफलता रहित भाषा), यही पुष्टि का शब्द है, जो “वास्तव में” है। “द्वितीय, चाहे प्रिय हो या अप्रिय, विजेता को ही विजय प्राप्त करनी चाहिए”: प्रिय, अप्रिय; वांछनीय, अवांछनीय; सुखी, कड़वी; आनंद, दुःख; वांछनीय, अस्वीकार्य, विजेता को ही विजय प्राप्त करनी चाहिए, या विजयी को ही विजय प्राप्त करनी चाहिए।

204 · जब ज्ञान को आगे रखा जाता है, जब अच्छा आनंद होता है, तो उन खतरों पर काबू पाना चाहिए, व्यक्ति को सीमा पर पड़े रहने के दुख पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, और रोने के चारों तरीकों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

“बुद्धि को आगे रखा जाता है, और उसमें आनंद होता है”: “बुद्धि,” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “बुद्धि को आगे रखा जाता है,” यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग बुद्धि को आगे रखते हैं और पीछे चलते हैं। बुद्धि ध्वज है, बुद्धि पताका है, बुद्धि वृद्धि है, अधिक विवेकशील, अधिक सरल, अधिक गहराई से विचार करने वाला, अधिक समग्र रूप से विचार करने वाला, और उन लोगों की तरह जीने वाला जो समझते हैं, जिनके पास चरित्र है, जिनके पास अधिक है, जो जोर देते हैं, जो उसे लक्ष्य बनाते हैं, जो मेहनती हैं, जो उनकी ओर झुकते हैं, जो उन पर विजय प्राप्त करते हैं, जो सुधार करते हैं, जिनके पास अधिक चरित्र है, जिनके पास अधिक है, जो उस पर जोर देते हैं, जो उसे लक्ष्य बनाते हैं, जो मेहनती हैं, जो उसकी ओर झुकते हैं, जो विजय प्राप्त करते हैं, जो वृद्धि करते हैं।

या फिर, चलते समय, वह जानता है: "मैं चलता हूँ।" या, खड़े होते समय, वह जानता है: "मैं खड़ा हूँ।" या, बैठते समय, वह जानता है: "मैं बैठा हूँ।" या, लेटते समय, वह जानता है: "मैं लेटा हूँ।" या, वह शरीर की गति को जानता है।

या, “जब आप आगे और पीछे चलते हैं, तो आप कर्ता के प्रति सही रूप से सजग होते हैं; जब आप आगे और पीछे देखते हैं, तो आप कर्ता के प्रति सही रूप से सजग होते हैं; जब (शरीर) झुकता और फैलता है, ...; कपड़े पहने हुए, कटोरे और कोट पकड़े हुए, ...; पीते, खाते, चबाते और स्वाद लेते समय कर्ता का सही ज्ञान होना; पेशाब और शौच करते समय कर्ता का सही ज्ञान होना; चलते, रहते, बैठते, लेटते, जागते, बोलते और चुप रहते समय कर्ता का सही ज्ञान होना।” [MN.10/DN.22]

“अच्छी खुशी,” बुद्ध स्मरण से उत्पन्न होती है, और खुशी अच्छी खुशी है। ...धम्म के कारण..., ...भिक्षु स्मरण के कारण..., उपदेश, दान, स्वर्ग, श्वास लेना और छोड़ना, मृत्यु, शरीर, मौन... [एएन.1.297] आनंद उत्पन्न होता है, और आनंद अच्छी खुशी है।

“उन खतरों को दबा देना चाहिए”: “खतरे,” दो प्रकार के खतरे हैं: .... “उन खतरों को दबा देना चाहिए”: उन खतरों को दबा देना चाहिए, पराजित कर देना चाहिए, कुचल देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, रौंद देना चाहिए।

“सीमा पर पड़े रहने के दुख पर विजय प्राप्त करनी चाहिए”: “दुखी,” वह व्यक्ति जो खुश नहीं है, दुखी है, बहुत दुखी है, बेहद दुखी है, असंतुष्ट है और भयभीत है। “सीमा पर पड़ा रहना,” यदि वह सीमावर्ती निवास में या उच्चतर सद्गुण धर्म में दुखी है, तो उसे इस दुख पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, विजयी होना चाहिए, इसे पार करना चाहिए...

“रोने के चार तरीकों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए”: रोने के चार तरीकों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, उन्हें पूरी तरह से जीत लेना चाहिए, उन्हें पराजित करना चाहिए, ...

205 · मैं क्या खाऊँगा, या कहाँ खाऊँगा? मुझे अच्छी नींद नहीं आई, या आज मैं कहाँ सोऊँगा? ये विलापपूर्ण विचार, विद्वानों को संयमित करने चाहिए, बेघर यात्री।

“मैं क्या खाऊँगा, या कहाँ खाऊँगा?”: “मैं क्या खाऊँगा?” मैं किस प्रकार का चावल, या दलिया, या नूडल्स, या मछली, या मांस खाऊँगा? “मैं कहाँ खाऊँगा?” मैं इसे (भोजन) कहाँ से प्राप्त करूँगा: खत्तीय परिवार में, या ब्राह्मण परिवार में, या वेस परिवार में, या शुद्ध परिवार में?

“सचमुच मुझे अच्छी नींद नहीं आई, वरना आज मैं कहाँ सोऊँगा?”: आज रात मुझे अच्छी नींद नहीं आई: लकड़ी के तख्ते पर, या छोटी चटाई पर, या चमड़े के तकिये पर, या घास की चटाई पर, या पत्तों की चटाई पर, या पुआल की चटाई पर। मैं रात को कहाँ सोऊँगा: पलंग पर, या पलंग पर बैठकर, या तकिये पर, या लंबे तकिये पर, या भिक्षु के कमरे में, या आधे छत वाले घर में, या ऊँची इमारत में, या समतल घर में, या गुफा में?

“ये विलापपूर्ण विचार”: “ये विचार” भोजन से संबंधित दो विचार और निवास से संबंधित दो विचार हैं। जो रोएंगे, वे ही रोएंगे। जो विलाप करेंगे, वे ही विलाप करेंगे।

“विद्वानों को संयम बरतना चाहिए, बेघर राहगीरों”: “विद्वान,” उन्हें विद्वान क्यों कहा जाता है? एक विद्वान के रूप में वह “सीखता है”। वह क्या अध्ययन करता है? वह उपदेशों को बढ़ाना सीखता है, वह बुद्धि को बढ़ाना सीखता है, और वह ज्ञान को बढ़ाना भी सीखता है। ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। ये तीनों शिक्षाएँ वह तब सीखता है जब वह (ध्यान देते हुए) का सामना करता है; .... इसी कारण उसे विद्वान कहा जाता है। संयम बरतने, दूर करने, जाने देने, शांत होने, काटने, खारिज करने और रुकने के लिए, उसे उपदेशों को बढ़ाना सीखना चाहिए, उसे बुद्धि को बढ़ाना सीखना चाहिए, और उसे ज्ञान को बढ़ाना भी सीखना चाहिए। ये तीनों शिक्षाएँ तब सीखनी चाहिए जब वह (ध्यान देते हुए) का सामना करता है; ....

“बेघर यात्री,” घर पर यात्री कैसा होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोगों के सामने घर की बाधाएँ, समूह (भीड़) की बाधाएँ, निवास, वस्त्र, सामूहिक भोजन, आवास, रोगियों की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ होती हैं। यही घर का यात्री है। बेघर यात्री क्या होता है? यहाँ, भिक्षु के सामने घर की बाधाएँ, समूह की बाधाएँ नहीं होतीं...

“मगध, कोसल और वज्जीय क्षेत्र में कुछ भिक्षु जंगली हिरण की तरह बंधनमुक्त होकर भूमि पर विचरण करते हैं और बिना आश्रय के रहते हैं।” [एसएन.9.4]

“भटकना अच्छा है, कुशलता से जीना अच्छा है, बेघर होना हमेशा अच्छा है, अर्थ की खोज करना, कुशल व्यवहार करना, यही सब कुछ से रहित व्यक्ति के लिए समान रूप है।” [थग.1.36]

206 · सही समय पर भोजन और वस्त्र प्राप्त करने के बाद, उसे उचित मात्रा का ज्ञान होना चाहिए और यहीं संतुष्ट रहना चाहिए। इन (वस्तुओं) के प्रति सतर्क और गाँव में संयमित रहते हुए, उसे उकसाए जाने पर भी कठोर शब्द नहीं बोलने चाहिए।

समय पर भोजन और वस्त्र प्राप्त करने के बाद: भोजन में चावल, दलिया, नूडल्स, मछली और मांस शामिल हैं। वस्त्रों में छह प्रकार के कपड़े शामिल हैं: लिनन, कपास, रेशम, स्वेटर, बोरी और भांग। “समय पर भोजन और वस्त्र प्राप्त करने के बाद”: वस्त्र प्राप्त करने के बाद, भोजन प्राप्त करने के बाद: बिना किसी छल, बिना किसी बात, बिना किसी संकेत, बिना किसी व्यंग्य, बिना किसी अन्य लाभ के बदले में कोई लाभ, बिना लकड़ी का दान, बिना बांस का उपयोग करके वस्तुएँ न दें, बिना पत्तों वाली वस्तुएँ दें, बिना फूलों वाली वस्तुएँ दें, बिना स्नान वस्त्र वाली वस्तुएँ दें, बिना वाशिंग पाउडर का उपयोग करें, बिना मिट्टी का उपयोग करें, बिना दाँत साफ करने वाली लकड़ी का उपयोग करें, बिना चेहरे धोने वाले कपड़े का उपयोग करें, बिना चापलूसी, बिना स्वीकारोक्ति, बिना निंदा, बिना घर बसाए (पालतू पशु), बिना पशु, बिना ज्योतिष, बिना दूत के रूप में कार्य करना, बिना दूत भेजना, बिना छोटे-मोटे काम करना, बिना चिकित्सा उपचार का उपयोग करना (नया काम शुरू करना), बिना भोजन देना या बदले में कुछ देना, बिना दान देना, प्राप्त करने के बाद, प्राप्त करने के बाद, और धम्म के अनुसार उचित रूप से प्राप्त करने के बाद।

“उसे यहाँ संतुष्ट होने के लिए उचित मात्रा का ज्ञान होना चाहिए”: “उसे उचित मात्रा का ज्ञान होना चाहिए,” उसे उचित मात्रा का ज्ञान दो तरीकों से होना चाहिए: ग्रहण करने से या उपयोग करने से। ग्रहण करने से उचित मात्रा का ज्ञान कैसे प्राप्त करें? भले ही देने के लिए कुछ ही वस्तुएँ हों, वह दाता के घर के प्रति दया भाव से, उसकी रक्षा करते हुए और उसके प्रति सहानुभूति रखते हुए उसे स्वीकार करता है; यद्यपि देने के लिए बहुत सी वस्तुएँ हों, वह केवल उन्हीं वस्त्रों से पेट भरता है जो उसके द्वारा ग्रहण किए गए शरीर की रक्षा करते हैं। यही ग्रहण करने से उचित मात्रा का ज्ञान है। उपयोग करने से उचित मात्रा का ज्ञान कैसे प्राप्त करें?

जांच के बाद उपयोग किए जाने वाले कपड़े: केवल ठंड से बचाव, गर्मी से बचाव, मक्खी, मच्छर, धूप और सांप के संपर्क से बचाव और जननांगों को छिपाने के लिए।

इसका उपयोग निरीक्षण के बाद ही किया जाता है और इसे पोषण दिया जाता है: न तो आनंद के लिए, न ही नशे के लिए, न ही सुंदर शरीर के लिए, न ही मान-सम्मान के लिए, बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और संरक्षण के लिए, हानि को रोकने के लिए और ब्रह्म का पालन-पोषण करने के लिए। इस प्रकार, मैं पिछली भावनाओं को दूर भगाऊंगा, नई भावनाओं को जागृत नहीं होने दूंगा, स्वस्थ रहूंगा, दोषरहित रहूंगा और शांति से जीवन व्यतीत करूंगा।

निरीक्षण के बाद जिम्मेदार निवास: केवल सर्दी से बचाव, गर्मी से बचाव, मक्खी-मच्छर, धूप और सांप के संपर्क से बचाव, जलवायु संबंधी खतरों को दूर करने और अकेले बैठने के आनंद के लिए।

जांच के बाद, रोगी की ज़रूरतों और चिकित्सीय ज़रूरतों का इस्तेमाल केवल उत्पन्न हुई झुंझलाहट की भावना को शांत करने के लिए किया जाता है, और ज़्यादा से ज़्यादा गुस्से को रोकने के लिए। [एम.एन.2]

उसे इस प्रकार उपयोग करने के लिए सही मात्रा का ज्ञान होना चाहिए। "उसे सही मात्रा का ज्ञान होना चाहिए," इन दो पहलुओं से, उसे सही मात्रा का ज्ञान और समझ होनी चाहिए।

“यहाँ जिस धार्मिक सिद्धांत की संतुष्टि होती है,” यहाँ भिक्षु वह व्यक्ति है जो किसी भी वस्त्र में संतुष्ट रहता है और किसी भी वस्त्र की प्रशंसा करता है। वह वस्त्रों के कारण अनुचित इच्छाओं में नहीं पड़ता, और जब उसे वस्त्र नहीं मिलते तो वह भयभीत नहीं होता, उनके प्रति लालची नहीं होता, निराश नहीं होता, बल्कि उस हानि को देखकर भी निर्दोष भाव से उसका सदुपयोग करता है [SN.16.1], और वह इन वस्त्रों को संतुष्टिदायक नहीं मानता तथा दूसरों को तुच्छ समझकर अपनी प्रशंसा नहीं करता। जो कुशल, आलसी नहीं, सही ज्ञान रखने वाले और सचेत होते हैं, वे ही सर्वोच्च पवित्र जाति में रहने वाले भिक्षु कहलाते हैं [DN.33/AN.4.28]।

इसके अलावा, भिक्षु वह व्यक्ति होता है जो उसे जो भी भोजन दिया जाता है, उससे संतुष्ट रहता है, ...(छोड़ा गया)।

इसके अलावा, भिक्षु वह व्यक्ति है जो किसी भी निवास स्थान से संतुष्ट रहता है, ...(छोड़ा गया)।

इसके अलावा, भिक्षु वह व्यक्ति है जिसने किसी भी रोगी की जरूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा किया है, ...(छोड़ा गया)।

“वह इन सबमें संरक्षक है और गाँव में आत्मसंयम रखता है”: “वह इन सबमें संरक्षक है,” वह वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं में संरक्षक और रक्षक है। संरक्षक, रक्षक। या, वह हर जगह संरक्षक, रक्षक, संरक्षक है।

"गांव में वह संयमित पैदल यात्री है," गांव में वह संयमित, विवेकशील, सतर्क, रक्षक और संरक्षक है।

“उकसाए जाने पर भी उसे कठोर शब्द नहीं बोलने चाहिए”: जब उसकी निंदा की जाए, उसे फटकारा जाए, उसकी बदनामी की जाए, उसे नाराज किया जाए, अपमानित किया जाए या उसका अपमान किया जाए, तो उसे हिंसक रूप से जवाब नहीं देना चाहिए, बहस नहीं करनी चाहिए, डांटना

और अपमान नहीं करना चाहिए, क्रोध नहीं भड़काना चाहिए, पलटकर बहस नहीं करनी चाहिए [SN.7.2], झगड़ा नहीं करना चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए, उसे त्याग देना चाहिए, भगा देना चाहिए, ...

207 · जिनकी निगाहें नीचे की ओर हैं और जो भटकते नहीं हैं, जो ध्यान में लीन हैं और जो अधिक गंभीर हैं, शांत अवस्था में जाने के बाद, उन्हें सोचने और पछताने का इरादा छोड़ देना चाहिए।

"जिसकी निगाहें झुकी हुई हैं और जिसकी निगाहें इधर-उधर नहीं भटकतीं": आँखें कैसे भ्रमित होती हैं? ...(अस्पष्ट भाग, पिछले अनुभाग देखें)। आँखें कैसे भ्रमित नहीं होतीं? ...(अस्पष्ट भाग, पिछले अनुभाग देखें)।

"और गैर-भटकन," यह भटकन कैसे है? ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"भटकन रहित रहने से," उसे भटकने की प्रवृत्ति का त्याग करना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए, उसका अंत कर देना चाहिए, उसे अस्तित्वहीन कर देना चाहिए। उसे भटकने से अलग होना चाहिए, संयमी होना चाहिए, प्रस्थान करना चाहिए, विरक्त होना चाहिए, त्याग देना चाहिए, मुक्त होना चाहिए, बंधनों से मुक्त होना चाहिए, उसे बंधनों से दूर रहना चाहिए, उसे एकांत में बैठने के लिए इच्छुक और एकांत में बैठना पसंद करने वाला व्यक्ति बनना चाहिए, जो ध्यान का तिरस्कार नहीं करता, जिसके दर्शक होते हैं, जो खाली घर प्राप्त करते हैं, ध्यान करने वाले, जो ध्यान से प्रेम करते हैं, एकता का अभ्यास करने वाले, अपने हितों के प्रशंसक।

"जो लोग ध्यान में लीन हैं, वे अधिक संयमी हैं": "जो लोग ध्यान में लीन हैं" वे दो प्रकार से ध्यान में लीन होते हैं: या तो अविकसित प्रथम ध्यान के उद्‌भव के लिए, उसे सुदृढ़ रूप से नियंत्रित करने के लिए, या उस द्वितीय ध्यान के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है... (छोड़ा गया), तृतीय ध्यान..., चतुर्थ ध्यान...। या, प्रथम ध्यान अभ्यास, अभ्यास और अधिक अभ्यास में उत्पन्न हुआ है, या द्वितीय ध्यान..., तृतीय ध्यान..., चतुर्थ ध्यान अभ्यास, अभ्यास और अधिक अभ्यास में है।

"अधिक संयमी लोग।" यहाँ, भिक्षु दिन के दौरान शांतिपूर्वक चलने और बैठने से मन को बाधाओं से शुद्ध करता है, ...

"जब आप शांत होने लगते हैं, तो आप एकाग्रता की अवस्था में होते हैं": "शांति," अर्थात् चौथे ध्यान की शांति, असावधानी, अवलोकन, मन की स्थिरता, मन की समता, मन की शांत अवस्था और मन की तटस्थ अवस्था। "स्थिर अवस्था," अर्थात् मन की स्थिरता, स्थिरता, अविचलित, स्थिर मन, एकाग्रता, स्थिर मूल और समाधि। "शांत होने के बाद एकाग्रता की अवस्था": चौथे ध्यान में, व्यक्ति शांत मन की अवस्था में आ जाता है, जो अशांत नहीं बल्कि स्थिर होता है।

उसे सोचने और पछताने की इच्छा को त्याग देना चाहिए: "सोच" नौ प्रकार की होती है: स्वार्थपूर्ण सोच, द्वेषपूर्ण सोच, हानिकारक सोच, परिवार की सोच, भूमि की सोच, मृत्यु की सोच, दूसरों के प्रति सहानुभूति की सोच, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा की सोच, और तिरस्कार से बचने की सोच। उसके लिए, स्वार्थपूर्ण सोच, द्वेषपूर्ण सोच की इच्छा होती है... या, अज्ञानतापूर्ण सोच, चिंतन और मनन की इच्छा; अनुचित सोच...; अहंकार...; घमंड...; लापरवाही...; हेकड़ी...।

"अफसोस," ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"उसे सोचने और पछताने के इरादे को काट देना चाहिए": खोज करने, सोचने और पछताने के इरादे को काट देना चाहिए, अलग कर देना चाहिए, नष्ट कर देना चाहिए, दूर भगा देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, उसका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए।

208 · जब शब्दों द्वारा प्रेरित किया जाए तो उसे सचेत और प्रसन्न होना चाहिए, उसे साथी ब्राह्मणों की बंजरता को नष्ट करना चाहिए, उसे दयालु शब्द कहने चाहिए (पर) सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए, उसे लोगों के धर्म पर विवाद करने का इरादा नहीं करना चाहिए।

"जब कोई गुरु, या कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति, या गुरु के समतुल्य कोई व्यक्ति, या कोई मित्र, या परिचित, या कोई करीबी व्यक्ति, या कोई साथी उसे डांटते हुए कहे: "भिक्षुओं! यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है; यह वह चीज है जो तुमने हासिल नहीं की है; यह तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है; यह तुम्हारे लाभ के लिए बिना उपदेशों के है।" इस आग्रह को याद करके, उसे प्रसन्न होना चाहिए, खुश होना चाहिए, चाहना चाहिए, स्वीकार करना चाहिए, आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक युवती या पुरुष जिसे सिर सजाना पसंद है, उसने अपना सिर धोया और हरे कमल के फूल की अंगूठी, चमेली के फूलों की एक बड़ी माला और सिर पर पहनने के लिए एक पुष्पमाला प्राप्त की, जिसे दोनों हाथों से ग्रहण करके सिर के ऊपर पहना जा सकता है। [MN.5] उसे प्रसन्न होना चाहिए, खुश होना चाहिए, चाहना चाहिए, स्वीकार करना चाहिए, आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए।

"जैसे कोई खजाने की ओर इशारा करता है, वैसे ही पाप को देखने वाले को उसकी ओर देखना चाहिए। आरोप लगाने वाले, बुद्धिमान, ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति को उसके निकट रहना चाहिए। ऐसा निकट व्यक्ति बुराई से श्रेष्ठ हो सकता है। वह शिक्षा दे और चेतावनी दे, वह नीचता से रक्षा करे। वह वास्तव में अच्छे लोगों का प्रिय है, बुरे लोगों का नहीं।" [ध. 76-77]

"शब्दों से प्रेरित लोगों को सचेत होकर प्रसन्न होना चाहिए और सहोदर ब्राह्मण की उदासी को नष्ट करना चाहिए": "उसी सहोदर ब्राह्मण," जिसका आचरण, व्रत और शिक्षार्थी एक ही है। "उसे उसी ब्राह्मण की उदासी को नष्ट करना चाहिए," उसे सहोदर ब्राह्मण के हृदय की पीड़ा और उत्पन्न हो रही कठोरता को नष्ट करना चाहिए। उसे पाँच प्रकार की हृदयहीनता [MN.16] को तोड़ना चाहिए और तीन प्रकार की बांझपन [SN.45.166] को भी तोड़ना चाहिए: लोभ की बांझपन, क्रोध की बांझपन, अज्ञान की बांझपन को तोड़ना चाहिए, नष्ट करना चाहिए, पूर्णतः नष्ट करना चाहिए।

"उसे अच्छे शब्द बोलने चाहिए (पर) सीमा से अधिक नहीं": "उसे बुद्धिमानी से बोलना चाहिए और लाभप्रद, धर्म से युक्त शब्दों की प्रतीक्षा करनी चाहिए, उचित समय, तर्क और संयम के साथ, उसे बोलना चाहिए। (पर) सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए।" "सीमा," दो प्रकार की सीमाएँ हैं: उचित समय की सीमा और उपदेशों की सीमा। उचित समय की सीमा क्या है? जिन शब्दों के लिए उचित समय बीत चुका है, उन्हें नहीं बोलना चाहिए, जिन शब्दों ने सीमा पार कर ली है, उन्हें नहीं बोलना चाहिए, जो शब्द सीमा पार कर चुके हैं, उन्हें उचित समय पर नहीं बोलना चाहिए, जो शब्द भविष्य में उचित समय पर आएंगे, उन्हें नहीं बोलना चाहिए, और जो शब्द भविष्य में उचित समय पर आएंगे, उन्हें नहीं बोलना चाहिए। उसे भविष्य में समय और सीमाओं पर निर्भर शब्दों को नहीं बोलना चाहिए।

"जो सही समय पर आता है, और लंबे समय तक बोलता है, उसे कोयल के बच्चे की तरह सो जाने की स्थिति में माना जाता है।" [जात.4.121]

यह उचित समय की सीमा है। उपदेशों की सीमाएँ क्या हैं? उसे दूषित शब्द, घृणित शब्द, मूर्खतापूर्ण शब्द नहीं बोलने चाहिए, उसे झूठ नहीं बोलना चाहिए, उसे फूट डालने वाले शब्द नहीं बोलने चाहिए, उसे बुरे शब्द नहीं बोलने चाहिए, उसे किसी को बताना नहीं चाहिए, उसके बारे में बात नहीं करनी चाहिए, उसे समझाना नहीं चाहिए, उसके बारे में बोलना नहीं चाहिए, यही उपदेशों की सीमा है।

"उसे लोगों के धर्म पर विवाद करने का इरादा नहीं रखना चाहिए": "लोग" क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ परिवार, भिक्षु, स्वर्ग और मनुष्य हैं। विवाद, निंदा, फटकार, लोगों का अपमान, प्रशंसा न मिलना, बुराई देखना, बुरी आजीविका, इन सब बातों का मन न बनाना चाहिए, ऐसा इरादा न पैदा करना चाहिए, ऐसा कुछ भी नहीं होने देना चाहिए।

209 · इसके अलावा, दुनिया में पाँच प्रकार की धूल है, जिसके लिए सचेत लोगों को संयम सीखना चाहिए, सभी रूपों, ध्वनियों और गंधों में, सभी स्वादों और स्पर्शों में, उसे लालच पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

"इसके अलावा, दुनिया में पांच प्रकार की धूल होती है": "इसके अलावा," वाक्यों का निरंतरता; .... "पांच प्रकार की धूल," आकार की धूल, ध्वनि की धूल, गंध की धूल, स्वाद की धूल और स्पर्श की धूल।

मैल के बदले लालच को मैल (धूल) कहा जाता है। "धूल" का अर्थ लालच के समान ही है। मैल का त्याग करने के बाद, ऋषि-मुनि मैल से दूर रहने वालों की शिक्षाओं में निवास करते हैं। मैल के बदले घृणा... मैल के बदले अज्ञान...

"इस दुनिया में," ...।

जो लोग सचेत हैं, उन्हें अपने विचारों को नियंत्रित करने के लिए सीखना चाहिए: रूप, ध्वनि, गंध और स्पर्श के प्रति आसक्ति को नियंत्रित करने के लिए। जो लोग विचार करते हैं, उन्हें विचार, स्मरण, स्मरण की अवस्था, प्रतिधारण, अपभ्रंश न होना, न भूलने की अवस्था, मन का मूल, मन की शक्ति, सचेतनता और अपभ्रंश का मार्ग, यही सचेतनता कहलाता है; पूर्ण रूप से धारण करने वाला व्यक्ति विचारशील कहलाता है, जो पूर्ण रूप से लीन रहता है, जिसके पास पर्याप्तता है, और जो इस सचेतनता को धारण करता है। उन्हें सीखना चाहिए...। जो लोग विचार करते हैं, उन्हें अपने विचारों को नियंत्रित करने के लिए सीखना चाहिए: रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के प्रति आसक्ति को नियंत्रित करने, त्यागने, शांत होने, काटने और रोकने के लिए, उन्हें उपदेशों को बढ़ाना सीखना चाहिए...।

“उसे रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शों में लालच पर विजय प्राप्त करनी चाहिए”: उसे रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शों में लालच पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, (इसे) पूरी तरह से जीत लिया जाना चाहिए, पराजित किया जाना चाहिए, अभिभूत किया जाना चाहिए, समाप्त किया जाना चाहिए, कुचल दिया जाना चाहिए।

210 · एक सचेत और मुक्त हृदय वाला भिक्षु इन धर्मों में अपनी इच्छाओं को संयमित करे, धर्म पर समयपूर्वक और उचित ढंग से विचार करे, और जब वह एक (एकीकृत) व्यक्ति बन जाए तो अंधकार का नाश करे। [इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा।]

“इन धर्मों में उसे अपनी इच्छाओं को संयमित करना चाहिए”: “इनमें,” रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शों में। “इच्छा,” ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। “उसे इन धर्मों में अपनी इच्छाओं को संयमित करना चाहिए”: इन धर्मों में इच्छाओं को संयमित, निष्कासित, त्यागा, काटा, समाप्त किया जाना चाहिए और उनका अस्तित्व समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

“सजग और मुक्त हृदय वाले भिक्षु”: “भिक्षु,” गुणी भिक्षु, या विद्वान भिक्षु। “जो सचेत हैं,” सभी विचार, यादृच्छिक विचार... (हटा दिया गया), सजगता, विचारशीलता, और विचलित न होने का मार्ग विचार कहलाते हैं। रखना, पूरी तरह से रखना... (हटा दिया गया)।

“मन में दयालुता और विचारों वाले भिक्षु”: प्रथम ध्यान का हृदय (मन) अलग हो गया है, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“उन्होंने धम्म पर समयोचित और उचित ढंग से विचार किया”: “समयोचित ढंग से,” जब मन भटक रहा हो, तब समाथा का सही समय होता है, और जब मन एकाग्र हो, तब विपश्यना का सही समय होता है।

सही समय पर वह अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करता है, और अन्य समयों पर रुक जाता है। इसके अलावा, वह सही समय पर प्रसन्न होता है, सही समय पर हृदय पर ध्यान केंद्रित कर सकता है, सही समय पर अवलोकन करता है, सही समय पर ध्यान करने वाला और निपुण होता है। अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करने का सही समय कब है? संयम बरतने का सही समय कब है? आनंद का सही समय कब है? और समाधि का सही समय क्या है? मन को शांत करने का सही समय: इसे ध्यान करने वाले को कैसे समझाया जाए? जब हृदय एकाग्र हो, तब अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करो, और जब वह विलीन हो रहा हो, तब संयम बरतो। जब हृदय में कोई रुचि न हो, तब उसे तुरंत प्रसन्न होना चाहिए। जब भी हृदय प्रसन्न होता है, तब वह अविचलित और अत्यावश्यक बन जाता है। यही समाधि का सही समय है, अपने भीतर की भावना प्रसन्न होनी चाहिए। जब भी इन विधियों में से किसी एक का उपयोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया जाता है, अपने मन को जानने और एकाग्रता में प्रवेश करने के बाद, तुरंत अवलोकन करना चाहिए। ज्ञानी व्यक्ति सही समय पर ज्ञाता बन जाता है, सही समय को जानने वाला और सही समय पर परिचित बन जाता है। सही समय पर हृदय की स्थिति के आधार पर भेदभाव किया जाना चाहिए।

“धर्म का समय पर और सही ढंग से अध्ययन करो”: धर्म का सही अध्ययन करो: “सभी कर्म अनित्य हैं।” धर्म का सही अध्ययन करो: ....

"एकाग्रचित्त होकर उसे अंधकार का नाश करना चाहिए। [इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कहा]": "एकाग्रचित्त होना, एक ही मन की अवस्था, विचलित न होने वाला मन, स्थिर मन, समाधि, स्थिर मन, एकाग्रता, ये सभी एकाग्रचित्तता हैं। उसे अंधकार का नाश करना चाहिए," लोभ के अंधकार का, घृणा के अंधकार का, अज्ञान के अंधकार का, दृष्टिहीनता के अंधकार का, अहंकार के अंधकार का, अपवित्रता के अंधकार का, बुरे कर्मों के अंधकार का, अंधत्व का, दृष्टिहीनता का, बुद्धिहीनता का, कष्टदायक गुटों का, जो निर्वाण की ओर नहीं ले जाते; उसका नाश करना चाहिए, उसे त्याग देना चाहिए, उसे दूर भगा देना चाहिए, उसका अंत कर देना चाहिए और उसका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए।

"धन्य प्रभु," ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

Cūḷa Niddesa
परम पूज्य, अरहंत, प्रबुद्ध को नमस्कार।

दूर तट तक जाने के मार्ग की व्याख्या
प्रस्तावना
कोसल के रमणीय नगर से, दक्षिण मार्ग पर, शून्यता की इच्छा रखते हुए, वेदों का ज्ञान रखने वाला एक ब्राह्मण गया।

अस्सका राज्य में, दो देशों के बीच अलाका में, गोधावरी नदी के किनारे वह भीख मांगते और फल तोड़ते हुए रहता था।

जिस स्थान पर उसने शरण ली थी, उसके पास ही एक बड़ा गाँव था, जिसकी आमदनी से वह एक बड़ा बलिदान आयोजित करता था।

यज्ञ के बाद वह अपने फूस के घर लौट आया, और जब वह दोबारा अंदर आया, तो एक और ब्राह्मण वहाँ मौजूद था।

थके हुए पैरों, प्यासे, गंदे दांतों और धूल से सने सिर के साथ, वह (बाद वाला) उससे (पहले वाले से) मिलने गया, और पाँच सौ (इकाइयाँ) की भीख माँगी।

जब बावरी (पूर्वज) ने उसे देखा, तो उसने उसे बैठने के लिए आमंत्रित किया, पूछा कि क्या वह स्वस्थ और शांत है, और कहा:

मेरे पास जो भी धन था, मैंने वह सब दान कर दिया है, मुझे क्षमा करें, ब्राह्मण, मेरे पास पाँच सौ भी नहीं हैं।

(बाद वाला:) यदि तू इसे मुझे, जो माँगता हूँ, नहीं देगा, तो सातवें दिन तेरा सिर सात टुकड़ों में फट जाए।

जब उस धोखेबाज ने (सामान्य शिष्टाचार के साथ) यह भयानक श्राप दिया; ये शब्द सुनकर बावरी व्यथित हो गया।

वह कम खाने के कारण दुबला हो गया, मानो किसी तीर से घायल हो गया हो; जिनका हृदय ऐसा होता है, उनका मन ध्यान में प्रसन्न नहीं रहता।

उन्हें इतना दुखी देखकर, एक देवता जो उनका भला करना चाहते थे, बावरी के पास आए और बोले:

यह ढोंगी जो पैसे मांगता है, उसे सिर के बारे में कुछ नहीं पता, न ही सिर फोड़ने के बारे में, उसे इस बात का ज्ञान नहीं है।

(बावरी:) यदि ऐसा है, यदि आप जानते हैं, तो कृपया पूछे जाने पर मुझे बताएं, सिर और सिर फोड़ने के बारे में, मुझे आपके शब्द सुनने दें।

(देवता:) न तो मुझे यह पता है, न ही मेरी बुद्धि को यह ज्ञात है, केवल विजेता ही सिर फोड़ने के बारे में जानते हैं।

(बावरी:) यदि ऐसा है, तो इस धरती पर कौन जानता है, सिर और सिर फोड़ने के बारे में: कृपया मुझे उसके बारे में बताएं!

(देवता:) पूर्व में कपिलवस्तु के एक भिक्षु, जगत के गुरु, ओक्काक राजा के वंशज, शाक्यों के पुत्र, प्रकाश लाने वाले;

उनका धम्म दूसरे छोर तक पहुँच चुका है, सभी सिद्धांतों से परे जा चुका है, महान ज्ञान और शक्ति से परिपूर्ण ब्राह्मण बुद्ध, सभी धर्मों के ज्ञान से परिपूर्ण, भ्रष्टाचार से मुक्त, वह मुक्त व्यक्ति जो आसक्ति में विलीन हो चुका है।

वे बुद्ध हैं, जिनका संसार आदर करता है, जो संसार को धम्म का उपदेश देते हैं, उनके पास आओ और पूछो, वे तुम्हें समझा देंगे।

“प्रबुद्ध पुरुष” शब्द सुनकर बावरी प्रसन्न हुए। उनका दुःख कम हुआ, उनकी खुशी अपार हो गई।

प्रसन्न, उत्साहित और आनंदित होकर बावरी ने देवता से पूछा: किस गाँव, कस्बे या स्थान पर जाकर हम उस प्रबुद्ध व्यक्ति, सर्वोच्च द्विपाद प्राणी के दर्शन कर सकते हैं?

(देवता:) कोसल की भूमि में, सावत्थी में, विजेता, ज्ञानी पुरुष, शाक्यमुनि विराजमान हैं, जो अतुलनीय, संकटमुक्त, अनासक्त और मनुष्यों के श्रेष्ठ हैं।

तब ब्राह्मण ने अपने शिष्यों को बुलाया, जो वेदों के ज्ञाता थे: "विद्यार्थियों! आओ! मैं तुमसे कुछ कहूँगा, कृपया मेरी बातें ध्यान से सुनो।"

एक दुर्लभ दर्शन, अब वह संसार में प्रकट हो रहा है; वह प्रबुद्ध के रूप में जाना जाता है, इस दो पैरों वाले प्राणी के दर्शन के लिए सावत्थी की ओर शीघ्र प्रस्थान करो।

(छात्र:) हे ब्राह्मण, हम बुद्ध को कैसे जानेंगे? जो लोग उन्हें नहीं जानते, उन्हें बताइए कि हम उन्हें कैसे जान सकते हैं।

(बावरी:) वेदों में उनका वर्णन किया गया है, बत्तीस लक्षणों का क्रमवार पूर्ण वर्णन किया गया है।

जिनके शरीर पर ये गुण मौजूद हैं, एक महान व्यक्ति के ये लक्षण, उनके लिए दो ही रास्ते हैं, तीसरा रास्ता नहीं मिल सकता।

यदि वह घर पर रहता है, इस भूमि को जीतने के बाद, बिना लाठी और बिना तलवार के, वह न्याय से शासन करता है।

लेकिन यदि वह बेघर हो जाता है, तो वह पर्दा उठाने वाला, प्रबुद्ध और सर्वोच्च अरहंत बन जाता है।

मेरे वंश, उपनाम, विशेषताओं, वेदों, शिष्यों और आगे सिर तथा सिर विच्छेदन के बारे में: कृपया उनसे केवल मन में ही पूछें।

यदि वह बुद्ध हैं, निर्बाध द्रष्टा हैं, तो जब आप अपने मन से उनसे प्रश्न करेंगे, तो वे शब्दों में उत्तर देंगे।

बावरी के शब्दों को सुनने के बाद, सोलह ब्राह्मण शिष्य: अजिता, तिस्सा मेटेय्या, पुण्क, और मेट्टागु,

साथ ही धोतका और उपासिव, नंदा और हेमका, दो तोदेय और कप्पा, और बुद्धिमान जटुकन्नि।

भद्रावुध और उदय, ब्राह्मण पोसाला, चतुर मोगराज और महान ऋषि पिंगीय भी;

वे सभी जिनके शिष्य या अनुयायी हों, विश्व के प्रसिद्ध लोग, ध्यान करने वाले, ध्यान प्रेमी, अतीत में दृढ़ अभ्यास वाले;

बावरी से पूछने के बाद, वे उठे, उसके दाहिनी ओर घेरा बनाया, अपनी भेड़ की खाल पहनी और उत्तर की ओर चले गए।

पहले अलका का पतितथाना, फिर महिस्सती, उज्जेनी और गोनाधा, वेदिसा और वनसा,

कोसंबी और साकेत को भी, और सर्वोच्च नगर सावत्थी, सेतव्य, कपिलवस्तु, और कुसिनारा नगर को भी।

पावा और भोगा शहर, वेसाली, मगध शहर, और पसांक सीटिया (रॉक टेम्पल), सुखद और आकर्षक।

जैसे प्यासे व्यक्ति को ठंडा पानी सुकून देता है, जैसे व्यापारी को बड़ा लाभ मिलता है, जैसे गर्मी से परेशान लोगों को सूरज की छाया सुकून देती है, वैसे ही वे पहाड़ पर चढ़ गए।

उस समय, भगवान भिक्षु संघ के सामने विराजमान थे, और जंगल में दहाड़ते हुए शेर की तरह धम्म का उपदेश दे रहे थे।

अजिता ने बुद्ध को देखा: प्रकाश से बुने हुए सूर्य की तरह, पंद्रहवें दिन अपनी पूर्णता पर पहुँचते चंद्रमा की तरह।

बुद्ध और उनके संपूर्ण स्वरूप को देखकर, अजिता एक तरफ खड़ा हो गया और मन ही मन प्रश्न पूछने लगा:

कृपया हमें हमारे गुरु के जन्म के बारे में बताइए, कृपया हमें उनका उपनाम और उनके गुण बताइए, कृपया हमें वेदों में उनकी निपुणता के बारे में बताइए, और ब्राह्मण कितने छात्रों को शिक्षा देते हैं?

(भगवान:) उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष है, उनका उपनाम बावरी है, उनके शरीर पर तीन विशेषताएं हैं, और वे तीनों वेदों के ज्ञाता हैं।

विशेषताओं और प्राचीन कथाओं के संदर्भ में, शब्दावली और अनुष्ठानों सहित, वह पाँच सौ (छात्रों) को शिक्षा देता है, और उसने अपने शिक्षण में पूर्णता प्राप्त कर ली है।

(अजिता, बिना बोले:) हे भगवान, जिनकी प्यास बुझ चुकी है, हमें बावरी के गुणों के बारे में बताइए ताकि हमें कोई संदेह न रहे।

(भगवान:) वह अपनी जीभ से अपना चेहरा ढक सकता है, उसकी भौहों के बीच सफेद बालों का गुच्छा है, उसका पुरुष अंग ढका हुआ है, यह जान लो, विद्यार्थी।

प्रश्न सुने बिना ही उत्तर सुनकर संघ में (धार्मिक) आनंद उत्पन्न हुआ, और हाथ जोड़कर उन्होंने विचार किया:

कौन सा देव या ब्रह्मा, या यहाँ तक कि सुजा के पति इंद्र, ये प्रश्न मन में पूछते हैं? वे किसे उत्तर देते हैं?

(अजिता, मौखिक रूप से): बावरी ने सिर और सिर फटने के बारे में पूछा, हे भगवान, कृपया उत्तर दें, हमारे संदेहों को दूर करने के लिए, हे महान ऋषि!

(भगवान:) अज्ञान "सिर" है, ज्ञान "दिमाग को चीरने वाला" है, जब इसे विश्वास, जागरूकता, एकाग्रता, इच्छा और जीवन शक्ति के साथ मिलाया जाता है।

धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर, शिष्य ब्राह्मण ने अपनी खाल एक कंधे पर रखी और भगवान के चरणों में सिर झुकाकर गिर पड़ा।

(अजिता:) हे ब्राह्मण स्वामी बावरी, अपने शिष्यों सहित, प्रसन्न और आदरपूर्वक, हम आपके चरणों में प्रणाम करते हैं, हे प्रत्यक्षदर्शी।

(भगवान:) ब्राह्मण बावरी अपने शिष्यों के साथ सुखी हों; हे शिष्य, तुम भी सुखी रहो और दीर्घायु हो!

बावरी के संदेह हों या आपके, सभी के संदेह, पूछे जाने की अनुमति दी गई है, कृपया जो चाहें पूछें।

ज्ञानी पुरुष की अनुमति प्राप्त करके, वे बैठ गए और अपनी हथेलियों को आपस में दबाया, और अजित ने तथागत से अपना पहला प्रश्न पूछा।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.1

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

1. अजिता
(अध्याय शीर्षकों में संक्षिप्तता के लिए, इन्हें विद्यार्थी के नाम से संक्षिप्त किया जाएगा। पूरा शीर्षक है: ब्राह्मण विद्यार्थी अजिता द्वारा पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या।)

1 · [आदरणीय अजिता, इस प्रकार:] संसार किससे घिरा हुआ है? यह किस कारण से प्रकाशित नहीं होता? आप इसकी आसक्ति क्या कहते हैं? इसका सबसे बड़ा भय क्या है?

"यह संसार किससे घिरा है?": "यह संसार," नरक लोक, पशु जगत, दुष्ट आत्माओं का लोक, मानव जगत, स्वर्ग लोक, समुच्चय जगत, लोकों का लोक, सजीव जगत, यह संसार, अन्य लोक, ब्रह्म जगत, स्वर्ग लोक, यही संसार कहलाता है। यह संसार ढका हुआ, आच्छादित, अस्पष्ट, बंद और छिपा हुआ है।

आदरणीय अजिता, इस प्रकार: "इस प्रकार," वाक्यों का क्रम; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों का समापन; शब्दों का संयोजन; शब्दों का जुड़ाव; यही वाक्यों का क्रम है, जो "इस प्रकार" है। "आदरणीय," यह प्रेम, आदर, सम्मान और आज्ञाकारिता का पर्यायवाची है। यह "आदरणीय" है। "अजिता," नाम, उपाधि, सुरक्षा, सामान्य नाम, नामकरण, उपनाम, शब्द, वाक्यांश, उपनाम।

"यह किस कारण से चमक नहीं रहा है": यह किस कारण से चमक नहीं रहा है, प्रकाशमान नहीं है, उज्ज्वल नहीं है, ज्ञात नहीं है।

“इसके आसंजन से आपका क्या तात्पर्य है?”: संसार का आसंजन, बंधन और अपवित्रता क्या है? संसार किस कारण से दूषित, अत्यधिक दूषित, घनिष्ठ रूप से दूषित (प्रदूषित), मलिन, मिश्रित, जुड़ा हुआ, स्थिर, अवरुद्ध है? क्या आप कहते हैं, समझाते हैं, सिखाते हैं, सूचित करते हैं, निर्माण करते हैं, उजागर करते हैं, विश्लेषण करते हैं, स्पष्ट करते हैं?

“यह भयानक आतंक क्या है?”: दुनिया का आतंक, बड़ा डर, उत्पीड़न, हमला, विपत्ति और आपदा क्या है?

2 · [भगवान बुद्ध: “अजिता!”] संसार अज्ञान से घिरा हुआ है, क्योंकि यह कंजूस और बेलगाम है। मैं कहता हूँ कि लालसा इसका बंधन है, और पीड़ा इसका सबसे बड़ा भय है।

“संसार अज्ञान से घिरा हुआ है”: “अज्ञान,” दुख का अज्ञान, दुख की ओर ले जाने वाले मार्ग का अज्ञान, अतीत का अज्ञान, भविष्य का अज्ञान, अतीत और भविष्य दोनों का अज्ञान, विशिष्ट परिस्थिति और उससे उत्पन्न होने वाले धर्मों का अज्ञान, ऐसा सभी अज्ञान, अदृश्य, अनदेखा, अचेतन, अज्ञानी, अगम्य, अचेतन, अनन्वेषित, गलत दृष्टिकोण, अननिगरानी, गलत ढंग से देखा गया, निम्न स्तर की बुद्धि, अधार्मिक ज्ञान, आसक्ति, अज्ञान की उग्र धाराएँ, अज्ञान का बंधन, चिंता की अंतर्निहित प्रवृत्ति का अज्ञान, अज्ञान का उलझाव, अज्ञान की बाड़ और अज्ञान की जड़, ये सभी अज्ञान कहलाते हैं।

“लोक”: नरक लोक, पशु लोक, दुष्ट आत्माओं का लोक, मनुष्य लोक, स्वर्ग लोक, समुच्चय लोक, लोकों का लोक, अस्तित्व का लोक, यह लोक, अन्य लोक, ब्रह्मा का लोक, स्वर्ग लोक — इन सभी को लोक कहा जाता है। यह लोक अज्ञान से घिरा हुआ, ढका हुआ, अस्पष्ट, बंद, छिपा हुआ है।

“अजिता”: भगवान ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारते हैं। “भगवान” आदर का पर्यायवाची है। इसके अतिरिक्त, “लालच का नाश करने वाले” भगवान हैं; “रोग का नाश करने वाले” भगवान हैं; “अहंकार का नाश करने वाले” भगवान हैं; “कांटों का नाश करने वाले” भगवान हैं; “अशुद्धियों का नाश करने वाले” भगवान हैं; “समाप्त करने वाले” भगवान हैं; “शरीर, उपदेश, मन और बुद्धि का अभ्यास करने वाले” भगवान हैं; या “भगवान वनों, जंगली जंगलों और सीमावर्ती आवासों (बैठने की जगह) के निकट हैं, जहाँ बोलना कम होता है, शांति होती है, मानवीय वातावरण से दूर, एकांत और अकेले बैठने के लिए उपयुक्त स्थान होता है” भगवान हैं। या “भगवान वही हैं जो वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की आवश्यकताओं और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतों को अलग-अलग करते हैं”; या “भगवान वही हैं जिन्हें धर्म का स्वाद, धम्म का स्वाद, मुक्ति का स्वाद, उपदेशों की अधिकता, मन और ज्ञान का अनुभव होता है”; या “भगवान चार प्रकार के ध्यान, चार असीम, चार निराकार आदि हैं; जो अलग-अलग करते हैं वही भगवान हैं”; या भगवान वही हैं जिन्हें आठवीं मुक्ति, आठवीं विजय, नौवां निवास स्थान आदि प्राप्त है; या भगवान दस विचारों, दस अवस्थाओं का अभ्यास करने वाले, श्वास के आने-जाने का ध्यान रखने वाले हैं; जो शुद्ध रूप से विभाजित हैं वही भगवान हैं। या फिर भगवान बुद्ध चार प्रकार की चेतना, चार प्रकार के धर्म, चार प्रकार के दिव्य आधार (इद्धिपाद), पाँच इंद्रियों, पाँच शक्तियों, सात ज्ञान के कारकों और पवित्र मार्ग की आठ शाखाओं को विभाजित करते हैं; या फिर भगवान बुद्ध दस तथागत, चार निर्भीकता, चार अबाधित समाधान, छह अलौकिक शक्तियाँ और छह ज्ञान के मार्ग हैं। “भगवान बुद्ध,” यह नाम न तो माता ने दिया है, न पिता ने, न भाई ने, न बहन ने, न मित्रों ने, न रिश्तेदारों ने, न समणों ने, न ब्राह्मणों ने, न स्वर्ग ने; यह परम मुक्ति है; बोधि वृक्ष के नीचे स्थित भगवान बुद्ध और समस्त ज्ञान एवं बुद्धि, अर्थात् भगवान बुद्ध के ज्ञान और गवाही के लिए (इस उपनाम की स्थापना) की स्थापना है।

“कंजूसी और संयम न करने के कारण क्या प्रकाशमान नहीं होता?”: कंजूसी पाँच प्रकार की कंजूसी है: (सही) जीवन कंजूसी, गृहस्थी कंजूसी, लाभ कंजूसी, प्रशंसा कंजूसी, धर्म कंजूसी, इस प्रकार की सभी कंजूसी, कंजूसी की अवस्था, लोभ, हृदय जकड़न, इसे कंजूसी कहते हैं। इसके अतिरिक्त, कंजूसी का संचय भी कंजूसी है; संसार में कंजूसी भी कंजूसी है; मत में कंजूसी भी कंजूसी है, इसे कंजूसी कहते हैं। शरीर के बुरे कर्मों में, या वाणी के बुरे कर्मों में, या इरादे के बुरे कर्मों में, या पाँचों इच्छाओं में, संयमित रहना विमुख होना है, हृदय का परित्याग उत्पन्न नहीं होता, या अच्छे धर्म का पालन नहीं किया जाता। अनित्यता की अवस्था, निरंतर कार्य करने की अवस्था, आदत से चिपके रहने की अवस्था, इच्छा की उपेक्षा करने की अवस्था, कर्तव्य की उपेक्षा करने की अवस्था, अभ्यास न करना, अधिक अभ्यास न करना, स्थापना न करना; विश्राम; इस तरह की मुक्ति की अवस्था को ही

संयमहीनता कहते हैं। "कंजूसी और शिथिलता के कारण संसार प्रकाशमान नहीं है": यह संसार कंजूसी और शिथिलता के कारण ही प्रकाशित, प्रकाशित नहीं हो रहा, उज्ज्वल नहीं है और प्रसिद्ध नहीं हो रहा है।

"मैं कहता हूँ कि उत्साह ही उसका पालन है": आकांक्षा को लालसा कहा जाता है, अर्थात् लोभ, वासना, सहमति, अनुरूपता, आनंद, इच्छा, जुनून, लेना, दूषित, अशांति, छल, (पुनर्जन्म) मूल कारण, (कड़वी) उर्वरता, (लोभ) बनाना, जाल, नदी, बंधन, रस्सी, आसक्ति, संचय, साथ, इच्छा, घनिष्ठ संपर्क, जंगल, वन, प्रेम, अपेक्षा, संबंध, रूप की इच्छा, ध्वनि की इच्छा, गंध की इच्छा, स्वाद की इच्छा, स्पर्श की इच्छा, अधिग्रहण की इच्छा, धन की इच्छा, पुत्रों की इच्छा, जीवन की इच्छा, इच्छा की अवस्था, आशा, प्रार्थना, लोभपूर्ण रूप, लोभ धारण करना, लाभ की खोज, अवैध लोभ, अनुचित लोभ, आशा, ईर्ष्या, इच्छा की इच्छा, शून्यता की इच्छा, रूप की इच्छा, निराकार प्यास, बुझी हुई प्यास, रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास, गंध की प्यास, स्वाद की प्यास, स्पर्श की प्यास, धम्म की प्यास, जलप्रपात, लगाम, बंधन, आसक्ति, बाधाएँ, आवरण, अशुद्धियाँ, संभावित संकटों की प्रवृत्तियाँ, उलझाव। लताएँ, कंजूसी, पीड़ा की जड़ें, पीड़ा के कारण, पीड़ा का घटित होना, जादुई जाल, जादुई काँटे, जादुई भोजन, शैतान का क्षेत्र, शैतान का निवास, शैतान की अवस्था, शैतान का बंधन, प्यास की नदी, प्यास का जाल, प्यास की रस्सी, प्यास का सागर, लालसा, लोभ और अस्वास्थ्य की जड़। इसे ही इच्छा कहते हैं। संसार के लिए, आसक्ति, बंधन और अपवित्रता, इस इच्छा के कारण संसार दूषित, प्रदूषित, घोर दूषित, अत्यधिक दूषित, मलिन, मिश्रित, आसक्त, अपवित्र और अवरुद्ध है; मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं बताता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ।

"पीड़ा ही इसका सबसे बड़ा भय है": "पीड़ा": जन्म की पीड़ा, बुढ़ापे की पीड़ा, बीमारी की पीड़ा, मृत्यु की पीड़ा, शोक की पीड़ा, निराशा की पीड़ा, नरक की पीड़ा, पशु जगत की पीड़ा, बुरी आत्माओं की पीड़ा, मनुष्य की पीड़ा, पीड़ा का मूल कारण, गर्भ में प्रवेश की पीड़ा, गर्भ में रहने की पीड़ा, जन्म की पीड़ा, आश्रित प्राणी की पीड़ा, दूसरों द्वारा नियंत्रित प्राणी की पीड़ा, अपने कर्मों की पीड़ा, दूसरों के कर्मों की पीड़ा, कड़वाहट, आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर, सिर, बाहरी कान, मुँह, दाँत की बीमारियाँ, खाँसी, अस्थमा, बाहरी नाक की बीमारी, बुखार, बुढ़ापा, पेट की बीमारी, कोमा, पेचिश, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, ट्यूमर, दाद, फेफड़ों की बीमारी, मिर्गी, खुजली, वात रोग, खरोंच (रोग), शुष्क त्वचा, बवासीर, मधुमेह, दाने (फोड़े और छाले), अल्सर, पित्ताशय की बीमारी, बलगम से होने वाली बीमारियाँ, वायु से होने वाले रोग, (तीन) सामूहिक रोगों से होने वाले रोग, ऋतुओं के परिवर्तन से होने वाले रोग, अनुचित मुद्रा से होने वाले रोग, अचानक होने वाली बीमारियाँ, कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न रोग, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल-मूत्र, मच्छर, वायु-जलाने वाले साँप, माता-पिता की मृत्यु से होने वाला कष्ट, पिता-पुत्रों की मृत्यु से होने वाला कष्ट, भाई-बहनों की मृत्यु से होने वाला कष्ट, संतान-पुत्रियों की मृत्यु से होने वाला कष्ट, सगे संबंधियों की मृत्यु से होने वाला कष्ट, धन-हानि से होने वाला कष्ट, रोग-हानि से होने वाला कष्ट, उपदेश के पतन से होने वाला कष्ट, दृष्टि के पतन से होने वाला कष्ट। समस्त धर्मों के लिए, आरंभ से ही यह ज्ञात था; मृत्यु से मृत्यु तक, कर्म पर आधारित कर्म, रूप नाम पर आधारित नाम पर आधारित नाम। जन्म-जन्म के क्रम में, जन्म-जन्म के साथ, वृद्धावस्था के क्रम में, रोग से पराजित, मृत्यु से आहत, कष्ट में आश्रयित, बिना आश्रय के, बिना वापसी के और बिना शरण के रहने वाले सभी कष्ट कहलाते हैं। यह पीड़ा ही संसार का आतंक है, भीषण आतंक है, उत्पीड़न है, प्रहार है, बुराई है और आपदा है।

3 · [आदरणीय अजिता, इस प्रकार:] नदियाँ हर जगह बहती हैं, इन नदियों से कौन रक्षा करता है? कृपया नदियों के नियंत्रण के बारे में बताइए, इन्हें कैसे रोका जाता है?

"धाराएँ हर जगह बहती हैं": "धाराएँ," प्यास की धारा, दृष्टि की धारा, अपवित्रता की धारा, बुरे कर्मों की धारा और अज्ञान की धारा। "हर जगह," सभी स्थानों में। "प्रवाह," धाराएँ, जलधाराएँ; आँखों से रूपों की ओर, प्रवाह; कानों से ध्वनियों की ओर..., नाक से गंध की ओर..., जीभ से स्वाद की ओर..., शरीर से स्पर्श की ओर..., इरादों से, प्रवाह, बहता है और संचारित होता है। आँखों से रूप की ओर बहने वाली तृष्णाएँ, कानों से ध्वनि की ओर बहने वाली तृष्णाएँ, नाक से गंध की ओर..., जीभ से स्वाद की ओर..., शरीर से स्पर्श की ओर..., इरादे से धर्म की ओर बहने वाली तृष्णाएँ।

"[इस प्रकार, आदरणीय अजिता]": "इस प्रकार," वाक्य का निरंतरता... (हटा दिया गया) यह वाक्य का क्रम है, "इस प्रकार" ...(हटा दिया गया)।

"धाराओं से बचाव क्या है?": धाराओं से बचाव क्या है: आत्म-संयम, सतर्कता और सुरक्षा।

“कृपया धाराओं के आत्म-नियंत्रण के बारे में बात करें”: धाराओं का आश्रय, आत्म-नियंत्रण, संरक्षण, कृपया समझाएँ, कृपया सिखाएँ, कृपया सूचित करें, कृपया स्थापित करें, कृपया उजागर करें, कृपया विश्लेषण करें, कृपया स्पष्ट करें।

“धाराएँ किससे बंद होती हैं?”: धाराएँ कैसे बंद या अवरुद्ध होती हैं? जब वे प्रवाहित नहीं होतीं।

4 · [भगवान: “अजिता!”] संसार की सभी धाराएँ, जागरूकता ही उनकी रक्षा है, मैं कहता हूँ कि यह विभिन्न धाराओं का संयम है, ये ज्ञान द्वारा बंद हैं।

“संसार की सभी धाराएँ”: वे सभी धाराएँ जिनके बारे में मैंने बताया, समझाया, सिखाया, स्थापित किया, उजागर किया, विश्लेषण किया, स्पष्ट किया, अर्थात्: इच्छा, दृष्टि, अपवित्रता, बुरे कर्म और अज्ञान की धाराएँ। “संसार में,” दुख के संसार में, मानव जगत में, स्वर्ग जगत में, समुच्चय जगत में, लोकों के संसार में, स्थानों के संसार में। संसार की सभी धाराओं के लिए। “अजिता”: भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारा।

“सजगता ही उनकी सुरक्षा है”: “सजगता,” सामान्य सजगता, आकस्मिक सजगता, स्मरण, सजगता की सजगता, स्मरण, भटकाव न होना, विस्मृति न होना, शक्ति, विचार का सहारा, बिना मोड़ वाला मार्ग, इसे ही मन कहते हैं। “सुरक्षा,” आवरण, आत्म-नियंत्रण, रक्षा।

“मैं धाराओं के आत्म-नियंत्रण की बात करता हूँ”: धाराओं का आश्रय, आत्म-नियंत्रण, रक्षा, संरक्षण, मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ...

“ये ज्ञान द्वारा बंद हैं”: “ज्ञान,” यानी बुद्धि, ज्ञान और समझ... (विलुप्त), कोई भ्रम नहीं, धम्म का चुनाव, सही दृष्टिकोण। “ये ज्ञान द्वारा बंद हैं”: ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और अवरुद्ध हैं, वे प्रवाहित नहीं होते और न ही बाहर निकलते हैं। “सभी कर्म अनित्य हैं,” जब ज्ञात और देखे जाते हैं, तो ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और अवरुद्ध हो जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते और न ही प्रसारित होते हैं; “सभी कर्म दुखदायी हैं,” जब ज्ञात और देखे जाते हैं, तो ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और अवरुद्ध हो जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते और न ही प्रसारित होते हैं; “सभी कर्म निस्वार्थ हैं,” जब ज्ञात और देखे जाते हैं, तो ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और अवरुद्ध हो जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते और न ही प्रसारित होते हैं; “ज्ञान व्यवहारिक परिस्थितियों पर आधारित है”... “ज्ञान नाम और रूप की एक शर्त है”... “अवस्था के कारण छह इंद्रिय आधार हैं”... “छह इंद्रिय आधारों के साथ स्पर्श की स्थिति है”... “संवेदना संपर्क के कारण है”... “संवेदना के साथ प्यास है”... “प्यास की स्थिति के साथ, आसक्ति है”... “आसक्ति अस्तित्व की एक शर्त है”... “होना जीने की एक शर्त है”... “जीवन वृद्धावस्था की एक शर्त है”... “अज्ञान के लुप्त होने के साथ नष्ट करना”... “कर्मों के साथ नष्ट करना”... “चेतना और रूप के साथ नष्ट करना”... “नाम और रूप के विलुप्त होने के साथ छह इंद्रिय आधारों का विलुप्त होना”... “छह इंद्रिय आधारों का विलुप्त होना”... “संपर्क का विलुप्त होना”... “प्यास का विलुप्त होना”... “प्यास और प्रेम का विलुप्त होना”... “आसक्ति का बुझना”... “जन्म और मृत्यु अस्तित्व और क्षय के साथ हैं”... “जन्म और मृत्यु वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं”... “यही पीड़ा है”... “यही है "दुखों का समूह"... "यह दुखों का निवारण है"... "यह दुखों के निवारण का मार्ग है"... "ये धर्म दोष हैं"... "ये धर्म दोषों का समूह हैं"... "यह दोष है"... "यह दोषों की ओर ले जाने वाला मार्ग है"... "इस धर्म का ज्ञान होना चाहिए"... "इस धर्म का व्यापक ज्ञान होना चाहिए"... "इस धर्म का त्याग करना चाहिए"... "इस धर्म का अभ्यास करना चाहिए"...; "इस धर्म की गवाही देनी चाहिए," जब ज्ञात और देखे जाते हैं, तो ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद कर दिए जाते हैं, काट दिए जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते; छह स्पर्श बिंदुओं का एकत्रीकरण, विनाश, सुख, कष्ट और वैराग्य, जब ज्ञात और देखे जाते हैं, तो ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और काट दिए जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते; पांच स्कंदों का एकत्रीकरण, विनाश, सुख, कष्ट और वियोग..., चार प्रमुख प्रकारों का एकत्रीकरण, विनाश और सुख, स्वाद, कष्ट, त्याग..., दृष्टि... "धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश है," जानने और देखने पर, ये प्रवाह ज्ञान द्वारा बंद और अवरुद्ध हो जाते हैं, वे प्रवाहित नहीं होते, प्रसारित नहीं होते।

5 · [आदरणीय अजिता ने इस प्रकार कहा:] हे प्रभु, ज्ञान और जागरूकता, और नाम और रूप! जब इसके बारे में पूछा जाए, तो कृपया बताएं: यह कहाँ नष्ट होता है?

“बुद्धि और मन”: “बुद्धि,” अर्थात् बुद्धिमान होना, समझ, सरल चयन, अन्वेषण, विवेक, पहचान, भेदभाव, गहन अवलोकन, निरीक्षण, सद्गुणी बुद्धि, निपुणता, चतुराई, अध्ययन, चिंतन, समीक्षा, मनन, परीक्षा, सामान्य व्यापक बुद्धि, विपश्यना, सही ज्ञान, ज्ञान का मूल, बुद्धि की तलवार, बुद्धि का महल, बुद्धि का प्रकाश, छल रहित होना, धम्म का चयन, सही दृष्टिकोण। “मन,” सामान्य मन, मुक्त मन... (निरस्त) सजगता।

“नाम और रूप, महोदय”: “नाम” चार निराकार तत्वों का समूह है। “रूप” चार महातत्वों और उनसे व्युत्पन्न किसी भी रूप का समूह है। “महोदय,” यह प्रेम, सम्मान, आदर और आज्ञाकारिता की भाषा है।

“जब आपसे इसके बारे में पूछा जाए, तो कृपया मुझे बताएँ”: “मैं...यह,” मैं जो कुछ भी पूछता हूँ; जो कुछ भी विनती करता हूँ; जो कुछ भी माँगता हूँ; जो कुछ भी स्पष्ट करता है। “जब पूछा जाए,” जब प्रश्न पूछा जाए; जब विनती की जाए; जब अनुरोध किया जाए; जब स्पष्टता बताई जाए। “कृपया बताएँ,” कृपया समझाएँ, कृपया सिखाएँ, कृपया सूचित करें, कृपया स्थापित करें, कृपया उजागर करें, कृपया विश्लेषण करें, कृपया स्पष्ट करें।

“यह कहाँ नष्ट हुआ है”: यह कहाँ बुझ गया है, शांत हो गया है, अस्तित्वहीनता की ओर बढ़ गया है, समाप्त हो गया है।

6 · (भगवान:) हे अजिता, जब तुम यह प्रश्न पूछते हो, तो मैं तुम्हें बताता हूँ, जहाँ नाम और रूप बिना किसी शेष के नष्ट हो जाते हैं: चेतना के विलुप्त होने के साथ ही वे नष्ट हो जाते हैं।

“जब प्रश्न पूछा जाता है”: “जब यह” ज्ञान, मन, नाम और रूप है। “पूछो,” तुम पूछते हो; तुम क्या मांगते हो; तुम पूछते हो; तुम्हें स्पष्ट करते हो।

“अजिता! मैं तुम्हें बताता हूँ”: “अजिता,” .... “वह” ज्ञान, मन, नाम और रूप है। “मैं बताता हूँ,” मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं सूचित करता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ।

“जहाँ नाम और रूप दोनों अक्षत नष्ट हो जाते हैं”: “नाम” ...(हटा दिया गया)। “रूप,” ...(हटा दिया गया)। “अक्षत रहित,” पूरी तरह से, बिना किसी अतिरिक्त भाग के, और पूरी पृथ्वी। “नष्ट,” नष्ट हो गया, शांत हो गया, अस्तित्वहीनता की ओर बढ़ गया, समाप्त हो गया।

“चेतना का नाश, यहाँ उसका नाश होता है”: ज्ञान के द्वारा चेतना का नाश होता है। सात प्राणियों को छोड़कर, पुनर्जन्म के अंतहीन चक्र में उत्पन्न होने वाले सभी नाम और रूप यहाँ नष्ट हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, अस्तित्वहीन हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान के मार्ग से, चेतना का नाश करने के लिए, दो प्राणियों को छोड़कर, पाँच प्राणियों में उत्पन्न होने वाले सभी नाम और रूप यहाँ नष्ट हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, अस्तित्वहीन हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान के अनावर्ती होने के द्वारा, चेतना का नाश करने के लिए, एक प्राणी को छोड़कर, भौतिक और अभौतिक लोकों में उत्पन्न होने वाले सभी नाम और रूप यहाँ नष्ट हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, अस्तित्वहीन हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। अरहंत निर्वाण के समय अंतिम चेतना को समाप्त करने के लिए निर्वाण लोक से होकर गुजरते हैं। यहां ज्ञान, जागरूकता, नाम और रूप सब नष्ट होकर शांत हो जाते हैं, नीचे आओ, अस्तित्वहीनता में जाओ, समाप्त हो जाओ।

7 · (अजिता:) जो धम्म को जानते हैं, और यहाँ अध्ययन करने वाले सभी लोग, जब मैं किसी ज्ञानी से उनके आचरण के बारे में पूछता हूँ, हे महोदय, कृपया मुझे बताएँ। [एस.एन.12.31]

“जो धम्म को जानते हैं”: जो धम्म को समझते हैं, उन्हें अरहंत कहा जाता है, वे वे हैं जिन्होंने अपने सारे कष्टों को समाप्त कर दिया है। प्रबुद्ध व्यक्ति को अरहंत, यानी जिसने अपने सारे कष्टों को समाप्त कर दिया है, क्यों कहा जाता है? वे धम्म को समझने वाले, धम्म को जानने वाले, धम्म को परखने वाले, धम्म को परखने वाले, धम्म को स्पष्ट करने वाले हैं। “सभी कर्म अनित्य हैं,” धम्म को समझने वाला, धम्म को जानने वाला, धम्म को परखने वाला, धम्म को परखने वाला; “सभी कर्म दुखदायी हैं”..., “सभी कर्म अनात्म हैं”..., “कर्म अज्ञान पर आधारित हैं”..., “सभी धर्म नष्ट हो जाते हैं”...। या, उनके लिए, वह समग्र का प्रबुद्ध व्यक्ति है, लोक का प्रबुद्ध व्यक्ति है, स्थान का प्रबुद्ध व्यक्ति है, जन्म-जन्म का प्रबुद्ध व्यक्ति है, पुनर्जन्म को समझने वाला है। या फिर, वे परम (सीमा) के निवासी हैं, संसार में परम, स्थान में परम, परिक्रमा के स्थान में परम, पुनर्जन्म में परम, वे जो परम का अनुभव करते हैं, वे जिनके पास परम है, वे जो पुनर्जन्म में परम हैं, वे जो चक्र में परम हैं, वह अरहंत जो अंतिम शरीर धारण करता है।

“(अनगिनत कष्टों में, वे ही शरीर प्राप्त करते हैं,) यह उनका अंतिम शरीर है। जीवन और मृत्यु का पुनर्जन्म, बिना उनके पुनर्जन्म के।” [थाग.202]

इसीलिए ज्ञानी व्यक्ति को अरहंत कहा जाता है, वह व्यक्ति जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर लिए हों। "जो धम्म को जानते हैं, और यहाँ सभी जो सीख रहे हैं": "सीख रहे हैं," उन्हें सीख रहे क्यों कहा जाता है? "वे सीखते हैं," इसलिए सीखना। और वे क्या सीखते हैं? वे नियमों को बढ़ाना सीखते हैं, वे मन को बढ़ाना सीखते हैं, और वे ज्ञान को भी बढ़ाना सीखते हैं।

"उपदेशों को बढ़ाना" से क्या तात्पर्य है? यहाँ भिक्षु एक गुरु है जो पातिमोक्खा के आत्म-संयम के संरक्षण में रहता है। उसके पास पर्याप्त धार्मिकता और सुख-सुविधाएँ हैं। वह छोटे पापों की भयावहता को देखता है और गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनसे सीखता है। छोटे उपदेशों का समूह और बड़े उपदेशों का समूह संयम, व्यवहार पर नियंत्रण, आत्म-संयम का प्रवेश, उत्तम धर्म आदि का आधार है; यही उपदेशों के ज्ञान को बढ़ाना है।

"मन को बढ़ाना" से क्या तात्पर्य है? यहाँ भिक्षु पहले ध्यान से शुरुआत करता है... (उदासीन) दूसरा ध्यान..., तीसरा ध्यान..., फिर प्रवेश करने के बाद वह चौथे ध्यान में रहता है (न तो दुखमय और न ही आनंदमय, शांत और जपमय अवस्था में), यही "मन को बढ़ाना सीखना" है।

ज्ञान बढ़ाने का ज्ञान क्या है? यहाँ भिक्षु एक ज्ञानी व्यक्ति है, जिसे उत्पत्ति और मृत्यु का ज्ञान है; पवित्रता, अंतर्दृष्टि और दुखों का पूर्ण निवारण ही (ज्ञान) है; वह सत्यपूर्वक जानता है, "यह दुख है... (अंश)" "यह कठिन परिश्रम है"... "यह दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है"... "ये परेशानियाँ हैं"... "यह परेशानियों का समूह है"... "यह झुंझलाहट है"... "यह परेशानियों की ओर ले जाने वाला मार्ग है"; यही ज्ञान का संवर्धन है। ये तीन शिक्षाएँ वे तब सीखते हैं जब वे सामना करते हैं (टिप्पणी); वे तब सीखते हैं जब वे जानते हैं; वे तब सीखते हैं जब वे देखते हैं (आत्मनिरीक्षण से सीखते हैं); वे तब सीखते हैं जब मन स्थिर होता है (किसी निर्णय में); वे तब सीखते हैं जब विश्वास प्रबल होता है; वे जोश और परिश्रम से सीखते हैं; जब जागरूकता उत्पन्न होती है, वे सीखते हैं; जब मन स्थिर होता है (केंद्रित होता है), वे सीखते हैं; जब ज्ञान प्राप्त होता है, वे सीखते हैं; जब उनका ज्ञान सिद्ध हो जाता है, वे सीखते हैं; वे त्याग के माध्यम से सीखते हैं; वे अभ्यास से सीखते हैं। वे अच्छी तरह अभ्यास करते हैं, और जब उन्हें प्रमाण मिलता है तो वे उसे बनाए रखते हैं, फिर आगे बढ़ते हैं। इसी कारण उन्हें ज्ञानी कहा जाता है। "सभी" से तात्पर्य जनसमूह से है। ये ज्ञानी अभ्यासी सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी और अरहंत हैं। "यहाँ," इस दृष्टिकोण में, इस पसंद में, इस झुकाव में, इस प्रस्ताव में, इस धम्म में, इस शिक्षा में, इस अभ्यास में, इस गुरु की शिक्षाओं में, इस व्यक्ति में, इस मानव जगत में।

"जब ज्ञानी व्यक्तियों से उनके आचरण के बारे में पूछा जाता है, हे महोदय! कृपया मुझे बताइए": आप ही ज्ञानी और प्रबुद्ध हैं, जो धम्म को जानते हैं और आचरण, व्यवहार, साधना, यात्रा, निवास और मार्ग का ज्ञान रखते हैं। "पूछा जाता है," प्रश्न पूछा जाना; विनती करना, पूछताछ की जाना; स्पष्ट करना। "कृपया बताइए": कृपया समझाएं, कृपया सिखाएं, ... "प्रिय महोदय," ....

8 · (भगवान:) तुम्हें इच्छाओं में लालची नहीं होना चाहिए, और तुम्हारा मन मैला नहीं होना चाहिए, सभी धर्मों में निपुण भिक्षु को ध्यानपूर्वक विचरण करना चाहिए।

"इच्छाओं में लोभ नहीं करना चाहिए": इच्छा दो प्रकार की होती है: वस्तुओं की इच्छा और अशुद्धता की इच्छा। वस्तुओं की इच्छाएँ क्या हैं? वांछनीय दृश्य, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श; बिस्तर, वस्त्र, नौकरानियाँ, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गायें, घोड़े, खच्चर, खेत, घर, सोना, सोने के सिक्के, गाँव और शहर, राजधानियाँ, देश, क्षेत्र, खजाने, गोदाम; हर वह चीज़ जो लोभ से दूषित हो सकती है, वस्तुओं की इच्छा है।

इसके अतिरिक्त, अतीत की इच्छाएँ, भविष्य की इच्छाएँ, वर्तमान की इच्छाएँ, आंतरिक इच्छाएँ, बाह्य इच्छाएँ, आंतरिक और बाह्य इच्छाएँ, निम्न इच्छाएँ, मध्यम इच्छाएँ, उच्च इच्छाएँ; दुखमय संसार की इच्छाएँ, मानवीय इच्छाएँ, स्वर्गीय इच्छाएँ, विद्यमान इच्छा, सृजित इच्छा, असृजित इच्छा, दूसरों द्वारा सृजित इच्छा, अधिकार प्राप्त इच्छा, अनाधिकृत इच्छा, प्रिय इच्छा, अप्रसन्न इच्छाएँ; सभी इच्छा लोकों की इच्छाएँ, भौतिक जगतों की इच्छाएँ, अभौतिक जगतों की इच्छाएँ, प्रेम की प्यास और इच्छा पर निर्भरता, धर्म की इच्छा, धर्म का लोभ, धर्म और सुख के नशे में चूर होने की इच्छा, इन सभी को वस्तुओं की इच्छा कहा जाता है।

अपवित्रता की इच्छा क्या है? इच्छा की इच्छा, लोभ की इच्छा, लोभ की इच्छा की इच्छा, इरादे की इच्छा, वासना की इच्छा, इरादे की इच्छा, इच्छा का आनंद, प्रेम का जुनून, इच्छा का बंधन, आसक्ति, आवरण की इच्छा।

“इच्छा की उन जड़ों को देखकर, जो विचार (इच्छा) से उत्पन्न होना चाहती हैं, मैं उनके बारे में नहीं सोचूंगा, इसलिए इच्छा का अस्तित्व नहीं होगा।” [जात.8.421]

इन्हें दूषित इच्छाएँ कहा जाता है। प्यास, आसक्ति, लोभ, कामवासना… (निरस्त) अस्वास्थ्यकर मूल। “इच्छाओं में लोभी नहीं होना चाहिए”: दूषित करने वाली इच्छा में लोभी नहीं होना चाहिए, वस्तुओं की इच्छा में अवरुद्ध नहीं होना चाहिए, लोभ से विरक्त होना चाहिए, और जिन्होंने लोभ को त्याग दिया है, लोभ से मुक्त हो गए हैं, लोभ का त्याग कर दिया है, लोभ रहित हैं, लोभ को समाप्त कर दिया है, जिन्होंने लोभ की समाप्ति प्राप्त कर ली है, उन्हें भूख और प्यास नहीं लगती, जिन्होंने इसे बुझा दिया है, शीतल हो गए हैं, और आनंद का अनुभव करते हैं, उन्हें ब्राह्मण के समान जीवन जीना चाहिए।

“मन मैला नहीं होना चाहिए”: “मन”: हृदय, मन, हृदय, श्वेत (स्वच्छ), अर्थ, इरादे, चेतना, उस चेतना के अनुरूप। शरीर के बुरे कर्मों से मन मैला, उत्तेजित, गतिशील, प्रभावकारी, अस्थिर, उतार-चढ़ाव वाला, घूमने वाला और बेचैन हो जाता है; शब्दों से बुराई करना… (छोड़ा गया), इरादे से बुराई करना…, लोभ से…, घृणा से…, अज्ञान से…, क्रोध से…, द्वेष से…, बुराई छुपाने से…, प्रभुत्व से…, ईर्ष्या से…, कंजूसी से…, पाखंड से…, धूर्तता से…, हठ से…, जुनून से…, अहंकार से…, घमंड से…, शिथिलता से…, सभी प्रकार की अशुद्धियों से…, सभी बुरे कर्मों से…, सभी कष्टों से…, सभी कष्टों की गर्मी से…; अस्वस्थ मन, मैला, उत्तेजित, अस्थिर, उतार-चढ़ाव वाला, घूमने वाला और बेचैन। “मन मैला नहीं होना चाहिए”: मन धुंधला नहीं होना चाहिए: विचलित नहीं होना चाहिए, विचलित नहीं होना चाहिए, विचलित नहीं होना चाहिए, घूमना नहीं चाहिए, शांत होना चाहिए, और सभी अशुद्धियों को त्याग देना चाहिए, दूर कर देना चाहिए, समाप्त कर देना चाहिए, अस्तित्वहीन कर देना चाहिए; व्यक्ति को मैलापन और अशुद्धियों से अलग हो जाना चाहिए, कुचल देना चाहिए, परहेज करना चाहिए, अलग हो जाना चाहिए, छोड़ देना चाहिए, मुक्त हो जाना चाहिए; बंधन से मुक्त होकर, व्यक्ति को एक अप्रतिबंधित हृदय से जीना चाहिए।

“यह धर्म का ज्ञाता है”: “सभी कर्म अनित्य हैं”, धर्म का ज्ञाता जानता है; “सभी कर्म दुखदायी हैं”…, “सभी कर्म आत्महीन हैं”…, “अज्ञान सभी कर्मों का कारण है”…।

या (यह देखते हुए कि) अनित्य, सभी धर्मों में निपुण व्यक्ति; यह दुख है… (छोड़ा गया), यह रोग है…, यह ट्यूमर है…, यह तीर है…, अभिशाप है…, दूसरा पक्ष है…, भ्रष्टाचार है…, विपत्ति है…, चल…, नाशवान…, अस्थिर…, यह कोई शरण नहीं है…, यह दुखी है…, दुर्भाग्य का मूल है…, पाखंडी…, खाली…, निस्वार्थ…, यह अनित्यता का धर्म है…, हत्यारा…, बढ़ता हुआ…, चारा…, जीवन है…, वृद्धावस्था की विधि…, दुःख और निराशा की विधि…, प्रदूषण की…, सुख…, विनाश…, कष्ट…, एक अच्छा व्यक्ति जो सभी धर्मों की निपुणता के लिए त्याग करता है।

या, वह व्यक्ति जो समुच्चय, …प्रकृति, …स्थान, …आश्रित उत्पत्ति, जागरूकता, धर्म, दिव्य आधार, …मूल, शक्ति, चेतना, आधार, मार्ग, फल और निर्वाण के साथ निपुण हो।

या फिर, समस्त धर्म को बारह स्थान कहा जाता है: आंखें और रूप, कान और ध्वनि, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, मन और धर्म; और क्योंकि अपने भीतर और बाहर के हिस्सों में इच्छा और लोभ का विच्छेद हो जाता है, इसलिए जड़ें कट जाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन, निर्जीव हो जाता है।

“भिक्षुओं को सचेतन होकर चलना चाहिए”: “सचेतनता” चार तरीकों से: शरीर पर सचेतनता का अभ्यास करते समय, धारणा पर सचेतनता का अभ्यास करते समय, हृदय में मन को देखते समय, और जब अभ्यास शिक्षाओं के अनुरूप हो, तब वह सचेतन होता है।

और फिर से चार तरीकों से: मन से बचने की अवस्था, मन के प्रति किए जाने वाले धम्म की अवस्था, मन द्वारा बाधित धम्म की अवस्था, और सचेतनता कारक (चरण) को न भूलने की अवस्था।

और चार तरीकों से: सचेतनता की अवस्था, सचेतनता में बने रहने की अवस्था, सचेतनता का अनुभव करने की अवस्था और सचेतनता का कम न होने की अवस्था।

और फिर चार तरीकों से: सचेतनता की अवस्था को ध्यान का विषय बनाकर, शांत अवस्था को विषय बनाकर, मौन अवस्था को विषय बनाकर; बुद्ध का स्मरण, धम्म का स्मरण, संघ का स्मरण, उपदेशों का स्मरण, भिक्षाओं का स्मरण, मन का स्मरण; श्वास, मृत्यु, शरीर, मौन का स्मरण; सर्वांगीण ध्यान, मुक्त ध्यान..., निर्बाध मार्ग, ये सब ध्यान कहलाता है। पूर्णतः लीन होकर, पूर्णतः पहुँचकर, प्राप्त करके, इस विचार के साथ, वह सचेत कहलाता है। “भिक्षु,” जिसने सात धर्मों की अवस्था का नाश किया, वह भिक्षु कहलाता है; दृष्टि नष्ट हो जाती है, संशय नष्ट हो जाता है, निषेध..., लोभ..., क्रोध..., मोह..., आलस्य...; वे सभी दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म नष्ट हो जाते हैं: अपवित्रता (विधर्म) से बचना, अन्य, भय, कड़वा फल, भविष्य में जीवित नहीं रहेंगे।

भगवान [सं.3.6, 519]: “अपने स्वयं के अभ्यास से, निर्वाण को प्राप्त करते हुए, संशयवादियों को पार करते हुए, शून्यता और अस्तित्व का त्याग करने के बाद, जो पूर्ण हो गया है, जो विरक्त हो गया है, वह भिक्षु है।”

“भिक्षुओं को सजग होकर चलना चाहिए”: भिक्षुओं को सजग होकर आगे बढ़ना चाहिए, सजग होकर चलना चाहिए, सजग होकर खड़े रहना चाहिए, सजग होकर बैठना चाहिए, सजग होकर लेटना चाहिए, सजग होकर आगे बढ़ना चाहिए, पीछे हटना चाहिए..., आगे देखना चाहिए..., अवलोकन करना चाहिए..., झुकना चाहिए..., सीधा होना चाहिए..., कोट, कटोरे और कपड़े सजग होकर पकड़ना चाहिए, सजग होकर चलना और जीना चाहिए, कार्य करना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए, रक्षा करना चाहिए, जीवित रहना चाहिए।

श्लोक के अंत में, जो ब्राह्मणों के समान ही इरादे, समान ही प्रयास, समान ही झुकाव और समान ही निवास स्थान में रहते हैं, उनके लिए हजारों जीवों की दूर की धूल और धम्म दृष्टि प्रकट होती है: “धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश का कारण है।” ब्राह्मण का मन आसक्ति रहित होकर सभी दोषों से मुक्त होता है। अरहंत के लोक में पहुँचने के साथ ही, उनके भेड़ की खाल के वस्त्र, गुंथे हुए बाल, छाल के वस्त्र, डंडे, लंबे मुँह वाली पानी की बोतलें, बाल और दाढ़ी गायब हो जाते हैं, वे गंजे हो जाते हैं और उनके स्थान पर वस्त्र, कपड़े, ओवरकोट और कटोरे आ जाते हैं। वे भगवान बुद्ध को आदर दिखाने के लिए हाथ जोड़ते हैं और बैठ जाते हैं: “हे महान गुण! भगवान बुद्ध मेरे गुरु हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.2

पालि संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

2. तिस्सा मेत्तेय्या
(यह तिस्सा मेत्तेय्या संभवतः वही व्यक्ति नहीं है जिसका उल्लेख अष्टक खंड के सातवें सूत्र में है।)

9 · [इस प्रकार, पूज्य तिस्सा मेत्तेय्या:] संसार में कौन संतुष्ट है? किसके लिए कोई दुविधा नहीं है? दोनों पक्षों पर विचार करने के बाद कौन बीच में नहीं अटकेगा? आप किसे "महान पुरुष" कहते हैं? यहाँ किसने दर्जी से भी बढ़कर उपलब्धि हासिल की?

इस संसार में कौन संतुष्ट है?: संतुष्ट व्यक्ति कौन है, तृप्त व्यक्ति कौन है, वह व्यक्ति कौन है जिसके इरादे पूर्ण हैं?

“[इस प्रकार]”: “इस प्रकार,” वाक्यों की निरंतरता, शब्दों का जुड़ाव, वाक्यों का समापन, शब्दों का संयोजन, यही वाक्य का क्रम है, जो “इस प्रकार” है। “आदरणीय,” यह प्रेम, आदर और आज्ञाकारिता का पर्यायवाची है। “तिस्सा,” ब्राह्मण का नाम, उपाधि, सुरक्षा, उपाधि, शब्द, वाक्यांश। “तिस्सा मेत्तेय,” ब्राह्मण का उपनाम, नाम, उपाधि और सामान्य नाम।

“जिनके लिए कोई संदेह नहीं है”: प्रेम का संदेह, दृष्टि का संदेह, आलस्य का संदेह, अपवित्रता का संदेह, इच्छा का संदेह; जिनके लिए ये संदेह अस्तित्व में नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, समाप्त हो गए हैं, शांत हो गए हैं, रुक गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, और ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं।

“जिसने दोनों पक्षों का परीक्षण किया है”: वह व्यक्ति जिसने दोनों पक्षों के ज्ञान का परीक्षण करने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद।

विचार करने के बाद, मध्य में कोई संदूषण नहीं रहेगा: विचार करने के बाद, मध्य में संदूषण नहीं है, अब संदूषण नहीं है, निकट से संदूषण नहीं है। वह अलग हो गया है, छोड़ गया है, मुक्त हो गया है, बंधन से मुक्त हो गया है, और वह चला गया है, और संयमित हृदय से मुक्त होकर निवास किया है।

“आप किसे 'महान व्यक्ति' कहते हैं?”: महान व्यक्ति सर्वोच्च व्यक्ति होता है, सबसे विजयी व्यक्ति होता है, विजेता होता है, प्रथम होता है, शीर्ष पर होता है। आप किसे कह रहे हैं, आप किसके बारे में बात कर रहे हैं?

“यहाँ दर्जी को किसने पीछे छोड़ा है”: जो यहाँ पहुँचा, जिसने दर्जी को, प्रेम की प्यास को, पार कर लिया, जिसने विजय प्राप्त कर ली।

10 · [भगवान: “मत्तेय”] इच्छाओं में ऐसे ब्राह्मण भी हैं जो सदा सचेत और इच्छा से विरक्त रहते हैं। इस निर्मल भिक्षु पर विचार करने के बाद, उनके लिए कोई संदेह नहीं रहता।

“इच्छाओं में ब्राह्मण हैं”: “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और अपवित्रता की इच्छा... (विलुप्त, पिछले खंड देखें)। ब्रह्म को विरक्ति, संयम, त्याग, प्रस्थान, निष्क्रियता, अपराध न करना और सुधार न करने आदि कहा जाता है। या, बिना किसी भेद के, ब्राह्मण को पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ कहा जाता है, अर्थात्: सही दृष्टि, सही इच्छा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही परिश्रम, सही जागरूकता, सही एकाग्रता। जिन्होंने इन आठ पवित्र मार्गों को पूर्णतः धारण किया है, उनमें प्रवेश किया है, उन पर चले हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। उदाहरण के लिए, उन्हें संपत्ति के आधार पर “संपन्न व्यक्ति” कहा जाता है; उन्हें धनवान व्यक्ति कहा जाता है; उन्हें प्रतिष्ठावान व्यक्ति कहा जाता है; और उन्हें प्रौद्योगिकी में निपुण व्यक्ति कहा जाता है; उपदेशों को “उपदेश” कहा जाता है; बलवान व्यक्ति को “बलवान व्यक्ति” कहा जाता है; ज्ञानवान लोगों को “ज्ञानी” कहा जाता है; उसी प्रकार, जो कोई भी इन आठ श्रेष्ठ मार्गों को पूर्णतः धारण करता है, उसे ब्राह्मण कहा जाता है।

भगवान बुद्ध ब्राह्मण को उनके उपनाम "मेत्तेय" से पुकारते हैं। "भगवान बुद्ध" एक सम्मानजनक पर्यायवाची शब्द है... (यह भाग हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)।

“सदा सचेत, इच्छा से विरक्त”: “प्रेम की इच्छा” धर्मों की प्यास है। जिसके लिए प्रेम की इच्छा समाप्त हो गई हो, शांत हो गई हो, रुक गई हो, उत्पन्न न हो पा रही हो, ज्ञान की अग्नि से भस्म हो गई हो, उसे प्यास से विरक्त, प्यास त्यागने वाला, प्यास मिटाने वाला, प्यास मुक्त करने वाला, प्यास त्यागने वाला, प्यास का त्याग करने वाला, लोभी न होने वाला, लोभ त्यागने वाला, लोभ से मुक्त होने वाला, लोभ का त्याग करने वाला, भूख-प्यास से मुक्त होने वाला, शीतल होने वाला, सुखी महसूस करने वाला, स्वयं को ब्राह्मण मानने वाला कहा जाता है। “सदा”, सदा, सब कुछ, हर समय, शाश्वत रूप से, निरंतर, लगातार, निर्बाध, क्रमिक रूप से; जैसे पानी में लहरें बिना रुके उठती हैं; सुबह, दोपहर, रात के पहले पहर, आधी रात, अंतिम रात; अमावस्या, शुक्ल पक्ष, बरसात, सर्दी, गर्मी; युवावस्था, मध्य आयु और वृद्धावस्था में। "सचेत व्यक्ति" चार तरीकों से सचेत होता है: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“विचार करने के बाद, यह भिक्षु शांत हो गया”: विचार करने के बाद, इसे ज्ञान कहा जाता है। यह समझ है, सरल चयन है, जांच है... (छोड़ा गया), कोई भ्रम नहीं, चुनाव है, सही दृष्टिकोण है। “विचार करने के बाद,” जानने के बाद, समझने के बाद, माप के बाद, निर्णय के बाद, पृथक्करण के बाद, स्पष्टीकरण के बाद: “सभी कर्म अनित्य हैं” विचार करने के बाद..., “सब कुछ दुख है...,” सभी चीजें अनात्म हैं”...,”अज्ञान से उत्पन्न”...,”धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का विनाश है”...।

या, (इसे) अनित्यता के विचार के रूप में देखा जाए, तो जानने के बाद..., यह दुख है..., यह रोग है..., यह ट्यूमर है..., यह तीर है...। “निरस्त,” लोभ उत्पन्न करने की अवस्था, क्रोध, अज्ञान, द्वेष, घृणा, बुराई को छुपाना, प्रभुत्व (मनमानी, हुक्म, अत्याचार), ईर्ष्या, कंजूसी, छल, धूर्तता, हठ, वासना, आलस्य, सुस्ती, असुविधा, सभी प्रकार के अपवित्रता, सभी बुरे कर्म, सभी कष्ट, सभी प्रकार की चिड़चिड़ाहट, सभी प्रकार की पीड़ा, सभी

अस्वास्थ्यकर कृत्रिम चीजें निरस्त हो जाती हैं। “भिक्षु,” सात धर्मों की अवस्था को नष्ट करने वाला भिक्षु है... (छोड़ा गया); पूर्ण हो चुका और नष्ट हो चुका भिक्षु है।

“उसके लिए कोई संदेह नहीं है”: “उसके लिए,” अरहंत के लिए, उसके लिए जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “संदेह,” तृप्ति का संदेह, दृष्टि का संदेह, ...आलस्य का संदेह, ...अशुद्धता का संदेह, ...इच्छा का संदेह, उसके लिए ये संदेह न तो अस्तित्व में हैं, न ज्ञात हैं, न पाए जाते हैं, और ज्ञान की अग्नि से भस्म होकर समाप्त हो गए हैं, शांत हो गए हैं, समाप्त हो गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं।

11 · दोनों पक्षों को जानने के बाद, विचार करने पर वह बीच में नहीं फंसा, मैं कहता हूँ कि वह एक "महान व्यक्ति" था, और वह यहाँ दर्जी से श्रेष्ठ है। [एएन.6.61]

“दोनों पक्षों को जानकर, विचार करने के बाद, वह मध्य में दूषित नहीं होगा”: “पक्ष,” स्पर्श (संपर्क) एक पक्ष है, स्पर्श का समूह दूसरा पक्ष है, स्पर्श का रुकना मध्य में है; भूतकाल एक पक्ष है, भविष्य दूसरा पक्ष है, और वर्तमान मध्य में है; सुख एक पक्ष है, दुख दूसरा पक्ष है, और न तो दुख और न ही सुख मध्य में है; नाम एक पक्ष है, रूप दूसरा पक्ष है, चेतना मध्य में है; छह आंतरिक स्थान एक पक्ष हैं, और छह बाह्य स्थान दूसरा पक्ष हैं, और चेतना मध्य में है; शरीर एक पक्ष है, शरीर का समूह दूसरा पक्ष है, और शरीर मध्य में विलीन हो जाता है। विचार करने के बाद, इसे ज्ञान कहा जाता है, जो जानना, समझना है...(अंशित)।

“आसक्ति”: आसक्ति दो प्रकार की होती है: लालसा की आसक्ति और दृष्टि की आसक्ति...; यह लालसा की आसक्ति है...; यह दृष्टि की आसक्ति है। लालसा की आसक्ति क्या है? सभी सीमाएँ, क्षेत्र, दायरे, हदें, सब कुछ पकड़ लिया जाता है और अपना मान लिया जाता है: यह मेरा है, यह मेरा है, इतना मेरा है, यह क्षेत्र मेरा है; (मेरा) रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, ज़मीन पर पड़ी वस्तुएँ, वस्त्र, दासियाँ और नौकर, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गायें और घोड़े, खच्चर, खेत, घर, सोना, सिक्के, गाँव, कस्बे, राजधानियाँ, स्थान, खजाने, गोदाम, सारी भूमि; क्योंकि वे लालसा करते हैं और उन्हें अपना मानते हैं, सभी एक सौ आठ प्रकार की लालसाएँ। [एएन.4.199] यह लालसा की आसक्ति है।

दृष्टि का आसंजन क्या है? बीस लोग शरीर पर निर्भर होकर देखते हैं, दस लोग गलत दृष्टि पर निर्भर होकर देखते हैं, और दस लोग पार्श्व दृष्टि पर निर्भर होकर देखते हैं, सभी प्रकार की दृष्टियाँ, बुरी दृष्टियाँ, उलझी हुई दृष्टियाँ और बंजर दृष्टियाँ। दृष्टि का आसंजन, स्वीकृति, आसक्ति, विकृत दृष्टि, अस्थिर दृष्टि, बंधी हुई दृष्टि, बुरा मार्ग, बुरा स्वभाव, बाहरी मार्ग, विपरीत दृष्टि का आसंजन और उलटाव (विपरीत), बुराई की पकड़, असत्य में सत्य देखना, ये सभी मिलकर बासठ बुरी दृष्टियाँ बनाते हैं। यही दृष्टि का आसंजन है।

“दोनों पक्षों को जानने के बाद, विचार करने के बाद, वह मध्य में अपवित्र नहीं होता”: विचार करने के बाद, जानने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, न्याय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद वह अपवित्र नहीं होता; वह बंधा हुआ नहीं, विरक्त नहीं, बंधन से मुक्त नहीं, वह वैराग्य और संयम के हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

मैंने कहा कि वह एक 'महान व्यक्ति' हैं: यह व्यक्ति सर्वोच्च व्यक्ति है, सबसे विजयी व्यक्ति है, विजेता है, प्रथम व्यक्ति है, शीर्ष व्यक्ति है। मैं उन्हें पुकारता हूँ, मैं उनके बारे में कहता हूँ, मैं उनका वर्णन करता हूँ, मैं उनके बारे में बोलता हूँ।

पूज्य सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे महान गुण! ‘एक पुरुष, एक महान पुरुष’ के रूप में जाने जाने वाले, हे महान गुण! किसी को महान पुरुष क्या बनाता है?” “सारिपुत्त! मैं कहता हूँ कि जो मुक्त हैं वे ‘महान पुरुष’ हैं; मैं कहता हूँ कि जो मुक्त नहीं हैं वे ‘महान पुरुष नहीं’ हैं।”

सारिपुत्त! मुक्ति कैसे प्राप्त करें? सारिपुत्त! यहाँ, भिक्षु अपने शरीर में रहकर शरीर, उत्साह, धार्मिक ज्ञान और जागरूकता का अवलोकन करता है, और संसार के प्रति इच्छा और चिंता को नियंत्रित कर सकता है। जब वह शरीर में रहकर शरीर का अवलोकन करता है, तो मन दोषों से मुक्त होता है, और वह आसक्ति से मुक्त होता है। सभी दोषों से मुक्ति; भाव में...(विलुप्त) हृदय में..., धम्म में रहकर और धम्म का अनुसरण करते हुए, उत्साही, धार्मिक और जागरूक होकर, संसार के प्रति लालसा और चिंता को नियंत्रित कर सकता है। जब वह धम्म में रहकर और धम्म का अनुसरण करता

है, तो मन दोषों से मुक्त होता है, और सभी दोषों से मुक्त होकर वह आसक्ति से मुक्त होता है। सारिपुत्त! इस प्रकार, भिक्षु का हृदय मुक्त होता है। सारिपुत्त! मैं कहता हूँ कि जो मुक्त हैं वे 'महान पुरुष' हैं; मैं कहता हूँ कि जो मुक्त नहीं हैं वे 'महान पुरुष' नहीं हैं।

“उसने यहाँ दर्जी को परास्त कर दिया”: दर्जी को लालसा कहा जाता है, जो लोभ, प्यास, ...(अस्पष्ट) और अस्वस्थ जड़ों से उत्पन्न होती है। उसके लिए, यह दर्जी, जिसकी प्यास मिट गई है, शांत हो गई है, समाप्त हो गई है, फिर से उत्पन्न नहीं हो सकती, ज्ञान की अग्नि से झुलस गई है, उसने दर्जी को परास्त कर दिया है, प्रेम की उसकी इच्छा को पार कर लिया है, उसे पार कर लिया है, उस पर विजय प्राप्त कर ली है।

इन श्लोकों के अंत में... (निकाल दिया गया)। “परमेश्वर मेरे गुरु हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.3

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

3. पुण्का

12 · [आदरणीय पुणक ने इस प्रकार कहा:] हे अविचलित प्रभु, मूलों के द्रष्टा, मैं आपसे आवश्यक प्रश्न लेकर आया हूँ, अनेक ऋषि, मनुष्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण इस संसार में यज्ञ क्यों करते हैं? हे भगवान, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे इसका उत्तर दीजिए।

“जो विचलित नहीं होता, जो मूल को देखता है”: “विचलित होना तृष्णा कहलाता है, अर्थात् लोभ, ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)..., और अस्वस्थ मूल। बुद्धों और भगवान बुद्ध के लिए, वह विचलितता दूर हो जाती है, जड़ कट जाती है, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन हो जाता है, निर्जीव हो जाता है, वैसे ही बुद्ध विचलित नहीं होते। वियोग की विचलित अवस्था में भी, भगवान बुद्ध विचलित नहीं होते; कुछ न मिलने पर भी नहीं कांपते; प्रतिष्ठा होने पर भी नहीं कांपते; प्रतिष्ठा न होने पर भी नहीं कांपते; प्रशंसा से भी नहीं कांपते; निंदा से भी नहीं कांपते; समय-समय पर भी नहीं कांपते; कांपते नहीं, हिलते नहीं, थरथराते नहीं।” “जो मूल को देखता है,” भगवान बुद्ध मूल को देखते हैं, कारण के द्रष्टा हैं, उत्पत्ति के द्रष्टा हैं, मूल के द्रष्टा हैं, पोषण के द्रष्टा हैं, विषय के द्रष्टा हैं। स्थिति का द्रष्टा, विचारों के समूह का द्रष्टा।

तीन हानिकारक मूल हैं: लोभ का हानिकारक मूल, घृणा का हानिकारक मूल और अज्ञान का हानिकारक मूल।

भगवान बुद्ध ने कहा: भिक्षुओं! इन तीन कर्मों के कारण और परिस्थितियाँ हैं; वे तीन कौन-से हैं? लोभ कर्म का कारण और परिस्थिति है, घृणा कर्म का कारण और परिस्थिति है, और मोह कर्म का कारण और परिस्थिति है। भिक्षुओं! लोभ, घृणा या मोह के कारण स्वर्ग ज्ञात नहीं है, मनुष्य ज्ञात नहीं हैं, और न ही कोई अच्छा हित ज्ञात है। भिक्षुओं! बल्कि लोभ, घृणा और मोह के कारण ही नरक लोक ज्ञात है, पशु लोक ज्ञात है, प्रेत लोक ज्ञात है, या कोई अन्य बुरा हित ज्ञात है [एएन.6.39]; नरक, पशु लोक और प्रेत लोक में रहने वाले व्यक्ति ज्ञात हैं। इन तीनों अस्वास्थ्यकर जड़ों को भगवान बुद्ध जानते और देखते हैं, और इसलिए भगवान इन जड़ों के द्रष्टा हैं... (अंशित)। तीन अच्छे मूल हैं: लोभ रहित, घृणा रहित और मोह रहित होने का अच्छा मूल।

भगवान बुद्ध ने कहा: भिक्षुओं! ये तीन हैं... (अंशित) भिक्षुओं! ऐसा नहीं है कि लोभ, घृणा, मोह से रहित नरक ज्ञात है, पशु जगत ज्ञात है, प्रेतलोक ज्ञात है, या कोई भी बुरी रुचि ज्ञात है, भिक्षुओं! बल्कि लोभ, घृणा, मोह के बिना स्वर्ग ज्ञात है, मनुष्य ज्ञात है,

या कोई भी अच्छी रुचि: स्वर्ग और संसार में वे उत्पन्न होते हैं और ज्ञात होते हैं। भगवान बुद्ध इन तीन अच्छे मूलों को जानते और देखते हैं, इसलिए भगवान मूल के द्रष्टा हैं...

भगवान बुद्ध ने कहा: भिक्षुओं! कोई भी अहितकर धर्म, अहितकर विभाजन, अहितकर गुट [AN.1.56], जो कुछ भी अज्ञान में निहित है, अज्ञान में समाहित है और अज्ञान से ही नष्ट हो जाता है, वह सब नष्ट हो जाएगा। [SN.20.1] भगवान बुद्ध सब जानते और देखते हैं...

भगवान बुद्ध ने कहा: भिक्षुओं! कोई भी अच्छा धर्म, अच्छा विभाजन और अच्छा गुट [एएन.1.57], जो विश्राम न करने में दृढ़ हो और पुनर्मिलन के समान अनियंत्रित हो, वह उन धर्मों में श्रेष्ठ माना जाता है। [एसएन.45.139] भगवान बुद्ध सब जानते और देखते हैं...

या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध जानते और देखते हैं: अज्ञान कर्म का मूल है, कर्म चेतना का मूल है, चेतना नाम और रूप का मूल है, नाम और रूप छह इंद्रियों के मूल हैं, छह इंद्रियों के मूल स्पर्श हैं, स्पर्श संवेदना का मूल है, संवेदना लालसा का मूल है, लालसा आसक्ति का मूल है, आसक्ति जन्म का मूल है, जन्म जन्म का मूल है, और जन्म वृद्धावस्था (और मृत्यु) का मूल है। भगवान बुद्ध जानते और देखते हैं...

या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध सब जानते और देखते हैं: आँख आँखों की बीमारी की जड़ है, कान कानों की बीमारी की जड़ है, नाक..., जीभ..., शरीर..., और मन दुखों की जड़ है। भगवान बुद्ध सब जानते और देखते हैं...।

"[इस आदरणीय पुण्णक की तरह]": "इस तरह," वाक्य का आगे का भाग... (हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)। आदरणीय पुण्णक ...(हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)।

"जरूरतमंद लोग सवाल लेकर आते हैं": मैं जरूरत पड़ने पर सवाल लेकर आता हूँ, मैं सवाल पूछने के लिए आता हूँ, मैं सवाल सुनने के लिए आता हूँ, जरूरतमंद लोग सवाल लेकर आते हैं। या, सवाल पूछने वालों को जरूरत होती है, सवाल पूछने वाले को, सुनने वाले को, जरूरतमंद लोग आते हैं, संपर्क करते हैं, मिलते हैं। या, जब आपके पास कोई सवाल हो, तो आप बता सकते हैं और आपके पास बताने और मेरे पूछे गए सवाल का जवाब देने का पर्याप्त कारण है, "कृपया इस बोझ को उठाएँ।"

"जो लोग भरोसा करते हैं, ऋषि": किसी चीज़ पर भरोसा करना, उससे जुड़े रहना, उसमें प्रवेश करना या अपना हृदय उसकी ओर मोड़ना। "ऋषि" वे लोग हैं जिन्हें अमर कहा जाता है, और वे सभी भिक्षु जो संन्यासी बन जाते हैं। "लोग" मनुष्य कहलाते हैं।

"क्षुत्तियों, ब्राह्मणों, देवताओं को": "क्षुत्तियों," क्षुत्तियों से उत्पन्न होने वाली हर चीज। "ब्राह्मणों," जो दूसरों को सज्जन कहते हैं। "देवताओं को," अन्य तपस्वी (आजीवका) अपने देवता को, जैन अपने देवता को, जटाधारी तपस्वी अपने देवता को, विचरण करने वाले भिक्षु अपने देवता को, निर्वासित देवता..., हाथी देवता..., अश्व देवता, बैल देवता, कुष्ठ देवता, कौवा देवता, विष्णु देवता, शक्ति के रक्षक की शक्ति, पुण्य वलय का पुरुष, पुण्य वलय का रत्न, अग्नि..., नाग..., स्वर्ण-पंख वाले..., यक्ष, असुर, गंधर्व, रक्षकों के महान राजा (स्वर्ग), चंद्र देवता, सूर्य देवता, इंद्र, ब्रह्मा...। जो उन्हें अर्पण करने के योग्य हैं, वे उनके देवता हैं।

"संसार में अनेक बलिदान हैं": "बलिदान" को दान कहा जाता है: वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों के लिए आवश्यक वस्तुएँ, चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ, भोजन, पेय, वस्त्र, परिवहन, मालाएँ, मसाले, तेल, पलंग, घर, दीपक और मोमबत्तियाँ। "बलिदान के रूप में," जहाँ कहीं भी वे वस्त्र, भोजन (अस्पष्ट) की तलाश करते हैं, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और भीख मांगते हैं... उन्हें बलिदान के रूप में उपयोग किया जाता है; जहाँ कहीं भी वे वस्त्र, भोजन तैयार करते हैं... उन्हें भी बलिदान के रूप में उपयोग

किया जाता है; जहाँ कहीं भी वे वस्त्र, भोजन देते हैं, प्रदान करते हैं और दान करते हैं... वे भी बलिदान हैं। "अनेक," ये बलिदान अनेक हैं, या इन बलिदानों के पुरोहित अनेक हैं, या अनेक योग्य दाता हैं। बलिदान अनेक कैसे हैं? वस्त्र, भोजन... अनेकों के हैं, इसलिए ये बलिदान अनेक हैं।

इन यज्ञों के अनेक पुरोहित कैसे होते हैं? इन यज्ञों के अनेक पुरोहित हैं: क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, स्वर्ग और मनुष्य, अतः इन यज्ञों के अनेक पुरोहित हैं।

क्या दान देने के योग्य लोगों की संख्या बहुत अधिक है? यहाँ बहुत से समण, ब्राह्मण, भिखारी, यात्री, घुमंतू और दानदाता हैं, इसलिए दान देने के योग्य लोगों की संख्या भी बहुत अधिक है। "यहाँ संसार में," यानी मानव जगत में।

"हे प्रभु, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे बताएँ": "प्रश्न" में तीन प्रकार की पूछताछ होती है: अदृश्य की व्याख्या के बारे में पूछताछ, दृश्य के संगम के बारे में पूछताछ और संदेह को दूर करने के बारे में पूछताछ।

अदृश्य के बारे में पूछताछ क्या है? अज्ञात, अदृश्य, अमापनीय, अनपढ़, अस्पष्ट विशेषता के बारे में, अपनी बुद्धि के उद्देश्य से, देखकर, मापकर, परखकर, स्पष्ट करके, उसने एक प्रश्न पूछा।

प्रत्यक्ष के संगम के बारे में पूछताछ क्या है? एक ऐसी विशेषता जो ज्ञात, देखी, मापी, परखी, स्पष्ट और समझी गई थी। उसने अन्य बुद्धिमान पुरुषों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछे।

संदेह को दूर करने के लिए पूछताछ क्या है? एक संशयवादी, जन्मजात संशयवादी और जन्मजात संशयवादी पूछता है: "क्या ऐसा है? क्या यह सच नहीं है? तो फिर यह क्या है? यह कैसे है?" वह संदेह को दूर करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछता है।

पूछताछ के अगले तीन प्रकार हैं: मानवीय पूछताछ, गैर-मानवीय पूछताछ और सृजित (निम्मितपुच्छा) की पूछताछ।

मानवीय जिज्ञासा क्या है? बुद्ध, भगवान बुद्ध के दर्शन करने के बाद लोगों ने प्रश्न पूछे: भिक्षुओं, उपासकों, उपासिकाओं, राजाओं, क्षत्रिय, ब्राह्मणों, वेस्स, सुद्धों, गृहस्थों और भिक्षुओं ने।

अमानवीय पूछताछ क्या है? बुद्ध, भगवान के दर्शन करने के बाद, गैर-मनुष्यों ने प्रश्न पूछे: अजगर, सुनहरे पंखों वाले पक्षी, यक्ष, असुर, गंधर्व, राजा, इंद्र, ब्रह्मा, देव।

सृष्टि की जिज्ञासा क्या है? भगवान बुद्ध के मन द्वारा निर्मित सभी भौतिक शरीर और अंग उन्हें देखकर उनके पास आते हैं और प्रश्न पूछते हैं, और भगवान बुद्ध उनका उत्तर देते हैं।

आगे तीन प्रकार की पूछताछ: स्वयं के लाभ के लिए पूछताछ, दूसरों के लाभ के लिए पूछताछ और दोनों के लाभ के लिए पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: वर्तमान हितों के बारे में पूछताछ, भविष्य के हितों के बारे में पूछताछ और सर्वोच्च हितों के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: दोषरहितता के लाभ के लिए पूछताछ, प्रदूषणरहितता के लाभ के लिए पूछताछ और शुद्ध लाभ के लिए पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: अतीत के बारे में पूछताछ, भविष्य के बारे में पूछताछ और वर्तमान के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: स्वयं के भीतर पूछताछ, स्वयं के बाहर पूछताछ और स्वयं के भीतर और बाहर दोनों के बारे में पूछताछ। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: अच्छे कर्म, बुरे कर्म और अनिर्दिष्ट (अव्यक्तपुच्छा) के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: जनसमूह, अवशेष और संस्थाओं के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: जागरूकता, परिश्रम

और आध्यात्मिक सार के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: मूल, शक्ति और ज्ञान के बारे में। आगे तीन प्रकार की पूछताछ: मार्ग, फल और निर्वाण के बारे में।

"मैं आपसे पूछता हूँ," मैं आपसे विनती करता हूँ; मैं आपसे आग्रह करता हूँ; कृपया मुझे स्पष्ट करें; कृपया मुझे बताएं। "हे ईश्वर," जो आदर का पर्यायवाची है... (विलंबित, पिछले अनुभाग देखें)। "कृपया मुझे यह बताएं," कृपया कहें, कृपया समझाएं, कृपया सिखाएं, कृपया सूचित करें, कृपया निर्माण करें, कृपया उजागर करें, कृपया विश्लेषण करें, कृपया स्पष्ट करें।

13 · [भगवान: "पुण्णक"] इन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों में से किसी ने भी इस संसार में देवताओं को अनेक यज्ञ किए हैं, ऐसी अवस्था की आशा में; बुढ़ापे से बंधे होने के कारण उन्होंने यज्ञ किए।

"इनमें से कोई भी ऋषि, लोग": (हटा दिया गया)... "क्षुद्र, ब्राहमण, देवताओं के लिए": (हटा दिया गया)... "संसार में अनेक यज्ञ हैं": (हटा दिया गया)...

"पुनर्जन्म की अवस्था की प्रतीक्षा में": "प्रतीक्षा में," रूप प्राप्ति की प्रतीक्षा में, ध्वनि प्राप्ति की प्रतीक्षा में, (छोड़ा गया)... गंध, ...स्वाद, ...स्पर्श, ...पुत्र, ...पत्नी, ...संपत्ति, यश, संप्रभुता, महान कक्ष वाले क्षत्रिय घर में रहने वाले व्यक्तियों की, महान कक्ष वाले ब्राहमण घर में रहने वाले व्यक्तियों की, महान कक्ष वाले गृहस्वामियों के घरों में रहने वाले व्यक्तियों की, स्वर्ग के चारों राजाओं में रहने वाले व्यक्तियों की, स्वर्ग में रहने की, रात्रि के स्वर्ग में, तुषिता स्वर्ग में, ज्ञान में, आशावाद में, दूसरों के स्वर्ग में, ब्रहम स्वर्ग में, व्यक्ति लाभ प्राप्त करता है, चाहता है, स्वीकार करता है, आकांक्षा करता है, उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है और प्रार्थना करता है।

"पुनर्जन्म की ऐसी अवस्था की प्रतीक्षा में": यहाँ व्यक्ति के पुनर्जन्म की प्रतीक्षा में; मैं महान हॉल वाले खत्तिया घर में व्यक्ति के पुनर्जन्म की प्रतीक्षा में हूँ... (उद्धृत) ...चाहते हुए, प्राप्त करते हुए, आकांक्षा करते हुए, उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुए और प्रार्थना करते हुए।

"वे वृद्धावस्था से बंधे हैं, इसलिए वे त्याग करते हैं": वे जो वृद्धावस्था से बंधे हैं, वे जो रोग, मृत्यु, दुःख, शोक, पीड़ा और निराशा से बंधे हैं। जब वे जन्म पर निर्भर होते हैं, तो वे वृद्धावस्था पर निर्भर होते हैं; जब वे वृद्धावस्था पर निर्भर होते हैं, तो वे रोग पर निर्भर होते हैं; ...(अस्पष्ट) रोग पर...(अस्पष्ट) मृत्यु पर; मृत्यु पर दुःख, पीड़ा और निराशा पर; ब्याज पर पुनर्जन्म पर; पुनर्जन्म पर पुनर्जन्म पर; जब वे पुनर्जन्म पर निर्भर होते हैं, तो वे अटके हुए, फँसे हुए, संक्रमित होते हैं; वे जो गतिशील हैं, और वे जिनका हृदय (इसकी ओर) मुड़ा हुआ है।

14 · [आदरणीय पुणक ने इस प्रकार कहा:] हे भगवान, इन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राहमणों में से, जो संसार के देवताओं को अनेक यज्ञ करते हैं, यज्ञ के मार्ग से नहीं भटकते, क्या कोई ऐसा है जिसने जन्म और वृद्धावस्था को पार कर लिया हो? हे भगवान, मैं आपसे यह पूछता हूँ, कृपया मुझे इसका उत्तर दीजिए।

"इनमें से कोई भी ऋषि, लोग": "कोई भी"... (हटा दिया गया)।

"गुरुजी! क्या यह सच है कि कुछ लोग बलिदान के मार्ग पर चलना नहीं छोड़ते?": "क्या यह सच है?" संदेह का प्रश्न, उलझन का प्रश्न, एक अलंकारिक प्रश्न, व्यंग्यात्मक प्रश्न। "वे" बलिदान के पुरोहित हैं। "हे प्रभु," ... "हे प्रभु! क्या सचमुच ऐसे लोग हैं...?" "जो बलिदान के मार्ग पर चलना नहीं छोड़ते," बलिदान को बलिदान का मार्ग कहा जाता है, जैसे पवित्र मार्ग पवित्र मार्ग है; स्वर्ग आकाश का मार्ग है; शास्त्र का मार्ग शास्त्र का मार्ग है; उसी प्रकार, बलिदान को बलिदान का मार्ग कहा जाता है। "नहीं छोड़ते,"

बलिदान के मार्ग पर चलना न छोड़ने वाले आदरणीय, निरंतर, निरंतर चलने वाले, आदत में न फंसने वाले, अपनी इच्छाओं की उपेक्षा न करने वाले, चरित्रवान, और सतर्क रहने वाले होते हैं।

जो उस लक्ष्य को साधता है, जो प्रयास करता है, जो विजय प्राप्त करता है, जो वृद्धि करता है, वे ही त्याग के मार्ग से पीछे नहीं हटते: वे जिसे भी खोजते हैं, पीछा करते हैं और भीख मांगते हैं, चाहे वह वस्त्र हो, भोजन हो... (उद्धृत भाग), वे आदरणीय कर्मकारक हैं... (उद्धृत भाग)। जो वृद्धि करते हैं, वे भी त्याग के मार्ग से पीछे नहीं हटते; जो भी वस्त्र, भोजन तैयार करता है..., वे आदरणीय कर्मकारक हैं। जो वृद्धि करते हैं, वे भी त्याग के मार्ग से पीछे नहीं हटते; जहाँ कहीं भी वे वस्त्र, भोजन देते हैं, प्रदान करते हैं और दान करते हैं..., वे आदरणीय कर्मकारक हैं। जो वृद्धि करते हैं, वे भी त्याग के मार्ग से पीछे नहीं हटते।

"जन्म और वृद्धावस्था का अनुभव करना, महोदय": वृद्धावस्था और मृत्यु, ये दोनों ही बीत जाते हैं, पार हो जाते हैं और इन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। "प्रिय महोदय," यह प्रेम, आदर और आज्ञाकारिता का पर्यायवाची है।

"हे गुरु, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे यह बताएँ": "मैं आपसे पूछता हूँ," मैं आपसे आग्रह करता हूँ; मुझे स्पष्ट कर दीजिए; "कृपया मुझे बताएँ," मुझे बताएँ। "हे प्रभु," एक आदरपूर्ण पर्यायवाची... "कृपया मुझे यह बताएँ"...

15 · [भगवान: "पुण्णक"] वे लाभ की अपेक्षा रखते हैं, उसकी सराहना करते हैं, प्रार्थना करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। वे समर्पित अनुयायी और लालची लोग हैं। मैं कहता हूँ कि वे जन्म और वृद्धावस्था को सहन नहीं कर पाए हैं।

"वे अपेक्षा करते हैं, सराहना करते हैं, प्रार्थना करते हैं और भेंट करते हैं": "वे अपेक्षा करते हैं," वे रूप की प्राप्ति की अपेक्षा करते हैं, वे ध्वनि की प्राप्ति की अपेक्षा करते हैं, ...गंध, स्वाद, स्पर्श, एक पुत्र की, ...(छोड़ा गया)।

वे सराहना करते हैं। वे बलिदान की सराहना करते हैं, या परिणाम की, या बलिदान करने वाले की। वे बलिदानों की सराहना कैसे करते हैं? जो किया जाता है वह पवित्र है, जो किया जाता है वह संतोषजनक है, अद्भुत है, समय पर किया गया है, उचित है, चयन (समीक्षा) के बाद किया गया है, दोषरहित है। देना निरंतर (नियमित) है, देना पवित्र और विश्वसनीय है। वे प्रशंसा और सराहना करते हैं, इसलिए वे बलिदानों की इस प्रकार सराहना करते हैं।

वे परिणामों की सराहना कैसे करते हैं? ऐसे कारणों (बलिदानों) से वे ब्रह्म स्वर्ग में व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा रखते हैं। वे इस प्रकार परिणाम की प्रशंसा, सराहना और प्रशंसा करते हैं।

वे उन लोगों की सराहना कैसे करते हैं जिन्हें समर्थन देना चाहिए? जिन्हें समर्थन देना चाहिए वे हैं, वे जो पर्याप्त वंश (वंश) वाले हों, जिनके उपनाम (परिवार) पर्याप्त हों, जो पढ़ने वाले हों, मंत्रों के ज्ञाता हों, तीनों वेदों की शब्दावली, अनुष्ठान, ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति के ज्ञाता हों, और प्राचीन इतिहास पाँचवाँ गुण है। वे जो भली-भांति जानते हों, जो पवित्र वाक्यों को जानते हों, जो व्याकरण समझते हों, जो मनुष्य के साथ सांसारिक संबंधों में अपूर्ण न हों, जो लोभ से मुक्त हों या लोभ के कारण लोभ न करते हों, या घृणा के कारण किसी से विमुख न हों, जो अज्ञानी हों या अज्ञानता के कारण उसमें भाग लेते हों, जो उपदेशों में पर्याप्तता में विश्वास रखते हों, जिनके पास निषेध हों, जिनके पास पर्याप्त ज्ञान हो, जिनके पास पर्याप्त मुक्ति हो, जिनके पास पर्याप्त दृष्टिकोण हों। वे प्रशंसा करते हैं, सराहना करते हैं...(उतारा गया)।

"वे प्रार्थना करते हैं," उन्होंने रूप प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, उन्होंने ध्वनि प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, ...(अंशित)। वे आशा करते हैं, सराहना करते हैं और प्रार्थना करते हैं। "वे भेंट चढ़ाते हैं," वे देते हैं, त्याग करते हैं, कपड़े, भोजन दान करते हैं ...(अंशित)।

“वे लाभ की अपनी इच्छा के लिए प्रार्थना करते हैं”: वे रूप की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं, ...(लोका गया)।

“वे समर्पित स्वीकारकर्ता (बलिदान के भक्त) हैं, लालची हैं, मैंने कहा कि वे जन्म और वृद्धावस्था से बच नहीं पाए हैं।” “उन्हें” बलिदानों के पुरोहित कहा जाता है। “अर्पण का समर्पण,” भक्ति का बंधन, मजबूत बंधन, चरित्रवान व्यक्ति, जितना अधिक, उतना भारी, वह व्यक्ति जो इसका लक्ष्य है, प्रयास की ओर, झुकाव की ओर, विजेता की ओर, वृद्धि करने वाले की ओर। “लालची व्यक्ति,” वह कोई भी व्यक्ति जिसमें इच्छा, लोभ, आनंद, प्यास, प्रेम, जुनून और मोह हो। इसे अस्तित्व का लोभ कहा जाता है। अस्तित्व का लोभ बंधा हुआ, आसक्त, दूषित, आसक्त, स्थिर और अवरुद्ध होता है।

मैंने कहा कि वे जन्म और वृद्धावस्था से बच नहीं पाए हैं। बलिदान चढ़ाने में लगे रहने वाले, लालची लोग जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से बच नहीं पाए हैं, उनसे आगे नहीं बढ़ पाए हैं, उन्हें पार नहीं कर पाए हैं या उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाए हैं। जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु अलग नहीं हैं, उनसे छूटे नहीं जा सकते, उन्हें पार नहीं किया जा सकता, उन पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती; वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं; पुनर्जन्म, जन्म के साथ, वृद्धावस्था के बाद, रोग से पराजित और मृत्यु से पीड़ित; कोई शरण नहीं है। मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं सूचित करता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ।

16 · [आदरणीय पुणक ने इस प्रकार कहा:] यदि यज्ञ करने में समर्पित लोग अपने यज्ञों के द्वारा जन्म और वृद्धावस्था के चक्र में नहीं जीते, हे प्रभु! तो फिर स्वर्ग और मनुष्य के संसार में जन्म और वृद्धावस्था का चक्र कौन जीता है, हे प्रभु? हे भगवान, मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ, कृपया मुझे इसका उत्तर दीजिए।

“यदि यज्ञ करने के लिए समर्पित लोग जीवित नहीं रहे”: यज्ञ के पुरोहित, समर्पित यज्ञकर्ता और लालची लोग, जन्म और वृद्धावस्था, वे जीवित नहीं रहे, मृत्यु से आगे नहीं बढ़े, वे पार नहीं हुए, उन्होंने विजय प्राप्त नहीं की; जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु अलग नहीं हुए, छोड़े नहीं गए, पार नहीं हुए; वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु में लौट आए, वे पुनर्जन्म के चक्र में घूमते रहे...(अंशित)।

“[इस तरह]”: “इस तरह,” वाक्य का आगे का भाग...

“बलिदान द्वारा... जन्म और वृद्धावस्था, महोदय”: “बलिदान,” अनेक बलिदानों के साथ, विभिन्न प्रकार के बलिदानों के साथ। “प्रिय महोदय,”...

“तो फिर, हे महोदय, स्वर्ग और मनुष्य के संसार में, जन्म और वृद्धावस्था के द्वारा, कौन है?”: और इस संसार में, स्वर्ग, राक्षस और ब्राह्मणों सहित; सामंतों, ब्राह्मणों, स्वर्ग और मनुष्य की पीढ़ियों सहित; कौन है जिसने जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु को पार किया है?

“गुरुजी, मैं आपसे पूछता हूँ, कृपया मुझे यह बताइए”: “मैं आपसे पूछता हूँ,”...

17 · [भगवान बुद्ध: “पुण्णक”:] संसार में ऊँच-नीच का विचार करने के बाद, संसार में कहीं भी विचलित हुए बिना, शांत, निर्मल, चिंता रहित, इच्छाओं रहित, मैं कहता हूँ कि उन्होंने जन्म और वृद्धावस्था का अनुभव किया है। [एएन.3.32]

“संसार में ऊपर और नीचे का विचार करना”: विचार करने के बाद, इसे ज्ञान, समझ कहा जाता है... (छोड़ा गया, पिछले खंड देखें) भ्रम रहित, धर्म का चुनाव, सही दृष्टिकोण। “ऊपर और नीचे,” निचले भाग को स्वयं का व्यक्तित्व कहा जाता है, और ऊपरी भाग को अन्य व्यक्तित्व कहा जाता है; निचले भाग को स्वयं की शारीरिक अनुभूति, विचार और चेतना कहा जाता है; ऊपरी भाग को अन्य लोगों की शारीरिक चेतना कहा जाता है; ऊपरी भाग को छह बाह्य लोक कहा जाता है; निचले भाग को मनुष्य लोक कहा जाता है, ऊपरी भाग को स्वर्ग लोक कहा जाता है; निचले भाग को इच्छा लोक कहा जाता है, ऊपरी भाग को भौतिक जगत और निराकार लोक कहा जाता है; निचले भाग को इच्छा और भौतिक जगत कहा जाता है, संसार को निराकार लोक कहा जाता है। “संसार में ऊपर और नीचे का विचार करना”: ऊपर और नीचे को अनित्य, दुख, बीमारी, बीमार के रूप में देखना... (छोड़ा गया) छोड़ने के बाद, विचार करने, जानने, समझने, तौलने, निर्णय लेने के बाद, वियोग के बाद, स्पष्टीकरण के बाद।

“[भगवान: 'पुणक']”: “पुणक,” भगवान उस ब्राह्मण को उसके नाम से पुकारते हैं। “भगवान,” ....

“उसके लिए संसार में कोई संदेह नहीं है”: “उसके लिए,” अरहंत, वह जिसने सभी कष्टों को भस्म कर दिया है। “संकोच,” लालसा का, दृष्टि का, अहंकार का, अशुद्धता का, इच्छा की कंपकंपी का; उसके लिए ये सब अस्तित्व में नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, पाए नहीं जा सकते; ये सब समाप्त हो गए हैं, शांत हो गए हैं, रुक गए हैं, उत्पन्न होने में असमर्थ हैं, ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं। “कहीं भी,” चाहे कहीं भी हो, भीतर या बाहर या भीतर और बाहर। “संसार में,”...

“शांत, धुआं रहित, कष्ट रहित, इच्छा रहित, मैं कहता हूँ कि वह 'जन्म और वृद्धावस्था' से बच गया है”: “शांत,” मौन लोभ की अवस्था, ...घृणा, ...अज्ञान, क्रोध, आक्रोश, बुराई छिपाना, सभी अस्वास्थ्यकर कर्म; शांत, बुझा हुआ, ठंडा, चला गया और समाप्त हो गया। “धुआं रहित,” शरीर के बुरे कर्म धुआं रहित हैं, नष्ट हो गए हैं, सूख गए हैं, मुरझा गए हैं और समाप्त हो गए हैं; वाणी के बुरे कर्म... (छोड़ दिया गया); मन के; लोभ; क्रोध; अज्ञान; आक्रोश; बुराई छिपाना; ईर्ष्या; कंजूसी; चालाकी; वासना; आलस्य; सुस्ती; निष्क्रियता; सभी प्रदूषण; सभी बुराइयाँ; सभी कष्ट; सभी झुलसाने वाली गर्मी (यातना); सभी बुरे कर्म धुआं रहित हैं, नष्ट हो गए हैं, मुरझा गए हैं, मिटा दिए गए हैं। या, क्रोध को धुआँ कहा जाता है:

“ब्राह्मण! अहंकार ही तुम्हारा बोझ है, क्रोध तुम्हारा धुआँ है, और झूठ तुम्हारी राख है। जीभ यज्ञ का पात्र है, हृदय यज्ञ की भट्टी है, और सधा हुआ मन ही मनुष्यों की अग्नि है।” [संख्या 7.9]

या, क्रोध दस रूपों में प्रकट होता है: “वह मेरे प्रति प्रतिकूल रहा है,” [AN.9.29] क्रोध प्रकट होता है; “वह मेरे प्रति प्रतिकूल है,” क्रोध प्रकट होता है; “वह मेरे प्रति प्रतिकूल होगा,” ...(छोड़ा गया); “वह मेरे प्रिय और इच्छित कार्यों के विरुद्ध रहा है,” “वह मेरे प्रिय और इच्छित कार्यों के विरुद्ध है,” “वह होगा...,” “वह मेरे अप्रिय कार्यों के पक्ष में रहा है,” “वह पक्ष में है,” “वह पक्ष में होगा,” क्रोध प्रकट होता है; या अनुचित स्थान पर क्रोध प्रकट होता है। किसी भी प्रकार का क्रोध, शत्रुता, घृणा, अरुचि, बुराई, हृदय की घृणा, अहंकार, आक्रामकता, रोष, अप्रसन्नता: इसे क्रोध कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, क्रोध की चरम और सूक्ष्म अवस्थाओं को समझना चाहिए: कभी-कभी क्रोध केवल गुस्से की चरम सीमा तक होता है, भौंहें चढ़ाने जितना नहीं; कभी-कभी क्रोध केवल दांत पीसने जितना होता है, लेकिन उतना नहीं; कभी-कभी दांत पीसना, लेकिन गाली-गलौज नहीं; कभी-कभी गाली-गलौज, लेकिन हथियार की तलाश नहीं; कभी-कभी हथियार की तलाश, लेकिन हथियार उठाने की हद तक नहीं; कभी-कभी हथियार प्राप्त करना, लेकिन लाठी निकालने की हद तक नहीं; कभी-कभी लाठी निकालना, लेकिन प्रहार नहीं; कभी-कभी प्रहार करना, लेकिन तोड़ना नहीं; कभी-कभी तोड़ना, लेकिन चीरने जितना नहीं; कभी-कभी चीरना, लेकिन अंगों को खींचना नहीं; कभी-कभी अंगों को खींचना, लेकिन जान से मारने जितना नहीं; कभी-कभी जान से मारने जितना, लेकिन खुद को त्यागने जितना नहीं। जब क्रोधित व्यक्ति दूसरों को मारने के बाद खुद को मार डालता है, तो यह क्रोध की चरम सीमा है, और आगे बढ़ने पर क्रोध और भी बढ़ जाता है। जिसका क्रोध शांत हो जाता है, उसे निर्मल कहा जाता है।

जिस अवस्था में क्रोध का निवारण हो जाता है, वह धुएँ रहित हो जाती है; जिस अवस्था में क्रोध का ज्ञान होता है, वह धुएँ रहित हो जाती है; क्रोध का ज्ञान होने के कारण वह धुएँ रहित हो जाता है; जिस क्रोध का निवारण हो जाता है, वह धुएँ रहित हो जाता है। "कोई कष्ट नहीं," लोभ कष्ट है, क्रोध कष्ट है, अज्ञान कष्ट है, ...(अस्पष्ट), सभी अहितकर कर्म कष्ट हैं। जिसने ... का निवारण कर दिया है, वह निर्धन है।

"इच्छा का अभाव," इच्छा को लालसा कहा जाता है, अर्थात् लोभ, वासना... (निरस्त), अस्वस्थ जड़ें। जिसकी यह इच्छा समाप्त हो गई है..., उसे इच्छाहीन कहा जाता है। "जन्म": सभी जीवित प्राणियों में, प्रत्येक प्रकार के जन्म, गर्भ में प्रवेश, विभिन्न तत्वों की अभिव्यक्ति और प्रत्येक प्रकार के चेतन प्राणी की प्राप्ति। "वृषण": सभी जीवित प्राणियों में, वृषण, दांतों का झड़ना, बालों का सफेद होना, झुर्रियां, घटती आयु और प्रत्येक प्रकार के जीवित प्राणियों की जड़ों का क्षय। "जो मौन, निर्मल, व्यथित और इच्छाहीन हैं, मैं कहता हूँ कि उन्होंने 'जन्म और वृषण' से मुक्ति पा ली है": जो भी मौन, निर्मल, व्यथित और इच्छाहीन है; उसने जन्म, वृषण और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है, पार कर लिया है, पार कर लिया है; मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं सूचित करता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ।

इन छंदों के अंत में...(हटा दिया गया) "भगवान मेरे गुरु हैं, और मैं उनका शिष्य हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.4

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

4. मेट्टागू

18 · [आदरणीय मेट्टागू ने इस प्रकार कहा:] हे भगवान, मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ। मेरा मानना है कि आप वेदों के ज्ञाता हैं और आपने स्वयं इनका अभ्यास किया है। संसार में अनेक प्रकार के ये दुख कहाँ से उत्पन्न हुए?

"गुरुजी! मैं यह पूछता हूँ, कृपया मुझे यह बताएँ": "मैं पूछता हूँ," तीन प्रकार के प्रश्न हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"मैं आपसे पूछता हूँ," ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"[इस आदरणीय मेट्टागू की तरह]": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"मुझे लगता है कि आप वेदों के ज्ञाता हैं और आपने स्वयं अभ्यास किया है": मुझे लगता है कि आप "वेदों से अवगत" हैं। मुझे लगता है कि आप "स्वयं अभ्यास करने वाले व्यक्ति" हैं; मैं ऐसा जानता हूँ; मैं सहमत हूँ। "वेदों के ज्ञाता, जिन्होंने स्वयं अभ्यास किया है," भगवान बुद्ध वेदों के ज्ञाता कैसे हो सकते हैं? वेदों को ज्ञान, ज्ञान का मूल, ज्ञान की शक्ति, धम्म ज्ञान, अन्वेषण, विपश्यना, चारों लोकों का सही दर्शन कहा जाता है। भगवान बुद्ध वे हैं जो परम लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं, जो वेदों में ही जीवन व्यतीत करते हैं, वृद्धावस्था प्राप्त करते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं; जो परम लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं, जो अंत तक पहुँच चुके हैं, जो सीमा तक पहुँच चुके हैं, जो शरण तक पहुँच चुके हैं, जो आश्रय तक पहुँच चुके हैं, जो भयमुक्त हो चुके हैं, जो मृत्यु से पहले ही पहुँच चुके हैं, जो अमरता तक पहुँच चुके हैं, वे ही निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं। या फिर "वेदों को जानने वाला" वह है

जो वेदों को जानता है, या सात धर्मों की ज्ञात अवस्था वह है जो वेदों को जानता है: देखना (देखना), संदेह (संयम), संयम (संयम), क्रोध (गुमना), अज्ञान (गुमना), आलस्य (आलस्य), और इसके बुरे और अस्वस्थ तरीके ज्ञात हैं: दूषित करना, बार-बार आना, भय, और यह भविष्य में जीवित रहेगा और मर जाएगा।

भगवान बुद्ध: [सं.3.6, 534] "सभी वेदों का चयन करो, यहाँ विद्यमान सभी समण और ब्राह्मणों से संबंधित वेदों का चयन करो, वह सभी भावों में लोभ से मुक्त है, और सभी वेदों को पार करने के बाद, वह वेदों को भलीभांति जानने वाला है।"

जो स्वयं अभ्यास कर चुके हैं, वे कैसे धन्य हैं? धन्य वे हैं जिन्होंने शरीर, मन, बुद्धि, जागरूकता, धर्म का अभ्यास किया है, दिव्य आधारों, मूल, शक्ति और ज्ञान का अध्ययन किया है। जिन्होंने मार्ग का अभ्यास किया है, जिन्होंने अशुद्धियों का त्याग किया है, जो अविचल रहे हैं, जिन्होंने गवाही दी है, जिन्होंने जाना है, जिन्होंने त्याग दिया है, जिन्होंने अभ्यास किया है, जिन्होंने गवाही का त्याग किया है, जिन्होंने त्यागने योग्य चीजों का त्याग किया है, जिन्होंने अभ्यास करने योग्य चीजों का अभ्यास किया है, न छोटे, न बड़े, न बहुत गहरे, न असीम, न कठिन; वे जो सागर के समान अनेक खजानों की गहरी समझ रखते हैं, वे ही छह प्रकार की शांति प्राप्त करने वाले हैं।

आँखों से रूप देखने के बाद, मैं न तो खुश हूँ और न ही दुखी, और शांति, सजग और धार्मिकता में रहता हूँ; कान से ध्वनि सुनने के बाद..., नाक से गंध सूंघने के बाद..., जीभ से स्वाद चखने के बाद..., शरीर से स्पर्श को छूने के बाद..., चेतना से धम्म को जानने के बाद, मैं न तो खुश हूँ और न ही दुखी, बल्कि शांति, सजगता और धार्मिकता में रहता हूँ [डीएन.33, 6]।

दृष्टि से रूप देखने के बाद भी वह वांछित रूप की इच्छा नहीं करता, उससे घृणा नहीं करता और न ही उसके मन में लोभ उत्पन्न करता है। उसका शरीर और मन दोनों ही स्थिर हैं, और वह सद्गुणों से परिपूर्ण और मुक्त है। अवांछित रूप देखने के बाद भी वह निराश नहीं होता, उसका मन असंयमित रूप से दुखी नहीं होता, न ही उसके मन में द्वेष उत्पन्न होता है; उसका शरीर और मन दोनों ही सदृश हैं, और वह अपने भीतर अच्छाई और दयालुता से परिपूर्ण है।

आँखों से रूप देखने के बाद, शरीर और मन दोनों ही सुखद और अवांछनीय रूपों में निवास कर चुके हैं, और आत्मा दयालुता से निर्मित और मुक्त हो जाती है; कान से ध्वनि सुनने के बाद... (छोड़ा गया), चेतना से धम्म को जानने के बाद, शरीर और मन दोनों ही सुखद और अवांछनीय विधियों में स्थापित हो जाते हैं, और वे अपने भीतर सद्गुण से स्थापित और मुक्त हो जाते हैं [SN.46.6]।

आँखों से रूप देखने के बाद, वह आनंद में उत्तेजित नहीं होगा, अपराध में क्रोध से दूषित नहीं होगा, सुस्ती से आसक्ति में नहीं पड़ेगा, क्रोध उत्पन्न करने वाली बातों पर क्रोधित नहीं होगा, मादक बातों से आसक्त नहीं होगा, अशुद्धियों से दूषित नहीं होगा; कानों से ध्वनि सुनने के बाद... (विलुप्त) चेतना से धम्म को जानने के बाद...

जो तुम देखते हो उसमें केवल दृश्य है; जो तुम सुनते हो उसमें केवल श्रवण है; जो तुम अनुभव करते हो उसमें केवल अनुभूति है; जो तुम जानते हो उसमें केवल ज्ञान है [SN.35.95]। जो तुम देखते हो उससे दूषित मत हो; जो तुम सुनते हो उससे दूषित मत हो; जो तुम अनुभव करते हो उससे दूषित मत हो; जो तुम जानते हो उससे दूषित मत हो; और जो किसी भी प्रकार के आसक्ति से मुक्त है, वह निर्धन है, आश्रित नहीं है, और ज्ञात से बंधा नहीं है, बंधन से मुक्त है, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है; जो वह सुनता है उसके संदर्भ में... (उद्धृत) जो वह जानता है उसके संदर्भ में, वह आसक्ति रहित है, वह हानि नहीं करता है, वह आश्रित नहीं है, और वह बंधन से मुक्त है। बंधन से मुक्त होकर, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

भगवान बुद्ध की आंखें हैं, भगवान बुद्ध के पास रूप देखने के लिए आंखें हैं, भगवान बुद्ध में इच्छा और लोभ नहीं है, और भगवान बुद्ध का हृदय दयालु और मुक्त है; ...(छोड़ा गया) सुनने के लिए कान...; ...सूंघने के लिए नाक...; ...स्वाद लेने के लिए जीभ...; ...स्पर्श करने के लिए शरीर...; भगवान बुद्ध सचेत हैं, भगवान बुद्ध धर्म को चेतना से जानते हैं, भगवान बुद्ध में इच्छा और लोभ नहीं है, और भगवान बुद्ध का हृदय दयालु और मुक्त है [SN.35.232]।

आँखें रूप में आनंदित होती हैं, भगवान ने इसे विनियमित, सुव्यवस्थित, संरक्षित, सुरक्षित रखा है और आत्म-नियंत्रण सिखाया है; कान ध्वनि में आनंदित होते हैं... (विलुप्त) नाक गंध में आनंदित होती है..., जीभ स्वाद में आनंदित होती है..., शरीर स्पर्श में आनंदित होता है..., और भगवान ने इसे विनियमित, सुव्यवस्थित, संरक्षित, सुरक्षित रखा है और आत्म-नियंत्रण सिखाया है, जिसका अर्थ है धम्म में आनंदित होना, धम्म में प्रसन्न होना; भगवान ने इसे विनियमित किया है..., इसका आत्म-नियंत्रण। [एम.एन.75]

"वश में किया हुआ (नियंत्रित) (हाथी) सभा में लाया जाता है, राजा वश में किए हुए (हाथी) पर सवार होता है; जो व्यक्ति वश में किया गया है, वह लोगों में सर्वोच्च विजेता है, वह जो अपमान सहता है।"

पालतू बनाया गया खच्चर असाधारण होता है, और महान सिंधी घोड़े, और बड़े दांतों वाले हाथी, महान हाथी; स्वयं को वश में करने वाले लोग तो और भी बेहतर होते हैं।

इन पर सवार होकर कोई उस दिशा में नहीं जाता, जहाँ कोई पहुँच नहीं सकता, जैसे कोई वश में किया हुआ व्यक्ति स्वयं को वश में करके जाता है। [ध्वप.321-323]

“वे हर प्रकार के अहंकार में अडिग हैं, मुक्त होकर पुनर्जन्म प्राप्त कर चुके हैं, समायोजित साम्राज्यवादी स्थिति तक पहुँच चुके हैं, वे संसार के विजेता हैं।” [SN.22.76]

“जिन्होंने अपने भीतर और बाहर, संसार में, अपनी जड़ों को मजबूत किया है, इस और अन्य लोकों में प्रवेश किया है, जब वे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं, तो वे ही सर्वथा वश में होते हैं।” [सं. 3.6, 521]

“ये दुख कहाँ से उत्पन्न हुए?”: “कहाँ से,” संदेह का प्रश्न, भ्रम का प्रश्न, अनेक प्रश्नों का प्रश्न, यह एक अलंकारिक प्रश्न है, व्यंग्यात्मक प्रश्न है, आख़िर क्यों? “दुख,” जन्म से दुख, बुढ़ापे से दुख, ...बीमारी से, मृत्यु से, शोक से, निराशा से, हानि से, नरक से, पशु जगत से, प्रेतों से, मनुष्य से; जन्म से दुख में निहित, गर्भ में रहने के दुख में निहित, जन्म के दुख में निहित, आश्रित प्राणी का दुख, दूसरों द्वारा नियंत्रित प्राणी का दुख, ...अपने कर्मों के कारण, दूसरों के कर्मों के कारण, परिवर्तन से, नेत्र रोग से, कान रोग से, नाक रोग से, जीभ रोग से, शरीर रोग से, सिर रोग से, बाहरी कान रोग से, मुँह रोग से, दाँत रोग से, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें) ...दृष्टिहीनता का दुख। इन धर्मों के आरंभ से ही ये ज्ञात हैं; इनके लुप्त होने के बाद से भी ये ज्ञात हैं, प्रतिफल कर्म पर आधारित है; संबंध कर्म पर आधारित है, नाम रूप पर आधारित है; और रूप नाम पर आधारित है। जो लोग उत्पत्ति से घिरे हैं, जन्म से जुड़े हैं, उम्र से घिरे हैं, रोग से पराजित हैं, मृत्यु से पीड़ित हैं, दुख में जी रहे हैं, जिनके पास कोई आश्रय या शरण नहीं है, वे दुख कहलाते हैं। ये दुख कहाँ से आए? कहाँ उत्पन्न हुए? कहाँ पैदा हुए? कहाँ से आए? कहाँ पैदा हुए? कहाँ प्रकट हुए? कारण क्या है? इनका समूह क्या है? इनका जन्म क्या है? इनका मूल कारण क्या है? उन्होंने इन दुखों के मूल के बारे में पूछा, कारण के बारे में पूछा, उत्पत्ति के बारे में पूछा, उद्भव के बारे में पूछा, पूछा और प्रतीक्षा की, पोषण के बारे में पूछा, कारण के बारे में पूछा, भाग्य के बारे में पूछा, निर्धारित स्थिति के बारे में पूछा, पूछा और विनती की, निवेदन किया, स्पष्ट करें।

"किसी भी संसार में अनेक प्रकार के आकार और रूप": "सभी प्रकार के," पूर्णतः, प्रत्येक पहलू पूर्णतः, कोई अतिरिक्त नहीं, संपूर्ण पृथ्वी, यही सर्वव्यापी भाषा है, जिसका अर्थ है "सब कुछ।" "किसी भी संसार में," दुख का संसार, मनुष्यों का संसार, स्वर्ग का संसार, समुच्चय का संसार, संसारों का संसार और अस्तित्व का संसार। "विभिन्न आकार और रूप," विभिन्न प्रकार के दुख।

19 · [धन्य पुरुष: "मेट्टागू!"] तुम मुझसे दुख के घटित होने के बारे में पूछते हो, और मैं तुम्हें एक ज्ञाता के रूप में यह कहूँगा: समस्त दुख निर्भरता के कारण होते हैं, संसार में अनेक रूपों में।

"तुम मुझसे दुख के घटित होने के बारे में पूछते हो": दुख, कड़वाहट, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु, उदासी, हताशा और शोक। तुम पूछते हो, तुम दुख के कारण के बारे में पूछते हो, तुम जड़ के बारे में पूछते हो, तुम उत्पत्ति के बारे में पूछते हो, तुम घटित होने के बारे में पूछते हो, तुम प्रतीक्षा के बारे में पूछते हो, तुम पोषण के बारे में पूछते हो, तुम विषय के बारे में पूछते हो, तुम स्थिति के बारे में पूछते हो, तुम संग्रह के बारे में पूछते हो, तुम दृढ़ता से पूछते हो, तुम पूछते हो, विनती करते हो, निवेदन करते हो, स्पष्ट करते हो। "मेट्टागू," भगवान ने ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारा। "भगवान," यह एक सम्मानजनक पर्यायवाची है... (हटा दिया गया)।

"मैं तुम्हारे लिए, एक ज्ञानी के रूप में, यह कहूँगा": "मैं दुख के कारण की व्याख्या करूँगा, ...मूल, उत्पत्ति, उत्पादन, ...(अस्पष्ट); मैं व्याख्या करूँगा, मैं सिखाऊँगा... (अस्पष्ट)। "एक ज्ञानी के रूप में," जैसे कि वह ज्ञानी, वह समझी, वह मर्मस्पर्शी, न सुनी-सुनाई बातों से, न अफवाहों से, न विरासत से, न शास्त्रों से, न तर्क से, न तर्क-वितर्क से, न सैद्धांतिक चिंतन से, न चिंतन के बाद प्राप्त अंतर्दृष्टि से; एक ऐसी विधि जो स्वयं द्वारा सिद्ध और स्वयं सिद्ध की गई हो, मैं यह कहूँगा।

"सभी दुख निर्भरता (उपाधि; इसका अनुवाद आसक्ति या प्राप्ति के रूप में भी किया जा सकता है) के कारण उत्पन्न होते हैं": "निर्भरता," दस प्रकार की निर्भरताएँ हैं: तृष्णा की निर्भरता, दृष्टि की निर्भरता, अशुद्धता की निर्भरता, कर्म की निर्भरता, बुरे कर्मों की निर्भरता, भोजन की आसक्ति, घृणा की आसक्ति, चार आसक्तियों की निर्भरता, छह आंतरिक अवस्थाओं की निर्भरता, छह प्रकार की चेतना की निर्भरता, और हृदय और धर्म से संबंधित सभी दुख। "सभी दुख," जन्म का दुख, वृद्धावस्था का दुख, मृत्यु का दुख... (विलुप्त)। इन धर्मों के आरंभ से ही ये ज्ञात हैं; यह जानते हुए कि कर्म कर्म पर आधारित है; नाम रूप पर आधारित है; रूप नाम पर आधारित है। जन्म के बाद, जन्म के साथ, वृद्धावस्था के बाद, रोग से पराजित, मृत्यु से आहत, और दुख में रहने वाले, बिना आश्रय और बिना शरण के, दुख में रहने वाले कहलाते हैं। ये दुख निर्भरता को कारण, निर्भरता को जोड़ने वाले कारण, निर्भरता को स्थिति के रूप में मानते हैं, और निर्भरता ही इनके घटित होने, उत्पन्न होने, उत्पन्न होने, पैदा होने, जन्म लेने और जन्म लेने का कारण है।

"किसी भी दुनिया में सभी प्रकार के विभिन्न आकार और रूप": "सभी प्रकार" ...(हटा दिया गया)।

20 · जो अज्ञान के कारण आसक्त हैं, मंदबुद्धि व्यक्ति बार-बार कष्ट भोगता है, इसलिए ज्ञानी को आश्रित नहीं होना चाहिए, यह जानते हुए कि यही जीवन और दुख का कारण है।

"जो आश्रित नहीं है, वही ज्ञानी है": "वह," जो किसके समान है, जैसे प्रयास में, जैसे व्यवस्था में, जैसे प्रकार में, जहाँ कहीं भी पहुँचा है, चाहे वह क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वेस हो, शुद्ध हो, घर पर रहने वाला हो, भिक्षु हो, या कोई अन्य व्यक्ति हो। "अज्ञानी" वह है जो अज्ञान में प्रवेश कर चुका है, उदासीन है, और निम्न है। वह दृष्टि पर निर्भर है, अपवित्रता पर निर्भर है, ...कर्म पर, बुरे कर्मों पर, भोजन पर, घृणा पर, चार आसक्तियों पर, छह अंतर्मनों पर, छह प्रकार की चेतना पर, उसे उत्पन्न करने पर, उसे सजीव करने पर, उसे उत्पन्न करने पर।

“दुख बार-बार मंदबुद्धि लोगों तक पहुँचता है”: जन्म, पीड़ा, बीमारी, मृत्यु, शोक, निराशा और कड़वाहट बार-बार आते हैं, पूरी तरह से आ जाते हैं, जकड़ लेते हैं, जकड़ लेते हैं। “मंदबुद्धि लोग,” मंदबुद्धि, अज्ञानी, नासमझ, अविवेकी और हीन लोग।

अतः ज्ञानी को आश्रित नहीं होना चाहिए: “अतः,” कारण, स्थिति, वजह, जब आप आसक्ति में यह दोष देखते हैं। “ज्ञानी,” वे जो समझते हैं, वे जो जानते हैं, वे जो दूसरों को जानते हैं, वे जो देखते हैं, और वे जो अनुभव करते हैं: “सभी कर्म अनित्य हैं”... (छोड़ा गया), “सभी कर्म आत्महीन हैं”..., “धर्म का कोई भी संग्रह विनाश है”...। “आश्रित नहीं होना चाहिए,” और उस आसक्ति पर आश्रित नहीं होना चाहिए जो दिखाई नहीं देनी चाहिए, ...दूषित नहीं होनी चाहिए, ...बुराई से नहीं, ...भोजन से नहीं, ...घृणा से नहीं, ...चार आसक्तियों से, छह आंतरिक भागों से, छह प्रकार की चेतना से, उत्पन्न नहीं होना चाहिए, उत्पन्न नहीं होना चाहिए, और उत्पन्न होने का कारण नहीं बनना चाहिए।

“दुख”: वे जो जन्म से ही दुख से ग्रस्त हैं, वे जो वृद्ध हैं, वे जो कड़वे हैं, वे जो मरते हैं, शोक, निराशा; वे जो पीड़ित हैं। “उत्पादन का ज्ञाता”: दुख के मूल का ज्ञाता, ...कारण का ज्ञाता, ...उत्पत्ति, सृजन, प्रतीक्षा, भोजन, वस्तु, संग्रह का ज्ञाता। संग्रह का अनुयायी ही बुद्धि कहलाता है। वह समझ है... (उतारा गया) कोई भ्रम नहीं, चुनाव नहीं, सही दृष्टिकोण नहीं। प्राप्त करना, पूर्णतः प्राप्त करना, पहुंचना, आरोहण करना, उसे अनुयायी कहा जाता है।

21 · (मेट्टागू:) हमने आपसे जो कुछ भी पूछा, आपने हमें बताया; हम आपसे कुछ और पूछना चाहते हैं, आइए! कृपया हमें बताइए, ज्ञानी लोग जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और विलाप जैसी विपत्तियों को कैसे पार करते हैं? हे मुनि, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप मुझे इसका पूर्णतया स्पष्टीकरण दें, क्योंकि आप ही इन धर्मों के ज्ञाता हैं।

“हमने आपसे जो भी पूछा, आपने हमें बताया”: हम जो भी पूछते हैं, जो भी विनती करते हैं, जो भी हमें स्पष्ट करता है। “आपने हमें बताया,” बताया, समझाया, स्पष्ट किया, सिखाया, स्थापित किया, उजागर किया, हल किया।

“हम आपसे और भी बातें पूछना चाहते हैं, आइए! कृपया हमें बताइए”: हम आपसे और भी बातें पूछना चाहते हैं, हम आपसे और भी बातें जानना चाहते हैं, हम आपसे और भी बातें स्पष्ट करवाना चाहते हैं, हम आपसे और भी बहुत कुछ पूछना चाहते हैं। “आइए! कृपया हमें बताइए,” आइए, कृपया बताइए, कृपया समझाइए, कृपया सिखाइए, कृपया जानकारी दीजिए, कृपया निर्माण कीजिए, कृपया पर्दा उठाइए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए।

“ज्ञानी लोग जन्म, वृद्धावस्था और दुःख, शोक की बाढ़ को कैसे पार करते हैं?”: “कैसे?” संदेह, उलझन और (अस्पष्ट) ...क्यों? “ज्ञानी व्यक्ति” से तात्पर्य ज्ञानी, प्रबुद्ध व्यक्ति, विशिष्ट व्यक्ति से है। “तूफान”, इच्छा की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़, दृष्टि की बाढ़, अज्ञान की बाढ़। “जन्म” से तात्पर्य जन्म, गर्भ में प्रवेश, ...(अस्पष्ट)। “वृष्टि”: ..., “दुःख”: ..., “शोक”, रिश्तेदारों के बिछड़ने से दुखी होना... (अस्पष्ट) कुछ कष्टों का अनुभव करना, शोक मनाना, रोना, विलाप करना, व्यर्थ के शब्द बोलना, बड़बड़ाना, आंसू बहाना।

“बुद्धिमान लोग बाढ़, जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और शोक से कैसे पार पाते हैं?”: बुद्धिमान लोग बाढ़, जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और शोक से कैसे बचते हैं, पार पाते हैं, आगे बढ़ते हैं, पार करते हैं, और उन पर विजय प्राप्त करते हैं?

“मुनि, कृपया मुझे इसकी पूरी व्याख्या कीजिए”: “वह,” जो कुछ भी मैं पूछता हूँ, जो कुछ भी मैं विनती करता हूँ, जो कुछ भी मुझे स्पष्ट करता है। “मुनि,” मुनि को ज्ञान कहा जाता है, वह ज्ञान है, समझ है... (विलुप्त), भगवान बुद्ध के पास मुनि का ज्ञान है, मुनि तक पहुँचने का ज्ञान है। तीन मुनि (पूर्ण सद्गुण) हैं: शरीर मुनि, भाषा मुनि, इरादा मुनि।

मुनि का शरीर क्या है? तीनों प्रकार के शरीर और बुरे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; तीनों प्रकार के अच्छे आचरण मुनि की स्थिति हैं; शरीर में मौजूद बुद्धि मुनि की स्थिति है; शरीर का ज्ञान मुनि की स्थिति है; (उच्चतर) ज्ञान के साथ मार्ग पर चलना मुनि का शरीर है; इच्छा और लोभ का त्याग मुनि के समान है; चौथा ध्यान, शरीर का विनाश, मुनि की स्थिति है।

मुनि की भाषा क्या है? भाषा के चार प्रकार के बुरे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषा के चार प्रकार के अच्छे कर्मों का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषाई विषयों का ज्ञान मुनि की स्थिति है; भाषा का ज्ञान मुनि की स्थिति है; और सभी कर्मों के मार्ग का ज्ञान मुनि की स्थिति है; भाषा की इच्छा और लोभ का त्याग मुनि की स्थिति है; भाषा का द्वितीय ध्यान विराम भाषा मुनि की स्थिति है।

हे मुनि, इरादा क्या है? इरादे और बुरे कर्मों के तीन प्रकार मुनि की स्थिति हैं; अच्छे कर्मों के तीन प्रकार मुनि की स्थिति हैं; मन-विषय में निहित ज्ञान मुनि की स्थिति है; हृदय का ज्ञान मुनि की स्थिति है; ज्ञान के साथ मार्ग पर चलने वाला मुनि की स्थिति है; हृदय की इच्छा और लोभ का मूल्यांकन मुनि की स्थिति है; मन को नष्ट करने की इच्छा मुनि की स्थिति है।

“शरीर मुनि, वाणी मुनि और नीयत मुनि किसी भी प्रकार से कष्टदायी नहीं हैं; मुनि को मुनि का दर्जा प्राप्त है और कहते हैं कि वे ही सब कुछ नष्ट करने वाले हैं। शरीर मुनि, वाणी मुनि और नीयत मुनि किसी भी प्रकार से कष्टदायी नहीं हैं; मुनि को मुनि का दर्जा प्राप्त है और कहते हैं कि वे ही बुराई से मुक्त हुए हैं।”

छह प्रकार के मुनि में मुनि के ये तीन रूप होते हैं: गृहस्थ मुनि, बेघर मुनि, ज्ञानवान मुनि, ज्ञानहीन मुनि, भिक्षु मुनि, और मुनि के मुनि। गृहस्थ कौन हैं? वे गृहस्थ जिन्होंने पदचिह्न देखे हैं और उपदेश सीखे हैं, वे गृहस्थ हैं। बेघर मुनि कौन हैं? वे भिक्षु जिन्होंने पदचिह्न देखे हैं और उपदेश सीखे हैं, वे बेघर मुनि हैं। ज्ञानवान मुनि के लिए सात प्रकार के ज्ञान हैं, अज्ञानी मुनि के लिए अरहंत हैं, और भिक्षु बुद्ध भिक्षु मुनि हैं। मुनि के मुनि को तथागत, अरहंत और प्रबुद्ध कहा जाता है।

“नासमझ मुनि मूर्ख और अज्ञानी होता है। तराजू उठाकर सबसे ऊपर वाला पलड़ा उठा लो और ज्ञानी बन जाओ। सभी बुराइयों से दूर रहो, क्योंकि मुनि उन्हीं बुराइयों के कारण मुनि बने। संसार में जो भी (आंतरिक और बाह्य) योग को समझता है, वही मुनि कहलाता है। जो संसार के भीतर और बाहर सब कुछ जानता है, धर्म के पीछे के अच्छे और बुरे को जानता है, जो स्वर्ग और मनुष्य दोनों का आदर पाता है, वह कलंक और जाल से परे है, वही मुनि है।”

“विस्तार से समझाइए,” कृपया विस्तार से समझाइए; कृपया सिखाइए, कृपया जानकारी दीजिए, कृपया स्थापित कीजिए, कृपया उजागर कीजिए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए। “क्योंकि इस प्रकार आप इन धम्मों के ज्ञाता हैं”: क्योंकि इस प्रकार आप इन धम्मों के ज्ञाता, निर्णायक, स्पष्टकर्ता और बोधकर्ता हैं।

22 · [भगवान: “मेट्टागू!”] मैं तुम्हें धम्म बताऊंगा, जो वास्तविक जीवन में ज्ञात है, अफवाहों के माध्यम से नहीं; जो कोई भी इसे जानता है, सचेत रूप से जीवन व्यतीत करते हुए, संसार में प्रेम (इच्छा) को पार कर सकता है।

“मैं तुम्हें धम्म का ज्ञान दूंगा”: “धम्म,” आरंभ अच्छा है, मध्य अच्छा है और अंत अच्छा है; अर्थ सही है, वाक्यांश सही है; केवल पूर्ण और शुद्ध ब्राह्मण परंपरा: चार चेतनाएँ, चार धर्म, चार दिव्य आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक, आठ पवित्र मार्ग, निर्वाण और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग; मैं बताऊंगा, मैं समझाऊंगा, मैं सिखाऊंगा, मैं प्रकट करूंगा, मैं विश्लेषण करूंगा, मैं स्पष्ट करूंगा। “मेट्टागू,” भगवान ने ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारा।

“वर्तमान जीवन में, अफवाहों में नहीं”: “वर्तमान जीवन में,” जो देखा गया है, जो जाना गया है, जो मापा गया है, जो स्पष्ट किया गया है: “सभी कर्म अनित्य हैं”... (छोड़ा गया) “धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का विनाश है” का अर्थ है उस धर्म में जो देखा गया है (वर्तमान जीवन में), उस धर्म में जो जाना गया है, उस धर्म में जो मापा गया है, उस धर्म में जो स्पष्ट किया गया है; मैं वास्तविक जीवन में इसी विषय पर चर्चा करूँगा। या, मैं आपको देखे गए दुख के बारे में बताऊँगा, मैं आपको देखे गए संग्रह के बारे में बताऊँगा, मैं आपको देखे गए मार्ग के बारे में बताऊँगा, मैं आपको देखे गए के विनाश के बारे में बताऊँगा, और मैं वर्तमान में इसी विषय पर चर्चा करूँगा। या, प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, क्षणिक, आपको देखने के लिए आमंत्रित करने वाले, मार्गदर्शन करने में सक्षम जीवन में, और बुद्धिमानों को स्वयं इसका अनुभव करना चाहिए; मैं इस जीवन में इसी विषय पर चर्चा करूँगा। “अफवाहें नहीं,” किस्से-कहानियों से नहीं, सुनी-सुनाई बातों से नहीं, विरासत से नहीं, शास्त्रों से नहीं, तार्किक निष्कर्ष से नहीं, तर्क से नहीं, सैद्धांतिक चिंतन से नहीं, चिंतन के बाद प्राप्त राय से नहीं, बल्कि स्वयं से। मैं उस ज्ञात और स्वयंसिद्ध धम्म के बारे में बात करूंगा।”

“जो कोई भी जानने के बाद सचेत हो जाता है”: जानने, तौलने, परखने, अलग करने, स्पष्ट करने के बाद: “सभी कर्म क्षणभंगुर हैं” जानने के बाद, ...(अंशित)। “सचेत,” सचेत होने के चार तरीके हैं: शरीर में सचेतनता का अभ्यास करते समय और सचेतनता... (अंशित) उसे सचेत कहा जाता है। “जीवित,” जब आप चलते हैं, जीते हैं, कार्य करते हैं, रक्षा करते हैं, अस्तित्व में रहते हैं, जीवित रहते हैं।

“संसार में प्रेम के माध्यम से पार करने में सक्षम”: “प्रेम” को तृष्णा कहा जाता है, जो लोभ है, ...(विलुप्त) अस्वस्थ मूल। “प्रेम में होना,” प्रेम करने का क्या अर्थ है? “फैलाव” प्रेम है, “विस्तार” प्रेम है, “विशाल” प्रेम है, “गलत” प्रेम है, “यह मजबूर करता है” प्रेम है, “यह छीन लेता है” प्रेम है, “धोखा” प्रेम है, “विषाक्त जड़” प्रेम है, “विषाक्त फल” प्रेम है, “विषाक्त का प्रयोग” प्रेम है; या, “प्रेम की विशाल प्यास”: रूप में..., ध्वनि में..., गंध में..., स्वाद में... (विलुप्त), भौतिक जगत, निराकार जगत, इच्छा जगत, चार घटक, पाँच गुण, भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमान, धर्मों में देखे, सुने, महसूस किए और जाने योग्य विस्तारित आसक्तियाँ प्रेम हैं। “संसार में,” दुख के जगत में, मनुष्य जगत में, (विलुप्त)..., और अस्तित्व के जगत में। “संसार में प्रेम से बच पाने में सक्षम”: “संसार में प्रेम को वह सचेतन रूप से पार कर सकता है, उससे आगे निकल सकता है, पार कर सकता है, पार कर सकता है और उस पर विजय प्राप्त कर सकता है” [नी.1]।

23 · (मेट्टागू:) हे महान ऋषि, मैं उसमें आनंदित होता हूँ! सर्वोच्च धम्म, जिसे जानने वाला कोई भी व्यक्ति सचेतन जीवन जीकर संसार के प्रेम से पार पा सकता है।

“मैं उसमें आनंदित हूँ”: “उसमें,” आपके शब्द, आपकी भाषा, आपकी शिक्षा और आपकी नसीहत। “मैं आनंदित हूँ,” मैं आनंदित हूँ, मैं खुश हूँ, मैं प्रेम करता हूँ, मैं चाहता हूँ, मैं इसका उपयोग कर सकता हूँ, मैं विनती करता हूँ, मैं आशा करता हूँ, मैं प्रार्थना करता हूँ।

“महान ऋषि! सर्वोच्च धम्म”: “महान ऋषि,” धन्य ऋषि महान ऋषि क्यों हैं? “महान उपदेशों के साधक और अनुयायी” ही महान ऋषि हैं। ...महान एकाग्रता के..., ...महान मुक्ति के समूह के..., “ज्ञान और अंतर्दृष्टि की महान मुक्ति के साधक और अनुयायी” ही महान ऋषि हैं; अंधकार द्वारा एकत्रित अंश..., महान उलटफेर का विनाश..., प्यास के बड़े तीर को निकालना..., दृष्टि के संचय का खुलना..., बड़े अहंकार के ध्वज को उठाना..., ...महान कार्य को शांत करना..., बड़ी धारा को शांत करना..., भारी बोझ को उतारना..., महान पुनर्जन्म के चक्र का टूटना..., महान ऊष्मा का गायब होना..., महान ऊष्मा का रुकना..., “अपने हृदय में धम्म का ध्वज उठाने वाला साधक और अनुयायी” ही महान ऋषि हैं; महान बुद्धि..., महान परिश्रम..., महान दिव्य आधार..., महान जड़ें..., शक्ति..., महान ज्ञान की शाखाएँ..., पवित्र मार्ग की आठ बड़ी शाखाएँ..., “महान सर्वोच्च लाभ की अमरता, निर्वाण का साधक, उसका अनुसरण करने वाला” महान ऋषि हैं; “शक्तिशाली प्राणियों द्वारा खोजे, अनुसरण किए और खोजे जाने वाले: बुद्ध कहाँ हैं?

भगवान कहाँ हैं? देवताओं में भगवान कहाँ हैं? मनुष्यों में बैल राजा कहाँ हैं?" ऐसे हैं महान ऋषि। "सर्वोच्च धम्म," सर्वोच्च धम्म को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत, निर्वाण। "सर्वोच्च," प्रथम, सबसे विजयी, सर्वोच्च, शीर्ष, सबसे अधिक, धम्म का शिखर।

"जानने के बाद सचेत होकर चलने वाला कोई भी व्यक्ति": जानने, मापने, परखने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद: "सभी कर्म क्षणभंगुर हैं"... "सचेत" का अर्थ चार तरीकों से सचेत रहना है: ... "जीना", ...

"संसार में प्रेम से पार पाने में सक्षम": "प्रेम" को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है, ... "प्रेम में होना", ... "संसार में" .... "संसार में प्रेम से पार पाने में सक्षम": वह प्रेम के उस संसार में सचेतन रूप से पार पा सकता है, उससे ऊपर उठ सकता है और उस पर विजय प्राप्त कर सकता है।

24 · [भगवान: "मेट्टागू!"] जो कुछ भी तुम सही जानते हो, ऊपर, नीचे और मध्य चारों दिशाओं में, इनमें आनंदित और निवास किए बिना, चेतना अस्तित्व में नहीं रहेगी।

"जो कुछ तुम सही जानते हो": जो तुम जानते हो, जो तुम समझते हो। "मेट्टागू," भगवान ने ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारा। "भगवान"... (छोड़ा गया)।

"ऊपर, नीचे और मध्य चार दिशाओं में": "ऊपर" भविष्य है, "नीचे" भूतकाल है, "मध्य चार" वर्तमान है; "ऊपर" स्वर्ग लोक है, "नीचे" नरक लोक है, "मध्य चार" मनुष्य लोक है। या, "ऊपर" अच्छा धर्म है, "नीचे" बुरा धर्म है, "मध्य चार" अचिह्नित धर्म है; "ऊपर" निराकार लोक है, "नीचे" इच्छा लोक है, और "मध्य चार" भौतिक लोक है; "ऊपर" का अर्थ आनंद है, "नीचे" का अर्थ दुख है, "मध्य चार" का अर्थ न दुख है और न आनंद; "ऊपर" का अर्थ पैर के तलवे के ऊपर है, "नीचे" का अर्थ बालों के नीचे है, और "मध्य चार" का अर्थ मध्य में है।

"इनमें आनंदित और लीन न होने पर चेतना का अस्तित्व नहीं रहेगा": "इनमें," व्याख्या, शिक्षण, सूचना, स्थापना, अनावरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया जा रहा है। सुख को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है... "जीवन," दो प्रकार का जीवन है: प्यास (लालसा) वाला जीवन और दृष्टि (दर्शन) वाला जीवन। ...(अंशित, पिछले भाग देखें)।

"विभाजन के बाद चेतना": वह चेतना जो आशीर्वाद देने और न देने में सक्षम है, और वह चेतना जो गतिहीन है [SN.12.51]। इनमें आनंदित चेतना स्थिर हो जाती है। निष्कासन के बाद, बहिष्कार के बाद, विखंडन के बाद, त्यागने के बाद, परित्याग के बाद, भगाने के बाद, अंत के बाद, और उसे अस्तित्वहीनता में ले जाने के बाद।

"क्या यह अस्तित्व में रहेगा?": "अस्तित्व" दो प्रकार का होता है: कर्म और पुनर्जन्म। कर्म क्या है? पुण्य कर्म, अपुष्ट कर्म और स्थिर कर्म कर्म हैं। पुनर्जन्म क्या है? इस व्यक्ति के रूप, भावनाएँ, विचार, व्यवहार और चेतना का पुनर्जन्म होता है। "अस्तित्व में नहीं रहेगा": पुनर्जन्म के अभ्यास और चक्र में आनंदित और स्थिर रहने वाली चेतना और कर्म टूट जाएँगे, दूर हो जाएँगे, समाप्त हो जाएँगे और अस्तित्वहीनता में चले जाएँगे। यह स्थिर नहीं रहेगा; यह निरंतर अस्तित्व में नहीं रहेगा।

25 · जो इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, सचेत रहते हैं और त्याग नहीं करते, भिक्षु जो सभी चीजों को "मेरा" मानकर त्याग देते हैं; जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और शोक: यहीं पर ज्ञानी दुखों का त्याग कर सकते हैं।

“जो इस प्रकार जीवन जीते हैं, सचेत रहते हैं और विश्राम नहीं करते”: “इस प्रकार जीवन जियो,” चेतना और कर्म एक साथ रहते हैं और सहअस्तित्व में रहते हैं, साथ ही पुनर्जन्म, त्याग, निष्कासन, अंत और अस्तित्वहीनता का चक्र भी। “सचेतता” चार प्रकार से सचेत है: ...(छोड़ा गया)। “जो विश्राम नहीं करते” वे आदरणीय कर्मठ, नियमित, निरंतर, वे हैं जिन्हें अटकने की आदत नहीं है, वे हैं जो अपनी इच्छाओं की उपेक्षा नहीं करते, वे हैं जो जिम्मेदारी की उपेक्षा नहीं करते और वे हैं जो अच्छे धम्म के प्रति लापरवाह नहीं हैं; “मैं अधूरे व्रतों को कैसे पूरा करूँ, या पूर्ण किए गए व्रतों को ज्ञान से सर्वत्र कैसे पोषित करूँ?” जहाँ उनके पास अच्छे धम्म में दृढ़ संकल्प, परिश्रम, साहस, मेहनत, अविचलित रहना, सचेतता, सही ज्ञान, उत्साह, जोश, दृढ़ता, अभ्यास, विश्राम न करना और विश्राम न करना है; “मैं अपूर्ण एकाग्रता को कैसे पूर्ण करूँ... (विलुप्त) सर्वोच्च ज्ञान..., स्वतंत्रता का सार..., अपूर्ण मुक्तिदायक ज्ञान का सार..., पूर्ण मुक्त ज्ञान का सार...?” जहाँ उसकी मंशाएँ हैं, ... “मैं भविष्य को कैसे जानूँ? दुख का ज्ञान, या उस अपवित्रता का ज्ञान जिसे त्यागा नहीं गया है, या उस मार्ग का ज्ञान जिसका अभ्यास नहीं किया गया है, या गवाही का ज्ञान, विनाश का ज्ञान?” जहाँ उसकी मंशाएँ हैं, ...

“भिक्षु जो ‘मेरा’ समझे जाने वाले सभी भावों का त्याग करते हैं”: “भिक्षु,” गुणी भिक्षु, या विद्वान भिक्षु। “भिक्षु,” जब वे चलते हैं, ठहरते हैं, कर्म करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं और जीवन यापन करते हैं। “‘मेरा’ समझे जाने” से दो प्रकार के आत्म-आसक्ति होती है: प्यासी आत्म-आसक्ति और दृष्टिजनित आत्म-आसक्ति... (अंतःखंडित) अंत के बाद, उसे अस्तित्वहीन बना देता है।

“जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और शोक, जहाँ ज्ञानी दुःख का त्याग कर सकते हैं”: “जन्म,” .... “वृद्धावस्था,” .... “दुःख,” .... “शोक,” .... “यहाँ,” .... “ज्ञानी” वे हैं जिन्होंने स्पष्टता प्राप्त कर ली है। “दुःख,” .... “जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और शोक, जहाँ ज्ञानी दुःख का त्याग कर सकते हैं”: “जो यहाँ पहुँच गया है, ज्ञानी, वह जन्म, वृद्धावस्था और दुःख, दुःख का त्याग कर सकता है, उन्हें दूर भगा सकता है, उनका अंत कर सकता है, उन्हें अस्तित्वहीन बना सकता है।”

26 · (मेट्टागू:) मैं महान ऋषि के वचनों से प्रसन्न हूँ; हे गौतम, आपने सही कहा है, आश्रितता रहित अवस्था, हे भगवान! यह सत्य है कि आपने दुख का त्याग कर दिया है, क्योंकि इस प्रकार के धर्म आपको ज्ञात हैं।

“मैं महान ऋषि के वचनों में आनंदित होता हूँ”: ...(हटा दिया गया)। “मैं आनंदित होता हूँ,” .... “महान ऋषि,” ....

“गौतम, आपने सही कहा, आप आश्रितता रहित अवस्था में हैं”: “सही कहा,” अच्छी तरह से बोलना, व्याख्या करना, सिखाना, सूचित करना, स्थापित करना, उजागर करना, विश्लेषण करना, स्पष्ट करना और समझाना। “गौतम एक आश्रित कर्ता हैं,” जिसे प्रदूषण, समुच्चय, सृजन, वियोग, आसक्ति का अंत, निर्जीवता और निर्वाण कहा जाता है।

“हे भगवान! यह सच है कि आपने दुखों का त्याग कर दिया है”: “सच”, यह निर्णायक, निर्विवाद, आत्मविश्वासपूर्ण, निःसंदेह, आदेशात्मक और त्रुटिरहित भाषा है, निश्चितता का शब्द है, जो “सच” है। “हे भगवान”... “आप दुखों का त्याग कर देते हैं”, जीवन के दुख, बुढ़ापे के दुख, बीमारी, मृत्यु, शोक, दुःख, निराशा, कड़वाहट, आप इन सभी का त्याग कर देते हैं, इन्हें छोड़ देते हैं, दूर भगा देते हैं, इनका अंत कर देते हैं और इन्हें विलुप्त कर देते हैं।

“क्योंकि इस प्रकार तुम इन धम्मों के ज्ञाता हो”: क्योंकि इस प्रकार तुम इन धम्मों के ज्ञाता, निर्णायक, स्पष्टकर्ता और बोधकर्ता हो।

27 · निःसंदेह, वे भी दुखों का त्याग कर सकते हैं, जिन्हें आप, मुनि, शिक्षा देना जारी रखते हैं। आपसे मिलने के बाद, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे श्रेष्ठ! शायद भगवान मुझे भी शिक्षा देना जारी रखेंगे।

“वे वास्तव में दुख का त्याग कर सकते हैं”: “वे” क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, स्वर्गवासी और मनुष्य हैं। “दुख का त्याग कर सकते हैं”, जन्म का दुख, वृद्धावस्था का दुख, (कुछ अंश हटा दिए गए)..., वे इन दुखों का त्याग कर सकते हैं, इन्हें हटा सकते हैं, इनका निवारण कर सकते हैं, इनका अंत कर सकते हैं और इन्हें अस्तित्वहीन बना सकते हैं।

“मुनि, जिन्हें आप शिक्षा देते रहेंगे”: “जिन्हें...” वे क्षत्रिय, ब्राह्मण, (अस्पष्ट) हैं...। “आप,” उन्होंने कहा कि भगवान “मुनि,” जो ज्ञान हैं... (अस्पष्ट)। “शिक्षा देते रहेंगे,” व्याख्या करते रहेंगे, गहन शिक्षा देंगे, बार-बार शिक्षा देंगे, निरंतर शिक्षा देते रहेंगे।

“आपसे मिलने के बाद, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे श्रेष्ठ (नाग; जिसका अर्थ हाथी भी होता है)”: “आप,” भगवान। “मैं प्रणाम करता हूँ,” मैं अपने शरीर से प्रणाम करता हूँ, या शब्दों से, या अपने हृदय से, या उचित आचरण से, या धर्म का पालन करते हुए आदर दिखाता हूँ। “मिलने के बाद,” मिलने के बाद, पूर्ण रूप से मिलने के बाद, मैं आपको प्रणाम करूँगा। “हे श्रेष्ठ,” भगवान एक “श्रेष्ठ” होने के नाते अपराध नहीं करते; एक “श्रेष्ठ” होने के नाते जाते नहीं; एक “श्रेष्ठ” होने के नाते आते नहीं। “भगवान अपराध नहीं करते” कहना किस प्रकार श्रेष्ठता है? अपराध को बुराई, अस्वास्थ्यकर धर्म कहा जाता है: अशुद्धता का अनुसरण करना, पुन: जन्म लेना, भय, कड़वाहट, भविष्य का जीवन और मृत्यु।

भगवान मुहम्मद: [सं.3.6, 527] “जो संसार में कोई अपराध नहीं करता, सभी बंधनों और बंधनों को त्यागकर, किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और मुक्त हो जाता है। ऐसे ही लोग वास्तव में श्रेष्ठ कहलाते हैं।”

“भगवान बुद्ध नहीं जा रहे हैं” यह कथन श्रेष्ठ क्यों है? भगवान बुद्ध इसलिए नहीं जा रहे हैं क्योंकि उन्हें कुछ चाहिए; डर के कारण नहीं; लोभ के कारण नहीं; घृणा के कारण नहीं; अज्ञान के कारण नहीं; अहंकार के कारण नहीं; विचारों के कारण नहीं; अविश्वास के कारण नहीं; संदेह के कारण नहीं; संभावित परेशानियों के कारण नहीं; कलह (असामंजस्य) से बहककर नहीं, बल्कि चलते हुए, निर्देशित होकर या ले जाए जाने के कारण।

“भगवान नहीं आ रहे हैं” यह कथन श्रेष्ठ कैसे है? सोतापन्न मार्ग द्वारा जो भी अशुद्धि दूर हो जाती है, वह अशुद्धि अब अनुभव नहीं होती, न लौटती है, न वापस जाती है; सकदागामी मार्ग द्वारा...; अनागामी मार्ग द्वारा...; अरहंत मार्ग द्वारा...

“शायद भगवान मुझे सिखाते रहेंगे”: शायद भगवान मुझे सिखाते रहेंगे, अच्छी तरह से सिखाएंगे, लगातार सिखाते रहेंगे, बार-बार सिखाते रहेंगे, मुझे सिखाएंगे।

28 · (भगवान:) जो ब्राह्मण वेदों का ज्ञाता सिद्ध कर सके, जिसके पास कुछ भी न हो, जो इच्छा और अस्तित्व से आसक्त हो, वही वास्तव में बाढ़ से बचकर दूसरे किनारे पर पहुँच गया है, इच्छाहीन और संशयरहित होकर।

“एक ब्राह्मण वह व्यक्ति होता है जो वेदों का ज्ञाता हो”: “ब्राह्मण,” सात धर्मों का अपवर्जन ही ब्राह्मण है: दृष्टि का अपवर्जन, संदेह का अपवर्जन, संयम का अपवर्जन, लोभ का अपवर्जन, घृणा का अपवर्जन, भ्रम का अपवर्जन, आलस्य का अपवर्जन, वे सभी बुरे और अस्वस्थ तरीके जो दूषित हैं, जो अब अस्तित्व में नहीं हैं, जो भयभीत करने वाले हैं, जिनके परिणाम भुगतने पड़ेंगे, और जो भविष्य में मरेंगे।

भगवान बुद्ध: [सं.3.6, 524] “सभी बुराइयों के नाश होने पर, निष्कलंक, सदाचारी अवस्था में खड़े होकर, पुनर्जन्म से परे जाकर, वे पूर्ण पुरुष बन जाते हैं। जो आश्रित नहीं हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जा सकता है।”

“वेदों का ज्ञान”: वेदों को चारों लोकों का ज्ञान कहा जाता है... (उद्धृत अंश)। वह व्यक्ति जो सभी वेदों को पार करके वेदों को जानता है। “ज्ञान सिद्ध कर सकता है,” गवाही दे सकता है, जानता है, भेद कर सकता है, निश्चित रूप से जानता है, गहराई से समझ सकता है।

“स्वामित्वहीन, इच्छा और अस्तित्व में आसक्ति रहित”: “किसी भी वस्तु का स्वामी न होना,” लोभ एक वस्तु है; घृणा एक वस्तु है; अज्ञान एक वस्तु है; अहंकार एक वस्तु है; दृष्टि (विचार) एक वस्तु है; अपवित्रता एक वस्तु है; बुरे कर्म एक वस्तु हैं। जिसके लिए इनमें से कोई भी वस्तु समाप्त हो गई हो, शांत हो गई हो, रुक गई हो, उत्पन्न न हो पा रही हो और ज्ञान की अग्नि से जल गई हो, उसे स्वामित्वहीन कहा जाता है। “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ हैं: वस्तुओं की इच्छा और अपवित्रता की इच्छा... (उद्धृत)। “अस्तित्व,” दो प्रकार के हैं: कर्म और पुनर्जन्म... (उद्धृत)। “स्वामित्वहीन, इच्छा (या अस्तित्व) में आसक्ति रहित”: जो व्यक्ति इच्छा में किसी भी वस्तु का स्वामी नहीं है और अनासक्त, निर्बाध, मुक्त, त्यागा हुआ, मुक्त, बंधन से अलग हो चुका है, वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

“यह सच है कि वह बाढ़ से बच गया है”: “यह सच है,” यही निर्णायक शब्द है... (उद्धृत)। “उछाल,” इच्छा का उफान, पुनर्जन्म का उफान, दृष्टि का उफान, अज्ञान का उफान। “पार कर गया,” उसने पार किया, खाई से गुजरा, आगे निकल गया।

“और जो दूसरे किनारे को पार कर चुके हैं, वे वे हैं जो त्यागे नहीं गए हैं, और जो संदेह नहीं करते हैं”: “पार कर चुके हैं,” सांसारिक इच्छाओं की उग्र धाराओं को पार कर लिया गया है; अस्तित्व की धाराओं को पार कर लिया गया है; दृष्टि (दृष्टिकोण) की धाराओं को पार कर लिया गया है; अज्ञान की उग्र धाराओं को पार कर लिया गया है; सभी चक्रों को पार कर लिया गया है, बाहर आ गए हैं, पार कर लिए गए हैं, विजय प्राप्त कर ली गई है; वह अवतरित हुआ है, अभ्यास करने वाला है, यात्रा पूरी करने वाला है, दिशा तक पहुँच गया है, अंत तक पहुँच गया है, ब्रह्म की रक्षा करने वाला है, सर्वोच्च दृष्टि तक पहुँच गया है, मार्ग का अभ्यास करने वाला है, अशुद्धता को दूर करने वाला है, अविचल है, विनाश की गवाही देने वाला है; उनके लिए, पीड़ा का अनुभव हो चुका है, संगति का त्याग हो चुका है, मार्ग का अभ्यास हो चुका है, अंत का प्रमाण मिल चुका है, जो सिद्ध हो चुका है वह ज्ञात है, जो जाना जा सकता है उसे जानना, जिन्होंने त्याग का अर्थ त्याग दिया है, जिन्होंने अभ्यास का अर्थ त्याग दिया है, और जिन्होंने प्रमाण दिया है कि प्रमाण क्या होना चाहिए।

वह है जिसकी बाधा दूर हो गई है, जिसकी खाई भर गई है, जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया है, जिसका कोई बंधन नहीं है, जिसका पवित्र ध्वज गिर गया है, जिसका बोझ हटा दिया गया है, जो अलग हो गया है, जिसकी पाँच शाखाएँ काट दी गई हैं, और जिसकी छह शाखाएँ हैं। जिनके एक संरक्षक और चार सहारे हैं, वे वे हैं जिनके सत्य दूर हो गए हैं, जो त्याग और पूर्ण क्षय की तलाश में हैं, जिनके कोई अशुद्ध इरादे नहीं हैं, जिन्होंने अपने जीवन को शांत कर लिया है, जो दयालु और मुक्त हैं, जो ज्ञान से मुक्त हैं; सर्वोच्च पुरुष, सर्वोच्च पुरुष, जिसने सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर ली है, न तो रचना करता है और न ही विघटन करता है, न ही संचय करके खड़ा होता है; न तो त्यागता है और न ही आसक्ति रखता है, बल्कि त्यागने के बाद खड़ा रहता है; न तो निथारता है और न ही संचय करता है, निथारने के बाद खड़ा रहता है; न बुझाने वाला, न जलने वाला, बुझने के बाद स्थिर रहने वाला [SN.22.79], वह व्यक्ति जो उपदेशों को सीखने की अवस्था में नहीं है, और जो ज्ञानहीन निवास में है, वह निवासी जो बिना ज्ञान के ज्ञान की अवस्था में है, वह निवासी जो ज्ञान की प्रचुरता के बावजूद अज्ञान की अवस्था में है, वह निवासी जो बिना ज्ञान के मुक्ति की अवस्था में है, ज्ञान की अवस्था में है, और सत्य की पूर्णता और प्रवेश के बाद स्थिर रहने वाला है, वे जो विक्षोभ (लालसा) से मुक्त हो चुके हैं, वे जो अशुद्धता की आग बुझने के बाद स्थिर रहते हैं, वे जो अब बिल्कुल नहीं आते, वे जिन्होंने (विजय) प्राप्त कर ली है, वे जिन्होंने अभ्यास से शुद्धि प्राप्त कर ली है, करुणा का शुद्ध निवासी, दया का शुद्ध निवासी, आनंद का शुद्ध निवासी, शांति का शुद्ध निवासी, परम पवित्रता की अवस्था में, समता की अवस्था में, सर्वव्यापी रूप से शुद्ध निवासी, वे जो मुक्त हो चुके हैं, वे जो परिपूर्ण हो चुके हैं, वे जो परम (सीमा) में हैं, वे जो संसार में हैं, और वे जो परम में निवासी हैं, परम में निवासी रुचि का स्थान, अंतिम पुनर्जन्म में रहने वाला, जीवन के अंतिम छोर पर रहने वाला (अस्तित्व के अंत में रहने वाला,

पुनर्जन्म के अंत में रहने वाला, अंतिम शरीर में रहने वाला, अंतिम चक्र में रहने वाला, अंतिम चाल में रहने वाला, अंत में सर्वोच्च में रहने वाला), अंतिम सभा (शरीर) में रहने वाला, अंतिम शरीर धारण करने वाला अरहंत।

"यह उनका अंतिम है, यह अंतिम मिलन (शरीर) है, जीवन और मृत्यु का चक्र, उनके पुनर्जन्म के बिना।"

"पहले ही दूसरे तट को पार कर चुके हैं": दूसरे तट को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का नाश, विनाश और निर्वाण। वह है जो दूसरे तट पर पहुँच चुका है; वह है जो दूसरी ओर पहुँच चुका है, (उद्धृत)..., अंतिम लक्ष्य, अंत, सीमा, परम। जो अंत तक, आश्रय तक पहुँच चुके हैं, वे शरण तक पहुँच चुके हैं; जो शरण तक पहुँच चुके हैं, वे भयमुक्त हो चुके हैं; भयमुक्त, ...मृत्युमुक्त; मृत्युमुक्त, अमर; अमर, निर्वाण; निर्वाण..., वह व्यक्ति है जो अवतरित होकर अभ्यास कर चुका है... (उद्धृत); जन्म-मृत्यु के चक्र का, बिना पुनर्जन्म के।

"निराश": लोभ की उदासी, क्रोध की उदासी, अज्ञान की उदासी, आक्रोश की उदासी... (छोड़ा गया) सभी अस्वास्थ्यकर कर्मों की उदासी; उसके लिए ये उदासी दूर हो गई हैं, शांत हो गई हैं, रुक गई हैं, फिर कभी उत्पन्न नहीं हो सकतीं, और ज्ञान की अग्नि से जल गई हैं; उसे निर्धन कहा जाता है। "निसंदेहित": दुख का संदेह, दुखों के संचय का संदेह, ...दुखों का निवारण, ...दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग, आगे, पीछे, ...संदर्भ के संदर्भ में, विशिष्ट परिस्थितियों का संदेह, ऐसे संदेह, संशयपूर्ण अवस्थाएँ, भ्रम, झिझक, चौराहे, असंगत पकड़, झिझक, अनसुलझी, कठोर अवस्था, मन का भ्रम; उसके लिए ये संदेह दूर हो गए हैं, शांत हो गए हैं, रुक गए हैं, फिर कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं; उसे संशयहीन कहा जाता है।

29 · यहाँ सभी ज्ञानी और वेदों के ज्ञाता कहते हैं, जब सभी प्रकार के अस्तित्व से बंधन समाप्त हो जाते हैं, तो वह ऐसा व्यक्ति होता है जिसे प्यास नहीं होती, चिंता नहीं होती और इच्छाएँ नहीं होतीं; मैं कहता हूँ कि उसने जन्म और वृद्धावस्था को पार कर लिया है।

"यहाँ, सभी बुद्धिमान और वे जो वेदों को जानते हैं": "बुद्धिमान व्यक्ति" वह है जो बुद्धिमान है, ... "यहाँ," किस प्रकार के लोग। "वेदों को जानते हैं," ....

"लोग" से तात्पर्य सभी प्राणियों से है, मनुष्य, विद्यार्थी ब्राह्मण, लोग, व्यक्ति, जीव, जन्म लेने वाले, चेतन प्राणी, भारत में जन्म लेने वाले और मनु। "यहाँ,"...

"सभी प्रकार के अस्तित्वों से बंधन समाप्त होने के बाद": "सभी प्रकार के अस्तित्व में," कर्म के सभी प्रकारों में, इच्छाओं के अस्तित्व में; इच्छाओं के अस्तित्व में, भौतिकता के अस्तित्व में; भौतिक अस्तित्व के कर्म में, निराकार अस्तित्व के अस्तित्व में; निराकार अस्तित्व के कर्म में, बार-बार होने वाले अस्तित्व में; बार-बार होने वाले व्यथ में, पुनर्जन्म में; पुनर्जन्म में, व्यक्तियों के जन्म में। "बंधन," सात प्रकार के बंधन हैं: लोभ के बंधन, घृणा के बंधन, अज्ञान के बंधन, अहंकार के बंधन, दृष्टिकोण के बंधन, दूषित बंधन, बुरे बंधन। "त्याग करने के बाद," बंधनों का त्याग करने के बाद, यह बंधनों से, बंधन से, बंधन से, बढ़ते बंधन से, उलझे हुए से, आसक्त से, स्थिर रहने से, बाधा से, बंधन को तोड़ने के बाद, छोड़ने के बाद, जैसे रथ यात्रा, पालकी, गाड़ी या रथ परिवहन। मुक्ति (वियोग) के बाद, उन्हें रखा जाता है और नष्ट कर दिया जाता है। इसी प्रकार, बंधनों को त्यागने के बाद, ...(छोड़ा गया) बंधन से मुक्त होने के बाद।

"वह प्रेम से मुक्त है, उसे कोई कष्ट नहीं है, और कोई इच्छा नहीं है। मैं कहता हूँ कि वह जन्म और वृद्धावस्था से गुजर चुका है।" "प्रेम की लालसा" रूप की लालसा है..., धम्म की लालसा है। जिसके लिए प्रेम की प्यास कट गई है, विच्छेदित हो गई है, शांत हो गई है, रुक गई है, उत्पन्न होने में असमर्थ है, और ज्ञान की अग्नि से झुलस गई है, उसे प्यास से विमुख कहा जाता है, वह

प्यास से विमुख हो गया है, वह प्यास का त्याग करता है, प्रेम की प्यास को समाप्त करता है, प्रेम की प्यास से मुक्ति दिलाता है, प्रेम की प्यास छोड़ देता है, लोभ का त्याग करता है, लोभ को समाप्त करता है, लोभ से मुक्त है; वह भूखा-प्यासा नहीं है, वह शीतल हो गया है, वह सुख का अनुभव करता है, और वह ब्राह्मण के रूप में जीवन व्यतीत करता है, वह प्यास से मुक्त है। "कोई कष्ट नहीं," लोभ कष्ट है..., (छोड़ा गया)..., सभी बुरे कर्म कष्ट हैं। उसके लिए, ये कष्ट कट गए हैं, ...।" "इच्छा का अभाव," इच्छा को लालसा कहते हैं, जो लोभ है... जिसके लिए यह इच्छा समाप्त हो गई है,... "जन्म,"... "वृषण,"... "वही है जिसे प्यास नहीं लगती, जिसे कोई कष्ट नहीं होता, और जिसे कोई इच्छा नहीं होती। मैं कहता हूँ कि वह 'जन्म और वृद्धावस्था' से गुज़र चुका है: वही है जो प्यास से मुक्त है, जिसे कोई कष्ट नहीं है, और जिसे कोई इच्छा नहीं है," जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, वह इन सब से गुज़रता है, पार करता है, ऊपर उठता है, पार करता है और विजय प्राप्त करता है।" मैंने कहा, मैंने समझाया...

इन छंदों के अंत में... "परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.5

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

5. धोतका

30 · [आदरणीय धोतका ने इस प्रकार कहा:] हे भगवान, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे यह बताइए, महान ऋषि! मैं आपके वचनों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, आपके कहे हुए को सुनकर, व्यक्ति को अपने निर्वाण के लिए सीखना चाहिए।

"हे गुरु, मुझे आपसे यह पूछने दीजिए, कृपया मुझे यह बताइए": "मैं पूछता हूँ," ... (विलंबित भाग देखें)। "हे प्रभु" ... (विलंबित भाग देखें)।

"[आदरणीय धोतका इस प्रकार]": "इस प्रकार," ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। "धोतका," ब्राह्मण का नाम ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"हे महान ऋषि! मैं आपके वचनों की प्रतीक्षा करता हूँ": आपके वचन, आपके बोलने का तरीका, आपके उपदेश, आपकी नसीहत, आपकी आशा, आपकी प्रार्थना। "हे महान ऋषि," ...(अंशित, पिछले भाग देखें)।

"आपके वचन सुनने के बाद": आपका भाषण, आपकी भाषा, आपकी शिक्षाएँ, आपके उपदेश; सुनने के बाद, समझने के बाद, आपका बोध करने के बाद।

"आपको अपने निर्वाण के लिए सीखना चाहिए": सीखने के तीन प्रकार हैं: ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)। "अपने निर्वाण के लिए," अपने लोभ, ...क्रोध, ..अज्ञान, ...(विलुप्त) को बुझाने के लिए; सभी अस्वास्थ्यकर प्रथाओं को शांत करने, मौन करने, बुझाने, काटने और समाप्त करने के लिए, आपको उपदेशों को बढ़ाना सीखना चाहिए, आपको मन को बढ़ाना सीखना चाहिए, और आपको ज्ञान को बढ़ाना सीखना चाहिए। इन तीनों शिक्षाओं का अध्ययन (ध्यान देने) की दिशा में निर्देशित होकर करना चाहिए; जब वे ज्ञात हों तब उन्हें सीखना चाहिए; जब उन्हें देखा जाए... (विलुप्त); जब आत्मनिरीक्षण किया जाए...; और (निर्णय) स्थापित करने में सावधानी बरतते हुए, आपको सीखना चाहिए; आपको विश्वास से जीत हासिल करने पर सीखना चाहिए; आपको ऊर्जावान प्रयास करने पर सीखना चाहिए; आपको जागरूकता उत्पन्न होने पर सीखना चाहिए; आपको जागरूकता के साथ सीखना चाहिए; आपको ज्ञान से जानने पर सीखना चाहिए; हमें तब सीखना चाहिए जब हम गवाही दे सकें; हमें तब सीखना चाहिए जब हम जान सकें; हमें तब सीखना चाहिए जब हमें त्याग करना चाहिए; हमें तब सीखना चाहिए जब हमें गवाही के रूप में अभ्यास करना चाहिए; [भजन संहिता 1,41] सीखना अभ्यास में लाया जाना चाहिए, अच्छी तरह से किया जाना चाहिए, स्वीकार करने के बाद आगे बढ़ते रहना चाहिए।

31 · [भगवान: "धोताका!"] यदि ऐसा है, तो कृपया उत्साहपूर्वक, और बुद्धिमान और सचेत होकर, इन शब्दों को सुनकर, अपने स्वयं के निर्वाण के लिए सीखें।

"यदि ऐसा है, तो कृपया उत्साहवान बनें": कृपया उत्साहवान बनें, कृपया साहसी बनें, कृपया जोशीले बनें, कृपया धैर्यवान बनें, कृपया दृढ़ रहें, कृपया ऊर्जावान बनें; और आप इसे साकार करें, इसे उत्पन्न करें, इसे पूर्ण रूप से निर्मित करें, इसे प्रकट करें, इसे जीवंत बनाएं।

"धोताका," .... "भगवान," ....

"यहाँ बुद्धिमान और सचेत": "यहाँ," इस दृष्टिकोण से, इस पसंद से, इस झुकाव से, इस आसक्ति से, इस धम्म से; इस शिक्षा से; इस ब्रह्म से, इस गुरु की शिक्षाओं से, इस व्यक्ति से, इस मानव जगत से संबंधित। "बुद्धिमान," सचेत, प्रबुद्ध, विवेकशील, बुद्धिमान। "सचेत," चार प्रकार से सचेत: ...(विलुप्त, पिछले अनुभाग देखें)।

"ये शब्द सुनने के बाद":...

"तुम्हें अपने निर्वाण के लिए सीखना चाहिए":...

32 · (धोतका:) मैं एक ब्राह्मण को देखता हूँ जिसके पास स्वर्ग और मनुष्य जगत में कुछ भी नहीं है, हे सर्वदर्शी, शाक्यमुनि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ! कृपया मुझे संदेहों से मुक्त करें।

"स्वर्ग और मनुष्य जगत में मैं देखता हूँ": "स्वर्ग" तीन प्रकार के स्वर्ग हैं: सामान्य (सांसारिक, सांसारिक) स्वर्ग, पुनर्जन्म स्वर्ग और शुद्ध स्वर्ग। सांसारिक स्वर्ग क्या है? राजाओं, राजकुमारों और रानियों को सांसारिक स्वर्ग कहा जाता है। पुनर्जन्म स्वर्ग क्या है? चार महान देवराज, तैंतीस देवताओं का लोक, तुषिता स्वर्ग, सृष्टि स्वर्ग, सभी ब्रह्म स्वर्ग और इनसे ऊपर के सभी स्वर्ग पुनर्जन्म स्वर्ग कहलाते हैं। शुद्ध स्वर्ग क्या है? तथागत, अरहंतों और पच्चेकबुद्धों के शिष्यों के कष्ट समाप्त हो चुके हैं, इसे शुद्ध स्वर्ग कहा जाता है। भगवान सामान्य स्वर्ग, पुनर्जन्म स्वर्ग, शुद्ध स्वर्ग और विजयी स्वर्ग के हैं; स्वर्गों में स्वर्ग, सिंहों में सिंह, अजगरों में अजगर, देवताओं में भगवान, मुनियों में मुनि, राजाओं में राजा। "मैं स्वर्ग में और मनुष्य के संसार में देखता हूँ": मनुष्य के संसार में और स्वर्ग में, मैं देखता हूँ, मैं श्रेष्ठ स्वर्ग देखता हूँ, मैं स्वर्ग में स्वर्ग देखता हूँ; मैं देखता हूँ, मैं निहारता हूँ, मैं चिंतन करता हूँ, मैं अवलोकन करता हूँ।

"ब्राह्मण, जो किसी भी संपत्ति से रहित हैं": "नहीं," न लोभ, न घृणा, न अज्ञान, न आलस्य, न दृष्टि, न अपराध, न बुरे कर्म; इनमें से कोई भी, भगवान बुद्ध के लिए, काट दिया गया है, और उनकी जड़ें काट दी गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है। इसलिए, बुद्ध को अनासक्त कहा जाता है। "ब्राह्मण," भगवान बुद्ध सात धर्मों को त्यागने की अवस्था में हैं: दृष्टि त्याग दी गई है, संदेह त्याग दिया गया है, संयम त्याग दिया गया है, लोभ त्याग दिया गया है, घृणा त्याग दी गई है, अज्ञान, आलस्य, और वे सभी बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्म त्याग दिए गए हैं: वे धर्म जो दूषित हैं, वे फिर से मौजूद हैं। वे लोग जो भयभीत हैं, जो परिणाम भुगतते हैं, और भविष्य में मर जाएंगे।

भगवान बुद्ध: [सं.3.6, 524] "सभी बुराइयों के नाश होने पर, निष्कलंक, सदाचारी अवस्था में खड़े होकर, पुनर्जन्म से परे जाकर, वे पूर्ण पुरुष बन जाते हैं। जो आश्रित नहीं हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जा सकता है।"

"अभिनेता," पैदल चलने वाला, काम करने वाला, रहने वाला, निरंतर चलने वाला, संरक्षक और उत्तरजीवी।

"मैं आपको प्रणाम करता हूँ, सर्वदर्शी": "आप," उन्होंने भगवान बुद्ध को संबोधित किया। "मैं प्रणाम करता हूँ," मैं अपने शरीर से, अपने शब्दों से, अपने हृदय से, अपने इरादे से, या धर्म का पालन करते हुए सम्मान प्रकट करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। "सर्वदर्शी," सर्वदृष्टि, सर्वज्ञानी ज्ञान की अवस्था को दर्शाता है। भगवान बुद्ध बुद्धि की अवस्था में हैं, पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण, सर्वव्यापी, पर्याप्त ज्ञान से परिपूर्ण, सर्वज्ञानी।

"उनके लिए इस संसार में कुछ भी अदृश्य नहीं है, ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जिसे जाना न जा सके। वे सिद्ध करते हैं कि अस्तित्व में मौजूद हर चीज का मार्गदर्शन अनुमान के आधार पर ही होना चाहिए, क्योंकि तथागत तो मानो सर्वदृष्टि वाले हैं।" [भजन संहिता 1]

"शाक्यमुनि! कृपया मुझे संदेहों से मुक्त करें": "शाक्यमुनि," शाक्यमुनि शाक्यवंश के भिक्षु हैं। ये शाक्यमुनि हैं। या, "धनी, धनवान," ये भी शाक्यमुनि हैं। उनके लिए ये धन हैं, अर्थात्: विश्वास का धन, धन से परहेज, धन से लज्जित, धन के बारे में सुनना, धन देना, ज्ञान का धन, धन के प्रति सजगता, धार्मिक धन, दिव्य धन, मूल धन, शक्ति का धन, ज्ञान का धन, मार्ग का धन, फल का धन, निर्वाण का धन, और इन विभिन्न खजानों का उपयोग धनी, धनवानों के समान करना। या, वे जो संभव हैं, वे जो समर्थ हैं, वे जो सभी प्रकार की चीजों को प्रवाहित करते हैं, वे जो पर्याप्त हैं, वे जो वीर हैं, वे जो साहसी हैं, वे जो वीर हैं, वे जो निर्भीक हैं, वे जो भयभीत नहीं होते, वे जो भागते नहीं हैं, वे जिन्होंने भय का त्याग कर दिया है, वे जिन्होंने आतंक और भय का त्याग कर दिया है। संदेह को संदेह ही कहते हैं: दुख का संदेह, दुख की ओर ले जाने वाले मार्ग का संदेह, भविष्य का संदेह, अतीत का संदेह, भविष्य और अतीत दोनों का संदेह, कारण-कार्य संबंधों का संदेह, ऐसे संदेह, शंकाएं, संशयपूर्ण अवस्थाएं, भ्रम, झिझक, दुविधा, असंगत समझ, अधूरी समझ, कठोर अवस्था, मन का भ्रम। "शाक्यमुनि! कृपया मुझे संदेह से मुक्त करें": कृपया मुझे मुक्त करें, कृपया मुझे आज़ाद करें, मुझे बाहर निकालें, कृपया मुझे पूरी तरह से बाहर निकालें, मुझे संदेह से बाहर ले आएं।

33 · (भगवान:) मैं धोताका को, संसार में संदेह करने वाले किसी को भी मुक्त नहीं कर पाऊंगा। जब तुम सर्वश्रेष्ठ धम्म को जानोगे, तब तुम इस बाढ़ को पार कर पाओगे।

"मैं मुक्ति नहीं दे पाऊंगा": मैं संदेह के तीर से घायल प्राणी को मुक्त नहीं कर पाऊंगा, उसे आज़ाद नहीं कर पाऊंगा, उसे पूरी तरह से मुक्त नहीं कर पाऊंगा, उसे ऊपर नहीं उठा पाऊंगा, उसे पूर्णतः ऊपर नहीं उठा पाऊंगा। या, मैं अविश्वासियों, अनिच्छुक लोगों, सुस्त लोगों, कमज़ोर जीवन शक्ति वाले लोगों, निष्क्रिय लोगों पर मेहनत नहीं करता; मैं अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास नहीं करता, मैं प्रयास नहीं करता, मैं वीरता से काम नहीं करता, मैं उत्साह से काम नहीं करता, मैं धैर्य नहीं पैदा करता, मैं दृढ़ संकल्प नहीं पैदा करता, मैं जीवन शक्ति पैदा नहीं करता, मैं उसे उत्पन्न नहीं करता, मैं उसे प्रकट नहीं करता, मैं उसे पूर्णतः उत्पन्न नहीं करता, मैं उसे उत्पन्न नहीं करता, मैं उसे धम्म की शिक्षाओं को जन्म नहीं देता। या, आपके पास कोई अन्य मुक्तिदाता नहीं हैं। जो लोग मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, वे अपने स्वयं के धैर्य, अपनी स्वयं की ऊर्जा, अपने स्वयं के प्रयास, अपने स्वयं के सामर्थ्य, अपनी स्वयं की मानवीय शक्ति, अपनी स्वयं की मानवीय जीवंतता, अपने स्वयं के कार्य, अपने स्वयं के सही आचरण, मार्ग का अनुसरण करने, विपरीत मार्ग पर न जाने, धम्म का अनुसरण करने और धम्म का पालन करने के मार्ग का अनुसरण करने से मुक्त हो सकते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा: "चुंड! 'मैं ही दलदल में गिरा हूँ और मैं ही दलदल में गिरे हुए अन्य लोगों को बाहर निकालूँगा।' यह असंभव है। चुंड! 'मैं अनियंत्रित, अप्रशिक्षित और निर्वाणहीन हूँ। मैं दूसरों को अनुशासित, प्रशिक्षित और निर्वाण प्राप्त कराऊँगा।' यह असंभव है।" [एमएन.8]

यह धन्य व्यक्ति द्वारा कहा गया है: [दफ़ी.12,165] "उसने बुराई की है, वह अपवित्र है, जो बुराई नहीं करता, वह शुद्ध होकर आता है, शुद्धता और अशुद्धता अलग-अलग हैं, एक दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।"

भगवान बुद्ध ने यह भी कहा: "इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, निर्वाण स्थिर रहता है, निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग स्थिर रहता है, और मेरा उपदेश (शिक्षा) भी स्थिर रहता है। परन्तु जब मेरे शिष्यों को इस प्रकार उपदेश और मार्गदर्शन दिया जाता है, तो उनमें से कुछ निर्वाण की अंतिम अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, और कुछ नहीं। हे ब्राह्मण, मैं यहाँ क्या करूँ? हे ब्राह्मण, तथागत ही मार्गदर्शक हैं। [एमएन.107] बुद्ध ने केवल मार्ग बताया (निर्देशित किया), और जब वे स्वयं उसका अभ्यास करते हैं, तो वे मुक्त हो सकते हैं।"

"संसार में कोई भी संशयी": संशयी, वह व्यक्ति जिसके मन में संदेह, भ्रम और संकोच हो। "कोई भी (व्यक्ति)", कोई भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, साधु या कोई भी व्यक्ति। "संसार में", दुखमय संसार में... (विलुप्त)।

“सर्वोच्च विजय प्राप्त धम्म को जानने पर”: सर्वोच्च धम्म को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, जो सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत और निर्वाण है। सर्वोच्च, प्रथम, सबसे विजयी, असाधारण, सर्वोच्च, सबसे उन्नत धम्म; जब इसे जानते, भेदते और समझते हैं।

“इस तरह तुम इस तूफान को पार कर लोगे”: इच्छा के ऐसे तूफान को, दृष्टि के ऐसे तूफान को, अज्ञान के ऐसे तूफान को, तुम पार कर सकते हो, तुम इस तूफान पर विजय प्राप्त कर सकते हो।

34 · (धोतक:) ब्राह्मण! मैं करुणावश आपसे विनती करता हूँ, मुझे एकांतवास का धर्म सिखाएँ, (ताकि) जैसे शून्य बंधा हुआ नहीं है, वैसे ही मैं यहाँ मौन और निर्बंधित होकर चल सकूँ।

“ब्राह्मण! कृपया करुणावश आज्ञा का उपदेश दें”: ब्राह्मण, कृपया आज्ञा का उपदेश दें; ब्राह्मण, कृपया सहायता करें; ब्राह्मण, कृपया दया करें। “दयालु व्यक्ति,” दयालु, सहानुभूति रखने वाला, रक्षक, दानदाता, दयालु।

“एकांत का धम्म, जिसे मैं जान सकता हूँ”: एकांत धम्म को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत, और निर्वाण। “मैं जान सकता हूँ,” मैं जान सकता हूँ, परख सकता हूँ, निश्चित रूप से जान सकता हूँ, समझ सकता हूँ, सिद्ध कर सकता हूँ, पहुँच सकता हूँ और गवाही दे सकता हूँ।

“जैसे शून्य (अंतरिक्ष) बंधा हुआ नहीं है”: जैसे शून्य न तो फंसा हुआ है, न कैद है, न बंधा हुआ है, न संसार से जुड़ा हुआ है, वैसे ही वह है जो न फंसा हुआ है, न कैद है, न बंधा हुआ है, जो सर्व-बंधा हुआ नहीं है। (या,) जैसे शून्य लाल रंग से रंगा हुआ नहीं है, न ही गहरा लाल, न ही नीला, न ही गहरा लाल, वैसे ही वह है जो रंगा हुआ नहीं है, न ही क्रोधित है, न ही मूर्खतापूर्ण ढंग से बदलता है, और न ही दूषित करता है। जैसे शून्य क्रोधित नहीं होता, न ही गाली देता है, न ही विरोध करता है, और न ही उस पर हमला होता है, वैसे ही वह है जो क्रोधित नहीं है, न ही गाली देता है, न ही विरोध करता है, न ही उस पर हमला होता है, और न ही वह पलटवार करता है।

“यहाँ मैं चुपचाप और निर्बल होकर चल सकता हूँ”: “यहाँ, चुपचाप,” जब आप यहाँ हैं; जब आप यहाँ बैठे हैं; जब आप इस आसन पर बैठे हैं; जब आप भीड़ के बीच बैठे हैं। या, बस यहीं शांति, स्थिरता, शीतलता और ठहराव है। दो प्रकार की निर्भरता होती है: तृष्णा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता... (उद्धृत)। प्रेम की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता के कट जाने के बाद, व्यक्ति आँखों, ...कान..., नाक, जीभ, शरीर, मन, रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शों, धर्मों, परिवार, समूह, निवास, लाभ, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, वस्त्र, भोजन, आवास, (रोगी की आवश्यकताएँ और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ), इच्छा जगत, सजीव जगत, निराकार जगत, होने की इच्छा, निराकार की इच्छा, पाने की इच्छा, अस्तित्व की इच्छा, एक समूह, चार समूह, पाँच समूह, भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल, जो कुछ आप देखते हैं, सुनते हैं, महसूस करते हैं और अनुभव कर सकते हैं, उन सभी पर निर्भर नहीं रहता। जो लोग बंधनों में नहीं फंसते, जो लोग उनके जाल में नहीं उलझते, जो लोग उनका अनुसरण नहीं करते, जिन्होंने त्याग दिया है, जो मुक्त हो गए हैं, जो बंधनों से अलग हो गए हैं, वे निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करते हैं। वे "कर सकते हैं", वे जी सकते हैं, कार्य कर सकते हैं, आगे बढ़ सकते हैं, रक्षा कर सकते हैं, जीवित रह सकते हैं।

35 · [भगवान: “धोताका!”] मैं तुम्हें उस शांति के बारे में बताऊंगा, जो अफवाहों के बजाय वास्तविक जीवन में जानी जाती है, जो कोई भी इसे जानता है, सचेत रूप से जीवन जीते हुए, संसार में प्रेम (इच्छा) को पार कर सकता है।

“मैं तुम्हें शांति के बारे में बताऊंगा”: लोभ की शांति, घृणा की शांति, ...(अस्पष्ट), सभी अस्वस्थ रचनाओं की शांति; मौन, समाप्ति; मैं बताऊंगा, घोषणा करूंगा, कहूंगा, समझाऊंगा, सिखाऊंगा, व्याख्या करूंगा, निर्माण करूंगा, उजागर करूंगा, विश्लेषण करूंगा, स्पष्ट करूंगा।

“[भगवान: 'धोताका']”: “धोताका,” विश्व पूज्य ब्राह्मण को उनके नाम से पुकारते हैं। “भगवान,” ...(छोड़ा गया)।

“वर्तमान जीवन में, न कि सुनी-सुनाई बातों से”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जो कोई भी जानने के बाद सचेत रूप से जीवन जीता है”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“दुनिया में प्रेम के माध्यम से जीने में सक्षम”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

36 · (धोतका:) हे महान ऋषि, मैं इस बात से प्रसन्न हूँ! सर्वोच्च मौन, जिसे जानने वाला कोई भी व्यक्ति, सचेतन जीवन जीते हुए, संसार में प्रेम के माध्यम से पार कर सकता है।

“मैं इस बात से प्रसन्न हूँ”: “यह,” आपके शब्द, आपकी भाषा, आपका उपदेश, आपकी नसीहत। “मैं प्रसन्न हूँ,” मैं खुश हूँ, मेरी कामना है, मेरी आशा है, मैं प्रार्थना करता हूँ।

“महान ऋषि! परम मौन”: “महान ऋषि” ...(उद्धृत)। “परम मौन,” मौन को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, ...(उद्धृत)।

“जो कोई भी जानने के बाद के विचार को जानता है”: जानने के बाद... (छोड़ा गया)।

“दुनिया में प्रेम के माध्यम से जीने में सक्षम”: “प्रेम” को लालसा कहा जाता है... (हटा दिया गया)।

37 · [भगवान: “धोताका!”] तुम ऊपर, नीचे और मध्य चारों दिशाओं में जो कुछ भी सही जानते हो, यह जानकर कि यही संसार में “बंधन” है, तुम्हें सभी प्रकार के अस्तित्व के लिए प्यास नहीं रखनी चाहिए।

“जो कुछ भी आप सही जानते हैं”: जो कुछ भी आप सही जानते हैं, जो आप समझते हैं, जो आप जानते हैं, जो आप निश्चित रूप से जानते हैं। “धोताका,” .... “हे भगवान,” ....

“ऊपरी, निचली और मध्य चार दिशाओं में”: ...(हटा दिया गया)।

“यह जानने के बाद कि यही संसार का ‘बंधन’ है”: यही बंधन है, यही जुड़ाव है, यही बंधन है, यही एक बाधा है। जानने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, परखने के बाद, अलग करने के बाद।

“सभी प्रकार के अस्तित्व में प्यास मत रखो”: “प्रेम की प्यास,” रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास... (निरस्त), धम्म की प्यास। “सभी प्रकार के अस्तित्व में,” कर्म में सभी प्रकार के अस्तित्व, मध्य में, फिर से अस्तित्व में आने की इच्छा में; पाने की इच्छा में, भौतिक अस्तित्व; भौतिक अस्तित्व में, निराकार अस्तित्व; निराकार अस्तित्व में, बार-बार अस्तित्व; बार-बार आने में, पुनर्जन्म; पुनर्जन्म में, व्यक्तिगत जन्म। प्यास मत रखो, लालसा मत जगाओ, इच्छा उत्पन्न मत करो, प्यास मत चाहो, प्यास को जन्म मत दो, त्याग दो, भगा दो, इसे समाप्त कर दो, इसे अस्तित्वहीन बना दो।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.6

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

6. उपासिव

38 · [आदरणीय उपासिव ने इस प्रकार कहा:] शाक्यमुनि! मैं अकेला, तन्हा, बिना सहारे के इस उफान को पार नहीं कर सकता, हे सर्वदर्शी, कृपया मुझे किसी ऐसी वस्तु के बारे में बताइए, जिस पर निर्भर रहने वाले लोग उफान से बच सकें।

"शाक्यमुनि! अकेले..., जलप्रपात": "अकेले," बिना किसी व्यक्तिगत साथी के, या बिना अपने धम्म साथी के: जो कोई भी धम्म पर निर्भर है, वह जीवित रह सकता है, पार कर सकता है, पार पा सकता है, और महान इच्छाओं के जलप्रपात, दृष्टि के जलप्रपात, अज्ञान के जलप्रपात पर विजय प्राप्त कर सकता है। "शाक्यमुनि," ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

"[इस आदरणीय उपासिव की तरह]": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"बिना सहारे के, मैं पार नहीं कर सकता": "बिना सहारे के," मनुष्य के सहारे के बिना या धम्म के सहारे के बिना, मैं इसे पार नहीं कर सकता, पार नहीं कर सकता, महान इच्छा की हिंसक धाराओं, दृष्टि की हिंसक धाराओं, अज्ञान की हिंसक धाराओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

"सर्वदर्शी, कृपया विषय के बारे में बताइए": विषय, स्थिति की निर्भरता, घनिष्ठ निर्भरता, कृपया बताइए, कृपया समझाइए, सिखाइए, सूचित कीजिए, स्थापित कीजिए, उजागर कीजिए, विश्लेषण कीजिए, स्पष्ट कीजिए। "सर्वदृष्टि," सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था को सर्वदृष्टि कहा जाता है। अतः, भगवान बुद्ध ज्ञान की अवस्था तक पहुँचते हैं (प्राप्त करते हैं), प्रवेश करते हैं, पूर्णतः प्रवेश करते हैं, पर्याप्त रूप से प्राप्त करते हैं।

"उनके लिए इस संसार में कुछ भी अदृश्य नहीं है, ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जिसे जाना न जा सके। वे सिद्ध करते हैं कि अस्तित्व में मौजूद हर चीज का मार्गदर्शन अनुमान के आधार पर ही होना चाहिए, क्योंकि तथागत तो मानो सर्वदृष्टि वाले हैं।" [भजन संहिता 1]

"जो कोई भी इस पर निर्भर है, वह इस उफान को पार कर सकता है": "जो कोई भी इस पर निर्भर है," एक नश्वर या धम्म-आधारित व्यक्ति महान इच्छा के उफान, अस्तित्व के उफान, दृष्टि के उफान और अज्ञान के उफान पर विजय प्राप्त कर सकता है, उससे ऊपर उठ सकता है, उसे पार कर सकता है और उससे आगे निकल सकता है।

39 · [भगवान: "उपसीव!"] अनासक्त होकर, सचेत होकर, तूफ़ान से गुज़रने के लिए "कुछ नहीं" पर भरोसा करते हुए, इच्छा का त्याग करने के बाद, दिन-रात लालसा के अंत को देखो (मनन करो)।

"स्वामित्वहीन, सजगतापूर्वक देखना": ब्राह्मण मूलतः निर्धन और आश्रित था, जिसके पास कोई संपत्ति नहीं थी। वह यह नहीं जानता था कि "यह मेरी निर्भरता है।" भगवान बुद्ध ने उसे निर्भरता और उससे निकलने का उच्चतर मार्ग समझाया: सजगतापूर्वक अनाप-स्वामित्व की अवस्था में प्रवेश करो और प्रतीक्षा करो, और फिर वहाँ से बाहर आने के बाद, यह देखकर कि यह क्षणभंगुर है, दुखदायी है, मन में विक्षिप्तता और मानसिक अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे कि मवाद, तीर, ...(विलंबित भाग देखें)..., कष्ट, त्याग, वह देख रहा है, अवलोकन कर रहा है और ध्यान दे रहा है।

"जिनके मन में विचार आते हैं": सभी विचार, धारणाएँ, स्मृतियाँ... (अंशित), इसे विचार कहते हैं। (अंशित), इस विचार को रखने वाला व्यक्ति विचारशील कहलाता है।

"[भगवान: 'उपासिव!']": ...(छोड़ दिया गया)।

"शून्यता पर भरोसा करने से आप उफान पर आ जाते हैं": "शून्यता" का अर्थ है शून्यता में निवास करना। "शून्यता" शून्यता में क्यों निवास करती है? असीम चेतना के निवास में सचेत रूप से प्रवेश करें; वहाँ निवास करने के बाद, वहाँ से बाहर निकलें; वह चेतना, उसे अस्तित्वहीन जानकर, उसे लुप्त करके, "शून्यता" को देखती है, और इसी कारण "शून्यता" शून्यता है। भरोसा करने के बाद, और अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के बाद, आप इच्छाओं के उफान, अस्तित्व के उफान, दृष्टि के उफान को पार कर सकते हैं, उनसे आगे निकल सकते हैं, उन्हें पार कर सकते हैं, उन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

"इच्छाओं का त्याग करने के बाद, संदेहों से मुक्त हो गया हूँ": "इच्छा," दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और अशुद्धता की इच्छा... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। "इच्छाओं का त्याग करने के बाद," वस्तुओं की इच्छाओं को जानने के बाद, अशुद्धता की इच्छाओं का त्याग करने के बाद, त्याग करने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त करने के बाद, और उसे अस्तित्वहीन बना देने के बाद। "मैं संदेहों से अलग हो गया हूँ," संदेहों को शंकाएँ कहा जाता है: दुख के संदेह... (छोड़ा गया)। मैं संदेहों से अलग हो गया हूँ, संयम बरता है, अलग हो गया हूँ, छोड़ दिया है, मुक्त हो गया हूँ, बंधन से अलग हो गया हूँ, एक अप्रतिबंधित हृदय से जी रहा हूँ। या, बत्तीस प्रकार के जानवरों से अलग, संयम, कुचला हुआ, त्याग, और मुक्ति, एक अप्रतिबंधित हृदय से जी रहा हूँ।

"दिन-रात भोग-विलास का अंत देखते हैं": "प्यास" की भोग-विलास... (अस्पष्ट)। रात को रात कहते हैं, दिन को दिन; दिन-रात, देखते और बढ़ते रहो, ऊपर देखते हुए, देखते हुए, निहारते हुए, भोग-विलास का अंत, लोभ का अंत, घृणा का अंत, अज्ञान का अंत, स्वार्थ का अंत, पिछले जन्म का अंत, जीवन के अंत का अंत, पुनर्जन्म का अंत।

40 · [आदरणीय उपासिव ने ऐसा कहा:] जिसने सभी इच्छाओं में लोभ का त्याग कर दिया है, जो शून्यता पर भरोसा करता है और अन्य सभी चीजों को त्याग देता है, वह विजेता जिसे ज्ञान की सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त है, क्या वह वहां निवास कर सकता है और अनायास हो सकता है?

"जो कोई भी सभी इच्छाओं में लोभ से मुक्त हो गया है": "हर चीज़ में," पूरी तरह से, हर पहलू में, बिना किसी अवशेष के, और पूरी पृथ्वी में। यह सर्वव्यापकता की भाषा है, जो "हर चीज़ में" है। "इच्छा," ...(हटा दिया गया)। "जो कोई भी सभी इच्छाओं में लोभ से मुक्त हो गया है": जो कोई भी सभी इच्छाओं में लोभ से दूर हो गया है, जिसके पास लोभ नहीं है, जिसने लोभ का त्याग कर दिया है, जिसने लोभ को समाप्त कर दिया है, जो लोभ से मुक्त हो गया है, जिसने लोभ का त्याग कर दिया है, जिसने लोभ को तोड़ दिया है, वे जिन्होंने लोभ को दबा दिया है।

"[इस आदरणीय उपासिव की तरह]": ...(हटा दिया गया)।

"अपरिग्रह और अन्यों के त्याग पर निर्भर रहना": वह निम्न छह उपलब्धियों का त्याग कर, उन्हें हमेशा के लिए छोड़ देता है, उनसे आगे निकल जाता है, उन पर विजय प्राप्त करता है और शून्यता, अनासक्ति और आसक्ति के क्षेत्र को प्राप्त करता है। जो लोग प्रवेश करते हैं, जो पूर्णतः प्रवेश करते हैं, जो बंधे होते हैं, जो अपना मन उनकी ओर मोड़ते हैं।

"सर्वोच्च स्तर पर मुक्त होने वाले विजेता": जो मुक्त होते हैं उन्हें सात उपलब्धियाँ कहा जाता है, और शून्यता की मुक्ति ही प्रथम, सबसे विजयी, सर्वश्रेष्ठ, सबसे आगे, सर्वोच्च, शीर्ष, मुक्ति का विजेता, विजय प्राप्त करने वाला, चरित्रवान, प्रचुर, गंभीर, वह है जिसका उद्देश्य वही है, जो उसकी ओर प्रवृत्त है, जो उसकी ओर अग्रसर है, जो दृढ़ संकल्पित है, जो विजेता है।

“क्या वह वहाँ रह सकता है और अयात्री बन सकता है?”: “क्या वह रह सकता है?” संदेह के प्रश्न, उलझन के प्रश्न, भ्रम के प्रश्न, एक से अधिक प्रश्न: “क्या ऐसा है? क्या यह सच नहीं है? यह क्या है? यह कैसे है?” “वहाँ,” कहीं नहीं। “अयात्री,” वे जो अनुसरण नहीं करते, वे जो डगमगाते नहीं (डगमगाते नहीं), वे जो छोड़ते नहीं, वे जो लुप्त नहीं होते, और वे जो लौटते नहीं। या, वह जो संक्रमित नहीं है, वह जो गिरता नहीं, वह जो मूर्ख नहीं बनता, वह जो अपवित्र नहीं है।

41 · [भगवान: “उपसीव!”] अपनी सभी इच्छाओं में लोभ से दूर होकर, शून्यता पर भरोसा करते हुए, अन्य चीजों का त्याग करके, ज्ञान में मुक्त विजेता, वह वहाँ रह सकता है और गैर-यात्री बन सकता है।

“जो कोई भी सभी इच्छाओं में लोभ से विमुख हो गया हो”: ...(हटा दिया गया)।

“[भगवान: 'उपासिव!']”: ...(छोड़ दिया गया)।

“किसी पर भरोसा न करो और दूसरों को छोड़ दो”: ...(हटा दिया गया)।

“सर्वोच्च स्तर पर मुक्त हुए विजेता”: ...(हटा दिया गया)।

“वह वहाँ निवास कर सकता है और अयाल बन सकता है”: “वह निवास कर सकता है,” वह साठ हज़ार कल्पों तक जीवित रह सकता है और स्थिर रह सकता है। “वहाँ,” कहीं नहीं। “अयाल,” अनुयायी नहीं, वह जो विचलित नहीं होता, वह जो त्यागता नहीं, वह जो लुप्त नहीं होता, वह जो पीछे नहीं हटता। या, वह जो अप्रभावित रहता है, वह जो गिरता नहीं, वह जो अज्ञानी नहीं रहता, वह जो अपवित्र नहीं होता।

42 · [आदरणीय उपासिव ने कहा:] यदि वह वहाँ रहकर कई वर्षों तक भी निर्जन हो जाए, हे सर्वदर्शी! क्या वह शीतल और मुक्त हो जाएगा? क्या ऐसे लोगों की चेतना मर जाएगी?

“यदि वह वहाँ रह सकता है और एक गैर-यात्री बन सकता है”: ...(हटा दिया गया)।

“कई वर्षों तक भी, सर्व-दृष्टि”: “कई वर्षों तक भी, कई वर्षों तक; कई सौ वर्षों तक; कई हज़ार वर्षों तक; कई दस हज़ार वर्षों तक; कई क्षपों तक। सर्व-दृष्टि को सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था कहा जाता है... (छोड़ दिया गया)।

“क्या वह शांत होकर मुक्त हो जाएगा? क्या उस जैसे व्यक्ति की चेतना मर जाएगी?”: शीतल अवस्था का आगमन, स्थिर, दृढ़, शाश्वत और अपरिवर्तनीय। क्या वह शाश्वत रूप से विद्यमान रहेगी? या उसकी चेतना मर जाएगी, बुझ जाएगी, लुप्त हो जाएगी, नष्ट हो जाएगी या अस्तित्वहीन हो जाएगी? क्या कोई पुनर्जन्मित चेतना इच्छा लोक, भौतिक लोक या अभौतिक लोक से जन्म लेगी? उन्होंने शून्यता में प्रवेश कर चुके लोगों की स्थिरता और विनाश के बारे में पूछा। या क्या वे वहाँ परम, शाश्वत निर्वाण में निर्वाण प्राप्त करेंगे? या, क्या उसकी चेतना मर जाएगी, और चेतना की आगे की अनुभूति इच्छा लोक, भौतिक लोक या अभौतिक लोक में उत्पन्न होगी? उन्होंने उन लोगों के निर्वाण और पूर्णता के बारे में पूछा जिनका पुनर्जन्म का कोई स्थान नहीं है। “उस प्रकार का व्यक्ति,” उस प्रकार का, स्थिर, इस प्रकार का, समान, शून्यता के बाद पुनर्जन्म।

43 · [भगवान: “उपसीव!”] जैसे हवा से फेंकी गई लौ बुझ जाती है और उसका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता, वैसे ही मुनि नाम और शरीर से मुक्त होकर बुझ जाते हैं और उनका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता।

“हवा से उड़ती लौ की तरह”: इस लौ को हल्की लौ कहते हैं। “हवा,” पूरब की हवा, पश्चिम की हवा, उत्तर की हवा, दक्षिण की हवा, धूल भरी हवा, धूल रहित हवा, ठंडी हवा, गर्म हवा, हल्की हवा, तेज़ हवा, तीव्र हवा, तिरछी हवा, सुनहरे पंखों वाले पक्षी की हवा, छात्रावास के पत्तों की हवा, पंखे की हवा। “हवा से उछाला हुआ,” उछाला हुआ, फेंका हुआ, बिखरा हुआ, ज़ोर से बिखरा हुआ, टकराया हुआ, हवा से नष्ट हुआ।

“[भगवान: 'उपासिव!']”: ...(छोड़ दिया गया)।

“विलुप्त हो जाता है, जिसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता”: “विलुप्त होने की ओर बढ़ना,” विलुप्त होना, उसे विलुप्त करना, विलुप्त हो जाना, शांत हो जाना, रुक जाना। “नाम से नहीं गिना जा सकता,” नाम देना कठिन है, कहना नहीं आता, गिनना नहीं आता, नाम देना नहीं आता: “यह पूर्व में पहुँच गया है, या पश्चिम में पहुँच गया है, या उत्तर में पहुँच गया है, या दक्षिण में पहुँच गया है, या शीर्ष पर पहुँच गया है, या नीचे पहुँच गया है, या क्षैतिज दिशा में पहुँच गया है, या चारों दिशाओं के मध्य में पहुँच गया है।” इसका कोई कारण नहीं है, कोई पूर्वनियति नहीं है, और कोई ऐसा कारक नहीं है जो नाम के दायरे में आए (या नाम के दायरे में आए)।

“मुनि नाम और शरीर से इस प्रकार मुक्त हैं”: “इस प्रकार” एक लाक्षणिक व्यवस्था है। “मुनि,” ...(अस्पष्ट)। “पहले से ही नाम और शरीर से मुक्त,” जो मुनि पहले ही शरीर से मुक्त हो चुके थे, उन्होंने उस भाग को पार कर लिया, अलग हो गए। मुनि के लिए, अस्तित्व के कारण, चारों पवित्र मार्ग प्राप्त होते हैं, प्राप्त चारों पवित्र मार्गों में नाम और शरीर का ज्ञान होता है, और नाम और रूप को जानकर, अनासक्ति, स्वतंत्रता और आसक्ति रहित मुक्ति प्राप्त होती है।

“निरस्त की ओर बढ़ते हुए, उसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता”: “निब्बान के अवशेष रहित जगत में उसका नाम नहीं आता।” “उसका नाम नहीं आता,” वह उस व्यक्ति के नाम तक नहीं पहुँचता जिसने निर्वाण के अवशेष रहित जगत में निर्वाण को प्राप्त किया है। उसका नाम नहीं आता (उसे नाम देना कठिन है), यह कहने में कि उसका नाम नहीं आता, गिनने में कि उसका नाम नहीं आता, और यह बताने में कि उसका नाम नहीं आता: “खत्तीय,” या “ब्राह्मण,” या “वेस्स,” या “शुद्ध,” या “घर पर,” या “चाचा,” या “ईश्वर,” या “व्यक्ति,” या “रूप,” या “निराकार,” या “चिंतनशील,” या “न चिंतनशील,” या “न चिंतनशील”; उसका कोई कारण नहीं, कोई पूर्वनियति नहीं, और कोई कारक नहीं है जिसके कारण वह नाम में आ जाए (उसकी ओर बढ़े)।

44 · (उपसीव:) क्या वह निर्गमन को प्राप्त कर चुका है, या उसका अस्तित्व ही नहीं है, या वह रोगमुक्त व्यक्ति है? मैं मुनि से इस विषय को मेरे लिए भली-भांति स्पष्ट करने का अनुरोध करता हूँ, क्योंकि आप इस धर्म के ज्ञाता हैं।

“क्या वह विलुप्त हो गया है या उसका अस्तित्व ही नहीं है”: वह विलुप्त हो गया है या उसका अस्तित्व ही नहीं है, उसका सफाया हो गया है, उसे नष्ट कर दिया गया है, उसे नष्ट कर दिया गया है।

“शाश्वत रूप से रोगमुक्त”: यह अभी भी स्थिर, दृढ़, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।

“मुनि, कृपया मुझे इसे अच्छी तरह समझाएँ”: “वह,” ...(हटा दिया गया)। “मुनि,” ...(हटा दिया गया)। “अच्छी तरह समझाएँ,” ...(हटा दिया गया)।

क्योंकि आप इन धम्मों के ज्ञाता हैं, इसलिए आप ही इन धम्मों के ज्ञाता, मापक, न्यायाधीश और स्पष्टकर्ता हैं।

45 · [भगवान: “उपसीव!”] जो व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर चुका है, उसके लिए कोई माप नहीं है, उसके अस्तित्व के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, जब सभी धर्म नष्ट हो जाते हैं, तो सभी भाषा मार्ग भी नष्ट हो जाते हैं।

“जो लोग निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए कोई माप नहीं है”: जो लोग निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, जिनके पास निर्वाण का कोई अंश नहीं है, उनके लिए रूप का माप नहीं है, ग्रहण करने का माप नहीं है, ...विचार का अस्तित्व नहीं है, ...कर्म..., ...चेतना..., यह अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, खोजी नहीं गई है, कट गई है, शांत हो गई है, रुक गई है, उत्पन्न होने में असमर्थ है, और ज्ञान की अग्नि से जल गई है।

“[भगवान: 'उपासिव!']”: ...(छोड़ दिया गया)।

उसके बारे में क्या कहा जा सकता है, वह उसके लिए अस्तित्वहीन है”: उसके बारे में लालच के संदर्भ में क्या कहा जा सकता है; ...किस प्रकार की घृणा; ...मूर्खता; ...आलस्य; इस दृष्टि से, कौन उसके बारे में बात कर सकता है; उसके बारे में किस अविश्वास से क्या कहा जा सकता है; ...किस संदेह से; ...कष्टों की अंतर्निहित प्रवृत्ति से, क्या वह “संक्रमित,” या “घृणित,” या “अज्ञानी,” या “बंधा हुआ,” या “चिपका हुआ,” या “अव्यवस्था में आ गया,” या “असंतोष में आ गया,” या “धैर्य में आ गया?” उन कर्मों को त्याग दिया गया है। रुचि की किस अवस्था को त्याग दिया गया है, वह कांप उठेगा और “नरक में गिरा हुआ,” या “पशु-पतित व्यक्ति,” या “भूखा प्रेतलोक व्यक्ति,” या “मनुष्य,” या “स्वर्ग,” या “रूपित,” या “रूपहीन,” या “चिंतित,” या “निष्क्रिय,” या “न चिंतनशील और न चिंतनशील” बन जाएगा? उसके पास ऐसा कहने, बताने, बात करने या समझाने का कोई कारण नहीं है, कोई पूर्वनियति नहीं है।

“जब सभी धर्मों का नाश हो गया हो”: सभी धर्मों में, सभी समूहों में, सभी स्थानों में, सभी लोकों में, सभी रुचि के स्थानों में, सभी पुनर्जन्मों में, सभी अवतारों में, सभी अस्तित्व में, सभी पुनर्जन्मों में, जब चक्र उखड़ गया हो, जब उसका नाश हो गया हो, जब उसे हटा दिया गया हो, जब उसे पूरी तरह से हटा दिया गया हो, जब वह अलग हो गया हो, जब वह शांत हो गया हो, जब वह समाप्त हो गया हो, जब वह उत्पन्न नहीं हो सकता हो, जब वह ज्ञान की अग्नि से जल गया हो।

“सभी भाषाई मार्ग भी नष्ट हो गए हैं”: भाषाई मार्ग को प्रदूषण और विभिन्न समुच्चयों और विभिन्न रचनाओं के रूप में वर्णित किया गया है। उनके अनुसार, भाषा, भाषाई मार्ग, नाम (शब्दों की वृद्धि), भाषा और शांति, सब कुछ उखाड़ फेंका गया है, सब कुछ नष्ट हो गया है, ...(अधूरा)।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

.

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.7

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

7. नंदा

46 · [आदरणीय नंदा ने इस प्रकार कहा:] संसार में अनेक मुनि हैं, लोग ऐसा क्यों कहते हैं? क्या वे कहते हैं कि मुनि ज्ञानवान व्यक्ति होता है? या वह व्यक्ति जिसका एक विशिष्ट जीवन होता है?

“संसार में मुनि हैं”: “अस्तित्व,” विद्यमान है, ज्ञात है, धारण करता है और पाया जाता है। “संसार में,” दुखमय संसार में... (विलुप्त, पिछले खंड देखें)। “मुनि,” अन्य तपस्वी, जैन, जटाधारी तपस्वी, मुनि कहलाने वाले संन्यासी।

“[इस आदरणीय नंदा की तरह]”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“लोग ऐसा क्यों कहते हैं?”: यहाँ “लोग” क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, स्वर्ग और अन्य लोग हैं। “(वे) कहते हैं,” वे बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं। “ऐसा क्यों है?”, संदेह का प्रश्न...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

“वे कहते हैं कि मुनि एक ज्ञानवान व्यक्ति हैं”: वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, कहते हैं कि मुनि ने पूर्णतः ज्ञान के आठ स्तरों, या पाँच जादुई शक्तियों को प्राप्त कर लिया है।

“या एक विशिष्ट जीवन”: या वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं, और कहते हैं कि मुनि ने पूर्णतः सभी प्रकार की चीजों, सभी प्रकार की चरम सीमाओं, पहली कठिनाई, एक निर्मल जीवन को प्राप्त कर लिया है।

47 · (भगवान:) नन्द, न देखकर, न सुनकर, न जानकर, यहाँ के कुशल लोग किसी को मुनि कहते हैं। जो लोग सेना छोड़ने के बाद दुख या इच्छा के बिना जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उन्हें ही मुनि कहता हूँ।

“न देखने से, न सुनने से, न जानने से”: “न देखने से,” देखने से पवित्रता नहीं मिलती। “न सुनने से,” सुनने से पवित्रता नहीं मिलती। “न ज्ञान से,” आठवाँ परम ज्ञान नहीं, पाँच देवताओं पर आधारित नहीं, और न ही दुष्ट ज्ञान पर आधारित।

“नंदा! यहाँ के कुशल लोग मुनि कहते हैं”: “कुशल,” वे जो कुशल हैं, वे जो इस क्षेत्र में कुशल हैं, वे जो जागृत हो चुके हैं, वे जो कौशल पर निर्भर हैं, वे जो सचेतनता में कुशल हैं, ...लगन में कुशल हैं, ...अलौकिक शक्ति, मूल, सामर्थ्य, चेतना, मार्ग, फल, निर्वाण; वे यह नहीं कहते, न बोलते, न संकेत देते कि मुनि ने पूर्णतः प्राप्त कर लिया है, पूर्णतः प्राप्त कर लिया है, पूर्णतः प्राप्त कर लिया है, पूर्णतः प्राप्त कर लिया है, देखने से शुद्धता, या सुनने से शुद्धता, या अष्टम ज्ञान, या पाँच देवताओं, या दुष्ट ज्ञान, या जो तुम देखते हो, या जो तुम सुनते हो, या जो तुम जानते हो।

“जो लोग कष्ट और इच्छा से मुक्त जीवन जीने के लिए सेना छोड़ देते हैं, मैं उन्हें 'मुनि' कहता हूँ”: सेना को दानव सेना कहा जाता है, जो शरीर और बुराई से दानव सेना के रूप में कार्य करती है; वाणी और बुराई से दानव सेना के रूप में कार्य करती है; ...लालच; घृणा; आसक्ति ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)..., सभी बुरे कार्य दानव सेना के रूप में कार्य करते हैं।

यह बात भगवान बुद्ध ने कही: [संख्या 3.2] “इच्छा तुम्हारी पहली सेना है, दुःख दूसरी, भूख और प्यास तुम्हारी तीसरी, और प्यास (प्रेम) तुम्हारी चौथी। गहरी नींद तुम्हारी पाँचवीं, भय तुम्हारी छठी, संदेह तुम्हारी सातवीं, और हठ तुम्हारी आठवीं। वह व्यक्ति जिसकी प्रतिष्ठा अच्छी है, और वह प्रतिष्ठा जो उसने गलतियों से अर्जित की है, जो स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों को तुच्छ समझता है। हे शैतान! यह तुम्हारी सेना है, हे दुष्ट (काला) हमलावर, जिनके पास साहस नहीं है वे उसे परास्त नहीं कर सकते, और उन्हें विजय के बाद शांति मिलेगी।”

जब सभी राक्षसी सेना और सभी शत्रुतापूर्ण अशुद्धियाँ चारों पवित्र मार्गों द्वारा पराजित, पराजित, नष्ट, विघटित और दूर कर दी जाती हैं, तब इसे "सेना छोड़ने के बाद" कहा जाता है। "कोई कष्ट नहीं," लोभ कष्ट है, क्रोध..., अज्ञान... (निरस्त)..., ज्ञान की अग्नि से प्रज्वलित, इन्हें निर्धन कहा जाता है। "इच्छा रहित": इच्छा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ की जड़ है, ...(निरस्त)। जिनकी इच्छा और लालसा का नाश हो जाता है, ...(निरस्त), उन्हें निर्धन, अरहंत और अपने कष्टों को समाप्त करने वाले कहा जाता है। "जो कष्ट और इच्छा के बिना सेना छोड़ देते हैं और जीवन यापन करते हैं, मैं उन्हें 'मुनि' कहता हूँ": जो कष्ट और इच्छा के बिना सेना छोड़ देते हैं और चलते हैं, जीवन यापन करते हैं, कार्य करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं, जीविका कमाते हैं, मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं सूचित करता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ, वे संसार में मुनि हैं।

48 · [आदरणीय नंदा ने इस प्रकार कहा:] इन समण और ब्राह्मणों में से कोई भी, वे कहते हैं कि देखने और सुनने में पवित्रता है, और यह भी कि नियम और निषेध के गुण में पवित्रता है, और यह कि सभी प्रकार के रूप पवित्र हैं, हे भगवान! जो आत्मसंयम रखते हैं, क्या वे जन्म और वृद्धावस्था से बच पाते हैं? प्रिय प्रभु! हे भगवान, मैं आपसे यह पूछता हूँ, कृपया मुझे इसका उत्तर दें।

"इनमें से कोई भी समण और ब्राह्मण": "कोई भी," संपूर्ण रूप से, हर पहलू में, बिना किसी अतिरिक्त के, पूरी पृथ्वी पर। यह शब्द सर्वत्र के लिए प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है "कुछ भी"। "समण," जो भी यहाँ से जुलूस में प्रवेश करता है, जुलूस में शामिल होता है। "ब्राह्मण," जो भी दूसरों को मित्र कहता है।

"[इस आदरणीय नंदा की तरह]": ...(हटा दिया गया)।

वे कहते हैं कि देखने और सुनने में पवित्रता है": वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं और बोलते हैं कि पवित्रता और स्वच्छता है; अलगाव, मुक्ति और वैराग्य है; वे यह भी कहते हैं, बताते हैं कि जो सुना जाता है वह पवित्र है... और वैराग्य है; ...कि जो देखा और सुना जाता है वह पवित्र है...

"यह भी कहा जाता है कि नियमों और निषेधों का पालन करने में पवित्रता है": वे कहते हैं, बताते हैं, समझाते हैं कि नियमों का पालन करना पवित्र है...; वे यह भी कहते हैं कि निषेध पवित्र हैं...; वे कहते हैं कि नियमों और निषेधों में पवित्रता है...।

"कहो कि सभी रूप शुद्ध हैं": वे कहते हैं, बताते हैं, बात करते हैं, समझाते हैं और बोलते हैं कि सभी प्रकार के रूप शुद्ध, स्वच्छ और पूर्णतः मुक्त हैं; स्वतंत्र, मुक्त, अनासक्त।

"हे प्रभु! क्या वहाँ वे लोग हैं जो आत्मसंयमित हैं?": "क्या...?", संदेह का प्रश्न...(छोड़ दिया गया)। "हे प्रभु," .... "वहाँ आत्मसंयमित यात्री," "वहाँ," अपने विचारों, अपनी पसंदों, अपनी प्रवृत्तियों, अपने मतों में। "आत्मसंयमित," विवेकपूर्ण, सतर्क, रक्षक और संरक्षक। "यात्री," यात्री, निवासी, कर्ता, निरंतर चलने वाला, रक्षक और उत्तरजीवी।

"क्या वे जन्म और वृद्धावस्था से बच पाते हैं? महोदय": जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, क्या वे इनसे पार पाते हैं, इनसे परे जाते हैं, इन पर विजय प्राप्त करते हैं और इन्हें पार करते हैं। "महोदय,"...

"गुरुजी, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे यह बताइए": ....

49 · [भगवान: "नंदा!"] इन सभी समणों और ब्राह्मणों में से जो कहते हैं कि पवित्रता देखने और सुनने में है, और यह भी कि नियम और निषेध के गुण में पवित्रता है, और यह कि सभी प्रकार के रूप पवित्र हैं, यहाँ तक कि वे भी जो वहाँ आत्मसंयमित हैं, मैं कहता हूँ कि वे जन्म और वृद्धावस्था से बच नहीं पाए हैं।

"इनमें से कोई भी समण और ब्राह्मण": ....

"[भगवान: 'नंदा!']": ....

वे कहते हैं कि देखने और सुनने में पवित्रता होती है:...

"यह भी कहा जाता है कि नियमों और निषेधों का पालन करने में पवित्रता होती है":...

"कहें कि सभी रूप शुद्ध हैं":...

“यहाँ तक कि जो लोग आत्मसंयमित हैं”: “यहाँ तक कि,” वाक्यों की निरंतरता; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों का समापन; शब्दों का संयोजन; शब्दों का संबंध; यही वाक्यों का क्रम है, जो “यहाँ तक कि” है। “यहाँ तक कि,” अपने दृष्टिकोण से, अपनी पसंदों से, अपनी प्रवृत्तियों से, अपने विचारों से। “आत्मसंयमित,” सतर्क, सावधान, रक्षाशील, विवेकशील। “चलने वाला,” चलने वाला, निवासी, अभिनेता, राहगीर, संरक्षक और उत्तरजीवी।

मैंने कहा कि वे जन्म और वृद्धावस्था से बच नहीं पाए: जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, वे बच नहीं पाए, पार नहीं कर पाए, पार नहीं कर पाए, विजय प्राप्त नहीं कर पाए; जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु अलग नहीं होंगे, छोड़े नहीं जा सकेंगे, पार नहीं किए जा सकेंगे, और उन पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकेगी; वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं, वे पुनर्जन्म के चक्र में घूमते रहते हैं, जन्म के साथ, वृद्धावस्था के बाद, रोग से पराजित, मृत्यु से पीड़ित, और उनके पास कोई आश्रय या शरण नहीं है। मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, मैं सिखाता हूँ, मैं बताता हूँ, मैं निर्माण करता हूँ, मैं उजागर करता हूँ, मैं विश्लेषण करता हूँ, मैं स्पष्ट करता हूँ।

50 · [आदरणीय नंदा ने इस प्रकार कहा:] हे मुनि! इन समण और ब्राह्मणों में से, जो कहते हैं कि देखने और सुनने में पवित्रता है, और यह कि नियम और निषेध के गुण में पवित्रता है, और यह कि सभी प्रकार के रूप पवित्र हैं, यदि आप कहते हैं कि वे जलप्रपात पार नहीं कर पाए, तो हे प्रिय, स्वर्ग और मनुष्य के संसार में कौन जन्म और वृद्धावस्था से बच पाया है? हे भगवान, मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ, कृपया मुझे इसका उत्तर दीजिए।

“इनमें से कोई भी समण और ब्राह्मण”: ....

“[इस आदरणीय नंदा की तरह]”: ....

वे कहते हैं कि देखने और सुनने में पवित्रता होती है:...

“यह भी कहा जाता है कि नियमों और निषेधों का पालन करने में पवित्रता होती है”:...

“कहें कि सभी रूप शुद्ध हैं”:...

“मुनि! यदि आप कहते हैं कि वे बाढ़ से नहीं बच पाए”: यदि वे दुष्ट हैं। “मुनि,” ...“आपने कहा कि आप बाढ़ पार नहीं कर पाए,” इच्छा की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़, दृष्टि की बाढ़, अज्ञान की बाढ़ को पार नहीं किया जा सकता, उनसे आगे नहीं बढ़ा जा सकता, उन्हें पार नहीं किया जा सकता; वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं। वे पुनर्जन्म के चक्र में घूमते रहते हैं, जन्म के साथ, वृद्धावस्था के बाद, रोग से पराजित, मृत्यु से पीड़ित, बेघर लोगों की तरह। “आपने कहा,” ....

“तो फिर, स्वर्ग और मनुष्य के संसार में, जन्म और वृद्धावस्था के माध्यम से, हे महोदय?”: और इस संसार में, जिसमें स्वर्ग, राक्षस और ब्राह्मण शामिल हैं; जिसमें समन, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य की पीढ़ियाँ शामिल हैं; जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के माध्यम से, कौन है जिसने पार किया है, श्रेष्ठता प्राप्त की है, पार किया है और विजय प्राप्त की है? “हे महोदय,”...

“गुरुजी, मैं आपसे विनती करता हूँ, कृपया मुझे यह बताइए”: ....

51 · [भगवान: “नंदा!”] मैं यह नहीं कहता कि “सभी समण और ब्राह्मण जन्म और वृद्धावस्था के बंधन में बंधे हैं;” यहाँ जो कुछ भी तुम देखते, सुनते या महसूस करते हो, यहाँ तक कि नियम और निषेध भी, सब त्याग दिए जाने के बाद, प्यास और प्रेम को जानने के बाद, जो लोग कष्टमुक्त हैं, मैं कहता हूँ कि वे लोग वास्तव में बाढ़ से बच गए हैं।

“[भगवान बुद्ध: 'नंदा!'] मैं यह नहीं कहता, 'सभी समण और ब्राह्मण जन्म और वृद्धावस्था से घिरे हुए हैं'”: “नंदा! मैं यह नहीं कहता, 'सभी समण और ब्राह्मण जन्म और वृद्धावस्था से बाधित, अवरुद्ध, घिरे, अवरुद्ध, बंद, छिपे हुए हैं,' मैं कहता हूँ, ... कुछ ऐसे समण और ब्राह्मण भी हैं जिनके

लिए जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का बंधन टूट गया है, और उनकी जड़ें कट गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन, निर्जीव हो जाता है।"

"यहाँ जो कुछ भी देखा या सुना जाता है, यहाँ तक कि नियम और निषेध भी, सब त्याग दिए जाते हैं": जो कुछ भी आप देखते हैं, वह त्यागने, छोड़ देने, दूर भगाने, समाप्त करने और अस्तित्वहीन कर देने के बाद शुद्ध हो जाता है; सुनी गई सभी बातें त्यागने के बाद शुद्ध हो जाती हैं... (छोड़ा गया), सभी भावनाएँ..., देखी, सुनी और अनुभव की गई सभी बातें..., नियम..., निषेध..., सभी नियम और निषेध पूरी तरह से त्याग दिए जाते हैं, त्यागने के बाद, दूर भगाने के बाद, समाप्त करने के बाद और उन्हें अस्तित्व से परे कर देने के बाद।

"सभी प्रकार के रूप त्याग दिए जाते हैं": सभी प्रकार के रूपों में पवित्रता और स्वच्छता होती है; वैराग्य, मुक्ति, निर्वाह के बाद, अलगाव के बाद, परित्याग के बाद, समाप्त होने के बाद, और इसे अस्तित्वहीनता की ओर ले जाने के बाद।

"प्यास को जानने के बाद, मैंने उन निर्मल लोगों से कहा, 'वे लोग सचमुच बाढ़ से बच गए हैं'": रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और धम्म की प्यास। "प्रेम की प्यास को जानने के बाद," प्रेम की प्यास को जानने के तीन प्रकार हैं: जानना, मापना और त्याग देना। जानना क्या है? लालसा को जानना: यह रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और धम्म की लालसा है। जानना और देखना, यही जानना है।

ज्ञान का मापन क्या है? यह जानने के बाद, अनित्यता, दुख, बीमारी आदि को मापने के लिए उत्सुक होकर, वह त्याग का मापन करता है, जो कि ज्ञान का मापन है।

वैराग्य का ज्ञान क्या है? इस प्रकार विचार करने के बाद, वह उत्सुकतापूर्वक प्यास का त्याग करता है, उसे दूर भगाता है, उसका अंत करता है और उसे अस्तित्वहीन बना देता है। भगवान बुद्ध ने कहा: भिक्षुओं! सभी इच्छाओं और तृप्ति का नाश करना चाहिए। इस प्रकार, वह तृप्ति नाश हो जाएगी, और उसकी जड़ें कट जाएंगी, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन हो जाता है [संख्या 22.25]। यही वैराग्य का ज्ञान है। "प्यास और प्रेम को जानने के बाद," इन तीन प्रकार के ज्ञान से, प्रेम की प्यास को जानना। "चिंतामुक्त व्यक्ति" में चार प्रकार की चिंताएँ होती हैं: इच्छा की चिंताएँ, अस्तित्व की चिंताएँ, देखने की चिंताएँ, अज्ञान की चिंताएँ। उनके लिए, ये परेशानियाँ दूर हो गई हैं, ...(उसे विवश व्यक्ति, अरहंत और वे लोग कहा जाता है जिन्होंने अपनी परेशानियों का अंत कर लिया है।)

मैंने कहा, 'वे लोग सचमुच बाढ़ से बच गए हैं': प्यास का अनुभव करने के बाद जिन्हें कोई कष्ट नहीं होता, मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, ...कि इच्छा की प्रचंड धाराएँ पार हो गई हैं; अस्तित्व की प्रचंड धाराओं को पार कर लिया गया है; दृष्टि की प्रचंड धाराओं को पार कर लिया गया है; अज्ञान की प्रचंड धाराओं को पार कर लिया गया है; सभी चक्रों को पार कर लिया गया है, उनसे बाहर निकल आए हैं, उन्हें पार कर लिया गया है, उन पर विजय प्राप्त कर ली गई है।

52 · (नंदा:) मैं महान ऋषि के वचनों से प्रसन्न हूँ; गौतम, आपने ठीक ही कहा है, वह अवस्था जो किसी भी प्रकार की निर्भरता से मुक्त है, यहाँ जो कुछ भी आप देखते, सुनते या महसूस करते हैं, उसे त्यागने के बाद, यहाँ तक कि नियमों और निषेधों को भी, सभी प्रकार के रूपों को त्यागने के बाद, प्यास और प्रेम को जानने के बाद, जिन्हें कोई कष्ट नहीं होता, मैं यह भी कहता हूँ कि वे बाढ़ से बच जाते हैं।

"मैं महान ऋषि के शब्दों में आनंदित होता हूँ": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"बहुत खूब कहा, गौतम, निर्भरता रहित राज्य": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"यहाँ जो कुछ भी देखा, सुना या महसूस किया जाता है, यहाँ तक कि नियम और निषेध भी, सब कुछ त्याग दिया गया है": ....

"सभी प्रकार के प्रपत्रों को त्याग दिया गया है":...

“सभी निर्धन लोग, प्यास का अनुभव करने के बाद, मैं यह भी कहता हूँ कि 'वे नदी पार कर जाते हैं'”: ....

ज्ञान का मापन क्या है?...

त्याग का ज्ञान क्या है?...

ज्ञान के बाद, प्यास और प्रेम...

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.8

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

8. हेमाका

53 · [आदरणीय हेमाका ने इस प्रकार कहा:] गौतम की शिक्षा से पहले उन्होंने मुझे जो कुछ भी बताया, जैसे कि यह था, जैसा होगा, वह सब अफवाहें थीं, वह सब सिद्धांत में वृद्धि थी, मुझे उसमें कोई खास आनंद नहीं मिला।

“जो उन्होंने मुझे पहले बताया था”: बावरी ब्राह्मण और उनके सभी अन्य शिक्षक, वे अपने स्वयं के विचारों, अपनी पसंद, झुकाव, राय, इरादों की व्याख्या करते हैं, सिखाते हैं, सूचित करते हैं, स्थापित करते हैं, उजागर करते हैं, विश्लेषण करते हैं, स्पष्ट करते हैं।

“[इस आदरणीय हेमाका की तरह]”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“गौतम की शिक्षाओं से पहले”: गौतम की शिक्षाओं से पहले, गौतम की शिक्षाओं के दूसरी ओर, गौतम की शिक्षाओं से पहले; बुद्ध के उपदेश, विजेताओं के उपदेश, तथागत के उपदेश, अरहंतों के प्रथम उपदेश।

“ऐसा था और वैसा था, ऐसा होगा और वैसा होगा”: यह एक किंवदंती है कि यह ऐसा था, और यह ऐसा होगा।

“ये सब अफवाहें हैं”: ये सब अफवाहें, सुनी-सुनाई बातें, विरासत, शास्त्रों की शिक्षाएं, तार्किक निष्कर्ष, तर्क-वितर्क, सिद्धांतों के बारे में विचार, चिंतन के बाद स्वीकृत राय हैं, और वे कहते हैं कि ये स्वयं द्वारा सिद्ध नहीं हैं, न ही स्वयं सिद्ध करने की विधि है।

“यह सब सिद्धांत में वृद्धि है”: यह सब सिद्धांत में वृद्धि है, खोज में वृद्धि है, ...सोच में वृद्धि है, ...इच्छा में वृद्धि है, द्वेषपूर्ण खोज में वृद्धि है, उत्पीड़न में वृद्धि है, भूमि के बारे में सोच में वृद्धि है, मृत्यु के बारे में सोच में वृद्धि है, दूसरों के प्रति सहानुभूति से संबंधित सोच में वृद्धि है, सम्मान और प्रतिष्ठा के लाभ से संबंधित सोच में वृद्धि है, तिरस्कृत न होने से संबंधित सोच में वृद्धि है।

“मुझे वहाँ कोई खास खुशी नहीं मिली”: मुझे वहाँ कोई खास खुशी नहीं मिली, न ही मैंने उसे प्राप्त किया, न ही मैंने उसे साबित किया, न ही मैंने उसे हासिल किया।

54 · हे मुनि! कृपया मुझे व्यथा के नाश का धम्म बताइए! जो भी इसे जानता है और सचेत है, वह संसार में प्रेम के द्वारा जीवन यापन कर सकता है।

“कृपया मुझे बताइए”: “आप,” भगवान जी। “धम्म का वर्णन कीजिए,” आरंभ अच्छा है, मध्य अच्छा है, अंत अच्छा है; अर्थ सही है, वाक्य सही है; केवल पूर्ण, शुद्ध ब्रह्म: चार चेतनाएँ, चार धर्म, चार दिव्य आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक, आठ पवित्र मार्ग, निर्वाण और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग; कृपया घोषणा कीजिए, कृपया व्याख्या कीजिए, कृपया सिखाइए, कृपया सूचित कीजिए, कृपया स्थापित कीजिए, कृपया उजागर कीजिए, कृपया विश्लेषण कीजिए, कृपया स्पष्ट कीजिए।

“मुनि, प्यास का नाश”: “प्यास,” …(हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)। “मुनि,” …(हटा दिया गया, पिछले भाग देखें)।

“जो कोई भी जानने के बाद सचेतनता को जानता है”: …(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“दुनिया में प्रेम के माध्यम से जीने में सक्षम”: …(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

55 · (भगवान:) हे हेमा! जो कुछ तुम देखते, सुनते, महसूस करते और जानते हो, हे इच्छा के संदर्भ में! इच्छा और लोभ से दूर भगाना ही निर्वाण की अमर अवस्था है।

“यहाँ जो तुम देखते हो, जो तुम सुनते हो, जो तुम महसूस करते हो, जो तुम जानते हो”: “जो तुम देखते हो” आँखों से देखा जाता है। “जो तुम सुनते हो” कानों से सुना जाता है। “जो तुम महसूस करते हो” नाक से सूंघा जाता है, जीभ से चखा जाता है और शारीरिक संपर्क से प्राप्त होता है। “ज्ञान” चेतना द्वारा जाना जाता है।

हेमाका, इच्छा के संदर्भ में: संसार में क्या सुंदर और वांछनीय है? संसार में आँखें सुंदर और वांछनीय हैं, कान…(छोड़ा गया), नाक…, जीभ…, शरीर…, अर्थ…, रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, धम्म, आँख-चेतना, कान-इंद्रिय…, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना, मन-चेतना, आँख का स्पर्श, कान का स्पर्श, नाक का स्पर्श, जीभ का स्पर्श, शरीर का स्पर्श, मन का स्पर्श, संसार में आँख का स्पर्श सुंदर और वांछनीय है; कान का स्पर्श उत्पन्न होता है और अनुभव किया जाता है…, नाक का स्पर्श…, जीभ का स्पर्श, शरीर का स्पर्श, मन का उत्पन्न होना और अनुभव होना संसार में सुंदर और वांछनीय है; संसार में इच्छा है…, संसार में ध्वनि है…, गंध…, स्वाद, स्पर्श के विचार, धम्म के विचार, रूप के विचार, …ध्वनि के, …गंध के, स्वाद के…; रूप की लालसा…, ध्वनि की लालसा…, …गंध, स्वाद, स्पर्श, धम्म; रूप की खोज…, …ध्वनि…, स्वाद, स्पर्श, धम्म; रूप सुंदर है, ध्वनि सुंदर है, गंध, स्वाद, स्पर्श, धम्म संसार में मनभावन और सुखद है।

“इच्छा और लोभ का निष्कासन”: “इच्छा, लोभ,” अर्थात् इच्छा की इच्छा, इच्छा का लोभ, इच्छा का आनंद, इच्छा की प्यास, इच्छा का प्रेम, इच्छा का उत्साह और इच्छा का जुनून, इच्छा का लोभ, इच्छा की बाढ़, इच्छा का बंधन, इच्छा का आसक्ति, इच्छा का आवरण। “इच्छा और लोभ से मुक्ति”: इच्छा और लोभ का अंत; इच्छा और लोभ का शांत होना; इच्छा और लोभ का रुकना; निर्जीवता और निर्वाण।

“निर्वाण का लोक, अमरता”: निर्वाण का लोक उद्धार, शरण, आश्रय और भयहीनता का लोक है। “अमरता”, सदा, अटल, शाश्वत और अपरिवर्तनीय।

56 · यह जानने के बाद, सभी सचेत लोग, जो धम्म को देखते हैं, पूर्णतः शांत हो जाते हैं। और वे हमेशा मौन रहते हैं, संसार में प्रेम का प्रसार करते हैं।

“यह जानने के बाद, वे सभी जो सचेत हैं”: “यह,” निर्जीव, निर्वाण, यानी सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत, और निर्वाण। “के बाद,” जानने के बाद, समझने के बाद, नापने के बाद, निर्णय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद। “सभी कर्म अनित्य हैं,” जानने के बाद…; “सभी कर्म दुखदायी हैं,”…; “सभी धर्म अनात्म हैं,”…; “धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का अंत है,”…। “जो…” वह अरहंत है जिसने अपने सभी कष्टों को समाप्त कर दिया है। “सचेत व्यक्ति” चार प्रकार से सचेत होता है: ….(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"वह व्यक्ति जो धम्म को देखता है, वह व्यक्ति जो पूर्णतः शांत है": "वह जो धम्म को देखता है," वह जो धम्म को जानता है, वह जो धम्म का परखने वाला है, वह जो धम्म का पारखी है, वह जो धम्म को स्पष्ट करने वाला है, वह जो धम्म को जानता है। वह जो "सभी कर्म अनित्य हैं"..., "सभी कर्म अनात्म हैं"..., "अज्ञान कर्म का कारण है"..., "धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश है"... के धम्म का द्रष्टा है; वह जो धम्म का द्रष्टा है, धम्म का ज्ञाता है, धम्म का पारखी है, धम्म का पारखी है। "पूर्णतः शांत," जो लोभ, क्रोध..., मूर्खता..., द्वेष..., बेईमानी... की अवस्थाओं को शांत कर देता है; मौन अवस्था, शांत अवस्था, बुझी हुई अवस्था, शांत अवस्था, विदा अवस्था और समाप्त अवस्था मौन, समाप्त, शांत, शांत और स्थिर हो जाती हैं।

"और वे सदा मौन रहते हैं": "शांत," लोभ, ...आक्रामकता..., अज्ञान, ...क्रोध, ...घृणा... की शांत और मौन अवस्था को दर्शाते हुए; मौन अवस्था, शांत अवस्था, समाप्त अवस्था, बुझी हुई अवस्था, शीतल अवस्था, विदा अवस्था और समाप्त अवस्था मौन, शांत, शीतल और स्थिर हैं। "वे" अरहंत हैं, जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर दिया है। "सदा," सदा, हर समय, शाश्वत रूप से, निरंतर, निरंतर, निर्बाध, क्रमिक रूप से, जैसे जल की लहरें बिना अंतराल के उठती हैं, निरंतर साथ देती हैं और स्पर्श करती हैं, दोपहर से पहले, दोपहर बाद, पहली रात, आधी रात और रात के बाद, अमावस्या में, शुक्ल पक्ष में, बरसात के मौसम में, सर्दी में, गर्मी में, जवानी में, मध्य आयु में और वृद्धावस्था में।

"प्रेम के संसार से गुज़रना": प्रेम को प्यास कहा जाता है, जो लोभ है, ...(विलंबित, पिछले खंड देखें), अस्वास्थ्य की जड़। "प्रेम": प्रेम का क्या अर्थ है... (विलंबित)। "संसार में": दुख का संसार...। "संसार में प्रेम पर विजय प्राप्त करना": संसार में प्रेम को उसने पार कर लिया है, उससे आगे निकल गया है, उसे पार कर गया है, उसे पार कर गया है [नी.1]।

इन छंदों के अंत में... "परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.9

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

9. तोदेय्या

57 · [आदरणीय तोदेय्या ने इस प्रकार कहा:] जो अपनी इच्छाओं में लीन नहीं रहते, जिनका प्रेम प्यासा है और जो संदेह से गुजरे हैं, उनकी राहत कैसी होगी?

"जो अपनी इच्छाओं में नहीं लीन रहते": जो कोई अपनी इच्छाओं पर काबू नहीं रख सकता, वह न तो लीन रहता है, न ही जीता है, न ही ठहरता है।

"[इस आदरणीय तोदेय्या की तरह]": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"उसके लिए प्यास का पता नहीं चलता": उसके लिए प्यास अब नहीं है, अस्तित्व में नहीं है, ज्ञात नहीं है, पाई नहीं जा सकती, समाप्त हो गई है, शांत हो गई है, रुक गई है, उत्पन्न नहीं हो सकती, ज्ञान की अग्नि से जल गई है।

"वे लोग जिन्होंने सभी शंकाओं को पार कर लिया है": वे लोग जिन्होंने पार कर लिया है, श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है, सीमा पार कर ली है, पार कर ली है और विजय प्राप्त कर ली है।

“उनकी राहत कैसी है?”: “उनकी मुक्ति कैसी है, किस प्रकार की व्यवस्था और किस प्रकार का विरोधाभास वांछनीय है?” उन्होंने मुक्ति के बारे में पूछा।

58 · [धन्य पुरुष: “तोदेय्या!”] जो अपनी इच्छाओं में नहीं रहते, जिनका प्यासा प्रेम नहीं मिलता, और जो संदेह से गुजर चुके हैं, उनके लिए आगे कोई राहत नहीं है।

“जिस किसी की भी इच्छाएँ उस पर विजय प्राप्त कर ली गई हों”: मनुष्य, अरहंत और वे लोग जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर दिया हो। “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: वस्तुओं की इच्छा और अपवित्रता की इच्छा... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें) “जिस किसी की कोई इच्छा न हो, उसके लिए”: ....

“[भगवान: 'तोदेय्या!']”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“उसके लिए प्यास नहीं है”: “प्यास,” रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, धम्म के लिए। “उसके लिए,” अरहंत के लिए, जिसने अपने सारे कष्ट समाप्त कर दिए हैं। “उसके लिए प्यास का पता नहीं चलता”: उसके लिए प्यास का अस्तित्व नहीं है, वह ज्ञात नहीं है, वह पाई नहीं जाती, वह समाप्त हो गई है, शांत हो गई है, रुक गई है, उत्पन्न नहीं हो सकती, वह ज्ञान की अग्नि से भस्म हो गई है।

“और जिसने संशय पार कर लिए हैं”: संशय को संदेह कहा जाता है: कष्टों पर संशय... (उद्धृत)। “जो...” का अर्थ है कोई भी अरहंत जिसने अपने कष्टों को समाप्त कर लिया हो। “संशय पार कर लिए गए हैं”: पार कर लिए गए हैं, परे चले गए हैं, पार कर लिए गए हैं, विजय प्राप्त कर ली गई है।

“उसके लिए अब और राहत नहीं है”: उसके लिए अब और मुक्ति नहीं है। जिसे मुक्त होना था, वह मुक्त हो चुका है, और उसके लिए जो मुक्ति होनी थी, वह हो चुकी है।

59 · (तोदेय्या:) क्या वह इच्छा से मुक्त है या इच्छाशील? क्या वह बुद्धिमान है या बुद्धिमान जैसा (बुद्धिमान स्वभाव वाला)? शाक्यमुनि! ताकि मैं सर्वदर्शी मुनि को जान सकूँ, कृपया मुझे यह समझाएँ।

“इच्छाओं से मुक्त व्यक्ति या इच्छाओं से ग्रस्त व्यक्ति”: क्या वह ऐसा व्यक्ति है जिसे कोई इच्छा नहीं है या ऐसा व्यक्ति जो प्यासा है? क्या वह रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शों, धर्मों, घर, समूह (सभा), निवास, लाभ, प्रसिद्धि, प्रशंसा, सुख, वस्त्र, भोजन (छोड़ा गया), भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमानकाल, जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया और जाना जाता है, धर्म, क्या वह चाहता है, स्वीकार करता है, आशा करता है और प्रार्थना करता है?

“क्या वह बुद्धिमान व्यक्ति है या बुद्धिमान स्वभाव का है?”: “क्या वह बुद्धिमान व्यक्ति है?” क्या वह बुद्धिमान, प्रबुद्ध और विशिष्ट व्यक्ति है? या तो वह अष्टम ज्ञान का प्रयोग करता है, या पाँच देवताओं से ज्ञान प्राप्त करता है, या दुष्ट ज्ञान का प्रयोग करता है, या लालसा की रचना करता है, या दृष्टि की रचना करता है। वह निर्माण करता है, उत्पन्न करता है और अस्तित्व में आता है।

“शाक्यमुनि! जिसके अनुसार मैं मुनि को जान सकूँ”: “शाक्यमुनि,” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “शाक्यमुनि! ताकि मैं इसके अनुसार मुनि को जान सकूँ”: शाक्यमुनि! जिसके अनुसार मैं मुनि को जान सकूँ, निश्चित रूप से जान सकूँ और उसमें प्रवेश कर सकूँ।

“हे सर्वदृष्टि, कृपया मुझे यह समझाएँ”: “वह,” जो कुछ भी मैं पूछता हूँ; जो कुछ भी मैं विनती करता हूँ; जिसके बारे में मैं पूछताछ करता हूँ, जो कुछ भी मुझे स्पष्ट करता है। “कृपया समझाएँ,” कृपया समझाएँ, कृपया सिखाएँ, कृपया सूचित करें, कृपया स्थापित करें, कृपया उजागर करें, कृपया विश्लेषण करें, कृपया स्पष्ट करें। “सर्वदृष्टि,” सर्वदृष्टि को सर्वज्ञानी बुद्धि की अवस्था कहा जाता है... (निरस्त, पिछले अनुभाग देखें)।

60 · (धन्य पुरुष:) वह है जो इच्छा से दूर है, न कि वह जो इच्छा रखता है; वह है जो ज्ञान से परिपूर्ण है, न कि केवल वह जो बुद्धिमान है। तोदेय्या! मुनि को इस प्रकार जानो; वह जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो इच्छा और अस्तित्व के प्रति आसक्ति से मुक्त है।

“वह इच्छा से दूर है, इच्छा करने वाला नहीं”: वह इच्छा करने वाला नहीं है, वह सभी रूपों, सभी ध्वनियों, सभी ज्ञानयोग्य चीजों की इच्छा नहीं करता। वह आशा नहीं करता, स्वीकार नहीं करता, इच्छा नहीं करता और प्रार्थना नहीं करता।

“वह बुद्धिमान तो है, पर बुद्धिमान स्वभाव का नहीं”: “वह बुद्धिमान है,” वह एक बुद्धिमान, प्रबुद्ध, और विशिष्ट व्यक्ति है। “बुद्धिमान स्वभाव का नहीं,” आठ स्तरों की बुद्धि से, या पाँच देवताओं की बुद्धि से, या दुष्ट बुद्धि से, वह प्यासी रचना का निर्माण नहीं करता, या ऐसी रचना को देखता है जिसका वह निर्माण नहीं करता, न ही उसे उत्पन्न करता है, न ही उसे जन्म देता है।

“तोदेय्या! मुनि को इस प्रकार जानो”: “मुनि,” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “तोदेय्या! मुनि को इस प्रकार जानो”: तोदेय्या! मुनि को इस प्रकार जानो, मानो, समझो और उनके माध्यम से आगे बढ़ो।

“स्वामित्व का अभाव, इच्छा और अस्तित्व के प्रति आसक्ति का अभाव”: “स्वामित्व का अभाव,” लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, अज्ञान का अभाव, आलस्य का अभाव, दृष्टि का अभाव, अपवित्रता का अभाव, बुरे कर्मों का अभाव। जो व्यक्ति विमुख हो गया है, शांत हो गया है, स्थिर हो गया है, उठ नहीं सकता है, और ज्ञान की अग्नि से झुलस गया है, उसे अनासक्त कहा जाता है। “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ हैं: ...(विलंबित, पिछले खंड देखें)। “अस्तित्व,” दो प्रकार के हैं: कर्म और पुनर्जन्म... (विलंबित, पिछले खंड देखें)।

“स्वामित्व का अभाव, और इच्छा या अस्तित्व में कोई आसक्ति नहीं”: जिस व्यक्ति के पास कोई संपत्ति नहीं होती, वह अनासक्त, निर्बाध, अवरोधरहित, विरक्त, पहले से ही मुक्त, बंधन से मुक्त होता है; वह एक अप्रतिबंधित हृदय के साथ निवास करता है।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.10

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

10. कप्पा

61 · [आदरणीय कप्पा ने इस प्रकार कहा:] उन लोगों के लिए जो प्रवाह में खड़े हैं, जब बाढ़ का भयानक आतंक उत्पन्न हुआ है, उन लोगों के लिए जो बुढ़ापे और मृत्यु से पीड़ित हैं, कृपया मुझे एक द्वीप के बारे में बताएं, प्रिय महोदय! कृपया मुझे उस द्वीप के बारे में बताएं, ताकि आगे चलकर उसका अस्तित्व ही न रहे।

"प्रवाह में खड़े रहने वाले": इस प्रवाह को पुनर्जन्म कहते हैं: आना, जाना, आना-जाना, मृत्यु की ओर जाना, हर प्रकार की मृत्यु, पुनर्जन्म, जन्म, विघटन, जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु। पुनर्जन्म का आरंभ ज्ञात नहीं है [SN.15.1], और अंत भी ज्ञात नहीं है। संसार के ठीक मध्य में, चेतन प्राणी स्थिर, रुके हुए, अटके हुए, प्रवेशित, दूषित और मुड़े हुए हैं।

पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु अज्ञात कैसे है? "केवल इसी प्रकार का जन्म चक्र घूमता है, और फिर नहीं घूमता।" ऐसा नहीं है, इसलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। "केवल ऐसे सौ जन्म घूमे, लेकिन उसके बाद नहीं।" ...(अधूरा)। "केवल ऐसे हज़ार जन्म घूमे...।" केवल ये लाखों जन्म...।" "केवल ये दसियों हज़ार जन्म...।" "केवल ऐसे करोड़ों जन्म...।" वास्तव में ऐसा नहीं है, इसलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। "इस प्रकार के हज़ारों जन्म घूमे, लेकिन उसके बाद नहीं घूमे...।" "केवल ऐसे दसियों हज़ार जन्म घूमते हैं, लेकिन उसके बाद नहीं।" वास्तव में ऐसा भी नहीं है, इसलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है।

"केवल इसी एक वर्ष में, यह चक्र घूमता है, और फिर नहीं घूमता।" वास्तव में ऐसा भी नहीं है, इसलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। "केवल यही सौ वर्षों का चक्र... केवल यही सहस्राब्दी चक्र शुरू हुआ... केवल यही एक लाख वर्ष... केवल ये दसियों हज़ार वर्ष... केवल ऐसा ही करोड़ों वर्षों का चक्र... केवल ऐसा ही हज़ारों वर्षों का चक्र... केवल ये दसियों हज़ार वर्ष घूमे हैं, और फिर नहीं घूमेंगे।" वास्तव में ऐसा भी नहीं है, इसलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है।

"केवल इसी प्रकार की विपत्ति का चक्र चलता रहा, उसके बाद नहीं।" यह बात बिल्कुल गलत है, इसीलिए "पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है।" "केवल इसी प्रकार की सौ विपत्तियाँ... केवल ऐसी हज़ार विपत्तियाँ... केवल सौ-हज़ार विपत्तियों का चक्र... केवल इसी प्रकार की दसियों हज़ार विपत्तियाँ... केवल दसियों हज़ार विपत्तियाँ... केवल दसियों हज़ार विपत्तियाँ ही चलती रहीं, और फिर नहीं चलेंगी।" यह बात भी बिल्कुल गलत है, इसीलिए पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं! संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान और व्यथा से घिरे प्राणियों के चक्र और पुनर्जन्म का आरंभ बिंदु अज्ञात है। ...भिक्षुओं! तुमने इतने लंबे समय तक कष्ट सहा है, इतना बोझ सहा है, इतना दुर्भाग्य झेला है, और इतने श्मशान घाट देखे हैं, भिक्षुओं! अब तो सब कुछ से असंतुष्ट होना ही काफी है! बंधन तोड़ना ही काफी है! राहत पाना ही काफी है!" [संख्या 15.1] यह भी पुनर्जन्म के आरंभ बिंदु पर है।

पुनर्जन्म का अंत अज्ञात कैसे है? "केवल यही जन्म चक्र घूमेगा, और इसके बाद नहीं घूमेगा।" यह वास्तव में सही नहीं है, यही "पुनर्जन्म का अंत अज्ञात है" का अर्थ है। "केवल ऐसे सौ जन्म... केवल ऐसे हजार जन्म... केवल ऐसे एक लाख जन्म... केवल ऐसे एक हजार जन्म... केवल ऐसे दसियों हजार जन्म... केवल ऐसा एक वर्ष... केवल ऐसे सौ वर्ष... केवल ऐसा एक सहस्राब्दी चक्र... केवल ऐसे एक लाख वर्ष... केवल ऐसे एक हजार वर्ष... केवल ये लाखों वर्ष... केवल ऐसे हजारों वर्ष... केवल ऐसे लाखों वर्ष... केवल ऐसी एक प्रलय... केवल ऐसी सौ विपत्तियाँ... केवल ऐसी एक हजार विपत्तियाँ... केवल ऐसे एक लाख कष्ट... केवल ऐसे दसियों हजार कष्ट घूमेंगे, और इसके बाद नहीं घूमेंगे।" यह वास्तव में सही नहीं है, यही "पुनर्जन्म का अंत अज्ञात है" का अर्थ है। इस प्रकार, संसार का आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है, और संसार का अंत भी ज्ञात नहीं है। संसार के ठीक मध्य में ही चेतन प्राणी विद्यमान हैं, रुके हुए हैं, अटके हुए हैं, प्रवेश कर चुके हैं, कलंकित हो चुके हैं और उनका हृदय उनकी ओर मुड़ गया है।

"जब बाढ़ का भयानक आतंक उत्पन्न हो रहा है": जब इच्छा का प्रकटीकरण, अस्तित्व का प्रकटीकरण, दृष्टि का प्रकटीकरण और अज्ञान का प्रकटीकरण उत्पन्न हो रहा है, पैदा हो रहा है, जन्म ले रहा है, उत्पन्न हो रहा है और प्रस्तुत हो रहा है; वह भयानक आतंक, जीवन का आतंक, बुढ़ापे का आतंक, बीमारी का आतंक और मृत्यु का आतंक।

“जो बुढ़ापे और मृत्यु से पीड़ित हैं”: वे जो बुढ़ापे से घिरे हुए हैं, उससे पीड़ित हैं, उससे जुड़ गए हैं और उसके वश में हैं; वे जो मृत्यु से घिरे हुए हैं, उससे पीड़ित हैं, उसके वश में हैं और उसके वश में हैं; वे जो जन्म लेते हैं, बुढ़ापे की चपेट में आते हैं, बीमारी से हार जाते हैं, मृत्यु से आहत होते हैं, जिनके पास कोई आश्रय नहीं है, जिनके पास कोई शरण नहीं है।

“प्रिय महोदय! कृपया मुझे द्वीप के बारे में बताइए”: कृपया बताइए ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)..., द्वीप, आश्रय, शरणस्थल, शरण का स्थान। “प्रिय महोदय,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“मुझे द्वीप के बारे में बताओ”: “आप,” उसने हे भगवान को पुकारा। “द्वीप के बारे में बताइए,” कृपया घोषणा कीजिए, कृपया समझाइए, ...(अस्पष्ट)..., द्वीप, वह स्थान जहाँ जाना है, शरणस्थल, आश्रय।

“इसके अनुसार, आगे और कुछ नहीं होगा”: इसके अनुसार, दुख यहीं समाप्त हो सकता है, शांत हो सकता है, अस्तित्वहीन हो सकता है, रुक सकता है; पुनर्जन्म का दुख नहीं होता; इच्छा के जगत में, या भौतिक जगत में, या अलौकिक जगत में, या अस्तित्व की इच्छा में, या भौतिक अस्तित्व में, या कामुक अस्तित्व में, या अस्तित्व के विचार में, या अकल्पनीय में, या चारों स्कंधों में, या पाँच स्कंधों में, या आगे के हित में, या पुनर्जन्म में, या अवतार में, या अस्तित्व में, या पुनर्जन्म में, या चक्र में; इसे उत्पन्न न होने दें, इसे जन्म न लेने दें, यहीं पर यह नष्ट हो सकता है, शांत हो सकता है, अस्तित्वहीन हो सकता है, रुक सकता है।

62 · [भगवान: “कप्पा!”] जो लोग बाढ़ के भयानक प्रकोप के समय प्रवाह में खड़े हैं, बुढ़ापे और मृत्यु से पीड़ित लोगों के लिए, कप्पा! मैं तुम्हें द्वीप के बारे में बताऊंगा।

“प्रवाह में खड़े लोग”: ....

पुनर्जन्म का आरंभिक बिंदु अज्ञात क्यों है?...

“[भगवान: 'कप्पा!']”: ....

“जब भयावह सच्चाई सामने आ रही हो”: ....

बुढ़ापे और मृत्यु से पीड़ित लोगों के लिए: ....

“कप्पा! मैं तुम्हें द्वीप के बारे में बताता हूँ”: मैं कहता हूँ, मैं समझाता हूँ, ..., द्वीप, आश्रय, शरण, जाने की जगह।

63 · कोई अधिकार नहीं, कोई आसक्ति नहीं: यह एक ऐसा द्वीप है जिसके आगे कुछ भी नहीं है, इस तरह, मैं कहता हूँ कि यह निर्वाण है: जन्म और बुढ़ापे का अंत।

“कोई आलिंगन नहीं, कोई आसक्ति नहीं”: “कुछ भी,” लोभ एक वस्तु है, घृणा..., अज्ञान..., अहंकार, दृष्टि, अपवित्रता, बुराई एक वस्तु है। किसी भी चीज का त्याग, किसी भी चीज का अंत, किसी भी चीज से अलगाव, निर्जीव, निर्वाण। “कोई आलिंगन नहीं,” आलिंगन को लालसा कहते हैं, जो लोभ है...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। आलिंगन का त्याग, आलिंगन का अंत, आलिंगन से अलगाव, निर्जीव, निर्वाण।

“यह एक ऐसा द्वीप है जहाँ आगे कोई प्रगति नहीं है”: यह एक द्वीप है, एक शरणस्थल है, एक आश्रय है, एक ऐसी जगह है जहाँ जाया जा सकता है, एक शरणस्थल है। “और आगे नहीं,” दूसरी ओर कोई दूसरा द्वीप नहीं है। इस समय, इस प्रकार का यह द्वीप ही पहला है, सबसे अच्छा है, सबसे सफल है, शीर्ष पर है।

“इस प्रकार, मैं कहता हूँ कि यही निर्वाण है”: बुनाई को लालसा कहा जाता है, यह लोभ है, ...अशुभ जड़। बुनाई कटी, बुनाई शांत हुई, बुनाई रुकी, बुनाई समाप्त हुई, निर्जीव, और निर्वाण। “इस प्रकार,” वाक्यों का सिलसिला जारी है, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “मैंने कहा,” मैं कहता हूँ, ...

“जन्म और वृद्धावस्था समाप्त हो गई है”: जन्म और वृद्धावस्था को समर्पित कर दिया गया है, शांत कर दिया गया है, रोक दिया गया है, समाप्त कर दिया गया है, निर्जीव है, और निर्वाण है।

64 · यह जानने के बाद, सभी सचेतन लोग, जो धम्म को देखते हैं, पूर्णतः शांत हो जाते हैं। वे मारा के वश में नहीं होते, वे मारा के अनुयायी नहीं होते।

“यह जानने के बाद, वे सभी जो सचेत हैं”: “यह,” निर्जीव, निर्वाण, जो सभी कर्मों का अंत है, सभी आसक्तियों का अंत है, प्यास, लोभ, और निर्वाण का अंत है। “इसके बाद”... “जो...”... “वे जो सचेत हैं”... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

“वह व्यक्ति जो धम्म को देखता है, वह व्यक्ति जो पूर्णतः शांत है”: “वह जो धम्म को देखता है,” .... “पूर्णतः शांत,” ....

“वे मारा के वश में नहीं हैं”: “मारा,” यानी राक्षस का संबंधी, अंधकार का स्वामी, वह जो अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है, राक्षस और लापरवाह (पमत्तबंधु) का मित्र। “वे शैतान के वश में नहीं आते”: वे न तो शैतान के वश में आते हैं और न ही शैतान उन्हें अपने वश में करता है। शैतान, शैतान का गुट, शैतान का काँटा, शैतान का चारा, शैतान का क्षेत्र, राक्षस का निवास स्थान, राक्षस की अवस्था और राक्षस का बंधन, इन सबको वे पराजित करते हैं, उन पर हावी होते हैं, उनका अंत करते हैं, उन्हें कुचलते हैं, उन्हें गति देते हैं, उन पर कार्य करते हैं, उन्हें आगे बढ़ाते हैं, उनकी रक्षा करते हैं और उनसे बचते हैं।

“वे मारा के अनुयायी नहीं हैं”: वे शैतान के सेवक और परिचारक नहीं होंगे, बल्कि वे भगवान बुद्ध के सेवक और परिचारक होंगे।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.11

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

11. जटुकनṇī
65 · [इस आदरणीय जटुकन्नि:] इच्छा की इच्छा न रखने वाले वीरों के बारे में सुनकर, मैं उन लोगों से पूछने आया हूँ जो हिंसक धारा से गुज़र चुके हैं, इच्छा रहित लोगों से पूछने आया हूँ, हे जन्मजात नेत्र वाले, कृपया मुझे मौन की अवस्था बताएँ, हे भगवान, मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे यथावत बताएँ।

“मैंने एक ऐसे वीर के बारे में सुना है जिसे किसी इच्छा की इच्छा नहीं है”: इस प्रकार, भगवान बुद्ध, अरहंत बुद्ध, ने इसे सुनकर, समझकर, भेद करके यह माना कि “वीर” ही वीर है, “ऊर्जावान” वीर है, “सक्षम” वीर है, “पर्याप्त” वीर है, “वीर” वीर है, “जो भयभीत नहीं होते” वीर हैं, जो डर से कांपते नहीं हैं वे वीर हैं, जो भागते नहीं हैं वे वीर हैं, जिन्होंने भय का त्याग कर दिया है वे वीर हैं।

“सभी बुरे कर्मों से दूर रहकर, जीवन शक्ति से परिपूर्ण होकर, नरक की पीड़ाओं से पार पाकर, ऊर्जावान और परिश्रमी व्यक्ति; ऐसे व्यक्ति को ही नायक कहा जा सकता है।” [संख्या 3.6]

"जब मैंने उन वीरों के बारे में सुना जिन्हें इच्छा की कोई इच्छा नहीं होती": इच्छा दो प्रकार की होती है: ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए, वस्तुओं की इच्छा का ज्ञान है, अशुद्धता की इच्छा का त्याग है; वस्तुओं की इच्छा के ज्ञान और अशुद्धता की इच्छा के त्याग की अवस्था में (भगवान बुद्ध इच्छा से इच्छा नहीं करते; इच्छा से प्रार्थना नहीं करते; इच्छा से कुछ नहीं चाहते; इच्छा से कुछ नहीं मांगते)। जो कोई इच्छा से इच्छा करता है; इच्छा से प्रार्थना करता है; इच्छा से आशा करता है; इच्छा से कुछ मांगता है, वे ही इच्छा से इच्छा करने वाले, लालच से लालच करने वाले और इच्छाओं के बारे में विचार करने वाले हैं। भगवान बुद्ध इच्छाओं की इच्छा नहीं करते; इच्छाओं को नहीं चाहते; इच्छाओं की आशा नहीं करते; इच्छाओं को नहीं मांगते। इसलिए, बुद्ध के अनुसार, वे लोग जो इच्छाहीन हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं का त्याग कर दिया है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को समाप्त कर दिया है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं से मुक्ति पा ली है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को त्याग दिया है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को काट दिया है, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिनके पास लोभ नहीं है, जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, जिन्होंने लोभ को समाप्त कर दिया है, जो लोभ से मुक्त हो गए हैं, जिन्होंने लोभ को काट दिया है, जिन्होंने लोभ को त्याग दिया है, जो भूखे नहीं हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को बुझा दिया है, जो शांत हो गए हैं, जो खुश रहते हैं, और जो ब्राह्मणों की तरह जीवन जीते हैं।

"[इस आदरणीय जटुकन्नी की तरह]": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"उन निर्मम लोगों से पूछने आओ जिन्होंने तूफान पार कर लिया है": "जिन्होंने तूफान पार कर लिया है," जिन्होंने तूफान पार कर लिया है, जिन्होंने तूफान पर विजय प्राप्त कर ली है। "पूछना," पूछना, प्रश्न करना, पूछताछ करना, स्पष्ट करना। "उस व्यक्ति के पास आओ जिसकी कोई इच्छा नहीं है," उस व्यक्ति से पूछने के लिए जिसकी कोई इच्छा नहीं है, जिसने त्याग दिया है, और जिसने इच्छा का त्याग कर दिया है, जिन्हें बहिष्कृत कर दिया गया है, जिन्होंने अपनी इच्छाओं का त्याग कर दिया है, ...(छोड़ा गया), जिन्होंने लोभ का त्याग कर दिया है, ...(छोड़ा गया), हम आ गए हैं, हम पहुँच गए हैं, हम पूरी तरह पहुँच गए हैं, हम आपसे एक हो गए हैं।

"हे नेत्र, कृपया मौन की अवस्था के बारे में बताइए": "मौन" मौन के रूप में प्रकट होता है और मौन की अवस्था निर्जीव, निर्वाण है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत, निर्वाण। भगवान बुद्ध कहते हैं: "यह मौन की अवस्था है, यह विजय की अवस्था है, अर्थात्: सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, प्यास का अंत, भोग-विलास से मुक्ति, निर्वाण" [SN.48.50]। दूसरे पहलू में: जहाँ सभी धर्म मौन की अनुभूति, मौन के स्पर्श और मौन के साक्षी की ओर ले जाते हैं, ठीक उसी प्रकार ये चार ध्यान, चार धर्म, चार आधार, पाँच शक्तियाँ, पाँच ज्ञान के कारक और पवित्र मार्ग की आठ शाखाएँ हैं। इन्हें मौन की अवस्था कहा जाता है। कृपया बोलें, कृपया समझाएँ, ...(छोड़ा गया) मौन की अवस्था, शरण की अवस्था, आश्रय की अवस्था, भयहीनता की अवस्था, मृत्युहीनता की अवस्था, निर्जीवता की अवस्था। आँख को सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था कहा जाता है। बुद्ध और भगवान के लिए, आँख और विजय की अवस्था बोधि वृक्ष के नीचे एक ही समय में (क्रम से नहीं) उत्पन्न होती हैं, इसलिए बुद्ध सह-जन्मी आँख हैं।

"हे भगवान, कृपया मुझे सत्य बताइए": सत्य को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है...। "हे भगवान," ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)। "कृपया मुझे बताइए," ...।

66 · क्योंकि भगवान इच्छा पर विजय प्राप्त करने के बाद कार्य करते हैं, जैसे चमकता हुआ सूर्य पृथ्वी पर चमकता है, हे व्यापक ज्ञान वाले, हे मेरे जैसे कम बुद्धिमान व्यक्ति, कृपया धम्म की व्याख्या करें, ताकि मैं जान सकूँ कि जन्म और वृद्धावस्था का विच्छेद कहाँ है।

"क्योंकि भगवान इच्छा पर विजय प्राप्त करने के बाद कार्य करते हैं": "भगवान," .... "इच्छा," .... भगवान ने वस्तुओं की इच्छाओं को जानने के बाद, अपवित्रता की इच्छाओं का त्याग करने के बाद, उन्हें पराजित किया, समाप्त किया, उन पर हावी हुए, उन्हें कुचल दिया, वे चल रहे हैं, ठहर रहे हैं, कार्य कर रहे हैं, आगे बढ़ रहे हैं, रक्षा कर रहे हैं, जीवित हैं।

"चमकता हुआ सूर्य पृथ्वी पर प्रकाश डालता है": सूर्य (आदिको) को सूर्य (सूरियो) कहा जाता है। पृथ्वी (पथवी) को पृथ्वी (जगती) कहा जाता है। चमकता हुआ सूर्य तेजस्वी है, विजय दिलाता है, पराजित करता है, सर्वोपरि करता है, अंत करता है, पृथ्वी को गर्म करता है, आकाश के समस्त अंधकार को चीरता है, अंधकार का नाश करता है, प्रकाश प्रकट होने के बाद आकाश में, वायु में और शून्य में मार्ग पर विचरण करता है; इसी प्रकार, तेजस्वी ज्ञान, ज्ञान के तेजस्वी प्रकाश से परिपूर्ण है, समस्त कर्मों का नाश करता है, अज्ञान के अंधकार को नष्ट करता है, ज्ञान के प्रकाश को देखकर,

वस्तुओं की इच्छा को जानकर, अज्ञान की इच्छा का त्याग करके, विजय दिलाता है, पराजित करता है, सर्वोपरि करता है, अंत करता है, कुचलता है, विचरण करता है, ठहरता है, कर्म करता है, चलता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है।

"जो व्यापक रूप से बुद्धिमान है, वह कम बुद्धिमान के लिए": मैं कम बुद्धिमान, निम्न और हीन बुद्धि वाला हूँ; आप अधिक बुद्धिमान, उच्चतर, तेज और अंतर्दृष्टि वाले हैं। जैसे पृथ्वी को विशाल कहा जाता है, वैसे ही भगवान बुद्ध के पास भी पृथ्वी के समान विशाल और विस्तारित बुद्धि है।

"कृपया उस धम्म की व्याख्या कीजिए जिसे मैं जान सकूँ": "धम्म," .... कृपया व्याख्या कीजिए, कृपया सिखाइए.... "मैं जान सकता हूँ," मैं जान सकता हूँ, निश्चित रूप से जान सकता हूँ, गहराई से समझ सकता हूँ, सिद्ध कर सकता हूँ, पहुँच सकता हूँ और गवाही दे सकता हूँ।

"जन्म और वृद्धावस्था का त्याग कहाँ है?": जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग, समाप्ति, विच्छेद, विराम, निर्जीवता और निर्वाण का त्याग।

67 · [भगवान: "जातुकन्नि"] कृपया अपनी इच्छा की लालसा को संयमित करें, और इच्छा से वैराग्य को स्थिरता मानें, चाहे आप किसी भी चीज को अपनाएं या त्यागें, ये चीजें आप में न पाई जाएं।

"कृपया इच्छा की लालसा को नियंत्रित करें": "इच्छा," .... "लालसा," .... "कृपया इच्छा की लालसा को नियंत्रित करें": कृपया इच्छा के लोभ को नियंत्रित करें, कृपया उसे दूर भगाएँ, कृपया उसे जाने दें, कृपया उसे मिटा दें, कृपया उसका अस्तित्व समाप्त कर दें।

"Jatukaṇṇī": ....

"इसके बाद, इच्छा से विरक्ति को स्थिरता के रूप में देखें": "(इच्छा को त्यागना)," सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, अप्रतिवर्ती मार्ग, विरोधाभास रहित मार्ग, मार्ग और धम्म का मार्ग, इसका अर्थ है धम्म के मार्ग का अनुसरण करना, उपदेशों को पूरा करना, जड़ों की रक्षा करना, भोजन की सही मात्रा जानना, संयम, जागरूकता में निपुणता प्राप्त करना, सही ज्ञान के साथ, चार जागरूकता, चार सही परिश्रम, चार दिव्य आधार, पांच इंद्रियां, पांच शक्तियां, सात ज्ञान के कारक, आठ पवित्र मार्ग, निर्वाण और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग, ये स्थिरता, आश्रय, निर्भयता, अमरता, निर्जीवता हैं; देखने, तौलने, निर्णय करने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद।

"उठाना या अस्वीकार करना": "उठाया," थामे रहना, चिपके रहना, चिपके रहना, लिया जाना, लालसा के कारण माना जाना, देखना। "या अस्वीकार किया," या अस्वीकार किया गया जिसे अलग किया जाना चाहिए, जिसे त्याग दिया जाना चाहिए, जिसे दूर भगा दिया जाना चाहिए, जिसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए, जिसे अस्तित्वहीन कर दिया जाना चाहिए।

"कुछ भी न पाना": "कुछ भी," लालच एक चीज है, नफरत एक चीज है, अज्ञानता...(छोड़ दिया गया); इनमें से कोई भी चीज, न खोजी जाए, न खोजे जाने के लिए मजबूर किया जाए, न पूरी तरह से खोजी जाए, न खोजी जाए, कृपया त्याग दें, कृपया दूर भगा दें, कृपया अंत कर दें, कृपया इसे अस्तित्वहीन बना दें।

68 · इससे पहले जो कुछ भी हो, कृपया उसे मुरझाने दें; इसके बाद कुछ भी न रखें, यदि आप इसे बीच में नहीं रोकेंगे, तो आप एक मौन जीवन जिएंगे।

"जो कुछ भी पहले हुआ है, कृपया उसे नष्ट कर दें": अतीत में हुए प्रदूषण के कारण जो भी प्रदूषण हुआ है, कृपया उसे सुखा दें, कृपया उसे नष्ट कर दें, कृपया उसे बीज न बनने दें, कृपया उसे जाने दें, कृपया उसे दूर भगा दें, कृपया उसे समाप्त कर दें, कृपया उसे अस्तित्वहीन कर दें। इस प्रकार, जो कुछ भी पहले हुआ है, कृपया उसे नष्ट कर दें। या, अतीत में किए गए कोई भी कर्म जो परिपक्व नहीं हुए और फल नहीं दिए, कृपया उन्हें नष्ट कर दें, मैं आपसे उन्हें नष्ट करने का अनुरोध करता हूँ, ...उन्हें अस्तित्वहीन कर दें।

“कृपया इसके बाद कुछ भी न करें”: इसके बाद को भविष्य कहा जाता है। भविष्य में जो कुछ भी उत्पन्न हो सकता है, चाहे वह लालच हो, घृणा हो, भ्रम हो, अहंकार हो, धारणा हो, प्रदूषण हो, बुरे कर्म हों, इनमें से कुछ भी न हो, न उत्पन्न करें, न पैदा करें, न जन्म दें, न ही उत्पन्न होने दें, कृपया त्याग दें, कृपया दूर भगा दें, कृपया समाप्त कर दें, कृपया इसे अस्तित्वहीन कर दें।

“यदि तुम मध्य में स्थित को धारण नहीं कर सकते”: मध्य में स्थित को वर्तमान रूप, भावना, विचार, क्रिया और चेतना कहा जाता है। वर्तमान क्रियाओं के संबंध में, तुम उन्हें लालसा, दृष्टि, प्यास, लोभ, आसक्ति, प्रसन्नता, स्वागत आदि के कारण धारण नहीं कर पाओगे; तुम उन्हें त्याग दोगे, दूर भगा दोगे, समाप्त कर दोगे और उन्हें अस्तित्वहीन बना दोगे।

“तुम मौन जीवन जिओगे”: लोभ की मौन अवस्था का अर्थ है कि तुम एक मौन जीवन जिओगे, एक अविचलित… (छोड़ा गया) सभी अस्वस्थ कृत्रिम चीजें, मौन अवस्थाएँ, शांत अवस्थाएँ, मृत अवस्था, बुझी हुई अवस्था, अब न जलने वाली अवस्था, ठंडी अवस्था, बीती हुई अवस्था, समाप्त अवस्था मौन, शांत, बुझी हुई, ठंडी, रुकी हुई अवस्था है; तुम जीते हो, कार्य करते हो, आगे बढ़ते हो, रक्षा करते हो और जीवित रहते हो।

69 · हे ब्राह्मण, जो हर रूप में लोभ से मुक्त हैं, उन्हें मृत्यु पर नियंत्रण पाने के लिए कोई कष्ट नहीं होता।

हे ब्राह्मण, सभी रूपों और नामों में! उन लोगों के लिए जो लोभ से मुक्त हैं”: “सब कुछ,” …. “नाम,” चार निराकार स्कंध। “रूप,” चार महा तत्व और उन चार महा तत्वों से उत्पन्न कोई भी रूप। तृष्णा को तृष्णा कहा जाता है, यह लोभ है, …. हे ब्राह्मण, सभी रूपों और नामों में! उन लोगों के लिए जिनमें लोभ नहीं है”: सभी रूपों और नामों में, उन लोगों के लिए जो लोभ का त्याग करते हैं, जिनमें लोभ नहीं है, जो लोभ को छोड़ देते हैं, जो लोभ से मुक्त हैं, और जो लोभ का त्याग करते हैं, लोभ को त्याग देते हैं, लोभ को काट देते हैं, लोभ से मुक्त हो जाते हैं।

“इस व्यक्ति के लिए, कष्ट प्रकट नहीं होते”: “कष्ट,” चार प्रकार के कष्ट होते हैं: इच्छा के कष्ट, अस्तित्व के कष्ट, दृष्टि (दृष्टिकोण) के कष्ट और अज्ञान के कष्ट। “इस व्यक्ति के लिए,” अरहंत, वे जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर दिया है। “अपरिचित,” ये कष्ट नहीं होते, अस्तित्वहीन होते हैं, अज्ञात होते हैं, पाए नहीं जाते, समाप्त हो जाते हैं, विच्छेदित हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं, रुक जाते हैं, और ज्ञान की अग्नि से भस्म हो जाते हैं।

“जिसके द्वारा वह मृत्यु के राजा के वश में आ जाएगा”: वे विपत्तियाँ जो उसे दानव राजा के वश में या मृत्यु के वश में ले जाएँगी, वे दानव गुट के वश में आ जाएँगी; वे विपत्तियाँ हैं ही नहीं, अस्तित्वहीन हैं, उसके द्वारा नियंत्रित नहीं हैं, ज्ञात नहीं हैं, खोजी नहीं जा सकतीं, विच्छेदित हैं, शांत हैं, रुकी हुई हैं, उत्पन्न नहीं हो सकतीं, ज्ञान की अग्नि से भस्म हो जाती हैं।

इन छंदों के अंत में… “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.12

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

12. भद्रावुधा

70 · [आदरणीय भद्रावुधा ने इस प्रकार कहा:] जो परिवार का त्याग करते हैं, जो प्यास बुझाते हैं, जो विचलित नहीं होते, जो आनंद का त्याग करते हैं, जो बाढ़ से बच जाते हैं, जो मुक्त होते हैं, जिन्होंने निर्माण का त्याग कर दिया है, जो अत्यंत बुद्धिमान हैं, मैं उनसे विनती करता हूँ; नाग से सुनकर वे यहाँ से चले जाएँगे।

“जो परिवार का त्याग करते हैं, वे प्यास बुझाते हैं और विचलित नहीं होते”: “परिवार का त्याग करो,” समस्त इच्छाएँ, लोभ, आनंद, प्यास, आसक्ति और भौतिक जगत से लगाव, कष्टों का वृत्तांत; जो बुद्ध और भगवान की तरह इन सब से मुक्त हो गए हैं, उनकी जड़ें कट गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है। अतः बुद्ध वे हैं जिन्होंने अपने परिवार का त्याग किया है। भावना के क्षेत्र में... (विलुप्त) चिंतन के क्षेत्र में..., कर्म के क्षेत्र में..., समस्त इच्छाएँ, लोभ, आनंद, प्यास, आसक्ति, हृदय की आसक्ति, चेतना के क्षेत्र में कष्ट, अंतर्निहित वृत्तांत, बुद्ध और भगवान के लिए, कट गए हैं, और जड़ें कट गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है। अतः बुद्ध एक बेघर व्यक्ति हैं।

“प्यास बुझाओ,” “प्यास” ....(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। बुद्ध और भगवान के लिए, तृष्णा का नाश हो चुका है, ...और ज्ञान की अग्नि से जलकर भस्म हो गई है, इसलिए बुद्ध ही तृष्णा को बुझाने वाले हैं। “अविचलित”: तृष्णा को तृष्णा कहा जाता है, जो लोभ की जड़ है, ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। बुद्ध और भगवान के लिए तृष्णा और प्यास का नाश हो चुका है, और उनकी जड़ें कट चुकी हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन और निर्जीव हो जाता है। इसलिए, बुद्ध अविचलित हैं। तृष्णा को अविचलित अवस्था के रूप में त्यागने के संबंध में, भगवान कुछ प्राप्त करने पर नहीं कांपते; कुछ न प्राप्त करने पर नहीं कांपते; प्रतिष्ठा होने पर नहीं कांपते; प्रतिष्ठा न होने पर नहीं कांपते; प्रशंसा मिलने पर नहीं कांपते; फटकार मिलने पर नहीं कांपते; प्रसन्न होने पर नहीं कांपते; दुःख की स्थिति में भी वह न तो कांपता है, न हिलता है, न थरथराता है; इसलिए बुद्ध ही वह हैं जो विचलित नहीं होते।

“[इस आदरणीय भद्रावुधा की तरह]”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जो आनंद का त्याग करते हैं, जो बाढ़ से बच जाते हैं, और जो मुक्त हो जाते हैं”: सुख को तृप्ति कहा जाता है, जो लोभ है, ...(अंशित)। बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए वह आनंद और प्यासी प्रेम कट गया है, और उसकी जड़ें कट गई हैं...; इसलिए, बुद्ध वे हैं जिन्होंने आनंद का त्याग किया है। अत्यधिक उग्र (तूफानी) लोग, जिन्होंने अस्तित्व की उग्र धाराओं को पार किया है, जिन्होंने दृष्टि की उग्र धाराओं को पार किया है, जिन्होंने अज्ञान की उग्र धाराओं को पार किया है, सभी चक्रों को पार कर लिया है, पार कर लिया है, पार कर लिया है, विजय प्राप्त कर ली है, वे ही हैं जो उस अवस्था में उतरे हैं, जिन्होंने अभ्यास किया है...। “मुक्त” भगवान बुद्ध का हृदय पहले से ही लोभ से मुक्त है, लोभ से, क्रोध से, अज्ञान से, सभी अस्वास्थ्यकर रचनाओं से मुक्त है...।

“हे परम बुद्धिमान, निर्माण का त्याग करो,” मैं विनती करता हूँ: “निर्माण” के दो निर्माण हैं: इच्छा का निर्माण और दृष्टि का निर्माण... यह इच्छा का निर्माण है... यह दृष्टि का निर्माण है... बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए, प्यास का निर्माण कट गया है, दृष्टि का निर्माण कट गया है...; इसलिए बुद्ध निर्माण का त्याग करने वाले हैं। “मैं विनती करना चाहता हूँ,” मैं विनती करना चाहता हूँ, मैं निवेदन करना चाहता हूँ, मैं निवेदन करना चाहता हूँ, मैं स्वीकार करना चाहता हूँ, मैं आशा करना चाहता हूँ, मैं आकांक्षा करना चाहता हूँ, मैं पूछना चाहता हूँ, मैं प्रार्थना करना चाहता हूँ। परम ज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं... भगवान बुद्ध पहुँचते हैं...; इसलिए, बुद्ध एक परम बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

“वे नाग (महान प्राणी, या हाथी) से सुनकर यहाँ से चले जाएँगे”: “महान प्राणी” नाग है। भगवान “अपराध नहीं करते” महान प्राणी हैं; “नहीं जाते” महान प्राणी हैं; “नहीं आते” महान प्राणी हैं... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “महान प्राणी से सुनकर वे यहाँ से चले जाएँगे”: आपके वचन, बोलने का तरीका, शिक्षाएँ, व्याख्याएँ, नसीहतें, सुनकर, समझकर, और विवेक से, वे यहाँ से चले जाएँगे, निकल पड़ेंगे, सभी दिशाओं में चलेंगे।

71 · हे वीर! सभी राष्ट्रों के लोग एकजुट हुए हैं। वे आपके वचनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृपया उन्हें अच्छी तरह समझाएँ, क्योंकि आप ही इन धर्मों के ज्ञाता हैं।

"सभी प्रकार के लोग राष्ट्रों से एकजुट हुए हैं": "सभी प्रकार के लोग," खटिया, ब्राह्मण, वेसा, सुड्डा, सामान्य लोग, भिक्षु, स्वर्ग और लोग। "राष्ट्र," अंग, मगध, कलिंग, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेतिया, वंश; और कुरु, पंचाला, मच्छ, सुरसेना, असाका, अवंती, योना, कम्बोज देश भी। "जुड़ गए हैं," जुड़ गए हैं, इकट्ठा होने आए हैं, इकट्ठा हो गए हैं।

“हीरो! आपके कथन का इंतजार रहेगा”: “हीरो,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“वीरों! वे आपके शब्दों की प्रतीक्षा कर रहे हैं”: आपके शब्द, बोलने का तरीका, शिक्षाएँ, व्याख्याएँ, नसीहतें। “वे प्रतीक्षा कर रहे हैं,” वे प्रतीक्षा कर रहे हैं, चाहते हैं, स्वीकार करते हैं, आशा करते हैं, विनती करते हैं।

“कृपया उन्हें अच्छी तरह समझाएँ”: “उनके लिए,” क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, स्वर्ग, जनता। “आप,” भगवान। “अच्छी तरह समझाएँ,” कृपया इसे अच्छी तरह समझाएँ; कृपया सिखाएँ, कृपया सूचित करें, कृपया स्थापित करें, कृपया उजागर करें, कृपया विश्लेषण करें, कृपया स्पष्ट करें।

क्योंकि इस प्रकार तुम इन धम्मों के ज्ञाता हो”: क्योंकि इस प्रकार तुम इन धम्मों के ज्ञाता, निर्णायक, स्पष्टकर्ता और बोधकर्ता हो।

72 · [भगवान: “भद्रावुधा”] उसे सभी आसक्ति और लालसा को कम करना चाहिए, ऊपर, नीचे और मध्य चारों दिशाओं में, वे संसार में जिस भी चीज़ से चिपके रहते हैं, उसी के कारण, मार सजीव प्राणियों का पीछा करता है।

“उसे सभी आसक्ति और लालसा को नियंत्रित करना चाहिए”: आसक्ति और लालसा को रूप की लालसा कहा जाता है... (उद्धृत)। “आसक्ति और लालसा,” इसे “आसक्ति और लालसा” क्यों कहा जाता है? उस प्यासी प्रेम से वे पकड़ते हैं, चिपके रहते हैं, थामे रहते हैं... और इसी कारण अपनी प्यास बुझाते हैं। “उसे सभी आसक्ति और लालसा को नियंत्रित करना चाहिए”: सभी आसक्ति और लालसा को नियंत्रित, निष्कासित, त्यागा, समाप्त, समाप्त और अस्तित्वहीन कर देना चाहिए।

“[भगवान: 'भद्रावुधा']”: ....

“ऊपरी, निचली और मध्य चार दिशाएँ”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“वे संसार में जिन चीजों से चिपके रहते हैं”: लोग जिन चीजों को पकड़ते हैं, जिनसे चिपके रहते हैं, जिन्हें थामे रहते हैं, जिन्हें ग्रहण करते हैं; भावनाएँ, विचार, क्रियाएँ और चेतना, आसक्ति। “संसार में,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“मारा, इसी कारण से सभी प्राणियों का अनुसरण करता है”: राक्षस, शैतान, चक्र का राक्षस, पुनर्जन्म का राक्षस, पुनर्जन्म का राक्षस और यह चक्र। “अनुसरण करो,” अनुसरण करो और अनुयायी बनो। “चेतन,” चेतन प्राणी, लोग, मनुष्य, विद्यार्थी ब्राह्मण, लोग, व्यक्ति, जन्म से चेतन, इंद्र से जन्म लेने वाले, मनु से जन्म लेने वाले।

73 · अतः यह समझते हुए, सजग भिक्षु को संसार में किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होना चाहिए, इस प्रकार आसक्त को देखकर, (यह जानते हुए) कि यह पीढ़ी मृत्यु के क्षेत्र में उलझी हुई है।

अतः जो समझते हैं उन्हें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए: अतः; कारण; वजह; स्थिति; कारण, जब इच्छाओं की इस परेशानी को देखते हैं। “समझदार,” वह जो जानता है, वह जो समझता है, वह जो दूसरों को जानता है, वह जो गहराई से समझता है: “सभी कर्म अनित्य हैं”..., वे जो जानते हैं, वे जो दूसरों को जानते हैं, वे जो निश्चित रूप से जानते हैं, वे जो अनुभव करते हैं। “आसक्ति नहीं रखनी चाहिए,” रूप से आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, पकड़ नहीं बनानी चाहिए, थाम नहीं लेना चाहिए, ...निकालना नहीं चाहिए, ...सोचना नहीं चाहिए, ...उसे पकड़ नहीं बनानी चाहिए, आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, थाम नहीं लेना चाहिए, आसक्त नहीं होना चाहिए।

“सार्वभौम में किसी भी चीज़ के प्रति सचेत भिक्षु”: “भिक्षु,” एक गुणी भिक्षु, या एक विद्वान भिक्षु। “सचेत,” चार प्रकार से सचेत रहना: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “कोई भी चीज़,” कोई भी रूप, भावना, विचार, व्यवहार, चेतना। “सभी लोकों में,” सभी दुख लोकों में, सभी मानव लोकों में, सभी स्वर्गीय लोकों में, सभी तुल्य लोकों में, सभी लोकों में।

“इस तरह अटके हुए पकड़ने वाले को देखना”: विभिन्न लोग पकड़ते हैं, थामते हैं, लेते हैं, चिपके रहते हैं, महसूस करते हैं... वे लेते हैं, पकड़ते हैं, थामते हैं, और इस चिपके रहने को अटका हुआ पकड़ने वाला कहा जाता है। “इस तरह,”... “देखना,” देखना, निहारना, चुपचाप देखना, अवलोकन करना।

“यह पीढ़ी मृत्यु के देवता के क्षेत्र में फंसी हुई है”: “पीढ़ी” सभी जीवित प्राणियों का पर्यायवाची है। मृत्यु के देवता के क्षेत्र को अशुद्धता, विभिन्न समुच्चयों और सृष्टियों के रूप में जाना जाता है। पीढ़ियाँ मृत्यु के देवता और राक्षसों के क्षेत्र में फंसी हुई हैं। जैसे कोई वस्तु दीवार पर लगे खंभे या हुक पर फंसी, फंसी, लटकी, जुड़ी, स्थिर या अवरुद्ध होती है, वैसे ही पीढ़ी मृत्यु और राक्षसों के क्षेत्र में फंसी, फंसी, लटकी, जुड़ी, स्थिर और अवरुद्ध है।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.13

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

13. उदय
74 · [आदरणीय उदय ने इस प्रकार कहा:] जो ध्यान करते हैं, जो धूल से मुक्त हैं, जो बैठे हैं, जिन्होंने कर्तव्य पूर्ण कर लिया है, जो कष्टों से मुक्त हैं, जो सभी धर्मों में पारंगत हो चुके हैं, और जो प्रश्न लेकर आते हैं, कृपया मुझे पूर्ण ज्ञान की मुक्ति और अज्ञान के नाश के बारे में बताएं।

“जिनका ध्यान है, जो धूल से मुक्त हैं, और जो बैठते हैं”: भगवान बुद्ध ध्यान करने वाले व्यक्ति हैं। प्रथम ध्यान में रहने वाला व्यक्ति ध्यान में रहने वाला है; ...द्वितीय ध्यान...; ...तृतीय ध्यान...; ...चौथा ध्यान...; ...तर्क और चिंतन [AN.8.63] ध्यान...; ...इच्छाहीन ध्यान...; ...आनंद के साथ चलने वाला ध्यान...; शून्यता में ध्यान; निर्मल अवस्था में ध्यान; अनिच्छा के साथ ध्यान; ध्यान जगत में, वह ध्यान करने वाला, ध्यान प्रेमी, एक ही अवस्था का अभ्यास करने वाला और अपने हितों को महत्व देने वाला व्यक्ति भी है। “धूल से मुक्त व्यक्ति,” लोभ धूल है, घृणा..., अज्ञान..., क्रोध..., आक्रोश... (छोड़ा गया); सभी अहितकर कर्म धूल हैं। बुद्ध और भगवान के लिए, यह धूल और जड़ें दोनों ही कट चुकी हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ भविष्य में अस्तित्वहीन हो जाता है। इसलिए, जीवित प्राणियों में, बुद्ध वे हैं जिन पर धूल नहीं है, जो धूल से मुक्त हैं, जिन्होंने धूल को त्याग दिया है, जिन्होंने धूल के बंधनों को छोड़ दिया है (जो धूल से मेल नहीं खाते), और जिन्होंने सभी धूल पर विजय प्राप्त कर ली है।

धूल के स्थान पर लोभ को मैल कहा जाता है, "धूल" लोभ का पर्यायवाची है, व्यक्ति अपनी आँखों से धूल को त्याग देता है, इसलिए विजेता वह व्यक्ति कहलाता है जिसने धूल को त्याग दिया। धूल के स्थान पर क्रोध को मैल कहा जाता है... धूल के स्थान पर अज्ञानता को मैल कहा जाता है...

“जो लोग बैठते हैं,” भगवान मगध के शिला मंदिर में बैठे हैं।

“जब मुनि पर्वत पर बैठे थे, जो दुखों के पार पहुँच चुके थे, तब उनके शिष्यों ने तीन ज्ञानों से युक्त, मृत्यु के नाश करने वालों की सेवा की।” [एसएन.8.10]

या, उस अवस्था में जहाँ सभी प्रयास बंद हो चुके हैं, भगवान ही वह हैं जो बैठे हैं, जो अवतरित हुए हैं, और जिन्होंने अभ्यास किया है... (उद्धृत) ...बिना अपने पुनर्जन्म के।

“[इस आदरणीय उदय की तरह]”: ... (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जिसने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है और जिसे कोई कष्ट नहीं है”: बुद्ध और भगवान के लिए, सभी दायित्व, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, सब समाप्त हो चुके हैं, जैसे जड़विहीन ताड़ का पेड़ अस्तित्वहीन हो जाता है, जो भविष्य में कभी जन्म नहीं लेगा। इसलिए, बुद्ध ही वह हैं जिन्होंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है।

“जिन्होंने ज्ञान का प्रसार नहीं किया, जिन्होंने धारा को काट दिया, जिन्होंने यह जान लिया कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, उन्हें प्रचंड गर्मी नहीं मिलती।” [सं.3.11,720]

“कर्म करने वाला वह होना चाहिए जिसे कोई कष्ट न हो”: चार प्रकार के कष्ट होते हैं: इच्छा के कष्ट, अस्तित्व के कष्ट, दृष्टि के कष्ट और अज्ञान के कष्ट। बुद्ध और भगवान बुद्ध ने इन कष्टों का त्याग कर दिया है, इनकी जड़ ही काट दी है... इसलिए बुद्ध कष्ट रहित व्यक्ति हैं।

“सभी धर्मों में तट पर पहुँचे”: भगवान बुद्ध वे हैं जो धर्मों के दूसरे तट पर पहुँच चुके हैं; ज्ञान के आधार पर...; त्याग के आधार पर...; अभ्यास के आधार पर...; गवाही के आधार पर...; दूसरे पक्ष पर: वे जो सभी धर्मों के दूसरे पक्ष पर पहुँच चुके हैं; वे जो सभी दुखदायी ज्ञान के दूसरे पक्ष पर पहुँच चुके हैं; सभी दूषित त्यागों के दूसरे पक्ष पर; चार पवित्र मार्गों के अभ्यास के दूसरे पक्ष पर; विनाश की गवाही के दूसरे पक्ष पर; जो दूसरे तट पर पहुँचने तक प्रतीक्षा करते हैं, वे पवित्र उपदेशों में मुक्त पहुँचे हुए (पहुँचे हुए) हैं, सर्वोच्च (पारमिता) पहुँचे हुए; पवित्र अभयारण्य में मुक्त पहुँचे हुए और सर्वोच्च पहुँचे हुए; पवित्र ज्ञान में मुक्त पहुँचे हुए, सर्वोच्च, जो अंत तक पहुँच चुके हैं; पवित्र मुक्ति में मुक्त और सर्वोच्च, जो दूसरे पक्ष पर पहुँच चुके हैं, जो परम (लक्ष्य) तक पहुँच चुके हैं; जो अंतिम अवस्था तक पहुँच चुके हैं, जो अंत तक पहुँच चुके हैं; सीमा तक पहुँच चुके हैं; ...बचाव तक पहुँच गया; आश्रय तक पहुँच गया; शरणस्थल तक पहुँच गया; भय रहित; भयहीन, मृत्यु रहित; अमरता प्राप्त कर चुका; निर्वाण प्राप्त कर चुका; वह एक ऐसी अवस्था में उतर चुका है, जिसने अभ्यास किया है... (छोड़ा गया)।

“जरूरतमंद सवाल लेकर आते हैं”: मैं जरूरत पड़ने पर सवाल लेकर आता हूँ, मैं सवाल पूछने के लिए आता हूँ, और मैं सवाल सुनने के लिए आता हूँ। या, सवाल पूछने वाले को जरूरत होती है, सवाल पूछने वाले को, सुनने वाले को, जरूरतमंद आते हैं, संपर्क करते हैं, मिलते हैं। या, जब मेरे पास कोई सवाल होता है, तो आप जवाब दे सकते हैं और आपके पास जवाब देने का पर्याप्त कारण है। मैं पूछता हूँ, “कृपया इस बोझ को उठाएँ।”

“कृपया हमें पूर्ण ज्ञान की मुक्ति के बारे में बताइए”: पूर्ण ज्ञान की मुक्ति को अरहंत अवस्था की मुक्ति कहा जाता है। कृपया अरहंत अवस्था की मुक्ति के बारे में बताइए, कृपया समझाइए, कृपया सिखाइए...

“अज्ञान का नाश”: अज्ञान का नाश, तोड़ना, त्याग, रुकना, ठहरना, निर्जीवता, निर्वाण।

75 · [भगवान: “उदय!”] इच्छा और दुःख दोनों को दूर करते हुए, और उन्मत्तता को दूर करते हुए, पश्चाताप को रोकते हुए।

“इच्छा की इच्छा का नाश करो”: “इच्छा,” जो इच्छा की इच्छा है, इच्छा का लोभ है, आनंद है..., प्यास है..., प्रेम है, लालसा है, उत्साह है, मोह है, आवेग है, उग्रता है, बंधन है, आसक्ति है, इच्छा का आवरण है। “इच्छा की इच्छा का त्याग”: इच्छा की इच्छा का त्याग, शांति, समाप्ति, रुकना, निर्जीवता और निर्वाण।

“[भगवान बुद्ध: 'उदय!']”: ....

दुःखों के संदर्भ में: दुःख हृदय की अवांछित पीड़ाएँ, हृदय का दर्द, हृदय से संबंधित अवांछित पीड़ाएँ और हृदय से संबंधित दर्द हैं। दुःख के संदर्भ में: इच्छा और दुःख, उनका निवारण, शांति, विराम, निर्जीवता और निर्वाण।

“और उनींदापन का निवारण”: “उन्सीदापन” असहनीय, अनुपयुक्त कार्य, कलंकित, एकांतप्रिय, सुस्त, उदास, उदासीन और अज्ञानी अवस्था है। “निवारण” का अर्थ है त्याग, परित्याग, समाप्ति, शांति, विराम, निर्जीवता और निर्वाण।

“पछतावे से बचाव”: “पछतावा,” हाथों की निष्क्रियता (बुराई की बेचैनी) पछतावा है, पैरों की निष्क्रियता भी पछतावा है, हाथों और पैरों की निष्क्रियता भी पछतावा है, अनुचित को उचित समझा जाता है, उचित को अनुचित समझा जाता है, समय पर किया गया कार्य असमय समझा जाता है, निर्दोष को पापी समझा जाता है, पापी को निर्दोष समझा जाता है, पछतावा इसी प्रकार का होता है; पछतावे का मार्ग, पछतावे की अवस्था, हृदय का पश्चाताप, मन का भ्रम, यही पछतावा कहलाता है। इसके अतिरिक्त, पछतावा, हृदय का पश्चाताप और मन का भ्रम दो कारकों से उत्पन्न होते हैं: किया गया कार्य और न किया गया कार्य। किए गए कार्य और न किए गए कार्य किस प्रकार पछतावा, हृदय का पश्चाताप और मन का भ्रम उत्पन्न करते हैं? “मैंने शरीर के बुरे कर्म किए, परन्तु शरीर के अच्छे कर्म मैंने नहीं किए।” उसे पछतावा हुआ, हृदय में पश्चाताप हुआ और मन में भ्रम हुआ; “मैंने वाणी के बुरे कर्म किए, ...(अधूरा)।” “मैंने बुरे कर्म किए...” “मैंने हत्या की, और मैंने हत्या से परहेज नहीं किया।”... “जो नहीं दिया गया उसे लेना..., न देना...; व्यभिचार..., व्यभिचार से परहेज...; झूठ बोलना..., फूट डालने वाली बातें करना..., द्वेषपूर्ण भाषा बोलना..., अपशब्द बोलना..., लोभ..., द्वेष..., गलत विचार रखना...” उसे पछतावा, हृदय में पश्चाताप और इरादों में भ्रम था। पछतावा, हृदय में पश्चाताप और भ्रम उन कार्यों से उत्पन्न होते हैं जो किए गए हैं और जो नहीं किए गए हैं।

या फिर, “मैं पूर्णतः त्यागी नहीं हूँ,” उसे पछतावा है, हृदय में पश्चाताप है और मन में भ्रम है; “मैं जड़ों का रक्षक नहीं हूँ,”... (उद्धृत) “मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जो (उचित मात्रा में) खाना जानता हो,”... “मैं संयमी नहीं हूँ,”... “मेरे पास सजगता और सही ज्ञान नहीं है,”... “चार सजगता, चार सकारात्मक परिश्रम, चार दिव्य आधार, पाँच शक्तियाँ, पाँच ज्ञान के तत्व, आठ पवित्र मार्ग मैंने अभ्यास नहीं किए हैं,”... “दुःख का मुझे ज्ञान नहीं है, संचय का मुझे न्याय नहीं है, मार्ग का मुझे अभ्यास नहीं है और विनाश का मैं साक्षी नहीं हूँ।”

“पछतावे की रोकथाम”: पछतावे की बाधाओं की रोकथाम, त्याग, समाप्ति, रुकना, शांत होना, निर्जीवता, निर्वाण।

76 · शांति और ध्यान से शुद्ध होकर, धम्म के चिंतन से प्रेरित होकर, मैं कहता हूँ कि यही पूर्ण ज्ञान की मुक्ति है, अज्ञान का नाश है। [एएन.3.33]

“शांति में संतोष पूर्णतः शुद्ध है”: “शांति” का अर्थ है मन की शांत, अनासक्त, अवलोकनशील, स्थिर, समतापूर्ण, मन की शांत अवस्था, मन की तटस्थ अवस्था जो चौथे ध्यान में प्राप्त होती है। “सजगता” का अर्थ है चौथे ध्यान में प्राप्त शांत, मुक्त सजगता... (उद्धृत)। “शांति से सजगता की ओर शुद्धि”: चौथे ध्यान में प्राप्त शांति और सजगता शुद्ध, स्वच्छ, पूर्णतः शुद्ध, निर्मल, लचीली, कार्य करने योग्य, स्थिर, गतिहीन अवस्था तक पहुँचने वाली होती है।

“धम्म का पूर्व चिंतन”: धम्म का चिंतन सद्भावना कहलाता है। यह पूर्ण ज्ञान की मुक्ति का आरंभ, प्रथम और अग्रदूत है। या, धम्म का चिंतन सही दृष्टि कहलाता है, यह पूर्ण बौद्धिक मुक्ति का आरंभ, प्रथम और अग्रदूत है। या, धम्म का चिंतन विपश्यना कहलाता है, जो चारों लोकों का अग्रदूत है, यह पूर्ण बौद्धिक मुक्ति का आरंभ, प्रथम और अग्रदूत है।

“मैं संपूर्ण ज्ञान की मुक्ति की बात करता हूँ”: संपूर्ण ज्ञान की मुक्ति को अरहंत की मुक्ति कहा जाता है। मैं बोलता हूँ, मैं समझाता हूँ..., अरहंत की स्वतंत्रता।

“अज्ञान का नाश”: “अज्ञान,” दुख में अज्ञान... “नाश,” अज्ञान का नाश, त्याग, समाप्ति, रुकना, शांत होना, निर्जीवता, निर्वाण।

77 · (उदय:) संसार की गाँठ क्या है? इसका भ्रमण क्या है? इस प्रकार का त्याग किस प्रकार का निर्वाण कहलाता है? [एस.एन.1.64]

“संसार की गाँठ क्या है”: संसार में गाँठ, आसंजन, बंधन और अपवित्रता, किस प्रकार का बंधन, मजबूत बंधन, पूर्ण बंधन, संपूर्ण बंधन, आसक्ति, स्थिरीकरण, बाधाएँ।

“इसका भ्रमण क्या है”: इसका चलना, भटकना और वापस लौटना, दुनिया में किन चीजों के साथ होता है।

“इस प्रकार के त्याग को निर्वाण कहा जाता है”: इस प्रकार के त्याग, शांति, विराम, विश्राम को निर्वाण कहा जाता है, कहा जाता है, बताया जाता है, समझाया जाता है और कहा जाता है।

78 · (भगवान:) आनंद संसार की गाँठ है, और चिंतन उसका भ्रमण है, प्यास के त्याग से, इसे इस प्रकार निर्वाण कहा जाता है।

“आनंद संसार की गाँठ है”: आनंद को प्यास कहा जाता है, जो लालच है... इसे ही आनंद कहते हैं। समस्त सुख संसार की गाँठ, बंधन, जकड़न और अपवित्रता है, और संसार का बंधन है।

“चिंतन ही उसका भटकना है”: चिंतन के नौ प्रकार होते हैं: सुख, द्वेष, हानि, सगे-संबंधियों, भूमि, अमरता, दूसरों के प्रति सहानुभूति, सम्मान और प्रतिष्ठा, और तिरस्कार न सहने से संबंधित विचार। ये नौ प्रकार के चिंतन संसार का भटकना और भ्रमण करना कहलाते हैं।

“इच्छा के त्याग से ही निर्वाण कहलाता है”: “प्रेम की प्यास,” रूप की प्यास... (विलुप्त), धम्म की प्यास। “इच्छा के त्याग से ही निर्वाण कहलाता है”: प्यास के त्याग से, शांत होकर, रुककर और समाप्त होकर; इसे निर्वाण कहा जाता है, बताया जाता है, समझाया जाता है।

79 · (उदय:) सचेतन चलने वाले के लिए क्या? चेतना कैसे रुकती है? हम भगवान से पूछते हैं, हमें अपने शब्द सुनाइए।

“सचेत यात्री के बारे में क्या?”: सचेत और धर्मी व्यक्ति के लिए चलना, निवास करना, कार्य करना, आगे बढ़ना, रक्षा करना और जीवित रहना क्या है?

“चेतना रुक गई है”: चेतना बुझ जाती है, शांत हो जाती है, अस्तित्वहीन हो जाती है, समाप्त हो जाती है।

“हम भगवान से पूछने आए हैं”: हम आ गए हैं, हम पहुँच गए हैं, हम पूरी तरह से पहुँच गए हैं, हम आपसे जुड़ गए हैं, हमें बुद्ध से, भगवान से पूछना है, हमें प्रश्न करना है, पूछना है, पूछताछ करनी है, इसे स्पष्ट करना है।

“हमें आपके वचन सुनने दीजिए”: “आपके वचन,” आपके वचन, आपके मार्ग, आपकी शिक्षाएँ, आपकी व्याख्याएँ, आपकी नसीहतें। हमें सुनने, सीखने, याद रखने, समझने और विवेक करने दीजिए।

80 · (भगवान:) जो अपने भीतर और बाहर की अनुभूति में प्रसन्न नहीं हैं, सचेतन मार्ग पर चलने वाले के लिए, चेतना रुक जाती है।

“जो अपने भीतर और बाहर की भावनाओं में प्रसन्न नहीं है”: भीतर की भावना बोध के अधीन है और जो उसमें निवास करता है वह प्रसन्न नहीं होता, अवांछित होता है, उसे थामे नहीं रहता, उस पर कायम नहीं रहता, उससे आसक्ति नहीं रखता; वह उसे त्याग देता है, भगा देता है, उसका अंत कर देता है, उसे अस्तित्वहीन बना देता है; अपने बाहर की भावना...; भीतर और बाहर की भावना...; अपने भीतर की भावना धर्मों का समूह है, और जो उस अवलोकन के अनुसार जीवन जीता है...; अपने भीतर की भावना अपव्यय का धर्म है, और जो उस अवलोकन के अनुसार जीवन जीता है...; अपने बाहर की भावना एक समूह है... ...अपव्यय...; ...अपने भीतर और बाहर...; जो इन बारह प्रकार के अनुभवों के अनुसार जीवन जीता है वह प्रसन्न नहीं होता, उसका स्वागत नहीं करता, उसे थामे नहीं रहता, उस पर कायम नहीं रहता, उससे आसक्ति नहीं रखता; वह उसे त्याग देता है, भगा देता है, उसका अंत कर देता है, उसे अस्तित्वहीन बना देता है।

या फिर, जो व्यक्ति अनुभव को अनित्य मानता है, वह सुखी नहीं होता, अवांछित होता है, और भावनाओं, आनंद, आदि पर जोर नहीं देता; दुख, बीमारी, ट्यूमर, तीर, आदि उसे अस्तित्वहीन बना देते हैं; इन बयालीस प्रकार की भावनाओं में, जो व्यक्ति सुखी नहीं होता, स्वागत योग्य नहीं होता, वह उसे अस्तित्वहीन बना देता है।

“यह सचेत यात्री के लिए मामला है”: यह सचेत और धर्मी यात्री, निवासी, कर्ता, निरंतर चलने वाले, रक्षक और उत्तरजीवी के लिए मार्ग है।

“चेतना रुक गई है”: वह चेतना जो आशीर्वाद देती है, आशीर्वाद नहीं देती, वह चेतना जो गति नहीं करती [SN.12.51] नष्ट हो जाती है, शांत हो जाती है, अस्तित्वहीनता की ओर चली जाती है और समाप्त हो जाती है।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.14

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

14. पोसाला
81 · [आदरणीय पोसाला ने इस प्रकार कहा:] अतीत की ओर इशारा करने वाले को, अविचलित रहने वाले को, संदेह को दूर करने वाले को, धर्मो के दूसरे पक्ष तक पहुँचने वालों को, और जरूरतमंदों को प्रश्न लेकर आने वालों को।

“जिसने अतीत की ओर इशारा किया”: “जिसने...”, वह जगत-सम्मानित व्यक्ति है, जो एकाकी है, और बिना गुरु के वह है जिसने अनूठे धम्म के सत्य को जान लिया है, और वहाँ सर्वज्ञता की अवस्था को प्राप्त कर लिया है, वह है जो सामर्थ्य में स्वतंत्रता की अवस्था को प्राप्त करता है। “इशारा करना”, भगवान बुद्ध स्वयं और दूसरों के अतीत की ओर इशारा करते हैं, भविष्य की ओर भी इशारा करते हैं, और वर्तमान की ओर भी इशारा करते हैं।

भगवान बुद्ध ने अपने अतीत की ओर कैसे इशारा किया? भगवान बुद्ध ने अपने अतीत की ओर इशारा करते हुए संपूर्ण जीवन, दूसरा जीवन, तीसरा जीवन, चौथा जीवन, पाँचवाँ जीवन, दसवाँ जीवन, बीसवाँ जीवन, तीसवाँ जीवन, चालीसवाँ जीवन, पचास जन्म, सौ जन्म, एक हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक विपत्तियाँ, अनेक समाप्त हुई विपत्तियाँ आदि की ओर इशारा किया और कहा, “वह कौन है? ऐसा नाम, ऐसा उपनाम, ऐसा चेहरा, ऐसा भोजन, ऐसा सुख-दुख, ऐसी आयु, जो यहाँ मरा और वहाँ पुनर्जन्म लिया, और उसका नाम क्या है, ..., जो वहाँ मरा और यहाँ जन्मा।” इस प्रकार उन्होंने बताया कि अनेक पूर्व जन्मों में ऐसे ही व्यवहार और परिस्थितियाँ थीं।

भगवान बुद्ध दूसरों के अतीत की ओर कैसे इशारा करते हैं? भगवान बुद्ध ने दूसरों के अतीत की ओर इशारा करते हुए उनके पूरे जीवन और दूसरे जीवन की ओर भी इशारा किया... (अधूरा अंश)। इस प्रकार उन्होंने बताया कि अनेक पूर्व जन्मों में ऐसे ही व्यवहार और परिस्थितियाँ थीं।

जब पाँच सौ प्रार्थना सूत्रों (जातकों) के बारे में बात करते हैं, तो भगवान स्वयं और दूसरों के अतीत की ओर इशारा करते हैं; जब महान कारणों सूत्र [डीएन.14] के बारे में बात करते हैं, ...; जब महान वैभव सूत्र [डीएन.17], महान प्रबंधक सूत्र [डीएन.19], मखादेव [एमएन.83] के बारे में बात करते हैं, तो भगवान स्वयं और दूसरों के अतीत की ओर इशारा करते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा [डीएन.29]: “चुंड, पिछले जन्मों के विषय में तथागत को स्मृति से ज्ञान प्राप्त है, वे जितना चाहें उतना याद कर सकते हैं। चुंड, भविष्य के विषय में... (छोड़ा गया)। चुंड, वर्तमान जीवन के विषय में तथागत को ज्ञान प्राप्त है: 'यह मेरा अंतिम जन्म है, और अब कोई पुनर्जन्म नहीं है।'”

मूल ज्ञान तथागत की शक्ति है; समस्त जीवों की अंतर्निहित प्रवृत्ति और विपत्तियों की अंतर्निहित प्रवृत्ति तथागत की शक्ति है; दोनों देवताओं का ज्ञान...; महान करुणा का ज्ञान...; सर्वज्ञानी का ज्ञान...; अवरोध रहित ज्ञान...; जिसमें कोई आसक्ति नहीं, कोई विकर्षण नहीं, और अवरोध रहित ज्ञान तथागत की शक्ति है। इस प्रकार, भगवान बुद्ध स्वयं और दूसरों के भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान को प्रकट करते हैं, उन्होंने समझाया, सिखाया, ...।

“[इस आदरणीय पोसाला की तरह]”: ... (छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जो विचलित नहीं होता, जो संशय को काट डालता है”: “विचलित होना प्यास कहलाता है, अर्थात् लोभ, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। बुद्ध, भगवान के लिए, वह विचलित होना, वह प्यास, जड़ से ही काट दी गई है...। इसलिए, बुद्ध अविचलित हैं। विचलित अवस्था ...(अंशित, पिछले भाग देखें) है।” “संदेह करने वाला,” संशय कहलाता है: ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। बुद्ध और भगवान के लिए, वह संशय काट डाला गया है, अलग कर दिया गया है और नष्ट कर दिया गया है, ..., ज्ञान की अग्नि से जला दिया गया है। इसलिए, बुद्ध संशय को काटने वाले हैं।

“जो लोग दूसरी तरफ पहुँच चुके हैं”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जरूरतमंद लोग एक सवाल लेकर आते हैं”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

82 · वह व्यक्ति जिसके लिए रूप विलीन हो गया है, वह व्यक्ति जिसने शरीर का त्याग कर दिया है, वह व्यक्ति जो अपने भीतर और बाहर "शून्यता" का द्रष्टा है, शाक्यमुनि! मैं इस ज्ञान के बारे में पूछता हूँ, ऐसे लोगों का मार्गदर्शन कैसे किया जाना चाहिए?

“जिनका रूप लुप्त हो गया है”: रूप क्या है? प्रवेश करने वालों, मृत आत्माओं या जीवन के क्षेत्र में रहने वालों की विचार, अनुभूति और चेतना की अवस्था ही चेतना की अवस्था है। “जो लुप्त हो गए हैं”: चार निराकार उपलब्धियाँ हैं: जो लुप्त हो गए हैं, जो चले गए हैं, जो इस क्षेत्र से गुजर चुके हैं, जो पार हो चुके हैं और जो विजय प्राप्त कर चुके हैं।

“जिस व्यक्ति ने सभी शरीरों का त्याग कर दिया है”: उसने अपने सभी पुनर्जन्म के शरीरों का त्याग कर दिया है, जिन्होंने उस भाग को पार कर लिया है, और उसका शरीर उन लोगों द्वारा दबा दिया गया है और त्याग दिया गया है जिन्होंने त्याग कर दिया है।

“अपने भीतर और बाहर, ‘शून्यता’ का द्रष्टा”: “शून्यता” का अर्थ है शून्यता में निवास करना। “शून्यता” शून्यता में क्यों निवास करती है? जो भी (सचेत रूप से) चेतना की असीमता में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, और फिर वहाँ से बाहर आने पर (देखता है कि) वह चेतना अस्तित्वहीन हो जाती है, लुप्त हो जाती है और मिट जाती है। वह “शून्यता” देखता है, और इसी कारण “शून्यता” में निवास करता है।

“शाक्यमुनि! मैं ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ”: “शाक्यमुनि,” .... “मैं ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ,” मैं आपके ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ, मैं आपके ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ, मैं आपके सर्वदर्शी ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ, मैं सर्वज्ञ के ज्ञान की प्रार्थना करता हूँ: यह कैसा है, क्या स्थापित है, क्या विधि है, और किस प्रकार का ज्ञान वांछनीय है?”

“ऐसे व्यक्ति का मार्गदर्शन कैसे किया जाए?”: उसका मार्गदर्शन कैसे किया जाए, उसे कैसे संयमित किया जाए, कैसे सांत्वना दी जाए, कैसे बताया जाए, कैसे विचार किया जाए, कैसे देखा जाए और कैसे स्पष्ट किया जाए? कैसे? उस उच्चतर ज्ञान को कैसे जागृत किया जाए? “उस प्रकार का व्यक्ति,” उस प्रकार का व्यक्ति, वह स्थिर व्यक्ति, वह समान व्यक्ति, जिसने शून्यता के क्षेत्र को प्राप्त कर लिया है।

83 · [भगवान: “पोसाला!”] चेतना की सभी अवस्थाओं को जानते हुए, तथागत साक्षी हैं, यह जानते हुए कि जीवित रहने वाला ही विजेता है, (या) जो फंसा हुआ है।

“चेतना की सभी अवस्थाओं का ज्ञान”: भगवान बुद्ध अपनी सृष्टि के कारण चारों चेतनाओं को जानते हैं, और अवतार के कारण सात चेतनाओं को जानते हैं। यह कैसे संभव है कि भगवान बुद्ध अपनी सृष्टि के कारण चारों चेतनाओं को जानते हैं? इस पर भगवान बुद्ध कहते हैं: “भिक्षुओं! जब चेतना रूप में लीन रहती है, तो वह रूप में ही रहती है, रूप पर टिकी रहती है, रूप द्वारा ही समर्थित होती है, और उसमें आनंद की थोड़ी सी मात्रा होने पर वह बढ़ती और फैलती है। भिक्षुओं! जब चेतना भावों में लीन रहती है..., ...बोध में...” [SN.22.53]

भगवान बुद्ध अवतार के कारण सात चेतनाओं के ज्ञाता कैसे हैं? यह बात भगवान बुद्ध ने कही:

"भिक्षुओं! सभी प्रकार के शरीरों और सभी प्रकार के विचारों वाले प्राणी, जैसे कि मनुष्य, कुछ स्वर्ग और कुछ लोग जो इस लोक में अवतरित हुए हैं, यही प्रथम चेतना है।"

भिक्षुओं! एक ही मन वाले अनेक प्रकार के प्राणी हैं, जैसे ब्रह्मा जिन्होंने प्रथम रूप में पुनर्जन्म लिया, यह द्वितीय चेतना है।

भिक्षुओं! एक शरीर और सभी प्रकार के विचारों वाले प्राणी, जैसे कि प्रकाश और ध्वनि का स्वर्ग, यही तीसरी चेतना है।

भिक्षुओं! वे प्राणी जिनका एक ही शरीर और एक ही मन होता है, जैसे कि शुद्ध स्वर्ग का आकाश, यही चौथी चेतना है।

भिक्षुओं! सभी रूपों के साथ चिंतन की उत्कृष्टता है, विपरीत (विरोधी कारकों) के साथ चिंतन का अंत है, और बिना चिंतन के सभी प्रकार के चिंतन (ज्ञान) हैं: 'शून्य असीम है,' असीम शून्यता में रहने वाले प्राणियों के लिए, यही पाँचवीं चेतना है।

भिक्षुओं! समस्त असीम शून्यता (ज्ञान) को पार करने के बाद: 'ज्ञान (चेतना) असीम है,' चेतना की असीमता तक पहुँचने वाले सजीव प्राणी, यही छठी चेतना है।

भिक्षुओं! चेतना (ज्ञान) की समस्त असीमता को पार करने के बाद: 'कुछ नहीं है,' जो सजीव प्राणी शून्यता की अवस्था में पहुँच जाते हैं, वे सातवीं चेतना में होते हैं। इस प्रकार, भगवान बुद्ध पुनर्जन्म के कारण सात चेतनाओं को जानते हैं।

“[भगवान: 'पोसाला!']”: ....

“तथागत वह ज्ञाता है जो सिद्ध करता है”: “सिद्धा करने वाला ज्ञाता,” तथागत वह है जो ज्ञान को सिद्ध करता है, वह निश्चित ज्ञाता है, वह भेदक है। भगवान बुद्ध [डीएन.29] कहते हैं: "चुंड, यदि अतीत के बारे में कोई प्रश्न असत्य, अवास्तविक या लाभहीन हो, तो तथागत उसका उत्तर नहीं देते। चुंड, यदि अतीत के बारे में कोई प्रश्न सत्य, ईमानदार और लाभहीन हो, तो तथागत उसका उत्तर नहीं देते। चुंड, यदि अतीत के बारे में कोई प्रश्न सत्य, ईमानदार और लाभप्रद हो, तो तथागत उत्तर देने का सही समय जानते हैं। चुंड, यदि भविष्य के बारे में कोई प्रश्न हो... चुंड, यदि वर्तमान के बारे में कोई प्रश्न हो... चुंड, इसी प्रकार, अतीत, भविष्य और वर्तमान धर्म में तथागत सही समय पर उत्तर देते हैं, तथ्य का कथन करते हैं, लाभ का कथन करते हैं, धर्म के कथन के समान, इसलिए उन्हें 'तथागत' कहा जाता है।"

चुंडा, जिसमें स्वर्ग, राक्षस और ब्रह्मा सहित संसार शामिल है; समण, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य सहित सभी पीढ़ियों में, वह जो कुछ भी देखता है, सुनता है, महसूस करता है, जानता है, प्राप्त करता है, पूछता है और जिसके लिए वह इरादे रखता है, वह सब तथागत द्वारा प्रकाशित है, इसलिए इसे 'तथागत' कहा जाता है; चुंडा, जब भी वह ज्ञान की रात में बोलता है, बात करता है और प्रदर्शन करता है, तो वह कहता है, बात करता है और दिखाता है कि सब कुछ वैसा ही है जैसा वास्तव में है, इसलिए इसे 'तथागत' कहा जाता है; चुंडा, तथागत वह है जो कहता है वही करता है; जो कहता है वैसा ही करता है, और जो इस तरह करता है; जो कहता है वैसा ही करता है, उसे 'तथागत' कहा जाता है; चुंडा, जिसमें स्वर्ग, राक्षस और ब्रह्मा सहित संसार शामिल है; समण, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य सहित सभी पीढ़ियों में तथागत विजेता, अजेय, सर्वदर्शी और स्वतंत्र हैं, इसीलिए उन्हें 'तथागत' कहा जाता है।

“जीवित बचे व्यक्ति को जानो”: भगवान बुद्ध जानते हैं कि जीवित बचा व्यक्ति कर्मों के फलस्वरूप यहाँ है: “शरीर के विघटन से यह व्यक्ति मृत्यु के बाद दुख, बुराई, निम्न लोक और नरक के लोक में चला गया है।” और जो यह जानता है कि वह यहाँ विद्यमान है: “शरीर के विघटन से यह व्यक्ति मृत्यु के बाद पशुलोक में चला गया है।” भगवान बुद्ध जानते हैं कि यह कर्मों के फलस्वरूप यहाँ है: “शरीर के विघटन के बाद यह व्यक्ति प्रेतों के लोक में चला गया है।” भगवान बुद्ध जानते हैं कि वह अपने कर्मों के फलस्वरूप यहाँ है: “शरीर के विघटन से यह व्यक्ति मृत्यु के बाद विद्यमान हो गया है।” भगवान बुद्ध जानते हैं कि वह अपने कर्मों के फलस्वरूप यहाँ है: “शरीर के विघटन के साथ, मनुष्य मृत्यु के बाद पुण्यलोक और स्वर्ग में पुनर्जन्म लेते हैं।”

यह बात भगवान बुद्ध ने कही थी [एम.एन.12]:

"अत: सारिपुत्त! यहाँ, हृदय को भली-भांति जानने के बाद, मैं किसी को जानता हूँ: 'जो व्यक्ति इस मार्ग पर चलता है और इस प्रकार व्यवहार करता है, वह शरीर के विघटन में प्रवेश कर चुका है, और मृत्यु के बाद दुख, बुराई, निम्न लोकों और नरक के मार्ग में पुनर्जन्म लेगा।'

फिर से, सारिपुत्त! ...मृत्यु के बाद पशु जगत में। फिर से, सारिपुत्त! ...मृत्यु के बाद भूखे प्रेतों के लोक में। फिर से, सारिपुत्त! ...मृत्यु के बाद मनुष्य जगत में। फिर से, सारिपुत्त! ...मृत्यु के बाद पुण्य और स्वर्ग के मार्ग पर।

फिर से, सारिपुत्त! यहाँ, हृदय को इतनी अच्छी तरह से जानने के बाद, मैं किसी को जानता हूँ: 'जो व्यक्ति इस मार्ग पर चलता है और इस प्रकार व्यवहार करता है, वह सभी कष्टों के निवारण में प्रवेश कर चुका है, और गवाही देने के लिए ज्ञान को देखकर जीवन में प्रवेश करेगा, फिर चिंता मुक्त मन में, ज्ञान की राहत के साथ जीवन व्यतीत करेगा।'

“विजेता, (या) वह जो फंसा हुआ है”: वह “विजेता” जिसका कोई ठिकाना नहीं है। वह “विजेता”, जो मुक्ति के द्वारा समाधान पर विजय प्राप्त करता है, जो वहाँ समाधान पर विजय प्राप्त करता है, ठीक वैसा ही। या फिर, भगवान जानते हैं कि: यह वह व्यक्ति है जो रूप से, ध्वनि से, गंध से, स्वाद से, स्पर्श से, परिवार से, समूह से, निवास से, लाभ से, प्रतिष्ठा से, प्रशंसा से, आनंद से, वस्त्रों से, सामूहिक भोजन से, आश्रय से, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा आवश्यकताओं से, व्याख्याकार से, विजयी व्याख्याकार से, विजयी शासक से, अभिधम्म से, अरहंत से, भोजन से, गोबर से, गोबर साफ करने से, तीन वस्त्र धारण करने से, भोजन की भीख मांगते हुए समस्याओं को दूर करने वाले, भोजन करने के बाद कष्ट न सहने वाले, अक्सर बैठने वाले और न सोने वाले, कहीं भी रहने वाले, समस्याओं को दूर करने वाले, प्रथम ध्यान से, द्वितीय ध्यान से, और तृतीय ध्यान से समस्याओं को दूर करने वाले... ज्ञान..., जो चौथे ज्ञान में हैं वे समाधान के विजेता हैं, जो असीम शून्य (पांचवां/प्रथम अमूर्त) में समाधान के लिए निवास करते हैं, ...चेतना की असीमता में, ...शून्यता में, और जो समाधान के लिए निवास नहीं करते (शून्यता में; न तो बोध और न ही अबोध; आठवां)।

“अटका हुआ” का अर्थ है वह व्यक्ति जिसका कोई स्थान नहीं है, जो अटका हुआ है, जो कर्मों में फंसा हुआ है, जिसे प्रतिफल मिला है, जो गंभीर है, और जो पुनर्जन्म लेता है। या, भगवान जानते हैं: यह व्यक्ति रूप में फंसा हुआ है...।

84. शून्यता की उत्पत्ति को जानने के बाद, इस प्रकार आनंद की गांठ होती है; इस प्रकार जानने के बाद, वह वहाँ अंतर्दृष्टि से स्पष्ट रूप से देखता है; यही उसका सच्चा ज्ञान है, पूर्ण ब्राह्मण का ज्ञान।

“शून्यता की उत्पत्ति को जानने के बाद: शून्यता की उत्पत्ति को शून्यता की ओर ले जाने वाली सृष्टि कहा जाता है। यह जानने के बाद कि शून्यता की ओर ले जाने वाली सृष्टि “कुछ भी उत्पन्न नहीं होता”, यह जानने के बाद कि यह “आसंजन” है, यह जानने के बाद कि यह “बंधन” है, यह जानने के बाद कि यह एक “बाधा” है, यह जानने के बाद कि यह एक “बाधा” है, यह समझने के बाद, मापने के बाद, न्याय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद।”

“इस प्रकार, आनंदमय गाँठ”: आनंदमय गाँठ को निराकार लोभ कहा जाता है। कर्म निराकार लोभ से जुड़ा, स्थिर और बाधित होता है। निराकार लोभ को “आनंदमय गाँठ” जानने के बाद, इसे “आसंजन” जानने के बाद... इस प्रकार...

“इस प्रकार सिद्ध करने के बाद”: इस प्रकार सिद्ध करने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद।

“बाद में, वहाँ अंतर्दृष्टि से देखते हुए”: “वहाँ,” नि:संपत्ति के स्थान में प्रवेश करो, और फिर वहाँ से बाहर निकलने के बाद, मन में उत्पन्न होने वाली अनित्यता और मानसिक अवस्थाओं की अंतर्दृष्टि से; जैसे पीड़ा की अंतर्दृष्टि से; बीमारी की अंतर्दृष्टि से... (अंशित)। अंतर्दृष्टि से वह निकलता है, देखता है, अवलोकन करता है, मनन करता है और देखता है।

“यही उनका सच्चा ज्ञान है”: यही उनका सच्चा, तथ्यात्मक, सही और अपरिवर्तनीय ज्ञान है।

“पूर्ण ब्राह्मण”: “ब्राह्मण,” सात धर्मों से रहित अवस्था ही ब्राह्मण है... (विलुप्त, पिछले खंड देखें), जो आश्रित नहीं हैं, उन्हें ब्राह्मण कहा जा सकता है। “पूर्ण ब्राह्मण”: सात प्रकार के विद्वानों सहित सात सामान्य लोग एक साथ रहते हैं, निवास करते हैं और ठहरते हैं; जिनके पास उचित योग्यता है, जो उस मुकाम तक पहुँच चुके हैं जहाँ पहुँचना चाहिए, जो उस बात की गवाही देते हैं जिसकी गवाही देनी चाहिए; अरहंत ने वह सब कुछ पूरा कर लिया है जो करना चाहिए, बोझ से मुक्त हो गया है, अपने हितों की पूर्ति कर ली है, अस्तित्व के बंधनों को मिटा दिया है, और परम ज्ञान से मुक्त हो गया है। वह एक ऐसी अवस्था में उतर चुका है, जिसने अभ्यास किया है... (विलुप्त), ...जीवन और मृत्यु, बिना पुनर्जन्म के।

इन छंदों के अंत में... “परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।”
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.15

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

15. मोगराज
85 · [आदरणीय मोगराज ने इस प्रकार कहा:] मैंने शाक्यमुनि से दो बार पूछा, लेकिन सर्वदर्शी ने मुझे उत्तर नहीं दिया, मैंने सुना है कि तीसरी बार, दिव्य ऋषि उत्तर देंगे।

“मैंने शाक्यमुनि से दो बार पूछा”: ब्राह्मण ने बुद्ध और भगवान बुद्ध से दो बार पूछा, लेकिन भगवान बुद्ध ने उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया (यह सोचते हुए) “बीच में इस ब्राह्मण की जड़ें स्पष्ट हो जाएँगी।” “शाक्यमुनि” ...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “मैंने शाक्यमुनि से दो बार पूछा”: मैंने दो बार पूछताछ की, विनती की, निवेदन किया और शाक्यमुनि से इसे स्पष्ट करने के लिए कहा।

“[इस आदरणीय मोगराज की तरह]”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“सर्वदर्शी ने मुझे उत्तर नहीं दिया”: “जिसकी आंखें हैं उसने मुझे उत्तर नहीं दिया,” न ही उत्तर दिया, न बताया, न समझाया, न सिखाया, न सूचित किया, न उजागर किया, न विश्लेषण किया और न ही स्पष्ट किया। पांच प्रकार की आंखें हैं: प्रत्यक्ष आंखें, दिव्य आंखें, ज्ञानी आंखें, बुद्ध की आंखें और सर्वव्यापी आंखें।

भगवान बुद्ध नग्न आंखों को "आंखें" क्यों मानते हैं? भगवान बुद्ध की आंखों में पांच रंग हैं: नीला, पीला, लाल, काला और सफेद। उनकी आंखों के बाल नीले, अत्यंत नीले, उत्तम, सुंदर और सन के समान हैं, और अन्य बाल पीले, अत्यंत पीले, सुनहरे और उत्तम, सुंदर हैं, जो बयूर के फूल के समान हैं। भगवान बुद्ध की दोनों आंखें लाल, अत्यंत लाल, सीधी और सुंदर हैं, जो बारिश के बाद जमीन से निकलने वाले कीड़ों के समान लाल हैं, और बीच वाली आंख काली, अत्यंत काली, कोमल, चिकनी, सीधी और नम है। बाहरी आंखें सफेद, अत्यंत सफेद, सफेद, पीली-सफेद, मनभावन और सुंदर हैं, जो ओसाधी नक्षत्र के समान हैं। भगवान बुद्ध की नग्न आंखों से, जो उन्हें पिछले अच्छे कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुई हैं, वे दिन और रात में सब कुछ देखते हैं, जब अंधकार की चार शाखाएं होती हैं: सूर्यास्त, अमावस्या की रात, घने जंगल का अंधकार और घने बादलों का अंधकार। इसी प्रकार, जब चारों शाखाओं का अंधकार छाया रहता है, तब भी वह दिन-रात सब कुछ देख पाता है। उसके दर्शन में न तो कोई दीवार, न पर्दा, न बाड़, न पहाड़, न झाड़ियाँ, न वनक्षेत्र बाधा बनते हैं। यदि तिल पर निशान लगा हो और उसे तिलों से भरी गाड़ी में रख दिया जाए, तो वह उस तिल को चुन सकता है। इस प्रकार, भगवान बुद्ध की स्वाभाविक नंगी आँख शुद्ध है, और भगवान बुद्ध नंगी आँख को आँख के समान मानते हैं।

भगवान बुद्ध दिव्य दृष्टि को "आँखों वाला" क्यों मानते हैं? शुद्ध और दिव्य दृष्टि से, भगवान बुद्ध देखते हैं कि जब सभी प्राणी मरते हैं और चले जाते हैं, तो वे हीन, विजयी, सुंदर, कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होते हैं, यह जानते हुए कि सभी प्राणी अपने कर्मों के अनुसार चलते हैं: "ये प्राणी और राजा शरीर के बुरे कर्म, आचरण के बुरे कर्म, इरादों के बुरे कर्म करते हैं, संतों की निंदा करते हैं, गलत विचार रखते हैं और गलत विचार रखने का कर्म करते हैं, वे मृत्यु के बाद दुख के लोक, नरक में चले जाते हैं; या वे प्राणी, जो शरीर के अच्छे कर्म, वाणी के अच्छे कर्म, इरादों के अच्छे कर्म करते हैं, संतों की निंदा नहीं करते हैं, और कर्म के सही दृष्टिकोण का पालन करते हैं, वे अपने शरीर को नष्ट करके मृत्यु के बाद अच्छाई के लोक और स्वर्ग में चले जाते हैं।" इस प्रकार, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से, उन्होंने देखा कि जब सभी प्राणी मरते और चले जाते हैं, तो हीनता, विजय, सौंदर्य, कुरूपता, सौभाग्य और दुर्भाग्य की अवस्थाओं में, वे कर्म के अनुसार सभी प्राणियों के प्रवाह को जानते हैं। जब वे चाहें, तो भगवान एक लोक, दो लोक, तीन लोक, चार लोक, पांच लोक और दस लोक देख सकते हैं। साथ ही, बीस लोक, तीस लोक, चालीस, पचास, सौ, ये हजार छोटे लोक, दो हजार मध्य लोक, और ये तीन लाख बड़े लोक [एएन.3.81] भी देख सकते हैं। यदि वे चाहें, तो वे इसे देख सकते हैं। इस प्रकार, भगवान की दिव्य आँखें पूर्णतः शुद्ध हैं, और भगवान अपनी दिव्य आँखों को आँखों के समान मानते हैं।

भगवान बुद्ध ज्ञानी आँखों को आँखों वाला क्यों मानते हैं? भगवान बुद्ध महान बुद्धि, व्यापक बुद्धि, तीव्र बुद्धि, तीक्ष्ण बुद्धि, भेदक बुद्धि, सलाह देने वाली बुद्धि हैं: जो कुशल हैं, जिन्होंने बुद्धि का विकास किया है, जिन्होंने निर्बाध सिद्ध किया है, जिन्होंने चार निर्भीकों को प्राप्त किया है, जो दस शक्तियों से युक्त हैं, जो बैल के समान हैं, जो सिंह के समान हैं, जो अपार धनवान हो सकते हैं, जिनके पास असीम बुद्धि है, जिनके पास असीम चमक है, जिनके पास असीम प्रसिद्धि है, जो धनी हैं, जो मार्गदर्शक हैं, जो मध्यस्थ हैं, जो सांत्वना देने वाले हैं, जो सूचना देने वाले हैं, जो दृश्य बनाते हैं, जो स्पष्ट करते हैं, भगवान बुद्ध वास्तव में अजन्मे मार्ग के संस्थापक हैं, अजन्मे मार्ग के निर्माता हैं, जो अनायास उपदेशक हैं; जो मार्ग को जानता है, मार्ग का ज्ञाता है, और उसके शिष्य अब मार्ग के साथ रहते हैं, और भविष्य में भी उसके अनुयायी होंगे।

भगवान बुद्ध वास्तव में सर्वज्ञ और द्रष्टा हैं, जो सब कुछ जानते और देखते हैं; वे जन्म से ही नेत्रों से युक्त, ज्ञान से युक्त, धर्म से युक्त और ब्रह्म से युक्त हैं; वे धर्म के व्याख्याकार और संवर्धक, अमर दाता, धर्म के राजा, तथागत हैं; ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे भगवान बुद्ध ने न जाना हो, न देखा हो, न प्रमाणित किया हो, न ही ज्ञान से स्पर्श किया हो; भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल ज्ञान के क्षेत्र में सभी कर्मों के साथ बुद्ध और भगवान बुद्ध के पास आए; कोई भी व्यक्ति, चाहे उसका नाम कुछ भी हो, जिसे तर्क द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, वह जान सकता है: अपना धर्म, दूसरों का धर्म या दोनों, या वर्तमान जीवन का धर्म या अगले जीवन का धर्म या दोनों, चाहे वह गहरा हो या छिपा हुआ, या जिसे निष्कर्ष निकालने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए, या जिसे निर्धारित करने के लिए निर्देशित किया गया है, या कोई दोष या अशुद्धि नहीं है, या स्पष्ट या सर्वोच्च हित है, सब कुछ बुद्ध के ज्ञान में समाहित है।

सभी शारीरिक कर्म बुद्ध और भगवान के ज्ञान में स्थानांतरित हो जाते हैं; सभी भाषाई कर्म...; सभी मानसिक कर्म...; बुद्ध और भगवान का भूतकाल का ज्ञान अवरोध रहित है; भविष्य...; वर्तमान...; जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह ज्ञान की पहुँच है; सभी ज्ञान अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और जो कुछ भी अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए वह परम ज्ञान है; परम ज्ञान वह है जो अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किया जाता है, और अनुमान लगाने के लिए निर्देशित किए गए ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं है; निर्देशित और अनुमानित ज्ञान से परे जाने का कोई मार्ग नहीं है। ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं, जैसे दो बक्से, जिनके ढक्कन पूरी तरह से एक दूसरे के संपर्क में हैं; निचला ढक्कन ऊपरी ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है, और ऊपरी ढक्कन निचले ढक्कन के ऊपर नहीं जाता है; एक दूसरे से सीमित। (इसी प्रकार,) जो कुछ भी निर्देशित किया जाना चाहिए... (छोड़ा गया); ये धर्म परस्पर सीमित रहते हैं।

बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त धम्म में व्याप्त है, समस्त धम्म बुद्ध ही हैं, भगवान बुद्ध का ध्यान, आशा, इरादा, मन, सभी जीवों में समाहित है। बुद्ध और भगवान बुद्ध का ज्ञान समस्त जीवों में व्याप्त है। भगवान बुद्ध समस्त जीवों के इरादों को जानते हैं, संकटों की संभावित प्रवृत्ति, व्यवहार और समाधान, कम धूल वाले और अधिक धूल वाले जीवों, जड़ से जुड़े और सुस्त जड़ वाले जीवों, अच्छे कर्मों और बुरे कर्मों, और जीवों की शिक्षायोग्यता और अशिक्षायोग्यता, सक्षम और अक्षम सभी जीवों, स्वर्गलोक, राक्षस और ब्राह्मणों सहित, सभी बुद्ध के ज्ञान में समाहित हैं।

यदि कोई मछली, कछुआ और यहाँ तक कि बड़ी मछलियाँ निगलने वाली नावें भी समुद्र में घूमती हैं, तो उसी प्रकार स्वर्गलोक, राक्षसलोक और ब्राह्मणलोक सहित सभी पीढ़ियाँ, जिनमें समन, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य सभी शामिल हैं, बुद्ध ज्ञान में घूमती रहती हैं, जैसे कोई पक्षी और यहाँ तक

कि स्वर्ण-पंख वाले पक्षी भी अंतरिक्ष में घूमते हैं। उसी प्रकार, सारिपुत्त के समान ज्ञान रखने वाले भी बुद्ध ज्ञान के क्षेत्र में घूमते रहते हैं। बुद्ध का ज्ञान सर्वव्यापी है और स्वर्ग और मनुष्य से परे है।

वे बुद्धिमान क्षुद्र, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ, बुद्धिमान समन, चतुर विद्रोही, और बुराई पर बुद्धिमानी से कार्य करने वाले तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग, वे बाद में सामने आने वाली समस्याओं को तैयार करते हैं; उन्होंने तथागत के दर्शन किए और गुप्त और छिपे हुए विषय के बारे में पूछा। भगवान बुद्ध ने उन प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया और तर्क सहित उत्तर दिए, और उन्होंने आस-पास के अन्य लोगों को त्यागकर भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए। उस समय, भगवान बुद्ध वहाँ ज्ञान से परिपूर्ण होकर विराजमान थे। इस प्रकार, भगवान बुद्ध अंतर्दृष्टि को आँख के समान मानते हैं।

बुद्ध की आँखें "वही हैं जो आँखों के समान हैं" ऐसा कैसे संभव है? जब भगवान बुद्ध की आँखों से संसार का अवलोकन करते हैं, तो वे कम धूल वाले और अधिक धूल वाले लोगों को देखते हैं; जड़ वाले और कुंद जड़ वाले लोगों को; अच्छे कर्मों वाले और बुरे कर्मों वाले लोगों को; सिखाने में आसान और सिखाने में कठिन लोगों को; अन्य लोकों के विद्यमान पापों और भयों को, और उन लोगों को जो अन्य लोकों में पाप और भय को देखे बिना जीवन व्यतीत करते हैं। जैसे हरे कमल के तालाब, लाल कमल के तालाब और सफेद कमल के तालाब में, कुछ हरे कमल, लाल कमल और सफेद कमल पानी में उगते हैं, पानी की सतह पर रहते हैं, डूबते हैं और पानी के नीचे बढ़ते हैं; कुछ पानी में जन्म लेते हैं और पानी में बढ़ते हैं, और सतह के समान ऊँचाई पर रहते हैं; कुछ पानी से ऊपर उठते हैं और पानी से अछूते रहते हैं। इसी प्रकार, जब भगवान बुद्ध की आँखों से संसार का अवलोकन करते हैं, तो वे कम धूल वाले और अधिक धूल वाले लोगों को देखते हैं; ... [डीएन.14]। भगवान बुद्ध जानते हैं: “यह व्यक्ति लालची है, यह व्यक्ति दुर्व्यवहार करने वाला है, यह व्यक्ति मूर्ख है, यह व्यक्ति मार्गदर्शक है, यह व्यक्ति विश्वासी है और यह व्यक्ति बुद्धिमान है।” भगवान बुद्ध लालची लोगों से बात करते हैं, वे करुणा के मार्ग पर चलने वालों से घृणा करने वालों को सूचित करते हैं, वे उन्हें उचित समय पर धम्म का पाठ करने, प्रश्न पूछने, सुनने और चर्चा करने और गुरुओं के साथ सहजीवन जीने में स्थिर करते हैं। भगवान बुद्ध मार्ग की खोज करने वाले व्यक्ति को सूचित करते हैं, वे विश्वास रखने वालों को बताते हैं: बुद्ध की विवेकशीलता, धम्म का अच्छा स्वभाव, संघ और उनके उपदेशों का अच्छा अभ्यास। भगवान बुद्ध बुद्धिमान अभ्यासियों को विपश्यना सिखाते हैं: अनित्यता, दुख और अनात्म।

“यदि आप किसी पथरीले पर्वत की चोटी पर खड़े हों, तो आप अपने आस-पास के सभी लोगों को देख सकते हैं। उसी प्रकार, जो गुणी और सर्वज्ञ हैं, वे धम्म के ऊंचे भवन पर चढ़ गए हैं। जो लोग चले गए हैं, वे दुखी लोगों को देख रहे हैं, जो जन्म और बुढ़ापे से पराजित हैं। कृपया उठिए! वीरों! युद्ध के मैदान में विजय प्राप्त करने वालों! कारवां के नेताओं! ऋणमुक्त लोगों, संसार में चलो, हे भगवान! कृपया धम्म का उपदेश दीजिए! समझने वाले अवश्य होंगे।” [डीएन.14]

भगवान बुद्ध सभी आँखों को आँखें क्यों मानते हैं? सभी आँखों को सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था कहा जाता है। भगवान बुद्ध आते हैं (उनके पास है), पूरी तरह से आते हैं (उनके पास है), प्रवेश करते हैं, पूरी तरह से प्रवेश करते हैं, उनके पास पर्याप्त ज्ञान है, उनके पास सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था है।

“उनके लिए इस संसार में कुछ भी अदृश्य नहीं है, ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जिसे जाना न जा सके। वे सिद्ध करते हैं कि अस्तित्व में मौजूद हर चीज का मार्गदर्शन अनुमान के आधार पर ही होना चाहिए, क्योंकि तथागत तो मानो सर्वदृष्टि वाले हैं।” [भजन संहिता 1]

मैंने सुना है कि तीसरी बार पूछने पर दिव्य ऋषि उत्तर देंगे: “तीसरी बार पूछने पर बुद्ध और धर्मगुरु उस प्रश्न का उत्तर देंगे जिसका उत्तर अभी तक नहीं मिला है।” मैंने इसे इस प्रकार सीखा, समझा और स्पष्ट किया है: “दिव्य ऋषि,” भगवान बुद्ध एक दिव्य ऋषि हैं। उदाहरण के लिए, एक राजा जो भिक्षु है, उसे राजा ऋषि कहते हैं; एक ब्राह्मण जो भिक्षु है, उसे ब्राह्मण ऋषि कहते हैं। इसी प्रकार, भगवान बुद्ध एक दिव्य ऋषि हैं।

या, “भगवान एक भिक्षु हैं” भी एक ऋषि हैं; और “महान उपदेशों के साधक और अनुयायी” महान ऋषि हैं...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

86 · यह दुनिया, अन्य दुनियाएँ, ब्राह्मण जगत, देवों सहित, मैं आपका दृष्टिकोण नहीं जानता, (प्रसिद्ध गौतम का दृष्टिकोण)।

“यह दुनिया, अन्य दुनियाएँ”: “यह दुनिया” मानव जगत है। “अन्य दुनियाएँ” मानव जगत को छोड़कर बाकी सभी दुनियाएँ हैं।

"ब्रह्म जगत, जिसमें देवता भी शामिल हैं": वह जगत जिसमें स्वर्ग, राक्षस और ब्रह्मा शामिल हैं; जिसमें समण, ब्राह्मण, स्वर्ग और मनुष्य की पीढ़ियाँ शामिल हैं।

"मैं आपका दृष्टिकोण नहीं जानता": दुनिया नहीं जानती कि आप क्या देखते हैं, क्या पसंद करते हैं, आपकी प्रवृत्तियाँ, राय, दावे, इरादे क्या हैं: "जो इसे नहीं देखते, जो इसे इतना पसंद करते हैं, जो इसे इतना प्यार करते हैं, जो इसकी वकालत करते हैं, जो ऐसा करने का इरादा रखते हैं," वे नहीं जानते, नहीं देखते, नहीं समझते, नहीं पाते, नहीं जानते।

"प्रसिद्ध गौतम": भगवान यश प्राप्त करने वाले हैं। या, भगवान वे हैं जिनका आदर किया जाता है, जिन्हें वस्त्र, भोजन, आश्रय, बीमारों की देखभाल और चिकित्सा संबंधी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं।

87 · ऐसे असाधारण द्रष्टा के पास, जरूरतमंद एक प्रश्न लेकर आता है: कोई दुनिया को कैसे देख सकता है, ताकि मृत्यु का राजा उसे देख न सके?

"ऐसा असाधारण द्रष्टा": ऐसा उत्कृष्ट द्रष्टा, प्रथम द्रष्टा, सबसे विजयी द्रष्टा, असाधारण द्रष्टा, विजयी द्रष्टा, सर्वोच्च द्रष्टा, सर्वोच्च द्रष्टा।

"जरूरतमंद लोग एक सवाल लेकर आते हैं": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"दुनिया का अवलोकन कैसे करें": दुनिया का अवलोकन कैसे करें, जांच कैसे करें, मापें कैसे, निर्णय कैसे करें, भेद कैसे करें, स्पष्ट कैसे करें।

"मृत्यु का राजा देख नहीं सकता": मृत्यु का राजा देख नहीं सकता, खोज नहीं सकता, पा नहीं सकता।

88 · (हे भगवान): हे मोगराज, संसार को एकाग्रचित्तता से निःसंकोच करें। अपने आप को दृष्टि से विमुख करके, इस प्रकार मृत्यु को पार किया जा सकता है। जो इस प्रकार संसार को निःसंकोच करते हैं, उन्हें मृत्यु का राजा नहीं देख सकता।

"कृपया ध्यान दें कि संसार खाली है": "संसार," ...(अंशित, पिछले खंड देखें)। एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा [SN.35.82]: "हे महान गुण! 'संसार, संसार' किसे कहते हैं? हे महान गुण! 'संसार' किसे कहते हैं?" "भिक्षु! 'टूटा हुआ' है, इसलिए इसे 'संसार' कहते हैं। और 'टूटा हुआ' क्या है? भिक्षु! आँख टूटी हुई है, रूप टूटा हुआ है, आँख की चेतना टूटी हुई है, आँख का संपर्क टूटा हुआ है, और इस आँख के संपर्क से जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह या तो सुख है या दुख, या न तो दुख है और न ही सुख, वह भी टूटा हुआ है। कान ...(अंशित); गंध ...; स्वाद ...; शरीर टूटा हुआ है, स्पर्श टूटा हुआ है...; धम्म टूटा हुआ है, चेतना विलीन हो गई है, और मानसिक स्पर्श विलीन हो गया है। इस मन से उत्पन्न होने वाला कोई भी सुख, दुख या अप्रियता भी विलीन हो जाती है। भिक्षु! 'टूटा हुआ' है, इसलिए इसे 'संसार' कहते हैं।"

"ध्यान दें कि संसार खाली है": संसार दो कारणों से खाली है: एक तो स्वतंत्र रूप से आगे न बढ़ने के विचार के कारण, और दूसरा खाली होने के विचार के कारण। आगे न बढ़ने के विचार के कारण संसार के खाली होने का अवलोकन कैसे किया जा सकता है? रूप की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती, भावना की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती, विचार की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती, कर्म की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती, और चेतना की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। यह बात भगवान बुद्ध ने कही है [SN.22.59]।

भिक्षुओं! रूप में कोई आत्म नहीं होता, भिक्षुओं, क्योंकि यदि यह रूप मैं हूँ, तो यह रूप रोग उत्पन्न नहीं करेगा, और मैं भी रूप धारण कर लूँगा: 'मेरा रूप ऐसा हो; मेरा रूप ऐसा न हो।' परन्तु, भिक्षुओं! क्योंकि रूप निस्वार्थ है, इसलिए रूप रोग उत्पन्न करता है और मैं रूप धारण नहीं कर सकता: 'मेरा रूप ऐसा होना चाहिए; मेरा रूप ऐसा नहीं होना चाहिए।'

भिक्षुओं! भावना अनासक्त है,... भिक्षुओं! चिंतन अनासक्त है,... भिक्षुओं! कर्म अनासक्त है,... भिक्षुओं! चेतना अनासक्त है,...

भगवान बुद्ध ने कहा [संख्या 12.37]: "भिक्षुओं! यह शरीर न तो तुम्हारा है, न ही दूसरों का, भिक्षुओं! यह पुराना कर्म है, जिसे विचार द्वारा निर्मित और अनुभव किया जा सकता है। वहाँ, भिक्षुओं! वे पवित्र शिष्य हैं जिन्होंने तर्क-आधारित (आश्रित) उत्पत्ति के बारे में सुना है: 'इस प्रकार, जब यह विद्यमान होता है, तो वह होता है; जब यह उत्पन्न होता है, तो वह उत्पन्न होता है; जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह नहीं होता; जब यह विसर्जित होता है, तो वह विसर्जित होता है; अर्थात्: अज्ञान कर्म की शर्त है; कर्म ज्ञान की शर्त है; चेतना नाम और रूप की शर्त है; मन और रूप को शर्त मानकर छह इंद्रिय आधार हैं; शर्त से संपर्क है; संपर्क के साथ अनुभूति है; अनुभूति के साथ प्यास है; प्यास के साथ ग्रहण करना है; शर्त के साथ ग्रहण करना है; अस्तित्व के साथ जीना है; जीने के साथ, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, कड़वाहट, पीड़ा, चिंता और निराशा जैसी पूर्वनिर्धारित स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।' यह संपूर्ण पीड़ा का संग्रह है।

जब अज्ञानता लुप्त होकर नष्ट हो जाती है, तब चुनाव का अधिकार समाप्त हो जाता है...(अंशित); इसी प्रकार दुखों का सार नष्ट हो जाता है।"

हम यह अवलोकन कैसे कर सकते हैं कि संसार खाली है? रूप में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती, भावना में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती, विचार में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती, व्यवहार में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती और चेतना में स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकती। वह रूप हमेशा ठोस होता है, या सुख ठोस होता है, या "मैं" ठोस होता है, या स्थिर होता है, या शाश्वत होता है, या निरंतर होता है, या निरंतर परिवर्तनशील होता है; भावना..., विचार...(छोड़ा गया); जैसे सरकंडा ठोस नहीं है..., अरंडी का पौधा..., अंजीर का पेड़..., सफेद सरकंडे..., पलाश का पेड़..., छाले..., सूर्य की ज्वाला..., केले का तना..., असत्य, ठोस छोड़कर। उसी प्रकार, रूप ठोस नहीं है...।

या, ध्यान दें कि संसार छह कारणों से खाली है: आँखें 'मैं' से खाली हैं, या हम जो हैं उससे खाली हैं, या स्थिरता से खाली हैं, या शाश्वतता से खाली हैं, या अपरिवर्तनीय विधियों से खाली हैं; कान... (छोड़ा गया); भावना...; सोच...; करना...; जानना...; धम्म...; रूप...; ध्वनि...; गंध...; स्वाद...; स्पर्श...; धम्म...; नेत्र चेतना...; चेतना...; नेत्र स्पर्श...; चेतना...; नेत्र संपर्क और ध्वनि...; मानसिक स्पर्श और ध्वनि...; रूप चिंतन...; धम्म चिंतन...; रूप बोध...; धम्म बोध...; रूप की लालसा...; ...धम्मों की लालसा...

या, ध्यान दें कि संसार दस कारणों से खाली है: भौतिकता का त्याग, व्यर्थता, खालीपन, निस्वार्थता, झूठापन, निष्पादन, शून्यता, अशुभ मूल, कष्टदायक, सृजनशील, सशर्त; भावना..., चिंतन..., अस्तित्व..., ज्ञान..., मृत्यु..., जन्म..., जीवन..., चक्रण..., पुनर्जन्म...।

या, ध्यान दें कि संसार बारह कारणों से खाली है: रूप न तो सजीव है, न जीवन, न मनुष्य, न ब्राह्मण विद्यार्थी, न स्त्री, न पुरुष, न वास्तविक आत्मा, न हम जो हैं, न मैं, न मेरा, न कोई और, न किसी का; भावना..., चिंतन..., कर्म..., चेतना...।

भगवान बुद्ध ने कहा [SN.22.33]: “भिक्षुओं! जो कुछ भी तुम नहीं हो, उसे त्याग दो! यदि तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक लाभ और सुखदायी होगा। और, भिक्षुओं! कौन सा रूप तुम्हारा नहीं है? भिक्षुओं! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो! उसे छोड़ दो, वह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक लाभ और सुखदायी होगा; भावना..., विचार..., कर्म..., यदि वे तुम्हें नहीं जानते, तो उन्हें छोड़ दो! उन्हें छोड़ दो...। भिक्षुओं! क्या तुम सोचते हो कि इस जंगल में लोग घास, जलाऊ लकड़ी, शाखाएँ, पत्ते ले जाएँगे, या जला देंगे, या जो चाहें करेंगे, तुम ऐसा सोचोगे: 'लोग हमें ले जाते हैं, या जला देते हैं, या जो चाहें करते हैं?' 'नहीं, हे महान पुण्य! इसका क्या कारण है? हे महान पुण्य! क्योंकि यह मैं नहीं हूँ, और न ही यह मेरा है।' इसी प्रकार, भिक्षुओं! जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो! उसे दान कर दो, ... और, भिक्षुओं! जो कुछ तुम्हारा नहीं है? ...

आदरणीय आनंद ने विश्व-आदरणीय से कहा [SN.35.85]: “इसे कहते हैं: 'संसार शून्य है, संसार शून्य है,' हे महान गुण! किस स्थिति को 'संसार शून्य है' कहते हैं?” “आनंद, क्योंकि 'मैं' या 'जो मैं हूँ' शून्य है, इसलिए इसे 'संसार शून्य है' कहते हैं। आनंद, 'मैं' या 'जो मैं हूँ' में शून्यता क्या है? आनंद, मुझमें या जो मैं हूँ, आँखें शून्य हैं, रूप..., नेत्र चेतना..., नेत्र संपर्क..., इस नेत्र संपर्क से उत्पन्न होने वाले सभी सुख, दुख या अप्रियता में, 'मैं' या 'मेरा अस्तित्व' शून्य है; कान..., ध्वनि..., गंध..., स्वाद..., शरीर..., स्पर्श..., मन..., धम्म..., चेतना..., इरादा...; आनंद, क्योंकि 'मैं' या 'मेरा अस्तित्व' शून्य है, इसलिए इसे 'संसार शून्य है' कहते हैं।”

“यह विशुद्ध रूप से धर्मों का उद्भव है, विशुद्ध रूप से कर्मों की निरंतरता है, जो इसे सत्यनिष्ठा से देखते हैं, ग्राम प्रधान को कोई भय नहीं होता। संसार एक ही घास और वृक्षों से बना है; जब इसे ज्ञान से देखते हैं, तो अन्य मोड़ों पर किसी और चीज की अपेक्षा नहीं करते।” [थाग.715-717]

भगवान बुद्ध ने कहा [SN.35.246]: “इसी प्रकार, भिक्षुओं! भिक्षु रूप की खोज करते हैं जहाँ कहीं भी उसका पुनर्जन्म हो सकता है; ...भावनाएँ...; ...धारणाएँ...; ...विकल्प...; ...व्यवहार...; ...चेतना...; जब वह इस प्रकार रूपों की खोज करता है, तो 'मैं', 'मेरा' या 'मैं हूँ' के विचार अस्तित्व में नहीं रहते...; ...भावनाएँ... (विलुप्त)।”

“कृपया ध्यान दें कि दुनिया खाली है”: दुनिया खाली है, कृपया ध्यान दें, कृपया जांच करें, कृपया देखें, कृपया मापें, कृपया निर्णय लें, कृपया अंतर करें, कृपया पता लगाएं।

“मोगराज! सदा सचेत”: “मोगराज,” ... “सदा,” .... चार तरीकों से सचेत: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“स्वभाव को त्यागने के बाद”: “स्वभाव” को देखने के बीस आधारों के रूप में जाना जाता है। यहाँ, वे साधारण लोग जिन्होंने पवित्र पुरुष के बारे में नहीं सुना है, जिन्होंने कभी संतों को नहीं देखा है, जो धम्म में निपुण नहीं हैं और जिन्हें धम्म का प्रशिक्षण नहीं मिला है; उन्होंने कभी अच्छे लोगों का धम्म नहीं देखा है, वे धम्म में अकुशल हैं और उन्हें अच्छे धम्म का प्रशिक्षण नहीं मिला है। वे सोचते हैं कि रूप ही आत्मा है, या 'मैं' का रूप है, या रूप 'मुझमें' है, या 'मैं' रूप में हूँ, ...भावना..., ...विचार..., ...चेतना... [SN.22.1], जहाँ ऐसे विचार, बुरे विचार, जंगल (उलझे हुए) विचार, रेगिस्तान (बंजर) विचार, विकृत विचार, विचलित विचार और बंधे हुए विचार, वे धारण करते हैं, स्वीकार करते हैं, चिपके रहते हैं, बुरे रास्ते, बुरा मार्ग, बुरी प्रकृति, वह स्थान जहाँ बाहरी मार्ग टिका हुआ है, विपरियेस का आलिंगन, विपरीत का आलिंगन, विपल्लास का आलिंगन, बुराई का आलिंगन, असत्य को सत्य मानकर, ये सभी बासठ बुरे विचारों की पहुँच में आते हैं, यही स्वयं का दृश्य देखना है। “स्वयं के दृष्टिकोण को हटाने के बाद”: स्वयं के दृष्टिकोण को हटाने के बाद, उन्मूलन के बाद, विच्छेद के बाद, बाहर निकालने के बाद, पूर्ण रूप से हटाने के बाद, त्यागने के बाद, निष्कासित करने के बाद, समाप्त करने के बाद, इसे अस्तित्वहीनता में ले जाने के बाद।

“इस तरह तुम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हो”: इस तरह तुम जन्म से बच सकते हो, बुढ़ापे से बच सकते हो, मृत्यु से बच सकते हो, पार पा सकते हो, आगे बढ़ सकते हो, श्रेष्ठ बन सकते हो, विजय प्राप्त कर सकते हो।

“जो लोग दुनिया को इस तरह से देखते हैं”: जो लोग दुनिया को इस तरह से देखते, परखते, मापते, परखते, भेद करते और स्पष्ट करते हैं, वे ही दुनिया को इस तरह से देखने वाले लोग हैं।

“मृत्यु का राजा देख नहीं सकता”: मृत्यु ही मृत्यु का राजा है; राक्षस भी मृत्यु के राजा हैं। मृत्यु के राजा के लिए “अदृश्य”, अदृश्य, अनदेखा, अप्राप्य, न पाया जाने वाला, न प्राप्त होने वाला। यह बात धन्य बुद्ध ने कही थी [MN.25]:

भिक्षुओं! जैसे वनों में रहने वाला हिरण, वनों में चलते समय, खड़े होते समय, बैठे होते समय, लेटे होते समय, मन की शांति के साथ रहता है, वह क्या है? कारण क्या है? भिक्षुओं! वह एक ऐसा लोक है जहाँ हिंसक लोग नहीं पहुँच सकते। इसी प्रकार, भिक्षुओं! यहाँ, भिक्षु इच्छाओं और अहितकर धर्म का त्याग करने के बाद, वियोग के बाद सुख और आनंद की खोज और प्रतीक्षा में रहते हैं। पहला ध्यान, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें फोड़ने के बाद, राक्षस दृष्टिहीन और अपंग (दुर्भाग्यपूर्ण) अवस्था में चला जाता है।

इसके अलावा, भिक्षुओं! भिक्षु तर्क और चिंतन से शांत, आत्मविश्वासी और एकाग्र मन से रहते हैं। प्रवेश करने के बाद, वे दूसरे ध्यान में रहते हैं जहाँ न तर्क होता है और न चिंतन, और एकाग्रता से आनंद और प्रसन्नता उत्पन्न होती है..., तीसरे ध्यान में..., प्रवेश करने के बाद, न दुख होता है और न सुख, चौथे ध्यान में शांति और जप से, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें नष्ट करने के बाद, ...

हे भिक्षुओं! हे भिक्षुओं, सभी कामवासनाओं और विचारों से ऊपर उठकर, विरोधी विचारों का नाश करके, सभी प्रकार के विचारों के बारे में सोचे बिना, (और यह जान लो): 'शून्य असीम है,' प्रवेश करने के बाद, असीम शून्य में निवास करो, हे भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें निकालने के बाद, ...

इसके अलावा, भिक्षुओं! जब कोई भिक्षु सभी शून्यता और असीमता (और ज्ञान) से परे हो जाता है: 'चेतना असीम है,' तो प्रवेश करने के बाद, चेतना की असीमता में रहें...

इसके अलावा, भिक्षुओं! जब कोई भिक्षु चेतना के सभी असीम स्थानों को पार कर लेता है (और जान लेता है): 'कुछ भी नहीं है,' तो प्रवेश करने के बाद, असीम स्थानों में निवास करें...

इसके अलावा, भिक्षुओं! जब भिक्षु सब कुछ और शून्यता से परे हो जाता है, तो वह एक ऐसे स्थान में प्रवेश करता है और निवास करता है जहाँ न तो बोध होता है और न ही अबोध।

इसके अलावा, भिक्षुओं! जब भिक्षु सभी न सोचने-समझने वाली और न सोचने-समझने वाली अवस्थाओं से परे हो जाता है, तो वह विनाश की इच्छा में लीन हो जाता है और वहीं स्थिर रहता है। ज्ञान से देखने पर, उसके कष्ट नष्ट हो जाते हैं, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें फोड़ने के बाद, राक्षस दृष्टिहीनता और पैरों के बिना अवस्था में प्रवेश कर जाता है, संसार से अपना लगाव छोड़ देता है। वह शांति से चलता है, खड़ा होता है, बैठता है, लेटता है। इसका कारण क्या है? भिक्षु राक्षस के लिए एक अगम्य क्षेत्र है।

इन छंदों के अंत में... "परमेश्वर मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.ए.16

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला   अगला >>>>

16. पिंगिया
89 · [आदरणीय पिंघिया ने इस प्रकार कहा:] मैं बूढ़ा, दुर्बल और रंगहीन हूँ, मेरी आँखें साफ़ नहीं हैं, मेरे कान बेचैन हैं, मुझे मार्ग में नीरसता से नष्ट न होने दें, कृपया धम्म की व्याख्या करें, ताकि मैं जान सकूँ, जहाँ जन्म और वृद्धावस्था का विच्छेद है।

"मैं बूढ़ा, दुर्बल और रंगहीन हूँ": "मैं बूढ़ा हूँ," उम्र बढ़ रही है, वृद्ध हो रहा हूँ, बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा हूँ, जन्म से एक सौ बीस वर्ष का हो चुका हूँ। "दुर्बल," दुर्बल, कमज़ोर और कम बलवान। "रंगहीन," रंगहीन, रंगहीन, रंग गायब हो गया। जो कुछ भी पहले अद्भुत और सुंदर था, वह गायब हो गया है, और दुख प्रकट हो गया है।

"[इस आदरणीय पिंघिया की तरह]": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"आँखें धुंधली हैं और कान बेचैन हैं": आँखें अशुद्ध, मैली और धुंधली हैं, इसलिए मैं अपनी आँखों से आकृतियाँ नहीं देख सकता। "कान बेचैन हैं।" कान अशुद्ध, मैली और धुंधली हैं; इस प्रकार, मैं अपने कानों से ध्वनि नहीं सुन सकता।

"मुझे मार्ग में नीरसता से न मरने दो": "मुझे न मरने दो," मुझे न मरने दो, मुझे लुप्त न होने दो, मुझे दूर न जाने दो। "नीरसता से," अज्ञानता से, अज्ञान में प्रवेश करके, नासमझ, अविवेकी और हीन। "मार्ग में," अपने धम्म, दृष्टिकोण, मार्ग या पथ को जाने बिना, उसे प्राप्त किए बिना, उसे धारण किए बिना, उसे ग्रहण किए बिना और उसकी गवाही दिए बिना मार्ग में मर जाना।

"कृपया धम्म की व्याख्या कीजिए, ताकि मैं जान सकूँ": "धम्म," आरंभ अच्छा है, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। कृपया व्याख्या कीजिए, सिखाइए, ...(अंशित, पिछले भाग देखें)। "मैं जान सकूँ," मैं निश्चित रूप से जान सकूँ, समझ सकूँ, सिद्ध कर सकूँ, पहुँच सकूँ और गवाही दे सकूँ।

“जन्म और वृद्धावस्था से वियोग”: जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग, समाप्ति, विराम, शांति, निर्जीवता और निर्वाण।

90 · [भगवान: “पिंगिया!”] रूपों से पीड़ित लोगों को देखकर, रूपों से “परेशान” अनियंत्रित लोगों को देखकर, इसलिए, पिंगिया, ऐसा व्यक्ति बनो जो जाने न दे (आराम न करे); (भविष्य में) अस्तित्व न होने के लिए रूप का त्याग करो।

“रूप से पीड़ित व्यक्ति को देखकर”: “रूप,” चारों तत्वों का रूप और चारों तत्वों से निर्मित कोई भी वस्तु। सभी सजीव प्राणियों को उनके शारीरिक कारणों और शारीरिक परिस्थितियों के कारण पीटा जाता है, मारा जाता है, चोट पहुँचाई जाती है और सताया जाता है। जब रूप होता है, तो विभिन्न दंड दिए जाते हैं: कोड़े मारना, डंडे से पीटना, बेंत से पीटना, हाथ, पैर, हाथ और पैर, कान, नाक, कान और नाक काटना, खट्टी दलिया से दंडित करना, शंख से गंजा करना, राहु मुख यातना, अग्नि यातना, मोमबत्ती से हाथ की यातना, झाड़-फूंक की यातना, छाल की यातना, हिरण की यातना, हुक से यातना, धन यातना, क्षारीय स्नान यातना, मरोड़ यातना, भूसे से पैर की यातना, गर्म तेल, कुत्ते का काटना, तलवार से छेदने और सिर काटने का आदेश; इस प्रकार सजीव प्राणियों को उनके शारीरिक कारण और शारीरिक परिस्थितियों के कारण पीटा जाता है, मारा जाता है, चोट पहुँचाई जाती है और सताया जाता है। इस प्रकार, पीटा गया, मारा गया, घायल और सताया गया व्यक्ति देखता है, मापता है, तौलता है, न्याय करता है, अलग करता है और स्पष्ट करता है।

“[भगवान: 'पिंगिया!']”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“अनैतिक स्वभाव वाले लोग ‘रूप से पीड़ित’ होते हैं”: “वे पीड़ित होते हैं,” वे चिढ़ते हैं, सताए जाते हैं, क्रोधित होते हैं और बीमार व चिंतित हो जाते हैं। आँखों की बीमारियों से पीड़ित और क्रोधित, सताए हुए, रोगी बन जाते हैं, चिंतित; ...कानों की बीमारियों से...; बीमार होने से...; मक्खियों, मच्छरों, हवाओं, धूप और साँपों के संपर्क से बीमार और चिंतित हो जाते हैं।

या, वे तब पीड़ित होते हैं जब आँख (दृष्टि) गायब हो जाती है, खो जाती है, क्षीण हो जाती है, कम हो जाती है, नष्ट हो जाती है, चली जाती है, कम हो जाती है, ... (छोड़ा गया) वे रोगी, चिंतित हो जाते हैं; ...कान...; नाक, जीभ, शरीर, रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, घर में, समूह (सभा) में, निवास में, लाभ, प्रसिद्धि, प्रशंसा, आनंद, कपड़े, आश्रय, आवास में, जब रोगियों की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ गायब हो जाती हैं..., और चिंता करते हैं।

“लोग” में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, गृहस्थ, भिक्षु, स्वर्गवासी और व्यक्ति शामिल हैं। विश्राम (मुक्त होना) का अर्थ है कि शरीर के बुरे कर्मों, वाणी के बुरे कर्मों, मन के बुरे कर्मों या पाँचों इच्छाओं से विमुख हो जाना और हृदय का विरक्ति भाव उत्पन्न न होना। या अभ्यास के प्रति अनादर की अवस्था, अनित्यता की अवस्था, निरंतर कार्य करने की अवस्था, आदत में फंसे रहने की अवस्था, इच्छाओं की उपेक्षा करने की अवस्था, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने की अवस्था, अभ्यास न करने की अवस्था, कम अभ्यास करने की अवस्था, स्थापना न करने की अवस्था, त्याग करने की अवस्था। इस प्रकार के त्याग की अवस्था को विश्राम कहते हैं।

“पिंगिया! इसलिए, तुम वह व्यक्ति बनो जो त्यागता नहीं”: “इसलिए,” इसलिए; कारण; वजह; स्थिति, जब रूपों में ऐसी परेशानियाँ देखते हो। “वह जो त्यागता नहीं” एक आदरणीय कर्ता है, एक नियमित कर्ता है... (छोड़ा गया, पिछले खंड देखें), अच्छे धम्म में (वह व्यक्ति जो जिम्मेदारी की उपेक्षा नहीं करता) वह व्यक्ति जो त्यागता नहीं है।

“रूप का त्याग कर देना चाहिए ताकि (भविष्य में) कोई रूप न रहे”: (“रूप”) चार तत्वों द्वारा निर्मित रूप। “त्याग कर देना चाहिए,” रूप का त्याग कर देना चाहिए, उसे काट देना चाहिए, उसे समाप्त कर देना चाहिए, उसका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए। “ताकि उसका अस्तित्व समाप्त हो जाए,” इसके अनुसार, आपका रूप यहाँ नष्ट हो जाएगा, और पुनर्जन्म का रूप उत्पन्न नहीं होगा; इच्छा के क्षेत्र में, या भौतिक क्षेत्र में, या अभौतिक क्षेत्र में, या इच्छा में, या भौतिक अस्तित्व में, या निराकार अस्तित्व में, या अस्तित्व में, या अस्तित्व की इच्छा में, या अकल्पनीय में, या कल्पनाहीन में, या एक समूह में, या चार समूहों में, या पांच समूहों में, या आगे के चक्र में, या जन्म में, या अवतार में, या अस्तित्व में, या पुनर्जन्म में, या चक्र में, यह इसे उत्पन्न नहीं करेगा, इसे उत्पन्न नहीं करेगा, या जन्म का कारण नहीं बनेगा, यहीं पर, यह नष्ट हो जाएगा, शांत हो जाएगा, अस्तित्वहीनता में चला जाएगा, समाप्त हो जाएगा।

91 · (पिंगीय:) चारों दिशाओं में, चारों मध्यवर्ती दिशाओं में, ऊपरी और निचली दिशाओं में, इन दस दिशाओं में, संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे आपने देखा, सुना या जाना न हो; कृपया मुझे वह विधि समझाएँ जिससे मैं जन्म और वृद्धावस्था से मुक्ति पा सकूँ।

“चार दिशाएँ,” चारों दिशाओं की मध्य दिशाएँ, ऊपरी और निचली, दस दिशाएँ।

“संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे तुमने देखा, सुना या जाना न हो”: ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे तुमने देखा, सुना या अनुभव न किया हो: तुम्हारे अपने हित, या दूसरों के हित, या दोनों, या जीवन का हित, या भविष्य के जीवन का हित, या स्पष्ट हित, या गहरा हित, या छिपा हुआ हित, या अन्याय का हित, या न्याय का हित, या निर्दोष हित, या अदूषणकारी हित, या शुद्ध हित, या सर्वोच्च हित; इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो अस्तित्व में न हो, ज्ञात न हो और खोजा न गया हो।

“कृपया मुझे धम्म का अर्थ समझाइए”: “धम्म,” शुरुआत अच्छी है... कृपया समझाइए... “मैं जान सकूँ,”...

“जन्म और वृद्धावस्था का त्याग”: जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का त्याग, समाप्ति, विराम, शांति, निर्जीवता और निर्वाण।

92 · [भगवान: “पिंगिया!”] प्यास से व्याकुल लोगों को देखकर, बुढ़ापे से पीड़ित और व्यथित होकर, हे पिंगिया, तुम वह बनो जो कभी न छोड़े: तुम्हें अपनी प्यास त्याग देनी चाहिए ताकि तुम्हारा अस्तित्व समाप्त हो जाए।

“प्यास में डूबे लोगों को देखो”: “प्रेम की प्यास” की प्यास...(छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)। “गहरी प्यास में डूबना,” प्यास में गिर जाना; जो प्यास के साथ चलते हैं, जो प्यास का अनुसरण करते हैं, वे लालसा से घिरे रहते हैं, लालसा से पराजित होते हैं, पराजित होते हैं, और जिनके हृदय लालसा से लूटे जाते हैं। “लोग” का अर्थ प्राणी है। “देखना,” देखना, अवलोकन करना और निहारना।

“[भगवान: 'पिंगिया!']”: ....

बुढ़ापे की पीड़ा और जन्म से ही ऊष्मा (पीड़ा) से पीड़ित होना: "ऊष्मा (पीड़ा)" का अर्थ है जन्म से ऊष्मा, बुढ़ापे से ऊष्मा, बीमारी..., मृत्यु..., दुःख..., निराशा..., नरक में गिरना और यातना सहते हुए जीना... (छोड़ा गया), दृष्टिहीनता..., ऊष्मा से पीड़ित होना, आपदा, विपत्ति, बुराई। "बुढ़ापे की पीड़ा" का अर्थ है उजागर होना, यातना सहना, संयुक्त होना, बुढ़ापे से ग्रसित होना, जन्म के बाद आना, बुढ़ापे के बाद आना, बीमारी से पराजित होना, मृत्यु से आहत होना, बिना आश्रय और बिना शरण के रहना, वे लोग जिनका कोई आश्रय नहीं है।

“पिंगिया! इसलिए तुम वह बनो जो त्यागता नहीं”: “इसलिए” .... “जो त्यागते नहीं” ....

“हमें प्यास का त्याग कर देना चाहिए ताकि हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाए”: प्रेम की प्यास... “प्यास का त्याग कर देना चाहिए”, प्यास छोड़ देनी चाहिए, प्यास का त्याग करना चाहिए, प्यास को दूर भगाना चाहिए, प्यास का अंत करना चाहिए, और प्यास को अस्तित्वहीन बना देना चाहिए। “ताकि हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाए”,...

श्लोक के अंत में, जो ब्राह्मणों के समान ही इरादे, समान ही प्रयास, समान ही झुकाव और समान ही निवास स्थान में रहते हैं, उनके लिए हजारों जीवों की दूर की धूल और धम्म दृष्टि प्रकट होती है: “धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश का कारण है।” ब्राह्मण का मन आसक्ति रहित होकर सभी दोषों से मुक्त होता है। अरहंत के लोक में पहुँचने के साथ ही, उनके भेड़ की खाल के वस्त्र, गुंथे हुए बाल, छाल के वस्त्र, डंडे, लंबे मुँह वाली पानी की बोतलें, बाल और दाढ़ी गायब हो जाते हैं, वे गंजे हो जाते हैं और उनके स्थान पर वस्त्र, कपड़े, ओवरकोट और कटोरे आ जाते हैं। वे भगवान बुद्ध को आदर दिखाने के लिए हाथ जोड़ते हैं और बैठ जाते हैं: “हे महान गुण! भगवान बुद्ध मेरे गुरु हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।”

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला   अगला >>>>

17. दूर तट तक जाने के मार्ग की प्रशंसा करना
(अध्याय का शीर्षक संक्षिप्त रूप में दिया गया है; पूरा शीर्षक है "दूर तट तक जाने के मार्ग की प्रशंसा करने वाले छंदों की व्याख्या"।)

93. भगवान बुद्ध ने यह कहा, जब वे मगध के पासानक चैत्य (रेशमी मंदिर) में रहते थे। बावरी की सेवा करने वाले सोलह ब्राह्मणों के प्रश्नों का उन्होंने एक-एक करके उत्तर दिया।

“भगवान बुद्ध ने यह कहा”: दूर तट के मार्ग के बारे में बात करते हुए। “भगवान बुद्ध,” ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)। भगवान बुद्ध ने यह कहा। “मगध में निवास,” मगध राज्य में रहते हुए, कार्य करते हुए, आगे बढ़ते हुए, रक्षा करते हुए और जीवित रहते हुए। “जब बुद्ध शिला मंदिर में निवास करते थे,” शिला मंदिर में निवास करने वाले बुद्ध को वहाँ बैठे हुए बुद्ध कहा जाता है।

“उन सोलह ब्राह्मणों को जो सेवा करते हैं”: पिंगीय के ब्राह्मण बावरी और पिंगीय के अनुयायी, सेवक, और शिष्य हैं, और वे सोलह हैं। या, वे सोलह ब्राह्मण भगवान बुद्ध के अनुयायी, सेवक, और शिष्य हैं।

“उन्होंने पूछे गए और पूछे गए सभी प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर दिया”: “अनुरोध किया,” चाहा, इच्छा व्यक्त की। “सभी ने पूछा,” सभी ने एक-एक करके प्रश्न पूछे; सभी ने एक-एक करके पूछा; सभी ने एक-एक करके विनती की; सभी ने अनुरोध किया; सभी ने स्पष्टीकरण मांगा। “उन्होंने प्रश्नों का उत्तर दिया,” उन्होंने उत्तर दिया, समझाया, सिखाया, सूचित किया, स्थापित किया, उजागर किया, विश्लेषण किया, समस्या को स्पष्ट किया।

94 · जब व्यक्ति एक-एक करके प्रश्नों के उत्तर समझ लेता है, धम्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो वह उसका अनुसरण और अभ्यास कर सकता है, और वृद्धावस्था और मृत्यु के पार जा सकता है; “ये धम्म दूसरे तट की ओर ले जाते हैं।” इसलिए, इन धम्मों की शिक्षाओं का नाम “पारयण का मार्ग” है।

“जैसा कि एक प्रश्न है”: जैसे अजित के कई प्रश्न हैं, जैसे तिस्सा मेत्तेय के कई प्रश्न हैं, पुणक और मेत्तगू का एक-एक प्रश्न है, जैसे धोतक के भी प्रश्न हैं, वैसे ही मैं उपासिव, नंदा और हेमक की समस्याओं का भी समाधान करता हूँ, जैसे मैं तोदेय्या की समस्याओं का भी समाधान करता हूँ, और जैसे मैं कप्पा के दो प्रश्नों का भी समाधान करता हूँ, वे सभी गुणी जटुकन्नि के समान हैं। जैसे यह भद्रावुधा का भी प्रश्न है, जैसे यह उदय का भी प्रश्न है, जैसे यह पोसाला का भी प्रश्न है, जैसे यह मोगराज का भी प्रश्न है, जैसे यह पिंगिया का भी प्रश्न है।

“कारण जानने के बाद, धम्म को जानने के बाद”: प्रश्न धम्म का है, और उत्तर सत्य है। कारण जानने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय लेने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद। “धम्म को जानने के बाद,” धम्म को जानने के बाद, समझने के बाद... सत्य को जानने के लिए, धम्म को जानने के बाद। “धम्म का पालन और अभ्यास करने में सक्षम”: सही मार्ग, मार्ग का अनुसरण, वह मार्ग जो उलटा नहीं है, वह मार्ग जिसमें कोई विरोधाभास नहीं है, जैसे मार्ग का अर्थ, वह मार्ग जिसे वह लागू कर सकता है।

“वह मृत्यु और देह के दूसरे छोर तक चल सकता है”: मृत्यु और देह के दूसरे छोर को निर्जीवता, निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, लालसा, लोभ का नाश, और अंत में निर्वाण। “वह मृत्यु और देह के दूसरे छोर तक चल सकता है”: वह मृत्यु और देह के दूसरे छोर तक चल सकता है, उस दूसरे छोर को सिद्ध कर सकता है, उसे स्पर्श कर सकता है और उसकी गवाही दे सकता है।

“ये धम्म दूसरे तट तक जा सकते हैं”: ये धम्म दूसरे तट तक जा सकते हैं, ये व्यक्ति को दूसरे तट तक पहुंचाते हैं, पूर्णतः दूसरे तट तक पहुंचाते हैं, और ये देह और मृत्यु की ओर ले जाते हैं।

अतः इन धम्मों की शिक्षाएँ: अतः, ...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। “इन धम्मों की शिक्षा इस परलोक के मार्ग के लिए है।” इसी कारण इन धम्मों का उपदेश दिया जाता है। “परलोक के मार्ग के पर्यायवाची”: परलोक को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है...। इसे मार्ग कहा जाता है, अर्थात् सही दृष्टिकोण...। “पर्यायवाची”: नाम, उपाधि, सामान्य नाम, नामकरण, शब्दावली, वाक्यांश। “परलोक के मार्ग” के पर्यायवाची।

95 · अजिता, तिस्सा मेटेया, पुण्णका और मेट्टागु, साथ ही धोतका, उपशिव, नंदा और हेमाका,

96 · तोदेय्या और कप्पा, और गुणी जटुकन्नी, साथ ही भद्रावुधा, उदय और ब्राह्मण पोसाला, चतुर मोगराज, महान ऋषि पिंगीय के साथ।

97 · वे प्रबुद्ध व्यक्ति, उत्कृष्ट कर्मों वाले महान ऋषि के पास सूक्ष्म प्रश्न पूछते हुए, विजयी व्यक्ति के पास पहुँचते हैं।

“वे प्रबुद्ध व्यक्ति के पास पहुँचते हैं”: “वे,” सोलह ब्राह्मण, परलोक के मार्ग की ओर। “प्रबुद्ध व्यक्ति” वह है जिसने धर्म में उस सत्य को प्रकाशित किया है जो पहले कभी नहीं सुना गया, और जो सर्वज्ञता की अवस्था और शक्ति में स्वतंत्रता की अवस्था को प्राप्त करता है। “प्रबुद्ध व्यक्ति” का क्या अर्थ है? “जो सत्य को अनुभव करता है” वह प्रबुद्ध है, “जीव को जागरूक करता है”..., सर्वज्ञता की अवस्था..., सर्वदृष्टि की अवस्था, और वह अवस्था जो दूसरों द्वारा निर्देशित नहीं होती, वह प्रबुद्ध है। जो मुक्त हो चुके हैं वे प्रबुद्ध हैं, जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर दिया है उन्हें प्रबुद्ध कहा जाता है, जिनके कोई कष्ट नहीं हैं..., जो हमेशा लोभ से मुक्त रहे हैं वे प्रबुद्ध हैं, और जो हमेशा घृणा से मुक्त रहे हैं वे भी प्रबुद्ध हैं। ज्ञानी व्यक्ति के लिए, “जो सदा अज्ञान से दूर रहा हो” वही ज्ञानी व्यक्ति है, “जो सदा अपवित्रता से मुक्त रहा हो”..., वह जिसने बिना चौराहे के मार्ग पार किया हो..., और वह जो एकाकी रहा हो, वह बिना उपदेश दिए ही ज्ञानी है। ज्ञानी व्यक्ति के लिए, मृत्यु से मुक्ति की अवस्था ही ज्ञानी व्यक्ति है, और ज्ञानी अवस्था ही ज्ञानी व्यक्ति है। “ज्ञानी व्यक्ति” यह नाम न तो माता ने दिया है, न पिता ने, न भाई-बहनों ने, न मित्रों ने, न ब्राह्मणों ने; न स्वर्ग ने, यही परम मुक्ति है; बुद्ध, भगवान और बोधि वृक्ष के ज्ञान और साक्ष्य की स्थापना (छद्म नाम), समस्त ज्ञान और बुद्धि के साथ, वही ज्ञानी व्यक्ति है। “वे ज्ञानी व्यक्ति के पास पहुँचते हैं”: वे ज्ञानी व्यक्ति के पास जाते हैं, उन्हें देखते हैं, उनसे मिलते हैं, उनसे पूछते हैं और प्रश्न करते हैं।

“पर्याप्त कर्मों वाले ऋषि”: इस कर्म को व्रत का उद्‌गम कहा जाता है, और व्रत का आत्म-संयम कर्म है; मूल का आत्म-संयम भी कर्म है; उचित मात्रा में आहार का ज्ञान भी कर्म है; संयम में निपुणता प्राप्त करना भी कर्म है; सात सिद्धांत [एम.एन.53] भी कर्म हैं; चार ध्यान भी कर्म हैं। “पर्याप्त कर्मों वाले”, पर्याप्त कर्मों वाले, सर्वोत्तम कर्म, उच्चतम कर्म, प्रथम कर्म, विजयी कर्म और शीर्ष कर्म। “ऋषि”, ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)।

“सूक्ष्म प्रश्न पूछना”: “पूछना,” पूछताछ करना, विनती करना, पूछना; बात स्पष्ट करना। “सूक्ष्म प्रश्न,” गहरे, जिन्हें समझना कठिन, और मौन, विजयी, गैर-सैद्धांतिक, नाजुक, और बुद्धिमानों द्वारा अनुभव किए गए।

“सर्वोच्च विजयी प्रबुद्ध व्यक्ति के निकट”: “प्रबुद्ध व्यक्ति,” अर्थात् धन्य व्यक्ति... “सर्वोच्च विजयी,” प्रथम, सर्वोच्च विजयी, महान, श्रेष्ठ, सर्वोच्च, सर्वोच्च विजेता, शीर्ष प्रबुद्ध व्यक्ति, वे उनके पास आते हैं, निकट आते हैं, मिलते हैं, दर्शन करते हैं, पूछताछ करते हैं और पूछते हैं।

98 · प्रबुद्ध व्यक्ति ने उनके लिए पूछे गए प्रश्नों का सत्यपूर्वक उत्तर दिया, प्रश्नों के उत्तरों से मुनि ने ब्राह्मणों को संतुष्ट किया।

“प्रबुद्ध व्यक्ति उन्हें पूर्ण उत्तर प्रदान करते हैं”: “उनके लिए,” सोलह ब्राह्मणों के लिए, परलोक के मार्ग का। “प्रबुद्ध व्यक्ति,” .... “पूर्ण उत्तर,” प्रबुद्ध व्यक्ति उन्हें पूर्ण उत्तर देते हैं, समझाते हैं, सिखाते हैं, सूचित करते हैं, स्थापित करते हैं, उजागर करते हैं, विश्लेषण करते हैं और स्पष्ट करते हैं।

“सच्चाई से पूछे गए प्रश्न”: “पूछे गए प्रश्न,” पूछे गए प्रश्न, पूछताछ, विनती, अनुरोध और स्पष्टीकरण। “जैसे हैं वैसे ही,” समझाएँ जैसे समझाया जाना चाहिए; सिखाएँ जैसे सिखाया जाना चाहिए; बताएँ जैसे बताया जाना चाहिए; बनाएँ जैसे बनाया जाना चाहिए; उजागर करें जैसे उजागर किया

जाना चाहिए; खोलें जैसे खोला जाना चाहिए; विश्लेषण करें जैसे विश्लेषण किया जाना चाहिए; स्पष्ट करें जैसे स्पष्ट किया जाना चाहिए; जो कहा जाना चाहिए वह कहा जाता है।

“प्रश्नों का उत्तर देना”: प्रश्नों का उत्तर देना, समझाना, सिखाना, सूचित करना, स्थापित करना, उजागर करना, विश्लेषण करना और स्पष्ट करना।

'मुनि ने ब्राह्मणों को संतुष्ट किया: "संतुष्ट करो," संतुष्टि प्रदान करो, संतुष्टि का विस्तार करो, स्पष्ट करो, आनंद उत्पन्न करो और प्रसन्नता पैदा करो। "ब्राह्मण," ... "मुनि"...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

99 · वे सर्वदर्शी, प्रबुद्ध, सूर्य वंश के व्यक्ति से संतुष्ट होकर, महान और बुद्धिमानों के सामने आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे।

“वे सर्वदर्शी से संतुष्ट हैं”: “वे,” ... “संतुष्ट,” .... “सर्वदर्शी,” ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“प्रबुद्ध व्यक्ति, सूर्य वंश का व्यक्ति”: “प्रबुद्ध व्यक्ति,” .... “सूर्य वंश”: सूर्य (आदिको) को सूर्य (सूरियो) कहा जाता है, उसका उपनाम गौतम है, भगवान का उपनाम भी गौतम है, भगवान सूर्य उपनाम के रिश्तेदार हैं, इसलिए प्रबुद्ध व्यक्ति सूर्य वंश का सदस्य है।

“आध्यात्मिक जीवन जियो (ब्रह्म का अभ्यास करते हुए)”: ब्रह्म को अलगाव, संयम, त्याग, वैराग्य, कर्म न करना, कुकर्म न करना, अपराध न करना, उल्लंघन न करना, पुल का विनाश न करना कहा जाता है। या, क्योंकि इनमें कोई भेद नहीं है, इसलिए ब्रह्म को आठ श्रेष्ठ मार्ग कहा जाता है, अर्थात्: सही दृष्टि, सही इच्छा, सही वाणी, सही कर्म, सही जीवन, सही प्रयास, सही विचार, सही एकाग्रता। “वे ब्रह्म का अभ्यास करते हैं”: वे ब्रह्म का अभ्यास करते हैं और उसे स्वीकार करने के बाद ब्रह्म की ओर मुड़ जाते हैं।

“महान और बुद्धिमान के सामने”: महान और सर्वोपरि, सबसे बुद्धिमान, सर्वोच्च बुद्धिमान, सर्वोच्च बुद्धिमान, शीर्ष बुद्धिमान। “सामने”, ठीक सामने, दूर नहीं, पास।

100 · एक-एक करके प्रश्न, जैसा कि प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाया गया है, जो कोई भी इस प्रकार अभ्यास कर सकता है वह इस किनारे से दूसरे किनारे तक चल सकता है।

“एक-एक करके प्रश्न”: अजिता द्वारा एक-एक करके प्रश्न, ...(छोड़ा गया), ...पिंगिया द्वारा।

“प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाया गया”: “प्रबुद्ध व्यक्ति,” .... जैसा कि समझाया गया, सिखाया गया, ...प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा।

“जो कोई भी इस प्रकार अभ्यास कर सकता है”: वह सही मार्ग का अभ्यास कर सकता है, मार्ग का अनुसरण कर सकता है, उस मार्ग का अनुसरण कर सकता है जो विपरीत नहीं है, धर्म का मार्ग और धम्म का मार्ग।

“इस किनारे से दूसरे किनारे तक चलने में सक्षम”: दूसरा किनारा निर्जीव, निर्वाण कहलाता है; यह किनारा अशुद्धियाँ, समुच्चय और सृष्टि कहलाता है। “इस किनारे से दूसरे किनारे तक चल सकता है”: वह इस किनारे से दूसरे किनारे तक चल सकता है, दूसरे किनारे को सिद्ध कर सकता है, दूसरे किनारे को स्पर्श कर सकता है और दूसरे किनारे के समक्ष गवाही दे सकता है।

101 · इस किनारे से दूसरे किनारे तक चलने में सक्षम, जब उच्चतम मार्ग का अभ्यास किया जाता है, तो वह मार्ग दूर के किनारे की ओर जाता है, इसलिए इसे "दूर के किनारे का मार्ग" कहा जाता है।

“इस किनारे से दूसरे किनारे तक चलने में सक्षम”: ....

“सर्वोच्च मार्ग का अभ्यास करते समय”: सर्वोच्च मार्ग को आठ पवित्र मार्ग कहा जाता है, अर्थात्: सही दृष्टिकोण... “अभ्यास करते समय”, अभ्यास करते समय, पूर्ण रूप से अभ्यास करते समय।

“वह रास्ता दूर किनारे तक पहुँचने का है”: वह रास्ता, पथ, सड़क, पगडंडी, पैदल मार्ग, जिसमें नावें, नौका पुल, बेड़ा, बांस के बेड़ा और पुल शामिल हैं।

“दूर किनारे तक पहुँचने के लिए,” दूर किनारे तक पहुँचने के लिए, दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए, बुढ़ापे और मृत्यु के पूर्ण अंत तक पहुँचने के लिए।

इसलिए इसे 'दूर तट का मार्ग' कहा जाता है: इसलिए... दूसरी ओर निर्जीव, निर्वाण कहलाता है... इस प्रकार... क्योंकि यह ऐसा ही है, इसलिए इसे 'दूर तट का मार्ग' कहा जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.अ.18

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

18. दूर तट तक जाने के मार्ग का पाठ
(अध्याय का शीर्षक संक्षिप्त रूप में दिया गया है; पूरा शीर्षक है "दूर तट की ओर जाने के मार्ग के बारे में पढ़े जाने वाले श्लोकों की व्याख्या"।)

102 · [आदरणीय पिंघिया ने इस प्रकार कहा:] मैं दूसरे मार्ग का वर्णन करूँगा, जैसा कि वह देखता है, जैसा कि वह बताता है: दोषरहित पुरुष, विशाल ज्ञानी, इच्छा से मुक्त, एक निर्मल इच्छाहीन नाग, वह व्यर्थ क्यों कहेगा?

“मैं दूसरी सड़क का पाठ करने जा रहा हूँ”: मैं वही पाठ करने जा रहा हूँ जो पहले ही पाठ किया जा चुका है, मैं वही पाठ करने जा रहा हूँ जो वर्णन के साथ बताया गया है, मैं उसी विषय पर बात करने जा रहा हूँ जिस पर बात की जा चुकी है, मैं वही कहने जा रहा हूँ जो कहा जा चुका है।

“[इस आदरणीय पिंघिया की तरह]”: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“यदि वह इस प्रकार देखता है, तो वह बोलता है”: यदि वह इस प्रकार देखता है, तो वह बताता है, समझाता है, सिखाता है, सूचित करता है, स्थापित करता है, उजागर करता है, विश्लेषण करता है और स्पष्ट करता है: “सभी कर्म अनित्य हैं,” क्योंकि वह इस प्रकार देखता है..., “सभी कर्म दुखदायी हैं”..., “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”..., “धर्मों का प्रत्येक संग्रह धर्मों का अंत है”...।

“दोषरहित पुरुष, परम बुद्धिमान”: दोषरहित; लोभ दोष है, घृणा दोष है, अज्ञान, क्रोध, द्वेष, सभी अस्वास्थ्यकर कर्म दोष हैं; और बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए दोष काट दिए गए हैं, और उनकी जड़ें काट दी गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे बिना जड़ों वाला ताड़ का पेड़ अस्तित्वहीन हो जाता है, भविष्य के लिए निर्जीव हो जाता है। बुद्ध दोषनाशक हैं, दोषमुक्त करने वाले हैं, दोष त्यागने वाले हैं, दोष से मुक्त होने वाले हैं, सभी दोषों पर विजय प्राप्त करने वाले हैं। परम बुद्धिमान; जैसे पृथ्वी को विशाल कहा जाता है...(विलुप्त, पिछले भाग देखें), इसलिए बुद्ध अत्यंत बुद्धिमान हैं।

“इच्छा से मुक्त, इच्छा रहित, व्यथित नाग (महान, या हाथी)”: “इच्छा,” इच्छाएँ दो प्रकार की होती हैं...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)। भगवान इच्छा में इच्छा नहीं करते...(छोड़ा गया, पिछले खंड देखें)।

“जिनके मन में कोई व्यथित इच्छा नहीं है,” उनके लिए लोभ ही व्यथित इच्छा है; घृणा... कहा जाता है कि यह कट गई है, और इसकी जड़ ही कट गई है... इसलिए, बुद्ध वह व्यक्ति हैं जिनके मन में कोई व्यथित इच्छा नहीं है... वह व्यक्ति जिसके मन में कोई इच्छा नहीं है। “नाग,” ...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)।

“वह झूठ क्यों बोलेगा?”: “किस कारण?” कारण क्या है? स्थिति क्या है? “झूठ बोलना” का अर्थ है झूठ बोलना, झूठा कथन करना, झूठ बोलना, अपवित्र शब्द बोलना: यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग आराधनालय, सभा, रिश्तेदारों, समूह या महल में गवाह के रूप में लाए जाते हैं और उनसे प्रश्न पूछा जाता है: “अरे, मुझे बताओ कि तुम मार्ग के बारे में क्या जानते हो।” वे बिना जाने कहते हैं: “मैं जानता हूँ।” या, यदि वे जानते हैं, तो वे कहते हैं: “मैं नहीं जानता।” वे उसे नहीं देखते और कहते हैं, “मैं देखता हूँ।” या, जब वे उसे देखते हैं, तो वे कहते हैं, “मैंने उसे नहीं देखा।” इस प्रकार, वे जानबूझकर अपने स्वार्थ के लिए, या दूसरों के स्वार्थ के लिए, या थोड़े से प्रलोभन के कारण व्यर्थ बोलते हैं।

या, तीन व्यवहारों को "झूठा" मानकर चलें: बोलने से ठीक पहले (सोचते हुए): "मैं झूठ बोलूँगा।" बोलते ही (सोचते हुए): "मैं झूठ बोल रहा हूँ।" बोलते ही (सोचते हुए): "मैंने झूठ बोल दिया है।" इन तीनों व्यवहारों को झूठ मान लें। या, चार व्यवहारों को मानकर चलें: बोलने से ठीक पहले (सोचते हुए): "मैं झूठ बोलूँगा।" बोलते ही (सोचते हुए): "मैं झूठ बोल रहा हूँ।" बोलते ही (सोचते हुए): "मैंने झूठ बोल दिया है।" विभिन्न आसक्तियों (त्रुटियों) के मत हैं, और इन चारों व्यवहारों को झूठ माना जाता है। या, पाँच रूपों..., छह रूपों..., सात रूपों..., आठ रूपों को झूठ मानकर चलें: बोलने से पहले... विभिन्न आसक्तियों के (गलत) मत, विभिन्न आसक्तियों की पसंद, विभिन्न आसक्तियों की प्रवृत्तियाँ, विभिन्न आसक्तियों की इच्छाएँ और विभिन्न आसक्तियों का स्वरूप होता है। इन आठ व्यवहारों को झूठ और झूठे शब्द माना जाता है।

103 · जिन्होंने अपनी अज्ञानता और बुराई का त्याग कर दिया है, जिन्होंने अहंकार और बुराई को छुपाने का त्याग कर दिया है, आओ! मैं तुम्हें सुंदर शब्द सुनाऊँगा।

“अज्ञान और अपवित्रता का त्याग करने वालों से संबंधित”: “अपवित्रता,” लोभ..., क्रोध..., अज्ञान..., आलस्य..., दृष्टि..., प्रदूषण..., सभी बुरे कर्म अपवित्रता हैं; कर्म गंदगी है।

“अज्ञान,” दुख का अज्ञान... बुद्ध और भगवान के लिए, अज्ञान और अशुद्धता का नाश हो चुका है... इसलिए, बुद्ध ही वह हैं जिन्होंने अज्ञान और अशुद्धता का त्याग किया है।

“जो लोग अहंकार का त्याग करते हैं और बुराई को छुपाते हैं”: “अहंकार,” एक प्रकार का अहंकार: जो हृदय की पराकाष्ठा है; दो प्रकार...: आत्म-प्रशंसा अहंकार है, दूसरों के प्रति तिरस्कार अहंकार है; तीन: “मैं विजेता हूँ”..., “मैं समान हूँ”, “मैं हीन हूँ”; चार: लाभ, यश, प्रशंसा और सुख प्राप्त करना; पाँच: “मुझे मनचाहा रूप प्राप्त होता है”, “मुझे मनचाही ध्वनि प्राप्त होती है”, गंध..., स्वाद..., स्पर्श...; छह प्रकार: आँखों से..., कानों से..., नाक से, जीभ से, शरीर से...मन की संतुष्टि अहंकार को बढ़ाती है; सात: अहंकार, घमंड, अहंकार और घमंड, विनम्रता, वृद्धि का अहंकार, आत्म-सत्यता का अहंकार, बुराई का अहंकार; आठ: प्राप्ति अहंकार को बढ़ाती है, प्राप्ति न होना..., यश, यशहीनता, प्रशंसा, निंदा, सुख और दुख। नौ: विजेता सोचता है: “मैं विजेता हूँ”..., विजेता सोचता है: “मैं समान हूँ,” विजेता सोचता है: “मैं हीन हूँ”...; और समान व्यक्ति सोचता है: “मैं विजेता हूँ,” समान व्यक्ति सोचता है: “मैं समान हूँ,” समान व्यक्ति सोचता है: “मैं हीन हूँ,” हीन व्यक्ति सोचता है: “मैं विजेता हूँ,” हीन व्यक्ति सोचता है: “मैं समान हूँ,” हीन व्यक्ति सोचता है: “मैं हीन हूँ;” दस प्रकार...: यहाँ, किसी विशेष जन्म, या उपनाम, या अच्छे परिवार, या कमल के समान सौंदर्य, या संपत्ति, या शोध (अधिग्रहण), या व्यवसाय, या शिल्प कौशल, या अध्ययन, या सुनी-सुनाई बातों से, या बहस करने से, या किसी ऐसी चीज़ से जो किसी को अहंकारी बना दे; जो कोई भी इस प्रकार, इस प्रकार के हृदय अहंकार के साथ, स्थिति को समझते हुए, उच्च प्रशंसा, उच्च अहंकार को ध्वज की तरह, हृदय के अभिमान की तरह मानता है, वह अहंकारी कहलाता है।

बुराई को छुपाना, पाखंड, ईर्ष्या, जलन जैसे व्यवहार को बुराई छुपाना कहते हैं। बुद्ध और भगवान बुद्ध ने अहंकार और बुराई छुपाने की प्रवृत्ति को त्याग दिया है... इसलिए बुद्ध अहंकार और बुराई छुपाने की प्रवृत्ति का त्याग करने वाले व्यक्ति हैं।

"आओ! मैं तुम्हें सुंदर शब्दों के बारे में बताऊंगा": "आओ," वाक्यों की निरंतरता; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों का समापन; शब्दों का संयोजन; शब्दों और वाक्यों का जुड़ाव; यही वाक्य का क्रम है, जो "आओ" है। "मैं सुंदर शब्दों के बारे में बताऊंगा," पहुंचना (पाना), आना, प्रवेश करना, पूरी तरह से प्रवेश करना, पर्याप्त होना, पर्याप्त रूप से होना, सुंदर शब्द, भाषा और वाणी होना, मैं बताऊंगा, सिखाऊंगा, निर्माण करूंगा, उजागर करूंगा, विश्लेषण करूंगा और स्पष्ट करूंगा।

104 · अंधकार को दूर करने वाले, प्रबुद्ध और सर्वदर्शी, जो जगत के छोर तक पहुँच चुके हैं, समस्त (अस्तित्वों) से परे, जिन्हें कोई कष्ट नहीं है, जो समस्त दुखों का त्याग कर देते हैं, वही वास्तव में (संबुद्ध) कहलाते हैं, हे ब्राह्मण! मैं उनकी सेवा करता हूँ।

"अंधकार को दूर करने वाला, प्रबुद्ध और सर्वदर्शी": "अंधकार को दूर करने वाला," लोभ का अंधकार, घृणा का अंधकार, ...अज्ञान, ...आलस्य, ...अशुद्धता, ...बुराई, ...अंधता, ...बुराई, ...अज्ञान, ...बुद्धि का विनाश, ...विवाद करने वाले गुट, ...वह जो निर्वाण की ओर नहीं ले जाता; उसे दूर करना, हटाना, त्यागना, भगाना, समाप्त करना और उसे अस्तित्वहीन बना देना। "वही धन्य हैं...।" सभी आँखों को सर्वज्ञ ज्ञान की अवस्था कहा जाता है...(विलुप्त, पिछले भाग देखें)।

"वे जो संसार के छोर तक पहुँच चुके हैं, सभी को पार करते हुए": "संसार," एक संसार: अस्तित्व का संसार; दो संसार: अस्तित्व का संसार और उद्भव का संसार; जो संसार में आया है और जो उत्पन्न हुआ है, वही संसार बनता है; पतन का संसार है और संसार के उद्भव का पतन है। तीन संसार: तीन भावनाएँ। चार संसार: चार पोषक तत्व। पाँच संसार: पाँच संचय। छह संसार: छह आंतरिक संसार। सात संसार: सात चेतना निवास। आठ संसार: आठ विश्व प्रणालियाँ। नौ संसार: जहाँ नौ जीव निवास करते हैं। दस संसार: दस स्थान। बारह संसार: बारह स्थान। अठारह संसार: अठारह संसार। "वे जो संसार के छोर तक पहुँच चुके हैं," भगवान बुद्ध वे हैं जो संसार के छोर तक पहुँच चुके हैं; अंत तक पहुँच चुके हैं; ...निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं; ...निर्वाण में अवतरित हो चुके हैं, ...जीवन और मृत्यु के चक्र का अभ्यास कर चुके हैं, बिना पुनर्जन्म के।

"सब कुछ से परे" के दो प्रकार हैं: कर्म और पुनर्जन्म। कर्म क्या है? पुण्य कर्म, अपुष्ट कर्म और अटल कर्म कर्म हैं। पुनर्जन्म क्या है? शरीर के रूप, भावनाएँ, विचार, व्यवहार और चेतना पुनर्जन्म हैं। भगवान परमपिता हैं, वे पार हो चुके हैं और विजय प्राप्त कर चुके हैं।

"जिनके पास कोई चिंता (कष्ट) नहीं है, जिन्होंने सभी दुखों का त्याग कर दिया है": "चिंताओं" में चार प्रकार की चिंताएँ होती हैं: इच्छाओं की चिंता, अस्तित्व की चिंता, देखने की चिंता, अज्ञान की चिंता। बुद्ध और भगवान बुद्ध की तरह, इन चिंताओं का त्याग कर दिया गया है, इसलिए बुद्ध एक कष्टमुक्त व्यक्ति हैं। "सभी दुखों का त्याग करना" का अर्थ है जीवन के पुनरुत्पादन से संबंधित सब कुछ, दुख, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु, शोक, शोक, निराशा... क्षय का दुख, सब कुछ समाप्त हो गया है, शांत हो गया है, रुक गया है, उत्पन्न होने में असमर्थ है, और ज्ञान की अग्नि से जल गया है। बुद्ध ही वह हैं जिन्होंने सभी दुखों का त्याग कर दिया है।

"सच्चे नाम वाले, ब्राह्मण! मेरी सेवा में रहो": "सच्चे नाम वाले," सच्चे नाम से संबोधित, समतुल्य नाम, समतुल्य संबोधनकर्ता, सच्चे समतुल्य संबोधित; विपस्सी बुद्ध, सिखी बुद्ध, वेस्साभू, ककुसंध, कोणागमना, कस्सपा — ये बुद्ध और भगवान (गौतम) वे हैं जिनका नाम और संबोधन एक ही है, और शाक्यमुनि भी उन्हीं बुद्धों में से हैं, और भगवान का नाम भी वही है और वे भी उन्हीं में से हैं जिनका नाम एक ही है।

"ब्राह्मण! मेरी सेवा में रहो": भगवान पर मुझे भरोसा है, मैं उनकी सेवा करता हूँ और उनका सम्मान करता हूँ, (जो) हर समय प्रश्न पूछते रहते हैं।

105 · उदाहरण के लिए, जैसे एक पक्षी एक छोटे से जंगल को छोड़कर फलदार जंगल में रहता है, वैसे ही जब मैं इस तरह के संकीर्ण विचारों वाले सभी को छोड़ देता हूँ, तो मैं उस हंस की तरह हूँ जो बड़ी झील तक पहुँच गया है।

उदाहरण के लिए, जैसे कोई पक्षी एक छोटे जंगल को छोड़कर फलदार जंगल में रहने लगता है: दो बार जन्म लेने वाले पक्षी को पंखदार पक्षी कहा जाता है। दो बार जन्म लेने वाले पक्षी को पंखदार क्यों कहा जाता है? "दो बार जन्म लेना" का अर्थ है दो बार जन्म लेना: माँ के गर्भ और अंडे के छिलके से दो बार जन्म लेने के कारण, दो बार जन्म लेने वाले पक्षी को पंखदार कहा जाता है। "जैसे एक छोटे जंगल को छोड़ने के बाद," एक पक्षी की

तरह, जो एक छोटे पहाड़ी जंगल में रहता है जहाँ फल, भोजन और पानी कम होता है, उसे छोड़ने के बाद, उससे आगे बढ़ने के बाद, उसे पार करने के बाद, उसे दूसरे फल, बड़े और घने जंगल मिलेंगे जहाँ भोजन और पानी भरपूर मात्रा में होगा, और वह उस घने जंगल में अपना आश्रय बनाएगा।

"इस प्रकार, जब मैं संकीर्ण विचारों वालों का त्याग कर देता हूँ, तो यह उस प्रकार है जैसे कोई हंस विशाल झील तक पहुँच जाता है": "इस प्रकार" एक लाक्षणिक व्यवस्था है। "संकीर्ण विचारों वालों का त्याग करने के बाद," बावरि ब्राह्मण और उनके अन्य गुरुओं ने बुद्ध और भगवान की तुलना उन लोगों से की है जो दुर्लभ, तुच्छ, हीन, छोटे, कम दिखाई देने वाले, निम्न, गैर-सर्वोच्च, हीन हैं; त्यागने के बाद, छोड़ने के बाद, पार करने के बाद, गुजरने के बाद और पार करने के बाद, सबसे अधिक दिखाई देने वाला व्यक्ति बुद्ध, भगवान को प्राप्त करता है, पाता है और पा लेता है: असीम द्रष्टा, शीर्ष द्रष्टा, असमान, अद्वितीय, अविभेदित, अतुलनीय, आकाश में स्वर्ग, मनुष्यों में बैल राजा, मनुष्यों में शेर, मनुष्यों में हाथी, मनुष्यों में बलवान धीरज वाला गुणी पुरुष, दस शक्तियों का धारक। उदाहरण के लिए, जैसे हंस किसी विशाल मानव निर्मित या प्राकृतिक तालाब, या समुद्र-झील के अविचल और असीम जल भंडार को पा लेते हैं, खोज लेते हैं और प्राप्त कर लेते हैं; उसी प्रकार, बुद्ध और भगवान अविचल, अनंत प्रकाश से परिपूर्ण, ज्ञान से परिपूर्ण, निर्भीक, निर्भीक, निर्मल, निर्मल, शुद्ध आकांक्षाओं वाले, श्वेत आवरण से आच्छादित, मौन, स्वयं को ऐसा बताने वाले, न छोटे, महान, गहरे, अतुलनीय, अगम्य, अपार खजाने से परिपूर्ण, सागर के समान, छह सान्निध्यों से परिपूर्ण, अतुलनीय, विशाल और अतुलनीय हैं। वह उस प्रकार का वक्ता है, मार्ग का वक्ता है, पहाड़ों में मेरु पर्वत के समान, पक्षियों में स्वर्ण पंखों वाले पक्षी के समान, जानवरों में शेर के समान, समुद्र में मिलने वाली नदी के समान, वह स्वामी है, विजेता है, सर्वोच्च है और महान ऋषि है।

106 · गौतम की शिक्षा से पहले उन्होंने मुझे जो कुछ भी बताया था: ऐसा पहले था, ऐसा होगा; वह सब अफवाहें हैं, वह सब सिद्धांत में वृद्धि है।

"उन्होंने मुझे पहले क्या बताया था": "क्या," बावरी ब्राह्मण और उनके अन्य शिक्षक, वे समझाते हैं, सिखाते हैं..., अपने स्वयं के विचार, पसंद, झुकाव, राय, इरादे।

"गौतम की शिक्षाओं से पहले": गौतम की शिक्षाओं से पहले, गौतम की शिक्षाओं के दूसरी ओर, गौतम के आदेशों से पहले, बुद्ध के उपदेशों से पहले, विजेताओं के उपदेशों से पहले, तथागत के उपदेशों से पहले, अरहंतों के प्रथम उपदेशों से पहले।

"ऐसा था और वैसा था, ऐसा होगा और वैसा होगा": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"ये सब अफवाहें हैं": ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)।

"सिद्धांत में यही सारी वृद्धि है": ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

107 · जो एकाकी हैं, अंधकार को दूर करने वाले, जो बैठे हुए हैं, जो प्रकाशमान हैं, जो प्रकाश के निर्माता हैं, जो धन्य हैं, जो धन्य हैं, जो सर्वव्यापी रूप से बुद्धिमान हैं।

"जो अकेला है, जो अंधकार को दूर करता है, और जो बैठा हुआ है": "जो अकेला है," भगवान अकेले ही भिक्षु बन गए हैं, धर्म के लिए अकेले ही उनका कोई साथी नहीं है, धर्म की प्यास अकेले ही है, और "हमेशा लोभ से मुक्त" अकेले ही हैं, "हमेशा भ्रम से मुक्त" अकेले ही हैं, "हमेशा दुराचार से मुक्त" अकेले ही हैं, "हमेशा अपवित्र" अकेले ही हैं, "बिना किसी मोड़ के सड़क पार करने वाले" अकेले ही हैं, और "सर्वोच्च ज्ञान को पहले ही प्राप्त कर चुके" अकेले ही हैं।

भगवान बुद्ध अकेले ही भिक्षु कैसे बने? जब भगवान बुद्ध युवा थे, तब वे काले बालों वाले युवक थे और यौवन के सुख से परिपूर्ण थे। जीवन के आरंभ में, माता-पिता की अनिच्छा के बावजूद, वे रोते-बिलखते और आहें भरते हुए भी अपने रिश्तेदारों को त्याग देते हैं, घर के सभी बंधनों को तोड़ देते हैं, अपने बच्चों, पत्नी, परिवार, मित्र, भंडारगृह आदि के बंधनों को तोड़ देते हैं, अपने बाल मुंडवाकर वस्त्र धारण कर लेते हैं और घर छोड़कर निर्धन भिक्षु बन जाते हैं। वे अकेले ही जीवन व्यतीत करते हैं, कर्म करते हैं, रक्षा करते हैं और जीवित रहते हैं।

भगवान बुद्ध अकेले बिना साथी के कैसे रह सकते हैं? जब वे ऐसे भिक्षु थे, तब वे जंगलों, घने वनों और सीमावर्ती आवासों (बैठने के स्थानों) में अकेले रहते थे: शांत, वातावरण से दूर, अकेले रहते थे, अकेले बैठने के लिए उपयुक्त; वे अकेले चलते, अकेले खड़े होते, अकेले बैठते, अकेले लेटते, भिक्षा मांगने के लिए अकेले गाँव जाते, अकेले आगे बढ़ते, अकेले लौटते, शांत स्थान पर अकेले बैठते, अकेले कर्म करते, अकेले रहते, चलते, आगे बढ़ते, पहरा देते और अकेले ही अपना जीवन यापन करते।

भगवान बुद्ध प्यासी प्रेम की पीड़ा से अकेले कैसे निपट सकते हैं? वे इतने अकेले और बिना साथी के थे, जब वे अनिच्छा, उत्साह और स्वयं के प्रयासों से जीवन व्यतीत कर रहे थे। नेरांजरा नदी के किनारे बोधि वृक्ष के नीचे, उन्होंने परिश्रम और प्रयास से सेना सहित राक्षस (मारा), दुष्ट दानव और उनके रिश्तेदारों का नाश किया; उसके बाद, उन्होंने जाल में फँसे, तीव्र गति से बहने वाले, उलझे हुए प्यासे प्रेम को त्याग दिया, भगा दिया, समाप्त कर दिया और उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया।

"जिन लोगों का साथी प्यासी प्रेम होता है, वे लंबे समय तक पुनर्जन्म लेते हैं, ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, अन्य अवस्थाओं में पहुँच जाते हैं, पुनर्जन्म से परे नहीं जा पाते। इस प्रकार के कष्ट को जानकर: लालसा ही दुख का मूल है, प्यासी प्रेम से विमुख होकर, बिना कुछ ग्रहण किए, भिक्षुओं को सचेतन होकर आगे बढ़ना चाहिए।" [इत.15/स्न.3.12,745-746]

भगवान बुद्ध हमेशा लोभ से दूर रहकर अकेले कैसे रह सकते हैं? "लोभ की अवस्था का त्याग करना" एकांत है, "क्रोध की अवस्था का त्याग करना", ...भ्रम की अवस्था का त्याग करना..., अशुद्धता की अवस्था का त्याग करना...

भगवान बुद्ध बिना मोड़ वाले मार्ग को पार करने वाले अकेले कैसे हो सकते हैं? बिना मोड़ वाले मार्ग को चार ध्यान (विभिन्न भाग देखें) आठ पवित्र मार्ग कहा जाता है।

"जो जीवन की मृत्यु (पुनर्जन्म) को देखता है, जो करुणामय है, जो बिना मोड़ वाले मार्ग को जानता है, इसी मार्ग से उन्होंने अतीत में बाढ़ पार की, भविष्य में भी पार करेंगे, और वर्तमान में भी पार कर रहे हैं।" [SN.47.18]

भगवान बुद्ध का एकमात्र ज्ञान किस प्रकार अकेला होना है? ज्ञान को बुद्धि, बुद्धि का मूल, बुद्धि की शक्ति, चयन का ज्ञान, अन्वेषण, विपश्यना, चारों लोकों का सही दृष्टिकोण कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने यह अनुभव किया कि "सभी कर्म अनित्य हैं", (कुछ अंश हटा दिया गया है)। "धर्मों का प्रत्येक संग्रह नष्ट हो जाता है।" या, जो कुछ भी अनुभव किया जाना चाहिए, जिसके प्रति सचेत होना चाहिए, जिसे जागृत किया जाना चाहिए, जिसे प्रबुद्ध किया जाना चाहिए, जिसे बोध किया जाना चाहिए, जिसे स्पर्श किया जाना चाहिए, जिसकी गवाही दी जानी चाहिए, वह सब उस चेतना, जागृति, ज्ञान, प्राप्ति, पहुँच और गवाही के प्रति सचेत है।

"अंधकार को दूर करते हुए," .... "बैठते हुए," भगवान रॉक मंदिर में बैठे हैं।

"जब मुनि पर्वत पर बैठे थे, जो दुखों के पार पहुँच चुके थे, तब उनके शिष्यों ने तीन ज्ञानों से युक्त, मृत्यु के नाश करने वालों की सेवा की।" [एसएन.8.10]

या फिर, उस अवस्था में जब सभी प्रयास समाप्त हो चुके होते हैं, तब भगवान ही विराजमान होते हैं, वही अवतरित होते हैं और वही अभ्यास करते हैं...

"वह प्रकाशमान व्यक्ति है, प्रकाश का निर्माता है": प्रकाशमान व्यक्ति बुद्धिमान, परम बुद्धिमान, प्रबुद्ध, विशिष्ट और ज्ञानवान है। "प्रकाशमान निर्माता," प्रकाश का निर्माता, प्रकाशदाता, प्रकाश लाने वाला।

“धन्य पुरुष वह है जो व्यापक रूप से बुद्धिमान है”: धन्य पुरुष वह है जो विशालता का प्रतीक है, बुद्धि प्रतीक है, बुद्धि ध्वज है, बुद्धि चिह्न है, बुद्धि बढ़ती है, बुद्धि प्रचुर है, अधिक सचेत, पूर्णतः सचेत स्वभाव, समझ में जीने वाला, चरित्र, अधिक, गंभीर, उसका उद्देश्य, झुकाव, दुबला, विजेता, और बेहतर।

“झंडा रथ का प्रतीक है, धुआँ आग का प्रतीक है, राजा देश का प्रतीक है, और पति स्त्री का प्रतीक है।” [SN.1.72]

इसी प्रकार, भगवान विशालता (व्यापक ज्ञान) के प्रतीक हैं, ज्ञान ही प्रतीक है... जो समझते हैं, जिनके पास चरित्र है, जिनके पास अधिक है, जो दूसरों को महत्व देते हैं, जो उसे लक्ष्य बनाते हैं, जो कड़ी मेहनत करते हैं, वे उसकी ओर झुकते हैं, समाधान ढूंढते हैं, सुधार करते हैं, अधिक चरित्रवान होते हैं, दूसरों पर जोर देते हैं, उसे लक्ष्य बनाते हैं, कड़ी मेहनत करते हैं, जो विजय प्राप्त करता है, जो वृद्धि करता है, उसकी ओर झुकते हैं।

“गौतम अत्यंत बुद्धिमान व्यक्ति हैं”: जिस प्रकार पृथ्वी को विशाल कहा जाता है... अतः बुद्ध अत्यंत बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

108 · जिसने मुझे धम्म सिखाया: प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला, तत्काल, प्यास का नाश, आपदा से मुक्ति, जिसके लिए कहीं भी कोई रूपक नहीं है।

“वह जो मुझे धम्म सिखाता है”: “वह,” यानी वह जो विश्व-सम्मानित व्यक्ति है, एकमात्र व्यक्ति है, और वह जो बिना गुरु के धम्म में उस सत्य को जानता है जो पहले कभी नहीं सुना गया, और वहाँ सर्वज्ञता की अवस्था प्राप्त करता है, वह जो शक्ति में स्वतंत्रता की अवस्था में है। “धम्म का शिक्षण,” “धम्म,” आरंभ अच्छा है...(उद्धृत); उन्होंने समझाया, सिखाया, सूचित किया, स्थापित किया, उजागर किया, विश्लेषण किया और स्पष्ट किया।

“प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष, तात्कालिक”: प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष, तात्कालिक, आपको मिलने का निमंत्रण दिया जाता है, मार्गदर्शन दिया जाता है, और ज्ञानी व्यक्ति को स्वयं इसका अनुभव करना चाहिए। या, जो आठ पवित्र मार्गों का अभ्यास करता है, वह उस मार्ग को बिना किसी भेदभाव के और तात्कालिक रूप से अनुभव करता है, और उसे फल प्राप्त होते हैं। “तात्कालिक” का अर्थ यह नहीं है कि जब कोई व्यक्ति मरने के बाद किसी को अपनी संपत्ति सौंपता है, तो वह उस समय की प्रतीक्षा करता है; धम्म वास्तव में ऐसा नहीं है। जो कोई भी अपने जीवन में आठ आर्य मार्गों का अभ्यास करता है, वह उस मार्ग को बिना किसी भेदभाव के और तात्कालिक रूप से अनुभव करता है। उसे फल प्राप्त होते हैं, कहीं और नहीं (अगले जन्म में नहीं), दूसरे लोक में नहीं (अगले जन्म में नहीं), यह क्षणिक है।

“प्यास का बुझना, कोई विपत्ति नहीं”: “प्रेम की प्यास,” रूप की प्यास... “प्यास का बुझना,” प्यास का बुझना, ...लालच का, घृणा का, ...भ्रम का, स्वार्थ का, पिछले जन्मों के, पुनर्जन्म के चक्र का, कुछ, पुनर्जन्म, चक्र। “कोई विपत्ति नहीं,” प्रदूषण और निर्माण को विपत्तियाँ कहा जाता है, विपत्तियों का त्याग, विपत्तियों का अंत, विपत्तियों का विघटन, विपत्तियों का रुकना, निर्जीवता और निर्वाण।

“उसके लिए, चाहे वह कहीं भी हो, कोई रूपक नहीं है”: “उसके लिए,” निर्वाण के लिए। “कोई रूपक नहीं है,” कोई रूपक नहीं है, कोई तुलना नहीं है, कोई समतुल्य नहीं है, कोई समानता नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है, जिसे जाना नहीं जा सकता, जिसे खोजा नहीं जा सकता। “चाहे कहीं भी हो,” चाहे कहीं भी हो, कहीं भी, अपने भीतर या बाहर, या भीतर और बाहर।

109 · (बावरी:) हे पिंघिया, तुम उस व्यक्ति से एक क्षण के लिए भी क्यों दूर हो जाते हो, भगवान बुद्ध की व्यापक समझ से, भगवान बुद्ध के व्यापक ज्ञान से?

“तुम उस स्थान से क्यों चले गए?”: तुम बुद्ध को छोड़कर क्यों चले गए?

“पिंगिया, पल भर के लिए भी”: एक पल के लिए भी, एक क्षण के लिए भी, समय के एक अंश के लिए भी, आधे दिन के लिए भी। “पिंगिया,” बावरी ने उस कनिष्ठ को उसके नाम से पुकारा।

“सर्वशक्तिमान भगवान से”: भगवान की विशालता प्रतीक के रूप में...

गौतम गौतम के विशाल ज्ञान से: पृथ्वी को विशाल कहा जाता है...

110 · जो तुम्हें धम्म सिखाता है: प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला, तत्काल, प्यास का नाश, आपदा से मुक्ति, जिसके लिए कहीं भी कोई रूपक नहीं है।

“वह आपके लिए धम्म का उपदेश देते हैं”:...

“स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाला, तत्काल”: ....

“बिना किसी आपदा के प्यास का बुझना”: ....

“इसके लिए, चाहे वह कहीं भी हो, कोई रूपक नहीं है”:...

111 · (पिंगीय:) हे ब्राह्मण, मैं उस व्यक्ति से एक क्षण के लिए भी दूर नहीं रहता, उस विशाल बुद्धि वाले भगवान से, उस अत्यंत बुद्धिमान भगवान से।

“मैं उस व्यक्ति से दूर नहीं रहता”: मैं बुद्ध से दूर नहीं रहता था, उनसे अलग नहीं होता था।

“ब्राह्मण! एक पल के लिए भी”: “एक पल के लिए भी....” “ब्राह्मण,” वह आदरपूर्वक अपने चाचा को पुकारता है।

“परमेश्वर से, जो सर्वव्यापी रूप से बुद्धिमान हैं”: ....

गौतम नामक विशाल ज्ञानी व्यक्ति से: पृथ्वी को विशाल कहा जाता है...

112 · जिसने मुझे धम्म सिखाया: प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला, तत्काल, प्यास का नाश, आपदा से मुक्ति, जिसके लिए कहीं भी कोई रूपक नहीं है।

“जो मुझे धम्म का उपदेश देता है”: ....

“स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाला, तत्काल”: ....

“प्यास बुझना कोई आपदा नहीं है”:...

“इसके लिए, चाहे वह कहीं भी हो, कोई रूपक नहीं है”:...

113 · मैं उसे अपने मन से ऐसे देखता हूँ जैसे अपनी आँखों से, हे ब्राह्मण, दिन-रात, मैं रात को प्रणाम करते हुए बिताता हूँ; इसी कारण मुझे लगता है कि मैंने उसे नहीं छोड़ा है।

"मैं उन्हें अपनी आँखों से, इरादे से देखता हूँ": जिस प्रकार एक व्यक्ति आँखों से प्रकाश में रूप आदि को देख सकता है, निहार सकता है, उसी प्रकार मैं भी बुद्ध, भगवान बुद्ध को इरादे से देखता हूँ, निहारता हूँ, निहारता हूँ और उनका अवलोकन करता हूँ।

"ब्राह्मण, दिन-रात बिना त्यागे": दिन-रात बिना त्यागे, मैं बुद्ध के विचारों का अभ्यास करता हूँ।

"मैं रात प्रणाम करते हुए बिताता हूँ": "प्रणाम करते हुए," शरीर से प्रणाम, शब्दों से प्रणाम, हृदय से प्रणाम, अर्थ से प्रणाम, श्रद्धापूर्वक, या धम्म के प्रति आज्ञापालन में, आदरपूर्वक, प्रणाम करते हुए, श्रद्धापूर्वक, मैं दिन और रात बिताता हूँ।

"इसीलिए, मुझे लगता है कि यहाँ से जाना संभव नहीं है": बुद्ध की उस ध्यान विधि का अभ्यास करते समय, मुझे लगता है कि यहाँ से जाना संभव नहीं है। मुझे लगता है, मुझे पता है कि यहाँ से जाना संभव नहीं है। मुझे ऐसा पता है, मुझे पूरा यकीन है, मैं इसे समझता हूँ, मुझे पक्का पता है, मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ।

114 · आस्था, आनंद, मन, विचार, ये गौतम की शिक्षाओं से विचलित नहीं हुए, जहाँ ज्ञानी व्यक्ति चलता है, मैं उस दिशा में उसका सम्मान करता हूँ।

"विश्वास, आनंद, मन, विचार": "विश्वास," आस्था, विश्वास, भरोसा, अत्यंत शुद्ध आस्था, आस्था का मूल, भगवान बुद्ध में आस्था। "आनंद," भगवान बुद्ध के आनंद, प्रसन्नता, उल्लास, हँसी, संतुष्टि और हृदय के उत्साह से संबंधित सभी बातें। "विचार": हृदय, इरादा, हृदय, पवित्रता, इरादा, मन, मन का मूल, चेतना और चेतना के संबंधित क्षेत्र से संबंधित सभी बातें। "मन," भगवान बुद्ध के विचारों, स्मरण और जागरूकता से संबंधित सभी बातें।

"ये गौतम की शिक्षाओं से विचलित नहीं हुए": ये चार विधियाँ गौतम बुद्ध, विजेताओं, तथागतों, अरहंतों की शिक्षाओं से विचलित नहीं हुईं; छोड़ दो, गायब हो जाओ।

"जहाँ ज्ञानी चलता है": "जहाँ ज्ञानी जाता है": दिशा चाहे पूर्व हो, पश्चिम हो, दक्षिण हो या उत्तर, वह उसी दिशा में चलता है, जाता है और आगे बढ़ता है। "तेज ज्ञानी", "विशाल ज्ञानी", "महान ज्ञानी", "बुद्धिमान", "तेज ज्ञानी", "समझदार ज्ञानी"; पृथ्वी को विशाल कहा जाता है, और भगवान बुद्ध के पास भी पृथ्वी के समान ही विशाल ज्ञान है।

"मैं इस दिशा में उनका सम्मान करता हूँ": वह व्यक्ति जो बुद्ध के मार्गदर्शन का आदर करता है, वह व्यक्ति जो उस दिशा में निर्देशित होता है, वह व्यक्ति जो प्रयास करता है, वह व्यक्ति जो विजय प्राप्त करने वाले की ओर झुकता है, वह व्यक्ति जो उन्नति करता है।

115 · मेरी वृद्धावस्था और कमजोरी के कारण, मेरा शरीर वहाँ नहीं चल सकता, इसलिए मैं अपने विचारों के साथ निरंतर चलता रहा, हे ब्राह्मण, क्योंकि मेरा मन उससे एकाग्र है।

"बुढ़ापे के कारण, कमजोरी": मैं बुढ़ापे के कारण बूढ़ा हो गया हूँ, वृद्धावस्था में पहुँच गया हूँ, और वृद्धावस्था में पहुँच गया हूँ। "कमजोरी के कारण," शक्तिहीनता के कारण, कम शक्ति के कारण, शक्ति में कमी के कारण।

"शरीर वहां चलकर नहीं जाता": शरीर चलता नहीं है, जाओ, आगे बढ़ो, बुद्ध के पास जाओ।

"मैं निरंतर अपने विचारों के साथ चलता हूँ": मैं चिंतन की अवस्था में, मनन की अवस्था में, ज्ञान की अवस्था में, जागरूकता की अवस्था में, और आगे बढ़ने, चलने और प्रगति करने की अवस्था में चलता हूँ।

“ब्राह्मण, क्योंकि मेरा मन उनसे एकाग्र है”: “मन”: हृदय, मन, ... उस चेतना के अनुरूप हैं। “ब्राह्मण, क्योंकि मेरा मन उनसे एकाग्र है”: मन बुद्ध से एकाग्र है, उनसे बंधा हुआ है, पूर्णतः बंधा हुआ है।

116 · कीचड़ में पड़ा हुआ और कांपता हुआ, मैं एक द्वीप से दूसरे द्वीप पर बहता रहा, फिर मैंने प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा: वे जिन्होंने बाढ़ पार कर ली है, वे जिन्हें कोई कष्ट नहीं है।

“कीचड़ में लेटे हुए कांपना”: “कीचड़ में लेटे हुए,” इच्छा के कीचड़ में, इच्छा के दलदल में, इच्छा की गंदगी में, इच्छा के फँसाव में, इच्छा की गर्मी में; इच्छा की बाधाओं में लेटे रहना, निवास करना, जीना। “कांपना,” प्यास की धड़कनों से कांपना, ...देखते हुए..., गंदगी, प्रयास, प्रतिशोध, जानबूझकर किए गए कर्म, लोभ, क्रोध, मूर्खतापूर्ण मूर्खता; आलस्य से बंधे हुए, विचारों से चिपके रहना, जो देखा है उसे ग्रहण करना, बिखरा हुआ (अव्यवस्थित), संदिग्ध विफलता, कष्टों की पीड़ादायक संभावित प्रवृत्तियों के साथ; लाभ के कारण, लाभहीनता के कारण, प्रसिद्धि के कारण, प्रसिद्धिहीनता के कारण, प्रशंसा के कारण, निंदा के कारण, सुख के कारण, पीड़ा के कारण; जीवन, वृद्धावस्था, बीमारी, मृत्यु, शोक और निराशा, नरक की पीड़ा, पशु जगत की पीड़ा, भूखे प्रेत जगत की पीड़ा...; गर्भ में प्रवेश करने की पीड़ा की जड़ के साथ, ...गर्भ में रहना, ...जन्म, ...जीना..., दूसरों की दया पर होना, अपने कर्मों पर, दूसरों के कर्मों पर निर्भर होना; आँखों के रोग, कान, नाक, जीभ, शरीर, सिर, बाहरी कान, मुँह, दाँत, होंठ, खाँसी, साँस, बाहरी नाक का रोग, बुखार, बुढ़ापा, पेट की बीमारी, कोमा, पेचिश, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, ट्यूमर, दाद, फेफड़ों की बीमारी, मिर्गी, खुजली, गठिया, खुजली (त्वचा रोग), सूखी और फटी त्वचा, पित्ताशय की बीमारी, मधुमेह, बवासीर, चकत्ते, अल्सर, पित्ताशय से होने वाले रोग, कफ, वात रोग, तीनों प्रकार के रोगों के रोग, ऋतुओं से होने वाले रोग, गलत मुद्राओं से होने वाले रोग, अचानक होने वाले रोग, कर्मों के फल से होने वाले रोग, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, मक्खी, मच्छर, (हवा), सूर्य और साँप के संपर्क से होने वाला दर्द; माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री की मृत्यु का कष्ट, रिश्तेदारों की हानि, धन की हानि, बीमारी से होने वाली हानि, क्षय; धड़क रहा था, पूरा शरीर कांप रहा था, (तेज) कांप रहा था, क्षय को देखकर दर्द से बुरी तरह कांप रहा था।

“मैं एक द्वीप से दूसरे द्वीप तक बहता रहा”: एक गुरु से दूसरे गुरु तक, एक धम्म से दूसरे धम्म तक, एक समूह से दूसरे समूह तक, एक दृष्टिकोण से दूसरे दृष्टिकोण तक, एक मार्ग से दूसरे मार्ग तक, एक पथ से दूसरे पथ तक, मैं बहता रहा, बहता रहा, पूरी तरह से बहता रहा।

“तब मैंने प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा”: “तब,” वाक्य का आगे का भाग... “देखो,” देखना, पहुँच पाना, समझना। “प्रबुद्ध व्यक्ति,” अर्थात् भगवान...

“जो बाढ़ पार करते हैं, जिन्हें कोई कष्ट नहीं होता”: “जो बाढ़ पार करते हैं,” भगवान बुद्ध वे हैं जिन्होंने इच्छा की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़, दृष्टि की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़ को पार किया है, और पुनर्जन्म के सभी चक्रों को पार कर लिया है। वे वे हैं जो अवतरित हुए हैं... “जिन्हें कोई कष्ट नहीं होता” चार प्रकार के कष्टों में: इच्छा के कष्ट, अस्तित्व के कष्ट, दृष्टि के कष्ट और अज्ञान के कष्ट। ये कष्ट बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए त्याग दिए गए हैं, टूट गए हैं, जड़ से काट दिए गए हैं, ..., इसलिए बुद्ध को कष्ट रहित कहा जाता है।

117 · (भगवान:) जिस प्रकार वक्कली ने विश्वास भेजा है, और भद्रावुधा और आलवी गौतम ने, हे पिंगिया, तुम भी विश्वास भेजो! तब तुम मृत्युलोक से परे जाओगे।

“वक्कली आस्था का संदेशवाहक है, साथ ही भद्रावुधा और आलवी गौतम भी”: वक्कली एक विश्वासी है, एक गंभीर विश्वासी है, आस्थावान नेता है, समस्याओं का समाधान खोजने वाला विश्वासी है, और अरहंत की अवस्था प्राप्त कर चुके विश्वासी हैं, जैसे भद्रावुधा, ...जैसे आलवी गौतम...

“इसी प्रकार, आपको भी आस्था का प्रसार करना चाहिए”: उसी प्रकार, आपको आस्था को मुक्त करना चाहिए, उत्पन्न करना चाहिए, पूर्णतः उत्पन्न करना चाहिए, बढ़ाना चाहिए, भेजना चाहिए और स्थिर करना चाहिए: “सभी कर्म अनित्य हैं,” आपको उन्हें मुक्त करना चाहिए...; “सभी कर्म दुखदायी हैं”...; “सभी धर्म अनात्ममय हैं”...; “धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का संहार है”...

“पिंगिया! तुम मृत्यु के देवता के लोक में जाओगे”: मृत्यु के देवता का लोक प्रदूषण और विभिन्न समुच्चयों और सृष्टियों से बना है; मृत्यु के लोक के उस पार को निर्जीव और निर्वाण कहा जाता है, अर्थात् सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का अंत, और निर्वाण। “पिंगिया! तुम मृत्यु के लोक में जाओगे”: तुम उस पार जाओगे, उस पार पहुँचोगे, उस पार की परीक्षा लोगे, उस पार की गवाही दोगे।

118 · (पिंगिया:) इस प्रकार मुझे और अधिक आत्मविश्वास प्राप्त होता है: मुनि के वचन सुनने के बाद, जिसने आवरण खोला, प्रबुद्ध व्यक्ति, निर्जन व्यक्ति नहीं, और वाक्पटु व्यक्ति।

“इस तरह मुझे अधिक आत्मविश्वास प्राप्त होता है”: इस तरह मुझे अधिक आत्मविश्वास प्राप्त होता है, मैं अधिक आत्मविश्वासी हूँ, मैं अधिक भरोसेमंद हूँ, मैं अधिक विजयी हूँ: “सभी कर्म अनित्य हैं,” मैं अधिक आत्मविश्वासी हूँ...; “सभी कर्म दुखदायी हैं”...; “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”...; “कोई भी संग्रह विनाश है”...

“मुनि के वचन सुनने के बाद”: “मुनि”.... “मुनि के वचन सुनने के बाद”: आपका भाषण, भाषा, शिक्षा, उपदेश, सुनने, समझने, विवेक करने के बाद।

“जिसने आवरण को खोल दिया है, वही प्रबुद्ध है”: “आवरण” पाँच प्रकार के आवरण हैं: भोग का आवरण, दृष्टि का आवरण, अपवित्रता का आवरण, बुरे कर्मों का आवरण, अज्ञान का आवरण; बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए, ये आवरण खुल गए हैं, नष्ट हो गए हैं, खुल गए हैं, पूरी तरह से खुल गए हैं, कट गए हैं, अलग हो गए हैं, शांत हो गए हैं, रुक गए हैं, उत्पन्न नहीं हो सकते, ज्ञान की अग्नि से जल गए हैं। इसलिए, बुद्ध ही वह हैं जिन्होंने आवरण को खोल दिया है। “प्रबुद्ध”...

“जो निराश नहीं हैं, जो वाक्पटु हैं”: लोभ की निराशा, क्रोध की निराशा, अज्ञान की निराशा, क्रोध की निराशा, आक्रोश की निराशा... बुद्ध और भगवान बुद्ध के लिए, ये सभी दूर हो चुके हैं... इसलिए, बुद्ध निराश नहीं हैं।

“जिनमें वाद-विवाद की क्षमता होती है,” वाद-विवाद की क्षमता रखने वाले तीन प्रकार के लोग होते हैं: ज्ञान प्राप्त करने वाले, प्रश्न पूछने वाले और सिद्ध करने वाले। एक विद्वान वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग बुद्ध की भाषा (बुद्ध की शिक्षाओं) के विद्यार्थी होते हैं: सुत्त, गेय्या, वेय्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूत धम्म, वेदल्ल, जो अपने ज्ञान पर निर्भर रहते हैं, वही एक विद्वान वाद-विवादकर्ता होते हैं।

बार-बार प्रश्न पूछने वाला वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ एक विशेष प्रकार का व्यक्ति अपने हितों, न्याय, विशेषताओं, कारणों, संभावनाओं और असंभवताओं के आधार पर प्रश्न पूछता है, और यह प्रश्न पूछने के बाद ही प्रकट होता है। यही बार-बार प्रश्न पूछने वाला वाद-विवादकर्ता है।

सिद्ध वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति वह होता है जिसने चार प्रकार की चेतना, चार प्रकार के धर्म, चार प्रकार के दिव्य आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात प्रकार के ज्ञान, आठ प्रकार के पवित्र मार्ग, चार प्रकार के समण फल, चार प्रकार के वाद-विवाद और छह प्रकार की जादुई शक्तियों को प्राप्त किया हो। जिन्होंने तर्क, विधि और वचन को जाना है, वे ही ज्ञात सिद्धांत में रक्षा करते हैं, ज्ञात धर्म में धर्म की रक्षा करते हैं और ज्ञात शब्दों में शब्दों की रक्षा करते हैं। तीनों प्रकार के ज्ञान में कोई बाधा नहीं आती। ज्ञान को समझना, भगवान... इस तर्क को जानने से ज्ञान को समझने में कोई बाधा नहीं आती। इसलिए, बुद्ध एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। यदि उन्होंने सीखा, प्रश्न किया और सिद्ध नहीं किया, तो वे क्या उत्तर देंगे?

119 · सर्वोच्च स्वर्ग को सिद्ध करने (प्रत्यक्ष रूप से जानने) के बाद, उन्होंने सब कुछ समझ लिया, गुरु सभी प्रश्नों का अंत करते हैं, और संशयवादी इसे स्वीकार करते हैं।

“परम स्वर्ग का ज्ञान”: “स्वर्ग,” तीन प्रकार के स्वर्ग हैं: ...(विलुप्त, पिछले खंड देखें)। भगवान बुद्ध ने सांसारिक स्वर्ग के “परम स्वर्ग”, पुनर्जन्म के स्वर्ग के “परम स्वर्ग”, और शुद्ध स्वर्ग के “परम स्वर्ग” को समझने, तौलने, निर्णय लेने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद जान लिया।

"वह सब कुछ समझते हैं": भगवान बुद्ध परम स्वर्ग के मार्ग को स्वयं और दूसरों के लिए भलीभांति समझते हैं, जानते हैं, अनुभव करते हैं और उसमें गहराई से समाहित करते हैं। परम स्वर्ग का मार्ग क्या है? सही मार्ग, मार्ग का अनुसरण..., आठ पवित्र मार्ग, इन्हें ही परम स्वर्ग के मार्ग कहा जाता है।

दूसरों के परम स्वर्ग तक पहुँचने का मार्ग क्या है? सही मार्ग..., आठ पवित्र मार्ग, इन्हें दूसरों के परम स्वर्ग तक पहुँचने के मार्ग के रूप में जाना जाता है। इस मार्ग से भगवान स्वयं और दूसरों के परम स्वर्ग को समझते हैं, जानते हैं, पहुँचते हैं और उसमें प्रवेश करते हैं।

"गुरु ही समस्याओं (प्रश्नों) का अंत करने वाले हैं": "भगवान ही समस्याओं का अंत करने वाले, परम, सीमा, वृत्त (निष्कर्ष), रूप की समस्या का अंत, परम, ...सुने गए प्रश्न का..., भिक्षु का, भिक्षुणी का, पुरुष गृहस्थ भक्तों का, स्त्री गृहस्थ भक्तों का, राजा की समस्या का, क्षत्रिय समस्या का, ...ब्राह्मण..., वेस, शुद्ध, आत्माओं, देवताओं का; परम, सीमा देने वाले और निष्कर्ष हैं।"

हे प्रभु, भगवान बुद्ध कारवां के नेता के समान ही सर्वोत्कृष्ट हैं, जो सभी प्राणियों को संकट के क्षेत्र से पार कराते हैं: चोरों, जानवरों, भूख और जल की कमी के संकट से उन्हें पार कराते हैं, उन्हें पार कराते हैं और उन्हें स्थिरता के अंतिम स्थान तक पहुंचाते हैं। इसी प्रकार, भगवान बुद्ध कारवां के नेता हैं और सभी प्राणियों को संकट के क्षेत्र से पार कराते हैं: जीवन, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, शोक, पीड़ा, चिंता, निराशा, लोभ, क्रोध, मूर्खता, अहंकार, दृष्टि, अपवित्रता और बुरे कर्मों के संकट से उन्हें पार कराते हैं; लोभ के घने जंगल, क्रोध के घने जंगल, मूर्खता, अहंकार, दृष्टि, अपवित्रता और बुरे कर्मों के जंगल को पार कराते हैं; उन्हें बाहर निकालते हैं, उन्हें पार कराते हैं, उन्हें स्थिरता, निर्जीवता और निर्वाण तक पहुंचाते हैं।

या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध मार्गदर्शक, मध्यस्थ, दिलासा देने वाले, सूचना देने वाले, सचेतन, प्रत्यक्षदर्शी और स्पष्ट करने वाले हैं। या यूँ कहें कि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के संस्थापक, अजन्मे मार्ग के निर्माता, अघोषित उपदेशक हैं; वे मार्ग को जानने वाले, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के परिचित हैं, और उनके शिष्य वर्तमान में मार्ग की संगति में रहते हैं और भविष्य में भी इसके अनुयायी होंगे।

"संदेहकर्ता की स्वीकृति": जब संशयकर्ता आता है, तो वह संशयमुक्त हो जाता है; जब चिह्नों से युक्त व्यक्ति आता है, तो वह चिह्नरहित हो जाता है; जब संशय से ग्रसित व्यक्ति आता है, तो वह संशयमुक्त हो जाता है; लोभ, क्रोध, अज्ञान, अपवित्रता आदि के साथ...

120 · जो हिल नहीं सकता, जिसे डगमगाया नहीं जा सकता, जिसके लिए कोई उपमा नहीं है, चाहे कहीं भी हो, मैं निश्चय ही वहाँ जाऊँगा (निब्बान की ओर), मुझे यहाँ कोई संदेह नहीं है, इसलिए कृपया मुझे विजयी मन वाले व्यक्ति के रूप में याद रखें।

"जो हिल नहीं सकता, उसे डगमगाया नहीं जा सकता": जो हिल नहीं सकता, उसे निर्जीव, निर्वाण कहते हैं, जो सभी कर्मों का अंत है... "हिल नहीं सकता," न लालच कर सकता है, न क्रोधित हो सकता है, न अज्ञानी हो सकता है, न द्वेषी हो सकता है, न बुराई छुपा सकता है, न प्रभुत्वशाली हो सकता है, न ईर्ष्यालु हो सकता है, न कंजूस हो सकता है, न छल कर सकता है, न चालाक हो सकता है, न हठी हो सकता है, न भावुक हो सकता है, न अहंकारी हो सकता है, न ही आराम कर सकता है, न ही सभी प्रकार के अपवित्र कर्म कर सकता है, न ही सभी प्रकार की गर्मी से प्रभावित हो सकता है, न ही सभी प्रकार की पीड़ाओं से, न ही सभी प्रकार की पीड़ाओं से, न ही सभी प्रकार की जलन से, न ही सभी प्रकार के अस्वस्थ कर्मों से प्रभावित हो सकता है; निर्वाण स्थायी, दृढ़, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।

"जो हिल नहीं सकता," जो हिल नहीं सकता, उसे निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है... निर्वाण के लिए, उसका उद्भव ज्ञात नहीं है, वह नष्ट नहीं होता, उसका परिवर्तन ज्ञात नहीं है, और निर्वाण स्थिर, दृढ़, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।

"उसके लिए, चाहे वह कहीं भी हो, कोई रूपक नहीं है": "उसके लिए," निर्वाण के लिए। "कोई रूपक नहीं है,"...

"निःसंदेह मैं जाऊँगा, और मुझे यहाँ कोई संदेह नहीं है": "निःसंदेह," यही निर्णायक भाषा है, निर्विवाद भाषा... "मैं जाऊँगा," मैं जाऊँगा, मैं पहुँचूँगा, मैं आऊँगा, मैं गवाही दूँगा। "मुझे यहाँ कोई संदेह नहीं है," "यहाँ," कोई संदेह नहीं है, कोई झिझक नहीं है, निर्वाण का कोई संदेह नहीं है, जो

अस्तित्वहीन है, जिसका कोई ज्ञात अस्तित्व नहीं है, जो अज्ञात है, जो कटा हुआ है, जो विच्छेदित है, जो शांत है, जो रुका हुआ है, जो उठने में असमर्थ है, जो ज्ञान की अग्नि से झुलसा हुआ है।

"कृपया मुझे इस प्रकार याद रखें, जैसे मेरा मन विजयी है": "कृपया मुझे इस प्रकार याद रखें," कृपया मुझे इस प्रकार पहचानें। "विजयी मन," वे जो निर्वाण की ओर अग्रसर होते हैं, वे जो निर्वाण की ओर अग्रसर होते हैं, वे जो निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

दूसरी तरफ का रास्ता पूरा हो चुका है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.बी.1

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

गैंडा सूत्र की व्याख्या
पहला अध्याय
(मैंने "गैंडा सींग" के बजाय "गैंडा" शब्द का प्रयोग करना चुना है; इस बारे में कुछ बहस है, लेकिन किसी न किसी तरह का निर्णय लेना ही था। दोनों ही स्थितियों में श्लोकों का संदेश एक ही है।)

121 · सभी जीवित प्राणियों के विरुद्ध दंड (दंड/हिंसा) को त्यागने के बाद, उनमें से किसी को भी चोट न पहुँचाते हुए, आपको पुत्र की इच्छा नहीं रखनी चाहिए, साथी की तो बात ही छोड़िए; आपको गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"सभी जीवित प्राणियों के विरुद्ध दंड डालने के बाद": "सभी प्राणी," सब कुछ पूर्णतः, हर पहलू में पूर्णतः, बिना किसी अतिरिक्तता के, और संपूर्ण, यही सर्वव्यापकता का शब्द है, जिसका अर्थ है "सब कुछ।" "छात्र" को दुर्बल और बलवान कहा जाता है। "कायर" वे हैं जो कांपते हैं और जो अपनी प्यास से मुक्त नहीं हुए हैं, साथ ही वे भी जो भयभीत हैं और अपनी प्यास से मुक्त न होने से डरते हैं। उन्हें कायर क्यों कहा जाता है? वे कांपते हैं, भयभीत होते हैं, आतंकित होते हैं, और इसी कारण उन्हें कायर कहा जाता है। "बलवान" वे हैं जो कांपने और प्यास से मुक्त हो गए हैं, और जो भय और आतंक से मुक्त हो गए हैं। उन्हें बलवान क्यों कहा जाता है? वे कांपते नहीं हैं, भयभीत नहीं होते, आतंकित नहीं होते, और इसी कारण उन्हें बलवान कहा जाता है। "दंड," तीन प्रकार के होते हैं: शरीर के लिए दंड, वाणी के लिए दंड, और मन के लिए दंड। शरीर के लिए तीन प्रकार के दंड हैं, बुरे कर्मों के लिए चार प्रकार के दंड हैं और बुरी मंशाओं के लिए तीन प्रकार के दंड हैं।

किसी को भी हानि न पहुँचाना: किसी भी सजीव प्राणी के जीवन को मिट्टी के ढेलों, डंडों, तलवारों, जंजीरों या रस्सियों से चोट नहीं पहुँचाई जाएगी। किसी भी जीवित प्राणी पर मिट्टी, डंडे, छड़ें, तलवारें, जंजीरें या रस्सियों का प्रयोग न करें।

"पुत्र की इच्छा नहीं रखनी चाहिए, अन्य साथियों की तो बात ही छोड़िए।" "नहीं" का अर्थ नकारात्मक है। "पुत्र," चार प्रकार के पुत्र होते हैं: स्वयं के पुत्र, खेत में जन्मे पुत्र, गोद लिए पुत्र और प्रशिक्षु पुत्र। "साथी," जिसके साथ सुखद संबंध हो, सुखद मिलन हो, सुखद संवाद हो, सुखद खड़े होना हो, सुखद बैठना हो, सुखद लेटना हो, सुखद बातचीत हो, सुखद वार्ता हो, सुखद बातचीत हो, सुखद संवाद हो, सुखद वार्ता हो, सुखद वार्ता हो, सुखद संवाद हो, उसे साथी कहते हैं। "पुत्रों की इच्छा नहीं रखनी चाहिए, साथियों की तो बात ही छोड़िए": पुत्र की इच्छा नहीं रखनी चाहिए, स्वीकार नहीं करना चाहिए, आशा नहीं करनी चाहिए, न ही प्रार्थना करनी चाहिए; परिचितों की भी नहीं...; न ही किसी करीबी व्यक्ति या साथी की।

"व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए": "अकेला," अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति भिक्षु बनकर अकेला है, साथी के बिना धर्म में अकेला है, प्रेम की प्यास के धर्म में अकेला है, "हमेशा लोभ से मुक्त" अकेला है, "हमेशा क्रोध से मुक्त" अकेला है, "हमेशा भ्रम से मुक्त" अकेला है, "हमेशा अपवित्रता से मुक्त" अकेला है, "बिना मोड़ वाले मार्ग को पार करके" अकेला है, "सर्वोच्च आत्मज्ञान को पहले ही प्राप्त कर चुका" अकेला है।

वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति भिक्षु कैसे बना? उस अकेले प्रबुद्ध व्यक्ति ने गृहस्थी के सभी बंधनों को तोड़कर, बच्चों और पत्नी, रिश्तेदारों, मित्रों, भंडारगृहों के बंधनों को हटाकर, अपने बाल मुंडवाकर, वस्त्र धारण करके, गृहस्थ भिक्षु जीवन से निर्गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया, और शून्यता की अवस्था में पहुंचकर, वह चला, जिया, चला, रक्षा की और जीवित रहा।

ऐसा कैसे संभव है कि वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति, जो बिना साथी के अकेला हो? जब वह ऐसा भिक्षु था, तो वह जंगलों, घने वनों और सीमावर्ती आवासों (बैठने के स्थानों) में अकेला रहता था: शांत, वातावरण से दूर, अकेले रहना, अकेले बैठने के लिए उपयुक्त; वह अकेले चलता, अकेले खड़ा होता, अकेले बैठता, अकेले लेटता, भिक्षा मांगने के लिए अकेले गाँव जाता, अकेले आगे बढ़ता, अकेले लौटता, शांत स्थान पर अकेले बैठता, अकेले कर्म करता, अकेले चलता, अकेले रहता, चलता, आगे बढ़ता, रक्षा करता और अकेले ही जीवित रहता।

प्रेम और धर्म की प्यास में डूबा हुआ अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति अकेला कैसे हो सकता है? वह इतना अकेला और बिना साथी के है कि उसे अनिच्छा, उत्साह, आत्म-प्रयास, महान परिश्रम और लगन से जीवन व्यतीत करना चाहिए, सेना से घिरे राक्षस, दुष्ट राक्षस, मुक्त व्यक्ति के रिश्तेदारों, जाल, शक्तिशाली गतिशील, उलझे हुए प्रेम की प्यास को त्यागकर, उसे दूर भगाकर, उसका अंत करके, उसे अस्तित्वहीन कर देना चाहिए।

"जिन लोगों का साथी प्यासी प्रेम होता है, वे लंबे समय तक पुनर्जन्म लेते हैं, ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, अन्य अवस्थाओं में पहुँच जाते हैं, पुनर्जन्म से परे नहीं जा पाते। इस प्रकार के कष्ट को जानकर: लालसा ही दुख का मूल है, प्यासी प्रेम से विमुख होकर, बिना कुछ ग्रहण किए, भिक्षुओं को सचेतन होकर आगे बढ़ना चाहिए।" [इत.15/स्न.3.12,745-746]

जो व्यक्ति ज्ञान की अवस्था में अकेला है, वह कैसे यह मान सकता है कि वह हमेशा लोभ से मुक्त है, वह भी अकेला है? "लोभ की अवस्थाओं में से एक को लोभ का त्याग करना" को अकेलापन मानना है, लोभ की अवस्थाओं में से एक में लोभ का त्याग करना अकेलापन है, अज्ञान का त्याग करने की अवस्थाओं में से एक में अकेलापन है, और अज्ञान का त्याग करने की अवस्थाओं में से एक में अकेलापन है।

वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति अकेले ही बिना मोड़ वाले मार्ग को कैसे पार कर सकता है? बिना मोड़ वाले मार्ग को चार चेतनाएँ, चार धर्म, चार दिव्य आधार, पाँच इंद्रियाँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक और आठ पवित्र मार्ग कहा जाता है।

"जो जीवन की मृत्यु (पुनर्जन्म) को देखता है, जो करुणामय है, जो बिना मोड़ वाले मार्ग को जानता है, इसी मार्ग से उन्होंने अतीत में बाढ़ पार की, भविष्य में भी पार करेंगे, और वर्तमान में भी पार कर रहे हैं।" [SN.47.18]

वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति अकेले ही कैसे प्रबुद्ध हुआ है, सर्वोच्च स्वतंत्र प्रबुद्धता अकेले ही कैसे प्राप्त हुई है? प्रबुद्धता को बुद्धि, बुद्धि का मूल, बुद्धि की शक्ति, अन्वेषण, विपश्यना और चारों लोकों में सही दृष्टि कहा जाता है। जो मार्ग से स्वतंत्र रूप से प्रबुद्ध हुआ है, पथ से प्रबुद्ध हुआ है और बुद्धि से प्रबुद्ध हुआ है, वह अकेले ही यह अनुभव करता है कि "सभी कर्म अनित्य हैं", "सभी कर्म दुखदायी हैं", "सभी धर्म निस्वार्थ हैं", "ज्ञान कर्मों पर निर्भर है", "ज्ञान नाम और रूप पर निर्भरता है", "स्पर्श छह इंद्रियों पर आधारित है", "अनुभूति स्पर्श पर आधारित है", "अनुभूति प्रेम की प्यास पर निर्भरता है", "प्यास और प्रेम... ग्रहणशीलता के लिए", "ग्रहणशीलता... अस्तित्व के लिए", "अस्तित्व (जन्म)... जन्म के लिए", "जन्म... वृद्धावस्था और मृत्यु के लिए"। "अज्ञान का नाश"..., निर्माण का, ...चेतना का, ...नाम और रूप का..., (छोड़ा गया); "यह दुख है," ..."यह दुखों का संग्रह है," "यह दुखों का नाश है," यह दुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है, "ये कष्ट हैं," "यह कष्टों का संग्रह है," "यह कष्टों की ओर ले जाने वाला मार्ग है," "इन धर्मों को जानना चाहिए," "इन धर्मों का त्याग करना चाहिए," "इन धर्मों की गवाही देनी चाहिए," "इन धर्मों का अभ्यास करना चाहिए;" छह स्पर्शों के संग्रह, विनाश, सुख, कष्ट और त्याग का अनुभव किया; प्रचुरता का संग्रह...; बोध का संग्रह, नाश, सुख, कष्ट और त्याग।

या जहाँ किसी भी चीज़ को महसूस किया जाना चाहिए, सचेत होना चाहिए, जागृत होना चाहिए, प्रबुद्ध होना चाहिए, सिद्ध होना चाहिए, स्पर्श किया जाना चाहिए, गवाही दी जानी चाहिए, सब कुछ केवल उसी के अधीन है - जागरूकता, जागृति, प्रबुद्धता, प्राप्ति, स्पर्श (संपर्क) और गवाही। इस प्रकार, केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही अकेला है।

"क्या करना चाहिए" के संदर्भ में, आठ प्रकार के व्यवहार हैं: प्रतिष्ठा संबंधी व्यवहार, आचरण संबंधी व्यवहार, सचेत व्यवहार, स्थिर व्यवहार, ज्ञान संबंधी व्यवहार, मार्ग संबंधी व्यवहार, प्राप्ति और सांसारिक लाभ। "व्यवहार" चार व्यवहारों से संबंधित है, "चलना" छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों से संबंधित है, "सचेतनता" चार प्रकार की सचेतनता से संबंधित है, "ध्यान" चार प्रकार के ध्यान से संबंधित है और "ज्ञान" चार आर्य सत्यों से संबंधित है। "मार्ग" चार आर्य मार्गों को संदर्भित करता है, "प्राप्ति" चार समान फलों को संदर्भित करती है और "सांसारिक लाभ" तथागत, अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्तियों, एकल-प्रबुद्ध व्यक्तियों और शिष्यों को संदर्भित करता है। आचरण का कार्य पर्याप्त प्रतिज्ञाओं वाले व्यक्तियों का है, व्यवहार जड़ों की रक्षा करने वाले व्यक्तियों का है, सचेतनता और व्यवहार उन व्यक्तियों का है जो त्याग नहीं करते, स्थिर व्यवहार मन को बढ़ाने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों का है और ज्ञान और व्यवहार पर्याप्त ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों का है। जो लोग ऐसा करते हैं, उनके लिए मार्ग धर्मात्मा व्यक्ति का है, प्राप्ति कर्म प्राप्ति प्राप्त व्यक्ति का है, और संसारिक लाभ के कर्म तथागत, अरहंत, प्रबुद्ध व्यक्ति और प्रबुद्ध व्यक्ति के शिष्यों के हैं।

अगले आठ प्रकार के व्यवहार इस प्रकार हैं: विजयी (जो समस्याओं पर विजय प्राप्त करते हैं) विश्वास के साथ कार्य करेंगे, जो जोश के साथ प्रयास करते हैं वे अपने जोश के साथ कार्य करेंगे, जो दिखावा करते हैं वे विचारों के साथ कार्य करेंगे, जो स्थिर रहते हैं और विचलित नहीं होते वे दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करेंगे, जो जानते हैं वे बुद्धिमत्ता के साथ कार्य करेंगे, जो ज्ञान के साथ चलना जानते हैं, इस प्रकार, जो मार्ग पर चलते हैं वे सभी अच्छे धर्मों को जीवित रखते हैं। "चलने के लिए चलना," इस प्रकार मार्ग पर चलने वाले उत्कृष्टता प्राप्त करते हैं।

अगले आठ प्रकार के व्यवहार: धर्मी व्यक्ति का देखने का व्यवहार, धर्मी व्यक्ति का (हृदय-)उन्मुख व्यवहार, धर्मी व्यक्ति का लेने और ग्रहण करने का व्यवहार, धर्मी व्यक्ति का निर्दोष व्यवहार, धर्मी व्यक्ति का मेहनती व्यवहार, सचेत व्यक्ति की वर्तमान क्रिया, सही मन वाले व्यक्ति की अविभाजित क्रिया [भजन संहिता 1,12]।

"गैंडे की तरह," गैंडा सचमुच अद्वितीय होता है। उसी प्रकार, जो अकेला ही ज्ञानी होता है, वह उसी के समान, उसी के समतुल्य और उसी से भिन्न होता है। यदि कोई चीज़ बहुत नमकीन हो, तो उसे नमकीन कहा जाता है, यदि वह बहुत कड़वी हो, तो उसे कड़वाहट कहा जाता है, यदि वह बहुत मीठी हो, तो उसे शहद के समान कहा जाता है, यदि वह बहुत गर्म हो, तो उसे आग के समान कहा जाता है, यदि वह बहुत ठंडी हो, तो उसे बर्फ के समान कहा जाता है, और जो शिष्य अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें गुरु कहा जाता है। इसी प्रकार, अकेला ज्ञानी व्यक्ति उसी के समान, उसी के समतुल्य, उसी से भिन्न, बिना साथी के (द्वैत रहित), बंधनों से मुक्त होता है, और वह संसार में सही ढंग से चलता है, जीता है और कर्म करता है, रक्षा करता है और जीवन यापन करता है।

122 · संबंधों से प्रेम (स्नेह) उत्पन्न होता है, और प्रेम से दुख उत्पन्न होता है, स्नेह से उत्पन्न होने वाली परेशानी को देखते हुए, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"जो संबंध उत्पन्न होता है, उससे प्रेम उत्पन्न होता है": "संबंध," दो प्रकार के होते हैं: देखने का संबंध और सुनने का संबंध। देखने का संबंध क्या है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग कमल के समान सुंदर मुख वाली, नेक, सुंदर और प्रिय स्त्रियों और कन्याओं को देखते हैं। उन्हें देखकर उनके मन में ये विचार उठते हैं: "बाल, सुंदर चेहरा, अच्छी आँखें, अच्छे कान, ...नाक, होंठ, दाँत, मुँह, गर्दन, स्तन, छाती, पेट, कमर, जांघ, पिंडली, हथेली, तलवा, उंगली, नाखून आदि, सब सुंदर और अच्छे हैं।" देखने के बाद, प्रसन्नता, स्वागत, आशा, मन में ये विचार उत्पन्न होते हैं, और लोभ के बंधन से मुक्त होते हैं। यही देखने का संबंध है।

सुनने का क्या संबंध है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोगों ने सुना: "ऐसे नाम वाले गाँव या कस्बे में ऐसी स्त्रियाँ या लड़कियाँ रहती हैं जो सदाचारी, सुंदर और सबकी प्रिय हैं, जिनका चेहरा कमल के समान अत्यंत सुंदर है।" यह सुनकर वे प्रसन्न, स्वागतयोग्य और आशावान हो गए, जिससे लालच के बंधन से मुक्ति मिली; यही सुनने का संबंध है।

"प्रेम," प्रेम दो प्रकार का होता है: प्यास का प्रेम और दर्शन (दृष्टिकोण) का प्रेम। प्रेम का प्रेम क्या है? सभी को सीमाएँ, क्षेत्र, दायरे, हदें कहा जाता है, जिन्हें ग्रहण किया जाता है और अपना माना जाता है: यह मेरा है, यह मेरा है, इतने सारे मेरे हैं, यह क्षेत्र मेरा है; (मेरा) रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, ज़मीन पर फैली वस्तुएँ, वस्त्र, दासियाँ और नौकर, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गायें और घोड़े, खच्चर, खेत, घर, सोना, सोने के सिक्के, गाँव, कस्बे, राजधानियाँ, स्थान, खजाने, गोदाम, सारी भूमि, क्योंकि वे प्यासे हैं और उन्हें अपना मानते हैं, सभी एक सौ आठ प्यासी प्रवृत्तियाँ [AN.4.199]; यही प्रेम का प्रेम है।

देखने का प्रेम क्या है? शरीर के बीस दृश्य हैं, दस बुरे दृश्य हैं, दस पार्श्व दृश्य हैं, इस प्रकार के सभी दृश्य, बुरे दृश्य, जंगल (उलझे हुए) दृश्य, रेगिस्तान (बंजर) दृश्य, विकृत दृश्य, विचलित दृश्य, आसक्ति, स्वीकृति, पकड़, बंधे हुए दृश्य से आसक्ति, वह स्थान जहाँ बुरा मार्ग, बुरी प्रकृति, बाहरी मार्ग निर्भर करते हैं, विपरियेस का आलिंगन, विपरीत का आलिंगन, विपल्लास, बुराई की पकड़, असत्य में सत्य को देखने की पकड़, ये सभी बासठ बुरे दृश्यों की पहुँच में आते हैं, यही देखने का प्रेम है।

"संबंध से प्रेम उत्पन्न होता है": लालसा वाला प्रेम और दृष्टि वाला प्रेम, देखने और सुनने के संबंध से उत्पन्न होते हैं, जन्म लेते हैं, पैदा होते हैं और प्रकट होते हैं।

"प्रेम का कष्ट उत्पन्न होता है": "प्रेम" दो प्रकार का होता है... "कष्ट उत्पन्न होता है"। यहाँ एक विशेष प्रकार का व्यक्ति शारीरिक, वाणी और नीयत से बुरे कर्म करता है। वह हत्या करता है, बिना कुछ दिए लेता है, दूसरों पर आक्रमण करता है, लूटपाट करता है, रास्ते अवरुद्ध करता है, चोरी करता है और पत्नियों का अपहरण करता है। व्यर्थ बोलते हुए, पकड़े जाने पर वे राजा के पास गए और बोले: "महाराज! यह चोर है, अपराधी है, कृपया इसे दंड दें।" राजा ने उसे फटकारा और उसने इसका दोष अपने ऊपर ले लिया, जिससे भय उत्पन्न हुआ। वह कष्ट और शोक का अनुभव कर रहा था। यह भय, कष्ट और शोक कहाँ से उत्पन्न होता है? यह उसके प्रेम, प्रसन्नता, लोभ और लालच से उत्पन्न होता है।

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं था। उसने उसे हथकड़ियों, रस्सियों, बेड़ियों, लताओं, कुडज़ू लताओं से जकड़कर, जंजीरों में डालकर, बाड़ों में बांधकर, गाँव, कस्बे, शहर, देश या किसी स्थान पर बांधकर कैद कर लिया और यहाँ तक कि यह घोषणा भी कर दी: "तुम यहाँ से बाहर नहीं जा सकते।" उसे भी इस बंधन से पीड़ा और दुख का अनुभव हुआ, यह भय, पीड़ा और दुख कहाँ से उत्पन्न हुआ? यह उसके प्रेम, सुख, लोभ और लालच से उत्पन्न हुआ।

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं है। वह अपनी संपत्ति अपने से ले जाएगा: सैकड़ों, हजारों या एक लाख (धन)। संपत्ति के नुकसान के कारण उसे दुख और पीड़ा भी हो रही है।

राजा इस स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने उस पर अनेक दंड लगाए: कोड़े मारना, डंडे से पीटना, बेंत से पीटना, हाथ-पैर काटना, कान काटना, नाक काटना, खट्टी दलिया से भरा बर्तन में डालने का दंड, सिर मुंडवाने का दंड, राहु के मुख में डालने का दंड, अग्नि से यातना देना, मोमबत्ती से हाथ काटने का दंड, भूत-प्रेत भगाने का दंड, छाल के वस्त्र पहनने का दंड, हिरण से मारने का दंड, काँटे से मांस निकालने का दंड, धन का दंड, क्षार से स्नान कराने का दंड, दरवाज़े के ताले को मरोड़ने का दंड, भूसे से पैर रखने का दंड, गर्म तेल से लथपथ करना, कुत्ते से कटवाना, जीवित अवस्था में शरीर में छेद करना, तलवार से सिर काटना; वह इन दंडों के कारण पीड़ा और दुख भी भोगता है... राजा इन चारों प्रकार के दंडों का स्वामी है।

अपने कर्मों और शरीर के विघटन के कारण, मृत्यु के बाद वह दुख, बुराई, निम्न लोक और नरक के संसार में पुनर्जन्म लेता रहा। जेलरों ने उस पर पाँच प्रकार के दंड लगाए: उन्होंने लाल गर्म लोहे की छड़ को उसकी पहली हथेली से, फिर दूसरी हथेली से और उसके बाद सीने के मध्य भाग से गुज़ारा। उसे कड़वी, भयंकर, हिंसक, [MN.129] तीव्र पीड़ा का अनुभव हुआ और जब तक उसके बुरे कर्म दूर नहीं हो जाते, तब तक उसकी मृत्यु नहीं हुई। यह भय, पीड़ा और दुख कहाँ से उत्पन्न हुआ?...

जेलरों ने उसे लिटाकर कुल्हाड़ी से काट डाला... (अंश हटा दिया गया) जेलरों ने उसे पैरों तले दबाकर छोटी कुल्हाड़ी से काट डाला..., जेलरों ने उसे गाड़ी में जोतकर आग लगा दी, जिससे वह जलती हुई, तेज आग में झुलस गया..., जेलरों ने उसे जलते, चमकते कोयले के ज्वालामुखी पर ऊपर-नीचे चढ़ाया..., जेलरों ने उसे ऊपर-नीचे पकड़कर गर्म, धधकते, जलते, लाल चमकते तांबे के बर्तन में फेंक दिया; वह वहाँ झाग में उबल गया, और एक

बार ऊपर उठा, एक बार नीचे गया, और एक बार इधर-उधर चला गया। उसे कड़वाहट महसूस हुई...। (यह आतंक, पीड़ा और दुख कहाँ से उत्पन्न हुआ?... जेलरों ने उसे नरक में फेंक दिया, और नरक में:)

चारों कोनों में चार द्वार हैं, जो बराबर भागों में विभाजित हैं, लोहे की दीवारों से घिरे हुए हैं, और ऊपर का भाग लोहे से ढका हुआ है। पृथ्वी लोहे की बनी है, और यह आग की ज्वाला से चमक रही है, जो सौ योजन तक चारों ओर व्याप्त है, सदा विद्यमान है। कष्टदायक जलन भयानक है, तेज लपटों के पास जाना कठिन है, पीड़ा के भय से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पूर्वी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए पश्चिम की ओर प्रहार करता है। पश्चिमी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए पूर्व की ओर प्रहार करता है। उत्तरी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए दक्षिण की ओर प्रहार करता है। दक्षिणी दीवार से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए उत्तर की ओर प्रहार करता है। नीचे से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए छत की ओर प्रहार करता है। ऊपर से आग का एक गोला निकलता है, जो बुरे कर्मों को जलाते हुए छत की ओर प्रहार करता है। ज़मीन। धधकती हुई लोहे की आग, जलने जैसा दर्द, ठीक इसी तरह यह भयानक नरक ऊपर और नीचे से दिखाई देता है। यहाँ प्राणी अत्यंत क्रूर हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े अपराध किए हैं, निरंतर पापी, बिना मरे यातना भोगते हैं। इस नरक में रहने वाले का शरीर आग के समान है, स्थिर कर्म वाले के लिए, आग में न राख होती है न कालिख। वे पूरब की ओर भागते हैं, फिर वहाँ से पश्चिम की ओर; वे उत्तर की ओर भागते हैं, फिर वहाँ से दक्षिण की ओर; वे जहाँ भी भागते हैं, द्वार बंद हो जाते हैं, वे बाहर जाना चाहते हैं, वे मुक्ति की तलाश करते हैं। वे वहाँ से बाहर नहीं जा सकते, उन्हें यह कर्मों के माध्यम से प्राप्त होती है, क्योंकि उन पापियों के प्रचुर कर्म अभी पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुए हैं।

यह आतंक, पीड़ा और शोक कहाँ से उत्पन्न हुआ? यह उसके प्रेम, सुख, लोभ, आनंद और लालच से उत्पन्न हुआ।

फिर से, नरक के सभी कष्ट, पशु जगत के कष्ट, प्रेत जगत के भूखे कष्ट, मनुष्य के कष्ट, ये सब कहाँ से उत्पन्न हो रहे हैं, कहाँ पैदा हुए हैं, कहाँ घटित हुए हैं, कहाँ जन्म लिए हैं, कहाँ प्रकट हुए हैं, कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? ये प्रेम, सुख, लोभ, आनंद और लोभ को एक शर्त मानकर उत्पन्न होते हैं।

“प्रेम की परेशानियों को देखना”: “प्रेम,” .... “प्रेम की परेशानियों को देखना”: प्रेम के प्रेम और देखने के प्रेम की परेशानियों को उसने देखा, समझा, विचार किया और अवलोकन किया।

123 · जो लोग मित्रों और विश्वासपात्रों पर दया करते हैं, हृदय से बंधे होने के कारण, अपने हितों को खो देते हैं, घनिष्ठ बातचीत में इस खतरे को देखते हुए, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“मित्रों और विश्वासपात्रों के प्रति दया भाव रखने से आप अपने हितों को खो देंगे और विवश हो जाएंगे”: “मित्रों,” दो प्रकार के मित्र होते हैं: घर के मित्र और घर से बाहर के मित्र (सन्यासी)। घर का मित्र कौन होता है? यहाँ, एक विशेष श्रेणी के लोग कठिन परिस्थितियों में भी दान देते हैं, कठिन कार्यों को करते हैं, कठिन परिस्थितियों में भी क्षमा करते हैं, अपना रहस्य बताते हैं, आपका रहस्य सुरक्षित रखते हैं और विपत्तियों में कभी आपका साथ नहीं छोड़ते, वे आपके लिए अपना प्राण भी दे देते हैं [DN.31], जब आप थके हुए होते हैं तो वे आपका तिरस्कार नहीं करते, यही घर का मित्र है।

घर से दूर (सन्यासी) मित्र कौन होता है? यहाँ भिक्षु प्रेमयोग्य, मिलनसार, आदरणीय, प्रशंसनीय, व्याख्याकार, दूसरों के शब्दों के प्रति सहिष्णु और गूढ़ प्रवचनकर्ता (नेतृत्वकर्ता) होता है। वह गैर-वृद्धिकारी उपदेशों पर प्रोत्साहन [एएन.7.37] और अनुनय नहीं करता। वह उसे चार प्रकार के ध्यान अभ्यास में, ...(विलुप्त) अभ्यास के आठ पवित्र मार्गों में अनुनय करता है; यही 'घर से दूर' मित्र है।

जिनके साथ जाने में, आने में, खड़े होने में, बैठने में, लेटने में, बात करने में, बातचीत करने में, संवाद करने में आनंद आता है, उन्हें विश्वासपात्र कहा जाता है। “मित्र, विश्वासपात्र पर दया करना अपने ही हित में हानि है।” मित्र, विश्वासपात्र, परिचित, निकट संबंधी, साथी, विचारशील, शोक संतप्त व्यक्ति अपने हितों, दूसरों के हितों और दोनों के हितों को त्यागकर, वर्तमान जीवन और परलोक के हितों को भी त्यागकर, सर्वोच्च हितों को पीछे हटने, बलपूर्वक पीछे हटने, खो जाने, टाल दिए जाने और समाप्त कर देने का कारण बनता है; जो मित्र और विश्वासपात्रों पर दया करता है, वह हितों को पीछे हटने के लिए प्रेरित करता है।

“हृदय बंधा हुआ है,” हृदय दो प्रकार से बंधा होता है: (स्वयं को) दीन बनाकर और दूसरों को श्रेष्ठ बनाकर, जबकि स्वयं को संयमित रखा जाए; या (दूसरों को दीन बनाकर और स्वयं को श्रेष्ठ बनाकर, जबकि हृदय संयमित रहे। स्वयं को दीन बनाकर और दूसरों को श्रेष्ठ बनाकर तथा दूसरों की चापलूसी कैसे करें? (विचार करते हुए:) “आप मेरे लिए बहुत सहायक हैं, मैं आप पर वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतें, चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ प्राप्त करने के लिए निर्भर हूँ, और जो कोई भी देता है या करना चाहता है, वे सोचते हैं कि मैं आप पर निर्भर हूँ, जो लोग आपको अपना मानते हैं, मेरे माता-पिता के सभी पुराने नाम मेरे लिए लुप्त हो गए हैं, क्योंकि आप उन लोगों के रूप में जाने जाते हैं जो अक्सर किसी के घर आते-जाते रहते हैं; जो अक्सर किसी के घर जाते हैं।” यही स्वयं को दीन बनाना, दूसरों को श्रेष्ठ बनाना और उनके हृदयों को बांधना है।

दूसरों को विनम्र कैसे बनाएं और स्वयं को श्रेष्ठ तथा संयमी कैसे बनाएं? (विचार:) “मैं तुम्हारे लिए अच्छा व्यक्ति हूँ। मेरे कारण तुम बुद्ध, धम्म और संघ की ओर मुड़ते हो, हत्या से मुक्त, लेन-देन से रहित, झूठ से मुक्त और मादक पेय न पीने वाले बन जाते हो। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा, मुझसे बहुत से प्रश्न पूछो, मैं उपोसथ की व्याख्या करूंगा और मंदिर बनवाऊंगा। परन्तु मुझे त्यागने के बाद तुम दूसरों का आदर, सम्मान और आदर करते हो।” यही दूसरों को विनम्र बनाना और स्वयं को श्रेष्ठ बनाना है, और इससे हृदय बंध जाता है। जो मित्र और विश्वासपात्रों पर दया करते हैं, उनका हित नष्ट हो जाता है और हृदय बंध जाता है।

“घनिष्ठ संवाद (अंतःक्रिया) में भयावहता देखना”: “भय,” जीवन का भय, बुढ़ापे का भय, ...बीमारी, ...मृत्यु, राजा, चोर, आग, पानी, आत्मनिंदा, भय, अन्य, लाठियाँ, लहरें, अजगर, भंवर, मगरमच्छ [AN.4.122], आजीविका, अपमान, कायरता, नशा, समूह में बुरी रुचि, भयानक अकड़न का भय, शरीर के रोंगटे खड़े होना, और हृदय की चिंता का भय। “घनिष्ठ संवाद (अंतःक्रिया) में,” घनिष्ठ संवाद दो प्रकार के होते हैं: प्रेम का और देखने का...। “घनिष्ठ संवाद में इस भयावहता को देखना”: घनिष्ठ संवाद में इस भयावहता को देखा, अनुभव किया और समझा जाता है।

124 · जैसे एक विशाल बांस (पेड़) आपस में उलझ जाता है, वैसे ही वह व्यक्ति जो अपने बच्चों और पत्नियों की परवाह करता है, जैसे एक बांस का अंकुर जो फंसा नहीं होता, उसे गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“जैसे कोई विशाल बांस आपस में उलझ गया हो”: बांस को बांस की झाड़ी कहा जाता है। बांस की झाड़ी में, पुराने बांस फंसे हुए, उलझे हुए, जुड़े हुए, स्थिर और अवरुद्ध होते हैं। यही बात यहाँ भी लागू होती है; आपस में उलझे रहना ही लालसा कहलाता है, यह लोभ, वासना, सहमति, अनुरूपता, आनंद, पसंद, चाहत, इच्छा, मोह, लेना, अत्यधिक लोभ, बंधे रहना, कीचड़, अशांति, पाखंड, (पुनर्जन्म) मूल कारण, (कड़वा) उर्वरता, सिलाई (लालसा), जाल, नदी, बंधन, रस्सी, लगाव, संचय, साथी, इच्छा, अस्तित्व का मार्ग, इच्छा वन (जंगल), घनिष्ठता, प्रेम, प्रत्याशा, संबंध, आकांक्षा, आकांक्षा की अवस्था, रूप की इच्छा, ध्वनि की इच्छा, गंध, स्वाद, स्पर्श, प्राप्ति की इच्छा, मनुष्य की इच्छाएँ (धन), पुत्र की इच्छा, जीने की इच्छा, इच्छा की अवस्था, प्रार्थना, लोभ, लोभपूर्ण रूप, लोभ की अवस्था, पूछताछ (लाभ के लिए), दक्षता की इच्छा, अवैध लोभ, अनुचित लोभ, इच्छा, आशा, ईर्ष्या, पूर्ण आशा, इच्छा की इच्छा, अस्तित्व की इच्छा, शून्यता की इच्छा, सजीव प्यास, निराकार प्यास, विलुप्ति की प्यास, रूप की प्यास, ध्वनि की प्यास, गंध की प्यास, स्वाद की प्यास, स्पर्श की प्यास। धम्म, प्यास, उफान, बंधन, जकड़न, बाधाएं, आवरण, बंधन, साथ ही अशुद्धियाँ, संभावित परेशानियाँ, उलझाव, लताएँ, कंजूसी, दुख के मूल, दुख के कारण, दुख का घटित होना, राक्षस का जाल, राक्षस का कांटा, राक्षस का भोजन (लालच), राक्षस का क्षेत्र, राक्षस का निवास, राक्षस का बंधन, प्यास की नदी, प्यास का जाल, प्यास की रस्सी, प्यास का सागर, लालसा, लोभ और अस्वास्थ्य की जड़।

“प्रेम (जुड़ाव में होना),” प्रेम का क्या अर्थ है? “फैलाव” प्रेम है; “विशालता” प्रेम है; “विस्तार” प्रेम है; “गलत” प्रेम है; “यह विवश करता है” प्रेम है; “यह पकड़ लेता है” प्रेम है; “धोखा” प्रेम है; “विषाक्त जड़” प्रेम है; “विषाक्त फल” प्रेम है; “उपयोग से विषाक्त” प्रेम है; या, "(वह) विशाल प्यास: रूप में..., ध्वनि में..., गंध में, स्वाद में, स्पर्श में, घर में, जनसमूह में, निवास में, लाभ में, ...(छोड़ा गया)..., इच्छा के क्षेत्र में, रूप में, गैर-भौतिक क्षेत्र में, ...प्राप्त करने की इच्छा में..., भौतिक अस्तित्व में..., निराकार में..., चिंतन में..., अचिंतन में..., कल्पनाहीन अस्तित्व में..., एक समग्र अस्तित्व में, चार समूहों में, पांच समूहों में, भूतकाल में, भविष्यकाल में, वर्तमान में, ...उन धर्मों के प्रति विस्तारित आसक्ति जिन्हें देखा, सुना, महसूस किया और जाना जा सकता है।"

“जो कोई भी बच्चों और पत्नियों से चिंतित है”: “बच्चे (पुत्र),” चार प्रकार के पुत्र होते हैं: .... पत्नी को सहारा देने योग्य कहा जाता है। ध्यान को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है, ...

“बांस के अंकुर की तरह जो अटका हुआ नहीं है”: बांस को झाड़ी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, बांस की झाड़ी में युवा ऊपरी कलियाँ (अंकुर) अटकी हुई, जुड़ी हुई, बंधी हुई या अवरुद्ध नहीं होती हैं, और वे बाहर निकलकर बिना किसी रुकावट के मुक्त हो जाती हैं। उसी प्रकार... “अटका हुआ होना (आसक्ति),” आसक्ति के दो प्रकार हैं: ...; ...अटका हुआ न होना, पकड़ा न जाना, कैद न होना, संसार से बंधा न होना, बंधा न होना, अलग होना, छोड़ा न जाना, मुक्त होना, विरक्त होना, किसी से आसक्त न होना, पकड़ा न जाना, बंधा न होना, बंधन से मुक्त होना, वह संयमित हृदय से जीता है।

125 · जैसे एक स्वतंत्र हिरण जंगल में चलता है, वांछित चरागाह की ओर चलता है, एक बुद्धिमान व्यक्ति, (अपनी) स्वतंत्रता को देखते हुए, एक गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“एक स्वतंत्र हिरण जंगल में चलता है, वांछित चरागाह की ओर जा रहा है”: हिरण दो प्रकार के होते हैं: एक हिरण और दूसरा चित्तीदार हिरण। उदाहरण के लिए, जंगल में रहने वाला हिरण जंगल में चलता है, सहजता से चलता है, सहजता से खड़ा होता है, सहजता से बैठता है और सहजता से लेटता है।

भगवान बुद्ध ने कहा [एमएन.25]: "भिक्षुओं! जैसे जंगल में रहने वाला हिरण, जंगल में चलते समय मन की शांति बनाए रखता है, खड़े होते, बैठते और लेटते समय भी मन की शांति बनाए रखता है। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं! वह क्षेत्र क्रूर मनुष्यों के लिए अगम्य है।"

इसी प्रकार, भिक्षुओं! यहाँ, भिक्षु इच्छा और अहितकर धर्म के त्याग से प्राप्त प्रथम ध्यान अवस्था में, तर्क और प्रतीक्षा में, तथा वैराग्य के बाद सुख और आनंद की अवस्था में निवास करते हैं। भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें नष्ट करने के बाद, राक्षस दृष्टिहीन और अपंग (दुर्भाग्यपूर्ण) अवस्था में प्रवेश करता है।

इसके अलावा, भिक्षुओं! भिक्षु तर्क और चिंतन से शांत, आत्मविश्वासी और एकाग्रचित्त हो जाते हैं। प्रवेश करने के बाद, वे तर्क और चिंतन से रहित द्वितीय ध्यान अवस्था में रहते हैं, और एकाग्रता से आनंद और प्रसन्नता प्राप्त होती है, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखें नष्ट करने के बाद,...

इसके अलावा, भिक्षुओं! भिक्षु आनंद से विलीन हो जाता है और शांति में रहता है, सचेत रहता है, सही ज्ञान प्राप्त करता है और शरीर से प्रसन्न रहता है। प्रवेश करने के बाद, वह इस पवित्र शिष्य के तीसरे ध्यान में यह घोषणा करते हुए रहता है: 'वह शांत, सचेत और सुखी है।' भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखों को नष्ट करने के बाद, ...

इसके अलावा, भिक्षुओं! चौथे ध्यान में प्रवेश करने के बाद, भिक्षु चौथे ध्यान में रहते हैं जो कष्टदायी या दुखी नहीं होता। चौथे ध्यान में प्रवेश करने के बाद, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहा जाता है।

इसके अलावा, भिक्षुओं! भिक्षु सभी कामवासनाओं और विचारों से परे हो जाते हैं, विरोधी विचारों के नाश के साथ, सभी प्रकार के विचारों के बारे में सोचे बिना, (और जानते हैं): 'शून्य असीम है,' प्रवेश करने के बाद, असीम शून्य में निवास करो, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहा जाता है।

इसके अलावा, भिक्षुओं! भिक्षु जब सभी शून्यता और असीमता (और ज्ञान) से परे हो जाते हैं: 'चेतना असीम है,' प्रवेश करने के बाद, चेतना की असीमता में जियो... (छोड़ा गया)।

इसके अलावा, भिक्षुओं! (एक भिक्षु,) चेतना (और ज्ञान) के सभी असीम स्थानों को पार करने के बाद: 'कुछ भी नहीं है,' प्रवेश करने के बाद, शून्य में निवास करो...।

इसके अलावा, भिक्षुओं! (एक भिक्षु,) सभी निर्धन वस्तुओं को पार करने के बाद, प्रवेश करने पर, वह उस स्थान पर निवास करेगा जहाँ वह रहना चाहता है...।

इसके अलावा, भिक्षुओं! (एक भिक्षु,) सभी अविवेकी चीजों को पार करके, नष्ट होने की इच्छा में प्रवेश करके, स्थिर रहकर, ज्ञान से देखकर, उसके सभी कष्ट नष्ट हो जाते हैं, भिक्षुओं! इसे भिक्षु द्वारा राक्षस को अंधा करना कहते हैं। राक्षस की आँखों को नष्ट करने के बाद, राक्षस दृष्टिहीनता और पैरों से मुक्त अवस्था में प्रवेश कर जाता है, संसार से अपना लगाव छोड़ देता है। वह मन की शांति से चलता है, मन की शांति से खड़ा होता है, मन की शांति से बैठता है और मन की शांति से लेटता है। इसका कारण क्या है? भिक्षु राक्षस के लिए अगम्य क्षेत्र है।

“ज्ञानी लोग स्वतंत्रता का अवलोकन करते हैं”: “ज्ञानी लोग” वे लोग हैं जो ज्ञानी, प्रबुद्ध और विशिष्ट हैं। “मनुष्य” वे सभी प्राणी हैं जो सचेत हैं, मनुष्य हैं, विद्यार्थी ब्राह्मण हैं, व्यक्ति हैं, जीव हैं, जन्म लेने वाले हैं, इंद्र से जन्मे हैं और मनु हैं। “स्वतंत्रता” दो प्रकार की स्वतंत्रता है: धम्म में स्वतंत्रता और मनुष्य के रूप में स्वतंत्रता। धम्म में स्वतंत्रता क्या है? चार चेतनाएँ, चार धर्म... यही धम्म की स्वतंत्रता है। स्वतंत्र मनुष्य कौन है? जो भी इन स्वतंत्रताओं को धारण करता है, उसे स्वतंत्र मनुष्य कहा जाता है। “ज्ञानी लोग स्वतंत्रता का अवलोकन करते हैं”: ज्ञानी लोग धम्म की स्वतंत्रता का अवलोकन, निहारना और देखना करते हैं।

126 · साथियों के बीच संबोधित किया जाता है घर पर, खड़े होकर, चलते हुए या यात्रा करते हुए, उस स्वतंत्रता की प्रतीक्षा करते हुए जो वांछित नहीं है, एक को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“जब वह घर पर रहता है, खड़ा होता है, चलता है, यात्रा करता है”: जहाँ भी वह प्रसन्न होता है, जिसके साथ वह आना-जाना पसंद करता है, जिसके साथ खड़ा होना, बैठना, सोना, अच्छी बातें करना, सुखद बातचीत करना और आनंदमय वार्तालाप करना उसे प्रसन्न करता है, उन्हें साथी कहा जाता है। “जब वह घर पर रहता है, खड़ा होता है, चलता है और यात्रा करता है”: जब वह घर पर रहता है, खड़ा होता है, चलता है और अपने साथियों के बीच यात्रा करता है, तो वह अपने हितों, दूसरों के हितों और दोनों के हितों पर विचार करता है, वर्तमान जीवन के हितों, परलोक के हितों और दोनों के हितों पर विचार करता है।

“अवांछनीय स्वतंत्रता को देखना”: मूर्ख, निर्दयी, पराक्रमी और संप्रदायवादी शिष्यों के लिए यह अवांछनीय है, अर्थात् गंजा होना और वस्त्र धारण करना; बुद्ध के समर्थक (स्वतंत्र व्यक्ति) के लिए यह वांछनीय है, अर्थात् गंजा होना और वस्त्र धारण करना। “स्वतंत्र” दो प्रकार की स्वतंत्रता है: ... “अवांछनीय स्वतंत्रता को देखना”: धम्म की स्वतंत्रता को देखो, समझो, मनन करो और उसका अवलोकन करो।

127 · साथियों के बीच मनोरंजन और आनंद होता है, और पुत्रों के लिए बड़ा प्रेम होता है। प्रिय से बिछड़ने से घृणा करते हुए, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“साथियों के बीच मनोरंजन और आनंद है”: “मनोरंजन,” दो प्रकार का मनोरंजन है: शारीरिक मनोरंजन और मौखिक मनोरंजन। शारीरिक मनोरंजन क्या है? हाथियों, घोड़ों, गाड़ियों, धनुषों, तलवारों और अन्य हथियारों से खेलना, अष्टकोणीय शतरंज, दस-आंखों वाला शतरंज, हवाई शतरंज और हॉपस्कॉच, साथ ही पत्थर की पहेली से खेलना, पासे के बोर्ड से खेलना, लकड़ी की छड़ी से खेलना, हाथ से खेलना, पासे से खेलना, पत्तों की बांसुरी से खेलना, खिलौने की कुदाल से खेलना, कलाबाजियां करना, खिलौने की पवनचक्कियों से खेलना, खिलौने के नापने के उपकरणों से खेलना, गाड़ी के खेल, खिलौने के धनुष और बाण, शब्दों का अनुमान लगाना, विचारों का अनुमान लगाना और खामियों की नकल करना [DN.1]।

मौखिक मनोरंजन क्या है? मुंह से ढोल बजाने की आवाज़, मुंह से ढोल पर निशान बनाने की आवाज़, मुंह से ढोल को छूने की आवाज़, होंठों को मोड़ने की आवाज़, मुंह से ढोल बजाना, मुंह से ढोल की खोखली आवाज़ की नकल करना, ज़ोरदार जयकार, नर्तकों पर शोर, गाना और मज़ाक करना।

"आनंद," जो संतुष्टि का पर्यायवाची है, वास्तव में "आनंद" है। जिनके साथ आना-जाना, खड़े होना, बैठना, लेटना, बातें करना और बातचीत करना सुखद लगता है, उन्हें साथी कहते हैं। साथियों के साथ मनोरंजन और आनंद मिलता है।

“और पुत्रों में बहुत प्रेम होता है”: “पुत्र,” ... पुत्र के प्रति बहुत प्रेम होता है।

“प्रिय से वियोग का अरुचि”: प्रिय (प्यारे) दो प्रकार के होते हैं: सजीव प्राणी या कर्म। प्यारे प्राणी क्या हैं? यहाँ, वे माता-पिता हैं जो बच्चे का भला करना चाहते हैं, उसके लिए उपयोगी बनना चाहते हैं और बंधन से मुक्त होना चाहते हैं। रिश्तेदार, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री, मित्र, सहकर्मी, सगे-संबंधी, रक्त संबंधी (रिश्तेदार), ये सभी प्यारे प्राणी हैं।

प्रिय कर्म क्या हैं? मनभावन रूप, मनभावन ध्वनियाँ, ...सुगंध, स्वाद, स्पर्श, ये सभी प्यारे व्यवहार हैं। “प्रिय से विदा होने से घृणा करना”: प्रिय से विदा होने पर घृणा, अरुचि और शर्म महसूस करना।

128 · चारों दिशाओं को अस्वीकार न करने वाला व्यक्ति बनना, जो हर चीज से संतुष्ट हो, जो खतरे को सहन कर सके और जो भयभीत न हो, उसे गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“चारों दिशाओं को अस्वीकार न करने वाले”: “चारों दिशाएँ,” केवल प्रबुद्ध व्यक्ति करुणा से भरे हृदय से एक दिशा (दिशा) को भर देता है और उसमें निवास करता है, और इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी, चौथी, इसी तरह ऊपर और नीचे (दिशाएँ), क्षैतिज रूप से, हर जगह, हर चीज़ को अपने समान करुणा से भरे हृदय से, विशालता, उत्कृष्टता, असीमता से भरे हृदय से, बिना किसी द्वेष और बिना किसी दुर्भावना के, समस्त संसार को भर देता है और उसमें निवास करता है। दुःख के साथ चलो...(विलुप्त), आनंद के साथ चलो..., शांति के साथ चलो और एक दिशा में निवास करो...। “चारों दिशाएँ, उन्हें अस्वीकार न करना”: करुणा में अभ्यास करने की अवस्था में, पूर्व के सभी प्राणी अवज्ञा नहीं करेंगे, दक्षिण के प्राणी अवज्ञा नहीं करेंगे, और पश्चिम के प्राणी अवज्ञा नहीं करेंगे; उत्तर दिशा के सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, पूर्व दिशा के मध्य में सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, दक्षिण दिशा के मध्य में सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, पश्चिम दिशा के मध्य में सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं; उत्तर दिशा के मध्य में सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, नीचे के सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, ऊपर के सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं, सभी दिशाओं में सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं। वे उनके विरुद्ध नहीं हैं। अभ्यास की गई दुःख की अवस्था में..., अभ्यास की गई आनन्द की अवस्था में..., अभ्यास की गई शांति की अवस्था में... पूर्व दिशा के सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं हैं... (उद्धृत) सभी दिशाओं में उनके विरुद्ध नहीं हैं।

“जो हर चीज़ से संतुष्ट है”: प्रबुद्ध वह है जो किसी भी वस्त्र में संतुष्ट रहता है और उस संतुष्टि की प्रशंसा करता है। वह वस्त्रों के कारण अनुचित बुराई की ओर नहीं जाता। कृपया, वस्त्र न मिलने पर भयभीत न हों, वस्त्र मिलने पर आसक्त न हों, मोह न करें, भोला-भाला रहें, विक्षिप्त भूमि को देखकर बुद्धिमानी से प्रयोग करें [SN.16.1], और वह चाहे जैसे भी वस्त्र पहने हो, संतुष्ट रहता है, अपनी प्रशंसा नहीं करता और दूसरों को तुच्छ नहीं समझता। जो कुशल, आलसी नहीं, धर्मात्मा और सचेत हैं, उन्हें ही अतीत की सर्वोच्च जाति में रहने वाला एकमात्र प्रबुद्ध व्यक्ति कहा जाता है [DN.33/AN.4.28]।

यह वह व्यक्ति है जो किसी भी भोजन से संतुष्ट रहता है... (अंशित भाग), चाहे वह कहीं भी रहता हो..., चाहे रोगी की आवश्यकताएँ और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतें कुछ भी हों...।

“जो लोग खतरे को सहन करते हैं और उससे डरते नहीं हैं”: “खतरा (संकट, संकट, संकट)”, खतरे दो प्रकार के होते हैं: प्रत्यक्ष खतरे और अप्रत्यक्ष खतरे। प्रत्यक्ष खतरे क्या हैं? शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, कुत्ते, भेड़िये, बाइसन, हाथी, सांप, बिच्छू, कनखजूरे, या चोर या गुंडे जो बुरे काम करते हैं या बुरे काम करने को तैयार हैं, आंखों के रोग, कान के रोग, नाक के रोग, जीभ के रोग, शरीर के रोग, सिर के रोग, बाहरी कान के रोग, मुंह के रोग, दांतों के रोग, खांसी, घरघराहट, बाहरी नाक के रोग, बुखार, बुढ़ापा, पेट के रोग, कोमा, दस्त, पेट दर्द, हैजा, कुष्ठ रोग, ट्यूमर, दाद, फेफड़ों के रोग, मिर्गी, खुजली, गठिया दाद, खरोंच (रोग), सूखी और फटी त्वचा, रक्त पित्त रोग, मधुमेह, बवासीर, दाने (फोड़े), अल्सर, पित्ताशय के रोग, कफ के रोग,

वात के रोग, आदि, (तीन) ऋतुओं के संयोजन से होने वाले रोग, गलत मुद्राओं से होने वाले रोग, अचानक होने वाले रोग, कर्मों के फल से उत्पन्न रोग, जैसे सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, संपर्क मक्खियों, मच्छरों, सूरज के सांपों आदि के साथ, इन्हें स्पष्ट खतरे कहा जाता है।

छिपे हुए खतरे क्या हैं? बुरे कर्म, बुरी वाणी, बुरी मंशा, वासना का आवरण, द्वेष का आवरण, नींद का आवरण, पदावनति और पश्चाताप का आवरण, संदेह का आवरण, लोभ, घृणा, अज्ञानता, क्रोध, द्वेष, बुराई छिपाना, प्रभुत्व, ईर्ष्या, कंजूसी, छल, चालाकी, हठ, वासना, अहंकार, घमंड, विश्राम, सभी प्रकार की अशुद्धियाँ, सभी बुरे कर्म, सभी परेशानियाँ, सभी चिंताएँ, सभी प्रकार का उत्साह, सभी अस्वास्थ्यकर कर्म, ये सभी छिपे हुए गुप्त खतरे कहलाते हैं।

“खतरा, संकट, संकट,” खतरे का क्या अर्थ है? “हर जगह जीत हासिल करना” एक संकट है; “नुकसान की ओर ले जाना” एक संकट है; “वहाँ रहना” एक संकट है। “हर जगह जीत हासिल करना” संकट कैसे है? वे खतरे जो किसी व्यक्ति को जीतते हैं, पराजित करते हैं, अभिभूत करते हैं, समाप्त करते हैं और कुचल देते हैं, वे ही “हर जगह जीत हासिल करना” के रूप में खतरे हैं।

“हानि की ओर ले जाना” किस प्रकार एक खतरा है? वे बाधाएँ और पीछे हटना जो संकट में पड़े उत्तम धम्म की ओर ले जाते हैं; कौन सा उत्तम धम्म? सही मार्ग, अनुसरण करने वाला मार्ग, अविचलित मार्ग, विरोधाभास रहित मार्ग, जैसा अर्थ है वैसा मार्ग, धम्म का मार्ग, पूर्ण नियम, मूलों की रक्षा करना, भोजन की सही मात्रा जानना, संयम, सजगता और सही ज्ञान में निपुणता, चार प्रकार की सजगताएँ...(कुछ भाग हटा दिया गया), वे बाधाएँ जो इस उत्तम धम्म की हानि की ओर ले जाती हैं, यही संकट के रूप में “हानि की ओर ले जाना” है।

वहाँ निवास करना किस प्रकार खतरनाक है? वहाँ ये दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म व्यक्तियों को नियंत्रित करने के लिए उत्पन्न हुए, जैसे गुफाओं में बिल खोदने वाले जानवर; पानी में रहने वाले जलीय जीव; जंगल में रहने वाले वन जीव; पेड़ों पर रहने वाले वृक्षवासी जीव। इसी प्रकार, ये दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म परस्पर निर्भरता को जन्म देते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा [SN.35.151]: "भिक्षुओं! शिष्यों और गुरुओं के साथ रहने वाले भिक्षु दुख और बेचैनी में रहते हैं। लेकिन, भिक्षुओं! ऐसा कैसे हो सकता है कि शिष्यों और गुरुओं के साथ रहने वाले भिक्षु दुख और बेचैनी में रहें?"

भिक्षुओं! यहाँ, भिक्षु को अपनी आँखों से उस आकृति को देखने के बाद, उस गाँठ से जुड़े उन दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्मों की स्मृतियाँ और इरादे प्राप्त होते हैं। वे उसके भीतर निवास करते हैं; दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म उसमें निवास करते हैं और प्रवेश करते हैं (अधिकार जमाते हैं)। इसलिए, उसे 'शिष्य-धारक' कहा जाता है। वे उसे जीत लेते हैं; दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्म उसे जीत लेते हैं। इसलिए, उसे 'गुरु' कहा जाता है।

इसके अलावा, भिक्षुओं! जब भिक्षु अपने कानों से ध्वनि सुनता है...(अधूरा अंश), अपनी नाक से गंध सूंघता है..., अपनी जीभ से स्वाद चखता है..., अपने शरीर से स्पर्श करता है..., जब वह चेतना से धर्म को जानता है, तब उसके मन में बुरे और अहितकर धर्म की यादें और इरादे उत्पन्न होते हैं। वे उसके भीतर निवास करते हैं; बुरे और अहितकर धर्म निवास करते हैं और प्रवेश करते हैं... भिक्षुओं! इस प्रकार, भिक्षु अपने शिष्यों और गुरुओं के साथ दुख और बेचैनी में रहते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा [इत.88]: “भिक्षुओं! तीन प्रकार की आंतरिक गंदगी होती है: आंतरिक शत्रु, आंतरिक दुश्मन, आंतरिक हत्यारे और आंतरिक शिकायतें। भिक्षुओं! लोभ आंतरिक गंदगी है, आंतरिक दुश्मन है...; भिक्षुओं! दुःख...; भिक्षुओं! आसक्ति...। भिक्षुओं! ये तीन प्रकार की आंतरिक गंदगी हैं: आंतरिक शत्रु, आंतरिक दुश्मन, आंतरिक हत्यारे और आंतरिक शिकायतें।”

लोभ किसी लाभ का कारण नहीं है, लोभ हृदय को कंपकंपा देता है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। लोभी व्यक्ति लाभों को नहीं जानता, लोभी व्यक्ति धर्म को नहीं देख पाता, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो लोभ से पराजित हो सकता है। क्रोध किसी लाभ का कारण नहीं है, क्रोध हृदय को कंपकंपा देता है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। क्रोधित व्यक्ति लाभों को नहीं जानता, क्रोधित व्यक्ति धर्म को नहीं देख पाता, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो पराजित हो सकता है। मूर्खता किसी लाभ का कारण नहीं है,

मूर्खता हृदय को कंपकंपा देती है, इससे भय उत्पन्न होता है और लोग इसे समझ नहीं पाते। मूर्ख लाभों को नहीं जानते, मूर्ख धर्म को नहीं देख पाते, उस समय वह अंधा और अंधकारमय होता है: जो पराजित हो सकता है।

भगवान बुद्ध ने कहा [सं. 3.2]: "हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर तीन धर्म उत्पन्न होते हैं, तो हानि, पीड़ा और बेचैनी उत्पन्न होती है। वे तीन कौन से हैं? हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर लोभ उत्पन्न होता है, तो हानि, पीड़ा और बेचैनी उत्पन्न होती है; हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर आक्रमण उत्पन्न होता है... हे महाराज! जब मनुष्य के भीतर मूर्खता उत्पन्न होती है, ...।"

"एक लालची, घृणास्पद, मूर्ख, द्वेषपूर्ण व्यक्ति स्वयं को उसी प्रकार हानि पहुँचाता है, जैसे अनेक फल मिलकर पेड़ के हृदय को क्षति पहुँचाते हैं।"

भगवान बुद्ध ने कहा: [SN.10.3] "यहीं से लोभ और क्रोध, दुख, सुख और भय उत्पन्न होते हैं (शाब्दिक रूप से शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं); यहीं से इरादा उत्पन्न होता है, जैसे कोई छोटा लड़का कौवे को जाने देता है।"

"जो खतरों का सामना करते हैं," खतरे में डटे रहने वाले, विजेता, हर चुनौती को जीतने वाले, हराना करने वाले, बागी। "जो भयभीत नहीं होता," जो अकेला ही ज्ञान प्राप्त करता है, वही डरपोक नहीं होता, भयभीत नहीं होता, घबराता नहीं और भागता नहीं। वह भय के डर को त्यागकर और अपने रोंगटे खड़े होने को त्यागकर जीवन व्यतीत करता है।

129 · कुछ भिक्षुओं की देखभाल करना भी कठिन होता है, वैसे ही घर में रहने वाले गृहस्थ सदस्यों की भी। दूसरों के बेटों की परवाह न करने वाला बनने के बाद, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"कुछ भिक्षु ऐसे भी हैं, जिनकी देखभाल करना कठिन है": यहाँ एक प्रकार के भिक्षु हैं, यद्यपि उन्हें शरण दी जानी चाहिए, यद्यपि उन्हें निर्देश दिए जाते हैं, उन्हें कई प्रश्न दिए जाते हैं, यद्यपि उन्हें वस्त्र, ...कटोरा, ...तांबे का कटोरा, जल छानने वाला यंत्र, जल छानने वाला यंत्र, थैली, जूता, कमरबंद दिया जाता है, फिर भी वे नहीं सुनते, न ही जानने के लिए अपने मन या कान लगाते हैं, न ही जानते हैं, जो विश्वासघाती, अवज्ञाकारी और विरोधी व्यवहार करते हैं, वे दूसरों की ओर अपना मुख नहीं फेरते [नि.2]।

"कुछ ऐसे परिवार भी हैं जो घर पर ही रहते हैं": यहाँ एक प्रकार के निवासी हैं जिन्हें हाथी दिए जाते हैं... (अंशित); हालाँकि उन्हें गाड़ियाँ, खेत, घर, सोना और सोने के सिक्के दिए जाते हैं, उन्हें गाँव..., कस्बे, शहर, राजधानियाँ... दी जाती हैं, फिर भी वे सुनते नहीं, उनकी बात नहीं सुनते, जानने के लिए अपने मन या कान नहीं लगाते, वे बेवफ़ा, अवज्ञाकारी और विरोधी व्यवहार करते हैं।

"दूसरों के बेटों की परवाह न करने वाला व्यक्ति बनने के बाद": इस अर्थ में, स्वयं को छोड़कर, दूसरों के बेटों के प्रति उदासीन हो जाने के बाद। उन दूसरे लोगों के बेटों के प्रति उदासीन हो जाने के बाद, कम व्यस्त हो जाने के बाद, बेपरवाह हो जाने के बाद।

130 · परिवार (सांसारिक जीवन) के निशान को त्यागने के बाद, जैसे कोविलारा वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों, जैसे नायक अपने परिवार के बंधन को तोड़कर गैंडे की तरह अकेला चलता है।

परिवार के चिन्हों को त्यागने के बाद: बाल, दाढ़ी, माला, मसाले, मरहम, आभूषण, सामान, कपड़े, आवरण, हेडबैंड, मालिश, रगड़ना, स्नान, दर्पण, नेत्र मरहम, माला, इत्र, फेस पाउडर, फेस क्रीम, कंगन, रिबन, बालों का सामान, छड़ी, बैरल, तलवार, छाता, रंगीन जूते, जूड़ा, गोला, झाड़ू, लंबे और छोटे सफेद कपड़े आदि को आम आदमी के चिन्ह कहा जाता है। परिवार के सदस्य के चिन्ह को त्यागने के बाद: परिवार के सदस्य के चिन्ह को त्यागने के बाद, पूरी तरह से त्यागने के बाद, नीचे रखने के बाद, बंद करने के बाद।

"जैसे कोविलारा वृक्ष के पत्ते झड़ गए हों": जैसे कोविलारा वृक्ष के पत्ते कट जाते हैं, गिर जाते हैं, उसी प्रकार एकाकी ज्ञानी व्यक्ति का निशान भी कट जाता है, गिर जाता है।

“जब नायक अपने परिवार के बंधन तोड़ देता है”: “नायक”, “ऊर्जावान” नायक है; “सक्षम” नायक है; “पर्याप्त” नायक है; “प्रचुर” नायक है; “बहादुर” नायक है; “वीर” नायक है; “जो भयभीत नहीं होता” नायक है; “कोई आतंक नहीं” नायक है; “कोई डर नहीं” नायक हैं; “जो भागते नहीं” नायक हैं; “जिन्होंने आतंक और भय का त्याग कर दिया है” नायक हैं; “जिन्होंने अपने भय और शरीर के रोंगटे खड़े होने को त्याग दिया है” नायक हैं।

“सभी बुरे कर्मों से दूर रहकर, जीवन शक्ति से परिपूर्ण होकर, नरक की पीड़ाओं से पार पाकर, ऊर्जावान और परिश्रमी व्यक्ति; ऐसे व्यक्ति को ही नायक कहा जा सकता है।” [संख्या 3.6]

पुत्र, पत्नियाँ, पुरुष सेवक, दासियाँ, बकरियाँ और भेड़ें, मुर्गियाँ और सूअर, हाथी, गाय और घोड़े, खच्चर, घोड़े, खेत, घर, सोना, सोने के सिक्के, गाँव, कस्बे, राजधानियाँ, स्थान, खजाना, गोदाम, जो कुछ भी लालच से भ्रष्ट हो सकता है, वह सब सांसारिक परिवार का बंधन कहलाता है।

“जब नायक परिवार के सदस्य के बंधन को तोड़ देता है”: जो अकेला रह जाता है, वही नायक होता है। परिवार के सदस्य के बंधन को तोड़ने के बाद, उसे त्यागने के बाद, उसे भगा देने के बाद, उसका अंत करने के बाद, उसे अस्तित्वहीन कर देने के बाद।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.बी.2

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

गैंडा सूत्र की व्याख्या
दूसरा अध्याय
131 · यदि आपको कोई बुद्धिमान साथी मिले, जो आपके साथ चले, जो दयालुता से जीवन व्यतीत करे, जो बुद्धिमान हो, तो सभी खतरों को पार करने के बाद, आपको उसके साथ सचेत और प्रसन्नतापूर्वक चलना चाहिए। [दफ़ी.23,328]

“यदि आपको एक बुद्धिमान साथी मिले”: यदि आपको एक बुद्धिमान, सचेत, स्वतंत्र और समझदार साथी मिले, प्राप्त हो, हासिल हो, या आपके पास हो।

“मार्गदर्शक, शुभ निवासी, ज्ञानी”: “मार्गदर्शक,” वह जो अकेला चलता है। “शुभ निवासी,” वह जो प्रथम ध्यान में रहता है, शुभ निवासी है, और द्वितीय..., तृतीय..., चतुर्थ ध्यान में रहने वाला भी शुभ निवासी है, परोपकारी और मुक्तिदायक परोपकारी निवासी है, और करुणा... (विलुप्त) और आनंद..., और शांत और मुक्तिदायक परोपकारी निवासी हैं, वे भी जो असीम शून्य में निवास करते हैं..., ज्ञान की असीमता में..., ...शून्यता में..., ...(न बोध करने वाले और न ही) अबोध करने वाले स्थान में...। वे भी जो क्षीणता के सबसे परोपकारी निवासी हैं, और वे भी जो फल के सबसे शुभ निवासी हैं। “ज्ञानी,” ज्ञानी, प्रबुद्ध, पृथक, ज्ञानी हैं।

“सभी खतरों को हराने के बाद”: “खतरे,” दो प्रकार के खतरे हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)।

“जिनके मन में विचार (सजगता) है, उन्हें दूसरों के साथ खुशी से चलना चाहिए”: केवल प्रबुद्ध व्यक्ति को बुद्धिमान, प्रबुद्ध, विशिष्ट और समझदार साथी के साथ रहना चाहिए; ताकि वे साथ में चलने, जीने, कार्य करने, आगे बढ़ने, रक्षा करने और जीवित रहने में प्रसन्न, संतुष्ट, आनंदित, उत्साही और प्रसन्न रहें। “विचारशील” वह केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही सचेत व्यक्ति है, जो सर्वोच्च बुद्धि और विवेक से युक्त है, और वह स्मरणशील और स्मरणशील है जिसने इसे बहुत पहले किया और कहा था [SN.48.9]।

132 · यदि आपको कोई बुद्धिमान साथी न मिले, जो आपके साथ चले, जो दयालुता से जीवन व्यतीत करे, जो बुद्धिमान हो, तो जैसे कोई राजा जीते हुए क्षेत्र को छोड़कर चला जाता है, वैसे ही आपको गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए। [Dph.23,329]

"यदि आपको कोई बुद्धिमान साथी न मिले": यदि आपको कोई बुद्धिमान, सचेत, स्वतंत्र और समझदार साथी न मिले।

"एक यात्री, एक अच्छा निवासी और एक बुद्धिमान व्यक्ति": ....

"जैसे कोई राजा अपना देश त्याग देता है": जिस प्रकार शीर्ष योद्धा शत्रु को परास्त कर देते हैं, विजयी होकर, वह राजा जिसके पास सभी सुख-सुविधाएँ और भरपूर धन-संपत्ति होती है, वह अपने देश, भूमि, भंडारगृह, सोने के भंडार और नगर को त्याग देता है। अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और वस्त्र धारण करके, वह घर छोड़कर एकांतवासी जीवन जीने लगता है। संपत्तिहीन अवस्था में प्रवेश करने के बाद, वह चलता-फिरता, जीवनयापन करता, आगे बढ़ता, रक्षा करता और जीवनयापन करता है। इस प्रकार, वह व्यक्ति जो घर की सभी बाधाओं को दूर करके, बच्चों और पत्नियों की बाधाओं को दूर करके, रिश्तेदारों की बाधाओं को दूर करके, मित्रों की बाधाओं को दूर करके (संग्रह की बाधाओं को दूर करके), बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और वस्त्र धारण करके अकेला जीवनयापन करता है; घर छोड़कर और एकांतवासी जीवन जीने लगता है, वह शून्यता की अवस्था में प्रवेश कर जाता है और अकेला चलता-फिरता, जीवनयापन करता, आगे बढ़ता, रक्षा करता और जीवनयापन करता है।

133 · बेशक हम अपने (अच्छे) साथियों की प्रशंसा करते हैं, हमें श्रेष्ठ और समान साथियों के करीब जाना चाहिए। इन्हें न पा लेने पर, जैसे कोई बिना किसी दोष के खाता रहता है, उसे गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"निःसंदेह हम अपने पूर्ण साथियों की प्रशंसा करते हैं": "निःसंदेह," यही निर्णायक शब्द है, निर्विवाद शब्द है, आत्मविश्वास से भरा शब्द है, बिना किसी पूर्वाग्रह के पढ़ा गया शब्द है, आदेशात्मक शब्द है, त्रुटि रहित शब्द है, यही निश्चितता का शब्द है, जो कि "निःसंदेह" है। "पर्याप्त साथी," जिसके पास अज्ञानता रहित उपदेश हों..., अज्ञानता रहित एकाग्रता हो..., अज्ञानता रहित ज्ञान हो...। "निःसंदेह हम पूर्ण साथियों की प्रशंसा करते हैं": हम अच्छे साथियों की प्रशंसा, सराहना और प्रशंसा करते हैं।

श्रेष्ठ और समतुल्य साथियों के निकट रहना चाहिए: उपदेश, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और मुक्त ज्ञान में श्रेष्ठ साथियों को श्रेष्ठ साथी मानो; और उपदेश, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और मुक्त ज्ञान में समतुल्य साथियों को समतुल्य मानो। श्रेष्ठ साथी या समतुल्य साथी के निकट रहना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए, उनका आदर करना चाहिए, उनसे पूछताछ करनी चाहिए और हमेशा उनसे प्रश्न पूछने चाहिए।

"इन चीजों को न पाने के बाद, जैसे कोई निर्दोषता से खा रहा हो": कुछ लोग निर्दोषता से खाने वाले होते हैं, और कुछ नहीं। निर्दोषता से खाने वाला कौन है? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग हैं जो छल-कपट करते हैं, बातें करते हैं, सुझाव देते हैं, उपहास करते हैं, दूसरे लाभों के बदले वस्तुएँ देते हैं, लकड़ी से बनी वस्तुएँ देते हैं, बांस से बनी वस्तुएँ देते हैं, पत्तों से बनी वस्तुएँ देते हैं, फूलों से बनी वस्तुएँ देते हैं, स्नान वस्त्रों से बनी वस्तुएँ देते हैं, वाशिंग पाउडर से बनी वस्तुएँ देते हैं, मिट्टी से बनी वस्तुएँ दान करते हैं, दाँतों से बनी वस्तुएँ दान करते हैं, धुलाई के पानी से बनी वस्तुएँ दान करते हैं, चापलूसी करते हैं, विश्वास के नाम पर नदी खोलते हैं, लालच करते हैं, पीठ पीछे निंदा करते हैं, घर का इस्तेमाल दिखावा करने के लिए करते हैं, जानवरों से दिखावा करते हैं, ज्योतिष का उपयोग करते हैं, दूत बनकर कार्य करते हैं, दूत भेजते हैं, छोटे-मोटे काम करते हैं, चिकित्सा का उपयोग करते हैं, नए रोजगार सृजित करते हैं, भोजन देते हैं और बदले में देते हैं, और भीख देते हैं। वह व्यक्ति जिसने अवैध और अनुचित तरीके से प्राप्त किया है। प्राप्त करने के बाद, प्राप्त करने के बाद, अधिकार में लेने के बाद, प्राप्त करने के बाद, इसे निर्दोषता से खाने वाला व्यक्ति कहा जाता है।

और कौन है वह है विवेकपूर्ण भोजन करने वाला? यहाँ, एक विशेष प्रकार के लोग छल-कपट नहीं करते, बातें नहीं करते, इशारे नहीं करते, उपहास नहीं करते... उन्होंने धम्म के अनुसार विधिवत रूप से प्राप्त किया है। वे प्राप्त करने, अर्जित करने, धारण करने और ग्रहण करने के बाद उसका अवैध और अनुचित उपयोग करके जीवन यापन नहीं करते। इसे विवेकपूर्ण भोजन करने वाला कहा जाता है।

"जिन लोगों को ये निर्दोष भोजन नहीं मिलते": जिन लोगों को ये निर्दोष भोजन नहीं मिलते, वे इन्हें प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि वे इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते, जब तक कि वे इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते, जब तक कि वे इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते, जब तक कि वे इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते, जब तक कि वे इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते।

134 · सोने (कंगनों) की चमक देखकर, लोहार द्वारा अच्छी तरह से गढ़े गए, हाथों पर दो (कंगनों) के आपस में रगड़ने पर, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"सोने की चमक देखने के बाद": देखने, तौलने, परखने, अलग करने और स्पष्ट करने के बाद। "सुनहरा" (सुवन्नस्सति) सुनहरा (जातरूपस) होता है। "चमकदार" का अर्थ है पूर्ण शुद्ध, पूर्ण निर्मल।

"लोहार द्वारा अच्छी तरह से बनाया गया": एक लोहार को सुनार कहा जाता है। "लोहार द्वारा अच्छी तरह से किया गया काम": लोहार द्वारा अच्छी तरह से किया गया काम, अच्छा काम और बारीकी से किया गया काम कहलाता है।

"हाथों पर दो का आपस में रगड़ना": हाथ (भुजो) को हाथ (हत्थो) कहा जाता है। एक हाथ में दो कंगन आपस में रगड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार, सभी प्राणी अपनी प्यास और दृष्टि के कारण नरक में हैं। उनमें घर्षण है, पशु जगत में घर्षण है, प्रेत जगत में घर्षण है, मनुष्य जगत में घर्षण है और स्वर्ग जगत में घर्षण है। ब्याज और ब्याज..., मृत्यु और मृत्यु..., पुनर्जन्म और पुनर्जन्म..., होना और होना..., पुनर्जन्म और पुनर्जन्म..., चक्र और चक्र। वे घर्षण उत्पन्न करते हैं, चलते हैं, निवास करते हैं, कार्य करते हैं, चलते हैं, रक्षा करते हैं, जीवित रहते हैं।

135 · तो अगर मैं किसी साथी के साथ हूँ, तो मौखिक (स्नेहपूर्ण) बातचीत होगी या टकराव (घर्षण), भविष्य में इस आतंक को देखते हुए, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"तो अगर मैं अपने साथी के साथ हूँ": एक प्यासा (प्रेम) साथी या एक मानवीय (सहयोगी) साथी है। प्यासा साथी क्या है? "प्रेम की प्यास," रूप की प्यास... (विलुप्त), धम्म की प्यास। इस प्यासे प्रेमी की बात करें तो, वह साथी जिसे प्यासा कहा जाता है।

"जिन लोगों का साथी प्यासी प्रेम होता है, वे लंबे समय तक पुनर्जन्म लेते हैं, ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, अन्य अवस्थाओं में पहुँच जाते हैं, पुनर्जन्म से परे नहीं जाते।" [इत.15/स्न.3.12,745]

मनुष्य का साथी क्या है? एक वर्ग ऐसा है जो कोई लाभ नहीं देता, अहंकार पैदा करता है, मन की शांति भंग करता है, और पहला दूसरे स्थान पर, दूसरा तीसरे स्थान पर, या तीसरा चौथे स्थान पर आ जाता है (यह अंश स्पष्ट नहीं है: ekassa vā dutiyo hoti, dvinnaṃ vā tatiyo hoti, tiṇṇaṃ vā catuttho hoti)। इसमें बहुत से अश्लील शब्द हैं, जैसे: राजाओं, चोरों, मंत्रियों, सेना, भय, युद्ध, भोजन, पेय पदार्थ, वस्त्र, बिस्तर, माला, गंध, रिश्तेदारी, रथ यात्रा, गाँव, कस्बा, शहर, भूमि, स्त्री, (मनुष्य सिद्धांत), नायक, गली, कुआँ, पूर्वज आत्मा, विभिन्न वस्तुएँ, विश्व उत्पत्ति, सागर उत्पत्ति, इत्यादि [DN.1]। यही मनुष्य का साथी है।

"मौखिक संवाद या आसक्ति होगी": मौखिक संवाद को बत्तीस प्रकार के पशुवत सिद्धांत कहा जाता है, अर्थात् राजाओं के बारे में बात करना... "आसंजन (लगाव)", आसक्ति दो प्रकार की होती है: उत्सुकता का आसक्ति और देखने का आसक्ति...

"भविष्य के भयावह दृश्य को देखना": "भयानक दृश्य," ...(हटा दिया गया, पिछले अनुभाग देखें)। "भविष्य के आतंक को देखना": वह भविष्य के आतंक को देख रहा है, अनुभव कर रहा है और उसका अवलोकन कर रहा है।

136 · सभी प्रकार की इच्छाएँ वास्तव में शहद के समान मीठी और मनभावन होती हैं, और वे हृदय को अनेक प्रकार से विचलित करती हैं। सभी प्रकार की इच्छाओं में छिपे खतरे को देखकर, व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“सभी प्रकार की इच्छाएँ वास्तव में शहद के समान और सुखद होती हैं”: “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: .... “विभिन्न प्रकार,” विभिन्न रूपों के दृश्य, विभिन्न रूपों की ध्वनियाँ, विभिन्न रूपों की गंध, विभिन्न रूपों के स्वाद, विभिन्न रूपों के स्पर्श, मनभावन, सुंदर, और इच्छा से प्रेरित, लालची। “शहद के समान।” भगवान बुद्ध [एमएन.139] कहते हैं: “भिक्षुओं! ये पाँच इच्छाएँ हैं, कौन सी पाँच? (वे) जिन्हें आँख से देखा जा सकता है, जो इच्छा, लालसा, रूप के लिए लोभ उत्पन्न करती हैं; ...कान..., नाक, जीभ, शरीर; भिक्षुओं! इन्हें पाँच इच्छाएँ कहते हैं। भिक्षुओं! इन पाँच इच्छाओं से उत्पन्न होने वाला समस्त सुख और आनंद, भिक्षुओं, इसे कामवासना, मलिन सुख, सामान्य लोगों का सुख और तुच्छ सुख कहते हैं। मैंने कहा: 'इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, इसका अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिए, तुम्हें इस प्रकार के सुख से डरना चाहिए।'” “हृदय”: समस्त हृदय... (विलुप्त) उस चेतना के अनुरूप है। वे मन को प्रसन्न करते हैं, प्रशंसा करते हैं, संतुष्ट करते हैं और हँसाते हैं।

“वे दिल को कई तरह से विचलित करते हैं”: कई रूपों से प्रभावित होकर... (छोड़ा गया), वे दिल को विचलित करते हैं, संतुष्ट करते हैं और हँसाते हैं।

“सभी प्रकार की इच्छाओं को देखने के बाद”: भगवान बुद्ध ने कहा [एमएन.13]: “भिक्षुओं! इच्छा का दोष क्या है? भिक्षुओं! यहाँ, प्रत्येक पुण्य पुरुष अपने कौशल से जीविका कमाता है: चाहे वह निरीक्षण हो, लेखा-जोखा हो, गणना हो, खेती हो, व्यापार हो, पशुपालन हो, शासन हो, या अन्य कौशल हों, वह सर्दी-गर्मी का सामना करता है, मक्खी, मच्छर, हवा, धूप और सांपों से प्रभावित होता है, और भूख-प्यास से मर जाता है, भिक्षुओं! इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला दुखों का संचय, इच्छा ही कारण है, इच्छा के कारण ही दुख होते हैं।”

भिक्षुओं! यदि कोई गुणी पुरुष परिश्रम करे, कड़ी मेहनत करे और धन प्राप्ति में असफल हो जाए, तो वह दुखी, थका हुआ, रोता हुआ, सीना पीटता हुआ और विलाप करता हुआ भ्रमित हो जाएगा (और कहेगा): 'मेरा उत्थान व्यर्थ है, और मेरे प्रयास निष्फल हैं।' भिक्षुओं! इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं...

भिक्षुओं! यदि कोई गुणी पुरुष परिश्रमपूर्वक धन अर्जित करता है, तो वह उस धन की रक्षा के लिए पीड़ा और चिंता से व्याकुल हो जाता है: 'मैं ऐसा कैसे करूँ कि न तो राजा मेरा धन ले ले, न चोर ले जाएँ, न आग उसे जला दे, न जल उसे बहा ले जाए, न ही अपाहिज वारिस उसे ले जाएँ?' जब वह उस धन की रक्षा करता है, या राजा उसे ले लेता है, या चोर ले लेते हैं, या आग उसे जला देती है, या जल उसे बहा ले जाता है, या अपाहिज वारिस उसे ले जाता है, तो वह दुखी हो जाता है... (और कहता है): 'जो मेरे पास है, वह अब अस्तित्व में नहीं है।' भिक्षुओं! इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं...

इसके अलावा, भिक्षुओं! इच्छा ही कारण है..., राजा और राजा का सिद्धांत (जिसकी बात हो रही है), क्षत्रिय और क्षत्रिय का सिद्धांत, ब्राह्मण..., गृहस्वामी..., माता और पुत्र..., पुत्र और माता..., पिता और पुत्र..., पुत्र और पिता..., भाई और भाई..., भाई और बहन..., बहन और भाई..., मित्र और मित्र...। जब वे आपस में झगड़ते और बहस करते थे, तो वे एक-दूसरे पर मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों और तलवारों से हमला करते थे, जिससे उन्हें मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ती थी। भिक्षुओं! इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं...।

इसके अलावा, भिक्षुओं! कामवासना ही कारण है..., तलवार और ढाल उठाओ, धनुष और बाण धारण करो, दोनों पक्ष युद्ध में आमने-सामने आ जाते हैं, बाणों और भालों की तीव्र गति में, तलवारों की चमक में, वहाँ वे बाणों और भालों से भेद दिए जाते हैं और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं, जहाँ उन्हें मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ती है। भिक्षुओं! इसे कामवासना का दोष कहते हैं...।

इसके अलावा, भिक्षुओं! कामवासना ही कारण है..., तलवार और ढाल उठाओ, धनुष और बाण धारण करो, फिसलन भरी रक्षा पंक्ति में कूद पड़ो, बाणों और भालों की तीव्र गति में, तलवारों की चमक में, वहाँ वे बाणों और भालों से भेद दिए गए, गोबर में लथपथ हो गए, भारी वस्तुओं से कुचल दिए गए, और तलवारों से सिर काट दिए गए, जहाँ उन्होंने मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहन की। भिक्षुओं! इसे कामवासना का दोष कहते हैं...

इसके अलावा, भिक्षुओं! कामवासना ही कारण है..., उन्होंने लोगों पर आक्रमण किया, लूटपाट की, रास्ते में चोरी की, पत्नियों का अपहरण किया, और राजा द्वारा पकड़े जाने पर उन्हें विभिन्न दंड दिए गए: कोड़े मारना, लाठी से पीटना, ...(अंश छोड़ दिया गया है, पिछले भाग देखें), ...जहां उन्हें मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ी। भिक्षुओं! इसे कामवासना का दोष कहते हैं...।

इसके अलावा, भिक्षुओं! इच्छा ही कारण है..., शरीर से बुराई करो, वाणी से बुराई करो और मन से बुराई करो। उसने अपने शरीर और वाणी से बुरे कर्म किए, और मन से बुराई करने के बाद, वह दुखमय संसार, बुरे कर्मों, निम्न लोक और मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लिया। भिक्षुओं! इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं, आने वाली पीढ़ियों का दुख, इच्छा ही कारण है, इच्छा के कारण ही दुख होता है।

“सभी प्रकार की इच्छाओं में उत्पन्न कष्टों को देखने के बाद”: सभी प्रकार की इच्छाओं में उत्पन्न कष्टों को देखने के बाद, उसने देखा, देखने के बाद, तौलने के बाद, न्याय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद।

137 · यह मेरे लिए एक आपदा, ट्यूमर, अभिशाप, बीमारी, तीर और आतंक है, विभिन्न इच्छाओं में इस भयावहता को देखने के बाद, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“यह मेरी विपत्ति, ट्यूमर, विपत्ति, रोग, बाण और भय है”: भगवान बुद्ध ने कहा [एएन.8.56]: “भिक्षुओं! 'भय', यह इच्छा का पर्यायवाची है; भिक्षुओं! 'पीड़ा', यह इच्छा का पर्यायवाची है; ...रोग..., ...ट्यूमर..., बाण का प्रहार, कलंक, कीचड़ (दलदल), गर्भस्थ गर्भ (जन्म या पुनर्जन्म)...। 'भय' इच्छा का पर्यायवाची क्यों है? भिक्षुओं! क्योंकि जो लोग इच्छा और लोभ से संक्रमित और बंधे हुए हैं, वे अपने जीवन में भय से मुक्त नहीं होंगे, और अगले जीवन में भी भय से मुक्त नहीं होंगे। इसलिए, 'भय' इच्छा का पर्यायवाची है। भिक्षुओं! 'पीड़ा'... 'रोग'... क्यों है? भिक्षुओं! क्योंकि जो लोग इच्छा और लोभ से दूषित और बंधे हुए हैं, वे इस जीवन में माता के गर्भ से मुक्त नहीं होंगे, और अगले जीवन में भी माता के गर्भ से मुक्त नहीं होंगे, इसलिए, यह इच्छा का पर्यायवाची है।

“आतंक, पीड़ा, रोग, ट्यूमर, भेदी तीर और संक्रमण, दलदल और गर्भ, ये सब इच्छाएँ कहलाती हैं, जिनसे अधिकांश लोग आसक्त रहते हैं। वे एक वांछनीय अवस्था में गिरे, फिर माता के गर्भ में प्रवेश किया। जब एक भिक्षु उत्साही हो जाता है, तो वह सही ज्ञान का त्याग नहीं करता। उसने इस बाधा और इस तरह के मार्ग को पार किया। वह इन कांपते हुए लोगों को देखता है: वे लोग जिनके पास जीवन और मृत्यु है।”

“सभी प्रकार की इच्छाओं में इस भयावहता को देखने के बाद,” सभी प्रकार की इच्छाओं में इस भयावहता को देखने के बाद, उसने देखा, देखने के बाद, तौलने के बाद...

138 · गर्मी और सर्दी, भूख और प्यास, और हवा, सूरज, मक्खी और साँप, इन सब को सहने के बाद, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“गर्मी, सर्दी, भूख और प्यास”: “सर्दी” दो कारणों से होती है: आंतरिक उत्तेजना के कारण या बाहरी मौसम के कारण। “गर्मी” दो कारणों से होती है: भूख को भूख कहते हैं। प्यास को पानी की इच्छा कहते हैं।

“और हवा, सूरज, मक्खी और साँप”: “हवा,” पूर्वी हवा, पश्चिमी हवा, उत्तरी हवा, दक्षिणी हवा, धूल भरी हवा, धूल रहित हवा, ठंडी हवा, गर्म हवा, हल्की हवा, आंधी, तेज हवा [SN.17.9], पार्श्व हवा, सुनहरे पंखों वाले पक्षी की हवा, ताड़ के पत्तों की हवा, पंखे की हवा। झुलसा देने वाले सूरज को सूरज की पीड़ा (झुलसा देने वाली गर्मी) कहा जाता है। मक्खी (घोड़े की मक्खी) को मक्खी (गैडफ्लाई) कहा जाता है। साँप (रेंगने वाला जीव) को साँप कहा जाता है।

“यह सब सहने के बाद”: जब वह हरा देगा, अभिभूत कर देगा, समाप्त कर देगा, कुचल देगा।

139 · जैसे हाथी झुंड को ऊपर उठाता है, कमल (धब्बेदार) जैसी पीठ के साथ, उत्कृष्ट, जंगल में अपनी इच्छानुसार रहता है, वैसे ही गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“हाथी (नाग; जिसका अर्थ है एक नेक व्यक्ति) के समान, जब वह झुंड को छोड़ देता है”: हाथी को हाथी कहा जाता है, और जो अकेला प्रबुद्ध है वह भी हाथी है। अकेले प्रबुद्ध व्यक्ति को हाथी क्यों कहा जाता है? “अपराध न करो” हाथी है; “मत जाओ” हाथी है; “मत आओ” हाथी है। अकेले प्रबुद्ध

व्यक्ति “अपराध न करना” हाथी के समान कैसे है? अपराधों को बुराई और अस्वास्थ्यकर धर्म कहा जाता है: वे जो दूषित हैं, जो फिर से उत्पन्न होते हैं (पुनः अस्तित्व में आते हैं), जिनमें भय होता है, जिनके परिणाम भुगतने पड़ते हैं, और जो भविष्य में मृत्यु का कारण बनेंगे।

“संसार में कोई अपराध मत करो, समस्त बंधनों और बेड़ियों को त्यागकर, जो किसी भी चीज से चिपके नहीं रहते और स्वतंत्र होते हैं, वे ही वास्तव में हाथी कहलाते हैं।”

एक अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति हाथी की तरह "न जाने" का क्या अर्थ है? एक प्रबुद्ध व्यक्ति को वह नहीं करना चाहिए जो वह नहीं करना चाहता; जो वह नहीं करना चाहता वह उसे नहीं करना चाहिए; जो आसक्ति के कारण नहीं जाता उसे वह नहीं करना चाहिए जो उसे करना चाहिए; क्रोध में मत जाओ; अज्ञान के कारण मत जाओ; अहंकार के कारण मत जाओ; दृष्टि के कारण मत जाओ; परित्याग के कारण मत जाओ; संदेह के कारण मत जाओ; संभावित परेशानियों के कारण मत जाओ; झगड़ों से बहककर, विचलित होकर और विचलित होकर मत जाओ।

एकाकी प्रबुद्ध व्यक्ति हाथी के रूप में "नहीं आ रहा" कैसे है? सोतापन्न मार्ग द्वारा जो भी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं, वे अशुद्धियाँ उसे अब और नहीं सतातीं, न लौटती हैं और न वापस जाती हैं; ऐसा कहा जाता है कि... (अंशित) वापस नहीं लौटती... (अंशित); अरहंत मार्ग द्वारा सभी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं, वह अब उन अशुद्धियों का अनुभव नहीं करेगा, न लौटेगा और न ही वापस जाएगा।

“हाथी के झुंड को त्यागने के बाद”: उदाहरण के लिए, जब हाथी झुंड को त्यागकर उससे दूर हो जाता है, तो वह जंगल में प्रवेश करता है, चलता है, रहता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है। इसी प्रकार, जो लोग ज्ञान की प्राप्ति में अकेले होते हैं, वे भी भीड़ को त्यागकर उससे दूर हो जाते हैं और फिर वे जंगलों, घने वनों और सीमावर्ती आवासों (बैठने के स्थानों) का उपयोग करते हैं: शांत, एकांत, एकांत वातावरण, जो अकेले बैठने के लिए उपयुक्त होता है; वे अकेले चलते हैं, अकेले खड़े होते हैं, अकेले बैठते हैं, अकेले लेटते हैं, अकेले भिक्षा मांगने के लिए गांव जाते हैं, अकेले आगे बढ़ते हैं, अकेले लौटते हैं, शांत स्थान पर अकेले बैठते हैं, अकेले कर्म करते हैं, चलते हैं, अकेले रहते हैं, कर्म करते हैं, आगे बढ़ते हैं, रक्षा करते हैं और जीवित रहते हैं।

“पीठ कमल के फूल के समान है, और असाधारण है”: जैसे हाथी की पीठ में सात या आठ रत्न होते हैं, वैसे ही एकाग्र ज्ञान प्राप्त व्यक्ति के पास न तो उपदेश और निषेध का ज्ञान होता है, न एकाग्रता का, न ज्ञान का, न मुक्ति का, न पूर्णता का; कमल वाले हाथी की तरह, एकाग्र ज्ञान प्राप्त व्यक्ति भी ज्ञान की सात शाखाओं के फूल को कमल के समान उपयोग करता है: मन को ज्ञान के फूल के रूप में, धम्म को चुनकर ज्ञान के फूल के रूप में, ऊर्जा के साथ, सुख, शांति और स्थिरता के साथ। ठीक वैसे ही। हाथी का सिर शक्ति (सहिष्णुता), बल, गति और साहस में असाधारण होता है। एकाग्र ज्ञान प्राप्त व्यक्ति भी उपदेशों, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और ज्ञान के साथ मुक्ति में समान होता है।

“जंगल में अपनी इच्छा अनुसार निवास करेगा”: जैसे हाथी जंगल में अपनी इच्छा अनुसार निवास करता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति जंगल में अपनी इच्छा अनुसार निवास करता है: प्रथम ध्यान में अपनी इच्छा अनुसार जंगल में निवास करना; द्वितीय ध्यान में भी... (छोड़ा गया), तृतीय ध्यान में भी..., और चतुर्थ ध्यान में भी, अपनी इच्छा अनुसार जंगलों में निवास करना; करुणा..., राहत..., आनंद, मन की शांति के साथ जंगलों में अपनी इच्छा अनुसार निवास करना; असीम शून्य में निवास करना, ...ज्ञान की असीमता में, ...शून्यता में, निर्गमन की प्रतीक्षा में, फल की प्रतीक्षा में, अपनी इच्छा अनुसार जंगलों में निवास करना।

140 · यह असंभव है कि जो लोग मिलने (साथ रहने) के इच्छुक हैं, वे (यहाँ तक कि) अस्थायी राहत भी पा सकें, सूर्य जनजाति के (उसके) शब्दों को सुनने के बाद, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“जो लोग मिलने (साथ रहने) के इच्छुक हैं, उनके लिए (यद्यपि) क्षणिक राहत भी पाना असंभव है”: भगवान बुद्ध [एमएन.122] ने कहा है: “आनंद, वास्तव में, जो कोई भी संगति में प्रसन्न होता है, संगति से लाभान्वित होता है, संगति पसंद करता है, सभाओं में निपुणता प्राप्त करता है और उनका आनंद लेता है, वे भिक्षु जो सभाओं के लिए उपयुक्त हैं और सभाओं में आनंद प्राप्त करते हैं, वे स्वतंत्र इच्छा वाले, सरल स्वभाव वाले और निर्बल, एकांतप्रिय, शांत और ज्ञानी होंगे—यह असंभव है। परन्तु, आनंद, जो भी भिक्षु समूह से दूर एकांत में रहता है, उससे यह अपेक्षा की जानी चाहिए: ऐसा भिक्षु प्रसन्न, एकांतप्रिय, शांत, ज्ञानी आदि होगा। इस प्रकार का आनंद, जिन्हें कोई कठिनाई नहीं है—यह संभव है। आनंद, वास्तव में, जो कोई

भी सभाओं का आनंद लेता है, ...एक शांत, स्थिर और अविचल हृदय में प्रवेश करेगा और निवास करेगा—यह असंभव है। आनंद, जो भी भिक्षु अकेले और समूहों से दूर रहते हैं..., उनसे यही अपेक्षा की जानी चाहिए: ऐसा भिक्षु शांत, स्थिर और अविचल हृदय से जीवन व्यतीत करेगा - यह संभव है।"

सूर्य वंश के वचन सुनने के बाद: सूर्य (आदिको) को सूर्य (सूरियो) कहा जाता है, उसका उपनाम गौतम है, और जो प्रबुद्ध है उसका उपनाम भी गौतम है, और जो प्रबुद्ध है वह सूर्य के उपनाम का संबंधी है और उससे रिश्तेदार है, इसलिए केवल वही प्रबुद्ध व्यक्ति सूर्य वंश का है। सूर्य वंश के वचन सुनने के बाद: सूर्य वंश के वचन, बोलने का तरीका, शिक्षाएँ, व्याख्याएँ, उपदेश, सुनने, समझने, आत्मसात करने और विवेक करने के बाद।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.बी.3

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला अगला >>>>

गैंडा सूत्र की व्याख्या
तीसरा अध्याय

141 · "विकृत दृष्टिकोण को त्याग दिया गया है, निर्णय ले लिया गया है, मार्ग प्राप्त कर लिया गया है, मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है और मैं दूसरों द्वारा निर्देशित नहीं होऊंगा": ऐसा कहते हुए, किसी को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"विकृत दृष्टिकोण को त्याग दिया गया है": विकृत दृष्टिकोण को बीस आश्रित दृष्टिकोण कहा जाता है। यहाँ, वे साधारण लोग जिन्होंने पवित्र व्यक्ति के बारे में नहीं सुना है, जिन्होंने कभी संतों को नहीं देखा है... (विलुप्त भाग देखें), ...ये विकृत दृष्टिकोण हैं। "विकृत दृष्टिकोण को झटक दिया गया है": विकृत दृष्टिकोण को झटक दिया गया है, पार कर लिया गया है, उस पर विजय प्राप्त कर ली गई है, उसे पार कर लिया गया है।

"निर्णय हो गया है, मार्ग मिल गया है": चारों (पवित्र) मार्गों को निर्णय कहा जाता है। जो इन चारों श्रेष्ठ मार्गों को धारण करते हैं, वे पूर्णतः उस निर्णय तक पहुँच चुके हैं जो प्राप्त हो चुका है। "मार्ग मिल गया है," उन्होंने मार्ग प्राप्त कर लिया है, मार्ग को पा लिया है, मार्ग तक पहुँच गए हैं, मार्ग के साक्षी बन गए हैं।

"मैं वह हूँ जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों के मार्गदर्शन में नहीं चलूँगा": प्रबुद्ध व्यक्ति का ज्ञान उत्पन्न हो चुका है, पूर्णतः उत्पन्न हो चुका है, जन्म ले चुका है, उत्पन्न हो चुका है, प्रकट हो चुका है: "सभी कर्म अनित्य हैं"... (छोड़ा गया), "सभी कर्म दुखदायी हैं"..., "सभी धर्म आत्महीन हैं"..., "धर्मों का कोई भी संग्रह विनाश है"...। "दूसरों के मार्गदर्शन में नहीं चलूँगा," वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति है जो दूसरों के मार्गदर्शन में नहीं चलता, दूसरों पर निर्भर नहीं रहता, दूसरों से बंधा नहीं रहता, दूसरों के बंधन से मुक्त हो चुका है, वह सत्य को जानता और देखता है, अज्ञानी नहीं है, सही ज्ञाता है, और स्मरणशील है: "सभी कर्म अनित्य हैं," वह व्यक्ति है जो दूसरों के मार्गदर्शन में नहीं चलता... (छोड़ा गया)...।

142 · जो लोभ, छल या इच्छा नहीं रखते, जो बुराई नहीं छिपाते, जिन्होंने बुराई और भ्रम को दूर कर दिया है, वे संसार में अपनी इच्छाओं को त्यागकर, गैंडे की तरह अकेले चलने लगते हैं।

"जो लोभी नहीं, जो छल-कपट नहीं करते, और जो लालसा नहीं रखते": लोभ को लालसा कहा जाता है, यानी लोभ, ...(अंशित, पिछले भाग देखें), अस्वस्थ जड़। केवल प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए वह लोभ, लालसा, कटी हुई है, जड़ कटी हुई है...(अंशित, पिछले भाग देखें)। इसलिए, केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही लोभ रहित है।

"गैर-धोखेबाज़ी" में तीन प्रकार की धोखाधड़ी शामिल हैं: संसाधनों का उपयोग करने के लिए धोखाधड़ी, व्यवहार की धोखाधड़ी और लाभ के लिए इधर-उधर की बातें करने की धोखाधड़ी।

संसाधनों के उपयोग में छल क्या है? यहाँ, घर के मालिक भिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं के साथ आमंत्रित करते हैं। वह एक दुष्ट इच्छा वाला व्यक्ति है, प्रकृति के प्रति सजग व्यक्ति है और आशावान व्यक्ति है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ हैं। अधिक की आशा में, वस्त्रों को अस्वीकार करते हुए, भोजन देने से इनकार करते हुए, आश्रय देने से इनकार करते हुए, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं से इनकार करते हुए, उसने कहा: “एक समण के लिए उच्च मूल्य के वस्त्रों का क्या अर्थ है!” यह उचित है कि एक समण टीले, कूड़े के ढेर या दुकान के सामने से चिथड़े-चिथड़े कपड़े लेकर कोट बनाए। एक समण के लिए उच्च मूल्य के भोजन का क्या अर्थ है! यह उचित है कि एक समण भिक्षा माँगकर जीवन यापन करे। उच्च मूल्य के आवास में एक समण के लिए क्या है! ...एक समण वह होता है जो वृक्षों के नीचे, टीलों के बीच या खुले में रहता है। ...रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है! ...किण्वित गाय के मूत्र या कुचली हुई हरी सब्ज़ियों से बनी औषधि का प्रयोग करता है। यह जानकर वह मोटे वस्त्र पहनता है; मोटा भोजन ग्रहण करता है; मोटे घरों में रहता है; रोगियों और चिकित्सा संबंधी मोटी-मोटी वस्तुओं का उपयोग करता है। घर के मालिक उसे इस प्रकार जानते थे: “यह समण कम इच्छाओं वाला, संतुष्ट, एकांतप्रिय, भीड़-भाड़ से दूर रहने वाला, ऊर्जावान और आध्यात्मिक गुरु है।” वे उसे वस्त्र, भोजन, आश्रय, रोगियों की ज़रूरतों और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं के साथ अधिकाधिक आमंत्रित करते हैं। उन्होंने कहा: “तीनों अवस्थाओं में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं: आस्था की अवस्था में नेक लोग हैं, पुण्य और दान की अवस्था में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं, और सहायता के योग्य व्यक्ति की अवस्था में ऐसे नेक लोग हैं जो बहुत पुण्य कमाते हैं। आप विश्वासी हैं, दान मौजूद है, और मैं दान लेने वाला हूँ। यदि मैं इसे स्वीकार नहीं करता, तो आप पुण्य से वंचित हो जाएँगे। यह मेरे लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि दयावश, मैं आपसे स्वीकार करता हूँ।” इसके बाद, वे बहुत से वस्त्र, बहुत से भोजन, बहुत से आवास और बहुत से रोगियों की ज़रूरत की चीज़ें और चिकित्सा संबंधी ज़रूरतें स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भौंहें चढ़ाने वाले किसी भी व्यक्ति की भौंहें छल के मार्ग पर हैं, छल की अवस्था में हैं, यह संसाधनों को प्राप्त करने के लिए छल है।

व्यवहार की छल-कपट क्या है? यहाँ कुछ प्रकार के बुरे भोगी हैं, कुछ प्रकृति के भोगी और कुछ मान-सम्मान के भोगी, (विचार): “इस तरह लोग मेरा आदर करेंगे।” वह चलने, खड़े होने, बैठने, लेटने की मुद्रा में बैठता है, इच्छा के लिए चलता है, इच्छा के लिए खड़ा होता है, इच्छा के लिए बैठता है, इच्छा के लिए लेटता है, एकाग्रता में बैठे व्यक्ति की तरह चलता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह खड़ा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह बैठता है, ध्यानमग्न व्यक्ति की तरह लेटता है, और ध्यानमग्न व्यक्ति के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार के व्यवहारों को स्थापित करना, मजबूत करना और पूर्ण रूप से स्थापित करना; इस व्यंजक व्यक्ति की भौंहें छल-कपट का मार्ग और छल-कपट की अवस्था हैं, यही व्यवहार की छल-कपट है।

लाभ के लिए हर जगह बातें करने का छल क्या है? यहाँ कुछ प्रकार के दुष्ट इच्छाधारी हैं, कुछ प्रकृति की लालसा रखते हैं, और कुछ मान-सम्मान की लालसा रखते हैं (सोचते हैं): “इस तरह लोग मेरा आदर करेंगे।” उन्होंने पवित्र धम्म के अनुसार कहा, “जो कोई इस प्रकार वस्त्र धारण करता है, वह एक शक्तिशाली समण है।” उन्होंने कहा, “जो कोई इस प्रकार का कटोरा धारण करता है..., तांबे का कटोरा धारण करता है..., जल छानने का यंत्र धारण करता है..., चाबियाँ धारण करता है, जूता पहनता है, कमरबंद पहनता है... वह एक महान शक्तिवान समण है।” उन्होंने कहा, “जिसके अनुयायी इस प्रकार के हैं, वह एक शक्तिशाली समण है।” उन्होंने कहा, “जिसके गुरु इस प्रकार के हैं..., भिक्षु के समान व्यक्ति इस प्रकार के हैं..., गुरु, मित्र, परिचित, निकट संबंधी, साथी के समान व्यक्ति इस प्रकार के हैं..., वह एक शक्तिशाली समण है।” उन्होंने कहा: “जो कोई भी इस तरह के आवास में रहता है..., आधे छत वाले घर में, ऊँची इमारत में, समतल घर में, गुफा में, झोपड़ी में, भारी मंडप में, वेधशाला में, गोल घर में, शेड में, व्याख्यान कक्ष में, तम्बू में, पेड़ के नीचे रहता है..., वह महान शक्ति का समण है।”

या फिर वे लोग जो लगातार भौंहें चढ़ाए रहते हैं; निरंतर भौंहें चढ़ाए रहते हैं; जो छल करते रहते हैं; जो लगातार शिकायत करते रहते हैं; जो अपनी वाणी के कारण सम्मान पाते हैं, जो ऐसी गहरी, गुप्त, सूक्ष्म, अलौकिक और खोखली बातें कहते हैं: “यह समण इस प्रकार इस शांत निवास में रहता है और प्रतीक्षा करता है।” जो भी इस प्रकार भौंहें चढ़ाता है, उसकी भौंहें चढ़ाना; छल का मार्ग, छल की अवस्था, यही आसपास की भाषा का छल है। केवल ज्ञान प्राप्त व्यक्ति के लिए ये तीनों प्रकार के छल: धन (संसाधनों) का छल, व्यवहार का छल और लाभ के लिए इधर-उधर बोलने का छल, समाप्त हो चुके हैं, शांत हो चुके हैं, रुक चुके हैं, उत्पन्न नहीं हो सकते और ज्ञान की अग्नि से भस्म हो चुके हैं, इसलिए केवल ज्ञान प्राप्त व्यक्ति छल-कपट से मुक्त होता है।

"जिनमें कोई इच्छा नहीं होती," उनके लिए इच्छा प्यास कहलाती है, जो कि लोभ है... प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए लालसा, प्यास, सब कुछ समाप्त हो चुका होता है, और उसकी जड़ें कट चुकी होती हैं... इसलिए, एकमात्र प्रबुद्ध व्यक्ति वह है जो इच्छा रहित है।"

"जो बुराई को नहीं छुपाते, उन्होंने गंदगी और भ्रम को दूर कर दिया है": "बुराई छुपाना" का तात्पर्य बुराई, पाखंड और ईर्ष्या को छुपाने के सभी कृत्यों से है। "गंदगी" का तात्पर्य लोभ, अश्लीलता, अभद्रता, घिनौनी गंदगी, क्रोध, द्वेष, बुराई छुपाना, प्रभुत्व जताना, और सभी अस्वास्थ्यकर कृत्रिम चीजों से है। "अज्ञान" का तात्पर्य दुख में अज्ञान, दुख की ओर ले जाने वाले मार्ग में अज्ञान, अतीत में अज्ञान, भविष्य में अज्ञान, अतीत और भविष्य में अज्ञान, विशिष्ट परिस्थिति और परिस्थितिजन्य स्थिति का अज्ञान, इस प्रकार का सभी अज्ञान, न देखना, न जागरूक होना, न ज्ञान प्राप्त करना, न समझना, न दृढ़ता से समझना, सही ढंग से न देखना, न जांच करना, बुरी बुद्धि, आसक्ति, अज्ञान की बाढ़, अज्ञान का बंधन, अज्ञान की परेशानी की संभावित प्रवृत्ति, अज्ञान का उलझाव, अज्ञान की बाड़, अज्ञान की जड़ से है। केवल उसी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए, बुराई, गंदगी और अज्ञान को छिपाना पूरी तरह से त्याग दिया गया है, उसका नाश हो गया है, उसका विच्छेद हो गया है... केवल वही प्रबुद्ध व्यक्ति है जो बुराई को नहीं छिपाता और जिसने गंदगी और भ्रम का नाश कर दिया है।

"सारे संसार में इच्छा का त्याग करने वाला बनो": इच्छा को लालसा कहा जाता है, जो लोभ है... "सभी लोकों में," दुख के लोक में, मनुष्य के लोक में, स्वर्ग के लोक में, समुच्चय के लोक में, संसार के लोक में। "सारे लोकों में इच्छा रहित बनो": सभी लोकों में, इच्छा रहित बनो; प्यास से विमुख हो जाओ; इच्छा से विमुख होने के बाद।

143 · बुरे साथियों से बचना चाहिए, जो लाभहीन बातें दिखाते हैं, जो गलत बातों पर अड़े रहते हैं, उनसे दोस्ती नहीं करनी चाहिए, बल्कि गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"दुष्ट संगति से बचना चाहिए": जो भी व्यक्ति दस प्रकार के बुरे विचारों का आधार रखता है, उसे दुष्ट संगति कहा जाता है: "इसमें न दान है, न भेंट, न अच्छा-बुरा कर्म, न फल और न ही पुरस्कार। इस संसार में न कोई परलोक है, न कोई माता, न कोई पिता, न कोई सजीव प्राणी। इस संसार में न कोई धर्मात्मा समण है, न कोई ब्राह्मण, जो इस संसार और परलोकों की गवाही दे।" यही दुष्ट संगति है। "दुष्ट संगति से बचना चाहिए": "दुष्ट संगति से बचना चाहिए, उसका त्याग करना चाहिए।"

"निष्फल द्रष्टा, जो अधर्म में लीन है": वह व्यक्ति जो बुरी दृष्टि रखता है, जो दस प्रकार की बुरी प्रवृत्तियों का साथी है, उसे निष्फल द्रष्टा कहा जाता है: "न दान, न सहायता...।" "जो गलत में लीन है," वह जो गलत शारीरिक कर्म में लीन है; वह जो गलत भाषा में लीन है; वह जो गलत इरादे में लीन है; जो अधर्मी हत्या में लीन हैं; जो बिना दिए लेने में लीन हैं; ...अधर्मी व्यभिचार में; ...अधर्मी छल में; ...अधर्मी वियोग में; गलत भाषा में; अनुचित और अभद्र भाषा में; अन्यायपूर्ण अभद्र भाषा में; अधर्मी लोभ में; अनुचित द्वेष में; अनुचित विचार में; गलत कर्मों में; पाँच गलत इच्छाओं में; पाँच गलत आवरणों में स्थिर, गहराई से स्थिर (लगा हुआ), अटका हुआ, रुका हुआ, प्रवेश करने के लिए, कलंकित होने के लिए, मुड़ने के लिए, आसक्त होने के लिए, स्थिर होने के लिए, अवरुद्ध होने के लिए।

"जो लोग लालची और लापरवाह होते हैं, उनसे मित्रता नहीं करनी चाहिए": "लालची (उत्साही)", वे जो सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रयास करते हैं, जिनका ऐसा चरित्र होता है, जिनके पास अधिक होता है, जो दूसरों को महत्व देते हैं, जो लक्ष्य साधते हैं, मेहनती व्यक्ति, जो उस ओर झुकाव रखते हैं, विजेता और उत्थानकर्ता, वे भावुक व्यक्ति होते हैं। जो कोई भी प्यास के कारण सभी रूपों में खोजता और प्रयास करता है..., ध्वनि में..., (छोड़ा गया) गंध में..., स्वाद में..., स्पर्श में..., ...वह भी भावुक होता है। जो कोई भी प्यास के कारण रूपों में..., ध्वनि में..., ...प्राप्त होता है, वह भी भावुक होता है। जो कोई भी प्यास के कारण सभी रूपों में..., ध्वनि में..., गंध में..., स्वाद में..., स्पर्श में...... का उपयोग करता है। उत्साही, जैसे आलोचक आलोचना के प्रति उत्साही होते हैं, श्रमिक काम के प्रति उत्साही होते हैं, मार्ग पर चलने वाले मार्ग के प्रति उत्सुक होते हैं, और ध्यान करने वाले ध्यान के प्रति उत्सुक होते हैं; उसी प्रकार, जो कोई भी खोजता है, ...वह भावुक होता है। जो कोई भी प्यास के कारण विभिन्न रूपों में खोज और भीख मांगता है... प्यास के कारण विभिन्न रूपों में जो कुछ भी प्राप्त होता है... "मुक्ति (आरामदायक, शिथिलता)" का अर्थ है कि शरीर के बुरे कर्मों में, या वाणी के बुरे कर्मों में, या मन के बुरे कर्मों में, या पांच इच्छाओं में, त्याग किया जा सकता है, और हृदय का परित्याग उत्पन्न नहीं होता है। या, अच्छे धम्म के अभ्यास के प्रति अनादर की अवस्था, अनित्यता की अवस्था, निरंतर कार्य करने की अवस्था, आदत से चिपके रहने की अवस्था, इच्छाओं की उपेक्षा

करने की अवस्था, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने की अवस्था, अभ्यास न करने की अवस्था, कम अभ्यास करने की अवस्था, अभ्यास न करने की अवस्था, त्याग (आराम)। विश्राम, त्याग और सहजता की ऐसी किसी भी अवस्था को मुक्ति कहा जाता है।

"जो उत्साही और व्यभिचारी हैं उनसे मित्रता नहीं करनी चाहिए": उत्साही लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिए; व्यभिचारी लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिए; उनसे मित्रता नहीं करनी चाहिए, उनके साथ जुड़ना नहीं चाहिए, उनमें भाग नहीं लेना चाहिए, उनका उपयोग नहीं करना चाहिए, उनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, और उनका पूर्ण अभ्यास नहीं करना चाहिए, और स्वीकार करने के बाद उनके साथ आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

144 · आपको बहुत ज्ञान रखने वाले लोगों, धम्म धारण करने वालों और उत्कृष्ट एवं वाक्पटु मित्रों के निकट रहना चाहिए। सभी लाभों को जानने और शंकाओं को दूर करने के बाद, आपको गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

जो अधिक सुनते (सीखते) हैं और जो धम्म को धारण करते हैं, उनके निकट रहना चाहिए: मित्र वे हैं जो अधिक सुनते हैं, सुनी हुई बातों को याद रखते हैं, उन्हें संजोते हैं, और जो अच्छाई से प्रारंभ करते हैं, जिनका मध्य और अंत अच्छा होता है; जिनका अर्थ और शब्द दोनों सही होते हैं। वे घोषणा करते हैं कि केवल ब्रह्म की पूर्णता और शुद्धि ही है। ऐसे धम्म को सुना, याद किया, आत्मसात किया, हृदय से पालन किया और अच्छाई से ओतप्रोत किया गया है। "धम्म धारण करने वाले", धम्म का स्मरण: सूत्र, गेय्या, वेय्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूत धम्म, वेदल्ल। जो अधिक सुनते हैं और जो धम्म को धारण करते हैं, उनके निकट रहना चाहिए: जो अधिक सुनते हैं और जो धम्म धारण करते हैं, उनके घनिष्ठ मित्र होने चाहिए, पूर्णतः निकट रहना चाहिए, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए, आज्ञा मानने के लिए झुकना चाहिए, पूर्णतः आज्ञाकारी होना चाहिए, और उनकी ओर उन्मुख होना चाहिए।

"उत्कृष्ट, वाक्पटु मित्र": वे मित्र जो उपदेश, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति के गुणों में उत्कृष्ट हैं। वाक्पटु व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं: विद्वान, जिज्ञासु और सिद्ध। एक विद्वान वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति बौद्ध भाषा (बुद्ध की शिक्षाएँ) का विद्यार्थी होता है: सूत्र, श्लोक आदि, उसके ज्ञान पर आधारित होते हैं।

बार-बार प्रश्न पूछने वाला वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति अपने हितों, न्याय (धार्मिक हितों), विशेषताओं, कारणों, संभावना और असंभवता के आधार पर प्रश्न पूछता है, और उसके प्रश्नों पर निर्भरता के बाद ही यह प्रकट होता है।

सिद्ध वाद-विवादकर्ता कौन होता है? यहाँ, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति वह होता है जिसने चारों चेतनाओं, चारों धर्मों, चारों आध्यात्मिक आधारों, पाँच इंद्रियों, पाँच शक्तियों, सात ज्ञान तत्वों, आठ पवित्र मार्गों, चार समान फलों, चार वाद-विवादों और छह जादुई शक्तियों को प्राप्त किया हो। जो तर्क, ज्ञात विधि और ज्ञात शब्द को जानते हैं, उनके लिए तर्क ज्ञात सिद्धांत में सिद्ध होता है, विधि ज्ञात धर्म में प्रकट होती है, शब्द ज्ञात शब्द में सिद्ध होता है, और तीनों प्रकार के ज्ञान में कोई बाधा नहीं आती। ज्ञान को समझने के लिए, स्वतंत्र ज्ञान प्राप्त व्यक्ति पूर्णतः पहुँचता है, प्रवेश करता है, पूर्णतः प्रवेश करता है, पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करता है, पूर्णतः संतुष्ट होता है, और इस प्रकार का तर्क-वितर्क करता है। यदि उसने सीखा, प्रश्न किया और सिद्ध नहीं किया, तो वह क्या उत्तर देगा?

"सभी लाभों को जानने के बाद आपको संदेह से मुक्त हो जाना चाहिए": अपने हितों को जानने के बाद, आपको दूसरों के हितों को जानना चाहिए; दोनों के हितों को जानने के बाद, वर्तमान जीवन के हितों को जानने के बाद, भविष्य के जीवन के हितों को जानने के बाद, सर्वोच्च हित को जानने के बाद, सत्यापन करने के बाद, समझने के बाद, तौलने के बाद, निर्णय करने के बाद, अलग करने के बाद, स्पष्ट करने के बाद, संदेह करने के बाद, उसे हटा दिया जाएगा, निष्कासित कर दिया जाएगा, काट दिया जाएगा, त्याग दिया जाएगा, समाप्त कर दिया जाएगा और उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया जाएगा।

145 · मनोरंजन में संतुष्टि के बिना, संसार में आनंद, इच्छा और सुख के बिना, सजावट (आभूषण) के बिना, एक उदासीन व्यक्ति बनो, अलंकरण से अलग होकर, सत्यवादी, एक गैंडे की तरह अकेले चलो।

“संसार में मनोरंजन, आनंद और इच्छा”: “मनोरंजन”: मनोरंजन दो प्रकार का होता है: शारीरिक मनोरंजन और शाब्दिक मनोरंजन... (उद्धृत)। “आनंद,” जो संतुष्टि का पर्यायवाची है, “आनंद” कहलाता है। “इच्छा,” इस बारे में भगवान बुद्ध [एमएन.139] कहते हैं: “भिक्षुओं! पाँच प्रकार की इच्छाएँ होती हैं, वे कौन सी पाँच प्रकार की हैं? ...(उद्धृत, पिछले खंड देखें)... भिक्षुओं! इन पाँच इच्छाओं से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद, भिक्षुओं! इसे कामवासना कहते हैं।” “संसार में,” मानव जगत में।

“सजावट रहित, उदासीन बनो”: संसार के मनोरंजन, आनंद और सुख में उदासीन और अनुषंगी बनो। अंत के बाद, जब वह इन सब का त्याग कर दे, इनसे विमुख हो जाए, और इन्हें अस्तित्वहीन बना दे।

“सजावट की अवस्था से अलग होकर, सच कहें तो”: “सजावट” दो प्रकार की होती है: एक निवासियों के लिए और दूसरी गैर-निवासियों के लिए। निवासी की सजावट क्या होती है? बाल, दाढ़ी, फूलों की माला, आदि, ये आम आदमी की सजावट है।

भिक्षुओं का श्रृंगार क्या है? वस्त्रों का श्रृंगार, पान के पात्र का श्रृंगार, पलंग का श्रृंगार, क्षीण शरीर का श्रृंगार या आवश्यक वस्तुओं का श्रृंगार, सौंदर्यबोध (गंभीरता), सजने-संवरने की इच्छा, सुसज्तृप्ति, लालची अवस्था, उतावलापन, उतावलापन और सतहीपन, यही भिक्षुओं का श्रृंगार है।

“सच्चा वक्ता,” जो अकेले ही प्रबुद्ध है, वही सच्चा वक्ता है, सत्यवादी है, विश्वसनीय है, भरोसेमंद है और संसार में छल-कपट से रहित है। वह दिखावटी अवस्था से अलग हो चुका है, उससे परहेज कर चुका है, उसे कुचल चुका है, उसे त्याग चुका है, वह बंधनमुक्त है और मुक्त है; वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

146 · पत्नी और माता-पिता, बच्चे, धन, अनाज और रिश्तेदार, दायरे में सभी इच्छाओं का त्याग करने के बाद, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“बच्चे, पत्नी और माता-पिता”: “पुत्र,” पुत्र चार प्रकार के होते हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। पत्नी, ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। “पिता,” वह जिसने (किसी को) जन्म दिया। “माता,” वह जिसने जन्म दिया।

“धन, अनाज और रिश्तेदार”: सोना, सोने के सिक्के, मोती, गोले, कांच, सर्पिल, पत्थर, मूंगा, चांदी, सोना, माणिक, अगेट को धन (वस्तुएँ) कहा जाता है। अनाज (वस्तुएँ): चावल, धान, जौ, गेहूं, बाजरा और अन्य अनाज (शाब्दिक रूप से, करी के लिए उपयुक्त) कहलाते हैं। “रिश्तेदार”: रिश्तेदारों के चार प्रकार होते हैं: प्रत्यक्ष रिश्तेदार, उपनाम वाले रिश्तेदार, धार्मिक रिश्तेदार और कौशल (व्यापार) से जुड़े रिश्तेदार।

“सभी इच्छाओं का त्याग करने के बाद”: “इच्छा,” दो प्रकार की इच्छाएँ होती हैं: .... “सभी इच्छाओं का त्याग करने के बाद,” वस्तुओं की इच्छा को जानने के बाद, अपवित्रता की इच्छा का त्याग करने के बाद, त्यागने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त करने के बाद, और उसे अस्तित्व से परे ले जाने के बाद। “सभी इच्छाओं का त्याग करने के बाद”: सोतापन्न मार्ग द्वारा काटे गए किसी भी अपवित्रता का वह अनुभव नहीं करता और न ही वह वापस लौटता है; सकदागामी मार्ग द्वारा काटे गए सभी अपवित्रता...; अनागामी मार्ग द्वारा काटे गए अपवित्रता...; अरहंत मार्ग द्वारा काटे गए अपवित्रता का अनुभव नहीं होता और न ही वह अपवित्रता में लौटता है।

147 · यह टाई है, यहाँ थोड़ी खुशी है, थोड़ा आनंद है, और यहाँ अधिक पीड़ा है, इस तरह, यह एक मछली पकड़ने का कांटा है; यह जानने के बाद, बुद्धिमान व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“यह एक बंधन है, यहाँ सुख थोड़ा ही है”: “बंधन,” या “बुनाई,” या “लुभावनी वस्तु,” या “चिपकना,” या “बाधा,” ये पाँच इच्छाओं के पर्यायवाची हैं। “यहाँ सुख थोड़ा ही है,” भगवान बुद्ध कहते हैं: “भिक्षुओं! ये पाँच इच्छाएँ हैं, ये पाँच कौन सी हैं?... यह सुख छोटा है; यह सुख नगण्य है; यह सुख केवल थोड़ा सा है; यह सुख निम्न है; यह सुख कम है; यह सुख नीच है।”

“यहाँ सुख कम और दुख अधिक है”: भगवान बुद्ध ने कहा: “इच्छा सुख कम करती है, लेकिन दुख और निराशा बढ़ाती है; यहाँ कष्ट अधिक हैं;” भगवान बुद्ध ने कहा: “इच्छा कंकाल के समान है..., मांस के टुकड़े के समान है..., मशाल के समान है..., कोयले की खान के समान है..., स्वप्न के

समान है, उधार ली हुई वस्तु के समान है, पेड़ के फल के समान है, कसाईखाने के समान है, तलवार के समान है..." भगवान बुद्ध ने कहा: "इच्छा साँप के सिर के समान है, और कड़वी और निराशाजनक है; यहाँ कष्ट अधिक हैं।" [एमएन.22]

"इस प्रकार, यह मछली पकड़ने का कांटा है, ज्ञानी इसे जानता है": "कांटा," या "बुनाई," या "प्रलोभन," या "चिपकना," या "बाधा," जो पाँच इच्छाओं के पर्यायवाची हैं। "इस प्रकार," वाक्यों का क्रम; वाक्यों का जुड़ाव; वाक्यों का पूरा होना; शब्दों का संयोजन; शब्दों का जुड़ाव; यही वाक्यों का क्रम है, जो "इस प्रकार" है। "ज्ञानी" बुद्धिमान, प्रबुद्ध, भेदशील और समझदार होते हैं। "इस प्रकार, यह मछली पकड़ने का कांटा है। जो ज्ञान को जानता है, वह इसे जानता है": जो "कांटे" को जानता है, वह "बुनाई" को जानता है, "प्रलोभन" को जानता है, "चिपकने" को जानता है, "बंधन" को जानता है, "बाधाओं" को जानता है; जानने के बाद वह समझता है, तौलता है, परखता है, अलग करता है और स्पष्ट करता है।

148 · गांठें तोड़ने के बाद, जैसे पानी में मछली जाल तोड़ती है, जैसे आग जली हुई वस्तु पर वापस नहीं आती, वैसे ही गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"गांठें तोड़ने के बाद": दस प्रकार की गांठें होती हैं: इच्छा की गांठ, घृणा की गांठ, अहंकार की गांठ, दृष्टि की गांठ, संदेह की गांठ, लोभ की गांठ, लालच की गांठ, ईर्ष्या की गांठ, कंजूसी की गांठ और अज्ञान की गांठ। "गांठें तोड़ने के बाद": दस प्रकार की गांठें टूट जाने, दूर हो जाने, समाप्त हो जाने और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाने के बाद।

"जाल टूटने के बाद पानी में मछली की तरह": जाल को रस्सी का जाल कहते हैं, पानी (सलिलं) को पानी (उदकं) कहते हैं, और मछली (अम्बुचारी) को मछली (मच्छो) कहते हैं। जैसे मछली सब कुछ नष्ट कर देती है, पूरी तरह से तोड़ देती है, वैसे ही जाल पूरी तरह से टूट जाता है और फिर भी चलता है, जीता है, गति करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है। इसी प्रकार, दो प्रकार के जाल होते हैं: प्यास के जाल और दृष्टि के जाल...। जो प्रबुद्ध है, उसके लिए प्यास का जाल और दृष्टि का जाल दोनों ही कट जाते हैं। जिस अवस्था में प्यास का जाल कट जाता है, उस अवस्था में दृष्टि का जाल भी कट जाता है। सचेतनता की अवस्था में, वह प्रबुद्ध व्यक्ति रूप, ध्वनि या गंध से आसक्त नहीं होता... (अंशित); धर्मों को देखकर, सुनकर, समझकर और उनके प्रति जागरूक होकर, वे उनसे बंधे नहीं रहते, न ही उनमें कैद होते हैं, न ही वे अचेतन होते हैं, न ही वे अलग होते हैं, न ही उन्हें छोड़ा जाता है, बल्कि वे पहले से ही बंधन को छोड़कर मुक्त हो चुके होते हैं, वे संयमित हृदय से जीवन व्यतीत करते हैं।

"जैसे आग जली हुई वस्तु की ओर वापस नहीं लौटती": जैसे आग घास को जलाती है, वह तब तक जलती रहती है जब तक वह वापस नहीं लौटती, ठीक उसी प्रकार, एकाकी-प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए, सोतापन्न मार्ग द्वारा काट दी गई सभी अशुद्धियाँ, ..., वापस नहीं लौटतीं।

149 · जिनकी निगाहें नीचे की ओर हैं और जो भटकते नहीं, जो जड़ों की रक्षा करते हैं, जो मन की रक्षा करते हैं, जो अशुद्धियों से मुक्त हैं और जो (वासना से) पूरी तरह से जलते नहीं हैं, उन्हें गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"जिसकी निगाहें नीचे झुकी हुई हैं और जो भटकता नहीं": आँखें कैसे भ्रमित हो जाती हैं? यहाँ भिक्षु की आँखें बेचैन हैं: जो दिखना चाहिए वह अदृश्य हो जाता है, और जो पार किया जाना चाहिए वह दिखाई देने लगता है। बाग से बाग तक, गाँव से गाँव तक, कस्बे से कस्बे तक, शहर से शहर तक, गाँव से गाँव तक, जगह-जगह तक, वह विभिन्न रूपों में लंबी शोभायात्राएँ और कभी-कभार निकलने वाली शोभायात्राएँ देखता है।

या फिर, जब भिक्षु किसी के घर में मेहमान होता है, या सड़क पर टहल रहा होता है, तो वह निश्चिंत होकर चलता है: चलते-चलते वह हाथी, घोड़े, बैलगाड़ी, पैदल सेना, लड़के और लड़की को देखता है। वह स्त्रियों को देखता है, पुरुषों को देखता है, बाजार को देखता है, घर के दरवाजे को देखता है, ऊपर देखता है, नीचे देखता है और चारों दिशाओं में देखता है।

या, जब भिक्षु अपनी आँखों से किसी रूप को देखता है, तो वह बाहरी रूप और सूक्ष्म रूप का लोभी बन जाता है, क्योंकि जब वह अपनी आँखों की जड़ में रहता है, तो लोभ, दुःख और बुराई उसमें प्रवाहित होने लगती है। वह अपने आत्म-संयम के अनुसार कार्य नहीं करता, आँखों की जड़ों की रक्षा नहीं करता, और आँखों की जड़ों का आत्म-संयम प्राप्त नहीं करता। [SN.35.120]

या यदि कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं ने श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया, तो वे प्रदर्शनों में ठहरते और इस प्रकार देखते: नृत्य, गायन, संगीत, नाटक, प्राचीन काल के बारे में बातें, घंटियाँ, झांझ, ढोल, जादू, लोहे की गेंदें, बांस की छड़ी से खेलना, करतब, हाथी की लड़ाई, घोड़े की लड़ाई, भैंस की लड़ाई, बैल की लड़ाई, बकरी की लड़ाई, मेढ़े की लड़ाई, मुर्गे की लड़ाई, बटेर की लड़ाई, गदा की लड़ाई, मुक्केबाजी, कुश्ती, व्यायाम, अभ्यास, सेना की संरचनाएँ, सैन्य परेड [डीएन.1], आदि, जो इस प्रकार के विभिन्न प्रदर्शनों को देखने में लगे रहते हैं।

आँख नीचे कैसे है? यहाँ, भिक्षु अस्थिर आँखों वाला व्यक्ति नहीं है, और न ही वह व्यक्ति है जिसकी आँखें (अशांत) हैं: जो दिखना चाहिए वह अदृश्य हो जाता है..., वह जगह-जगह लंबी परेड और विभिन्न रूपों में कभी-कभार होने वाली परेड देखना नहीं चाहता था।

या फिर, जब भिक्षु घर में मेहमान होता है, या सड़क पर टहल रहा होता है, तो वह सतर्कता से चलता है: चलते समय वह हाथी को नहीं देखता, घोड़े को नहीं देखता, ...गाड़ी को नहीं देखता..., ...पैदल सेना को नहीं देखता..., वह सभी दिशाओं में नहीं देखता।

या फिर, जब भिक्षु अपनी आँखों से रूप को देख लेता है, तो वह न तो रूप का लोभी बनता है और न ही सूक्ष्म रूप का लोभी, क्योंकि जब वह आँख के मूल में रहता है, तो लोभ, दुःख और बुराई का प्रवाह होता है, और वह अपने आत्मसंयम के अनुसार कार्य करता है, आँख के मूल की रक्षा करता है और आँख के मूल पर आत्मसंयम प्राप्त करता है।

या यदि कुछ समण और ब्राह्मण गुरुओं ने श्रद्धापूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया, तो वे प्रदर्शनों में नहीं ठहरे और इस प्रकार नहीं देखते रहे, अर्थात्: नृत्य, गायन, संगीत... (उद्धृत), इस प्रकार के प्रदर्शनों को देखने से परहेज करते रहे।

"और भटकना नहीं," यह भटकना कैसे हुआ? यहाँ, एक विशेष प्रकार का भिक्षु घुमक्कड़ है, जिसका स्वभाव घुमक्कड़ है: एक बाग से दूसरे बाग तक, ..., एक स्थान से दूसरे स्थान तक, वह लंबी और अनियमित यात्राओं में लगा रहता है।

या फिर भिक्षुओं के बगीचे में भटकता हुआ एक भिक्षु, बिना किसी लाभ, बिना किसी कारण के, जड़विहीन होकर, चुपचाप भिक्षुओं के कमरे से भिक्षुओं के कमरे तक, निवास से निवास तक, आधी छत वाले मकान से..., ऊंची इमारत से..., समतल मकान से, गुफा से, झोपड़ी से, मंडप से, अवलोकन चबूतरे से, तंबू से, शेड से, व्याख्यान कक्ष से, गोल घर से, पेड़ से, या जहाँ भिक्षु बैठते हैं, वहाँ जाता है, जहाँ पहला दूसरा बन जाता है, या दूसरा स्थान तीसरा बन जाता है, या तीसरा स्थान चौथा बन जाता है। वहाँ बहुत सी विविध बातें होती हैं, जैसे: राजाओं का सिद्धांत (चर्चा), चोरों का सिद्धांत... (छोड़ा गया, पिछले भाग देखें)।

"वह जो भटकता नहीं," वह जो भटकने से मुक्त हो चुका है, संयम बरत चुका है, त्याग चुका है, छोड़ चुका है, मुक्त हो चुका है, बंधनों से मुक्त हो चुका है और निर्मल हृदय से एकांत में प्रसन्न रहता है। वह जो एकांत में बैठना पसंद करता है, वह जो आंतरिक शांति का अभ्यास करता है, वह जो ध्यान का तिरस्कार नहीं करता, वह जो साक्षी भाव रखता है और एकांत भाव को बढ़ाता है, वह जो ध्यानमग्न है, वह जो ध्यान से प्रेम करता है, वह जो एकाकी अभ्यासी है और वह जो अपने हितों का प्रशंसक है।

"जो मूल की रक्षा करता है, जो मन की रक्षा करता है": "जो मूल की रक्षा करता है," वह व्यक्ति जो अपनी आँखों से रूप को देखकर भी दिखावे का या बारीकियों का लालच नहीं करता, क्योंकि जब वह आँख के मूल में रहता है तो वह असुरक्षित हो जाता है, लोभ, दुःख और बुराई उसमें प्रवाहित होने लगती है। वह अपने आत्म-संयम के अनुसार कार्य करता है, आँख के मूल की रक्षा करता है, आँख के मूल में आत्म-संयम प्राप्त करता है; जब वह अपने कानों से ध्वनियाँ सुनता है..., अपनी नाक से सूंघता है..., जीभ से स्वाद चखता है..., शरीर से स्पर्श करता है..., चेतना से धम्म को जानने के बाद, वह सूक्ष्म रूप का या सूक्ष्म रूप का लालच नहीं करता, क्योंकि जब मन सुरक्षित नहीं होता तो वह लोभी और चिंतित हो जाता है, बुराई और अस्वास्थ्यकर धर्म उसमें प्रवाहित होने लगते हैं, और वह अपने आत्म-संयम के अनुसार कार्य करता है, मन के मूल की रक्षा करता है, और मन के मूल में आत्म-संयम प्राप्त करता है। "रक्षात्मक मन" मन का रक्षक है।

"जिनमें कोई रिसाव (प्रदूषण) नहीं है और जो पूरी तरह से झुलसे नहीं हैं": यह पूज्य मोग्गलाना [SN.35.243] द्वारा कहा गया है: "भिक्षुओं! मैं तुम्हें रिसाव और रिसाव न होने के बारे में सिखाऊंगा। तुम्हें सुनना होगा! सावधान रहो! मैं यह कहने जा रहा हूँ।" पूज्य मोग्गलाना ने कहा:

भिक्षुओं! रिसाव करने वाला क्या होता है? भिक्षुओं! यहाँ, आँखों से रूप देखकर भिक्षु मनभावन रूप से प्रेम करने लगता है, अप्रासन्न रूप का त्याग करता है, शरीर के प्रति सजगता स्थापित किए बिना जीवन व्यतीत करता है, और उसका हृदय सीमित हो जाता है। मुक्ति: उत्पन्न हुए दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्मों का कोई अंत नहीं; कानों से ध्वनि सुनने के बाद... (छोड़ा गया), चेतना से धर्म को जानने के बाद, मनभावन धर्म से प्रेम करने लगता है, अप्रासन्न धर्म का त्याग करता है, शरीर में रहता है और कोई विचार नहीं रखता, मन की सत्यता से मुक्ति, ज्ञान से मुक्ति, और ज्ञान से मुक्ति: उत्पन्न हुए दुष्ट और अस्वास्थ्यकर धर्मों का कोई नाश नहीं, हे साथी विद्यार्थियों! इसे वह भिक्षु कहते हैं जो आँखों से पहचाने जाने वाले रूप में रिसाव करने वाला होता है... विद्यार्थी! जब भिक्षु इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, यदि राक्षस आँखों से उसके पास आता है, तो राक्षस को अवसर और वस्तु दोनों मिल जाते हैं; यदि राक्षस कानों से उसके पास आता है... (छोड़ा गया;) यदि राक्षस यदि शैतान जानबूझकर उसके पास आता है, तो उसे अवसर मिल जाता है, शैतान को अपना लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

भिक्षुओं! यह तीन-चार वर्षों से सूखे पड़े सरकंडे या घास-फूस के घर के समान है। यदि कोई व्यक्ति पूर्व दिशा से जलती हुई मशाल लेकर उसके पास आता है, तो अग्नि को अवसर मिलेगा और वह जल उठेगी; यदि वह पश्चिम से आता है... (अधूरा), यदि उत्तर से..., यदि दक्षिण से..., यदि नीचे से..., यदि ऊपर से..., तो चाहे कोई भी दिशा हो, यदि कोई व्यक्ति जलती हुई मशाल लेकर उसके पास आता है, तो अग्नि को अवसर मिलेगा और वह जल उठेगी। इसी प्रकार, हे साथी विद्यार्थियों! जब भिक्षु इस प्रकार रहता है, तो यदि राक्षस उसकी आँख से उसके पास आता है, तो राक्षस को अवसर मिलेगा और वह जल उठेगा; यदि राक्षस कान से आता है...

भिक्षुओं! इस प्रकार जीवन व्यतीत करने पर रूप भिक्षुओं पर विजय प्राप्त करता है, न कि भिक्षु रूप पर; ...ध्वनि...; गंध...; स्वाद...; स्पर्श...; धम्म...; साथी विद्यार्थियों! इसे रूप से पराजित, ध्वनि से पराजित, गंध से पराजित, स्वाद से पराजित, स्पर्श से पराजित, धम्म से पराजित भिक्षु कहते हैं; पराजित, विजेता नहीं; दूषित, पुनर्जन्म लेने वाला और व्यथित; प्रतिफल, वह भविष्य में जीवन और मृत्यु के दुष्ट धम्म द्वारा मारा जाएगा। मित्रों! यही रिसाव करने वाला है।

भिक्षुओं! रिसाव न होना कैसे संभव है? मित्रों! यहाँ, आँखों से रूप देखने के बाद, भिक्षु वांछनीय रूप से प्रेम नहीं करता, अवांछनीय रूप को अस्वीकार नहीं करता, शरीर के प्रति सजग होकर, असीम हृदय से, असीम सत्यबोध से मन को जानते हुए, और ज्ञान से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है; उत्पन्न होने वाले बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्म नष्ट हो जाते हैं। ध्वनि सुनने के बाद... (उद्धृत), और ज्ञान से मुक्त होकर: उत्पन्न होने वाले बुरे और अस्वास्थ्यकर धर्म का कोई अंत नहीं है, हे छात्रों! इसे वह भिक्षु कहते हैं जो आँखों से देखे जा सकने वाले रूपों के संदर्भ में रिसाव नहीं करता... मित्रों! जब भिक्षु इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, यदि राक्षस आँखों से उसके पास आता है, तो राक्षस को न तो अवसर मिलता है और न ही वस्तु; यदि कान से... (उद्धृत) यदि राक्षस जानबूझकर उसके पास आता है, तो राक्षस को न तो मौका मिलता है और न ही वस्तु।

भिक्षुओं! यह एक भारी मंडप या मोटी मिट्टी से लेपित किसी व्याख्यान कक्ष के समान है। यदि कोई व्यक्ति पूर्व दिशा से जलती हुई मशाल लेकर इसके पास आता है, तो आग को न तो कोई अवसर मिलेगा और न ही कोई लक्ष्य; पश्चिम दिशा से आने पर भी... चाहे वह किसी भी दिशा से आए, आग को न तो कोई अवसर मिलेगा और न ही कोई लक्ष्य। इसी प्रकार, हे साथी छात्रों! जब भिक्षु इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, तो यदि कोई राक्षस उसकी आँखों के सामने से उसके पास आता है, तो उसे न तो कोई अवसर मिलेगा और न ही कोई लक्ष्य..., चाहे राक्षस जानबूझकर उसके पास आए, उसे न तो कोई अवसर मिलेगा और न ही कोई लक्ष्य।

भिक्षुओं! इस प्रकार जीवन व्यतीत करने पर भिक्षु रूप पर विजय प्राप्त करते हैं, वे रूप से पराजित नहीं होते; और निराकार, ध्वनि, स्वाद, गंध, स्पर्श, धम्म, हे सहपाठियों! इसे ही रूप पर विजय, ध्वनि पर विजय, गंध पर विजय, स्वाद पर विजय, स्पर्श पर विजय और धम्म पर विजय कहते हैं; वह विजेता है, पराजित नहीं; वह दूषित, पुनर्जीवित, दुखी और कड़वे, भविष्य के जीवन और मृत्यु के दुष्ट और अस्वस्थ धम्म पर विजय प्राप्त करता है। मित्रों! यही वह है जो कभी क्षीण नहीं होता।

"वे जो पूरी तरह से झुलसे नहीं हैं," वे जो लोभ की झुलसा देने वाली गर्मी से नहीं झुलसे हैं; वे जो क्रोध की झुलसा देने वाली गर्मी से नहीं झुलसे हैं; वे जो अज्ञानता की झुलसा देने वाली गर्मी से नहीं झुलसे हैं।

150 · परिवार के सदस्य (गृहस्थ) के निशान छोड़ने के बाद, पत्तों से ढके परिच्छत्तक वृक्ष की तरह, पीले वस्त्रों में, घर छोड़ने के बाद, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“आम आदमी की पहचान मिटाने के बाद”: बाल, दाढ़ी आदि को आम आदमी की पहचान कहा जाता है। “परिवार के सदस्य की पहचान मिटाने के बाद”: परिवार के सदस्य की पहचान को त्याग देने के बाद, पूरी तरह से छोड़ देने के बाद, नीचे रखने के बाद, बंद करने के बाद।

“पत्तों से ढके परिच्छत्तक वृक्ष की तरह”: घने पत्तों और घनी छाया वाले परिच्छत्तक वृक्ष की तरह। उसी प्रकार, वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति पूर्ण रूप से आवरण धारण करने वाला है। (इस सूत्र के कुछ अनुवादों में “...अपने पत्ते गिरा देने वाला” वाक्यांश का प्रयोग किया गया है; यह पिछले श्लोकों के अनुरूप प्रतीत होता है और संदर्भ में उचित भी है, लेकिन यहाँ शाब्दिक रूप से यही नहीं लिखा गया है)।

“वस्त्र धारण करके, घर छोड़ने के बाद”: एकाग्रचित्त व्यक्ति ने घर की सभी बाधाओं को काट डाला, अपने बच्चों और पत्नी की बाधाओं को काट डाला, ...रिश्तेदारों की, ...मित्रों की, ...भंडार की; बाधाओं को हटाने के बाद, बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, वस्त्र धारण करके, घर से एक गैर-घरेलू (मठवासी) जीवन में चला गया, और शून्यता की अवस्था में आकर अकेले चलने, जीने, कार्य करने, आगे बढ़ने, रक्षा करने और जीवित रहने लगा।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> निद्देसा >> निद्देसा 2.बी.4

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

<<<< पिछला

गैंडा सूत्र की व्याख्या
चौथा अध्याय
151 · स्वाद के मामले में, लालची व्यक्ति न होना, इच्छा न करने वाला व्यक्ति, दूसरों का पालन-पोषण न करने वाला व्यक्ति, दूसरी बार भीख मांगने वाला (घर-घर न जाने वाला), किसी परिवार से बंधा न होना, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

स्वाद के मामले में, जो लालची या इच्छाहीन नहीं है: स्वाद में जड़, शाखा, छिलका, पत्ता, फूल, फल, खट्टा, मीठा, कड़वा, तीखा, नमकीन, क्षारीय, कसैला, सुखद, अप्रिय, ठंडा और गर्म शामिल हैं। कुछ समण और ब्राह्मण स्वाद के प्रति लालची होते हैं। वे अपनी जीभ से सर्वोत्तम स्वाद की खोज में भटकते रहते हैं। खट्टा स्वाद मिलने पर वे खट्टापन नहीं चाहते, और खट्टापन न मिलने पर खट्टापन चाहते हैं; ...(छोड़ा गया) मिठास ...(छोड़ा गया); कड़वापन, तीखापन, नमकीन, क्षारीय; खट्टा स्वाद मिलने पर वे कसैलेपन की खोज करते हैं, कसैलेपन मिलने पर वे खट्टे स्वाद की खोज करते हैं; ...सुखद स्वाद..., अप्रिय...; ...अप्रिय..., सुखद...; ...गर्म..., ठंडा...; ...ठंडा..., गर्म। वे लालची, व्याकुल, आसक्त, मोहित, दूषित, आसक्त, स्थिर हैं, स्वाद की इच्छा में अवरुद्ध हैं। केवल एकांत में रहने वाले प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए स्वाद, प्यास और प्रेम का नाश हो चुका होता है; वह भोजन का तार्किक रूप से विश्लेषण करके ही ग्रहण करता है: “न सुख के लिए, न नशे के लिए, न सुंदर शरीर के लिए, न मान-सम्मान के लिए, बल्कि इस शरीर के अस्तित्व के लिए, हानि को रोकने के लिए और ब्रह्म का पालन-पोषण करने के लिए। इस प्रकार मैं पूर्व भावनाओं को त्याग दूँगा, नई भावनाओं को जागृत नहीं होने दूँगा, स्वस्थ रहूँगा, दोषरहित रहूँगा और शांति से जीवन व्यतीत करूँगा।”

उदाहरण के लिए, यदि वह घाव पर तेल लगाता है, तो केवल मांस बढ़ाने के उद्देश्य से, या यदि वह धुरी पर तेल लगाता है, तो केवल माल ढोने के उद्देश्य से, या यदि वह अपने पुत्र का मांस खाता है, तो केवल रेगिस्तान पार करने के उद्देश्य से। इसी प्रकार, एकाग्रज्ञानी व्यक्ति आत्मनिरीक्षण के बाद भोजन करता है: “आनंद के लिए नहीं...” वह स्वाद की लालसा से मुक्त हो जाता है, त्याग देता है, मुक्त हो जाता है, और बंधनमुक्त होकर वह निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

“जो लोभी नहीं हैं,” लोभ को लालसा कहा जाता है, जो कि लोभ ही है...(अंशित भाग देखें)। प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए लोभ और प्यास का नाश हो चुका है, ..., अतः केवल प्रबुद्ध ही लोभी नहीं हैं।

“जो दूसरों का पालन-पोषण नहीं करते, वे दूसरे दर्जे के भिखारी हैं”: “जो दूसरों का उत्थान नहीं करते,” उस अकेले प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए, केवल अपना ही पालन-पोषण करना, दूसरों का नहीं।

“जो दूसरों का पालन-पोषण नहीं करते, जो पहले से ही सब कुछ जानते हैं, जो वश में हो चुके हैं, जो अपने मूल में स्थिर हो चुके हैं, जिन्होंने अपने कष्टों को समाप्त कर लिया है और जिन्होंने अपने दोषों को दूर कर लिया है, मैं कहता हूँ कि वही ब्राह्मण है।” [उद.6]

“जो दूसरों का पालन-पोषण नहीं करते, वे दूसरी बार भीख मांगने वाले होते हैं”: अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति दोपहर के समय अपने वस्त्र धारण करता है, अपना आवरण ओढ़ता है, अपने शरीर की रक्षा करता है, अपने शब्दों की रक्षा करता है, अपने हृदय की रक्षा करता है, और उसका मन जड़ों की सुरक्षा के साथ उभरता है, ताकि वह किसी गाँव या कस्बे में भिखारी के रूप में प्रवेश कर सके, जो अपनी आँखें नीचे रखता है और उचित व्यवहार करता है, वह भीख मांगने के लिए बिना सीमा पार किए घर-घर जाता है।

“परिवार के बंधन में मत बंधे रहो”: मन दो तरह से बंधता है: स्वयं को विनम्र बनाना और दूसरों को उच्चतर बनाना जबकि हृदय बंधा रहता है, या दूसरों को विनम्र बनाना और स्वयं को उच्चतर बनाना जबकि हृदय बंधा रहता है। स्वयं को विनम्र कैसे बनाएं और दूसरों को उच्चतर कैसे बनाएं तथा दूसरों की चापलूसी कैसे करें? ...(अंशित, पिछले भाग देखें)।

दूसरों को विनम्र कैसे बनाएं, स्वयं को महान कैसे बनाएं और संयमित कैसे रहें? ...(यह भाग हटा दिया गया है, पिछले भाग देखें)।

“एक परिवार के केंद्र में बंधे मत रहो”: अकेले प्रबुद्ध व्यक्ति का मन परिवार की बाधाओं से बंधा नहीं होता; हृदय समूह (लोगों) की बाधाओं से बंधा नहीं होता; ...निवास; ...कपड़े; ...सामूहिक भोजन; ...आश्रय; ...रोगी की ज़रूरतें और चिकित्सा संबंधी आवश्यकताएँ।

152 · मन के पाँच आवरणों को त्यागकर, सभी दोषों को दूर करके, प्रेम और घृणा को काटकर, स्वतंत्र होकर, व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“मन के पाँच आवरणों का त्याग”: जो अकेला प्रबुद्ध है, जिसकी इच्छा का नाश हो जाता है, त्यागने के बाद, परित्याग करने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त करने के बाद, अस्तित्वहीनता में जाने के बाद, द्वेष आवरण..., नींद आवरण..., पछतावे का आवरण..., संदेह आवरण..., त्यागने के बाद, परित्याग करने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त करने के बाद, अस्तित्वहीनता में जाने के बाद, इच्छा को छोड़ने के बाद, अस्वास्थ्यकर धर्मों को छोड़ने के बाद, प्रथम ध्यान के आनंद और प्रसन्नता में प्रवेश करने के बाद, वियोग के बाद।

“सभी अशुद्धियों को दूर करने के बाद”: लोभ वह हृदय है जो अशुद्धियों का अनुसरण करता है; क्रोध वह हृदय है जो अशुद्धियों का अनुसरण करता है; अज्ञान वह हृदय है जो अशुद्धियों का अनुसरण करता है; क्रोध..., आक्रोश...। “सभी अशुद्धियों को दूर करने के बाद”: सभी अशुद्धियों को दूर करने के बाद, हटाने के बाद, त्यागने के बाद, निष्कासित होने के बाद, समाप्त करने के बाद, और उन्हें अस्तित्वहीन कर देने के बाद।

“अनासक प्रेम और घृणा को काट देता है”: “अनासक” की दो प्रकार की निर्भरता होती है: लालसा की निर्भरता और दृष्टि की निर्भरता...। “प्रेम” भी दो प्रकार का होता है: प्यास का प्रेम और दृष्टि का प्रेम...। “घृणा” यानी क्रोध, शत्रुता, घृणा, बुराई, हृदय का क्रोध, व्यथित, क्रोधित, अपशब्द, चिड़चिड़ी, चिड़चिड़ी, शत्रुता, क्रूर क्रोध, रोष, अप्रसन्न हृदय की अवस्था। “अविवश” प्रेम और घृणा को काट देता है”: केवल ज्ञानी व्यक्ति के प्रति प्यासी प्रेम, दृष्टि का प्रेम और घृणा, त्यागने के बाद, भगाने के बाद, समाप्त करने के बाद, अस्तित्वहीन होने के बाद काट दी जाती है; ऐसे लोग हैं जो आँखों से नहीं चिपकते, ऐसे लोग हैं जो कानों से नहीं चिपकते..., जो आसक्त नहीं हैं, जो अनासक्त हैं, जो अपना हृदय (इन चीजों की ओर) नहीं मोड़ते। जो व्यक्ति बंधनों से मुक्त होकर, मुक्त होकर, मुक्त होकर, निर्बल हृदय से जीवन व्यतीत करता है।

153 · सुख और दुख को त्यागकर, और पहले के आनंद और चिंता को त्यागकर, पवित्रता, शांति और स्थिरता प्राप्त करने के बाद, व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"सुख और दुख तथा पूर्व के सुख और दुःख को त्यागकर": केवल वही प्रबुद्ध व्यक्ति जिसने सुख और दुःख का त्याग कर दिया, और पूर्व के सुख और दुःख के समाप्त होने के साथ, चौथे ध्यान की शांति में बिना किसी पीड़ा, बिना कष्ट या सुख के प्रवेश करता है और रहता है।

"शुद्धता, शांति और स्थिरता प्राप्त करने के बाद": "स्थिरता" का अर्थ है शांति, चिंता का अभाव, अवलोकन, मन की स्थिरता, मन की समता, मन की शांत अवस्था, मन की तटस्थ अवस्था जो चौथे ध्यान में प्राप्त होती है। "स्थिरता" का अर्थ है मन की स्थिरता, स्थायित्व, विचलित न होना, स्थिर मन, शांत (स्थिर होना), स्थिर आधार, स्थिर बल और एकाग्रता। चौथे ध्यान में प्राप्त शांति और स्थिरता शुद्ध, पूर्णतः शुद्ध, सर्व-शुद्ध, पवित्र, अशुद्ध, दोषों से मुक्त, लचीली, कार्य के लिए उपयुक्त, स्थिर और अपरिवर्तनीय होती है। "शुद्धता, शांति और स्थिरता प्राप्त करने के बाद": चौथे ध्यान में प्राप्त शांति, स्थिरता प्राप्त होने के बाद, प्राप्ति के बाद, अधिकार में आने के बाद, ग्रहण करने के बाद प्राप्त होती है।

154 · जिनकी जीवन शक्ति सर्वोच्च हितों को प्राप्त करने के लिए सक्रिय हो गई है, जो अपने हृदय से पीछे नहीं हटते, जो अपने व्यवहार में शिथिल नहीं होते, जो दृढ़, मेहनती, धैर्यवान और बलवान होते हैं, उन्हें गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"जिनकी प्राण शक्ति सर्वोच्च हित की प्राप्ति के लिए सक्रिय हो गई है": सर्वोच्च हित को निर्जीव, निर्वाण कहा जाता है, जो सभी कर्मों का अंत, सभी आसक्तियों का अंत, भोग-विलास का विनाश और अंत है। सर्वोच्च हित को प्राप्त करने, ग्रहण करने, पहुँचने, संपर्क स्थापित करने और उसकी गवाही देने के लिए, अस्वास्थ्यकर धर्मों का त्याग करके, उत्तम धर्म की पूर्णता के लिए प्राण शक्ति, धैर्य, दृढ़ प्रयास और उत्तम धर्म के दायित्व का पालन करना आवश्यक है।

"जो अपने मन में संकोच नहीं करते और अपने कर्मों में शिथिलता नहीं लाते": जो अकेला ही प्रबुद्ध है, वह जीवन शक्ति को जागृत करता है, स्वयं को समर्पित करता है और अजन्मे और अहितकर धर्मों के लिए कड़ी मेहनत करता है; जो धर्म उत्पन्न हो चुके हैं, उनके लिए त्याग करता है... (विलुप्त), अजन्मे अच्छे धर्म की उत्पत्ति के लिए..., उत्पन्न हुए अच्छे धर्म के अभ्यास के अस्तित्व, उसके लुप्त न होने, वृद्धि, विस्तार और पूर्णता के लिए, इच्छा, कड़ी मेहनत, जीवन शक्ति, समर्पण और परिश्रम करता है।

या, "मैं केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही छोड़ने को तैयार हूँ; यदि शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, तब भी जब तक लोगों का धैर्य, मानवीय शक्ति, मानवीय जीवन शक्ति और मानवीय प्रयास (निरंतर) बने रहें, लेकिन (लक्ष्य) प्राप्त न हो जाए, तब तक जीवन शक्ति का कोई अंत नहीं होगा।" [SN.12.2]

"मैं न तो खाऊंगा, न पीऊंगा, न अपने निवास से बाहर जाऊंगा, न ही अपनी जांघ को गिरने दूंगा (लेटने दूंगा), जब तक प्यास का तीर न सुलग जाए।" [थाग.223]

"जब तक मेरा हृदय आसक्ति से मुक्त होकर कष्टों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मैं इस पालथी मारकर बैठने की मुद्रा को नहीं तोड़ूंगा!" [एम.एन.32]

"जब तक मेरा मन अनासक्ति के विकारों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मैं इस आसन से नहीं उठूंगा।"

"मैं शास्त्र से नीचे नहीं उतरूंगा... (अस्पष्ट), मैं निवास से बाहर नहीं निकलूंगा..., मैं अर्धछत वाले घर से बाहर नहीं निकलूंगा..., ऊंचे भवन से, समतल घर से, गुफा से, झोपड़ी से, भारी मंडप से, अवलोकन डेक से, गोल घर से, शेड से, व्याख्यान कक्ष से, तम्बू से..., जब तक मेरा हृदय आसक्ति के बिना सभी दोषों से मुक्त नहीं हो जाता, मैं वृक्ष से बाहर नहीं निकलूंगा।"

“आज दोपहर से ठीक पहले, मैं पवित्र धम्म को प्राप्त करूँगा, पूर्णतः प्राप्त करूँगा, उस तक पहुँचूँगा और उसकी गवाही दूँगा।” वह समर्पित और परिश्रमी है, इसलिए वह ऐसा व्यक्ति भी है जो हृदय से विमुख नहीं होता और अपने आचरण में शिथिलता नहीं लाता। “ठीक दोपहर को... (विलुप्त), शाम को..., भोजन से पहले, भोजन के बाद, रात से पहले, रात में, रात के बाद, मृत्यु के समय, श्वेत चंद्रमा के समय, वर्षा ऋतु में, सर्दी में, गर्मी में, युवावस्था में, किशोरावस्था में, मध्य आयु में, वृद्धावस्था में..., मैं पवित्र धम्म को प्राप्त करूँगा, पूर्णतः प्राप्त करूँगा, उस तक पहुँचूँगा और उसकी गवाही दूँगा।” वह समर्पित और परिश्रमी है, इसलिए वह ऐसा व्यक्ति भी है जो हृदय से विमुख नहीं होता और अपने आचरण में शिथिलता नहीं लाता।

“कठोर परिश्रम, धैर्य और सामर्थ्य”: एकमात्र प्रबुद्ध व्यक्ति अच्छे धम्म का प्रबल धारक होता है, अच्छे कर्मों में, शरीर से, वाणी से, अच्छे इरादों में, उदारता और साझा करने में, उपदेशों और निषेधों में, माता के प्रति पितृभक्ति में, पिता के प्रति पितृभक्ति में, समणों के प्रति आदर में, ब्राह्मणों के प्रति आदर में, परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति के प्रति आदर में, और कुछ ऐसे धारकों के प्रति जो सर्वोच्च सद्गुणों का पालन करते हैं [DN.30]। “सशर्थता और पर्याप्त सामर्थ्य के साथ,” एकमात्र प्रबुद्ध व्यक्ति ने पूर्णतः धैर्य, सामर्थ्य, जीवन शक्ति, परिश्रम और ज्ञान को प्राप्त कर लिया है।

155 · जो अकेले बैठते हैं, वे ध्यान की उपेक्षा नहीं करते, और हमेशा धम्म का अनुसरण करते हैं, अस्तित्व में दुख का पता लगाने के बाद, उन्हें गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“अकेले बैठो, ध्यान की उपेक्षा मत करो”: एकाकी रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति वह है जो अकेले बैठने को तैयार रहता है, जो अकेले बैठना पसंद करता है, और जो आंतरिक शांति का अभ्यास करता है, वह ध्यान का तिरस्कार नहीं करता, ...(विलुप्त भाग देखें), वे हैं जो अकेले बैठते हैं। “ध्यान की उपेक्षा मत करो,” जो दो प्रकार से प्रबुद्ध है, वह ध्यान की उपेक्षा नहीं करता: पहले ध्यान के उद्भव के लिए जो अभी उत्पन्न नहीं हुआ है, उसे नियंत्रित करने के लिए, दृढ़ता से नियंत्रित करने के लिए, पूर्ण रूप से नियंत्रित करने के लिए; या दूसरे ध्यान के लिए..., या तीसरे ध्यान के लिए..., या चौथे ध्यान के लिए...।

या, पहला ध्यान उत्पन्न हो गया है, अभ्यास और अधिक अभ्यास, या दूसरा ध्यान उत्पन्न हो गया है..., या तीसरा ध्यान..., या चौथा ध्यान उत्पन्न हो गया है..., ताकि वह ध्यान की उपेक्षा न करे।

“वह व्यक्ति जो सदा धम्म का अनुसरण करता है”: चार ध्यान... (विलुप्त)..., आठ पवित्र मार्ग धम्म कहलाते हैं। मार्ग क्या है? सही मार्ग, मार्ग का अनुसरण, वह मार्ग जो उलटा नहीं है, अर्थ का मार्ग, धम्म का मार्ग, उपदेशों की पूर्णता, मूलों का रक्षक, उचित मात्रा में आहार का ज्ञान, संयम, मन और सही ज्ञान, ये सब धम्म का अनुसरण कहलाते हैं। “धम्म में धम्म का अनुसरण”: धम्म में सदा; शाश्वत काल; सदा स्थिर; निरंतर; निर्बाध; क्रमिक रूप से; बिना अंतराल के उठने वाली जल तरंगों के समान; वे निरंतर साथ-साथ चलती हैं; दोपहर से पहले, दोपहर, पहली रात, आधी रात और देर रात; अमावस्या, शुक्ल पक्ष, बरसात, सर्दी, गर्मी में स्थिर रहती हैं; जवानी, मध्य आयु, वृद्धावस्था में, वह चलता है, जीता है, कर्म करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है।

मैंने समस्त अस्तित्व में व्याप्त दुःख का अन्वेषण किया है: “सभी कर्म अनित्य हैं”, “सभी कर्म दुःखदायी हैं”, “सभी धर्म निस्वार्थ हैं”, “धर्मों का कोई भी संग्रह धर्मों का विनाश है।” मैंने समस्त प्राणी में व्याप्त दुःख की खोज की है।

156 · जो प्रेम का नाश करना चाहते हैं, जो त्याग नहीं करते, जो बुद्धिमान हैं, जो अधिक सीखते हैं, जो सचेत हैं, धम्म का बोध करने वाला, निर्णय लेने वाला और परिश्रमी व्यक्ति गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

“प्रेम की प्यास बुझने की आशा, जो त्याग नहीं करता”: “प्रेम की प्यास” का अंत..., मृत्यु का अंत, अज्ञान का अंत, स्वार्थ का अंत, पुनर्जन्म का अंत, चक्र का अंत, अस्तित्व का अंत, पुनर्जन्म का अंत, चक्र का अंत, उत्सुक और प्रार्थना करने वाला। “जो त्याग नहीं करता,” जो अकेला है, वह आदरणीय कर्ता है, नियमित कर्ता है... (उद्धृत) अच्छे धम्म में, जिम्मेदारी की उपेक्षा नहीं करता, जो त्याग नहीं करता।

“ज्ञानी, ज्ञान का श्रोता, विचारशील”: “ज्ञानी (बहरा और गूंगा नहीं),” केवल प्रबुद्ध ही ज्ञानी, प्रबुद्ध, विशिष्ट और बुद्धिमान है। “अधिक सुनने वाला,” केवल सजग ही अधिक सुनता है, सुनी हुई बातों को याद रखता है, सुनी हुई बातों को संजोता है, वह सब कुछ जिसमें आरंभ, मध्य और अंत

में अच्छाई है; सही अर्थ और सही शब्द, जो यह घोषणा करते हैं कि केवल पूर्ण और शुद्ध ब्राह्मण धर्म ही है। ऐसा धर्म सुना गया है, याद रखा गया है, सुनाया गया है, हृदय से देखा गया है और अच्छाई को देखकर आत्मसात किया गया है। "सचेत रहने वाले" केवल प्रबुद्ध हैं, और उच्चतम स्तर के विचार और बुद्धि रखते हैं। वे स्मरण करने वाले और याद रखने वाले हैं जिन्होंने इसे बहुत पहले किया था और बहुत पहले कहा था।

"धम्म का साधक, निर्णयकर्ता और परिश्रमी": धम्म को समझने वाले को बुद्धि कहा जाता है, जो बुद्धि, समझ... (अंशित) और सही दृष्टिकोण है। जो अकेला प्रबुद्ध है, वही धम्म का बोधकर्ता, धम्म का ज्ञाता, धम्म का मापक, धम्म का निर्णायक और धम्म का स्पष्टकर्ता है: "सभी कर्म अनित्य हैं," ...धम्म का स्पष्टकर्ता। या, अकेले प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए, वह लोक का प्रबुद्ध व्यक्ति, स्थान का प्रबुद्ध व्यक्ति, रुचि का प्रबुद्ध व्यक्ति, पुनर्जन्म का प्रबुद्ध व्यक्ति, चक्र का प्रबुद्ध व्यक्ति, अस्तित्व का प्रबुद्ध व्यक्ति, घूर्णन का प्रबुद्ध व्यक्ति, पुनर्जन्म का प्रबुद्ध व्यक्ति है। या फिर, जो प्रबुद्ध है, वह परम (सीमा) में रहने वाला है, वह संसार में रहने वाला है, वह परम में रहने वाला है, वह परम रुचि के स्थान पर रहने वाला है, वह अंतिम जीवन में रहने वाला है, वह अवतार के अंत में खड़ा है, वह अंत में खड़ा है, वह पुनर्जन्म के अंत में खड़ा है, वह चक्र के अंत में खड़ा है, वह अंत में खड़ा है, वे जो अंत में (अंतिम शरीर) एकत्रित करते हैं, वे जो अंतिम आत्मज्ञान धारण करते हैं।

"यह उनका अंतिम है, यह अंतिम मिलन (शरीर) है, जीवन और मृत्यु का चक्र, उनके पुनर्जन्म के बिना।"

इसीलिए, प्रबुद्ध व्यक्ति धम्म का बोध करने वाला होता है। "निर्णयकर्ता" (चार पवित्र मार्ग) को निर्णय कहा जाता है, और "चार पवित्र मार्गों वाला" ही निर्णयकर्ता होता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका है, पूर्णतः पहुँच चुका है, और निर्णय की गवाही दे चुका है। "लगन" (लगन) को जीवन शक्ति कहा जाता है, जो हृदय की जीवन शक्ति का उद्दीपन है, परिश्रम, साहस, धैर्य, प्रयास, दृढ़ता, बिना शिथिल हुए साहस की अवस्था, हार न मानने की इच्छा की अवस्था, और उत्तरदायित्व की उपेक्षा न करने की अवस्था, उत्तरदायित्व का आधार, जीवन शक्ति, जीवन शक्ति का मूल, जीवन शक्ति की शक्ति, सही परिश्रम। प्रबुद्ध व्यक्ति इस परिश्रम को प्राप्त कर चुका है, पूर्णतः पहुँच चुका है, प्रवेश कर चुका है, पूर्णतः प्रवेश कर चुका है, और इस परिश्रम को धारण कर चुका है। अतः, केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही परिश्रमी होता है।

157 · शेर की तरह जो आवाज़ों से नहीं डरता, हवा की तरह जो जाल में नहीं फँसती, लाल कमल की तरह जो पानी से मैला नहीं होता, गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"शेर की तरह, जो आवाज़ों से नहीं डरता": शेर की तरह, जो जानवरों का राजा है, वह है जो आवाज़ों से नहीं डरता, जो आवाज़ों से भयभीत नहीं होता, जो शंकालु नहीं होता, जो डरपोक नहीं होता, जो भागता नहीं है, जो आवाज़ों से नहीं डरता, जो ऐसी जगह रहता है जहाँ उसने अपना आतंक और भय त्याग दिया है, और जिसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"जैसे हवा जाल से नहीं चिपकती": "हवा," पूर्वी हवा, पश्चिमी हवा, उत्तरी हवा, दक्षिणी हवा, धूल भरी हवा, धूल रहित हवा, ठंडी हवा, गर्म हवा, हल्की हवा, तेज हवा, तीव्र हवा, तेज हवा, तिरछी हवा, सुनहरे पंखों वाले पक्षी की हवा, ताड़ के पत्तों की हवा, पंखे की हवा। जालों को रस्सी के जाल कहा जाता है। जैसे हवा जाल में नहीं फंसती, अटकती नहीं, बंधती नहीं, पकड़ी नहीं जाती, और पूरे संसार से बंधी नहीं होती, वैसे ही दो प्रकार के जाल होते हैं: प्यास के जाल और दृष्टि के जाल...(उद्धृत)। केवल ज्ञानी व्यक्ति के लिए प्यास का जाल कट गया है, दृष्टि का जाल कट गया है, जिस अवस्था में प्यास का जाल कट गया है, दृष्टि का जाल कट गया है, उस अवस्था में केवल ज्ञानी व्यक्ति रूप में नहीं फंसता, ध्वनि से नहीं चिपकता...(उद्धृत), और देखे, सुने, महसूस किए और जाने जा सकने वाले धर्मों में संसार से नहीं चिपकता, पकड़ा नहीं जाता, बंधा नहीं जाता या बंधता नहीं है। वह जा चुका है, मुक्त हो चुका है, बंधनों से अलग हो चुका है, वह एक बेरोकटोक हृदय से जीता है।

"जैसे लाल कमल जल से अछूता रहता है": लाल कमल को लाल कमल कहा जाता है, और जल (तोयं) को जल (उदकं) कहा जाता है। जैसे लाल कमल जल से अछूता रहता है, न तो अधिक अछूता रहता है, न ही अधिक अछूता रहता है; उसी प्रकार, दो प्रकार के आसक्ति होते हैं: प्यास की आसक्ति और दृष्टि की आसक्ति...। जो एकाकी-ज्ञानी है, उसकी इच्छा की आसक्ति टूट जाती है...(उद्धृत), वह धर्मों को देखने, सुनने, महसूस करने और उनके प्रति सजग रहने में अछूता रहता है, अधिक अछूता रहता है..., वह विमुख हो जाता है, मुक्त हो जाता है, बंधन से मुक्त हो जाता है, और निर्बल हृदय से निवास करता है।

158 · शेर की तरह, पशु राजा, मजबूत दांतों वाला एक है, विजय और जीत के बाद चलने वाला, किसी को सीमा (दूर) आवासों का उपयोग करना चाहिए, गैंडे की तरह अकेले चलना।

"जैसे सिंह, पशु राजा, शक्तिशाली दाँतों वाला एक प्राणी है, जो विजय प्राप्त करता है और विजय प्राप्त करता है": जैसे सिंह और पशु राजा शक्तिशाली दाँतों वाला एक प्राणी है और दाँतों से लैस एक हथियार है, वह जानवरों की श्रेणी में आने वाले सभी जानवरों को कुचलकर, चलकर, निवास करके, कार्य करके, आगे बढ़कर, रक्षा करके और जीवित रहकर जीतता है, पराजित करता है, उन पर हावी होता है और उनका अंत करता है। वही अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति भी बुद्धि से परिपूर्ण एक शक्तिशाली प्राणी है, जो बुद्धि को हथियार के रूप में उपयोग करता है। वह सभी जीवित प्राणियों में बुद्धि से प्रहार करता है, उन्हें पराजित करता है, उन पर हावी होता है, उनका अंत करता है, उन्हें कुचलता है और चलता है, ठहरता है, कार्य करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और जीवित रहता है।

"सीमावर्ती (दूरस्थ) आवासों का उपयोग करना चाहिए": जैसे शेर और पशु राजा जंगल में प्रवेश करते हैं, जंगली जंगल में चलते हैं, रहते हैं, ..., वैसे ही एकाकी प्रबुद्ध व्यक्ति भी जंगल, जंगली जंगल और सीमावर्ती आवास (आराम करने की जगह) का उपयोग करेगा: धीमी आवाज, शांत वातावरण, वातावरण से दूर, अकेले रहना, अकेले बैठने के लिए उपयुक्त; वह अकेले चलता है, अकेले खड़ा होता है, अकेले बैठता है, अकेले लेटता है, अकेले भिक्षा मांगने के लिए गांव में जाता है, अकेले आगे बढ़ता है, अकेले लौटता है, अकेले शांत स्थान पर बैठता है, अकेले काम करता है, चलता है, रहता है, गति करता है, आगे बढ़ता है, रक्षा करता है और अकेले जीवित रहता है।

159 · उचित समय पर, दयालुता, शांति (समभाव), करुणा और आनंद का विकास करते हुए, स्वतंत्रता के लिए, समस्त संसार द्वारा विरोध न किए जाने पर, व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"सही समय पर, दया, शांति, करुणा और आनंद का विकास करते हुए, मुक्ति (ब्रह्मविहार) के लिए": केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही करुणा से चलने वाले हृदय से एक पक्ष को भरता है...(विलुप्त, पिछले खंड देखें), दुख से चलने वाले हृदय से..., आनंद से चलने वाले हृदय से..., शांति से चलने वाले हृदय से..., विशाल, उत्कृष्ट, असीम, द्वेष रहित, दुर्भावना रहित हृदय से... और उसके बाद जीवन व्यतीत करता है।

"सांसारिक विरोधियों द्वारा अस्वीकृत": करुणा में अभ्यास करने की अवस्था में, पूर्व के सभी प्राणी उनके विरुद्ध नहीं होते, ...(अस्पष्ट, पिछले खंड देखें)। "सांसारिक विरोधियों द्वारा अस्वीकृत न होना": सांसारिक विरोधियों, शत्रुओं, क्रोधित लोगों और जवाबी हमलों द्वारा अस्वीकृत न होना।

160 · लोभ, क्रोध और अज्ञान का त्याग करने के बाद, गांठें तोड़ने के बाद, जो अपने जीवन के अंत में भयभीत नहीं होते, उन्हें गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

"लालच, क्रोध और अज्ञान का त्याग करने के बाद": "लालच," यानी लालच... "क्रोध," यानी हृदय का क्रोध और शत्रुता... "अज्ञान," यानी दुख का अज्ञान... "लालच, क्रोध और अज्ञान के त्याग के बाद": वह अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति जिसका लालच, क्रोध और अज्ञान, समाप्त होने के बाद, त्यागने के बाद, भगाए जाने के बाद, समाप्त होने के बाद, और उन्हें अस्तित्व से परे कर देने के बाद।

"गांठें तोड़ने के बाद": दस प्रकार की गांठें होती हैं: ...(छोड़ा गया, पिछले अनुभाग देखें)। "गांठें तोड़ने के बाद": दस प्रकार की गांठों को काटने, तोड़ने, पूरी तरह से तोड़ने, तोड़ने के बाद, भगाने के बाद, समाप्त करने के बाद, और उन्हें अस्तित्वहीन करने के बाद।

"जो अपने जीवन के अंत में भयभीत नहीं होते": जो अकेला होता है, वह जीवन के अंत में भयभीत नहीं होता, जो डरता नहीं, जो भयभीत नहीं होता...

161 · वे अपने स्वार्थ के लिए आपके करीब आते हैं और आपकी सेवा करते हैं; आज के समय में निःस्वार्थ मित्र मिलना मुश्किल है। अपवित्र लोगों में अपने स्वार्थ की ही समझ होती है, इसलिए गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए।

वे अपने हितों के लिए एक-दूसरे के करीब आते हैं और सेवा करते हैं: अपने हितों के लिए, दूसरों के हितों के लिए, दोनों के हितों के लिए, वर्तमान हितों के लिए, अतीत के हितों के लिए, सर्वोच्च हितों के लिए। वे करीब होते हैं, समर्पित होते हैं (पूरी तरह से करीब), सेवा करते हैं, सहयोग करते हैं (नीचे की ओर सेवा करने के लिए), संवाद करते हैं (पूरी तरह से सेवा करने के लिए), और अनुसरण करते हैं (सेवा की ओर)।

"बिना किसी कारण (बिना किसी मकसद) के दोस्त आज के समय में मिलना मुश्किल है": "दोस्त," दो तरह के दोस्त होते हैं: ...(अधूरा भाग, पिछले भाग देखें)। "बिना किसी वजह के दोस्त आज के समय में मिलना मुश्किल है": ये दो तरह के दोस्त, बिना किसी वजह (मकसद) के, मिलना मुश्किल है।

"अशुद्ध लोगों में अपने स्वार्थों की बुद्धि होती है": "अपने स्वार्थों की बुद्धि," अपने स्वार्थों, अपने उद्देश्यों, अपने इरादों के लिए वे कर्म, अच्छे कर्म, सम्मान, पूछताछ और प्रश्न करने में लगे रहते हैं। "अशुद्ध व्यक्ति," "अशुद्ध शारीरिक कर्मों वाला" अशुद्ध व्यक्ति है; "अशुद्ध मानसिक कर्मों वाला" अशुद्ध व्यक्ति है; अशुद्ध हत्या... (छोड़ा गया); बिना लिए लेना; छल, अभद्र भाषा, लोभ, शुद्ध द्वेष, गलत विचार, अशुद्ध नीयत, अशुद्ध आशा, अशुद्ध इच्छाएँ रखने वाला व्यक्ति "अशुद्ध व्यक्ति" है; अशुद्ध का अर्थ है हीन, नीच, घटिया, तुच्छ नीयत और महत्वहीन।

"गैंडे की तरह अकेले चलना चाहिए": "अकेले," भिक्षु कहलाने वाला अकेला प्रबुद्ध व्यक्ति... "करना चाहिए," आठ प्रकार की गतिविधियाँ हैं... "गैंडे की तरह," गैंडा वास्तव में अद्वितीय है...

गैंडा सूत्र का वर्णन पूरा हो गया है।

"अजिता, तिस्सा मेत्तेय, पुणक और मेत्तगू, साथ ही धोतक और उपासिव, नन्द और हेमक, दो तोदेय्या और कप्पा, और बुद्धिमान जतुकन्नी, साथ ही भद्रावुध और उदय, और ब्राह्मण पोसाला, चतुर मोगराज और महान ऋषि पिंगीय, इन सोलह को ब्राह्मण की शिक्षा के रूप में। जैसा कि दूसरे तट मार्ग द्वारा समझाया गया है, केवल इतने ही हैं, गैंडे के सूत्र की व्याख्या समान है, दोनों प्रकार की व्याख्याओं को जानना चाहिए, और अंतर स्पष्ट हो गया है।"

अपदाना

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान

विषय-सूची

1अपदाना
1.1अपादान 1.बुद्ध
1.1.1अपादान 1.1: पिछले बुद्ध
1.1.2अपादान 1.2: गौतम बुद्ध
1.2अपादान 2: अतीत के मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)
1.3अपादान 3: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य)
1.4अपादान 4: प्रमुख थेरी (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ)
2अंग्रेज़ी अनुवाद/ दृश्य
3हिंदी अनुवाद (
4)
4.1मूल पाली संस्करण
4.2पाली-अंग्रेज़ी संस्करण

अपदाना

अपदान में लगभग 600 कविताएँ हैं, जिनमें से अधिकतर वरिष्ठ बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों की जीवनीपरक कहानियाँ हैं, लेकिन बुद्धों और एकांत बुद्धों की भी हैं। भिक्षुओं और भिक्षुणियों की कई कहानियाँ थेरागाथा और थेरिगाथा में प्रस्तुत छंदों का विस्तार हैं, या उनसे संबंधित हैं, जिन्हें प्रारंभिक संघ के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा बोला गया माना जाता है। अपदान जातक टीका के समानांतर है, जिसमें बुद्ध अपने पिछले जन्मों का वर्णन करते हैं।

अधिकांश अपदान कहानियाँ एक अनुमानित रूपरेखा का अनुसरण करती हैं, जिसमें वक्ता भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न परिस्थितियों में नैतिक व्यक्तियों के रूप में अपने पिछले जन्मों में किए गए पुण्य कर्मों का वर्णन करता है, और अंत में अपने वर्तमान जन्म की कहानी और वे बुद्ध के शिष्य कैसे बने, इसका वर्णन करता है प्रसिद्ध और कम प्रसिद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के पूर्व जन्मों की ये कहानियाँ संभवतः उन गृहस्थ अनुयायियों को नैतिक उदाहरण प्रदान करने के उद्देश्य से लिखी गई थीं जो बौद्ध जीवन जीना चाहते थे, लेकिन भिक्षु या भिक्षुणी के रूप में दीक्षा लेने में असमर्थ या अनिच्छुक थे।

यह ग्रंथ चार भागों में विभाजित है:

1. बुद्ध-अपदान: पूर्व बुद्धों और उनके बुद्धक्षेत्रों (बुद्धखेत्त) की स्तुति।
2. पच्चेकबुद्ध-अपदान: आनंद द्वारा बुद्ध से एकांतवास में रहने वाले बुद्धों (पच्चेकबुद्ध) के ज्ञानोदय के बारे में प्रश्न।
3. थेरा-अपदान: वरिष्ठ भिक्षुओं के 10 अपदानों के 55 अध्याय।
4. थेरी-अपदान: वरिष्ठ भिक्षुणियों के 10 अपदानों के 4 अध्याय।

अपादान 1.बुद्ध

अपादान 1.1: पिछले बुद्ध

सुमेधा पर प्रवचन, भावी गौतम बुद्ध

, अन्य पूर्व बुद्धों द्वारा

सिद्धियों की प्राप्ति, बोधिसत्व द्वारा

अपादान 1.2: गौतम बुद्ध

राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म

; ऐश्वर्य; दुःखों को देखना; पुत्र का जन्म

; सांसारिक जीवन का त्याग
; ज्ञानोदय; मारा (राक्षस स्वामी) का पराजय;
बुद्ध बनना और कामुकता पर विजय;
भिक्षु संघ की शुरुआत;
पिता के राज्य में वापसी;
मठों की स्थापना;
बुद्ध का अपने बारे में कथन : कर्मो का फल होता है
अपादान 2: अतीत के मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)
अपादान 2.1: मौन बुद्ध-1
अपादान 2.2: मौन बुद्ध-2
अपादान 3: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य)
अपादना 3.1: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 1-10
अपादना 3.2: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 11-77
अपादना 3.3: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 78-200
अपादना 3.4: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 201-300
अपादना 3.5: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 301-400
अपादना 3.6: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 401-500
अपादना 3.7: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 501-559

अपादान 4: प्रमुख थेरी (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ)
अपदान 4.1: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध नन) 1-40

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.1ए सुमेधा, भविष्य गौतम बुद्ध
स्रोत: संभवतः पीटीएस

अगला >>>>

विषय-सूची

1अपादान भाग - 1.1 ए: पिछले बुद्ध - दीपंकर बुद्ध ने सुमेधा को आशीर्वाद दिया
1.1ग्रंथ की प्रस्तावना
1.2परिचय
1.3प्रस्तावना
1.4सुमेधा पर प्रवचन,
1.4.1गौतम बुद्ध

अपादान भाग - 1.1ए: पिछले बुद्ध - दीपंकर बुद्ध ने सुमेधा को आशीर्वाद दिया

ग्रंथ की प्रस्तावना
लघु खंड
अपदान पर टिप्पणी
(पहला भाग)
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स

मैं सिर झुकाकर परम श्रेष्ठ बुद्ध को प्रणाम करता हूँ, जो अद्वितीय हैं और जिन्होंने ज्ञान के सागर और संसार के चक्रों को पार कर लिया है। इसी प्रकार, मैं परम शांत, गहन सत्य, धम्म को प्रणाम करता हूँ, जो सूक्ष्म, सूक्ष्म, अनेक रूपों का सृजन करने वाला, शुद्ध और सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा सम्मानित है। इसी प्रकार, मैं परम श्रेष्ठ संघ, बुद्ध के शिष्यों को प्रणाम करता हूँ, जो बुराई और आसक्ति से मुक्त हैं, जो दान-पुण्य के सबसे योग्य प्राप्तकर्ता हैं, जिनकी इंद्रियाँ शांत हैं और जो आसवों से मुक्त हैं।

मैंने इस और उस 'रत्न' को विशिष्ट रूप से श्रद्धांजलि अर्पित की है, और तीनों रत्नों के प्रति विशेष आदर दिखाया है। इस अनुभव के बाद, बौद्ध धर्मगुरुओं के वरिष्ठ सदस्यों ने, जो दृढ़ता से स्थिर हैं, बुद्ध की शिक्षाओं और आगमों के ज्ञाता हैं, और अपने अनुयायियों के बीच प्रसिद्ध हैं, मुझसे बार-बार और आदरपूर्वक अनुरोध किया है: "आदरणीय महोदय! अपदान पर एक टीका संकलित की जानी चाहिए।"

अत: मैं तीनों पिटकों में मौजूद पाठ के अनुसार उचित व्याख्या प्रस्तुत करूंगा, जिसमें जीवनी और उपलब्धियों से संबंधित कोई भी बात नहीं छोड़ी जाएगी।

बुद्ध के शिष्यों द्वारा एक विशेष श्रेणी की विधि से व्याख्या करना।

यह उत्कृष्ट धम्म किसके द्वारा, कहाँ और कब प्रचारित किया गया था? इसका उद्देश्य क्या था? इन प्रश्नों के उत्तर देने के बाद, निष्कर्ष निकलता है। प्रारंभिक जानकारी के लिए और सुगमता से समझने और याद रखने के लिए, मैं पहले और बाद के अर्थों को अलग करने वाले विभिन्न समाधानों के बारे में बताऊंगा, साथ ही उन सभी बातों के बारे में भी बताऊंगा जो भले लोगों की अपेक्षा है और जो प्राचीन सिंहली भाषा और पुरानी टीकाओं में निर्धारित नियमों के अनुसार पूरी नहीं हुई हैं। अतः, प्राचीन टीकाओं की पद्धति का सहारा लेते हुए और अप्रिय अनुवादों से बचते हुए, मैं स्पष्ट अर्थों को उजागर करूंगा। इस प्रकार, मैं एक व्याख्यात्मक टीका संकलित कर रहा हूँ - जो उत्कृष्ट और असाधारण व्याख्या है।

परिचय

मैंने अपनी प्रस्तावना में जो वादा किया था, अर्थात्:- "मैं एक टीका संकलित करूँगा जिसमें यह बताया जाएगा कि यह परम उत्कृष्ट धम्म, सत्य, कब, कहाँ और किस समय कहा गया था", उसके कारण अपदान का यह व्याख्याकार निश्चित रूप से अतीत की प्रस्तावना (दूरोनिदान), निकट अतीत की प्रस्तावना (अविदूरे निदान) और निकटवर्ती प्रस्तावना (शांतिके निदान) का उल्लेख करेगा। जो लोग ऐसी (व्यापक) टीका सुनते हैं, वे निश्चित रूप से सुनी हुई बातों को दोहराने के समय से ही पूर्णतः समझ लेते हैं। क्योंकि ऐसी समझ को अच्छी समझ कहा जा सकता है, इसलिए मैं इन तीनों प्रस्तावनाओं (निदान) का उल्लेख करने के बाद ही अपनी यह टीका संकलित कर रहा हूँ।

वहाँ, प्रारंभ से ही, तीनों प्रस्तावनाओं के प्रत्येक प्रकरण को जानना आवश्यक है (पहला प्रकरण) उस समय से है जब परम पुरुष बुद्ध दीपांकर के चरणों में भविष्यवाणी प्राप्त करने से लेकर राजा वेस्सन्तरा के रूप में अपने निधन के बाद तुषिता के स्वर्ग नगर में पुनर्जन्म लेने तक। इन दोनों अवसरों के बीच के प्रवचन मार्ग को दूरस्थ प्रस्तावना (दूरेनिदाना) के रूप में जाना जाता है। (दूसरा प्रकरण) तुषिता के स्वर्ग से प्रस्थान करने के समय से लेकर बोधि वृक्ष के चरणों में सर्वज्ञता प्राप्त करने तक है। इन दोनों अवसरों के बीच के प्रवचन मार्ग को निकटवर्ती प्रस्तावना (अविदूरे निदाना) के रूप में जाना जाता है। निकटवर्ती प्रस्तावना (सन्तिके निदाना) के संबंध में, प्रकरण के बारे में जानकारी उन स्थानों से प्राप्त होती है जो स्वयं बुद्ध के निवास स्थान बन गए थे।

प्रस्तावना

1. उस विषय में, यह विशेष रूप से दूरस्थ प्रस्तावना (दूरेनिदान) है। हमें बताया गया है कि एक लाख विश्व युगों से भी अधिक, असंख्य विश्व युगों (कप्पा) के चार पूर्ण समुच्चयों से, अमरावती नामक एक नगर था। उस नगर में सुमेध नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह माता और पिता दोनों ओर से एक अच्छे परिवार में जन्मा था। सातवीं पीढ़ी (कुलपरिवत्त) तक, उसके पूर्वजों और उसका स्वयं का अंतरात्मा निर्मल था। उसके जन्म और पालन-पोषण के संबंध में कोई निंदा (अक्खित्त) या निंदा (अनुपकुत्थे) नहीं हुई थी। वह अत्यंत सुंदर, आकर्षक और मनभावन था, और उसका रंग-रूप अत्यंत सुंदर कमल के समान था। वह केवल ब्राह्मण विद्या का अध्ययन करता था, कोई अन्य कार्य नहीं करता था। कम उम्र में ही उसने अपने माता-पिता दोनों को खो दिया। उनके माता-पिता की मृत्यु के बाद, उनके पुरोहित, जो परिवार की सारी संपत्ति के प्रभारी थे, उनके पास संपत्ति का लेखा-जोखा लेकर आए, जिसमें उनकी पैतृक संपत्ति दर्ज थी। इसके बाद, रजिस्ट्रार ने वह कक्ष खोला, जिसमें सोना-चांदी, रत्न-मोती आदि का खजाना रखा था, और उन्हें समझाया: "इतना आपकी

माता का था; इतना आपके पिता का, और इतना आपके दादा-दादी का।" इस प्रकार, उनके माता-पिता और दादा-दादी द्वारा विरासत में मिली संपत्ति के बारे में जानकारी देने के बाद, जिसमें पिछली सात पीढ़ियों की संपत्ति भी शामिल थी, अभिलेखपाल, यानी मंत्री ने, उस युवक से अपनी विरासत में मिली संपत्ति का उचित उपयोग करने का अनुरोध किया। बुद्धिमान सुमेधा ने चिंतन किया: "इतनी संपत्ति अर्जित करने के बाद, मेरे पिता और दादा आदि ने परलोक जाते समय अपने साथ एक भी सिक्का (कहापना) नहीं ले गए। मेरे लिए तो यही उचित है कि मैं उन्हें अपने साथ ले जाकर परलोक जाऊं।" अतः उन्होंने राजा को सूचित किया, पूरे नगर में ढोल बजवाया, जनसमूह को दान दिया, संसार त्याग दिया और संन्यासी बन गए। इस बात को स्पष्ट करने के लिए, इस स्थान पर सुमेधा कथा का उपदेश दिया जाना चाहिए। यह घटना बुद्धवंश में लगातार आती रही है। फिर भी, क्योंकि यह लगातार काव्य रूप में आती है, इसलिए स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आती। अतः मैं नियमित अंतराल पर इसके श्लोकों और उनके प्रासंगिक व्याख्यात्मक पाठों का वर्णन करूंगा।
सुमेधा पर प्रवचन, भावी गौतम बुद्ध
1.1 एक लाख युगों (पृष्ठ 5) से अधिक चार असंख्य युगों (कप्पा) पहले, एक नगर था, जिसे अमरावती या अमर नाम दिया गया था, जहाँ दस प्रकार की ध्वनियाँ निरंतर गूंजती रहती थीं। इस संबंध में बुद्धवंश में इस प्रकार कहा गया है:-

एक लाख युग और चार असंख्य युग (कप्पा) पहले, अमारा नामक एक नगर विद्यमान था, जिसमें रमणीय दृश्य थे, जहाँ दस प्रकार की ध्वनियाँ कभी शांत नहीं होती थीं और जहाँ प्रचुर मात्रा में भोजन और पेय उपलब्ध थे।

1.2 वहाँ, पाली अभिव्यक्ति: दशही सद्देही अविवित्तं का अर्थ है कभी मौन नहीं, बल्कि दस प्रकार की ध्वनियों से भरा हुआ, जिनमें हाथियों की आवाज़, घोड़ों की आवाज़, रथों की आवाज़, बड़े ढोलों की आवाज़, ढोलों (मुदिंगा) की आवाज़, वीणाओं की आवाज़, गीतों की आवाज़, शंखों की आवाज़, झांझों की आवाज़ और ऐसे निमंत्रण और स्वागत की आवाज़ें शामिल हैं जैसे: "अपनी जगह बैठिए, अपना भोजन कीजिए; अपना पेय लीजिए;" दसवीं ध्वनि के रूप में। इन दस प्रकार की ध्वनियों से शहर कभी भी मौन एकांत की स्थिति में नहीं रहता था।
लेकिन बुद्धवंश में, उन ध्वनियों को अलग-अलग लिया गया और उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया:

"हाथियों की आवाज, घोड़ों की आवाज, बड़े ढोलों की आवाज, शंखों की आवाज और रथों की आवाज। खाने-पीने की चीजों के साथ घोषणाएं की गईं: कृपया खाएं-पिएं।"

इसके साथ ही निम्नलिखित बयान भी दिया गया:-

"यह एक ऐसा नगर था जो हर तरह से परिपूर्ण था, जहाँ लोग हर तरह के काम के लिए आते थे। सात प्रकार के रत्नों से युक्त यह नगर विभिन्न श्रेणियों के लोगों से भरा हुआ था। स्वर्ग नगर की तरह समृद्ध (समिद्ध) यह नगर पुण्य कर्म करने वालों का निवास स्थान था। अमरावती नगर में सुमेध नामक एक ब्राह्मण के पास करोड़ों-करोड़ों की संपत्ति थी और वह प्रचुर मात्रा में धन और धान का स्वामी था। वह मंत्रों का ज्ञाता और स्मरण करने में निपुण था, क्योंकि उसने तीनों वेदों में पारंगत था। हस्तरेखा शास्त्र और पारंपरिक ज्ञान के साथ-साथ अपने स्वयं के सिद्धांत में भी वह पूर्णता प्राप्त कर चुका था।"

1.3 फिर एक दिन, वह ज्ञानी सुमेध अपने उत्तम महल की ऊपरी मंजिल पर अकेले बैठे हुए, पालथी मारकर इस प्रकार चिंतन करने लगे: "हे ज्ञानी! परलोक में जन्म लेना वास्तव में दुख है। इसी प्रकार, शरीर का क्षय होना भी एक पीड़ा है, जहाँ भी कोई और सभी पुनर्जन्म लेते हैं। मैं भी जन्म के अधीन हूँ, वृद्धावस्था का भागी हूँ, रोगग्रस्त हूँ और मृत्यु के लिए नियत हूँ। ऐसी स्थिति में, मुझे अमर निर्वाण की खोज करनी चाहिए, जो सुखमय और शीतल है, जहाँ जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का अभाव है। अनिवार्यतः, जन्म से मुक्त होकर, मुझे सही मार्ग पर एक ही यात्रा द्वारा निर्वाण, अमर अवस्था की ओर अग्रसर होना चाहिए। अतः यह कहा गया है:-

एकांत में जाकर, बैठकर मैंने यह चिंतन किया: 'चूंकि अब जीवन वास्तव में दयनीय है, वैसे ही शरीर का क्षय भी है। चूंकि मैं जन्म, वृद्धावस्था और रोग के अधीन हूं, इसलिए मैं पूर्ण शांति (निब्बुति) की खोज करूंगा, जो वृद्धावस्था से रहित और सभी खतरों से सुरक्षित है। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि मैं इस सड़ते हुए, घावों से भरे शरीर को त्याग दूं और बिना किसी इच्छा और लालसा के आगे बढ़ूं? वह

सही मार्ग अवश्य है, जो बिना किसी कारण के संभव नहीं है। मैं उस सही मार्ग की खोज करूंगा, ताकि मैं अस्तित्व से पूर्ण रूप से मुक्त हो सकूं।'

1.4 इसके अलावा, उन्होंने इस प्रकार विचार किया:-
"जिस प्रकार इस संसार में सुख और दुःख का एक-दूसरे के विपरीत अस्तित्व है, उसी प्रकार यदि जन्म है, तो उसका विपरीत भी होना चाहिए - जन्म न होना। फिर, जिस प्रकार ऊष्मा का होना स्वाभाविक है, शीतदंश का होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार कामवासना (राग) आदि की अग्नि के शांत होने के साथ ही निर्वाण (अमर शांति) भी होनी चाहिए। जिस प्रकार निम्न और दुष्ट धर्म (धम्म) के विपरीत केवल अच्छा और निष्पाप सत्य (धम्म) है, ठीक उसी प्रकार यदि बुरा जन्म हो, तो जन्म-मुक्त अवस्था (निर्वाण) भी होनी चाहिए, जहाँ जन्म का कोई ज्ञान नहीं होता, क्योंकि सभी जन्मों का त्याग हो जाता है।"

इसलिए यह कहा गया:-

"जिस प्रकार दुखों की बहुतायत में सुख अवश्यंभावी होता है, उसी प्रकार जब कर्म विद्यमान होता है, तो कर्म का अभाव अपेक्षित होता है। जिस प्रकार ऊष्मा की उपस्थिति में शीतलतापूर्ण अमरता विद्यमान होती है, उसी प्रकार तीनों प्रकार की अग्नियों (लोभ, दोष और मोह) के प्रज्वलित होने पर निर्वाण (निब्बान) अपेक्षित होता है। जिस प्रकार बुराई की उपस्थिति में अच्छाई विद्यमान होती है, उसी प्रकार जन्म की उपस्थिति में जन्म-मुक्त अवस्था अपेक्षित होती है।"

1.5 आगे उन्होंने सोचते हुए कहा: "जैसे किसी व्यक्ति के लिए, जो गोबर के ढेर में धंसा हुआ है, पांच रंगों के कमलों से ढकी एक विशाल झील तक जाने का उचित मार्ग खोजना और पाना उचित है, जिसे उसने बहुत दूर से देखा है; यदि वह खोज न करे, तो दोष झील का नहीं, बल्कि उस व्यक्ति का है। ठीक उसी प्रकार, जब निर्वाण का महान सागर, जो पाप (किलेसा) को धोने के लिए विद्यमान है, मौजूद है, और यदि कोई खोज न की जाए, तो दोष निर्वाण के महान अमर सागर का नहीं, बल्कि उस व्यक्ति का है। जैसे कोई व्यक्ति लुटेरों से घिरा हो और यदि भागने का कोई मार्ग भी हो, और वह फिर भी न भागे, तो दोष मार्ग का नहीं, बल्कि उस व्यक्ति का है। ठीक उसी प्रकार, जब निर्वाण की ओर ले जाने वाला एक शीतल मार्ग मौजूद हो, और कोई व्यक्ति पाप (किलेसा) से घिरा और जकड़ा हुआ हो, यदि वह मार्ग की खोज नहीं करता, तो दोष मार्ग का नहीं, बल्कि मनुष्य का है। जब कोई चिकित्सक, जो रोगों का उपचार कर सकता है, उपलब्ध हो, और कोई रोगग्रस्त व्यक्ति उस चिकित्सक से संपर्क न करे और अपना इलाज न करवाए, तो दोष चिकित्सक का नहीं, बल्कि रोगी का है। ठीक इसी प्रकार, यदि कोई जीवित गुरु, जो भ्रष्टता (किलेसा) के निवारण का मार्ग दिखाने में कुशल हो, किसी भ्रष्टता (किलेसा) से पीड़ित व्यक्ति द्वारा न खोजा जाए, तो दोष खोज न करने वाले का है, न कि गुरु का, जो भ्रष्टता (किलेसा) का नाश करने वाला है। अतः, यह इस प्रकार कहा गया है:

"जिस प्रकार किसी गंदे गोबर में उतरे व्यक्ति द्वारा झील का न मिल पाना दोष नहीं है, यद्यपि उसने उसे (दूर से) पानी से भरी हुई देखा था, उसी प्रकार अमरता की झील का भी दोष नहीं है, जब कोई उसकी खोज नहीं करता, यद्यपि मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाली ऐसी झील, जो दुराचार (किलेसा) की अशुद्धियों को धो देती है, विद्यमान है। जिस प्रकार मुक्ति का सीधा मार्ग दोषरहित है, क्योंकि शत्रुओं से बुरी तरह घिरे व्यक्ति ने भागने का रास्ता न होने के बावजूद वह नहीं भागा, ठीक उसी प्रकार शीतल सीधा मार्ग दोषरहित है, क्योंकि कोई उसकी खोज नहीं करता, जबकि व्यक्ति दुराचार (किलेसा) के पापों से बुरी तरह घिरा हुआ है, यद्यपि मुक्ति का शीतल मार्ग मौजूद है। जिस प्रकार चिकित्सक दोषरहित है, क्योंकि रोगी ने अपने रोग का चिकित्सकीय उपचार नहीं कराया, यद्यपि वह रोगी चिकित्सक के अस्तित्व को जानता है, ठीक उसी प्रकार, गुरु-शिक्षक दोषरहित है, यदि उसकी खोज न हो।" शिक्षक का निर्माण एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो विकृतियों (किलेसा) के रोगों से पीड़ित और पूरी तरह से ग्रस्त होता है।

1.6 आगे चलकर उसने मन ही मन सोचा: "जैसे जन्म से ही आभूषणों का शौकीन कोई व्यक्ति अपने गले में फँसी लाश को त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक चला जाता है, वैसे ही मुझे भी अपने इस सड़े हुए शरीर को निर्वाहवश त्याग कर निर्वाण में प्रवेश करना चाहिए। जैसे गोबर

के ढेर पर पुरुष और स्त्रियाँ मल-मूत्र त्यागकर स्नान करने के बाद उसे अपने साथ गोद में लिए या वस्त्रों के किनारे मोड़कर ले जाने के बजाय चले जाते हैं: चाहे वे भूखे ही क्यों न हों, वे अपने मल-मूत्र की परवाह नहीं करते और उसे त्याग कर चले जाते हैं; उसी प्रकार मुझे भी इस सड़े हुए शरीर को निर्वाहवश त्याग कर निर्वाण में प्रवेश करना उचित लगता है। जैसे समुद्री नाविक अपने पुराने जहाज को निर्वाहवश त्याग कर चले जाते हैं, वैसे ही मुझे भी अपने इस शरीर को, जो नौ घावों से रिस रहा है, निर्वाण में प्रवेश करना चाहिए। एक व्यक्ति, जो अनेक प्रकार के रत्न लेकर लुटेरों के साथ यात्रा पर निकलता है, अपने सभी रत्नों को त्यागकर एक सुरक्षित मार्ग चुनता है, जब उसका अपना रत्न-स्वरूप नष्ट होने के खतरे में होता है, तो यह अपवित्र शरीर एक लुटेरे के समान है, जो रत्नों की चोरी और लूट से अपना जीवन यापन करता है। यदि मैं इससे आसक्त हो जाऊं, तो मेरे लिए रत्न-संबंधी पुण्य और रत्न-समान श्रेष्ठ मार्ग नष्ट हो जाएगा। इसलिए, मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं इस लुटेरे जैसे शरीर को त्याग दूं और निर्वाण के महान अमर नगर में प्रवेश करूं। अतः यह कहा गया है:

“जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने गले से, जहाँ एक शव घृणित रूप से जकड़ा हुआ था, मुक्त होने के बाद सुरक्षित, स्वतंत्र रूप से, अपनी इच्छा अनुसार चला जाता है, ठीक उसी प्रकार मैं भी इस सड़े हुए शरीर को, जिसमें अनेक मृत शरीर संचित हैं, त्यागने के बाद निर्संतुष्ट और उदासीन होकर चला जाऊँगा। जिस प्रकार पुरुष और स्त्री शौचालय में मल त्याग करने के बाद उदासीन और निर्संतुष्ट होकर चले जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मैं भी स्नान करने के बाद, जहाँ भी शौचालय हो, अपने इस शरीर को, जो अनेक मृत शरीरों से भरा हुआ है, त्यागने के बाद चला जाऊँगा।”
"जहाज मालिकों की तरह, जो एक पुराने, रिसावग्रस्त और जर्जर जहाज को लापरवाही और अनिच्छा से छोड़कर चले जाते हैं, ठीक उसी तरह, मैं भी इस जर्जर शरीर को, जो अपने नौ छेदों से लगातार रिसाव करता रहता है, उसी तरह छोड़ कर चला जाऊंगा, जैसे मालिक अपनी जर्जर नाव के साथ करते हैं।"
“जिस प्रकार एक व्यक्ति जो अपने साथ खजाना लेकर आया हो और संयोगवश चोरों के साथ यात्रा कर रहा हो, अपने शरीर-खजाने के टुकड़े-टुकड़े होने के खतरे को देखकर सबको और सब कुछ छोड़कर चला जाता है, ठीक उसी प्रकार मैं भी इस शरीर को, जो एक बड़े चोर के समान है, अपने अच्छे कर्म के टुकड़े-टुकड़े होने के खतरे के कारण छोड़कर चला जाऊंगा।”

1.7 इस प्रकार, ज्ञानी सुमेधा ने त्याग के लिए प्रत्यक्ष रूप से लाभकारी इस विषय पर विभिन्न उदाहरणों के साथ चिंतन किया, महान दान दिया, सभी जरूरतमंद यात्रियों आदि को उपहार वितरित किए, और उपर्युक्त तरीके से दोनों प्रकार के इंद्रिय सुखों, भौतिक (वत्थु) और पापी दुराचार (किलेष) का त्याग किया, अमर नगर से एकाकी होकर निकले और हिमालय में धम्मिका (धर्मी) नाम की एक पहाड़ी के पास एक आश्रम बनाया। वहाँ उन्होंने पत्तों की कुटिया और एक गलियारे का निर्माण करवाया। इसके बाद, उन्होंने बारह गुणों से युक्त छाल के वस्त्र धारण करके और नौ दोषों से दूषित वस्त्रों का त्याग करके एक संन्यासी बनकर अपने त्याग को पूर्ण किया, ताकि वे अपने लिए उस आश्रम में आध्यात्मिक शक्ति, जिसे उच्च ज्ञान, अभिज्ञा (जादुई) के रूप में जाना जाता है, आठ परिस्थितिजन्य गुणों से परिपूर्ण प्राप्त कर सकें, जिनका वर्णन सामान्यतः इस प्रकार किया जाता है: “जब इस प्रकार मन शांत और एकाग्र हो जाता है” इत्यादि, तो वह परम ज्ञान (अभिज्ञा) (जादुई) प्राप्त होता है जो पाँच बाधाओं (निवरण) का त्याग कर देता है। इस प्रकार संन्यासी बनकर उन्होंने अपनी पत्तियाँ-कुटिया त्याग दी, क्योंकि वह आठ दोषों से युक्त मानी जाती थी, और दस गुणों से युक्त माने जाने वाले वृक्ष की शरण में गए। फिर उन्होंने चावल और अन्य अनाजों से बने सभी भोजन का त्याग कर वृक्षों से गिरे ताजे फल खाने लगे। केवल तीन मुद्राओं - बैठना, खड़ा होना और इधर-उधर चलना - का पालन करते हुए परिश्रमपूर्वक उन्होंने केवल सात दिनों के भीतर पाँच प्रकार के परम ज्ञान (अभिज्ञा) और आठ ध्यान संबंधी उपलब्धियों (समापत्ति) को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, अपनी आकांक्षा के अनुसार वे परम ज्ञान की शक्ति की अवस्था तक पहुँच गए। अतः यह कहा गया है:-

"इस प्रकार विचार करने के बाद, मैं हिमालय की ओर चल पड़ा।"
असहायों को सुरक्षा प्रदान करने के बाद
करोड़ों-करोड़ों रुपये दान के रूप में दे दिए और मेरे सैकड़ों
पैसा। मेरे लिए, एक अच्छी तरह से बनी हुई पत्तों की झोपड़ी थी,
धम्मिका पहाड़ी पर, पास ही में, एक सुंदर ढंग से निर्मित आश्रम है।

हिमालय से। वहीं पर एक मठ भी बनाया गया था।
पांच गलतियों से मुक्त होकर चलें, आठ पूरे करें
गुण और अनुकूल परिस्थितियाँ जो शक्ति लाने में सहायक होती हैं
अतिज्ञान का। वहाँ मैंने अपना (महंगा) उतार दिया।
नौ दोषों से दूषित कपड़े और पहनावा
मैं स्वयं छाल के वस्त्र में, बारह अच्छे लोगों के साथ
गुण। यहाँ तक कि पत्तों की झोपड़ी भी, (मैंने इसे) मिश्रित माना।
आठ दोषों के साथ सामने आया, (और इसलिए) अस्वीकार कर दिया गया।
दस अच्छे लोगों से भरी एक टोली पेड़ के नीचे पहुंची
गुण। क्या मैंने पूरी तरह से सुसंस्कृत और
बोई गई फसल और गिरे हुए ताजे फलों को स्वीकार किया
वृक्ष, (ऐसे पके हुए) फल जो अनेकों फलों से भरे हुए थे
सद्गुण। वहाँ, पेड़ के नीचे, मैंने ज़ोरदार प्रयास किए।
प्रयास, तीन मुद्राओं का पालन करना: बैठना, खड़ा होना
और केवल पैदल चलने से ही मुझे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई।
केवल सात दिनों के भीतर ही अतिज्ञान (अभिञ्ञा) की प्राप्ति।

1. पाली भाषा में परंपरागत रूप से पूर्व कथनों को संदर्भित करने के दो तरीके हैं: (क) रुक्खारूल्हा नया, (ख) मग्गागामा नया। यहाँ, पहला तरीका, रुक्खारूल्हा नया, प्रयोग किया गया है। अतः हेत्झा, वृक्ष के निचले भाग को दर्शाता है जिस पर पहले चढ़ा गया था। इस प्रकार पाली अभिव्यक्ति हेत्झावुत्त का अंग्रेजी पर्याय "उपर्युक्त" है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "नीचे कहा गया"।

1.8 ऊपर दिए गए श्लोक में, इस संदर्भ में, अर्थात्: "अस्समो सुकतो मयहंग" से ऐसा प्रतीत होता है कि: ऐसा कहा गया है मानो पत्तों की कुटिया और गलियारे से युक्त आश्रम का निर्माण ज्ञानी सुमेधा ने अपने हाथों से किया हो। लेकिन वास्तव में यहाँ इसका अर्थ यह है: सक्का ने देखा कि महान सत्ता हिमालय में प्रवेश कर धम्मिका पर्वत की घाटी में पहुँच गई है, तो उसने युवा देवी विस्सकम्मा को इस प्रकार संबोधित किया: "मेरी प्रिय! "इस बुद्धिमान सुमेधा ने संसार त्याग दिया है और अपने नगर से बाहर आ गए हैं, आप उनके लिए एक निवास स्थान बनाएँ।" उस दिव्य प्राणी, विस्साकम्मा ने सक्का के शब्दों को ग्रहण करते हुए, एक रमणीय आश्रम की रचना की, जिसमें एक सुरक्षित पत्तन की कुटिया और एक सुखद गलियारे (या सैरगाह) शामिल थे। हालाँकि, तेजस्वी बुद्ध ने उस आश्रम को उनके अच्छे कर्मों की प्रबल शक्ति के कारण पूर्ण बताया और कहा: सारिपुत्त! धम्मिका पर्वत की उस घाटी में:-

"मेरे लिए वह एक सुव्यवस्थित आश्रम था, जो पाँचों से मुक्त था।"
एक अच्छी तरह से निर्मित पत्तों की झोपड़ी और एक अन्य दोष सहित
क्लोस्टर-वॉक (या सैरगाह)।

वहाँ, (दो पंक्तियों के उस श्लोक में), अभिव्यक्ति सुकतो मयहंग को 'सुत्तु कातो मयः' के रूप में व्याख्यायित किया जाना है, 'मेरे द्वारा अच्छा किया गया'; अभिव्यक्ति पन्नासाला सुमापिता को इस प्रकार समझा जाना है: पन्नाच्चदानसालापि मे सुमापिताहोसि (पत्तों की छत से ढका एक घर भी मेरे द्वारा ठीक से बनाया गया था)।

1.9 पंचदोसविवज्जिता अभिव्यक्ति में: ये (खराब) मठ-मार्ग (या सैरगाह) के पाँच दोष हैं: (1) कठोरता और असमान सतह (2) अंदर पेड़ होना (3) गोबर या झाड़ियों से ढका होना (4) बहुत संकरा होना (5) बहुत चौड़ा होना। वास्तव में, असमान और कठोर सतह पर

सैरगाह पर चलने वाले व्यक्ति को कष्ट होता है; सूजन और छाले पड़ जाते हैं। मन एकाग्र नहीं हो पाता। ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं होती। दूसरी ओर, नरम और समतल सतह पर आराम से चलना ध्यान साधना में अच्छी प्रगति के लिए सहायक होता है। इसलिए, मठ की कठोरता और असमान स्थिति को एक दोष समझा जाना चाहिए। यदि मठ के अंदर, मध्य में या छोर पर कोई पेड़ हो, तो वहाँ अचानक आने वाले व्यक्ति का माथा या सिर उससे टकरा सकता है। अतः, उसमें पेड़ होना सैरगाह का दूसरा दोष है।
जो कोई भी अंधेरे में घास, लताएँ आदि से ढके हुए सैरगाह पर चलता है, वह या तो साँपों आदि जैसे जीवों को कुचलकर मार सकता है या उनके काटने से पीड़ा झेल सकता है। इसलिए झाड़ियों से घिरे होने की स्थिति तीसरा दोष है। जो व्यक्ति बहुत संकरे सैरगाह पर चलता है, जहाँ चौड़ाई केवल एक हाथ या आधा हाथ होती है, उसके नाखून, पैर की उंगलियाँ और हाथ की उंगलियाँ सीमा पर ठोकर लगने से टूट जाती हैं। इस प्रकार अत्यधिक संकरापन सैरगाह का चौथा दोष है। जो व्यक्ति बहुत चौड़े सैरगाह पर चलता है, उसका मन अशांत हो जाता है। मन एकाग्र नहीं हो पाता। इस प्रकार अत्यधिक चौड़ा होना सैरगाह का पाँचवाँ दोष है। चौड़ाई की दृष्टि से, यह (केंद्र में) डेढ़ हाथ और दोनों किनारों पर (प्रत्येक) लगभग एक हाथ चौड़ा होना चाहिए, जैसे छोटे गलियारे। इसकी लंबाई साठ क्यूबिट होनी चाहिए, और यह रेत से समान रूप से फैले हुए क्षेत्र को कवर करे। सैरगाह थेरा महा महिंदा की तरह होनी चाहिए, जो पैगोडा पहाड़ी (चेतियागिरि) पर स्थित द्वीप (लंका) को प्रकाश प्रदान करने वाले तेजस्वी देवता हैं।

1.10 'अष्टगुणसमुपेतं' अभिव्यक्ति को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'अष्टहि समणसुखेहि उपेतं', 'आठ प्रकार के भिक्षु सुखों से संपन्न'। ये आठ प्रकार के भिक्षु सुख हैं: धन और धान प्राप्त करने की स्थिति, भिक्षापात्र में निष्पाप भोजन प्राप्त करने का अवसर, शांतिपूर्वक भोजन करने की स्थिति, भ्रष्टता (किलेसा) का अभाव, जिसमें शाही रिश्तेदार आपस में राज्यों को परेशान करते हैं, उनके राज्य को लूटते हैं और धन, सिक्के आदि छीन लेते हैं, साथ ही एक-दूसरे का सिर कलम करते हैं; भिक्षु के साजो-सामान (या भिक्षु के उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों) के प्रति आसक्ति और लालसा से मुक्ति; लुटेरों द्वारा लूटे जाने पर निर्भयता का भाव; राजा और उसके प्रधानमंत्रियों से कोई संबंध न रखना; चारों दिशाओं में आघात (अप्पतिहत) न होने की स्थिति। यह कहा गया है: (सक्का) ने एक ऐसा आश्रम बनवाया, जहाँ रहने से संन्यासियों को आठ प्रकार के सुख प्राप्त हो सकें। इस प्रकार वह आश्रम आठ प्रकार के सुखों को बढ़ावा देता है।

1.11 अभिव्यक्ति: अभिञ्ञा-बलमाहरिञ को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: मैंने अनित्यता और दुःख (दुक्खा) के कोण से स्वयं को स्पष्ट रूप से देखने का प्रयास करके प्राप्त परम ज्ञान की शक्ति को उस आश्रम में रहते हुए नेत्रस्थल (कसीण, यंत्र) अभ्यास द्वारा उत्पन्न किया और उससे परम ज्ञान और ध्यान संबंधी उपलब्धियों (समापत्ति) को प्राप्त किया। जिस प्रकार मैं उस आश्रम में रहते हुए उस (आध्यात्मिक) शक्ति को उत्पन्न करने में सक्षम हूँ, ठीक उसी प्रकार (सक्का) ने परम ज्ञान (अभिञ्ञा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) की शक्ति प्राप्त करने के लिए उपयुक्त एक आश्रम की रचना की; इस प्रकार अभिव्यक्ति की व्याख्या की जानी चाहिए।

1.12 अभिव्यक्ति: sāṭakaŋ pajahiŋ tattha navadosamupāgataŋ का अर्थ इस प्रकार है:- यहाँ, यह प्रवचन अपने क्रमिक क्रम में है। कहा जाता है कि उस समय देवी विस्साकम्मा (संस्कृत: विश्वकर्मा) ने एक रमणीय आश्रम की रचना की, जिसमें शौचालय, सुरक्षित आश्रय, गलियारा आदि थे, जो पुष्पीय और फलदार वृक्षों से छायादार था, जिसमें मीठा जल बहता था, और जो ऐसे स्थान पर स्थित था जहाँ क्रूर जानवरों और भयानक जंगली पक्षियों को हटा दिया गया था, और जहाँ एकांत सुगम होता था। अलंकृत गलियारे के प्रत्येक छोर पर लकड़ी की रेलिंग बनाई गई थी; गलियारे के मध्य में बैठने के लिए **** (पृष्ठ 16) रंग की समतल सतह वाली पत्थर की आसन बनाई गई थी। आश्रम के भीतर, संन्यासियों की आवश्यक वस्तुएँ रखी गई थीं, जैसे: गुंथी हुई केश-गुच्छा, छाल के वस्त्र, तीन छड़ें (जिनसे तिपाई बनती है), एक जलपात्र इत्यादि; सामने के कक्ष (मंडप) में एक जलपात्र, एक शंख और एक तश्तरी सहित जलपात्र रखा गया था; ताप कक्ष (अग्गिसाला) में राख, जलाऊ लकड़ी आदि के लिए मिट्टी के बर्तन रखे गए थे। इस प्रकार, संन्यासियों के लिए उपयोगी सभी वस्तुएँ बनाई गई थीं। इसके बाद, एक शिलालेख उत्कीर्ण करवाकर: "जो भी संन्यासी बनना चाहते हैं, वे इन संन्यासी-आवश्यक वस्तुओं (तापसपरिक्खारा) को लेकर संन्यास ले सकते हैं"; (बाद में), देवता विस्साकम्मा अपने स्वर्गलोक लौट गए। उस समय, बुद्धिमान सुमेधा अपने निवास के लिए एक उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहे थे, क्योंकि उन्होंने पहाड़ियों और घाटियों के मार्ग का अनुसरण किया था। हिमालय की तलहटी में। नदी के मोड़ पर, ज्ञानी व्यक्ति ने सक्का द्वारा प्रदत्त और विस्साकम्मा द्वारा निर्मित रमणीय आश्रम देखा। वह एकांतवास के एक छोर पर गया, और ज़मीन पर कोई पदचिह्न न देखकर मन ही मन सोचने लगा: "ज़रूर नियमित संन्यासी पास के गाँव में भीख माँगकर भोजन की तलाश में गए होंगे और थककर लौट आए होंगे, और इस पत्तियाँ-पत्थर की

कुटिया में आकर बैठ गए होंगे।" इसलिए, उसने थोड़ी देर प्रतीक्षा की और बाद में मन ही मन कहा: "यह बहुत समय ले रहा है, मैं पता लगाऊँगा कि वास्तव में क्या है।" उसने पत्तियाँ-पत्थर की छत वाले आश्रम का द्वार खोला, अंदर प्रवेश किया, इधर-उधर देखा, बड़ी दीवार पर लिखे लेख को पढ़ा और कहा: "ये मेरे लिए उपयोगी और उपयुक्त वस्तुएँ हैं; इन्हें लेकर मैं एक सच्चा संन्यासी बन जाऊँगा।" ऐसा कहकर उसने अपने दोनों वस्त्र, निचले और ऊपरी, त्याग दिए। इसलिए कहा गया है: Sāṭakaŋ pajahiŋ tatthā,
'वहाँ मैंने अपने वस्त्र त्याग दिए।' हे सारिपुत्त! उस पत्तों की छत वाले आश्रम में प्रवेश करके मैंने अपने वस्त्र त्याग दिए।

1.13 अभिव्यक्ति: नवदोषमुपागतं, की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: 'मैंने अपने वस्त्रों का त्याग इसलिए किया क्योंकि मैंने उनमें नौ दोष देखे।' वास्तव में, संसार का त्याग करके संन्यासी बनने वालों के लिए, अच्छे वस्त्र में नौ दोष प्रकट होते हैं: (1) पहला दोष उसका उच्च मूल्य है; (2) दूसरा दोष दूसरों पर निर्भरता के कारण उसका अस्तित्व में आना है; (3) तीसरा दोष उसके उपयोग से शीघ्र गंदा हो जाना है; गंदा होने पर उसे धोना और रंगना भी आवश्यक है; (4) चौथा दोष उसके उपयोग से पुराना और घिस जाना है; फटे हुए वस्त्र को या तो सिलवाना पड़ता है या उसमें गसेट लगवाना पड़ता है; (5) पाँचवाँ दोष नए वस्त्रों का सफलतापूर्वक प्राप्त करने में कठिनाई है; (6) छठा दोष संसार का त्याग करने वाले संन्यासी के लिए उसका अनुपयुक्त होना है; (7) सातवाँ दोष शत्रुओं की साझा संपत्ति होना है। ताकि शत्रु इसे छीन न लें, इसलिए इसकी देखभाल की जानी चाहिए; (8) आठवां दोष यह है कि यह इसका उपयोग करने वाले के लिए आभूषण बन जाता है। (9) नौवां दोष अपने शरीर पर बोझ लादने, उसे ढोने और इधर-उधर घूमने के अत्यधिक लालच में निहित है।

1.14 अभिव्यक्ति: वाकाचीरं निवासेसिं का अर्थ इस प्रकार है: हे सारिपुत्त! उस समय मैंने इन नौ दोषों को देखकर अपने वस्त्र त्याग दिए और छाल का वस्त्र धारण कर लिया। मुंज सरकंडे को काटकर, उन्हें जोड़कर और बांधकर, सरकंडे का वस्त्र बनाया जा सकता था, जिसे मैंने अपने निचले और ऊपरी वस्त्रों के रूप में धारण किया।

1.15 द्वादसगुणमुनागतंग अभिव्यक्ति का अर्थ बारह प्रकार के लाभों से युक्त होना है। वास्तव में, सरकंडे के वस्त्र में बारह लाभ हैं; (1) पहला, इसकी कम कीमत, उत्कृष्टता और उपयुक्तता के कारण नया होना; (2) दूसरा, इसे स्वयं अपने हाथों से बनाया जा सकता है; (3) तीसरा, यह उपयोग से धीरे-धीरे गंदा होता है; और इसे धोने में कोई विलंब (पापंच) नहीं होता; (4) चौथा, उपयोग से घिस जाने पर भी इसमें रस्सा या सिलाई की आवश्यकता नहीं होती; (5) पाँचवाँ, नया वस्त्र खरीदने पर आसानी से उपलब्ध होना; (6) छठा, संन्यासी संन्यासी के लिए इसकी अनुकूलता; (7) सातवाँ, शत्रुओं के लिए लाभदायक न होना; (8) आठवाँ, पहनने वाले को स्वयं को सजाने का कोई कारण (ताना) न होना। (9) नौवां इसे ले जाने में हल्कापन है; (10) दसवां वस्त्र की आवश्यकता में कम इच्छा (अपिचा) है; (11) ग्यारहवां सरकंडे (सन्यासियों के वस्त्र के लिए कच्चा माल) की प्राप्ति के लिए निष्पाप और धर्मी होना है; (12) बारहवां सरकंडे के वस्त्र के नष्ट हो जाने पर भी उदासीनता है।

1.16 अभिव्यक्ति: aṭṭhadosa samākiṇṇaŋ pajahiŋ paṇṇasālakaŋ को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: मैंने कैसे त्याग दिया? कहा जाता है कि (बुद्धिमान सुमेधा ने) उत्तम वस्त्रों का सूट (युग) उतार दिया, अनोजा फूलों की माला के समान लाल सरकंडे का वस्त्र धारण किया, जो एक वस्त्र की आवश्यकता के अनुरूप था, निचला वस्त्र पहना, जिसके ऊपर उन्होंने अपने ऊपरी अंगों पर सुनहरे रंग का एक और सरकंडे का वस्त्र पहना, जबकि अपने एक कंधे पर उन्होंने उसके खुरों सहित पुन्नागा फूलों के फैले हुए ढेर के समान एक मृग की खाल रखी, उपयुक्त रूप से गुंथे हुए बालों के घेरे को खोल दिया, उसे अपने केश-शिखर के साथ अविचल बनाने के उद्देश्य से (कठोर लकड़ी की) एक मजबूत सुई चुभो दी, ******(पृष्ठ 18) एक डोरी से, जो जाल से निकले ढीले धागे के समान थी, उन्होंने मूंगे के रंग का पीने के पानी का बर्तन नीचे उतारा, एक डंडा लाया, जिसमें तीन बिंदुओं पर वक्र थे, डंडे के एक सिरे पर उन्होंने पीने के पानी का बर्तन लटका दिया; दूसरे, हुक, टोकरी और तीन-छड़ी आदि लेकर; उसने भार से लदे खंभे को अपने कंधे पर उठाया; अपने दाहिने हाथ से उसने अपनी तपस्वी छड़ी (कत्तरदण्डक) पकड़ी, पत्तों की छत वाले आश्रम से बाहर निकला, साठ क्यूबिट के विशाल मठ (महाचंकम) में इधर-उधर चला (एम*****?पृष्ठ 19), अपने स्वरूप को देखा और मन ही मन कहा, 'मेरी इच्छित वस्तु अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई है; मेरा त्याग वास्तव में तेजस्वी है; मेरा यह त्याग सर्वज्ञ बुद्धों, मौन बुद्धों और सभी बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित (वान्निता) और स्तुति (थोमित) है; मैंने अपने गृहस्थ बंधन को त्याग दिया है; मैं संसार का त्याग करके निकला हूँ; अब मैंने एक संन्यासी का सबसे श्रेष्ठ जीवन प्राप्त कर लिया है।' अब मैं संन्यासी के कर्तव्यों का पालन करूंगा ताकि मुझे सही मार्ग (मग्ग) का सुख और

उसका फल (फल) प्राप्त हो सके। उनमें ऊर्जा का संचार हुआ; उन्होंने अपना भार लटकाने वाला डंडा नीचे रख दिया, स्वयं एक बैठी हुई स्वर्ण प्रतिमा के समान, मठ के केंद्र में स्थित सेम के रंग की पत्थर की पटिया पर बैठ गए, दिन का कुछ भाग व्यतीत किया; और शाम को पत्तों की छत वाले आश्रम में प्रवेश किया; वे फटी हुई बांस की पलंग (बिदल) के किनारे टहनियों से बनी चटाई (कट्ठाथारिका) पर लेट गए, अपने शरीर को तरोताजा किया (अर्थात ठंडे पानी से शरीर को धोकर आदि), सुबह बहुत जल्दी उठ गए, और अपने (वहाँ) आने पर इस प्रकार विचार किया: "गृहस्थ जीवन में दोष देखकर, मैंने अपने अपार धन और अनंत समृद्धि को त्याग दिया, वन में प्रवेश किया और संन्यासी बन गया।" मैं त्याग का साधक (नेक्खम्मगवेशक) हूँ। अब से मेरे लिए विस्मृति में भटकना उचित नहीं है। बुरे विचारों के कीड़े एकांत त्यागने वाले भटकते हुए व्यक्ति को नष्ट कर देते हैं। इस समय मेरे लिए एकांतवास में स्वयं को समर्पित करना उचित है। मैंने गृहस्थ जीवन को बाधा के रूप में देखते हुए ही त्याग किया है।यह पत्तों की छत वाला आश्रम मुझे बहुत भाता है; इसके चारों ओर का मैदान पके हुए बेल के रंग का है; इसकी सफेद दीवारें चांदी जैसी चमकती हैं; पत्तों की छत कबूतर के पैरों के रंग की है; इसकी फटी हुई बांस की पलंग रंग-बिरंगे कालीन जैसी है; यह एक सुखमय निवास है। मुझे लगता है कि इस पत्तों की छत वाले आश्रम के अलावा कोई और इतना सुखदायी निवास (गेहसंपदा) नहीं है।" इस प्रकार ज्ञानी सुमेध ने अपने पत्तों की छत वाले आश्रम की कमियों की जांच करते हुए आठ दोष देखे।

1.17 पत्तों की छत वाले आश्रम का उपयोग करने में वास्तव में आठ हानियाँ हैं: (1) पहली हानि आवश्यक सामग्री को बड़ी मेहनत से इकट्ठा करने और तैयार करने में निहित है; (2) दूसरी हानि घास, पत्तों और मिट्टी के गिरने पर उन्हें बार-बार सही ढंग से बदलने के उद्देश्य से निरंतर सतर्कता बरतने में निहित है; (3) तीसरी हानि यह कहते हुए उठने में निहित है कि जो व्यक्ति असमय जाग जाता है, जैसे कि कोई वृद्ध तपस्वी आश्रम में आ जाए, उसे एकाग्र मन की शांति नहीं मिल पाती; (4) चौथी हानि ठंड, गर्मी आदि से बचाव के कारण शरीर के नाजुक होने में निहित है; (5) पाँचवीं हानि आलोचना को दबाने में निहित है, क्योंकि किसी भी निवास में प्रवेश करने वाला व्यक्ति कोई भी बुरा कर्म कर सकता है; (6) छठी हानि यह कहते हुए अधिग्रहण करने में निहित है: 'यह मेरा है'; (7) सातवीं हानि इस तथ्य में निहित है कि इस, अर्थात् पत्तों की छत वाले आश्रम का अस्तित्व, किसी के दूसरे निवास स्थान जैसा प्रतीत होता है; (8) आठवीं हानि अनेकों के साथ रहने में निहित है, क्योंकि वहां रहने वाले साधु को पीले रंग की जूं (ऊकामंगुल), घरेलू छिपकलियों आदि के साथ मिलकर रहना होगा। इस प्रकार, आठ हानियों को देखते हुए, महानुभाव ने पत्तों की छत वाले आश्रम का त्याग कर दिया। अतः कहा गया है: "मैंने आठ हानियों से ग्रस्त पत्तों की छत वाले आश्रम का त्याग कर दिया।"

1.18 यह अभिव्यक्ति:- उपगमिं रुक्खमूलं गुणे दशहुपागत, का अर्थ इस प्रकार समझा जाना चाहिए: छत वाले निवास (चन्नम) को त्यागकर, मैं दस उत्तम गुणों से युक्त वृक्ष की तलहटी की ओर गया। इस अभिव्यक्ति में दस उत्तम गुण इस प्रकार हैं: (1) पहला उत्तम गुण है कम प्रयास, वास्तव में, वहाँ जाने मात्र से ही यह उचित है; (2) दूसरा गुण है सतर्क रहने की आवश्यकता न होना; (3) वास्तव में, चाहे साफ किया हुआ हो (सम्मत्था) या बिना साफ किया हुआ (असम्मत्था), यह हमेशा उपयोग के लिए तैयार रहता है; तीसरा गुण यह है: उठने और काम करने की कोई आवश्यकता नहीं है; (4) चौथा गुण यह है कि यह निंदा से बचने का आवरण नहीं देता; वास्तव में, वहाँ पाप करने पर पापी लज्जित होता है; इस प्रकार, निंदा से कोई आवरण नहीं है; (5) पाँचवाँ गुण शरीर की कठोरता का अभाव है, क्योंकि वृक्ष की जड़ में रहने वाला संन्यासी खुले में रहने वाले की तरह अपने शरीर को कठोर नहीं करता; (6) छठा गुण किसी भी निवास से लगाव का अभाव है; (7) सातवाँ गुण किसी भी निवास से आसक्ति का निषेध है; (8) आठवाँ गुण निष्कासन का अभाव है, जैसे कि किसी ऐसे घर में जहाँ कई लोग रहते हों; (9) नौवाँ गुण निवास करने वाले संन्यासी का उत्साह से भर जाना है; (10) दसवाँ गुण उदासीनता है; क्योंकि संन्यासी जहाँ भी जाता है, उसे वृक्ष की जड़ में निवास आसानी से मिल जाता है। इसलिए पाठ कहता है: 'मैं इन दस गुणों को देखकर वृक्ष की तलहटी में जाता हूँ।'

1.19 इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, महान आत्मा अगले दिन भोजन मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। गाँव में, जहाँ वे स्वस्थ अवस्था में पहुँचे, लोगों ने उन्हें बड़े प्रेम से भोजन दिया। उन्होंने भोजन समाप्त किया, अपने एकांतवास में वापस आए, बैठ गए और इस प्रकार सोचने लगे:- "मैंने संसार का त्याग और संन्यास भोजन प्राप्त करने के लिए नहीं लिया; उदाहरण के लिए, यह वसायुक्त (सिनिद्ध) भोजन पुरुष के अहंकार, घमंड और कामुक उत्तेजना को बढ़ाता है। भोजन से उत्पन्न होने वाले दुखों का भी कोई अंत नहीं है। क्या मेरे

लिए यह अच्छा नहीं होगा कि मैं बोए और उगाए गए अनाज से उत्पन्न भोजन का त्याग कर मौसमी फल खाने लगूँ!" उस समय से, बुद्धिमान सुमेधा ने ऐसा ही किया और प्रयास और परिश्रम से मात्र सात दिनों के अंतराल में आठ आध्यात्मिक उपलब्धियों (समापत्ति) के साथ-साथ पांच प्रकार के ज्ञान (अभिज्ञा) को भी प्राप्त कर लिया। इसलिए, यह कहा गया है:-

मैंने बोए और खाए हुए चावल के दानों से पूरी तरह परहेज किया।
उगाया गया; मौसमी फलों पर अनेक गुणों से युक्त
मैंने अच्छे गुणों को अपने जीवन में उतारा। वहाँ मैंने प्रयास किया।
कठिन परिश्रम, बैठना, खड़े होना और चलना;
सात दिनों के भीतर, मुझे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हो गई।
अतिज्ञान का।"

दीपांकर बुद्ध ने सुमेधा के लिए बुद्धत्व की भविष्यवाणी की
1.20 जब सुमेधा नामक ऋषि ने इस प्रकार अतिज्ञान की आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर ली थी और अपनी उत्कृष्ट उपलब्धि के आनंद में समय व्यतीत कर रहे थे, तब दीपांकर नाम के विश्व-शिक्षक का संसार में उदय हुआ। उनके गर्भाधान, जन्म, ज्ञानोदय और धम्म के चक्र को घुमाने के समय, समस्त दस हजार विश्व-तत्व कांप उठे, थरथरा उठे और हिल गए। एक भयंकर कोलाहल हुआ। बत्तीस अपशकुन (पुब्बानिमित्त) प्रकट हुए। सुमेधा नामक ऋषि, जो अपनी आध्यात्मिक उपलब्धि (समापत्ति) के आनंद में समय व्यतीत कर रहे थे, उन्होंने न तो वह ध्वनि सुनी और न ही वे अपशकुन देखे

"जब मैंने इस प्रकार अपनी उपलब्धि प्राप्त कर ली और
इस अनुशासन में अपनी इंद्रियों पर प्रबल नियंत्रण।
एक एकांतवासी, विजेता और पुरुषों के नेता के रूप में,
जैसे ही दीपांकर संसार में प्रकट हुए। मैं उसमें लीन हो गया था।
गहन ध्यान (झान) में लीन होकर मैंने ऐसा नहीं किया
उनके प्रकट होने के समय, चारों शकुनों पर ध्यान दें।
उनका जन्म, उनका ज्ञानोदय और उनका उपदेश
सच।

1.21. उस समय, दस अलौकिक रूप से शक्तिशाली (दशबल) दीपांकर बुद्ध, चार लाख दोषरहित (खीणासव) शिष्यों के साथ, क्रमिक रूप से आसान चरणों में यात्रा करते हुए, राम्मा नगर पहुंचे और सुदस्सन के महान मठ में निवास करने लगे। राम्मा नगर के नागरिकों ने सुना कि भिक्षुओं के नेता दीपांकर, सर्वज्ञ बुद्ध के सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करके, धर्म के उत्कृष्ट चक्र का संचालन करते हुए, क्रमिक रूप से आसान चरणों में यात्रा करते हुए, उनके राम्मा नगर पहुंचे हैं और सुदस्सन के महान मठ में ठहरे हुए हैं। फिर वे घी, ताजा मक्खन आदि, साथ ही रोगों की दवाइयाँ, वस्त्र और कपड़े के आवरण अपने हाथों में लिए हुए, इत्र, फूलों की मालाएँ आदि लिए हुए, इस प्रकार व्यवहार करते हुए कि जिस दिशा में बुद्ध, धम्म और संघ स्थित थे, उस दिशा में वे प्रणाम करते, झुकते और ढलान बनाते हुए गुरु के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, आदरपूर्वक उन्हें इत्र, फूलों की मालाएँ आदि भेंट कीं, एक उपयुक्त तरफ बैठ गए, धम्म के उपदेश सुने, बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया, अपनी सीटों से उठे और चले गए।

1.22. अगले दिन, उन्होंने एक बड़ा दान-पुण्य किया, शहर को सजाया, और दसबाला बुद्ध के आगमन के लिए मार्ग को उनके योग्य बनाने के लिए, जहाँ कहीं जल द्वारा मिट्टी का कटाव हो गया था (उदकभिन्न), वहाँ मिट्टी भर दी, ज़मीन को समतल किया और उस पर

चाँदी के रंग की रेत बिछा दी। उन्होंने भुने हुए अनाज और फूल भी बिखेर दिए। विभिन्न रंगों में रंगे हुए कपड़ों के टुकड़ों से सजे झंडे और मालाएँ भी फहराई गईं और दिखाई गईं। पत्तों वाले केले के पेड़ और पानी से लबालब भरे मिट्टी के घड़ों की कतारें भी लगाई गईं। उस अवसर पर, ऋषि सुमेधा अपने आश्रम से आकाश में गए और जब वे हवा में उन लोगों के ऊपर से गुज़रे, तो उन्हें खुशी से हँसते हुए देखा, आकाश से नीचे उतरे, एक तरफ खड़े हुए और लोगों से पूछा कि आखिर क्या बात है, इस प्रकार:- "हे मेरे मनुष्यों! तुम इस ऊबड़-खाबड़ सड़क को किसके लिए सजा रहे हो?" इसलिए, यह कहा गया है:-

"तथागत को बाहरी इलाके में आमंत्रित करने के बाद"
उस क्षेत्र में, प्रसन्न हृदय वाले लोगों ने सफाई की।
उनके आगमन का मार्ग। उस अवसर पर, मैंने छोड़ दिया।
मेरी अपनी शरणस्थली; अपने सरकंडे के वस्त्र को झटकते हुए, मैं
फिर बादलों में ऊपर चला गया। लोगों को ऊपर जाते हुए देखकर
भावुक, खुशी और प्रसन्नता से हंसते हुए, मैं
वह आकाश से उतरा और लोगों से पूछा
वहीं और उसी समय:- किसके लिए सड़क साफ की गई थी?
और इसी तरह सीधा किया गया, पुरुषों का यह विशाल समूह,
उत्साहपूर्वक आनंदित और हँसी से झूमते हुए (अंजसम)
vaṭumāyanam)?

1.23. लोगों ने उत्तर दिया, “आदरणीय सुमेधा! क्या आपको नहीं पता था? सर्वज्ञ दशबल बुद्ध दीपांकर ने परम ज्ञान प्राप्त कर धर्मचक्र का संचालन करते हुए अपनी यात्रा पर हमारे नगर में आगमन किया था और अब वे महान सुदस्सन मठ में निवास कर रहे हैं। हमने उस तेजस्वी बुद्ध को आमंत्रित किया था। हम अब इस मार्ग को इस तेजस्वी बुद्ध के आगमन के लिए सुशोभित कर रहे हैं।” तब संन्यासी सुमेधा ने मन ही मन सोचा, “इस संसार में बुद्ध का नाम सुनना भी कितना कठिन है। बुद्ध के प्रकट होने का क्या ही कठिन होगा? मेरे लिए अच्छा होगा कि मैं इन लोगों के साथ मिलकर दशबल बुद्ध के लिए मार्ग को सुशोभित करूँ।” तब उन्होंने उन लोगों से कहा, “यदि आप सब बुद्ध के लिए इस मार्ग को सुशोभित कर रहे हैं, तो कृपया मुझे भी एक भाग दें; मैं भी तुम्हारे साथ मिलकर सड़क को समतल करूँगा।” उन्होंने ‘ठीक है’ कहते हुए सहमति जताई और जल-क्षरण से क्षतिग्रस्त एक स्पष्ट रूप से सीमांकित क्षेत्र उन्हें सौंपते हुए कहा, “तुम्हें इस गड्ढे को समतल कर देना चाहिए,” क्योंकि वे सभी जानते थे कि सुमेधा (पृष्ठ 24) के पास अलौकिक शक्ति थी। बुद्ध के चिंतन में तल्लीन सुमेधा ने मन ही मन सोचा, “मैं अपनी जादुई शक्ति से इस भूमि को समतल करने में सक्षम हूँ। इस प्रकार की मरम्मत मुझे पूरी तरह से संतुष्ट नहीं करेगी; अब मुझे स्वयं शारीरिक श्रम करना होगा।” ऐसा सोचने के बाद, उन्होंने स्वयं ढीली मिट्टी लादकर उस क्षतिग्रस्त क्षेत्र में डाल दी।

1.24. उस छोटे से खंड में उनका समतलीकरण कार्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि दसबाला दीपांकर, अपने चार लाख शिष्यों से घिरे हुए, जो उनके दोषरहित अरहंत थे और आध्यात्मिक रूप से अत्यंत शक्तिशाली और अतिज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उस समतल और सुशोभित मार्ग पर एक सिंह की तरह प्रवेश कर गए, मानो किसी रमणीय पत्थर की पटिया पर अपनी गतिविधि के लिए तैयार हों, बुद्ध की अतुलनीय महिमा के बीच, दिव्य और मानवीय प्राणियों द्वारा आदर, सम्मान और भेंट अर्पित की जा रही थी, जिनमें से दिव्य प्राणी दिव्य सुगंध, माला आदि से सजे हुए थे, दिव्य संगीत बजा रहे थे और साथ मिलकर दिव्य गीत गा रहे थे, और मनुष्य मानवीय इत्र, पुष्प-माला आदि से सजे हुए थे और मानवीय संगीत बजा रहे थे। ऋषि सुमेधा ने अपनी आँखें खोलीं और दसबल बुद्ध के व्यक्तित्व को देखा, जो एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस गुणों से सुशोभित थे, अस्सी छोटे संकेतों से प्रकाशित थे, एक अथाह गहराई के प्रकाश से सावधानीपूर्वक घिरे हुए थे, जिनका शरीर उत्तम शारीरिक अनुपातों से परिपूर्ण था, जिनसे बुद्ध की ठोस छह-रंगीय किरणें निकल रही थीं, जो चारों ओर फैलकर और विकिरण करते हुए जोड़े और युग्म (युगल युगल भूता) बना रही थीं, जैसे रत्न रंग के नीले आकाश की सतह (गगनातल) पर बिजली की विभिन्न श्रेणियों की लताओं (विजुलता) के समान। उन्होंने यह निर्णय लिया: "अब मेरे लिए दसबल बुद्ध को अपना प्राण

अर्पित करना ही उचित है। हे प्रतापी बुद्ध, कीचड़ पर न चलें। वे अपने चार लाख दोषमुक्त शिष्यों के साथ, मेरी पीठ पर ऐसे चलें मानो रत्नों से बने पुल पर चल रहे हों। ऐसा करने से मुझे दीर्घकाल तक लाभ और सुख प्राप्त होगा।" यह निर्णय लेने के बाद, ऋषि ने अपनी चोटी खोली, काले रंग की मिट्टी पर अपनी हिरण की खाल, अपनी गुंथी हुई बालों की माला और अपने सरकंडे के वस्त्र फैलाए, और स्वयं को रत्नों से सजे पुल की तरह मिट्टी के ऊपर लिटा दिया। अतः यह कहा गया है:-

जब मैंने उनसे पूछा, तो उन्होंने मुझे इस प्रकार बताया:
'बुद्ध संसार में प्रकट हुए हैं।'
विजेता दीपांकर के नाम से प्रसिद्ध,
जिसका कोई श्रेष्ठ नहीं है, और जो नेता है।
पुरुषों के संरक्षक। उनके लिए, मार्ग है
सफाई की गई और उसे व्यवस्थित किया गया।
"बुद्ध शब्द सुनते ही मेरा उत्साह..."
यह विचार वहीं और उसी क्षण उत्पन्न हुआ। मुझे मानसिक आनंद मिला।
जैसे ही मैंने ये शब्द दोहराए: बुद्ध! बुद्ध!
मैं वहाँ खड़ा होकर प्रसन्न और उत्साहित होकर सोचने लगा।
मैं मन ही मन सोच रहा था: 'यहाँ मैं बीज बोऊँगा, चलो
एक पल की भी देरी नहीं होनी चाहिए।
"यदि आप सभी बुद्ध के लिए सफाई कर रहे हैं, तो कृपया
मुझे भी ऐसा करने का अवसर मिलेगा। मैं भी ऐसा करूँगा।
सड़क की सफाई और उसे सीधा करना
उसी का।
"जब उन्होंने मुझे सड़क साफ करने का मौका दिया।
मन ही मन बुद्ध! बुद्ध! कहकर मैंने साफ किया
फिर सड़क।
"सड़क की मरम्मत का अपना हिस्सा पूरा करने से पहले,
महान ऋषि दीपांकर, विजेता, साथ में
चार लाख ऐसे स्टेनलेस और

(पृष्ठ 26) शिष्यों ने छह प्रकार प्राप्त कर लिए थे
अतिज्ञान रास्ते में प्रकट हुआ।
"आनंदित देवता और मनुष्य मिलने के लिए निकले; कई
ढोल बजने लगे और बधाईयां दी गईं।
"स्वर्गीय प्राणियों ने मनुष्यों को देखा और इसलिए
क्या मनुष्य देवताओं के समान थे? वे दोनों ही उनका अनुसरण करते थे।
बुद्ध के पीछे, हाथ जोड़े हुए
आराधना।
"स्वर्गीय संगीत वाद्ययंत्रों वाले दिव्य प्राणी-

वाद्ययंत्र और मानव बैंड वाले मनुष्य
संगीत के क्षेत्र में, दोनों वर्गों के छात्रों ने अपनी-अपनी प्रस्तुतियाँ दीं।
संगीत और तथागत का अनुसरण किया।
दिव्य प्राणी स्वर्ग की ऊँचाई पर चढ़ गए।
आकाश और बिखरे हुए दिव्य मंदारव
परिचट्टका मूंगा फूलों के साथ और
चारों ओर कमल के फूल खिले हुए हैं। स्वर्गिक दृश्य!
प्राणी आकाश की दिव्य ऊंचाइयों पर चढ़ गए
और दिव्य चंदन पाउडर की वर्षा की और
हर तरह से बेहतरीन परफ्यूम।
मनुष्य पृथ्वी की सतह पर विचरण करते थे।
जमीन पर गिरा और चारों दिशाओं में सुगंधित हवा फेंक दी
कैम्पाका के सफेद और पीले फूल, मीठी सुगंध वाले
सलाला के फूल, अशोक के फूल, लाल परी वृक्ष
और पुन्नागा के फूल, साथ ही केतका के फूल भी।
अपने बिखरे बालों के साथ, मैंने अपनी त्वचा को फैलाया।
मैंने कीचड़ पर आसन और सरकंडे का वस्त्र रखा और फिर लेट गया।
मैंने अपना चेहरा नीचे की ओर करके खुद को नीचे झुका लिया।
बुद्ध अपने शिष्यों के साथ पदयात्रा पर जाते हैं
मुझ पर; उन्हें उस कीचड़ पर पैर न रखने दें।
यह मेरे कल्याण के लिए होगा।

1.25. लेकिन उस ऋषि सुमेधा ने कीचड़ पर लेटे हुए अपनी आँखें खोलीं और दशबल दीपांकर बुद्ध की महिमा को ध्यानपूर्वक देखते हुए इस प्रकार चिंतन किया: "यदि मैं चाहूँ, तो मैं अब सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) को जलाकर बुद्ध के शिष्यों के संघ का नया सदस्य बन सकता हूँ और राम नगर में प्रवेश कर सकता हूँ। परन्तु मेरे लिए, दुराचार (किलेसा) को जलाकर अमर सुख (निर्वाण) प्राप्त करने जैसा कोई विषय नहीं है। क्या मेरे लिए यह उचित नहीं होगा कि मैं इस दशबल दीपांकर की तरह परमभिसंबोधि की सर्वोच्च चोटी प्राप्त करूँ, असंख्य लोगों को सत्य (धम्म) के मार्ग पर चलने में सहायता करूँ, उन्हें बार-बार जन्मों के सागर से पार कराऊँ और उसके बाद ही मैं स्वयं पूर्ण निर्वाण प्राप्त करूँ? यह मेरे लिए उचित होगा। इसके बाद, उन्होंने आठ धम्मों का पालन करते हुए बुद्ध बनने का संकल्प लिया। अतः यह कहा गया है:-

"लेटते समय मेरे मन में यह विचार आया।"
ज़मीन पर: 'अगर मैं अब ऐसा चाहूँ, तो मैं कर सकता हूँ'
मेरी सारी बुराइयाँ (किलेसा) जलाकर राख हो जाएँ। इसका क्या लाभ?
मेरे लिए, यहाँ, सत्य (धम्म) को एक के रूप में समझना
अज्ञात व्यक्ति? स्वयं सर्वज्ञान प्राप्त कर लिया है-
विज्ञान, मैं अपने सभी साथियों को भेज दूंगा
देवताओं के साथ (सदेवकम)। इससे मेरा
बुद्ध के प्रति किया गया भक्तिपूर्ण कर्म (अधिकार)।
हे परम श्रेष्ठ पुरुष, मुझे सर्वज्ञता प्राप्त करने की शक्ति मिले।
और कई लोगों को भेजें।
बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों की धारा को काटकर

(संसार) ने तीन प्रकार के अस्तित्वों का नाश किया।
मैं स्वयं धर्म के जहाज पर सवार होऊंगा और
मेरे साथियों को देवताओं के साथ भेज दो
(सदेवकम)।

अतः जो व्यक्ति बुद्ध बनने की आकांक्षा रखता है, उसे...
उनकी आकांक्षा संयुक्त रूप से पूरी होती है
आठ आवश्यक शर्तों की पूर्ति
1. मनुष्य बनना;
2. पुरुष लिंग का प्राप्त होना;
3. परिस्थितिजन्य कारण;
4. गुरु (सत्था यानी बुद्ध) को देखना;
5. संन्यास लेकर भिक्षु बनना;
6. नेक गुणों का होना;
7. सर्मपित सेवा का कार्य;
8. तीव्र इच्छा।

1.26. केवल मनुष्य के अस्तित्व में स्थापित, बुद्धत्व का लक्ष्य रखने वाले व्यक्ति की आकांक्षा
यह कार्य बखूबी संपन्न हुआ है। दूसरी ओर, एक अजगर की प्रार्थना
या किसी तेज पंखों वाले गरुला पक्षी का, या किसी देवता का, या सक्का का।
देवों का राजा मानव अस्तित्व में प्रभावी नहीं है।
इसके अलावा, उस व्यक्ति की प्रार्थना, जिसके साथ पुरुष यौन संबंध है-
किसी अंग का प्रभाव तभी होता है जब वह स्त्री का हो या किसी हिजड़े का।
या ऐसे व्यक्ति का, जिसके जननांग नहीं हैं, या ऐसे व्यक्ति का, जिसके जननांग हैं
पुरुष और महिला दोनों के यौन अंग प्रकट नहीं होते हैं।
यहां तक कि एक पुरुष के मामले में भी, उसकी आकांक्षा तभी पूरी होती है जब पर्याप्त परिस्थितिजन्य कारण मौजूद हों।
उसी जीवन में अरहतत्व की प्राप्ति के लिए; अन्यथा नहीं। पर्याप्त परिस्थितिजन्य कारणों की उचित व्यवस्था के लिए भी, प्रार्थना केवल जीवित बुद्ध की उपस्थिति में ही की जानी चाहिए ताकि प्रार्थना प्रभावी हो सके; दूसरी ओर, मृत्यु के समय की गई प्रार्थना (परिनिभूत) बुद्ध की शरण में, या किसी मंदिर की उपस्थिति में, या उनके चरणों में।
बोधि वृक्ष का फल भी नहीं लगता।
बुद्धों की उपस्थिति में की गई आकांक्षा, केवल वही एक, जो
यह कार्य उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो स्थापित और मान्यता प्राप्त संन्यासी है।
एकांतवासी परिपूर्ण हो जाता है; परन्तु एकांतवासी के साथ ऐसा नहीं होता।
वह व्यक्ति, जिसे गृहस्थ समझा जाता है। यहाँ तक कि एक संन्यासी भी, केवल उसी की आकांक्षा होती है जिसने आठों प्राप्त कर लिए हों।
आध्यात्मिक उपलब्धियों (समापत्ति) और पांच प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) की सिद्धि प्राप्त होती है; परन्तु जो व्यक्ति उक्त पुण्य उपलब्धियों से रहित होता है, उसकी सिद्धि नहीं होती।
उपलब्धि वह भी है जिस पर किसी का अपना जीवन पूर्णतः टिका होता है।
बुद्धों को सर्मपित। उनकी इसी सेवा के कारण, सर्मपित सेवा कर्म करने वाले की आकांक्षा पूर्णतः परिपूर्ण हो जाती है, किसी और कारण से नहीं। सर्मपित सेवा कर्म पूर्णतः करने वाले की आकांक्षा परिपूर्ण हो जाती है।
इसके अलावा, केवल उसी व्यक्ति की प्रार्थना कारगर होती है जो अत्यधिक इच्छा, प्रयास, परिश्रम और गहन खोज रखता हो;

लेकिन दूसरे का नहीं।

1.27. उस संदर्भ में, यह उदाहरण है।
अत्यधिक इच्छा रखने वाले व्यक्ति के बारे में:- यदि कोई इस प्रकार सोचे कि मैं वहाँ जाने में सक्षम हूँ, अपनी शारीरिक शक्ति से इस संसार चक्र के संपूर्ण गर्भगृह को पार कर सकता हूँ, जो एक ठोस रूप में समाहित हो गया है, तो वह बुद्धत्व प्राप्त कर लेता है। या फिर, जो कोई भी पैदल चलकर, बांस की झाड़ियों से पूरी तरह ढके हुए संसार चक्र के संपूर्ण गर्भगृह को पार करते हुए उस पार किनारे तक जाने में सक्षम है, तो वह बुद्धत्व प्राप्त कर लेता है।
उन्हें हटाने पर, वह बुद्धत्व प्राप्त करता है। अन्यथा, जो कोई भी, चाहे जैसे भी हो,
पैदल चलकर या कदम बढ़ाते हुए बैंक तक जाने में सक्षम है।
भाले और नुकीले बरछी के मिश्रण पर और विश्व चक्र के भीतर हर जगह भाले पटकते हुए, उसने
बुद्धत्व प्राप्त करता है। या फिर, जो कोई भी, किसी भी तरह से, पूरी गुफा को पार करके दूसरे किनारे तक पहुँचने में सक्षम हो।
विश्व चक्र, अपने पैरों से भरी हुई सतह पर चलते हुए और
जलते हुए कोयले से भी समतल हो जाने पर, वह बुद्धत्व प्राप्त करता है। जो कोई भी
मानता है कि इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे पाना कठिन हो।
स्वयं द्वारा किया गया; यह कहते हुए: 'मैं इसे भी पार करके पहुँच जाऊँगा'
दूर का किनारा। इस प्रकार, वह स्वयं उचित रूप से संपन्न है।
अत्यंत इच्छा, प्रयास, परिश्रम और गहन खोज (परियेत्थी) के साथ। केवल ऐसी आत्मा की आकांक्षा ही पूर्ण होती है।
लेकिन दूसरे का नहीं। इसलिए, ऋषि सुमेधा ने लाया
इन आठ आवश्यकताओं ने मिलकर बुद्ध बनने और स्वयं को बलिदान करने का संकल्प उत्पन्न किया।

1.28. दीपांकर, जो महिमावान हैं, आकर सुमेधा ऋषि के सिरहाने खड़े हो गए। जब उन्होंने सुमेधा ऋषि को कीचड़ पर आँखें खोलकर लेटे हुए देखा, तो उनकी आँखें पाँच मनभावन रंगों से परिपूर्ण थीं, मानो रत्नजड़ित वंश के द्वार खुले हों। उन्होंने भविष्य के अपने ज्ञान का आह्वान करते हुए मन ही मन कहा, "इस ऋषि ने बुद्धत्व प्राप्त करने का संकल्प लिया और लेट गए; क्या इनकी आकांक्षा पूरी होगी या नहीं?" इस प्रकार चिंतन करते हुए, उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ: "अब से एक लाख कल्पों के बाद, और अनगिनत कल्पों के चार कालखंडों के बाद, उस अवधि को पार करने पर, यह बुद्ध, गौतम नाम से विराजमान होंगे।" सभा के बीच में,
खड़े-खड़े ही उन्होंने यह भविष्यवाणी की: “क्या आप सबने इस परम तपस्वी को देखा है, जो कीचड़ पर लेट गए हैं?” शिष्यों ने उत्तर दिया: “जी हाँ, हमने देखा है, पूज्यवर!” “इसने बुद्ध बनने का संकल्प लेकर स्वयं को लेटाया है, जिनका नाम गौतम है। अपने इस शरीर में वे कपिलवस्तु नगर के निवासी होंगे। उनकी माता का नाम माया देवी होगा। उनके पिता का नाम सुद्धोदन होगा। उनके प्रमुख शिष्य उपतिस्सा होंगे और उनके दूसरे शिष्य कोलिता होंगे। उस बुद्ध की सेविका खेमा थेरी होंगी और उनकी दूसरी महिला शिष्या उप्पलावना***(पृष्ठ 31) थेरी होंगी। जब इस ऋषि की बुद्धि पूर्णतः परिपक्व हो जाएगी, तो वे महान वैराग्य धारण करेंगे, अत्यंत कठोर तपस्या का जीवन व्यतीत करेंगे, निग्रोध बरगद के वृक्ष की तलहटी में भिक्षा के रूप में दूध-चावल ग्रहण करेंगे, नेरांजरा नदी के तट पर भोजन करेंगे, बोधि वृक्ष की छत पर चढ़ेंगे और असत्था वृक्ष की तलहटी में पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध बनेंगे। अतः यह कहा गया है:

"दीपांकर,***(पृष्ठ 31) जगत का ज्ञाता, दाता
मेरे सिर के ऊपरी सिरे पर बलि के उपहार रखे थे और
उन्होंने मेरे बारे में ये शब्द कहे:
'तुम इस साधु को गुंथे हुए बालों के साथ देखते हो और
मितव्ययिता! सुदूर भविष्य में कप्पा, पूरी तरह से अप्रत्याशित-
अब से कुछ समय बाद, वह बुद्ध बन जाएगा।
उनका जन्म कपिला नामक रमणीय नगर में होगा।
तथागत***(पृष्ठ 32) संसार का त्याग करेंगे और

कठोर तपस्या का आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए वह
कठिन कार्यों को करना।
बकरी चराने वाले के बरगद के पेड़ के नीचे बैठे तथागत
वहाँ दूध-चावल स्वीकार करके आगे बढ़ेंगे।
नेरांजारा नदी। उस विजेता को भोजन का आनंद अवश्य आएगा।
नेरांजारा नदी के किनारे दूध-चावल का और उसके बाद
बोधि वृक्ष के आधार के पास पहुँचेंगे***(पृष्ठ 32)
अच्छी तरह से तैयार किए गए रास्ते पर चलते हुए। अतुलनीय-
इसके बाद, वह छत की परिक्रमा करेगा।
बोधि वृक्ष और महान ख्याति प्राप्त व्यक्ति बन जाएंगे
असत्था पर्वत के चरणों में पूर्णतः प्रबुद्ध बुद्ध
वृक्ष।
इस बच्चे को जन्म देने वाली माता का नाम माया होगा
नाम। पिता को सुद्धोदन के नाम से जाना जाएगा और यह
वह संन्यासी गौतम बुद्ध बनेंगे। उनके प्रमुख शिष्यों में से एक...
उपतिस्सा और कोलिता रोग मुक्त होंगे।
(आसवगेन)***(पृष्ठ 32) कामवास से रहित, (राग), जिसका
मन शांत और संयमित हैं; परिचारक
आनंद नाम का एक व्यक्ति उस विजेता की सेवा करेगा।
प्रमुख महिला शिष्याएं खेमा और उप्पलावन्ना होंगी।
आसव से मुक्त, कामवासना से रहित, राग से मुक्त
शांत मन और संयमित (समाहिता)। बोधि
उस महान बुद्ध के वृक्ष को असत्था कहा जाता है।

1.29. उस भविष्यवाणी को सुनकर, ऋषि सुमेधा ने
यह सोचकर उसका मन प्रसन्न हो गया: "मुझे बताया गया है कि मेरा
हमारी आकांक्षा पूरी होगी। दशाबल दीपांकर के ये शब्द सुनकर कि ऋषि सुमेधा बुद्ध के बीज (बीज) और अंकुर (अंकुरा) हैं, जनसमूह आनंद और प्रसन्नता से भर गया। उन्होंने यह भी सोचा: “जैसे लोग नदी पार करते समय सीधे किनारे से पार न कर पाने के कारण नीचे से पार करते हैं, ठीक उसी प्रकार हम भी...”
सही मार्ग प्राप्त न कर पाना और व्यवस्था में सफलता न पाना
इस बुद्ध दीपांकर ने भी भावी बुद्ध (बोधिसत्व) की प्रशंसा की और उन्हें आठ मुट्ठी फूल भेंट करके सम्मानित किया।
उन्होंने उनकी परिक्रमा की और वहां से चले गए। उन चार लाख रोगमुक्त (खीणासव) शिष्यों ने भी बोधिसत्व को इत्र और मालाओं से सम्मानित किया, उनकी परिक्रमा की और
वे वहां से चले गए। दूसरी ओर, देवताओं और मनुष्यों ने भी इसी प्रकार सिर झुकाकर अपना सम्मान व्यक्त किया और चले गए।

1.30. सभी के चले जाने के बाद, बोधिसत्व लेटी हुई मुद्रा से उठे और फूलों के ढेर पर पालथी मारकर बैठ गए, और मन ही मन कहने लगे: "मैं जाँच करूँगा।"
या फिर उन सिद्धियों (पारमी) की खोज करें जिनकी तलाश करनी चाहिए। जब बोधिसत्व इस प्रकार बैठे थे, तो दस हजार लोक-चक्रों के सभी देवताओं ने उन्हें बधाई दी और विशेष रूप से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा: "आदरणीय सुमेधा! जब प्राचीन बोधिसत्व पद्मासन में बैठकर सिद्धियों की खोज करते थे, तो जो भी पूर्व संकेत प्रकट होते थे, वे सब अब प्रकट हो चुके हैं। निःसंदेह, आप बुद्ध बनेंगे। हम सब जानते हैं: 'जिस किसी को भी ये संकेत प्राप्त होते हैं, वह निश्चित रूप से बुद्ध बनता है'। आप अपना प्रयास दृढ़ करें और इस अवसर का लाभ उठाएं।" इसलिए, यह कहा गया है:

इस भविष्यवाणी को सुनकर मनुष्य और दिव्य प्राणी
अद्वितीय महान ऋषि (महेसी) के कथन थे
यह जानकर अत्यंत प्रसन्न (आमोदिता) हुई कि यह साधु
यह बुद्ध का बीज था। जयजयकार की गूंज सुनाई दी।
और वहां तालियां बजने लगीं और लोग खुशी से चिल्लाने लगे (हसन्ती)।
साथ ही, देवताओं के साथ-साथ संपूर्ण दस हजार संसार-
पुरुषों का एक समूह हाथ जोड़कर सिर झुकाए खड़ा था।
क्या हमें इस व्यवस्था के वितरण में विफलता का सामना करना पड़ेगा?
लोकनाथ (विश्व रक्षक), अभी आने वाले समय में, हम
उन्हें (निर्वाण की ओर अग्रसर होने का) अवसर प्राप्त होगा।
इस (सन्यासी) की उपस्थिति में। ठीक वैसे ही जैसे लोग,
नदी पार करते समय, विपरीत दिशा में पहुँचने में असफल रहने के बाद
तटबंध, महान नदी को पार करने के बाद
नदी पार करने के बाद बड़ी नदी को पार करना
निचले जलमार्ग पर, ठीक उसी तरह।
क्या हमें अपनी मुक्ति के लिए इस विजेता को खो देना चाहिए?
सुदूर भविष्य में हम शायद (मुक्त) हो जाएंगे
इसकी उपस्थिति। दीपांकर, ज्ञाता
लोकविदू (लोकविदू), बलिदान का योग्य प्राप्तकर्ता
मेरे कर्म की घोषणा करने के बाद, उन्होंने उपहार उठाकर अपना हाथ ऊपर उठा लिया।
दायाँ पैर। विजेता के सभी पुत्र, जो थे
वहाँ, उन्होंने मेरी परिक्रमा की। मनुष्य, ड्रैगन और
गंधब्बा की परियों ने मुझे प्रणाम किया और मुझे ले गईं।
उनका प्रस्थान। जब मैंने विश्व रक्षक को देखा
उनके भिक्षुओं के संगठन के साथ ही सब कुछ समाप्त हो गया था, मैं
फिर मैं प्रसन्न और आनंदित होकर अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ।
मेरा मन प्रसन्न हो गया। मैं आनंद से भर उठा, मैं
मैं अत्यंत प्रसन्न और उत्साह से अभिभूत था, तब
मैंने अपने पैर मोड़ लिए, पालथी मारकर बैठ गया और फिर सोचने लगा।
इस प्रकार: 'मैं अपनी इच्छा और प्रसन्नता से किसी भी अवस्था में प्रवेश कर सकता हूँ।'
चारों झानों (ध्यान समाधि/सम्मोहन अवस्थाओं) में पारंगत होकर पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं।
अतिज्ञान। ज्ञान के मामले में मेरे बराबर कोई संन्यासी नहीं है।
दस हजार दुनियाओं में, जादू के मामले में मेरा कोई सानी नहीं है।
मुझे ऐसी शक्तियां प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार का सुख मुझे मिला है।
मुझे पालथी मारकर बैठे हुए, यहाँ के निवासियों के लिए
दस हजार ब्रह्मांडों ने एक ज़ोरदार घोषणा की: "तुम
निश्चित रूप से बुद्ध बनेंगे: चाहे जो भी संकेत हों
पिछले बोधिसत्वों को उनके
पालथी मारकर बैठने की उनकी उत्कृष्ट मुद्रा अब स्पष्ट है:
ठंड दूर हो जाती है और गर्मी बुझ जाती है।
अब ऐसे घटनाक्रम देखने को मिल रहे हैं। निश्चित रूप से, आप देखेंगे।
बुद्ध बनो। "दस हजार विश्व-तत्व

ऐसी घटनाओं के प्रकट होने पर शांत और अविचलित हो जाना
आज स्वयं को सुधारो। निश्चय ही तुम बुद्ध बनोगे।
तेज हवाएं नहीं चलतीं, नदियां बहना बंद हो जाती हैं;
आज भी ऐसी घटनाएं होती हैं। आप निश्चित रूप से
बुद्ध बनो"। "उस प्राचीन अवसर पर फूल खिल रहे थे"
शुष्क भूमि और आर्द्र जल में उगने वाले वृक्ष और पौधे
फूलों से भर गया; ऐसी घटना होती है
आज भी ऐसा ही होता है। निश्चित रूप से आप
बुद्ध बन जाएंगे। "इसी तरह के महत्वपूर्ण अवसरों पर
पहले, फल देने वाले पौधे, चाहे वे थे
पेड़ हों या लताएँ, उन सभी में फल लगते थे;
अब तो सब फल से भरे हुए हैं। इसलिए यह निश्चित है कि
तुम बुद्ध बन जाओगे।
"इससे पहले, स्वर्गीय और सांसारिक रत्न चमकते थे।"
वैभव के साथ; वही रत्न अपनी चमक बिखेरते हैं।
अब भी चमकती हुई भव्यता। इसलिए यह निश्चित है।
तुम बुद्ध बन जाओगे।
"पहले, मानव और दिव्य संगीत वाद्ययंत्रों का प्रचलन था।"
सुनाई दिया; अब भी दोनों प्रकार के संगीत अपने चरम पर हैं।
उच्चतम स्वर। आप निश्चित रूप से बुद्ध बन जाएंगे।
"पहले, आकाश से वर्षा होती थी।"
ऊपर, बहुरंगी फूल; वही फूल
अभी भी बारिश हो रही है। बिल्कुल सही।
तुम बुद्ध बन जाओगे। "विशाल सागर (तब)"
पीछे हट गई, महान पृथ्वी, दस हजार (योजन)
विस्तार में), भूकंप आया; अब वे दोनों भी हैं
बेहद शोरगुल वाला। आप निश्चित रूप से बुद्ध बन जाएंगे।
"पहले, नरक में आग की लपटें, दस
हजार (योजन क्षेत्र में फैले हुए) जीवों का नाश हुआ;
अब भी, आग की वही लपटें हैं
शांत हो जाओ। निश्चय ही तुम बुद्ध बनोगे।
"उस समय सूर्य निर्मल था और सारे तारे भी।"
उन्होंने स्वयं को प्रकट किया; वे अब भी उसी प्रकार दिखाई देते हैं।
आप भी निश्चित रूप से बुद्ध बनेंगे।
"पहले तो पानी था ही, इसके बावजूद..."
बारिश न होने के कारण यह अंकुरित हो गया।
अब पृथ्वी से भी जल फूट रहा है।
जमीन पर बैठो। तुम निश्चित रूप से बुद्ध बन जाओगे।
तारे, ग्रह और तारामंडलों के समूह
आकाश की सतह पर चमक; एकता है
चंद्रमा का विसाख नक्खत्ता के साथ। निश्चित रूप से
तुम बुद्ध बन जाओगे।

"गुफाओं और बिलों में रहने वाले जानवर बाहर आ गए।"
उन्होंने अपने ही ठिकानों को (तब) अस्वीकार कर दिया; अब भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया।
उनकी कालकोठरी। निश्चित रूप से, तुम बन जाओगे
बुद्ध।"
"पहले, जीवों में कोई घृणा नहीं थी
जीव संतुष्ट थे। अब,
साथ ही, वे सभी आत्मसंतुष्ट हैं। निश्चित रूप से, आप
बुद्ध बन जाएँगे।"
"तब बीमारियों का अंत हुआ। भूख
भी समाप्त हो गई। आज भी उन्हें होना है।"
देखा (या यह ******(पृष्ठ 36) है)। यह निश्चित है कि आप
बुद्ध बन जाएँगे।"
"तब आसक्ति वाली इच्छा सूक्ष्म हो गई; क्रोध और
अंधकारमय भ्रम नष्ट हो गया। आज भी, सभी
वे कहीं और चले गए हैं। निश्चित रूप से, आप
बुद्ध बनो।"
"तो फिर कोई खतरा नहीं हुआ; आज भी यह
स्थिति देखी जाती है। हम उस विशेषता से जानते हैं
कि तुम निश्चित रूप से बुद्ध बन जाओगे।"
"धूल ऊपर आसमान में नहीं उड़ी। अब भी, यह
देखा जाता है। उस विशेषता से हम जानते हैं कि
तुम निश्चित रूप से बुद्ध बनोगे।
अप्रिय गंध दूर हो गई; दिव्य सुगंध फैल गई
(तब) वातावरण सुगंध से भर गया था। अब भी ऐसा ही है।
वही मीठी खुशबू हवा के साथ बहती है।
आप निश्चित रूप से बुद्ध बनेंगे।
"निराकार प्राणियों को छोड़कर सभी दिव्य प्राणी..."
उन्होंने (तब) खुद को प्रकट किया। उन सभी को होना है
अब भी दिख रहा है। निश्चय ही तुम बुद्ध बनोगे।
"पहले, सब कुछ दिखाई देता था, अर्थात्, जैसा कि
नरकलोक की बात करें तो, अब वे सभी दिखाई दे रहे हैं।
निश्चित रूप से, आप बुद्ध बनेंगे।
"पहले, दीवारें, दरवाजे और पत्थर नहीं थे
अब भी, उनके पास है
खाली आकाश बन जाओ। निश्चित रूप से, तुम बन जाओगे।
बुद्ध।"
"उस समय, उनका कोई अस्तित्व नहीं था
मृत्यु या जन्म (अर्थात मृत्यु या उत्पत्ति),
अपने प्रयास को मजबूती से थामे रखें; हार न मानें।
हाँ, आप आगे बढ़ सकते हैं। हमें भी इसके बारे में अच्छी तरह पता है।
तुम निश्चित रूप से बुद्ध बनोगे।

1.31. दस हजार विश्व-चक्रों के दिव्य प्राणियों की भविष्यवाणी और उनके कथन को सुनकर बोधिसत्व अत्यंत उत्साह से भर गए और उन्होंने इस प्रकार विचार किया:- "बुद्धों का स्वभाव व्यर्थ बोलना नहीं है। बुद्धों के कथन में कोई त्रुटि नहीं है। जिस प्रकार आकाश में फेंके गए मिट्टी के ढेले का नीचे गिरना निश्चित है, जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है, रात्रि के अंत में सूर्योदय निश्चित है, मांद से निकले शेर की दहाड़ निश्चित है, गर्भवती स्त्री का भारी बोझ उतारना अपरिहार्य है, उसी प्रकार बुद्धों की भविष्यवाणी भी व्यर्थ नहीं है। निश्चय ही मैं बुद्ध बनूंगा।" अतः यह कहा गया है:-

बुद्ध की भविष्यवाणी और दोनों को सुनने के बाद
दस हजार विश्व निवासियों का बयान-
चक्रों के बाद, मैं संतुष्ट, आनंदित और प्रसन्न हो गया और
इस प्रकार विचार करें: उनका स्वभाव कभी भी बुद्धों जैसा नहीं होता।
ऐसे बयान देना जो तोड़-फोड़ कर दें। न ही कॉन-
प्रश्नकर्ता व्यर्थ बोलते हैं और बुद्धों में कोई असत्यता नहीं है।
मैं निश्चय ही बुद्ध बनूंगा।
जैसे मिट्टी का एक ढेला आकाश की ओर उछाला जाता है।
यह निश्चित रूप से जमीन पर गिर जाता है, इसलिए यह भी
परम श्रेष्ठ बुद्धों का कथन निश्चित है और
स्थायी। बुद्धों के लिए कोई उच्चारण नहीं है।
असत्य, और इसलिए मुझे निश्चित रूप से बुद्ध बनना है।
निश्चित। जैसे मृत्यु निश्चित और अटल है।
सभी जीवित प्राणी, उसी प्रकार, निश्चित रूप से और
यह बात परम श्रेष्ठ बुद्धों का कथन है, निःसंदेह।
जैसे शेर की दहाड़, जो बाहर आ गया है
उसके ठिकाने के बारे में निश्चित है, इसलिए यह भी पक्का और निश्चित है।
यह परम श्रेष्ठ बुद्धों का कथन है।
जिस प्रकार बोझ जैसे बच्चे का जन्म निश्चित होता है
उस जीव के लिए जो (तक) पहुँच चुका है
(माँ का गर्भ) इसलिए अधिकांश लोगों का कथन भी यही है।
उत्कृष्ट बुद्धत्व निश्चित और स्थायी है।

1.32. उन्होंने यह आत्मनिर्णय इस प्रकार लिया: "निश्चित रूप से मैं बुद्ध बनूंगा"। बुद्ध बनने के लिए आवश्यक सभी अवस्थाओं (धम्म) का क्रमानुसार अध्ययन करते हुए, उन्होंने स्वयं से कहा, 'वास्तव में बुद्ध बनने के लिए आवश्यक अवस्थाएँ (धम्म) क्या हैं? ऊपर या नीचे, प्रत्यक्ष या विपरीत दिशाओं में क्या है?' उन्होंने सर्वप्रथम अपने पूर्ववर्ती बोधिसत्वों द्वारा बार-बार अपनाए गए दान के पूर्णतः स्वरूप का ध्यान किया और स्वयं को इस प्रकार उपदेश दिया: "हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से, सर्वप्रथम दान के पूर्णतः स्वरूप को पूरा करो। जिस प्रकार उल्टा रखा हुआ जल पात्र जल को पूरी तरह से खाली कर देता है और पुनः ग्रहण नहीं करता, ठीक उसी प्रकार तुम भी बोधि वृक्ष के आधार पर विराजमान बुद्ध बनोगे, सब कुछ दान करके, अपनी सारी इच्छाएँ और माँगें, चाहे तुम्हारा धन-दौलत कुछ भी हो, पत्नी, बच्चे या शरीर के छोटे-बड़े अंग, सब कुछ अर्पित कर दोगे।" इस प्रकार उन्होंने सर्वप्रथम दान देने में पूर्णता प्राप्त करके अपने मन को सुदृढ़ किया। अतः ऐसा कहा गया है;

अब, मैं उन कर्मों (धर्म) की जाँच करता हूँ जो किए गए हैं

(पिछला) बुद्ध, इधर, उधर, ऊपर, नीचे,
दस दिशाएँ, जहाँ तक कर्म-तत्व का संबंध है
(धम्मधातु) विस्तार करना। जाँच करने पर, मुझे यह समझ में आया,
सबसे पहले, दान देने में पूर्णता,
पिछली बार द्वारा क्रमिक रूप से अभ्यास की गई महान प्रक्रिया (पाठा)
महान ऋषियों। यदि आप पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं।
ज्ञानोदय (बोधि), जाओ, सबसे पहले, अब, इसके द्वारा
दान देने में पूर्णता का मार्ग, इसके बाद-
इसे दृढ़ता से करने के लिए आगे बढ़ना।
जैसे पानी से भरा हुआ घड़ा उल्टा कर दिया जाए तो...
किसी के लिए भी, यह अपना पानी पूरी तरह से गिरा देता है और करता है
वहाँ हर जगह, उसी तरह से (इसकी) देखभाल नहीं करना।
जब आप भिखारियों को देखते हैं, चाहे वे निम्न वर्ग के हों या उच्च वर्ग के, तो
चाहे उदासीन हों या उदासीन, दान अवश्य दें, कुछ भी न छोड़ें।
तुम तो उल्टे रखे पानी के घड़े की तरह हो।

1.33. फिर, जब उन्होंने आगे विचार करते हुए मन ही मन कहा, 'वास्तव में, केवल पूर्व बुद्धों द्वारा किए गए प्रारंभिक कर्म ही पर्याप्त नहीं हैं", तो उन्होंने नैतिक उपदेशों (शील) की दूसरी पूर्णता देखी; और मन ही मन कहा, 'हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से आपको नैतिक उपदेशों (शील) की पूर्णता को पूरा करना चाहिए। जिस प्रकार चामारी नामक घनी पूंछ वाला जानवर अपने जीवन की परवाह किए बिना अपनी पूंछ के बालों की रक्षा करता है, उसी प्रकार आप भी अब से केवल अपने नैतिक उपदेशों (शील) की परवाह करते हुए बुद्ध बनें, अपने जीवन की परवाह किए बिना।' इस प्रकार, उन्होंने नैतिक उपदेश (शील) की दूसरी पूर्णता को दृढ़ता से प्राप्त करने का संकल्प लिया (या स्वयं को दृढ़ बनाया)। अतः यह कहा गया है:-

"पूर्ववर्ती बुद्धों के ये (प्रारंभिक) कर्म
(बुद्धधर्म) केवल इतना ही नहीं होगा।
मैं इसी तरह के अन्य कृत्यों की जांच करूंगा।
मेरे ज्ञानोदय (बोधि) की परिपक्वता।
फिर जांच करते हुए, मुझे दूसरा तथ्य समझ में आया।
सिद्धांतों की पूर्णता का निष्ठापूर्वक अभ्यास किया गया
पिछले महान ऋषियों द्वारा। अब, यदि आप चाहें
ज्ञान (बोधि) प्राप्त करने के लिए, आगे बढ़ें
नियमों (सीला) की पूर्णता का उपक्रम
इस दूसरे प्रयास से अपने आप पर दृढ़तापूर्वक भरोसा रखें।
फर्म पर।
ठीक वैसे ही जैसे वह जानवर, जो उस प्रजाति से संबंधित है,
जिसकी अनमोल बालों वाली पूंछ है, वहाँ मौत को गले लगाता है, जहाँ-
इसकी पूंछ उलझ जाती है, लेकिन खराब होने के बजाय
इसकी पूंछ, ठीक उसी तरह, आपको पूरी तरह से
चारों चरणों में उपदेशों का पालन करें
(भूमि)। अपनी हर चीज़ पर कड़ी नज़र रखें।

याक बैल की तरह हर समय सिद्धांतों का पालन करना
(camarī) इसकी पूंछ के ऊपर"।

1.34. फिर, जब उन्होंने और आगे विचार करते हुए मन ही मन कहा: वास्तव में, केवल इतना ही नहीं, पूर्व बुद्धों द्वारा किए गए कर्म भी आवश्यक हैं, तो उन्होंने त्याग की तीसरी सिद्धि (नेक्खम्मा) देखी और मन ही मन कहा: "हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से, आपको त्याग की सिद्धि को पूर्ण करना चाहिए। जिस प्रकार, वास्तव में, जो व्यक्ति लंबे समय तक बंधन के घर में रहता है, उसे उस स्थान से कोई लगाव नहीं रहता; बल्कि वह असंतुष्ट हो जाता है और वहाँ न रहने की इच्छा रखता है। ठीक उसी प्रकार, आप भी, सभी अस्तित्वों को कारावास के स्थान के समान मानकर, सभी अस्तित्वों से असंतुष्ट होकर, उससे मुक्ति पाने का निश्चय करें और त्याग की ओर अग्रसर हों। इस प्रकार, आप बुद्ध बन जाएँगे।" अतः यह कहा गया है:

"इतना ही नहीं, बल्कि पूर्व के ये कृत्य ही काफी हैं।"
बुद्ध होंगे। मैं अन्य बातों की जाँच करूँगा।
वे भी जो मुझे ज्ञान प्रदान करते हैं
(बोधि) परिपक्व।" जांच करने पर, मुझे यह समझ में आया
त्याग में तीसरी पूर्णता, भक्तिपूर्वक
पिछले महान ऋषियों द्वारा अनुसरण किया गया। 'अब, ले लो
अपने ऊपर अच्छी तरह और दृढ़ता से, तीसरा
यदि आप त्याग में पूर्णता प्राप्त कर लें और इसी प्रकार आगे बढ़ते रहें, तो
बोधि प्राप्त करना चाहता हूँ, बुद्ध बनना चाहता हूँ।' "बस
एक कैदी की तरह, जो वहां लंबे समय से रह रहा है
खड़े रहने से होने वाली असुविधा से कोई लाभ नहीं होता।
वहां लगाव तो है, लेकिन उससे बचने का ही रास्ता ढूंढता है।
इसी प्रकार, आपको भी सभी प्राणियों को ध्यान से देखना चाहिए।
जेलखानों से मिलते-जुलते और आगे की ओर देखते हुए
अस्तित्व से पूर्ण मुक्ति पाने के लिए त्याग।

1.35. फिर, जब उन्होंने आगे विचार करते हुए सोचा, 'निश्चित रूप से पूर्व बुद्धों के कर्म ही पर्याप्त नहीं हैं,', तो उन्हें ज्ञान की चौथी सिद्धि (पञ्ञा पारमी) दिखाई दी, और उनके मन में यह विचार आया: "हे सुमेधा! अब से आपको ज्ञान की सिद्धि (पञ्ञा पारमी) भी प्राप्त करनी चाहिए। अपने से छोटे, अपने समान (मज्झिमा) और अपने से बड़े लोगों में से किसी से भी संकोच न करते हुए, सभी ज्ञानी पुरुषों के पास जाकर प्रश्न पूछें। जिस प्रकार एक भिक्षु जो केवल अपने कटोरे में भिक्षा प्राप्त भोजन से अपना जीवन यापन करता है, अपने परिवार के किसी भी दाता से संकोच नहीं करता, जो निम्न वर्ग आदि में से कोई भी हो, घर-घर जाकर लगातार भिक्षा मांगता है और शीघ्र ही अपनी जीविका प्राप्त कर लेता है, ठीक उसी प्रकार आप भी सभी ज्ञानी पुरुषों के पास जाकर प्रश्न पूछें और आप बुद्ध बन जाएंगे।" इसके बाद, उन्होंने ज्ञान की चौथी सिद्धि (पञ्ञा पारमी) को दृढ़ करते हुए स्वयं को स्थापित कर लिया। अतः यह कहा गया है:-

बुद्धों के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं हो सकते थे।
बहुत कुछ। मैं अन्य कार्यों की भी जांच करूंगा।
इससे मेरा बोधित्व परिपक्व हो सकता है। फिर इसकी जांच करूंगा।
मैंने ज्ञान में चौथी पूर्णता को निरंतर देखा।
यह कार्य पूर्व महान ऋषियों द्वारा संपन्न किया गया था। अब आप आगे बढ़ें।
ज्ञान में पूर्णता प्राप्त करना, जो चौथा है,

इसे स्वयं अपने ऊपर लेना और इसे मजबूती से बांधना।
जिस प्रकार एक भिक्षु अपनी लय में रहकर अपना जीविका प्राप्त करता है
इस प्रकार कि वह किसी भी (घर) को न छोड़े
परिवारों के साथ (भेदभाव करके उन्हें) हीन समझना
उच्च या मध्यम वर्ग, इसी प्रकार (इसलिए) आपके लिए बेहतर होगा
ज्ञान में पूर्णता की ओर व्यापक रूप से आगे बढ़ें
हमेशा बुद्धिमान और प्रबुद्ध लोगों से प्रश्न पूछते रहना।

1.36. फिर, जब उन्होंने आगे तर्क करते हुए सोचा, 'केवल इतना ही नहीं, पूर्व बुद्धों के कर्म भी अवश्य ही रहे होंगे', तो उन्होंने परिश्रम में पाँचवीं सिद्धि (वीर्य पारमी) देखी, और उनके मन में यह विचार आया: "हे सुमेधा! अब से आपको परिश्रम में सिद्धि (वीर्य पारमी) भी प्राप्त करनी चाहिए। जिस प्रकार पशुओं का राजा, सिंह, अपनी सभी मुद्राओं और गतिविधियों में दृढ़ और ऊर्जावान होता है, उसी प्रकार आप भी अपने सभी जन्मों में अपनी सभी मुद्राओं और गतिविधियों के संबंध में दृढ़ और ऊर्जावान रहकर बुद्ध बन जाएँगे।" तदनुसार, उन्होंने परिश्रम में पाँचवीं सिद्धि (वीर्य पारमी) को दृढ़ करने का निश्चय किया। अतः यह कहा गया है:

बुद्धों के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं होने चाहिए।
बस इतना ही; मैं और छानबीन करके पता लगाऊंगा।
ऐसे कर्म जिनसे मेरा बोधि परिपक्व हो। जाँच करना
फिर, मुझे प्रयास में पाँचवीं पूर्णता मिली-
इससे पहले महान ऋषियों द्वारा लगातार किया जाता रहा है।
अब आप इस पाँचवीं पूर्णता की ओर आगे बढ़ सकते हैं।
प्रयास (वीर्य पारमी), इसे स्वयं पर लेना
और इसे दृढ़ बनाना। ठीक वैसे ही जैसे हिरणों का सरदार,
शेर चाहे बैठा हो, उसे परिश्रम की कभी कमी नहीं होती।
खड़े रहना हो या चलना-फिरना, और हमेशा एक ऊंचा स्वर रखता है
इसी प्रकार, आप भी अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर लेंगे।
ज्ञान प्राप्ति और बुद्ध बनने की दिशा में आगे बढ़ते हुए
प्रयास में पूर्णता और दृढ़ता को बढ़ावा देना
अपने जीवन के हर पहलू में प्रयास करो।"

1.37. फिर जब उन्होंने और आगे विचार किया, यह सोचते हुए कि 'केवल इतना ही नहीं, पूर्व बुद्धों के कर्म भी अवश्य ही रहे होंगे,' तो उन्होंने धैर्य की छठी सिद्धि (खन्ती पारमी) देखी, और उनके मन में यह विचार आया: "हे बुद्धिमान सुमेध! अब से आपको धैर्य की सिद्धि को पूर्ण करना चाहिए। आपको आदर करने वालों और अनादर करने वालों दोनों के प्रति समान रूप से धैर्यवान रहना चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वी पर लोग शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार की वस्तुएँ फेंकते हैं और उस क्रिया के फलस्वरूप पृथ्वी न तो आकर्षित होती है और न ही प्रतिकर्षित; वह धैर्य रखती है; वह सहन करती है और धीरज रखती है; ठीक उसी प्रकार, आप भी आदर करने वालों और अनादर करने वालों दोनों के प्रति धैर्यवान रहकर बुद्ध बन जाएँगे।" तदनुसार, उन्होंने धैर्य की छठी सिद्धि (खन्ती पारमी) को दृढ़ करने का निश्चय किया। अतः यह कहा गया है:-

बुद्धों के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं होने चाहिए।
मुझे केवल जांच करनी होगी और अन्य जानकारी प्राप्त करनी होगी।
ऐसे कर्म जिनसे मेरा बोधि परिपक्व हो। जाँच करना
तब मुझे धैर्य में छठी पूर्णता प्राप्त हुई।
महान ऋषियों द्वारा पहले भी इसे निरंतर रूप से किया जाता रहा है।

बेहतर होगा कि आप इस छठे को बनाने का जिम्मा स्वयं उठा लें।
अब पूर्णता को दृढ़ करें और आप पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करेंगे-
अगर आपका मन एकाग्र है लेकिन आप वहां ईमानदार हैं तो यह एक अच्छा विकल्प है।
ठीक उसी प्रकार, जैसे पृथ्वी पर फेंकी गई हर चीज को वहन करती है।
उस पर, साफ और गंदा दोनों ही।
इससे कोई दुर्भावना नहीं होती, ठीक उसी प्रकार, आप भी।
आगे बढ़ने से आपको अपनी बोधि भी प्राप्त हो जाएगी।
धैर्य और आत्म-निरीक्षण द्वारा पूर्णता का अभ्यास करना
सभी प्रकार के सम्मान और तिरस्कार के प्रति उदासीन।

1.38. फिर, उन्होंने आगे तर्क करते हुए सोचा, 'पिछली बुद्धों के कर्म केवल इतने ही नहीं रहे होंगे', उन्होंने सत्य की सातवीं पूर्णता (सच्च पारमी) देखी और उनके मन में यह विचार आया: "हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से, आपको सत्य की पूर्णता को पूरा करना चाहिए। इच्छा आदि के प्रभाव में आकर, धन के लाभ के लिए जानबूझकर झूठ मत बोलो, चाहे वह तुम्हारे सिर पर ही क्यों न गिरे। जैसे, (यथा नाम) वास्तव में, उपचार का तारा (ओसाधि तारका), अर्थात्, कभी दूसरे तारे के साथ नहीं जाता ***(पृष्ठ 44) वह सभी ऋतुओं में अपनी परिक्रमा का मार्ग छोड़कर अपने ही मार्ग पर परिक्रमा करता रहता है, ठीक उसी प्रकार, तुम भी केवल झूठ न बोलकर, सत्य का त्याग करके बुद्ध बन जाओगे।" तदनुसार, उन्होंने सत्य की सातवीं पूर्णता को दृढ़ता से अपना लिया। अतः, यह कहा गया है:

बुद्धों के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं होने चाहिए।
मैं और अधिक जानकारी जुटाऊंगा, इसकी जांच करूंगा और पता लगाऊंगा।
ऐसे कर्म जिनसे मेरा बोधि परिपक्व हो। जांच
फिर, मुझे सत्य में सातवीं पूर्णता मिली, जो...
इससे पहले महान ऋषियों द्वारा लगातार इसका पालन किया जाता रहा है।
आपको यह सातवां कार्य स्वयं पर लेना चाहिए।
अब पूर्णता को दृढ़ करें और आप पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करेंगे-
यदि आपका भाषण संदिग्ध नहीं बल्कि ईमानदार है तो आपको सफलता मिल सकती है।
ठीक उसी प्रकार, अर्थात्, उपचार का तारा (ओसाधी), साथ ही
अन्य समान खगोलीय पिंडों के साथ, चाहे वे किसी भी स्थिति में हों
बरसात के मौसम में हो या अन्य मौसमों में, यह अपने से विचलित नहीं होता है।
इसके कक्षीय पथ का अनुसरण करते हुए, आप भी उसी प्रकार इसे प्राप्त करेंगे।
बुद्धत्व के मार्ग पर चलकर पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करना
सत्य में पूर्णता, बिना विचलित हुए
सत्यों का मार्ग।

1.39. फिर, जब उन्होंने आगे तर्क किया, यह सोचते हुए: 'केवल इतना ही नहीं, यह पिछले बुद्धों द्वारा किए गए कर्म भी रहे होंगे', तो उन्होंने संकल्प में आठवीं पूर्णता (अधिष्ठान) देखी और उनके मन में यह विचार आया: "हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से, आपको संकल्प में पूर्णता को पूरा करना चाहिए। आपको अपने द्वारा किए गए ऐसे संकल्प पर अडिग रहना चाहिए। जैसे, वास्तव में, *********(पृष्ठ 45) एक पर्वत-पहाड़ी, जब उस पर सभी दिशाओं से हवाएँ चलती हैं, तो न तो काँपती है और न ही हिलती है, बल्कि अपनी जगह पर ही खड़ी रहती है, उसी प्रकार, आप भी अपने आत्म-निर्णय में अडिग रहकर बुद्ध बन जाएँगे।" तदनुसार, उन्होंने आत्म-निर्णय में आठवीं पूर्णता को दृढ़ करने का निश्चय किया। इसलिए, यह कहा गया है:-

बुद्धों के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं होने चाहिए।
बस इतना ही; मैं और छानबीन करके पता लगाऊंगा।

ऐसे कर्म जिनसे मेरा बोधि परिपक्व हो। जाँच करना
फिर, मुझे आत्म-संकल्प में आठवीं पूर्णता प्राप्त हुई।
महान ऋषियों द्वारा निरंतर संपन्न की जाने वाली प्रार्थना,
पहले।
बेहतर होगा कि आप इस आठवें को बनाने का जिम्मा लें
अब पूर्णता को दृढ़ करें और आप पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करेंगे-
वहाँ आपके अडिग होने से आपका प्रभाव कम हो जाएगा। ठीक वैसे ही
साथ ही एक सुस्थापित, अडिग चट्टानी पर्वत
तेज हवाओं के कारण न तो यह कांपता है और न ही हिलता है।
लेकिन यह अपनी जगह पर ही खड़ा रहता है, ठीक उसी तरह,
आपको भी हमेशा अपने रुख में अडिग रहना चाहिए।
संकल्प, पूर्णता के मार्ग पर चलना
दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ो और तुम्हें पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त होगा।"

1.40 फिर, जब उन्होंने आगे तर्क करते हुए सोचा: 'केवल इतना ही नहीं, पूर्व बुद्धों द्वारा किए गए कर्म भी अवश्य ही महत्वपूर्ण रहे होंगे', तो उन्होंने प्रेममयी (मेट्टा पारमी) की नौवीं पूर्णता देखी और उनके मन में यह विचार आया: "हे बुद्धिमान सुमेधा! अब से, आपको प्रेममयी पूर्णता को पूर्ण करना चाहिए। आपको उन लोगों के प्रति एक समान मन रखना चाहिए जो आपके लिए लाभकारी हैं और जो आपके लिए लाभकारी नहीं हैं। जिस प्रकार, वास्तव में, बुद्ध एक दुष्ट व्यक्ति और एक अच्छे व्यक्ति के प्रति भी उदासीन भाव रखते हैं, दोनों को एक समान मानते हुए, उसी प्रकार, आप भी एक समान मन रखते हुए, जीवित प्राणियों के प्रति प्रेममयी हृदय से प्रेममयी रहें।" तदनुसार, उन्होंने प्रेममयी की नौवीं पूर्णता को दृढ़ किया। अतः, यह कहा गया है:

बुद्ध के कर्म वास्तव में ऐसे नहीं होने चाहिए।
बस इतना ही; मैं जाँच करके अन्य जानकारी प्राप्त करूँगा।
ऐसे कर्म जो मेरे बोधित्व को परिपक्व करेंगे। जांच करना
फिर, मुझे प्रेम में नौवीं पूर्णता प्राप्त हुई।
महान ऋषियों द्वारा निरंतर प्रदर्शित की जाने वाली दयालुता।
पहले। आप शायद (या बेहतर होगा) इसे अपने हाथ में ले लें।
अब नौवीं पूर्णता को दृढ़ बनाते हुए स्वयं को तैयार करें;
यदि आप पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करना चाहते हैं, तो बेहतर है कि आप
प्रेम और दयालुता में अद्वितीय। ठीक वैसे ही, जैसे पानी
यह अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोगों में समान रूप से व्याप्त है।
शीतलता, धूल भरी अशुद्धियों को धोकर साफ कर देती है, इसी प्रकार,
आगे बढ़ने से आपको भी पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त होगा।
प्रेम और दया के मार्ग पर विकास करते हुए
जो लोग
यह आपके लिए या उन लोगों के लिए फायदेमंद हो सकता है जो नहीं हैं।

1.41. फिर, जब उन्होंने और आगे तर्क किया, यह सोचते हुए कि 'केवल इतना ही नहीं, पूर्व बुद्धों के कर्म भी अवश्य ही रहे होंगे', तो उन्होंने समभाव (उपेक्खा पारमी) की दसवीं सिद्धि देखी और उनके मन में यह विचार आया: "हे सुमेधा! अब से, आपको समभाव की सिद्धि को पूर्ण करना चाहिए। समृद्धि हो या विपत्ति, आपको केवल उदासीन रहना चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वी स्वच्छ या अस्वीकृत

वस्तुओं के फेंके जाने पर उदासीन रहती है, ठीक उसी प्रकार, आप भी समृद्धि और विपत्ति के बीच उदासीन रहकर बुद्ध बन जाएंगे।" तदनुसार, उन्होंने समभाव की दसवीं सिद्धि को दृढ़ संकल्पित करते हुए अपना मन बना लिया। अतः यह कहा गया है:

बुद्ध के कर्म वास्तव में ये नहीं होने चाहिए।
बहुत कम; मैं जांच करके पता लगाऊंगा।
अन्य ऐसे कर्म जिनसे मेरा बोधि भाव परिपक्व हो सके।
फिर छानबीन करने पर मुझे दसवीं पूर्णता मिली।
समभाव में, महान द्वारा निरंतर निष्पादित
पहले, ऋषियों ने। बेहतर होगा कि आप स्वयं यह जिम्मेदारी ले लें।
अब दसवीं पूर्णता को दृढ़ बना लो, और तुम
एक सुसंतुलित व्यक्ति की तरह रहकर पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करें।
तराजू का जोड़ा। ठीक वैसे ही, जैसे पृथ्वी दिखती है
स्वच्छ और गंदी दोनों ही चीजों पर उदासीनता से
क्रोध और पक्षपात से मुक्त होकर, उस पर गिरा दिया गया।
इसी प्रकार, आपको भी हमेशा एक जोड़ी की तरह रहना चाहिए।
सुख और दुख के बीच संतुलित तराजू का।
समभाव में पूर्णता के मार्ग पर अग्रसर होते हुए आप
पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त करेंगे।

1.42 अतः उन्होंने सोचा, "इस संसार में बुद्धों द्वारा किए गए कर्म इतने ही हैं, जिन्हें बोधिसत्वों को अपने बोधि की पूर्ण परिपक्वता के लिए पूरा करना चाहिए। दस सिद्धियों के सिवा और कुछ नहीं है। ये दस सिद्धियाँ न तो आकाश में हैं, न ही पृथ्वी पर। न ही पूर्व दिशा में, न ही अन्य दिशाओं में। ये केवल मुझमें ही हैं, मेरे हृदय में विराजमान हैं।" इस प्रकार, उन्हें अपने हृदय में विराजमान देखकर, उन्होंने उन सभी को दृढ़ और निश्चित कर लिया। बार-बार उन्हें ग्रहण करते हुए, उन्होंने प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में उन पर ध्यान किया। एक छोर को पकड़कर, उन्होंने आरंभ को प्राप्त किया। आरंभ को पकड़कर, उन्होंने अंतिम छोर को प्राप्त किया। केंद्र को पकड़कर, उन्होंने दोनों ओर के छोरों को प्राप्त किया। दोनों छोरों को पकड़कर, उन्होंने मध्य को प्राप्त करके विषय को समाप्त किया। 'सार्वभौमिक संपदा का पूर्ण त्याग दान में पूर्णता (कानापारमी) है, शरीर के अंगों का सर्वांगीण त्याग लघु दान है, परन्तु दान में उच्चतर पूर्णता तथा अपने प्राण का पूर्ण त्याग परम सर्वोच्च दान है', ऐसा सोचते हुए उन्होंने कुल तीस पूर्णताओं का ध्यान किया, जिनमें दस साधारण पूर्णताएँ, दस उच्चतर पूर्णताएँ और दस सर्वोच्च पूर्णताएँ शामिल थीं, मानो वे विशाल विश्व-चक्र रूपी सागर को तेल लगाकर, बार-बार घुमा रहे हों और उसमें घुमा रहे हों, और विशाल मेरु पर्वत को उसका शीर्ष बना रहे हों। जब वे दस पूर्णताओं का ध्यान कर रहे थे, तब यह विशाल पृथ्वी, जो दो लाख योजन से अधिक घनी है, चार नहुत से भी अधिक, उनके कर्म की शक्ति के कारण काँप उठी, थरथरा उठी और कर्कश गूँज से गूंज उठी, मानो किसी हाथी द्वारा सरकंडों के गट्ठे को रौंदा जा रहा हो या गन्ने को निचोड़ने वाली मशीन में दबाया जा रहा हो। वही विशाल पृथ्वी कुम्हार के चाक और तेल बनाने की मशीन की तरह घूमती थी। इसलिए, यह कहा गया है:

दुनिया में केवल इतने सारे कर्म ही मौजूद हैं।
जो आपके बोधि को परिपक्व बनाते हैं; इनके अलावा,
और कुछ नहीं है। बेहतर होगा कि आप स्थापित कर लें।
स्वयं को दृढ़ता से वहाँ स्थापित करें। जब ये कर्म, उनका स्वरूप,
सार और विशेषताओं पर ध्यान किया जाता है,
दस हजार (लीग) के विस्तार वाली धरती कांप उठी।
कर्म की शक्ति से। धरती कांपती और गड़गड़ाती है।
प्रेसिंग मशीन में गन्ने से मिलती-जुलती।
तेल उत्पादन मशीन के पहिये से टकराने पर, वह हिलता है।

धरती।

1.43 धरती के ज़ोर से कांपने के कारण, राम्मा नगर के निवासी ठीक से खड़े न रह पाने के कारण इधर-उधर गिर पड़े, मानो किसी विशाल हॉल से तूफ़ानी बवंडर ने उन्हें छोड़ कर बाहर फेंक दिया हो। पानी के घड़े और कुम्हारों के बर्तन इधर-उधर गिरते हुए एक-दूसरे से टकराए और चूर-चूर हो गए। घबराई हुई जनता ने गुरु के पास जाकर उनसे पूछा, "हे महिमावान! यह क्या है? क्या यह शक्तिशाली अजगर का घूमना है या किसी राक्षसी दानव का घूमना? वास्तव में, हम सब इसके बारे में नहीं जानते। फिर भी, हम सब, समस्त जनसमूह, बहुत व्याकुल हैं। यह कैसे हो सकता है? क्या इससे कोई बुराई होगी? या फिर कोई भलाई होगी? कृपया हमें इस विषय की व्याख्या कीजिए।" तब, उनकी बातें सुनकर गुरु ने कहा: "तुम सब भयभीत न हो। चिंता मत करो। इस घटना से तुम्हें कोई खतरा नहीं है। वह ज्ञानी सुमेधा, जिसके बारे में मैंने आज भविष्यवाणी की थी कि वह भविष्य में गौतम नाम से बुद्ध बनेगा, इस समय दस गुणों का ध्यान कर रहा है। जब वह उनका ध्यान कर रहा था, तब उसके कर्मों की शक्ति से समस्त दस हजार विश्व तत्व एक साथ कांप उठे और गर्जना करने लगे।" अतः यह कहा गया है:

"उतना बड़ा जितना कि प्रस्ताव देने वाले लोगों की सभा
उस सभा में बुद्ध के समक्ष पुरुष उपस्थित थे।
वहाँ, कांपते हुए, उसने भागने का रास्ता खोजा और लेट गया।
जमीन पर। हजारों पानी के घड़े और कई
सैकड़ों बर्तन आपस में टकरा रहे थे
वहाँ उसे टुकड़ों और चूर्ण में कुचल दिया गया। बड़ा
लोगों का समूह, *******(पृष्ठ 50) उत्तेजित, स्तब्ध,
भयभीत, डगमगाते और अनिश्चित मन से आया
वे सब मिलकर बुद्ध दीपांकर के पास पहुँचे।
इन शब्दों के साथ: 'हे अंतर्दृष्टि के स्वामी! क्या
दुनिया का क्या होगा? क्या यह अच्छा होगा या बुरा?
पूरी दुनिया संकट में है। कृपया इसे दूर करें।
उस विपत्ति के बारे में।' तब महान ऋषि दीपांकर ने कहा।
उन्हें सूचित किया:

'इस भूकंप में, आप आश्वस्त रहें, न
डरो। जिसके बारे में आज मैंने भविष्यवाणी की थी
कि वह संसार में बुद्ध बन जाएगा, यह एक मध्यम बात है।
कार्य पर टिप्पणी करते हुए, लगातार निष्पादित किया गया
पूर्व विजेताओं पर ध्यान करते समय।
वह कर्म जो बुद्ध बनने की दिशा में सहायक हो
परिणामस्वरूप, संपूर्ण इकाई, यह दस हजार
विशाल पृथ्वी के साथ-साथ आकाश भी कांप उठा।

1.44. बुद्ध के वचन सुनकर लोगों का विशाल समूह तृप्त और प्रसन्न हो गया। वे अपने साथ फूलों की मालाएँ, इत्र और सुगंधित वस्तुएँ लेकर राम्मा नगर से बाहर आए, बोधिसत्व के पास पहुँचे, उन्हें मालाएँ, सुगंधित वस्तुएँ आदि भेंट कीं, उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और राम्मा नगर में प्रवेश किया। बोधिसत्व ने भी दस सिद्धियों का ध्यान किया, अपने प्रयास को दृढ़ किया, अपना संकल्प बनाया और अपने आसन से उठ खड़े हुए। अतः यह कहा गया है:

बुद्ध के वचन सुनकर उनके मन में
तब और वहीं शांति छा गई। सभी लोग
उन्होंने भी मुझसे संपर्क किया और मुझे श्रद्धांजलि अर्पित की।
फिर से।
बुद्ध के गुणों को अपनाते हुए।
मैंने अपना मन दृढ़ किया। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद
बुद्ध दीपांकर, फिर मैं अपने से उठ खड़ा हुआ
आसन।

1.45 इसके बाद, दस हजार विश्व-चक्रों के सभी दिव्य प्राणी एकत्रित हुए, बोधिसत्व के आसन से उठने पर, दिव्य मालाओं और सुगंधों से उनका सम्मान किया, उन्हें प्रणाम किया और प्रारंभ में यह कहकर औपचारिक स्तुतिगान किया: "आदरणीय ऋषि सुमेधा! आज आपने दशबल दीपांकर के चरणों में महान आकांक्षा की है। आपकी वह आकांक्षा बिना किसी बाधा के पूर्ण हो। आपको कोई खतरा या भय न हो। आपके शरीर में किसी भी प्रकार की बीमारी न हो। शीघ्र ही सिद्धियों को पूर्ण करें और तदनुसार बुद्ध के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करें। जिस प्रकार पुष्प और फलदार वृक्ष उचित मौसम में फूल और फल देते हैं, उसी प्रकार आपको भी समय-सीमा समाप्त होने से पहले शीघ्र ही बुद्ध के उत्कृष्ट आत्मज्ञान के संपर्क में आना चाहिए।" इस प्रकार घोषणा करके, दिव्य प्राणी अपने-अपने दिव्य निवासों में लौट गए इस प्रकार, देवताओं द्वारा विधिवत प्रशंसा प्राप्त करने के बाद, बोधिसत्व ने मन ही मन कहा: "दस सिद्धियों को प्राप्त करने के बाद, मैं अनगिनत विश्व-चक्रों के चार समुच्चयों के अतिरिक्त एक लाख युगों (कप्पा) की समाप्ति पर बुद्ध बनूँगा।" अपने परिश्रम को सुदृढ़ करने के बाद, उन्होंने यह संकल्प लिया और आकाश में विचरण करते हुए हिमालय लौट गए। अतः यह कहा गया है:

"स्वर्गीय और मनुष्य दोनों ही नीचे बिखर गए।"
जैसे ही मैं अपनी सीट से उठा, मुझ पर फूल आ गिरे।
दिव्य और मानव। दोनों ही, मानव और
दिव्य शक्तियों ने मुझे मेरी समृद्धि के बारे में बताया: 'आपका
आकांक्षा बहुत अच्छी है। आशा है आपको वह प्राप्त हो।
आप जो चाहें, वह करें। सभी विपत्तियाँ आपको छोड़ दें।
आपकी चिंताएँ और बीमारियाँ दूर हो जाएँ।
आपके लिए कोई बाधा न बनें। बेहतर होगा कि आप इसे प्राप्त कर लें।
सबसे उत्कृष्ट बोधि, शीघ्र:
जैसे ही उचित मौसम आता है, फूल खिलने लगते हैं।
पेड़-पौधे खिलते हैं, उसी प्रकार आप भी खिलें।
हे महान वीर! दस गुणों को पूर्ण कीजिए।
क्योंकि कुछ और सभी सर्वज्ञ बुद्ध, बुद्ध बन गए।
अपने-अपने बोधि वृक्ष की छत पर,
इसी प्रकार, हे महान नायक! आप भी बन जाइए!
विजेता के बोधि वृक्ष के पास बुद्ध।
जिस प्रकार कुछ और सभी सर्वज्ञ बुद्धों ने अपना रुख मोड़ा
हे महान वीर!, धम्म के चक्र का अनुसरण करो, उसी प्रकार तुम भी करो!
कृपया धम्म के चक्र को घुमाएँ।
ठीक वैसे ही जैसे पूर्णिमा की रात को, पूर्णतः शुद्ध
चाँद बहुत चमक रहा है, उसी प्रकार तुम भी।
कृपया पूर्ण हृदय से दस पर अपनी रोशनी चमकाएँ।
हजारों विस्तृत क्षेत्र। ठीक वैसे ही जैसे सूर्य ने छोड़ा।

अपने ग्रहण से भी, अपनी चमक से सबको मात देता है।
इसी प्रकार, आप भी विशेष रूप से चमकें।
भौतिक संसार से मुक्त होकर, आपकी महिमा।
जैसे कुछ और सभी नदियाँ विशाल सागर में बहकर आती हैं
इसी प्रकार, महासागर, मनुष्य का यह संसार और इस संसार के लिए भी समान रूप से सहायक हो सकता है।
दिव्य प्राणी आपकी उपस्थिति के प्रति आकर्षित हों। स्तुति हो!
और उनकी प्रशंसा सुनकर, उन्होंने स्वयं यह कार्यभार संभाला।
उन दस पूर्णतावादी कार्यों को पूर्णतः पूरा करने का
और फिर जंगल में प्रवेश कर गए।
सुमेधा एपिसोड समाप्त हो गया है।

1.46 राम्मा नगर के निवासी अपने नगर में प्रवेश कर गए
और भिक्षुओं के नेतृत्व वाले संगठन को एक बड़ा दान दिया।
बुद्ध द्वारा। गुरु ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, जिसके कारण
तीन रत्न-आश्रय स्थलों आदि में असंख्य लोगों को स्थापित किया जाना है।
और उन्होंने राम्मा शहर से प्रस्थान किया। इसके बाद, आगे
बुद्ध दीपांकर ने अपना पूरा जीवन इन सभी कार्यों को करने में व्यतीत किया।
बुद्ध के कर्तव्यों का पालन किया और अंततः उनका निधन हो गया, और वे अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ गए।
अस्तित्व के आधार के पीछे, पूर्ण अमर शांति में
निर्वाण के तत्व का साधन।(1) वहाँ जो कुछ भी कहा जाना है
उस संदर्भ में, बुद्धवंश में भी जैसा कहा गया है, उसका विस्तृत और पूर्णतः स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए।***(पृष्ठ 53)

वास्तव में, वहाँ इस प्रकार कहा गया है:-
फिर उन्होंने जगत के रक्षक को आनंद लेने दिया
अपने शिष्यों के समूह के साथ भोजन किया और आगे बढ़े।
उन्हें गुरु दीपांकर की शरण में जाने के लिए कहा गया। (पृष्ठ)
53) तथागत ने उनमें से कुछ को अंदर जाने की अनुमति दी।
तीन शरणस्थल (सरणा), कुछ पाँच का पालन करने के लिए
नैतिक उपदेशों और अन्य बातों को स्वयं पर लेने के लिए
दस प्रकार के नियमों का पालन।
बुद्ध ने अनायास ही उनमें से कुछ को चार सबसे महत्वपूर्ण बातें बता दीं।
उन्होंने उत्कृष्ट परिणाम दिए, जबकि कुछ को उन्होंने ज्ञान प्रदान किया।
अतुलनीय धम्म का विश्लेषणात्मक ज्ञान।
पुरुषों में श्रेष्ठ व्यक्ति ने उनमें से कुछ को यह उपाधि प्रदान की।
आठ उत्कृष्ट ध्यान संबंधी उपलब्धियाँ (समापत्ति)
और उनमें से कुछ को तीन प्रकार प्रदान किए।
प्रबुद्ध ज्ञान और छह प्रकार के अति-
ज्ञान। उस संबंध के माध्यम से, महान
ऋषि ने लोगों के समूह को फटकारा, और इसी कारण
कि, दुनिया के रक्षक की व्यवस्था
विस्तृत हो गया। विशाल बैल जैसे शरीर वाला और महान

जबड़ेदार व्यक्तित्व, (महानु'सभकखंड) द्वारा जाना जाता है
दीपांकर का नाम, कई लोगों के बीच भेजा गया (तारयति)
पुरुषों को पूरी तरह से बुराई भरे अस्तित्व से मुक्त कराया।
(दुग्गतिम)। किसी ऐसे व्यक्ति को देखकर जो ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हो,
एक लाख योजन दूर एक स्थान पर
यहां तक कि महान ऋषि पल भर में उसके पास चले गए।
समय ने उन्हें ज्ञान प्राप्त कराया।
इस महान अवसर पर,
धम्म, बुद्ध ने सौ करोड़ लोगों को ज्ञान प्रदान किया
लोग। दूसरे विशेष अवसर पर
धम्म का अहसास, रक्षक प्रबुद्ध
नब्बे करोड़। जब बुद्ध ने धम्म का उपदेश दिया
हालाँकि, देवताओं के निवास में, तीसरे महान पर
धम्म की अनुभूति के अवसर पर,
नब्बे हजार करोड़। तीन हजार थे।
करोड़ों लोगों का एक साथ इकट्ठा होना और यह
मास्टर दीपांकर की पहली सभा आयोजित की गई।
फिर, नारदा शिखर पर, जब विजेता गया
एकांत में, सौ करोड़ शुद्ध अरहत,
जिनके घाव (आसवा) सूख गए थे, वे एक साथ आ गए।
जब महान नायक चट्टानी पहाड़ी पर थे
महान ऋषि सुदस्सन ने समापन समारोह मनाया।
उपवास के मौसम का समारोह, (पवाराणा) नब्बे के साथ
हजार करोड़। उन दिनों मैं एक उच्च पदस्थ अधिकारी था।
तपस्वी, तपस्या का अभ्यास करने वाला और चोटीदार बाल धारण करने वाला
और अतिज्ञान में निपुण होने के नाते,
मैं पहले आकाश में सफ़र करता था। मुझे समझ आ गई थी।
दस हजार बीस हजार लोगों के बीच धम्म का प्रसार हुआ।
संख्याओं में गणना से परे वे थे जो
एकल और युगल, जिन्होंने बाद में धम्म का ज्ञान प्राप्त किया।
गौरवशाली दीपांकर की उत्तम शुद्धिकृत व्यवस्था
उस समय बुद्ध का ज्ञान व्यापक हो गया, जिसे समझा जाने लगा।
असंख्य, चमत्कारी और समृद्ध। चार सौ
छह प्रकार की अलौकिक शक्तियों से संपन्न हजार शिष्य-
ज्ञान और महान जादुई शक्तियां, हर समय विद्यमान-
दीपांकर, संसार के ज्ञाता। जो कोई भी,
उन दिनों, उन्होंने अपने मानवीय अस्तित्व को त्याग दिया।
चारों सही मार्गों के किसी भी फल को प्राप्त करना,
उनकी निंदा की गई। वनस्पतियों से मिलते-जुलते उपदेशों की
बुद्ध ने ऐसे फूलों को उचित रूप से धारण किया।
अद्वितीय रूप से शुद्ध अरहत जिनके घाव (आसव) थे
वह सूख गया और इसलिए वह हमेशा के लिए चमकता रहा।

जहां तक मास्टर दीपांकर की जीवन गाथा का संबंध है
संबंधित व्यक्ति: वह राजा सुदेव थे, जिनका शहर
वह रामवती थीं और उनकी रानी का नाम सुमेधा था।
दस हजार वर्षों तक उन्होंने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया।
उनके तीन सबसे उत्कृष्ट महल जिन्हें हंस के नाम से जाना जाता है,
(हम्सा), बगुला, (कोनका) और मोर, (मयुरा)।
वह महिला, उनकी रानी-माता पदुमा, जिनके पास
तीन हजार सजी-धजी महिलाओं का एक दल
इस संख्या ने बैल जैसे दिखने वाले इस पुत्र को जन्म दिया।
चारों शकुनों (निमित्त) का उसने संसार त्याग दिया।
अपने शाही हाथी पर सवार होकर। कम से कम के लिए नहीं
विजेता ने दस महीने तक अथक परिश्रम किया।
बुद्ध बनने का प्रयास। अभ्यास करने के बाद
कठोर तपस्या से ऋषि मानसिक रूप से मजबूत हो गए।
उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और वे बुद्ध बन गए। अनुरोध प्राप्त होने पर
ब्रह्मा, महान ऋषि दीपांकर द्वारा निर्मित।
हीरो ने धम्म के पहिये को सुंदर ढंग से घुमाया।
मनमोहक नदराम उद्यान में निवास करते हुए। बैठे हुए
उसने बबूल के सिरिसा वृक्ष की जड़ों को रौंदा।
विधर्मियों में से। सुमांगला और तिस्सा दो विधर्मी बन गए।
प्रमुख शिष्यों में से एक, और सागत नामक थेरा, बन गए।
मास्टर दीपांकर की परिचारिका नंदा भी।
सुनंदा उनकी प्रमुख महिला शिष्या बन गईं।
उस महान बुद्ध के बोधि वृक्ष का नाम पिप्पली था।
काली मिर्च का पेड़। दो आदमी, तपस्सा और भल्लिका, नाम से।
प्रमुख पुरुष भक्त और सिरिमा भी शामिल थे।
कोणा गुरु की प्रमुख महिला भक्त थीं।
दीपांकर। महान ऋषि दीपांकर अस्सी वर्ष के थे।
ऊंचाई में क्यूबिट। पुष्पित राजसी के समान
साल का पेड़, और द्वीप के पेड़ के समान,
बुद्ध दीपांकर अत्यंत सुंदर थे। उनकी किरणें फैलती थीं।
बारह योजन तक उनके चारों ओर। जीवनकाल
उस महान ऋषि का जीवनकाल एक लाख वर्ष था।
इतने लंबे जीवनकाल तक जीवित रहकर, उन्होंने संदेश भेजा
अनेक लोगों को (अमर शांति के लिए)। कारण बनने के कारण
धर्म की अच्छाई को प्रकाशमान करने के लिए, उन्होंने इसे पार भेजा (संतारेत्ना)
लोगों का एक बड़ा समूह। अपने शिष्यों के साथ, उन्होंने
निर्वाण में विलीन हो गया, जैसे कि अंत हो गया हो।
प्रज्वलित अग्नि के एक पिंड का। वह महान जादुई शक्ति,
साथ ही उनके दल और उनकी प्रतिष्ठा भी, और
और उनके पैरों के तलवों पर रत्नों के समान वृत्त भी हैं।
वे सभी गायब हो गए। क्या सभी समूह

(संखारा) खाली?"
विजेता गुरु दीपांकर का निधन हो गया
नंदा पार्क में निर्वाण। वहाँ खड़े थे
विजेता का स्तूप, छत्तीस मील (योजना)
ऊंचाई में"।
....

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.1 बी विभिन्न अन्य पिछले बुद्ध
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1अपदाना भाग - 1.1ख: अन्य पूर्व बुद्ध
1.1अन्य विभिन्न पूर्व बुद्ध
1.1.1(2)बुद्ध कोंडन्ना
1.1.2(3)बुद्ध मंगल, (4)सुमन, (5)रेवत और (6)शोभिता
1.1.3बुद्ध: (7) अनोमदस्सी, (8) पद्म और (9) नारद
1.1.4(10) बुद्ध पद्ममुत्तरा
1.1.5(11)बुद्ध सुमेधा
1.1.6(12)बुद्ध सुजाता
1.1.7(13) पियादस्सी, (14) अत्थादस्सी और (15) धम्मदस्सी बुद्ध
1.1.8(16)बुद्ध सिद्धार्थ
1.1.9बुद्ध: (17)तिस्सा और (18)फुस्सा
1.1.10(19) विपस्सी बुद्ध
1.1.11(20) सिख और (21) वेस्सभू बुद्ध
1.1.12बुद्ध: (22) ककुसंध, (23) कोणागमना, (24) कस्सपा
अपदाना भाग - 1.1ख: अन्य पूर्व बुद्ध

अन्य विभिन्न पूर्व बुद्ध
(2)बुद्ध कोंडन्ना
1.47. हालाँकि, उनके निधन के बाद
हे गौरवशाली बुद्ध दीपांकर, जब असंख्य युगों का काल बीत चुका था।
(कप्पा) के गुजर जाने के बाद, गुरु कोन्दञ्ञा नाम से प्रकट हुए।
उनके शिष्यों की तीन सभाएँ थीं: सौ
पहली विधानसभा में हजार करोड़; दूसरी विधानसभा में हजार करोड़
दूसरे में नब्बे करोड़ और तीसरे में नब्बे करोड़। उस समय, बोधिसत्व
वह विजयतावी नाम से एक सार्वभौमिक सम्राट बने और उन्होंने एक महान वरदान दिया।
भिक्षु संगठनों को एक लाख करोड़ का दान
बुद्ध के नेतृत्व में संघ। गुरु ने बोधिसत्वों को भविष्यवाणी की।
कि वे बुद्ध बनेंगे और (बाद में) उन्हें धम्म का उपदेश दिया।

राजा ने गुरु का धार्मिक प्रवचन सुना और चला गया।
संप्रभुता का त्याग करने के बाद संन्यासी के रूप में विरक्ति।
राज्य। उसने तीनों पिटकों का ज्ञान प्राप्त किया, जागृत किया
स्वयं में ध्यान की आठ उपलब्धियाँ (समापत्ति) विद्यमान हैं।
साथ ही पांच प्रकार के अतिज्ञान और कभी भी कमी न होने की क्षमता
ध्यान की उच्च अवस्थाओं तक पहुँचकर, उनका ब्रह्म में पुनर्जन्म हुआ।
विश्व। हालाँकि, बुद्ध कोंडन्ना के लिए, शहर का नाम
राममावती थी. उनके पिता खटिया राजा सुनंदा थे; उसका
उनकी माता रानी सुजाता थीं। भद्दा और सुभद्दा उनके दो प्रमुख सरदार थे।
शिष्य। अनुराधा उनकी सेवा में परिचारक थे। तिस्सा और
उपतिस्सा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। उनका अन्न-वृक्ष
ज्ञान (बोधि) अच्छा साल वृक्ष (सालकल्याणी) था।
उसका कद आठ क्यूबिट था। उसकी जीवन अवधि
यह एक लाख वर्ष था।
दीपांकर के निधन के बाद,
वहाँ नेता कोण्डञ्ञ, बुद्ध प्रकट हुए।
असीम शक्ति, अतुलनीय प्रतिष्ठा
और अनुचर, अद्वितीय और कठिन
पराजय (दुरसदा)
(3)बुद्ध मंगल, (4)सुमन, (5)रेवत और (6)शोभिता
1.48. उनके निधन के बाद, एक
असंख्य युगों के लंबे अंतराल (कप्पा) की समाप्ति पर, चार उत्पन्न हुए
बुद्ध: मंगला, सुमना, रेवता और शोभिता, एक ही युग में
(कप्पा) केवल। गौरवशाली बुद्ध की तीन सभाओं में से।
मंगला की पहली विधानसभा में एक लाख करोड़ लोग शामिल थे।
भिक्षुओं का; दूसरे में एक हजार करोड़; तीसरे में नब्बे
करोड़ों। कहा जाता है कि उनका भाई, जो दूसरी माँ से पैदा हुआ था,
युवा आनंद, अपने साथ लोगों की एक सभा को लेकर उपस्थित था।
नब्बे करोड़ की संख्या में लोग गुरु के समक्ष उपस्थित हुए।
उनके धर्म को सुनो। गुरु ने उन्हें धार्मिक उपदेश दिया।
प्रवचन अपने क्रमिक क्रम में (अनुपुब्बिकथम)। साथ ही
श्रोतागणों के बीच, उन्होंने चारों प्रकार के देवताओं के साथ अरहत पद प्राप्त किया।
विश्लेषणात्मक ज्ञान। पूर्व की देखभाल करने में माहिर।
अच्छे परिवारों के इन बेटों के तौर-तरीकों से उनकी पर्याप्तता का पता चला।
जादुई रूप से अपने कटोरे और वस्त्र प्राप्त करने के लिए योग्यता प्राप्त करना
(उपनिषय), और अपना दाहिना हाथ फैलाकर कहा: "आओ, हे
भिक्षुओं!" वे सभी तुरंत ही उचित वस्त्र धारण कर लिए।
साठ वर्ष की आयु के बुजुर्ग भिक्षुओं की तरह, वस्त्र पहने हुए और
कटोरे लिए हुए, उन्होंने झुककर गुरु को प्रणाम किया और
उन्होंने उसे घेर लिया। यह उनके शिष्यों की तीसरी सभा थी।

1.49. ठीक वैसे ही, जैसे अन्य बुद्धों के चारों ओर

शरीर से अस्सी क्यूबिट की दूरी तक किरणें निकल रही थीं।
विस्तार में भी, इस बुद्ध के मामले में ऐसा नहीं है। शारीरिक किरणें
लेकिन उस महिमामय बुद्ध की उपस्थिति सर्वत्र व्याप्त रही।
दस हजार विश्व-तत्व। पेड़, धरती, पहाड़, महासागर।
इत्यादि, यहां तक कि वे बर्तन जिनमें चावल और अन्य खाद्य पदार्थ उबाले जाते हैं।
परिणामस्वरूप ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह सोने की पट्टियों से ढका हुआ हो। उसका जीवनकाल
हालांकि, जीवन की अवधि नब्बे हजार वर्ष थी। इतनी लंबी अवधि के लिए
उनके जीवनकाल में चंद्रमा, सूर्य आदि भी उनका वर्णन नहीं कर पाए।
अपनी किरणें बिखेरना। रात्रि और दिन का समय
स्पष्ट नहीं। जीव-जंतु हमेशा प्रकाश में ही चलते थे।
केवल बुद्ध ही थे, मानो वे दिन के उजाले में घूम रहे हों।
सूर्य का। सजीव प्राणियों की दुनिया ने विभाजनों को नोट किया।
कुसुमा के फूलों के माध्यम से जो दिन और रात खिलते हैं
शाम के समय पक्षियों का रोना (रावणक) आदि।
1.50. एक प्रश्न पूछा जा सकता है: तो फिर यह कैसा है? क्या
क्या अन्य बुद्धों में ऐसी कोई महान शक्ति नहीं थी? नहीं। ऐसा नहीं है।
वे चाहें तो निश्चित रूप से सर्वव्यापी भी हो सकते हैं।
उनकी शारीरिक किरणें या तो दस हजार विश्व तत्व हैं या इससे भी अधिक
उससे परे। दूसरी ओर, मंगल बुद्ध की शारीरिक किरणें।
पिछली प्रार्थना के प्रभाव से उसका हाथ खड़ा रहा।
दस हजार विश्व तत्व में हर समय व्याप्त, जो कि समान है
अन्य बुद्धों का अथाह लंबा प्रभामंडल। ऐसा कहा जाता है कि जब वे
वह बोधिसत्वों की साधना का पालन कर रहा था, वह स्वयं अपने मार्ग का नेतृत्व कर रहा था।
जीवन, वांका पहाड़ी से मिलते-जुलते एक पहाड़ी जंगल में, साथ में बिताया।
अपनी पत्नी और बच्चों के साथ, वेसंतारा की तरह। फिर, एक राक्षस,
शार्प-टस्कर नाम के व्यक्ति ने, उसके परोपकारी उद्देश्य के बारे में सुनकर
एक महान व्यक्तित्व ने एक अन्य व्यक्ति के वेश में उस महान सत्ता से संपर्क किया।
ब्राह्मण से उसके दो पुत्रों के लिए विनती की। महान सत्ता
वह प्रसन्न और प्रसन्न होकर बोली, 'ब्राह्मण! मैं अपने पुत्रों को आपको अर्पित करती हूँ।'
और उसने अपने दो बेटों को भी दान कर दिया, जिससे जलजनित संतानें पैदा हुईं।
भयंकर वैश्विक भूकंप के दौरान। राक्षस पास ही खड़ा था।
मठ के अंतिम छोर पर स्थित रेलिंग बोर्ड और भोजन कक्ष
लड़कों को खाने योग्य कमलों के गुच्छे की तरह उठाओ, जबकि
महान सत्ता देख रही थी। यहाँ तक कि एक हल्की सी झलक से भी।
बाल, मानसिक असंतोष उस महान व्यक्ति के सामने प्रकट नहीं हुआ।
इस तथ्य के बावजूद कि जब उसने उस राक्षस को देखा, उस क्षण
बाद वाले ने अपना मुंह खोला, उसने बाद वाले का मुंह देखा, ले जा रहा था
और आग की लपटों जैसी दिखने वाली रक्तधाराओं को पकड़े हुए। दूसरी ओर,
उसके पूरे शरीर में अपार उत्साह और मानसिक आनंद का संचार हुआ।
वह यह कहने पर विचार कर रहा था: 'मेरा दान वास्तव में उचित ही दिया गया है'।
उस महान व्यक्तित्व ने इस प्रकार आकांक्षा व्यक्त की:- "परिणामस्वरूप
यह मेरा दान है, आशा है कि मेरे शरीर से इसी प्रकार किरणें निकलेंगी।

तदनुसार, आने वाले समय में। उस आकांक्षा के फलस्वरूप
जब वे बुद्ध बने तो उनसे किरणें निकलीं और व्याप्त हो गईं।
इतना विशाल स्थान।
1.51. उनकी एक और पूर्व प्रथा भी मौजूद थी।
ऐसा कहा जाता है कि जब वे बोधिसत्व थे, तब उन्होंने बुद्ध का एक मंदिर देखा था।
और मन ही मन कह रहे थे: "मुझे पूरी तरह से बलिदान देना चाहिए।"
"मेरा जीवन इस बुद्ध को समर्पित है", उसने पूरी रात परिक्रमा करते हुए बिताई।
मंदिर में उनके सिर को उठाकर उनके पूरे शरीर को आग लगा दी गई।
एक लाख रुपये मूल्य का रत्नजड़ित सोने का कटोरा, जो कि
घी से भरा हुआ, जहाँ एक हजार बत्तियाँ जलाई गईं, उसे घेरने के बाद
उसका पूरा शरीर इस तरह ढका हुआ था मानो किसी जलती हुई छड़ी पर छाया डाली जा रही हो।
हालांकि, गर्मी का उन पर किसी भी तरह से कोई असर नहीं पड़ा।
उनके रोमछिद्रों में भी, हालांकि उन्होंने इसे पूरी ऊर्जा के साथ अंजाम दिया।
इस तरह सूर्योदय तक। उनके लिए यह एक विशेष अवसर के समान था।
जब वह कमलों के कक्ष में प्रवेश कर चुका था। निश्चय ही, वास्तव में
धर्म, धर्म का पालन करने वाले की रक्षा करता है।
स्वयं। इसलिए, परम पूज्य बुद्ध ने कहा:
"धम्म वास्तव में अभ्यास करने वाले की रक्षा करता है।"
धम्म। सुचारु धम्म से लाभ होता है।
खुशी। जब धम्म का सही ढंग से अभ्यास किया जाता है तो यह
इसका लाभ यह है: जो धम्म का अभ्यास करता है उसे कोई हानि नहीं होती।
"शुद्धिकरण में जाओ।"
इस अच्छे कर्म के फलस्वरूप भी, उस
महिमामय बुद्ध का शरीर दृढ़ता से स्थिर रहा, दसों में व्याप्त
हजार विश्व-तत्व (लोकधातु)।
1.52. उस समय हमारे बोधिसत्व ब्राह्मण बन गए,
सुरुचि नाम के व्यक्ति ने मन ही मन कहा, 'मैं गुरु को आमंत्रित करूंगा।'
वह बुद्ध के पास गया और उनके मधुर धार्मिक प्रवचन सुने।
प्रवचन देते हुए उन्होंने कहा: "आदरणीय महोदय, कल कृपया स्वीकार करें।"
"मेरा भोजन भिक्षा के रूप में।" 'हे ब्राह्मण! तुम कितने भिक्षुओं के साथ हो?'
'चाहते हो!' बुद्ध ने उत्तर दिया। ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "आदरणीय
महोदय! आपके भिक्षुओं की संख्या चाहे कितनी भी हो,
उस समय शिक्षक की पहली सभा हुई थी।
केवल शिष्यों में से। इसलिए उन्होंने उत्तर दिया: 'एक लाख
करोड़ों। ब्राह्मण ने उत्तर दिया: 'आदरणीय महोदय! साथ में
कृपया उन सभी के साथ मेरा भोजन भी दान के रूप में स्वीकार करें।
गुरुजी मान गए। ब्राह्मण, निमंत्रण देने के बाद घर लौट रहा था।
अगले दिन के भोजन के लिए बुद्ध ने इस प्रकार विचार किया: "मैं हूँ
चावल का दलिया, पका हुआ चावल और करी, कपड़े आदि प्रदान करने में सक्षम।
आदि, उन बड़ी संख्या में भिक्षुओं के लिए; बैठने की व्यवस्था के संबंध में
अंतरिक्ष के संदर्भ में क्या होगा?
1.53. उस ब्राह्मण का वह विचार

हल्के पीले मखमल के समान पत्थर की सीट को गर्म किया गया।
देवों का राजा, जो स्वर्गिक शिखर पर विराजमान था
चौरासी हजार लीग (योजना)। सक्का मन ही मन कह रहा था।
'कौन चाहता है कि मैं इस जगह को छोड़ दूं?'
अपनी दिव्य दृष्टि से चारों ओर देखा और उस महान व्यक्ति को पाया और
वह उसके सामने कुल्हाड़ी और एक
कुल्हाड़ी, बढ़ई का वेश धारण करने के बाद, इसके साथ
विचार: "सुरुचि नामक ब्राह्मण ने संगठन को आमंत्रित किया था
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के एक समूह ने उनके बैठने की जगह पर विचार किया;
मुझे वहां जाकर पुण्य का हिस्सा लेना चाहिए।
बढ़ई ने पूछा: "क्या वास्तव में कोई ऐसा काम है जो
क्या वेतनभोगी किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसा किया जाना चाहिए?" उस महान व्यक्ति ने उसे देखा
और उनसे यह सवाल पूछा: "आप क्या काम करेंगे?"
मेरे लिए ऐसा कोई तकनीकी कार्य नहीं है जिसे बुद्धिमानी से न किया जा सके।
हो गया। जिसे भी मुझसे घर या पंडाल बनवाना हो, मैं जानता हूँ।
"मैं उसके लिए यह कैसे करूँ?" बढ़ई ने उत्तर दिया, "वह महान व्यक्ति।"
उन्होंने उत्तर दिया, 'अच्छा, तो वास्तव में, मुझे काम करना है।' जब
जब पूछा गया कि काम क्या है, तो जवाब मिला: 'अगले दिन के लिए'
मैंने एक लाख करोड़ भिक्षुओं को भोज के लिए आमंत्रित किया था;
'उन्हें बैठाने के लिए तुम एक पंडाल बनाओगे।' बढ़ई ने कहा।
उन्होंने कहा: 'यदि आप मुझे वेतन दे सकते हैं, तो मैं'
'काम करो'। जब जवाब सकारात्मक था कि वह
जब बढ़ई भुगतान कर सका, तो वह काम करने के लिए तैयार हो गया।
और जाकर एक उपयुक्त जगह की तलाश की। एक क्षेत्र
बारह-तेरह योजन के क्षेत्रफल में फैली यह वस्तु समतल सतह की थी, जो देखने में कुछ इस प्रकार थी:
ध्यान अभ्यास के लिए एक गोलाकार यांत्रिक सहायक उपकरण (कसीना मंडल)।
वह उस जगह को देखते हुए सोचने लगा: "इस ज़मीन पर एक..."
पंडाल सात प्रकार के रत्नों से बना हो और ऊपर उठे। वहाँ और
फिर पंडाल धरती को चीरते हुए ऊपर उठ खड़ा हुआ। सोना
उस पंडाल के स्तंभों पर चांदी की शीर्ष-शीर्षें थीं; चांदी
स्तंभों के शीर्ष सोने के थे; रत्नजड़ित स्तंभों के शीर्ष मूंगे के थे।
मूंगे के स्तंभों पर माणिक्य के शीर्ष लगे हुए थे और
सात रत्नों से बने स्तंभों पर सात प्रकार की सामग्रियों से निर्मित शीर्ष स्तंभ स्थापित थे।
रत्नों का। इसके बाद, पंडाल निर्माता ने संरचना को देखा।
इस विचार के साथ: 'झनझनाती घंटियों की एक जालीदार झालर हो।'
पंडाल के अंदर अंतरालों पर लटकते हुए।" इस प्रकार, जैसे ही वह
चारों ओर देखा, घंटियों का जाल नीचे लटक रहा था। यह उत्सर्जित करता है
पांच प्रकार के वाद्ययंत्रों की मधुर ध्वनि जब भी सुनाई देती है
हल्की हवा के झोंके से हिल रहा था। यह उस अवसर के समान प्रतीत हो रहा था।
जब दिव्य गीत एक साथ गाए जाते थे। जब भी ऐसा होता था
विचार: "सुगंधित मालाओं की श्रृंखला हो।"
इधर-उधर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर फूल लटके हुए हैं।

फूलों की मालाओं की लटकती हुई लड़ियाँ दिखाई दीं। निर्माता
इस पर भी विचार किया गया: "भिक्षुओं के लिए बैठने और खड़े होने की व्यवस्था इस प्रकार की जाए..."
धरती को चीरते हुए एक लाख करोड़ रुपये निकलते हैं।
वहीं और उसी क्षण वे सब प्रकट हुए। उसने इस प्रकार योजना बनाई: "चलो
वहाँ प्रत्येक कोने पर एक-एक जलपात्र प्रकट हुए। तदनुसार जलपात्र प्रकट हुए।
1.54. जब उसने इतना बना लिया, तो उसने
वह ब्राह्मण के समक्ष गया और बोला: "आइए, मेरे स्वामी!"
"अपना पंडाल देखो और मेरी मजदूरी अदा करो।" वह महान व्यक्ति पंडाल देखने गया। जैसे ही उसने पंडाल देखा,
उसका पूरा शरीर या काया स्थायी रूप से उसमें समा गई।
पांच विवरणों का उत्साह। इसके बाद, जब उसने देखा
पंडाल के निर्माण के दौरान, उनके मन में यह विचार आया: "यह पंडाल इनके द्वारा नहीं बनाया गया था।"
एक मनुष्य। मेरी गहरी इच्छा और मेरे सद्गुण के कारण, निश्चित रूप से,
सक्का का महल गर्म हो गया होगा। परिणामस्वरूप, ऐसा होना ही चाहिए।
कि इस पंडाल का निर्माण देवों के राजा सक्का ने करवाया था।
इस प्रकार भी विचार किया गया: "हालांकि, इस तरह के पंडाल में,
मेरे लिए केवल एक दिन के लिए दान देना उचित नहीं है।
मैं सात दिनों तक भेंट चढ़ाऊंगा। बाहरी भेंट
वस्तुएँ, वास्तव में, भले ही वह इतनी भी न हो कि सक्षम हो
बोधिसत्वों को संतुष्ट करें। दूसरी ओर, वहाँ, अर्थात्, है
बोधिसत्वों को उनके बलिदान के फलस्वरूप संतोष प्राप्त हुआ।
उसके सजे हुए सिर को काटने के बाद उसे दान करने का समय
इसे उतार दो, या उन्हें हटाने के बाद उसकी अभिषेकित आँखें, या उसका मांसल
अभिषेक करने के बाद हृदय। वास्तव में, हमारे बोधिसत्व के लिए भी
राजा शिवी की जन्म कथा (जातक), उस दान की कहानी, जिसमें शामिल था
प्रतिदिन पाँच लाख कहपना दान करने में, चारों स्थानों पर
द्वारों के साथ-साथ शहर के मध्य में भी, लाने में असमर्थ रहा।
उनके त्याग में संतोष के बारे में। दूसरी ओर, उनका
जब उसने अपनी दोनों आँखें दिखा दीं तो आनंदमयी हंसी गूंज उठी।
देवताओं के राजा सक्का ने यह अनुरोध किया था, जो उनके पास एक अलग रूप में आए थे।
एक ब्राह्मण के विचार में भी कोई परिवर्तन नहीं आया।
बाल के सिरे का। इस प्रकार, अर्थात्, कोई नहीं है
बोधिसत्वों को दी गई भेंट के संबंध में संतोष।
इसलिए, उस महान व्यक्ति ने भी दान दिया जिसे दान के रूप में जाना जाता है।
सात दिनों तक गोमांस का पेय (गवापान) मांगते हुए
बुद्ध और उनके शिष्यों को उस मंडप में बैठने के लिए कहा गया था।
इस प्रकार विचार किया: "मेरे लिए सात लोगों के लिए दान देना उचित है।"
एक लाख करोड़ भिक्षुओं के लिए दिन।
अभिव्यक्ति: गवपान को विशेष रूप से समझा जाना चाहिए
कुछ चावल के दानों के साथ तैयार किया गया पका हुआ भोजन
गर्म शहद, पिसी हुई चीनी और घी को दूध में मिला दिया जाता है।
यह विशाल बर्तनों में पककर ठोस हो गया।
दूध से भरे हुए और ओवन पर लगे हुए। हालाँकि, मानव-

वे प्राणी स्वयं से आतिथ्य सत्कार प्रदान करने में सक्षम नहीं थे।
वे बारी-बारी से दिव्य प्राणियों के साथ मिलकर सेवा करते थे।
बारह-तेरह योजन का विशाल क्षेत्र भी पर्याप्त नहीं था।
सभी भिक्षुओं को समायोजित करने में सक्षम। हालाँकि, वे भिक्षु,
अपनी शक्ति के बल पर उन्होंने अपनी सीटें ग्रहण कीं। अंत में और
लेकिन अंतिम दिन, उसके पास सभी भिक्षुओं के भिक्षापात्र थे।
उन्हें अच्छी तरह धोकर घी से औषधीय प्रयोजन के लिए भर दिया गया।
ताजा मक्खन, तेल, शहद और गुड़ मिलाकर एक साथ परोसा।
तीन वस्त्रों के सेट के साथ। प्राप्त वस्त्रों में शामिल हैं...
नवदीक्षित भिक्षुओं की कीमत एक लाख थी।
1.55. गुरु ने धन्यवाद व्यक्त करते हुए जाँच की:
इस व्यक्ति ने इतना बड़ा दान दिया; भला कौन ऐसा करेगा?
क्या वह होगा?" और पता चला: "काफी समय बाद, भविष्य में, सौ
हजारों युगों (कप्पा) के अतिरिक्त दो असंख्य समूहों के अलावा
युगों (कप्पा) बाद, उनका नाम बुद्ध, गौतम होगा।
गुरु ने उस महान व्यक्ति को बुलाया और इस प्रकार भविष्यवाणी की: "तुम
जब एक निश्चित अवधि बीत जाएगी, तब वह व्यक्ति बुद्ध, गौतम नाम से जाना जाएगा।
समय बीत चुका था।" जब उस महान व्यक्ति ने भविष्यवाणी सुनी,
उन्होंने इस प्रकार सोचा: "मुझे बताया गया है कि मैं बुद्ध बनूंगा। यह क्या है?"
गृहस्थ जीवन के उपयोग को मैं त्याग दूंगा और बन जाऊंगा।
एक संन्यासी की तरह। उसने अपनी उपरोक्त सारी समृद्धि को त्याग दिया।
लार का एक गुच्छा, गुरु की उपस्थिति में एकांतवासी बन गया।
हमने बुद्ध के वचन ग्रहण किए, और हमारे समान ही अतिज्ञान प्राप्त किया।
झाना में और अपने जीवनकाल के अंत में उनका पुनर्जन्म हुआ।
ब्रह्मा जगत।
1.56. महिमावान बुद्ध मंगल का नगर,
हालाँकि, उत्तरा के नाम से जाना जाता था। उनके पिता का नाम उत्तरा था
यह नाम योद्धा (खत्तिया) वंश का भी है। उनकी माता थीं।
रानी उत्तरा नाम से भी. सुदेव और धम्मसेना उनके थे
उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक का नाम पालिता था।
सियावली और अशोक उनकी प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। उनके वृक्ष का
ज्ञानोदय (बोधि) नाग वृक्ष के समान था। उसका शरीर
उसकी लंबाई अस्सी-आठ क्यूबिट थी। वह नब्बे हजार वर्ष तक जीवित रहा।
जब वे पूर्ण निर्वाण में देहांत हुए, तो दस
हजारों विश्व चक्र सर्वसम्मति से अंधकार के एक समूह में तब्दील हो गए।
एक ही क्षण में। समस्त ब्रह्मांडों में रोना और विलाप करना शुरू हो गया।
मानव जाति का।
कोंडाना के बाद, नेता, मंगाला,
नाम से ही, उसने दुनिया से अंधकार को दूर किया और
धर्म की मशाल को बुलंद रखा।
1.57. सुमना नाम के स्वामी ने संसार में उदय किया।
उसके पूर्ण रूप से निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद

इस प्रकार दस हजार संसारों को अंधकारमय करने के बाद, महिमावान बुद्ध ने
तत्व। उनके शिष्यों की सभा में भी तीन सदस्य थे।
पहली विधानसभा में एक लाख करोड़ रुपये थे।
भिक्षुओं। स्वर्ण पर्वत पर दूसरी सभा में
नब्बे हजार करोड़ थे। तीसरे में अस्सी थे।
हजार करोड़। उस समय, वह महान प्राणी एक राजा था।
नागराज (ड्रैगन), जिनमें उच्च जादुई शक्ति और महान सामर्थ्य होती है।
अतुला नाम से। उस ड्रैगन के राजा ने उसके प्रकट होने के बारे में सुना।
बुद्ध अपने अजगरों के महल से बाहर निकले, जो उनके चारों ओर घिरा हुआ था।
रिश्तेदारों की संगति में, बड़ी दान-पुण्य की पेशकश की, साथ में
दिव्य संगीत द्वारा, प्रत्येक ने वस्त्रों की एक जोड़ी भेंट की।
वह तेजस्वी बुद्ध और उनके एक लाख अनुयायियों का दल
करोड़ों भिक्षुओं का भंडाफोड़ किया और त्रिरत्न में स्वयं को स्थापित किया।
शरणस्थल। उस गुरु ने उससे यह भविष्यवाणी भी की: "तुम
आने वाले समय में बुद्ध बनो। उस गौरवशाली शहर का
बुद्ध का नाम मेखला था। उनके पिता का नाम राजा सुदत्त था।
नाम। उनकी माता का नाम सिरिमा था। सरवा और भावितत्ता
उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उदेना उनका सेवक था।
सोना और उपासना उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। उनके बोधि
वह वृक्ष नागरुक्ख वृक्ष था। उसका शरीर नब्बे वर्ष का था।
उसकी ऊंचाई क्यूबिट में थी। उसका जीवनकाल नब्बे हजार वर्ष था।
मंगला के बाद नेता का आगमन हुआ।
सुमना, समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ,
धर्म के सभी रूपों में अद्वितीय।
1.58. उनके बगल में, गुरु रेवता उठे,
नाम से। उनके शिष्यों की सभाएँ भी तीन थीं।
पहली सभा में संख्या अकल्पनीय थी। दूसरी सभा में संख्या का अनुमान लगाना असंभव था।
वहाँ एक लाख करोड़ भिक्षु थे। संख्या में लगभग समान-
वह तीसरा व्यक्ति था। उस समय, बोधिसत्व ब्राह्मण बन गया।
अतिदेव नाम से। उनके द्वारा दिए गए धम्म उपदेश को सुनकर।
गुरु ने त्रिरत्न शरणस्थलों में अपनी पहचान स्थापित कर ली।
अपने हाथों को सिर पर रखकर, उसने बुद्ध की वाणी सुनी।
उन्होंने दुराचार (किलेसा) के त्याग की प्रशंसा की और उनका सम्मान किया।
अपने ऊपरी वस्त्र के साथ। बुद्ध ने उनसे यह भविष्यवाणी भी की थी कि
वह बुद्ध बनेंगे। उस गौरवशाली बुद्ध का नगर था।
सुधञ्ञवती के नाम से जानी जाती थीं। उनके पिता का नाम विपुल था।
योद्धा वंश (खत्तिया)। उनकी माता का नाम विपुल था। वरुण
और ब्रह्मदेव उनके दो प्रमुख शिष्य थे। संभव उनके शिष्यों में से एक थे।
उनके सेवकों के नाम। भद्दा और सुभद्दा उनके दो सेवक थे।
प्रमुख महिला शिष्याएँ। उनका बोधि वृक्ष लौह-लकड़ी का वृक्ष था।
(नागरुक्ख)। उनका जीवनकाल साठ हजार वर्ष था।
सुमाना के बाद अगला नेता रेवता था।

वह एक उत्कृष्ट विजेता था, अतुलनीय, अद्वितीय और
अद्वितीय।
1.59. उनके बाद, गुरु उठे, जिनका नाम
शोभिता था। उनके शिष्यों की सभाएँ भी तीन थीं
पहली विधानसभा में सौ करोड़ लोग थे।
दूसरे, नब्बे करोड़ थे। तीसरे में थे।
अस्सी करोड़। उस समय बोधिसत्व ब्राह्मण बन गए।
उसका नाम अजित्रा था। उसने गुरु का धार्मिक प्रवचन सुना।
उन्होंने शरणार्थी शिविरों में अपना ठिकाना बनाया और वहां बहुत दान दिया।
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं का संगठन। वह बुद्ध भी
भविष्यवाणी की गई थी कि वह बुद्ध बनेंगे। उस शहर का
महान बुद्ध सुधम्म के नाम से जाने जाते थे। उनके पिता राजा थे।
उनका नाम सुधम्मा था। उनकी माता का नाम भी रानी सुधम्मा था।
असामा और सुनेट्टा उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनका नाम अनोमा था।
उनकी सेविका नकुला और सुजाता उनकी दो सेविकाएँ थीं।
प्रमुख महिला शिष्याएँ। नागरुक्ख वृक्ष उनका था।
बोधि। उनके शरीर की लंबाई अट्ठावन क्यूबिट थी। उनका शरीर इतना लंबा था।
जीवन की अवधि नब्बे हजार वर्ष थी।
रेवता के बाद, अगला नेता उभरा जिसका नाम था
शोभिता। वह शांत मन वाला था, आत्म-
दृढ़ संकल्प। वह अद्वितीय था, उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं था।
उनके लिए।

बुद्ध: (7) अनोमदस्सी, (8) पद्म और (9) नारद
1.60. इसके बाद बुद्ध, जब एक लंबी अवधि बीत गई
असंख्य युग बीत जाने के बाद, एक ही क्षण में प्रकट हुआ।
कप्पा, तीन बुद्ध: अनोमदस्सी पद्म और नारद। तीन
महान बुद्ध के लिए शिष्यों की सभाएँ अस्तित्व में थीं।
अनोमादस्सी: पहली सभा में आठ सौ लोग थे
हजार भिक्षु थे। दूसरे में सात थे और तीसरे में भी सात थे।
तीसरा छठा। उस समय बोधिसत्व एक राक्षस सेना बन गया।
वह सेनापति जादुई शक्तियों से परिपूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली था।
वह असंख्य हजारों-करोड़ों लोगों का सर्वोच्च मुखिया था।
राक्षस। उस राक्षस सेनापति ने सुना कि बुद्ध का उदय हुआ है, वह आया।
और उन्होंने भिक्षुओं के संघ को बहुत बड़ा दान दिया।
बुद्ध द्वारा। बुद्ध ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि वह बनेंगे
आने वाले समय में बुद्ध। गौरवशाली बुद्ध का नगर।
अनोमादस्सी, जिनका नाम चंदवती था। राजा ने उनका नाम रखा।
यशवा उनके पिता थे। यशोधरा नाम की रानी उनकी पुत्री थीं।
माता। निसाभा और अनोमा उनके दो प्रमुख शिष्य थे।
उनकी सेवा में उपस्थित सेवक का नाम वरुण था। सुंदरी
और सुमना उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। वृक्ष

पंचपश्चावृक्ष अर्जुन उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर अट्ठावन वर्ष का था।
उसकी लंबाई एक हाथ थी। उसका जीवनकाल एक लाख वर्ष था।
सर्वज्ञानी बुद्ध का अगला भाग, सबसे उत्कृष्ट
पुरुषों में, शोभिता के बाद, अनोमदस्सी का स्थान था।
अतुलनीय प्रतिष्ठा, शक्तिशाली और कठिन
उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए।
1.61. उनके बाद, पद्मा नाम के गुरु,
उठे। उनके शिष्यों की सभाएँ भी तीन थीं
पहली विधानसभा में एक लाख करोड़ रुपये थे।
दूसरे में तीन लाख भिक्षु थे।
तीसरे में दो लाख भिक्षु थे, जो
वे गांवों में अच्छी तरह से नहीं रह पाते थे, बल्कि जंगलों में ही रहते थे।
घने जंगलों में। उस समय बोधिसत्व एक शेर थे। उनका मन
जब उसने गुरु को आनंदित होते देखा तो वह आस्था से भर गया।
स्वयं द्वारा पूर्णतः अमर शांति (निरोधसमापत्ति) की प्राप्ति
उन्होंने उन्हें नमन किया, उनकी परिक्रमा की, उत्साह से भर गए।
मानसिक आनंद से परिपूर्ण होकर, उसने तीन बार शेर की दहाड़ मारी।
उसने सात दिनों तक अपना उत्साह नहीं छोड़ा, पीछे नहीं हटा।
अपने शिकार के दौरान, उन्होंने अपने जीवन का पूर्ण बलिदान दिया और
वे तेजस्वी बुद्ध की सेवा में खड़े थे। गुरु,
सात दिनों की समाप्ति पर उन्होंने अमरता के अपने आनंद से उठ खड़े हुए।
निरोध ने सिंह को देखकर मन ही मन विचार किया:
"यह सभा में उपस्थित लोगों की मानसिक आस्था को जगाएगा।"
भिक्षुओं की भी पूजा हो और पुरोहितों का भी आदर हो; भीड़ को भी शामिल होने दो
भिक्षु इधर आओ।" तभी तुरंत सभी भिक्षु
आया। शेर ने भी उसके मन को आस्था से भर दिया।
भिक्षुओं का समूह। गुरु ने उसमें देखा।
मन में यह बात आई और भविष्यवाणी की: "यह भविष्य में बुद्ध बनेगा।"
गौरवशाली बुद्ध पद्म का नगर चंपक था।
नाम से। असामा नाम का राजा उसका पिता था। रानी
उनकी माता का नाम असमा था। साला और उपसाला उनके मुखिया थे।
उनके शिष्य। उनकी सेवा करने वाले उनके सेवक का नाम वरुण था।
रामा और सुरामा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। सोना
वह वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर अट्ठावन हाथ लंबा था।
उनकी ऊँचाई। उनका जीवनकाल एक लाख वर्ष लंबा था।
सर्वज्ञानी बुद्ध का अगला भाग, सबसे उत्कृष्ट
पुरुषों में, अनोमादस्सी के बाद पद्मा नाम का एक व्यक्ति था।
अद्वितीय व्यक्तित्व, जिसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं।
1.62. उनके बाद नारद नामक गुरु उठे।
उनकी सभाएँ भी तीन थीं। पहली सभा में
वहाँ एक लाख करोड़ भिक्षु थे। नब्बे
दूसरे में हजार करोड़ और अस्सी हजार करोड़ थे।

तीसरे चरण में, उस समय बोधिसत्व ने संसार का त्याग कर दिया।
एकांतवासी बन गया, और अभ्यास में पारंगत हो गया।
आठ प्रकार के ध्यान और पाँच प्रकार के अलौकिक-
ज्ञान। उसने मंडली को एक बड़ा दान दिया।
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं को लाल चंदन देकर सम्मानित किया गया।
लकड़ी। उस गुरु ने उससे यह भविष्यवाणी भी की थी कि वह बन जाएगा
भविष्य में बुद्ध। उस महिमावान बुद्ध का नगर धन्ञ्वती था।
नाम से। उनके पिता सुदेव, क्षत्रिय वंश के थे।
नाम। अनोमा नाम की रानी उनकी माता थीं। भद्दसाला और
जितामित्त उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक उनके
सेवा का नाम वासेत्थ्ठा था। उत्तरा और फाग्गुनी उनकी दो सेवकाइयाँ थीं।
प्रमुख महिला शिष्याएँ। महान सोना वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका
नब्बे हज़ार वर्ष।
"सर्वज्ञ बुद्ध, जो सबसे श्रेष्ठ हैं
पद्म के बाद, पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ, नारद नाम के थे, अद्वितीय
और प्रतिद्वंद्वी कम।"

(10) बुद्ध पद्ममुत्तरा
1.63. बुद्ध नारद के निधन के बाद,
एक लाख कप्पाओं की समाप्ति पर, एक ही उत्पन्न हुआ
बुद्ध केवल पद्ममुत्तरा नाम से एक विशेष कप्पा में हैं।
उस बुद्ध के शिष्यों की तीन सभाएँ भी थीं।
पहली विधानसभा में एक लाख करोड़ लोग थे।
भिक्षुओं। वेभारा पहाड़ी पर दूसरी सभा में, वहाँ
तीसरे में नब्बे हजार करोड़ और अस्सी हजार करोड़ थे।
करोड़ों। उस समय बोधिसत्व एक महान नागरिक बन गए।
धनवान व्यक्ति, जातिला नामक व्यक्ति, जिसने वस्त्रों सहित दान दिया।
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं का समूह। वह गुरु भी
उन्हें भविष्यवाणी की गई थी कि वे भविष्य में बुद्ध बनेंगे।
लेकिन गौरवशाली बुद्ध पद्ममुत्तरा के दिनों में,
वे, अर्थात्, विधर्मी नहीं थे। सभी दिव्य और मनुष्य चले गए।
वे केवल बुद्ध की शरण में जाते थे। उनका नगर हंसवती था।
नाम। उनके पिता एक योद्धा वंश (खत्तिया) के राजा थे।
आनंद। उनकी माता सुजाता नामक रानी थीं। देवला और
सुजाता उनके दो प्रमुख शिष्य थे। सुमना उनका नाम था।
उनकी सेवा में तत्पर रहने वाली परिचारिकाएँ। अमिता और असमा उनकी दो परिचारिकाएँ थीं।
प्रमुख महिला शिष्याएँ। साल का वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर
उसकी लंबाई अट्ठावन क्यूबिट थी। उसके शरीर की किरणें फैल गईं।
चारों ओर बारह योजन की सीमा तक। उसका विस्तार
जीवन की अवधि दस हजार वर्ष थी।
सर्वज्ञ बुद्ध नारद के पदचिह्नों पर चलते हुए,
पद्ममुत्तरा नाम का एक अत्यंत उत्कृष्ट व्यक्ति बन गया।

विजेता, सागर के समान, अविचलित।

(11)बुद्ध सुमेधा
1.64. उनके निधन के बाद,
तीस हजार युगों (कप्पा) की समाप्ति पर, एक ही युग में उत्पन्न हुआ
(कप्पा) दो बुद्ध: सुमेधा और सुजाता। तीन थे
सुमेधा के लिए भी शिष्यों की सभाएँ आयोजित की गईं। पहली सभा में,
वहाँ सौ करोड़ अरहत थे, जो रोगों (आसव) से मुक्त थे।
सुदस्साना शहर में। दूसरे में नब्बे थे।
करोड़ों में से तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय बोधिसत्व
उत्तरा नाम का एक युवक था, जिसने अपनी अस्सी साल की संपत्ति खर्च कर दी थी।
उन्होंने अपने दबे हुए खजाने में से करोड़ों रुपये दान में दिए।
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की सभा में उपस्थित होकर उन्होंने सुना...
धम्म का अनुसरण करते हुए, उन्होंने शरणस्थलों में शरण ली और धर्म का त्याग कर दिया।
संसार में जाकर वे संन्यासी बन गए। बुद्ध ने भी यही भविष्यवाणी की थी कि
वह भविष्य में बुद्ध बनेंगे। गौरवशाली नगर
बुद्ध सुमेधा का मूल नाम सुदस्सन था। राजा का नाम सुदत्त था।
उनके पिता थे। रानी सुदत्ता उनकी माता भी थीं।
सरणा और सब्बकामा उनके दो प्रमुख शिष्य थे। सागर उनके शिष्य थे।
उनकी सेवा में। राम और सुरमा उनकी दो प्रमुख महिलाएँ थीं।
शिष्य। नीपा किस्म का वृक्ष (या अशोक वृक्ष की प्रजाति)।
उनका बोधि वृक्ष था। उनके शरीर की ऊंचाई अस्सी आठ क्यूबिट थी।
उनका जीवनकाल नब्बे हजार वर्ष था।
पदुमुत्तरा के बाद, सुमेधा नेता थे।
शक्तिशाली ऋषि पर हमला करना कठिन था।
शक्ति, जो सभी मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ है।

(12)बुद्ध सुजाता
1.65. उनके पीछे, सुजाता नाम के गुरु उठे।
उनके शिष्यों की सभाएँ भी तीन थीं
पहली सभा में साठ लाख भिक्षु थे।
दूसरे में पचास थे और तीसरे में चालीस। उस समय
उस समय बोधिसत्व एक सार्वभौमिक सम्राट बन गए, जिन्होंने सुनकर
बुद्ध उठे, उनके पास गए और धर्म को सुना।
उन्होंने चार महान द्वीपों पर अपनी संप्रभुता दान में दे दी।
अपने सात प्रकार के शाही रत्नजड़ित वस्त्रों के साथ
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के एक समूह में शामिल हुए और एकांतवासी बन गए।
प्रभु की उपस्थिति। उनके राज्य के सभी निवासी
उन्होंने अपने देश के उत्पादों को ग्रहण किया और बड़ी भेंटें दीं।
बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की सभा के प्रति सर्वकालिक समर्पित।

संपूर्ण मठवासी व्यवस्था के कर्तव्यों का निर्वहन करना।
उस गुरु ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की थी कि वे बुद्ध बनेंगे।
भविष्य में। सुमंगला उस महान बुद्ध का नाम था।
शहर। उनके पिता का नाम उगाता था, जो राजा थे। उनकी माता थीं।
नाम से पभावती. सुदासन और सुदेव उनके दो प्रमुख थे
शिष्य। नारद उनकी सेवा में उपस्थित थे। नाग और
नागसमाला उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। महान
बांस का वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। ऐसा कहा जाता है कि वे प्रकाशमान हुए।
जैसे किसी कोमल त्वचा पर मोर की पूंछ के पंखों का गुच्छा लिपटा हो।
पेड़ का छिद्रयुक्त ठोस तना, जिसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ बाहर की ओर फैली हुई हैं
वहाँ से। उस तेजस्वी बुद्ध का शरीर पचास क्यूबिट का था।
उनकी लंबाई नब्बे हजार वर्ष थी।
उसी मंडकप्पा में, जो नेता हैं,
सुजाता नामक एक व्यक्ति का जबड़ा शेर जैसा और शरीर बैल जैसा था।
उसे हराना मुश्किल था, क्योंकि उसका कोई मुकाबला नहीं था।

(13) पियादस्सी, (14) अत्थादस्सी और (15) धम्मदस्सी बुद्ध

1.66. उनकी मृत्यु के बाद, अठारह सौ
युगों (कप्पा) बाद, एक ही युग (कप्पा) में तीन बुद्धों का जन्म हुआ:
पियादस्सी, अट्ठदस्सी और धम्मदस्सी। वहाँ तीन सभाएँ थीं
शिष्यों में से एक, गौरवशाली बुद्ध पियादस्सी के लिए भी। पहले में
वहां एक लाख करोड़ भिक्षुओं की सभा थी।
दूसरे में नब्बे करोड़ और तीसरे में अस्सी करोड़ थे।
उस समय बोधिसत्व कासपा नाम का एक युवक था।
तीनों वेदों में पूर्णतः पारंगत, जिन्होंने सुना
गुरु के धार्मिक प्रवचन के आधार पर एक मठ का निर्माण किया गया।
पादरी वर्ग ने अपनी एक लाख की संपत्ति का पूरी तरह से त्याग कर दिया।
करोड़ों रुपये कमाकर उसने शरणस्थलों और उपदेशों में स्वयं को स्थापित किया।
तब गुरु ने उससे भविष्यवाणी की कि वह बन जाएगा
अठारह सौ युगों (कप्पा) की समाप्ति पर बुद्ध। शहर
उस महान बुद्ध का नाम अनोमा था। राजा का नाम
उनके पिता सुदिन्ना थे। उनकी माता का नाम चंदा था। पालिता
और सब्दस्सी उनके दो प्रमुख शिष्य थे। शोभिता उनके शिष्यों में से एक थे।
उनके सेवकों के नाम: सुजाता और धम्मदिन्ना
उनकी प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। काकुधा वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था।
वृक्ष। उसका शरीर अस्सी क्यूबिट लंबा था। उसका जीवनकाल
यह नब्बे हजार वर्ष था।
सुजाता के बाद, महान पियादस्सी का उदय हुआ।
प्रतिष्ठा, दुनिया का नेता, जो बन गया
स्वयं से प्रबुद्ध, अद्वितीय और अतुलनीय,
जिसे हराना मुश्किल था।

1.67. उनकी मृत्यु के बाद, यह उत्पन्न हुआ
अत्थादस्सी नामक महिमावान बुद्ध। तीन सभाएँ थीं।
उनके शिष्यों की संख्या भी थी। पहले समूह में नब्बे शिष्य थे।
दूसरे में आठ लाख भिक्षु थे।
तीसरे भाग में भी उतनी ही संख्या में अस्सी सौ सौ हजार हैं।
उस समय बोधिसत्व ने सुसीमा नामक एक संन्यासी का पद ग्रहण किया।
महान जादुई शक्तियाँ। वह दिव्य शक्तियों से युक्त एक छत्र लेकर आया था।
देवलोक से मूंगा वृक्ष के फूल लाए और उसे अर्पित किया।
गुरु के लिए। बुद्ध ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि वह बन जाएगा
भविष्य में बुद्ध। उस महिमावान बुद्ध का नगर शोभना था।
नाम से। उनके पिता राजा सागर थे। उनकी माता
उनका नाम सुदस्सना था। उनके दो प्रमुख गुरुओं में से एक संता और उपासन्त थे।
शिष्य। अभय उनके सेवक का नाम था।
धम्मा और सुधम्मा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। चंपक
वह वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनके शरीर की ऊंचाई अस्सी क्यूबिट थी।
उनकी शारीरिक किरणें हर समय उनके चारों ओर व्याप्त थीं।
एक लीग (योजना) के बराबर। उनका जीवनकाल सौ वर्ष था।
हजार वर्ष।
उसी मंड कप्पा में, मनुष्यों में बैल,
अत्थादस्सी ने घोर अंधकार को दूर करके,
उन्होंने सर्वोच्च आत्मज्ञान प्राप्त किया।
और बुद्ध बन गए।
1.68. उनके बाद, बाद में, धम्मदस्सी नामक गुरु
प्रकट हुए। उनके लिए भी शिष्यों की तीन सभाएँ थीं
पहले में सौ करोड़ भिक्षु थे।
दूसरे में नब्बे करोड़ और तीसरे में अस्सी करोड़ थे।
उस समय, बोधिसत्व सक्का थे, जो देवताओं के राजा थे, जिन्होंने यह कार्य किया।
बुद्ध को दिव्य सुगंधों से सम्मानित करते हुए उन्हें अर्पित की जाने वाली भेंटें और
फूलों के साथ-साथ दिव्य संगीत भी। वह गुरु भी
उन्हें भविष्यवाणी की गई थी कि वे भविष्य में बुद्ध बनेंगे।
उस महान बुद्ध का नगर सरणा था, राजा का नाम भी सरणा ही था।
सरणा नामक व्यक्ति उनके पिता थे। रानी का नाम सुनंदा था।
उनकी माता, पद्मा और फुस्सादेव उनके दो प्रमुख शिष्य थे।
सुनेट्टा उनके सेवक का नाम था। खेमा और
सुब्बनामा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। लाल अंकुरण वाली,
रत्नकुरा वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। इसे लाल वृक्ष भी कहा जाता था।
अमरंथ का वृक्ष (बिम्बिजाला)। उसका शरीर अस्सी हाथ लंबा था।
उनकी ऊँचाई एक लाख वर्षों की थी।
जीवन का।
"उसी मंडकप्पा में, महान प्रतिष्ठा वाले धम्मदस्सी
ने चकाचौंध भरे अंधकार को दूर करते हुए,
दुनिया के साथ-साथ दुनिया में चमक उठा

देव।"

(16)बुद्ध सिद्धार्थ
1.69. उनके बाद, उसके बाद
चौरानवे युगों (कप्पा) में, एक ही कप्पा में उत्पन्न हुआ, एक
एकमात्र सर्वज्ञ बुद्ध, जिनका नाम सिद्धार्थ है।
उनके लिए शिष्यों की तीन सभाएँ भी आयोजित की गईं। पहली सभा में
सभा में सौ करोड़ भिक्षु थे।
दूसरे में नब्बे करोड़ और तीसरे में अस्सी करोड़ थे।
उस समय, बोधिसत्व मंगला नामक एक संन्यासी बन गए।
जिसके पास अपार शक्ति थी और जो अलौकिक सामर्थ्य से संपन्न था।
ज्ञान। वह महान यूजेनिया (जाम्बू) फल लाया और
वही फल तथागत को अर्पित किया गया। गुरु ने उस फल का आनंद लिया।
और भविष्यवाणी की कि संन्यासी अपनी मृत्यु के दिन बुद्ध बन जाएगा।
चौरानवे युगों (कप्पा) का। उस गौरवशाली बुद्ध का नगर।
उनका नाम वेभारा था। उनके पिता का नाम जयसेना था।
सुफस्सा नाम की रानी उनकी माता थीं। सांबला और सुमित्ता
उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक थे।
रेवता, सिवैया और सुरमा उनकी दो प्रमुख महिलाएँ थीं।
शिष्य। पटेरोस्पर्मम एसरीफोलियम (कणिकारा) वृक्ष था।
उनकी बोधि। उनके शरीर की ऊंचाई साठ क्यूबिट थी। एक अवधि
उनका जीवनकाल एक लाख वर्ष था।
धम्मदस्सी के बाद, यह विचार उत्पन्न हुआ कि...
विश्व नेता सिद्धार्थ, समस्त अंधकार को दूर करते हुए
जैसे सूर्य बादलों से निकलता है।"

बुद्ध: (17)तिस्सा और (18)फुस्सा
1.70. बाद में, उनकी मृत्यु के बाद, उनकी मृत्यु की अवधि समाप्त होने पर, तब से,
बानवे युगों (कप्पा) में, दो बुद्धों का उदय हुआ: तिस्सा और
फुस्सा, एक ही कल्प (कप्पा) में। गौरवशाली बुद्ध तिस्सा के पास थे
शिष्यों की तीन सभाएँ। भिक्षुओं की पहली सभा में,
दूसरे में सौ करोड़ थे। दूसरे में नब्बे करोड़ थे।
करोड़ों में से तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय, बोधिसत्व
वह योद्धा (खत्तिया) वंश का राजा बन गया, जो अत्यंत धनी था और
सुजाता नाम से प्रसिद्ध उस राजा ने अपनी प्रतिष्ठा का त्याग कर दिया।
संसार में प्रवेश किया और तपस्वी बन गए। जब उन्होंने शिखर प्राप्त किया
उसने महान जादुई शक्तियों के बारे में सुना, और उसे बुद्ध के प्रकट होने की सूचना मिली।
अपने साथ दिव्य मूंगा फूल, कमल और लिली लेकर,
उन्होंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया, जो उस समय लोगों के बीच घूम रहे थे।
सभाओं की चार श्रेणियाँ। उन्होंने बुद्ध के लिए एक प्रवाह बनाया-
आकाश में उसकी छत। उस गुरु ने उससे यह भविष्यवाणी भी की थी कि

वह बानवे युगों (कप्पा) की समाप्ति पर बुद्ध बनेंगे।
वहाँ से, उस महान बुद्ध के नगर को खेमा के नाम से जाना जाता था।
क्षत्रिय वंश के राजा जनासंध उनके वतन थे।
पिता। पद्मा नामक रानी उनकी माता थीं। ब्रह्मादेव
उदय और उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक
उनकी सेवा का नाम सुमना था। फुस्सा और सुदत्ता उनकी दो शिष्याएँ थीं।
प्रमुख महिला शिष्याएँ। वृक्ष पेंटाप्टेरा टोमेंटोसा (आसन)
उनका बोधि वृक्ष था। उनके शरीर की ऊँचाई साठ क्यूबिट थी। एक कालखंड
उनका जीवनकाल एक लाख वर्ष का था।
"सिद्धार्थ के बाद, यह उत्पन्न हुआ कि..."
विश्व के नेता, अद्वितीय तिस्सा, जो
उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं था, जिसकी प्रतिष्ठा अतुलनीय थी।
और जिसकी शक्ति असीमित थी।
1.71. उनके बाद, गुरु फुस्सा,
नाम से प्रकट हुए। उनके शिष्यों की तीन सभाएँ भी थीं।
पहली सभा में साठ लाख भिक्षु थे, दूसरी में पचास और तीसरी में बत्तीस थे।
उस समय बोधिसत्व योद्धाओं के राजा (क्षत्रिय) थे।
विजितावी नामक वर्ग के व्यक्ति, जिन्होंने अपनी महान संप्रभुता का त्याग कर दिया,
उन्होंने गुरु की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली, तीनों पिटकों का ज्ञान प्राप्त किया और जनसमूह को धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने उपदेशों में भी पूर्णता प्राप्त की। बुद्ध ने उनके बारे में भविष्यवाणी भी की थी कि वे
बुद्ध बने। उस तेजस्वी बुद्ध का नगर काशी कहलाता था। उनके पिता का नाम जयसेना था। उनकी माता का नाम सिरिमा था। सुरक्षित और धम्मसेना उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक का नाम सत्या था। चाला और उपाचाला उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। आंवला (आमलक) वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर अट्ठावन हाथ लंबा था। उनका जीवनकाल नब्बे हजार वर्ष था।
उसी मंडकप्पा में, उत्पन्न हुआ
अतुलनीय गुरु, फुस्सा, नेता
विश्व में, जो अद्वितीय था, जिसके जैसा कोई दूसरा नहीं था
उनके समतुल्य के रूप में।

(19) विपस्सी बुद्ध

1.72 उनके निधन के बाद, इक्यावन युग (कप्पा) बाद, विपस्सी नामक तेजस्वी बुद्ध का उदय हुआ। उनके शिष्यों की तीन सभाएँ हुईं। पहली सभा में अड़सठ लाख भिक्षु थे। दूसरी में एक लाख और तीसरी में अस्सी हजार। उस समय, अतुल नामक नागराज का एक राजा हुआ, जो अत्यंत शक्तिशाली और महान था। उस राजा ने तेजस्वी बुद्ध को सोने से बना और सात प्रकार के रत्नों से जड़ा एक उत्तम सिंहासन दान में दिया। बुद्ध ने उन्हें भविष्यवाणी भी की कि वे इक्यावन युग (कप्पा) बाद बुद्ध बनेंगे। उस तेजस्वी बुद्ध का नगर बंधुमती था। उनके पिता का नाम बंधुमा था। उनकी माता का नाम बंधुमती था। *********** ************** ****************** (पृष्ठ 76)। उनके सेवक का नाम अशोक था। चंदा और चंदमित्ता उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। पातलि का वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर अस्सी हाथ लंबा था। उनके शरीर की किरणें सात योजन के क्षेत्र में निरंतर व्याप्त रहती थीं। उनका जीवनकाल अस्सी हजार वर्ष था।
"फुस्सा के बाद, सर्वज्ञ बुद्ध
विपस्सी नाम के व्यक्ति, जो सबसे उत्कृष्ट थे
पुरुषों में से, जिनके पास आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि थी
दुनिया में उत्पन्न हुआ।
(20) सिख और (21) वेस्सभू बुद्ध

1.73. उनके बाद, इकत्तीस युगों (कप्पा) के बाद, दो बुद्ध हुए: सिखी और वेस्साभू। सिखी बुद्ध के भी तीन शिष्यों की सभाएँ हुईं। पहली सभा में एक लाख भिक्षु थे। दूसरी में अस्सी हजार और तीसरी में सत्तर हजार। उस समय, अरिंदमा नाम के बोधिसत्व राजा बने, जिन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की सभा को वस्त्रों का दान सहित एक महान दान-पुण्य किया। सात प्रकार के रत्नों से सजे अपने राजसी हाथी को दान करते हुए, उन्होंने भिक्षुओं के लिए अनुमत बर्तनों का भार भी दान कर दिया। उस बुद्ध ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की कि वे इकत्तीस युगों (कप्पा) के अंत में बुद्ध बनेंगे। उस तेजस्वी बुद्ध का नगर अरुणावती था। उनके पिता क्षत्रिय वर्ग के राजा अरुण थे। उनकी माता का नाम पभावती था। अभिभू और साम्भव उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक का नाम खेमांकर था। सखिला और पद्मा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। पुन्द्रिका वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर सत्तर हाथ लंबा था। उनके शरीर की किरणें तीन योजन (लीग) के क्षेत्र में फैली हुई थीं। उनका जीवनकाल सत्तर हजार वर्ष था।

सर्वज्ञ बुद्ध विपस्सी के बाद,
मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ, विजेता,
सिख धर्म कहलाने वाला व्यक्ति उदय हुआ। वह अद्वितीय था और उसके पास
कोई प्रतिद्वंदी नहीं।"

1.74. उनके निधन के बाद, वेस्साभू नामक गुरु का उदय हुआ। उनके शिष्यों की तीन सभाएँ हुईं। पहली सभा में अस्सी हजार भिक्षु थे, दूसरी में सत्तर और तीसरी में साठ। उस समय, बोधिसत्व सुदस्सन नामक राजा थे, जिन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में पुरोहितों के समूह को वस्त्र सहित बहुत दान दिया। राजा उनकी उपस्थिति में संन्यासी बन गए और अच्छे आचरण के गुण से संपन्न होकर बुद्ध-रत्न में प्रचुर उत्साह से भर गए। बुद्ध ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की कि वे इकत्तीस युगों (कप्पा) बाद बुद्ध बनेंगे। उस तेजस्वी बुद्ध का नगर अनोमा था। उनके पिता सुप्पतिता नामक राजा थे। उनकी माता यशवती थीं। सोन और उत्तर उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक का नाम उपासंत था। राम और सुरमा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। साल का वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर साठ हाथ लंबा था। उनका जीवनकाल साठ हजार वर्ष था।

"उसी मांडा कप्पा में, उत्पन्न हुआ
विश्व, वह विजेता, जिसे इस नाम से जाना जाता है
वेस्साभू अद्वितीय थे, उनका कोई प्रतिद्वंदी नहीं था।

बुद्ध: (22) ककुसंध, (23) कोणागमना, (24) कस्सपा

1.75. उनके बाद, इस युग (कप्पा) में, चार बुद्ध उत्पन्न हुए: ककुसंध, कोणागमना, कस्सपा और हमारे महिमावान बुद्ध गौतम। महिमावान बुद्ध ककुसंध के शिष्यों की केवल एक ही सभा थी। उस एक सभा में चालीस हजार भिक्षु थे। उस समय, बोधिसत्व खेमा नामक एक राजा थे, जिन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की सभा को भिक्षापात्र, वस्त्र और नेत्रदंड आदि जैसी औषधियाँ दान कीं। उन्होंने गुरु द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन को सुना और भिक्षु बन गए। उस गुरु ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की कि वे बुद्ध बनेंगे। महिमावान बुद्ध का नगर खेमा था। उनके पिता अग्गिदत्त नामक ब्राह्मण थे विशाखा नामक ब्राह्मण महिला उनकी माता थीं। विदुर और संजीव उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक बुद्धिज थे। सामा और चम्मा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। बबूल सिरिसा उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर चालीस हाथ लंबा था। उनका जीवनकाल चालीस हजार वर्ष था।

वेस्साभू के बाद सर्वज्ञता का उदय हुआ।
बुद्ध, मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ, जिन्हें इस नाम से जाना जाता है
काकुसंध का नाम, जो अतुलनीय और कठिन थे।
हार का।

1.76. उनके बाद, गुरु कोणागमना का उदय हुआ। उनकी भी केवल एक ही सभा थी। उनकी उस एक सभा में तीस हजार भिक्षु थे। उस समय, बोधिसत्व पब्बत नामक राजा थे, जो अपने अनेक मंत्रियों से घिरे हुए गुरु के समक्ष गए, धर्म उपदेश सुने, बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं की मंडली को आमंत्रित किया, महान दान किया, भिक्षापात्र, चीनी ऊनी वस्त्र, रेशमी मखमली वस्त्र और स्वर्ण ऊनी वस्त्र दान किए और गुरु के समक्ष संन्यासी बन गए। बुद्ध ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की कि वे बुद्ध बनेंगे। उस तेजस्वी बुद्ध के नगर का नाम शोभवती था। उनके पिता ब्राह्मण य्यञ्ञदत्त थे। उनकी माता ब्राह्मण स्त्री उत्तरा थीं। भैयास और उत्तरा उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवकों में सोत्थिज नाम का एक व्यक्ति था। समुद्दा और उत्तरा उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। उनका बोधि वृक्ष (उदुंबरा) था। उनका शरीर तीस हाथ लंबा था। उनका जीवनकाल तीस हजार वर्ष था।

सर्वज्ञ बुद्ध काकुसंध के बाद,
पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ, विजेता
कोणागमना नाम से, विश्व में सबसे वृद्ध,
पुरुषों में श्रेष्ठ बैल की तरह, वह उठ खड़ा हुआ।

1.77 उनके बाद, कस्सपा नामक गुरु उठे। उनके शिष्यों की भी केवल एक ही सभा थी। उस सभा में बीस हजार भिक्षु थे। उस समय बोधिसत् ज्योतिपाल नामक एक युवक थे, जो तीनों वेदों में पारंगत थे, पृथ्वी और आकाश दोनों में विख्यात थे और कुम्हार घटिकारा के मित्र थे। उनके साथ वे गुरु के पास गए, धार्मिक प्रवचन सुने, एकांतवासी बन गए, सदा परिश्रमी रहे, तीनों पिटकों का ज्ञान प्राप्त किया और सभी प्रकार के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों में निपुण होकर बुद्ध धर्म का प्रकाश फैलाया। गुरु ने उन्हें यह भविष्यवाणी भी की कि वे बुद्ध बनेंगे। उस तेजस्वी बुद्ध का जन्मस्थान बनारस था। उनके पिता ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण थे। उनकी माता धनवती नामक ब्राह्मण स्त्री थीं। तिस्सा और भारद्वाज उनके दो प्रमुख शिष्य थे। उनके सेवक सब्बामित्त थे। अनुला और उरुवेला उनकी दो प्रमुख महिला शिष्याएँ थीं। निग्रोध बरगद का वृक्ष उनका बोधि वृक्ष था। उनका शरीर बीस हाथ लंबा था और उनकी आयु बीस हजार वर्ष थी।

सर्वज्ञ बुद्ध कोणागमना के बाद,
पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ, जिसे कुल के अनुसार कस्सपा कहा जाता था,
धम्म के राजा, प्रकाश के निर्माता, प्रकट हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.1c पूर्णता प्राप्त करना/परमिस
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना भाग - 1.1सी: पारमी-निर्वाण अवस्था में प्रवेश करने की क्षमताएँ प्राप्त करना
1.1पहले उल्लेखित सभी बुद्ध
1.2बोधिसत्व द्वारा आठ शर्तों की पूर्ति
1.3बोधिसत्व द्वारा दस सिद्धियों/परमिताओं की प्राप्ति
1.3.1(1)दान परमिता की सिद्धि
1.3.2(2) नैतिक उपदेशों में पूर्णता (सीलापारमिता)
1.3.3(3) त्याग में पूर्णता (नेक्खम्मपारमी)
1.3.4(4) विद्या/ज्ञान/बुद्धि में पूर्णता (पञ्ञपारमिता)
1.3.5(5) प्रयास में पूर्णता (वीर्य पारमिता)
1.3.6(6) धैर्य में पूर्णता (खन्ती पारमी)
1.3.7(7) सत्यनिष्ठा में पूर्णता (सच्चा पारमी)
1.3.8(8) आत्म-निर्णय में पूर्णता (अधिष्ठान पारमी)
1.3.9(9) प्रेमपूर्ण दया/करुणा में पूर्णता (मेट्टा पारमी)
1.3.10(10) समभाव में पूर्णता (उपेक्खा पारमी)

अपदाना भाग - 1.1सी: पारमी-निर्वाण अवस्था में प्रवेश करने की क्षमताएँ प्राप्त करना

पहले उल्लेखित सभी बुद्ध

1.78. हालाँकि, जब दशबल दीपांकर का उदय हुआ, तो उस कल्प में अन्य तीन बुद्ध भी प्रकट हुए। उनकी उपस्थिति में बोधिसत्व के लिए कोई भविष्यवाणी नहीं थी। इसीलिए, उन्हें यहाँ नहीं दिखाया गया है। हालाँकि, अष्टकथा की टीका में, तांहांकर से शुरू होने वाले सभी बुद्धों के बारे में भी यह कथन किया गया था; इस प्रकार:-

"तांहंकरा, मेधांकरा और फिर सरणंकरा
साथ ही सर्वज्ञ बुद्ध दीपांकर, कोण्डञ्ञ,

पुरुषों में सबसे उत्कृष्ट, मंगला और सुमाना, रेवता
और शोभिता, ऋषि, अनोमदस्सी, पद्म, नारद और
पदुमुत्तारा; सुमेधा और सुजाता के साथ-साथ पियादस्सी,
महान प्रतिष्ठा वाले, अत्थादस्सी, धम्मदस्सी और
विश्व के नेता सिद्धार्थ; तिस्सा और
सर्वज्ञ बुद्ध फुस्सा। विपस्सी, सिखी और वेस्साभू;
ककुसंध, कोनागमन और नेता कस्पा भी;
ये सर्वज्ञ बुद्ध थे, जो निर्मल थे।
कामुकता (राग) और सुसंतुलित, जो उठे, जैसे
सौ किरणों का सूर्य, घने को दूर करने वाला
अंधकार। उन्होंने स्वयं को एक समूह की तरह प्रकाशित कर लिया।
वे अपने शिष्यों सहित अग्नि की चपेट में आकर मर गए।
और उन्होंने निर्वाण (अमर आनंद) में प्रवेश किया।

बोधिसत्व द्वारा आठ शर्तों की पूर्ति

1.79. वहाँ, हमारे बोधिसत्व ने दीपांकर से शुरू करते हुए चौबीस बुद्धों की उपस्थिति में अपनी आकांक्षा व्यक्त की और चार असंख्य विश्व चक्रों से भी अधिक एक लाख कल्पों का लंबा समय व्यतीत किया। इस सर्वज्ञ बुद्ध के सिवा कोई अन्य बुद्ध उपस्थित नहीं थे, जो तेजस्वी बुद्ध कश्यप के निकट थे। इस प्रकार, बोधिसत्व ने दीपांकर से शुरू करते हुए चौबीस बुद्धों की उपस्थिति में भविष्यवाणी प्राप्त की। अतः यह कथन है:

उनकी प्रबल आकांक्षा पूरी हुई क्योंकि
आठ शर्तों का संयोजन (धम्म):
(1) मानवता (2) यौन पूर्णता (ब्रह्मचर्य) (3) कारण
परिस्थिति (4) गुरु को देखना (5) भिक्षुत्व
(6) सद्‌गुण की व्यक्तिगत प्राप्ति (7) आकांक्षा
और (8) इच्छा रखना।"

बोधिसत्व द्वारा दस सिद्धियों/परमिताओं की प्राप्ति

(1)दान परमिता की सिद्धि

इन आठ अवस्थाओं (धम्म) को मिलाकर और बुद्ध दीपांकर के चरणों में तीव्र आकांक्षा के साथ प्रयास करते हुए, उन्होंने कहा: "अब मैं पूर्व बुद्धों द्वारा किए गए कर्मों का अध्ययन करूंगा।" तब उन्होंने पाया कि सर्वप्रथम धर्मपरायणता में पूर्णता थी। इस प्रकार, धर्मपरायणता में पूर्णता से प्रारंभ होने वाले पूर्व बुद्धों द्वारा किए गए कर्मों (धम्म) का पता चला। उन पूर्णताओं को पूर्ण करते हुए बोधिसत्व वेसंतारा राजा (वेसंतारा-जातक) के रूप में अपने जन्म तक पहुंचे। (उस स्थान पर) पहुंचने के बाद भी, वहां तीव्र आकांक्षा रखने वाले बोधिसत्वों के सभी लाभों की प्रशंसा की जानी चाहिए।

इस प्रकार, बोधि द्वारा निर्देशित पुरुष
(ज्ञानोदय), सभी विशेषताओं से युक्त,
बार-बार पुनर्जन्म लेने के अपने चक्रों को पूरा करने में
लंबी अवधि, यहां तक कि सैकड़ों वर्षों तक
करोड़ों युगों (कप्पा) के लोग पुनर्जन्म नहीं लेते थे।
अवीसी नरक; इसी प्रकार, शुद्धिकरण स्थलों के समूह में भी।
एकल लोकों के बीच स्थित (लोकान्तर)
वे बहुत प्यासे पेटा नहीं बने, जिन्हें कष्ट सहना पड़ा।

भूख से और **पृष्ठ 82, न ही वे दिग्गज बन पाए,
(कालकंजक)। वे छोटे जीवन यापन करने वाले नहीं बने।
जीव; भले ही वे ***पृष्ठ 82 दुर्भाग्यशाली हों। जन्म के समय
पुरुषों में, वे जन्मजात अंधे नहीं होते थे;
उनमें सुनने की कोई कमी नहीं थी और न ही वे गूंगे हुए थे।
उन्हें कभी औरत बनने की ज़रूरत नहीं पड़ी, ***पृष्ठ. क्या वे औरतें बनीं?
*****पृष्ठ 82 वे ****** दोहरे ****** *******पृष्ठ 82.
बोधि द्वारा निर्देशित पुरुष बच निकले *****पृष्ठ 82 (अनंतरिका)
प्रतिशोध; उनकी गतिविधियों का दायरा सर्वत्र फैला हुआ है
शुद्ध और स्वच्छ होने के कारण। उन्होंने गलत राहों का अनुसरण नहीं किया।
विचार; वे कार्यप्रणाली को समझते थे
(कर्म)। यहां तक कि जब वे आनंद का अनुभव कर रहे थे तब भी।
स्वर्ग में उनका पुनर्जन्म अस्स्न्या ब्रह्मा में नहीं हुआ था।
ऐसी दुनिया जहां केवल भौतिक रूप ही मौजूद हैं।
अस्तित्व में नहीं है *******पृष्ठ 82 परिस्थितिजन्य कारण
दिव्य सुधावास ब्रह्मा लोकों में। अच्छा
लोग त्याग की ओर प्रवृत्त होते हैं; वे
छोटे-बड़े सभी अस्तित्वों से विरक्त
(भावभाव); वे सभी प्रथाओं का अभ्यास करते हैं
विश्व के लिए लाभकारी और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला
परिपूर्णताएँ"।

1.80. हमारे बोधिसत्व ने उन लाभों को प्राप्त करने के बाद ही आगमन किया। जब वे सिद्धियों को पूरा कर रहे थे, उस समय जब वे ब्राह्मण अकित्ति (अगत्य) (अकित्त-जातक) (चरियापिटक ग्रंथ 1) थे, उस समय जब वे ब्राह्मण शंख (शंख-जातक) (चरियापिटक ग्रंथ 2) थे, उस समय जब वे राजा धनंजय (कुरुधम्म-जातक , चरियापिटक ग्रंथ 3 में भी) थे, उस समय जब वे राजा महासुदस्सन (महासुदस्सन-जातक) (चरियापिटक ग्रंथ 4) थे, उस समय जब वे महागोविन्द (महागोविन्द सूत्र) (चरियापिटक ग्रंथ 5) थे, उस समय जब वे महान राजा निमि (निमि-जातक) (मखदेव सूत्र) (चरियापिटक ग्रंथ 6) थे, उस समय जब वे राजकुमार चंदकुमार थे। खंडाहल जातक (चरियापितक ग्रंथ 7) के अनुसार, जब वे धनाढ्य विसयह (विसयह-जातक) थे, जब वे राजा शिव (सिवि -जातक) (चरियापितक ग्रंथ 8) थे, जब वे राजा वेसंतारा (वेसंतारा-जातक) (चरियापितक ग्रंथ 9) थे, तब दान देने में पूर्णता प्राप्त करने की कोई सीमा नहीं थी। दान देने में उनकी असीमित पूर्णता निश्चित रूप से बुद्धिमान खरगोश (ससपण्डितजातक) (चरियापितक ग्रंथ 10) की जन्म कथा में स्पष्ट है ।

"भिक्षा मांगने वाले को अपनी ओर आते देख,
मैंने अपने शरीर का पूर्णतः बलिदान कर दिया।
मेरे जैसी कोई और चैरिटी नहीं है। यही मेरी पूर्णता है।
दान देने में।"

इस प्रकार पूर्णता की पराकाष्ठा प्राप्त हुई, बोधिसत्व को दान (दान पारमिता) देने की पूर्ति हुई, जिन्होंने स्वयं को पूर्णतः बलिदान कर दिया।

---

(2) नैतिक उपदेशों में पूर्णता (सीलापारमिता)

ठीक उसी प्रकार, जब वे हाथी (नाग) राजा सीलव (सीलवनगा-जातक) बने, जब वे सर्प (नाग) राजा चम्पेय (चम्पेय-जातक) बने , जब वे हाथी (नाग) राजा भूरिदत्त (भूरिदत्त-जातक) बने, जब वे हाथी राजा छद्दंत (छद्दंत-जातक) बने, जब वे राजकुमार जयदिष (जयदिष-जातक) बने , और जब वे युवा राजकुमार अलीनसत्तु बने, तब भी नैतिक उपदेशों में पूर्णता प्राप्त करने की कोई सीमा नहीं थी

(सीलपारमी)। हालांकि, उपदेशों में उनकी असीमित पूर्णता शंखपालजातक (शंखपाल-जातक) की जन्म कथा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

यद्यपि सूलों (सूला) से छेदा (विज्झयन्त) जा रहा हो,
भाले से निशाना बनाए जाने के बावजूद, मुझे ऐसा महसूस नहीं होता
गांव वालों के बेटों से नाराज़; यही मेरी पूर्णता है।
उपदेशों में।

इस प्रकार, जब वह स्वयं का पूर्ण बलिदान कर रहे थे, तब उपदेशों (सीलापारमिता) में पूर्णता को पूरा करने में उनकी सर्वोच्च पूर्णता उत्पन्न हुई

---

(3) त्याग में पूर्णता (नेक्खम्मपारमी)

इसी प्रकार, जब वे सोमना (सोमनस्स-जातक) नामक युवक थे, जब वे हत्थीपाल (हत्थी-पाल जातक) नामक युवक थे , जब वे अयोगरा (अयोगरा-जातक) नामक ज्ञानी व्यक्ति थे , तब उन्होंने महान प्रभुत्व का त्याग किया। उनके पूर्ण त्याग में कोई सीमा नहीं थी। हालाँकि, त्याग में उनकी पूर्णता की असीमित पूर्ति, निश्चित रूप से, चूलसुतसोमा (चूला -सुतसोमा-जातक) की जन्म कथा (जातक) में स्पष्ट है :-

मैंने उस महान संप्रभुता को त्याग दिया, जो मुझे प्राप्त हुई थी।
मेरे हाथों में, लार के एक गुच्छे की तरह। वहाँ था
परिणामस्वरूप कोई आसक्ति (लग्गना) नहीं
मेरा बलिदान। यही मेरी त्याग की पूर्णता है।"

इस प्रकार, जब वह बिना किसी बाधा के राजत्व को अस्वीकार कर रहा था, तब उसने त्याग (नेक्खम्मपारमी) की पूर्णता को पूरा करने में पूर्णता की पराकाष्ठा प्राप्त की।

---

(4) विद्या/ज्ञान/बुद्धि में पूर्णता (पञ्ञपारमिता)

इसी प्रकार, जब वे ज्ञानी मंत्री विधुरा (विधुरपंडित-जातक) थे, जब वे ज्ञानी महागोविन्द (महागोविन्द सूत्र) थे, जब वे ज्ञानी कुड्डाला (या कुडवाल) (कुड्डाला-जातक) थे, जब वे ज्ञानी अरक (अरक-जातक) थे, जब वे भ्रमणशील तपस्वी बोधि (बोधिराजकुमार सूत्र) थे और जब वे ज्ञानी महोषधा थे, तब भी उनके ज्ञान में पूर्णता की कोई सीमा नहीं थी। हालाँकि, ज्ञान में उनकी असीमित पूर्णता, निश्चित रूप से, सत्तुभस्त (सत्तुभस्त-जातक) के जन्म-वृत्तांत (जातक) में स्पष्ट है, जब वे ज्ञानी सेनाक थे।

अपनी जानकारी के आधार पर जांच करते हुए, मैंने निर्धारित किया
दुखों से मुक्त ब्राह्मण।
मेरे लिए सीखने से बढ़कर कुछ नहीं है। यही मेरा विश्वास है।
विद्या में पूर्णता।

जब वह उस साँप को दिखा रहा था जो बोरी में चला गया था (तभी विद्या/ज्ञान (पञ्ञपारमिता) में पूर्णता को पूरा करने में उसकी पूर्णता की पराकाष्ठा उत्पन्न हुई

---

(5) प्रयास में पूर्णता (वीर्य पारमिता)

इसी प्रकार, परिश्रम आदि में पूर्णता प्राप्त करने में उनकी कोई सीमा नहीं थी। परिश्रम में पूर्णता की उनकी असीमित प्राप्ति, निश्चित रूप से महाजनक की जन्म कथा (जातक) (महाजनक-जातक) में स्पष्ट है।

"पूरी तरह से, हर इंसान मारा गया।"
पानी के एक विशाल विस्तार के बीच, जिसका किनारा था
अदृश्य। मेरी नज़र में कोई अंतर नहीं था।
यही मेरी परिश्रम की पूर्णता है।

इस प्रकार विशाल सागर को पार करते समय, उन्होंने परिश्रम में पूर्णता (वीर्य पारमिता) की पूर्ति में पूर्णता की पराकाष्ठा प्राप्त की।

---

(6) धैर्य में पूर्णता (खन्ती पारमी)
खंतिवादी के जन्म-वृत्तांत (खंतिवादी-जातक) में:
"जब कासी राजा ने काटा तो मुझे उस पर गुस्सा नहीं आया।"
बिना किसी मकसद के मुझे तेज कुल्हाड़ी से मार गिराया।
(चेतना) यही मेरी धैर्य की पूर्णता है।"
क्योंकि वह इस प्रकार बिना किसी कारण (चेतना) के अत्यधिक पीड़ा सहन कर रहा था, इसलिए उसने धैर्य में पूर्णता की प्राप्ति में सर्वोच्च शिखर प्राप्त किया।

---

(7) सत्यनिष्ठा में पूर्णता (सच्चा पारमी)
महासुतसोमा की जन्म-कथा (जातक) में (महा-सुतसोमा-जातक):

मेरे पास एक सौ एक सम्राट थे
योद्धा (खत्तिया) वर्ग को बलिदान देकर मुक्त किया गया
मैंने अपना जीवन अपने सत्य कथन को संरक्षित रखने में व्यतीत किया।
यही मेरी सत्यता में पूर्णता है।
इस प्रकार सत्य की रक्षा करते हुए, अपने जीवन का बलिदान करते हुए, इस तरह सत्य में पूर्णता की ऊँचाई प्राप्त हुई।

---

(8) आत्म-निर्णय में पूर्णता (अधिष्ठान पारमी)
मूगपक्ष के जीवन-वृत्तांत (जातक) में (मूक होने के पक्ष में, जादभारत के समान कहानी)।
"ऐसा इसलिए नहीं था क्योंकि मेरे माता-पिता मुझे घृणित लगते थे।"
न ही महान राजसी वैभव घृणित था।
सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी। इसलिए, वास्तव में,
मैंने स्वयं से यह संकल्प लिया।
जब वह स्वयं यह संकल्प ले रहा था, इस प्रकार अपने जीवन का बलिदान भी कर रहा था, तब आत्मनिर्णय की पूर्णता में पूर्णता की सर्वोच्च ऊंचाई प्राप्त हुई।

---

(9) प्रेमपूर्ण दया/करुणा में पूर्णता (मेट्टा पारमी)
सुवन्नसामा (समाजातक) की जीवन गाथा (जातक) में कहा गया है: "मुझे किसी ने डराया नहीं; न ही मैं भयभीत हुआ।"
किसी भी व्यक्ति का; काफी दृढ़ होना, यानी समर्थित होना
(पत्थद्धा) प्रेम और दया की शक्ति से,
उस समय मैं जंगल में आनंदपूर्वक रहता था।
जब वह इस प्रकार अपने जीवन की परवाह किए बिना प्रेमपूर्ण दया का अभ्यास कर रहा था, तब प्रेमपूर्ण दया में पूर्णता की पराकाष्ठा उत्पन्न हुई।

---

(10) समभाव में पूर्णता (उपेक्खा पारमी)
लोमहंस के जीवन वृत्तांत (लोमहंस-जातक) में:
मैंने कब्रिस्तान में लेटने के लिए अपना बिस्तर बिछाया, तुलना करते हुए
मैं लाश की हड्डियों के साथ था। पहुँचकर...
उन्होंने मुझे कई बैलों के चक्कर (गमाण्डला) दिखाए।
रूप (रूपम)"

हालांकि गांव के लड़कों द्वारा थूकने (नित्तुभना) आदि से, फूलों की माला और इत्र आदि भेंट करने से सुख-दुख का प्रलोभन दिया जा रहा था, फिर भी वे समभाव से परे नहीं जा रहे थे। इस प्रकार, समभाव की पूर्णता को प्राप्त करने में उन्हें परम परिपूर्णता प्राप्त हुई। यह संक्षेप में है। हालांकि, इस विषय को विस्तृत रूप से चरीय पिटक से समझा जाना चाहिए। इस प्रकार पूर्णताओं को प्राप्त करने के बाद, वे राजा वेसंतारा के 'शरीर' में आसीन हुए।

पृथ्वी, अनजाने में, बिना समझे
सुख और दुख, सात बार कांपे। वह भी
यह सब मेरी दानशीलता की शक्ति के कारण संभव हुआ।

इस प्रकार महान पुण्य कर्म करके, जिनसे पृथ्वी कांप उठी, आदि, और अपने जीवनकाल के अंत में वहाँ से विदा होकर, उन्होंने तुषिता नामक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। इस प्रकार, बुद्ध दीपांकर के चरणों से लेकर तुषिता नामक स्वर्गलोक में इस पुनर्जन्म तक का काल व्यतीत हुआ। इस प्रसंग के इतने भाग को पूर्ववर्ती प्रस्तावना के रूप में समझा जाना चाहिए।

प्रस्तावना पर चर्चा यहीं समाप्त होती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2ए राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध
1.11.2a राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म, जो भविष्य में गौतम बुद्ध बने
1.1.1रानी महामाया का स्वप्न
1.1.2सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का जन्म
1.1.3साधु शिशु सिद्धार्थ को देखने आता है
1.1.4बालक सिद्धार्थ ध्यान की ओर प्रवृत्त है

अपदाना भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2a राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म, जो भविष्य में गौतम बुद्ध बने

2. जब बोधिसत्व तुषिता नामक दिव्य नगर में रह रहे थे, तब बुद्धति-संदेश (बुद्धकोलाहला) प्रकट हुआ। वास्तव में, संसार में तीन महान समाचार (कोलाहला) प्रकट होते थे: संसार के अंत का समाचार, बुद्ध के प्रकट होने का समाचार और विश्वराज के आगमन का समाचार। इनमें से एक समाचार संसार के अंत का है: "एक लाख वर्षों के बीतने के साथ ही कल्प का प्रलय होगा।" इस प्रकार, कामुक स्वर्ग के देवता (कामावचर देव) लोकब्युहा, जिनके सिर खुले (मुत्त) हैं, बिखरे हुए बालों (विकिन) से, रोते हुए चेहरे वाले, हाथों से अपने आँसू पोंछते हुए, लाल वस्त्र पहने हुए, भद्दे रूप और भावों वाले, मनुष्यों की गलियों में विचरण करते हुए, यह सूचना देते हैं: “हे मेरे प्रिय मित्रों! एक लाख वर्ष बाद, कल्प में उथल-पुथल होगी; यह संसार नष्ट हो जाएगा; विशाल सागर भी सूख जाएगा; यह पृथ्वी भी, साथ ही पर्वतों के राजा सिनरु भी, जलकर नष्ट हो जाएंगे; ब्रह्मा लोक तक संसार का विनाश हो जाएगा। हे मेरे प्रिय मित्रों! प्रेम, सहानुभूति, आनंद और समभाव विकसित करो। अपने माता-पिता की सेवा और सहायता करो। परिवार में बड़ों का आदर करो। यह संसार के अंत का समाचार है।” जगत के संरक्षक देवता जोर-जोर से घोषणा करते फिरते हैं: "मेरे प्रिय मित्रों! संसार में एक विश्वराज प्रकट होंगे।" वे ऐसा तब करते हैं जब ऐसी घटना एक हजार वर्ष बाद घटित होने वाली होती है। यह बुद्ध के प्रकट होने का समाचार है। यदि सौ वर्षों के अंतराल में कोई विश्वराज प्रकट हो, तो देवता जोर-जोर से घोषणा करते फिरते हैं: "मेरे प्रिय मित्रों! सौ वर्षों के अंतराल में एक विश्वराज संसार में प्रकट होंगे।" यह विश्वराज के प्रकट होने का समाचार है। ये तीन महान समाचार (कोलाहला) हैं।

2.1. सभी एक लाख ब्रह्मांडों (चक्कवळा) के दिव्य प्राणी बुद्ध के प्रकट होने का समाचार सुनकर तीनों समाचारों के साथ एकत्रित हुए और बुद्ध के पास जाकर उनसे निवेदन किया, जब उन्हें पता चला कि ऐसा व्यक्ति बुद्ध बनेगा। उन्होंने यह निवेदन तब किया जब

पूर्वाभास (पुब्ब-निमित्त) प्रकट हुए। उस समय, प्रत्येक ब्रह्मांड (चक्कवळा) में सभी, जिनमें चार महान राजा सक्का, सुयामा, संतुस्सिता, सुनिमिता, वासवत्ती और ब्रह्मा भी शामिल थे, एक विशेष ब्रह्मांड (चक्कवळा) में एकत्रित हुए और तुषिता स्वर्ग में बोधिसत्व के समक्ष जाकर उनसे निवेदन किया। मेरे प्रिय मित्र! दस सिद्धियों को पूर्ण करके आपने सक्का, मारा, ब्रह्मा और विश्वराज की महिमा प्राप्त करने की आकांक्षा नहीं रखी। आपने सर्वज्ञ बुद्ध बनने की आकांक्षा से ऐसा किया, ताकि संसारियों को संसार से मुक्ति दिला सकें। मेरे प्रिय मित्र! अब आपके बुद्ध बनने का समय आ गया है। मेरे प्रिय मित्र, यही समय है आपके बुद्धत्व का।

2.2. तब परमेश्वर ने स्वर्गवासियों को कोई वचन दिए बिना, समय, द्वीप, स्थान, परिवार, माता और जीवनकाल के संबंध में पाँच प्रमुख विषयों पर गहन चिंतन किया। सर्वप्रथम उन्होंने समय का विश्लेषण किया और यह जाँच की कि क्या वह समय के अनुकूल है या नहीं। इस संदर्भ में, एक लाख वर्षों से अधिक जीवनकाल का बढ़ना समय के अनुकूल नहीं है। क्यों? क्योंकि ऐसे समय में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कोई आभास नहीं होता। अतः, बुद्धों के धर्म का ऐसा कोई उपदेश नहीं होता जो इन तीन लक्षणों (लक्खण) से मुक्त हो। जब लोगों को अनित्यता, दुःख और आत्महीनता के विषय में उपदेश दिया जाता है, तो वे कहते हैं कि यह उपदेश न तो सुनने योग्य है और न ही श्रद्धा और विश्वास को प्रेरित करता है। परिणामस्वरूप, धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जब ऐसा ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब धर्म की व्यवस्था मोक्ष की ओर ले जाने वाली नहीं होती। अत: ऐसा समय असमय है। सौ वर्ष से कम जीवनकाल का समय भी असमय है। क्यों? क्योंकि ऐसे समय में जीव-जंतु दुराचार (किलेसा) से भरे होते हैं। अत्यधिक दुराचार (किलेसा) से ग्रस्त लोगों को दी गई चेतावनी स्थायी नहीं रहती; वह पानी में छड़ी से बनी लकीरों की तरह शीघ्र ही लुप्त हो जाती है। अत: ऐसा समय भी असमय है। हालांकि, ऐसा समय एक लाख वर्ष से शुरू होने वाली संख्या से नीचे और सौ वर्ष से शुरू होने वाली संख्या से ऊपर का समय उचित समय है। उस समय जीवनकाल सौ वर्ष था। तब परमेश्वर ने अपने प्रकट होने का समय आ गया समझा।

2.3. इसके बाद, द्वीप का गहन चिंतन करते हुए, उन्होंने चारों द्वीपों और उनके आसपास के क्षेत्र का अवलोकन किया और उचित द्वीप को देखकर कहा:- "बुद्ध अन्य तीन द्वीपों में कभी जन्म नहीं लेते; वे केवल जंबु द्वीप (जंबु दीप यानी भारत) में ही जन्म लेते हैं।"

2.4. इसके बाद, उचित स्थान की खोज करते हुए, उन्होंने सोचा: "जम्बू द्वीप (भारत) विशाल है; इसका क्षेत्रफल चारों ओर दस हजार योजन है। वास्तव में, बुद्ध किस स्थान पर जन्म लेते हैं?", तब उन्होंने मध्य क्षेत्र (मज्झिम-देश) को देखा। मध्य क्षेत्र ऐसा है कि इसके पूर्व दिशा में गजांगला नामक एक जिला (निगम) है; इसके पश्चिम में विशाल साल का वृक्ष है; इसके आगे मध्य में सीमावर्ती बड़ा जिला है; दक्षिण-पूर्व दिशा में सल्लावती नामक नदी है; इसके आगे मध्य में सीमावर्ती बड़ा जिला है; दक्षिण दिशा में सेतकन्निका नामक जिला है; इसके आगे मध्य में सीमावर्ती बड़ा जिला है; पश्चिम दिशा में थून नामक जिला है; इसके आगे मध्य में सीमावर्ती बड़ा जिला है; उत्तर में पर्वत है जिसे "उशीरांज के रूप में; उससे आगे सीमावर्ती बड़ा जिला है, जो इस ओर केंद्र में स्थित है।" विनय पिटक में यही संकेत (उपदेश) दिया गया है। इसकी लंबाई तीन सौ योजन, चौड़ाई ढाई योजन और परिधि नौ सौ योजन है। इस क्षेत्र में बुद्ध, मौन बुद्ध, प्रमुख शिष्य, अस्सी प्रमुख शिष्य (महासावक), विश्व-राजा और अन्य योद्धा-राजा (क्षत्रिय), ब्राह्मण, साथ ही धनी और शक्तिशाली गृहस्थ जन्म लेते हैं। यहीं पर कपिलवस्तु नगर का नाम है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला: "मुझे वहीं पुनर्जन्म लेना चाहिए।"

2.5. इसके बाद, परिवार पर विचार करते हुए उन्होंने कहा, “बुद्ध न तो व्यापारी परिवार में जन्म लेते हैं और न ही निम्न सामाजिक श्रेणी (शुद्ध) के परिवार में। संसार के लोगों के मत के अनुसार, बुद्ध या तो क्षत्रिय (खत्तीय) परिवार में जन्म लेते हैं या ब्राह्मण परिवार में। परन्तु संसार के लोगों द्वारा खत्तीय परिवार को मान्यता प्राप्त है, इसलिए मैं उसी परिवार में जन्म लूँगा; मेरे पिता का नाम सुद्धोदन होगा;” इस प्रकार उन्होंने परिवार का अवलोकन किया।

2.6. इसके बाद, माता के बारे में चिंतन करते हुए उन्होंने कहा, “बुद्ध की माता कभी लोभ में लिप्त नहीं होतीं, कभी मादक पेय की आदी नहीं होतीं; एक लाख युगों (कप्पा) तक उन्होंने सिद्धियों का पालन किया है; जन्म से ही वे निरंतर पाँच उपदेशों का पालन करती रही हैं। यह रानी महामाया भी ऐसी ही हैं। मेरी माता यही रानी होंगी। उनका जीवनकाल कितना होगा?” “दस माह से सात दिन अधिक;” इस प्रकार उन्होंने अपनी होने वाली माता को देखा।

2.7. इन पाँच गहन चिंतन के बाद, उन्होंने उन स्वर्गवासियों को अनुग्रह करने का वचन दिया, जो आकर उन्हें सूचित करने आए थे कि उनके बुद्ध बनने का समय आ गया है। उन्होंने उन स्वर्गवासियों को यह कहकर विदा किया, 'तुम सब जाओ', और तुषिता देवताओं से घिरे तुषिता स्वर्ग के रमणीय उद्यान, नंदनवन में प्रवेश किया। समस्त स्वर्गलोकों में वास्तव में एक रमणीय उद्यान (नंदनवन) विद्यमान है। वहाँ, उस रमणीय उद्यान में, देवता उनके पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों की याद दिलाते हुए कहते हैं, 'यहाँ से विदा होकर, अच्छे लोक में जाओ! यहाँ से विदा होकर, अच्छे धाम में जाओ!' देवताओं द्वारा उनके अच्छे कर्मों की याद दिलाए जाने और उनके बीच घिरे रहने के कारण, वे वहाँ से विदा हो गए और घूमते-घूमते रानी महामाया के गर्भ में गर्भ धारण किया।

रानी महामाया का स्वप्न

2.8 उस घटना को स्पष्ट करने के उद्देश्य से यह प्रवचन अपने उचित क्रम में है:- कहा जाता है कि उस समय कपिलवस्तु नगर में आसली नक्खत्त उत्सव की घोषणा की गई थी; बड़ी संख्या में लोगों ने उत्सव का आनंद लिया। रानी महामाया ने भी पूर्णिमा से सात दिन पहले शुरू होने वाले उत्सवों का आनंद लेते हुए, जो पुष्पमालाओं और सुगंधित इत्रों से परिपूर्ण थे, मादक पेय पदार्थों का सेवन नहीं किया। उन्होंने सातवें दिन सुबह जल्दी उठकर सुगंधित जल से स्नान किया, चार लाख रुपये खर्च करके बड़ा दान दिया, सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर उत्तम भोजन किया, प्रार्थना के तत्वों का दृढ़तापूर्वक पालन करने का संकल्प लिया, अपने सुशोभित शाही कक्ष में प्रवेश किया, अपने सुंदर पलंग पर लेट गईं और सो गईं। उन्हें यह स्वप्न दिखाई दिया: ऐसा प्रतीत हुआ कि चार महान दिव्य राजाओं ने उन्हें पलंग सहित उठाकर हिमालय ले गए, उन्हें साठ योजन (लगभग 11 किमी) लंबी लाल आर्सेनिक पत्थर की शिला (मनोशिला) पर सात योजन ऊँचे विशाल साल के वृक्ष के नीचे रख दिया और एक तरफ खड़े हो गए। इसके बाद उनकी रानियाँ आईं, रानी को अनोत्तट्टा झील तक ले गईं, उन्हें स्नान कराकर मानवीय अशुद्धियों को दूर किया, उन्हें दिव्य वस्त्र पहनाए, सुगंध से सुगंधित किया, उनके बालों में फूल लगाए और फिर उन्हें पास ही स्थित एक चांदी के पर्वत के भीतर, पूर्व दिशा की ओर मुख किए हुए स्वर्ण महल में बने दिव्य बिस्तर

पर लिटा दिया। उस समय बोधिसत एक उत्कृष्ट सफेद हाथी थे। वहाँ से कुछ ही दूरी पर एक स्वर्ण पर्वत था। वह वहाँ विचरण करते हुए वहाँ से उतरकर चांदी के पर्वत पर चढ़ गए, उत्तर दिशा से आए, अपनी चांदी की रस्सी के रंग की सूंड से एक सफेद कमल को पकड़ा, बगुले की तरह रोए, स्वर्ण महल में प्रवेश किया, अपनी माता के पलंग की तीन परिक्रमाएँ कीं, उनका दाहिना भाग चीरकर मानो उनके गर्भ में प्रवेश कर गया। इस प्रकार, बोधिसत ने उत्तरासाल्हनक्खत्त के अधीन गर्भ धारण किया।
2.9 अगले दिन जब रानी जागी, तो उसने राजा को उस सपने के बारे में बताया। राजा ने लगभग चौंसठ ब्राह्मण विद्वानों को बुलवाया, ज़मीन पर कीमती आसन तैयार करवाए, उन्हें हरे गोबर से अच्छी तरह लेपकर और भुने हुए अनाज बिखेरकर आतिथ्य सत्कार योग्य बनाया। वहाँ बैठे ब्राह्मणों को राजा ने घी, शहद और चीनी से बना उत्तम दूध का शोरबा सोने और चाँदी के कटोरे भरकर, उन पर सोने और चाँदी के ढक्कन लगाकर परोसा। उन्हें नए वस्त्र, भूरी गायें आदि उपहार देकर भी तृप्त किया गया। इसके बाद, सभी प्रकार के इंद्रिय सुखों में तृप्त हो चुके उन ब्राह्मणों को वह सपना बताया गया और पूछा गया, "आगे क्या होगा?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया, "हे महाराज! चिंता न करें। आपकी रानी के गर्भ में गर्भ धारण हो चुका है। यह गर्भ वास्तव में एक पुत्र का है, स्त्री का नहीं। महाराज को पुत्र जन्म लेगा। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करे, तो वह विश्वराज बनेगा। यदि वह गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी बन जाए, तो वह बुद्ध बनेगा, जो संसार से पर्दा हटाएगा।"
2.10. जिस क्षण बोधिसत्व ने अपनी माता के गर्भ में गर्भ धारण किया, उसी क्षण इस घटना के साथ ही, संपूर्ण दस हजार लोक-तत्व (लोकधातु) स्वतः ही कांप उठे। बत्तीस अशुभ संकेत (पुब्बानिमित्त) प्रकट हुए: दस हजार समुच्चयों (चक्कवा) में असीम प्रकाश व्याप्त हो गया। मानो उनकी उस महिमा को देखने की इच्छा से, अंधों को उनकी दृष्टि वापस मिल गई; बहरे सुनने लगे; गूंगे स्वयं बोलने लगे; कुबड़ा सीधा हो गया; लंगड़े फिर से चलने लगे; सभी जीवित प्राणी, जो सलाखों के पीछे थे, कारागारों, बंधनों आदि से मुक्त हो गए; सभी नरकों में आग बुझ गई; पेटों के क्षेत्र में भूख और प्यास चरम पर पहुंच गई, जानवरों को कोई खतरा नहीं रहा; सभी जीवित प्राणियों के रोग दूर हो गए। सभी प्राणी मधुर वक्ता बन गए; घोड़े मधुरता से हंसने लगे; हाथियों ने चिंघाड़ भरी; सभी वाद्ययंत्रों ने अपनी-अपनी मधुर ध्वनि उत्पन्न की; मनुष्यों के हाथों आदि को सुशोभित करने वाले आभूषण आपस में टकराए बिना खड़खड़ाहट कर रहे थे; सभी दिशाएँ स्पष्ट और सुखद थीं; कोमल और ठंडी हवाएँ बह रही थीं जो जीवों को प्रसन्न कर रही थीं; बेमौसम बारिश हो रही थी; धरती से जल फूटकर (उब्भिज्जित्वा) बह रहा था (विस्संडी); पक्षी आकाश में उड़ने से बच रहे थे; नदियाँ बहना बंद हो गईं; विशाल सागर ने ताज़ा पानी उपलब्ध कराया; हर जगह, अपने उचित क्रम में, जल-सतहें पाँच रंगों के कमलों से ढकी हुई थीं; सभी प्रकार के शुष्क भूमि के फूल और जलीय फूल खिले; वृक्षों के तनों पर, तना-कमल, उनकी शाखाओं पर, शाखा कमल, लताओं पर, लता-लता कमल खिले और फूले; ठोस पत्थर की पटियाँ टूट गईं, एक के ऊपर एक सौ परतें बन गईं और कमल के फूल, जिन्हें कमल की डंठल, दण्ड पद्म के नाम से जाना जाता है, बाहर आ गए। आकाश में, लटकते हुए (ओलाम्बाका) कमल के पौधे उग आए; चारों ओर फूलों की वर्षा हुई; आकाश में दिव्य वाद्ययंत्रों ने अपना संगीत बजाया; दस हजार विश्व-तत्व एक मुक्त गोलाकार माला की तरह घूम रहे थे, पिरोई हुई मालाओं के गुच्छे की तरह भगदड़ मचा रहे थे, और एक कुशलता से सजाई गई माला-आसन की तरह, यह एक एकल पुष्प-माला, याक की पूंछ के कंपनशील पंखे में बदल गया, फूलों की सुगंध और मीठी खुशबू से चारों ओर महक रहा था, अपनी सर्वोच्च सुंदरता को प्राप्त कर रहा था।
2.11 जब बोधिसात ने इस प्रकार गर्भ धारण किया, तो चार युवा देवता, तलवारों से सुसज्जित, बोधिसात और उनकी माता दोनों की गर्भ धारण के समय से ही रक्षा करते रहे, ताकि उन दोनों पर कोई विपत्ति न आए। बोधिसात की माता के मन में पुरुषों के प्रति कोई मानसिक आसक्ति नहीं थी। वे सुखी और शारीरिक थकान से मुक्त होने के साथ-साथ अपनी समृद्धि और प्रतिष्ठा के चरम पर थीं। वे अपने गर्भ में आए बोधिसात को भी एक विशेष रूप से शांत रत्न के चारों ओर लिपटे पीले धागे की तरह देख सकती थीं। बोधिसात के गर्भ में होने के कारण, वह गर्भ किसी मंदिर के कक्ष के समान माना जाता था; किसी अन्य जीव के लिए वहाँ निवास करना या पूर्ण लाभ प्राप्त करना संभव नहीं था; अत: बोधिसात के जन्म के सात दिन बाद उनकी माता का निधन हो गया और उनका पुनर्जन्म तुषिता नामक स्वर्ग नगर में हुआ। इसके अलावा, जिस प्रकार अन्य स्त्रियाँ दस महीने से कम या अधिक समय के बाद बैठकर और लेटकर भी अपने बच्चों को जन्म देती हैं, बोधिसात की माता के मामले में ऐसा नहीं था। उन्होंने दस महीने तक बोधिसात को उचित रूप से गर्भ में धारण किया और खड़े होकर अपने पुत्र को जन्म दिया (पृष्ठ 95)। यही बोधिसात की माता का सामान्य आचरण (धम्मता) है।

सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का जन्म

2.12. रानी महामाया भी गर्भावस्था में पूर्णतः परिपक्व हो चुकी थीं, जब उन्होंने बोधिसत्व को दस महीने तक अपने गर्भ में इस प्रकार धारण किया जैसे वे कटोरे में तेल लिए हों। अपने रिश्तेदारों के घर जाने की इच्छा से उन्होंने महान राजा सुद्धोदन को सूचित किया: "महाराज! मैं देव नगर जाना चाहती हूँ, जो मेरे कुल का है।" राजा ने 'ठीक है' कहते हुए सहमति दी, कपिलवस्तु और देवदहा के बीच की सड़क को समतल करवाया, उसे केले के वृक्षों, जल से भरे कलशों, झंडों और मालाओं आदि से सजाया, अपनी रानी को सोने की पालकी में बिठाया जिसे एक हजार मंत्रियों द्वारा उठाया जा सकता था और उन्हें एक विशाल दल के साथ विदा किया। उस समय दोनों नगरों के बीच एक शुभ साल वन था, जिसे दोनों नगरों के निवासियों का लुम्बिनी वन कहा जाता था (पृष्ठ 96)। उस अवसर पर साल के वृक्षों के सभी फल जड़ से लेकर शीर्ष शाखाओं तक एक साथ खिल उठे थे। पांच रंगों की मधुमक्खियों के झुंड और विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों के समूह शाखाओं और फूलों के बीच मधुर गीत गाते हुए विचरण कर रहे थे। तब पूरा लुम्बिनी उद्यान स्वर्ग के चित्तलता उद्यान जैसा प्रतीत हो रहा था। यह किसी शक्तिशाली सम्राट के सुव्यवस्थित खरीदारी केंद्र की तरह था। लुम्बिनी उद्यान को देखकर रानी के मन में साल के उद्यान में भोग लगाने की इच्छा जागी। मंत्री रानी को लेकर साल के उद्यान में प्रवेश कर गए। वह शुभ साल के वृक्ष के आधार की ओर गईं और उसकी शाखा को पकड़ने की इच्छा हुई। साल की शाखा भीगी हुई बेंत की तरह झुककर रानी के हाथ की ओर आ गई। उन्होंने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया। तभी रानी को प्रसव पीड़ा (अर्थात कर्मों से उत्पन्न वायु) होने का अहसास हुआ। इसके बाद उनके चारों ओर एक पर्दा लगा दिया गया और अधिकांश लोग वहां से चले गए। रानी ने साल की शाखा को पकड़े हुए खड़े-खड़े ही अपने बच्चे को जन्म दिया। ठीक उसी क्षण चार शुद्ध स्वभाव वाले महान ब्रह्मा वहाँ एक सोने का जाल लेकर आए। उन्होंने उस सोने के जाल में बोधिसत्व को विधिपूर्वक ग्रहण किया, माता के सामने खड़े हुए और कहा: "हे रानी! कृपया अपने मूल स्वरूप में रहें; आपने एक शक्तिशाली पुत्र को जन्म दिया है।"

2.13. अन्य शिशुओं के मामले में, जब वे अपनी माताओं के गर्भ से बाहर आते हैं, तो वे घृणित अशुद्धियों से सने होते हैं; बोधिसात के मामले में ऐसा नहीं था। वे (यद्यपि) अपनी माता के गर्भ से ऐसे चमकते हुए निकले जैसे काशिक शुद्ध सफेद वस्त्र पर फेंका गया रत्न, वे

खड़े हुए थे, अपने दोनों हाथ और दोनों पैर फैलाए हुए, शुद्ध, निर्मल और किसी भी अशुद्धता से रहित, क्योंकि वे अपनी माता के गर्भ में ऐसे रहे थे जैसे धर्म का उपदेशक उपदेश मंच से उतरता है या सीढ़ी से नीचे आता है। इसके बावजूद, बोधिसात और उनकी माता का सम्मान करने के उद्देश्य से, आकाश से जल की दो वर्षाएँ आईं और माता और शिशु दोनों के शरीर को स्नान कराकर उन्हें तरोताजा कर दिया।

2.14. इसके बाद, ब्रह्माओं के हाथों से, जो शिशु को सोने के जाल में धारण करके खड़े थे, चारों महान स्वर्गिक राजाओं ने शिशु को सुख प्रदान करने, आरामदेह संपर्क और पारंपरिक शुभता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, पलंग के आकार के हिरण की खाल के वस्त्र (अजिनप्पवेणी) में लपेटकर ग्रहण किया। उनके हाथों से, मनुष्य अत्यंत महीन वस्त्र (दुकुल) के तकियों पर शिशु को ग्रहण करने लगे। जब शिशु को मनुष्यों के हाथों से मुक्त करके जमीन पर रखा गया, तो उसने पूर्व दिशा की ओर देखा। हजारों ब्रह्मांड (चक्कवाला) एक इकाई बन गए। वहाँ उपस्थित देवताओं और मनुष्यों ने उन्हें इत्र, माला आदि से सम्मानित करते हुए कहा, "हे पराक्रमी! इस संसार में आपके समान कोई नहीं है। भला आपसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है?" इस प्रकार, उन्होंने दस दिशाओं में, अर्थात् चारों दिशाओं, चारों कोनों, हेष्ठा और उपरि की ओर क्रमानुसार देखा और अपने समतुल्य किसी को न पाकर, सात कदम चलकर कहा, "यह उत्तर दिशा है।" उनके ऊपर महा ब्रह्मा सफेद छत्र धारण किए हुए थे, सूर्यम याक की पूंछ का पंखा (वालबीजनी) धारण किए हुए थे और अन्य दिव्य प्राणी भी अपने हाथों में शेष राजचिह्न लिए उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इसके बाद, सातवें पायदान पर खड़े होकर, उन्होंने सिंह की गर्जना करते हुए, साहसपूर्वक कहा, "मैं जगत का सर्वोच्च हूँ।"

2.15. बोधिसत्व ने अपनी माता के गर्भ से प्रकट होते ही तीन रूपों में शब्द कहे: महोषद रूप में, वेस्सन्तरा रूप में और इस रूप में। कहा जाता है कि महोषद रूप में, जब वे अपनी माता के गर्भ से प्रकट हो रहे थे, उसी क्षण देवों के राजा सक्का आए और उनके हाथ में चंदन का सार रखकर चले गए। उन्होंने चंदन को मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया और प्रकट हुए। तब उनकी माता ने उनसे पूछा, "मेरे प्रिय पुत्र! तुमने क्या लिया है और आए हो?" "औषधि, माता!" इस प्रकार, औषधि लेकर आने के कारण उनका नाम "औषधि बालक" (सोधा दारक) रखा गया। उन्होंने वह औषधि ली और उसे एक पात्र में रख दिया। यह सचमुच सभी प्रकार के रोगों के सफल उपचार का औषध बन गया, जो सभी को प्रभावित करते थे, चाहे वे अंधे हों, बहरे हों, आदि। इसके बाद, "यह औषधि महान है! यह औषधि शक्तिशाली है" इस कथन के उत्पन्न होने पर, उनका नाम 'महोषद' भी पड़ा। वेस्सन्तर के रूप में, जैसे ही वे अपनी माता के गर्भ से बाहर आए, उन्होंने अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर यह प्रार्थना की: "माँ! क्या घर में कुछ है? मैं दान करूँगा," और उन्होंने ऐसा ही किया। तब उनकी माता ने अपने पुत्र के हाथ की हथेली पर एक हजार सिक्कों से भरा पर्स रख दिया, जिसे उन्होंने पहले अपनी हथेली पर रखा था, और कहा: "मेरे पुत्र! तुम धनवान परिवार में जन्मे हो।" अपने इस जन्म में, उन्होंने सिंह की दहाड़ लगाई। इस प्रकार, बोधिसत्व ने अपनी माता के गर्भ से बाहर आते ही स्पष्ट शब्दों का उच्चारण किया। जिस प्रकार उनके गर्भ धारण के समय घटित हुआ था, उसी प्रकार उनके जन्म के समय भी बत्तीस अशुभ संकेत (पुब्बानिमित्तानि) प्रकट हुए। जब हमारे भावी बुद्ध (बोधिसत्त) का जन्म लुम्बिनी वन में हुआ, उसी समय राहुल की भावी माता, भावी थेरा आनंद, भावी मंत्री चन्ना, भावी मंत्री कालुदवी, राजसी अश्व कंठक, विशाल बोधि वृक्ष और खजाने के चार स्वर्णमय कलश भी प्रकट हुए। इनमें से एक कलश बैल की दहाड़ के आकार का (गावूत) था; दूसरा आधा मील (योजन) के आकार का; तीसरा तीन गावूत के आकार का और चौथा एक मील (योजन) के आकार का था। उनकी गहराई पृथ्वी के सबसे निचले स्तर तक थी। इन सातों को सत्त सहजता के रूप में जाना जाता है। (पृष्ठ 99)

साधु शिशु सिद्धार्थ को देखने आता है

2.16. दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व को लेकर कपिलवस्तु नगर के लिए प्रस्थान कर गए। उसी दिन, तावतिंसा स्वर्ग में स्थित देवमंडल अत्यंत प्रसन्न हुआ और कहने लगा, "कपिलवस्तु नगर में महान राजा सुद्धोदन के पुत्र का जन्म हुआ है; यह राजकुमार बोधि वृक्ष के आधार पर विराजमान बुद्ध बनेगा।" उन्होंने अपने वस्त्रों को लहराकर और अन्य प्रकार के अभिनंदन कार्य करके आनंद मनाया। उसी अवसर पर, महान राजा सुद्धोदन के परिवार के मित्र, आठ प्रकार के ध्यान (अष्टसमापत्ति) प्राप्त करने वाले कालदेवल नामक ऋषि ने भोजन करने के बाद तावतिंसा स्वर्ग में दिन व्यतीत करने के लिए प्रस्थान किया और वहाँ विराजमान हो गए। जब उन्होंने उन दिव्य प्राणियों को इस प्रकार क्रीड़ा करते देखा, तो उन्होंने पूछा, “आप सब इतने प्रसन्न मन से क्रीड़ा क्यों कर रहे हैं? मुझे इसके बारे में बताइए।” देवताओं ने उत्तर दिया, “मित्र! महान राजा सुद्धोदन के पुत्र का जन्म हुआ है; वह बुद्ध बनेंगे, बोधि वृक्ष की वेदी पर विराजमान होंगे और धर्मचक्र चलाएंगे; हमें इस अवसर पर बुद्ध की असीम कृपा के साक्षी बनने और उनके धर्मोपदेश सुनने का अवसर मिलेगा, हम सब अत्यंत प्रसन्न हैं।” उनकी बातें सुनकर, ऋषि तुरंत स्वर्गलोक से नीचे उतरे, राजमहल में प्रवेश किया, अपने लिए तैयार स्थान पर बैठे और बोले, “महाराज! मुझे बताया गया है कि आपके पुत्र का जन्म हुआ है; क्या मैं उन्हें देख सकता हूँ?” राजा ने सुशोभित और आभूषणों से सुसज्जित राजकुमार को बुलवाया और उन्हें ऋषि को प्रणाम करने के लिए कहा। बोधिसत्व के चरण पूरी तरह घूमकर ऋषि की गुंथी हुई जटाओं पर स्थापित हो गए। बोधिसत्व के लिए वास्तव में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो उनके जैसे व्यक्ति द्वारा पूजे जाने योग्य हो। यदि अनजाने में भी वे बोधिसत्व का सिर तपस्वी के चरणों में रख देते, तो उनका सिर सात टुकड़ों में बिखर जाता। तपस्वी ने मन ही मन कहा, "मेरे लिए स्वयं को नष्ट करना उचित नहीं है", और अपने आसन से उठकर बोधिसत्व के प्रति श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़ लिए। उस चमत्कार को देखकर राजा ने अपने पुत्र को प्रणाम किया।

2.17. संन्यासी को अस्सी युगों (कप्पा) का स्मरण था: बीते चालीस युग (कप्पा) और आने वाले चालीस युग (कप्पा)। बोधिसत्व को उत्तम गुणों से परिपूर्ण देखकर, उन्होंने मन ही मन सोचा, “क्या वे सचमुच बुद्ध बनेंगे या नहीं?” उन्हें यह ज्ञान हुआ कि वे निस्संदेह बुद्ध बनेंगे और मन ही मन कहते हुए, “यह तो अद्भुत युवक है”, वे मुस्कुराए। इसके बाद, यह सोचते हुए, “क्या मुझे इस अद्भुत युवक को बुद्ध बनते देखने का अवसर मिलेगा या नहीं?”, उन्होंने देखा कि उन्हें ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, क्योंकि वे बीच में ही परलोक धारण कर लेंगे और ब्रह्मा के निराकार लोक में पुनर्जन्म लेंगे, जहाँ सौ बुद्ध ही नहीं, बल्कि हजार बुद्ध भी जाकर उन्हें ज्ञान प्रदान नहीं कर सकेंगे; इसलिए, मन ही मन कहते हुए, “मुझे ऐसे अद्भुत युवक को बुद्ध बनते देखने का अवसर नहीं मिलेगा”, वे रो पड़े।

2.18 लोगों ने यह देखा और पूछा, “हमारे प्रभु अभी हँसे और फिर रोने लगे; हे पूज्यवर, वास्तव में क्या बात है? क्या हमारे राजा के पुत्र को कोई हानि हो रही है?” उन्होंने उत्तर दिया, “इस मामले में उन्हें कोई खतरा नहीं है; वे निःसंदेह बुद्ध बनेंगे।” यह पूछे जाने पर कि पूज्यवर क्यों रो रहे थे, ऋषि ने उत्तर दिया, “मैं इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मुझे इस बात का बहुत दुख है कि मुझे इस तरह के युवक को बुद्ध बनते देखने का अवसर नहीं मिलेगा।” इसके बाद, उस ऋषि ने यह सोचते हुए कि “क्या मेरे किसी रिश्तेदार को इस बालक को बुद्ध बनते देखने का अवसर मिलेगा?”, अपने भतीजे, युवक नालक को देखा। उन्हें बताया गया कि उनका पुत्र घर पर है। क्योंकि उन्हें अपने पुत्र को बुलवाने के लिए कहा गया था, इसलिए उन्होंने ऐसा किया और ऋषि ने अपने पास आए युवक से कहा, “मेरे प्रिय! महान राजा सुद्धोदन के परिवार में एक पुत्र का जन्म हुआ है; यह पुत्र बुद्ध का नवजात रूप है; पैंतीस वर्ष की आयु में वह बुद्ध बन जाएगा; आपको

उसे देखने का अवसर मिलेगा; "आज ही के दिन संसार का त्याग करके संन्यासी बन जाऊँगा।" यद्यपि वह युवक सत्तासी करोड़ की संपत्ति वाले परिवार में जन्मा था, उसने मन ही मन सोचा कि उसके चाचा ने उसे बिना किसी लाभ के संन्यास लेने के लिए प्रेरित नहीं किया होगा; उसी क्षण, उसने बाजार से वस्त्र और मिट्टी का भिक्षापात्र मंगवाया, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए, पंचपतिष्टि मुद्रा में पृथ्वी को स्पर्श करते हुए हाथ जोड़कर बोधिसत्व की दिशा में मुख करके प्रणाम किया और कहा: 'मेरा संन्यास और संन्यासी बनना उन्हें समर्पित है, जो संसार के सबसे श्रेष्ठ पुरुष हैं', उसने अपना भिक्षापात्र थैली में रखा, उसे अपने कंधे पर लटकाया, हिमालय में प्रवेश किया और भिक्षु के कर्म (धर्म) किए। वह तथागत के पास पहुँचा, जिन्होंने अंततः पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उसने बुद्ध से नालक साधना (पतिपदा) का उपदेश देने का अनुरोध किया, और फिर से हिमालय में प्रवेश किया। हिमालय में, अरहत की अवस्था तक पहुँचकर, साधना के उच्चतम रूप को सिद्ध किया, केवल सात महीने का जीवनकाल जिया और निर्वाण तत्व के माध्यम से अमर आनंद में पूर्णतः विलीन हो गए, उपाधि का कोई निशान नहीं छोड़ा, जबकि वे अभी भी एक स्वर्ण पर्वत के पास खड़े थे।

2.19. जन्म के पाँचवें दिन, बोधिसत्व ने अपना सिर धोया और राजपरिवार के लोगों ने आपस में कहा, "हम नामकरण संस्कार करेंगे।" इसलिए उन्होंने राजमहल को चार प्रकार के प्राकृतिक सुगंधों से सुगंधित किया, पाँचवें प्रकार के लाजा सहित फूलों के गुच्छे बिखेरे, शुद्ध (असंभिन्न) दूध-चावल के भोजन की व्यवस्था की, तीनों वेदों में पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को आमंत्रित किया, उन्हें राजमहल में बैठाया, उन्हें अच्छा भोजन कराया, सम्मान के बड़े-बड़े दान दिए और उनसे संकेतों का अध्ययन और विश्लेषण करने को कहा, "वास्तव में क्या होगा?" उनमें से,

"राम, धजा, लक्खाना और साथ ही मांटी
यान्या, सुभोज, सुयामा और सुदत्त; इन,
फिर आठ ब्राह्मण थे। उन्होंने प्रदर्शन किया।
वह मंत्र, जिसके छह खंड थे।

ये आठ ब्राह्मण ही लक्षणों (लक्खण) के ज्ञाता थे। गर्भाधान के दिन देखे गए स्वप्न का भी उन्होंने ही विश्लेषण किया। उनमें से सात ने दो उंगलियां उठाकर दो प्रकार की घटनाओं की भविष्यवाणी की: "जिस किसी में ये लक्षण (लक्खण) होंगे, वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करने पर विश्वराज बनेगा; यदि वह संसार का त्याग करके संन्यासी बन जाए, तो वह बुद्ध बनेगा।" ऐसा कहकर उन्होंने विश्वराज के समस्त वैभव का वर्णन किया। उन सब में सबसे छोटे, युवा ब्राह्मण, जो अपने कुल कोण्डाञ्ञ के नाम से जाने जाते थे, ने बोधिसत्व के उत्तम लक्षणों (लक्खण) की महिमा को देखकर केवल एक उंगली उठाई और निश्चित भविष्यवाणी करते हुए कहा: "गृहस्थ जीवन के बीच इस बालक के लिए कोई उपयुक्त कर्म नहीं है। निश्चय ही यह बालक बुद्ध बनेगा, पर्दों को हटाने वाला, नेत्र खोलने वाला।" यह युवा ब्राह्मण वास्तव में वह था जिसने अपने अंतिम जन्म में आकांक्षा को त्याग दिया था, और इसलिए ज्ञान में अन्य सात ब्राह्मणों से श्रेष्ठ था, और इस प्रकार उसने बोधिसत्व के लिए केवल एक ही नियति देखी, जिसे निश्चित बुद्धत्व के रूप में जाना जाता है, जो ऐसे लक्षणों (लक्खण) से संपन्न थे। परिणामस्वरूप, उसने केवल एक उंगली उठाकर तदनुसार भविष्यवाणी की। फिर, उनका नाम जानने के बाद, ब्राह्मणों ने उन्हें सिद्धार्थ नाम दिया, क्योंकि वे समस्त विश्व के कल्याण के लिए कार्य करेंगे।

2.20 तब वे ब्राह्मण अपने-अपने घर लौट गए और अपने पुत्रों को इस प्रकार संबोधित किया: "प्रिय पुत्रों! हम बूढ़े हो चुके हैं; हम शायद ही देख पाएं कि महान राजा सुद्धोदन के पुत्र को सर्वज्ञता प्राप्त हो रही है या न देख पाएं; जब वह युवा राजकुमार सर्वज्ञता प्राप्त कर ले, तो तुम उसके मार्गदर्शन में संन्यासी बन जाना।" वे सातों व्यक्ति अपने जीवन काल तक जीवित रहे और अपने कर्मों के अनुसार उनका निधन हो गया। केवल युवा ब्राह्मण कोण्डाञ्च ही किसी भी रोग से मुक्त रहे। जब महान पुरुष बड़े हुए, तो उन्होंने महान वैराग्य ग्रहण किया, संन्यासी बन गए, समय आने पर उरुवेला गए और यह निश्चय किया: "यह भूमि वास्तव में रमणीय है; यह वास्तव में गहन ध्यान करने के इच्छुक युवक के लिए परिश्रम करने हेतु उपयुक्त स्थान है।" वहाँ निवास करते समय, उन्होंने सुना कि उस महान पुरुष ने संसार त्याग कर संन्यासी बन गए हैं। वे उन सात ब्राह्मणों के पुत्रों के पास गए और बोले, "लोग कहते हैं कि राजकुमार सिद्धार्थ ने संसार त्याग कर संन्यासी बन गए हैं; वे निश्चित रूप से बुद्ध बनेंगे; यदि तुम्हारे पिता रोगमुक्त हैं, तो उन्हें भी आज ही संसार त्याग कर संन्यासी बन जाना चाहिए; यदि तुम सब भी ऐसा करने के इच्छुक हो, तो आओ! हम सब उस महान ऋषि के संन्यास का अनुसरण करेंगे।" उनमें से सभी एक ही इच्छा पर नहीं टिक सके। उनमें से तीन ने संसार का त्याग नहीं किया। अन्य चार ने संसार त्याग कर ब्राह्मण कंदञ्ञ को अपना नेता बनाया। वे पाँचों व्यक्ति पंचवग्गिव थेरा के नाम से जाने गए।

2.21 उस समय, राजा सुद्धोदन ने पूछा, "क्या देखकर मेरा पुत्र भिक्षु बनेगा?" उत्तर था, "चार अशुभ संकेत।" जब पूछा गया कि कौन से, तो उत्तर था: वृद्ध, बीमार, मृत और भिक्षु। राजा ने कहा, "अब से, ऐसे लोगों को, जो अशुभ संकेत हों, मेरे पुत्र के पास न आने दें; मेरे पुत्र का बुद्ध बनना उचित नहीं है; मैं अपने पुत्र को विश्व-राजा के रूप में देखना चाहता हूँ, जो चार महान द्वीपों और उनके आसपास के दो हजार द्वीपों पर सर्वोच्च संप्रभुता का प्रयोग करे और छत्तीस योजन (लीग) के क्षेत्र में फैले विशाल दल के साथ आकाश में भ्रमण करे।" ऐसा कहने के बाद, ********(पृष्ठ 104), राजा ने युवा राजकुमार की दृष्टि में इन चार प्रकार के शकुनों को आने से रोकने के उद्देश्य से चारों दिशाओं में हर जगह एक बैल-कहाहट (गावुता) की दूरी पर सतर्क रक्षकों को नियुक्त और तैनात किया। उसी दिन, नामकरण समारोह के शुभ स्थान पर एकत्रित हुए अस्सी हजार रिश्तेदारों के परिवारों में से प्रत्येक ने पुत्र को जन्म दिया और वे सब आपस में कहने लगे: "यह बालक बुद्ध या सम्राट बने; हम सब अपने-अपने पुत्रों को इसमें अर्पित करते हैं; यदि वह बुद्ध बने, तो वह खत्तिया वंश के भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए विचरण करेंगे; यदि वह सर्वशक्तिमान सम्राट बने, तो वह केवल खत्तिया वंश के युवकों के दल से घिरे हुए और उनका नेतृत्व करते हुए भ्रमण करेंगे।" राजा ने बोधिसत्व की सेवा के लिए सभी दोषों से मुक्त और अत्यंत सुंदर दाइयों को नियुक्त किया। बोधिसत्व अपने चारों ओर बड़ी संख्या में परिचारकों के साथ और अत्यंत कृपा और वैभव के साथ पले-बढ़े।

बालक सिद्धार्थ ध्यान की ओर प्रवृत्त है

2.22. फिर एक दिन, राजा के लिए राजसभा का समारोह (वप्पमंगल) था। उस दिन लोगों ने अपने शहर को स्वर्गिक नगर की तरह सजाया। सभी दास और सेवक नए वस्त्र पहनकर, इत्र और मालाओं आदि से सुसज्जित होकर राजमहल में एकत्रित हुए। राजसभा के समारोह में, ********(पृष्ठ 105), आमतौर पर एक हजार हल इस्तेमाल किए जाते थे। लेकिन उस दिन, आठ सौ हल एक कम थे, हल और बैल, उनकी लगाम और रस्सियाँ चाँदी की बनी थीं; यहाँ तक कि हल चलाने वाली छड़ें भी सोने की चमक से जगमगा रही थीं क्योंकि वे सोने की बनी थीं। राजा अपने विशाल दल से घिरे हुए समारोह में गए, और अपने पुत्र को भी साथ ले गए। समारोह स्थल पर

एक विशाल पत्तों और घनी छाया वाला यूजेनिया का वृक्ष था। उस वृक्ष के नीचे बालक-राजकुमार के लिए पलंग तैयार किया गया था; उसके ऊपर, सोने के तारों से सजा हुआ एक चंदवा लगाया गया; उसके चारों ओर एक परदे की दीवार बनाई गई; पहरेदार तैनात किए गए और बालक राजकुमार को पलंग पर लिटा दिया गया। राजा ने सज-धज कर अपने सेवकों के दल के साथ खेत जोतने के स्थान पर गए। वहाँ राजा ने सोने का हल उठाया; 799 सेवकों ने चाँदी के हल उठाए; और किसानों ने शेष हल उठाए। सभी ने हल उठाए और इधर-उधर जुताई की। राजा कभी इधर तो कभी उधर जाते रहे, और कभी इधर तो कभी इधर। एक ही स्थान पर महान कार्य संपन्न हुआ। बोधिसत्व के चारों ओर बैठी दाइयाँ राजा की इस उपलब्धि को देखने के लिए पर्दे के भीतर से बाहर आईं। दूसरी ओर, शिशु बोधिसात इधर-उधर देखते हुए, क्योंकि उन्हें कोई दिखाई नहीं दिया, जल्दी से उठ खड़े हुए, पालथी मारकर बैठ गए, श्वास लेने और छोड़ने में तल्लीन हो गए और अपने भीतर प्रथम ध्यान का अनुभव किया। दाइयाँ अपना भोजन लेने गई थीं, *******(पृष्ठ 106), इसलिए वे थोड़ी देर रुक गईं। अन्य वृक्षों की छाया दूसरी ओर मुड़ गई थी। परन्तु उस युजेनिया वृक्ष की छाया चारों ओर वृत्ताकार होकर वहीं टिकी रही। दाइयों ने मन ही मन कहा, "हमारे प्रभु के पुत्र अकेले हैं", और जल्दी से पर्दा उठाया और जैसे ही वे अंदर आईं, उन्होंने बोधिसात को पालथी मारकर अपने पलंग पर बैठे हुए और उस अद्भुत चमत्कार को देखा। इसलिए वे गए और राजा को सूचना दी: "महाराज! शिशु राजकुमार इस प्रकार बैठा है; अन्य वृक्षों की छाया दूसरी ओर मुड़ गई है; परन्तु यूजेनिया वृक्ष की छाया स्वयं वृक्ष को घेरे हुए है।" राजा जल्दी से आया, इस अद्भुत चमत्कार को देखा और अपने पुत्र को प्रणाम करते हुए कहा: "मेरे प्रिय पुत्र! यह मेरा तुम्हें दिया गया दूसरा प्रणाम है।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2बी ऐश्वर्य; दुःख; पुत्र का जन्म
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना भाग - 1.2 - गौतम बुद्ध
1.11.2b ऐश्वर्यमय जीवन; संसार में दुख देखना; पुत्र राहुल का जन्म
1.1.1राजकुमार सिद्धार्थ (बुद्ध) अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं
1.1.2दुनिया के दुख को देखकर
1.1.3उनके पुत्र राहुल का जन्म

अपदाना भाग - 1.2 - गौतम बुद्ध

1.2b ऐश्वर्यमय जीवन; संसार में दुख देखना; पुत्र राहुल का जन्म

2.23. फिर, समय के साथ, बोधिसत्व सोलह वर्ष के हो गए। राजा ने वर्ष के तीन ऋतुओं के अनुसार बोधिसत्व के लिए तीन महल बनवाए। एक महल नौ मंज़िला, दूसरा सात मंज़िला और तीसरा पाँच मंज़िला था। राजा ने उनकी सेवा के लिए चौरासी हज़ार महिला नर्तकियों और संगीतकारों को भी नियुक्त किया। एक देवता (देव) की तरह, अप्सराओं से घिरे, बोधिसत्व, महान महिमा का आनंद लेते हुए, महिला संगीतकारों द्वारा मनोरंजन करते हुए और सुशोभित और अलंकृत नर्तकियों से घिरे हुए, वर्ष की नियमित ऋतुओं के अनुसार बारी-बारी से तीनों महलों में रहते थे। हालाँकि, राहुल की माता, रानी राहुलमाता, उनकी मुख्य रानी थीं

राजकुमार सिद्धार्थ (बुद्ध) अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं

2.24. जब वे इस प्रकार उत्कृष्ट महिमा का अनुभव कर रहे थे, एक दिन उनके सगे-संबंधियों की सभा में यह कानाफूसी होने लगी: "राजकुमार सिद्धार्थ तो खेल-कूद में ही मग्न रहते हैं, कोई कला नहीं सीखते। जब युद्ध छिड़ेगा और लड़ाई होगी, तब वे क्या करेंगे?" राजा ने बोधिसत्व को बुलवाया और कहा: "मेरे प्रिय पुत्र! तुम्हारे रिश्तेदार कह रहे हैं कि 'राजकुमार सिद्धार्थ तो बिना कोई कला सीखे ही मनोरंजन में लगे रहते हैं'। हे मेरे प्रिय, इस विषय में, शत्रु के आने पर क्या होगा?" उनका उत्तर था: "महाराज! मुझे कोई कला सीखने की

आवश्यकता नहीं है; शहर में ढोल बजाकर यह घोषणा की जाए कि मैं कला में निपुण हूँ, और सभी लोग मेरी कला का प्रदर्शन करेंगे।" राजा ने ऐसा ही किया।

बोधिसत्व ने सभी कुशल और निपुण तीरंदाजों को एकत्रित किया और अपने सगे संबंधियों को बारह प्रकार की कलाएँ सिखाईं। उन्होंने लोगों की एक विशाल सभा के समक्ष ऐसी कला का प्रदर्शन किया जो अन्य तीरंदाजों की क्षमता से परे थी। उनकी इस कला को सरभंग की जन्म कथा (जातक) के संदर्भ में समझना चाहिए। इसके बाद उनके सगे संबंधियों का संशय दूर हो गया।

दुनिया के दुख को देखकर

2.25. फिर एक दिन, बोधिसत्व को उद्यान जाने की इच्छा हुई, तो उन्होंने अपने सारथी को बुलवाया और उसे अपना रथ तैयार करने का निर्देश दिया। सारथी ने कहा, "ठीक है," और उसने उत्तम और बहुमूल्य रथ को सभी प्रकार के अलंकरणों से सजाया और उसमें सफेद कमल की पंखुड़ियों के रंग के चार शुभ घोड़े जोते। फिर वह बोधिसत्व के पास लौट आया। बोधिसत्व उस रथ पर सवार हुए, जो किसी दिव्य महल जैसा लग रहा था, और राजमहल की ओर चल दिए। देवताओं ने आपस में कहा, "युवा राजकुमार सिद्धार्थ के पूर्ण ज्ञानोदय का समय निकट आ रहा है; हम उन्हें अशुभ संकेत दिखाएंगे।" तदनुसार, उन्होंने एक युवा देवता को दिखाया, और उसे बूढ़ा, टूटे दांतों वाला, भूरे बालों वाला, टेढ़ा-मेढ़ा शरीर वाला, हाथ में छड़ी लिए और कांपता हुआ दिखाया। बोधिसत्व और सारथी दोनों ने यह देखा। इसके फलस्वरूप, बोधिसत्व ने महापदना सुत्तंत में वर्णित शैली में सारथी से पूछा, "मेरे मित्र! यह कौन है, हे *******(पृष्ठ 108)? इसके बाल भी अन्यों के समान नहीं हैं।" जब उन्होंने सारथी का उत्तर सुना, तो वे पश्चाताप से भर उठे और बोले, "अफ़सोस, यह कितना लज्जाजनक है! हे जन्म! यह तो सचमुच बुढ़ापा उस व्यक्ति को भी स्पष्ट हो जाता है, हे ******(108), जो कहीं भी जन्मा हो!", और वे वहाँ से मुड़कर अपने महल में चले गए। राजा ने पूछा, "मेरा पुत्र इतनी जल्दी क्यों लौट आया?" उत्तर था, "महाराज! वह इसलिए लौटा क्योंकि उसने एक वृद्ध व्यक्ति को देखा।" लोगों ने यह भी कहा कि वृद्ध व्यक्ति को देखकर वह संसार का त्याग कर देगा। राजा ने कहा: "तुम सब मुझे क्यों बर्बाद कर रहे हो; मेरे बेटे के लिए जल्दी से नाचने वाली युवतियों को तैयार करो; वह राजसी वैभव का आनंद लेते हुए त्याग के बारे में नहीं सोचेगा", उसने पहरे के लिए पहरेदारों की संख्या बढ़ा दी और हर दिशा में आधे मील (योजन) की दूरी पर पहरेदार तैनात कर दिए।

2.26. एक दिन, जब बोधिसत्व पहले की तरह राजमहल की ओर जा रहे थे, तो उन्होंने देवताओं द्वारा विधिवत निर्मित एक बीमार व्यक्ति को देखा। उन्होंने पूछताछ की, हृदय में पश्चाताप हुआ, वापस लौट आए और विधिवत अपने महल में चले गए। राजा ने भी पूछताछ की, पहले बताए अनुसार व्यवस्थाएँ करवाईं, फिर से पहरेदारों की संख्या बढ़ा दी और चारों ओर तीन गाऊटा (गाऊता) की दूरी पर पहरा दिया। इसके बाद, एक दिन, बोधिसत्व पहले की तरह राजमहल की ओर जा रहे थे, तो उन्होंने देवताओं द्वारा विधिवत निर्मित एक मृत व्यक्ति को देखा, पहले की तरह ही पूछताछ की, हृदय में पश्चाताप हुआ, फिर लौट आए और विधिवत अपने महल में चले गए। राजा ने भी पूछताछ की, पहले बताए अनुसार तत्काल किए जाने वाले कार्य की व्यवस्था की, फिर से पहरेदारों की संख्या बढ़ा दी और चारों ओर एक मील (योजन) की दूरी पर पहरा दिया। बाद में, एक दिन, जब बोधिसत्व राजमहल की ओर जा रहे थे, तो उन्होंने पहले की तरह ही एक भिक्षु को उचित वस्त्रों में देखा, जो देवताओं द्वारा विधिवत निर्मित थे। उन्होंने सारथी से पूछा, "मेरे मित्र! यह कौन हैं?" क्योंकि बुद्धों के प्रकट होने जैसी कोई बात नहीं थी, इसलिए सारथी भिक्षु या भिक्षु के गुणों के बारे में कुछ नहीं जानता था; फिर भी, देवताओं के प्रभाव से उसने उत्तर दिया, "हे प्रभु! यह भिक्षु हैं" और भिक्षु के गुणों की प्रशंसा की। बोधिसत्व ने भिक्षु बनने की अपनी इच्छा को जागृत किया और उसी दिन राजमहल की ओर चल पड़े। बोधिसत्व ने कहा, "उन्होंने एक ही दिन में चारों शगुन देख लिए थे।"

उनके पुत्र राहुल का जन्म

2.27. उन्होंने दिन भर वहीं विश्राम किया, शुभ कमल सरोवर में स्नान किया, और सूर्यास्त के समय शुभ पत्थर की शिला पर विराजमान हुए, क्योंकि वे सजने-संवरने की इच्छा रखते थे। तब उनके सेवक विभिन्न रंगों के वस्त्र, आभूषण, मालाएँ, इत्र और श्रृंगार सामग्री लेकर आए और उनके चारों ओर खड़े हो गए। उसी क्षण, सक्का का (बैठने का) आसन गर्म हो गया। उस दिव्य सम्राट ने मन ही मन सोचा, "अत्यंत कौन चाहता है कि मैं इस स्थान से चला जाऊँ?", और जब उन्हें बोधिसत्व की सजने-संवरने की इच्छा का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने दिव्य वास्तुकार विस्सकम्मा से कहा, "हे प्रिय विस्सकम्मा! युवा राजकुमार सिद्धार्थ आज मध्यरात्रि को महान संन्यास लेंगे; यह उनका अंतिम श्रृंगार है; आप राजमहल में जाइए और उस महान पुरुष को दिव्य आभूषणों से सजाइए।" उन्होंने "बहुत अच्छा" कहते हुए उत्तर दिया और उसी क्षण दिव्य शक्ति के बल पर बोधिसत्व के पास पहुँचे, स्वयं को उनके नाई के समान रूप में प्रस्तुत किया और बोधिसत्व के सिर को दिव्य वस्त्र से ढक दिया। बोधिसत्व ने उनके हाथ के स्पर्श से ही जान लिया, "यह मनुष्य नहीं, बल्कि युवा देवता हैं।" जैसे ही उनका सिर वस्त्र से ढका गया, उनके जूड़े में रत्न-जड़ित गुणों वाले हजार टुकड़े उठ खड़े हुए। जब उनका सिर दोबारा लपेटा गया, तो दूसरे हजार टुकड़े उठ खड़े हुए। इस प्रकार, दस बार सिर लपेटने पर दस हजार टुकड़े उठ खड़े हुए। इस पर विचार इस प्रकार किया जाना चाहिए: "उनका सिर छोटा है; इतने सारे वस्त्र हैं; फिर भी वे उनके जूड़े में कैसे उठ खड़े होते हैं?" उन सभी वस्त्रों में सबसे बड़ा वस्त्र आंवले के फूल के आकार का था। बाकी सभी छोटे सुगंधित नारंगी रंग के अकादंबका फूलों के आकार के थे। बोधिसत्व का सिर एक 'कुय्या' फूल बन गया, जो रथ के सोने के जाल जैसा दिखता था? (किंचकगवच्छिता)।

2.28. फिर, जब वे अच्छी तरह से सज-धज कर सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हो गए, तो वे उत्तम रथ पर सवार हुए, जो सभी प्रकार के अलंकरणों से सुशोभित था। उस समय सभी संगीतज्ञ अपनी-अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे थे, और ब्राह्मण भी "जयानंद" से शुरू होने वाले मंत्रों का जाप करते हुए, प्रशंसा और आशीर्वाद के नारों के साथ, कानों को सुहाने विभिन्न प्रकार के शुभ शब्दों का उच्चारण करते हुए एकत्रित हुए थे। उसी समय, अपनी बहू के पुत्र के जन्म की खबर सुनकर, महान राजा सुद्धोदन ने संदेश भेजा: "आप सभी को यह खबर अवश्य सुना देनी चाहिए ताकि मेरा पुत्र प्रसन्न और आनंदित हो जाए।" बोधिसत्व ने यह सुनकर कहा: "राहु का जन्म हुआ है; बंधन उत्पन्न हो गया है।" राजा ने अपने पुत्र की टिप्पणी के बारे में पूछा और यह सुनकर आदेश दिया: "अब से मेरे पोते को राजकुमार राहुल के नाम से जाना जाएगा।"

2.29. बोधिसत्व भी उत्कृष्ट रथ पर सवार होकर, अपने विशाल दल, अत्यंत प्रसन्न हृदय और मनमोहक सौंदर्य के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय, किसागोतमी नाम की एक युवती, जो अपने आलीशान महल के शिखर पर गई हुई थी, नगर की परिक्रमा कर रहे बोधिसत्व के सुंदर शरीर को देखकर उत्साह से भर उठी और उसने आनंदपूर्वक यह कहा:-

"निश्चित रूप से, वह माँ बहुत खुश होगी;"
वह पिता निश्चित रूप से खुश है।
वह महिला निश्चित रूप से खुश है।
इस तरह का पति किसका है?

2.30. यह सुनकर बोधिसत्व ने मन में यह विचार किया: "इस महिला ने ऐसा कहा: 'ऐसे व्यक्तित्व को देखकर माता का हृदय शांत हो जाता है; पिता का हृदय शीतल हो जाता है और पत्नी का हृदय प्रसन्न हो जाता है।' वास्तव में, जब क्या बुझ जाता है, तब हृदय शीतल कहलाता है?" तब जब उनका मन विकारों (किलेसा) से मुक्त हुआ, तो उन्हें यह विचार आया: "जब काम (राग) की अग्नि बुझ जाती है, तब हृदय शीतल कहलाता है; जब क्रोध (दोष) की अग्नि बुझ जाती है, तब हृदय शांत कहलाता है; जब मोह (मोह) की अग्नि बुझ जाती है, तब हृदय प्रसन्न कहलाता है; जब अहंकार, गलत विचारों आदि जैसे सभी विकारों (किलेसा) की ज्वाला बुझ जाती है, तब हृदय शीतल और प्रसन्न कहलाता है।" मन ही मन कहते हुए, “इस महिला ने मुझे अपनी शुभ सूचना सुनने दी; मैं वास्तव में निर्वाण की खोज में निकला हूँ; आज ही मेरे लिए गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यास लेना और निर्वाण की प्राप्ति करना उचित है; यही मेरी ओर से इस महिला को भेंट है।” उन्होंने अपने गले से एक लाख मूल्य का मोतियों का हार उतारकर किसागोतमी को भेज दिया। वह मन ही मन प्रसन्न हुई और बोली, “राजकुमार सिद्धार्थ मुझसे प्रेम करते हुए यह उपहार लाए हैं।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2 सी सांसारिक जीवन का त्याग

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध
1.11.2सी सांसारिक जीवन का त्याग करके संन्यासी बनना
1.1.1पृष्ठभूमि: वह मानव शरीर की कुरूपता की सच्चाई देखता है
1.1.2राजकुमार सांसारिक जीवन त्याग देता है
1.1.3वह अपने बाल और दाढ़ी काटता है
1.1.4मगध के राजा बिंबिसार उससे वचन लेते हैं
1.1.5पहले शिक्षक अलारकलम और फिर दूसरे शिक्षक उद्दक रामपुत्ता
1.1.6वह अत्यधिक तपस्या और संयम का पालन शुरू करता है।
1.1.7उन्हें उनके साथी संन्यासियों ने त्याग दिया

अपदाना भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2सी सांसारिक जीवन का त्याग करके संन्यासी बनना

पृष्ठभूमि: वह मानव शरीर की कुरूपता की सच्चाई देखता है

2.31. बोधिसत्व ******(पृष्ठ 112) अत्यंत वैभव और सौंदर्य से परिपूर्ण अपने आलीशान महल में गए और अपने शानदार पलंग पर लेट गए। वहीं, सभी प्रकार के अलंकरणों से सुसज्जित, नृत्य और गायन की कला में प्रशिक्षित और दिव्य कन्याओं के समान सुगठित शारीरिक रूप और सौंदर्य प्राप्त कर चुकी नर्तकियाँ सभी प्रकार के वाद्ययंत्र लेकर आईं, बोधिसत्व के चारों ओर उचित रूप से बैठ गईं और उन्हें प्रसन्न करने और उनका मनोरंजन करने के लिए नृत्य, गायन और संगीत वादन का प्रदर्शन किया। बोधिसत्व को नृत्य आदि में कोई आनंद नहीं था, क्योंकि उनका मन विकृति (किलेसा) से विरक्त था, इसलिए वे बहुत जल्द सो गए। वे स्त्रियाँ भी लेट गईं और बोलीं, "जिनके लिए हम नृत्य आदि करते हैं, वे सो गए हैं; अब हमें क्यों मेहनत करनी चाहिए?" और उन्होंने अपने हाथों से वाद्ययंत्रों को इधर-उधर बिखेर दिया। सुगंधित तेल के दीपक जल रहे थे। बोधिसत्व जागे, अपने पलंग पर पालथी मारकर बैठ गए और उन स्त्रियों को देखा जो अपने वाद्ययंत्रों को बिखेर कर सो रही थीं - कुछ के मुंह से लार बह रही थी जिससे उनके शरीर गंदे हो गए थे, कुछ दांत पीस रही थीं, कुछ खर्राटे ले रही थीं, कुछ बड़बड़ा रही थीं और बातें कर रही थीं, कुछ के मुंह खुले थे, कुछ के कपड़े उतर गए थे जिससे उनके गुप्तांग दिख रहे थे। उन स्त्रियों की इस कुरूप स्थिति को देखकर बोधिसत्व का मन कामुक सुखों से और भी विरक्त हो गया। उनके महल का वह सुशोभित विशाल कक्ष, जो देवों के राजा सक्का के महल जैसा दिखता था, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह कच्चे मांस का कब्रिस्तान हो, जहाँ तरह-तरह के शव पड़े हों। उनके तीनों आलीशान महल जलते हुए घर जैसे दिखने लगे। उसने यह चेतावनी जारी की: "वास्तव में खतरनाक, हाय! वास्तव में कष्टदायक, हाय! उसका मन अत्यधिक त्याग की ओर झुका हुआ था।"

राजकुमार सांसारिक जीवन त्याग देता है

2.32. बोधिसत्व ने मन ही मन कहा, "अभी भी मेरे लिए महान त्याग करना उचित है।" वे अपने पलंग से उठे, द्वार के पास गए और पूछा, "यहाँ कौन है?" चन्ना, जो दहलीज पर सिर रखकर लेटा हुआ था, ने उत्तर दिया, "हे प्रभु! मैं चन्ना हूँ।" बोधिसत्व ने कहा, "मैं अब महान त्याग करने का इच्छुक हूँ, मेरे लिए एक घोड़ा तैयार कीजिए।" उसने उत्तर दिया, "ठीक है, हे प्रभु!" और घोड़े के सामान के साथ अश्वशाला की ओर गया। वहाँ उसने कान्थक को मन ही मन कहते देखा, "अब तो मुझे इसी घोड़े पर काठी कसनी चाहिए।" जैसे ही घोड़े पर काठी कसी गई, घोड़े को समझ आ गया, "यह काठी बहुत कसी हुई है। यह वैसी नहीं है जैसी अन्य दिनों में बगीचे आदि में

खेल-कूद के समय कसी जाती थी; अवश्य ही मेरे स्वामी अब महान त्याग करने के इच्छुक हैं।" परिणामस्वरूप, घोड़ा बहुत प्रसन्न हुआ और ज़ोर से हँसने लगा। उसकी हिनहिनाहट की आवाज़ पूरे शहर में फैल सकती थी। लेकिन देवताओं ने उस आवाज़ को दबा दिया और किसी को भी उसे सुनने नहीं दिया।

2.33. बोधिसत्व ने चन्ना को विदा करने के तुरंत बाद, अपने पुत्र को देखने का मन बनाया और पालथी मारकर बैठे हुए अपनी मुद्रा से उठकर राहुल की माता के आवास पर गए और उनके कमरे का दरवाजा खोला। उस समय कमरे में एक सुगंधित तेल का दीपक जल रहा था और प्रकाश दे रहा था। राहुल की माता अपने पलंग पर सो रही थीं, जहाँ चमेली और सुमनमल्लिका के फूल आदि एक अंबना (या अम्मना) मात्रा में बिछे हुए थे, और उन्होंने अपना हाथ अपने शिशु पुत्र के सिर पर रखा हुआ था। बोधिसत्व ने द्वार की दहलीज पर पैर रखा, खड़े-खड़े ही एक नजर डाली और मन ही मन कहा, "यदि मैं महारानी का हाथ हटाकर अपने पुत्र को पकड़ लूँ, तो महारानी जाग जाएँगी; इस प्रकार मेरे जाने में खतरा होगा; केवल बुद्ध बनने के बाद ही मैं आकर अपने पुत्र को देखूँगा।" इसके बाद वे उस आलीशान महल से नीचे उतर गए। हालाँकि, जातक टीका में जो कहा गया है, अर्थात्: "उस समय बालक-राजकुमार राहुल अपने जन्म के सातवें दिन पर थे;" ऐसा कथन अन्य टीकाओं में नहीं मिलता। इसलिए केवल इसी को स्वीकार किया जाना चाहिए।

2.34. इस प्रकार, बोधिसत्व अपने महल के ऊपरी तल से नीचे उतरे, घोड़े के पास गए और बोले: "मेरे प्रिय कांठक! मुझे अब रात के पार न जाने दो, मैं तुम पर निर्भर रहकर बुद्ध बनूँगा और मनुष्य जगत के साथ-साथ देव जगत को भी अमर शांति की ओर ले जाऊँगा।" इसके बाद वे उछलकर कांठक की पीठ पर चढ़ गए। कांठक घोड़ा गर्दन से अठारह हाथ लंबा था; उसकी लंबाई के अनुपात में उसकी चौड़ाई थी; वह बलवान और तेज था, उसका रंग पूरी तरह सफेद था, मानो एक अच्छी तरह से धुले और पॉलिश किए हुए शंख जैसा। यदि वह हिनहिनाता या खुरों की आवाज करता, तो शोर पूरे शहर में फैल जाता; इसलिए, देवताओं ने अपनी दिव्य शक्ति से उसकी हिनहिनाहट को इतना दबा दिया कि कोई उसे सुन न सके और हर बार जब वह कदम रखता, तो उसके सभी कदम उनके हाथों की हथेलियों पर पड़ते। बोधिसत्व पहुँच गए। आधी रात को विशाल द्वार के पास, केंद्र में स्थित उत्कृष्ट घोड़े की पीठ पर सवार होकर, चन्ना घोड़े की पूंछ पकड़े हुए था। उस समय, राजा ने मन ही मन सोचा, "मेरा पुत्र किसी भी स्थिति में नगर द्वार खोलकर बाहर नहीं जा पाएगा", और इस प्रकार व्यवस्था की कि विशाल नगर द्वार के दोनों पल्ले केवल एक हजार पुरुषों द्वारा ही खोले जा सकें। हालांकि, बोधिसत्व में एक हजार करोड़ हाथियों के बराबर शक्ति थी, जैसा कि हाथियों की संख्या से बल और सामर्थ्य की गणना की जाती है। पुरुषों की संख्या के अनुसार, उनमें दस हजार करोड़ पुरुषों के बराबर शक्ति थी। बोधिसत्व ने इस प्रकार सोचा, "यदि द्वार नहीं खुलेगा, तो मैं अठारह हाथ ऊँची नगर की दीवार को फांदकर आगे बढ़ जाऊँगा, अपने सामान से घोड़े (कंठक) को दबाते हुए, जबकि मैं अभी भी उसकी पीठ पर बैठा हूँ, और चन्ना भी उसकी पूंछ पकड़े हुए है।" "यदि द्वार बंद ही रहे, तो मैं दीवार फांदकर आगे बढ़ जाऊँगा, अपने स्वामी राजकुमार को अपने कंधे पर बिठाकर, अपने दाहिने हाथ से घोड़े कांठक को पेट से पकड़कर, उसे अपनी कमर के पास रखकर। घोड़े कांठक ने भी यही सोचा, "यदि द्वार न खुले, तो मैं दीवार फांदकर आगे बढ़ जाऊँगा, अपने स्वामी को अपनी पीठ पर उठाकर, जबकि वे स्वयं को कांठक के साथ बैठाए रखेंगे, और कांठक मेरी पूंछ पकड़कर खड़ा रहेगा।" यदि द्वार बंद ही रहता, तो तीनों में से कोई न कोई अपनी योजना के अनुसार कार्य पूरा कर लेता। परन्तु उस दिन विराजमान दिव्य सत्ता ने द्वार खोल दिया।

2.35 उसी क्षण, दुष्ट मारा ने मन ही मन कहा, 'मैं बोधिसत्व को वापस भेज दूँगा', और आकाश में खड़े होकर बोला, "हे मेरे मित्र, त्याग मत करो! आज से सातवें दिन तुम्हें चक्र रत्न प्रकट होगा। तुम दो हजार छोटे द्वीपों से घिरे चार बड़े द्वीपों पर शासन करोगे, इसलिए वापस लौट आओ, मेरे मित्र!" जब बोधिसत्व ने पूछा कि वह कौन है, तो मारा ने उत्तर दिया कि वह वासवत्ती है। तब बोधिसत्व ने कहा, "हे मारा! मैं जानता हूँ कि मुझे चक्र रत्न प्रकट होगा; मैं प्रभुत्व की इच्छा नहीं रखता; मैं दस हजार विश्व तत्वों में गूंजने वाला बुद्ध बनूँगा।" मारा बोधिसत्व का पीछा करते हुए, परछाई की तरह उनके पीछे-पीछे चल रहा था, अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था, और बोला, "अब से, जब भी तुम इंद्रिय सुखों, घृणा या अत्याचार के विचारों में लीन होगे, मुझे पता चल जाएगा।"

2.36. बोधिसत्व ने अपने हाथों में आ चुके विश्वराज के प्रभुत्व को अनादरपूर्वक त्यागकर, थूक की तरह, उच्च सम्मान के साथ नगर से प्रस्थान किया। आषाढ़ माह की पूर्णिमा की रात को, जब उत्तरासाल नक्षत्र चल रहा था, वे नगर से निकले और अपने नगर को पुनः देखने की इच्छा हुई। ठीक उसी क्षण जब उनके मन में ऐसी इच्छा जागी, तो विशाल पृथ्वी कुम्हार के चाक की तरह घूम गई, मानो कह रही हो: "हे महानुभाव! आपको स्वयं पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं है।" बोधिसत्व नगर की ओर मुख करके खड़े हुए, नगर

को देखा, उस भूमि पर कंठक के वापस लौटने की स्मृति में एक मंदिर स्थापित करने का स्थान दिखाया, कंठक को उस मार्ग की ओर अग्रसर किया जिस पर उसे जाना चाहिए और उच्च सम्मान, अनुग्रह और सुंदरता के साथ आगे बढ़े। ऐसा कहा जाता है कि उस समय दिव्य प्राणियों ने उनके सामने साठ हजार मशालें धारण की हुई थीं - साठ पीछे से, साठ दाहिनी ओर से और साठ बाईं ओर से। इसके अतिरिक्त, ब्रह्मांड की परिधि (चक्कवाला) के चारों ओर अन्य दिव्य प्राणियों ने भी असंख्य मशालें धारण की हुई थीं। इनके बाद, अन्य देवता, नाग, गरुड़ (सुप्पण) आदि उनके पीछे-पीछे दिव्य सुगंध, माला, सुगंधित पाउडर और धूप से उनका सम्मान करते हुए चल रहे थे। आकाश निरंतर परिच्छत्तक और मंदारव के मूंगा फूलों से ऐसे भरा हुआ था जैसे भारी वर्षा ऋतु में घने बादल होते हैं। दिव्य गीतों का सामूहिक गायन हो रहा था। चारों ओर आठ वाद्ययंत्रों, साठ वाद्ययंत्रों और अड़सठ लाख वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ गूंज रही थीं। उनकी आवाज़ तूफ़ानी मौसम के भारी बारिश वाले बादलों से अशांत समुद्र के पानी जैसी और युगंधरा पर्वत की गोद में समुद्र की गर्जना जैसी प्रतीत हुई।

2.37. बोधिसत्व तीस योजन की दूरी तय करके, एक ही रात में तीन राज्यों को पार करते हुए, अनोमा नदी के तट पर पहुँचे। उनका सफर ऊपर वर्णित सुंदरता और भव्यता से भरा था। लेकिन ऐसा क्यों? क्या घोड़ा उस गंतव्य से आगे नहीं जा सकता था? ऐसा नहीं था कि वह नहीं जा सकता था। वास्तव में, घोड़ा अपने अक्ष पर स्थित एक पूरे ब्रह्मांड की परिक्रमा कर सकता था, मानो उसकी सीमा पर चल रहा हो, और सुबह के भोजन से पहले ही लौट आता, ताकि वह स्वयं द्वारा प्राप्त भोजन खा सके। लेकिन उस समय, आकाश में विराजमान देवताओं, नागों और गरुड़ पक्षियों आदि द्वारा भेजे गए सुगंधित फूलों की मालाओं के उलझे हुए जाल को काटने और जांघों तक पूरी तरह से ढके शरीर को उनसे अलग करने में बहुत समय लग रहा था। इसीलिए घोड़ा केवल तीस योजन की दूरी तय कर पाया। तब बोधिसत्व नदी के किनारे खड़े होकर चन्ना से इस प्रकार पूछा, “इस नदी का नाम क्या है?” उत्तर मिला, “हे महाराज, इसका नाम अनोमा है!” बोधिसत्व ने घोड़े को अपनी एड़ी से छूते हुए संकेत दिया, “हमारा त्याग भी सर्वोच्च (अनोमा) होगा।” तब घोड़ा उछलकर नदी के उस किनारे पर खड़ा हो गया जो आठ उसभा चौड़ा था।

वह अपने बाल और दाढ़ी काटता है

2.38. बोधिसत्व घोड़े की पीठ से उतरे, चांदी की पंखुड़ियों जैसी दिखने वाली रेत की सतह पर खड़े हुए और चन्ना को इस प्रकार संबोधित किया: "मेरे प्रिय मित्र चन्ना! तुम मेरे आभूषण और मेरे घोड़े कंठक को अपने साथ घर ले जाओ, मैं भिक्षु बनने जा रहा हूँ।" बोधिसत्व ने कहा, "तुम्हें भिक्षु बनने की अनुमति नहीं है, तुम घर जाओ," और उसे तीन बार मना किया, अपने आभूषण और घोड़े कंठक को उसे सौंप दिया और इस प्रकार सोचा: "मेरे ये बाल भिक्षु के लिए उपयुक्त नहीं हैं; किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बोधिसत्व के बाल काटना उचित नहीं है। इसके बाद, उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं स्वयं अपनी तलवार से अपने बाल काट लूँगा।" उन्होंने अपने दाहिने हाथ से तलवार पकड़ी, अपने बाएं हाथ से अपने बालों की चोटी और लट को पकड़ा और अपने बाल काट डाले। उनके बाल दो उंगलियों की लंबाई के छह हिस्सों में बंट गए, दाहिनी ओर से मुड़कर उनके सिर से चिपक गए। अपने पूरे जीवन में, उनके बालों की लंबाई इतनी ही रही। उनकी दाढ़ी भी उसी रूप और स्वरूप की थी। बाल और दाढ़ी मुंडवाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। बोधिसत्व ने अपनी लट और पगड़ी को पकड़कर आकाश में उछाल दिया और कहा, "यदि मैं सर्वज्ञ बुद्ध बन जाऊँ, तो ये आकाश में ही रहें; यदि नहीं, तो ये पृथ्वी पर गिर जाएँ।" वह लट इतनी ऊँचाई तक उठी।
एक लीग (योजन) के आकार का केश-गुच्छा आकाश में बना रहा। देवों के राजा सक्का ने अपनी दिव्य दृष्टि से उन्हें देखा, रत्नजड़ित एक लीग (योजन) के आकार के ताबूत में केश-गुच्छा प्राप्त किया और तावतिंस स्वर्ग में एक मंदिर स्थापित किया, जिसे चुलामणि मंदिर के नाम से जाना जाता है।

सुगंधित बालों के इस शीर्ष भाग को काटकर
बेहतरीन इत्र, शाक्य वंश के नायक ने इसे फेंक दिया।
आकाश में ऊपर। हजार आंखों वाला देवों का राजा
उसने इसे अपने सिर पर एक उत्कृष्ट रत्नजड़ित वस्त्र में स्वीकार किया।
ताबूत।

2.39. फिर, बोधिसत्व ने सोचा: "ये काशी वस्त्र मेरे भिक्षुत्व के साथ ठीक नहीं लगते।" तब, महान ब्रह्मा घटिकार, जो बुद्ध कस्सपा के समय उनके पुराने सहयोगी थे, दो बुद्धों (बुद्धंतर) के बीच के अंतराल में वृद्धावस्था प्राप्त न करने के कारण, और उनके मित्र होने के कारण, विचार किया: "आज, मेरे सहयोगी ने महान त्याग किया है; मैं उनके पास एक भिक्षु की आवश्यक वस्तुएँ लेकर जाऊँगा।"

"तीन वस्त्रों का एक सेट और एक भिक्षापात्र,"
एक रेज़र, सुई और एक बेल्ट, जो एक साथ
पानी छानने वाली छलनी के साथ, उन आठों की तरह बन जाओ
जो एक भिक्षु के लिए बिल्कुल उपयुक्त हैं।"

महान ब्रह्मा ने ये आठ आवश्यक वस्तुएँ लाकर उन्हें प्रदान कीं। बोधिसत्व ने अरहत के वस्त्र धारण किए, परम श्रेष्ठ भिक्षु का रूप धारण किया और चन्ना से कहा, "प्रिय चन्ना! मेरी ओर से, कृपया मेरे माता-पिता को मेरे अच्छे स्वास्थ्य के बारे में सूचित करें," और उन्हें विदा किया। चन्ना ने बोधिसत्व को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया। परन्तु घोड़ा कंठक, जैसे ही उसने चन्ना से परामर्श कर रहे बोधिसत्व के शब्द सुने, उसने सोचा, "अब मुझे अपने स्वामी को पुनः देखने का कोई अवसर नहीं मिलेगा," और अपने दुःख को सहन न कर पाने के कारण बोधिसत्व की दृष्टि से ओझल होते ही हृदय विदारक हो गया और तावतिंसा स्वर्गलोक में कंठक नामक एक युवा देवता के रूप में पुनर्जन्म लिया। सबसे पहले तो चन्ना को ही एक ही दुःख था। हालांकि, कांठका की मृत्यु के कारण उन्हें दूसरा दुख हुआ और वे रोते-बिलखते अपने गृह नगर लौट गए।

मगध के राजा बिंबिसार उससे वचन लेते हैं
अब भिक्षु बन चुके बोधिसत् ने उसी क्षेत्र में स्थित औनपिया नामक आम के बाग में सात दिन त्याग का आनंद लिया। फिर वे पैदल ही एक दिन में तीस मील (योजन) की दूरी तय करके राजगृह में प्रवेश कर गए। नगर में प्रवेश करने के बाद वे एक के बाद एक घरों की कतार में भिक्षा मांगने लगे। बोधिसत् के सुंदर रूप को देखकर पूरे नगर में हलचल मच गई, ठीक वैसे ही जैसे धनपालक के राजगृह में प्रवेश करने पर और असुरों के देवताओं के नगर में प्रवेश करने पर हुई थी। राजपत्रकार राजा के पास गए और उन्हें सूचना दी: "महाराज! ऐसा व्यक्ति *******(पृष्ठ 120) शहर में भिक्षा मांगने के लिए घूम रहा है; हमें नहीं पता कि यह व्यक्ति देवता है, मनुष्य है, नाग है, गरुड़ है या कुछ और है।" राजा ने अपने महल की छत पर खड़े उस महान व्यक्ति को देखा, वे आश्चर्यचकित और विस्मित हो गए और अपने सैनिकों को आदेश दिया: "हे मेरे सैनिकों! तुम सब जाओ और जाँच करो; यदि वह व्यक्ति अमानव है, तो वह शहर से बाहर जाकर गायब हो जाएगा; यदि वह देवता है, तो वह आकाश में चला जाएगा; यदि वह नाग है, तो वह पृथ्वी में समा जाएगा; यदि वह मनुष्य है, तो वह भीख मांगकर प्राप्त भोजन का आनंद लेगा।"

2.41. महान पुरुष ने मिश्रित अनाज इकट्ठा किया और यह जानकर कि "इतना मेरे जीवनयापन के लिए पर्याप्त है", वे उसी द्वार से नगर से बाहर निकल गए जिससे वे प्रवेश किए थे। वे पाण्डव पर्वत की छाया में पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए और भोजन करने लगे। तभी वे बीमार पड़ गए, उनकी आंतें मानो मुड़ गईं और मुँह से बाहर निकलने के संकेत देने लगीं। इसके बाद, यद्यपि वे उस घृणित भिक्षाभोजन से व्याकुल थे क्योंकि उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी ऐसा भोजन नहीं देखा था, फिर भी उन्होंने स्वयं को इस प्रकार समझाया: "हे सिद्धार्थ! यद्यपि आप ऐसे परिवार में जन्मे हैं जहाँ भोजन और पेय आसानी से उपलब्ध हैं, और जहाँ तीन साल पुराने सुगंधित जौ (साली) का भोजन सभी प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों के साथ खाया जाता है, फिर भी फटे-पुराने वस्त्र पहने एक संन्यासी को देखकर आपने मन में सोचा, 'मैं भी कब ऐसा होऊंगा, भिक्षा मांगने जाऊंगा और भोजन करूंगा? मुझे वह अवसर कब मिलेगा?' और आपने संन्यास ले लिया; अब आप यह (उल्टी) क्यों कर रहे हैं?" इस प्रकार स्वयं को समझाने के बाद, वे सामान्य हो गए और उन्होंने अपने भोजन का भरपूर आनंद लिया।

2.42. उस घटना को देखकर राजपत्रकार वहाँ गए और राजा को सूचना दी। दूतों की सूचना सुनकर राजा शीघ्र ही नगर छोड़कर बोधिसत्व के समक्ष उपस्थित हुए, उनके आशय से प्रसन्न हुए और अपना समस्त प्रभुत्व बोधिसत्व को समर्पित कर दिया। बोधिसत्व ने कहा, “हे महाराज! मुझे भौतिक सुख-सुविधाओं और इंद्रिय सुखों की कोई इच्छा नहीं है; मैंने परम और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए वैराग्य का मार्ग अपनाया है।” राजा ने अनेक तरीकों से बार-बार विनती की, फिर भी वे बोधिसत्व को वश में नहीं कर सके, अतः उन्होंने

उनसे यह वचन लिया: “निश्चिततः आप बुद्ध बनेंगे; बुद्ध बनने के बाद सर्वप्रथम मेरे राज्य में आना।” यहाँ इसका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। हालांकि, विस्तार से कहें तो, इस मामले को पब्बज्जासुत्त को देखकर समझा जा सकता है, जो इस प्रकार शुरू होता है: "मैं आध्यात्मिक दृष्टि (चक्खुमा) के स्वामी द्वारा किए गए त्याग और भिक्षु बनने की घोषणा करूंगा", साथ ही इसकी व्याख्या भी।

पहले शिक्षक अलारकलम और फिर दूसरे शिक्षक उद्दक रामपुत्ता

2.43. बोधिसत्व ने राजा को वचन देकर स्वयं विचरण किया, आलारा कालामा और राम के पुत्र उदक के पास पहुँचे, प्रभावी ध्यान (समापत्ति) की क्रमिक ऊँचाइयों को प्राप्त किया, परन्तु उन्होंने समापत्ति की उस उपलब्धि को यह कहते हुए नहीं रखा: "यह बुद्धत्व का मार्ग नहीं है," बल्कि महान प्रयास (महापधान) करने की इच्छा से, अपनी शक्ति और ऊर्जा को देवताओं के निवास सहित संसार को प्रदर्शित करने के लिए, उरुवेला गए और स्वयं से यह कहते हुए: "यह भूमि वास्तव में रमणीय है," वहाँ भी निवास किया और अपना महान प्रयास (महापधान) किया।

वह अत्यधिक तपस्या और संयम का पालन शुरू करता है।

कोण्डञ्ञ के नेतृत्व में पंचवग्गी समूह के वे सदस्य, जो भिक्षा मांगने के लिए गांवों, जिलों और राजनगरों में भटक रहे थे, बोधिसत्व के पास पहुंचे। तब वे बोधिसत्व के निकट पड़ोसी बन गए और उनकी सेवा में लग गए, जैसे कि मठ परिसर की सफाई करना आदि। बोधिसत्व छह वर्षों तक महापधान करते रहे और मन ही मन कहते रहे, "वे अब बुद्ध बनेंगे! वे अभी बुद्ध बनेंगे!" वास्तव में, बोधिसत्व ने अपना जीवन केवल एक तिल या चावल के दाने पर व्यतीत किया और मन ही मन कहते रहे, "मैं कठिन कर्म (दुक्कार) को उसकी चरम सीमा तक करूंगा।" उन्होंने सभी प्रकार के पोषण का त्याग कर दिया। देवताओं ने उनके शरीर के बालों के छिद्रों के माध्यम से दिव्य पोषण भेजकर अपना योगदान दिया।

2.44. फिर पोषण की कमी और अत्यधिक पीड़ादायक स्थिति के कारण उनके शरीर का सुनहरा रंग भी काला पड़ गया। एक महान व्यक्तित्व के सभी बत्तीस प्रमुख लक्षण मिट गए। एक बार जब वे श्वास ध्यान में लीन थे, तो तीव्र पीड़ा से व्याकुल होकर वे बेहोश हो गए और मठ के अंतिम छोर पर गिर पड़े। तब कुछ देवताओं ने उनके बारे में कहा, "भिक्षु गौतम मर गए हैं।" अन्य ने टिप्पणी की, "ये तो केवल अरहतत्व में ही हैं।" उस समय, जिन देवताओं को लगा कि वे मर गए हैं, उन्होंने जाकर महान राजा सुद्धोदन को सूचित किया, "आपका पुत्र मर गया है।" राजा ने पूछा, "क्या मेरे पुत्र की मृत्यु बुद्ध बनने के बाद हुई या बुद्ध बने बिना?" उनका उत्तर था, "वे बुद्ध बनने वाले नहीं थे; वे उस स्थान पर गिर पड़े जहाँ वे गहन परिश्रम (पधाना) कर रहे थे।" यह सुनकर राजा ने कहा, "मुझे तुम्हारी कहानी पर विश्वास नहीं है; मेरे पुत्र की मृत्यु बोधि प्राप्त किए बिना और बुद्ध बने बिना संभव नहीं है।" ऐसा कहकर उन्होंने इस खबर को नकार दिया। लेकिन राजा ने इस खबर पर विश्वास क्यों नहीं किया? क्योंकि उन्होंने कालदेवल नामक ऋषि को प्रणाम करने के दिन और युजेनिया वृक्ष के चरणों में हुए चमत्कारों को स्वयं देखा था।

उन्हें उनके साथी संन्यासियों ने त्याग दिया

2.45 फिर जब बोधिसत्व होश में आने के बाद उठे, तो उन्हीं देवताओं ने जाकर राजा सुद्धोदन को सूचित किया: “महाराज! आपका पुत्र रोगमुक्त है।” राजा ने उनसे कहा: “मैं जानता हूँ कि मेरा पुत्र नहीं मरा।” जब महापुरुष लगातार छह वर्षों तक कठिन कर्म करते रहे, तब आकाश में एक ऐसी घटना घटी जो गांठदार वस्तुएँ बनाते समय की तरह थी। मन ही मन यह कहते हुए कि “यह कठिन कर्म बुद्धत्व की ओर ले जाने वाला मार्ग नहीं है,” बोधिसत्व छोटे-बड़े गाँवों में भिक्षा मांगने गए और पर्याप्त भोजन लेकर लौटे। इसके बाद, उनके महापुरुषत्व के बत्तीस लक्षण प्रकट हुए। उनका शरीर भी स्वर्णिम रंग का हो गया। पांच भिक्षुओं के समूह ने यह टिप्पणी करते हुए कहा, “छह वर्षों तक कठिन कर्म करने के बावजूद भी यह व्यक्ति सर्वज्ञता को ठीक से प्राप्त नहीं कर सका; अब जब यह छोटे-बड़े गांवों में भिक्षा मांगने के लिए भटक रहा है, तो क्या यह सर्वज्ञता प्राप्त कर पाएगा? यह व्यक्ति अब भरपूर जीवन जी रहा है और इसने कठिन परिश्रम का त्याग कर दिया है; हमारे लिए तो यह व्यक्ति ओस की बूंद के समान है, जैसे सिर धोने की इच्छा रखने वाले के लिए; इससे हमें क्या लाभ है?” इस समूह ने उस महान व्यक्ति को त्याग दिया, अपने-अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए, अठारह मील (योजना) की लंबी यात्रा पर निकल पड़े और इसिपताना (बनारस के निकट) में प्रवेश किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2डी ज्ञानोदय

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2डी ज्ञानोदय, मारा (शैतान स्वामी) पराजित

2.46. उस समय, उरुवेला के बड़े सेनानी गाँव में सेनानी नाम के एक गृहस्थ के घर में सुजाता नाम की एक युवती का जन्म हुआ। जब वह वयस्क हुई, तो उसने निग्रोध बरगद के वृक्ष के सामने यह मनोकामना की, "यदि मैं अपने समान सामाजिक प्रतिष्ठा वाले किसी परिवार में जाऊं और पहली ही गर्भावस्था में पुत्र प्राप्त कर लूं, तो मैं अगले वर्ष एक लाख (कहापना) बलि चढ़ाऊंगी।" उसकी यह मनोकामना पूरी हुई। विशाखा माह की पूर्णिमा के दिन, जब परमेश्वर की कृपा से छह वर्ष के कठिन कर्म पूरे हो चुके थे, तब उस स्त्री ने अपने हजार दूध देने वाली गायों को गन्ने और मुलेठी के वन में चरने के लिए छोड़ दिया। इससे पहले उसने अपनी पाँच सौ गायों को दूध पिलाया, फिर ढाई सौ गायों को दूध पिलाया। इस प्रकार उसने दूध से बनी मिठाई (खीरापरिवत्तना) तैयार की, जिसका उद्देश्य दूध को गाढ़ा, मीठा और स्वादिष्ट बनाना था, जब तक कि उसकी आठ गायें सोलह गायों का दूध न पी लें। विशाखा माह की पूर्णिमा के दिन, उस स्त्री ने मन ही मन कहा, "मैं सुबह जल्दी ही बलि चढ़ाऊँगी", और रात ढलने के बाद जब वह पल भर के लिए पल रही थी, तब उसने अपने आठों गायों का दूध दुहा। दूध पीने वाले बछड़े अपनी दूध देने वाली गायों के थनों के पास नहीं आए। जैसे ही थनों के नीचे नए बर्तन रखे गए, दूध की धाराएँ स्वतः ही बहने लगीं। ऐसा चमत्कार देखकर सुजाता ने अपने हाथों से दूध ग्रहण किया, उसे एक नए बर्तन में इकट्ठा किया, अपने हाथों से आग जलाई और दूध को उबालना शुरू कर दिया।

2.47. जब वह दूध-चावल पका रही थी, तब बड़े-बड़े बुलबुले उठे और परिक्रमा करने लगे। एक बूँद भी बाहर नहीं गिरी। चूल्हे से जरा सा भी धुआँ नहीं निकला। उस समय जगत के चार दिव्य रक्षक आए और चूल्हे की रखवाली करने लगे। महान ब्रह्मा ने उस पर छत्र धारण किया। सक्का अपने साथ मशाल लाकर आग प्रज्वलित कर रहे थे। चारों महान द्वीपों और आसपास के दो हजार छोटे द्वीपों के देवता अपने साथ मनुष्यों और देवताओं का लाभकारी पोषक तत्व (ओझा) अपनी दिव्य शक्ति से लाए, जैसे मधुमक्खी के छत्ते से शहद निचोड़कर निकाला जाता है, और उसे दूध-चावल पकाने के बर्तन में डाल दिया। अन्य अवसरों पर, देवताओं ने प्रत्येक निवाले में पोषक तत्व का योगदान दिया। परन्तु पूर्ण बुद्धत्व प्राप्ति के दिन और उनके महान परलोकवास के दिन, उन्होंने पोषक तत्व सीधे उबलते हुए बर्तन में डाल दिया। एक ही दिन में वहां इतने सारे अद्भुत चमत्कार होते देख सुजाता ने अपनी दासी पुन्णा से कहा, "प्यारी पुन्णा! आज हमारे देवता अत्यंत प्रसन्न हैं। मैंने पहले कभी इतने लंबे समय में ऐसा अद्भुत चमत्कार नहीं देखा। जल्दी जाओ और देवलोक में उपस्थित हो जाओ।" दासी ने अपनी बात मानते हुए कहा, "ठीक है, मेरी स्वामिनी," और जल्दी से वृक्ष के चरणों की ओर चल पड़ी।

लाइफ ऑफ बुद्धा 017
लाइफ ऑफ बुद्धा 018
बुद्ध का जीवन 019
बुद्ध का जीवन 020
बुद्ध का जीवन 021

2.48. उस रात बोधिसत्व ने पाँच महान स्वप्न देखे और उनका अध्ययन करते हुए उन्होंने निश्चय किया: "निःसंदेह, मैं आज बुद्ध बनूँगा।" उस रात के अंत में, स्नान करने के बाद, भिक्षाटन के समय की प्रतीक्षा करते हुए, वे उस वृक्ष के चरणों में आकर बैठ गए और अपनी किरणों से पूरे क्षेत्र को प्रकाशित कर दिया। तभी, दासी पुन्णा वहाँ पहुँची और उसने बोधिसत्व को वृक्ष के चरणों में पूर्व दिशा को प्रकाशित करते हुए देखा; उनके शरीर से निकलने वाली किरणों से पूरा वृक्ष स्वर्ण रंग का हो गया। ऐसा दृश्य देखकर उसके मन में यह विचार आया: "आज हमारे देवत्व वृक्ष से अवतरित हुए हैं और मुझे लगता है कि वे अपने हाथों से बलि का अर्पण ग्रहण करने के लिए बैठे हैं," और भावविभोर होकर वह शीघ्र ही वापस गई और अपनी स्वामिनी सुजाता को यह बात बताई।

बुद्ध का जीवन 022

2.49. सुजाता की बात सुनकर वह प्रसन्न हो उठी और अपनी दासी को पुत्री के योग्य सभी प्रकार के आभूषण भेंट करते हुए बोली, "आज से ही तुम मेरी सबसे बड़ी पुत्री का दर्जा ग्रहण कर लो।" यद्यपि बुद्धत्व प्राप्ति के दिन एक लाख मूल्य का स्वर्ण पात्र प्राप्त करना उचित था, इसलिए उसके मन में यह विचार आया कि वह अपना दूध-चावल स्वर्ण पात्र में अर्पित करे। उसने एक लाख मूल्य का स्वर्ण

पात्र मंगवाया और उसमें दूध-चावल डालने की इच्छा से उसने बर्तन को झुकाया। सारा दूध-चावल कमल के पत्ते से जल की तरह नीचे बहकर पात्र में गिर गया। केवल एक ही पात्र भर पाया। उसने उस कटोरे को दूसरे कटोरे से ढक दिया, उसे सफेद कपड़े से लपेट दिया, खुद को तरह-तरह के आभूषणों से सजाया, उस कटोरे को अपने सिर पर रखा, धूमधाम से निग्रोध बरगद के पेड़ की तलहटी में गई, बोधिसत्व के दर्शन किए, अत्यंत प्रसन्न हुई, उन्हें वृक्ष देवता मानकर, जहाँ से उसने उन्हें देखा था, वहाँ से झुकते-झुकते हुए कटोरा अपने सिर से नीचे उतारा, उसे खोला, सुगंधित फूलों से महकता हुआ जल सोने के पात्र में निकाला, और बोधिसत्व के पास जाकर खड़ी हो गई। महान ब्रह्मा घटिकार द्वारा दिया गया मिट्टी का कटोरा, जो इतने लंबे समय तक बोधिसत्व का साथ नहीं छोड़ा था, उसी क्षण दृष्टि से ओझल हो गया। मिट्टी का कटोरा न देखकर, बोधिसत्व ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया और जल ग्रहण किया। सुजाता ने दूध-चावल और सोने का कटोरा बोधिसत्व के हाथ में रख दिया। उस महान पुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उसने ध्यानपूर्वक समझा कि क्या करना आवश्यक है और प्रणाम करते हुए कहा, "हे प्रभु! मैं अपना सारा बलिदान आपको अर्पित करती हूँ; कृपया इसे स्वीकार करें और जो चाहें करें।" वह वहाँ से विदा हो गई, एक लाख (कहापन) मूल्य के सोने के कटोरे को एक सूखे पत्ते की तरह त्यागते हुए बोली, "जिस प्रकार मेरी इच्छा पूरी हुई है, उसी प्रकार आपकी भी पूरी हो।"

2.50. बोधिसत्व अपने स्थान से उठे, वृक्ष की परिक्रमा की, नेरंजारा नदी के तट पर गए, अपने साथ स्वर्ण का प्याला लेकर। वहाँ सुपतिष्टि नामक एक स्नानस्थल था, जहाँ लाखों बोधिसत्व स्नान करते थे, जिन्होंने बुद्ध बनने के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के दिन स्नान किया था। बोधिसत्व ने स्वर्ण का प्याला उस स्नानस्थल के तट पर रखा, सुस्थापित घाट से नीचे उतरे, स्नान किया, लाखों बुद्धों के अर्हत के प्रतीक माने जाने वाले वस्त्र को धारण किया, पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए, और दूध-चावल को एक पके ताड़ के फल के आकार के उनतालीस टुकड़ों में बाँटकर सारा मीठा अर्ध-तरल दूध-चावल खा लिया। बुद्ध बनने के बाद, जब वे बोधि वृक्ष की छत पर सात सप्ताह तक रहे, तब उस दूध-चावल ने उनतालीस दिनों तक उनका पोषण किया। इतने लंबे समय तक उन्होंने किसी अन्य प्रकार का भोजन नहीं लिया। न स्नान किया, न मुख धोया, न ही शरीर को शुद्ध किया। उन्होंने अपना समय ध्यान के आनंद और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग की सफलता की प्राप्ति के सुख में व्यतीत किया। दूध-चावल का भोजन करने के बाद, उन्होंने अपने हाथ में सोने का कटोरा लिया और कहा: "यदि मैं आज बुद्ध बनूँ, तो इस कटोरे को नदी के विपरीत दिशा में जाने दो; यदि मैं बुद्ध न बनूँ, तो इसे नदी के विपरीत दिशा में जाने दो।" उन्होंने कटोरे को नदी में फेंक दिया। वह कटोरा नदी की धारा से अलग होकर नदी के मध्य में गया, फिर नदी के मध्य में एक तेज टट्टू की तरह अस्सी हाथ की दूरी तक ऊपर की ओर गया, नदी के एक मोड़ पर डूब गया, नागराज काल के निवास स्थान पर पहुँचा, तीनों बुद्धों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कटोरे से टकराया और "किली, किली" जैसी चरमराहट भरी झनझनाहट की आवाज़ करते हुए उन तीनों के नीचे धंस गया। नागराज काल ने वह आवाज़ सुनकर मन ही मन कहा, "कल एक बुद्ध का जन्म हुआ था; "आज एक और बुद्ध का जन्म हुआ है," उन्होंने सैकड़ों शब्दों की प्रशंसा करते हुए कहा। कहा जाता है कि जब वे एक योजन और तीन गावूत के बराबर समय में पृथ्वी पर विराजमान हुए, तो उन्हें वह समय आज या कल जैसा लगा।

2.51. बोधिसत्व ने नदी के किनारे खिले हुए साल के वन में दिन बिताया और शाम को जब फूल अपनी डंठलों से गिरने लगे, तो वे देवताओं द्वारा सजे आठ उशब चौड़े मार्ग से सिंह के समान प्रज्वलित होकर बोधि वृक्ष की ओर चल पड़े। नाग, राक्षस और गरुड़ आदि ने उन्हें इत्र, फूल आदि भेंट करके उनका सम्मान किया। वहाँ दिव्य गायन हुआ। दस हजार जगत तत्व एक ही सुगंध, एक ही फूलों की माला और एक ही बधाई के रूप में प्रकट हुए। उसी समय, सोत्थिया नामक एक घास इकट्ठा करने वाला विपरीत दिशा से अपने द्वारा एकत्रित घास लेकर आ रहा था। उसने बोधिसत्व के इस स्वरूप को देखा और उन्हें आठ मुट्ठी घास भेंट की। बोधिसत्व ने घास की भेंट स्वीकार की, बोधि वृक्ष के चबूतरे पर चढ़े और उसके दक्षिण की ओर उत्तर की ओर मुख करके खड़े हो गए। उस क्षण, दक्षिणी ब्रह्मांड (चक्कवाल्ला) डूब गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह नीचे अविचि नरक में पहुँच रहा हो। उत्तरी ब्रह्मांड ऊपर उठ गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह ऊपर ब्रह्मा के सर्वोच्च लोक में पहुँच रहा हो। बोधिसत् ने कहा, "मुझे लगता है, यह स्थान बुद्धत्व (संबोधि) प्राप्त करने का स्थान नहीं है।" वे वृक्ष की परिक्रमा करते हुए पश्चिम दिशा की ओर गए और पूर्व की ओर मुख करके खड़े हो गए। इसके परिणामस्वरूप, पश्चिमी ब्रह्मांड धंस गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अविची नरक में पहुँच रहा हो। पूर्वी ब्रह्मांड ऊपर उठ गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह ब्रह्मा के सर्वोच्च लोक में पहुँच रहा हो। कहा जाता है कि जहाँ भी वे खड़े हुए, विशाल पृथ्वी एक बड़ी गाड़ी के पहिए की तरह ऊपर-नीचे होने लगी, जो परिधि के किनारे पर टिकी हो और उसके केंद्रक पर खड़ी हो। बोधिसत् ने कहा, "मुझे लगता है, यह स्थान बुद्धत्व (संबोधि) प्राप्त करने का स्थान नहीं है।" वे वृक्ष की परिक्रमा करते हुए उत्तर दिशा की ओर गए और दक्षिण की ओर मुख करके खड़े हो गए। इसके फलस्वरूप, उत्तरी ब्रह्मांड धंस गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अविची नरक में पहुँच रहा हो। दक्षिणी ब्रह्मांड ऊपर की ओर उठा और ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह ब्रह्मा के सर्वोच्च लोक तक पहुँच रहा हो। बोधिसत्व ने कहा, "मुझे

लगता है कि यह स्थान बुद्धत्व (संबोधि) प्राप्ति का स्थान नहीं हो सकता," और वृक्ष की परिक्रमा करते हुए पूर्व दिशा की ओर चले गए और पश्चिम की ओर मुख करके खड़े हो गए। लेकिन वृक्ष के पूर्व की ओर सभी बुद्धों के पद्मासन का स्थान था। वह स्थान न तो काँपा और न ही हिल रहा था। बोधिसत्व को यह जानकर आश्चर्य हुआ, "यह सभी बुद्धों का अपरिहार्य स्थिर स्थान है, जहाँ दुराचार (किलेसा) का पिंजरा नष्ट हुआ था," और उन्होंने घास की उन मुट्ठियों को उनके सिरों से पकड़कर हिलाया। वहीं, चौदह हाथ ऊँचा एक सिंहासन अस्तित्व में आया। वास्तव में, घास की वे मुट्ठियाँ इस प्रकार व्यवस्थित हो गईं कि वे एक उपयुक्त आसन बन गईं। घास किस प्रकार एक उपयुक्त आसन बनी, यह प्रश्न उठता है।किसी अच्छे विशेषज्ञ के लिए भी इसे अपने मन में कल्पना करना, इस पर कोई ग्रंथ लिखना या इसे लिखित रूप में दर्ज करना असंभव था और आज भी असंभव है। बोधिसत्व ने बोधि वृक्ष के तने को अपना आधार बनाया, पूर्व दिशा की ओर मुख किया और दृढ़ निश्चय करते हुए कहा:

"अपनी त्वचा और नसों को ही स्वेच्छा से रहने दो और

हड्डियाँ बनी रहें; मेरे शरीर में मांस और रक्त रहने दो

शरीर पूरी तरह से सूख जाए, बिना कोई निशान छोड़े।

निशान; मैं अपने इस क्रूस को नहीं तोड़ूंगा-

जब तक और जब तक पैरों की मुद्रा

मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है।

पूर्ण बुद्ध बनने के लिए।"

और हार न मानने की मुद्रा में अडिग होकर पालथी मारकर बैठ गया, सौ वज्रपात होने पर भी अविचलित ********(पृष्ठ 130)

बुद्ध का जीवन 023

2.52. उस समय, दुष्ट मारा ने मन ही मन कहा, "राजकुमार सिद्धार्थ मेरे प्रभाव से बाहर जाना चाहते हैं; अब मैं उन्हें अपनी शक्ति से बाहर नहीं जाने दूँगा।" वह मारा की सेना के पास गया, उन्हें इस मामले की सूचना दी, मारा का उद्घोष करवाया और अपनी सेना को साथ लेकर निकल पड़ा। मारा की सेना उसके आगे बारह योजन, उसके दाहिनी और बाईं ओर बारह योजन तक फैली हुई थी; उसकी पीठ पर उसकी सेना ब्रह्मांड की सीमा को समाहित करते हुए खड़ी थी; उसके ऊपर उसकी सेना नौ योजन ऊँची थी। उसकी भयानक सेना की गूँज हज़ार योजन दूर से सुनाई देने लगी, मानो पृथ्वी काँप रही हो। फिर, युवा देवता मारा ने डेढ़ सौ योजन ऊँचे गिरिमेखला नामक हाथी पर सवार होकर, अपने हाथों के रूप में एक हज़ार भुजाएँ बनाईं और उनमें विभिन्न शस्त्र धारण किए। शेष दल के लिए... मारा की सेना में भी कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं थे और न ही उनके पास एक ही हथियार थे। मारा की सेना के सभी सदस्य अलग-अलग रंग-रूप और चेहरे की विभिन्न किस्मों के थे और वे अलग-अलग प्रकार के हथियारों से लैस होकर बोधिसत्व पर भारी पड़े थे।

बुद्ध 16

2.53. दस हजार ब्रह्मांडों के देवता (चक्कवाल) महापुरुष की स्तुति कर रहे थे। देवों के राजा सक्का अपने उत्कृष्ट विजय शंख को बजा रहे थे। कहा जाता है कि उनका शंख बीस सौ हाथ जितना बड़ा था। एक बार जब उन्होंने अपनी श्वास से शंख बजाया, तो वह चार महीने तक लगातार बजता रहा, फिर शांत हो गया। नागराज महाकाल सैकड़ों शब्दों में बोधिसत्व की स्तुति कर रहे थे। महान ब्रह्मा सफेद छत्र धारण किए खड़े थे। लेकिन जब मारा की सेना बोधि वृक्ष के चबूतरे के पास पहुँची, तो उनमें से एक भी वहाँ नहीं टिक सका। वे सब

अपनी-अपनी दिशा में भाग गए। काल नामक नागराज भी पृथ्वी में समा गए, अपने पाँच सौ योजन विशाल पुष्पमय नाग महल में गए और अपने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढककर लेट गए। देवों के राजा सक्का ने भी अपने विजय शंख को पीठ पर लादकर चक्कवाल्ला पर्वत के किनारे पर खड़े हो गए। महान ब्रह्मा ने सफेद छत्र को उसके अंतिम छोर से पकड़ लिया और अपने ब्रह्मालोक में लौट गए। कोई भी देवता वहाँ ठहर नहीं सका। महान ब्रह्मा अकेले ही बैठे रहे।

बुद्ध 18

2.54. मारा ने अपने दल से कहा, “मेरे प्रिय साथियों! शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ के समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है। हम उनसे आमने-सामने युद्ध नहीं कर पाएंगे; हम उनकी पीठ पीछे से ही युद्ध करेंगे।” उस महान पुरुष ने अपने तीनों ओर देखा, पर कुछ भी दिखाई नहीं दिया क्योंकि सभी देवता भाग गए थे। फिर उत्तर दिशा की ओर देखकर उन्होंने मन ही मन कहा, “इतनी बड़ी सेना अकेले मुझ पर बल प्रयोग कर रही है; इस स्थान पर न मेरी माता है, न पिता, न भाई, न ही कोई अन्य रिश्तेदार; परन्तु ये दस सिद्धियाँ ही दीर्घकाल से मेरे पालनहारों के समान रही हैं; इसलिए मुझे केवल अपनी सिद्धियों को ही उच्चतम स्तर तक बल देना चाहिए, अपनी एकमात्र सिद्धियों के शस्त्र से इस बलवान सेना पर आक्रमण करना चाहिए और उन्हें कुचल देना चाहिए।” वे वहीं बैठकर अपनी सिद्धियों पर चिंतन करने लगे।

2.55. तब, युवा देवता मारा ने मन ही मन कहा, "मैं सिद्धार्थ को बवंडर (वातमंडलम) के द्वारा भगा दूँगा," और ऐसा ही बवंडर उत्पन्न किया। उसी क्षण, पूर्व दिशा से भयंकर हवाएँ चलीं, जो आधा योजन, एक योजन, दो योजन और तीन योजन ऊँची पहाड़ियों की चोटियों को गिरा दिया, वनों आदि को उलट दिया, और आसपास के बड़े-छोटे गाँवों को चूर-चूर कर दिया। यद्यपि वह प्रचंड हवा इतनी तबाही मचाने में सक्षम थी, बोधिसत्व के पुण्य बल के कारण वह हवा उन पर बिना किसी शक्ति के आ पड़ी और उनके वस्त्रों के किनारे को भी हिला नहीं सकी। इसके बाद, मारा ने मन ही मन कहा, "मैं उसे जल से डुबोकर मार डालूँगा," और भारी वर्षा उत्पन्न की। मारा की शक्ति से आकाश में और ऊपर उठते ही, सौ ढेर, हज़ार परतों आदि प्रकार के वर्षा-बादल उठे और मूसलाधार वर्षा हुई। वर्षा की तीव्रता के कारण पृथ्वी अत्यधिक अपरदित होकर जगह-जगह गड्ढे बन गए। प्रचंड वर्षा वन वृक्षों आदि के ऊपर से आई, परन्तु महापुरुष के वस्त्रों को ओस की एक बूंद तक भी गीला नहीं कर सकी। इसके बाद मारा ने चट्टानों की वर्षा (पासनवस्सम) की। धधकते और धुंआ छोड़ते विशाल पर्वतों और पहाड़ियों की चोटियाँ आकाश से आईं और बोधिसत्व के पास पहुँचते ही दिव्य मालाओं के कोमल गोलों में परिवर्तित हो गईं। बाद में, मारा ने आक्रमणों की वर्षा की। ज्वाला और धुंआ छोड़ते एकतरफा और दोनोंतरफा तलवारें, भाले, तेज धार वाले यंत्र आदि आकाश से आए, बोधिसत्व तक पहुँचे और दिव्य फूल बन गए। इसके बाद मारा ने अंगारों की वर्षा की। (अंगारवस्सम)। किंसुका रंग के अंगारे आकाश से आए, बोधिसत्व के चरणों में दिव्य फूल बनकर बिखर गए। बाद में, मारा ने गर्म राख की वर्षा की। अत्यंत गर्म, अग्नि-रंग की राख आकाश से आई, चंदन पाउडर बनकर बोधिसत्व के चरणों में गिरी। इसके बाद मारा ने रेत की वर्षा की (वालुकावस्सम)। धधकते और धुंआ छोड़ते अत्यंत महीन रेत के कण आकाश से आए और दिव्य फूल बनकर बोधिसत्व के चरणों में गिरी। इसके बाद मारा ने कीचड़ की वर्षा की (कललवस्सम)। कीचड़ की वह वर्षा धधकती और धुंआ छोड़ती हुई आकाश से आई और दिव्य मरहम बनकर बोधिसत्व के चरणों में गिरी। अंत में, मारा ने अंधकार की (अंधकारम) रचना की, और मन ही मन कहा, "मैं सिद्धार्थ को इससे डराकर भगा दूंगा।" चार भागों से बने अंधकार के समान, अंधेरा बेहद घना हो गया, लेकिन जैसे ही सूर्य की किरणें बोधिसत्व तक पहुंचीं, वह मानो गायब हो गया; मानो सूर्य की किरणें उसे दूर कर रही हों।

2.56. इस प्रकार, जब मारा नौ प्रकार की वर्षाओं (हवा, बारिश, पत्थर, आक्रमण, अंगारे, गर्म राख, रेत, कीचड़ और अंधकार) से बोधिसत्व को भगाने में असमर्थ रहा, तो उसने अपने दल को आदेश दिया: "देखो मेरे सैनिकों! तुम सब उठो; इस राजकुमार सिद्धार्थ को पकड़ो, मार डालो और भगा दो।" स्वयं मारा, हाथी गिरिमेखला के शरीर पर सवार होकर, अपने साथ परिक्रमा करने वाला शस्त्र लिए बोधिसत्व के पास पहुँचा और इस प्रकार कहा: "हे सिद्धार्थ! इस आसन (पल्लंक) से उठो। यह तुम्हारे लिए यहाँ नहीं आया है। यह मेरे लिए यहाँ आया है।" उनके वचन सुनकर उस महान सत्ता ने उत्तर दिया, "हे मारा! न तो तुमने दस सिद्धियों को सिद्ध किया है, न ही तुमने पाँच महा यज्ञ किए हैं; न ही तुमने अपने सगे संबंधियों के हित में साधना की है, न संसार के हित में, न ही बुद्ध बनने के हित में; ये सभी कर्म मैंने पूर्णतः किए हैं; अतः यह पल्लंका तुम्हारे लिए नहीं, बल्कि केवल मेरे लिए ही यहाँ आया है।"

2.57. क्रोधित मारा, क्रोध की शक्ति सहन न कर पाने के कारण, अपना घूमता हुआ अस्त्र उस महान पुरुष की ओर छोड़ दिया। वह अस्त्र पुष्पमालाओं के छत्र में तब्दील हो गया और उनके ऊपर स्थिर हो गया, जो उस समय दस सिद्धियों का ध्यान कर रहे थे। कहा जाता है कि अन्य अवसरों पर, क्रोध में छोड़े जाने पर, वह प्रज्वलित घूमता हुआ अस्त्र बड़े-बड़े ठोस पत्थर के स्तंभों को ऐसे काटता हुआ चला गया मानो वे बांस की ऊपरी शाखाएँ हों। लेकिन मारा और बोधिसत् के इस युद्ध में, जब वह पुष्पमालाओं के छत्र में तब्दील होकर स्थिर हो गया, तो मारा के शेष अनुयायियों ने मन ही मन कहा, "अब सिद्धार्थ आसन (पल्लंका) से उठकर भाग जाएँगे," और उन पर कई विशाल चट्टानी पहाड़ियों की चोटियाँ फेंकीं। वे भी पुष्पमालाओं के हॉल में तब्दील हो गईं और दस सिद्धियों का ध्यान कर रहे उस महान पुरुष के लिए जमीन पर गिर पड़ीं। चक्कवाला के मुख के किनारे पर खड़े देवताओं ने अपनी गर्दनें लंबी कीं, सिर ऊपर उठाए और एक-दूसरे से कहते हुए देखा: "हे मित्रों! राजकुमार सिद्धार्थ का सुंदर शरीर तो सचमुच नष्ट हो गया है; अब वह क्या करेगा?"

2.58. इसके बाद, बोधिसत्व ने कहा, "वह आसन (पल्लंका), जो सिद्धि प्राप्त कर चुके बोधिसत्वों के पूर्ण ज्ञानोदय के दिन प्रकट होता था, मेरे लिए प्रकट हुआ है," और खड़े हुए मारा से इस प्रकार कहा, "हे मारा! आपके दान का साक्षी कौन है?" मारा ने अपना हाथ अपनी सेना की ओर करके बढ़ाया और उत्तर दिया, "इनमें से अनेक देवता मेरे साक्षी हैं।" उस समय, मारा के अनुयायियों द्वारा "मैं आपका साक्षी हूँ" कहने से पृथ्वी के गर्जन जैसी ध्वनि उत्पन्न हुई। फिर मारा ने महान पुरुष से इस प्रकार कहा, "हे सिद्धार्थ! आपके द्वारा दिए गए दान का साक्षी कौन है?" महान पुरुष ने उत्तर दिया, "आपके द्वारा दिए गए दान के साक्षी सजीव हैं; परन्तु इस समय मेरे पास कोई सजीव साक्षी नहीं है, जिसका मैं उल्लेख कर सकूँ; फिलहाल, मेरे शेष जन्मों में दिए गए दान को छोड़ दें; लेकिन जब मैं वेसंतारा के रूप में था और मैंने दान दिया था, तब यह ठोस पृथ्वी, भले ही निर्जीव हो, साक्षी है। ऐसा कहकर उन्होंने अपने वस्त्रों के भीतर से अपना दाहिना हाथ बाहर निकाला और विशाल पृथ्वी की ओर बढ़ाते हुए कहा, "क्या तुम इस बात की साक्षी हो कि जब मैं वेसंतारा के रूप में था, तब मैंने सात सौ श्रेणियों के सात सौ दान दिए थे?" विशाल पृथ्वी सौ गर्जना, हजार गर्जना और एक लाख गर्जना के साथ गूंज उठी, मानो मारा की सेना को तितर-बितर कर रही हो।

2.59. इसके बाद, जब महान पुरुष वेसंतरा के दान का ध्यान कर रहे थे, "सिद्धार्थ! आपका विशाल दान सबसे उत्तम भेंट है", तभी डेढ़ सौ योजन के बराबर विशाल हाथी गिरिमेखला जमीन पर घुटने टेककर गिर पड़ा। मारा का दल चारों दिशाओं और चारों मध्यवर्ती बिंदुओं में भाग गया। उनमें से कोई भी एक ही मार्ग से नहीं गया। अपने सिर के मुकुट और वस्त्र उतारकर वे सब उस दिशा में भाग गए जिस दिशा में वे स्वयं मुख किए हुए थे। इसके बाद, मारा की सेना को देखकर देवताओं का जमावड़ा हुआ; राजकुमार सिद्धार्थ की विजय हुई; हम उनकी विजय का सम्मान करेंगे।" ऐसा कहकर देवताओं ने अपने साथी देवताओं को, ड्रैगनों ने अपने साथी ड्रैगनों को, गरुड़ों ने अपने साथी गरुड़ों को, ब्रह्माओं ने अपने साथी ब्रह्माओं को सूचित किया और वे सभी अपने हाथों में इत्र, फूलों की माला आदि लिए बोधि-पल्लंक पर विराजमान महान पुरुष के समक्ष उपस्थित हुए।

लेकिन जब वे इस तरह चले गए,

"वास्तव में, यह बुद्ध की विजय है, जो इस शक्ति के स्वामी हैं।"

शुभ महिमा का; यह भी हार है

मारा, दुष्ट आत्मा। उस समय,

देवताओं की प्रसन्न सभा ने घोषणा की

महान ऋषि की विजय, चबूतरे पर

बोधि वृक्ष। आनंदित ड्रैगनों की भीड़।

(नागों) ने भी तब विजय की घोषणा की।

बोधि वृक्ष की छत पर विराजमान महान ऋषि:

यह वास्तव में गौरवशाली की विजय है।

बुद्ध का यह भी मारा की पराजय है।

हे दुष्ट! प्रसन्न हुए गरुड़ों का समूह भी...

उस समय, महान की विजय की घोषणा की गई।

बोधि वृक्ष की छत पर बैठे ऋषि ने कहा, "यह सचमुच,

यह गौरवशाली बुद्ध की विजय है; यह भी है

"दुष्ट देवता मारा की पराजय"। प्रसन्न

ब्रह्माओं के समूह ने भी; उस समय घोषणा की

महान ऋषि की विजय, चबूतरे पर।

बोधि वृक्ष: "यही तो वास्तव में विजय है।"

हे गौरवशाली बुद्ध; यह भी मारा की पराजय है।

दस हजार चक्रवलों में विराजमान अन्य देवता विभिन्न प्रकार की स्तुतियाँ गाते हुए और उन्हें पुष्पों, इत्रों और मलहमों की मालाएँ अर्पित करके सम्मान प्रकट कर रहे थे। इस प्रकार, सूर्य के प्रकाश में ही उस महान पुरुष ने मारा की सेना का नाश कर दिया। फिर उन्होंने रात्रि के प्रथम पहर में अपने पूर्व जन्मों का चिंतन किया, मध्य पहर में अपनी दिव्य आँखों को शुद्ध किया और रात्रि के अंतिम पहर में प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद, जब वे बारह प्रकार के कारणों का प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में ध्यान कर रहे थे, तब जल से घिरी हुई दस हजार लोकधातु, आगे-पीछे घूमने की तरह बारह बार काँपी।

2.60. जब सूर्योदय के समय महान पुरुष ने सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त किया और दस हजार विश्व तत्वों (लोकधातु) को ध्वनिमान किया, तो समस्त दस हजार विश्व तत्व सुशोभित हो गए। चक्कवाळा के पूर्वी प्रवेश द्वार (या मुख) के किनारे पर फहराए गए ध्वज और मालाएँ चक्कवाळा के पश्चिमी प्रवेश द्वार (या मुख) के किनारे से टकरा गईं। इसी प्रकार चक्कवाळा के पश्चिमी प्रवेश द्वार (या मुख) के किनारे पर फहराए गए ध्वज स्तंभ चक्कवाळा के पूर्वी प्रवेश द्वार (या मुख) के किनारे से टकरा गए; चक्कवाळा के दक्षिणी मुख के किनारे पर फहराए गए ध्वज स्तंभ चक्कवाळा के उत्तरी मुख के किनारे से टकरा गए; चक्कवाल के उत्तरी मुख पर फहराए गए ध्वज दक्षिणी मुख पर जा गिरे। पृथ्वी की सतह पर फहराए गए ध्वज ब्रह्मा जगत को थामते हुए स्थिर हो गए; ब्रह्मा जगत में बंधे ध्वज पृथ्वी की सतह पर स्थापित हो गए। दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवालों) में पुष्पयुक्त वृक्षों पर फूल खिले और फलयुक्त वृक्षों पर फलों के गुच्छे लगे, जिससे वे लाभकारी हुए। वृक्षों के तनों पर कमल खिले और शाखाओं पर कमल, जबकि लताओं में कमल खिले; आकाश में कमल खिले; ठोस पत्थरों की सतहें टूटकर सौ परतों में विभाजित हो गईं और उन पर दण्डक-पौधे उग आए। दस हजार विश्व तत्व घूमकर फूलों में पूरी तरह से मिल गए, मानो फूलों की माला से बनी कोई खुली गेंद हो और फैली हुई फूलों की चादर जैसी लग रही हो। आठ हजार योजन में फैले हुए लोकंतरणिरय (लोकंतरणिरय), जो ब्रह्मांडों (चक्कवाल) के बीच स्थित थे और जो हमेशा अंधकारमय रहते थे और सात सूर्यों के प्रकाश से भी कभी प्रकाशित नहीं हो पाते थे, उस समय एक साथ प्रकाशित हो गए। चौरासी हजार योजन गहरा विशाल सागर मीठे

पानी का हो गया। नदियाँ बहना बंद हो गईं। जन्म से अंधे लोग दृश्य वस्तुएँ देखने लगे। जन्म से गूंगे लोग आवाजें सुनने लगे। जन्म से लंगड़े लोग कुर्सी के सहारे रेंगने के बजाय पैदल चलने लगे। बंधी हुई बेड़ियाँ, जंजीरें आदि टूटकर गिर गईं।

2.61. इस प्रकार अपार यश से सम्मानित होकर, महान पुरुष ने सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त किया, जबकि अनेक प्रकार की अद्‌भुत घटनाएँ स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही थीं, और उन्होंने ऐसा आनंदमय वचन कहा जो सभी बुद्धों द्वारा कभी नहीं कहा गया था:

बुद्ध का जीवन 024

क्योंकि बार-बार पुनर्जन्म लेना कष्टदायी होता है, इसलिए मैंने

मैं खुद कई चक्करों में घूमता रहा हूँ

एक जन्म, जिसके वास्तुकार को खोजने का प्रयास किया जा रहा है।

घर। हे घर बनाने वाले! अब तुम...

ढका हुआ; तुम फिर से घर नहीं बनाओगे।

आपकी छत की कड़ियाँ टूटी हुई हैं; घर का शिखर

नष्ट हो चुका था; मन उस सीमा से परे चला गया था।

संखार, सांसारिक वस्तुएँ; मैंने प्राप्त कर लिया है

सभी लालसाओं और इच्छाओं के नाश की अवस्था।

2.62. इस प्रकार, तुषिता के स्वर्गलोक से लेकर बोधि वृक्ष के शिखर पर सर्वज्ञता की प्राप्ति तक जो कुछ घटित हुआ, वह इसी प्रकार है। इस घटना के इतने भाग को 'अस्पष्ट प्रस्तावना' के नाम से समझा जा सकता है।

दूरस्थ प्रस्तावना पर चर्चा समाप्त हो गई है।

. . . . टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2e बुद्ध बनना

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2ई बुद्ध बनना और कामुकता पर विजय प्राप्त करना
बुद्ध21

3. "प्रारंभिक प्रस्तावना को इन संदर्भों में इस प्रकार समझा जाना चाहिए: 'एक अवसर पर, प्रतापी भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। वे वेसाली में विशाल वन में शिखर-छत वाले मठ (कुटगारशाला) में निवास कर रहे थे।' इस प्रकार, ऐसा कहा गया है, इसलिए उस शुरुआत से शुरू करते हुए, इसे इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए।" विजयपीठ (पल्लंका) पर विराजमान परम पूज्य बुद्ध को, अपने आनंदमय उच्चारण के बाद, यह विचार आया: "मैंने इस पल्लंका के लिए लाखों कल्पों के अतिरिक्त एक लाख कल्पों का भी निर्वाह किया है; अनेक अवसरों पर, इसी पल्लंका के लिए, मैंने अपना सुशोभित सिर गर्दन से काटकर दान कर दिया; अपनी काजल से सनी हुई आँखें और हृदय-मांस दान में दे दिए; मेरे पुत्र जैसे युवा राजकुमार जाली, मेरी पुत्रियाँ जैसे युवा राजकुमारी कन्याजिना और मेरी पत्नियाँ जैसे रानी मद्दी दूसरों को दास के रूप में दे दी गईं; मेरा यह पल्लंका ही मेरी विजयपीठ है, मेरा दृढ़ पल्लंका ही मेरी विजयपीठ है, मेरा दृढ़ पल्लंका; यहाँ विराजमान होकर मेरे सभी संकल्प पूर्ण हो गए।" मैं फिलहाल यहाँ से नहीं उठूँगा।" इसलिए वे सात दिनों तक वहीं बैठे रहे और वास्तव में कई लाख करोड़ ध्यान अवस्थाएँ प्राप्त कीं। इसी संदर्भ में यह कहा गया है: "तो वास्तव में, तेजस्वी बुद्ध सात दिनों तक एक ही पाँव-पाँव मुद्रा में बैठे रहे और मुक्ति के आनंद का अनुभव करते रहे।"

3.1. तब कुछ देवताओं के मन में यह विचार आया: "सिद्धार्थ के लिए आज भी कोई उचित कर्म अवश्य किया जाना चाहिए; वे तो पल्लंका से अपना लगाव नहीं छोड़ते।" गुरुदेव ने देवताओं के विचारों को जानकर आकाश में जाकर उनकी चिंताओं को दूर करने के लिए दो चमत्कार दिखाए। वास्तव में, बोधि वृक्ष की छत पर किया गया दो चमत्कार, उनके सगे संबंधियों की सभा में किया गया दो चमत्कार और पथिका के पुत्रों के मिलन में किया गया दो चमत्कार, ये सभी कांड के आम के वृक्ष की तलहटी में किए गए दो चमत्कार के समान थे।

बुद्ध 19

3.2. इस चमत्कार के द्वारा देवताओं की चिंता दूर करने के बाद, गुरुजी उत्तर दिशा में थोड़ा पूर्व की ओर खड़े हुए और सात दिनों तक बिना पलक झपकाए पल्लंका और बोधि वृक्ष को निहारते रहे, क्योंकि वे उन सिद्धियों के लिए बल का स्रोत थे जो एक लाख कल्पों के अतिरिक्त चार असंख्य कल्पों में पूर्ण की गई थीं। उन्होंने कहा: "वास्तव में, इसी पल्लंका में मुझे सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त हुआ था।" उस स्थान पर अविचलित आँखों का मंदिर (अनिमिसा) स्थापित हुआ। फिर गुरुजी ने पल्लंका और अपने स्थान के बीच एक गलियारा बनाया और सात दिनों तक उस रत्नजड़ित गलियारे पर चलते रहे जो पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ था। उस स्थान पर रत्नजड़ित गलियारे (रतनचंकमा) के नाम से जाना जाने वाला एक मंदिर स्थापित हुआ।

3.3. चौथे सप्ताह में, देवताओं ने बोधि वृक्ष के उत्तर-पश्चिम दिशा में एक रत्न-आभूषण से बना घर बनवाया। वहाँ, तेजस्वी बुद्ध पालथी मारकर बैठे और सात दिन अभिधम्म पिटक, विशेषकर उसमें निहित पट्ठान, और उससे प्राप्त होने के अनंत मार्गों का अध्ययन करने में व्यतीत किए। अभिधम्म के पाठियों ने कहा: “रतनघर नाम सात प्रकार के रत्नों से बने घर का नाम नहीं है; बल्कि वह स्थान जहाँ अभिधम्म के सात ग्रंथों का ध्यान किया गया था, उसे 'रतनघर' कहा जाता है। चूँकि यहाँ ये दोनों व्याख्याएँ लागू होती हैं, इसलिए दोनों को ही स्वीकार किया जाना चाहिए। उसी समय से उस स्थान पर रतनघरचेतिवा नामक एक मंदिर स्थापित हुआ। इस प्रकार, बुद्ध ने बोधि वृक्ष के पास, बरगद के वृक्ष (अजपाल-निग्रोध) के निकट चार सप्ताह व्यतीत किए। वहाँ भी वे धम्म का अध्ययन करने और मोक्ष के आनंद का अनुभव करने के लिए बैठे।

3.4. उस अवसर पर, दुष्ट मारा हृदय से दुखी होकर बोला, “इतने लंबे समय तक उनके पीछे-पीछे चलने के बावजूद, मुझे उनमें कोई दोष नहीं मिला, यद्यपि मैंने उनकी कमियाँ ढूँढीं।” वह सड़क पर बैठ गया और सोलह कारणों पर विचार करते हुए उसने ज़मीन पर सोलह रेखाएँ इस प्रकार खींचीं: “मैंने इस व्यक्ति के समान दान देने की पूर्णता प्राप्त नहीं की थी; इसलिए मैं इस व्यक्ति के समान जन्म नहीं लिया था।” ऐसा कहकर उसने एक रेखा खींची। उसी प्रकार, मारा ने दसवीं रेखा तक रेखा खींचते हुए कहा: “मैंने इस व्यक्ति के समान उपदेशों में पूर्णता, त्याग में पूर्णता, ज्ञान में पूर्णता, परिश्रम में पूर्णता, अधीरता में पूर्णता, सत्य में पूर्णता, संकल्प में पूर्णता, प्रेम में पूर्णता, समभाव में पूर्णता प्राप्त नहीं की थी; इसलिए मैं इस व्यक्ति के समान जन्म नहीं लिया था।” इसी प्रकार, मारा ने ग्यारहवीं पंक्ति

खींचते हुए कहा: "मैंने इस व्यक्ति के समान दस सिद्धियों को पूर्ण नहीं किया था, जो इंद्रियों (संयम) की परिपक्वता या अपरिपक्वता का निदान करने के ज्ञान को समझने में सहायक होती हैं, जो छह प्रकार के अद्वितीय ज्ञान में से एक है।" इसी प्रकार, उन्होंने अंततः सोलहवीं पंक्ति खींचते हुए कहा: "मैंने उन दस सिद्धियों को पूर्ण नहीं किया था जो जीवों के झुकाव, लालसा और स्वभाव के ज्ञान को समझने में सहायक होती हैं, जो छह प्रकार के अद्वितीय ज्ञान में से एक है - महान दया पर आधारित ध्यान की प्राप्ति का ज्ञान, दो चमत्कार करने का ज्ञान, अवरोध के अभाव का ज्ञान और सर्वज्ञता का ज्ञान; इसलिए, मैं इस व्यक्ति के समान जन्म नहीं लिया था।" इस प्रकार, मारा ने इन परिस्थितियों में राजमार्ग पर सोलह रेखाएँ खींचीं और बैठ गए।

3.5. उस समय भी, मारा की तीन पुत्रियाँ, तन्हा, आरती और रागा, मन ही मन कहने लगीं, “हमारे पिता कहीं दिखाई नहीं दे रहे; आखिर वे कहाँ हैं?” और अपने पिता की खोज करते हुए, उन्होंने देखा कि वे दुखी मन से जमीन पर बैठकर लिख रहे हैं। वे अपने पिता के पास गईं और पूछा, “प्रिय पिता! आप इतने दुखी और निराश क्यों हैं?” उन्होंने उत्तर दिया, “प्रिय पुत्रियों! यह महान भिक्षु मेरे प्रभाव से बच गए; मैं इतने लंबे समय तक खोज करने के बावजूद उनकी कमजोरी नहीं ढूंढ पाया; इसी कारण मैं दुखी और निराश हूँ।” पुत्रियों ने कहा, “यदि ऐसा है, तो चिंता न करें, हम स्वयं उन्हें वश में कर लेंगी और उन्हें आपके पास वापस ले आएंगी।” मारा ने उत्तर दिया, “प्रिय पुत्रियों! कोई भी उन्हें अपने वश में नहीं कर सकता; यह व्यक्ति अटूट विश्वास में स्थापित है।” उन्होंने कहा, “प्रिय पिता! कृपया चिंता न करें; हम स्त्रियाँ उन्हें कामवासना के फंदों (राग) से तुरंत अपने पास ले आएँगी। ऐसा कहकर वे तेजस्वी बुद्ध के पास गईं और उनसे कहा, "हे भिक्षु! हम आपकी पत्नियाँ बनेंगी, जो आपके चरणों की परिक्रमा करेंगी।" तेजस्वी बुद्ध बैठे रहे, अस्तित्व के आधार के अतुलनीय विनाश से मुक्ति पाने के लिए एकांत के आनंद में लीन रहे, लेकिन उन्होंने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया; न ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और उनकी ओर देखा।

बुद्ध 17

3.6. फिर मारा की पुत्रियों ने मन ही मन कहा, “पुरुषों की इच्छाएँ ऊँच-नीच होती हैं; युवतियों के बाल सचमुच सुंदर होते हैं; जीवन के प्रथम चरण में स्थापित युवतियों के बाल सचमुच सुंदर होते हैं; मध्य आयु की स्त्रियों के बाल सचमुच सुंदर होते हैं; जीवन के अंतिम चरण की स्त्रियों के बाल सचमुच सुंदर होते हैं। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम उन्हें हर तरह के सौंदर्य से लुभाकर अपना बना लें?” उन्होंने एक के बाद एक युवतियों का वेश धारण किया और युवतियों, बांझ स्त्रियों, बच्चे की माँ, दो बच्चों की माँ, मध्य आयु की स्त्रियों और वृद्ध स्त्रियों का रूप धारण करके छह बार तेजस्वी बुद्ध के पास गईं और कहा, “हे भिक्षु! हम आपकी पत्नियों के रूप में आपके चरणों में सेवा करती हैं।” तेजस्वी बुद्ध ने इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे अस्तित्व के सभी आधारों के अतुलनीय विनाश के माध्यम से मुक्त हो चुके थे। कुछ विद्वान-शिक्षकों ने कहा: "जब उन्होंने उन्हें बड़ी स्त्रियों के वेश में अपने पास आते देखा, तो तेजस्वी बुद्ध ने स्वयं से कहा: 'उन्हें टूटे दांत और सफेद बालों वाली बना दो।' इसे उस रूप में नहीं लेना चाहिए। वास्तव में, तेजस्वी बुद्ध ने ऐसी कोई इच्छा नहीं की थी। हालांकि, तेजस्वी बुद्ध ने अपने स्वयं के दुराचार (किलेसा) के त्याग को ध्यान में रखते हुए कहा: "तुम सब कहीं और जाओ; किसलिए देखकर तुम यह प्रयास कर रहे हो? ऐसा कार्य उन लोगों के समक्ष किया जाना चाहिए जो कामवासना (राग) आदि से रहित नहीं हैं, जहां तक तथागत की बात है, उन्होंने कामवासना (राग) का त्याग किया है, घृणा (दोष) को त्याग दिया है और मोह (मोह) को दूर कर दिया है।"

आप सब किस तरह का पदचिह्न छोड़ने जा रहे हैं?

उस बुद्ध का पता लगाइए जो अपने पदचिह्न नहीं छोड़ते।

जिसका प्रभाव क्षेत्र असीमित है, जिसका

विजय को पलटा नहीं जा सकता था और जिसका

ऐसी जीत जिसकी बराबरी दुनिया में कोई नहीं कर सकता।

आप सब किस पदचिह्न के साथ जा रहे हैं?

उस बुद्ध का पता लगाइए जो अपने पदचिह्न नहीं छोड़ते।

जिसका प्रभाव क्षेत्र असीमित है, जिसका

उलझनें सुलझ गई हैं और जिनके

उसे राह दिखाने के लिए लालसा (तन्हा) का अस्तित्व ही नहीं है।

कहीं भी, वास्तव में।"

धम्मपद के बुद्ध अध्याय में निहित इन दो श्लोकों का पाठ करते हुए, प्रतापी ने धम्म का उपदेश दिया। वे, मारा की पुत्रियाँ, मन ही मन कह रही थीं: "हमारे पिता, हमें कहना चाहिए, सत्य बोले थे जब उन्होंने कहा: 'योग्य, सुगता, बुद्ध हैं; वे आसानी से कामवासना (राग) से प्रभावित नहीं होते, आदि।" अपने पिता (राक्षस स्वामी मारा) की उपस्थिति में लौट आईं

3.7. बुद्ध ने वहाँ एक सप्ताह, सात दिन व्यतीत करने के बाद, मुचलिन्द पर्वत की तलहटी में प्रस्थान किया। वहाँ बुद्ध ने सात दिन मोक्ष के आनंद का अनुभव करते हुए बिताए, मानो वे मुचलिन्द नामक नागराज द्वारा शीत आदि से बचाव के लिए बनाई गई कुंडलियों के भीतर एक असीमित सुगंधित कक्ष में निवास कर रहे हों। तभी एक सप्ताह तक चलने वाली वर्षा हुई, और वे राज्यायतन की ओर प्रस्थान कर गए, जहाँ उन्होंने सात दिन मोक्ष के सुख का अनुभव किया। इस प्रकार, सात सप्ताह पूर्णतः संपन्न हुए। इस दौरान उन्होंने न तो मुख (या मुख) धोया, न ही शरीर का स्नान किया, न ही भोजन किया; उन्होंने अपना समय ध्यान की प्राप्ति के आनंद में व्यतीत किया।

3.8. फिर, इन सात सप्ताहों की समाप्ति पर, उनतालीसवें दिन, उन्हें अपना मुख और मुख धोने का विचार आया। देवों के राजा सक्का एक नई औषधि लाए और उन्हें दी। गुरु ने उसका सेवन किया। इस कारण उनका शारीरिक स्नान हो गया। फिर, सक्का ने उन्हें नागलता से बनी एक छड़ी, नाग लता से बनी एक दांतेदार तीली और मुख एवं मुख धोने के लिए जल दिया। गुरु ने उस छड़ी को चबाया, अपने दांत साफ किए, अनोटत्ता झील के जल से अपना मुख धोया और राज्यायतन वृक्ष के चरणों में बैठ गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> अपादान >> 1.2एफ भिक्षुओं के आदेश की शुरुआत

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2f संघ (भिक्षुओं का संप्रदाय) का आरंभ

Lifeofbuddha026

3.9. उस अवसर पर, तपस्सा और भल्लिका नामक दो व्यापारी, जब उक्कला जिले से मध्य देश (मज्झिमा देश) की ओर पाँच सौ रथ लेकर जा रहे थे, तो उनके रथों को एक देवता ने रोक लिया, जो पूर्व में उनका सगा-संबंधी था। देवता द्वारा गुरु को भोजन प्रदान करने के लिए प्रेरित किए जाने पर, वे अपने साथ चावल की रोटी (मन्था) और शहद से बना भोजन (मधुपिंडिका) ले गए और कहा: "आदरणीय महोदय! कृपा करके, हम पर दया करते हुए, इस भोजन-अर्पण को स्वीकार करें," और गुरु को वही भोजन अर्पित कर वहीं खड़े हो गए। गुरु ने सोचा: "तथागत अपने हाथों में भेंट स्वीकार नहीं करते; "मुझे ये उपहार कहाँ से मिलेंगे?" क्योंकि जिस दिन उन्होंने दूध-चावल का प्रसाद ग्रहण किया, उसी दिन उनका कटोरा गायब हो गया था। तब, उनके इस विचार को जानकर, चारों दिशाओं से चार दिव्य राजा आए और नीलम रत्न से बने कटोरे भेंट किए। तेजस्वी बुद्ध ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। बाद में, उन्होंने सेम के रंग के पत्थर से बने चार भिक्षापात्र भेंट किए। चारों महान दिव्य राजाओं की आस्था का सम्मान करते हुए, तेजस्वी बुद्ध ने चारों कटोरे स्वीकार किए, उन्हें एक के ऊपर एक रखा और इस प्रकार इच्छा व्यक्त की: "ये एक हो जाएँ।" चारों कटोरे एक मध्यम आकार के एक कटोरे में बदल गए, जिसके किनारे पर स्पष्ट दरारें दिखाई दे रही थीं। उस नए पत्थर के कटोरे में, तेजस्वी बुद्ध ने भोजन ग्रहण किया, उसे खाया और धन्यवाद व्यक्त किया। वे दोनों व्यापारी भाई बुद्ध और धर्म की शरण में गए और दो प्रकार के नियमों का पालन करते हुए गृहस्थ भक्त बन गए। तब, तेजस्वी बुद्ध ने अपने दाहिने हाथ से अपने सिर को छुआ और जिन्होंने भी अपने केश-अवशेष मांगे थे, उन्हें दान कर दिए। पूजा की वस्तु। उन्होंने उन अवशेषों को सोने के ताबूत में रखा और उन्हें एक मंदिर (चेतिया) में स्थापित किया।
बुद्ध22

3.10. सर्वज्ञ बुद्ध वहाँ से उठे, फिर उसी बरगद के वृक्ष के पास गए और निग्रोध वृक्ष की तलहटी में बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे वे स्वयं द्वारा प्राप्त और समझे गए धर्म की गहनता पर चिंतन कर रहे थे, तभी उनके मन में उपदेश देने की इच्छा न होने का विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने कहा: "मैंने अत्यंत कठिनाइयों से इस धर्म को प्राप्त और समझा है", जो कि सभी बुद्धों का नियमित अभ्यास था। तब ब्रह्मा सहमपति ने मन ही मन कहा, "सचमुच! हाय! संसार का विनाश हो गया! सचमुच! हाय! संसार का विनाश हो गया!", और अपने साथ सक्का, सुयामा, संतुसिता, निम्मानारति, वासवत्ती और दस हजार चक्रवालों में से ब्रह्माओं को लेकर गुरु के समक्ष गए और उनसे इस प्रकार धर्म का प्रचार करने का निवेदन किया, "हे पूज्यवर! हे प्रतापी बुद्ध धर्म का प्रचार करें।"
बुद्ध का जीवन027
बुद्ध का जीवन028

3.11. गुरु ने उन्हें वचन देने के बाद मन में यह विचार किया: "मैं सबसे पहले किसे धर्म का उपदेश दूँ?" और उनके मन में यह विचार आया: "आलारा विद्वान हैं; वे इस धर्म को शीघ्र ही समझ लेंगे।" पुनः विचार करने पर उन्हें पता चला कि उदका का सात दिनों से देहांत हो चुका है और उन्होंने उदका के बारे में सोचा। जब उन्हें पता चला कि उदका का भी पिछली रात देहांत हो गया है, तो उन्होंने पाँच भिक्षुओं के समूह (पंचवग्गिया) पर ध्यान केंद्रित किया: "सचमुच, पाँच भिक्षुओं के समूह ने मेरी बहुत सहायता की" और उनके बारे में सोचते हुए उन्होंने यह विचार किया: "वे इस समय कहाँ रह रहे हैं?", तब उन्हें पता चला कि वे बनारस के इसिपताना में मिगदा वन में रह रहे हैं। बुद्ध कुछ दिनों तक बोधि वृक्ष के प्रांगण के आसपास भिक्षा-भोजन की तलाश में विचरण करते रहे और मन ही मन कहते रहे: "मैं बनारस जाऊंगा और आषाढ़ महीने की पूर्णिमा के दिन धर्मचक्र घुमाऊंगा।" चौदहवें शुक्ल पक्ष की सुबह जब रात से दिन हुआ तो उन्होंने समय रहते अपना कुंड और वस्त्र धारण किया और अठारह योजन की यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में उनकी मुलाकात उपका नामक एक नग्न तपस्वी (अजीवक) से हुई, जिन्होंने उन्हें अपने बुद्ध बनने की सूचना दी और उसी दिन वे इसिपताना पहुंचे।

3.12. पांच भिक्षुओं के समूह ने तथागत को दूर से आते हुए देखकर आपस में यह प्रतिज्ञा की: "मित्रों! यह भिक्षु गौतम आ रहे हैं; आवश्यकताओं की प्रचुरता की ओर लौटने से उनका शरीर पूर्ण रूप से भरा हुआ, सुडौल अंगों वाला और सुनहरे रंग का हो गया है; हम उन्हें प्रणाम आदि जैसा कोई सम्मान नहीं देंगे; परन्तु, क्योंकि वे एक महान परिवार के पुत्र हैं, इसलिए वे आसन ग्रहण करने के योग्य हैं; अतः हम उनके लिए आसन तैयार करेंगे।" तेजस्वी बुद्ध, जो संसार और देवलोक के लोगों के मन और व्यवहार को जानने की क्षमता रखते थे, उन्होंने उनके विचारों पर चिंतन किया और उनकी मानसिक योजनाओं को जान लिया। फिर, उन्होंने प्रेम और करुणा के उन विचारों को एकत्रित किया जो सभी देवताओं और मनुष्यों में व्याप्त होने में सक्षम हैं और पांच भिक्षुओं के समूह पर अपना प्रेम और

करुणा बरसा दिया। (पृष्ठ 147) वे परम पूज्य बुद्ध की प्रेममयी कृपा के विचारों से ओतप्रोत होकर, तथागत के उनके निकट आने, उनका स्वागत करने और उन्हें प्रणाम करने आदि जैसे सभी प्रकार के कर्तव्यों का पालन करने पर अपने व्यक्तिगत दायित्वों पर दृढ़ रहने में असमर्थ हो गए। यद्यपि वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि तथागत सर्वज्ञ बुद्ध बन चुके हैं, इसलिए वे उन्हें नाम से और मित्र (आवुसा) कहकर संबोधित करते रहे।

3.13. तब प्रतापी बुद्ध ने उन्हें अपने बुद्ध बनने की सूचना देते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! तथागत को मेरे नाम से या मित्र कहकर संबोधित करने की आदत न डालें; हे भिक्षुओं! तथागत अब एक योग्य, स्वयंसिद्ध बुद्ध बन चुके हैं, उन्होंने अपने लिए तैयार किए गए उत्तम बुद्ध-आसन पर अठारह करोड़ ब्रह्माओं से घिरे हुए विराजमान होकर अतुलनीय धम्मचक्क-पवत्तना सूत्र का उपदेश दिया, जो अपने त्रिगुणीय चक्र और बारह गुणों के साथ छह प्रकार के ज्ञान की गतिविधि को जागृत करता है, और उत्तरासाल नक्षत्र के संयोग के समय पाँच तेरों (पंचवग्गिया) के समूह को संबोधित किया। उनमें से, तेर कोण्डञ्ञ ने बुद्ध के उपदेशों के क्रम में अपनी बुद्धि का प्रसार करते हुए, अठारह करोड़ ब्रह्माओं के साथ बुद्धत्व के मार्ग के प्रथम चरण की सिद्धि प्राप्त की।" सूत्र के अंत में निर्वाण प्राप्त हुआ। गुरु ने अपना उपवास इसिपताना में बिताया और अगले दिन उसी मठ में बैठकर वप्पा थेरा को धार्मिक शिक्षा दी। शेष चार थेरा भिक्षा-भंडार के लिए इधर-उधर भटकते रहे। थेरा वप्पा ने अगली सुबह ही सोतापत्ति (धारा-प्रवर्तक) का फल प्राप्त कर लिया। इसी व्यवस्था के माध्यम से, अगले दिन थेरा भद्दिया, चौथे दिन थेरा महानामा और अंत में पाँचवें दिन थेरा असज्जी, सभी सोतापत्ति (धारा-प्रवर्तक) के फल को प्राप्त कर चुके थे। घटते चंद्रमा के पाँचवें दिन बुद्ध ने सभी पाँचों थेराओं को एकत्रित किया और उन्हें अनात्तलक्खाण सूत्र का उपदेश दिया, जिसमें अनात्त के गुणों पर प्रवचन दिया गया था। प्रवचन के समापन पर पाँचों थेरा अरहतत्व में स्थापित हो गए। तब गुरु ने उपनिषय (दुख भोग रहे व्यक्ति) को देखकर अच्छे कुल के पुत्र यासा को, जो उस रात अपने घर से घृणापूर्वक विदा होकर लौट आया था, बुद्ध ने यह कहकर बुलाया: "आओ यासा।" उसी रात, बुद्ध ने यासा को सोताप्पत्ती (प्रवेश करने वाला भिक्षु) के सिद्ध जीवन में स्थापित किया और अगले दिन उन्हें अरहत पद प्राप्त कराया। इसके बाद, बुद्ध ने यासा के 54 साथियों को भी "आओ! भिक्षुओं!" कहकर भिक्षु बनने का आदेश दिया और उन्हें अरहत पद प्राप्त कराया।

बुद्ध का जीवन 031

3.14. इस प्रकार, जब संसार में अरहतों की संख्या बढ़कर इकसठ हो गई, तो गुरु ने अपने उपवास (वर्षाकाल) के बाद पश्चात्ताप और क्षमादान का पवारणा अनुष्ठान किया और साठ भिक्षुओं को सभी दिशाओं में यह कहते हुए विदा किया: "हे भिक्षुओं! अपनी यात्राओं पर निकल पड़ो!" और स्वयं उरुवेला जाकर, रास्ते में घने कपास के जंगल में तीस राजकुमार युवकों को उनके उत्तम समूह, भद्दावग्गी में परिवर्तित किया। उनमें से अंतिम भिक्षु सोतापन्न (धारा-संग्रही) बन गया; और सबसे श्रेष्ठ भिक्षु अनागामी (अनगामी) बन गया।

बुद्ध का जीवन 032
बुद्ध का जीवन 033
बुद्ध का जीवन 034
बुद्ध का जीवन 035

उन सभी को भी "आओ! भिक्षुओं!" कहकर भिक्षु बनाया गया और सभी दिशाओं में भेजा गया, लेकिन वह स्वयं उरुवेला गए, साढ़े तीन हजार चमत्कार दिखाए, तीन जटिल भिक्षु भाइयों को, जिनके साथ एक हजार जटिल भिक्षुओं का दल था, परिवर्तित किया, उन्हें "आओ! भिक्षुओं! गयासीसा के शीर्ष पर बैठो" कहकर भिक्षु बनाया, उन्हें अपने प्रज्वलित उपदेश (आदित्तपरिवाय) से अर्हत पदवी दिलाई, और फिर उन हजार अर्हतों के दल से घिरे हुए, राजगृह नगर के बाहरी इलाके में स्थित लट्ठीवन उद्यान में गए, और मन ही मन कहा: "मैं बिम्बिसार को वचन देकर छुड़ाऊंगा।" बाग के रखवाले से गुरु के आगमन की सूचना पाकर राजा, बारह नहुतों ब्राह्मणों (पुजारियों) और धनी गृहस्थों से घिरे हुए, गुरु के पास पहुँचे। जब उनका प्रकाश, जो एक बहुरंगी वृत्ताकार स्वर्ण-चादर के समान था, प्रकट हो रहा था, तब उन्होंने तथागत (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर स्वयं को उनके साथ एक तरफ गिरा दिया और अपने दल के साथ बैठ गए।

3.15. तब ब्राह्मणों और धनी गृहस्थों के मन में यह विचार आया: "अंततः क्या है? क्या महान भिक्षु उरुवेला कस्सपा के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं या उरुवेला कस्सपा महान भिक्षु के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं?" बुद्ध ने अपने मन के माध्यम से उनके मन में उठ रहे इस विचार को जान लिया और एक श्लोक के माध्यम से उरुवेला कस्सपा को संबोधित किया:-

"हे उरुवेला में रहने वाले! यह देखकर,

क्या आपने आग को पीछे छोड़कर उसका अनुसरण किया?

किसके निर्देश पर? मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ।

हे कस्सपा! तुम्हारा अग्नि-यज्ञ क्यों विफल हो गया?

त्यागा हुआ?

थेरा ने भी, महिमावान की इच्छा को जानते हुए, इस श्लोक का पाठ किया:

दृश्य वस्तुएँ, श्रव्य वस्तुएँ और फिर

स्वादिष्ट वस्तुएं, साथ ही कामुक सुख और स्त्री

इन्हें ब्राह्मण यज्ञ (यज्ञ) कहा जाता है।

इसे जड़ों में मौजूद कलंकपूर्ण अशुद्धि के रूप में जानते हुए

दुःख (उपाधि) के कारण, मैं कोई कार्य नहीं करता।

अशुद्धता से मुक्त होने के लिए त्याग करना।"

इस श्लोक का पाठ करने के बाद, उन्होंने तथागत के चरणों में अपना सिर रखकर यह प्रदर्शित किया कि वे तथागत के शिष्य हैं। उन्होंने कहा, "आदरणीय गुरुदेव! परम पूज्य बुद्ध मेरे गुरु हैं; मैं आपका शिष्य हूँ।" वे तीन ताड़ के पेड़ों से लेकर सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक चढ़े, नीचे उतरे, तथागत को प्रणाम किया और उनके बगल में बैठ गए। इस चमत्कार को देखकर, वहाँ मौजूद लोगों के विशाल समूह ने गुरु के गुणों की ही प्रशंसा करते हुए कहा, "वास्तव में बुद्ध अत्यंत शक्तिशाली हैं; इस प्रकार, उरुवेलकस्सपा जैसे तपस्वी भी, जो अपने प्रबल विचारों के कारण स्वयं को अरहत समझते थे, तथागत द्वारा अपने गलत विचारों के जाल को तोड़कर परिवर्तित हो गए।" परम पूज्य बुद्ध ने कहा, "मैंने न केवल उरुवेला कस्सपा को परिवर्तित किया है, बल्कि बहुत पहले भी मैंने इन्हें परिवर्तित किया था।" उन्होंने महानारदकस्सपा की जन्म कथा (जातक) सुनाई, जिसमें उनकी जीवनी थी और चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन किया। राजा अपने ग्यारह नहुत अनुयायियों के साथ सोतापत्ति की अवस्था में सिद्ध हो गए। उन्होंने अपने एक नहुत अनुयायी को सूचित किया कि वे सब भक्त बन गए हैं। गुरु के समक्ष बैठे-बैठे ही राजा ने पाँच सुखों (अस्ससक) की घोषणा की, बुद्ध की शरण ली, गुरु को अगले दिन के भोज में आमंत्रित किया, अपने आसन से उठे, परम पूज्य बुद्ध की परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

3.16. अगले दिन, वे सभी जिन्होंने पिछले दिन प्रतापी बुद्ध के दर्शन किए थे, और वे भी जिन्होंने उन्हें नहीं देखा था, वे सभी राजगृह नगर के नागरिक, जिनकी संख्या अठारह करोड़ थी, तथागत के दर्शन की इच्छा से राजगृह नगर से सुबह-सुबह लाठी वन में गए। तीन गावटा का मार्ग भी उन सभी के लिए पर्याप्त नहीं था। बीच में कोई स्थान न होने के कारण, पूरा लाठी वन उन लोगों से भर गया था। इतनी बड़ी भीड़ इस तथ्य के बावजूद संतुष्ट नहीं हो सकी कि उन्होंने दशबल के उस शरीर को देखा था जो उचित अनुपात और उत्कृष्ट सौंदर्य की ऊँचाई पर था। उनके लिए, उन्होंने जो बुद्ध देखे वे सौंदर्य के साक्षात स्वरूप थे, प्रशंसा के योग्य थे। वास्तव में, ऐसे स्थानों में, प्रतापी बुद्ध के शारीरिक रूप की संपूर्ण महिमा, उनके प्रमुख और गौण गुणों का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हुए, प्रशंसा की जानी चाहिए। जब इस प्रकार उद्यान और सड़क दोनों ही विशाल जनसमूह से भरे हुए थे, जो सुगठित और उत्कृष्ट सौंदर्य प्राप्त दशाबल के दर्शन करने आए थे, तो वहाँ से किसी भिक्षु के निकलने का भी रास्ता नहीं था। कहा जाता है कि उस दिन परम पूज्य बुद्ध का भोजन बाधित हो गया होगा। इसलिए, ऐसी स्थिति से बचने के लिए सक्का के दिव्य आसन पर गर्मी का आभास हुआ। घटना पर विचार करते हुए, सक्का को इसका कारण ज्ञात हुआ, उन्होंने स्वयं को एक युवक के रूप में रूपांतरित किया और बुद्ध, धम्म और संघ से उचित रूप से संबंधित स्तुतिगान करते हुए दशाबल के सामने अवतरित हुए, अपनी दिव्य शक्ति से स्थान बनाया और आगे बढ़कर गुरु की स्तुति इन श्लोकों में की:-

वह महान, वह वश में करने वाला, वह रूपांतरित करने वाला, साथ मिलकर

बुने हुए पूर्व तपस्वियों के परिवर्तित सदस्यों के साथ

बाल, पूर्णतः मुक्त, साथ में

उन्होंने जिन्हें पूर्णतः मुक्ति दिलाने में सहायता की,

शुद्ध स्वर्णमय रंग के साथ प्रवेश किया

राजगृह नगर। मुक्त व्यक्ति

उन लोगों के साथ जिन्हें उन्होंने प्राप्त करने में मदद की

मुक्त :P: एक साथ पार कर गए

जिनके साथ उन्होंने पार करने में मदद की

ऊपर :P:.

शांतिपूर्ण लोग, साथ ही वे लोग जिन्हें उन्होंने

शांतिपूर्ण बनने में मदद की :P:

उस महानुभाव ने राजागृह नगर में प्रवेश किया।

वह महिमावान, दस निवासों का स्वामी

(दासवासो) दस शक्तियों वाला, दस धर्मों का ज्ञाता,

दस गुणों से संपन्न होने के कारण, बुद्ध ने उन्हें घेर लिया।

दस सौ सैनिकों के दल के साथ शहर में प्रवेश किया।

राजगृह।

तब लोगों के विशाल समूह ने उस युवक की मनमोहक सुंदरता को देखकर ऐसा सोचा: "सचमुच, यह युवक अत्यंत सुंदर है; हमने सचमुच कभी ऐसा नहीं देखा," और पूछा: "यह युवक कहाँ से है? या यह किसका है?" उनका प्रश्न सुनकर, युवक ने इस प्रकार एक श्लोक सुनाया:-

मैं उस व्यक्ति का सेवक हूँ

जो बुद्धिमान है, हर तरह से संयमी है, जो पवित्र है।

एक, अद्वितीय, पूजा के योग्य,

उत्कृष्ट शब्दों का वक्ता जो अनुकूल हो

संसार में निर्वाण प्राप्त करना।

3.17. गुरु ने सक्का द्वारा संभव हुई यात्रा शुरू की और एक हजार भिक्षुओं से घिरे राजगृह नगर में प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध के नेतृत्व में पुरोहितों को बड़ा दान देते हुए कहा, "हे पूज्यवर! मैं तीन रत्नों के बिना नहीं रह सकता; उचित समय आने पर मैं परम पूज्य बुद्ध के दर्शन करना चाहता हूँ; लाठी वन बहुत दूर है; हमारा यह बाँस वन न तो बहुत दूर है और न ही बहुत पास; इसमें बुद्ध के मठ बनने के योग्य प्रवेश और निकास मार्ग हैं; हे पूज्यवर! परम पूज्य बुद्ध इसे स्वीकार करें।" इसके बाद वे एक स्वर्णमय पात्र में बहुमूल्य सुगंधित फूलों से सुगंधित रत्नमय जल लाए और दासबाला के हाथों पर आहुति जल अर्पित करते हुए बाँस वन को बुद्ध को भेंट के रूप में समर्पित किया। जब बुद्ध ने उद्यान-मठ को स्वीकार किया, तो एक भीषण भूकंप आया, जो यह दर्शाता था कि "बुद्ध के उपदेश की जड़ें जड़ पकड़ चुकी हैं।" वास्तव में, जंबू द्वीप की सतह पर, वेलुवन मठ के अलावा किसी अन्य मठ को स्वीकार किए जाने पर ही भीषण भूकंप आया था। तांबदीप द्वीप में भी, महाविहार मठ के अलावा किसी अन्य मठ को स्वीकार किए जाने पर ही भूकंप आया था। गुरु ने वेलुवन (बांस के वन) के मठ का दान स्वीकार किया, राजा को धन्यवाद दिया, अपने आसन से उठे और भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए वेलुवन चले गए।

बुद्ध का जीवन 036

3.18. उस समय, दो परिब्बाजक तपस्वी, सारिपुत्त और मोग्गलाना, अमरत्व की खोज में राजगृह नगर में निवास कर रहे थे। थेरा असज्जी को भिक्षा मांगने नगर में प्रवेश करते देख, सारिपुत्त श्रद्धा से भर उठे, थेरा के पास गए और "सभी घटनाओं की उत्पत्ति उनके कारणों से होती है" से शुरू होने वाली गाथा सुनकर सोतापत्ति प्राप्त कर ली और वही गाथा अपने साथी मोग्गलाना को भी सुनाई। मोग्गलाना भी सोतापत्ति प्राप्त कर चुके थे। दोनों ने संजय को दर्शन दिए और अपने अनुयायियों के साथ भगवान संजय के समक्ष भिक्षु बन गए। उनमें से मोग्गलान ने सात दिनों में अर्हत पद प्राप्त कर लिया। सारिपुत्त ने आधे महीने में यही पद प्राप्त किया। गुरु ने उन दोनों को अपने प्रमुख शिष्यों का स्थान दिया। जिस दिन सारिपुत्त ने अर्हत पद प्राप्त किया, उसी दिन उन्होंने थेरा सारिपुत्त के साथ एक सभा बुलाई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2 ग्राम बुद्ध की घर वापसी

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध
1.2 ग्राम बुद्ध अपने पिता के राज्य में लौटते हैं और अपने पुत्र राहुल को दीक्षा देते हैं
बुद्ध24

3.19. जब तथागत उसी बाँस के बाग में निवास कर रहे थे, तब महान राजा सुद्धोदन ने यह सुना: "सुना है कि मेरे पुत्र ने छह वर्ष तक कठिन कर्म करके बुद्ध बनकर सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया है, उसने धर्म का उत्कृष्ट चक्र चलाया है और वह बाँस के बाग (वेलुवन) में है।" उन्होंने एक मंत्री से कहा: "आओ, मेरे सेवक! तुम एक हजार पुरुषों से घिरे हुए राजगृह जाओ और मेरी ओर से कहो: 'तुम्हारे पिता, महान राजा सुद्धोदन अपने पुत्र से मिलना चाहते हैं' और मेरे पुत्र को लेकर वापस आओ।" उस मंत्री ने सिर झुकाकर राजआदेश ग्रहण किया और कहा, "हे महाराज!" फिर वह साठ योजन लंबी यात्रा पर, एक हजार पुरुषों से घिरे हुए, शीघ्र ही आगे बढ़े और दासबाला की चार सभाओं के बीच बैठ गए। उसी समय दासबाला धर्मोपदेश के समय मठ में प्रवेश कर गए। उस मंत्री ने मन ही मन कहा, "राजा द्वारा भेजा गया राजसंदेश अभी के लिए स्थगित कर दिया जाए", और सभा के अंतिम छोर पर खड़े होकर गुरु के धर्मोपदेश को सुना। खड़े-खड़े ही उन्होंने अपने हजार पुरुषों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया और भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। भगवान ने हाथ बढ़ाकर आह्वान किया, "आओ! भिक्षुओं!" उसी क्षण वे सभी जादुई रूप से प्रकट हुए और साठ वर्ष के थेरों के समान हो गए। अर्हतत्व प्राप्त करने के समय से ही उस मंत्री ने मन ही मन कहा, "हे संतों (आर्यो), समभाव बनाए रखें" और उन्होंने दासबाला को भेजे गए राजसंदेश के बारे में कुछ नहीं कहा। राजा ने ऐसा किया। राजा ने उसी उद्देश्य से एक और मंत्री को भेजा और कहा: "जो गया था, वह न तो लौटा है और न ही उसके लौटने का कोई संदेश आया है।" वह दूसरा मंत्री भी बुद्ध के पास गया, अपने दल के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया, लेकिन मौन रहा। फिर राजा ने उसी उद्देश्य से सात और मंत्रियों को भेजा और कहा: "आओ! मेरे सेवकों! तुम भी जाओ!" वे सभी नौ मंत्री, अपने नौ हजार पुरुषों के साथ, अपने कर्तव्य पूरे करने के बाद, मौन हो गए और वहीं रुके रहे।

3.20. राजा को कोई सूचना न मिलने पर, जो उन्हें संदेश के माध्यम से भेजी जानी थी, उन्होंने सोचा, "मेरे इतने सारे सैनिक, मेरे प्रति स्नेह की कमी के कारण, कोई सूचना संदेश के माध्यम से नहीं लाए; अब भला मेरा दूत कौन बनेगा?" और पूरी राजसेना का सर्वेक्षण करते हुए उन्होंने कालुदायी को देखा। कहा जाता है कि उन्होंने राजा के लिए सभी प्रकार के लाभ किए, वे एक विश्वासयोग्य, अत्यंत विश्वसनीय मंत्री थे, जिनका जन्म बोधिसत्व के साथ एक ही दिन हुआ था, और वे बोधिसत्व के साथ कोमल मिट्टी से खेलने वाले सहयोगी थे। तब राजा ने उनसे इस प्रकार कहा: "प्रिय कालुदाई! क्योंकि मैं अपने पुत्र को देखने की इच्छा रखता हूँ, इसलिए मैंने नौ मंत्रियों को नौ हजार सैनिकों के साथ भेजा था; उनमें से एक भी वापस नहीं आया; कोई भी आकर मुझे कोई खबर नहीं देता, यहाँ तक कि वह खबर भी नहीं जो मेरे जीवन के लिए खतरे के बारे में हो; मैं अपने जीवित रहते अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ; क्या आप सचमुच मुझे मेरे पुत्र से मिलवा सकते हैं?" कालुदाई ने उत्तर दिया: "महाराज! मैं ऐसा कर सकता हूँ, यदि मुझे भिक्षु बनने की अनुमति मिल जाए।" राजा ने कहा: "मेरे प्रिय! चाहे तुम भिक्षु बनो या न बनो, कृपया मुझे मेरे पुत्र से मिलवा दो।" कालुदायी ने "बहुत अच्छा! महाराज!" कहते हुए राजा से राजसंदेश लिया, राजगृह गए, गुरु द्वारा धर्मोपदेश के समय सभा के अंतिम छोर पर खड़े होकर धर्म का प्रवचन सुना, अपने साथियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया, "आओ! भिक्षु!" कहकर भिक्षु बन गए और वहीं निवास करने लगे।

3.21. गुरु बुद्ध बनने के बाद, प्रथम वर्षा ऋतु के पूरे समय इसिपताना में रहे और उपवास की समाप्ति पर पवाराना समारोह संपन्न किया, फिर उरुवेला गए, जहाँ तीन माह रहकर उन्होंने गुंथे हुए बालों वाले तीन तपस्वी भाइयों को परिवर्तित किया, और फुस्सा माह की पूर्णिमा के दिन एक हजार भिक्षुओं के दल से घिरे हुए राजगृह गए और वहाँ दो माह रहे। बनारस से प्रस्थान के बाद अब तक पाँच माह बीत चुके थे। शीत ऋतु का पूरा समय बीत चुका था। थेरा कलुदयी के आगमन के बाद से सात-आठ दिन बीत चुके थे। फाग्गुन माह की पूर्णिमा के

दिन, थेरा ने सोचा: "सर्दी समाप्त हो गई है; वसंत ऋतु आ गई है। फसल कटाई के बाद मनुष्यों ने चारों ओर यात्रा के लिए सड़कें बना दी हैं; धरती हरी घास से ढकी हुई है; घने जंगल सुंदर फूलों से खिले हुए हैं; सड़कें अब यात्रा के योग्य हैं; अब दशाबल के लिए अपने सगे-संबंधियों पर कृपा करने का समय आ गया है।" तब थेरा परमेश्वर के पास गए और दशाबल के कुल नगर की यात्रा की प्रशंसा में कम से कम साठ श्लोकों में बोले:

बुद्ध 28

"चूंकि पेड़ पूरी तरह से खिल चुके हैं, इसलिए अब

हे पूज्यवर, गहरे लाल रंग का!

अपने पत्तों के आवरण को त्यागकर वे शुरुआत कर रहे हैं

फल देने के लिए। मानो वे आग की लपटों से चमक रहे हों।

हे महान नायक! अब समय आ गया है कि वे अपने अनुभव साझा करें।

स्वाद। मौसम न तो बहुत ठंडा है और न ही बहुत ठंडा।

गर्म; न तो दान की अत्यधिक कमी है और न ही

अकाल; ज़मीन घास से भरी और हरी है। यह है

हे महान ऋषि, वह समय!

तब गुरु ने उनसे कहा, "हे उदयि! तुम अपनी मधुर वाणी में यात्रा की इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो?" उदयि ने उत्तर दिया, "आदरणीय! आपके पिता, महान राजा सुद्धोदन, आपसे मिलना चाहते हैं, कृपया अपने सगे संबंधियों पर कृपा कीजिए।" बुद्ध ने सहमति जताते हुए कहा, "उदयि! मैं अपने सगे संबंधियों पर कृपा करूंगा; भिक्षुओं के समूह को सूचित कर दीजिए, वे यात्रा के सभी कर्तव्यों का पूर्ण पालन करेंगे।" बुद्ध का उत्तर सुनकर गुरु उदयि ने कहा, "आदरणीय! ठीक है, आदरणीय," और भिक्षुओं को तदनुसार सूचित कर दिया।

3.22. बुद्ध ने अंग और मगध के दस हजार निवासियों और कपिलवस्तु के दस हजार निवासियों, कुल मिलाकर बीस हजार भिक्षुओं (जिन्होंने अपने आसवों को नष्ट कर दिया था और अरहत बन गए थे) से घिरे हुए राजगृह को छोड़कर प्रतिदिन एक योजन की दूरी तय करते हुए अपनी यात्रा पर प्रस्थान किया। उन्होंने मन ही मन कहा, "राजगृह से कपिलवस्तु साठ योजन दूर है, मैं दो महीने में वहाँ पहुँच जाऊँगा।" इस प्रकार बुद्ध ने विश्राम यात्रा पर प्रस्थान किया। थेरा कालुदयी ने भी मन ही मन कहा, "मैं महाराज के प्रस्थान की सूचना राजा को दे दूँगा।" वे आकाश में गए और राजमहल में दर्शन दिए। राजा ने थेरा को देखा, उनका हृदय प्रसन्न हुआ, उन्होंने उन्हें पालकी पर बैठने का निमंत्रण दिया और अपने लिए तैयार किए गए विभिन्न प्रकार के उत्तम स्वाद वाले भोजन से भरा एक कटोरा भेंट किया। थेरा अपने आसन से उठे और प्रस्थान के संकेत दिए। राजा ने निवेदन करते हुए कहा, "कृपया बैठिए और भोजन कीजिए, महाराज।" थेरा ने उत्तर दिया, "हे महाराज! मैं गुरु के पास जाकर भोजन करता हूँ।" राजा ने पूछा, "गुरु कहाँ हैं, महाराज?" थेरा ने उत्तर दिया, "हे महाराज! वे आपसे मिलने के उद्देश्य से बीस हजार भिक्षुओं से घिरे हुए अपनी यात्रा पर निकले हैं।" राजा प्रसन्न होकर बोले, "कृपया इस

भोजन का आनंद लीजिए; जब तक मेरा पुत्र इस नगर में न पहुँच जाए, तब तक कृपया यहीं से उसके लिए भिक्षापात्र एकत्र करें।" थेरा मान गए। राजा ने थेरा का आतिथ्य सत्कार किया, भिक्षापात्र को सुगंधित पाउडर से शुद्ध किया, उसमें उत्तम भोजन सामग्री भरी और थेरा को सौंपते हुए कहा: "कृपा करके इसे तथागत को अर्पित करें।" सभी उपस्थित लोगों के देखते ही थेरा ने कटोरा आकाश में उछाल दिया, स्वयं वायुमंडल में ऊपर गए, भिक्षापात्र लाए और उसे गुरु के हाथों में रख दिया। गुरु ने भोजन का आनंद लिया। इसी प्रकार थेरा प्रतिदिन भिक्षापात्र लाते रहे। गुरु ने भी अपनी पूरी यात्रा के दौरान राजा द्वारा भिक्षा के रूप में दिए गए भोजन को ही ग्रहण किया। थेरा प्रतिदिन भोजन के अंत में यह सूचना देते थे: "आज प्रतापी इतने योजन निकट आ गए हैं; अब, उन्होंने इतनी दूरी तय कर ली है: और बुद्ध के गुणों से संबंधित विषयों पर अपने धार्मिक प्रवचनों से, बिना उन्हें देखे ही, पूरे राजपरिवार को गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा से भर दिया है। इसी कारण परमेश्वर ने उन्हें सर्वोच्च पदों में से एक प्रदान करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! कालुदायी वह हैं, जो मेरे शिष्य भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान रखते हैं और मेरे परिवार के सदस्यों को मुझमें श्रद्धा दिलाते हैं।"

3.23. जब भगवान बुद्ध आए, तो शाक्यों ने भी मन ही मन कहा, "हम अपने सबसे अच्छे रिश्तेदार का स्वागत करेंगे", और वे सब एकत्रित हुए। भगवान बुद्ध के निवास स्थान पर विचार करने के बाद, उन्होंने शाक्यों के निग्रोध वन को रमणीय मानते हुए चुना। उन्होंने सभी तैयारियाँ करवाईं, सुगंधित फूल लिए और सबसे पहले युवा बालक-बच्चियों को, जो हर प्रकार के आभूषणों से सुशोभित थे, उनका स्वागत करने के लिए आगे भेजा। बाद में, उन्होंने राजकुमारियों और राजकुमारियों को आगे भेजा। उनके बीच, उन्होंने स्वयं भगवान बुद्ध को इत्र, फूल आदि से सम्मानित करते हुए, उन्हें अपने साथ निग्रोध वन ले गए। वहाँ, भगवान बुद्ध दो हजार अरहतों से घिरे हुए, बुद्ध के लिए तैयार किए गए उत्तम आसन पर विराजमान हुए। शाक्य जन्मजात अभिमानी और अत्यधिक घमंडी थे। उन्होंने इस प्रकार विचार किया: "राजकुमार सिद्धार्थ हमसे छोटे हैं; वे हमारे सबसे छोटे चचेरे भाई, भतीजे, पुत्र, पोते हैं" और उन्होंने युवा और कनिष्ठ राजकुमारों से इस प्रकार कहा: "आप सभी उन्हें प्रणाम करें; हम आप सभी के पीछे बैठेंगे।"

3.24. जब वे इस प्रकार बिना उनकी आराधना किए बैठे रहे, तब प्रतापी प्रभु ने उनका इरादा जान लिया और कहा, "मेरे सगे-संबंधी मुझे प्रणाम नहीं करते; देखो! मैं अब उन्हें अपनी आराधना करने पर मजबूर करूँगा", फिर चौथे ध्यान में प्रवेश किया, वहाँ से उठे, आकाश में गए और कंद के आम के वृक्ष के नीचे किए गए दो चमत्कारों के समान एक चमत्कार किया, मानो अपने चरणों की धूल उनके सिर पर बिखेर दी हो। उस अद्‌भुत घटना को देखकर राजा ने कहा, "हे पूज्यवर! आपके जन्मदिन पर, जैसे ही मैंने आपके चरणों को दूसरी दिशा में घूमते देखा, मैंने आपके चरणों में प्रणाम किया और जब कालदेवल की पूजा करने के लिए आपको आपके चरणों में बुलाया गया, तो मैं ब्राह्मण ऋषि के सिर पर विराजमान हो गया। यह मेरी पहली प्रणाम थी। हल चलाने के दिन भी, जैसे ही मैंने आपके युजेनिया वृक्ष की स्थिर छाया को देखा, जब आप ******** (पृष्ठ 159) के नीचे शुभ पलंग पर सो रहे थे, मैंने आपके चरणों की पूजा की। यह मेरी दूसरी प्रणाम थी। अब, जब मैं ऐसा चमत्कार देख रहा हूँ जो मैंने पहले कभी नहीं देखा, तो मैं आपके चरणों की पूजा कर रहा हूँ। यह मेरी तीसरी प्रणाम है।" जब राजा ने प्रतापी बुद्ध की पूजा की, तो एक भी शाक्य ऐसा नहीं बचा जो उनकी पूजा किए बिना रह सके। सभी ने स्वाभाविक रूप से उन्हें अपना-अपना सम्मान दिया।

3.25. इस प्रकार अपने सगे-संबंधियों से आराधना करवाने के बाद, भगवान आकाश से अवतरित हुए और अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। जब भगवान बैठे, तो उनके व्याकुल सगे-संबंधी एकत्रित हो गए। वे सब एकाग्रचित्त होकर बैठ गए। इसके बाद एक विशाल वर्षा-बादल से कमल-वर्षा हुई। तांबे के रंग की वर्षा ध्वनि उत्पन्न करती हुई गिरी। इसने केवल उन्हीं को भीगा जो भीगना चाहते थे। जो भीगना नहीं चाहते थे, उनके शरीर पर एक बूंद भी नहीं गिरी। इस घटना को देखकर सभी हृदय और आत्मा से विस्मित हो गए और कहने लगे, "सचमुच, यह अद्‌भुत है! सचमुच, यह विचित्र है!" गुरु ने उत्तर दिया, "केवल अब ही नहीं, मेरे सगे-संबंधियों की सभा पर कमल-वर्षा हुई है, पहले भी वर्षा हुई थी", और इस कथन को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वेस्सन्तरा जन्म-कथा (जातक) सुनाई। धर्म का उपदेश सुनकर सभी शाक्य पुरुष उठे, प्रणाम किया और चले गए। राजा और उनके मंत्रियों में से एक भी ऐसा नहीं था जिसने जाने से पहले कहा हो: "कल कृपया हमारा भोजन-अर्पण स्वीकार करें।"

3.26. अगले दिन, गुरुजी बीस हजार भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु नगर में प्रवेश किया। उन्हें न तो किसी ने आमंत्रित किया और न ही किसी ने उनका भिक्षापात्र ग्रहण किया। गुरुजी नगर के द्वार के स्तंभ के पास खड़े होकर मन ही मन सोचने लगे, “पूर्ववर्ती बुद्ध अपने कुल नगर में भिक्षा मांगने के लिए कैसे विचरण करते थे? क्या वे शासकों के घरों में वरीयता क्रम से जाते थे? या फिर क्या वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगने का धुतंग अभ्यास करते थे?” इसके बाद, यह देखकर कि पूर्ववर्ती बुद्धों में से कोई भी अपने शाही रिश्तेदारों के पास भोजन के लिए नहीं गया, उन्होंने मन ही मन कहा, “मुझे भी अब उनकी इस परंपरा का पालन करना चाहिए; भविष्य में भी, मेरे शिष्य मेरे ही उदाहरण का अनुसरण करते हुए भिक्षा मांगने के कर्तव्य को पूर्णतः निभाएंगे”, और वे स्वयं उस घर से भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े जहाँ से वे प्रवेश कर चुके थे। दो मंजिला, तीन मंजिला आदि आलीशान अपार्टमेंटों में शेर के पिंजरे जैसी खिड़कियां खोलकर बड़ी संख्या में लोग उन्हें ध्यान से देखने में व्यस्त थे और आपस में कह रहे थे: "लोग कहते हैं कि हमारे स्वामी राजकुमार सिद्धार्थ भिक्षा मांगने के लिए घूमते हैं।"

बुद्ध का जीवन 041

3.27. राहुल की माता ने भी अपने कमरे की खिड़की खोली और मन ही मन कहा, “कहा जाता है कि हमारे युवा स्वामी पहले इसी नगर में राजसी वैभव के साथ सोने की पालकियों आदि पर विचरण करते थे, अब भिक्षा मांगने के लिए बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, हाथों में भिक्षापात्र लिए घूम रहे हैं; क्या यह वाकई शोभा देता है?” उन्होंने बाहर देखा और पाया कि प्रतापी बुद्ध, अतुलनीय महिमा से जगमगाते हुए, एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस गुणों से सुशोभित, अपने अस्सी छोटे अंगों से दीप्तिमान, अपनी एक-दस मीटर लंबी किरणों को भलीभांति प्रदर्शित करते हुए, शहर की सड़कों को अपने रागों (या हर प्रकार की कामुकता से रहित, या विभिन्न रंगों (विराग) से दीप्तिमान शरीर की चमक से रोशन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने अपने सिर के मुकुट से लेकर पैरों के तलवों तक दस स्वरों से प्रतापी की स्तुति की। नर-सिंह श्लोक (नरसिहगाथा) इस प्रकार:-

शेर मनमोहक नीले मुलायम बालों वाला है

लहराते बाल; उसका माथा बेदाग जैसा दिखता है

सूर्य की सतह, उसकी नाक आनुपातिक रूप से है

प्रमुख, कोमल और लंबा; उसकी किरणों की चमक

व्यापक रूप से विकिरण करना,

और राजा को इस प्रकार सूचित किया: "आपका पुत्र अपना भिक्षा-भोजन इकट्ठा करने जा रहा है"।

बुद्ध का जीवन 039

राजा का मन व्याकुल हो गया, उन्होंने अपने वस्त्र स्वयं ठीक किए, अपने महल से शीघ्रता से बाहर निकले और तेजस्वी के पास पहुँचकर उनके सामने खड़े होकर पूछा, “हे पूज्यवर! आप हमें कब अपमानित कर रहे हैं? आप भिक्षा क्यों माँग रहे हैं? आपने हमें यह क्यों नहीं बताया कि इतने भिक्षुओं के लिए भोजन जुटाना संभव नहीं है?” उत्तर था, “हे महाराज! यह भिक्षा माँगना हमारी खानदानी परंपरा है।” राजा ने उत्तर दिया, “हे पूज्यवर! क्या हमारा वंश महासम्मत क्षत्रिय के नाम से नहीं जाना जाता? हमारी परंपरा में ऐसा कोई क्षत्रिय नहीं है

जो भिक्षा माँगता हो।" बुद्ध सड़क पर खड़े-खड़े ही उत्तर देने लगे: "हे महान राजा! आपका कुल, अर्थात्, यह क्षत्रिय वंश है; परन्तु हमारा वंश, जिसमें 'दीपांकर, कोण्डञ्ञ, कस्सपा' शामिल हैं, यही है, अर्थात् बुद्ध का वंश; ये और हजारों अन्य बुद्ध भी भिक्षा मांगकर ही अपना जीवन यापन करते थे", और उन्होंने यह श्लोक पढ़ा:-

आपको प्रयास करना होगा; आपको निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए।

लापरवाही; आपको धर्म का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए ताकि यह

अच्छा अभ्यास; जो धम्म का अभ्यास करता है, वह जीवन यापन करता है।

(सेती) इस दुनिया में और अपनी दुनिया में भी खुशी से

बाद का अस्तित्व।"

श्लोक के पाठ के अंत में, राजा सोतापत्ति के फल (समाधि/तंद्रा) में स्थापित हो गए। यह सुनकर एक और श्लोक:

धम्म का अभ्यास इस प्रकार करो कि वह अच्छा अभ्यास बन जाए;

इसका अभ्यास इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए कि यह एक बुरी आदत बन जाए।

अभ्यास; जो धम्म का अभ्यास करता है, वह जीवन यापन करता है।

इस जीवन में और यहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक रहना-

बाद में,"

राजा सकदागामी समाधि (सम्मोहन) में स्थापित हो गए, जो केवल एक बार ही मानव जन्म लेंगे। महा-धम्म-पाल-जातक जन्म-कथा 447 सुनकर, राजा अनागामी (जो कभी मानवलोक में नहीं लौटेंगे) की समाधि में स्थापित हो गए। मृत्यु के निकट, राजा सफेद छत्र के नीचे अपने सुंदर शाही पलंग पर लेटे हुए ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। राजा ने वन में रहकर गहन ध्यान में लीन होने का कोई आडंबर नहीं किया। जैसे ही उन्होंने मोक्ष की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति समाधि) को प्राप्त किया, राजा ने बुद्ध का कटोरा उठाया, उन्हें और उनके अनुयायियों को अपने महल में आमंत्रित किया और उन सभी को उत्तम भोजन से दावत दी। भोजन समाप्त होने के बाद, राजमहल की माता को छोड़कर सभी स्त्रियाँ राजमहल से आकर प्रभु को प्रणाम करने लगीं। यद्यपि उनके आसपास के लोग उनसे कह रहे थे, "कृपया जाइए; प्रभु को प्रणाम कीजिए", फिर भी वे नहीं गईं और बोलीं, "यदि मुझमें योग्यता है, तो प्रभु स्वयं मेरे पास आएँगे; उनके आने पर ही मैं उन्हें प्रणाम करूँगी।"

3.28. प्रतापी प्रभु ने अपना भिक्षापात्र राजा को सौंप दिया, अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ राजसी राजकुमारी के सुंदर कक्ष में गए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठते हुए कहा: "जब राजकुमारी अपनी इच्छा अनुसार प्रणाम करे, तब कुछ न कहा जाए।" वह शीघ्र ही आई, उनके टखनों को पकड़ा, अपना सिर उनके चरणों में रखा और अपनी इच्छा अनुसार उनकी आराधना की। राजा ने राजकुमारी की उन योग्यताओं के बारे में बताया जो उन्होंने भगवान के प्रति स्नेह और श्रद्धा के रूप में प्राप्त की थीं: "हे पूज्यवर! मेरी पुत्री ने जब सुना कि आपने पीले वस्त्र, ऊपर और नीचे, पहने हैं, तब से वह भी पीले वस्त्र पहनने लगी; जब उसने सुना कि आप केवल एक बार भोजन करते हैं, तो वह भी उसी प्रकार एक बार भोजन करने लगी; जब उसने सुना कि आपने सोने के लिए आलीशान पलंग का त्याग कर दिया है, तो वह भी केवल एक कपड़े की पट्टी वाले पलंग पर सोने लगी; जब उसे पता चला कि आप मालाओं, इत्र आदि का त्याग करते हैं, तो वह भी मालाओं और इत्र का त्याग करने लगी; यद्यपि उसके अपने रिश्तेदारों ने संदेश भेजकर कहा: "हम आपकी देखभाल करेंगे", फिर भी उसने उनमें से किसी की ओर देखा तक नहीं; हे पूज्यवर! इस प्रकार मेरी पुत्री ने अपनी योग्यता प्राप्त कर ली है।" बुद्ध ने उत्तर दिया: "महाराज! यह बात विचित्र नहीं है, क्योंकि अब आपकी देखरेख में, जब राजकुमारी की बुद्धि परिपक्व हो गई है, तो वह अपना ध्यान स्वयं रख सकती है; पहले तो यह राजकुमारी, यद्यपि उसे पहाड़ी की तलहटी में असुरक्षित भटकना पड़ता था और उसकी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई थी, फिर भी वह अपना ध्यान स्वयं रखती थी।" ऐसा कहकर, बुद्ध ने किन्नरा की जन्म कथा (चंदा-किन्नरा-जातक) 485 सुनाई, अपने आसन से उठे और चले गए।

3.29. अगले दिन, जब राजकुमार नंदा के नए घर में प्रवेश और विवाह समारोह के उपलक्ष्य में भोज आयोजित किए जा रहे थे, बुद्ध उनके घर गए, उन्हें भिक्षु बनाने की इच्छा से उन्हें अपना भिक्षापात्र पकड़ने को कहा, औपचारिक भाषण दिया, अपने आसन से उठे और चले गए। राजकुमार को जाते देख राजकुमारी जनपद कल्याणी ने उनसे कहा, "हे मेरे स्वामी, जल्दी लौट आइए!" और गर्दन उठाकर उनकी ओर देखने लगीं। भगवान से "कृपया अपना भिक्षापात्र वापस ले लीजिए" कहने में असमर्थ होने के कारण, वे मठ पहुँचने तक उनके साथ चले गए। उनकी इच्छा के विरुद्ध ही, भगवान ने उन्हें भिक्षु बना दिया। इस प्रकार, कपिलवस्तु नगर में आगमन के तीसरे दिन, भगवान ने राजकुमार नंदा को भिक्षु बना दिया।

बुद्ध का जीवन 042

3.30. सातवें दिन, राहुल की माता ने भी युवा राजकुमार को सजाया-संवारा और उसे इन शब्दों के साथ भगवान के समक्ष भेजा: “मेरे प्रिय पुत्र! इस भिक्षु को देखो, जिनका रंग ब्रह्मा के समान है, जो स्वर्ण रंग के हैं, बीस हजार भिक्षुओं से घिरे हुए हैं; वे तुम्हारे पिता हैं; उनके पास सोने का अपार खजाना है; हमने उन्हें उनके संन्यास के समय से नहीं देखा है; जाओ और उनसे अपना उत्तराधिकार मांगो, ‘मेरे प्रिय पिता! मैं, आपका राजकुमार, अभिषेक प्राप्त करके विश्वराज बनूंगा; मुझे धन की आवश्यकता है; कृपया मुझे धन दीजिए; वास्तव में, पुत्र ही पिता की संपत्ति का स्वामी होता है।’” युवा राजकुमार जैसे ही भगवान के समक्ष पहुंचा, उसे पिता तुल्य स्नेह प्राप्त हुआ, वह प्रसन्न हुआ और बोला: “हे भिक्षु! आपकी परछाई धन्य है” और अपने विषय के अनुरूप अनेक अन्य बातें कहने लगा। भोजन समाप्त करने के बाद, परम पूज्य गुरु ने धन्यवाद भाषण दिया, अपने आसन से उठे और प्रस्थान किया। युवा राजकुमार भी परम पूज्य गुरु के पीछे-पीछे यह कहते हुए चले: “हे भिक्षु! कृपया मुझे मेरा उत्तराधिकार प्रदान करें; कृपया मुझे मेरा उत्तराधिकार प्रदान करें; कृपया मुझे मेरी विरासत प्रदान करें।” परम पूज्य गुरु ने युवा राजकुमार को वापस नहीं लौटने दिया। आसपास के लोगों ने भी युवा राजकुमार को, जो परम पूज्य गुरु के साथ जा रहे थे, वापस नहीं लौटने दिया। इस प्रकार, युवा राजकुमार परम पूज्य गुरु के साथ सीधे मठ चले गए।

बुद्ध 26

3.31. इसके बाद, भगवान ने मन ही मन सोचा, “पिता के पास जो भी धन है, यह व्यक्ति उसे पाने की इच्छा रखता है, जो पुनर्जन्मों के चक्र में बांधता है और विनाश लाता है; अब मैं इसे वह सात प्रकार का पवित्र धन दूंगा जो मैंने बोधि वृक्ष के प्रांगण में प्राप्त किया था; मैं इसे अलौकिक उत्तराधिकार का स्वामी बना दूंगा,” और आदरणीय सारिपुत्त से कहा, “तो फिर, सारिपुत्त! राहुल को भिक्षु संघ में शामिल

होने दो।" थेरा ने उन्हें नवोदित भिक्षु बना दिया। जब युवा राजकुमार नवोदित भिक्षु बन गया, तो राजा को घोर कष्ट भोगना पड़ा। उस पीड़ा को सहन न कर पाने के कारण राजा परम पूज्य के समक्ष गए और उनसे एक वरदान मांगा: "हे पूज्य! यह अच्छा होगा यदि मेरे प्रभु माता-पिता की सहमति के बिना पुत्र का विवाह न कराएं।" परम पूज्य ने उन्हें वरदान दिया और अगले दिन, राजमहल में भोजन करने के बाद, जब राजा, जो एक तरफ बैठे थे, ने कहा: "हे पूज्य! जब आप कठिन कर्म कर रहे थे, तभी एक देवता मेरे पास आए और बोले: 'आपका पुत्र मर गया है'।" उनकी बातों पर विश्वास न करते हुए, मैंने उनकी खबर को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया: 'मेरा पुत्र बुद्ध बनकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए बिना नहीं मरेगा'। इस पर प्रतापी ने उत्तर दिया: "अब तुम ऐसी कहानी पर कैसे विश्वास कर सकते हो, जबकि पहले भी तुमने उन लोगों पर विश्वास नहीं किया था जिन्होंने तुम्हारे पुत्र की मृत्यु की कहानी सुनाते हुए हड्डियाँ दिखाई थीं?" और इस घटना के लिए महादम्मपालों की जन्म-कथा (447 जातक कथा) सुनाई। प्रवचन के अंत में, राजा अनागामी (अनागामी) के फल में स्थापित हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2 घंटे कई मठों की स्थापना

स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान भाग - 1.2 : गौतम बुद्ध

1.2h मठों की स्थापना

Lifeofbuddha045

3.32. जब उन्होंने इस प्रकार अपने पिता को तीनों गुणों में स्थापित कर दिया, तो प्रतापी बुद्ध अगले दिन राजगृह गए और शीतल वन (जीतवन) में निवास करने लगे। उस अवसर पर, एक धनी गृहस्थ, अनाथपिंडिका, पाँच सौ गाड़ियों में माल लेकर राजगृह गए और अपने प्रिय सहयोगी, एक बैंकर के घर पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह समाचार सुना कि बुद्ध का पुनरुत्थान हुआ है, वे सुबह बहुत जल्दी, देवताओं की शक्ति से खुले नगर द्वार से होकर गुरु के पास गए, धर्म सुना, पवित्रता के प्रथम चरण (सोतापत्ति) के गुण में स्थापित हुए, और दूसरे दिन बुद्ध के नेतृत्व में पुरोहितों को दान का एक बड़ा दान दिया; उन्होंने गुरु की अनुमति से सावत्थी आने का मार्ग अपनाया, वापसी में 45 योजन दूर एक स्थान पर एक लाख का दान दिया, प्रत्येक योजन पर मठ बनवाए, 18 करोड़ सोने के सिक्कों की कीमत पर जेतवन खरीदा और करोड़ों सोने को जेतवन की भूमि पर सोने के सिक्कों की एक बड़ी चादर की तरह फैलाकर उस पर नौ श्रेणियों के नवनिर्मित भवन बनवाए। जेतवन के केंद्र में उन्होंने दशबल (दस शक्तियों वाले बुद्ध) के लिए एक सुगंधित मंदिर बनवाया। इसके चारों ओर उनके 80 प्रमुख शिष्यों के लिए अलग-अलग आवासीय मठ बनवाए गए। शेष मठ एकल कुटिया, दोहरी कुटिया, हंस के आकार की गोलाकार संरचना, लंबे और छोटे हॉल, पंडाल आदि के रूप में थे, जिनमें कमल का तालाब, गलियारे, रात्रि विश्राम स्थल और दिन विश्राम स्थल भी शामिल थे। इस प्रकार अठारह करोड़ स्वर्ण सिक्कों का बलिदान देकर एक रमणीय भूमि पर एक सुंदर मठ का निर्माण करवाकर अनाथपिंडिका ने दसबल (बुद्ध) को आमंत्रित करने के लिए एक दूत भेजा। उनका संदेश सुनकर, गुरु, भिक्षुओं के एक विशाल समूह से घिरे हुए, राजगृह से चले आए और अंततः सावत्थी नगर पहुँचे।

3.33. महान धनदाता ने विशाल मठ को तैयार करवाया और जिस दिन तथागत जेतवन मठ में प्रवेश किया, उस दिन उन्होंने अपने पुत्र को, जो उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित था, पाँच सौ युवतियों के साथ भेजा, जो समान रूप से सुसज्जित और अलंकृत थे। धनदाता के पुत्र और उनके दल ने पाँच रंगों के चमकीले वस्त्रों से बने पाँच सौ झंडे लिए और दशाबल के सामने विराजमान हो गए। उनके पीछे धनदाता की दो पुत्रियाँ, महासुभाद्धा और चूलासुभाद्धा, पाँच सौ युवतियों के साथ हाथों में जल से भरे घड़े लिए गुरु से मिलने गईं। इन दोनों पुत्रियों और उनके दल के पीछे धनदाता की पत्नी, उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित, पाँच सौ स्त्रियों के साथ हाथों में भोजन से भरे कटोरे लिए निकलीं। उन सबके पीछे, नए वस्त्र पहने हुए महान बैंकर, अपने पाँच सौ साथी बैंकरों के साथ, जो समान रूप से नए वस्त्र पहने हुए थे, परम पूज्य बुद्ध से मिलने के लिए निकले। भक्तों की इस सभा को अपने आगे रखते हुए, परम पूज्य बुद्ध, भिक्षुओं के एक विशाल समूह से घिरे हुए, जेतवन मठ में प्रवेश कर गए। उनकी असीम महिमा और अनंत कृपा से, उनके शरीर की किरणों के माध्यम से, वन का भीतरी भाग मानो स्वर्णमय सार से अभिषेक और विरक्त हो गया था।

3.34. तब अनाथपिंडिका ने विनम्रतापूर्वक उनसे पूछा: "हे धनी गृहस्थ! मुझे इस मठ में क्या विधि अपनानी चाहिए?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे धनी गृहस्थ! यह मठ चारों दिशाओं से आने वाले और अभी तक न आने वाले भिक्षुओं के लिए समर्पित रहे।" यह कहते हुए, "बहुत अच्छा, हे आदरणीय!" महान धनी अपने साथ सोने का जलपात्र लाए, दशबल (बुद्ध) के हाथों में जल डाला और इस प्रकार भेंट की: "मैं इस जेतवन मठ को बुद्ध के नेतृत्व में चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुओं के संगठन को भेंट करता हूँ, चाहे वे आ चुके हों या न आए हों।" गुरु ने मठ का कार्यभार संभाला और धन्यवाद करते हुए मठ दान करने के लाभों के बारे में इस प्रकार बताया:

"यह मठ सर्दी और गर्मी से बचाव करता है।"

इसके अलावा, यह जंगली जानवरों से भी सुरक्षा प्रदान करता है;

रेंगने वाले जीव और मच्छर,

यह ओस की बूंदों के साथ-साथ बारिश की बौछारों को भी रोकता है।

इसके अलावा, यह हिंसक विद्रोह को बाधित करता है।

तूफान और गर्मी। यह आश्रय के लिए उपयुक्त है।

और आराम, ध्यान में प्रवेश करने और करने के लिए

विपश्यना ध्यान।

धर्मार्थ रूप से मठ का दान

पुरोहितों द्वारा सर्वश्रेष्ठ के रूप में सराहा गया है

इसलिए, वास्तव में, एक बुद्धिमान व्यक्ति, यह देखकर

अपने स्वयं के लाभ के लिए उसे रमणीय मठों का निर्माण करना चाहिए।

टेरीज़ और अत्यधिक विद्वान भिक्षुओं को

उनमें रहते हैं। भोजन और पेय पदार्थ, कपड़े और

जो लोग

शुद्ध निष्ठा के साथ सीधा-सादा रवैया।

वे उसे धर्म का उपदेश देते, जिससे...

सभी कष्टों को दूर करने वाला। एक मठ का दानकर्ता

इस धर्म को जानने से मुक्ति मिलेगी।

आसव (कैंकर) से मुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करें।

दूसरे दिन से ही अनाथपिंडिका ने विशाल मठ की देखरेख शुरू कर दी। विशाखा का विशाल मठ चार महीनों में बनकर तैयार हो गया। वहीं, अनाथपिंडिका का विशाल मठ नौ महीनों में बनकर तैयार हुआ। अठारह करोड़ रुपये की उतनी ही राशि दान के रूप में विशाल मठ के निर्माण में भी खर्च हुई। इस प्रकार, अनाथपिंडिका ने केवल एक ही मठ पर अपनी संपत्ति चौवन करोड़ रुपये दान में खर्च कर दी।

3.35. बहुत समय पहले, परम पूज्य विपस्सी (पूर्व बुद्ध) के समय, पुनब्बासुमित्त नामक एक धनाढ्य व्यापारी ने पूरी भूमि पर सोने की ईंटें बिछाकर उसे खरीदा और उसी स्थान पर पुरोहितों का एक मठ (संघराम) बनवाया, जिसका क्षेत्रफल एक योजन था। परम पूज्य सिखि (पूर्व बुद्ध) के समय, श्रीवाद्ध नामक एक धनाढ्य व्यापारी ने एक भूमि को सोने के हल के फालों से ढककर खरीदा और उसी स्थान पर पुरोहितों का एक मठ बनवाया, जिसका क्षेत्रफल तीन गावूत था। परम पूज्य वेसभु (पूर्व बुद्ध) के समय, सोत्थिया नामक एक धनाढ्य व्यापारी ने एक भूमि को सोने के हाथी के चरणों से ढककर खरीदा और उसी स्थान पर पुरोहितों का एक मठ बनवाया, जिसका क्षेत्रफल आधा योजन था। परम पूज्य काकुसंध (पूर्व बुद्ध) के समय, अच्चुत नामक एक धनाढ्य ने पूरे क्षेत्र में सोने की ईंटें बिछाकर एक भूमि खरीदी और उसी स्थान पर गावुता क्षेत्रफल में पुरोहितों के लिए एक मठ का निर्माण किया। परम पूज्य कोनागमना (पूर्व बुद्ध) के समय, उगा नामक एक धनाढ्य ने पूरे क्षेत्र में सोने के कछुए बिछाकर एक भूमि खरीदी और उसी स्थान पर सोलह एकड़ (करीसा) क्षेत्रफल में पुरोहितों के लिए एक मठ का निर्माण किया। परन्तु हमारे परम पूज्य बुद्ध के समय, अनाथपिंडिका नामक धनाढ्य ने वह भूमि खरीदी जो समस्त बुद्धों का पवित्र स्थान है।

3.36. इस प्रकार, परम पूज्य भगवान ने महान बोधि वृक्ष की छत पर सर्वज्ञता प्राप्त करने के समय से लेकर पूर्णतम अमर शांति (परिनिर्वाण) की ओर प्रस्थान करने के लिए शयनगृह में जाने तक अमुक स्थान पर निवास किया। इसे सन्तिक निदान (निकटवर्ती प्रस्तावना) के रूप में जाना जाता है।

प्रस्तावनाओं पर चर्चा यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> 1.2i बुद्ध अपने बारे में बताते हैं
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
11.2i बुद्ध अपने बारे में बोलते हैं: अतीत की महिमा, अच्छे कर्म और बुरे कर्म
1.1परिचय
1.2बुद्ध अपने बारे में बोलते हैं
1.3बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए प्राप्त सिद्धियों और अच्छे कर्मों के कारण अतीत की महिमा

1.3.1अतीत की महिमा
1.3.2दान और पुण्य संचय
1.3.3दान, शील, त्याग, संबोधि और निर्वाण में पूर्णता
1.4पिछले जन्मों में किए गए अक्षम्य गलत कर्मों की सूची
1.4.1पूर्व बुद्ध कश्यप के विरुद्ध अहंकारवश अनुचित वाणी का प्रयोग करने के कारण, अब बुद्ध बनने के लिए लंबे और कठिन मार्ग पर कष्ट भोग रहे हैं।
1.4.2मौन बुद्ध पर झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म, फिर नरक में कष्ट भोगने और अब विरोध पर
1.4.3बुद्ध के शिष्यों द्वारा प्रदर्शित उड़ने की जादुई शक्ति
1.4.4पल भर में उगने वाले और कभी न खत्म होने वाले फलों से भरपूर आम के पेड़ की जादुई शक्ति का प्रदर्शन।
1.4.5स्वर्ग में जादुई शक्तियों का प्रदर्शन करना और वहाँ अपनी माँ को शिक्षा देना
1.4.6एक पूर्व बुद्ध शिष्य पर यौन दुराचार का झूठा आरोप लगाने के पूर्व कर्म के फल पर, अब झूठे आरोप का सामना कर रही महिला सिंका-मनविका द्वारा लिखित लेख
1.4.7मौन बुद्ध पर यौन दुराचार का झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म पर, अब लेडी सुंदरिका द्वारा झूठे आरोप की बदनामी का सामना करना पड़ रहा है
1.4.8यौन दुराचार के लिए एक तपस्वी पर झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म पर, अब मठ में सुंदरिका का मृत शरीर मिलने के घोटाले का सामना करना पड़ रहा है
1.4.9अपने भाई को पत्थर से मारने के पिछले कर्मों के कारण, अब चचेरे भाई द्वारा फेंके गए पत्थर से घायल हो रहा है
1.4.10मौन बुद्ध पर पत्थर फेंकने के पिछले कर्म के कारण, अब पत्थर के टुकड़े से चोट लग रही है
1.4.11मौन बुद्ध को हाथी से मारने के पिछले कर्म पर, अब नालगिरी हाथी द्वारा हमला किया जा रहा है
1.4.12तलवार से लोगों को मारने के पिछले कर्मों के कारण, अब पैर में चोट लगी है और उसकी सर्जरी हो रही है
1.4.13मछलियों को मारने का आनंद लेने के पिछले कर्मों के कारण, अब लगातार सिरदर्द हो रहा है
1.4.14पिछले बुद्ध को अच्छा भोजन देने से इनकार करने के पिछले कर्म पर, अब घोड़ों का चारा खाना पड़ रहा है
1.4.15पहलवान की पीठ तोड़ने के पिछले कर्म के कारण, अब लगातार पीठ दर्द हो रहा है
1.4.16चिकित्सक के रूप में गलत इलाज के पिछले कर्मों के कारण, अब निर्वाण से पहले पेचिश हो रही है

1.2i बुद्ध अपने बारे में बोलते हैं: अतीत की महिमा, अच्छे कर्म और बुरे कर्म

परिचय
थेरापदान

बुद्ध पर अध्याय

आंतरिक प्रस्तावना पर टिप्पणी
5. "अब, बुद्धों की जीवनियाँ सुनें"
शुद्ध हृदय से। असंख्य हैं
धर्म के सम्राट, जो स्वयं
तीस सिद्धियों को पूरा किया।
5.1. इस श्लोक में पाली शब्द 'अथ' एक क्रियाविशेषण कण (निपात) है, जिसका अर्थ है कि यह रूप के सिद्धांत को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। दो प्रकारों में से, एक वर्गीकरण योग्य और दूसरा जो वर्गीकरण योग्य नहीं है, यह क्रियाविशेषण कण वर्गीकरण योग्य है। (पृष्ठ 171)
व्याकरण में 'अथा' शब्द का प्रयोग किस स्थिति में होता है?
सेवा और भाग्य (मांगला) का, उपलब्धि का-

निरंतर उल्लेख और पुष्टि या जोर
होना और चले जाना।
तो वास्तव में, भी,-
"यह एक विशेष क्रिया, एक विशेष को दर्शाता है
परिस्थिति और विशेष उद्देश्य।
सर्वश्रेष्ठ और वरिष्ठतम व्यक्ति को ही सेवा सौंपी जाती है।"

इस प्रकार कहे जाने के कारण, बुद्धों के विशिष्ट कार्यों, उनके द्वारा तीसों सिद्धियों को पूर्ण करने हेतु किए गए कर्मों, और सर्वोत्कृष्ट एवं वरिष्ठतम सेवा के संदर्भ में, जीवनियों के लिए उपयुक्त शब्द 'अथ' का प्रयोग उचित है। तीनों प्रकार के बोधिसत्वों की पूजा के मंगला आशीर्वाद के स्वरूप के कारण, जैसे कि: "जिनका सम्मान करना उचित है, उनका सम्मान करो; यही सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद है", जीवनियों के लिए उपयुक्त शब्द 'अथ' (आशीर्वाद) का प्रयोग उचित है। बुद्धों आदि सहित तेजस्वी पुरुषों द्वारा अंतिम अवस्था (अरहत्तमग्ग) के माध्यम से उचित उपलब्धियों को प्राप्त करने के कारण, जीवनियों के लिए उपयुक्त शब्द 'अथ' (सिद्धि) का प्रयोग उचित है। बुद्धों आदि के लिए अरहत बनने के मार्ग आदि जैसे पुण्य कर्मों के अलावा किसी अन्य पुण्य कर्म के अभाव में, पुष्टि और अस्वीकृति को दर्शाने वाले व्याकरणिक शब्द 'अथ' का प्रयोग ही जीवनियों के लिए उचित है। चूंकि इसे खुद्दकपाठ संग्रह के ठीक बाद समूहीकृत किया जाना है, इसलिए निरंतरता को दर्शाने वाले व्याकरणिक शब्द 'अथ' का प्रयोग ही जीवनियों के लिए उचित है। चूंकि यह कहा गया है कि इसके बाद खुद्दकपाठ से प्रारंभ होकर, 'अथ' का प्रयोग ही जीवनियों के लिए उचित है, जिसका अर्थ है दूर जाना।

5.2. यहाँ पाली शब्द बुद्ध की व्याख्या इस प्रकार की जानी है: वे बुद्ध हैं क्योंकि उन्होंने आर्य सत्यों को समझा; क्योंकि वे जीवों को ज्ञान प्रदान करते हैं, वे बुद्ध हैं; वे बुद्ध हैं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं; क्योंकि वे सब कुछ देखते हैं, वे बुद्ध हैं; वे बुद्ध हैं क्योंकि उनका नेतृत्व कोई अन्य मनुष्य नहीं कर सकता; वे बुद्ध हैं क्योंकि वे विषरहित हैं; क्योंकि उन्हें आसव का नाश करने वाला माना जा सकता है, वे बुद्ध हैं; क्योंकि उन्हें कुष्ठ रोग से रहित माना जाता है, वे बुद्ध हैं; क्योंकि उन्हें संन्यासी माना जाता है, वे बुद्ध हैं; क्योंकि वे अद्वितीय, अकेले खड़े थे, वे बुद्ध हैं; क्योंकि उन्होंने भोग-विलास का त्याग किया, वे बुद्ध हैं; बुद्ध वे हैं जिन्होंने एकमात्र सही मार्ग का अनुसरण किया; वे बुद्ध हैं क्योंकि वे अकेले ही अतुलनीय पूर्ण ज्ञान (संबोधि) प्राप्त करने के बाद स्वयंभू बुद्ध बन गए। अज्ञान के नाश और उचित ज्ञान प्राप्ति के कारण ही वे बुद्ध हैं; पाली भाषा के इन शब्दों - बुद्धि, बुद्धम् और बोधो - में कोई भेद नहीं है। जैसे नीले रंग आदि से जुड़ाव के कारण किसी वस्त्र को "नीला वस्त्र और लाल वस्त्र" कहा जाता है, वैसे ही बुद्ध के गुणों से जुड़ाव के कारण वे बुद्ध हैं। दूसरे शब्दों में, चार सही मार्गों का ज्ञान ही "बोधि" कहलाता है। पंद्रह सौ प्रकार के पापमय दुराचारों (किलेसा) से बने शत्रुओं के समूह को पराजित करने पर निर्वाण प्राप्ति का ज्ञान उत्पन्न होता है; ऐसा ज्ञान ही "बोधि" कहलाता है। जो व्यक्ति उस ज्ञान से उचित रूप से जुड़ा हुआ (संपयुत्त) है और उसे प्राप्त करता है, वह बुद्ध है। उसी ज्ञान के माध्यम से, मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध) भी सभी किलेसाओं को पराजित करके निर्वाण प्राप्त करते हैं। लेकिन बुद्धों के मामले में, इस तथ्य के कारण कि उन्होंने स्वयं ही छह प्रकार के अद्वितीय ज्ञान प्राप्त किए, जैसे: इंद्रियों (इन्द्रिय) की परिपक्वता या अपरिपक्वता का ज्ञान, योग्य लोगों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने का ज्ञान, जुड़वां चमत्कार करने का ज्ञान, सर्वज्ञता का ज्ञान, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि में बाधा के अभाव (अनावरण) का ज्ञान, अपनी इच्छा को तुरंत पूर्ण करने का ज्ञान (आसयनसय), आदि; इस तथ्य के कारण कि उन्होंने धर्म के एक ही उपदेश के माध्यम से असंख्य प्राणियों को धर्म का अमर जल पिलाया और उन्हें निर्वाण प्राप्त कराया; और इस तथ्य के कारण कि ये छह प्रकार के ज्ञान केवल बुद्धों द्वारा ही प्राप्त किए गए थे, अनगिनत कल्पों के चार बहुत लंबे कालों के अलावा एक लाख कल्पों में पूर्णता प्राप्त करने के बाद, केवल उन सर्वज्ञ बुद्धों की जीवनियों का अभिलेखन ही बुद्धों की जीवनियाँ, बुद्धपादन है। गुण-दोष के आधार पर वह जीवनी दो प्रकार की होती है। मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध) सर्वज्ञ बुद्धों के समान कार्य करने में सक्षम नहीं होते हैं। (पृष्ठ 173)भोजन आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं के दानदाताओं को लाभकारी सहायता प्रदान करने में, मौन बुद्धों ने केवल इन दो श्लोकों के माध्यम से ही धम्म का उपदेश दिया:

आपकी सभी इच्छाएं और आकांक्षाएं शीघ्र पूरी हों।
पूर्ण हुआ। पंद्रहवीं बढ़ती हुई राशि की तरह-
शुभ दिन, आपके मनोकामनाएं साकार हों।
आपकी सभी इच्छाएं और आकांक्षाएं पूरी हों।
ज्योतिरसमानी रत्न की तरह शीघ्रता से,
आपकी मनोकामनाएं साकार हों।

उपदेश देने के बावजूद, मौन बुद्ध असंख्य प्राणियों को ज्ञान प्रदान करने में सक्षम नहीं होते। इसलिए, सर्वज्ञ बुद्ध के समान न होने के कारण, मौन बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) ऐसे हैं जो एक-एक करके स्वयं बुद्ध बन जाते हैं। उनके जीवन वृत्तांत को मौन बुद्धों का जीवन वृत्तांत (पच्चेकबुद्धपादन) कहा जाता है।

5.3. थेरा वे हैं जो लंबे समय तक भिक्षु रहे हों। दूसरे शब्दों में, थेरा वे भिक्षु हैं जो उपदेश, अभ्यास, सौम्यता आदि गुणों से दृढ़तापूर्वक जुड़े होते हैं। दूसरे शब्दों में, थेरा वे भिक्षु हैं जो ठोस रूप से उत्कृष्ट उपदेश, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और बौद्धिक अंतर्दृष्टि जैसे गुणों से जुड़े होते हैं। दूसरे शब्दों में, थेरा वे भिक्षु हैं जिन्होंने ठोस उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, अर्थात् सबसे श्रेष्ठ और अतुलनीय शांतिपूर्ण निर्वाण की प्राप्ति। थेराओं की जीवनियों को थेरापदान कहा जाता है। इसी प्रकार, थेरी वे भिक्षुणी हैं जो थेराओं के समान गुणों से जुड़ी होती हैं। थेरियों की जीवनियों को थेरियों की जीवनियाँ कहा जाता है। इनमें से, बुद्धों की जीवनी (अपदान) में पाँच जीवनियाँ और पाँच सूत्र हैं। इसलिए, प्राचीन विद्वानों ने कहा:

"पापादना पाँच हैं, जिनमें से..."
पांच सुत्तंत भी हैं। यह जीवनी है।
बुद्धों के बारे में, सर्वप्रथम, उचित क्रम में
अनुक्रम।"

5.4. मौन बुद्धों (पच्चेकबुद्ध) के अपदान में भी पाँच अपदान और पाँच सूत्र हैं। इसलिए, प्राचीन ऋषियों ने कहा:

"पापदनाएँ पाँच हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं..."
पांच सुत्तंत भी हैं। यह जीवनी है।
मौन बुद्धों (पच्चेकबुद्ध) में दूसरे स्थान पर
अनुक्रम का उचित क्रम।"

5.5. तेरों की जीवनियों में पाँच सौ अपदानों के अतिरिक्त दस अपदान हैं; अध्यायों की संख्या इक्यावन है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने कहा:

"पापदान पाँच सौ दस हैं;
इसमें इक्यावन अध्याय हैं। यह है
थेरों की जीवनी, श्रृंखला में तीसरी
उचित क्रम का क्रम।"

5.6. थेरी की जीवनियों में चालीस अपदान हैं; अध्यायों की बात करें तो उनमें चार अध्याय हैं। इसलिए, प्राचीन ऋषियों ने कहा:

चालीस अपदान हैं, जिनके अध्याय हैं
संख्या में चार। यह जीवनी है
थेरिस, उचित क्रम में चौथा
अनुक्रम।"

5.7. 'अपदान' शब्द का प्रयोग करते समय, यहाँ व्याकरणिक शब्द 'अपदान' का अर्थ करना, पकड़ना, चले जाना, क्रमबद्धता, गाली देना आदि के रूप में देखा जाता है। वास्तव में, 'अपदान' शब्द का प्रयोग 'करने' के रूप में ही ऐसे उदाहरणों में भी होता है जैसे:- "क्षुदियों का करना, ब्राह्मणों का करना" आदि। 'भक्तों को ले जाना' आदि उदाहरणों में, 'अपदान' का अर्थ पकड़ना होता है। 'व्यापारियों का चले जाना, कृषक वर्ग (शुद्र) के लोगों का चले जाना' आदि उदाहरणों में, इसका अर्थ 'चले जाना' होता है। उदाहरण से तात्पर्य उनके उस स्थान से वहाँ जाने से है। इसे क्रमबद्ध रूप में देखा जाता है, जैसे उदाहरणों में: "भिक्षा ग्रहण करने के धुतंग नियम का पालन करने वाला भिक्षु, क्रमानुसार घरों में ठहरकर भिक्षा ग्रहण करता है", आदि। यहाँ इसका अर्थ है कि भिक्षु क्रमानुसार घरों की कतार में जाता है। इसे अपशब्दों के संदर्भ में देखा जाता है, जैसे उदाहरणों में: "इन्होंने भिक्षुत्व का अपशब्द किया है; इन्होंने ब्राह्मणत्व का अपशब्द किया है", आदि। यहाँ इसका अर्थ है अपशब्द और निंदा करना। हालाँकि, यहाँ व्याकरणिक शब्द 'अपदान' को कर्मों के रूप में देखा जाता है। इसलिए, बुद्धों द्वारा किए गए कर्म बुद्धों के अपदान हैं। इसका अर्थ है बुद्धों के कर्म। इसे कुल तीस सिद्धियों के प्रदर्शन के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसकी शुरुआत गंगा नदी के किनारे रेत के कणों के समान असंख्य बुद्धों द्वारा दान की सिद्धि से होती है। अब, इसका संबंध यह है कि आप सभी को सेवा (अधिकार) आदि से संबंधित कार्यों को करते समय शुद्ध मन से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

5.8 वहाँ, उस संदर्भ में, शुद्धमांसा शब्द का अर्थ इस प्रकार है: हे पाँच सौ दोषरहित अरहतों (खीणासव), जो इस सभा में एकत्रित हैं, और जिन्होंने परम पवित्रता के मार्ग (अरहत्तमग्ग) के ज्ञान के द्वारा पंद्रह सौ प्रकार के पापी विकारों (किलेसा) का त्याग करके स्वयं को ऐसा

स्थापित किया है, और जो पूर्णतः शुद्ध मन और निर्मल हृदय वाले हैं, शुद्ध मन से सुनो। इसका अर्थ है: तुम सब एकाग्रचित्त होकर ध्यान दो।

5.9. हालांकि, यहां "अपदान" का उल्लेख किए बिना, मौन बुद्धों (पच्चेकबुद्ध) के अपदान, साथ ही थेरों और थेरियों के अपदान के अस्तित्व के बावजूद, "बुद्धों के अपदान" कथन को "मूल यमक" कथन के समान बना दिया गया है, प्रधानता और आरंभिकता के कारण, समुच्चय यमक (खन्ध यमक), इंद्रियों, तत्वों, सत्य, कर्मों और अव्यक्त यमक के निवास के अस्तित्व के बावजूद। साथ ही, "अनुशासनात्मक नियमों पर अध्याय, जिसका उल्लंघन पुरोहित वर्ग से निष्कासन (पाराजिककण्ड) के दंडनीय है," कथन को प्रधानता और आरंभिकता के कारण, तेरह अनुशासनात्मक नियमों के अस्तित्व के बावजूद, जिनका उल्लंघन करने वाले को निलंबित किया जाना है, के समान बना दिया गया है। आदेश, जिस पर निर्णय केवल एक औपचारिक संघ कर्म (संघदिसेसा) द्वारा लिया जा सकता है, दो अनुशासनात्मक नियम जो अपराधी को उसके द्वारा प्राप्त की गई वस्तु (निसग्गिया) को त्यागने के लिए बाध्य करते हैं; यहाँ भी, पाली अभिव्यक्ति "अथ बुद्धपदनानी" को उसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

5.10. इसे "बुद्ध के कर्म (बुद्धापदनानी)" कहा गया है, जबकि इसे "सम्मासंबुद्धापदनानी, पूर्णतः आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के कर्म (या जीवनी)" कहा जाना चाहिए। काव्य की सुगमता के लिए, तीसरे महत्वपूर्ण शब्द, क्रियाविशेषण 'सम्मा' और स्वयं को दर्शाने वाले उपसर्ग (उपसग्गपद) को हटाकर, केवल 'बुद्ध' शब्द को स्वीकार करते हुए, तीसरे महत्वपूर्ण शब्द 'सम्मा' और 'स्वयं द्वारा' का अर्थ बताने वाले शब्द 'उपसग्गपद' को हटाकर, केवल 'बुद्ध' शब्द को ही मानकर, व्याकरणिक विधि (निरुत्तिनय) का पालन किया गया है, जो कहती है: "वह नियम जो इंगित करता है (आदेश), कि उनमें दीर्घीकरण (वृद्धि), लोप (लोप), सम्मिलन (आगम), विकृति (विकार), प्रतिवर्तन (विपरीत) हो सकते हैं।" अतः, वास्तव में इसका अर्थ है: "पूर्णतः आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के कर्म (या जीवनी)।"

इस प्रकार आंतरिक भाग पर टिप्पणी समाप्त होती है।

टीका की प्रस्तावना (अब्बन्तरानिदान)

जीवनी पर अपदानत्ष्टकथा, वैभव के लिए

पवित्र लोगों का।

....

बुद्ध अपने बारे में बोलते हैं

1 - बुद्ध की जीवनी पर टिप्पणी

1. (बुद्ध अपादान वंशना)

5.11 अब, मैं आंतरिक प्रस्तावना (अभंतर निदान) के तुरंत बाद अपादान पर टिप्पणी के बारे में बात करना चाहता हूँ।

"अवरुद्ध जीवनी (सपदान अपदान)"
विभिन्न तरीकों से उपदेश देना, जो महान
उस छोटे से समूह में ऋषियों ने एक साथ गीत गाए।
(खुद्दक निकाय); समय के लिए) अब आ गया है
पूर्व के क्रमिक क्रम में टिप्पणी करना-
स्थितिगत टिप्पणी।

5.12. जैसा कि वहां कहा गया है: "बुद्ध की संपूर्ण शिक्षा केवल एक ही सार है, जो मुक्ति (विमुक्तिरस) का सार है", इसलिए अपदान को एक ही सार की श्रेणी में रखा गया है। बुद्ध के प्रथम, मध्य और अंतिम वचनों में अपदान को बुद्ध की मध्य शिक्षा की श्रेणी में रखा गया है। तीन पिटकों - विनय, अभिधम्म और सूत्र - में इसे सूत्र की श्रेणी में रखा गया है। पांच निकायों (निकायों) में - दीर्घ प्रवचन (दीघ निकाय), मध्यम लंबाई (मज्जिमा), सम्युत्त, अंकीय कथन (अंगुत्तरा) और लघु कथनों (खुद्दकनिकाय) - में इसे खुद्दक निकाय की श्रेणी में रखा गया है। विषयवस्तु के अनुसार व्यवस्था की नौ विशेषताओं में से, 'विवेचनात्मक' वर्णन (सुत्त), मिश्रित गद्य और पद्य साहित्य (गेय्या), व्याख्या (वेय्याकरण), छंद (गाथा), आनंदमय वाणी (उदान), उद्धरणों की पुस्तक (इतिवुत्तक), जन्म कथाएँ (जातक), अलौकिक कथन (अब्भूत) और उपदेशात्मक प्रवचन (वेदल्ल), इसे गाथा की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाना है।

"बयासी मैंने बुद्ध से लिए थे;
भिक्षु से दो हजार; ये
लाभकारी धर्मों में क्रमांकन जैसे सिद्धांत शामिल हैं।

चौरासी हजार।

5.13. अब, यह अभिव्यक्ति: "अनगिनत आध्यात्मिक सम्राट हैं, जिन्होंने तीस सिद्धियों (तिम्सपारमीसम्पुन्ना, धम्मराजा असंखिया) को ठीक से पूरा किया है", यह दिखाने के लिए है कि अपदान। वहाँ, वही दस सिद्धियाँ निम्नतम (पच्चिमा), मध्यम (मज्झिमा) और उच्चतम (उक्कत्था) के माध्यम से कुल मिलाकर तीस सिद्धियाँ बन जाती हैं। उनसे उत्तम रूप से परिपूर्ण, अच्छी तरह से परिपूर्ण, उनसे युक्त, उनसे सुसज्जित (सम्युत्त); इस प्रकार, तिम्सपारमीसम्पुन्ना है राजा (राजानो) वे हैं जो तीनों लोकों में रहने वाले प्राणियों के विशाल समूह का निर्माण करते हैं, और जो एकमत होकर या निर्वाण के मार्ग पर चलकर फल प्राप्ति का जीवन व्यतीत करके या प्रेम, सहानुभूति, दूसरों के सौभाग्य पर प्रसन्नता और शत्रुओं के प्रति समभाव जैसे चार श्रेष्ठ गुणों की ध्यान संबंधी उपलब्धियों के माध्यम से अपने शरीर को प्रसन्न और प्रियतम बनाते हैं। धम्मराजा, धर्मात्मा राजा वे राजा होते हैं जो धम्म (धर्म) से परिपूर्ण होते हैं। बुद्धों का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि उनकी गिनती दस, सौ, हजार, दस हजार, एक लाख, दस लाख, करोड़ (कोटि), दस करोड़ (पकोटि), एक हजार करोड़ (कोटि-पकोटि), दस हजार करोड़ (नहुत), एक लाख करोड़ (निन्नहुत), अक्खोभिनी, बिंदु, अब्बुद, निरब्बुद, अहहा, अबबा, अतत, सोगंधिका, उप्पला, कुमुद, पुन्दरिका, पद्म, कथन, मककथाना तक नहीं की जा सकती। बुद्ध, धम्म के राजा, गणना से परे हैं; इसका अर्थ है: वे अतीत में हैं, चले गए हैं, समाप्त हो गए हैं और लुप्त हो गए हैं।

बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए प्राप्त सिद्धियों और अच्छे कर्मों के कारण अतीत की महिमा

अतीत की महिमा

6. जब थेरा आनंद ने पूर्ववर्तियों बुद्धों को दी गई उनकी समर्पित सेवा (अधिकार) और विश्वराज के रूप में बोधिसत्व रहते हुए स्वयं द्वारा अर्जित ज्ञान (संभार) के बारे में पूछा, तो प्रतापी बुद्ध ने कहा, "सर्वोत्तम बुद्धों का आत्मबोध (संबोधि)", इत्यादि। "हे आनंद! मेरी जीवनी (अपदान) सुनो; यही इसका अर्थ है। हे आनंद! पूर्व में, उस समय, मैंने सर्वज्ञ, प्रशंसनीय और सर्वज्ञ बुद्धों के ज्ञान (संबोधि) की आराधना की, जो सर्वज्ञ और सर्वज्ञ हैं; यही संबंध है। 'ससमघे' शब्द का प्रयोग 'सम्घा' के साथ मिलकर इस प्रकार किया जाना चाहिए: शिष्यों के संगठन के साथ। लोकनायके का अर्थ है संसार के सबसे वरिष्ठ व्यक्ति, बुद्ध; नमसित्वा का अर्थ है दोनों हाथों को जोड़कर और दस उंगलियों से प्रणाम करना (वंदित्वा)। सिरसा का अर्थ है सिर से प्रणाम करना (सिसेना)। अभिवादये का अर्थ है: "मैं आदरपूर्वक आराधना करता हूँ, स्तुति करता हूँ।"

7. "यावता बुद्धखेत्तेसु (बुद्ध के क्षेत्र तक)" अभिव्यक्ति का अर्थ है: बुद्ध के क्षेत्र के दस हजार (चक्कवा) में। आकाशस्थ (आकाश पर स्थित) का अर्थ है आकाश में चले जाना। भूमत्था (पृथ्वी पर स्थित) का अर्थ है पृथ्वी की सतह पर चले जाना। रत्न (या बेरिल) आदि, सात रत्न (रत्न), असंख्य (असंख्य) का अर्थ है गणना से परे। यावता (तक) का अर्थ है इतनी सीमा तक; विज्ज्ंति (अस्तित्व में)। मनसा समाहरे का अर्थ है: मैं उचित निर्णय लेने के बाद उन सभी को लाऊंगा। इसका मतलब यह है कि मैं अपने महल के आसपास ढेर सारी चीजें बनाता हूँ।

8. वहाँ "तत्थ रूपिया भूमियम" अभिव्यक्ति का अर्थ है: वहाँ चांदी (रूपिया) और चांदी (रजत) से निर्मित असंख्य भूमि और महल बनाए गए हैं। "अहम्रतनमयं पासादं मपायिं" अभिव्यक्ति का अर्थ है: मैंने सात प्रकार के रत्नों से निर्मित सैकड़ों मंजिला महल बनाया; "उब्बिद्धम्" (ऊंचाई) का अर्थ है ऊपर जाना (उग्गत), और "नबमुग्गतम्" (आकाश में ऊपर जाना) का अर्थ है आकाश में तेज से चमकना।

9. उसी महल की प्रशंसा करते हुए, यह कथन किया गया है: विचित्र स्तंभ (बहुरंगी स्तंभ) आदि। व्याख्या यह है: अनगिनत रंगों के खंभों पर स्थापित, जिसे सुत्तु कटम् कहा गया है; ऊँचाई और परिधि जैसी विशेषताओं से युक्त होने के कारण उचित रूप से वितरित (विभत्त) है। महारहम (अत्यंत महंगा), क्योंकि इसका निर्माण कई सौ करोड़ के द्वारों के साथ किया गया था। फिर, यह किस प्रकार विशिष्ट है? कनकमयसंघटम् (सोने से बना उलझा हुआ पिंड) की व्याख्या इस प्रकार की गई है: सोने के तराजू, उलझे हुए पिंड और कंगन से बना। यहाँ संबंध (संबंध) यह है: यह मंदितम है, अर्थात् अलंकृत, सुंदर और आकर्षक है, जिसमें ध्वज और छतरियाँ भी लगी हैं।

10. फिर उसी महल की भव्यता का गुणगान करते हुए कहा गया है: "पथममा वेलुरिया भूमि (प्रथम तल बेरिल रत्न का बना है) इत्यादि।" इसका अर्थ इस प्रकार है: उस महल का प्रथम तल, जिसमें सैकड़ों तल थे, निर्मल बादल के समान रमणीय (सुभरा) था, जो बेरिल रत्न से बना था और नीलम के रंग का था। यहाँ अर्थ है: आकिञ्ञ, जल के ढेर पर फैले कमलों के समान एकरूप, और कंचन भूमिया, स्वर्ण महल के समान सुंदर।

11. काचिभूमिपवालम्सा, उसी महल के समतल का कुछ मूंगा भाग, उसका मूंगा भाग पवालवण्णा, मूंगा के रंग का है। कुछ समतल जो सुभा (मनोरम) हैं, मन को उत्तेजित करते हैं; अन्य जो इंदगोपकवण्णाभा, लाल भृंग (इंडागोपक) के चमकदार रंग के हैं, किरणें उत्सर्जित करते हैं; कुछ समतल दिशाओभासति दस दिशाओं में दिशात्मक रूप से विकिरण करते हैं; यही इसका तात्पर्य है।

12. उसी महल में, निय्युबा, बुर्ज (या शिखर), उभरा हुआ अग्रभाग भी सुविभट्टा है, यानी सुव्यवस्थित, उचित रूप से विभाजित, प्रत्येक वस्तु को वितरण में हिस्सेदारी के दृष्टिकोण से अलग-अलग बनाया गया है। सिंहपंजरा (शेर का पिंजरा) का अर्थ सिंह द्वार है। चतुरोवेदिका (चारों कंगनी या रेलिंग) शब्द का अर्थ बाड़े की रेलिंग और जालीदार बाड़ों से लगाया जाना चाहिए। मनोरमा (मन को प्रसन्न करने वाली) का अर्थ है: मन को भाने वाली; और गंधवेला (सुगंधित माला) शब्द का अर्थ है कि सुगंधित मालाएँ भी लटक रही हैं।

13. उसी महल में, सात रत्नों से सुशोभित (सत्तररतन भूसीता) छत वाले घर हैं जो सात प्रकार के रत्नों से जगमगाते हैं। यह कैसे संभव हुआ? नीता (नीलम-नीला) नीला रंग, पीता (सुनहरा) पीला रंग, सुनहरा रंग; लोहितका (खून जैसा लाल), खून जैसा लाल रंग; ओआता (साफ रंग), सफेद रंग; शुद्धकालका (शुद्ध काला), बिना मिलावट वाला काला रंग; कुटागारवरूपेटा (उत्कृष्ट छत वाले घरों से सुसज्जित) का अर्थ है: वह महल उत्कृष्ट छतों से सुसज्जित है।

14. उसी महल में, सुंदर (ओलोकमय) और आकर्षक, ऊपर की ओर मुख किए हुए, कमल के आकार के खिले हुए पद्म कमल बहुत सुंदर लगते हैं। इसका अर्थ यह है कि वह महल हंस, बगुले, मोर आदि जैसे पंखों वाले प्राणियों के झुंडों से भी जगमगा रहा है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि वह महल सूर्य और चंद्रमा से सुशोभित है, मानो सूर्य और चंद्रमा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों के साथ मिश्रित हों, क्योंकि वह इतना ऊँचा था कि आकाश तक पहुँचता था।

15. विश्वराज का वही महल हेमाजालेन (स्वर्ण की चमक) स्वर्ण जाल (या ज्वाला) से परिपूर्ण था; संचन्नो (स्वर्ण जाल से पूर्णतः ढका हुआ); सोञ्जकिंकनिकायुतो (स्वर्ण कंगन से जुड़ा हुआ); मन को भाने वाला; सोञ्जमाला (स्वर्ण पुष्प की पंक्तियाँ); वातवेगेन (पवन गति से); हवा के चलने से; कुंजन्ति (कूकना); इस प्रकार, अर्थ है।

16. मंजेत्तुकम (लाल) गहरा लाल रंग; लोहितकम (लाल) रक्त लाल रंग; पीतकम् (पीला) सुनहरा पीला रंग; हरिपिंजरम (पीला ढेर) जंबोनादा स्वर्ण रंग का ध्वज और स्वर्ण रंग का ढेर; नानारंगेहि (विभिन्न रंगों से रंगा हुआ) अनेक रंगों से रंगा हुआ। सम्पितम (ठीक से पीला) रंगा हुआ ध्वज; उसितम (फहराया हुआ) उस महल में ध्वज फहराया गया था; अभिव्यक्ति: धजमालिनी (मालाओं से सजे ध्वज) लिंग विकृति के कारण बनाई गई है; इसका अर्थ है: वह महल मालाओं से सजे ध्वजों से भरा हुआ था।

17. उस महल में बिछी चटाइयों आदि का वर्णन करते हुए, इस प्रकार का कथन किया जाता है: नानम बहु (यह बहुत नहीं है) इत्यादि। इसका अर्थ है: उस महल में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो बहुतायत में न हो। नानासयनविचित्त (विभिन्न प्रकार के अनेक विश्राम स्थल), अनेक विश्राम स्थल जिनमें पलंग, कुर्सी इत्यादि शामिल थे, जो अनेक चादरों और बिछी हुई चमकती और अनेक प्रकार की थीं; अनेकसत (सैकड़ों) संख्या में। यह कैसे संभव हुआ? फलिका (क्रिस्टल) जो क्रिस्टल रत्न से बनी है, क्रिस्टल से निर्मित; रजतमय (चांदी से निर्मित) जो चांदी से बनी है; मणिमय (रत्न से निर्मित) जो नीलमणि रत्न से निर्मित है; लोहितांग (रक्त-लाल माणिक) सामान्य लाल माणिक से बना हुआ; मसारगल्लामय (मसारगल्ला कैट्स आई रत्न से बना हुआ) धब्बेदार रंग के रत्न से बना हुआ; संहकासिकसंथाता (कोमल बनारस मलमल से ढका हुआ) महीन, नाजुक काशी कपड़े से ढके होने की स्थिति।

18. पावुरा, पावुराण (चादर) के समान है; यह कैसा दिखता है? कम्बल (कपड़ा) ऐसा कपड़ा है जो सूत से बुना गया हो; दुकुता (रेशम) रेशमी कपड़े से बना; चीनी (चीनी) चीनी कपड़े से बना; पट्टुण्ण (एक स्थान का नाम, कपड़े से बना) पट्टुण्ण क्षेत्र का उत्पाद; पंडु, पीला, हल्का पीला रंग; विचित्रत्तृणम् (बहुरंगी फैलाव) अनेक चादरों और चादरों से भरा अद्भुत; सब्बम् (सभी) प्रत्येक विश्राम स्थल; मनसा (मानसिक रूप से) मन (या हृदय) से; अहम् पन्नापेसिम (मैंने वही व्यवस्था करवाई) मैंने उन्हें तैयार करवाया। यही अर्थ है।

19. उसी महल का वर्णन करते हुए, इस प्रकार कहा गया है: "तासु तास्वेव भूमिसु (उन सभी मंजिलों में)" इत्यादि। वहाँ, रत्नकूटलंचतम (आभूषणों से जड़ा हुआ शीर्ष) का अर्थ है रत्नों से बने शीर्षों और रत्नों से सजे कोनों से सुशोभित और सुंदर। मणिवेरोचनौक्का (सूर्य की रोशनी बिखेरने वाली रत्न मशाल) सूर्य की रोशनी बिखेरने वाले रत्नों, लाल रत्नों से बनी है; उक्का (मशाल) दीपकदान हैं; धारयंता सुत्त्ठारे (अच्छी तरह से धारण करके खड़े होना) का अर्थ है सैकड़ों लोग अच्छी तरह से धारण करके सावधानीपूर्वक आकाश की ओर उठा रहे हैं।

20. फिर उसी महल का वर्णन करते हुए, इस प्रकार कहा गया है: "शोभन्तीसिका थम्भा (स्तंभ और खंभे सुंदर हैं)" इत्यादि। वहाँ, एसिका थम्भा (स्तंभ और खंभे), अर्थात् चीजों को सुंदर बनाने के लिए, नगर द्वार पर खंभे गाड़े गए थे; सुभा (सुखद) वांछनीय; कंचनतोराणा (सुनहरे द्वार) सोने के बने; जंबोनादा (यूजीन नदी का उत्पाद) भी जंबोनादा गुणवत्ता वाले सोने के बने; सारमाया (सार से

बना) भी बबूल के पेड़ के सार से बना; रजतमाया (चांदी से बना) द्वार सुंदर दिखते हैं; इसका अर्थ है कि स्तंभ और द्वार दोनों ही उस महल को सुंदर बनाते हैं।

21. इसका अर्थ है: उस महल में, सुविभट्टा अनेका संधि (अनेक जोड़ अच्छी तरह से व्यवस्थित हैं) दरवाजों के पैनलों और बोल्टों (या चौखटों) के साथ; चित्तिता (चमकदार) से सुशोभित, जोड़ और आसपास का वातावरण सुंदर बनाया गया है। उभतो (दोनों ओर) का अर्थ है: उस महल के दोनों ओर; पुण्णघाटा, भरे हुए कलश, अनेक लाल कमल (पदुम) और अनेक सफेद कमल (उप्पला) से भरे हुए, संयुत (अच्छी तरह से सुसज्जित) पात्र उस महल को सुशोभित बनाते हैं।

22-3. इस प्रकार महल की शोभा का वर्णन करने के बाद, यह कथन इस प्रकार है: "अतीते सब्बाबुद्धे च (सभी पूर्व बुद्ध भी)" और इसी प्रकार, सम्मान के बारे में जानकारी देने के लिए। वहाँ, अतीत में, जब समय बीत गया और चला गया, तब जन्म हुआ और अस्तित्व में आया; शिष्यों की सभा के साथ पुरोहितों के साथ ससमघे (सभी पुरोहितों के साथ) बुद्ध; प्राकृतिक और सामान्य रंग-रूप के साथ परिपक्व हुए; शिष्यों के साथ ससावके बुद्ध अपने शिष्यों के साथ; निम्मिनित्वा (सृजित) जिस भी द्वार से महल में प्रवेश किया जाना चाहिए, उस द्वार से प्रवेश करके ससावका सब्बे बुद्ध (सभी बुद्ध अपने शिष्यों के साथ); sabbasoṇṇamaye (पूरी तरह से सोने से बना); pīṭhe nisinnā (कुर्सियों पर बैठ गए); ariyamaṇḍalā (पवित्र लोगों का एक समूह बन गया)। यही इसका अर्थ है।

24-5. एतरही (अब) वर्तमान समय में; अनुत्तरा (कोई श्रेष्ठ नहीं) किसी श्रेष्ठ से रहित; ये च बुद्धा अत्थि (जो भी बुद्ध अस्तित्व में रहे हैं) अस्तित्व में आए हैं; वे पच्चेकबुद्धे अनेकासते सयंभू (मौन बुद्ध, सैकड़ों आत्मनिर्भर) जो बिना किसी अन्य गुरु की सहायता के स्वयं ही अरहत बने; अपराजित (अन्य से अजेय) पाँच प्रकार के मारों, जैसे कि समूह (खन्ध), दुराचार (किलेसा), कर्मों का संचय (अभिसंखार), मृत्यु और युवावस्था के देवत्व से अजेय; इसका अर्थ है कि वे विजय प्राप्त करने से संतुष्ट थे। भवनम् (महल), मेरा महल अतीत में भी और वर्तमान में भी; सब्बे-बुद्धा समारुहुम (सभी बुद्ध अच्छी तरह से चढ़े), जो ठीक से आरोहित हुए, यही अर्थ है।

26. ये दिब्बा (जो भी दिव्य हैं) दिव्य अस्तित्व के कारण, वे दिव्य हैं, दिव्य प्राणियों के लोक में जन्म लेते हैं। ये च बहु कप्परुक्खा अत्थि (सभी प्रकार के अनेक विश्व वृक्ष विद्यमान हैं)। ये च मानुसा (जो भी मनुष्य हैं) मनुष्यों के लिए, सभी प्रकार के अनेक विश्व वृक्ष उत्पन्न हुए। इसके बाद, सब्बम दुस्सम् समाहन्त्वा (उचित वस्त्र लाकर) उचित वस्त्र लाकर, तीन वस्त्रों का एक सेट बनवाया और अच्छदेमि (मैंने उन्हें ढका) उन मौन बुद्धों को तीन वस्त्रों का सेट भेंट किया; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।

27. इस प्रकार मैंने तीन वस्त्रों के समुच्चय उन मौन बैठे बुद्धों को अर्पित किए, जिन्हें वे धारण करके ओढ़ सकें; उन्होंने निम्नलिखित भेंटें दीं: संपन्नम (अच्छी तरह से पका हुआ) मिठाई, खज्जम (कठोर खाने योग्य) जिसे चबाया जाना चाहिए, केक आदि; मीठा भोजन (नरम खाने योग्य) जिसे खाया जाना चाहिए; मीठा सायनीयम (स्वादिष्ट) जिसे चाटा जाना चाहिए; संपन्नम (अच्छी तरह से तैयार) आठ प्रकार के मीठे पेय जो पीने योग्य हैं; भोजनम (नरम भोजन) जिसे खाया जाना चाहिए; सुभ (सुखद) अच्छा; मणिमय (पत्थर से बना); पट्टे (भिक्षापात्र में) सम (ठीक से) अच्छी तरह; पुरेत्वा अदासिम (भरा और अर्पित किया) और उन्हें स्वीकार करवाया; यही इसका अर्थ है।

28. सब्बे ते अरियामंडला (वे सभी पवित्र जनों के समूह) वे सभी पवित्र जनों के समूह; दिब्बचक्खु समा हुत्वा मत्था (जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि को निखारा है), दिव्य दृष्टियों के स्वामी, जो निरंतर चमकती और स्थिर रहती हैं, और निखारी हुई हैं क्योंकि उनका भ्रष्टता (किलेसा) से कोई संबंध नहीं है; चीवरसम्युता (वस्त्रों से सुसज्जित) तीन वस्त्रों के जोड़े धारण किए हुए; इसका अर्थ है कि वे तपित (संतृप्त) थे, और परमन्नेन (सर्वोत्तम भोजन) सर्वोत्कृष्ट भोजन से पूर्णतः तृप्त थे, जो मीठी चीनी, तेल और मीठे (या शहद) गुड़ से बना था।

29. उन पवित्र जनों के समूह, इस प्रकार अपनी संतुष्टि के लिए भोजन प्राप्त करने के बाद, सात प्रकार के रत्नों से निर्मित निवास और कक्ष, रत्नगम्भम (रत्नयुक्त कक्ष) में प्रवेश किया; केसरीव (शेर के समान) बालों वाले शेर के समान, गुहासय (मांद में लेटना) मांद (गुफा) में लेटना (या रहना); महरहमहि सयाने (अति मूल्यवान विश्राम स्थल में) अमूल्य पलंग पर, सीहसेय्यामकप्पयुम (शेर की तरह लेटना) जैसे कि पशुओं का राजा शेर, अपने दाहिने करवट लेटकर, अपने पैर को अपने पैर पर करीने से रखकर, अपने दाहिने हाथ को अपने सिर के लिए तकिया बनाकर, अपने बाएं हाथ को सीधा रखकर, अपनी पूंछ को जांघों के बीच रखकर, बिना कांपे सोता है; इस प्रकार वे लेट गए; यही अर्थ है।

30. वे इस प्रकार सिंह के लेटने के समान लेट गए, संपजाना (सचेत रूप से) जागरूकता और ध्यान से युक्त होकर; समुत्थाया (अच्छी तरह से उठकर) विधिपूर्वक उठ गए, सायने पल्लंकमाभुजुम (चारे पर पालथी मारकर) अपनी जांघों को बांधकर बैठ गए; यही अर्थ है।

31. गोचरम सब्बाबुद्धानम् (सभी बुद्धों का भिक्षा चक्र) वह कर्मक्षेत्र है, जो भूतपूर्व और भविष्य के सभी बुद्धों के संचालन का आधार बना है; झानरतिसमप्पिता (ज्ञान के आनंद पर केंद्रित) का अर्थ है: वे ध्यान संबंधी उपलब्धियों के आनंद से परिपूर्ण और उस पर उचित

रूप से केंद्रित थे। अञ्ञेधम्मानि देसेन्ति (अन्य धर्म का प्रचार करते हैं) उन मौन बुद्धों में से कुछ धर्म का प्रचार करते हैं; अञ्ञे (अन्य) कुछ, इद्धिया (शक्ति से) प्रथम ज्ञान के प्रदर्शन से और इसी प्रकार; किलन्ती (खेल) मनोरंजन करते हैं।

32. आञ्ञे (अन्य) उनमें से कुछ; अभिञ्ञा (अतिज्ञान) पाँच प्रकार के अतिज्ञान; वसिभावित (विकसित निपुणता) निपुणता प्राप्त की; पाँच प्रकार के अतिज्ञान में, पाँच प्रकार की निपुणता के साथ, इस प्रकार गिने जाते हैं: (i) समझना (आवज्जन) (ii) उचित उत्पादन (समापज्जन), (iii) उठना (वुट्ठान) (iv) हल करना (आदिट्ठान) (v) चिंतन करना (पच्चवेक्खम); चला गया, की ओर अग्रसर, निपुणता की अवस्था प्राप्त की; अप्पेन्ति (प्राप्त कराया गया) पाँच प्रकार के अतिज्ञान को उचित रूप से प्राप्त किया। आञ्ञे (अन्य) उनमें से कुछ; अनेकसहस्सियो विकुभानानि, कई हजार कर्मों से, एक होते हुए भी, वह अनेक हो जाता है; हालांकि अनेक हो जाने पर भी वही अनेक एक हो सकते हैं; विकुब्बानित, (प्रदर्शन) इस तरह और इसी तरह, वे शक्तियों के प्रदर्शन (अभिव्यक्तियों के) करते हैं।

33. बुद्धा पि बुद्धे पुच्छन्ति (बुद्ध बुद्धों से पूछते हैं): जब मौन बुद्ध इस प्रकार एकत्रित होते हैं, तो मौन बुद्ध सर्वज्ञ ज्ञान के चिंतन के विषय (क्षेत्र या सीमा) के संबंध में पूर्ण बुद्धों से प्रश्न पूछते हैं; यही अर्थ है। बुद्ध उन्हें ज्ञान से प्रबुद्ध करते हैं, उन्हें अपने ज्ञान के माध्यम से विशिष्ट और पूर्ण रूप से समझाते हैं, गंभीरं निपुणं थानं (गहन और सूक्ष्म विषय), गहन और सूक्ष्म अर्थ।

34. तब, मेरे महल में एकत्रित हुए सावकों (शिष्यों) ने भी बुद्धों से प्रश्न पूछे। बुद्धों ने अपने शिष्यों से प्रश्न पूछे। उन्होंने और बुद्धों तथा शिष्यों ने एक दूसरे से प्रश्न पूछकर उत्तर दिए।

35. फिर, इन सबको एक साथ दर्शाने के लिए, इस प्रकार कहा जाता है: "बुद्धा पच्चेकबुद्धाच" इत्यादि। यहाँ, बुद्धा (बुद्धों) का अर्थ सर्वज्ञ बुद्ध हैं; पच्चेकबुद्धा, मौन बुद्ध; सावका (शिष्य) विद्यार्थी; परिचारक (सेवक) ये सभी आश्रित; सकाया (व्यक्ति), स्वयं; रतिवा (आनंद के साथ) आनंदित; पासादे अभिरामन्ति (वे मेरे महल में अत्यंत प्रसन्न होते हैं) और उससे आसक्त हो जाते हैं।

36. इस प्रकार, अपनी शक्ति प्रकट करने के लिए, उस विश्वराज, तीनों लोकों के विजेता ने उचित साधना विधि का उल्लेख करते हुए कहा: "चट्टा तिष्ठानुत् रत्ना" इत्यादि। वहाँ, रत्ना (सात प्रकार के रत्नों से बने); चट्टा कंचनवेल्लपंतिका (धूपदान) सोने की विशाल पंक्तियों से बने, सोने के जालों से लटके हुए; तिष्ठानुत्, उन्हें खड़ा रहने दो; मुत्तजालपरिक्खित्ता (मोतियों के जालों से घिरे हुए); सब्बे, सभी छतरियाँ (या धूपदान); मत्थके (मेरे सिर पर); धारेन्ति (उन्हें धारण करने दो); जैसे ही ऐसा सोचा गया, छतरियाँ प्रकट हो गईं; यही अर्थ है।

37. स्वर्ण तारों से जगमगाता हुआ चित्तिता (विविध स्वर्ण तारे); सेलावितानाा (कपड़े का शामियाना); भवन्तु (होने दो) उत्पन्न होने दो। विचित्र (विविध) अनेक रंगों का हो; माल्यवितता (फूलों से सुशोभित) फूलों से ढका हो; सब्बे (सभी) अनेक शामियाने हों; मत्थके (सिर के ऊपर), बैठने की जगह के ऊपरी भाग पर, धारेंतु, धारण किया जाए; यही अर्थ है।

38-40. माल्यदामेही (सुगंधित पुष्पों की मालाओं से युक्त); वितताता (प्रसारित) पूरी तरह मिश्रित; गंधदामेही (सुगंधित मालाओं से युक्त) चंदन, केसर, धूप आदि की सुगंधित मालाओं से युक्त; शोभिता (चमकता हुआ) कमल का सरोवर; इस प्रकार संबंध है। दुस्सादामेही (कपड़े की मालाओं से युक्त) पक्षियों के पंखों, ऊन, चीनी आदि के अनमोल कपड़े की मालाओं से युक्त; परिकिञ्ञा (पूरी तरह मिश्रित) कमल का सरोवर सात प्रकार के रत्नों की मालाओं से सुशोभित है। पुप्फाभिकिष्णा (फूलों से भरपूर) सुगंधित पीले चंपक, मीठी सुगंध वाले सलला, सफेद कमल (सोगंधिका) आदि जैसे मधुर सुगंध वाले फूलों से; अभिकिष्णा (फूलों से भरपूर) विविध और चमकदार; फिर, कमल का सरोवर कैसा है? यह सुगंधित और उपयुक्त इत्र से सुशोभित है। चारों ओर गंधपंचांगुललंकटा (पांच उंगलियों के माप के इत्र से सुशोभित) पांच उंगलियों से लेप किए गए इत्र से सुशोभित; हेमच्छदनचादिता (सोने के आवरण से ढका हुआ) सोने के चादरों और सोने की छतरियों से ढका हुआ; चतुद्दिसा (चार दिशाएँ) महल की चारों दिशाओं में; खायन्तु (प्रकट हो) कमल के लट्ठे अच्छी तरह से फैले हुए और कमल के फूलों (पदुम) और कमल (उप्पला) से ढके हुए, सुनहरे रंग और रंग के दिखाई दें; padmareṇurajuggatā (कमल के पराग उग्र रूप से ऊपर उठते हैं) कमल के पराग (रेणु) और पंखुड़ियों (धुली) से भरपूर होने के कारण कमल की लताओं को चमकने दें, यही इसका अर्थ है।

41. पाषादास समन्ततो पादपा (महल के चारों ओर जड़ों से पीने वाले) चंपक (चंपक) आदि वृक्ष, मेरे विजय महल के चारों ओर; सब्बे पुप्पन्तु (सब खिलें) ये सभी फूलदार वृक्ष खिलें; सवमेवपुप्फफा मुंचित्वा (स्वयं ही फूल छोड़कर) यहाँ तक कि (फूल गिराकर); गन्त्वा भवनम् ओकिरुम् (जाकर महल पर बिखेर दिए) वे पूरे महल पर बिखेर दें; यही अर्थ है।

42. तत्था (वहाँ), मेरे उस विजय महल में; सिखिनो (कलगीदार पक्षी) मोर, नक्कमतु, नाचें; दिब्बाहंसा (दिव्य हंस) दिव्य हंस, पकूजरे (चिल्लाएं) आवाजें निकालें; कराविकाच (कोयल) मधुर आवाज वाली, सुंदर कोयल, कराविका पक्षी, गावंतु (गाएं) गीत गाएं; दिजसंघा (पक्षियों के झुंड) अन्य अवर्णनीय (अनुत्ता), पक्षियों के झुंड; समंततो (चारों ओर) महल के चारों ओर मधुर आवाज में चिल्लाएं।

43. महल के चारों ओर सभी प्रकार के ढोल बजाए जाएँ; सभी प्रकार के ढोल, चाहे एक तरफा बंद हों या दो तरफा बंद हों; सभी प्रकार के वीणा बजाए जाएँ; सभी प्रकार के वीणा, जिनमें कई तार हों, मधुर ध्वनि उत्पन्न करें; सभी प्रकार के गायन एक साथ हों, सभी प्रकार के वीणा महल के चारों ओर सुने जाएँ।
44-5. यावता, जहाँ तक, अमुक स्थान में, बुद्धखेत्तमहि, बुद्ध के क्षेत्र में, दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवा) में; ततो परे चक्कवा, तेज चमकते हुए, अच्चिन्ना, बिना किसी रुकावट के, महल के चारों ओर, महंत रतनमया सोञ्ञा पल्लंका तित्तहन्तु, सोने से बने और सात प्रकार के रत्नों से जड़े ऊंचे आसन (पल्लंका) स्थापित हों; महल के चारों ओर, दीपरुक्खा जलन्तु, तेल के दीपक धारण करने वाले वृक्ष तेज रोशनी से जगमगाएं; दस हजार का क्रम, अर्थात् कुल मिलाकर दस हजार दीपक; ekapajjotā bhavantu, वे एक साथ प्रकाश दें जिससे ऐसा प्रतीत हो जैसे एक ही दीपक जल रहा हो; यही अर्थ है।
46. नृत्य और गायन में निपुण गाणिकाएँ, तथा मुख से ध्वनि उत्पन्न करने वाली गायिकाएँ; महल के चारों ओर नृत्य करें; स्वर्ग की कन्याओं का समूह; अनेक रंगों के रंगों से सजी हुई कन्याएँ; महल के चारों ओर नृत्य करें; वे दिखाई दें, स्पष्ट हों; यही अर्थ है।
47. उस समय, मैं तिलोकविजय नामक विश्वराज बना, जो तीनों लोकों का विजेता था; मैं समस्त ब्रह्मांड (कल्लवाला) के वृक्षों के शीर्ष पर, हिमालय और चक्कवाला पर्वतों आदि के शीर्ष पर, तथा सिनेरु पर्वत के शीर्ष पर, सभी स्थानों पर अनेक रंगों से सुशोभित था; मैंने नीले, पीले आदि पाँचों रंगों के ध्वज फहराए; यही अर्थ है। (लोकंतर (लोकंतर) में रहने वाले पुरुष; नाग)
48. नागलोक के नाग (नारच) और नागलोक के नाग (गैंग); देवलोक के गंधर्व देव (गंधर्भ देव) और दिव्य लोक के दिव्य प्राणी (गंधर्व देव); सब्बे उपेंतु, वे सब मेरी उपस्थिति में आएँ। उन पुरुषों आदि को; नमसन्त, जो मेरी आराधना कर रहे हैं; पंजलिका, जो हाथ जोड़कर आहुति अर्पित कर रहे हैं; पासादं परिवारयुम्, मेरे विजय महल को घेरे हुए; यही अर्थ है।
49. उस विश्वराज तिलोकविजय ने महल और अपनी शक्ति की इस प्रकार प्रशंसा करते हुए कहा, "यं किंचि कुसलम् कम्मम्, इत्यादि, ताकि उनके द्वारा किए गए अच्छे कर्मों और प्राप्त उपलब्धियों के फल को जागृत किया जा सके। यं किंचि कुसलकम्मम्, जो भी अच्छे कर्म माने जा सकते हैं, किरियम् कट्टब्बम्, जो भी किया जाना चाहिए, वह सब, मम, मेरे द्वारा, कायेन, चाहे शरीर से हो या वाचाय, शब्दों से, या मनसा, तीन द्वारों (द्वार) के माध्यम से, कटम् तिदसे सुकटम् (उचित रूप से किया गया), जो तावतिंस स्वर्गिक महल में पुनर्जन्म के योग्य हो, यही अर्थ है।"
50. फिर उन्होंने कहा: "ये सत्ता सञ्ञिनो" इत्यादि, ताकि उनके अच्छे कर्मों को प्रेरित किया जा सके। वहाँ, वे सत्ता, चाहे मनुष्य हों, देवता हों या ब्रह्मा, सञ्ञिनो, जो भी बोध (सञ्ञा) से युक्त हैं; अत्ति, वहाँ हैं; ये च सत्ता असञ्ञिनो, जो भी प्राणी बोधहीन (सञ्ञा), स्मृतिहीन (सञ्ञा) हैं; ते सब्बे, वे सभी जीव; कटमपुञ्ञफलम् भागी भवन्तु, उन्हें उनके द्वारा किए गए कर्मों का हिस्सा मिले (या वे हिस्सेदार बनें); यही अर्थ है।
51. बोधिसत्व ने अपने पुण्य कर्मों को पुनः जागृत करने के लिए "येसम कातम" और इसी प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग किया। मेरे द्वारा किए गए पुण्य कर्म, कातम, सुविदितम, मनुष्यों, ड्रैगनों, गंधर्वों और देवताओं जैसे प्राणियों को भली-भांति ज्ञात हैं; मवा दिन्नम पुण्यफलम, उन्हें मेरे द्वारा किए गए पुण्य कर्मों का फल प्राप्त हुआ है; हे मनुष्यों, आदि; न जानन्ति, न जानते; देवा गन्त्वा, देवताओं ने जाकर निवेदयम, उन्हें इसके बारे में सूचित किया; यही इसका अर्थ है।

दान और पुण्य संचय

52. सब्बलोकंबी ये सत्ता, समस्त लोक में जितने भी जीव हैं, जीवन्ति, वे पोषण पर निर्भर होकर जीते हैं; मनुञ्ञम् भोजनम् सब्बम् मम चेतसा लभन्तु, मेरे अच्छे कर्मों की शक्ति से उन सभी को स्वादिष्ट भोजन प्राप्त हो, यही अर्थ है।
53. मनसा, प्रसन्न मन से; दानम् मया दिन्नाम्, मेरे द्वारा दी गई किसी भी भेंट से; पसादम् आगतिम्, मेरे द्वारा दिए गए उस दान से मुझे परम आनंद प्राप्त हुआ, अर्थात् मेरे मन ने मुझे परम आनंद दिया। सम्मासंबुद्धा, सर्वज्ञ बुद्धों को भी, पच्चेका (एक-एक करके) व्यक्तिगत रूप से, जिनासावका, विजेता के शिष्यों को, और पूजिता को, विश्वराज के द्वारा सम्मानित और पूजा की गई है।
54. सुकतेन तेन कम्मेना, उस अच्छे कर्म के फलस्वरूप, अर्थात् विश्वास के साथ किए गए अच्छे कर्म के कारण; चेतनापणिधी च, इच्छाशक्ति से, अर्थात् मन द्वारा की गई आकांक्षा से, मानुसम् देहम् जहित्वा, मनुष्य शरीर को त्यागकर, अहं तावतिंसम् अगचेहिम्, मैं स्वर्गलोक गया, अर्थात् मैं नींद से जागकर वहाँ प्रकट हुआ, यही अर्थ है।
55. इसके बाद, विश्वराज तिलोकविजय का देहांत हो गया; उस समय से, मैं दिव्य अस्तित्व को जानता हूँ; और मनुष्य अस्तित्व को भी। इन दो पुनर्जन्मों के बाद, मैं अन्य उत्पत्ति को नहीं देखता; मन से, मन के माध्यम से, आकांक्षा का फल प्राप्त होता है; यही अर्थ है।

56. देवानम अधिको होमि, मैं देवताओं का मुखिया हूँ (देव), यदि मेरा पुनर्जन्म देवताओं के बीच हुआ, तो मैं आयु, रंग, बल और सामर्थ्य के कारण देवताओं में सबसे श्रेष्ठ और प्रमुख था; यही अर्थ है। यदि मेरा जन्म मनुष्यों के बीच हुआ, मनुजाधिपो भवमि, तो मैं मनुष्यों का मुखिया और शासक बना। संपन्नो (समृद्ध) अर्थात् राजा के समान होकर, मैं सुंदर सौंदर्य, शारीरिक योग्यता, कद, कमर आदि गुणों से पूर्णतः सुसज्जित था; भावे, प्रत्येक जन्म में।
मैं जन्म से ही परम महत्व को समझने के ज्ञान से परिपूर्ण हूँ; अद्वितीय (अद्वितीय) हूँ, मेरे समान कोई नहीं है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है: "मेरे समान कोई नहीं है"।
57. मेरे द्वारा किए गए अच्छे कर्मों और अर्जित पुण्य के फलस्वरूप, मैं अपने प्रत्येक जन्म में जहाँ कहीं भी जन्मा, वहाँ मैं सबसे उत्तम, महान और मधुर था; अनेक प्रकार का था; बहुत से स्वादिष्ट और मीठे खाद्य पदार्थों का भी था; सात प्रकार के रत्नों का भी था; ऊनी चादरें, रेशमी चादरें आदि अनेक प्रकार के वस्त्रों का भी था; आकाश से आया था; मेरी उपस्थिति में जल्दी से पास आ जाता था।
58-66. पथब्या, ज़मीन पर; पब्बते, पहाड़ी पर; आकाशे, आकाश में भी; उदके, पानी में; वेन, जंगल में भी; यम यम, जहाँ कहीं भी और हर जगह; हत्थम पसारेमि, मैं अपना हाथ फैलाता (या फेंकता) हूँ; वहाँ से और वहाँ तक, दिब्बा भक्खा (स्वर्गीय भोजन) दिव्य पोषण; मम, मेरी उपस्थिति में; उपेंति (निकट आओ) पास आओ; इसका अर्थ है: "वे स्वयं को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं"। इसी प्रकार, क्रमानुसार, सब्बे रत्ना, सभी रत्न; सब्बे गंधा, चंदन आदि जैसी सभी सुगंध; याना, सभी वाहन; सब्बे माला, चंपक, नाग, पुन्नाग आदि जैसे सभी फूल; अलंकारा, सभी आभूषण; सब्बा दिब्बा कान्ञा, सभी दिव्य अप्सराएँ; मधुसक्खरा, सभी शहद-चीनी; सब्बे खज्जा, केक आदि जैसे कठोर चबाने योग्य भोजन; माम, मेरी उपस्थिति में; उपेंति, पास आओ।
67-68. संबोधिवरपत्तिया, उत्तम संबोधि की प्राप्ति के लिए, निर्वाण की ओर ले जाने वाले चारों मार्गों के सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति के लिए; पब्बत्तम, पर्वत, मेरे द्वारा किए गए और पूर्ण किए गए किसी भी उत्तम दान से पर्वत चट्टान के समान माना गया; बहलम गिरम, एक ही गूंजती ध्वनि उत्पन्न करते हुए; गज्जेनतो, अत्यंत ऊँची आवाज उत्पन्न करते हुए; सदेवकम, मनुष्य जगत सहित दिव्य जगत; हंसयन्तो, उन्हें हृदय सुख प्राप्त कराते हुए; लोके, तीनों लोकों का समूह; बुद्धो अहम् भवामि, मैं बुद्ध हूँ, जिसने बार-बार जन्म लेने के चक्र को काट दिया और उससे परे चला गया।
69. दिसा दसविधा लोके, इस विश्व में दस प्रकार और दस दिशाओं के विभाजन हैं। ययतो, मेरे लिए जो वहाँ सभी दिशाओं में विचरण कर रहा हूँ; अंतकम नत्थि (कोई अंत नहीं, कोई मृत्यु नहीं); यही अर्थ है। या जब मैं विश्वराज था, तस्मीम, वहाँ, जहाँ भी मैं गया और गया, उस दिशा के भाग में; बुद्धखेत्ता, बुद्ध के प्रभाव क्षेत्र; असांशिया, गणना से परे।
70. पाभा पकित्तिता, किरणें प्रकट हुईं, फिर, जब मैं विश्व-राजा था, तब मयहम (मेरी प्रकाश किरणें) मेरे ऐसे खजानों की प्रकाश किरणें जैसे चक्र खजाना, रत्न खजाना इत्यादि; यमक, जोड़ियों में आकर; रामसिवाहना (किरणों के वाहक) किरणें छोड़ते हुए, स्पष्ट और निर्मल हो गए; एत्थंतरे, यहाँ भीतर, दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवाला) के भीतर; रामसिजालम (किरणों का जाल) किरणों का एकत्रित समूह; आलोको विपुलो भावे (वहाँ प्रचुर प्रकाश आया) वहाँ बहुत अधिक प्रकाश था; इस प्रकार, अर्थ है।
71. एत्तके लोकधातुम्हि दस हज़ार ब्रह्मांडों में (चक्कवा;), सब्बे जाना माम पसन्तु, सभी लोग मुझे देखें; यही मतलब है। सब्बे, सभी दिव्य-प्राणियों; याव ब्रह्मा निवेशना, ब्रह्मा की दुनिया तक; माम अनुवत्तन्तु (मुझसे) वे मुझे प्रसन्न करें।
72. विशिष्टमधुनादेन, स्पष्ट और सुस्पष्ट मधुर ध्वनि के साथ; अमाता भरिमाहनिम, मैंने दिव्य अमर ढोल बजाया; एत्थंतरे (यहाँ) इन दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवाल) में; सब्बे जना मधुरं गिरं सुनन्तु, सभी लोग मेरी मधुर आवाज सुनें और ध्यान दें।
73. जब धर्म की वर्षा हुई, धर्म के उपदेशों की ध्वनि के साथ; दूसरे शब्दों में, जब सर्वज्ञ बुद्ध की सामर्थ्य से सर्वोपरि, गहन, मधुर और सूक्ष्म अर्थों की वर्षा हुई; सभी भिक्षुओं, भाइयों और बहनों, आदि; उन्हें दोषमुक्त और निर्मल बनाया जाए। इन समूहों और श्रेणियों में, प्राणियों की चार प्रकार की सभाओं में, जो भी गुण की दृष्टि से सबसे निचले और निम्नतम हैं; वे सभी को मोक्ष की प्रथम अवस्था प्राप्त हो।

दान, शील, त्याग, संबोधि और निर्वाण में पूर्णता

74. फिर, जब मैं विश्वराज था, तिलोकविजय, दाताब्बम् दानम्, मैंने दान करने योग्य सभी चीजों का दान किया; असेसतो (बिना कुछ शेष छोड़े); सीलम् पुरेत्वा, उपदेशों में पूर्णता प्राप्त की; नेक्खम्मे पारमिम्, त्याग में पूर्णता की चरम सीमा तक पहुंचा; उत्तमम् सम्बोधिम पत्तो, सबसे उत्तम सम्बोधि प्राप्त की, मैंने निर्वाण की ओर जाने वाले चारों सही मार्गों का ज्ञान प्राप्त किया।

75. पाण्डिते परिपुच्छित्वा (ज्ञानियों से गहनतापूर्वक प्रश्न पूछकर) मैंने ज्ञानी और विद्वान लोगों से ऐसे प्रश्न पूछे, जैसे: "आदरणीय महोदय! क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? अच्छा कर्म क्या है? बुरा कर्म क्या है? क्या करने से दो लाभ, अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष, प्राप्त होते हैं?" इस प्रकार मैंने ज्ञान की पूर्णता प्राप्त की; यही इसका अर्थ है। कत्वा वीरमत्तमम् (सर्वोत्तम प्रयास करके) मैंने उन विषयों, स्थानों और आसनों में निरंतर प्रयास करके प्रयास की पूर्णता प्राप्त की जो सबसे उत्तम और श्रेष्ठ हैं; यही इसका अर्थ है। खन्तिया पारमिम गन्त्वा (धैर्य की पूर्णता प्राप्त करके) मैंने धैर्य की पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचकर, विरोध में समस्त जनसमूह द्वारा किए गए अपमान को सहन किया; उत्तमम संबोधिम पत्तो, (मैंने उच्चतम संबोधि प्राप्त की) मैं सबसे उत्कृष्ट सर्वज्ञ बुद्ध बन गया।
76. मैंने दृढ़ संकल्प लेकर आत्म-संकल्प की पूर्णता प्राप्त की और अविचल होकर कहा: "यद्यपि मेरे शरीर और प्राण नष्ट हो जाएं तब भी मैं पुण्य कर्मों के निष्पादन से विमुख नहीं होऊंगा।" मैंने सत्य की पूर्णता का अभ्यास किया और स्वयं से कहा: "यद्यपि मेरे सिर काटे जाने पर भी मैं असत्य नहीं बोलूंगा।" प्रेम और करुणा की पूर्णता की चरम सीमा तक पहुंचकर, मैंने बुद्ध बनकर परम श्रेष्ठ संबोधि प्राप्त की; यही इसका अर्थ है।
77. लाभ (प्राप्ति में) सजीव और निर्जीव, जीवित और निर्जीव वस्तुओं या चीजों की प्राप्ति में, अलाभ (प्राप्ति में) उनकी प्राप्ति न होने में, सुख (सुख में) शारीरिक और मानसिक आनंद में, दुःख (दुख में) शारीरिक और मानसिक कष्ट में, सम्मान (आदर करने वाले लोगों द्वारा की गई प्रशंसा में) और अपमान (अपमान करने वाले लोगों द्वारा निंदा) में, च, साथ ही, सब्बत्थ समाको (हर जगह समान) मैं सदा समभावी हूं, समभाव की पूर्णता को प्राप्त कर चुका हूं, उत्तमं सम्बोधिम पत्तो, मैंने बुद्ध बनकर सर्वश्रेष्ठ सम्बोधि प्राप्त की; यही अर्थ है।
78. कोसज्जम् (आलस्य); भयतो, खतरे की दृष्टि से, दिस्वा (देखकर) जानते हुए: "इसका परिणाम नरक में कष्ट भोगने की ओर होता है", इसलिए आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर विवेकपूर्ण आचरण करना चाहिए; विरियम् खेमातो, सुरक्षा के लिए प्रयास; दिस्वा, यह देखकर (या जानकर) कि प्रयास निर्वाण की ओर ले जाता है; आरद्ध वीरिवा होथा, सदा प्रयास के लिए तत्पर रहना चाहिए। अतः बुद्धानुसासनी, यही बुद्धों की नसीहत, सलाह है।
79. विवादम भयतो दिस्वा, यानी विवाद और कलह को खतरे की दृष्टि से देखना और यह जानना कि यह नरक की ओर ले जाता है; अविवादम खेमातो दिस्वा, यानी यह देखना (या जानना) कि विवाद (या कलह) से परहेज सुरक्षा, निर्वाण की प्राप्ति की ओर ले जाता है; समागगा, यानी एकाग्र मन से रहना, विचारों में एकरूपता रखना; सखिला होथा, यानी तुम सब वाणी में सौहार्दपूर्ण (या दयालु) रहो, एक दूसरे के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखो, और आगे बढ़कर प्रकाशमान हो; यही अर्थ है। एस्सा (यह) प्रवचन (परामर्श या कथन), अनुसानी, बुद्धों के परामर्श का उपहार है।
80. पामादम् (लापरवाही/आलस्य) स्थान, आसन आदि जैसी चीजों में बिना ध्यान दिए रहने के कारण होने वाली हानि; भयतो दिस्वा, खतरे के दृष्टिकोण से देखते हुए, यह जानते हुए कि "प्रत्येक जन्म में जहाँ भी व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, दुख, कुरूपता, भोजन और पानी की कमी आदि जैसी विपत्तियाँ स्वतः घटित होती हैं, साथ ही नरक में जाना आदि भी होता है"; अपमादम् खेमातो दिस्वा (सभी सुरक्षा के दृष्टिकोण से परिश्रम को देखते हुए), व्यक्तिगत अनुभव से जानते हुए, समृद्धि के दृष्टिकोण से सचेतनतापूर्वक किए गए कार्य, अर्थात् निर्वाण की निश्चित प्राप्ति। अत्थांगिकम् मग्गम् भावेथा (आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग का विकास करो) - आत्म-प्राप्त बुद्धत्व की यात्रा के साधनों के प्रति सचेत रहते हुए, आठ श्रेणियों, अर्थात्: सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही ध्यान, का अभ्यास और ध्यान करो। एसा बुद्धानुसासनी (यह बुद्धों की नसीहत है) - यह बुद्धों का प्रवचन, उपदेश, कथन और निर्देश है; यही इसका अर्थ है।
81. समागत बहु बुद्ध (अनेक बुद्ध एकत्रित हुए) मौन बुद्ध, लाखों की संख्या में एकत्रित होकर एक विशाल समूह बन गए; सब्बसो अरहंता (सभी ओर अरहत) लाखों अरहत, सभी प्रकार से दोषरहित (खीणासवा) एकत्रित होकर एक विशाल समूह बन गए। अतः, अरहन्ते वन्द-माने नमस्सथा (अरहतों को प्रणाम करो) अपने सभी प्रमुख और गौण शारीरिक लक्षणों के साथ झुककर उन बुद्धों और अरहतों को प्रणाम करो, जो पूजा के योग्य हैं।
82. एवम् अचिंतिया बुद्धा (इस प्रकार बुद्ध अकल्पनीय हैं) जैसा कि मैंने समझाया है, बुद्ध ऐसे हैं जिनके बारे में सोचना असंभव है। बुद्धधम्म, बुद्धों का धम्म, ध्यान के चार प्रतिष्ठान, अष्टांगिक आर्य मार्ग, पाँच खंध, आश्रित (पच्चय), आश्रित इंद्रिय-विषय (आरम्मण पच्चय) आदि जो बुद्धों द्वारा प्रचारित धम्मों का निर्माण करते हैं। बुद्धों का स्वरूप (सभाव) अकल्पनीय है, जिसके बारे में सोचना संभव नहीं है; अचिंतिये (अकल्पनीय) चिंतन के दायरे से परे है; pasannanam vipāko hoti (यह विवेकपूर्ण आनंद का परिणाम है), ईश्वरीय और मानवीय स्पष्ट और विवेकपूर्ण आस्था का लाभकारी परिणाम गणना से परे है, ईश्वरीय और मानवीय महिमा की मात्रा और निर्वाण की महिमा (सम्पेत्ति) के बारे में सोचना असंभव है।

पिछले जन्मों में किए गए अक्षम्य गलत कर्मों की सूची

82.1 इस प्रकार, ठीक उसी प्रकार जैसे यात्रा पर जाने वाले लोग, "हमें मार्ग बताइए" पूछने पर, "दाएँ मार्ग को छोड़कर दाएँ मार्ग से जाइए" कहे जाने पर, उस मार्ग से चले और गाँवों, नगर निगमों और राजमहलों में जो भी कार्य करना था, उसे पूरा किया; और फिर जब वे दूसरे मार्ग, अर्थात् बाएँ मार्ग से गए, जिसे उन्होंने त्याग दिया था, तो उन्होंने गाँवों, नगर निगमों और राजाओं की राजधानियों में जो भी कार्य करना था, उसे पूरा किया, ठीक उसी प्रकार, बुद्ध के अच्छे कर्मों के रूप में जीवन चक्र पूरा करने के बाद, यह प्रश्न पूछना इसलिए आवश्यक था ताकि उसी जीवन चक्र को बुरे कर्मों के दृष्टिकोण से विस्तार से बताया जा सके:

कठिन कर्म (दुक्कारम) और निंदा
एक और निंदा, निंदनीय आरोप,
पत्थर लगने से चोट आई और छर्रे से दर्द हुआ।
नालागिरी हाथी, चाकू से कटा हुआ, सिर में पीड़ा,
मक्का खाना, पीठ दर्द, दस्त: ये
ये बुरे कर्मों को अंजाम देने के समान हैं।"

पूर्व बुद्ध कश्यप के विरुद्ध अहंकारवश अनुचित वाणी का प्रयोग करने के कारण, अब बुद्ध बनने के लिए लंबे और कठिन मार्ग पर कष्ट भोग रहे हैं।

82.2 पहले प्रश्न में दुक्कारा (संस्कृत-दुश्कर) का अर्थ है छह वर्षों तक कठिन कर्म करना। बहुत समय पहले, सर्वज्ञ बुद्ध कस्सपा के समय में, बोधिसत्व ने ज्योतिपाल नामक ब्राह्मण युवक के रूप में पुनर्जन्म लिया। ब्राह्मण होने के कारण, उन्हें उस परम पूज्य (तत्कालीन बुद्ध कस्सपा) के उपदेशों में स्पष्ट आस्था नहीं थी। उस परम पूज्य के प्रति किए गए बंधन कर्मों के फल के कारण, "कस्सपा, परम पूज्य" का नाम सुनकर उन्होंने कहा, "इस गंजे भिक्षु को बुद्ध बनने की बोधि कहाँ से मिली? बुद्धत्व प्राप्त करना तो अत्यंत कठिन है।" उस कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने सैकड़ों जन्मों में नरक और इसी प्रकार के कष्ट भोगे। उस तेजस्वी पुरुष के मार्ग पर चलते हुए और उसी बुद्ध द्वारा की गई भविष्यवाणी से, उनके पुनर्जन्मों का निरंतर चक्र समाप्त हो गया (खेपेत्व) और अंत में उन्होंने वेसंतारा की अवस्था प्राप्त की। वहाँ से परलोक जाने पर, उनका पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। देवताओं के अनुरोध पर, उनका वहाँ से परलोक हो गया और उनका पुनर्जन्म शाकियान परिवार में हुआ। अपने ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता के कारण, उन्होंने अनोमा नदी के तट पर अपनी तेज धार वाली तलवार से पूरे जंबू पर प्रभुत्व का त्याग कर दिया, और ब्रह्मा द्वारा अपनी जादुई शक्ति से लाए गए, कमल की कली में उत्पन्न हुए आठ संन्यास-आवश्यकताओं को स्वीकार किया, जो कल्प के पुनरुत्थान के समय उत्पन्न हुई थीं, और भिक्षु बन गए। और चूंकि प्रारंभ में, बुद्ध बनने के बोधि-ज्ञान में उनकी अंतर्दृष्टि अभी पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुई थी, इसलिए वे बुद्ध बनने के सही या गलत मार्ग को नहीं जानते थे, और उन्होंने उरुवेला क्षेत्र में छह वर्षों तक, पदानसुत्त में वर्णित विधि के अनुसार, कठोर परिश्रम (पधान), विशाल प्रयास और कठिन कर्म (दुक्करा कारिका) किया, जिसमें केवल एक बार भोजन करना, केवल एक निवाला खाना, एक ही व्यक्ति के साथ, एक ही यात्रा पर, एक ही बैठक में एक ही भोजन करना शामिल था, जब तक कि उनका शरीर पेटा के आकार का नहीं हो गया, जिसमें मांस और रक्त नहीं था। उन्होंने यह विचार किया कि कठिन कर्म पूर्ण ज्ञान प्राप्ति और बुद्ध बनने का सही मार्ग नहीं है, उन्होंने गांवों, बाजार कस्बों (निगम) और राजसी शहरों में उत्तम पोषण का आनंद लिया, अपनी इंद्रियों के नियंत्रण में सुंदर बन गए, एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस गुणों से पूर्ण रूप से परिपूर्ण हो गए, उचित समय पर बोधि वृक्ष की ओर गए, पांचों मारों पर विजय प्राप्त की और बुद्ध बन गए।
मैंने, ज्योतिपाला ने, तब सुगत के बारे में बात की।
कस्सपा; बुद्धत्व कहाँ से प्राप्त होता है?
गंजा। बुद्धत्व बिल्कुल

हासिल करना मुश्किल है।
उस कर्म के परिणाम स्वरूप, मुझे
बहुत कठिन कर्मों का अभ्यास करना पड़ा
उरुवेला में छह साल और उसके बाद मैं
उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और बुद्ध बन गए।
मैंने बोधि की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त नहीं किया।
उस सही मार्ग का साधन; अवरुद्ध होना
अपने पूर्व कर्म के अनुसार, मैं खोज में था
उस उपलब्धि को गलत रास्ते से हासिल करना।
मैं उस व्यक्ति के रूप में निर्वाण में प्रवेश करूंगा, जिसने यह किया था
सभी गुणों और दोषों को दूर करते हुए, जो
जिसने सभी चिंताओं का त्याग कर दिया था,
चिंता और उथल-पुथल से मुक्त हो जाओ
साथ ही साथ कैंकर (आसवा) भी।

मौन बुद्ध पर झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म, फिर नरक में कष्ट भोगने और अब विरोध पर

82.3 दूसरे प्रश्न में, 'अब्भक्खानाम्' अभिव्यक्ति का अर्थ चुगली, गाली-गलौज और निंदा बढ़ाना है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत्व का जन्म निम्न सामाजिक श्रेणी (शुद्ध) के परिवार में हुआ था। वे प्रसिद्ध नहीं थे; उनकी योग्यताएँ अल्प थीं; और वे मुनाली नामक एक दुष्ट व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करते थे। उसी समय, उच्च जादुई शक्तियों और महान प्रभाव वाले एक मौन बुद्ध, सुरभि, किसी कार्य के सिलसिले में उनके पड़ोस में आए। मौन बुद्ध को देखते ही उन्होंने उन पर इस प्रकार के अपमानजनक शब्दों से आरोप लगाया: "यह भिक्षु उपदेशों में दुष्ट है और बुरे धर्म की ओर प्रवृत्त है" इत्यादि। उस पाप कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने हजारों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा, और इसी प्रकार इस अंतिम जन्म में, जब विधर्मी (तित्तिया) सर्वप्रथम प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुए, उस समय जब परम पूज्य बुद्ध तुषिता के दिव्य महल में निवास कर रहे थे और अपने बासठ मतों का प्रदर्शन करते हुए समस्त जनसमूह को भ्रमित कर रहे थे; तब वे तुषिता के स्वर्ग नगर से विदा हुए, शाक्य वंश में जन्म लिया और अंततः बुद्ध बन गए।

बुद्ध के शिष्यों द्वारा प्रदर्शित उड़ने की जादुई शक्ति

विधर्मी सूर्योदय के समय जुगनुओं की तरह लाभ और यश से वंचित हो गए, और इसलिए बुद्ध के प्रति द्वेष रखते हुए इधर-उधर भटकने लगे। उसी अवसर पर, राजगृह के धनदाता गंगा नदी में स्नान करते हुए, जाल बिछाकर लाल चंदन का एक पात्र देखकर यह विचार करने लगे: "हमारे घर में चंदन बहुतायत में है; इसे खराद पर रखकर कारीगरों द्वारा इसी लकड़ी का एक भिक्षापात्र बनाया जाए और उसे बांस की अलग-अलग ऊँचाइयों पर लटकाया जाए।" उन्होंने ऐसा ही किया और ढोल बजाकर यह घोषणा की, "जो कोई भी अपनी जादुई शक्ति से यहाँ आकर यह पात्र ले जाए, मैं उसका भोजन कराने वाला बनूँगा।"

82.4 तब विधर्मी आपस में बुदबुदाए: "अब तो हम बर्बाद हो गए! अब तो हम बर्बाद हो गए!" जैन नेता नाता के पुत्र निगंठ ने अपनी सभा से कहा: "मैं बांस के पास जाकर आकाश में उड़ने का करतब दिखाऊंगा: तुम सब मुझे कमर से पकड़कर मना करो और कहो: 'कृपया तुच्छ लकड़ी के कटोरे के कारण चमत्कार न करो'।" वे उसी के अनुसार गए और वैसा ही किया।

82.5 उस समय, पिन्दोलाभारद्वाज और मोग्गलाना थेरा, तीन गावट आकार की एक पथरीली पहाड़ी पर खड़े थे, भिक्षापात्रों में भोजन एकत्र करने के उद्देश्य से अपने ऊपरी वस्त्र धारण किए हुए थे, और उन्होंने उस घोषणा (कोलाहला) के बारे में सुना। मोग्गलाना ने पिन्दोलाभारद्वाज से कहा, "आप हवा में जाइए और वह कटोरा ले आइए।" पिन्दोलाभारद्वाज ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय! आपको स्वयं भगवान ने अपने शक्तिशाली शिष्यों में सर्वोच्च स्थान दिया है, इसलिए कृपया इसे स्वयं ही ग्रहण करें।" ऐसे उत्तर के बावजूद, पिन्दोला को आदेश दिया गया, "मैं आपको आदेश देता हूँ। आपको बस इसे ग्रहण करना है।" आदेश के अधीन, पिन्दोला ने तीन गावटों की चट्टानी पहाड़ी, जिस पर वह स्वयं खड़ा था, को अपने पैरों के तलवों से चावल उबालने वाले बर्तन के ढक्कन की तरह चिपका लिया और रागगृह नगर को ढक लिया। तब नगरवासियों ने उस थेरे को रत्न-धागे की तरह किसी पहाड़ी के चारों ओर लिपटा हुआ देखकर

जोर से पुकारा, "आदरणीय भारद्वाज! कृपया हमारी रक्षा करें।" भयभीत होकर उन्होंने अपने सिर सूप से ढक लिए। तब थेरे ने उस पहाड़ी को उसी स्थान पर छोड़ दिया, अपनी जादुई शक्ति से आकाश में गए और वह कटोरा ले आए। इस अवसर पर नगरवासियों ने बहुत शोर मचाया।

82.6 बांस के वन में स्थित मठ में बैठे हुए, भगवान बुद्ध ने वह शोरगुल सुना और आनंद से पूछा, "यह कैसी आवाज है?" आनंद ने उत्तर दिया, "हे पूज्यवर! भारद्वाज द्वारा कटोरा ले लिए जाने के कारण, नागरिक बहुत प्रसन्न हुए और शोर मचाने लगे।" तब भगवान बुद्ध ने उस कटोरे को अपने पास मंगवाया, उसे तुड़वाया, आँखों के लिए एक चूर्ण बनाया और भिक्षुओं को दे दिया, ताकि भविष्य में कोई दूसरों की आलोचना न करे। हालाँकि, इसे देने के बाद, बुद्ध ने एक नियम बनाया: "हे भिक्षुओं! जादू-टोने का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। जो कोई भी ऐसा करता है, वह दुक्कड़ कर्म का दोषी है।"

पल भर में उगने वाले और कभी न खत्म होने वाले फलों से भरपूर आम के पेड़ की जादुई शक्ति का प्रदर्शन।

82.7 परिणामस्वरूप, विधर्मी आपस में कहने लगे, “हमें बताया गया है कि भिक्षु गौतम ने अपने शिष्यों के लिए अनुशासन का नियम निर्धारित किया था; उन्हें उस नियम का उल्लंघन नहीं करना चाहिए क्योंकि उनके जीवन को खतरा है; हम अपनी जादुई शक्तियों का प्रदर्शन करेंगे।” वे समूह बनाकर यहाँ जमा हो गए और शोर मचाने लगे। तब राजा बिम्बिसार ने इसके बारे में सुना, वे बुद्ध के समक्ष गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बुद्ध से इस प्रकार कहा, “हे प्रभु! विधर्मी शोर मचा रहे हैं और कह रहे हैं कि वे अपनी जादुई शक्तियों का प्रदर्शन करेंगे।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “हे महान राजा! मैं भी ऐसा ही करूँगा।” राजा ने पूछा, “हे प्रभु! क्या बुद्ध ने शिष्यों के लिए अनुशासन का नियम निर्धारित नहीं किया था?” बुद्ध ने एक प्रतिप्रश्न पूछा: "हे महाराज! मैं आपसे ही पूछ सकता हूँ कि जब आप अपने राज उद्यान में आम आदि खाने के दोषी लोगों के लिए दंड का नियम बनाते हैं, तो क्या आप स्वयं को भी इस अपराध और दंड में शामिल करते हैं?" राजा ने उत्तर दिया: "हे महाराज! मेरे लिए कोई दंड नहीं है।" बुद्ध ने निष्कर्ष निकाला: "हे महाराज! उसी प्रकार, मेरे लिए कोई अनुशासनात्मक नियम बनाने की भी आवश्यकता नहीं है।" तब राजा ने पूछा: "हे महाराज! आपका प्रदर्शन कहाँ होगा?" बुद्ध ने उत्तर दिया: "हे महाराज! यह सावत्थी के पास कंद के आम के वृक्ष के नीचे होगा।" राजा बिम्बिसार ने कहा: "बहुत अच्छा, हे महाराज!" हम इसे देखेंगे।” परिणामस्वरूप, विधर्मियों ने यह सुनकर कि “कंड के आम के वृक्ष के नीचे चमत्कार होने वाला है”, शहर के चारों ओर आम के वृक्ष कटवा दिए। नागरिकों ने आंगन के विशाल क्षेत्र में एक के ऊपर एक पलंग और ऊंचे चबूतरे आदि बनाकर उन्हें निगरानी मीनारों के रूप में इस्तेमाल किया। पूरे भारत (जम्बू द्वीप) के निवासी समूहों में संगठित होकर पूर्व दिशा में बारह योजन की दूरी तक फैल गए। शेष दिशाओं में भी वे इसी प्रकार एकत्रित हुए।

82.8 जब समय आ गया, आषाढ़ माह की पूर्णिमा की सुबह, जब सारा काम पूरा हो चुका था, तब परम पूज्य भगवान उस स्थान पर गए और बैठ गए। उसी क्षण, कंद नामक माली ने चींटियों के घोंसले में एक पका हुआ आम देखा और मन ही मन कहा, "यदि मैं यह आम राजा को दे दूं, तो मुझे सोने के सिक्के (कहापण) आदि जैसे आवश्यक पुरस्कार प्राप्त होंगे; दूसरी ओर, जब इसे परम पूज्य को अर्पित किया जाएगा, तो मुझे इस लोक और परलोक दोनों में समृद्धि प्राप्त होगी।" उसने वह आम परम पूज्य को अर्पित कर दिया। परम पूज्य भगवान ने उसे ग्रहण किया और थेरा आनंद को आदेश दिया, "इस फल को मसलकर इसका रस मुझे पीने को दो।" थेरा ने वैसा ही किया। परम पूज्य भगवान ने आम का रस पिया, आम की गुठली बाग के रखवाले को लौटा दी और कहा: "इस बीज को बो दो।" माली ने रेत की परत हटाई और बीज बो दिया। थेरा आनंद ने प्याले से पानी छिड़का। उसी क्षण आम का पौधा उग आया और जब वहाँ मौजूद लोगों का विशाल समूह देख रहा था, तभी एक पूर्ण विकसित आम का वृक्ष प्रकट हुआ, जिसकी शाखाएँ, अंकुर और टहनियाँ फूलों और फलों से लदी हुई थीं। गिरे हुए आमों को खाकर भी जंबू द्वीप के सभी निवासी तृप्त नहीं हो पाए।

स्वर्ग में जादुई शक्तियों का प्रदर्शन करना और वहाँ अपनी माँ को शिक्षा देना

82.9 इसके बाद, प्रतापी बुद्ध ने पूर्वी ब्रह्मांड (चक्कवाला) से लेकर पश्चिमी ब्रह्मांड तक, हमारे ब्रह्मांड (चक्कवाला) में, शक्तिशाली मेरु के शीर्ष पर एक रत्नजड़ित सैरगाह बनाई, धम्मपद की टीका में वर्णित तरीके से अपनी जादुई शक्ति का भव्य प्रदर्शन किया, अनेक सभाओं के समक्ष सिंह के समान गर्जना करते हुए, विधर्मियों को कुचल दिया, उन्हें भ्रम और अव्यवस्था में डाल दिया, अपने चमत्कार के अंत में पूर्व बुद्धों की प्रथा के अनुरूप तावतिंसा के दिव्य महल में गए, वहाँ उपवास का समय बिताया, तीन महीनों तक बिना किसी अंतराल के अभिधम्म का उपदेश दिया, अपनी माता के नेतृत्व में अनेक देवताओं को पवित्रता की प्रथम अवस्था (सोतापत्ति) की प्राप्ति कराई, वर्षा ऋतु (उपवास) बिताने के बाद स्वर्ग से अवतरित होने की व्यवस्था की, अनेक देवताओं के समूहों से घिरे हुए नीचे उतरे। ब्रह्माओं ने संकस्सा नगर के द्वार पर जाकर विश्वलोक का उत्थान किया। उस समय तक, प्रतापी भगवान को प्राप्त लाभ और सम्मान ने जंबू द्वीप को पाँच महान नदियों के समान भर दिया था।

एक पूर्व बुद्ध शिष्य पर यौन दुराचार का झूठा आरोप लगाने के पूर्व कर्म के फल पर, अब झूठे आरोप का सामना कर रही महिला सिंका-मनविका द्वारा लिखित लेख

82.10 परिणामस्वरूप, विधर्मी धन-संपत्ति और मान-सम्मान में क्षीण हो गए, व्यथित, निराश और हताश हो गए और उदास चेहरे के साथ बैठ गए। तब उनकी अत्यंत सुंदर भक्त सिंकामानविका ने उन्हें इस प्रकार बैठे देखकर पूछा, “आदरणीय महोदय! आप सब इतने व्यथित और निराश क्यों बैठे हैं?” उन्होंने उत्तर दिया, “हे बहन! आप इतनी उदासीन क्यों हैं?” उसने पूछा, “आदरणीय महोदय! क्या बात है?” उन्होंने शिकायत की, “हे बहन! जब से गौतम भिक्षु प्रकट हुए हैं, तब से हमने अपना धन-संपत्ति खो दी है; नागरिक हमारा अनादर करते हैं।” युवती ने पूछा, “इस मामले में हमें क्या करना चाहिए?” उन्होंने सुझाव दिया, “आपको गौतम भिक्षु के विरुद्ध बवाल खड़ा करना चाहिए।” उसने कहा, “यह मेरे लिए बोझिल नहीं है।” इस कार्य में प्रयास करते हुए, वह एक अजीब समय पर जेतवन गई, विधर्मियों के आश्रम में ठहरी और सुबह मानो स्वयं जेतवन से ही नागरिकों के आगमन के समय इत्र आदि भेंट लेकर परमेश्वर को प्रणाम करने के लिए बाहर आई। जब उससे पूछा गया: "तुम कहाँ सोई थीं?" उसने उत्तर दिया: "मेरे सोने की जगह का आप लोगों को क्या उपयोग है?" और चली गई। धीरे-धीरे, समय बीतने के साथ, जब उससे दोबारा पूछा गया तो उसने अंततः उत्तर दिया: "मैं भिक्षु गौतम के साथ एक ही सुगंधित कक्ष में सोने के बाद आई हूँ।" मूर्ख और सामान्य लोग (पुथुज्जन) उसकी कहानी पर विश्वास कर गए। बुद्धिमान लोग, जो धारा के विजेता (सोतापन्न) आदि थे, ने उस पर विश्वास नहीं किया। एक दिन, उसने अपने पेट पर एक लकड़ी की डिस्क बाँधी, जिसके ऊपर उसने चारों ओर एक लाल कपड़ा (पटा) रखा, और जाकर धर्म का उपदेश देने के उद्देश्य से बैठे हुए भगवान से, श्रोताओं की सभा में, जिसमें स्वयं राजा भी शामिल थे, इस प्रकार कहा: "हे भिक्षु! आप धर्म का उपदेश देते हैं; लेकिन आप मेरे गर्भ में पल रहे अपने होने वाले पुत्र की देखभाल लहसुन, काली मिर्च आदि से नहीं करते हैं, जो आपके कारण ही गर्भ में आया है।" भगवान ने प्रतिक्रिया दी: "बहन! आप स्वयं भी, और मैं भी, ऐसी स्थिति को जानते हैं!" उसने कहा: "बिल्कुल; केवल दो ही लोग यौन संबंध के समय को जानते हैं; किसी अन्य व्यक्ति को नहीं।

82.11 उसी क्षण, सक्का का हल्का पीला मखमली पत्थर का आसन गर्म होने लगा। जाँच करने पर सक्का को इस बात का पता चला और उन्होंने दो युवा देवताओं को आदेश दिया: "तुम दोनों में से एक चूहे का रूप धारण करके उसके लकड़ी के चक्र का बंधन काट दे। दूसरा बवंडर उत्पन्न करके उसके वस्त्र को उसके शरीर से उड़ा दे।" वे गए और उन्होंने वैसा ही किया। लकड़ी का चक्र नीचे गिरते ही उसके पैर के तलवे को तोड़ गया। धम्मसभा में एकत्रित सभी आम लोग (पुथुज्जन) उठ खड़े हुए और बोले: "देखो, दुष्ट चोर! तुमने तीनों लोकों के स्वामी पर ऐसा आरोप लगाया है!" उन्होंने मुक्कों से वार किया और उसे सभा से बाहर घसीट लिया। उसके इस दृश्य के समाप्त होते ही पृथ्वी में एक प्रतिध्वनि उत्पन्न हुई। उसी क्षण, नरक (अविसी/नरक) से ज्वालाएँ उठीं, उन्हें परिवार द्वारा उपहार में दिए गए लाल मखमल सहित ढक लिया और नरक (अविसी) में फेंक दिया। परम पूज्य ईश्वर के प्रति अत्यधिक श्रद्धा और सम्मान था। इसलिए ऐसा कहा गया है:

बुद्ध का एक शिष्य था, जो सर्वधर्मवादी था...
मैं नंदा नामक व्यक्ति से प्रश्न करता हूँ। क्योंकि मैं
मैंने उसकी बदनामी की, मुझे बार-बार पुनर्जन्म लेना पड़ा।

लंबे समय तक निरयण (शुद्धिकरण) में रहना।
दस हजार वर्षों तक,
मैंने नरक में बार-बार पुनर्जन्म का अनुभव किया।
(निरया), जब अंततः मैं एक इंसान बन गया
मुझे बहुत बदनामी का सामना करना पड़ा।
उस कृत्य के परिणामों के अवशेषों के रूप में
मेरे आरोप के संबंध में, युवती, सिन्का,
एक बड़े समूह के सामने मुझ पर झूठा आरोप लगाया गया
लोगों का।

मौन बुद्ध पर यौन दुराचार का झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म पर, अब लेडी सुंदरिका द्वारा झूठे आरोप की बदनामी का सामना करना पड़ रहा है

82.12. तीसरे प्रश्न में:- अभिव्यक्ति: अब्बक्खानाम् का अर्थ है विरोध में घोषणा, अपमान। कहा जाता है कि बहुत समय पहले बोधिसत्व का जन्म एक महत्वहीन परिवार में हुआ था। उनका नाम मुनाली था, जो बुरे लोगों की संगति के कारण दुष्ट बन गए और मौन बुद्ध सुरभि का अपमान करते हुए बोले: "यह भिक्षु दुष्ट कर्म और बुरे धर्म का अनुयायी है। इसी कर्म के फल के कारण वह हजारों वर्षों तक नरक (निरय) में पले-बढ़े, और अपने इस अंतिम जन्म में दस सिद्धियों को पूर्ण करने के कारण वे बुद्ध बन गए और सर्वोच्च लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त की।" फिर विधर्मी दुखी और निराश होकर बैठ गए और आपस में कहने लगे, "अब हम गौतम भिक्षु का अपमान कैसे करें?" तभी सुंदरी नाम की एक साध्वी उनके पास आईं और जब वे उन्हें प्रणाम कर रही थीं, तो उन्होंने देखा कि वे सब मौन हैं। इसलिए उन्होंने पूछा, "आप सब मुझसे क्यों क्रोधित हैं? मेरी क्या गलती है?" उन्होंने उत्तर दिया: "जब हम भिक्षु गौतम द्वारा सताए जा रहे थे, तब आप हमारे लिए निश्चिंत होकर रह रही थीं; यही आपकी गलती है।" उन्होंने पूछा: "यदि ऐसा है, तो मैं इस मामले में क्या करूँ?" उन्होंने कहा: "क्या आप भिक्षु गौतम की बदनामी कर पाएँगी?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे प्रभु! मैं ऐसा कर पाऊँगी।" इसके बाद, जैसा कि पहले बताया गया है, उन्होंने बुद्ध को अपशब्द कहे और हर किसी को बताया कि वह कहाँ हैं, इस प्रकार: "मैं भिक्षु गौतम के साथ एक सुगंधित कक्ष में सोने के बाद बाहर आई हूँ।" विधर्मियों ने भी निंदा और अपशब्द कहते हुए कहा: "ओह! भिक्षु गौतम का यह काम देखो।" वास्तव में, ऐसा कहा गया है:

मैं मुनाली नाम का एक बदमाश था, जो पहले अपने
अन्य पुनर्जन्म; मैंने निर्दोष मौन को बदनाम किया
बुद्ध सुरभि. उस कृत्य के परिणामस्वरूप, मैं
उसे नरक (निरय) में पुनर्जन्म का सामना करना पड़ा।
हजारों वर्षों तक, मैंने अनुभव किया
असहनीय अनुभूति। अवशेष के कारण
उस कृत्य का, मेरे अंतिम जीवन में,
मुझे सुंदरिका द्वारा लगाए गए झूठे आरोपों का सामना करना पड़ा।

यौन दुराचार के लिए एक तपस्वी पर झूठा आरोप लगाने के पिछले कर्म पर, अब मठ में सुंदरिका का मृत शरीर मिलने के घोटाले का सामना करना पड़ रहा है

82.13. चौथे प्रश्न में, 'अभक्खानाम्' शब्द का अर्थ है: बढ़ती हुई तीव्रता से निंदा और अपशब्द बोलना। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे बोधिसत्व, जो अत्यंत विद्वान थे और अनेक पुरुषों द्वारा व्यक्तिगत रूप से सम्मानित (सक्कतो) थे, ने संसार त्याग दिया, तपस्वी बन गए और हिमालय में निवास करने लगे, जहाँ वे वन की जड़ों और फलों से अपना पोषण करते थे और अनेक युवकों को मंत्रों का उपदेश देते थे। पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) और आठ प्रकार की ध्यान संबंधी उपलब्धियाँ (समापत्ति) प्राप्त कर चुके एक तपस्वी उनके समक्ष आए। जैसे ही उन्होंने उस तपस्वी को देखा, वे ईर्ष्यालु हो गए और उस निर्दोष तपस्वी पर यह आरोप लगाया: "यह तपस्वी पाखंडी है, जो इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है।" उन्होंने अपने शिष्यों से भी कहा: "यह तपस्वी दुराचार का उत्पादक है।" उन्होंने भी उसी प्रकार से निंदा और अपशब्द बोले। उस कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने एक हजार वर्षों तक निरयण में कष्ट भोगा, और अपने अंतिम जन्म में बुद्ध बने, जिन्होंने आकाश में पूर्णिमा के समान सर्वोच्च यश और ख्याति प्राप्त की और प्रसिद्ध हुए। विधर्मी इतने कम समय में भी संतुष्ट नहीं हुए, और उन्होंने सुंदरी नामक स्त्री के साथ एक और कलंक लगाया। उन्होंने कुछ शराबी बुलाए, रिश्वत दी और उन्हें आदेश दिया: "तुम सब सुंदरी की हत्या करो और उसके शव को जेतवन द्वार के पास मालाओं के ढेर से ढक दो।" उन्होंने वैसा ही किया। इसके बाद, विधर्मियों ने राजा को सूचित किया कि सुंदरी कहीं दिखाई नहीं दे रही है और लापता है। राजा ने आदेश दिया: "तुम सब उसकी खोज करो?" उन्होंने सुंदरी के शव को उस स्थान से निकाला जहाँ उन्होंने उसे रखा था, उसे एक पलंग पर रखा, राजा को दिखाया, और पूरे शहर में घूम-घूम कर बुद्ध और भिक्षुओं के समूह के बारे में अपमानजनक शब्द चिल्लाते हुए कहा: "हाय! "देखो, गौतम भिक्षुओं के शिष्यों ने क्या किया है।" उन्होंने सुंदरी के शव को कच्चे मांस के कब्रिस्तान में एक चबूतरे पर रख दिया। राजा ने आदेश दिया: "सुंदरी के हत्यारों की तलाश करो।" तब, वे बदमाश शराब पीते हुए आपस में झगड़ने लगे: "तुमने सुंदरी को मारा है। तुम ही हत्यारे हो।" राज अधिकारी ने उन बदमाशों को गिरफ्तार कर राजा के सामने पेश किया। राजा ने पूछा: "तुम लोगों! कैसे? क्या सुंदरी की हत्या तुमने की है?" उन्होंने उत्तर दिया: "जी महाराज।" यह पूछे जाने पर कि उन्हें किसने मारने का आदेश दिया था, उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें विधर्मियों ने निर्देश दिया था। राजा ने विधर्मियों को अपने समक्ष बुलवाया, उन्हें बंधवाया और आदेश दिया: "जाओ, तुम लोगों! और यह शोर मचाओ कि 'सुंदरी की हत्या हमने खुद बुद्ध को बदनाम करने के लिए करवाई है।'" परमेश्वर और उनके शिष्य दोनों ही निर्दोष हैं। उन्होंने वैसा ही किया। पूरे शहर के निवासी संदेह से मुक्त हो गए।राजा ने विधर्मियों और दुष्ट शराबी लोगों को मृत्युदंड देकर उनके शवों को फेंकवा दिया। इसके बाद, परमेश्वर की महिमा और आदर और भी अधिक बढ़ गया। इसलिए, यह कहा गया है:-

मैं एक विद्वान ब्राह्मण बन गया, सम्मानित
मैंने व्यक्तिगत रूप से सभी को मंत्र सिखाए।
विशाल जंगल में पाँच सौ युवकों के लिए।
एक भयानक तपस्वी, जो उच्च जादुई शक्ति से परिपूर्ण था।
उनके पास पांच प्रकार के अलौकिक ज्ञान (अभिज्ञा) थे।
वहाँ आया। उसे आते देख मैंने भी निंदा की।
उस निर्दोष तपस्वी से। उसके बाद, मैंने बात की।
मेरे शिष्य: 'यह तपस्वी कामुक सुखों में लिप्त है'
सुख। जब मैंने यह भी कहा, तो युवाओं ने
उन्होंने मानहानि करने में मेरा सहर्ष समर्थन किया।
इसके बाद, मेरे सभी युवा शिष्य, जैसे-जैसे वे
वे कई लोगों के बीच भीख मांगने के लिए चक्कर लगाने लगे।
परिवार ने जनता के विशाल जनसमूह से कहा: 'यह
तपस्वी वह है जो इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है!
उस कृत्य के फलस्वरूप, ये सभी पाँच सौ
विधर्मी भिक्षुओं ने मुझ पर कलंक का पहाड़ खड़ा कर दिया।
सुंदरिका से संबंध

अपने भाई को पत्थर से मारने के पिछले कर्मों के कारण, अब चचेरे भाई द्वारा फेंके गए पत्थर से घायल हो रहा है

82.14 पाँचवें प्रश्न में, 'सिलावेदो' (पत्थर से भेदा हुआ) अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार लगाया जाना चाहिए: घायल मन ने पत्थर फेंका। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत्व और उनके छोटे भाई एक ही पिता के पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद, वे दासों के कारण आपस में झगड़ पड़े और एक-दूसरे के शत्रु बन गए। स्वयं बलवान होने के कारण, बोधिसत्व ने अपने छोटे भाई को पराजित किया और उस पर पत्थर फेंका। उस कर्म के फलस्वरूप, उसे कई हजार वर्षों तक कई नरकों में कष्ट भोगना पड़ा और इस अंतिम जन्म में वह बुद्ध बन गया। युवा राजकुमार राहुल के चाचा देवदत्त, जो पहले काँच की गेंदों (सेरी) के व्यापारी थे, बोधिसत्व के साथ भी व्यापार करते थे। वे एक बंदरगाह गाँव पहुँचे और दोनों व्यापारी एक साथ गाँव में यह कहते हुए प्रवेश कर गए: "तुम एक गली से जाओ, मैं दूसरी गली से जाता हूँ।" दोनों में से; देवदत्त जिस गली में दाखिल हुए, वहाँ एक घर में केवल दो लोग रहते थे - एक बैंकर की बूढ़ी पत्नी और उसकी पोती। बर्तनों के बीच उनका एक बड़ा सोने का कटोरा रखा था, जो अशुद्धियों से सना हुआ था। बूढ़ी औरत को पता नहीं था कि यह सोने का कटोरा है, इसलिए उसने कहा, "यह कटोरा ले लो और हमें कुछ आभूषण (पिलन्धना) दे दो।" देवदत्त ने उस कटोरे को उठाया, सुई से उस पर एक रेखा खींची, तब उसे पता चला कि यह सोने का कटोरा है, और यह सोचकर चला गया, "मैं थोड़ा सा देकर कटोरा ले लूँगा।" बाद में, बोधिसत्व को दरवाजे के पास आते देख, पोती ने कहा, "दादी! कृपया मुझे आभूषणों से भरी एक टोकरी (पिलन्धना) दे दीजिए।" बूढ़ी औरत ने उसे बुलवाया, उसे बिठाया, वह कटोरा उसे दिया और कहा, "यह ले लो और मेरी पोती को आभूषणों से भरी एक टोकरी दे दो।" बोधिसत्व ने उसे पकड़ लिया, पहचान लिया कि यह सोने का कटोरा है, और समझ गए कि दूसरे व्यापारी ने उन्हें धोखा दिया है। उन्होंने दादी को आठ सोने के सिक्के (कहापण) और बचा हुआ सामान दे दिया, युवती के हाथों को गहनों से भरी टोकरी से सजाया और चले गए। वह व्यापारी फिर लौटा और पूछताछ की। दादी ने कहा, "मेरे बेटे! तुमने मेरा कटोरा स्वीकार नहीं किया; मेरे बेटे जैसे व्यापारी ने यह और वह भेंट किया, कटोरा स्वीकार किया और चला गया।" दादी की बात सुनते ही वह दौड़ा और बोधिसत्व का पीछा किया मानो उसका दिल टूट गया हो। बोधिसत्व नाव पर सवार होकर चले गए। वह व्यापारी बोधिसत्व को बार-बार रुकने और न भागने के लिए चिल्लाता रहा और बाद में प्रार्थना की, "हर जन्म में, मैं उसे नष्ट कर सकूँ।"
82.15. उस प्रार्थना के फलस्वरूप, उन्होंने कई लाख जन्मों तक एक-दूसरे को सताया और इस जन्म में उनका जन्म शाक्य परिवार में हुआ और अंततः वे सर्वज्ञता प्राप्त करके भगवान बुद्ध के रूप में विख्यात हुए। जब वे राजगृह में निवास कर रहे थे, तब देवदत्त, अनिरुद्ध और अन्य लोग भगवान बुद्ध के समक्ष गए, भिक्षु बने, ध्यान प्राप्त किया, प्रसिद्ध हुए और उनसे यह वरदान मांगा: "हे पूज्यवर! सभी भिक्षुओं को भिक्षा-भोजन संग्रह आदि तेरह कठोर (धूतंग) विधियों का पालन करने का दायित्व लेना चाहिए; समस्त पुरोहितों की जिम्मेदारी मेरी हो।" भगवान बुद्ध ने यह स्वीकार नहीं किया। देवदत्त ने शत्रुता पाल रखी थी, उसका ध्यान पूरी तरह से समाप्त हो गया था और वह प्रतापी को जान से मारने की इच्छा से वेभारा पर्वत की तलहटी में खड़े प्रतापी के ऊपर खड़ा हो गया और उस पर एक शिलाखंड फेंका। प्रतापी की शक्ति के कारण एक अन्य शिलाखंड ने उस गिरते हुए शिलाखंड को रोक दिया। हालाँकि, उनके टकराने से एक शिलाखंड उछला और प्रतापी के कदम पर जा लगा। इसलिए यह कहा गया है:-

"मैंने अपने अलग भाई की हत्या कर दी।"
माँ, पहले पैसों की कमी के कारण मैंने फेंक दिया था
उसे पहाड़ों की घाटी में ले जाकर उसकी पिटाई की।
पत्थर से भी। इसके परिणामस्वरूप
उस घटना पर देवदत्त ने मुझ पर पत्थर फेंका।
पत्थर के टुकड़े मेरे पैर के अंगूठे पर चुभ गए।
पैर।"

मौन बुद्ध पर पत्थर फेंकने के पिछले कर्म के कारण, अब पत्थर के टुकड़े से चोट लग रही है

82.16. छठे प्रश्न में: 'सकलिकावेदो' (तिरछी लकड़ी से छेदा हुआ) अभिव्यक्ति का अर्थ है किरछी लकड़ी से चोट लगी है। बहुत समय पहले, ऐसा कहा जाता है कि बोधिसत्व का एक परिवार में पुनर्जन्म हुआ था। अपने बचपन में, जब वे एक राजमार्ग पर खेल रहे थे, उन्होंने एक मौन बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा और मन ही मन कहा, "यह मुंडा हुआ भिक्षु कहाँ जाता है?", तो उन्होंने एक पत्थर की किरछी पकड़ी और उसे अपने पैर के तलवे पर फेंक दिया। खून निकला और उनके पैर के पिछले हिस्से की त्वचा कट गई। उस बुरे कर्म के कारण, उन्होंने कई हजार वर्षों तक नरक (निरय) में घोर कष्ट सहा और यद्यपि वे बुद्ध बन गए थे, फिर भी उन्हें अपने बुरे कर्म के अवशेष के रूप में पैर के पिछले हिस्से पर पत्थर की किरछी लगने से रक्तपात का कष्ट सहना पड़ा। इसलिए, यह कहा गया है:-

"पहले मैं एक छोटा लड़का था, जो खेलता था।"
राजमार्ग पर चलते हुए, मैंने एक शांत बुद्ध की प्रतिमा देखी।
सड़क पर जाकर उसने उस पर एक लकड़ी का टुकड़ा फेंक दिया।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप, देवदत्त ने
मुझे जान से मारने की कोशिश
मुझे इस तरह मौत के घाट उतारने का उद्देश्य क्या है?
मेरा अंतिम अस्तित्व।

मौन बुद्ध को हाथी से मारने के पिछले कर्म पर, अब नालगिरी हाथी द्वारा हमला किया जा रहा है

82.17. सातवें प्रश्न में, 'नालागिरि' अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: धन के रक्षक, धनपालक हाथी को बुद्ध की हत्या के उद्देश्य से भेजा गया था। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत्व का जन्म एक हाथीपालक के रूप में हुआ था। जब वे हाथी पर सवार होकर घूम रहे थे, तो उन्होंने एक ऊँची सड़क पर एक शांत बुद्ध को देखा और आक्रामक स्वभाव के कारण, मानसिक रूप से अवरुद्ध होकर, अपने हाथी से उन्हें स्पर्श किया और कहा, "यह गंजा सिर कहाँ से आया है?" उस बुरे कर्म के कारण, उन्होंने कई हज़ार वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा और अपने अंतिम जन्म में बुद्ध बने। देवदत्त ने राजा अजातसत्तु से मित्रता की और उन्हें इस प्रकार निर्देश दिया: "हे महान राजा! आप अपने पिता को मारकर राजा बनें; मैं बुद्ध को मारकर बुद्ध बनूँगा।" एक दिन, राजा की अनुमति से, देवदत्त हाथी के बाड़े में गए और हाथी पालकों को आदेश दिया: "कल हाथी नालागिरि को सोलह घड़े मदिरा पिलाकर बुद्ध के भिक्षा मांगने के समय उसे बाहर भेज देना।" पूरे शहर में यह शोर मच गया: "हम हाथी और बुद्ध-हाथी का युद्ध देखेंगे।" सभी लोग सुबह-सुबह राजमार्ग के दोनों ओर पलंग बिछाकर एकत्र हो गए। बुद्ध ने भी स्नान करके भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उसी क्षण उन्होंने नालागिरि को बताए गए तरीके से छोड़ दिया। हाथी सड़कों, चौराहों आदि को तोड़ता हुआ आगे बढ़ा। उसी समय एक स्त्री अपने बच्चे को साथ लेकर गली-गली घूम रही थी। उस स्त्री को देखकर हाथी ने उसका पीछा किया। भगवान बुद्ध ने कहा, "हे नालदगिरि! तुम्हें मारने के लिए नहीं भेजा गया है; इधर आओ।" यह वाणी सुनकर वह भगवान बुद्ध की ओर दौड़ पड़ा। बुद्ध ने केवल नालदगिरि पर ही ऐसा प्रेम बरसाया जो असीम ब्रह्मांड के असंख्य प्राणियों में व्याप्त होने योग्य था (चक्कवा)। भगवान बुद्ध के प्रेम से परिपूर्ण होकर वह निर्धन हो गया और उनके चरणों में झुक गया। बुद्ध ने अपना हाथ उसके सिर पर रखा। उस समय, देवता और ब्रह्मा आश्चर्यचकित और विस्मयचकित हो गए और उन्होंने रंग-बिरंगे फूलों आदि से भगवान बुद्ध का सम्मान किया। पूरे नगर में घुटनों तक धन के ढेर लग गए। राजा ने घंटा बजाकर पूरे शहर में घोषणा की: "पश्चिम द्वार पर जो भी धन है, वह नागरिकों के लिए है; पूर्व द्वार पर जो भी धन है, वह राजकोष में जमा कर दिया जाए।" सभी नागरिकों ने ऐसा ही किया। तब नालगिरि धनपाल, धन के रक्षक के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे वेलुवन मठ चले गए। इसलिए, यह कहा गया है:-

मैं पहले हाथी की सवारी करता था।
मेरे हाथी से छुआ जो सबसे पूर्व-
उत्कृष्ट मौन बुद्ध जो भिक्षा मांग रहे थे
भिक्षा-भोजन के लिए चक्कर लगाना। परिणामस्वरूप
दुष्ट कर्म, आवारा क्रूर हाथी नाला-
गिरी उस शानदार शहर में मेरी ओर दौड़ी।

गिरिब्बाज का।

तलवार से लोगों को मारने के पिछले कर्मों पर, अब पैर में चोट और उसकी सर्जरी

आठवें प्रश्न में अनुच्छेद 82.18: 'सत्थच्छेद' शब्द का अर्थ है किसी घाव को शल्य चिकित्सा छुरी से चीरना; कुष्ठ रोग (कुथाराय) के घावों को छेनी से काटना। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत एक सीमावर्ती क्षेत्र में राजा थे। सीमावर्ती क्षेत्र में रहने और दुष्ट लोगों के साथ संगति के कारण वे कठोर और क्रूर हो गए थे। एक दिन तलवार से लैस होकर वे अपने शहर में पैदल ही घूमने लगे और निर्दोष लोगों को अपनी तलवार से चीरते चले गए। उस बुरे कर्म के फलस्वरूप वे कई हजार वर्षों तक नरक में रहे, पशु रूप में अनेक जन्म लिए, और इसी प्रकार अन्य कष्ट भोगे। लेकिन परिपक्वता की ओर बढ़ते हुए, यद्यपि वे अपने अंतिम जन्म में बुद्ध बन गए, जैसा कि नीचे वर्णित है, देवदत्त द्वारा फेंके गए पत्थर के टुकड़े से उन्हें एक पीड़ादायक घाव हो गया। जीवक ने प्रेम और करुणा के भाव से उस पीड़ादायक घाव का शल्य चिकित्सा किया। शत्रु हृदय वाले देवदत्त ने बुद्ध का रक्त बहाकर एक जघन्य पाप किया, जिसका तत्काल और निरंतर परिणाम भुगतना पड़ा। पुण्य केवल जीवक को मिला, जिसने दयालु हृदय से बुद्ध के घाव को चीर दिया। इसलिए, यह कहा गया है:-

मैं एक राजा था, एक राहगीर। मैंने हत्या की।
मेरे चाकू से लोगों को। परिणामस्वरूप
मैंने जो बुरा कर्म किया, उसके लिए मुझे नरक में बुरी तरह पकाया गया।
जब उस बुरे कर्म का अवशेष अब मेरे सामने आया
मेरे पैर की त्वचा पूरी तरह से ठीक हो गई थी; वास्तव में
वह (बुरा) कर्म नष्ट नहीं होता।

1. कुथारया शब्द पीटीएस शब्दकोश में नहीं है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।
इसे कुत्थारुया के लिए एक संपादकीय त्रुटि माना जाता है।
कुष्ठ और अरुया में से; पहला कुष्ठ रोगी को दर्शाता है और
बाद वाला शब्द 'घाव का' दर्शाता है। इसलिए मेरा अनुवाद यह है।
अंग्रेजी में इसका अर्थ है कुष्ठ रोग का घाव।

मछलियों को मारने का आनंद लेने के पिछले कर्मों के कारण, अब लगातार सिरदर्द हो रहा है

82.19. नौवें प्रश्न में: 'सीसादुक्खा' अभिव्यक्ति का अर्थ सिर का रोग, सिर का कष्ट है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधसात का जन्म मछुआरों के गाँव में हुआ था और वे वहीं मछुआरे बन गए थे। एक दिन, वे कुछ मछुआरों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ मछलियाँ मारी जाती थीं और वहाँ मछलियों को मरते देखकर उन्हें मानसिक सुख प्राप्त हुआ। उनके साथ गए अन्य लोगों को भी ऐसा ही सुख प्राप्त हुआ। उस अपाय के कारण, उन्हें नरक के चारों रूपों में कष्ट भोगना पड़ा, इस अंतिम जन्म में उनका जन्म शाकीय परिवार में उन्हीं पुरुषों के साथ हुआ और यद्यपि अंततः उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया, फिर भी उन्हें स्वयं सिर के कष्ट का सामना करना पड़ा। वे सभी शाकीय राजा भी विददूभा के युद्ध में धम्मपद की टीका में वर्णित तरीके से नष्ट हो गए। इसलिए, यह कहा गया है:

मैं गांव में एक मछुआरे का बच्चा बन गया।
मछुआरों का। मछलियों को मरते हुए देखकर, मैं
इससे मुझे आनंद मिला। परिणाम के कारण
उस बुरे कर्म के कारण सिर में पीड़ा उत्पन्न हुई
मेरे लिए। जब विततुभा ने नरसंहार किया, तो सभी
साकियान भी मारे गए।

पिछले बुद्ध को अच्छा भोजन देने से इनकार करने के पिछले कर्म पर, अब घोड़ों का चारा खाना पड़ रहा है

82.20. दसवें प्रश्न में यवखादना शब्द का अर्थ वेरांजय में अनाज-चावल खाना है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले बोधिसत्व का एक परिवार में पुनर्जन्म हुआ था। अपने जन्म और अपनी अज्ञानता के कारण, जब उन्होंने परम पूज्य फुस्सा के शिष्यों को उत्तम चावल के भोजन आदि जैसे मीठे भोजन और पेय पदार्थों का आनंद लेते देखा, तो उन्होंने इस प्रकार कहा: "देखो! हे गंजे भिक्षुओं! तुम्हें अनाज खाना चाहिए; उत्तम चावल (साली) के नरम भोजन का आनंद मत लो।" उस बुरे कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने हजारों वर्षों तक चारों प्रकार के नरकों में कष्ट भोगा, अंततः अपने अंतिम जन्म में बुद्धत्व प्राप्त किया और छोटे-बड़े गांवों तथा राजसी नगरों में विचरण करते हुए संसार के उत्थान का कार्य किया। एक बार वे वेरांजा ब्राह्मण के गांव के पास स्थित, शाखाओं, टहनियों और पत्तों से लदे पुचिमांडा वृक्ष की तलहटी में पहुंचे। ब्राह्मण वेरांजा बुद्ध के पास पहुंचे और उन्हें वश में करने का अनेक प्रयास किए, परन्तु असफल होकर वे सोतापन्न अवस्था में आसीन हुए और उनसे निवेदन किया, "हे पूज्यवर! यह उचित है कि बुद्ध वर्षा ऋतु में यहीं विश्राम करें।" बुद्ध मौन रहकर सहमत हो गए। फिर अगले दिन से ही दुष्ट मारा ने वेरांजा ब्राह्मण गांव के निवासियों पर अपने प्रभाव का प्रलोभन दिया। मारा के प्रलोभन के कारण, भिक्षा मांगने के लिए ग्राम में प्रवेश करने वाले भगवान को किसी ने एक चम्मच तक भिक्षा नहीं दी। भगवान को भिक्षुओं के समूह से घिरे खाली पात्र के साथ ही लौटना पड़ा। जब वे इस प्रकार लौटे, तो वहाँ ठहरे घोड़े व्यापारियों ने भी उस दिन दान दिया और फिर आगे से भगवान और उनके पाँच सौ अनुयायियों को आमंत्रित किया। उन्होंने पाँच सौ घोड़ों के भोजन में से अनाज को कूटकर उन्हीं पात्रों में डाला, जैसा कि उन्होंने सुजाता के दूध-चावल पकाने के दिन किया था। भगवान ने भोजन किया। इस प्रकार उन्हें तीन महीने तक अनाज खाना पड़ा। तीन महीने बीत जाने के बाद, जब मारा का प्रलोभन समाप्त हो गया, तो आत्म-स्वीकृति और परालोचना के निमंत्रण के दिन (पवाराणा), ब्राह्मण वेरांजा को घटना याद आई, उन्हें गहरा पश्चाताप हुआ, उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व वाले भिक्षु-पुजारियों को बड़ा दान दिया, उन्हें प्रणाम किया और क्षमा मांगी। इसलिए, यह इस प्रकार कहा गया है:

बुद्ध फुस्सा के युग में, मैं
उन्होंने अपने शिष्यों को फटकारते हुए कहा: चबाओ और
मक्का खाएं; नरम साली न खाएं।
उस बुरे काम के परिणामस्वरूप, मुझे यह करना पड़ा
तीन महीने तक मक्का चबाकर खाएं;
उस समय मैं वेरांजा में रुका था, मुझे आमंत्रित किया गया था।

पहलवान की पीठ तोड़ने के पिछले कर्म के कारण, अब लगातार पीठ दर्द हो रहा है

82.21. ग्यारहवें प्रश्न में पिष्टिदुक्खम (पीठ दर्द) अभिव्यक्ति का अर्थ पीठ का दर्द है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत्व का पुनर्जन्म एक धनी गृहस्थ परिवार में हुआ था। वे शारीरिक रूप से बलवान थे, परन्तु स्वभाव से कद में कुछ छोटे थे। उस समय, जंबू द्वीप के गांवों, जिलों और राजमहलों में कुश्ती प्रतियोगिताएं आयोजित करने वाला एक पेशेवर पहलवान लोगों को हराकर विजय प्राप्त करता हुआ अंततः उस नगर में पहुंचा जहां बोधिसत्व रहते थे। वहां भी पहलवान ने अपने प्रतिद्वंद्वी पहलवानों को गिरा दिया और जाने लगा। तभी बोधिसत्व प्रतियोगिता स्थल पर पहुंचे, अपनी बाहें जोड़कर बोले: "इसने मेरे नगर में विजय प्राप्त की है और जाने वाला है। आओ, मुझसे कुश्ती लड़कर ही जाओ।" उस पेशेवर पहलवान ने हंसते हुए कहा, "मैंने बड़े-बड़े आदमियों को गिराया है। यह बौना, जो स्वभाव से ही छोटा है, मेरे एक हाथ के भी लायक नहीं है।" उसने ताली बजाई और दहाड़ते हुए आगे बढ़ा। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ छुआ। बोधिसत्व ने उसे उठाया, आकाश में गोल-गोल घुमाया और नीचे गिरा दिया, जिससे उसकी धड़ की हड्डियाँ टूट गईं। शहर के सभी निवासियों ने जयजयकार की, तालियाँ बजाईं और बोधिसत्व को वस्त्र, आभूषण आदि भेंट किए। बोधिसत्व ने उस पेशेवर पहलवान को सीधा लेटने दिया, उसकी धड़ की हड्डियों को सीधा किया और उसे यह कहते हुए विदा किया: "चले जाओ; अब से ऐसे काम मत करना।" उस कर्म के फलस्वरूप, प्रत्येक जन्म में उन्हें शरीर और सिर में दर्द आदि जैसी पीड़ा सहनी पड़ी, और यद्यपि वे अपने अंतिम जन्म में बुद्ध बन गए, फिर भी उन्हें पीठ में चोट आदि जैसी पीड़ा सहनी पड़ी। इसलिए, कभी-कभी जब उनकी पीठ में दर्द होता, तो वे सारिपुत्त और मोग्गलाना से कहते, "अब से तुम दोनों धर्म का प्रचार करो," और स्वयं सुगत का वस्त्र बिछाकर लेट जाते। बुरे कर्मों का फल इतना भयानक होता है कि बुद्ध भी उससे बच नहीं सकते। वास्तव में, यह कहा जा चुका है:

"जब कुश्ती का मुकाबला होता था, तो मैं परेशान करता था
युवा पहलवान। इसके परिणामस्वरूप
उस क्रिया के कारण मुझे पीठ में दर्द हो गया।

चिकित्सक के रूप में गलत इलाज के पिछले कर्मों के कारण, अब निर्वाण से पहले पेचिश हो रही है

82.22. बारहवें प्रश्न में अतिसार शब्द का अर्थ रक्तपात के साथ दस्त होना है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले, बोधिसत्व एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लेकर चिकित्सक के रूप में अपना जीवन यापन करते थे। एक धनाढ्य के पुत्र को रोग होने पर, उन्होंने उसका इलाज करने के लिए एक औषधि बनाई और उसका उपचार किया, लेकिन रोगी द्वारा निर्धारित शुल्क का भुगतान न करने के कारण, चिकित्सक ने उसे दूसरी प्रकार की औषधि दी, जिससे उसे उल्टी और दस्त हो गए। धनाढ्य ने उन्हें काफी भुगतान किया। इस कर्म के फलस्वरूप, उन्हें हर जन्म में पेचिश हो जाती थी। यहां तक कि अपने अंतिम अस्तित्व में भी, जब वे पूर्णतः निर्वाण में लीन हो रहे थे, उसी क्षण जब उन्होंने एक लोहार के पुत्र चुंडा द्वारा पकाए गए कोमल सूअर का मांस (या मशरूम) और समस्त ब्रह्मांड के देवताओं द्वारा प्रदत्त दिव्य सार (चक्कवाला) का सेवन किया, तो उन्हें रक्तस्रावी पेचिश हो गई। उनकी एक लाख करोड़ हाथियों के बराबर शक्ति भी समाप्त हो गई। विशाखा की पूर्णिमा के दिन पूर्णतः निर्वाण में लीन होने के लिए कुशीनार जाते हुए, प्रतापी को अनेक स्थानों पर बैठना पड़ा, प्यास के कारण जल पीना पड़ा, अत्यंत कष्ट सहते हुए कुशीनार पहुंचे और भोर होते ही पूर्णतः निर्वाण में लीन हो गए। यहां तक कि तीनों लोकों के स्वामी जैसे व्यक्ति को भी बुरे कर्मों का फल बख्शता नहीं है। इसलिए यह कहा गया है:-

मैं एक चिकित्सक था और मैंने बैंकर के बेटे को बनाया
शुद्धिकरण। उस कृत्य के परिणामों के कारण,
मुझे पेचिश हो गई। इस प्रकार,
विजेता, जिसने शक्ति प्राप्त कर ली थी
प्रधान को प्रतिपादित सभी प्रकार के उच्च ज्ञान
अनोटत्ता में भिक्षुओं के पुरोहितों का
झील।"

82.23. इस प्रकार यह कहा गया है कि प्रश्नों की संक्षिप्त सामग्री लिखने के रूप में अवगुण का कर्म, जिसका वादा किया गया था, समाप्त हो गया है। अभिव्यक्ति इत्तम सुदम की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: वांछनीय रूप से इस साधन द्वारा, नीचे बताए गए तरीके से। सुदम एक क्रियाविशेषण (निपात) है, यह एक शब्द को भरने के लिए आया है। भगवान को उस महान सत्ता के रूप में समझाया जाना चाहिए, जो शक्तिशाली शक्ति से संपन्न है, और जिसने पूर्णता को पूर्ण किया है

"सौभाग्यशाली व्यक्ति से जुड़ा हुआ, और
उदात्तता से भरपूर; सौभाग्य से भरे विवरणों से परिपूर्ण
इसके अलावा; आदर भाव रखते हुए, जो चला गया था
अस्तित्व के संबंध में त्याग दिया; फलस्वरूप
वह महिमावान हैं, परम श्रेष्ठता के स्वामी हैं।

हे महिमावान, जो ऐसे गुणों से परिपूर्ण हैं, देवताओं के देव, सक्कों के सक्क, ब्रह्माओं के ब्रह्मा, बुद्धों के बुद्ध, अत्यंत दयालु, अपने स्वयं के (अत्तनो) बुद्धचर्यम (बुद्ध व्यवहार) को उचित रूप से विकसित (संभव्यमांस) करने के लिए, बुद्ध के कर्मों को प्रकट करने के लिए, बुद्धपादम्यम नाम, जिसे बुद्ध की जीवनी के रूप में जाना जाता है, आभासित्त, उन्होंने धम्म परियायम का वर्णन और प्रचार किया, जो धम्म का सूत्र उपदेश है, अर्थात् बुद्ध के कर्मों को प्रकट करने के लिए।

इस प्रकार विषय पर उचित टिप्पणी समाप्त हुई।

बुद्ध की जीवनी, बुद्ध अपदान
टीका (अष्टकथा) का

जीवनी (अपदान), प्रकाशमान के लिए
पवित्र लोगों की शान।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान-2.1 पचेकबुद्धस
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना 2: मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)-भाग 2.1
1.1आनंद बुद्ध से पचेकबुद्धों के बारे में और वे कैसे उत्पन्न हुए, मॉस्को हैं
1.2बुद्ध का उत्तर:
1.3उनका स्वभाव अहिंसा (एकीकृत करुणा) है
1.4कभी किसी हथियार का इस्तेमाल नहीं करता, दुनिया की पसंद-नापसंद से मुक्त, वह अविवाहित और एक भिक्षु है
1.5उनके ज्ञानोदय और सहयोगी उत्पत्ति के चक्र का ज्ञान, (पतिच्चसमुप्पाद)
1.6मौन बुद्ध का उदय
1.7राइज़न कनेक्शन (सग्गजटस्सा)

अपदाना 2: मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)-भाग 2.1

2- जीवनी पर टिप्पणी,
अपदान, मौन बुद्धों का
अत: जब निरंतर रूप से एक साथ जीवनी (अपदान) का गायन किया जा रहा था और पूछा गया: "मित्र आनंद! मौन बुद्धों (पच्चेक बुद्ध) की जीवनी (अपदान) कहाँ प्रचारित की गई थी?" तो पूज्य आनंद ने कहा:-
आनंद बुद्ध से पच्चेकबुद्धों के बारे में और वे कैसे उत्पन्न होते हैं, पूछते हैं
83. 'सुनाथ' अभिव्यक्ति को अस्तित्व में आने और जन्म लेने के माध्यम से प्रकट करने वाले शब्द के रूप में समझा जाना चाहिए, कथन इस प्रकार है: "तथागतं जेतवने वसंतं" इत्यादि। यहाँ 'वसंतं' का अर्थ है: चार प्रकार की मुद्राओं में निवास करना और देवताओं, ब्रह्माओं और अरहतों की तरह जेत राजकुमार के नाम से जाने जाने वाले मठ में रहना; जिस प्रकार विपस्सी से प्रारंभ होने वाले पूर्वोक्त बुद्धों ने कुल तीस सिद्धियों को पूर्ण करने के बाद जन्म लिया, उसी प्रकार हमारे प्रतापी बुद्ध ने जन्म लिया है और इसलिए वे तथागत हैं। जेतवन में निवास करने वाले तथागत; इस प्रकार संबंध स्थापित होता है। वेदेहमुनि को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: वे वेदेही हैं, विदेह की निवासी हैं, क्योंकि उनका जन्म विदेह राज्य में हुआ था; क्योंकि वे वेदेही के पुत्र हैं, इसलिए वे वेदेहीपुत्त हैं; हालाँकि इसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए 'वेदहीपुत्तमुनि' इसलिए क्योंकि वे न केवल विदेह देवी के पुत्र हैं बल्कि एक ऋषि (मुनि) भी हैं; व्याकरण के नियम के अनुसार, "वण्णगामो" से शुरू होकर, किसी अक्षर (या वर्णमाला) के आगमन पर, न केवल स्वर 'इ' का लोप होता है बल्कि उसके अर्थ, अर्थात् 'पुत्त', पुत्र शब्द का भी लोप हो जाता है; और कथन इस प्रकार है: 'वेदहीमुनि, विदेह के ऋषि। आदरणीय आनंद, सर्वोच्च (एतदग्ग) स्थान पर विराजमान, इस प्रकार कहते हैं: "हे भिक्षुओं! मेरे सभी शिष्यों में, जो सती, दृढ़ता, गति, बहुसुत और कर्तव्यनिष्ठा (उपाष्टक) रखते हैं, उनमें आनंद प्रमुख हैं;" नटंगो को शरीर के किसी अंग के मुड़े होने के रूप में समझा जाना चाहिए और हाथ जोड़कर, अपुच्छी ने पूछा: "आदरणीय महोदय! हे पच्चेकबुद्धा नाम, यानी मौन बुद्ध, किस प्रकार के संन्यासी के समान हैं? यही संबंध है। हे मौन बुद्ध, केहिहेतुभि, किन कारणों से, किन परिस्थितियों में भवन्ति (होते हैं)? हे वीर! इस प्रकार प्रतापी को संबोधित किया गया।
बुद्ध का उत्तर:
84-85. इसके बाद, उत्तर का संकेत देने के लिए, उन्होंने कहा: "तदाहम सब्भ ... पूर्वज बुद्ध; कटाधिकारा (सेवा करने के बाद) अच्छे कर्मों का संचय करने के बाद; जिनाससानेसु अलद्ध मोक्खा (विजयियों के शासन में मुक्ति प्राप्त किए बिना) निर्वाण प्राप्त नहीं कर सके;

ते धीरा (वे) सभी मौन बुद्ध; इधा (यहाँ) इस लोक में; समवेगमुखेन (पश्चातापपूर्ण मुख के साथ) अकेले ही अथक प्रयास करने के बाद मौन बुद्ध बन गए; यही अर्थ है। सुतिक्खपञ्ञा को उचित रूप से तीक्ष्ण ज्ञान के रूप में समझा जाना चाहिए। विना पि बुद्धेहि का अर्थ है: यद्यपि बुद्धों की सलाह और उपदेशों से वंचित; परित्तकेनापि, यहाँ तक कि थोड़ी मात्रा में भी; आरम्मनेन पच्चेकबोधिम, ध्यान के साथ मौन बुद्धत्व, अनुपापुणन्ति (उन्होंने तदनुसार) ज्ञान (बोधि) में प्रवेश किया। बुद्धों के प्रकट होने के बीच, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए, जैसे कि व्यक्तिगत रूप से ज्ञानोदय (बोधि) प्राप्त करता है।

86. सब्बमहि लोकमहि (सारे विश्व में), तीनों लोकों में; ममम थपेत्वा (मेरे सिवा) मुझे छोड़कर: नत्थि, कोई नहीं है, पच्चेक बुद्धेहि समोव, यहाँ तक कि मौन बुद्धों के समर्थ भी नहीं; तेसम महाउनीहम उन महान ऋषियों में, मौन बुद्धों में; इमामवण्णम, यह वर्णन, यह योग्यता; पदेशमत्तम (संक्षेप में) संक्षेपण की सीमा तक; अहम् साधु वक्खामि (मैं कहता हूँ) मैं तुमसे उचित रूप से बात करूँगा; यही अर्थ है।

87. बिना गुरुओं के, सयमेव बुद्धानम्, स्वयं ही मौन बुद्ध बनने वाले, महेसीम्, उन तपस्वियों में जो स्वयं ही बुद्धत्व प्राप्त कर चुके; मधु व खुद्दम्, मधु के छत्ते के समान; साधुनी वाक्यानि (अच्छे वाक्य) मधुर आनंदमय अभिव्यक्तियाँ; अनुत्तरम् भेषज्जम् पत्थयन्ता (अतुलनीय औषधि की आकांक्षा रखने वाला) औषधि के समान निर्वाण की इच्छा रखने वाला जो किसी श्रेष्ठ से रहित है; सब्बे (सभी) आप सभी; सुपसन्नचित्त, प्रसन्न मन वाला; सुनाथा (सुनो) इसे अपने मन में रखो; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

88-89. पचेकबुद्धानं समागतानम् (मूक बुद्धों में से, जो एक साथ आए हैं) वे मौन बुद्ध जो प्रकट हुए हैं और एक समूह बन गए हैं: अरीषा, उपरीषा, तगारसिखी, यासासि, सुदस्ना, पियादस्सी, गांधार, पिंडडोला, उपसभा, निथा, तथा, सुतवा, भावितत्त, सुंभ, सुभा, मेथुला, अश्शामा, सुमेधा, अनिघ, सुदाशा, हिन्गु, हिन्गा, दो जालिना, अश्शाका, कोशल, सुबाबु, उपनेमिसा, नेमिसा, संताचित्त, सक्का, तथा, विरजा, पंडिता, काला, उपकला, विजिता, जिता, अंग, पंगा, गुत्तिजिता, पासि, जही, उपाधि, दुक्खमूल, अपराजिता, सरभंगा, लोमहंस, उचांगमौआ, असिता, अनासव, मनोमाया, मनाचिदा, बंधुमा, तदाधिमुत्ता, विमला, केतुमा, कोटुंबरंगा, मातंगा, अरीसा, एकुटा, एकुटागामी, बयामाका, सुमंगला, डिब्बिला, इत्यादि। यानी सौ मूक बुद्धों की जीवनियां (अपादान), परम्परा, क्रम से, एक के बाद एक; ब्याकरणानि, जीवनियाँ, जिनमें आदिनवो यञ्च विरागवत्थुम, दोष और वैराग्य की कहानियाँ, निःलोभ के कर्म शामिल हैं; यथा, किसी भी तरह से, किसी भी परिस्थिति (या कारण) से, बोधिम अनुपापुणिमसु, तदनुसार बोधि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व प्राप्त करके निर्वाण के चार सही मार्गों का ज्ञान व्यक्तिगत रूप से प्रकट किया। सारगवत्थुसु, आसक्ति से युक्त वस्तुओं में, भौतिक (वत्थु) इंद्रिय सुखों और पापी इंद्रिय सुखों (किलेसा) से युक्त इंद्रिय सुखों में, उन वस्तुओं में जो अत्यधिक लालसा उत्पन्न करने वाली होती हैं, विरागसंञ्ञी (अनासक्ति का भाव रखने वाला), रत्तम्हि लोकम्हि (आसक्ति के संसार में) लालच के प्राकृतिक संसार में, विरत्तचित्त (अनासक्ति का भाव रखने वाला) लालच रहित, हित्वा पापन्चे पापन्चे (पापन्चे) पापन्चे का त्याग करने वाला, पापन्चे का त्याग करने वाला, पापन्चे का त्याग करने वाला, पापन्चे का त्याग करने वाला, पापन्चे (किलेसा) का त्याग करने वाला, पापन्चे माना जाने वाला, जन्मों की वृद्धि (या बार-बार पुनर्जन्म) के कारक, जिसमें कामवासना (राग पापन्चे), क्रोध (दोसपपन्चे), सभी प्रकार के पापन्चे (सब्बकिलेसा पापन्चे) शामिल हैं; जिया फंदितानि (होने वाला) गलत विचारों के 62 विचलित मार्गों को पराजित करके; तथाव (इस प्रकार) ऐसा करके; बोधिम औनपापुणिंसु (तदनुसार बोधि प्राप्त की), उन्होंने मौन बुद्धों के ज्ञान को अपने दृष्टि में प्रकट किया; यही अर्थ है।

उनका स्वभाव अहिंसा (अर्थात करुणा) है

90-91. सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम्, सभी जीवों के प्रति लाठी (या हथियार/हिंसा) रखकर , धमकी देने, चीरने और मारने के साजो-सामान को त्यागकर; तेसम (उनका) सभी जीवों के बीच; अविहेतयम बिना परेशान किए, बिना अत्याचार किए और बिना दुखी किए; मेत्तेना चित्तेना, प्रेममय मन से, प्रेम और दया से परिपूर्ण मन से इस प्रकार सोचते हुए: "सभी प्राणी सुखी हों; हितानुकम्पी (कल्याणकारी) कल्याण की भावना से युक्त सहानुभूति का स्वभाव। दूसरे शब्दों में, सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम का अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है: सब्बेसु (सभी में) यह शब्द पूर्णतः सभी को समाहित करता है, बिना किसी शेष के, क्योंकि यह समग्रता और सब कुछ पूर्णतः है; भूतेसु, भूतों में, भूतों को लघु (तसा) और वृहद (थावरा), क्षणिक और स्थायी कहा जाता है; जिनकी प्यास, लालसा और इच्छा का त्याग नहीं हुआ है; जिनके खतरे और भय का त्याग नहीं हुआ है; वे क्षणिक (तसा) हैं। उन्हें तसा क्यों कहा जाता है? वे प्यासे हैं, वे चिंतित हैं, वे पीड़ा में हैं, वे भयभीत हैं और वे सदमे में हैं; इसी कारण उन्हें तसा कहा जाता है। जिनकी भी प्यास और लालसा जिन लोगों को त्याग दिया गया है, जिनके सारे खतरे और भय भी दूर हो गए हैं, वे स्थायी (थावरा) हैं; उन्हें स्थायी (थावरा) क्यों कहा जाता है? वे दृढ़ हैं, वे डगमगाते नहीं, वे भयभीत नहीं होते, वे परेशान नहीं होते, वे डरते नहीं, वे चौंकते नहीं; इसलिए वे स्थिर (थावरा) हैं।

कभी किसी हथियार का इस्तेमाल नहीं करता, दुनिया की पसंद-नापसंद से मुक्त, वह अविवाहित और एक भिक्षु है

91.1. तीन हथियार हैं: शारीरिक हथियार, मौखिक हथियार और मानसिक हथियार । तीन प्रकार के शारीरिक दुराचार शारीरिक हथियार हैं; चार प्रकार के मौखिक दुराचार मौखिक हथियार हैं; तीन प्रकार के मानसिक दुराचार मानसिक हथियार हैं। "सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम्" अभिव्यक्ति का अर्थ है: इन तीनों प्रकार के हथियारों को नीचे रखना, गिरा देना, उन्हें फेंककर सुरक्षित रूप से पहुंच से बाहर कर देना, सभी जीवित प्राणियों और जीवों को शांत करना, और किसी भी जीवित प्राणी को परेशान करने के उद्देश्य से हथियारों का उपयोग न करना। "अविहेतौम् अञ्ञतर्म् तेसम्" अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: किसी भी जीवित प्राणी को, चाहे हथेली से हो, मिट्टी के ढेले से हो, लाठी से हो, चाकू से हो, हथकड़ी से हो या रस्सी से हो, चोट न पहुंचाना। किसी भी जीव को , चाहे हथेली से, मिट्टी के ढेले से, लाठी से, चाकू से, जंजीर से या रस्सी से, सताना नहीं चाहिए। पाली मुहावरे में: ना पुत्तमिच्चेय्या कुतो सहायम्, 'ना' शब्द अस्वीकृति का संकेत देता है, जबकि 'पुत्तम्' (पुत्र) चार प्रकार के पुत्रों को संदर्भित करता है: स्वयं से जन्मा पुत्र; अपने खेत का पुत्र; दूसरों द्वारा दिया गया पुत्र, और घर में रहने वाला पुत्र। 'सहायम्' का अर्थ है साथी, और 'सहाय' का अर्थ है वह जिसके साथ चलना अनुकूल हो; अनुकूल रूप से चलना (फासु), अनुकूल रूप से खड़े होना, अनुकूल रूप से बैठना, अनुकूल रूप से पुकारना, अनुकूल रूप से बातचीत करना, अनुकूल रूप से आवाज देना। यह कथन कि "जिससे साथी मिले, पुत्र की इच्छा नहीं करनी चाहिए", का तात्पर्य है: पुत्र की कामना नहीं करनी चाहिए, न ही उसे स्वीकार करना चाहिए; पुत्र की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए; पुत्र की लालसा नहीं करनी चाहिए; जिससे मित्र, या मित्र साथ देखे या भोजन करते हों, या कोई सहयोगी (या साथी) हो, उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिए; अतः, जिससे साथी मिले, पुत्र की इच्छा नहीं करनी चाहिए। अभिव्यक्ति: "ekocare khaggavisāṇkappo" को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: वह मौन बुद्ध, क्योंकि उन्हें भिक्षु बनकर त्याग करने वाला माना जाता है, वे एकल हैं; क्योंकि वे अकेले खड़े हैं, उनका कोई दूसरा नहीं है, वे एक हैं; क्योंकि इसका अर्थ है कि उन्होंने तृष्णा (तन्हा) का त्याग कर दिया है, वे एकल हैं ; निश्चित रूप से वे कामवासना (राग) से मुक्त हैं , इसलिए वे एकल हैं; निश्चित रूप से वे घृणा (दोष) से मुक्त हैं , इसलिए वे एकल हैं। निःसंदेह वह मोह से मुक्त है , अतः वह एक और अकेला है; निःसंदेह वह कुटिलता से मुक्त है, अतः वह एक और अकेला है; उसने एकल दृष्टिकोण का सही मार्ग अपनाया है, अतः वह एक और अकेला है; उसने पूर्णतः प्रबुद्ध होकर अतुलनीय मौन बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है , अतः वह एक और अकेला है।

91.2 वह मौन बुद्ध, जो संन्यास लेकर भिक्षु बन गए हैं, अविवाहित कैसे हैं? वास्तव में, वह मौन बुद्ध गृहस्थ जीवन के सभी बंधनों (या कमियों) को दूर करके, पत्नी और बच्चों के बंधन को तोड़कर, रिश्तेदारों, मित्रों और संचय के अवरोधों को दूर करके, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्रों से शरीर को ढककर, घर छोड़कर, संसार का त्याग करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, निर्धनता की अवस्था की ओर अग्रसर हुए, अकेले ही विचरण करते हैं, अकेले ही रहते हैं, अकेले ही चलते हैं, अकेले ही कार्य करते हैं, अकेले ही अपना ध्यान रखते हैं, अकेले ही अपना जीवन यापन करते हैं। इस प्रकार, वह मौन बुद्ध अविवाहित हैं, क्योंकि वे संन्यास लेकर भिक्षु बन गए हैं ।

91.3. वह मौन बुद्ध एक और अद्वितीय कैसे हैं, क्या इसलिए कि वे अकेले खड़े हैं या इसलिए कि उनका कोई दूसरा नहीं है? जब वे इस प्रकार भिक्षु बन जाते हैं, तो वे घने जंगलों, वनमार्गों या एकांत मठों में अकेले ही ध्यान लगाते हैं, जहाँ बहुत कम ध्वनियाँ होती हैं, जो शोरहीन होते हैं, लोगों की साँसों से मुक्त होते हैं (जनवाता), मनुष्यों से अनजान (या गुप्त रूप से) स्थित होते हैं, और एकांत के लिए उपयुक्त होते हैं। वे अकेले खड़े होते हैं, अकेले चलते हैं, अकेले बैठते हैं, अकेले लेटते हैं, अकेले ही भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश करते हैं, अकेले ही प्रस्थान करते हैं, अकेले ही एकांत में बैठते हैं, अकेले ही चलते हैं, अकेले ही विचरण करते हैं, अकेले ही जीवन यापन करते हैं, अकेले ही चलते हैं, कार्य करते हैं, देखभाल करते हैं, अपना काम करते हैं और अकेले ही अपना जीवन यापन करते हैं । इस प्रकार, वे इस तरह से एक और अद्वितीय हैं, उनका कोई दूसरा नहीं है।

91.4. वह मौन बुद्ध, तृष्णा (तन्हा) के त्याग से एक या अद्वितीय कैसे हैं ? वे अकेले ही, बिना किसी दूसरे के, लगन से जीवन व्यतीत करते हुए, अपने दुराचार (किलेसा) को जलाते हुए , निर्वाण की ओर मन लगाकर, महान प्रयास करते हुए, लापरवाही के सगे, किसी को न बख्शने वाले (नमुचि) घोर शत्रु, मारा को उसकी सेना सहित कुचलते हुए, दूरगामी (विसरितम्) और आसक्त (विसत्तिका) तृष्णा (तन्हा) को त्यागकर, दूर करके और समाप्त कर देते हैं।

लंबे समय तक बार-बार पुनर्जन्मों से गुजरना
समय की लालसा (तन्हा) दूसरी है
मनुष्य। कोई भी उसे पराजित (या समाप्त) नहीं कर सकता।
बार-बार पुनर्जन्म होना, एक होने की स्थिति
चाहे वांछनीय हो या नहीं। यह जानकर
दोष, लालसा, इच्छा (तन्हा) उत्पादक के रूप में

दुःख से मुक्त होने पर, भिक्षु दुख से मुक्त हो जाता है।
इच्छा (तन्हा) की तीव्र लालसा, बिना उसे अपनाए
स्वयं, और पूरी तरह सचेत होकर, त्याग करता है
इसे।
इस तरह मौन बुद्ध एक (या एकल) हैं क्योंकि वे लालसा इच्छा (तन्हा) का त्याग करके खड़े हैं

91.5. वह मौन बुद्ध एक (या एकल) कैसे हैं क्योंकि वे निश्चित रूप से कामवासना (राग) से मुक्त हैं ? क्योंकि वे कामवासना (राग) से रहित हो गए थे, इसलिए वे निश्चित रूप से कामवासना (राग) से मुक्त हैं और इस प्रकार वे एक (या एकल) हैं। क्योंकि वे घृणा (दोष) से रहित हो गए थे , इसलिए वे निश्चित रूप से घृणा (दोष) से मुक्त हैं और इस प्रकार वे एक (या एकल) हैं। क्योंकि वे मोह (मोह) से रहित हो गए थे , इसलिए वे निश्चित रूप से मोह (मोह) से मुक्त हैं और इस प्रकार वे एक (या एकल) हैं। क्योंकि वे कुकर्म (किलेष) से रहित हो गए थे , इसलिए वे निश्चित रूप से कुकर्म (किलेष) से मुक्त हैं और इस प्रकार वे एक (या एकल) हैं। इस प्रकार वह मौन बुद्ध निश्चित रूप से कामवासना (राग) से रहित हैं और इस प्रकार वे एक (या एकल) हैं।

91.6. वह मौन बुद्ध, जिसने एकल दृष्टिकोण का सही मार्ग अपनाया, इस प्रकार एक (या एकल) कैसे है? एकल दृष्टिकोण का सही मार्ग इस प्रकार बताया गया है: चार प्रकार की सजगता, चार प्रकार का अच्छा परिश्रम, चार जादुई शक्ति के आधार, पाँच नियंत्रण शक्तियाँ, पाँच प्रकार की शक्ति, ज्ञान के सात तत्व, अष्टांगिक मार्ग।
जो जन्म-जाति के विनाश को देखता है,
जो लाभ के प्रति सहानुभूति रखता है, वह समझता है
एकल दृष्टिकोण का सही मार्ग; के माध्यम से
यह सही रास्ता, लोग, पहले पार करते थे
वे पार करेंगे और अब वे पार कर रहे हैं
बाढ़।
इस तरह, वह एकल दृष्टिकोण के सही मार्ग पर चला गया और इस प्रकार एक (या एकल) हो गया

उनका ज्ञानोदय और आश्रित उत्पत्ति के चक्र का ज्ञान , (पटिच्चसमुप्पाद)

91.7. वह मौन बुद्ध अकेले ही अतुलनीय मौन बुद्धत्व और पूर्ण ज्ञान को कैसे प्राप्त कर सके और इस प्रकार एक (या एकल) हो गए? ज्ञान (बोधि) को निर्वाण की ओर ले जाने वाले चार सही मार्गों का ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान (पञ्ञा) ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की सामर्थ्य, धम्म की खोज, ज्ञान का तत्व, विमंसा, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और सही दृष्टिकोण है। उस मौन बुद्ध को व्यक्तिगत ज्ञान (पच्चेकबोधि) का ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्हें यह अहसास हुआ कि "सभी कर्म (संस्कार) अनित्य हैं; उन्हें यह अहसास हुआ कि "सभी कर्म (संस्कार) दुखदायी (दुःख) हैं"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "सभी घटनाएँ (धम्म) अनात्म रहित (अनात्म) हैं।" उन्हें यह अहसास हुआ कि: "अज्ञान (अविज्जा) के कारण कर्म (संस्कार) उत्पन्न होते हैं"; उन्हें यह अहसास हुआ कि: "कर्मों के कारण चेतना (विज्ञाना) उत्पन्न होती है"; उन्हें यह अहसास हुआ कि: "चेतना (विज्ञाना) के कारण नाम और रूप (नामरूप) उत्पन्न होते हैं"; उन्हें यह अहसास हुआ कि: "नाम और रूप के कारण छह इंद्रियां (सलायतन) उत्पन्न होती हैं"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस्सा) उत्पन्न होता है"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "संपर्क (फस्सा) के कारण संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है"; उन्हें यह अहसास हुआ कि: "संवेदना के कारण तृष्णा (तन्हा) उत्पन्न होती है"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "तृष्णा (तन्हा) के कारण आसक्ति (उपादान) उत्पन्न होती है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "उपादान के कारण ही भव उत्पन्न होता है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "उत्पत्ति के कारण ही जन्म होता है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है" । उन्होंने यह अहसास किया कि: "अज्ञान के निवारण से कर्मों (संस्कार) का निवारण होता है; उन्होंने यह अहसास किया कि "कर्मों (संस्कार) के निवारण से चेतना (विज्ञान) का निवारण होता है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "भाव (अस्तित्व) के निवारण से जन्म (जाति) का निवारण होता है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "जन्म (जाति) के निवारण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है"। उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि "यही दुःख (दुक्खा) है"; उन्होंने यह समझा कि "यही दुःख (दुक्खा) का मूल है"; उन्होंने यह बोध किया कि "यह दुःख (दुक्खा) का निवारण है"; उन्होंने यह अहसास किया कि "यह दुःख (दुक्खा) के निवारण की ओर ले जाने वाला व्यावहारिक मार्ग है"। उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि "आसव (कैंसर) हैं"; उन्होंने यह अहसास किया कि "यही आसव का मूल है"; :P: उन्हें इस प्रकार अहसास हुआ: "निर्वाण (पटिपदा) की ओर ले जाने वाला व्यावहारिक मार्गउन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि "इन घटनाओं (धर्म) को उच्चतर ज्ञान से जानना

चाहिए"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "इन घटनाओं (धर्म) का त्याग करना चाहिए"; उन्हें यह समझ आया कि "इन घटनाओं (धर्म) को स्वयं देखना चाहिए"; उन्हें यह अहसास हुआ कि "इन घटनाओं (धर्म) का विकास करना चाहिए।" उन्हें इस बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ।स्पर्श के छह क्षेत्रों (आयतन) के प्रकट होने और लुप्त होने, शून्यता और दोषों के साथ-साथ उनसे मुक्ति का ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ; उन्होंने आसक्ति के पाँच समूहों (उपदानक्खन्ध) के प्रकट होने और उनसे मुक्ति का ज्ञान प्राप्त किया; उन्होंने चार महा तत्वों के प्रकट होने और लुप्त होने, शून्यता और दोषों के साथ-साथ उनसे मुक्ति का ज्ञान प्राप्त किया; उन्हें इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ: "जो कुछ भी आरंभ (समुदय) के अधीन है, वह सब अंत (निरोध) के अधीन है।"

91.8. दूसरे शब्दों में: जिस भी विषय में ज्ञान प्राप्त करना हो, तदनुसार अनुभव करना हो, उचित रूप से अनुभव करना हो, विशेष रूप से आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना हो, उसे स्पर्श करना चाहिए, स्वयं अपनी आँखों से देखना चाहिए; वह सब कुछ जिसका उसने मौन बुद्धत्व के ज्ञान के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया, तदनुसार अनुभव किया, आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया, विशेष रूप से प्राप्त किया, स्पर्श कराया, स्वयं अपनी आँखों से देखा; इस प्रकार, वह मौन बुद्ध स्वयं इस प्रकार मौन बुद्धत्व को प्राप्त करके विशेष रूप से ज्ञानी हो गया; इस प्रकार, वह एक (या एकल) है।

91.9. 'देखभाल' शब्द को आठ अभ्यासों के रूप में समझा जाना चाहिए: शारीरिक गतिविधियों का अभ्यास, इंद्रियों का अभ्यास, सजगता का अभ्यास, ध्यान का अभ्यास, ज्ञान का अभ्यास, सही मार्ग का अभ्यास, प्राप्ति का अभ्यास और विश्व-कल्याण का अभ्यास। गति का अभ्यास (इरियुयापथ) इस प्रकार है: गति के चार तरीकों में; इंद्रियों का अभ्यास इस प्रकार है: छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों में; सजगता का अभ्यास इस प्रकार है: सजगता के चार प्रकारों में; एकाग्रता (समाधि) का अभ्यास इस प्रकार है: चार प्रकार के ध्यान में; ज्ञान का अभ्यास इस प्रकार है: चार आर्य सत्यों में; सही मार्ग का अभ्यास इस प्रकार है: तथागतों में, अरहतों में, सर्वज्ञ बुद्धों में, सीमित दृष्टि से, मौन बुद्धों में और सीमित दृष्टि से बुद्ध के शिष्यों में।

91.10. शारीरिक गतिविधियों का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जो आत्म-निर्णय (पानिधि) से संपन्न हैं; इंद्रियों का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जिनकी नियंत्रण क्षमताएं सुरक्षित हैं; सजगता का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जो परिश्रमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं; एकाग्रता (समाधि) का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जो उच्च विचारों से जुड़े हुए हैं; ज्ञान का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जो बुद्धि (बुद्धि) से संपन्न हैं; सही मार्ग का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जिन्होंने सही प्रक्रिया का अनुसरण किया है; प्राप्ति का अभ्यास उन लोगों का अभ्यास है जिन्होंने फल (फल) प्राप्त किया है; सांसारिक लाभ का अभ्यास तथागतों, अरहतों, सर्वज्ञ बुद्धों, मौन बुद्धों (सीमित रूप से) और बुद्ध के शिष्यों (सीमित रूप से) का अभ्यास है। ये आठ अभ्यास हैं।

91.11. इसके बाद भी, जब आठों साधनाओं में पूर्ण निपुणता प्राप्त हो जाती है (अधिमुच्चन्तो), तो वह श्रद्धापूर्वक साधना करता है (सद्धा); उत्थानकारी साधना (पग्गाणहन्तो), तो वह परिश्रमपूर्वक साधना करता है; निकट रखकर साधना (उपाष्ठपन्तो), तो वह ध्यानपूर्वक साधना करता है; संतुलन बनाकर साधना (समाधि), तो वह एकाग्रतापूर्वक साधना करता है; उचित ज्ञान के साथ साधना करता है; भली-भांति जानकर वह चेतना के अभ्यास से साधना करता है; यह कहते हुए: इस प्रकार पुण्य कर्म प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार साधना करता है; वह इंद्रियों के अभ्यास से साधना करता है; यह कहते हुए: "जिसने इस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली है, विशिष्टता प्राप्त कर ली है, वह विशिष्ट साधना से साधना करता है। ये आठ साधनाएँ हैं।"

91.12. इसके बाद भी, आठ अभ्यासों में सही दृष्टि (सम्मादिष्ठी) शामिल है, जो देखने का अभ्यास है; सही इरादे (सम्मासंकप्प) का अभ्यास, जो मन के अनुप्रयोग का अभ्यास है; सही वाणी (सम्मावाचा) का अभ्यास, जो ग्रहण करने (परिग्गहः) का अभ्यास है; सही कर्म (सम्माकम्मन्त) का अभ्यास, जो स्वयं-क्रिया (समुष्ठान) का अभ्यास है; सही जीवन शैली (सम्माआजीव) का अभ्यास, जो शुद्धि का अभ्यास है; सही परिश्रम (सम्मावायाम) का अभ्यास, जो उत्थान का अभ्यास है; सही जागरूकता (सम्मासति) का अभ्यास, जो निकट रहने (उपष्ठान) का अभ्यास है; सही एकाग्रता (सम्मा समाधि) का अभ्यास, जो स्थिरता (अविक्खेप) का अभ्यास है। ये आठ अभ्यास हैं।

91.13. 'खग्गविसानकप्पो' अभिव्यक्ति को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: जिस प्रकार गैंडे का सींग एक ही होता है, दूसरा उसी प्रकार मौन बुद्ध भी उसी के समान, उसी के समरूप, उसी के प्रतिरूप हैं। जिस प्रकार अधिक नमक को नमक के समान, अत्यधिक कड़वाहट को कड़वाहट के समान, अधिक मिठास को मिठास के समान, अत्यधिक गर्मी को आग के समान, अत्यधिक ठंड को बर्फ के समान, जल के विशाल भंडार को सागर के समान कहा जाता है, उसी प्रकार परम ज्ञान प्राप्त शिष्य को गुरु के समान कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार मौन बुद्ध गैंडे के सींग के समान, उसके समरूप, गैंडे के सींग के प्रतिरूप, अकेले, बिना किसी दूसरे के, बंधनों से मुक्त होकर संसार में उचित रूप से विचरण करते हैं, जीवन यापन करते हैं, गति करते हैं, कार्य करते हैं, रक्षा करते हैं और स्वयं को संचालित रखते हैं। इस प्रकार, वह गैंडे के सींग की तरह अकेला भटकता रहेगा। इसलिए, मौन बुद्धों ने कहा:

"अपने हथियार डाल देने के बाद"
सभी जीवित प्राणियों को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए।
उनमें से कोई भी। किसी को नहीं करना चाहिए
पुत्र की इच्छा क्यों हो?
साथी बनना? अकेले ही घूमना चाहिए
जैसे गैंडे का सींग।
जो भी इसके संपर्क में आता है, उसे पता चलता है कि...
स्नेह बनना; परिणामी
इस पीड़ा (दुक्खा) के प्रति स्नेह रखना
अस्तित्व में आना; उदय को देखते हुए
स्नेह (स्नेह), एक हानि के रूप में
(आद्दीनव), व्यक्ति को अकेले घूमना चाहिए जैसे एक
गैंडे का सींग।
मित्रों और परिचितों के प्रति सहानुभूति
व्यक्ति उनसे बंध जाता है (पटिबद्धचित्तो)।
मानसिक रूप से और उसके कल्याण को त्याग देता है।
सहजीवन में इस खतरे को देखते हुए,
किसी को गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।
जैसे ही बांस की झाड़ी उलझ जाती है
जैसे ही यह विस्तृत हो जाती है, वैसे ही-
बच्चों के प्रति जो भी स्नेह होता है और
पत्नियाँ। अनासक्त, खाने योग्य बांस की तरह
बांस की झाड़ी में अंकुरित होने पर, किसी को घूमना चाहिए
अकेले, गैंडे के सींग की तरह।
ठीक वैसे ही जैसे जंगल में एक खुला हिरण।
यह अपने चरागाह के लिए अपनी इच्छानुसार घूमता रहता है।
एक बुद्धिमान व्यक्ति, जो अपनी स्वतंत्रता का ध्यान रखता है,
उसे गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए
सींग।
साथियों के बीच खेलकूद और आनंद का माहौल है।
बच्चों के प्रति प्रेम भी प्रचुर मात्रा में है।
स्नेही लोगों से बिछड़ने का दर्द
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
चारों दिशाओं में कहीं भी क्रोध नहीं है
इसके अलावा; दोनों में से किसी एक में सामग्री है-
दुखों के बावजूद अडिग रहना।
किसी को गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।
कुछ की देखभाल करना मुश्किल होता है, हालांकि वे
भिक्षु तो हैं ही; गृहस्थ तो और भी अधिक।
घरों में रहना। चिंताओं से मुक्त होना।

दूसरों के बच्चों के ऊपर, किसी को भटकना चाहिए
दूसरों के बच्चों के ऊपर, किसी को भटकना चाहिए
गैंडे के सींग की तरह अकेला।
गृहस्थ होने के चिन्हों को त्यागकर, जैसे
पत्तियों को पूरी तरह से काटकर बनाया गया मूंगा वृक्ष
नायक ने सभी बंधनों को काटकर,
घर में रहने वाले व्यक्ति को गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।
यदि किसी को परिपक्व मानसिकता वाला साथी मिल जाए,
जो उसके साथ चलता है, और जो दृढ़ बुद्धिमान है,
एक सुखी जीवन जीना, सभी खतरों पर विजय प्राप्त करना,
उसके साथ आत्मसंतुष्टि के साथ घूमना चाहिए।
और सचेतनता।
यदि किसी को परिपक्व मन वाला साथी नहीं मिलता,
जो दृढ़ बुद्धिमान हो और भटकने के लिए अच्छा जीवन जीता हो
साथ में रहते हुए, किसी को अकेले राजा की तरह घूमना चाहिए।
अपने जीते हुए राज्य को त्यागना और इसी तरह
जंगल में हाथी को मतंगा करना।
हम वास्तव में इस उपलब्धि की सराहना करते हैं।
साथ; सर्वोत्तम और समान साथी
इसके साथ जुड़ा होना चाहिए। जब इस तरह की com-
साथी नहीं मिलते, जो आनंद लेता है
मासूमियत को अकेले भटकना चाहिए जैसे एक
गैंडे का सींग।
सोने की चमक को अच्छी तरह से देखकर
एक युवा सुनार द्वारा बनाया गया, खटखटाते हुए
दोनों भुजाओं पर एक दूसरे के विरुद्ध, एक
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
या तो व्यर्थ की बातें (vācābhiāpo) होती हैं या
मेरे मन में दुर्भावना (अभिसज्जना) है
इस मामले में दूसरे के कारण साथी
इस तरह। भविष्य में इस खतरे को देखते हुए एक
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
वास्तव में, इंद्रिय सुख विविध प्रकार के होते हैं।
मन को मधुर और आनंददायक बनाने वाले। वे उत्तेजित करते हैं।
मन विभिन्न रूपों और आकारों के साथ।
इंद्रिय सुखों में निहित हानि को देखते हुए,
मनुष्य को गैंडे के सींग की तरह घूमना चाहिए।
यह बीमारी (ītī) भी है और घाव (gando) भी।
साथ ही विपत्ति, बीमारी, कांटा और खतरा
साथ ही, कामुक आनंद में इस खतरे को देखते हुए-
निश्चित रूप से, किसी को अकेले ही घूमना चाहिए जैसे कि

गैंडे का सींग।
ठंड और गर्मी, भूख और प्यास,
जलती हुई हवा, मच्छर और रेंगने वाले
रेंगने वाले जीव भी; अभिभूत कर देने वाले
इन सभी के साथ-साथ, अकेले ही घूमना चाहिए।
जैसे गैंडे का सींग।
जैसे एक विशाल हाथी, कमल के समान,
बड़े शरीर के साथ पैदा हुआ, इससे बच निकलने के कारण
झुंड, जंगल में अपनी इच्छानुसार रहता है।
इसलिए, गैंडे की तरह अकेले ही घूमना चाहिए।
सींग।
जो समय पर संपर्क में आएगा
मुक्ति के मामले में, यह उचित नहीं है कि वह इसे ग्रहण करे।
समाज में आनंद लेना। बुद्ध के वचनों का पालन करना।
सूर्य के सगे-संबंधी, अकेले ही भटकना चाहिए जैसे
गैंडे का सींग।
मुक्त रूप से रेंगने वाला विधर्म, प्राप्त कर लिया है
सही मार्ग, और तदनुसार प्राप्त किया
निर्वाण के सही मार्ग पर, मैं वह व्यक्ति हूँ जिसका ज्ञान
एक व्यक्ति का उदय हुआ है और वह किसी के नेतृत्व में नहीं चलेगा।
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
न तो लालची, न कपटी, न प्यासा,
पाखंड और कठोर भ्रम से मुक्त होना,
(कासावमोह), और झुकाव से मुक्त होकर-
(आसया), समस्त संसार में भटकना चाहिए
अकेले, गैंडे के सींग की तरह।
किसी भी व्यक्ति को बुरे साथी से पूरी तरह बचना चाहिए।
जो कुछ भी लाभकारी नहीं देखता, बल्कि समर्पित है
(निवित्थम) दुराचरण (विसमे)। स्वयं को चाहिए
लापरवाही भरे कार्यों का सहारा न लें, झोपड़ी में भटकना चाहिए
अकेले, गैंडे के सींग की तरह।
धर्म के प्रचारक के साथ संगति बनाए रखें।
बहुत ज्ञान, एक महान शक्ति वाला मित्र और तत्पर
बुद्धि (या ज्ञान), लाभ और हानि को जानना-
शंकाओं को दूर करते हुए, व्यक्ति को अकेले ही भटकना चाहिए।
गैंडे का सींग।
अपने आप को सजाना नहीं और लालच नहीं करना
दुनिया में खेल, आनंद और कामुक सुख,
साथ ही बोलते समय अलंकारिक भाषा का प्रयोग करने से बचना चाहिए।
यह भी सच है कि व्यक्ति को अकेले ही घूमना चाहिए।
गैंडे का सींग।
बच्चों और पत्नी को त्यागकर, पिता

और माता, धन और अनाज भी।
रिश्तेदारों और कामुक सुखों के अनुसार
सीमाओं तक, व्यक्ति को अकेले भटकना चाहिए जैसे कि एक
गैंडे का सींग।
एक बुद्धिमान व्यक्ति, जो इस प्रकार जानता है:
यह मछली पकड़ने का कांटा है, यह आसक्ति है, खुशी है।
यहां बहुत कम है, यह अप्रिय है, और भी ज्यादा।
यहाँ केवल दुःख ही है,
गैंडे के सींग की तरह अकेले भटको।
सभी बंधनों को तोड़कर
आसक्ति (संयोजन), जैसे जलीय
भटकते हुए जीव मछली पकड़ने वालों को छीन लेते हैं
जाल, जलती हुई आग की तरह पीछे नहीं हट रहा, एक
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
निगाहें झुकाए, व्यभिचारी न होते हुए
नियंत्रण करने वाली शक्तियों से सुरक्षित पैरों के साथ,
मन सुरक्षित, कामुक न होना, उत्तेजित न होना
हर तरफ, गैंडे की तरह अकेले ही घूमना चाहिए।
सेरोस का सींग।
घर के सभी चिह्नों और प्रतीकों को हटाना-
धारक, जैसे पत्तेदार फूलों की छंटाई करना
केसरिया वस्त्र धारण किए हुए मूंगा वृक्ष और
जिसने महान त्याग किया हो, उसे अकेले ही विचरण करना चाहिए।
जैसे गैंडे का सींग।
स्वादिष्ट पोषण में उत्सुक इच्छा न पैदा करना-
मानसिक रूप से अस्थिर न होना, पोषित न होना
दूसरों द्वारा नहीं, बल्कि भिक्षा-भोजन संग्राहक होने के नाते
घर-घर क्रमानुसार (सपदान) बिना
किसी भी परिवार के प्रति मानसिक रूप से आकर्षित होना,
किसी को गैंडे के सींग की तरह अकेले ही घूमना चाहिए।
पांच बाधाओं को मानसिक रूप से त्यागकर,
सभी दुराचारों (उपक्किलेसा) को जड़ से उखाड़ फेंककर।
स्नेहपूर्ण प्रेम की गलती से बाहर निकलकर और
स्वतंत्र होकर, व्यक्ति को अकेले ही घूमना चाहिए जैसे
एक गैंडे का सींग।
आनंद और दुःख को पीछे छोड़ते हुए और पहले
यहाँ तक कि मानसिक सुख और दुःख को भी,
समभाव, शांति और पवित्रता प्राप्त करने वाला, एक
उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
लक्ष्य प्राप्ति के लिए ऊर्जा से हमेशा तत्पर रहना
सबसे अधिक लाभ (निर्वाण) प्राप्त करने के लिए, अनासक्त रहना आवश्यक है।
सचेत (alīacitto), आलसी आदतों से रहित,

दृढ़ निश्चय के साथ प्रयास करना, वरदान प्राप्त होना
शक्ति और जोश के साथ, व्यक्ति को अकेले ही घूमना चाहिए।
जैसे गैंडे का सींग।
एकांत में ध्यान अभ्यास का भ्रम पैदा करना,
सभी धर्मों का सदा विधिपूर्वक पालन करते हुए,
जीवन में मौजूद कमियों की जांच करना,
किसी को गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।
विनाश की आकांक्षा के बाद परिश्रमी होना-
लालसा इच्छा (तांख्खय) का विनाश, नहीं
बहरे और गूंगे होने के बावजूद ज्ञान से भरपूर होना
और सचेतनता, एक ऐसा व्यक्ति बनना जिसने पहचान लिया है
सत्य (धम्म), जो स्थायी रूप से विद्यमान है
कठिन परिश्रम के बाद, व्यक्ति को अकेले ही भटकना चाहिए जैसे
एक गैंडे का सींग।
शेर की तरह, थका हुआ नहीं बल्कि शांत
आवाज़ों के बीच, हवा की तरह उलझा हुआ नहीं
एक जाल में, और कमल के फूल की तरह, बिना किसी दाग के।
पानी के साथ, गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सेरोस का सींग।
वन सड़कों और वन आवासों का उपयोग करते हुए जैसे
एक शेर जानवरों के राजा के रूप में घूमता है, ऊपर-
उन्हें अपनी प्रबल शक्ति से जबरदस्ती पराजित करते हुए
इसके नुकीले दांतों वाले जबड़े के बारे में सोचते हुए, किसी को भटकना चाहिए।
अकेले, गैंडे के सींग की तरह।
प्रेम और करुणा में लिप्त रहना,
दया, मुक्ति और कभी-कभी आनंद भी।
पूरी दुनिया के साथ शत्रुतापूर्ण संबंध स्थापित किए बिना,
किसी को गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।
कामवासना (राग), घृणा (दोष) और
मोह (भ्रम), जिसने तोड़ दिया है
जीवन के बंधन (संयोजन), प्राप्त न करना
जीवन के अंतिम क्षणों में व्याकुल होकर, व्यक्ति को चाहिए कि
गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना।
जिन दोस्तों का कोई निजी स्वार्थ नहीं होता, उनसे दोस्ती करना मुश्किल होता है।
आज मिल जाएंगे। लोग आपकी ओर ध्यान देंगे और
किसी तरह का संबंध रखने के लिए आपके साथ जुड़ना-
तुम्हारे साथ करने के लिए कुछ नहीं है। अपवित्र लोगों के पास
केवल अपने स्वयं के लाभों का ज्ञान।
उसे गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए।
सींग।

91.14. वहाँ, यह कथन है: सब्बेसु भूतेसु, सभी प्राणियों में, एक प्रवचन (सूत्र) है, जो गैंडे के सींग नामक मौन बुद्ध की जीवनी (या कर्मों) पर आधारित है। इसकी उत्पत्ति क्या है? सभी प्रवचनों (सूत्रों) की उत्पत्ति चार प्रकार की होती है: स्वयं की इच्छा से, दूसरों की इच्छा से, कथा के कारण, और अनुत्तरित प्रश्न के कारण। वहाँ गैंडे के सींग पर आधारित प्रवचन, खग्गविशाण सूत्र, की उत्पत्ति सामान्यतः अनुत्तरित प्रश्न के कारण होती है। यद्यपि यहाँ जो भी श्लोक हैं, अमुक मौन बुद्ध द्वारा पूछे गए किसी श्लोक का उत्तर दिया गया है। बिना किसी प्रश्न के पूछे, केवल अपने आनंदमय उच्चारण के माध्यम से, स्वयं निर्वाण के सही मार्ग की प्राप्ति के तरीके से; इसलिए उत्पत्ति या तो किसी श्लोक-प्रश्न से होती है जिसका उत्तर दिया गया हो, या फिर व्यक्ति की स्वयं की इच्छा से। वहाँ, प्रश्न के कारण जो भी उत्पत्ति हो, सामान्यतः उस उत्पत्ति को इस प्रकार जानना चाहिए, सर्वप्रथम, आरंभ से:-

91.15. एक समय, परम पूज्य बुद्ध सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब एकांतवास में गए पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया: "उनकी आकांक्षाएँ और प्रयास तो स्पष्ट हैं, उनके शिष्यों के भी; परन्तु मौन बुद्धों के तो दिखाई नहीं देते। अच्छा होगा यदि मैं परम पूज्य बुद्ध के पास जाकर उनसे यह प्रश्न पूछूँ।" वे एकांतवास से उठे, परम पूज्य बुद्ध के पास गए और उनसे क्रमानुसार यह प्रश्न पूछा। तब परम पूज्य बुद्ध ने उन्हें पुब्बयोग-वचर सूत्र नामक प्रवचन दिया।

"आनंद! जीवन में पाँच प्रकार के लाभ होते हैं।"

जो उसके पिछले संबंधों से परिचित हो:
वह इस मामले में भी दूसरों को बड़ी सावधानी से प्रसन्न करता है।
वर्तमान अस्तित्व; यदि वह सावधानीपूर्वक प्रसन्न नहीं करता है
तो, इसी वर्तमान अस्तित्व में एक और व्यक्ति,
अपनी मृत्यु के समय वह किसी और को प्रसन्न करता है। फिर,
एक युवा देवता बनकर वह दूसरे को प्रसन्न करता है। फिर,
फिर वह उच्चतर ज्ञान को शीघ्रता से ग्रहण करने लगता है।
बुद्धों की उपस्थिति में एक चबूतरे पर। फिर अंत में
वह एक मौन बुद्ध बन जाता है।"
ऐसा कहकर उन्होंने फिर कहा:-

"आनंद! मौन बुद्ध, अर्थात्, वरदानों से संपन्न होते हैं।"

प्रयास के साथ और उनके पिछले अनुभवों से परिचित
संबंध। इसलिए, आकांक्षा और
सभी मौन बुद्धों और शिष्यों का प्रयास
बुद्ध की आकांक्षा की जानी चाहिए।"

91.16. आनंद ने पूछा: "आदरणीय महोदय! बुद्धों की आकांक्षा कब तक होनी चाहिए?" बुद्ध ने उत्तर दिया: “आनंद! बुद्धों की न्यूनतम सीमा चार असंख्य कालों के अतिरिक्त एक लाख कल्प है; मध्य सीमा आठ असंख्य कालों के अतिरिक्त एक लाख कल्प है; उच्चतम सीमा सोलह असंख्य कालों के अतिरिक्त एक लाख कल्प है। उनकी विविधता को भी असाधारण ज्ञान वाले बुद्धों, असाधारण आस्था वाले बुद्धों और श्रेष्ठ परिश्रम करने वाले बुद्धों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। वास्तव में, श्रेष्ठ ज्ञान वाले बुद्धों की आस्था अल्प होती है, परन्तु उनका ज्ञान तीव्र होता है। श्रेष्ठ आस्था वाले बुद्धों का ज्ञान मध्यम होता है, परन्तु उनकी आस्था प्रबल होती है। असाधारण परिश्रम करने वाले बुद्धों की आस्था और ज्ञान अल्प होते हैं, परन्तु उनका परिश्रम अत्यंत तीव्र होता है। यद्यपि वेसंतारा के दान के समान प्रतिदिन दान करते रहें, यद्यपि वे उपदेश (शील) आदि जैसी अन्य आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करते रहें, फिर भी चार असंख्य कालों के अतिरिक्त एक लाख कल्प की अधिकतम सीमा तक नहीं पहुँच सकते, भले ही वेसंतारा के दान के समान प्रतिदिन दान करते रहें, भले ही वे उसी उद्देश्य के अनुरूप अन्य आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करते रहें। इस हद तक, इस बीच की अवधि में बुद्ध बनने जैसी कोई बात नहीं है। क्यों? ज्ञान गर्भ धारण नहीं करता; वह समृद्धि तक नहीं पहुँचता; वह पूर्ण परिपक्वता की ओर नहीं बढ़ता। जैसे, तीन महीने, चार महीने और पाँच महीने बाद काटी जाने वाली फसल, उस समय से पहले, चाहे उसे प्रतिदिन सौ बार या हज़ार बार सहलाया जाए, चाहे उस पर पानी छिड़का जाए, फिर भी पखवाड़े भर या एक महीने के भीतर फसल का पक जाना संभव नहीं होता। क्यों? फसल गर्भ धारण नहीं करती; वह समृद्धि तक नहीं बढ़ती; वह पूर्ण परिपक्वता की ओर नहीं बढ़ती। ठीक इसी तरह, चार असंख्य कालों के बाद एक लाख कल्पों की अंतिम सीमा तक पहुँचे बिना, इस बीच की अवधि में बुद्ध बनने जैसी कोई बात नहीं है। इसलिए, ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता के

लिए पहले बताए गए समय के दौरान सिद्धियों को पूरा करना चाहिए। इतने समय में, बुद्धत्व की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को आठ उत्तम उपलब्धियाँ प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रयास को सफल बनाने के लिए ये आवश्यक हैं। वास्तव में, ये हैं:-

मानवता, उत्कृष्ट यौन उपलब्धि, कारण,
सभा देखना, भिक्षुत्व, प्राप्ति
उत्कृष्ट गुणवत्ता, प्रबंधन, और काम करने की इच्छा।
आठ योग्यताओं के संयोजन के आधार पर
यह प्रयास सफल हो जाता है।

91. 17. यह अभिव्यक्ति 'अब्बिनीहारा' मूल आत्म-संकल्प के लिए प्रयुक्त होती है। यहाँ 'मनुस्सत्तम्' मनुष्य के रूप में जन्म को दर्शाता है। वास्तव में, मनुष्य जन्म के अतिरिक्त, शेष जन्मों में, यहाँ तक कि जो व्यक्ति दिव्यलोक में स्थापित हो जाता है, उसका संकल्प साकार नहीं होता। परन्तु, दिव्यलोक में बुद्धत्व की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को दान आदि जैसे पुण्य कर्म करने के बाद भी मनुष्यत्व की आकांक्षा रखनी चाहिए। मनुष्यत्व में रहते हुए संकल्प करना चाहिए। इस प्रकार, वास्तव में, यह पूर्ण हो जाता है। लिंगसंपत्ति पुरुष होने की अवस्था है। स्त्री, लिंगहीन और दोनों लिंगों के व्यक्तियों का संकल्प मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बावजूद साकार नहीं होता। परन्तु वहाँ स्थापित होने के बाद, बुद्ध बनने की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को दान आदि जैसे पुण्य कर्म करने के बाद ही पुरुष बनने की आकांक्षा रखनी चाहिए। वहाँ पुरुष के रूप में स्थापित होने के बाद, संकल्प लेना चाहिए। इस प्रकार, वास्तव में, यह पूर्ण हो जाता है। हेतु शब्द का अर्थ है: वह योग्यता, जो अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए पर्याप्त शर्त है। जो कोई भी, वास्तव में, अपने उस जीवन में प्रयास करके अर्हतत्व प्राप्त करने में सक्षम है; उसका संकल्प साकार होता है; न कि दूसरे का, जैसा कि बुद्धिमान सुमेधा के मामले में हुआ। सुमेधा, वास्तव में, बुद्ध दीपांकर के चरणों में भिक्षु बनकर, उसी जीवन में अर्हतत्व प्राप्त करने में सक्षम हो गया था। सत्तारादस्सनम् शब्द का अर्थ है बुद्धों की उपस्थिति में दर्शन करना। इस प्रकार, वास्तव में, वहाँ पूर्णता प्राप्त होती है; किसी अन्य तरीके से नहीं, जैसा कि बुद्धिमान सुमेधा के मामले में हुआ। उन्होंने, वास्तव में, बुद्ध दीपांकर की उपस्थिति में दर्शन करके संकल्प लिया। पभज्जा का अर्थ है गृहस्थ संन्यासी बनना। वह वास्तव में बुद्ध के मार्ग पर भिक्षु के रूप में, या संन्यासियों के संगठन में, या भ्रमणशील तपस्वियों के रूप में हो सकता है, जिनका सिद्धांत कर्म और प्रतिक्रिया (क्रिया), कर्म और परिणाम (क्रिया) है, जैसा कि बुद्धिमान सुमेधा के मामले में, उन्होंने संकल्प लिया था। गुणसंपत्ति का अर्थ है ध्यान आदि गुणों की प्राप्ति। वास्तव में, भिक्षु के मामले में भी, जो गुण संपन्न है, वह साकार होता है; न कि दूसरे के मामले में, जैसा कि बुद्धिमान सुमेधा के मामले में है। वास्तव में, पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान और आठ प्रकार की ध्यान संबंधी उपलब्धियों (ध्यान) के साथ एक होकर, उन्होंने संकल्प लिया। अधिकारो का अर्थ है असामान्य कर्म, पूर्ण बलिदान। अपने प्राण आदि जैसे सर्वोच्च बलिदान करने के बाद ही, किया गया संकल्प साकार होता है; न कि दूसरे के मामले में, जैसा कि बुद्धिमान सुमेधा के मामले में है। वास्तव में, उन्होंने इस प्रकार स्वयं का बलिदान किया:-

बुद्ध अपने शिष्यों के साथ,
मुझे रौंदने मत जाओ; उसे मुझे रौंदने मत दो
मिट्टी। इससे मुझे फायदा होगा।

संकल्प लिया। चंदता का अर्थ है करने की इच्छा। जिसकी इच्छा प्रबल होती है, उसका संकल्प साकार हो जाता है। यही कारण है कि जो कोई इस प्रकार कहे: "चार असंख्य कालों के अतिरिक्त एक लाख कल्पों तक नरक में तपने के बाद कौन बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता है?" जो कोई ऐसी घोषणा सुनकर "मैं करता हूँ" कहने में सक्षम हो, उसकी इच्छा प्रबल समझी जानी चाहिए। इसी प्रकार, यदि कोई कहे: "बुद्धिहीन अंगारों के क्षेत्र में कदम रखने के बाद कौन बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता है? भाले और कांटों से भरे क्षेत्र को पार करने के बाद कौन बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता है? जल से भरे हुए संपूर्ण ब्रह्मांड (चक्कवाल) को पार करने के बाद कौन बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता है?" "सारे ब्रह्मांड को, जो निरंतर बांस की झाड़ियों से ढका हुआ है, पार करने के बाद कौन बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता है?" यह घोषणा सुनकर जो भी साहसपूर्वक कहे, "मैं चाहता/चाहती हूँ," उसकी इच्छा प्रबल मानी जानी चाहिए। ऐसे ही दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण बुद्धिमान सुमेधा ने यह निश्चय किया।

91. 18. इस प्रकार अपने सिद्धिपूर्ण प्रयास करने वाले बोधिसत्व को अठारह दोषों के निकट भी नहीं जाना पड़ता। वास्तव में, अपने संकल्प के समय से ही, वह जन्मजात अंधा नहीं होता; जन्मजात बहरा नहीं होता, पागल नहीं होता, बहरा और गूंगा नहीं होता, इतना लंगड़ा नहीं होता कि कुर्सी के सहारे रेंगना पड़े या बैसाखी के सहारे चलना पड़े, विधर्मियों के परिवार में पुनर्जन्म नहीं लेता, दासी की कोख में जन्म नहीं लेता, गलत विचारों का प्रचार करने वाला पुष्ट विधर्मी नहीं बनता, उसके जननांग विकृत नहीं होते, वह पाँच अपूरणीय अपराध (अनंतरीय कर्म) नहीं करता; वह कुष्ठ रोगी नहीं बनता; विकास के कारण उसे किसी जानवर की कोख में नहीं जाना

पड़ता, बल्कि हाथी के संबंध में यह उसका अंतिम जन्म होता है और वह एक श्रेष्ठ प्राणी बन जाता है; वह प्यास से ग्रस्त (निज्जामतनहिका) पेटों में, भूख और प्यास से पीड़ित, न ही कालकांचिक असुर नामक दैत्यों के बीच, न ही अवीचि निरय में, और न ही लोकान्तर में जन्म लेता है। वह कामावचर जगत में मार नहीं बनता, रूपावचर जगत में अज्ञानी ब्रह्मा नहीं बनता; न ही शुद्ध ब्रह्माओं के बीच जन्म लेता है; न ही निराकार ब्रह्माओं के बीच जन्म लेता है; और न ही चक्कवाल में जाता है।

91. 19. उन्हें बुद्धत्व के चार आधारों से संपन्न किया गया है: प्रयास, ज्ञान (उम्मंग), आत्म-संकल्प (अवत्थाना), और लाभकारी आचरण (हित चरिया)। यहाँ इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए:-

उस्साहा को प्रयास कहा जाता है, उमंग को भी यही कहा जाता है।
अवत्थाना को ज्ञान कहा जाता है, इसे स्वयं का ज्ञान माना जाता है।
संकल्प, हितकारिया विकसित हो रहा है
प्रिय दयालुपना।

ये सभी प्रवृत्तियाँ, अर्थात्, त्याग की तीव्र इच्छा, एकांतवास की तीव्र इच्छा, लोभहीनता की तीव्र इच्छा, क्रोध के अभाव की तीव्र इच्छा, भ्रम से मुक्त होने की तीव्र इच्छा और निर्वाण की प्राप्ति की तीव्र इच्छा, छह प्रकार से पूर्ण ज्ञानोदय (बोधि) के लिए प्रबल प्रवृत्तियाँ हैं। इन तीव्र प्रवृत्तियों से युक्त होने के कारण, वे बोधिसत्व जो त्याग की तीव्र इच्छा रखते हैं, इंद्रिय सुखों में दोषों के द्रष्टा होते हैं; वे बोधिसत्व जो एकांतवास की तीव्र इच्छा रखते हैं, समाज में दोषों के द्रष्टा होते हैं; वे बोधिसत्व जो लोभहीनता की तीव्र इच्छा रखते हैं, लोभ में दोषों के द्रष्टा होते हैं; वे बोधिसत्व जो क्रोध के अभाव की तीव्र इच्छा रखते हैं और भ्रम से मुक्त होने के लिए तल्लीन रहते हैं, भ्रम में दोषों के द्रष्टा होते हैं; वे बोधिसत्व जो निर्वाण की ओर अग्रसर होने की तीव्र इच्छा रखते हैं, समस्त अस्तित्वों में दोषों के द्रष्टा कहलाते हैं। वह इन गुणों से भी संपन्न है।

91.20. मौन बुद्धों की आकांक्षाएँ कितनी लंबी होनी चाहिए? मौन बुद्धों के लिए दो असंख्य कालों से भी अधिक एक लाख कल्प काल निर्धारित हैं। इससे कम नहीं हो सकता। यहाँ विषय को पहले बताए गए तरीके से ही समझना चाहिए। इतने लंबे समय में भी, मौन बुद्धत्व की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति के लिए प्रयास करते समय पाँच योग्यताएँ आवश्यक हैं। उनके लिए, वास्तव में:-

मानवता, पुरुष लिंग का गुण, देखना
जिनके घाव (आसव) हो गए थे
थकावट, सेवा और इच्छा। ये
ये प्रयास से संबंधित मामले हैं।

91.21. वहाँ, विगतासव दस्सना अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: बुद्धों, मौन बुद्धों और बुद्ध के शिष्यों के रूप में किसी भी व्यक्ति को देखना। शेष का विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

91.22. तो फिर, "बुद्ध के शिष्य बनने की आकांक्षा कितने समय तक रहनी चाहिए? दो शीर्ष शिष्यों के लिए एक असंख्य काल से भी अधिक एक लाख कल्प। बुद्ध के अस्सी प्रमुख शिष्यों में से एक बनने के लिए एक लाख कल्प। इसी प्रकार बुद्ध के माता-पिता का सेवक बनने के लिए भी। इससे कम नहीं हो सकती। यहाँ, मामला पहले ही बताए गए तरीके से स्पष्ट है। न केवल इन सभी के लिए, बल्कि सभी प्रयासों में दो गुण होते हैं: सेवा (अधिकार) और इच्छा (चंदता)।"

91.23. इस प्रकार, इस आकांक्षा और इस प्रयास के कारण, जैसा कि पहले ही बताया गया है, समय के विभिन्न विभाजनों के लिए सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद, बुद्ध संसार में प्रकट होते हैं और उनका पुनर्जन्म योद्धा राजकुमारों या ब्राह्मणों के परिवार में होता है; मौन बुद्ध योद्धा राजकुमारों, ब्राह्मणों या धनी गृहस्थों में से किसी एक परिवार में जन्म लेते हैं; बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध के समान योद्धा राजकुमारों या ब्राह्मणों के परिवार में ही पुनर्जन्म लेते हैं। सभी बुद्ध संवत्तकप्पा में, विनाश के काल में, प्रकट नहीं होते; वे विकास के काल में, विवत्तकप्पा में प्रकट होते हैं। मौन बुद्ध भी ऐसा ही करते हैं। यद्यपि वे बुद्धों के प्रकट होने के समय प्रकट नहीं होते। बुद्ध स्वयं प्रबुद्ध होते हैं; वे दूसरों को भी प्रबुद्ध करते हैं। मौन बुद्ध स्वयं प्रबुद्ध होते हैं, परन्तु दूसरों को प्रबुद्ध नहीं करते । वे केवल अर्थ के सार में प्रवेश करते हैं, धम्म (सत्य का स्वरूप) के सार में नहीं । वास्तव में, वे पारलौकिक सत्य (लोकउत्तर धम्म) का उपदेश देने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि वे इसे अभिव्यक्तियों (पञ्ञत्ति) पर आधारित (या उनके संदर्भ में) करते हैं। जैसे गूंगे को स्वप्न दिखाई देता है, जैसे वन में भटकने वाले को शहर में स्वादिष्ट करी का आनंद मिलता है, वैसे ही उन्हें सत्य की पूर्ण समझ (धम्मभिशमय) प्राप्त नहीं होती। सभी अलग-अलग उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं जैसे जादुई शक्ति, ध्यान की उपलब्धि (ज्ञान), और विश्लेषणात्मक ज्ञान (पटिसंभिदा)। गुणों में वे बुद्धों से नीचे हैं, लेकिन बुद्ध के शिष्यों से ऊपर हैं। वे किसी को दीक्षा नहीं देते और अच्छे व्यवहार के लिए अनुशासन (आभिसमाचारिक) लागू करते हैं। वे उपवास दिवस को संक्षेप में इस कथन से मनाते हैं: "मानसिक तपस्या करनी चाहिए। लापरवाही

नहीं करनी चाहिए," या केवल यह कहकर: 'आज उपवास दिवस (उपोसथ) है।' उपोसथा व्रत करते हुए, वे सुगंधित मंजूसक दिव्य वृक्ष की तलहटी में स्थित रत्नजड़ित पंडाल (माला) में एकत्रित होकर ऐसा करते हैं। इस प्रकार, प्रतापी बुद्ध ने आदरणीय आनंद को मौन बुद्धों की सिद्धि, आकांक्षाओं और प्रयासों के सर्वांगीण गुणों का वर्णन किया। इसके बाद, प्रतापी बुद्ध ने गैंडे के सींग पर प्रवचन (खग्गविसांसुत्त) की शुरुआत "सब्बेसु भूतेसु निधाव दण्डम, सभी प्राणियों के प्रति शस्त्र-छड़ी त्यागकर" से की, ताकि इस आकांक्षा और इस प्रयास के कारण उत्पन्न हुए अमुक मौन बुद्धों की कथा का वर्णन किया जा सके। यही गैंडे के सींग पर प्रवचन, खग्गविसांसुत्त का उद्‌गम है, सामान्यतः प्रश्न के कारण।

91.24. अब, इसे स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए। इस श्लोक से उत्पत्ति को इस प्रकार समझा जाना चाहिए:- कहा जाता है कि मौन बोधिसत्व के क्षेत्र में लीन होकर, इस मौन बुद्ध ने दो असंख्य कालों से भी अधिक एक लाख कल्पों तक सिद्धियाँ प्राप्त कीं, बुद्ध कस्सपा के युग में भिक्षु बने, वनवासी बने और भिक्षु के कर्तव्य (समणधम्म) का पालन किया, जिसे 'गटपेच्चा-गतवत्त' कहा जाता है। कहा जाता है कि इस कर्तव्य का पालन किए बिना मौन बुद्धत्व प्राप्त करना संभव नहीं है। परन्तु इस गटपेच्चागतवत्त का नाम क्या है? यह लेना (हरण) और वापस लाना (पच्चाहरण) है। हम इसे इस प्रकार कहेंगे कि यह स्पष्ट हो जाए (विभूत)।

91.25. यहाँ, कोई भिक्षु लेता तो है पर वापस नहीं लाता; कोई वापस लाता है पर नहीं लेता; कोई न लेता है न वापस लाता है; कोई लेता भी है और वापस लाता भी है। वहाँ जो भी भिक्षु सबसे पहले उठकर बोधि वृक्ष के चारों ओर और चबूतरे पर पूजा-अर्चना करता है, बोधि वृक्ष पर जल छिड़कता है, पीने के पानी से पात्र भरता है, उसे पीने के आसन पर रखता है, अपने गुरु और आध्यात्मिक उपदेशक के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है (उपाज्जाया), और आगे बढ़ता है, विनय खंडक में वर्णित बयासी कर्तव्यों और चौदह प्रमुख कर्तव्यों का पालन करता है। उन्होंने शारीरिक स्नान करने के बाद मठ में प्रवेश किया, एकांत स्थान पर कुछ समय व्यतीत किया जब तक कि भिक्षा मांगने का समय नहीं आ गया। जब उन्हें पता चला कि समय आ गया है, तो उन्होंने अपना निचला वस्त्र पहना, उसे कमरबंद से बांधा, ऊपरी वस्त्र लपेटा, अपने धड़ पर दोहरा वस्त्र (संघाती) रखा, अपना भिक्षापात्र कंधे पर लटकाया और मंदिर परिसर में गए। मन में कर्माध्य साधना (कम्मत्ताना) करते हुए, उन्होंने मंदिर और बोधि वृक्ष को प्रणाम किया, गांव के पास विधिपूर्वक अपना वस्त्र पहना, हाथों में भिक्षापात्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए गांव में प्रवेश किया। इस प्रकार प्रवेश करने पर, पुण्यवान भिक्षु को लाभ हुआ, और भक्तों द्वारा उन्हें आदरणीय और सम्मानित किया गया। वह परिवार के पास लौट आते, जो उनकी सेवा करते थे, या ध्यान के लिए हॉल में चले जाते, और जब उनके भक्त उनसे यह या वह प्रश्न पूछते, तो वे उनके प्रश्नों का उत्तर देने की परवाह किए बिना, धर्म के उपदेश की उलझन में उलझकर चले जाते। जब वे मठ लौटते, और भिक्षुओं द्वारा प्रश्न पूछे जाते, तो वे बोलते, धर्म का पाठ करते और किसी न किसी काम में लग जाते। दोपहर के भोजन के बाद, साथ ही रात के पहले और मध्य पहर में, भिक्षुओं के साथ इस प्रकार बहुत बातें करने के बाद, वे रात के अंतिम पहर में भी शारीरिक कमजोरी के कारण सो जाते; न ही वे अपने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) पर ध्यान देते। ऐसे व्यक्ति को "हरति न पच्चाहरति" कहा जाता है, यानी वह लेता तो है, लेकिन वापस नहीं लाता।

91.26. जिस किसी को भी अत्यधिक कष्ट हो, सुबह जो कुछ भी उसने खाया हो, वह ठीक से पच न पाए; सुबह जल्दी उठकर वह अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सका, न ही अपने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) पर ध्यान दे सका; फिर भी, चावल का दलिया या कुछ खाने की इच्छा से, या दवा या भोजन की इच्छा से वह सुबह-सुबह ही अपना कटोरा और वस्त्र लेकर गाँव में प्रवेश करता है; वहाँ चावल का दलिया, या कुछ खाने की वस्तु, या दवा या भोजन प्राप्त करके, अपना कटोरा निकालता है, भोजन समाप्त करता है, अपने लिए तैयार की गई कुर्सी पर बैठता है, अपने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) पर ध्यान देता है, मठ लौट आता है, चाहे वह ध्यान में किसी विशिष्ट विचार पर पहुँचा हो या न पहुँचा हो, और उसी मनन के साथ वहाँ रहता है। ऐसे व्यक्ति को "पच्चाहारति न हरति, वह वापस लाता है लेकिन लेता नहीं" कहा जाता है। बुद्ध के युग में ऐसे भिक्षु, जिन्होंने चावल का दलिया पीकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की और अर्हतत्व प्राप्त किया, उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि उनकी गणना करना असंभव हो गया। यहाँ तक कि सीहाला द्वीप (श्रीलंका) के इन और उन गाँवों में भी, आसनशाला में ऐसा कोई आसन नहीं है, जहाँ बैठे भिक्षुओं ने चावल का दलिया पीने के बाद अर्हतत्व प्राप्त न किया हो।

91.27. जो कोई भी अपने दायित्व का त्याग करके, अपने सभी कर्तव्यों का उल्लंघन करके, पाँच प्रकार की मानसिक बाधाओं से बंधे मन से, कभी भी अपने मानसिक अभ्यास में न तल्लीन होकर, गाँव में प्रवेश करता है और गृहस्थों के साथ बहुत बातचीत करने के बाद भी खाली हाथ लौटता है, उसे "नेवा हरति न पच्चाहरति" कहा जाता है, यानी वह न तो कुछ लेता है और न ही कुछ वापस लाता है।

91.28. जो कोई भी सबसे पहले उठकर, पहले की तरह सभी वस्त्र धारण करके, भिक्षा मांगने का समय आने तक पालथी मारकर बैठ जाता है और मानसिक साधना करता है (कम्मत्थाना)। मानसिक साधना दो प्रकार की होती है: एक सब कुछ से संबंधित (सब्बत्तक) और दूसरी संरक्षण (परिहार्य)। इसमें सर्वोत्कृष्ट प्रेम और मृत्यु का ध्यान है; वास्तव में इसे सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है क्योंकि यह हर जगह

वांछनीय और आवश्यक है। प्रेम, अर्थात्, निवासों आदि में हर जगह वांछनीय है। वास्तव में, निवासों में, प्रेम से रहने वाला भिक्षु, साथ में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने वाले भिक्षुओं द्वारा प्रेम और प्रसन्न (मनपो) किया जाता है। इसी कारण वह किसी को क्रोधित किए बिना सुखमय जीवन व्यतीत करता है। जो व्यक्ति देवताओं के प्रति प्रेम भाव रखता है, वह देवताओं की शरण में रहकर सुखी जीवन व्यतीत करता है। जो व्यक्ति राजाओं और उनके महान मंत्रियों के प्रति प्रेम भाव रखता है, वह उनसे प्रेम पाकर सुखी जीवन व्यतीत करता है। जो व्यक्ति छोटे-बड़े सभी गांवों के प्रति प्रेम भाव रखता है, वह भिक्षा मांगने आदि कार्यों में भी सर्वत्र आदर और सम्मान पाकर सुखी जीवन व्यतीत करता है। मृत्यु का ध्यान लगाकर व्यक्ति जीवन की लालसा को त्यागकर लगन से जीवन व्यतीत करता है।

91.29. जो कुछ भी सदा संरक्षित रखा जाना चाहिए (परिहारितब्बा), उसे अनुकूल माना जाता है; अर्थात् दस अप्रिय वस्तुओं में से एक, कर्मत्स्थान में सहायक तत्वों का ध्यान रखना या यहाँ तक कि चार तत्वों (धातु) का विश्लेषण करना, इसे परिहार्य (संरक्षण) कहा जाता है, इस दृष्टि से कि सदा किसका पोषण किया जाना चाहिए, सदा किसकी रक्षा की जानी चाहिए और सदा किसका विकास किया जाना चाहिए। यही मूलभूत मानसिक अभ्यास (कर्मत्स्थान) है। वास्तव में, अच्छे परिवारों के पुत्र, जो कल्याण की इच्छा रखते थे, बुद्ध के युग में भिक्षु बने। वे दस, बीस, तीस, चालीस, पचास और सौ के समूह में एक साथ रहते थे, आपस में यह प्रतिज्ञा करके: "मित्रों! तुम सब भिक्षु इसलिए नहीं बने हो कि तुम ऋण से व्याकुल हो, न ही खतरे से परेशान हो, न ही जीविका कमाने के लिए, बल्कि तुम सब इस जीवन से मुक्ति पाने की इच्छा से भिक्षु बने हो। इसलिए, चलते समय जो दुराचार उत्पन्न हुआ था, उसे चलते समय भी रोको। खड़े, बैठे और लेटे हुए जो भी दुराचार उत्पन्न हुआ हो, उसे खड़े, बैठे या लेटे हुए ही रोक लो।"

91.30. इस प्रकार आपसी प्रतिज्ञा करके, वे भिक्षा मांगने के लिए निकलते हैं, तो हर आधे उशब या आधे गावत्र पर पथरीले पत्थर मिलते हैं। इस विचार के साथ वे अपने मन को कर्मत्त्व में लगाए रखते हुए आगे बढ़ते हैं। यदि किसी के मन में चलते समय कोई दुराचार उत्पन्न होता है, तो वह उसे वहीं रोक लेता है। ऐसा न कर पाने पर वह खड़ा हो जाता है। फिर, यद्यपि कोई दूसरा भिक्षु उसके पीछे से आता है, वह खड़ा ही रहता है। मन ही मन कहता है, "यह भिक्षु तुम्हारे मन में उत्पन्न हुए इस विचार को जानता है; यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है," वह स्वयं को दोष देता है, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करता है, और वहीं पर श्रेष्ठ (आर्य) भूमि पर उतरता है। ऐसा न कर पाने पर वह बैठ जाता है। फिर, यद्यपि कोई दूसरा भिक्षु उसके पीछे से आता है, वह बैठा ही रहता है; इस प्रकार वह ऐसा ही करता है। यदि वह श्रेष्ठ (आरिया) भूमि पर उतरने में असमर्थ भी हो, तो भी वह उस दुराचार को निष्क्रिय कर देता है और अपने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) के प्रति सचेत रहते हुए आगे बढ़ता है। वह मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) से विमुख होकर अपना पैर नहीं उठाता। यदि वह पैर उठाता है, या उठा चुका है, तो वह वापस मुड़कर पहले वाले स्थान पर ही खड़ा हो जाता है। वह आलिन्दकवासी महाफुस्सदेवत्तेरा के समान है, जो आलिन्दक में रहने वाले महान थेरा फुस्सदेव थे।

91.31. कहा जाता है कि उन्होंने उन्नीस वर्षों तक केवल आने-जाने का कर्तव्य निभाते हुए निवास किया। लोग भी हल चलाते, बीज बोते और अपना काम करते हुए, थेरा को इस प्रकार जाते हुए देखकर आपस में कहने लगे, “यह थेरा बार-बार जाते हुए दिखाई देते हैं। क्या वे सचमुच अपना मार्ग भटक गए हैं? या फिर वे कुछ भूल गए हैं?” उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया, बल्कि एक भिक्षु के कर्म (धम्म) का पालन करते रहे, अपने मन को मानसिक साधना (कम्मत्थाना) में लगाए रखा और बीस वर्षों के भीतर अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जिस दिन उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया, उसी दिन उनके आश्रम के अंतिम छोर पर विराजमान देवता ने अपनी उंगलियों से दीपक जलाया। चारों महान देवराज, देवों के राजा सक्का और ब्रह्मा सहमपति उनकी सेवा में उपस्थित हुए। उस प्रकाश को देखकर वनवासी थेरा महातिस्सा ने दूसरे दिन उनसे पूछा, "रात में आपके पास प्रकाश था; वह क्या है?" भ्रम पैदा करते हुए थेरा ने कहा, "प्रकाश, अर्थात्, दीपक का प्रकाश हो सकता है; यह रत्न का प्रकाश भी हो सकता है" इत्यादि। जब उनसे कहा गया कि "आपको इसे ढक देना चाहिए", तो उन्होंने "हाँ" कहकर उनकी बात मान ली और उन्हें सूचित किया।

91.32. कालवल्लीमण्डपवासी महानागथेरा के समान, थेरा महानाग, जो कालवल्ली (काली लता) के मंडप में निवास करते थे। कहा जाता है कि उन्होंने भी आने-जाने का कर्तव्य निभाते हुए, सात वर्षों तक खड़े होकर और इधर-उधर चलकर समय बिताने का संकल्प लिया और कहा: "सबसे पहले, अब मैं महापधान के लिए अपना आदर अर्पित करूँगा।" फिर, सोलह वर्षों तक उन्होंने आने-जाने का कर्तव्य निभाया और अर्हतत्व प्राप्त किया। इस प्रकार गाँव के आसपास जाकर, अपने मन को मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) में लगाकर, पैर उठाकर और फिर मन को विवश करके, पैर वापस रखते हुए, वे अपने संदेह के संकेत के रूप में खड़े हुए: 'क्या गाय सचमुच बाहर चली गई है?' क्या सचमुच ऐसा है?” उन्होंने अपना दोहरा वस्त्र पहना, अपना कटोरा लिया, गाँव के द्वार पर पहुँचे, अंजीर के पेड़ के भीतर से पानी लिया, एक घूँट पिया और यह सोचते हुए गाँव में प्रवेश किया: “जब लोग मेरे पास भिक्षा देने या मुझे प्रणाम करने के लिए आएँ, तो चाहे मुझे केवल इतना ही कहना पड़े: 'आप सभी दीर्घायु हों', मेरे मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) में कोई कमी न हो।” यदि वे उनसे तिथि के बारे में इस प्रकार पूछें: “आदरणीय महोदय! आज क्या तिथि है? सातवीं है या आठवीं?” तो वे पानी पीकर

उन्हें तिथि बता देते। यदि तिथि के बारे में कोई प्रश्नकर्ता न हो, तो गाँव छोड़ते समय वे गाँव के द्वार पर पानी थूक देते और अपने मार्ग पर चल पड़ते।

91.33. सीहाला द्वीप (सीलोन) में, लगभग पचास भिक्षुओं ने, जिन्होंने अपना व्रत (वस्सूपागत) कोलंबो के स्नान घाट कलाम्बा तीर्थ मठ में बिताया, कहा जाता है कि उन्होंने वर्षा से बचने और व्रत रखने के उपोसथ (उपोसथ) के दिन आपस में यह वचन लिया: "हम अर्हतत्व प्राप्त किए बिना एक-दूसरे से बात नहीं करेंगे।" गाँव में प्रवेश करते समय भी, उन्होंने गाँव के द्वार पर अपने मुँह पानी से भर लिए। जब उनसे तिथि के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने मुँह का पानी निगलकर तिथि बताई। जब नहीं पूछा गया, तो उन्होंने गाँव के द्वार पर पानी थूक दिया और अपने मठ चले गए। वहाँ के लोगों ने थूक के निशान देखकर यह जान लिया: "आज केवल एक आया था; आज दो।" इस तरह भी उन्होंने सोचा, "यह कैसी बात है कि ये भिक्षु हमसे या आपस में भी बात नहीं करते? यदि वे आपस में बात नहीं करते, तो अवश्य ही वे किसी विवाद में हैं। आओ! हम उन्हें आपस में क्षमा मांगवाते हैं।" वे सब मठ गए। वहाँ उन्होंने पचास भिक्षुओं में से, जो उपवास कर रहे थे, एक भी दो भिक्षु एक ही स्थान पर नहीं देखे। इसके बाद, उनमें से एक दूरदर्शी ने कहा, "हे मित्रों! विवाद करने वालों का निवास स्थान ऐसा नहीं है; पैगोडा का परिसर और बोधि वृक्ष के चारों ओर का क्षेत्र अच्छी तरह समतल है; झाड़ू का सही उपयोग किया गया है और उन्हें दूर रखा गया है; प्यास बुझाने के लिए पीने का पानी पात्र में ठीक से रखा गया है।" इसके बाद वे धीरे-धीरे चले गए। उन भिक्षुओं ने भी उपवास के दौरान आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, अर्हतत्व प्राप्त किया, और आलोचना के महान निमंत्रण (पवारना) के दिन, उन्होंने पारस्परिक आलोचना (विशुद्धि-पवारना) का स्वच्छ और शुद्ध समारोह आयोजित किया।

91.34. इस प्रकार, कालवल्लीमण्डपा में निवास करने वाले महानाग की तरह, और कलांबतीत्त मठ में उपवास रखने वाले भिक्षुओं की तरह, गाँव के आसपास जाकर, मन को चिंतन में लीन रखते हुए, एक घूँट पानी पीकर, गाँव की सड़कों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते हुए, जिस भी सड़क पर हाथी, घोड़े आदि जैसे हिंसक जानवर न हों, उस सड़क पर वे चल पड़ते थे। वहाँ भिक्षा माँगते समय वे जल्दबाजी नहीं करते थे; क्योंकि धुतंग जैसा कोई कठोर अभ्यास नहीं था, जिसमें भिक्षा जल्दी माँगने का नियम हो। फिर भी, जब वे किसी ऊबड़-खाबड़ भूमि पर पहुँचते थे, तो वे पानी से भरी गाड़ी की तरह स्थिर और बिना काँपे चलते थे। जब वह गाँव में घर-घर जाकर प्रवेश करता, तो वह कुछ समय तक रुकता ताकि दानदाता का पता लगा सके, दान देने की इच्छा का पता लगा सके, भिक्षा ग्रहण कर सके, किसी उपयुक्त स्थान पर बैठ सके, भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न कर मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) कर सके, आठ गुणों से युक्त भोजन ग्रहण कर सके और उसका उदाहरण देते हुए उस पर चिंतन कर सके, जिसमें धुरी को टूटने से बचाने के लिए चिकनाई लगाना, घाव पर मरहम लगाना और घाव के घाव की मालिश करना शामिल था। यह सब वह मनोरंजन के लिए या नशे के लिए नहीं करता था। भोजन करने के बाद, वह पानी से स्नान करता, भोजन की थकान को क्षण भर के लिए दूर करता और भोजन के बाद, रात के पहले और आखिरी पहर में, ठीक उसी तरह मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) करता जैसे भोजन से पहले करता था। इसे "हरति च पच्चाहरति च" कहा जाता है, यानी वह लेता है और वापस लाता है। इस प्रकार इसे "ले जाने और वापस लाने का कर्तव्य और जाने और वापस आने का कर्तव्य" कहा जाता है।

91.35. यदि वह इन शर्तों को पूरा करता है और उसमें अर्हत पद के लिए पर्याप्त योग्यता है, तो वह अपने जीवन के प्रथम चरण में ही अर्हत पद प्राप्त कर लेगा। यदि वह अपने जीवन के प्रथम चरण में अर्हत पद प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह अपने जीवन के मध्य चरण में अर्हत पद प्राप्त करेगा। यदि वह अपने जीवन के मध्य चरण में भी अर्हत पद प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह अपनी मृत्यु के समय अर्हत पद प्राप्त करेगा। यदि वह अपनी मृत्यु के समय भी अर्हत पद प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह एक मौन बुद्ध बन जाएगा और पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर लेगा। यदि वह मौन बुद्ध बनने के बाद भी पूर्णतः निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह थेरा बाहिया के समान बुद्धों की उपस्थिति में उच्च ज्ञान का शीघ्र ज्ञाता बन जाएगा, या वह थेरा सारिपुत्त के समान अत्यधिक विद्वान बन जाएगा।

मौन बुद्ध का उदय

91.36. यह मौन बोधिसत्व बुद्ध कश्यप के युग में भिक्षु बन गए, वन में निवास किया, बीस वर्षों तक आने-जाने का यह कर्तव्य निभाया, मृत्यु को प्राप्त हुए और कामावकारदेव के स्वर्गलोक में अवतरित हुए। वहाँ से विदा होकर उन्होंने बनारस के राजा की प्रधान रानी के गर्भ में गर्भ धारण किया। कुशल स्त्रियाँ गर्भावस्था के दिन ही अपनी स्थिति जान लेती हैं; वह और अन्य स्त्रियाँ भी ऐसा ही करती थीं; इसलिए उन्होंने राजा को अपनी गर्भावस्था के बारे में सूचित किया। यह प्रथा है। जब भी किसी स्त्री के गर्भ में कोई पुण्यमय प्राणी जन्म लेता है, तो उसे गर्भावस्था की उचित सुरक्षा प्रदान की जाती है। इसलिए राजा ने उनकी गर्भावस्था को हर तरह से उचित सुरक्षा प्रदान की। उस दिन से ही उन्होंने न तो कोई अत्यधिक गर्म, न ही अत्यधिक कड़वा और न ही अत्यधिक तीखा भोजन ग्रहण किया। वास्तव में, जब कोई गर्भवती महिला अत्यधिक गर्म भोजन ग्रहण करती है, तो गर्भावस्था के दौरान ऐसा लगता है जैसे वह उबलते तांबे के बर्तन में

रह रही हो। यदि बहुत ठंड हो तो ऐसा लगता है मानो लोकांत्रिक अवस्था में रह रहे हों; जब बहुत खट्टा, नमकीन, कड़वा और तीखा भोजन किया जाता है, तो गर्भस्थ शिशु के अंगों में तेज दर्द होता है, मानो उन्हें चाकू से चीर कर खट्टा तरल पदार्थ छिड़क दिया गया हो। गर्भवती महिला को बहुत अधिक चलने-फिरने, खड़े होने, बैठने और लेटने से मना किया जाता है और कहा जाता है: "गर्भ में शिशु को कंपकंपी का दर्द न हो।" गर्भवती महिला को नरम बिछी हुई ज़मीन पर थोड़ा-बहुत चलने-फिरने की अनुमति होती है। वह अपनी पसंद का और स्वादिष्ट भोजन और पेय ले सकती है। केवल एक सहायक के सहारे ही उसे चलने-फिरने, बैठने और उठने की अनुमति होती है।

91.37. इस प्रकार सभी प्रकार से देखभाल प्राप्त करने के बाद, गर्भावस्था के पूर्ण परिपक्व होने पर वह प्रसूति कक्ष में प्रवेश कर गई और भोर होते ही उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जो मन को शीतलता प्रदान करने वाले पत्थर (मनोशीला) के ढेले के समान था, मानो उसे तेल में भिगोकर दबाया गया हो, और वह अन्न-संपत्ति और पुण्य के गुणों से परिपूर्ण था। इसके बाद पाँचवें दिन उसे उचित वस्त्रों और अलंकरणों के साथ राजा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। राजा उससे अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने अपने पुत्र की देखभाल के लिए छियासठ दाइयों को नियुक्त किया। सभी प्रकार के विलासितापूर्ण जीवन में पलते-बढ़ते वह शीघ्र ही बुद्धिवान हो गया। राजा ने सोलह वर्ष की आयु में उसका राज्याभिषेक किया; उसकी सेवा में अनेक प्रकार की नर्तकियाँ भी उपस्थित रहती थीं। राज्याभिषेक प्राप्त युवा राजा ब्रह्मा-दत्त के नाम से संपूर्ण जंबूद्वीप में, बीस हजार नगरों में फैले अपने राज्य पर शासन करता था। कहा जाता है कि पूर्व में चौरासी लाख नगर थे। जब उनकी संख्या घटी तो साठ (एक लाख) रह गई, फिर जब उनकी संख्या दोबारा घटी तो चालीस रह गई। लेकिन पूर्णतः घटने के समय बीस हजार रह गए थे। यह राजा ब्रह्मदत्त पूर्णतः घटने के समय ही सत्ता में आया था। इसलिए, बीस हजार नगर, बीस हजार महल, बीस हजार हाथी, बीस हजार घोड़े, बीस हजार रथ, बीस हजार पैदल सैनिक, बीस हजार महिलाओं के हरम, नर्तकियां और बीस हजार मंत्री थे।

91.38. एक महान सम्राट के रूप में शासन करते हुए, उन्होंने ध्यान के विषयों के साथ ध्यान का अभ्यास किया और पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) और ध्यान में आठ प्रकार की सिद्धियाँ (समापत्ति) प्राप्त कीं। क्योंकि राज्याभिषेक प्राप्त सम्राट को मुकदमों का फैसला करने के लिए अदालत में उपस्थित रहना आवश्यक था, इसलिए एक दिन उन्होंने अपना सुबह का भोजन सामान्य से बहुत पहले किया और फैसले के लिए अदालत में बैठ गए। वहाँ एक बहुत शोरगुल हुआ। राजा ने मन ही मन कहा, "यह शोर ध्यान में सिद्धि में बाधक है," और अपने महल के तल पर ऊपर गए और ध्यान में सिद्धि (समापत्ति) प्राप्त करने के लिए बैठ गए। इसके बाद वे सोचते रहे, "कैसे? कौन सा बेहतर है? संप्रभुता या भिक्षु का धर्म?" इसके बाद उन्हें यह ज्ञान हुआ: "एक सम्राट का आनंद सूक्ष्म और दोषों से भरा होता है; जबकि भिक्षु के धर्म का सुख समृद्ध और अनेक लाभों से भरपूर होता है, और इसमें अत्यंत उत्तम लोग भी भागीदार होते हैं। उन्होंने एक मंत्री को आदेश दिया, “तुम इस राज्य का प्रशासन न्याय और निष्पक्षता से करो; किसी को भी किसी प्रकार का अन्याय न करने दो।” उस मंत्री को संपूर्ण प्रशासन सौंपकर वे महल में चले गए और अपनी उपलब्धि के सुख का आनंद लेते हुए ध्यान (समापत्ति) में समय व्यतीत किया। उनके लिए स्नानारण जल, दंत-कढ़ाई, भोजन आदि लाने और देने वालों के अलावा किसी को भी उनके निकट जाने की अनुमति नहीं थी।

91.39. इसके बाद जब लगभग आधा महीना बीत गया, तो मुख्य रानी ने इस प्रकार पूछा: "राजा राजमहल में शक्ति प्रदर्शन (सैन्य परेड), नृत्य प्रदर्शन आदि देखने नहीं जाते; वे कहाँ चले गए हैं?" उन्हें इस मामले की सूचना दी गई। उन्होंने मंत्री को बुलवाया और कहा, "जब आपने संप्रभुता ग्रहण की, तो इसका अर्थ है कि मुझे भी ग्रहण कर लिया गया है; उन्हें आने दें और मेरे साथ सहवास करें।" मंत्री ने अपने दोनों कान ढँक लिए और यह कहते हुए उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया: "यह सुनने योग्य नहीं है।" फिर भी उन्होंने मंत्री को दो-तीन बार बुलवाया और उनकी अनिच्छा के लिए उन्हें धमकी दी: "यदि तुम मेरी इच्छा के अनुसार नहीं करोगे, तो मैं तुम्हें तुम्हारे पद से हटा दूँगी और तुम्हारा जीवन भी छीन लूँगी।" वह डर गया और बोला: "एक स्त्री, अर्थात्, दृढ़ निश्चयी होती है; कभी न कभी वह मुझे इस तरह कष्ट दे सकती है। एक दिन मंत्री चुपके से गया और उसके शाही पलंग पर उसके साथ सहवास किया। वह गुणों से परिपूर्ण थी और उसका स्पर्श आनंदमय था। मंत्री उसके प्रति आसक्ति से आकर्षित होकर बार-बार संशय और चिंता के साथ उसे छूने लगा। धीरे-धीरे वह बिना किसी संशय के उसके शयनकक्ष में प्रवेश करने लगा, मानो वह स्वयं उसके घर का स्वामी हो।

91.40. तब राजसी सेवकों ने राजा को इस बात की सूचना दी। राजा ने इस पर विश्वास नहीं किया। दूसरी और तीसरी बार भी उन्होंने राजा को इस बारे में बताया। बाद में राजा ने घात लगाकर बैठे हुए स्वयं यह सब देखा, सभी मंत्रियों को इकट्ठा किया और उन्हें इस बारे में बताया। मंत्रियों ने कहा, "इस राजसी अपराधी के हाथ काट दिए जाने चाहिए; इसके पैर काट दिए जाने चाहिए" और इसे सूली पर चढ़ाने तक की सजा दी जानी चाहिए। राजा ने कहा, "इसे कोड़े मारना, बांधना और चाबुक मारना मेरे लिए इसके साथ दुर्व्यवहार करने के समान होगा; इसकी जान लेना मेरे लिए हत्या का पाप होगा; इसकी संपत्ति जब्त करना मेरे लिए चोरी का पाप होगा; इस तरह की सजाएँ

देना बंद करो; इस मंत्री को मेरे राज्य से बाहर निकालो।" मंत्रियों ने उसे निर्वासित कर दिया। वह अपनी सारी संपत्ति, पत्नी और बच्चों को लेकर एक विदेशी राज्य में चला गया। वहाँ उस देश के राजा को उसके आने की सूचना मिली और उसने पूछा कि वह क्यों आया है। उसने उत्तर दिया, "महाराज! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ।" उस राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों के भीतर, मंत्री को राजा का अनुग्रह प्राप्त हो गया और उसने राजा से कहा, "हे महाराज! मुझे बिना मधुमक्खियों वाला शहद मिला है; इसका आनंद लेने वाला कोई नहीं है।" राजा ने उसकी बात अनसुनी करते हुए कहा, "तुम ऐसा मज़ाक उड़ाने के लिए क्यों कह रहे हो?" मौका पाकर उसने फिर से वही बात कही, इस बार और भी विस्तार से। राजा ने पूछा, "यह क्या है?" मंत्री ने उत्तर दिया, "महाराजा, बनारस का राज्य!" राजा ने पूछा, "तुम मुझे वहाँ ले जाकर क्यों मारना चाहते हो?" उसने उत्तर दिया, "महाराजा! कृपया ऐसा न कहें; यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है, तो कृपया अपने आदमियों को भेज दें।" राजा ने अपने आदमियों को वहाँ भेजा। वे वहाँ गए, शहर का द्वार खोदकर उसे राजमहल में सोने के लिए लगा दिया।

91.41. राजा ने यह देखा और पूछा, "यह किसने किया है?" चोरों ने कहा कि यह उनका काम है। राजा ने उन्हें धन देकर कहा, "फिर कभी ऐसा मत करना।" उन्हें चेतावनी देकर राजा ने उन्हें मुक्त कर दिया। वे वापस गए और अपने राजा को इस मामले की सूचना दी। राजा ने फिर उसी तरह से दो-तीन बार जाँच-पड़ताल की और आश्वस्त हो गया कि बनारस का राजा सदाचारी है। उसने अपनी चार गुना सेना जुटाई, बनारस की सीमा के भीतर एक नगर में पहुँचा और वहाँ से एक दूत को यह चेतावनी देकर भेजा, "या तो नगर दो या युद्ध।" दूत ने राजा ब्रह्मदत्त को इस बारे में सूचित करते हुए कहा, "महाराज, आदेश दें कि युद्ध दिया जाए या नगर।" राजा ने दूत को वापस भेज दिया, "युद्ध न हो; नगर दे दो और वापस आ जाओ।" दूत ने वैसा ही किया। प्रतिद्वंद्वी राजा ने भी उस नगर पर कब्जा कर लिया और शेष नगरों में भी उसने उसी तरह दूत भेजे। उन मंत्रियों ने भी राजा ब्रह्मदत्त को उसी प्रकार सूचित किया और जब उनके राजा ने आदेश दिया: "युद्ध नहीं लड़ा जाना चाहिए; उन्हें भी बनारस शहर आना चाहिए," तो वे सभी बनारस लौट गए।

91.42. अतः मंत्रियों ने राजा ब्रह्मदत्त से कहा, "हे महाराज! हम उससे युद्ध करना चाहते हैं।" राजा ने उन्हें यह कहकर मना किया, "ऐसा करने से मेरे ऊपर वध का पाप लगेगा।" मंत्रियों ने अनेक प्रकार से राजा को मनाते हुए कहा, "हे महाराज! हम उसे जीवित पकड़कर यहीं लाएँगे; कृपया आइए, हे महाराज!" और वे चल पड़े। राजा ने उनसे कहा, "यदि तुम सब लूटपाट, मारपीट और प्राणियों की हत्या नहीं करोगे, तो मैं चला जाऊँगा।" मंत्रियों ने उत्तर दिया, "महाराज! हम ऐसा नहीं करेंगे, हम उन्हें उनका खतरा दिखाएँगे और उन्हें भगा देंगे।" उन्होंने अपनी चार प्रकार की सेना तैयार की, कलशों में जलते दीपक रखे और रात में निकल पड़े। उस दिन प्रतिद्वंद्वी राजा ने बनारस के पास एक शहर पर कब्जा कर लिया और मन ही मन सोचने लगा, "अब क्या? अब!", उसने अपने कवच उतार दिए और अपनी विशाल सेना के साथ लापरवाही से सो गया। इसके बाद, मंत्री राजा ब्रह्मदत्त को लेकर प्रतिद्वंद्वी राजा के शिविर (खंडावर) में गए, कलशों से जलते हुए दीपक निकाले, एक चमकदार प्रकाश का समूह बनाया और जोर-जोर से जयघोष किया। प्रतिद्वंद्वी राजा के मंत्री ने विशाल सेना को देखकर भयभीत होकर अपने राजा के पास जाकर जोर से कहा, "कृपया उठिए और बिना मक्खियों वाला शहद खाइए।" दूसरे और तीसरे मंत्री ने भी ऐसा ही किया। उस आवाज से प्रतिद्वंद्वी राजा जाग उठा और खतरे और यातना का सामना करना पड़ा। सैकड़ों जयघोष हुए। प्रतिद्वंद्वी राजा पूरी रात उलझन में इधर-उधर की बातें करता रहा और कहता रहा, "दूसरे की बात मानकर मैं अब शत्रु के हाथ में पहुँच गया हूँ।" अगले दिन उसने सोचा, "धर्मी राजा कोई विनाश नहीं करेंगे, मैं जाकर उनसे क्षमा मांगूंगा।" वह राजा के पास पहुंचा, घुटनों के बल बैठ गया और बोला, "हे महान राजा! कृपया मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए।" राजा ने उसे डांटते हुए कहा, "उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूं।" राजा के ऐसा कहते ही वह अत्यंत राहत महसूस करने लगा और उसे बनारस के राजा के पड़ोस में एक जिले की संप्रभुता प्राप्त हो गई।

91.43. तब राजा ब्रह्मदत्त ने दोनों सेनाओं को सौहार्दपूर्ण एकता में खड़े देखकर यह कहा: "अपने एकाकी मन की रक्षा के कारण, इस विशाल सशस्त्र सेना में एक बूंद भी रक्त नहीं बहा है, यहाँ तक कि एक छोटी मक्खी के पीने योग्य भी नहीं। अद्भुत! अद्भुत! सभी प्राणी सुखी हों! वे शत्रुता से मुक्त हों! वे हानि से मुक्त हों।" इसके बाद उन्होंने प्रेम और करुणा का सफल ध्यान (झान) किया और उसी ध्यान को आधार बनाकर कर्मों का अध्ययन (संस्कार) किया, मौन बुद्धत्व के ज्ञान की कल्पना की और स्वयंभू, एक आत्मनिर्भर मौन बुद्ध की अवस्था प्राप्त की। अपने राजसी हाथी की पीठ पर विराजमान, धर्म के मार्ग और उसके फल की प्राप्ति के आनंद में डूबे उस राजा को, मंत्रियों ने प्रणाम करते हुए कहा: "हे महाराज! विजयी सेना के जाने का समय हो गया है; उसे व्यक्तिगत सम्मान दिया जाना चाहिए; पराजित सेना को भोजन-सामग्री दी जानी चाहिए।" राजा ने उत्तर दिया: "हे मंत्रियों! मैं अब राजा नहीं हूँ; मुझे मौन बुद्ध के रूप में जाना जाना चाहिए।" मंत्रियों ने उत्तर दिया: "महाराज, आप क्या कहते हैं? मौन बुद्ध ऐसे नहीं होते।" राजा ने पूछा: "मेरे प्रिय मित्रों! "मौन बुद्ध कैसे दिखते हैं?" उनका उत्तर था: "मौन बुद्ध दो उंगली के बराबर बाल और दाढ़ी वाले होते हैं और आठ आवश्यक तत्वों (परिक्खारा) से सुसज्जित होते हैं।" उन्होंने अपने दाहिने हाथ से अपना सिर रगड़ा; उसी क्षण उनका गृहस्थ रूप गायब हो गया; एक भिक्षु का रूप प्रकट

हुआ। वे सौ वर्ष के थेरा के समान हो गए, जो आठ आवश्यक तत्वों से सुसज्जित थे और दो उंगली के बराबर बाल और दाढ़ी धारण किए हुए थे। उन्होंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया, हाथी की पीठ से आकाश में गए और कमल पर बैठ गए। मंत्रियों ने उनका प्रणाम किया और पूछा: "आदरणीय महोदय! मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) क्या है?" आपने इसे कैसे प्राप्त किया?: उन्होंने उत्तर दिया: "चूंकि मेरे लिए प्रेम और करुणा के ध्यान का मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) था, इसलिए मैंने इसे अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से स्पष्ट रूप से देखने का प्रयास किया और इसे प्राप्त किया।" अतः, उस विषय को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने आनंदमय वाणी और व्याख्यात्मक वाणी दोनों का पाठ किया और यही श्लोक बोला: "सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम्, सभी प्राणियों के प्रति लाठी-हथौड़ा त्याग दो।"

91.44. यहाँ सब्बेसु का अर्थ है, बिना किसी शेष के पूर्णतः; भूतेसु का अर्थ है, सजीव प्राणियों में। यह संक्षेप में है। हालाँकि, इसका विस्तृत वर्णन हम रत्नसूत्र की व्याख्या, तीन रत्नों पर प्रवचन में करेंगे। निधाय का अर्थ है नीचे फेंक देना। दंड शरीर, वाणी और मन का हथियार है; यह शारीरिक दुराचार आदि की अभिव्यक्ति है। वास्तव में, शारीरिक दुराचार को एक हथियार (दण्ड) के रूप में समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह दंड देता है; यह एक लाठी का हथियार है क्योंकि यह दुर्भाग्य और कष्ट पहुँचाता है। इसी प्रकार मौखिक दुराचार और मानसिक दुराचार भी हैं। प्रहार करने वाली लाठी स्वयं एक लाठी का हथियार है। कथन इस प्रकार भी है: इसे नीचे गिरा देना। अविहेतवम् का अर्थ है परेशान न करना। अञ्ञतर्म् का अर्थ है, कोई भी व्यक्ति, यहाँ तक कि एक अकेला भी। तेसम का अर्थ है सभी जीवित प्राणियों के लिए। नापुत्तमिचेय्या का अर्थ है कि इन चार प्रकार के पुत्रों में से किसी भी पुत्र की इच्छा नहीं करनी चाहिए: स्वयं की संतान, अपने देश में जन्मा पुत्र, उपहार में मिला पुत्र, दूसरों द्वारा दिया गया पुत्र और घर में रहने वाला शिष्य पुत्र। कुतोसहावम् का अर्थ है: यदि कोई कहे कि साथी वांछनीय है, तो वह साथी कहाँ से आएगा?

91.45. इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: एक संन्यासी के रूप में गिनने पर वह एकाकी, बिलकुल अकेला है; वह एकाकी इसलिए है क्योंकि उसका कोई दूसरा साथी नहीं है; वह एकाकी इसलिए है क्योंकि उसने तृष्णा (तन्हा) का त्याग कर रखा है; वह एकाकी इसलिए है क्योंकि वह निश्चय ही दुराचार (किलेसा) से रहित है; वह एकाकी इसलिए है क्योंकि वह एकाकी मौन बुद्ध बनकर पूर्णतः प्रबुद्ध हो गया है; वह एकाकी इसलिए है क्योंकि उसने गृहस्थ जीवन के बंधनों को तोड़ दिया है, भले ही वह वास्तव में हजारों भिक्षुओं के बीच विचरण करता हो। इस प्रकार वह एकाकी है, एक संन्यासी के रूप में गिने जाने पर वह अकेला है, पब्बज्जसमखातेन। वह अकेला खड़ा रहता है; वह अकेले चलता है; वह अकेले बैठता है; वह अकेले लेटता है। बिलकुल अकेला ही वह चलता-फिरता और कार्य करता है; इस प्रकार, वह अपने एकाकी होने के कारण अकेला है, अदुतियात्तेन।

बार-बार पुनर्जन्मों के चक्कर में भटकते हुए, इच्छाओं की लालसा में डूबा हुआ।
(तन्हा), दूसरे आदमी का, और कोई नहीं
पुनर्जन्मों के चक्र को पार करना जिसमें शामिल हैं
यह अस्तित्व और दूसरा अस्तित्व।
इस हानि को जानते हुए भी लालसा और इच्छा में कमी आती है।
(तन्हा), दुःख (दुक्खा) का कारण है।
एक भिक्षु को सर्वांगीण त्याग कर स्वयं ही सभी प्रकार के बंधनों का त्याग करना चाहिए।
लालसा और इच्छा से मुक्त, (taṇhā), बिना
इसे अपनाना और सचेत रहना।

इस प्रकार, वह भोग-विलास (तन्हा) के त्याग से एकाकी हो जाता है, तन्हापहानत्थेन। इस प्रकार, वह एकाकी है: एकांतविगत किलेष, निश्चय ही दुराचार से मुक्त होकर, वह ऐसा है जिसने समस्त दुराचार को त्याग दिया है, समस्त दुराचार को जड़ से काट दिया है, ताड़ के पेड़ के ठूंठ के समान समस्त दुराचार को इस प्रकार मिटा दिया है कि वे भविष्य में पुनः उत्पन्न न हो सकें। वह एकाकी है: एको पच्चेक सम्बोधिम अभिसंबुद्धो, एकाकी मौन बुद्ध बनकर, इस प्रकार बिना गुरु के, वह आत्म-निर्भर हो जाता है; (सयम्भु), वह स्वयं ही उच्चतर और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके मौन बुद्ध बन जाता है।

91.46. 'देखभाल' अभिव्यक्ति से इस प्रकार समझा जाना चाहिए:- ऐसे आठ प्रकार के व्यवहार, अर्थात्: आत्म-संकल्प (पाणिधि) से संपन्न लोगों की चार गतिशील मुद्राएँ (इरियापथ), गतिशील मुद्रा का व्यवहार (इरियापथ); इंद्रियों पर नियंत्रण रखने वाले लोगों के छह आंतरिक इंद्रियों में से इंद्रियों का व्यवहार (इंद्रिय); लगन से रहने वाले लोगों की चार सचेतनता की अवस्थाओं में से जागरूकता का व्यवहार; मन को स्थिर करने वाले लोगों के चार ध्यानों में से ध्यान का व्यवहार (अधिचित्त); ज्ञान से संपन्न लोगों के चार आर्य सत्यों में से ज्ञान का व्यवहार; सही अभ्यास में प्रवेश करने वाले लोगों के चार आर्य सत्यों में से मार्ग का व्यवहार (मार्ग); भिक्षुत्व के चार फलों में से फल प्राप्ति का व्यवहार (फल); सभी जीवों में, तीन प्रकार के बुद्धों में से, लोक के कल्याण के लिए आचरण करना सर्वोपरि है; मौन बुद्धों

और बुद्ध के शिष्यों का भी यही अंश है। तदनुसार, हम कहते हैं: "चरीय, आचरण का अर्थ है आठ प्रकार के आचरण, जिनमें चलने-फिरने की मुद्रा भी शामिल है।" व्यक्ति को इन आचरणों से परिपूर्ण होना चाहिए; यही इसका अर्थ है। दूसरे शब्दों में, इन आचरणों को विशेष रूप से भलीभांति जानकर, व्यक्ति श्रद्धा (सद्धा) से आचरण करता है; इन्हें ऊपर उठाकर परिश्रम से आचरण करता है; इन पर ध्यान देकर सचेतनता से आचरण करता है; विचलित न होकर ध्यान से आचरण करता है; आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से जानकर ज्ञान से आचरण करता है; इस प्रकार अभ्यास में संलग्न होकर, व्यक्ति विशिष्टता प्राप्त करता है; इस प्रकार, वह विशिष्टता के आचरण के लिए आचरण करता है; इस प्रकार, अन्य आठ आचरणों का भी उल्लेख किया गया है। व्यक्ति को इन आचरणों से भी परिपूर्ण होना चाहिए; यही इसका अर्थ है। अभिव्यक्ति: खग्गविसानकप्पो को इस प्रकार समझा जाना चाहिए:- यहाँ गैंडे का सींग, अर्थात् खग्गमिगा नामक छुरीनुमा जानवर का सींग है। मंगल-सूत्र की व्याख्या में मैं कप्पा शब्द के अर्थ को विस्तार से स्पष्ट करूँगा। यद्यपि यहाँ, इस समानता को इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए: "अरे! ऐसा कहा जाता है कि गुरु के समान दिखने वाले शिष्य से परामर्श करना" इत्यादि। इस प्रकार, खग्गविसानकप्पो को खग्गविसानसादिसो अभिव्यक्ति के समान माना जाता है, जो गैंडे के सींग के समान है। यहाँ तक, व्याख्या शब्दशः यही है।

91.47. क्रमानुसार अर्थ को इस प्रकार समझा जाना चाहिए:- उक्त हथियार को जीवों पर चलाने से कोई लाभ नहीं होता; उस हथियार को जीवों पर न चलाने से, उसके विपरीत प्रेम भाव से, और दूसरों का भला करने से, ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति ने अपने हथियार को सभी जीवों के प्रति हानिरहित रूप से त्याग दिया है; हथियार त्याग दिए जाने के कारण, व्यक्ति उन प्राणियों की तरह उत्पीड़न नहीं करेगा, जिन्होंने अपने हथियार नहीं त्यागे हैं और जो जीवों को या तो हथियार से, या तलवार से, या हथेली से, या मिट्टी के ढेले से उत्पीड़ित करते हैं; मैंने यह मौन बुद्धत्व प्राप्त किया, अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से उनमें से एक को स्पष्ट रूप से देखकर, जिसने वहाँ संवेदना, बोध, क्रिया और चेतना प्राप्त कर ली थी, और साथ ही उस घटना और उसके भौतिकीकरण और अन्य चीजों को भी, प्रेम भाव के इस मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) के कारण। अतः, अब तक यही इसका महत्व है।

91.48. क्रम कुछ इस प्रकार है—जब ऐसा कहा गया, तो उन मंत्रियों ने पूछा, “आदरणीय महोदय! आप कहाँ जा रहे हैं?” इसके बाद, जब उन्हें उनसे यह उत्तर मिला कि “जहाँ पूर्व मौन बुद्ध निवास करते थे”, जिसका उन्होंने मानसिक जाँच के बाद “गंधमादन पर्वत” के रूप में पता लगाया, तो उन्होंने फिर कहा, “आदरणीय महोदय! क्या अब आप हमें त्याग रहे हैं? क्या आप हमें नहीं चाहते?” तब मौन बुद्ध ने कहा, “पुत्र की इच्छा नहीं करनी चाहिए” इत्यादि। इसका अर्थ यह है कि मैं अपनी संतानों में से किसी भी प्रकार का पुत्र नहीं चाहता, इत्यादि। तो फिर आप जैसे साथी की क्या आवश्यकता है? इसलिए, आप में से जो कोई भी मेरे समान बनना चाहता है और मेरे साथ जाना चाहता है, उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले ही साधना करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, उनके द्वारा यह कहे जाने पर: “आदरणीय महोदय! क्या अब आप हमें त्याग रहे हैं? क्या आप हमें नहीं चाहते?” उस मौन बुद्ध ने उनसे उत्तर देते हुए कहा, "पुत्र की इच्छा न होने पर साथी की आवश्यकता ही क्या है?" उन्होंने उस परिस्थिति के अनुसार अकेले साधना करने और आनंदित तथा विनोदपूर्ण मानसिक प्रसन्नता से परिपूर्ण होने के गुण को देखकर यह आनंदमयी वचन दिया, "गैंडे के सींग की तरह अकेले साधना करनी चाहिए।" ऐसा कहकर वे आकाश में विचरण करने लगे, जबकि जनसमूह केवल उन्हें देखता रहा, और गंधमादन की ओर चल दिए।

91.49. गंधमादन, अर्थात्, बर्फ से ढका हुआ है और सात पहाड़ियों के पार स्थित है: चूलाकाला (छोटी काली) पहाड़ी; महाकाला (बड़ी काली) पहाड़ी; नागपालीवेदन (कुंडलीदार अजगर) पहाड़ी; चंदा (चंद्रमा) पहाड़ी; सूर्य (सूर्य) पहाड़ी; सुवन्नपस्सा (स्वर्ण पक्ष) पहाड़ी; हिमवंता (बर्फ से ढकी) पहाड़ी। वहाँ, नंदमूलक नामक गुफा मौन बुद्धों का निवास स्थान है; गुफाएँ तीन हैं: स्वर्ण गुफा, रत्न गुफा और रजत गुफा। वहाँ, रत्न गुफा के द्वार पर, मंजूसाका नामक एक वृक्ष है, जिसकी ऊँचाई और चौड़ाई एक योजन है। जल में हो या भूमि पर, जितने भी फूल खिलते हैं, वह वृक्ष उन सभी से अधिक खिलता है, विशेषकर मौन बुद्ध के आगमन के दिन। उस वृक्ष के ऊपर रत्नों से बना एक मंडप है। वहाँ बहती हवा कचरे को उड़ा ले जाती है; समतल करने वाली हवा सभी प्रकार के रत्नों से बनी रेत को समतल कर देती है। फुहारने वाली हवा अनोत्तट्टा झील से जल लाकर छिड़कती है। सुगंधित हवा हिमवंता पर्वत से सभी सुगंधित वृक्षों की खुशबू लाती है। तोड़ने वाली हवा फूलों को तोड़ती है। फैलाने वाली हवा फूलों को चारों ओर फैला देती है। वहाँ हमेशा सुसज्द्ध आसन भी होते हैं, जहाँ मौन बुद्ध के प्रकट होने के दिन और उपोसथ व्रत के दिन सभी मौन बुद्ध एकत्रित होकर बैठते हैं। यह वहाँ बिल्कुल सामान्य है। यह मौन बुद्ध वहाँ गए और सुसज्द्ध आसन पर बैठ गए। इसके बाद, यदि उस समय अन्य मौन बुद्ध वहाँ उपस्थित होते, तो वे भी उसी क्षण एकत्रित होकर तैयार आसनों पर बैठ जाते। बैठने के बाद वे किसी सफल ध्यान (समापत्ति) में लीन हो जाते और उठ खड़े होते। इसके बाद सभा के वरिष्ठ सदस्य सभी अन्य लोगों के अभिनंदन के लिए नवगठित मौन बुद्ध से उनके मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) के बारे में पूछते: "आपने यह उपलब्धि कैसे प्राप्त की?" उस अवसर पर भी उन्होंने अपने आनंदमय कथन और उसकी व्याख्या वाली वही कविता सुनाई। थेरा आनंद ने भी साथ में गाया (आनंदो पि संगीत्यम)। इसी प्रकार, मौन बुद्धत्व प्राप्ति स्थल पर, मंजूसाका के मंडप में,

थेरा आनंद द्वारा पूछे जाने पर प्रत्येक श्लोक को साथ में गाया गया। पाठ चार बार किया गया।

यहीं पर टिप्पणी समाप्त होती है।
पहला श्लोक।

राइज़न कनेक्शन (संसग्गजातस्सा)

92. उस श्लोक का उद्‌गम क्या है जो इस प्रकार शुरू होता है: संसग्गजातस्स (संस्कृत..संसर्ग), जो आसक्त हो गया है? यह मौन बोधिसत्व भी, भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करते हुए, पहले की तरह ही, बीस हजार वर्षों तक, बुद्ध कस्सपा के विधान में, कसिणा साधना द्वारा मानसिक अभ्यास करते रहे, प्रथम ध्यान की प्राप्ति की, नामरूप का निर्धारण किया, लक्खणा में निपुणता प्राप्त की, परन्तु श्रेष्ठ अरहतों के मार्ग पर न पहुँचकर ब्रह्मालोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से विदा होकर, वे बनारस के राजा की प्रधान रानी के गर्भ में उत्पन्न हुए, और पहले की तरह ही बड़े होते हुए, जब से उन्होंने यह भेद जाना: "यह स्त्री है, यह पुरुष है," तब से वे अपने उस ज्ञान के कारण कभी भी स्त्रियों के हाथों में प्रसन्न नहीं रहे। उन्हें स्नान कराना, वस्त्र पहनाना, श्रृंगार करना और सजाना भी अच्छा नहीं लगता था। केवल पुरुष ही उनकी देखभाल करते थे। दूध पिलाते समय, धायियाँ तंग चोली पहनकर पुरुषों का वेश धारण करके उन्हें दूध पिलाती थीं। वे स्त्रियों की गंध और आवाज़ सुनकर रोने लगते थे। यद्यपि वे समझदार हो चुके थे, फिर भी उन्हें स्त्रियों को देखने की इच्छा नहीं होती थी। इसलिए लोग उन्हें केवल अनिष्टिगंधा (स्त्री की गंध से रहित) के नाम से ही जानते थे।
जब राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैं वंश को आगे बढ़ाता रहूंगा", और विभिन्न परिवारों से उसके लिए उपयुक्त कन्याओं को लाया तथा एक मंत्री को आदेश दिया, "तुम्हें राजकुमार का मनोरंजन करना चाहिए।" मंत्री ने उसे एक चाल से लुभाने की इच्छा से, उसके पास ही एक दीवार खड़ी करवा दी और नाचती हुई कन्याओं को अपना नृत्य प्रदर्शन करने को कहा। राजकुमार ने गीत और संगीत की ध्वनि सुनी और पूछा, "यह किसकी ध्वनि है?"
मंत्री ने उत्तर दिया: "महामहिम! यह ध्वनि आपकी नृत्य करती युवतियों की है। गुणवान लोगों को ऐसी ही नृत्य करती युवतियाँ मिलती हैं। महाराज! कृपया आनंद लें, आप स्वयं भी महान गुणवान हैं।"
युवा राजकुमार ने मंत्री को लाठी से पिटवाया और उसे घसीटकर ले गया। मंत्री ने यह बात राजा को बताई। राजा राजकुमार की माता के साथ गए, उससे माफी मंगवाई और मंत्री को फिर आदेश दिया। युवा राजकुमार, उनके अत्याचारों से बहुत ग्रस्त होकर, उत्तम गुणवत्ता का सोना देकर सुनारों को आदेश दिया: "एक सुंदर कन्या की मूर्ति बनाओ।"
उन्होंने दिव्य वास्तुकार और मूर्तिकार बिस्साकम्मा (संस्कृत: विश्वकर्मा) द्वारा निर्मित कृति के समान, सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित एक स्त्री की प्रतिमा बनाई और राजकुमार को दिखाई। राजकुमार ने सोने की प्रतिमा देखी, आश्चर्य से अपना सिर हिलाया और अपने माता-पिता को यह कहते हुए भेजा: "यदि मुझे ऐसी युवती प्राप्त हो, तो मैं उसे ले आऊंगा।"
माता-पिता ने मन ही मन कहा, "हमारा पुत्र बहुत गुणी है; निश्चय ही संसार में कोई ऐसी कन्या अवश्य जन्मी होगी जिसने उसके साथ अच्छे कर्म किए हों।" उन्होंने उस सोने की मूर्ति को रथ पर विराजमान कराया और मंत्रियों को सौंपते हुए कहा, "जाओ और ऐसी ही एक युवती को खोजो।"
मंत्रियों ने उसे लिया और सोलह देशों (जनपद) में घूमते हुए, इधर-उधर के गाँवों में गए, और जल संग्रहण स्थलों आदि पर, जहाँ भी लोगों की भीड़ दिखाई देती थी, वहाँ उस सोने की प्रतिमा को देवी-देवता की तरह स्थापित किया। उन्होंने प्रतिमा को कई प्रकार के फूलों, वस्त्रों और आभूषणों से सजाया, फिर एक पर्दा लगाया और उपयुक्त स्थान पर खड़े हो गए, इस विचार के साथ कि "यदि किसी ने पहले ऐसी सुंदरता देखी हो, तो वह स्वयं ही इसकी चर्चा करेगा।" इस प्रकार, मद्दा राज्य को दरकिनार करते हुए, उन्होंने सभी देशों (जनपद) का भ्रमण किया, और मद्दा को एक छोटा राज्य मानकर, वहाँ पहले गए बिना ही आगे बढ़ गए।
92.1 इसके बाद उनके मन में यह विचार आया: "अब हमें मद्दा राज्य भी जाना चाहिए; जब हम बनारस लौटें और वहाँ पुनः प्रवेश करें तो हमारे राजा हमें फिर से बाहर न भेजें", और वे मद्दा राज्य के सागल नगर में चले गए। सागल नगर में राजा का नाम मद्दावा था। उनकी सोलह वर्षीय पुत्री अत्यंत सुंदर थी। उसकी सुंदर दासियाँ स्नान करने और जल लाने के उद्देश्य से स्नान घाट पर गईं। वहाँ उन्होंने मंत्रियों द्वारा स्थापित सोने की मूर्ति देखी और उसके पास जाकर कहा: "हमें जल लाने के लिए बाहर भेजने के बाद हमारे राजा की पुत्री स्वयं ही आ गई हैं।" सोने की मूर्ति को ध्यान से देखकर उन्होंने फिर कहा: "यह हमारी स्वामिनी नहीं है; हमारी स्वामिनी इससे कहीं अधिक सुंदर हैं।" मंत्रियों ने उनकी बात सुनी और राजा के पास जाकर उचित तरीके से राजकुमारी को माँग लिया। राजा ने अपनी पुत्री को उन्हें सौंप

दिया। उन्होंने बनारस के राजा को यह संदेश भेजा: “महाराज! एक युवती का विवाह हुआ है; क्या आप स्वयं आ रहे हैं, या हमें उसे स्वयं लाना पड़ेगा?” राजा ने उत्तर में यह निर्देश भेजा: “मेरे आने तक आसपास के क्षेत्र (जनपद) में लूटपाट हो सकती है, आप स्वयं उसे ले आइए।”

92.2. मंत्री राजकुमारी को लेकर नगर छोड़कर राजकुमार को यह संदेश लेकर गए: “स्वर्ण प्रतिमा के समान एक राजकुमारी प्राप्त हुई है।” यह खबर सुनते ही राजकुमार कामवासना (राग) में डूब गया और उसका ध्यान पहले से ही कमजोर हो गया। उसने एक के बाद एक कई दूतों को यह संदेश देकर भेजा: “उसे जल्दी लाओ; उसे जल्दी लाओ।” वे रास्ते में केवल एक रात रुकते हुए बनारस पहुँचे, नगर के बाहर डेरा डाला और राजा को यह संदेश भेजा: “क्या हमें आज ही नगर में प्रवेश करना चाहिए या नहीं?” राजा ने कहा: “यह युवती अत्यंत उत्तम परिवार से आई है, उसने शुभ कर्म किए हैं, हम उसे उच्च सम्मान के साथ राज नगर में प्रवेश करने देंगे; फिलहाल उसे राज उद्यान में ले चलो।” उन्होंने वैसा ही किया। वह अत्यंत नाजुक राजकुमारी थी और यात्रा की थकान से व्याकुल होकर वायु रोग के कारण मुरझाए फूल की तरह हो गई और रात में उसकी मृत्यु हो गई। मंत्रियों ने विलाप करते हुए कहा, “हम सम्मान से गिर गए हैं।” राजा और नागरिक दोनों रोते हुए बोले, “हमारे वंश का कलंक मिट गया है।” पूरे शहर में हंगामा मच गया। युवा राजकुमार को यह दुखद समाचार सुनते ही गहरी चिंता सताने लगी।

92.3. इसके बाद, युवा राजकुमार ने अपनी चिंता की जड़ को खोजना शुरू किया। उन्होंने इस प्रकार सोचा: “यह चिंता अजन्मे व्यक्ति की नहीं है; यह तो जन्म लेने वाले व्यक्ति की है। इसलिए, जन्म के कारण चिंता होती है; लेकिन जन्म किसलिए होता है?” उन्होंने निष्कर्ष निकाला: “अस्तित्व (भाव) के कारण जन्म होता है।” इस प्रकार, पूर्व में प्राप्त ध्यान साधना की शक्ति से उचित ध्यान लगाकर, उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुप्पाद) को उसके नियमित और विपरीत क्रम में देखा और फिर, प्राकृतिक क्रम में उपयुक्त कर्मों के समूह का मानसिक रूप से अध्ययन करते हुए, वे वहीं बैठे-बैठे मौन बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया। मंत्रियों ने उन्हें शांत मन और संयमित इंद्रियों के साथ, सही मार्ग और उसके फल के आनंद से प्रसन्न देखकर, प्रणाम किया और कहा: “महाराज! कृपया चिंता न करें, जंबुदीप विशाल है; हम इससे बेहतर एक और युवती लाएंगे।” राजकुमार ने उत्तर दिया: “मैं चिंतित नहीं हूँ। मैं एक शांत बुद्ध हूँ, निश्चिंत।” इस श्लोक की व्याख्या को छोड़कर, इसके आगे की घटनाओं का पूरा क्रम पिछले श्लोक के समान ही है।

92.4. श्लोक की व्याख्या के संदर्भ में, इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए: संसग्ग जातस्स का अर्थ है उत्पन्न संबंध। वहाँ पाँच प्रकार के संबंध विद्यमान हैं: देखना, सुनना, शारीरिक आकर्षण, साथ रहना और संपर्क। वहाँ, एक-दूसरे को देखने के बाद, दृष्टि-चेतना की प्रक्रिया (वीथी) से उत्पन्न कामवासना (राग) को दस्सनसंसग्ग (दृष्टि संपर्क) के रूप में जाना जाता है। वहाँ एक उदाहरण है: कल्याण मठ में रहने वाले, लंबे प्रवचन देने वाले (दीघा) एक युवा भिक्षु को, जो सीहल द्वीप (सीलोन) के कालादीघवापी गाँव में भिक्षा माँगने के लिए घूम रहे थे, देखकर एक गृहस्थ की पुत्री को उनसे प्रेम हो गया और किसी भी तरह से उन्हें न पाकर वह मर गई। दूसरा उदाहरण है: उसी युवक का, जो उस स्त्री के फटे हुए अंतर्वस्त्र को देखकर हृदय विदारक हो गया और बोला: “मुझे ऐसी स्त्री के साथ सहवास करने का अवसर नहीं मिला जो ऐसा वस्त्र पहनती हो।”

92.5. सौंदर्य आदि उपलब्धियों के बारे में सुनकर, चाहे वह दूसरों द्वारा बताया गया हो या स्वयं द्वारा, साथ ही हँसने, बोलने और गाने की आवाज़ सुनकर, श्रवण चेतना की प्रक्रिया (वीथी) के माध्यम से उत्पन्न कामवासना (राग) को श्रवण संपर्क कहा जाता है। इसका उदाहरण भी यही है: पाँच द्वार-कुत्तों वाली गुफा में रहने वाला युवक तिस्सा, जो कामवासना (राग) के कारण अपंग होकर निष्कलंक हो गया, आकाश में जाते समय उसने पहाड़ी गाँव (सीरिगामा) में रहने वाली सुनार की पुत्री को पाँच युवतियों के साथ ऊँची आवाज़ में गाते हुए सुना। वे एक कमल सरोवर में गईं, स्नान किया और अपने सिर पर मालाएँ पहनीं।

92.6. हालांकि, अंगों के परस्पर स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कामवासना (राग) को कायसम्संग्ग (शारीरिक संपर्क) कहा जाता है। इसका उदाहरण धम्म प्रवचन देने वाले एक युवा भिक्षु और राजा की पुत्री का है। महाविहार में कहा गया है कि एक युवा भिक्षु धम्म प्रवचन दे रहा था। वहां लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हुआ। राजा भी अपनी रानी और पुत्री के साथ वहां गए। बाद में, उनके सौंदर्य और मधुर वाणी के कारण, राजा की पुत्री और उस युवा भिक्षु दोनों को तीव्र रोग हो गया। यह देखकर राजा को बात समझ में आ गई और उन्होंने चारों ओर एक परदे की दीवार बनवा दी। उन्होंने एक-दूसरे को स्पर्श किया और आलिंगन किया। परदा हटाकर दोबारा देखने पर उन्होंने पाया कि दोनों मृत थे।

92.7. आपसी बातचीत और प्रलोभन से उत्पन्न होने वाली कामवासना (राग) को सम्लुल्लापना सम्सग्ग (स्वयं को लुभाने वाला संपर्क) कहा जाता है। भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा भोजन का आनंद लेने से उत्पन्न होने वाली कामवासना (राग) को संभोग सम्सग्ग (भोजन का आनंद लेने वाला संपर्क) कहा जाता है। इन दोनों मामलों में भी उदाहरण भिक्षु और भिक्षुणी का है, जो संघ से निष्कासन (पाराजिक) के पात्र हैं। कहा जाता है कि राजा दुत्थगामणि अभय ने मारीकावत्ती के महान मठ के उत्सव में एक बड़ा दान किया और दोनों लिंगों के

पुरोहितों का सत्कार किया। वहाँ, जब गरमा गरम चावल का दलिया परोसा गया, तो एक युवा महिला भिक्षुणी ने एक युवा पुरुष भिक्षुणी को हाथीदांत का कंगन देकर प्रलोभन दिया। दोनों ने भिक्षु और भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ली, साठ वर्ष के हो गए, और जब वे नदी के दूसरे किनारे पर गए, तो आपसी आकर्षण के कारण उन्हें अपनी पूर्व चेतना वापस मिल गई, वे वहीं पर अत्यधिक स्नेह से भर गए, बुनियादी अनुशासन का उल्लंघन किया और संघ से निष्कासन (पाराजिक) के पात्र हो गए। इस प्रकार, भवति *****(पृष्ठ 276), पाँच प्रकार के संपर्कों में से किसी एक से संपर्क उत्पन्न होने पर स्नेह उत्पन्न होता है। पूर्व कामवासना के फलस्वरूप, तीव्र कामवासना (राग) उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप, स्नेहन्वयं दुःखं इदं पहोति , उसी स्नेह के बाद, यह दुख, इस जन्म में और अगले जन्म में भी घटित होता है।

92.8. अन्य विद्वान कहते हैं: "संपर्क (संज्ञा) इंद्रिय-विषय (आरम्मण) पर मन का विश्राम है। इसके फलस्वरूप आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का दुख यही है।" व्याख्या के लिए अर्थों की विविधता के संबंध में इस आधे श्लोक का पाठ करने के बाद, उस मौन बुद्ध ने कहा: "इस प्रकार की आसक्ति के कारण चिंता आदि जैसे दुख उत्पन्न होते हैं; उसी आसक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न हुए दुख (दुक्खा) की जड़ को उखाड़कर मैंने मौन बुद्धत्व प्राप्त किया है।"

92.9. जब ऐसा कहा गया, तो उन मंत्रियों ने पूछा, "आदरणीय महोदय! अब हम क्या करें?" तब उन्होंने कहा, "जो कोई भी, चाहे आप हों या कोई और, इस दुःख (दुक्खा) से मुक्ति पाना चाहता हो, उसे गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए, और आसक्ति से उत्पन्न होने वाले सभी दुःखों को भी देखना चाहिए। ādīnavam snebajam pekkhamāno, eko care khaggavisāṇakappo ।" यहाँ भी, "यह दुःख (दुक्खा) आसक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न होता है" ऐसा कथन भी किया गया। इसके संदर्भ में भी, यह कथन किया गया: "आहक्ति से उत्पन्न दुःख को देखकर", इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उपर्युक्त संपर्क के कारण, जिसके साथ संपर्क होता है, उसमें आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति के फलस्वरूप यह दुःख (दुक्खा) उत्पन्न होता है। आसक्ति से उत्पन्न दुःख को देखकर, सत्य के अनुसार, मैंने अपनी प्राप्ति की है। इस प्रकार जुड़ने के बाद, श्लोक की चौथी पंक्ति को पहले की ही तरह स्नेहपूर्वक व्यक्त किया गया है; इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। इसके बाद, सब कुछ पहले श्लोक में कही गई बातों के समान ही है।
संपर्क संबंधी श्लोक पर टिप्पणी समाप्त होती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान-2.2 पचेकबुद्धस
स्रोत: संभवतः पीटीएस

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1अपदाना 2: मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)-भाग 2.2
1.1मित्र और अच्छे हृदय वाले पुरुष (Mitte Suhajje)
1.2बांस का व्यापक क्षेत्र (Vaŋso Visālo)
1.3वन का हिरण (मिगो अरञ्ञम्ही)
1.4संबोधित (अमंतना होती)
1.5खेल और आनंद (खीड्डा-रती)
1.6चारों दिशाओं का (चतुद्दिसो)
1.7देखभाल करना कठिन (दुस्सांगह)
1.8नीचे उतारने का कारण (ओरोपवित्वा)
1.9सत्य प्राप्ति (सचे लबेथा)
1.10निश्चित रूप से प्रशंसा (अद्धा पसमसामा)
1.11सोना देखकर (दिस्वा-सुवन्नस्स)
1.12एवम्दुतियाना...आयतिभया (भविष्य का खतरा)
1.13इच्छा विविध (कामा ही चित्रा)

1.14शीत (सीतांच)
1.15हाथी (Nāgo va)
1.16अनुपयुक्त स्थान (Aṭṭhāna Tama)
1.17राय का भटकना (दित्तिविसुकानि)
1.18लोभ से मुक्त (निल-लोलुपा)
1.19पापम सहायम (बुरा साथी)
1.20बहुसुतम (बहुत ज्ञान)
1.21खेलकूद का आनंद (खीददम रति)...(विभूषा) अलंकरण
1.22पुत्र (पुत्तंच दारम्)
1.23आसक्ति (सांगो एसो)
1.24जलता हुआ जंगल (संडालयित्वाना)
1.25झुकी हुई आँखें (ओक्खित्त-चक्खु)
1.26कटे हुए (ओहारयित्वा) ... परिच्छत्तक (अच्छी तरह से पत्तेदार)
1.27रसेसु
1.28पाँच बाधाओं का त्याग (पहया पंचवरणानि)
1.29त्याग करने के बाद (विपित्तिकतावन)
1.30परिश्रम का प्रारंभ (आरद्ध-वीर्यो)
1.31एकांत (पतीसल्लना)
1.32लालसा का अंत (तन्ह-क्खया)
1.33सिंह (सीहोवा)...शील (नैतिकता)
1.34सिंह की तरह (सीहो यथा) ... दात्हबली (शक्तिशाली बल)
1.35प्रेमपूर्ण दयालुता समभाव (मेत्तम उपेक्खम)
1.36पसंद-नापसंद (रागंच दोषंच)... जीवनसंख्या (जीवन का अंत)
1.37परोसें (भजंती)

अपदाना 2: मौन बुद्ध (पच्चेकबुद्ध)-भाग 2.2

मित्र और अच्छे हृदय वाले पुरुष (Mitte Suhajje)

93. " मित्ते सुहज्जे " से शुरू होने वाले श्लोक का उद्गम क्या है ? यह मौन बोधिसत्व उसी प्रकार उत्पन्न हुए जैसे पिछले श्लोक में वर्णित है। उन्होंने बनारस पर शासन करते हुए प्रथम ध्यान किया, यह कहते हुए शोध किया, "कौन अधिक श्रेष्ठ है? भिक्षु का जीवन या संप्रभुता?", उन्होंने अपनी संप्रभुता अपने मंत्रियों को सौंप दी और भिक्षु के कर्तव्यों (धर्म) का पालन किया। यद्यपि राजा ने उन्हें आदेश दिया था: "अपने प्रशासनिक कर्तव्यों का पालन धर्म और निष्पक्षता से करो", फिर भी उन्होंने रिश्वत ली और अधर्म किया। रिश्वत लेकर वे वैध स्वामियों को हानि पहुँचा रहे थे, एक बार उन्होंने एक शाही परिचित को भी हानि पहुँचाई। वह व्यक्ति शाही रसोइयों के साथ राजा के समक्ष गया और राजा को सब कुछ बता दिया। अगले दिन, राजा स्वयं दरबार में गए जहाँ कानूनी निर्णय लिए जाते थे। तब, लोगों की एक बड़ी भीड़ ने शोर मचाते हुए कहा, "महाराज! मंत्रियों ने स्वामियों को उनकी संपत्ति से वंचित कर दिया है," मानो वे किसी बड़े युद्ध में लड़ने जा रहे हों। तब राजा न्यायिक निर्णयों के स्थान से उठे, महल में गए, समापत्ति पर ध्यान लगाने के लिए बैठ गए, परन्तु शोरगुल के कारण उनका मन विचलित हो गया, जिससे वे ऐसा नहीं कर सके। उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरे लिए संप्रभुता का क्या लाभ; भिक्षु का जीवन (धम्म) उत्तम है।" उन्होंने संप्रभुता के सुख का त्याग कर पुनः समापत्ति पर ध्यान लगाया, पूर्वोक्त विधि से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और मौन बुद्धत्व को प्राप्त किया। जब उनसे उनके मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने यह कविता सुनाई।

93.1. वहाँ, प्रेम और करुणा की ओर ले जाने के द्वारा मित्रता (मित्ता) प्राप्त होती है। यह अच्छे हृदय के कारण सुहज्जा (सद्गुण) है। कुछ विद्वानों का मत है कि वे केवल इसलिए मित्र (मित्ता) हैं क्योंकि वे पूर्णतः लाभ चाहते हैं, न कि अच्छे हृदय वाले (सुहज्जा)। कुछ विद्वानों के अनुसार, आने-जाने, खड़े होने, बैठने और आत्म-प्रलोभन आदि के मामलों में, हृदय से प्रसन्न होने के कारण, वे केवल अच्छे

हृदय वाले (सुहज्जा) हैं, मित्र (मित्ता) नहीं। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि दोनों के कारण, वे न केवल अच्छे हृदय वाले (सुहज्जा) हैं, बल्कि मित्र (मित्ता) भी हैं। वे दो प्रकार के होते हैं: गृहस्थ और बेघर। वहाँ, गृहस्थ तीन प्रकार के होते हैं: एक सहायक परोपकारी, सुख और दुःख में समान रूप से सहानुभूति रखने वाला। बेघर केवल वे हैं जो विशेष रूप से लाभप्रद बातें दर्शाते हैं। वे चार गुणों (अंग) से संपन्न होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि:-

"हे गृहस्थ! वास्तव में, एक सहायक (उपकार) और दयालु मित्र को चार गुणों से समझना चाहिए । वह भूलने की अवस्था में आपकी देखभाल करता है ; आपकी संपत्ति की देखभाल करता है; भयभीत होने पर आपका आश्रय देता है; दान करते समय दुगुना धन प्रदान करता है।"

इसी प्रकार:-

"हे गृहस्थ! वास्तव में, आपके सुख-दुख में आपका साथी, एक नेक दिल दोस्त, को चार कारकों से समझा जाना चाहिए: वह आपको अपने रहस्य बताता है; वह आपके रहस्य छुपाता है; जब आप संकट में होते हैं तो वह आपको नहीं छोड़ता ; आपके कल्याण के लिए वह अपने जीवन को जोखिम में डालता है।"

इसी प्रकार:-

"हे युवा गृहस्थ! वास्तव में, एक दयालु और नेक हृदय मित्र की पहचान चार लक्षणों से होती है: वह आपकी अनुपस्थिति पर प्रसन्न नहीं होता; वह आपकी उपस्थिति पर प्रसन्न होता है; वह आपके विरुद्ध निंदा किए जाने से रोकता है; वह आपके बारे में प्रशंसा किए जाने को प्रोत्साहित करता है।"

इसी प्रकार:-

"हे गृहस्थ! निश्चय ही, आपके कल्याण का वचन देने वाला, दयालु मित्र, चार गुणों से पहचाना जा सकता है: वह आपको बुराई करने से रोकता है; वह आपको भलाई करने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह आपको वह बातें सुनाता है जो आपने पहले नहीं सुनीं; वह आपको स्वर्ग का मार्ग दिखाता है।"

93.2. यहाँ, इनमें गृहस्थों का तात्पर्य है; परिस्थिति की दृष्टि से सभी आपस में जुड़े हुए हैं। Mitte suhajje anukampamāno का अर्थ यह है: वे अपने मित्रों के प्रति सहानुभूति रखते हुए, उनके लिए सुख लाने और उनके दुःख (दुक्खा) को दूर करने की इच्छा रखते हैं।

93.3. अभिव्यक्ति: हापेति अत्थम को इस प्रकार समझा जाना चाहिए: कल्याण (अत्थ) तीन प्रकार का होता है: वर्तमान जीवन का कल्याण, अगले जीवन का कल्याण और परम कल्याण; इसी प्रकार, कल्याण तीन प्रकार का होता है: स्वयं का कल्याण, दूसरों का कल्याण और दोनों का कल्याण; त्याग कराना (हापेति), दो प्रकार से विनाश करना भी है: जो कुछ अर्जित किया है उसे नष्ट करके और अपार्जन उत्पन्न करके।
'पटिबद्धचित्त' अभिव्यक्ति का अर्थ इस प्रकार है: "इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता; यही मेरा मार्ग है; यही मेरा अंतिम लक्ष्य (परायण) है"; यहाँ तक कि जब कोई स्वयं को इस प्रकार निम्न स्थान पर रखता है, तब भी यह (पटिबद्धचित्त) है, यानी प्रेम से ग्रस्त हृदय। यहाँ तक कि जब आप स्वयं को इस प्रकार उच्च स्थान पर रखते हैं, तब भी इसे प्रेम से ग्रस्त हृदय (पटिबद्धचित्त) कहा जाता है; "ये लोग मेरे बिना जीवित नहीं रह सकते; मैं ही उनका मार्ग हूँ; मैं ही उनका अंतिम लक्ष्य (परायण) हूँ"। यहाँ, हालांकि, 'पटिबद्धचित्त' शब्द का अर्थ है 'मोहित'। 'एतं भयम्' (यह खतरा) का अर्थ है कल्याण के परित्याग का खतरा। यह बात ध्यान प्राप्ति में कमी के संबंध में कही गई है। संथाव से तात्पर्य संगति (संथाव) के विभिन्न प्रकारों से है, जैसे कि तृष्णा (गंहा), गलत दृष्टि (दिष्टि) और मित्र। तृष्णा (संहा) के एक सौ आठ प्रकार हैं और तृष्णा (संहाव) से संगति होती है; गलत दृष्टि (दिष्टि) के बासठ प्रकार हैं और गलत दृष्टियों से संगति होती है; हृदय के बंधन में बंधे होने के कारण मित्रों के प्रति सहानुभूति और मित्रों के साथ संगति होती है। इन सब में यही अर्थ निहित है।

वास्तव में, इसी कारण ध्यान प्राप्ति में कमी आती है। इसीलिए मौन बुद्ध ने कहा: "सन्थाव (संथाव) में इस खतरे को देखकर मैंने इसे प्राप्त किया है।" शेष वही है जो पहले कहा गया है।
मित्रों पर लिखी कविता पर टिप्पणी
और अच्छे दिल वाले लोगों का अंत हो गया है।
. . . . .

बांस का व्यापक क्षेत्र (Vaŋso Visālo)
94. "vaŋso visālo" से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि परम पूज्य कस्सपा के युग में, तीन मौन बोधिसत्वों ने संन्यासी बन गए, बीस वर्षों तक आने-जाने का कर्तव्य पूरा किया और देवलोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से देहान्त होकर, उनमें से सबसे बड़े का जन्म बनारस के राजपरिवार में हुआ; अन्य दो का जन्म सीमावर्ती देशों के राजपरिवारों में हुआ। बाद के दोनों मौन बोधिसत्वों ने मानसिक साधना (कम्मत्थाना) की, अपने प्रभुत्व का त्याग किया, संन्यासी बनकर संसार का त्याग किया, धीरे-धीरे मौन बुद्ध बन गए, नंदमूल पर्वत की गुफा में निवास किया, अपनी प्रभावी ध्यान साधना (समापत्ति) से उठे, और एक दिन उन्होंने स्वयं से यह प्रश्न पूछा: "हमने ऐसा कौन सा कर्म किया है जिसके फलस्वरूप हमें ऐसा दिव्य सुख प्राप्त हुआ है?" उन्होंने बुद्ध कश्यप के समय में अपनी व्यक्तिगत साधना पर ध्यान दिया। इसके बाद चिंतन करते हुए उन्होंने अपने तीसरे गुरु के स्थान का पता लगाया और उन्हें बनारस के राजा के रूप में शासन करते हुए पाया। उन्होंने उनके गुणों का वर्णन इस प्रकार किया: "स्वभाविक रूप से ही वे संयमी आदि गुणों से संपन्न हैं; वे हमारे सलाहकार हैं; बोलने पर वे हमारी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और वे बुराई की निंदा करते हैं। आइए, हम उन्हें ध्यान का विषय दिखाएँ और उन्हें सूचित करते रहें।" एक अवसर की तलाश में, उन्होंने एक दिन उन्हें पूर्ण रूप से सजे-धजे और सभी आभूषणों से सुसज्जित अपने राजमहल की ओर जाते हुए देखा और आकाश में उड़ते हुए उनके पास पहुँचे और राजमहल के द्वार पर एक बाँस की झाड़ी के नीचे खड़े हो गए। अपने राजा के दर्शन से तृप्त न होकर, लोगों का विशाल समूह राजा को देखने लगा। इसके बाद, राजा ने यह देखने के लिए इधर-उधर देखा कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो उन्हें देखने में व्यस्त नहीं है, तो उनकी नज़र मौन बुद्धों पर पड़ी। उन्हें देखकर राजा के मन में उनके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ। वे अपने राजसी हाथी की पीठ से उतरे, शांत भाव से उनके पास गए और पूछा, "आदरणीय महोदय! आप क्या हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, हम अनासक्त हैं।" राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय! अनासक्त (असज्जमान) शब्द का क्या अर्थ है?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज, इस शब्द का अर्थ है आसक्ति न रखना।" इसके बाद, उन्होंने एक बांस की झाड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा: "हे महान राजा! उदाहरण के लिए, यदि कोई तलवारधारी व्यक्ति इस बांस की झाड़ी को, जो जड़ों, तनों और शाखाओं से पूरी तरह लिपटी हुई है, जड़ से काटकर घुमाए, तो वह फिर से उग नहीं पाएगी, ठीक उसी प्रकार, आप जो भीतर और बाहर दोनों ओर से उलझे हुए हैं, उस उलझन से जुड़े हुए हैं और वहीं अटके हुए हैं। या, उदाहरण के लिए, यदि इस बांस के अंकुर को बीच से काट दिया जाए, तो वह बिना किसी सहारे के खड़ा रहता है, क्योंकि उसमें शाखाएँ नहीं निकली हैं। लेकिन, यदि इसे ऊपर से या जड़ से काट दिया जाए, तो यह उग सकता है।"ठीक इसी प्रकार, हम कहीं भी बंधित हुए बिना, सभी दिशाओं में विचरण करते हैं।" इतना कहकर, दोनों मौन बुद्ध उसी क्षण चौथे ध्यान में प्रवेश कर गए और राजा के देखते ही देखते आकाश में मंडराते हुए नंदमूल गुफा की ओर चले गए। इस घटना के बाद राजा ने सोचा, "मैं भी कब इस प्रकार अनासक्त हो पाऊंगा?" वे वहीं खड़े रहे, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए ध्यान किया और मौन बुद्धत्व का दर्शन किया। जब उनसे उनके मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने पहले की ही तरह इस श्लोक का पाठ किया।

94.1. वॅंस का अर्थ है बांस। विसालो का अर्थ है फैला हुआ, विस्तृत। यहाँ 'वा' अक्षर पर ज़ोर देने के लिए है। दूसरे शब्दों में, यह 'वा' मूल रूप से 'एव' है; लेकिन संधि के कारण, 'ए' अक्षर लोप हो गया है; इसका संबंध किसी अन्य शब्द से है। हम इसे बाद में जोड़ेंगे। यथा का अर्थ है प्रतिरूप (या समानता)। विसात्तो का अर्थ है चिपका हुआ, उलझा हुआ, गुंथा हुआ। पुत्तेसु दारेसु च का अर्थ है पुत्र, पुत्री और पत्नी में। या अपेक्खा का अर्थ है ऐसी तीव्र इच्छा (तन्हा), ऐसा स्नेह (सिनेह)। वमसाक्कलीरोवा असज्जमानो, मोत बांस के अंकुर की तरह चिपका हुआ। यह क्या कथन है? जैसे बांस विस्तृत होता है, वह हमेशा घना होता जाता है। पुत्रों और पत्नियों के प्रति ऐसा स्नेह भी इसी प्रकार है, क्योंकि वे हमेशा गुंथा हुआ और जुड़ा हुआ रहता है। मैं, इसके प्रति आसक्ति के कारण, आसक्ति से ग्रस्त होकर, घने बाँस के झाड़ की तरह उलझ जाता हूँ; इस प्रकार, आसक्ति के नुकसान को देखकर, सही मार्ग (मग्ग) के ज्ञान द्वारा उस आसक्ति को काटकर, अब बाँस के अंकुर के समान हो जाता हूँ और लालसा (तन्हा), अभिमान (मान) और विधर्म (दिट्ठि) से अनासक्त होकर, जैसे

कि रूप की सुंदरता आदि इंद्रिय-संबंधी वस्तुओं, लाभ आदि पदार्थों, या इंद्रिय-संबंधी जन्म आदि पुनर्जन्मों से, मैंने मौन बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है। शेष को पहले की तरह ही समझना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी
बांस के अंकुर से संबंधित है
समाप्त हो गया।

वन का हिरण (मिगो अरञ्ञम्ही)
95. "मिगो अरञ्ञम्ही" से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बुद्ध कश्यप के युग में, एक भिक्षु, जो आध्यात्मिक साधना का गंभीर छात्र था, की मृत्यु हो गई और वह एक धनी और समृद्ध बैंकर के परिवार में जन्मा। वह भाग्यशाली था। फलस्वरूप, उसने व्यभिचार किया और मृत्यु के बाद निरयलोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ परिपक्वता के अवशेषों के कारण, वह बैंकर की पत्नी के गर्भ में स्त्री के रूप में गर्भ धारण कर लिया। निरयलोक से आने वाले प्राणियों का शरीर गर्म होता है। इसी कारण, बैंकर की पत्नी को अपने जलते हुए पेट के साथ बड़ी कठिनाई और असुविधा के साथ गर्भावस्था सहनी पड़ी और अंततः उसने एक लड़की को जन्म दिया। जन्म के दिन से ही वह अपने माता-पिता, शेष रिश्तेदारों और आसपास के लोगों के लिए घृणास्पद हो गई। जब वह यौवन प्राप्त कर चुकी थी, तब भी जिस परिवार में उसे रखा गया था, उस परिवार में भी वह अपने पति, सास और ससुर के लिए घृणित, अवांछित और अप्रिय थी। फिर, जब नए महीने की घोषणा हुई और उत्सव की घोषणा की गई, तो बैंकर का पुत्र, उसके साथ उत्सव मनाने की इच्छा न रखते हुए, एक वेश्या को ले आया और उसके साथ अय्याशी करने लगा। उसने अपनी दासियों से यह सुना, अपने पति, बैंकर के पुत्र के पास गई, उसे कई तरह से मनाकर बोली: "मेरे स्वामी! स्त्री, चाहे वह दस राजाओं की सबसे छोटी बहन हो या विश्वराज की पुत्री, फिर भी वह अपने पति की दासी ही होती है; जब उसका पति उससे बात करना बंद कर देता है, तो वह इतनी पीड़ा सहती है मानो उसे सूली पर चढ़ाया गया हो; यदि मैं कृपा के योग्य हूँ तो मुझे आपकी कृपा प्राप्त होनी चाहिए; यदि नहीं तो मुझे भेज दिया जाए; मैं अपने परिवार के पास लौट जाऊँगी।" बैंकर के बेटे ने कहा, "मेरी प्यारी! रहने दो; चिंता मत करो; उत्सवों का आनंद लेने के लिए तैयार रहो; चलो आकाशीय पिंडों के रात्रि उत्सव (नक्खत्त) में शामिल हों।" बैंकर की बेटी, इतनी सुखद बातचीत से उत्साहित होकर, मन ही मन बोली, "कल मैं आकाशीय पिंडों के उत्सव (नक्खत्त) में शामिल होऊंगी।" और उसने खूब सारे सख्त और नरम खाने-पीने का सामान तैयार किया। बैंकर का बेटा अगले दिन उसे बिना बताए ही उत्सव स्थल पर चला गया। वह मन ही मन सोच रही थी, "अब वह मुझे बुलाएगा," और सड़क की ओर देखती हुई बैठी रही, लेकिन उगते सूरज को देखकर उसने अपने आदमियों को अपने पति के पास भेजा। वे गए और लौटकर उसे बताया कि बैंकर का बेटा, उसका पति, चला गया है। अपना सारा सामान लेकर वह अपने रथ पर सवार हुई और बगीचे की ओर चल पड़ी।

95.1. उस समय, सातवें दिन, नंदमूल गुफा में एक मौन बुद्ध, अमर आनंद (निरोध) की अपनी ध्यान साधना से उठे, अपने दाँतों को शुद्ध करने के लिए नाग लता (नागलतादंतकत्था) चबाई, अनातोत्त (गहरे ठंडे) झील में अपना चेहरा धोया, इस बात पर विचार किया कि वे उस दिन भिक्षा मांगने के लिए कहाँ जाएँगे, उन्होंने उस धनाढ्य की पुत्री को देखा, उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि वे उससे निष्ठापूर्वक प्रणाम करवाएँगे और उसके पूर्व के बुरे कर्म का फल पूर्णतः समाप्त हो जाएगा, वे उस पर्वत-गुफा के निकट स्थित साठ योजन आकार के मानसोइला पत्थर की सतह पर खड़े हुए, अपना कुंड और वस्त्र लिया, उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) पर आधारित ऐसी ध्यान साधना (झान) में प्रवेश किया, आकाश में गए, उसके सामने सड़क पर उस स्थान पर उतरे और बनारस की ओर मुख करके चले गए। उन्हें देखकर, उनकी दासियों ने इसकी सूचना बैंकर की पुत्री को दी। वह अपने वाहन से उतरीं, आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, उनके भिक्षापात्र को हर प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों से भर दिया, उसे कमल के फूल से ढक दिया, उसके नीचे भी एक कमल का फूल रखवाया, हाथों में फूलों का गुलदस्ता लेकर कटोरा मौन बुद्ध के हाथों में अर्पित किया, हाथों में फूलों का गुलदस्ता लिए उनकी आराधना की और इस प्रकार प्रार्थना की: "हे पूज्यवर! मैं जिन भी जन्मों में पुनर्जन्म लूँ, उन जन्मों में इस फूल के समान बनूँ, जो अनेक जनसमूहों को प्रिय और प्रिय हो।" इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद, उन्होंने दूसरी बार भी इस प्रकार प्रार्थना की: "हे पूज्यवर! माता के गर्भ में जन्म लेना कितना कष्टदायी होता है; उस कष्ट से गुजरे बिना, मैं कमल में ही जन्म लूँ।" उन्होंने तीसरी बार भी इस प्रकार प्रार्थना की: "हे पूज्यवर! नारीत्व तुच्छ है; विश्वराज की पुत्री को भी दूसरों की इच्छा के वश में होना पड़ता है; इसलिए, नारीत्व के निकट आए बिना ही मैं पुरुष बन जाऊं।" उन्होंने चौथी बार भी इस प्रकार प्रार्थना की: "हे पूज्यवर! इस कष्टदायक पुनर्जन्म चक्र से मुक्त होकर, अंत में, मैं आपके द्वारा प्राप्त अमरत्व

(निर्वाण) प्राप्त कर सकूं।" इस प्रकार अपनी चार दृढ़ प्रार्थनाएँ करने के बाद, उन्होंने कमल के फूलों का वह गुलदस्ता अर्पित किया, पाँच चरणों (पंच पतिच्छित) से आराधना की, और यह पाँचवीं दृढ़ प्रार्थना की: "मेरी सुगंध और रंग इस फूल के समान हो।"

95.2. इसके बाद, मौन बुद्ध ने अपना कटोरा और फूलों का गुलदस्ता लिया, आकाश में खड़े होकर, इस श्लोक के साथ बैंकर की पुत्री को धन्यवाद दिया:

आपकी मनोकामना और प्रार्थना शीघ्र ही पूरी हो।
यहां तक कि; पंद्रहवें बढ़ते चंद्रमा के समान
शुभ रात्रि, आपकी सभी मनोकामनाएं पूरी हों।

फिर उन्होंने मन ही मन यह संकल्प लिया, "धनिक की पुत्री मुझे जाते हुए देखे", और आकाश से होते हुए नंदमूल गुफा में लौट गए। उन्हें जाते हुए देखकर धनिक की पुत्री के हृदय में अत्यंत उत्साह भर गया। पिछले जन्मों में किए गए उनके बुरे कर्मों का फल उन्हें न मिलने के कारण पूरी तरह से नष्ट हो गया और वे खट्टी पकी इमली से धोए और शुद्ध किए गए तांबे के पात्र के समान शुद्ध और निर्मल हो गईं। तब उनके परिवार के सभी लोग और उनके पति का परिवार भी उनसे प्रसन्न हो गया। उन्होंने उन्हें प्रेम भरे संदेश और उपहार भेजे और पूछा, "हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?" उनके पति ने भी अपने आदमियों को यह कहते हुए भेजा, "मेरी पत्नी, धनिक की पुत्री को लाओ; मैं उसे भूलकर बगीचे में आ गया हूँ।" तब से ही वे उन्हें स्नेहपूर्वक गले लगाते रहे, मानो उन्होंने चंदन लगाया हो, मोतियों का हार पहना हो या फूलों की माला पहनी हो। वहाँ उन्होंने जीवन भर धन-संपन्नता के सुख का आनंद लिया, उनका प्राण त्याग दिया गया और दिव्य लोक में एक कमल के रूप में पुरुष देवता के रूप में उनका पुनर्जन्म हुआ। वह युवा देवता, जब भी आते-जाते, कमल के भीतर ही निवास करते थे। जब वे खड़े होते, बैठते या लेटते, तो वे कमल के कक्ष में ही रहते थे। देवताओं ने उन्हें महापदुमदेवपुत्त (बड़े कमल के युवा देवता) कहा। इस प्रकार, उस शक्ति के कारण, वे छह दिव्य लोकों में प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में, एक के बाद एक, पुनर्जन्म लेते रहे।

95.3. उस समय बनारस के राजा की बीस हजार पत्नियाँ थीं। उनमें से एक भी पत्नी संतानहीन नहीं थी। मंत्रियों ने राजा को बताया, "महाराज! राजवंश को आगे बढ़ाने वाला पुत्र अत्यंत आवश्यक है; जब अपना पुत्र न हो, तो राजभूमि में जन्मा पुत्र भी राजवंश को आगे बढ़ा सकता है।" तब राजा ने कहा, "मुख्य रानी को छोड़कर, मेरी शेष पत्नियाँ सात दिनों तक नृत्य करें।" वे बाहर अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार करें। इस प्रकार भी उन्हें कोई संतान नहीं हुई। मंत्रियों ने फिर कहा, "हे महाराज! मुख्य रानी सभी पत्नियों में गुण और ज्ञान दोनों में श्रेष्ठ हैं। शायद महाराज मुख्य रानी के गर्भ से पुत्र प्राप्त कर सकें।" राजा ने मुख्य रानी को इस विषय की सूचना दी। उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया। "हे महान राजा! जिस भी स्त्री में धार्मिक संस्कार होते हैं और जो सत्य बोलने की आदत रखती है, उसे पुत्र प्राप्ति होती है; लज्जा और पाप के भय से रहित स्त्री को पुत्र कैसे प्राप्त हो सकता है?" ऐसा कहकर वह महल में गई और बार-बार इस बात का चिंतन करने लगी। जब वह गुणी रानी पाँचों धर्मों का चिंतन कर रही थी, तभी उसके मन में पुत्र प्राप्ति की इच्छा जागी और सक्का का सिंहासन काँप उठा।

95.4. तब, विचार करने पर, सक्का को इस बात का ज्ञान हुआ, उसने मन ही मन कहा कि वह गुणी मुख्य रानी को पुत्र का वरदान देगा, आकाश में गया, रानी के सामने खड़ा हुआ और पूछा, "तुमने क्या वरदान माँगा था?" रानी ने उत्तर दिया कि उसने पुत्र का वरदान माँगा था। सक्का ने रानी से कहा कि चिंता न करें क्योंकि वह उसे पुत्र दे रहा है, वह अपने दिव्य लोक में लौट आया और यह जानने के लिए पूछताछ की, "क्या यहाँ वास्तव में कोई ऐसा देवता है जिसका जीवनकाल समाप्त हो गया हो?" उसे यह ज्ञान हुआ: "यह महान कमल (महापदुम) उच्चतर दिव्य लोक में जाना चाहता होगा।" वह अपने महल में गया और उससे यह निवेदन किया, "प्रिय महापदुम! कृपया ऐसा न कहें; मानव लोक तुच्छ है।" सक्का ने उससे आग्रह किया, "मेरे प्रिय! तुमने मानव लोक में अच्छे कर्म किए और फलस्वरूप तुम्हारा यहाँ पुनर्जन्म हुआ, वहाँ भी जन्म लेकर तुम्हें पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए; कृपया जाओ, मेरे प्रिय!" देवता ने उत्तर दिया: "हे महान राजा! माता के गर्भ में रहना कष्टदायी है; मैं वहाँ नहीं रह सकता।" बार-बार यही कहने पर कि "हे मेरे प्रिय! तुम्हारे लिए माता के गर्भ में

रहना संभव नहीं है; तुमने वास्तव में ऐसा पुण्य कर्म किया है कि तुम्हारा पुनर्जन्म कमल के कक्ष में होगा; कृपया जाओ, हे मेरे प्रिय!" अंततः उन्होंने अपनी सहमति दे दी।

95.5. वह स्वर्गलोक से विदा होकर बनारस के राजा के राजमहल में स्थित शिलापट्टा नामक पत्थर की झील में कमल के फूलों से बने कक्ष में जन्म लिया। उसी रात तड़के, राजा की बीस हजार स्त्रियों से घिरी हुई मुख्य रानी को स्वप्न में ऐसा लगा मानो उसे उसी शिलापट्टा नामक झील में कमल के फूलों से बने कक्ष में पुत्र प्राप्ति हुई हो। जब रात ढलकर भोर हुई, तो वह अपने नियमों का पालन करते हुए वहाँ गई और उसे एक कमल दिखाई दिया। वह फूल न तो किनारे पर था और न ही गहराई में। उस कमल को देखते ही उसके मन में पुत्र के प्रति मातृत्व भाव जागृत हुआ। वह स्वयं झील में उतरी और उस फूल को उठा लिया। फूल को उठाते ही उसकी पंखुड़ियाँ खिल उठीं और वह पूर्णतः खिल गया। वहाँ उसने सोने की प्रतिमा के समान एक शिशु पुत्र को देखा। उसे देखते ही उसने कहा, "मुझे पुत्र प्राप्ति हुई है।" जनसमूह ने उसे हजारों बधाईयाँ दीं। राजा को भी संदेश भेजा गया। राजा ने यह सुना, पूछा कि बच्चा कहाँ से आया है, प्राप्ति स्थान का पता लगाया और कहा: "यह उद्यान, कमल का सरोवर और कमल का फूल सब हमारे ही हैं; इसलिए, यह पुत्र, अर्थात्, मेरा जन्मा हुआ पुत्र (खेत्तजा), क्योंकि यह मेरे ही खेत में पैदा हुआ है"; बच्चे को नगर में प्रवेश करने दिया और बीस हजार राजस्त्रियों को उसका दूध पिलाने का आदेश दिया। जिसने भी राजकुमार की इच्छा को समझा और उसे मनचाहा भोजन खिलाया, उसे हजार का इनाम मिला। बनारस नगर में हलचल मच गई। जनसमूह ने राजकुमार को हजारों उपहार भेजे। राजकुमार को जब बार-बार यह और वह भोजन परोसा गया, तो वह कठोर और नरम भोजन खाने से असंतुष्ट और परेशान हो गया। ऐसा महसूस करके वह नगर द्वार पर जाकर लाख की गेंद से खेलने लगता था।

95.6. उस समय, बनारस पर निर्भर इसिपताना में एक मौन बुद्ध निवास कर रहे थे। वे सुबह जल्दी उठकर अपने सभी कर्तव्य जैसे निवास संबंधी कार्य, शारीरिक स्नान, आध्यात्मिक ध्यान आदि करते हुए एकांतवास से उठे और मनन करते हुए पूछा, "आज मैं भिक्षा कहाँ से प्राप्त करूँ?", उन्होंने युवा राजकुमार की महिमा देखी, उनके पूर्व कार्यों का पता लगाया और उन्हें यह जानकारी मिली: "उन्होंने मुझ जैसे एक व्यक्ति को भिक्षा दी थी और चार प्रार्थनाएँ की थीं; उनमें से तीन पूरी हो चुकी हैं; चौथी का अभी तक कोई फल नहीं मिला है; मैं उन्हें किसी प्रकार से ध्यान करने के लिए कोई इंद्रिय-विषय दिखाऊँगा।" वे भिक्षा मांगने के अपने भ्रमण के दौरान युवा राजकुमार के पास गए। युवा राजकुमार ने उन्हें देखकर कहा, "हे भिक्षु! यहाँ मत आइए; ये स्त्रियाँ भी आपसे यही कहेंगी: 'यह कठोर भोजन खाइए, यह नरम भोजन खाइए'।" वह केवल इतना कहकर वहाँ से चले गए और अपने निवास स्थान पर लौट आए। युवा राजकुमार ने अपने आस-पास के लोगों से कहा, "यह भिक्षु मुझसे बात करते ही तुरंत चले गए; क्या वे मुझसे नाराज़ हो गए हैं?" यद्यपि लोगों ने उन्हें उत्तर दिया, "सन्यासी आमतौर पर क्रोधित नहीं होते; जो कुछ भी उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दिया जाता है, वे उसी से अपना जीवन यापन करते हैं," फिर भी उन्होंने कहा, "मैंने ऐसे भिक्षु को नाराज़ कर दिया है; मैं उनसे क्षमा माँगूँगा।" उन्होंने अपने माता-पिता को सूचित किया, राजसी हाथी पर सवार होकर भव्य शान से इसिपताना गए, वहाँ उन्होंने हिरणों का एक झुंड देखा और पूछा, "इन प्राणियों का क्या नाम है?" उत्तर मिला, "महाराज! इन्हें हिरण कहते हैं।" युवा राजकुमार ने पूछा, "क्या कोई रखवाले उनकी देखभाल करते हुए कहते हैं, 'यह कठोर भोजन खाओ; यह नरम भोजन खाओ'?" उत्तर मिला, "महाराज! कोई नहीं; जहाँ घास और पानी आसानी से उपलब्ध होते हैं, वहीं वे रहते हैं।"

95.7. युवा राजकुमार ने इस विषय पर चिंतन करते हुए कहा, "जिस प्रकार इन प्राणियों की देखभाल भी न होने पर भी वे अपनी इच्छानुसार स्थानों पर रहते हैं, तो क्या मैं भी इसी प्रकार रहूँ?" मौन बुद्ध को जब उनके आने का आभास हुआ, तो उन्होंने मठ तक जाने वाली सड़क और सैरगाह को साफ किया, प्रवेश करते समय अपने पदचिह्न छोड़े, लेकिन प्रस्थान करते समय कोई पदचिह्न नहीं छोड़ा और कहीं और चले गए। युवा राजकुमार वहाँ गए, उस स्थान को साफ-सुथरा देखकर, अपने आसपास के लोगों को यह कहते हुए सुना, "हम सोचते हैं कि मौन बुद्ध यहाँ निवास करते हैं", और उन्होंने कहा, "सुबह-सुबह भी वह भिक्षु नाराज थे; अब जब उन्होंने अपने ही स्थान को हाथियों, घोड़ों आदि द्वारा रौंदा हुआ देखा है, तो वे और भी नाराज हो गए होंगे; आप सब तो यहाँ खड़े भी हैं।" फिर वह अपने शाही हाथी की पीठ से उतरे, अकेले ही मठ में प्रवेश किया, वहाँ उन्होंने मौन बुद्ध द्वारा कर्तव्य के नाम पर साफ किए गए पदचिह्न देखे और मन ही मन कहा: "वह भिक्षु, जो अब यहाँ इधर-उधर घूम रहा है, मुझे लगता है कि उसने व्यापार आदि के बारे में नहीं सोचा होगा; निश्चित रूप से, वह केवल अपने कल्याण के बारे में सोच रहा होगा।" मन में प्रसन्न होकर वे सैरगाह पर चले गए, अपने चिंतन को व्यापक रूप से करते हुए (दुरिकतपुथुवितक्का) एक पत्थर की पटिया पर बैठ गए, एकाग्रचित्त हो गए (एकग्गा), पत्ति-पत्ती की कुटिया में

प्रवेश किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने का प्रयास किया (विपस्सन्तो), मौन बुद्धत्व प्राप्त किया और जब निजी पुरोहित ने उनसे उनके मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) के बारे में पूछा, तो पहले की तरह ही उन्होंने खुले आकाश में बैठकर इस श्लोक का पाठ किया।

95.8. मिगो, यहाँ, दो प्रकार के हिरणों को दर्शाता है: मैदानी मृग और चित्तीदार मृग। फिर भी यह सभी वन चौपायों के लिए प्रयुक्त शब्द है। हालाँकि, यहाँ चित्तीदार मृग का अर्थ है। इस प्रकार, वे कहते हैं। अरञ्ञ, वन, का अर्थ है: गाँव और गाँव के आसपास के क्षेत्र को छोड़कर, शेष वन है, (अरञ्ञ)'। हालाँकि, यहाँ उद्यान या उद्यान का अर्थ है; इसीलिए यह कथन है: "उद्यान में"। यथा का अर्थ है समानता। अबद्धो रस्सियों, बंधनों आदि से बंधा हुआ नहीं है; इस अभिव्यक्ति से पाठ अनसुलझे (अभ्यास या) व्यवहार को स्पष्ट करता है। येनिच्चकम गच्छति गोचराय का अर्थ है: जिस भी दिशा में वह जाना चाहता है, उसी दिशा में वह भोजन के लिए जाता है। यह भी प्रतापी ने कहा है:-

“हे भिक्षुओं! उदाहरण के लिए, जैसे एक वन हिरण,
एक घने जंगल में भटकते हुए, आगे बढ़ता है-
उलझा हुआ, सुलझा हुआ खड़ा है, सुलझा हुआ बैठा है, लेटा हुआ है
यह अपने आप ही सुलझ गया; इसका कारण क्या है?
हे भिक्षुओं! हिरण अभी तक नहीं गया है, इसलिए यह समस्या है।
शिकारी के दायरे में, ठीक स्वयं में-
हे भिक्षुओं! उसी प्रकार, एक भिक्षु स्वयं को अलग कर लेता है।
इंद्रिय सुखों से दूर रहकर, :P:
वह प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करने के बाद निवास करता है।
ऐसा कहा जाता है, हे भिक्षुओं! कि इसने एक
पथहीन (अपदा) का अंत, मारा; हत्या करने के बाद,
वह दुष्ट से दूर, मारा के पास चला गया।
आँखें देख नहीं पा रही थीं। यह एक विस्तृत कथन है।

सरितम, स्वतंत्रता वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने मन से आचरण करता है, यानी दूसरों पर निर्भर नहीं रहता। यही कहा गया है: जिस प्रकार हिरण जंगल में अपनी इच्छा अनुसार चरने के लिए स्वतंत्र रूप से विचरण करता है, तो मैं भी भोग-विलास के बंधन से मुक्त होकर हिरण की तरह कब विचरण करूँगा? विष्णु एक ज्ञानी पुरुष हैं, स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से वे एकाकी विचरण करते हैं।
श्लोक की शुरुआत पर टिप्पणी
Migo araññamhi के साथ, वन-हिरण के पास है
समाप्त हो गया।
संबोधित (अमंतना होती)
96. “अमंतना होती” से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि मंत्री एक बड़ी सभा के अवसर पर बनारस के राजा के पास पहुँचे। उनमें से एक मंत्री ने एक उपयुक्त स्थान पर जाने का अनुरोध करते हुए कहा: “महाराज! कुछ ऐसा है जो सुना जाना चाहिए।” राजा अपनी सीट से उठे और चले गए। फिर, एक अन्य मंत्री ने राजा से बड़ी सभा में बैठने का अनुरोध किया; एक अन्य ने शाही हाथी की पीठ पर बैठने का; एक अन्य ने शाही घोड़े की पीठ पर बैठने का; एक अन्य ने शाही सोने के रथ में बैठने का; एक अन्य ने उनसे पालकी में बैठने के बाद शाही उद्यान जाने का अनुरोध किया। राजा वहाँ से उतरे और चले गए। एक अन्य मंत्री ने अनुरोध किया कि उन्हें अपने पूरे जिले में अपने चक्कर पर जाना चाहिए। उनकी बात सुनकर भी, राजा अपने शाही हाथी की पीठ से उतरे और एक उपयुक्त स्थान पर चले गए इस प्रकार उन मंत्रियों से व्याकुल होकर राजा ने राज्य त्याग दिया और संन्यासी बन गए। मंत्रियों ने उनके शासनकाल में खूब तरक्की की। उनमें से एक ने राजा से कहा, “हे महाराज! कृपया मुझे फलां-फलां जिले का नाम बता दीजिए।” राजा ने उससे कहा, “इस जिले का शासक वही व्यक्ति है।” राजा की बात माने बिना वह वहां गया और बोला, “आप जाइए; मैं जिला ले लेता हूं और उस पर शासन करूंगा।” उसने पूर्व शासक से झगड़ा किया; फिर दोनों राजा के समक्ष आए और एक-दूसरे की कमियां बताईं। राजा

ने मन ही मन कहा, “इन लोगों को संतुष्ट करना असंभव है।” उसने उनके लालच का परिणाम देखा, उसे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसने मौन बुद्धत्व का दर्शन किया। उसने पहले की तरह ही आनंदमयी वाणी दोहराई।

96.1. इसका अर्थ इस प्रकार है:- वासे का अर्थ है वह स्थान जिसे दिन के समय साथियों के बीच लेटने के लिए विश्राम स्थल माना जाता है। थाने का अर्थ है वह स्थान जिसे बड़ी सभाओं का स्थान माना जाता है। गारिकाया का अर्थ है क्षेत्र में घूमना-फिरना। मुझे इस या उस प्रकार से संबोधित किया जा रहा है, जैसे: "कृपया मेरे मन की यह बात सुनें; कृपया मुझे यह दें" इत्यादि। इसलिए, मैं वहाँ से चला गया; और ऐसा त्याग और संन्यासी बनना है, जिसकी सभी लोभ से ग्रस्त दुष्टों द्वारा तीव्र इच्छा नहीं की जाती, इस तथ्य के बावजूद कि यह संन्यासी जीवन कई लाभों के साथ (आर्य) श्रेष्ठ लोगों द्वारा भोगा जाता है, और निश्चित रूप से सुखदायी होता है; यह अनाब्जिज्जितम है, दूसरों द्वारा इसकी लालसा नहीं की जाती, क्योंकि इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता, क्योंकि यह उच्च सत्यों और मोक्ष के लिए अनुपयुक्त व्यक्ति होता है; सेरिताच पेक्खमानो ने भी स्वतंत्रता का पालन करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करना शुरू किया, और समय के साथ मैं मौन बुद्धत्व प्राप्त करने वाला बन गया। बाकी सब तो पहले ही बताया जा चुका है।

श्लोक की शुरुआत पर टिप्पणी

āmantana, address, has ended.

खेल और आनंद (खीड्डा-रती)

97. "खीड्डारती" (आनंदमय संतुष्टि) से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था, जिसका एक ही पुत्र था। वह राजा अपने इकलौते पुत्र को बहुत प्रिय था, जो उसे प्रियतम था और उसके जीवन के समान था। राजा जहाँ भी जाता, अपने पुत्र को ही साथ ले जाता था। एक दिन, अपने राजमहल जाते समय, राजा अपने पुत्र को वहीं छोड़कर चला गया। उसी दिन युवा राजकुमार की भी एक बीमारी से मृत्यु हो गई। मंत्रियों ने मन ही मन सोचा, "पुत्र के प्रति प्रेम के कारण कहीं राजा का हृदय भी न टूट जाए", और राजा को सूचित किए बिना ही उसका अंतिम संस्कार कर दिया। राजमहल में, राजा मादक पेय के नशे में चूर था, इसलिए उसे अपने पुत्र की याद नहीं आई। अगले दिन भी स्नान और भोजन करते समय उसे अपने पुत्र की याद नहीं आई। बाद में, भोजन करने के बाद, वह लेट गया, अपने पुत्र के बारे में सोचा और कहा, "मेरे पुत्र को मेरे पास लाओ।" मंत्रियों ने उचित व्यवस्था के साथ राजा को उस घटना की सूचना दी। परिणामस्वरूप, चिंता से व्याकुल होकर राजा बैठ गए और इस प्रकार बुद्धिमानी से चिंतन करने लगे: “जब यह अस्तित्व में होता है, तब यह घटित होता है; इसके उद्भव से यह उत्पन्न होता है।” इस प्रकार, प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्च समुत्पाद) का प्रत्यक्ष और विपरीत क्रम में चिंतन करते हुए, राजा ने मौन बुद्धत्व की कल्पना की। श्लोक की महत्वपूर्ण व्याख्या को छोड़ दें तो शेष भाग समग्ग (सहयोग) से प्रारंभ होने वाले श्लोक की व्याख्या में कही गई बातों के समान ही है।

97.1. महत्वपूर्ण व्याख्या इस प्रकार है: खीड्डा (खेल) का अर्थ है खेलना; यह खेल दो प्रकार का होता है: शारीरिक और मौखिक। शारीरिक खेलों में, वे हाथियों, घोड़ों, रथों, धनुष-बाण और तलवारों से खेलते हैं; इसी प्रकार आगे भी। मौखिक खेलों में, गायन, कविता पाठ, मुख-ढोल, ढोल बजाना; इसी प्रकार आगे भी। रति, पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों में आनंदमय संतुष्टि है। विपुल (प्रचुर) का अर्थ है अपने पूरे शरीर को हड्डियों के मज्जा तक भर लेना। बाकी सब स्पष्ट है। क्रम की व्याख्या के संदर्भ में भी, यहाँ इसे उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसा कि साथ रहने (संसग्ग) वाले श्लोक में कहा गया है; उसके बाद अन्य सभी श्लोकों में भी।

श्लोक की शुरुआत पर टिप्पणी

खिड्डारती, खेल और आनंद के साथ, है

समाप्त हो गया।

चारों दिशाओं का (चतुद्दिसो)

98. cātuddiso से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है?

ऐसा कहा जाता है कि पूर्व में, प्रतापी कस्सपा के युग में, पाँच मौन बोधिसत्वों ने संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए, बीस हजार वर्षों तक आने-जाने का कर्तव्य पूरा किया और दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से देह त्यागने पर, उनमें से सबसे बड़े बनारस के राजा बने; शेष साधारण राजा बने। उन चारों ने भी मानसिक साधना (कम्मत्थाना) सीखी, राजत्व त्याग दिया, संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गए, समय आने पर मौन बुद्ध बन गए, नंदमूल गुफा में रहने लगे, एक दिन समाधि से जागे (समापत्ति), अपने कर्मों और अपने सहोदर के कर्मों पर चिंतन किया, ठीक उसी प्रकार जैसे बांस के अंकुर के संबंध में श्लोक में वर्णित है, उन्हें बनारस के राजा के बारे में पता चला, और उन्होंने किसी न किसी माध्यम से उन्हें ध्यान के लिए एक इंद्रिय-विषय दिखाने का अवसर तलाशा। दूसरी ओर, वह राजा उस रात

तीन बार बेचैन हो गया; डर के मारे उसने चीख मारी; वह अपने विशाल प्रांगण में इधर-उधर भागने लगा। जब उसके निजी पुरोहित (पुरोहित) ने, जो सुबह जल्दी उठ गया था, उससे पूछा कि क्या वह अच्छी तरह सोया था, तो राजा ने उसे पूरी घटना बताते हुए कहा, "गुरुजी! मेरी खुशी कहाँ से आई?" निजी पुरोहित ने मन ही मन सोचा, "इस बीमारी का इलाज उल्टी लाने वाली दवा या अन्य औषधियों से तो संभव नहीं है; लेकिन मुझे कुछ ठोस खाने (अर्थात धन कमाने) का अवसर मिला है।" यह सुनकर राजा और भी भयभीत हो गए और उन्होंने कहा, "हे महाराज! यह तो अपशगुन है, जो आपकी संप्रभुता में कमी, आपके जीवन को खतरे आदि जैसी किसी घटना का संकेत है।" पुरोहित ने यज्ञ करने का निश्चय करते हुए कहा, "इस रोग के निवारण के लिए इतने हाथियों, इतने घोड़ों, रथों आदि के साथ-साथ चमकता हुआ सोना दान में देना चाहिए।"

98.1. तब मौन बुद्धों ने देखा कि हजारों जीवों को बलि के लिए एकत्रित किया जा रहा है, तो उन्होंने आपस में कहा: "जब यह कार्य हो जाएगा, तो राजा को ज्ञान प्राप्त कराना कठिन हो जाएगा; चलो! हम पहले ही उनके पास जाकर उनसे मिलें।" वे बांस के अंकुर (वंशक्कलीरा) से शुरू होने वाले श्लोक में वर्णित तरीके से उनके पास गए और भिक्षा-भंडारण के लिए महल परिसर में एक पंक्ति में चलने लगे। राजा, जो सिंह-पिंजरे जैसी खिड़की पर खड़े होकर अपने राजमहल के प्रांगण को देख रहे थे, उनकी नज़र मौन बुद्धों पर पड़ी। उन्हें देखते ही उनके हृदय में उनके प्रति राजसी स्नेह उत्पन्न हो गया। इसके बाद, राजा ने मौन बुद्धों को बुलवाया, उनसे खुले में उनके लिए तैयार की गई सीटों पर बैठने का अनुरोध किया, उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराया और जब उन्होंने भोजन कर लिया, तो राजा ने पूछा: "तुम कौन हो?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे महाराज! हमारा नाम चार दिशाएँ है।" राजा ने पूछा: "आदरणीय महाराज! इस नाम (चतुद्दिसा) चार दिशाओं का क्या अर्थ है?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे महाराज! चारों दिशाओं में हमें न तो कोई खतरा है और न ही कोई भय।" राजा ने पूछा: "आपको कोई खतरा क्यों नहीं होता?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे महाराज! हम प्रेम और दया का भाव रखते हैं; हम दयालु बनने का प्रयास करते हैं; हम दूसरों के सुख-समृद्धि पर प्रसन्न होते हैं; हम समभाव का अभ्यास करते हैं। इसी कारण हमें कोई खतरा नहीं है।" इतना कहकर वे अपने आसनों से उठे और अपने निवास स्थान की ओर चल दिए।

98.2. इसके बाद राजा ने सोचा, "ये भिक्षु कहते हैं कि 'प्रेम-कृपा आदि जैसे गुणों से कोई खतरा नहीं होता'; जबकि ब्राह्मण हजारों जीवों की हत्या की प्रशंसा करते हैं; वास्तव में किसका कथन सत्य है?" तब राजा के मन में यह विचार आया: "भिक्षु अपनी अशुद्धियों को शुद्धि से धोते हैं; जबकि ब्राह्मण अशुद्ध को अशुद्धि से धोते हैं। वास्तव में, अशुद्ध को अशुद्धि से धोना संभव नहीं है; केवल संन्यासी संन्यासियों का कथन ही सत्य है।" राजा ने प्रेम-कृपा से प्रारंभ करते हुए चार श्रेष्ठ जीवन (ब्रह्मविहार) का भी विकास किया, इस प्रकार कि "सभी जीव सुखी हों" इत्यादि, और सर्वव्यापी कल्याण की भावना से मंत्रियों को आदेश दिया: "सभी जीवों को मुक्त करो; उन्हें ठंडा जल पिलाओ; उन्हें हरी घास खिलाओ; उन पर ठंडी हवा चलने दो।" मंत्रियों ने तदनुसार किया।

98.3. इसके बाद राजा ने मन ही मन कहा, "मैं अच्छे मित्रों के वचनों के कारण बुरे कर्मों से बच गया हूँ", वहीं बैठे-बैठे ही उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया और मौन बुद्धत्व की कल्पना की। भोजन के समय जब मंत्रियों ने उनसे कहा, "हे महान राजा, समय हो गया है! कृपया भोजन कर लीजिए", तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं राजा नहीं हूँ"। पहले की तरह ही सब कुछ कहने के बाद, उन्होंने आनंदमयी वाणी का यह श्लोक पढ़ा।

98.4. चतुद्दिसो (चार दिशाओं में से एक) यहाँ उस व्यक्ति को संदर्भित करता है जो चारों दिशाओं में निवास करता है; वह चार दिशाओं का व्यक्ति इस प्रकार है: "वह व्यक्ति जिसके लिए चारों दिशाएँ श्रेष्ठ जीवन (ब्रह्मविहार) से व्याप्त हैं, सुविकसित हैं, इस प्रकार: 'वह एक दिशा में व्याप्त रहता है', इत्यादि।" वह अप्पतिघा है, द्वेष रहित है, इस प्रकार: "वह उन चारों दिशाओं में कहीं भी जीवित प्राणियों या प्राणियों के समूहों (संस्कार) को खतरे में नहीं डालता।" संतुष्टुस्सामानो, संतुष्ट रहना, बारह प्रकार के संतोष से संतुष्ट होना। इतरितारेन, उच्च या निम्न कारण से किसी एक या दूसरे से। परिश्यानां सहिता अचम्भी (कष्ट सहने पर भयभीत न होना) का अर्थ है:- यहाँ, परिश्याम का अर्थ है या तो शरीर और मन को कम किया जाता है या उनकी उपलब्धियों को कम किया जाता है; वैकल्पिक रूप से, खतरे (परिस्या) उनके कारण के रूप में उन पर निर्भर रहना या उनसे समर्थित होना है; यह बाहरी रूप से शेर का खतरा, बाघ का खतरा आदि जैसी शारीरिक और मानसिक विपत्तियों और आंतरिक रूप से इंद्रिय सुखों की इच्छा आदि के लिए शब्दावली है; इन कष्टों को धैर्यपूर्वक सहन करना और परिश्रम आदि जैसे कर्मों से सहन करना; इस प्रकार कष्टों को सहन करना है। खतरे के दूर होने पर अविचलित रहना और स्थिर रहना। क्या कहा गया है: जैसे वे चार भिक्षु; इस प्रकार, चाहे किसी भी कारण से कोई यहाँ संतुष्ट हो जाए, सिद्धि के लिए सही

अभ्यास के मूल स्थान पर संतोष में स्थापित होकर, वह प्राणियों और कर्मों के प्रति प्रेम आदि जैसे विकास (भावना) द्वारा चार दिशाओं में से एक हो जाता है, वह विनाशकारी खतरे की अनुपस्थिति के कारण द्वेष से भी मुक्त हो जाता है। वह, चार दिशाओं में से एक होने के कारण, उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के कष्टों को सहन करने वाला है; द्वेष से मुक्त होने के कारण वह अविचल भी है; अत: इस प्रकार सिद्धि के लिए साधना के गुण को देखकर, मैंने उस साधना को जारी रखते हुए मौन बुद्धत्व प्राप्त किया है। दूसरे शब्दों में, यह जानकर कि "उन भिक्षुओं के समान संतुष्ट रहकर, उपर्युक्त विधि से किसी भी प्रकार से, व्यक्ति चारों दिशाओं का स्वामी बन जाता है", चारों दिशाओं का स्वामी बनने की आकांक्षा रखते हुए, मैंने बुद्धिमानी से उस साधना को जारी रखा और यह सिद्धि प्राप्त की। इसलिए, इस प्रकार की स्थिति की आकांक्षा रखने वाला कोई भी व्यक्ति, अविचलित होकर, द्वेष रहित होकर, चारों दिशाओं के कष्टों को सहन करते हुए, गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे। शेष का तरीका पहले ही बताया जा चुका है।

श्लोक की शुरुआत पर टिप्पणी

catuddisa के साथ काम खत्म हो गया है।

देखभाल करना कठिन (दुस्सांगह)

99. 'दुस्सांगहा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के राजा की मुख्य रानी का निधन हो गया। शोक के दिन समाप्त होने पर, मंत्रियों ने एक दिन उनसे निवेदन किया, "मुख्य रानी उन सभी शाही कार्यों में वांछनीय होती हैं, अर्थात् राजाओं के लिए; महाराज, कृपया एक और रानी भी लाएँ।" राजा ने उत्तर दिया, "हे मंत्रियों! ठीक है, तो मुझे बताएँ।" मंत्री एक उपयुक्त भावी मुख्य रानी की खोज में निकल पड़े; एक सीमावर्ती राज्य में, राजा का निधन हो गया था; उनकी रानी राज्य का प्रशासन संभाल रही थीं; हालाँकि, वह गर्भवती थीं; मंत्रियों को पता चला कि वर्तमान रानी उनके राजा के लिए उपयुक्त हैं और उन्होंने उनका हाथ मांगा। उन्होंने उत्तर दिया, "गर्भवती स्त्री पुरुषों को प्रसन्न नहीं करती; यदि आप मेरे प्रसव तक प्रतीक्षा करें, तो यह ठीक है; यदि नहीं, तो कृपया दूसरी रानी खोजें।" मंत्रियों ने यह बात भी राजा को बता दी। राजा ने कहा, "उसे गर्भवती होने दो, उसे लाओ।" वे उसे ले आए। राजा ने रानी का राज्याभिषेक किया और उन्हें मुख्य रानी के सभी साजो-सामान दिए; उन्हें हर तरह के उपहार दिए गए और उनकी सेवा के लिए स्त्रियों का एक दल भी दिया गया। कुछ समय बाद उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा अपना सारा जीवन बच्चे को अपनी कमर या छाती पर उठाकर, चाहे कहीं भी जाते या बैठते या खड़े होते, ऐसे ही ले जाते रहे, मानो वह उनका अपना बेटा हो। तब रानी के दल ने सोचा, "राजा हमारी रानी और उनके पुत्र का बहुत सम्मान करते हैं; वे राजकुमार के साथ बहुत ज्यादा घुलमिल जाते हैं; चलो! हम उन्हें अलग कर देते हैं।"

99.1 इसके बाद उन्होंने युवा राजकुमार से इस प्रकार कहा, "मेरे प्रिय! तुम हमारे राजा के पुत्र हो; इस राजा के पुत्र नहीं; इस पर भरोसा मत करो।" बाद में, यद्यपि राजा ने युवा राजकुमार से कहा, "आओ, मेरे पुत्र!" और यद्यपि राजा ने उसे हाथ पकड़कर खींचा, फिर भी वह राजा से लिपटा नहीं। कारण जानने पर राजा को इस बात का पता चला, तो वह क्रोधित होकर बोला, "यद्यपि मैं इनकी देखभाल करता हूँ, फिर भी ये लोग इतना घृणित व्यवहार कर रहे हैं।" उसने अपना राज्य त्याग दिया, संसार का त्याग कर संन्यासी बन गया। कई मंत्रियों और राजकवि ने यह कहते हुए कि "राजा संन्यासी बन गया है", स्वयं भी संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए। यद्यपि राजा और उसके दल ने संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए थे, फिर भी लोग उसके लिए उत्कृष्ट धार्मिक सामग्री लाते रहे। राजा ने अपने साथी भिक्षुओं को उनकी उम्र के अनुसार उत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं। इस मामले में, जिन्हें अच्छी वस्तुएँ प्राप्त हुईं, वे संतुष्ट थे; जबकि अन्य शिकायत करते हुए कहते थे: "हम मठों की कोठरियों की सफाई आदि सब कुछ करते हैं, पर हमें कम भोजन और पुराने वस्त्र मिलते हैं।" राजा को जब यह भी पता चला, तो उन्होंने मन ही मन कहा: "ये भिक्षु उम्र के अनुसार वस्तुएँ मिलने पर भी शिकायत करते हैं; वास्तव में, अनुचरों की देखभाल करना कठिन है।" उन्होंने अपना भिक्षापात्र और वस्त्र उठाया, अकेले ही वन में चले गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित करने लगे और मौन बुद्धत्व की कल्पना की। जब वहाँ आए लोगों ने उनसे उनके मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) के बारे में पूछा, तो उन्होंने यह श्लोक सुनाया। यह श्लोक अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट है। हालांकि, व्याख्या (योजना) इस प्रकार है:- "भिक्षु होने के बावजूद, कुछ लोगों की देखभाल करना कठिन होता है, जो असंतोष से ग्रस्त होते हैं; इसी श्रेणी में गृहस्थ लोग भी आते हैं। देखभाल करने में आने वाली इस कठिनाई से तंग आकर, मैंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया और यह उपलब्धि प्राप्त की।" शेष को पहले की तरह ही समझना है।

श्लोक की शुरुआत पर टिप्पणी

दुस्सांगहा के साथ, देखभाल करना मुश्किल,
समाप्त हो गया है।
. . . . . .

अवतरित होने का कारण (ओरोपवित्वा)

100. 'ओरोपवित्वा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था, जिसकी आयु चार माह (चातुमासिका) थी। वह ग्रीष्म ऋतु के पहले माह में अपने राजमहल में गया। वहाँ उसने एक हरे-भरे पत्तों से लदे कोविलारा वृक्ष को रमणीय भूमि पर देखा और कहा, "इस कोविलारा वृक्ष के चरणों में मेरी पलंग तैयार करो।" उसने राजमहल में समय बिताया और शाम को वहीं लेट गया। फिर ग्रीष्म ऋतु के मध्य माह में वह अपने राजमहल में गया। तब तक कोविलारा वृक्ष फूलों से खिल चुका था। उस समय भी उसने ऐसा ही किया। फिर ग्रीष्म ऋतु के अंतिम माह में वह गया। उस समय पत्तों से भरा कोविलारा वृक्ष सूखकर मुरझा गया था। उस समय भी राजा ने उस वृक्ष को देखे बिना ही, अपनी पूर्व परिचितता के कारण, उसी स्थान पर अपना पलंग तैयार करने का आदेश दिया। यह जानते हुए भी, मंत्रियों ने राज आदेशानुसार वहीं पर पलंग तैयार किया। राजा उद्यान में व्याकुल थे, और शाम को जब वे अपने शाही पलंग पर लेटे, तो उन्होंने उस वृक्ष को देखा और सोचा: “देखो! पहले यह वृक्ष पत्तों से भरा और अत्यंत सुंदर था, मानो हरे रत्नों से बना हो। इसके अलावा, इसकी शाखाओं के बीच, जो फूलों से ढकी थीं, मानो मूंगे के अंकुरों के समान हों, दृश्य अत्यंत भव्य था; इसके अलावा, उस वृक्ष के नीचे की भूमि, जो मोतियों के जाल के समान रेत से भरी थी और बिखरे हुए फूलों से ढकी थी, मानो लाल मखमल से ढकी हो; अब, वह वृक्ष, अर्थात्, एक सूखे वृक्ष के समान हो गया है और केवल कुछ शाखाओं के साथ खड़ा है। वास्तव में, मूंगे का वृक्ष (कोविलारा) वृद्धावस्था से ग्रस्त हो गया है” और अनित्यता का आभास करते हुए कहा: “निरर्थक (अनुपादिष्ण) भी वृद्धावस्था से ग्रस्त हो जाता है; तो सजीव (अनुपादिष्ण) कितना अधिक वृषण से ग्रस्त होगा?” “क्या?” इसके अनुसार ही, राजा ने दुख और अनात्म दोनों दृष्टियों से सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं (संस्कार) को स्पष्ट रूप से देखते हुए, यह इच्छा व्यक्त की: “हाय! मैं भी उस मूंगा वृक्ष (कोविलारा) के समान गृहस्थ गुणों से रहित हो जाऊँगा, जिसके पत्ते पूरी तरह झड़ गए हों।” उन्होंने समय आने पर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त की, और उसी शाही पलंग पर दाहिनी ओर लेटे हुए ही मौन बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया। इसके बाद, जब उनके मंत्रियों ने उन्हें जाने के लिए कहा: “महाराज! जाने का समय हो गया है”, तो उन्होंने कहा: “मैं आपका राजा नहीं हूँ,” और इसी प्रकार, पहले की ही तरह, उन्होंने इस श्लोक का पाठ किया।

100.1. ओरोपयित्वा (उतरने का कारण बनना) का अर्थ है दूर ले जाना। गिहिब्यंजनानि (गृहस्थ के लक्षण) का अर्थ है सिर के बाल, दाढ़ी, सफेद वस्त्र, आभूषण, फूलों की माला, इत्र, मलहम, पुत्र, पत्नी, पुरुष और स्त्री दास आदि। ये गृहस्थ की स्थिति को दर्शाते हैं, इसलिए इन्हें गृहस्थ लक्षण कहा जाता है। संछिन्नपत्तो (पत्तों से पूरी तरह रहित) का अर्थ है पत्तों के साथ त्यागा हुआ; चेत्वाना (काटना) का अर्थ है सही मार्ग के ज्ञान (मग्गाणा) से अलग होना; वीर (वीर) का अर्थ है सही मार्ग के प्रयास (मग्गवीर्य) से संपन्न होना; गिहिबंधनानि (गृहस्थ के बंधन) का अर्थ है काम (काम) गृहस्थों का बंधन। यह अब तक का सांसारिक अर्थ है। लेकिन इसका यही अर्थ है (अधिप्पायो):- “हाय! मैं भी गृहस्थ के लक्षणों को त्यागकर, पत्तों से रहित कोविलार वृक्ष के समान हो गया था”; ऐसा सोचते हुए, मैंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया और यह उपलब्धि प्राप्त की। शेष को पहले की तरह ही समझना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी,
koviḷāra से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।
पहला अध्याय समाप्त हो गया है
. . . . . .

सत्य प्राप्ति (सचे लबेथा)

101.2. 'सचे लबेथा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व में, प्रतापी कस्सपा के युग में, दो मौन बोधिसत्वों ने संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए, बीस हजार वर्षों तक आने-जाने का कर्तव्य पूरा किया और देवलोक में पुनर्जन्म

लिया। वहाँ से देह त्यागने पर, उनमें से बड़े बनारस के राजा के पुत्र बने और छोटे पुरोहित के पुत्र। दोनों एक ही दिन गर्भ धारण किए, एक ही दिन अपनी माता के गर्भ से बाहर आए और साथ-साथ पृथ्वी क्रीड़ा करने लगे। पुरोहित के पुत्र में ज्ञान और बुद्धि थी; उन्होंने राजा के पुत्र से कहा, "मेरे मित्र! तुम्हारे पिता के देहांत के बाद, तुम राज्य के उत्तराधिकारी बनोगे; मैं पुरोहित का पदभार ग्रहण करूँगा; राज्य का संचालन केवल सुशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है; आओ, हम विद्या प्राप्त करें।" इसके बाद, दोनों को यज्ञ-आहुति देकर सम्मानित किया गया और वे भिक्षा मांगने के लिए छोटे-बड़े गाँवों में विचरण करते हुए सीमावर्ती जिले के एक गाँव में गए। उसी गाँव में, भिक्षा मांगने के दौरान, पाँच मौन बुद्ध प्रवेश कर गए। वहाँ के लोगों ने मौन बुद्धों को देखकर उत्साह से भर गए, उनके लिए आसन तैयार किए, और उन्हें आदरपूर्वक उत्तम पौष्टिक भोजन अर्पित किया। उन दोनों के मन में यह विचार आया: "हमारे जैसे उच्च कुल का कोई नहीं है; फिर भी, ये लोग चाहें तो हमें भिक्षा देते हैं, लेकिन न चाहें तो कुछ नहीं देते; वहीं दूसरी ओर, ये भिक्षु इतना आदरपूर्वक दान करते हैं; निःसंदेह, इन्हें किसी प्रकार का ज्ञान अवश्य होगा; आइए! हम इनके समक्ष ही यह ज्ञान सीखें।" जब लोग चले गए, तो उन्हें अवसर मिला और उन्होंने इस प्रकार निवेदन किया: "आदरणीय महोदय! आप जो भी ज्ञान जानते हैं, कृपया हमें सिखाएँ।" मौन बुद्धों ने उत्तर दिया: जो भिक्षु नहीं है, उसके लिए सीखना संभव नहीं है। उन दोनों ने संन्यास का वचन दिया और भिक्षु बन गए। इसके बाद, मौन बुद्धों ने उन दोनों को अच्छे आचरण का प्राथमिक नियम इस प्रकार समझाया: "तुम्हें अपने वस्त्र इस प्रकार पहनने चाहिए;" और इसी प्रकार, उन्होंने उन्हें अलग-अलग पत्तों की झोपड़ी देते हुए कहा: "इस विद्या की सिद्धि के लिए एकांत में गहन आनंद होना आवश्यक है; इसलिए तुम्हें अकेले बैठना चाहिए; अकेले घूमना चाहिए; अकेले खड़े रहना चाहिए; अकेले सोना चाहिए।" बाद में, वे सब अपनी-अपनी पत्तों की झोपड़ी में प्रवेश करके बैठ गए। पुरोहित के पुत्र ने बैठते ही अपने मन को उचित रूप से एकाग्र कर लिया और ध्यान प्राप्त कर लिया। राजा का पुत्र कुछ ही क्षणों में ऊबकर उनके पास आया। पुरोहित के पुत्र ने उससे पूछा: "मित्र! क्या बात है?" उत्तर मिला कि वह ऊब गया है। पुरोहित के पुत्र ने उसे सलाह दी: "तो फिर,"यहाँ बैठ जाओ।" राजा का पुत्र एक क्षण के लिए बैठ गया और बोला, "मेरे मित्र! कहते हैं कि इस विद्या की सिद्धि एकांत में गहन आनंद है।" पादरी के पुत्र ने उत्तर दिया, "हाँ, मेरे मित्र! तो तुम वापस अपनी जगह पर बैठ जाओ; मैं इस विद्या की सिद्धि प्राप्त कर लूँगा।" राजा का पुत्र वापस चला गया और फिर एक क्षण में ऊब गया और पहले की तरह तीन बार अपने मित्र के पास गया।

102.1. तब पादरी के बेटे ने भी उसे वापस भेज दिया और जब वह चला गया, तो उसने सोचा:- "यह तो अपने और मेरे दोनों के कर्मों को कम कर रहा है; यह यहाँ बार-बार आता है"; वह अपनी पत्तों की झोपड़ी से बाहर निकला और जंगल में चला गया। दूसरा व्यक्ति, जो अपनी पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया में बैठा था, पल भर में ही ऊब गया। वह अपने मित्र के पास गया, इधर-उधर भटकने पर भी उसे नहीं देखा। उसने मन ही मन सोचा, "ऐसा व्यक्ति जो गृहस्थ रहते हुए भी उपहार लेकर आने पर भी मुझे देखने का अवसर नहीं पाता था, वह तो मेरे आने पर मुझे देखने का मौका न देने की इच्छा से चला गया। हाय! हे मन! क्या तुझे शर्म नहीं आती कि तू मुझे चौथी बार यहाँ ले आया? मैं तेरे प्रभाव में नहीं आऊँगा; बल्कि तुझे मेरी इच्छा का पालन करना होगा।" वह अपने निवास में लौट आया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगा, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया और आकाश के मार्ग से नन्दमूल गुफा में चला गया। दूसरा व्यक्ति भी वन में जाकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगा, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया और वहाँ भी चला गया। दोनों बैठ गए और इन मंत्रों का पाठ किया। आनंदमय अभिव्यक्ति के छंद, प्रत्येक एक के लिए।

102.2. निपाक (विवेकपूर्ण) स्वभावतः बुद्धिमान, समझदार और ध्यान के विषयों पर एकाग्रता जैसे कार्यों में निपुण होता है। साधुविहारी (सभ्य जीवन) का अर्थ है: मानसिक स्थिरता (ज्ञान अप्पना) की प्राप्ति या एकाग्रता (उपचार) की प्राप्ति से संपन्न होना; धीरम् (दृढ़ता से बुद्धिमान) का अर्थ है: दृढ़ता से संपन्न होना; यहाँ विवेकपूर्ण होने के कारण दृढ़ता की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है; इस प्रकार, यही अर्थ है। दृढ़ता, अर्थात्, निरंतर प्रयास करना। इस प्रकार प्रयास करने की शब्दावली है: "इच्छापूर्वक (कामम्); त्वचा, नसें और (हड्डियाँ) बनी रहेंगी।" इसी प्रकार, बुराई की निंदा करने वाला दृढ़ बुद्धि वाला व्यक्ति (धीर) होता है। राजावा रत्त्वं विजितं पहावा (जिस राजा ने अपने जीते हुए राज्य का त्याग कर दिया) का अर्थ है: "जीता हुआ राज्य किसी काम का नहीं होता", उसने अपना राज्य त्याग दिया और अकेला भटकने लगा; इस प्रकार, मूर्ख साथियों को छोड़कर, व्यक्ति को अकेले भटकना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राजावा तत्त्वं का अर्थ है, राजा सुतसोमा की तरह, जिसने अपना जीता हुआ राज्य त्याग कर अकेला भटकना शुरू कर दिया; या फिर राजा महाजनक की तरह, जो इस प्रकार अकेले भटकने लगा; यही उस अभिव्यक्ति का अर्थ है। शेष का अर्थ पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है; विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है।

सहाय से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या समाप्त हो गई है।

. . . .

निश्चित रूप से प्रशंसा (अद्धा पसमसामा)

103. 'अद्धा पसंसामा' से शुरू होने वाले इस श्लोक की उत्पत्ति, 'चतुद्दिसा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति के समान ही है, जो आकाश के खुले वातावरण में मौन बुद्धों के अपने तैयार आसनों पर बैठने तक की कहानी को समेटे हुए है। हालांकि, अंतर यह है कि जिस प्रकार राजा रात में तीन बार भयभीत हुआ था, वैसा इसमें नहीं है; और न ही यह यज्ञ का अर्पण था। राजा ने आकाश के खुले वातावरण में मौन बुद्धों को उनके तैयार आसनों पर बैठाकर पूछा, "आप कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे महाराज! हम वे हैं जो निष्पापता से अपना पोषण करते हैं।" राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय! 'अनवज्जभोजी' (निष्पापता से पोषित) अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है?" उनका उत्तर था, "हे महाराज! हम जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, चाहे अच्छा हो या बुरा, उसे अपरिवर्तित रूप से ग्रहण करते हैं।" यह सुनकर राजा के मन में यह विचार आया: "क्या मैं यह जानने के लिए कुछ धारण करूँ कि वे ऐसे हैं या नहीं?" उस दिन राजा ने उन्हें टूटे हुए चावल की दलिया और खट्टी खिचड़ी खिलाकर उनका सत्कार किया। मौन बुद्धों ने उसे ऐसे ग्रहण किया मानो वह अमृत (अमरता का जल) हो। राजा ने मन ही मन कहा, "ये मौन बुद्ध अपनी प्रतिज्ञा के कारण एक दिन के लिए अपरिवर्तित रहे; मुझे कल फिर पता चल जाएगा।" और उन्होंने उन्हें अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। दूसरे दिन भी उन्होंने ऐसा ही किया। उन्होंने तब भी उसी प्रकार भरपेट भोजन किया। फिर राजा ने मन ही मन कहा, "मैं उन्हें अच्छा भोजन कराने के बाद उनकी परीक्षा लूँगा।" उन्होंने उन्हें फिर से आमंत्रित किया, दो दिनों तक उनका भव्य आदर किया और उन्हें उत्तम और अत्यंत विविध प्रकार के कठोर और नरम भोजन से सत्कार किया। मौन बुद्धों ने तब भी उसी प्रकार भरपेट भोजन किया, राजा के लिए शुभ शब्द बोलकर उन्हें आशीर्वाद दिया और प्रस्थान किया। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, राजा ने ऐसा सोचा: "ये मौन बुद्ध निष्पाप भोज करने वाले हैं; यदि मैं भी निष्पाप भोज करने वाला बन जाऊं तो कितना उत्तम होगा", उन्होंने महान संप्रभुता का त्याग कर भिक्षुत्व ग्रहण किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया, मौन बुद्ध बन गए, और सुगंधित मंजूसाक वृक्ष की तलहटी में मौन बुद्धों के बीच अपने ध्यान के विषय को स्पष्ट करने के लिए इस श्लोक का पाठ किया। सांसारिक दृष्टि से वह श्लोक बिल्कुल स्पष्ट है। हालांकि, यहां सहायसंपदाम का अर्थ यह समझा जाना चाहिए: सिद्ध पुरुषों, असेख (असेख) के समान सद्गुणों आदि से संपन्न होने की उचित प्राप्ति; केवल ऐसे साथी को ही सहायसंपदा कहा जाता है, जो साथियों से परिपूर्ण हो।

103.1. यहाँ व्याख्या इस प्रकार है: जो कुछ भी कहा गया है कि यह संगति का सौभाग्य है, उस संगति के सौभाग्य की हम निश्चित रूप से प्रशंसा करते हैं, तो यह इस प्रकार कहा गया है: हम केवल एकतरफा प्रशंसा कर रहे हैं। कैसे? उत्कृष्ट और समान रूप से सेवा की जानी चाहिए। क्यों? जब अपने स्वयं के उपदेशों आदि के साथ उत्कृष्ट रूप से अभ्यास किया जाता है, तो उपदेश आदि जैसे अजन्मे गुण उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न हुए गुण भी वृद्धि, विकास और समृद्धि प्राप्त करते हैं। समान रूप से अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लाभ, परस्पर समान होने और चिंता दूर होने के कारण, कम नहीं होते। लेकिन जब उत्तम और समतुल्य साथी न मिलें, तो अच्छे परिवार का वह युवक जो कल्याण चाहता है, पाखंड (कुहना) आदि जैसे कुटिल जीवन शैली को त्यागकर, धर्म (धम्मेना) और समता (समेना) से उत्पन्न भोजन का सेवन करके, घृणा की भावना को उत्पन्न न होने देकर, निष्पाप हो जाए (पृष्ठ 309), और गैंडे के सींग की तरह अकेले विचरण करे। मैंने भी इसी प्रकार विचरण करते हुए यह यश प्राप्त किया।

श्लोक पर टिप्पणी,
अद्धापसंसा से शुरू
(निश्चित रूप से स्तुति) समाप्त हो गई है।

. . . . . .

सोना देखकर (दिस्वा-सुवन्नस्स)

104. 'दिसवासुवन्नस्स' (सोना देखकर) से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस का एक राजा था, जो गर्मी के मौसम में दिनभर आराम करने के लिए लेटने गया था। उसके पास ही एक वेश्या ठंडी चंदन की लकड़ी पीस रही थी। उसकी एक भुजा में सोने का कंगन था; दूसरी भुजा में दो कंगन थे। वे आपस में टकरा रहे थे; तीसरा नहीं टकरा रहा था। राजा ने यह देखा और

सोचा, "जिस प्रकार भीड़ में रहने वाले लोग आपस में टकराते हैं; अकेले रहने में कोई टकराव नहीं होता," और उसने उस सुंदरी को बार-बार देखा। उस समय भी, सभी आभूषणों से सजी रानी वहाँ राजा को पंखा झल रही थी। उसने सोचा, "मुझे लगता है कि राजा उस वेश्या पर मोहित हो गया है," उसने उस वेश्या को उठाया और स्वयं चंदन की लकड़ी पीसने लगी। उस समय उसकी दोनों भुजाओं में कई सोने के कंगन थे; आपस में टकराने पर उनसे बहुत ध्वनि उत्पन्न हो रही थी। राजा अत्यंत क्रोधित हो गए, दाहिनी ओर लेटे हुए ही उन्हें आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त होने लगी और उन्होंने मौन बुद्धत्व का दर्शन किया। चंदन की पिसी हुई सामग्री हाथ में लिए रानी, परमानंद में डूबे राजा के पास आईं और बोलीं, “हे महाराज! मैं आपको लेप लगाने जा रही हूँ।” राजा ने उत्तर दिया, “चली जाइए; मुझे मत लेप लगाइए।” रानी ने पूछा, “क्यों? हे महाराज!” राजा ने कहा, “मैं अब राजा नहीं हूँ।” जब मंत्रियों ने उन दोनों के बीच की बातचीत सुनी, तो वे उनके पास आए। जब उन्होंने भी राजा को “हे मंत्रियों! मैं अब राजा नहीं हूँ” कहकर संबोधित किया, तो राजा ने कहा, “हे मंत्रियों! मैं अब राजा नहीं हूँ।” शेष वही है जो पहले श्लोक में कहा गया है।

104.1. हालाँकि, श्लोक की व्याख्या इस प्रकार है: - दिस्वा (देखकर) का अर्थ है: देखा हुआ; सुवन्नस (सुंदर रंग का) का अर्थ है सोने का। वलयनी पाली लिपि का वह शब्द है जो पढ़ा नहीं गया (या लिखा नहीं गया)। वास्तव में, यही शेष सांसारिक अर्थ है; यही अभिप्राय है। पभसरानी (चमक) का अर्थ है: दीप्तिमान चरित्र, तेज से युक्त; यही कथन है। शेष का सांसारिक अर्थ स्पष्ट है। हालाँकि, व्याख्या यह है - उसकी भुजा में सोने की चूड़ियाँ देखकर, मैंने ऐसा सोचा: “यदि संगति में रहते हैं, तो टकराव (आपसी टक्कर) होता है; अकेले रहने पर कोई टक्कर (या टकराव) नहीं होता” - आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित होने लगी और मैंने अपनी उपलब्धि प्राप्त की।
श्लोक पर टिप्पणी,
सुवन्नवलाय से शुरू
(सोने की चूड़ी) समाप्त हो गई है।
. . . .

एवम्दुतियाना...आयतिभया (भविष्य का खतरा)
105. एवम्दुतियाना से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के एक राजा, जो कम उम्र में ही भिक्षु बनना चाहते थे, ने अपने मंत्रियों को आदेश दिया: “रानी को ले जाओ और मेरे राज्य पर शासन करो; मैं संसार त्याग कर संन्यासी बन जाऊंगा।” मंत्रियों ने सुझाव दिया: “हे महाराज! हमारे लिए राजाविहीन राज्य की देखभाल करना संभव नहीं है; आसपास के राजा आकर लूटपाट करेंगे; जब तक एक पुत्र का जन्म न हो जाए, तब तक कृपया प्रतीक्षा करें।” कोमल हृदय वाले राजा ने सहमति दे दी। बाद में, रानी गर्भवती हो गईं। राजा ने फिर मंत्रियों को आदेश दिया: “रानी गर्भवती हैं; मेरे पुत्र के जन्म के बाद उसका अभिषेक करो और मेरे राज्य की देखभाल करो, मैं राज्य त्याग कर भिक्षु बन जाऊंगा।” मंत्रियों ने राजा को फिर से सुझाव दिया: “हे महाराज! यह जानना कठिन है कि रानी पुत्र को जन्म देंगी या पुत्री को; कृपया प्रसव तक प्रतीक्षा करें।” तब उन्होंने पुत्र को जन्म दिया। उस समय भी राजा ने अपने मंत्रियों को पहले की तरह ही आदेश दिए। मंत्रियों ने भी अनेक कारण बताते हुए राजा से कहा, “हे महाराज! कृपया अपने पुत्र के पूर्णतः बलवान होने तक प्रतीक्षा कीजिए।” जब युवा राजकुमार पूर्णतः बलवान हो गया, तो राजा ने मंत्रियों को एकत्रित किया और आदेश देते हुए कहा, “यह अब पूर्णतः बलवान हो गया है, इसे राजा बनाइए और मेरे राज्य की देखभाल करने दीजिए।” राजा ने मंत्रियों को अवसर दिए बिना ही बाज़ार से भिक्षुओं के सभी आवश्यक सामान, पीले वस्त्र आदि मंगवाए, अपने ही महल में भिक्षु बन गए, राजा महाजनक के समान संसार का त्याग कर चले गए। उनके सभी अनुयायी विलाप करते हुए राजा के पीछे-पीछे बेतरतीब ढंग से दौड़े। राजा अपने राज्य की सीमा तक गए, अपनी छड़ी से एक रेखा खींची और कहा, “इस रेखा को पार नहीं किया जाना चाहिए।” लोगों का विशाल समूह ज़मीन पर लेटकर विलाप करने लगा, अपना सिर कतार की ओर झुकाए हुए, और राजकुमार से कतार के पार जाने का अनुरोध करते हुए बोला, “प्रिय राजकुमार! अब राजा के आदेश का तुम पर क्या असर होगा?” राजकुमार “पिताजी, पिताजी” कहते हुए उनके पीछे दौड़ा और राजा के पास पहुँच गया। राजा ने राजकुमार को देखा और मन ही मन कहा, “मैंने इतने बड़े जनसमूह की देखभाल करते हुए अपने राज्य पर शासन किया है; अब मैं एक बालक की देखभाल क्यों नहीं कर सकता?”, फिर राजकुमार को लेकर जंगल में चला गया, वहाँ उसने पूर्व मौन बुद्धों की पत्तों की कुटिया देखी और अपने पुत्र के साथ वहीं निवास करने लगा।

105.1. इसके बाद, राजकुमार उत्तम बिस्तर आदि का आदी होने के कारण रस्सी के पलंग पर सोने पर रोने लगा। ठंडी हवा आदि से पीड़ित होकर वह कहता, “पिताजी, ठंड है! पिताजी, गर्मी है! पिताजी, मच्छर काट रहे हैं! मुझे भूख लगी है; पिताजी, मुझे प्यास लगी है।” राजा ने उसे शांत करके रात गुजार दी। दिन में भी उसके पिता भिक्षा के लिए भोजन एकत्र करते और उसे भोजन कराते। बाजरा, सेम और राजमा आदि से युक्त मिश्रित भोजन खाकर राजकुमार अपनी भूख मिटाता था, और कुछ दिनों में ही वह गर्मी से मुरझाए कमल के फूल की तरह सूख गया। फिर भी, राजा ने अपने विवेक (पटिसंखाह) के बल पर भोजन नहीं बदला। इसके बाद, राजकुमार को शांत करने के लिए उसके पिता ने कहा, “प्रिय पुत्र! शहर में उत्तम भोजन उपलब्ध है; चलो वहाँ चलें।” राजकुमार ने उत्तर दिया, “जी पिताजी!” इसके बाद पिता उसी रास्ते से वापस लौट गए जिससे वे आए थे, और अपने बेटे को आगे चलने को कहा। राजकुमार की माता, रानी ने सोचा, “राजा राजकुमार को ले गए हैं, इसलिए वे जंगल में ज्यादा देर नहीं रुकेंगे; कुछ ही दिनों में लौट आएंगे।” उन्होंने ठीक उसी जगह पर बाड़ बनवाई जहाँ राजा ने अपनी छड़ी से रेखा खींची थी और वहीं रहने लगीं। राजा उनकी बाड़ से कुछ ही दूरी पर खड़े रहे और अपने बेटे को वहाँ भेजते हुए कहा, “प्यारे बेटे! तुम्हारी माँ यहाँ लेटी हैं; तुम्हें जाना चाहिए।” राजा तब तक देखते रहे जब तक उनका बेटा वहाँ नहीं पहुँच गया, उन्हें लगा कि कोई उन्हें परेशान नहीं कर रहा है। राजकुमार दौड़कर अपनी माँ के पास पहुँच गए।

105.2. राजकुमार को आते देख पहरेदार ने रानी को सूचना दी। बीस हजार नृत्य करती युवतियों से घिरी रानी राजकुमार से मिलने आगे बढ़ी और उनका स्वागत किया। उसने राजकुमार से राजा के बारे में भी पूछा। राजा के अपने पुत्र के पीछे आने की सूचना पाकर रानी ने अपने सैनिकों को भेजा। दूसरी ओर, राजा उसी क्षण अपने निवास स्थान पर लौट गए। राजा को न पाकर वे वापस चले गए। इसके बाद रानी ने आशा छोड़ दी, अपने पुत्र को लेकर अपने नगर लौट गईं और उनका राज्याभिषेक किया। राजा अपने निवास स्थान पर बैठ गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व को प्राप्त किया और सुगंधित मंजूसाका वृक्ष की तलहटी में मौन बुद्धत्व की अवस्था में आनंदमय इस श्लोक का पाठ किया। यह श्लोक अर्थ की दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट है।

105.3. यहाँ मुख्य बात यह है --- इस प्रकार, अकेले में, अपने साथी राजकुमार द्वारा उसकी सर्दी, गर्मी आदि के बारे में दी गई रिपोर्ट के साथ, उसके साथ रहने के कारण, मेरे मन में वाचाभिलापो (अपमानजनक वाणी के व्यर्थ शब्द) उत्पन्न हुए; या मैं अभिसज्जनावा (उसके प्रति अपने स्नेह के कारण चिड़चिड़ा) हो गया। यदि मैं इसे त्याग नहीं देता, तो परिणामस्वरूप, भविष्य में भी यह अभी के समान ही होता। एवम् दुतिवेना सह मनस्स वाचाभिलापो अभिसज्जनावा, इस प्रकार मेरे मन में भी आपत्तिजनक वाणी (या शाप) उत्पन्न हो सकते हैं यदि मैं किसी साथी के साथ रहूँ। यह कहते हुए: "ये दोनों भी विशिष्ट उपलब्धि के हानि-सूचक हैं", तदनुसार एतम् भयम् आयतिम् पेक्खमानो (भविष्य में इस खतरे को देखते हुए) मैंने इसे त्याग दिया, अपने जीवन को बुद्धिमानी से व्यवस्थित किया और इस प्रकार, मैंने मौन बुद्धत्व प्राप्त किया। बाकी सब तो पहले ही बताए गए तरीके से ही है।
श्लोक पर टिप्पणी,
आयतिभय (भविष्य) से शुरू
खतरा) समाप्त हो गया है।
. . . .
इच्छा विविध (कामा ही चित्रा)
106. 'कामा हि चित्रा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में एक बैंकर के पुत्र को कम उम्र में ही बैंकर का पद मिल गया। उसके पास वर्ष के तीन ऋतुओं के लिए उपयुक्त तीन आलीशान महल थे। वह अपनी सारी समृद्धि से एक दिव्य युवक की तरह आनंदित रहता था। फिर, हालांकि वह अभी भी युवा था, उसने अपने माता-पिता से इस प्रकार निवेदन किया: "मैं संन्यास लेकर संन्यासी बनना चाहता हूँ।" उन्होंने उसे मना किया। उसने फिर भी आग्रह किया। उसके माता-पिता ने उसे कई तरह से मना किया: "प्रिय पुत्र! तुम अभी नाज़ुक हो; संन्यास लेना कठिन है; यह किसी तरकश पर चलने के समान है।" उसने फिर भी आग्रह किया। उसके माता-पिता ने सोचा: "यदि हमारा पुत्र संन्यास लेकर संन्यासी बन जाए, तो हमें अप्रसन्नता होगी; यदि हम उसे मना करें, तो मुझे अप्रसन्नता होगी। फिर भी, अप्रसन्नता हमें हो, मुझे नहीं," और उसे अनुमति दे दी। इसके बाद, विलाप कर रहे अपने सभी साथियों की परवाह किए बिना, वह इसिपताना चले गए और मौन बुद्धों की उपस्थिति में भिक्षु बन गए। वे मुख्य मठ में नहीं पहुँचे, बल्कि एक पलंग पर चटाई बिछाकर सो गए। उत्तम बिस्तर पर आराम करने के बाद, वे पूरी रात अत्यंत दुखी रहे। भोर होते ही, उन्होंने स्नान किया, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और मौन बुद्धों के साथ भिक्षा मांगने के लिए भिक्षालय में प्रवेश किया। वहाँ वरिष्ठ भिक्षुओं को मुख्य आसन और मुख्य भिक्षापात्र प्राप्त होता था; नवदीक्षित भिक्षुओं को जो भी साधारण आसन और हल्का भोजन मिलता था, वही मिलता था। वे कम

पोषण से अत्यंत व्याकुल थे। इसलिए, कुछ ही दिनों में वे दुबले-पतले और पीले पड़ गए और निराश हो गए, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति भिक्षु बनने से पहले भिक्षुओं के कार्यों में पूर्णतः परिपक्व नहीं हो पाता। इसके बाद, उन्होंने अपने माता-पिता को संदेश भेजा और भिक्षु जीवन त्याग कर अपना वस्त्र उतार दिया। कुछ ही दिनों में वे फिर से स्वस्थ हो गए और पुनः भिक्षु बनने की इच्छा रखने लगे। इसके बाद, वे दूसरी बार भिक्षु बने और फिर से भिक्षुत्व त्याग दिया। तीसरी बार भिक्षु बनने पर उन्होंने अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया, आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया और मौन बुद्धों के बीच फिर से इसी व्याख्यात्मक श्लोक का पाठ किया।

106.1. काम में दो प्रकार के इंद्रिय सुख शामिल हैं: एक इंद्रिय सुख जो आधारभूत, अर्थात् भौतिक अंग (या बाह्य वस्तु) और इच्छा से संबंधित है, जिसे व्यक्तिपरक रूप से माना जाता है। यहाँ वत्थुकमा, आधारभूत (वत्थु) से संबंधित सुख है, अर्थात् ऐसे धर्म में जो चिंतन का विषय है, जिसमें प्रेममय रूप आदि शामिल हैं; व्यक्तिपरक रूप से मानी जाने वाली इच्छा (किलेसा काम), अर्थात् सभी प्रकार की कामवासना (राग)। यहाँ, हालांकि, आधारभूत (वत्थु काम) से संबंधित सुख का तात्पर्य है। अनेक प्रकार के रूपों आदि से युक्त काम को चित्रा (बहुरंगी) कहा जाता है। सांसारिक स्वाद को मधुर (मधुर) कहा जाता है। ये मूर्ख सामान्य लोगों (पुथुज्जन) के मन को प्रसन्न करते हैं; इस प्रकार मनोरमा (मन को आनंदित करने वाली) है। विरूपरूपेण का अर्थ है: विभिन्न प्रकार के रूपों से युक्त; यह कथन इस प्रकार है: अनेक प्रकार के चरित्रों (या व्यवहार) के साथ। वास्तव में, वे रूप आदि के अनुसार विविधतापूर्ण हैं; रूपों आदि में वे नीले रंग आदि के कारण विभिन्न रूपों में हैं। इस प्रकार, उन कुरूप और सुंदर रूपों के माध्यम से इस प्रकार और उस प्रकार स्वाद (या मिठास) प्रदर्शित करके, वे मन को विचलित करते हैं; वे त्याग में गहन आनंदित होने नहीं देते। शेष यहाँ स्पष्ट है। निष्कर्ष की व्याख्या भी दो या तीन शब्दों में की जाए तो उसे पूर्व श्लोकों में वर्णित तरीके से समझा जाना चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी,
काम (इच्छा) से शुरू होकर
समाप्त हो गया है

. . . .

107. ईतिका से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में राजा को एक घाव हो गया। बहुत दर्द होने लगा। चिकित्सकों ने कहा: "बिना शल्यक्रिया के कोई इलाज नहीं है"। राजा ने उन चिकित्सकों को सुरक्षा दी और उन्हें शल्यक्रिया करने की अनुमति दी। उन्होंने घाव को चीरकर उसमें से मवाद और खराब खून निकाला, रोगी को दर्द से राहत दी और घाव पर कपड़े की पट्टी बाँध दी। उन्होंने उसे कम मांस के पोषण के संबंध में उचित चिकित्सा सलाह दी। कम आहार के कारण राजा दुबला हो गया। हालाँकि, उसका घाव ठीक हो गया। जब उसे इलाज और आराम का एहसास हुआ, तो राजा ने वसायुक्त भोजन खाया। इसके कारण मजबूत होकर, राजा ने इसे और भी अधिक मात्रा में खाया। उसका घाव फिर से अपनी पिछली स्थिति में पहुँच गया इस प्रकार, उन्होंने स्वयं तीन बार ऑपरेशन करवाया और जब डॉक्टरों ने उनका इलाज करने से इनकार कर दिया, तो राजा निराश हो गए, उन्होंने अपनी उच्च संप्रभुता का त्याग कर दिया, एकांतवासी बन गए, जंगल में प्रवेश किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया, सात वर्षों के भीतर मौन बुद्धत्व की कल्पना की, आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया और नानदामूलक गुफा में चले गए।

107.1. ईति, वहाँ, का अर्थ है: वह आता है। यह शब्द उन अतिथियों के लिए प्रयोग किया जाता है जो बुरे कर्मों में भागीदार होते हैं और विनाश के लिए जिम्मेदार होते हैं। वहाँ कामुक सुख (कामगुण) के धागे भी ईति (वह आता है) कहे जा सकते हैं क्योंकि यह बहुत विनाश और विपत्तियों के संचय को बढ़ावा देता है। घाव भी अशुद्धता उत्पन्न करता है; यह सूज जाता है, पूरी तरह पक जाता है और पूरी तरह फट जाता है। इसलिए, ये घाव अशुद्ध दुराचार (किलेसा) के निकलने के कारण, साथ ही वृद्धावस्था के कारण सूजकर पूरी तरह पकने के बाद पूरी तरह फट जाने के कारण संधो (घाव) होते हैं। यह कष्टदायी होता है; इस प्रकार, यह उपद्दव (दुर्भाग्य) है जो हानि को बढ़ावा देता है, यह हावी हो जाता है और व्याप्त हो जाता है; यही इसका अर्थ है। यह काम आदि के घावों के लिए प्रयुक्त शब्द है। क्यों? ये इंद्रिय सुखों के सूत्र दुर्भाग्य (उपाद्दव) हैं, क्योंकि ये निर्वाण के कल्याण में बाधक हैं और सभी कष्टदायी कार्यों का मूल कारण हैं। यद्यपि ये दुराचार (किलेष) की स्थिति उत्पन्न करते हैं या नैतिक उपदेश माने जाने वाले स्वास्थ्य को बार-बार हानि पहुँचाते हैं, जिससे सामान्य स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। अतः, स्वास्थ्य को नष्ट करने के अर्थ में यह रोग (बीमारी) है। वहीं, भीतर तक प्रवेश करने और चुभने के

अर्थ में यह सल्ला (काँटा) है, जिसे निकालना कठिन है। वर्तमान और भविष्य में भय से ग्रस्त होने के कारण यह भव (खतरा) है; मेतम का अर्थ है: यह मेरे लिए। शेष यहाँ स्पष्ट है। निष्कर्ष को भी पहले बताए गए तरीके से ही समझना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी
इति से शुरू होकर, यह समाप्त हो चुका है।

शीत (सीतांच)
108. सीतांच से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था, जिसे सर्दी-जुकाम बहुत होता था। उसने संसार त्याग दिया, संन्यासी बन गया और जंगल में घास-फूस की कुटिया में रहने लगा। लेकिन वह स्थान खुले में होने के कारण शीत ऋतु में ठंडा और ग्रीष्म ऋतु में गर्म रहता था। जिस गाँव में वह भिक्षा माँगता था, वहाँ उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार भिक्षा नहीं मिल पाती थी। पीने का पानी भी मुश्किल से मिलता था। हवा, गर्मी, मक्खियाँ और रेंगने वाले जीव भी उसे परेशान करते थे। तभी उसके मन में यह विचार आया: "यहाँ से लगभग आधा योजन दूर एक समृद्ध स्थान है; वहाँ ये सभी खतरे नहीं हैं। मुझे वहीं जाना चाहिए। आराम से रहकर मैं सुख प्राप्त कर सकूँगा।" फिर उन्होंने मन ही मन सोचा, "भिक्षु ऐसे होते हैं कि वे वस्तुओं के प्रति लोभी नहीं होते। उनके जैसा मन होता है, जिसे वे अपने वश में रखते हैं। वे मन के वश में नहीं आते। मैं नहीं जाऊँगा।" इस प्रकार बुद्धिमानी से विचार करने के बाद वे नहीं गए। इस प्रकार उन्होंने तीसरी बार तक जागृत मन पर बुद्धिमानी से विचार किया और चले गए। इसके बाद वे वहाँ सात वर्ष तक रहे, सही मार्ग पर चलते हुए, मौन बुद्धत्व का ध्यान किया, आनंदमय वाणी का यह श्लोक पढ़ा और नंदकमूल गुफा में चले गए।

108.1. सीतांच की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: शीत दो प्रकार का होता है: एक आंतरिक तत्वों के आघात से और दूसरा बाहरी तत्वों के आघात से। इसी प्रकार ऊष्मा भी होती है। दांश का अर्थ है मक्खियाँ। सरीसपा उन प्राणियों को कहते हैं जो लंबे समय तक जीवित रहते हैं; वे चलते-फिरते रहते हैं। शेष तो स्पष्ट है। निष्कर्ष को भी उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसा कि बताया गया है।
श्लोक पर टिप्पणी,
सीतालुका (संवेदनशील) से शुरू
ठंड) समाप्त हो गई है।

हाथी (Nāgo va)
109. 'नागो वा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में एक राजा ने बीस वर्षों तक अपने राज्य पर शासन किया, उसकी मृत्यु हो गई, उसे बीस वर्षों तक निरयण में रखा गया, वह एक हाथी के गर्भ से उत्पन्न हुआ, उसका शरीर कमल के रंग का, विशाल और गठीला हो गया, उसका सिर एक विशाल हाथी जैसा था। हाथी के बच्चे उसके द्वारा तोड़ी और गिराई गई शाखाओं के टुकड़ों को खा जाते थे। जब वह पानी में कूदता था तो मादा हाथी उसे कीचड़ से लपेट देती थीं। सब कुछ पालीलेय्यक हाथी जैसा था। वह अपने झुंड से विरक्त हो गया और वहां से चला गया। इसके बाद, उसका झुंड उसके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए उसके पीछे गया; यद्यपि उसने तीसरी बार तक प्रयास किया, फिर भी वे उसका पीछा करते रहे। बाद में उन्होंने सोचा, "मेरा पोता बनारस पर राज कर रहा है, क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं अपने पिछले जन्म के बगीचे में चला जाऊं? वहां वह राजा मेरी देखभाल करेगा।" इसके बाद, रात में, जब उनके हाथियों का झुंड सो गया, तो उन्होंने अपने झुंड को वहीं छोड़ दिया और उसी बगीचे में प्रवेश किया। बगीचे के रखवाले ने उन्हें देखा और राजा को हाथी के बारे में बताया; राजा ने कहा, 'मैं हाथी को पकड़ लूंगा' और अपनी सेना से उसे घेर लिया। हाथी राजा की दिशा में ही चल पड़ा। राजा ने कहा, "हाथी मेरी ओर आ रहा है", और एक तीर तैयार करके खड़े हो गए। तब हाथी ने मन ही मन कहा, "यह राजा मुझे तीर मार देगा" और मनुष्य भाषा में कहा, "हे ब्रह्मदत्त! मुझे तीर मत मारो; मैं तुम्हारा दादा हूं।" राजा ने सब कुछ पूछा, "तुम क्या कहते हो?" हाथी ने राजा को अपने पिछले राज्य, नरक में अपने कष्टों और हाथी के गर्भ में अपने जन्म के बारे में भी सब कुछ बताया। राजा ने कहा, "अच्छा है, डरो मत; किसी को भी भयभीत मत होने दो", और हाथी के लिए बाड़ा बनवाया; साथ ही रक्षक और हाथियों के लिए आवश्यक सभी चीजें भी उपलब्ध कराई गईं।

109.1. फिर एक दिन राजा हाथियों के शिविर में गए और सोचने लगे: “इसने बीस वर्षों तक राज किया, नरक में कष्ट भोगा और परिपक्वता के अवशेष के कारण पशु के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। वहाँ भी, अपने झुंड में सहवास के संघर्ष को और सहन न कर पाने के कारण, यह यहाँ आ गया। हाय! समाज में सहवास तो केवल दुख है। केवल एकांत ही परमानंद है।” इसके बाद राजा आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगे और मौन बुद्धत्व का दर्शन करने लगे। जब वे दिव्य आनंद में लीन थे, तब मंत्री उनके पास आए, प्रणाम किया और कहा: “हे महान राजा! अब जाने का समय हो गया है।” तब उन्होंने उत्तर दिया: “मैं अब राजा नहीं हूँ,” और पहले की तरह ही इस श्लोक का पाठ किया। यह श्लोक सांसारिक अर्थ के संदर्भ में स्पष्ट है।

109.2. हालांकि, महत्वपूर्ण व्याख्या यह है:- व्याख्या वास्तव में अर्थ की शुद्धता पर आधारित है, न कि सुनी-सुनाई बातों पर। जिस प्रकार यह हाथी, कुलीन लोगों (आरिया) को प्रसन्न करने वाली प्रथाओं में प्रशिक्षित होकर वश में हो जाता है, जंगली मैदान में नहीं जाता; यही व्याख्या है; वैकल्पिक रूप से, यह जानवर नाग (हाथी) है क्योंकि इसका शरीर बड़ा है। इस प्रकार, निश्चित रूप से, मैं भी, श्रेष्ठ लोगों (आरिया) को प्रसन्न करने वाले उपदेशों में विनम्रतापूर्वक प्रशिक्षित होकर, जंगली मैदान में न जाकर, अपराध न करके, इस पृथ्वी पर फिर से न आकर, या गुणमय शरीर की महानता के कारण, हाथियों के झुंड से बचकर, अकेले विचरण के सुख के साथ, यथाभिरन्तं विहारम् अरञ्ञे एके केरे खग्गविसाणकप्पो (जंगल में जब तक चाहे, गैंडे के सींग की तरह अकेले विचरण करना चाहिए); निश्चित रूप से, मैं भी, इस प्रकार समाज से बचकर, गैंडे के सींग की तरह अकेले विचरण करता हूँ, जब तक चाहे जंगल में अकेले रहने के आनंद के साथ; जिस भी प्रकार से मुझे सुख मिलता है, मैं उसी प्रकार से इच्छा करता हूँ, या जितना मुझे सुख मिलता है, उतना ही जंगल में रहने की इच्छा करता हूँ; इस प्रकार, यही अर्थ है। जिस प्रकार यह व्यक्ति, अपनी सुस्थापित पीठ के कारण, निश्चित रूप से संजातक्खन्ध (उचित रूप से निर्मित पीठ) है, उसी प्रकार मैं भी अपने असेख (उत्तर-शिक्षार्थी धारा-विजेता) के उपदेशों के विशाल भंडार के कारण संजातक्खन्ध (उचित रूप से निर्मित पीठ) बनूँगा। जिस प्रकार यह व्यक्ति पद्म (कमल के समान) है, या तो अपने शरीर के कमल के समान होने के कारण या कमल (पदुम) प्रजाति के हाथी के परिवार में जन्म लेने के कारण। निश्चित रूप से, मैं भी इसी प्रकार कमल के समान (पदुम) बनूँगा, या तो कमल (पदुम) के समान सरल स्वभाव से, या श्रेष्ठ (आर्य) जन्म के कमल (पदुम) में जन्म लेने के कारण। जिस प्रकार यह व्यक्ति अपने सामर्थ्य, शक्ति आदि से असीम (उलारा) है, उसी प्रकार मैं भी असीम (उलाराका) बन जाऊँगा, चाहे शुद्ध शारीरिक आचरण आदि से, या उपदेश, मानसिक दृढ़ता (समाधि), गहन ज्ञान आदि से। ऐसा सोचते हुए, मैंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया और मौन बुद्धत्व प्राप्त किया।
श्लोक पर टिप्पणी,
नाग (हाथी) से शुरू होने वाला
समाप्त हो गया है।

. . . .

अनुपयुक्त स्थान (Aṭṭhāna Tama)

110. 'अत्थाना तम' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के राजा का पुत्र, यद्यपि वह अभी छोटा ही था, संन्यास लेने की इच्छा से अपने माता-पिता से अनुमति माँगी। उसके माता-पिता ने उसे मना कर दिया। मना किए जाने के बावजूद, उसने लगातार आग्रह किया और कहा, "मैं संन्यास लेकर संन्यासी बनूँगा।" तब उसके माता-पिता ने उसे वही सब बताया जो पहले एक धनाढ्य के पुत्र को बताया गया था, और अपनी सहमति दे दी। उन्होंने उसे यह भी बताया कि संन्यासी बनने के बाद उसे केवल राज उद्यान में ही रहना चाहिए। पुत्र ने वैसा ही किया। उसकी माता, बीस हजार नर्तकियों से घिरी हुई, सुबह-सुबह राज उद्यान जाती, अपने पुत्र को चावल का दलिया, समय-समय पर ठोस भोजन आदि पीने को देती, दोपहर तक उससे बातचीत करती और फिर शहर में प्रवेश करती। उसके पिता दोपहर में आते, उसे नरम भोजन देते, स्वयं भी खाते, दिन भर उससे बातें करते, शाम को उसकी देखभाल के लिए लोगों को नियुक्त करते और फिर शहर चले जाते। इस प्रकार, राजा का पुत्र दिन-रात बिना किसी एकांतवास के रहता था।

110.1. उस समय, वास्तव में, नन्दमूल गुफा में आदिचबंधु (सूर्य के संबंधी) नामक एक मौन बुद्ध निवास करते थे। चिंतन करने पर, उस मौन बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार देखा: “यह युवक त्याग नहीं कर सका; यह अपने बंधनों से मुक्त नहीं हो सका।” इसके बाद उन्होंने आगे विचार किया: “क्या वह वास्तव में अपने स्वभाव से ही विरक्ति प्राप्त करेगा या नहीं?” तब, जब मौन बुद्ध को यह ज्ञान हुआ कि स्वाभाविक रूप से विरक्ति प्राप्त करने में अत्यंत समय लगेगा, तो उन्होंने मन ही मन कहा: “मैं उसे चिंतन का विषय दूंगा

(आरम्मणम्)", और पत्थर की शिला (मनोशिला) से उठकर बगीचे में खड़े हो गए। राजचरित्रियों ने उन्हें देखा और राजा को इस प्रकार सूचित किया: "हे महाराज! मौन बुद्ध आ गए हैं।" राजा ने मन ही मन कहा, "अब मेरा पुत्र मौन बुद्ध के साथ बिना ऊबे रहेगा।" यह सुनकर राजा प्रसन्न हो गया और आदरपूर्वक मौन बुद्ध की सेवा करने लगा। उसने मौन बुद्ध से वहाँ रहने का अनुरोध किया और उनके लिए एक झोपड़ी, दिन का निवास, सैरगाह आदि बनवाकर उन्हें रहने के लिए भेंट कर दी। वहाँ रहते हुए, एक दिन मौन बुद्ध को अवसर मिला और उन्होंने युवा राजकुमार से पूछा, "तुम कौन हो?" राजकुमार ने उत्तर दिया, "मैं संन्यासी हूँ।" तब राजकुमार ने कहा, "क्या संन्यासी ऐसे नहीं होते?" फिर जब उन्होंने पूछा, "आदरणीय महोदय! वे कैसे हैं? मैं उनके लिए उपयुक्त क्यों नहीं हूँ?", तो मौन बुद्ध ने उत्तर दिया, "तुम्हें अपनी अनुपयुक्तता का एहसास नहीं है; क्या तुम्हारी माता सुबह-सुबह बीस हज़ार स्त्रियों के साथ आकर बगीचे को अपवित्र नहीं कर देतीं? क्या तुम्हारे पिता भी दोपहर में बड़ी संख्या में सैनिकों के साथ और रात भर अपने सेवकों के दल के साथ ऐसा ही नहीं करते? संन्यासी, अर्थात्, तुम्हारे जैसे नहीं होते; वे ऐसे ही होते हैं।" इस प्रकार उत्तर देने के बाद, मौन बुद्ध ने अपनी जादुई शक्ति से उन्हें वहीं खड़े-खड़े हिमवंता (हिमालय) क्षेत्र में एक और मठ दिखाया। वहाँ उन्होंने मौन बुद्धों को देखा, कुछ रेलिंग के पास खड़े थे, कुछ इधर-उधर टहल रहे थे, कुछ रंगाई कर रहे थे, कुछ सिलाई कर रहे थे इत्यादि। उन्होंने पूछा, "आप उस मठ में क्यों नहीं जाते? भिक्षु भी आपसे सहमत हैं।" मौन बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हाँ! भिक्षु सहमत हैं; त्याग के समय से ही भिक्षुओं को अपने उद्धार के लिए प्रयास करने और अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान पर जाने का अवसर प्राप्त होता है; यही उचित है।" ऐसा उत्तर देकर मौन बुद्ध आकाश में खड़े हो गए और लगभग आधा श्लोक पढ़ा, "अत्थाना तं संगणिकारतस्स, यं फस्सये समयिकं विमुत्तं", और देखते ही देखते आकाश से नन्दमूल गुफा की ओर चले गए। मौन बुद्ध के जाने के बाद, वे अपनी पत्तियाँ-कुटिया में प्रवेश कर लेट गए। पहरेदार भी मन ही मन सोचने लगा, "युवक राजकुमार सो रहा है; अब वह कहाँ जाएगा?", और वह भी लापरवाह होकर सो गया। पहरेदार की लापरवाही की स्थिति को जानते हुए,उन्होंने अपना कुंड और वस्त्र लिया और जंगल में प्रवेश किया। वहाँ रहकर, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और मौन बुद्धों के स्थान पर गए। वहाँ, जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने यह उपलब्धि कैसे प्राप्त की, तो उन्होंने मौन बुद्ध आदिच्चबंधु द्वारा कहे गए लगभग आधे श्लोक को पूर्ण रूप में रचित करके सुनाया।

110.2. उस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है:- अट्ठान तम का अर्थ है कि वह स्थान उचित नहीं है; वह उचित नहीं है; वह नहीं किया जाना चाहिए; यही कथन है। "अरिया-सच्चान दस्सनम्" आदि अभिव्यक्तियों की तरह, यहाँ भी संगत अनुनासिक (या निग्घिता) का लोप किया गया है। संगणिकारतस्स का अर्थ है वह व्यक्ति जो समाज में आनंद लेता है। यम यहाँ एक साधनवाचक शब्द है, जैसे कि "यम हिरीयति हिरीयितब्बेना" आदि। फस्सये का अर्थ है: प्राप्त करेगा। सामयिकम् विमुत्तम् का अर्थ है सांसारिक समाधि की प्राप्ति। वास्तव में, उस प्राप्ति को सामयिक विमुक्ति (स्वयं द्वारा मुक्ति) कहा जाता है क्योंकि बार-बार एकाग्रता के समय भी संबंधित व्यक्ति स्वयं ही इससे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। वह मुक्ति स्वयं द्वारा प्राप्त की जाती है। वह स्थान नहीं है; जो समाज में आनंद लेता है, उसके लिए वह कारण नहीं होता जिससे वह मुक्ति प्राप्त कर सके; अतः मौन बुद्ध आदिच्चबंधु के इस कथन का पालन करते हुए, मैंने समाज में आनंद का त्याग किया, अपने जीवन को विवेकपूर्ण ढंग से व्यवस्थित किया और अपनी मुक्ति प्राप्त की; इस प्रकार मौन बुद्ध ने उत्तर दिया। शेष बात तो इसी प्रकार है।

श्लोक पर टिप्पणी,

अत्हाना से शुरू होकर

समाप्त हो गया। दूसरा अध्याय समाप्त हो गया है।

. . . .

राय का भटकना (दित्तिविसुकानि)

111. "दिष्टिविसुकानि" से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के एक राजा, जो एकांतवास में गए थे, ने इस प्रकार सोचा: "जिस प्रकार शीतलता के प्रतिकर्षण के रूप में गर्म और इसी प्रकार की वस्तुएँ होती हैं, क्या वास्तव में इसी प्रकार विकास (या पुनर्जन्म के चक्र) के प्रति घृणा के रूप में अवक्रमण होता है या नहीं?" उन्होंने अपने मंत्रियों से पूछा: "क्या आप अवक्रमण (या पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति) (विवत) को जानते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे महाराज, हम इसे जानते हैं।" राजा ने पूछा कि यह क्या है। तब मंत्रियों ने शाश्वतवाद (ससता) और शून्यवाद (उच्छेद) जैसे विचारों पर उसी प्रकार चर्चा की, जैसे "संसार सीमित है, इत्यादि।" राजा ने मन ही मन कहा, "ये लोग नहीं जानते; ये सब झूठे सिद्धांत हैं।" उसने स्वयं ही इनकी अनुचितता और अनुपयुक्तता को देखा और सोचा, "पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति (या अवरोहण) है, जो विकास (या पुनर्जन्म के चक्रों) का विपरीत है; इसे खोजना चाहिए।" उसने

अपना प्रभुत्व त्याग दिया, संन्यासी बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और मौन बुद्धत्व की कल्पना की। उसने मौन बुद्धों के बीच आनंदमय वाणी के इस श्लोक और व्याख्यात्मक श्लोक का पाठ किया।

111.1. इसका अर्थ यह है:- दिष्टिविसुकानि (विचारों का टेढ़ापन) है: बासठ विधर्मी विचार। वे टेढ़े-मेढ़े हैं क्योंकि उनका उद्देश्य सही मार्ग और सही दृष्टिकोण को विकृत करना, भेदना और उसके विरुद्ध होना है; इस प्रकार, ये मतों का भटकाव (या दृष्टिकोण का विकृति; या स्वयं दृष्टिकोण ही विकृति है और इसलिए यह मतों का भटकाव है)। उपतिवत्तो का अर्थ है: अंतर्दृष्टि के मार्ग से पार हो जाना। पत्तो नियम का अर्थ है नरक में दंड के लिए उत्तरदायी न होने और मौन बुद्धत्व के पूर्ण ज्ञान में अपना लक्ष्य (या उद्देश्य) प्राप्त करने के कारण निश्चित अवस्था प्राप्त करना; या मोक्ष का पहला चरण (पठम मार्ग), जिसे मोक्ष का धर्मी मार्ग माना जाता है। इस हद तक पहले मार्ग की प्राप्ति के लिए जो कुछ भी किया जाना है और उसके फलस्वरूप प्राप्त होने की बात की गई है। अब पठिलद्धमग्ग का अर्थ है: इससे, यह मोक्ष के शेष चरणों (मार्ग) के फलस्वरूप प्राप्त होने की ओर इशारा करता है। उपपन्ननोम्ही का अर्थ है: मैं एक हूँ, मौन बुद्धत्व के ज्ञान से उत्पन्न। इससे फल (फल) दिखाया गया है। अनञ्ञनेय्यो का अर्थ है: एक दूसरों के यह कहने पर कि 'यही सत्य है', हमें उनका मार्गदर्शन नहीं लेना चाहिए। इससे आत्मज्ञान या मौन बुद्धत्व की अवस्था प्रकट होती है। या, यह दर्शाता है कि जब मौन बुद्धत्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तब दूसरों के मार्गदर्शन जैसी कोई बात नहीं रह जाती, और मन की शांति (समथा) तथा आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से स्वयं ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। दिष्टिविसुकानि उपातिवत्तो इस नियमम् पत्तो, आरंभिक मार्ग से सिद्ध अवस्था प्राप्त करना; फल के ज्ञान से फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, फलान्गगो, स्वयं द्वारा प्राप्त ज्ञान; यह सब स्वयं द्वारा ही सिद्ध हुआ; इस प्रकार, व्यक्ति अनञ्ञनेय्यो था, दूसरों द्वारा निर्देशित नहीं।

बाकी बातों को भी इसी तरह समझना होगा।
श्लोक पर टिप्पणी,
दित्थिविसुका से शुरू होकर,
समाप्त हो गया है।
लोभ से मुक्त (निल-लोलुपा)
112. निलोलूपा से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के राजा के शाही रसोइए ने एक स्वादिष्ट, मीठा और देखने में सुंदर व्यंजन बनाया और राजा को परोसते हुए मन ही मन कहा, "शायद राजा मुझे इनाम में कुछ देंगे।" उस व्यंजन की महज़ सुगंध ने ही राजा के मन में खाने की इच्छा जगा दी; उसके मुँह में लार आ गई। जैसे ही व्यंजन का पहला निवाला राजा के मुँह में गया, उसकी सात हज़ार नसें अमृत से भर उठीं। रसोइए ने सोचा, "अब राजा मुझे देंगे; अब राजा मुझे देंगे।" राजा ने भी सोचा कि रसोइया सम्मान का पात्र है। व्यंजन का स्वाद चखने के बाद भी राजा ने कुछ नहीं कहा, कहीं ऐसा न हो कि रसोइए को इनाम देने से उसकी बदनामी हो जाए और यह धारणा बन जाए कि राजा लालची है और भोग-विलास में डूबा हुआ है। इस तरह रसोइए ने राजा के भोजन समाप्त होने तक सोचा, “राजा अब देंगे, अब देंगे।” लेकिन राजा ने फटकार के डर से कुछ नहीं कहा। तब रसोइए ने टिप्पणी की, “मुझे लगता है, इस राजा को खाने-पीने की समझ नहीं है।” अगले दिन रसोइए ने एक अप्रिय व्यंजन परोसा। उसे खाने पर, यद्यपि राजा को यह पता था, “अरे! आज तो रसोइए को बर्खास्त कर देना चाहिए”, फिर भी उसने पहले की तरह ही इस मामले पर विचार किया, लेकिन फटकार के डर से कुछ नहीं कहा। तब रसोइए ने सोचा, “राजा को न तो अच्छे का ज्ञान है, न बुरे का”, और उसने अपने सारे खर्चे (परिब्बगम) लगाकर, जो कुछ भी पकाया, राजा को भेंट कर दिया। राजा को घृणा हुई और उसने मन ही मन कहा, “सचमुच! लालच तो लाजवाब है! मैं, जो बीस हजार नगरों का शासक हूँ, इस रसोइए के लालच के कारण एक वक्त का भरपेट भोजन भी नहीं कर पाता।” उसने अपना राज्य त्याग दिया, संन्यासी बन गया, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया और मौन बुद्धत्व की कल्पना की। उसने उपरोक्त शैली में इस श्लोक का पाठ किया।

112.1. निल्लोलुपो का अर्थ है लोभ रहित होना। जो कोई भी स्वाद की लालसा से ग्रस्त होता है, वह अत्यधिक लोभी होता है और बार-बार लोभ करता है; इसलिए उसे बहुत लोभी (लोलुपा) कहा जाता है। अतः, इसे त्यागने से वह लोभ से मुक्त (निल्लोलुपो) हो जाता है; ऐसा कहा गया है। निक्कुहा का अर्थ है: जिसके पास छल के तीनों अवसरों में से कोई भी नहीं है, उसे पाखंड से मुक्त (निक्कुहा) कहा जाता है। इस श्लोक में, हालांकि, स्वादिष्ट भोजन आदि पर आश्चर्यचकित होने के कारण छल से मुक्ति का अर्थ है। निप्पिपासा का

अर्थ है: पीने की इच्छा प्यास (पिपासा) है; इसका न होना प्यास से मुक्ति (निप्पिपासा) है; मीठे व्यंजन के लोभ के साथ खाने की इच्छा से परहेज करना; ऐसा अर्थ है। निम्मक्खो का अर्थ यहाँ इस प्रकार है: पाखंड (मक्खा) दूसरों के गुणों को नष्ट करने से पहचाना जाता है; इसके अभाव के कारण व्यक्ति पाखंड से मुक्त (निम्मक्खो) हो जाता है। उन्होंने यह बात रसोइए के पाखंड के संदर्भ में कही, जबकि वे स्वयं गृहस्थ थे। निद्धान्त***(पृष्ठ 328) का अर्थ यहाँ इस प्रकार है: अपने स्वयं के कर्मों में आनंद न होने के कारण, जिनमें से तीन काम (राग) से शुरू होते हैं और तीन शारीरिक बुरे कर्मों से शुरू होते हैं, दूसरों के कर्मों में आनंद न मिलने के कारण और साथ ही अत्यंत घृणित होने के कारण, यह मूलभूत दोष (कसव) उत्पन्न करता है; इस प्रकार इसे समझा जाना चाहिए। जैसा कि बुद्ध ने कहा:

तो, वे तीन मूलभूत दोष क्या हैं?
(कसाव)? कामवासना का मूल दोष (राग)
नफरत का मूल दोष, मूल दोष
भ्रम की कमियाँ। ये तीन मूलभूत कमियाँ हैं।
क्या दोष भी? शरीर का मूल दोष,
भाषण की मूलभूत त्रुटि, मूलभूत त्रुटि
मन का"।

112.2. पाँच मूलभूत दोषों के निष्कासन के कारण, और उन सभी मूलभूत दोषों के मूल भ्रम के निष्कासन के कारण, वह व्यक्ति है जिसने स्वयं को भ्रम के मूलभूत दोष से शुद्ध कर लिया है। दूसरों में, लोभ से मुक्त होकर, कामवासना (राग) के मूलभूत दोष का निष्कासन, पाखंड से मुक्त होकर, घृणा के मूलभूत दोष का निष्कासन भी पूर्ण हो जाता है। निरासयो वह है, जिसकी लालसा (तन्हा) अनुपस्थित है। सब्बलोक भावित्या पूरे विश्व में है: तीनों लोकों में, या इंद्रियों के बारह निवासों में, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की लालसा से रहित होकर, इस प्रकार, इसका अर्थ है। शेष को भी उपरोक्त तरीके से ही समझा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, श्लोक के तीन चरणों का पाठ करने के बाद भी, एको चारो, व्यक्ति को अकेले घूमने में सक्षम होना चाहिए अत: इस तरह से भी यहाँ संबंध स्थापित किया जाना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी,
निलोलूपा से शुरू होकर, इसमें
समाप्त हो गया।
पापम सहायम (बुरा साथी)
113. 'पापम सहायम' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के एक राजा अपने भव्य राजसी वैभव और सामर्थ्य के साथ अपने शहर की परिक्रमा कर रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि लोग पुराने धान, अनाज आदि को अन्न भंडार से बाहर निकाल रहे हैं। उन्होंने अपने मंत्रियों से पूछा, "हे मंत्रियों! यह क्या है?" मंत्रियों ने उत्तर दिया, "हे महाराज! अब धान आदि की नई फसलें उगेंगी; उनके लिए जगह बनाने के लिए ये लोग धान आदि की पुरानी फसलें फेंक रहे हैं।" राजा ने फिर पूछा, "हे मंत्रियों! यह कैसे है? क्या महिलाओं के निवास (इत्थागार), सेना (बालकाय) आदि के प्रति कर्तव्य पूर्ण रूप से निभाए गए हैं?" उत्तर मिला, "हे महाराज! हाँ, यह पूर्ण रूप से निभाया गया है।" राजा ने आदेश दिया, "तो फिर, हे मंत्रियों! दानघर बनवाओ; मैं दान दूंगा; इन धान को सड़ने और बर्बाद होने न दो।" तब एक मंत्री, जो विधर्म में लिप्त था, ने राजा को यह कहते हुए मना किया: "हे महाराज! दान देना जैसी कोई बात नहीं होती" और अंत में कहा: "मूर्ख और बुद्धिमान, दोनों ही जन्म-जन्म के चक्र में लीन होकर दुखों का अंत करते हैं।" दूसरी और तीसरी बार भी, जब राजा ने अन्न भंडार को लूटा जाते देखा, तो उसने वैसा ही आदेश दिया। उस मंत्री ने तीसरी बार भी राजा को मना करते हुए कहा: "हे महाराज! दान देना मूर्खों का सिद्धांत है" इत्यादि। राजा व्याकुल होकर बोला: "हाय! मैं अपनी संपत्ति भी दान नहीं कर सकता; इन दुष्ट साथियों का मेरे लिए क्या लाभ?", उसने अपना राज्य त्याग दिया, संन्यासी बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और मौन बुद्धत्व का दर्शन किया। उसने उस दुष्ट साथी को फटकारते हुए आनंदमय उद्घोषणा का यह श्लोक पढ़ा।

113.1. इस श्लोक का संक्षिप्त अर्थ यह है:- एक व्यक्ति दुष्ट है, क्योंकि वह दस प्रकार के बुरे दुराचारों से ग्रस्त है; एक व्यक्ति दूसरों का भी नुकसान देखता है; शारीरिक दुराचार आदि में वह बुराई पर तुला रहता है; अच्छे परिवार के युवक को उससे पूरी तरह बचना चाहिए, क्योंकि वह बुरा साथी है; क्योंकि वह दूसरों का नुकसान देखता है और बुराई पर तुला रहता है। उससे किसी भी प्रकार से संगति नहीं

रखनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के प्रभाव में है, तो पूछा जाता है: 'क्या किया जा सकता है?' 'परमंत' का अर्थ है: 'परमंत', यानी दुराचार के प्रभाव में इधर-उधर भटकना; यही अर्थ है। पमत्तम वह है जिसका मन इंद्रिय सुखों में लीन (वोस्सत्था) हो, या जो पुण्य कर्मों से रहित हो। ऐसे साथी की सेवा नहीं करनी चाहिए, उसके साथ संगति नहीं रखनी चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए। किसी भी हालत में, गैंडे के सींग की तरह अकेले ही भटकना चाहिए।
पापसहाय से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या समाप्त हो गई है।
बहुसुतम (बहुत ज्ञान)
114. बहुसुतम से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि पूर्व में, बुद्ध कस्सपा के युग में, आठ मौन बोधिसत्व संन्यासी बन गए, उन्होंने आने-जाने का कर्तव्य पूरा किया और स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया; इस प्रकार, यह आरंभ है, शेष सब कुछ अनवज्जभोजी से शुरू होने वाले श्लोक के संबंध में कही गई बातों के समान ही है। हालाँकि, अंतर यह है: राजा ने मौन बुद्धों को बैठने के लिए कहकर पूछा: "आप सब कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया: "हे महाराज! हम बहुसुतम (महज्ञ) कहलाते हैं।" राजा प्रसन्न हो उठा और मन ही मन कहने लगा, "मेरा नाम सूत ब्रह्मदत्त है; मैं विद्या से संतुष्ट नहीं होता; अब मैं इनके समक्ष विभिन्न विधियों से धर्म का उपदेश सुनूंगा।" उसने उन्हें अर्पण किया, उनका सत्कार किया और भोजन ग्रहण कराया। भोजन समाप्त होने पर वह उन भिक्षुओं में सबसे वरिष्ठ के समक्ष बैठ गया और उनसे निवेदन किया, "आदरणीय महोदय! कृपया धार्मिक प्रवचन दीजिए।" वरिष्ठ मौन बुद्ध ने यह कहते हुए उठ खड़े हुए, "हे महाराज! आप सुखी हों; आप कामवासना से मुक्त हों।" राजा ने मौन बुद्धों को अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करते हुए मन ही मन कहा, "यह थेरा अधिक विद्वान नहीं है; दूसरा थेरा शायद अधिक विद्वान हो; कल मैं उनके विविध धर्म उपदेश सुनूंगा।" इस प्रकार राजा ने एक-एक करके सभी को आमंत्रित किया, जब तक कि अंतिम मौन बुद्ध के उपदेश देने का समय नहीं आ गया। वे सभी भी अलग-अलग तरीके से एक-एक श्लोक का एक-एक चरण पढ़कर उठ खड़े हुए और शेष भाग, पहले मौन बुद्ध के समान, इस प्रकार पढ़ा: "आप क्रोध से मुक्त हों; आप भ्रम से रहित हों; आपका कोई आवागमन न हो; आपका कोई अस्तित्व न रहे; आपके पुनर्जन्म के चक्र समाप्त हो जाएं; आपका पुनर्जन्म का कोई आधार न रहे; आपकी तृष्णा (तन्हा) का नाश हो जाए।"

114.1. तब राजा ने उनके कथन का कारण जानने का प्रयास किया और कहा, "ये थेरा कहते हैं कि 'हम बहुत विद्वान हैं', लेकिन उनका प्रवचन इतना विविध है; इन थेराओं का क्या अर्थ है?" फिर, उनके कथन "तुम्हारी कामवासना (राग) का नाश हो" की जाँच करने पर राजा को यह ज्ञान हुआ: "जब कामवासना नष्ट हो जाती है, तो घृणा, मोह और अन्य प्रकार के दुराचार भी नष्ट हो जाते हैं" और वह प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगा, "ये भिक्षु बिना किसी व्याख्या के भी बहुत विद्वान हैं। जैसे, जब कोई व्यक्ति अपनी उंगली से विशाल पृथ्वी या आकाश की ओर इशारा करता है, तो वह केवल उंगली के आकार का स्थान ही नहीं होता; वहीं दूसरी ओर, वास्तव में, पूरी पृथ्वी और पूरा आकाश ही दिखाया जाता है; उसी प्रकार, जब ये थेरा क्रमशः किसी एक पदार्थ की ओर इशारा करते हैं, तो ऐसा होता है कि असीमित पदार्थ की ओर इशारा किया जाता है।" इसके बाद, राजा ने मन ही मन कहा: निश्चय ही, मैं भी उन्हीं के समान बहुत विद्वान बनूंगा, उन थेरों के समान विद्वान बनने की इच्छा रखते हुए, उन्होंने अपनी संप्रभुता त्याग दी, संन्यासी बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया।

114.2. इस श्लोक का संक्षिप्त अर्थ यह है: बहुस्सुतम, अत्यधिक ज्ञान; अत्यधिक ज्ञान दो प्रकार का होता है: सैद्धांतिक साहित्य में अत्यधिक ज्ञान, तीनों पिटकों के अर्थ को भलीभांति समझना, और सही मार्ग, उनके फल और उच्चतर ज्ञान को प्राप्त करके गहन अनुभूति प्राप्त करना। धम्मधरो, धर्मग्रंथों में वर्णित सिद्धांतों का ज्ञाता होता है। उलारा, महान (या श्रेष्ठ) वह होता है जो श्रेष्ठ शारीरिक, वाणी और मानसिक क्रियाओं से संपन्न होता है। पाटिभानवा, बुद्धिवान, पिटकों के ज्ञान में निपुणता और अतिशयता दोनों रखता है। वह प्रश्न-प्रबंध में भी निपुण होता है, यदि अर्थ और ज्ञान, विशेषताओं, औचित्य और अनुचितता पर प्रश्न करने की क्षमता उसमें निपुण हो। यदि उसने दृष्टि मार्गों आदि का गहन ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो वह सिद्धि में तत्परता का स्वामी है। बहुस्सुतम धम्मधरम भजेत मित्तम उलारम पटिभाणन्तम का अर्थ है: ऐसे महान (या श्रेष्ठ) मित्र की सेवा करनी चाहिए, जो बहुत विद्वान, धर्म का श्रोता और तत्परता का स्वामी हो। इसके बाद, अनेक पहलुओं में अनेक कल्याण प्राप्त करने के बाद, जैसे कि:
स्वयं का कल्याण, दूसरों का कल्याण और दोनों का कल्याण, या उस शक्ति के कारण वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए उच्च कल्याण के दृष्टिकोण से। फलस्वरूप, "क्या मैं वास्तव में अतीत में विद्यमान था?" आदि जैसे संदेहों को दूर करके, व्यक्ति वह बन जाता है जिसने संदेह के नाश के बाद जो करना चाहिए वह किया है, यानी गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी,

बहुसुतम से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।
खेलकूद का आनंद (खीददम रति)...(विभूषा) अलंकरण

115. खीदम रति से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि बनारस में, विभूषाक ब्रह्मदत्त नामक राजा ने सुबह जल्दी चावल का दलिया (या चावल का आटा) खाने के बाद, विभिन्न प्रकार के आभूषणों से खुद को सजाया, अपने बड़े दर्पण में अपने पूरे शरीर को देखा, जो भी आभूषण उसे पसंद नहीं था उसे हटा दिया, और दूसरे आभूषण से खुद को सजाया। एक दिन जब राजा इस प्रकार आभूषण पहन रहा था, उसके भोजन का समय दोपहर हो गया। अपने शारीरिक अलंकरण के अधूरे होने के कारण, उसने अपने सिर को कपड़े की चादर से लपेटा, अपना भोजन किया और दिन भर के लिए अपने विश्राम की ओर चल पड़ा। फिर से, वह उठा और जैसा वह पहले कर रहा था, सूर्य अस्त होने लगा। इसी प्रकार उसने दूसरे और तीसरे दिन भी किया फिर, जब वह इस प्रकार श्रृंगार में लीन थे, तो उन्हें पीठ में दर्द हो गया। उनके मन में यह विचार आया: "अफ़सोस! अपनी पूरी शक्ति से स्वयं को सजाते हुए भी, मैं इस श्रृंगार से संतुष्ट नहीं था और मैंने अपने लालच को हावी होने दिया; इसके अलावा, यह, अर्थात् लालच, एक बुरी चीज (धर्म) है, जो व्यक्ति को नरक (अपाय) की ओर ले जाती है; मुझे अब अपने लालच पर नियंत्रण रखना चाहिए।" तब राजा ने अपना राज्य त्याग दिया, संन्यासी बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और इस श्लोक का पाठ किया:-

115.1. वहाँ, खिड्डा और रति दोनों शब्दों की व्याख्या पहले ही की जा चुकी थी। काम (पृष्ठ 334) मूलभूत इंद्रिय सुख का आनंद है। मूलभूत इंद्रिय सुख भी, वास्तव में, आनंद के क्षेत्र में होने के कारण आनंदमय कहे जाते हैं। इस प्रकार, अनलंचरित्वा (बिना सजावट के), इस संसार में क्रीड़ा के आनंद को उचित (या उपयुक्त) न बनाकर; इसे न तो संतोष (तप्पक) मानकर और न ही उत्कृष्ट (सारभूत) मानकर। अनपेक्खमान वह है जिसका स्वभाव लालसा रहित है, जो लोभ रहित है और लालसा से मुक्त है क्योंकि वह इसे धारण नहीं करता। विभूषष्ठाना विरतो सच्चवादी की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: (विभूष) अलंकरण दो प्रकार के होते हैं: गृहस्थ अलंकरण और गृहस्थ अलंकरण। वस्त्र, सिर का आभूषण, माला, इत्र आदि जैसे आभूषण गृहस्थ के आभूषण कहलाते हैं। भिक्षापात्र आदि जैसे आभूषण बेघर के आभूषण कहलाते हैं। आभूषण स्वयं ही आभूषण का क्षेत्र है। इसलिए, तीन प्रकार से आभूषणों से परहेज करके व्यक्ति आभूषण रहित बन सकता है। जो सत्य नहीं है, उसे न कहने के कारण ही व्यक्ति सत्य का वक्ता कहलाता है। अतः, अर्थ को इसी प्रकार समझना चाहिए।
श्लोक पर टिप्पणी,
विभूसत्थाना से शुरू होकर,
समाप्त हो गया है।
पुत्र (पुत्तंच दारम्)

116. पुत्तंचदारम् से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि बनारस में, राजा के पुत्र का राज्याभिषेक कम उम्र में ही हो गया था, और उसने अपने राज्य पर शासन किया। पहले श्लोक के मौन बोधिसत्व की कहानी की तरह संप्रभुता के गौरव का आनंद लेते हुए, एक दिन उसने सोचा: "अपने राज्य पर शासन करते हुए, मैंने बहुतों को कष्ट दिया है; केवल एक आत्मा के भोजन के लिए इस बुरे कर्म से मुझे क्या लाभ है? अब मैं सुख को बढ़ावा देने जा रहा हूँ", उसने संप्रभुता का त्याग कर दिया, संन्यासी बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया

धनाणी (धन) में मोती, माणिक, बेरिल, शंख, क्वाट्र्ज, मूंगा, चांदी, सोना आदि जैसे खजाने शामिल हैं। धनाणी (धान) में सात प्रकार के धान (साली), धान (विही), जौ (यव), गेहूं (गोधुमा), बाजरा (कंगु), सेम (वरक) और कुद्रूसक अनाज, साथ ही दालें और मक्का जैसे अन्य अनाज शामिल हैं। बंधवानी (रिश्तेदार) में चार प्रकार के रिश्तेदार शामिल हैं: सगोत्र संबंधी, कुल संबंधी, मित्र संबंधी और वैज्ञानिक संबंधी। यथाधिकानी (सीमाओं के अनुसार) वे हैं जो प्रत्येक व्यक्ति की सीमा के अनुसार खड़े रहे; शेष का वर्णन ऊपर दिए गए अनुसार ही है।
श्लोक पर टिप्पणी,
puttadāra से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।
आसक्ति (सांगो एसो)

117. सांगो एको से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में पादलोला ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था। वह राजा सुबह-सुबह चावल का दलिया या चावल का आटा खाने के बाद अपने तीन महलों में तीन प्रकार की नर्तकियों को देखता था। तीन प्रकार की नर्तकियां थीं: एक राजा के आने से पहले आती थी, दूसरी राजा के साथ आती थी और तीसरी अपने समय पर आती थी। एक दिन राजा सुबह-सुबह ही युवा नर्तकियों के महल में गया। उन नर्तकियों ने मन ही मन कहा, "चलो राजा का मनोरंजन करें", और उन्होंने इतना मनमोहक नृत्य, गायन और संगीत प्रस्तुत किया जो देवताओं के राजा सक्का की अप्सराओं के समान था। राजा संतुष्ट नहीं हुआ और बोला, "युवा नर्तकियों का यह प्रदर्शन आश्चर्यजनक नहीं है", और वह अधेड़ उम्र की नर्तकियों के महल में गया। उन नर्तकियों ने भी वैसा ही प्रदर्शन किया। राजा को यहाँ भी संतोष नहीं हुआ, इसलिए वह बूढ़ी नर्तकियों के महल में गया। वहाँ भी उन्होंने वही किया। राजा ने देखा कि बुढ़ापे के कारण उनका नृत्य हड्डियों के खेल जैसा लग रहा था, क्योंकि वे उसके दो-तीन राजमंडलों के चक्कर लगा रही थीं। उसने उनका गायन भी सुना जो उसे मधुर नहीं लगा। वह फिर से युवा नर्तकियों के महल में गया और फिर से अधेड़ उम्र की नर्तकियों के महल में गया। वह इसी तरह घूमता रहा, लेकिन कहीं भी संतुष्ट नहीं हुआ और सोचने लगा: "ये नर्तकियाँ मुझे मोहित करने की इच्छा से, देवताओं के राजा सक्का की तरह, पूरी ऊर्जा से नृत्य, गायन और संगीत कर रही हैं। लेकिन फिर भी मुझे कहीं भी संतोष नहीं मिला, बल्कि मेरा लोभ और बढ़ गया। यह लोभ फिर से नरक में जाने का कारण बनेगा (अपायगमनीयो धाम्मो)। अब मैं अपने लोभ पर नियंत्रण करने जा रहा हूँ।" ऐसा सोचकर राजा ने अपनी संप्रभुता का त्याग कर दिया, संन्यासी बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया।

117.1. इसका अर्थ है:- "सांगो एसो" अभिव्यक्ति से अपने स्वयं के आनंद की ओर इशारा किया जाता है। वास्तव में, यही आसक्ति है, जहाँ जीव उस हाथी की तरह आसक्त हो जाते हैं जो कीचड़ में फंस गया हो। परित्तमेत्थ सोख्यम् (यहाँ सुख अल्प है) यहाँ पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के भोग के समय, सुख अल्प है क्योंकि यह निम्न (या नगण्य) है, या तो विपरीत बोध की संभावना के कारण या इंद्रिय अनुभवों के क्षेत्र से संबंधित क्रियाओं में शामिल होने के कारण। यह बिजली की चमक से चमकते बदलते प्रकाश में नृत्य देखने के आनंद की तरह क्षणिक है; इस प्रकार कहा गया है: "अस्थायी (या क्षण भर के लिए)"। अप्पासादो दुःखमेवत्था भिय्यो की व्याख्या यहाँ इस प्रकार की जानी चाहिए: "हे भिक्षुओं! वास्तव में, इन पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाला यह आनंद सुखद है; यही इंद्रिय सुखों का आनंद या तृप्ति है"; इस प्रकार कहा गया है; अर्थात्: "हे भिक्षुओं! इंद्रिय सुखों का क्या दोष है? हे भिक्षुओं! यहाँ, एक अच्छे परिवार का युवक गणना जैसे शिल्प से अपनी जीविका कमाता है"; इस प्रकार, यहाँ दुख इस प्रकार से शुरू हुआ है; इसकी तुलना में, यह पानी की एक बूँद के समान है; फिर, वास्तव में, दुख तो उससे भी कहीं अधिक है, पानी के समान; फिर, चारों महामहासागरों के समान। अतः यह कथन है: "थोड़ा सा सुख देने वाला, परन्तु यहाँ दुख उससे भी कहीं अधिक है"। गालो इत्यादि (यह मछली का कांटा है) आनंद या संतुष्टि को दर्शाते हुए, यह मछली के कांटे की तरह खींचने या बाहर निकालने जैसा है, ये पांच प्रकार के इंद्रिय सुख ऐसे ही हैं। इति ञत्वा मतिमा, ऐसा जानकर, जो बुद्धिमान और ज्ञानी है, वह इस प्रकार जानकर, एको करे खग्गविसानकप्पो, गैंडे के सींग की तरह अकेले भटकना चाहिए, इन सब का त्याग करके।
श्लोक पर टिप्पणी,
संगा से शुरू होकर, समाप्त हो गया है।
जलता हुआ जंगल (संडालयित्वाना)
118. संदालयित्वाना से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में अनिवत्त ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था। वह युद्ध में घिर गया, पराजित हुआ, कोई और काम शुरू किया, उसे पूरा नहीं कर पाया और पीछे नहीं हटा। इसलिए लोग उसे इस रूप में भली-भांति जानते थे। एक दिन वह अपने राजमहल में गया। उस समय वहाँ आग लग गई। वह आग सूखी और हरी घास आदि को जलाती हुई लगातार जलती रही। इसे देखकर राजा ने इसकी स्मृति (पटिभागनिमित्त) में स्मरण किया, "जिस प्रकार यह जलती हुई अग्नि है, ठीक उसी प्रकार ग्यारह प्रकार की अग्नियाँ निरंतर जलती हुई सभी प्राणियों को भस्म कर भयंकर पीड़ा उत्पन्न करती हैं; ठीक उसी प्रकार मैं भी इस अग्नि के समान ही, अपने समस्त पापों (किलेष) को भस्म कर, श्रेष्ठ (आठ प्रकार के) मार्ग के ज्ञान की अग्नि से, इस पीड़ा (दुक्खा) को दूर करने के उद्देश्य से, निरंतर जलता हुआ आगे बढ़ूँगा।" इसके बाद राजा कुछ देर के लिए बाहर गए और उन्होंने नदी में मछुआरों को मछली पकड़ते देखा। एक बड़ी मछली उनके जाल में घुस गई और जाल फाड़कर भाग गई। मछुआरे चिल्ला उठे, "मछली जाल तोड़कर भाग गई।" राजा ने वह आवाज भी सुनी और स्मृति (पटिभाग निमित्त) में स्मरण करते हुए कहा, "निश्चित रूप से, मैं भी श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान से तृप्ति और विधर्म के जाल को फाड़ कर निर्लज्ज होकर आगे बढ़ूँगा।" परिणामस्वरूप, राजा ने अपनी

संप्रभुता का त्याग कर दिया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू कर दिया, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ भी किया।

118.1. उस श्लोक के दूसरे चरण में 'जाला' को धागे से बना जाल कहा गया है। 'अंबु' जल है; क्योंकि यह वहाँ विचरण करता है, इसलिए यह जल-विचरण करने वाला है; यह मछली के लिए प्रयुक्त शब्द है। 'सलिलम्बुचारी' बहते जल में मछली है, या नदी के उस बहते जल में, 'जाल को फाड़कर' (जाल को फाड़कर), जो मछली चली गई थी; इस प्रकार कहा गया है। तीसरे चरण में 'दाद्धम्' को जला हुआ स्थान कहा गया है। जिस प्रकार अग्नि जले हुए स्थान पर वापस नहीं जाती और वहाँ से आगे नहीं बढ़ती, उसी प्रकार श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की अग्नि भी है; यह इंद्रिय सुखों के जले हुए स्थानों पर वापस नहीं जाती, वहाँ से आगे नहीं बढ़ती; इस प्रकार कहा गया है। शेष इसी प्रकार है।

श्लोक पर टिप्पणी,

संदाला से शुरू होकर, है

समाप्त हो गया।

झुकी हुई आँखें (ओक्खित्त-चक्खु)

119. ओक्खित्त-चक्खु से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में चक्खुलोला ब्रह्मदत्त नामक एक राजा, पादोलाला ब्रह्मदत्त की तरह ही नाचती हुई युवतियों को देखने में लीन रहता था। लेकिन अंतर यह था कि असंतुष्ट होकर राजा इधर-उधर भटकता रहता था। किसी नाचती हुई युवती को देखकर वह अत्यंत प्रसन्न हो जाता था और नाचती हुई युवतियों को देखकर अपनी वासना (तन्हा) को बढ़ाता रहता था। कहा जाता है कि नृत्य देखने आई एक गृहस्थ की पत्नी को देखकर राजा की वासना (राग) और भी बढ़ गई। बाद में राजा को पश्चाताप हुआ और उसने मन ही मन कहा, "हाय! इस वासना (तन्हा) को बढ़ाकर मैं नरक में जाऊँगा; अब मैं अपनी इस वासना को वश में करूँगा।" इसके बाद राजा एकांतवासी हो गए, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, अपने पूर्व के आचरण की निंदा की और उस निंदनीय आचरण के विपरीत गुण प्रदर्शित किए।

119.1. ओक्खित्त-चक्खु, यहाँ, आँख नीचे की ओर झुकी हुई है; सात गर्दन की हड्डियों को क्रमानुसार एक के ऊपर एक रखकर, केवल एक जुए की लंबाई तक आगे देखते हुए, यह देखने के उद्देश्य से कि क्या अस्वीकार करना है और क्या स्वीकार करना है; इस प्रकार, यह कथन किया जाता है। जबड़े की हड्डी से हृदय की हड्डी को न टकराना। वास्तव में, इस प्रकार नीचे झुकी हुई आँखों के साथ रहना एक भिक्षु के लिए उचित नहीं है। न च पदलोलो ऐसा उचित नहीं है जैसे किसी का पैर (या टांग) समाज के केंद्र में प्रवेश करने की इच्छा से खुजली कर रहा हो, इस प्रकार: दूसरे से पहले और तीसरे से दूसरे; लंबी यात्रा पर भटकने से परहेज और बिना पीछे हटे भटकना। गुट्टिन्द्रिय छह नियंत्रण शक्तियों (इन्द्रिय) में से है, क्योंकि मन की नियंत्रण शक्ति का यहाँ अलग से उल्लेख किया गया है, शेष बातों के प्रकाश में यह अच्छी तरह से संरक्षित नियंत्रण शक्ति है। रक्खितमानसानो का अर्थ इस प्रकार है: मानस और मानसानो एक ही हैं; ये सचेत मन का प्रतिनिधित्व करते हैं; जिसका मन अच्छी तरह से सँभाला हुआ हो, उसे रक्खितमानसानो कहा जाता है, जिसका सक्रिय मन अच्छी तरह से सँभाला हुआ हो। इस कारण वह किसी भी प्रकार के दुराचार (किलेसा) से प्रभावित नहीं होता, इसलिए उसे रक्खित चित्त (वह व्यक्ति जिसका मन अच्छी तरह से सँभाला हुआ हो) कहा जाता है। अनवस्सुत (कामवासना से मुक्त) का अर्थ है इस अभ्यास के माध्यम से इंद्रियों के इन या उन विषयों (आरम्मण) में दुराचार (किलेसा) से परहेज करना। अपरीदयहमानो, पूरी तरह से न जलने का अर्थ है दुराचार (किलेसा) की आग से पूरी तरह से न जलना। दूसरे शब्दों में, बाहरी रूप से कामवासना का रिसाव न होना और आंतरिक रूप से पूरी तरह से न जलना। शेष जैसा कि ऊपर कहा गया है।

श्लोक पर टिप्पणी,

ओक्खित्तचक्खु से शुरू होकर,

समाप्त हो गया है।

कटे हुए (ओहारयित्वा) ... परिच्छत्तक (अच्छी तरह से पत्तेदार)

120. ओहरायित्वा से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में चातुमासिका ब्रह्मदत्त नाम का एक और राजा था। वह राजा हर चार महीने में अपने राजमहल में आनंद मनाने जाता था। एक दिन, ग्रीष्म ऋतु के मध्य माह में, अपने राजमहल में प्रवेश करते समय, राजा ने द्वार पर एक मूंगा वृक्ष (पारिच्छत्तक कोविलारा) देखा, जो पत्तों और फूलों से लदा हुआ था। उसने एक फूल तोड़ा और अपने राजमहल में चला गया। इसके बाद, मन ही मन सोचते हुए कि "पहला फूल तो राजा ने तोड़ लिया है", एक मंत्री ने भी

फूल तोड़ना शुरू कर दिया। जो लोग फूलों से संतुष्ट नहीं हुए, उन्होंने पत्ते भी तोड़ लिए। वह वृक्ष फूलों और पत्तों से रहित हो गया, और उसका तना नंगा रह गया। शाम को अपने शाही उद्यान से निकलते समय राजा ने उस पत्तेविहीन पेड़ को देखा और मन ही मन सोचा, "इस पेड़ के साथ क्या हुआ है? जब मैं आया था, तब यह पेड़ मूंगे जैसे फूलों से सजा था, और इसकी शाखाएँ हरे-भरे पत्तों से घिरी थीं; अब तो यह फूलहीन हो गया है।" उस ठूंठनुमा पेड़ से कुछ ही दूरी पर राजा ने एक और फूलविहीन पेड़ देखा जो पूरी तरह पत्तों से ढका हुआ था। यह देखकर राजा के मन में यह विचार आया: "यह वृक्ष अपने पुष्पयुक्त शाखाओं के कारण अनेक लोगों के लोभ का शिकार हो गया। इसी कारण यह क्षण भर में ही नष्ट हो गया। परन्तु यह दूसरा वृक्ष लोभ उत्पन्न न करने के कारण यथावत खड़ा है। यह प्रभुत्व भी पुष्पयुक्त वृक्ष के समान ही वांछनीय है। वहीं, संन्यास निर्वस्त्र वृक्ष के समान लोभ उत्पन्न नहीं करता। अतः जब तक यह (पुष्पयुक्त वृक्ष) भी इस निर्वस्त्र वृक्ष की तरह लूटा न जाए, तब तक यह मूंगा वृक्ष भी अपने पत्तों से परिपूर्ण बना रहे; उसी प्रकार मैं भी पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी बन जाऊं।" तब राजा ने अपना प्रभुत्व त्याग दिया, संन्यासी बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया और आनंदमय इस श्लोक का पाठ किया।

120.1. श्लोक के इस भाग का अर्थ, अर्थात्: कासायवच्छो अभिनिक्खमित्वा, घर से बाहर निकलकर पीले वस्त्र धारण करना है; इस प्रकार इसका अर्थ इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। शेष भाग भी पहले ही कहा जा चुका है; इसे समझना संभव है; इसे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है।

श्लोक पर टिप्पणी,
परिच्छत्तक से शुरू होकर,
समाप्त हो गया है।
रसेसु
121. रसेसु से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस का एक राजा अपने राजमहल में स्थित पत्थर की पटिया से बने कमल के सरोवर पर युवा मंत्रियों से घिरा हुआ आनंद ले रहा था। उसके राजमहल के रसोइए ने सभी प्रकार के मांस का सार लेकर एक अत्यंत उत्तम और दिव्य भोजन बनाया और राजा को परोसा। उस भोजन को देखकर राजा को ललचाहट हुई और उसने किसी को कुछ दिए बिना उसे स्वयं खा लिया। सरोवर के पानी में खेलते हुए वह एक अत्यंत विचित्र समय पर बाहर निकला और जल्दी-जल्दी भोजन किया। ऐसा करते समय राजा को अपने साथ भोजन करने वाले किसी भी व्यक्ति की याद नहीं आई। बाद में राजा ने इस प्रकार चिंतन किया: "हाय! मुझसे एक बुरा कर्म हुआ है, क्योंकि मैंने स्वादिष्ट भोजन की लालसा में अकेले ही भोजन किया, सभी लोगों को याद नहीं किया; अब मैं उस लालसा को नियंत्रित करने जा रहा हूँ (इरसतन्हा)।" तब राजा ने अपनी संप्रभुता का त्याग कर दिया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व अभ्यास की निंदा की और उसके विपरीत गुणों को उजागर किया।

121.1. रसेसु, वहाँ, स्वादों में, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों को दर्शाता है, जैसे: खट्टा, मीठा, कड़वा, तीखा, नमकीन, क्षारीय, कसैला इत्यादि। गेधम अकारम का अर्थ है लोभ न करना, (या) अपनी लालसा न जगाना; तान्हा (लालच) को न भड़काना; यही कथन है। अलोलो (लालच से रहित) का अर्थ है विभिन्न स्वादों में इस प्रकार अविचलित रहना: "मैं इसका स्वाद लूँगा; मैं उसका स्वाद लूँगा"। अनञ्जपोसी (दूसरों का पोषण न करने वाला) का अर्थ है उन लोगों से छुटकारा पाना जिनका पोषण किया जाना चाहिए, सह-निवासियों इत्यादि; केवल अपने शरीर का भरण-पोषण करने से संतुष्ट रहना; यही कथन है। दूसरे शब्दों में, जैसे पहले राजमहल में राजा स्वादिष्ट भोजन के लिए स्वयं को लोभित करके दूसरों का पोषण करता था; ऐसा न होने पर राजा लालची हो गया और स्वादिष्ट भोजन के प्रति लोभ करने लगा; उस लालसा (तन्हा) का त्याग करके और भविष्य में लालसा पर आधारित किसी अन्य जीव का पालन-पोषण न करके, वह दूसरों का पोषण न करने वाला बन जाता है; यही कथन है। दूसरे शब्दों में, सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) लाभ के टूटने के कारण उत्पन्न होते हैं; उन किलेसाओं का पोषण न करके, वह दूसरों का पोषण न करने वाला बन जाता है; यही यहाँ अर्थ है। सपादानचारी (क्रमिक रूप से घर-घर घूमना) का अर्थ है बिना विचलित हुए, निरंतर घूमना; घरों के क्रम को छोड़े बिना, बिना किसी अंतराल के भिक्षा-भोजन प्राप्त करने के लिए अमीर और गरीब दोनों परिवारों में प्रवेश करना; यही अर्थ है। Kule Kule appaṭibaddhacitto (मन का किसी परिवार से बंधित न होना) का अर्थ है, राजसी परिवारों आदि में, मन का किसी परिवार से व्यथावश चिपके न रहना; चंद्रमा के समान सदा नवस्थित रहना; यही अर्थ है। शेष का अर्थ उपरोक्त रूप में है।

श्लोक पर टिप्पणी,
रसगेधा से शुरू करते हुए,
समाप्त हो गया।
पाँच बाधाओं का त्याग (पहया पंचवरणानि)
122. 'पहाय पंचवरणानि' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि बनारस में एक राजा था जिसने ध्यान की पहली सफल अवस्था (झान) प्राप्त कर ली थी। अपने झान को विधिवत बनाए रखने के लिए, उस राजा ने अपनी संप्रभुता का त्याग कर दिया, भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व प्राप्त किया, और उपलब्धि की ओर अपने स्वयं के अभ्यास को प्रकाशित करने वाले आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया

122.1. पंचवरनानि, यहाँ केवल पाँच प्रकार की बाधाएँ हैं। उरग सूत्र में इनका विशेष वर्णन है। यद्यपि ये मन को उसी प्रकार अवरुद्ध करती हैं जैसे बादल आदि चंद्रमा और सूर्य को ढक लेते हैं, इसलिए इन्हें मानसिक बाधाएँ कहा गया है; पहाय, इन्हें गहन ध्यान (उपचार) या पूर्ण चिंतन (अप्पना) द्वारा त्याग दिया गया है; यही अर्थ है। उपक्किलेसे का अर्थ है बुरे कर्म जो मन को विभिन्न कष्टों से ग्रसित करते हैं; वतथोपमादिसु, उक्त लोभ इत्यादि। ब्यापनुज्ज का अर्थ है जड़ से उखाड़ दिया गया; स्पष्ट आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के सही मार्ग से त्याग दिया गया; यही अर्थ है। सब्बे का अर्थ है कोई शेष नहीं। अनिस्सितो का कारण निर्वाण के सही मार्ग के प्रथम चरण के द्वारा विधर्म पर निर्भरता का त्याग करना है, जिससे मन की शांति (समथा) और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) प्राप्त होती है। निर्वाण के सही मार्ग के शेष चरणों द्वारा उन प्राथमिक स्नेहदोषों, आसक्ति दोषों; कामवासना आदि को दूर कर दिया जाता है; यही कथन है। वास्तव में, इसी आसक्ति को आसक्ति दोष कहा गया है, जो सद्गुण के विपरीत है। शेष का वर्णन पूर्वोक्त तरीके से किया गया है।
श्लोक पर टिप्पणी,
āvaraṇa से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।
त्याग करने के बाद (विपित्तिकतावन)
123. विपित्तिकत्वन से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि बनारस में एक राजा ने चौथा ध्यान प्राप्त किया था। अपने ध्यान की रक्षा के लिए, उस राजा ने अपनी संप्रभुता का त्याग कर दिया, भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और अपनी उपलब्धि की दिशा में अपने उचित अभ्यास को प्रकाशित करने के लिए आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया

123.1. विपित्तिकत्वन, वहाँ, का अर्थ है पीछे की ओर ले जाना, त्याग देना, छोड़ देना; यही इसका अर्थ है। सुखम् दुःखम् शारीरिक सुख और दुःख है। सोमनसदोमनसम् मानसिक सुख और दुःख है। उपेक्खम्, समभाव, चौथे ध्यान का समभाव है। समथा (सेसतिन) चौथे ध्यान की मानसिक एकाग्रता है। विशुद्धम् नौ विपरीत धम्मों से मुक्त होने के कारण अत्यंत शुद्ध है, जिन्हें पाँच अवरोधों - विचार, खोज, उत्साह और आनंद - के रूप में गिना जाता है; यह अशुद्धता (उपक्किलेसा) से रहित है, शुद्ध सोने के समान; यही इसका अर्थ है।

123.2. इसका अर्थ यह है:- सर्वप्रथम, सुख और दुःख को पीछे छोड़ते हुए; प्रथम ध्यान का आगमन ही दुःख (दुक्खा) है; तृतीय ध्यान का आगमन ही सुख (सुख) है; यही इसका अर्थ है। फिर, पूर्व से पश्चात तक 'च' अक्षर को ले जाते हुए, "सेमनस्सम् देमनस्सन् च विपिष्ठि कट्वाना पुब्बे व, सर्वप्रथम मानसिक सुख और मानसिक दुःख को पीछे छोड़ते हुए"; यही इसका सार है। इसी कारण, चतुर्थ ध्यान के आगमन पर मानसिक सुख और द्वितीय ध्यान के आगमन पर मानसिक दुःख; यही इसका स्पष्टीकरण है। वास्तव में, ये परिस्थितियाँ या विषय अपने स्वभाव (परियया) की दृष्टि से त्यागने योग्य हैं। लेकिन अपरिवर्तनीय दृष्टि से, दुख का पहला ध्यान (दुक्खा), मानसिक अप्रसन्नता का दूसरा ध्यान (मनोबल), आनंद का तीसरा ध्यान (मनोबल), और मानसिक सुख का चौथा ध्यान (मनोबल) त्यागने योग्य विषय हैं। तदनुसार बुद्ध ने कहा: "वह पहले ध्यान में लीन रहता है; यहाँ, दुख की भावना (दुक्खिन्द्रिय) पूरी तरह समाप्त हो जाती है"; इस प्रकार प्रारंभ करते हुए, अभिधम्म के सात ग्रंथों में से पहले ग्रंथ धम्मसंग्रह की टीका अष्टशालिनी (व्याख्याता) में संपूर्ण सत्ता का वर्णन किया गया है। यथा पुब्बे वा (जैसा कि पहले भी कहा गया है): तीनों में, अर्थात् पहले ध्यान में, दुख, मानसिक असंतोष और आनंद को पीछे छोड़ते हुए, उसी प्रकार चौथे ध्यान में मानसिक सुख को पीछे छोड़ते हुए, इस उचित अभ्यास के माध्यम से समभाव, शांति और पवित्रता प्राप्त हुई और वह अकेले विचरण करता रहा; शेष का वर्णन पूर्वोक्त तरीके से ही है।

श्लोक पर टिप्पणी,
vipiṭṭhi से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।
परिश्रम का प्रारंभ (आरद्ध-वीर्यो)
124. 'आरद्ध-वीर्यो' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि एक सीमावर्ती राजा ज्ञान में तो महान था, लेकिन सामर्थ्य में छोटा था और उसकी सेना में केवल एक हजार सैनिक थे। एक दिन उस राजा ने सोचा, "यद्यपि मैं छोटा राजा हूँ, फिर भी अपने ज्ञान के बल पर मैं जंबू द्वीप पर कब्जा कर सकता हूँ।" उसने आसपास के राजा को दूत भेजा और कहा, "सात दिनों के भीतर या तो अपना राज्य मुझे दे दो या मुझसे युद्ध करो।" इसके बाद उस राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाया और कहा, "तुमसे परामर्श किए बिना ही मैंने जल्दबाजी में कार्य किया; ऐसे राजा को ऐसा संदेश भेज दिया; अब क्या किया जाए?" मंत्रियों ने पूछा, "हे महाराज! क्या उस दूत को वापस लौटने के लिए कहना संभव है?" राजा ने उत्तर दिया, "यह संभव नहीं है; वह अवश्य चला गया होगा।" मंत्रियों ने सुझाव दिया, "यदि ऐसा ही है और हमें भी आपके साथ ही नष्ट होना है, तो वास्तव में शत्रु के हथियार से मरना बहुत ही दयनीय होगा; अब, चलो हम एक-दूसरे को मारते हुए मरें; चलो हम खुद को मार डालें और मर जाएं; चलो हम खुद को गला घोंट लें; चलो हम जहर खा लें।" इस प्रकार, सभी मंत्री मृत्यु को गले लगा रहे थे। तब राजा ने कहा, "इन मंत्रियों से मुझे क्या लाभ है? हे मंत्रियों! क्या ये मेरे सैनिक हैं?" तब हजार सैनिक खड़े होकर बोले, "हे महाराज! मैं ही सैनिक हूँ; मैं ही सैनिक हूँ।"

124.1. राजा ने मन ही मन कहा, "मैं इन सैनिकों की परीक्षा लूँगा", और एक विशाल चिता खड़ी करके बोला, "हे मेरे मित्रों! यह मैंने जल्दबाजी में किया है। मेरे मंत्री इसकी निंदा करते हैं; इसलिए मैं स्वयं चिता में प्रवेश करूँगा; मेरे साथ कौन प्रवेश करेगा? किसके साथ मैं अपना प्राण बलिदान करूँगा?" यह सुनकर पाँच सौ सैनिक खड़े हो गए और बोले, "हे महान राजा! हम अग्नि में प्रवेश करेंगे।" तब राजा ने अन्य पाँच सौ सैनिकों से कहा, "मेरे प्रियो! यह पुरुषोचित कार्य नहीं है; यह स्त्रीत्वपूर्ण आचरण है; इसके अतिरिक्त, हमारे महान राजा ने प्रतिद्वंद्वी राजा के पास एक दूत भेजा है। हममें से जो हैं वे उस राजा से लड़ेंगे और उसे मार डालेंगे।" तब राजा ने कहा, "मेरे लिए तुमने अपने प्राण जोखिम में डाले हैं", और चार टुकड़ियों की युद्ध पंक्ति बनाकर स्वयं को सुसज्जित किया, एक हजार सैनिकों की उस सेना से घिरे हुए आगे बढ़े और अपने राज्य की सीमा पर बैठ गए।

124.2. उस प्रतिद्वंद्वी राजा ने भी यह बात सुनकर क्रोधित होकर मन ही मन कहा, "अरे! वह छोटा सा राजा तो मेरे दास का वंशज भी नहीं है।" उसने अपनी सारी सेना लेकर युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। उस छोटे राजा ने अपने प्रतिद्वंद्वी राजा को अपने विरुद्ध आते देखा और अपनी बलवान सेना से कहा, "मेरे पुत्रों! तुम संख्या में कम हो; तुम सब एकजुट हो जाओ, अपनी तलवारें और ढालें उठाओ और सीधे इस राजा के सामने शीघ्रता से अग्रसर हो जाओ।" उन्होंने वैसा ही किया। तब उसकी सेना दो भागों में बँट गई और उन्हें मौका मिल गया। उन्होंने उस राजा को जीवित ही पकड़ लिया और अपने राजा को सौंप दिया, जो वहाँ पहुँच चुका था। राजा ने कहा कि वह स्वयं अपने प्रतिद्वंद्वी को मार डालेगा। प्रतिद्वंद्वी राजा ने उस छोटे राजा से अपने जीवन को बख्शने की विनती की। उस छोटे राजा ने अपने प्रतिद्वंद्वी राजा का जीवन बख्श दिया, उससे अपने प्रति निष्ठा की शपथ ली, उसे अपने वश में कर लिया और उसके साथ दूसरे राजा के पास अग्रसर हुआ। वह उसके राज्य की सीमा पर खड़ा हुआ और यह संदेश भेजा, "या तो अपना राज्य मुझे दे दो या फिर युद्ध।" उस राजा ने यह कहते हुए अपना राज्य त्याग दिया: "मैं एक भी युद्ध लड़ने में सक्षम नहीं हूँ।" इस प्रकार उस छोटे से शासक ने सभी राजाओं को बंदी बना लिया और अंत में बनारस के राजा को भी अपने अधीन करने में सफल रहा।

124.3. एक सौ एक राजाओं से घिरे और जंबू द्वीप के संपूर्ण राज्याभिषेक में राज-प्रशासन करते हुए, पूर्व लघु राजा ने इस प्रकार विचार किया: "पूर्व में, मैं एक लघु राजा था, जो अब अपनी बुद्धि के बल पर जंबूद्वीप के संपूर्ण क्षेत्र का राजा बन गया हूँ? परन्तु मेरी यह बुद्धि तो भौतिक परिश्रम से ही जुड़ी है; यह किसी भी प्रकार से विरक्ति और कामवासना से मुक्ति (विराग) की ओर उन्मुख नहीं है; यदि मैं इस बुद्धि से पारलौकिक सत्य (लोकउत्तर धम्म) की खोज करूँ तो क्या होगा?" इसके बाद, उन्होंने अपना राज्य बनारस के राजा को सौंप दिया, अपनी पत्नी, बच्चों और यहाँ तक कि अपने जिले को भी उनके संरक्षण में सौंप दिया, सब कुछ त्याग दिया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने लगे, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया और अपने परिश्रम की प्राप्ति को प्रकाशित करते हुए आनंदमयी वाणी का यह श्लोक कहा।

124.4. āraddhavīriyo, वहाँ, का अर्थ है: वह व्यक्ति जिसका परिश्रम फल देने लगा है। इससे उन्होंने अपने स्वयं के महान परिश्रम की स्थिति की ओर इशारा किया। निर्वाण को परम लाभ (परमत्थ) कहा जाता है; परमत्थपत्तिया, उस परमत्थ (निर्वाण) की प्राप्ति के लिए; सर्वोत्तम लाभ, परम लाभ की प्राप्ति, परमत्थपत्ति (निर्वाण की प्राप्ति) है। इससे उन्होंने परिश्रम के माध्यम से प्राप्त होने वाले फल को दर्शाया। अलिनाचित्टो (सच्चे मन वाला) का अर्थ है: इसके माध्यम से उन्होंने परिश्रम द्वारा समर्थित अपने मन और मानसिक गुणों की सच्चाई को दर्शाया। अकुसितवुत्ति (कभी आलसी न होने की आदत) से उन्होंने खड़े होने, चलने आदि जैसी मुद्राओं में अपनी शारीरिक दोषरहितता को दर्शाया। दल्हनिकमो (दृढ़ परिश्रम या सहनशीलता); इससे उन्होंने अपने परिश्रम को दर्शाया, जो इस प्रकार प्रकट हुआ: "आदर्श त्वचा और नसें"; क्रमिक प्रशिक्षण या अनुशासन में इस या उस परिश्रम को करते हुए, "उन्होंने उदात्त महान सत्य को शारीरिक रूप से भी देखा"; ऐसा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, इससे उन्होंने निर्वाण के सही मार्ग से जुड़े अपने परिश्रम को दर्शाया। वह परिश्रम भी दृढ़ था, क्योंकि ध्यान विकास (भावना) पूर्ण हो चुका था, और सहनशीलता भी, क्योंकि सभी पहलुओं में विपरीतताओं (या उलटफेरों) का निवारण हो गया था; इसलिए, जिस व्यक्ति में दृढ़ सहनशीलता हो, उसे "दलनिकामा" कहा जा सकता है। थामबलूपपन्नो वह है जिसने मार्ग के समय शारीरिक शक्ति और बौद्धिक शक्ति प्राप्त कर ली हो। दूसरे शब्दों में, वह बलवान शक्ति का स्वामी बन गया; जिसने स्थिर ज्ञान की शक्ति प्राप्त कर ली हो; इस प्रकार, कथन है। इससे उन्होंने परिश्रम के प्रति अपने जुड़ाव को सिद्ध किया, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के साथ अपने परिश्रम के संबंध को स्पष्ट किया। श्लोक के तीनों चरणों की व्याख्या भी पूर्व, मध्य और उच्चतम परिश्रम के संदर्भ में की जानी चाहिए। शेष भाग उपरोक्त प्रकार से है।

श्लोक पर टिप्पणी,

āraddhavīriya से शुरू होकर,

समाप्त हो गया है।

एकांत (पतीसल्लना)

125. पटिसल्लाना से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? इस श्लोक की उत्पत्ति अवरण से शुरू होने वाले श्लोक के समान ही है। इनमें कोई अंतर नहीं है। हालाँकि, इसके अर्थ पर टिप्पणी इस प्रकार है: पटिसल्लाना (एकांतवास) का अर्थ है सत्तसंखार (जीव-जंतुओं के समूह) से दूर होकर एकांतवास करना; एक तरफ जाकर अकेले और शारीरिक रूप से एकांत में रहना; यही इसका अर्थ है। शत्रु को जलाने और इंद्रिय-विषयों के गुणों पर ध्यान करने के कारण ही ध्यान (मानसिक एकांतवास) को ध्यान कहा जाता है। वहाँ, आठ ध्यान संबंधी उपलब्धियों (समापत्ति) को 'झान' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें बाधाओं आदि जैसे शत्रुओं को जलाकर नष्ट करना, साथ ही कसिणा आदि जैसे कर्मष्ठान के चिंतन और ध्यान करना शामिल है। हालाँकि, यहाँ इंद्रिय-विषय पर चिंतन का तात्पर्य है। अरिंचमानो (त्याग न करना) का अर्थ है इस एकांत या झान को इस प्रकार न छोड़ना। धम्मेसु का अर्थ है पाँच स्कंध (खन्ध) आदि जैसे धर्म, जो आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि तक ले जाते हैं; निच्चम (स्थायित्व) का अर्थ है निरंतर, सदा, स्थिर। अनुधम्मचारी का अर्थ है उन कर्मों (धर्म) से संबंधित घटनाओं के साथ या उनसे प्रभावित होकर आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के धर्म का अभ्यास करना। दूसरे शब्दों में, यहाँ धम्म (कर्मों में) का अर्थ है:- धम्म नौ पारलौकिक धम्मों को संदर्भित करता है; जो धम्म उन धम्मों के प्रत्यक्ष क्रम में आता है, वह इस प्रकार निषेध (कानून के अनुसार) है; यह शब्द आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को दर्शाता है। यद्यपि इसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: "धम्मानं निच्चम् अनुधम्मचारी, सत्यों के सत्य (धम्म) का पालन करने वाला, सदा", श्लोक की रचना में सुगमता के लिए, विभक्ति के अनुभव के कारण, इसे "धम्म (सत्यों में)" कहा जा सकता था। आदिनवं सम्मसिताभवेषु (जन्मों में हानि का चिंतन किया गया है) का अर्थ है तीनों जन्मों में अनित्यता आदि के लक्षणों का उचित अवलोकन करना, उस आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के माध्यम से, जिसे धम्म के अनुसार अभ्यास माना जाता है; इस प्रकार, उचित अभ्यास के माध्यम से प्राप्त की गई उपलब्धि, जिसे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) माना जाता है, जो शारीरिक और मानसिक एकांत के शिखर तक पहुँच चुकी है; अतः, यह कहा जाना चाहिए; एको केयर, यानी अकेले घूमना; इस प्रकार, व्याख्या को समझा जाना चाहिए।

श्लोक पर टिप्पणी,

paṭisallāna से शुरू होकर, है

समाप्त हो गया।

लालसा का अंत (तन्ह-क्खया)

126. तांह-क्खया से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के एक राजा ने अपने भव्य राजसी वैभव और सामर्थ्य के साथ नगर की परिक्रमा की। राजा के वैभव को निहारने वाले लोग, यद्यपि वे उनके आगे चल रहे थे, फिर भी मुड़कर उन्हें देखते रहे; यद्यपि वे उनके पीछे चल रहे थे और यद्यपि वे उनके दोनों ओर चल रहे थे, फिर भी उन्होंने ऐसा ही किया। वास्तव में, मनुष्य

बुद्ध के दर्शन से, पूर्णिमा के चंद्रमा के दर्शन से, विशाल सागर के दर्शन से और राजा के दर्शन से कभी तृप्त नहीं होते। उसी अवसर पर, एक गृहस्थ की पत्नी भी अपने महल की सबसे ऊँची इमारत पर गई, अपनी खिड़की खोली और देखने लगी। राजा ने उसे देखा, उस पर मोहित हो गया और एक मंत्री को आदेश दिया: "हे मंत्री! अब पता लगाओ कि यह महिला अपने पति के साथ है या नहीं।" मंत्री ने पता लगाया कि वह विवाहित है और राजा को सूचित किया: "महाराज! यह महिला अपने पति के साथ है।" तब राजा ने मन ही मन सोचा, "ये बीस हजार नृत्य करती युवतियाँ, जो अप्सराओं के समान थीं, केवल मुझे ही मोहित कर पाईं; फिर भी, इतनी संख्या से संतुष्ट न होकर, मेरे मन में किसी और पुरुष की प्रेमिका के लिए लालसा उत्पन्न हो गई; यह लालसा मुझे नरक (अपाय) तक ले जाएगी।" इस प्रकार लालसा की हानि को देखकर, राजा ने मन ही मन कहा, "मैं अब इस लालसा को नियंत्रित करने जा रहा हूँ।" उसने अपना राज्य त्याग दिया, भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमयी इस श्लोक का पाठ किया।

126.1. तांख्य (इच्छा का निवारण) वहाँ निर्वाण है; या इच्छा (तांहा) के दोषों को जानते हुए भी उसका न होना। अप्पमत्तो (परिश्रमी, लापरवाह नहीं) वह है जो दृढ़ निश्चयी और नियमित रूप से अच्छे कर्म करता है। अनेलमूगो (स्पष्ट स्वर वाला, मूक नहीं) का अर्थ है मुख का ललललल न होना या मूक न होना; दूसरे शब्दों में, मूक नहीं बल्कि स्पष्टवादी; बुद्धिमान, चतुर; इस प्रकार कथन है। वह व्यक्ति जिसके पास ऐसा ज्ञान है जो कल्याण और सुख को बढ़ावा देता है; इस प्रकार, वह सुतवा (ज्ञानवान) है, जो प्रामाणिक ग्रंथों के ज्ञान से संपन्न है; इस प्रकार कथन है। सतिमा (सचेतनता रखने वाला) बहुत पहले किए गए कर्मों आदि जैसी घटनाओं का स्मरण है। संखतधम्मो (अच्छी तरह से संपन्न होने का स्वभाव) वह है जिसने धम्म को भली-भांति समझा हो, धम्म के अध्ययन के लिए। नियतो (स्थिर या आश्वस्त) वह है जिसने निर्वाण के श्रेष्ठ मार्ग के माध्यम से आश्वस्त होने की अवस्था प्राप्त की हो। पधानवा (कठोर प्रयास, पधान) वह है जो उचित प्रयास से संपन्न हो। इस पाठ या संदर्भ की व्याख्या क्रमबद्ध तरीके से की जानी चाहिए। इसी प्रकार, परिश्रम आदि गुणों से संपन्न होकर, व्यक्ति कठोर प्रयास (पधान) का स्वामी बन जाता है, और प्रेरित अभ्यास द्वारा उचित रूप से प्रोत्साहित किए गए कठोर प्रयास (पधान) के माध्यम से यह निरंतर बना रहता है; परिणामस्वरूप, व्यक्ति स्वयं निर्मित वस्तुओं के सत्य (संखतधम्म) में भली-भांति पारंगत हो जाता है। अरहतों को ही स्व-सृजित वस्तुओं के सत्य (संखतधम्म) में पूर्णतः पारंगत कहा जाता है, क्योंकि उन्हें इसी रूप में गिना जाता है; जैसा कि बुद्ध ने कहा था: "यहाँ अनेक ऐसे लोग हैं जो अरहत या (संखतधम्म) हैं, साथ ही वे भी हैं जो धारा-प्रवर्तक (सेक्ख) हैं।" शेष बात उपरोक्त प्रकार से है।

श्लोक पर टिप्पणी,

taṇhakkhaya से शुरू होकर, है

समाप्त हो गया।

सिंह (सीहोवा)...शील (नैतिकता)

127. 'सीहोवा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस के राजा का एक दूर स्थित राजमहल था। राजा सुबह जल्दी उठे, अपने राजमहल गए, अपने वाहन से उतरे और रास्ते में जल स्रोत के पास जाकर मन ही मन बोले, "मैं अपना चेहरा धो लूँगा।" संयोग से उसी स्थान पर एक शेरनी ने बच्चे को जन्म दिया और भोजन की तलाश में बाहर गई थी। राजमहल के सेवकों ने उसे देखा और राजा को सूचित किया, "महाराज! यहाँ एक शेर का बच्चा है।" राजा ने मन ही मन कहा, "कहते हैं कि शेर किसी से नहीं डरता।" और यह जानने के लिए उन्होंने ढोल आदि बजाने का आदेश दिया। हालाँकि शेर के बच्चे ने वह आवाज़ सुनी, फिर भी वह वहीं सोता रहा। फिर ढोल तीसरी बार तक बजाए गए; उस नन्हे शेर ने तीसरी बार अपना सिर उठाया, लोगों की भीड़ को देखा और उसी तरह सो गया। तब राजा ने कहा, "चलो, जब तक उसकी माता वापस न आ जाए, तब तक उसके पास चलते हैं।" वह उसके पास गया और सोचने लगा, "यद्यपि अभी जन्मा ही है, फिर भी छोटा शेर न तो कांपता है और न ही डरता है; निश्चय ही, मैं भी, व्यथा (तन्हा) और विधर्म (दिष्टि) का त्याग करके, न तो चिंतित होता हूँ और न ही भयभीत।" इस विचार को मन में लिए राजा आगे बढ़ा और उसने फिर मछुआरों को देखा, जिन्होंने मछलियाँ पकड़ी थीं और पेड़ों की शाखाओं पर जाल बाँध रखे थे, और उस जाल में से निर्लक्त हवा बह रही थी। उसने फिर से उसमें एक विशिष्ट लक्षण देखा और सोचा, "निःसंदेह, मैं भी, व्यथा (तन्हा), विधर्म (दिष्टि) और मोह (मोह) के जाल को तोड़कर, उसी प्रकार निर्लक्त होकर चलता हूँ।"

127.1. बाद में, राजा अपने राजमहल में गए, पत्थर की पटिया से बने कमल-कुंड के किनारे बैठ गए, हवा से हिलते हुए कमलों को झुकते और पानी को छूते हुए देखा, और हवा थमने के बाद उन्हीं कमलों को फिर से पानी से अछूता अपनी मूल स्थिति में खड़ा देखा। उन्होंने मन ही मन यह विचार किया: "निश्चित रूप से, जिस प्रकार ये कमल, जो पानी में उगे हैं, पानी से अछूते खड़े हैं, उसी प्रकार मैं

भी, संसार में जन्मा, संसार से अछूता रहूँ।" राजा बार-बार यही सोचते रहे: "जिस प्रकार छोटा सिंह, हवा और कमल हैं, उसी प्रकार मैं भी निर्भय, अनासक्त और निर्मल रहूँ।" उन्होंने अपना प्रभुत्व त्याग दिया, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया, और आनंदमय इस श्लोक का पाठ किया।

127.2. यहाँ 'सीहा' (शेर) शब्द चार प्रकार के शेरों को दर्शाता है: घास (तिना) शेर; पीला (पंडु) शेर; काला (काला) शेर और केसर (बालों वाला) शेर। इनमें से बालों वाले शेर को प्रधान कहा जाता है; यहाँ उसी केसर वाले शेर का उल्लेख है। 'वातो' (पवन) पूर्व दिशा से बहने वाली कई प्रकार की होती है, इत्यादि। 'पदुम' (कमल) लाल, सफेद आदि रंगों में पाया जाता है।
उनमें हर प्रकार की हवा और हर प्रकार का कमल उपयुक्त है। इसलिए, जहाँ भी भय उत्पन्न होता है, वह आत्म-आसक्ति के कारण होता है। आत्म-आसक्ति ही लालसा का दाग है। यह भी लोभ के कारण होता है, चाहे वह विधर्म या अटकलों से जुड़ा हो या न हो। वह लोभ भी लालसा (तन्हा) ही है। वहीं, अच्छे लोगों के मामले में, यह अज्ञान आदि के अभाव में, भ्रम के कारण होता है; भ्रम ही अज्ञान (अविज्जा) है। वहाँ लालसा (तन्हा) का निवारण संयम या ध्यान द्वारा होता है; अज्ञान (अविज्जा) का निवारण आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि द्वारा होता है। इसलिए, ध्यान (समाथा) के माध्यम से आत्म-आसक्ति का त्याग करके, अनित्यता, दुःख आदि के बीच ध्वनियों के बीच सद्देसु (सुनाई ध्वनियों के बीच), आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के माध्यम से मोह का त्याग करके, छोटे शेर की तरह निर्भय होकर; खन्ध, आयतन आदि के क्षेत्रों में जाल में हवा की तरह, उसी समाथा के माध्यम से लोभ और लोभ से जुड़े विधर्म का त्याग करके, अनासक्त होकर; समस्त प्राणियों के धन के लोभ से अछूते रहकर, जल से लथपथ कमल की तरह। यहाँ भी, शील (समाथा) का निकटतम कारण शील है। शांति (समाथा) एकाग्रता (समाधि) का निकटतम कारण है, एकाग्रता आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) का निकटतम कारण है; इस प्रकार, जब इस तरह दो कर्म (धम्म) पूर्ण हो जाते हैं, तो तीन स्कंध (खंड) स्वतः ही पूर्ण हो जाते हैं। वहाँ, शील के समूह के कारण, वह साहसी हो जाता है। छोटे शेर की तरह, शोर के बीच भी, वह द्वेषपूर्ण आधारों पर क्रोधित होने की इच्छा से नहीं डरता। जाल में हवा की तरह, भेदन की प्रकृति के कारण, ज्ञान के समूह के माध्यम से वह द्वेषपूर्ण आधारों पर क्रोधित होने की इच्छा से नहीं डरता। जाल में हवा की तरह, भेदन की प्रकृति के कारण, ज्ञान के समूह के माध्यम से वह धम्म, स्कंध आदि जैसी विभिन्न वस्तुओं से अनासक्त हो जाता है। जैसे कमल जल से भरा रहता है, वैसे ही वह कामवासना (राग) से रहित होकर, समाधि की एकाग्रता के कारण कामवासना (राग) से अछूता रहता है। इसी प्रकार, इसे निर्भय, अनासक्त और निर्मल समझा जाना चाहिए, क्योंकि वह तीन प्रकार के बुरे कर्मों, जैसे कि लालसा और अज्ञान (तन्हविज्जा), का त्याग कर लेता है, जब भी वे उत्पन्न हों, शमन और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के माध्यम से, साथ ही शील, समाधि और ज्ञान के समूह के माध्यम से। शेष का अर्थ पूर्वोक्त है।
श्लोक पर टिप्पणी,
सीला से शुरू होने वाला, समाप्त हो गया है।
सिंह की तरह (सीहो यथा) ... दात्हबली (शक्तिशाली बल)
128. 'सीहो यथा' से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस का एक राजा अपनी विशाल सेना के साथ सीमावर्ती विद्रोह को दबाने के लिए वन मार्ग से गया, जहाँ उसने बड़े-छोटे गाँवों के मार्गों से परहेज किया। उसी समय, एक पहाड़ी की तलहटी में, एक शेर उगते सूरज की धूप सेंकते हुए लेट गया। उसे देखकर राजा के सेवकों ने राजा को सूचना दी। राजा ने मन ही मन कहा, "कहते हैं शेर निर्भीक होता है," और बड़े-छोटे ढोल बजाने का आदेश दिया; शेर पहले की तरह ही लेटा रहा। दूसरी बार ढोल बजाने का आदेश दिया गया, लेकिन शेर पहले की तरह ही सोता रहा। तीसरी बार ढोल बजाने का आदेश दिया गया। तब शेर खड़ा हो गया, अपने चारों पैरों पर मजबूती से खड़ा हुआ और शेर की गर्जना करते हुए मन ही मन बोला, "मेरा शत्रु अवश्य ही मेरे विरुद्ध है।" शेर की दहाड़ सुनकर सेना के हाथी सवार और अन्य लोग अपने हाथियों से उतरकर घास, बांस और जंगलों में चले गए; हाथियों और घोड़ों के झुंड अलग-अलग दिशाओं में भाग गए। राज हाथी भी राजा को लेकर जंगल और झाड़ियों को रौंदता हुआ भाग गया। राजा अपने हाथी को काबू में नहीं रख सका, इसलिए वह एक पेड़ की शाखा से लटक गया, फिर नीचे जमीन पर उतरा और एक पगडंडी पर चलते हुए मौन बुद्ध के निवास पर पहुंचा। वहां राजा ने मौन बुद्धों से पूछा, "आदरणीय महोदय! क्या आपने कोई आवाज सुनी थी?" उनका उत्तर हां में था। राजा ने पूछा कि वे कैसी आवाजें थीं। उत्तर था, "पहले ढोल, शंख आदि की आवाज; फिर शेर की दहाड़।" राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय! क्या आप डरे नहीं?" उनका उत्तर था, "हे महाराज! हम किसी की आवाज से नहीं डरते।" राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय! क्या आप मेरे लिए भी ऐसा कर सकते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हे महान राजा! यह संभव है, यदि आप भिक्षु बन जाएँ।" राजा ने भिक्षु बनने का वचन दिया। इसके बाद, मौन बुद्धों ने राजा को भिक्षु बनाया और उन्हें उचित आचरण (अभिसमाचारिका) का प्रशिक्षण

दिया। उस राजा ने भी, पहले बताए गए तरीके से, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व का दर्शन किया और आनंदमय वाणी के इस श्लोक का पाठ किया।

128.1. यहाँ 'सीहा' (शेर) शब्द सहनशक्ति, वध क्षमता और तीव्र गति के कारण 'सीहा' है। यहाँ केवल घने बालों वाले शेर का ही अर्थ है। शेर दाठबली है, क्योंकि उसके दाँतों में प्रबल शक्ति होती है। 'पसयह अभिभुय्या' (बलपूर्वक पराजित और पराजित) अभिव्यक्ति की व्याख्या व्याकरणिक शब्द 'चारी' के साथ की जानी चाहिए, जिसका अर्थ है अभ्यास करने वाला, यानी पसयहचारी अभिभुय्या चारी, बलपूर्वक पराजित करने वाला और पराजित करने वाला। इस संदर्भ में, बलपूर्वक पराजित करने वाला पसयहचारी है, क्योंकि बलपूर्वक पराजित करने के बाद वह नियंत्रण में रहता है। पराजित करने वाला अभिभुय्याचारी है, क्योंकि डराकर पराजित करने के बाद वह वश में हो जाता है। यह वह व्यक्ति है जो शारीरिक बल से विजय प्राप्त करने में निपुण है, शारीरिक बल के कारण पसायहाचारी; अपनी शक्ति के कारण विजय प्राप्त करने में निपुण है, अभिभुय्यचारी। यदि कोई पूछे, "विजय प्राप्त करने का अभ्यासी कौन होता है?" तो उत्तर इस प्रकार दिया जाना चाहिए: "वह व्यक्ति जो हिरण (या शिकारी पशुओं) पर विजय प्राप्त करने और उन्हें पराजित करने का अभ्यस्त है", इसके बाद कर्म कारक शब्द 'मिगानम्' को हटाकर (या कर्म कारक) प्रयोग करें। पंतनि (दूर) का अर्थ है बहुत दूर (दूरानि)। सेनासननि (मठ) का अर्थ है निवास स्थान। शेष का अर्थ भी उपरोक्त के समान है और यह ज्ञात है, इसलिए इसे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है।
श्लोक पर टिप्पणी,
dāṭhābalī से शुरू होकर, है
समाप्त हो गया।

प्रेमपूर्ण दयालुता समभाव (मेत्तम उपेक्खम)
129. मेत्तम उपेक्खम से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि एक राजा ने प्रेमपूर्ण दया आदि का ध्यान प्राप्त किया था। उस राजा ने अपने मन में कहा: "संप्रभुता ध्यान के आनंद के लिए हानिकारक है", और वह भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की, और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया

129.1. मेट्टा (प्रेम-कृपा) वह अवस्था है जिसमें सभी प्राणियों के कल्याण और सुख की कामना इस प्रकार की जाती है: "सभी प्राणी सुखी हों!", इत्यादि। करुणा (सहानुभूति) वह अवस्था है जिसमें सभी प्राणियों के दुखों को दूर करने की कामना इस प्रकार की जाती है: "हाय! वास्तव में! वे सभी इस दुख से मुक्त हों", इत्यादि। मुदिता (आनंद) वह अवस्था है जिसमें सभी प्राणियों के कल्याण और सुख से विरक्ति न होने की कामना इस प्रकार की जाती है: "हे सभी प्राणियों! आप वास्तव में आनंद से परिपूर्ण हैं। आप पूरी तरह से प्रसन्न हैं!" इत्यादि। उपेक्षा (समभाव) वह अवस्था है जिसमें सुख और दुख के प्रति पूर्णतः उदासीन रहते हुए इस प्रकार कहा जाता है: "वे अपने-अपने कर्मों से स्वयं को प्रकट करेंगे"। हालाँकि, श्लोक की रचना में सुगमता के लिए, प्रेम (मेत्ता) की बात करने के बाद, समभाव और आनंद (मुदिता) का उल्लेख फिर से किया गया है। विमुक्ति (मुक्ति) यह है कि ये चारों प्रकार भी मुक्ति (विमुक्तिये) का हिस्सा हैं, क्योंकि इनमें व्यक्ति अपने ही कर्मों (पेच्चनिकधम्म) से मुक्त हो जाता है। इसलिए कहा गया है: "प्रेम, समभाव और सहानुभूति का त्याग; साथ ही आनंद (मुदिता) में लिप्त होना।"

129.2. आसेवमानो का अर्थ है: त्रिक या चतुर्भुज ध्यान द्वारा तीनों का अभ्यास करना; और चौथे ध्यान के प्रभाव से समभाव विकसित करना। काले (एक समय में) का अर्थ है प्रेम-कृपा का अभ्यास करना, और बिना उत्साह (पीति) के ध्यान से उठकर समभाव का अभ्यास करना, इसे "एक समय में (काले आसेवमान)" या किसी भी सुविधाजनक समय में अभ्यास करना कहा जाता है। सब्बेना लोकेन अविरुज्जमानो (संपूर्ण जगत से अबाधित) का अर्थ है दस दिशाओं में सजीव प्राणियों के संपूर्ण जगत से अबाधित। वास्तव में, प्रेम-कृपा आदि के विकास की अवस्था के कारण, सजीव प्राणी अनिच्छुक नहीं होते; जीवित प्राणियों के प्रति अवरोध और शत्रुता समाप्त हो जाती है। इसलिए, यह कहा गया है कि "संपूर्ण जगत द्वारा अवरोध रहित (सब्बेना लोकेना अविरुज्जमाहो)" यह यहाँ संक्षिप्त रूप है। हालाँकि, विस्तृत रूप से यह बात अभिधम्म के सात ग्रंथों में से प्रथम ग्रंथ धम्मसंग्रह की टीका अत्थसालिनी (व्याख्याता) के प्रेम-कृपा (मेत्ता) आदि पर प्रवचन में कही गई है। शेष लगभग इसी प्रकार है।
श्लोक पर टिप्पणी,

मेट्टम उपेखम से शुरू करते हुए, है
समाप्त हो गया।
पसंद-नापसंद (रागंच दोषंच)... जीवनसंख्या (जीवन का अंत)
130. रागंच दोसांच से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? ऐसा कहा जाता है कि राजगृह के पड़ोस में मातंग नाम के एक मौन बुद्ध रहते थे, जो सभी मौन बुद्धों में अंतिम थे। उस समय, जब हमारे बोधिसत्व प्रकट हुए, तो बोधिसत्व को आदर अर्पित करने आए देवताओं ने उन्हें देखा और कहा: "हे साथियों! साथियों! बुद्ध संसार में प्रकट हुए हैं।" निरोध समाधि से उठते ही उस मौन बुद्ध ने इसके बारे में सुना, अपने जीवनकाल की समाप्ति को देखा, आकाश में उस स्थान पर गए जहाँ मौन बुद्धों को पूर्णतः निर्वाण प्राप्त होता है, जो हिमवंत पर्वत में एक बड़ी चट्टान के नाम से जानी जाने वाली पहाड़ी थी, उन्होंने पिछले दिवंगत मौन बुद्ध की अस्थियों का ढेर चट्टान से नीचे फेंक दिया, स्वयं उस पत्थर की सतह पर बैठ गए और आनंदमय उच्चारण के इस श्लोक का पाठ किया।

130.1. उस श्लोक में, कामवासना, घृणा और मोह (राग, दोष, मोह) का उल्लेख केवल उरग सूत्र (सर्प उपदेश) में किया गया है। सम्योजनानि (बंधन) आसक्ति के सात बंधनों को दर्शाता है; ये भी इस और उस सही मार्ग (मार्ग) द्वारा पूर्णतः काट दिए गए हैं। असन्तसम जीवितसंख्यमहि, जीवन के पूर्ण अंत में निर्भय; (जीवितसंख्य) का अर्थ है मरते हुए मन (चुतिचित्त) का टुकड़े-टुकड़े हो जाना। जीवन के उस पूर्ण अंत में भी वह निर्भय है क्योंकि उसने जीवन की लालसा को त्याग दिया है। इस हद तक, अपने स्वयं के निर्वाण तत्व को अस्तित्व के मूल (उपादि) के अवशेष के साथ प्रदर्शित करने के बाद, श्लोक के पाठ के अंत में वे अस्तित्व के मूल (उपादि) के किसी भी अवशेष के बिना पूर्णतः निर्वाण में विलीन हो गए।
श्लोक पर टिप्पणी,
जीवितसंखया से शुरू होकर,
समाप्त हो गया है।
परोसें (भजंती)
131. भजनती से शुरू होने वाले श्लोक की उत्पत्ति क्या है? कहा जाता है कि बनारस में एक राजा अपने समृद्ध राज्य पर ठीक उसी प्रकार शासन करता था जैसा कि श्लोक के प्रारंभ में वर्णित है। उसे भयंकर रोग हो गया। असहनीय पीड़ा हुई। बीस हजार स्त्रियाँ उसके चारों ओर जमा हो गईं और उसके हाथों और पैरों की धुलाई करने लगीं। उसके मंत्रियों ने सोचा, "अब तो यह राजा जीवित नहीं रहेगा; हमें भी कहीं शरण लेनी चाहिए।" वे दूसरे राजा के पास गए और रोजगार की तलाश में अपनी सेवाएँ दीं। उन्होंने वहाँ सेवा तो की, पर कुछ नहीं मिला। राजा रोग से उबरकर वापस आया और पूछा, "फलां नाम की वे कहाँ हैं?" इसके बाद, राजा ने इस घटना के बारे में सुना, अपना सिर हिलाया और चुप रहा। उन मंत्रियों ने भी सुना कि उनका राजा रोग से ठीक हो गया है; वहाँ कुछ न मिलने पर, घोर गरीबी से व्याकुल होकर (परमेना परिजुन्नेन), वापस आ गए, लेकिन फिर से अपने राजा को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। जब राजा ने उनसे पूछा, "मेरे प्यारे पुत्रों! तुम सब कहाँ चले गए थे?", तो उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज की दुर्बलता देखकर, हम जीविका के खतरे से बचने के लिए उस नाम के एक जिले में चले गए थे।" राजा ने अपना सिर हिलाया और मन ही मन सोचने लगे, "यदि मैं उन्हें वही बीमारी दिखा दूँ तो क्या होगा? क्या वे फिर से ऐसा करेंगे या नहीं?" राजा ने बीमार होने का नाटक किया और दर्द का प्रदर्शन किया, मानो उन्हें अपनी पिछली बीमारी फिर से हो गई हो। स्त्रियाँ राजा के चारों ओर जमा हो गईं और उन्होंने ठीक वैसा ही किया जैसा उन्होंने पहले किया था। वे मंत्री भी पहले की तरह कई और पुरुषों को लेकर चले गए। इस प्रकार तीसरी बार तक राजा ने सब कुछ पहले जैसा ही किया। वे मंत्री भी उसी तरह से चले गए। इसके बाद, अपने मंत्रियों को चौथी बार भी आते देख राजा क्रोधित हो गया और बोला: "हाय! इन मंत्रियों ने बुरा काम किया है, क्योंकि इन्होंने मुझे बीमार छोड़कर बिना मेरी परवाह किए ही विदा ले ली।" उसने अपना प्रभुत्व त्याग दिया, भिक्षु बन गया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की, मौन बुद्धत्व की कल्पना की और आनंदमयी वाणी का यह श्लोक पढ़ा।

131.1. भजंति (सेवा करना, साथ देना) का अर्थ है कि वे राजा के शरीर से लिपटकर उनकी सेवा करते हैं। सेवंती (सेवा करना) का अर्थ है कि वे बदले में कुछ पाने की अपेक्षा करते हुए विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। कारण (परिस्थितियों के कारण) का अर्थ है कि जिन्हें आवश्यकता (या कारण) है, उनके लिए सेवा करने के अलावा कोई अन्य कारण नहीं है: उनकी आवश्यकता ही उनका कारण है; वे अपनी आवश्यकता (या इच्छा) के कारण सेवा करते हैं; यही कथन है। निक्कारणा दुल्लभा अज्जा मित्ता, अब बिना किसी आवश्यकता (या कारण) के मित्र मिलना कठिन है, जो इस प्रकार कहते हैं: "क्या इसके आगे हमें कुछ मिलेगा?", बिना किसी कारण (या कारण) के अपने लाभ के लिए; केवल (या पूरी तरह से)।

एक ऐसा मित्र जो मददगार हो, एक ऐसा मित्र जो
सुख-दुख में, एक ऐसा मित्र जो
पारस्परिक लाभ और सहानुभूति की बात करता है
मित्र"।

ऐसा कहने से, अब महान मित्रता से संपन्न मित्र प्राप्त करना कठिन हो गया है। अत्तत्थपञ्ञा (स्वयं-स्थायी ज्ञान) इन लोगों का ज्ञान या बुद्धि जो स्वयं में विद्यमान थी। वह केवल अपनी आवश्यकता को देखता है, दूसरे को नहीं; यही अर्थ है। पाठ 'अत्तत्थपञ्ञा' भी है; वह केवल अपनी आवश्यकता (या इच्छा) को देखता है, दूसरों की आवश्यकता को नहीं; यही उसका अर्थ है। "दित्तत्थपञ्ञा, देखी गई आवश्यकता का ज्ञान", यह भी, वे कहते हैं, एक पुराना पाठ है। उनका ज्ञान वर्तमान आवश्यकता (या इच्छा) में है, जो केवल देखी जाती है; लेकिन भविष्य की नहीं; यही उसका अर्थ है। वह केवल वर्तमान अस्तित्व की आवश्यकता या कल्याण को देखता है, भविष्य के अस्तित्व के कल्याण को नहीं, यही कथन है। असुचि (अशुद्धता) वह प्राणी है जो अशुद्ध, नीच, शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्मों से संपन्न है

131.2. खग्गविसाणकप्पो (गैंडे के सींग के समान) इस प्रकार है:- तलवार से पेड़ों आदि को काटने के समान, यह अपने ही सींग से पहाड़ियों आदि को टुकड़े-टुकड़े कर चूर-चूर कर देता है; इस प्रकार, खग्गविसाण (गैंडे का सींग) है। विष के समान अधिकार इस प्रकार (विसाण) सींग है। तलवार के समान; इस प्रकार (खग्ग) तलवार के समान सींग है। जिस जानवर का सींग तलवार के समान हो या जिसके सींग तलवार के समान हों, वह जानवर खग्गविसाण (गैंडा) है; गैंडे के उस सींग के समान खग्गविसाणकप्पो (गैंडे के सींग के समान) है। मौन बुद्ध गैंडे के सींग के समान हैं, एको (अकेला), बिना किसी साथी के, अकेले, उन्हें घूमना चाहिए, जीना चाहिए, निकलना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए और चलते रहना चाहिए; अतः, यही अर्थ है।

132. विशुद्धशीला (शुद्ध उपदेश) का अर्थ है: विशिष्ट रूप से शुद्ध सद्गुण; सर्वांगीण शुद्धता का शुद्ध उपदेश। सुविशुद्धपञ्ञा (अच्छी तरह से शुद्ध किया गया ज्ञान) उचित रूप से शुद्ध की गई बुद्धि है; ऐसा ज्ञान जैसे सर्वांगीण शुद्ध मार्ग, फल प्राप्ति, विश्लेषणात्मक ज्ञान आदि, क्योंकि कामवासना आदि से परहेज किया गया है। समाहित (अच्छी तरह से स्थापित, सम, अच्छी तरह से, उचित रूप से लाया गया) मन जो स्वयं के समक्ष रखा गया है। जागृत (सतर्कता के प्रति समर्पित), जागृति सतर्कता है; नींद से परे जाना; इस प्रकार, इसका अर्थ है; जागृत अवस्था सतर्कता है; तदनुसार सतर्कता से जुड़े रहना जागृति के प्रति समर्पित होना है। विपस्सक (स्पष्ट रूप से देखने वाला) विशिष्ट रूप से देखने का उपदेश (या आदत) इस प्रकार है: "अनित्यता, दुख (दुक्खा), अहंकार रहित (अनत्ता)"; वे आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) को बढ़ावा देते हुए जीवन जीते हैं; अतः, इसका अर्थ है। धम्मविशेषादस्सी (जो विशिष्ट धम्म या अच्छे कर्मों को देखता है) दस पुण्य कर्मों, चार आर्य सत्यों या नौ दिव्य धम्मों को विशिष्ट रूप से देखने का उपदेश या आदत है। मग्गांग बोज्झंग गेट (आठ गुना आर्य मार्ग और ज्ञान के तत्वों की ओर अग्रसर), सही दृष्टि आदि जैसे आर्य मार्गों और सजगता आदि जैसे ज्ञान के तत्वों के साथ, आर्य धम्म से उचित रूप से जुड़ा हुआ। विञ्ञा (समझा हुआ) भेद के साथ जानना, जानना या समझना है; अतः, इसका अर्थ है।

133. सुन्नतापणिहितंचनिमित्तम् (शून्य, अविभाजित और चिह्नरहित), अहंकारहीनता (अनत्ता) के स्पष्ट अंतर्दृष्टि के प्रभाव में आत्मा-शून्य मुक्ति, दुःख (दुक्खा) के स्पष्ट अंतर्दृष्टि के प्रभाव में अविभाजित मुक्ति, अनित्यता के स्पष्ट अंतर्दृष्टि के प्रभाव में चिह्नरहित मुक्ति। आसेववित्वा (अभ्यास करने वाले) वृद्धि का कारण। ये धीरा (जो बुद्धिमान लोग हैं), जिन्होंने संचय या तैयारी की थी; जिनासासनंहि सावकत्तम् (विजेता के विधान में शिष्यत्व) शिष्य होने की अवस्था, न वजंति (मत जाओ), प्राप्त मत करो; वे बुद्धिमान पुरुष जिन्होंने अपनी तैयारी कर ली थी, भवन्ति (हो गए) स्वयंभू पच्चेकजिना (स्वयं उत्पन्न मौन विजेता) मौन बुद्ध जो इस प्रकार स्वयं ही बन गए।

134. क्या हुआ था? महान धम्म (महान सत्य) ने महान तैयारियों को पूरा किया, बहुधम्मकाय (सत्य के अनेक शरीर) ने धर्म के अनेक प्राकृतिक शरीरों को पूरा किया। फिर, क्या हुआ था? चित्तिस्सरा (सदामंती मन) मानसिक मार्ग के ध्यान से युक्त हो गया; यही अर्थ है। सब्बदुक्खोघटिन्ना (संपूर्ण दुःख के सैलाब को पार कर चुका, पुनर्जन्मों के चक्रों के सैलाब से परे जा चुका), उदग्गचित्त (प्रफुल्लित मन

का) शांत मन का होना, क्रोध, अभिमान आदि जैसे दुराचारों के अभाव के कारण मानसिक रूप से सुखद होना। परमत्त्वदस्सी (परम अर्थ का द्रष्टा) परम अर्थ को देखने का उपदेश या आदत रखने वाला, पाँच स्कंधों (खंध), बारह इंद्रिय-स्थलों (आयतन), बत्तीस गुणों (आकार), सत्यों (सच्च), प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुप्पाद) आदि के माध्यम से सर्वोत्तम अर्थ। सीहोपना (सिंह का उदाहरण) क्योंकि यह अडिग और निर्भय खड़ा रहा, सिंह के समान; यही अर्थ है। खग्गविसानकप्प (गैंडे के सींग के समान) विषैले के समान। संगठन और समाज के अभाव के कारण तलवार-पशु का सींग; यही इसका अर्थ है।

135. शांतिन्द्रिय (शांत नियंत्रण शक्ति) स्वभाव से शांत नियंत्रण शक्ति, क्योंकि आँख आदि जैसी नियंत्रण शक्तियों के लिए कोई व्यक्तिगत इंद्रिय-वस्तु नहीं होती। शांत मन (शांत मन, स्वभाव से शांत, क्योंकि वह दुराचार (किलेसा) से रहित है); यही अर्थ है। समाधि (एकाग्रता); उचित रूप से एकाग्र मन होना। पच्चन्तसत्तेषु पतिप्पचार (सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले जीवों के प्रति उचित अभ्यास या कर्म) सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले जीवों के प्रति दया, सहानुभूति आदि भावों के साथ उचित अभ्यास का नियम या आदत। दीप परत्थ इधा विजयलन्ता (यहाँ और अन्यत्र जलते हुए दीपक) इस लोक और परलोक में जलते हुए दीपकों के समान, समस्त विश्व के कल्याण के कर्म करना; यही अर्थ है। पच्चेक बुद्धा सततम् हितै मे (ये मौन बुद्ध निरंतर लाभदायी हैं) ये मौन बुद्ध, हर समय समस्त विश्व के कल्याण के लिए निरंतर अभ्यास करते हैं; यही अर्थ है।

136. पाहीनसब्बावरणा जनिंदा (वे शासक जिन्होंने सभी बाधाओं का त्याग कर दिया है) वे मौन बुद्ध हैं जिन्होंने सभी बाधाओं का त्याग कर दिया है, क्योंकि उन्होंने इंद्रिय सुख आदि पाँचों बाधाओं का त्याग कर दिया है, इसलिए वे सर्वोच्च शासक हैं। घनकंचनाभा (ठोस सोने की चमक) वे जम्बू नदी (जम्बेनदा) से उत्पन्न लाल सोने की चमक के समान हो जाते हैं। निस्सांसयम लोकसुदक्खिणेय्या (निस्संदेह संसार द्वारा दिए गए उपहारों के योग्य) निश्चित रूप से, संसार के लोगों द्वारा दिए गए सर्वोत्तम उपहार को स्वीकार करने के योग्य; दुराचार (किलेसा) से रहित होने के कारण उत्कृष्ट उपहार स्वीकार करने के योग्य; यही अर्थ है। पच्चेकबुद्धा सततप्पिता मे (ये मौन बुद्ध सदा तृप्त रहते हैं) ये बुद्ध जिन्होंने मौन बुद्धत्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे सदा तृप्त रहकर लाभान्वित होते हैं और पूर्णतः सिद्ध रहते हैं; सात दिनों तक बिना किसी पोषण के रहने के बावजूद, वे फल प्राप्ति और निरोध समाधि (या समाधि, निरोधसमापत्ति) की उचित प्राप्ति के कारण पूर्णतः सिद्ध हैं।

137. पच्चेकबुद्ध (मौन बुद्ध) अकेले हैं, सर्वज्ञ बुद्ध से भिन्न हैं, अन्य अद्वितीय बुद्धों से भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में, क्योंकि ऐसा कहा गया है:-
उपसर्ग, अविकारी शब्द और प्रत्यय या
अंत के लिहाज से, इन तीनों में से किसी के पास भी गुंजाइश नहीं है।
न तो एक और न ही अनेक अर्थ; इस प्रकार, व्याकरणविदों
कहना;"
पति शब्द मुख्य शब्द बन गया क्योंकि पति एक ही उपसर्ग है, जिसका अर्थ है स्वामी, क्योंकि उन्होंने कई दानदाताओं से थोड़ी मात्रा में भी भोजन ग्रहण करके स्वर्गिक स्वतंत्रता प्राप्त की थी। इसी प्रकार, वास्तव में, उन्होंने भोजन के भार (या भोजन = भालू) में से अपना हिस्सा ग्रहण किया, दानदाता के देखते हुए ही भोजन का आनंद लिया, दानदाता को देवताओं द्वारा बधाई दी गई, और उन्होंने उसी दिन करोड़ों की संपत्ति उत्पन्न करके संकट में पड़े गरीब व्यक्ति को बैंकर का पद प्राप्त कराया; खदिरांगा के जन्म-कथा में, उन्होंने मारा द्वारा निर्मित बबूल की जलती हुई लकड़ियों के गड्ढे के ऊपर उगे कमल की पंखुड़ियों पर पैर रखकर बोधिसत्व द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को ग्रहण किया, और बोधिसत्व दानदाता के देखते हुए आकाश में विचरण करते हुए मन को आनंदित किया। गंधमादन पर्वत से आकाश से आकर, राजा महाजनक की रानी और मुख्य रानी पद्मावती के पुत्रों को प्रसन्न करने के लिए भेंट स्वीकार करके, बोधिसत्व महाजनक और उनकी रानी दोनों को मानसिक आनंदित किया; इसी प्रकार, जब जंबूद्वीप में अकाल का खतरा मंडरा रहा था और बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे, तब बनारस के धनदाता ने न केवल अपने साठ हजार अन्न भंडारों में रखे धान को, जो अकाल के खतरे को टालने (या उससे बचने) के लिए पूरी तरह से भरे और सुरक्षित रखे गए थे, बल्कि जमीन में गाड़े गए सभी धान के दानों को, हजार घड़ों में भरे हुए धान के दानों को और अपने महलनुमा घरों की सभी दीवारों पर मिट्टी से मलकर लगाए गए धान के दानों को भी समाप्त कर दिया; तब केवल नारियल के खोल की एक माप ही शेष बची थी। तब, "आज इसे खाने के बाद ही मर जाएँ" यह विचार मन में आया और बैंकर लेट गया। तभी गंधमादन पर्वत से एक मौन बुद्ध प्रकट हुए और बैंकर के घर के द्वार पर खड़े हो गए। बैंकर ने मौन बुद्ध को देखा, उनकी श्रद्धा जागृत हुई और उन्होंने अपने प्राण जोखिम में डालकर अपना भोजन मौन बुद्ध के भिक्षापात्र में बिखेर दिया। मौन बुद्ध अपने निवास स्थान

पर लौट गए और अपनी शक्ति से बैंकर के भिक्षापात्र का आनंद लिया, जो पाँच सौ मौन बुद्धों के साथ वहीं उपस्थित थे। उस समय चावल पकाने का बर्तन बंद रखा गया था। जब बैंकर को भूख लगी और वह सो गया, तो वह उठा और अपनी पत्नी से कहा, "कृपया भिक्षापात्र में पके हुए चावल की एक बूंद देख लो।" उस अनुशासित महिला ने "क्या तुमने सब कुछ नहीं दे दिया?" का उत्तर दिए बिना ही बर्तन का ढक्कन खोल दिया। वह चावल का बर्तन तुरंत ही चमेली की कली की तरह मीठी सुगंध वाले साली चावल से लबालब भर गया। जब उसने और बैंकर ने अपनी भूख मिटाई, तो उनके घर के सभी लोग और पूरे शहर के निवासी भी भोजन करने लगे। जहाँ-जहाँ करछी से पका हुआ चावल निकाला जाता, वह फिर से भर जाता। सभी साठ हज़ार अन्न भंडार मीठी सुगंध वाले साली चावल से भर गए।जंबुद्वीप के सभी निवासियों ने केवल साहूकार के घर से धान के पौधे लिए और प्रसन्न हुए। इसी प्रकार, अनेक जीवों के विशाल शरीरों में, जिन्हें उन्होंने स्वर्गिक मुक्ति दिलाई, उनकी चारों ओर से उचित रक्षा करते हुए और उन्हें सुखी बनाते हुए, वह एक बुद्ध हैं जो स्वामी और स्वामी बन गए हैं; इस प्रकार, मौन बुद्ध हैं। पच्चेकबुद्धानम सुभाषितानि (मौन बुद्धों के सुविचारित वचन) का अर्थ है: मौन बुद्धों द्वारा उपदेश और सलाह के रूप में उचित रूप से बोले गए वचन। चरन्ति लोकंहि सदेवंहि (दिव्य जगत सहित संसार में विचरण किया) का अर्थ है: जीवों के जगत के साथ-साथ दिव्य प्राणियों के जगत में भी उन्होंने विचरण किया; यही अर्थ है। Sutvā tathā ve na karonti bālā (वे मूर्ख जिन्होंने सुनकर भी वैसा ही नहीं किया) का अर्थ इस प्रकार है: वे मूर्ख लोग जिन्होंने मौन बुद्धों द्वारा कहे गए अच्छे वचनों को न माना और न ही उनका पालन किया; te (वे) मूर्ख लोग, dukkhesu (बहुत दुख), बार-बार जन्म-जन्म के दुख में; pumappunam (बार-बार) उत्पन्न होकर, caranti (इधर-उधर भटकते रहे); यही अर्थ है।

138. पच्चेकबुद्धान, सुभासितानि (मौन बुद्धों के सुस्पष्ट वचन) का अर्थ है: चार प्रकार के नरक (अपाय) से मुक्ति पाने के उद्देश्य से उचित रूप से बोले गए वचन। क्या हुआ? अवसवन्तम् (बहते हुए) मीठे वचन शहद की छोटी-छोटी बूंदों की तरह बह निकले; यही इसका अर्थ है। ये पटिपत्तियुत्ता (जो भी साधना में लगे हों) का अर्थ है: ज्ञानी लोग भी, जो उन्हें बताए गए उपदेशों का पालन करते हुए उचित साधना में लगे थे, ऐसे मधुर वचन सुनकर सलाह के द्वार बन गए; वे ज्ञानी लोग सच्चदसा (सत्य के द्रष्टा) जिन्होंने चार आर्य सत्यों को देखा था, सपञ्ञा (ज्ञान से युक्त) ज्ञान से युक्त थे; यही इसका अर्थ है।

139. पच्चेकबुद्धेहि जिनेहि भासिता (मौन बुद्ध रहे विजेताओं द्वारा वर्णित) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए:- वे विजेता हैं क्योंकि उन्होंने सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) पर विजय प्राप्त की और अभी भी विजय प्राप्त कर रहे हैं; उन विजेताओं द्वारा कहा, बताया और प्रचारित किया गया, जो मौन बुद्ध रहे; कथा उलारा (महान उपदेश) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए:- प्रकट हुआ और स्पष्ट (या स्पष्ट) हो गया और सार से युक्त हो गया। ता (वह) वह उपदेश, शाक्यसीहेना (शाक्य सिंह द्वारा) तथागत गौतम द्वारा, शाही शाक्य वंश (या वंश) के सिंह द्वारा, अभिनिक्खमित्वा (महान त्याग करके) बुद्ध बनकर; नरुत्तमेन (पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ द्वारा) पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च द्वारा, पकासिता (स्पष्ट किया) इंगित किया और स्पष्ट किया; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है। उन्होंने ऐसा क्यों कहा?; “धम्म-विजानन्तम”, (सत्य की समझ के लिए), नौ प्रकार के पारलौकिक सत्य (धम्म) को विशिष्ट रूप से प्रकट करने के लिए; इस प्रकार, अर्थ है।

140. लोकानुकम्पकाय इमानितेसम् (उन्हें, इन्हें, जगत के प्रति दया के कारण) जगत के प्रति सहानुभूति के कारण, जगत के प्रति सहानुभूति के फलस्वरूप, उन्हें ये शब्द, ये श्लोक; पच्चेकबुद्धानम् विकुब्बितानि (विशेष रूप से मौन बुद्धों के लिए किया गया) विशिष्ट रूप से किया और कहा गया; यही अर्थ है। सम्वेगसंगमतिवादधनत्थम (पश्चाताप और वियोग को अत्यधिक बढ़ाने के उद्देश्य से) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: पश्चाताप बढ़ाने के उद्देश्य से, साथ ही बुद्धिमानों के वैराग्य को बढ़ाने के उद्देश्य से, उनके एकांत की अवस्था को बढ़ाने के उद्देश्य से, उनकी बुद्धि बढ़ाने के उद्देश्य से, साथ ही उनके ज्ञान या बुद्धि को बढ़ाने के उद्देश्य से; स्वयंभूसीहेना (बुद्ध-सिंह द्वारा) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: बिना किसी गुरु के, जन्म लेकर और बनकर, केवल स्वयं से ही भेदन प्राप्त करना; निर्भीक सिंह, सर्वज्ञ बुद्ध गौतम, इन शब्दों ने पाकासितानि (स्पष्ट, स्पष्ट या प्रत्यक्ष) किया; इन श्लोकों को स्पष्ट किया गया, खोला गया और प्रत्यक्ष बनाया गया; इस प्रकार, यही अर्थ है। इति (इस प्रकार) अविकारी क्रियाविशेषण है जिसका अर्थ है पूर्ण निष्कर्ष। इस प्रकार, टीका का समापन होता है।
मौन बुद्धों की जीवनी,
अपादानशकथा (अपादान) में
टिप्पणी), प्रकट हो रही भव्यता के लिए

उन अत्यंत पवित्र लोगों में से।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 1. थेरा सारिपुत्त

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.11. सारिपुत्त
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-1- थेरा सारिपुत्त की जीवनी पर टिप्पणी

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
अध्याय 1

थेरों की कथाएँ

अब थेरों की कथाएँ सुनें:

---

1. सारिपुत्त

हिमालय श्रृंखला के निकट, लंबका नामक पर्वत पर,1 मेरा आश्रम बहुत अच्छी तरह से बना हुआ है, पत्तों से बना एक सुव्यवस्थित हॉल। (1) (140)
मेरे आश्रम से कुछ ही दूरी पर एक नदी है, जिसके किनारे शांत हैं, सुव्यवस्थित हैं, मन को प्रसन्न करने वाली हैं और चमकीली सफेद रेत से भरी हुई हैं। (2) (141)
कंकड़-पत्थर रहित (और) ढलान रहित, उत्कृष्ट, दुर्गंध रहित, नदी उस स्थान के ठीक बगल से बहती है, जिससे मेरा आश्रम सुंदर दिखता है। (3) (142)
मगरमच्छ2 और लेविथन3, घड़ियाल4 और कछुए;

---

1. {बड़े कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 2. "शुभ", एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3. कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई: यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह: कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह: रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 4. रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

नदी उस स्थान के ठीक बगल से बहती है, जिससे मेरा आश्रम सुंदर दिखता है। (4) (143)

शीटफिश,5 पावुसा,6 वलजा,7 रीडफिश,8 रेडफिश9 और मगगुरा10 (धारा के साथ)11 (वहाँ) बह रही हैं, जिससे मेरा आश्रम सुंदर हो रहा है। (5) (144)

उस नदी के दोनों किनारों पर फूल और फल देने वाले वृक्ष खड़े हैं, जो दोनों ओर से नदी पर छाए हुए हैं, जिससे मेरा आश्रम सुंदर दिखता है। (6) (145)

आम, साल12 और कोरल-बीन का पेड़,13 तुरही-फूल,14 चीनी पवित्र वृक्ष,15 दिव्य सुगंध वाले फूलों से लदे पेड़ मेरे आश्रम को (तब) सुगंधित कर रहे हैं। (7) (146)

चंदन, सलाल,16 चीज़वुड17 आयरनवुड,18 लॉरेल19 और स्क्रू-पाइन20 के वृक्ष दिव्य सुगंधों से भरे हुए मेरे आश्रम को महका रहे हैं (तब)। (8) (147)

हिप्टेज21 लताएँ और अशोक वृक्ष,22 भगिनीमाल पुष्पन, ऋषि-पत्ती अलंगियम,23 और लाल

---

5 शाब्दिक अर्थ, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित 6 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान कर रहा है" "चिंतन कर रहा है" "सोच रहा है;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ 7 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 8 शाब्दिक अर्थ, "गया" 9 PTS sañjālesi के लिए BJTS के साथ sañcālesi पढ़ना 10 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 11 शाब्दिक अर्थ, "पुण्यशाली" 12 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)।" 13 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में गेंडु लिखा है। कम से कम प्रसारण के समय, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 14 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनक के अनुसार। 15 °विकुटी°; मेरा मानना है कि यह घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) को दर्शाता है (आरडी., एसवी देखें)। 16 पीटीएस उद्दलोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ उद्दलोमिका° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)। 17 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"। 18 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़? 19 खिड्डारतिया 20 तिदास, अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में 21 व्यम्ह-म-उत्तम, शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में" 22 नव, वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" किया गया है 23 शाब्दिक अर्थ, "पूजा"

मेरे आश्रम में बिम्बिजाल24 खिलते हैं। (9) (148)

केतका,25 कंदली26 फूल, केबुका और अरबी चमेली27 दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं जिससे मेरा आश्रम सुंदर बन रहा है। (10) (149)

डिनर-प्लेट वृक्ष28 और कणिका सिल्वर ग्रेवुड,29 अनेक काले वृक्ष30 दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं, जिससे मेरा आश्रम सुंदर बन रहा है। (11) (150)

लॉरेल31 और माउंटेन लॉरेल32 के पेड़, और आबनूस33, सभी खिल रहे हैं, दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं जिससे मेरा आश्रम सुंदर बन रहा है। (12) (151)

गोल्डन शावर,34 विंटर चेरी,35 कदम36 और स्पैनिश चेरी37 के पेड़ दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं जिससे मेरा आश्रम सुंदर बन रहा है। (13) (152)

आलका और इसिमुग्गा, केला,38 और नींबू39 के पेड़ जो मीठी सुगंध वाले पानी पर परिपक्व हुए हैं, वहाँ अपने फूल उगा रहे हैं। (14) (153)

कुछ गुलाबी कमल खिल रहे हैं, कुछ पराग उत्पन्न कर रहे हैं, कुछ गुलाबी कमलों में कलियाँ निकल रही हैं।

---

24 महापक्खो, शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति," 25 या "मैं नहीं जानता," न जानामि 26 परिङ् ... 34 बोज्झांगारतन'इसारो, पहिया घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (पहिया, आदि) पर एक नाटक 35 महाभिसक्कसंकासो 36 दोसाव्याधितिकिचाको 37 °विफलको, शाब्दिक, "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। ग्लोस सिंदुना 38 दिथिगंड° 39 लोकापज्जोतो 40 सनारामरसक्कतो 22 बौद्ध संतों की कथाएँ

टैंक में हमेशा फूल खिलते रहते हैं।41 (15) (154)
गुलाबी कमल अंकुरित होते हैं (वहाँ);42 कमल की जड़ों43 को साफ किया जा रहा है।44 सिंहाटी45 के पत्ते बिखरे हुए हैं, जिससे वह तालाब इतना सुंदर लग रहा है। (16) (155)
नायिता झाड़ियाँ, अम्बागंधी, उत्टुली, बन्धुजीवाका46 सभी खिले हुए हैं फिर टैंक में (वहाँ) स्वर्गीय सुगंध फैल रही है। (17) (156)
शीटफिश,47 और पावुसा48 मछली, वलजा,49 रीड-फिश50 (और) रेड-फिश51 और संकुला52 और मगगुरा53 उस टैंक में रहते हैं (वहाँ) तब। (18) (157)
उस टैंक में मगरमच्छ और घड़ियाल, तंतिगगाह और रक्खासा, ओगाहा54 और अजगर55 भी रहते हैं। (19) (158)
कबूतर56 और रवि-हंस57, साथ ही रूडी गीज़58 और नादिकारा, कोयल59, तोते60 और मैना पक्षी61 भी उस झील पर रहते हैं। (20) (159)

---

41 narādicco 42 शाब्दिक रूप से, "में" 43 sugatūpago, शाब्दिक रूप से, "कल्याण के करीब"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से सुशोभित व्यक्ति के पास पहुँचते हुए 44 निब्बाति, या "वह शांत हो जाता है" 45 महास्सादं 46 महारसं 47 शाब्दिक रूप से, "सुशोभित व्यक्ति के लिए" 48 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ मासे अट्ठदिनेस्व-अहं पढ़ना मासे अट्ठदिने स्वहा 49 पणिधाय, या "दृढ़ संकल्प", सिंहली प्रार्थनाव 50 पीटीएस यहिं ताहिं; बीजेटीएस ताहिं ताहिं 51 शाब्दिक रूप से, "मेरी माँ अपने पूरे शरीर से सुगंधित थी" 52 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से श्लोक 66-71 (3648-3653) 53 या "शिक्षा में (उन) चारों का पालन-पोषण करना" 54 शाब्दिक रूप से, "प्रवाहों का विनाश" 55 या "जो आगे बढ़ गया था": पब्बजितो 56 यह श्लोक बारह अक्षरों वाले अधिक जटिल छंद में है। 57 शाब्दिक रूप से, "यहाँ" 58 बीजेटीएस इन दो अंतिम पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस अपूर्ण सौ (सातकम्) के लिए इन अध्याय सारांश श्लोकों को शामिल करता है। 59 बीजेटीएस इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है। 60 धारेथा, शाब्दिक रूप से, "ले जाना" "स्मरण करना" "याद रखना" "ध्यान रखना" 61 सम्पहंसिता

जंगल में जंगली मुर्गे,62 सुनहरे केकड़े,63 झील निगलने वाले पक्षी64 (भी), लैपविंग65 और सीलोन लोरिकेट66 उस झील पर रहते हैं (वहाँ तब)। (21) (160)
हंस67 (और) कर्ल्यू68 और मोर69 भी, कोयल70 और जंगली मुर्गे71 भी, छोटे बंदर72 और तीतर73 भी उस झील पर रहते हैं (वहाँ तब)। (22) (161)
उल्लू74 और पोट्ठसीसा75 (भी), कई बाज,76 साथ ही ओस्प्रे,77 और महाकाल पक्षी भी उस झील पर रहते हैं (वहाँ तब)। (23) (162)
चित्तीदार हिरण78 और जंगली सूअर79, और असंख्य भेड़िये80 और सियार81, रोहिका-हिरण82, सुग्गापोटा उस झील पर रहते हैं (वहाँ तब)। (24) (163)
शेर और बाघ और तेंदुए, भालू83 (और) भेड़िये,84 करा बाना भालू,85 और तीन बार संभोग करने वाले86 मातंग87 (भी)

---

62 भोट्टा, बीजेटीएस इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ता है 63 चेट्टा 64 सोता 65 पसंसिता 66 अखिलो 67 विसालो। बीजेटीएस इसे विसालो ("दर्द से मुक्त") पढ़ता है 68 अनिघो 69 अकथंकथी, इल्त. "'क्यों' नहीं कह रहा?" 70 अनेजो 71 विराजो 72 खट्टा। बीजेटीएस खंता ("विनम्र" "आज्ञाकारी") पढ़ता है, 73 बीजेटीएस के अनुसार गंता पढ़ता है, पीटीएस के अनुसार गंधा ("सुगंधित") पढ़ता है, 74 बीजेटीएस के अनुसार वट्टा पढ़ता है, पीटीएस के अनुसार मेट्टा ("प्रेम") पढ़ता है, 75 पकासिता पढ़ता है, 76 तारेता पढ़ता है, 77 बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के अनुसार अत्थकारेता पढ़ता है, पीटीएस में तारेता ("घुसपैठिया") का पुनरावर्तन है, 78 करेता पढ़ता है, 79 संपदालेता पढ़ता है, बीजेटीएस संपदालिता पढ़ता है, 80 पापेता पढ़ता है, 81 साहित्य, या "सहनशील" पढ़ता है, बीजेटीएस के अनुसार कांटा पढ़ता है, पीटीएस में हंता का पुनरावर्तन है, जिसे दोनों ग्रंथ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं, 83 हंता पढ़ता है, 84 बीजेटीएस के अनुसार आतापी पढ़ता है। पीटीएस तातापी ("रक्षक भी") 85 तापासो के लिए, इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "स्लेयर" को "स्लेयर" में संकुचित करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है 86 समासित्टो 87 'समासामो, (बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस के अनुसार; इसका संक्षिप्त रूप समासामो, "हमेशा एक जैसा" भी हो सकता है) 24 बौद्ध संतों की किंवदंतियाँ

वे उस झील पर (वहाँ तब) रह रहे हैं। (25) (164)
वहाँ सेंटॉर88 और बंदर89 भी हैं और जंगल में काम करने वाले लोग,90 नौकर-लड़के91 और शिकारी,92 भी उस झील पर रहते हैं (वहाँ तब)। (26) (165)
जंगली मैंगोस्टीन,93 चिराउली-नट,94 महुआ,95 कासुमारिया96 मेरे आश्रम से बहुत दूर नहीं, कभी न खत्म होने वाले फल दे रहे हैं। (27) (166)
मार्गोसा,97 सलाल,98 पीले पनीर के पेड़99 ऐसे उत्कृष्ट फल के साथ लगातार मेरे आश्रम से कुछ ही दूरी पर फल दे रहे हैं। (28) (167)
मायरोबलन100 और आंवला,101 आम, गुलाब-सेब,102 बहेरा,103 बेर,104 मार्किंगनट,105 बेल106 — ये लगातार फल देते रहते हैं। (29) (168)

---

88 असहायो, शाब्दिक अर्थ, "मित्रहीन" 89 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ दयासयो (और निम्नलिखित व्याख्या) का पाठ दयासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") 90 अच्चेरसन्तो 91 अकुहो, शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार" 92 कतावी, अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए 93 इसिसत्तमो 94 नित्तिण्णकङ्खो 95 निम्मानो 96 अप्पमेय्या, शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता" 97 अनुपमा, शाब्दिक अर्थ, "जिसके लिए कोई रूपक नहीं है" 98 सब्बवाक्यपथातीतो, शाब्दिक अर्थ, "जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं" 99 सच्चनेय्यन्तगो, शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक गया है जिसे समझा जाना है (या निर्देश दिया, नेतृत्व किया, ले जाया, मार्गदर्शन किया (नेति का क्रियापद))" 100 जिनो 101 सत्तसारवरे। बीजेटीएस इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट लगती है। तुलना करें। श्लोक (5887) और (6287) में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° का प्रयोग। 102 में akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ का पाठ BJTS द्वारा PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ ("मैं धम्म-प्रचारक मैं") के स्थान पर किया गया है। 103 में nissāso का पाठ BJTS की व्याख्या māgē piṭataṭa heḷana vātaya ("वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी भाग में निकालता हूँ") के अनुसार किया गया है। 104 में sabbagandhe 'tiseti (= atisayati) का पाठ BJTS द्वारा PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंध' फैलाता है") के स्थान पर किया गया है और BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण किया गया है। 105 में BJTS atisanto के स्थान पर ādisanto ("घोषणा करते हुए") का पाठ करता है। 106 में guṇatthavassa का पाठ किया गया है। sabbaṃ taṃ phalaṃ tu paramambhūtaṃ with BJTS for PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारी रूप से खिलता है" (?)), और BJTS व्याख्या का अनुसरण किया: buddha guṇakitiyāge ē siyalu vipāka atiśaya vismayajanaka ya.

मेरे आश्रम में बिंदवीड, 107 टाइटन अरुम, 108 बिलानी, 109 तक्कादानी (बल्ब) जीवक और सहक110 (पौधे) प्रचुर मात्रा में हैं। (30) (169)
आश्रम से कुछ ही दूरी पर वह सुव्यवस्थित तालाब है, जिसमें स्वच्छ जल है, जो पीने के लिए ठंडा है, अच्छी तरह से स्थिर है और मन को आनंदित करता है। (31) (170)
गुलाबी और नीले कमलों से ढका हुआ, सफेद कमल के फूलों के साथ मिश्रित और फिर से मंडलक111 से ढका हुआ, यह एक दिव्य सुगंध बिखेरता है। (32) (171)
उस समय मैं उस सुंदर, सुव्यवस्थित आश्रम में रह रहा था जो हरे-भरे जंगलों में स्थित था और फल-फूलों से भरा हुआ था तथा सभी सुविधाओं से परिपूर्ण था। (33) (172)
मैं नेक आचरण वाला तपस्वी सरुची था, व्रत लेने वाला, ध्यान करने वाला, समाधि-प्रेमी, पाँच विशेष ज्ञानों में निपुण112।113 (34) (173)
उस समय चौबीस हजार विद्यार्थी मेरी सेवा में लगे हुए थे। वे सभी ब्राह्मण जाति के थे, कुलीन और गौरवशाली वंश के थे। (35) (174)
उन्होंने व्याकरण और शब्दावली, पर्यायवाची और छंदशास्त्र, संकेतों को पढ़ने और इतिहास के मेरे शिक्षण में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। (36) (175)
वे घटनाओं, शकुनों और संकेतों की व्याख्या करने में कुशल थे।

---

107 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) पद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। आईपीटीएस में rasaddhovisamāyuto लिखा है, जिसका अर्थ है "शुद्ध स्वाद से जुड़ा हुआ"। बीजेटीएस में (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto?) लिखा है। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुवाद करता हूँ, mad- hura svaradhvani yukta vūyem (- mihirihaddha ättem), "मैं मधुर ध्वनि से बंध जाता हूँ (मेरे पास एक मधुर ध्वनि है)" 108 BJTS के साथ khīṇe ayusi का पाठ PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है") 109 शाब्दिक रूप से, "आप सभी इसे सुनें" (द्वितीय पुरुष बहुवचन क्रिया) 110 yasassī 111 शाब्दिक रूप से, "इसलिए (मैं) खुश हूँ" 112 dukkhantakaraṇaŋ Buddhaŋ, शाब्दिक रूप से "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध" 113 dhammaŋ, या "शिक्षा"

धरती और ज़मीन पर, आकाश में; मेरे छात्र बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षित थे। (37) (176)
वे संतुष्ट और विवेकशील थे; कम भोजन करते थे, उनकी कोई इच्छा नहीं थी। चाहे उन्हें कुछ मिले या न मिले, वे हमेशा मेरे आस-पास एकत्रित रहते थे। (38) (177)
ध्यान करने वाले, समाधि-प्रेमी, बुद्धिमान, एकाग्र, शांत मन वाले, और कुछ भी न चाहने वाले, वे हमेशा मेरे चारों ओर एकत्रित होते थे। (39) (178)
114 विशेष ज्ञान के स्वामी, अपने ब्राह्मण रीति-रिवाजों में आनंदित, 115 आकाश में उड़ने में सक्षम, अत्यंत बुद्धिमान, वे हमेशा मेरे चारों ओर एकत्रित होते थे। (40) (179)
उन्होंने छह इंद्रिय द्वार अच्छी तरह बंद रखे, कामवासना से मुक्त थे, इंद्रियों को सुरक्षित रखते थे, (अत्यंत) बुद्धिमान थे, और घर में बंधे नहीं थे:116 कोई भी मेरे छात्रों के करीब नहीं आया।117 (41) (180)
रात में वे हमेशा पालथी मारकर बैठकर या एक ही जगह पर आगे-पीछे चलकर (ध्यान करते हुए) समय बिताते थे; कोई भी मेरे छात्रों के पास नहीं आता था। (42) (181)
उत्तेजित करने वाली चीजों से उत्तेजित नहीं, न ही अपवित्र करने वाली चीजों से अपवित्र; मूर्खतापूर्ण बातों में स्वयं को मूर्ख नहीं बनाना: कोई भी मेरे छात्रों के करीब नहीं आया। (43) (182)
उन्होंने अपना सारा समय चमत्कारिक शक्तियों का अध्ययन करने में व्यतीत किया। वे अपने अहंकार से पृथ्वी को कंपा सकते थे, जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। (44) (183)
जब वे छात्र खेल खेल रहे थे, तो वे परिवर्तित अवस्थाओं में खेल रहे थे, (दूर के) पेड़ों से गुलाब-सेब लाए;118 कोई भी मेरे छात्रों के पास नहीं आया। (45) (184)

---

114 जनयं, शाब्दिक अर्थ, "मैंने उत्पन्न किया" 115 या "विधर्मी": कुतित्थिये 116 पीटीएस तित्थिकाकिणो ("मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ") के स्थान पर बीजेटीएस के साथ तित्थिकाकिण्णे का पाठ 117 वदन्तो, शाब्दिक अर्थ, "कहना," "बताना" 118 पीटीएस वरण् ("उत्कृष्ट") के स्थान पर बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ वदं का पाठ

कुछ लोग गोयाना जाते थे, कुछ पब्बविदेह और कुछ उत्तुरुकुरु: कोई भी मेरे छात्रों के करीब नहीं आ सका। (46) (185)
वे अपनी आवश्यक वस्तुएँ 119 पहले भेज देते और फिर वे उनके पीछे चलते; आकाश चौबीस हजार (छात्रों) से पूरी तरह ढका हुआ था। (47) (186)
कुछ ने पका हुआ भोजन खाया और कुछ ने कच्चा, कुछ ने दाँतों से पीसा, कुछ ने ओखली से। कुछ ने पत्थर पर पीसा हुआ भोजन खाया, कुछ ने केवल गिरे हुए फल खाए। (48) (187)
कुछ लोग पानी में नहा रहे थे, कुछ को शाम की शुद्ध बारिश पसंद थी, जबकि कुछ पानी छिड़ककर नहा रहे थे: कोई भी मेरे छात्रों के पास नहीं आया। (49) (188)
लंबे नाखून और बगल के बाल, दांतों में मैल, सिर मिट्टी से सने हुए और केवल उपदेशों से सुगंधित:120 कोई भी मेरे छात्रों के करीब नहीं आया। (50) (189)
वे प्रसिद्ध जटाधारी तपस्वी सुबह एकत्रित होते, जो कुछ उन्हें प्राप्त हुआ था और जो नहीं, उसे बताते, फिर हवा में उड़ते हुए निकल पड़ते। (51) (190)

उनके उड़ान भरते समय उनसे एक भयंकर शोर निकलता था। देवता उनके हिरण की खाल से बने वस्त्रों की उस ध्वनि से अत्यंत प्रसन्न होते थे। (52) (191)
वे ऋषि सभी दिशाओं में यात्रा करते हुए, आकाश में उड़ते हुए, अपनी (विशाल) शक्ति के बल पर जहाँ भी जाना चाहते थे, वहाँ चले जाते थे। (53) (192)
वे धरती को हिला सकते थे; वे सभी आकाश-यात्री थे। प्रसिद्ध तपस्वी, जिन्हें जीतना कठिन था, वे सागर की तरह स्थिर थे। (54) (193)

---

119 पीटीएस °jinassa ("विजेता का") के लिए BJTS (और पीटीएस विकल्प) के साथ janassa का पाठ 120 पीटीएस saraŋ divasasanko 'haŋ ("मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ" (?)) के लिए BJTS के साथ sarado va sasaṅko 'haṃ का पाठ

कुछ लोग ध्यान करते हुए इधर-उधर टहलते थे, कुछ ऋषि बैठकर ध्यान करते थे, कुछ गिरे हुए फलों पर जीवन यापन करते थे; कोई भी मेरे छात्रों के पास नहीं आया। (55) (194)
वे सदा प्रेम की अवस्था में रहते थे और सभी प्राणियों के प्रति दयालु थे। उनमें से किसी ने भी अपने आप को श्रेष्ठ नहीं समझा और उन्होंने किसी के प्रति घृणा नहीं रखी। (56) (195)
शेरों के राजा की तरह निडर, हाथियों के राजा की तरह शक्तिशाली, बाघ की तरह दुर्गम, वे मेरी उपस्थिति में आएंगे। (57) (196)
जादूगर121 और (उनके) देवता,122 नाग-देवता,123 संगीत-अप्सराएँ,124 राक्षस,125 परियाँ,126 टाइटन127 (और) गरूला उस झील पर निवास करते हैं। (58) (197)
वे जटाधारी आवश्यक-वाहक128 उत्कृष्ट हिरण-चमड़े (वस्त्र) पहने हुए, वे सभी ऋषि, आकाश-यात्री, उस झील पर (वहाँ) रह रहे हैं। (59) (198)
हमेशा की तरह, उन्होंने एक दूसरे का सम्मान किया। चौबीस हजार छात्रों में से किसी ने छींक भी नहीं मारी। (60) (199)
एक पैर के बाद दूसरा पैर रखते हुए, 130 कम आवाज करते हुए, आत्म-नियंत्रित, वे सभी, पास आने के बाद, अपने सिर झुकाकर मेरी पूजा कर रहे हैं। (61) (200)
इस प्रकार शांतिपूर्ण ढंग से तपस्या कर रहे उन छात्रों से घिरे हुए,

---

121 शाब्दिक अर्थ, "मैं था" 122 शाब्दिक अर्थ, "सुन्न-स्वर्गीय," सुगतं 123 यथासत्तिवसेन 124 वागीसो, "(मैं एक हूँ) वाणी पर निपुणता रखने वाला" 125 पीटीएस विमतिं पट्टा के लिए बीजेटीएस के साथ विमतिपट्टा का पाठ, हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक रूप से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है 126 पीटीएस अपनिं (समान अर्थ, अपनेति से) के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ अपदेस' अहं का पाठ 127 तिण्णसमसारसागरो 128 बीजेटीएस में इसे मंचाडो ("मंचाडा") पढ़ा जाता है 129 बीजेटीएस में इसे सुपाटो ("सुपाटा") पढ़ा जाता है 130 यह पीटीएस के लिए बीजेटीएस पाठ है बोधिसम्मजको ("बोधिसम्मजका")

मैं (तब) उस आश्रम में ध्यान करने वाले, समाधि-प्रेमी के रूप में निवास करता था। (62) (201)
मेरा आश्रम हमेशा उन ऋषियों की नैतिकता और खिलते फूलों और वहाँ उगने वाले विभिन्न फलों की सुगंध से महकता रहता था। (63) (202)
दिन-रात मुझे कभी दुःख नहीं होता, न ही दुःख मुझ तक पहुँचता है। अपने छात्रों को शिक्षा देते हुए मैं निरंतर आनंद से भरा रहता हूँ।131 (64) (203)
अनेक फूलों का खिलना और अनेक फलों का पकना132 दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं, जिससे मेरा आश्रम सुंदर बन रहा है। (65) (204)
ध्यान से उत्पन्न होकर133 मैं उत्साही और बुद्धिमान हूँ। तपस्वियों की आवश्यक वस्तुएँ लेकर मैं जंगल में चला गया। (66) (205)
मुझे जन्म और अपशकुनों से जुड़े संकेतों को पढ़ने का अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त था। उस समय मैंने सभी मंत्रों पर पूर्णतः महारत हासिल कर ली थी।134 (67) (206)
अनोमादस्सी, हे भगवान, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में श्रेष्ठ, बुद्ध, एकांत की तलाश में हिमालय में प्रवेश कर गए (तब)। (68) (207)
हिमालय में जाकर परम दयालु ऋषि, कमल मुद्रा में बैठ गए, वे परम पुरुष थे। (69) (208)
(तब) मैंने वहाँ उस संबुद्ध को देखा, जो प्रकाश से जगमगा रहा था, एक मानसिक आनंद, नीले कमल के फूल की तरह उज्ज्वल।136

---

131 रक्खसा = राक्षसा 132 पन्नागा 133 महानुभावा इसयो 134 कमण्डलु-धरा। यह विशेष पात्र गैर-बौद्ध तपस्वियों की पहचान है। 135 जटा-भार-भरित, शाब्दिक अर्थ, "गुंथी हुई चोटी और भार/भारी बोझ से भरा हुआ"। 136 युगमत्तं च पेक्खंता, शाब्दिक अर्थ, "हल की लंबाई तक आगे देखना," अर्थात्, बस थोड़ा सा, अपनी आँखें सामने की जमीन पर टिकाए हुए।

अग्नि-वेदी की तरह धधक रहा है। (70) (209)
मैंने विश्व के नेता को खिले हुए राजसी साल के वृक्ष की तरह देखा; दीपों के वृक्ष की तरह प्रज्वलित; बादलों के समूह में चमकती बिजली की तरह। (71) (210)
“यह नाग महान वीर है, वह ऋषि जिसने दुखों का अंत किया;” इसके दर्शन करने के बाद सभी दुख दूर हो गए। (72) (211)
शुभ चिह्नों से सुशोभित उस देवदेव को देखकर मैंने सोचा, “क्या वह बुद्ध हैं या नहीं? निश्चित रूप से मैं आँखों वाले किसी एक को देख रहा हूँ।” (73) (212)
उसके अद्वितीय (सुंदर) पैर पर एक हजार पहियों के निशान दिखाई देते हैं। मैंने उसके उन निशानों को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि वह वही है जो इस दुनिया से चला गया है। (74) (213)
मैंने झाड़ू लगाने के लिए झाड़ू लाई और झाड़ू लगाने के बाद मैंने उस श्रेष्ठ बुद्ध की पूजा के लिए आठ खिले हुए फूल एकत्र किए। (75) (214)
उस बुद्ध, जलप्रपात पार करने वाले, निष्कलंक बुद्ध की पूजा करने के बाद, मैंने एक कंधे पर हिरण की खाल रखकर जगत के मुखिया की पूजा की। (76) (215)
“जिस ज्ञान से बुद्ध बिना किसी दोष के निवास करते हैं—वह ज्ञान मैं अब घोषित करूँगा; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें! (77) (216)
हे प्रभु, इस संसार को सही राह पर उठाओ, स्वयं एक हो जाओ, असीम वृद्धि हो!137 आपकी दृष्टि में आते ही वे संदेह की प्रचंड धारा को पार कर जाते हैं। (78) (217)
आप सांस लेने वालों के शिक्षक हैं, ध्वज, झंडा और ध्रुव हैं; आप लक्ष्य हैं, ठोस आधार हैं, द्वीप हैं,138 दो पैरों वाले प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। (79) (218)

---

137 गच्चन्ति, लिट., "जा रहा है" 138 पीटीएस अयम च उपसम्पन्नो के लिए बीजेटीएस के साथ सयान च उपसम्पन्ना पढ़ना ("और यह आपूर्ति की गई है"

समुद्र के पानी को गैलन में मापना संभव है139, लेकिन हे सर्वज्ञ, आपके ज्ञान को कभी नहीं मापा जा सकता। (80) (219)
पृथ्वी को एक तुलनीय गोले पर उठाना संभव है, लेकिन हे सर्वज्ञ, आपके ज्ञान को कभी मापा नहीं जा सकता। (81) (220)
रस्सी से या इंच-इंच से (सभी) अंतरिक्ष को मापना संभव है, लेकिन हे सर्वज्ञ, आपके ज्ञान को कभी नहीं मापा जा सकता। (82) (221)
कोई चाहे तो पूरी पृथ्वी और समुद्र का सारा पानी भी समाप्त कर दे, फिर भी जो उपमाएँ उत्पन्न होंगी वे बुद्ध के ज्ञान के अनुरूप नहीं होंगी। (83) (222)
हे दृष्टिवान, इस संसार के प्राणियों और देवताओं के मन में जो कुछ भी चलता है, वह सब कुछ आपके ज्ञान-जल में समाहित है। (84) (223)
जिस ज्ञान से आपने सर्वोच्च पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया: हे सर्वज्ञ, उसी ज्ञान से आप प्रतिद्वंद्वियों और विधर्मियों को कुचल देते हैं।” (85) (224)
इन (नौ) श्लोकों से स्तुति करने के बाद, सुरुचि नामक तपस्वी ने अपने हिरण के चमड़े के वस्त्र को फैलाकर वहीं धरती पर बैठ गया। (86) (225)
“वे कहते हैं कि पर्वतों का राजा चौरासी हजार युगों तक विशाल सागर में डूबे रहने के बाद उस ऊँचाई तक उठा। (87) (226)
और मेरु, इस प्रकार उत्पन्न होकर, इतनी लंबी और इतनी फैली हुई होने के कारण, धीरे-धीरे दो लाख140 (छोटे कंकड़ों) में टूट जाती है। (88) (227)
यदि इसकी जांच की जाए,

139 पातिहिरास इदान फलां 140 लोहादोनीं गहेतवना

लाखों की गिनती करते हुए भी, हे सर्वज्ञ, वह आपके ज्ञान को कभी माप नहीं सकता। (89) (228)
जो भी जल, जल छिद्रों से घिरा हुआ है, चाहे वे कितने भी छोटे क्यों न हों, जल में रहने वाले सभी जीव वहाँ डूबे हुए होंगे। (90) (229)
ठीक इसी तरह, हे महान नायक, ये साधारण विधर्मी जो सिद्धांतों के चंगुल में फंस जाते हैं, वे जिस चीज को छूते हैं उससे भ्रमित हो जाते हैं। (91) (230)
ये (विधर्मी) आपके शुद्ध ज्ञान द्वारा पानी के नीचे खींच लिए जाते हैं, जो बिना किसी बाधा के दिखाई देता है, और कभी भी आपके ज्ञान से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। (92) (231)
उस समय (वह), धन्य अनोमादस्सी, महान ख्यातिप्राप्त, अपनी ध्यान अवस्था से उठकर, (संपूर्ण) संसार का अवलोकन किया,142 वह विजेता। (93) (232)
निसाभा उस ऋषि अनोमदस्सी के अनुयायी थे। वे अपने जैसे एक लाख शांतिप्रिय लोगों से घिरे हुए थे (94) (233)
जिन्होंने दोषों का नाश किया था, जो शुद्ध थे और जिनके पास छह विशेष ज्ञान थे। बुद्ध की इच्छाओं को जानकर उन्होंने उस विश्व नेता से संपर्क किया। (95) (234)
वहीं हवा में खड़े होकर उन्होंने उनकी परिक्रमा की और दस उंगलियों को जोड़कर स्तुति करते हुए बुद्ध के समक्ष आ गिरे। (96) (235)
अनोमादस्सी, हे भगवान, संसार के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के सांड, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए (उसी समय) मुस्कुराए। (97) (236)
वरुण सर्वज्ञानी, महान ऋषि के सेवक थे।

141 वनमज्जे, शाब्दिक रूप से, "जंगल के बीच में" 142 पी.टी.एस. ने अपास्सिता पढ़ा, बी.जे.टी. ने अवस्सिटा पढ़ा; ये शब्द समानार्थी हैं, और विनिमेय हैं।

अपना वस्त्र एक कंधे पर रखते हुए उसने फिर विश्व नेता से प्रश्न किया: (98) (237)
“हे भगवान, गुरु के मुस्कुराने का कारण क्या है? बुद्धों के मुस्कुराने का कोई कारण अवश्य होता है।” (99) (238)
अनोमादस्सी, हे भगवान, संसार के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के सांड, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए (तब) उन्होंने ये श्लोक कहे (उत्तर में): (100) (239)
“जिसने मुझे फूलों से सम्मानित किया और मेरे ज्ञान की प्रशंसा भी की, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा; आप सब मेरी बात ध्यान से सुनें।” (101) (240)
यह जानकर कि बुद्ध बोलेंगे,144 सभी देवता वहाँ एकत्रित हुए। महान उपदेश सुनने की इच्छा से,145 वे संबुद्ध के पास पहुँचे। (102) (241)
दस विश्व-प्रणालियों में विख्यात शक्तियों से युक्त छोटे देवता भी महान शिक्षा सुनने की इच्छा से संबुद्ध के पास आए। (103) (242)
(उन्होंने कहा), “चार भागों वाली सेना— हाथी, सैनिक, रथ, घोड़ा— निरंतर इसकी सेवा करेगी; यही बुद्ध-पूजा का फल है। (104) (243)
साठ हजार वाद्ययंत्र146 (और) अच्छी तरह से सजाए गए ढोल147 सदा उन्हें सम्मान देंगे; यही बुद्ध-पूजा का फल है। (105) (244)
सोलह हजार महिलाएं, सभी प्रकार के आभूषणों से सजी हुई, विभिन्न प्रकार के वस्त्र और गहने पहने हुए और रत्नों से बनी बालियां पहने हुए (106)

143 बीजेटीएस के साथ uggatejāna का पाठ (पीटीएस uggatejana के लिए) 144 °saddena, शाब्दिक रूप से, "ध्वनि के साथ" 145 या "प्रशिक्षित": vinītā 146 appamaññāsu kovidā, अर्थात्, "ईश्वरीय अवस्थाओं" (ब्रह्मविहारा) के अभ्यास में कुशल, अर्थात् प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव। 147 बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ abhilāsino का पाठ (पीटीएस abhilābhino के लिए), "प्राप्त करना"

लंबी पलकों, प्यारी मुस्कान148 और पतली कमर वाली, देखने में मनमोहक,149 इस एक की निरंतर सेवा करेगी: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (107) (246)
वह एक लाख युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेगा। वह हज़ार बार किसी देश का चक्र-घुमाने वाला राजा बनेगा। (108) (247)
हजार गुना देवताओं का राजा, वह दिव्य शासन करेगा, (और उसका) अनगिनत स्थानीय शासन होगा। (109) (248)
जब वह अपना अंतिम जन्म प्राप्त करेगा तो वह मनुष्य रूप धारण करेगा। वह ब्राह्मण स्त्री सारी के गर्भ से जन्म लेगा। (110) (249)
इसके बाद यह व्यक्ति अपने मातृ कुल के नाम से जाना जाएगा: उसका नाम सारिपुत्त होगा; वह तीक्ष्ण बुद्धि वाला होगा। (111) (250)
आठ सौ मिलियन150 का त्याग करके वह सब कुछ त्याग देगा, उसके पास कुछ भी शेष नहीं बचेगा,151 और शांति के मार्ग की खोज में यह महान व्यक्ति (दूर) भटकने वाला है। (112) (251)
अब से अनगिनत युगों बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति संसार का गुरु होगा। (113) (252)
उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी, धर्म की वैध संतान,152 सारिपुत्त नाम से वह प्रमुख अनुयायी होगा। (114) (253)
यह नदी, भागीरथी,153 हिमालय से पोषित होती है,

148 समयं संविदित्वाना 149 अतापी, लिट., "जलना" 150 सस्विग्गमानसो 151 अगलुम, सिंह। एगिल, अगरु, अगरु 152 पीटीएस वंसांडे वा गंधिकाओ ("वन उपवन में सुगंधित") 153 या "हाथी के ललाट जितना बड़ा:" कुंभमत्तन के लिए बीजेटीएस के साथ पनासां देवगंधिकां पढ़ना

विशाल समुद्र में प्रवेश करता है, (फिर) विशाल महासागर को संतुष्ट करता है। (115) (254)
इसी प्रकार, साकेतों में ज्ञानी सारिपुत्त नामक यह पुरुष, ज्ञान की पूर्णता प्राप्त करके, सभी प्राणियों को संतुष्ट करेगा। (116) (255)
हिमालय से लेकर विशाल महासागर तक, बीच में फैली रेत की मात्रा को गिनकर भी नहीं मापा जा सकता। (117) (256)
शेषफल के बिना वह इस प्रकार गिनकर इसे समझ सकेगा; परन्तु सारिपुत्त की (स्वयं की) बुद्धि की कोई ऊपरी सीमा नहीं होगी। (118) (257)
लाखों की गिनती करने पर गंगा की रेत समाप्त हो जाएगी; लेकिन सारिपुत्त की बुद्धि की कोई ऊपरी सीमा नहीं होगी। (119) (258)
विशाल सागर की लहरों को गिनकर नहीं मापा जा सकता; वह भी (वह कर दिखाएगा)! सारिपुत्त की बुद्धि की कोई सीमा नहीं होगी। (120) (259)
शाक्यों के सांड, संबुद्ध गौतम को संतुष्ट करके, वह ज्ञान की पूर्णता प्राप्त करेगा और अग्रणी अनुयायी होगा। (121) (260)
वह पूरी तरह से धम्म-चक्र का अनुसरण करेगा जिसे शाक्य पुत्र, तटस्थ व्यक्ति,158 द्वारा घुमाया जाएगा, जो धम्म-वर्षा की तरह बरसेगा। (122) (261)
इन सब बातों को भली-भांति समझते हुए, हे शाक्यों के श्रेष्ठ गौतम,

154 चित्तंग, शाब्दिक अर्थ, "विचार" या "मन" 155 शाब्दिक अर्थ, "वह बन गया है जो" 156 शाब्दिक अर्थ, "अविचलित" "अविचलित" 157 शाब्दिक अर्थ, "के लिए अस्तित्व में आना" 158 अदंतदमको का अर्थ या तो "अनियंत्रित को वश में करने वाला" या "नियंत्रित को वश में करने वाला" हो सकता है; मैं हाइफ़न के साथ अस्पष्टता को खुला छोड़ देता हूँ, यहाँ "अनियंत्रित को वश में करने वाला" के लिए अपनी प्राथमिकता स्वीकार करता हूँ (जो कि बीजेटीएस पाठ भी है, दमेटर पर आरडी देखें), और जप में उच्चारण की अनुशंसा करता हूँ जो यौगिक में पहले शब्द पर जोर और स्वर के माध्यम से इस बात पर जोर दे सकता है कि बुद्ध वह हैं जो अनियंत्रित/जंगली लोगों को वश में करते हैं।

भिक्षुओं की सभा में बैठने से वह सबसे आगे के स्थान पर आसीन होगा।" (123) (262)
ओह, देखो मैंने शिक्षक अनोमादस्सी के लिए कितना अच्छा काम किया। मैंने उनकी हर अपेक्षा पूरी की और हर जगह उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। (124) (263)

असंख्य कर्मों का फल (युगों पहले) मुझे यहाँ मिला: पूर्णतः मुक्त, तीर की तरह तेज,161 मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (125) (264)

निर्वाण, उस अप्रतिबंधित और अविचल अवस्था की खोज में, सभी विधर्मियों को परखते हुए, मैं अस्तित्वों के बीच घूमता रहा।162 (126) (265)

जैसे कोई व्यक्ति, बीमारी से पीड़ित होकर, अपनी बीमारी से छुटकारा पाने के लिए औषधीय जड़ी-बूटियों की तलाश में सभी जंगलों की छानबीन करता है, (127) (266)

बिना किसी रुकावट के, अमरता की निःशर्त अवस्था, निर्वाण की खोज में,163 पाँच सौ बार मैं ऋषिमय जीवन में निकला।164 (128) (267)

जटाधारी बालों का भार ढोते हुए165 मैंने हिरण के चमड़े का वस्त्र धारण किया; विशेष ज्ञान प्राप्त करते हुए मैं ब्रह्मा के लोक में गया। (129) (268)

व्यवस्था में निर्धारित ज्ञान के बाहर कुछ भी नहीं है।166 जो भी प्राणी बुद्धिमान होगा वह व्यवस्था को समझ लेगा।167 (130) (269)

फिर मैंने सोचा, "यही तरीका है।"

---

159 bodhento bodhapakkhiye, जिसे BJTS जागृति या ज्ञानोदय के (37) पहलुओं या गुणों के रूप में व्याख्यायित करता है (बोध, यहाँ = बोधि, आरडी एसवी देखें) 160 ācāra-upacāraññū 161 dhammanucchavasaŋvaraŋ (BJTS इसे dhammanucchavi° पढ़ता है) 162 pade padaŋ nikkhipantā, शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे (अपने पैर) रखते हुए" 163 pade padaŋ nikkhipantā, शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे (अपने पैर) रखते हुए" 164 durūpansaṅkamā 165 appasaddā 166 PTS yāvâhaŋ के लिए BJTS के साथ yadā 'haṃ पढ़ना, "जहाँ तक" मैं…" 167 munibhutā va, ie, silently

---

उस लक्ष्य की चाहत में, मैं "अशर्त की खोज में कठिन घाटों पर भटकता रहा।" (131) (270)

जैसे कोई व्यक्ति, जो उसका गूदा चाहता है, केले के पेड़ को काटता और फाड़ता है, तो वह उस गूदे को प्राप्त नहीं करेगा बल्कि उस गूदे से वंचित रहेगा, (132) (271)

इसी प्रकार, दुनिया के विधर्मी, अपने विविध विचारों और बड़ी भीड़ के साथ, उस सहजता से वंचित हैं, जैसे केले के पेड़ में गूदा नहीं होता। (133) (272)

जब मैं अपने अंतिम जन्म में पहुँचा, तब मैं ब्रह्मा का संबंधी था।168 एक अरब को त्यागकर169 मैं बेघर हो गया।170 (134) (273)

प्रथम पाठ भाग। एक विद्वान मंत्र-ज्ञानी थे, जिन्होंने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी, वे संजय नाम के एक ब्राह्मण थे। मैं उनके आसपास रहता था। (135) (274)

हे महान वीर, आपका अनुयायी, अस्सजी नाम का ब्राह्मण, दुर्गम, अपार शक्तियों से युक्त, वहाँ भिक्षा माँगने के लिए घूमता रहता था। (136) (275)

मैंने उस बुद्धिमान व्यक्ति को देखा, एक ऐसा ऋषि जो शांति का आदी था, एक शांत हृदय वाला हाथी, खिले हुए कमल के फूल के समान। (137) (276)

उसे देखकर मुझे अहसास हुआ172 "यह आदमी एक योग्य, सुसंस्कृत, शुद्ध मन वाला, एक बैल, अत्यंत उत्कृष्ट, एक नायक होगा। (138) (277)

अपने व्यवहार में मनमोहक, सुंदर और संयमी,

---

168 पीटीएस देसेसी के लिए बीजेटीएस के साथ देसेति पढ़ना, "आप उपदेश देते हैं" 169 निसामेथा 170 शाब्दिक रूप से, "महान शिक्षा," सद्धम्मसवनां सुखं 171 कथां वीतिसारेत्वा 172 अर्थात्, महापुरुष के शरीर पर बत्तीस शुभ चिह्न, जो संकेत देते हैं कि वह या तो बुद्ध होगा या चक्र-घुमाने वाला सम्राट।

अंतिम वशीकरण में वश में किया गया, वह अमरता का द्रष्टा होगा। (139) (278)

तो फिर मैं उस खुशहाल व्यक्ति से लक्ष्य के बारे में क्यों नहीं पूछता?173 मेरे द्वारा पूछे जाने पर वह उत्तर देगा! फिर मैं उससे प्रश्न पूछ रहा हूँ। (140) (279)
मैं उसके पीछे-पीछे भिक्षा मांगने के लिए भटकता रहा; मुझे अमरता के बारे में पूछने की अनुमति देकर सम्मानित किया गया। (141) (280)
सड़क पर चलते हुए उसके पास पहुँचकर मैंने उससे इस प्रकार प्रश्न किया: "हे ज्ञानी, तुम किस कुल के हो? हे सुखी, तुम किसके शिष्य हो?174 (142) (281)
एक निडर शेर की तरह, उसने मेरे द्वारा पूछे जाने पर इस प्रकार उत्तर दिया: "संसार में एक बुद्ध का उदय हुआ है; मैं उनका शिष्य, उनका अनुयायी हूँ।" (143) (282)
"हे ज्ञानी, हे प्रसिद्ध, हे (बुद्ध के) पुत्र, यह उत्कृष्ट होगा यदि आप कृपया मुझे बताएँ, महोदय,175 कि बुद्ध किस प्रकार की शिक्षा देते हैं।" (144) (283)
मेरे द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने (तब) उस संपूर्ण गहन और सूक्ष्म अवस्था की घोषणा की जिसमें समस्त दुख नष्ट हो जाते हैं और भोग का तीर निकल जाता है। (145) (284)
"तथाभूत ने समस्त वस्तुओं के मूल कारणों और उन कारणों के अंत के बारे में बात की थी; यही बात महान भिक्षु ने घोषित की है।" (146) (285)
जब मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया, तो मैंने प्रथम मार्ग-फल प्राप्त कर लिया।176 उपदेश सुनकर,177 मैं कलंक और दोष से मुक्त हो गया। (147) (286)

---

173 iddhiyā* का पाठ BJTS द्वारा PTS itthiyā ("एक स्त्री को," sic!)* के स्थान पर किया गया है। 174 kosohitaŋ vatthaguyhaŋ, BJTS द्वारा kosohitavatthaguyhaŋ पढ़ा जाता है। 175 kaṇṇasote, "उसके श्रवण अंग पर"। 176 patamasi nalāṭantaṃ का पाठ BJTS द्वारा PTS paṭtimasanalāṭaŋ taŋ के स्थान पर किया गया है। 177 niṭṭhaŋ gantvā, शाब्दिक रूप से, "निष्कर्ष पर पहुँचकर"

ऋषि का भाषण सुनने के बाद, उत्कृष्ट शिक्षा को देखकर, उस महान शिक्षा में पूरी तरह से लीन होकर मैंने ये श्लोक (ज़ोर से) कहे: (148) (287)
"यद्यपि यह शिक्षा केवल यहीं तक सीमित है, तो आप सभी को इसकी दुःखरहित अवस्था को समझना चाहिए, जो अनेक यज्ञ करने के बाद भी अतीत में नहीं देखी गई।178 (149) (288)179 धर्म की खोज में (पूर्व में) मैं कठिन जलमार्गों पर भटकता रहा। वह अर्थ अब मुझे प्राप्त हो चुका है; उपेक्षा करने का समय नहीं है।" (150) (289)
(भिक्षु) असाजी से अत्यंत प्रसन्न होकर, उस शांत अवस्था को प्राप्त करके, मैं अपने सह-त्यागी की खोज करते हुए आश्रम लौट आया। (151) (290)
दूर से मुझे देखकर, मेरे साथी,180 जो अच्छी तरह से प्रशिक्षित थे, जिन्होंने ध्यान मुद्राएँ सीखी थीं,181 (आश्चर्यचकित होकर), मुझसे ये शब्द बोले: (152) (291)
"हे ऋषि, आपका चेहरा और आंखें प्रसन्न हैं और आप ऋषिमय आभा प्रकट करते हैं। आपने अमरता, शाश्वत अवस्था, निर्वाण कैसे प्राप्त किया?" (153) (292)
तुम अच्छे के अनुरूप आते हो, मानो तुम शांत हो गए हो। और तुम मेरे पास आए हो, हे ब्राह्मण, परम संयम में संयमित होकर। (154) (293)
"मैंने वह अमर अवस्था प्राप्त कर ली है जहाँ तृष्णा का तीर नष्ट हो जाता है। तुम्हें भी (वह) अवस्था प्राप्त करनी चाहिए; चलो गुरु के पास चलते हैं।" (155) (294)
मेरे साथी, जो अच्छी तरह से प्रशिक्षित थे, ने "उत्कृष्ट!" कहते हुए सहमति व्यक्त की। उनका हाथ पकड़कर हम शिक्षक के समक्ष गए। (156) (295)

---

178 sabbe patt' amha nibbutiŋ 179 ekato, शाब्दिक अर्थ, "एक के रूप में" 180 शाब्दिक अर्थ, "देने के बाद" 181 PTS gopānasī के लिए BJTS के साथ gopānasīyo पढ़ना

"हे शाक्य पुत्र, हम दोनों अब आपकी उपस्थिति में चलेंगे। आपकी शिक्षा प्राप्त करके हम दोषरहित जीवन व्यतीत करेंगे।" (157) (296)
कोलिता जादुई शक्तियों में सबसे श्रेष्ठ है; मैं ज्ञान में सबसे आगे हूँ। हम दोनों एक होकर इस व्यवस्था को और भी सुंदर बनाते हैं। (158) (297)
जब मेरा विचार अभी अधूरा था, तब मैं कठिन जलमार्गों पर भटकता रहा। आपके दर्शन को प्राप्त करने के बाद मेरा विचार अब पूर्णतः परिपक्व हो चुका है। (159) (298)
धरती में रोपे जाने पर वृक्ष अपने-अपने मौसम में खिल उठते हैं। वे अपनी दिव्य सुगंध बिखेरते हैं और सभी जीवित प्राणियों को आनंदित करते हैं। (160) (299)
हे महान वीर, हे महान प्रसिद्धिवान, शाक्यों के पुत्र, ठीक इसी प्रकार, आपकी शिक्षाओं में रोपित होकर मैं मौसम के अनुसार फूल खिलाना चाहता हूँ। (161) (300)
मैं मुक्ति-पुष्प की तलाश में हूँ, इस चक्र-पुष्प से मुक्ति चाहता हूँ।182 उस मुक्ति-पुष्प को पाकर मैं सभी प्राणियों को प्रसन्न करूँगा। (162) (301)
इस संपूर्ण बुद्ध-क्षेत्र में स्वयं महान ऋषि को छोड़कर, ज्ञान में आपका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है, हे नेत्रपूर्ण, आपके पुत्र। (163) (302)
आपके छात्र अच्छी तरह से शिक्षित हैं; आपका दल बहुत अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। वे पूरी तरह से वश में हैं और हमेशा आपके चारों ओर इकट्ठा होते हैं। (164) (303)
ध्यान करने वाले, समाधि-प्रेमी, बुद्धिमान, एकाग्र, शांत मन वाले, ऋषि-मुनि, वे सब हमेशा आपके आसपास एकत्रित होते हैं। (165) (304)
कम चाहने वाले, 183 चतुर और बुद्धिमान,

---

182 पीटीएस वासिन के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ वासी पढ़ना 183 पूगधम्मे

कम खाते हुए, बिना किसी इच्छा के, प्राप्त हो या न हो, प्रसन्न रहते हुए, वे हमेशा आपके चारों ओर एकत्रित होते हैं। (166) (305)
वनवासी जिनकी इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं,184 फटेहाल वस्त्रों में ध्यान करने वाले,185 जो अकेले रहने में आनंद लेते हैं,186 वे हमेशा आपके चारों ओर इकट्ठा होते हैं। (167) (306)
आठ पथ-फलों को प्राप्त करने वाले (और) जो अभी भी आकांक्षी हैं,187 अंतिम लक्ष्य की खोज में लगे हुए हैं, वे हमेशा आपके चारों ओर एकत्रित होते हैं। (168) (307)
धारा में निर्मल प्रवेश करने वाले और कुछ जो एक बार लौटते हैं; न लौटने वाले और अरहंत भी, वे हमेशा आपके चारों ओर एकत्रित होते हैं। (169) (308)
ध्यान बनाए रखने में कुशल,188 ज्ञान के अंशों को केंद्र बिंदु के रूप में पसंद करने वाले,189 आपके सभी अनुयायी, और असंख्य, वे हमेशा आपके चारों ओर एकत्रित होते हैं। (170) (309)
(सभी) महाशक्तियों में कुशल, शांत ध्यान के शौकीन,190 उपयुक्त परिश्रम करने वाले191 वे हमेशा आपके चारों ओर इकट्ठा होते हैं। (171) (310)
तीनों ज्ञानों को परिपूर्ण करना, विशेष ज्ञान, महाशक्तियाँ, बुद्धि की पूर्णता प्राप्त करना - वे हमेशा आपके चारों ओर एकत्रित होते हैं। (172) (311)
हे महान नायक, आपके छात्र वास्तव में ऐसे ही हैं, जो इतने कुशल हैं, जिनसे संपर्क करना कठिन है, और जो अपार शक्तियों से संपन्न हैं।
184 हेतु, शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बीजेटीएस की व्याख्या का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस अतक लबमि) समझता हूँ। बीजेटीएस हेतु (जो शायद मेट्रिक कारण हो) के प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार करता है: "उस अच्छे कर्म को, (अर्थात) उस कर्म को, कारण बनाना।" मैं यहाँ आठ को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) सर्वत्र पूजित, (2) अमृतमय भोजन, (3) सभी द्वारा समर्थित, (4) कोई भय नहीं, (5) कोई रोग नहीं, (6) दीर्घायु, (7) उत्तम त्वचा, (8) चुने हुए या वांछित निवास स्थान।

185 पूजितो 186 पीटीएस patiṭṭhā bhosiŋ sabbesaŋ के स्थान पर BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ patiṭṭhā homi sabbesaṃ का पाठ 187 शाब्दिक अर्थ, "होना," "पाना" 188 tāso 189 āvāse patthite vase 190 पीटीएस vasiŋ के स्थान पर BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ vasī का पाठ 191 pūgadhamme

वे हमेशा आपके चारों ओर इकट्ठा होते हैं। (173) (312)
उन सभी विद्यार्थी तपस्वियों से घिरे हुए जिन्हें अच्छी तरह से शिक्षित किया गया है, एक निडर शेर की तरह तुम तारों के राजा की तरह चमकते हो।192 (174) (313)
मिट्टी में रोपे जाने के बाद, कठोर लकड़ी के पेड़ (मजबूत और लंबे) हो जाते हैं। वे अपनी पूरी उपज प्राप्त करते हैं और (मौसम के अनुसार) अपने फल प्रदर्शित करते हैं। (175) (314)
हे शाक्य पुत्र, हे महान यशारण, आप पृथ्वी के समान हैं; आपके (महान) उपदेश में स्थिर होकर, वे (वृक्षों के समान) अमर फल उत्पन्न करते हैं। (176) (315)
सिंधु और सरस्वती नदियाँ, चंदाभागा, गंगा और यमुना, सरभु और माही नदियों की तरह ही हैं। (177) (316)
जब वे नदियाँ बहना बंद कर देती हैं, तो विशाल सागर उन सभी को स्वीकार कर लेता है। अपने पुराने नामों को त्यागकर, वे सभी "विशाल सागर" के नाम से जानी जाती हैं। (178) (317)
इसी प्रकार, चारों जातियों के ये लोग, जो अपने पूर्व नामों को त्यागकर आपकी उपस्थिति में आए हैं, वे सभी "बुद्ध के पुत्र" कहलाते हैं। (179) (318)
जैसे कि निर्मल चंद्रमा आकाश में विचरण करते हुए संसार पर अपना प्रकाश डालता है और तारों के पूरे समूह को भी मात देता है, (180) (319)
इसलिए हे महान वीर, आप भी देवताओं और मनुष्यों से घिरे हुए, बुद्ध-क्षेत्र में निरंतर चमकते रहते हैं। (181) (320)
गहराई से उठने वाली लहरें समुद्र तट से आगे नहीं जातीं; जब वे तट पर आती हैं, तो वे चूर-चूर होकर बिखर जाती हैं।193 (182) (321)

192 शाब्दिक रूप से, "देने के बाद" 193 या, "उन आठ के अतिरिक्त"

ताकि दुनिया के विधर्मी, अपने विविध विचारों और शिक्षा को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली बड़ी भीड़ के साथ, कभी भी ऋषि से आगे न बढ़ सकें। (183) (322)
हे दृष्टिवान, यदि वे वाद-विवाद के द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयास करें, तो आपके समक्ष आकर वे आपके द्वारा पूरी तरह कुचल दिए जाएँगे। (184) (323)
जैसे कई सफेद कमल194 और मंडलक के फूल,195 जो पानी से पैदा होते हैं, पानी और कीचड़ और मिट्टी से भी सने होते हैं, (185) (324)
इसी प्रकार, संसार में जन्म लेने और बड़े होने वाले अनेक प्राणी भी कीचड़ में खिले श्वेत कमल की तरह अपनी कामवासना और क्रोध से व्यथित होते हैं। (186) (325)
जैसे गुलाबी कमल,196 जल में उत्पन्न होकर, जल के बीच में उगता है, वह जल से मैला नहीं होता बल्कि वह कमल निर्मल होता है, (187) (326)
हे महान वीर, संसार में जन्म लेने के बावजूद, हे महान ऋषि, आप भी संसार से अछूते हैं। आप गुलाबी कमल की तरह जल से अछूते हैं। (188) (327)
इसी प्रकार, कई कमल के फूल अप्रैल 197 के महीने में खिलते हैं (पर) उस महीने के बाद नहीं टिकते; यही उनके खिलने का समय है। (189) (328)
हे शाक्य पुत्र, तुम भी अपनी मुक्ति में खिल रहे हो। जल में खिले कमलों के समान तुम्हारी व्यवस्था अतुलनीय है। (190) (329)
खिले हुए साल के पेड़ों का राजा एक दिव्य सुगंध बिखेरता है।

194 paṭisambhidā, अर्थात् (चार) विश्लेषणात्मक तरीकों में निपुणता, अरहंतत्व का एक लक्षण 195 शाब्दिक अर्थ, "और"। यहाँ ca दो अलग-अलग ānisaṃsa को एक में जोड़ता है, जिसे अंतिम पद में एकवचन सर्वनाम etaŋ से संदर्भित किया गया है 196 sabbavositavosāno, शाब्दिक अर्थ, "वह जिसने सभी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों," "अरहंत होना" 197 katakicco, अर्थात्, "अरहंत होना"

अन्य साल के पेड़ों से घिरा हुआ, साल के पेड़ों का राजा सुंदर है। (191) (330)
हे महान वीर, आप भी बुद्ध के ज्ञान से परिपूर्ण हैं। भिक्षुओं की सभा से घिरे हुए, आप साल-राजा की तरह सुंदर हैं। (192) (331)
जैसे हिमालयी पत्थर जीवित प्राणियों के लिए औषधि है और छोटे देवताओं, नागों और असुरों का भी निवास स्थान है, (193) (332)
हे महान नायक, आप भी जीवित प्राणियों के लिए औषधि हैं; आपने तीन ज्ञान, विशेष ज्ञान, महान शक्तियों में महारत हासिल कर ली है। (194) (333)
हे महान वीर, आप उन्हें अत्यंत करुणा के साथ उपदेश देते हैं। वे धर्म के प्रेम में लीन होकर आपके विधान में निवास करते हैं। (195) (334)
इसी प्रकार, पशुओं का राजा शेर, अपनी इच्छा अनुसार चलता हुआ, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है (फिर) तीन बार दहाड़ता है (अपनी शक्तिशाली गर्जना)। (196) (335)
उस शेर की दहाड़ से सभी जानवर बहुत भयभीत हैं। इस प्रकार, केवल एक ही जानवर, जो कुलीन वंश का है, हमेशा (बाकी सभी को) डराता है। (197) (336)
हे महान नायक, तुम्हारी गर्जना के कारण पृथ्वी (स्वयं) कांपने लगती है। बुद्धिमान लोग इसे समझ लेते हैं, जिससे मृत्यु के समर्थकों में भय उत्पन्न होता है।199 (198) (337)
हे महान ऋषि, विधर्मी सब आपकी वाणी से भयभीत हैं। कौवों का वह झुंड शेर-राजा के साथ जानवरों की तरह घबराया हुआ है।200 (199) (338)
जिनके दुनिया भर में अनुयायी होते हैं, उन्हें "शिक्षक" की उपाधि से जाना जाता है।

198 अनासवो, अर्थात्, "अरहंत होना" 199 अड्डगोपानसी नाम 200 पीटीएस वासिंग के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ वसी पढ़ना

वे अपने समुदाय को परंपरा द्वारा प्रदत्त सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। (200) (339)
हे महान वीर, आप ऐसा नहीं करते, आप अपने उपदेशों का प्रचार स्वयं करते हैं। स्वयं सत्यों को समझते हुए201 (आप प्रचार करते हैं) समस्त जागृति।202 (201) (340)
इच्छाओं और गहरी कल्पनाओं को समझते हुए,203 इंद्रियों की शक्तियों और कमजोरियों को पहचानते हुए,204 यह जानते हुए कि कौन सक्षम है और कौन नहीं, तुम एक विशाल बादल की तरह गर्जना करते हो। (202) (341)
ब्रह्मांड के छोर तक, बैठे हुए अनुयायियों के समूह अपने विविध सिद्धांतों पर विचार कर रहे हैं, अपने सभी संदेहों को दूर करने की कोशिश कर रहे हैं। (203) (342)
हे ऋषि, आप सबका मन पढ़ लेते हैं, उपमाओं में निपुण हैं, एकल प्रश्नों पर चर्चा करके आप प्राणियों के संदेह दूर कर देते हैं। (204) (343)
इस दुनिया में धरती उन लोगों से भरी पड़ी है जिनका मैंने जिक्र किया है। उन सभी को, श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर, विश्व नेता की प्रशंसा में गीत गाने चाहिए।207 (205) (344)
युग भर उनकी प्रशंसा करते हुए, उनके विविध गुणों का बखान करते हुए, उन्हें कभी भी पूरी तरह से मापा नहीं जा सकता; तथागत का कोई माप नहीं है। (206) (345)
इस प्रकार, अपनी पूरी शक्ति से विजेता की प्रशंसा करते हुए, वे दस करोड़ युगों तक ऐसी बातें कहते रहेंगे जो अनकही ही रहेंगी। (207) (346)

यदि कोई प्राणी, चाहे वह देवता हो या मनुष्य,

---

201 पूगधम्मे 202 थम्हानि 203 शाब्दिक अर्थ, "देने वाला" 204 हेतु, शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बीजेटीएस का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) के रूप में समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) प्रेम से अविचलित, (2) धनी, (3) जिसके वचन सुने जाते हैं, जिससे कोई अपराध नहीं होता, (4) मन अनियंत्रित नहीं, अविचलित, और (5) अरहंतत्व (निर्मल, आदरणीय, आज्ञाकारी, कर्तव्य पूर्ण, बुद्ध का निष्कलंक अनुयायी)। 205 अचलो होमि मेट्टाया 206 अनुनभोगवा 207 आदेय्यावचनो होमि

भले ही वह (बहुत) अच्छी तरह से प्रशिक्षित हो, अगर वह पूरे (समुद्र के पानी) को खींचने की कोशिश करता है, तो वह निश्चित रूप से मुसीबत में पड़ जाएगा।208 (209) (347)

(अब) हे शाक्य पुत्र, हे महान ख्यातिप्राप्त, आपके विधान में स्थिर होकर, मैं ज्ञान की पूर्णता प्राप्त कर चुका हूँ और दोषरहित जीवन जी रहा हूँ। (209) (348)

प्रतिद्वंद्वी विधर्मियों को पराजित करके मैं धर्म का प्रचार करता हूँ।210 आज मैं बुद्ध के धर्म में धम्म का सेनापति हूँ।2112 (210) (349)

असंख्य कर्मों का फल (युगों पहले) मुझे यहाँ मिला: पूर्णतः मुक्त, तीर की तरह तेज,213 मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (211) (350)

जो भी व्यक्ति प्रतिदिन अपने सिर पर बोझ ढोता है, वह उस बोझ के कारण पीड़ित होता है, और वह बोझ भारी होता है। (212) (351)

मैं जन्मों में पुनर्जन्म लेता रहा,214 तीन अग्नियों से जलता रहा,215 मानो मैं पहाड़ों को उठा रहा हूँ। (213) (352)

मेरा बोझ (अब) उतार दिया गया है और मैंने पुनर्जन्म को नष्ट कर दिया है।216 मैंने वे सभी कार्य किए हैं जो बुद्ध के विधान में किए जाने चाहिए।217 (214) (353)

इस संपूर्ण बुद्ध-क्षेत्र के माध्यम से,

---

208 na dhaŋsemi yathā ahaŋ 209 BJTS के साथ abhantù� mānasaź� mama पढ़ना (भंता = मुड़ना, डगमगाना, अस्थिर, एक गाड़ी के लिए प्रयुक्त जो नियंत्रण से बाहर है) PTS के लिए āgataŋ mānasaŋ mamaŋ (वैकल्पिक mama), "मेरा मन आ गया है"। पीटीएस असन्तं (शांति का अभाव, अशांत) को एक वैकल्पिक पाठ के रूप में भी देता है, जो आगतं 210 विमलो होमी सासाने 211 सागरवो 212 सप्पतिसो 213 कटकिच्चो, यानी "अरहंत होना" 214 अनासवो, यानी "अरहंत होना" 215 भिक्खु तन वन्दते, शाब्दिक रूप से, "एक पूजनीय भिक्षु" 216 पञ्ञेप्स' अहं 217 हेतु, शाब्दिक रूप से, कारण; मैं बीजेटीएस का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) के रूप में समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अच्छा जन्म, (2) अपार धन, (3) सर्वोपरि सफलता, (4) कंजूसी या लोभ का अभाव, (5) जादुई पालकी।

शाक्य बैल को छोड़कर, ज्ञान के मामले में मैं सर्वोच्च हूँ; मेरा कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। (215) (354)

ध्यान में इतना कुशल218, महाशक्तियों में निपुण, आज मेरी एकमात्र इच्छा हजार जादुई रचनाएँ करना है।219 (216) (355)

वहाँ निवास करने वाले मुझमें से कुछ समय बाद महान ऋषि (महान) शिक्षक बने। उन्होंने मुझे विधान बताया; लेटे-लेटे ही समाप्ति हुई। (217) (356)

मेरी दिव्य दृष्टि शुद्ध है और मैं एकाग्रता में कुशल हूँ। उचित प्रयास किया जाता है; मैं ज्ञान के अंशों को केंद्रबिंदु के रूप में पसंद करता हूँ। (218) (357)

मेरे द्वारा वह सब कुछ किया जाता है जो अनुयायियों को प्राप्त करना चाहिए। विश्व नेता के सिवा मेरा कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। (219) (358)

ज्ञान और अनुशासन में निपुण होकर, परिवर्तित अवस्थाओं के माध्यम से मैंने शीघ्र मुक्ति प्राप्त की। ज्ञान के अंशों को केंद्र में रखकर मैंने अनुयायियों के गुणों में उत्कृष्टता प्राप्त की। (220) (359)221 अनुयायियों के गुणों को प्राप्त करके मुझे श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित किया गया है। मेरा मन हमेशा साथी धार्मिक छात्रों में विश्वास से भरा रहता है। (221) (360)

जैसे किसी साँप का विष नष्ट हो गया हो,222 जैसे किसी बैल के सींग टूट गए हों, मैं अपने अभिमान और अहंकार से मुक्त होकर अत्यंत श्रद्धा के साथ उसके पास जाता हूँ।223 (222) (361)
अगर मेरी बुद्धि एक खूबसूरत लड़की होती तो वह धरती के शासकों से प्रेम कर लेती। यही मेरे द्वारा प्रशंसा करने का फल है।

---

218 ucce kule 219 mahābhogo bhavāmi 220 reading sabbasampattiko homi with BJTS for PTS sabbasampāttiko 221 lit., “not found for me” “I do not know” “I do not experience” 222 maccheraŋ = macchariyaŋ2 223 upatiṭṭhati, lit., “stands (there),” “comes to stand fast”

अनोमादस्सी बुद्ध का ज्ञान।224 (223) (362)225 मैं धम्म-चक्र को पूर्णतः घुमाने में सहायता करता हूँ जिसे शाक्य पुत्र, तटस्थ पुरुष ने घुमाया था: यही ज्ञान की प्रशंसा का फल है। (224) (363)
मुझे कभी भी, कहीं भी, ऐसे व्यक्ति से न मिलना पड़े जिसके विचार शुद्ध न हों, जो आलसी हो या ऊर्जाहीन हो, अज्ञानी हो या अनैतिक हो। (225) (364)
केवल वही व्यक्ति मेरे सामने आए जो विद्वान, बुद्धिमान, नैतिक उपदेशों में सुस्थापित और मानसिक शांति में स्थिर हो।226 (226) (365)
हे भिक्षुओं, जो यहाँ एकत्रित होकर भीख मांग रहे हो, मैं तुमसे यही कह रहा हूँ: सदा प्रसन्न रहो, कम इच्छाओं वाले, ध्यान करने वाले, समाधि-प्रेमी। (227) (366)
जिसे मैंने सबसे पहले देखा, वह कामवासना से मुक्त और निष्कलंक था। वह मेरा गुरु है, वह मेरा नायक है, वह असाजी नाम का मेरा अनुयायी है। (228) (367)
उन्हीं की कृपा से मैं आज धम्म का सेनापति हूँ। हर जगह श्रेष्ठता प्राप्त करके मैं दोषरहित जीवन जी रहा हूँ। (229) (368)
मैं उस क्षेत्र के प्रति श्रद्धापूर्वक सिर झुकाता हूँ जहाँ वह है, वह जो मेरा स्वयं का गुरु था, असाजी नामक अनुयायी। (230) (369)
मेरे कर्मों को याद करके, शाक्यों के श्रेष्ठ गौतम ने भिक्षुओं की सभा में बैठकर मुझे सबसे आगे बिठाया। (231) (370)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है।

---

224 थेरो, “बुजुर्ग” 225 सब्बाभिञ्ञा-बलपत्तो 226 परा-किच्चत्त-किच्चानि, “वे कर्तव्य जो दूसरों द्वारा किए जाने हैं”। मैं इस संयुक्त शब्द को पढ़ने में बीजेटीएस की व्याख्या का अनुसरण करता हूँ; इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि उसने अपने स्वयं के कर्तव्यों का पालन किया, जिसमें दूसरों की सेवा से संबंधित कर्तव्य भी शामिल थे।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,227 मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ।228 (371)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।229 तीनों ज्ञान प्राप्त हो चुके हैं; (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (372)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (232) (373)
इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे। सारिपुत्त थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-1- थेरा सारिपुत्त की जीवनी पर टिप्पणी ।
3.1. इसके तुरंत बाद थेरों की जीवनी से संबंधित श्लोकों के संग्रह पर टिप्पणी करने के लिए, यह इस प्रकार कहा गया है: - "अथा थेरपदानं सुनाथा, अब आप सभी को थेरा की जीवनी सुननी चाहिए", हालांकि, यह कई अर्थों में प्रचलित है, जैसे: समय, दृढ़ता, पदनाम, नाम-निर्धारण, वरिष्ठ इत्यादि। तदनुसार, वास्तव में, ऐसे संदर्भ में जैसे: "थेरोवस्सिकानी पूतिनी चुन्नकजातानी, कई वर्षाओं (या वर्षों) के

वरिष्ठ भिक्षु, सड़ी हुई चीजें, चूर्ण में परिवर्तित", इत्यादि में, थेरा समय को संदर्भित करता है; थेरोवस्सिकानी उन लोगों को संदर्भित करता है जिन्होंने लंबे समय तक अपना उपवास (या वर्षा) बिताया है; इस प्रकार, अर्थ है। ऐसे संदर्भ में जैसे "थेरे पि ताव महा, वरिष्ठ भिक्षु भी अब महान हैं", इत्यादि में, दृढ़ता, दृढ़ अभ्यासी या दृढ़ उपदेशों में; इस प्रकार, यही अर्थ है। ऐसे संदर्भ में जैसे: "थेराको अयमायस्मा महल्लको, यह वरिष्ठ भिक्षु, आदरणीय, वृद्ध है" इत्यादि, थेरा पदनाम को संदर्भित करता है; यह केवल एक सांसारिक पदनाम है; इस प्रकार, यही अर्थ है। ऐसे संदर्भ में जैसे: "चुंडत्थेरे फुस्सात्थेरो, थेरा चुंडा और थेरा फुस्सा," इत्यादि, थेरा शब्द नामकरण को संदर्भित करता है, इस प्रकार नाम दिया गया; इस प्रकार, यही अर्थ है। ऐसे संदर्भ में जैसे: "थेरो चायं कुमारो मम पुत्तेसु, मेरे पुत्रों में, यह युवक फिर से सबसे वरिष्ठ है", इत्यादि, थेरा शब्द सबसे बड़े, सबसे बड़े युवक को संदर्भित करता है; इस प्रकार, यही अर्थ है। हालांकि, यहां यह शब्द थेरा समय और दृढ़ता के साथ उचित हो जाता है। इसलिए, जो लंबे समय तक स्थिर रहा है, वह थेरा, वरिष्ठ भिक्षु है; या उन्हें थेरा, वरिष्ठ भिक्षु कहा जाता है, जो उपदेश, आचरण, नम्रता आदि गुणों से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) में थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) और थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) शामिल हैं। थेराओं (वरिष्ठ भिक्षुओं) द्वारा किए गए कर्मों को थेरापदाना (वरिष्ठ भिक्षुओं की जीवनी) कहा जाता है; आप सभी उस थेरापदाना (वरिष्ठ भिक्षुओं की जीवनी) को सुनें; इस प्रकार, यह संबंध है। हिमवन्तस्स अविदुरे, लंबको नाम पब्बतो (हिमवंत पर्वत से कुछ ही दूरी पर स्थित लंबक हांगर नामक एक पहाड़ी) से शुरू होने वाले श्लोक थेरा सारिपुत्त के कर्मों या जीवनी का वर्णन करते हैं। उस पूजनीय भिक्षु और थेरा महामोग्गलाना की कहानी को इस प्रकार समझा जाना चाहिए:

3.2. बहुत समय पहले, ऐसा कहा जाता है कि इस कल्प (युग) से एक लाख कल्प और एक असंख्य काल (असांशेय्या) पूर्व, पूज्य सारिपुत्त का जन्म एक अत्यंत धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था और वे शारद नामक बालक के रूप में जाने जाते थे। महामोग्गलाना का जन्म एक अत्यंत धनी गृहस्थ परिवार में हुआ था और वे श्रीवादन नामक गृहस्थ के रूप में जाने जाते थे। दोनों बचपन में मिट्टी के चूर्ण से खेलते थे। पिता के देहांत के बाद, शारद बालक ने परिवार की संपत्ति (पृष्ठ 372) का कार्यभार संभाला और एक दिन एकांतवास में चले गए और इस प्रकार चिंतन किया: "जीवों के लिए मृत्यु निश्चित है; इसलिए (यह उचित है कि) एक संन्यासी के पास जाकर मुझे मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए।" फिर वह अपने मित्र के पास गए और बोले, "मेरे मित्र! मैं संन्यासी बनना चाहता हूँ; तुम्हारा क्या विचार है? क्या तुम संन्यासी बन पाओगे?" जब उनके मित्र ने कहा कि वह ऐसा नहीं कर सकते, तो उन्होंने मन ही मन कहा, "छोड़ो, मैं ही संन्यासी बनूँगा"; उन्होंने अपने रत्नों और अन्य खजानों के भंडार खुलवाए, दरिद्रों और यात्रियों को बड़ी मात्रा में दान दिया, एक पहाड़ी की तलहटी में गए और संन्यास धारण कर लिया। उनके संन्यास के बाद चौहत्तर हजार ब्राह्मण पुत्रों ने संसार का त्याग कर संन्यासी बन गए। उन्होंने अपने भीतर पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान और आठ प्रकार की ध्यान प्राप्ति (समापत्ति) उत्पन्न की और उन जटाधारी संन्यासियों को भी एकाग्रता के लिए कसिणा (कसीना) पर ध्यान लगाने के अभ्यासों के बारे में बताया। उन सभी ने भी पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान और आठ प्रकार की ध्यान प्राप्ति (समापत्ति) प्राप्त की।

3.3. उस समय, सर्वज्ञ बुद्ध, जिनका नाम अनोमदस्सी था, संसार में प्रकट हुए, उन्होंने अपने उत्कृष्ट धर्मचक्र का संचालन किया; जीवों को पुनर्जन्मों के भयंकर चक्रों से पार कराया। एक दिन, ऋषि सारदा और उनके शिष्यों की सहायता करने की इच्छा से (संघः कम्मं कट्टुकमो), वे अकेले ही, बिना किसी साथी के, अपने कुंड और वस्त्र धारण करके आकाश से अवतरित हुए, जबकि ऋषि उन्हें देख रहे थे, ताकि वे उन्हें बुद्ध के रूप में पहचान सकें और पृथ्वी पर विराजमान हो सकें। ऋषि सारदा ने गुरु के शरीर में एक महान व्यक्तित्व के लक्षण देखे और यह निर्णय लिया, "यह तो सर्वज्ञ बुद्ध ही हैं", वे उनसे मिलने के लिए आगे बढ़े, एक आसन तैयार किया और उन्हें दिया। प्रतापी बुद्ध उस आसन पर विराजमान हुए। ऋषि सारदा गुरु की उपस्थिति में एक छोर पर बैठ गए।

3.4. उस समय, उनके लगभग चौहत्तर हजार शिष्य, जो उत्तम स्वाद वाले उत्कृष्ट फल लेकर लौटे थे, ने गुरु को देखा और उनके बैठने के तरीके को देखकर कहा, "आपसे बड़ा कोई नहीं है; परन्तु हम मानते हैं कि यह व्यक्ति आपसे श्रेष्ठ है।" उनके गुरु ने उत्तर दिया, "मेरे शिष्यों! तुम सब क्या कहते हो? क्या तुम सब साठ हजार योजन ऊंचे मेरु पर्वत, सिनेरु को राई के दाने के बराबर मानना चाहते हो? मुझे सर्वज्ञ बुद्ध के समान मत मानो।" तब उन तपस्वियों ने गुरु के वचन सुनकर मन ही मन कहा, "सचमुच यह व्यक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है।" वे सब गुरु के चरणों में गिर पड़े और उन्हें प्रणाम किया।

3.5. तब उनके गुरु ने उनसे कहा, "मेरे प्रिय शिष्यों! गुरु के योग्य कोई भी धार्मिक अर्पण हमारे लिए उपयुक्त नहीं है; गुरु स्वयं भिक्षा मांगने के समय यहाँ आए थे; आओ, अब हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार धार्मिक अर्पण करें।" यह कहते हुए कि "तुम्हारे पास जो भी उत्तम फल या अन्य वस्तुएँ हों, उन्हें ले आओ", गुरु-सन्यासी ने उन्हें मंगवाया, अपने हाथ धोए और स्वयं उन फलों को तथागत के भिक्षापात्र में डाल दिया। जिस क्षण गुरु ने फल (या अन्य वस्तुएँ) ग्रहण किए, उसी क्षण देवताओं ने अमृत (या दिव्य सार) उसमें डाल दिया। साधु ने स्वयं पीने का जल भी छानकर बुद्ध को अर्पित किया। इसके बाद, जब भोजन समाप्त हो गया और गुरु बैठ गए, तो उनके गुरु ने अपने सभी शिष्यों को बुलवाया और स्वयं गुरु के समक्ष बैठकर यादगार विषयों पर चर्चा करने लगे। गुरु ने मन ही मन सोचा,

"मेरे दो प्रमुख शिष्य भिक्षुओं के समूह के साथ आएँ।" ठीक उसी क्षण, प्रमुख शिष्य एक लाख अरहतों से घिरे हुए आए, उन्होंने प्रतापी को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

3.6. तब ऋषि सारदा ने अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, "प्रिय शिष्यों! गुरु और भिक्षुओं के समूह को पुष्पों की वेदी अर्पित करके आदर करना चाहिए; अतः पुष्प लाओ।" उसी क्षण, उन्होंने अपनी जादुई शक्ति से उत्तम रंग और सुगंध वाले पुष्प लाकर बुद्ध के लिए एक योजन आकार की पुष्प वेदी, प्रमुख शिष्यों के लिए तीन गावूत आकार की पुष्प वेदी, शेष भिक्षुओं के लिए आधा योजन आदि आकार की पुष्प वेदी और नवदीक्षित भिक्षुओं के लिए एक उषभ आकार की पुष्प वेदी तैयार की। वेदी तैयार हो जाने पर, ऋषि सारदा ने तथागत के सामने हाथ जोड़कर कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया मुझे आशीर्वाद देने के लिए इस पुष्प वेदी पर विराजमान हों।" प्रतापी बुद्ध स्वयं पुष्प वेदी पर विराजमान हो गए। जब गुरुजी बैठ गए, तो उनके दो प्रमुख शिष्यों और शेष भिक्षुओं ने भी अपने-अपने द्वारा लाए गए (या व्यवस्थित किए गए) आसनों पर बैठ गए। गुरुजी ने उन संन्यासियों के कल्याण के लिए निरोध ध्यान की अवस्था में प्रवेश किया। गुरुजी के समाधि में प्रवेश करने का ज्ञान प्राप्त होने पर, दोनों प्रमुख शिष्यों और शेष भिक्षुओं ने भी निरोध समाधि में प्रवेश किया। संन्यासी सात दिनों तक बिना किसी अंतराल के गुरुजी के ऊपर पुष्पों का छत्र धारण किए खड़े रहे। अन्य संन्यासी वन की जड़-जड़ियाँ और फल खाकर शेष समय तक हाथ जोड़कर खड़े रहे। सात दिनों की समाप्ति पर, गुरुजी निरोध समाधि से जागे और अपने प्रमुख शिष्य, थेरा निसाभा को संबोधित करते हुए कहा, "आप संन्यासियों को पुष्पों के आसन अर्पित करने के लिए धन्यवाद दें।" थेरा ने शिष्यों की सिद्धियों के ज्ञान पर विराजमान होकर उनके पुष्प-आसनों के दान के लिए उनका आभार व्यक्त किया। अपने धार्मिक प्रवचन (देशना) के अंत में, गुरु ने अपने दूसरे प्रमुख शिष्य, थेरा अनोमा को संबोधित करते हुए कहा, "तुम भी इन संन्यासियों को धर्म का उपदेश दो।" उन्होंने भी बुद्ध के उपदेशों का चिंतनपूर्वक अध्ययन किया, जिनमें तीन पितक शामिल थे, और उन्हें धर्म का उपदेश दिया। फिर भी, उन दोनों के उपदेशों से धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। तब, गुरु ने बुद्ध के क्षेत्र में विराजमान होकर धर्म का उपदेश देना शुरू किया। अपने धार्मिक प्रवचन के अंत में, ऋषि सारदा को छोड़कर, शेष चौहत्तर हजार जटाधारी संन्यासियों ने अर्हतत्व प्राप्त किया। गुरु ने उनकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा: "आओ, हे भिक्षुओं।" उसी क्षण, वे सभी साठ वर्ष के वरिष्ठ भिक्षुओं के समान हो गए, जो अपने आठ धार्मिक वस्त्र धारण किए हुए थे और उनके तपस्वी स्वरूप का कोई अंश नहीं बचा था।

3.7. ऋषि सारदा ने मन ही मन कहा, "यदि भविष्य में मैं इस थेरा निसाभा के समान किसी बुद्ध का शिष्य बन सकूँ तो कितना अद्भुत होगा", और चिंतनशील विचारों के कारण वे ज्ञानहीन हो गए तथा उचित मार्ग और फल को ठीक से नहीं समझ पाए। तब उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और इस प्रकार अपनी मनोकामना व्यक्त की। गुरु ने उनकी इस अवस्था को निर्बाध रूप से देखा और भविष्यवाणी की, "इसके बाद, जब एक लाख युग (कप्पा) और असंख्य काल (असंख्य) बीत जाएँगे, तब वे सर्वज्ञ बुद्ध गौतम के प्रमुख शिष्य बनेंगे, जिन्हें सारिपुत्त के नाम से जाना जाता है", और उपदेश देकर अपने भिक्षुओं के समूह से घिरे आकाश में विलीन हो गए। ऋषि सारदा भी अपने सहयोगी श्रीवाद्ध के पास गए और उनसे कहा, "प्रिय मित्र! मैंने सर्वज्ञ बुद्ध गौतम के प्रमुख शिष्य का पद पाने की इच्छा रखी है, जो भविष्य में तेजस्वी अनोमदेस्सी के चरणों में प्रकट होंगे; आप भी उस बुद्ध के द्वितीय प्रमुख शिष्य का पद पाने की इच्छा रखें।" यह सलाह सुनकर, श्रीवाद्ध ने अपने निवास के द्वार पर आठ 'करीसा' वर्ग मीटर भूमि को समतल करवाया, उस पर लाजा और भुट्टे के फूल बिखेरे, पाँचवें के रूप में नीले कमल की छत वाला एक मंडप बनवाया, बुद्ध का आसन तैयार करवाया, भिक्षुओं के लिए भी आसन तैयार करवाए, भव्य आतिथ्य सत्कार की व्यवस्था की, गुरु को ऋषि सारदा के साथ आमंत्रित किया, सात दिनों तक एक बड़ा दान-पुण्य करवाया, और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को वस्त्रों से आच्छादित करवाया। श्रीवाद ने अत्यंत मूल्यवान ज्ञान प्राप्त किया और द्वितीय प्रमुख शिष्य बनने की दृढ़ इच्छा रखी। गुरु ने शिष्य द्वारा इस इच्छा के शीघ्र साकार होने को देखा, और उपर्युक्त तरीके से अपनी भविष्यवाणी की, भोज प्रसाद पर धन्यवाद अर्पित किया और प्रस्थान किया। श्रीवाद प्रसन्न और आनंदित हुआ, जीवन भर पुण्य कर्म किए और अपने दूसरे मानसिक अनुभव (चित्तवार) में इंद्रियलोक में पुनर्जन्म लिया। ऋषि सारद ने चार प्रकार के उच्च जीवन, ब्रह्म विहार को प्राप्त किया और ब्रह्माओं के लोक में पुनर्जन्म लिया।

3.8. उस समय से आगे उन दोनों के बीच के कर्मों का वर्णन नहीं किया जाएगा। हमारे प्रतापी प्रभु के प्रकट होने से पहले ही, ऋषि सारदा ने राजगृह से कुछ ही दूरी पर स्थित उपतिस्सा गाँव में ब्राह्मण स्त्री रूपसारी के गर्भ में जन्म लिया। उसी दिन, उनके सहोदी ने भी राजगृह से कुछ ही दूरी पर स्थित कोलिता गाँव में ब्राह्मण स्त्री मोग्गली के गर्भ में जन्म लिया। अतः, वे मोग्गलाना कहलाए; वे ब्राह्मण स्त्री मोग्गली के पुत्र थे; इस प्रकार, वे मोग्गलाना कहलाए। या, वे मोग्गली वंश में जन्मे थे; इस प्रकार, वे मोग्गलाना कहलाए। दूसरे शब्दों में, जब उनकी माता छोटी थीं, तब उनके माता-पिता ने उनसे कहा था: "थूकना मत; थूकना मत", इसी कारण उनका नाम 'मुग्गली' पड़ा; क्योंकि वे मुग्गली नाम की महिला के पुत्र हैं; इस प्रकार उनका नाम मोग्गलाना पड़ा। दूसरे शब्दों में, वे सोतापत्ति से शुरू होने वाले सही मार्ग को प्राप्त करने, उस पर चलने और उसमें पूर्णतः प्रवेश करने में सक्षम थे; इस प्रकार उनका नाम मोग्गलाना पड़ा। कहा जाता है कि

वे दोनों परिवार सातवीं पीढ़ी तक घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने दोनों को एक ही दिन गर्भाधान कराया। दस महीने बाद जब उनका जन्म हुआ, तब उन्होंने उन्हें छियासठ दाइयाँ उपलब्ध कराईं। उनके नामकरण के दिन, ब्राह्मण महिला रूपसारी के पुत्र होने के कारण, उनका नाम उपतिस्सा रखा गया। दूसरे को, कोलिता गाँव के सबसे बड़े परिवार का पुत्र होने के कारण, कोलिता नाम दिया गया। दोनों ही अपने-अपने परिवार के साथ पले-बढ़े और वयस्क होने पर सभी प्रकार के विज्ञानों में निपुण हो गए।

3.9. फिर एक दिन, उन्होंने राजगृह में पहाड़ी की चोटी पर आयोजित उत्सव में एकत्रित लोगों की विशाल भीड़ को देखा। ज्ञान की पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर चुके वे बुद्धिमानी से उभरे और बोले: "ये सभी लोग सौ वर्ष के जीवनकाल से पहले ही मृत्यु के मुंह में प्रवेश कर रहे हैं।" पश्चाताप से भर कर उन्होंने यह संकल्प लिया: "हमें मुक्ति के धर्म का अनुसरण करना चाहिए; वास्तव में, उसी की खोज में, अकेले ही भिक्षुत्व प्राप्त करना उचित है।" वे पाँच सौ युवकों के साथ भ्रमणशील तपस्वी संजय की उपस्थिति में संन्यासी बन गए। उनके त्याग के समय से ही संजय लाभ और प्रसिद्धि में सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गए। कुछ ही दिनों में उन्होंने संजय के संपूर्ण धर्म का सार नष्ट कर दिया। बाद वाले लोग पूछे गए किसी भी प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। दूसरी ओर, उन्होंने स्वयं दूसरों की समस्याओं का समाधान किया। इस प्रकार मुक्ति की खोज में उन्होंने यह आपसी सहमति बनाई: "हममें से जो भी पहले अमरत्व प्राप्त करे, वही दूसरे को सूचित करे (या उसे सूचित करने दे)।" उस समय तक, हमारे गुरु, बुद्धत्व की सर्वोच्च ज्ञान प्राप्ति कर, सर्वप्रथम धर्म के उत्कृष्ट चक्र का संचालन कर रहे थे, धीरे-धीरे उरुवेलकस्सपा के नेतृत्व में हजार जटाधारी तपस्वियों को वश में कर लिया था, और राजगृह में निवास कर रहे थे। तभी एक दिन, भ्रमणशील तपस्वी उपतिस्सा, भ्रमणशील तपस्वियों के आश्रम (परिब्बाजकारम) जाते समय, आदरणीय थेरा असज्जी को राजगृह में भिक्षा के लिए भटकते हुए देखकर, भक्ति से प्रेरित होकर मन ही मन कहने लगे, "ऐसा आचरणशील भिक्षु मैंने पहले कभी नहीं देखा; यहाँ अवश्य ही ऐसा कोई होना चाहिए, अर्थात् शांत सत्य (संतधम्म) से युक्त।" वे आदरणीय थेरा से ईर्ष्या करते हुए, उनसे प्रश्न पूछने के लिए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। थेरा ने भी भिक्षा प्राप्त कर ली और एक उपयुक्त स्थान (या स्थल) पर चले गए। घुमंतू तपस्वी ने अपना परिब्बाजकपीठ (घूमते तपस्वी का आसन) तैयार किया और उसे थेरा को भेंट किया। थेरा के भोजन के बाद, उन्होंने अपने प्याले से थेरा को जल पिलाया। इस प्रकार एक गुरु के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने के बाद, उन्होंने भोजन कर चुके थेरा से वार्तालाप किया और पूछा, "आपके गुरु कौन हैं? या किसका सिद्धांत (धम्म) आपको प्रसन्न करता है?" थेरा ने सर्वज्ञ बुद्ध का उल्लेख किया। जब थेरा ने उनसे फिर पूछा, "आपके आदरणीय गुरु कौन हैं?", तो थेरा ने मन ही मन कहा, "मैं इसे बुद्ध के शासन (शासन) की गहनता दिखाऊंगा", और उन्हें स्वयं के नए होने की बात बताई, तथा संक्षेप में उन्हें शासन (धम्म) का उपदेश दिया और यह श्लोक सुनाया: "जो भी घटनाएँ (धम्म) प्रमुख कारण से उत्पन्न होती हैं", इत्यादि।श्लोक के पहले दो चरण सुनकर ही विचरण करने वाले तपस्वी ने मोक्ष के प्रथम चरण (सोतापत्ति) की प्राप्ति कर हजार विधियों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। श्लोक के शेष दो चरण उस समय समाप्त हुए जब श्रोता सोतापन्न (स्रोत-मार्गदर्शक) बन चुका था। श्लोक के पूर्ण अंत में, सोतापन्न (स्रोत-मार्गदर्शक) बनने के बाद, जब आगे कोई विशिष्ट उपदेश नहीं दिया गया, तो विचरण करने वाले तपस्वी ने ध्यानपूर्वक कहा, "यहाँ अवश्य ही कोई कारण होगा", और थेरा से पूछा, "आदरणीय गुरुदेव! कृपया अपने सत्य (धम्म) के उपदेश को और आगे न बढ़ाएँ; इतना ही पर्याप्त है, हमारे गुरु कहाँ निवास करते हैं?" उत्तर था, "बाँस के वन (वेलुवन) में।" घुमंतू तपस्वी ने पांच प्रकार की मुद्राओं में थेरा को प्रणाम करते हुए कहा: "आदरणीय महोदय! आप कृपया आगे बढ़ें, मैं अपने साथी से किया वचन पूरा करूंगा और उसे अपने साथ लेकर आऊंगा", थेरा की परिक्रमा की, उसे विदा किया और स्वयं घुमंतू तपस्वियों के आश्रम (परिब्बाजकारम) की ओर चल दिया।

3.10. घुमंतू तपस्वी कोलिता ने उन्हें दूर से आते हुए देखा और मन ही मन कहा, "इनका चेहरा तो आम दिनों जैसा नहीं है; निश्चय ही इन्होंने अमरत्व (अमता) प्राप्त कर लिया है।" उन्होंने उपतिस्सा से पूछा कि इतनी विशिष्ट उपलब्धि को विधिवत विकसित करने के बाद भी उन्होंने अमरत्व कैसे प्राप्त किया। उपतिस्सा ने भी अपने मित्र से कहा, "प्रिय मित्र! अमरत्व (अमता) प्राप्त हो गया है।" उन्होंने वही श्लोक सुनाया। श्लोक के अंत में, कोलिता ने मोक्ष की प्रथम अवस्था की सिद्धि प्राप्त कर ली और पूछा, "हमारे गुरु कहाँ हैं?" उत्तर मिला, "बांस के वन (वेलुवन) में।" कोलिता ने कहा, "अच्छा, मित्र! चलो चलते हैं; हम गुरु के दर्शन करेंगे।" उपतिस्सा अपने गुरु का सदा आदर करते थे; इसलिए, अपने गुरु संजय के गुणों को प्रकट करते हुए, वे उन्हें भी गुरु के दर्शन कराना चाहते थे। लेकिन उनके गुरु, लाभ की लालसा के कारण, उनके शिष्य बनने की इच्छा न रखते हुए, उनके साथ जाने से इनकार कर दिया और कहा: "जलदान बनकर मैं जल छिड़कने वाला नहीं बन सकता।" वे दोनों उन्हें अनेक कारण बताकर भी समझाने में असमर्थ रहे और अपने साथ आए ढाई हजार शिष्यों को लेकर बाँस के वन (वेलुवन) चले गए। गुरु ने उन्हें दूर से ही आते देखा और मन ही मन कहा: "ये दोनों मेरे शिष्यों की जोड़ी बनेंगे; श्रेष्ठ और उत्तम जोड़ी।" उन्होंने उनके समूह को अभ्यास के रूप में सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, उन्हें अर्हत पद पर स्थापित किया और उन्हें भिक्षु श्रेणी का भिक्षु बनाकर पूर्ण दीक्षा दी। जैसे उन्हें मिली, वैसे ही उनके श्रेष्ठ शिष्यों को भी, जो उच्च जादुई

शक्तियों से प्राप्त हुए थे, साधारण रूप से ही प्राप्त हुए थे। यद्यपि तीन उच्चतर मार्गों का कार्य पूर्ण नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि शिष्य की पूर्णता के ज्ञान की महानता के कारण।

3.11. उन दो में से, पूज्य महामोग्गलाना, भिक्षु बनने के सातवें दिन, मगध राज्य के कल्लावाला गाँव में अपने भिक्षु कर्तव्यों (समणधम्म) का पालन करते हुए, जब वे आलस्य और उन्मत्तता से पीड़ित थे, तो उन्हें गुरु द्वारा जागृत किया गया, जिन्होंने उनके आलस्य और उन्मत्तता को दूर किया, तत्वों पर ध्यान अभ्यास (धातुकम्मत्थान) सुनते हुए तीन उच्चतर सही मार्ग प्राप्त किए, और शिष्य की पूर्णता से संबंधित ज्ञान के शीर्ष को प्राप्त किया। आदरणीय सारिपुत्त ने भिक्षु बनने के बाद आधा महीना राजगृह में सूअरों द्वारा खोदी गई गुफा में गुरु के साथ बिताया, जहाँ वे अपने भतीजे, लंबे नाखूनों वाले विचरणशील तपस्वी (दीघनाखापरिब्बाजक) को उपदेश दे रहे थे। इस दौरान उन्होंने अपने उपदेश के अनुरूप अपनी बुद्धि का उपयोग किया और शिष्य की पूर्णता से संबंधित ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त किया, मानो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार किया गया भोजन ग्रहण किया हो। इस प्रकार, दो प्रमुख शिष्यों ने गुरु के निकट रहकर भी शिष्य की पूर्णता से संबंधित ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त किया।

3.12. इस प्रकार, शिष्य की पूर्णता से संबंधित ज्ञान के स्वामी, पूज्य सारिपुत्त ने इस प्रकार चिंतन करते हुए कि "यह उपलब्धि किस कर्म से प्राप्त हुई?", इसका ज्ञान प्राप्त किया और उत्साह और मानसिक आनंद से प्रेरित होकर, "हिमवंतास्सा अविदुरे, हिमवंता पर्वत श्रृंखलाओं से अधिक दूर नहीं" से शुरू होने वाले इस श्लोक का पाठ किया। अतः कहा गया है:

141.
असमो सुकातो मयहम, पंससाला सुमापिति"
हिमावंता पहाड़ी से कुछ ही दूरी पर एक पहाड़ी स्थित थी।
नाम से लंबका;
मेरे लिए एक आश्रम अच्छी तरह से बना हुआ था, पत्तों की
झोपड़ी अच्छी तरह से बनाई गई थी

141.1. हिमवंतस्सः, वहाँ, का अर्थ है: वहाँ बर्फ है; अतः, हिम का स्वामी (हीनवा), अविदुरे (निकट) उस हिमवंता के निकट है; बर्फ से ढका पाला वन; यही अर्थ है। लंबको नाम पब्बतो (लंबका नामक पर्वत) मिट्टी से मिश्रित पर्वत है, इसलिए इसका नाम ऐसा रखा गया है। उस लंबका पर्वत में (मेरे उद्देश्य के लिए बनाया गया मेरा वन-निवास मेरे लिए बनाया गया था) मेरे लिए सुकून भरा आश्रम है, जो चारों ओर से शांत है; यही आश्रम (अस्समा) है। या, यहाँ प्रवेश करने वालों को कोई थकान या थकावट नहीं होती; यही आश्रम (अस्समो) है; वह सुखद वन-निवास विधिवत बनाया गया है; इसे रात्रि विश्राम, दिन का विश्राम, शौचालय, पंडाल आदि जैसी उत्कृष्ट विशेषताओं के साथ बनाया गया है; यही अर्थ है। पन्नासाला (पत्तों की झोपड़ी) का अर्थ है पत्तों और सुगंधित सरकंडों से ढकी हुई आवासीय झोपड़ी; इस प्रकार इसका अर्थ है।

142. उत्तानकुल नदीका, सुपतिषा मनोरमा
सुसुद्धपुलिनाकिन्ना, अविदुरे ममस्समम।
मेरे आश्रम से ज़्यादा दूर नहीं, एक नदी है जिसके साथ
उसका तटबंध दूर तक फैला हुआ, मनमोहक
रेत से भरा हुआ, शुद्ध और समतल उतरने का स्थान।
साफ।

142.1. उत्तानाकूला (तटीय किनारा) एक उथली नदी है। सुपतिष्ठा (अच्छा घाट) एक उत्कृष्ट तटबंध है। मनोरमा (मन को भाने वाली) मन को प्रसन्न करने वाली, हृदय को प्रिय लगने वाली है। सुषुद्धपुलिनाकिन्ना (स्वच्छ, शुद्ध रेत से भरी हुई) का अर्थ है: चमकदार सफेद मोतियों के टुकड़ों के समान साफ की गई रेत से भरी हुई; यही अर्थ है। वह सुखद नदीका (छोटी नदी) ममस्समम (पास थी) मेरे आश्रम से ज्यादा दूर नहीं थी; यही अर्थ है। 'अस्समम' को स्थानवाचक अर्थ में सातवें कारक के अंत के साथ लोप (या संक्षिप्त अभिव्यक्ति) के रूप में समझा जाना चाहिए।

143. असक्खरा ए पब्भरा, सदु अप्पशिगंधिका
संदति नादिकत्थ, सोभयंता ममस्सामम्
बजरी नहीं, ढलान नहीं, अच्छी और गंधहीन सतह।
वहाँ एक छोटी नदी बहती है, जो मेरे आश्रम को बनाती है।
आनंददायक।

143.1. असक्खरा (कंकड़ रहित) का अर्थ है कंकड़ (या रेत) रहित, क्योंकि इसे "पुलिनाकिन्ना, रेत से बिखरा हुआ" कहा गया है। अपभरा (ढलान रहित) का अर्थ है अचानक ढलान, उथला किनारा; इस प्रकार, इसका अर्थ है। सादुअप्पतिगंधिका (सुगंध रहित) का अर्थ है अच्छा स्वाद वाला पानी, बुरी गंध से रहित, मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाए; नादिका (छोटी नदी) का अर्थ है छोटी नदी; संदति (बहती है) का अर्थ है ऐसा होना; इस प्रकार, इसका अर्थ है

144, कुंभिलामकारा चेत्था, सुसुमरा च कक्कपा,
संदतिनादिका तथा, सोभयंता मम'समम्।
यहां मगरमच्छ, शार्क (मकारा) थे।
मगरमच्छ और कछुए;
वहाँ छोटी नदियाँ बहती थीं, जिससे मेरा
आश्रम सुखद था

144.1. कुंभिला (मगरमच्छ) वहाँ मछली है; मकरा (शार्क) मछली है और सुसुमारा (बाल वध करने वाली) क्रूर मछली है, कच्छपा (कछुआ) भी मछली है; एत्था (यहाँ) इस नदी में हैं, जो खेल रहे थे; इस प्रकार, संबंध है। मेरे आश्रम को सुशोभित करती हुई नादिका (छोटी नदी); संदति (बहती) है; इस प्रकार, संबंध है।

145. पशिना पावुसा मच्छा, बालाजा मुंजरोहिता।
वग्गगा पपतायन्ता, सोभयन्ति मम'सम्म्।
मछली की ऐसी किस्में जैसे पाशिना, पावुसा
बालाजा, मुंजा, रोहिता, वाग्गागा तैरते रहते हैं
और मेरे आश्रम को सुशोभित करें।

145.1. पाठीना, पावुसा मच्छा, बलजा, मुंज रोहिता और वग्गला मछलियों और जलीय जीवों की किस्में हैं; यहाँ-वहाँ से, मछली की ये सभी प्रजातियाँ पापतूयोन्ता (गिरती और बहती हुई) नदी के साथ बहकर मेरे आश्रम को सुशोभित करती हैं; यही अर्थ है।

146. उभोकुलेसु (दोनों किनारों पर) वहाँ, है: उस नदी के दोनों किनारों पर, स्थायी रूप से फूल देने वाले और बारहमासी फल देने वाले वृक्ष, नदी के दोनों किनारों पर झुके हुए, मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाते हैं; यही अर्थ है।

147. अम्बा शाला च तिलका, पाटलि, सिन्दुनारका;
दिब्बागंधा संपवंती, पुष्फिटा मामा-
असम।
आम (अंबा) साल (साला) जैसे पेड़
तिलक, पाटली और सिंधुवारक, खिलते हुए
फूलों के साथ दिव्य मधुरता प्रवाहित होती है
मेरी कुटिया की ओर आती हुई सुगंध।

147.1. वहाँ आम (अंबा) हैं: मीठे, गुठलीदार आम; साल (साल) है: साल का पेड़; तिलका का पेड़, पाटली का पेड़ और सिंधीवारक का पेड़; ये पेड़ हमेशा फूलते रहते हैं। मेरे आश्रम में, चारों ओर से मधुर, दिव्य सुगंध से मिलती-जुलती हवा आती है; यही इसका अर्थ है।

148. चंपका सलाला निपा, नागा पुन्नागा केतका;
दिब्बागंधा संपावन्ति, पुष्फिटा मम अस्समे।
कैम्पाका, सलाला, नीपा, नागा जैसे वृक्ष।
पुन्नाग और केतका वृक्ष से भी मधुरस निकलता है
दिव्य सुगंध, खिले हुए फूलों के साथ
मेरा आश्रम।

148.1. चंपक वृक्ष, वहाँ, सालला वृक्ष, नीपा वृक्ष, जिसके फूल सोने की अंगूठियों जैसे दिखते हैं, नाग वृक्ष, पुन्नागा वृक्ष, और मीठी सुगंध वाला केतका वृक्ष, ये सभी वृक्ष, पुफ्फीता, दिव्य सुगंध के समान सुगंध वाले फूलों से खिलते हैं, संपवंती (अच्छी तरह से बहते हैं) मीठी सुगंध की अच्छी हवा भेजते हैं

149. अधिमुत्ता अशोक च, भगिनीमला च पप्तिता;
अनलोला बिम्बिजाला च, पुष्फिटा मम अस्समे।

अधिमुत्तका जैसे फूल वाले वृक्ष,
अशोक, भगिनीमाला, अंकोला और बिम्बिजाला
मेरे आश्रम में खिल उठें।
149.1. वहाँ, पुष्पयुक्त अधिमुत्तक वृक्ष, पुष्पयुक्त अशोक वृक्ष, पुष्पयुक्त भगिनामाला वृक्ष, पुष्पयुक्त अंकोला वृक्ष और पुष्पयुक्त बिम्बिजाला वृक्ष हैं; ये वृक्ष ऐसे फूल धारण करते हैं जो मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाते हैं; इस प्रकार, संबंध है।
150. केतका कंडाली सेवा, गोधुका तिनासूलिका;
दिब्बागंधं संपवंता, सोब्बयंति मम'स्समम्
वहाँ केतका एक मीठी सुगंधित केतका झाड़ी है,
और कंदली का पेड़, साथ ही गोधुका का पेड़ भी।
और साथ ही तिनसूलिका नामक झाड़ी, जो उत्सर्जित करती है
दिव्य सुगंध से महक, मेरे आश्रम को सुशोभित करो।
150.1. वहाँ, सुगंधित केतका झाड़ी, कंदली और गोधुका वृक्ष तथा तिन सूलिका झाड़ी, ये सभी वृक्ष प्रजातियाँ, दिव्य सुगंध उत्सर्जित करते हुए, मेरे पूरे आश्रम को समाहित कर देती हैं; यही अर्थ है।
151. कणिकारा कणिका च, आसन अज्जुना बाहु
दिब्बागंधम संपवंता सोभयंती मम'
समम।
कणिकारा, कणिका जैसे कई वृक्ष,
आसन और अज्जुना दिव्य सुगंध उत्सर्जित करते हैं
मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाएँ।
151.1. काणिकारा से शुरू होकर, मेरे पूरे आश्रम की शोभा बढ़ाने वाले ये वृक्ष दिव्य सुगंध उत्सर्जित करते हैं; इस प्रकार, संबंध है
152. पुन्नागा गिरीपन्नागा, कोवियारा च पफिता
दिब्बागंधम संपवंता, सोभयंती मां'
समम।
पुष्पधारी पुन्नागा, गिरिपुन्नागा
और कोविलारा (कोरल वृक्ष), उत्सर्जित करते हुए
दिव्य सुगंध, मेरे आश्रम को सुशोभित करो;
152.1. पुन्नागा से शुरू होने वाले और इसी तरह आगे आने वाले वृक्ष, दिव्य सुगंध बिखेरते हुए, मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाते हैं; यही अर्थ है।
153. उद्दालका च कुशजा, कदंब वकुला बाहु;
दिब्बागंधम संपवंता, सोभयंती मां'
समम।
उद्दालक, कुटज जैसे कई पेड़
लाडाबा और वकुला, दिव्य ऊर्जा उत्सर्जित करते हुए
सुगंध, मेरे आश्रम को सुशोभित करो।
153.1. उद्दालका से शुरू होकर आगे बढ़ते हुए, दिव्य सुगंध बिखेरने वाले वृक्ष मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाते हैं; इस प्रकार, संबंध है।
154. अकाका इसिमुग्गा सीए, कदली मातुलुंगियो
गंधोदेकेन संवादधा, फलानिधारयन्ति ते।
ऐसी झाड़ियाँ, जैसे आका, इसिमुग्गा, कदली और
मातुलुंगी, सुगंधित पानी विकसित करते हैं और
उनके प्रतिफल निश्चित रूप से उत्पन्न होते हैं।
154.1. वहाँ, आलक से शुरू होने वाली ये झाड़ियाँ, चंदन के पानी जैसी मीठी सुगंध से परिपूर्ण होकर, सुनहरे फल धारण करती हैं, जो मेरे आश्रम की शोभा बढ़ाती हैं; यही इसका अर्थ है।

155. अण्णे पुप्फन्ति पदुमा, अण्णे जयंती केसरी
अण्णे ओपुप्पा पदुमा, पुफ़िता तायके तदा।
उस समय तालाब में फूल खिले थे
जैसे पद्म, केसरी और कुछ कमल।
पुप्पा।
155.1. वहाँ, अञ्ञे पुप्पन्ति पदुमा है: मेरे आश्रम के पास तालाब में कुछ पद्म कमल खिलते हैं; कुछ केसरी पद्म कमल; जयंती उगते हैं और अस्तित्व में आते हैं; कुछ ओपुप्पा, पद्म कमल अपनी पंखुड़ियाँ और रोएँदार पराग गिराते हैं; इस प्रकार, इसका अर्थ है
156. गब्बम गंशांति पदुम, निद्धवंति
मूलालियो।
सिंहतिपट्टमाकिन्ना, सोभन्ति तलके
तदा।
पद्मा कमल के पौधे अपनी कलियों को पकड़ लेते हैं;
पद्मा कमल के पौधों की जड़ें नीचे की ओर बढ़ती हैं
गहरा; सुगंधित पंखुड़ियों से भरा हुआ;
उस समय वे झील की शोभा बढ़ाते हैं।
156.1. वहाँ, गभम गंहंति पदुमा की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए:- जब मैं अपने आश्रम में निवास कर रहा था और संन्यासी बन गया था, तब झील के भीतर कुछ पदुमा कमलों में कलियाँ, फूल आदि खिलने लगे। मूलालियो का अर्थ है: पदुमा कमल के पौधों की जड़ें; निद्धावंति का अर्थ है, वे यहाँ से निकल जाते हैं, अर्थात् हाथियों के दांतों की तरह कीचड़ के भीतर से निकलते हैं; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
157. नैयिता अंबगंधी च, उत्तलि बंधुजीवका;
दिब्बागंधा संपावन्ति, पुप्फिटा ताउके
तदा।
फिर झील पर फूल खिले और
ऐसी झाड़ियाँ दिव्य सुगंध बिखेरती थीं।
नायिता, अब्बागंधी और उत्तरालि के रूप में भी
बंधुजीवका के रूप में।
157.1. तदा (उस समय) का अर्थ है जब मैं वहाँ निवास कर रहा था; झील के पास नयिता, अंबगंधी, च, उत्तली और बंधुजीवका, पुफ्फीता जैसी सभी झाड़ियाँ खिल उठीं और अच्छी सुगंध बिखेरकर उसे सुशोभित कर दिया; यही इसका अर्थ है
158. पाशिना पावुसा मच्छा, बालाजा मुंजरोहिता
समगुला मग्गुरा सेवा, वासंती ताअके तदा।
उस समय, ये झील में रहते थे।
पशिना, पावुसा, बालाजा, मुंजारो जैसी मछलियाँ-
हिटा, समगुला और मग्गुरा भी।
158.1. तदा (तब) है: मेरे वहाँ निवास करने के समय, पाथिना और इसी प्रकार की निर्भीक मछलियाँ रहती थीं, तलके (झील में)।
159. कुंबिला सुसुमरा च, तंतीगाहा च रक्खसा;
ओगुहा अजगरा च, वसंती ताउके तदा।
उस समय झील में ऐसे जीव रहते थे, जैसे
जलीय जीव जैसे मगरमच्छ, घड़ियाल,
और तांतीगाहा, रक्खासा, ओगुहा जैसी मछलियाँ
और अजगरा।
159.1. तदा (तब) जब मैं वहाँ निवास करता था, मेरे आश्रम के पास झील में, वहाँ मगरमच्छ, मछली आदि जैसे जलीय जीव बिना किसी भय और खतरे के रहते थे

160. पारेवत रविहंसा, चक्कवाका नादिकारा;
कोकिला सुका सईका, उपजीवन्ति तम सारं।
वहाँ के लोग उस झील पर निर्भर होकर रहते थे,
पारेवत, रविहंसा (गायन) जैसे पक्षी
हंस), नादिकारा चक्कवका (लाल रंग का हंस),
हंस, नदियों के किनारे घूमता हुआ), कोकिला
(कोयल), सुका (तोते) और सालिका
(मैना)।
160.1. वहाँ, मेरे आश्रम के पास, झील के किनारे, परेवत (कबूतर), रविहंस (गायन हंस), नदी में घूमने वाला लाल हंस, कोकिला (कोयल), सुका (तोते) और सालिका (मैना) जैसे पक्षी रहते थे। ये पंख वाले जीव उस झील के पास रहते थे।
161. कुकुशाशाका कुइरका, वेने पोक्खराशाका;
डिंडीभा सुवपोता च, उपजीवन्ति तम सरं।
उस झील के पास ऐसे पक्षी रहते थे जैसे
जिनका नाम कुकुत्तहका (केकड़ा-पक्षी), कुलीराका है
(केकड़ा-पक्षी), पोक्खरसातका (एक प्रजाति)
जंगल में सारस), दिंडीभा नामक पक्षी, और
सुवापोता (छोटे तोते)।
161.1. वहाँ, कुकुष्ठक (केकड़ा खाने वाले पक्षी) नामक पंख वाले जीव, कुलीरका (केकड़ा पक्षी) नामक पंख वाले जीव, जंगल में पोक्खरसातका (कमल वस्त्र वाला सारस), दिंडीमा, पंख वाले जीव और सुवापोता (छोटे तोते); ये सभी पंख वाले जीव मेरे आश्रम के पास उस झील पर निर्भर रहते थे, इस प्रकार, संबंध है
162. हम्सा कोनचा मयूरा सीए, कोकिला तम्बाकुलका;
पम्मका जीवमजीवा च, उपजीवन्ति तम सारम्।
हंस, बगुला, मोर जैसे पक्षी,
कोयल, तांबे के रंग की कलगी वाली चिड़िया,
(तम्बाकुलक), प्सम्माका नाम के पक्षी,
और तीतर (जीवमजीव) रहते थे
उस झील के पास।
162.1. हंसों आदि से शुरू होकर ये सभी पंख वाले जीव उस झील पर निर्भर रहते हुए अपना जीवन यापन करते थे; यही इसका अर्थ है
163. कोसिका पोशहसीसा च कुरारा सेनका बाहु;
महाकाल च सकुना, उपजीवन्ति तम सरं।
ऐसे कई पक्षी जैसे उल्लू (कोसिका), पौशासीसा,
ओस्प्रे (कुरारा), बाज (सेनाका), और
उस झील के पास एक बड़ा काला पक्षी (महाकाला) रहता था।
163.1. वहाँ, पंख वाले प्राणी कोसिका (उल्लू), पोत्थासीसा, कुरारा (ओस्प्रे), सेनाका (बाज), महाकाला (बड़े काले पक्षी) जो भूमि पर बहुतायत में थे, जीवन्ती (रहते थे), उस झील के पास अपना जीवन यापन करते थे।
164. पसादा च वराह च, कैमरा गंडका बाहु;
रोहिच्चा सुकपोता च, उपजीवन्ति तम सरं।
पसाद (चित्तीदार) जैसे कई प्रकार के जानवर
मृग), वराह (जंगली सूअर) कैमरा (याक)।
बैल) और खेल जानवर (अंडका),
रोहिका और सुकापोटा नाम के हिरण उस जगह के पास रहते थे।
झील।

164.1. वहाँ, चित्तीदार हिरण जैसे शिकारी जानवर, उस झील के पास, (यह शब्द भूमि के अर्थ से जुड़ा है) रहते थे, अपने जीवन की देखभाल करते हुए; इस प्रकार, इसका अर्थ है
165. सिहब्यग्घा च दीपक, अच्चकोकटराच्चरा;
तिधा पभिन्नमतांग, उपजीवन्ति तम सारम्।
शेर, बाघ और तेंदुआ, भालू, भेड़िये,
लकड़बग्घे, तीन अलग-अलग प्रकार के माटांगा हाथी
विभिन्न प्रकार के तीव्र संभोग (तिधा पभिन्ना) में रहने वाले लोग
उस झील के पास।
165.1. शेर आदि जैसे चौपाये झील के पास रहते थे, खतरे से मुक्त; इस प्रकार, संबंध है।
166. किन्नरा वानर कोवा, अथो पि वनकम्मिका;
चेता च लुडका सीएव, उपजीवन्ति तम सारम्।
मानव सिर वाले पक्षी (किन्नारा) और बंदर
साथ ही, और इसके अलावा, जंगलों में काम करने वाले मजदूर,
(वनकम्मिका), डिकॉय-पक्षी (सीटा) और
शिकारी (लुद्दका) भी पास में ही रहते थे।
वह झील।
166.1. यहाँ, ऐसे और इसी नाम के प्राणी जैसे मानव-सिर वाले पक्षी (किन्नारा) इत्यादि उस झील के पास रहते थे; इस प्रकार, इसका अर्थ है
167. तिन्दुकानि पियालानि, मधुके कासुमरियो;
धुवमफलानी धारेन्ति, अविदुरे ममअसमम्।
मेरे आश्रम से कुछ ही दूरी पर, ऐसे फल देने वाले पेड़
पेड़ जैसे: तिन्दुका, (अंजीर), पियाला, मधुका, और
कासुमारी, बारहमासी (या स्थायी रूप से) जन्म देती है
फल।
167.1. वहाँ, ये पेड़, तिन्दुका से शुरू होकर, और इसी तरह, मेरे आश्रम से कुछ ही दूरी पर उगते हुए, तीनों ऋतुओं के दौरान हर समय मीठे फल देते थे, जिन्हें बर्फीली, धूप वाली और बरसात की ऋतुएँ माना जाता है; इस प्रकार, यह संबंध है
168. कोसंबा साउला निम्मा, सादु फलसामायुता;
धुवं फलानि धारेन्ति, अविदुरे ममस्सामम्।
कोसोम्बा जैसे पेड़, मीठी सुगंध वाले
सालाला और निम्मा अच्छे से जुते हुए
फल, स्थायी रूप से फल देने वाले, दूर नहीं
मेरे आश्रम से।
168.1. वहाँ, कोसंबा से शुरू होने वाले ये वृक्ष, जिनके फल स्वादिष्ट, मीठे और अत्यंत उत्कृष्ट हैं, समायुता (सम, अच्छी तरह से, ठीक से आयुत, जुड़ा हुआ) गठित या अच्छी तरह से आपूर्ति की गई है, हमेशा फल देते थे, मेरे आश्रम के पड़ोस को सुशोभित करते थे; इस प्रकार, इसका अर्थ है
169. हरितका आमलका, अम्बजम्बुविभीतक;
कोला भल्लाटका भिल्ला, फलानि धरतन्ति ते।
ऐसे वृक्ष जैसे: पीला मायरोबालन वृक्ष
(हरितक), एम्बोलिक हरड़ वृक्ष (अमलका),
आम का पेड़ (अंबा), यूजेनिया का पेड़
(जम्बू), बेलेरिक मायरोबालन वृक्ष (विभीतक),
जुजुलह फल वृक्ष (कोला), चिह्नांकन

अखरोट का पेड़ (भल्लाटक), बिल्व का पेड़ (भिल्ला),
फल लगे।
169.1. वे पेड़, पीले मायरोबालन आदि से शुरू होकर, जो मेरे आश्रम के पास उगते थे, लगातार फल देते थे; इस प्रकार, संबंध है
170. अलुवा च कलंबा च बिआलि तक्कानि च;
जीवका सुतका सीव, बाहुका मम असमे।
मेरे आश्रम में ऐसे कई पौधे थे।
जैसे: बल्बनुमा पौधा (अलुवा), मूली (काअंबा),
कंद पौधा (बियाली), रजनीगंधा (तक्काआ)
और जीवक का पौधा तथा सूतक का पौधा भी।
170.1. आलुवा आदि से शुरू होने वाले ये थोड़े मीठे जड़ वाले फल मेरे आश्रम के पास प्रचुर मात्रा में थे; इस प्रकार, यह संबंध है।
171. असमस्सविदुरमहि, ताकाकासुम सुनिम्मिता;
अच्छोदका सीताजला, सुपतिषा मनोरमा।
मेरे आश्रम से ज्यादा दूर नहीं, वहाँ
वे ठंडे पानी वाली सुव्यवस्थित झीलें थीं।
एकदम स्पष्ट, मन को आनंदित करने वाला,
उनके उत्कृष्ट लैंडिंग स्पॉट के साथ।
171.1. वहाँ, असमससाविदूरम्ही (आश्रम से दूर नहीं) आश्रम के पास, सुनिमित्ता (सुगठित) (अर्थात रचनात्मक रूप से निर्मित) जो आरोहण और अवरोहण में सुगम हो; अच्छोदका (स्वच्छ जल) पारदर्शी रूप से स्वच्छ जल; सीताजला (शीत जल) ठंडा जल; सुपतिष्ठा (अच्छा घाट) उत्कृष्ट तटबंध; मनोरमा (मन को प्रसन्न करने वाली) झीलें जो मन को प्रसन्न करती हैं; आसुम (हो गए) हो गए; इस प्रकार, अर्थ है।
172. Padumuppalasañchannā; puṇḍarikasamāyutā;
Mandālakehisañchannā, dibbagandho pavāyati
ये झीलें, लाल और सफेद रंग से ढकी हुई हैं
कमल के फूल, और एक साथ जुड़े हुए
पुन्दरिका कमल, साथ ही ढका हुआ
मंडलक फूलों के साथ, दिव्य प्रकाश उत्सर्जित करें
महक।
172.1. वहाँ, संचन्ना (अच्छी तरह से ढका हुआ) चारों ओर पद्म कमल और उप्पला कमल के फूलों से भरा हुआ; पुन्द्रिकेहि, पुन्द्रिका कमल के फूलों से भरा हुआ, समायुता (अच्छी तरह से जुड़ा हुआ) से युक्त; मंडालाकेहि च संचन्ना (मंडालक फूलों से भी अच्छी तरह से ढका हुआ) फूलों के जंगल से भरा हुआ, झीलों से दिव्य हवाएँ चारों ओर से बह रही थीं; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
173. एवम सब्बांगसम्पन्ने, पुफाइटे फालाइट वेन;
सुकते असमेरम्मे, विहारामि अहं तदा।
उस समय, मैं आनंददायक वातावरण में निवास करता था।
जंगल में बना हुआ एक सुगठित आश्रम
फूल और फल सभी गुणों से परिपूर्ण हैं
इस प्रकार से विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
173.1. वहाँ, एवम सब्बांग संपन्ने, इस प्रकार सभी विशेषताओं से युक्त, सभी विवरणों से परिपूर्ण और पूर्ण, जैसे छोटी नदियाँ आदि, फूलों से लदे, फलदार वृक्षों से भरा, घना जंगल बन जाता है, तो, वेन सुकते सुगठित वन में, रमणीय; असमे (शरणस्थल में) वन निवास में; तदा (तब) जब मैं संन्यासी था, तब मैं रहता था; इस प्रकार, अर्थ है।
173.2. अब तक अपने आश्रम के सुख-सुविधाओं का वर्णन करने के बाद, उपदेशों आदि जैसी अपनी उपलब्धियों को दर्शाने के लिए उन्होंने इस प्रकार कहा:-
174.

पञ्चाभिन्नाबलपट्टो, सुरुचिनाम तपसो।" ती,
सुरुचि नामक तपस्वी वास्तव में वरदान प्राप्त थे।
नियमों (शील) और कर्तव्यों (वत) के साथ;
ध्यान से युक्त होने के कारण, वह हमेशा आनंदित रहता था।
ध्यान (ध्यान में प्राप्त उपलब्धि); उसे
पाँच प्रकार की शक्ति प्राप्त की
उच्च ज्ञान।
174.1. वहाँ, शीलवा (उपदेशों का धारक) की व्याख्या इस प्रकार की जानी है:- "पाँच उपदेशों से परिपूर्ण जो ध्यान से जुड़े चार अद्वितीय शुद्ध उपदेशों के समान हैं"; यही अर्थ है। वतसंपन्नो की व्याख्या इस प्रकार की जानी है: वह व्यक्ति जो स्वयं पर कर्तव्यों के पालन का वचन लेकर कहता है: "अब से, मैं गृहस्थ जीवन के पाँच इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं होऊँगा"। झायाद (ध्यान करने वाला) वह व्यक्ति जिसे ध्यान का उपदेश (या आदत) है, ध्यान का धारक, गुणों (लक्खण) और चिंतन के विषयों (आरम्मण) की व्यापक अंतर्दृष्टि के साथ। झानारतो (जो ध्यान में आनंद लेता है) वह व्यक्ति जो इन ध्यान में आनंदपूर्वक लगा रहता है; सदा (हमेशा) उचित रूप से परिपूर्ण पंचभिञ्ञबलपट्टो (पांच प्रकार के उच्च ज्ञान की शक्ति प्राप्त करने वाला) विशिष्ट ज्ञान की शक्ति से परिपूर्ण और संपन्न, जो पांच प्रकार के उच्च ज्ञान हैं: जादूई शक्ति, दिव्य श्रवण, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व निवासों का स्मरण, दिव्य दृष्टि; यही इसका अर्थ है। सुरुचि नाम (सुरुचि नाम से) का अर्थ है: सुरुचि नाम से तपस्वी बनकर मैं देह धारण किया; यही इसका संबंध है।
174.2. अपनी उपलब्धि का उल्लेख करने के बाद, उन्होंने सभा में अपनी शान दिखाने के लिए यह श्लोक और इसी प्रकार के अन्य श्लोक पढ़े, इस प्रकार:-
175. "चतुविससहसानि सिस्सा मयहं उपशहुम्;
सब्बे माम ब्राह्मणा आदि जातिमंतो यस्स्सिनो," ति.
चौबीस हजार छात्र मेरी शिक्षाओं में शामिल हुए;
मेरे इन सभी ब्राह्मणों का खानदानी तौर पर अच्छा था।
और उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।
175.1. वहाँ, मेरे ये सभी शिष्य, चौबीस हजार ब्राह्मण जातिमंतो (जन्मजात) थे, अच्छे संस्कार वाले, उच्च कुल से संपन्न; यशस्सिनो (सुप्रसिद्ध) अनुचरों से युक्त, मेरी सेवा करते थे; इस प्रकार, संबंध है।
176. लक्खाने इतिहासे च, सनिघंदु साकेशुभे;
पकाका वेय्यकुराना, सद्धम्मे परानुंगता।
उन्होंने ब्राह्मण धर्म में स्वयं को पूर्ण कर लिया था।
विद्या (सद्धम्मे), पंक्तियों में पारंगत हो गया
और वेदों के वचन (पादपथ),
व्याकरणिक स्पष्टीकरणों के साथ,
हथेलियों पर मौजूद चिह्न और विशेषताएं (लक्खणा), जैसे
साथ ही पारंपरिक अभिलेखों (लितिहासा) में भी, एक साथ
चमक के साथ, (निघांडु), और अनुष्ठानों के साथ,
(केतुभ)।
176.1. वहाँ, लक्खणे (चिह्नों में) की व्याख्या हस्तरेखा शास्त्र के रूप में की जानी है। वह सभी सांसारिक पुरुषों और महिलाओं के चिह्नों और विशेषताओं को इस प्रकार जानता है: - "इन चिह्नों से संपन्न होने पर वे दुखी या दरिद्र हो जाते हैं; इन चिह्नों से वे सुखी या खुशहाल होते हैं"। वह ग्रंथ जो इसे स्पष्ट करता है, लक्खण है। चिह्नों के उस ग्रंथ (लक्खण) में, इतिहासे, पारंपरिक अभिलेखों की व्याख्या इस प्रकार की जानी है: - उस ग्रंथ में जो उचित रूप से बताए गए शब्दों को स्पष्ट करता है: "इस प्रकार, इस भाग ने कहा; इस प्रकार, इस भाग ने कहा"। पारमिं गता (पूर्णता तक पहुँच गया) का अर्थ है: चिह्नों पर ग्रंथ (लक्खण) और पारंपरिक अभिलेखों पर ग्रंथ (इतिहास) के अंत तक पहुँच गया वृक्षों, पहाड़ियों आदि के नामों की व्याख्या करने वाले ग्रंथ को 'निघण्ड' (शब्दावली) कहा जाता है। 'केतुभे' (अनुष्ठान) वह ग्रंथ है जो विद्वानों को उनके उपयुक्त या अनुपयुक्त कार्यों में सहायता प्रदान करता है। यह निघण्डु के साथ मिलकर सन्निघण्डु कहलाता है; यह केतुभ के साथ मिलकर सके तो सकेतुभ कहलाता है। उन्होंने निघण्डु और केतुभ तीनों वेदों में सिद्धि

प्राप्त की; यही संबंध है। पादका (शब्दों में पारंगत) का अर्थ है: संज्ञा, संयुक्त शब्द, तद्धित कृदंत, परिमित क्रिया, कित या कितक कृदंत आदि शब्दों में निपुण। वेय्याकरणानि (व्याकरणिक व्याख्याएँ) का अर्थ है कि वे चंद, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रंथों के ज्ञाता हैं। सधम्मेपारमिं गता (उन्होंने अपने ज्ञान में पूर्णता प्राप्त कर ली थी) का अर्थ है: उन्होंने तीनों वेदों, ब्राह्मण ज्ञान और अपने स्वयं के धर्म में भी पूर्णता प्राप्त कर ली थी; यही इसका अर्थ है।

177. उप्पतेसु निमित्तेसु, लक्खानेसा च कोविदा;
पथब्या भूमन्तलिक्खा, मम सिस्सा सुसिक्खिता।
मेरे विद्यार्थियों को विज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी।
पृथ्वी, जमीन और आकाश के; वे बन गए थे
उभरे हुए लक्षणों और विशेषताओं के विशेषज्ञ।

177.1. वहाँ uppātesu nimittesu (उदय संकेत) का अर्थ है: तारों के अस्त होने, भूकंप आदि संकेतों में, साथ ही सुखद और अप्रिय संकेतों (nimitta) में, स्त्री, पुरुष और महान व्यक्तियों के गुणों में; kovidā (चतुर) का ज्ञान होना चाहिए। Pathabyābhūmantalikkhe (पृथ्वी, जमीन और आकाश में) का अर्थ है पृथ्वी पर, जमीन पर, और साथ ही पूरे विश्व और आकाश में भी; इस प्रकार, मेरे शिष्यों को हर जगह, हर तरह से अच्छी तरह से प्रशिक्षित (या शिक्षित) किया गया था।

178. अप्पिच्चा निपका आदि, अप्पाहारा अलोलुपाल
लाभालाभेण सन्तुषा, परिवारेन्ति मम सदा।
उनकी ज़रूरतें कम थीं, वे परिपक्व थे।
उनका ज्ञान अपर्याप्त था, पोषण भी कम था;
वे लालच रहित और संतुष्ट थे चाहे कुछ भी हो।
उन्हें लाभ हुआ या नहीं। वे लगातार थे।
मेरे चारों ओर।

178.1. वहाँ, अप्पिच्छा (कम आवश्यकताएँ) का अर्थ है कि वे इन्पया, परिपक्व, थोड़े ज्ञान या बुद्धि से संपन्न, जिसे परिपक्वता माना जाता है, के साथ भी आगे बढ़ते रहेंगे। अप्पाहारा (कम पोषण) का अर्थ है एक ही भोजन, केवल एक बार भोजन करना; इस प्रकार, इसका अर्थ है। अलोलूपा (लालच रहित) का अर्थ है लालची वासना का न होना। लाभालेहेन (लाभ के साथ या अन्यथा) लाभप्रदता या हानिहीनता के साथ; संतुष्ट, संतुष्ट, मेरे ये शिष्य, मन से प्रसन्न; सदा, (हमेशा) हर समय, स्थायी रूप से; परिवारेन्ति (मुझे घेरे हुए) मेरी सेवा की या मेरी देखभाल की; इस प्रकार, इसका अर्थ है

179. झायि झानरता धीरा, संतचित्त समाहिता;
अकिंचनं पथयंता, परिवारेन्ति मम सदा।
वे ध्यान में लीन थे, ध्यान में आनंदित थे।
और वे दृढ़ बुद्धिमान थे; उनका मन शांत था।
और ध्यान की अवस्थाओं में लीन; शून्यता की आकांक्षा रखते हुए, वे हमेशा आसपास मंडराते रहते थे।
मेरी सेवा करने के लिए।

179.1. वहाँ झाई (झान के साथ) का अर्थ है विशेषताओं में अंतर्दृष्टिपूर्ण भोग (लक्खण) और इंद्रिय-विषय चिंतन; या झान में उपदेश अभ्यास। झानरता (झान का पालन करना और उसमें आनंद लेना) साथ ही उनमें भी। (धीरा (दृढ़ता से बुद्धिमान) दृढ़ता से संपन्न। शांतचित्त (शांत मन) शांत मन है। समाहिता (एकाग्र) एकाग्र मन है। अकिंचञ्ञम् (शून्यता) कोई परेशानी न होने की स्थिति (पालिबोध)। पथवन्त (आकांक्षी) इच्छा करना। मेरे शिष्य सुखद थे जो हमेशा मेरी सेवा करने और मेरी देखभाल करने के लिए मेरे आस-पास रहते थे; इस प्रकार, संबंध है

180. अभिन्या परमिपत्ता, पेटिके गोकरे रता;
अंतलिक्खाचारा धीरा, परिवारेन्ति मम सदा।
उन्होंने उच्चतर स्तर पर पूर्णता प्राप्त कर ली थी।
ज्ञान, पैतृक चरागाह में आनंदित थे,
आकाश में विचरण करने वाले और दृढ़ बुद्धिमान; वे लटके रहे
मेरे आस-पास लगातार।

180.1. वहाँ, अभिञ्ञापारमीप्पत्ता (उच्च ज्ञान में सिद्धि प्राप्त करना) का अर्थ है: पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान में सिद्धि के संपूर्ण लक्ष्य को पूर्ण करना और प्राप्त करना; यही इसका अर्थ है। पेट्टिके गोचरे रता (पितृसत्तात्मक चरागाह में आनंदित होना) का अर्थ इस प्रकार है: बुद्ध द्वारा अनुमोदित, बिना किसी शारीरिक या शाब्दिक संकेत के प्राप्त पोषण में आनंद लेना; यही इसका अर्थ है। अंतलिक्खचरा (आकाश में विचरण करने वाले) का अर्थ है वायुमंडलीय आकाश में आना-जाना; यही इसका अर्थ है। धीरा (दृढ़ता से बुद्धिमान होना) का अर्थ है: दृढ़ होना; शेर, बाघ आदि जैसे खतरों के बीच भी न कांपने का स्वभाव रखना; यही इसका अर्थ है। मेरे वे तपस्वी भी ऐसे ही हो गए थे, जो मेरे चारों ओर मंडराते रहते थे और हमेशा मेरी सेवा करते थे; यही इसका अर्थ है।

181. संवुता चसु द्वारेसु, अनेजा रक्खितिन्द्रिया;
असमसाषा च ते धीरा, मम सिसा दुरसादा।
छह दरवाजों पर उन्होंने काफी संयम बरता।
उनकी नियंत्रणकारी लालसा से मुक्त
अच्छी तरह से संरक्षित संकाय, उन्हें कभी नहीं मिला
उलझन में थे, लेकिन दृढ़ निश्चयी और बुद्धिमान थे; मेरे छात्र थे
हमला करना और जीत हासिल करना कठिन है।

181.1. वहाँ, संवुता (अच्छी तरह से संयमित) का अर्थ इस प्रकार है: संरक्षित और सुरक्षित द्वार, ढके और बंद द्वार या ऐसे छह द्वार जैसे आँखें आदि, और ऐसे छह इंद्रिय-विषयों (आरम्मणा) के संबंध में, जैसे दृश्य रूप आदि; यही अर्थ है। अनेजा लालसा (तन्हा) से मुक्त है; रक्खितिंद्रिया, ऐसी नियंत्रण शक्तियाँ जैसे आँखें आदि, संरक्षित; असमसत्था (अमिश्रित) का अर्थ है: गृहस्थों के साथ मिश्रित न होना; यही अर्थ है। दुरासाद (हमले में कठिन) का अर्थ है: हमले या विजय के लिए कठिन, टकराव, आक्रमण और विजय में असमर्थ; बंधनमुक्त; यही अर्थ है।

182. पल्लंकेण निसज्जया, शहानाचंकामानेन च;
वितिनामेंटि ते रत्तिम, मम सिस्सा दुरसादा।
मेरे छात्र रात भर पालथी मारकर बैठे रहते थे।
पैरों पर खड़े होकर इधर-उधर चलना।
वे अजेय थे, उन पर विजय पाना कठिन था।

182.1. वहाँ, पल्लांकेना (पालकी-पैरों वाला) की व्याख्या इस प्रकार की जानी है:- मेरे शिष्य, पालथी मारकर बैठे हुए, चीजों को बांधकर बैठे हुए, लेटने से बचते हुए, खड़े होकर और इधर-उधर चलते हुए, अतिनामेंटी (व्यर्थ) होकर, विशिष्ट रूप से, पूरी रात गुजारते हैं; इस प्रकार, संबंध है।

183. राजनिये न राज्जन्ति, दुस्सानिये न दुस्सारे;
मोहनिये न मुयहंति, मम सिस्सा दुरसादा।
कामुकता को उत्तेजित करने वाले मामलों में वे नहीं थे
कामुक; क्रोध भड़काने वाली चीजों में, वे
वे क्रोधित नहीं थे; भ्रामक मामले में वे
वे भ्रमित नहीं थे; मेरे छात्र कठिन थे।
आक्रमण और विजय का।

183.1. मेरे वे प्रिय शिष्य जो संन्यासी थे, रजनीये (रंगने योग्य वस्तुओं में) यानी कामुक वस्तुओं में, न रजंजन्ति (रंगे नहीं) और उन्होंने कलंकित कामुकता उत्पन्न नहीं की। दुस्सानीये (घृणास्पद वस्तुओं में) यानी उन वस्तुओं में जिनसे क्रोध उत्पन्न होना चाहिए, यानी उन मूलभूत वस्तुओं में जिनसे घृणा या क्रोध उत्पन्न होना चाहिए, न दुस्सारे (अपमानित नहीं) और उन्होंने क्रोध या घृणा उत्पन्न नहीं की। मोहनीये (अविभाज्य वस्तुओं में) यानी उन मूलभूत वस्तुओं में जिनसे भ्रम उत्पन्न होना चाहिए, न मुयहंति (वे भ्रमित नहीं हुए) और उन्होंने भ्रम नहीं किया; वे ज्ञान या बुद्धि से जुड़े रहे; यही अर्थ है।

184. इद्धिम विमंसमना ते, वत्तन्ति निककालिकम्;
पथविम् ते पकम्पेन्ति, सरंभेण दुरासदा।
अपनी जादुई शक्ति का परीक्षण करते हुए, वे
अंततः यह हमेशा के लिए स्थायी साबित हुआ;

उन्होंने धरती को हिला दिया; वे बहुत कठोर थे।
झगड़े के द्वारा पराजित होना।
184.1. मेरे शिष्य, निच्चाकालिकम विमंसमामा, निरंतर, हर समय (या लगातार) विभिन्न चमत्कारों का प्रदर्शन करके परीक्षा में डालते रहे, जैसे कि “एक और एकल होकर अनेक हो गए; अनेक होने के बाद, ******(पृष्ठ 401) एक और एकल हो गए”, इस प्रकार वे सिद्ध हुए; यही संबंध है। मेरे शिष्यों ने आकाश और जल में पृथ्वी की रचना की, और अपनी मुद्राओं (इरियापथ) को हिलाया (या गतिमान किया)। आरम्भेण की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए: प्रभुत्व और कलह करके, उन पर आक्रमण या विजय नहीं की जा सकती; यही अर्थ है।
185. किआमना च ते सिस्सा, किआंति झनकिइतम;
जंबुतो फलमणेन्ति, मम सिस्सा दुरसादा।
खेलकूद के दौरान, उन विद्यार्थियों ने निम्नलिखित पहनावा पहना था।
झाना का खेल; वे युजेनिया लाए
जांबू के पेड़ का फल; मेरे छात्र थे
हमले की कठिनाई।
185.1. मेरे वे शिष्य, कीलमाना (खेलकूद) प्रथम झाना आदि जैसे खेलों में भाग लेते थे; वे इस प्रकार समय बिताते और अपना मनोरंजन करते थे; यही अर्थ है। जंबुतो फलमानेंति (वे जंबु वृक्ष से यूजेनिया फल लाए) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए:- वे अपनी जादुई शक्तियों के माध्यम से गए और हिमवंता पर्वत श्रृंखलाओं में सौ योजन ऊँचे जंबु (या यूजेनिया) वृक्ष से जार के आकार का जंबु (या यूजेनिया) फल लाए; यही अर्थ है
186. अण्णे गच्छन्ति गोयणं अण्णे पुब्बानिदेहकम;
अण्णे च उत्तरकुरा, एसानया दुरासदा।
कुछ लोग पश्चिमी द्वीप गए; कुछ लोग गए
पूर्वी द्वीप; कुछ लोग उत्तरी द्वीप चले गए;
मेरे शिष्य, जिन्हें जीतना मुश्किल था, अंदर चले गए।
(आवश्यकताओं की) खोज।
186.1. मेरे उन शिष्यों में से, कुछ (कुछ) गोयाना (पश्चिमी द्वीप) अपरागोयाना द्वीप गए; उनमें से कुछ पुब्बाविदेहकम् (पूर्वी द्वीप) पुब्बाविदेह द्वीप गए; उनमें से कुछ उत्तरकुरुम (उत्तर द्वीप) उत्तरकुरु द्वीप गए। इन स्थानों में उन्हें जीतना कठिन होने के कारण, वे अपनी आवश्यकताओं (या ज़रूरतों) की तलाश में गए; इस प्रकार, संबंध है
187. पुरतो पेसेन्ति ख़त्म, पच्चतो च वजन्ति ते;
चतुविसा सहस्सानि चादितम होति अम्बरम्।
उन्होंने अपने सामान को आगे भेज दिया।
खंभे के पीछे चला गया; आकाश ढका हुआ था
चौबीस हजार संन्यासियों द्वारा।
187.1. मेरे वे शिष्य आकाश में जाते समय, खारीम (ढेर) ने अपने आगे अपना वह ढाँचा भेजा जो तपस्वी सामग्री को ले जाकर वापस लाता था, और पहले ढाँचा आगे भेजने के बाद, वे स्वयं उस ढाँचे के पीछे चले। इस प्रकार, चौबीस हजार संन्यासियों के इस मार्ग से जाने पर, अंबरम (आकाश), स्वर्गीय सतह, चादितम (ढककर) छिप गई; यही संबंध है।
188. अग्गिपाकी अनाग्गिका, दन्तो-कुक्खलिकापि च।
अस्मेना कोशिता केचि, पवत्तफलाभोजन।
कुछ लोगों ने अपना खाना आग पर पकाया;
कुछ लोगों ने बिना आग का इस्तेमाल किए कच्चा ही खा लिया;
कुछ लोग दांतों का इस्तेमाल करके खाते थे, जैसे ओखली और मूसल का इस्तेमाल करते हैं;
कुछ लोगों ने पत्थर से पीसकर खाया;
कुछ लोगों ने गिरे हुए फल खाए।

188.1. वहाँ, केची (कुछ) का अर्थ है: मेरे कुछ शिष्य; अग्गिपाकी (आग पर पकाने वाले) फल और मांसाहारी फल, पत्ते आदि पकाकर खाते थे; कुछ अनाग्गी (बिना आग के) बिना पकाए कच्चा ही खाते थे; कुछ दाँतों का प्रयोग करने वाले थे; वे छिलके दाँतों से छीलकर खाते थे। कुछ उडुक्खलिका (मूसल और मूसल के समान) थे; वे मूसल से कूटकर खाते थे। कुछ अस्मेना कोट्टिता (पत्थर से कुचलने वाले) थे; वे पत्थर से कूटकर खाते थे। कुछ स्वयं गिरे हुए फलों से अपना पोषण करते थे; यही संबंध है।

189. उदाकोरोहाना केचि, सयं पतो सुचिरता;
तोयाभिसेकनकारा, मम सिसा दुरसादा।
कुछ लोग पानी में उतरने वाले थे।
शाम और सुबह आनंदित होते हुए
स्वयं को शुद्ध करने में; अन्य लोग थे
पानी छिड़कने वाले निर्माता
शरीर; मेरे छात्र भी वैसे ही थे, जो थे
हमले की कठिनाई।

189.1. मेरे कुछ शिष्य, जो आक्रमण में कठिन थे, सुचिरता (स्वच्छता में आनंद लेने वाले) शुद्धता के इच्छुक, शाम के साथ-साथ सुबह भी, उदाकोरोहना (जल में उतरने वाले) उन्होंने जल में प्रवेश किया; यही अर्थ है। कुछ तोवाभिषेकनकरा (जल छिड़काव के द्वार) ने अपने ऊपर जल का छिड़काव किया; यही अर्थ है

190. पारुइहकच्चनखलोमा, पंक-दंता राजसीरा
गंधिता सिलगंधेन, मम सिसा दुरसादा।
बगलों में बाल उग आए और नाखून लंबे हो गए;
दांतों पर मैल जम गया था और सिर
धूल भरी। लेकिन मेरे विद्यार्थियों पर हमला करना मुश्किल है।
उपदेशों की सुगंध से महक रहे थे
(सीला).

190.1. वहाँ, मेरे वे शिष्य, जिन पर आक्रमण करना कठिन था, दोनों बगलों के साथ-साथ हाथों और पैरों पर भी कच्छेसु (बगलों में) थे; वहाँ परूल्हा (घुमावदार) उग आए थे, लंबे नाखून और बाल; यही अर्थ है। उस्तरे के काम के अभाव में, बिना सजावट और अलंकरण के; यही तात्पर्य है। पंकदंत (दांतों पर मैलापन), दांतों में गंदगी जमा हो गई थी, क्योंकि ईंट-पिसा हुआ पाउडर, दूध-पत्थर का पाउडर आदि जैसे दंत शोधक से सफाई नहीं की गई थी; यही अर्थ है। राजस्सिरा (धूल से सना हुआ सिर), उनके सिर धूल (धुलीहि) से सने हुए थे, क्योंकि तेल आदि से लेप नहीं किया गया था; यही अर्थ है। गांधीता सीलागन्धेना (उपदेशों की सुगंध से महकते हुए), (सीला), वे हर तरह से सांसारिक उपदेशों की सुगंध से मधुर हो गए थे क्योंकि वे ध्यान, एकाग्रता और ध्यान संबंधी उपलब्धियों से युक्त उपदेशों से संपन्न थे; यही अर्थ है। मामा सिस्सा दु आसदा (मेरे शिष्य आक्रमण में कठिन थे) मेरे शिष्यों पर आक्रमण करने या उन्हें चोट पहुँचाने में असमर्थ थे, क्योंकि वे इन विशिष्ट गुणों से संपन्न थे; यही संबंध है।

*****

191. पातो वा सन्निपतित्वा, जतिला उग्गतापना;
लाभालाभम पकित्तेत्वा गच्छन्ति अम्बारे तदा
सुबह-सुबह ही इकट्ठा होकर, चोटीदार बालों वाले उस तपस्वी ने, जिसकी कठोर साधनाएँ स्पष्ट थीं, अपने बड़े और छोटे लाभों की घोषणा की और फिर आकाश की ओर चल दिए।

191.1. वहाँ, पातो व सन्निपतित्वा, सुबह-सुबह एकत्रित होकर, यहाँ 'तो' क्रिया का प्रयोग सातवें पद की स्थिति को व्यक्त करने के लिए किया गया है, सूर्योदय के समय भी, वे मेरी उपस्थिति में एकत्रित हो गए। उग्गतापना (सर्वोच्च तपस्या के अभ्यासी) स्पष्ट तपस्या-अभ्यासी, फैला हुआ या विस्तृत तपस्या-भक्त। जतिला (गुंथे हुए बालों वाले तपस्वी) गुंथे हुए बालों वाले संन्यासी। लाभालभं पकित्तेत्वा (छोटे और बड़े लाभों को स्पष्ट करते हुए; तदा (तब) उस समय; अम्बारे (आकाश में) वे स्वर्गीय सतह पर गए; इस प्रकार, संबंध है।

192. उनके गुणों को और भी स्पष्ट रूप से प्रकट करते हुए, उन्होंने एतेसम पक्कमन्तानम् से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया। आकाश में या सूखी भूमि पर, पक्कमन्तानम् (प्रस्थान करते हुए) जाते हुए; एतेसम (उनके) संन्यासियों के; तपस्वियों के सरकंडों के वस्त्रों

से एक बड़ा शोर उत्पन्न हुआ; यही अर्थ है। मुदिता होन्ति देवता (देवता प्रसन्न हुए) उन संन्यासियों के हिरणों की खालों से उत्पन्न शोर से संतुष्ट होकर, देवता मन ही मन प्रसन्न हुए और बोले: “शाबाश, शाबाश, हे प्रभु!”, मुदिता (प्रसन्न) संतुष्ट हुए; यही संबंध है।

193. उन संन्यासियों में दिशाएँ और उप-दिशाएँ थीं; आकाश में विचरण करने वाले अंतलिक्खचरा (आकाश में विचरण करने वाले) दक्षिण दिशा और उप-दिशा की ओर गए; यही संबंध है। अपने शारीरिक बल या ध्यान की शक्ति से युक्त होकर, वे जहाँ भी जाना चाहते थे, वहाँ गए; यही संबंध है।

194. अपनी शक्ति को और भी प्रकट करने के लिए, उन्होंने पथवी कंपक आदि से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया। उस समय एते (ये) जो जहाँ चाहते वहाँ विचरण करते थे, पथवी कंपक (भूकंप लाने वाले) जो पृथ्वी को हिला सकते थे, नभचारिनो (आकाश में विचरण करने वाले) जो आकाश में विचरण करते थे। उग्गतेजा (उच्च शक्ति वाले लोग) बढ़ती हुई शक्ति, फैली हुई शक्ति; दुप्पसह (पराजित करना कठिन) पराजित और अभिभूत करने के बाद भी पराजित नहीं हो सकते; इस प्रकार, दुप्पसह, पराजित करना कठिन लोग हैं। सागरो व अखोभिया (समुद्र के समान अविचलित) जल के विशाल विस्तार के समान, विशाल समुद्र जो दूसरों द्वारा विचलित या परेशान नहीं होता, वे दूसरों द्वारा विचलित या विचलित नहीं होंगे; इस प्रकार, संबंध है।

195. Ṭhānacaṅkamino keci (कुछ खड़े रहने वाले और टहलने वाले थे) मेरे उन शिष्यों में से कुछ संन्यासी खड़े होने और इधर-उधर चलने जैसी मुद्राओं से संपन्न थे; कुछ संन्यासी बैठने की मुद्रा में सजे हुए Nesajjikā (बैठे रहने वाले) थे; कुछ संन्यासी pavattabhojanā (जो कुछ भी मिलता था उसे खाने वाले) थे, जो स्वयं गिरे हुए पत्तों से अपना पोषण करते थे; क्योंकि वे उक्त गुणों से जुड़े थे, इसलिए उन्हें हराना कठिन था; इस प्रकार, यह संबंध है।

196. उन सभी की प्रशंसा करते हुए, उन्होंने मेत्तविहारिनो श्लोक से शुरू करते हुए श्लोक का पाठ किया। वहाँ, मेत्तविहारिनो का अर्थ इस प्रकार है: वे स्वयं ही ऐसे बन गए, वे प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होकर जीवन व्यतीत करते थे, स्नेह का प्रतीक यह कहते हुए: “सैकड़ों ब्रह्मांडों (या अनगिनत चक्रवाल) में असंख्य जीव सुखी हों”, इत्यादि, मेरे वे शिष्य; यही अर्थ है। वे सभी ऋषि हितेसी (कल्याणकारी) थे, सभी जीवों (सबबापाणिनम) के प्रति उपकार करने वाले थे। वे अनात्तुक्कमसाका (स्वयं की प्रशंसा न करने वाले) थे, अभिमान से मुक्त थे और स्वयं की प्रशंसा नहीं करते थे; नवम्भेन्ति (वे निंदा नहीं करते थे) किसी को भी नीचा नहीं समझते थे; यही अर्थ है।

197. मेरे वे शिष्य, उपदेश, एकाग्रता और ध्यान संबंधी उपलब्धियों (समापत्ति) जैसे गुणों से युक्त होने के कारण, अचम्भिता (अविचलित) थे, खतरे से मुक्त थे, सिंहराज के समान थे; गजराज इव (हाथीराज के समान) थे, हाथीराज के समान थे। वे बलवान (बलमबा) थे, अपने शरीर की शक्ति और ध्यान की शक्ति से संपन्न थे; बाघराज के समान, वे दुर्रासाद (पराजित करना कठिन) थे, जिन्हें पराजित नहीं किया जा सकता था; वे मेरे समक्ष आए; इस प्रकार, संबंध स्थापित हुआ।

198. इसके बाद, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के बहाने, उसने विजयधरा से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया। वहाँ, मंत्रों के ज्ञाता और पाठ करने वाले, जादूगर (विज्याधरा), वृक्षों और पहाड़ियों पर निवास करने वाले पृथ्वी के देवता, पृथ्वी और शुष्क भूमि पर स्थित नाग (ड्रैगन), गंधब्बा (स्वर्गीय संगीतकार), भयंकर राक्षस (राक्षस), कुंभण्ड (संरक्षक देवता), दानव (विशालकाय) जो अपनी इच्छा अनुसार कुछ भी बना सकते हैं और गरुड़ा (बड़े पक्षी) उस झील पर निर्भर रहते थे; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।

199. फिर से, उन्हीं संन्यासियों के गुणों की प्रशंसा करते हुए, जो उनके स्वयं के शिष्य थे, उन्होंने इन श्लोकों का पाठ किया, जो इस प्रकार प्रारंभ होते हैं: तेजता खारिभारिता। वह सब कुछ जो स्पष्ट रूप से अर्थ में स्पष्ट है। खारिभार से तात्पर्य कुएँ से पानी निकालने के लिए बाल्टी, लंबी टोंटी वाला मटका आदि तपस्वी वस्तुओं से है।

207. फिर से, अपने गुणों को प्रकट करते हुए, उन्होंने 'उप्पते सुपिने च पि' से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया। वहाँ व्याख्या इस प्रकार है:- उस समय, जब मैं संन्यास में था, मैं जंबूद्वीप में प्रचलित सभी मंत्रों, चिन्हों और प्रतीकों, ज्ञान के सभी वर्गों का भंडार था, क्योंकि मैं सभी पुरुषों और महिलाओं के हाथों और पैरों की हथेलियों पर अंकित चिन्हों और प्रतीकों की भविष्यवाणी करने में, और स्वप्नों और उनके प्रभावों की भविष्यवाणी करने में भी निपुण था, क्योंकि मैं नक्षत्रों और ग्रहों को पढ़ने में कुशल था और ब्राह्मण विज्ञान में निपुण था, इसलिए:- "इस राजकुमार का उदय नक्षत्र शुभ है या अशुभ", और उदय चिन्ह या प्रतीक और स्वप्न में घटित होने के संबंध में पूछे जाने पर, इस प्रकार: "यह स्वप्न शुभ है; यह स्वप्न अशुभ है;" इस प्रकार, संबंध है।

208. बुद्ध के गुणों पर आधारित अपने स्वयं के उपदेश को प्रकट करते हुए, उन्होंने अनोमदस्सी से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, अनोमा नीच (या हीन) नहीं है। वह महिमावान अनोमदस्सी हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि श्रेष्ठ है, अर्थात् वे सभी जीवित प्राणियों को अपनी ऐसी आँखों से देखते हैं जैसे: भौतिक आँख, दिव्य आँख, सार्वभौमिक आँख, आध्यात्मिक आँख और बुद्ध की आँख। वे भगवान (महिमावान) हैं क्योंकि वे सौभाग्यशाली (या सौभाग्यशाली) हैं, इत्यादि। वे लोकजेष्टो (विश्व के सबसे बड़े) हैं क्योंकि वे विश्व

में सबसे बड़े और श्रेष्ठ हैं; इस प्रकार तीन सबसे बड़े बैल हैं: उषाभा बैल, निषाभा बैल और आसभा बैल। इनमें से, सौ बैलों में सबसे बड़ा उषाभा है; हजार बैलों में सबसे बड़ा निषाभा है; एक लाख बैलों में सबसे बड़ा आसभा है; नरसाभो, पुरुषों के आसभ-बैल; सम्बुद्ध वह हैं जिन्होंने प्रत्येक धर्म में पूर्णतः प्रवेश किया; विवेककामो (एकांतप्रिय) एकाकी होना चाहते थे। हिमवंतम, हिमालय पर्वतमाला की ओर गए; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।

209. अज्जोगाहेत्वा हिमवंतम् (हिमवंत में विलीन हो गया) हिमालय के आसपास गहराई में जाकर उसमें प्रवेश किया; यही अर्थ है। बाकी तो स्पष्ट है।

210.1. जलितम् (जलना) नीली जल-लिली की तरह प्रज्वलित या दीप्तिमान; हूतासनम्, पवित्र यज्ञ का स्थान; आदित्तम् (जलना) प्रकाश से जुड़े अग्नि के समूह की तरह; गगने (आकाश में) बिजली की तरह चमकता हुआ, राजसी साल वृक्ष की तरह उचित रूप से खिले हुए, मैंने जगत के संरक्षक को बैठे हुए देखा; इस प्रकार, संबंध है।

213. (212-13?) दिव्य प्राणियों के दिव्य स्वरूप देवदेव हैं, जो देवताओं के देव हैं; देवदेव, देवताओं के देव, बुद्ध, लक्खणमुपधारेसिम को देखकर, मैंने उनके गुणों का गहन अवलोकन किया और उनके बत्तीस चिह्नों, प्रतीकों या महान व्यक्तित्व के गुणों को जानकर यह ज्ञात किया कि वे बुद्ध हैं या नहीं। उस क्रिया (या परिस्थिति) से मैंने विजेता, चक्खुमम (दृष्टिकोण धारक), पाँच प्रकार की आँखों के स्वामी को देखा; इस प्रकार, संबंध स्थापित हुआ।

214. करानुत्तमे (सर्वोत्तम चरणों पर) (करण), उनके चरणों के सर्वोत्तम तलवों पर। सहस्रणी, वृत्ताकार चिह्न या चक्र चिह्न दिखाई देते हैं; जब मैंने तथागत में उस महिमावान के उन गुणों को देखा, नित्त्हम गच्छिम (मैं अपने निष्कर्ष पर पहुँचा) मैं आत्म-निर्णय की ओर बढ़ा और निःसंदेह हो गया, यही अर्थ है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।

218. स्वयंभू (स्वयं एक हो जाना) स्वयं ही उत्पन्न हुए। अमितोदय (उत्पत्ति का स्थान) असीम और अतुलनीय गुणों का उदय; ये दोनों शब्द केवल संबोधन (अलपना) हैं। इमां लोकं, प्राणियों का यह संसार; सम (ठीक से) ठीक; उद्धारसि (बाहर निकाला या घसीटा), पुनर्जन्मों के चक्र से बाहर निकालकर, उन्हें निर्वाण की सूखी भूमि पर पहुंचाना; यही अर्थ है। वे सभी प्राणी आगम्म, आपको देखने के लिए आए, और कंखसोतं तरन्ति (संदेह की धारा पार करना) संशय की महान बाढ़ के पार चले गए; यही संबंध है।

219. परम पूज्य बुद्ध की स्तुति करते हुए, ऋषि ने तुवम् सत्था से शुरू होने वाले श्लोक का पाठ किया: हे सर्वज्ञ बुद्ध! आप इस संसार और स्वर्गलोक के गुरु सत्था (स्वामी) हैं; आप स्वयं सर्वोच्च रूप से स्थापित होकर उच्च केतु (झंडा) हैं; आप स्वयं धजो (झंडा) हैं, क्योंकि आप स्पष्ट रूप से समस्त संसार में स्थापित हैं; आप स्वयं खड़े स्तंभ के समान युपो (यज्ञ स्तंभ) हैं, क्योंकि आप तीनों लोकों में विराजमान हुए हैं; (पाणिनम् (जीवों के लिए), आप स्वयं ही परायनो (अंतिम लक्ष्य) हैं, सर्वोच्च या सबसे उत्तम प्राप्य स्थान। आप स्वयं ही पटिष्ठा (स्थिर स्थान), रक्षा का स्थान हैं; आप स्वयं ही दीप (दीपक) हैं, तेल के दीपक के समान, क्योंकि आपने संसार के भ्रमकारी अंधकार को दूर किया है; द्विपदुत्तमो (सर्वोत्तम पुरुष), देवताओं, ब्रह्माओं और मनुष्यों जैसे दो पैरों वाले प्राणियों में सबसे उत्तम और श्रेष्ठ; इस प्रकार, संबंध है।

220. फिर से, परम पूज्य बुद्ध की स्तुति करते हुए, उन्होंने यह श्लोक कहा, जो 'सक्का समुद्दे उदकम' से शुरू होता है: "वहाँ चौरासी हजार योजन गहरे सागर के जल को भी खूंटी से नापना संभव होगा; हे सर्वज्ञ बुद्ध! आपके ज्ञान से इतनी मात्रा को नापना भी असंभव है।" यही इसका अर्थ है।

221. तुलमण्डले को नापने वाले कक्ष, तौलने वाले पिंजरे में रखने से पृथ्वी का भार वहन करना संभव है; हे सर्वज्ञ बुद्ध! आपके ज्ञान का वजन करना बिलकुल भी संभव नहीं है।

222. आदरणीय सर्वज्ञ बुद्ध! आकाश (सारा खुला स्थान) को रस्सी या उंगली से नापा जा सकता है, परन्तु आपका आकाश के समान ज्ञान और बुद्धि किसी भी प्रकार से मापी नहीं जा सकती; यही अर्थ है।

223. महासमुद्दे उदकम, महान सागर का जल, चौरासी हजार योजन गहरा सागर। अखिलम उदकंच, निर्मल जल, दो लाख योजन से भी अधिक विस्तार में चार नहुत; अखिलम; अखिलम पथविम, बंजर भूमि; जहे (त्याग देगा), छोड़ देगा, आगे बढ़ जाएगा, बराबर कर देगा, बुद्ध का ज्ञान, उपादाव (ध्यान रखते हुए), लेकर तौल देगा, संतुलित करेगा। उपमतो (उदाहरण के रूप में), दृष्टांत के रूप में; न युज्जरे (जोड़ा नहीं जाना चाहिए), साथ नहीं रखा जाना चाहिए; उनका ज्ञान इससे कहीं अधिक है; यही अर्थ है।

224. चक्खुमा (हे नेत्रों के स्वामी!) हे पांच प्रकार के नेत्रों के स्वामी! यह संबोधन है। सहदेवेही, इस संसार के सभी प्राणियों सहित; यह स्थानवाचक शब्द है; संसार के भीतर, स्वर्गलोक सहित; येसम, इन प्राणियों में से जिसके मन में यह भाव उत्पन्न होता है (पवत्तति)। इत्यादि, ये सभी प्राणी अपने मन से, आपके ज्ञान में, अंतोजालागत, ज्ञान के जाल में प्रवेश कर चुके हैं; यही संबंध है; आप अपने ज्ञान के जाल से सभी प्राणियों को देखते हैं; यही अर्थ है।

225. आदरणीय सब्बञ्ञु। सर्वज्ञ बुद्ध! येन ञाणेन (जिस ज्ञान से) चार सही और श्रेष्ठ मार्गों के उचित संगति से, बोधिम पत्टो (जागरूकता प्राप्त करके) निर्वाण, सर्वोत्कृष्टतम अवस्था प्राप्त की, असि (हो गए); उस ज्ञान से, परतित्तिये मद्दसि (आपने अन्य विधर्मियों को कुचल दिया) अन्य धार्मिक नेताओं को पराजित किया; इस प्रकार, संबंध है।

226. उस ऋषि द्वारा की गई स्तुति को स्पष्ट करने के लिए, धर्म के संकलनकर्ता थेरों, प्रथम बौद्ध परिषद के थेरों ने इस प्रकार कहा: इमा गाथा थवित्वाना। यहाँ, इमा गाथा (ये श्लोक) इतने श्लोकों के साथ है; थवित्वाना (स्तुति करते हुए) ऋषि, सुरुचि का नाम लेकर, उनकी प्रशंसा की गई है; हालाँकि, अन्य टीकाओं में शेषत्त्वकथासु में इस प्रकार लिखा है: "सारदलमानवो, बालक सारदा"। यह शब्द माप या सीमा है, जो कि अष्टकथानय, टीका पद्धति के अनुसार पठन (या पाठक) है। दूसरे शब्दों में, वह व्यक्ति जिसकी निर्वाण को अपना विश्राम स्थान बनाने की अच्छी, आनंददायक या सुखद इच्छा हो; वह सुरुचि (सुखद) है। जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों को वश में रखते हुए आगे बढ़ता है, जाता है और लौटता है, वही सारदा (वश में रहने वाला मार्ग) है। इस प्रकार, ये दोनों ही उसके नाम हैं। उस ऋषि सुरुचि ने हिरण की खाल बिछाकर बैठ गए; बैठने के छह दोषों, जैसे कि बहुत पास बैठना आदि से बचते हुए, सारदा ने अपना स्थान ग्रहण किया; यही इसका अर्थ है।

227. वहाँ बैठे हुए उस ऋषि ने, उस महिमावान के उसी ज्ञान की प्रशंसा करते हुए, 'कुल्लासीतिसहस्सानि' से शुरू होने वाला श्लोक बोला। यहाँ 'कुल्लासीतिसहस्सानि' का अर्थ चौरासी हजार है; 'गिरिराज' (पर्वतों के राजा) पर्वत-राजा मेरु हैं; 'महाञ्नवे' सागर में हैं; 'अज्जोगब्लो' (में गोता लगाया) का अर्थ है: गहराई से गोता लगाया, प्रवेश किया; 'तावदेव' (इतना अधिक) चौरासी हजार के बराबर; 'अच्चुग्गतो' (अत्यधिक ऊपर गया) का अर्थ है अत्यधिक ऊपर जाना; इस प्रकार, संबंध है।

228. ताव अच्चुग्गतो, जैसे वह नेरु या मेरु पर्वत अत्यधिक ऊँचाई तक बढ़ गया था; वह महान नेरु या शक्तिशाली मेरु आयतो ऊँचाई और चौड़ाई दोनों में इस प्रकार विस्तारित हुआ था, महान नेरु राजा गणना की विविधता के अनुसार एक लाख करोड़ है; कुन्नितो (टुकड़ों और चूर्ण में बदल गया)।

229. पूज्य सर्वज्ञ बुद्ध! जब आपका ज्ञान लाख की उच्च संख्या में समाहित हो, जब आप अपने ज्ञान को एक-एक करके सौ, हजार या एक लाख के रूप में त्यागते हैं, तो महान नेहरू का वह पाउडर भी समाप्त हो सकता है; आपके ज्ञान की मात्रा का अनुमान लगाना (पामेटावे) जरा भी संभव नहीं है; यही संबंध है।

230. सुखुमच्चिकेना (सुंदर मछली) जो कोई भी परिक्खिपे (घेर कर) करे, यानी पूरे विशाल सागर के पानी को चारों ओर से बहुत सारे छोटे-छोटे छेदों से घेर ले, तो जब ऐसा किया जाएगा, तो पानी में पैदा होने वाले सभी जीव, वे सभी जलीय प्राणी, सियम (होंगे), जाल में चले जाएंगे; यही अर्थ है।

231. उस दृष्टांतपूर्ण तुलना की ओर इशारा करते हुए, उन्होंने तथाएव हि से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ, जैसे जलीय जीव जाल में फँस जाते हैं, वैसे ही, हे महान वीर! महावीर (महान वीर! महान बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए परिश्रम करने वाले! जो भी पुथु, अनेक, तित्थिवा (विधर्मी), गलत मतों के निर्माता, दिष्टिघहनपक्खंदा, विधर्म माने जाने वाले वन-जंगल में प्रवेश कर गए, परमसेन, ईमानदारी या अन्यथा के दृष्टिकोण से विशिष्ट व्यवहार के कारण, मोहिता, भ्रमित या व्याकुल हो गए।

232. शुद्धन (पवित्रता सहित) का अर्थ है आपके ज्ञान से अशुद्धता (किलेसा) से मुक्त; अनावरणदास्सिना (अवरुद्ध द्रष्टा द्वारा) का अर्थ है वह व्यक्ति जिसे सभी सत्यों (धम्म) को बिना किसी अवरोध के देखने का उपदेश या आदत है; इत्यादि, सभी विधर्मी; अंतोजालगत (जाल में फँसे हुए), या जिन्हें ज्ञान के जाल में फँसाया गया था; यही संबंध है। नाणम् तो नातिवत्तरे (वे आपके ज्ञान से आगे नहीं बढ़ सके) का अर्थ है वे विधर्मी आपके ज्ञान से आगे नहीं बढ़ सके।

233. इस प्रकार प्रतापी की स्तुति करने के बाद, उन्होंने अपने स्वयं के स्पष्टीकरण के प्रयास को दर्शाने के लिए, भगवा ताम्हि समये से शुरू होने वाले इस श्लोक का पाठ किया। वहाँ, जिस समय भी ऋषि ने प्रतापी की स्तुति की, स्तुति की समाप्ति के समय, प्रतापी अनोमदस्सी, जो किलेसा, मारा आदि के पराक्रम पर विजय प्राप्त करने के कारण असंख्य अनुयायियों से युक्त माने जाते थे, जिन, विजेता हैं। समाधि से उठकर, उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से संपूर्ण जंबू द्वीप का अवलोकन किया; इस प्रकार संबंध स्थापित होता है।

234.5. उस ऋषि के शिष्य निसाबा, जिनका नाम अनोमदस्सी था, जो ऐसे ज्ञान से संपन्न थे, जिन्हें मोना, शांतचित्तेहि (शांत विचारों वाले), भ्रष्टता रहित मन वाले (किलेसा), तादिहि, अरहतों के साथ, जिन्होंने अपने आसव (आसव) को समाप्त कर लिया था, वांछनीय और अवांछनीय के बीच अपने अविचलित स्वभाव के कारण; शुद्धि (शुद्ध वस्तुओं के साथ), पूर्णतः शुद्ध शारीरिक क्रियाओं से सजे हुए, छह प्रकार के उच्च ज्ञान की उपलब्धियों वाले, जीवन के आठ प्रकार के उतार-चढ़ावों (लोकधम्म) से विचलित या व्याकुल न होने वाले स्वभाव वाले, एक लाख से घिरे हुए; अञ्ञाय (जानकर), बुद्ध के मन को जानकर, उपेषी (पहुंचे), जगत के संरक्षक के निकट गए, ठीक उसी समय; इस प्रकार, संबंध है।

236. वे उस प्रकार तथा (वहाँ) प्रतापी के निकट आकर, अंतलिक्खे (वायुमंडल में) आकाश में खड़े होकर प्रतापी की परिक्रमा करने लगे। वे सब, पांजलिका (हाथ जोड़कर) आकाश से प्रणाम करते हुए और ओतारुम (उतरकर) बुद्ध की उपस्थिति में आ गए; इस प्रकार, संबंध है।
237. फिर, व्याख्या देने के प्रारंभिक भाग को स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने यह श्लोक कहा, जिसकी शुरुआत "सीतम पातुकारी" से होती है। सब कुछ स्पष्ट है।
241. योमम पुप्फेना, वह साधु जिसका मन मुझसे प्रसन्न हुआ या जिसने मुझमें भक्ति भाव जगाया, उसने मुझे अनेक फूल भेंट करके सम्मानित किया; अनुथवी, उसने बार-बार मेरे ज्ञान की प्रशंसा की; तमाहं कित्तयिसामि, मैं उस साधु का स्पष्ट उल्लेख करूँगा; मम भासतो सुनोथा (अपने मन को मेरे द्वारा बोले गए शब्दों से अवगत कराओ)।
250. "पच्छिमे भावसंपत्ते," इस प्रकार, प्रतापी ने अपनी व्याख्या (या अपनी भविष्यवाणी) देते हुए कहा। "वहाँ, पच्छिमे (अंततः), जब अंतिम अवस्था प्राप्त हो गई, तो मनुष्य के रूप में जन्म लेकर मनुष्य जगत में पुनर्जन्म लेगा; यही अर्थ है। ब्राह्मण स्त्री सारी, जो सौंदर्य, धन, आयु, परिवार, विलासिता, पुण्य आदि गुणों से परिपूर्ण होने के कारण इस नाम से जानी जाती हैं, अपने गर्भ में गर्भ धारण करेंगी।"
253. अपारिमेय्ये इतो कप्पे, असीम कप्पे अतः, इस प्रकार, उन्होंने अपनी भविष्यवाणी (ब्याकरण) का मूल आरंभ किया। यहाँ, दो प्रमुख शिष्यों की पूर्णता एक असंख्य युगों और एक लाख युगों (कप्पे) की लंबी अवधि में पूर्ण होती है; ऐसा होने के बावजूद, श्लोक की काव्य रचना में सुगमता के लिए, मध्यवर्ती युगों (अंतरा कप्पे) के संदर्भ में ऐसा कहा गया है; इस प्रकार, इसे देखा जाना चाहिए।
254. भविष्यवाणी (ब्याकरण) इस प्रकार दी गई है:- “वह सारिपुत्त नाम से प्रमुख शिष्य होगा।” भविष्यवाणी (ब्याकरण) देते हुए, उसकी प्रशंसा करते हुए, उस तेजस्वी ने इस प्रकार कहा: “आयम् भागीरथी” इत्यादि; यह पाँच नदियों में से पहली महान नदी, भागीरथी के नाम से जानी जाती है, अर्थात् गंगा, (गंगा), (जमुना), यमुना, सरभू, माही और अचिरवती। हिमवंता पभाविता (हिमवंता से उत्पन्न) अनोटत्त झील से उत्पन्न हुई और हिमालय से नीचे आई थी। महोदधिम (महान सागर) जल का विशाल भंडार; अप्पयनित (पहुँचना) पहुँचना; महासमुद्दम, विशाल सागर; अप्पेति, जैसे ही वे पास या की ओर जाते हैं; इसी प्रकार, यह सारिपुत्त, अपने तीनों वेदों में दृढ़ विश्वास रखते हुए, ऐसा व्यक्ति होगा जिसका ज्ञान या बुद्धि बिना किसी बाधा के फैलेगी, और वह अपने परिवार में प्रचलित तीनों वेदों में पूर्णतः पारंगत होगा। अपने शिष्य ज्ञान के चरम तक पहुँचकर, वह सभी जीवों को संतुष्ट करेगा और उनका उत्तम कल्याण करेगा।
257. हिमवंतमुपादाय, हिमालय पर्वत को आरंभिक बनाकर; महोदधिम, महान सागर, सागरम, जल वाहक, को अंतिम लक्ष्य बनाकर; एत्थंतरे (इसके भीतर), इन दोनों के मध्य में, पर्वत और सागर; यंपुलिनम, रेत के ढेर और संग्रह के बराबर; गणना या गिनती के अनुसार, असंख्य (असंख्य), गणना या गिनती से परे; असंख्य।
258. ताम्पि सक्का असेसेना, यहाँ तक कि शेष न रहने वाले रेत के ढेर भी, संखातुम (गिनना), गिनना संभव हो सकता है, क्योंकि इतनी संख्या में इतने ही कुल योग हैं; यही संबंध है। इसी प्रकार, अंत (अंत), सारिपुत्त के ज्ञान का अंतिम अंत (भविस्सति) बिल्कुल नहीं होगा; यही अर्थ है।
259. लक्खे; :P: भविस्सति; यहाँ, लक्खे (लिखित या लाख में) का अर्थ है: ज्ञान में लिखित या लाख, ज्ञान का एक अंश; तपियमानाम्ही (रखा जाने पर), का अर्थ है: यदि इसे रखा जाए, तो गंगा की रेत; खिये (समाप्त), पूरी तरह से समाप्त हो जाएगी; इस प्रकार, यही अर्थ है।
260. महासमुद्दे (विशाल सागर में), का अर्थ है: चौरासी हजार योजन गहरे चार महा सागरों में। उमियो (लहरें), गावुता आदि जैसी लहरों के अनेक प्रकार। गणनातो असंखिया (गणना से परे) का अर्थ है: जैसे वे गणना से परे हैं, वैसे ही सारिपुत्त के ज्ञान का विस्तार भी, अंत (अंत), चरम अंत, न हेस्सति (नहीं होगा) नहीं होगा; यही संबंध है।
261. इस प्रकार, वह सारिपुत्त विद्वान या ज्ञानवान था; गौतम वंश का होने के कारण (गौतमम, गौतम, शाक्य परिवार में सबसे बड़ा, शाक्यों का बैल-पुरुष, स्वयं-प्रबुद्ध (या आत्मजागृत) बुद्ध); आराध्यित्वा (प्रसन्न करना), उचित कर्तव्यों, अच्छे उपदेशों और अच्छे आचरण आदि के अभ्यास से मन को प्रसन्न करना, पञ्ञाया (ज्ञान का), शिष्य के ज्ञान का, पारमिम् (परिपूर्णता), पूर्णता प्राप्त करना; इस प्रकार, संबंध है।
262. इस प्रकार प्रधान शिष्य का पद प्राप्त करके, धम्मचक्कम अनुवत्तेस्साति (बाद में धर्म का चक्र चलाएगा) और उस उत्तम धर्म को बनाए रखने का भार वहन करेगा, जिसे शाक्य पुत्र, तेजस्वी पुरुष ने वांछनीय और अवांछनीय के बीच विचलित हुए बिना प्रकट किया और निरंतर प्रसारित रखा है। धम्मवुत्तिओ (धर्म की वर्षा) को महान सत्यों के उपदेश के रूप में गिना जाता है; वसन्तो (वर्षा) वर्षा (या उपदेश), स्पष्टीकरण, प्रकटीकरण, साझाकरण, सरलीकरण करने वाला वह व्यक्ति होगा; यही अर्थ है।

263. हे प्रतापी गौतम, शाक्यों वंश के बैल-पुरुष, ने अपने विशिष्ट ज्ञान से इन सभी गुणों को जानकर (उच्च ज्ञान के माध्यम से) भिक्षु संघ में विराजमान होकर, श्रेष्ठ (आर्य) व्यक्तियों के बीच बैठकर, उन्हें सर्वोच्च स्थान पर स्थापित किया है; इस प्रकार यह संबंध है।

264. इस प्रकार भविष्यवाणी प्राप्त करके, वह प्रसन्न हो गया और उत्साह और आनंद से भरे भाव से उसने यह श्लोक बोला, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: अहो मे सुकटम कम्मम इत्यादि। यहाँ, अहो विस्मय व्यक्त करने वाला एक अविभक्ति शब्द है; सत्तुनो (गुरु का), महिमावान अनोमदस्सी का, गुरु का; सुकटम (अच्छी तरह से किया गया) ठीक से किया गया, विश्वास करके और बनाया गया; कम्मम (कर्म) वास्तव में पुण्य का अंश है, हाय! आश्चर्यजनक रूप से शक्तिशाली, अकल्पनीय; इस प्रकार, इसका अर्थ है यस्सा (जिसका) महिमावान का; अहं करम (मैं, बनाते हुए) पुण्य का संचय किया; सब्बत्था (हर जगह), सभी गुणों के समूह में; पारमिम (पूर्णता) संपूर्ण अंत; गतो (गया) परम सीमा प्राप्त की; हे वास्तव में! वह महिमावान अद्भुत है! इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।
265. अपारिमेयो (असीमित) वह पुण्य कर्म जो अनंत काल में किया गया; मे (मेरा) इधा, अपने अंतिम जन्म में; फलम (फल) ने परिणाम दिखाया। सुमुत्तो (अच्छी तरह से मुक्त) उचित रूप से मुक्त, झपायिम (मैंने जलाया), मैंने अपने सभी दुराचारों (किलेसा) को आग लगा दी, उस पुण्य के फल से जो एक कुशल धनुर्धर द्वारा छोड़े गए तीर की गति के समान है; यही अर्थ है।
266. अपने स्वयं के परिश्रम को प्रकट करते हुए, उन्होंने असांशतंग से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। यहाँ, असांशतंग (अजन्मा) स्वयं निर्मित नहीं है; कारणों से नहीं हुआ है; यही अर्थ है। अचलम् पदम् गवेसन्तो (अडिग मार्ग का बीज बोते हुए), उस अजन्मे निर्वाण की खोज में, दुराचार के अंधकार के अभाव और संचित अच्छे कर्मों की स्थापना की भावना से; सब्बे तित्तिये (सभी विधर्मी) वे सभी व्यक्ति, जिन्होंने विधर्म स्थापित किया और गलत विचार उत्पन्न किए; विचिनम् (जांच करते हुए), बारीकी से जाँच करते हुए, एषाहम् (यह मैं); भावे (अस्तित्व) ऐसे अस्तित्व जैसे कि इंद्रिय जगत इत्यादि; संसारिं (पुनर्जन्मों से गुजरा) मैं पूरी तरह से घूम गया; यही संबंध है।
267.8 अपने अर्थ को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: यथा पि ब्याधितो पोसो। यहाँ, ब्याधितो (रोगी) का अर्थ है रोग से पीड़ित; पोसो (मनुष्य) का अर्थ है व्यक्ति, जैसे एक बीमार व्यक्ति औषधि की तलाश करता है, वैसे ही मैं भी निर्वाण, अमरता के अजन्मे मार्ग की खोज करते हुए, अब्बोकिञ्ञम् (मिश्रित नहीं) बिना किसी रुकावट के, निरंतर, बिना अंतराल के, पंचसतम (पाँच सौ) मैंने अपने पाँच सौ जन्मों या अस्तित्वों में संन्यास का त्याग किया; इस प्रकार, संबंध है।
271. kuttitthe sañcarim ahaŋ (मैं एक बुरे लैंडिंग स्थान पर पुनर्जन्म के दौर से गुजरा) मैं पापी लैंडिंग स्थान पर यात्रा मार्ग पर भटकता रहा।
272. सारत्थिको पोसो (सार की इच्छा रखने वाला मनुष्य) वह मनुष्य जो सार का साधक है। कदलिम चेत्वान फालये (केला काटकर वह फट जाएगा) केले के पेड़ का तना काटकर वह उसे दो भागों में बाँट देगा; न तत्थ सारम विन्देय्य (उसे वहाँ सार प्राप्त नहीं होगा) उसे बाँटकर भी वह केले के तने में सार प्राप्त नहीं करेगा, परन्तु वह मनुष्य रित्टो (सार से रहित) है, इस प्रकार संबंध है।
273. जिस प्रकार केले का तना सारहीन होता है, उसी प्रकार संसार में अनेक लोग जो विभिन्न गलत मतों का अनुसरण करते हैं, वे निर्वाण से रहित होते हैं; यही संबंध है। शब्द 'से' एक अविकारी कण है।
274. पच्चिमभवे (अंतिम जन्म में), अंतिम जन्म में, ब्रह्मबंधु (ब्रह्मा का संबंधी), मेरा जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था; यही अर्थ है; महाभोगमछादेत्वान (विशाल धन का त्याग करके), धन के विशाल भंडार को लार के ढेले के समान फेंक दिया; अनागारियम (गृहस्थ जीवन), हल चलाने, व्यापार आदि जैसे व्यवसायों से रहित, पब्बजिं (मैं संन्यासी बन गया), संन्यास का मार्ग अपनाया; यही अर्थ है।
प्रथम प्रस्तुति पर टिप्पणी
अवसर समाप्त हो गया है।
275.7. अज्झायको:- :P: मुनिम मोने समाहितम्, पाठकर्ता.. आदि.... वह ऋषि जिसका मन ज्ञान में ठीक से या तल्लीनता से केंद्रित है। मोना को ज्ञान या बुद्धि (ज्ञान) कहा जाता है; (मोना) मन अच्छी तरह से केंद्रित, उस ज्ञान (मोना) में ठीक से स्थित; इस प्रकार, अर्थ है। एक नाग (हाथी) है क्योंकि वह अपराध (आगु) के रूप में मानी जाने वाली बुराई नहीं करता है; थेरा असजी; वह महान हाथी (महानाग), खिलते हुए कमल के समान सुंदर रूप से चमकता हुआ, ठीक से खिलता हुआ; इस प्रकार, अर्थ है
278-281. Disvā me :P: pucchitum amotam padam, मेरे द्वारा देखकर... इत्यादि... अमर मार्ग के बारे में पूछना। अर्थ स्पष्ट है।
282. विथिंटारे है: विथी अंतारे, गली के अंदर; अनुप्पट्टम (बाद में पहुंचा), वह थेरा जो पास गया और पहुंचा; उपगन्त्वाना (पास आकर), मैं पास गया और पूछा; इस प्रकार, संबंध है।

284. कीदिसम ते महावीर (हे महान वीर! वे कैसे हैं?) हे महान वीर, आप जिन्होंने धर्मचक्र के प्रारंभ में अरहतों के बीच, उस युग में अरहतत्व प्राप्त किया; हे परम दृढ़ पुरुष! महायसा ते (आपकी महान प्रसिद्धि हो) क्योंकि आपके अनेक अनुयायी और दल हैं, जिनमें आप बुद्ध के समान हैं! शासनं धम्मं (धर्मप्रधान सिद्धांत) धर्म के उपदेश के रूप में माना जाने वाला धर्म; इस प्रकार संबंध है। भो, मित्र! शुभ मुख! भद्रमुख! मे, मेरे; साधु, अच्छा, अच्छा धर्मप्रधान या शिक्षा; कथयस्सु, कथेहि, कृपया बोलें (या कहें); इस प्रकार अर्थ है।

285. इसके बाद, वाणी या उपदेश के स्वरूप को दर्शाने के लिए, उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत "सो मे पुच्छो" से होती है। वहाँ सो (वे) थेरा अस्सजी हैं; मे, मे द्वारा, पुच्छो (ने पूछा), जब उनसे इस प्रकार पूछा गया: "यह उपदेश या शिक्षा कैसी है?", तो उन्होंने संपूर्ण शिक्षा (या प्रवचन) का उपदेश दिया। गंभीरम् (गहरा), संपूर्ण उपदेश या शिक्षा अर्थ में गहन है; गंभीरम् (गहरा), क्योंकि बुद्ध द्वारा प्रचारित धम्म में प्रवेश करने की गहराई है; निपुणम्पदम् (सूक्ष्म मार्ग, निर्वाण), जो पूर्णतः सार्थक आर्य सत्य आदि के निर्धारण के माध्यम से सूक्ष्म है; हन्तारम् (हत्या), तृष्णा इच्छा के काँटे और पुनर्जन्म के चक्रों के संपूर्ण दुख का नाश करना; अपानुदनम् (उखाड़ फेंकना), जिसका स्वभाव (धम्म) फेंके जाने का है; इस प्रकार, संबंध है।

286. उनके उपदेश के स्वरूप को दर्शाने के लिए, उन्होंने ये श्लोक कहा, जो इस प्रकार प्रारंभ होता है: हेतुप्पभावा (कारण से उत्पत्ति) जो विशेष रूप से उत्पन्न हुआ, सामान्यतः उत्पन्न हुआ, उचित रूप से उत्पन्न हुआ, हो गया, घटित हुआ, कारण और परिस्थिति से उत्पन्न हुआ; धम्मा (जो भी वस्तुएँ) जो भी, प्रकृति की वस्तुएँ कारणों सहित, उपस्थित हैं, विद्यमान हैं, प्राप्त होती हैं; इस प्रकार, संबंध है। तेसम (उनका) धम्मा का, हेतुम, कारण परिस्थिति; आहा (कहा) तथागत ने उपदेश दिया। तेसंच यो निरोधो, (जो भी समाप्ति हो, वह भी) जो भी समाप्ति हो, उन वस्तुओं के अंत की प्रकृति जो कारण के अधीन हैं; एवं वादी महासमनो (महान भिक्षु ऐसे वक्ता हैं) प्रतापी महासमनो महान भिक्षु महासमनो थे, क्योंकि उनके अनुयायियों में शील, समाधि, ज्ञान आदि गुणों की महानता थी, उनके पापों का निवारण और पूर्ण विनाश हुआ था, इसलिए वे इस प्रकार वक्ता थे, क्योंकि वे कारणों के पूर्ण निवारण आदि जैसे वचन बोलने के आदी थे; यही अर्थ है।

287. इसके बाद, उन्हें जो धर्म का उपदेश दिया गया था, उसे सुनकर उन्होंने सोहम से शुरू होने वाले इस श्लोक का पाठ किया, ताकि उस समय उनके द्वारा किए गए कार्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके। यह तो स्पष्ट है।

289. एसेवा धम्मो यदितावदेव (यदि यही धम्म इतना ही है) तो इससे आगे कुछ न हो, इस हद तक, प्रथम श्रेष्ठ धार्मिक मार्ग (सोतापत्ति) का यही फल प्राप्त होना चाहिए। इसी प्रकार यही धम्म है; यही अर्थ है। पच्चव्यथा, पदम्, मार्ग, तुम सब चिंतामुक्त निर्वाण में प्रवेश करो। यह मार्ग नहुत काल से, अर्थात् हमारे द्वारा, अनेक युगों (कप्प) से देखा गया है।

290. Y'āham dhammam gavesento is: yo ahaŋ, मैं, धर्म की खोज में, शांत मार्ग के धर्म की खोज में; kutitthe (बुरे स्थान पर), घृणित स्थान पर, निंदनीय स्थान पर; sañcarim (मैं भटक गया था), गोल-गोल घूम गया था; यही अर्थ है। So me attho anuppatto (मेरी वह इच्छा पूरी हो गई थी), वह कल्याण (या लाभ) जिसकी खोज की जानी चाहिए थी, मुझे उचित रूप से प्राप्त हो गया था; अब, मुझे, मेरे, nappamajjitum (लापरवाह न होने के लिए) अब समय आ गया है कि मैं सजग हो जाऊं; यही अर्थ है।

291. तोसितो (प्रसन्न) मैं थेरा अस्सजी से प्रसन्न हुआ, अचलम् पट्वाना (अविचल प्राप्त करके) निर्वाण, जो कभी न डगमगाने वाला है, प्राप्त करके; सहायकम, साथी, बालक कोलिता; गेवेसन्तो (खोजते हुए) मैं मूल संन्यासियों के निवास पर खोज में गया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

292. दूरतो व ममम् दिस्वा (मुझे दूर से भी देखकर) मुझे अपने आदिम संन्यासी निवास से भी दूर से आते हुए देखकर; मुझे (मेरे) मेरे अनुशासित साथी; सम्पन्नो (से संपन्न) खड़े होने, बैठने आदि जैसी मुद्राओं से परिपूर्ण; इदम् (यह), उपरोक्त कहे जाने वाले शब्द, अब्रवी (कहे), कहे; इस प्रकार, अर्थ है।

293. हे सहोदी! पसन्ना मुखनेत्तोसि (आप निर्मल मुख और नेत्रों से सुशोभित हैं) आप सुंदर, आकर्षक और तेजस्वी मुख और नेत्रों से संपन्न हैं। दिस्साति (देखने पर), आपमें ऋषि के समान गुण प्रकट होते हैं; अमरताधिगतो (अमरता प्राप्त कर ली है), निश्चित रूप से आपने निर्वाण, अमर शांति प्राप्त कर ली होगी; कच्चि अच्चुतं पदम् क्या आपने किसी भी प्रकार से अमर मार्ग की ओर अग्रसर हुए हैं?, मैं आपसे इस प्रकार पूछता हूँ: “क्या आपने निर्वाण, अमर मार्ग प्राप्त कर लिया है?” -यही अर्थ है।

294. Xubhānurūpo āyāsi (आप सुंदर दिखते हुए आए हैं) सुंदर और मनमोहक रंगत वाले व्यक्ति के समान होकर आप यहाँ आए और पहुँचे हैं। Āneñjakārito viya, मानो अविचलित हाथी के समान, हाथी के सारथी के भाले आदि के कारण शांत हो गए हों; danto va (परन्तु वश में) मानो तीन महीने तक अनुशासित रहे हों; brāhmaṇa danto damatho (वश में और वश में ब्राह्मण) बुराई को भगाने के कारण, वह अनुशासन में प्रशिक्षित ब्राह्मण है, उसने पूछा: क्या आप निर्वाण के मार्ग में अच्छी तरह से शांत हैं?

295. जब उनसे पूछा गया, तो सारिपुत्त ने उत्तर दिया: अमतम् मया, मेरे द्वारा अमरता, इत्यादि। यह तो स्पष्ट है।

299. अपरियोसितसांकप्पो (अपूर्ण रूप से समाप्त हुआ इरादा) वह इरादा जो अभी तक साकार नहीं हुआ है, आकांक्षा का चरम बिंदु, इस प्रकार आकांक्षा की गई: "भविष्य में मैं किसी बुद्ध का प्रधान शिष्य बनूँ।" यही अर्थ है। कुतित्ते (गलत पड़ाव) वह यात्रा या मार्ग जिस पर नहीं जाना चाहिए था; अहं संचरिम (मैं भटक गया) अपने चारों ओर लुढ़क गया। आदरणीय गौतम! हे जगत के सबसे बड़े! आगम्म (आओ) मैं आपसे मिलने यहाँ आया हूँ, और आकर, मम सं◌ंकप्पो (मेरा इरादा) मेरी आकांक्षा; पुरितो (पूर्ण) मैं अब शिष्यों के ज्ञान की प्राप्ति, श्रेष्ठ अरहतत्व के सही मार्ग की प्राप्ति से पूर्णतः परिपूर्ण हूँ; यही अर्थ है।

300. पथवियम् पतित्त्याय (पृथ्वी पर स्थापित) पृथ्वी पर जन्म लेने वाले, समये (उस समय) शीत ऋतु में, पुप्पन्ति (खिलना) फूल; दिब्बगंधा (दिव्य सुगंध) अच्छी और उत्कृष्ट सुगंध; पावन्ति (बहना) हवा लाना, उत्सर्जित करना; सब्बपाणिनम् (सभी प्राणियों को) सभी मनुष्य और दिव्य प्राणी; तोसेन्ति (आनंदित करना), मानो उन्हें मानसिक आनंद से जोड़ना।

301. तथावाहं महावीर (इसी प्रकार मैं भी, हे महान वीर!) हे महान अनुचरों वाले, शाक्य वंश के पुत्र, अपार परिश्रम से संपन्न! ते (आपके) विधान में; पतित्याय (स्वयं को स्थापित करके) मैं खड़ा रहा; पुप्पितुम (प्रज्वलित होना) श्रेष्ठ अरहतत्व के धर्म मार्ग के ज्ञान से; समयम्, समय, एस्सामि (मैं खोजता हूँ) इसी प्रकार, मैं भी खोज में जाऊँगा; इस प्रकार, संबंध है।

302. विमुक्तिपुप्पम (मुक्ति का फूल) वह फूल है जिसे धार्मिक श्रेष्ठ अरहतत्व के फल की मुक्ति माना जाता है, क्योंकि सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) से मुक्त होकर व्यक्ति को मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त होती है; एसन्तो (खोज) उसकी खोज में जाना, वास्तव में, भवसंसारमोचनम् (पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति) इंद्रियजन्य अस्तित्व आदि जैसे अस्तित्वों में भटकना है: अस्तित्वों में भटकना (भवसंसार) इससे मुक्ति है: पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति; विमुक्तिपुप्पलाभेन (मुक्ति या मोक्ष के फल की प्राप्ति के साथ) या तो मुक्ति से मुक्ति, या इससे प्राप्त संचय, है: मुक्ति या मुक्ति, सर्वोच्च फल; इस प्रकार, इसके द्वारा निर्देशित (या नेतृत्व योग्य) खिलना और फूल, फूल है; स्वतंत्रता का फूल भी मुक्ति का फूल है; प्राप्ति ही लाभ है, स्वतंत्रता के फूल की प्राप्ति ही मुक्ति के फूल की प्राप्ति है; उस स्वतंत्रता के फूल और उपलब्धि की प्राप्ति के साथ, मैं सभी प्राणियों को आनंदित करता हूँ; यही अर्थ है।

303. “यावता बुद्धखेत्तमहि” (बुद्ध के क्षेत्र तक) और इसी प्रकार आगे। हे चक्खुमा (हे नेत्रों के स्वामी) हे पंच प्रकार के नेत्रों के स्वामी! बुद्ध के क्षेत्र में, जहाँ परित्त, सुरक्षात्मक मंत्र, रत्न सूत्र, रत्न-समान प्रवचन आदि की शक्ति और प्रभाव एक लाख करोड़ ब्रह्मांडों (चक्कवा) के रूप में गिने जाते हैं, वहाँ तक पहुँचते हैं; तपेत्वान महामुनिम् (महान ऋषि को एक तरफ रखकर), आत्मप्रबुद्ध या सर्वज्ञ बुद्ध से दूर रहकर, शेष प्राणियों में से कोई भी नहीं; तव पुत्तस्स (आपके पुत्र का) मेरे साथ, आपके पुत्र के साथ; पञ्ञाय सदिसो (ज्ञान में समान) कोई नहीं; इस प्रकार संबंध है। शेष तो सरल और स्पष्ट है।

308. पाटीपन्ना (उचित रूप से प्राप्त) चार सही श्रेष्ठ मार्गों (मग्ग) से परिपूर्ण, फलात्था (फल में स्थापित), अरहतत्व के फल में स्थापित; सेखफलसमंगिनो (दीक्षित और फल से संपन्न), तीन निम्न फलों से संपन्न, ये आठ श्रेणियों के श्रेष्ठ भिक्षु हैं; उत्तमत्म (सर्वोत्तम लाभ) निर्वाण; आसीसता (लक्ष्य से) खोज; तम (वह) ज्ञान का स्वामी; परिवारेन्ति सदा (सदा घिरे रहने वाले) वे हर समय उनके पास आते हैं, उनकी सेवा करते हैं और उनकी देखभाल करते हैं; इस प्रकार, अर्थ है।

310. कुशल (चतुर) आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के साथ शरीर, संवेदना, मन और धम्म को देखते हुए, ध्यान के चार आधारों में विशेषज्ञ; भावनाय (विकसित करके) आत्म-ज्ञान के सात तत्वों को बढ़ाकर, आत्म-ज्ञान के तत्व के रूप में ध्यान से शुरू करते हुए; रता (प्रसन्न) पालन किया।

314. उलुराजावा (तारा-सम्राट के समान) यह तारों और ग्रहों के राजा के समान भी चमकता है।

315. धरणीरुहा (भूमि पर सवार) वृक्ष, पृथ्वी या भूमि धरणी है, क्योंकि यह वृक्षों, पहाड़ियों, रत्नों, जीवों आदि को धारण करती है; पृथ्वी या भूमि पर सवार, बढ़ते, विकसित होते या समृद्ध होते हुए धरणीरुहा वृक्ष हैं; रुहंति (सवार) भूमि पर ठीक से स्थापित या खड़े होकर, वे बढ़ते हैं और विकसित होते हैं; वेपुल्लतम (समृद्धि की अवस्था) सर्वांगीण परिपूर्णता की अवस्था, पापुन्ति, प्राप्त होती है; ते (वे) वे वृक्ष, क्रमानुसार, फलम् दसयन्ति (फल दिखाते हैं) फल देने वाले बन जाते हैं।

317.9. फिर उसी प्रकार महिमावान ईश्वर की स्तुति करते हुए, सिंधु सरसती से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया गया: वहाँ सिंधु आदि नाम की नदियाँ हैं, गंगा और सरसती जैसे नाम हैं, और गंगा और यमुना जैसे नाम हैं; संदशमाननम् (बहना) जा रही हैं; एतसम (इनमें से) नदियों की; सागरो व (सागर के समान) सागर के समान; सम्पतीच्छति (स्वीकार करता है) स्वीकार करता है, धारण करता है; उस समय, तब, ये सभी नदियाँ; पुरिमम् नामम् (पूर्व नाम) सिंधु आदि, गंगा आदि जैसे पूर्व नाम, पदनाम, शब्दावली; जहंति (त्यागना) छोड़ देना; सागरो तेव (सागर के समान) सागर के समान; ञाति (ज्ञात) जैसे ही स्पष्ट हो जाते हैं। ततेवा (इसी प्रकार) उस समय चतुब्बान्ना (चार रंग) चार परिवारों को माना जाता था, जिनमें राजसी योद्धा, ब्राह्मण, व्यापारी और सामान्य किसान शामिल थे; तवंतिके (आपकी उपस्थिति में) आपके आसपास, निकट; पब्बजित्वा (भिक्षु बनकर) भिक्षापात्र और पीले वस्त्र धारण करके घूमते थे;

पुरिमम नामम (पूर्व नाम) पदनाम शब्द, जिनमें राजसी योद्धा आदि नाम शामिल थे; जहंती (त्यागना) छोड़ देना; बुद्धपुत्त (बुद्ध के पुत्र) बुद्ध के सगे पुत्र; नारये, ज्ञात, स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाएगा।

320.4. चंदो (चंद्रमा) चंद्रमा का चक्र; विमलो (निर्मल) अशुद्धियों से मुक्त, मैल रहित, क्योंकि इसने पाँच आसक्तिकारी विकारों (किलेसा) जैसे बादल, पृथ्वी की धुएँ, धूल, धुआँ, शनि या ग्रहण से छुटकारा पा लिया है; आकाश धातुया (आकाश-तत्व में) आकाश के गर्भ में; गच्छम (जाना) यात्रा करना; सब्बे (सभी) तारों का समूह, अतिरोचति (चमकता है) जैसे यह दुनिया में अपनी चमक से जगमगाता है, अपने प्रकाश से रौंदता या अभिभूत करता है; तथेव (इसी प्रकार) तुम भी वैसे ही हो।

325.7. उदके जाता (जल में उत्पन्न) कुमुद और मंडालक कमल के फूल जो जल में स्वयं विकसित होते हैं; बहु (अनेक) अनगिनत; तोयेन (जल के साथ) मटमैले पानी से सना हुआ; उपलिम्पन्ति (लेपना) जैसे वे चिपकते हैं या चिपक जाते हैं; वैसे ही बहुकासत्ता (अनेक जीव) संसार में अनगिनत जीव; जाता (उत्पन्न) विकसित या बढ़े हुए; अत्तिता (हमला या परेशान) कामवासना और क्रोध से बंधे हुए; विरुहरे (सवारी) सवार होना; जैसे कमल का फूल कीचड़ में स्वयं उगता है; केसरी (कमल) लिली का नाम।

329.30. कट्टिका माह में राममके मास (राममका माह), क्योंकि ऐसा कहा गया है, "कुमुद कमलों का चार माह का काल"। वारिजा (जल से उत्पन्न) पद्म कमल आदि; बहु (अनेक) फूल; पुप्पन्ति (खिलने वाला) फूल; तम मासम् (उस माह) जल से उत्पन्न कमल उस कट्टिका माह से आगे नहीं खिलते; इस प्रकार, संबंध है। समयो पुप्पनाया सो (वही फूल खिलने का समय है) वह कट्टिका माह, खिलने का समय और ऋतु है, जैसे कमल खिलते हैं, वैसे ही, हे शाक्यन पुत्र! तुम खिल उठे। पुप्पितो ते विमुत्तिया (आपके उद्धार के लिए खिले): आपके वे शिष्य, भिक्षु जिन्होंने मुक्ति के लिए साधन संचित किए थे, अरहतत्व की प्राप्ति के ज्ञान से खिल उठे। नातिवत्तन्ति (आगे न बढ़ें): आपके उपदेश या मार्गदर्शन में दी गई नसीहत और सलाह से आगे न बढ़ें, ठीक उसी प्रकार जैसे जल में उगा पद्म कमल अपने फूलने के मौसम से आगे नहीं बढ़ता; यही अर्थ है।

33.4. यथा पि सेलो हिमवा (जैसे कि पथरीली हिमवा पर्वत) हिमवा नाम की पत्थर से बनी पर्वत; सभी प्राणियों का, सभी रोगग्रस्त प्राणियों का; औषधि (औषध) सभी ड्रैगनों, सभी टाइटनों, सभी देवताओं का, जिनके पास औषधि है; आलयो (विश्राम स्थल) जैसे कि वह घर बन गया है; उसी प्रकार, हे महान वीर! आप औषधि के समान हैं क्योंकि आपने सभी प्राणियों को वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु आदि जैसी बीमारियों से मुक्ति दिलाई है; जैसे कि वह हिमवा पर्वत ड्रैगनों आदि का विश्राम स्थल या घर है, उसी प्रकार, पारमिं गता (पूर्णता प्राप्त करके) तीन प्रकार के ज्ञान (विज्जा), छह प्रकार के उच्च ज्ञान (अभिज्ञा) और जादुई शक्तियों (इद्धि) को प्राप्त करके, आप पर निर्भर रहते हैं; इस प्रकार, संबंध है। नीचे हो या ऊपर, छंदों को जोड़ने की विधियों को उपमाओं और उदाहरणों के माध्यम से अच्छी तरह से जानना चाहिए।

342. आसयानुसयम् ञत्वा; यहाँ, आसया (इच्छा) तीव्र इच्छा, अभ्यास है; अनुसया (दीर्घकालिक स्थिति) वह दुराचार है जो प्रबल हो गया है। सामान्य इच्छा, दीर्घकालिक इच्छा और दुराचार की घटना को जानते हुए, इस प्रकार टिप्पणी की जाती है: "यह व्यक्ति कामवासना का आदी है", यही अर्थ है। इंद्रियानम् बलबलम् (नियंत्रण शक्तियों की शक्ति और दुर्बलता) शक्ति और दुर्बलता को इस प्रकार जानते हुए कि क्या विद्यार्थी को आसानी से समझाया जा सकता है या नहीं, अर्थात् कठिनाई, पांच नियंत्रण या विकसित होने योग्य शक्तियों जैसे स्पष्ट भक्ति (सद्धा) आदि में तीव्र या कोमल शक्तियों के अच्छे या बुरे लक्षणों की। भब्बाभब्बे विदिवना (संभव और असंभव को जानकर) स्वयं को इस प्रकार जानकर: "यह व्यक्ति संभवतः मेरे द्वारा प्रचारित सत्य (धम्म) को ठीक से समझ सकता है, यह व्यक्ति संभव नहीं है", हे सर्वज्ञ बुद्ध! चार द्वीपों की महान वर्षा की तरह, आपने गज्जसी (गर्जन) किया, एक महान गर्जना की, जो पूरे ब्रह्मांड (चक्कवाला) में सर्वसम्मति से गूंज उठी, निर्भीक गर्जना के साथ, सत्य (धम्म) का प्रचार करने वाले सिंह की गर्जना के साथ।

343.4. चक्कवाङपरियन्ता (ब्रह्मांड की चरम सीमा) पर श्रोता चारों ओर से ब्रह्मांड के गर्भ या सतह (चक्कवाङ) को भरते हुए बैठे होंगे। नाना दिष्टि (विभिन्न विधर्मी) इस प्रकार बैठकर, अनेक मत रखने वाले, विवाद करते हुए, दो गुटों या विभाजनों (द्वेल्हक) में विभाजित हो गए; विमतीछेदनाय (संदेह को दूर करने के लिए) उनकी उस बुरी बुद्धि को काटने के उद्देश्य से; सब्बेसम (सभी का) सभी जीवित प्राणियों का, चित्तमञ्ञाय (मन को जानने वाला) उनके मन की प्रवृत्ति को जानने वाला; ओपम्मकुसला (उदाहरणों में चतुर) उपमाओं और उदाहरणों का विशेषज्ञ; एकम पण्हम कथेन्टो वा (केवल एक समस्या की बात करते हुए) केवल एक प्रश्न का उत्तर देकर, विमतिम चिन्दति (संदेह दूर कर दिया) ने संपूर्ण ब्रह्मांड (चक्कवळा) की सतह पर बैठे जीवों के संदेह को निःसंदेह दूर कर दिया, इस प्रकार, यही अर्थ है।

345. उपदिसादिसेहेव, वास्तव में जलीय पौधे या काई (उपदिसा) के समान; यहाँ, जल के ऊपर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं; इस प्रकार, यह काई (उपदिसा), जलीय पौधा (सेवला) है; काई के समान मनुष्य, काई (उपदिसा) के समान हैं; जैसे, वास्तव में, काई और जलीय पौधे जल पर फैलकर जल को अदृश्य बना देते हैं, वैसे ही वसुधा (पृथ्वी) उन मनुष्यों द्वारा बिना किसी अंतराल के फैलकर या विस्तारित

होकर भर जाती है, जो उन काई के समान हैं; पंजलिका (हाथ जोड़कर) सिर पर हाथ उठाकर; कित्तयुम लोकनायकम् (विश्व संरक्षक की स्तुति करते हुए) विश्व के रक्षक बुद्ध के गुणों का वर्णन करते हैं।

346. ते (वे) सभी मनुष्य और दिव्य प्राणी; कप्पम्य (संसार या), संपूर्ण विश्व-काल (कप्प); कित्तयन्त, गुण-वर्णों की स्तुति करते हुए; नानावञ्ञेहि (विभिन्न रंगों के साथ) उन्होंने विभिन्न प्रकार के गुणों की स्तुति की; इसके बावजूद भी, वे सभी परिमितम् (मापने के लिए) गुणों की मात्रा की बात करते हैं, नापप्पेयुम (पहुँच नहीं पाएँगे) अच्छी तरह से नहीं पहुँच पाएँगे, सक्षम नहीं होंगे; अप्पमेय्यो तथागतो (तथागत अतुलनीय हैं) आत्मप्रबुद्ध सर्वज्ञ बुद्ध सर्वव्यापी अतुलनीय हैं, उनमें अनेक गुण हैं; इससे वे बुद्ध के गुणों की महानता को प्रकाशित करते हैं।

347. सकेन थामेना (अपनी शक्ति से) अपने बल के बल पर, उपमाओं और उदाहरणों के माध्यम से, नीचे; जिनो (विजेता) बुद्ध जिन्होंने दुराचार (किलेसा) पर विजय प्राप्त की, मया कित्तियो (मेरे द्वारा स्तुति की गई) जैसे कि मैंने उनकी स्तुति की थी, कित्तिट्टा पकित्तयुम (प्रशंसा में स्तुति करेंगे) ठीक उसी प्रकार, सभी देवता और मनुष्य करोड़ों युगों और करोड़ों विश्व चक्रों तक उनकी प्रशंसा करेंगे; यही अर्थ है।

348. बुद्ध के गुणों की असीमता को उजागर करने के लिए उन्होंने यह श्लोक कहा, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: Sace hi koci devo vā, pūritam parikāďdheyya (भरा हुआ और चारों ओर खिंचा हुआ, जैसे विशाल सागर का भरा हुआ जल अपने आप को चारों ओर खींच लेता है; वैसे ही वह व्यक्ति, मृत्यु, दुःख (दुक्खा), यहाँ तक कि, लभेय्य, भी प्राप्त कर लेता है; यही अर्थ है।

350. वत्तेमि जिनासासनम् (मैं विजेता के उपदेश (या प्रवचन) का निरंतर अनुसरण करता हूँ) मैं निरंतर अनुसरण करता हूँ और विजेता द्वारा प्रचारित तीनों पिटकों की देखरेख करता हूँ; यही इसका अर्थ है। धम्मसेनापति (सत्य के सेनापति) वे सभा के प्रमुख स्वामी हैं, जिन्हें सत्य (धम्म) के ज्ञान के कारण प्रतापी बुद्ध की चार प्रकार की सभा (या श्रोतागण) माना जाता है; इस प्रकार, वे प्रतापी बुद्ध के प्रवचन या उपदेश में सत्य के सेनापति (धम्मसेनापति), शाक्यपुत्तस (शाक्य के पुत्र) हैं; अब (वर्तमान में) मैं विश्व-राजा के सबसे बड़े पुत्र के समान बुद्ध के संपूर्ण प्रवचन की रक्षा करता हूँ।

352.3. अपने बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्र को दर्शाने के लिए, उन्होंने यह कहा (पृष्ठ 431): यो कोचिमनुजो भारम्। मनुजो (मनुष्य) कोई भी भारम् (भार) सिर पर रखा हुआ भार; मत्थके (सिर पर) उसके सिर पर रखा हुआ भार; धारेय्या (सहेगा) लेगा; सदा (पृष्ठ 431) हर समय भारेण दुक्खितो (भार से व्याकुल) वह मनुष्य, उस भार (या बोझ) से दबा हुआ और अभिभूत; अस्सा (होगा) भार, उठाया हुआ भार, बोझिल; अत्यधिक बोझिल। तथा (उस प्रकार) मैं, काम, क्रोध और मोह की अग्नि से झुलसकर, गिरिं उद्धरितो यथा (जैसे पर्वत को उठाया गया था) मैंने विशाल मेरु पर्वत को अपने सिर पर उठाया, थामे रखा; भावभारण (अस्तित्व के बोझ से) जन्म-जन्म के चक्र में उत्पन्न होने के बोझ से; भारित (बोझ से) जन्म-जन्म के चक्रों में व्याकुल होकर, संसारिं (मैंने पुनर्जन्मों का चक्र पूरा किया) मैंने अपने आप को घुमाया; इस प्रकार संबंध है।

354. ओरोपितो च मे भारो (मेरा बोझ भी उतार दिया गया था) अब, मेरे भिक्षु बनने के समय से ही, अस्तित्व का वह बोझ उतारकर फेंक दिया गया था। भवा उग्घातिता मया (मेरे द्वारा अस्तित्व नष्ट कर दिए गए थे) सभी नए अस्तित्व मेरे द्वारा कुचल दिए गए थे; शाक्यपुत्तस्स (शाक्य पुत्र का) प्रतापी के विधान में करणीयम (जो किया जाना चाहिए) जो कुछ भी सही श्रेष्ठ मार्गों (मग्ग) की श्रृंखला द्वारा किया जाना चाहिए, उसमें दुराचार (किलेसा) को नष्ट करने का कार्य है, वह सब मेरे द्वारा किया गया था; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

355. फिर, अपनी विशिष्टता दर्शाने के लिए, उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत इस प्रकार होती है: यावता बुद्धखेत्तमहि। वहाँ, यावता (जहाँ तक) बुद्ध के क्षेत्र में फैले दस हजार ब्रह्मांडों (चक्कवा) के समान, शाक्य पुरुष-बैल ने, शाक्य वंश में श्रेष्ठ, तेजस्वी बुद्ध को स्थान दिया (या अलग रखा), शेष प्राणियों में से कोई भी ज्ञान या बुद्धि में मेरे समान नहीं है; इस प्रकार, वह प्रकाशमान होते हैं। अतः बुद्ध ने कहा: "मैं ज्ञान में सर्वोच्च हूँ; मेरे समान कोई नहीं है।"

356. फिर से, अपनी शक्ति या प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए, उन्होंने समाधिंहि से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। इससे ही अच्छी तरह समझा जा सकेगा।

360. झानविमोक्खानाखिप्पपटिलाभी (ज्ञान और मुक्ति का शीघ्र प्राप्तकर्ता) वह है जो सफल, प्रभावी ध्यान की पहली अवस्था, आदि जैसे झानों को शीघ्रता से प्राप्त करता है, और साथ ही उन आठ प्रकार की पारलौकिक मुक्ति को भी प्राप्त करता है जिन्हें सांसारिक दुनिया से मुक्ति के कारण विमोक्खा माना जाता है।

362. अपने साथी साधु-संतों के प्रति अपार आदर प्रकट करने के लिए, अपनी अपार शक्ति और प्रभाव के बावजूद, उन्होंने 'उद्धतविसो वा' से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ, उद्धतविसो (विष निकाला हुआ) जैसे विषैले साँप का विष निकाल लिया गया हो; चिन्नविसाणोव (सींग कटा हुआ) जैसे सांड के सींग काट दिए गए हों, मैं अब निक्खित्तमानदप्पो वा (अहंकार और अहंकार या अय्याशी

को त्यागकर) कुल-अभिमान आदि को त्यागकर, गणम् (समूह) पुरोहितों की उपस्थिति में; गरुगारवेन (गंभीर आदर के साथ), अत्यंत श्रद्धा के साथ; उपेमि (मैं पास जाता हूँ)।

363. अब, अपने ज्ञान की महानता को स्पष्ट रूप से प्रकट करने के लिए, उन्होंने 'यदि रूपिणी' से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा: मेरा ज्ञान इतना महान है कि यद्यपि यह निराकार है, यदि यह साकार हो जाए, तो मेरे संसार का वह ज्ञान पृथ्वी के राजा वसुपतिनं समेय्य (धरती के स्वामी के समान) होगा; यही इसका अर्थ है। इस प्रकार अपने ज्ञान की महानता प्रकट करने के बाद, अपने स्वरूप को याद करते हुए, उन्होंने 'अनोमदस्सिस्सा' से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा: वहाँ, मेरे ज्ञान की यह महानता, महिमावान अनोमदस्सि के ज्ञान की मेरे द्वारा की गई स्तुति का परिणाम या फल है; यही इसका अर्थ है।

364. पावत्तितं धम्मचक्कम् (सत्य (धम्म) का पहिया घुमाया गया) यहाँ, यह शब्द चक्का, हालांकि, ऐसे वाहन या परिवहन के संबंध में प्रकट होता है जैसे: "चतुचक्कयान, चार पहिया रथ", इत्यादि; यह बुद्ध का ऐसा उपदेश है जैसे: "पावत्तिते च पाना भगवता धम्मचक्के, जब सत्य का पहिया, हालांकि, महिमावान द्वारा घुमाया गया", इत्यादि; ऐसे संदर्भों में जैसे: "चक्कमवत्तया सब्बपाणीनम्, पहिया घुमाना, या सभी जीवित प्राणियों को (भोजन) वितरित करने का चक्र", इत्यादि, यह शब्द चक्का दान से किया गया पुण्य कर्म है; ऐसे संदर्भों में जैसे: "चक्कमवत्तेति अहोरत्तम्, दिन-रात पहिया घुमाना", इत्यादि, यह मुद्राओं में आता है; (इरियापथे); “इच्छाहतस्स पोसस्स, चक्कम भामति मत्थके, इच्छा से प्रेरित व्यक्ति के सिर पर पहिया घूमता है”, इत्यादि संदर्भों में यह खुरचक्क (रंजक-पहिया) के रूप में आता है; “राजाचक्कवत्ति चक्कानुभवन वत्तनको, अपने पहिये की शक्ति से विश्वराज बनने वाला”, इत्यादि संदर्भों में यह रत्नचक्क (रतनचक्क) के रूप में आता है; हालांकि, यहां यह शब्द बुद्ध के उपदेश (देसन) के संदर्भ में है। तादिना (ऐसे) उस बुद्धिमान द्वारा! ऐसे गुणों से संपन्न व्यक्ति द्वारा (तादि); शाक्यपुत्तेन (शाक्य का पुत्र) आत्मप्रबुद्ध सर्वज्ञ बुद्ध गौतम द्वारा; पवत्तितम् (मोड़ा) उपदेश दिया या बताया; धम्मचक्कम (सत्य का चक्र) तीन पितकों के रूप में गिना जाता है, सम्मा (कुआँ) बिना विकृति के; अनुवत्तेमि (मैं बुद्ध के पीछे मुड़ता हूँ) मैं अनुसरण करता हूँ और मुड़ता हूँ, इंगित करता हूँ और उपदेश देता हूँ; इदम् (यह) अनुगामी मोड़, उपदेश के बाद, बाद में उपदेश देना, जो पूर्व बुद्धों के ज्ञान की प्रशंसा करने के मेरे प्रदर्शन का परिणाम या फल है; इस प्रकार, संबंध है।

365. इसके बाद, भले लोगों पर भरोसा, बुद्धिमान मानसिक ध्यान आदि जैसे पुण्य के परिणाम या फल को दर्शाने के लिए, उन्होंने 'मा मे कदाचि पापिच्छो' से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ, पापिच्छो (बुरी इच्छा रखने वाला) निम्न या पापी इच्छा से ग्रस्त; विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों के पालन में, और खड़े होने, बैठने आदि जैसी मुद्राओं में भी, बुरे आचरण वाला व्यक्ति; कुसितो (आलसी) ध्यान (प्रभावी ध्यान), एकाग्रता, सही मार्ग के विकास आदि जैसे कार्यों में, हीनवीरियो (प्रयास छोड़ देने वाला) क्योंकि ग्रंथों के अध्ययन और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करने के भारी कर्तव्य का अभाव है, अप्पस्सुतो (कम ज्ञानी) क्योंकि शिक्षक, गुरु (उपाज्जक) आदि जैसे व्यक्तियों के बीच अच्छे आचरण या अभ्यास से वंचित है; वह अनाचार है, उचित अभ्यास से रहित व्यक्ति भी है; kadāci (कभी-कभी), katthaci (कहीं भी), स्थानों में; me (मेरे द्वारा) मेरे साथ; sameto (अच्छे से आओ) साथ आओ, mā ahu (ऐसा न हो) ऐसा न होने दो; इस प्रकार, संबंध है।

366. बहुस्सुतो (अत्यंत विद्वान): दो प्रकार के अत्यंत विद्वान पुरुष होते हैं: एक वे जो शिक्षा के ग्रंथों में पारंगत हों और उपदेशित सत्यों में उचित अंतर्दृष्टि रखते हों; मेधावी (बुद्धिमान) वह व्यक्ति जो ज्ञान से संपन्न हो; सीलेसु सुसमाहितो (उपदेशों में एकाग्रचित्त): वह व्यक्ति जिसका मन चार पूर्णतः शुद्ध उपदेशों, सही श्रेष्ठ मार्ग से जुड़े उपदेश, उपवास के आठ गुना उपदेशों आदि में सुस्थापित और स्थिर हो; चेतोसमथानुयुत्तो (मन को शांत करने में समर्पित): वह व्यक्ति जो एक ही मन की अवस्था में समर्पित हो; अप्पमुद्धनि तित्ततु (वह मेरे सिर पर भी खड़ा हो): वह व्यक्ति मेरे सिर के ऊपर भी खड़ा हो; यही अर्थ है।

367. स्वयं द्वारा प्राप्त लाभों या फायदों के बारे में बोलने के बाद, उन्होंने "तम वो वदामि भद्दन्ते" से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा, और वहाँ मौजूद अन्य लोगों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया।

368-9. यमहंग, मैं, पाठमम् (प्रथम) मैं, थेरा असजी को पहली बार (या पहले अवसर पर) देखकर; निर्मल (निष्कलंक) अशुद्धियों से रहित, क्योंकि मैंने आत्म-विधर्म (सक्काया-दिष्ठी) आदि जैसे दुराचारों (किलेसा) का त्याग कर दिया था, और पवित्रता (सोतापत्ति) के प्रथम चरण के अच्छे लाभ के कारण, मैं अहुम (था) मैं बन गया; थेरा असजी, मैं (मेरा), मेरा; आचार्य (गुरु) वे मेरे पारलौकिक सत्य (धम्म) के प्रशिक्षक थे; मैं अब, उनके उचित उपदेश के कारण, उनके उपदेश को सुनकर, सत्य (धम्म) का सेनापति बन गया; सब्ब (सर्वत्र) सभी गुणों में; पारमिम् पत्टो (पूर्णता प्राप्त की) चरम सीमा को प्राप्त किया; मैं (कैंसर से मुक्त) अनासावो (मैं दुराचार से रहित रहता हूँ, (किलेसा)।

370. अपने गुरु के प्रति आदर (या श्रद्धा) प्रकट करने के लिए उन्होंने यह श्लोक कहा, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: यो मे आचरियो। यो (यह) गुरु अस्सजी नामक थेरा, गुरु के शिष्य; मे (मेरा) मेरे गुरु; असि (था) वह बन गया; यस्सम् दिसायम (जिस भी दिशा में) वह

थेरा निवास करता है, उस्सीसम्हि (मैंने अपना सिर रखा) मैंने उस दिशा (या भाग) को अपने सिर के लिए ऊँचा (या शीर्ष) भाग बनाया; इस प्रकार संबंध है।

371. इसके बाद, अपनी उच्च पदवी की प्राप्ति दर्शाने के लिए, उन्होंने इस श्लोक का पाठ किया, जो इस प्रकार शुरू होता है: मम कम्मम गोतमो, हे महिमावान; शाक्य पुंगवो (सांड शाक्य) शाक्य परिवार का ध्वज; सरित्वाण (**********पृष्ठ 436) अपने सर्वज्ञ ज्ञान से मेरे पूर्व कर्मों को जानकर, भिक्षुओं की सभा के बीच में विराजमान होकर, अग्गत्थाने (सर्वोच्च स्थान पर) ने मुझे अपना प्रधान शिष्य बनाया; इस प्रकार, संबंध स्थापित हुआ।

374. पातिसंभिदामग्गे (विश्लेषणात्मक ज्ञान के सही श्रेष्ठ मार्ग में) ये चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान, अर्थात्: अत्थापातिसंभिदा (अर्थ का विश्लेषणात्मक ज्ञान), धम्मपातिसंभिदा (पाठ का विश्लेषणात्मक ज्ञान), निरुत्तिपतिसंभिदा (भाषा विज्ञान का विश्लेषणात्मक ज्ञान), पातिभाण पातिसंभिदा (तत्काल उत्तर का विश्लेषणात्मक ज्ञान) इनकी विविधता का केवल उल्लेख किया गया है; सच्चिकता (कल्पना की गई) ने स्वयं को देखा है, आठ प्रकार के उत्कृष्ट मुक्ति (विमोक्ष) और कर्म (धम्म), जो पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति की ओर ले जाते हैं, साथ ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान, सभी प्रकार की जादुई शक्तियों (इद्धिविधा) से शुरू होकर, या तो चार सही श्रेष्ठ मार्गों और चार श्रेष्ठ फलों के माध्यम से या रूप-ज्ञान और निराकार-ज्ञान के माध्यम से। katam Buddhassa sāsanam (मैंने बुद्ध के निर्देश का पालन किया था) मैंने अरहत के श्रेष्ठ मार्ग के अपने ज्ञान के माध्यम से बुद्ध की उपदेशात्मक सलाह के रूप में मानी जाने वाली व्यवस्था का पालन और उसे पूरा किया था; यही इसका अर्थ है।

इत्तम सुदम, इस प्रकार; यहाँ, इत्तम एक अविकारी कृदंत है जिसका अर्थ है इंगित करना, इस विविधता के साथ; इस प्रकार, अर्थ है। सुदम, शब्द को पूरा करने वाला एक अविकारी कृदंत है; आयस्मा (आदरणीय) आदर और सम्मान का शब्द है; सारिपुत्तो, उस थेरा का नाम है जिसका नामकरण माता के नाम से हुआ था; इमा गाथायो (ये श्लोक) उन्होंने उच्चारित किए, थेरा सारिपुत्त की जीवनी के इन सभी श्लोकों का पाठ किया। इति (इस प्रकार) शब्द श्रोताओं को आकर्षित करने के अर्थ में एक अविकारी कृदंत है, सारिपुत्त की संपूर्ण जीवनी समाप्त हो गई है; इस प्रकार, अर्थ है।

जीवनी पर टिप्पणी

सारिपुत्त समाप्त हो गया है।

. . . .

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 2. थेरा महामोग्गलाना

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.12. महा-मोग्गल्लाना
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-2. थेरा महामोग्गलाना की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

2. महा-मोग्गल्लाना

अनोमादस्सी, हे धन्य, संसार के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के सांड, हिमालय में निवास करते थे, जिन्हें देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित किया जाता था। (1) (374)

मैं तब नागदेवों का राजा था,230 और वरुण नाम से जाना जाता था।231 कामदेव का रूप धारण करके232 मैं सागर में निवास करता था। (2) (375)

एक संगीत समूह में होने के नाते, मैंने ताल वाद्य प्रदान किया।233 संबुद्ध की सेवा करने के बाद, दिव्य अप्सराओं234 ने फिर (अपने गीत) गाए। (3) (376)

---

227 पाविसिम अभयं पुरां, अर्थात् निर्वाण। 228 पीटीएस सेठ्ठन तां के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ सेठ् ... 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

232 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 233 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 234 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

जब ढोल बज रहे थे, तब देवताओं ने भी ढोल बजाए। दोनों की आवाज़ सुनकर स्वयं बुद्ध ने भी सुना। (4) (377)

मैंने संबुद्ध को अपने घर आने का निमंत्रण दिया और उनके लिए एक विशेष आसन की व्यवस्था की। मैंने घोषणा की कि अब समय आ गया है। (5) (378)

एक हजार निर्दोष अरहंतों235 के पीछे चलते हुए, वह विश्व-प्रमुख,236 सभी दिशाओं में प्रकाश बिखेरते हुए मेरे घर आया (तब)। (6) (379)

मैंने भोजन और पेय से उस महान नायक को तृप्त किया जो आ गया था, देवताओं का देवदूत, मनुष्यों का बैल, भिक्षुओं की सभा के साथ। (7) (380)

महान नायक प्रसन्न हुए, स्वयंभू, सर्वोच्च मनुष्य; भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए उन्होंने ये श्लोक कहे (मेरे बारे में): (8) (381)

"जिसने सभा और विश्व-प्रमुख बुद्ध की पूजा की,237 अपने हृदय में उत्पन्न प्रसन्नता के कारण, वह देवताओं के लोक में जाएगा। (9) (382)

वह सत्तरह (अलग-अलग) बार दिव्य शासन करेगा। वह पृथ्वी पर निवास करेगा, (और) आठ सौ सांसारिक शासन करेगा। (10) (383)

और वह पचास बार एक चक्र-घुमाने वाला राजा होगा। हर बार वे उसके लिए अनगिनत धन लाएंगे। (11) (384)

अब से अनगिनत युगों बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति संसार का गुरु होगा। (12) (385)

---

235 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 236 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 237 शाब्दिक अर्थ, "गया"

नरक से बाहर आने के बाद वह मनुष्य रूप धारण करेगा। कोलिता नाम से जाना जाने वाला वह ब्रह्मा का संबंधी होगा।238 (13) (386)

इसके बाद वह अपने पुण्य कर्मों से प्रेरित होकर, सब कुछ त्याग कर आगे बढ़ेगा। वह भगवान गौतम का दूसरा प्रमुख अनुयायी होगा। (14) (387)

दृढ़ निश्चय से,239 अथक प्रयास से,240 वह महाशक्तियों में उत्कृष्टता प्राप्त करेगा। सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए वह निर्वाण प्राप्त करेगा, निर्दोश होकर।" (15) (388)

कुछ दुष्ट मित्रों पर निर्भर होकर, कामवासना और क्रोध से ग्रस्त होकर, निर्मम मन से मैंने अपनी माँ और अपने पिता की भी हत्या कर दी। (16) (389)

मैं चाहे जिस भी गर्भ में नरक में या मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लूँ, क्योंकि 241 मेरे पास वह बुरा कर्म है, मेरी हत्या कर दी जाएगी, 242 मेरा सिर चीर दिया जाएगा। (17) (390)

यह मेरे लिए अंतिम समय है; (मेरा) अंतिम पुनर्जन्म हो रहा है।243 और यहाँ भी, उसी तरह, मेरे लिए मारे जाने का समय होगा। (18) (391)

एकांतवास में बंधे हुए, समाधि-ध्यान के प्रेमी, समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं (अब) निर्दोश जीवन जी रहा हूँ। (19) (392)
महाशक्तियों में निपुण होकर मैं केवल अपने बाएं अंगूठे से इस गहरी धरती को हिला देता हूँ।

---

238 सांचेलेसी का पाठ, पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ। 239 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"। 240 शाब्दिक अर्थ, "गुणी"। 241 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)"। 242 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेंदु पढ़ता है। कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 243 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनका के अनुसार।

मोटा और नष्ट करना मुश्किल। (20) (393)
मुझे "मैं हूँ" का कोई गर्व नहीं है; मुझमें बिल्कुल भी गर्व नहीं है। नौसिखियों के प्रति भी मैं हृदय में आदर भाव रखता हूँ। (21) (394)
मैंने युगों पहले किए गए कर्मों को आगे बढ़ाया है।244 अब मैंने पृथ्वी को प्राप्त कर लिया है;245 मैं दोषों के अंत तक पहुँच गया हूँ। (22) (395)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (396)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (397)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (23) (398)
इस प्रकार पूज्य महामोग्गलाना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
महामोग्गलाना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-2. थेरा महामोग्गलाना की जीवनी पर टीका
आदरणीय थेरा मोग्गलाना की जीवनी अनोमदस्सी भगवा से शुरू होती है। इस थेरा ने भी पूर्व बुद्धों की सेवा की, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति पाने के उद्देश्य से पुण्य कर्म संचित किए, यहाँ-वहाँ के जन्मों में, प्रतापी अनोमदस्सी के समय से लेकर यहाँ तक, उनका उल्लेख धर्म के सेनापति थेरा सारिपुत्त की कथा में किया गया है। वास्तव में, अपने भिक्षु बनने के दिन से सातवें दिन, मगध राज्य के कल्लावाला गाँव में अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन करते हुए, जब वे गहरी नींद में लीन होने लगे, तो गुरु ने उनसे पश्चाताप करते हुए कहा: "हे मोग्गलाना! अपने परिश्रम को व्यर्थ न जाने दो", इत्यादि; फिर, नींद की उन्मत्तता से छुटकारा पाकर, यहाँ तक कि तत्वों (धातु) पर मानसिक (अभ्यास या) चिंतन के तत्व को भी, जैसा कि महिमावान द्वारा बताया गया था, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के क्रमिक विकास के माध्यम से तीन उच्चतर श्रेष्ठ मार्गों को प्राप्त किया, और सर्वोच्च फल (फल) की विशेषता में शिष्य के ज्ञान के शिखर को प्राप्त किया।
375. इस प्रकार द्वितीय (प्रमुख) शिष्य की अवस्था प्राप्त करने के बाद, पूज्य थेरा महा मोग्गल्लाना ने अपने पूर्व कर्मों को स्मरण करते हुए, अपने पूर्व अभ्यास के कर्मों को प्रकट करने के उद्देश्य से, मानसिक आनंद के लिए, अनोमदस्सी भगवान से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, उनके लिए कुछ भी नीच और निम्न नहीं था; इस प्रकार, वे अनोमदस्सी थे; उनका शरीर वास्तव में एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस विशिष्ट लक्षणों से सुशोभित था, इसलिए वे दिन भर, महीने भर, वर्ष भर, यहाँ तक कि एक लाख वर्षों तक भी, सभी दिव्य और मानव प्राणियों को देखकर संतुष्ट या तृप्त नहीं हो सकते थे; इस प्रकार, या निर्वाण को देखने की आदत होने के कारण, जो नीच या निम्न नहीं है; इस प्रकार, या "अनोमदस्सी, उत्कृष्ट द्रष्टा" नाम प्राप्त होने के कारण। महिमा आदि से युक्त होने के कारण, वे भगवान, महिमामय हैं। लोकाजेष्टो, संसार में सबसे बड़े, समस्त सजीव जगत के प्रमुख और सबसे बड़े। नरसाभो (बैल-पुरुष), मनुष्यों के बैल, क्योंकि वे एक बड़े बैल के समान हैं, वे आसभ (बड़ा बैल) हैं; संसार के सबसे बड़े, बैल-पुरुष, महिमावान

अनोमदस्सी; देवसंघपुराक्खतो (दिव्य प्राणियों के समूह के सामने निर्मित), दिव्य प्राणियों के समूह से घिरे हुए, हिमवंत में निवास करते थे; इस प्रकार, संबंध है।

376. जब मैंने दूसरी बार दूसरे शिष्यत्व की आकांक्षा की, तब मेरा जन्म वरुण नाम से जाने जाने वाले ड्रैगन राजा के रूप में हुआ; यही अर्थ है; इसलिए यह कहा गया है: "उस समय मैं वरुण नाम से जाने जाने वाला ड्रैगन राजा था"। कामरूपी (इच्छानुसार रूप धारण करना) मेरी पसंद के वांछित रूप को बनाने की प्रवृत्ति रखता था; विकुब्बामि (मैं बनाता हूँ) मैं विभिन्न प्रकार की जादुई शक्तियों का प्रदर्शन करता हूँ; महोदधिनिवासहं (मैं विशाल सागर में रहने वाला) ऐसे नागों के बीच, जैसे अंकुरित मणहेरिका नाग, भूमि पर चलने वाला (भूमिगत) नाग, पहाड़ी पर खड़ा या स्थिर (पब्बतत्थ) नाग, नदी को ढोने वाला (गंगावाहेय) नाग, सागर में रहने वाला (सामुद्दिका) नाग, मैं सागर में रहने वाले प्रकार का हूँ; मैं विशाल सागर में रहता था; मैंने वहाँ अपना निवास स्थान बनाया; यही अर्थ है।

377. संगनीयं गणं हित्वा (समाज के समूह को त्यागकर) - अपने अनुचरों के समूह को त्यागकर, जो मेरा स्थायी परिवेश बन गया था; तुरियम् पट्ठेषें (संगीत की व्यवस्था करके) - मैंने संगीत की व्यवस्था की, संगीत को मुक्त किया; यही अर्थ है। सम्बुद्धं परिवारेत्वा (आत्मप्रबुद्ध सर्वज्ञ बुद्ध को घेरकर) - सर्वज्ञ बुद्ध अनोमदस्सी की चारों ओर से सेवा करते हुए; अच्छरा (अप्सराएँ) - अजगर-कन्याएँ; वादेसुम (ध्वनि उत्पन्न की) - उन्होंने दिव्य वाद्ययंत्रों से संगीत की ध्वनियाँ उत्पन्न कीं, गीत गाए, इत्यादि; उस समय उन्होंने अपने लाभ या प्राप्त राशि के अनुपात में संगीत दिया; यही अर्थ है।

378. वज्जमानेसु तुरेसु (जब संगीत मुक्त हुआ) जब पाँच प्रकार के मानव और ड्रैगन वाद्य यंत्रों को मुक्त किया गया; देवा तुरानि वज्जयुम (देवताओं ने अपना संगीत मुक्त किया) चार महान राजाओं के दिव्य लोक के देवताओं ने अपना संगीत मुक्त किया और अपने दिव्य वाद्य यंत्रों को बजाया; यही अर्थ है; उभिन्नम सद्दाम सुत्वना (दोनों ध्वनियों को सुनकर) दिव्य और मानव दोनों प्राणियों की ढोल की ध्वनि सुनकर; सम्पबुज्जथा (पूरी तरह से जागृत) तीनों लोकों द्वारा पूजनीय होने के बावजूद बुद्ध ने इसे जाना और सुना; यही अर्थ है।

379. निमन्तेत्वाना सम्बुद्धम् (सर्वज्ञ बुद्ध को आमंत्रित करके) सर्वज्ञ बुद्ध और उनके शिष्यों को घेरकर अगले दिन के भोज के लिए आमंत्रित करने के बाद; सकभवनम् (अपने निवास स्थान) मैं अपने निवास स्थान की ओर गया; आसनम् पञ्ञापेत्वा (आसन तैयार करके) जाकर मैंने रात्रि विश्राम स्थल, दिन के प्रवास स्थल, शौचालय, हॉल (या पंडाल), सोने और बैठने के स्थान तैयार किए; यही अर्थ है; कालमारोकयिम अहं (मैंने समय की सूचना दी) इस प्रकार पूर्व व्यवस्था करके मैंने समय की सूचना स्पष्ट रूप से इस प्रकार दी: "आदरणीय महोदय! समय हो गया है; भोजन तैयार है।"

380. खीणासवसहस्सेहि (हजारों दोषरहित अरहतों के साथ) उस समय, वह प्रतापी, जगत के संरक्षक, हजार अरहतों से घिरे हुए, सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, उपागामी (की ओर आए) मेरे महल में पहुँचे; यही अर्थ है।

381. भगवान के अपने महल में प्रवेश करने के बाद भोजन करने की क्रिया को दर्शाने के लिए, उन्होंने उपविट्ठं महावीर से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। यह आसानी से समझ में आ जाता है।

386. ओक्काककुलसंभवो (ओक्काका परिवार में जन्मा) राजा ओक्काका के वंश से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे राजपरिवार में जन्मा; या जंबू द्वीप के सर्वथा प्रसिद्ध राजा के परिवार में जन्मा; गौतम (वंश से) मानव जगत में एक गुरु होगा, जो नाम से गौतम होगा और वंश से भी गौतम होगा।

388. सो पच्चा पब्बजित्वाना (वह बाद में भिक्षु बन गया) वह ड्रैगन राजा अपने अंतिम जन्म में; कुसलमूलेन (पुण्य के मूल के कारण) पुण्य संचय के कारण; कोदितो (प्रेरित होकर) उकसाए जाने पर, शासन (सासन) में भिक्षु बन गया, और वह प्रतापी गौतम का दूसरा प्रमुख शिष्य बनेगा।

389. Āraddhavīriyo (प्रयास शुरू किया) खड़े होने, बैठने आदि जैसी मुद्राओं में परिश्रम करने वाला; pahitatto (स्वयं-प्रेरित) निर्वाण की ओर तत्पर मन वाला; iddhiyā pāramim gato (जादुई शक्ति में परिपूर्णता प्राप्त की) चरम सीमा तक पहुँचकर ऐसी जादुई शक्तियाँ प्राप्त कीं जैसे: स्वयं के संकल्प के अनुसार जादुई शक्ति का प्रदर्शन, क्रिया और प्रतिक्रिया से उत्पन्न जादुई शक्ति इत्यादि। इस प्रकार: "हे भिक्षुओं! मेरे भिक्षु शिष्यों में, जादुई शक्तियों के धारकों में, यह एक, अर्थात् महामोग्गल्लाना, प्रमुख या सर्वोपरि है"; Sabbāsave (सभी दोष) यहाँ, ā, है; सभी दिशाओं से, सवा, है: बहने के कारण, इस प्रकार, 'आसवा (कैंसर)' नाम से प्राप्त, इस विषय (धम्म) में, कामुक इच्छा, अस्तित्व, विधर्म और अज्ञान, सब कुछ; परिञ्ञाय (चारों ओर से जानने वाला) सभी दिशाओं से जानकर, समझकर त्याग दिया; अनासवो (कैंसर से मुक्त) दुराचार से रहित; निब्बायिस्सति (निर्वाण में प्रवेश करेगा) दुराचार (किलेस्का) और समूह (खंड) के पूर्ण निवारण से निर्वाण में प्रवेश करेगा; इस प्रकार, संबंध है।

390. अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त भविष्यवाणी के बारे में इस प्रकार बोलने के बाद, थेरा ने अपने बुरे आचरण को प्रकट करने के लिए फिर से इस श्लोक का पाठ किया, जिसकी शुरुआत 'पापमित्टोपनिस्साया' से होती है। यहाँ, 'पापमित्ते (बुरे मित्र)' का अर्थ है दुष्ट, निम्नतर मित्र; 'उपनिस्साया' (पर निर्भर) का अर्थ है उन पर भरोसा करना और उनसे घनिष्ठ रूप से जुड़ जाना; यही इसका अर्थ है।

390.1. यहाँ, यह क्रमिक प्रवचन है:-

एक समय विधर्मी एकत्रित हुए और आपस में इस प्रकार परामर्श करने लगे: "मित्र! क्या तुम जानते हो कि किस कारण से भिक्षु गौतम की प्रसिद्धि इतनी व्यापक और प्रचलित हुई?" "हम नहीं जानते; तुम भी नहीं जानते।" "जी हाँ, हम जानते हैं। यह प्रसिद्धि मोग्गलाना नामक एक भिक्षु के कारण उत्पन्न हुई थी। वास्तव में, वह स्वर्गलोक गए, वहाँ के देवताओं से उनके कर्मों के बारे में पूछा, वापस आए और मनुष्यों को उनके बारे में इस प्रकार बताया: 'यह कर्म करने से उन्हें इस रूप की प्राप्ति हुई।' नरक में जन्म का कारण बनने वाले कर्म के बारे में पूछने के बाद, वे वापस आए और मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश दिया: 'यह कर्म करने से उन्हें इस रूप का कष्ट भोगना पड़ता है।' यह उपदेश सुनकर मनुष्य, जिसने उसे महान लाभ और प्रसिद्धि दिलाई, मन ही मन सोचने लगा, "यदि हम उसे मार डालें, तो हमें भी वही लाभ और प्रसिद्धि प्राप्त होगी; यही उपाय है।" उन सभी की एक ही इच्छा थी और वे आपस में कहने लगे, "सब कुछ करने के बाद, हम उसे मार डालेंगे।" उन्होंने अपने भक्तों को यह कार्य सौंपा, एक हजार कहपान प्राप्त किए, लुटेरों, यानी हत्यारों को बुलवाया और उन्हें वह हजार कहपान देते हुए निर्देश दिया: "भिक्षु गौतम के शिष्य, महामोग्गलाना, काले पत्थर की पहाड़ी (कालशिला) में निवास करते हैं; तुम सब वहाँ जाओ और उन्हें मार डालो।" धन की प्राप्ति के कारण लुटेरों ने यह कहते हुए सहमति दी, "हम थेरा की हत्या करेंगे"; वे चले गए और उनके निवास स्थान को घेर लिया। थेरा, अपने चारों ओर घिरे होने की स्थिति को जानते हुए, पहाड़ी की गुफा के छेद से बाहर निकल गए और चले गए। लुटेरों ने उस दिन थेरा को न देखकर, एक दिन फिर उनके निवास स्थान पर जाकर उसे घेर लिया। जब थेरा को इसकी भनक लगी, तो उसने अपने घर की छत का एक हिस्सा तोड़ दिया और खतरे से बच निकला। इस तरह, पहले और मध्य महीने में भी वे थेरा को पकड़ नहीं पाए। लेकिन जब आखिरी महीना आया, तो थेरा अपने किए गए कृत्य के गंभीर परिणामों को जानते हुए बाहर नहीं निकला। लुटेरों ने उसे पीट-पीटकर उसकी हड्डियाँ तोड़ दीं, जिससे वे चावल के दाने के आकार के टुकड़े हो गए। फिर उन्होंने उसे मरा हुआ समझकर एक झाड़ी के ऊपर फेंक दिया।

390.2. थेरा ने मन ही मन कहा कि वे गुरु के दर्शन और आराधना करने के बाद पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर लेंगे। उन्होंने अपने शरीर को ध्यान के आवरण में लपेट लिया और आकाश के मार्ग से गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा, "हे पूज्यवर! मैं पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर रहा हूँ।" बुद्ध ने पूछा, "मोग्गलाना! क्या तुम पूर्णतः निर्वाण प्राप्त करने जा रहे हो? कहाँ जाकर तुम पूर्णतः निर्वाण प्राप्त करोगे?" थेरा ने उत्तर दिया, "हे पूज्यवर! मैं काले पत्थर की पहाड़ी (या स्थान) पर गया हूँ।" बुद्ध ने कहा, "तो फिर, हे मोग्गलाना, तुम्हें मुझे धर्म का उपदेश देने के बाद जाना चाहिए; वास्तव में, मुझे अब तुम्हारे जैसा शिष्य नहीं दिखता।" उस थेरा ने कहा, "आदरणीय गुरुदेव! मैं ऐसा ही करूंगा", और गुरु को प्रणाम करके आकाश में आसीन हुए, निर्वाण प्राप्ति के दिन सारिपुत्त थेरा के समान अनेक प्रकार की जादुई शक्तियों का प्रदर्शन किया, धर्म का उपदेश दिया, गुरु की आराधना की, कालशिला गए और पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर लिया। यह बात जंबूद्वीप में इस प्रकार फैल गई: "कहा जाता है कि लुटेरों ने थेरा की हत्या कर दी।"

390.3. राजा अजातसत्तु ने लुटेरों को पकड़ने के लिए जासूसों (या घुमंतू लोगों) को भेजा। जब वे लुटेरे शराब की दुकान पर शराब पी रहे थे और नशे में चूर हो गए, तो एक ने दूसरे की पीठ पर प्रहार किया और उसे गिरा दिया। पहले वाले को धमकाते हुए, दूसरे ने कहा, "तुमने मुझे बुरी तरह गुमराह किया! तुमने मेरी पीठ पर प्रहार करके मुझे क्यों गिराया? देखो! दोषी (या दुष्ट) लुटेरे! लेकिन क्या? थेरा महामोग्गल्लाना को सबसे पहले तुमने ही पीटा था।" पहले वाले ने पलटकर कहा, "यह कैसे, तुम्हें पता है कि पहला प्रहार मैंने ही किया था?" उन्हें यह कहते हुए सुनकर कि "हमने ही मारा, हमने ही पीटा", उन जासूसों ने सभी लुटेरों को पकड़ लिया और राजा को सूचना दी। राजा ने उन लुटेरों को बुलवाया और पूछा, "क्या थेरा की हत्या तुम सबने की थी?" उत्तर था, "जी महाराज!" राजा ने फिर पूछा, "तुम्हें किसने उकसाया था?" उत्तर था: "महाराज! हमें नग्न भिक्षुओं ने उकसाया था।" राजा ने पाँच सौ नग्न भिक्षुओं को गिरफ्तार करवाया, उन्हें और पाँच सौ लुटेरों को राजमहल में नाभि तक गहरा गड्ढा खोदने के लिए मजबूर किया, फिर उन्हें पुआल से ढककर आग लगा दी। जब राजा को उनकी जली हुई हालत का पता चला, तो उसने लोहे के हल से उन्हें जोतकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उस अवसर पर भिक्षुओं ने अपने धार्मिक अनुष्ठान कक्ष में यह चर्चा की: "थेरा महामोग्गलाना की मृत्यु उनके लिए उचित नहीं थी।" गुरुदेव ने आकर पूछा, "हे भिक्षुओं! आप सब यहाँ किस विषय पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए हैं?" यह जानकर कि वे फलाँ विषय पर चर्चा कर रहे हैं, बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे भिक्षुओं! केवल मोग्गलाना के इस जन्म में ही उनकी मृत्यु उनके पद के अनुरूप नहीं है; परन्तु उनके पूर्व कर्म के लिए यह बिल्कुल उपयुक्त है।" जब उनसे पूछा गया, "आदरणीय महोदय! उनका पूर्व कर्म क्या था?" तो बुद्ध ने उसका विस्तृत वर्णन किया।

391. हे भिक्षुओं! बहुत समय पहले, बनारस में एक परिवार का पुत्र अपने माता-पिता का भरण-पोषण स्वयं ही करता था, जैसे अनाज कूटना, खाना पकाना आदि। तब उसके माता-पिता ने कहा, “प्रिय पुत्र! तुम जंगल और घर दोनों जगह अकेले काम करते-करते थक जाते हो; हम तुम्हारे लिए एक कन्या लाएँगे।” यद्यपि उसने यह कहते हुए मना कर दिया, “प्रिय माता-पिता! जब तक आप दोनों जीवित रहेंगे, मैं अपने हाथों से आपकी सेवा करता रहूँगा,” फिर भी उसके माता-पिता ने बार-बार यही अनुरोध किया और अपने पुत्र के लिए एक युवती ले आए। कुछ ही दिनों तक उसने उनकी सेवा की और बाद में, उनसे मिलना भी न चाहते हुए, उसने शिकायत की, “मैं आपके माता-पिता के साथ एक ही स्थान पर नहीं रह सकती।” जब उसके पति ने उसकी बात नहीं मानी, तो उसने टूटे हुए चावल के दलिया के टुकड़े उठाए और पति के घर से बाहर जाने पर उन्हें इधर-उधर बिखेर दिया। जब उसके पति ने घर आकर उससे पूछा कि उनका घर इतना गंदा क्यों है, तो उसने कहा, “यह सब उन अंधे बूढ़े लोगों का काम है; ये पूरे घर को गंदा करते फिरते हैं; मैं अब इनके साथ एक ही जगह पर नहीं रह सकती।” बार-बार ऐसा सुनने से, यहाँ तक कि अपने सारे गुण प्राप्त कर चुके प्राणी का भी अपने माता-पिता से विमुखता हो गई। उसने कहा, “छोड़ो, मैं जान लूँगा कि इनके साथ क्या करना चाहिए”, और अपने माता-पिता को भोजन कराया और उन्हें एक गाड़ी में बिठाकर कहा, “प्यारे माता-पिता! फलाँ जगह पर आपके रिश्तेदार आपका बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं; चलिए वहाँ चलते हैं।” अपने माता-पिता को साथ लेकर जाते समय, जब वे जंगल के बीचोंबीच पहुँचे, तो उसने बैलों की लगाम अपने पिता के हाथों में देते हुए कहा, “प्रिय पिताजी! कृपया लगाम पकड़ लीजिए, बैल लाठी के इशारे से चलेंगे; इस जगह डाकू रहते हैं; मैं गाड़ी से उतरकर पैदल चलता हूँ।” ऐसा कहकर वह गाड़ी से उतर गया और चलते हुए उसने बाहर मुड़ने का संकेत दिया, मानो डाकू उठ खड़े हुए हों। उसके माता-पिता ने आवाज़ सुनी, उन्हें लगा कि डाकू उठ खड़े हुए हैं और उन्होंने कहा, “प्रिय पुत्र! डाकू उठ खड़े हुए हैं; हम बूढ़े हैं; तुम केवल अपनी ही देखभाल कर लो।” जब उसके माता-पिता इस तरह रो रहे थे, तब उसने डाकुओं का संकेत दिया, उन्हें कुचला, मार डाला, जंगल में फेंक दिया और घर लौट आया।

392. गुरु ने अपने पूर्व कर्म के बारे में बताते हुए आगे कहा, "हे भिक्षुओं! मोग्गलाना ने इतना कर्म किया, जिसके फलस्वरूप वह कई लाख वर्षों तक नरक में रहा और अपनी परिपक्वता के शेष भाग के कारण सौ जन्मों तक पीसा और चूर्ण-चूर्ण में परिवर्तित होता रहा; इस प्रकार मोग्गलाना को अपने कर्मों के अनुसार मृत्यु प्राप्त हुई। पाँच सौ विधर्मी और पाँच सौ लुटेरों ने भी मेरे निर्दोष पुत्र का अपमान किया और उन्हें उचित ही मृत्यु प्राप्त हुई। निश्चय ही निर्दोष लोगों के प्रति अपराध करने वाले को दस प्रकार के कष्टों के साथ विनाश का सामना करना पड़ता है।" इस प्रकार क्रम जोड़कर बुद्ध ने धर्म का उपदेश देते हुए ये श्लोक पढ़े:-

“जो कोई भी निहत्थे और निर्दोष लोगों पर हथियार से हमला करता है, उसे दस परिणामों में से किसी एक का सामना करना पड़ता है, और वह भी शीघ्र ही। उसे घोर पीड़ा, दरिद्रता, शरीर के अंगों का विच्छेदन, यहाँ तक कि गंभीर बीमारी और पागलपन की स्थिति तक पहुँचना पड़ता है; राजा द्वारा अभियोग या घोर बदनामी, यहाँ तक कि रिश्तेदारों का पूर्ण निष्कासन, समृद्ध धन का विनाश। इसके अलावा, साधारण आग और आगजनी से उसके घर जल जाते हैं; शरीर के नष्ट होने पर उस दुष्ट व्यक्ति को नरक में पुनर्जन्म लेना पड़ता है।”

393. पाविवेकमनुयुत्तो (एकांतवास में लीन), एकाग्र होकर, एकाग्र होकर, एकांत में रहने में लीन, स्वभावतः समाधिभावना रतो (एकाग्रता विकसित करने में प्रसन्न), प्रथम ध्यान आदि जैसे विकास में संलग्न और प्रसन्न; सब्बासवे परिञ्ञाय (चारों ओर के सभी दोषों को जानकर), सभी प्रकार के दुराचारों (किलेसा) को जानकर और त्यागकर; अनासवो (दोषों से मुक्त), मैं दुराचार से रहित निवास करता हूँ; इस प्रकार, संबंध है।

394. अब, अपने पूर्व आचरण के फल को अपने पुण्य कर्मों के संचय के माध्यम से दिखाने के लिए, उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया जो इस प्रकार शुरू होता है: वरनिम्पि सुगमभीरम्।

394.1. वहाँ, यह क्रमिक प्रवचन है:- बुद्धेन कोदितो (बुद्ध द्वारा प्रेरित होकर) सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा तर्क और पूछे जाने पर; भिक्खुसंगस्स पेक्खतो (भिक्षुओं के समूह द्वारा देखे जाने पर) जब भिक्षुओं का महान समूह देख रहा था; मिगारमातुपासादम पादंगुत्थेन कम्पायिम (मैंने मिगारा की माता के महल को अपने पैर के अंगूठे से हिला दिया) मैंने अपने पैर के अंगूठे से पूर्वी आश्रम (पुब्बाराम) में महान भक्त विशाखा द्वारा निर्मित हजार स्तंभों से सुशोभित महान महल को हिला दिया। एक समय की बात है, जब परम पूज्य बुद्ध पूर्वी आश्रम (पुब्बाराम) के उपर्युक्त महल में निवास कर रहे थे, तब कई युवा भिक्षु महल की ऊपरी मंजिल पर बैठ गए और गुरु की अवहेलना करते हुए पशु-संबंधी बातें करने लगे। यह सुनकर परम पूज्य बुद्ध ने उन्हें पश्चाताप कराने और अपने धर्म उपदेशों का प्रसार करने की इच्छा से पूज्य थेरा महामोग्गलाना से कहा, "हे मोग्गलाना! क्या आपने देखा है कि युवा भिक्षु पशु-संबंधी बातें कर रहे हैं?" बुद्ध की बात सुनकर, उन्होंने गुरु के उद्देश्य का पता लगाने के लिए, जल-विषय (कसीना) पर ध्यान केंद्रित करने के बाद, अपने उच्च ज्ञान के आधार पर, चौथे

ध्यान में प्रवेश किया और अपने संकल्प के साथ महल के शिखर पर प्रहार करते हुए कहा, "जिस स्थान पर यह महल स्थापित है, वहां जल उत्पन्न हो।" महल झुक गया और एक तरफ झुक गया। फिर उन्होंने प्रहार किया; और वह दूसरी तरफ से फिर खड़ा हो गया। वे भिक्षु भयभीत हो गए, पश्चाताप करने लगे, महल के गिरने के खतरे को पार करते हुए बाहर आ गए और प्रतापी के पास खड़े हो गए। गुरु ने उनकी आंतरिक प्रवृत्ति को देखकर धर्म का उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर, उनमें से कुछ ने पवित्रता की प्रथम अवस्था, कुछ ने द्वितीय, कुछ ने तृतीय अवस्था (अनगामी-फल) और कुछ ने अरहंतत्व की सिद्धि प्राप्त कर ली। इसका अर्थ पासादकम्पन सूत्र नामक प्रवचन से समझा जा सकता है।

394.2. वेजयंतपासादम् (विजय का महल) वह विजय का महल (वेजयंतपासाद) है जिसे विजय के कारण "वेयंत, विजय" नाम मिला; यह तब अस्तित्व में आया जब देवताओं के राजा सक्का ने असुर को परास्त करने के बाद, देवताओं और राक्षसों के युद्धक्षेत्र में, अपने नगर के केंद्र में विराजमान हुए; यह महल तावतिंस स्वर्ग में स्थित है और हज़ारों बुर्जों और शिखरों से सुशोभित है, जिसकी ऊँचाई सौ योजन है। इसके संदर्भ में बुद्ध ने कहा: "वेजयंतपासादम्, विजय का महल"। इस थेरा ने भी अपने पैर के अंगूठे से इसे हिला दिया था। दरअसल, एक बार देवताओं के राजा सक्का, पूर्वी आश्रम (पुब्बाराम) में निवास कर रहे प्रतापी बुद्ध के पास गए और उनसे तृष्णा (तन्हा) के उचित नाश के बाद मोक्ष के बारे में पूछा। प्रतापी बुद्ध ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। उत्तर सुनकर वे प्रसन्न हो गए, उनकी पूजा की, उनकी परिक्रमा की और अपने स्वर्गलोक लौट गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने सोचा, "इस सक्का ने प्रतापी बुद्ध के पास जाकर ऐसे प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर प्रतापी बुद्ध ने दे दिया; यह कैसे संभव है? क्या वे सत्य को जानकर लौटे हैं या बिना जाने? क्या होगा यदि मैं स्वर्गलोक जाकर इस विषय का पता लगाऊं?" उसी क्षण वे तावतिंसा भवन गए और देवताओं के राजा सक्का से इस विषय के बारे में पूछा। दिव्य आनंद में डूबे होने के कारण सक्का ने विस्मृतिवश एक भ्रामक कथन कर दिया। थेरा ने उसे पश्चाताप कराने के लिए विजयमहल (वेजयंतपासादा) को अपने पैर के अंगूठे से हिला दिया। अतः यह कहा गया है:-

"ऐसे थेरा ने अपने पैर के अंगूठे से विजय महल (वेजयंतपासादा) को हिला दिया, अपनी जादुई शक्ति के बल पर उन्होंने देवताओं को भी पश्चाताप से भर दिया।"

394.3. इस श्लोक का अर्थ चुलतन्हादंखयविमुक्ति-सुत्त के माध्यम से स्पष्ट किया जाना चाहिए। कंपन (हेत्षा) की विशेषता का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। "सक्कम सो परिपुच्छति, उसने सक्का से चारों ओर पूछा," जैसा कि कहा गया है; यह कथन तृष्णा (तन्हा) के उचित विनाश (या समाप्ति) के बाद मुक्ति के बारे में थेरा के प्रश्न के संदर्भ में किया गया है; इसलिए थेरा ने कहा: "शायद! मेरे मित्र को तृष्णा (तन्हा) के अंत के बाद मुक्ति के बारे में पता है?" सक्का ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया। यह महल के कंपन के दौरान प्रश्न का उत्तर देने के संबंध में कहा गया है, सक्का ने पश्चाताप से भरे हृदय से अपनी इस भूल को त्याग दिया; अपने मन को बुद्धिमान बनाकर प्रश्न का सही उत्तर दिया। तब थेरा ने वास्तव में उसी प्रकार उपदेश दिया जैसे बुद्ध ने दिया था। अतः, थेरा ने कहा:- "जब इस प्रकार प्रश्न पूछा गया, तो वहाँ, सक्कं ... उन्होंने सूत्र में तन्हा के उचित निवारण और मुक्ति या व्यथा और पलायन के विनाश के बारे में शिक्षाओं के बारे में पूछा।

394.4 ब्रह्मानां (ब्रह्माओं का) महान ब्रह्माओं का; सुधम्मयाभितो सभाम (सुधम्म के सभाघर में) यह ब्रह्मा जगत का सुधम्म हॉल है, न कि तावतिंगस महल वाला। अर्थात्, सुधम्म हॉल के बिना कोई दिव्य जगत नहीं है। "मित्रों! क्या वह दृष्टिकोण (दिष्टि), जो पहले आपका था, अब भी आपके पास है? अर्थात्, कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, चाहे वह भिक्षु हो या ब्राह्मण, जो ब्रह्मा के इस लोक में प्रवेश करने में सक्षम हो? गुरु के यहाँ आने से पहले, आपका जो भी दृष्टिकोण (दिष्टि) था, वह अब कैसा है? क्या आज भी, अभी भी, वह दृष्टिकोण दूर नहीं हो गया है? क्या आप ब्रह्मा लोक में चमक से भी अधिक प्रकाश देखते हैं? क्या आप ब्रह्मा के लोक में महाकप्पिन, महाकस्सपा आदि शिष्यों से घिरे, अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए, महिमावान बुद्ध के आकाश (लोक) या (प्रकाश?) को ब्रह्मा के लोक में चमकते हुए देखते हैं? यही अर्थ है। वास्तव में, एक अवसर पर, महिमावान बुद्ध ने मन को जान लिया..." ब्रह्मा, जो ब्रह्मा-लोक में सुधम्म के सभा-महल में सभा कर रहे थे और विचार कर रहे थे, "क्या वास्तव में कोई ऐसा व्यक्ति है, चाहे भिक्षु हो या ब्राह्मण, जिसके पास इतनी उच्च जादुई शक्ति हो कि वह यहाँ आ सके?", वे वहाँ गए, ब्रह्मा के ऊपर आकाश में बैठ गए, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में विधिवत प्रवेश किया और ब्रह्मा के सिर के ऊपर महामोग्गलाना आदि अपने शिष्यों के आगमन और प्रकाश की किरणें फैलाने का चिंतन किया। बुद्ध के विचार से प्रेरित होकर वे भी वहाँ गए, गुरु को प्रणाम किया, बुद्ध के आंतरिक भाव को जाना, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में विधिवत प्रवेश किया, अपनी-अपनी दिशाओं में बैठ गए और प्रकाश की किरणें फैलाईं। संपूर्ण ब्रह्मा-लोक प्रकाश की एक ठोस किरण में तब्दील हो गया। गुरु को ब्रह्मा के मन की अनुकूल स्थिति का ज्ञान हुआ और उन्होंने चार श्रेष्ठ धर्मों का उपदेश दिया। सत्य स्पष्ट रूप से प्रकट हुए। उपदेश के अंत में, हजारों ब्रह्मा सही श्रेष्ठ मार्गों और उनके फल (मग्गफल) में स्थापित हो गए। उन्होंने इस श्लोक का पाठ किया जिसमें

लिखा है: अजजपिते आवुसो सा दिष्टि, ताकि इस विषय में तर्क और प्रश्न किया जा सके। इस अर्थ को बकाब्रह्मासुत्त के माध्यम से स्पष्ट किया जाना चाहिए। वास्तव में! यह कहा गया है:-

"एक समय भगवान जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय, एक ब्रह्मा के मन में ऐसा बुरा विचार आया, "यहाँ न तो कोई भिक्षु है और न ही कोई ब्राह्मण।" तब, भगवान ने अपने मन से उस ब्रह्मा के मन की बात जान ली और जेतवन मठ से उतने ही क्षण में विलीन हो गए जितने क्षण में कोई बलवान व्यक्ति अपनी भुजा को फैलाकर या समेटकर विलीन हो जाता है, और ब्रह्मालोक में प्रकट हो गए। तब, भगवान ने ऊष्मा तत्व में पूर्णतः प्रवेश करने के बाद उस ब्रह्मा के ऊपर हवा में पालथी मारकर बैठ गए। तब, पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया, "भगवान अब कहाँ निवास कर रहे हैं?" पूज्य महामोग्गलाना ने देखा, वास्तव में, अपनी दिव्य दृष्टियों से, तेजस्वी बुद्ध को ब्रह्मा के ऊपर, आकाश में पांव बैठे हुए, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश करते हुए देखा। उन्हें देखकर, थेरा ने स्वयं जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मा लोक में पल भर में प्रकट हो गए, मानो कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला रहा हो या मोड़ रहा हो। फिर, पूज्य महा मोग्गलाना ने पूर्व दिशा पर भरोसा करते हुए, ब्रह्मा के ऊपर, ब्रह्मा के आसन से नीचे, ऊष्मा तत्व में प्रवेश करने के बाद पांव बैठे।

तब पूज्य महाकस्सपा के मन में यह विचार आया: "इस समय प्रतापी कहाँ विराजमान हैं?" पूज्य महाकस्सपा ने अपनी दिव्य, निर्मल और मानवीय आँखों से श्रेष्ठ दृष्टि से प्रतापी को ब्रह्मा के ऊपर, पांव-पांव बैठे हुए देखा, वे ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश कर चुके थे। उन्हें देखकर, ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई बलवान पुरुष हो... थेरा जेतवन मठ से अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महाकस्सपा ने दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए, ब्रह्मा के आसन से नीचे, ब्रह्मा के ऊपर, पांव-पांव बैठकर, ऊष्मा तत्व में प्रवेश कर चुके थे।

तब पूज्य महाकप्पिन के मन में यह विचार आया: "इस समय प्रतापी कहाँ विराजमान हैं?" पूज्य महाकप्पिन ने अपने दिव्य नेत्रों से, जो मनुष्य के नेत्रों से श्रेष्ठ और निर्मल थे, प्रतापी को ब्रह्मा के ऊपर, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश करने के बाद, पांव-पांव बैठे हुए देखा। उन्हें देखकर, ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई बलवान पुरुष... ठीक उसी तरह, थेरा जेतवन मठ से अंतर्धान हो गए और ब्रह्मा लोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महाकप्पिन ने पश्चिम दिशा की ओर देखते हुए, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश करने के बाद, ब्रह्मा के ऊपर, परन्तु प्रतापी के आसन से नीचे, पांव-पांव बैठे।

तब पूज्य अनुराधा के मन में यह विचार आया: "इस समय प्रतापी कहाँ विराजमान हैं?" पूज्य अनुराधा ने अपने दिव्य नेत्रों से, जो मनुष्य के नेत्रों से श्रेष्ठ और निर्मल थे, प्रतापी को ब्रह्मा के ऊपर, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश करने के बाद, पांव-पांव बैठे हुए देखा। उन्हें देखकर, ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई बलवान पुरुष..., वे जेतवन मठ से अंतर्धान हो गए और ब्रह्मा लोक में प्रकट हुए। तब पूज्य अनुराधा ने उत्तर दिशा की ओर देखते हुए, ब्रह्मा के ऊपर, परन्तु प्रतापी के आसन से नीचे, ऊष्मा तत्व (तेजोधातु) में प्रवेश करने के बाद, पांव-पांव बैठ गए।

394.5. तब, वास्तव में, पूज्य महामोग्गलाना ने उस ब्रह्मा को एक श्लोक के माध्यम से संबोधित किया:-

"अब भी, हे मित्र! क्या तुम्हारा वह दृष्टिकोण, जो पहले तुम्हारा दृष्टिकोण था, अब भी कायम है? क्या तुम ब्रह्मा जगत में प्रकाश की उत्कृष्ट किरणें देख पाते हो?"

ब्रह्मा ने इस प्रकार उत्तर दिया:-

"मित्र! मेरा जो पूर्व विचार था, वह अब नहीं रहा; मैं ब्रह्मा-जगत में प्रकाश की चमकती किरण देख रहा हूँ। अब मुझे अहसास हो गया है कि वह बात गलत थी, अर्थात् मैं शाश्वत और अमर हूँ।"

फिर, उस ब्रह्मा को, ठीक उसी प्रकार पश्चात्ताप से ग्रसित करके, जैसे कि एक बलवान पुरुष, ठीक उसी प्रकार, प्रतापी भगवान उस ब्रह्मा-लोक से अंतर्धान हो गए और जेतवन में प्रकट हुए। फिर, उस ब्रह्मा ने एक ब्रह्मा सलाहकार (ब्रह्मा पारिसाज्जा) को संबोधित करते हुए कहा: "आओ, मेरे मित्र! आदरणीय महामोग्गलाना के पास जाओ; उनके पास पहुँचकर महामोग्गलाना से इस प्रकार कहो: "मित्र मोग्गलाना! क्या उस प्रतापी भगवान के अन्य शिष्य भी हैं जो आदरणीय मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिन और अनुराधा के समान उच्च जादुई शक्तियों और महान प्रभाव वाले हैं?" उस ब्रह्मा सलाहकार ने उस ब्रह्मा को उत्तर देते हुए कहा, "बहुत खूब, मेरे मित्र!", और फिर वे पूज्य महामोग्गलाना की ओर गए और उनसे कहा, "क्या सचमुच, मेरे मित्र! उस तेजस्वी के अन्य शिष्य भी हैं जो पूज्य मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिना और अनुराधा के समान उच्च जादुई शक्तियों और महान प्रभाव वाले हैं?"

तब, पूज्य महामोग्गलाना ने उस ब्रह्मा सलाहकार को एक श्लोक के माध्यम से उत्तर देते हुए कहा:-

"बुद्ध के कई शिष्य दोषरहित (खीणासव), अरहंत हैं, जो तीन प्रकार के पारलौकिक ज्ञान में पारंगत हैं, उन्होंने जादुई शक्तियां प्राप्त कर ली हैं, और दूसरों के विचारों को समझने में विशेषज्ञ बन गए हैं।"

तब, वास्तव में, उस ब्रह्मा सलाहकार को पूज्य महामोग्गलाना का कथन सुनकर प्रसन्नता हुई, उसने उन्हें बधाई दी और उस ब्रह्मा की ओर वापस चला गया; उनके पास पहुँचकर ब्रह्मा सलाहकार ने उनसे यह कहा:- 'मित्र! पूज्य महामोग्गलाना ने ऐसा कहा:-

"बुद्ध के कई शिष्य हैं, जो दोष रहित (खीणासव) हैं, अरहंत हैं, जो तीन प्रकार के पारलौकिक ज्ञान में पारंगत हैं, जादुई शक्ति की ऊँचाई तक पहुँच चुके हैं और दूसरों के मन में गहराई से उतरने में विशेषज्ञ बन चुके हैं।"

394.6. उस ब्रह्मा सलाहकार ने यह कहा और वह ब्रह्मा भी आत्म-इच्छुक (अत्तमना) हो गया, और उस ब्रह्मा सलाहकार के कथन को पूरी तरह से समझ गया।

इस संबंध में यह कहा गया है: "इस अर्थ को ब्रह्मा बक पर लिखे गए प्रवचन बकाब्रह्मसुत्त के माध्यम से स्पष्ट किया जाना चाहिए।"

394.7. महानेरुनो कुतम (महान नेरु का शिखर) शिखर-शीर्ष के साथ, उन्होंने सिनेरु के संपूर्ण पर्वत-राजा की भी बात की; विमोक्खेना अपसयि (मुक्ति के माध्यम से देखा) उन्होंने ज्ञान द्वारा मुक्ति पर निर्भर होकर और उच्च ज्ञान के माध्यम से देखा; यही इसका अर्थ है; वन (जंगल) जम्बू द्वीप है; वास्तव में, उस जम्बू द्वीप को "वन, जंगल" कहा गया है, क्योंकि वह जंगलों से भरपूर है; इसलिए उन्होंने कहा: "जम्बूमन्दस्सा इस्सारो, यूजेनिया सार का शासक"; पुब्बविदेहानम् (पूर्वी द्वीप) पूर्वी द्वीप का स्थान भी पूर्वी द्वीप (पुब्बविदेह) है; यही इसका अर्थ है। ये च भूमिसया नारा (जो भी लोग जमीन पर लेटते हैं) पश्चिम (अपरागोयान) और उत्तर (उत्तरकुरु) के द्वीपवासी मनुष्य जमीन पर सोने वाले कहलाते हैं; क्योंकि वास्तव में उनका कोई घर नहीं है, इसलिए उन्हें "भूमिसया" कहा जाता है; उन्होंने उन सभी को भी देखा; इस प्रकार, यह संबंध है। हालाँकि, इस अर्थ को नंदोपानंद के वशीकरण के माध्यम से स्पष्ट किया जाना चाहिए। कहा जाता है कि एक बार, गृहस्थ अनाथपिंडिका ने भगवान के धर्म उपदेश को सुनकर उन्हें आमंत्रित करते हुए कहा: "आदरणीय महोदय! कल कृपया पाँच सौ भिक्षुओं के साथ मेरे घर पर भोजन करें" और वे प्रस्थान कर गए। उस दिन भी, जब प्रतापी भगवान दस हजार विश्व तत्वों का अवलोकन कर रहे थे, भोर में, नंदोपानंद नामक नागराज उनकी ज्ञान-दृष्टि के केंद्र में आ गया। यह सोचते हुए कि: "यह नागराज मेरी ज्ञान-दृष्टि के केंद्र में आ गया है; अब क्या होने वाला है?", प्रतापी भगवान ने नागराज के शरण लेने (शरणगमन) का अवसर देखा और इस प्रकार विचार किया: "इस विधर्मी नागराज को तीन रत्नों में कोई सच्ची आस्था नहीं है; "अत्यंत, इस अजगर को इसके विधर्म से कौन प्रभावी रूप से मुक्त करेगा?", थेरा महामोग्गलाना ने पूछा। इसके बाद, जब रात ढलकर सुबह हुई, तो प्रतापी बुद्ध ने स्नान किया और पूज्य आनंद को इस प्रकार संबोधित किया: - हे आनंद! पाँच सौ भिक्षुओं को सूचित करो कि उसी दिन अजगरों ने नंदोपानंद के लिए भोज कक्ष तैयार किया। वह अजगर-राजा रत्नजड़ित दिव्य सिंहासन पर बैठा था, अजगरों की सभा से घिरा हुआ था, साथ ही तीन प्रकार के नृत्य-राजाओं ने उसे देखा और पाँच सौ भिक्षुओं के साथ अपने महल के ऊपर आकाश में तावतिंसा के दिव्य लोक की ओर चल पड़े।

394.8. उस अवसर पर, वास्तव में, ड्रैगन राजा के मन में ऐसा दुष्ट और विधर्मी विचार उत्पन्न हुआ: "ये गंजे भिक्षु हमारे महल के ऊपर से हवा में उड़कर तैंतीस (तावतिंस) देवताओं के महल में प्रवेश करते हैं और बाहर आते हैं; अब से मैं उन्हें अपने चरणों की धूल हमारे सिर पर बिखेरते हुए जाने नहीं दूंगा।" इस दुष्ट विचार पर, ड्रैगन राजा अपने आसन से उठा, सिनेरु के चरणों में गया, अपना सामान्य शरीर त्याग दिया, सिनेरु के चारों ओर अपनी कुंडलियाँ सात बार लपेटीं, सिनेरु के ऊपर अपना फन फैलाया और अपने फैले हुए फन से तावतिंस के निवास को अदृश्य कर दिया।

394.9. तब, पूज्य रत्त्वपाल ने उस तेजस्वी बुद्ध से यह कहा: "हे पूज्यवर! पहले यहाँ खड़े होकर मैं सिनेरु पर्वत देखता था; मैं सिनेरु के आसपास का क्षेत्र देखता था; मैं तावतिंस देखता था; मैं वेजयंत (विजय महल) देखता था; मैं विजय महल (वेजयंत) के ऊपर ध्वज देखता था; हे पूज्यवर! वास्तव में इसका क्या कारण है, क्या वजह है कि अब मुझे न तो सिनेरु दिखाई देता है, ... और न ही विजय महल के ऊपर ध्वज?" बुद्ध ने उत्तर दिया: "हे रत्त्वपाल! नंदोपानंद नामक इस नागराज ने तुमसे क्रोधित होकर अपने लंबे कुंडलित शरीर से सिनेरु को सात बार घेर लिया था और अंधकार उत्पन्न करके शिखर को अपने फन से ढक कर खड़ा हो गया था।" रत्त्वपाल ने कहा: "हे पूज्यवर! क्या मैं इसे वश में कर सकता हूँ?" भगवान ने थेरा को ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। फिर, पूज्य भद्दिया, पूज्य राहुल; इस प्रकार, एक-एक करके, सभी भिक्षु भी उठ खड़े हुए। भगवान ने उन सभी को भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।

394.10. अंत में, थेरा महामोग्गलाना ने कहा: "आदरणीय महोदय! क्या मैं इसे वश में कर सकता हूँ?" भगवान ने सहमति देते हुए कहा: "मोग्गलाना! तुम्हें इसे वश में करना चाहिए।" थेरा ने अपना सामान्य मानव शरीर त्याग दिया, एक विशाल और राजसी नाग का रूप धारण किया, अपने लंबे शरीर के कुंडलियों से नंदोपानंद को चौदह बार घेरा, अपना फन उस नाग के फन के ऊपर रखा और अजगर को सिनेरु पर मजबूती से दबा दिया। अजगर-राजा ने धुआँ छोड़ा; थेरा ने भी धुआँ छोड़ते हुए कहा: "केवल तुम्हारे शरीर में ही धुआँ नहीं है, मेरे शरीर में भी है।" अजगर-राजा के धुएँ से थेरा बीमार नहीं हुए; परन्तु थेरा के धुएँ से अजगर-राजा बीमार हो गए। इसके बाद अजगर-राजा ने स्वयं को अग्नि में प्रज्वलित कर लिया; थेरा ने यह भी कहा, "यह केवल तुम्हारे शरीर में ही नहीं है, अग्नि मेरे शरीर में भी है"

और अग्नि प्रज्वलित कर दी। ड्रैगन-राजा की ऊष्मा से थेरा नहीं जला, परन्तु थेरा की ऊष्मा ने ड्रैगन-राजा को जला दिया। ड्रैगन-राजा ने मन ही मन सोचा, "इस थेरा ने मुझे सिनेरु के विरुद्ध दबाया, धुआँ और ज्वालाएँ भी निकालीं", और ठीक से पूछा, "मित्र! तुम कौन हो?" उत्तर मिला, "हे नंदा! मैं वास्तव में मोग्गलाना हूँ।" ड्रैगन-राजा ने इस प्रकार निवेदन किया, "आदरणीय महोदय, कृपया अपनी भिक्षु अवस्था में खड़े हो जाइए।"

394.11. थेरा ने उस अजगर के शरीर को त्याग दिया, उसके दाहिने कान के छिद्र से उसके शरीर में प्रवेश किया और बाएं कान के छिद्र से बाहर निकल गया; बाएं कान के छिद्र से प्रवेश करने के बाद वह दाहिने कान के छिद्र से बाहर निकल गया। इसके बाद, अजगर राजा ने अपना मुख खोला; थेरा उसके मुख से प्रवेश करके उसके पेट के भीतर पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व की ओर विचरण करता रहा। प्रतापी ने कहा: "हे मोग्गल्लाना, सावधान रहो; अजगर अत्यंत शक्तिशाली है।" थेरा ने कहा! "आदरणीय महोदय! मुझमें वास्तव में जादुई शक्ति के चार आधार विकसित हुए हैं, प्रचुर मात्रा में हैं, मेरे वाहन के रूप में स्थापित हैं, आधारभूत हैं, अजेय हैं, पूर्णतः अनुभवी हैं और आसानी से आरंभ किए जा सकते हैं; आदरणीय महोदय! इस नंदोपानंद को छोड़ दें, मैं नंदोपानंद प्रकार के सौ और हजार अजगर राजाओं को वश में कर लूंगा," और इसी प्रकार।

394.12. नागराज ने मन ही मन सोचा: "अब तक तो मुझे उसके प्रवेश का पता ही नहीं चला; अब जब वह निकलेगा, तो मैं उसे अपने दाँतों के बीच में डालकर खा जाऊँगा", और ऐसा सोचकर उसने कहा: "आदरणीय महोदय! कृपया बाहर आइए; कृपया मेरे पेट के भीतर इधर-उधर भटककर मुझसे विनती न कीजिए"। थेरा बाहर निकला और बाहर खड़ा हो गया। नागराज ने उसे देखा और मन ही मन कहा: "यही है", और अपनी नाक से श्वास छोड़ी। थेरा चौथे ध्यान में प्रवेश कर गया; नागराज की नाक से निकली हवा उसके रोमछिद्रों को भी हिला नहीं सकी। कहा जाता है कि बाकी भिक्षु शुरुआत से ही सभी प्रकार के चमत्कार करने में सक्षम होंगे; लेकिन इस अवस्था में पहुँचने के बाद, इस प्रकार शीघ्र और सावधानीपूर्वक ध्यान करने के बाद कोई अन्य भिक्षु ध्यान में प्रवेश नहीं कर पाएगा; अत: उन्हें, परमेश्वर ने अजगर राजा को वश में करने की अनुमति नहीं दी।

394.13. नागराज ने इस प्रकार विचार किया:- "मैं अपनी नाक की श्वास (या हवा) से इस भिक्षु के बाल छिद्रों (या रोमछिद्रों) को भी हिला नहीं सका; वह समण उच्च जादुई शक्तियों वाला है।" थेरा ने अपना रूप त्याग दिया, गरुड़ पक्षी का रूप धारण किया और गरुड़ पक्षी की गति (या हवा) दिखाते हुए नागराज का पीछा किया। नागराज ने अपना रूप त्याग दिया, एक बालक का रूप धारण किया और थेरा के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा: "आदरणीय गुरुजी! मैं आपकी शरण में आता हूँ।" थेरा ने कहा: "हे नंदा! गुरुजी आ गए हैं; मेरे साथ आओ; चलो उनके पास चलें।" उन्होंने नागराज को वश में किया, उसे विषमुक्त किया, उसे ले गए और उस तेजस्वी के समक्ष गए। नागराज ने उस तेजस्वी को प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय गुरुजी! मैं आपकी शरण लेता हूँ।" उस महान देवता ने कहा: "हे ड्रैगन-राजा! आप प्रसन्न हों"; और अनाथपिंडिका के निवास स्थान पर चले गए।

394.14. अनाथपिंडिक ने पूछा, “हे पूज्यवर! आप दिन में देर से क्यों आए?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “मोग्गलाना और नंदोपानंद के बीच युद्ध हुआ था।” अनाथपिंडिक ने फिर पूछा, “हे पूज्यवर! विजय किसकी हुई और पराजय किसकी?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “विजय मोग्गलाना की हुई; पराजय नंदा की हुई।”

अनाथपिंडिका ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! मैं स्वयं एक ही बार में लगातार सात दिनों तक भोजन करके थेरा को आदर दूंगा; कृपया बुद्ध अपनी सहमति (या स्वीकृति) दें और सात दिनों तक बुद्ध के नेतृत्व में पाँच सौ भिक्षुओं को महान भेंट अर्पित करें। इसीलिए यह कहा गया है: "नन्दोपानंद को वश में करने के साथ ही इसे प्रकट किया जाना चाहिए।"

394.15. वास्तव में, एक बार जब प्रतापी भगवान पुब्बाराम में महान भक्त विशाखा के भव्य महल में निवास कर रहे थे, जो कि हजार कक्षों से सुसज्जित था, तब उन्होंने देवताओं को भी पश्चाताप कराया। इसलिए, ऐसा कहा गया है:-

"जादुई शक्तियों में पूर्णता प्राप्त करने के बाद, मैं अपने बाएं पैर के अंगूठे से पृथ्वी को भी हिला सकता था, जो अत्यंत गहरी और आक्रमण करने में बेहद कठिन है।"

वहाँ, इद्दिया पारमिम गतो (जादुई शक्ति में पूर्णता प्राप्त कर चुके) ने जादू द्वारा रूपांतरण करने जैसी जादुई शक्ति में चरम सीमा प्राप्त कर ली थी।

395. अस्मिमानम् ('मैं हूँ' अभिमान) मैं ज्ञान, उपदेश और एकाग्रता आदि से संपन्न हूँ, जो 'मैं हूँ' अभिमान का निर्माण करते हैं; न पस्सामि (मैं नहीं देखता) मैं नहीं पाता; यही अर्थ है। इस बात को भी प्रकाश में लाते हुए उन्होंने कहा: "मानो मयम् न विज्जति, मुझमें अभिमान नहीं है"। सामणेरे उपाध्याय (शिष्यों को निकट से ग्रहण करना) भिक्षुओं को भिक्षुओं के संपूर्ण समुदाय का आरंभिक मानकर; गरुचित्तम् (आदरपूर्ण) मैं अपने मन को आदरपूर्ण बनाता हूँ और बहुत श्रद्धा रखता हूँ; यही अर्थ है।

396. अपा इमेय्य इतो कप्पे (अब से अनगिनत युगों तक) हमारे उत्थान के इस कल्प से, एक लाख युगों (कल्प) के शीर्ष पर, एक असंख्य असीम काल से भी अधिक; यही अर्थ है। यम कम्ममभिनीहरिम (जो भी कर्म मैंने किया) मैंने पुण्य की समृद्धि, जो कि प्रमुख शिष्यत्व का मूल आधार है, को पूर्ण किया; ताहम भूमिमानुपत्टो (मैं तदनुसार उस आधार पर पहुँच गया हूँ) मैंने निर्वाण प्राप्त किया है, जिसे आसव (कैंसर) के नाश के रूप में गिना जाता है, शिष्यत्व के उस आधार पर पहुँचकर; यही अर्थ है।
397. मैंने स्वयं ये चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान देखे हैं: अर्थ का विश्लेषणात्मक ज्ञान, आठ प्रकार की मुक्ति जो पवित्रता की प्रथम अवस्था है (सोतापत्ति-मग्ग), और छह प्रकार के उच्च ज्ञान जो जादुई शक्ति है (इद्धिविद्धा)।
397.1. इत्थान् ने, जैसा कि पहले ही क्रम में कहा गया है, (हेत्था) इस प्रकार से, इस विविधता के द्वारा, उन्होंने केवल एक बुद्ध अनोमदस्सी की उपस्थिति में दो बार भविष्यवाणी प्राप्त की, जब वे उस समय एक बैंकर थे; वहाँ से प्रस्थान करके, उन्होंने समुद्र से संबंधित ड्रैगन के घर में पुनर्जन्म लिया, उसी महिमावान को उनकी दीर्घायु के कारण भेंट अर्पित की, उन्हें आमंत्रित किया, उन्हें भोजन कराया और उनके सम्मान में एक बड़ी भेंट दी। उस समय भी महिमावान ने भविष्यवाणी की। सुदम् एक अविकारी कृदंत है जो शब्द-पूर्ण करने के लिए प्रयुक्त होता है। आयस्मा, आदरणीय, एक स्नेहपूर्ण उच्चारण है, आदर और श्रद्धा का शब्द है; अभासित्तम् (उच्चारित) थेरा महामोग्गल्लाना ने अपने जीवन के इन श्लोकों का उच्चारण किया; इति (इस प्रकार) एक अविकारी कृदंत है जिसका अर्थ है पूर्ण अंत।
महामोग्गलाना थेरा की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.13. महाकस्सपा
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-3 थेरा महाकस्सपा की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

3. महाकस्सपा

जब विश्व-प्रमुख का देहांत हो गया,246 तब लोगों ने उदात्त मन से, आनंद से मदहोश होकर, तटस्थ, गुरु, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, धन्य, पद्ममुत्तरा की पूजा की। (1) (399, 400ए-बी)

---

244 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (आरडी., एसवी देखें) 245 पीटीएस उद्धालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ उद्दालोमिका° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें) 246 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

जब उनकी धार्मिक भावना247 का जन्म हुआ, तो मुझमें बहुत खुशी248 उत्पन्न हुई। अपने परिवार और दोस्तों को इकट्ठा करके मैंने (उन सभी से) ये शब्द कहे: “महान नायक का देहांत हो गया है;249 हमें निश्चित रूप से पूजा करनी चाहिए!” (2) (400c-d, 401)
उन्होंने सहमति जताते हुए कहा, “उत्कृष्ट!” जिससे मुझे और भी ज़्यादा मुस्कान आ गई। “हम विश्व-प्रमुख बुद्ध के ऊपर पुण्य का चिता बनाएंगे।”250 (3) (402)

हमने एक अच्छी तरह से बनाया हुआ मालानुमा काम किया जो सौ हाथ ऊँचा था, और हमने पचास हाथ ऊँचा एक महल आकाश में खड़ा किया।251 (4) (403)
वहाँ उस माला को काम में लाकर, जो धारियों की पंक्तियों से सजी थी, जिससे मेरे मन को आनंद मिला, मैंने उस उत्कृष्ट मंदिर की पूजा की। (5) (404)
जैसे आग का धधकता स्तंभ, जैसे खिलता हुआ राजसी साल का पेड़, जैसे आकाश में इंद्र का स्तंभ, यह चारों दिशाओं में चमक रहा था। (6) (405)
वहाँ (अपने) मन को प्रसन्न करने के बाद252 और बहुत से अच्छे कर्म करने के बाद, अतीत के कर्मों को याद करते हुए, मैं तीस (देवताओं) के साथ पैदा हुआ था।253 (7) (406)
मेरे पास एक दिव्य रथ था जिसमें एक हजार (उत्कृष्ट) घोड़े जुते हुए थे। मेरा वह ऊँचा निवास (वहाँ) सात मंजिला (ऊँचा) था। (8) (407)

---

247 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
248 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 249 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 250 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 251 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 252 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 253 शाब्दिक अर्थ, "गया"

इसमें एक हजार छज्जेदार कमरे थे; सभी (वे) सोने के बने थे। यह अपनी शक्ति से हर दिशा को रोशन करते हुए चमक रहा था। (9) (408)
उस समय अन्य द्वार भी थे जो सभी माणिक्य से बने थे। उनकी रोशनी से चारों दिशाएँ पूर्णतः प्रकाशित हो जाती थीं। (10) (409)
मेरे पिछले अच्छे कर्मों से निर्मित वे सुव्यवस्थित छज्जेदार कक्ष254 और सभी रत्न (द्वार) तब चारों ओर दस दिशाओं में चमकते थे। (11) (410)
जब वे सब इस प्रकार प्रकाशमान थे, तब एक विशाल प्रकाश उत्पन्न हुआ। मैंने सभी देवताओं को पीछे छोड़ दिया; यही अच्छे कर्मों का फल है। (12) (411)
साठ हजार युग पहले मैं राजा था, जिसका नाम उबिद्धा था। चारों ओर से विजयी होकर मैंने पृथ्वी को अपना निवास स्थान बनाया। (13) (412)
उस सबसे शुभ युग में, मैं पूरे तीस बार अपने कर्मों से प्राप्त महान शक्ति से युक्त एक चक्र-घुमाने वाला राजा था। (14) (413)
सात रत्नों का स्वामी, मैं चारों महाद्वीपों का स्वामी हूँ। और उस स्थान पर मेरा निवास इंद्र के वृक्ष जितना ऊँचा था।256 (15) (413-414)
इसकी लंबाई चौबीस (लीग)257 थी, और चौड़ाई बारह (लीग) थी। मेरे शहर का नाम राममका था; इसमें मजबूत प्राचीरें और द्वार थे। (16) (414-415)
इसकी लंबाई पाँच सौ (लीग) थी।

---

254 बीजेटीएस के साथ संचलेसी का पाठ पीटीएस संजलेसी के लिए 255 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 256 शाब्दिक अर्थ, "गुणी" 257 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंड (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)।"

चौड़ाई में ढाई सौ (लीग) ।258 यह तैंतीस देवताओं के शहर की तरह ही पुरुषों के समूहों से भरा हुआ था। (17) (415)
जैसे सुई के डिब्बे में सुइयाँ259 बीस (अलग-अलग) बाज़ार260 थे (जहाँ) वे एक दूसरे से मिलते थे; (शहर) बहुत भीड़भाड़ वाला था। (18) (416)
मेरा नगर कुछ इस प्रकार का था, हाथियों, घोड़ों, रथों से भरा हुआ और लोगों से (बहुत) खचाखच भरा हुआ: राममका, उत्कृष्ट नगर। (19) (417)
वहाँ रहने और वहाँ से निकल जाने के बाद मैं देवताओं की दुनिया में लौट आया। इस, मेरे अंतिम अस्तित्व में, मैं एक प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता हूँ।261 (20) (418)
ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर मेरे पास रत्नों का विशाल भंडार था। आठ सौ मिलियन262 (मूल्य का) सोना263 त्यागकर, मैं त्याग की ओर चल पड़ा। (21) (419)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (420)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (421)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (22) (422)

---

258 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में गेंडु लिखा है। कम से कम प्रसारण के समय, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 259 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनक के अनुसार। 260 °विकुटी°; मेरा मानना है कि यह घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) को दर्शाता है (आरडी., एसवी देखें)। 261 पीटीएस उद्धालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ उद्दालोमिका° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)। 262 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"। 263 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

इस प्रकार पूज्य महाकस्सपा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
महाकस्सपा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-3 थेरा महाकस्सपा की जीवनी पर टीका
3-3,1. पद्ममुत्तरस्सा भगवतो (महान पद्ममुत्तरा) से शुरू होने वाले श्लोक और आगे के श्लोक, पूज्य थेरा महाकस्सपा की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा और परिचारण करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य अर्जित किए और इस-उस जन्म में, महान पद्ममुत्तरा के समय में, हंसवती नगर में वेदेह नामक अस्सी करोड़ की संपत्ति वाले एक धनी गृहस्थ बन गए। वे बुद्ध, धर्म और संघ के भक्त बन गए और इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए, एक व्रत के दिन सुबह जल्दी ही भोजन किया, दृढ़ निश्चय के साथ शुद्ध नियमों का व्रत रखा, इत्र, फूल आदि भेंट धारण किए और मठ में चले गए। उन्होंने उन्हें गुरु को अर्पित किया, उनके सम्मान में उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।
3-3.2. उसी क्षण, गुरु ने अपने तीसरे शिष्य, महानिसभा नामक थेरा को उस स्थान पर स्थापित किया जहाँ उन्होंने कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्य-भिक्षुओं में यह महानिसभा प्रमुख है, जिसका पंथ तपस्या (धूत) है।" भक्त ने यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक श्रद्धा से भर गया और गुरु को प्रणाम किया। जब सत्य (धम्म) के उपदेश के अंत में लोगों का विशाल समूह उठ खड़ा हुआ और चला गया, तो उन्होंने गुरु को इस प्रकार आमंत्रित किया: "आदरणीय गुरुदेव! कल कृपया मेरा भिक्षा ग्रहण करें।" बुद्ध ने कहा: "हे भक्त! भिक्षुओं का समूह वास्तव में बहुत बड़ा है।" भक्त ने पूछा: "आदरणीय गुरुदेव! वे कितने हैं?" उत्तर था अड़सठ लाख। भक्त ने इस प्रकार निवेदन किया: "आदरणीय गुरुदेव! "मठ में एक भी नौसिखिए (सामणेर) को छोड़े बिना, सभी निवासी शिष्य मेरे साथ भोजन करें।" गुरु ने अपनी सहमति दे दी।

बुद्ध की स्वीकृति पाकर भक्त घर गया, बड़ा दान तैयार किया और गुरु को अगले दिन भोजन के समय की सूचना दी। गुरु ने अपना कुंड और वस्त्र लिया, भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए भक्त के घर गए, अपने लिए तैयार आसन पर बैठे, अर्पण के अंत में चावल का दलिया आदि प्रसाद ग्रहण किया और भोजन संपन्न कराया। भक्त भी गुरु के पास बैठ गया।

3-3,3. उसी दौरान, भिक्षापात्र की तलाश में भटकते हुए थेरा महानिसभा उसी मार्ग पर आ गए। भक्त ने थेरा को देखा, अपनी सीट से उठे, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा: "आदरणीय महोदय! कृपया मुझे अपना भिक्षापात्र दीजिए।" थेरा ने उत्तर दिया: "हे भक्त! यह उचित नहीं होगा।" भक्त ने थेरा का भिक्षापात्र लिया, उसे भिक्षापात्र से भरा और थेरा को अर्पित कर दिया। इसके बाद, भक्त थेरा के पीछे-पीछे चले, पीछे हटे, गुरु के समक्ष बैठे और इस प्रकार कहा: "आदरणीय महोदय! थेरा महानिसभा ने यहाँ प्रवेश करने की इच्छा नहीं जताई, यद्यपि उन्हें बताया गया था कि गुरु इस भवन में विराजमान हैं; क्या वास्तव में उनमें आपके गुणों से बढ़कर कोई गुण है? बुद्धों के लिए दूसरों की प्रशंसा करने में ईर्ष्या जैसी कोई बात नहीं होती; इसलिए, गुरु ने इस प्रकार कहा: "हे भक्त! हम भिक्षापात्र की प्रतीक्षा में घर में बैठते हैं; वह भिक्षु इस प्रकार बैठकर भिक्षापात्र की प्रतीक्षा नहीं करता; हम गाँव के भीतर स्थित मठ में रहते हैं, जबकि वह जंगल में रहता है; हम छत के नीचे रहते हैं, जबकि वह खुले आकाश में रहता है।" भगवान ने उस भिक्षु के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया मानो विशाल सागर को भरते हुए कहा हो: "ये और वो भी उसके गुण हैं।"

3-3,4. वह भक्त, जो स्वभाव से ही तेल में भीगे हुए जलते दीपक के समान था, और भी अधिक प्रसन्नतापूर्वक धार्मिक हो गया और सोचने लगा: "अब निर्वाण के ज्ञान की प्राप्ति से मुझे क्या लाभ है? क्या मेरे लिए यह बेहतर नहीं होगा कि मैं भविष्य में किसी बुद्ध की उपस्थिति में तपस्या (धूत) के अभ्यास में सर्वोच्च शिष्य बनने की आकांक्षा रखूँ?" उस भक्त ने गुरु को एक बार फिर आमंत्रित किया, उसी प्रकार सात दिनों तक महान दान दिया, सातवें दिन बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के विशाल समूह को तीन-तीन वस्त्र भेंट किए, गुरु के चरणों में लेट गया और कहा: "आदरणीय गुरुदेव! जब मैंने सात दिनों तक यह दान दिया, तब मेरे शारीरिक प्रेम, वाणी के प्रेम और मन के प्रेम का प्रभाव उत्पन्न हुआ; इस पुण्य कर्म से मैं दिव्य महिमा या सक्का, मार और ब्रह्मा की महिमा जैसी कोई अन्य उपलब्धि नहीं चाहता; परन्तु मेरा यह कर्म ऐसा हो कि तेरह प्रकार की तपस्याओं का उत्तरदायित्व धारण करने वालों में सर्वोच्च बनने और भविष्य में किसी बुद्ध की उपस्थिति में थेरा महानिसाभ द्वारा प्राप्त पद की प्राप्ति में सहायक हो। गुरु ने मन ही मन कहा: "इस भक्त ने एक महान पद की कामना की है; क्या वह इसे प्राप्त कर पाएगा या नहीं?", फिर आगे देखा, उसकी उपलब्धि की संभावना देखी और कहा: "तुम्हारे द्वारा इस प्रिय पद की कामना की गई है; आने वाले एक लाख युगों (कप्पा) के अंत में, गौतम नामक एक बुद्ध प्रकट होंगे; "तुम उनके तीसरे प्रमुख शिष्य बनोगे, जो थेरा महाकस्सपा के नाम से जाने जाओगे।" इस प्रकार उन्होंने भविष्यवाणी की। यह भविष्यवाणी सुनकर भक्त ने मन ही मन कहा, "बुद्धों के उपदेश (या घोषणा) दो प्रकार के नहीं होते," और उसने यह मान लिया कि वह इसे कल ही प्राप्त कर लेगा। उस भक्त ने अपने जीवनकाल में दान किया, नियमों का पालन किया, अनेक प्रकार के पुण्य कर्म किए और मृत्यु के बाद स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया।

3-3.5. उस पुनर्जन्म से आरंभ होकर, उन्होंने दिव्य और मानव लोकों में समृद्धि का आनंद लिया, और जब सर्वज्ञ बुद्ध विपस्सी बंधुनती नगर के सुरक्षित और संरक्षित हिरण-पार्क के निकट निवास कर रहे थे, तब 91 युग (कप्पा) पूर्व, दिव्य लोक से विदा होने के बाद, उनका पुनर्जन्म एक प्राचीन, जीर्ण-शीर्ण ब्राह्मण परिवार में हुआ। उस अवसर पर भी, तेजस्वी विपस्सी ने सातवें वर्ष में सत्य (धम्म) का उपदेश दिया; वहाँ एक बड़ा कोलाहल हुआ। समस्त जंबुद्वीप में देवताओं ने इस प्रकार घोषणा की: "गुरु सत्य (धम्म) का उपदेश देंगे।" ब्राह्मण ने वह घोषणा सुनी। उनके पास केवल एक ही वस्त्र था; उनकी पत्नी, ब्राह्मण स्त्री के पास भी। ऊपरी वस्त्र के बारे में, पति-पत्नी के लिए केवल एक ही वस्त्र था। पूरे शहर में वे "एक वस्त्रधारी ब्राह्मण" के नाम से प्रसिद्ध थे। जब भी ब्राह्मणों की किसी कार्य-विमर्श के लिए सभा होती थी, वे स्वयं वही ऊपरी वस्त्र पहनकर जाते थे और अपनी पत्नी को घर पर ही छोड़ देते थे; जब ब्राह्मण महिलाओं की सभा होती थी, तो वे स्वयं घर पर ही रहते थे; उनकी पत्नी, जो ब्राह्मण महिला थीं, वही ऊपरी वस्त्र पहनकर सभा में जाती थीं। उस दिन, उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से पूछा, "प्रिय! क्या तुम रात में या दिन में धर्म का प्रवचन सुनोगी? तुम्हारा क्या कहना है?" उसने उत्तर दिया, "हे स्वामी! मैं रात में प्रवचन सुनने नहीं जा सकती; मैं दिन के समय सुनूँगी।" उसने अपने पति को घर पर छोड़ा, वह ऊपरी वस्त्र पहना, महिला भक्तों के साथ मठ गई, गुरु को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गई, धर्म का उपदेश सुना और गृहस्थ भक्तों के साथ वापस आ गई। फिर, उसके ब्राह्मण पति ने उसे घर पर छोड़ा, वह ऊपरी वस्त्र पहना और मठ चला गया।

3-3,6. उस अवसर पर भी, उपस्थित श्रोताओं के बीच में, अलंकृत उपदेश आसन पर विराजमान गुरु ने अपना बहुरंगी पंखा थामकर सत्य (धम्म) का उपदेश इस प्रकार दिया मानो स्वर्ग की नदी बह रही हो या सिनरु को मथनी बनाकर सागर का मंथन किया जा रहा हो। जब श्रोताओं के अंतिम छोर पर बैठे ब्राह्मण सत्य (धम्म) का उपदेश सुन रहे थे, तो रात्रि के प्रथम पहर में ही उनके पूरे शरीर में पाँचों प्रकार की पीति (उत्साह) उत्पन्न हो गई। उन्होंने अपना वस्त्र समेटा और दशाबल को अर्पित करने का निश्चय किया। बाद में, उनके मन

में हज़ार प्रकार की दुर्भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने मन ही मन कहा, "तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी, ब्राह्मण स्त्री के लिए केवल एक ही वस्त्र है; कोई दूसरा वस्त्र नहीं है; मैं अपना वस्त्र पहने बिना बाहर नहीं घूम सकता।" इस प्रकार वे किसी भी प्रकार से अर्पण करने के लिए अनिच्छुक हो गए। फिर, जब पहला पहर बीत गया और रात के मध्य पहर में भी, उन्हें उसी प्रकार उत्साह उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसी प्रकार विचार किया और उसी प्रकार से इसे अर्पित करने की अनिच्छा व्यक्त की। फिर जब मध्य पहर बीत गया और रात के अंतिम पहर में भी, उन्हें उत्साह (पाति) उत्पन्न हुआ। उस समय, उन्होंने अपनी दुर्भावना पर विजय प्राप्त की, अपना ऊपरी वस्त्र उठाया और उसे बुद्ध के चरणों में रख दिया। इसके बाद, उन्होंने अपनी बाईं भुजा को मोड़कर, अपने दाहिने हाथ की हथेली से ताली बजाई और तीन बार इस प्रकार गर्जना (या चिल्लाया): "मेरे द्वारा पराजित; मेरे द्वारा परास्त!"

3-3,7. उस अवसर पर, राजा बंधुमा धर्मोपदेश सुन रहे थे, वे प्रवचन पीठ के पीछे एक पर्दे के भीतर बैठे थे। राजाओं को, विशेष रूप से, "मैंने विजय प्राप्त कर ली है" की वाणी सुखद नहीं लगती। राजा ने अपने दूत को आदेश दिया: "देखो! जाओ और उससे पूछो कि उसने क्या कहा था।" जब उस दूत ने उनसे पूछा, तो ब्राह्मण ने उत्तर दिया: "राजा के सैनिकों ने हाथी, रथ आदि जैसे वाहनों पर सवार होकर, तलवारों, ढालों आदि से लैस होकर, दूसरी सेना को पूरी तरह से पराजित कर दिया; वह विजय कोई आश्चर्य की बात नहीं है; परन्तु मैंने अपने मन की दुर्भावना पर विजय प्राप्त कर ली, मानो मैंने अपने पीछे से आए सींग वाले बैल का सिर गदा से फोड़कर उसे भगा दिया हो, और अपना ऊपरी वस्त्र दशाबल को अर्पित कर दिया; मेरे द्वारा अपनी दुर्भावना पर यह विजय वास्तव में आश्चर्य की बात है।" राजा का दूत वापस आया और उसने राजा को इस घटना की सूचना दी। उस ब्राह्मण से प्रसन्न होकर राजा ने कहा, "मेरे मित्र! हम सब दशाबल को ठीक से नहीं जानते; ब्राह्मण ही जानता है।" उन्होंने दशाबल को वस्त्रों का एक जोड़ा भेजा। उसे देखकर ब्राह्मण ने सोचा, "जब मैं पहले मौन बैठा था, तब राजा ने मुझे कुछ नहीं दिया; परन्तु जब मैंने गुरु के गुणों का वर्णन किया, तब उन्होंने मुझे दिया; यह दान गुरु के गुणों के कारण ही उत्पन्न हुआ है; अतः यह केवल गुरु के लिए ही उपयुक्त है।" उन्होंने वह वस्त्र भी दशाबल को अर्पित कर दिया। राजा ने पूछा, "ब्राह्मण ने क्या किया?" और यह जानकर कि वह वस्त्र भी तथागत को अर्पित कर दिया गया है, उन्होंने ब्राह्मण को वस्त्रों के दो और जोड़े भेजे। उन्होंने उन्हें भी गुरु को अर्पित कर दिया। फिर राजा ने वस्त्रों के चार और जोड़े भेजे और इस प्रकार तीस जोड़े वस्त्र अर्पित किए। तब ब्राह्मण ने मन ही मन कहा, "यह वस्त्रों का जोड़ा बढ़ता ही जा रहा है, मानो यह वस्त्रों का जंगल बन गया हो।" उसने अपने लिए और अपनी ब्राह्मण पत्नी के लिए दो जोड़े वस्त्र लिए और तथागत को तीस जोड़े अर्पित किए। तब से वह ब्राह्मण गुरु का प्रिय बन गया।

3-3,8. फिर राजा ने देखा कि वह शीत ऋतु में गुरु के समक्ष धर्म का प्रवचन सुन रहा है, तो उसने ब्राह्मण को वह लाल मखमल भेंट किया जिसे राजा ने स्वयं धारण किया था और जिसकी कीमत एक लाख थी। उसने ब्राह्मण से कहा, "अब से कृपया इस वस्त्र को पहनकर ही धर्म का प्रवचन सुनें।" ब्राह्मण ने सोचा, "इस सड़े हुए शरीर पर इस मखमल को अपने पास रखने का क्या लाभ है?" उसने तथागत के सुगंधित कक्ष में उनके पलंग के ऊपर एक चंदवा बनाया और चला गया। फिर एक दिन राजा सुबह-सुबह मठ गया और सुगंधित कक्ष में गुरु के पास बैठ गया। उसी क्षण बुद्ध की छह रंगों वाली किरणें मखमल पर पड़ीं जिससे वह अत्यंत सुंदर हो गया। राजा ने ऊपर देखकर यह भलीभांति जान लिया और कहा, "आदरणीय महोदय! यह मखमल हमारा है; हमने इसे एक वस्त्रधारी ब्राह्मण को भेंट किया था।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे महाराज! आपने ब्राह्मण का सम्मान किया और ब्राह्मण द्वारा हमें भेंट देकर हमारा भी सम्मान किया गया है।" राजा प्रसन्न हुए और बोले, "ब्राह्मण को उचित ज्ञान था, पर हमें नहीं।" मनुष्य के हित में जो कुछ भी था, राजा ने उसे आठ बार आठ बार अर्पित किया, जिसे सर्वव्यापी या विद्यमान भेंट कहा जाता है, और ब्राह्मण को अपना निजी पुरोहित नियुक्त किया। ब्राह्मण ने मन ही मन कहा, "आठ बार आठ, अर्थात् चौंसठ", और चौंसठ बार भोजन की व्यवस्था की, जीवन भर दान दिया, नैतिक नियमों का पालन किया और इस दुनिया से विदा होकर स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया।

3-3,9. फिर, इस युग (कप्पा) में, बुद्धों के बीच, तेजस्वी कोणागमना और तेजस्वी कस्सपा, वहाँ से पुनर्जन्म लेकर बनारस के एक गृहस्थ परिवार में पैदा हुए। अपने बचपन के दौरान, गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, वे एक दिन जंगल में पैदल घूमने निकले। उसी समय, नदी किनारे अपने वस्त्र धोते हुए एक मौन बुद्ध ने वस्त्र समेटने के बाद उसे रखने की कोशिश की, तभी "हे प्रभु! आप इसे क्यों समेटकर रख रहे हैं?" उत्तर मिला कि अनुकूल हवा पर्याप्त नहीं है। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र अर्पित करते हुए कहा, "हे प्रभु! इसे ही धारण कीजिए", और यह कामना की: "मैं जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लूँ, मुझे कोई कष्ट (या विपत्ति) न हो।"

3-3.10. उनके घर में भी, उनकी बहन उनकी पत्नी से झगड़ रही थी, तभी एक मौन बुद्ध भिक्षा मांगने आए। तब उनकी बहन ने मौन बुद्ध को भिक्षा दी और उस पत्नी के संबंध में अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा: "मैं ऐसे मूर्ख से सौ योजन की दूरी पर ही रहूँ।" पत्नी ने अपने घर के प्रांगण में खड़े-खड़े ही यह इच्छा सुनी, भिक्षापात्र को पकड़ लिया और मन ही मन कहा: "यह मौन बुद्ध उसके द्वारा दिया गया भोजन न खाएँ", उसने भोजन त्याग दिया, पात्र में मिट्टी भर दी और वापस दे दिया। दूसरी ने यह देखा और कहा: "हे मूर्ख! तुम मुझे गाली दे सकती हो या मार सकती हो; परन्तु ऐसे मौन बुद्ध के भिक्षापात्र को फेंककर मिट्टी चढ़ाना उचित नहीं है, जिन्होंने अनगिनत युगों तक

सिद्धियाँ प्राप्त की हैं।" तब उस पत्नी में विवेक जागा। उसने कहा: "आदरणीय महोदय! "कृपया प्रतीक्षा करें"; उसने मिट्टी फेंक दी, भिक्षापात्र धोया, उसके भीतर सुगंधित पाउडर मला, उसमें उत्तम भोजन और चार प्रकार की मिठाई और शहद भरकर मौन बुद्ध के हाथों में रख दिया, कमल के रंग के घी से चमकता हुआ भिक्षापात्र उसके ऊपर छिड़का और इस प्रकार भिक्षा मांगी: "जैसे यह भिक्षापात्र प्रकाशमान हो गया है, वैसे ही मेरा शरीर भी प्रकाशमान हो जाए।" मौन बुद्ध ने धन्यवाद देते हुए 'शाबाश' कहा और आकाश में चले गए। ये दोनों पति-पत्नी जीवन भर जीवित रहे और वहां से मृत्यु के बाद स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया। वहां से मृत्यु के बाद, भक्त का जन्म सर्वज्ञ बुद्ध कश्यप के समय बनारस में अस्सी करोड़ की संपत्ति वाले परिवार में हुआ; दूसरा भी, उन्हीं की तरह, एक पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक बैंकर। जब वह बालिग हुआ तो उसी बैंकर की बेटी को उसके पास लाया गया। उसके पिछले बुरे कर्म के बुरे परिणाम के कारण, जैसे ही वह अपने सास-ससुर के घर में दाखिल हुई, दहलीज से लेकर पूरा घर दुर्गंधयुक्त हो गया, मानो किसी गंदगी के ढेर को हिलाकर रख दिया गया हो। युवक ने पूछा, "यह दुर्गंध किसकी है?" और यह जानकर कि यह दुर्गंध बैंकर की बेटी की है, उसने उसे वापस उसके माता-पिता के घर यह कहकर भेज दिया, "इसे बाहर निकाल दो।" उसे सात बार घर से बाहर निकाला गया।

3-3.11. उस समय तक, दशाबल कस्सपा पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। उनके लिए लोगों ने एक योजन ऊँचा मंदिर बनवाना शुरू किया, जिसमें एक लाख मूल्य की सोने की ईंटें लगी थीं। जब वह मंदिर बन रहा था, तब उस धनाढ्य की पुत्री ने सोचा, "मुझे सात स्थानों से पीछे हटना पड़ा; मेरे जीवन का क्या लाभ?", उसने अपने आभूषणों का खजाना तुड़वाकर उनसे सोने की ईंटें बनवाईं: उसके आभूषणों की लंबाई एक हाथ (रतन) थी, चौड़ाई बारह उंगलियों के बराबर और ऊँचाई चार उंगलियों के बराबर थी। इसके बाद, वह पीले रंग के अरुगदी के एक टुकड़े और आर्सेनिक तथा आठ मुट्ठी सफेद कमल के फूल लेकर मंदिर निर्माण स्थल पर गई। ठीक उसी समय, चारों ओर बिछाई जा रही ईंटों की एक पंक्ति में पूर्णता के लिए ईंटों की कमी हो गई। धनाढ्य की पुत्री ने वास्तुकार-निर्माता से कहा, "कृपया मेरी यह सोने की ईंट यहाँ लगा दीजिए।" निर्माता ने उत्तर दिया; "मेरी प्यारी! तुम सही समय पर आई हो, बिलकुल सही समय पर: तुम स्वयं अपनी ईंट रखो।" वह ऊपर चढ़ी, पीले ऑर्पिमेंट और आर्सेनिक के टुकड़े को तेल में मिलाया, उस गोंद से अपनी ईंट को अच्छी तरह से जमाया, उसके ऊपर आठ मुट्ठी सफेद कमल के फूल रखकर श्रद्धापूर्वक मंदिर को प्रणाम किया, अपनी मनोकामना व्यक्त करते हुए कहा: "जहाँ भी मेरा पुनर्जन्म हो, मेरे शरीर से चंदन की मीठी सुगंध हवा की तरह निकले और मेरे मुख से सफेद कमल की मीठी सुगंध निकले।" उसने मंदिर की पूजा की, परिक्रमा की और घर चली गई।

3-3,12. उसी क्षण, उस धनाढ्य के पुत्र को उसके बारे में सूचना मिली, जिसके घर उसे सबसे पहले लाया गया था। शहर में भी एक उत्सव की घोषणा की गई थी। उसने अपने सेवकों से पूछा, "यहाँ लाई गई धनाढ्य की पुत्री कहाँ है?" उत्तर मिला, "हे प्रभु! वह अपने माता-पिता के घर पर है।" धनाढ्य के पुत्र ने कहा, "उसे ले आओ, मैं उत्सव में आनंद लूँगा।" वे गए और उसे प्रणाम किया। जब उसने पूछा, "प्रियजनों! आप लोगों के आने का क्या कारण है?", तो उन सभी ने उसे घटी हुई घटना के बारे में बताया। उसने उत्तर दिया, "प्रियजनों! मैंने अपने आभूषणों के खजाने से मंदिर को आच्छादित किया है; मेरे पास कोई आभूषण नहीं है।" वे गए और धनाढ्य के पुत्र को इसकी सूचना दी। धनाढ्य के पुत्र ने कहा, "उसे ले आओ; उसे उसके आभूषण मिल जाएँगे।" वे उसे ले आए। उसके घर में प्रवेश करते ही चंदन और सफेद कमल की मीठी सुगंध पूरे घर में फैल गई। बैंकर के बेटे ने उससे पूछा, “मेरी प्रिय! पहले तो तुम्हारे शरीर से दुर्गंध आती थी; अब तुम्हारे शरीर से चंदन की मीठी सुगंध आती है और तुम्हारे मुख से सफेद कमल की मीठी खुशबू आती है। यह क्या है?” उसने अपने पति को अपने द्वारा किए गए कार्य की पूरी कहानी बताई। बैंकर का बेटा प्रसन्न होकर बोला, “सचमुच! बुद्ध की व्यवस्था (शासन) लाभकारी है।” उसने एक योजन का स्वर्ण मंदिर बनवाया, जो मखमली आवरण से ढका हुआ था और उस पर रथ के पहिये के आकार के स्वर्ण कमल स्थान-स्थान पर सजे हुए थे। उनके परदे बारह हाथ (या हाथ) लंबे थे।

3-3,13. वह अपने जीवन के अंत तक वहीं रहे, फिर उनका निधन हो गया, उनका स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ और फिर उनका वहाँ से भी पुनर्जन्म हुआ, उनका पुनर्जन्म बनारस से एक योजन दूर एक मंत्री के परिवार में हुआ; उनकी पत्नी का निधन हो जाने के बाद, उनका पुनर्जन्म एक राजा के परिवार में हुआ और वे सबसे बड़ी राजपुत्री बनीं। जब वे वयस्क हुए, तो उस युवक के गाँव में एक उत्सव की घोषणा की गई। उसने अपनी माँ से कहा, “प्रिय माँ! कृपया मुझे मेरा वस्त्र दीजिए; मैं उत्सव में आनंद लूँगा।” माँ ने धुला हुआ वस्त्र निकाला और अपने पुत्र को दिया। पुत्र ने कहा, “प्रिय माँ! यह वस्त्र मोटा है।” माँ ने दूसरा वस्त्र निकाला और उसे दिया। उसने उसे भी अस्वीकार कर दिया। तब उसकी माँ ने उससे कहा, “मेरे प्रिय पुत्र! हम ऐसे घर में पैदा हुए हैं कि हमारे लिए इससे अधिक उत्तम वस्त्र प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं रहा।” पुत्र ने कहा, “ठीक है, प्रिय माँ! मैं वहाँ जा रहा हूँ जहाँ यह वस्त्र उपलब्ध है।” माता ने उत्तर दिया, “मेरे पुत्र! मेरी यही कामना है कि तुम आज ही, इसी क्षण, बनारस नगर की संप्रभुता प्राप्त कर लो।” उसने माता को प्रणाम किया और उन्हें

जाने की सूचना दी। माता ने पुत्र को जाने दिया। परन्तु अपने पुण्य के फलस्वरूप वह घर छोड़कर बनारस गया और राजमहल के बगीचे में स्थित पवित्र शिलाखंड पर सिर ढककर लेट गया। वह दिन बनारस के राजा की मृत्यु का सातवाँ दिन था।

3-3,14. राजा के पार्थिव शरीर के साथ जो उचित अनुष्ठान करना चाहिए था, उसे पूरा करने के बाद मंत्री राजमहल में बैठ गए और आपस में विचार-विमर्श करने लगे: "राजा की केवल एक ही पुत्री है; कोई पुत्र नहीं है; राजाविहीन राज्य का विनाश हो जाएगा; राजा बनने के योग्य कौन है?" उन्होंने आपस में कहा: "आप योग्य हैं; आप योग्य हैं।" पुरोहित ने सुझाव दिया: "बहुत से लोगों को ढूंढना उचित नहीं है; हम राजमहल को अपने आप चलने देंगे।" उन्होंने कुमुद कमल के रंग के चार सिंधी घोड़े जोते और उन्हें राजमहल में रखा; पाँच प्रकार के राजचिह्नों और सफेद छतरी के साथ, उन्होंने रथ को चलने दिया और पीछे से संगीत बजाकर उसे सहारा दिया। रथ पूर्वी द्वार से शहर से बाहर निकला और राजमहल की ओर मुख करके आगे बढ़ा। कुछ लोगों ने कहा: "यह तो अपने निरंतर अनुभव से हमेशा की तरह राजमहल की ओर ही मुख करके जा रहा है, चलो इसे वापस मोड़ देते हैं।" निजी पुरोहित ने इसके विपरीत सलाह दी। रथ आगे बढ़ा, युवक की परिक्रमा की और रुक गया, ताकि वह सवार हो सके। पुरोहित ने अपने ऊपरी वस्त्र का किनारा हटाया, सोए हुए युवक के पैरों के तलवों की जाँच की और मन ही मन कहा: "इस द्वीप को छोड़ दो; चार बड़े द्वीपों और दो हज़ार छोटे द्वीपों में से, यह द्वीप शासन करने के लिए उपयुक्त है", और तीन बार संगीत की गूँज की।

3-3,15. तब उस युवक ने अपना मुख खोला, चारों ओर देखा और पूछा, "आप सब यहाँ किसलिए आए हैं?" मंत्रियों ने उत्तर दिया, "हे प्रभु! आपको प्रभुत्व प्राप्त हुआ है।" युवक ने पूछा, "आपका राजा कहाँ है?" उनका उत्तर था कि उनका राजा स्वर्गलोक चला गया है। युवक ने पूछा, "कितने दिन बीत गए हैं?" उत्तर था कि सात दिन बीत चुके हैं। युवक ने आगे पूछा, "क्या आपका कोई पुत्र या पुत्री नहीं है?" उत्तर था, "हे प्रभु! पुत्री है; पर पुत्र नहीं है।" तब युवक ने कहा, "ठीक है, तो मैं ही प्रभुत्व स्थापित करूँगा।" मंत्रियों ने तुरंत राज्याभिषेक का मंडप बनवाया, राजा की पुत्री को हर प्रकार के आभूषणों से सजाया-संवारा, उसे उद्यान में ले आए और उस युवक का राज्याभिषेक किया। फिर जब उसका अभिषेक हो गया, तो वे उसके लिए एक लाख रुपये का वस्त्र लाए। उन्होंने पूछा: "प्यारे बच्चों! यह क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया: "महाराज! यह पहनने का वस्त्र है।" राजा ने पूछा: "हे प्यारे बच्चों! क्या यह मोटा नहीं है?" उत्तर था: "महाराज! मनुष्यों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों में इससे अधिक मुलायम कोई वस्त्र नहीं है।" राजा ने कहा: "मुझे लगता है कि तुम्हारे राजा में कोई गुण नहीं था; औपचारिक स्वर्ण पात्र लाओ।" मैं वस्त्र लाऊंगा।" उन्होंने सोने का पवित्र पात्र मंगवाया, उठे, हाथ धोए, मुँह साफ किया, हाथ में जल लेकर पूर्व दिशा में छिड़का। धरती फट गई और आठ विश्व वृक्ष (कप्परुक्खा) उग आए। फिर उन्होंने जल लेकर चारों दिशाओं में छिड़का, इस प्रकार: दक्षिण, पश्चिम और उत्तर। इस प्रकार सभी दिशाओं में आठ-आठ करके बत्तीस विश्व वृक्ष (कप्परुक्खा) उग आए। उस राजा ने एक दिव्य वस्त्र को अपने निचले वस्त्र के रूप में और दूसरे को अपने ऊपरी वस्त्र के रूप में धारण किया और आदेश दिया: "राजा नंदा के राज्य में कोई भी सूत न बुने; इस प्रकार, राज ढोल बजाकर मेरी घोषणा करो।" उन्होंने अपने ऊपर छत्र उठवाया, उचित वस्त्र धारण किए और अलंकृत हुए, उत्तम राज हाथी की पीठ पर सवार हुए, नगर में प्रवेश किया, राज महल गए और समृद्धि से महान वैभव का आनंद लिया।

3-3,16. इस प्रकार, समय बीतने के साथ, रानी ने राजा की महिमा को देखकर अपनी सहानुभूति इस प्रकार प्रकट की: "सत्यतः अद्भुत है तपस्या, जिसमें इंद्रियों पर नियंत्रण शामिल है!" जब पूछा गया: "हे रानी! यह क्या है?", तो उन्होंने उत्तर दिया: "महाराज! आपकी वैभवशाली समृद्धि अत्यंत विशाल है; यह अतीत में किए गए अच्छे कर्मों का फल है, बुद्ध में आस्था रखते हुए; अब आप भविष्य में अपने ऊपर निर्भर रहने के लिए पुण्य कर्म नहीं कर रहे हैं।" जब पूछा गया: "हम कब दान करें? यहाँ अच्छे नैतिक उपदेशों वाले लोग नहीं हैं।" रानी ने उत्तर दिया: "महाराज! जंबू द्वीप अरहंतों से रहित नहीं है; महाराज! आप स्वयं दान करें; मैं दान के लिए अरहंतों को बुला लूंगी।" अगले दिन, राजा ने पूर्वी नगर द्वार पर दान तैयार करवाया। रानी ने सुबह तड़के ही पवित्र नियमों का पालन करते हुए, अपने महल के ऊपर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सीने के बल लेटकर कहा, "यदि इस दिशा में कोई अरहंत हों, तो वे कल यहाँ आकर हमारा भिक्षादान ग्रहण करें।" उस दिशा में कोई अरहंत नहीं थे; उन्होंने वह भिक्षापात्र निर्धनों को दे दिया।

3-3,17. अगले दिन राजा ने दक्षिणी द्वार पर भेंट तैयार रखी; फिर भी उन्हें कोई योग्य प्राप्तकर्ता नहीं मिला; अगले दिन भी पश्चिम द्वार पर यही स्थिति रही। लेकिन जिस दिन उत्तरी द्वार पर भेंट तैयार रखी गई थी और रानी ने भी निमंत्रण दिया, उसी दिन हिमवंत में रहने वाले पद्मावती के पुत्रों, पाँच सौ मौन बुद्धों में से सबसे बड़े ने अपने छोटे भाइयों से कहा: "हे भाइयों! राजा नंदा ने आप सभी को आमंत्रित किया है; कृपया उनके निमंत्रण का उत्तर दें।" वे सहमत हुए, अगले दिन अनोतत्ता झील में स्नान किया, आकाश से होते हुए उत्तरी द्वार पर उतरे। लोगों ने उन्हें देखा और राजा को सूचना दी: "महाराज! पाँच सौ मौन बुद्ध आए हैं।" राजा अपनी रानी के साथ गए, उन्हें प्रणाम किया, मौन बुद्धों से अपने महल में आने का अनुरोध किया, जहाँ उन्होंने उन्हें दान दिया, और भोजन के अंत में, राजा ने सबसे वरिष्ठ मौन बुद्ध के चरणों में और रानी ने सबसे कनिष्ठ मौन बुद्ध के चरणों में नतमस्तक होकर उनसे यह वचन लिया: "आदरणीय महोदय!

हमारे स्वामियों को अपनी आवश्यकताओं से परेशान नहीं होना पड़ेगा; हमारे पुण्य कर्मों के कारण हमें विपत्ति का भी सामना नहीं करना पड़ेगा; कृपया हमें जीवन भर यहीं रहने का वचन दें", और उनके लिए उद्यान में पाँच सौ पत्तों की झोपड़ियाँ, पाँच सौ गलियारे और इसी प्रकार सभी प्रकार की सुविधाओं से युक्त आवासीय आवास उपलब्ध कराए, और उन्हें वहाँ रहने दिया।

3-3,18. इस प्रकार समय बीतने पर, जब राजा के सीमावर्ती क्षेत्र में विद्रोह हुआ, तो राजा ने अपनी रानी को यह निर्देश देकर प्रस्थान किया: "मैं अपने सीमावर्ती नगरों में शांति स्थापित करने जा रहा हूँ; कृपया मौन बुद्धों को भूलकर उनकी उपेक्षा न करें।" राजा के लौटने से पहले ही मौन बुद्धों का जीवनकाल समाप्त हो गया। मौन बुद्ध महापदुमा ने रात के तीनों पहरों में ध्यान का आनंद लिया और सूर्योदय के समय रेलिंग को पकड़े खड़े-खड़े ही निर्वाण प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार शेष मौन बुद्धों ने भी निर्वाण प्राप्त किया; इस प्रकार, सभी मौन बुद्धों ने पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर लिया। अगले दिन, रानी ने मौन बुद्धों के लिए बैठने की जगहें तैयार कीं, फूल बिखेरे, उन जगहों को सुगंधित किया, स्वयं बैठकर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगीं। जब वे नहीं आए, तो उन्होंने अपने सेवकों को यह कहते हुए भेजा: "मेरे प्रियों! आप जाइए; पता लगाइए कि हमारे स्वामियों को क्या असुविधा है।" वे गए, महापदुमा की पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया का द्वार खोला; उन्हें वहाँ न पाकर वे मठ में गए, उन्हें रेलिंग पर झुके हुए देखा और इस प्रकार कहा: "आदरणीय महोदय! समय हो गया है"; उन्हें प्रणाम करने के बाद। पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुके मौन बुद्ध का शरीर क्या कहेगा? उन्होंने मन ही मन कहा: "मुझे लगता है कि वे सो रहे हैं", उनके पैरों के पिछले हिस्से को अपने हाथों से छुआ, न केवल ठंडक से बल्कि उनके पैरों की अकड़न से भी उनके पूर्णतः निर्वाण प्राप्त करने की स्थिति का पता चला; दूसरे मौन बुद्ध के पास गए, वहाँ भी उन्हें यही पता चला; फिर तीसरे के पास गए; और इस प्रकार उन्हें पता चला कि सभी मौन बुद्ध भी पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं और राजपरिवार में लौट आए हैं। जब उनसे पूछा गया, "हे रानी! मौन बुद्ध कहाँ हैं?", तो उन्होंने उत्तर दिया, "हे रानी! वे पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।" रानी रोईं, विलाप किया, अपने महल से बाहर निकलीं, नागरिकों के साथ उस स्थान पर गईं, पवित्र उत्सव (साधुकीलिता) मनाया, मौन बुद्धों के शरीरों का दाह संस्कार किया, उनके अवशेषों को निकाला और उन्हें एक मंदिर में स्थापित करवाया।

3-3,19. राजा अपने सीमावर्ती नगरों में शांति स्थापित करके लौटे और उनसे मिलने के लिए आगे आईं रानी से पूछा, “मेरी प्रिय! क्या बात है? आशा है आप मौन बुद्धों के प्रति उदासीन नहीं हैं; क्या हमारे स्वामी रोगमुक्त हैं?” रानी ने उत्तर दिया, “महाराज! वे पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।” यह सुनकर राजा ने विचार किया, “इस प्रकार के बुद्धिमान लोगों की मृत्यु होती है; हमारे लिए क्या उपाय है?” वे नगर में प्रवेश नहीं किए, बल्कि सीधे उद्यान में गए, अपने बड़े पुत्र को बुलवाया, उन्हें सत्ता सौंप दी और स्वयं संन्यासी बनने के लिए उसका त्याग कर दिया। रानी ने भी मन ही मन कहा, “जब राजा संन्यासी बन गए हैं, तो मैं क्या करूँ?” और वे भी उसी उद्यान में संन्यासी बन गईं। दोनों ने भी ध्यान साधना की और वहाँ से देह त्याग कर ब्रह्मालोक में पुनर्जन्म लिया।

3-3,20. जब वे ब्रह्मा लोक में रह रहे थे, तब हमारे गुरुदेव का जन्म हुआ और वे उत्तम धर्म के चक्र को निरंतर घुमाते हुए समय के साथ राजगृह पहुंचे। जब गुरुदेव वहां विधिवत निवास कर रहे थे, तब यह बालक पिप्पली महातीथ के गांव में कपिल ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ से पुनर्जन्म लिया। यह भद्दाकपिलानी मद्दा राज्य के सागल नगर में कोसिया वंश के ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ से पुनर्जन्म लिया। जब वे धीरे-धीरे बड़े हुए और बालक पिप्पली बीस वर्ष और भद्दा सोलह वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके, तब माता-पिता ने अपने पुत्र को देखकर उस पर अत्यधिक दबाव डाला और कहा: "प्रिय पुत्र! तुम वयस्क हो गए हो; अब हमारे वंश की स्थापना करना तुम्हारा कर्तव्य है।" उस लड़के ने उत्तर दिया, “कृपया मेरे सामने ऐसी बातें न करें; जब तक आप दोनों जीवित हैं, मैं आपका सहारा और देखभाल करता रहूंगा; आप दोनों के चले जाने पर मैं संन्यास लेकर भिक्षु बन जाऊंगा।” उन्होंने कुछ दिन बीतने दिए और फिर उससे बात की। लेकिन उसने फिर से उनकी विनती ठुकरा दी। तब से माँ लगातार इस बारे में बोलती रही।

3-3,21. बालक ने मन ही मन कहा, "मैं अपनी माताजी को समझा दूंगा", और उसने एक हजार निक्खा माप लाल चमकता सोना दिया, सुनारों से एक स्त्री-समान मूर्ति बनवाई, और जब सोने को पीटने, पीटने, साफ करने और पॉलिश करने आदि का काम पूरा हो गया, तो उस सोने की मूर्ति को लाल वस्त्र पहनाए, उसे सोने के फूलों और सभी प्रकार के आभूषणों से सजाया और कहा, "प्रिय माताजी! इस सोने की मूर्ति जैसी मनमोहक वस्तु पाकर मैं घर पर ही रहूंगा; अन्यथा नहीं।" बुद्धिमान ब्राह्मण स्त्री ने इस प्रकार विचार किया, "मेरा पुत्र पुण्यवान है, जिसने दान दिया है; उसने अच्छे कर्म करने की इच्छा अवश्य ही रखी होगी; पहले वह अकेले अच्छे कर्म नहीं करता था; निश्चय ही, मेरे पुत्र के साथ अच्छे कर्मों में उसकी साथी एक सुडौल, सुनहरे रंग की युवती अवश्य होनी चाहिए।" उसने आठ ब्राह्मणों को बुलवाया, उन्हें सभी शिष्टाचारों के साथ संतुष्ट किया, सोने की मूर्ति को रथ पर चढ़ाया और उन्हें यह कहते हुए भेजा: "मेरे प्रियो! तुम सब जाओ; जहाँ कहीं भी तुम्हें हमारे समान जन्म, कुल, समृद्धि आदि वाले किसी परिवार में इस जैसी युवती दिखाई दे, वहाँ इस सोने की मूर्ति को गिरवी रखकर दे दो।"

3-3,22. उन्होंने सहमति जताते हुए कहा, "यह काम हमारा है"; वे उसके घर से निकलकर आपस में कहने लगे, "हम उसे कहाँ पाएँगे? मद्दा का राज्य, यानी महिलाओं का हरम; चलो मद्दा के राज्य चलते हैं", और वे मद्दा के राज्य में पूरे शहर में घूमने लगे। वहाँ उन्होंने उस सोने की मूर्ति को स्नानघर के किनारे रख दिया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर भद्दा की धाय ने भद्दा को नहलाया, उसे कपड़े पहनाए और सजाया-संवारा और खुद स्नान करने के लिए स्नानघर चली गई। सोने की मूर्ति को देखकर, "यह बिना किसी के साथ यहाँ आकर क्यों खड़ी है?" उसने सोने की मूर्ति की पीठ पर प्रहार किया और उसके निर्जीव होने का पता लगाया, लेकिन उसने यह कहते हुए कहा, "मेरे स्वामी की पुत्री, मेरी पुत्री, उसने ऐसा कहा; लेकिन यह सोने की मूर्ति मेरे स्वामी की पुत्री के घर की स्वागत करने वाली के बराबर नहीं है।" तब उन ब्राह्मणों ने उससे पूछा, "हमें बताया गया है कि आपके स्वामी की पुत्री ऐसी है; क्या यह सच है?" उसने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी की पुत्री इस सोने की मूर्ति से सौ गुना और हज़ार गुना अधिक सुंदर है; वास्तव में, वह बिना किसी दीपक के भी, जब बारह हाथ चौड़े कमरे में बैठती है, तो अपने शरीर से निकलने वाली प्रकाश की किरणों से अंधकार को दूर कर देती है।" यह कहते हुए, "तो चलिए, उसके माता-पिता के पास चलते हैं", उसने सोने की मूर्ति को रथ पर विराजमान किया, उस धाय के पीछे-पीछे चली, कोसिया कुल के एक व्यक्ति के घर के द्वार पर खड़ी हुई और उनके आने की सूचना दी।

3-3,23. ब्राह्मण ने उनसे बातचीत की और पूछा, "तुम कहाँ से आए हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "हम मगध राज्य के महातीथ्य ग्राम के ब्राह्मण कपिल के घर से आए हैं।" उन्होंने उपहार लेते हुए कहा, "अच्छी बात है, बच्चों! वह ब्राह्मण हमारे समान कुल, वंश और धनवान है; हम अपनी बेटी उन्हें दे देंगे।" उन्होंने कपिल ब्राह्मण को संदेश भेजा, "हमें भद्दा नाम की एक लड़की मिली है; कृपया पता करें कि क्या करना चाहिए।" यह संदेश सुनकर उन्होंने पिप्पली को बताया, "लड़की मिल गई है।" पिप्पली नामक बालक ने मन ही मन कहा, "मैंने सोचा था कि उन्हें नहीं मिलेगा; लेकिन उन्होंने मुझे ऐसा संदेश भेजा है कि उन्हें मिल गया है; मैं एक पत्र भेजूंगा कि मुझे वह नहीं चाहिए।" वह एकांतवास में चला गया और उसने एक पत्र लिखा: "भद्दा को उसके कुल, वंश और धन के अनुरूप पति मिले; मैं संसार त्यागकर संन्यासी बन जाऊंगा; बाद में निराश मत होना।" भद्दा ने भी यह सुनकर एकांतवास में जाकर एक पत्र लिखा: "भगवान के पुत्र को उसके कुल, वंश और धन के अनुरूप कन्या मिले; मैं संसार त्याग दूंगी; बाद में निराश मत होना।" यात्रा के बीच में दोनों पत्र आपस में मिल गए। उन्होंने एक-दूसरे से पूछा, "यह पत्र किसका है?" उत्तर मिला, "यह पिप्पली नामक बालक ने भद्दा को भेजा है।" दूसरे पत्र के बारे में पूछे जाने पर, "यह पत्र किसका है?" जब उत्तर मिला, "यह भद्दा ने बालक पिप्पली को भेजा है," तो उन सभी ने दोनों पत्र पढ़े, उन्हें फाड़कर जंगल में फेंक दिया और कहा, "देखो इस युवक ने क्या कर दिया!" फिर उन्होंने भी अपने पत्रों की तरह ही एक-एक पत्र लिखा और यहाँ से भी भेज दिया। इस प्रकार, यद्यपि दोनों युवकों और युवतियों के एक जैसे पत्रों में यही लिखा था कि वे सांसारिक सुख-सुविधाओं से विमुख हैं, जिनकी उन्हें इच्छा भी नहीं है, फिर भी उन दोनों का मिलन हो गया।

3-3,24. उसी दिन, बालक पप्पली ने भद्दा को फूलों की माला पकड़वाई। बुद्ध ने उन्हें उनके सोने के स्थान (या पलंग) के बीच में रख दिया। जब दोनों ने अपना रात्रि भोज ग्रहण कर लिया, तो वे अपने पलंग पर लेटने लगे। दोनों में से, बालक दाहिनी ओर से पलंग पर चढ़ा; भद्दा बाईं ओर से पलंग पर चढ़ी और बोली, "जिस भी ओर फूल मुरझाते हैं, उस ओर कामुक मन उत्पन्न होता है; इसलिए, हमें यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए; इस फूलों की माला को नहीं पकड़ना चाहिए।" यद्यपि, वे एक-दूसरे के शरीर को छूने के भय से पूरी रात सोए बिना रहे। दिन के समय, वे एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराए तक नहीं और न ही हँसे। जब तक उनके माता-पिता जीवित थे, तब तक उन्होंने उनकी संपत्ति का प्रबंधन नहीं किया क्योंकि वे सांसारिक सुख-सुविधाओं से दूर रहना चाहते थे; परन्तु उनके मरने के बाद, उन्होंने संपत्ति की देखभाल की। बालक की समृद्धि बहुत अधिक थी। एक दिन अपने शरीर को शैम्पू करने के बाद, यहाँ तक कि वह सोने की शक्ति भी जिसे फेंक देना चाहिए, मगध मानक शंख के अनुसार बारह नारियल के खोल के माप तक पहुँच जानी चाहिए; वहाँ मशीनों से घिरी (या मशीनों से जुड़ी) साठ बड़ी झीलें थीं; उसका कार्यक्षेत्र बारह योजन तक फैला हुआ था; उसके पास अनुराधापुरा के आकार के चौदह गाँव थे; उसके पास चौदह हाथियों की सेना, चौदह घोड़ों की सेना और चौदह रथों की सेना थी।

3-3,25. एक दिन, एक सजे-धजे घोड़े पर सवार होकर और लोगों के एक बड़े दल से घिरे हुए, वह अपने खेत में गए, और खेत के एक छोर पर खड़े होकर उन्होंने देखा कि कौवे और अन्य पक्षी हल से जोते गए स्थानों से मिट्टी के ढेलों में मिले केंचुए जैसे छोटे जीवों को खा रहे थे। उन्होंने पूछा, "हे प्यारे! ये पक्षी क्या खा रहे हैं?" उत्तर मिला, "हे प्रभु! वे केंचुए खा रहे हैं।" पिप्पली बालक ने पूछा, "इन पक्षियों द्वारा किए गए ये बुरे कर्म यदि मेरे होते, तो मेरी ये सत्तासी करोड़ की संपत्ति मेरा क्या बिगाड़ पाती? बारह योजन तक फैले मेरे खेत मेरा क्या बिगाड़ पाते? मशीनों से चलने वाली ये झीलें मेरा क्या बिगाड़ पातीं? ये चौदह गाँव मेरा क्या बिगाड़ पाते? मैं ये सब कपिल की पुत्री भद्दा को सौंपकर संसार का त्याग कर देता।"

3-3,26. उस समय ब्राह्मण कपिल की पुत्री भद्दा अपनी दाइयों से घिरी बैठी थीं, उन्होंने अपने घर के प्रांगण में तिल के तीन घड़े फैला रखे थे; उन्होंने कौवों को तिल के कीड़े खाते देखा और पूछा, "हे मेरी प्यारी! ये कौवे क्या खा रहे हैं?" उत्तर मिला, "हे देवी! ये कीड़े खा रहे

हैं।" उन्होंने पूछा, "यह किसका दोष है?" उनका उत्तर था, "यह दोष आपका है, हे देवी!" उन्होंने सोचा, "मेरे चार हाथ के वस्त्र में तो मुश्किल से नारियल-चावल ही आ पाते हैं; लेकिन अगर इन कौवों द्वारा किया गया यह दोष मेरा होता, तो मैं हजार जन्मों में भी पुनर्जन्म के चक्र से सिर नहीं उठा पाती; जैसे ही मेरे पति, भगवान के पुत्र लौटेंगे, मैं सब कुछ उन्हें सौंप दूंगी, संसार त्याग दूंगी और भिक्षुणी बन जाऊंगी।"

3-3,27. वह लड़का वापस आया, स्नान किया, अपने आलीशान महल में चढ़ा और एक बहुमूल्य सिंहासन जैसी सीट पर बैठ गया। फिर उसके सेवकों ने उसके लिए विश्वराज के योग्य भोजन लाया। उनमें से दो ने भी भोजन किया और जब उनके सेवक बाहर चले गए, तो वे एकांत में चले गए और एक उपयुक्त आरामदायक स्थान पर बैठ गए। इसके बाद, लड़के ने भद्दा से पूछा, "मेरी प्रिय! जब तुम इस घर में आई, तो तुम कितना धन लाईं?" उसने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी! पचपन हजार बैलगाड़ियाँ।" लड़के ने कहा, "मैं केवल तुम्हें ही वह सब कुछ और अस्सी-सात करोड़, साठ मशीनी झीलें, और इसी प्रकार की अपनी सारी संपत्ति सौंपता हूँ।" जब पूछा गया, "मेरे स्वामी! आप कहाँ जा रहे हैं?" लड़के ने उत्तर दिया कि वह भिक्षु बनेगा। युवती ने उत्तर दिया, "मेरे स्वामी! मैं भी आपके लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी; मैं भी भिक्षुणी बन रहा हूँ। तीनों प्रकार के प्राणी उनके पास जलते हुए पत्तों के आश्रय की तरह खड़े थे। उन्होंने आपस में संसार त्यागने का निश्चय किया, पीले रंग से रंगे वस्त्र और घर के बाज़ार से लाए मिट्टी के भिक्षापात्र धारण किए, एक साथ अपने बाल मुंडवाए और संसार त्यागते हुए कहा, "इस संसार में जितने भी अरहंत हैं, हम अपना यह त्याग उन्हें समर्पित करते हैं।" इस प्रकार संन्यासी बनकर उन्होंने अपने भिक्षापात्र अपने थैलों में रखे, उन्हें अपने कंधों पर लटकाया और अपने महल से नीचे उतर गए। उनके घर में उनके दासों और सेवकों में से किसी को भी इस बात की जानकारी नहीं है।

3-3.28. फिर वे ब्राह्मणों के गाँव से निकल गए, और जब वे अपने दास-गाँव के द्वार से प्रवेश कर रहे थे, तो उस दास-गाँव के निवासियों ने उनके व्यवहार और आकर्षक आचरण से उन्हें पहचान लिया। उनके दास उनके चरणों में गिरकर रोने लगे और उनसे कहने लगे, "हे स्वामी और स्वामिनी! आप हमें असहाय क्यों बना रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "हमने अपने आप को त्याग दिया है क्योंकि हे मित्रों! हमने तीनों प्रकार के जन्मों को जलते हुए पत्तों के समान समझा; यदि हम तुम सबको एक-एक करके दासता से मुक्त करें, तो सौ वर्ष भी पर्याप्त नहीं होंगे; तुम स्वयं अपने सिर धोकर स्वतंत्र हो जाओ और अपना जीवन व्यतीत करो।" फिर वे वहाँ से विदा हो गए, जबकि उनके दास अभी भी रो रहे थे।

3-3.29. आगे बढ़ते हुए, थेरा ने पीछे मुड़कर देखा और विचार किया: "यह भद्दा कपिलानी, जो समस्त जंबू द्वीप की शोभा है, मेरे पीछे आ रही है; वास्तव में, यह विचार मन में उठता है: यदि कोई भी, चाहे कोई भी, ऐसा सोचे: 'ये व्यक्ति, भले ही संन्यासी हों, स्त्री के बिना स्वयं को सक्षम नहीं बना पाते, वे अनुचित कार्य कर रहे हैं'; इस प्रकार कोई भी बुरे कर्मों से मानसिक रूप से अपराध करने के बाद नरक का पात्र बन सकता है; मेरे लिए इसे छोड़कर चले जाना ही उचित है।" इस प्रकार मन में विचार आने पर, उसने आगे बढ़ते हुए एक दो-मार्ग देखा और चौराहे के शीर्ष पर खड़ा हो गया। भद्दा भी आई, उसने उसे प्रणाम किया और खड़ी हो गई। तब उसने उससे कहा:- "मेरी प्रिय! मेरे पीछे आप जैसी महिला को आते देख लोगों (या जनता) की बड़ी भीड़ मन ही मन नाराज़ हो सकती है और कह सकती है: 'ये लोग, एकांतवासी होने के बावजूद, एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते; ये तो नरक के पात्र बन जाएँगे; इन दो रास्तों में से आपको एक रास्ता चुनना चाहिए; मैं दूसरा रास्ता चुनूँगी।' उसने उत्तर दिया: 'जी! महाराज! स्त्री एकांतवासियों के लिए बाधा है;' वे हमारी कमी बताते हुए कहतीं, 'यद्यपि वे संन्यासी हैं, फिर भी वे स्त्रीविहीन नहीं होतीं', तीन बार परिक्रमा करतीं, पाँच प्रकार की स्थापनाओं (पंचपतिष्टिता) से चार स्थानों पर उनका आदर करतीं, अपने दस नाखूनों को आपस में जोड़कर तेजस्वी हाथों को ऊपर उठातीं और प्रणाम करतीं, "हमारी घनिष्ठ मित्रता, जो एक लाख विश्व-चक्रों (कप्पा) के बराबर समय तक चली आ रही थी, आज टूट जाती है; आप तो केवल दाहिना हाथ हैं; दाहिना मार्ग आपके लिए उपयुक्त है; हम, स्त्री, जन्म से ही बाएँ हाथ हैं; बायाँ मार्ग हमारे लिए उपयुक्त है", और अपनी यात्रा जारी रखतीं। जिस समय वे दोनों अलग-अलग यात्री बन गईं, उस समय यह विशाल पृथ्वी काँप उठी और ऐसा लगा मानो कह रही हो, "यद्यपि मैं ब्रह्मांड पर्वत (चक्कवला), सिनेरु पर्वत आदि जैसे पर्वतों का भार सहन कर सकती हूँ, फिर भी तुम्हारे गुणों का भार सहन नहीं कर सकती।" आकाश में बिजली जैसी ध्वनियाँ सुनाई दीं। ब्रह्मांड की पहाड़ी (cakkavaḷa-pabbata) से गूंजती हुई ध्वनि निकली।

3-3.30. सर्वज्ञ बुद्ध, जो वेलुवन के महान मठ के कक्ष में विराजमान थे, ने भी भूकंप की आवाज सुनी और यह जानने के लिए छानबीन की कि वास्तव में पृथ्वी क्यों कांपी, तो उन्होंने पाया और कहा: "लड़के पिपली और भद्दा कपिलाणी ने भी मुझे समर्पित करते हुए अपार समृद्धि का त्याग कर संसार का त्याग कर दिया था; उनके वियोग स्थल पर, दोनों के गुणों की प्रबलता के कारण, यह भूकंप आया था; इसलिए मेरा भी इन दोनों की सहायता करना उचित है।" इसके बाद, बुद्ध अपने सुगंधित कक्ष से बाहर निकले, अपना कुंड और वस्त्र स्वयं लेकर अस्सी प्रमुख थेरों को बिना बताए तीन गावूत की दूरी तय करके राजगृह और नालंदा के बीच स्थित बहुपुत्रों के वृक्ष निग्रोध के नीचे पालथी मारकर बैठ गए। बैठने के समय, वे किसी साधारण से वस्त्रधारी (पंगसुकूलिका) की तरह नहीं बैठे, बल्कि बुद्ध का रूप

धारण करके बैठे और बुद्ध की प्रकाशमयी किरणें अस्सी हाथ की दूरी तक फैल गईं। इस प्रकार, उस क्षण, पत्तों की छतरी, बैलगाड़ी के पहिए, शिखर वाले घर आदि के समान विशाल बुद्ध की प्रकाशमयी किरणें चारों ओर फैल गईं, इधर-उधर दौड़ती रहीं और उस जंगल में प्रकाश के एक विशाल पिंड में विलीन हो गईं, मानो हजार चंद्रमा और हजार सूर्य उदय हो रहे हों। जंगल का क्षेत्र उनके बत्तीस गुणों की महिमा से जगमगा उठा, जैसे आकाश अपने असंख्य चमकते तारों से जगमगाता है और जलक्षेत्र खिले हुए कमलों और जल लिली से मिलता-जुलता है। निग्रोध बरगद का तना स्वभाव से सफेद होता है; इसके पत्ते नीले-हरे होते हैं; पके फल लाल होते हैं। लेकिन उस दिन, पूरा निग्रोधा वृक्ष सुनहरे रंग का था।

3-3.31. थेरा महाकस्सपा (पिप्पली?) ने यह देखकर मन ही मन कहा, "यही हमारे गुरु होंगे; मैं इस गुरु को समर्पित होकर संसार का त्याग करता हूँ।" वे वहाँ से झुककर तीन स्थानों पर प्रणाम करते हुए बोले, "आदरणीय गुरु! प्रतापी मेरे गुरु हैं; मैं आपका शिष्य हूँ; आदरणीय गुरु! प्रतापी मेरे गुरु हैं; मैं आपका शिष्य हूँ।" तब प्रतापी ने उनसे कहा, "हे कस्सपा! (पिप्पली?) यदि तुम इस महान पृथ्वी को भी यह नम्रतापूर्वक प्रणाम करोगे, तो वह पृथ्वी भी इसे सहन नहीं कर पाएगी; तथागत के इस मार्ग में गुणों की महानता के ज्ञान के कारण तुमने जो नम्रतापूर्वक प्रणाम किया है, वह मेरे रोंगटे भी नहीं झटक सकती; हे कस्सपा! बैठ जाइए; मैं आपको उत्तराधिकार दूंगा।" तब भगवान ने तीन प्रकार की सलाह देकर उन्हें पूर्ण दीक्षा प्रदान की। इस प्रकार सलाह देने के बाद, भगवान बहुपुत्र निग्रोध वृक्ष के चरणों से निकलकर अपनी यात्रा पर चल पड़े और थेरा को अपना अनुयायी-सेवक-भिक्षु बना लिया। गुरु का शरीर एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस लक्षणों से सुशोभित था; महाकस्सपा (पिप्पली) का शरीर एक महान व्यक्तित्व के सात लक्षणों से सुशोभित था। वह गुरु के पीछे-पीछे एक-एक कदम ऐसे चल रहे थे मानो किसी सोने की नाव से बंधे हों। गुरु ने थोड़ी दूर यात्रा करके सड़क से नीचे उतरकर एक वृक्ष के नीचे बैठने का संकेत दिया। थेरा को जब पता चला कि गुरु बैठना चाहते हैं, तो उन्होंने अपने फटे हुए कपड़े (पातापिलोतिका) के दोहरे वस्त्र को चार तहों में मोड़कर आसन तैयार किया।

3-3.32. गुरुजी वहाँ बैठ गए और अपने हाथों से वस्त्र को अच्छी तरह मलते हुए बोले, "हे कस्सपा! तुम्हारा यह दोहरा वस्त्र वास्तव में कोमल है।" कस्सपा समझ गया, "गुरुजी ने मेरे दोहरे वस्त्र की कोमलता की बात की है; अवश्य ही वे इसे पहनना चाहते हैं।" उसने गुरुजी से कहा, "आदरणीय गुरुजी! कृपया मेरा दोहरा वस्त्र पहन लें।" बुद्ध ने पूछा, "हे कस्सपा! (पिप्पली!) तुम ऊपरी वस्त्र के रूप में क्या पहनोगे?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "आदरणीय गुरुजी! मैं आपका निचला वस्त्र पहनूँगा।" बुद्ध ने कहा: "हे कस्सपा! (पिप्पली!) भला तुम यह फटा-पुराना वस्त्र (पांशुकूल) कैसे पहन सकते हो, जो कि भिक्षुओं का पुराना वस्त्र है? सचमुच, जिस दिन मैंने यह फटा-पुराना वस्त्र पहना, उस दिन जल से घिरी पृथ्वी कांप उठी; तुच्छ व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि वह बुद्ध द्वारा पहने गए इस पुराने वस्त्र को पहने; यह वस्त्र तो केवल एक सच्चे फटे-पुराने वस्त्र (पांशुकूल) पहनने वाले के लिए ही उपयुक्त है, जो सिद्धि की उचित साधना करने में सक्षम हो।" इतना कहकर बुद्ध ने थेरा के साथ अपना वस्त्र बदल लिया।

3-3.33. इस प्रकार वस्त्रों का आदान-प्रदान करने के बाद, बुद्ध ने थेरा का वस्त्र धारण किया; थेरा ने गुरु का वस्त्र धारण किया। उसी क्षण, यद्यपि अनैच्छिक रूप से (अचेतना), यह विशाल पृथ्वी जल से घिरी हुई, मानो कह रही हो: "आदरणीय गुरुदेव! आपने बड़ा कठिन कार्य किया है! इससे पहले कभी ऐसा अवसर नहीं आया जब बुद्ध ने अपना, जिसे वे धारण करते थे, किसी शिष्य के वस्त्र से बदला हो; मैं आपके गुणों का भार सहन करने में असमर्थ हूँ।" थेरा ने भी मन ही मन कहा: "बुद्ध द्वारा धारण किया गया वस्त्र मुझे प्राप्त हो गया है; अब मुझे इसके अतिरिक्त क्या करना है?", उन्होंने स्वयं को उच्च पद पर नहीं बिठाया, तेरह कठोर साधनाओं (धूत) का पालन किया और केवल सात दिनों के लिए ही पुथुज्जन (साधारण भिक्षु) रहे। आठवें दिन, उन्होंने विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ अरहंत पद प्राप्त किया। तब गुरु ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! कस्सपा परिवारों के पास चंद्रमा के समान जाते हैं; वे शरीर से तो छोटे हैं, पर मन से अलग हैं, वे परिवारों में दखल नहीं देते"; और इसी प्रकार आगे, श्रेष्ठ भिक्षुओं (आर्य) के समूह के बीच में बैठकर, बुद्ध ने उन्हें तपस्या के मार्ग पर चलने वाले भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे उन भिक्षुओं में जो कठोर साधना (धूत) में लीन हैं, यह महान कस्सपा प्रमुख हैं।"

398. पूज्य महाकस्सपा को जब भगवान ने सर्वोच्च पद प्रदान किया, तो वे उनके प्रमुख शिष्यों में से एक बन गए। अपने पूर्व कर्मों को याद करते हुए उन्होंने "पदमुत्तरस्स भगवतो" श्लोक का उच्चारण किया, ताकि वे मन में प्रसन्न होकर अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वहाँ, पद्ममुत्तरस्स (पदमुत्तरा) के बारे में कहा गया है कि जब भगवान अपनी माता के गर्भ से निकले और अपने चरण पटके, तब से उनके हर कदम पर पृथ्वी फटकर एक लाख पंखुड़ियों वाले कमल उग आए। अतः उनका यह नाम पड़ा। जब समस्त प्राणियों में से प्रत्येक ने एक सौ-सौ अच्छे कर्म किए, तो भगवान के सौ गुना अच्छे कर्म करने के कारण उनका यह नाम पड़ा। लोकजेत्थस्स तादिनो, जगत के ऐसे ही सबसे बड़े, उन्हें तादिनो, ऐसे ही के नाम से जाना जाता है, क्योंकि उन्होंने इच्छा और अनचाही चीजों से विचलित न होने की अवस्था प्राप्त कर ली थी, और जीव जगत के प्रमुख को अर्पित किया था। निब्बूते लोकनाथंहि, जब जगत के संरक्षक ने निर्वाण प्राप्त

कर लिया, जब जीव जगत के उचित आश्रय बन चुके महिमावान, अपने सभी स्कंधों (समूहों) के पूर्ण रूप से समाप्त होने से निर्वाण में विलीन हो गए; और अदृश्य हो गए; यही अर्थ है; पूजां कुब्बन्ति सत्तुनो (गुरु को अर्पण किया), उन्होंने सम्मान के अर्पण किए, महिमावान के लिए पवित्र उत्सव को बढ़ावा दिया, जिन्होंने इस मानव जगत के साथ-साथ दिव्य जगत को भी अपने उपदेशों के कारण "सत्था, गुरु" नाम प्राप्त किया; यही संबंध है।

399. अग्गिम चिनन्ति जनता (लोगों का समूह आग इकट्ठा करता है) दाह संस्कार के लिए आग इकट्ठा करने के लिए लोगों की भीड़ ने चारों ओर से ढेर बनाए, वे प्रसन्न, संतुष्ट और आनंदित हुए, कई लोग प्रसन्न हुए और सम्मान की भेंट चढ़ाई; इस प्रकार संबंध है। तेसु सांग्वेग झतेसु, जब वे पश्चाताप से भर गए, जब लोगों के उन समूहों ने पश्चाताप किया और भय उत्पन्न हुआ; मे, मेरा; पीति (आनंद) उत्साह या हंसी; उदा पज्जथा (उत्पन्न हुआ) प्रकट हुआ; इस प्रकार अर्थ है।

400. Ñātimitte samānetvā (रिश्तेदारों और मित्रों को उचित रूप से एकत्रित करना) मैंने स्वयं, अपने रिश्तेदारों और साथियों को एकत्रित करके एक समूह बनाया; Mahavīro (महान नायक) महिमावान, paninibbuto. (पूर्णतः निर्वाण में विलीन हो गए) अदृश्य हो गए; abravim (मैंने बोला) मैंने बताया; इस प्रकार, संबंध है। Handa pūjam karomase, आओ! हम भेंट चढ़ाएँ, Handa एक अविकारी कृदंत है, जिसका अर्थ है त्याग (या दान के रूप में सौंपना); इस प्रकार, हम सब एकत्रित हुए और आदर की भेंट चढ़ाई; इस प्रकार, अर्थ है; यह एक अविकारी कृदंत है

401. साधु ति ते पटिससुत्वा (उन्होंने बहुत अच्छा उत्तर दिया!) उन्होंने मेरे रिश्तेदारों और दोस्तों को बदले में सुनाया, जैसे साधु (बहुत अच्छा) उत्कृष्ट और अच्छा, मेरी बात को ठीक से स्वीकार किया; मी (मेरा) मेरा; भिय्यो, एक से अधिक; हासम (हंसना) आनंद या उत्साह; जानिमसु (उत्पन्न) उत्पन्न किया; इस प्रकार, अर्थ है।

402. इसके बाद, अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्मों के संचय को दर्शाने के लिए, उन्होंने यह श्लोक कहा, जिसकी शुरुआत "बुद्धस्मिं लोकनाथंहि" से होती है। "उग्गतम (ऊपर जाने वाला) सौ हाथ (या हाथ) ऊँचा और एक सौ पचास हाथ (या हाथ) चौड़ा; विमानं नभसि (आकाश में महल) जो आकाश में ऊपर गया और जो योग्य था; सुकटम् (सुगठित) अच्छे गुणों से बना; कत्वा (किया हुआ) बनाया भी; पुण्य संचयम् (पुण्य का संचय) अच्छे कर्मों का ढेर; कहासिम (मैंने बनाया) मैंने किया था; इस प्रकार, संबंध है।"

403. उस मंदिर में अर्पण करते हुए (वहाँ योग्य व्यक्ति को अर्पित करके); ताड़ के पेड़ों की कतारों से युक्त; चित्तितम (विविध रंगों वाला) रमणीय और योग्य बनाया; कट्वान (बनाया) भी किया; सकम चित्तम (अपना मन) अपने मन को सुखद रूप से पवित्र बनाकर; चेतियम पूजयुत्तमम (मंदिर को दी जाने वाली सर्वश्रेष्ठ भेंट) मैंने उस मंदिर को अर्पित की जहाँ बुद्ध के उत्कृष्ट अवशेष विराजमान थे; इस प्रकार, संबंध है।

404. उस तीर्थस्थल की महानता (महिमा) दर्शाने के लिए उन्होंने अग्गिक्खन्धो वा से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ, अग्गिक्खन्धो वा (अग्नि के ढेर की तरह) आकाश में अग्नि के ढेर की तरह चमक रहा था, अग्नि-चिट्टा के समान, वह तीर्थस्थल सात प्रकार के रत्नों से जगमगा रहा था; फूल से खिले हुए साल के वृक्ष-राजा के समान फूल (फूलों से खिल रहा था); इंद्र के धनुष के समान इंद्र के डंडे की तरह; चारों दिशाओं में चतुद्दिसा (चारों दिशाओं में); अभासति (प्रकाशित कर रहा था) वह चमक रहा था; इस प्रकार, संबंध है।

405. तत्थ चित्तं पसादेत्वा (मन को प्रसन्नतापूर्वक पवित्र बनाते हुए) उस तेजस्वी अवशेष-कक्ष में मन को प्रसन्नतापूर्वक पवित्र बनाकर, मैंने मन को प्रसन्न किया और उस प्रसन्नतापूर्वक पवित्र मन से; बहुं (बहुत) अनेक प्रकार के; कुसलं (पुण्य) अच्छे कर्म; कट्वाना (करने के बाद) "अवशेष-कक्ष में और बुद्ध के उपदेश में, मैंने इतने अच्छे कर्म किए हैं", इस प्रकार, सरित्वाना (स्मरण करने के बाद) इस प्रकार, अपने अच्छे कर्मों को इस प्रकार याद करके, तैंतीस (तैंतीस) की मृत्यु हुई और उपपज्जिम, मैं तावतिंस महल में पुनर्जन्म लिया, मानो नींद से जागा हो; इस प्रकार, संबंध है।

406. अपने जन्मस्थान, दिव्य लोक में प्राप्त समृद्धि को दर्शाने के लिए उन्होंने सहस्स युत्त से शुरू होने वाले इस श्लोक का पाठ किया। वहाँ, हजार सिंधी घोड़ों से जुता हुआ दिव्य रथ (हयवाहिम) खड़ा था; मेरा भवनम (निवास) सात मंजिला ऊँचा था; यही इसका अर्थ है।

407. उस महल में, अहुम (वहाँ) सबसोवञ्ञमय (पूरी तरह से सोने से निर्मित) एक हजार शिखर वाली छत वाली संरचनाएँ थीं, जो पूरी तरह से सोने से बनी थीं; यही अर्थ है। सकतेजेना (अपनी शक्ति से) अपने प्रभाव से, सभी दस दिशाएँ प्रकाश उत्पन्न करती हुई जलन्ति (जलती हुई) तेज चमक उठीं; यही संबंध है।

408. उस महल में जो मुझे प्रकट हुआ, वहाँ सन्ती (थे); निय्युहा (बुर्ज) और अन्य अलंकृत कक्ष थे। क्या हुआ? उस समय माणिक्य से निर्मित लोहितंगमय (लाल रत्न से निर्मित), वे बुर्ज (या शिखर) भी, आभय (प्रकाश से) चारों दिशाओं में प्रकाश की किरणों से जगमगा रहे थे; इस प्रकार, संबंध है।

410. सब्बे देवे (सभी देवता) छहों लोकों में विराजमान सभी दिव्य प्राणियों को मैंने अभिभूत कर दिया। यदि पूछा जाए कि यह किसका फल है? तो यही मेरे द्वारा किए गए पुण्य कर्म का परिणाम है; यही इसका अर्थ है।
411. इसके बाद, मानव समृद्धि को दर्शाने के लिए, उन्होंने साठिकप्पसहस्सानी से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा: वहाँ, इस विश्व-चक्र (कप्पा) से नीचे, साठ हजार विश्व-चक्र (कप्पा) आगे, चतुरंतो (चारों छोरों पर समाप्त) चार महान द्वीपों से मिलकर बना था; विजयावी (विजय प्राप्त करके) सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, मैं विश्व-राजा बनकर उब्बिदा नाम से जाना गया; पथविम आवासिम (पृथ्वी पर शासन किया) संप्रभुता का प्रदर्शन किया, प्रभुत्व स्थापित किया; इस प्रकार, संबंध है।
412-4. तथाएव भद्दके कप्पे उसी उत्तम (भद्द) लोक (कप्पा) में, भद्दक नामक कप्पा में, पाँच बुद्धों से सुशोभित; तिमसाक्खत्तुम (तीस बार) तीस जन्मों तक मैं चारों द्वीपों का प्रमुख शासक था, सात प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण, जैसे: चक्र-रत्न इत्यादि; सककम्माभिरद्धो (अपना काम शुरू करके) अपने दस राजधर्मों (राजधम्म) के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित होकर, अम्ही, मैं विश्वराज बन गया; इस प्रकार, संबंध है। विश्वराज रहते हुए अपने द्वारा प्राप्त गौरवशाली समृद्धि को दर्शाने के लिए, उन्होंने इस श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: "तत्था पि भवनम्मयम्", इत्यादि। तथा (वहाँ) उस विश्वराज के राज्य में; मयम् भवनम् (मेरा निवास) मेरा महल; indalaṭṭhi va uggatam (इन्द के धनुष के समान ऊपर उठा) आकाश में ऊपर उठा, बिजली की लताओं के समान चमकता हुआ, सात मंजिलों जितनी ऊँचाई का था; āyāmato (लंबाई से) लंबाई और ऊँचाई दोनों में चौबीस योजन और चौड़ाई में बारह योजन था; यही इसका संबंध है। नगर का नाम राममाना था, क्योंकि सभी लोगों का मन इससे जुड़ा हुआ था; यही इसका अर्थ है; नगर की दीवारें और द्वार मजबूत थे और बारह हाथ (या क्यूबिट) या तीस हाथ (या क्यूबिट) ऊँचे थे; इस प्रकार उन्होंने दर्शाया।
415.20. तदाद्धकम (वह आधा) वहाँ से आधा, अर्थात् एक हजार दो सौ पचास योजन; यही अर्थ है। पद्दित्ता पण्णवीसति (बीस बाजार बिखरे हुए थे) बीस खुली हुई दुकानें लगातार गली की सीमा बनाती थीं; यही अर्थ है। ब्राह्मण कुलसंभूतो (ब्राह्मण परिवार के योग्य) ब्राह्मण परिवार में जन्मा; शेष बातें ऊपर बताए गए तरीके से (या पहले ही कहे गए तरीके से) आसानी से समझ में आ जानी चाहिए।
थेरा महाकस्सपा की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.1 >> 4. थेरा अनुरुद्ध

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.14. अनुरुद्ध
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-4. थेरा अनुरुद्ध की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

4. अनुरुद्ध

मैंने विश्व-प्रमुख, धन्य सुमेधा, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, के दर्शन किए, जब वे एकांत में निवास कर रहे थे।264 (1) (423)
अतः मैं उस संबुद्ध, सुमेधा, विश्व के प्रमुख के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर मैंने (उनसे) कहा, हे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध: (2) (424)
“आपकी अनुमति से,265 महान नायक, हे विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, हे पुरुषों के सांड, मैं उस वृक्ष के नीचे ध्यान करते समय आपके लिए एक दीपक जलाऊंगा।” (3) (425)
उस ज्ञानी ने अपनी सहमति का संकेत दिया266 स्वयंभू, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता।267 फिर मैंने कुछ पेड़ों (वहाँ तनों) को छेदकर एक तंत्र तैयार किया। (4) (426)
मैंने विश्व के सगे-संबंधी बुद्ध के लिए एक हजार बत्तियाँ जलाईं। मैंने उन्हें एक सप्ताह तक जलाए रखा (और फिर) वे दीपक बुझ गए। (5) (427)

मेरे हृदय में मौजूद आनंद और उस इरादे एवं संकल्प के कारण, अपने मानव शरीर का त्याग करके मैं एक दिव्य महल में जन्म लेता हूँ। (6) (428)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 264 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 265 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
266 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 267 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

वहाँ एक स्तंभ था, जो उस दिव्य अवस्था में जन्मे मेरे लिए सुगठित था। वह चारों ओर से प्रकाशमान था (तब): यही दीपक जलाने का फल है। (7) (429)
उस समय मैं (स्वयं) चारों ओर एक पूरे मील तक प्रकाशमान रहा। मैं सभी (अन्य) देवताओं से श्रेष्ठ था: यही दीपक देने का फल है। (8) (430)
हे देवताओं के राजा, मैंने तीस युगों तक दिव्य शासन किया। किसी ने भी मेरी उपेक्षा नहीं की: यही दीपक देने का फल है। (9) (431)
और अट्ठाईस बार मैं एक पहिया घुमाने वाला सम्राट था। दिन और रात दोनों समय मैं अपने चारों ओर एक पूरी लीग देख सकता था। (10) (432)
हजार लोकों के ज्ञान से, मैं व्यवस्था में देखता हूँ।268 "दिव्य दृष्टि" (अब) प्राप्त हो गई है: यही दीपक देने का फल है। (11) (433)
उस सम्बुद्ध, सुमेधा, का निवास तीस हजार युग पहले था। मैंने उसे एक अत्यंत निर्मल मन से दीपक भेंट किया था। (12) (434)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (435)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (436)
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) (437)
इस प्रकार पूज्य अनुराधा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

---

268 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

अनुरुद्ध थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-4. थेरा अनुरुद्ध की जीवनी पर टीका
3-4.1. सुमेधम भगवंताहम से शुरू होने वाले श्लोक थेरा अनुशुद्ध की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस अनुशुद्ध ने भी पूर्व बुद्धों की उपस्थिति में भक्तिपूर्वक सेवा की और पुण्य संचय किया, जिससे उन्हें इस और उस जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे पद्ममुत्तरा के समय में एक समृद्ध गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लेकर वयस्क हुए। वयस्क होने पर वे एक दिन मठ गए और गुरु की उपस्थिति में धर्म उपदेश सुनते हुए उन्होंने देखा कि गुरु ने एक भिक्षु को दिव्य दृष्टि वाले भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने भी उस पद की आकांक्षा की और सात दिनों तक गुरु और उनके एक लाख भिक्षुओं के समूह को दान दिया। सातवें दिन उन्होंने गुरु और भिक्षुओं के समूह को उत्तम

वस्त्र भेंट किए और अपना संकल्प लिया। गुरु ने भी उनकी सिद्धि की निरंतर स्थिति को देखकर भविष्यवाणी की: "भविष्य में, सर्वज्ञ बुद्ध गौतम के युग में, वे दिव्य दृष्टि प्राप्त करने वालों में प्रमुख होंगे।" उन्होंने वहाँ पुण्य कर्म किए और गुरु के निधन पर, उनके सम्मान में, सात योजन ऊँचे ठोस स्वर्ण मंदिर में जलते हुए दीपों के वृक्षों, जलते हुए दीपों की पंक्तियों और अनेक ताम्रपात्रों से एक विशाल दीप प्रज्ज्वलन अर्पित किया और प्रार्थना की: "यह मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त करने में सहायक हो।" जीवन भर पुण्य कर्म करते हुए, देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए, वे प्रतापी कस्सपा के समय बनारस में एक जमींदार के घर में पुनर्जन्म लेकर परिपक्व हुए। जब गुरु का पूर्ण निर्वाण संपन्न हो गया, तो उन्होंने उनके मंदिर के चारों ओर कई ताम्रपात्रों को शुद्ध घी से भरकर, प्रत्येक के मध्य में गुड़ का एक टुकड़ा रख दिया। इसके अलावा, उन्होंने एक योजन ऊँचे स्वर्णमय मंदिर पर, गोल मुखों वाले बर्तनों के ऊपरी हिस्से को किनारे तक छूकर, स्वयं द्वारा लिए गए पीतल के कटोरे को शुद्ध घी से भर दिया, उसमें एक हजार बत्तियाँ जलाईं, उसे अपने सिर पर रखा और पूरी रात लगातार मंदिर के चारों ओर चक्कर लगाते रहे।

3-4.2. इस प्रकार, उस जन्म में भी, अच्छे कर्म करने के कारण, उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ; वे वहाँ अपने जीवनकाल तक रहे और वहाँ से मृत्यु के बाद, बुद्ध के प्रकट होने से पहले ही, बनारस के एक गरीब परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। वे "अन्नभार, यानी भोजन लाने वाले" के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने अपना जीवन सुमन नामक धनाढ्य के घर में घरेलू कार्य करते हुए व्यतीत किया। एक दिन, उन्होंने उपरित्त नामक मौन बुद्ध को देखा, जो निरोध-समापत्ति से उठकर गंधमादन पर्वत से आकाश में आए, बनारस के नगर द्वार पर उतरे, अपना वस्त्र धारण किया और भिक्षा मांगने के लिए भटकते हुए अत्यंत श्रद्धा से भर गए, भिक्षापात्र को ग्रहण किया, जिसमें उन्होंने अपने लिए रखा हुआ भोजन डाल दिया और मौन बुद्ध को दान देने की इच्छा करने लगे। उनकी पत्नी ने भी उसी प्रकार कटोरे में अपना भोजन डाला। उन्होंने भरा हुआ कटोरा उठाया और उसे मौन बुद्ध के हाथ में रख दिया। मौन बुद्ध ने कटोरा ग्रहण किया, धन्यवाद किया और चले गए। उस दिन, धनाढ्य सुमना के छत्र में निवास करने वाले देवता ने ऊँची आवाज़ में बधाई देते हुए कहा, "यह उत्कृष्ट दान कितना अद्भुत है!" यह बधाई सुनकर धनाढ्य सुमना ने मन ही मन सोचा, "यही एकमात्र ऐसा दान है, जिसे देवता ने इस प्रकार बधाई दी है, जो सबसे उत्तम दान है," और उन्होंने दान का हिस्सा माँगा। अन्नभार ने अपना दान दिया। प्रसन्न और पुण्य भाव से धनाढ्य सुमना ने उन्हें एक हजार रुपये दिए और कहा, "अब से अपने हाथों से कोई शारीरिक श्रम न करो; एक उपयुक्त घर बनाओ और उसमें सदा के लिए निवास करो।"

3-4.3. निरोध समाधि से उठे मौन बुद्ध को भिक्षा देने के कारण उसी दिन अत्यंत फलदायी हुआ। अतः धनाढ्य सुमन राजा के समक्ष दाता को साथ लेकर गया। राजा ने दाता को आदरपूर्वक देखा। धनाढ्य ने कहा, “हे महाराज! यह तो सम्मान के योग्य है।” फिर उसने दाता के द्वारा किए गए कार्य और स्वयं दाता को एक हजार रुपये दान देने की बात बताई। यह सुनकर राजा उससे प्रसन्न हुआ, उसे एक हजार रुपये दिए और उसके निवास स्थान के विषय में आदेश दिया, “ऐसी जगह पर घर बनाओ और निवास करो।” जब वह निवास स्थान को साफ कर रहा था, तभी सोने के बड़े-बड़े घड़े प्रकट हुए। उन घड़ों को देखकर उसने राजा को सूचित किया। राजा ने सारा दबा हुआ धन खुदवाया, ढेर देखकर पूछा, "इस नगर में किसके घर में इतना धन है?" उत्तर मिला, "महाराज! किसी के घर में नहीं।" उसी दिन राजा ने उनके लिए धनाढ्य का छाता उठाते हुए कहा, "तो फिर! इस नगर में इस अन्नभार को महाधनसेठी के नाम से जाना जाए।"

3-4.4. एक बैंकर बनकर उन्होंने जीवन भर अच्छे कर्म किए और स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। लंबे समय तक उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लिए और अंत में कपिलवस्तु नगर में शाक्य सुद्धोदन के घर में हमारे प्रतापी बुद्ध के प्रकट होने के समय गर्भ धारण किया। जन्म के समय उनका नाम अनुरुद्ध रखा गया। वे शाक्य महानाम के सबसे छोटे भाई थे, जो प्रतापी बुद्ध के चाचा के पुत्र थे; वे अत्यंत कोमल और गुणी थे। उनका भोजन केवल सोने के पात्र में ही प्रकट होता था। तब एक दिन उनकी माता ने सोचा, "मेरा पुत्र 'कुछ नहीं है' जैसी अभिव्यक्ति नहीं जानता; मैं उसे बता दूँगी," और फिर उसे एक खाली सोने का पात्र दूसरे सोने के पात्र से ढककर भेज दिया। इस बीच, देवताओं ने उस खाली पात्र को दिव्य भोज से भर दिया। इस प्रकार, पुण्य के महान स्वामी ने तीनों ऋतुओं में एक देवता के समान, तीन महलों में सुशोभित अप्सराओं से घिरे हुए, वैभवशाली समृद्धि का आनंद लिया।

3-4.5. उस अवसर पर हमारे बोधिसत्व भी तुषिता नामक स्वर्ग नगर से विदा होकर महान राजा सुद्धोदन की मुख्य रानी के गर्भ में पुनर्जन्म लेकर धीरे-धीरे बड़े हुए और वयस्क हुए, उनतीस वर्षों तक गृहस्थी में जीवन व्यतीत किया, महान वैराग्य किया, उचित समय पर सर्वज्ञ ज्ञान को ठीक से प्राप्त किया, बोधि वृक्ष की छत पर सात बार सात दिन बिताए, इसिपताना के हिरण पार्क में धम्म चक्र चलाया, राजगृह गए, संसार की रक्षा की और वेलुवन के बाँस वन में निवास किया। उस समय महान राजा सुद्धोदन ने मन ही मन कहा, "लोग कहते हैं कि मेरा पुत्र राजगृह आ गया है; हे मेरे मंत्रियों! तुम सब जाओ और मेरे पुत्र को ले आओ!" और फिर उन्होंने एक-एक करके दस मंत्रियों को एक-एक हजार सैनिकों के साथ भेजा। वे सब 'आओ! भिक्षु!' दीक्षा के द्वारा भिक्षु बन गए। जब थेरा उदयी ने बुद्ध के भ्रमण पर जाने के लिए उन मंत्रियों में से एक से अनुरोध किया, तो बुद्ध बीस हजार अरहंतों से घिरे राजगृह से निकलकर कपिलवस्तु

नगर गए, रिश्तेदारों के मिलन पर अनेक चमत्कार दिखाए, चमत्कारों से परिपूर्ण सत्य (धर्म) का उपदेश दिया, लोगों की विशाल भीड़ को अमरता का पेय पिलाया, दूसरे दिन अपना पान और वस्त्र लेकर नगर द्वार पर खड़े रहे और यह विचार करते हुए कि "अपने कुल-गृह नगर में आने वाले सभी बुद्धों की नियमित प्रथा क्या है?", उन्हें यह निष्कर्ष निकला कि उनकी प्रथा यह थी कि वे वह भिक्षा मांगने के लिए लगातार (सपदान) घर-घर गए और घर-घर घूमते रहे। राजा ने सुना कि उनका पुत्र भिक्षा मांगने के लिए घूम रहा है, तो वे शीघ्रता से आए, गलियों में ही सत्य (धम्म) सुना, बुद्ध से अपने महल में प्रवेश करने का अनुरोध किया और उन्हें बड़ा आदर और भेंट अर्पित की। बुद्ध ने अपने सगे-संबंधियों के लिए उचित उपकार करने के बाद, युवा राजकुमार राहुल को दीक्षा दी और कुछ समय बाद कपिलवत्थु नगर से मल्ल राज्य की ओर अपनी यात्रा पर निकल पड़े और अनुपिया वन पहुंचे।

3-4.6. उस अवसर पर महान राजा सुद्धोदन ने शाक्यों संघ को एकत्रित किया और कहा: "यदि मेरा पुत्र गृहस्थ जीवन व्यतीत करता, तो वह सात रत्नों से संपन्न विश्वराज होता, शाक्यों संघ के अनुयायियों से घिरा होता; मेरा पोता, राजकुमार राहुल भी, शाक्यों संघ के साथ अपने पिता के चारों ओर विचरण करता; आप सब भी इस विषय से अवगत हैं; परन्तु अब, चूंकि मेरा पुत्र बुद्ध बन गया है, इसलिए उसके अनुयायी केवल और केवल क्षत्रिय वंश के हों; आप सब अपने-अपने परिवारों से एक-एक बालक उसे दें।" उनके ऐसा कहते ही, एक ही क्षण में क्षत्रिय वंश के बयासी हजार युवकों ने संसार त्याग दिया; वे भिक्षु बन गए।

3-4.7. उस अवसर पर, कुल के स्वामी महानाम ने शाक्य पुरुष अनुरुद्ध के पास जाकर कहा: "प्रिय अनुरुद्ध! इस समय, सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित शाक्य युवक भगवान बुद्ध के संन्यास का अनुसरण करते हुए भिक्षु बन गए हैं; परन्तु हमारे परिवार में ऐसा कोई नहीं है जिसने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यास लिया हो; तो फिर, या तो तुम भिक्षु बन जाओ या मैं बन जाऊँगा।" यह सुनकर अनुरुद्ध गृहस्थ जीवन से प्रसन्न नहीं हुए, गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यास ले लिया और स्वयं सातवें भिक्षु बने। उनके भिक्षु बनने का यह क्रम संघभेद (भिक्षु संगठन के विघटन) पर मुख्य खंड में ही आता है। इस प्रकार अनुपिया के पास जाकर, जब वे भिक्षु बन चुके थे, उसी वर्षा ऋतु में, थेरा भद्दिया ने अरहंत पद प्राप्त किया; थेरा अनुरुद्ध ने अपने भीतर दिव्य दृष्टि का विकास किया; देवदत्त ने प्रभावी ध्यान (समापत्ति) की आठ आत्म-प्राप्तियाँ प्राप्त कीं; थेरा आनंद ने सोतापत्ति के प्रथम चरण की सिद्धि प्राप्त की; थेरा भगु और थेरा किमिला ने बाद में अरहंत पद प्राप्त किया। उन सभी थेरों की अपने-अपने लिए प्राप्त पदों के लिए पूर्व इच्छा और आकांक्षा भी प्रकट होगी। इस थेरा अनुरुद्ध ने धर्म के सेनापति की उपस्थिति में अपने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) के लिए मार्गदर्शन लिया, चित्तीय राज्य के पूर्वी बाँस वन में गए, और वहाँ अपने भिक्षु कर्तव्यों का पालन करते हुए, एक महान व्यक्ति के आठवें आरंभ पर चिंतन का एक दृढ़ तरीका अपनाया; वे आठवें चरण में थक गए। गुरु को इस प्रकार पता चला: "अनुरुद्ध एक महान व्यक्ति (महापुरिसवितक्क) के आठवें आरंभ पर थक गए हैं।" मैं उसकी मंशा पूरी करूँगा"; वहाँ गए, उनके लिए तैयार किए गए उत्तम बुद्ध-आसन पर बैठ गए, एक महान व्यक्ति के आठवें आरंभ को पूरा किया, पीढ़ियों के उच्च कुलीन वंश (अरियवांसा) के उचित अभ्यास का उपदेश दिया, आकाश में उठे और सेम के बाग, भेषकालवन, में चले गए।

3-4.8. तथागत के जाते ही, थेरा तीन प्रकार के ज्ञान (विज्जा) से संपन्न एक महान रोगरहित अरहंत बन गए और उन्होंने मन ही मन कहा, "गुरु ने मेरे मन को जान लिया और मेरे पास आकर, उन्होंने मुझे एक महान पुरुष के आठवें आरंभ को पूर्ण करके, मेरी वह इच्छित वस्तु भी अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच गई है।" उन्होंने बुद्ध के धर्म उपदेश और स्वयं के धर्म के गहन ज्ञान के संदर्भ में इन गंभीर कथनों का उच्चारण किया।

"संसार में अद्वितीय गुरु ने मेरी मनोकामना जानकर, जादुई शक्ति से अपने मन से निर्मित शरीर के साथ मेरे पास आए। जब भी मेरी मनोकामना (संकल्प) हुई, उन्होंने मुझे उपदेश दिया। बाधाओं के अभाव में प्रसन्न रहने वाले बुद्ध ने मुझे बाधाओं से मुक्त होने का उपदेश दिया। उनके धर्म को समझकर, मैं उस व्यवस्था (शासन) में प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगा। तदनुसार, मैंने तीन प्रकार के ज्ञान (विज्जा) को प्राप्त किया और बुद्ध के निर्देशों का पालन किया।"

3-4.9. इसके बाद महान जेतवन मठ में निवास करते हुए गुरु ने उन्हें सर्वोच्च स्थान पर इस प्रकार रखा: "अनुरुद्ध उन भिक्षुओं में प्रमुख हैं जिनके पास दिव्य दृष्टि है"।

421. इस प्रकार, दिव्य नेत्रों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके, प्रतापी की उपस्थिति से, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद करते हुए प्रसन्नता के रूप में सुमेधं भगवंताहम से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, वह प्रतापी, जिन्हें मेधा ज्ञान प्राप्त है, जो भक्ति सेवा के उत्कृष्ट ज्ञान, उचित मार्ग और फलों के ज्ञान, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के ज्ञान, चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान आदि से परिपूर्ण माने जाते हैं, वे सुमेध हैं; वह सुमेध अपनी महिमामयी शक्ति के कारण भगवंता हैं; और वे जेष्ठ (वृद्ध), जगत में श्रेष्ठ और प्रधान हैं, जो सबसे पहले पुनर्जन्म के चक्रों से बाहर निकले, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे और जिन्हें पूर्व अभ्यास का श्रेय प्राप्त था; vūpakaṭṭham

(अकेले खड़े रहे) एकांत में चले गए, मैंने उन्हें भीड़ के साथ संगति के आश्रम (आराम) से बाहर निकलकर रहते हुए देखा; इस प्रकार, संबंध है।

422. सम्बुद्धम् (सर्वज्ञ बुद्ध), स्वयं प्रबुद्ध होकर बुद्ध बने, समस्त सत्यों (धम्म) के ज्ञाता, स्वयं ही; उपगन्त्वाण (निकट आना), निकट आना; यही अर्थ है। अंजलिम् पग्घेत्वाना (हाथ जोड़कर) दस उंगलियों को जोड़कर एक खोखला पात्र बनाकर उसे अपने सिर पर रखना; यही अर्थ है। शेष स्पष्ट है।

430. दिवारत्तिच पासामि (मैं दिन और रात देखता हूँ) उस समय, जब मैं दिव्य जगत और मानव जगत में उत्पन्न हुआ, मैं अपनी मांस-आँखों (या सामान्य आँखों) से चारों ओर एक योजन देख सकता था; यही अर्थ है।

431. सहस्सलकम नाणेन (ज्ञान से हजार जगत) - मैं अपने ज्ञान की दृष्टि से हजार जगतों (चक्कवला) को देख सका; यही इसका अर्थ है। सत्तु सासाने (गुरु के मार्गदर्शन में) - अब, प्रतापी गौतम के मार्गदर्शन में। दीपदानस (दीपक दान का) - यह फल प्रज्वलित दीपों के सम्मान में किए गए अर्पण का परिणाम है; इस फलदायी परिणाम से, दिव्य दृष्टि के उचित लाभ, परिणामी उपलब्धियों को बढ़ावा मिला है; यही इसका अर्थ है।

थेरा अनुरुद्ध की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.1 >> 5. थेरा पुण्ण

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.15. पुन्ण-मन्तानीपुत्त
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-5. मंतानी के पुत्र पुन्ञ थेरा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

5. पुन्ण-मन्तानीपुत्त

मैं एक विद्वान मंत्र-ज्ञानी था जिसने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी। अपने छात्रों के समूह का नेतृत्व करते हुए मैं उनके पास पहुँचा, जो पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ थे। (1) (438)

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता, महान ऋषि ने तब मुझे 269 कर्म, व्याख्या सहित घोषित किया। (2) (439)

उपदेश सुनने के बाद, (और) शिक्षक की पूजा करने के बाद मैंने अपने हाथ जोड़कर ऊपर उठाए (फिर) दक्षिण की ओर मुख करके चला गया। (3) (440)

स्पष्टीकरण सुनने के बाद मैंने और विस्तार से उपदेश दिया। सभी छात्र मेरे शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुए। (4) (441)

अपनी स्वयं की विचारधारा को त्यागकर मेरा हृदय बुद्ध में प्रसन्न हुआ। फिर मैंने व्याख्या और आगे विस्तार के साथ उपदेश दिया। (5) (442)

अभिधम्म का ज्ञाता, कथावत्थु के बारे में स्पष्ट, सभी को उपदेश देने वाला, मैं दोष रहित जीवन जी रहा हूँ। (6) (443)

उसके पाँच सौ युगों बाद मैं चार महाद्वीपों का स्वामी था, चतुर सुप्पकासक270, सात रत्नों का स्वामी। (7) (444)

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 269 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 270 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

छह विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिए हैं, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (445)
इस प्रकार पूज्य पुन्ण मंताणिपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पुन्ण मंतानिपुत्त थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-5. मंतानी के पुत्र पुन्ञ थेरा की जीवनी पर टिप्पणी।
3-5.1. अज्जायको मंतधारो से शुरू होने वाले श्लोक ब्राह्मण महिला मंतानी के पुत्र थेरा पुन्ञा की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस पुन्ञा ने भी पूर्व बुद्धों की उपस्थिति में समर्पित सेवा और आकांक्षा की थी, और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति के लिए अनुकूल पुण्य अर्जित किया था। उनका पुनर्जन्म एक अत्यंत धनी ब्राह्मण पद्ममुत्तरा के परिवार में हुआ और समय आने पर वे बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुके थे। इसके बाद, जब पद्ममुत्तरा उठे और ज्ञानोदय के योग्य लोगों को धर्म का उपदेश दे रहे थे, तो वे पहले से वर्णित (हेत्ष्ठा) तरीके से बड़ी संख्या में लोगों के साथ मठ गए, श्रोताओं के सबसे अंतिम छोर पर बैठ गए और धर्म सुनते हुए उन्होंने देखा कि गुरु धर्म प्रचारकों में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दे रहे हैं; उसने मन ही मन सोचा, "भविष्य में मेरे लिए भी इसी के समान बनना उचित होगा।" प्रवचन समाप्त होने पर जब श्रोता उठ खड़े हुए, तो वह गुरु के पास गया, उन्हें आमंत्रित किया, पूर्वोक्त विधि से आदरपूर्वक भेंट चढ़ाई और प्रार्थना करते हुए कहा, "आदरणीय गुरुदेव! इस सेवा के फलस्वरूप मैं समृद्धि की कोई अन्य प्राप्ति नहीं चाहता, परन्तु जिस प्रकार सात दिन पूर्व आपने उस भिक्षु को धर्म प्रचारकों में सर्वोच्च स्थान दिया, उसी प्रकार भविष्य में बुद्ध के युग में मैं भी धर्म प्रचारकों में प्रमुख बनना चाहता हूँ।" गुरु ने भविष्य की ओर देखा, उसकी इच्छा की पूर्ति देखी और भविष्यवाणी की, "एक लाख युगों (कप्पा) बाद गौतम बुद्ध प्रकट होंगे; उनके युग में भिक्षु बनकर तुम धर्म प्रचारकों में प्रमुख बनोगे।"
3-5.2. अपने जीवनकाल में अच्छे कर्म करते हुए, वे वहाँ से चले गए, और एक लाख युगों (कप्पा) के पुण्य कर्मों का भार अपने ऊपर लादकर, बार-बार पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे, और हमारे प्रतापी गुरु के समय कपिलवस्तु नगर से कुछ ही दूरी पर स्थित डोनावत्थु नामक ब्राह्मण गाँव में एक धनी और उच्च पदस्थ ब्राह्मण परिवार में अञ्ञासिकोन्दञ्ञ के भतीजे के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम पुन्ञ रखा गया। जब गुरु ने महान आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया और धर्म के उत्कृष्ट चक्र को घुमाते हुए राजगृह पर निर्भर होकर निवास कर रहे थे, तब उन्होंने अञ्ञासिकोन्दञ्ञ की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली। उपसंपदा दीक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने निरंतर अपने परिश्रमपूर्ण प्रयास (पधान) में स्वयं को समर्पित किया, भिक्षु के सभी कर्तव्यों के निर्वाह में सर्वोच्च दक्षता प्राप्त की, अपने थेरा-चाचा के साथ गुरु के समक्ष पहुंचे और मन ही मन कहा: "मैं दशबल के समक्ष जाऊंगा", कपिलवत्थु के आसपास ही रुके और मानसिक रूप से बुद्धिमान रहते हुए कर्म करते हुए अर्हंतत्व प्राप्त किया, लेकिन कुछ ही समय बाद आध्यात्मिक ज्ञान की ओर अपने अभ्यास में तत्पर हो गए।
3-5.3. उस थेरा पुन्ण की उपस्थिति में, अच्छे परिवारों के पाँच सौ युवक भिक्षु बन चुके थे। थेरा ने उन्हें दस प्रकार के मूलभूत उपदेशों (कथावत्थु) से उपदेश दिया। वे सभी भी, दस मूलभूत उपदेशों (दशकथावत्थु) के माध्यम से उपदेशित होकर, थेरा के मार्गदर्शन में स्थापित हो गए, अरहंत पद प्राप्त किया, यह जान लिया कि वे अपने भिक्षु कर्तव्यों के उच्चतम स्तर तक पहुँच चुके हैं, अपने आध्यात्मिक गुरु के पास गए और इस प्रकार कहा:- "आदरणीय गुरु! हम भिक्षु के रूप में जो कुछ भी करना चाहिए, उसकी उच्चतम सीमा तक पहुँच चुके हैं; हम दस मूलभूत उपदेशों (कथावत्थु) के भी लाभार्थी हैं; अब समय आ गया है कि हम दशबल से मिलें।" उनकी बात सुनकर, थेरा ने इस प्रकार विचार किया: "गुरु मेरे दस मूलभूत उपदेशों (कथावत्थु) के लाभ से अवगत हैं; धर्म का प्रचार करते समय, मैं प्रचार के दस आधारों (कथावत्थु) का पालन करता हूँ; जब मैं जाऊँगा, तो ये सभी भिक्षु भी मेरे साथ चलेंगे; मेरे लिए इस प्रकार बड़ी संख्या में लोगों के साथ जाना और दशबल से मिलना उचित नहीं है। तब उन्होंने उनसे कहा: "मेरे मित्रों! आप सब आगे जाकर दशबल से मिलें; मेरी ओर से आप तथागत के चरणों में प्रणाम करें; मैं भी उसी मार्ग से आऊँगा जिससे आप सब गए हैं।" वे सभी थेरा, जो दशबाला के मूल राज्य के निवासी थे, जो सभी दोषरहित अरहंत थे, जिन्होंने उपदेश के दस आधार (कथावत्थु) प्राप्त कर लिए थे, अपने आध्यात्मिक गुरु की सलाह का पालन करते हुए, अपने थेरा को प्रणाम करते हुए, अपनी परिक्रमा पर निकल पड़े, साठ योजन से अधिक की यात्रा पूरी की, राजगृह के विशाल बाँस-वन मठ में पहुँचे, दशबाला के चरणों में प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वास्तव में, बुद्धों, यानी परम पूज्यों का यह निरंतर अभ्यास है कि वे स्वयं अतिथियों को उचित रूप से प्रसन्न करें; परम पूज्य बुद्ध उनसे इस प्रकार

मधुर वार्तालाप करते हैं: "हे भिक्षुओं! आप कैसे हैं? क्या आप कुशल हैं?" और इसी प्रकार, उन्होंने पूछा: "हे भिक्षुओं! आप सब कहाँ से आए हैं?", और जब उन्होंने बताया कि वे उनकी जन्मभूमि, उनकी जन्मभूमि से आए हैं, तो उन्होंने उस भिक्षु के बारे में पूछा जिसने उपदेश के दस आधार प्राप्त कर लिए थे: "हे भिक्षुओं! अपनी जन्मभूमि में, अपने साथी भिक्षुओं के बीच, जो उनकी ही तरह ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं, वह कौन है जिसने दस आधारभूत सिद्धांतों को इतनी अच्छी तरह से विकसित किया है, 'वह स्वयं कम इच्छाओं वाला है, और भिक्षुओं को कम इच्छाओं का उपदेश देता है'?" उन्होंने बुद्ध को यह भी बताया: "आदरणीय गुरुदेव! वह मंतानी के आदरणीय पुत्र हैं, जो पुन्ण्ण नाम से जाने जाते हैं।"

3-5.4. उनकी बातें सुनकर पूज्य थेरा सारिपुत्त थेरा के दर्शन करने के लिए उत्सुक हो गए। तब गुरु राजगृह से सावत्थी चले गए। थेरा पुन्ञ ने भी दशबल के वहाँ आने की सूचना सुनी, और मन ही मन यह कहते हुए चले गए, "मैं गुरु के दर्शन करूँगा", और उचित समय पर तथागत के पास सुगंधित कक्ष में पहुँच गए। गुरु ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। थेरा ने धर्म को सुना, दशबल को प्रणाम किया, और एकांतवास के लिए घने वन (अंधवन) चले गए और दिन बिताने के लिए एक वृक्ष की तलहटी में बैठ गए। थेरा सारिपुत्त ने भी उनके आने की सूचना सुनकर पुन्ञ थेरा को ध्यानपूर्वक ढूँढ़ना शुरू किया, अवसर देखकर उनके पास पहुँचे, वृक्ष की तलहटी में बैठे थेरा को हार्दिक प्रणाम किया और उनसे पुण्य के क्रम का ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया। थेरा पुन्ञा ने थेरा सारिपुत्त के हर प्रश्न का उत्तर देकर उनका दिल अत्यंत जीत लिया, मानो रथों की रिले दौड़ हो।

434. इसके बाद भिक्षुओं की सभा के बीच में बैठकर, गुरु ने उस थेरा को सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे धर्म प्रचारक भिक्षु शिष्यों में, यह पुण्ण प्रमुख है।" अपने पूर्व कर्मों को याद करते हुए, उन्होंने 'अज्जायको' से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने मानसिक प्रसन्नता से अपने द्वारा किए गए अच्छे कर्मों का स्पष्ट वर्णन किया। यहाँ, 'अज्जायको' (ब्राह्मण ग्रंथों का विद्वान) अनेक ब्राह्मणों का गुरु और प्रशिक्षक है; 'मन्तधारो' (मंत्रों का वाहक) मंत्रों (या मंत्रों) का भंडार है; यही अर्थ है। जो विद्वतापूर्ण अध्ययन, श्रवण और उपदेश के माध्यम से चौथे वेद का ज्ञान धारण (या संरक्षण) करता है; यही कथन है। तिनम् वेदानम् (तीनों वेदों का) ज्ञान तीनों वेदों के ग्रंथों में सर्वांगीण अंत तक और दूसरे तट तक पहुँच गया है, उस ज्ञान में जिसे बुद्धि (या विवेक) के माध्यम से प्राप्त होने के कारण "वेद" नाम मिला है, इरुवेद, यजुर्वेद और सामवेद के रूप में गिने जाने वाले तीनों वेदों का यही अर्थ है। पुरक्खतोऽम्हि सिसेहि (मैं अपने शिष्यों से घिरा हुआ हूँ), मैं अपने शिष्यों से घिरा हुआ हूं जो मेरे निरंतर साथी हैं। उपगच्छिम नरुत्तमम् (मैं श्रेष्ठ पुरुषों के पास पहुँचा), मैं प्रतापी के पास पहुँचा, उनके निकट गया; यही अर्थ है। शेष भी बहुत सरल है।

438. अभिधम्मनयञ्ञु हम् (मैं अभिधम्म विधि का ज्ञाता था), उस बुद्ध के समय में, मैं अभिधम्म विधि का ज्ञाता था; यही अर्थ है; कथावत्थु विशुद्धिआ (कथावत्थु की शुद्धता में), कथावत्थु नामक ग्रंथ की स्पष्टता के कारण, मैं एक सिद्ध पुरुष था; (या मैं एक विशेषज्ञ हूँ) उपदेश के दस आधारों में, जैसे कि इच्छाओं का अभाव, संतोष का उपदेश आदि; उपदेश के उस स्पष्ट आधार (कथावत्थु) के माध्यम से; सब्बेसम (सभी को), बुद्धिमान भिक्षुओं और मनुष्यों को; विञ्ञापेत्वान (जानकर) प्रबुद्ध (या जागृत) करके; अनासवो (दोषों से रहित) भ्रष्टता से रहित; विहारामि (मैं रहता हूँ) मैंने अपना निवास स्थान बनाया।

439. इतो पंचसते कप्पे (पांच सौ युगों बाद) इस वर्तमान उत्तम युग (भद्दकप्पा) से पांच सौ युगों बाद, पांच बुद्धों से सुशोभित; सुप्पकासका (प्रसिद्ध) जंबूद्वीप के चार द्वीपों आदि में प्रसिद्ध, चक्र रत्न आदि सात प्रकार के रत्नों से संपन्न; इस्सारा (शासक) प्रमुख पुरुष, चतुरो (चार) चार विश्व-राजा; यही अर्थ है। शेष का अर्थ उपरोक्त प्रकार ही है।

मंतानी के पुत्र थेरा पुन्ञ की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.1 >> 6. थेरा उपालि

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.16. उपाली
2टीका अनुवाद: उ लू पे विन
2.13-6. थेरा उपाली की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

6. उपाली

शहर में, सुजाता नाम से जाने जाने वाले ब्राह्मण हंसवती बहुत धनी थे, उनके पास अपार संपत्ति थी, उन्होंने आठ सौ मिलियन की बचत की थी। (1) (446)

मैं वह विद्वान मंत्र-ज्ञानी था जिसने तीनों वेदों में महारत हासिल की थी। मैंने सद्धम्म, संकेतों को पढ़ने और इतिहास में निपुणता प्राप्त की थी। (2) (447)

उस समय बहुत सी महिला संन्यासी, एक चोटी वाली तपस्वी,271 जो ऋषि272 गौतम का अनुसरण करती थीं, इधर-उधर घूम रही थीं। (3) (448)

फिर वे आए और मुझे घेर लिया, यह सोचकर कि "वह एक प्रसिद्ध ब्राह्मण है।" आम लोग मेरी पूजा करते थे, लेकिन मैं किसी की पूजा नहीं करता था। (4) (449)

मुझे पूजा के योग्य कोई नहीं दिखा; उस समय मैं अत्यधिक अभिमानी था। "बुद्ध" शब्द का अस्तित्व ही नहीं था क्योंकि विजेता का जन्म अभी नहीं हुआ था। (5) (450)

जब कई दिन और रातें बीत गईं, तब नेता, पद्ममुत्तरा, नेत्रपूर्ण पुरुष, संसार में प्रकट हुए और इसके समस्त अंधकार को दूर कर दिया। (6) (451)

जब (उनका) उपदेश समझाया गया और बहुत से लोगों में फैल गया, तब (वे), बुद्ध, हंसावती नामक नगर में गए। (7) (452)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 271 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 272 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

दूसरों की सहायता करने के लिए, नेत्रपूर्ण बुद्ध ने धम्म का उपदेश दिया। उस समय उनका (विशाल) दल एक पूरे लीग तक फैला हुआ था। (8) (453)

सुनंदा273 नामक एक तपस्वी, जिसे जनता का स्नेह प्राप्त था, ने प्रसन्न होकर बुद्ध के उस दल में उपस्थित सभी लोगों को फूल भेंट किए। (9) (454)

एक भव्य पुष्पयुक्त मंच पर उन्होंने चार (महान) सत्यों की व्याख्या की। एक खरब (प्राणियों) ने, जिन्होंने उन्हें सुना, धम्म-बोध प्राप्त किया। (10) (455)

सात दिन और सात रातों तक बुद्ध ने धम्म की वर्षा की, (और) जब आठवां दिन भोर हुआ तो विजेता ने सुनंदा के बारे में कहा: (11) (456)

"यह एक, देवताओं के लोक या मनुष्यों के लोक में जन्म-जन्म लेता हुआ, सभी में सबसे उत्कृष्ट होने के कारण अपने जन्म-जन्मों में जन्म-जन्म लेता रहेगा।275 (12) (457)

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (13) (458)

उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी, धम्म की वैध संतान, (वह) उस शिक्षक का अनुयायी होगा जिसका नाम मंताणिपुत्त पुन्ण होगा।"276 (14) (459)

संबुद्ध ने तपस्वी सुनंदा से इस प्रकार बात की, जिससे सभी लोग मुस्कुरा उठे और उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। (15) (460)

---

273 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद

किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 274 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 275 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 276 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

हाथ जोड़कर उन्होंने तपस्वी सुनंदा के प्रति श्रद्धा प्रकट की। बुद्ध के अनुरूप कार्य करते हुए उन्होंने अपने भविष्य के स्वरूप को शुद्ध किया। (16) (461)

(और) ऋषि के शब्दों को सुनकर मेरे मन में यह विचार आया: "मैं भी (इसी प्रकार) कार्य करूंगा जब तक कि मैं (भी) गौतम को न देख लूं।" (17) (462)

इस प्रकार सोचने के बाद मैंने उस कर्म पर विचार किया जो मैं करूँगा: "तो फिर मुझे इस अद्वितीय पुण्य क्षेत्र में कौन सा कर्म करना चाहिए? (18) (463)

यह भिक्षु (जिसे) 277 पाठिका के नाम से जाना जाता है, विनय और सभी पाठित शिक्षाओं में प्रथम स्थान पर है; मैं उस स्थिति की आकांक्षा रखूंगा। (19) (464)

मेरे पास सागर के समान असीम धन था।278 उस धन से मैंने (भिक्षुओं और) बुद्ध के लिए एक आश्रम बनवाया। (20) (465)

वह आश्रम, जिसे शोभना279 के नाम से जाना जाता था, शहर के पूर्व में बनाया गया था। मैंने एक लाख (सिक्के) खर्च किए (तब) उस मठवासी आश्रम का निर्माण किया।280 (21) (466)

मैंने ढलानदार कोठरियों, हवेलियों, चबूतरे और (साथ ही) गुफाओं का निर्माण किया और एक सुव्यवस्थित पैदल मार्ग बनाकर उस मठवासी आश्रम का निर्माण किया। (22) (467)

मैंने जल-भंडारण हॉल के नीचे गर्म कमरों और एक अग्नि-कक्ष वाला स्नानघर बनवाया और उसे सभा को दे दिया।281 (23) (468)

मैंने उन्हें वह सब कुछ दिया (जिसकी उन्हें आवश्यकता होगी): बैठने के लिए छोटी कुर्सियाँ और रिक्लाइनर,

---

277 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 278 शाब्दिक अर्थ, "गया" 279 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ संकालेसी पढ़ना संजालेसी 280 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 281 शाब्दिक अर्थ, "गुणी"

खाना पकाने और खाने के बर्तन, और आश्रम के लिए दवाइयाँ। (24) (469)

(तब) इसकी सुरक्षा के लिए मैंने एक मजबूत प्राचीर बनवाई ताकि कोई इसे नुकसान न पहुंचा सके, (एक स्थान) शांतिपूर्ण ध्यान के लिए। (25) (470)

मैंने भिक्षुओं के लिए लाखों कमरों वाला वह आश्रम बनवाया और उन्हें भरकर (फिर) संबुद्ध के पास गया। (26) (471)

"मैंने आश्रम का निर्माण पूरा कर लिया है; इसलिए कृपया इसे स्वीकार करें। मैं इसे आपको, हे वीर, और यहाँ के निवासियों को, हे नेत्रपूर्ण, भेंट कर रहा हूँ।" (27) (472)

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, बलिदान प्राप्तकर्ता, मेरे विचारों को समझकर (तब) इसे स्वीकार किया, नेता। (28) (473)

भोजन तैयार हो जाने के बाद, सर्वज्ञ ईश्वर, महान ऋषि की सहमति का ज्ञान होने पर, मैंने (दान देने का) समय घोषित किया। (29) (474)

जब समय की घोषणा हो गई, तब नेता पद्ममुत्तरा एक हजार अरहंतों के साथ मेरे (शानदार) आश्रम में आए। (30) (475)

बैठने का समय देखकर मैंने भोजन और पेय से उनका मनोरंजन किया। यह देखकर कि उन्होंने खाना समाप्त कर लिया है, मैंने (तब) उनसे ये शब्द कहे: (31) (476)

"शोभना नामक इस आश्रम की कीमत मुझे एक लाख (सिक्के) पड़ी और इसके निर्माण में इससे कहीं अधिक खर्च आया;283 कृपया इसे स्वीकार करें। (32) (477)

---

282 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हज़ार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्ताक्षर के अंग्रेज़ी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हज़ार कंढ (भाग, अंश, पिंड, एक छोटा माप), सौ भेण्डु (लंबा?

मोटा?)।" 283 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में गेंदु लिखा है। कम से कम प्रसारण के समय, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।

इस आश्रम को इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ देने के कारण, मुझे जन्म-जन्मांतर में वह सब कुछ प्राप्त होना चाहिए जिसकी मैं कामना करता हूँ। (33) (478)

बुद्ध ने उस सुनिर्मित मठवासी आश्रम को स्वीकार कर लिया और भिक्षुओं की सभा में बैठकर (तब) मेरे बारे में ये शब्द कहे: (34) (479)

"जिसने बुद्ध को एक सुव्यवस्थित मठवासी आश्रम दिया, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (35) (480)

(उन्होंने कहा), "सेना, जिसके चार भाग हैं— हाथी, सैनिक, रथ, घोड़ा— निरंतर इसकी सेवा करेगी: एक मठवासी आश्रम का फल। (36) (481)

साठ हजार वाद्ययंत्र284 (और) अच्छी तरह से सजाए गए केतली-ढोल285 निरंतर इसकी सेवा करेंगे: एक मठवासी आश्रम का फल। (37) (482)

सोलह हजार महिलाएं, सभी आभूषणों से सजी हुई, विभिन्न प्रकार के कपड़े और गहने पहने हुए और रत्नों से बनी बालियां पहने हुए, (38) (483)

लंबी पलकों, प्यारी मुस्कान286 और पतली कमर वाली, देखने में मनमोहक,287 इस एक की निरंतर सेवा करेंगी: एक मठवासी आश्रम का फल। (39) (484)

वह तीस हजार युगों तक देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। हजार गुना देवताओं का राजा, वह दिव्य शासन करेगा। (40) (485)

एक देव-राजा जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह भी उसे पूरी तरह से प्राप्त होगा।

---

284 yenicchakā, BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार 285 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें RD., sv) 286 PTS uddhalomikā के लिए BJTS के साथ uddalomika° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv) 287 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

उसे किसी चीज की कमी नहीं होगी और वह दैवीय शासन करेगा। (41) (486)

वह हज़ार बार किसी देश का शासन करने वाला राजा बनेगा। पृथ्वी पर उसका शासन अनेक होगा, गिनती में अनगिनत। (42) (487)

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (43) (488)

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी, धर्म की वैध संतान, (यह) उस गुरु का अनुयायी होगा; उसका नाम उपालि होगा। (44) (489)

विनय में निपुण, सही और गलत निष्कर्षों में पारंगत,288 विजेता की शिक्षा को आगे बढ़ाते हुए वह दोषरहित जीवन व्यतीत करेगा। (45) (490)

इन सब बातों को जानकर, शाक्यों के श्रेष्ठ गौतम, जो भिक्षुओं की सभा में विराजमान हैं, उन्हें सर्वोपरि स्थान देंगे। (46) (491)

आपकी कृपा की असीम लालसा रखते हुए, मैंने (अब पूरी तरह से) उस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जिसमें सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं। (47) (492)

जैसे कोई व्यक्ति खंभे से बंधा हुआ, राजा द्वारा दी जाने वाली सजा से भयभीत होकर, उस खंभे में कोई आनंद न पाकर, केवल मुक्त होना चाहेगा, (48) (493)

हे महान वीर, मैं भी पुनर्जन्म के दंड से भयभीत हूँ। कर्म के बंधन में बंधा होने के कारण मैं इच्छाओं से भयभीत हूँ। (49) (494)

मुझे तीनों अग्नियों से जलकर भस्म होने में कोई आनंद नहीं मिलता।289

---

288 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़? 289 khiḍḍāratiyā

मैं राजा द्वारा दंडित व्यक्ति की तरह मुक्ति की तलाश कर रहा हूँ। (50) (495)

जैसे कोई व्यक्ति जिसे जहर दिया गया हो, जो उस वजह से दर्द से व्याकुल हो, वह जहर को नष्ट करने के लिए एक उपाय, एक रास्ता290 खोजेगा; (51) (496)
और यदि उसे कोई ऐसा इलाज मिल जाए जो जहर को नष्ट कर सके, तो उसे पीकर वह उस जहर से मुक्त होकर प्रसन्न होगा। (52) (497)
हे महान वीर, मैं भी उन्हीं की तरह विष से ग्रसित हूँ। अपनी अज्ञानता के कारण दुखी होकर मैं सद्धम्म उपचार के लिए आया हूँ। (53) (498)
उस उपचारकारी धम्म की खोज में मैंने शाक्यन विधि देखी, जो सभी औषधियों में सर्वश्रेष्ठ है, जिससे सभी तीर निकल जाते हैं। (54) (499)
उस धम्म-औषधि को पीकर मैंने हर विष को नष्ट कर दिया है। मैंने शांत निर्वाण को देखा है, जो न बूढ़ा होता है और न मरता है। (55) (500)
जैसे कोई भूत से डरकर, उस (डर) के कारण दर्द से त्रस्त होकर, उस भूत के (हमलों) से मुक्ति पाने के लिए किसी तांत्रिक291 की तलाश करेगा, (56) (501)
और यदि उसे भूत भगाने में कुशल कोई व्यक्ति मिल जाए, तो वह उसके लिए भूत का वध कर देगा और उसे जड़ से मिटा देगा। (57) (502)
हे महान वीर, मैं भी अंधकार में डूबा हुआ हूँ, इसलिए व्यथित हूँ। मैंने ज्ञान के उस संसार की खोज की जो मुझे इस अंधकार से मुक्त कर सके। (58) (503)
और फिर मैंने शाक्य ऋषि को देखा, जो अंधकार और अपवित्रता का निवारण करते हैं।

---

290 तिदासे, अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में 291 व्याम्ह-म-उत्तम, शाब्दिक अर्थ, "(मेरे) परम (या उत्कृष्ट) महल में" 292 नवा, वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" किया गया है

उन्होंने मेरे मानसिक अंधकार को उसी प्रकार दूर भगाया जैसे तांत्रिक भूत को भगाता है। (59) (504)
अस्तित्व की धारा को मोड़ते हुए;293 उसने लालसा के जल को रोक दिया; भूत भगाने वाले की तरह सभी पुनर्जन्म को जड़ से मिटा दिया। (60) (505)
जैसे एक हार्पी जो अपने भोजन के रूप में साँपों पर झपट्टा मारती है, वह प्रत्येक दिशा में सौ मील दूर एक बड़ी झील से हमले शुरू करेगी, (61) (506)
(और) वह एक, एक साँप को उठाकर उसके सिर के ठीक नीचे उसे चोट पहुँचाएगा (फिर) उसे ले जाकर, (फिर से) उड़ान भरेगा, अपनी इच्छा से आकाश में उड़ता रहेगा, (62) (507)
ठीक वैसे ही मैं भी, हे महान वीर, उस वीणा के समान बलवान हूँ। असीम की खोज में मैंने अपने सारे दाग धो डाले। (63) (508)
मैंने उत्कृष्ट शिक्षा, शांतिपूर्ण अवस्था, (इतनी) अद्वितीय देखी है। इसे धारण करते हुए, मैं (अब) सर्प के साथ वीणा की तरह निवास कर रहा हूँ। (64) (509)
इंद्र के बगीचे में आसावती नाम की एक लता उगती है।294 हजार वर्षों के बाद उस पर एक ही फल लगता है। (65) (510)
जब तक फल वहाँ रहता है, देवता उसकी देखभाल करते हैं। इस प्रकार, देवता उस उत्तम लता, आसावती का आनंद लेते हैं। (66) (511)
एक लाख वर्षों तक मैंने उस ऋषि की सेवा की, सुबह-शाम उनकी पूजा की, ठीक वैसे ही जैसे आसावती देवताओं की पूजा की जाती है। (67) (512) ऐसी सेवा जो कभी समाप्त नहीं हुई, (और) ऐसी पूजा जो व्यर्थ नहीं थी;

---

293 शाब्दिक अर्थ, "पूजा" 294 महापक्खो, शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति"

मेरे आने के पूरे समय में उसने एक पल के लिए भी मुझे निराश नहीं किया। (68) (513)

मैं किसी पुनरावलोकन का साक्षी नहीं हूँ;295 मैंने अस्तित्व की खोज की है; इच्छाओं से मुक्त (और) पूरी तरह से मुक्त, शांत, मैं अब इधर-उधर भटक रहा हूँ। (69) (514)
और जैसे सूर्य की किरणों से कमल खिलता है, वैसे ही हे महान वीर, मैं भी बुद्ध की किरणों से खिलता हूँ। (70) (515)
जैसे नर पक्षी हमेशा मादा सारस के साथ संभोग करते हुए नहीं पाए जाते हैं296 (बल्कि केवल) जब बादल गरजते हैं तो वे उन्हें अपने गर्भ में ले जाते हैं, (71) (516)
और काफी समय तक वे गर्भवती रहती हैं297 — जब तक बादल गरजते नहीं — फिर वे उस बोझ से मुक्त हो जाती हैं जब बादल (फिर से) बारिश करते हैं, (72) (517)
(इसलिए) जब पद्ममुत्तरा बुद्ध के धम्म-बादल ने गर्जना की, उस धम्म-बादल की तेज आवाज के कारण मैंने (तब) एक धम्म-गर्भ धारण किया। (73) (518)
एक लाख युगों तक सेवा करते हुए मैंने उस पुण्य-गर्भ को धारण किया। मैं उस बोझ से मुक्त नहीं हुआ; धम्म-बादल गर्जना नहीं किया। (74) (519)
लेकिन जब आपने, शाक्यों के ऋषि, सुंदर कपिलवस्तु में अपने धम्म-बादल से गर्जना की, तो मैं उस बोझ से मुक्त हो गया। (75) (520)
(तब) मैंने संपूर्ण शिक्षा और उसके चार फलों की व्याख्या की, जो हैं: शून्यता, चिह्नों का अभाव, यथार्थता, अभिलाषा। (76) (521)
दूसरा पाठ भाग। असीम सेवा प्रदान करना,

---

295 या "मुझे नहीं पता," न जानामि 296 परिषाहो 297 लिट., "शहर में, श्रावस्ती,"

आपकी कृपा की लालसा में, मैं (अब पूरी तरह से) लक्ष्य तक पहुँच गया हूँ, अद्वितीय शांति की अवस्था तक। (77) (522)
मैंने विनय में उसी प्रकार उत्कृष्टता प्राप्त की है जैसे ऋषि पाठिका ने की थी। मेरा कोई प्रतिद्वंदी नहीं है; मैं आपके विधान को आगे बढ़ाता हूँ। (78) (523)
मुझे विभंगों,298 खंडकों,299 और (परिवार), पाँचवें.300 (79) (524) दोनों के अक्षर और भावना के बारे में कोई संदेह नहीं है।
फटकार लगाने,301 सुधार करने,302 सही और गलत निष्कर्षों, बहाली303 और मिटाने304 में कुशल — मैंने सभी मामलों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।305 (80) (525)
विभंगों और खंडकों में प्रासंगिक वाक्य का हवाला देते हुए, (और) उन दोनों को अलग करते हुए मैं उपयुक्त पुनर्स्थापना करता हूँ।306 (81) (526)
पाली भाषा में कुशल,307 सार्थक और निरर्थक में बुद्धिमान, ऐसा कुछ भी नहीं है जो मुझे ज्ञात न हो, गुरु की शिक्षा में सर्वोपरि। (82) (527)
मैं अब शाक्यन309 व्यवस्था में (सभी) मामलों308 में कुशल हूँ। मैं सभी उलझनों का समाधान करता हूँ और हर (एक) संदेह को दूर करता हूँ। (83) (528)
मैं सभी विषयों में कुशल हूं: पूर्ववर्ती वाक्य, अनुवर्ती वाक्य,

---

298 महासाले, धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके, "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है) 299 पंच-काम-गुण, "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले 300 समाधिकुसालो अहं 301 इद्धिपादेसु कोविदो 302 शाब्दिक रूप से, "पूजा की" 303 मारसेनपमद्दनो, बीजेटीएस मारसेनपमद्दनो पढ़ता है 304 बोज्जरातन'इसारो, चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र, आदि) पर एक शब्द-क्रीड़ा 305 महाभिसक्कसंकासो 306 दोसव्याधितिकिच्चको 307 °विफलको, लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। ग्लोस सिंदुना 308 दिथिगंड° 309 लोकापज्जोतो

अक्षरशः और भावना में, आरंभिक फ्रेम, समापन फ्रेम। (84) (529)
जैसे कोई महान शक्ति वाला राजा, जिसने शत्रुओं को फटकार लगाई हो310 और अपने युद्धों में विजय प्राप्त की हो, उस स्थान पर एक नगर का निर्माण कर सकता है, (85) (530)

और वह उस शहर में कई प्राचीरें, और खाइयाँ भी, गढ़ों और स्तंभों वाले द्वार, और विभिन्न प्रकार के ऊँचे निगरानी टावर बनाएगा, (86) (531)
और चौराहों और उन स्थानों पर सुनियोजित बाज़ार जहाँ चार सड़कें मिलती हैं, और वहाँ वह अर्थों और उनकी कमियों को सुलझाने के लिए एक कानून अदालत का निर्माण करेगा। (87) (532)
सभी शत्रुतापूर्ण राजाओं की निंदा करने, उनकी गलतियों और निर्दोषता को उजागर करने और सुरक्षा के लिए वह वहाँ सेना का एक सेनापति नियुक्त करता था। (88) (533)
अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए वह एक कोषाध्यक्ष नियुक्त करता था, जो खजाने की रखवाली में कुशल होता था, और आदेश देता था, "मेरी संपत्ति बर्बाद मत करो।" (89) (534)
ताकि प्रक्रियाओं का पालन हो सके, वह प्रशासन अपने एक मित्र, राजा के भक्त को सौंप देगा, ताकि उसकी समृद्धि सुनिश्चित हो सके। (90) (535)
वह अपने सलाहकार के रूप में संकेतों और शकुनों को पढ़ने में (अत्यधिक) कुशल व्यक्ति को नियुक्त करेगा, जो मंत्रों का विद्वान गुरु हो। (91) (536)
(इस प्रकार) इन सभी अंगों से संपन्न होकर वह “क्षत्रिय” कहलाएगा। वे सदा राजा की रक्षा हंस की तरह घायल की रक्षा करेंगे।311 (92) (537)
इस प्रकार, हे महान वीर, आप वास्तव में शत्रुओं को मार गिराने वाले क्षत्रिय हैं।

---

310 सनारामरसक्कतो 311 नारादिक्को

इस संसार में, देवताओं समेत, आपको शिक्षा का राजा कहा जाता है। (93) (538)
विधर्मियों और मारा को अपनी सेना सहित नष्ट करके, अंधकार के उस कारण को दूर भगाकर, आपने धम्म का नगर बनाया। (94) (539)
नैतिकता वहाँ की प्राचीर है; आपका ज्ञान द्वार और गढ़ है; आप पर विश्वास स्तंभ है, हे ज्ञानी; संयम द्वार पर पहरेदार है। (95) (540)
माइंडफुलनेस312 उच्च निगरानी मीनार है; हे ऋषि, आपका ज्ञान चौराहा है; महाशक्तियाँ, जहाँ चार मार्ग मिलते हैं; धम्म-मार्ग अच्छी तरह से निर्मित है। (96) (541)
आपकी विधि-न्यायालय में बुद्ध की नौ प्रकार की शिक्षाएँ, सूत्र और अभिधम्म तथा संपूर्ण विनय शामिल हैं। (97) (542)
शून्यता, चिह्नों का अभाव, बहुत कम चाहत में निवास, इच्छाहीनता और समाप्ति: (ये सभी) आपकी धम्म-झोपड़ी का निर्माण करते हैं। (98) (543)
ज्ञानवान और समझ में निपुण लोगों में सबसे ऊपर, वह व्यक्ति जो सारिपुत्त के धर्म-सेनापति के रूप में जाना जाता है। (99) (544)
चार अचानक घटित घटनाओं में बुद्धिमान, महाशक्तियों में निपुण, कोलिता के नाम से जाने जाने वाले, हे ऋषि, आपके शीर्ष सलाहकार हैं। (100) (545)
प्राचीन वंश के वाहक, दुर्गम, अपार शक्ति वाले, तपस्वी गुणों में अग्रणी, (कस्सपा) के प्रधान मंत्री, ऋषि। (101) (546)
धर्म के विद्वान वाहक,

---

312 शाब्दिक अर्थ, "में" 313 सुगातुपागो, शाब्दिक अर्थ, "कल्याण की ओर अग्रसर"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुकून भरे व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

सभी शिक्षाओं के पाठकर्ता,314 जो आनंद के नाम से जाने जाते हैं, हे ऋषि, वे आपके धम्म-रक्षक हैं। (102) (547)
उन सभी (भिक्षुओं) को छोड़कर भगवान बुद्ध ने मुझे विनय का सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार माना और मेरे निर्णयों को (अधिकार) दिया। (103) (548)
जब भी कोई बुद्ध-अनुयायी विनय से संबंधित कोई प्रश्न उठाता है, तो मैं बिना सोचे-समझे ही उसका उत्तर दे देता हूँ। (104) (549)

हे महान ऋषि, आपके सिवा (निःसंदेह) संपूर्ण बुद्ध-क्षेत्र में विनय का कोई प्रतिद्वंदी नहीं है; आपसे बेहतर कोई आ कहाँ सकता है? (105) (550)
भिक्षुओं की सभा में बैठे गौतम ने गरजते हुए कहा: “विभंगों317 और खंडकों में उपाली का कोई प्रतिद्वंदी नहीं है।” (106) (551)
शिक्षक की नौ प्रकार की व्यवस्था, जहाँ तक बुद्ध ने इसका उपदेश दिया है, वह सब विनय में उस व्यक्ति के लिए पाया जाता है जो इसे मूल रूप से जानता है।318 (107) (552)
मेरे (भूतकाल के) कर्मों को याद करते हुए, शाक्यों के श्रेष्ठ पुरुष गौतम ने भिक्षुओं की सभा में मुझे सर्वोपरि स्थान दिया। (108) (553)
इस स्थान की लालसा में एक लाख युगों तक सेवा करने के बाद, मैं (अब पूरी तरह से) विनय में निपुण होकर लक्ष्य तक पहुँच गया हूँ। (109) (554)
मैं पूर्व में एक नाई था जो शाक्यों को सुख प्रदान करता था। उस वंश को त्यागने के बाद ही महान ऋषि के पुत्र का जन्म हुआ। (110) (555)

---

314 निब्बाति, या “वह शांत हो जाता है” 315 महास्सादंग 316 महारसंग 317 शाब्दिक रूप से, “अच्छे जाने वाले को” 318 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ māse aṭṭhadinesv-ahaṃ पढ़ना māse aṭṭhadine svaha

---

दूसरे युग पूर्व में असीम शक्ति और अपार प्रसिद्धि वाले क्षत्रिय अंजस319 पृथ्वी के राजा और अत्यंत धनी थे। (111) (556)
मैं (तब) चंदन नामक क्षत्रिय राजा का पुत्र था। मैं अपने कुल के गौरव और अपनी प्रसिद्धि एवं धन-संपत्ति के अभिमान से फूला हुआ था। (112) (557)
सभी आभूषणों से सजे एक लाख हाथी, तीन प्रकार से मदमस्त,320 मातांग,321 हर समय मेरी सेवा में तड़पते रहे। (113) (558)
अपनी सेना से घिरे बगीचे में जाने की इच्छा से, मैं हाथी सिरिका पर सवार होकर शहर से निकल पड़ा। (114) (559)
(एकाकी) बुद्ध देवल, उत्तम आचरण से परिपूर्ण, आत्मसंयमित और अच्छी तरह से संरक्षित द्वारों वाला322, उस समय मेरे नगर के पास आया। (115) (560)
सिरिका हाथी को चलाते हुए मैंने उस बुद्ध का अपमान किया। इसके कारण क्रोधित होकर उसने कभी अपना पैर नहीं उठाया।323 (116) (561)
मेरे हाथी का खराब मिजाज देखकर मुझे बुद्ध पर गुस्सा आ गया। संबुद्ध को परेशान करने के बाद मैं बगीचे में चला गया। (117) (562)
उस क्षण मुझे कोई आनंद नहीं मिला, मानो मेरा सिर आग की लपटों में जल रहा हो। मैं पीड़ा से ऐसे जल रहा था जैसे कोई मछली कांटे में फंस गई हो। (118) (563)
मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे पूरी पृथ्वी समुद्र के किनारे तक जल रही हो।

---

319 paṇidhāya, या “दृढ़ संकल्प”, सिंह. prārthanāva 320 PTS yahiŋ tahiŋ; BJTS tahiṃ tahiṃ 321 शाब्दिक अर्थ, “मेरी माता अपने पूरे शरीर से सुगंधित थीं” 322 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से श्लोक 66-71 (3648-3653) 323 या “शिक्षा में (उन) चारों का पालन-पोषण करना”

अपने पिता के पास जाकर मैंने उनसे ये शब्द कहे: (119) (564)
“उस आत्म-एकत्व का मेरा अपमान एक बहुत क्रोधित साँप के समान है, यह आग के एक बड़े गोले के समान है, यह एक नशे में धुत हाथी के समान है। (120) (565)
यह बहुत बुरा है कि मैंने उस बुद्ध, विजेता, अत्यंत शक्तिशाली का अपमान किया है। हम अपने सभी शहरों को बर्बाद कर देंगे; आइए उस ऋषि से क्षमा मांगें। (121) (566)
“यदि हम उसे, उस आत्म-संयमी, आत्म-नियंत्रित व्यक्ति को, यह बात नहीं समझा पाए, तो आज से सातवें दिन मेरा देश (पूरी तरह से) नष्ट हो जाएगा। (122) (567)

सुमेखला, कोसियन और सिगवा, इसलिए सत्तुका, ऋषियों का अपमान करने के बाद शोक में पड़ गए, और उनकी सेनाएँ भी। (123) (568)

जब भी ब्रह्मचारी, सुप्रशिक्षित ऋषि क्रोधित हो जाते हैं, तो वे देवताओं, महासागरों और पर्वतों सहित संसार का विनाश कर देते हैं। (124) (569)

मैंने तीन लाख मील की दूरी में फैले सभी लोगों को इकट्ठा किया। उस अपराध पर चर्चा करने के लिए, मैं स्वयं-एकत्व के पास गया। (125) (570)

गीले कपड़े पहने, गीले सिर लिए, सभी ने हाथ जोड़े। बुद्ध के चरणों में गिरकर मैंने उनसे ये शब्द कहे: (126) (571)

"हे महान नायक, कृपया क्षमा करें; जनता आपसे विनती कर रही है। कृपया इस भयानक आग को बुझा दें; और (पूरे) देश को नष्ट न करें। (127) (572)

सभी देवता, मनुष्य, टाइटन्स324 और आत्माएं325 भी,

---

324 शाब्दिक रूप से, "बहावों का विनाश" 325 या "जो बाहर गया था": पब्बाजितो

वह लोहे के हथौड़े से मेरा सिर लगातार फोड़ता रहता था। (128) (573)

"जल में अग्नि नहीं टिकती (और) चट्टान में बीज नहीं उगते; औषधि में कीड़े नहीं टिकते; बुद्ध में क्रोध नहीं होता। (129) (574)

जैसे पृथ्वी अविचल है, सागर असीम है, और आकाश की कोई सीमा नहीं है, वैसे ही बुद्ध विचलित नहीं हो सकते। (130) (575)

महान नायक जो तपस्वी हैं326 वे धैर्यवान और क्षमाशील (लोग) होते हैं। ऐसे धैर्यवान, क्षमाशील लोग आपके (गलत) मार्ग पर ध्यान नहीं देते।" (131) (576)

यह कहकर संबुद्ध ने उस भयानक आग को बुझा दिया। फिर सबके सामने वे आकाश में उड़ गए। (132) (577)

हे ज्ञानी, उस (बुरे) कर्म के कारण मैंने निम्न जन्म प्राप्त किया;327 (अब) उस स्थान से आगे बढ़कर, मैं निर्भीक नगर में आ गया हूँ। (133) (578)

तब, हे महान वीर, (मुझे देखकर) अच्छी तरह से बसा हुआ (पर) जल रहा था, उस स्वयंभू (अकेले बुद्ध) ने आग बुझाई (और) मुझे क्षमा कर दिया।328 (134) (579)

फिर भी आज, हे महान नायक, आपने तीनों आग बुझा दी हैं,329 और मुझे भी उन्हीं तीन आगों से जलने से बचा लिया है।330 (135) (580)

आपमें से जिनके पास सुनने के लिए कान हैं, आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: मैं आपके सामने उन तथ्यों को प्रकट कर रहा हूँ कि मैंने इस स्थिति को कैसे देखा। (136) (581)

---

326 यह श्लोक बारह अक्षरों वाले जटिल छंद में है। 327 शाब्दिक अर्थ, "यहाँ" 328 बीजेटीएस इन दो अंतिम पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस अपूर्ण सौ (सातकम्) के लिए इन अध्याय सारांश श्लोकों को शामिल करता है। 329 बीजेटीएस इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है। 330 धारेथा, शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "स्मरण करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"

स्वयं-स्वरूप एकत्ववान, शांत हृदय वाले (और) सजग, आज उस (बुरे) कर्म के कारण, मैं इस नीच जाति के गर्भ में जन्म लेता हूँ। (137) (582)

एक पल भी चूक मत करो; चूके हुए पल पर तुम्हें पछतावा होगा। यह पल तुम्हारे लिए तैयार है: अभी अपने भले के लिए प्रयास करो। (138) (583)

कुछ लोगों में हलाहल नामक विष उल्टी करने से ठीक हो जाता है। कुछ लोगों के लिए दस्त लगाना इसका इलाज है, जबकि अन्य के लिए औषधीय जड़ी-बूटियाँ इसका इलाज हैं। (139) (584)

पुण्य-क्षेत्र-साधकों के संदर्भ में, मार्ग पर चलने वालों के लिए (उपचार) उल्टी है;331 मार्ग-फलों के पीछे चलने वालों के लिए यह शुद्धि है;332 फल प्राप्त करने वालों के लिए, औषधीय जड़ी-बूटियाँ।333 (140) (585)

जो लोग इस शिक्षा का विरोध करेंगे, वे हलाहल:334 साँप के विष से विषग्रस्त हैं; विष खाने से निश्चय ही उस व्यक्ति को हानि होगी।335 (141) (586)
हलाहला केवल एक बार ही किसी के जीवन का अंत करता है। इस शिक्षा का विरोध करने के बाद वह दस करोड़ युगों तक जलता है। (142) (587)
धैर्यपूर्वक और अहिंसक रूप से, अपने हृदय में प्रेम और दया भाव रखते हुए, (बुद्ध) इस संसार और इसके देवताओं की सहायता करते हैं। इसलिए आपको उनका विरोध नहीं करना चाहिए। (143) (588)
चाहे कुछ मिले या न मिले, चाहे सम्मान मिले या अपमान, बुद्ध पृथ्वी के समान स्थिर होते हैं; इसलिए उनका विरोध नहीं करना चाहिए।338 (144) (589)

---

331 संपहंसिता 332 भोट्टा, बीजेटीएस पढ़ता है भेटटा ("द ब्रेकर") 333 चेट्टा 334 सोता 335 पसाहंसिता 336 अखिलो 337 विसालो। BJTS में विसालो ("दर्द से मुक्त") 338 एनीघो लिखा है

ऋषि सभी के प्रति एक समान हैं, चाहे वह हत्यारा देवदत्त हो, चोर अंगुलिमालक हो, धनपाल हो या राहुल।339 (145) (590)
उन्हें क्रोध का अनुभव नहीं होता; उनमें कभी वासना नहीं पाई जाती। बुद्ध सभी के प्रति एक समान हैं, चाहे वह हत्यारा हो या उनका अपना पुत्र। (146) (591)
किसी वृक्ष के शीर्ष पर पड़ा हुआ वस्त्र देखकर—340—त्यागा हुआ, मल से सना हुआ—व्यक्ति को सिर झुकाकर हाथ जोड़ना चाहिए; उस ऋषियों के ध्वज की पूजा करनी चाहिए। (147) (592)
अतीत, वर्तमान और भविष्य के सभी बुद्ध उस ध्वज से स्वयं को शुद्ध करते हैं; इसलिए उनकी पूजा की जानी चाहिए। (148) (593)
मैं अपने हृदय से विनय को लगभग गुरु के समान ही धारण करता हूँ। मैं अपना जीवन हमेशा विनय को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए व्यतीत करूँगा। (149) (594)
विनय ही मेरा झुकाव है; यह मेरी चलती-फिरती ध्यान साधना है। मैं विनय में अपना घर बनाता हूँ; विनय ही मेरा चारागाह है। (150) (595)
मैंने विनय में निपुणता प्राप्त की है, मानसिक शांति में कुशल हूँ। महान वीर, गुरु, उपाली अब आपके चरणों की आराधना कर रहे हैं। (151) (596)
मैं गाँव-गाँव और शहर-शहर घूमकर संबुद्ध और धम्म के अभ्यास को श्रद्धांजलि अर्पित करूँगा। (152) (597)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (153) (598)

---

339 अकाथंकाथि, ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?" 340 अनेजो 341 विराजो 342 खट्टा। BJTS खंता पढ़ता है ("नम्र" "विनम्र")

मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (154) (599)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (155) (600)
इस प्रकार पूज्य उपालि थेरा ने ये श्लोक कहे। उपालि थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

टीका अनुवाद: उ लू पे विन

3-6. थेरा उपाली की जीवनी पर टीका

3-6.1. नागरे हंसावतीया से शुरू होने वाले श्लोक थेरा उपाली की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की थी और इस-उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया था। वे पद्ममुत्तरा के समय

हंसावती नगर के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लेकर आए। एक दिन धर्म के उपदेश सुनते हुए उन्होंने गुरु को एक भिक्षु को अनुशासन के धारकों (विनयधार) में सर्वोच्च स्थान देते हुए देखा, स्वयं भी सेवा कर्म किए और उस पद की कामना की।

3-6.2. उन्होंने जीवन भर अच्छे कर्म किए और देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्मों के चक्रों से गुजरते हुए, इस बुद्ध के प्रकट होने के समय एक नाई के घर में उनका पुनर्जन्म हुआ। उन्हें उपाली नाम दिया गया। वयस्क होने पर, वे अनुरुद्ध आदि छह योद्धा राजकुमारों (क्षुत्तियों) के प्रिय सहयोगी बन गए और तथागत जब अनुपिया वन में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने उन छह योद्धा राजकुमारों (क्षुत्तियों) के साथ संसार त्याग दिया, जो उस समय भिक्षु बनने के लिए संसार त्याग रहे थे। उनके भिक्षु बनने की प्रक्रिया का वर्णन केवल पिटक ग्रंथ में मिलता है। उन्होंने संन्यास लिया, उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की, गुरु से मानसिक अभ्यास के लिए शिक्षा ली और इस प्रकार कहा: "आदरणीय महोदय! कृपया मुझे वन में निवास करने की अनुमति दें।" बुद्ध ने उत्तर दिया: "हे भिक्षु! वन में रहने वाले को केवल एक ही भक्तिमय कर्तव्य में वृद्धि होती है; परन्तु मेरी उपस्थिति में रहने से तुम्हें विपश्यना और ग्रंथ विद्या, दोनों ही भक्तिमय कर्तव्यों की पूर्ण पूर्ति प्राप्त होगी।" उन्होंने गुरु के वचनों को विधिवत स्वीकार किया, विपश्यना के कर्म किए और अल्पकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। गुरु ने उन्हें स्वयं विनय पिटक का संपूर्ण पाठ पढ़ाया। इसके बाद उन्होंने तीन विवेकपूर्ण निर्णय लिए, अर्थात्: भरुकचेह की कथा (या स्थल), अज्जुक की कथा (या स्थल) और कुमारकस्सपा की कथा। गुरु ने उनके प्रत्येक निर्णय पर उन्हें बधाई दी, तीनों निर्णयों का वर्णन किया और उन्हें विनय विद्या के ज्ञाताओं में सर्वोच्च स्थान दिया।

441. इस प्रकार प्रधान (एतदग्ग) का पद प्राप्त करने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और नागरे हंसवतीया से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को स्पष्ट कर सकें। वहाँ, हंसवतीया, हंसवती में, यह वटी है, परिबद्ध है, जिसमें ब्राह्मणी बत्तखों, हंसों या हंसों (हंस) द्वारा चारों ओर घूमने (या चक्कर लगाने) की विशेषता है, एक ऐसे शहर में जो चारों ओर से एक दीवार से घिरा हुआ है; वह शहर हंसवती है। दूसरे शब्दों में, एक तरफ से बांधे गए झील, कमल के तालाब, बड़े दलदली भूमि आदि में रहने वाले कई हंस इधर-उधर, इधर-उधर, इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, इस प्रकार हंसवती, उस हंसवती शहर के भीतर। सुजातो नीमा ब्राह्मणो (सुजाता नाम का ब्राह्मण) सुवंशी रूप से जन्मा; इस प्रकार सुजाता (सुवंशी) का जन्म हुआ, और वह इस कथन से अछूता रहा: "निष्कासित, अप्रतिबंधित"; यही अर्थ है। असितिकोतिनिकयो (अस्सी करोड़ का संचित खजाना) वह जिसके पास अस्सी करोड़ तक का धन था; पाहुतधनधञ्ञावा (अनेक धन और धान के भंडार से युक्त) सुजाता नाम का एक ब्राह्मण था, जिसके पास अथाह धन और धान का भंडार था; यही संबंध है।

442. फिर से, अपनी उसी महानता को दर्शाने के लिए, उन्होंने अज्जायको से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, अज्जायको (सही पाठ करने वाला विद्वान) तीन वेदों आदि के ज्ञान में दूसरों का शिक्षक है; मंतधारो (मंत्र धारण करने वाला) शब्द मंत को ज्ञान (पञ्ञा) कहा गया है; अथब्बनवेद, भाषाशास्त्रीय व्याख्याओं आदि जैसे ग्रंथों को समझने का ज्ञान रखने वाला; इस प्रकार, इसका अर्थ है। तिञ्ञम् वेदाना पारगू (तीनों वेदों के दूसरे तट पर गया) तीन वेदों के सर्वांगीण अंत तक पहुँच गया है, जिन्हें इरुवेद, यजुवेद और सामवेद माना जाता है; इस प्रकार, इसका अर्थ है; लक्खणे (संकेत में) संकेतों और विशेषताओं के ग्रंथ में; साथ ही वे ग्रंथ जिनमें बुद्धों, मौन बुद्धों, विश्व-राजाओं, पुरुषों और स्त्रियों की हथेलियों और तलवों पर दिखाई देने वाले चिह्नों का स्पष्टीकरण दिया गया है; यही अर्थ है; इतिहासे (परंपरागत ज्ञान में), उस ग्रंथ में जो प्राचीन प्रवचनों की स्पष्ट व्याख्या करता है, अर्थात्: "ऐसा ही हुआ है; ऐसा ही हुआ है"। सधम्मे (अपने धर्म में), अपने ब्राह्मण ज्ञान में; पारमिं गतो (पूर्णता प्राप्त कर ली), सर्वांगीण चरम सीमा को प्राप्त कर लिया; यही अर्थ है।

443. परिब्बजा (भ्रमणशील तपस्वी) निगंठ (जैन) के जो भी शिष्य थे, वे सभी सभी प्रकार के विधर्मी विचारों के धारक थे; महिया (पृथ्वी पर) उस समय पृथ्वी की सतह पर विचरण करते थे; इस प्रकार, संबंध है।

445. जब तक विजेता का उदय (या प्रकट होना) नहीं हुआ, तब तक बुद्ध जैसा कोई कथन संभव नहीं था; यही अर्थ है।

446. अच्चयेन अहोरत्तम (दिन और रात के बीतने के साथ अहोरत्तम) अनेक वर्षों के बीतने के साथ, यही अर्थ है। शेष का अर्थ समझना अत्यंत सरल है।

454. मंतानी पुत्तो (मंतानी का पुत्र) नाई की पुत्री मंतानी का पुत्र; माह और दिन की पूर्णता के कारण, पुन्नो, इस प्रकार, नाम प्राप्त करने वाला; यही अर्थ है; उस गुरु का शिष्य; हेस्सति (होगा) हो जाएगा; यही संबंध है।

455. एवम् कित्तयी सो बुद्धो, बुद्ध ने इस प्रकार घोषणा की, इसलिए (उन्होंने) प्रतापी पद्ममुत्तरा, एवम् (इस प्रकार) इस प्रकार; सुनंदम् (अच्छी खुशी) प्रसन्नता देने वाले अच्छे तरीके से; कित्तयी (घोषणा की) अपनी भविष्यवाणी दी; इस प्रकार, अर्थ है। सब्बम् जनम् (सभी लोग) मनुष्यों की पूरी भीड़ को उचित रूप से; हंसायन्तो (उन्हें हंसाना) उन्हें प्रसन्न करना; सकम बलम् (अपनी शक्ति) अपना जोश; दसायन्तो (दिखाना) प्रकट करना; इस प्रकार; संबंध है।

456. इसके बाद, बिना किसी अंतराल के, अपने उच्च ज्ञान के फलस्वरूप अपनी शक्ति (या प्रभाव) प्रदर्शित करने के लिए, उन्होंने कतंजलि से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। उस समय, उस बुद्ध के प्रकट होने से पहले, सभी लोग अपने हाथों को जोड़कर तपस्वी सुनंदा की आराधना करते थे; यही संबंध है। बुद्ध करं करित्वाना (बुद्ध के लिए जो करना चाहिए वह करके), इस प्रकार, यद्यपि सभी लोगों द्वारा सम्मानित किया गया, उन्होंने यह कहते हुए अहंकार नहीं किया कि "मुझे भेंटों से सम्मानित किया गया है", और बुद्ध के उपदेशों के अनुसार जो करना चाहिए वह करके; गतिं (जाकर) अपने जन्म से, शोधेति (शुद्ध करता है) सर्वांगीण शुद्ध और निर्मल किया; यही अर्थ है।

457. सुत्वना मुनिनो वाचम (ऋषि का वचन सुनकर) सर्वज्ञ बुद्ध के वचन; श्लोक की रचना में सुगमता के लिए दीर्घ स्वर 'आ' को संक्षिप्त करके "वाचम" लिखा गया है। इस ऋषि के वचन सुनकर, "आने वाले समय में, गौतम नाम से जाने जाने वाले गुरु संसार में आएंगे"; यथा (जबकि) जिस प्रकार से मैं तेजस्वी गौतम को देखता हूँ, उसी प्रकार, करम् (कार्य) मुख्य कार्य, पुण्य कर्मों का संचय; कस्सामि (मैं करूँगा) मैं करूँगा; मे (मेरा) संकल्प (इच्छा) इच्छा, बुद्धिमानी से ध्यान रखते हुए; अहु (था) हो गया; इस प्रकार, संबंध है।

458. एवहम चिन्तायित्वाना (इस प्रकार विचार करके) इस प्रकार विचार करने पर, अर्थात्: "मैं वह करूंगा जो किया जाना चाहिए"। किरियम चिन्तायिम ममा, मैंने सोचा कि मुझे क्या करना चाहिए; यही अर्थ है। क्याहम कम्मम आचरामि (मैं कौन सा कार्य करता हूँ?) मैंने किस प्रकार का पुण्य कर्म किया है, क्या मैंने वास्तव में उसे पूरा किया है? यही अर्थ है। पुञ्ञक्खेत्ते अनुत्तरे (पुण्य के अद्वितीय क्षेत्र में) तीन रत्नों में, जो संपूर्ण पुण्य का पात्र बन गया है और किसी से श्रेष्ठ नहीं है; यही अर्थ है।

459. अयं च पाठ्हिको भिक्खु (यह भिक्षु पाठ्हिका) इस भिक्षु को "पाठ्हिका, पाठकर्ता" नाम इसलिए मिला क्योंकि वह पाठकर्ता और ग्रंथ का पाठक था, पाठकर्ताओं के बीच (या उनमें) सरभञ्ञ (पाठक, भिक्षु) की तरह पढ़ने वाला; बुद्ध के विधान में, साथ ही विनय में, सभी पाठकों में; अग्गनिक्खित्टो (मुख्य भंडार) उस स्थान पर रखा गया, वह स्थान, उस भिक्षु द्वारा प्राप्त पद (या स्थिति); पत्थये (मैं आकांक्षा करता हूँ) मैंने इच्छा की (या कामना की); इस प्रकार, अर्थ है।

460. इसके बाद, आगे चलकर, पुण्य कमाने के अपने तरीके को दर्शाने के लिए, उन्होंने एक श्लोक कहा, जिसकी शुरुआत इस प्रकार है: इदं मे अमितं भोगम्: मे ए (मेरा); अमितं (अतुलनीय या असीमित) धन का वह ढेर जिसका कोई माप नहीं है; अक्खोभं (अविचलित) विचलित करने में असमर्थ; सागररूपमं (सागर के समान) सागर के समान; तेन भोगेन (उस धन से) बुद्ध का आश्रम (आराम) उसी धन से बनाया गया था; इस प्रकार, संबंध है।

474. भिक्षुओं की सभा में बैठे सर्वज्ञ बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए अपने द्वारा रचनात्मक रूप से निर्मित मठ को स्वीकार किया और उस आश्रम (आराम) के लाभों को बताते हुए ये शब्द कहे; इस प्रकार, संबंध है।

475. कैसे? यो सो (जो कोई भी हो) वह जो तपस्वी है, भिक्षुओं के लिए मठ का दानदाता है; सुमापितम् (सुगठित) बुद्ध का भिक्षुओं का मठ इतनी विधिपूर्वक तैयार किया गया है कि उसमें कक्ष, गुफा, पंडाल, महल, बरामदा, दीवार आदि शामिल हैं; पादासि (अर्पित, या दिया) प्रसन्न हृदय से इस प्रकार अर्पित किया गया है; तमहम कित्तयिसामि (मैं इसकी घोषणा करूँगा) मैं प्रकट करूँगा, मैं स्पष्ट करूँगा, कि वह तपस्वी; यही अर्थ है। सुनाथा मम भासतो (आप सभी मेरी बात सुनें) जब मैं आपसे बोलूँ तो कृपया मेरे शब्दों को सुनें; अपने कान लगाकर, बिना किसी मानसिक भ्रम के, उन्हें अपने मन में रखें; यही अर्थ है।

476. इसलिए, दान के रूप में दिए गए आश्रम (आराम) के परिणाम (या फल) को दर्शाने के लिए, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत "हत्थी अस रथा पत्ती" से होती है। यह आसानी से समझ में आ जाता है।

477. संघारामस्सिदम्फलम (यह भिक्षुओं के लिए मठ का परिणाम (या फल) है) यह भिक्षुओं के मठ संघाराम के दान का फल है, वांछनीय फल जिसे समृद्धि या गौरव के रूप में माना जाता है जिसका भविष्य में आनंद लिया जाना चाहिए; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

478. चालासीतिसहस्सानी (छियासी हजार) छह हजार अस्सी हजार; समालंकटा (सुशोभित) ठीक से सजाया और तैयार किया हुआ; नारीयो (स्त्रियाँ) महिलाएँ; विचित्रवत्था भरणा (विविध वस्त्र और आभूषण) अनेक आकृतियों के विविध वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित; आमत्तमणिकुंदला (मोती की बालियाँ) मोती और रत्नों से जड़ी बालियाँ; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

479. उन स्त्रियों की असाधारण सुंदरता का वर्णन करते हुए उन्होंने आलारपम्हः से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा: "जिन स्त्रियों की आँखें बड़ी और घनी होती हैं, रत्नों के समान, उनकी पलकें मधुमक्खियों के समान घनी होती हैं और उनकी आँखें सुंदर होती हैं; यही अर्थ है। "हसुला (मुस्कुराती हुई)" स्वाभाविक हँसी, सुंदर; यही अर्थ है। "सुसञ्ञा (अच्छी समझ) सुगठित शरीर की बारीकियाँ; "तनुमाज्झिमा" (पतला पेट) छोटा पेट; बाकी सब सरल है।"

484. तस्स धम्मेसु दयादो (उनके धम्म के उत्तराधिकारी) गौतम, जो धर्म में आध्यात्मिक हिस्सेदारी के प्राप्तकर्ता हैं; ब्रासो (गोद का पुत्र) जो गर्भ में जन्मा है, क्योंकि वह अरहंत पद में स्थापित हो गया है, और उसने महान मार्ग के प्रथम चरण के रूप में सही मार्ग के प्रथम

चरण के रूप में सभी प्रकार की बुराइयों को त्याग दिया है, और इसी प्रकार धर्म के उपदेशों को सुनकर, गले, तालू, होंठ आदि पाँच स्वर स्थानों पर प्रहार करके; वह व्यंजन में दस प्रकार की चतुराई से युक्त है; यही अर्थ है। धम्मनिम्मितो (धम्म द्वारा सृजित) वह धर्म और समानता से सुप्रसिद्ध होगा, बिना किसी शस्त्र और छुरी के; अतः, यही अर्थ है। उपालि नाम नामेन (उपालि के नाम से जाना जाने वाला), हालाँकि वह मंतानीपुत्त के नाम से, माता के नाम से जाना जाता है, क्योंकि वह अनुरुद्ध आदि के साथ गया और भिक्षु बन गया, इसलिए वह राजसी योद्धाओं के निकट लीन हो गया और उनके देह-मन से परिपूर्ण हो गया; इस प्रकार, गुरु का शिष्य, उपालि के नाम से जाना जाता है; हेस्सति स (होगा), हो जाएगा; अतः, यही अर्थ है।

485. Vinaye pāramim patvā (विनय में सिद्धि प्राप्त करने वाला) विनय पिटक में सर्वांगीण और चरम सीमा तक पहुँचने वाला, ṭhānāṭhāne ca kovido (उचित स्थान पर निपुण या नहीं) परिस्थिति में चतुर और बुद्धिमान या नहीं; यही अर्थ है। Jinasāsanam dhārento (विजयी के उपदेशों का पालन करने वाला) विजयी के तीन पिटकों को, उनके द्वारा दिए गए उपदेश को, झुकने, सुनने, सोचने, याद करने आदि जैसे कर्मों द्वारा स्मरण करने और मन में रखने वाला; यही अर्थ है। Viharissati'nāsavo (विषमुक्त अरहंत जीवित रहेगा) दोषरहित अरहंत, चारों आसनों (इरियापथ) से गिरे बिना अपने शरीर को घुमाकर धारण करेगा; यही अर्थ है।

487. अपारिमेय्युपादाय (असीमित होने के कारण) ने लाखों की संख्या में सृजन किया, आरंभ; पत्तेमि तव शासनम् (मैं आपके मार्गदर्शन की कामना करता हूँ) मैंने आपके मार्गदर्शन की कामना करते हुए कहा: "मैं गौतम बुद्ध के मार्गदर्शन में अनुशासन (विनयधारा) के नियमों का पालन करने वालों में श्रेष्ठ हो जाऊँ।" यही अर्थ है। सो मे अत्थो (मुझे उसकी आवश्यकता है) सर्वोच्च श्रेणी के माने जाने वाले उस लाभ को मैंने प्राप्त कर लिया है; यही अर्थ है। सब्बसमयोजनक्खयो (सांसारिक बंधनों का अंत) मैंने सभी सांसारिक बंधनों (संयोजन) का अंत प्राप्त कर लिया है; यही संबंध है; निर्वाण प्राप्त हो गया है; यही अर्थ है।

488. ताज्जितो (धमकाया गया) शाही दंड से पीड़ित; सूलावुतो (सूली पर चढ़ाया गया) खंभे पर स्थिर (या सूली पर चढ़ाया गया); पोसो (मनुष्य) खंभे पर लटका हुआ व्यक्ति; सातम (आनंद) मधुर सुख; अविन्दन्तो (न प्राप्त करना) अनुभव न करना; परिमुत्तिम वा (संपूर्ण मुक्ति) जैसा वह चाहता है, लेकिन सर्वांगीण मुक्ति; इस प्रकार, संबंध है।

489-90. महावीर (हे महान वीर!) हे वीरों में श्रेष्ठ! भवदण्डेन तज्जितो (जन्म के दंड से ग्रस्त) मैं, जन्म के दंड से पीड़ित होकर; कम्मसूलावुतो (कर्म के दायरे में स्थिर) अच्छे और बुरे कर्मों के दायरे में फंसा हुआ; सन्तो (होना) विद्यमान; पिपासावेदनाय (प्यास के दर्द से) प्यास से पीड़ित होकर; अत्तितो (पीड़ित) अभिभूत और दुखी होकर; भवे सातम् (अस्तित्व में सुख) पुनर्जन्मों के चक्रों में मधुर सुख (संसार) न विंदामि (मुझे नहीं मिलता) मुझे प्राप्त नहीं होता। परिमुत्तिम (सर्वांगीण मुक्ति): तीन ज्वालाओं से जलकर, जिन्हें या तो कामवासना, क्रोध और मोह की अग्नि, या फिर नरक, जगत की उत्पत्ति (कप्पुष्ठान) और दुःख की अग्नि के रूप में गिना जाता है, सर्वांगीण मुक्ति (या स्वतंत्रता) का उचित साधन प्राप्त होता है; गवेसामि (मैं खोजता हूँ): इसी प्रकार मैंने भी अपनी खोज की; यही संबंध है। जिस प्रकार राजा के आदेश से यहाँ से दंड भोगकर आने वाला व्यक्ति सर्वांगीण मुक्ति की खोज करता है, उसी प्रकार मैं भी, जीवन के दंड को प्राप्त करके, अपनी पूर्ण मुक्ति की खोज करता हूँ; यही संबंध है।

491.2. उदाहरण और दृष्टांत के माध्यम से पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दर्शाने के लिए उन्होंने यथाविसादो से शुरू होने वाले श्लोक कहे। वहाँ विषाद (अवसाद या उदासी) का अर्थ है, जो चारों ओर से विषैले साँपों द्वारा काटा गया हो; सर्पों द्वारा काटा गया हो; इस प्रकार, एक ऐसा व्यक्ति जो उदास है, उस और उसके जैसे विष से चारों ओर से पीड़ित है; उस विष के पूर्ण विनाश और उन्मूलन का साधन और मार्ग बनकर, अगदम् (उपचार) औषधि; गवेसय्या (खोज) करे; उसकी खोज में जाकर; विषघातकम् (विषनाशक), विष का नाश करने वाला; अगदम् (उपचार) औषधि; पस्सेय्या (देखना) पाए। विषम्हा (विष से) स्वयं अपनी खोज में प्राप्त औषधि को पीकर, परिमुत्तिया अस्स (सर्वांगीण रूप से मुक्त हो जाएगा) ठीक उसी प्रकार जैसे वह विष से सर्वांगीण मुक्ति के कारण प्रसन्न हो जाएगा; यही संबंध है।

493. तथाएवहम (मैं भी) जिस प्रकार विष से ग्रसित व्यक्ति विषनाशक औषधि पीने से प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी अज्ञान और भ्रम से ग्रस्त होकर, सद्धम्मागदमेसाहम (मैं अच्छे धर्म की औषधि खोजता हूँ), मैं अच्छे धर्म के रूप में गिनी जाने वाली औषधि की खोज करता रहा; यही अर्थ है।

494-5. धम्मगदं गवेसन्तो (धम्म की औषधि की खोज करते हुए), जन्म-जन्म के कष्टों (संसारदुक्ख) के विष के नाश के लिए धम्म की औषधि की खोज करते हुए; अद्दक्खिम सक्यसासनम् (मैंने शाक्यों की विधि देखी), मैंने गौतम की विधि (सासाब) देखी, जो शाक्य वंश से उत्पन्न हुए थे; यही अर्थ है। अग्गम सब्बोसधानम् तम् (यह सभी प्रकार की औषधियों में श्रेष्ठ है), शाक्यों की विधि (सासन) मानी जाने वाली धम्म की वह औषधि सभी प्रकार की औषधियों में श्रेष्ठ और सबसे उत्तम है; यही अर्थ है। सब्बसल्ल विनोदनम् (सभी प्रकार के कांटों को निकालने वाला); कामवासना आदि सभी कांटों को जड़ से उखाड़ने और शांत करने वाला; धम्मोषधम (आध्यात्मिक उपचार): धम्म नामक औषधि का सेवन करके; सब्बं विषम् (सारा विष), जन्म-जन्मों के चक्रों (संसारदुक्ख) के समस्त दुख-विष को; समुहनिम,

मैंने जड़ से उखाड़ फेंका है, मैंने विनाश किया है; यही संबंध है। अजरामरम (वृषण नहीं), और मृत्यु नहीं, दुख के विष को ठीक से निकाल कर, वृद्धावस्था रहित, वृद्धावस्था से मुक्त, मृत्यु रहित, मृत्यु से विमुख; सीतिभावम् (शीतलता की अवस्था): निर्वाण, जो शीतलता की अवस्था है, क्योंकि कामवासना आदि की ज्वाला को त्याग दिया है; फसयिम (मैंने स्पर्श किया) मैंने स्वयं को देखा; यही संबंध है।

496. फिर, दुराचार के निवारण का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए, उन्होंने यथा भूतत्तितो से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, यथा (जैसे) जिस भी प्रकार से; भूतत्तितो (भूत द्वारा सताया गया) एक शक्तिशाली राक्षस द्वारा सताया और उत्पीड़ित; पोसो (मनुष्य) एक व्यक्ति; भूतग्गहेना (भूत द्वारा पकड़ा गया) एक राक्षस द्वारा बंदी बनाया गया; पिलितो (उत्पीड़ित) व्यथित; भूतस्मा (भूत से) एक राक्षस के बंदी बनाए जाने से; परिमुक्ति (सर्वांगीण मुक्ति के लिए) वह अपनी मुक्ति के लिए किसी तांत्रिक (जादूगर) की शरण लेगा।

497. कोविदम् (विशेषज्ञ) जादू-टोने के उस विशेषज्ञ की तलाश में, वास्तव में, एक चतुर जादूगर को खोजने जैसा था; अतः, वह जादूगर, तस्स (उसकी) उस व्यक्ति के भीतर रहने की स्थिति को, जो एक राक्षस द्वारा जकड़ा हुआ था; विहने (मार डालना चाहिए) नष्ट कर देना चाहिए; समूलंच (जड़ सहित) जड़ के साथ, ऐसा करके कि भविष्य में राक्षस कोई उपद्रव (अनसेवक) न कर सके; विनाशये (नष्ट कर देना चाहिए) कुचल देना चाहिए (या मिटा देना चाहिए); इस प्रकार, संबंध है।

498. महावीर (महान वीर!) सबसे श्रेष्ठ वीर! तमग्गहेना (अंधकार से ग्रस्त) दुराचार के अंधकार में फँसे होने से पीड़ित, तत्'एव (इसी प्रकार) उसी तरह; तमतो (अंधकार से) दुराचार के अंधकार से; परिमुत्तियाद् (सर्वांगीण मुक्ति के लिए) बचने के उद्देश्य से, ज्ञानलोकम् (बुद्धि का प्रकाश, या ज्ञान) मैं ज्ञान के प्रकाश की खोज करूँगा; इस प्रकार, संबंध है।

499. किलेशतमाशोधनम् (दुराचार के अंधकार को दूर करने वाला) तब उस निरंतर समय में, मैंने शाक्यमुनि को देखा, जो दुराचार के अंधकार का नाश करने वाला है; यही अर्थ है; इसलिए (वह) शाक्यमुनि, मुझे (मेरा) मेरा; तमम् (अंधकार) गोधूलि, दुराचार का अंधकार, जादू-टोने के चिकित्सक के समान, भूतकम (ग्रस्त), किसी राक्षस द्वारा बंदी बनाए जाने के समान; विनोदेसी (हटा दिया गया) दूर कर दिया गया; यही संबंध है।

500. संसारसोतम् (संसार की धारा) मैंने इस प्रकार बार-बार जन्म लेने की नदी से बचकर उसे अच्छी तरह से नष्ट कर दिया; चिन्दिम (मैंने काटा) मैंने कटवाया; तन्हासोतम् (इच्छा की धारा) लालसा की महान बाढ़ को; निवारयिम (मैंने रोका) मैंने उसका नाश किया और पुनरावृत्ति को रोका; यही अर्थ है। भावम् उग्घातयिम सब्बम् (मैंने सभी प्रकार के जन्मों का नाश किया) मैंने इंद्रिय सुख आदि सभी नए जन्मों को जड़ से नष्ट कर दिया; यही अर्थ है; जड़ से नष्ट करते हुए, मैंने उसे जादू-टोना करने वाले चिकित्सक की तरह जड़ से ही नष्ट कर दिया।

501. इसके बाद, निर्वाण के सर्वांगीण अंत को इंगित करने (या उसका उदाहरण देने) के लिए, उन्होंने यथा से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ, वह पक्षी जो एक भारी, घृणित अजगर को खाता (या निगलता) है, वह गरुड़ (बड़ा भारी पक्षी) है; वह पक्षी जो किसी भी भारी प्राणी (या अजगर) को पकड़ता है; गरुड़-राजा; अपना भोजन, अपना चारागाह, लेटे हुए चलता है, किसी भी तरह से दूसरों के हाथ में नहीं जाता, इसलिए वह पन्नगो (सांप) है; लेटे हुए चलने वाला; अजगर को पकड़ने के लिए, जिससे उसे यह नाम मिला; ओपताति (गिरता है) नीचे गिरता है; समंता (चारों ओर से); योजनसतम (सौ योजन) सौ योजन के आकार का; महासरम (महान झील) विशाल महासागर है, विक्खोभेति (उथल-पुथल मचाता है) ठीक उसी तरह जैसे यह अपने पंखों की हवा से विशाल महासागर को हिला देता है; इस प्रकार, संबंध है।

502. अतः, आकाश में विचरण करने वाले गरुड़ पक्षी ने, जो आकाश में विचरण करने का आदी है, अजगर को पकड़ लिया, उसे सिर नीचे की ओर लटका दिया; उसे इधर-उधर विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न से परेशान करते हुए, दृढ़ता से पकड़कर, वहाँ से चला गया।

503. आदरणीय महोदय! हे महान वीर! जिस प्रकार गरुड़ पक्षी ने बलवान अजगर को पकड़कर उसे भगा दिया, उसी प्रकार मैं भी, जो असंक्षिप्त (निर्जन) हूँ, कारणों से रहित, उचित अभ्यास के मार्ग (या रूप) में खोज करते हुए, एक हजार पाँच सौ प्रकार के दोषों का निवारण करता हूँ; मैंने त्याग के द्वारा, स्वयं को विशिष्ट रूप से अलग करके शुद्धि की; यही संबंध है।

504. जिस प्रकार गरुड़ पक्षी सर्पों को पकड़कर भोजन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, उसी प्रकार मैं भी, धम्मवरम् (उत्कृष्ट धम्म) सबसे उत्कृष्ट सत्य, दिष्टो (देखकर) स्पष्ट रूप से देखकर, शांतिपादम् (शांत मार्ग) निर्वाण का यह मार्ग; अनुत्तरम् (अतुलनीय) सही श्रेष्ठ मार्गों और उनके फलों से, जो श्रेष्ठ नहीं हैं, आदाय (लेकर) मैं उसे ग्रहण करके और उसका उपयोग करके (या उसका सहारा लेकर) जीवन व्यतीत करता हूँ; यही संबंध है।

505. अब, निर्वाण प्राप्त करने की कठिनाई को दर्शाने के लिए, उन्होंने आसावती नाम लता से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, इस लता के लिए सभी देवताओं की इच्छा और झुकाव विद्यमान है, इस प्रकार, आसावती (इच्छा से युक्त) नाम से जानी जाने वाली लता

चित्तलता वन (चित्तलता उपवन में) उस वन उद्यान में जो अनेक प्रकार की लताओं (या लताओं) से झाड़ियों या जंगलों में बदल गया है; जातो (जन्म) उग आई हैं; यही अर्थ है। उस लता का तस्स (उसका) वस्सा सहस्सेन (हजार वर्षों के साथ) हजार वर्षाओं (या वर्षों) के बीतने के साथ; एकं फलं निब्बत्तते (फल को जन्म देता है) फल ग्रहण करता है (या फल धारण करता है)।

506. तामदेवा (दिव्य प्राणी) उस आसावती लता को; ताव दूरफलम् (इतने लंबे समय बाद फल देने वाला); देव (दिव्य प्राणी) तावती ऋषियों; पयिरुपासन्ति (चारों ओर से) ध्यान देते हैं; लतुत्तम (सर्वोत्तम लता) लताओं में वह सर्वोत्कृष्ट लता, जो आसावती के नाम से जानी जाती है; इस प्रकार, वह देवों को प्रिय थी; इस प्रकार, संबंध है।

507. सतसहस्सुपादाय (एक लाख को करीब से लेते हुए) एक लाख वर्षों को आरंभिक बनाकर; ताहम परिकारे मुनि (मैं उस ऋषि की सर्वव्यापी सेवा करता हूँ) मोन को ज्ञान कहा जाता है; हे पूज्य ऋषि, ज्ञान के स्वामी, सर्वज्ञ! मैं उस महिमावान के सर्वव्यापी रूप से निकट आकर उनकी सेवा करता हूँ; सयम पातं नमस्सामि (मैं सुबह और शाम को उनकी पूजा करता हूँ) मैं प्रतिदिन सुबह और शाम को दो बार प्रणाम करता हूँ और उनकी आराधना करता हूँ; यथा देवा (जैसे देवता), जैसे तावतींशा के दिव्य प्राणी दिन-रात आसावती लता की सर्वव्यापी रूप से देखभाल करते हैं; इस प्रकार, संबंध है।

508. अवज्झा परिचर्या (सर्वांगीण साधना व्यर्थ नहीं होती) क्योंकि बुद्ध के दर्शन से निर्वाण प्राप्त हुआ, अतः बुद्ध की परिक्रमा करना (या उनकी सेवा करना) और उचित धार्मिक पालन करना व्यर्थ नहीं होता, न ही निष्फल (या निरर्थक) होता है, नमस्सना (प्रणाम करना) भी निष्फल (अमोघो) नहीं होता। इसी प्रकार, वास्तव में, दूर से आकर (दूर से) जन्म-जन्मों की यात्रा से आकर; सन्त (होना) विद्यमान; खणोयम् (यह क्षण) बुद्ध के प्रकट होने का यह क्षण; न विरोधयि (समाप्त नहीं हुआ) आगे नहीं बढ़ा; मुझसे आगे नहीं बढ़ा; यही अर्थ है।

509. विचिनानितो (चयन) जांच-परख करते हुए, मैं जिसने बुद्ध के दर्शन के कारण निर्वाण प्राप्त कर लिया है, भविष्य में निकटवर्ती कारण स्वरूप अस्तित्व में अपनी धारणा की जांच-परख करते हुए, मैं उसे नहीं देखता; यही संबंध है। निरुपाधि (अस्तित्व का कोई आधार नहीं), स्कंध और किलेस जैसे अस्तित्व के आधारों से रहित, विप्पमुत्तो (स्पष्ट रूप से मुक्त) सभी प्रकार के दोषों से मुक्त हो जाता हूँ; उपसन्तो (शांत) मैं दोष (किलेस) की प्रज्वलित ऊष्मा के अभाव में शांत मन से विचरण करता हूँ; यही संबंध है।

510. फिर से, बुद्ध के दर्शन का उदाहरण देते हुए, उन्होंने यथा पि पदुमम् नाम से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा: सूर्यरामसेन (सूर्य की किरणों से) जैसे कमल, अर्थात् सूर्य की किरणों के प्रवेश से, फूल खिलता है; महावीर (हे महान वीर!) परम श्रेष्ठ वीर! ठीक उसी प्रकार, मैं बुद्ध द्वारा प्रचारित सत्य (धम्म) की किरणों की शक्ति से बुद्धरामसेन (बुद्ध की किरणों के माध्यम से) फूल के रूप में खिल उठा हूँ; यही अर्थ है।

511-12. बुद्ध के दर्शन से निर्वाण की कल्पना को प्रकाश में लाते हुए, उन्होंने यथा बलका से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। हे बलकायोनिंबी (सारस के गर्भ में) सारस के जन्म में; सदा (हमेशा) हर समय; पुमा (पुरुष) ऐसा कोई पुरुष नहीं है; जब पुरुष नहीं है तो सारसों का गर्भ धारण कैसे होता है, यदि ऐसा है तो? गज्जमानेसु (गरज में) जब वर्षा के बादल ध्वनि करते हैं, गरजते हुए वर्षा के बादल को सुनकर; ता (वे) मादा सारस, सदा (हमेशा) हर समय; गभम गंहंति (गर्भधारण प्राप्त करना) अंडे देती हैं; इस प्रकार, अर्थ है। याव (जब तक) किसी भी समय के लिए; मेघोनगज्जति (वर्षा का बादल गरजता नहीं है) वर्षा का बादल ध्वनि नहीं करता; इतने लंबे समय तक, इतने समय के लिए; लंबे समय तक; गर्भ में अंडा धारण करना। जब भी; जब भी वर्षा होती है; गरजने के बाद वर्षा का बादल बरसता है और वर्षा होती है; तब, उस समय, गर्भ से; अंडा गिर जाता है।

513. इसके बाद, आगे बढ़ते हुए, उदाहरण के फलस्वरूप सफलता (या आशीर्वाद) की ओर इशारा करते हुए, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया जो पदुमुत्तरा बुद्धस्स धम्ममेघेना (धम्म के वर्षा-बादल के साथ) से शुरू होता है; वर्षा-बादल के माध्यम से, जिसे बुद्ध पदुमुत्तरा के पूर्ण अर्थ के साथ शिक्षण शब्दावली माना जाता है; गज्जतो (गर्जन का) गर्जन करते हुए, उपदेश देते हुए; धम्ममेघस्स सद्देना (धम्म के वर्षा-बादल की ध्वनि के साथ) ध्वनि के प्रवाह के साथ, धम्मगब्बम (सत्य की गर्भाधान) में, उस समय, दान, नैतिक उपदेश आदि जैसे पुण्य कर्मों के संचय से गर्भवती कोख, पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति की ओर अग्रसर; अगन्हिम (मैंने लिया) इसी प्रकार; इस प्रकार, संबंध है।

514. सतसहस्सुपादात (एक लाख को निकट से धारण करके) एक लाख युगों का सृजन करते हुए, आरंभ; पुण्यगब्बम् (पुण्य का गर्भ) दान, नैतिक उपदेश आदि जैसे अच्छे कर्मों का संचय; धारेमि (मैं धारण करता हूँ) मैं पूरा करता हूँ। जब तक धम्म मेघो (आध्यात्मिक वर्षा-बादल) धम्म का उपदेश; न गज्जति (गर्जन नहीं करता) बुद्ध द्वारा उपदेशित नहीं किया जाता; तब तक, मैं, भरतो (बोझ से) बार-बार जन्मों के चक्र (संसार) के बोझिल गर्भ-भार से न पामुचोआमि (मैं मुक्त नहीं होता) मैं स्वयं को मुक्त नहीं करता, मैं अलग नहीं होता; इस प्रकार, संबंध है।

515. शाक्यमुनि (हे शाक्य ऋषि) आदरणीय महोदय! हे शाक्य वंश के मूल! यदा (जब) उस समय, महान राजा सुद्धोदन, आपके पिता, के समय, रम्मे (सुखद में) रम्मे (आनंद में); कपिलवत्थवे (कपिलवत्थु में) कपिलवत्थु नामक नगर में, गज्जति (गरज) आपने धर्म के वर्षा-बादल की घोषणा की; तब, मैं, भरतो (बोझ से) जन्म-जन्मों के गर्भ-भार (संसार) से; परिमुच्चिम् (मैं चारों ओर से मुक्त हो गया), मैं मुक्त हो गया; इस प्रकार, संबंध है।
516. इसके बाद, आगे चलकर, उन्होंने स्वयं द्वारा प्राप्त किए गए श्रेष्ठ मार्ग और फल (मग्गफल) को दर्शाते हुए, 'सुञ्ञतम' से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, स्वयं के अभाव और स्वयं से संबंधित होने आदि के कारण, 'सुञ्ञतम' (शून्यता) से स्पष्ट मुक्ति मिली; कामवासना के आत्म-संकल्प के अभाव के कारण, 'अपाणिहितम' (अनिर्देशित) से भी स्पष्ट मुक्ति मिली; मैंने प्रभावी रूप से उस तक पहुँचकर विकास किया; यही संबंध है। 'चतुरो च फले सब्बे' (चारों फल भी) मैंने भिक्षुत्व के चारों फलों की कल्पना की; यही अर्थ है। 'धम्मेवं विजतायम अहम्' (मैंने इस प्रकार धम्म के उलझावों को सुलझाया) इस प्रकार, मैंने संपूर्ण धम्म में उलझे हुए जंगल को सुलझाया और स्पष्ट रूप से नष्ट किया; यही अर्थ है।
पाठ के दूसरे भाग पर टिप्पणी समाप्त हो गई है।
517. इसके बाद, आगे चलकर, स्वयं द्वारा प्राप्त विशिष्टता को दर्शाते हुए, उन्होंने 'अपराइमेयुपादाय' से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, 'अपराइमेयु (अमापनीय)' का अर्थ है वह जिसे मापा (या तुलना) नहीं किया जा सकता; वर्षों की संख्या के रूप में मापना और गणना करना असंभव है। उपाध्याय (के अनुसार या उसके संदर्भ में) आरंभ करते हुए, उस असीम युग (कप्पा) के संदर्भ में (या उसके अनुसार) तव शासनम् (आपकी व्यवस्था) के लिए मैंने इस प्रकार प्रार्थना की: "अभी आने वाले समय में, प्रतापी गौतम की व्यवस्था के दौरान, मैं अनुशासनात्मक नियमों (विनयधर) के प्रमुख धारक बनूँ।" पत्थेमि वर्तमान काल का शब्द है, जिसका अर्थ भूतकाल पत्थेसिम (मैंने प्रार्थना की) है, इस प्रकार इसका अर्थ है। इसलिए मे अत्थो (वह मेरी इच्छा थी) उस इच्छा को आकांक्षा (या प्रार्थना) के रूप में गिना गया; मे (मेरा) मेरे द्वारा; अनुप्पत्तो (तदनुसार प्राप्त) मेरे द्वारा पूर्ण किया गया; इस प्रकार इसका अर्थ है। शांतिपदम् (शांतिपूर्ण मार्ग) निर्वाण तदनुसार प्राप्त और संपन्न किया गया है; इस प्रकार इसका संबंध है।
518. विनय में, पारमिम् पट्टो (पूर्णता प्राप्त की) कि मैंने अपनी उपलब्धि के कारण विनय पिटक में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया; यथा पि पाथिको इसि (जैसे ऋषि प्रसिद्ध हुए) जैसे प्रतापी पद्ममुत्तरा के उपदेश में अनुशासनात्मक नियमों के धारकों (विनयधर) में श्रेष्ठ तपस्वी भिक्षु लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुए, मैं भी उसी प्रकार प्रसिद्ध हुआ; यही अर्थ है। न मे समासमो अत्थि (मेरे समान कोई नहीं) विनय को स्मरण करने में मेरे समान और एकरूप कोई नहीं है; यही अर्थ है; शासनम् (उपदेश) उपदेश और नसीहत के रूप में माना जाने वाला उपदेश (शासन); धारेमि (मैं धारण करता हूँ) मैं उसका पालन करता हूँ; यही अर्थ है।
519. एक बार फिर, अपनी विशिष्टता दर्शाते हुए, उन्होंने विनये खंडके च पि से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, विनये (विनय में) दोनों विभंगों में, विश्लेषण (या विभाजन) करता है; खंडके (खंडकों में) शरीर, महावग्ग (प्रमुख समूह) और चूलवग्ग (लघु समूह) में; तिकच्छे च (तीन गुना में भी) संघदिशेष अपराधों के त्रिक और पाचित्तिय अपराधों के त्रिक आदि में; पंचमे (पाँचवें में) विनय के पाँचवें खंड में, जिसे परिवार पाठ के नाम से जाना जाता है; एत्था (यहाँ) इस संपूर्ण विनय पितक में; विमति (संदेह) मेरा संदेह; नत्थि (कोई नहीं है) अस्तित्व में नहीं है। अक्खरेही (अक्षरों के साथ) वे अक्षर जो स्वर अ से शुरू होते हैं, विनय पितका में शामिल हैं; ब्यांजने (व्यंजन)) या व्यंजन का से शुरू होने वाले व्यंजनों में, विमति (संदेह) मुझमें कोई संदेह नहीं है; इस प्रकार, संबंध है।
520. निग'गहे पाटिकम्मे च (निंदा या दोषारोपण करने के साथ-साथ प्रतिफल देने में) बुरे भिक्षुओं को दोषारोपण या नियंत्रित करना और पाप करने वाले भिक्षुओं को विश्राम अवधि, परीक्षा आदि के रूप में निवारण या प्रायश्चित करना; थानात्हानेच (उचित और अनुचित स्थान पर) अच्छी मुद्रा में; कोविदो (कुशल), चतुर; इस प्रकार, अर्थ है। ओसाराने (पुनःस्थापन) उचित शांति या उपयुक्त विश्राम के माध्यम से, निंदा आदि जैसे कार्यों द्वारा, पुनःस्थापन और प्रवेश की अनुमति देते समय; वुत्थापाने (उठाने में) पाप से उठाने और निष्पाप बनाने में चतुर; इस प्रकार, संबंध है। सब्बथा पारमिं गतो (सर्वत्र पूर्णता प्राप्त कर चुके) विनय से संबंधित सभी प्रक्रियाओं में पूर्ण लक्ष्य प्राप्त कर चुके, निपुण और चतुर; अतः, यही अर्थ है।
521. Vinaya khandhake cā pi (in the vinaya and khandhaka also) in the afore said in the vinaya and as in khandhaka; padam (शब्द) सूत्र शब्द; nikkhipitvā (गिराकर) रखा या जमा किया; ubhato vinivethetvā (दोनों से खोलकर) vinaya और khandhaka दोनों के दृष्टिकोण से, उत्पन्न किया और सुलझाया और विधि लाई; rasato (सार से) जो किया जाना चाहिए; osareyyam (नीचे जाएगा) मैं पुनर्स्थापना करता हूँ।
522. निरुत्तिया च कुसालो (शब्द-व्युत्पत्ति में निपुण) मैं "वृक्ष, वस्त्र, घड़ा, माला, मन" आदि जैसे शब्दों में निपुण हूँ। अत्थानात्थे च कोविदो (लाभ और हानि में निपुण) लाभ बढ़ाने और हानि घटाने में निपुण और कुशल; अनञ्ञातम् मया नत्थि (मेरे लिए कुछ भी

अज्ञात नहीं) ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे द्वारा ज्ञात, बोधित या स्पष्ट रूप से देखा न गया हो; यही अर्थ है। एकग्ग सत्तु सासाने (गुरु के विधान में एकमात्र प्रमुख) अनुशासनात्मक नियमों (विनयधारा) में निपुण लोगों में मैं ही सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और सबसे उत्कृष्ट हूँ; यही अर्थ है।

523. रूपाद्धे अहम् अज्जा (वर्तमान में मैं रूप के दर्शन में हूं) वर्तमान समय में, शाक्यपुत्तस्स सासाने (शाक्य पुत्र के युग में) महिमावान के उपदेश के युग में, मैं रूप के दर्शन में हूं, रूप के दर्शन में, अनुशासन (विनय) के संबंध में निर्णय लेते हुए; सब्बम् कंखम् (सभी संदेह) संपूर्ण संदेह; विनोदेमि (मैं दूर करता हूं) मैं विनाश करता हूं; इस प्रकार संबंध है। चिंदामि सब्बसमसेयम (मैं सभी संदेहों को काटता हूं) मैं उन सोलह प्रकार के संदेहों को काटता हूं, समाप्त करता हूं और पूर्णतः मिटा देता हूं जो इन तीन कालखंडों के संबंध में उत्पन्न हुए हैं जैसे: "क्या मैं वास्तव में अतीत में था?" इत्यादि; इस प्रकार अर्थ है।

524. पदम् अनुपदंचापि (शब्द और अनुवर्ती शब्द) यानी पहले आने वाला शब्द, बाद में आने वाला शब्द और अन्य शब्द; अक्खरम (वर्णमाला) एक के बाद एक वर्णमाला। ब्यांजनम् (व्यंजन) यानी दस प्रकार के व्यंजन जैसे मृदु, कठोर आदि; निदाने (प्रस्तावना में) यानी ऐसी प्रस्तावना में जो इस प्रकार शुरू होती है: उस समय, इत्यादि; परियोसाने (अंत में) यानी उपसंहार में; सब्बत्थ कोविदो (हर जगह कुशल) यानी सभी छह स्थानों में निपुण; इस प्रकार, अर्थ है।

525. इसके बाद, आगे चलकर, परमेश्वर के गुणों को प्रकट करने के लिए, उन्होंने राजा बलवा से शुरू होने वाला यह श्लोक कहा। वहाँ बलवा (शक्तिशाली) एक राजा के समान है जो शारीरिक शक्ति या सेना से संपन्न है; परम (अन्य) अन्य शत्रु राजाओं या प्रतिद्वंद्वी राजाओं की सेना; निग्गान्हित्वा (पकड़ लिया) बिना किसी अवशेष के बंदी बना लिया, या उन्हें भगा दिया; ताप (गर्म कर देगा) जला देगा, उन्हें गर्म कर देगा, उन्हें दुखी कर देगा; विजिनित्वाना संगामम् (युद्ध जीत लिया) युद्धक्षेत्र में, जहाँ अन्य लोग एकत्रित हुए थे, युद्ध जीत लिया; सेना, विशिष्ट रूप से जीत लिया, विजय प्राप्त कर ली; नगरम तत्था मापे (वह वहाँ एक शहर बनाएगा) वह विजय स्थल पर बने नए शहर में महल, बरामदा आदि जैसी विशेषताओं से सुसज्जित मेरा निवास स्थान बनाएगा; यही अर्थ है।

526. पाकारं परिखांचापि (दीवार और खाई भी): निर्मित नगर में वह ईंटों और चमकदार सफेद चूने के गारे से बनी एक दीवार बनवाएगा; इस प्रकार संबंध स्थापित होता है। परिखांचापि (और खाई भी): वह मिट्टी की खाई, पानी की खाई और सूखी खाई भी बनवाएगा; एसिकं द्वारकोष्ठकम् (स्तंभ या खंभा और द्वार): वह चार मंजिला आदि द्वार, द्वारों पर बड़े-बड़े गढ़, नगर को सुंदर बनाने के उद्देश्य से ऊंचे खंभे और स्तंभ बनवाएगा। अत्ताहके च विविधे (सभी प्रकार के अत्यंत ऊंचे निगरानी बुर्ज): चार मंजिला आदि; कारये (वह बनवाएगा): वह उन्हें बनवाएगा; इस प्रकार संबंध स्थापित होता है।

527. सिंहाटकम् चच्चातंच (चौराहे और भीतरी गलियाँ): वह न केवल नगर-दीवार आदि का निर्माण करवाएगा, बल्कि ऐसे चौराहे भी बनवाएगा जिनमें चार मुख्य सड़कें आपस में जुड़ती हों और उनके भीतर छोटी सड़कें और गलियाँ हों; यही संबंध है। सुविभट्टंतरापणम् (सुव्यवस्थित घर-दुकानें या बाजार): वह विभिन्न भागों से हिस्सा लेकर हजारों बाजारों का सुव्यवस्थित निर्माण करवाएगा; यही अर्थ है। कारय्य सभाम् तत्था (वहाँ वह एक हॉल बनवाएगा): उस निर्मित नगर में, एक सभा भवन, कानूनी विवादों के लिए एक हॉल; अत्थानत्था विनिच्चयम् (लाभ या हानि के संबंध में निर्णय): वह समृद्धि और विपत्ति पर निर्णय लेने के उद्देश्य से एक निर्णय-कक्ष बनवाएगा; यही संबंध है।

528. निग्घतत्तम ऐमत्तानम् (शत्रुता का वध करने के लिए) शत्रु राजा को विधिवत खदेड़ने के उद्देश्य से; चिद्दचिद्दंच जैनितुम (छील या खुलापन जानने के लिए) दोषों या अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए; बलकायस्स रक्खाय (बलवान शरीर की रक्षा करने के लिए) सेना के संग्रह, सशस्त्र बल के समूह, जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक शामिल हैं, की देखभाल करने के लिए; अतः (वह) राजा, नगर का स्वामी, सेनापच्चम (सेना का पुत्र) मुख्य मंत्री, सेना का नेता, सेना का स्वामी; तपेति (स्थान) पद या स्थिति के भीतर स्थापित करना; इस प्रकार, अर्थ है।

529. Ārakkhatthāya bhaṇḍassa (खजाने की रक्षा के लिए) सोने, चांदी, मोती, रत्न आदि जैसे शाही खजाने की रक्षा के लिए, चारों ओर से सुरक्षा के उद्देश्य से; me (मेरा) मेरा; bhaṇḍam mā vinassi (खजाने को नष्ट न होने दें) nidhānakusalam (खजाने को दफनाने में चतुर) देखभाल करने में चतुर और कुशल; naram (मनुष्य) व्यक्ति; bhaṇḍarakkham (खजाने की रक्षा) उस राजा ने खजाने के रक्षक को खजाने में नियुक्त किया; इस प्रकार, संबंध है।

530. ममत्तो होति यो राञ्ञो (जो राजा के प्रति आत्मप्रेम से ग्रस्त हो जाता है) वह बुद्धिमान व्यक्ति जो आत्मप्रेम से ग्रस्त होकर एक तरफा हो जाता है; वुद्धिम यस्सा च इच्छति (जिसकी उन्नति की कामना करता है) जो अपने राजा की बढ़ती समृद्धि की कामना करता है; तस्सा (उसका) वह बुद्धिमान व्यक्ति जो प्रसन्न हो गया है; अधिकरणम् (विवाद) ने निर्णय लेने के लिए प्रधान स्वामी का पद या ओहदा दिया; मित्तस्सा (मित्र का) मित्रता की ओर उचित रूप से आगे बढ़ना; इस प्रकार, संबंध है।

531. उप्पातसु (शकुनों में) जैसे टूटते तारे, विभिन्न दिशाओं में आग का जलना आदि; निमित्तसु (संकेतों में) जैसे चूहों द्वारा काटे जाने और शरीर के टुकड़े हो जाने जैसे संकेतों में, उन ग्रंथों में जो पाठक को इस प्रकार बताते हैं: "यह संकेत सुखद है, यह संकेत अप्रिय है"; लक्खणेसु च (हस्तरेखा शास्त्र में भी) उन ग्रंथों में जो सीखने वाले को पुरुषों और महिलाओं की हथेलियों और तलवों पर रेखाओं और अन्य संकेतों के बारे में बताते हैं; कोविदम् (विशेषज्ञ) चतुर; अज्जायाकम (ब्राह्मण ग्रंथों का विद्वान) अनेक शिष्यों को व्याकरणिक व्याख्या सिखाने वाला शिक्षक; मंतधरम् (मंत्रों या ताबीजों का वाहक) राजा पोरोहित्ट (निजी पुरोहित के पद या श्रेणी में) उस बुद्धिमान व्यक्ति को, जो तीन वेदों के समान माने जाने वाले मंत्रों को अपने स्मृति में रखता है, अपने निजी पुरोहित के उच्च पद पर नियुक्त करता है।

532. एतेहंगेहि सम्पन्नो (इन विशेषताओं से युक्त) वह राजा जो इन विशेषताओं से युक्त है, इन विशेषताओं से विस्तृत रूप से युक्त हो गया है; पावुच्चति (कहा जाता है), कहा जाता है (या कहा जाता है) कि: खत्तिया, राजसी योद्धा; इस प्रकार, संबंध है। सदा रक्खन्ति राजानम् (वे राजा की सदा रक्षा करते हैं) सेना के ये सेनापति और मंत्री, हर समय निरंतर उस राजा की रक्षा और देखभाल करते हैं (या उसकी रक्षा करते हैं)। कैसे? चक्कवाको व दुक्खितम् (दुखी की रक्षा करने वाले लाल हंस की तरह), संकट में अपने रिश्तेदार की देखभाल करने वाले लाल हंस पक्षी के समान; इस प्रकार, अर्थ है।

533. हे महान वीर! हे परम श्रेष्ठ वीर! जिस प्रकार वह राजा, जो सेनापति आदि गुणों से संपन्न होकर नगरद्वार बंद करके उचित रूप से जीवन व्यतीत करता है, उसी प्रकार तुम भी शत्रुओं को मार गिराकर, उस वीर योद्धा के समान हो जिसका शत्रु पराजित हुआ हो; सद्दकस लोकस (स्वर्गीय जगत सहित लोकस) जो दिव्य प्राणियों के साथ मिलकर बनता है; धर्म और समानता से परिपूर्ण धम्मराया (सत्य का राजा), जो दस सिद्धियों से युक्त धर्म की सर्वांगीण पूर्ति के कारण राजा बना है, वह "धर्मराज, धर्मात्मा राजा" है; पवुच्चति (कहा जाता है) इस प्रकार कहा गया है; यही संबंध है।

534. सत्य (धम्म) के राजा होकर तित्थिये निहारित्वाना (विधर्मियों को उखाड़ फेंककर), विधर्मियों के पूरे समूह को उखाड़ फेंककर, उन्हें बिना किसी अवशेष के ले जाकर, उन्हें अनुयायियों से रहित कर दिया; ससेनकम मारंचापि (मार को भी उसकी सेना सहित), वासवत्ती के दिव्य जगत के मार को भी उसकी सेना सहित उखाड़ फेंककर; तमनधकारम्, अंधा कर देने वाला अंधकार, विधमित्वा (दूर करके), अंधकार के रूप में माने जाने वाले भ्रम के अंधकार को दूर और कुचल कर; धम्मनगरम (आध्यात्मिक शहर) शहर, जिसे या तो सैंतीस बोधिपक्खिया धम्म के रूप में गिना जाता है, या खंड, आयतन, धातु, पशिक्का समुप्पदा, बाला, बोज्झांगा, गहन पद्धति (गंभीरण्य) और सर्वांगीण रूप से स्थापित और स्थापित किया गया है; इस प्रकार, अर्थ है.

535. सीलम्पाकारकम तत्था (वहाँ नैतिक उपदेशों की दीवार है) उस स्थापित आध्यात्मिक नगर में, चार सर्वव्यापी शुद्ध नैतिक उपदेशों की दीवार, ज्ञानम ते द्वारकोष्ठकम (आपका ज्ञान ही द्वार है) आपका सर्वज्ञ ज्ञान, आपकी इच्छाओं और प्रवृत्तियों का ज्ञान (आसयनुसय), आपका भविष्य का ज्ञान, आपका अतीत का ज्ञान, आदि, क्रमानुसार, ज्ञान ही नगर का द्वार है; यही अर्थ है। सद्धा ते एसिका वीरा (हे महान वीर, आपकी आस्था (सद्धा) ही स्तंभ है) आदरणीय महोदय! हे दृढ़ प्रयास! बुद्ध दीपांकर के चरणों के आधार से शुरू होकर, सर्वज्ञ ज्ञान से बनी आपकी दृढ़ आस्था ही अलंकरणों से सुशोभित स्तंभ है; यही अर्थ है। द्वारपालो च सांवरो (और द्वारपाल तुम्हारा आत्मसंयम है) इंद्रियों के छह द्वारों पर तुम्हारा आत्मसंयम ही सुरक्षा और रोकथाम का रक्षक है, द्वारपाल है, द्वार का संरक्षक है; यही अर्थ है।

536. सतिपत्थानामात्तला (मानसिक जागरूकता एक चौकी के समान) आपकी चार प्रकार की मानसिक जागरूकता (सतिपत्थाना) एक चौकी के समान है, चाहे वह खुली हो या छत से ढकी हो; पन्ना ते चच्चरम् मुने (हे ऋषि! आपका ज्ञान (या बुद्धि) सड़कों का मिलन है) हे ज्ञान के स्वामी, आदरणीय ऋषि! चमत्कारों और अन्य अनेक प्रकार के ज्ञान के समान आपका ज्ञान नगर की सड़कें, गलियाँ और चौराहे हैं जहाँ अनेक सड़कें मिलती हैं; यही अर्थ है। इद्धिपादं च सिंहातम (जादुई शक्ति का आधार चार चौराहे) आपकी जादुई शक्तियों के चार आधार, जिन्हें इच्छा, परिश्रम, मन और परीक्षा (विमांस) के रूप में गिना जाता है, चार सड़कों का संगम हैं; धम्म-वीथी-सुमापितम् (अच्छी तरह से निर्मित आध्यात्मिक सड़क) वह आध्यात्मिक नगर तैयार किया गया है, अच्छी तरह से निर्मित है जिसमें सैंतीस बोधिपक्खिया धम्म के रूप में गिनी जाने वाली सड़कें हैं; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

537. सुत्तंतम अभिधम्मन् च, सुत्त और अभिधम्म, यहां आपके आध्यात्मिक शहर में सुत्त, अभिधम्म और विनय हैं; केवलम (संपूर्ण) *****(पृ.533) बुद्ध के ऐसे संपूर्ण नौ अंग जो सुत्त, गेय आदि के रूप में उपदेश देते हैं; धम्मसब्भा (कानून का औपचारिक हॉल) कानूनी विवादों का हॉल; इस प्रकार, अर्थ है.

538. शून्य में उचित रूप से रहना (अनित्य और निराकार), अनात्म के उचित स्पष्ट ज्ञान से प्राप्त होता है, और अनित्यता के उचित स्पष्ट ज्ञान से प्राप्त निराकार में रहना। विहारंचप्पनिहितम् (अविवाहित रहना), दुःख (दुक्खा) के उचित स्पष्ट ज्ञान से प्राप्त होता है, और

दृढ़ता में रहना (स्थिरता), भिक्षुत्व के फल माने जाने वाले दृढ़ निश्चय में रहना, अविचल और शांत रहना; निरोधो च (निरस्त होना), निर्वाण), समस्त दुःख (दुक्खा) का निवारण। एसा धम्मकुटि तव (यह तुम्हारा धम्म कक्ष है), यह तुम्हारा निवास स्थान है, तुम्हारा धम्म-कक्ष है; यही इसका अर्थ है।

539. पाञ्ञाय अग्गो निक्खित्तो (ज्ञान में सर्वोच्च स्थान पर प्रविष्ट) बुद्धि के माध्यम से ज्ञानियों में श्रेष्ठ; इस प्रकार, थेरा को महिमावान द्वारा स्थापित और स्थापित किया गया; पाणिभाणे च (तत्काल उत्तर में) ज्ञान द्वारा किए जाने वाले कार्यों में, या उपयुक्त और मुक्त तत्काल उत्तर में; कोविदो (विशेषज्ञ) निपुण; नामेन सारिपुत्तो (सारिपुत्त, नाम से) सुप्रसिद्ध; तव (आपका) आपका धर्म का सेनापति, क्योंकि उसने आपके द्वारा प्रचारित धर्म के तीन पिटक संग्रह को अपनी स्मृति में रखा है, मुख्य स्वामी बनकर, सेना के अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है; इस प्रकार, अर्थ है।

540. हे पूज्य ऋषि! जन्म और मृत्यु में निपुण (कटोपपाताकुसालो)! जन्म और मृत्यु में निपुण (कटोपपाते); इस प्रकार के जादूई शक्तियों में पूर्ण निपुण (इद्धिया पारमिं गतो); जैसा कि आरंभ में कहा गया है: "एक से अनेक रूप धारण करके, अनेक रूप धारण करके, एक रूप धारण करके" और इसी प्रकार, कोलिता नाम से विख्यात थेरा मोग्गल्लाना; यही संबंध है।

541. पोराणक वंशधरो (प्राचीन वंश के वाहक) आदरणीय ऋषि! ज्ञान के स्वामी! प्राचीन वंश के वाहक, परंपरा के निर्माता (परमपरम) उग्गतेजो (शक्तिशाली) स्पष्ट शक्ति; दुरासादो (हमला करना मुश्किल) हमला करना और प्रहार करना असंभव और कष्टदायी होगा; यही अर्थ है। धुतवादिगुणेनग्गो (तपस्या और भक्ति के गुण में सर्वोच्च) थेरा महाकस्सपा, तपस्या के अभ्यासों में सर्वश्रेष्ठ और प्रमुख, केवल तीन वस्त्र धारण करने से शुरू होने वाली तेरह कठोर प्रथाओं के गुण; तव (तेरा) आपका; अक्खादस्सो, शब्दावली बनाने में प्रमुख व्यक्ति; यही अर्थ है।

542. बहुस्सुतो धम्मधारो (धर्म के स्मरण में श्रेष्ठ विद्वान) आदरणीय ऋषि! चौरासी हजार धर्मों के प्रचुर संग्रह को सुनने के कारण, और प्रतापी बुद्ध और भिक्षुओं के पुरोहितों से सीखने के कारण, सर्वथा महत्वपूर्ण धर्मों को स्मरण करने के कारण, छह लाख स्मरणित धर्मों की अनेक गणनाओं के साथ-साथ मानसिक जागरूकता (सतिपत्थान) आदि को धारण करने के कारण, धर्म के वाहक आनंद; सब्बपाठी च सासने (धर्मशास्त्र में सभी को पढ़ें) बुद्ध के धर्मशास्त्र में, भिक्षुओं में श्रेष्ठ और प्रमुख, थेरा आनंद, जो सभी उपदेशों को पढ़ते और दोहराते हैं; अतः, उन्हें सभापथी, सभी का अध्ययन करने वाला, धम्मरक्खो तव (आपके धर्म का रक्षक; संरक्षक) तीन पिटकों के धर्म के रूप में जाने जाने वाले आपके धर्म के खजाने का रक्षक और संरक्षक, धर्म के खजाने का न्यासी कहा जाता है; यही अर्थ है।

543. एते सब्बीटिक्कम्मा, इन सबसे परे जाकर, भगवान (महिमावान) सर्वज्ञ बुद्ध हैं, जिन्होंने सारिपुत्त आदि जैसे महान शक्ति वाले थेरों को भी त्याग दिया; पामेसि (मापा) ने केवल मेरा ही मापन किया, मानसिक ध्यान दिया; यही अर्थ है। विनिच्चयम् मे पादासि (मुझे निर्णय दिया) महिमावान पादासि (मुझे विनय में निर्णय दिया) ने विनय के ज्ञाता बुद्धिमान भिक्षुओं द्वारा दोषों की जाँच के लिए निर्देशित या उपदेशित किया और प्रकट किया, यहाँ तक कि मुझे ही इसका उत्तरदायित्व सौंपा।

544. यो कोचि विनये पण्हम (जो कोई विनय में प्रश्न पूछता है) जो कोई भिक्षु, बुद्ध का शिष्य, मुझसे विनय पर आधारित कोई प्रश्न पूछता है; तत्था (वहाँ) उसके द्वारा पूछे गए प्रश्न में; मुझे (मेरा); चिंता (सोचते हुए) कोई संदेह या शंका नहीं है; मैं उसे पूछे गए लाभकारी विषय का उपदेश देता हूँ; इस प्रकार, संबंध है।

545. यावता बुद्धखेत्तमहि (बुद्ध के क्षेत्र तक) बुद्ध के आदेश के क्षेत्र तक, सर्वज्ञ बुद्ध को छोड़कर, विनय (विनय में) विनय पिटक में या अनुशासनात्मक निर्णय लेने में; मादिसो (मेरे समान) मेरे समान कोई नहीं है; मैं ही प्रमुख था; भिय्यो (अधिक) मेरा श्रेष्ठ कौन होगा; इस प्रकार, संबंध है।

546. भिक्षुसम्घे निसीदित्वा (भिक्षुओं के बीच बैठे हुए) भिक्षुगण के बीच बैठे हुए गौतम ने सिंह की गर्जना की; कैसे? विनय (विनय में) दोनों विभंगों में; खंडकेसु (खंडकों में) महावग् और चूलवग् में, प्रमुख और गौण समूहों में; शब्द-च-इन के साथ, उपालिस्सा (उपालि का), उपालि के साथ समो (समान) कोई समानता नहीं है; इस प्रकार, उन्होंने इस तरह गर्जना की।

547. यावता (जब तक) जिस हद तक; बुद्ध भनीतम् (बुद्ध द्वारा कहा गया) बुद्ध द्वारा उपदेशित; नवांगम् (नौ गुना) गुरु द्वारा प्रकट की गई हर चीज, गुरु के ऐसे निर्देश जैसे सूत्र, गेय्या आदि; विनयोगदम् (विनय में गोता लगाना) इस प्रकार, इस तरह, जिसकी जड़ विनय है, जो विनय के भीतर प्रवेश कर चुका है; पासिनो (देखने वाले को) देखना।

548. मम कम्मम सरित्वाना, मेरे कर्मों को याद करके, शाक्यपुंगवो, गौतम, शाक्य वंश के प्रमुख; मम कम्मम (मेरा कर्म) मेरी पिछली आकांक्षा का कर्म सरित्वाना (याद करके) भूतकाल के अपने ज्ञान के माध्यम से वर्तमान में जानकर, भिक्षुओं के समूह के बीच में गए और मुझे इस प्रकार सर्वोच्च स्थान दिया: "हे भिक्षुओं! यह मेरे शिष्य भिक्षुओं में प्रमुख है, विनय के स्मरण के वाहक, यह है: उपालि; इस प्रकार, संबंध है।"

549. सतसहस्सुपादाव (एक लाख को ध्यान में रखते हुए) एक लाख युगों (कप्पा) में आरंभ करते हुए, अपत्थयिम (मैंने कामना की) मैंने आकांक्षा की; मुझे (मेरी) वह इच्छा; अनुपत्टो (तदनुसार प्राप्त किया गया) प्राप्त किया गया, मेरे द्वारा उचित रूप से प्राप्त किया गया; पारमिं गतो (पूर्णता प्राप्त की) विनय में चरम सीमा प्राप्त की; यही अर्थ है।

550. शाक्य वंश के राजाओं का शाक्यनाम (शाक्यों का); शुद्ध, पूर्व में, आसिम (मैं था) पूर्व में, मैं नाई था, आनंद का निर्माता था; तमजातिम् (वह जन्म) वह परिवार, वह गर्भ; विजहित्वा (त्याग कर) विशिष्ट रूप से त्याग कर; महेसिनो (महान ऋषि का) सर्वज्ञ का; पुत्तो जातो (पुत्र जन्मा), व्यवस्था (शासन) का पालन करने वाला, शाक्य का पुत्र, इस प्रकार गणना हुई है; यही अर्थ है।

551. इसके बाद, आगे चलकर, अपने स्वयं के दास परिवार में पुनर्जन्म के वृत्तांत को दर्शाने के लिए, उन्होंने 'इतो दुतियाके कप्पे' से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, 'इतो (यहाँ से) भद्दा कप्पा (शुभ संसार) के अधीन दूसरे कप्पा (संसार) में एक राजसी योद्धा वर्ग का राजा, अंजसा नाम से जाना जाता था: अनंत-तेजो (अनंत शक्ति), वह शक्ति जिसकी गणना नहीं की जा सकती; अमितयसो (अतुलनीय प्रतिष्ठा), जिसका दल अतुलनीय था; महाद्धनो (अत्यधिक धनवान), कई हजार करोड़ धन का स्वामी; भूमिपालो (पृथ्वी का रक्षक), वह पृथ्वी का संरक्षक और रक्षक था; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।

552. तस्सा राञ्ञो (उस राजा का) उस प्रकार के राजा का, मैं चंदन नाम से जाना जाने वाला पुत्र था। खत्तिवो (राजसी योद्धा) मैं एक युवा योद्धा राजकुमार था; इस प्रकार संबंध है। उपत्थद्धो (सहारा दिया गया) कि मैं जन्म के अहंकार, प्रतिष्ठा के पागलपन और धन के नशे से स्तंभित और समर्थित था; इस प्रकार अर्थ है।

553. नागसतसबस्सानी, एक लाख हाथी, मातंग, मातंग परिवार में जन्मा; तिधा पभिन्ना (तीन बार फटा) रस से लबालब, उन्मादी रूप से क्रोधित, तीन स्थानों से जिन्हें आंखें, कान और जननांग (या चमड़ी) (कोसा) माना जाता है, सब्बलंकारा भूसीता (सभी आभूषणों से सुशोभित) हाथी के सभी अलंकरणों से सुशोभित; सदा (हमेशा) हर समय, वे मुझे घेरे रहते हैं; इस प्रकार, संबंध है।

554. सबलेहि परेतोहम (मैं अपनी सेना से घिरा हुआ था) तब, उस समय, परेतो (घिरा हुआ) मैं अपनी शक्तिशाली सेना से चारों ओर से घिरा हुआ था; गंटुकामो (जाने की इच्छा से) बगीचे में जाने की इच्छा से; नागम, हाथी, आरुयह (सवार होकर) मैं सिरिका नाम के हाथी पर सवार होकर शहर से बाहर चला गया; इस प्रकार, संबंध है।

555. Caraṇena ca sampanno (आचरण से परिपूर्ण) पंद्रह धार्मिक आचरणों से परिपूर्ण, जैसे कि नियमों का पालन करके संयम बरतना आदि; suggadvāro (सुरक्षित द्वार) बंद हैं ऐसे छह द्वार जैसे आंखें आदि; susamvuto (संयमित) शरीर और मन उचित रूप से सुरक्षित; sambuddho (आत्मप्रबुद्ध) मौन बुद्ध, जिनका नाम देवल है; mama, मेरे; purato (सामने से) मेरी उपस्थिति में या मेरे सामने; āgacchi (आया) इस प्रकार आया, यही अर्थ है।

556. पेसेत्वा सिरिकम् नागम् (हाथी सिरिका को भेजकर) उस मौन बुद्ध को देखकर, जो आए थे, मैंने सिरिका नामक हाथी को मौन बुद्ध के सामने भेजा; असदयिम् (मैंने आक्रमण किया) मैंने मौन बुद्ध को धक्का दिया और उन्हें नाराज किया; यही अर्थ है। ततो संजातकोपो सो (उससे क्रोधित होकर) इसलिए, मेरे द्वारा अत्यधिक उत्पीड़ित और पराजित किए जाने के कारण, वह हाथी मुझसे क्रोधित हो गया; पदम् (पैर) अपने ही पैर; नुद्धरते (उठाया नहीं) सहन नहीं किया, बल्कि गतिहीन रहा; यही अर्थ है।

557. नागम् दुत्तमनम् दिस्वा (हाथी को क्रोधित देखकर): हाथी को क्रोधित और नाराज़ देखकर, मैंने मौन बुद्ध में क्रोध उत्पन्न किया। (बुद्धे, मौन बुद्ध में, कोपम् अकासिम) (मैं क्रोधित हुआ)। इस प्रकार अर्थ है। विहेसयित्वा सम्बुद्धम् (आत्मज्ञानी को सताने के बाद), मैंने मौन बुद्ध देवल को सताने और उन पर अत्याचार करने के बाद उद्यान में गया। (इस प्रकार संबंध है।)

558. सातमतत्थ न विंदामि (मुझे वहाँ सुख नहीं मिलता) उस आक्रमण में मुझे सुख नहीं मिलता, मुझे अपराध का प्रतीक मधुर सुख प्राप्त नहीं होता; यही अर्थ है। सिरो पज्जलितो यथा (जैसे सिर जल रहा हो) मेरा सिर मानो जल रहा हो; यही अर्थ है। परिणहेना दायीहामि (मैं चारों ओर से ज्वालाओं से जल रहा हूँ) मौन अवस्था में क्रोध करने के कारण मैं उग्र हो जाता हूँ और पश्चात् पश्चात् पश्चाताप की ज्वालाओं से जलने लगता हूँ; यही अर्थ है।

559. उसी बुरे कर्म के बल से, सागर के अंत तक फैली हुई सारी विशाल पृथ्वी, जिसकी चारों ओर की सीमाएँ सागरों में हैं, और उनके सीमावर्ती सागर भी; मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं जल रहा हूँ; यही अर्थ है। जब इस प्रकार संकट उत्पन्न हुआ, तो मैं अपने पिता राजा के पास गया; मैंने उनसे यह कहा।

560 आसीविसमवा कुपितम (विषैले साँप के समान क्रोधित) सभी क्रोधित विषैले साँपों के समान, जलती हुई अग्नि के समान; मत्तम (पागल) तीन बार फूट पड़ा; दंतिम (दांतों वाला) दाँतों वाला, कुंजरम (हाथी) सबसे उत्तम हाथी; स्वयंभू, आसादयिम (मैंने आक्रमण किया) मैंने उस मौन बुद्ध पर प्रहार किया जो मेरी ओर सबसे उत्तम हाथी के समान आ रहे थे; इस प्रकार, संबंध है।

561. आसादितो मया बुद्धो (मेरे द्वारा अपमानित मौन बुद्ध) वह मौन बुद्ध, मेरे द्वारा अपमानित और चोट पहुँचाया गया; घोरो (भयानक) डरावना, क्योंकि उसे दूसरों द्वारा चोट नहीं पहुँचाई जा सकती थी; उग्गतपो (अत्यंत कठोर) स्पष्ट रूप से नैतिक; जिनो (विजेता) जिसने पाँचों मारों को जीत लिया था; इस प्रकार सिद्धियों से संपन्न मौन बुद्ध, मेरे द्वारा अपमानित किया गया था; यही अर्थ है, पुरा सब्बे विनाशामा (हम सब पहले ही नष्ट हो जाएँगे) क्योंकि मैंने उस मौन बुद्ध का अनादर किया था, हम सब नष्ट हो जाएँगे, हम विभिन्न तरीकों से नष्ट हो जाएँगे; हम राख के समान हो जाएँगे; यही अर्थ है। Khamāpessāma tam munim (हम उस ऋषि से क्षमा मांगेंगे) ताकि हम नष्ट न हों, हम उस ऋषि से क्षमा मांगेंगे; मौन बुद्ध; इस प्रकार, संबंध है।
562. यदि हम उनका अनुग्रह प्राप्त न कर सकें, तो मेरा सारा समृद्ध राज्य नष्ट हो जाएगा।
563. सुमेखालो कोसियो च (सुमेखाला और कोसिया) ये चारों शासक राजा, अर्थात् सुमेखाला और अन्य, आसादयित्वा (हमला करके) टकराए, अनादर किया, सरत्तवका (अपने राज्यों सहित) नष्ट हो गए, अपने राज्यों और जिलों के निवासियों सहित दुखी हो गए; यही अर्थ है।
564. यदा कुप्पन्ति इसयो (जब तपस्वी क्रोधित होते हैं) जब भी, किसी भी समय, संयम (संयमित) शांत और आत्मसंयमी हों, शरीर पर नियंत्रण आदि रखते हुए; ब्रह्मचारिने (पवित्र) वे संन्यासी जो उत्तम साधना और सर्वोत्तम साधना का अभ्यास करते हैं; कुप्पन्ति (क्रोधित होना) अप्रिय मन वाले हो जाते हैं; तब, संसार, दिव्य जगत, पर्वत और महासागर सब नष्ट हो जाते हैं; यही संबंध है।
565. तीन हजार योजनों में स्थित एक स्थान पर लोगों को एकत्रित किया गया था। तीन हजार योजनों के क्षेत्र में स्थित इस प्रकार, उन ऋषियों की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करके, उनके अपराध का क्षमादान करने के लिए, मैंने मौन बुद्ध के निकट जाकर उन्हें क्षमा किया।
566. अल्लावत्था (गीला वस्त्र) - वे सभी लोग जो मेरे साथ मिलकर गीले वस्त्रों से ढके हुए हैं, जिनके वस्त्र और ऊपरी वस्त्र पानी से भीगे हुए हैं; अल्लासिरा (गीला सिर) - गीले बालों वाला; पंजलिकता (जुड़े हुए हाथ) - सिर पर उंगलियों से बना हुआ पात्र; बुद्धस्स - मौन बुद्ध; पादे (पैरों के पास) - उनके पैरों के पास; निपतिवा (गिरकर) - लेटकर; इदम्वाचनम-ब्रवुम (यह शब्द बोला) - "हे महान वीर! कृपया हमें क्षमा करें" जैसे शब्द बोले और कहे; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
567. महावीर (महान वीर!) "आदरणीय परम श्रेष्ठ मौन बुद्ध! कृपया अज्ञानवश किए गए हमारे अपराध को क्षमा करें; कृपया हमारी गलती मिटा दें; कृपया हमारे अपराध को अपने स्मरण में न रखें;" यही अर्थ है। जनो (मनुष्य) लोगों का समूह; तम (वह) वह महिमावान; अभि (विशेष रूप से) विशेष रूप से निवेदन करता है; परिल्लाहम् (जलन) क्रोध और भ्रम से उत्पन्न हमारी मानसिक पीड़ा, विनोदेहि (कृपया दूर करें) कृपया इसे कम करें; नहीं (हमारा) रत्थम (राज्य) पूरे राज्य और जिले के निवासी; मा विनाशाय (कृपया नष्ट न करें) कृपया इसे बर्बाद न करें; यही अर्थ है।
568. Sadevamanusā sabbe (सभी, दिव्य और मनुष्य सहित) sadānavā (टाइटन सहित) टाइटन्स (असुरों) के साथ उनके प्रहार या आक्रमण आदि के साथ; sarakkhasā ayomayena kuṭena (राक्षसों सहित उनके लोहे के कवच के साथ) बड़े गदाओं के साथ; sadā (हमेशा) हर समय, mesiram (मेरा सिर) bhindeyyum (वे तोड़ देंगे) कुचल देंगे।
569. इसके बाद, क्षमा और क्रोध की अनुपस्थिति को प्रकट करने के लिए, उन्होंने 'दके अग्गी न संष्टाति' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, 'न संष्टाति' (ठीक से स्थिर नहीं रहता) जैसे जल में अग्नि ठीक से स्थिर नहीं रहती; 'सेले' (पत्थर पर) जैसे पत्थरों से बनी पहाड़ी पर बीज अंकुरित होकर नहीं उगता; 'अगादे' (औषधि में) 'किमि' (कीट) जैसे औषधि में कीट ठीक से स्थिर नहीं रहते; 'कोपो' (क्रोध) 'बुद्धे' (मौन बुद्ध में) 'न जायति' (उत्पन्न नहीं होता) उसी प्रकार, सत्य को ठीक से जान चुके मौन बुद्ध में मानसिक क्रोध, दुर्भावना उत्पन्न नहीं होती।
570. बुद्धों की शक्ति को प्रकट करने के लिए उन्होंने यथा च भूमि से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। वहाँ, भूमि का अर्थ है पृथ्वी; अचला (अविचल) का अर्थ है स्थिर; जैसे पृथ्वी स्थिर है, वैसे ही बुद्ध भी स्थिर हैं; यही अर्थ है। सागर (महासागर) अप्पमेय्यो (असीमित) का अर्थ है जैसे विशाल सागर को मापना या उसका आकार ज्ञात करना असंभव है, वैसे ही बुद्ध भी असीम हैं; यही अर्थ है। जैसे आकाश (स्वर्ग) का अर्थ है अछूता आकाश अनंतको (अनंत) है, जिसका कोई अंत नहीं है, वैसे ही बुद्ध अक्खोभियो (अविचलित) हैं, जिन्हें विचलित करना या हिलाना असंभव है; यही अर्थ है।
571. इसके बाद, मौन बुद्ध के क्षमाप्रार्थनापूर्ण शब्दों को दर्शाने के लिए, उन्होंने सदा खन्त महावीर से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। यहाँ महावीर (महान वीर) वे बुद्ध हैं जो अत्यंत उत्कृष्ट परिश्रम से परिपूर्ण हैं, तपस्सिनो (तपस्वी), परिश्रम से युक्त, जिन्हें "तपो, तपस्या" नाम प्राप्त हुआ है, जो बुरे कर्मों को जलाकर नष्ट करते हैं; खन्त (धैर्यवान) वे जो धैर्यवान हैं और दूसरों के अपराध या दोष को क्षमा करते हैं; खमिता (क्षमाकर्ता) वे जो लाभप्रद हैं और जो दूसरों के अपराध या दोष को क्षमा करते हैं; सदा (सदा) हर समय बने रहते हैं; इस प्रकार, संबंध है। खन्तानम् खमितानांच (धैर्यवान (और) क्षमाकर्ताओं के भी) उन बुद्धों के, जो धैर्यवान हैं, धैर्य से युक्त हैं, जो क्षमाकर्ता

हैं, जो दूसरों के दोषों को क्षमा करते हैं, जो लाभप्रद हैं; गमनम् (जाना) में इच्छा आदि जैसे बुरे मार्ग पर जाने का कोई अस्तित्व नहीं है; यही अर्थ है।

572. सम्बुद्धो (स्व-प्रबुद्ध) मौन बुद्ध ने इस प्रकार यह शब्द कहा; परिल्लाहम् (जलते हुए) पाँचों जीवित प्राणियों को; विनोदयम् (निकालते हुए); महाजनस्स पुरतो (मनुष्यों के विशाल समूह के सामने) अपने राजा सहित एकत्रित हुए लोगों के विशाल समूह की उपस्थिति में, तदा (तब) उस समय; नभम्, आकाश, अब्भुग्गमि (ऊपर गया) ऊपर उठा; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

573. हे ज्ञानी! उस कर्म के कारण, हे दृढ़ ज्ञानी! हे दृढ़ता से संपन्न, मैं मौन बुद्ध के प्रति अनादर के कारण, अपने अंतिम जन्म में राजाओं के लिए नाई का निम्न कार्य करने का जन्म प्राप्त किया; उस जन्म से उचित रूप से आगे बढ़कर, दूसरों के लिए अपने अस्तित्व से परे जाकर, मैं निर्वाह नगर में प्रवेश कर गया।

574. तदापिमम महावीर (हे महान वीर!) तब भी, हे परम श्रेष्ठ! तदापि (तब भी), उस मौन बुद्ध पर आक्रमण करते समय भी, परिल्लाहम् (जलते हुए), स्वयंभू मौन बुद्ध ने मेरे आक्रमण से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक पीड़ा को दूर किया; दैहमनम्, जलते हुए, सुसंतीतम (सुस्थापित), उसके बाद भी, मौन बुद्ध ने उस अपराध या दोष को सहन किया और मुझे दोष को दोष के रूप में सही ढंग से देखते हुए और मुझे परिणामस्वरूप पश्चाताप और प्रायश्चित से जलते और झुलसते हुए देखकर उसे क्षमा कर दिया; इस प्रकार, संबंध है।

575. अज्जपिमं महावीर (हे महान वीर! अब मैं भी) हे परम श्रेष्ठ वीर! अब, आपके मिलन के समय भी, त्यग्गीभि, तीन प्रकार की अग्नियों से, दैहमानाम् (जलते हुए) काम, क्रोध, मोह, या नरक, पतरस और पुनर्जन्मों की अग्नि के रूप में गिनी जाने वाली तीन प्रकार की अग्नियों से जलते हुए; सीतिभावम्, शीतलता की अवस्था, अपापायी (प्राप्त कराया) प्रतापी ने मुझे, जो पीड़ा से पीड़ित था, अप्रिय मन या मानसिक कष्टों के नाश द्वारा निर्वाण की शीतल अवस्था, यानी शांत शरीर और मन की अवस्था प्राप्त कराई; तयो अग्गी, जैसा कि कहा गया है, तीनों अग्नियों को शांत और बुझने के लिए मजबूर किया गया; इस प्रकार, संबंध है।

576. इस प्रकार, परमेश्वर को अपने हीन कर्मों का दर्शन कराने के बाद, अन्य श्रोताओं को भी प्रेरित करने के बाद, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जो इस प्रकार प्रारंभ होता है: “यसाम सोतावधान' अत्थि। वहाँ, येसम (जिसे भी) तुम्हें; सोतावधानम् (श्रोताओं को) कान लगाकर, अत्थि (है) विद्यमान; भासतो, बोलते हुए, सुनथा (सुनो) तुम सब सुनो और मेरे शब्दों को ध्यान में रखो जब मैं तुमसे बोल रहा हूँ; अत्थम तुम्हम पावक्खामि, मैं तुम्हें विषय बताता हूँ, यथा (जबकि) जिस भी तरीके से, मम (मेरा) मेरे द्वारा देखा गया; पदम् (मार्ग) निर्वाण; उसी प्रकार, मैं तुम्हें परम विषय या निर्वाण माने जाने वाले लाभ के बारे में बताऊंगा; इस प्रकार, संबंध है।”

577. इसे दर्शाने के लिए उन्होंने 'सयंभूमतम विमानेत्वा' से शुरू होने वाला श्लोक बोला। वहाँ, स्वयंभूम, स्वयं निर्मित, विमानेत्वा (कम करके), मौन बुद्ध का अनादर करने के कारण, जो स्वयं निर्मित थे, जो पवित्र श्रेष्ठ वंश के थे, जो शांत मन वाले और एकाग्रचित्त थे; तेन कम्मेना (उस कर्म से) किए गए दोष के कारण, अज्जा, अब, नीचयोनियम, निम्न गर्भ में, जातो, जन्म, अम्ही (मैं हूँ; इस समय) मैं नाई के रूप में जन्म लिया, ताकि दूसरों का भला कर सकूँ।

578. Mā vo khaṇam virādhetha (किसी भी क्षण को न चूकें) आप सभी बुद्ध के प्रकट होने के क्षण को न चूकें, उसे व्यर्थ न जाने दें; hi (वास्तव में) सत्यतः; khaṇātītā, जो क्षण बीत जाने पर रोते हैं, वे गुजर चुके प्राणियों के लिए शोक करते हैं, बुद्ध के प्रकट होने के क्षण को शोक करने देते हैं; वे इस प्रकार चिंतित हो जाते हैं: "हम दुर्भाग्यशाली और मूर्ख हो जाते हैं"; यही अर्थ है। Sadatthe, अपने कल्याण के लिए, vāyameyyātha (प्रयास करना चाहिए) आप अपने कल्याण या लाभ में वृद्धि के लिए प्रयास करें; Vo, आपके द्वारा, khaṇo moment, paṭipādito (ठीक से प्राप्त) बुद्ध के प्रकट होने का क्षण सिद्ध और प्राप्त हो जाता है; यही अर्थ है।

579. इसके बाद, आगे चलकर, पुनर्जन्मों के चक्र में जाने वालों के नुकसान को उदाहरण के रूप में दर्शाने के लिए, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया जो 'एकच्चानंच वामनम्' से शुरू होता है। एकच्चानम् (कुछ को) जिन व्यक्तियों को; वामनम् (उल्टी) ऊपर की ओर बहती है; विरेचनम् (शुद्धिकरण) कुछ लोगों का नीचे की ओर बहता है; एके (कुछ) कुछ का; विषम् (विष) विषैला विष जो विमोचन करता है; ओषधम (औषध) कुछ लोगों की रक्षा का साधन; भगवान ने इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से उपदेश दिया; इस प्रकार, यह संबंध है।

580. वामनं पटिपन्नानम् (जिन्होंने विधिपूर्वक गोबर का अभ्यास किया है) - प्रतापी बुद्ध ने उन लोगों को गोबर का उपदेश दिया, जिन्होंने बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों (संसार) से मुक्ति पाई है और संस्कार से छुटकारा पाया है, जो विधिपूर्वक अभ्यास करते हैं और आत्म-प्राप्ति (सही मार्ग) के योग्य हैं; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है। फलात्थानम् (जो फल प्राप्त कर चुके हैं) - बुद्ध ने उन लोगों को निर्वाण का उपाय बताया, जिन्होंने श्रेष्ठ फल प्राप्त कर लिया था; गवेसीनम् (साधकों को) - बुद्ध ने उन पुरोहितों के बारे में उपदेश दिया, जो पुण्य के क्षेत्र बन चुके थे, उन लोगों को जो मानव और दिव्य प्राणियों के समृद्ध आनंद के साथ-साथ निर्वाण की खोज करते हैं; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है।

581. सासानेन विरुद्धानम् (धर्मोपदेश के विरोधियों को): बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश के विरोधियों को उत्तेजित करते हुए विषैले और हानिकारक कर्मों का उपदेश दिया; इस प्रकार, संबंध है। यथा आसीविसो (विषैले सर्प के समान): जैसे विषैला सर्प, अपने घातक विष के समान, जन्म-जन्म के चक्र में पापी (अविश्वासी या अधर्मी) लोगों को दुख (दुक्खा) देता है जिन्होंने बुरे कर्म किए हैं; (दिष्ठविसो): विष को देखकर ही राख में बदल देता है; झापेटि (जलाता है): सर्प अपने ही दांत जैसे दाँतों से मनुष्य को जलाता है और उसे दुखी या कष्ट (दुक्खा) देता है; बुद्ध ने तम नाराम (उस व्यक्ति) को सुखाकर नरक के चारों रूपों में जला दिया, ठीक उसी प्रकार जैसे विषैला जहर बुरे कर्म करने वाले नास्तिक और पापी व्यक्ति को जला देता है; यही संबंध है।
582. Sakim pitam halāhalam, एक बार पीए गए घातक विष से उपरुन्धति (नष्ट हो जाता है) पीए गए हिंसक विष से जीवन एक बार और केवल एक बार ही नष्ट होता है; sāsanena (व्यवस्था के साथ) व्यवस्था में; virajjhitvā, अपराध करने पर, kappakoṭimhi (करोड़ों कल्पों में) करोड़ों की गणना वाले लोकों में भी; dayhati (जला हुआ) व्यक्ति करोड़ों कल्पों के लिए जल जाता है; इस प्रकार, यह अर्थ है।
503. इस प्रकार नास्तिक और अधर्मी लोगों के बुरे परिणामों को दर्शाने के बाद, अब बुद्धों की शक्ति को दर्शाने के लिए, उन्होंने खन्तिया से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। उन्होंने कहा, "वह बुद्ध जिन्होंने उल्टी आदि का उपदेश दिया; खन्तिया (धैर्य के साथ) सहनशीलता के साथ; अविहिंसाय (परेशान न करके) जीवों को बिना किसी कष्ट के; मेत्तचित्तवताय (प्रेमपूर्ण स्वभाव के कारण) प्रेममय मन के कारण; सदेवकम (देवताओं के साथ) वह संसार जो दिव्य प्राणियों के साथ होता है; तारेसि (पार करना) पार करने का कारण बनता है, निर्वाण प्राप्त करने का कारण बनता है; तस्मा (इसलिए) इस परिस्थिति में, अविराधिया (अविरोधनीय) यह असंभव है कि आप सभी बुद्धों का विरोध कर सकें; आपको बुद्ध के उपदेशों का उचित रूप से पालन करना चाहिए; यही अर्थ है।"
584. न सज्जन्ति (असंलग्न) लाभ और हानि दोनों में वे अनुसरण नहीं करते, वे आसक्त नहीं रहते; सम्मान करते हुए (अच्छी तरह से मापते हुए); अनादर करते हुए (मापते हुए नहीं), बुद्ध अविचलित रहते हैं, पृथ्वी के समान वे अविचल हैं; तस्मा (इसलिए) इस परिस्थिति में, ते (वे) बुद्ध, न विरोधीय (अप्रतिरोध्य), तुम सब को बुद्धों का विरोध नहीं करना चाहिए; तुम इस प्रकार बुद्धों का विरोध नहीं कर पाओगे, यही अर्थ है।
585. बुद्धों की समता दर्शाने के लिए उन्होंने देवदत्ते से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। उसमें, समको (समान) सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखने वाला, चाहे वो हत्यारे हों या न हों; मुनि (ऋषि) बुद्ध ऋषि; यही अर्थ है।
586. एतेसम पतिघो नत्थि (इनमें कोई द्वेष नहीं है) इन बुद्धों में किसी प्रकार का द्वेष, क्रूर इच्छा और क्रोध नहीं है। रागो मेसम न विज्जति (इनमें कामवासना नहीं है) इन बुद्धों में कामवासना, कलंक और आसक्ति भी नहीं है; समको (समान) अतः, इस परिस्थिति में बुद्ध सभी के प्रति समान भाव रखते हैं, चाहे वह उनका हत्यारा हो या उनका पुत्र; यही संबंध है।
587. फिर भी, बुद्धों की शक्ति को दर्शाने के लिए, उन्होंने एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसकी शुरुआत Panthe disvāna kāsāvam से होती है। वहाँ, mīḷhamakkhitam (मल से सना हुआ) मल से मिला हुआ; kāsāvam (पीला वस्त्र) पीले रंग से रंगा हुआ; isiddhajam (तपस्वी का ध्वज), आवश्यक, श्रेष्ठ भिक्षुओं का ध्वज; panthe (मार्ग पर) मार्ग पर त्यागा हुआ; disvāna, देखकर, añjalim katvā (हाथ जोड़कर) दस उंगलियों को जोड़कर और सिर पर रखकर एक पात्र बनाया; सिरसा, सिर सहित, वंदितब्बम इसिधजम (तपस्वी का ध्वज जिसकी पूजा की जानी चाहिए) वह ध्वज या प्रतीक, जो बुद्ध, मौन बुद्ध और शिष्यों को प्रकाश में लाता है, भिक्षु के वस्त्रों को प्रणाम किया जाना चाहिए, उनका सम्मान और आदर किया जाना चाहिए; यही अर्थ है।
588. अब्भातीता (विशेष रूप से बीत चुके) विशेष रूप से समाप्त, पूर्णतः बुझ चुके। ये च बुद्धा वत्तमाना (जो भी बुद्ध हों) ऐसे बुद्ध जो अभी जन्म ले रहे हैं; अनागता (अभी तक नहीं आए) या भविष्य के बुद्ध जो अभी जन्म नहीं ले चुके हैं, न बने हैं, न प्रकट हुए हैं, न प्रकट हुए हैं। धजेननेन सुझंति (इन बुद्धों ने स्वयं को शुद्ध किया) इस पीले वस्त्र से, इस तपस्वी ध्वज (या प्रतीक) से शुद्ध और सुंदर हो गए; तस्मा (इसलिए) उस परिस्थिति से; इत्यादि (ये) बुद्ध; नमस्सिया नमस्सिटब्बा (प्रणाम करना चाहिए) उन्हें प्रणाम करना चाहिए; यही अर्थ है। पाठ है एतम् नमस्सियाम् (इसे प्रणाम करना चाहिए) उनके इस तपस्वी ध्वज या प्रतीक को प्रणाम (या पूजा) करना चाहिए; यही अर्थ है।
589. इसके बाद, अपनी गुणवत्ता प्रदर्शित करने के लिए, उन्होंने 'सथुकप्पम' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, 'सथुकप्पम' (गुरु के समान), बुद्ध के समान; 'सुविनयम्' (अनुशासित) उचित अनुशासन, तीनों द्वारों को उचित ढंग से वश में करना; 'बदायेन' (हृदय से) मन के द्वारा; 'धारेमि' (मैं सहन करता हूँ) श्रवण द्वारा चिंतन करना, स्मृति में रखना इत्यादि; यही अर्थ है। 'विनयम्' (अनुशासन) विनय पिटक, 'नमसमानो' (प्रणाम करना) विनय को प्रणाम करना, सम्मान देना; 'विहरिसामि सब्बादा' (मैं सदा जीवित रहूँगा) मैं हर समय निवास करता हूँ; यही अर्थ है।

590. विनयो आसयो मयहं (अनुशासन मेरी इच्छा है) विनय पिटक मेरी अनुकूल स्थिति है, यह मेरा घर बन गया है, मेरा स्थान बन गया है, श्रवण, स्मरण, मनन, उत्थान, सर्वांगीण प्रश्न और प्रवचन के माध्यम से; यही इसका अर्थ है। विनयो ठाणचंकमम् (खड़े होने और टहलने का अनुशासन) श्रवण आदि जैसे कर्तव्यों का पालन करने से विनय मेरा स्थान और विश्राम स्थल है; कप्पेमि विनये वासम् (मैं विनय या अनुशासन में निवास करता हूँ) मैं विनय पिटक में अपना शयनकक्ष बनाता हूँ और विनय ग्रंथों को सुनने, स्मरण करने और उनका प्रचार करने के माध्यम से वहाँ निवास करता हूँ; विनयो मम गोचरो (अनुशासन मेरी मुद्रा है) विनय पिटक मेरा चारागाह, मेरा पोषण और मेरा भोजन है, निरंतर स्मरण और मनन के माध्यम से; यही इसका अर्थ है।

591. Vinaye pāramippatto (विनय में सिद्धि प्राप्त) विनय पिटक में सर्वांगीण अंत और सिद्धि प्राप्त कर; Samathe cāpi kovido (निवारण में भी निपुण) पाराजिक, पूर्ण हानि आदि सात प्रकार के अनुशासनात्मक अपराधों के जनसमूह को शांत करने और जगाने में या विवादों के निपटारे में कुशल और निपुण।

"विवाद, निंदा, अपराध को लेकर विवाद, और क्या किया जाना चाहिए, इस पर विवाद, ये सभी चार प्रकार के विवाद कहलाते हैं।"

उपरोक्त विवादों में भी।

"वर्तमान में सचेतनता का अनुशासन, बिना किसी भ्रम के वादा करना, आम तौर पर उससे भी बदतर है, उसी प्रकार विवाद को घास से ढक देना।"

विवादों के सात प्रकार के निपटारे में अत्यंत चतुर और कुशल, जैसा कि इस प्रकार भी वर्णित है; यही अर्थ है। उपालि तम महावीर, हे महान वीर! उपालि आपकी आराधना करते हैं, हे पूजनीय महान वीर! हे सर्वज्ञ ज्ञान की प्राप्ति के लिए लाखों युगों और चार असंख्य युगों (या कल्पों) से भी अधिक परिश्रम करने वाले, सत्तुनो (गुरु) दिव्य और मानव प्राणियों के सलाहकार; तम (आप) आपके, पादे (चरण) आपके, वन्दति (आराधना) भिक्षु उपालि प्रणाम करते हैं, सम्मान व्यक्त करते हैं; यही अर्थ है।

592. नमस्समानो (प्रणाम करते हुए) मैं संसार का त्याग करके भिक्षु बन गया हूँ, आत्मप्रबुद्ध बुद्ध को प्रणाम करता हूँ; धम्मस च (आध्यात्मिक सत्य को भी) उस तेजस्वी द्वारा प्रचारित नौ दिव्य धर्मों को; सुधम्मतम् (अच्छे धर्म की अवस्था) अच्छे धर्म के तथ्य को जानकर, धर्म की आराधना करते हुए, पुरतो पुरम (शहर-शहर) गाँव-गाँव और कस्बे-कस्बे घूमता हूँ; यही संबंध है।

593. किलेसा झपिता मयहम् (मेरे सभी प्रकार के पाप जल गए थे) अरहंतत्व के श्रेष्ठ मार्ग के उचित प्रवेश के ज्ञान के माध्यम से, पंद्रह सौ के बराबर गणना किए गए सभी पाप जलकर भस्म हो गए, पूरी तरह से सूख गए, वाष्पित हो गए और पूर्णतः चूर-चूर हो गए; भावा सब्बे समूहा (सभी अस्तित्व उचित रूप से जड़ से उखाड़ दिए गए थे) इंद्रिय जगत आदि के सभी नौ प्रकार के अस्तित्व उचित रूप से हटा दिए गए थे; सम (उचित रूप से) ऊहता (जड़ से उखाड़ दिया गया) फेंक दिया गया, टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया; सब्बासव परिक्नीणा (सभी दोष चारों ओर से समाप्त या नष्ट हो गए थे) इंद्रिय दोष, अस्तित्व दोष, विधर्म दोष, अज्ञान दोष जैसे सभी चार दोष चारों ओर से नष्ट हो गए थे, उनका पूर्णतः उन्मूलन कर दिया गया था; इस समय अरहंतत्व प्राप्ति के समय, पुनब्बवो (अगले जन्म में) जन्म, बनना, अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता; यही अर्थ है।

594. गहन मानसिक आनंद के लिए, उन्होंने एक गंभीर उच्चारण करते हुए, स्वागतम् से शुरू होने वाला एक श्लोक पढ़ा। वहाँ, बुद्धसेष्टस्स (सर्वोत्तम बुद्ध का), सबसे उत्कृष्ट बुद्ध का, शांतिके (निकट) या किसी नगर में; स्वागतम् (शुभ आगमन) मेरा आगमन, उचित आगमन, शुभ आगमन; वत (वास्तव में) निश्चित रूप से, आसि, था; इस प्रकार, संबंध है। तिसो विज्जा, तीन प्रकार के सर्वोच्च ज्ञान, अर्थात्! पूर्व निवासों का सर्वोच्च ज्ञान, दिव्य दृष्टि और विकारों का निवारण; अनुपत्ता (तदनुसार प्राप्त) अच्छी तरह से प्राप्त; व्यक्तिगत रूप से प्रकट; इस प्रकार, अर्थ है। katam Buddhassa sāsamam (बुद्ध के निर्देश का पालन किया) - बुद्ध, परम पूज्य, द्वारा अनुसन्न किए जाने वाले उपदेश और शासन (शासन) का उचित पालन करते हुए, मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) को ध्यान में रखते हुए, पूर्णतः पालन किया गया है और अरहंतत्व के श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की प्राप्ति के साथ इसे सिद्ध किया गया है; यही इसका अर्थ है।

595. पातिसंभिदा चतस्सो (चार प्रकार का विश्लेषणात्मक ज्ञान) - अर्थ के विश्लेषणात्मक ज्ञान आदि चार प्रकार के ज्ञान की कल्पना की गई, उन्हें स्वयं-दृश्यमान बनाया गया; विमोक्खा पि च अत्तिमे (चार श्रेष्ठ फलों का ज्ञान) - इस प्रकार, पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले इन आठ मार्गों की कल्पना की गई; यही संबंध है। चालभिञ्ञा सच्चिकता, छह प्रकार के उच्च ज्ञान की कल्पना की गई।

"जादुई शक्तियों की विविधता, दिव्य श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों का ज्ञान, पूर्व निवासों का ज्ञान, दिव्य दृष्टि और रोगों का निवारण।"

इन छह प्रकार के उच्च ज्ञान का दृश्य निरूपण किया गया और उन्हें स्वयं-दृश्यमान बनाया गया। इन छह प्रकार के उच्च ज्ञान के दृश्य निरूपण के साथ ही बुद्ध के उपदेशों का पालन किया गया; यही इसका अर्थ है।

इत्तम (इस प्रकार) इस तरह से जैसा कि पहले कहा गया है, सुदम एक अविकारी कण है जो शब्द को पूर्ण करता है; थेरो, वरिष्ठ भिक्षु, आभासित्था (कहा) आदरणीय उपाली, दृढ़ नैतिक उपदेशों आदि गुणों से परिपूर्ण शिष्य ने इन श्लोकों का उच्चारण किया जो उनके पूर्व आचरण के कर्मों को प्रकाश में लाते हैं; इस प्रकार, यह अर्थ है।
थेरा उपाली की जीवनी पर की गई टिप्पणी समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 7. थेरा अनासि कोस्दान्ना

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.17. अञ्ञाकोण्डञ्ञ्
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-7 थेरा अन्नासी कोन्दन्ना की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

7. अञ्ञाकोण्डञ्ञ्

संबुद्ध पदुमत्तरा विश्व में सर्वश्रेष्ठ, मार्गदर्शक थे।343 मैंने उन्हें सबसे पहले तब देखा था, जब उन्होंने बुद्धत्व की वह अवस्था (अभी-अभी) प्राप्त की थी। (1) (601)
बोधि वृक्ष की जड़ों के चारों ओर आत्माएँ344 एकत्रित होकर संबुद्ध को घेरे हुए थीं, वे हाथ जोड़कर पूजा कर रही थीं। (2) (602)
सभी देवताओं का मन प्रसन्न था; वे आकाश में उड़ते हुए, "यह बुद्ध बन गया है, रात्रि के अंधकार को दूर कर रहा है।"345 (3) (603)
वे हँसी से लोटपोट होकर ज़ोर-ज़ोर से शोर मचा रहे थे,346 "हम संबुद्ध के विधान में अपने दोषों को नष्ट कर देंगे।" (4) (604)
देवताओं के वचन सुनकर, उनके उस महान भाषण को सुनकर,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 343 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 344 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
345 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 346 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

मैंने उसे उसका पहला भोजन प्रसन्नतापूर्वक और प्रसन्न हृदय से दिया। (5) (605)
मेरे मन की बात समझकर, जगत में अद्वितीय गुरु, देवताओं के सभा कक्ष में बैठे हुए (तब) मेरे बारे में ये श्लोक बोले: (6) (606)
"एक सप्ताह पहले दुनिया छोड़कर, आज मैं ज्ञानोदय तक पहुँच गया हूँ। इसने मुझे मेरा पहला चावल दिया है, एक ब्रह्मचारी भिक्षु का जीविका। (7) (607)
मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जो तुसिता से यहाँ आकर मुझे यह भिक्षाभोजन भेंट किया; (आप सभी) मेरी बात ध्यान से सुनें: (8) (608)

तीस हजार युगों तक वह दिव्य शासन करेगा। सभी देवताओं पर विजय प्राप्त करके वह स्वर्ग में निवास करेगा (तब) ।347 (9) (609)
देवताओं के लोक से गिरकर वह मानव रूप धारण करेगा। वहाँ वह एक हजार बार चक्र घुमाने वाले के रूप में (लंबे समय तक) शासन करेगा। (10) (610)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (11) (611)
स्वर्ग से (पुनः) गिरकर वह मनुष्य रूप धारण करेगा। घर (और संसार) से निकलकर वह बीस वर्ष तक (वहाँ) निवास करेगा। (12) (612)
उसके सातवें वर्ष में बुद्ध सत्य की घोषणा करेंगे। जिसका नाम कोण्डञ्ञ होगा, वह इसे सबसे पहले ग्रहण करेगा। (13) (613)
जब वह प्रस्थान कर रहा था, मैंने भी त्याग कर दिया और मैंने भी अशुद्धियों को नष्ट करने के लिए बहुत प्रयास किया।

---

347 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मैं बेघर हो गया।348 (14) (614)
सर्वज्ञ ईश्वर के पास पहुँचकर, बुद्ध ने देवताओं के साथ संसार में “इसी” नामक हिरण-वन में अमरता का ढोल बजाया।349 (15) (615)
अब उन्होंने अमरता, अतुलनीय और शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त कर ली है। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए भी, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीता हूँ। (16) (616)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (617)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (618)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) (619)
इस प्रकार पूज्य अन्नाकोण्डन्ना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
अञ्ञाकोण्डञ्ञा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-7 थेरा अन्नासी कोन्दन्ना की जीवनी पर टिप्पणी।
3-7.1. पदुमुत्तरा सम्बुद्धम् से शुरू होने वाले श्लोक थेरा अञ्ञासिकोन्धञ्ञ की जीवनी का वर्णन करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस थेरा ने पूर्व बुद्धों की सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में, प्रतापी पदुमुत्तरा के समय में, हंसवती नगर के एक धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर, एक दिन उन्होंने देखा कि गुरु अपने ही संप्रदाय के एक भिक्षु को, धर्म के सर्वप्रथम और दीर्घकालिक ज्ञाताओं में सर्वोच्च स्थान प्रदान कर रहे हैं, जब वह गुरु की उपस्थिति में धर्म का उपदेश सुन रहे थे। स्वयं भी उस पद को प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए, उन्होंने सात दिनों तक परम पूज्य गुरु और उनके एक लाख भिक्षुओं के समूह को एक महान दान भेंट कराई और संकल्प लिया। गुरु ने भी अपने निरंतर भाग्य को देखकर आने वाली समृद्धि की भविष्यवाणी की। जीवन भर अच्छे कर्म करते हुए, गुरु के देहांत के समय जब मंदिर की स्थापना हो रही थी, तब उन्होंने मंदिर के भीतर एक रत्नजड़ित घर बनवाया। उन्होंने मंदिर के चारों ओर एक हजार रत्नों के बराबर दान भी चढ़ाया।
3-7.2. इस प्रकार पुण्य कर्म करने के बाद, वे वहाँ से चले गए और दिव्य एवं मानव लोकों में बार-बार जन्म लेते हुए, विपस्सी बुद्ध के समय महाकाल नामक एक जागीरदार बने और बुद्ध के नेतृत्व में पुरोहितों को आठ एकड़ के खेत में साली धान के आंतरिक भाग को चीरकर प्राप्त किए गए साली धान के दानों से विधिवत तैयार किया गया शुद्ध दुग्ध-चावल भेंट किया, जिसमें शहद, घी, चीनी आदि जैसी सामग्रियाँ डाली गई थीं। वे सभी स्थान जहाँ से साली धान के आंतरिक भाग को चीरकर प्राप्त किए गए थे, पुनः भर जाते हैं। बाली में चावल आने के समय (पुथुका), वे बाली में पहला चावल भेंट करते थे; हंसिया से कटाई के समय, पहला कटा हुआ दाना; जब धान की

बालियाँ गुंथी हुई होती हैं, तो अनाज की बालियों की पहली गुंथी हुई माला; जब गुच्छे आदि बनते हैं, तो पहला गुच्छा; पहली (या सर्वोत्तम) फसल नौ बार दी गई; वह फसल भी उत्तरोत्तर अधिक समृद्ध होती गई।

3-7.3. इस प्रकार अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करते हुए, वे वहां से देह त्याग कर दिव्य लोक में पुनर्जन्म हुए; देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्मों का चक्र पूरा करते हुए, हमारे प्रतापी बुद्ध के प्रकट होने से पहले, कपिलवस्तु नगर से कुछ ही दूरी पर स्थित डोनावत्थु नामक ब्राह्मण ग्राम में एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ। उनके कुल में उनका नाम कोण्डाञ्ञ पड़ गया। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और हस्तरेखा शास्त्र में भी निपुणता प्राप्त की। उस समय तक, हमारे बोधिसत्व तुषिता स्वर्ग नगर से देह त्याग कर कपिलवस्तु नगर में महान राजा सुद्धोदन के आलीशान महल में पुनर्जन्म ले चुके थे। उनके नामकरण दिवस पर, जब एक सौ आठ ब्राह्मणों को राजमहल में लाया गया (या उपस्थित कराया गया), तो जिन आठ ब्राह्मणों को उनके गुणों (या विशेषताओं) की जांच के लिए राजमहल के विशाल परिसर में लाया गया, उनमें कोंडञ्च सबसे कम उम्र के थे। एक महान व्यक्तित्व के गुणों की पूर्णता को देखकर उन्होंने यह निर्णय लिया (या निष्कर्ष निकाला) कि "यह निश्चित रूप से बुद्ध बनेगा"। ऐसा निर्णय लेने के बाद, कोंडञ्च महान व्यक्तित्व के महान त्याग की अपेक्षा करते हुए (या उसे इंगित करते हुए) इधर-उधर घूमने लगे।

3-7.4. बोधिसत्व भी, वास्तव में, एक बड़े दल के साथ पले-बढ़े, वयस्कता प्राप्त की, बुद्धि की सर्वांगीण परिपक्वता को प्राप्त किया, उनतीस वर्ष की आयु में महान वैराग्य का त्याग किया, अनोमा नदी के तट पर भिक्षु बन गए, उचित समय पर उरुवेला गए और अपना कठोर परिश्रम किया। फिर, बालक कोण्डाञ्ञ ने यह सुनकर कि महान पुरुष भिक्षु बन गए हैं, ब्राह्मणों के ऐसे पुत्रों के साथ, जिन्होंने संकेतों का अध्ययन किया, जैसे बालक वप्पा आदि, भिक्षु बन गए, और स्वयं को पाँचवाँ भिक्षु बनाया, और उचित समय पर बोधिसत्व के समक्ष उपस्थित हुए, छह वर्षों तक उनकी सेवा की, उनके भरपूर पोषण के सर्वांगीण आनंद से ऊबकर, वे वहाँ से विदा होकर इसिपताना चले गए। तब, बोधिसत्व ने भरपूर पोषण से शारीरिक शक्ति प्राप्त कर ली और वैशाख माह की पूर्णिमा के दिन बोधि वृक्ष के चरणों में स्थित अजेय सिंहासन पर विराजमान होकर तीनों मारों के सिर कुचल दिए, जिससे वे परम प्रबुद्ध बुद्ध बन गए। उन्होंने बोधि वृक्ष के उसी चबूतरे पर सात दिन बिताए, पाँच भिक्षुओं (पंचवग्गी) के सर्वांगीण ज्ञान के बारे में जाना और आसली माह की पूर्णिमा के दिन इसिपताना जाकर उन्हें सत्य के चक्र (धम्मचक्कप्पवत्तना) का उपदेश दिया। उनके उपदेश के सर्वांगीण समापन पर, थेरा कोण्डञ्ञ, अठारह करोड़ ब्रह्माओं सहित, मोक्ष के प्रथम चरण (सोतापत्ति) की प्राप्ति कर स्थापित हुए। फिर, उन्होंने महीने के घटते चंद्रमा (या आधे) के पांचवें दिन अनात्त-लक्खण सूत्र के उपदेश के माध्यम से अरहंत पद की कल्पना की।

596. इस प्रकार, अरहंतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने यह खोज करते हुए कि "मैंने कौन सा कर्म करके दिव्य सुख प्राप्त किया है?", अपने पूर्व कर्मों को स्वयं देखा और अपने मन के आनंद को प्रकट करते हुए तथा पूर्व में किए गए कर्मों का गंभीर उच्चारण करते हुए, उन्होंने पदुमुत्तरसंबुद्धम् से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। उस श्लोक का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (हेष्ठा)। लोकाजेष्ठम् विनायकम् (संसार के मुखिया-सह-वरिष्ठ) समस्त सजीव जगत के मुखिया; यही अर्थ है; विशिष्ट रूप से, विनायको (नेता) वे नेतृत्वीय प्राणियों का नेतृत्व करते हैं और उन्हें उचित रूप से अमर महान निर्वाण प्राप्त कराते हैं, जो संसार सागर का दूसरा किनारा है, इस प्रकार वे नेता हैं; वह नेता; बुद्धभूमि मनुप्पत्तम् (तदनुसार बुद्ध के स्थान को प्राप्त किया); बुद्ध का स्थान, स्थापना स्थल, बुद्धभूमि है; सर्वज्ञता का ज्ञान; उचित रूप से प्रवेश किया और तदनुसार उस तक पहुँचा; इस प्रकार, बुद्ध भूमिमनुप्पत्तो: तदनुसार बुद्ध के स्थान की प्राप्ति, सर्वज्ञता प्राप्त की, बुद्ध बन गए; इस प्रकार, अर्थ है; पथमम् अद्दसम अहम् (मैंने सबसे पहले देखा) मैंने वैशाख माह की पूर्णिमा की रात के बाद सूर्योदय के समय स्वयंप्रबुद्ध बुद्ध पदुमुत्तरा को देखा, जो बुद्ध बन चुके थे।

597. यावता बोधिवा मूले (बोधि वृक्ष की जड़ तक) बोधि वृक्ष के आस-पास जितने भी हों; समागता (एक साथ आना) राक्षस एक समूह बन गए; सम्बुद्धम (स्वयंप्रबुद्ध बुद्ध) वह बुद्ध जो बुद्ध बन गए थे, जागृत हुए; पंजलि कटा (हाथ जोड़े) दस उंगलियों को एक साथ रखने वाले हाथ के पात्र को मेरे सिर पर रखकर; वन्दंती (प्रणाम करना) प्रणाम (या पूजा करना) इस प्रकार, संबंध है।

598. सब्बे देवा तुत्तहमाना (सभी देवता मन से प्रसन्न हुए) - बुद्धत्व प्राप्त करने वाले सभी दिव्य प्राणी मन से प्रसन्न होकर आकाश में विचरण करने लगे; यही संबंध है। अंधकार को दूर करने वाले (अंधकारतमनुदो) - इस प्रकार, यह बुद्ध प्रकट हुए हैं, जिन्होंने भ्रम के अंधकार को अत्यंत व्यापक रूप से दूर किया।

599. तेसम्हासपरेतानम् (हंसी में लीन रहने वालों को) उन दिव्य प्राणियों को जो हंसी, उत्साह और मानसिक आनंद से परिपूर्ण हैं; महानादो (महान गर्जना) बड़ी आवाज (या आवाज) अवत्तथा (कम कर दी गई) घटित हो; क्लेसे (दुराचार) आइए हम आत्म-प्रबुद्ध बुद्ध के युग में दुराचार के कर्मों (धम्म) को जला दें।

600. देवानां गिरमञ्ञाय (देवताओं के वचनों को जानकर) दिव्य प्राणियों की ध्वनि, उनके वचन और उनकी स्तुति के शब्दों को जानकर; हेत्थेन चित्तेन (प्रसन्न मन से) प्रसन्न हृदय से; आदिभिक्खम् (प्रारंभिक भिक्षा) मैंने उन्हें प्रथम पोषण के रूप में अर्पित किया, जो बुद्ध बन चुके थे; इस प्रकार, संबंध है।

602. सात दिनों तक त्याग करने के बाद (सत्तः त्याग करके) मैंने सात दिनों तक घोर त्याग किया और कठोर परिश्रम किया; मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ (बोधिमज्झगमम्) मैंने सर्वज्ञ ज्ञान के मूल कारण (पादात्थान) को प्राप्त किया, जिसे अरहंतत्व के श्रेष्ठ मार्ग का ज्ञान माना जाता है; यही इसका अर्थ है। यह मेरा पहला भोजन है (इदम् मे पात्मम् भत्तम्) यह भोजन मेरे शरीर के पोषण के लिए है; ब्रह्मचर्य के लिए (ब्रह्मचर्य के लिए) यह सबसे उत्तम अभ्यास है; यह मुझे इस युवा दिव्य प्राणी द्वारा सबसे पहले अर्पित किया गया था; यही इसका अर्थ है।

603. तुसिता हि इधा गन्त्वा (यद्यपि तुसिता स्वर्ग से आए हुए) तुसिता स्वर्ग के महल से मनुष्यलोक में आकर; यो (जो) युवा देवता, मे (मेरा) मेरा भिक्षा-भोजन; उपनायी (निकला लाया गया) अर्पित किया; तम (उसे) युवा देवता; कित्तयिसामि (मैं घोषणा करूँगा) मैं बोलूँगा, मैं प्रकट करूँगा; भासतो (बोलते हुए), कृपया मन के शब्दों को सुनें, जो मैं बोल रहा हूँ; इस प्रकार संबंध है। अब से मैं केवल उन्हीं शब्दों पर टिप्पणी करूँगा जो स्पष्ट (या सरल) नहीं हैं।

607. तावतिंगसा का स्वर्गीय निवास, तिदसा (तीस), तैंतीस; गृहस्थ जीवन से निकलकर, जहाँ उसका जन्म हुआ था (या वह उत्पन्न हुआ था), वह ब्राह्मण के घर से निकलकर भिक्षु बन गया, और छह वर्षों तक उस बोधिसत्व के साथ रहेगा जो पूर्ण तपस्या (या कठिन कर्म) (दुक्करकारिका) कर रहा था; इस प्रकार, संबंध है।

608. ततो सत्तमके वस्से (सातवें वर्ष में) भिक्षु बनने के समय से शुरू होने वाले सातवें वर्ष में; बुद्धो सच्चम कथेस्सति (बुद्ध सत्य का उपदेश देंगे), छह वर्षों तक कठोर तपस्या (दुक्कराकारिका) करने के बाद बुद्ध बनने पर, वे चार आर्य सत्यों का उपदेश देंगे, जिन्हें दुख (दुक्खा), दुख का कारण (समुदय), दुख का निवारण (निरोध), और मार्ग (मग्ग) के रूप में गिना जाता है, सत्य के चक्र को घुमाने के धार्मिक प्रवचन (धम्मचक्क पवत्तनसुत्त) के रूप में, बनारस के इसिपताना हिरण उद्यान में; इस प्रकार, इसका अर्थ है। कोण्डाञ्ञ नाम नामेना (कोण्डाञ्ञ नाम से जाना जाता है), कुल के नाम से; paṭhamam sacchikāhi ti (सर्वप्रथम कल्पना करते हुए) वह स्वयं को पवित्रता के प्रथम चरण (सोतापत्ति) के श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की कल्पना करेगा, उसे प्रकट करेगा, प्रारंभ से ही पंचवग्गी के समूह में सर्वप्रथम। इस प्रकार, यह अर्थ है।

609. निक्खंतेननुपब्बजिम (त्याग के साथ मैंने भिक्षु बन गया) बोधिसत्व के प्रस्थान के साथ ही मैंने त्याग कर उनके बाद भिक्षु बन गया; यही अर्थ है। पदानम्, परिश्रमपूर्वक प्रयास, सुकतम (अच्छी तरह से किया गया) उनके बाद भिक्षु बनने के बाद, उसी प्रकार, आत्मप्रयास (पधान) को उचित रूप से संपन्न किया गया; यही अर्थ है। किलेसेझापनत्थायस (प्रत्येक दोष को जलाने के उद्देश्य से) क्लेश को सुखाने और समाप्त करने के लिए; अनागारियम, गृहस्थ अवस्था, पब्बजिम (मैं बाहर गया) मैंने शासन (शासन) में प्रवेश किया, जो हल चलाने, व्यापार करने आदि जैसे कर्मों से रहित है, जो गृहस्थ के लिए लाभकारी (या कल्याणकारी) नहीं हैं; यही अर्थ है।

610. अभिगन्त्वाना सब्बाञ्ञु, सर्वज्ञ बुद्ध के पास पहुँचकर, मिगारञ्ञम (हिरण-वन) से आगे बढ़कर मिगदाय के मठ में पहुँचकर, बुद्ध, प्राणियों के जगत में, दिव्य प्राणियों के साथ, सभी भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाले, या ऐसे ज्ञानी विषय को जानने वाले जो संकल्प (संस्कार), परिवर्तन (विकार), विशेषता (लक्खण), अमरता (निर्वाण) और पदनाम (पञ्ञत्ति) के रूप में माने जाते हैं; मेरे द्वारा (मेरे द्वारा) मेरे द्वारा दृष्टि से, इमिना (इसके द्वारा) पवित्रता के प्रथम चरण (सोतापत्ति) के श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान से, अमरभेरिम (अमर ढोल) बुद्ध ने इंगित किया, प्रहार किया, अद्वितीय स्थायी शांति (निर्वाण) के बड़े अमर ढोल को बजाया; इस प्रकार, अर्थ है।

611. सो 'दानी, हे अब, संतम्, शांत, पदम्, पथ, अनुत्तरम्, अतुलनीय, कि मैंने निर्वाण प्राप्त किया, जो उससे श्रेष्ठ नहीं है, जिसे प्राप्त किया जाना चाहिए, शांति की अमर अवस्था, अब अरहंतत्व के ज्ञान के साथ, सर्वप्रथम होकर, पवित्रता की प्रथम अवस्था (सोतापन्न) प्राप्त की है; यही अर्थ है। सब्बासवे परिञ्ञाय (सभी दोषों को सर्वत्र जानकर) कामुक दोष आदि सभी दोषों को त्यागकर, त्याग के सर्वव्यापी ज्ञान के साथ; अनासव (दोष रहित) दुराचार से रहित; विहारामि (मैं रहता हूँ) मैं अपना निवास स्थान बनाता हूँ या मैंने चार मुद्राओं में रहकर (इरियापथ विहार) अपनी जीविका बनाई, पटिसंभिदा चतस्सो (चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान) जैसे श्लोक पटिसंभिदा चतस्सो से शुरू होते हैं, इत्यादि कहे गए हैं।

611,1. इसके बाद, गुरु ने बुद्ध के लिए तैयार किए गए उत्तम आसन पर, भिक्षुओं के बीच में बैठकर, उन्हें सर्वोच्च पद पर स्थापित किया और सर्वप्रथम धर्म के उनके उचित ज्ञान की शर्त को इस प्रकार रखा: "हे भिक्षुओं! यह भिक्षु मेरे शिष्यों में प्रमुख है, जो अनेक रात्रियों से (या जो वरिष्ठता का दावा करते हैं) इसे जानते हैं, अर्थात्, अञ्ञासि कोन्धञ्ञ।" वह थेरा, अपने दो प्रमुख शिष्यों द्वारा की गई अत्यंत विनम्र सेवा से (परिहरितकामो) और गाँव के एक कोने में स्थित मठ के भीड़भाड़ वाले निवास से स्वयं को बचाने की इच्छा रखते हुए,

और एकांत में विशेष आनंद के साथ रहने की इच्छा रखते हुए, तथा अपने निकट आने वाले गृहस्थों और भिक्षुओं के वार्तालाप को बाधा मानते हुए, गुरु से अनुमति लेकर हिमालय में प्रवेश किया और बारह वर्षों तक छद्दंत नदी के किनारे छद्दंत हाथियों की देखरेख में निवास किया। एक दिन, देवताओं के राजा सक्का, वहाँ निवास कर रहे थेरा के पास इस प्रकार पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, खड़े हुए और उनसे इस प्रकार कहा: "आदरणीय गुरुदेव! यदि मेरे स्वामी मुझे धर्म का उपदेश दें तो अच्छा होगा।" थेरा ने बुद्ध के समान वैभव के साथ, अमर आनंद (अमतोगोधा) की ओर ले जाने वाले धर्म का उपदेश दिया, जो अनेक मार्गों से युक्त था और तीन विशिष्ट गुणों (लक्खणा) से उत्पन्न शून्य (सुञ्ञता) से उचित रूप से जुड़ा हुआ था, जिनमें चार आर्य सत्य समाहित थे। थेरा के उस धर्म उपदेश को सुनकर, सक्का ने थेरा को अपनी पुण्य प्रसन्नता से अवगत कराने के लिए उनकी स्तुति की, इस प्रकार:-

"इस अत्यंत आनंदमय धर्म को सुनकर मैं और भी प्रसन्न हो गया हूँ; कामवासना से रहित और पूरी तरह से आसक्ति से मुक्त, ऐसा धर्म उपदेशित किया गया है।"

बारह वर्षों तक छद्दंता झील के किनारे रहने के बाद, जब थेरा का पूर्ण निर्वाण प्राप्त करने का समय निकट आया, तो वे गुरु के समक्ष गए, उनसे अपने सर्वांगीण निर्वाण में प्रवेश के लिए सहमति देने का अनुरोध किया, उसी छद्दंता झील पर लौट आए और पूर्ण रूप से निर्वाण प्राप्त कर लिया।

थेरा अन्नासी कोन्दन्ना की जीवनी पर टिप्पणी समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 8. थेरा पिण्डोला भारद्वाज

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.18. पिंडोला-भारद्वाज
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-8 थेरा पिन्डोला भारद्वाज की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

8. पिंडोला-भारद्वाज

स्वयंभू श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ पुरुष, विजय प्राप्त पद्ममुत्तरा, हिमालय के सामने चित्तकूट350 में निवास करते थे। (1) (620)

मैं (तब) वहाँ जानवरों का राजा था, निर्भय होकर चारों पैरों पर चल रहा था। उस (बुद्ध) की आवाज सुनकर बहुत से लोग इकट्ठा हो रहे थे। (2) (621)

---

348 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 349 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 350 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपादान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

मैंने एक खिला हुआ कमल उठाया और मनुष्यों के श्रेष्ठ (बलुष) के पास जाकर उसे बुद्ध को दे दिया जब वे ध्यान से उठे थे। (3) (622)

मैंने चारों दिशाओं से सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, परम पुरुष की पूजा की और अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए मैंने शेर की दहाड़ लगाई। (4) (623)

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, बलिदान प्राप्तकर्ता, अपनी सीट पर बैठकर फिर ये छंद बोले (मेरे बारे में): (5) (624)

यह जानकर कि बुद्ध बोलेंगे,352 सभी देवता एक साथ आए, (यह सोचते हुए), "सर्वोत्तम (बुद्ध) आ गए हैं; आइए हम उनके उपदेश सुनें।" (6) (625)

विश्व-प्रधान, दूरदर्शी, महान ऋषि (बुद्ध) ने तब हँसी से लोटपोट हुए उन देवताओं के सामने मेरी गर्जना का अर्थ समझाया। (7) (626)
"मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने मुझे यह कमल का फूल दिया और जिसने शेर की दहाड़ मारी; आप सब मेरी बातें ध्यान से सुनें: (8) (627)
आठ युगों बाद वह चक्र चलाने वाला सम्राट होगा, सात रत्नों का स्वामी होगा, और चारों महाद्वीपों का स्वामी होगा। (9) (628)
वह (तब) साठ से चार अधिक (जीवनकालों) तक पृथ्वी पर शासन करेगा।353 वह पद्म के नाम से जाना जाएगा,354 एक महान शक्ति वाला चक्र घुमाने वाला राजा। (10) (629)

---

351 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
352 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 353 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 354 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का एक व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (11) (630)
जब बुद्ध के वचन प्रसारित होंगे, तब यह ब्राह्मण होगा। अपनी ब्राह्मणता को त्यागकर वह (बौद्ध मार्ग पर) आगे बढ़ेगा। (12) (631)
परिश्रम में लीन होकर, शांत होकर,355 पुनर्जन्म के आधारों से रहित होकर,356 सभी दोषों को भली-भांति जानकर, वह निर्वाण प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर। (13) (632)
यद्यपि वह घने जंगल में रहने वाले भयानक पशुओं के कबीले का है, जो सभी अशुद्धियों को भली-भांति जानता है, फिर भी वह निर्वाण प्राप्त करेगा, अछूता। (14) (633)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर राख हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (634)357
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव रहा। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (635)358
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) (636)
इस प्रकार पूज्य पिण्डोल-भारद्वाज थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पिण्डोला-भारद्वाज थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

355 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ। 356 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel)। 357 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 358 BJTS के साथ PTS sañjālesi के लिए sañcālesi पढ़ना।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-8 थेरा पिन्डोला भारद्वाज की जीवनी पर टीका
3-8.1. पद्ममुत्तरो नाम से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य पिन्धोला भारद्वाज की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस थेरा ने भी पूर्व बुद्धों के प्रति भक्तिपूर्ण कर्म करके, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में एक सिंह के गर्भ में पुनर्जन्म लिया तथा एक पहाड़ी की तलहटी में स्थित गुफा में रहने लगे। प्रतापी पद्ममुत्तरा ने उस सिंह की सहायता करने के लिए, जब वह अपने चरागाह के लिए रवाना हुआ था, उस गुफा में प्रवेश किया जहाँ वह सिंह सोता था, और स्वयं निरोध ध्यान में लीन होकर बैठ गए। शेर ने अपने शिकार को पकड़ा, लौटा, अपनी गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़ा हुआ, भगवान

बुद्ध को देखा, प्रसन्न और आनंदित हुआ, जल और भूमि से उत्पन्न फूलों को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया, और स्वयं बुद्ध की ओर ध्यान लगाकर खड़ा रहा, तीनों पहरों में शेर की दहाड़ मारता रहा ताकि अन्य जंगली जानवर दूर रहें और भगवान बुद्ध की रक्षा कर सकें। पहले दिन की तरह ही, शेर ने सात दिनों तक श्रद्धापूर्वक बुद्ध को अपनी सुरक्षा प्रदान की। सात दिन बीतने पर, भगवान बुद्ध निरोध समाधि से उठे और शेर के देखते ही वे आकाश में विलीन हो गए और आकाश से होते हुए अपने मठ की ओर चले गए, और मन ही मन कहा: "इस शेर के लिए उपनिस्य अर्हंत बनने की इतनी ही पर्याप्त परिस्थितियाँ होंगी।"

3-8.2. बुद्ध से वियोग का दर्द सहन न कर पाने के कारण सिंह की मृत्यु हो गई और वह हांगसावती नगर के एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर नगरवासियों के साथ मठ में गया। वयस्क होने पर उसने धर्म का उपदेश सुना, जिससे वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को सात दिनों तक दान दिया। जीवन भर उसने पुण्य कर्म किए और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच बार-बार जन्म लेते हुए कोसंबी में राजा उदेना के निजी पुरोहित के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उसका नाम भारद्वाज था। वयस्क होने पर उसने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और पाँच सौ युवकों को मंत्रों का शिक्षण दे रहा था। अपनी स्वाभाविक समृद्धि के अनुरूप आचरण न कर पाने के कारण, वे सभी द्वारा त्याग दिए गए, राजगृह गए, वहाँ उन्होंने बुद्ध और भिक्षुओं के समुदाय की उन्नति और महिमा को देखा, बुद्ध के मार्ग पर चलकर भिक्षु बन गए और भोजन की कोई सीमा जाने बिना जीवन व्यतीत करने लगे। गुरु द्वारा चतुराई से उन्हें भोजन की उचित सीमा का ज्ञान कराया गया, तब थेरा ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि में लीन होकर शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान प्राप्त कर लिए। छह प्रकार के उच्च ज्ञान प्राप्त करने के बाद, थेरा ने बुद्ध की उपस्थिति में सिंह-गौरव करते हुए कहा: "शिष्यों को जो कुछ प्राप्त होना चाहिए, वह मुझे प्राप्त हो चुका है।" भिक्षुओं के समूह की उपस्थिति में भी थेरा ने चुनौती देते हुए कहा: "यदि किसी को मार्ग (मग्ग) या उसके फल (फल) के बारे में कोई संदेह हो, तो वह मुझसे पूछे।" इस कारण भगवान ने थेरा को सर्वोच्च पद प्रदान करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे उन भिक्षु शिष्यों में जो सिंह के समान दहाड़ते हैं, यह थेरा पिन्धोल भारद्वाज प्रमुख हैं।"

613. इस प्रकार सर्वोच्च पद (एतदग्ग) प्राप्त करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और मानसिक आनंद के रूप में अपने द्वारा किए गए कर्मों को प्रकट करने के लिए पद्ममुत्तरो से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। उस श्लोक का अर्थ पहले ही (हेष्ठा) बताया जा चुका है। पुरतो हिमवंतास्सा (हिमवंत के सामने) हिमालय पर्वत से पूर्व दिशा की ओर; यही अर्थ है। चित्तकूते वसी तका (तब चित्तकूत में रहने वाला) जब मैं सिंह, पशुओं का राजा था, तब मैं हिमवंत के पड़ोस में रहता था; तब पद्ममुत्तरा नामक गुरु चित्त पर्वत की चोटी पर, चित्त के शिखर पर, अनेक प्रकार की औषधियों और रत्नों से सुशोभित होने के कारण निवास करते थे; यही संयोजन है।

614. अभितरूपो तत्थासिम (मैं वहाँ भाव से निर्भय था) मैं वहाँ पशु-राजा था, स्वभाव से निर्भय और प्रकृति से खतरे से मुक्त; यही अर्थ है। चतुक्कमो (चारों दिशाओं में जाने वाला) चारों दिशाओं में जाने वाला, चारों दिशाओं में जाने में सक्षम; यस्स सद्दाम सुनित्वाना (जिसकी ध्वनि सुनकर) पशु-राजा की सिंह गर्जना सुनकर; बहुज्जना (अनेक प्राणी) अनेक जीव; विक्खम्भन्ति (भय से अकड़ जाना) स्पष्ट रूप से स्थिर और भयभीत हो जाना।

615. सुफुल्लम पदुमन गया (सुखद कमल ने खिले हुए कमल को पकड़ लिया), प्रतापी बुद्ध की सुखद धार्मिकता के कारण, सुंदर रूप से खिले हुए कमल को काटकर; नरसाभम (वृहद बैल) के पास मैं गया, मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ और सर्वश्रेष्ठ आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के पास गया; वुच्छितस्स समाधिम्हा (एकाग्रता से उठे बुद्ध को) मैंने उस फूल को विशेष रूप से स्थापित करके श्रद्धापूर्वक अर्पित किया, जो निरोध की समाधि (समापत्ति) से उठे बुद्ध को अर्पित किया; यही अर्थ है।

616. चतुद्दिसम नमसित्वा (प्रणाम करते हुए) चारों दिशाओं की ओर श्रद्धापूर्वक झुककर; सकम चित्तम (मेरा अपना मन) मेरा अपना मन या हृदय, पसादेत्वा (प्रियतापूर्वक पवित्र बनाते हुए) आदरपूर्वक स्थापित करना; सिहनादम (सिंह गर्जना) निर्भय गर्जना; अनादिम (गर्जना की) मुखर होना; इस प्रकार, अर्थ है।

617. इसके बाद, बुद्ध द्वारा दी गई भविष्यवाणी को प्रकट करते हुए, उन्होंने पदुमुत्तरो ति से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। यह तो बहुत आसान है।

618. वदतम सेष्टो (वक्ता सर्वोत्कृष्ट) बुद्ध, जो अन्य विधर्मी नेताओं में सर्वोत्कृष्ट और श्रेष्ठ हैं, जो यह कहने का आशंकित रहते हैं: "हम बुद्ध हैं, हम प्रबुद्ध हैं," आ चुके हैं; यही संबंध है। सोस्सामा (सुनें) आइए, उस महिमावान व्यक्ति के धर्म को सुनें जो आ चुके हैं; यही अर्थ है।

619. तेसम हासपरतानम् (हंसी से अभिभूत लोगों को) उन दिव्य और मानवीय प्राणियों को, जो आनंद से परिपूर्ण और प्रसन्न मन वाले थे; लोकनायको (संसार के संरक्षक) संसार के नेता, जिन्होंने लोगों को स्वर्ग और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाई; मम सद्दाम (मेरी वाणी) मेरी सिंह गर्जना; पकित्तेसी (घोषित) प्रकट और बोले; दीघदस्सी (दूरदर्शी) आने वाले समय के द्रष्टा (या भविष्य के द्रष्टा); महामुनि (महान ऋषि) ऋषियों में महान ऋषि। शेष श्लोक भी आसानी से समझ में आ जाते हैं।

622. इस्सारियम, पद्मा नाम से विश्व-राजा (या सार्वभौमिक सम्राट) बनकर, जन्म से चौंसठवें वर्ष में शासन करेगा; यही अर्थ है।
623. कप्पसतसहस्सम्ही, यह एक स्थलीय शब्द है, जो अधिकारवाचक के अर्थ में, एक लाख विश्व-चक्रों (कप्प) के सर्वव्यापी छोर पर है; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
624. पकासिते पावचने (जब बुद्ध का वचन स्पष्ट हुआ) जब तीनों पिटकों का प्रकटीकरण हुआ और उस तेजस्वी गौतम ने उनका उपदेश दिया; यही अर्थ है। ब्रह्मबंधु भविस्सति, वह एक ब्राह्मण का रिश्तेदार बनेगा, और फिर, उस तेजस्वी गौतम के समय में, यह सिंह, पशुओं का राजा, एक ब्राह्मण के परिवार में पुनर्जन्म लेगा; यही अर्थ है। ब्रह्मञ्ञा अभिनिक्खम्मा (ब्राह्मण परिवार से निकलकर) वह ब्राह्मण परिवार से विदा होकर उस तेजस्वी गौतम के मार्गदर्शन में भिक्षु बन जाएगा; यही संबंध है।
625. पाखानपहितत्तो (कठिन परिश्रम की ओर भेजा गया मन) परिश्रम करने के उद्देश्य से भेजा गया मन; निरुपधि (अस्तित्व के आधार से मुक्त, सभी प्रकार के दोषों (किलेसा) के अभाव के कारण; उपसन्तो (शांत) दोषों की प्रज्वलित ऊष्मा के अभाव के कारण। सब्बासवे (सभी दोष) सभी दोषों का; परिञ्ञाय (सब कुछ समझकर) त्याग दिया; अनासवो (दोष रहित) दोषों (किलेसा) से रहित; निब्बायिस्सति (निर्वाण प्राप्त करेगा) सभी दोषों (बंध) के प्रज्वलित होने से शीतल और स्थिर हो जाएगा; यही अर्थ है।
626. विजयने पंतसेय्यम्ही (मनुष्यों से रहित एकांत वन आश्रम में) दूर-दराज के वन-मठ में, मनुष्यों की भीड़ से रहित; यही अर्थ है। वालमिगासमाकुले (हिरणों और पशुओं से पूरी तरह से विचलित) काले शेर आदि जैसे क्रूर पशुओं की भीड़ से स्पष्ट रूप से विचलित; यही अर्थ है। शेष का भी स्पष्टीकरण हो चुका है।
पिन्दोला भारद्वाज थेरा की जीवनी पर टीका का कार्य समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 9. थेरा खदिरावनिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.19. खदिरावनिया रेवता
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.13-9 थेरा खदिरावनीय की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

9. खदिरावनिया रेवता

भागीरथी359 नामक नदी हिमालय से पोषित होती है। मैं, पास के किनारे पर एक नाविक, उबड़-खाबड़ नदी के पार (लोगों को) ले गया। (1) (637)
“सर्वश्रेष्ठ द्विपाद, पद्ममुत्तरा संबुद्ध भगवान को एक लाख अरहंतों के साथ उफनती धारा को पार करना होगा।” (2) (638)
कई नावों को श्रमिकों द्वारा बहुत सावधानीपूर्वक एक साथ बांधकर (और) एक आवरण बनाकर, मैंने (उन्हें), मनुष्यों के बैल को, सम्मानित किया। (3) (639)
जब संबुद्ध पहुँच गए तो वे उस (बड़ी) नाव पर चढ़ गए।360 नदी के बीच में शिक्षक ने ये श्लोक कहे: (4) (640)
“जिसने संबुद्ध और निष्कलंक सभा को पार कराया, वह अपने हृदय में उत्पन्न प्रसन्नता के कारण देवताओं के लोक में आनंदित होगा। (5) (641)
एक दिव्य महल बनेगा, जो तुम्हारे लिए अच्छी तरह से बनाया गया होगा, एक नाव पर टिका होगा जो हमेशा आकाश में विचरण करेगी, फूलों की छतरी के साथ। (6) (642)
अट्ठावनवें युग में (तब से) वह एक चक्र घुमाने वाला राजा होगा, जो चारों ओर से विजयी होगा, एक क्षत्रिय जिसका नाम ताराण होगा।361 (7) (643)

सत्तावनवें युग में

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 359 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 360 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
361 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

वह कैम्पाका नाम का राजा होगा।3623 ... होगा। वह प्रखर शक्ति के साथ सूर्योदय के समय सूर्य की तरह चमकेगा। (8) (644)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का एक व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (9) (645)
सर्वोच्च स्वर्ग से गिरकर364 वह मनुष्य रूप धारण करेगा। वह ब्रह्मा का संबंधी होगा;365 वह रेवता के नाम से जाना जाएगा। (10) (646)
अपने उत्तम मूल से प्रेरित होकर, वह घर (और संसार) से निकलकर गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का त्याग करेगा। (11) (647)
और बाद में, जब वह त्याग कर लेगा, नियम का पालन करेगा, चिंतनशील होगा, सभी दोषों को भली-भांति जान लेगा, तब वह निर्वाण प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर। (12) (648)
बोझ उठाने के मेरे प्रयास ने मुझे आसक्तियों से मुक्ति दिलाई। (अब) मैं परम बुद्ध की शिक्षाओं में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ।366 (13) (649)
एक लाख युगों पहले किए गए कर्मों का फल मुझे यहाँ मिला: पूर्णतः मुक्त होकर, तीर की तरह तेज होकर, मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (650)
वनों के प्रति मेरे प्रेम को देखकर, जगत के अंत तक पहुँचने वाले महान ऋषि ने मुझे वनवासी भिक्षुओं में सर्वोपरि स्थान दिया। (651)
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

---

362 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 363 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 364 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 365 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 366 शाब्दिक अर्थ, "गया"।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिए हैं, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) (652)
इस प्रकार पूज्य खदिरावनीय रेवता थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
खदिरावनीय रेवता थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-9 थेरा खदिरावनीय की जीवनी पर टीका।
3-9,1. गंगाभागीरथी नाम से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा खदिरवानीया की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस थेरा ने पूर्व बुद्धों की भी समर्पित सेवा की थी और पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों को संचित करते हुए, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में हंसवती नगर में एक नाविक के परिवार में पुनर्जन्म लिया था। परम पूज्य बुद्ध और उनके शिष्यों के साथ गंगा तट के निकट नौकायन करते हुए, वे अत्यंत धर्मपरायण हो गए, नौकाओं का संग्रह करके बुद्ध और उनके शिष्यों को बड़े आदर और श्रद्धा के साथ दूसरे तट तक ले गए।

उन्होंने देखा कि गुरु ने एक भिक्षु को वनवासी भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान दिया है, तो उन्होंने भी वही पद पाने की कामना की, बुद्ध और भिक्षुओं को दान दिया और पाणिधान किया। परम पूज्य बुद्ध ने उनकी इस मनोकामना की पूर्ति की भविष्यवाणी की।

3-9,2. वहीं से आरंभ करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेकर दोनों प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया। जब वर्तमान बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका पुनर्जन्म मगध राज्य के नालक ग्राम में रूपसारी नामक ब्राह्मण स्त्री के गर्भ में हुआ। माता-पिता ने उन्हें, जो वयस्क हो चुके थे, गृहस्थी में बांधने की इच्छा की और उन्हें इस बारे में सूचित किया। यह सुनकर कि थेरा सारिपुत्त भिक्षु बन गए हैं, उन्होंने मन ही मन कहा: "मेरे बड़े भाई, भगवान उपतिस्सा, ने इस धन का त्याग करके भिक्षु बन गए हैं; मैं उनके द्वारा उगली गई लार के इस टुकड़े का आनंद कैसे उठाऊँगा?" इस प्रकार, उसने पश्चाताप को प्रेरित किया, और एक हिरण की तरह, जो जाल के पास नहीं जाता, रिश्तेदारों से बच निकला। कारण की प्रबलता से प्रेरित होकर, वह भिक्षुओं के समक्ष गया, उन्हें अपने धम्म के सेनापति के सबसे छोटे भाई होने की स्थिति से अवगत कराया और स्वयं भिक्षु बनने की अपनी इच्छा के बारे में बताया। भिक्षुओं ने उसे दीक्षा दी और बीस वर्ष की आयु पूरी होने पर उसे पूर्ण दीक्षा प्रदान की तथा उसे मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) सौंपा। उसने मानसिक अभ्यास (कम्मत्थाना) का पाठ लिया, बबूल के जंगल में प्रवेश किया, थकान से उबरने के लिए, परिश्रम और प्रयास किया, और ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता प्राप्त करने के कारण, कुछ ही समय बाद, छह प्रकार के उच्च ज्ञान से परिपूर्ण अरहंत बन गया। अरहंत बनने के बाद, उन्होंने अपने मठ का त्याग कर, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किया और बुद्ध तथा धम्म के सेनापति को प्रणाम करने के लिए प्रस्थान किया। उचित समय पर वे सावत्थी पहुँचे, जेतवन मठ में प्रवेश किया, गुरु तथा धम्म के सेनापति को प्रणाम किया और कुछ दिनों तक जेतवन में रहे। फिर, अपने श्रेष्ठ शिष्यों की सभा के बीच में विराजमान होकर, गुरु ने उन्हें वनवासी भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! यह थेरा मेरे वनवासी शिष्य भिक्षुओं में श्रेष्ठ है; अर्थात्, यह रेवता।"

628. इस प्रकार सर्वोच्च पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और अपने उत्साह और मन की प्रसन्नता के फलस्वरूप पूर्व में किए गए कर्मों को प्रकट करने के लिए गंगा भागीरथी से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ गंगा, नदी; जो गाती और वाणी करती बहती है; यही गंगा है; दूसरे शब्दों में, पृथ्वी को 'जाना' कहा गया है, जो उस पृथ्वी पर चली गई है या मुड़ गई है; यही गंगा है; आवत्त गंगा, जिसने अनोटत्त झील की तीन बार परिक्रमा की और बहती रही; बहला गंगा, जो पहाड़ी की चोटी पर बहने के स्थान पर है; उमंग गंगा भी पशु पहाड़ी में प्रवेश करके बहने के स्थान पर है; आकाश गंगा, पाँच योजन तक आकाश में बहने के बाद बहाला पर्वत से टकराती है; भागीरथी, उस नदी के गिरने के स्थान को तोड़कर, पाँच योजन तक फैले कमल के तालाब के किनारे को तोड़कर, वहाँ पाँच उंगलियों के समान पाँच जल-वाहक नदियाँ बन जाती है; गंगा, यमुना, सरभू, माही और अचिरवती जैसे पाँच नामों से जानी जाने वाली, जम्बूद्वीप को पाँच भागों में बाँटकर, नदी बहने लगती है; गंगा और भागीरथी; इस प्रकार, गंगा भागीरथी। यद्यपि इसे "भागीरथी गंगा" कहा जाना चाहिए, श्लोक की रचना में सुगमता के लिए इसे पूर्व प्रचलन के अनुसार ऐसा कहा गया है; अतः इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। हिमवंता पभाविता, हिमवंता से उत्पन्न, क्योंकि यह जीवों के प्रति क्रूर है, प्रहार करती है, परेशान करती है और ठंड से अस्त-व्यस्त कर देती है; अतः यह हिम है, बर्फ; इसमें बर्फ है; अतः हिमवा, बर्फ का स्वामी; उस हिमवंता से ही यह उत्पन्न होती है, बनती है, बहती रहती है; अतः यह हिमवंता से उत्पन्न होती है। कुटित्ते नाविको आसिम (मैं एक खराब घाट पर नाविक था) मैं एक नाविक था और बन गया जो नदी के घुमावदार किनारे पर, नदी के असमान घाट पर, जब गंगा उबड़-खाबड़ धारा में ठीक से पहुँचती थी, तब उत्पन्न हुआ; यही अर्थ है। ओरिमे च तारिमहम (मैं यहाँ से भी पार हुआ) मैं पार हुआ और उन लोगों को पार कराया जो स्वयं आते रहे; उस किनारे से उस किनारे तक; यही इसका अर्थ है।

629. पदुमुत्तरो नायको (नेता पदुमुत्तरा) बुद्ध पदुमुत्तरा, दो पैरों वाले मनुष्यों में श्रेष्ठ, जीवों को निर्वाण तक ले जाने वाले, जहाँ उन्होंने अपने अनुयायियों को पहुँचाया और जिन्होंने पुण्य कर्मों की समृद्धि से सिद्धि प्राप्त की, वसीसतसहस्सेहि (एक लाख शक्तिशाली लोगों के साथ) एक लाख अरहंतों के साथ, जिन्होंने अपने कष्टों को दूर कर लिया था, गंगा नदी पार करने के लिए नदी के किनारे पहुँचे; इस प्रकार, संबंध है।

630. बाहुनावा समनेत्वा (अनेक नौकाओं को एकत्रित करके) ने ज्ञान प्राप्त बुद्ध को आते देखकर, नौका निर्माता बढ़ई द्वारा विधिवत और परिपूर्ण रूप से निर्मित अनेक नौकाओं को एकत्रित किया, प्रत्येक दो नौकाओं के जोड़े को एक में संयोजित किया और उन नौकाओं पर छत वाला पंडाल स्थापित किया; नरसाभम (विशाल बैल-पुरुष) ने ज्ञान प्राप्त बुद्ध पद्ममुत्तरा को अर्पित किया; पतिमानिम (उचित रूप से आदरणीय) सम्मान में अर्पित किया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

631. आगन्त्वना च सम्बुद्धो (स्वयंप्रबुद्ध बुद्ध, जो वहाँ आए थे) अच्छी तरह से बंधी हुई नौकाओं पर सवार होकर; तम च नावकम (उस नौका पर भी) बुद्ध ने सबसे उत्तम नौका पर सवार होकर यह संबंध स्थापित किया। वारिमज्जे तितो सत्था (गुरु जल के मध्य में खड़े थे)

गंगा नदी के मध्य में स्थित गुरु ने इस श्लोक का उचित उपदेश दिया, जिससे मन को आनंद मिलता है; इस प्रकार यह संबंध स्थापित किया गया है।

632. यो सो तारेसि सम्बुद्धम् (जिसने आत्मज्ञानी बुद्ध को पार भेजा) वह नाविक, जिसने आत्मज्ञानी बुद्ध को बहती गंगा नदी के पार भेजा; संघांचपि अनासवम् (उन पुरोहितों को भी जो दोषरहित थे) मैंने केवल आत्मज्ञानी बुद्ध को ही पार नहीं भेजा, बल्कि दोषरहित और निर्मल पुरोहितों को भी पार भेजा; यही अर्थ है। तेना चित्तपसादेन (उस सुखद पवित्र मन से) उस निर्मल पवित्र मन से, जो मेरे नौका चलाने के समय उत्पन्न हुआ; देवलोक (दिव्य लोक में) छह इंद्रिय लोकों में; रामिस्सति (वह आनंदित होगा) वह तदनुसार दिव्य समृद्धि का अनुभव करेगा; यही अर्थ है।

633. निब्बत्तिस्सति ते ब्याम्हम्, तुम्हारे लिए एक महल उत्पन्न होगा, ते (तुम्हारे लिए) दिव्य लोक में पुनर्जन्म लेने वाले तुम्हारे लिए, ब्याम्हम्, एक महल, सुकतम (सुगठित) विधिवत निर्मित, सुगठित; नाव के आकार का (उपयुक्त रूप से रखा हुआ नाव); निब्बत्तिस्सति (पुनर्जन्म) प्रकट होगा; यही अर्थ है। आकाशे पुप्फह चदनाम (आकाश में, पुष्प छत्र) नाव के ऊपर पंडाल बनाने के फलदायी परिणाम स्वरूप, वह आकाश में अपने सिर पर सदा पुष्प छत्र धारण करेगा; यही क्रम है।

634. पुण्य कर्म करने के इस समय से शुरू होकर (अष्टम युगों (कप्पा) बाद), अष्टम युगों से आगे बढ़कर, तोराका नाम से जाने जाने वाले खत्तिया वंश के एक विश्वराज ने; चतुरंतो (चार सीमाओं) में चार द्वीपों पर शासन करने वाले राजा ने; विजयावी (ने विजय प्राप्त की) विजय प्राप्त की; इस प्रकार, संबंध है। श्लोक का शेष भाग स्पष्ट है।

637. रेवतो नाम नामेन (रेवता नाम से जाना जाता है) रेवती नक्षत्र में जन्म लेने के कारण "रेवता" नाम प्राप्त हुआ; ब्रह्मबंधु (ब्रह्मा का रिश्तेदार) ब्राह्मण का पुत्र बना है; न्हाविस्साति (होगा) ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होगा; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

639. निब्बायिस्सति नासावो (जो दोषरहित है वह निर्वाण में प्रवेश करेगा) वह सर्वांगीण विसर्जित समुच्चयों (खन्ध परिनिर्वाण) के माध्यम से निर्वाण में प्रवेश करेगा।

640. वीरियम मे धुरधोरयम (मेरा परिश्रम, मेरे द्वारा उठाए गए भार (या ज़िम्मेदारी) को वहन करने का मेरा प्रयास कोमल प्रकार का नहीं था; यह एक विशेष और निश्चित ज़िम्मेदारी का वहन था, जिसके साथ सुरक्षित, खतरे से मुक्त निर्वाण की प्राप्ति के लिए मेरा कठोर परिश्रम भी शामिल था; यही अर्थ है। धारेमि अंतिमं देहम् (मैं अपना अंतिम शरीर धारण करता हूँ) अब, मैं आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के विधान में अपना सर्वांगीण अंतिम शरीर धारण करता हूँ; यही संबंध है।

640,1. इसके बाद, वह अपने पैतृक गाँव गए, वहाँ से अपनी बहन के तीन पुत्रों, भतीजों और तीन पुत्रियों, कला, उपकला और सीसूपकला को लाए, उन्हें भिक्षु और भिक्षुणी बनाया और उन्हें मानसिक साधना (कम्मत्थान) में लगा दिया। वे इसी प्रकार मानसिक साधना (कम्मत्थान) में लीन होकर जीवन व्यतीत करते रहे।

640,2. उस समय, थेरा को एक विशेष रोग हो गया। इसके बारे में सुनकर, थेरा सारिपुत्त, थेरा के पास गए और मन ही मन कहने लगे, "मैं रेवत के रोग का पता लगाऊंगा और उनकी उपलब्धि के बारे में पूछूंगा।" थेरा रेवत ने दूर से ही धम्म के सेनापति को आते हुए देखकर, अपने भतीजों और भांजियों या उन नौसिखियों को सचेतनता का उपदेश देने के लिए 'काले' से शुरू होने वाला श्लोक बोला। थेरा, काले, उपकाले और सीसूपकाले उनके संबोधन हैं; वे तीनों बालक जिन्होंने स्त्रीलिंग नाम प्राप्त किए, अर्थात्: काला, उपकाला और सीसूपकाला, यद्यपि उन्होंने संन्यास लेकर नौसिखिए बन गए थे, फिर भी उन्हें इसी नाम से पुकारा जाता था। इसके अलावा, लोग उन्हें "काली, उपकाली और शिशुपाली" भी कहते थे। किस उद्देश्य से या किस परिस्थिति में उन्हें "काले" आदि कहकर संबोधित किया जाता था? इसे समझाने के लिए उन्होंने कहा: "पतिसता नु खो विहारथा? क्या तुम सब सचमुच उचित चेतना के साथ निवास करते हो?" उन्होंने इसके कारण का वर्णन इस प्रकार किया: "चूँकि बाल नोचने वाले के समान एक व्यक्ति आया है।" पतिसता, उचित चेतना; खो जोर देने वाला शब्द है (या पुष्टि दर्शाने वाला शब्द); आगतो (आया है) आ गया है; वो, तुम्हें (या तुम्हारे); वाला विय वेधि, बाल नोचने वाले के समान; यहाँ इसका संक्षिप्त अर्थ है - तुम्हारा चाचा थेरा, जो गुरु के समान है, जो अपने तीव्र, त्वरित और गहन ज्ञान के कारण बाल नोचने वाले के समान दिखता है, आया है; अत: आप सभी को संन्यास की अनुभूति जागृत करने के बाद, सचेतनता और आत्मजागरूकता से युक्त होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए; आपने जो जीवन प्राप्त किया है, उसमें लापरवाही न बरतें।

604.3. जो कुछ उन्हें कहा गया, उसे सुनकर वे नौसिखिए धम्म के सेनापति से मिलने और उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े और अपने मामाओं से कुछ ही दूरी पर समाधि में लीन होकर बैठ गए, उस समय दोनों थेरा आपस में बातचीत कर रहे थे। धम्म के सेनापति, थेरा रेवता के साथ बातचीत करने के बाद, अपनी सीट से उठे और उन नौसिखियों (सामणेर) के पास गए। क्योंकि वे भी अनंत काल से एकाग्रता का अभ्यास कर रहे थे, इसलिए थेरा के पास आने पर वे भी उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। थेरा ने उनसे पूछा, "तुम सब किस प्रकार का जीवन जीते हो?" और जब लड़कों ने बताया कि वे इस और उस तरीके से जीवन यापन कर रहे हैं, तो थेरा सारिपुत्त ने

नौसिखियों को अनुशासित करते हुए और अपने छोटे भाई थेरा की प्रशंसा करते हुए प्रस्थान किया: "सत्य के वक्ता (या सच्चे दृष्टिकोण के धारक) मेरे छोटे भाई, वास्तव में, सत्य (धम्म) के अनुसार एक धर्मनिष्ठ अभ्यासी हैं।" इसके बाद का अर्थ स्पष्ट है।

थेरा खदिरयानिय की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.1 >> 10. थेरा आनंद

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

1.110. आनंद

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.13-10 थेरा आनंद की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

10. आनंद

आश्रम के द्वार से निकलते हुए महान ऋषि पद्ममुत्तरा अमरता की वर्षा कर रहे थे और जनसंख्या की प्यास बुझा रहे थे। (1) (653)

एक लाख वीर (भिक्षु) विशेष ज्ञान से युक्त,367 संबुद्ध को कभी न विदा होने वाली छायाओं की तरह घेरे हुए थे। (2) (654)

मैं एक हाथी की पीठ पर एक शानदार सफेद छाता लिए बैठा था। उसकी सुंदर आकृति देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। (3) (655)

हाथी से उतरकर मैं (उसके पास), मनुष्यों के सांड के पास पहुँचा और सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के ऊपर अपना रत्नजड़ित छाता उठाया। (4) (656)

पद्ममुत्तरा, महान ऋषि, मेरे विचारों को समझते हुए, (वे जो बात कह रहे थे) उसे रोककर (फिर) मेरे बारे में ये श्लोक बोले: (5) (657)

“जो सोने के आभूषणों से सजे इस छाते को फहरा रहा है, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा; आप सब मेरी बात ध्यान से सुनें: (6) (658)

यहाँ से आगे बढ़कर यह व्यक्ति तुसिता (स्वर्ग) में निवास करेगा। वह दिव्य अप्सराओं द्वारा सम्मानित होकर सुख का अनुभव करेगा।368 (7) (659)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 367 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 368 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

वह चौंतीस बार दिव्य शासन करेगा। एक सौ आठ बार वह एक शक्तिशाली राजा के रूप में पृथ्वी पर निवास करेगा। (8) (660)

और वह पचास बार चक्र घुमाने वाला राजा होगा। वह पृथ्वी पर अनगिनत क्षेत्रीय शासन करेगा। (9) (661)

ओक्काका (इक्ष्वाकु) वंश में उत्पन्न होने वाले एक लाख युगों में, गौतम नाम का व्यक्ति संसार का गुरु होगा। (10) (662)

वह शाक्यन वंश के उस ध्वज का (निकट) संबंधी होगा। उसका नाम आनंद होगा, जो उस महान ऋषि का सेवक होगा। (11) (663)

उत्साही साधक, बुद्धिमान और अनेक सत्यों के ज्ञान से परिपूर्ण, कर्म में विनम्र और ग्रहणशील, वह सभी (बुद्ध के वचन) सुनाएगा। (12) (664)

परिश्रम में लीन होकर, शांत होकर,369 पुनर्जन्म के आधारों से रहित,370 सभी दोषों को भली-भांति जानकर वह निर्वाण प्राप्त करेगा, निर्दोष रहित होकर।” (13) (665)

जंगलों में हाथी हैं, साठ साल के हाथी, तीन तरह से संभोग करते हुए, रथ-ध्रुव वाले हाथी, राजाओं के वाहन। (14) (666)

(उनकी तरह) लाखों बुद्धिमान पुरुष हैं जिनके पास अपार शक्तियां हैं, और उनमें से कोई भी आश्चर्यचकित नहीं है।

---

369 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 370 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 371 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 372 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 373 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

बुद्ध-हाथी की (शक्ति) पर। (15) (667)374
मैं आरंभ में, मध्य में और अंत में उपासना करता हूँ। प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से मैं सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की सेवा करता हूँ। (16) (668)
उत्साही प्रयासकर्ता, बुद्धिमान, जो वास्तव में जानता है, सचेत, धारा-प्रवेशकर्ता-फल पर पहुंचा, प्रशिक्षण-आधारों में कुशल, (I) (17) (669)
मैंने वह कर्म उत्पन्न किया जो मैंने एक लाख युग पहले किया था। मैंने अब धम्म में दृढ़, अविचलित वह अवस्था प्राप्त कर ली है।375 (18) (670)
मेरे सारे दोष (अब) जलकर भस्म हो गए हैं; समस्त (नया) अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बंधनमुक्त होकर जी रहा हूँ। (671)376 बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) (672)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) (673)
इस प्रकार पूज्य आनंद थेरा ने इन श्लोकों का उच्चारण किया।
आनंद थेरा की कथा का अंत हो गया है।
सारांश:
बुद्ध और एकाकी बुद्ध, सारिपुत्त और कोलिता, कस्सपा और अनुरुद्ध, पुन्ण थेरा और उपाली, कोण्डाञ्ञ और पिण्डोला और रेवता, ज्ञानी आनंद, छह सौ पचास श्लोक 377

---

374 शाब्दिक अर्थ, "गया" 375 पाठ sañcālesi BJTS के साथ PTS sañjālesi 376 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 377 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

उन सभी को एक साथ जोड़ना।
अपादाना का पहला बुद्ध अध्याय।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
3-10 थेरा आनंद की जीवनी पर टिप्पणी।
3-10,1. आरामदवारा निक्खम्म से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा आनंद की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और पुण्य कर्मों का संचय करने के कारण, जो पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने गुरु के दूसरे माता से जन्मे छोटे भाई के रूप में हांसवती नगर में पद्ममुत्तरा के समय पुनर्जन्म लिया। उनका नाम सुमन रखा गया। उनके पिता राजा नंदा के नाम से जाने जाते थे। जब उनके पुत्र, युवा राजकुमार सुमन वयस्क हुए, तो राजा ने उन्हें हांसवती नगर से बीस योजन की दूरी पर स्थित एक समृद्ध नगर उपहार में दिया। कभी-कभी, युवा राजकुमार गुरु और अपने पिता से मिलने आते थे। उस समय राजा स्वयं और आदरपूर्वक गुरु और लगभग एक लाख भिक्षुओं की सेवा करते थे; वे दूसरों को उनकी सेवा करने की अनुमति नहीं देते थे।

3-10,2. उस समय उनकी सीमा ने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। युवा राजकुमार ने राजा को उस विद्रोह की स्थिति के बारे में सूचित नहीं किया, परन्तु स्वयं ही उसे दबा दिया। यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए और बोले, "मेरे प्रिय पुत्र! मैं तुझे पुरस्कार देता हूँ, ले ले।" युवा राजकुमार ने उत्तर दिया, "मैं तीन माह तक गुरु और उनके भिक्षुओं की भक्तिपूर्वक सेवा करके अपना जीवन निर्वाह करना चाहता हूँ।" राजा ने उत्तर दिया, "यह संभव नहीं है; कोई दूसरा पुरस्कार माँग ले।" युवा राजकुमार ने दृढ़ता से कहा, "महाराज! राजकुमारों के लिए दो अलग-अलग बातें नहीं होतीं; कृपया मुझे यही दें; मुझे कुछ और नहीं चाहिए; यदि गुरु अपनी स्वीकृति दें, तो मुझे वही दिया जाना चाहिए।" युवा राजकुमार मन ही मन कहते हुए मठ की ओर चल पड़े, "मैं स्वयं गुरु के मन को जानूँगा।" उसी समय, प्रतापी प्रभु अपने सुगंधित कक्ष में प्रवेश कर चुके थे। युवा राजकुमार भिक्षुओं के पास गए और बोले, "आदरणीय गुरुदेव! मैं परम पूज्य बुद्ध के दर्शन करने आया हूँ; कृपया मुझे उनके पास ले चलें।" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "सुमना नामक थेरा गुरुदेव के सेवक हैं, कृपया उनके पास जाइए।" युवा राजकुमार थेरा के पास गए और बोले, "आदरणीय गुरुदेव! कृपया मुझे गुरुदेव के पास ले चलें।" वहाँ थेरा युवा राजकुमार के देखते ही पृथ्वी में समा गए, परम पूज्य बुद्ध के पास गए और बोले, "आदरणीय गुरुदेव! राजा का पुत्र आपसे मिलने आया है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे भिक्षु! ठीक है, तो मठ के बाहर मेरा आसन तैयार कर दीजिए।" फिर, थेरा ने बुद्ध के आसन को थामकर सुगंधित कक्ष में समा गए, युवा राजकुमार के देखते ही मठ परिसर के बाहर प्रकट हुए और सुगंधित कक्ष में बुद्ध के लिए आसन तैयार किया। यह देखकर युवा राजकुमार के मन में यह विचार आया: "सचमुच! यह भिक्षु महान शक्ति वाला है!"

3-10,3. प्रतापी बुद्ध अपने सुगंधित कक्ष से बाहर आकर अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। राजा के पुत्र ने गुरु को प्रणाम किया, उनसे वार्तालाप किया और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! मुझे लगता है कि यह गुरुदेव आपके धर्म में प्रिय हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे राजकुमार! जी हाँ, वे प्रिय हैं।" राजकुमार ने पूछा, "आपने दान-पुण्य जैसे पुण्य कर्म किए हैं।" राजकुमार ने बुद्ध के नेतृत्व में पुरोहितों को सात दिनों तक अपने शिविर में भोजन कराया और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! मैं भी भविष्य में इस गुरुदेव के समान किसी बुद्ध के धर्म में प्रिय बनना चाहता हूँ।" सातवें दिन राजकुमार ने कहा, "आदरणीय गुरुदेव! मुझे अपने पिता से तीन महीने तक आपको भोजन कराने का वरदान प्राप्त हुआ है; कृपया वर्षा ऋतु के तीन महीने मेरे साथ बिताने की अनुमति दें।" जब राजकुमार को गुरु की स्वीकृति का पता चला, तो उसने गुरु और उनके अनुयायियों को साथ लेकर प्रत्येक योजन में गुरु और भिक्षुओं के निवास के लिए उपयुक्त मठ बनवाए, उनसे अपने किसी मठ में निवास करने का अनुरोध किया और अपने निवास स्थल के पास, एक लाख रुपये में खरीदे गए शोभना नामक उद्यान में एक लाख रुपये का एक मठ बनवाया और गुरु और उनके भिक्षुओं से उस मठ में प्रवेश करने का अनुरोध किया तथा समर्पण के रूप में जल चढ़ाया:

"मैंने एक लाख की कीमत पर इसे खरीदा; एक लाख के खर्च पर मठ का निर्माण करवाया; हे महान ऋषि! कृपा करके शोभना नामक उद्यान को स्वीकार करें।"

उपवास के प्रारंभ के दिन, राजकुमार ने गुरु को एक बड़ा दान दिया और उस दान से संबंधित सभी कार्यों का दायित्व अपनी पत्नी, बच्चों और मंत्रियों को सौंपते हुए कहा: "आप सभी इस सेवा को करके दान करें।" राजकुमार स्वयं, थेरा सुमना के निवास स्थान के निकट ही रहकर, तीन माह तक अपने निवास स्थान में गुरु की सेवा करते रहे। परन्तु जब आलोचना के निमंत्रण (पवाराण) का दिन निकट आया, तो राजकुमार गाँव में प्रवेश करके सात दिनों तक एक बड़ा दान दिया; सातवें दिन, उन्होंने तीन वस्त्रों के जोड़े गुरु और भिक्षुओं के चरणों में रखे, गुरु को प्रणाम किया और अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की: "हे पूज्यवर! मेरे द्वारा अपने शिविर से शुरू किया गया यह पुण्य कर्म सक्का आदि की समृद्धि के लिए नहीं किया गया है; बल्कि, थेरा सुमना की तरह मैं भी भविष्य में किसी बुद्ध का प्रिय सेवक बनना चाहता हूँ।" गुरु ने उनकी निरंतर सक्रियता देखकर भविष्यवाणी की और प्रस्थान कर गए।

3-10,4. उन्होंने बुद्ध के प्रकट काल (बुद्धुप्पाद) में एक लाख वर्षों तक और उसके बाद भी पुण्य कर्म किए; इस और उस जन्म में अपार पुण्य कर्म संचित करने के बाद, वे तेजस्वी कस्सपा के समय में एक परिवार के घर में पुनर्जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने बार-बार के पुनर्जन्मों (संसार) में विचरण करते रहे। जब वे बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुके, तो उन्होंने भिक्षा मांगने वाले एक थेरा के भिक्षापात्र को पकड़ने के उद्देश्य से अपना ऊपरी वस्त्र आदरपूर्वक अर्पित कर दिया। फिर उन्होंने स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया और वहाँ से देह त्याग कर बनारस के राजा बने, आठ मौन बुद्धों के दर्शन किए, उन्हें भोजन कराया, अपने शुभ उद्यान में आठ पत्तियाँ बनवाईं, उनके बैठने के लिए सभी प्रकार के रत्नों से बने आठ आसन और एक रत्न आसन तैयार करवाया, और दस हजार वर्षों तक सेवा की; ये सब स्पष्ट हैं।

3-10,5. एक लाख युगों तक पुण्य कर्म संचित करने के बाद, इस और उस जन्म में उनका हमारे बोधिसत्व के साथ तुषिता के स्वर्ग नगर में पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ से उनका निधन हो गया, और क्योंकि उनका जन्म सभी संबंधी को प्रसन्न करते हुए हुआ था, इसलिए उन्हें आनंद नाम प्राप्त हुआ। समय आने पर, वे वयस्क हुए और भद्दिया और अन्य लोगों के साथ संसार का त्याग कर दिया, जिन्होंने उस

तेजस्वी बुद्ध के अनुयायी बनने के उद्देश्य से भिक्षु बनने के लिए संन्यास लिया था, जो कपिलवस्तु नगर से प्रस्थान कर रहे थे, जहाँ वे अपने महान त्याग के फलस्वरूप आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद धर्म के उत्कृष्ट चक्र को घुमाते हुए पहली बार गए थे। आनंद ने परम पूज्य की उपस्थिति में भिक्षु दीक्षा ली, ब्राह्मण देवी मंतानी के पुत्र पून्न के समक्ष धम्म का उपदेश सुना और दीक्षा के प्रथम चरण (सोतापत्ति) में स्थापित हो गए।

3-10,6. उस समय, बुद्ध की प्रथम पूर्ण ज्ञान प्राप्ति (बोधि) के बीस वर्षों बाद तक उनका कोई स्थायी सेवक नहीं था। एक समय नागसमाला थेरा अपना कुंड और वस्त्र लेकर बुद्ध की सेवा में इधर-उधर भटकते थे; एक समय नागिता, दूसरे समय उपवन, फिर एक समय सुनक्खत्त, फिर एक समय चुंडा, समनुद्देश, बाद में एक समय सागत, फिर एक समय मेघिया; वे आम तौर पर गुरु का दिल नहीं जीत पाते थे। फिर एक दिन, अपने सुगंधित कक्ष के परिसर में उनके लिए तैयार किए गए उत्तम बुद्ध आसन पर विराजमान, अपने भिक्षुओं से घिरे हुए, भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले: "हे भिक्षुओं! मैं अब वृद्ध हो रहा हूँ। जब कुछ भिक्षुओं को मैं इस मार्ग से जाने के लिए कहता हूँ, तो वे दूसरे मार्ग से चले जाते हैं; कुछ भिक्षु मेरे भिक्षापात्र और वस्त्र को जमीन पर फेंक देते हैं; आप सभी मेरे लिए एक ऐसे भिक्षु को खोजें और मुझे सूचित करें जो मेरी सेवा में स्थायी रूप से उपस्थित रहे।" यह सुनकर भिक्षुओं के मन में आध्यात्मिक पश्चाताप उत्पन्न हुआ। तब पूज्य आनंद ने कहा, "मैं आपकी सेवा करूँगा।" पूज्य आनंद ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार, सभी प्रमुख शिष्यों ने महामोग्गलाना (प्रारंभ) की शुरुआत करते हुए, पूज्य आनंद को छोड़कर, उठ खड़े हुए और क्रमशः कहा, "मैं आपकी सेवा करने जा रहा हूँ, मैं आपकी सेवा करूँगा।" पूज्य आनंद ने उन्हें भी अस्वीकार कर दिया।

3-10,7. आनंद, हालांकि, चुपचाप बैठे रहे। तब भिक्षुओं ने उनसे कहा, "मित्र! तुम भी गुरु के सेवक पद के लिए आवेदन कर सकते हो।" "आवेदन करने के बाद सेवा प्राप्त करना कैसा होता है? यदि गुरु चाहें तो वे स्वयं ही बोलते हैं"; यह उनका उत्तर था। तब, भगवान ने कहा, "हे भिक्षुओं! आनंद को दूसरों के दबाव में नहीं लाना चाहिए; वह स्वयं ही मुझे जान लेगा और मेरी सेवा करेगा।" इसके बाद, भिक्षुओं ने उन्हें प्रेरित किया, "हे मित्र आनंद! कृपया उठो और गुरु के सेवक पद के लिए अपना आवेदन करो।" थेरा खड़े हुए और इस प्रकार बोले: "आदरणीय महोदय! यदि परमेश्वर मुझे स्वयं द्वारा प्राप्त उत्तम वस्त्र न दें, उत्तम भिक्षाभोजन न दें, एक ही सुगंधित कक्ष में रहने की अनुमति न दें, निमंत्रण स्वीकार न करें; तो भी मैं परमेश्वर की सेवा करूंगा। ये चार निवेदन निंदा से बचने के उद्देश्य से हैं, इस संदर्भ में: "इतने गुणों को प्राप्त करने वाले के लिए गुरु की सेवा करना क्या बोझ है?" आदरणीय महोदय! यदि परमेश्वर मेरे द्वारा स्वीकार किए गए निमंत्रण का उत्तर दें; यदि मुझे विभिन्न स्थानों से आए प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत करने की अनुमति दी जाए; जब मेरे मन में संदेह उत्पन्न हो तो मैं तुरंत परमेश्वर के पास जाकर उनसे प्रश्न पूछने का अवसर प्राप्त कर सकूं; यदि परमेश्वर मेरी अनुपस्थिति में उनके द्वारा प्रचारित सत्य (धर्म) को मुझे पुनः सुनाएं; तो भी मैं परमेश्वर की सेवा करूंगा। ये चार निवेदन केवल निंदा से बचने के उद्देश्य से नहीं हैं, बल्कि इस प्रकार की निंदा से बचने के लिए भी हैं: "वे गुरु की उपस्थिति में भी इतना स्नेहपूर्ण आदर प्राप्त न होने पर भी, सत्य (धम्म) के खजाने के संरक्षक के पद को सर्वांगीण रूप से परिपूर्ण करने के उद्देश्य से, आनंद बुद्ध के स्थायी सेवक बन गए। उन्होंने एक लाख युगों (कप्पा) में पूर्ण की गई सिद्धियों का फल प्राप्त किया, ताकि वे उसी उच्च पद को प्राप्त कर सकें।

3-10,8. जिस दिन से उसने सेवक का पद ग्रहण किया, उसी दिन से वह दासबाला की दो प्रकार के जल, तीन प्रकार के दाँत साफ करने वाले ब्रश से सेवा करता था, हाथों और पैरों की सभी प्रकार की सफाई करता था, बुद्ध की पीठ की सभी प्रकार की सफाई करता था और सुगंधित कक्ष के परिसर की सफाई करता था; इस प्रकार बुद्ध की सेवा करते हुए, और इसी तरह उनके कार्यों में संलग्न रहते हुए, वह दिन के समय उनकी उपस्थिति में इस प्रकार विचरण करने वाला बन गया: "गुरु के लिए यह प्राप्त करना उचित है, अर्थात् यह; उनके लिए यह करना उचित है, अर्थात् यह कर्म।" रात में, वह एक बड़ी जलती हुई छड़ी लेकर सुगंधित कक्ष के परिसर में नौ बार चक्कर लगाता था, ताकि आलस्य और नींद को दूर कर सके और गुरु के बुलावे पर उत्तर दे सके। फिर, जेतवन मठ में कुलीनों की सभा के बीच बैठे हुए, गुरु ने अनेक प्रकार से उनकी प्रशंसा की और उन्हें उन भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान दिया जो बहुत विद्वान थे, सचेत थे, उत्तम आचरण (या अच्छे शब्द बोलने वाले) (गति) में थे, दृढ़ थे और समर्पित सेवकों से युक्त थे।

3-10,9. यह महान थेरा, जो इस प्रकार पाँच सर्वोच्च पदों पर आसीन थे, जो चार अद्भुत और विचित्र घटनाओं (धम्म) से संपन्न थे, जो गुरु के धम्म भंडार के संरक्षक थे, गुरु के परिनिर्वाण में प्रवेश करने के समय केवल प्रथम चरण (सेख) के एक साधक थे; भिक्षुओं द्वारा प्रोत्साहित होकर, और एक दिव्य सत्ता द्वारा पूर्वोक्त तरीके से आत्म-पश्चाताप (हेष्ठा) करवाकर, उन्होंने स्वयं से कहा:- अब, धम्मसंगीति का सामूहिक पाठ किया जाना चाहिए, लेकिन कल तक भी मेरे लिए यह उचित नहीं है कि मैं सभा में जाकर उन थेरों के साथ धम्म का पाठ करूँ जो असेख (अरहंत) बन चुके हैं, जबकि मुझे स्वयं, जो कि प्रथम चरण (सेख) का एक साधक हूँ, यह करना चाहिए; उनकी लगन और परिश्रम से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का निश्चय हुआ। रात्रि के बहुमूल्य समय में, जब वे मठ में परिश्रम की शांति प्राप्त नहीं कर पा रहे थे, उन्होंने विपश्यना साधना करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का निश्चय किया। इसके बाद, वे

मठ में प्रवेश कर गए, अपने पलंग पर बैठ गए और लेटने की इच्छा होने पर उन्होंने करवट बदली। इसी समय, जब उनका सिर तकिये तक नहीं पहुँचा था और उनके पैर जमीन से मुक्त ही हुए थे, उन्होंने आसवों से मुक्त होकर मन की पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली; वे छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न अरहंत बन गए।

644. इस प्रकार समर्पित सेवक परिचारक जैसे गुणों से सर्वोच्च पद (एतदग्ग) प्राप्त करने के बाद, और शीघ्र ही छह प्रकार के उच्च ज्ञान आदि गुणों से सुशोभित होकर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और 'आरामदवारा निक्खम्म' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें पूर्व जन्मों में किए गए कर्मों को मानसिक आनंद के रूप में दर्शाया गया है। वहाँ आरामदवारा (आश्रम के द्वार से) सभी जीवों को धर्म का उपदेश देने के उद्देश्य से मठ के द्वार से बाहर आए; महामुनि (महान ऋषि) आत्मप्रबुद्ध बुद्ध, पद्ममुत्तरा, द्वार के बाहर निर्मित पंडाल के मध्य में सुसज्जित उत्कृष्ट बुद्ध आसन पर बैठे थे; vassanto amataŋ vuṭṭhim (अमर शांति की वर्षा करते हुए) (अमता), सत्य (धम्म) के उपदेश के साथ सत्य (धम्म) की वर्षा करते हुए, अमर आनंद (ममता) प्रदान करते हुए, nibbāpesi mahājanam, ने असंख्य लोगों को निर्वाण तक पहुँचाया, nibbāpesi (बुझाकर) ने बड़ी संख्या में लोगों के मन में व्याप्त दुराचार की आग को बुझा दिया, और कई लोगों को अमर पेय के माध्यम से शीतलता और शांति की स्थिति प्राप्त करवाई; यही अर्थ है।

645. सतसहसम ते धीरा, वे दृढ़ ज्ञानी एक लाख, यह उन्होंने अनुयायियों की समृद्धि दर्शाने के लिए कहा; महिद्धिका (उच्च जादुई शक्तियों वाले) वे दृढ़ ज्ञानी एक लाख दोषरहित अरहंत, जो छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न थे, और विभिन्न प्रकार की जादुई शक्तियों आदि जैसे ज्ञान के अंशों से युक्त थे, और जो ऐसी जादुई शक्तियों से संपन्न थे जो उन्हें एक क्षण में कई लाख ब्रह्मांडों (चक्कवला) में विचरण करने में सक्षम बनाती थीं, उच्च जादुई शक्तियों वाले थे; छाया व अनुपायिनी, परछाई के समान अनुयायी, परिवारेन्ति (घेरना) उस आत्मप्रबुद्ध बुद्ध, तेजस्वी पद्ममुत्तरा को एक ऐसी परछाई के समान घेर लिया जो कभी कहीं बाहर नहीं जाती थी, और उनके सत्य (धम्म) के उपदेश को सुना; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

646. हत्थिक्खन्धगतो आसिम, मैं हाथी की पीठ पर सवार था, उस समय जब प्रतापी बुद्ध सत्य (धम्म) का उपदेश दे रहे थे; आसिम, मैं अपने हाथी की पीठ पर बैठा था; यही अर्थ है। सेतच्छत्तम वरुत्तमम्, उत्तम श्वेत छत्र, मैं अपने हाथी की पीठ पर बैठा था और मेरे सिर पर उत्तम श्वेत छत्र था; यही संबंध है। सुसारुरूपम दिस्वाना (सुखद रूप देखकर), आत्मप्रबुद्ध बुद्ध को सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए देखकर, जो अच्छा, आनंददायक और हृदय को भाने वाला रूप है, मुझे; वित्ति, आनंद, उदपज्जत (उत्पन्न हुआ), मेरी संतुष्टि और मानसिक प्रसन्नता उत्पन्न हुई; यही अर्थ है।

647. ओरुयहा हत्थिक्खन्धम्हा, अपने हाथी की पीठ से उतरकर, उस तेजस्वी को बैठे हुए देखकर, ओरुयहा, मैं अपने हाथी की पीठ से उतरा, नरसाभम् उपगच्छिम (मैं उस विशाल बैल-पुरुष के पास गया) मैं उस बैल-पुरुष, बुद्ध के पास गया; यही अर्थ है। रत्नमयचट्टम् मे (मेरा रत्नों से बना छाता) मैंने उस श्रेष्ठ बुद्ध के ऊपर अपना रत्नों से सजा हुआ छाता उठाया; यही संबंध है।

648. मम संकल्पमञ्ञाय (मेरी मंशा जानकर) बुद्ध पद्ममुत्तरा, जो तपस्वियों में महान हो गए थे, मेरी स्पष्ट भक्ति से उत्पन्न मंशा को जानकर; तम कथम तापयित्वाना (उस उपदेश को त्यागकर) स्वयं द्वारा प्रचारित सत्य (धम्म) के उपदेश को त्यागकर, अभासत (कहा) मेरे भविष्य की भविष्यवाणी करने के लिए इस श्लोक का उच्चारण किया; यही अर्थ है।

649. यदि पूछा जाए: कैसे? तो उन्होंने कहा, "यो सो (जो कोई भी = वह) वह राजकुमार, जिसने मेरे सिर के ऊपर सोने के आभूषणों से सजे हुए छाते को धारण किया था; इस प्रकार संबंध है। तमहम कित्तयिस्सामि (मैं उसकी घोषणा करूँगा) मैं उस राजकुमार को प्रकट और स्पष्ट करूँगा; सुनोथा मम भासातो (जब मैं बोल रहा हूँ तो मेरी बात सुनो) कृपया कान नीचे करके सुनो, और जब मैं बोल रहा हूँ तो मेरे शब्दों को ध्यान में रखो: इस प्रकार अर्थ है।"

650. ito gantvā ayam poso (यह पुरुष, यहाँ से चला गया) यह राजकुमार, मनुष्यों के इस संसार से विदा होकर तुषिता स्वर्ग में चला गया; āvasissati (रहेगा) वह वहाँ निवास करेगा; वहाँ वह तुषिता दिव्य महल की समृद्धि का अनुभव करेगा, दिव्य कन्याओं से घिरा और उनके द्वारा अनुसरण किया जाएगा; इस प्रकार, संबंध है।

651. चतुत्तिमसक्खत्तुम (चौंतीस बार) तुषिता लोक से विदा होकर तावतिंस लोक में जन्म लेकर, दिव्य सम्राट चौंतीसवीं बार दिव्य राज्य में शासन करेंगे; यही संबंध है। बलाधिपो अष्टसतम (एक सौ आठ बार, पराक्रमी राजा) तावतिंस स्वर्ग लोक से विदा होकर, मनुष्यलोक में जन्म लेकर, एक सौ आठ जन्मों में क्षेत्रीय सम्राट बनकर, अपनी चार भागों की सेना के प्रमुख सेनापति रहे; वसुधम, पृथ्वी, आवासिस्सति (रहेंगे) वे इस पृथ्वी पर निवास करेंगे जो उन्हें अनेक उत्तम रत्न प्रदान करेगी; यही अर्थ है।

652. अट्ठाप्पञ्ञासक्खट्टुम (अठावन बार) वह अठावन जन्मों में विश्वराज बनेगा; यही अर्थ है। महिया (पृथ्वी पर) संपूर्ण युजेनिया-वृक्ष द्वीप (जंबूद्वीप) की भूमि पर; विपुलम (समृद्ध) वह असंख्य कालखंडों तक क्षेत्रीय संप्रभु के रूप में शासन करेगा।

654. सक्यानम् कुलकेतुस्स (सक्यान परिवार के ध्वज का) वह बुद्ध का रिश्तेदार बन जाएगा, जो सक्यान राजाओं के परिवार का ध्वजवाहक बन गया था; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
655. आतापी (जलाने वाला) परिश्रम का स्वामी; निपाको (परिपक्व) ज्ञान या परिपक्वता से युक्त; बहुसच्चेसु (अत्यंत विद्वान) तीनों पिटकों के ज्ञान को धारण करने वालों में से; जो अत्यधिक विद्वान हो चुके हैं; कोविदो (ज्ञाता) चतुर, कुशल; निवाते *****(पृष्ठ 584) (विनम्र स्वभाव का) दिखावटी या अभिमानी नहीं (अनवन्नत्तिको); *****(पृष्ठ 584) (कठोर नहीं) शारीरिक रूप से कठोर (कायपग्गबोहिया) आदि जैसी कठोर अवस्थाओं से दूर रहने वाला; सब्बपाठी (जिसने सब कुछ पढ़ा हो) वह तीनों पिटकों को अपने स्मरण में रखने वाला बन जाएगा; इस प्रकार, संबंध है।
656. पाधानपहितत्तो सो (जिसका मन परिश्रम की ओर निर्देशित हो) वह आनंद, जिसका मन परिश्रम करने की ओर लगा हो; उपसन्तो निरुपधि (वह अस्तित्व के किसी भी आधार से मुक्त होकर शांत हो गया) कामवासना, क्रोध और भ्रम के आधार से रहित होकर वह शारीरिक और मानसिक रूप से शांत हो गया; सोतापत्ति के श्रेष्ठ मार्ग, जो धारा प्राप्ति का पहला चरण है, के माध्यम से सभी प्रकार के दुराचारों से छुटकारा पाकर वह शांत हो गया।
657. संती आराञ्जका (जंगल में रहने वाले) जंगल में पैदा हुए, घने जंगल में जन्मे; साठ हयाना (साठ वर्ष की आयु में क्षीण होने वाले) साठ वर्ष की आयु में उनकी शक्ति कम हो जाती थी; तिधा पभिन्ना (तीन बार फूट पड़ना) तीन स्थानों से फूट पड़ा उन्माद (या पागलपन) जिन्हें आंखें, कान और लिंग आवरण माना जाता है; मातंग (मातंग प्रजाति) मातंग परिवार में जन्मा; ईसादंता (धुरी के दांत) उसके दांत रथ की धुरी के समान हैं; उरूल्हावा (सवारों का स्वामी) शाही वाहन; जैसे हाथी राजा होते हैं, हाथी कुंजरा माने जाते हैं, वैसे ही (या उसी प्रकार) लाखों की संख्या में उच्च जादुई शक्तियों और ज्ञान से परिपूर्ण हाथी अरहंत होते हैं, जो दोषरहित होते हैं; वे आत्मसंकल्पित नहीं होते। क्यों? क्योंकि वे सभी खतरे से डरते हैं और अपनी स्थिति में ठीक से खड़े नहीं हो पाते; यही अर्थ है। बाकी सब उक्त तरीके से स्पष्ट है।
थेरा आनंद की जीवनी पर की गई टीका का समापन हो गया है।
बुद्ध पर पहली टीका (बुद्ध वग्ग) अब तक पूरी हो चुकी है।
पहला भाग पूरा हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान-3.2-थेरापदान(11-77)

अपदाना 3.2 : प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 11-77
अपदाना में क्रम संख्या 11 से 77 तक के थेरों (वरिष्ठ भिक्षुओं) की सूची यहाँ दी गई है।

11. सिहासन के दाता थेरा
12. थेरा एकथंभिका
13. नंद थेरा
14. थेरा क्यूपंथा
15. थेरा पिलिंडा वाचा
16. थेरा राहुला (बुद्ध के पुत्र)
17. थेरा उपसेन, वांगंता के पुत्र
18. थेरा रशपाल
19. थेरा सोपाका
20. थेरा सुमंगला
21. थेरा सुभूति
22. थेरा उपवन
23. थेरा तिसरनागमानिया
24. थेरा पंचसिलसमादानिया
25. अन्नसमसावका

26. थेरा धूपदायका
27. थेरा पुलिनपूजक
28. थेरा उत्तिया
29. थेरा एकांजलिका
30. थेरा खोमदायका
31. थेरा कुंदधाना
32. थेरा सगाता
33. थेरा महाकच्चन
34. थेरा कौदायि
35. थेरा मोघराजा
36. थेरा अधिमुत्ता
37. थेरा लासुनादायका
38. थेरा अयागदायका
39. थेरा धम्मचक्किका
40. थेरा कप्परुक्खिया
41. थेरा भगिनीयुपाली
42. थेरा सोशाकोइविसा
43. थेरा काइगोधापुत्तभद्दिया
44. थेरा सन्निशापक
45. थेरा पंचहत्थिया
46. थेरा पदुमच्छदानिय
47. थेरा सयानदायका
48. थेरा चंकमानदायका
49. थेरा सुभद्दा
50. थेरा कुंडा
51. थेरा विधुपनदायका
52. थेरा सतारामसी
53. थेरा सयानदायका
54. थेरा गंधोदकिया
55. थेरा ओपावयह
56. थेरा सपरिवारासन
57. थेरा पंचदीपक
58. थेरा धजदायका
59. थेरा पदुमा
60. थेरा आसननबोधिया
61. थेरा साकासिंटेनिया
62. थेरा अवोपुफिया
63. थेरा पक्कगमानिया
64. थेरा परप्पासादका
65. थेरा भिसदायका
66. थेरा सुसिंतिता
67. थेरा वत्थादायका

68. थेरा अम्बादायका
69. थेरा सुमना
70. थेरा पुप्फाचंकोटियाथेरा
71. थेरा नागसामाला
72. थेरा पदसन्नका
73. थेरा बुद्धसन्नका
74. थेरा भिसालुवदायका
75. थेरा एकासनका
76. थेरा तिसंथारादायका
77. थेरा सुचिदायका थेरा

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 11. सिहासन का दाता

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.111. सिहासनदायक 378
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.111. सिहासन के दाता थेरा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

सिहासन अध्याय, द्वितीय

---

11. सिहासनदायक 378

जब विश्व नेता सिद्धार्थ, जो दो पैरों पर चलने वाले सर्वश्रेष्ठ प्राणी थे, निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब उनके वचन फैल चुके थे; अनेक लोगों ने उनके उपदेशों को अपना लिया था। (1) (674)

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से मैंने एक सिंह सिंहासन बनवाया। सिंह सिंहासन बनवाने के बाद मैंने एक पायदान बनवाया। (2) (675)

(और फिर) मैंने वहाँ एक घर बनवाया (ताकि) सिंह-सिंहासन को बारिश से बचाया जा सके। मेरे हृदय में उमड़े आनंद के कारण मेरा पुनर्जन्म तुसिता में हुआ। (3) (676)

उस समय मेरे लिए एक सुंदर, भव्य और आलीशान महल मौजूद था। उसकी लंबाई चौबीस मील और चौड़ाई चौदह मील थी। (4) (677)

सात सौ (सुंदर) युवतियाँ हमेशा मेरी सेवा में तत्पश्चात रहती थीं। उस हवेली में सोने का बना एक सुंदर पलंग था। (5) (678)

हाथी और घोड़े की गाड़ियाँ, और दिव्य रथ मेरी सेवा करते थे। महल और पालकी भी।381

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 378 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 379 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

380 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 381 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इच्छा के अनुसार उत्पादित किए गए। (6) (679)
मेरे लिए हमेशा रत्नों और अन्य कई महंगी चीजों से बने सोफे अस्तित्व में आते रहे; यही सिंह-सिंहासन का फल है। (7) (680)
मैं हमेशा सोने और चांदी से बनी, क्रिस्टल से बनी, लैपिस से बनी सीढ़ियों पर चढ़ता रहता हूँ; यही पैर रखने की चौकी का फल है। (8) (681)
उस पुण्य कर्म को करने के बाद से चौरानवे युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ; यही अच्छे कर्मों का फल है। (9) (682)
तिहत्तर युग पहले तीन पुरुष थे (सभी) जिनका नाम इंदा382 था; बहत्तर युग पहले तीन और पुरुष थे जिनका नाम सुमना383 था; (10) (683)
(और) सत्तर युग पहले वरुण नाम के तीन (राजा) थे;384 वे चार महाद्वीपों के स्वामी और सात रत्नों के स्वामी थे। (11) (684)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) (685)
इस प्रकार पूज्य सिहासनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सिहासनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 12. थेरा एकत्थंभिका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.112. एकत्थम्भिका 385
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.112. थेरा एकत्थम्भिका की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

12. एकत्थम्भिका 385

भगवान सिद्धार्थ के बहुत से अनुयायी थे। उन्होंने तथागत बुद्ध में श्रद्धापूर्वक शरण ली थी। (1) (686)

---

382 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 383 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 384 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 385 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपादान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

वे सब एकत्रित हुए और शिक्षक के लिए एक झोपड़ी बनाने का निर्णय लिया।386 अभी भी एक और स्तंभ की आवश्यकता थी।387 वे घने जंगल में खोज रहे थे। (2) (687)
उन्हें जंगल में देखकर मैं उस समूह के पास गया। मैंने अपने दोनों हाथों को आपस में जोड़कर उस समूह से पूछताछ की। (3) (688)
मैंने जिन नैतिक रूप से संयमित आम लोगों से पूछा, उन्होंने तब उत्तर दिया, "हम एक माला बनाना चाहते हैं, लेकिन अभी भी एक स्तंभ कम है।" (4) (689)
"मुझे वह एक स्तंभ (कर्तव्य) दीजिए; मैं उसे शिक्षक को दे दूंगा। मैं वह स्तंभ (उनके पास) ले जाऊंगा, आप सभी कृपया अब निश्चिंत हो जाइए।" (5) (690)
प्रसन्न होकर और आनंद से भरे मन से उन्होंने मेरे लिए वह खंभा गिरा दिया, फिर मुड़कर जाने लगे और अपने-अपने घरों को लौट गए। (6) (691)
उस बड़े समूह के जाने के कुछ ही समय बाद मैंने उसे वह स्तंभ दे दिया। मैं ही वह पहला व्यक्ति था जिसने उसे खुशी-खुशी खड़ा किया। (7) (692)
मेरे हृदय में व्याप्त प्रसन्नता के कारण मेरा जन्म एक ईश्वरीय महल में हुआ। मेरा वह भव्य निवास सौ मंजिला ऊँचा था। (8) (693)
जब ढोल बज रहे होते हैं, तब मेरा मनोरंजन होता है।388 मैं राजा था, यशोदरा,389 पचपनवें युग में (तब से)। (9) (694)

---

386 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
387 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अर्थ अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 388 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 389 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

वहाँ भी मेरा एक निवास था जो सात मंजिला ऊँचा था। सुंदर छज्जे वाली कोठरियों से सुसज्जित, वहाँ एक स्तंभ था, मन का आनंद। (10) (695)
इक्कीसवें युग में (तब से) मैं उदेना नाम से राजा था। वहाँ भी मेरा एक निवास था जो सौ मंजिला ऊँचा था। (11) (696)
मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता हूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, मैं उन सभी का अनुभव करता हूँ; यही एक स्तंभ का फल है। (12) (697)
उस समय जब मैंने उसे वह स्तंभ दिया था, तब से लेकर अब तक के चौरानवे युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा; यही उस एक स्तंभ का फल है। (13) (698)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) (699)
इस प्रकार पूज्य एकात्थंभिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
एकथंभिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
12. थेरा एकत्थम्भिका की जीवनी पर टीका
सिद्धार्थस्सा भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक आदरणीय थेरा, स्तंभ दाता एकत्थम्भ की जीवनी हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और इस जन्म और उस जन्म में एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लेकर, तेजस्वी सिद्धार्थ के समय में वनकर्मी बने। उस समय, सभी धर्मनिष्ठ और प्रसन्न भक्तों का एक ही मत था (या एक ही इच्छा थी): "आइए हम तेजस्वी के लिए एक सेवा कक्ष (या सेवक कक्ष) बनाएँ।" वे भवन निर्माण सामग्री जुटाने के लिए वन में गए, वहाँ उनकी मुलाकात उस भक्त से हुई और उन्होंने उनसे निवेदन किया: "हमें एक स्तंभ दीजिए।" यह सुनकर उन्होंने उनसे कहा: "आप सभी

को चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।" उन्होंने उन सभी को वापस भेज दिया, सार सहित एक स्तंभ लिया, उसे गुरु को दिखाया और उन्हें दे दिया। वह इस कारण प्रसन्न हुए, उन्होंने वही दान आधार बनाया, दान-पुण्य आदि अन्य पुण्य कर्म किए, और वहाँ से देह त्याग कर दिव्यलोक में पुनर्जन्म लिया; इसके बाद, समय-समय पर, छह इंद्रियलोकों में दिव्य समृद्धि का आनंद लेते हुए, अनेक समय तक मनुष्यों में प्रधान विश्वराज के सुख का आनंद लेते हुए, और असंख्य कालखंडों तक क्षेत्रीय संप्रभुता की समृद्धि का आनंद लेते हुए, एक ऐसे परिवार में पुनर्जन्म लिया जो इस बुद्ध के जन्म के समय धार्मिक आस्था से परिपूर्ण था। अपने माता-पिता के साथ, प्रतापी बुद्ध की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का उपदेश सुनकर, उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, संसार त्याग कर भिक्षु बन गए, उपसंपदा दीक्षा प्राप्त की, मानसिक साधना (कम्मत्थान) की, और अरहत बन गए, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने स्वयं को विवेकपूर्ण रूप से सचेत कर लिया।

13. इस प्रकार, अरहतत्व प्राप्त करने पर, उन्हें अपने पूर्व कर्मों का स्मरण हुआ, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए सिद्धार्थस से प्रारंभ करते हुए इस श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, भगवत (महिमावान को) स्वयंप्रबुद्ध बुद्ध सिद्धार्थ को, जो महिमा से परिपूर्ण थे; महापूगगणो (संघों का महान जमावड़ा) भक्तों का एक विशाल समूह; अहु, वहाँ था; इस प्रकार, अर्थ है। शरणं गता च ते बुद्धं (वे बुद्ध की शरण में भी गए) वे भक्त गए, उनकी सेवा की (या उन्हें समझा) कि वे "बुद्ध, शरण" हैं; तथागतं सद्दहंति (गुरु में श्रद्धापूर्वक विश्वास किया), उन्होंने बुद्ध के गुणों को अपनी चेतना की निरंतरता में स्थापित किया; इस प्रकार, अर्थ है।

14. सब्बे संगम्मा मंतेत्वा, सब एकत्रित होकर परामर्श किया; सब एक साथ आकर एकत्रित हुए, एक दूसरे को उचित रूप से जानकर और एक ही इच्छा से प्रेरित होकर परामर्श किया; मालम् (हॉल) स्वामी के लाभ के लिए एक सेवा कक्ष; कुब्बन्ति, बनाना (निर्माण करना); यही अर्थ है। निर्माण सामग्री के संग्रह से स्तंभ (या खंभा) न मिलने पर, वे घने जंगल में खोज करते हैं; यही संबंध है।

15. तेहम अरञ्ञे दिस्वाना, मैंने उन्हें वन में देखकर, गानम्, समूह, उपगम्मा, उनके पास जाकर, अंजलिम् पग्गहेत्वाना, हाथ जोड़कर, गानम् (समूह) तदा (तब) मैंने उन भक्तों को वन में देखकर, उनके एकत्रित समूह के पास जाकर, अपने सिर पर दस उंगलियों का योग बनाकर, उस समय भक्तों के उस समूह से पूछा, "तुम सब इस वन में किसलिए आए हो?" इस प्रकार, संबंध है।

16. नैतिक उपदेशों से युक्त भक्तों ने, मुझसे पूछे जाने पर, व्याकमसु ने स्पष्ट रूप से उत्तर दिया: "हम एक हॉल बनाना चाहते हैं, लेकिन हमें कोई स्तंभ नहीं मिला है"; यही संबंध है।

17. ममाम (मुझसे) कृपया मुझे स्तंभ दीजिए; ते, वे, अप्पोसुक्का (चिंतामुक्त हो जाते हैं)। मैंने उनसे कहा कि मैं इसे दूंगा, मैं स्तंभ को गुरु के समक्ष लाऊंगा; जब मैं स्तंभ लाऊंगा, तो आप सब चिंतामुक्त हो जाएंगे; इस प्रकार, संबंध है।

24. यम यम योनुपपज्जामि (जिस किसी के भी गर्भ में मैं इस या उस रूप में जन्म लूँ) , चाहे दिव्य गर्भ हो या मानव गर्भ, मैं जिस किसी भी गर्भ में जन्म लूँ; यही अर्थ है; भूमत्ठे वा; (या पृथ्वी पर स्थापित हुआ) ****(पृष्ठ 8); चाहे दिव्य लोक हो या मानव लोक; यही अर्थ है। शेष स्पष्ट और सरल है।

थेरा एकात्थम्भिका की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 13. थेरा नंदा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.113. नंदा
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.113. नंदा थेरा की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

13. नंदा

पदुमुत्तरा का खोमा वस्त्र391 मैंने स्वयंभू एक को, महान ऋषि को, धन्य को, संसार में सर्वश्रेष्ठ को, तटस्थ को दिया। (1) (700)
तब बुद्ध, जिनका नाम कमल392 के नाम पर रखा गया है, ने मेरे बारे में यह भविष्यवाणी की: "इस कपड़े का टुकड़ा देने के कारण तुम्हारा रंग स्वर्णमय हो जाएगा। (2) (701)

---

390 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 391 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 392 "शुभ", एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित दोहरे आनंद393 का अनुभव करते हुए, आप भगवान गौतम के छोटे भाई होंगे। (3) (702)
स्वभाव से प्रसन्न, परन्तु कामुक, तुम सुखों के लोभी होगे। बुद्ध द्वारा प्रेरित होकर तुम तब त्याग कर जाओगे। (4) (703)
अपने पवित्र मूलों से प्रेरित होकर, संसार का त्याग करने के बाद, समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, तुम निर्वाण प्राप्त करोगे, निर्मल होकर।" (5) (704)
सात हज़ार394 युग में सेला नाम के चार थे;395 साठ हज़ार युग (पहले) उपसेला नाम के चार थे;396 (6) (705)
पांच हजार युग पूर्व में चार लोग थे (जिनका नाम) सेला था; वे चार महाद्वीपों के शासक थे और सात रत्नों के स्वामी थे। (7) (706)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (707)
इस प्रकार पूज्य नंदा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
नंदा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
13. नंदा थेरा की जीवनी पर टीका।
पद्ममुत्तरस्सा भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा नंदा की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए और पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया। वे पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर के एक परिवार में पुनर्जन्म लिए। जब वे बुद्धिवान हुए, तब वे पद्ममुत्तरा की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का उपदेश सुन रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि गुरु एक भिक्षु को उन लोगों में सर्वोच्च स्थान पर बिठा रहे हैं, जहाँ इंद्रियों (या नियंत्रण शक्तियों) के द्वार अच्छी तरह से सुरक्षित हैं। स्वयं उस उच्च पद की कामना करते हुए उन्होंने एक महान दान-पुण्य किया, जिसमें परम पूज्य बुद्ध और उनके भिक्षुओं को सम्मान के प्रचुर उपहार शामिल थे, और उन्होंने यह संकल्प लिया: "आदरणीय महोदय! मैं भविष्य में आपके समान बुद्ध का शिष्य बनूंगा।"
उस समय से, वे बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, और अंत में धम्मताया नामक नदी में एक विशाल कछुए के रूप में जन्म लिया। यह जन्म परम पूज्य अत्थादस्सी के समय हुआ। एक दिन कछुए की मुलाकात गुरुदेव से हुई, जो नदी पार करने के लिए किनारे पर खड़े थे। गुरुदेव को नदी पार कराने की इच्छा से कछुआ उनके चरणों में लेट गया। गुरुदेव को कछुआ का इरादा पता चल गया और वे उसकी पीठ पर सवार हो गए। कछुआ प्रसन्न हुआ और तेजी से नदी पार करके उन्हें सामान्य से कहीं अधिक शीघ्रता से दूसरे किनारे पर पहुंचा दिया। कछुआ को धन्यवाद देते हुए, गुरुदेव ने भविष्य की समृद्धि का उपदेश दिया और प्रस्थान किया।
उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, कछुआ अपने जन्मों के चक्र में भटकता हुआ, केवल उत्तम जन्मों में ही जन्म लेता रहा, और बुद्ध के प्रकट होने के समय ही महान राजा सुद्धोदन की मुख्य रानी महाप्रजापति गौतमा के गर्भ में कपिलवत्थु नगर में पुनर्जन्म लिया। उनके नामकरण के दिन उनका नाम "नंदा" रखा गया, क्योंकि उनका जन्म उनके परिजनों को प्रसन्नता प्रदान करते हुए हुआ था। जब वे वयस्क हुए, तो प्रतापी बुद्ध ने धर्म के उत्कृष्ट चक्र को घुमाते हुए, विश्व उत्थान करते हुए, समय आने पर कपिलवस्तु गए, जहाँ उन्होंने कमल वर्षा (पोक्खरवस्सा) की कथा के क्रम में वेस्सन्तरा की जन्म कथा का उपदेश दिया, दूसरे दिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेश किया, और "उत्तित्ते नप्पमज्जेय्या (उठो, लापरवाह मत रहो)" श्लोक के द्वारा अपने पिता को सोतापत्ति के प्रथम चरण की सिद्धि प्राप्त करवाई, फिर

महल के निवास कक्ष में गए, महाप्रजापति गौतमी को प्रथम चरण की सिद्धि प्राप्त करवाई और राजा को सकदागामी के द्वितीय चरण की सिद्धि प्राप्त करवाई, और तीसरे दिन, राज्याभिषेक और औपचारिक प्रवेश के समय, वे भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेश कर गए। राजकुमार नंदा के राजवास और विवाह समारोह का आयोजन हो रहा था। गुरु ने अपना कुंड राजकुमार नंदा के हाथ में दिया, मंगला का पाठ किया और कुंड वापस लिए बिना अपने मठ की ओर चल दिए। बुद्ध ने राजकुमार नंदा को, जो उनके साथ कुंड लेकर मठ आए थे, उनकी इच्छा के विरुद्ध भिक्षु बना दिया। जब उन्हें पता चला कि इस प्रकार भिक्षु बनाए जाने के कारण राजकुमार अप्रसन्न हो गए हैं, तो उन्होंने एक युक्ति से अपने अप्रसन्नता को दूर किया। राजकुमार ने विवेकपूर्ण चिंतन करते हुए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में स्वयं को स्थापित किया और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। अगले दिन, थेरा ने भगवान के पास जाकर कहा, "आदरणीय महोदय! मैं भगवान को उस प्रतिज्ञा से मुक्त करता हूँ जिसके द्वारा भगवान ने मुझे पाँच सौ कबूतर-पैर वाली अप्सराओं को विधिपूर्वक प्राप्त करने का प्रायोजन दिया था।" भगवान ने उत्तर में कहा, "हे नंदा! क्योंकि तुम्हारा मन आसव (आसव) से मुक्त हो गया है, अनासक्त हो गया है, इसलिए मैं इस प्रतिज्ञा से मुक्त हो गया हूँ।" तब भगवान ने जब जाना कि नंदा के इंद्रिय द्वार (या नियंत्रण शक्तियाँ) विशिष्ट रूप से सुरक्षित हैं, तो उन्होंने उसे सर्वोच्च स्थान पर बिठाते हुए कहा, "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, जिनके इंद्रिय द्वार (या नियंत्रण शक्तियाँ) सुरक्षित हैं, यह नंदा श्रेष्ठ है," ताकि इस गुण का प्रचार किया जा सके। थेरा ने मन ही मन कहा, "मैं इंद्रियों पर आत्म-नियंत्रण के अभाव के कारण इस अव्यवस्था में फंसा हूँ, मैं इसे ठीक से अपने वश में रखूँगा," और अपनी शक्ति को जागृत किया।इससे पाप के कारण अत्यधिक शर्म और भय की भावना उत्पन्न हुई और समर्पित सेवा कर्म करने के कारण उसने अपनी इंद्रियों (या नियंत्रण करने की क्षमताओं) पर पूर्ण नियंत्रण की पराकाष्ठा प्राप्त कर ली।

27. इस प्रकार सर्वोच्च पद (अतद्ग्ग) प्राप्त करके उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और पद्ममुत्तरस्स भगवतो से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वत्तम खोमं मया दिन्नम् (मेरे द्वारा अर्पित खोम वस्त्र) खोम राज्य में निर्मित वस्त्र; (परम) कोमल वस्त्र मैंने अपने प्रसन्न हृदय और अत्यंत आदरपूर्ण मन से उस महान पुरुष को अर्पित किया; यही अर्थ है। स्वयंभूस (स्वयं को) जो स्वयं ही उत्पन्न हुए, श्रेष्ठ (आर्य) जन्म में जन्मे; महेसिनो (महान ऋषि) वे नैतिक उपदेशों, एकाग्रता, ज्ञान, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान की अंतर्दृष्टि के विशाल समूह की खोज करते हैं और उसमें लगे रहते हैं; इस प्रकार वे महेसी, महान ऋषि हैं। महेसी सयंभू के लिए वस्त्र बनाने के उद्देश्य से मैंने खोमा का कपड़ा भेंट किया था, इस प्रकार यह संबंध स्थापित हुआ।

28. तम मे बुद्धो वियाकासि, बुद्ध ने मेरे लिए इसकी भविष्यवाणी की थी; यहाँ 'तम' शब्द स्वामित्व के अर्थ में लोप का प्रतीक है; बुद्ध ने मेरे दान के फल को प्रकट करने का उपदेश दिया, जो उस वस्त्र का दाता था; इस प्रकार इसका अर्थ है। जलजुत्तमनामाको (जिसका नाम जलज-उत्तम है) सबसे उत्कृष्ट जलीय उत्पाद, जिसका नाम पद्ममुत्तरा है, सबसे श्रेष्ठ कमल; इसका पाठ है: "जलरुत्तमनायाको", साथ ही; जो प्रकाशमान दिव्य प्राणियों और ब्रह्मा के प्रमुख और सबसे उत्कृष्ट नेता थे; इस प्रकार इसका अर्थ है। इमिना वत्थदानेन (इस वस्त्र के दान के कारण) इस वस्त्र के दान के परिणामस्वरूप; हेमवण्णो (स्वर्ण रंग) भविष्य में आपका रंग स्वर्णमय हो जाएगा।

29. द्वे सम्पत्तिम् अनुभोत्वा (दो प्रकार की समृद्धि का आनंद लेते हुए): दिव्य और मानवीय मानी जाने वाली दो प्रकार की समृद्धि का अनुभव करते हुए; कुसलामूलेहि कोदितो (पुण्य के आधारों से प्रेरित): पुण्य के अंशों और अच्छे कर्मों के विवरण द्वारा प्रेरित और भेजा गया; मानो यह कहते हुए भेजा गया हो: "इस पुण्य के माध्यम से, आपको गुरु के परिवार में जन्म लेना चाहिए"; यही अर्थ है। बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी: "आप गौतम, महिमावान के सबसे छोटे भाई बनेंगे"; यही संबंध है।

30. रागरत्तो सुखसीलो (कामवासना से दूषित और सुख भोगने वाला) शारीरिक और मानसिक सुख भोगने की प्रवृत्ति से युक्त, कामुक इच्छाओं से ग्रस्त और उनसे आसक्त; कामेसु गेधमायुतो (सुख की लालसा से जकड़ा हुआ) इंद्रियों के भौतिक सुखों के लिए तीव्र इच्छा (गेध) से जकड़ा हुआ; यही अर्थ है। बुद्धेन कोदितो संतो, तदा त्वम्, उस समय, बुद्ध द्वारा प्रेरित होकर, क्योंकि तुम कामुक सुखों के प्रति लालची थे; तदा (तब) इसलिए, अपने सगे भाई गौतम बुद्ध द्वारा प्रेरित होकर और संन्यासी बनने के लिए प्रोत्साहित होकर, तुम उनकी उपस्थिति में संन्यासी बनोगे; यही संबंध है।

31. पब्बजित्वाना त्वं तत्था (वहाँ भिक्षु बनकर) तुम गौतम, महिमावान, के उस युग में भिक्षु बन जाओगे; कुसलमूलेन (अच्छे कर्मों की जड़ से) पुण्य की संरचना से जो (गहराई से) जड़ जमा चुकी थी; कोदितो (उत्तेजित) विकसित ध्यान (भावना) से नियंत्रित; सब्बासवे (सभी दोष) सभी वासनाओं का प्रवाह; परिञ्ञाव (सब कुछ जानकर), जानकर त्याग देना; निब्बाविस्ससि (तुम्हारी अग्नि बुझ जाएगी) स्वस्थ और दु:ख से मुक्त हो जाओगे; तुम स्वयं को अदृश्य प्राप्त करोगे; तुम पदनामहीन अवस्था (या अव्यक्त अवस्था, पञ्ञतिका) में जाओगे; यही अर्थ है।

32. सातकप्पसहस्संहि, एक लाख युगों की अवधि में, इस युग (कप्पा) से गिनते हुए, एक लाखवें युग (कप्पा) में पूर्व में चेला नामक चार विश्वराज थे; यही इसका अर्थ है। साठ हजार युगों में, चार जन्मों में, एक ही युग (कप्पा) के अंतर्गत, एक हजार और साठ युगों (कप्पा) से आगे बढ़कर, उपचेला नामक चार व्यक्ति विश्वराज बने; यही इसका अर्थ है।
33. पंचकप्पसहस्संहि, पाँच हज़ार युगों में, चतुदीपंहि इस्सरा (चार द्वीपों के शासक) चार विश्वराज थे जिनका नाम चेला था, जो सात रत्नों से परिपूर्ण थे; ये चारों द्वीप जंबुदीप (यूजेनिया वृक्ष द्वीप), अपरागोयान (एक अन्य गौ-वाहन द्वीप), उत्तर कुरु (उत्तरी कुरु द्वीप) और पुब्बाविदेह (पूर्व विदेह द्वीप) के प्रमुख शासक बने; यही इसका अर्थ है। शेष का अर्थ पहले से ही यही है।
थेरा नंदा की जीवनी पर की गई टीका का समापन हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.114. कुल्ला-पंथक
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.114. थेरा चूलपंथ की जीवनी पर टिप्पणी
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

14. कुल्ला-पंथक

अग्नि पूजा के प्राप्तकर्ता, विजयी पदुमत्तरा।

---

393 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 394 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 395 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित 396 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

अनुयायियों के समूह को छोड़कर, वे तब हिमालय में रहने लगे। (1) (708)
मैं भी उस समय हिमालय में एक आश्रम में रह रहा था। मैं विश्व नेता, महान नायक के पास गया, जो अभी-अभी वहाँ पहुँचे थे। (2) (709)
फूलों की छतरी लेकर, मैं ध्यान कर रहे पुरुषों के बैल के पास गया;397 मैंने उन्हें कोई व्यवधान नहीं पहुँचाया। (3) (710)
मैंने दोनों हाथों से पुष्पों से बनी छतरी उठाई। तब महान ऋषि पद्ममुत्तरा ने उसे ग्रहण किया। (4) (711)
सभी देवता, जो प्रसन्न हुए, (तब) हिमालय की ओर बढ़े। उन्होंने "साधु"399 "दृष्टिपूर्ण देवता (उन्हें) धन्यवाद देंगे"400 (5) (712) का जयजयकार किया।
यह कहने के बाद (तब) वे देवता उनके पास आए, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे। वे आकाश में उनका उत्तम कमल-छतरी लिए हुए थे। (6) (713)

"कमल के आकार का छत्र धारण करके, इस तपस्वी ने इसे मुझे दे दिया। मैं उनके बारे में विस्तार से बताऊंगा; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (7) (714)
वह पच्चीस युगों तक दैवीय शासन करेगा। चौंतीस बार वह कानून के पहिये को घुमाने वाला राजा होगा। (8) (715) वह जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेगा,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 397 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 398 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
399 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 400 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

चाहे वह मानवीय हो या दिव्य, वह उस कमल को खुले आकाश में फैलाकर ले जाएगा। (9) (716)
ओक्काका (इक्ष्वाकु) वंश में उत्पन्न होने वाले एक लाख युगों में, गौतम नाम का व्यक्ति संसार का गुरु होगा। (10) (717)
जब बुद्ध के वचनों का प्रचार हो जाएगा, तब वह मनुष्य अवस्था को प्राप्त करेगा। मन से निर्मित शरीर में वह (सर्वोच्च) होगा। (11) (718)
दो भाई होंगे; वे दोनों पंथा के नाम से जाने जाएंगे। परम लक्ष्य का आनंद लेते हुए वे व्यवस्था को रोशन करेंगे। (12) (719)
मैं बेघर होकर चला गया (परन्तु) अठारह वर्षों के बाद भी मुझे शाक्यन402 व्यवस्था में कोई विशिष्टता प्राप्त नहीं हुई। (13) (720)
मैं एक बेबस स्थिति में था; शहर में मेरी अवहेलना होती थी। यहाँ तक कि मेरे भाई ने भी मुझे यह कहकर टाल दिया: "अब तुम्हारे घर जाने का समय आ गया है।"403 (14) (721)
इस प्रकार बर्खास्त किए जाने के कारण, मैं मठ के भंडार कक्ष में उदास मन से खड़ा था, और एक सच्चा भिक्षु बनने की इच्छा रखता था।404 (15) (722)
फिर शिक्षक उस स्थान पर आए और मेरे सिर को अपने हाथ से छूकर मुझे मेरा हाथ पकड़कर अंदर ले आए।406 (16) (723)
शिक्षक ने मुझ पर दया करके मुझे पैर पोंछने के लिए एक कपड़ा दिया।

---

401 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 402 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ 403 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel) 404 शाब्दिक अर्थ, "गया" 405 PTS sañjālesi के लिए BJTS के साथ sañcālesi पढ़ना 406 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

इस प्रकार उसने मुझे शुद्ध किया जब मैं एक तरफ खड़ा था। (17) (724)
लाल कमल के समान उस व्यक्ति का हाथ थामकर, वहीं मेरा मन मुक्त हो गया और मैं अरहंत बन गया। (18) (725)
मेरे मन द्वारा निर्मित शरीरों में मैंने पूर्ण उत्कृष्टता प्राप्त की। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता हूँ। (19) (726)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) (727)
इस प्रकार पूज्य कुलपंथक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
कुल्लापंथक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवादः यू लू पे विन

14. थेरा चूलपंथ की जीवनी पर टिप्पणी

पदुमुत्तरो नामे जिनो से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा चूलपंथ की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करने और पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों को संचित करने के कारण, वे भी प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में (आया); (यहाँ उपाख्यान के रूप में जो कुछ भी कहा जाना चाहिए, वह आठवें निपात में महापंथक की कथा में पहले ही बताया जा चुका है। परन्तु अंतर यह है:- थेरा महापंथक ने अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद अपना समय अपने फल, फलसमापत्ति की समृद्धि के आनंद में व्यतीत किया और इस प्रकार विचार किया: "मैं चूलपंथक को भी इस आनंद में कैसे उचित रूप से स्थापित कर पाऊँगा?" वह अपने धनी मामा, जो एक धनी बैंकर थे, के पास गए और इस प्रकार कहा: "यदि महान बैंकर सहमत हों, तो मैं चूलपंथक को भिक्षु बना दूँगा।" उत्तर था:- "आदरणीय महोदय! कृपया उन्हें भिक्षु बना दीजिए।" थेरा ने उन्हें भिक्षु बना दिया। दस नैतिक उपदेशों में भली-भांति स्थापित होने के बाद, वे अपने बड़े भाई की उपस्थिति में चार महीनों में निम्नलिखित श्लोक को सीखने के प्रयास में भी नहीं सीख पाए:-

"जैसे सुबह-सुबह सुगंधित कोकनाड़ा कमल खिल उठता है और भरपूर खुशबू बिखेरता है, वैसे ही देखो बुद्ध आकाश में धधकते सूरज की तरह स्पष्ट रूप से चमक रहे हैं।"

यद्यपि उसने श्लोक को याद कर लिया था, फिर भी वह उसके हृदय में नहीं बसा। तब महापंथक ने उससे कहा, "हे चूलपंथक! तुम इस संप्रदाय में रहने के योग्य नहीं हो; तुम चार महीने में भी एक श्लोक नहीं समझ पाते; भला भिक्षु के कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए तुम कैसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करोगे; तुम्हें यहाँ से चले जाना चाहिए।" इस प्रकार, थेरा द्वारा विदा किए जाने पर वह द्वार के पास रोता हुआ खड़ा रहा।

उस समय भी गुरुजी जीवकम्मा वन में निवास कर रहे थे। तब जीवक ने अपने दूत को इस प्रकार भेजा: "तुम जाओ और गुरुजी को पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आमंत्रित करो।" उस अवसर पर भी पूज्य महापंथक ही पुरोहितों के भोजन का प्रबंध करने वाले थे। जब उन्हें पाँच सौ भिक्षुओं के लिए भोजन ग्रहण करने को कहा गया, तो उन्होंने उत्तर दिया: "चूलापंथक को छोड़कर, मैं अन्य भिक्षुओं के लिए भोजन ग्रहण करता हूँ।" यह सुनकर चूलापंथक और भी अधिक निराश हो गए। गुरुजी को उनकी मानसिक व्याकुलता का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने मन ही मन कहा: "मेरी बनाई एक योजना से चूलापंथक को ज्ञान प्राप्त होगा।" वे उनके पास ही प्रकट हुए और पूछा: "हे पंथक! तुम क्यों रो रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया: "पूज्यवर! मेरे बड़े भाई ने मुझे विदा कर दिया है।" गुरु ने कहा, "पंथक! चिंता मत करो; तुम्हारा भिक्षुत्व मेरे मार्गदर्शन में है; आओ, इसे ग्रहण करो और अपने मन में यह विचार रखो कि 'धूल लेना, धूल ढोना'।" गुरु ने अपनी जादुई शक्तियों से विशेष रूप से एक स्वच्छ वस्त्र बनाकर उसे दिया। चूलपंथक बैठकर गुरु द्वारा दिए गए वस्त्र से अपना हाथ पोंछने लगा, "धूल लेना, धूल ढोना" कहते हुए। जब वह उससे पोंछता रहा, तो वस्त्र स्वाभाविक रूप से गंदा हो गया; दोबारा पोंछने पर वह चावल पकाने के बर्तन के पोंछने वाले कपड़े जैसा हो गया। अपने सर्वांगीण ज्ञान के कारण उसने सोचा, "यह वस्त्र मूल रूप से सर्वांगीण (या स्वच्छ) था; इस व्याकुल शरीर के कारण यह गंदा हो गया है।" अतः, जिस प्रकार यह भी क्षणभंगुर है, उसी प्रकार मेरा मन भी क्षणभंगुर है। उन्होंने अपने मन में क्षीणता और विनाश का विचार स्थापित किया, उसी चिन्ह पर ध्यान लगाया, उसे ध्यान का आधार बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त किया। अर्हतत्व प्राप्त करते ही उन्हें उच्चतर ज्ञान के साथ-साथ तीनों पिटकों का ज्ञान भी प्राप्त हुआ।

गुरुदेव पाँच सौ भिक्षुओं (एक कम) के साथ जीवक के निवास पर गए और उनके लिए तैयार आसन पर बैठ गए। यद्यपि चूलपंथक उनके साथ नहीं गए क्योंकि उनका भोजन स्वीकार नहीं हुआ था। जीवक ने चावल का दलिया अर्पित करना शुरू किया। गुरुदेव ने अपना कटोरा हाथ से बंद कर लिया। पूछे जाने पर, "आदरणीय गुरुदेव! आप इसे क्यों नहीं ग्रहण करते?", बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे जीवक! एक भिक्षु मठ में हैं।" जीवक ने अपने सेवक को यह कहते हुए भेजा, "देखो! तुम मठ जाओ और बैठे हुए गुरुदेव को लेकर वापस आओ।" चूलपंथक भी बैठे रहे और उन्होंने एक हजार भिक्षुओं की रचना की, जो रूप और कर्म दोनों में एक दूसरे से भिन्न थे। उस व्यक्ति ने मठ में अनेक भिक्षुओं की दशा देखकर वापस आकर जीवक से कहा, "इस भिक्षु के अतिरिक्त, मठ में और भी बहुत से भिक्षु हैं; मुझे नहीं पता कि मुझे किस स्वामी से आपके पास आने का अनुरोध करना चाहिए।" जीवक ने गुरु से पूछा, "आदरणीय गुरुदेव! मठ में बैठे भिक्षु का नाम क्या है?" बुद्ध ने कहा, "हे जीवक! उस भिक्षु का नाम चूलपंथक है।" जीवक ने अपने अनुयायी को निर्देश दिया, "देखो! तुम जाओ और पूछो, 'चूलपंथक नाम के भिक्षु का नाम क्या है?' और उन्हें ले आओ।" वह व्यक्ति मठ गया और पूछा, "आदरणीय गुरुदेव! चूलपंथक नाम के भिक्षु का नाम क्या है?" सभी हजार भिक्षुओं ने एक स्वर में कहा, "मैं चूलपंथक हूँ; मैं चूलपंथक हूँ।" वह व्यक्ति वापस आया और उसने जीवक को इस विषय की सूचना दी। जीवक ने आर्य सत्यों का गहन ज्ञान प्राप्त कर

लिया था, इसलिए उसे विधिपूर्वक यह ज्ञान हुआ: "मुझे लगता है कि स्वामी के पास जादुई शक्तियाँ हैं," और उसने अपने साथी से कहा, "मेरे साथी! तुम्हें जाना चाहिए, सबसे पहले बोलने वाले स्वयं स्वामी हैं; उनसे कहना, 'गुरुजी ने तुम्हें बुलाया है', और उनके वस्त्र का किनारा पकड़ लेना।" वह व्यक्ति मठ गया और उसने ऐसा ही किया। उसी क्षण वे सभी भिक्षु विलीन हो गए। वह व्यक्ति थेरा लेकर वापस चला गया।

उस समय गुरु ने चावल का दलिया और अन्य कई प्रकार के भोजन को ठोस भोजन के रूप में ग्रहण किया। भोजन करने के बाद, परम पूज्य गुरु ने पूज्य चूलपंथक को आज्ञा दी: "तुम्हें धन्यवाद करना चाहिए।" गुरु की इच्छा का लाभ उठाते हुए गुरु ने धन्यवाद किया और सिनेरु को मथनी बनाकर बुद्ध के उपदेशों के भंडार को ऐसे मथा जैसे विशाल सागर को मथा जा रहा हो। जब दशबाला भोजन करने के बाद मठ लौटे, तो धर्म सभा में यह चर्चा हुई: "बुद्धों की शक्ति अद्भुत है कि चूलपंथक चार महीनों में एक श्लोक भी आत्मसात नहीं कर पाए, फिर भी उन्होंने क्षण भर में इतनी कुशलता से उच्च कोटि की जादुई शक्तियाँ प्रदर्शित कीं।" इस प्रकार, जीवक के निवास में बैठे हुए, प्रतापी गुरु को यह ज्ञान हुआ: "चूलापंथक का मन इस प्रकार शांत हो गया, उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्रगति के मार्ग पर उचित रूप से अग्रसर हो गई, और वे बैठे-बैठे ही स्वयं को प्रकट करते हुए बोले: 'हे पंथक! न केवल यह वस्त्र गंदा होकर धूल से मिल जाता है, बल्कि यहाँ से भी धूल, आत्म-भ्रष्टता और श्रेष्ठ अनुशासन में विकृति उत्पन्न होती है।' गुरु ने इसे इस प्रकार दर्शाने के लिए ये तीन श्लोक कहे:-

"कामवासना (राग) धूल (राज) है, लेकिन साधारण रेणु धूल के कण नहीं; धूल (राज) कामवासना (राग) का रूपक है। वे भिक्षु इस धूल (राज) का त्याग करके, उस एक के मार्गदर्शन में रहते हैं जो धूल रहित है।"

"घृणा (दोष) उस ईश्वर की व्यवस्था में धूल (राज) के समान है जो स्वयं धूल से रहित है।"

"मोह (मोह) उस परमेश्वर की व्यवस्था में धूल (राज) के समान है जो स्वयं धूल से रहित है।"

श्लोक के सर्वांगीण अंत में, चूलपंथक ने विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त किया। धम्म सभा भवन में भिक्षुओं की यही चर्चा चल रही थी। गुरु, उन भिक्षुओं की चर्चा सुनकर आए, बुद्ध के आसन पर बैठ गए, भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं और जब उन्हें बताया गया कि वे चूलपंथक के बारे में बात कर रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें इस प्रकार समझाया: "हे भिक्षुओं! मेरी सलाह का पालन करते हुए, अब चूलपंथक ने पारलौकिक (या अलौकिक) विरासत प्राप्त कर ली है; पहले, उन्होंने सांसारिक (या सांसारिक) विरासत प्राप्त की थी", और अनुरोध किए जाने पर, उन्होंने चूलसेठी की जन्म कथा का उपदेश दिया। इसके बाद, धर्म के आसन पर कई श्रेष्ठ शिष्यों से घिरे बैठे गुरु ने चूलपंथक को उन भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान दिया जो विशेष रूप से मन-निर्मित शरीर बना सकते थे और साथ ही अपने मन को एकाग्र करने में चतुर थे।

35. इस प्रकार सर्वोच्च पद प्राप्त करने के बाद, चूलपंथक थेरा ने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और अपने उत्साह और प्रसन्नता के कारण अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने हेतु 'पदमुत्तरो नामो जिनो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, श्लोक के पहले दो चरणों का अर्थ वही है जो ऊपर बताया गया है: गणमहा वूपकत्थो सो (जिसने भीड़ से खुद को अलग कर लिया था), उस गुरु, पदमुत्तरा ने असंख्य भिक्षुओं के विशाल समूह से खुद को अलग कर लिया, एकांत की ओर चले गए; तदा (उस समय) जब मैं एक संन्यासी था; हिमवन्ते (हिमवंत में) हिमालय पर्वत के निकट; वासी (रहते थे) उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया, वे चार प्रकार के आचरणों के साथ रहते थे, यही अर्थ है।

36. अहम्पी :P: तदा, मैं भी :P: (तब) जब वह तेजस्वी परमेश्वर हिमवंत में आकर निवास करने लगे, तो मैंने भी हिमवंत के निकट अपना आश्रम बनाया; आ, (तक) चारों ओर से; यहाँ शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न के रूप में गिने जाने वाले खतरे थम गए; इस प्रकार, इस्म (शरणस्थल) नाम प्राप्त हुआ; ऐसे घने वन में मैं रहा; इस प्रकार, संबंध है। अचिरागतम महावीर; वह महान वीर जो शीघ्र ही आए, वह महान परिश्रमी जो शीघ्र ही आए; लोकनायकम (विश्व के नेता) वह उस प्रमुख तेजस्वी परमेश्वर के निकट गए; इस प्रकार, संबंध है। वे उनके आगमन के ठीक क्षण में उनके पास पहुँचे; इस प्रकार, अर्थ है।

37. पुप्पच्छत्तम् गहेत्वान, इस प्रकार पास आकर, लाल और सफेद कमल आदि से बने फूलों के छाते को पकड़कर; नरासभम्, (सर्वोत्तम पुरुष) उपगच्छिम् (मैं पास आया) मैं पास गया था, यही अर्थ है। समाधिम् समापज्जन्तम्, अच्छी तरह से मन की एकाग्रता में प्रवेश करके, मैंने उस व्यक्ति को बाधा पहुँचाई जो अपनी ध्यान एकाग्रता में लीन बैठा था। यही संबंध है।

38. उभोहत्तेहि पग्गयहा (दोनों हाथों से उठाकर) उस सुसंगठित पुष्प-छाता को दोनों हाथों से उठाकर मैंने उसे परम पूज्य को अर्पित किया, यही इसका अर्थ है। पाटिग्गहेसी (स्वीकार किया) परम पूज्य पद्ममुत्तरा ने मेरे द्वारा अर्पित पुष्प-छाता को स्वीकार किया; मेरी श्रद्धा की सराहना की; यही इसका अर्थ है।

41. सतपत्तचत्तम पग्गयहा (आदरपूर्वक सौ पंखुड़ियों वाला छत्र अर्पित करते हुए) ऋषि ने मुझे आदरपूर्वक लाल पद्म कमलों से सुशोभित एक फूलों का छत्र भेंट किया, जिनमें से प्रत्येक कमल में सौ पंखुड़ियाँ थीं; यही इसका अर्थ है। तमहम कित्तयिसामि (मैं उनका घोष करूंगा) मैं उस ऋषि का घोष करूंगा और उन्हें प्रकट करूंगा; यही इसका अर्थ है। भासतो (बोलते हुए) मेरी वाणी को ध्यानपूर्वक सुनो और उस पर विचार करो।
42. पंचवीसतिकप्पानि, पच्चीस युगों (कप्पा) तक, पुष्प छत्र की इस भेंट के कारण, वह पच्चीस बार तावतिंस महल में सक्का बनेगा और संप्रभुता धारण करेगा; इस प्रकार, संबंध है। चतुत्तिमसक्खत्तुन च, चौंतीस बार; वह मनुष्यों के संसार में विश्व-राजा बनेगा।
43. यम यम योनिम् (जिस भी गर्भ में), मनुष्य के गर्भ आदि जैसे गर्भों में, वह जन्म लेता है; संसारति (पुनर्जन्म के चक्र से गुजरता है) वह इस और उस गर्भ में जन्म लेता है; अब्भोकासे (खुली हवा में), किसी खाली जगह में; पतिष्ठंतम् (खड़ा) चाहे बैठा हो या खड़ा; धारयिस्सति (धारण करेगा), कमल का फूल उसे ढक लेगा; यही अर्थ है।
45. जब बुद्ध के उपदेश स्पष्ट हो जाते हैं, जब तीनों पिटकों का संपूर्ण ज्ञान प्रकट होता है और प्रकाश में आता है, तब मनुष्य का जन्म होता है; जब मनुष्य का जन्म होता है; तब मनुष्य का जन्म होता है; जब मनुष्य का जन्म होता है; तब मनुष्य का जन्म होता है; जब मनुष्य का जन्म होता है; तब मनुष्य का जन्म होता है; जब मनुष्य का जन्म होता है, तब मनुष्य का जन्म होता है; इस प्रकार, मनुष्य का जन्म होता है; जैसे मनुष्य का जन्म होता है, वैसे ही मनुष्य का जन्म होता है; वह मनुष्य के मार्ग का अनुसरण करता है; यही अर्थ है। जब मनुष्य का जन्म होता है, तब मनुष्य का जन्म होता है; जब मनुष्य का जन्म होता है, तब मनुष्य का जन्म होता है; तब मनुष्य का जन्म होता है। ...
52. सारिम कोकनदम अहम (मैंने कमल के फूल को याद किया), भगवान द्वारा निर्मित वस्त्र के चारों ओर पोंछते हुए, मैंने कमल के फूल को याद किया, कोकनद पद्म; यही अर्थ है। तत्था चित्तम विमुच्चि मे (वहाँ मेरा मन मुक्त हो गया), मेरा मन उस कमल में अनासक्त और पूर्णतः मुक्त हो गया, कोकनद पद्म; इसके बाद मैंने अर्हतत्व प्राप्त किया; यही संबंध है।
53. सब्तथा, सर्वत्र; पारमिन (पूर्णता) गतो (चली गई) मन द्वारा नियत और मन द्वारा निर्मित शरीरों में मैंने सर्वांगीण चरम सीमा प्राप्त की; यही संबंध है; शेष तो बस उपरोक्त तरीके से है।
चूलपंथक थेरा की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 15. थेरा पिलिंडावच्चा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.115. पिलिंडावच्चा407
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.115. थेरा पिलिंडा वच्छा की जीवनी पर टिप्पणी
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

15. पिलिंडावच्चा407

जब विश्व नेता सुमेधा, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, निर्वाण को प्राप्त हुए, तो मैंने प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से उनके स्तूप की पूजा की। (1) (728)
वहाँ मैंने उन लोगों को इकट्ठा किया जिनके दोष नष्ट हो गए थे, विशेष ज्ञान, महाशक्तियाँ, और भिक्षुओं की सभा को भोज दिया। (2) (729)
उस समय मैंने सुमेधा की सेवा की। सुमेधा नाम से जाने जाने वाले उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया। (3) (730)

मेरे हृदय में व्याप्त आनंद के कारण मैं एक दिव्य महल में जन्मा हूँ। छियासी हजार दिव्य अप्सराओं408 ने मुझे उस महल में प्रसन्न किया। (4) (731)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 407 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 408 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

वे केवल मेरे प्रति समर्पित थे, और उन्हें हर प्रकार का सुख निरंतर मिलता था। मैंने अन्य सभी देवताओं को श्रेष्ठ बना दिया; यही अच्छे कर्मों का फल है। (5) (732)
पच्चीसवें युग में (तब से) मैं वरुण नाम का राजा था। मैं तब एक चक्र चलाने वाला राजा था जिसे विशेष भोजन प्राप्त था। (6) (733)
उन्हें न तो बीज बोने की ज़रूरत थी और न ही हल चलाने की; सभी लोग लकड़ी से पकाए गए चावल से अपना पेट भर सकते थे। (7) (734)
वहाँ (उस तरह) शासन करने के बाद मैं दिव्य अवस्था में वापस चला गया। फिर भी उसी तरह से मुझे भोजन में सफलता प्राप्त हुई। (8) (735)
कोई भी प्राणी, मित्र हो या शत्रु, मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा रहा है। मैं उन सबका प्रिय हूँ; यही अच्छे कर्मों का फल है। (9) (736)
उस उपहार को प्रदान करने के बाद से तीस हजार युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है; यही सुगंधित मरहम का फल है।411 (10) (737)
इस (वर्तमान) सौभाग्यशाली युग में एक समय मैं मनुष्यों का स्वामी था। मैं (तब) महान वैभव और शक्ति वाला एक चक्र-घुमाने वाला राजा था। (11) (738)
मैंने अनेक लोगों को पाँच नैतिक उपदेशों में स्थापित किया (तब) (और) उन्हें अच्छे पुनर्जन्म प्राप्त करवाए; मैं देवताओं का प्रिय था। (12) (739)
विश्लेषण के चार तरीके,

---

409 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 410 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 411 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

और इन आठ मुक्तियों, छह विशेष ज्ञानों में महारत हासिल करके, मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) (740)
इस प्रकार पूज्य पिलिंडावच्छ थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पिलिंडावच्छा थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
15. थेरा पिलिंडा वच्छा की जीवनी पर टिप्पणी
निब्बुते लोकनाथंहि से शुरू होने वाले श्लोक थेरा पिलिन्दवच्छ की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करके, जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए, और इस-उस जन्म में हंसवती नगर के एक अत्यंत समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने गुरु की उपस्थिति में धर्म उपदेश को उपरोक्त तरीके से सुना और देखा कि गुरु ने एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया है क्योंकि वह देवताओं को प्रिय और प्रसन्न करने वाला था। उन्होंने भी उस स्थान की कामना की, जीवन भर अच्छे

कर्म किए, और वहां से मृत्यु के बाद, देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-जन्म के चक्रों में विचरण करते हुए, सुमधा नगर के समय में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब परम पूज्य बुद्ध पूर्णतः निर्वाण को प्राप्त हुए, तो उनके सम्मान में एक मंदिर स्थापित किया गया, पुरोहितों को दान-पुण्य दिया गया, और वहाँ से देह त्यागने के बाद, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच समृद्धि का आनंद लिया। जब कोई बुद्ध प्रकट नहीं हुए, तब वे विश्वराज बने, उन्होंने मनुष्यों के विशाल समूह को पंच धर्म का उचित प्रशिक्षण दिया और उन्हें स्वर्ग की ओर अग्रसर किया। परम पूज्य बुद्ध के प्रकट होने से पहले ही उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका कुल पिलिन्द वच्छ था। बाद में वे पिलिन्द-वच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुए। अपने पुनर्जन्मों के चक्र में, अपने पश्चात्ताप की प्रचुरता के कारण, उन्होंने संसार त्याग कर एक विचरणशील तपस्वी का जीवन व्यतीत किया, चूलगंधार नामक महाविज्ञान का अध्ययन पूर्ण किया, आकाश-यात्री और मन-ज्ञानी बने, और सर्वोच्च लाभ और सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त करके राजगृह में अपना निवास स्थान ग्रहण किया।

फिर, हमारे परम पूज्य बुद्ध, विधिवत आत्मज्ञान प्राप्त करके, समय आने पर राजगृह पहुंचे। उस समय से, बुद्ध के प्रबल प्रभाव के कारण, वह महाविज्ञान अप्रभावी होने लगा; वह अपना कर्तव्य निभाने में विफल रहा। उन्होंने इस प्रकार चिंतन किया: "यद्यपि, मैंने यह सुना है, अर्थात्: अनेक गुरुओं का यही कथन है: जहाँ कहीं भी महाजात विद्या, गंधार, फलता-फूलता है, वहाँ गौण विद्या (चूल्गंधरविज्जा) अप्रभावी हो जाती है; मेरा विद्या गुरु गौतम के आगमन के समय से ही ठीक से काम नहीं कर रहा है; निःसंदेह, गौतम गुरु महाजात विद्या (महागंधरविज्जा) जानते हैं; यदि मैं उनकी सेवा करूँ और उनकी उपस्थिति में वह महाजात विद्या सीखूँ तो क्या होगा?" वे परम पूज्य बुद्ध के पास गए और ये शब्द कहे:- "हे महान भिक्षु! मैं आपकी उपस्थिति में एक विशेष विद्या सीखना चाहता हूँ; कृपया मेरे लिए एक अवसर प्रदान करें।" भगवान ने उत्तर दिया: "इसीलिए, आपको मेरी उपस्थिति में भिक्षु बनना चाहिए।" उन्होंने यह सोचकर भिक्षु बनने का निश्चय किया: "भिक्षुता विज्ञान के अध्ययन की प्रारंभिक अवस्था है।" भगवान ने उन्हें सत्य (धम्म) का उपदेश दिया और उनके आचरण के अनुरूप उन्हें मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) प्रदान किया। क्योंकि उनमें उचित क्षमता थी, इसलिए आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) में स्थापित होने के बाद उन्होंने शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

55. स्वर्ग में जन्म लेने वाले सभी दिव्य प्राणी, अपने पूर्व जन्मों में उनके प्रति प्रचुर कृतज्ञता के कारण, सुबह-शाम उस थेरा की सेवा में जाया करते थे। अतः, देवताओं द्वारा उस थेरा के प्रति अत्यधिक प्रेम और स्नेह के कारण, भगवान ने उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया और कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, देवताओं के प्रिय भिक्षुओं में, यह प्रमुख है, अर्थात्: पिलिन्दवच्छ।" इस प्रकार, सर्वोच्च पद प्राप्त करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और 'निब्बुत लोकनाथंहि' से शुरू होने वाला श्लोक बोला, ताकि वे अपने उत्साह और प्रसन्नता के कारण पूर्व में किए गए कर्मों को प्रकट कर सकें।

वहाँ, लोकनाथ (विश्व के मुखिया), इंद्रिय जगत, सजीव जगत और निराकार जगत के प्रमुख रक्षक; सुमेधो (उत्तम ज्ञान); सर्वज्ञ ज्ञान, असीमित ज्ञान आदि प्रकार के ज्ञान को मेधा कहा जाता है; या उत्तम, उत्कृष्ट ज्ञान, जिसे सुमेधो कहते हैं; अग्गपुग्गला (प्रमुख) सर्वोच्च होने के साथ-साथ एक प्रमुख व्यक्ति भी हैं। जब विश्व के मुखिया सुमेधा, प्रमुख व्यक्ति ने सभी तत्वों (खंडों) के प्रज्वलित होने से निर्वाण प्राप्त किया, तो यह संबंध है। पसन्नचित्तो सुमनो (स्पष्ट रूप से पवित्र मन और अच्छे हृदय से, पवित्र आस्था के साथ), मैं उस महिमावान सुमेधो के प्रति प्रसन्न हृदय से स्पष्ट रूप से पवित्र मन और अच्छे हृदय से प्रेरित हुआ; स्तूपपूजम् (स्तूप को आदरपूर्वक अर्पित करना), मैंने स्तूप को आदरपूर्वक अर्पित किया, यह अर्थ है।

56. ये च खीणासवा तत्था (जो भी वहाँ दोषरहित या दोषमुक्त थे), उस सभा में, जो भी अरहत थे, जो दोषरहित और दुराचार से रहित थे; चालभिञ्ञा (छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त), छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त; महिद्धिका (उच्च जादुई शक्ति से युक्त), महान जादुई शक्तियों से युक्त; ते (उन्हें), सभी दोषरहित अरहत; समानेत्वा, उचित रूप से एकत्रित करके, संघ भत्तम अकासिम (मैंने पुरोहितों के लिए भोजन बनाया) मैंने सभी दोषरहित अरहतों को आदरपूर्वक वहाँ उचित रूप से एकत्रित किया और उन्हें वह भोजन कराया जो समस्त पुरोहितों को अर्पित किया जाना चाहिए; यही अर्थ है।

57. उपात्थाको तदा अहु (उस समय सेवक था)। जब मैं पुरोहितों को भोजन अर्पित कर रहा था, उस समय सुमेधा नाम के एक सेवक का नाम सुमेधा था; यही इसका अर्थ है। अनुमोदित्था (बधाई देते हुए), उस शिष्य ने मेरे द्वारा धन्यवाद के रूप में अर्पित की गई भेंट के लाभ का उपदेश दिया; यही इसका अर्थ है।

58. तेना चित्तप्पसादेना (उस स्पष्ट रूप से पवित्र मन से), उस सुखद पवित्र मन से जो मंदिर में अर्पण करने के कारण उत्पन्न हुआ था; उपपज्जिम (मैं उत्पन्न हुआ), मैं दिव्य लोक में स्थित स्वर्गलोक में पहुंचा; यही अर्थ है। वहां यह कहा गया है: "मेरा जन्म वहां हुआ था"। चालासीति सहस्सानि (छियासी हजार) मे रामिंसु (मुझे आनंदित किया), उस स्वर्गलोक में छियासी हजार अप्सराओं ने मेरे मन को प्रसन्न किया; यही संबंध है।

59. ममेव अनुवत्तन्ति (वे मेरी इच्छा के अनुसार ही व्यवहार करती हैं) ता (वे) सब्बकामेहि (सभी इंद्रिय सुखों के साथ) सदा (सदा), अप्सराएँ सदा मेरी आज्ञा का पालन करती थीं और मेरी इच्छा के अनुसार ही व्यवहार करती थीं, यहाँ तक कि रूप-रंग आदि भौतिक इंद्रिय सुखों से मेरी सेवा करने में भी; यही अर्थ है। शेष अर्थ तो आसानी से समझ में आ जाता है।
थेरा पिलिन्दवच्च की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 16. थेरा राहुला

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.116. राहुल
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.116. थेरा राहुल (बुद्ध के पुत्र) की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

16. राहुल

मैंने विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, धन्य पद्ममुत्तरा के सात मंजिला महल में एक दर्पणयुक्त सतह412 भेंट की। (1) (741)
दो पैरों वाले भगवान, मनुष्यों के बैल, महान ऋषि (तब) हजार (अरहंतों) से घिरे हुए निष्कलंक होकर अपनी सुगंधित कुटिया की ओर बढ़े। (2) (742)
भिक्षुओं की सभा में खड़े होकर, (और) उस सुगंधित कुटिया को रोशन करते हुए, देवताओं के देवता, मनुष्यों के बैल, शिक्षक ने ये श्लोक कहे (तब): (3) (743)
मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जो इस (महल)413 को अच्छी तरह से फैले हुए दर्पण से चमकाएगा; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (4) (744)
सोने की बनी वस्तुएँ, चाँदी की बनी वस्तुएँ, नीलमणि की बनी वस्तुएँ; जो कुछ भी वह चाहेगा414 वह आकाश में उसके लिए प्रकट होगा। (5) (745)
चौंसठ बार देवताओं का राजा वह दिव्य शासन करेगा; वह एक हजार बार बिना रुके पहिया घुमाएगा। (6) (746)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 412 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 413 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
414 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

इक्कीसवें युग में (इसलिए) विमल415 नामक क्षत्रिय चारों ओर से विजयी होकर चक्र-घुमाने वाला सम्राट होगा। (7) (747)

(उनका) नगर, रेणुवती,416 टाइलों से सुशोभित होगा। (प्रत्येक भुजा) तीन सौ (लीग) लंबाई में आयताकार रूप से जुड़ी होगी। (8) (748)
(उनका) महल जिसका नाम सुदासाना417 है और जिसका निर्माण विस्साकम्मा418 ने करवाया था, उसमें सात प्रकार के रत्नों से जड़े हुए ढलानदार कक्ष होंगे। (9) (749)
दिव्य संगीतकारों से भरा हुआ,419 (और कभी भी) दस ध्वनियों की कमी नहीं होगी; यह सुदासन के समान होगा, वह नगर जहाँ देवता निवास करते हैं।420 (10) (750)
(यहाँ तक कि) जब इसकी चमक मंद पड़ जाती है, मानो सूरज उग रहा हो (तब) यह हर दिशा में आठ मील तक तेज़ी से चमकेगा। (11) (751)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (12) (752)
तुसिता (स्वर्ग) से गिरकर, अपनी पुण्य जड़ों से प्रेरित होकर, वह भगवान गौतम का वैध पुत्र होगा। (13) (753)
यदि वह घर में ही रहे तो वह चक्र-चालक बन जाएगा। इसी कारण अरहंत घर के भीतर सुख प्राप्त नहीं कर सकता। (14) (754)

---

415 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 416 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 417 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ। 418 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 419 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 420 BJTS के साथ संकालेसी का पाठ, PTS संजालेसी के लिए। 421 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"।

अच्छी तरह से प्रशिक्षित होकर वह घर से निकलने के बाद त्याग करेगा। वह राहुल के नाम से जाना जाएगा और वह अरहंत बन जाएगा। (15) (755)
"जैसे नीलगाय अपने अंडों की रक्षा करता है (और) जैसे बैल अपनी पूंछ की रक्षा करता है, वैसे ही,422 हे महान ऋषि, मैं बुद्धिमान और नैतिक होते हुए (सद्गुण) की रक्षा करता था। (16) (756)
उनकी शिक्षा को समझते हुए, मैंने उनके विधान से प्रेम करते हुए जीवन व्यतीत किया। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता हूँ। (17) (757)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) (758)
इस प्रकार पूज्य राहुल थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
आदरणीय राहुल थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
16. थेरा राहुल (बुद्ध के पुत्र) की जीवनी पर टीका
पद्ममुत्तरा भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा राहुल की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व श्रेष्ठ विजेताओं की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे उन्हें जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे पद्ममुत्तरा के समय में एक परिवार में पुनर्जन्म लेकर लौटे। जब वे ज्ञानोदय की आयु प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने गुरु के धर्म उपदेशों को सुना और देखा कि पद्ममुत्तरा एक भिक्षु को अनुशासन की तीव्र इच्छा रखने वालों में सर्वोच्च स्थान दे रहे हैं। स्वयं भी उस स्थान की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए उन्होंने मठ की सफाई, उसे चमकाने आदि जैसे अनेक पुण्य कर्म किए और निश्चय किया। वहाँ से देह त्यागने के बाद, उन्होंने अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, दोनों प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया, रानी यशोधरा के गर्भ में पुनर्जन्म लिया, जो इस बुद्ध के प्रकट होने के समय हमारे बोधिसत्व पर आश्रित थीं, राहुल नाम प्राप्त किया और क्षत्रिय योद्धाओं के एक बड़े दल के साथ पले-बढ़े। उनके त्याग का विस्तृत वर्णन विनय पिटक के खंडक खंड में ही मिलता है। उन्होंने गुरु की उपस्थिति में संसार का त्याग किया, कई सूत्रों के माध्यम से उनका परामर्श प्राप्त किया, ज्ञान में सर्वांगीण परिपक्व हुए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के प्रति सचेत हुए और अर्हतत्व प्राप्त

किया, उन्होंने अपनी उचित प्राप्ति पर विधिवत विचार किया और अपनी अर्हतत्व (अञ्ञा) की प्राप्ति को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने इस प्रकार चार श्लोक कहे:-

"लोग मुझे इस प्रकार जानते हैं: 'राहुल भद्दा या आदरणीय राहुल दोनों गुणों से परिपूर्ण हैं, अर्थात्: मैं बुद्ध का पुत्र हूँ; मुझे सत्यों (धम्म) का ज्ञान है; मेरे सारे दोष दूर हो गए हैं, मेरा कोई परलोक नहीं है; मैं अर्पण ग्रहण करने योग्य अरहत हूँ; मैं अमर (अमत) को देखने वाला त्रिगुणी महावैज्ञानिक हूँ। इंद्रिय सुख अंधकारमय और जालों से ढके हुए हैं, तृष्णा (तन्हा) के छत्र से आच्छादित हैं; लापरवाही के बंधनों से बंधे हुए हैं, जैसे मछली पकड़ने के जाल के मुँह पर मछलियाँ।' उस इंद्रिय सुख (काम) को दूर करके, मैंने तृष्णा (तन्हा) को उसकी जड़ सहित उखाड़ फेंका, और मैं शांत हो गया और मेरी अग्नियाँ भस्म हो गईं, मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया।"

वहाँ, उभये न'एव सम्पन्नो (दोनों प्रकार की समृद्धि से संपन्न) जन्म की समृद्धि और उचित प्राप्ति की समृद्धि से संपन्न; राहुलभद्दो ति माम विदू (मेरे साथी श्रेष्ठ जीवन के नेता मुझे "राहुलभद्ध" के नाम से भलीभांति जानते हैं); वास्तव में, उनके जन्म का संदेश सुनकर बोधिसत्व ने कहा: "राहु का जन्म हुआ है, बंधन उत्पन्न हुआ है"; बोधिसत्व के इन शब्दों के कारण, महान राजा सुद्धोदबा ने "राहुल" नाम धारण किया। वहीं से, पिता द्वारा कहे गए नाम को अपनाते हुए, उन्होंने कहा: "राहुलभद्दो ति माम विदू, वे मुझे राहुलभद्ध के नाम से जानते हैं"। भद्दा, अच्छा, प्रशंसा का एक शब्द मात्र है। इसके बाद, गुरु ने अनुशासन की उनकी इच्छा के कारण उन्हें सर्वोच्च स्थान पर रखते हुए कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, जो अनुशासन के इच्छुक हैं, उनमें यह एक, अर्थात् राहुल, प्रमुख हैं।

68. इस प्रकार सर्वोच्च पद प्राप्त करने पर, उन्हें अपने पूर्व कर्मों की याद आई, वे प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए "पदुमुत्तरस्स भगवतो" से शुरू होने वाला श्लोक बोला। सात मंजिला महल में आनंद और मानसिक प्रसन्नता उत्पन्न होती है; अतः, यह महल है। जिस भी महल में सात मंजिलें एक के ऊपर एक खड़ी हों, वह सात मंजिला महल कहलाता है; दर्पण की सतह बनाकर, मैंने जगत के सबसे बड़े, तेजस्वी पुरुष को उचित रूप से दर्पण अर्पित किया; मैंने उचित रूप से दर्पण बिछाकर उनके सम्मान में अर्पित किया; यही अर्थ है।

69. खीणासवसहस्सेहि (हजारों दोषरहित अरहतों से घिरे हुए) चारों ओर हजार अरहतों से मिश्रित और घिरे हुए; द्विपदिंदो (दो पैरों वाले प्राणियों के स्वामी) उपागामी (पहुंचे या पहुंचे) महान ऋषि, सभी दो पैरों वाले प्राणियों के संप्रभु स्वामी, मनुष्य के विशाल बैल, उनके सुगंधित कक्ष में पहुंचे और प्रवेश किया; यही अर्थ है।

70. विरोसेंटो गंधक उतिम् (सुगंधित कक्ष को दीप्तिमान करते हुए) देवदेवो (दिव्य देवत्व) दिव्य प्राणियों के दिव्य स्वामी; नरसाभो (महान बैल) मनुष्यों के महान बैल; आभासथा (कहा) गुरु, मनुष्यों में सबसे वरिष्ठ, भिक्षुओं के पुरोहितों के बीच बैठ गए और भविष्यवाणी के इन श्लोकों का उच्चारण (या पाठ) किया; इस प्रकार, संबंध है।

71. येन यं जोतिता सेय्या (इससे भी अधिक तेजस्वी) भक्त द्वारा निर्मित इस तथाकथित महल से कहीं अधिक तेजस्वी, प्रकाशमान और चमकीला; आदासव्व (दर्पण के समान) तांबे के बने दर्पण की सतह के समान; संथात (ठीक से फैला हुआ) ठीक से निर्मित; तम (उसे) भक्त; कित्तयिसामि (मैं घोषणा करूँगा) मैं प्रकट करूँगा; यही अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाता है।

81. अथनामेतम यमतादि (यह ऐसा है कि यह अनुचित है) तादि वह है जो किसी भी परिस्थिति में, वांछनीय और अवांछनीय जैसी विविधताओं के बीच स्वाभाविक रूप से अविचलित रहता है; अगरे (घर में) गृहस्थ जीवन में; रतिम (आनंद) आसक्ति की अवस्था; अज्जगा (अंदर चला गया) पहुँच गया; एतम (यह) यह कारण अनुचित है, नहीं किया जाना चाहिए, तर्कहीन है; इस प्रकार, अर्थ है।

82. निक्खमित्वा अगरस्मा (गृहस्थी छोड़कर) गृहस्थ जीवन से निकलकर, उसे घास के गुच्छे की तरह पूरी तरह त्यागकर; सुब्बतो (उचित रूप से कर्तव्यनिष्ठ) सुशासित होकर, वह संसार का त्याग करके भिक्षु बन जाएगा; राहुलो नाम नामेन (राहुल के नाम से जाना जाने वाला) महान राजा सुद्धोदन द्वारा भेजे गए राजकुमार के जन्म का संदेश सुनकर, उसके पिता सिद्धार्थ द्वारा बताए गए नाम के कारण, "राहु (शनि) का जन्म हुआ है, एक बंधन उत्पन्न हुआ है", उसका नाम राहुल रखा गया; यही अर्थ है। इस प्रकार ध्यान देना चाहिए: "जैसे राहु (शनि), टाइटनों का राजा, असुरिन्द सूर्य और चंद्रमा के आकाश के प्रकाश को धूमिल करते हुए आगे बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार वह मेरे महान वैराग्य में बाधा डालते हुए और भिक्षु बनते हुए प्रकट हुआ।" अरहा सो भविस्सति (वह अरहत बनेगा) वह तुम्हारे समान होगा, अरहत पद के लिए पर्याप्त योग्यताओं से युक्त, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास के लिए तत्पर, और वह दोषरहित अरहत बनेगा; यही अर्थ है।

83. kikīva aṇ̄dam rakkheyya (मुर्गी की तरह, जो अपने अंडों की देखभाल करती है) मुर्गी की तरह, जो अपने अंडे की देखभाल करती है, व्यक्ति को अपने नैतिक उपदेशों का लगन से पालन करना चाहिए; cāmarī viya vāladhi (याक की तरह पूंछ) चामरी की तरह, जो कांटों में उलझी अपनी पूंछ को टूटने के डर से नहीं खींचती, उसकी पूंछ की देखभाल करते हुए, व्यक्ति को अपने नैतिक उपदेशों का पालन करना चाहिए, उसे टूटने या रिसने से बचाते हुए; nipako sīlasampanno (परिपक्व और नैतिक उपदेशों से युक्त)

परिपक्वता को ज्ञान कहा जाता है, उस परिपक्वता से युक्त होना ही निपाक (परिपक्वता) है; नैतिक उपदेशों की देखभाल करने से, उसे टूटने और रिसने की स्थिति तक न पहुंचने देने से, व्यक्ति नैतिक उपदेशों से युक्त हो जाएगा। इस प्रकार, उस महान ईश्वर ने अपनी भविष्यवाणी इस प्रकार की। इस प्रकार अर्हतत्व की सिद्धि प्राप्त करने के बाद, उन्होंने एक दिन एकांत स्थान पर बैठकर यह श्लोक कहा, जो इस प्रकार प्रारंभ होता है: एवम् रक्खिम महामुनि: यह समझना आसान है।
थेरा राहुल की जीवनी पर की गई टीका समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 17. थेरा उपसेन वंगंतपुत्त

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.117. उपसेना वांगंतपुत्त423
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.117. वांगंत के पुत्र थेरा उपसेना की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

17. उपसेना वांगंतपुत्त423

मैं परम पुरुष, परम पावन पद्ममुत्तरा, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल के पास पहुँचा, जब वे एक पर्वत ढलान पर बैठे थे। (1) (759)
एक डिनर-प्लेट424 को खिलते हुए देखकर मैंने उसमें से (कई) डंठल तोड़े और एक छतरी को सजाकर उसे बुद्ध के ऊपर उठा दिया। (2) (760)
(और फिर) मैंने दूध-चावल का दान दिया, जो खाने में स्वादिष्ट था। मैंने वहाँ मौजूद आठ भिक्षुओं को भोजन कराया, जिनमें बुद्ध नौवें थे। (3) (761)

---

422 शाब्दिक अर्थ, "पुण्यपूर्ण" 423 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 424 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दश:, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

महान नायक ने (मुझे) स्वयं-एकत्व प्राप्त, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को धन्यवाद दिया: "इस छाते के उपहार के कारण दूध-चावल की वर्षा होगी। (4) (762)
वह अपने हृदय में उस आनंद के कारण अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करेगा। वह देवताओं के राजा के रूप में तीस बार दिव्य शासन करेगा। (5) (763)
और बीस (अलग-अलग) बार वह एक ऐसा राजा होगा जो (कानून का) पहिया घुमाएगा, (और उसके पास) अनगिनत स्थानीय शासन होगा। (6) (764)
जिसे वे सुमेधा कहते हैं, वह अत्यंत बुद्धिमान है, पृथ्वी के समान बुद्धिमान है। वह एक लाख युगों में बुद्ध बनेगा। (7) (765)
जब ईश्वर का प्रकाश चमकेगा, तब वह मनुष्य रूप धारण करेगा। उपासना नाम से वह गुरु का अनुयायी होगा। (8) (766)
यह मेरा अंतिम अस्तित्व है; (अब) सभी अस्तित्व समाप्त हो गया है। अपनी सेनाओं के साथ मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हुए मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (9) (767)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) (768)

इस प्रकार पूज्य उपसेना वांगंतपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उपसेना वांगंतपुत्त थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

पाठ का तीसरा भाग समाप्त हो गया है।

---

425 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 426 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

17. वांगंत के पुत्र थेरा उपसेना की जीवनी पर टीका

पद्ममुत्तराम भगवंतम से शुरू होने वाले श्लोक वांगंत के पुत्र थेरा उपसेना की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुण्य कर्म संचित किए, जो पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। वे पद्ममुत्तरा के समय हंसवती नगर के एक परिवार में पुनर्जन्म लेकर वयस्क हुए और गुरु के पास जाकर धर्म का उपदेश सुना। तब उन्होंने देखा कि गुरु ने सभी प्रिय भिक्षुओं में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने गुरु की सेवा की, उस पद की कामना की, जीवन भर अच्छे कर्म किए, जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण किया और अंत में इस बुद्ध के प्रकट होने के समय नालक ग्राम में ब्राह्मण स्त्री रूपसारी के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम उपसेना तिस्सा था। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया, गुरु की उपस्थिति में धर्म का प्रवचन सुना, विधिवत धार्मिक आस्था धारण की, संसार का त्याग किया, भिक्षु दीक्षा ली और एक वर्ष बाद मन ही मन यह कहते हुए कि "मैं आर्यों के राज्य का विस्तार करूंगा", एक परिवार के पुत्र को अपनी उपस्थिति में उपसंपदा द्वारा भिक्षु बनाया और उसके साथ गुरु के समक्ष गए। यह जानकर कि उनका सहवासी भिक्षु वह है जिसने अभी तक उपवास नहीं रखा है, गुरु ने उन्हें इस प्रकार फटकारा: "हे मूर्ख! तू तो अत्यंत सहजता से समृद्धि की ओर लौट गया है।" उन्होंने मन ही मन कहा: "अब यदि गुरु मुझे अपने अनुयायियों के कारण दोषी ठहराते हैं, तो मैं अपने अनुयायियों के कारण ही गुरु को प्रसन्न करूंगा"; उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के विकास के लिए कर्म किए और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। लेकिन अरहत बनने के बाद, उन्होंने स्वयं भी कर्तव्यवश सभी कठोर साधनाओं (धूतंगधम्म) का पालन किया; उन्होंने दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित किया। इसी कारण भगवान ने उन्हें सभी प्रिय भिक्षुओं (समंतपासादिक) में सर्वोच्च स्थान दिया। एक बार जब कोसंबी में झगड़ा हुआ और भिक्षुओं का समूह दो गुटों में बँट गया, तब एक भिक्षु ने, जो उस झगड़े से पूरी तरह बचना चाहता था, उनसे पूछा, "अभी तो झगड़ा हो गया है; भिक्षुओं का समूह दो भागों में बँट गया है; मुझे उचित आचरण कैसे करना चाहिए?", तब उन्होंने उस भिक्षु को एकांतवास से शुरू करके उचित साधना का उपदेश दिया। इस प्रकार, थेरा ने स्वयं के उचित कर्मों की स्थिति को उजागर करने के लिए, उसी प्रकार उस भिक्षु को सलाह देने के निर्देश का अनुसरण करते हुए, अपने अरहतत्व की प्राप्ति को प्रकट किया।

86. इस प्रकार सर्वोच्च पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने पद्ममुत्तरम भगवंतम से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्व कर्मों का प्रकटीकरण किया। पभारमिनिसीदंतम (ढलान पर बैठा हुआ) भारित, झुका हुआ, आगे की ओर झुका हुआ, इस प्रकार है पभार (ढलान); वन के मध्य में प्राकृतिक पर्वतीय ढलान पर बैठा हुआ, एकांत को सुगम बनाते हुए; नरुत्तमन (सर्वोत्तम पुरुष) महिमावान, उपगच्छिम (मैं पास आया) मैं निकट गया; इस प्रकार है अर्थ।

87. काणिकारापुप्पमदिस्वा (पीले काणिकारा फूल को उस प्रकार आते हुए देखकर), उस स्थान पर अच्छी तरह खिले हुए पीले काणिकारा फूल को देखकर; वन्ते चेत्वान' हम तदा (तना काटकर) तथागत को देखते ही मैंने उस फूल को तना से काट दिया; अलांकरित्वा चत्तम्हि (छतरी पर सजाया) उस फूल से छतरी को ढक दिया; बुद्धस्स अभिरोपायी (बुद्ध के ऊपर चढ़ाया) पहाड़ी ढलान पर बैठे बुद्ध के सिर के ऊपर उसे धारण कराया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

88. पिन्दपातंच पादसिम (मैंने भिक्षा भी दी) मैंने उसी स्थान पर विराजमान परम पूज्य को भिक्षा दी और भोजन कराया; परमन्नां सुभोजनम् (परम उत्कृष्ट भोजन और उत्तम कोमल भोजन) अत्यंत उत्तम पोषण, उत्तम भोजन जिसे उत्तम कोमल भोजन माना जाता है; बुद्धेन नवमे तत्था (वहाँ बुद्ध के साथ नौवें) उस एकांत स्थान पर, नौवें बुद्ध के साथ, समणे (भिक्षुओं) मैंने आठ भिक्षुओं को भोजन कराया जो रोगमुक्त थे और जिन्होंने बुरे कर्मों का त्याग कर दिया था; यही अर्थ है।
यम वदन्ति सुमेधो (ज्ञानी लोग जो भी कहें) भूरिपञ्ञम् (प्रचुर ज्ञान) सुमेधम (अच्छे ज्ञान वाले) - ज्ञानी लोग इस सर्वज्ञ बुद्ध गौतम के बारे में कहते हैं कि वे पृथ्वी के समान विशाल ज्ञान से परिपूर्ण हैं, सर्वज्ञता आदि से युक्त हैं, और उत्कृष्ट बुद्धि वाले हैं, और यह भी कि यह गौतम इस युग से एक लाख युगों (कप्पा) बाद पूर्णतः आत्मप्रबुद्ध बुद्ध बनेंगे; यही संबंध है। शेष बात तो आसानी से समझ में आ जाती है।
वांगंत के पुत्र थेरा उपसेना की जीवनी पर टीका का कार्य समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 18. थेरा रथपाल

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.118. रट्ठपाल
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.118. थेरा रात्थपाल की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

18. रट्ठपाल

राजाओं के योग्य एक दुर्लभ हाथी,427 रथ-डंडे जैसे दांतों वाला, मेरे द्वारा विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, धन्य पद्ममुत्तरा को दिया गया था। (1) (769)
इसमें सभी साज-सामान शामिल थे, 428 सफेद छतरी (और) एक महावत; इन सबका मूल्य लेकर मैंने एक मठ बनवाया। (2) (770)
मैंने वहाँ जो महल बनवाए थे, उनकी संख्या चौवन हजार थी; एक विशाल दान-पुण्य समारोह आयोजित करते हुए, मैंने उसे महान ऋषि को दे दिया। (3) (771)
महान ऋषि ने (तब मुझे) धन्यवाद दिया, स्वयं-एकत्व प्राप्त, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, (तब) उन्होंने सभी मुस्कुराते हुए लोगों को मृत्यु के बाद का मार्ग बताया। (4) (772)
तब बुद्ध, जिनका नाम कमल के नाम पर रखा गया है431 ने मेरे बारे में यह भविष्यवाणी की; भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए उन्होंने ये श्लोक (ज़ोर से) कहे: (5) (773)
"मैं इस व्यक्ति432 के कर्मफल बताऊंगा जिसने (यहाँ) चौवन हजार महलों का निर्माण किया; (आप सभी) मेरी बात सुनो: (6) (774)
उसके भव्य स्वर्गीय महल पर छज्जों वाली अठारह हजार झोपड़ियाँ बनेंगी; वे सभी सोने की बनी होंगी। (7) (775)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 427 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 428 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

429 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 430 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 431 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 432 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

वह पचास बार देवताओं के राजा के रूप में दिव्य शासन करेगा। और अट्ठावन बार वह कानून के पहिये को घुमाने वाला राजा होगा। (8) (776)

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (9) (777)

देवताओं के लोक से गिरकर, अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर, वह हर बार भरपूर भोजन वाले एक समृद्ध कुल में पुनर्जन्म लेगा। (10) (778)

बाद में, अपने अच्छे मूल से प्रेरित होकर, वह संसार छोड़कर गुरु का अनुयायी होगा, जिसे रट्ठपाल के नाम से जाना जाएगा। (11) (779)

परिश्रम में लीन होकर, शांत होकर,433 पुनर्जन्म के आधारों से रहित होकर,434 सभी दोषों को भली-भांति जानकर, वह निर्वाण प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर।" (12) (780)

उठकर, संसार को त्यागकर, प्रचुर भोजन का त्याग करके, जैसे किसी के लिए भिक्षा भोजन कफ के समान हो, मुझे किसी भी भोजन में कोई रुचि नहीं है। (13) (781)

बोझ उठाने के मेरे प्रयास ने मुझे आसक्तियों से मुक्ति दिलाई। (अब) मैं बुद्ध के युग में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (14) (782)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) (783)

इस प्रकार पूज्य रट्ठपाल थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

रट्ठपाल थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

433 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 434 शाब्दिक अर्थ, "गया" 435 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ संकालेसी पढ़ना

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

18. थेरा रात्थपाल की जीवनी पर टीका

पद्ममुत्तरस्सा भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा राष्टपाल की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस पूज्य थेरा ने भी पूर्व जन्मों में भक्तिपूर्ण सेवा कर्म करके, जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और पद्ममुत्तरा के प्रकट होने से पहले ही हंसवती नगर में एक अत्यंत धनी गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर, अपने पिता के निधन के बाद उन्होंने गृहस्थ जीवन में कदम रखा। अपने वंश से चली आ रही अपार संपत्ति को देखकर, जिसे उनके रत्नों के भंडार के प्रभारी सेवक ने दिखाया था, उन्होंने सोचा: "मेरे पिता, दादा, परदादा आदि इस संपत्ति का इतना बड़ा हिस्सा अपने साथ नहीं ले जा सके; इसलिए यह उचित है कि मैं उन्हें अपने साथ ले जाऊं और जरूरतमंदों, जैसे दरिद्रों और यात्रियों आदि को विशाल दान दूं।" एक उच्च ज्ञान प्राप्त (अभिज्ञा) ऋषि के पास जाकर और उनके द्वारा दिव्य लोक का शासक बनने के लिए प्रेरित होकर, उन्होंने जीवन भर पुण्य कर्म किए और वहां से देहांत होने पर, उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ, जहां उन्होंने अपने जीवनकाल में स्वर्ग के आनंद का अनुभव किया और वहां से देहांत होने पर, मानव जगत में विघटित राज्य का पुनर्निर्माण करने में सक्षम एक परिवार के इकलौते पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उस समय, परम पूज्य पद्ममुतारा संसार में अवतरित हुए, धर्म के उत्कृष्ट चक्र का संचालन कर रहे थे और योग्य प्राणियों को निर्वाण नामक महान नगरी के

सुरक्षित गंतव्य तक पहुंचा रहे थे। तब उस कुल के पुत्र ने, उचित समय पर, बुद्धि की आयु प्राप्त कर ली और एक दिन भक्तों के साथ मठ में गए, जहाँ उन्होंने गुरु को धर्म का उपदेश देते हुए देखा, वे अत्यंत श्रद्धावान हो गए और श्रोताओं के बीचोंबीच बैठ गए।

उस अवसर पर, गुरु ने संसार त्यागकर धर्मपरायण भिक्षु बनने वाले भिक्षुओं में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया। यह देखकर वह भिक्षु अत्यंत प्रसन्न हुआ और सात दिनों तक लाखों भिक्षुओं से घिरे रहकर परम पूज्य बुद्ध को विशाल दान अर्पित किया और उसी पद की कामना की। गुरु ने उसकी सिद्धि को निरंतर देखकर भविष्यवाणी की: "यह भिक्षु निकट भविष्य में आत्मज्ञानी बुद्ध गौतम के युग में धर्मपरायण भिक्षुओं का प्रमुख बनेगा।" गुरु और भिक्षुओं के समूह को प्रणाम करने के बाद वह अपने आसन से उठा और प्रस्थान किया। अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करते हुए, वे वहाँ से चले गए और जन्म-जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे। 92 युग (कप्पा) पूर्व, जब महाराज फुस्सा के समय, राजा के तीन पुत्र, जो गुरु के भिन्न माता से जन्मे तीन भाई थे, गुरु की सेवा कर रहे थे और पुण्य कर्म कर रहे थे, तब उन्होंने उनके साथी (या सहयोगी) के रूप में कार्यभार संभाला। इस प्रकार जन्म-जन्म के चक्रों में उत्तम जन्मों में भी अत्यधिक पुण्य अर्जित करने के बाद, उनका पुनर्जन्म कुरु राज्य के थुल्लकोष्ठिका गाँव में, धनाढक रत्थपाल के घर में, इस बुद्ध के प्रकट होने के समय हुआ। उनका नाम रत्थपाल था, जो उनके वंश के कारण था, क्योंकि उनका जन्म एक विघटित राज्य का पुनर्निर्माण करने में सक्षम परिवार में हुआ था। एक बड़े परिवार के साथ पले-बढ़े, उन्होंने उचित समय पर यौवन प्राप्त किया, अपने माता-पिता द्वारा एक उपयुक्त पत्नी से विधिवत विवाह किया, उच्च प्रतिष्ठा पर विधिवत स्थापित होने में सफल रहे और ऐसी समृद्धि का आनंद लिया जो स्वर्गीय आनंद के समान थी।

फिर, परम पूज्य भगवान अपने क्षेत्र का भ्रमण करते हुए अंततः थुल्लकोष्ठिका पहुँचे। यह सुनकर परिवार के पुत्र रत्थपाल ने गुरु के पास जाकर उनसे धर्म की शिक्षाएँ सुनीं, उनके समक्ष धर्मपरायणता प्राप्त की, भिक्षु बनने की इच्छा की, सात दिनों तक भोजन त्याग कर उपवास रखा, बड़ी कठिनाई से अपने माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त की, गुरु के पास जाकर भिक्षु बनने का अनुरोध किया, एक भिक्षु की उपस्थिति में गुरु के आदेशानुसार भिक्षु बने, विपश्यना का ज्ञान प्राप्त किया, सजग मन से अच्छे कर्म किए और अर्हतत्व प्राप्त किया। अरहतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने गुरु से अनुमति ली, अपने माता-पिता से मिलने थुल्कोष्ठिका गए, भिक्षा मांगने के लिए घर-घर भटकते रहे (सपदाना), वहाँ अपने पिता के निवास पर बासी उबले हुए चावल प्राप्त किए, उन्हें अमृत के समान खाया (अमता), अपने पिता द्वारा आमंत्रित किए जाने पर अगले दिन भोजन के लिए सहमत हुए, दूसरे दिन अपने पिता के घर पर भिक्षा ग्रहण की, तभी उनके पूर्व हरम की सजी-धजी युवतियाँ उनके पास आईं और उनसे इस प्रकार कहा: "हे युवा स्वामी! वे अप्सराएँ कैसी हैं, जिनके कारण आप यह पवित्र और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करते हैं?" इत्यादि। जब उन्होंने उन्हें लुभाने का प्रयास शुरू किया, तो उन्होंने उनके इरादे को विफल कर दिया और अनित्यता इत्यादि से संबंधित इन श्लोकों का उच्चारण किया:-

"मन की इस छवि को देखो, रोग और अनेक इरादों से ग्रस्त, स्वयं ही सहारा लिए हुए इस बीमार शरीर को देखो, जहाँ स्थायित्व का अभाव है। रत्नों और बालियों से सजे इस भौतिक रूप को देखो; हड्डियों और चमड़ी से बना यह रूप वस्त्रों के साथ सुंदर प्रतीत होता है। लाख से लाल हुए पैर, सौंदर्य प्रसाधन से सना चेहरा, भ्रमित मूर्खों के लिए उपयुक्त हैं, निर्वाण के पराक्रम की खोज करने वाले के लिए नहीं। आठ चोटियों से गुंथे बाल, नेत्र-रंजक (या नेत्र-रंग) से सने नेत्र, भ्रमित मूर्खों के लिए उपयुक्त हैं, निर्वाण के पराक्रम की खोज करने वाले के लिए नहीं। काजल के समान नए मन और सड़े हुए शरीर, भ्रमित मूर्खों के लिए उपयुक्त हैं, निर्वाण के पराक्रम की खोज करने वाले के लिए नहीं। शिकारी ने हिरण के लिए जाल बिछाया; जबकि हिरण-शिकारी चिल्ला रहा है, चलो हम अपना भोजन करके चलें। शिकारी का फंदा, वह जाल, जो हिरणों का विनाश करता है, काट दिया गया है; चलो हम अपना भोजन करके चले जाएं जबकि हिरण शिकारी शोक में डूबा हुआ है।

इन श्लोकों का उच्चारण करने के बाद, वह आकाश में उड़ गया और राजा कोरब्या के हिरणों और मृगों के बगीचे में स्थित शुभ पत्थर की शिला पर बैठ गया। कहा जाता है कि थेरा के पिता ने सात द्वारों (या फाटकों) पर कुंडी (या क्रॉस-बार) लगवाईं और पहलवानों (या कुलियों, मल्ला) को निर्देश दिया: "थेरा को जाने का मौका मत दो; पीले वस्त्र उतार दो और उसे सफेद वस्त्र पहनने दो।" यही कारण था कि थेरा आकाश में उड़ गया। तब राजा कोरब्य को जब यह पता चला कि थेरा वहाँ विराजमान हैं, तो वे उनके पास गए, उनसे प्रसन्नता भरे स्मरण के शब्दों में वार्तालाप किया और पूछा, "हे राष्टपाल! यहाँ एक व्यक्ति रोग, वृद्धावस्था, धन और सगे-संबंधियों की हानि के कारण हानि (या विनाश) की स्थिति में पहुँचने के बाद भिक्षु बनता है; परन्तु आपको तो कभी किसी प्रकार की हानि (या विनाश) नहीं हुई; आपने भिक्षु क्यों धारण किया?" तब थेरा ने राजा को अपने चार संक्षिप्त सत्यों (उद्देश धम्म) का उपदेश दिया, जिनका ज्ञान उन्हें स्वयं था: "संसार का अंत निकट है, यह स्थिर नहीं है; संसार असुरक्षित है, इसका कोई रक्षक नहीं है; संसार में कोई शरण नहीं है, मनुष्य को सब कुछ त्यागकर ही जाना होगा; संसार अपूर्ण, असंतुष्ट और भोग-विलास में जकड़ा हुआ है।" अपने उपदेश के अनुरूप गीत गाते हुए थेरा ने ये श्लोक कहे:

"मैं संसार में देखता हूँ कि धनवान लोग भ्रम में पड़कर अपनी कमाई का धन दान में नहीं देते। लालच में आकर वे धन का संचय करते हैं। वे इंद्रिय सुखों की और भी अधिक लालसा रखते हैं। युद्धों में विजय प्राप्त करने और महासागरों से घिरी पृथ्वी पर शासन करने वाला राजा भी महासागर के इस किनारे से संतुष्ट नहीं होता; वह महासागर के दूसरे किनारे की भी कामना करता है।"

"राजा और अन्य अनेक पुरुष, तृष्णा (तन्हा) का त्याग किए बिना मृत्यु की ओर अग्रसर होते हैं। संख्या में कम होकर वे अपना शरीर त्याग देते हैं। वास्तव में, संसार में इंद्रिय सुखों से संतुष्टि (या तृप्ति) का कोई अस्तित्व नहीं है।"

"रिश्तेदार अपने बाल बिखेरते हैं और उस पर शोक मनाते हुए कहते हैं: 'अरे! अफसोस! सौभाग्य से हम मरे नहीं।' शव को कपड़ों में लपेटकर एक ढेर में इकट्ठा करने के बाद, वे उसे ले जाते हैं और फिर उसे जला देते हैं।"

"उसे तेज धार वाले औजारों से छेद कर जला दिया गया, उसके पास कोई धन-संपत्ति नहीं थी, केवल एक ही वस्त्र था। उसकी मृत्यु के बाद, उसके रिश्तेदार, मित्र या उसके साथी भी उसकी शरण में नहीं आए।"

उसके वारिस उसकी संपत्ति ले जाते हैं; वह प्राणी,
हालांकि, वह अपने कर्मों के अनुसार ही चलता है; कोई नहीं
उसकी मृत्यु के बाद उसकी जो भी संपत्ति बचेगी;
न तो उसका धन और राज्य और न ही उसका
पुत्र और पत्नी।
लंबी आयु, किसी को इसके माध्यम से प्राप्त नहीं होती
धन; वे बुढ़ापे को दूर नहीं कर सकते।
अपनी संपत्ति के माध्यम से भी; बुद्धिमान लोग कहते हैं
यह सच है कि जीवन छोटा है, कभी नहीं।
स्थायी, उतार-चढ़ाव के अधीन। समृद्धि
और विपत्तियाँ स्पर्श के माध्यम से संपर्क में आ सकती हैं;
मूर्ख और बुद्धिमान दोनों ही समान रूप से प्रभावित होते हैं। वास्तव में, मूर्ख तो ऐसे लेट जाता है मानो मरा हुआ हो।
मूर्खता से; लेकिन बुद्धिमान लोग, जब उनमें व्याप्त हो जाते हैं
स्पर्श करने पर यह हिलता (या कांपता) नहीं है।
इसलिए, वास्तव में, ज्ञान (या बुद्धिमत्ता) भी
ज्ञान धन से श्रेष्ठ है, यह ज्ञान से ही प्राप्त होता है।
यहां उपलब्धि हासिल करता है।
वास्तव में, ज्ञान में अपूर्णता (या ज्ञान की कमी)
लघु और वृहद जन्मों में तथा भ्रम के कारण व्यक्ति बुरे कर्म करता है।
बार-बार पुनर्जन्म के चक्र में प्रवेश करने के बाद
(संसार), क्रमिक रूप से, एक व्यक्ति की ओर जाता है
गर्भ के साथ-साथ दूसरे लोक में भी; वह व्यक्ति जिसके पास है
उस बारे में कम जानकारी होने के कारण, क्योंकि वह आसानी से विश्वास कर लेता था।
यह गर्भ और परलोक दोनों के करीब पहुंचता है।
ठीक वैसे ही जैसे कोई चोर पकड़ा गया हो
घर में सेंधमारी के कारण हुई तोड़फोड़ का खुलासा
स्वयं, बुरा कर्म करने वाले को ही कष्ट देता है।
वह स्वयं, उसी प्रकार, बुराई भी।
किसी व्यक्ति द्वारा किए गए कृत्य के माध्यम से उत्पीड़न किया जाता है।
स्वयं, मृत्यु के बाद का प्राणी, परलोक में।
बिल्कुल! इंद्रिय सुख विविध प्रकार के होते हैं।
किसी के लिए मधुर और मनमोहक (या आनंददायक)
हृदय (या मन); वे मन को उत्तेजित करते हैं

विभिन्न प्रकार की सुंदरताओं को देखकर; कामुक सुखों के दुष्परिणामों को देखकर,
हे राजाओं! इसी कारण मैंने भिक्षु का पद ग्रहण किया है।
लड़के पेड़ों से फलों की तरह गिरते हैं;
युवा और वृद्ध सभी अपने जीवन के विघटन का सामना करते हैं।
शरीर। हे राजा! यह देखकर भी, मैं
भिक्षु बन गए हैं; यहाँ तक कि पत्तों से रहित भिक्षुत्व भी।
बेहतर है। पवित्र आस्था के साथ मैं बन गया हूँ।
भिक्षु; धर्मोपदेश में निपुण
विजेता का; मेरा भिक्षु जीवन निष्फल नहीं है;
मैं बिना कर्ज लिए अपना भोजन करता हूँ।
इंद्रिय सुखों का अवलोकन करने के बाद
जलने और सोने के दृष्टिकोण से
हथियार की नोक पर, मुझे पीड़ादायक कष्ट का सामना करना पड़ा।
गर्भ से बाहर आने और बड़े खतरे के बारे में
नरकों में।
इस हानि को जानने के बाद, मैं
तब मुझे पश्चाताप हुआ; कि मैंने उस समय
शांति में प्रवेश किया और प्राप्त किया
मुझे आसव (कैंकर) की थकावट हो गई है।
मेरे स्वामी मेरी सेवा में हैं, मेरे पास
मैंने बुद्ध के आदेश का पालन किया; मेरा भारी बोझ
बिछाया गया है; जोड़ने वाला प्रकार
जीवन पूरी तरह से विच्छेदित हो गया था।
मुझे भिक्षु बनने से जो भी लाभ हुआ हो, वह यही है।
घर से बाहर आने के बाद
बेघरों को जीवन देना, वह लाभ
तदनुसार, यह उपलब्धि प्राप्त कर ली गई है, अर्थात्:
सभी बंधनों का उन्मूलन।"

इस प्रकार राजा कोरब्या को सत्य (धम्म) का उपदेश देने के बाद, थेरा अपने गुरु के समक्ष लौट आए। इसके बाद, गुरु ने भी कुलीनों (आर्यों) की सभा के बीच में बैठकर उस थेरा को सच्चे मन से भिक्षु बनने वाले लोगों में सर्वोच्च स्थान दिया।

97-8. इस प्रकार प्रमुख पद प्राप्त करके, उस थेरा ने अपने पूर्व कर्मों को याद करते हुए प्रसन्नतापूर्वक पद्ममुत्तरस्सा भगवतो से प्रारंभ होने वाला एक श्लोक कहा, जिससे उनके पूर्व कर्मों का प्रकटीकरण हुआ। वरनागो मया दिन्नो, उत्तम हाथी मैंने अर्पित किया है, ईसादन्तो, धुरी के समान दांत वाला, सेतच्छत्तोपरोभितो, सफेद छत्र चमकता हुआ, सकोप्पनो, उसके आवरण सहित, संघामम्, पुरोहितों का आश्रम, अकारयिम् (मैंने बनाया) उस तेजस्वी के व्यक्तित्व पर श्रद्धा से प्रसन्न होकर, मैंने उन्हें अपना सबसे उत्तम और श्रेष्ठ हाथी अर्पित किया, जिसके दांत रथ की धुरी के समान थे, जो आकार में विशाल, भार ढोने वाला, या राजसी सम्राट के योग्य था, जिसकी पीठ पर एक सफेद छत्र था जो पशु को सुंदर और तेजस्वी बनाता था; और फिर अगर मुझसे पूछा जाए कि उस उत्कृष्ट हाथी की अन्य विशिष्ट विशेषता क्या थी, जो अपने आवरण और अलंकृत साज-सज्जा के साथ था; तो मैंने भिक्षुओं के पुरोहितों के लिए एक मठ का निर्माण करवाया, जिसका नेतृत्व बुद्ध ने किया।

99. चतुपञ्ञासहस्सनि (चौवन हजार), मैंने उस मठ के भीतर चौवन हजार आलीशान इमारतें बनवाईं; यही इसका अर्थ है। महोगदानं करित्वाना (भयंकर बाढ़ के समान दान करके), सभी धार्मिक आवश्यकताओं को समाहित करते हुए, भयंकर बाढ़ के समान विशाल दान अर्पित किया; महेसिनो (महान ऋषि को) मैंने ऋषि को दान के रूप में सौंप दिया।

100. अनुमोदि महावीरो (महान वीर ने मुझे बधाई दी) महान वीर ने अथक परिश्रम किया, जिसका अनुमान चार असंख्य कालों और एक लाख युगों (कप्पा) में निरंतर प्रयास के रूप में लगाया जाता है; स्वयंभू (आत्मनिर्भर) होकर स्वयं ही उत्पन्न हुए और सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त करने वाले सर्वश्रेष्ठ प्रमुख व्यक्ति, अनुमोदि (बधाई देते हुए) ने मेरे मठ के दान पर धन्यवाद दिया; सब्बेजाने बासयन्तो (सभी को प्रसन्न करते हुए) ने समस्त, अनंत, असीम दिव्य और मानव प्राणियों को प्रसन्न किया; कुरुमानो (संतोष प्रदान करते हुए) ने संतोष दिया; देसेसि (स्पष्ट किया) ने चार आर्य सत्यों (धम्म) के उपदेश को स्पष्ट किया, उजागर किया, विश्लेषण किया और प्रकट किया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

101. तम मे वियकासि (उन्होंने मुझे यह प्रकट किया) उन्होंने मेरे द्वारा किए गए उस पुण्य कर्म की शक्ति को स्पष्ट रूप से प्रकट किया; जलजुत्तमनामको (जलजुत्तम नाम से) जल में उत्पन्न हुआ, जलजनित है; जलज (कमल का फूल) पद्म है; पद्ममुत्तरा नाम से; यही अर्थ है। इसका एक और पाठ इस प्रकार भी है: "जलनुत्तम नायको"। वे अपने प्रकाश से चमकते हैं; इस प्रकार, जलना (चमकते चंद्रमा, सूर्य, देव और ब्रह्मा) उन प्रकाशकों में श्रेष्ठ हैं; इस प्रकार, श्रेष्ठ प्रकाशक, जलनुत्तमो (सभी जीवों के श्रेष्ठ नेता); इस प्रकार, नेता (नायक) या उन्होंने संचय, पुण्य या आवश्यक योग्यता रखने वाले जीवों का नेतृत्व किया और उन्हें निर्वाण तक पहुँचाया; इस प्रकार, वे नेता (नायक) हैं; वे प्रकाशकों में श्रेष्ठ होने के साथ-साथ नेता भी हैं। अतः, सर्वश्रेष्ठ गुरु जलानुत्तमनायको ने भिक्षुओं के बीच बैठकर इन श्लोकों का उच्चारण किया और उपदेश दिया; यही अर्थ है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा रात्त्वपाला का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 19. थेरा सोपाका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.119. सोपाका
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.119. थेरा सोपाका की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

19. सोपाका

जब मैं एक अत्यंत उत्तम, शानदार पर्वत पर एक आश्रम की सफाई कर रहा था, तब सिद्धार्थ नामक भगवान एक बार मेरे समक्ष आए। आए हुए बुद्ध को देखकर मैंने जगत के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति के लिए बुनी हुई (घास की) चटाई बिछाई और उन्हें वह पुष्पमय आसन दिया। (2) (785)

पुष्पों के उस आसन पर बैठे हुए विश्व-नेता सिद्धार्थ ने मेरी स्थिति को समझते हुए अनित्यता के बारे में बात की। (3) (786)

“वास्तव में सब कुछ परिवर्तनशील है; जो चीजें उत्पन्न होती हैं और (फिर) नष्ट हो जाती हैं, वे जन्म लेती हैं (और फिर) मर जाती हैं; उनसे मुक्ति पाना सुखद है।” (4) (787)

यह कहते हुए सर्वज्ञ, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, हीरो439 आकाश में हंस-राजा की तरह उड़ गए। (5) (788)

अपने स्वयं के सिद्धांतों को त्यागकर मैंने (तब) अनित्यता को समझा। (केवल) एक (दिन) ध्यान करते हुए, (ठीक उसी समय) मेरा निधन हो गया। (6) (789)

मेरी स्वस्थ जड़ों से प्रेरित होकर मैंने (तब) दोहरे आनंद का अनुभव किया।440 जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ तो मेरा जन्म कुत्ते पकाने वालों के बीच हुआ।441 (7) (790)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 436 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 437 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

438 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 439 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 440 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित 441 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

घर से निकलने के बाद मैं बेघर हो गया। सात वर्षों तक जटाधारी तपस्वी बनकर मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (8) (791)

ऊर्जावान, 442 आत्म-त्यागी, नैतिक नियमों के प्रति सावधान, महान हाथी को प्रसन्न करके मुझे उच्च दीक्षा प्राप्त हुई। (9) (792)

उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से चौरानवे युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला; यह एक पुष्प-उपहार का फल है। (10 (793)

उस बोध को प्राप्त करने के बाद चौरानवे युग में, उस इंद्रिय पर ध्यान करते हुए मेरे सभी दोष नष्ट हो गए। (11) (794)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) (795)

इस प्रकार पूज्य सोपाका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आदरणीय सोपाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

19. थेरा सोपाका की जीवनी पर टीका।

पब्भारम शोधयन्तस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य सोपाक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और तेजस्वी सिद्धार्थ के समय में एक जमींदार के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन, उनकी मुलाकात गुरु से हुई और उन्होंने उन्हें अनेक फल भेंट किए। उन पर दया करते हुए, तेजस्वी ने उन्हें ग्रहण किया। वे गुरु और भिक्षुओं के प्रति अत्यंत प्रसन्न और श्रद्धावान हुए, उन्होंने लॉटरी द्वारा भोजन-आहुति का प्रबंध किया और जीवन भर तीन भिक्षुओं को भिक्षुओं के प्रति समर्पण के रूप में पुख-चावल भेंट किए। इन पुण्य कर्मों के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच समृद्धि का आनंद लिया। कभी-कभार, और एक बार, उनका पुनर्जन्म एक मनुष्य के गर्भ में हुआ, और उन्होंने एक मौन बुद्ध को दूध का भोजन अर्पित किया।

इस प्रकार, इस और उस जन्म में पुण्य कर्म करने के कारण, उन्होंने जन्म-यात्रा के केवल अच्छे मार्ग (सुगति) पर ही अपना जीवन व्यतीत किया और अपने पिछले कर्म के फलस्वरूप, इस बुद्ध के प्रकट होने के समय, सावत्थी में एक दरिद्र स्त्री के गर्भ में गर्भ धारण किया। उस स्त्री ने उन्हें दस माह तक अपने गर्भ में धारण किया और जब गर्भावस्था पूर्ण हो गई, तो नियत समय पर जन्म न दे पाने के कारण वे लंबे समय तक कोमा (या बेहोशी) की अवस्था में मृत मानकर लेट गईं। उनके रिश्तेदारों को लगा कि वे मर गई हैं, इसलिए वे उन्हें श्मशान ले गए, उन्हें चिता पर रखा, लेकिन अग्नि प्रज्वलित किए बिना ही चले गए क्योंकि दैवीय शक्ति के कारण वे प्रसव के लक्षणों के साथ उठ खड़ी हुईं। दैवीय शक्ति के कारण, क्योंकि यह उनका अंतिम जन्म था, बच्चा अपनी माता के गर्भ से स्वस्थ (या रोगमुक्त) रूप में बाहर आया। हालांकि, माता की मृत्यु हो गई। दिव्य प्राणी मनुष्य के वेश में बालक के पास आए, उसे अपने साथ ले गए, उसे कब्रिस्तान के रखवाले के घर में रखा और कुछ दिनों तक उसका उचित पोषण किया। इसके बाद, कब्रिस्तान के रखवाले ने

बालक को अपना लिया और उसे बड़ा होने दिया। इस प्रकार बड़े होकर वह कब्रिस्तान के रखवाले के पुत्र सुप्पिया के साथ खेलने लगा। कब्रिस्तान में जन्म और पालन-पोषण होने के कारण वह कब्रिस्तान के बालक सोपाका के नाम से जाना जाने लगा।
फिर एक दिन, भगवान बुद्ध ने सात वर्षीय उस बालक को देखा, जो सुबह-सुबह अपने उन रिश्तेदारों की तलाश में श्मशान घाट जा रहा था जिन्हें संसार से मुक्ति दिलाई जा सके। उस बालक को ज्ञान का जाल तब लगा जब वह अपने ज्ञान का प्रसार कर रहा था। पूर्व कारणों से प्रेरित होकर, बालक अत्यंत भक्तिमय हो गया, गुरु के पास गया और उन्हें प्रणाम किया। गुरु ने उसे धर्म का उपदेश दिया। उसने धर्म को ध्यान से सुना, भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की और जब उससे पूछा गया कि क्या उसके पिता इस इच्छा को स्वीकार करते हैं, तो वह अपने पिता को गुरु के समक्ष ले आया। उसके पिता ने गुरु को प्रणाम किया और अपनी सहमति देते हुए कहा, "आदरणीय गुरुदेव! कृपया इस बालक को भिक्षु बना दीजिए।" उसे भिक्षु बनाकर, भगवान बुद्ध ने उसे प्रेम और करुणा के विकास में लगा दिया। उन्होंने प्रेम और करुणा के मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) को अपना मार्ग बनाया, श्मशान में निवास किया, प्रेम और करुणा के ध्यान को अपना आधार बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और कुछ ही समय बाद अरहतत्व की कल्पना भी कर ली। अरहत बनने के बाद, उन्होंने "यथापि एकपुत्तस्मिम्" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि श्मशान की तपस्या करने वाले अन्य भिक्षुओं के प्रति प्रेम भाव विकसित करने की उचित प्रक्रिया को दर्शाया जा सके। उन्होंने कहा: "जिस प्रकार माता-पिता पुण्यवान होते हैं और अपने इकलौते प्रेममय पुत्र का कल्याण अवश्य चाहते हैं, उसी प्रकार आपको भी पूर्व दिशा आदि की विविधताओं से लेकर सभी दिशाओं में, या सभी इंद्रियजन्य प्राणियों आदि से लेकर सभी जीवों में, या शिशु आदि से लेकर सभी प्राणियों में, यहाँ तक कि नग्न शरीर वाले प्रत्येक प्राणी में, सभी का कल्याण अवश्य चाहना चाहिए, बिना किसी सीमा भेद किए जैसे 'मित्र, तटस्थ और शत्रु', बल्कि सभी स्थानों पर प्रेम भाव का एक ही सार विकसित करना चाहिए, सीमा के निर्धारण को समाप्त करते हुए।" इस श्लोक को बोलने के बाद, उन्होंने इस प्रकार सलाह दी:- "यदि आप, जो आदरणीय हैं, इस प्रकार प्रेम और दयालुता विकसित करेंगे, तो आप निश्चित रूप से उन ग्यारह प्रकार के परिणामी लाभों के भागीदार (या लाभार्थी) बनेंगे जिनका उल्लेख परमेश्वर ने किया था।"

112. इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करने और फल प्राप्ति के बाद, उन्होंने अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्मों पर चिंतन किया, मन में प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्मों को दर्शाने के लिए 'पब्भाराम शोधयन्तस्स' से प्रारंभ होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, पब्भाराम (ढलान), एक पथरीली (या चट्टानी) पहाड़ी का एकांत स्थान है। उन्होंने वहाँ भिक्षु के लिए उपयुक्त ईंट की दीवार बनवाई, एक द्वार-पट्टी लगाई और उसे भिक्षुओं को उनके निवास के लिए अर्पित कर दिया: इस प्रकार, यह पब्भारा (ढलान) है। जब मैं उस ढलान की सफाई कर रहा था, तब सिद्धार्थ नाम के तेजस्वी व्यक्ति आगाच्चि मेरे समक्ष आए।

113. बुद्धं उपगतं दिस्वा (निकट आए बुद्ध को देखकर) बुद्ध को इस प्रकार मेरे समक्ष आते देखकर, तदिनो (ऐसे व्यक्ति का), जो ऐसे-ऐसे गुणों से परिपूर्ण थे, क्योंकि वे वांछनीय और अवांछनीय के बीच अविचलित थे; लोकजेष्ठस (संसार में सबसे बड़े का) बुद्ध का; संथारं (फैला हुआ) घास, पत्तों आदि से फैला हुआ, लकड़ी का फैला हुआ; पन्नापेत्वा (तैयार करवाया) पूरा करवाया; पुप्पासनम् (फूलों का आसन) मैंने फूलों से बना आसन अर्पित किया।

114. पुप्पासन निसीदित्वा (पुष्प-आसन पर बैठकर) जगत के नेता, प्रतापी सिद्धार्थ उस तैयार पुष्प-आसन पर बैठ गए; ममंच गतिमञ्ञाय (अपने भाग्य को भी जानकर) भविष्य में अपनी यात्रा के मार्ग को जानते और जानते हुए, उस स्थान को जहाँ मैं उत्पन्न होऊंगा; अनिच्चतम (अस्थिरता) अस्थिर होने की स्थिति, उदाहारी (पालित-पोषण किया) बोले।

115. अनिच्चा वत संखारा (निःसंदेह अनित्य) निश्चय ही, संखारा (निषेध वस्तुएँ), कारणों (पच्चय) के साथ मिलकर, कर्मों के फलस्वरूप, सभी कारणों (सपच्चय-धम्म) के साथ कर्म बन जाते हैं, क्योंकि उनका अर्थ अनुपस्थिति है, अनित्य हैं; उप्पादवयधम्मिनो (उत्पन्न होने और लुप्त होने के अधीन) उत्पन्न होकर उनका स्वभाव विनाशी है; उप्पजित्वा (उत्पन्न होकर) ये सषित घटनाएँ (संखारा) स्वयं को प्रकट करके, निरुज्जन्ति (समाप्त) हो जाती हैं; यही अर्थ है। तेसम वुपसमो सुखो (उनका शांत होना आनंद है) विशेष रूप से उन संखारों को शांत करना सुख है; यहाँ तक कि स्वयं निर्वाण, जो उन्हें शांत करता है, निश्चय ही सुख है; यही अर्थ है।

116. इदमवत्वान सब्बाञ्ञु (सर्वज्ञ बुद्ध ने यह कहा) हे तेजस्वी, समस्त सत्यों (धम्म) के ज्ञाता, जगत के सबसे बड़े, मनुष्यों में श्रेष्ठ, बैल-पुरुष, ***(पृष्ठ 50) वत्वान (कहकर) सत्य (धम्म) के इस उपदेश का प्रचार करते हुए, अनित्यता से उचित रूप से जुड़ा हुआ, अम्बारे (आकाश में) आकाश के समान, नभम (वायुमंडल) आकाश में ऊपर चला गया; इस प्रकार, संबंध है।

117. सकाम दिष्टिम, अपने स्वयं के विचारों को त्यागकर, जहित्वाना (त्याग कर), अपने द्वारा प्राप्त धैर्यपूर्ण आनंदमय इरादे को त्यागकर, भावयानिच्चसञ्ञा'हम (मैं अनित्यता की अनुभूति के विकास के साथ एक हो जाता हूँ)। मैंने अनित्यता में अनित्यता की अनुभूति को विकसित किया, बढ़ाया और स्वयं को उसके प्रति सचेत किया; तत्त कालम् कातो अहम् (मैं वहाँ मर गया)। उन तीन जन्मों में, उस जन्म (या अस्तित्व) से, मैं मर गया और चला गया।

118. द्वे सम्पत्ति अनुभव्वा (दो प्रकार की समृद्धि का अनुभव करते हुए) मानवीय समृद्धि और दिव्य आनंद के रूप में गिने जाने वाले दो प्रकार के आनंद का अनुभव करते हुए; सुक्कमुलेन कोदितो (प्रकाश आधार द्वारा प्रेरित) पूर्व पुण्य कर्मों (या उन पुण्य कर्मों जो आधार बन गए थे) के मूल द्वारा प्रेरित और प्रज्वलित होकर; पच्चिमे भावे सम्पत्ति (जब अंतिम जन्म अच्छी तरह से हुआ) जब अस्तित्व का सर्वांगीण अंत अच्छी तरह से हुआ; सपाकयनुउपागमि (मैं अपने ही फलस्वरूप गर्भ की ओर बढ़ा) मैं अपने द्वारा परिपक्व गर्भ, अपने द्वारा पकाए गए भोजन की ओर गया; मैं उस कब्र खोदने वाले (चांडाल) के परिवार में पुनर्जन्म लिया जो मेरे द्वारा पकाए गए भोजन का निर्माण करता था; जिसके परिवार का भोजन दूसरों को नहीं खाना चाहिए; इस प्रकार, यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में, सा को कुत्ता कहा गया है; मेरा जन्म एक कब्र खोदने वाले (काण्डाला) के परिवार में हुआ था, जिसे कुत्तों द्वारा चीरकर (या खोदकर) निकाला गया भोजन खाना पड़ता था; यही इसका अर्थ है। बाकी का अर्थ तो स्पष्ट है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सोपाका का,
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 20. थेरा सुमंगला

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.120. सुमंगला
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.120. थेरा सुमांगला की जीवनी पर टिप्पणी।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

20. सुमंगला

बलिदान करने की इच्छा से मैंने (उस समय) भोजन तैयार करवाया (और) वहाँ ब्राह्मणों का आदर करते हुए एक बड़े मालक443 में खड़ा हुआ। (1) (796)
और फिर मैंने सम्बुद्ध, पियादस्सी, महान ख्यातिप्राप्त, समस्त लोकों के स्वामी, स्वयं स्वरूप, तटस्थ स्वरूप को देखा। (2) (797)

---

442 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 443 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 444 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

अपने अनुयायियों के सामने खड़े होकर, वह धन्य पुरुष, वास्तव में चमकते हुए, सूर्य के रथ में प्रवेश करते समय उसी प्रकार प्रज्वलित हो रहे थे। (3) (798)
अपने हाथों को जोड़कर (तब) (और) अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, मैंने मन से (उन्हें) आमंत्रित किया: “महान ऋषि अब मेरे पास आएं।” (4) (799)
मेरे मन की बात जान कर, जगत में अद्वितीय गुरु, हजार अरहंतों के साथ मेरे द्वार पर आ आए। (5) (800)

"हे श्रेष्ठ पुरुष, आपकी जय हो!445 हे परम पुरुष, आपकी जय हो! कृपया मेरे महल में प्रवेश करके सिंह-सिंहासन पर विराजमान हों।" (6) (801)
पालतू व्यक्ति, अपने पालतू दल के साथ, पार कर गया,446 सर्वश्रेष्ठ नाविक447 मेरे महल में चढ़कर उस शानदार आसन पर बैठ गया। (7) (802)
जो खाद्य पदार्थ भेंट किए गए थे और जो मेरे घर में बचे थे, उन्हें मैंने (अच्छी भावना से) अपने हाथों से बुद्ध को भेंट कर दिया। (8) (803)
प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से, आनंदित होकर, हाथ जोड़कर, मैंने श्रेष्ठ बुद्धों की पूजा की: "हे! बुद्ध की (महान) प्रतिष्ठा! (9) (804)
इन रईसों में से कई अरहंत भोजन कर रहे हैं।449 यही आपकी महान शक्ति है; मैं भी आपकी शरण में जाता हूँ। (10) (805)

---

445 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 446 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 447 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 448 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 449 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)

विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के सांड, धन्य पियादस्सी भिक्षुओं की सभा में बैठ गए (और) इन छंदों का उच्चारण (ज़ोर से) किया: (11) (806)
जिसने सभा को भोजन कराया (जो) धर्मी (और) चौकस है और सम्बुद्ध, तथा-त्यागी, (आप सभी) मेरे शब्दों को सुनो: (12) (807)
सत्ताईस बार (एक देव-राजा) वह दैवीय शासन करेगा। अपने कर्मों में प्रसन्न होकर वह देवताओं के लोक में आनंदित होगा। (13) (808)
और अठारह बार वह ऐसा राजा होगा जो (कानून का) पहिया घुमाएगा। वह पृथ्वी पर निवास करेगा और पाँच सौ सांसारिक शासन करेगा।" (14) (809)
जंगल में, बाघों से भरे जंगल में घुसकर, मैंने बहुत मेहनत करके (सभी) अशुद्धियों को नष्ट कर दिया। (15) (810)
उस समय जब मैंने उसे वह उपहार दिया था, तब से अठारह सौ युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा; यही भोजन देने का फल है। (16) (811)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) (812)
इस प्रकार पूज्य सुमंगला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सुमंगला थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश:
सिहासनी और एकत्थंभी, नंदा और चुल्ला-पंथक, पिलिंडा और राहुल, वंगता, रट्ठपालक, शोपाक और मंगल, दस दूसरे अध्याय में हैं और यहाँ एक सौ सैंतीस श्लोक दिए गए हैं

सिहासनी अध्याय, द्वितीय।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
20. थेरा सुमांगला की जीवनी पर टिप्पणी।
आहुतिं यित्तुकामो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सुमंगला की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस पूज्य थेरा ने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुण्य कर्म संचित किए, जिससे उन्हें जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे प्रतापी पियादस्सी के समय वृक्ष देवता के रूप में पुनर्जन्म लिए। एक दिन, स्नान करने के बाद वे गुरु से मिले, जो एक वस्त्र पहने खड़े थे। प्रसन्न होकर उन्होंने ताली बजाई। उस

पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने अपने जन्म-जन्मों में स्वर्गवासियों और मनुष्यों के बीच विचरण किया और सावत्थी के निकट एक गाँव में, बुद्ध के प्रकट होने के समय, एक गरीब परिवार में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम सुमंगला था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसने एक हल और कुड्डा लेकर एक छोटे से खेत (खुज्जा) में हल चलाना शुरू किया और खेती करके अपनी आजीविका कमाने लगा। एक दिन, जब राजा पसेनदी कोसल द्वारा परम पूज्य भगवान और भिक्षुओं के लिए एक विशाल दान दिया जा रहा था, तो उसने दही से भरा एक बर्तन उठाया और दान देने के लिए सामग्री लेकर आ रहे लोगों की भीड़ में शामिल हो गया। उसने देखा कि वे लोग भिक्षुओं के प्रति श्रद्धापूर्वक अपना दान दे रहे हैं, तो उसने सोचा, "शाक्य वंश के भिक्षु उत्तम वस्त्र धारण करते हैं, अच्छा भोजन करते हैं, मठों में रहते हैं; यदि मैं भी भिक्षु बन जाऊं तो क्या होगा?" वह एक प्रमुख थेर के पास गया और उन्हें भिक्षु बनने की अपनी इच्छा के बारे में बताया। उस थेर ने उस पर दया करके उसे भिक्षु बना लिया और उसे मानसिक साधना (कम्मत्थानु) के बारे में बताया। वन में रहते हुए वह अपने एकाकी जीवन से विरक्त हो गया, ऊब गया (उक्कन्तीत) और गृहस्थ जीवन में लौटने की इच्छा से अपने रिश्तेदार के गाँव लौट रहा था। तभी उसने कुछ किसानों को देखा, जो कमर कसकर गंदे वस्त्र पहने, चारों ओर से धूल से सने हुए, गर्मी से सूखे हुए अपने खेतों में हल चला रहे थे। उसे उचित पश्चाताप हुआ और उसने कहा: "ये प्राणी वास्तव में कष्ट भोग रहे हैं, जो उनके जीवन का मूल (निमित्तम) है, और वास्तव में यह बड़ा कष्ट है।" अपने ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता की ओर अग्रसर होने के कारण, वह अपने द्वारा किए गए ऐसे मानसिक अभ्यास (कम्मष्ठान) में पूरी निष्ठा से लीन हो गया। वह एक विशेष वृक्ष की जड़ के पास गया, एकांत प्राप्त किया, स्वयं को बुद्धिमानी से सचेत किया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के बाद अर्हतत्व प्राप्त किया।

124. इस प्रकार अरहतत्व की प्राप्ति करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, मन में प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए 'आहुतिं यित्तुकामो हम्' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ आहुतिं (बलिदान) स्वयं द्वारा किए गए श्रद्धापूर्ण अर्पण की विभिन्न किस्में हैं जिनमें भोजन, पेय आदि शामिल हैं; यित्तुकामो (बलिदान करने की इच्छा रखते हुए) मैं दान देने और यज्ञ करने की इच्छा रखता हूँ; पत्तियादेत्वान भोजनम् (नरम भोजन तैयार करके) भोजन तैयार करके और उसे पूरा करके; ब्राह्मणे पत्तिमानन्तो (ब्राह्मणों को उचित मापकर) सभी शुद्ध भिक्षुओं की खोज करते हुए, जो उचित प्राप्तकर्ता थे; visāle māḷke ṭhito (विस्तृत हॉल में खड़ा था) समृद्ध हॉल में खड़ा था, जो चारों ओर से शुद्ध, पीला (paṇ̃darā) था।

125-7. अथद्दससिम सम्बुद्धम्, तब मैंने आत्म-प्रबुद्ध बुद्ध को देखा; महायसम्, महान प्रसिद्धि, सब्बलोकम्, संपूर्ण विश्व, विनेतारम्, नेतृत्व करने वाले, स्वयंभूम् (स्वयं बनना), आत्मनिर्भर, अग्गपुग्गलम, सर्वोच्च व्यक्ति, जुटिमन्तम्, तेजस्वी तेज से युक्त, पुरक्खतम्, आगे स्थित, आदिच्चमिव, सूर्य के समान, रोकन्तम् चमकते हुए, रथियम, रथ-मार्ग पर, सम्बुद्धम्, आत्म-प्रबुद्ध बुद्ध, अंजलिम् पग्गहेत्वाना, अपने जुड़े हुए हाथों को ऊपर उठाकर, सकम चित्तम्, मेरा अपना मन, पसादयिम, मैं प्रसन्न हुआ। अतद्दससिम सम्बुद्धम् से शुरू होने वाले श्लोकों में, मैंने स्वयंप्रबुद्ध बुद्ध, विपस्सी नाम के, को रथ मार्ग पर प्रवेश करने के बाद सूर्य के समान प्रकाशमान, शिष्यों से घिरे हुए, नीले, सुनहरे आदि प्रकाशमान, महिमामय गुणों से परिपूर्ण, परम श्रेष्ठ पुरुष, तेजस्वी, गुरुहीन परन्तु आत्मनिर्भर बुद्ध को, विशाल अनुचरों के साथ, जिन्होंने समस्त प्राणियों को निर्वाण का मार्ग दिखाकर उन्हें निर्वाण प्राप्त कराया, देखा; मैं प्रसन्न हुआ और अपनी प्रसन्नता को तेजस्वी बुद्ध जैसे वांछनीय पराक्रमी पुरुष के गुणों में प्रकट किया; यही अर्थ है। मनसाव निमनतेसिम (मैंने मन से निमंत्रण दिया); आगच्छतु महामुनि (महान ऋषि आएँ) तेजस्वी, परम आदरणीय, ऋषि मेरे निवास पर आएँ।

128. mama saṅkappamaññāya (मेरे इरादे को जानने के बाद) मेरी मानसिक स्थिति को जानते हुए; loke (संसार में) जीवों के संसार में; anuttaro (अतुलनीय) स्वामी, किसी श्रेष्ठ से रहित; khīṇāsavasahassehi (हजारों अरहतों के साथ) mama dvāram (मेरा द्वार) मेरे घर का द्वार; upāgami (पहुंचा) ठीक से पहुंचा।

129. विधिवत रूप से उपस्थित हुए उस स्वामी को मैंने इस प्रकार प्रणाम किया: - पुरिसाजाञ्ञ (हे श्रेष्ठ कुल के पुरुष!) हे श्रेष्ठतम सुसंस्कृत पुरुष! ते (आपको) अत्थु (होने दो) मेरी प्रणाम आपको ही हो! पुरिसुत्तम (हे श्रेष्ठतम पुरुष!) हे प्रमुख गुणों वाले विशिष्ट पुरुष, श्रेष्ठतम पुरुष! ते (आपको) मेरी प्रणाम आपको ही हो!; पासादम् (महल) अपने महलनुमा निवास पर आसीन होकर, सीहासने (सिंहासन पर) मैंने उनसे विनती की कि वे कृपापूर्वक श्रेष्ठतम आसन पर विराजमान हों; यही अर्थ है।

130. दंतो दंतपरिवारो (सभ्य और उनके साथ सभ्य अनुयायी) स्वयं तीन द्वारों से वश में होकर, चार प्रकार के श्रोताओं से घिरे हुए, जो समान रूप से वश में माने जाते हैं - भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष और स्त्री भक्त; तिण्णो तारयतम वरो (पार ले जाए गए लोगों में श्रेष्ठ, जो स्वयं पार कर चुके हैं) स्वयं पार करके, पार कर चुके और पुनर्जन्मों के चक्रों से बाहर निकल चुके, मेरे निवेदन पर महल में आरोहण करके, पार ले जाए गए और पार किए गए विशिष्ट व्यक्तियों में श्रेष्ठ और सबसे श्रेष्ठ महिमावान; पवारासने (अच्छे आसन पर) सबसे श्रेष्ठ आसन पर मोसीदी (बैठ गए) अपना आसन ग्रहण किया।

131. यम्मे अत्ति सके गेहे (मेरे घर में जो कुछ भी है) मेरे घर में जो भी सामग्री है; पच्चुपत्तितम् (आगे रखा हुआ) उसे अच्छी तरह से व्यवस्थित करके ढेर बनाया गया है; ताहम बुद्धस्स पादासिम (मैंने वह बुद्ध को अर्पित किया) मैंने वह सामग्री बुद्ध को, साथ ही बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को भी अर्पित की (या मैंने आदरपूर्वक दिया); यही अर्थ है। पसन्नो सेहि पाणिभि (पवित्र भाव से, हथेलियों से) मैंने दोनों हाथों में लेकर, पवित्र भाव से अर्पित किया; यही अर्थ है।
132. पसन्ना चित्तो (पवित्र मन से) मेरा मन प्रसन्न और पवित्र है, और मेरा हृदय अच्छा और उचित है; वेदजातो (भावुक हो जाना) मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है और मेरा मन प्रसन्न है; कतंजलि (हाथ जोड़कर) मेरे हाथ सिर पर रखे हुए हैं; बुद्धसेष्ठं नमस्सामि (मैं परम श्रेष्ठ बुद्ध को प्रणाम करता हूँ) मैं परम श्रेष्ठ बुद्ध को प्रणाम करता हूँ; यही अर्थ है। अहो बुद्धस्सुलाकता (बुद्ध की महानता अद्भुत है) गुरु की महानता और महानता की अवस्था अद्भुत और विस्मयकारी है, जिन्होंने चार आर्य सत्यों को उचित रूप से समझा है; यही अर्थ है।
133. अट्ठन्नम् पयिरूपासतम (आठों के पास) आठों की सेवा की; भुंजम् (भोजन) आठ श्रेष्ठ व्यक्तियों (आर्य) के बीच जो अपना भोजन कर रहे थे; खीनासवे (कैंसर रहित), अरहत तो अनेक ही थे; तुयहरेसो आनुभवो (यह शक्ति भी तुम्हारी ही है) वायु (या आकाश) में विचरण करने, जल से ऊपर उठने और जल में गोता लगाने जैसी यह शक्ति भी तुम्हारी ही है, दूसरों की नहीं; शरणम्ता, उपेमहम (मैं तुम्हें अपना आश्रय मानकर तुम्हारे पास आता हूँ) मैं तुम्हें अपना आश्रय, सुरक्षा, आश्रय और गंतव्य मानकर तुम्हारे पास जाता हूँ (या मैं उस प्रकार के वांछनीय को जानता हूँ); यही अर्थ है।
134. जगत में सबसे बड़े, पुरुषों के महापुरुष, गौरवशाली पियादस्सी, भिक्षुओं के पुरोहितों के बीच बैठे हुए, उपदेश देते हुए भविष्यवाणी के इन श्लोकों का पाठ करते हैं; यही इसका अर्थ है; शेष आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सुमंगल
समाप्त हो गया है।
दूसरे सिंह-सिंहासन की टीका
अध्याय समाप्त हो गया है।
3. सुभूति पर अध्याय
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 21. थेरा सुभूति

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.121. सुभूति
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.121. थेरा सुभूति की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
सुभूति अध्याय, तीसरा

---

21. सुभूति

हिमालय श्रृंखला के निकट, निसाभा नामक पर्वत पर मेरा आश्रम बहुत अच्छी तरह से बना हुआ है, पत्तों से बना एक सुव्यवस्थित हॉल। (1) (813)
जटाधारी विख्यात तपस्वी, कोसिया मेरा नाम था (उस समय)। मैं निसाभा पर्वत पर अकेला, बिना किसी साथी के रहता था। (2) (814)

उस समय मैं फल, जड़ और (ताज़ा तोड़ी हुई) पत्तियाँ नहीं खा रहा था। मैं हमेशा उसी चीज़ पर निर्भर रहता था जो मेरे कटोरे में गिरती थी। (3) (815)
मैंने जीवन के किसी भी तरीके को बाधित नहीं किया, यहाँ तक कि मैंने अपना जीवन भी त्याग दिया। मेरा हृदय संतुष्ट था क्योंकि मैंने सभी हानिकारक मार्गों को त्याग दिया था। (4) (816)
जब भी मेरे मन में जुनून से उत्तेजित होकर कोई भावना उत्पन्न होती, तो मैं स्वयं उस पर विचार करके, शांत रहकर उसे वश में कर लेता: (5) (817)
"तुम उत्तेजना पैदा करने वाली चीजों से उत्तेजित होते हो, तुम अपवित्र करने वाली चीजों से अपवित्र होते हो, तुम मूर्खतापूर्ण बातों में खुद को मूर्ख बनाते हो (इसलिए) तुम्हें जंगल छोड़ देना चाहिए (अभी)। (6) (818)
यह शुद्ध और निर्मल तपस्वियों का निवास स्थान है। उस पवित्रता को दूषित मत करो; तुम्हें अब जंगल छोड़ देना चाहिए। (7) (819)
बेघर हो जाने के बाद, आपको हमेशा वही मिलता है जो आपके लिए उपयुक्त होता है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 450 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

तुम उन दोनों के विरुद्ध अपराध मत करो; तुम्हें अब जंगल छोड़ देना चाहिए। (8) (820)
अंत्येष्टि की चिता से बची हुई लकड़ी का कहीं भी उपयोग नहीं किया जाता है: न गाँव में और न ही जंगल में इसे जलाऊ लकड़ी के रूप में अनुमोदित किया जाता है। (9) (821)
तुम उस उग्र व्यक्ति के समान हो, न तो साधारण और न ही बुद्धिमान। आज तुम दोनों से विमुख हो गए हो, इसलिए तुम्हें अब जंगल छोड़ देना चाहिए। (10) (822)
तो इससे आपको क्या लाभ होगा? इससे आपके लिए क्या उत्पन्न होगा? आस्था के अभ्यास को त्यागने से इतनी आलस्य उत्पन्न होती है। (11) (823)
बुद्धिमान लोग तुम्हें गृहस्थ की तरह तुच्छ समझेंगे, जैसे गृहस्थ गंदगी को नापसंद करता है।452 ऋषि, तुम्हें जड़ से उखाड़कर, हमेशा तुम पर दोष लगाएंगे। (12) (824)
बुद्धिमान लोग आपके इस व्यवस्था को छोड़ने के विरुद्ध बोलेंगे। आपको सह-निवास नहीं मिलेगा; तब आप किस पर गुज़ारा करेंगे? (13) (825)
एक शक्तिशाली हाथी तीन बार संभोग कर चुके हाथी के पास जाएगा,453 एक साठ साल के दांत वाले हाथी के पास जाएगा और उसे झुंड से दूर भगा देगा। (14) (826)
झुंड से निर्वासित जीवन जीते हुए वह न तो खुश है और न ही प्रसन्न। अवसादग्रस्त मन से पीड़ित, पश्चाताप से भरा हुआ, वह कांप उठेगा।454 (15) (827)
ठीक उसी प्रकार क्रूर तपस्वियों

---

451 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
452 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अर्थ अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 453 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 454 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

वे (निश्चित रूप से) तुम्हें बाहर निकाल देंगे। उनके द्वारा निर्वासित किए जाने पर तुम्हें कभी सुख या आनंद नहीं मिलेगा। (16) (828)
यदि दिन हो या रात, तुम दुःख के तीर से घायल हो जाओ, तो तुम झुंड से निकाले गए हाथी की तरह पीड़ा से जलोगे। (17) (829)

जैसे किसी सुंदर लोहे के औजार को कहीं भी नहीं ले जाया जाता, वैसे ही नैतिक संयम के बिना आपको कहीं भी आमंत्रित नहीं किया जाएगा। (18) (830)

यदि आप घर पर रह भी रहे हैं तो आप वहाँ किससे अपना जीवन यापन करेंगे? आपके पास अपनी माँ और पिता से कोई धन-संपत्ति नहीं है। (19) (831)

स्वयं (कठिन) काम करने से शरीर से बहुत पसीना बहता है। इस प्रकार घर पर रहकर जीविका कमाना आपको इतना अच्छा नहीं लगेगा।"457 (20) (832)

इस प्रकार मैं वहाँ (जब भी) मेरा मन दूषित होता था, तब अपना काम करता रहा। विभिन्न धर्म-भाषणों से मैं अपने बुरे हृदय को दूर रखता था। (21) (833)

जब मैं इस प्रकार बहुत ही चिंतनशील भाव से रह रहा था, तब मेरे वन (आश्रम) में तीस हजार वर्ष बीत गए। (22) (834)

सर्वोच्च लक्ष्य की खोज में मेरी चिंतनशीलता को देखकर, पद्ममुत्तरा बुद्ध उस स्थान पर आए जहाँ मैं था। (23) (835)

जंगली मैंगोस्टीन का चमकीला रंग,458 अतुलनीय,459 अमापनीय,460

---

455 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 456 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 457 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 458 BJTS के साथ PTS के लिए संजालेसी का पाठ। 459 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"। 460 शाब्दिक अर्थ, "पुण्यवान"।

रूप में अद्वितीय बुद्ध,461 आकाश में इधर-उधर विचरण करते थे।462 (24) (836)

खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह, बादल के भीतर बिजली की तरह, ज्ञान में अद्वितीय बुद्ध आकाश में इधर-उधर विचरण करते रहे। (25) (837)

भयभीत नहीं, जैसे पशुओं का राजा; हाथी-राजा की तरह अभिमानी; बाघ-राजा की तरह चंचल, वह आकाश में इधर-उधर विचरण करता रहा। (26) (838)

सोने के सिक्के की तरह चमकता हुआ463 (या यहाँ तक कि) सुलगते अंगारों की तरह, इच्छा पूरी करने वाले रत्न की तरह464 वह आकाश में इधर-उधर चलता रहा। (27) (839)

कैलाश पर्वत की तरह465 पवित्रता में, पंद्रहवें दिन के चंद्रमा की तरह466 दोपहर के (तेज) सूरज की तरह वह आकाश में आगे-पीछे चलता रहा। (28) (840)

उस समय उसे आकाश में चलते हुए देखकर मैंने इस तरह सोचा: "क्या यह प्राणी किसी प्रकार का देवता है? यदि नहीं, तो क्या यह (केवल) एक मनुष्य है? (29) (841)

मैंने इस व्यक्ति के समान महान व्यक्ति के बारे में न तो कभी सुना है और न ही देखा है। निश्चित रूप से वह (गुप्त) मंत्रों को जानता है; (मुझे लगता है) यही गुरु होगा।" (30) (842)

इस प्रकार सोचने पर मैंने अपने हृदय को प्रसन्न किया। और फिर मैंने विभिन्न फूल और सुगंध एकत्रित किए। (31) (843)

---

461 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं मीटर को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक रूप से है, "एक हजार कंद (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)।" 462 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई भिन्नताओं में गेंदु पढ़ता है। कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 463 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनका के अनुसार 464 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी) 465 पीटीएस uddhalomika° के लिए BJTS के साथ uddalomika° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें आरडी, एसवी) 466 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

फूलों की एक आसन बिछाकर मैंने (तब) ये शब्द (बुद्ध से) कहे, हे दयालु, मन के आनंद, मनुष्यों के सारथी, शीर्ष: (32) (844)

"हे वीर, मैंने यह आसन बिछाया है जो तुम्हारे लिए उपयुक्त है। मेरे हृदय में हँसी लाते हुए, कृपया इस फूलों के आसन पर बैठो।" (33) (845)

भगवान बुद्ध वहाँ सिंहराज की तरह निर्भय होकर बैठ गए, और बुद्ध उस उत्तम पुष्पमय आसन पर एक सप्ताह तक विराजमान रहे। (34) (846)
उनकी उपासना करते हुए मैं उन सातों रातों और दिनों तक वहीं खड़ा रहा। ध्यान से उठकर, गुरु, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, (35) (847)
मेरे कर्मों का फल घोषित करते हुए (तब) उन्होंने मुझसे ये शब्द कहे: "बुद्ध-स्मरण का अभ्यास करो,467 (यह) सर्वोच्च ध्यान है। (36) (848)
इस जागरूकता का अभ्यास मानसिक रूप से संतुष्टिदायक होगा। तीस हजार युगों तक आप देवताओं के संसार में आनंदित रहेंगे। (37) (849)
अस्सी बार आप देवताओं के राजा के रूप में दिव्य शासन करेंगे। हज़ार बार आप किसी देश के शासक राजा बनेंगे। (38) (850)
(और आपको) अनगिनत स्थानीय नियम मिलेंगे। आप उन सभी का अनुभव करेंगे: बुद्ध-स्मरण का फल। (39) (851)
जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए आपको अनेक धन-संपत्ति प्राप्त होगी। धन में कभी कमी नहीं होगी: बुद्ध-स्मरण का फल। (40) (852)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,

---

467 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

जिसका नाम गौतम होगा, वही संसार का गुरु होगा। (41) (853)
आठ सौ मिलियन (और) अनेक दासों (और) श्रमिकों (को भी) त्यागकर, तुम भगवान गौतम की महान शिक्षा का त्याग करोगे। (42) (854)
शाक्यों के सांड, गौतम संबुद्ध को संतुष्ट करके, तुम गुरु के अनुयायी सुभूति कहलाओगे। (43) (855)
भिक्षुओं की सभा में बैठा हुआ वह आपको दो प्रमुख स्थानों पर रखेगा: उपहार प्राप्त करने वालों के समूह में, और वनवासियों के समूह में भी। (44) (856)
यह कहते हुए, कमल के फूल के नाम पर नामित संबुद्ध, हीरो468 आकाश में हंस-राजा की तरह उड़ गया। (45) (857)
(इस प्रकार) विश्व-प्रमुख द्वारा निर्देशित (और) तथागत की स्तुति करके, संतुष्ट होकर मैंने हमेशा सर्वोच्च बुद्ध-स्मरण का अभ्यास किया। (46) (858)
उस कर्म के कारण, जो मैंने इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ बहुत अच्छे से किया, मैंने अपना मानव शरीर त्यागकर तावतिंसा (तब) गया। (47) (859)
मैंने देवताओं के राजा के रूप में अस्सी बार दिव्य शासन किया, और (तब) एक हजार बार मैं चक्र चलाने वाला सम्राट था। (48) (860)
(और मेरे पास) अनगिनत स्थानीय शासन था। मैंने सर्वोच्च सफलता का अनुभव किया: बुद्ध-स्मरण का फल। (49) (861)
जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए मैंने अनेक धन-संपत्ति प्राप्त की। धन में कभी कमी नहीं रही: बुद्ध-स्मरण का फल। (50) (862)

---

468 खिड्डारतिया

उस (अच्छे) कर्म को करने के बाद से एक लाख युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ; बुद्ध-स्मरण का फल। (51) (863)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (52) (864)
इस प्रकार पूज्य सुभूति थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सुभूति थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
21. थेरा सुभूति की जीवनी पर टीका

हिमवन्तस्साविदुरे से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सुभूति की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और एक लाख युगों (कप्पा) के पूर्व विश्व रक्षक पद्ममुत्तरा के प्रकट होने से पहले, हंसवती नगर में एक धनी ब्राह्मण के इकलौते पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनका नाम नंदमानव (लड़का नंदा) रखा गया। वयस्क होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया, और उनमें कोई सार न देखकर उन्होंने अपने साथ आए चौवालीस हजार युवकों के साथ संसार त्याग दिया और एक पर्वत की तलहटी में तपस्वी बन गए। उन्होंने ध्यान की आठ सही योग्यताओं के साथ-साथ पांच प्रकार के उच्च ज्ञान की प्राप्ति की। उन्होंने अपने शिष्यों को भी मानसिक अभ्यास (कम्मत्थान) का उपदेश दिया। वे भी शीघ्र ही ध्यान के साधक बन गए।

उस अवसर पर भी प्रतापी पद्ममुत्तरा संसार में अवतरित हुए, हंसवती नगर के निकट निवास किया, जब एक दिन सुबह सवेरे संसार की ओर देखते हुए उन्होंने देखा कि नन्द के शिष्य, जो कि गुंथे हुए बालों वाले तपस्वियों के लिए अरहत (उपनिषय) बनने की पर्याप्त योग्यता रखते हैं, और नन्द के दो गुणों से युक्त शिष्य के पद की आकांक्षा रखते हुए, उन्होंने सुबह-सुबह ही अपने शरीर का स्नान किया, सूर्योदय के समय ही अपना कुंड और वस्त्र ग्रहण किया, किसी और को नहीं बुलाया, सिंह के समान एकाकी विचरण करने वाले बन गए, और नन्द के सामने ही आकाश से अवतरित हुए, ताकि उन्हें यह बता सकें कि वे बुद्ध हैं, जबकि नन्द के शिष्य छोटे-बड़े फल लेने गए हुए थे, और स्वयं पृथ्वी पर अवतरित हुए। तपस्वी नंदा ने बुद्ध की शक्ति और सर्वांगीण गुणों (लक्खण) की परिपूर्णता को देखा और हस्तरेखा शास्त्र (लक्खण मंत्र) का गहन अध्ययन करके यह ज्ञात किया: "ऐसा व्यक्ति, जो इन गुणों (लक्खण) से परिपूर्ण है, गृहस्थ जीवन व्यतीत करने पर विश्वराज बन जाता है, परन्तु संसार का त्याग करने पर सर्वज्ञ बुद्ध बन जाता है, जो बंधनों को तोड़कर निर्वाण (विवतच्छेद) का द्वार खोलता है; यह सुसंस्कृत व्यक्ति निःसंदेह बुद्ध हैं।" वे उनसे मिलने के लिए आगे बढ़े, पंचपतितीत (पंचपतितीत) से प्रणाम किया, आसन तैयार किया और उन्हें अर्पित किया। बुद्ध उस तैयार आसन पर विराजमान हुए। तपस्वी नंदा ने भी अपने लिए उपयुक्त आसन ग्रहण किया और एक ओर बैठ गए। उस समय (या तब तक) चौवालीस हज़ार गुंथे बालों वाले तपस्वी अपने गुरु के समक्ष स्वादिष्ट, छोटे-बड़े, उत्तम गुणवत्ता वाले फल लेकर लौटे। उन्होंने बुद्ध और अपने गुरु दोनों के बैठे हुए चिन्ह (निसिन्काराम) को देखकर कहा, "हे गुरु! हम इस विचार के साथ भटकते हैं कि इस संसार में आपसे बड़ा कोई नहीं है; हम सोचते हैं कि यह व्यक्ति आपसे बड़ा (या उच्चतर) है।" तपस्वी नंदा ने उत्तर दिया, "मेरे पुत्रों! तुम सब क्या कहते हो? तुम अड़सठ लाख योजन ऊँचे सिनेरु की तुलना सरसों के दाने से करना चाहते हो; मुझे सर्वज्ञ बुद्ध के साथ उदाहरण के रूप में मत दो।" तब उन तपस्वियों ने मन ही मन कहा, "यदि यह व्यक्ति अस्तित्वहीन होता, तो हमारे गुरु इस प्रकार का उदाहरण नहीं देते; यह सुसंस्कृत व्यक्ति वास्तव में बहुत शक्तिशाली है", वे सब उनके चरणों में गिर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। तब उनके गुरु ने उनसे कहा, "प्रिय पुत्रों! हमारे पास बुद्ध को अर्पित करने के लिए कोई उपयुक्त दान (दय्यधम्म) नहीं है; प्रतापी बुद्ध भी भिक्षा मांगने के समय यहाँ आए हैं; इसलिए, हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार उचित दान (दय्यधम्म) अर्पित करें, आप सभी उत्तम फल, छोटे-बड़े, यहाँ लाएँ"; जब आप उन्हें लाएँ,गुरु ने स्वयं अपने हाथों से फल धोए और उन्हें तथागत के पात्र में रखा। जैसे ही गुरु ने छोटे-बड़े सभी फल ग्रहण किए, देवताओं ने उनमें दिव्य सार का संचार किया। तपस्वी ने स्वयं जल छानकर उसे भी अर्पित किया। इसके बाद, जब गुरु ने भोजन करने के बाद आसन ग्रहण किया, तो उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाया और गुरु के समक्ष बैठकर प्रवचन देते हुए स्मरण के वचन कहे। गुरु ने इस प्रकार अपनी इच्छा व्यक्त की: "मेरे भिक्षुओं, आओ।" गुरु के मन की बात जानकर, एक लाख तक दोषरहित अरहत आए और गुरु को प्रणाम किया।

तब तपस्वी नंदा ने अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा: "मेरे प्रियो! बुद्ध का आसन भी नीचा है; एक लाख भिक्षुओं के लिए भी आसन नहीं है; आज तुम स्वयं प्रतापी बुद्ध और भिक्षुओं के स्वामी को अत्यंत आदर दो; पर्वत की तलहटी से उत्तम रंग और सुगंध वाले फूल लाओ।" जादुई शक्तियों के अकल्पनीय प्रभाव क्षेत्र के कारण, वे क्षण भर में उत्तम रंग, सुगंध और उत्कृष्ट सार वाले फूल ले आए और बुद्ध के लिए एक योजन के आकार का पुष्प-आसन, मुख्य शिष्यों के लिए तीन गावूत के आकार का, शेष भिक्षुओं के लिए आधे योजन के आकार के विभिन्न आसन, और भिक्षुओं के युवा सदस्यों के लिए एक-एक उषभ के आकार के आसन तैयार किए। जब आसन तैयार हो गए, तो तपस्वी नंदा ने अपने हाथ जोड़कर तथागत के समक्ष खड़े होकर कहा: "आदरणीय महोदय! हमारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए, कृपया आरोहित होकर इस पुष्प-आसन पर विराजमान हों।" गुरुजी पुष्प-आसन पर विराजमान हो गए। जब गुरुजी इस प्रकार विराजमान हो गए, तो भिक्षुओं ने गुरुजी का तरीका जान लिया और स्वयं अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। तपस्वी नंदा ने एक बड़ा पुष्प-छतरी उठाया और उसे तथागत के सिर के ऊपर थामे खड़े हो गए। गुरुजी ने इस विचार के साथ निरोध समाधि में प्रवेश किया: "तपस्वीयों की यह व्यक्तिगत भेंट महान लाभकारी हो।" गुरुजी की समाधि की अवस्था को जानकर, भिक्षुओं ने भी उसी प्रकार की समाधि में प्रवेश किया। तथागत सात दिनों तक निरोध समाधि में बैठे रहे, इस दौरान जब भोजन की तलाश में घूमने का समय आया,

तो उनके शिष्यों ने जंगल से प्राप्त छोटे-बड़े फल खाए, और शेष समय में वे स्वयं खड़े रहे। उनके हाथ बुद्ध की ओर जुड़े हुए थे। तपस्वी नंदा ने भोजन तक नहीं किया, बल्कि सारा समय उत्साह और प्रसन्नता से केवल फूलों की छतरी को थामे हुए बिताया।

गुरु निरोध की समाधि से उठे और दो गुणों से संपन्न शिष्य को आदेश दिया: वनवास (अरणविहार) और दान देने योग्य। उन्होंने कहा, "तपस्वी संघ के पुष्प-आसनों पर धन्यवाद का पाठ करो।" वह शिष्य उस महान योद्धा के समान मानसिक रूप से संतुष्ट हो गया जिसने विश्वराज के दर्शन से बड़ा पुरस्कार प्राप्त किया हो। उसने अपने प्रभाव क्षेत्र में खड़े होकर बुद्ध की शिक्षाओं के तीन पिटकों का अध्ययन किया और धन्यवाद का पाठ किया। अपने धार्मिक प्रवचन के अंत में गुरु ने स्वयं सत्य (धम्म) का उपदेश दिया। बुद्ध के उपदेश के अंत में सभी चौवालीस हजार तपस्वियों ने अर्हतत्व प्राप्त किया। गुरु ने हाथ फैलाकर कहा, "आओ भिक्षुओं!" उसी क्षण उनके बाल और दाढ़ी गायब हो गए। आठ पुरोहितीय आवश्यक वस्तुएँ उनके शरीर से जुड़ गईं (पटिमुक्का)। वे साठ वर्ष के थेरों के समान गुरु के चारों ओर जमा हो गए। परन्तु तपस्वी नन्द, अपने अस्थिर मन के कारण, ख्याति प्राप्त नहीं कर सके। कहा जाता है कि जिस क्षण उन्होंने वनवासी थेरे के सत्य (धम्म) को सुनने का प्रयास किया, उनके मन में यह विचार आया: "यह कितना अद्‌भुत होगा यदि भविष्य में मुझे भी बुद्ध के स्वरूप में इस थेरे के समान गुण प्राप्त हो जाएँ।" इसी विचार के कारण वे श्रेष्ठ मार्ग की उचित साधना और फल प्राप्ति नहीं कर सके। हालांकि, उन्होंने तथागत को प्रणाम किया, हाथ जोड़कर खड़े हुए, भगवान के सामने खड़े होकर इस प्रकार पूछा: "हे पूज्यवर! आपके युग में, इस भिक्षु का क्या नाम है जिसने भीड़ भरे तपस्वियों के पुष्प-आसनों पर धन्यवाद अर्पित किया?" उत्तर मिला, "यह भिक्षु वह है जिसने वनवासी और दान-पुण्य के गुणों से परिपूर्ण सर्वोच्च पद प्राप्त किया है।" उन्होंने अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की: "हे पूज्यवर! सात दिनों तक पुष्प-छाता धारण करने का जो भी व्यक्तिगत आदर मैंने अर्पित किया, उस समर्पित सेवा के फलस्वरूप मैं अन्य किसी योग्यता की कामना नहीं करता, बल्कि भविष्य में किसी बुद्ध के युग में इस थेरा के समान दो गुणों से परिपूर्ण शिष्य बनना चाहता हूँ।"

भविष्य के अपने ज्ञान का प्रयोग करते हुए, गुरु ने यह जानने का प्रयास किया कि तपस्वी की आकांक्षा वास्तव में पूरी होगी या नहीं। उन्होंने एक लाख युगों (कप्पा) के बीत जाने पर सिद्धि की अवस्था प्राप्त की और सत्य (धम्म) का उपदेश देते हुए कहा, "हे तपस्वी! तेरी यह आकांक्षा व्यर्थ नहीं होगी; अभी आने वाले समय में, जब एक लाख युग (कप्पा) बीत चुके होंगे, बुद्ध, गौतम नाम से प्रकट होंगे; तेरी आकांक्षा उनकी उपस्थिति में पूरी होगी।" वे भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए आकाश में चले गए। तपस्वी नंदा गुरु और उनके भिक्षुओं के समूह की ओर हाथ जोड़कर तब तक खड़े रहे जब तक वे दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। इसके बाद, वे बार-बार गुरु के पास गए, सत्य (धम्म) का श्रवण किया, ध्यान में कभी क्षीण नहीं हुए, उनका प्राण त्याग गया और वे ब्रह्मालोक में पुनर्जन्म लिए। वहाँ से देह त्यागने के बाद, उन्होंने पाँच सौ जन्मों तक भिक्षु का जीवन व्यतीत किया और वनवास में रहे। आत्मज्ञानी बुद्ध कस्सपा के समय में भी, वे वनवासी भिक्षु बने और आने-जाने के कर्तव्य का पालन किया। कहा जाता है कि इस कर्तव्य का पालन किए बिना, प्रमुख शिष्य की अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। यद्यपि, आने-जाने के कर्तव्य को आगमों और उनकी टीकाओं में वर्णित समान अर्थ में समझा जाना चाहिए। उन्होंने बीस हजार वर्षों तक आने-जाने के कर्तव्य का पालन किया, उनका निधन हुआ और वे तावतिंसा के स्वर्गलोक में पुनर्जन्म हुए।

इस प्रकार वे तावतिंसा लोक में समय-समय पर जन्म लेकर स्वर्गीय समृद्धि का आनंद लेते रहे; वहाँ से मृत्यु के बाद, वे कई सौ बार विश्वराज और क्षेत्रीय शासक बने; मानव जगत में उन्होंने मानवीय समृद्धि का अनुभव किया और अंत में धनाढ्य सुमना के घर में पुनर्जन्म लिया; वे हमारे प्रतापी बुद्ध के प्रकट होने के समय अनाथपिंडिका के सबसे छोटे भाई बने। उनका नाम सुभूति था।

उस अवसर पर भी, हमारे प्रतापी, संसार में अवतरित होकर, उत्कृष्ट धर्म के पहिये को घुमाते रहे, समय आने पर राजगृह गए, वहाँ उन्होंने बांस के वन को स्वीकार करने जैसे संसार के उत्थान के कार्य किए, और राजगृह पर निर्भर रहते हुए सीतावन (शीतवन) में निवास किया। उस समय, धनाढ्य अनाथपिंडिका, सावत्थी में एकत्रित धन को अपने साथ लेकर, अपने सहयोगी राजगृह के धनाढ्य के घर गए। वहाँ उन्होंने बुद्ध के प्रकट होने की सूचना सुनी, सीतावन (शीतवन) में स्थित गुरु के पास पहुँचे, और दीक्षा के प्रथम चरण (सोतापत्ति) की सिद्धि प्राप्त कर गुरु से सावत्थी आने का अनुरोध किया। इसके बाद, उन्होंने प्रत्येक योजन पर एक लाख की लागत से मठ बनवाए। पैंतालीस योजन की यात्रा के दौरान, करोड़ों रुपये खर्च करके उन्होंने एक जेत राजकुमार के आठ एकड़ से अधिक के विशाल उद्यान को सावत्थी में अधिग्रहित किया; वहाँ उन्होंने एक मठ बनवाया और उसे बुद्ध को समर्पित किया। मठ उत्सव के दिन, इस जागीर के स्वामी सुभूति, अनाथपिंडिका के साथ गए, सत्य (धम्म) को ध्यानपूर्वक सुना, धार्मिक आस्था प्राप्त की और भिक्षु बन गए। जब उन्होंने दीक्षा ली, तो उन्होंने दो विषय-सूची (मातिका) को याद किया, मानसिक अभ्यास के बारे में उनसे बात की गई, जंगल में एक भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, प्रेम और दया की ज्ञान को जागृत किया, इसे अपना आधार बनाया, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अरहतत्व प्राप्त किया।

सत्य (धम्म) का प्रचार करते समय, क्योंकि उन्होंने इसे वस्तुनिष्ठ रूप से प्रचारित किया, न कि गुरुओं द्वारा प्रचारित परंपरागत व्यक्तिपरक तरीके से, इसलिए वे अनासक्त निवासियों (अरण) में श्रेष्ठ माने गए। भिक्षा मांगने के दौरान, वे प्रत्येक घर में प्रेममय ध्यान में लीन हो जाते, उठते और भिक्षा ग्रहण करते हुए मन ही मन कहते, "इस प्रकार दानदाताओं को महान फल प्राप्त होगा।" अतः वे समर्पित दान के योग्य लोगों में सर्वोपरि माने गए। अत: भगवान ने उन्हें दो गुणों से युक्त सर्वोच्च पद पर आसीन किया, इस प्रकार: "हे भिक्षुओं! यह मेरे शिष्यों, भिक्षुओं में श्रेष्ठ है, जो अनासक्त (अरण) रहते हैं और समर्पित दान के योग्य हैं, अर्थात् सुभूति। इस प्रकार अर्हतत्व प्राप्त करके, स्वयं सिद्धियों को पूर्ण करने के सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करके, यह महान थेरा संसार में अत्यंत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हो गए, अनेक मनुष्यों के कल्याण के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विचरण किया, और समय आने पर राजगृह चले गए।"

राजा बिम्बिसार ने थेरा के आने की सूचना सुनी, उनके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया यहीं निवास करें; मैं आपके लिए एक निवास स्थान बनवाऊंगा।" यह कहकर वे चले गए और इस बात को भूल गए। मठ न मिलने के कारण थेरा ने अपना समय खुले में बिताया। थेरा की शक्ति के कारण वर्षा नहीं हुई। वर्षा न होने के कारण लोग पानी की कमी से पीड़ित हो गए और राजमहल के द्वार पर हंगामा करने लगे। वर्षा न होने का कारण जानने के लिए राजा ने निष्कर्ष निकाला कि थेरा के खुले में रहने के कारण वर्षा नहीं हुई। उन्होंने थेरा के लिए एक पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया बनवाई, उनसे अनुरोध किया कि वे उसमें निवास करें, थेरा को प्रणाम किया और चले गए। थेरा कुटिया में प्रवेश कर घास पर पालथी मारकर बैठ गए। तब कुछ बूँदें बारिश की बरसीं, लेकिन पर्याप्त पानी नहीं बरसाया। तब थेरा ने संसार के सूखे के खतरे को दूर करने की इच्छा से "चन्ना मे कुटिका (मेरा निवास छत से ढका हुआ है)" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वह अपने आंतरिक और बाह्य वस्तुओं के लिए खतरे की अनुपस्थिति को स्वीकार कर सके। इस श्लोक का अर्थ केवल थेरागाथा में ही बताया गया है।

लेकिन महान थेरों ने अपने इन गुणों का उल्लेख क्यों किया? उन्होंने स्वयं द्वारा प्राप्त किए गए परम गहन, अत्यंत उत्कृष्ट और शांत दिव्य सत्य (धम्म) पर चिंतन किया, जो उन्होंने पहले कभी प्राप्त नहीं किया था। अत्यंत निर्मल आर्य, अपने परमानंद (उदान) को प्रकट करने के उद्देश्य से, जो उत्साह (पीतिवेग) से उचित रूप से समर्थित था, और बुद्ध की शिक्षा (शासन) की स्थिति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से, जो निर्वाण की ओर अग्रसर है, वे अपने गुणों को प्रकट करते थे। ठीक उसी प्रकार जैसे विश्व रक्षक अपने गुणों को इस प्रकार प्रकट करते हैं: "हे भिक्षुओं! तथागत दस प्रकार की शक्तियों, चार प्रकार के आत्मविश्वास आदि से संपन्न हैं, ताकि इस विषय को प्रबुद्ध किया जा सके।" इसी प्रकार, थेरों के अर्हतत्व को दर्शाने वाले श्लोक भी इसी प्रकार हैं।

1. इस प्रकार, अरहतत्व की प्राप्ति और सर्वोच्च पदवी प्राप्त करने पर, थेरा ने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और हिमवंतसविदूरे से शुरू होने वाले श्लोक का उच्चारण किया, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वहाँ हिमवंतस (हिमवंत का), हिमालय पर्वत का; अविदूरे (दूर नहीं), निकट, पास, पर्वत की तलहटी में, मनुष्यों के आने-जाने में सुगम, सुचारु आचरण के स्थान पर। यही अर्थ है। निसाभो नाम पब्बतो (एक पर्वत, निसाभ नाम से), वहाँ एक पत्थर से बना पर्वत था जो निसाभ के नाम से जाना जाता था क्योंकि वह पर्वतों में सबसे बड़ा था, यही संबंध है। असमो सुकटोमयहम् (मेरे लिए एक आश्रम बनाया गया था), वहाँ, उस पर्वत पर, मेरे निवास के लिए एक वन-आवास, एक आश्रम, विधिवत बनाया गया था; इसका निर्माण एक कक्ष, रात्रि विश्राम स्थल, दिन विश्राम स्थल और चारों ओर बाड़ (और घेरा) आदि के रूप में अच्छे ढंग से किया गया था; यही इसका अर्थ है। पन्नसाला सुमापिता (पत्तों से बना सुशोभित कक्ष) मेरे निवास के लाभ के लिए पत्तों की छत से ढका हुआ कक्ष अच्छी तरह से निर्मित और तैयार किया गया था; यही इसका अर्थ है।

2. कोसियो नाम नामेन (कोसिया नाम से जाना जाने वाला) माता-पिता द्वारा रखा गया कोसिया नाम; उग्गतापनो (अत्यंत तपस्वी), प्रसिद्ध घोर तपस्या; एकाकियो (अकेला), दूसरों की अनुपस्थिति के कारण, मैं अकेला था; अदुतियो (बिना दूसरे के), दूसरे तपस्वी से रहित; जतिलो (गुंथे हुए बाल) गुंथे हुए बाल धारण करने वाला तपस्वी; तदा (तब), उस समय, निसाभे, निसाभ पर्वत पर; वासामि, मैं रहता था; इस प्रकार, संबंध है।

3. फलम् मूलांच पञ्ञांच न भुञ्जामि अहम् तदा (मैंने तब फल, जड़ और पत्ते नहीं खाए), यानी जब मैं निसाभा पर्वत पर निवास कर रहा था, तब मैंने अंजीर आदि फल, या वृक्ष से तोड़े गए आहुति के पत्ते नहीं खाए; यही अर्थ है। यदि ऐसा है, तो वह कैसे जीवित रहे? इसे समझाने के लिए उन्होंने ये शब्द कहे: पावत्तम् व सुपाताहम्। वहाँ, पावत्तम् (स्वयं उत्पन्न होना), स्वतः उत्पन्न होना; सुपात्तम् (स्वयं गिरना), मैंने अपने आप गिरे पत्तों आदि से अपना भरण-पोषण किया; तावदे (तब), उस समय; जीवामि (मैं जीवित रहता हूँ), मैंने अपना जीवन यापन किया, मैंने अपना जीवन निर्वाह किया; यही संबंध है। इसका वैकल्पिक अर्थ यह है: "पावत्तपण्दुपण्णानि, गिरे हुए पीले पत्ते", paṇ̣dupaṇṇāni rukkhapattāni (पेड़ों से गिरे पीले पत्ते); मैं स्वयं गिरे हुए पेड़ों के पत्तों पर निर्भर रहकर जीवन यापन करता हूँ; यही इसका अर्थ है।

4. नाहम कोपेमि आजीवम् (मैं अपनी अच्छी आजीविका को भ्रष्ट नहीं करता), अपने प्राणों का बलिदान करते हुए, अपने सर्वांगीण यज्ञ में, मैंने लालसा (तन्हा) के प्रभाव में फल, जड़ आदि जैसे जीविका की प्राप्ति के लिए अपनी अच्छी, उचित आजीविका को न तो भ्रष्ट किया और न ही नष्ट किया; यही संबंध है। आराधेमि सकम चित्तम् (मैं अपने मन पर विजय प्राप्त करता हूँ), अल्प आवश्यकताओं और संतोष के माध्यम से मैंने अपने मन पर विजय प्राप्त की और अपने मन को स्पष्ट रूप से प्रसन्न किया; विवज्जेमि अनेसनम् (मैं पापमय जीवन शैली से बचता हूँ), मैंने चिकित्सक, संदेशवाहक आदि जैसे अनुचित और अशोभनीय आजीविका के तरीकों से परहेज किया और स्वयं को उनसे दूर रखा।
5. रागूपसम्हितं चित्तम् (कामवासना से ग्रस्त मन) जब कभी मेरे मन में कामवासना का बोध उत्पन्न हुआ, तब मैंने स्वयं उस पर बुद्धिपूर्वक विचार किया और उसका उचित विश्लेषण करके उसे दूर किया; एकगगो तम दमेमहम् (एकाग्रचित्त होकर मैं उसे वश में करता हूँ) अपने मन को एक ही निश्चित मानसिक अभ्यास वस्तु पर एकाग्रचित्त करके (कम्मत्थाना), मैंने उस कामवासनापूर्ण मन को वश में किया और अपने अधीन कर लिया।
6. राज्जसे राज्जनीये च (तुम आसक्त वस्तुओं से भी आसक्त थे) तुम दृश्य वस्तुओं आदि से आसक्त और दूषित हो गए; दुस्सानीये च दुस्सासे (तुम क्रोधित करने वाली बातों से आहत हो गए) तुम क्रोध उत्पन्न करने वाली और आहत होने योग्य बातों पर क्रोधित हो गए; मुयहसेमोहनीये (तुम भ्रमित करने वाली बातों में भ्रमित हो गए) तुम भ्रम उत्पन्न करने वाली और भ्रमित करने वाली बातों पर भ्रमित और गुमराह हो गए; इसलिए, वना निक्खमस्सु (तुम वन से बाहर निकल जाओ) तुम्हें वन-निवास से दूर, वन से बहुत दूर कहीं और चले जाना चाहिए; इस प्रकार, मैंने अपने आप को वश में कर लिया; यही संबंध है।
24. तिंबरुसकवन्नाभो (हे अंजीर के समान रंग वाले!) हे मित्र! तुम्हारा रंग सुनहरे बड़े फल के समान है, तुम्हारा रंग जंबू नदी के स्वर्ण रंग के समान है; यही अर्थ है। शेष अर्थ तो सहजता से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सुभूति का
समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 22. थेरा उपवन

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

<<<< पिछला । अगला >>>>

---

22. उपवान

विजेता, पद्ममुत्तरा, जिसने सब कुछ पार कर लिया था, संबुद्ध पूरी तरह से बाहर निकल गया, जैसे आग बुझ गई हो। (1) (865)
अनेक लोग तथागत का आदर करने के लिए एकत्रित हुए। उन्होंने उनके लिए एक सुव्यवस्थित चिता बनाई।470 (फिर) उनके शरीर को उस पर उठाया। (2) (866)
शव के साथ आवश्यक कार्य करने के बाद उन्होंने वहाँ सभी अवशेषों को एकत्र किया। (फिर) सभी लोगों ने अपने राजाओं सहित बुद्ध का स्तूप बनाया। (3) (867)
पहला (ताबूत)471 सोने का बना था, दूसरा रत्न का बना था। तीसरा चांदी का बना था, चौथा क्रिस्टल का बना था। (4) (868)
वहां निर्मित पांचवां स्तूप कांच में जड़े माणिक्यों से बना था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 469 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 470 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

471 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छठा सभी रत्नों से बना था जिसके शीर्ष पर एक (बड़ा) बिल्ली की आँख472 थी। (5) (869)
सोने की बनी एक रेलिंग थी; उसके खंभे रत्नों से बने थे। वह स्तूप, जो पूरी तरह सोने से ढका हुआ था, एक लीग (पूरी तरह) ऊँचा था। (6) (870)
तब देवता वहाँ एकत्रित हुए और एक दूसरे को सलाह दी (इस प्रकार): "हम विश्व-प्रमुख, तटस्थ देवता के लिए भी एक स्तूप का निर्माण करेंगे। (7) (871)
(लेकिन) कोई भी अवशेष नहीं बचा है; शरीर अब एक पिंड के रूप में है। हम (उत्कृष्ट) सोने का उपयोग करके बुद्ध के इसी स्तूप का विस्तार करेंगे।" (8) (872)
देवताओं ने सात रत्नों का उपयोग करके इसे एक और लीग (ऊंचा) कर दिया। वह स्तूप, जो दो लीग ऊंचा था, अपनी चमक से अंधकार को दूर कर देता था। (9) (873)
तब नागदेव473 वहाँ एकत्रित हुए और एक दूसरे को सलाह दी (इस प्रकार): "लोगों और देवताओं ने मिलकर बुद्ध का स्तूप बनाया। (10) (874)
हमें लापरवाही नहीं करनी चाहिए; सावधान रहकर, (और) छोटे देवताओं के साथ, हम भी विश्व-प्रमुख, तटस्थ देवता के इस स्तूप का विस्तार करेंगे।" (11) (875)
उन्होंने एकत्रित होकर बुद्ध के स्तूप को दो प्रकार के नीले नीलमणि474 और ज्योतिरास रत्न475 से ढक दिया। (12) (876)
उस समय बुद्ध का चैत्य पूर्णतः रत्नों से बना था। ऊँचाई में वह तीन 476 लीग (ऊँचा) था और (संपूर्ण ब्रह्मांड) को प्रकाशित करता था। (13) (877)

---

472 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 473 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 474 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 475 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 476 शाब्दिक अर्थ, "गया"।

(तब) गरुळ ...
हमें लापरवाही नहीं करनी चाहिए; सावधान रहकर, (और) छोटे देवताओं के साथ, हम भी विश्व-प्रमुख, तटस्थ देवता के इस स्तूप का विस्तार करेंगे।" (15) (879)
वह स्तूप जो केवल रत्नों से बना था, उन्होंने उसके शीर्ष पर सोने का पानी चढ़ा दिया। उन्होंने बुद्ध के स्तूप की ऊँचाई भी एक (पूरा) लीग बढ़ा दी। (16) (880)
फिर चार मील (ऊंचाई में) ऊपर उठते हुए वह बुद्ध-स्तूप (इतना) चमक उठा। वह उगते हुए सूर्य की किरणों की तरह सभी दिशाओं को प्रकाशित करता था। (17) (881)
(तब) कुंभण्डों ने आपस में इस प्रकार परामर्श किया: "लोग और देवता, नागदेव और गरुड़ (882)
उन्होंने स्वयं उनके लिए, जो बुद्धों में श्रेष्ठ हैं, एक शानदार स्तूप का निर्माण किया। हमें लापरवाही नहीं करनी चाहिए; सावधान रहना चाहिए, (और) छोटे देवताओं के साथ, (883)
हम भी विश्वप्रमुख, तटस्थ बुद्ध के इस स्तूप का विस्तार करेंगे। हम बुद्ध के स्तूप के संपूर्ण भाग को रत्नों से ढक देंगे। (884)
उन्होंने बुद्ध स्तूप की ऊँचाई भी एक (पूरी) लीग बढ़ा दी। (अब) पाँच लीग (ऊँचाई में) उठकर वह बुद्ध स्तूप (तेज) चमक उठा। (885)
तब आत्माएँ478 वहाँ एकत्रित हुईं और एक दूसरे को सलाह दी (इस प्रकार): "लोग, देवता और नाग-देवता भी, गरूळ और कुंभण्ड (18)479 (886)

---

477 पाठ sañcālesi BJTS के साथ PTS sañjālesi 478 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 479 शाब्दिक अर्थ, "गुणी"

उन्होंने स्वयं विश्व-प्रमुख, तटस्थ देवता के लिए एक शानदार स्तूप का निर्माण किया। हमें लापरवाह नहीं होना चाहिए; सावधान रहें, (और) छोटे देवताओं के साथ, (19) (887)
हम भी विश्व-प्रमुख, तटस्थ बुद्ध के इस स्तूप का विस्तार करेंगे। हम बुद्ध के स्तूप के पूरे भाग को क्रिस्टल से ढक देंगे। (20) (888)
उन्होंने बुद्ध स्तूप की ऊँचाई भी एक (पूरी) लीग बढ़ा दी। (अब) छह 480 लीग (ऊँचाई में) उठकर वह बुद्ध स्तूप (तेज) चमक उठा। (21) (889)
तब संगीत अप्सराएँ481 एकत्रित हुईं (जिन्होंने) एक दूसरे को (इस प्रकार) सलाह दी: "मनु से उत्पन्न, और देवता, नागदेव, कुंभण्ड, गुयहक*482 (22) (890)
सभी ने बुद्ध के स्तूप का निर्माण किया; हमने इस संबंध में कुछ नहीं किया। हम भी विश्व-प्रधान, तटस्थ व्यक्ति के इस स्तूप का विस्तार करेंगे।" (23) (891)
उन्होंने सात रेलिंग बनाईं और उसके लिए खंभे भी बनाए। फिर उस स्तूप को संगीत अप्सराओं ने पूर्णतः सोने से मढ़ दिया। (24) (892)
(अब) सात मील ऊँचा वह बुद्ध स्तूप (तेज रोशनी से) जगमगा रहा था। दिन और रात में कोई अंतर नहीं रह जाता था; वहाँ हमेशा (उसकी तेज) रोशनी रहती थी। (25) (893)
इसकी चमक वास्तव में चंद्रमा, सूर्य और तारों को भी मात देती थी। दिन के समय वह दीपक चारों ओर सौ मील तक जगमगाता रहता था। (26) (894)
उस समय, जो भी लोग

---

480 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हज़ार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेज़ी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हज़ार कंद (भाग, अंश, पिंड, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)।" 481 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई भिन्नताओं के साथ गेंदु लिखा है। कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 482 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनका के अनुसार।

वे उस स्तूप की पूजा कर रहे थे (वहाँ) उन्हें उस स्तूप पर चढ़ना नहीं पड़ता था; वे (बस) हवा में ही ऊपर उठे हुए थे। (27) (895)
उनके झंडे या फूलों की मालाएँ (वहाँ) देवताओं द्वारा स्थापित आत्मा484 अभिसममाता द्वारा (हवा में) अर्पित की गईं। (28) (896)
वे आत्मा को नहीं देख सके485 (वहाँ); वे केवल उड़ते हुए पुष्पमालाओं को देखते हैं। उन्हें इस तरह जाते हुए देखकर, वे सभी अच्छी अवस्थाओं की ओर बढ़ते हैं। (29) (897)
बुद्ध के वचनों में आस्था रखने वाले और व्यवस्था से प्रसन्न होकर चमत्कार देखने की इच्छा रखने वाले लोग उस स्तूप की पूजा कर रहे हैं। (30) (898)
उस समय मैं एक वक्ता था और मैं हंसवती में रहता था। उन प्रसन्न लोगों को देखकर मेरे मन में यह (अच्छा) विचार आया: (31) (899)
"वह महान हैं, भगवान, जिनके पास इस प्रकार का अवशेष-गर्भ है; ये लोग भक्तिपूर्वक अपने अनुष्ठान करने में बहुत प्रसन्न हैं। (32) (900)
मैं भी विश्व-प्रमुख, तटस्थ व्यक्ति के लिए एक अनुष्ठान करूँगा, और भविष्य में, मैं उनके सिद्धांतों के उत्तराधिकारियों में से एक बनूँगा। (33) (901)
मैंने अपने ऊपरी वस्त्र को कपड़े धोने वाले व्यक्ति से धुलवाया (और) उसे बांस पर टांगकर मैंने आकाश में एक झंडा फहराया। (34) (902)
उसे पकड़कर अभिसममाता ने मेरा झंडा आकाश में उठा दिया।

---

483 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी) 484 पीटीएस उद्धालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ उद्दालोमिका° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें आरडी, एसवी) 485 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर" 486 या शायद फूल? या दोनों, अर्थात् खिले हुए पेड़? 487 खिड्डारतिया

इसे हवा में लहराते हुए देखकर, उन लोगों के बीच मैं बहुत मुस्कुराया। (35) (903)
वहाँ मेरे मन को सुख मिला और फिर मैं एक बौद्ध भिक्षु के पास गया। उस भिक्षु का आदर करते हुए मैंने पूछा कि उस झंडे का क्या परिणाम होगा। (36) (904)
उन्होंने मुझे धार्मिक आनंद के बारे में बताया, जिससे मुझे (महान) परमानंद प्राप्त हुआ। "तुम हमेशा उस झंडे के (उपहार के) फल का अनुभव करोगे।" (37) (905)
(उन्होंने कहा), "सेना, जिसके चार भाग हैं— हाथी, सैनिक, रथ, घोड़ा— सदा आपकी सेवा में रहेगी; यही ध्वज-उपहार का फल है। (38) (906)
साठ हज़ार वाद्ययंत्र489 (और) अच्छी तरह से सजाए गए केटल-ड्रम490 आपकी सेवा में स्थायी रूप से रहेंगे; यह एक ध्वज-उपहार का फल है। (39) (907)
और महिलाएं (भी, सभी) अच्छी तरह से सजी-धजी, जिनकी संख्या छियासी हजार थी, विभिन्न प्रकार के कपड़े और आभूषण पहने हुए, रत्न जड़ित बालियां पहने हुए, (40) (908)
लंबी पलकों, प्यारी मुस्कान491 और पतली कमर वाली, देखने में मनमोहक492 लगातार आपकी सेवा में तत्पर रहेंगी: यही ध्वज-उपहार का फल है। (41) (909)
तुम तीस हजार युगों तक देवताओं के संसार में आनंदित रहोगे। अस्सी बार तुम देवताओं के राजा के रूप में दिव्य शासन करोगे। (42) (910)
आप हज़ार बार ऐसे राजा बनेंगे जो (कानून का) पहिया घुमाते हैं, (और आपके पास) अनगिनत स्थानीय शासन होगा। (43) (911)

---

488 तिदास, अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में 489 व्याम्ह-म-उत्तम, शाब्दिक अर्थ, "(मेरे) परम (या उत्कृष्ट) महल में" 490 नव, वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है 491 शाब्दिक अर्थ, "पूजा" 492 महापक्खो, शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला"

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (44) (912)
देवताओं के लोक से गिरकर, (तुम्हारे) पुण्य कर्मों से प्रेरित होकर, (और) तुम्हारे अच्छे कर्मों से बंधे हुए तुम ब्रह्मा के संबंधी बनोगे (तब)। (45) (913)
आठ सौ मिलियन (और) अनेक दासों (और) श्रमिकों (को भी) त्यागकर, तुम भगवान गौतम की शिक्षाओं का त्याग करोगे। (46) (914)
शक्यों के सांड, गौतम संबुद्ध को प्रसन्न करके, तुम उपवान कहलाओगे, जो गुरु का अनुयायी होता है। (47) (915)
एक लाख युगों पहले किए गए कर्मों ने मुझे यहाँ अपना फल दिखाया: पूर्णतः मुक्त होकर, तीर की तरह तेज होकर, मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (48) (916)
जब मैं एक चक्र घुमाने वाला राजा था, चारों महाद्वीपों का स्वामी था, तब मुझे चारों दिशाओं में तीन मील तक झंडे दिखाई देते थे। (49) (917)
उस (अच्छे) कर्म के बाद से एक लाख युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ; यह ध्वज-उपहार का फल है। (50) (918)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (51) (919)
इस प्रकार पूज्य उपवान थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
उपवान थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
22. थेरा उपवान की जीवनी पर टीका।
पदुमुत्तरो नाम जिनो से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा उपवान की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस पूज्य व्यक्ति ने पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे उन्हें बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिली। वे पद्ममुत्तरा के समय एक दरिद्र परिवार में पुनर्जन्म लेकर

वयस्क हुए। ज्ञान प्राप्ति के बाद, पद्ममुत्तरा के देहांत (परिनिब्भूत) पर, उनके अवशेष ले जाए गए। जब मनुष्यों और देवताओं, नागों, गरुड़ों, कुंभण्डों, दैत्यों, दैत्यों और गंधबत्तों द्वारा सात प्रकार के रत्नों से निर्मित सात योजन का एक मंदिर स्थापित किया गया, तो उन्होंने उनके सम्मान में एक ध्वज अर्पित किया; जो उन्होंने अपने अच्छी तरह से धुले हुए वस्त्र से बनाया था। उन्होंने इसे बांस के एक लंबे टुकड़े के शीर्ष पर बांधकर विधिपूर्वक धारण किया था। उस ध्वज को धारण करके, देवताओं द्वारा मंदिर में दी जाने वाली भेंटों की देखरेख के लिए वहाँ तैनात राक्षसों के सेनापति अभिसम्मतक ने अपने अदृश्य शरीर से आकाश में ध्वज लहराते हुए मंदिर की तीन परिक्रमाएँ कीं। इसे देखकर, वह उस पुण्य कर्म से अत्यंत प्रसन्न हुआ और देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने जन्म-जन्म चक्रों में विचरण करता रहा, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वह सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने उपवान नाम प्राप्त किया और यौवन प्राप्त करने के बाद, जेतवन द्वारा स्वीकार किए जाने पर बुद्ध की शक्ति देखी, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बन गए, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विकास के लिए कर्म किए, अर्हतत्व प्राप्त किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से संपन्न हुए। जब भी प्रतापी बुद्ध अस्वस्थ हो जाते, तब थेरा उन्हें गर्म जल और आवश्यक औषधि प्रदान करते थे। इस प्रकार गुरु की बीमारी दूर हो गई। परम पूज्य ने उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए धन्यवाद दिया।

52. इस प्रकार अरहतत्व की सिद्धि प्राप्त करके और सर्वोच्च पद पर आसीन होकर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और मन में प्रसन्नता उत्पन्न करते हुए अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने हेतु 'पदमुत्तरो नाम जिनो' से प्रारंभ होने वाला श्लोक बोला। वहाँ, पारगू (पार हो गए), निर्वाण प्राप्त किया, जो समस्त सांसारिक और पारलौकिक धर्मों का अंतिम लक्ष्य है। पदमुत्तरो नाम जिनो, विजेता पदमुत्तरा, महिमावान, जिन्होंने पाँच प्रकार के मारों पर विजय प्राप्त की, जिनके पास अग्नि के ठोस पिंड के समान छह रंगों वाली बुद्ध की किरणें थीं, जलित्वा (प्रज्वलित), जिन्होंने धर्म की चमक से समस्त संसार को प्रकाशित किया; संबुद्धो (स्वयं-जागृत), श्रेष्ठ बुद्ध, जो अपने ही सजग प्राणियों (पजाय) के प्रति प्रेम (सवासनाय) के कारण क्लेशा (दुराचार) की नींद से उचित रूप से जागृत (पटिबुद्धो) हुए थे, जो अज्ञान (अविज्जानिद्दूपगताय) की नींद में लीन हो गए थे; वे नेत्र कमल (नेत्तपंकजो) जो खिल चुका था (विकासित); परिनिबुतो (पूर्णतः निर्वाण में विलीन हो गए थे), खन्ध के परिनिभान के कारण बुझ गए थे, और अदृश्यता (अदासनम्) को प्राप्त कर चुके थे (गतो); इस प्रकार, यह संबंध है।

57. जंघा (पैर), सीढ़ियों की एक श्रृंखला जिसे बांधा जाता है ताकि मंदिर के निर्माण के समय ईंटों को एक दूसरे के करीब रखने में सुविधा हो।

88. सुधोतम राजकेनहम (अच्छी तरह से धोया और धूल रहित), वस्त्र धोने वाले से अच्छी तरह से धोया और शुद्ध किया; उत्तरेय्यपातम मम (मेरा ऊपरी वस्त्र), मैंने अपने ऊपरी वस्त्र को बांस के शीर्ष पर लटकाया, एक ध्वज बनाया और उसे फहराया; अम्बारे (आकाश में), मैंने ध्वज को आकाश में फहराया; यही अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाएगा।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा उपावन का

समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.123. तिणिसारणागमनिया493
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.123. थेरा तिसारणगमनिया की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

23. तिणिसारणागमनिया493

चंदवती नगर में, 494 मैं अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था। मैं वहाँ अपनी अंधी माँ और पिता की निरंतर देखभाल करता था। (1) (920)

अकेले जाकर बैठते समय मेरे मन में यह विचार आया: "अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते हुए मैं (अभी तक) संसार का त्याग नहीं कर सकता।495 (2) (921)

अंधकार में डूबा हुआ, मैं तीन आगों से झुलस रहा हूँ। हालाँकि ऐसी विकट परिस्थितियों में, (और अब) भयभीत, कोई भी मेरा मार्गदर्शन नहीं कर सकता। (3) (922)

बुद्ध का जन्म संसार में हुआ है; विजय का दर्शन प्रकाशमान है। अच्छे कर्म करने वाले लोगों द्वारा आत्मा को (अब) आगे बढ़ाया जा सकता है। (4) (923)

तीनों शरणों को अपनाकर मैं (अब से) उनकी पूर्ण रक्षा करूँगा। अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मैं बुरी अवस्थाओं से मुक्त हो जाऊँगा। (5) (924)

बुद्ध के सबसे प्रमुख अनुयायी निसाभा नामक भिक्षु थे। उस (भिक्षु) के पास जाकर मैंने त्रिविध शरण ली।499 (6) (925)

उन दिनों सामान्य जीवनकाल (गिनती में) एक लाख वर्ष था।500

{फैंसी ब्रेकेट} में दिए गए 493 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 494 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

495 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 496 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 497 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 498 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 499 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 500 शाब्दिक अर्थ, "गया"

उस पूरे समय मैंने शरण लेने की पूरी तरह रक्षा की। (7) (926)

जब मेरी अंतिम सांस चल रही थी, तब मुझे उस शरण की याद आई। उस अच्छे कर्म के फलस्वरूप मैं तावतिंसा गया। (8) (927)

मेरे अच्छे कर्मों के कारण देवताओं के लोक में अच्छी स्थिति में रहने के कारण, मैं जिस भी क्षेत्र में जन्मा, वहाँ मुझे आठ शुभ वस्तुएँ प्राप्त हुई।501 (9) (928)

हर दिशा से मेरी पूजा की गई, जिससे मुझे तीक्ष्ण बुद्धि प्राप्त हुई। सभी देवता मेरे अधीन हो गए। मुझे अत्यधिक भोजन प्राप्त हुआ। (10) (929)

हर जगह, सुनहरे रंग का, मैं सबका प्रिय था।502 (सभी का)। अपने मित्रों के प्रति दृढ़ रहते हुए, मेरी महिमा ने महान ऊंचाइयों को छुआ। (11) (930)

मैंने देवताओं के राजा के रूप में अस्सी बार दिव्य शासन किया। (तब) दिव्य अप्सराओं द्वारा अभिषेक किए जाने पर मैंने (बहुत) दिव्य आनंद का अनुभव किया। (12) (931)

(पूर्ण) पाँच सौ बार मैंने (तब) एक सम्राट के रूप में शासन किया जो पहिया घुमाता है, (और मेरे पास) अनगिनत स्थानीय शासन था। (13) (932)

जब (मेरा) अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तो (मेरे) अच्छे कर्मों के कारण अच्छी स्थिति में, मेरा जन्म श्रावस्ती में एक बड़े घर वाले एक समृद्ध परिवार में हुआ।503 (14) (933)

अन्य बच्चों द्वारा सामने रखे गए उस (महान) शहर से निकलते हुए, मैं एक मठ की ओर बढ़ा (खेल और हंसी की उम्मीद में)।504 (15) (934)

501 पाठ sañcālesi, BJTS के साथ PTS sañjālesi 502 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 503 शाब्दिक अर्थ, "गुणी" 504 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार kaṇḍas (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ bheṇḍu (लंबा? मोटा?)।"

वहाँ मैंने एक (बौद्ध) भिक्षु को देखा, जो मुक्त था और जिसकी कोई इच्छा नहीं थी। उसने मुझे शिक्षा समझाई और मुझे (तीन) शरणस्थल बताए। (16) (935)

जब मैंने "शरण" शब्द सुना, तो मुझे अपनी (पूर्व) शरण याद आ गई, और मैं एक आसन पर बैठ गया (और फिर) अरहंत पद प्राप्त कर लिया। (17) (936)

केवल सात वर्ष की आयु में ही मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। सद्गुणों को जानने वाले, नेत्रपूर्ण, संबुद्ध ने मुझे तब दीक्षा दी। (18) (937)

असंख्य युगों बाद मैंने (त्रिविध) शरण ली। उस कर्म का फल मुझे यहाँ दिखाया गया है। (19) (938)

मेरे मन में दृढ़ता से स्थापित मेरा आश्रय अच्छी तरह से सुरक्षित था। इन सब का आनंद लेने के बाद मुझे अपनी स्थिर अवस्था का एहसास हुआ। (20) (939)

आपमें से जिनके कान सुनने को हैं, आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें। मैं आप सबके सामने यह तथ्य के रूप में घोषित कर रहा हूँ कि मैंने स्वयं इस स्थिति को देखा है। (21) (940)

"बुद्ध का जन्म संसार में हुआ है; विजय का विधान प्रकाशमान है। अमरता का ढोल (अब) बजता है, दुःख के बाणों को दूर करता है। (22) (941)

यदि आप सभी (अब) अपनी पूरी शक्ति से इस अतुलनीय पुण्य क्षेत्र में स्वामित्व ग्रहण कर लें,505 (तो) आप सभी निर्वाण प्राप्त करेंगे। (23) (942)

तीन प्रकार की शरण लेकर, पाँच नैतिक नियमों का पालन करके, बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न करके तुम दुखों का अंत करोगे। (24) (943)

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 505 में कई भिन्नताओं के साथ 'गेण्डु' लिखा है। कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।

मुझे आदर्श मानकर, थोड़े समय में सभी नैतिक सिद्धांतों का पालन करते हुए, आप सभी भी अर्हंत पद प्राप्त कर लेंगे। (25) (944)

तीन बार जानने वाला,507 महाशक्तियों से युक्त, मैं मन पढ़ने में कुशल हूँ।508 आपका अनुयायी, ज्ञानी, गुरु की शरण में पूजा करता है। (26) (945)

मैंने असंख्य युगों पहले बुद्ध की शरण ली थी। मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है: यही शरण लेने का फल है। (27) (946)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) (947)

इस प्रकार पूज्य तिणिसारणागमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

टीनिसारणागमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

23. थेरा तिसारणगमनिया की जीवनी पर टीका।

नागरे बंधुमतिया से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा तिसारणगमनिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जिससे पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिली। वे विपस्सी के समय बंधुमती नगर में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लेकर अपने नेत्रहीन माता-पिता की सेवा करने लगे। एक दिन उन्होंने सोचा, "माता-पिता की सेवा करते-करते मुझे भिक्षु बनने का अवसर नहीं मिलता: यदि मैं तीनों शरणों का सहारा ले लूँ, तो मैं दरिद्रता और इस दुष्ट जीवन से मुक्त हो जाऊँगा।" वे विपस्सी के प्रमुख शिष्य निसाभा के पास गए और तीनों शरणों का सहारा लिया। उन्होंने एक लाख वर्षों तक उनकी सेवा की और इसी कर्म के फलस्वरूप तावतिंसा में पुनर्जन्म लिया। इसके बाद, उन्होंने बार-बार जन्म लेकर देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, दोनों प्रकार की

समृद्धि का आनंद लिया, और इस बुद्ध के प्रकट होने के समय, सावत्थी नगर में एक अत्यंत धनी परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब वे सात वर्ष की आयु में ही बुद्धिवान हो गए, तो वे पुरोहितों के एक आश्रम (संघराम) में गए, जो लड़कों से घिरा हुआ था। वहाँ, एक निर्मल थेरेप ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया और शरणासन दिए। उन्होंने शरणासन ग्रहण किए, शरणासनों का स्मरण किया, पूर्व में स्वयं उनकी देखभाल की, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अर्हतत्व प्राप्त किया। जब उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया, तब भगवान बुद्ध ने उन्हें दीक्षा दी।

106. अरहतत्व प्राप्त करने और दीक्षा लेने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और नागरे बंधुमतिया से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि मन में प्रसन्नता प्रकट कर सकें। वहाँ, मातु उपात्थाको अहम (मैं अपनी माता का सहायक था), मैं बंधुमती नगर में अपने माता-पिता की सेवा करने वाला सहायक था; इस प्रकार संबंध स्थापित होता है।

108. तमंधकारविहिता (अंधकार से अंधा) भ्रम के अथाह अंधकार से ढका हुआ; तिविधग्गीहि दयहरे (वे तीन प्रकार की आग से जल गए) सभी प्राणी कामवासना की आग, क्रोध की आग और भ्रम की आग से जलकर झुलस गए; इस प्रकार, संबंध है।

114. अष्टहेतु लभमहम (मुझे आठों कारण प्राप्त होते हैं), मुझे वे आठ परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं जो सुख के कारण थीं; यही इसका अर्थ है। शेष अर्थ तो आसानी से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा तिसरनागमानिया का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 24. थेरा पंचशीलसमादानिय

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.124. पंचसीलासमादानिया 509
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.124. थेरा पंचशीलसमादानिया की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

24. पंचसीलासमादानिया 509

चंदवती नगर में,510 मैं उस समय एक सेवक था। दूसरों की सेवा में बंधा होने के कारण मैं संसार का त्याग नहीं कर सका (अभी तक): (1) (948)

“घोर अंधता में घिरा होने के कारण मैं तीन अग्नियों से झुलस रहा हूँ।511 मैं किस रणनीति से (इस संसार से) मुक्त हो सकता हूँ? (2) (949)

---

506 येनिच्चका, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामती तनका के अनुसार 507 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (आरडी., एसवी देखें) 508 पीटीएस उद्धालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ उद्दालोमिका° का पाठ (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें) 509 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 510 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, डीपीपीएन II: 1162 देखें। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

511 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे वे चीजें नहीं दी जा सकतीं; मैं एक दयनीय सेवक हूँ। तो फिर मैं पाँच (बुनियादी) नैतिक उपदेशों की रक्षा और पालन क्यों नहीं करता? (3) (950)

निसाभा ऋषि अनोमदस्सी के अनुयायी हैं। उनसे संपर्क करने के बाद मैं पाँच नैतिक प्रशिक्षण उपदेशों को अपनाऊंगा।” (4) (951)

उन दिनों सामान्य जीवनकाल (पूर्ण) एक लाख वर्ष था। उस पूरे समय मैंने पाँच नैतिक सिद्धांतों का पूर्णतः पालन किया। (5) (952)

जब मेरी मृत्यु का समय आया तो सभी देवताओं ने मुझे इस प्रकार सांत्वना दी: “हे सौभाग्यशाली, इस एक हजार घोड़ों वाले रथ द्वारा तुम्हारी सेवा की जाएगी।” (6) (953)

अपने अंतिम श्वास लेते समय, मेरे हृदय में उन (पाँच) नैतिक नियमों की याद आई। उस अच्छे कर्म के फलस्वरूप मैं तावतिंसा गया। (7) (954)

तीस बार देवताओं के राजा के रूप में मैंने वहाँ दिव्य शासन किया। दिव्य अप्सराओं द्वारा अभिषेक किए जाने पर मैंने बहुत दिव्य आनंद प्राप्त किया। (8) (955)

मैंने (पूरी तरह से) पाँच सौ बार एक सम्राट के रूप में शासन किया जो पहिया घुमाता है, (और मेरे पास) अनगिनत स्थानीय शासन था। (9) (956)

देवताओं की दुनिया से गिरकर, (मेरी) पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, मेरा जन्म वैसली में एक बड़े घर वाले एक समृद्ध परिवार में हुआ।513 (10) (957)

जब बरसात का मौसम शुरू हुआ, तो विजेता का विधान चमक उठा। मेरी माँ और मेरे पिता ने भी पाँच नैतिक उपदेशों को अपनाया। (11) (958)

---

512 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला," यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े और उससे बने ऊपरी वस्त्र दोनों को संदर्भित करता है। 513 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

और मैंने (उस शब्द को) “नैतिक” सुनकर अपनी (भूतकाल की) नैतिकता को याद किया। मैं एक आसन पर बैठ गया (और) अरहंत पद प्राप्त किया। (12) (959)

यद्यपि मैं (केवल) पाँच वर्ष का था, मैंने (अपना) अरहंत पद प्राप्त किया। सद्गुण को जानने वाले, दृष्टिहीन बुद्ध ने (तब) मुझे वहाँ दीक्षा दी। (13) (960)

उन पाँच (बुनियादी) नैतिक सिद्धांतों की पूर्णतः रक्षा करते हुए, अनगिनत युगों तक मैं किसी भी कष्टदायी स्थान पर नहीं गया। (14) (961)

मुझे उन (पांच) नैतिक उपदेशों के कारण (महान) प्रसिद्धि मिली। दस मिलियन युगों तक बात करने के बाद भी मैं उसका केवल एक अंश ही बता सकता हूँ।514 (15) (962)

पाँच नैतिक सिद्धांतों का पालन करने से मुझे तीन (अच्छे) परिणाम प्राप्त हुए:515 मुझे दीर्घायु, प्रचुर भोजन और तीक्ष्ण बुद्धि प्राप्त हुई। (16) (963)

(मेरा) उत्कृष्ट मानवीय कार्य अब सभी के सामने घोषित किया जाता है। जन्म-जन्मांतर करते हुए मुझे वे (तीन अच्छे परिणाम) प्राप्त होते हैं।516 (17) (964)

यदि विजेता का कोई शिष्य अपने पूरे जीवन भर असीम नैतिक नियमों में आनंदित रहे, तो उसका परिणाम कैसा होगा? (18) (965)

मैंने, एक बुद्धिमान सेवक होने के नाते, पाँच सिद्धांतों517 का भली-भांति पालन किया। उस नैतिक अनुशासन के कारण आज मैं हर बंधन से मुक्त हूँ518। (19) (966)

मैंने असंख्य युगों पहले पाँच नैतिक नियमों की रक्षा की थी।

514 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ। 515 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel)। 516 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 517 BJTS के साथ PTS के लिए sañcālesi पढ़ना sañjālesi। 518 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"।

मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है: यही पाँच उपदेशों का फल है।519 (20) (967)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) (968)
इस प्रकार पूज्य पंचशीलसमादानीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पंचसिलसमदानीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
24. थेरा पंचशीलसमादानिया की जीवनी पर टीका।
नागरे चंदावतीया से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पंचशीलसमादानिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस-उस जन्म में अनोमदस्सी के समय किसी परिवार में पुनर्जन्म लिया। पिछले जन्म में किए गए पाप के कारण वे दरिद्र हो गए, और भोजन-पानी न मिलने पर मजदूरी करके जीवन व्यतीत किया। उन्हें पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) का कष्ट अनुभव हुआ, वे भिक्षु बनने की इच्छा रखने लगे, लेकिन भिक्षुत्व प्राप्त न होने पर उन्होंने थेरा निसह, अनोमदस्सी के शिष्य, पांच प्रकार के बुनियादी अनुशासन (सिक्खापाद) का पालन किया। क्योंकि उनका जन्म दीर्घायु काल में हुआ था, इसलिए उन्होंने एक लाख वर्षों तक सर्वांगीण नैतिक उपदेशों का पालन किया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और इस बुद्ध के उदय के समय वैशाली के एक अत्यंत समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। अपने माता-पिता को नैतिक उपदेशों का पालन करते देख, उन्हें अपने नैतिक उपदेश का स्मरण हुआ, उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, अर्हतत्व प्राप्त किया और भिक्षु बन गए।
134. अपने पूर्व कर्मों को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने 'नागरे चंदावतीया' से शुरू होने वाला श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को गंभीर उद्घोषणा (उदान) के माध्यम से प्रकट कर सकें। भातको आसहम तदा (मैं तब मजदूरी करता था) उस समय, जब मैं पुण्य कमा रहा था, मैं मजदूरी करने वाला मजदूर था; परकम्मायने युत्तो (दूसरों के लिए काम करने के कारण) मैंने पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति पाने के उद्देश्य से संन्यास नहीं लिया, क्योंकि मैं दूसरों के लिए मजदूरी करने में लगा हुआ था और उससे बंधा हुआ था।
135. महान्धकारपिहिता (घने अंधकार से आच्छादित), जो किलेसा (दुराचार) के घने अंधकार से अवरुद्ध, अवरुद्ध और आच्छादित थे; तिविधग्गीहि दायीहरे, वे तीन प्रकार की अग्नि से जल गए, जिन्हें इस प्रकार गिना जाता है: नरक की अग्नि, पेट की अग्नि और संसार की अग्नि; परन्तु, किन साधनों से, किन परिस्थितियों में, मैं स्पष्ट रूप से असंबद्ध हो जाऊँगा; यही अर्थ है।
136. देयधाम्मो (दान), मेरे पास दान करने के लिए कुछ भी उपयुक्त नहीं है, जैसे भोजन, पेय आदि; इसके अभाव में, मैं, वराको, दरिद्र, भटको (मजदूर), मजदूरी करने वाला, जीवनयापन करने वाला; यन्नूनहम पंचसीलम रक्खेय्यं परिपूर्णयम् (यदि मैं पाँच नैतिक नियमों का पालन करूँ और उन्हें सर्वथा पूर्ण करूँ तो क्या होगा?), यदि मैं पाँच नैतिक नियमों का पालन करने और उन्हें सर्वथा पूर्ण करने का दायित्व ग्रहण कर लूँ, और उनकी अच्छी तरह देखभाल करूँ और उनकी उचित रक्षा करूँ तो अच्छा होगा; यही अर्थ है।
148. स्वाहम् यसमनुभविम (कि मैंने प्रतिष्ठा प्राप्त की), उन नैतिक उपदेशों को धारण करने की शक्ति के कारण, मैंने देवताओं और मनुष्यों के बीच अपार प्रतिष्ठा प्राप्त की; यही अर्थ है। कित्तये (घोषणा कर सकते हैं), करोड़ों युगों तक भी उन नैतिक उपदेशों के फल की घोषणा करने पर, केवल एक अंश ही प्रकट हो सकता है; यही अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा पंचशीलसमादानिया का
समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 25. थेरा अन्नसांसावका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.125. अन्नसंसावक 520
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.125. थेरा अन्नसंसावक की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

25. अन्नसंसावक 520

मैंने बाज़ार में विचरण करते हुए स्वर्णमय संबुद्ध को देखा, मानो वह सोने का कोई दुर्लभ आभूषण हो, बत्तीस महान चिह्नों से सुसज्जित, सिद्धार्थ, जगत का दीपक, अवर्णनीय और अद्वितीय, शांत, तेजस्वी (बुद्ध), और मुझे वहाँ परम आनंद प्राप्त हुआ। (1-2) (969-970)
उनके साथ समय बिताते हुए मैंने महान ऋषि संबुद्ध को भोजन कराया। दयालु और रक्षक ऋषि ने तब मुझे धन्यवाद दिया। (3) (971)
परम करुणावान, परम सांत्वनादाता बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, मैं स्वर्ग में युगों तक रोमांचित रहा। (4) (972)
उस समय जब मैंने दान दिया था, तब से लेकर अब तक के चौरानवे युगों में मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही भोजन देने का फल है। (5) (973)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (974)
इस प्रकार पूज्य अन्नसंसावक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

---

519 शाब्दिक रूप से, "योग्य" 520 अपदान संख्याएँ {फैंसी कोष्ठकों} में दी गई हैं, जो BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं।

अन्नसंसावक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
25. थेरा अन्नसंसावक की जीवनी पर टीका
सुवन्नवन्नम सम्बुद्धम् से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा अन्नसंसावक की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्मों के चक्र (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस-उस जन्म में एक परिवार में, प्रतापी सिद्धार्थ के समय में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने प्रतापी सिद्धार्थ को बत्तीस गुणों से परिपूर्ण, एक फ़ादम लंबी किरणों से जगमगाते हुए और भिक्षा के लिए विचरण करते हुए देखा। वे श्रद्धापूर्वक प्रसन्न हुए, प्रतापी सिद्धार्थ को अपने घर आमंत्रित किया, उन्हें अपने घर ले गए और उन्हें उत्तम भोजन और पेय से संतुष्ट किया। उसी निर्मल आस्था के कारण वे वहाँ से देह त्याग कर गए, दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया, स्वर्गिक समृद्धि का आनंद उठाया और वहाँ से देह त्याग कर मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लिया, मनुष्यलोक की समृद्धि का आनंद उठाया और उसके बाद वे समय-समय पर दिव्य और मानवीय समृद्धि का आनंद उठाते हुए, इस बुद्ध के प्रकट होने के समय एक विशेष परिवार में पुनर्जन्म लिया, शासन व्यवस्था से अत्यंत प्रसन्न हुए, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अर्हतत्व प्राप्त किया। पूर्व में पुण्य कर्म करने के कारण वे अन्नसंसावक थेरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।
155-6. इसके बाद, उन्हें अपना पूर्व कर्म याद आया, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने सुवन्नवन्नम से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों का गंभीर उच्चारण (उदान) करके प्रकट कर सकें, और कहा: "इस प्रकार, मेरे द्वारा किए गए इस पुण्य भार की शक्ति से, मैंने अर्हतत्व प्राप्त किया है।" वहाँ, सुवन्नवन्नम सम्बुद्धम् (स्वयंभूष्यम), वह स्वर्ण रंग का तेजस्वी, जिसका रंग सोने के रंग जैसा था;

वह स्वर्ण रंग सोने के रंग जैसा था; वह स्वर्ण रंग का बुद्ध सिद्धार्थ; यही अर्थ है। गच्छन्तम अंतरापने (विक्रय दुकानों के बीच से जाना), व्यापारियों की दुकानों की पंक्तियों के बीच गली में जाना; काञ्चनाग्हियासम्कासम (मूल्यवान स्वर्ण द्वार के समान), स्वर्ण द्वार के समान; बत्तिम्सवरलक्खनम (बत्तीस उत्कृष्ट गुण), बत्तीस शुभ लक्षणों (लक्खन) से युक्त; लोकपज्जोतम (संसार का प्रकाशमान दीपक), जो समस्त संसार का प्रकाशमान दीपक बन गया है; अप्पमेय्यम (असीमित), माप से रहित; अनोपमम (अद्वितीय), उदाहरण रहित; जुटिन्धरम (तेजवान), बुद्ध सिद्धार्थ के दर्शन प्राप्त, किरणों से दीप्तिमान, नीले, सुनहरे पीले आदि छह प्रकार की बुद्ध किरणों के वाहक; परमम (पूर्ण), परम उत्साह, अलत्तम (मैंने प्राप्त किया), मैंने ग्रहण किया; इस प्रकार, यह संबंध है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा अन्नसंसावक का
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.126. धूपदायक 521
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.126. धूपदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

26. धूपदायक 521

मैंने विश्व के सर्वश्रेष्ठ, धन्य और तटस्थ सिद्धार्थ की कुटिया के लिए अत्यंत निर्मल मन से धूप दी। (1) (975)
मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मनुष्य का हो या दिव्य, मैं उन सबका प्रिय हूँ: यही धूप देने का फल है। (2) (976)
उस समय जब मैंने उसे वह धूप दी थी, तब से लेकर अब तक के चौरानवे युगों में मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: धूप देने का यही फल है। (3) (977)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (978)
इस प्रकार पूज्य धूपदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
धूपदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

26. धूपदायक की जीवनी पर टीका।

सिद्धार्थस भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य धूपदायक थेरा की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस या उस जन्म में, प्रतापी सिद्धार्थ के समय में एक परिवार के घर में पुनर्जन्म लिया, प्रतापी सिद्धार्थ के प्रति श्रद्धावान हुए, और प्रतापी सिद्धार्थ के सुगंधित कक्ष में चंदन, सुगंधित अगरबत्ती (अगरू), गहरे सुगंधित चंदन (कालानुसारी) आदि अनेक प्रकार की धूप अर्पित की। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच समृद्धि का आनंद लिया, जिस भी जन्म में वे पैदा हुए, उसमें अर्पण योग्य बने, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ, पुण्य के भार के बल पर वे बुद्ध युग में भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की,

अर्हतत्व प्राप्त किया, और धूप अर्पण करने के पुण्य के कारण वे थेरा धूपदायक के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हुए। अर्हतत्व की प्राप्ति पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया, प्रसन्न हुए, और अपने पूर्व कर्मों को इंगित करने के लिए सिद्धार्थस भगवतो से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। सिद्धार्थस भगवतो (महिमावान सिद्धार्थः), वे सिद्धार्थस थे, जो महिमावान थे, जो सिद्ध थे, सर्वगुण संपन्न थे, सर्वज्ञ ज्ञान आदि गुणों से युक्त थे, और प्रेरणा देने की इच्छा रखते थे; उस महिमावान सिद्धार्थ को, जो यश और अन्य गुणों से परिपूर्ण हैं, समस्त जगत में सबसे श्रेष्ठ हैं; तादिनो (ऐसे व्यक्ति को), ऐसे व्यक्ति को या उनके द्वारा, जो स्वभाव से सुखी और असुखद दोनों में अविचल हैं; यही अर्थ है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा धूपदायाका का

समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 27. थेरा पुदीनपूजक

---

27. पुलिनपूजक 522

मैंने पुरानी रेत को खोदकर निकाला और विपस्सी भगवान के उत्कृष्ट वृक्ष,523 बोधि वृक्ष के चारों ओर (शुद्ध) साफ रेत बिखेर दी। (1) (979)

उस रेत का दान करने के बाद से 91 युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला; यही रेत दान करने का फल है। (2) (980)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 521 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। {फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 522 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 523 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

तैंतीस युग पहले मैं राजा महापुलिन था,524 लोगों का विजेता, एक चक्र-चालक, महान शक्ति वाला। (3) (981)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (982)

इस प्रकार पूज्य पुलिनपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुलिनपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

27. थेरा पुलिनापूजक की जीवनी पर टीका।

विपस्सिस्सा भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पुलिनापूजक की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस-उस जन्म में, तेजस्वी विपस्सी के समय में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। अपने शासन में अत्यंत धर्मपरायण स्वभाव के कारण, उन्होंने मंदिरों और बोधि वृक्षों के परिसर से पुरानी रेत हटाकर मोती के समान हल्के पीले रंग की नई रेत बिखेरी और मंदिर को सुशोभित किया। इस कर्म के कारण, उनका जन्म दिव्य लोक में हुआ; वहाँ उन्होंने कई योजन आकार के, रत्नों से जगमगाते स्वर्ण महल में दिव्य आनंद का अनुभव किया। वहाँ से मृत्यु के बाद, वे मानव जगत में सात प्रकार के रत्नों से संपन्न विश्वराज बने, मानव सुख का आनंद लिया और पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते हुए एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। जब ये बुद्ध प्रकट हुए, तो वे धर्मपरायणता के मार्ग पर चलते हुए भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और अर्हतत्व प्राप्त किया। वे पुलिनापूजक थेरा नाम से प्रसिद्ध हुए, जो उनके द्वारा किए गए पुण्य कर्म के नाम के समान था।

165. अपने पूर्व कर्मों को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने विपस्सिस्सा भगवतो से शुरू करते हुए एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व कर्मों का वर्णन किया। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार के कर्म देखे; इस प्रकार वे विपस्सि थे; या उन्होंने एकांत में (या

अलग-अलग) कर्म देखे; इस प्रकार वे विपस्सि थे; या उन्होंने अपने और दूसरों के लाभ जैसे लाभों को अलग-अलग देखा; इस प्रकार वे विपस्सि थे; या उन्होंने शब्दकोशीय, पूर्णतः आध्यात्मिक आदि महत्वों को अलग-अलग देखा; इस प्रकार वे विपस्सि थे; विपस्सिस्सा बोधिया पादपुत्तमे (विपस्सि के परम श्रेष्ठ बोधि वृक्ष पर), उस विपस्सि बुद्ध के परम श्रेष्ठ बोधि वृक्ष के गोलाकार पंडाल में; पुराणपुलिनम् (पुरानी रेत) आकिरिम (बिखरी हुई), पुरानी रेत को फेंककर मैंने शुद्ध पीली रेत बिछाई। शेष तो आसानी से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा पुलिनापूजका का

समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 28. थेरा उत्तिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.128. उत्तिया
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.128. थेरा उत्तिया की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

28. उत्तिया

उस समय मैं चंदाभागा नदी के किनारे मगरमच्छ था। भोजन की तलाश में मैं नदी के किनारे चला गया। (1) (983)

उस समय स्वयंभू सिद्धार्थ, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे, उस नदी को पार करने की इच्छा से नदी के किनारे पहुँचे। (2) (984)

जब संबुद्ध आ गए तो मैं भी उसी स्थान पर गया। वहाँ पहुँचकर मैंने संबुद्ध से ये (कृपापूर्ण) शब्द कहे: (3) (985)

"हे महान वीर, मुझ पर सवार हो जाओ, मैं तुम्हें नदी पार ले चलूँगा। यह मेरे पूर्वजों का क्षेत्र है; हे महान ऋषि, दया करो।" (4) (986)

मेरी ज़ोर से गुर्राहट सुनकर महान ऋषि (तब) मुझ पर चढ़ गए। हँसी से भरे दिल से मुस्कुराते हुए मैंने विश्व-प्रमुख को पार कराया। (5) (987)

तब सिद्धार्थ नामक वह विश्व प्रमुख नदी के दूसरे किनारे पर चला गया।

---

524 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

वहाँ मुझे सांत्वना दी: "तुम अमरता (अवस्था) प्राप्त करोगे।" (6) (988)

उस शरीर से विदा होने के बाद मैं देवताओं के लोक में गया। अप्सराओं से घिरा हुआ मैंने (बहुत) दिव्य आनंद का अनुभव किया। (6) (989)

मैंने सात बार देवताओं के राजा के रूप में (वहाँ) दिव्य शासन किया। तीन बार चक्र चलाने वाले राजा के रूप में मैं (संपूर्ण) पृथ्वी का स्वामी था। (7) (990)

एकांत में बंधे हुए, मैं चतुर और आत्मसंयमी हूँ। मैं अब संबुद्ध की महान शिक्षाओं में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (8) (991)

जब से मैंने मनुष्यों के बैल को (इस प्रकार) पार कराया है, तब से चौरानवे युगों में मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है; यही पार कराने का फल है। (992)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) (993)

इस प्रकार पूज्य उत्तिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उत्तिया थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

28. थेरा उत्तिया की जीवनी पर टीका

चंदभागानादी तीरे से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा उत्तिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए और पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए। इस या उस जन्म में, वे तेजस्वी सिद्धार्थ के समय चंदभागा नदी में मगरमच्छ के रूप में पुनर्जन्म लिए। सिद्धार्थ को नदी के किनारे आते देख, मगरमच्छ प्रसन्न हो गया और उन्हें नदी पार ले जाने की इच्छा से किनारे के पास लेट गया। सिद्धार्थ ने मगरमच्छ पर दया करके उसके पीठ पर पैर रख दिए। मगरमच्छ प्रसन्न और उत्साहित हो गया, जोश से भर गया और धारा को तेजी से पार करते हुए सिद्धार्थ को नदी पार ले गया। भगवान बुद्ध ने इसकी पवित्रता का ज्ञान प्राप्त कर यह भविष्यवाणी करते हुए प्रस्थान किया: "यह मगरमच्छ यहाँ से मरकर देवताओं के लोक में पुनर्जन्म लेगा; वहाँ से यह बार-बार पुनर्जन्मों (संसार) के चक्र में विचरण करेगा और चौरानवे युगों (कप्पा) तक निर्वाण प्राप्त करेगा।"

इस प्रकार, मगरमच्छ अपने बार-बार के पुनर्जन्मों के चक्र में भटकता रहा, केवल उत्तम जन्मों में ही, और इस बुद्ध के प्रकट होने के समय, सावत्थी में एक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने उसका नाम उत्तिया रखा। वयस्क होने पर, वह एक विचरणशील तपस्वी बन गया और मन ही मन कहने लगा, "मैं अमर शांति (अमता) की खोज करूंगा।" एक दिन उसकी मुलाकात प्रतापी बुद्ध से हुई, जिनके पास जाकर उसने उन्हें प्रणाम किया, धर्म का प्रवचन सुना, धार्मिक आस्था का उचित ग्रहण किया, शासन (शासन) में भिक्षु के रूप में दीक्षा ली, लेकिन नैतिक रूप से गलत विचारों से पूर्णतः शुद्ध न होने के कारण वह विशिष्ट पद प्राप्त करने में असमर्थ रहा। एक अन्य भिक्षु को विशिष्टता प्राप्त करते हुए और दूसरे भिक्षु को भविष्यवाणी (व्याख्यान) करते हुए देखकर, उसने गुरु के पास जाकर संक्षेप में सलाह मांगी। गुरु ने उन्हें संक्षेप में यह सलाह भी दी: "हे उत्तिया! अतः, यहाँ तुम्हें प्रारंभ से ही स्वयं को शुद्ध करना चाहिए," और आगे कहा। उन्होंने गुरु की सलाह का पालन किया और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित करना शुरू किया। जब उन्होंने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि विकसित करना शुरू किया तो उन्हें रोग हो गया। रोग होने पर उन्हें पश्चाताप हुआ, उन्होंने किए गए प्रयास के मूल को जाना, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपश्यना) विकसित की और अर्हतत्व प्राप्त किया।

169. इस प्रकार अपने कर्मों के भार के अनुरूप अर्हतत्व का फल प्राप्त करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए चंदभागनादी तीरे से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। वहाँ, चंदभागनादी तीरे (संभागा नदी के किनारे, यह गर्जना करती और ध्वनि उत्पन्न करती हुई, चंद्रमा के प्रकाश से जगमगाती हुई, चारों ओर निर्मल स्वच्छ जल से भरी हुई, प्रकाशमान, नदी तल चारों ओर शुद्ध हल्के पीले रंग की रेत से ढका हुआ; इस प्रकार चंदभागा नदी। मैं चंदभागा नदी के किनारे एक मगरमच्छ था; इस प्रकार संबंध है।

वहाँ, सुसुमारो छोटी-छोटी मछलियों के झुंडों को छोटे-बड़े टुकड़ों में काटकर मार डालता है; इस प्रकार सुसुमारा (मगरमच्छ); भयंकर मछली, घड़ियाल; यही अर्थ है। सभोजन-पसुतो (अपने भोजन के प्रति समर्पित), मैं अपने चरागाह में अपने पोषण के प्रति समर्पित और व्यस्त था; नदीतित्थम अगच्छा'हम (मैं नदी के किनारे गया), प्रतापी के आगमन के समय मैं नदी के किनारे गया और वहाँ पहुँचा।

170. सिद्धार्थो ताम्ही समये (उस समय, सिद्धार्थ) उस समय जब मैं तट पर पहुँचा, तो परम पूज्य सिद्धार्थ, जो समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ और सबसे बड़े हैं, स्वयंभू (जो स्वयं ही प्रकट हुए थे), वे परम पूज्य, जो स्वयं ही बुद्ध बनकर अस्तित्व में आए, नदी पार करने की इच्छा से नदी तट की ओर बढ़े।

172. पेट्टिकम विसयम मयहम (मेरे पैतृक प्रभाव क्षेत्र), यह महान शक्ति का पारगमन हर बार उनके आगमन पर (या किसी भी और हर आगमन पर), मेरे पिता, दादा और पीढ़ी दर पीढ़ी द्वारा लाया गया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।

173. मामा उग्गज्जम सुत्व (मेरी पेशकश सुनकर, प्रतापी, महान ऋषि, सवार हुए), मेरी पेशकश सुनकर स्वेच्छा से आगे आए; यही संबंध है। बाकी का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा उत्तिया का
समाप्त हो गया है

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 29. थेरा एकांजलिका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.129. एकंजलिका 525
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.129. थेरा एकंजलिका की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

29. एकंजलिका 525

मैंने सुनहरे संबुद्ध को बाजार से गुजरते हुए देखा, विपस्सी, शीर्ष कारवां नेता, पुरुषों में वीर, (महान) मार्गदर्शक,526 अनभिज्ञ-संरक्षक,527 तटस्थ व्यक्ति।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 525 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 526 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
527 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

हे महान वाद-विवादकर्ता, हे महान ऋषि, (और) प्रसन्न होकर, मन की प्रसन्नता से, मैंने एक बार अपने हाथ जोड़े। (1-2) (994-995)
जब से मैंने एक बार हाथ जोड़े हैं, तब से इक्यावन युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है; यही प्रणाम करने का फल है। (3) (996)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (997)
इस प्रकार पूज्य एकंजलिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
एकंजलिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
29. थेरा एकंजलिका की जीवनी पर टीका।
सुवन्नवन्नम् से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा एकंजलिका की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और इस-उस जन्म में एक परिवार में, विपस्सी बुद्ध के समय में, पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, वे तीनों रत्नों के प्रति अत्यंत श्रद्धावान हो गए, भिक्षा मांगने के लिए विपश्यक विपस्सी से मिले

और श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उस पुण्य कर्म के कारण उन्हें जन्म-मृत्यु के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करना पड़ा, और वे सर्वत्र आदर के पात्र हो गए; दोनों प्रकार के सुखों का भोग करने के बाद, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिए। शासन व्यवस्था से प्रसन्न होकर उन्होंने भिक्षु का दीक्षा ली, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अरहत पद पर आसीन हुए। पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों के कारण वे थेरा एकंजलिका के नाम से प्रसिद्ध हुए।

180. अपने पूर्व कर्म को याद करके और उसे हथेली पर आंवले के फल के समान देखकर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को गंभीर उच्चारण (उदान) द्वारा प्रकट करने के लिए सुवन्नवन्नम् से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया: विपस्सिम सत्तवाहग्गम् (विपस्सी, कारवां का मुखिया) वह जो व्यापारियों को रेगिस्तान (कंटार) पार कराता और सहायता करता है; इस प्रकार, सत्तवाहो (कारवां का मुखिया); पार कराता है, पार कराता है, पार कराता है, खींचता है और रेतीले रेगिस्तान, लुटेरों के क्षेत्र, अकाल क्षेत्र, जलहीन रेगिस्तान, राक्षस क्षेत्र और कम भोजन वाले रेगिस्तान से दूर सुरक्षित भूमि तक पहुँचाता है; यही अर्थ है। वह कौन है? वह सबसे बड़ा व्यापारी है। सबसे बड़े व्यापारी, कारवां के मुखिया से समानता के कारण, यह तेजस्वी भी कारवां का मुखिया है। इसी प्रकार, वास्तव में, वह उन प्राणियों को, जो तीन श्रेणियों के ज्ञान (बोधि) की आकांक्षा रखते थे, जिन्होंने अपने पुण्य कर्मों को समेट लिया था, जन्म के रेगिस्तान, वृद्धावस्था के रेगिस्तान, रोग के रेगिस्तान, मृत्यु के रेगिस्तान, चिंता, विलाप, कष्ट, अप्रसन्नता और निराशा के रेगिस्तान और समस्त संसार के रेगिस्तान से पार कराकर निर्वाण की सूखी भूमि तक पहुँचने देते हैं; यही अर्थ है। सत्थवाहाग्गम (सर्वोच्च कारवां नेता) वह प्रमुख, सर्वश्रेष्ठ और मुख्य कारवां नेता भी हैं; इस प्रकार, सत्थवाहाग्गो (प्रमुख कारवां नेता) वह प्रमुख कारवां नेता विपस्सी, आत्मप्रबुद्ध बुद्ध हैं; यही संबंध है। नरवरं विनायकम् (उत्कृष्ट पुरुष, नेता) मनुष्यों में अथक प्रयास करने वाले हैं; इस प्रकार, नरवीर (साहसी पुरुष) उन्हें। वह अपने पुण्य कर्मों से परिपूर्ण प्राणियों को निर्वाण नगर तक विशिष्ट रूप से नेतृत्व करता है और पहुँचाता है; अतः, उसे विनयको (विशेष नेता) कहा जाता है।

181. अदन्तदमनम् तादि (अनियंत्रित प्राणियों को वश में करने वाला) वह उन अनियंत्रित प्राणियों को वश में करता है, जिनके शरीर, मुख और मन के द्वार कामवासना, क्रोध, मोह आदि जैसी विकृतियों से ग्रस्त हैं; इस प्रकार अदन्तदमनम् (अनियंत्रित प्राणियों को वश में करने वाला) वह; वांछनीय और अवांछनीय दोनों ही मामलों में अविचल होने जैसे गुणों से सुसज्जित; इस प्रकार, तादि (ऐसा) वह; महावादिम महामतिम् (महान दृष्टिधारी और महान बुद्धि वाला) अपने और दूसरों के मतधारियों के बीच, क्योंकि वह अपने समान और श्रेष्ठ व्यक्तियों से रहित है, वह अम्हावादी (महान दृष्टिधारी) है; जिसकी बुद्धि मेरु पर्वत के समान विशाल पृथ्वी के समान है, वह अम्हामति (अत्यंत बुद्धि वाला) है; वह महावादिम महामतिम् आत्मप्रबुद्ध बुद्ध, इस प्रकार, विशेष रूप से इसके साथ समानता स्थापित करता है। शेष तो सहजता से समझ में आता है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा एकंजलिका का
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 30. थेरा खोमदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.130. खोमदायका 528
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.130. थेरा खोमदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

30. खोमदायका 528

उस समय मैं बंधुमती नगर में व्यापारी के रूप में रहता था। इस प्रकार अपनी पत्नी का भरण-पोषण करते हुए मैंने अपार धन-संपत्ति के बीज बोए। (1) (998)
मैंने पुण्य कमाने के उद्देश्य से विपस्सी (जिन्हें विपस्सी शिक्षक के नाम से जाना जाता है) को एक खोमा वस्त्र दान किया।529 (2) (999)
उस खोमा वस्त्र को देने के बाद से इक्यावन युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला; यही वस्त्र देने का फल है। (3) (1000)
सत्ताईस युग पहले मैं सिंधवासंदना था, 530 सात रत्नों का स्वामी, (और) चारों महाद्वीपों का स्वामी। (4) (1001)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 528 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 529 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
530 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1002)
इस प्रकार पूज्य खोमदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
खोमदायक थेरा की कथा समाप्त। सारांश: सुभूति और उपवान, शरण, शीलगाहक, अन्नसंसावक, धूप, पुलिन और उत्तिया। तीसरे समूह में अंजली और खोमदयी, दस हैं। कुल मिलाकर एक सौ पचासी श्लोक कहे गए हैं। सुभूति अध्याय, तीसरा।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
30. थेरा खोमदायक की जीवनी पर टीका।
नागरे बंधुमतिया से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा खोमदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक पारिवारिक घर में जन्म लिया। वयस्क होने पर, वे शासन के नियमों का पालन करते हुए अत्यंत धर्मनिष्ठ थे, तीनों रत्नों के प्रति समर्पित थे, सत्य को सुनते थे और विपस्सी की उपस्थिति में पवित्र मन से खोम वस्त्र अर्पित करते थे। उसी भेंट को आधार बनाकर, उन्होंने जीवन भर पुण्य कर्म किए और उसके बाद स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। छह दिव्य लोकों में बार-बार दिव्य आनंद का अनुभव करने के बाद, उन्होंने वहां से प्रस्थान किया और मानव जगत में विश्वराज आदि अनेक प्रकार की मानवीय समृद्धि का अनुभव किया। जब उनके पुण्य कर्मों का पूर्ण विकास हुआ, तो उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। वयस्क होने पर, उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का अध्ययन किया, धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त किया। उनके द्वारा किए गए पुण्य कर्म के नाम पर वे थेरा खोमदायक के नाम से प्रसिद्ध हुए।
184. अपने पूर्व कर्म को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने 'नागरे बंधु मतिया' से शुरू होने वाला श्लोक बोला, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व कर्म का वर्णन किया। यहाँ 'बंधु' का अर्थ रिश्तेदार है; जिस नगर में वे रिश्तेदार आपस में रहते हैं, उस नगर को 'बंधुमती' कहा गया है; 'रोपेमि बीजसंपदम्' (मैंने सफल बीज बोया) का अर्थ है: मैंने दान, नैतिक उपदेश आदि जैसे पुण्य के बीजों को बोया और उनकी समृद्धि स्थापित की।
जीवनी पर टिप्पणी
खोमदायका थेरा का समापन हो गया है।
तीसरे अध्याय पर टिप्पणी

सुभूति का समापन हो गया है।
चौथे पाठ पर टिप्पणी
अवसर समाप्त हो गया है।

4. कुण्डधान पर अध्याय

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 31. थेर कुंडधान

<<<< पिछला । अगला >>>>

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
कुण्डधान अध्याय, चौथा

---

31. कुण्डधान 531

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से मैं सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, आत्म-एकत्व प्राप्त व्यक्ति, सर्वोच्च पुरुष के पास गया, जिन्होंने एक सप्ताह एकांतवास में बिताया था। (1) (1003)
उनके उठने का समय देखकर, मैं केले के फलों का एक बड़ा गट्ठा लेकर महान ऋषि (तत्कालीन) पद्ममुत्तरा के पास पहुँचा। (2) (1004)
हे भगवान, विश्व-प्रधान, महान ऋषि, उस फल को (जो मैंने उन्हें दिया था) स्वीकार करके, (उस समय) उसे खाकर मेरे हृदय को (अत्यंत) प्रसन्नता हुई। (3) (1005)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 531 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

भोजन करने के बाद, सम्बुद्ध, अद्वितीय, कारवां-नेता, (तब) अपनी सीट पर बैठकर मेरे बारे में ये श्लोक बोले: (4) (1006)
"इस पर्वत पर स्थित जंगल में रहने वाली वे आत्माएँ, साथ ही अतीत और भविष्य की आत्माएँ भी, मेरी बातें सुनें। (5) (1007)
मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने बुद्ध की (अच्छी तरह) सेवा की, जैसे शेर, पशुओं का राजा; (आप सभी) मेरी बात सुनो: (6) (1008)
यह (भविष्य में) ग्यारह बार देवताओं का राजा होगा। और चौंतीस बार वह (कानून के) पहिए को घुमाने वाला राजा होगा। (7) (1009)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (8) (1010)
कुछ (बौद्ध) भिक्षुओं, जो गुणी अरहंत हैं, को शाप देने के कारण, उस बुरे कर्म के फलस्वरूप उसे (बदनाम) नाम मिलेगा। (9) (1011)
उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी, धर्म की वैध संतान, वह (गौतम का) अनुयायी होगा जो कुण्डधान नाम से जाना जाएगा। (10) (1012)
एकांत में (स्वयं को) बांधकर,533 ध्यान करने वाला, समाधि-प्रेमी, गुरु को संतुष्ट करते हुए, (अब) मैं दोषों से मुक्त जीवन जी रहा हूँ। (11) (1013)
भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित,534

---

532 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
533 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह.

रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 534 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ एक ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

उनके आसपास के शीर्ष अनुयायियों में से, बुद्ध535 उस536 सभा में बैठे (और) मुझे वहाँ का टिकट537 लेने के लिए कहा। (12) (1014)

मैंने (अपना) चोगा एक कंधे पर रखा (और) विश्व-नेता की पूजा की, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता538 के सामने मैंने (तब) पहला (ऐसा) टिकट लिया। (13) (1015)

उस कार्य के कारण, दस हजार (लोकों) को कंपाने वाले भगवान ने भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए मुझे उस सर्वोच्च स्थान पर स्थापित किया। (14) (1016)

बोझ उठाने के मेरे प्रयास ने मुझे आसक्तियों से मुक्ति दिलाई। (अब) मैं बुद्ध के युग में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ।539 (15) (1017)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) (1018)

इस प्रकार पूज्य कुण्डधान थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आदरणीय कुण्डधान थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

31. थेरा कुण्डधान की जीवनी पर टीका।

सत्ताहम्पतिसल्लीनम् से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा कुन्दधाना की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की सेवा में समर्पित कर्म किए, पुनर्जन्मों के चक्र (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्म संचित किए, और इस-उस जन्म में हंसवती नगर के एक परिवार में, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में पुनर्जन्म लिया। उपर्युक्त प्रकार से, उन्होंने प्रतापी बुद्ध के पास जाकर सत्य (धम्म) सुना, गुरु को प्रथम षडाष्टक (सलाक) लेने वालों में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान देते हुए देखा, उस उच्च पद की आकांक्षा की, और अपनी उस आकांक्षा के अनुरूप पुण्य कर्म करते हुए विचरण किया। एक दिन, उन्होंने निरोध की समाधि से उठे हुए परम पूज्य पद्ममुत्तरा को आम की गुठली से सना हुआ एक बड़ा केला भेंट किया; परम पूज्य ने उसे स्वीकार किया और उसका भोजन किया। उस पुण्य कर्म के कारण उन्होंने देवताओं के बीच दिव्य प्रभुत्व प्राप्त किया और कस्सपा बुद्ध के समय पृथ्वी देवता के रूप में पुनर्जन्म लिया। दीर्घायु बुद्धों के लिए, अर्थात्, कोई नियमित अर्धमासिक उपवास (उपोसथ) नहीं होता था। इसी प्रकार, परम पूज्य विपस्सी प्रत्येक छह वर्ष के अंतराल पर उपवास (उपोसथ) करते थे। परन्तु दशबल कस्सपा प्रत्येक छह माह में विनय के 227 अनुशासनात्मक नियमों, पातिमोक्खा का पाठ करते थे। उस पातिमोक्ख के पाठ के समय, दो साथी भिक्षु, जो एक ही स्थान पर रहते थे, वहाँ यह कहते हुए गए: "हम उपवास रखेंगे (उपोसथ)।" इस पृथ्वीदेव ने मन ही मन सोचा: "इन दोनों भिक्षुओं की मित्रता अत्यंत दृढ़ है; वास्तव में यह कैसे है? क्या किसी के दखल देने से यह टूट जाएगी या बरकरार रहेगी?" वह उनके बीच अवसर की तलाश में उनसे कुछ दूर चले गए।

फिर, दो थेरों में से एक ने अपना कटोरा और वस्त्र दूसरे को सौंप दिया, और पानी की उपलब्धता वाली जगह पर जाकर स्नान किया, हाथ-पैर अच्छी तरह धोए और एक झाड़ी के पास से बाहर आया। पृथ्वी-देवता थेरे के पीछे-पीछे, कदम-दर-कदम, झाड़ी से बाहर आए। उन्होंने अत्यंत सुंदर स्त्री का रूप धारण कर लिया था, और अपने बालों को सुलझाकर, उन्हें ठीक से बांधकर, मानो अपनी पीठ पर कोमल मिट्टी लादकर, अपने वस्त्रों को संवारकर और निचले वस्त्र को पहनकर बाहर आ रहे थे। उनके सहयोगी थेरा, जो एक तरफ खड़े थे, जैसे ही उन्होंने यह बात देखी, वे अप्रसन्न हो गए और सोचने लगे, "इस भिक्षु के साथ मेरा लंबे समय से चला आ रहा घनिष्ठ संबंध अब नष्ट हो गया है; यदि मुझे ऐसे दुराचार के बारे में पता होता, तो मैं इतने लंबे समय तक उसके (या इसके) साथ संबंध नहीं रखता।" दूसरे के वापस आते ही उन्होंने कहा, "मित्र! अपना कुंड और वस्त्र वापस ले लो; मैं तुम्हारे जैसे दुष्ट व्यक्ति के साथ एक ही यात्रा पर नहीं जाऊंगा।" यह सुनकर उस विवेकशील भिक्षु को ऐसा लगा मानो दूसरे के तीन दांत वाले भाले से उसके हृदय में छेद कर दिया गया हो। इसके बाद उन्होंने अपने मित्र से कहा, "मित्र! तुम क्या कह रहे हो? मुझे याद नहीं कि मैंने इतने लंबे समय में दुक्कात् अपराध तक किया हो; फिर भी तुम मुझे अब बता रहे हो कि मैं पापी हूं; तुम्हें ऐसा क्या दिखाई देता है?" प्रतिक्रिया यह थी: "किसी और के देखने का क्या फायदा? क्यों? तुम एक जगह पर थे, एक महिला के साथ, जो इस तरह से सजी-धजी थी, और तुम दोनों साथ-साथ वहाँ से निकले।"

हालाँकि उसने अपने मित्र के आरोप के जवाब में तीन बार कहा: "मित्र! ऐसा मेरे लिए नहीं है; मैंने ऐसी कोई महिला नहीं देखी"; फिर भी दूसरे थेरे ने अपने मित्र के स्पष्टीकरण पर विश्वास नहीं किया, उसने स्वयं जो देखा उसे ही सत्य मान लिया और उसी पर कायम रहते हुए, उसके साथ उसी यात्रा पर नहीं गया, और गुरु के पास जाने के लिए दूसरे मार्ग से चल पड़ा। दूसरा भिक्षु भी गुरु के पास जाने के लिए दूसरे मार्ग से चला गया।

इसके बाद, जब भिक्षुओं का समूह दीक्षा हॉल में प्रवेश कर रहा था, तब उस भिक्षु ने उपोसथा हॉल के शीर्ष पर अपने पुराने मित्र को देखा, उसे पहचान लिया और मन ही मन कहा: "इस व्रत सभा में एक दुष्ट भिक्षु है; मैं उसके साथ व्रत नहीं रखूंगा"; वह उपोसथा हॉल छोड़कर बाहर खड़ा हो गया। फिर, पृथ्वी-देव ने मन ही मन कहा; "मुझसे बहुत हानि हुई है", एक वृद्ध भक्त के वेश में उनके समक्ष जाकर उसने पूछा: "हे पूज्यवर! मेरे स्वामी इस स्थान पर क्यों खड़े हैं?" "मैं बाहर इसलिए खड़ा हूँ क्योंकि:- "हे भक्त! एक दुष्ट भिक्षु इस उपोस्थल में प्रवेश कर गया था; मैं उसके साथ व्रत नहीं रखता।" पृथ्वीदेव ने उत्तर दिया: "हे पूज्यवर! कृपया इसे इस प्रकार न लें; यह भिक्षु सर्वांगीण शुद्ध नैतिक आचरण वाला है; मैं वही स्त्री हूँ जिसे आपने देखा था; आपके बारे में जानने के उद्देश्य से मैंने कहा था: "इन थेरों की मित्रता वास्तव में दृढ़ है, है ना? यह कार्य मैंने इसलिए किया क्योंकि मैं यह देख रही थी कि आपकी मित्रता टूटेगी या नहीं।" थेरे ने कहा: "लेकिन आप तो अच्छे मनुष्य हैं।" उत्तर था: "हे पूज्यवर! मैं पृथ्वी-देवता हूँ।" युवा देवता बोलते-बोलते ही दिव्य शक्ति से खड़े हो गए, थेरा के चरणों में गिर पड़े और उनसे क्षमा मांगते हुए कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया मुझे क्षमा करें; थेरा में ऐसा कोई दोष नहीं है; कृपया उपोषथा संपन्न करें"; और थेरा से व्रत सभा में प्रवेश करने का आग्रह किया। तब थेरा ने उसी स्थान पर व्रत संपन्न किया। यद्यपि उन्होंने अपने पुराने मित्र के साथ मित्रता का नवीनीकरण करने के लिए एक ही स्थान पर निवास नहीं किया। उन्होंने थेरा के इस दोष के बारे में कुछ नहीं कहा। बाद में, प्रश्नकर्ता थेरा ने विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) के कर्मों का पालन करते हुए अर्हतत्व प्राप्त किया।

उस कर्म के फलस्वरूप, पृथ्वी देवता दो बुद्धों के बीच के एक पूर्ण काल (एक बुद्धान्तर) तक नरक से मुक्त नहीं हुए। परन्तु यदि किसी समय वे मानव जगत में आएँ, तो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी दोष उन पर आ पड़ेगा। उनका पुनर्जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ, उसी समय जब हमारे प्रतापी बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने उनका नाम दानमानव रखा। यौवन प्राप्त करने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया, गुरु के वृद्धावस्था के समय उनके सत्य (धम्म) उपदेश सुने, विधिवत श्रद्धा अर्जित की और भिक्षु बन गए। जिस दिन से उनका दीक्षा संस्कार हुआ, उसी दिन से एक सुसजपित युवती उनके साथ गाँव में प्रवेश करती थी; जब वे गाँव से बाहर जाते थे, तो वह भी उनके साथ जाती थी; जब वे अपने मठ में प्रवेश करते थे, तो वह भी उनके साथ जाती थी; जब वे खड़े होते थे, तो वह भी उनके साथ खड़ी होती थी। इस प्रकार, वह लगातार उसका पीछा करती हुई प्रतीत होती थी। थेरा उसे नहीं देख पाती थी। हालाँकि, उसके पूर्व कर्म के बुरे परिणाम के कारण, वह दूसरों को दिखाई देने लगी थी।

गाँव में चावल की दलिया भिक्षा देते समय, महिलाओं ने उनका उपहास उड़ाते हुए कहा: "आदरणीय महोदय! उबले हुए चावल का यह करछुल आपके लिए है; दूसरा करछुल हमारी इस महिला साथी के लिए है।" थेरा को बहुत दुख हुआ। मठ लौटने पर भी, नौसिखिए और युवा भिक्षु उनके चारों ओर जमा हो गए और उनका उपहास उड़ाते हुए कहा: "धान कोन्त (?) कोन्द बन गया है।" (पीटीएसडी में कोन्द, कुन्द है, एक टेढ़ा-मेढ़ा कोन्त (?) एक गंदी आदतों वाला आदमी।) फिर, उसी परिस्थिति में, उनका नाम थेरा कुन्दधान पड़ा। वह उठ खड़ा हुआ और उनके द्वारा लगाए गए आरोप (केली) को सहन न कर पाने के कारण क्रोधित हो गया और उनसे कहा, "तुम सब कुटिल (कोण्डा) हो, तुम्हारा गुरु (उपज्जा) भी कुटिल (कोण्डा) है और तुम्हारा शिक्षक भी।" तब उन्होंने गुरु को उसके बारे में बताया, "आदरणीय गुरु! कुण्डधान ने युवा भिक्षुओं के साथ अभद्र (या कठोर) शब्द कहे।" गुरु ने उसे बुलवाया और पूछा, "हे धान! क्या यह सच है कि तुम युवा भिक्षुओं के साथ कठोर शब्द कहते हो?" जब उसने उत्तर दिया, "हे प्रतापी! हाँ, यह सच है", तो गुरु ने उससे पूछा, "तुमने ऐसा क्यों कहा?" गुरु ने उत्तर दिया, "आदरणीय गुरु! मैंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि मैं निरंतर उत्पीड़न सहन नहीं कर पा रहा था।" गुरु ने आगे कहा, "तुमने आज तक अपने पूर्व कर्म का निवारण (जिरापेटि) नहीं किया है; हे भिक्षु! मत करो।" अगर आप फिर से इस तरह कठोर शब्द बोलेंगे, तो बुद्ध ने निम्नलिखित श्लोक कहे:-

किसी से भी कठोर शब्द न बोलें;
जिनसे बात की गई वे भी यही बात कहेंगे।
उसके पास लौट आना; झगड़ालू (या कलहपूर्ण)
शब्द सचमुच पीड़ादायक होते हैं; प्रतिशोध
वह उसे व्याप्त कर लेगा (या उसे प्रभावित करेगा)।
अगर कोई खुद नहीं हिलता, जैसे
तांबे के संगीत वाद्ययंत्रों के एक जोड़े के लिए

झांझों को पास-पास बजाने पर, यह एक बन गया
लगभग निर्वाण प्राप्त कर लिया है;
आपको किसी भी प्रकार का कोई विवाद (सारम्भ) नहीं है।

उन्होंने राजा कोसल से भी इस मामले पर बात की, विशेष रूप से इस बात पर कि थेरा एक स्त्री के साथ घूमता था। राजा ने अपने दूतों को यह कहते हुए भेजा: "देखो, जाकर मामले की जाँच करो"; वह स्वयं अपने कुछ साथियों के साथ थेरा के पास गया और एक तरफ खड़ा होकर देखने लगा। उस समय थेरा अपनी कढ़ाई कर रहा था। वह स्त्री भी पास ही कहीं खड़ी हुई प्रतीत हुई।

यह देखकर राजा उस स्थान पर गया जहाँ वह खड़ी थी और मन ही मन कहने लगा: "यह बात तो सच है।" जब राजा उसके पास पहुँचा, तो वह मानो थेरा की झोपड़ी में प्रवेश कर चुकी थी। राजा भी उसके साथ झोपड़ी में गया और चारों ओर देखा, तथा कुछ भी न देखकर उसने यह धारणा बनाई: "यह स्त्री नहीं है, यह उसके बुरे कर्मों का फल अवश्य होगा।" सबसे पहले तो, यद्यपि वह थेरा के पड़ोस से गुजरी, उसने थेरा को प्रणाम नहीं किया। जब उसे उसकी स्थिति का पता चला, तो वह झोपड़ी से बाहर निकली, थेरा को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गई और पूछा: "क्या आप भिक्षा भोजन से तृप्त नहीं हुए?" थेरा ने उत्तर दिया: "हे महाराज! यह उचित है।" राजा ने उत्तर दिया: "आदरणीय महाराज! मैं स्वामी जी का कथन समझ गया हूँ; आपको इस प्रकार के दुराचारी के साथ भटकते देखकर कौन प्रसन्न होगा? अब से आपको कहीं भी जाने की कोई आवश्यकता नहीं है; मैं आपको चार प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराऊँगा; कृपया अपनी बुद्धि का ध्यान रखने में लापरवाही न करें।" राजा ने थेरा को नियमित रूप से भोजन उपलब्ध कराया। थेरा ने राजा का समर्थन प्राप्त किया, पर्याप्त भोजन मिलने से उसका मन एकाग्र हो गया, उसे विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) प्राप्त हुई और उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद वह स्त्री लुप्त हो गई।

उस समय, उग्ग नगर में विधर्मी (या विधर्मी) परिवार में रहते हुए, महासुभद्दा ने मन ही मन कहा, "हे गुरु, मुझ पर दया और करुणा करें।" उन्होंने स्वयं को उपवास में रखा, सांसारिक बंधनों से मुक्त हुए, महल के तल पर खड़े होकर सत्य की घोषणा की, "ये फूल भीतर रहने के बजाय दशबल के सिर पर छत्र (या आच्छादन) का रूप धारण कर लें! इस विचार (या संकेत) के साथ, कल दशबल और पाँच सौ भिक्षुओं को मेरा भिक्षापान ग्रहण करें!" और उन्होंने चमेली के आठ मुट्ठी फूल बिखेर दिए। सत्य धर्म का प्रचार करते समय, फूल जाकर गुरु के सिर पर छत्र का रूप धारण कर लिया। चमेली के फूलों के उस आच्छादन को देखकर, गुरु ने मन ही मन सुभद्दा का भिक्षापान स्वीकार कर लिया, और अगले दिन सूर्योदय के समय, थेरा आनंद से कहा, "आनंद! आज हम भिक्षा भोजन के लिए दूर-दूर तक भटकेंगे; साधारण (पुथुज्जन) भिक्षुओं को कुछ न देकर, सारा (सलाका) कुलीन भिक्षुओं को दे दो। थेरा ने भिक्षुओं को इस प्रकार सूचित किया: "मित्र! आज गुरु भिक्षा भोजन के लिए दूर स्थान पर जा रहे हैं; साधारण भिक्षुओं को न जाने दो, कुलीन भिक्षुओं को ही सारा (सलाका) देना चाहिए।" आनंद ने तार्किक चिंतन करते हुए कहा: "गुरु मुझे ऐसे भिक्षुओं को सारा (सलाका) देने के लिए नहीं कहते; उन्होंने मुझे केवल कुलीन (आर्य) भिक्षुओं को ही देने के लिए कहा है।" आनंद ने जाकर गुरु को यह बात बताई। गुरु ने कहा: "तुम्हारे लिए अच्छा होगा कि तुम सारा (सलाका) उस थेरा को दे दो जिसने तुम्हें इसे लाने के लिए कहा है।" थेरा आनंद ने विचार किया: "यदि कुन्दधाना को सारा (सलाका) देना उचित नहीं है, तो गुरु ने इसे मना किया होगा;" यहां कोई कारण होगा' और ****(पृष्ठ 96) से कहा कि वह बाद वाले को पर्ची दे देगा और उसके जाने का आदेश देगा। कुन्दधाना अपने जाने से पहले ही उच्च ज्ञान के आधार, चौथे ध्यान में प्रवेश कर गया, अपनी जादुई शक्ति से आकाश में खड़ा हो गया, अपना हाथ बढ़ाया और पर्ची (सलाका) को पकड़ लिया और कहा: "मित्र आनंद! इसे मेरे पास लाओ; गुरु ने मुझे समझ लिया है; गुरु ने मुझ जैसे भिक्षु को पहले लॉटरी (सलाका) लेने से मना नहीं किया। गुरु ने उस भिक्षु की जीवनी लिखकर, इस युग में लॉटरी (सलाका) लेने वालों में, सबसे पहले, उस थेरा को सर्वोच्च स्थान दिया। क्योंकि इस थेरा ने राजसी समर्थन प्राप्त करके, उचित पोषण सुविधा प्राप्त करने और स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के लिए कर्म करने के कारण एकाग्रचित्त हो गए, और उपनिषद (अरहतत्व) प्राप्त करने के लिए पर्याप्त योग्यता के कारण छह प्रकार के उच्च ज्ञान के स्वामी बन गए। इसके बावजूद, वे साधारण (पुथुज्जन) भिक्षु, जो इस थेरा के गुणों को नहीं जानते थे, उन्होंने इस प्रकार संदेह व्यक्त किया: "यह व्यक्ति सबसे पहले लॉटरी (सलाका) लेता है; ऐसा क्यों है?" उनके उस संदेह को दूर करने के लिए, थेरा आकाश में चले गए, और अपनी जादुई शक्ति का प्रदर्शन किया।उन्होंने "पंच चिंदे" से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला ताकि वे अपने अरहतत्व को उस तरीके से प्रकट कर सकें जिस तरह से अरहतत्व को प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

1. इस प्रकार अपने पुण्य कर्मों के पूर्ण भार के अनुरूप अर्हत बनकर और सर्वोच्च पद प्राप्त करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और 'सत्ताहम पटिसल्लीनम्' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि प्रसन्नतावश किए गए अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वहाँ वे सात दिनों तक एकांतवास में निरोध (सम्मोहन) की अवस्था में रहे; यही इसका अर्थ है। शेष का अर्थ सरल है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा कुण्डधान का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 32. थेरा सगाता

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.132. सागत
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.132. थेरा सागत की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

32. सागत

उस समय मैं शोभिता नाम से एक ब्राह्मण पुरुष था। अपने छात्रों द्वारा सम्मानित होकर मैं आश्रम चला गया। (1) (1019)
भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित, (दाहिनी ओर) उस समय भगवान, आश्रम के द्वार से निकलते हुए, वहाँ खड़े थे, परम पुरुष। (2) (1020)
इससे बना वस्त्र।

---

535 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 536 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ 537 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel) 538 शाब्दिक अर्थ, "गया" 539 PTS sañjālesi के लिए BJTS के साथ sañcālesi पढ़ना

मैंने (तब) उन्हें देखा, संबुद्ध, शांत पुरुष, शांत अनुयायियों के साथ। अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए मैंने विश्व-नेता की प्रशंसा की: (3) (1021)
“जितने भी वृक्ष हों, वे सब दृढ़ पृथ्वी में उगते हैं। उसी प्रकार, बुद्धिमान प्राणी भी विजेता की व्यवस्था में ही विकसित होते हैं। (4) (1022)
हे ज्ञानी, कारवां-नेता, आप बहुत से लोगों को गलत रास्ते से हटा देते हैं, उन्हें सही रास्ता बताकर उनका मार्गदर्शन करते हैं। (5) (1023)
पालतू, पालतू लोगों से घिरा हुआ, ध्यान करने वाला, समाधि-प्रेमियों से, परिश्रम पर तुले लोगों से (और) शांतिप्रिय लोगों से, तटस्थ लोगों से, (6) (1024)
आप अपने सभी अनुयायियों के गुणों से सुशोभित हैं, आप तेजस्वी हैं। आपका प्रकाश उगते सूरज की तरह हर जगह फैलता है। (7) (1025)
मेरे हृदय में प्रसन्नता देखकर, भिक्षुओं की सभा में खड़े महान ऋषि पद्ममुत्तरा ने ये श्लोक कहे (तब): (8) (1026)
“मैं उस ब्राह्मण का विवरण दूंगा जिसने आनंद उत्पन्न किया है। वह एक लाख युगों तक देवताओं के लोक में आनंदित रहेगा। (9) (1027)
तुसिता स्वर्ग से गिरकर, अपनी पुण्य जड़ों से प्रेरित होकर, वह धन्य में त्याग करेगा।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 540 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 541 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
542 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 543 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

एक, गौतम का विधान। (10) (1028)
उस कर्म के फलस्वरूप (11) (1029) वह अर्हंत पद प्राप्त करेगा। वह गुरु का अनुयायी होगा और सागत के नाम से जाना जाएगा।
त्याग करने के बाद वह शरीर से किए गए बुरे कर्मों से बचेगा। शब्दों से किए गए बुरे कर्मों से बचकर वह अपनी आजीविका को शुद्ध करेगा। (12) (1030)
मैं (अब) उस तरह से जी रहा हूँ, सत्ता के तत्वों में निपुण। सभी अशुद्धियों को भली-भांति जानते हुए, मैं (अब) अशुद्धियों से मुक्त होकर जी रहा हूँ। (13) (1031)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) (1032)
ये श्लोक वास्तव में पूज्य सागत थेरा ने कहे थे।
सागत थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
32. थेरा सागत की जीवनी पर टीका।
सोभितो नाम नामेन से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सागत की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति पाने के लिए लाभकारी कर्मों का संचय किया और प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया। सभी प्रकार के विज्ञानों में निपुणता प्राप्त करके वे सोभिता नाम से प्रसिद्ध हुए। वे तीनों वेदों, निघंडु और केतुभ वेदों, उनके वर्णानुक्रमिक विभाजनों और इतिहास के पंचम ग्रंथ के पद-दर-पद, उनकी व्याख्याओं के ज्ञाता थे तथा एक महान व्यक्तित्व के सांसारिक गुणों से भलीभांति परिचित थे। एक दिन, उद्यान द्वार से गुजरते हुए, उनकी मुलाकात महान पुरुष के बत्तीस गुणों से परिपूर्ण, तेजस्वी पद्ममुत्तरा से हुई। वे अत्यंत श्रद्धावान हो गए और अनेक प्रकार से उनकी स्तुति और गुणगान किया। उनकी स्तुति सुनकर, तेजस्वी पद्ममुत्तरा ने उन्हें यह भविष्यवाणी दी: "भविष्य में वे गौतम बुद्ध के शिष्य सागत बनेंगे।" इसके बाद उन्होंने पुण्य कर्म किए, अपने जीवनकाल तक विराजमान रहे और वहां से मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ। एक लाख युगों (कप्पा) तक दिव्य और मानव जगत दोनों में समृद्धि का आनंद लेने के बाद, उनका पुनर्जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ, जब बुद्ध का जन्म हुआ। उनके माता-पिता प्रसन्न हुए और कहा: सुजाता (कुलीन कुल का) आया है, और उन्होंने उसका नाम सागत रखा। वे इस व्यवस्था से अत्यंत प्रसन्न हुए, भिक्षु बन गए, विपश्यना प्राप्त की और अर्हतत्व प्राप्त किया।
17. इस प्रकार पुण्य कर्मों के भार के अनुसार अर्हतत्व प्राप्त करने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए 'शोभितो नाम नामेण' से शुरू होने वाला श्लोक पढ़ा। वहीं, जब पुण्य कर्मों का भार पूर्ण हो गया, तब वे शोभिता नाम से ब्राह्मण बन गए; इस प्रकार संबंध स्थापित हुआ।
21. विपथा उद्धरित्वाना (गलत मार्ग से खींचकर) विपरीत मार्ग से खींचकर और हटाकर, यात्रा (या गलत मार्ग) की; पथम् आचिक्खसे (आप मार्ग का संकेत देते हैं) हे सर्वज्ञ बुद्ध! आप मार्ग का वर्णन, उपदेश, प्रदर्शन, विश्लेषण और प्रकटीकरण करते हैं, जो पुण्य पुरुष की निर्वाण की प्राप्ति और यात्रा का मार्ग है; यही अर्थ है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सागत का अंत हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.133. महा-कच्चाना 546
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.133. थेरा महाकच्चाना की जीवनी पर टीका

Unmute
Advanced Settings
FullscreenPauseRewind 10 SecondsUp Next

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

33. महा-कच्चाना 546

मैंने इसे सोने से ढककर भगवान पद्ममुत्तरा के "पदुम" नामक मंदिर में एक सिंह-सिंहासन बनवाया। (1) (1033)
रत्नों से बनी छतरी और बैल की पूंछ से बना पंखा लेकर, मैंने उन्हें (वहाँ) उस बुद्ध के लिए रखा, जो जगत के सगे-संबंधी, तटस्थ हैं। (2) (1034)
पृथ्वी भर के सभी छोटे देवता वहाँ एकत्रित हुए। "वह कर्मों के फल बताएगा।"

---

544 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित 545 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 546 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपादान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

छतरियों और सीटों के 547 रत्नों के। (3) (1035)
जब गुरु इस प्रकार बोल रहे हों, तो हम सब कुछ सुनेंगे। हम बुद्ध के युग में बहुत आनंद उत्पन्न करेंगे।548" (4) (1036)
स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान, स्वयं-एक, सर्वोच्च व्यक्ति, सभा से घिरे हुए549 (तब) ने ये छंद कहे (मेरे बारे में): (5) (1037)
"मैं उस व्यक्ति के बारे में विस्तार से बताऊंगा जिसने मुझे यह सिंहासन दिया है, जो सोने और रत्नों से बना है; तुम सब मेरी बात सुनो: (6) (1038)
हे देवताओं के राजा, वह तीस युगों तक दिव्य शासन करेगा। वह अपने चारों ओर सौ मील के क्षेत्र को अपने प्रकाश से विजय प्राप्त करेगा। (7) (1039)
मनुष्य जगत में आकर वह चक्र चलाने वाला राजा होगा। उसका नाम पभासर होगा (और वह) महान शक्ति का स्वामी होगा। (8) (1040)
जैसे उदय हुआ सौ किरणों वाला (सूर्य), चाहे दिन हो या रात, वह क्षत्रिय अपने चारों ओर आठ हाथ तक प्रकाश फैलाएगा। (9) (1041)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (10) (1042)
तुसिता स्वर्ग से गिरते हुए, (अपनी) पुण्य जड़ों से प्रेरित होकर,

---

547 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

548 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 549 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 550 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

वह ब्रह्मा का संबंधी होगा; उसका नाम कच्चाना होगा। (11) (1043)

संसार का त्याग करने के बाद, वह अरहंत, निष्कलंक हो जाएगा। जगत के दीपक गौतम उसे सर्वोपरि स्थान देंगे। (12) (1044)

वह संक्षेप में प्रस्तुत समस्याओं को विस्तारपूर्वक समझाएगा। इस प्रकार उस समस्या को समझाकर वह उनकी सभी इच्छाओं को पूरा करेगा। (13) (1045)

धनवान कुल में जन्म लेकर, मंत्रों के ब्राह्मण स्वामी बनकर, मैंने अपना धन और अनाज त्यागकर बेघर होकर प्रस्थान किया। (14) (1046)

मैं संक्षेप में प्रस्तुत की गई समस्याओं को विस्तारपूर्वक समझाता हूँ। उनकी सभी इच्छाओं को पूरा करके मैं सर्वश्रेष्ठ द्विपाद प्राणी को संतुष्ट करता हूँ। (15) (1047)

मुझसे संतुष्ट होकर, वीर, आत्म-स्वरूप एक, शीर्ष व्यक्ति, भिक्षुओं की सभा में विराजमान होकर, मुझे उस सर्वोत्कृष्ट स्थान पर विराजमान किया। (16) (1048)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) (1049)

इस प्रकार पूज्य महाकच्चाना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

महाकच्चाना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

33. थेरा महाकच्चाना की जीवनी पर टीका।

पदुमुत्तरा नाथस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा कच्चाना की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले अच्छे (या पुण्य कर्मों) को संचित करने के कारण, वे भी प्रतापी पदुमुत्तरा के समय एक अत्यंत धनी गृहस्थ के घर में पुनर्जन्म लेकर पुनर्जन्म लिए। विकास की आयु (या वरिष्ठता) प्राप्त करने के बाद, एक दिन उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) सुना, जब उन्होंने देखा कि गुरु ने उन विश्लेषकों में एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया है जो संक्षेप में उपदेशित किसी भी बात की विस्तृत व्याख्या कर सकते हैं, तो उन्होंने भी उस पद की आकांक्षा की, दान-पुण्य आदि जैसे पुण्य कर्म किए, देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्मों का भ्रमण किया, महाविज्ञान (विज्जाधर) के भंडार बन गए, जब तेजस्वी सुमेधा आकाश में विचरण कर रहे थे, तब वे एक घने जंगल में बैठे गुरु से मिले, अत्यंत श्रद्धावान हुए और कणिकार पुष्पों से आदर का अर्पण किया।

उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका जन्म-जन्म का चक्र बार-बार चलता रहा और वे दशबाला कस्सपा के समय बनारस के एक परिवार में पुनर्जन्म हुए। जब बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब उन्होंने उनके सम्मान में दस हजार मूल्य की सोने की ईंटें एक स्वर्ण मंदिर की स्थापना स्थल पर अर्पित कीं और यह प्रार्थना की: "हे बुद्ध! मैं जहाँ भी पुनर्जन्म लूँ, मेरा रंग स्वर्णमय हो।" इसके बाद उन्होंने जीवन भर अच्छे कर्म किए, दो बुद्धों के बीच के अंतराल में देवताओं और मनुष्यों के बीच अपने पुनर्जन्म के चक्रों में विचरण किया और जब बुद्ध उदय हुए, तब वे उज्जैन के राजा चंदपज्जोत के निजी पुरोहित (पुरोहित) के घर में पुनर्जन्म हुए। उनके नामकरण के दिन, उनके माता-पिता ने मन ही मन कहा: "स्वर्णमय रंग का हमारा पुत्र अपने साथ अपना नाम लेकर आया है।" इसी कारण उन्हें कंचनमण्व (स्वर्ण बालक) के नाम से भी जाना जाने लगा। वृद्ध होने पर उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया और अपने पिता के निधन के बाद पुरोहित (गुप्त पुरोहित) का पद ग्रहण किया। अपने कुल में वे कच्चन के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

राजा चंदपज्जोत ने बुद्ध के प्रकट होने के बारे में सुना और उन्हें यह कहते हुए भेजा: "गुरुजी! आप वहाँ जाइए और गुरुजी को यहाँ ले आइए।" वे स्वयं आठवें शिष्य थे और गुरुजी के समक्ष उपस्थित हुए। गुरुजी ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। उपदेश के अंत में, उन्होंने

अपने सात शिष्यों के साथ अरहतत्व और विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त किया। तब गुरुजी ने हाथ बढ़ाते हुए कहा: "आओ! भिक्षुओं!" उसी क्षण वे साठ वर्ष के थेरों के समान हो गए, जादुई शक्तियों से निर्मित कुंड और वस्त्र धारण किए, दो उंगली चौड़ी बाल और दाढ़ी रखी। इस प्रकार अपना लाभ पूरा करने के बाद, थेर ने गुरुजी को सूचित किया: "आदरणीय गुरुजी! राजा चंदपज्जोत आपके चरणों में नमन करना चाहते हैं और धर्म का उपदेश सुनना चाहते हैं।" गुरुजी ने उत्तर दिया: "हे भिक्षु! आप स्वयं वहाँ जाइए; आपके जाने पर राजा प्रसन्न होंगे।" थेरा, स्वयं आठवें के रूप में वहाँ गया, राजा को प्रसन्न किया, अवंती के लोगों के बीच विधिवत रूप से व्यवस्था स्थापित करवाई और फिर से गुरु के समक्ष उपस्थित हुआ।

31. इस प्रकार अरहतत्व की सिद्धि प्राप्त करके और सर्वोच्च पद प्राप्त करके उन्होंने कहा: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, जो अर्थ का व्यापक विश्लेषण कर सकता है, वह प्रमुख है, अर्थात् महा कच्चाना", उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया और पद्ममुत्तरनाथस्स से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया ताकि पहले किए गए कर्म को प्रकट किया जा सके, या तो कमलों से ढके होने के कारण या कमल के फूलों के रूप में निर्मित होने के कारण: मंदिर, जो महिमावान के निवास के सुगंधित मठवासी कक्ष के समान श्रद्धापूर्वक अर्पित करने योग्य है; गौतमका, आलवका का मंदिर, उन राक्षसों का निवास स्थान, श्रद्धापूर्वक अर्पण किए जाने के कारण मंदिर कहलाता है; उसी प्रकार, इस तेजस्वी का निवास स्थान भी एक मंदिर कहलाता है; इसे अवशेषों के संग्रहण का मंदिर नहीं समझना चाहिए; वास्तव में, उन्होंने अवशेषों का मंदिर इसलिए नहीं बनवाया क्योंकि परमानंद प्राप्त न कर चुके तेजस्वी के भौतिक अवशेष वहाँ मौजूद नहीं थे: silāsanam kārayitvā (एक पत्थर का आसन बनवाया) पद्मा नामक उस सुगंधित कक्ष में पुष्प अर्पित करने के उद्देश्य से नीचे क्रिस्टल का पत्थर का आसन बनवाया; suvaṇṇana'bhilepayi (उस पर सोना मढ़वाया) जंबोनादा (जंबू नदी) के सोने से उस पत्थर के आसन पर विशिष्ट रूप से मढ़वाया और उसे ढकवाया; यही अर्थ है।

32. रत्नमयम् (रत्नों से निर्मित) सात प्रकार के रत्नों से निर्मित छत्र; पग्गयहा (धारण करके) मैंने बुद्ध के लिए उचित रूप से स्थापित किया, अपने सिर पर याक की पूंछ का पंखा और चामर की उत्तम सफेद पूंछ धारण की; लोकबंधुस्सा तादिनो (संसार के ऐसे सगोत्र के लिए) मैंने बुद्ध की ओर ऐसे गुण (तादि) धारण किए, जो समस्त संसार के सगोत्र के समान हैं; यही इसका अर्थ है। शेष का अर्थ सरल है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा महा कच्चाना का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 34. थेरा कौदायि

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.134. कालोदय 551
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.134. थेरा कालुदयी की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

34. कालोदय 551

मैंने खिले हुए कमल, जल लिली और चमेली के फूल तोड़े और दूध में पकाए हुए कुछ चावल लेकर उन्हें गुरु (तत्कालीन) बुद्ध पद्ममुत्तरा को अर्पित किया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 551 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

विश्व का सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, जो उस समय यात्रा पर निकला हुआ था। (1-2) (1050-1051)
(उस समय) महान वीर ने वह दूध-चावल खाया (जो खाने में बहुत अच्छा था), और उस (कमल) फूल को लेकर वहाँ के लोगों को दे दिया। (3) (1052)
"यह उत्कृष्ट कमल सुंदर, मनमोहक और दुनिया में बहुत प्रिय है। (4) (1053)
मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने मुझे यह फूल भेंट किया और दूध में पका हुआ यह चावल दिया; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (5) (1054)
वह दस बार और आठ बार और दिव्य शासन करेगा। उसके कर्मों के फलस्वरूप,553 (भविष्य में) आकाश में कमल और लिली के फूलों से बना एक मंडप निर्मित होगा, जिसमें चमेली के फूल भी होंगे। (6-7) (1055-1056)
वह पच्चीस बार ऐसा राजा होगा जो (कानून के) पहिये को घुमाएगा। वह पृथ्वी पर निवास करेगा और पाँच सौ सांसारिक शासन करेगा। (8) (1057)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (9) (1058)
अपने कर्मों से प्रसन्न होकर, अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर, वह बुद्ध का संबंधी बनेगा।

---

552 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
553 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

शाक्यों को आनंद पहुंचाते हुए। (10) (1059)
और वह, संसार का त्याग करके, अपनी पुण्य जड़ों से प्रेरित होकर, समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, निर्वाण को प्राप्त करेगा, निर्दोश होकर। (11) (1060)
(तब) गौतम, विश्व के रिश्तेदार, उसे विश्लेषण करने और उचित कार्य करने के लिए सर्वोपरि स्थान पर रखेंगे। (12) (1061)
परिश्रम में लीन होकर, शांत होकर,554 पुनर्जन्म के आधारों से रहित होकर,555 वह गुरु का अनुयायी होगा; उसका नाम (तब) उदयी होगा।" (13) (1062)
(अब) मेरा हृदय मुक्त हो गया है; द्वेष मन से विमुख हो गया है।556 समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीता हूँ। (14) (1063)
मैं एक उत्साही और बुद्धिमान साधक था, मैंने सम्बुद्ध को संतुष्ट किया। और सम्बुद्ध ने प्रसन्नतापूर्वक मुझे उस सर्वोत्कृष्ट स्थान पर स्थापित किया। (15) (1064)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) (1065)
इस प्रकार पूज्य कालुदायी थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
कालुदयी थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
34. थेरा कालुदयी की जीवनी पर टिप्पणी।
पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा कालुदयी की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की, और पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया। इस जन्म और उस जन्म में उनका पुनर्जन्म हंसवती

नगर के एक पारिवारिक घर में हुआ, जब वे पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय में थे। उन्होंने सत्य (धम्म) का पाठ सुना, जब उन्होंने देखा कि गुरु ने परिवार को प्रसन्न करने वाले भिक्षुओं में से एक भिक्षु को सर्वोच्च स्थान दिया है; उन्होंने उचित प्रयास (तज्जम अभिनीहारम) किया और उस पद की आकांक्षा की।

अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करते हुए, वे पुनर्जन्मों के चक्र में विचरण करते रहे और कपिलवस्तु में एक मंत्री के घर में उसी दिन गर्भ धारण किया, जिस दिन हमारे बोधिसत्व ने अपनी माता के गर्भ में जन्म लिया था। यह कहते हुए कि उनका जन्म बोधिसत्व के साथ ही हुआ था, उन्हें दोहरी रजाई (दुकुलाचुम्बताक) पर लिटाया गया और बोधिसत्व की सेवा के लिए लाया गया। वास्तव में, बोधिसत्व के साथ ही बोधि वृक्ष, राहुल की माता, सोने के खजाने के चार कलश, सवारी करने वाला हाथी, घोड़ा कंठक, आनंद, चाण, कालुदयी; इस प्रकार ये सातों एक साथ जन्मे (सहजता) कहलाए, क्योंकि इनका जन्म एक ही दिन हुआ था। फिर, उनके नामकरण के दिन उनका नाम उदयी रखा गया, क्योंकि उनका जन्म उस दिन हुआ था जब पूरा शहर खुशी से झूम रहा था। हालांकि, उनके हाथ-पैर थोड़े काले होने के कारण, उन्हें काले उदयी (कालुदयी) के नाम से जाना जाता था। बोधिसत्व के साथ खेलते-खेलते वे बड़े हुए।

इसके बाद, जब जगत के रक्षक राजगृह के निकट वेलुवन में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने महान वैराग्य त्याग कर सर्वज्ञता प्राप्त कर ली और धर्म के उत्तम चक्र का संचालन कर रहे थे। तभी महान राजा सुद्धोदन को इस बात का ज्ञान हुआ और उन्होंने एक मंत्री और एक हजार सैनिकों के दल को यह कहते हुए भेजा, "मेरे पुत्र को यहाँ लाओ।" वह मंत्री धर्मोपदेश के समय गुरु के समक्ष उपस्थित हुए, सभा के अंतिम छोर पर खड़े होकर धर्मोपदेश को सुना और अपने दल सहित अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। तब गुरु ने उनकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "आओ, भिक्षुओं!" उसी क्षण वे सभी साठ वर्ष के वरिष्ठ भिक्षुओं के समान हो गए, मानो उन्होंने जादुई रूप से निर्मित कुंड और वस्त्र धारण कर लिए हों। अरहत पद प्राप्त करने के बाद, वे केवल मध्यम आयु वर्ग के कुलीन व्यक्ति ही रह गए। इसलिए, मंत्री ने राजा द्वारा दशाबल को भेजे गए संदेश के बारे में किसी को नहीं बताया। राजा ने एक और मंत्री को एक हजार सैनिकों के साथ यह कहते हुए भेजा: "जो गया था, वह न तो लौटा है और न ही उसके बारे में कोई खबर मिली है।" जब उस मंत्री ने भी ऐसा ही किया, तो राजा ने एक और मंत्री को भेजा। इस प्रकार, राजा ने नौ मंत्रियों को नौ हजार सैनिकों के साथ भेजा। उन सभी ने अरहत पद प्राप्त किया और मौन रहे। राजा ने इस प्रकार विचार किया: "इनमें से बहुत से लोग, मेरे प्रति स्नेह की कमी के कारण, दशबल के यहाँ आने के उद्देश्य से कुछ नहीं बोले; यह उदयी, वास्तव में, दशबल के समान आयु का है, जिसके साथ उसने मिट्टी में खेला था, वह भी मेरे प्रति स्नेह रखता है; मैं इस मंत्री को भेजूँगा।" राजा ने कालुदयी को बुलवाया और उसे यह कहते हुए भेजा: "मेरे प्रिय! बेहतर होगा कि तुम एक हजार सैनिकों के दल के साथ राजगृह जाओ और दशबल को यहाँ ले आओ।" लेकिन जाते समय, कालुदयी ने इस प्रकार कहा: "महाराज! यदि मुझे भिक्षु बनने की आपकी अनुमति मिल जाए, तो मैं यहाँ महाराज को लेकर आऊँगा। यह कहे जाने पर कि "आपकी इच्छा पूरी करने के बाद, मुझे मेरा पुत्र दिखाएँ," मंत्री राजगृह गए और धर्मोपदेश देते समय श्रोताओं के चारों ओर स्थित हो गए, अपने अनुयायियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया और 'आओ, भिक्षु' की स्थिति में आ गए (पृष्ठ 105)। अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद मंत्री ने मन ही मन कहा, "अभी दशाबल के अपने कुल नगर जाने का समय नहीं है, जब वसंत ऋतु आ जाए, जब घने जंगल में फूल खिलें, जब धरती हरी घास से ढक जाए, तब जाने का समय होगा।" उन्होंने उस समय की प्रतीक्षा की और जब वसंत ऋतु आ गई, तो उन्होंने गुरु के कुल नगर जाने के मार्ग की उचित प्रशंसा करते हुए ये श्लोक कहे:

आदरणीय महोदय! अब ये गहरे लाल रंग के हैं।
पेड़; अपनी पत्तियाँ गिराते हुए, वे
फलों के लिए बोली लगाना; लेकिन आग लगने पर
वृक्ष चमक रहे हैं, हे महान नायक! अब समय आ गया है
यात्रा करते हुए। पेड़ अपने आप से प्रसन्न हैं।
फूल; वे हर दिशा में हवा भेजते हैं
चारों ओर से; अपने पत्ते त्यागते हुए,
वृक्ष फल देने के लिए तत्पर हैं;
हे वीर! प्रस्थान का समय आ गया है।
यहां।
न ज़्यादा ठंड, न ज़्यादा गर्मी, हालांकि;
आदरणीय महोदय! मौसम अच्छा है
यात्रा का। साकियान और

कोलियन आपको नदी पार करते हुए देखते हैं
रोहिणी विपरीत दिशा (या पश्चिम) की ओर मुख किए हुए है।
किनारा।
किसान अपने खेत की जुताई करता है
अपनी इच्छा के कारण; व्यापारी जाते हैं, क्योंकि
उनकी इच्छा, खुले समुद्रों की ओर (या
धन प्राप्त करने के लिए (समुद्र) का उपयोग करें। उसे ऐसा करने दें।
मेरी वह इच्छा जिसके लिए मैं खड़ा हूँ
पूरा हो जाना (या साकार हो जाना)।
न तो बहुत ठंडा, न बहुत गर्म, न ही बहुत
भिक्षा प्राप्त करना कठिन है - तृप्ति के लिए भोजन
भूख; जमीन हरी-भरी घास से भरी है;
हे महान ऋषि! यही समय है। फिर से और
फिर भी वे अपने बीज बोते हैं;
शाही बारिश बार-बार होती रही;
किसान अब अपने खेतों की जुताई करते हैं और
फिर से; फसलें बार-बार राज्य में आती हैं।
बार-बार भिखारी इधर-उधर भटकते रहते हैं;
और फिर दान के स्वामी अपना दान देते हैं
भेंट। भेंट देने के बाद, स्वामियों
दानशीलता के कारण बार-बार स्वर्गिक निवास के निकट पहुंचने की प्रेरणा मिलती है।
जिस भी परिवार में प्रचुरता से संपन्न एक बुद्धिमान व्यक्ति रहता हो
ज्ञान जन्मजात होता है, बुद्धिमान व्यक्ति परिवार से आता है।
वास्तव में, यह सात पीढ़ियों पर समृद्धि की वर्षा करता है।
युग। मुझे लगता है कि देवताओं का देवता।
(देवदेव) सक्षम हैं; वास्तव में, ऋषि
नाम दिया गया सत्य वास्तव में आपके द्वारा ही उत्पन्न किया गया है।
महान ऋषि के पिता का नाम है
सुद्धोदना; हालाँकि, बुद्ध की माता हैं
माया नाम की वह महिला जिसने सर्वांगीणता को धारण किया है
बोधिसत्ता अपनी कोख में, अपने गर्भ के विघटन पर
शरीर, तैंतीस वर्ष की दिव्य दुनिया में प्रसन्न है।
गौतम वंश की वह महिला मर गई और आगे बढ़ गई।
यहां से दूर, दिव्य इंद्रिय सुख से संपन्न होकर
वह पांच प्रकार के सुखों से खुद को प्रसन्न करती है।
उन समूहों से घिरे हुए, कामुक सुखों के
दिव्य प्राणियों का।

वहाँ, अंगारिनो (लाल रंग का) अंगारों के समान; इस प्रकार, अंगाराणी (अंगारे जैसे) फूल और वृक्षों के फल लाल मूंगे के रंग के अंगारों जैसे हैं; वे इनके समान हैं; इस प्रकार, अंगारिनो, ज्वलंत अंगारे के रंग का; मानो चारों ओर से बरसते अंगारों और अत्यंत लाल कुसुम-फूल के रंग से परिपूर्ण हो; यही अर्थ है। दानी (अब) इस समय; दुमा, वृक्ष; भद्दन्ते, आदरणीय!, इसका भीतरी भाग अच्छा है; इस प्रकार, भद्दन्ते; एक अक्षर 'द' के लोप के बाद इस प्रकार कहा जाता है; गुरु विशिष्ट गुणों से जुड़े हैं, और विशिष्ट गुणों से जुड़े लोगों में सर्वोच्च (या प्रमुख) हो गए हैं; इसलिए भद्दन्ते; इस प्रकार, गुरु को संबोधित करने का एक तरीका है; जैसे कि "सुगते, पातिकम्मे, सुखे, दुःखे,

जीवे (अच्छा चलने वाला, उचित कार्य, सुख, दुःख, जीवन)" आदि उदाहरणों में, यह अक्षर (या स्वर) 'ए' एक अलग शब्द (पच्चत्तवचन) है; हालाँकि, यहाँ इसे आत्मज्ञान (संबोधन) के प्रतीक के रूप में समझा जाना चाहिए। इसलिए इसे इस प्रकार कहा गया है: "भद्दन्ते, इस प्रकार, संबोधन का शब्द है"। कुछ लोग ऐसा कहते हैं:- "भद्दा शब्द समानता के लिए एक मध्यवर्ती शब्द है; फलेसीनो (फल देने वाले) वे फल चाहते हैं; इस प्रकार, फलेसीनो, फल चाहने वाले; यद्यपि निर्जीव (या इच्छाहीन)। थेरा द्वारा इस प्रकार अनुरोध किए जाने पर, प्रतापी बुद्ध ने वहाँ जाते समय कई लोगों की विशिष्ट उपलब्धियों को देखा और बीस हजार रोगमुक्त अरहतों से घिरे राजगृह से कपिलवस्तु की ओर जाने वाले मार्ग पर बिना किसी हड़बड़ी (या विश्राम से) विचरण करते हुए चल पड़े। थेरा अपनी जादुई शक्तियों के बल पर कपिलवस्तु गए, और राजा के सामने आकाश में ही खड़े रहे। राजा ने उन्हें पहले कभी न देखे जाने के भाव से देखा और पूछा, "आप कौन हैं?" थेरा ने यह बताने के लिए एक श्लोक कहा, "आप मुझे, उस युवा मंत्री को, जो प्रतापी बुद्ध के समक्ष भेजा गया है, नहीं पहचानते; फिर भी, आपको मुझे इस प्रकार पहचानना चाहिए।"

"हे साकियान सम्राट! मैं बुद्ध का पुत्र हूँ,
अजेय विजेता, ऐसा व्यक्ति
चमकते अंगारों के समान, गहरे लाल रंग का;
हे गौतम! आप मेरे दादा हैं! आध्यात्मिक रूप से
(धम्मेना), आप मेरे दादाजी हैं।

वहाँ, बुद्धस्सा पुत्तो'म्ही (मैं बुद्ध का पुत्र हूँ) मैं सर्वज्ञ बुद्ध की गोद का पुत्र हूँ; असयहसाहिनो, अजेय विजेता का पुत्र, महान आत्मज्ञान से पहले की स्थिति को छोड़कर, क्योंकि दूसरों द्वारा महान बोधिसत्व पर दबाव डालकर (या उन्हें पराजित करके) विजय प्राप्त करने में असमर्थ होने के कारण, अजेय, बोधि के लिए कर्मों के संपूर्ण भार का, महान सहानुभूति के विशेष उपकारक का, विजय प्राप्त करने और प्रभुत्व स्थापित करने के दृष्टिकोण से भी; इसके आगे भी, दूसरों द्वारा विजय प्राप्त करने और उन पर हावी होने में असमर्थता के कारण, पाँच श्रेणियों के अजेय मार को जीतने और उन पर हावी होने के दृष्टिकोण से, बुद्ध के कर्तव्यों की नई विजय के दृष्टिकोण से, जो दूसरों द्वारा अजेय हैं, उन्हें इस वर्तमान जीवन और परलोक में पूर्ण लाभ के माध्यम से प्राप्त होने वाली सलाह के रूप में माना जाता है, उन प्राणियों के लिए जो अनुशासन के अधीन हैं, इस प्रकार कि वे निम्नलिखित वर्गीकरणों में प्रबुद्ध होने के योग्य हैं: उनकी व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ, पालन, अभ्यास, मुक्ति (या मोक्ष) इत्यादि, वहाँ या वहाँ अच्छे कर्म करने की स्थिति से, अजेय के विजेता; अंगीरसस (अंगीरस का) एक, नैतिक उपदेशों इत्यादि जैसे गुणों से समृद्ध; अन्य लोग राय देते हैं कि वह व्यक्ति जिसने बड़े और छोटे शारीरिक अंगों से प्रकाश उत्सर्जित किया। कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं: दो नाम: अंगीरास और सिद्धार्थ को ही पिता माना जाता है; अप्पतिमस्स (अद्वितीय) का अर्थ है अनुकरणीय; तादिनो (ऐसा) का अर्थ है जिसने वांछनीय और अवांछनीय वस्तुओं (या मामलों) के समान गुण प्राप्त किए हों; पितुपितामयं तुवम् (आप मेरे पिता के पिता हैं) आप सांसारिक रीति-रिवाजों के अनुसार मेरे पिता, आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के पिता हैं, जो कुलीन कुल के थे; सक्का (हे सकियन!) वह जन्म के आधार पर राजा को संबोधित करते हैं; धम्मेन (आध्यात्मिक रूप से) दो जन्मों के संयोजन से - स्वयं के जन्म से कुलीन कुल और सांसारिक कुल; गौतम, हे गौतम! वह अपने कुल के आधार पर राजा को संबोधित करते हैं; अय्याकोसि, आप मेरे दादा हैं; थेरा ने यहाँ भी "बुद्धस्स पुत्तोऽम्हि, मैं बुद्ध का पुत्र हूँ" से शुरू होने वाले श्लोक को कहकर अपने अरहतत्व को प्रकट किया।

इस प्रकार स्वयं को प्रकट करने के बाद, जब उन्हें बहुमूल्य आसन पर बैठने का अनुरोध किया गया, और जब उनके भिक्षापात्र में उनके द्वारा तैयार किया गया अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन भरकर प्रसन्न और संतुष्ट राजा द्वारा उन्हें भेंट किया गया, तो उन्होंने जाने का संकेत दिया। जब उनसे पूछा गया, "आदरणीय महोदय! आप कहीं क्यों जाना चाहते हैं? कृपया यहीं भोजन करें," तो थेरा ने उत्तर दिया, "मैं गुरु के पास वापस जाकर वहाँ भोजन करूँगा।" राजा ने पूछा, "परन्तु गुरु कहाँ हैं?" थेरा ने उत्तर दिया, "गुरु महाराज से मिलने के उद्देश्य से बीस हजार भिक्षुओं से घिरे हुए यात्रा पर निकले हैं।" राजा ने कहा, "आप अपने कटोरे में यह भिक्षापात्र ग्रहण करें; आप गुरु के लिए एक और भिक्षापात्र ले जाएँगे; जब तक मेरा पुत्र इस नगर में न आ जाए, तब तक कृपया यहाँ से उनके लिए भिक्षापात्र ले जाएँ।" ऐसा कहने पर, थेरा ने अपना भिक्षापात्र ग्रहण किया। उन्होंने राजा और उनके दल को सत्य (धम्म) का उपदेश दिया, भिक्षापात्र से भरा हुआ भोजन आकाश में गुरु के पास पहुँचाने के लिए भेजा, और स्वयं भी वायु में ऊपर उठ गए, जबकि सभी लोग उन्हें देख रहे थे, ताकि गुरु के आने से बहुत पहले ही सभी राजपरिवार तीन रत्नों के प्रति अत्यधिक प्रसन्न और श्रद्धावान हो जाएँ; उन्होंने भिक्षापात्र को अपने पास लाया और उसे गुरु के हाथ में रख दिया। गुरु ने वह भिक्षापात्र ग्रहण किया। इस प्रकार, साठ योजन की यात्रा के दौरान, प्रतिदिन एक योजन की यात्रा करते हुए, थेरा ने प्रतिदिन राजपरिवार से भगवान को भिक्षापात्र लाकर अर्पित किया। तब भगवान ने कहा, "इसने मेरे पिता के पूरे निवास को श्रद्धापूर्वक श्रद्धावान बना दिया," और उन्हें अपने परिवार को प्रसन्न करने वाले भिक्षुओं में सर्वोच्च स्थान दिया:

"हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, जो मेरे परिवार के मन में श्रद्धा का भाव भरते हैं, आप ही मेरे परिवार के भिक्षुओं में श्रेष्ठ हैं।" इस परिवार में, यह सबसे ऊपर (या मुखिया) है, अर्थात्, कालुदाई।

48-49. अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्मों के भार के अनुरूप अरहत पद और सर्वोच्च पद प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पद्मुत्तरस्स बुद्धस्स से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। अद्धानम्पतिपन्नस्स (उन्हें जो यात्रा पर निकले थे) उन्हें जो दूसरे राज्य में जाने के उद्देश्य से दूर की यात्रा पर निकले थे; चरतो चरिकम् तका (उन्हें जो उस समय अपने भ्रमण पर थे) उन्हें जो उस समय तीन प्रकार के भ्रमण पर थे: भीतरी मंडल, मध्य मंडल और बाह्य मंडल; पद्ममुत्तरबुद्धस्स, महिमावान पद्ममुत्तर बुद्ध को, सुफुल्लम् (सुभरे) उचित रूप से खिले हुए, जागृत; मैंने लाल कमल (पदुमा) और सफेद लिली (उप्पला) को लेकर, खिले हुए मल्लिका फूल को दोनों हाथों से पकड़कर भर लिया; यही इसका अर्थ है। मैंने उत्तम भोजन लेकर, पूरी तरह से पके हुए, उत्तम, उत्तम और मीठे साली चावल को लेकर, स्वामी से उसका भोजन बनाने का अनुरोध किया; यही इसका अर्थ है।

57. सक्यानम नंदजननो (शाकियों के आनंद को बढ़ाने वाला) आनंद को बढ़ावा देने और वृद्धि (ऊंचाई) और परिधि (परिणाम), सौंदर्य, यौवन और शाही शाकीय परिवार के सदस्यों, प्रतापी के सगे-संबंधियों के संबोधन शब्दों की समृद्धि के लिए; ञातिहंधु भविस्सति (संबंधी और सगे-संबंधी बन जाएगा) ज्ञात और स्पष्ट सगे-संबंधी बन जाएगा। शेष तो आसानी से समझ में आ जाएगा।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा कालुदाई का

समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 35. थेरा मोघराजा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

1.135. मोगराज

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.135. थेरा मोगराज की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

35. मोगराज

स्वयंभू अत्थादस्सी, जो अजेय हैं, भिक्षुओं की सभा से घिरे हुए रथ-मार्ग पर प्रवेश कर गए। (1) (1066)

---

554 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 555 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 556 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ।

मेरे सभी छात्र मेरे चारों ओर थे, तब मैं घर से निकल गया। बाहर जाकर मैंने वहाँ (संबुद्ध को), विश्व-नेता को देखा। (2) (1067)

(तब) संबुद्ध को प्रणाम करते हुए, अपने सिर पर हाथ जोड़कर, अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, मैंने विश्व-नेता की विनम्रतापूर्वक प्रशंसा की: (3) (1068)

जिस हद तक प्राणियों का रूप होता है, वे निराकार होते हैं या वे अचेतन होते हैं, वे सभी आपके पास मौजूद (महान) ज्ञान में समाहित हैं।557 (4) (1069)

यदि कोई मछली पकड़ने के लिए उपयुक्त जाल से पानी को घेर ले, तो पानी में रहने वाले सभी जीव जाल के अंदर फंस जाएंगे। (5) (1070)

और जिसके भी इरादे सजीव हों या निराकार, वे सब आपके पास मौजूद (महान) ज्ञान में समाहित हैं। (6) (1071)

आप इस दुनिया को ऊपर उठा रहे हैं जो अंधकार के निर्माता द्वारा भ्रमित है।558 आपके उपदेश को सुनकर वे (सभी) संदेह की बाढ़ को पार कर जाते हैं। (7) (1072)

यह संसार अज्ञान में जकड़ा हुआ है, अंधकार के जनक द्वारा ढका हुआ है। आपके ज्ञान में वे चमकते हुए अंधकार के जनक को दूर भगाते हैं। (8) (1073)

आपकी वह दृष्टि ही सबके लिए घोर अंधकार को दूर करती है। आपके उपदेश सुनकर अनेक लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं।" (9) (1074)

मैंने एक पात्र में थोड़ा सा शुद्ध शहद भरकर, उसे दोनों हाथों से उठाकर महान ऋषि को दे दिया। (10) (1075)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 557 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 558 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

महान नायक, महान ऋषि ने इसे उबले हुए चावल के साथ स्वीकार किया।559 इसे खाकर, सर्वज्ञ ने आकाश में विचरण किया।560 (वहाँ)। (11) (1076)

शिक्षक अत्थादस्सी, मैन-बुल, वातावरण में खड़े होकर, मेरे (स्वयं) हृदय को आनंदित करते हुए, (तब) मेरे बारे में ये छंद बोले: (12) (1077)

"जिसके द्वारा ज्ञान की प्रशंसा की जाती है और सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की स्तुति की जाती है, वह अपने हृदय में व्याप्त आनंद के कारण बुरे पुनर्जन्म में नहीं जाएगा। (13) (1078)

वह चौदह (अलग-अलग) बार (पूरी तरह से) दिव्य शासन करेगा। वह आठ सौ सांसारिक 561 शासनकालों के साथ पृथ्वी पर निवास करेगा। (14) (1079)

और वह पाँच सौ बार ऐसा राजा होगा जो (कानून के) पहिये को घुमाएगा। वह पृथ्वी पर अनगिनत क्षेत्रीय शासन करेगा। (15) (1080)

जो विद्वान मंत्रों को जानता है, वह तीनों वेदों में पारंगत हो जाएगा। और (तब) वह गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में संसार का त्याग करेगा।562 (16) (1081)

अपने ज्ञान के माध्यम से वह उन तथ्यों को खोजेगा जो इतने गहरे और सूक्ष्म हैं। वह गुरु का अनुयायी होगा जिसका नाम मोगराज होगा। (17) (1082)

तीनों ज्ञानों से संपन्न,563 निष्कलंक, कर्तव्यनिष्ठ। गौतम सारथी उसे उस सर्वोत्कृष्ट स्थान पर स्थापित करेंगे।" (18) (1083)

---

559 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 560 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 561 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 562 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 563 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)

मानवीय कार्यों को त्यागकर, अस्तित्व के बंधनों को तोड़कर, सभी दोषों को भली-भांति जानकर, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीता हूँ। (19) (1084)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) (1085)
इस प्रकार पूज्य मोगराज थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
मोगराज थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
35. थेरा मोगराज की जीवनी पर टीका।
अत्थादस्सी तु भववा से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा मोगराज की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, एक दिन उन्होंने गुरु की उपस्थिति में सत्य (धम्म) का प्रवचन सुना। जब उन्होंने देखा कि गुरु ने एक भिक्षु को लहूलुखचीवर वस्त्र धारण करने वालों में सर्वोच्च स्थान दिया है, तो उन्होंने उस पद को प्राप्त करने का संकल्प लिया, इस-उस जन्म में पुण्य कर्म किए, और अत्थादस्सी के समय में एक ब्राह्मण परिवार में पुनः जन्म लिया तथा ब्राह्मण विद्याओं और विज्ञानों में सिद्धि प्राप्त की। एक दिन, उन्होंने प्रतापी अत्थादस्सी को भिक्षुओं से घिरे हुए रथयात्रा मार्ग पर जाते देखा, वे अत्यंत श्रद्धा से भर गए, पाँच प्रकार की व्यवस्थाओं (पंचपतिष्टि) से उन्हें प्रणाम किया, अपने हाथों को सिर पर रखकर श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति में छह श्लोक पढ़े, जिनकी शुरुआत इन शब्दों से हुई: "यावता रूपिनो सत्था (जब तक सुंदर गुरु)" इत्यादि, और मटका भरकर शहद अर्पित किया। गुरु ने उसे ग्रहण किया और धन्यवाद दिया। उस पुण्य कर्म के कारण, वे जन्म-जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे और प्रतापी कस्सपा के समय में कत्थवाहन नामक राजा के मंत्री के रूप में पुनर्जन्म लिया। राजा द्वारा गुरु को लाने के लिए भेजे जाने पर, वे गुरु के समक्ष गए, सत्य (धम्म) का उपदेश सुना, और विधिवत श्रद्धा प्राप्त की। वे भिक्षु बने, बीस हजार वर्षों तक भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया, वहाँ से उनका निधन हो गया, एक बुद्धान्तर (दो बुद्धों के बीच का अंतराल) तक वे अपने पुनर्जन्मों के चक्र में भृंगते रहे, और जब इस बुद्ध का पुनर्जन्म हुआ, तो उन्होंने मोगराज नाम प्राप्त किया, ब्राह्मण बावरी की उपस्थिति में विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया, पश्चाताप किया, संसार का त्याग किया, तपस्वी बन गए, एक हजार तपस्वियों से घिरे रहे, अजित आदि के साथ गुरु के समक्ष भेजे गए, वे उनमें से पंद्रहवें थे, उन्होंने प्रश्न पूछे और उत्तर प्राप्त करने के बाद अर्हतत्व प्राप्त किया। अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने फटे-पुराने वस्त्र (पमसुकूल) धारण किए, जो तीन विशिष्ट प्रकार की अल्पता से युक्त थे, अर्थात्: अल्प हथियार-सुई, अल्प धागा, अल्प रंग। इसी कारण गुरु ने उन्हें अल्प वस्त्र धारण करने वालों में सर्वोच्च स्थान दिया।
(1) पंचपतितीत; पाली ग्रंथ समाज के पाली-अंग्रेज़ी शब्दकोश में पंच शब्द के अंतर्गत दी गई परिभाषा अपर्याप्त है, बल्कि गलत है। यह आधिवचन (शब्दावली) उस प्रकार की श्रद्धा अर्पित करने की विधि के लिए है जिसमें उपासक घुटने टेककर बैठता है, और तब तक झुकता है जब तक उसका माथा पृथ्वी (भूमि) को स्पर्श न कर ले और दोनों हाथों की हथेलियाँ जमीन पर न टिक जाएँ; इस प्रकार, उसके शरीर के पाँचों अंग, अर्थात्: दो घुटने, दो हथेलियाँ और माथा, श्रद्धा की मुद्रा में पृथ्वी को स्पर्श करते हैं।
64. इस प्रकार अपने संकल्प (पानिधान) के अनुरूप अर्हतत्व की प्राप्ति करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों के भार को पहचाना और अपने द्वारा किए गए कर्मों को प्रकट करने के लिए 'अत्थादस्सी तु भगवीआ' से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा। इसका अर्थ स्पष्ट है।
73. पूतदम् पूर्णयित्वाना, पात्र भरकर; पूतका (पात्र) मक्खी के अंडों से रहित जलपात्र कहा गया है; एक घड़े में थोड़ा शहद भरकर, पग्गयहा, उठाकर, महेसिनो (महान ऋषि को); उस शहद के घड़े को आदरपूर्वक दोनों हाथों से उठाकर प्रतापी को अर्पित किया; इस प्रकार संबंध स्थापित हुआ है। शेष का अर्थ समझना अत्यंत सरल है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा मोगराज
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 36. थेरा अधिमुत्ता

<<<< पिछला । अगला >>>>

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

36. अधिमुत्त

जब विश्व-प्रमुख अत्थादस्सी, परम पुरुष, का देहांत हुआ,564 तो मैंने अत्यंत निर्मल मन से भिक्षुओं की सभा बुलाई। (1) (1086)
सीधे और सुस्थापित सभा-रत्न को आमंत्रित करके, (और) एक मंडप का निर्माण करके,565 मैंने उन भिक्षुओं को गन्ना खिलाया।566 (2) (1087)
मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता हूँ, चाहे वह मनुष्य का हो या दिव्य, मैं सभी प्राणियों से श्रेष्ठ हूँ; यही अच्छे कर्मों का फल है। (3) (1088)
उस समय जब मैंने उसे वह उपहार दिया था, तब से अठारह सौ युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही गन्ने के उपहारों का फल है। (4) (1089)
विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 564 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 565 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
566 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिए हैं, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1090)
इस प्रकार पूज्य अधिमुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
अधिमुत्त थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
36. थेरा अधिमुत्त की जीवनी पर टीका।
निब्बुते लोकनाथमहि से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा अधिमुत्त की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की, पुण्य कर्मों का संचय किया जो पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने में सहायक थे; इस और उस जन्म में इनका पुनर्जन्म एक परिवार में हुआ जब जगत के रक्षक अत्थादस्सी परिनिर्वाण को प्राप्त हुए; ये तीनों रत्नों के प्रति अत्यंत श्रद्धावान थे, भिक्षुओं को आमंत्रित किया, गन्ने से एक पंडा बनवाया, एक बड़ा दान दिया और अंत में, निर्वाण की ओर ले जाने वाले शांत मार्ग के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। वहाँ से देहांत होने पर, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच दोनों प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया, एक परिवार में पुनर्जन्म लिया जब इस बुद्ध का उदय हुआ, वे शासन से प्रसन्न हुए और अपने दृढ़ विश्वास के कारण थेरा अधिमुत्त के नाम से प्रसिद्ध हुए।
84. इस प्रकार अर्हतत्व प्राप्त करने पर, पुण्य कर्मों के भार से प्रेरित होकर, उन्हें अपने पूर्व कर्मों की याद आई, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने निब्बुते लोकनाथंहि से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। यह सब अर्थ में सरल है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा अधिमुत्ता के
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 37. थेरा लासुनादायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.137. लसुणदायक 567
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.137. थेरा लासुणदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

37. लसुणदायक 567

मैं उस समय हिमालय से कुछ ही दूरी पर एक तपस्वी था। मैं लहसुन खाकर अपना जीवन यापन करता था; लहसुन ही (उस समय) मेरा (एकमात्र) भोजन था। (1) (1091)
कुछ खारिया भरने के बाद मैं एक मठ में गया। मैंने सभा को लहसुन दिया, प्रसन्न होकर, (और) प्रसन्न हृदय से। (2) (1092)
सभा को लहसुन देते हुए, सर्वोच्च व्यक्ति विपस्सी के वितरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैंने (तब) स्वर्ग में आनंद लिया। (3) (1093)
जब से मैंने उन्हें वह लहसुन दिया है, तब से लेकर अब तक के इक्यावन युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही लहसुन की कलियों का फल है। (4) (1094)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1095)
इस प्रकार पूज्य लसुणदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
लसुणदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 567 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 568 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
37. थेरा लासुणदायक की जीवनी पर टीका।
हिमवन्तस्साविदुरे से शुरू होने वाले श्लोक थेरा लसुणदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। इस पूजनीय व्यक्ति ने पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, जन्म-जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में, तेजस्वी विपस्सी के समय में एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गृहस्थ जीवन की असुविधाओं को देखा, गृहस्थी त्याग दी, संसार का त्याग किया, तपस्वी बन गए और हिमवन्त के निकट वन में रहने लगे, खूब प्याज उगाए और वहीं वन की जड़ों और फलों को खाकर जीवन व्यतीत किया। काज नामक डंडे से उठाई गई टोकरियों में प्रचुर मात्रा में प्याज लेकर वे गृहस्थों के बीच लाए, श्रद्धापूर्वक दान किया और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को औषधि के रूप में भेंट किए और चले गए। अपने जीवनकाल में इसी प्रकार पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे। उन्हीं पुण्य कर्मों के बल पर उन्होंने दोनों प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया और समय आने पर वे उसी समय प्रकट हुए जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। उचित धार्मिक आस्था प्राप्त करके वे भिक्षु बन गए, विपश्यना का ज्ञान प्राप्त किया और शीघ्र ही अरहतत्व प्राप्त कर अपने पूर्व कर्म के फलस्वरूप थेरा लसुना-दायक के नाम से प्रसिद्ध हो गए।
89. अपने पूर्व कर्मों को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने हिमवंतस्सविरे से शुरू होने वाला श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वे कहते हैं, "मैं तब एक संन्यासी था, जब विपस्सी परमेश्वर प्रकट हुए, हिमालय पर्वत के चारों ओर स्थित उस स्थान पर जहाँ मनुष्य विचरण करते थे।" इस प्रकार संबंध स्थापित होता है। "लसुणम उपजीवामि" (मैंने प्याज खाकर अपना जीवन यापन

किया), मैंने लाल प्याज उगाए, अपने खेत को चरागाह बनाया और अपना जीवन यापन किया। अतः इसका अर्थ यह है। इसलिए यह कहा गया है: "लसुणम मयभोजनम, मेरा भोजन प्याज था।"

90. खारियो पूरायित्वाना (डंडे से उठाकर ले जाने वाली टोकरियों को भरकर), मैंने तपस्वी की टोकरी को प्याज से भरकर डंडे से ऊपर उठाया; संघारामण (पुजारियों का आश्रम) पुजारियों का निवास स्थान, मठ शीत ऋतु आदि तीन ऋतुओं में पुजारियों की चार प्रकार की मुद्राओं के साथ बसा; आगाच्छिम, मैं आया; यही अर्थ है। हत्थो हत्थेन चित्तेना, आनंदित और प्रसन्न हृदय से, मैंने पुजारियों को प्याज भेंट किया, मेरा मन प्रसन्नता से भरा हुआ था और मैं संतुष्ट था; यही अर्थ है।

91. विपस्सिस्सा निरतस्सहम (मैं विपस्सी के विधान में प्रसन्न हुआ), मैं विपस्सी के विधान से प्रसन्न और पूर्णतः संतुष्ट हुआ, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ और श्रेष्ठ हैं; यही संबंध है। संघस्स टू द पुरोहित :P: मोदहम ***(पृष्ठ 117) :P: प्याज का दान देकर मैं प्रसन्न हुआ, मैं (स्वर्ग में) युगों के जीवनकाल (कप्पा) तक दिव्य समृद्धि का आनंद लेते हुए, स्वर्गलोक में सर्वोच्च स्थान पर, मैं प्रसन्न और संतुष्ट हुआ; यही अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाएगा।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा लासुना दयाका का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 38. थेरा अयागदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.138. आयागदायक 569
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.138. थेरा आयागदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

38. आयागदायक 569

जब जगत के रक्षक, सिख (बुद्ध), सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का निधन हुआ, तो मैंने प्रसन्नतापूर्वक और प्रसन्न हृदय से उनके उत्कृष्ट स्तूप की पूजा की। (1) (1096)

मैंने कामगारों से बात करने के बाद पूंजी उपलब्ध कराई;570 मैंने एक भोजन कक्ष का निर्माण किया, प्रसन्नतापूर्वक, (और) प्रसन्न हृदय से। (2) (1097)

(उसके बाद) मैं आठ युगों तक बिना किसी रुकावट के देवताओं के बीच रहा। शेष युगों में मैंने एक मिश्रण में पुनर्जन्म लिया।571 (3) (1098)

मेरे शरीर में विष प्रवेश नहीं करते, शत्रु मुझे हानि नहीं पहुँचाते, मैं पानी में नहीं डूबता: यही भोजनालय का फल है। (4) (1099)

जब भी मैं चाहूँ, एक विशाल बादल (भारी) वर्षा करता है। यहाँ तक कि देवता भी मेरे निवास स्थान पर आते हैं; यह अच्छे कर्मों का फल है। (5) (1100)

तीस बार चक्र घुमाने वाले राजाओं के रूप में, सात रत्नों के स्वामी; कोई भी मुझे तुच्छ नहीं समझता: यही अच्छे कर्मों का फल है। (6) (1101)

उस भोजन कक्ष को बनवाने के बाद से इकत्तीस युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही भोजन कक्ष का फल है। (7) (1102)

विश्लेषण के चार तरीके,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 569 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 570 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

571 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 572 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

और इन आठ मुक्तियों, छह विशेष ज्ञानों में महारत हासिल करके, मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (1103)

इस प्रकार पूज्य आयागदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आयागडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

38. थेरा आयागदायक की जीवनी पर टीका।

निब्बुते लोकनाथंहि से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा आयागा की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस या उस जन्म में, परम पूज्य सिख धर्मगुरु के परनिर्वाण के समय, एक गृहस्थ घर में पुनर्जन्म लिया। वे इस व्यवस्था से प्रसन्न होकर बढ़ईयों को खर्चे देकर, मन को तृप्त करने योग्य एक लंबा भोजन कक्ष बनवाए, भिक्षुओं को आमंत्रित किया, उन्हें उत्तम भोजन कराया, बड़ा दान दिया और अपने मन को पुण्यमय आनंद से भर लिया। अपने जीवन भर पुण्य कर्म करते हुए और जन्म-मृत्यु के चक्रों में विचरण करते हुए, उन्होंने दोनों प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया और एक गृहस्थ घर में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लगन से परिश्रम और लगन से विपश्यना विकसित की और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप वे आयगथेरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

94. इस प्रकार अर्हतत्व प्राप्त करने पर, पुण्य कर्मों के भार से प्रेरित होकर, उन्होंने अपने पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और निब्बुते लोकनाथंहि से शुरू होने वाला श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व में किए गए कर्मों को प्रकट कर सकें। वहाँ, निब्बुते वदतम, यानी निर्वाण में प्रवेश करने का कथन, उत्कृष्ट है, उन लोगों के बीच जो कहते हैं "हम बुद्ध हैं", जब परम श्रेष्ठ तेजस्वी सिख परिनिर्वाण में प्रवेश कर गए; यही अर्थ है। हत्थो बत्थेन चित्तेन (आनंदित और प्रसन्न मन से), क्योंकि मेरी श्रद्धा प्रबल है, प्रसन्न और आनंदित, आनंद से ग्रस्त मन से, उत्तमं थूपं (सर्वोत्तम ठोस मंदिर), सर्वश्रेष्ठ शिवालय: अवंदिम (मैंने प्रणाम किया); मैंने नमन किया; यही अर्थ है।

95. बढ़ईयों से बात करने के बाद, मैंने भोजन कक्ष के आकार के बारे में चर्चा की और पूछा, "भोजन कक्ष कितना बड़ा है?" यही अर्थ है। फिर मैंने उन बढ़ईयों को काम के लिए कीमत दी; और प्रसन्न होकर मैंने उनसे एक लंबा भोजन कक्ष बनवाया। शेष अर्थ तो आसानी से समझ में आ जाता है।

97. आयागस्सा इदं फलम् (यह लंबे हॉल का फल है), यह भोजन कक्ष अर्पित करने का लाभकारी परिणाम है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा आयागदायका का

समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 39. थेरा धम्मचक्किका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.139. धम्मचक्किका 573
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.139. थेरा धम्मचक्किका की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

39. धम्मचक्किका 573

भगवान सिद्धार्थ के सिंह-सिंहासन के सामने, मेरे द्वारा एक धम्म-चक्र574 स्थापित किया गया था, जो सुगठित था, (और) बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित था।575 (1) (1104)
मैं एक आकर्षक सुनहरे रंग से चमकता हूँ; मेरे पास वाहन, सेना और घोड़े हैं। कई लोग मुझसे जुड़े हुए हैं और लगातार मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (2) (1105)
मैं हमेशा साठ हजार वाद्ययंत्रों से घिरा रहता हूँ,577 मेरे अनुचरों द्वारा सुशोभित: यही अच्छे कर्मों का फल है। (3) (1106)
जब से मैंने उस (धम्म-)चक्र की स्थापना की है, तब से चौरानवे युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही धम्म-चक्र का फल है। (4) (1107)
उसके ग्यारह युग बाद आठ राष्ट्रों पर शासन करने वाले स्वामी थे; (उन सभी) का नाम सहस्रज था, 578 चक्र घुमाने वाले महान शक्तिवान राजा। (5) (1108)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 573 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 574 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
575 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 576 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 577 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित 578 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1109)
इस प्रकार पूज्य धम्मचक्किका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
धम्मचक्किका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
39. थेरा धम्मचक्किका की जीवनी पर टीका
सिद्धार्थस भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा धम्मचकिका की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में प्रतापी सिद्धार्थ के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। विकास की आयु प्राप्त करने पर, उनके परिवार में उनकी पत्नी और बच्चे शामिल हो गए और वे समृद्धि से संपन्न होकर धनी बन गए। तीन रत्नों से प्रसन्न होकर, वे परम श्रद्धा से परिपूर्ण हो गए और उन्होंने धम्मसभा में धर्म प्रचार

आसन के पीछे धर्म चक्र बनवाया और श्रद्धापूर्वक अपनी भेंट अर्पित की। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, जहाँ-जहाँ उनका जन्म हुआ, देवताओं और मनुष्यों के बीच, उन्होंने सक्का और विश्वराज की समृद्धि का आनंद लिया और समय आने पर, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे एक पारिवारिक घर में आसीन हुए। धनवान होते हुए भी, उन्होंने अपने भीतर उचित रूप से धार्मिक आस्था को जागृत किया, भिक्षु बन गए, स्पष्ट अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, शीघ्र ही अरहतत्व प्राप्त कर लिया और स्वाभाविक रूप से थेरा धम्मचक्किका के रूप में प्रसिद्ध हो गए, क्योंकि उनका नाम उनके द्वारा पहले किए गए अच्छे कर्म के नाम से मिलता-जुलता था।

102. पुण्य के भार के अनुरूप अर्हतत्व का फल प्राप्त करने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'सिद्धत्थस भगवतो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। "सिंहासन के सामने, हे प्रतापी, बुद्धासन के ठीक सामने, सिंहासन के सामने" (यही अर्थ है)। "धम्मचक्कम् मे तापितम् (मेरे द्वारा स्थापित) सत्य (धम्म) का चक्र, जिसके मध्य में दर्पण के समान आकृति बनी थी और दोनों ओर सिंह की आकृति बनी थी, आध्यात्मिक चक्र (धम्मचक्क) के रूप में मेरे द्वारा स्थापित और अर्पित किया गया था। उसका क्या हुआ? "वण्णितम" (प्रशंसा की गई), बुद्धिमान विद्वानों द्वारा "अत्यंत उत्कृष्ट" कहकर उसकी प्रशंसा की गई। सत्य का चक्र (धम्मचक्क) अच्छी तरह से बना हुआ है; इसी प्रकार, संबंध भी बना हुआ है।

103. चारुवण्णो व सोभामि (मैं सोने के रंग के समान चमकता हूँ) सोने के रंग के समान, मैं जगमगाता हूँ; यही अर्थ है। और यही अर्थ है:- "चतुवण्णहि सोभाम् (मैं चार रंगों से चमकता हूँ)"; सोभामि, मैं चार रंगों से चमकता हूँ, जो कि राजकुमार, योद्धा, ब्राह्मण, व्यापारी और शुद्ध (आम आदमी) जैसे जन्मों के रूप में गिने जाते हैं; यही अर्थ है। सयोग्गबलवाहनो (अपने सैनिकों के बल का वाहक), सोने की पालकियों आदि जैसे उपकरणों से सुसज्जित (साहितो (साथ)), सेनापति, महान मंत्रियों आदि जैसे सेवकों के बल से, साथ ही हाथियों, घोड़ों, रथों जैसे परिवहन से; यही अर्थ है। बहुज्जना (अनेक लोग), प्रचुर मनुष्य; अनुयन्ता (मेरे पीछे चलने वाले), मेरा अनुसरण करने वाले; वे हमेशा मेरे चारों ओर मौजूद रहते हैं; यही हमारा संबंध है। बाकी सब समझना बहुत आसान है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा धम्मचक्किका
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.140. कप्पारुक्खिया579
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.140. थेरा कप्परुक्खिया की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

40. कप्पारुक्खिया579

भगवान सिद्धार्थ के सर्वश्रेष्ठ स्तूप के सामने 580 सजावटी कपड़ा लगाकर, मैंने वहाँ एक मनोकामना वृक्ष स्थापित किया।581 (1) (1110)

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, वहाँ एक मनोकामना वृक्ष स्थापित है, जो मेरे द्वार को सुंदर बनाता है। (2) (1111)

मैं, अपने दल के साथ, और जो भी मेरे साथ जुड़ा हुआ है, उस (इच्छा वृक्ष) से कपड़ा लेकर हम सब हमेशा अपने वस्त्र धारण करते हैं। (3) (1112)

उस (इच्छा-वृक्ष) को स्थापित करने के बाद से चौरानवे युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही इच्छा-वृक्ष का फल है। (4) (1113)

सातवें युग पूर्व में, सुचेला583 नामक आठ क्षत्रिय थे जो महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र-चालक थे। (5) (1114)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 579 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 580 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

581 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 582 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 583 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1115)

इस प्रकार पूज्य कप्परुक्खिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कप्परुक्खिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

कुण्ड, सागत, कच्चाना उदयी, राजसवय, अधिमुत्त, लसुणद, आयागी, धम्मश्चक्खिका। कप्परुक्खी दसवाँ है; श्लोक एक सौ बारह

कुण्डधान अध्याय, चौथा।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन

40. थेरा कप्परुक्खिया की जीवनी पर टिप्पणी।

सिद्धार्थस भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा कप्परुक्खिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया। इस और उस जन्म में, वे प्रतापी सिद्धार्थ के समय एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लिए; वे अत्यंत धनी और समृद्ध थे, गुरु में उनकी अटूट आस्था थी, उनके पास सात प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ सोने का विश्व वृक्ष (कप्परुक्खा) था, जिसे उन्होंने प्रतापी सिद्धार्थ के मंदिर के सामने श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। इसी रूप में पुण्य कर्म करते हुए, वे अपने जीवनकाल तक वहीं रहे, फिर उनका देहांत हुआ, वे अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में विचरण करते रहे, और समय आने पर, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वे एक परिवार में पुनर्जन्म लिए; जब उन्होंने ज्ञान की आयु प्राप्त की, तो उनका गृहस्थी जीवन सुस्थापित हो गया और तीनों रत्नों में दृढ़ विश्वास रखते हुए, उन्होंने सत्य (धम्म) को सुना, विधिवत रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, गुरु का हृदय जीत लिया, भिक्षु बन गए, कुछ ही समय बाद अरहत पद प्राप्त कर लिया और पूर्व में किए गए पुण्य कर्म के नाम से थेरा कप्परुक्खिया के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

108. इस प्रकार अरहतत्व की प्राप्ति करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया और प्रसन्न होकर अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'सिद्धत्थस भगवतो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। थूपसेठस सम्मुखा (सर्वोत्तम ठोस मंदिर के सामने), मंदिर के सामने स्थित ठोस अवशेष-संग्रहालय मंदिर जो सर्वोत्तम और उत्कृष्ट है; विचित्र दुस्से (बहुरंगी वस्त्र), चीनी चादर, सोमारा चादर आदि जैसे अनेक रंगों वाले, अद्वितीय, बेजोड़, जिसने मन को मोहित कर लिया; लगेत्वा (लटकाया हुआ) विश्व वृक्ष (कप्पसरुक्खा) को लटकाकर; तपेसिम (मैंने स्थापित किया); मैंने स्थापित किया; यही अर्थ है; शेष का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा कप्परुक्खिया का

समाप्त हो गया है।

चौथे अध्याय पर टिप्पणी
(वग्गा) समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 41. थेरा उपालि

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.141. उपाली (2)584
2टीका अनुवाद: उ लू पे विन
2.141. थेरा भागिनेय्युपाली की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
उपाली अध्याय, पाँचवाँ

---

41. उपाली (2)584

विश्व के महान भगवान, हजार (अरहंतों) निष्कलंकों से घिरे हुए, एकांतवास के लिए बाध्य होकर एकांतवास में चले गए। (1) (1116)
मैंने हिरण के चमड़े के कपड़े पहने थे, और मेरे पास एक तिहरी छड़ी थी। (तब) मैंने विश्व के प्रमुख को सभा से घिरा हुआ देखा। (2) (1117)
एक कंधे पर हिरण की खाल रखकर, दोनों हाथों को सिर पर दबाकर,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 584 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 585 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
586 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 587 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

संबुद्ध की पूजा करने के बाद, मैंने विश्व-नेता की प्रशंसा की: (3) (1118)
"जैसे सभी पक्षी, कौवे आदि, अंडों से निकले हों या पसीने से पैदा हुए हों, गर्भ में पैदा हुए हों या सजीवप्रजक हों, हमेशा आकाश में यात्रा करते हैं; (4) (1119)
चाहे कितने भी प्राणी विद्यमान हों, चाहे वे चेतना वाले हों या न हों,589 वे सभी आपके पास मौजूद (महान) ज्ञान में समाहित हैं। (5) (1120)
हिमालय की सर्वोच्च चोटियों पर जो भी पर्वतीय सुगंधें हैं, वे सब आपकी नैतिकता की सुगंध के एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।590 (6) (1121)

यह संसार अपने देवताओं सहित अंधकार के निर्माताओं के चंगुल में है।591 जब तुम्हारा ज्ञान प्रकाशमान होता है तो अंधकार के निर्माता नष्ट हो जाते हैं। (7) (1122)
जैसे दिन ढलने पर जीव-जंतु अंधेरे में रहते हैं, वैसे ही बुद्ध के प्रकट न होने पर यह संसार अंधकार में डूबा रहता है। (8) (1123)
जिस प्रकार सूर्योदय के समय सूर्य प्रतिदिन अंधकार को दूर भगाता है, उसी प्रकार हे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, आप भी प्रतिदिन अंधकार का नाश करते हैं। (9) (1124)
आप परिश्रम में तल्लीन हैं, संसार में देवताओं के बीच बुद्ध हैं। आपके कर्मों से प्रसन्न होकर आप अनेक लोगों को तृप्त करते हैं।" (10) (1125)
(तब) इन सब के लिए धन्यवाद देते हुए, महान ऋषि पद्ममुत्तरा, वीर,592 आकाश में हंस-राजा की तरह उड़ गए। (11) (1126)

---

588 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 589 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ 590 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel) 591 शाब्दिक अर्थ, "गया" 592 PTS sañjālesi के लिए BJTS के साथ sañcālesi पढ़ना

उड़ जाने के बाद, संबुद्ध, महान ऋषि पद्ममुत्तरा, शिक्षक, आकाश में खड़े होकर, मेरे बारे में ये श्लोक बोले: (12) (1127)
"मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने ज्ञान की इस प्रशंसा को (अच्छे) उपमाओं के साथ जोड़ा है; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (13) (1128)
अठारह (अलग-अलग) बार वह सभी देवताओं का राजा होगा। वह पृथ्वी पर निवास करेगा और तीन सौ सांसारिक शासन करेगा। (14) (1129)
वह पाँच सौ बार शासन करेगा, एक ऐसा राजा जो कानून का पहिया घुमाएगा, और उसका स्थानीय शासन अनगिनत होगा। (15) (1130)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (16) (1131)
तुसिता से गिरकर, अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, जटाधारी एक नीच तपस्वी उपाली के नाम से जाना जाएगा। (17) (1132)
और उसके बाद, सभी बुराइयों को दूर भगाते हुए, सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए, वह निर्वाण प्राप्त करेगा, निर्दोष होकर। (18) (1133)
और शाक्यों के पुत्र, महान ख्यातिप्राप्त बुद्ध, जिन्हें गौतम के नाम से जाना जाता है, उनके विनय ज्ञान से प्रसन्न होकर उन्हें उस सर्वोत्कृष्ट स्थान पर स्थापित करेंगे।"595 (19) (1134)
मैंने विश्वास के साथ प्रस्थान करने के बाद (अपना कर्तव्य) पूरा किया, और मैं निष्कलंक हूँ।

---

593 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 594 शाब्दिक अर्थ, "योग्य" 595 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंढ (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेण्डु (लंबा? मोटा?)।"

सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीता हूँ। (20) (1135)
भगवान ने मुझ पर दया की; मैं विनय में निपुण हूँ। अपने कर्मों से प्रसन्न होकर मैं दोषरहित जीवन जी रहा हूँ। (21) (1136)
मैं मठवासी नियमों596 और पाँच इंद्रियों में आत्मसंयमित होकर, संपूर्ण विनय को, उस रत्न-खदान को, पूर्णतः धारण करता हूँ। (22) (1137)
और फिर, मेरे सद्गुण को पहचानते हुए, गुरु, विश्व में सर्वश्रेष्ठ,597 भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, ने मुझे उस सर्वोच्च स्थान पर बिठाया। (23) (1138)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) (1139)
इस प्रकार पूज्य उपालि थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
उपाली थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टीका अनुवाद: उ लू पे विन

41. थेरा भागिनेय्युपाली की जीवनी पर टीका

खीणासवसहस्सेहि से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य उपाली के भतीजे, पूज्य थेरा भागिनेय्युपाली की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। दरअसल, पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, इस थेरा का पुनर्जन्म तेजस्वी पद्ममुत्तरा के समय एक परिवार में हुआ। बड़े होने पर उन्होंने गृहस्थ जीवन में असुविधा देखी (या उन्हें इसका एहसास हुआ), इसलिए उन्होंने अपना घर त्याग दिया, संसार का त्याग कर तपस्वी बन गए, पाँच प्रकार के उच्च ज्ञान और आठ प्रकार के समृद्ध ध्यान को प्राप्त किया और हिमालय में निवास करने लगे। ऋषि ने दूर से भी पूर्णिमा के चंद्रमा के समान तेजस्वी भगवान को देखा, वे प्रसन्नतापूर्वक धार्मिक भाव से भर गए, अपने कंधे पर हिरण की खाल रखी, हाथ जोड़कर प्रणाम किया, दस कीलों का गठ्ठा अपने सिर पर विधिपूर्वक धारण किया और खड़े-खड़े ही भगवान की अनेक दृष्टांतों और स्तुतिगानों से उनकी प्रशंसा की। उनकी प्रशंसा सुनकर भगवान ने उन्हें यह भविष्यवाणी की: "यह ऋषि भविष्य में गौतम नामक भगवान के शासनकाल में भिक्षु बनेंगे और विनय विद्या में तीक्ष्ण ज्ञान रखने वालों में श्रेष्ठ होंगे।" वे अपने जीवन काल तक खड़े रहे और पूर्ण ध्यान में लीन होकर ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से विदा होकर, उन्होंने अपने पुनर्जन्मों का चक्र पूरा किया, देवताओं और मनुष्यों के बीच समृद्धि का आनंद लिया, और फिर से जन्म लिया, जब यह बुद्ध कपिलवस्तु नगर में थेरा उपाली की बहन के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। धीरे-धीरे बड़े होकर, वे अपने मामा थेरा उपाली की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मत्ष्ठान) की, विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) विकसित की और शीघ्र ही अरहत बन गए। अपने गुरु के निकट रहने के कारण, वे अनुशासन (विनय) के मामलों में तीक्ष्ण बुद्धि वाले हो गए। तब भगवान बुद्ध ने उन्हें सर्वोच्च स्थान पर इस प्रकार स्थापित किया: "हे भिक्षुओं! मेरे शिष्यों में, अनुशासन (विनय) के मामलों में तीक्ष्ण बुद्धि वाले भिक्षुओं, यह प्रमुख है, अर्थात् भागिनेय्युपाली।"

1. इस प्रकार सर्वोच्च पद प्राप्त करके, उन्हें अपने पूर्व कर्म की याद आई, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'खीणा सवसहस्सेहि' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। इस प्रकार: आ (तक), सभी दिशाओं से सर्वोच्च स्वर्ग (भवग्ग) तक, प्रवाहित होते हैं, हो जाते हैं; इस प्रकार, आसव (कैंसर); ऐसे चार प्रकार के कैंसर जैसे कि इंद्रिय सुखों के कैंसर आदि; वे जिनके द्वारा कैंसर समाप्त हो गए थे, सूख गए थे, विशेष रूप से वाष्पित हो गए थे, स्पष्ट रूप से कुचल दिए गए थे; इस प्रकार, कैंसर रहित, खीणासवा; उन्हीं में से एक हजार, एक हजार कैंसर रहित; उन एक हजार कैंसर रहित अरहतों द्वारा; परेतो, घिरे हुए; लोकनायको, जगत के नेता, निर्वाण की ओर, एकांतवास में रहने के लिए एकांतवास में चले गए; इस प्रकार, संबंध है।

2. अजिनेनानिवत्थो'हम (मैंने हिरण की खाल पहनी थी), मैं हिरण की खाल से ठीक से ढका हुआ था, हिरण की खाल पहनने वाला; यही अर्थ है। तिदण्ड परिधारको (तीन छड़ियों को धारण करने वाला) ने तिपाई (तिदण्ड) ली, जल का प्याला रखने और उसे उठाने के लिए; यही अर्थ है। मैंने विश्व के नेता को भिक्षुओं के समूह से घिरा हुआ देखा (या मिला); यही संबंध है। बाकी सब स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा भागिनेय्युपाली का

समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 42. थेरा कोलियवेसा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स

1.142. कोलियावेस्सा

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.142. थेरा सोनाकोलिविसा की जीवनी पर टिप्पणी

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

42. कोलियावेस्सा

मैंने विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ ऋषि अनोमादस्सी के लिए प्लास्टर से लेप लगाकर एक पैदल मार्ग का निर्माण करवाया। (1) (1140)
(तब) मैंने उस मार्ग पर विभिन्न रंगों के फूल बिखेरे। आकाश में एक शामियाना बनाकर मैंने परम बुद्ध को भोजन कराया। (2) (1141)
मैंने अपने हाथ जोड़कर, अच्छे संकल्प वाले परमेश्वर की आराधना की, और उस समय मैंने एक लंबा हॉल परमेश्वर को समर्पित किया। (3) (1142)

---

596 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है। कम से कम प्रसारण के समय, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 597 yenicchakā, बीजेटीएस सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

मेरे मन की बात समझकर, गुरु, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, धन्य, दृष्टिभ्रमित, ने (इसे) स्वीकार किया, मुझ पर दया करते हुए। (4) (1143)
इसे स्वीकार करते हुए, विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्राप्तकर्ता संबुद्धा598 भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए ने ये श्लोक कहे (तब मेरे बारे में): (5) (1144)
मैं उनके बारे में विस्तार से बताऊंगा, जिन्होंने (अब) इतने प्रसन्न हृदय से यह लंबा हॉल मुझे दान कर दिया; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (6) (1145)
जब अच्छे कर्मों से संपन्न इस व्यक्ति की मृत्यु का समय आएगा, तब एक रथ प्रकट होगा, जिसमें हजार घोड़े जुते होंगे। (7) (1146)
उस वाहन से (तब) यह व्यक्ति देवताओं के लोक में जाएगा। जब वहाँ वह शुभ जन्म होगा, तो सभी देवता प्रसन्न होंगे। (8) (1147)
वह वहाँ एक हवेली में निवास करेगा, सबसे अच्छी हवेली, बहुत महंगी, रत्नों से सजी मिट्टी से निर्मित और उत्तम छज्जे वाली कोठरियों से सुसज्जित। (9) (1148)
वह (तब) तीस हजार युगों तक स्वर्ग में आनंदित रहेगा। वह उन तीस हजार युगों तक देवताओं का राजा रहेगा। (10) (1149)
वह सतहत्तर बार राजा बनेगा जो (कानून के) पहिये को घुमाएगा। उन सभी का एक ही नाम होगा, "यशोधरा," और वे एक ही होंगे। (11) (1150)
दोहरे आनंद का अनुभव करते हुए, पुण्य का ढेर लगाते हुए,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 598 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 599 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
600 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के।

वह अट्ठाईसवें युग में एक चक्र-घुमाने वाला राजा होगा (इसलिए)। (12) (1151)
और (उसके पास) विस्साकम्मा द्वारा निर्मित एक शानदार हवेली होगी।601 अकेले रहते हुए भी वह उस शहर में दस ध्वनियाँ सुनेगा। (13) (1152)
असंख्य युगों बाद वह एक देश का राजा होगा, पृथ्वी का राजा, महान शक्ति के साथ; उसका नाम (तब) ओक्काका होगा। (14) (1153)
और वह (उसकी) सोलह हजार स्त्रियों में सबसे श्रेष्ठ (602) उसके नौ पुत्रों को जन्म देगी, जो कि उत्तम कुल के क्षत्रिय (राजकुमार) होंगे। (15) (1154)
वह क्षत्रिय स्त्री अपने नौ पुत्रों के जन्म के बाद मर जाएगी। तब वह एक युवा और प्रिय कन्या को अपनी मुख्य रानी के रूप में स्वीकार करेगा। (16) (1155)

(राजा) ओक्काका को प्रसन्न करने पर, उस कन्या को वरदान प्राप्त होगा। वरदान के रूप में उसे वहाँ से (नौ) पुत्र प्राप्त होंगे। (17) (1156)

आगे बढ़ने के बाद वे सभी हिमालय में चले जाएँगे। 603 कुल के बँटने से डरकर वे सभी बहनों के साथ सहवास करेंगे। (18) (1157)

और उन लड़कियों में से एक (भयानक) बीमारी से पीड़ित होगी। क्षत्रिय यह कहते हुए कि 'हमारे परिवार को बर्बाद मत करो', उसे दफना देंगे। (19) (1158)

एक राजा,605 उसे ले जाने के बाद उसके साथ (अच्छे से) रहेगा।

---

601 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 602 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 603 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 604 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 605 शाब्दिक अर्थ, "गया"।

और उस समय से, “ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होने वाला समूह” होगा। (20) (1159)

उनकी संतानें जन्म के समय “कोल्या” कहलाएँगी। वहाँ वे जादुई रूप से भारी मात्रा में मानव भोजन का उत्पादन करेंगी। (21) (1160)

उस शरीर से गिरकर (यह) स्वर्ग में जाएगा। वहाँ उसे एक शानदार महल मिलेगा जो मन को प्रसन्न करेगा। (22) (1161)

अपने पुण्य कर्मों से प्रेरित होकर स्वर्ग से गिरकर मनुष्य रूप धारण करने पर वह सोन के नाम से जाना जाएगा। (23) (1162)

शिक्षक के विधान में अथक प्रयास से, सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए, वह निर्वाण प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर। (24) (1163)

हे भगवान, असीम दृष्टि वाले, शाक्यों के श्रेष्ठ गौतम, विशेषाधिकार प्राप्त ज्ञानी, महान वीर, (उन्हें)608 सर्वोपरि स्थान देंगे।” (25) (1164)

(अंतराल?)609

परम वशीकरण में वशीकृत, मेरा हृदय (अब) सही दिशा में निर्देशित है, (और) मेरा बोझ उतार दिया गया है: मैं निर्वाण प्राप्त कर चुका हूँ, बेदाग। (26) (1165)

तेजस्वी शरीर वाले, 610 महान हाथी, सिंहराज की तरह निर्भीक, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, (उन्होंने) मुझे सबसे आगे स्थान दिया। (27) (1166)

---

606 में संचलेसी का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस संजालेसी के लिए किया गया है। 607 शाब्दिक अर्थ है, "गिर गया"। 608 शाब्दिक अर्थ है, "गुणी"। 609 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंड (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)"। 610 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेंदु पढ़ता है। कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी।

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) (1167)

इस प्रकार पूज्य सोन कोलियवेस्सा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कोलियावेस्सा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

42. थेरा सोनाकोलिविसा की जीवनी पर टिप्पणी।

अनोमदास्सिस्सा मुनिनो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा कोल्विसा की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित करने के कारण, उन्होंने प्रतापी अनोमदास्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; वयस्क होने पर, उन्होंने पत्नी और बच्चों का घर बसाया, धनवान हुए, प्रतापी बुद्ध के आने-जाने के लिए एक सुंदर सैरगाह बनवाई, एक सुव्यवस्थित (शुद्धापरिक्कम्मा) बनवाई, उसे दर्पण की सतह के समान समतल करवाया, उसे

चमकीला बनाया, उसमें दीपक, सुगंधित अगरबत्ती और सुगंधित फूल आदि लगवाए, उसे प्रतापी बुद्ध को अर्पित किया, और बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को उत्तम भोजन से आदरपूर्वक सत्कार किया। इस प्रकार, अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करने के बाद, जब उनका निधन हुआ तो उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ। वहाँ, उन्होंने पाली (पितकों की) में वर्णित विधि से दिव्य आनंद का अनुभव किया; बीच की सभी घटनाओं को पाली में बताए अनुसार ही समझा जाना चाहिए। (हालाँकि, अंतिम जन्म में, उनका जन्म कोलिया राजवंश में हुआ और वयस्क होने पर, एक करोड़ मूल्य के कान के आभूषण धारण करने के कारण, वे कोटिकाञ्ञ (एक ****PG125) या कुटिकाञ्ञो (एक कक्षवाहक) के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्हें प्रतापी ईश्वर में अटूट आस्था थी, उन्होंने सत्य (धम्म) का श्रवण किया, उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, भिक्षु बने, शुद्ध अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

25. अरहत बनकर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए 'अनोमदास्सिस मुनिनो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, अनोमदास्सिस (अनोमदास्सी का), वह अनोमदास्सी हैं, जिनका महिमामय शरीर दर्शनीय है, क्योंकि वे एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस विशिष्ट चिह्नों से सुशोभित हैं, क्योंकि उनके चारों ओर एक फ़ैदम लंबी दीप्तिमान किरणों का चमकता हुआ प्रभामंडल है, और क्योंकि वे ऊँचाई और चौड़ाई (आरोहपरिनाह) से संपन्न हैं, असाधारण (अनोमम्), असाधारण (अलमकम), सुंदर और दर्शनीय (दस्सनम्) हैं; उस ऋषि अनोमदास्सी का यही अर्थ है। तदिनो (ऐसे) जो वांछनीय और अवांछनीय के बीच अविचल हैं; सुधाया लेपनम कत्वा (सुंदर सजावट के लिए लेप लगाया; कारयिम (मैंने बनवाया)) मैंने दीपक, धूप, फूल, झंडे, माला आदि अलंकरणों से सुसज्जित एक सुशोभित मार्ग (या मठ) बनाया; यही अर्थ है। शेष श्लोकों का अर्थ पाली के क्रमबद्ध प्रवाह से आसानी से समझा जा सकता है।

35. जो व्यक्ति अपने आसपास के अनुयायियों और धन की समृद्धि का कारण माना जाता है, वही यशोदरा (यशोद धारक) कहलाता है। ये सभी सतहत्तर विश्वराज यशोदरा नाम से ही जाने जाते थे। इस प्रकार इनका संबंध है।

52. आंगीरसो (तेजस्वी), वह आंगीरसो (तेजस्वी) है जिसकी किरणें उसके शरीर के अंगों से निकलती हैं; वह न तो इच्छा, क्रोध, भ्रम और भय जैसे बुरे आचरण के कारण और न ही बुरे व्यवहार के कारण नरक के चारों रूपों में जाता है; अतः वह नाग है; वह नाग, जो नरक में नहीं जाता, शक्तिशाली और पूजनीय भी है; अतः वह महानागा है; शेष अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा कोलिविसा का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 43. थेरा भद्दिया-कादिगोधाय-पुत्त

<<<< पिछला । अगला >>>>

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

43. भद्दिया-कालिगोधाय-पुत्त

प्रेममय हृदय वाले, महान ऋषि, सभी लोकों के प्रमुख नेता, संबुद्ध पद्ममुत्तरा, वहाँ के सभी लोगों के पास आते हैं। (1) (1168)
उस अद्वितीय पुण्य क्षेत्र में सभी शिक्षक को (उपहार), वस्त्र (या) रहने की जगह,612 (या) भोजन और पेय जैसी आवश्यक वस्तुएँ दे रहे थे। (2) (1169)
"मैं भी देवताओं के देव, तटस्थ, 613 को दान दूंगा, (उन्हें), सर्वश्रेष्ठ बुद्ध और अद्वितीय सभा को आमंत्रित करते हुए। (3) (1170)
मेरे द्वारा प्रेरित होकर, (अन्य लोगों ने भी) तब तथागत और संपूर्ण भिक्षु सभा को, पुण्य के अतुलनीय क्षेत्र में आमंत्रित किया। (4) (1171)
मैंने बुद्ध के लिए उपयुक्त एक कीमती आसन सजाया; एक लाख मूल्य का पलंग, सोने का बना हुआ, ऊनी गलीचा, गद्दा, अलंकृत ऊनी चादरें, और खोमा और सूती वस्त्रों से सुसज्जित। (5) (1172)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 611 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 612 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
613 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, देवताओं के देवता, मनुष्यों के बैल, सभा से घिरे हुए,614 मेरे द्वार पर आए (तब)। (6) (1173)
विश्व के रक्षक, ख्यातिप्राप्त बुद्ध से मिलने के लिए बाहर जाते हुए, प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से मैंने अपने घर में उनके साथ समय बिताया। (7) (1174)
प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से मैंने (उन सभी को) दूध-चावल खिलाया:616 विश्व के नेता बुद्ध और वहाँ एक लाख भिक्षुओं को। (8) (1175)
पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, ने (मेरे बारे में) ये श्लोक कहे: (9) (1176)
"मैं उस व्यक्ति के बारे में विस्तार से बताऊंगा जिसने यह सोने का आसन, ऊनी गलीचे के साथ, भेंट किया है; (आप सभी) मेरी बात ध्यान से सुनें: (10) (1177)
वह चौहत्तर बार दिव्य शासन करेगा। दिव्य अप्सराओं द्वारा अभिषिक्त होकर, वह जादुई रूप से धन उत्पन्न करेगा। (11) (1178)
वह पृथ्वी पर एक हजार क्षेत्रीय शासनकाल तक निवास करेगा, (और) वह इक्यावन बार कानून के पहिये को घुमाने वाला राजा होगा। (12) (1179)
जिन सभी गर्भों में वह जन्म लेगा, वह एक उच्च कुल में होगा। और वह, अपने उत्तम मूलों से प्रेरित होकर, गुरु का अनुयायी होगा; उसका नाम भद्दिया होगा।" (13) ((1180)
एकांत से खुद को बांधकर, मैं एक सुनसान बिस्तर को अपना घर बना लेता हूँ।

---

614 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 615 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 616 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ।

और सभी फल प्राप्त हो चुके हैं; अशुद्धियाँ617 अब जड़ से उखाड़ दी गई हैं। (14) (1181)
मेरे बारे में सब कुछ जानने वाले, सर्वज्ञ, विश्व-नेता, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, उन्होंने मुझे उस सर्वोत्कृष्ट स्थान पर स्थापित किया। (15) (1182)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) (1183)
इस प्रकार पूज्य भद्दिया कालिगोधायपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
भद्दिया कादिगोधायपुत्त थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
43. थेरा कालीगोधापुत्तभद्दिया की जीवनी पर टिप्पणी।
पद्ममुत्तरा सम्बुद्धम् से शुरू होने वाले श्लोक आदरणीय भद्दिया थेरा, कालीगोधा के पुत्र, की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक समृद्ध परिवार में, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में पुनर्जन्म लिया। आयु में वृद्धि होने पर, उन्होंने अपने परिवार, पत्नी और बच्चों का

विस्तार किया; नागरिकों को पुण्य कर्म करते देखकर, वे स्वयं भी अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित हुए, उन्होंने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को आमंत्रित किया, मोटे बुने हुए कपड़े या ऊनी चादर आदि से उच्च मूल्य के पलंग तैयार किए, प्रतापी बुद्ध के अपने पुरोहितों के साथ वहाँ विराजमान होने पर उत्तम भोजन की व्यवस्था की और महान दान दिया। इस प्रकार अपने जीवनकाल में पुण्य कर्म करते हुए उन्होंने देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच सुख का अनुभव किया और बाद में उनका पुनर्जन्म हुआ; जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे रानी कालीगोधा के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। बुद्धि प्राप्त करने पर, अपनी सुगठित कद-काठी और हाथों-पैरों की मोटाई के कारण, साथ ही रानी कालीगोधा के पुत्र होने के कारण, वे कालीगोधा के पुत्र भद्दिया के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे गुरु के प्रति अत्यंत प्रसन्न थे, अपने माता-पिता का हृदय जीत लिया, भिक्षु बन गए और शीघ्र ही अरहत बन गए।
54. अरहत बनने पर, उन्हें अपने पूर्व कर्म का स्मरण हुआ, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पूर्व कर्म (या उनके द्वारा पूर्व में किए गए कर्म) को प्रकट करने के लिए पद्ममुत्तरा सम्बुद्धम् से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। इसका अर्थ नीचे बताया गया है (या पहले ही मेट्टाचित्तम् 9 में वर्णित है: मित्रता भाव), सभी प्राणियों के प्रति स्नेह और आनंद भाव विकसित होता है; इस प्रकार, प्रेम से युक्त मन ही मेट्टाचित्त कहलाता है, (प्रेम से भरा मन)। ऐसे महिमावान व्यक्ति के प्रति, जिनके पास यह मन है, वे मेट्टाचित्त (प्रेममय) हैं; वे प्रेममय हैं; महामुनि (महान ऋषि), समस्त पुरोहितों में महान होने के कारण वे एक महान ऋषि हैं; स्वयं प्रबुद्ध बुद्ध पद्ममुत्तरा; इस प्रकार, संबंध स्थापित होता है। जनतासब्बा (सभी लोग), समस्त मानव जाति, नगर के सभी निवासी; इस प्रकार, अर्थ स्थापित होता है। सब्बा-लोकग्गनायकम्, समस्त विश्व के सर्वोच्च नेता; उपेति (पहुँचते हैं), लोग आत्मप्रबुद्ध बुद्ध पद्ममुत्तरा, सर्वोच्च सर्वश्रेष्ठ नेता के निकट जाते हैं, क्योंकि वे समस्त विश्व को निर्वाण की ओर ले जाते हैं; इस प्रकार, यह संबंध है।
55. सत्तुकंच बद्धकंच, भौतिक और स्थिर दोनों, आमिसम् (घटक) स्थिर मानी जाने वाली सामग्री, और अस्थिर आटा (जौ का आटा); दूसरे शब्दों में, भोजन, पेय पदार्थ, या थैली में पकाए या उबाले गए विशेष प्रकार के केक, पूप, चबाने योग्य, खाने योग्य, चावल का दलिया (या उबले हुए चावल) आदि, समय-सीमा (यावकालिका) के अनुसार होने के कारण आमिसा (भोजन सामग्री) हैं; पीने और खाने योग्य पोषण ग्रहण करने के साथ-साथ वह स्वामी को दान भी देता है; पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र; इस प्रकार, यह संबंध है।
58. आसनम् बुद्धयुत्तकम, बुद्ध के योग्य आसन, सात प्रकार के रत्नों से बना आसन, बुद्ध से जुड़ा हुआ, बुद्ध के लिए उपयुक्त, बुद्ध के योग्य; यही इसका अर्थ है। शेष को व्यवस्थित क्रम (अनुयोग) से आसानी से समझा जा सकता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा भद्दिया के पुत्र का
कालीगोधा का अंत हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 44. थेरा सन्निधापक

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.144. सन्निधापक 618
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.144. थेरा सन्निधापक की जीवनी पर टिप्पणी
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

44. सन्निधापक 618

जंगल में एक झोपड़ी बनाकर, मैं एक पहाड़ पर रहने लगा (तब), मैं यश और अपमान दोनों में प्रसन्न था, चाहे मुझे कुछ मिले या न मिले।619 (1) (1184)
पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता, एक लाख गुरुओं के साथ (उस समय) मेरी उपस्थिति में आए। (2) (1185)

कमल के नाम पर रखे गए महान नायक, जो आ चुके थे, उनके लिए मैंने घास की चटाई बिछाई और उसे गुरु को दे दिया। (3) (1186)
खुश, प्रसन्न हृदय से, एकदम स्पष्ट मन से,

---

617 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 618 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 619 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
620 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने धर्मात्मा (संबुद्ध) को भोजन और पेय दोनों प्रदान किए। (4) (1187)
उस समय जब मैंने उसे वह उपहार दिया था, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही अरंडी के तेल का फल है।622 (5) (1188)
इसके बाद इकतालीसवें युग में मैं अरिंदमा623 के नाम से जाना जाता था, जो महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला, सात रत्नों का स्वामी राजा था। (6) (1189)624
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1190)
इस प्रकार पूज्य सन्निधापक625 थेरा ने ये श्लोक कहे।
सन्निधापक626 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
44. थेरा सन्निष्ठपक की जीवनी पर टिप्पणी।
araññe kuṭikam katvā से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सन्निष्ठपाक की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस-उस जन्म में उनका पुनर्जन्म तेजस्वी पद्ममुत्तरा के समय एक गृहस्थ परिवार में हुआ। जब वे ज्ञान की आयु प्राप्त कर चुके, तो गृहस्थ जीवन के बंधन में बंध गए, परन्तु गृहस्थ जीवन की हानि को भांपकर उन्होंने भौतिक सुखों और व्यभिचार (किलेष) के सुखों का त्याग कर एक पहाड़ी पर वनवास में निवास किया। उसी अवसर पर, तेजस्वी पद्ममुत्तरा एकांत की इच्छा से उनके स्थान पर आ पहुँचे। फिर उस तपस्वी ने परम पूज्य बुद्ध से मुलाकात की, श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रणाम किया, उनके बैठने के लिए घास बिछाई और उन्हें अर्पित किया। उन्होंने वहां बैठे परम पूज्य बुद्ध का अंजीर और अन्य कई छोटे-बड़े मीठे फलों से सत्कार किया। इस पुण्य कर्म के फल के कारण उनका वहां से निधन हो गया और वे बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण करते हुए देवताओं और मनुष्यों के बीच रहे, दोनों के सुख का आनंद लेते हुए एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। पवित्र आस्था से परिपूर्ण होकर वे भिक्षु बन गए, कुछ ही समय बाद उन्होंने विपश्यना (ज्ञान) प्राप्त कर ली और अरहत बन गए। वे थेरा सन्निष्ठपक के नाम से प्रसिद्ध थे क्योंकि वे निर्वाण में भली-भांति स्थापित थे, जिसे निर्वाण की प्राप्ति के समान ही निर्वाण का शांत मार्ग माना जाता है, मानो किसी तेज धार वाले यंत्र की नोक पर अरहत की प्राप्ति हो जाती है।
70. अरहत बनने पर, उन्हें अपने पूर्व कर्म याद आए, वे मन से प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'अरञ्ञे कुटिकम् कत्वा' से शुरू होने वाला श्लोक बोला। वहाँ (जंगल में), शेर, बाघ आदि जैसे खतरों के कारण मनुष्य इस स्थान में प्रसन्न नहीं होते, इससे संतुष्ट नहीं होते और यहाँ नहीं ठहरते; अतः, 'अरञ्ञे (जंगल); उस जंगल में; कुटिकम् (एक कक्ष) में घास की छत वाला निवास बनाकर, पहाड़ी पर; वासामि (मैं रहता हूँ), मैंने अपना निवास बनाया; यही अर्थ है। मैं लाभ-हानि, यश-अपमान से संतुष्ट होकर रहता था; यही संबंध है।

72. जलजुत्तमनामकम (सर्वोत्तम जलीय फूल), जल में उत्पन्न जलज (जलीय उत्पाद), कमल (पदुम); सर्वोत्तम जलीय उत्पाद सर्वोत्तम कमल है; उनका नाम जलजुत्तम है, जिसका नाम सर्वोत्तम जलीय फूल के समान है; जलजुत्तम नाम के उस बुद्ध का अर्थ सर्वोत्तम कमल है; यही अर्थ है। पाली पद्धति का अनुसरण करके इसे आसानी से समझा जा सकता है।

टिप्पणी

थेरा की जीवनी

सन्निष्ठापक

समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 45. थेरा पञ्चहत्थिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.145. पंचहत्थिया 627
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.145. थेरा पंचहत्थिया की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

45. पंचहत्थिया 627

सुमेधा नामक सम्बुद्ध बाज़ार से दृष्टि झुकाए, कम बोलते, सचेत, अपनी इंद्रियों को सतर्क रखते हुए यात्रा कर रहा था। (1) (1191)
फिर वे मेरे लिए लाए — मेरे शीर्ष-शिखर के लिए — पाँच मुट्ठी जल लिली।

---

621 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 622 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 623 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 624 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 625 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 626 PTS के लिए BJTS के साथ संकालेसी का पाठ। 627 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 628 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
629 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 630 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

मैंने अपने हाथों से (अच्छी तरह से) प्रसन्न होकर उनके साथ बुद्ध-पूजा की। (2) (1192)

(तब) वे फूल (जो मैंने रखे थे) शिक्षक की छत्रछाया बन गए। वे छात्र एक (अच्छे) शिक्षक के पास जैसे झुंड बनाकर आते हैं, वैसे ही विशाल हाथी के पास आ गए। (3) (1193)

मैंने जब से (उसे) वह फूल अर्पित किया है, तब से तीस हजार युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (4) (1194)

एक सौ बीस युग बाद पाँच (विभिन्न) क्षत्रिय थे। (उन सभी को) हत्थिया कहा जाता था, 632 चक्र घुमाने वाले महान शक्तिवान राजा। (5) (1195)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1196)

इस प्रकार पूज्य पंचहत्थिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पंचहत्थिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

45. थेरा पंचहत्थिया की जीवनी पर टीका।

सुमेधो नाम सुम्बुद्धो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पंचहत्थिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने पुनर्जन्म के चक्रों (वत्) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और इस या उस जन्म में, वे सुमेधा बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिए। बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने तीन रत्नों में अटूट आस्था रखते हुए जीवन व्यतीत किया। उस अवसर पर वे पाँच मुट्ठी सफेद लिली (उप्पला) लाए। उन्होंने वे पाँच मुट्ठी लिली श्रद्धापूर्वक सड़क पर विचरण कर रहे सुमेधा बुद्ध को अर्पित कीं। वे पाँच मुट्ठी लिली आकाश में छत्र बन गईं, तथागव बुद्ध के साथ गईं और उन्हें छाया प्रदान की। उस घटना को देखकर वे आनंदमय हो उठे, उनका शरीर उत्साह (पीति) से भर गया, उन्होंने अपने जीवन भर उसी पुण्य कर्म को याद रखा और वहाँ से मृत्यु के बाद दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया। इसके बाद, बार-बार पुनर्जन्म के चक्र में भटकते हुए, उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ, जहाँ इस बुद्ध का जन्म हुआ। बुद्धि प्राप्त करते ही उनमें श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ; फलस्वरूप वे भिक्षु बन गए, विपश्यना (अंतर्दृष्टि) विकसित की और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए। वे अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्म के नाम पर थेरा पंचहत्तिया के नाम से प्रसिद्ध हुए।

77. अपने पूर्व कर्म को याद करते हुए, उन्होंने सुमेधो नाम सम्बुद्धो से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया, ताकि अपने द्वारा किए गए और देखे गए पूर्व कर्म को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट कर सकें। वहाँ, सुमेधो (अच्छा ज्ञान) वह तेजस्वी, आत्मप्रबुद्ध बुद्ध सुमेधा, जिन्हें अच्छी बुद्धि प्राप्त थी, और चार आर्य सत्यों में उचित अंतर्दृष्टि, विश्लेषणात्मक ज्ञान इत्यादि जैसे ज्ञान प्राप्त था; अंतरापणे (खरीदारी केंद्र के भीतर) वे गली में गए; इस प्रकार संबंध है। ओक्खित्तचक्खु (झुकी हुई आँखें) दृष्टि को नीचे झुकाए हुए; मितभाणी (संयमित वक्ता) सीमा को जानकर बोलने की आदत; सीमा को जानकर उन्होंने सत्य (धम्म) का उपदेश दिया; इस प्रकार अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा पंचहत्थिया का

समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 46. थेरा पदुमच्छदानिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

1.146. पदुमच्छदानिया 633

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.146. थेरा पद्माच्छादनिया की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

46. पदुमच्छदानिया 633

जब विपस्सी, प्रधान पुरुष, विश्व-स्वामी निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तो मैंने एक खिलता हुआ गुलाबी कमल लेकर उसे (बुद्ध की) चिता पर रखा। (1) (1197)
और जब (इसे) चिता पर रखा गया, (वह कमल) आकाश में उठ उठा। आकाश में एक शामियाना बनाकर मैंने (इसे) चिता के ऊपर थामे रखा। (2) (1198)

---

631 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 632 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना," "चिंतन करना," "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ। 633 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 634 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
635 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

उस फूल को अर्पित करने के बाद से इक्यावन युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (3) (1199)
सैंतालीस युग पहले (मेरा) नाम पद्मिसारा रखा गया था, जो चारों दिशाओं में विजयी था, और महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था। (4) (1200)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1201)
इस प्रकार, पूज्य पद्ममुच्चदानीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पद्मुच्चदानीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
46. थेरा पद्माच्छादनिया की जीवनी पर टीका।
निब्बुते लोकनाथमहि से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पद्माच्छादनीय की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, जो पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने इस और उस जन्म में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्हें तीन रत्नों में दृढ़ विश्वास हो गया और उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके विपस्सी की चिता पर श्रद्धापूर्वक कमल के फूल अर्पित किए। वे अपने जीवनकाल तक उसी सुखद और पवित्र मन से रहे और उसके बाद केवल अच्छे जन्मों में विचरण करते हुए, कई बार दिव्य और मानवीय, दो प्रकार के आनंद का अनुभव किया और हमारे आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु में दृढ़ आस्था रखी, भिक्षु धर्म का पालन करते हुए, परिश्रम और लगन से काम लिया और शीघ्र ही अरहत बन गए। जब भी वे रात्रि विश्राम, दिन विश्राम आदि स्थानों पर निवास करते थे, तो उनका मठ कमल (पदुम) के फूलों से ढका रहता था; इसी कारण वे थेरा पद्माच्छादनीय के नाम से प्रसिद्ध हुए।
83. अपने पूर्व कर्म को याद करते हुए, उन्होंने निब्बुते लोकनाथंहि से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को मानसिक सुख के लिए प्रकट कर सकें। वहाँ निब्बुते (जब निर्वाण में प्रवेश किया), जब गुरु ने स्कंधों के नाश होने से परिनिर्वाण प्राप्त किया; आरोपयिं (मैंने आरोहण किया), जब आत्मप्रबुद्ध बुद्ध विपस्सी का शरीर चिता पर लाया गया, तब मैंने आदरपूर्वक चिता को अर्पित किया; यही अर्थ है। उपरोक्त शैली के कारण शेष श्लोकों का अर्थ सरल है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा पद्माच्छदानिया का
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 47. थेरा सयानदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.147. सयनादायक 637
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.147. थेरा सयनदायक की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

47. सयनादायक 637

मैंने सिद्धार्थ, जो धन्य, प्रेममय और तटस्थ हैं, को (सभी) बिस्तर के वस्त्रों से ढका हुआ एक उत्कृष्ट पलंग दिया। (1) (1202)
(तब) भगवान ने वह उपयुक्त पलंग और कुर्सी स्वीकार की। (और) उस आसन से उठकर विजेता हवा में उड़ गया। (2) (1203)
जब से मैंने उसे वह पलंग दिया है (बहुत पहले), तब से लेकर अब तक के चौरानवे युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला; यही पलंग का फल है। (3) (1204)
वरुण देव कहलाने वाला,639

---

636 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला," यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 637 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 638 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
639 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए।

सात रत्नों का स्वामी, इक्यावनवें युग में महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था (इसलिए)। (4) (1205)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1206)
इस प्रकार पूज्य सायनाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सायनाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
47. थेरा सयनदायक की जीवनी पर टीका।

सिद्धार्थस भागवत से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेर सयनदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। यह जन्म प्रतापी सिद्धार्थ के समय हुआ था। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु में अटूट आस्था रखी और सोने के लिए हाथी दांत, सोना आदि से बना एक पलंग बनवाया, जिस पर बहुमूल्य रंग-बिरंगी चादरें बिछाईं और श्रद्धापूर्वक प्रतापी सिद्धार्थ को अर्पित किया। प्रतापी सिद्धार्थ ने दानदाता पर दया करते हुए भेंट स्वीकार की और पलंग के विश्राम का आनंद लिया। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने दिव्य और मानवीय आनंद का अनुभव किया और जब सिद्धार्थ बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिए। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु के विधान (शासन) में दृढ़ विश्वास स्थापित किया, भिक्षु बन गए, विपश्यना (अंतर्दृष्टि) विकसित करने लगे और शीघ्र ही अरहत बन गए। अपने पूर्व कर्म के नाम से ही वे थेरा सयनदायक के नाम से प्रसिद्ध हुए।
80. एक दिन, अपने पूर्व कर्म को याद करके, वे प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'सिद्धार्थस भगवतो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। पाली पद्धति का अनुसरण करने से यह सब आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सयनदायका का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 48. थेरा कनकमादायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.148. कंकमदायक 640
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.148. थेरा चंकमनदायक की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

48. कंकमदायक 640

मैंने ईंटों से जमीन को ढेर करके, अत्थादस्सी, (महान) ऋषि, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति के लिए एक पैदल मार्ग का निर्माण करवाया। (1) (1207)
वह पैदल मार्ग बहुत अच्छी तरह से बनाया गया था, जिस पर पाँच रत्न ढेर लगे हुए थे। वह सौ हाथ लंबा था और ध्यान के लिए सुखद था। (2) (1208)
धन्य बुद्ध ने इसे स्वीकार किया — अत्थादस्सी, पुरुषों में श्रेष्ठ — (और) अपने हाथ से कुछ रेत छानते हुए, उन्होंने ये छंद (ज़ोर से) कहे: (3) (1209)
"रेत के इस उपहार और इस उत्तम निर्मित मार्ग के कारण, (यह व्यक्ति) रेत का आनंद लेगा और सात रत्नों को प्राप्त करेगा। (4) (1210)
तीन युगों तक वह देवताओं के बीच दिव्य शासन करेगा। दिव्य अप्सराओं से घिरा हुआ वह (महान) सुख का आनंद लेगा। (5) (1211)
मानव जगत में आकर वह एक देश का राजा होगा, और तीन बार वह चक्र-चालक के रूप में (महान) पृथ्वी पर निवास करेगा।" (6) (1212)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 640 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

उस (अच्छे) कर्म के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही उस मार्ग का फल है। (7) (1213)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (1214)
इस प्रकार पूज्य चंकमदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
चांकमदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
48. थेरा चंकमनदायक की जीवनी पर टीका।
अत्थादस्सिस्सा मुनिनो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा चंकमनदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस या उस जन्म में, परम पूज्य बुद्ध अत्थादस्सी के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय की आयु प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु के प्रति गहरी आस्था रखी; उन्होंने एक ऊँची नींव पर सुशोभित, चांदी के ढेर की तरह चमकता हुआ, सुचारु कार्यों से सुसज्जित एक कुटिया बनवाई, उस पर मोती के टुकड़ों के समान सफेद रेत (मुत्तदल्ला) बिछाई और उसे परम पूज्य बुद्ध को अर्पित किया। भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु को स्वीकार किया, उसे शारीरिक और मानसिक एकाग्रता का सुख प्राप्त कराया और भविष्यवाणी की: "यह भविष्य में गौतम युग में भगवान बुद्ध का शिष्य बनेगा। उस पुण्य के कारण, वह बार-बार जन्म-जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करता रहा, दोनों प्रकार के आनंद का अनुभव किया, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वह एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; परिपक्व आयु प्राप्त करने पर, वह धार्मिक आस्था से संपन्न हुआ, युग में भिक्षु बना, शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त किया, और अपने पुण्य कर्म के नाम से चंकमनदायक नामक थेरा के रूप में प्रसिद्ध हुआ।"
93. अपने पूर्व में किए गए पुण्य कर्म को याद करके, एक दिन वे आनंद में लीन हो गए और उन्होंने अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'अत्थादस्सिस्सा मुनिनो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, अत्थादस्सिस्सा (अत्थादस्सी का), वह जो कल्याण को देखता और समझता है; संबंध (पयोजन), वृद्धि, निर्वाण की उन्नति; इस प्रकार, अत्थादस्सी (कल्याण का द्रष्टा); दूसरे शब्दों में, वह निर्वाण के कल्याण को देखने और जानने का अभ्यस्त है; इस प्रकार, अत्थादस्सी; मैंने उस महिमावान, ऋषि अत्थादस्सी के लिए एक आश्रम बनाया था, जो हृदय को आनंदित करने वाला, मन को तृप्त करने वाला, विकास के लिए सहायक, मन की पूर्णता को सुगम बनाने वाला था; इस प्रकार, संबंध है। उपरोक्त विधि का अनुसरण करके शेष बातें आसानी से समझ में आ जाएंगी।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा चंकमनदायका का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 49. थेरा सुभद्दा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.149. सुभद्दा
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.149. थेरा सुभद्दा की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

49. सुभद्दा

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ-प्राप्तकर्ता, महान ख्यातिप्राप्त, लोगों को ऊपर उठाकर उन्हें निर्वाण प्राप्त कराते हैं। (1) (1215)
और जब बुद्ध का निधन हुआ641 तो दस हजार लोक कांप उठे। तब लोगों और देवताओं का एक विशाल समूह वहाँ एकत्रित हुआ। (2) (1216)
प्रसन्न होकर, (और) प्रसन्न हृदय से मैंने सर्वश्रेष्ठ पुरुष को धूप और चमेली के फूलों से भरे आवरण से अभिषेक किया। (3) (1217)
विश्व में अद्वितीय शिक्षक, मेरे विचारों को जानकर, हे बुद्धिमान, संबुद्ध ने मेरे बारे में ये श्लोक कहे: (4) (1218)
मैं उस व्यक्ति के बारे में विस्तार से बताऊंगा जिसने मेरे इन अंतिम क्षणों में मुझे प्रभावित किया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 641 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 642 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
643 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे सुगंध और फूलों से ढक दिया; (आप सभी) मेरी बातें सुनो: (5) (1219)
यहाँ से गिरकर यह व्यक्ति तुसिता स्वर्ग में जाएगा। वहाँ दिव्य शासन करते हुए वह (फिर) निम्माना जाएगा।644 (6) (1220)
(वहाँ) ठीक उसी प्रकार उसने उत्तम फूल देकर, अपने कर्मों में प्रसन्नता का अनुभव किया होगा और (तब) उसे बहुत सुख प्राप्त होगा। (7) (1221)
फिर से पतित होकर यह व्यक्ति तुषिता शरीर में जन्म लेगा। उस शरीर से भी गिरकर वह मनुष्य अवस्था में चला जाएगा। (8) (1222)
शाक्यों का पुत्र, महान हाथी, देवताओं सहित संसार का नेता, दृष्टिभ्रमित, जागृत, अनेकों को निर्वाण प्राप्त कराएगा। (9) (1223)
(एक गैर-बौद्ध के रूप में) आगे बढ़ते हुए, (अपनी) अच्छी जड़ों से प्रेरित होकर, संबुद्ध के पास पहुँचकर वह उस समय (अच्छे) प्रश्न पूछेगा। (10) (1224)
एक बार जब वह बोल चुका होगा, तो संबुद्ध, सर्वज्ञ, विश्व-नेता, अपने पूर्व कर्मों को समझकर (चार आर्य) सत्यों को प्रकट करेगा।645 (11) (1225)
यह बुद्धिमान और ऊर्जावान, प्रसन्न और शांत मन वाला व्यक्ति, गुरु की पूजा करने के बाद (बौद्ध बनने के लिए) प्रस्थान करने का निवेदन करेगा। (12) (1226)
सर्वोच्च शिक्षा में निपुण, वह बुद्ध, अपने कर्मों से प्रसन्न होकर, उसके प्रसन्न मन को देखकर, उसे (तब) दीक्षा देंगे। (13) (1227)
इस व्यक्ति ने अपने तमाम प्रयासों के बाद

644 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला," यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े और उससे बने ऊपरी वस्त्र दोनों को संदर्भित करता है। 645 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

बुद्ध के 646 विधान में, सभी दोषों को भली-भांति जानकर निर्वाण प्राप्त होगा, दोषरहित होकर।" (14) (1228)
पांचवां पाठ भाग। अपने पूर्व कर्मों के अनुरूप, शांत और सजग रहते हुए, बुद्ध का वैध पुत्र होने के नाते, मैं धम्म से जन्मा, उत्तम निर्मित प्राणी हूँ। (15) (1229)
शिक्षा के राजा के पास पहुँचकर, मैंने अंतिम प्रश्न पूछा। मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने शिक्षा की धारा को प्रकट किया। (16) (1230)

उनकी शिक्षा को समझकर, मैं उस व्यवस्था से प्रसन्न होकर जीवन व्यतीत करता था। समस्त दोषों को भली-भांति जानकर, मैं अब दोषों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता हूँ। (17) (1231)
एक लाख युगों बाद कमल के नाम से जाने जाने वाले (बुद्ध) ने निर्वाण प्राप्त किया, जो तेल से वंचित दीपक के समान, अथाह है। (18) (1232)648
वहाँ रत्नों से बना एक स्तूप था, जो सात लिग (ऊँचा) था, अत्यंत शुभ और रमणीय; वहाँ मैंने ध्वज-पूजा की। (19) (1233)
तिस्सा, संबुद्ध का सबसे प्रमुख अनुयायी, कस्सपा, मेरा (स्वयं का) वैध पुत्र था, जो उस विजेता की शिक्षाओं का उत्तराधिकारी था। (20) (1234)
अपनी अपरिपक्व बुद्धि के कारण, मैंने (एक बार) अशुभ शब्द बोले। उस (बुरे) कर्म के फलस्वरूप मैंने (केवल) विजेता की मृत्यु देखी।649 (21) (1235)
साल के पेड़ों से घिरे एक बगीचे में (महान) ऋषि, (तब) अपनी मृत्यु शैया पर, मित्र, दयालु, विजयी,

---

646 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ। 647 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel)। 648 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 649 BJTS के साथ PTS sañjālesi के लिए sañcālesi पढ़ना।

महान नायक ने मुझे (वहाँ) नियुक्त किया।650 (22) (1236)
आज, अभी इसी वक्त मैं आगे बढ़ गया हूँ; आज मेरा दीक्षा समारोह भी है।651 (और) आज ही मेरा अंतिम प्रस्थान है652 दो पैरों वाले प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ के सामने। (23) (1237)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) (1238)
इस प्रकार पूज्य सुभद्दा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सुभद्दा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
49. थेरा सुभद्दा की जीवनी पर टीका।
पदुमुत्तरो लोकविदू से शुरू होने वाले श्लोक, आदरणीय थेरा सुभद्दा की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, निर्वाण प्राप्त करने के उद्देश्य से पुण्य कर्म संचित करते हुए, इस और उस जन्म में, वे धनवान और धर्मपरायण एक परिवार में, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय में पुनर्जन्म लेकर आए। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने गृहस्थी का बंधन धारण किया, तीनों रत्नों में गहरी आस्था रखी, परिणीति के पलंग पर लेटे हुए तेजस्वी पद्ममुत्तरा को देखा (जो चारों ओर से निर्वाण की ओर अग्रसर हैं), दस हजार ब्रह्मांडों के एकत्रित दिव्य प्राणियों को भी देखा, श्रद्धा से भर गए और आदरपूर्वक निग्गुंडी, केतका, नीला (नीलक) आशोक, असिता आदि अनेक सुगंधित पुष्प अर्पित किए। अपने जीवनकाल तक जीवित रहने के बाद, उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वहाँ से देहांत होने पर, उन्होंने तुषिता आदि दिव्य लोकों में दिव्य समृद्धि का आनंद लिया, उसके बाद मनुष्यों के बीच मानवीय समृद्धि का आनंद लिया और जहाँ भी उनका जन्म हुआ, उन्हें सुगंधित पुष्पों से सम्मानित किया गया। जब ये बुद्ध प्रकट हुए, तो उनका पुनर्जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ। बुद्धि प्राप्त करने पर, यद्यपि उन्हें इंद्रिय सुखों में हानि दिखाई देने लगी, फिर भी उन्होंने बुद्ध के दर्शन तब तक नहीं किए जब तक कि प्रतापी बुद्ध परिनिर्वाण की अवस्था में नहीं चले गए। वे तभी भिक्षु बने जब प्रतापी बुद्ध परिनिर्वाण की शय्या पर लेटे हुए थे और उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया। वे अपने पूर्व में किए गए पुण्य कर्म के कारण सुभद्दा के नाम से प्रसिद्ध हुए।
101. अपने पूर्व कर्म को याद करके, उन्होंने अपने मानसिक सुख के लिए किए गए पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'पदमुत्तरो लोकविदु' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। यह तो सरल है। सुनथा ममभासतो :P: निब्बायिस्सतिऽनासावो, मेरी बात सुनो :P: जो दोषमुक्त होकर निर्वाण में प्रवेश करता है; परम पूज्य पद्ममुत्तरा ने परिनिर्वाण के पलंग पर लेटे हुए यह भविष्यवाणी की थी।
पाँचवें मोड़ पर टिप्पणी
पाठ (भानवर) का, है

समाप्त।

115. उन्होंने अपनी उचित प्राप्ति को दर्शाने के लिए पुबकम्मेन सम्युत्तो से शुरू होने वाले एक श्लोक का पाठ किया। एकाग्गो, एकाग्र मन वाला; सुसमाहितो (अच्छी तरह से एकाग्र) शरीर और मन इस प्रकार शांत, इसका अर्थ है। बुद्धस्स ओरसो पुत्तो (बुद्ध का हृदय पुत्र) वह जिसने बुद्ध के हृदय से आए उपदेशात्मक परामर्श को सुनने के बाद अर्हतत्व की प्राप्ति की है; इस प्रकार, इसका अर्थ है। धम्मजोम्हि सुनिम्मितो (मैं अच्छी तरह से सृजित धम्म से जन्मा हूँ), मैं वह हूँ और मैं वह बन जाता हूँ जिसने अपने सभी कर्तव्यों को अच्छी तरह से पूरा किया है, श्रेष्ठ (आरिया) के जन्म से अच्छी तरह से सृजित, जो कर्म से उत्पन्न हुआ, मानसिक अभ्यास का कर्म (कम्मत्थाना); इस प्रकार, इसका अर्थ है

116. धम्मराजम उपगम्म (सत्य के राजा (धम्म) के पास पहुँचकर, सत्य (धम्म) द्वारा समस्त प्राणियों के राजा बने प्रतापी के निकट जाकर, यही अर्थ है। अपुच्छिम पण्हमुत्तमम (मैंने सबसे उत्तम प्रश्न पूछा), मैंने ऐसे प्रश्न पूछे जो स्कंध, इंद्रियों के निवास स्थान, धातु, सत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि जैसे उत्तम विषयों से उचित रूप से संबंधित थे, यही अर्थ है। कथायन्तो च मे पण्हम (अपना प्रश्न भी कहकर), मेरे प्रश्न को कहकर और समझाकर, हमारे प्रतापी ने मुझे सत्य (धम्म) की धारा की ओर अग्रसर किया, सत्य (धम्म) की धारा के निकट ले जाकर उसमें प्रवेश कराया, जो पूर्ण अवशेष रहित निर्वाण का तत्व (धातु) माना जाता है; यही अर्थ है। अर्थ।

118. जलजुत्तमनायको (सबसे उत्कृष्ट जलीय पुष्प नेता, पद्ममुत्तरा नाम से) इस काल्पनिक शब्द में व्यंजन 'म' को 'य' में परिवर्तित किया गया है; निब्बायि अनुपादानो (अनासक्त होकर बुझ गया) अदृश्य हो गया, प्रकट नहीं हुआ, पाँचों स्कंधों (जो आसक्ति हैं) को ग्रहण किए बिना निर्वाण में प्रवेश कर गया; मानव जगत आदि में भी कहीं भी विधिवत स्थापित हुए बिना; यही अर्थ है। दीपो वा तेलसंखया (जैसे वह दीपक जिसका तेल पूरी तरह समाप्त हो गया हो) वह बाती और तेल की अनुपस्थिति के कारण, तेल के पूर्ण रूप से समाप्त हो जाने के कारण, दीपक की तरह बुझ गया; यही संबंध है।

119. परिनिभान प्राप्त कर चुके उस तेजस्वी पद्ममुत्तरा का रत्नों से बना ठोस मंदिर सात योजन ऊँचा था; यही इसका अर्थ है। धजम तत्थ अपुजेसिम (मैंने वहाँ श्रद्धापूर्वक ध्वज अर्पित किया) मैंने उस मंदिर में मनभावन, सर्वगुणपूर्ण और उत्तम ध्वज श्रद्धापूर्वक अर्पित किया; यही इसका अर्थ है।

120. कस्सपस्सा च बुद्धस्स, बुद्ध कस्सपा के, प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय से, मेरे बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों के चक्रों में भटकते हुए, मेरे प्रिय पुत्र तिस्सा, बुद्ध, विजेता, के धर्म में उत्तराधिकारी थे, जो आत्मप्रबुद्ध बुद्ध कस्सपा के प्रमुख शिष्य थे; इस प्रकार, संबंध है।

121. तस्स हीनेना मनसा (अपने नीच मन के कारण), मेरे उस पुत्र तिस्सा, जो मेरा मुख्य शिष्य था, के नीच और पापी (लामक) मन के कारण; अभद्दकम (बुरा) वाचम, (शब्द) आभासिम (मैंने कहा) मैंने ऐसे अनुचित और अनुपयुक्त शब्द कहे जैसे: "अन्तको पच्छिमो, अंत, अंतिम", उस कर्म का परिणाम), उस बुरे कर्म की स्पष्ट परिपक्वता के कारण जिसे अरहत के लिए निंदा माना गया; पच्छिमे अद्दसम जिनम (मैंने अंतिम क्षण में विजेता को देखा) मैंने हमारे आत्मप्रबुद्ध बुद्ध गौतम, समस्त मारों के विजेता को, मल्ल नगर के निकट उगे साल वन में, परिनिर्वाण के पलंग पर लेटे हुए, उनके सर्वांगीण अंत में पूर्ण परलोक में देखा; यही अर्थ है। इसका एक पाठ यह भी है: "पच्चा मे आसि भद्दक, मेरा भद्दक अंतिम हुआ"। उस प्रतापी के अंत के समय, निर्वाण के निकट आने के समय, पच्चा (उसका अंतिम); मे (मेरा) भद्दकम (अच्छा) आसि (था) जब मुझे चारों आर्य सत्यों का उचित ज्ञान प्राप्त हुआ, यही अर्थ है।

122. पाब्बाजेसी महावीर (महान वीर ने मुझे भिक्षु बनाया) वह ऋषि, जिन्होंने अपार परिश्रम किया, समस्त प्राणियों के कल्याण के साधक रहे, दूसरों के प्रति दयालु रहे, मारा पर विजय प्राप्त की, और जो मल्ल देश के निकट स्थित साल के उपवन में परिनिर्वाण के पलंग पर अपनी अंतिम नींद सो रहे थे, उन्होंने मुझे भिक्षु बनाया; इस प्रकार, यह संबंध है।

123. आज ही, आज ही, परम पूज्य के परिनिर्वाण के उसी दिन मेरा भिक्षुत्व संपन्न हुआ; इसी प्रकार आज ही मेरा दीक्षा संस्कार हुआ; आज ही, मेरे समक्ष दो पैरों वाले परम श्रेष्ठ प्राणी का परिनिर्वाण (पूर्ण निर्वाण) हुआ; यही संबंध है। शेष तो सहजता से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा सुभद्दा का

समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 50. थेरा कुंडा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.150. कुंडा
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.150. थेरा चुंडा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

50. कुंडा

विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, धन्य (सिद्धार्थ) के लिए एक माला बनवाकर, मैंने उसे चमेली के फूलों से ढक दिया। (1) (1239)
फूल रखने के बाद, मैंने उन्हें बुद्ध को दे दिया। बचे हुए फूलों को उठाकर मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित कर दिया। (2) (1240)
प्रसन्नता से, अपने हृदय में आनंद लिए मैंने वह पुष्पमय माला विश्व के प्रधान नेता बुद्ध को सोने की माला के समान भेंट की। (3) (1241)
संबुद्ध, संदेह दूर होने पर, बाढ़ पार करने वालों द्वारा सम्मानित, 654 भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, ये श्लोक बोले (तब मेरे बारे में): (4) (1242)

---

650 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 651 शाब्दिक अर्थ, "पुण्यशाली" 652 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंढ (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु (लंबा? मोटा?)।" 653 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 654 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

"मैं उस व्यक्ति के बारे में विस्तार से बताऊंगा जिसने मुझे दिव्य सुगंधों से परिपूर्ण पुष्प माला भेंट की; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (5) (1243)
जब वह यहाँ से गिर जाएगा, तो यह व्यक्ति देवताओं के लोक में जाएगा, जहाँ उसके चारों ओर देवताओं की सभा होगी, और वहाँ चमेली के फूल बिखरे होंगे। (6) (1244)
उसका निवास, जो ऊँचा उठा हुआ होगा, सोने और रत्नों से बना होगा। वह दिव्य महल उसके अच्छे कर्मों से प्रकाशित होकर दमकता हुआ चमकेगा।655 (7) (1245)
वह चौहत्तर (अलग-अलग) बार दिव्य शासन करेगा। अप्सराओं द्वारा सेवा किए जाने पर, वह महान सुख का आनंद लेगा। (8) (1246)
वह पृथ्वी पर निवास करेगा और तीन सौ बार शासन करेगा। वह पाँच सौ बार कानून के पहिये को घुमाने वाला राजा होगा। (9) (1247)
वह दुज्जया नाम से जाना जाने वाला एक मानव सम्राट होगा।656 वह अपने कर्मों को जाने बिना उस पुण्य का अनुभव करेगा। (10) (1248)
वह दुःख के स्थान पर नहीं जाएगा, वह मानवीय अवस्था में जाएगा। उसके लिए ढेर सारा सोना होगा, बहुत सारा, अरबों में गिना जाएगा। (11) (1249)
वह संसार में पुनर्जन्म लेगा; वह (तब) एक ब्राह्मण पुरुष होगा, सारी का प्रिय पुत्र, (और) वांगता का ज्ञानी पुत्र। (12) (1250)
फिर वह शाइनी में आगे बढ़ेगा-

---

655 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 656 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 657 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

शरीरधारी658 (बुद्ध का) उपदेश। उसका नाम चूलकुंडा होगा,659 शिक्षक का अनुयायी। (13) (1251)

(यद्यपि) वह नौसिखिया होते हुए भी अरहंत बन जाएगा।660 समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए वह निर्वाण को प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर।" (14) (1252)

अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मैंने अपने (स्वयं के) भाई,661 महान नायक जो उठ खड़ा हुआ था, और कई अन्य सुखद662 लोगों की भी प्रतीक्षा की। (15) (1253)

अपने भाई की सेवा करते हुए, जब उसकी मृत्यु हुई, तो मैंने उसके अवशेष उसके कटोरे में रखे और उसे संसार के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, संबुद्ध को अर्पित कर दिया। (16) (1254)

इस संसार में देवताओं के साथ बुद्ध ने अपने दोनों हाथों से (उस कटोरे को) उठाया। उन अवशेषों का आदर करते हुए, उन्होंने (तब) शीर्ष अनुयायी की प्रशंसा की।663 (17) (1255)

अब मेरा मन पूरी तरह से मुक्त हो गया है और मुझमें आस्था स्थापित हो गई है। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए भी, मैं (अब) निर्मल होकर जी रहा हूँ। (18) (1256)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) (1257)

इस प्रकार पूज्य चुंडा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुंडा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

उपाली, सोना, भद्दिया, सन्निधापक, हत्थिया, चदना, सेय्या-चंकमं

---

658 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 659 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 660 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 661 BJTS के साथ PTS के लिए संजालेसी का पाठ। 662 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"। 663 शाब्दिक अर्थ, "पुण्यवान"।

सुभद्दा, चुंडा नाम की एक महिला: एक सौ चालीस श्लोक और उनके अतिरिक्त चार और।

उपाली अध्याय, पांचवां।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन

50. थेरा चुंडा की जीवनी पर टिप्पणी।

सिद्धार्थस भगवतो से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा चुंडा की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी अनेक पुण्य कर्म किए थे, जो पुनर्जन्मों के चक्र (वत्) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। वे भगवान सिद्धार्थ के समय एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिए। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु के प्रति गहरी आस्था रखी, सात प्रकार के रत्नों से जड़ा एक कीमती सोने का पात्र बनवाया, उसे चमेली के फूलों से ढककर भगवान सिद्धार्थ को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। वे फूल स्वतः ही आकाश में उठ गए और छत्र का रूप धारण कर लिया। तब भगवान सिद्धार्थ ने उनके बारे में भविष्यवाणी की, "भविष्य में वे भगवान गौतम के मार्गदर्शन में चुंडा नामक शिष्य बनेंगे।" उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे वहां से देह त्याग कर दिव्य लोक में अवतरित हुए। समय के साथ (क्रमिक रूप से) उन्होंने इंद्रिय सुखों के छह दिव्य लोकों में समृद्धि का आनंद लिया और मनुष्यों में विश्वराज आदि के सुखों का अनुभव करने के बाद, ब्राह्मण परिवार में रूपसारी

के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया और बुद्ध के जन्म के समय थेरा सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई बने। जब वे बुद्धि की आयु प्राप्त कर चुके थे, तो उनकी उत्कृष्ट शारीरिक वृद्धि, सर्वांगीण नेतृत्व क्षमता (परिणाम), सुंदरता और आयु के कारण, उन्हें चुंडा नाम दिया गया, जिसमें व्यंजन 'स' को 'क' में बदल दिया गया। यौवन प्राप्त करने पर, उन्होंने गृहस्थ जीवन में हानि और त्याग में लाभ को देखा, अपने भाई थेरा की उपस्थिति में भिक्षु बन गए, विपश्यना विकसित की और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

125. अरहतत्व की प्राप्ति के बाद, एक दिन उन्हें अपने पूर्व कर्मों की याद आई, वे आनंद में लीन हो गए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'सिद्धत्थस भगवतो' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। 'अग्हियम' से शुरू होने वाला श्लोक भी अर्थ में सरल है।

128. वितिनाकंखो संबुद्धो (संदेह रहित आत्मप्रबुद्ध बुद्ध) संशय से मुक्त, संदेह रहित आत्मप्रबुद्ध बुद्ध, जिन्होंने श्रेष्ठ मार्ग की विशिष्ट उपलब्धि से संशय को त्याग दिया; तिन्नोगेहि पुरक्खतो (बाढ़ पार करने वालों के आगे स्वयं को रखते हुए) संशय रहित (अरहतों) से घिरे और उनके आगे रहते हुए, जिन्होंने बाढ़ पार कर ली थी; इस प्रकार, इसका अर्थ है। भविष्यवाणी का यह श्लोक अर्थ में सरल है।

139. उपात्ः महावीरम्, मैंने महान वीर की सेवा की; पट्टिया (प्राप्ति के लिए) परम श्रेष्ठ लाभ, निर्वाण की प्राप्ति के लिए, मैंने महान वीर बुद्ध की सेवा और परिचारिका की, क्योंकि उन्होंने चार असंख्य युगों (कप्पा) के अतिरिक्त एक लाख युगों तक पूर्णता की पूर्ति के साथ परिश्रम किया; यही अर्थ है। अञ्ञे च पेसलेबाहु (अनेक अन्य सचेतन व्यक्ति) मैंने केवल बुद्ध की ही सेवा नहीं की, बल्कि कई अन्य शिष्यों की भी सेवा की, जिन्होंने सर्वोच्च पद प्राप्त किए थे, नैतिक उपदेशों से युक्त थे और अपने नैतिक गुणों के प्रति समर्पित थे; मे माई; भातराम (भाई) मैंने थेरा सारिपुत्त की भी परिचारिका की; यही संबंध है।

140. भातराम मे उपात्तहित्वा, अपने भाई की सेवा करने के बाद, उपनामेसिम (मैंने अर्पित किया); अपने भाई की सेवा करने के बाद, अपने कर्तव्यों और उचित कर्तव्यों का पालन करने के बाद, उनके प्राणिब्बान के समय, क्योंकि वे पहले मरे, मैंने उनके अवशेषों को अपने भिक्षापात्र में एकत्रित करके बिखेर दिया और जगत के सबसे बड़े, बुद्ध, जो मनुष्यों के महापुरुष हैं, को सौंप दिया; यही अर्थ है।

141. उभो हत्थेहि पग्गयहा, दोनों हाथों से उठाकर, अग्गसावकम, प्रमुख शिष्य, कित्तयी, ने प्रचारित किया; उस प्रतापी ने मेरे द्वारा अर्पित उस अवशेष को अपने दोनों हाथों से उचित ढंग से धारण किया, और उस अवशेष को उचित रूप से प्रदर्शित करने के लिए थेरा सारिपुत्त को प्रकट किया; यही अर्थ है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा कुंडा का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 51. थेर विधूपनदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.151. विधूपनदायक 664
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.151. थेरा विधूपनदायक की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
विज्ञानी अध्याय, छठा

---

51. विधूपनदायक 664

मैंने विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, और सभी द्विपाद प्राणियों के समान भगवान, पद्ममुत्तरा बुद्ध को एक पंखा समर्पित किया। (1) (1258)
अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, दोनों हाथों को जोड़कर, संबुद्ध की पूजा करने के बाद, मैं उत्तर दिशा की ओर मुख करके चला गया। (2) (1259)
पंखा उठाते हुए (मैंने उसे दिया) शिक्षक, विश्व के प्रमुख नेता; भिक्षुओं की सभा में खड़े होकर (तब) मेरे बारे में ये छंद बोले: (3) (1260)
"इस पंखे के उपहार और अपने हृदय में दृढ़ संकल्प के कारण, वह एक लाख युगों तक शोक के स्थान पर नहीं जाएगा। (4) (1261)
दृढ़ संकल्प के साथ, अथक प्रयास से, हृदय के सद्गुणों पर ध्यान देते हुए, वह केवल सात वर्ष की आयु में ही अरहंत पद प्राप्त कर लेगा। (5) (1262)
साठ हजार युगों में (इसलिए) वह सोलह (विभिन्न) राजा होंगे जो (सभी) विजयमान कहलाएंगे, 665 चक्र घुमाने वाले महान शक्तिवान सम्राट। (6) (1263)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 664 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 665 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1264)
इस प्रकार पूज्य विधूपनादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
विधूपनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
6. पंखे पर अध्याय
51. थेरा विधूपनदायक की जीवनी पर टीका।
पदुमुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा विधुपनदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व श्रेष्ठ विजेताओं के युग में उन्होंने भी पुण्य कर्मों से परिपूर्ण होकर, जन्म-मृत्यु के चक्रों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए इस और उस जन्म में पुण्य कर्म संचित किए, और पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर वे धनी और बुद्ध में परम श्रद्धा से परिपूर्ण हो गए। प्रसन्न होकर उन्होंने ग्रीष्म ऋतु में सोने, चांदी, मोतियों और रत्नों से बना पंखा बुद्ध को अर्पित किया। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे देवताओं और मनुष्यों के बीच जन्म-मृत्यु के चक्रों में विचरण करते रहे, दो प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया, और हमारे इस आत्मप्रबुद्ध बुद्ध के उदय के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। गृहस्थी बंधन में बंधने के बाद, उन्होंने गृहस्थ जीवन में असुविधा देखी; त्याग में लाभ देखा, धार्मिक आस्था से परिपूर्ण हुए, शासन (सासन) में भिक्षु बन गए और शीघ्र ही अरहत बन गए।
1. अपने पूर्व कर्मों को याद करते हुए, उन्होंने मन ही मन कहा, "किस पुण्य कर्म से मुझे यह दिव्य समृद्धि प्राप्त हुई है?" उन्हें तुरंत इसका ज्ञान हो गया और उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है: बीजनिका मया दिन्ना। यह पंखा मैंने अर्पित किया है, यह विशिष्ट रूप से ऊष्मा से जल रहे प्राणियों की ऊष्मा को बुझाता है, यह ठंडी हवा उत्पन्न करता है; इस प्रकार बीजनी, पंखा; वही पंखा बीजनिका, पंखा है; सात प्रकार के रत्नों से बना, अत्यंत चमकीला वह पंखा मैंने बनवाया और अर्पित किया है; यही अर्थ है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा विधूपनदायक
समाप्त हो गया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 52. थेरा सत्रासिका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.152. सतरांगसिका 666
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.152. थेरा सतरमसी की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

52. सतरांगसिका 666

एक चट्टानी उभार पर चढ़कर, परम पुरुष वहाँ बैठ गया। (मैं), उस पर्वत के क्षेत्र में एक ब्राह्मण मंत्र-गुरु, (1) (1265)
मैंने अपने हाथों को जोड़कर (उनकी) प्रशंसा की, विश्व नेता, देवताओं के देवता, मनुष्यों के बैल, महान नायक जो आ चुके थे: (2) (1266)
"यह बुद्ध हैं, महान नायक, सर्वश्रेष्ठ शिक्षा के उपदेशक, अग्नि की धधकती हुई स्तंभ के समान, भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित। (3) (1267)
समुद्र के समान अविचलित, सागर के समान पार करना कठिन, पशुओं के राजा के समान निर्भीक, नेत्रपूर्ण व्यक्ति धम्म का उपदेश देता है। (4) (1268)
मेरे विचारों को समझते हुए, कमल के नाम से जाने जाने वाले (बुद्ध), भिक्षुओं की सभा में खड़े होकर, शिक्षक ने ये श्लोक कहे: (5) (1269)
"जिसने हाथ जोड़कर तीस हजार युगों तक (मेरी), सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की स्तुति की है, वह दिव्य शासन करेगा। (6) (1270)
एक लाख युगों में से एक का नाम अंगिरासा के नाम पर रखा गया है,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 666 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 667 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

तब संबुद्धा, अंधापन दूर होने पर, 668 अस्तित्व में आएगा। (7) (1271)
उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी, धम्म की वैध संतान, सतरांगसी के नाम से जाना जाने वाला व्यक्ति अरहंत बनेगा (तब)।" (8) (1272)
केवल सात वर्ष की आयु में, मैं बेघर हो गया। मुझे सतरांगसी के नाम से जाना जाता है; मेरा प्रकाश (संपूर्ण विश्व) को पवित्र करता है।669 (9) (1273)
मंच पर या वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न, समाधि-प्रेमी, मैं परम बुद्ध की शिक्षाओं में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (10) (1274)
साठ हजार युग पहले रोमा नाम से जाने जाने वाले चार पुरुष थे। वे महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, पहिए घुमाने वाले थे। (11) (1275)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) (1276)
इस प्रकार पूज्य सतरंगसिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सतारांगसिका670 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

52. थेरा सतरमसी की जीवनी पर टीका।

उच्च्यम सेलामारुयह से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सतरमसी की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए पुण्य कर्म संचित किए, जो पुनर्जन्म के चक्र (वत्त) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे। इस और उस जन्म में वे ब्राह्मण परिवार में जन्म लिए, उस समय जब पद्ममुत्तरा विराजमान थे। ज्ञान की आयु प्राप्त करने पर उन्होंने संस्कृत व्याकरण और तीनों वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया, गृहस्थ जीवन त्याग दिया, वन में प्रवेश किया, संसार का त्याग कर तपस्वी बन गए और हिमवंत में निवास करने लगे। उस अवसर पर, पद्ममुत्तरा एकांत की इच्छा से एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़े और जलती हुई अग्नि के समान बैठ गए। उस प्रकार बैठे हुए पद्ममुत्तरा को देखकर तपस्वी प्रसन्न हो गए, उन्होंने हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, वे वहाँ से चले गए, छह दिव्य अवस्थाओं में दैवीय आनंद का अनुभव किया, फिर पुनर्जन्म लेकर विश्वराज बने, जिनका नाम सतरमसी (सौ किरणें) था। अनेक वर्षों तक उस समृद्धि का अनुभव करने के बाद, उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; उन्होंने अपने पूर्व पुण्य कर्मों के फलस्वरूप ज्ञान की सर्वांगीण परिपक्वता के कारण सात वर्ष की आयु में ही संसार का त्याग कर दिया और अर्हतत्व प्राप्त किया।

8-9. इस प्रकार स्मरण करते हुए:- "मैंने सात वर्ष की आयु में ही किस कर्म से शांति का मार्ग प्राप्त किया?", उन्होंने अपने ज्ञान के माध्यम से अपनी आँखों के सामने अपने पूर्व कर्म को खोज निकाला, जिससे वे आनंदमय हो गए और उन्होंने 'उच्च्यं सेलमरुयह' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि गंभीर उच्चारण द्वारा अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। वहाँ (उच्च्यं) पत्थर से बनी एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर पद्ममुत्तरा बैठ गए; यही संबंध है। (पब्बतस्साविदूरंहि) पहाड़ी के पास उस स्थान पर जहाँ प्रतापी विराजमान थे; यही अर्थ है। (ब्राह्मणो मंतपारागू) एक ब्राह्मण जो अपने तीन वेदों को मंत्रों के रूप में मानकर चरम सीमा तक पहुँच चुका था; यही अर्थ है। मंत्रों के इस विद्वान ने स्वयं को, मानो किसी और को, यह बात समझाई। उपविष्ठम् महावीरन् (वह महान वीर जो प्रवेश कर चुका है), वीरता से परिपूर्ण विजेता, पर्वत पर विराजमान; क्या विशिष्टता है? देवदेवम् (देवताओं के देवता), समस्त छह चरणों वाले संसार के इंद्रिय-प्रधान और ब्रह्माओं के स्वामी; नरसोभम् (महान पुरुष), मनुष्यों में श्रेष्ठ; लोकनायकम् (संसार के नेता), निर्वाण ले जाने वाले, समस्त जगत के प्राणियों के मार्गदर्शक; अंजलिम्, हाथ जोड़कर; पग्घेत्वान, ऊपर उठाकर; संथविम् (मैंने उचित स्तुति की), मैंने दस उंगलियों को एक साथ जोड़कर एक पात्र बनाया, उसे अपने सिर पर उचित रूप से रखा और महिमामयी की उचित स्तुति की; यही संबंध है।

12. अभासथ ने कहा, "उन्होंने इस प्रकार भविष्यवाणी की: 'वह इस कारण से अरहत बनेगा, अर्थात्: इस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर भेंट की, इत्यादि।' शेष का अर्थ स्पष्ट है।"

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सतरमसी का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 53. थेरा सयानदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.153. सायनादायक 671
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.153. थेरा सयनदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

53. सायनादायक 671

बुद्ध पद्ममुत्तरा को समस्त संसार पर दया आई। मैंने अत्यंत निर्मल मन से उन्हें पलंग दान किया। (1) (1277)

---

668 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 669 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 670 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित 671 अपदान संख्याएँ {फैंसी कोष्ठकों} में दी गई हैं, जो BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं।

उस पलंग के उपहार के कारण, भोजन (तब) मुझे अपने आप प्रकट हो जाता था, (जैसे) अच्छे खेत में बीज की उपज: यही उस पलंग को देने का फल है। (2) (1278)
मैं आकाश में अपना बिस्तर बनाता हूँ; मैं पूरी पृथ्वी को धारण करता हूँ; प्राणियों पर मेरा प्रभुत्व है: यही बिस्तर (उपहार) का फल है। (3) (1279)
(तब) पाँच हज़ार युग पहले, आठ महावर थे; चौंतीस सौ युग बाद, चार महान शक्ति वाले राजा थे। (4) (1280)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1281)
इस प्रकार पूज्य सायनाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सायनाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
53. थेरा सयनदायक की जीवनी पर टीका।
पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा सयनदायक की जीवनी पर आधारित हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की, पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और इस-उस जन्म में उनका पुनर्जन्म पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय एक गृहस्थ परिवार में हुआ। ज्ञान प्राप्ति के बाद, उन्होंने विधिवत गृहस्थ जीवन व्यतीत किया, समृद्धि का आनंद लिया, गुरु के धर्म उपदेश सुने, गुरु में अटूट आस्था रखी, हाथीदांत, सोने, चांदी, मोती और माणिक से बना एक उत्तम पलंग बनवाया, उस पर चीनी वस्त्र, मखमल आदि की चादरें बिछाईं और उसे बुद्ध को सोने के लिए अर्पित किया। बुद्ध ने उस पर विश्राम किया और उनका उत्थान हुआ। उस पुण्य कर्म का एक वृत्तांत यह है कि वे अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, आकाश में विचरण करने, सुखमय नींद लेने आदि जैसी समृद्धि का आनंद लेते रहे, एक समृद्ध परिवार में उनका पुनर्जन्म हुआ; जब यह बुद्ध उठे, तो बुद्धि की आयु प्राप्त करने के बाद उन्होंने गुरु के सत्य (धम्म) उपदेश सुने, धर्मपरायण हो गए, भिक्षु बन गए, विपश्यना (विपस्सन्तो) विकसित की और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए।
20. अपने पूर्व कर्म को याद करके वह आनंद में लीन हो गया और उसने पद्ममुत्तरा-बुद्धस्स से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया ताकि वह अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सके। उस श्लोक का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है।
21. सुखेत्ते बीजसंपदा (उपजाऊ खेत में बीज की सफलता) जिस प्रकार घास और कचरे से रहित, कोमल मिट्टी आदि गुणों से युक्त उपजाऊ खेत में बोए गए बीज भरपूर फसल देते हैं, ठीक उसी प्रकार दान की गई वस्तुएँ, चाहे मात्रा में कम ही क्यों न हों, शुद्ध दाता के पुण्य क्षेत्र में पूर्ण फलदायी होती हैं, जो घास और कचरे से रहित हो और जिसमें कामवासना (राग), क्रोध (दोष) आदि पंद्रह सौ प्रकार के दुराचार (किलेसा) समाहित हों; यही अर्थ है। शेष अर्थ तो आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सयनदायका का

समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 54. थेरा गंधोदक

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.154. गंधोदक 673
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.154. थेरा गंधोदकिया की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

54. गंधोदक 673

पद्ममुत्तरा बुद्ध के लिए बोधि वृक्ष उत्सव मनाया गया। मैंने एक सजा हुआ पात्र लेकर सुगंधित जल दान किया। (1) (1282)

जब उस बोधि को स्नान कराया जा रहा था, तभी उस पर एक विशाल बादल बरस पड़ा। और जब बिजली कड़की तो वहाँ एक कान बहरा कर देने वाली आवाज़ हुई। (2) (1283)

उस बिजली के बल से मैं वहीं (ठीक उसी समय) मर गया। देवताओं के लोक में खड़े होकर मैंने ये छंद (ज़ोर से) कहे: (3) (1284)

---

672 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 673 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 674 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

"हे बुद्ध! हे शिक्षा! हे हमारे गुरु की (महान) उपलब्धि! मेरा मृत शरीर नीचे गिर गया है (और) मैं (अब) स्वर्ग में आनंदित हूँ! (4) (1285)

मेरा निवास (बहुत) ऊँचा है, सौ मंजिल तक ऊँचा। एक लाख कुंवारी लड़कियाँ (अब) हर समय मेरे आस-पास रहती हैं। (5) (1286)

मेरे लिए रोग का कोई अस्तित्व नहीं है; मेरे लिए शोक का भी कोई अस्तित्व नहीं है; मुझे दर्द का अनुभव नहीं होता: यही अच्छे कर्मों का फल है।" (6) (1287)

अट्ठाईस सौ युग बाद 1675 को राजा संवसिता नाम दिया गया, जो महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था और सात रत्नों का स्वामी था। (7) (1288)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (1289)

इस प्रकार पूज्य गंधोदकिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गंधोदक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

54. थेरा गंधोदकिया की जीवनी पर टीका।

पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा गंधोदकिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व श्रेष्ठ ऋषियों की समर्पित सेवा की, इस और उस जन्म में पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया, और प्रतापी पद्ममुत्तरा के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। जब प्रतापी पद्ममुत्तरा परिनिर्वाण हुए, तो उन्होंने नगरवासियों को बोधि वृक्ष को चंदन, कपूर, अगरू आदि के मिश्रण से सुगंधित जल से भरे विभिन्न कलशों में अर्पण करते देखा। उसी क्षण मूसलाधार वर्षा हुई। फिर वे बिजली की गति से प्राणहीन हो गए। उसी पुण्य कर्म के कारण उनका पुनर्जन्म दिव्य लोक में हुआ। वहाँ विराजमान होकर उन्होंने "अहो बुद्धो, अहो धम्मो!" (बुद्ध अद्‌भुत हैं, धर्म अद्‌भुत है!) से शुरू होने वाले श्लोकों का पाठ किया। इस प्रकार देवताओं और मनुष्यों के बीच समृद्धि का अनुभव करते हुए, वे सर्वत्र ऊष्मा से मुक्त होकर, जहाँ भी पुनर्जन्म लेते थे, सुखी रहते थे, क्योंकि वे अपने आप को शीतलता के निकट रखते थे। जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तो उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने गुरु में दृढ़ विश्वास स्थापित किया, भिक्षु बन गए, मानसिक साधना (कम्मत्थाना) में लग गए, विपश्यना (विपश्यना) विकसित की और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों के कारण वे थेरा गंधोदकिया के नाम से प्रसिद्ध हुए।

25. एक दिन, अपने पूर्व कर्म को याद करके, वह आनंद में लीन हो गया और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'पदुमत्तरस्सा' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। महाबोधिमहो अहु (महाबोधि का उत्सव था) महाबोधि को श्रद्धापूर्वक अर्पण किया गया; यही इसका अर्थ है। विचित्रम् घटमदाय (रंगीन कलश लेकर) सुगंधित जल से भरा एक कलश लेकर, जो सोने की अनेक प्रकार की नक्काशी से सुशोभित होने के कारण सुंदर रूप से चमक रहा था; यही इसका अर्थ है। गंधोदकमदासहम (सुगंधित जल अर्पित किया) मैंने विशेष रूप से सुगंधित जल छिड़का; यही इसका अर्थ है।

26. बोधि वृक्ष को आदरपूर्वक अर्पण करते समय जब बोधि वृक्ष को स्नान कराया गया, तब भी यही अर्थ है। अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा गंधोदकिया का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 55. थेरा ओपावुइहा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.155. ओपावुयहा676
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.155. थेरा ओपावैहा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

55. ओपावुयहा676

मैंने पद्ममुत्तरा बुद्ध को एक (उत्कृष्ट) नस्ल का (घोड़ा) दिया। इसे बुद्ध को सौंपकर,677 मैं (फिर) अपने घर (वापस) चला गया। (1) (1290)

गुरु के सबसे बड़े अनुयायी (भिक्षु) का नाम देवला था।678

---

675 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद

किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 676 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 677 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
678 कुम्मासा, संस्कृत कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, जो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में होता है (PSI yavayen kaḷ)

सर्वश्रेष्ठ शिक्षा के योग्य उत्तराधिकारी के रूप में वह मेरे समक्ष उपस्थित हुए। (2) (1291)
"भगवान स्वयं अपना कटोरा उठाते हैं; वे किसी विशेष नस्ल के कटोरे का प्रयोग नहीं करते। आँखों को भाने वाले ने इसे स्वीकार किया (क्योंकि) उन्होंने तुम्हारे विचारों को जान लिया था।" (3) (1292)
मुझे सिंध से आए उस तेज़ गति वाले वाहन का मूल्य पता चला। (फिर) मैंने पद्ममुत्तरा बुद्ध को एक उपयुक्त 679 (उपहार) दिया। (4) (1293)
मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, 680 उपयुक्त और विविध 681 सिंध-घोड़े 682 मेरे लिए उत्पन्न हों। (5) (1294)
दीक्षा लेने वालों को इससे अच्छा लाभ मिलता है।683 यदि कोई बुद्ध संसार में जन्म लेता है (तो) उन्हें निरंतर उसकी सेवा करनी चाहिए। (6) (1295)
मैं अट्ठाईस (अलग-अलग) बार (उस समय) महान शक्ति वाला राजा था, गुलाब-सेब के बाग का स्वामी, 684 चारों ओर से विजयी। 685 (7) (1296)
यह मेरे लिए अंतिम समय है; मेरा अंतिम पुनर्जन्म हो रहा है।686 मैंने विजय और पराजय से परे अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।687 (8) (1297)
चौंतीस हजार (युगों बाद से)

---

679 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 680 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 681 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama 682 sappi, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel) 683 शाब्दिक अर्थ, "गया" 684 का अनुसरण करता हूँ, BJTS के साथ sañcālesi का पाठ PTS sañjālesi 685 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया" 686 शाब्दिक अर्थ, "गुणी" 687 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार kaṇḍas (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ bheṇḍu (लंबा? मोटा?)।"

एक महान शक्तिवान राजा था, जो एक चक्र-चालक था और जिसके पास बहुत बल था, और जो सात रत्नों का स्वामी था। (9) (1298)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) (1299)
इस प्रकार पूज्य ओपावुयहा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
ओपावुयहा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
55. थेरा ओपावैहा की जीवनी पर टिप्पणी।
पदुमुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक आदरणीय थेरा ओपवायहा की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और सूर्य-विजयी पदुमुत्तरा के विश्व में प्रकाशमान होने के समय एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। समय के साथ बड़े होकर उन्होंने बहुत धन अर्जित किया, अत्यंत समृद्ध हुए और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने शासन (सासन) में दृढ़ विश्वास प्राप्त किया और गुरु में उनकी अटूट आस्था के कारण उन्होंने एक उत्तम नस्ल के सिंधी घोड़े का आदरपूर्वक अर्पण किया। अर्पण करने के बाद उन्होंने विचार

किया: "बुद्ध से प्रारंभ होने वाले भिक्षुओं के लिए हाथी, घोड़े आदि जैसे पशु उपयुक्त नहीं हैं; मैं उचित वस्तुएँ अर्पित करूँगा।" उस घोड़े का मूल्यांकन करवाकर उन्होंने उचित वस्त्र, जैसे कि पारंपरिक मखमली वस्त्र, कालीन आदि, और कपूर, तक्कोला आदि औषधीय वस्तुएँ भेंट कीं। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे जीवन भर जीवित रहे और मृत्यु के बाद उन्होंने समृद्धि का आनंद लिया, और देवताओं और मनुष्यों के बीच हाथी, घोड़े आदि अनेक वाहनों से संपन्न हुए; और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर उन्होंने धर्म में गहरी आस्था धारण की, भिक्षु बने, मानसिक साधना (कम्मत्थाना) की, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (विपस्सना) विकसित की, और क्रमिक रूप से श्रेष्ठ मार्गों का अनुसरण करते हुए अर्हत पद प्राप्त किया। अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप वे थेरा ओपवयह के नाम से प्रसिद्ध हुए।
33. इस प्रकार छानबीन करते हुए कि "अत्यंत किस कारण से मुझे यह शांत मार्ग प्राप्त हुआ है", उन्होंने अपने ज्ञान के माध्यम से अपनी आँखों के सामने ही अपने पूर्व कर्म का अहसास किया, और आनंदमय होकर उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को गंभीर शब्दों में प्रकट कर सकें। इसका अर्थ केवल कहा जा चुका है। आजनीयमदासहम, मैंने आदरपूर्वक सिंध मूल का एक उत्तम नस्ल का घोड़ा अर्पित किया; यही इसका अर्थ है।
35. सपत्तभारो (अपने भिक्षापात्र को धारण करने वाला) वह व्यक्ति, जिस पर अपने भिक्षापात्र सहित आठ आवश्यक वस्तुओं का भार है, वह सपत्तभार है (अपने ही कटोरे से बोझिल), आठ भिक्षुओं की आवश्यक वस्तुओं से बंधा हुआ है, यही अर्थ है।
36. खमनीयमदासहम, मैंने अनुकूल होने की पेशकश की, ऐसे प्रतीत होने वाले मिंक की आवश्यक वस्तुएँ जैसे वस्त्र इत्यादि जो उपयुक्त रूप से अनुकूल हों; यही अर्थ है।
40. कारिमो (सर्वांगीण लक्ष्य) ने चरम सीमा प्राप्त कर ली है, वह पूर्ण हो गया है; यही अर्थ है। शेष आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा ओपावयहा का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 56. थेरा सपरिवारासन

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.156. सपरिवारासन 689
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.156. थेरा सपरिवारासन की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

56. सपरिवारासन 689

मैंने पद्ममुत्तरा बुद्ध से भीख माँगकर भिक्षा में भोजन दिया। जहाँ उन्होंने भोजन किया, वहाँ जाकर मैंने चमेली के फूल बिखेरे। (1) (1300)
उस आसन पर विराजमान बुद्ध, जो (संपूर्ण) विश्व के सर्वोच्च नेता, धर्मात्मा और सजग हैं, ने उस भिक्षा-भोजन की प्रशंसा की, जिसकी याचना की गई थी। (2) (1301)
“जैसे एक छोटा सा बीज भी उपजाऊ खेत में बोया जाए तो बारिश होने पर पूरी तरह से फल देता है, जो किसान को आनंद देता है, (3) (1302)
इसलिए यह भीख-प्राप्त अनाज, जिसे आपने अच्छे खेत में बोया था; जब आप पुनर्जन्म लेंगे तो आप इसके फल से प्रसन्न होंगे।
यह सब कहने के बाद, संबुद्ध

688 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में गेंडु लिखा है। कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी। 689 {फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 690 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
691 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

जिसका नाम कमल था, जो भीख माँगे गए भोजन की प्रशंसा करता था, (फिर) उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (5) (1304)
भिक्षुओं के उपदेशों में आत्मसंयमित 692 और पाँच इंद्रियों में, एकांत से बंधे हुए, मैं दोषरहित जीवन जी रहा हूँ। (6) (1305)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1306)
इस प्रकार पूज्य सपरिवारासन थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सपरिवारासन थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
56. थेरा सपरिवारासन की जीवनी पर टीका।
पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सपरिवारासन की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित करने के कारण, वे पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लेकर बड़े हुए। वयस्क होने पर, उन्होंने धर्म के प्रति गहरी आस्था विकसित की और दान के फल में विश्वास रखते हुए, बुद्ध को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन का भिक्षादान किया। भिक्षादान करने के बाद, उन्होंने भोजन कक्ष में बैठने की जगहों को चमेली (सुमन), माला (मल्लिका) आदि प्राकृतिक फूलों से सजाया। बुद्ध ने भी उनके भिक्षादान पर आभार व्यक्त किया। उस कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने अपने पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, अनेक प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया, और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वे एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिए; समय के साथ बड़े होकर, वे अपनी पवित्र आस्था और मनभावन धर्मपरायणता के कारण भिक्षु बन गए और कुछ ही समय बाद अरहत भी बन गए।
43. इस प्रकार शांत मार्ग प्राप्त करने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्म का ज्ञानपूर्वक गहन अध्ययन करते हुए यह समझा: "वास्तव में किस पुण्य कर्म के फलस्वरूप मैंने यह शांत मार्ग प्राप्त किया है?" वे आनंदमय हो उठे और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से प्रारंभ होने वाला श्लोक बोला। इसका अर्थ केवल कहा ही जा चुका है: पिंडपातम् अदादहम् (मैंने भिक्षा दी), इधर-उधर से प्राप्त भोजन के टुकड़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर, भोजन को पीने और चबाने योग्य बनाकर पिंडपात (भिक्षा) किया; वह भिक्षा मैंने बुद्ध को अर्पित की; मैंने यह सुनिश्चित किया कि बुद्ध उसे ग्रहण करें; यही इसका अर्थ है।
44. अकित्तयिपण्डपातम् (भिक्षा भोजन की घोषणा की गई) बुद्ध ने मेरे द्वारा दिए गए भिक्षा भोजन के गुण और लाभ को प्रकट किया; इस प्रकार, इसका अर्थ है।
48. समवुतो पातिमोक्खस्मिम् (अनुशासनात्मक नियमों में अच्छी तरह से नियंत्रित) - अनुशासनात्मक नियमों के अनुसार आत्म-संयम जैसे नैतिक उपदेशों से अच्छी तरह से नियंत्रित, बंद और उचित रूप से आच्छादित, जो उचित मुक्ति (पातिमोक्ख) की ओर ले जाता है; यही अर्थ है। इंद्रियेसा ए पंचसु (पांच इंद्रियों में भी) - पांच इंद्रियों में दृश्य रूपों (रूप) आदि जैसे इंद्रिय-संबंधी विषयों से सुरक्षित और इंद्रिय-संयम (इन्द्रियसंवर) के नाम से जाने जाने वाले नैतिक उपदेशों से सुरक्षित; यही अर्थ है। शेष को समझना आसान है।
जीवनी पर टिप्पणी

थेरा सपरिवारासन का
समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 57. थेरा पंचदीपिका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.157. पंचादिपिका693
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.157. थेरा पंचदीपक की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

57. पंचादिपिका693

सभी प्राणियों पर दया करने वाले बुद्ध पद्ममुत्तरा की सच्ची शिक्षा की प्रशंसा करने के बाद, मैं भी नेक विचारों वाला व्यक्ति था। (1) (1307)
मैंने (महान) बोधि वृक्ष के चारों ओर दीपक अर्पित किए। (बुद्ध में) विश्वास रखते हुए मैंने (फिर) उन 694 दीपकों को हर समय जलाए रखा। (2) (1308)
मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, आकाश में मशालें ले जाई जाती हैं: यही दीपक देने का फल है। (3) (1309)
(दाहिनी ओर) दीवारों के आर-पार, (दाहिनी ओर) चट्टानों के आर-पार भी,

---

692 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करने वाला," यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 693 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 694 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
695 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

(और) पर्वतों की चोटियों को पार करते हुए,696 मैं सभी दिशाओं में देख सकता हूँ697 यहाँ तक कि सौ मील (दूर) तक भी। (4) (1310)
उस (अच्छे) कर्म के फलस्वरूप मैंने अरहंतत्व प्राप्त किया है।698 मैं द्विपाद भगवान की व्यवस्था में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (5) (1312699)
चौंतीस सौ युगों (तब से) मैं सतचक्खु के नाम से जाना जाता था; 700 मैं एक महान शक्ति वाला राजा था, एक महान बलवान चक्र-चालक था। (6) (1311)

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1313)

इस प्रकार पूज्य पंचदीपिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पंचदीपिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

57. थेरा पंचदीपक की जीवनी पर टिप्पणी।

पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पंचदीपक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और पुनर्जन्मों के चक्र (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करने वाले पंचदीपक, जहाँ कहीं भी जन्म लिए, पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिए; वे समय के साथ बड़े हुए, गृहस्थ जीवन व्यतीत किया, पद्ममुत्तरा बुद्ध द्वारा दिए गए सत्य (धम्म) के उपदेश सुने, सही दृष्टि में स्थापित हुए, पवित्र आस्था और शुद्ध भक्ति से परिपूर्ण हुए, पुरुषों के एक बड़े समूह द्वारा बोधि वृक्ष को आदरपूर्वक अर्पण करते हुए देखा, स्वयं बोधि वृक्ष के चारों ओर घेरा बनाकर प्रज्वलित दीप अर्पित किए। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने जन्म-जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण किया, विश्वराज के समान समृद्धि का आनंद लिया, ऐसे महलों में निवास किया जो प्रकाश से परिपूर्ण थे, जहाँ भी उनका जन्म हुआ, वे हर जन्म में प्रकाशमान रहे। जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ; बड़े होने पर उनमें धार्मिक आस्था उत्पन्न हुई, वे भिक्षु बन गए और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए। प्रकाश की श्रद्धापूर्वक भेंट करने के फलस्वरूप वे थेरा दीपका के नाम से प्रसिद्ध हुए।

50. एक दिन, उन्हें अपने पूर्व कर्मों की याद आई, वे आनंद में लीन हो गए और उन्होंने अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'पदमुत्तरा बुधस्स' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। इसका अर्थ पहले ही बताया जा चुका है। उजुदित्तिहोसाहम (मैं सीधे दृष्टिकोण वाला हो गया) टेढ़े-मेढ़े गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, मैं सही दृष्टिकोण, निर्वाण की दिशा में उन्मुख सीधे और निर्मल मार्ग को प्राप्त करने वाला हो गया; यही इसका अर्थ है।

51. पदिपदाहम पदासिम (मैंने प्रज्वलित दीपों का दान दिया) यहाँ, यह चमकता और प्रकाशित करता है, अतः पदिपा, प्रज्वलित दीप; इसका दान पदिपदाना, प्रज्वलित दीपों का दान है। मैंने इसे दिया, मैंने आदरपूर्वक प्रज्वलित दीपों का दान दिया; यही इसका अर्थ है। शेष का अर्थ सर्वत्र स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा पंचदीपक का

समाप्त हो गया है

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 58. थेरा धजदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

1.158. धजदायक 701

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.158. थेरा धजदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

58. धजदायक 701

प्रसन्न होकर, (और) प्रसन्न हृदय से मैंने (उस समय) पद्ममुत्तरा बुद्ध के विशाल बोधि वृक्ष702 पर ध्वज फहराया। (1) (1314)
गिरे हुए पत्तों को उठाकर मैंने उन्हें बाहर फेंक दिया। मानो मैं पूर्णतः मुक्त, निष्कलंक संबुद्ध के सामने खड़ा होकर, भीतर और बाहर दोनों ओर से निर्मल बोधि की आराधना कर रहा था। (2) (1315)703

---

696 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 697 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 698 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 699 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 700 शाब्दिक अर्थ, "गया"। 701 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 702 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
703 कुम्मासा, संस्कृत कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, जो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में होता है (PSI yavayen kaḷ)

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता, भिक्षुओं की सभा में खड़े होकर शिक्षक ने ये श्लोक कहे (तब): (3) (1316)
"इस सेवा और इस ध्वज के दान (यहाँ) के कारण, एक लाख युगों तक उसका कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं होगा। वह देवताओं के बीच प्रचुर दिव्य सुख का आनंद लेगा। (4) (1317-1318क-ख)704
और कई बार, वह एक देश का राजा होगा। वह एक चक्र-घुमाने वाला राजा होगा; उसका नाम (तब) उगाता होगा।705 (5) (1318सी-एफ)
अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर, वह इस आनंद का अनुभव करते हुए, भगवान गौतम की शिक्षाओं में प्रसन्न होगा। (6) (1319)
मैं परिश्रम में लीन, शांत,706 पुनर्जन्म के आधारों से रहित;707 मैं परम बुद्ध की शिक्षाओं में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (7) (1320)
इक्यावन हजार युगों पहले (मैं) राजा उगाता के नाम से जाना जाता था। पचास हजार युगों पहले (मैं) मेघा के नाम से जाना जाने वाला राजा था। (8) (1321)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) (1322)
इस प्रकार पूज्य धजदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

---

704 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", यहाँ अंबर एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 705 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित। 706 निज्झायमानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ। 707 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)। 708 शाब्दिक अर्थ, "गया"।

धजदायका की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
58. थेरा धजदायक की जीवनी पर टीका।
पदुमत्तरा बुद्धस्स से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा धजादावक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, जो इस और उस जन्म में पुनर्जन्मों (वत्त) के चक्र से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने पद्ममुत्तरा बुद्ध के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। समय के साथ बड़े होकर, उन्होंने गुरु के प्रति सुखद श्रद्धा विकसित की, अनेक उत्तम वस्त्रों से एक ध्वज बनवाया और उसे श्रद्धापूर्वक अर्पित किया। इस पुण्य कर्म के कारण, वे प्रत्येक जन्म में उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा वाले परिवार में जन्म लेते रहे और श्रद्धापूर्वक अर्पित किए जाने योग्य बन गए। बाद में, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उन्होंने एक

पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; समय के साथ बड़े होकर, उन्होंने पत्नी और बच्चों का परिवार बसाया, वे धनवान, प्रसिद्ध, गुरु के प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाले, स्पष्ट रूप से धर्मनिष्ठ बन गए और उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग दिया। संसार का त्याग करके वे भिक्षु के रूप में अरहत बन गए।

57. अरहतत्व की प्राप्ति के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों का स्मरण किया, आनंदमय भाव से भर गए और पद्ममुत्तरा बुद्धस्स से प्रारंभ होने वाला श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। हत्थो हत्थेन चित्तेन (आनंदित और प्रसन्न हृदय से) आनंदमय भाव से युक्त मन और पूर्ण रूप से परिपूर्ण शरीर से युक्त होने के कारण प्रसन्न और पवित्र आस्था से युक्त मन से प्रसन्न; यही अर्थ है। धजामारोपयिं अहम् (मैंने ध्वज फहराया) यह कांपता, तुकबंदी करता और हिलता है, इस प्रकार धजा (ध्वज) वह ध्वज जिसे मैंने बांस के खंभे के शीर्ष पर लटकाकर आदरपूर्वक अर्पित किया; यही अर्थ है।

68-59. पतितपट्टानि गणहित्वा (गिरे हुए पत्तों को उठाकर) बोधि वृक्ष के गिरे हुए पत्तों को उठाकर मैंने उन्हें बाहर फेंक दिया; यही अर्थ है। अंतोसुद्धम् बहिसुद्धम् (अंदर और बाहर से शुद्ध), वे मन की आंतरिक मानसिक प्रणाली से और बाहर से आँख, कान आदि शारीरिक घटकों से भी शुद्ध थे; अधि (विशेष रूप से), विशिष्ट रूप से; मुत्तम् (मुक्त), दोष से मुक्त, दोष रहित, बुद्ध के साक्षात रूप, सबसे उत्तम बोधि वृक्ष; अवन्दिम (मैंने पूजा की), मैंने उन्हें प्रणाम किया; यही अर्थ है। शेष सभी का अर्थ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा धजादयाका का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 59. थेरा पदुमा

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.159. पदुमा709
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.159. थेरा पद्मा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

59. पदुमा709

वह सर्वश्रेष्ठ धम्म-चक्र घुमाते हुए चार सत्यों की घोषणा कर रहे थे, अमरता की वर्षा कर रहे थे, और अनेक लोगों को मुक्त कर रहे थे।710 (1) (1323)

ध्वज सहित कमल लेकर, 711 आधा कोसा 712 (दूर) खड़े होकर, प्रसन्न होकर, मैंने इसे ऋषि पद्ममुत्तरा के लिए हवा में उठाया। (2) (1324)

तब एक विचित्र घटना घटी: कमल (बुद्ध के पास) आया। मेरे मन की बात समझकर सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता ने उसे ले लिया। (3) (1325)

अपने उत्तम हाथ से उस उत्कृष्ट जलप्रजनित कमल को लेकर, भिक्षुओं की सभा में खड़े होकर शिक्षक ने ये श्लोक कहे: (4) (1326)

"मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने (अभी-अभी) इस कमल के फूल को सर्वज्ञ अरहंत की ओर उछाला;713 (आप सभी) मेरे शब्दों को सुनें: (5) (1327)

देवताओं के राजा के रूप में वह तीस युगों तक दिव्य शासन करेगा। वह सात सौ सांसारिक शासनकालों तक पृथ्वी पर निवास करेगा। (6) (1328)

वहाँ कमलों से भरा एक कटोरा लेकर,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 709 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 710 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
711 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 712 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 713 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित 714 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

वह एक ऐसा राजा होगा जो शासन का पहिया घुमाएगा। उस पर हर समय आकाश से फूलों की वर्षा होगी। (7) (1329)
एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में, गौतम नाम का व्यक्ति विश्व का गुरु होगा। (8) (1330)
अपने धम्म का योग्य उत्तराधिकारी, धम्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए वह निर्वाण प्राप्त करेगा, दोषरहित होकर। (9) (1331)
(मेरी माँ के) गर्भ से बाहर आकर, (दोनों) समझदार (और) सचेत होकर, जब मैं (केवल) पाँच वर्ष का था715 तब मैंने (अपना) अरहंतत्व प्राप्त किया। (10) (1332)
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें महारत हासिल की गई है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) (1333)
इस प्रकार पूज्य पद्म थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पद्मा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
59. थेरा पद्मा की जीवनी पर टिप्पणी।
चतुसच्चम पकासंतो से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पद्मा की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की उपस्थिति में अनेक पुण्य कर्म करने के बाद, जब ऋषि पद्ममुत्तरा द्वारा सत्य (धम्म) का प्रकाश प्रज्वलित रखा गया था, तब उन्होंने एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म लिया; उन्होंने गृहस्थ जीवन स्थापित किया और समृद्धि से संपन्न माने जाते थे। उन्होंने गुरु में अटूट आस्था रखी, असंख्य मनुष्यों के साथ सत्य (धम्म) का श्रवण किया और कमल के फूलों का गुलदस्ता (पद्मा) और एक ध्वज धारण किए खड़े रहे। ध्वज के साथ-साथ कमल के फूलों का गुलदस्ता भी आकाश में ऊपर उठ गया। इस अद्भुत घटना को देखकर वे अत्यंत आनंदमय हो गए। अपने जीवनकाल में उन्होंने अच्छे कर्म किए और अपने जीवन के अंत में स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया। ध्वज के समान, वे छह इंद्रिय लोकों में प्रसिद्ध और सम्मानित थे। उन्होंने दैवीय आनंद के साथ-साथ विश्वराज के मानवीय आनंद का भी अनुभव किया और जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उनका पुनर्जन्म एक धनी और धर्मपरायण परिवार में हुआ। जैसे-जैसे वे बड़े होते गए, उनमें धर्मपरायणता जागृत होती गई; उन्होंने पाँच वर्ष की आयु में ही संसार का त्याग कर दिया; और कुछ ही समय में वे अरहत बन गए और अपने पुण्य कर्म के कारण थेरा पद्म के नाम से प्रसिद्ध हुए।
67. अपने पूर्व कर्म को याद करके, वह आनंद में लीन हो गया और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'चतुसच्चं पकासेनतो' से शुरू होने वाले इस श्लोक का उच्चारण किया। यहाँ सत्य (सच्चा) सत्य, असत्य नहीं, विकृत नहीं है, सत्य (सच्चा) को उचित रूप से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें दुख (दुक्खा) का उद्गम (समुदय), दुख का निवारण (निरोध) और श्रेष्ठ मार्ग (मार्ग) शामिल हैं; उस चार प्रकार के श्रेष्ठ सत्य को प्रकट करते हुए, संसार में स्पष्ट करते हुए; यही अर्थ है। अमर वर्षा (अमर वर्षा) सत्य (धम्म) की वर्षा, बौछारें,

बरसती हुई, वर्षा के समान महान अमर निर्वाण, उस वर्षा को बरसाती हुई, इस मानव जगत को दिव्य जगत के साथ-साथ भीगते हुए, दुराचार (किलेसा) की आग को बुझाते हुए; यही अर्थ है।

68. सधजं पदुमं गयाह (झंडे सहित कमल का फूल लेकर), कमल के फूलों के गुलदस्ते को पकड़कर कमल को झंडे के साथ एक कर दिया; यही अर्थ है। आद्धकोसे तितो अहम, मैंने दोनों को उठाकर खड़ा किया; यही अर्थ है। बाकी सब कुछ स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा पद्मा के

समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 60. थेरा आसनबोधिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.160. आसनबोधिया716
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.160. थेरा आसनन्बोधिया की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

60. आसनबोधिया716

जब मैं (केवल) सात वर्ष का था, तब मैंने विश्व-प्रधान (बुद्ध) को देखा। प्रसन्न होकर, और प्रसन्न हृदय से मैं श्रेष्ठ पुरुषों के पास गया। (1) (1334)

प्रसन्न होकर, (और) प्रसन्न हृदय से, मैंने उनके लिए सर्वश्रेष्ठ बोधि वृक्ष लगाया, तिस्सा, धन्य, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ। (2) (1335)

धरती में उगने वाला पैर-पानी पीने वाला,717 इसे "आसन" के नाम से जाना जाता था।

---

715 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल) 716 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 717 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर भी शामिल है।

मैंने पाँच वर्षों तक उस (वृक्ष) की देखभाल की, जो उत्कृष्ट आसन बोधि वृक्ष था। (3) (1336)

उस पुष्पवृंद को देखकर, अचंभित होकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए, अपने कर्मों का वर्णन करते हुए (तब) मैं सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के पास गया। (4) (1337)

तिस्सा, जो उस समय संबुद्ध, स्वयं-एक, शीर्ष व्यक्ति थे, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए, उन्होंने ये श्लोक कहे (उस समय मेरे बारे में): (5) (1338)

“मैं उस व्यक्ति का विवरण दूंगा जिसने इस बोधि वृक्ष को रोपा है और मुझे बुद्ध-पूजा से सम्मानित किया है; आप सभी मेरी बात ध्यान से सुनें: (6) (1339)

देवताओं के बीच तीस युगों तक वह दैवीय शासन करेगा, और चौंसठ बार वह कानून के पहिये को घुमाने वाला राजा होगा। (7) (1340)

तुसिता स्वर्ग से गिरकर, अपनी पुण्य जड़ों से प्रेरित होकर, दोहरे आनंद का अनुभव करते हुए, वह मानव अवस्था में प्रसन्न होगा। (8) (1341)

परिश्रम में लीन होकर, शांत होकर,718 पुनर्जन्म के आधारों से रहित होकर,719 सभी दोषों को भली-भांति जानकर वह निर्वाण प्राप्त करेगा, निष्कलंक होकर।" (9) (1342)
एकांत में बंधे हुए, मन की शांति के साथ, इच्छाओं को त्यागकर, टूटी हुई जंजीरों वाले हाथी की तरह, मैं बिना किसी दोष के जी रहा हूँ। (10) (1343)
उस समय जब मैंने वह बोधि वृक्ष लगाया था, तब से लेकर अब तक के बानवे युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही बोधि वृक्ष लगाने का फल है। (11) (1344)

---

718 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 719 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

चौहत्तर युग पहले मैं एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट था। (मैं) दंडसेना के नाम से जाना जाता था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (12) (1345)
तिहत्तर युग पहले पृथ्वी पर सात स्वामी थे। वे सभी चक्र घुमाने वाले सम्राट थे जिन्हें समंतनेमी कहा जाता था।
पच्चीस युग पहले पुण्णक नामक क्षत्रिय एक महान बलवान चक्रचालक थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (14) (1347)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) (1348)
इस प्रकार पूज्य आसनबोधिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
आसनबोधिया थेरा की कथा समाप्त होती है। सारांश: विजयनी और सतरंगसी सायन, ओदकी, वाहिया, परिवार और पदिपा, धज, पद्म-पूजाक और बोधि को दसवां कहा जाता है; इस प्रकार बत्तीस श्लोक हैं।
विज्ञानी अध्याय, छठा।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
60. थेरा आसनन्बोधिया की जीवनी पर टीका।
जातिया सत्तवस्साहम से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा आसनबोधिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक परिवार में जन्म लिया। वृहद होने पर उन्होंने आनंद प्राप्त किया, व्यवस्था से प्रसन्न हुए, आसनबोधि वृक्ष का फल लिया और बोधि के छोटे अंकुर से एक बोधि वृक्ष रोपा। वृक्ष को मृत्यु से बचाने के लिए उन्होंने जल छिड़काव आदि द्वारा उसकी देखभाल की और आदरपूर्वक उसका पालन-पोषण किया। इस पुण्य कर्म के फल से उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच आनंद का अनुभव किया और उसी परिवार में जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। अपने सद्गुणों से परिपूर्ण होने के कारण, वे सात वर्ष की आयु में ही भिक्षु बन गए और एक तेज धार वाले यंत्र पर भी अरहतत्व प्राप्त कर लिया; वे अपने द्वारा पूर्व में किए गए पुण्य कर्म के नाम पर थेरा आसनबोधि के नाम से प्रसिद्ध हुए।
78. अपने पूर्व पुण्य कर्मों के भार को याद करके वह प्रसन्न हो गया और उसने 'जातिया सत्तावस्सो'हम' से शुरू होने वाला श्लोक बोला, ताकि वह अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सके। यहाँ 'जातिया' (जन्म से) का अर्थ है माता के गर्भ से जन्म लेने के समय से; यही अर्थ है। मैं, जो सात वर्ष का था और सर्वांगीण वाणी से परिपूर्ण था (सरदो), जगत के नेता, प्रतापी तिस्सा से मिला; यही संबंध है। 'पसन्नाचित्तो सुमानो' (प्रशंसनीय रूप से धर्मपरायण और नेक हृदय) का अर्थ है शिष्ट और स्पष्ट रूप से धर्मपरायण, अविचलित और स्पष्ट रूप से अविचलित, नेक हृदय, उत्तम मन, जिसका मन प्रसन्न मन से मेल खाता है; यही अर्थ है।
79. तिस्सास्साहम भगवतो (मैं उस तेजस्वी तिस्सा को प्रणाम करता हूँ) तीन बार जन्म लेने वाले तिस्सा; इस प्रकार, वे माता के गर्भ से, मनुष्य के जन्म से और पंच स्कंधों से मुक्त होकर उत्पन्न हुए; बुद्ध का जन्म हुआ; यही अर्थ है। मैंने जगत के उस श्रेष्ठ, उस तेजस्वी तिस्सा के सबसे उत्तम आसन बोधि वृक्ष को रोपा; यही संबंध है।

80. आसनोनमधेय्येन (आसन नाम धारण करने वाला) यह आसन बोधि वृक्ष था, जिसका नाम आसन था, जो इसके नाम और नाम की अनुभूति के कारण पड़ा; धरणी रुहपादपो (पृथ्वी में रोपित वृक्ष) इस पर लताएँ, वृक्ष, पहाड़ियाँ, नदियाँ, सागर आदि उगते हैं; अतः, धरणी (पृथ्वी)। यह क्या है? यह पथवी (पृथ्वी) है; यह बढ़ता और स्थापित होता है; अतः, धरणी रुहो (पृथ्वी पर उगा हुआ); यह अपने पैर से जल पीता है; अतः, पादपो (वृक्ष); यह छिड़के हुए जल को पीता है, और अपने पैर के रूप में मानी जाने वाली छड़ी के माध्यम से जल के स्वाद और सार को धारण करता है; यही इसका अर्थ है। यह जमीन पर उगा हुआ है, और पैर के माध्यम से जल पीता है; अतः, धरणरुहपादपो, जमीन पर उगा हुआ वृक्ष। परिकारिम (चारों ओर घूमकर देखभाल की), मैंने उस उत्कृष्ट आसनबोधि वृक्ष का पाँच वर्षों तक पोषण किया; यही इसका अर्थ है।

81. पुप्फितं पादपंदिस्वा, वृक्ष को खिलते हुए देखकर, अब्भूतम, विचित्र; सकां कम्मं, अपना कर्म; पकित्तेनतो प्रचार; मेरे द्वारा पोषित आसन बोधि से उत्पन्न विस्मयकारी फूलों के कारण रोंगटे खड़े कर देने वाली घटना को देखकर, मैं परम श्रेष्ठ बुद्ध के समक्ष अपने कर्म के बारे में प्रचार करने के लिए गया; यही अर्थ है। अर्थ सर्वत्र स्पष्ट है।

जीवनी पर टिप्पणी

थेरा आसनबोधिया के पास है

समाप्त हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 61. थेरा सकाचित्तनिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

1.161. सकाचित्तनिया723

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन

2.161. थेरा सकासिंतेनिया की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

सकाचित्तनिया अध्याय, सातवाँ

---

61. सकाचित्तनिया723

जंगल में एक छोटा सा बाग देखकर, जो बहुत शांत और एकांत था।

---

720 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 721 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 722 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल) 723 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपादान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

(ऋषियों के अभ्यास और बलिदानों की प्राप्ति के लिए एक स्थान,) (1) (1349)

बांस का एक स्तूप बनाकर, जिसे विभिन्न प्रकार के फूलों से सजाया गया था, मैंने (तब) अपनी रचना की पूजा ऐसे की मानो संबुद्ध के सामने खड़ी हो। (2) (1350)

मैं राजा था, देश का स्वामी था, सात रत्नों का स्वामी था। मैं अपने कर्मों में आनंदित था: यही स्तूप-पूजा का फल है। (3) (1351)

जब से मैंने (उन्हें) फूल चढ़ाकर सम्मानित किया है, तब से इक्यावन युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही स्तूप-पूजा का फल है। (4) (1352)

अस्सी युग पहले मैं सात रत्नों का स्वामी था, चक्र-चालक अनंतयसा, 725 चारों महाद्वीपों का स्वामी। (5) (1353)
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1354)
इस प्रकार पूज्य सकाचित्तनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सकाचित्तनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
7. स्वयं के चिंतन पर अध्याय
61. थेरा सकासिंतेनिया की जीवनी पर टिप्पणी।
पावनम कानानाम दिस्वा से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा शकचिंतनीय की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस-उस जन्म में एक परिवार में पुनर्जन्म लिया। समय के साथ बड़े होने पर, वे बुद्ध के जीवनकाल में उनसे दूर रहे क्योंकि उनका जन्म बुद्ध के जीवनकाल के अंतिम समय में हुआ था। परिनिर्वाण के समय उन्होंने संसार त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत किया, हिमवंत में निवास किया, एक एकांत और रमणीय वन में पहुँचे, उसी पहाड़ी क्षेत्र में एक मंदिर स्थापित किया, बुद्ध की छवि को अपने मन में बसाया और उसे अवशेष सहित माना, श्रद्धापूर्वक वन के फूल अर्पित किए और निरंतर उसकी आराधना करते रहे। इस कर्म के फलस्वरूप, वह अपने पुनर्जन्मों के चक्र में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करता रहा, उसने परम दिव्य आनंद और विश्वराज की समृद्धि दोनों का अनुभव किया और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ; धन और पवित्र आस्था से परिपूर्ण होकर, वह गुरु से भी अधिक पवित्र हो गए, क्योंकि वे एक भिक्षु और छह प्रकार के उच्च ज्ञान से युक्त अरहत थे।
1. अपने पूर्व कर्म को याद करके वह प्रसन्न हुआ और उसने 'पवनम कानाना दिस्वा' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वह अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सके। वहाँ, पवनम (वन) वह जंगल बिखरा हुआ और फैला हुआ है जो एक तरह से वन बन गया है, कानाम (बिल्कुल घृणित) वह जंगल जहाँ कोई मार्ग नहीं है, कोई परिवहन नहीं है, और जो हमेशा शेरों, बाघों, राक्षसों, दानवों, हाथियों, घोड़ों, गरुड़ों और ड्रैगनों से भरा रहता है; (या आकाश में उड़ने वाले पक्षियों, कुत्तों और कोयल की भीड़ से भरा हुआ; अप्पसद्दम; (कम शोर) मानव आवाज से रहित होने के कारण शोर से मुक्त, वह जंगल जिसे कानाना, वनभूमि माना जाता है; यही अर्थ है। अनाविलम (अविचलित) कोई अशांति नहीं, खतरे से रहित; यही अर्थ है। इसीनम अनुचिण्णम (तपस्वी द्वारा अनुसरण किया गया) तपस्वियों द्वारा पीछा किया गया और चाहा गया; तपस्वी, जिन्हें बुद्ध, मौन बुद्ध, अरहत और दोषमुक्त व्यक्ति माना जाता है; यही अर्थ है। आहुतिनम पटिगघम (यज्ञ भेंट स्वीकार करने वाला) श्रद्धापूर्वक भेंट स्वीकार करने वाले घर के समान, जिसे पवित्र बलिदान (आहुन) कहा जाता है; यही अर्थ है।
2. थूनम कट्वाना वेलुना (बांस से मंदिर बनाकर) - बांस की सामग्री (पेसिका) से मंदिर स्थापित किया; यही अर्थ है। नानापुप्पम समोकिरीम (मैंने विभिन्न प्रकार के फूल विधिपूर्वक बिखेरे) - मैंने चंपक आदि अनेक प्रकार के फूल बिखेरे और श्रद्धापूर्वक अर्पित किए; यही अर्थ है। सम्मुखा विय सम्बुद्धम् (मानो स्वयं प्रबुद्ध बुद्ध की उपस्थिति में) - मानो जीवित बुद्ध की उपस्थिति में; निम्मितम (बनाया) मंदिर को प्रकट किया; अभि, विशिष्ट रूप से, (मैंने पूजा की) मैंने विशिष्ट रूप से प्रणाम किया; यही अर्थ है। शेष भाग आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सकासिंतानिया का
समाप्त हो गया है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 62. थेरा एवोपुफ़िया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.162. आवोपुप्पिया
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.162. थेरा अवोपुप्पिया की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

62. आवोपुप्पिया

मठ से निकलते हुए वह पैदल मार्ग पर आगे बढ़ा और चार (महान) सत्यों की घोषणा करते हुए अमरता की अवस्था का उपदेश दिया। (1) (1355)

सिख धर्म के वचनों को समझना, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, तटस्थ ईश्वर,

---

724 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

725 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने कई फूल उठाकर उन्हें आकाश में फेंक दिया। (2) (1356)

विश्व के सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, पुरुषों के सांड, के लिए उस कर्म के माध्यम से, मैंने विजय और पराजय से परे अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (3) (1357)

जब से मैंने (उन्हें) पुष्प अर्पित किए हैं, तब से लेकर अब तक के इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही पुष्प-पूजा का फल है। (4) (1358)

बीस युग पहले (मैं) सुमेधा क्षत्रिय था, जो महान शक्ति वाला चक्र-चालक और सात रत्नों का स्वामी था। (5) (1359)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1360)

इस प्रकार पूज्य आवोपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आवोपुफिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

62. थेरा अवोपुप्पिया की जीवनी पर टिप्पणी।

विहार अभिनिक्खम्म से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा अवोपुप्पिया की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा की, पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और इस या उस जन्म में, तेजस्वी सिख धर्मगुरु के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर वे धर्मपरायण हो गए, सत्य (धम्म) का श्रवण किया, प्रसन्न हुए, दोनों हाथों में विभिन्न प्रकार के फूल लेकर बुद्ध पर विशिष्ट रूप से बिखेरे। इस कर्म के फलस्वरूप वे अपने पुनर्जन्म के चक्रों में देवताओं और मनुष्यों के बीच विचरण करते रहे, स्वर्गिक आनंद और विश्वराज के समान समृद्धि का अनुभव किया, सर्वत्र आदरणीय रहे और इस बुद्ध के उदय के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। वयस्क होने पर उन्होंने धर्म में धर्मपरायणता प्राप्त की, संसार का त्याग किया और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए। आ, चारों ओर से, यह खुलता है और प्रकाशित करता है; इस प्रकार, आकाशो (आकाश); वह उस आकाश में फूल बिखेरने के कारण अवोपुप्पिया थेरा के रूप में प्रसिद्ध थे।

7. इस प्रकार शांत मार्ग प्राप्त करके, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, सुख-प्रेम में लीन हो गए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए विहार अभिनिक्खमित्वा से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, विहार (मठ से) विशिष्ट रूप से शरीर को गिरने से रोकने के लिए चार प्रकार की मुद्राओं (इरियापथ) के माध्यम से उठाता है, लाता है (या बनाता है); इस प्रकार, विहार (मठ); उस मठ से; अभि, विशिष्ट रूप से; निक्खम्मा, बाहर आकर; अब्भूठ्ठासि च चंकमति (उठकर इधर-उधर चलने के साथ-साथ) इधर-उधर चलने के उद्देश्य से, वे साठ हाथ के मठ पर विशिष्ट रूप से उठे, वे चढ़े; इस प्रकार, अर्थ है। चतुसच्चम पकासेन्टो (चार आर्य सत्यों को स्पष्ट करने के लिए) उस मठ में इधर-उधर घूमते हुए, पीड़ा (दुक्खा), पीड़ा का कारण (समुदय), पीड़ा का निवारण (निरोध) और आर्य मार्ग के रूप में माने जाने वाले चार आर्य सत्यों को प्रदर्शित करते हुए, प्रकट करते हुए, स्पष्ट रूप से विश्लेषण करते हुए, निर्वाण (अमर मार्ग) को प्रकट करते हुए, वहाँ इधर-उधर घूमते हैं; इस प्रकार, संबंध है।

8. Sikhissa giramaññāya, Buddhaseṭṭhassa tādino (अत्यंत उत्कृष्ट बुद्ध सिख के वचन को जानकर) अत्यंत उत्कृष्ट गुणों से संपन्न बुद्ध सिख की वाणी और स्वर को जानकर; nānā puppham gahetvāna (विभिन्न प्रकार के पुष्प लेकर) नाग, पन्नागा आदि अनेक पुष्प लेकर; ākāsamhi samokirim (मैंने आकाश में उचित रूप से बिखेरे) मैंने विचरण करते हुए तेजस्वी बुद्ध के सिर के ऊपर आकाश में बिखेरे और श्रद्धापूर्वक अर्पित किए।

9. हे द्विपादों के स्वामी, उस कर्म के फलस्वरूप, हे देवताओं, ब्रह्मा और मनुष्यों जैसे दो पैरों वाले प्राणियों के स्वामी, नरसभ (हे बैल के समान), हे मनुष्यों में बैल के समान, आप! आपके साक्षात भिक्षु बनकर, मैं निर्वाण, यानी अविचल स्थान को प्राप्त कर चुका हूँ; विजय और पराजय का त्याग करके, मैंने दिव्य और मानवीय आनंद माने जाने वाले विजय और नरक के चार कष्टों के समान पराजय का त्याग कर, निर्वाण प्राप्त कर लिया है; यही इसका अर्थ है। शेष अर्थ तो सहजता से समझ में आता है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा अवोपुप्पिया का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 63. थेरा पक्कगमानिया

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.163. पक्कागमनीया 727
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.163. थेरा पक्कागमनिया की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

63. पक्कागमनीया 727

मैं उस समय सिंधु नदी के किनारे एक लाल हंस था, जो केवल सफेद काई खाकर जीवन यापन करता था, और पापों के मामले में काफी संयमित था। (1) (1361)

मैंने निर्मल बुद्ध को आकाश में विचरण करते देखा। मैंने अपनी चोंच से साल का फूल लेकर (बुद्ध) विपस्सी का सम्मान किया। (2) (1362)

वह, जो दिवंगत ईश्वर में अटूट और दृढ़ आस्था रखता है,

ब्रैकेट में दिए गए 726 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करता है। ब्रैकेट में दिए गए 727 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल

खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करता है।

अपने हृदय में सुख की अनुभूति के कारण वह बुरे पुनर्जन्म की ओर नहीं बढ़ेगा।728 (3) (1363)
मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था। जब मैं पक्षी था (बहुत पहले), तब मैंने अच्छे बीज बोए थे। (4) (1364)
मैंने जब से (उसे) वह फूल भेंट किया है, तब से इक्यावन युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (5) (1365)
आठ पुरुष थे जिनका एक ही नाम सुकारुदासना था।729 वे सत्रह युग पहले महान शक्ति वाले चक्र-चालक थे। (6) (1366)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1367)
इस प्रकार पूज्य पच्चागमनीया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पच्चागमनीया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
63. थेरा पक्कागमनिया की जीवनी पर टिप्पणी।
सिंधुयानदीयतीरे से शुरू होने वाले श्लोक, पूज्य थेरा पच्चागमनिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय किया, जिससे उन्हें इस या उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म (वत्त) के चक्र से मुक्ति मिली। वे विपस्सी बुद्ध के समय सिंधु नदी के पास एक चक्कवाका पक्षी के गर्भ में पुनर्जन्म लिए; क्योंकि पक्षी अपने पूर्व कर्मों के बोझ से दबा हुआ था, इसलिए वह जीवित प्राणियों या कीड़ों को नहीं खाता था, केवल काई खाकर ही विचरण करता था। उसी क्षण, उस पक्षी ने बुद्ध को तेजस्वी रूप में देखा, श्रद्धा से भर गया, अपनी चोंच से साल के पेड़ से साल के फूल तोड़े, बुद्ध के पास आया और आदरपूर्वक उन्हें अर्पित किया। उस अत्यंत पवित्र मन के कारण, वह वहाँ से विदा होकर दिव्य लोक में उत्पन्न हुआ, और बार-बार छह प्रकार की दिव्य इंद्रिय सुखों का आनंद लिया, और वहाँ से विदा होकर मनुष्यलोक में उत्पन्न हुआ, जहाँ उसने विश्वराज के समान समृद्धि का अनुभव किया, और इसी प्रकार, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब वह एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; बुद्धि प्राप्त करने पर, अपने पूर्व कर्म के प्रभाव से वह गुरु के प्रति स्पष्ट रूप से श्रद्धावान था, भिक्षु बना और शीघ्र ही अरहत बन गया। वह अपने पूर्व पुण्य के नाम से थेरा पक्कागमनिया के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि जब वह एक चक्कवाका पक्षी था, तब उसने प्रतापी बुद्ध को देखा, कहीं गया, फूल लाया और श्रद्धापूर्वक उन्हें अर्पित किया।
13. अपने पूर्व कर्म को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने सिंधुया नादिया तीरे से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। यह कांपता और हिलता है, शीतल ध्वनि उत्पन्न करता है, इस प्रकार सिंधु (शीतलता की कंपन ध्वनि); यह गर्जना करता है, ध्वनि उत्पन्न करता है; इस प्रकार, और (नदी)। चक्कवाको अहम् तदा, मैं तब एक पक्षी था, चक्कवाका; यह तैरता है, उड़ता है और जल में, भूमि पर या आकाश में, पहिये की तरह तेजी से चलता है; इस प्रकार चक्कवाका; उस समय जब मैं विपस्सी महिमावान था, मैं एक चक्कवाका पक्षी था; यही अर्थ है। शुद्ध-सेवला-भक्खोऽहम् (मैं शुद्ध काई खाने वाला था) मैं केवल शुद्ध काई खाकर ही जीवन यापन करता था, क्योंकि मैं अन्य प्रकार के चरागाहों से मिश्रित नहीं था; मैं अच्छी तरह से अनुशासित हूँ, बुरे कर्मों के संबंध में अच्छी तरह से नियंत्रित हूँ, पूर्व प्रवृत्ति (वासना, प्रवृत्ति) के प्रभाव में बुरे कर्म करने के मामले में अच्छी तरह से नियंत्रित हूँ।
14. अद्दसम विरोजम बुद्धम (मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा) मैंने निर्मल, दोषरहित बुद्ध को देखा, जो कामवासना (राग), घृणा (दोष) और मोह (मोह) से मुक्त थे; गच्चहन्तम अनिलंजसे (आकाश में जाते हुए) बुद्ध आकाश में वायु यात्रा कर रहे थे; तुन्धेन (चोंच से) अपनी चोंच से; सालम, साल का फूल; पग्गयह, उठाकर; विपस्सिस्स:भिरोपयिम (मैंने उन्हें विपस्सी की ओर उठाया) मैंने श्रद्धापूर्वक विपस्सी को अर्पित किया; यही अर्थ है। शेष अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा पक्कागमानिया का
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.164. परप्पसादक 730
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.164. थेरा परप्पसादक की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

64. परप्पसादक 730

"बैल, श्रेष्ठ पुरुष, वीर पुरुष, महान ऋषि, विजयी पुरुष, स्वर्ण रंग के सम्बुद्ध को देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा? (1) (1368)
बुद्ध की ध्यान अवस्था को देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा?731

---

728 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
729 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 730 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 731 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

हिमालय की तरह असीम, सागर की तरह पार करना कठिन? (2) (1369)
पृथ्वी के समान असीम, वन-फूलों की विविध मालाओं से सजे बुद्ध के नैतिक अनुशासन को देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा? (3) (1370)
बुद्ध के ज्ञान को देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा, जो आकाश के समान शांत और अंतरिक्ष के समान अथाह है? (4) (1371)
इन चार श्लोकों से सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, सिद्धार्थ, अजेय की स्तुति करते हुए (जब मैं) येन नाम का ब्राह्मण था,732 (5) (1372)
मैं चौरासी युगों तक किसी बुरी स्थिति में पुनर्जन्म लेता रहा; मैंने अच्छे पुनर्जन्मों में काफी सुख का आनंद लिया। (6) (1373)
विश्व के नेता की प्रशंसा करने के बाद से चौरानवे युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही उनकी प्रशंसा का फल है। (7) (1374)
चौदहवें युग पूर्व में चार (पुरुष जिनका नाम) उगाता था, 733 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी थे। (8) (1375)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) (1376)
इस प्रकार पूज्य परप्पसादक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
परप्पसादक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

732 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 733 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
64. थेरा परप्पसादक की जीवनी पर टीका।
उसाभम पवारंवीरम् से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा परप्पसादक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने वाले, इस और उस जन्म में पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय करने वाले, वे प्रतापी सिद्धार्थ के समय एक ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म हुए; वे तीनों वेदों के साथ-साथ पाँचवें ग्रंथ इतिहास (परंपरागत ज्ञान) में निपुण हुए, वे श्लोक का पाठ करने और तथ्यों की व्याख्या करने में सक्षम थे, साथ ही निघंडु और केतुभ के सभी विभाजनों, अक्षरों और विभाजकों का ज्ञान रखते थे, और सांसारिक विज्ञान, लोकायत और एक महान व्यक्ति के गुणों में निपुण थे, जिन्हें सेला ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है। जब सिद्धार्थ ने स्वयं को बत्तीस विशिष्ट गुणों (पृष्ठ 168) और अस्सी लघु गुणों से परिपूर्ण, तेजस्वी बुद्ध के दर्शन किए, तो वे पूर्णतः धार्मिक भाव से भर गए और अनेक उदाहरणों और दृष्टांतों के माध्यम से उनकी स्तुति प्रकट की। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने दिव्य इंद्रिय सुख के छह चरणों का आनंद लिया, दिव्य जगत में सक्का, मार आदि की समृद्धि प्राप्त की, मनुष्यों में विश्वराज की समृद्धि का अनुभव किया और एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। ज्ञानोदय की आयु प्राप्त करने पर वे गुरु से प्रसन्न हुए, संसार का त्याग किया और शीघ्र ही चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान और छह प्रकार के उच्च ज्ञान प्राप्त कर दोषरहित अर्हत बन गए। बुद्ध की स्तुति के माध्यम से समस्त प्राणियों के मन को प्रसन्नतापूर्वक धार्मिक बनाने के कारण वे थेरा परप्पसादक के नाम से प्रसिद्ध हुए।
20. एक दिन, अपने पूर्व कर्म को याद करके वे प्रसन्न हुए और उन्होंने 'उषभं पवरं वीरं' से शुरू होने वाला एक श्लोक सुनाया, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व कर्म का वर्णन किया। वहाँ, उषभं (बैल), वसाभ, निषभ, वसाभ और आसभ; इस प्रकार, चार सबसे बड़े नर बैल हैं। वहाँ, वसाभ बैल सौ पशुओं में सबसे बड़ा है; निषभ एक हजार पशुओं में सबसे बड़ा है; आसभो एक लाख करोड़ पशुओं में सबसे बड़ा है; ज्ञानवान ब्राह्मण अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर जिसकी भी प्रशंसा करते हैं, उसकी प्रशंसा करने में वे सक्षम नहीं हैं। हालाँकि, बुद्धों की हर प्रकार से प्रशंसा करने में कोई भी सक्षम नहीं है; वास्तव में, बुद्ध अतुलनीय हैं। वास्तव में, ऐसा कहा गया है:
बुद्ध भी बुद्ध की प्रशंसा में बोलते थे;
यदि वे एक युग (कप्पा) के लिए भी बोलते रहें
दूसरे बुद्ध का, लंबा-लंबा अंतराल
एयॉन (कप्पा), शायद थक जाए लेकिन
तथागत की स्तुति कभी समाप्त नहीं होगी;
इस प्रकार, आरंभ हुआ। इस ब्राह्मण ने भी मुखानुरूल्हा (मुखारूल्हा) और निश्चित प्रसन्नतापूर्ण भक्ति के कारण "उषभ (बैल)" से आरंभ किया, जबकि उसे "आसभ (सबसे बड़ा बैल)" कहना चाहिए था। चयन योग्य और वांछनीय; इस प्रकार, वरो (उत्कृष्ट) है; कई लाख युगों (कप्पा) में परिश्रम करने के कारण, वीर है; नैतिक उपदेशों आदि के विशाल समूह की खोज करने वाला वह महेसिम (महान साधक) बुद्ध है; दुराचार (किलेसा), षट्समूह (खन्ध) मार आदि जैसे मारों पर स्पष्ट रूप से विजय प्राप्त करने वाला; इस प्रकार, विजयावी; वह विजयावीनाम (वह विजेता) आत्मप्रबुद्ध बुद्ध है। जिस किसी भी आत्मप्रबुद्ध बुद्ध का रंग स्वर्ण के समान होता है, वह स्वर्ण रंग का होता है; उस सुनहरे रंग वाले आत्मज्ञानी बुद्ध को देखकर, जो कि वह प्राणी है जो दिखावटी रूप से धार्मिक नहीं बनता।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा परप्पसादक
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 65. थेरा भिसदायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.165. भीषदायक 734
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.165. थेरा भीषदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

65. भीषदायक 734

(संबुद्ध) वेस्सभु नामक तीसरे ऋषि (उस युग में जन्मे)735 वन में उतरकर736 वहाँ निवास करते थे, जो परम पुरुष थे। (1) (1377)
कुछ कमल की जड़ें और तने लेकर, 737 मैं 738 बुद्ध के समक्ष गया और अपने हाथों से (अच्छी तरह से) प्रसन्न होकर वह (भोजन) बुद्ध को दिया। (2) (1378)
और सबसे बुद्धिमान वेस्साभु के हाथ का स्पर्श पाकर, मैं अतुलनीय रूप से प्रसन्न था; क्या इससे बढ़कर कुछ हो सकता है?739 (3) (1379)
मेरा अंतिम जीवन चल रहा है; समस्त अस्तित्व अब नष्ट हो चुका है। जब मैं हाथियों का राजा था, तब मैंने अच्छे बीज बोए थे। (4) (1380)
उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला: यही कमल की जड़ का फल है। (5) (1381)
तेरहवें युग (पूर्व) में सोलह लोगों के स्वामी, राजा (सभी) समोधान थे, जो महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे। (6) (1382)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1383)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 734 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 735 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
736 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 737 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 738 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 739 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य भीषदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
भीषदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

65. थेरा भीषदायक की जीवनी पर टीका।

वेस्साभू नाम नामेन से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा भीषदायक की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, जो इस और उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने हिमवंत में एक हाथी की कोख में पुनर्जन्म लिया और वहां प्रतापी वेस्साभू के समय निवास किया। उस अवसर पर, प्रतापी वेस्साभू एकांत की इच्छा से हिमवंत गए। प्रतापी वेस्साभू से मिलकर, वह हाथी श्रद्धा से भर गया और कमल की डंडियों और जड़ों को पकड़कर प्रतापी वेस्साभू की सेवा करने लगा। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने हाथी का जीवन त्याग दिया, दिव्य लोक में जन्म लिया, वहाँ उन्होंने इंद्रिय-संबंधी दिव्य लोक की छह अवस्थाओं की समृद्धि का आनंद लिया, मनुष्य रूप धारण किया, विश्वराज के समान समृद्धि का अनुभव किया और एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; अपनी पूर्व प्रवृत्ति (वासना) के बल पर, वे गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धावान थे, भिक्षु बने और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। वे अपने पूर्व कर्म के नाम पर भिसदायक थेरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

29. अपने पूर्व कर्म को याद करके उन्होंने वेस्साभू नाम नामेण से शुरू होने वाला एक श्लोक कहा, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को दर्शा सकें। वहाँ, वेस्साभू (बुद्ध वेस्साभू), वे व्यापारी से आगे निकल जाते हैं; दूसरे शब्दों में, वे व्यापारियों, व्यापारिक कार्यों या इंद्रिय सुखों (राग) आदि या पुण्य कर्मों आदि या भौतिक (वात्तु) इंद्रिय सुखों और भ्रष्ट (किलेसा) इंद्रिय सुखों पर विजय प्राप्त करते हैं; इस प्रकार, वेस्साभू (उपरोक्त व्यापारियों आदि पर विजय प्राप्त करने वाले), वेस्साभू नाम से जाने जाने वाले वेस्साभू। इसिनम ततियो आहू (तपस्वियों में तीसरे थे), वे पुण्य कर्मों की खोज करते हैं; इस प्रकार, इसि (ऋषि); "विपस्सी, सिखी, वेस्साभू, ऐसा कहे जाने के कारण वे तीसरे तपस्वी (या ऋषि), तीसरे प्रतापी बन गए; यही अर्थ है। काहनम वनमोग्गयह (जंगल में प्रवेश करके), गोता लगाकर वे कानन (वन क्षेत्र) कहलाने वाले जंगल में प्रवेश कर गए; यही अर्थ है।"

30. भीषमूलालं गणहित्वा (कमल को डंठल और जड़ सहित पकड़कर), यह दो पैरों और चार पैरों वाले प्राणियों की भूख को कुचल देता है, सताता है और नष्ट कर देता है, इस प्रकार भीष (कमल-भोजन); यह क्या है? कमल-भोजन (पदुमकंडा), भोजन योग्य कमल और भोजन योग्य जड़ (भोजन योग्य कमल) ने उस भोजन योग्य कमल (भीषमूलालं) को ग्रहण किया; यही अर्थ है।

31. करेना च परामत्त्हो (हाथ से अनुभव किया) वह दान जो मैंने दिया; वेस्सभूवर बुद्धिना (उत्कृष्ट बुद्ध वेस्सभू द्वारा) परम श्रेष्ठ बुद्ध वेस्सभू द्वारा हथेली से उचित स्पर्श और संपर्क किया गया। सुखाहम नाभिजानामि, समम तेना कुतोत्तरी? (मुझे ऐसा कोई सुख याद नहीं जो इसके समतुल्य हो); इससे बेहतर कोई बात कहाँ हो सकती है?) उस सुख के समतुल्य, मुझे याद नहीं कि वह सुख कहाँ से आया है जो उससे श्रेष्ठ, उससे भी बढ़कर और उससे भी अधिक है; यही अर्थ है। विधि का अनुसरण करने पर शेष आसानी से समझ में आ जाता है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा भीषदायक का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 66. थेरा सुसिंतिता

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.166. सुसिंटिटा740
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.166. थेरा सुसिंटिटा की जीवनी पर टिप्पणी।

कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

66. सुसिंटिटा740

दुर्गम पर्वत पर विचरण करते हुए मैं (तब) एक उच्च कुल का शेर था। जंगली जानवरों के समूहों का वध करते हुए मैं उस पर्वत पर रहता था। (1) (1384)
परन्तु हे अत्थादस्सी, हे भगवान, हे श्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता, हे सर्वज्ञ, मेरी उन्नति की कामना से उस उत्कृष्ट पर्वत पर आए। (2) (1385)
मैं अपने द्वारा मारे गए चित्तीदार मृगों को खाने की इच्छा से उनके पास पहुँचा। उसी समय भगवान बुद्ध भिक्षा मांगने के दौरान वहाँ आए। (3) (1386)
मैंने मांस के उत्तम टुकड़े लेकर गुरु को दिए। महान वीर ने इसके लिए धन्यवाद दिया, जिससे मुझे निर्वाण की ओर अग्रसर किया। (4) (1387)
मैं उस दुर्गम पर्वत पर अपने हृदय में उस आनंद के साथ प्रवेश किया, और आनंद को जन्म देते ही, मैं वहीं पर परास्त हो गया। (5) (1388)
उस (कुछ) मांस के उपहार और (मेरे) हृदय में दृढ़ संकल्प के कारण, पंद्रह सौ युगों तक मैंने देवताओं के संसार में आनंद लिया। (6) (1389)
शेष सभी युगों में मैंने उस मांस के उपहार और बुद्ध-स्मरण के कारण सदा स्वस्थ आचरण किया। (7) (1390)
अड़तीसवें युग में दिघायु नाम के आठ राजा थे।741

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 740 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 741 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इसके साठवें युग में वरुण नाम के दो राजा हुए। (8) (1391)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) (1392)
इस प्रकार पूज्य सुसिंतिता थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सुसिंटिटा थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
66. थेरा सुसिंटिटा की जीवनी पर टिप्पणी।
गिरिदुग्गचनो आसिम से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सुचिंतिता की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित करने के कारण, वे परम पूज्य अत्थदस्सी के समय हिमवंत क्षेत्र में एक शिकारी के परिवार में पुनर्जन्म लेकर हिरण, सूअर आदि का शिकार करके अपना जीवन यापन करते थे। उस समय, जगत के स्वामी जगत के उत्थान और प्राणियों के प्रति अपनी सहानुभूति के कारण हिमवंत गए। तब उस शिकारी की मुलाकात परम पूज्य अत्थदस्सी से हुई, वे अत्यंत श्रद्धावान हुए और अपने भोजन के लिए लाया गया उत्तम मांस उन्हें भेंट किया। परम पूज्य अत्थदस्सी ने उन पर दया करके भेंट स्वीकार की; उन्होंने मांस खाया, धन्यवाद कहा और प्रस्थान किया। उसी पुण्य कर्म और उस अत्यंत प्रसन्नतापूर्ण धार्मिक भावना के कारण, वे वहाँ से चले गए, अपने पुनर्जन्मों के चक्रों में अच्छे मार्ग पर विचरण करते रहे (सुगातेसु, उत्कृष्ट अस्तित्व में), इंद्रिय सुखों के दिव्य जगत के छह चरणों की समृद्धि का आनंद लिया, मनुष्यों के बीच विश्वराज जैसी समृद्धि का अनुभव किया, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब एक पारिवारिक घर में उनका पुनर्जन्म हुआ; उन्होंने गुरु में अत्यंत प्रसन्नतापूर्ण धार्मिक आस्था धारण की, संसार का त्याग किया और शीघ्र ही अरहत बन गए।

36. चार प्रकार के विश्लेषणात्मक ज्ञान और पाँच प्रकार के उच्चतर ज्ञान जैसी विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'गिदिदुग्गकारो आसिम' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। यह प्रतिध्वनित होता है और ध्वनि उत्पन्न करता है; इस प्रकार, गिरि (पहाड़); वह क्या है? यह पत्थर और मिट्टी से बना पहाड़ है; कठिनाई और कष्ट के साथ चलना दुग्ग (कठिन यात्रा) है; पहाड़ियों पर कठिन यात्रा करना गिरिदुग्ग है, वह पहाड़ जिस पर चलना कठिन है; कठिन यात्रा; यही अर्थ है। मैं पहाड़ियों में, कठिन पहाड़ियों में विचरण करने वाला और नैतिक उपदेशों का पालन करने वाला था। 'अभिजातो व केसरी' (विशिष्ट रूप से जन्मे सिंह के समान), मैं विशिष्ट रूप से जन्मे और उत्पन्न हुए अयाल वाले सिंह के समान कठिन पहाड़ियों में विचरण करता था; यही अर्थ है।
40. गिरिदुग्गम पविसिम अहम (मैंने कठिन पहाड़ी पर प्रवेश किया) मांस की उस भेंट से प्रसन्न होकर और उत्साह से भरकर मैं पहाड़ी के भीतरी भाग में प्रवेश किया। शेष का अर्थ सरल है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सुसिंटिटा का
समाप्त हो गया।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 67. थेरा वत्थदयका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.167. वत्थाडायक 743
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.167. थेरा वत्थाडायक की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

67. वत्थाडायक 743

मैं उस समय एक पक्षी के रूप में पैदा हुआ था, अच्छे (मजबूत) पंखों के साथ, एक हार्पी-राजा। मैंने निर्मल बुद्ध को गंधमादन (पर्वत) पर जाते देखा। (1) (1393)
मैंने अपना वीणा जैसा रूप त्याग दिया और मनुष्य के वस्त्र धारण कर लिए। मैंने एक वस्त्र दो पैरों वाले प्राणियों के स्वामी, तटस्थ को दे दिया। (2) (1394)
उस कपड़े का टुकड़ा लेकर, बुद्ध, विश्व के शीर्ष नेता, शिक्षक, आकाश में खड़े होकर (मेरे बारे में) ये श्लोक बोले: (3) (1395)
“इस वस्त्र के उपहार और अपने हृदय में दृढ़ संकल्प के कारण, वह वीणा के गर्भ को त्यागकर देवताओं के संसार में आनंदित होगा।” (4) (1396)
परन्तु अत्थादस्सी, हे भगवान, संसार के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के श्रेष्ठ, वस्त्र के उपहार की प्रशंसा करने के बाद उत्तर दिशा की ओर मुख करके चले गए। (5) (1397)

---

742 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 743 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के

अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 744 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

जब मैं पुनर्जन्म लेता हूँ, तो मुझे वस्त्रों की उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं; आकाश में एक छत्र है: यही वस्त्र देने का फल है। (6) (1398)
अरुणक नामक सात पुरुष महान शक्ति वाले चक्र-चालक थे। चौंतीसवें युग में वे लोगों के स्वामी थे। (7) (1399)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (1400)
इस प्रकार पूज्य वत्थाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
वत्थडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
67. थेरा वत्थाडायक की जीवनी पर टीका
'पक्खिज्जतो तदा आसिम' से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा वत्थडायक की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और परम पूज्य अत्थदस्सी के समय गरुड़ पक्षी के गर्भ में पुनर्जन्म लिया। गंधमादना पर्वत की ओर जा रहे परम पूज्य अत्थदस्सी को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न और धर्मपरायण हो गए, उन्होंने गरुड़ पक्षी का रूप त्याग दिया, एक बालक का रूप धारण किया, अपने साथ अत्यंत कीमती दिव्य वस्त्र लिए और आदरपूर्वक उन्हें परम पूज्य को अर्पित कर दिया। परम पूज्य ने उन्हें स्वीकार किया, धन्यवाद कहा और प्रस्थान किया। उस पक्षी ने अपना समय उसी श्रद्धा भाव से व्यतीत किया, अपने जीवनकाल तक जीवित रहा, फिर वहां से उसका निधन हो गया, और वह दिव्य लोक में पुनर्जन्म लेकर वहां जीवन चक्र में विचरण करता रहा, पुण्य कर्मों का फल भोगता रहा, और मनुष्यों के बीच समृद्धि का आनंद लेता रहा; उसे हर जगह कीमती वस्त्र और आभूषण प्राप्त हुए; इसके बाद, प्रत्येक जन्म में वह पुनर्जन्म लेता रहा, जहां भी जाता, वस्त्रों की छाया में रहता था; बाद में जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तब उसका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में हुआ; बुद्धि प्राप्त करने पर उसने गुरु में गहरी आस्था धारण की, संसार का त्याग किया, और कुछ ही समय बाद छह प्रकार के परम ज्ञान को प्राप्त करके रोगमुक्त हो गया। वह अपने पूर्व में किए गए पुण्य कर्म के नाम पर वत्थाडायक थेरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
45. अपने पूर्व कर्म को याद करके वह आनंद में लीन हो गया और उसने अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'पक्खीजातो तदा आसिम' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, 'पक्खीजातो' (पंखों वाले प्राणी के रूप में जन्मा), एक पक्षी ऊपर जाता है और इसके साथ उड़ता है; इस प्रकार, 'पक्खा' (पंख); इसके पंख हैं; इस प्रकार, 'पक्खी' (पंखों वाला); पक्षी के गर्भ में जन्मा और उत्पन्न हुआ; यही अर्थ है। 'सुपञ्ञा' (गरुड़ पक्षी), जिसके पंख उत्तम हैं, वह सुपञ्ञा है, अच्छे पंखों वाला; सुनहरे रंग के चमकीले पंखों वाला महान पक्षी जो हवा (या हल्की हवा) को पकड़ लेता है; यही अर्थ है। 'गरुड़-राजा' (गरुड़) वे अजगरों को पकड़ने के उद्देश्य से पत्थरों का भारी बोझ निगल जाते हैं; इस प्रकार, 'गरुड़' (बड़ा पक्षी); गरुड़ों के प्रमुख और राजा; इस प्रकार, गरुड़धिपो है; मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा; इस प्रकार, संबंध है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा वत्थाडायक के पास
समाप्त हो गया।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 68. थेरा अम्बादायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.168. अंबदायक 745
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.168. थेरा अम्बाडायक की जीवनी पर टीका

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

68. अंबदायक 745

हे भगवान अनोमादस्सी, पर्वत पर बैठे हुए, इस अनंत संसार में प्रेम और दया का प्रसार किया, वे इच्छाहीन हैं। (1) (1401)
उस समय मैं हिमालय की सर्वोच्च पहाड़ियों में एक बंदर था। असीम अनोमा को देखकर, बुद्ध में मेरा हृदय प्रसन्न हुआ। (2) (1402)
उस समय हिमालयी क्षेत्र में आम के पेड़ फल दे रहे थे। इसलिए, मैंने एक आम लेकर उसे शहद के छत्ते के साथ दे दिया। (3) (1403)
महान ऋषि अनोमादस्सी, बुद्ध ने मुझसे यह भविष्यवाणी की थी: "इस शहद के उपहार और (साथ ही) आम (फल) के इस उपहार के कारण, (4) (1404)
आप सत्तावन युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेंगे (इसलिए)।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 745 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

आप शेष युगों के लिए मिक्स746 में पुनर्जन्म लेंगे। (5) (1405)
बुरे कर्मों का त्याग करके और परिपक्व बुद्धि से, इस शोक स्थल से प्रस्थान करके तुम अपने दोषों को नष्ट करोगे।" (6) (1406)
मुझे महान ऋषि ने उत्कृष्ट वशीकरण के माध्यम से वश में कर लिया है।747 मैंने विजय और पराजय से परे अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (7) (1407)
सत्तरह युगों (इसलिए)748 चौदह (विभिन्न) राजा थे (तब) (जिनका नाम सभी) अंबट्ठज था749 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट। (8) (1408)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) (1409)
इस प्रकार पूज्य अंबडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
अंबडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन

68. थेरा अम्बाडायक की जीवनी पर टीका

अनोमदस्सी भगवा से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेर अंबडायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए, उन्होंने इस या उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित किए और प्रतापी अनोमदस्सी के समय में एक बंदर के गर्भ में पुनर्जन्म लिया तथा हिमवंत क्षेत्र में बंदरों के राजा बनकर सुशोभित जीवन व्यतीत किया। उस अवसर पर, प्रतापी अनोमदस्सी ने बंदर राजा पर दया करते हुए हिमवंत क्षेत्र का दौरा किया। तब प्रतापी को देखकर वह बंदर राजा अत्यंत प्रसन्न और श्रद्धावान हो गया और उन्हें थोड़े से शहद के साथ अत्यंत मीठे आम भेंट किए। तब प्रतापी ने बंदर के देखते ही उन सभी को खा लिया, धन्यवाद कहा और प्रस्थान किया। तब, बंदर मन से प्रसन्न और हृदय से आनंदित हुआ, अपने जीवनकाल तक उसी उत्साह और आनंद के साथ जीवित रहा, वहाँ से देहांत हुआ, दिव्य लोक में पुनर्जन्म लिया, वहाँ बार-बार आनंद का अनुभव किया, मनुष्यों के बीच समृद्धि देखी, एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, गुरु में श्रद्धा रखते हुए, संसार का त्याग किया और छह प्रकार के उच्च ज्ञान प्राप्त किए। वे अपने पूर्व पुण्य कर्म के नाम पर अंबदयाकथेरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

53. इसके बाद, उन्होंने अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्म के बीज को देखा, प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए अनोमदस्सी भगवा से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला: मेट्टाया अफरी लोके अप्पमाने निरुपधि (उन्होंने असीम प्रेम से संसार को व्याप्त किया; उस महिमावान ने प्रेम और दयालु हृदय से संसार को व्याप्त किया, अस्तित्व के आधार से मुक्त करते हुए, "वे सुखी हों" आदि कहते हुए, समस्त संसार और असंख्य जीवों को व्याप्त किया, फैलाया और विकसित किया; यही अर्थ है।
54. कपि अहम तदा आसिम (मैं तब एक बंदर था), उनके आने के समय मैं एक बंदर-राजा था; यही अर्थ है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा अंबडायक का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 69. थेरा सुमना

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.169. सुमना750
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.169. थेरा सुमना की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

---

69. सुमना750

मैं उस समय माला बनाने वाली थी, सुमना नाम से जानी जाती थी। मैंने बुद्ध, निर्मल, यज्ञ ग्रहण करने वाले को देखा। (1) (1410) अपने दोनों हाथों से एक सुंदर चमेली का फूल लेकर,

---

746 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
747 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 748 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 749 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित 750 अपदान संख्याएँ {फैंसी कोष्ठकों} में दी गई हैं, जो BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं।

मैंने बुद्ध, सिख धर्म, जगत के सगे-संबंधी को नमन किया। (2) (1411)
उस पुष्प-पूजा के माध्यम से, इरादे और (दृढ़) संकल्प के साथ, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (3) (1412)

मैंने जब से (उसे) वह फूल भेंट किया है, तब से इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (4) (1413)
इसके पच्चीसवें युग में चार महान यशवान पुरुष थे; (वे सभी) चक्र चलाने वाले राजा थे, सात रत्नों के स्वामी थे। (5) (1414)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1415)
इस प्रकार पूज्य सुमना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सुमना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
69. थेरा सुमना की जीवनी पर टीका।
सुमना नाम नामेना से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सुमना की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, उन्होंने इस और उस जन्म में पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और परम पूज्य सिख धर्मगुरु के समय एक माला बनाने वाले के घर में पुनर्जन्म लिया। वे समय के साथ बड़े हुए, परम पूज्य बुद्ध में गहरी आस्था से परिपूर्ण हुए और अपने मन को प्रसन्न रखते हुए मुट्ठी भर चमेली के फूल लेकर श्रद्धापूर्वक अर्पित किए। इस पुण्य कर्म के कारण उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच दो प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया। वे इस बुद्ध के उदय के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिए, समय के साथ बड़े हुए, पत्नी और बच्चों के साथ अपना जीवन व्यतीत किया, सुमना नाम से प्रसिद्ध हुए, गुरु में गहरी आस्था रखी, संसार का त्याग किया और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए।
62. अरहत बनने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, आनंदमय भाव में डूब गए, और अपने पूर्व कर्मों को प्रकट करने के लिए 'सुमनोनम नामेन' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। जिसका मन उत्तम और हृदय अच्छा हो, वह सुमन (अच्छा मन) कहलाता है। उस समय मैं सुमन नाम का एक पुष्प विक्रेता था, जिसका नाम अत्यंत पवित्र और निर्मल भक्ति से जुड़ा था।
63. सिखिनो लोकबंधुनो, सिखी को, संसार के संबंधी को; वह मुकुट और सिर प्रकट करता है, इस प्रकार सिखी; मुकुटधारी; दूसरे शब्दों में, वह उचित रूप से जुड़े हुए स्व-संबंधों को भस्म और नष्ट करता है, इस प्रकार सिखी, मुकुटधारी; जैसे अग्नि की लौ चमकती है, प्रकट होती है, लौ पत्तों, घास, ईंधन, पीली या हल्की लकड़ी या पत्तों आदि को जला देती है, वैसे ही यह महिमावान नीले, पीले आदि रंगों की किरणों से चमकता है, समस्त संसार के निवास स्थान में प्रकट होता है; उसके शरीर में व्याप्त सभी प्रकार के दुराचार (किलेसा) सूख गए, नष्ट हो गए और जल गए; इस प्रकार, शब्द-नाम, नामकरण क्रिया और नाम धारण करना; उस सिखी को; समस्त संसार के संबंधी को; इस प्रकार, ओकबंधु (साम्राज्य संबंधी)); अभिरोपायिम (मैंने इसे स्पष्ट रूप से स्थापित करवाया) मैंने उस गौरवशाली (एक सिख, संसार के सगे-संबंधी) को श्रद्धापूर्वक चमेली के फूल अर्पित किए; यही अर्थ है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सुमना का
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स
1.170. पुप्पचंगोटिया751
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.170. पुप्पाकांकोटियाथेरा की जीवनी पर टिप्पणी
कहावतों का अनुवाद: जेएस वाल्टर्स

70. पुप्पचंगोटिया751

निर्भीक रूप वाले शेर की तरह, (मजबूत) पंखों वाली विशाल वीणा की तरह, बाघों के शानदार सांड की तरह, और उच्च कुल के शेर (राजा) की तरह, (1) (1416)
सिख धर्म, तीनों लोकों का आश्रय, इच्छा रहित, अजेय, भिक्षुओं में श्रेष्ठ, वहाँ विराजमान थे, भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित। (2) (1417)
एक ताबूत में एक शानदार anoja752 फूल रखने के बाद,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 751 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 752 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध753 ताबूत पर छिड़कते हुए (मैंने उसे वह भी दिया)। (3) (1418)
मेरे हृदय में द्विपाद स्वामी, मनुष्यों के बैल के प्रति उस आनंद के कारण, मैंने विजय और पराजय से परे अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (4) (1419)
उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला: यही बुद्ध-पूजा का फल है। (5) (1420)
तीसवें युग के दौरान (इसलिए) पाँच चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे। (उन सभी का) नाम देवभूति था, जो सात रत्नों के 754 धारक थे। (6) (1421)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) (1422)
इस प्रकार पूज्य पुप्पचंगोतिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पुप्पचंगोतिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश:
सकाचित्त, अद्धापुप्फी, और पच्चाभिगमना, परप्पसादी, भीसाद, सुचिन्ती, वत्थादायक, अंबदयी और सुमन तथा पुप्पचंगोटिक सहित कुल इकहत्तर श्लोक इन द्रष्टाओं द्वारा कहे गए थे
सकाचित्तनिया 755 अध्याय, सातवां,

753 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 754 रत्तंबरधारो, शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबर धारण करना", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 755 शाब्दिक अर्थ, "जाना", संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
70. पुप्पाकांकोटियाथेरा की जीवनी पर टिप्पणी
'अभितरूपम सीहम वा' से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा पुप्पचंकटिया की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और पुण्य कर्मों का संचय करने के कारण, जो इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने में

सहायक थे, उनका पुनर्जन्म एक पारिवारिक घर में, सिख धर्मगुरु के समय में हुआ था। ज्ञानोदय प्राप्त करने पर, उन्हें अपार धन-संपत्ति प्राप्त हुई, गुरु के प्रति उनकी श्रद्धापूर्ण आस्था बढ़ी, उन्होंने उत्तम अनोजा पुष्पों से भरा एक संदूक तैयार किया, श्रद्धापूर्वक उस पुष्प-संदूक को भगवान को अर्पित किया, जिससे उनकी श्रद्धापूर्ण भक्ति का प्रदर्शन हुआ, और उन्होंने यह प्रार्थना की: "हे भगवान! इस अर्पण के फलस्वरूप, मैं जहाँ भी पुनर्जन्म लूँ, स्वर्णमय स्वरूप का होऊँ, पूजनीय बनूँ और निर्वाण प्राप्त करूँ।" उस पुण्य कर्म के कारण, उनका पुनर्जन्म देवताओं और मनुष्यों के बीच हुआ, वे सर्वत्र पूजनीय हुए और स्वर्णमय स्वरूप के व असाधारण रूप से सुंदर थे। बाद में, उनका पुनर्जन्म एक धनी परिवार में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ; बड़े होने पर उन्होंने गुरु के प्रति श्रद्धापूर्ण आस्था विकसित की, संसार का त्याग किया, विपश्यना (स्पष्ट अंतर्दृष्टि) प्राप्त की और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए।

68-69. अरहतत्व की सिद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने अपने पूर्व कर्म को याद किया, प्रसन्न हुए और 'अभितरूपं सीहम वा' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। वहाँ, सीहा (सिंह), वह दो पैरों वाले, चार पैरों वाले आदि प्राणियों को वश में कर लेता है और उनमें प्रवेश कर जाता है; इस प्रकार सीहा; अभितरूपो (निडर दिखता है), निर्भय स्वभाव का है; मैंने उस निर्भय सिंह के समान बैठे हुए को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया; इस प्रकार, संबंध है। पवारं, उत्कृष्ट, सिखिम (महिमावान सिखि) गरुड़-राजा के समान, पंख वाले जानवरों या पक्षियों के प्रमुख, सबसे उत्कृष्ट बाघ-राजा के समान; विशिष्ट रूप से जन्मे, अयाल वाले सिंह के समान, तीनों लोकों के आश्रयदाता। वे कैसे बने? सिख धर्म, जो सामूहिक (खन्ध), हारा आदि शत्रुओं से अप्रभावित, व्यथा से मुक्त, और कुकर्मों से रहित था; यही संबंध है। मारणंगम (हत्यारों का सरदार), उन हत्यारों का सरदार, हत्या में श्रेष्ठ और प्रमुख, सभी प्रकार के कुकर्मों (किलेसा) को नष्ट करने वाला, यद्यपि इस उद्देश्य से मौन बुद्ध और बुद्ध के शिष्य भी विद्यमान हैं; यही अर्थ है। भिक्षुसमूहपुरक्खतम (भिक्षुओं के पुरोहितों में अग्रणी); सिख धर्म, जो भिक्षुओं के पुरोहितों से घिरा हुआ बैठा था; यही संबंध है।

70. चंकॉटकेत्हपेत्वाना, इसे ताबूत में रखकर, समोकिरिम (मैंने विधिवत बिखेर दिया), मैंने ताबूत में सबसे उत्तम अनोजा फूल भरकर सबसे उत्तम आत्मप्रबुद्ध बुद्ध सिख धर्म को श्रद्धापूर्वक अर्पित किया।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा पुप्पाकांकोटिया का
समाप्त हो गया है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 71. थेरा नागसामाला

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.171. नागसमाला
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.171. थेरा नागसमला की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
नागसमाला अध्याय, आठवां

---

71. नागसमाला

मैंने विश्व के रिश्तेदार सिख स्तूप पर श्रद्धा अर्पित की, (एक) तुरही के फूल756 के साथ जो महान राजमार्ग पर फेंक दिया गया था। (1) (1423)

उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही स्तूप-पूजा का फल है। (2) (1424)

पंद्रहवें युग (पूर्व) में भूमिया नामक क्षत्रिय महान बलवान चक्रपालक थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (3) (1425)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (1426)
इस प्रकार पूज्य नागसमाला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
नागसमाला थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
8. नागसमाला पर अध्याय
71. थेरा नागसमला की जीवनी पर टीका।
Āpāṭalim aham pupphaṃ से शुरू होने वाले श्लोक आदरणीय थेरा नागसमालाक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों को संचित करने के बाद, उन्होंने सिख धर्म के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने विधिवत गृहस्थ जीवन स्थापित किया, लेकिन उपयुक्त अच्छे लोगों की संगति में न रहकर, गुरु के जीवित रहते हुए उनके दर्शन, श्रवण या श्रद्धापूर्वक भेंट करने जैसा कोई कार्य नहीं किया, परन्तु उस प्रतापी के देहान्तरण पर, उन्होंने उस प्रतापी के भौतिक अवशेषों को संजोकर रखा, स्थापित मंदिर में अपने मन को पवित्र आस्था से भर दिया, श्रद्धापूर्वक उसे पाटलि पुष्प अर्पित किए, अपने आनंदमय मन को जागृत किया, अपने जीवनकाल तक जीवित रहे, वहीं उस अत्यंत सुखद पवित्र मन से प्राण त्यागे, तुषिता आदि छह दिव्य लोकों में आनंद का अनुभव किया, बाद में मनुष्यों के बीच मानवीय समृद्धि का अनुभव किया, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए तो एक गृहस्थ घर में उनका पुनर्जन्म हुआ; बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, उनके माता-पिता ने उन्हें नागसमालो नाम दिया, क्योंकि उनका शरीर नाग वृक्ष के कोमल पत्तों जैसा था। ईश्वर में अत्यंत श्रद्धापूर्वक विश्वास रखते हुए, उन्होंने संसार का त्याग कर दिया और शीघ्र ही वे अरहत बन गए।
1. बाद में, अपने पूर्व कर्म को याद करके, वे प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'आपात्लिम अहम् पुप्पम' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, 'आपात्लिम, जहाँ तक पाटलि फूल है, अभिरोपेसिम (मैंने इसे स्पष्ट रूप से स्थापित किया) चारों ओर से, या आदरपूर्वक पाटलि फूल लेकर, मैंने इसे मंदिर में आदरपूर्वक अर्पित किया; यही अर्थ है। 'उज्जितम् सुमाहापथे (अच्छे राजमार्ग पर रखा) शहर के सभी निवासियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने और आदरपूर्वक भेंट करने के उद्देश्य से, शहर के मध्य में राजमार्ग, सड़क को ऊँचा और पक्का किया गया था, ईंटें बिछाने का काम पूरा हो गया था; यही अर्थ है। उपरोक्त विधि के साथ-साथ स्पष्ट अर्थ के कारण शेष भाग आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा नागसमाला का
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 71. थेरा नागसामाला

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.171. नागसमाला
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.171. थेरा नागसमला की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
नागसमाला अध्याय, आठवां

---

71. नागसमाला

मैंने विश्व के रिश्तेदार सिख स्तूप पर श्रद्धा अर्पित की, (एक) तुरही के फूल756 के साथ जो महान राजमार्ग पर फेंक दिया गया था। (1) (1423)
उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से इकत्तीस युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही स्तूप-पूजा का फल है। (2) (1424)
पंद्रहवें युग (पूर्व) में भूमिया नामक क्षत्रिय महान बलवान चक्रपालक थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (3) (1425)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (1426)
इस प्रकार पूज्य नागसमाला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
नागसमाला थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
8. नागसमाला पर अध्याय
71. थेरा नागसमला की जीवनी पर टीका।
Āpāṭalim aham puppham से शुरू होने वाले श्लोक आदरणीय थेरा नागसमालाक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में पुनर्जन्मों के चक्रों से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों को संचित करने के बाद, उन्होंने सिख धर्म के समय में एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया। बुद्धि प्राप्त करने पर, उन्होंने विधिवत गृहस्थ जीवन स्थापित किया, लेकिन उपयुक्त अच्छे लोगों की संगति में न रहकर, गुरु के जीवित रहते हुए उनके दर्शन, श्रवण या श्रद्धापूर्वक भेंट करने जैसा कोई कार्य नहीं किया, परन्तु उस प्रतापी के देहान्तरण पर, उन्होंने उस प्रतापी के भौतिक अवशेषों को संजोकर रखा, स्थापित मंदिर में अपने मन को पवित्र आस्था से भर दिया, श्रद्धापूर्वक उसे पाटलि पुष्प अर्पित किए, अपने आनंदमय मन को जागृत किया, अपने जीवनकाल तक जीवित रहे, वहीं उस अत्यंत सुखद पवित्र मन से प्राण त्यागे, तुषिता आदि छह दिव्य लोकों में आनंद का अनुभव किया, बाद में मनुष्यों के बीच मानवीय समृद्धि का अनुभव किया, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए तो एक गृहस्थ घर में उनका पुनर्जन्म हुआ; बुद्धि की आयु प्राप्त करने पर, उनके माता-पिता ने उन्हें नागसमालो नाम दिया, क्योंकि उनका शरीर नाग वृक्ष के कोमल पत्तों जैसा था। ईश्वर में अत्यंत श्रद्धापूर्वक विश्वास रखते हुए, उन्होंने संसार का त्याग कर दिया और शीघ्र ही वे अरहत बन गए।
1. बाद में, अपने पूर्व कर्म को याद करके, वे प्रसन्न हुए और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए 'आपात्लिम अहम् पुप्पम' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। वहाँ, 'आपात्लिम, जहाँ तक पाटलि फूल है, अभिरोपेसिम (मैंने इसे स्पष्ट रूप से स्थापित किया) चारों ओर से, या आदरपूर्वक पाटलि फूल लेकर, मैंने इसे मंदिर में आदरपूर्वक अर्पित किया; यही अर्थ है। 'उज्जितम् सुमाहापथे (अच्छे राजमार्ग पर रखा) शहर के सभी निवासियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने और आदरपूर्वक भेंट करने के उद्देश्य से, शहर के मध्य में राजमार्ग, सड़क को ऊँचा और पक्का किया गया था, ईंटें बिछाने का काम पूरा हो गया था; यही अर्थ है। उपरोक्त विधि के साथ-साथ स्पष्ट अर्थ के कारण शेष भाग आसानी से समझ में आ जाता है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा नागसमाला का
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 72. थेरा पदसन्नका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस.सी. वाल्टर्स
1.172. पदासञ्ञाका757
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.172. थेरा पदसन्नका की जीवनी पर टिप्पणी
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

72. पदासञ्ञाका757

जैसे ही यह कदम रखा, मैंने सूर्य के रिश्तेदार तिस्सा का पैर देखा। मैंने प्रसन्न होकर उस पैर पर अपना मन प्रसन्न किया। (1) (1427)

---

756 {फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 757 {फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 758 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
759 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस बोध को प्राप्त करने के बाद से बानवे युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है: यही पाद-बोध का फल है। (2) (1428)
सातवें युग (पूर्व) में सुमेधा नामक क्षत्रिय एक महान बलवान चक्रचालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (3) (1429)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (1430)
इस प्रकार पूज्य पदसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
पादसंनाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
72. थेरा पदसन्नका की जीवनी पर टिप्पणी।
अक्कन्तं च पदं दिस्वा से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेर पदसञ्ञक की जीवनी का सार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने पूर्व बुद्धों की भक्तिपूर्वक सेवा की, पुण्य कर्म संचित किए, जो प्रत्येक जन्म में पुनर्जन्म के चक्र (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले थे, और जहाँ कहीं भी उनका जन्म हुआ, वे प्रतापी तिस्सा के समय में एक धर्मपरायण भक्त के घर में पुनर्जन्म लिए; बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने तीन रत्नों में श्रद्धा भाव धारण किया, प्रतापी द्वारा करुणावश दिखाए गए चरण-मंदिर (पादचेतियम) के दर्शन किए, अत्यंत धर्मपरायण और विरेखित हुए, और प्रचुर मात्रा में श्रद्धा अर्पित की, आदरपूर्वक भेंट चढ़ाई, इत्यादि। उसी उपजाऊ क्षेत्र में किए गए उसी पुण्य कर्म के कारण वे वहाँ से परास्त हो गए और स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया। वहाँ दिव्य आनंद का अनुभव करने के बाद, उनका पुनर्जन्म मनुष्यों के बीच हुआ, उन्होंने हर प्रकार की मानवीय समृद्धि का अनुभव किया, और जब इस बुद्ध का पुनर्जन्म हुआ, तो वे एक समृद्ध परिवार में हुए; बड़े होने पर, उनमें धार्मिक आस्था उत्पन्न हुई, उन्होंने संसार का त्याग किया और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए। वे अपने पूर्व में किए गए पुण्य कर्म के नाम पर पदसञ्ञक थेरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।
5. एक दिन, अपने पूर्व कर्म को याद करके, उन्होंने 'अक्कन्तं च पदम्दिस्वा' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। वहाँ, अक्कन्तम् (पैर रखना), पैर रखना और दिखाया गया; सभी बुद्धों का मार्ग हमेशा चार उंगलियों से ऊपर ही होता था; परन्तु, उनकी दिव्य आस्था को जानते हुए, बुद्ध ने उन्हें "इसे देखो" कहकर चरण-मंदिर दिखाया; अतः, उन्होंने उस मंदिर में

दिव्य आस्था विकसित की और श्रद्धापूर्वक आदर किया, जैसे कि श्रद्धांजलि अर्पित करना, आदर भेंट करना इत्यादि; यही इसका अर्थ है। शेष का अर्थ सर्वत्र सरल है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा पदासञ्ञका का
समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 73. थेरा संनाका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.173. संचका760
2टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन
2.173. थेरा बुद्धसंञ्चक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

73. संचका760

मैंने शिक्षक का फटा हुआ वस्त्र761 एक पेड़ के शीर्ष पर लटका हुआ देखा।762 तब मैंने अपने हाथ जोड़कर उस फटे हुए वस्त्र की पूजा की। (1) (1431)

उस समय मैंने जो (अच्छा) कर्म किया था, उसके बाद से बानवे युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ: बुद्ध को जानने का फल। (2) (1432)

चौथे युग में (उसके बाद) क्षत्रिय दुमासार763 महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो चारों दिशाओं में विजयी था। (3) (1433)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 760 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 761 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

762 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 763 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (1434)

इस प्रकार पूज्य संञ्चका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सन्ञाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टिप्पणी अनुवाद: यू लू पे विन

73. थेरा बुद्धसंञ्चक की जीवनी पर टीका।

दुमग्गे पमसुकुलिकम् से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा बुद्धसंञ्क की जीवनी का वर्णन करते हैं। इन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस या उस जन्म में पुनर्जन्म के चक्रों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और प्रतापी तिस्सा के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; बड़े होने पर उनमें पवित्र आस्था का जन्म हुआ, उन्होंने एक वृक्ष की चोटी पर उलझे प्रतापी बुद्ध के फटे हुए वस्त्र (पमसुकुल) को देखा, अत्यंत श्रद्धा से भर गए, उसे अरहद्धज का प्रतीक माना और व्यक्तिगत श्रद्धा अर्पित की, जैसे कि उन्हें प्रणाम करना, आदरपूर्वक भेंट चढ़ाना आदि। उस पुण्य कर्म के कारण, उन्होंने दिव्य और मानवीय आनंद का अनुभव किया और इस बुद्ध के जन्म के समय एक समृद्ध परिवार में पुनर्जन्म लिया। उसके मन में अटूट आस्था जागृत हुई, फलस्वरूप उसने संसार का त्याग कर दिया और शीघ्र ही वह अरहत बन गया।

9. अरहतत्व प्राप्त करने के बाद, उन्होंने अपने पूर्व कर्मों को याद किया, प्रसन्न हुए और दुमग्गे पमसुकूलिकम् से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्मों को प्रकट कर सकें। वहाँ, वह काँपता और थरथराता है; इस प्रकार दुमा (वृक्ष); या वह दूध देता है, आकाश को भर देता है; इस प्रकार दुमा (वृक्ष); वृक्ष का सबसे ऊपरी भाग; इस प्रकार दुमग्गो (वृक्ष का शीर्ष); उस वृक्ष के शीर्ष पर। वह पृथ्वी के समान घृणित होकर अशोभनीय अवस्था की ओर बढ़ता है; इस प्रकार पमसुकूला (घृणित पृथ्वी); वही धूल का ढेर पमसुकूलिका (धूल के ढेर का उत्पाद) है। मैंने वृक्ष की चोटी पर उलझे हुए धूल के ढेर जैसे वस्त्र (पम्सुकुला) को देखकर अपने हाथ जोड़कर उस फटे-पुराने वस्त्र (पम्सुकुला) को प्रणाम किया; यही अर्थ है। तम तो केवल एक कण (निपाता) है; बाकी सब कुछ सर्वत्र अर्थहीन है।

जीवनी पर टिप्पणी
थेरा बुद्धसंज्ञा का
समाप्त हो गया है।

विषय-सूची

1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.174. भिसालुवदायक 764
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.174. थेरा भीसालुवदायक की जीवनी पर टीका।

कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

74. भिसालुवदायक 764

वन के उपवन में प्रवेश करते हुए, मैं जंगल में रह रहा था। मैंने बुद्ध, विपस्सी, यज्ञ प्राप्तकर्ता को देखा। (1) (1435)

मैंने उसे खाने योग्य जड़ें दीं,765 और पानी दिया ताकि वह अपने हाथ धो सके। अपने सिर से उसके चरणों की पूजा करके, मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (2) (1436)

मैंने उसे वे खाद्य जड़ें देने के बाद से इक्यावन युगों में कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है: यही अच्छे कर्मों का फल है। (3) (1437)

तीसरे युग में (उसके बाद) एक शक्तिशाली चक्र-घुमाने वाला राजा था, क्षत्रियन भीसम्मत, जो सात रत्नों का स्वामी था। (4) (1438)

चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) (1439)

इस प्रकार पूज्य भीशालुवदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भिसालुवदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 764 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 765 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
766 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छठा पाठ भाग।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
74. थेरा भीसालुवदायक की जीवनी पर टीका।
कानानम वनमोग्गयह से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा भिसालुवदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, पुण्य कर्मों का संचय करते हुए, जो इस या उस जन्म के बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, वे हिमवंत के निकट एक वन में निवास कर रहे थे और वन के फलों और जड़ों का सेवन कर रहे थे, तभी उनकी मुलाकात एकांतवास के मार्ग से आए तेजस्वी विपस्सी से हुई। इसके बाद, वे श्रद्धावान हो गए और उन्होंने विपस्सी को पांच कमल की डंठलें (भिसालुव) भेंट कीं। उनके मन को प्रसन्नतापूर्वक पुण्यमय बनाने के लिए, तेजस्वी विपस्सी ने उन्हें एक ही अवस्था में खा लिया। उसी प्रसन्नतापूर्वक पुण्यमय मन से उनका प्राण त्यागा गया और तुषिता आदि दिव्य लोकों में समृद्धि का भोग करने के बाद, तथा बाद में मानवीय समृद्धि का भी अनुभव करने के बाद, उनका पुनर्जन्म एक गृहस्थी में हुआ, जब इस बुद्ध का जन्म हुआ। धनवान होने के बाद, उन्होंने अपना धन त्याग दिया, भिक्षु बन गए और कुछ ही समय बाद अरहत पद प्राप्त कर लिया।
13. इसके बाद, अपने पूर्व कर्म को याद करके, वह आनंद में लीन हो गया और उसने 'काननं वना'मोग्गयहा' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वह अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सके। इसका अर्थ तो पहले ही बताया जा चुका है। 'वसामि विपिने अहम्' (मैं एकांत में रहता हूँ), यानी मैं एकांत जीवन जीता हूँ; यही इसका संबंध है। शेष का अर्थ स्पष्ट है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा भिसालुवदायक का
समाप्त हो गया है।

छठे दौर की टीका
चाष्ट भानवर का पाठ समाप्त हो गया है
अंत तक।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान3.2 >> 75. थेरा एकासनका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.175. एकासनका767

2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.175. थेरा एकासनका की जीवनी पर टीका
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

75. एकासनका767

विपस्सी के प्रमुख अनुयायी (अरहंत) खंड थे, जिन्होंने संसार के यज्ञ किए थे; मैंने उन्हें एक भिक्षा दी थी। (1) (1440)
मेरे हृदय में द्विपद प्रभु, मनुष्यों के सांड के प्रति उस प्रसन्नता के कारण, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है: यही एक भिक्षापान का फल है। (2) (1441)
चालीस युग पूर्व वरुण नामक क्षत्रिय एक महान बलवान चक्रपालक थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (3) (1442)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) (1443)
इस प्रकार पूज्य एकाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
एकासन्चका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
75. थेरा एकासनका की जीवनी पर टीका
खाण्डो नामासिनामेना से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा एकाञ्कक की जीवनी का वर्णन करते हैं। उन्होंने भी पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करते हुए, इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने वाले पुण्य कर्मों का संचय किया और तेजस्वी विपस्सी के समय एक परिवार में पुनर्जन्म लिया; ज्ञान प्राप्त करने पर, उनका मन तीन रत्नों में श्रद्धा से भर गया, और वे उस गुरु के प्रमुख शिष्य खाण्ड से मिले, जो भिक्षा मांगते हुए भटक रहे थे, और उन्होंने श्रद्धापूर्वक उन्हें भिक्षा दी। उस कर्म के फलस्वरूप, उन्होंने दिव्य और मानवीय आनंद का अनुभव किया; सावत्थी में एक पारिवारिक गृह में उनका पुनर्जन्म हुआ; जब इस बुद्ध का जन्म हुआ, तो उन्होंने गुरु द्वारा दिए गए धर्म उपदेशों को सुना; जब उन्होंने उचित रूप से धार्मिक आस्था प्राप्त की, तो उन्होंने संसार का त्याग कर दिया और कुछ ही समय बाद अरहत बन गए। भिक्षा-भोजन के प्रति श्रद्धा धारण करने के कारण वे थेरा एकाञ्जक के नाम से प्रसिद्ध हुए।
18. इसके बाद, उन्हें अपने पूर्व कर्म याद आए; वे प्रसन्न हुए और उन्होंने 'खण्डो नामासिनामेना' से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। वहाँ, 'खण्डो (टूट गया), क्योंकि उन्होंने उस थेरा, मुख्य शिष्य के दुराचार (किलेसा) को तोड़ दिया था।' इसके बाद, सब कुछ सरल है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा एकासनका का
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.2 >> 76. थेरा तिनसंथरादायका

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.176. तिणासंथारदायक 768
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.176. थेरा तिनसंथारदायक की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

76. तिणासंथारदायक 768

हिमालयी क्षेत्र में जीवन से भरपूर एक विशाल झील थी। यह कमलों से ढकी हुई थी और विभिन्न प्रकार के पक्षियों का निवास स्थान थी। (1) (1444)
मैं उस क्षेत्र में रह रहा था, उस (झील) में स्नान और पानी पी रहा था। मैंने भिक्षुओं में सबसे श्रेष्ठ को आकाश में विचरण करते देखा। (2) (1445)

कोष्ठकों में दिए गए 767 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करता है। कोष्ठकों में दिए गए 768 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करता है।

मेरे मन की बात जानकर, जगत में अद्वितीय गुरु आकाश से अवतरित होकर उस समय वहाँ भूमि पर खड़े थे। (3) (1446)
मैंने सींग से कुछ घास काटकर उसे बैठने के लिए चटाई दी। भगवान वहाँ बैठ गए, तिस्सा, जो (संपूर्ण) जगत के मार्गदर्शक हैं।769 (4) (1447)
अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, मैंने विश्व नेता की पूजा की। 770 पर झुककर मैं उस महान ऋषि के बारे में सोचते हुए वहाँ से चला गया। (5) (1448)
मेरे हृदय में उस आनंद के कारण, मेरा पुनर्जन्म निम्माना में हुआ।771 मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता: यही एक वरदान का फल है। (6) (1449)
मैं द्वितीय युग (पूर्व) में राजा772 मिगासममाता773 था, एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (7) (1450)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) (1451)
इस प्रकार पूज्य तिनसंथारका774 थेरा ने ये श्लोक कहे।
तिणासंथारदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

769 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
770 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 771 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है। 772 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित 773 निज्झायामानो, शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ 774 सप्पी, शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
76. थेरा तिनसंथारदायक की जीवनी पर टीका।
हिमवन्तस्साविदुरे से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा तिनसंथारदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों की समर्पित सेवा करने और इस-उस जन्म में बार-बार पुनर्जन्म (वत्त) के चक्र से मुक्ति पाने के लिए पुण्य कर्म संचित करने के कारण, वे प्रतापी तिस्सा के समय एक गृहस्थ परिवार में पुनर्जन्म हुए। क्योंकि वे बुद्ध के प्रकट होने से पहले ही उत्पन्न हुए थे, इसलिए उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग

दिया, संसार का त्याग कर तपस्वी बन गए और हिमवन्त के पास एक झील पर निर्भर रहकर उचित जीवन व्यतीत किया। उस अवसर पर, प्रतापी तिस्सा ने उन पर दया करते हुए आकाश में प्रस्थान किया; तब उस तपस्वी ने आकाश से अवतरित होकर उस तेजस्वी बुद्ध को खड़े देखा, तो वह अत्यंत श्रद्धा से भर उठा, घास काटकर उस पर बैठने का निवेदन किया, पाँच प्रकार की आसन धारण करके (पंचपतिच्छिता) उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया, फिर एकांत में लौट आया (पटिकुतितो) और प्रस्थान किया। वह अपने जीवनकाल तक जीवित रहा, फिर वहाँ से परलोक चला गया, देवताओं और मनुष्यों के बीच पुनर्जन्मों का चक्र पूरा किया, अनेक प्रकार की समृद्धि का आनंद लिया, और जब यह बुद्ध प्रकट हुए, तब वह एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; वयस्क होने पर, वह गुरु के प्रति परम श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया, संसार का त्याग कर दिया और शीघ्र ही अरहत बन गया।
22. इसके बाद, उन्हें अपने पूर्व कर्म की याद आई, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने हिमवंतससाविदुरे से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला, ताकि वे अपने पूर्व कर्म को प्रकट कर सकें। इसका अर्थ यह है कि जैसा कि ऊपर कहा गया है, महाजातस्सरो (महान प्राकृतिक झील) यहाँ है, लेकिन यहाँ सर (झील) है, नदी, गुफा आदि सर (झील) हैं; वह झील भी विशाल है, और क्योंकि वह स्वयं ही उत्पन्न हुई है और क्योंकि वह झील भी है, इसलिए महाजातस्सरो (महान प्राकृतिक झील) कहलाती है। क्योंकि यह अनोटत्ता, चद्दंता आदि जैसी झीलों की तरह प्रसिद्ध नाम नहीं है, इसलिए इसे "महाजातस्सरो" (बड़ी प्राकृतिक झील) कहा जाता है; अतः इसे अवश्य देखना चाहिए। शतपत्तेहि संचन्नो (सौ पंखुड़ियों वाले कमलों से भरा हुआ), क्योंकि प्रत्येक फूल में सौ पंखुड़ियाँ होती हैं, इसलिए इसे शतपत्त कहा जाता है; प्रत्येक सौ पंखुड़ियों वाले सफेद पद्म कमलों से भरा हुआ, फूलों का जंगल बन जाता है; यही इसका अर्थ है। नानासकुणमालयो, विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों का बसेरा, जहाँ हंस, मुर्गे, मुर्गियाँ, जलपक्षी, तीतर आदि जैसे कई पक्षी एक साथ कूकते हैं, एक साथ आवाज करते हैं, इसलिए इसे सकुण कहा जाता है; यह वह विश्राम स्थल है जो पंख वाले पक्षियों का आश्रय स्थल बन गया है और इसी कारण इसे यह नाम मिला है। सकुणा (पक्षी); यही इसका अर्थ है। बाकी का अर्थ तो स्पष्ट ही है।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा तिनसंथराडायक का
समाप्त हो गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स
1.177. सूचिदायक 775
2टीका अनुवाद: यू लू पे विन
2.177. सूचिदायक थेरा की जीवनी पर टीका।
कहावतों का अनुवाद: जे.एस. वाल्टर्स

---

77. सूचिदायक 775

तीस हजार युग पहले (पूर्व में) विश्व-नेता, बत्तीस महान चिह्नों को धारण करने वाले संबुद्ध, 776 (बुद्ध) का नाम सुमेधा था। (1) (1452)
मैंने स्वर्ण रंग वाले, द्विपाद भगवान, तटस्थ बुद्ध को पाँच सुइयाँ दीं, ताकि (बुद्ध) अपने वस्त्र सिल सकें। (2) (1453)
उस सुई के उपहार के कारण ही, मेरे भीतर चतुर अर्थों और अंतर्दृष्टियों से भरपूर ज्ञान उत्पन्न हुआ, जो तीक्ष्ण, त्वरित और सहज था। (3) (1454)
मैंने अपने सारे दोष जला दिए हैं; समस्त अस्तित्व अब नष्ट हो चुका है। मैं परम बुद्ध की शिक्षाओं में अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ। (4) (1456)777

उस समय दिपादाधिपति नाम के चार राजा थे, जो चक्र-चालक थे, महान शक्ति रखते थे और सात रत्नों के स्वामी थे। (5) (1455)
चारों विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति, छह विशेष ज्ञान जिनमें मैंने महारत हासिल की है, (मैंने) वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) (1457)
इस प्रकार पूज्य सूचिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
सूचिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 775 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है। 776 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें DPPN II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
777 कुम्मासा, संस्कृत: कुलमाष, जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक, "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु, "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है। 778 रत्तंबरधारो, शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला", बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

टीका अनुवाद: यू लू पे विन
77. सूचिदायक थेरा की जीवनी पर टीका।
तिमसकप्पसहस्सम्ही से शुरू होने वाले श्लोक पूज्य थेरा सूचिदायक की जीवनी का वर्णन करते हैं। पूर्व बुद्धों, श्रेष्ठ विजेताओं की समर्पित सेवा करने और पुण्य कर्मों का संचय करने के कारण, जो इस और उस जन्म में बार-बार होने वाले पुनर्जन्मों (वत्त) से मुक्ति दिलाने में सहायक थे, उन्होंने भी तेजस्वी सुमेधा के समय एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया; समय के साथ बड़े होकर उन्होंने तेजस्वी सुमेधा को वस्त्र सिलने के कार्य के लिए पाँच सुइयाँ भेंट कीं। उस पुण्य कर्म के फल के कारण, उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच पुण्य का फल भोगा, बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में विचरण किया, जिस भी जन्म में वे प्रकट हुए, तीक्ष्ण ज्ञान से संपन्न होकर प्रसिद्ध हुए, एक पारिवारिक घर में पुनर्जन्म लिया, जब यह बुद्ध प्रकट हुए, उचित समय पर बड़े हुए, गुरु में प्रसन्नतापूर्ण आस्था रखी, भिक्षु बने और अपने तीक्ष्ण ज्ञान के कारण अत्यंत सूक्ष्म ज्ञान के साथ भी अर्हतत्व प्राप्त किया।
30. इसके बाद, अपने पुण्य कर्म पर गहन चिंतन करते हुए, वह उसे देखने आया, प्रसन्न हुआ और अपने पूर्व कर्म को प्रकट करने के लिए तिमसकप्पसहस्समिहि से शुरू होने वाला एक श्लोक बोला। यद्यपि यहाँ बीच के सभी शब्द आसानी से समझ में आ जाते हैं।
31. पंचसुचिमय दिन्ना (मैंने पाँच सुइयाँ अर्पित की हैं); यहाँ, यह भेदती है (सुचति), एक छोटा छेद बनाती है, प्रवेश करती है; इस प्रकार, सुचि (सुई); मैंने पाँच सुइयाँ अर्पित की हैं; यही अर्थ है। शेष तो आसानी से समझ में आ जाएगा।
जीवनी पर टिप्पणी
थेरा सूचिदायक का
समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.3 थेरपदाना

<<<< पिछला । अगला >>>>

स्रोत: जेएस वाल्टर्स
नोट: जैसा है वैसा ही प्रस्तुत किया गया है

विषय-सूची

1अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 78-200
1.178. पाटलिपुप्पिया779
1.279. थितांजलिया782
1.380. तिनिपादुमिया787
1.481. तिमिरापुप्पिया798
1.582. गतासञ्ञक
1.683. निपन्नञ्जिका802
1.784. अधोपुप्पिया806
1.885. रंसिसाञ्चिका809
1.986. रंसिसञ्ञक (2)
1.1087. फलदायक 811
1.1188. सद्दसञ्ञक 812
1.1289. बोधिसञ्ञक 813
1.1390. पद्मपुप्पिया815
1.1491. सुधापिंडिया818
1.1592. सुसिंटिटा821
1.1693. अड्डचेलाका823
1.1794. सुचिदायक 826
1.1895. गंधमालिया 829
1.1996. टिपूपफिया 832
1.2097. मधुपिंडिका 837
1.2198. सेनासनदायक 845
1.2299. वेय्यावक्काक 848
1.23100. बुद्धूपट्टक
1.24101. भिक्खदायि 855
1.25102. Ñāṇasaññaka858
1.26103. Uppalahatthiya860
1.27104. पदपूजक863
1.28105. मुट्ठिपुप्पिया867
1.29106. उदकपूजक 870
1.30107. नलमालिया 875
1.31108. आसनूपट्टायक 879
1.32109. बिलादायक 881
1.33110. रेणुपूजक 890
1.34111. महापरिवार 895
1.35112. सुमंगल
1.36113. सरणागमनिया 904
1.37114. एकासनीय 911
1.38115. सुवण्णपुप्पिया 917
1.39116. चितकपूजक 923
1.40117. बुद्धसंञ्ञक 926
1.41118. मगसञ्ञक 928

1.42119. पक्कुपट्टानसञ्ञक 931
1.43120. जातिपूजा 938
1.44121. सेरेय्याका 942
1.45122. पुप्पथुपिया948
1.46123. पायासादायका960
1.47124. गंधोदकिया966
1.48125. सम्मुखाथविका971
1.49126. कुसुमासानिया 985
1.50127. फलदायका 992
1.51128. Ñāṇasaññaka994
1.52129. Gandhapupphiya999
1.53130. पद्मपूजक 1002
1.54131. शोभिता
1.55132. सुदस्सन 1007
1.56133. चंदनपूजक 1012
1.57134. पुप्पचदानीय 1017
1.58135. रहोसञ्ञक 1025
1.59136. कैम्पकपुप्पिया 1031
1.60137. अत्थासंदसक 1036
1.61138. एकपासादनिया 1043
1.62139. सालपुप्पदायक 1047
1.63140. पियालाफलदायक 1053
1.64141. अधिच्छत्तिया 1056
1.65142. थंबरोपक 1059
1.66143. वेदिकारक 1061
1.67144. सपरीवारिया 1063
1.68145. उम्मापुप्पिया 1069
1.69146. अनुलेपादायक 1074
1.70147. म
1.71दायक 1081
1.72148. फलकदायक 1085
1.73149. वटंसकिया 1088
1.74150. पल्लंकडायक 1090
1.75151. बंधुजीव 1093
1.76152. ताम्बापुप्पिया 1097
1.77153. विथिसमज्जक 1104
1.78154. कक्कारूपुजक 1108
1.79155. मंदारवपूजक 1111
1.80156. कदंबपुप्पिया 1114
1.81157. तिणासुलका 1119
1.82158. नागपुप्पिया 1123
1.83159. पुन्नागपुप्पिया 1129

1.84160. कुमुददायक 1133
1.85161. सुपारिकारिया 1137
1.86162. काणवेरापुप्पिया 1140
1.87163. खज्जकदायक 1146
1.88164. देसपूजक 1149
1.89165. कणिकारच्छदनिया 1151
1.90166. सप्पिदायक 1153
1.91167. युथिकपुप्पिया 1156
1.92168. दु
1.93दायक 1158
1.94169. समादपका 1161
1.95170. पंचांगुलिया 1169
1.96171. कुमुदमालिया 1175
1.97172. निस्सेणिदायक 1184
1.98173. रत्तीपुप्पिया 1186
1.99174. उदपानदायक 1189
1.100175. सिहासनदायक 1190
1.101176. मगदत्तिका 1193
1.102177. एकादशी 1197
1.103180. संघुपट्टक 1207
1.104181. कुटजपुप्पिया 1210
1.105182. बंधुजीवका 1213
1.106183. कोटुंबरिया 1217
1.107184. पंचहत्थिया 1226
1.108185. इसिमु
1.109दायक 1236
1.110186. बोधिउपाट्ठायक 1241
1.111187. एकचिन्तित 1245
1.112188. टिकाण्णिपुप्पिया 1259
1.113189. एकाचारिया 1262
1.114190. तिवन्तिपुप्पिया 1268
1.115191. तमालपुप्पिया 1275
1.116192. तिणासंथारदायक 1278
1.117193. खंडफुल्लिया 1282
1.118194. अशोकपूजक 1287
1.119195. अंकोलाक 1293
1.120196. किसलयपूजक 1297
1.121197. तिन्दुकदायक 1304
1.122198. मुट्ठीपूजक 1312
1.123200. युथिकापुप्पिया 1322

78. पाटलिपुप्पिया779

उस समय मैं एक धनी व्यक्ति का पुत्र था, नाज़ुक, आराम से रहता था। अपनी गोद में एक तुरही का फूल 780 रखकर मैं उसे उसके पास ले गया,
स्वर्ण रंग वाले, संबुद्ध, बाज़ार से गुज़रते हुए, एक महान व्यक्ति के चिह्न धारण किए हुए,781
सोने से बनी माला की तरह। (1-2) [1458-1459]

प्रसन्न होकर, [और] प्रसन्न हृदय से, मैंने फूल से विश्व-ज्ञाता, भगवान तिस्सा की पूजा की,
मनुष्यों के ईश्वर की पूजा करने के बाद। (3) [1460]

तब से बानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (4) [1461]

तिरसठ युग पहले
अभिसममाता नाम से जाने जाने वाले [राजा]
महान शक्ति वाले एक चक्र-चालक थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (5) [1462]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1463]

इस प्रकार पूज्य पाटलिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

पाटलिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 779 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है
780 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
781 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

79. थितांजलिया782

अतीत में, एक वन उपवन में,
मैं एक ऐसा व्यक्ति था जो हिरण का शिकार करता था
वहाँ मैंने संबुद्ध तिस्सा को देखा
एक महान व्यक्ति के लक्षण धारण किए हुए।783 (1) [1464]

उनके लिए हाथ जोड़ते हुए,784
उस मोहल्ले में बैठे हुए
वहाँ रखी हुई पत्तों की चटाई पर,
फिर मैं पूर्व की ओर मुख करके चल पड़ा। (2) [1465]

तभी एक गिरी हुई बिजली मेरे सिर के ऊपर आकर गिरी। फिर से, जब मैं वहाँ मर रहा था, 785
मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाया। (3) [1466]

तब से बानवे युगों में
मैंने [तब] अपने हाथों को एक साथ दबाया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह मेरे हाथों को दबाने का फल है। (4) [1467]

चौवन युग [पहले]
मिगाकेतु 786 नामक [सम्राट]
वह एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (5) [1468]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1469]

इस प्रकार पूज्य थितांजलिय थेरा ने ये श्लोक कहे।

थितांजलिय थेरा की कथा समाप्त होती है

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 782 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
783 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
784 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
785 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
786 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

80. तिनिपादुमिया787

विजेता पदुमुत्तरा,
वह जिसने सब कुछ पार कर लिया, वह शांत, शांत दल के साथ, विजेता, शहर से चला गया। (1) [1470]

मैं उस समय हंसवती शहर में माला बनाने का काम करता था।
मैंने तीन फूल उठाए
जो वहाँ के सबसे प्रमुख फूल थे। (2) [1471]

मैंने बाज़ार के अंदर सड़क पर बुद्ध, निर्मल, को देखा, [और] संबुद्ध को देखकर
मैंने उस समय इस प्रकार सोचा: (3) [1472]

"ये फूल मेरे किस काम के हैं?
[भले ही] किसी राजा को उपहार में दिया जाए?
मुझे एक गाँव मिल सकता है या
[शायद] एक हज़ार गाँव के खेत। (4) [1473]

जगत के स्वामी की पूजा करना
अनियंत्रित-संरक्षक,788 बुद्धिमान, जो सभी प्राणियों को आनंद प्रदान करता है,789
मुझे असीम धन प्राप्त होगा।" (5) [1474]

इस तरह विचार करने के बाद
मैंने अपने दिल को खुशी दी। तीन लाल रंग के लोगों को उठाते हुए
मैंने [उन फूलों को] हवा में उछाला। (6) [1475]

जिस ऊंचाई तक मैंने उन्हें फेंका था, वे आकाश में अच्छी तरह से फैल गए थे और बुद्ध के सिर के ऊपर लटके हुए थे।
ऊपर की ओर इशारा करते हुए डंठल, [और] नीचे की ओर फूल। (7) [1476]

लोगों ने [उन्हें वहाँ] जो कुछ भी देखा, [फिर] उन्हें [हवा में] उछाला रखा

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 787 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

788 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

789 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

[और] आकाश में छोटे देवता,
"उत्कृष्ट!" की अपनी चीखें छोड़ दीं (8) [1477]

"सर्वोत्तम बुद्ध के कारण संसार में एक अद्भुत घटना घटित हुई है; हम सब अब उनकी शिक्षा सुनेंगे।"
[इन लाल] फूलों के कारण।" (9) [1478]

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता,
शिक्षक, सड़क पर खड़े होकर,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कहीं: (10) [1479]

मैं उनके बारे में विस्तार से बताऊंगा जिन्होंने लाल कमलों से
अभी-अभी यह बुद्ध- पूजा की ;790
आप सब मेरी बात सुनो: (11) [1480]

वह देवताओं के संसार में आनंदित होगा। तीस हज़ार युगों तक। तीस युगों तक देवताओं का राजा
वह दैवीय शासन करेगा। (12) [1481]

उसके पास हमेशा एक महल होगा जिसे महावित्तारिकम कहा जाता है,791
तीन सौ लीग ऊँचाई में उठाया गया;
एक सौ पचास [लीग] चौड़ा। (13) [1482]

और इसमें अच्छी तरह से बने दरवाजे होंगे
[पूरी तरह से] चालीस लाख [संख्या में]। इसमें [कई] गैबल वाली कोठरियाँ होंगी
[जिसमें] बड़े [और] उत्तम बिस्तर हैं। (14) [1483]

एक खरब स्वर्गीय अप्सराएँ
नृत्य और गायन में भी कुशल [और] संगीत कलाओं में अच्छी तरह से प्रशिक्षित
[हमेशा] उसे वहाँ घेर लेंगे। (15) [1484]

महिलाओं की टोलियों से भरे इस तरह के महल में फूलों की बारिश होगी
हमेशा, दिव्य लाल रंग के। (16) [1485] पहियों के आकार के लाल फूल792

---

790 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
791 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
792 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

वे हर समय वहीं लटके रहते हैं
दीवार की कीलों पर [और] कपड़ों के हुक पर भी,
दरवाज़े के बोल्ट पर 793 साथ ही मेहराबों पर भी। (17) [1486]

हवेली के अंदर फैलते हुए और फिर पंखुड़ियों से बने फूलों के कंबल में लिपटते हुए794
वे यहाँ हर समय आराम से सोएंगे795। (18) [1487]

वे शुद्ध [फूल], लाल रंग के,
अपनी दिव्य सुगंध से हर तरफ सौ मील तक महकेंगे
उस [स्वर्गीय] निवास का। (19) [1488]

वह पाँच सौ बार होगा
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, [और उसके पास] गिनती से अनगिनत स्थानीय शासन होगा। (20) [1489]

दोहरे आनंद का अनुभव करने के बाद, अवैधता से अप्रभावित,
उस आनंद के समापन पर
निर्वाण उसे दिखाई देगा" (21) [1490]

बुद्ध को देखना मेरे लिए अच्छा था;
मेरा व्यवसाय797 अच्छे से उपयोग में आया। तीन फूलों से पूजा करना
तब मुझे तीन प्रकार का आनंद प्राप्त हुआ। (22) [1491]

आज मैंने शिक्षा प्राप्त कर ली है और मैं अब पूरी तरह से मुक्त हूँ; खिले हुए लाल फूल ले जाए जा रहे हैं
मेरे [अपने] सिर के ऊपर। (23) [1492]

जब शिक्षक पद्ममुत्तरा
मेरे कर्म के बारे में बात कर रहे थे [तब,] धम्म-प्रवेश हुआ
सात हजार जीवों के लिए। (24) [1493]

उस बुद्ध- पूजा के बाद से एक लाख युगों में ,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह तीन कमलों का फल है। (25) [1494]

---

793 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
794 शाब्दिक रूप से, "गया"
795 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
796 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
797 शाब्दिक अर्थ, "गुणी"

मैंने अपने दोषों को जला दिया है;
समस्त अस्तित्व नष्ट हो गया है।

सभी दोष समाप्त हो गए हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (26) [1495]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [1496]

इस प्रकार पूज्य तिणिपदुमिया थेरा ने ये श्लोक कहे

तिणिपदुमिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

समाला और पदसञ्ञी सुसञ्ञा, आलुवदायक, एकसञ्ञी, तिणिदद, सूची, पाटलिपुप्पिया, ठितंजली, तिपदुमी: पचहत्तर श्लोक

नागसमाला अध्याय, आठवाँ।

तिमिरपुप्पिया अध्याय, सातवाँ

---

81. तिमिरापुप्पिया798

चंदभागा नदी के किनारे
मैं धारा के साथ-साथ जा रहा था
[तभी] मैंने भिक्षु को वहाँ बैठे देखा,
वह प्रतिभाशाली, वह अविचलित। (1) [1497]

उसके बारे में मेरे दिल को प्रसन्न करके
मैंने उस समय इस तरह सोचा:
"यह पार किया हुआ व्यक्ति [दूसरों] को पार करवाएगा;
यह वश में किया हुआ व्यक्ति [दूसरों को भी] वश में करेगा। (2) [1498]

सांत्वना पाने वाला व्यक्ति दिलासा देगा;
शांत व्यक्ति [दूसरों] को शांत करेगा;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 798 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

मुक्त व्यक्ति [दूसरों को] मुक्त करेगा;
बुझा हुआ व्यक्ति [दूसरों को भी] बुझाएगा। (3) [1499]

इस तरह विचार करने के बाद मैंने एक गहरे रंग का फूल उठाया और उसे सिर पर रख दिया।
सिद्धार्थ ऋषि के। (4) [1500]

अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाकर [उनकी] परिक्रमा करते हुए, गुरु के चरणों की पूजा की
मैं [वहाँ से] पश्चिम की ओर चला गया। (5) [1501]

मेरी यात्रा के कुछ ही समय बाद
एक शेर [तब] मेरा पीछा कर रहा था। एक खाई के किनारे चलते हुए,
वहीं मैं गिर गया [और मेरी मृत्यु हो गई]। (6) [1502]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (7) [1503]

इसके बाद छप्पनवें युग में
सात [पुरुष] थे, जो बहुत प्रसिद्ध, महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा थे, जो सात रत्नों के स्वामी थे। (8) [1504]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1505]

इस प्रकार पूज्य तिमिरपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

तिमिरपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

82. गतासञ्ञक

मैं केवल सात वर्ष की आयु में बेघर हो गया था

---

799 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
800 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को “भरने” के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

एक अत्यंत स्पष्ट मन से
मैंने [तब] गुरु के चरणों की पूजा की। (1) [1506]

[फिर] मैंने सात नागलिकी फूल हवा में उछाले
तिस्सा बुद्ध के लिए,
गुणों के असीम सागर। (2) [1507]

प्रसन्न मन से, मैंने पूजा की
जिस रास्ते पर वेल-गॉन-वन चला था, तब मैंने अपने हाथों को एक साथ दबाया
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस करते हुए। (3) [1508]

तब से बानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1509]

उसके बाद आठवें युग में
तीन थे [जिनका नाम] अग्गिसीखा था। 801
[वे] महान शक्ति वाले चक्र-चालक थे, सात रत्नों के स्वामी थे। (5) [1510]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1511]

इस प्रकार पूज्य गतसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे।

गतसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

83. निपन्नञ्जलिका802

एक पेड़ की तलहटी में बैठा
मैं बहुत बीमार हो गया। वन में मैंने प्राप्त किया
एक अत्यंत दयनीय अवस्था। (1) [1512]

मुझ पर दया करके,

शिक्षक, तिस्सा, मेरे पास आए। जब मैं वहाँ मर रहा था, तब
मैंने अपने दोनों हाथ अपने सिर पर रख लिए। (2) [1513]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 801 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 802 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से, प्राणियों में परम, संबुद्ध की पूजा करने के बाद,
मैं वहीं पर मर गया। (3) [1514]

तब से बानवे युगों में
मैंने सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, [उनकी] पूजा की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह पूजा का फल है। (4) [1515]

उसके बाद पाँचवें युग में
पाँच महाशिखा थे, 805 चक्र घुमाने वाले राजा, जो सात रत्नों के स्वामी और महान शक्ति वाले थे। (5) [1516]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1517]

इस प्रकार पूज्य निपन्नंजलिका थेरा ने ये श्लोक कहे

निपन्नांजलिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

84. अधोपुप्पिया806

सिख धर्म का प्रमुख अनुयायी
वह भिक्षु अभिभू के नाम से जाना जाता था,
विशाल शक्तियों वाला, एक त्रिगुण ज्ञाता, वह हिमालय गया। (1) [1518]

उस समय मैं भी हिमालय में एक ऋषि के रूप में रह रहा था,
असीम जादुई शक्ति के स्वामी,
एक रमणीय आश्रम में [वहाँ]। (2) [1519]

---

803 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

804 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

805 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 806 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

आकाश में पक्षी की तरह उड़ते हुए,
मुझे पहाड़ की ओर खिंचाव महसूस हुआ। नीचे कुछ फूल तोड़ते हुए
मैं [तब] पहाड़ पर आया। (3) [1520]

सात फूल लेकर मैंने उन्हें [अभिभू के] सिर के ऊपर रखा
जब नायक [तब] आगे की ओर देखता है 807
मैं पूर्व की ओर मुख करके चला गया। (4) [1521]

अपने आश्रम पहुँचकर
मैं वहाँ अपने निवास स्थान पर गया। तपस्वियों का भोजन लेकर
मैं उस पहाड़ की ओर लौट आया।808 (5) [1522]

एक भयानक रूप वाला अजगर,
[और] बहुत ताकतवर, ने मुझ पर हमला किया [तब]। अपने पिछले कर्म को याद करते हुए
मैं मौके पर ही मर गया। (6) [1523]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने [उसे] वे फूल अर्पित किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (7) [1524]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [1525]

इस प्रकार पूज्य अधोपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

अधोपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

85. रंसिसाञ्चिका809

हिमालय पर्वत पर
मैं पहले निवास कर रहा था।

---

807 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

808 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 809 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

हिरण के चमड़े के बाहरी वस्त्र पहने हुए 810
मैं उस पर्वत पर निवास करता था [तब]। (1) [1526]

मैंने स्वर्ण संबुद्ध को देखा जो जंगल में चला गया था
वह सौ किरणों वाले सूर्य के समान था, खिले हुए राजसी साल के वृक्ष के समान। (2) [1527]

महान ऋषि विपस्सी की किरणों में [मेरा] हृदय प्रसन्न हो गया,
हाथों को जोड़कर, उकड़ू बैठकर,
मैंने सिर झुकाकर उनकी पूजा की। (3) [1528]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह किरणों को समझने का फल है। (4) [1529]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1530]

इस प्रकार पूज्य रंसिसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे

रंसिसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

86. रंसिसञ्ञक (2)

हिमालय पर्वत पर
मैं छाल के वस्त्र पहने [तपस्वी] था। मार्ग पर चढ़कर
मैं पूर्व की ओर मुख करके बैठा था। (1) [1531]

फिर अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति, फुस्सा, परिवर्तित अवस्थाओं के प्रेमी को देखकर,
पर्वत पर, मैंने अपने हाथ दबाए
[और] बुद्ध की किरणों में [अपने] हृदय को प्रसन्न किया। (2) [1532]

तब से बानवे युगों में
मुझे वह बोध [वहाँ] प्राप्त हुआ, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह किरणों को समझने का फल है। (3) [1533]

---

810 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [1534]

इस प्रकार पूज्य रंसिसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे

रंसिसञ्जक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

87. फलदायक 811

हिमालय पर्वत पर,
खुरदरे हिरण के चमड़े का चोला पहने, हाथ में फल लिए, मैंने फुस्सा को देखा,
सर्वश्रेष्ठ विक्टर, [और] उसे फल दिया। (1) [1535]

वह फल जो मैंने अत्यंत स्पष्ट मन से [उसे] दिया था, वह मेरे लिए फल बनकर उत्पन्न हुआ।
अस्तित्व में पुनर्जन्म। (2) [1536]

तब से बानवे युगों में
मैंने वह फल [उसे तब दिया था], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [1537]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [1538]

इस प्रकार पूज्य फलाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे

फलाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

88. सद्दसञ्ञक 812

हिमालय पर्वत पर,
पत्तों की चटाई पर रहते हुए, मैंने ध्वनि से अपने हृदय को प्रसन्न किया
फुस्सा द्वारा धम्म का प्रचार । (1) [1539]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 811 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 812 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

बानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही अच्छे कर्मों का फल है। (2) [1540]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [1541]

इस प्रकार पूज्य सद्दसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे।

सद्दसाञ्चक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

89. बोधिसञ्ञक 813

भगवान विपस्सी के लिए एक महान बोधि उत्सव था
मैंने उस उत्सव में भाग लिया,
एक ऐसा व्यक्ति होने के नाते जिसने त्याग कर दिया था। (1) [1542]

फूलों से भीगा हुआ पानी लेकर मैंने उसे बोधि वृक्ष पर डाला। "मुक्त होकर, वह हम सभी को मुक्त करेगा;
बाहर चला गया, वह हमें भी बाहर निकाल देगा।" (2) [1543]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने उस बोधि वृक्ष को सींचा था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
बोधि-बोध का फल। (3) [1544]

जब तैंतीस युग बीत चुके थे, तब आठ चक्र-घुमाने वाले राजा थे, जो मनुष्यों के स्वामी थे और [तब] उदकासेचन के नाम से जाने जाते थे।814 (4) [1545]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1546]

इस प्रकार पूज्य बोधिसांका थेरा ने ये श्लोक कहे

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 813 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
814 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

बोधिसाञ्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है

---

90. पद्मपुप्फिया815

मैं एक कमल के जंगल में रहता था
[उस समय] कमल के फूल खाता था। मैंने सम्बुद्ध फुस्सा को देखा,
बत्तीस महान चिह्न धारण करना.816 (1) [1547]

एक कमल का फूल उठाना
मैंने इसे हवा में उछाल दिया
यह सुखद कर्म करने के बाद
मैं बेघर हो गया। (2) [1548]

अपने शरीर और मन पर आत्म-संयम रखते हुए,
और बुरे वाणी-कृत्यों से परहेज करते हुए
मैंने अपनी आजीविका को शुद्ध किया। (3) [1549]

तब से बानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1550]

पृथ्वी के अठारह स्वामी थे
[सभी] पद्माभास के नाम से जाने जाते थे,817
और अठारहवें युग में [इसलिए]
ऐसे अड़तालीस [सम्राट] थे। (5) [1551]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1552]

इस प्रकार पूज्य पद्मपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

पद्मपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

सारांश:

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 815 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है
816 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
817 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

तिमिरा, नंगलीपुप्फी, निपन्नांजलिका, अधा,
दो रंसिसञ्ञी, फलदा, सद्दसञ्ञी और सेवक, पद्मपुप्फी और श्लोक
छप्पन का विवरण [यहाँ] दिया गया है।

तिमिरपुप्पिया अध्याय, नौवाँ।

सुधा अध्याय, दसवाँ

---

91. सुधापिंडिया818

कोई भी अच्छे कर्मों की गणना नहीं कर सकता —
यहाँ तक कि, "इसके लिए इतना है" — जो पूजा के योग्य लोगों के लिए पूजा करता है
जैसे बुद्ध और उनके अनुयायी, जिन्होंने शोक के आँसुओं को पार कर लिया है और पुनर्जन्म के बंधनों से परे चले गए हैं,819
निर्वाण प्राप्त करना, किसी चीज से भयभीत न होना। (1-2) [1553-1554]

जो यहाँ चारों महाद्वीपों पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता है
एक सोलहवें भाग
जो ऐसी पूजा करता है । (3) [1555]

जब सिद्धार्थ सर्वोच्च व्यक्ति का मंदिर टूट गया था,
मैंने प्लास्टर के गोले दान किए
एक ऐसे मन के साथ जो बहुत स्पष्ट था। (4) [1556]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही नवीनीकरण का फल है। (5) [1557]

तीसवें युग पूर्व
तेरह चक्र-घुमाने वाले राजा थे,

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 818 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
819 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

[सभी] पटिसंखार के नाम से जाने जाते हैं, 820
सात रत्नों के धारक। (6) [1558]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1559]

इस प्रकार पूज्य सुधापिंडिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

सुधापिंडिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

92. सुसिंटिटा821

प्रसन्न होकर, और प्रसन्न हृदय से, मैंने जगत के स्वामी तिस्सा को एक नई शुभ कुर्सी822 भेंट की।
बुद्ध, सूर्य के रिश्तेदार। (1) [1560]

अड़तीस युग पहले
मैं राजा था, महारुचि
मेरे लिए बहुत धन-दौलत थी
और बैठने के लिए बहुत से पलंग थे। (2) [1561]

बुद्ध को एक बहुत ही स्पष्ट मन से कुर्सी देकर, मैंने अपने कर्मों का अनुभव किया
पहले मैंने अच्छा किया था। (3) [1562]

तब से बानवे युगों में
मैंने [उसे] वह कुर्सी तब भेंट की थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह कुर्सी उपहार का फल है। (4) [1563]

अड़तीस युग पहले
तीन पहिया घुमाने वाले सम्राट थे: रुसी और उपरुसी भी,
[और] महारुचि तीसरे थे। (5) [1564]

---

820 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 821 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
822 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1565]

इस प्रकार पूज्य सुचिंतिता थेरा ने ये श्लोक कहे

सुसिंतिता थेरा की कथा समाप्त हो गई है

---

93. अड्ढचेलाका823

मैंने कपड़े का आधा टुकड़ा दिया
तब भगवान तिस्सा को। मैं बहुत दुखी था,
[और] एक भयानक गंध से ग्रस्त। (1) [1566]

उस आधे कपड़े को देते हुए मैं एक [पूरे] युग के लिए स्वर्ग में रोमांचित हुआ। शेष युगों के दौरान
मैंने वह अच्छा कर्म पूरा किया।824 (2) [1567]

तब से बानवे युगों में
मैंने उस समय वह कपड़ा दान किया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह वस्त्र देने का फल है। (3) [1568]

उनतालीसवें युग में [इसलिए] बत्तीस मनुष्य स्वामी थे, राजा जिन्होंने समंत-ओदना के नाम से जाने जाने वाले [कानून के] पहिये को घुमाया।825 (4) [1569]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1570]

इस प्रकार पूज्य अद्धचेलक थेरा ने ये श्लोक कहे

अद्धचेलक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 823 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
824 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
825 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

---

94. सुचिदायक 826

मैं पहले बंधुमा नामक सुंदर शहर में एक लोहार था।
मैंने एक सुई का उपहार दिया
विपस्सी को, महान ऋषि। (1) [1571]

ऐसे कर्मों के कारण [मेरा] ज्ञान [अब] एक शीर्ष हीरे के समान है
मुझे कोई वासना नहीं है, मैं पूरी तरह से स्वतंत्र हूँ;
मैंने अरहंतत्व प्राप्त कर लिया है।827 (2) [1572]

ज्ञान से मैं सभी पूर्व जन्मों के बारे में सब कुछ सीखता हूँ
और वर्तमान और भविष्य के:
यह सुई-उपहारों का फल है। (3) [1573]

इक्यावनवें युग में सात वजिरसमा रहते थे, 828
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले राजा। (4) [1574]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1575]

इस प्रकार पूज्य सुचिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

सुचिदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

95. गंधमालिया 829

मैंने उनके लिए एक सुगंधित स्तूप बनाया
[उनके लिए], सिद्धार्थ, भगवान बुद्ध, विश्व के शीर्ष प्रमुख, अग्नि-वेदी की तरह प्रज्वलित,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 826 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

827 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

828 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन

(पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 829 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

नीले जल लिली की तरह चमकीला, बाघ बैल की तरह शानदार,
सिंह के समान श्रेष्ठ कुल का,
बैठा हुआ, सभी भिक्षुओं में शीर्ष, भिक्षु सभा द्वारा सम्मानित, और इसे बुद्ध के लिए उपयुक्त चमेली के फूलों से ढका हुआ
[फिर] गुरु के चरणों की पूजा करते हुए
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (1-3) [1576-78]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने [तब] वह सुगंधित माला दी, जो बुद्ध के लिए उचित कार्य करने के फल से प्रतिष्ठित थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1579]830

उनतीसवें युग में [इसलिए]
सोलह [अलग-अलग] लोग थे; [सभी] देवगंधा831 के नाम से जाने जाते थे
[और] वे सभी पहिए घुमाने वाले राजा थे। (5) [1580]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1581]

इस प्रकार पूज्य गंधमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

गंधमालिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

96. टिपूपफिया832

अतीत में, एक वन उपवन में,
मैं एक ऐसा व्यक्ति था जो हिरण का शिकार करता था। [बुद्ध की] हरी पाटली 833 को देखकर

---

830 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
831 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , “जौ से बना भोजन;” BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , “नरम उबला हुआ भिक्षा”), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (PSI:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को “भरने” के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 832 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
833 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

मैंने उस पर तीन फूल बिखेरे। (1) [1582]

फिर मैंने गिरे हुए 834 पत्तों को उठाकर बाहर फेंक दिया। पाटली वृक्ष की पूजा करते हुए,
अंदर से शुद्ध और बाहर से भी शुद्ध, मानो संसार के नेता, विपस्सी, संबुद्ध का सामना कर रहे हों,
पूरी तरह से मुक्त, बेदाग,
मैं वहीं पर मर गया।835 (2-3) [1583-1584]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह बोधि-पूजा की ।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बोधि- पूजा का फल है । (4) [1585]

इसके तीसवें युग में
तेरह राजा थे जो [सभी]
समंतपासादिका, 836 नाम के थे
महान शक्ति के साथ पहिया घुमाने वाले सम्राट। (5) [1586]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1587]

इस प्रकार पूज्य तिपुफीय थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिपुफीय थेरा की कथा समाप्त होती है

---

97. मधुपिंडिका837

एक शांत और परेशानी मुक्त
वन उपवन में, मैंने [एक बार] देखा
सिद्धार्थ ऋषि, सर्वोच्च,838

बलिदान प्राप्तकर्ता, (1) [1588]

---

834 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या भोज के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
835 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
836 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 837 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
838 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

हे महान हाथी, मनुष्यों का बैल,839 एक शुद्ध नस्ल के समान, भोर के तारे की तरह चमकते हुए,840 देवताओं की सभा द्वारा प्रशंसित, मुझमें बहुत841 खुशी उत्पन्न हुई;
तब ज्ञान अस्तित्व में आया। (2) [1589]842

ध्यान से उठे शिक्षक को शहद देते हुए,
[और] गुरु के चरणों की पूजा करके, मैं पूर्व की ओर मुख करके चला गया। (3) [1590]

[तब] चौंतीस युग [पहले] मैं राजा सुदस्सन था;843
जब भी मैं कमल की जड़ों को खाता था, उनसे मीठा शहद बहता था।
और शहद की बारिश हुई:
यह पूर्व कर्मों का फल है। (4) [1591]844

तब से चौरानवे युगों में
मैंने उसे तब वह शहद दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
शहद देने का यही फल है। (5) [1592]

[और] चौंतीस युग पहले
सुदस्सन नाम के चार राजा थे, जो महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले राजा थे। (6) [1593]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1594]

इस प्रकार पूज्य मधुपिंडिका थेरा ने ये श्लोक कहे

मधुपिंडिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

839 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है

840 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

841 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

842 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

843 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

844 लिट., “गया”

---

98. सेनासनदायक 845

मैंने भगवान सिद्धार्थ को पत्तों से बनी चटाई दी,
और [उस बुद्ध की] पूरी तरह से सेवा की,
[फिर] उनके लिए फूल बिखेरे। (1) [1595]

मैंने एक बहुत ही महंगी
सुखद गुफा और महलों का भी आनंद लिया;
फूल जो सबसे महंगे थे
उस समय मेरे बिस्तर पर गिर पड़ा। (2) [1596]

मैं अपने बिस्तर पर फूलों की एक सजी हुई चटाई पर आराम से लेट गया, और फूलों की बारिश हमेशा होती रही
[उस समय] मेरे बिस्तर पर बारिश हुई थी। (3) [1597]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने पत्तों से बनी वह चटाई दी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यही चटाई देने का फल है। (4) [1598]

सात चक्र-घुमाने वाले राजा थे
[सभी] नाम थितोसंथारक846
जो पाँचवें युग [पूर्व] में पैदा हुए थे, वे लोगों के स्वामी। (5) [1599]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1600]

इस प्रकार पूज्य सेनासनदायक847 थेरा ने ये श्लोक कहे।

सेनासनदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 845 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

846 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

847 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

99. वेय्यावक्काक 848

वहाँ एक बड़ा समूह849 विपस्सी की प्रतीक्षा कर रहा था, फिर भगवान बुद्ध की।
हर तरह के कर्तव्यों में व्यस्त,
मैं तब एक [विनम्र] सेवक था। (1) [1601]

मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं था
उस सुदाग़ महान ऋषि को, [इसलिए] मैंने गुरु के चरणों की पूजा की
एक ऐसे मन के साथ जो बहुत स्पष्ट था। (2) [1602]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उस समय] वह सेवा की थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही सेवा करने का फल है। (3) [1603]

फिर, आठ युग पहले, मैं राजा था, सुसिंटिटा,850
एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला, सात रत्नों का स्वामी। (4) [1604]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1605]

इस प्रकार पूज्य वेय्यावच्चक थेरा ने ये श्लोक कहे।

वेय्यावच्चक थेरा की कथा समाप्त होती है

100. बुद्धूपट्टक

[उस समय] मैं विपस्सी, भगवान के लिए शंख बजाने वाला था, निरंतर सेवा में लगा हुआ था
सुदाग़, महान ऋषि की सेवा में। (1) [1606]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 848 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

849 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

850 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस सेवा का फल देखो
तटस्थ, विश्व-प्रमुख को:
साठ हज़ार तुरिया ढोल
निरंतर मेरी सेवा कर रहे हैं। (2) [1607]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने उस प्रकार महान ऋषि की सेवा की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यही सेवा करने का फल है। (3) [1608]

चौबीसवें युग में 851
तब सोलह [विभिन्न] राजा थे; [सभी] का नाम महानिघोष था,852
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट। (4) [1609]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1610]

इस प्रकार पूज्य बुद्धूपट्टक थेरा ने ये श्लोक कहे।

बुद्धूपट्टक थेरा की कथा समाप्त होती है
सारांश: सुधापिंड और चेल भी,
कम्मार, गंधमालिया, तिपुप्पिया, मधु, सेना, वेय्यावच्च और धम्मक: इस अध्याय में ठीक साठ श्लोक बताए गए हैं

सुधा 853 अध्याय, दसवाँ।

फिर अध्यायों का सारांश है: बुद्ध अध्याय पहला है,
सिहासनी, सुभूति,
कुण्ड-धान और उपाली, विजानी और सकाचित्तनी,

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 851 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है

852 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

853 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

नागसमाला, तिमिरा,
सुधा अध्याय के साथ वे दस हैं।
चौदह सौ श्लोक और पचपन अन्य हैं

बुद्ध कहलाने वाले दस अध्याय।

पहला सौ 854 पूरा हो गया है।

भिक्खदाई अध्याय, ग्यारहवाँ

---

101. भिक्खदायि 855

[मैंने] स्वर्ण संबुद्ध, यज्ञ प्राप्तकर्ता को देखा,
[जो,] उत्तम वन से निकलकर निर्वाण में आ गया है। (1) [1611]

मैंने भीख में मिले भोजन का एक चम्मच सिद्धार्थ को दिया, जो महान ऋषि, महान नायक और तटस्थ थे।
वह बुद्धिमान, [जो] शांत था। (2) [1612]

जब उन्होंने कई लोगों को निर्वाण प्राप्त कराया, क्योंकि वे उनका अनुसरण करते थे,
मुझमें एक उदात्त आनंद उत्पन्न हुआ
बुद्ध के बारे में, सूर्य के सगे-संबंधी। (3) [1613]856

तब से चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] तब वह भिक्षा-भोजन दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह भीख माँगे गए भिक्षा-भोजन का फल है। (4) [1614]

सत्तासीवें युग में
सात चक्र घुमाने वाले राजा थे; [उन सभी का] नाम महारेणु था,857

---

854 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 855 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
856 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
857 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

सात रत्नों के स्वामी। (5) [1615]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1616]

इस प्रकार पूज्य भिक्खदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

भिक्खदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

102. Ñāṇasaññaka858

[मैंने देखा] स्वर्ण संबुद्ध, मनुष्यों का बैल, एक शुद्ध नस्ल के समान, महान ऋषि, एक हाथी के समान,
एक मातंग 859 त्रिविध मद्यपथ में, (1) [1617]

सभी दिशाओं में चमकता हुआ
पूर्णिमा के चंद्रमा की तरह, दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, परम पुरुष,
जो [तब] सड़क पर निकल गया था। (2) [1618]

उसके ज्ञान में [मेरे] दिल को प्रसन्न करते हुए मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाया। खुश, [और] प्रसन्न हृदय से,
मैंने सिद्धार्थ का आदर किया। (3) [1619]

तब से चौरानवे युगों में

मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
ज्ञान को समझने का फल। (4) [1620]

सत्तर युगों बाद सोलह परम पुरुष थे, जो महान शक्ति से संपन्न, चक्र घुमाने वाले राजा थे।
सात रत्नों के स्वामी। (5) [1621]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1622]

संभवतः और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 858 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
859 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इस प्रकार पूज्य ञाणसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे।

ञाणसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

103. Uppalahatthiya860

मैं तिवारा में रह रहा था,
उस समय मैं माला बनाने वाला था।
मैंने बुद्ध, निर्मल, को देखा,
सिद्धार्थ, विश्व द्वारा पूजित। (1) [1623]

प्रसन्न, मेरे हृदय में आनंद के साथ, मैंने मुट्ठी भर फूल दिए
मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लेता हूँ,
उस कर्म के अनुसार, (2) [1624]

मैं सुखद फल का आनंद लेता हूँ
मैंने उस समय खुद क्या अच्छा किया था। मैं सुंदर फूलों से घिरा हुआ हूँ:
फूल देने का यही फल है।861 (3) [1625]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,

मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
बुद्ध -पूजा का फल । (4) [1626]

चौरानवे युगों बाद से, और वर्तमान समय को छोड़कर,
पाँच सौ राजा थे; सभी नज्जुपमा के नाम से जाने जाते थे।862 (5) [1627]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1628]

इस प्रकार पूज्य उप्पलाहथिया थेरा ने ये श्लोक कहे

उप्पलाहथिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 860 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
861 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
862 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

104. पदपूजक863

मैंने सिद्धार्थ को एक चमेली का फूल दिया, [तब] भगवान को, [और] हँसते हुए मैंने [तब] उनके चरणों पर सात फूल बिखेरे। (1) [1629]

उस कर्म के कारण, आज मैं
देवताओं और मनुष्यों दोनों को पार कर चुका हूँ। मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ
बुद्ध के 865 युग में। (2) [1630]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (3) [1631]

तेरह चक्र-घुमाने वाले राजा थे; [सभी का] नाम समंतगंधा था, 866
पाँचवें युग पूर्व में चारों ओर समूहों पर आधिपत्य करने वाले। (4) [1632]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1633]

इस प्रकार पूज्य पादपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

पदपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 863 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
864 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
865 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
866 र'अट्टम्बरधारो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करने वाला।" धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

105. मुट्ठिपुप्पिया867

मैं तब माला बनाने वाला था
जिसे सुदासाना के नाम से जाना जाता था.868
मैंने बुद्ध, निर्मल, को देखा,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल। (1) [1634]

चमेली का फूल तोड़ते हुए,
प्रसन्न और मेरी आँखें एकदम साफ़ थीं
मैंने पद्ममुत्तरा की पूजा की,
दिव्य नेत्रों वाले जो आए थे। (2) [1635]

उस बुद्ध- पूजा के कारण
और मेरे हृदय में संकल्प के कारण, एक लाख युगों तक
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला। (3) [1636]

तब सोलह [विभिन्न] राजा थे, [सभी] देवोत्तरा के नाम से जाने जाते थे,869
छत्तीसवें युग में, महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट। (4) [1637]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1638]

इस प्रकार पूज्य मुट्ठिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

मुट्ठिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

106. उदकपूजक 870

[मैंने] स्वर्ण संबुद्ध को हवा के मार्ग पर जाते देखा,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 867 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
868 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
869 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 870 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

तेल की वेदी की तरह चमकता हुआ, 871
अग्नि-वेदी की तरह धधक रहा है। 872 (1) [1639]

मैंने अपने हाथ में थोड़ा पानी लेकर उसे आकाश में उछाल दिया
बुद्ध, करुणामय, ऋषि,
महान नायक, [तब] इसे स्वीकार किया। (2) [1640]

आकाश में खड़े होकर, शिक्षक, जिनका नाम पद्ममुत्तरा था, मेरे विचारों को समझते हुए,
उन्होंने [मेरे बारे में ठीक उसी समय] यह श्लोक कहा: (3) [1641]

"पानी के इस उपहार के कारण
और जो आनंद उसने तब उत्पन्न किया, वह एक लाख युगों तक बना रहा।
उसे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चलेगा।" (4) [1642]

बुद्ध के लिए उस कर्म के कारण, 873
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है
सभी विजय और पराजय से परे। (5) [1643]

पैंसठ सौवें युग में,
तीन चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे; [सभी] का नाम सहस्त्रराज874 था
चारों ओर से लोगों पर प्रभुत्व रखता है। (6) [1644]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1645]

इस प्रकार पूज्य उदकपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

उदकपूजक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

871 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

872 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

873 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

874 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

---

107. नलमालिया 875

सरकंडों की माला लेकर
और उसे बांधकर में [तब] उनके पास पहुँचा
पद्ममुत्तरा, बुद्ध,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ, शांत, तटस्थ, जो घास में बैठे थे, [तब], [और वहाँ] मैंने दो पैरों वाले भगवान को पंखा किया,
बुद्ध, [वह], तटस्थ।876 (1-2) [1646-1647]

सर्वज्ञ ने [इसे] प्राप्त किया,
[तब] विश्व नेता ने [खुद को] पंखा किया। यह समझते हुए कि मैं क्या सोच रहा था,
उन्होंने [मेरे बारे में] यह श्लोक कहा: (3) [1648]

“जिस प्रकार इसने मेरे शरीर को ठंडा किया, उसे नरक की झुलसन का अनुभव नहीं होगा; ठीक उसी प्रकार तुम्हारा हृदय भी इससे मुक्त हो जाएगा।”
अस्तित्व की त्रिविध अग्नि।” (4) [1649]

सभी देवता एक वृक्ष में एकत्रित हुए, जो भी [तब सोच रहे थे], “हम बुद्ध के वचन सुनेंगे
जिससे दानदाता हँसेगा।” (5) [1650]

[तब], वहाँ बैठे हुए, धन्य पुरुष, देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित, दानदाता को हँसाते हैं
ये छंद [मेरे बारे में भी] कहे: (6) [1651]

“पंखे चलाने के इस उपहार के कारण
और [अपने] हृदय में संकल्प, वह एक चक्र-घुमाने वाला राजा बन जाएगा
सुब्बत के नाम से जाना जाता है।877 (7) [1652]

उस कृत्य के शेष भाग के माध्यम से, अपनी नेक पृष्ठभूमि से प्रेरित होकर, वह एक प्रभावशाली राजा बन जाएगा।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 875 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
876 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
877 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मालुता के नाम से जाना जाता है।878 (8) [1653]

पंखा चलाने के इस उपहार और [उनके] प्रचुर सम्मान के कारण,
एक लाख युगों के लिए
उसे किसी बुरे पुनर्जन्म का पता नहीं चलेगा।” (9) [1654]

तीस हज़ारवें युग में
सुब्बत नाम के आठ राजा थे। उनतीस हज़ारवें युग में
मालुता नाम के आठ राजा थे। (10) [1655]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [1656]

इस प्रकार पूज्य नलमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

नलमालिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

108. आसनूपट्टायक 879

एक शांत और अबाधित वन उपवन में प्रवेश करते हुए, मैंने एक सिंह-सिंहासन भेंट किया
तटस्थ व्यक्ति, अत्थादस्सी को। (1) [1657]

मुट्ठी भर फूल लेकर और उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए, शिक्षक की श्रद्धापूर्वक सेवा करते हुए,
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (2) [1658]

उस दो पैरों वाले भगवान, जगत के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल के लिए किए गए उस कर्म के कारण, मैंने स्वयं ही निर्वाण प्राप्त कर लिया;
सभी [नया] अस्तित्व नष्ट हो जाता है। (3) [1659]

अठारह सौ युगों में
[जबसे] मैंने [उसे] वह उपहार दिया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह सिंह-सिंहासन का फल है। (4) [1660]

---

878 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 879 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

सात सौवें युग में
क्षत्रियन सन्निब्बापक 880
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (5) [1661]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1662]

इस प्रकार पूज्य आसनूपट्टायक थेरा ने ये श्लोक कहे

आसनुपट्टायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

109. बिलादायक 881

हिमालयी क्षेत्र में,
मैं पत्तों से बनी चटाई पर रहता था। भोजन के लिए कोई लालच महसूस न करते हुए,
मैं तब हमेशा खुश रहता था। (1) [1663]

कलम्बा की तरह जड़ें खोदते हुए , 882
biḷāli and takkaḷi 883 [too]
[मैंने उन्हें खाया] मिलाकर तैयार किया
बेर,884 मार्किंग-नट,885 और बेल.886 (2) [1664]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता
बलि प्राप्तकर्ता,
मेरे विचारों को समझते हुए,
ठीक उसी समय मेरी उपस्थिति में आया। (3) [1665]

कुछ बिलाली [जड़ों] को लेकर
वह महान हाथी जो आया था,

---

880 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 881 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

882 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

883 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

884 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

885 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

886 निज्झायामानो , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

देवताओं के ईश्वर, मनुष्यों के बैल,
मैंने [उन्हें] [उनके] भिक्षापात्र में [तब] रख दिया। (4) [1666]

फिर महान नायक ने [उन्हें] खा लिया
जिससे मुझे बहुत खुशी हुई। खाने के बाद, सर्वज्ञानी ने
उन्होंने उस समय मुझसे यह श्लोक कहा: (5) [1667]

“मुझे ये जड़ें 887 [खाने के लिए] देकर आपने अपने दिल को खुशी दी है
एक लाख युगों तक
आपको कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चलेगा।” (6) [1668]

यह मेरा आखिरी चक्कर है;
सभी [नया] अस्तित्व नष्ट हो गया है। मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ।
बुद्ध के 888 विधान में। (7) [1670]889

चौवनवें युग में, सुमेखली के नाम से जानी जाने वाली
वह महान शक्ति वाली एक चक्र-चालक थी, जो सात रत्नों की स्वामी थी। (8) [1669]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1671]

इस प्रकार पूज्य बिलादायक थेरा ने ये श्लोक कहे

बिलादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

110. रेणुपूजक 890

[मैंने] स्वर्ण संबुद्ध को देखा, जो सौ किरणों वाले सूर्य के समान, सभी दिशाओं में चमक रहा था
जैसे पूर्णिमा का चाँद, (1) [1672]

[उसके अनुयायियों] से घिरा हुआ
जैसे पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है

---

887 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
888 शाब्दिक रूप से, "गया"
889 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 890 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

मैंने विपस्सी को भेंट किया
पराग से भरा हुआ आयरनवुड891 फूल। (2) [1673]

तब से इक्यावन युगों में

मैंने वह पराग [उन्हें] अर्पित किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [1674]

इसके बाद पैंतालीसवें युग में
एक राजा था, जिसे रेणु के नाम से जाना जाता था, जो महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था और सात रत्नों का स्वामी था। (4) [1675]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1676]

इस प्रकार पूज्य रेणुपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

रेणुपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: भिक्खदायी, ञाणसञ्ञी,
हत्थिया, पदपूजक, मुथिपुप्पी, उदकड़ा, नाममालि, निवासक, बिषालिदाय894 और रेनु भी; छः और साठ श्लोक हैं।

भिक्खदाई अध्याय, ग्यारहवाँ।

---

891 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
892 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
893 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
894 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

महापरिवार अध्याय, बारहवाँ

---

111. महापरिवार 895

विपस्सी नामक भगवान,
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, तब बंदुमा नगर में प्रवेश किया
अड़सठ हज़ार [अरहंतों] के साथ। (1) [1677]

शहर से बाहर आकर
वह दीपों के मंदिर में गया।896
मैंने बुद्ध, निष्कलंक, बलि प्राप्तकर्ता को देखा। (2) [1678]

अस्सी हज़ार लघु आत्माएँ897 जो [तब] इंद्र और तैंतीस की श्रद्धापूर्वक सेवा करती थीं
[भी वहाँ] मेरी उपस्थिति में थीं। (3) [1679]

जब वह ध्यान से उठे,
मैंने वहाँ से कपड़े का एक टुकड़ा उठाया।
मैंने सिर झुकाकर उनकी पूजा की, फिर मैंने उसे महान ऋषि को दे दिया: (4) [1680]

"हे बुद्ध! हे शिक्षा!
हे हमारे गुरु की [महान] उपलब्धि!
बुद्ध की शक्ति के माध्यम से
उसने धरती को ही हिला दिया। (5) [1681]

और उस चमत्कार को देखकर, अजूबा रोंगटे खड़े कर देने वाला,
मैंने बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न किया,
द्विपद भगवान, तटस्थ। (6) [1682]

तब मैंने द्विपाद भगवान, तटस्थ ईश्वर में अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, वह वस्त्र गुरु को दे दिया।
उसके पास शरण लेने गया। (7) [1683]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 895 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है
896 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
897 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

तब से इक्यावन युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (8) [1684]

पंद्रहवें युग पूर्व
सोलह [नाम वाले] वाहन थे, 898 चक्र घुमाने वाले राजा, महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी। (9) [1685]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [1686]

इस प्रकार पूज्य महापरिवार थेरा ने ये श्लोक कहे

महापरिवार थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

112. सुमंगल

अत्थादस्सी, सर्वश्रेष्ठ विजेता,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, मठ से प्रस्थान करते हुए
[मेरे घर के पास] झील तक आया।899 (1) [1687]

संबुद्ध ने [वहाँ] स्नान किया और पिया, [फिर वह] बाहर निकला और एक वस्त्र में
भगवान उस स्थान पर खड़े होकर सभी दिशाओं का अवलोकन कर रहे थे। (2) [1688]

अपने निवास में रहते हुए, मैंने विश्व के नेता को देखा
सौ किरणों वाले सूर्य के समान चमकता हुआ, उत्तम शिल्प वाले सोने के समान जगमगाता हुआ और प्रसन्न हृदय वाला।
फिर मैंने नृत्य और गीतों का संचालन करने के लिए अपनी उंगलियां चटकाईं
और वहाँ पाँच प्रकार के संगीत।900 (3-4) [1689-1690]

---

898 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 899 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
900 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता हूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, मैं सभी अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हूँ।
और मेरी महिमा प्रचुर है। (5) [1691]

"हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी जय हो! 901
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! स्वयं को प्रसन्न करके, ऋषि,
[अब] आप [सभी] दूसरों को प्रसन्न कर रहे हैं।" (6) [1692]

स्वीकार करने के बाद, बैठ कर,
अच्छे वचन वाले ने हँसी पैदा की। 902
मैंने संबुद्ध की सेवा की
[तब] तुसिता में पुनर्जन्म हुआ। (7) [1693]

सोलहवें युग पूर्व ग्यारह एकासिंटिटास903
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, पहिए घुमाने वाले थे। (8) [1694]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1695]

इस प्रकार पूज्य सुमंगल थेरा ने ये श्लोक कहे

सुमंगल थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

113. सरणागमनिया 904

दोनों देव-राजाओं के बीच युद्ध
[तब तक] शुरू हो चुका था
इसके लिए भारी भीड़ जमा हुई थी, जिससे बहुत शोरगुल मच रहा था। (1) [1696]
पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता,

---

901 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
902 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
903 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
904 {फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

शिक्षक, आकाश में खड़े होकर,
[तब] कई लोगों को भावुक कर दिया। (2) [1697]

सभी देवता प्रसन्न हुए;
उनके हथियार और कवच नीचे फेंक दिए गए। संबुद्ध की पूजा करने के बाद
फिर वे एक तरफ खड़े हो गए। (3) [1698]

हमारे विचारों को समझते हुए, दयालु, विश्व-ज्ञानी ने [तभी] राजसी शब्द कहे, जिससे कई लोग निर्वाण प्राप्त कर सके। (4) [1699]

"जिस व्यक्ति के हृदय में बुराई भरी हो, वह किसी एक जीवित प्राणी को हानि पहुँचा सकता है। क्योंकि उसके हृदय पर वह कलंक लगा होता है।"
उसका पुनर्जन्म किसी नरक में होगा। (5) [1700]

युद्ध के मोर्चे पर एक हाथी905 कई जीवों को नुकसान पहुंचा सकता है, लेकिन अगर वह अपने दिल को ठंडा कर ले
उसे बार-बार नहीं मारा जाएगा।" (6) [1701]

उन दोनों की सेनाएँ
आत्मा907 -राजा [तब] चकित थे।908
और वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ के पास गए,
तटस्थ के पास, [शरण लेने के लिए]। (7) [1702]

लोगों को समझाने के बाद, वह नेत्रपूर्ण व्यक्ति ऊपर की ओर उठा, और सभी देवताओं द्वारा देखा गया,
वह उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (8) [1703]

मैं शरण लेने वाला पहला व्यक्ति था
द्विपदीय भगवान, तटस्थ ईश्वर के पास। एक लाख युगों तक
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (9) [1704]

तीस हज़ारवें युग में

---

905 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीएनपी II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल है
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
906 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
907 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
908 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

सोलह रथ-बैल थे, 909
वे राजा जिन्होंने [कानून का] पहिया घुमाया,
[सभी] महादुंदुभि कहलाए।910 (10) [1705]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [1706]

इस प्रकार पूज्य सरणागमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे

सरणागमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

114. एकासनीय 911

उस समय मैं देवताओं का राजा था, जिसे वरुण के नाम से जाना जाता था
मैंने संबुद्ध की सेवा की,
उनकी शक्ति के वाहन के रूप में। (1) [1707]

जब अत्थादस्सी, सर्वश्रेष्ठ पुरुष, जगत के स्वामी, सभी तुरियाओं की आपूर्ति करते हुए निर्वाण प्राप्त कर चुके थे ,
मैं सर्वश्रेष्ठ बोधि वृक्ष के पास गया। (2) [1708]

मानो संबुद्ध के सामने
मैंने सर्वश्रेष्ठ बोधि वृक्ष की सेवा की,
संगीत और नृत्यों के साथ भी,
झांझों के साथ अच्छी तरह से संगत।912 (3) [1709]

उस बोधि की सेवा करने के बाद
वहाँ धरती से उगने वाले पेड़ को देखकर, मैंने खा लिया था, और मेरे पैर क्रॉस किए हुए थे,
मैं वहीं पर मर गया। (4) [1710]

अपने कर्मों में प्रसन्न होकर, उस उत्कृष्ट बोधि वृक्ष से प्रसन्न होकर, अपने हृदय में उस आनंद के कारण,
मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है [अब]। (5) [1711]

---

909 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ

910 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 911 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

912 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

[और] साठ हज़ार वाद्ययंत्र 913
हर समय मेरी सेवा में हैं
जैसे-जैसे मैं जन्म-जन्मांतर की ओर बढ़ता हूँ
मनुष्यों और देवताओं के बीच भी। (6) [1712]

मुझमें तीनों आग बुझ गई हैं;
सभी [नया] अस्तित्व नष्ट हो गया है। मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ।
बुद्ध के 915 विधान में। (7) [1713]

इसके पाँच सौवें युग में चौंतीस क्षत्रिय थे
[जिनमें से सभी] का नाम सुबहू,916 था
सात रत्नों के स्वामी। (8) [1714]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1715]

इस प्रकार पूज्य एकासनीय थेरा ने ये श्लोक कहे।

एकासनीय थेरा की कथा समाप्त होती है

---

115. सुवण्णपुप्फिया 917

विपस्सी नामक भगवान,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, बैठे हुए, वहाँ के लोगों के समूह को अमरता का उपदेश दिया। (1) [1716]

शिक्षा 918 सुनने के बाद
उस द्विपाद भगवान, तटस्थ व्यक्ति की शिक्षा सुनकर, मैंने [तब] बुद्ध को अर्पित किया
[शुद्ध] सोने से बने चार फूल। (2) [1717]

---

913 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
914 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
915 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
916 निज्झायामानो , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 917 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
918 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

वहाँ सोने का एक चंदवा था
उस समय पूरी भीड़ पर फैला हुआ था। बुद्ध के प्रकाश और सोने से वहाँ एक विशाल दीप्ति थी। (3) [1718]

खुश, मेरे दिल में उमंग के साथ, रोमांचित, मेरे हाथ एक साथ जुड़े हुए, उन लोगों के लिए उत्पन्न आनंद के साथ [जिन्होंने सुना], दुनिया को आनंद पहुंचाते हुए, (4) [1719]

बुद्ध को आमंत्रित करके,920 आज्ञाकारी की पूजा करके,921 बहुत आनंद का अनुभव करते हुए
मैं [तब] अपने घर लौट आया। (5) [1720)

अपने निवास में प्रवेश करने के बाद,
मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद किया। मेरे हृदय में उस आनंद के कारण, मेरा तुसिता में पुनर्जन्म हुआ। (6) [1721]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह फूल [उन्हें] अर्पित किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (7) [1722]

तब सोलह [विभिन्न] राजा थे, [सभी] नेमिसम्मत के नाम से जाने जाते थे,922
तैंतालीसवें युग में,
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (8) [1723]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1724]

इस प्रकार पूज्य सुवन्नपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

सुवन्नपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

919 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

920 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

921 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

922 निज्झायामानो , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

116. चितकपूजक 923

जब सिख धर्म के धन्य पुरुष,
विश्व के सगे-संबंधी, 924 में देहांत हो गए,
मैं [तब] राजसी क्षेत्र में रहता था,
मंत्रियों और सेवकों के साथ। (1) [1725]

प्रसन्न, [और] प्रसन्न हृदय से,
मैं [उनके लिए निर्मित] मंदिर गया। वहाँ तुरिया -ढोल बजाए जा रहे थे
मैंने फूलों की माला चढ़ाई। (2) [1726]

उस मंदिर में पूजा करने के बाद
और मंदिर की पूजा करते हुए, प्रसन्न और प्रसन्न हृदय से
मैं [तब] अपने घर लौट आया। (3) [1727]

अपने निवास में प्रवेश करने के बाद,
मुझे उस पूजा - स्थल की याद आ गई
उस कर्म के द्वारा द्विपद-भगवान के लिए,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों का बैल, (4) [1728]

मनुष्यों और देवताओं के बीच [महान] सुख का आनंद लेने के बाद,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है
सभी विजय और पराजय से परे। (5) [1729]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने वह फूल [उन्हें] अर्पित किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
जो मंदिर- पूजा का फल है । (6) [1730]

तब से उनतीसवें युग में
तब सोलह [विभिन्न] राजा थे, [सभी] उगाट नाम से जाने जाते थे,925
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (7) [1731]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 923 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

924 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

925 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [1732]

इस प्रकार पूज्य चितकापूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

चितकपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

117. बुद्धसंञ्ञक 926

जब विपस्सी, विश्व के शीर्ष, ने जीवन के घटकों को त्याग दिया, तो जल से घिरी भूमि,
[उस समय] धरती कांप उठी थी। (1) [1733]

जब बुद्ध का जीवन समाप्त हुआ, तो मेरा निवास भी हिल गया
[और] मेरी सजावटी बालों की माला
उसके द्वारा खिंची और अलग हो गई थी। (2) [1734]

जब मेरा घर हिल गया, तो मैं बहुत डर गया था।
और किसी भी कारण से [तब]
वहाँ एक विशाल प्रकाश था। (3) [1735]

वेसवण927 यहाँ आकर लोगों के भय को दूर कर दिया: प्राणियों को डरने की कोई बात नहीं है;
शांत रहो, आत्मसंयम बरतो। (4) [1736]

हे! बुद्ध! हे! शिक्षा!
हे! हमारे गुरु की [महान] उपलब्धि! [साथ ही] जब उनका जन्म हो रहा था
पृथ्वी [स्वयं] कांप उठी थी [तब]।” (5) [1737]

बुद्ध की शक्ति की प्रशंसा करने के बाद, मैं स्वर्ग में एक युग तक रोमांचित रहा। शेष युगों के दौरान
मैंने बहुत सारे अच्छे कर्म किए। (6) [1738]

तब से इक्यावन युगों में
मुझे तब यह बोध हुआ, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
बुद्ध को समझने का फल। (7) [1739]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 926 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
927 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

चौदहवें युग पूर्व, मैं समिता नाम से जानी जाने वाली एक राजसी सम्राट थी,
महान शक्ति वाली एक चक्र-चालक। (8) [1740]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1741]

इस प्रकार पूज्य बुद्धसंञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे

बुद्धसंञ्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

118. मगसञ्ञक 928

पद्ममुत्तरा बुद्ध के [अपने] अनुयायी, जो वन-भिक्षु थे, एक विशाल जंगल में खो गए थे,
वे अंधे की तरह वहाँ भटक रहे थे। (1) [1742]

संबुद्ध, पद्ममुत्तरा, नेता, का स्मरण करते हुए,
[और] वे जो उस ऋषि के पुत्र थे,
तब तक बड़े जंगल में खो गए थे, (2) [1743]

मेरे निवास से नीचे उतरते हुए
मैं वहाँ गया जहाँ भिक्षु थे
और उन्हें रास्ता दिखाते हुए
मैंने उन्हें भोजन भी दिया। (3) [1744]

दो पैरों वाले भगवान, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, के लिए उस कर्म के कारण, जो केवल सात वर्ष के थे,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (4) [1745]

इसके बाद पाँच सौवें युग में,
बारह चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे जिन्हें सच्चक्खु930 के नाम से जाना जाता था

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 928 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
929 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
930 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सात रत्नों के स्वामी। (5) [1746]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1747]

इस प्रकार पूज्य मगसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे।

मगसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

119. पक्कुपट्टानसञ्ञक 931

ठीक उसी समय जब वेल-गॉन अत्थादस्सी ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया था,
मेरा जन्म एक आत्मा के गर्भ में हुआ था;
उस समय मेरे पास [महान] गौरव था। (1) [1748]

"यह मेरे लिए एक बुरी उपलब्धि है, एक बुरी सुबह, एक बुरा उदय,
कि मुझे ऐसी समृद्धि मिले
जब आँखों को भाने वाले का देहांत हो गया।"933 (2) [1749]

मेरे विचारों को समझते हुए, सागर 934 नामक अनुयायी ने मेरी उन्नति की कामना करते हुए,
[तब] मेरे समक्ष [वहाँ] आया: (3) [1750]

"तुम शोक क्यों कर रहे हो? डरो मत!
हे शिक्षा के ज्ञाता, बुद्ध द्वारा तुम्हें दिया गया है
सभी की सफलता के बीज। (4) [1751]

जो संबुद्ध, सिद्धार्थ, विश्व के नेता की पूजा करेगा,
एक छोटी सी हड्डी की भी पूजा करनी चाहिए।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 931 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
932 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
933 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) । खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
934 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
935 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
936 निज्झायामानो , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

अंतिम निर्वाण के बाद। (5) [1752]

जब हृदय का सुख एक समान होता है, तो वही अमूल्य पुण्य होता है
इसलिए एक स्तूप का निर्माण करके,
वहाँ विजेता के अवशेषों की पूजा करें।" (6) [1753]

सागर की बातें सुनकर,
मैंने [तब] एक बुद्ध स्तूप बनाया। पाँच वर्षों तक मैंने उसकी सेवा की
उस ऋषि का परम स्तूप। (7) [1754]

द्विपाद भगवान, जगत के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, के लिए उस कर्म के कारण, [महान] सुख का आनंद लेते हुए,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (8) [1755]

सातवें युग पूर्व
चार भूरीपञ्ञ थे, 937 चक्र घुमाने वाले महान शक्ति के राजा, सात रत्नों के स्वामी। (9) [1756]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [1757]

इस प्रकार पूज्य पच्चुपट्टानासंञ्कक थेरा ने ये श्लोक कहे

पच्चुपट्टानसंञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

120. जातिपूजा 938

जब विपस्सी [बुद्ध] का जन्म हुआ, तब वहाँ एक विशाल प्रकाश था
इसके जवाब में धरती स्वयं कांप उठी।
[जैसे इसके] महासागर और पर्वत। (1) [1758]

उन्होंने शकुनों की व्याख्या की:
"एक बुद्ध का जन्म हुआ है939, संसार में, सभी जीवित प्राणियों के शीर्ष पर
जो [सभी] लोगों को ऊपर उठाएगा।" (2) [1759]

---

937 सप्पी , शाब्दिक रूप से, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 938 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
939 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

शकुनों की खबर सुनकर मैंने बच्चे के जन्म के लिए पूजा की।
ऐसी पूजा कहीं और नहीं होती
जन्म के लिए की जाने वाली पूजा । (3) [1760]

अपने हृदय को प्रसन्न करके, स्वयं को पूरी तरह से संयमित रखते हुए,
उस जन्म- पूजा के बाद
मैं वहीं पर मर गया। (4) [1761]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता हूँ, चाहे वह मनुष्य का हो या दिव्य, मैं सभी अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हूँ:
यही जन्म- पूजा का फल है । (5) [1762]

अब ये अवशेष मेरे हृदय की शक्ति से मेरी रक्षा करते हैं। अब दूसरे मुझे परेशान नहीं कर सकते।
वह जन्म- पूजा का फल है । (6) [1763]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह पूजा की थी , मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
वह जन्म- पूजा का फल है । (7) [1764]

तीस युग पहले,
चौंतीस लोगों के स्वामी, [सभी] सुपारीकारिया नाम के,941
वे महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा थे। (8) [1765]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1766]

इस प्रकार पूज्य जातिपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

जातिपूजक थेरा की कथा समाप्त होती है
सारांश: परिवार, सुमंगल्य,
शरण, आसन, पुष्पिका,

---

940 कुम्मास , संस्कृत: कुलमास , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है
941 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

Citapūjī, Buddhasaññī, Magg', Upaṭṭhāna, Jātina - इस भाग में नब्बे उच्चारित श्लोकों की स्पष्ट गणना की गई है।

महापरिवार अध्याय, बारहवाँ।

सेरेय्यक अध्याय, तेरहवाँ

---

121. सेरेय्याका 942

मैं एक विद्वान मंत्र-ज्ञाता था जिसने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी। खुले आसमान के नीचे खड़े होकर
मैंने विश्व के नेता को देखा, (1) [1767]

शेर की तरह जंगलों में विचरण करते हुए, बाघ-राजा की तरह अविचलित, महान ऋषि, हाथी की तरह,
एक मातंग 943 तीन गुना रट में।944 (2) [1768]

कुछ चमेली के फूल उठाकर, मैंने उन्हें हवा में उछाल दिया।
बुद्ध की शक्ति से,
उन्होंने उसे वहाँ पूरी तरह घेर लिया। (3) [1769]

महान नायक अविचलित खड़ा रहा,
विश्व-नेता, सर्वज्ञ। चारों ओर उन्होंने फूल बिखेर दिए,
[इस प्रकार] पुरुषों के बैल को ढकते हुए।946 (4) [1770]

वहाँ फूलों की एक छतरी
जिसके तने अंदर और फूल बाहर थे, जिसने [उसे] एक सप्ताह तक [बाद में] ढक रखा था, फिर गायब हो गया। (5) [1771]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 942 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
943 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
944 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
945 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
946 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

और उस चमत्कार को देखकर, अजूबा जो रोंगटे खड़े कर देता है,
मैंने बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न किया,
सुप्रसिद्ध, विश्व-नेता। (6) [1772]

मेरी पवित्र जड़ों से प्रेरित उस आनंद के कारण, जो मेरे हृदय में एक लाख युगों से व्याप्त है,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (7) [1773]

पंद्रह हज़ारवें युग में
बीस से पाँच अधिक पुरुष थे, महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा,
[सभी] को तब Cīnamāla947 के नाम से जाना जाता था। (8) [1774]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1775]

इस प्रकार पूज्य सेरेय्याका थेरा ने ये श्लोक कहे।

सेरेय्याका थेरा की कथा समाप्त होती है

---

122. पुप्फथुपिया948

हिमालयी क्षेत्र में, 949
लंबका नाम का एक पर्वत है। 950
मैं इसके केंद्र में निवास कर रहा था,
एक ब्राह्मण मंत्रों के गुरु। (1) [1776]

[उस समय] पाँच हज़ार छात्र लगातार मुझे घेरे रहते थे
वे [सभी] मुझसे पहले उठे,
और मंत्रों में भी कुशल थे। (2) [1777]

---

947 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 948 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
949 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
950 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

"[शिक्षक], आपको यह तथ्य जानना चाहिए कि
बुद्ध बत्तीस बड़े चिह्नों और अस्सी छोटे चिह्नों को धारण करते हुए संसार में जन्म ले चुके हैं
सर्वश्रेष्ठ विजेता की आभा,
एक फ़ैदम चौड़ा, सूर्य की तरह चमकता है।" (3) [1778]952

अपने छात्रों की बातें सुनकर, मंत्रों के ब्राह्मण गुरु अपने आश्रम से निकल पड़े,
[तब] उस ब्राह्मण ने दिशा-निर्देश पूछे: "वह किस क्षेत्र में रहता है,
महान नायक, विश्व-नेता? (4) [1779]953

मैं उस दिशा954 [और] विजेता, जिसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है, की पूजा करूँगा। और प्रसन्न हृदय से,
मैं उस (5) [1780] की पूजा करूँगा

आओ, विद्यार्थी, चलो चलें; आओ हम उस पश्चात्ताप को देखें। गुरु के चरणों की पूजा करने के बाद,
हम उसका निर्णय सुनेंगे।"956 (6) [1781]

मेरे प्रस्थान करने के एक दिन बाद, मैं एक [बुरी] बीमारी से ग्रसित हो गया
मैं एक साल के पेड़ के नीचे लेट गया ।
उस बीमारी के कारण [बहुत] दर्द में। (7) [1782]

सभी छात्रों को इकट्ठा करके [तब]
मैंने उनसे इस प्रकार प्रश्न पूछे: "किस प्रकार का गुण है

विश्व के भगवान, सर्वोच्च बुद्ध का?” (8) [1783]

[तब] मेरे द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के बारे में [सबसे] विस्तार से बताया, 957
साथ ही वे उन्हें [तब] देख सकते थे
[और] उसने मुझे उससे आमने-सामने मिलवाया। (9) [1784]

[छात्रों] की बातें सुनने के बाद,

---

951 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है।
952 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
953 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
954 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
955 शाब्दिक रूप से, "गया"
956 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
957 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

मैंने [तब] अपने दिल को खुशी दी। एक पुष्प स्तूप का निर्माण करके
मैं वहीं मर गया। (10) [1785]

मेरे शरीर को जलाने के बाद, वे बुद्ध की उपस्थिति में आए। उनके लिए हाथ जोड़कर,
फिर उन सभी ने गुरु की पूजा की। (11) [1786]

पुष्प स्तूप बनाकर
महान ऋषि, जो स्वर्ग सिधार गए हैं, उनके लिए एक लाख युगों तक,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (12) [1787]

चालीस हज़ारवें युग में
सोलह क्षत्रिय [पुरुष] थे। [सभी] अग्गीसमा,958 के नाम से जाने जाते थे
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (13) [1788]

बीस हज़ारवें युग में, पृथ्वी के अड़तीस शासक
वे राजा थे जिन्होंने [कानून का] पहिया घुमाया,
और [सभी] को घटासन कहा जाता था।959 (14) [1789]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [1790]

इस प्रकार पूज्य पुप्पथूपिया थेरा ने ये श्लोक कहे

पुप्फथुपिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

123. पायासादायका960

[मैंने] स्वर्ण संबुद्ध को देखा, जो भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित बत्तीस महान चिह्नों को धारण किए हुए थे,
जो [तब] जंगल छोड़ रहा था। (1) [1791]

---

958 शाब्दिक रूप से, "योग्य"<extra_id_1
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 960 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
अत्यंत प्रसन्न होकर मैंने [तब] व्यवस्था की
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

दूध-चावल पीतल के कटोरे में परोसा गया। बलिदान अर्पित करने की इच्छा से
मैंने [यह] भेंट प्रस्तुत की।961 (2) [1792]
उस समय जीवित बुद्ध962, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, एक मार्ग पर अच्छी तरह से चढ़ गए थे963

आकाश में हवा के मार्ग में। (3) [1793]
और उस चमत्कार को देखकर, अजूबा जो रोंगटे खड़े कर देता है, उस कांसे के कटोरे को नीचे रखकर,

मैंने [उसी समय] विपस्सी की पूजा की। (4) [1794]
"आप सर्वज्ञ ईश्वर हैं, देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रधान हैं। मुझ पर दया करके,

[कृपया] [यह भोजन] स्वीकार करें, हे महान ऋषि।" (5) [1795]
मैं जो सोच रहा था उसे समझते हुए,

शिक्षक, विश्व के महान ऋषि, धन्य, सर्वज्ञ,
विश्व-नेता ने इसे स्वीकार किया। (6) [1796]
मैंने उसे तब वह भिक्षा-भोजन दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उसे] तब वह भिक्षा-भोजन दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
इसके बाद इकतालीसवें युग में

मैं बुद्ध नाम का एक शासक था,964,965, एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (8) [1798]
961 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

---

961 “Auspicious,” a historical monk, see DPPN II: 1162. This same apadāna is included above, verbatim, as 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
962 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
963 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
964 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
965 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1799]

इस प्रकार पूज्य पायसादायक थेरा ने ये श्लोक कहे

पायसादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

124. गंधोदकिया966

अपने शानदार महल में बैठे हुए, मैंने विजेता, विपस्सी को अर्जुन वृक्ष की तरह भव्य देखा,967
सर्वज्ञ, निष्कलंक। (1) [1800]

जैसे ही विश्व-नेता 968 पार गए
महल के पास का क्षेत्र,
उसकी आभा [हर जगह] फैल गई
मानो [वह प्रकाश] सूर्य से आया हो।969 (2) [1801]

कुछ सुगंधित जल लेकर
मैंने तब सर्वश्रेष्ठ बुद्ध पर जल छिड़का, और उस आनंद के साथ,
मैं वहीं पर मर गया। (3) [1802]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह सुगंधित जल छिड़का, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1803]

इसके बाद इकत्तीसवें युग में
सुगंधा नामक क्षत्रिय, 970
वह महान शक्ति वाली, सात रत्नों की स्वामी, एक चक्र-चालक थी। (5) [1804]
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 966 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
967 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
968 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
969 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
970 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1805]

इस प्रकार पूज्य गंधोदकिया थेरा ने ये श्लोक कहे

गंधोदकिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

125. सम्मुखाथविका971

जब विपस्सी [बुद्ध] का जन्म हुआ, तो मैंने शकुनों की व्याख्या की:
"एक बुद्ध का जन्म संसार में हुआ है;
वह लोगों को निर्वाण तक पहुँचाएँगे।" (1) [1806]

और जब उनका जन्म हो रहा था,
दस हज़ार विश्व-व्यवस्था कांप उठी। अब वह धन्य, गुरु,
नेत्रपूर्ण धम्म का उपदेश दे रहे हैं । (2) [1807]

और जब उसका जन्म हो रहा था, तब वहाँ एक विशाल प्रकाश था। अब वह भगवान, गुरु,
आँखों से देखने वाला व्यक्ति धम्म का उपदेश दे रहा है । (3) [1808]

और जब उनका जन्म हुआ, तब सारी नदियाँ बहना बंद हो गईं। अब वह परम पूज्य, गुरु,
आँखों से देखने वाला व्यक्ति धम्म का उपदेश दे रहा है । (4) [1809]

और जब उसका जन्म हुआ, तब नरक की सारी आग बुझ गई। अब वह परम पूज्य, गुरु,
आँखों से देखने वाला धम्म का उपदेश दे रहा है । (5) [1810]

और जब उसका जन्म हुआ, तो पक्षियों के सभी झुंड उड़ना बंद कर दिए। अब वह धन्य गुरु,
आँखों से देखने वाला धम्म का उपदेश दे रहा है । (6) [1811]

और जब उसका जन्म हो रहा था, तब तेज़ हवाएँ चलना बंद हो गईं। अब वह परम पूज्य, गुरु,
आँखों से देखने वाला धम्म का उपदेश दे रहा है । (7) [1812]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 971 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

और जब वह पैदा हो रहा था, तब सारे रत्न चमक रहे थे। अब वह परम पूज्य, गुरु,
आँखों से देखने वाला धम्म का उपदेश दे रहा है । (8) [1813]

और जब वह पैदा हो रहा था, तब उसने अपने पहले सात कदम उठाए। अब वह धन्य पुरुष, गुरु,
आँखों से देखने वाला धम्म का उपदेश दे रहा है । (9) [1814]

और जब संबुद्ध का जन्म हुआ, तो उन्होंने सभी दिशाओं का सर्वेक्षण किया।
और [फिर उन्होंने] राजसी शब्द कहे;
यही बुद्धों का स्वभाव है।" (10) [1815]

लोगों को भावुक करने के बाद, [और] मैंने संबुद्ध की पूजा करके विश्व-नेता की प्रशंसा की थी,
मैं पूर्व की ओर मुख करके चला गया। (11) [1816]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यही उसकी प्रशंसा करने का फल है। (12) [1817]

इसके बाद नब्बेवें युग में
[राजा] सम्मुखाथविका,972
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (13) [1818]

इसके बाद अस्सी-नौवें युग में, [राजा] पथविदुंदुभि973
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (14) [1819]

इसके बाद अस्सी-आठवें युग में, राजा974 जिसका नाम ओभासमता975 था

वह बहुत ताकतवर पहिया घुमाने वाला था
सात रत्नों का स्वामी। (15) [1820]

---

972 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
973 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
974 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
975 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

सत्तासीवें युग में, [राजा] सरितच्छेदन976
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (16) [1821]

छियासीवें युग में [इसलिए,] [राजा] अग्गिनीब्बापना977
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (17) [1822]

पचासीवें युग में [इसलिए,] [राजा] राजवातसमा978
वह एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (18) [1823]

चौरासीवें युग में [इसलिए,] [राजा] गतिपच्छेदन979
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (19) [1824]

83वें युग में [इसलिए,] [राजा] रतनप्पज्जल980
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (20) [1825]

बयासीवें युग में, [राजा] पदविक्कमण981
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (21) [1826]

इक्यासीवें युग में [इसलिए,] [राजा] राजविलोकन982
वह एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (22) [1827]

अस्सीवें युग में [इसलिए,]

---

976 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
977 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
978 शाब्दिक रूप से, "गया"

979 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
980 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
981 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
982 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं मीटर बनाए रखने के लिए "हज़ार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हज़ार कंड (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"

राजा983 जिसे हिरिसारा984 के नाम से जाना जाता है
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (23) [1828]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [1829]

इस प्रकार पूज्य सम्मुखाथविका थेरा ने ये श्लोक कहे

सम्मुखाथविका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

126. कुसुमासानिया 985

धन्जवती नगर में,
मैं उस समय एक ब्राह्मण था, तीनों वेदों का ज्ञाता था,
चिह्नों और इतिहास, शब्दकोशों और कविता में अच्छी तरह से पारंगत,986 [साथ ही] शकुन पढ़ने में कुशल, एक [विद्वान] व्याकरणविद्;
मैंने अपने छात्रों को मंत्र सिखाए। (1-2) [1830-1831]

उस समय मैंने सड़क पर पाँच मुट्ठी कमल के फूल रखे थे, ताकि मैं बलिदान अर्पित कर सकूँ
मेरी माँ और मेरे पिता के लिए।988 (3) [1832]

तब हे भगवान, विपस्सी, भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित,
पुरुषों का बैल [तब मेरे पास आया,]
हर दिशा को रोशन करते हुए। (4) [1833]

---

983 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेंडु पढ़ता है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी
984 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 985 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
986 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
987 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
988 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

महान ऋषि को आमंत्रित करने के बाद, मैंने उनके लिए एक आसन नियुक्त किया,
फिर उन फूलों को वहाँ फैलाकर,
मैं उसे अपने घर ले गया। (5) [1834]

मेरे घर में जो कुछ भी था,
मुझे जो भी भिक्षा भोजन दिया गया था, वह सब मैंने बुद्ध को दे दिया
[अपने] हाथों से [अच्छा महसूस करते हुए-] प्रसन्न। (6) [1835]

यह जानते हुए कि उसका भोजन कब पूरा हो गया,990
मैंने एक मुट्ठी [फूल] दिए। धन्यवाद देते हुए, सर्वज्ञ
[फिर] उत्तर की ओर मुख करके चले गए। (7) [1836]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने उसे तब वह फूल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फूल देने का यही फल है। (8) [1837]

एक मध्यवर्ती युग में,
मैं राजा वरदस्सन था, 991
एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (9) [1838]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [1839]

इस प्रकार पूज्य कुसुमासनीय थेरा ने ये श्लोक कहे

कुसुमासनीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

127. फलदायका 992

मैं एक विद्वान मंत्र-ज्ञाता था जिसने तीनों वेदों में महारत हासिल कर ली थी। मैं [उस समय] एक आश्रम में रहता था
हिमालय से ज्यादा दूर नहीं। (1) [1840]

---

989 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
990 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
991 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 992 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

मेरे पास अग्नि के लिए भेंट थी
और कुछ सफेद कमल के फल भी;
इन्हें एक थैले में रखकर, मैं
उन्हें एक पेड़ के ऊपर लटका दिया। (2) [1841]

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता,
मेरे उत्थान की कामना के साथ,
भीख मांगते हुए मेरे पास आया। (3) [1842]

प्रसन्न, [और] प्रसन्न हृदय से, [सर्वोच्च] आनंद उत्पन्न करते हुए, संसार को सुख प्रदान करते हुए,
मैंने बुद्ध को अपना फल दिया। (4) [1843]

स्वर्ण रंग के संबुद्ध, बलि प्राप्तकर्ता,
आकाश में खड़े शिक्षक,
[तब] मेरे बारे में यह श्लोक कहा: (5) [1844]

“इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ [कुछ] फल के इस उपहार के कारण, एक लाख युगों तक
उसे किसी बुरे पुनर्जन्म का पता नहीं चलेगा।” (6) [1845]

केवल उन्हीं स्वस्थ जड़ों के माध्यम से, मैंने खुशी का अनुभव किया
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है
सभी विजय और पराजय से परे। (7) [1846]

सातवें युग पूर्व
मैं राजा सुमंगल था,
महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (8) [1847]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1848]

इस प्रकार पूज्य फलाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे

फलाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

993 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है, जैसा कि 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

---

128. Ñāṇasaññaka994

मैं एक पहाड़ पर रहता था
हिमालय पर्वत में।
कुछ शुद्ध [सफेद] रेत देखकर मैंने
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद किया: (1) [1849]

"ज्ञान की कोई उपमा नहीं है;
न ही गुरु से मिलने की।995
सभी शिक्षा सीखने के बाद
उस ज्ञान से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। (2) [1850]

हे श्रेष्ठ व्यक्ति, आपकी जय हो! 996
हे परम पुरुष, आपकी जय हो!
आपके जैसा कोई नहीं है
ज्ञान के संदर्भ में, सर्वश्रेष्ठ पुरुष।" (3) [1851]

ज्ञान में [मेरे] हृदय को प्रसन्न करके, मैंने स्वर्ग में एक युग का रोमांच अनुभव किया
शेष युगों के दौरान,
मैंने वह अच्छा कर्म पूरा किया।997 (4) [1852]

तब से इक्यावन युगों में
मुझे वह बोध प्राप्त हुआ [तब], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
ज्ञान-बोध का फल। (5) [1853]

तिहत्तरवें युग में
एक [नाम] पुलिनापुप्पिया998
वह एक महान शक्तिवान, सात रत्नों का स्वामी, एक चक्र-चालक था। (6) [1854]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (7) [1855]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 994 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
995 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
996 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
997 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
998 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

इस प्रकार पूज्य ञाणसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे।

ञाणसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

129. Gandhapupphiya999

स्वर्ण रंग के संबुद्ध विपस्सी, आदरणीय, अपने सभी अनुयायियों द्वारा सम्मानित, 1000
मठ से प्रस्थान किया। (1) [1856]

सर्वज्ञ, निष्कलंक, सर्वश्रेष्ठ बुद्धों को देखकर,
मैंने सुगंधित फूल पूजा की ।
खुश, [और] प्रसन्न हृदय से। (2) [1857]

द्विपद-भगवान, तटस्थ के लिए मेरे हृदय में उस आनंद के कारण,
मैंने फिर से प्रसन्न होकर तथागत की पूजा की। (3) [1858]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1859]

मैं बुद्ध नाम का एक शासक था,964,965, एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (8) [1798]
वारण नामक क्षत्रिय

वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (5) [1860]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1861]

इस प्रकार पूज्य गंधपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

गंधपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 999 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है
1000 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1001 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

130. पद्मपूजक 1002

हिमालयी क्षेत्र में,
गौतम नाम का एक पर्वत है। यह विभिन्न प्रकार के पेड़ों से ढका हुआ है,
और भूतों के एक बड़े समूह का अड्डा। (1) [1862]

उस [पहाड़] के बीच में एक आश्रम बनाया गया था। [मेरे अपने] छात्रों से घिरा हुआ,
मैं उस आश्रम में रहता था [उस समय]। (2) [1863]

"छात्र समूह मेरे पास आए;
वे मेरे लिए एक गुलाबी कमल लाएँ;
आइए बुद्ध- पूजा करें
द्विपद भगवान, तटस्थ के लिए।" (3) [1864]

"जी हाँ, चलिए" कहते हुए उन्होंने सहमति दी और एक गुलाबी कमल का फूल लाए। इसे एक अवसर बनाकर,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (4) [1865]

फिर, छात्रों को इकट्ठा करके,
मैंने उन्हें अच्छी तरह से सलाह दी: "कभी भी लापरवाह मत बनो;
[उत्साह] रखो, सुख लाओ।" (5) [1866]

इस प्रकार उन छात्रों को सलाह देने के बाद जो मेरे शब्दों के प्रति धैर्यवान थे,1003 [और] परिश्रमी सद्‌गुण से बंधे हुए थे,
मैं उस समय [वहाँ] चल बसा। (6) [1867]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उसे] वह फूल भेंट किया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (7) [1868]

इक्यावनवें युग में [इसलिए]
एक राजा था, जलुत्तमा,
एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (8) [1869]
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1002 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1003 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9)

इस प्रकार पूज्य पद्मपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

पद्मपुजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

सेरेय्याका, पुप्पथुपी, पायास-ओडकी-थोमका, आसनी-फला [और] सन्नी,
गंध और पद्मपुप्पिया। अर्थ के ज्ञाताओं द्वारा प्रचारित सौ से अधिक श्लोकों में से पाँच।

तेरहवाँ सेरेय्याक अध्याय

शोभिता अध्याय, चौदहवाँ

---

131. शोभिता

विजेता पदुमुत्तरा,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, लोगों के एक बड़े समूह के सामने

उन्होंने अमरता के मार्ग का उपदेश दिया। (1) [1870]

[फिर] उनके शब्दों को सुनकर, उनके उन राजसी शब्दों को सुनकर, मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाया,
उस समय मैं शांत हो गया। (2) [1871]

"चूंकि [महान] महासागर समुद्रों में सबसे आगे है, [और] चट्टानों का ढेर मेरु
(3) यह सर्वश्रेष्ठ पर्वत है, (3) इसी प्रकार जो लोग हृदय द्वारा नियंत्रित होते हैं वे एक इंच भी पास नहीं आते।
बुद्ध के ज्ञान का।" (4) [1872]1004
बुद्ध, करुणामय, ऋषि, धम्म- पद्धति को प्रस्तुत करते हुए,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1004 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
[मेरे बारे में तब] यह श्लोक कहा: (5) [1873]

"जो बुद्ध, विश्व-नेतृत्वकर्ता, के एक लाख युगों तक जीवित रहने पर भी इस प्रकार ज्ञान की प्रशंसा करता है।"
किसी बुरे पुनर्जन्म का ज्ञान नहीं होगा। (6) [1874]

दोषों को नष्ट करके, शांत और ध्यानपूर्वक,
वह शिक्षक का अनुयायी होगा,
शोभिता के नाम से जाना जाता है।" (7) [1875]

मैंने अपने दोषों को जला दिया है, सभी [नया] अस्तित्व नष्ट हो गया है
त्रिविध ज्ञान प्राप्त हो गया है,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था। (8) [1877]1005
पचास हज़ारवें युग में
सात समुग्गत थे, 1006 चक्र घुमाने वाले महान शक्ति वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी। (9) [1876]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [1878]

इस प्रकार पूज्य शोभिता थेरा ने ये श्लोक कहे

शोभिता थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

132. सुदस्सन 1007

वित्तत्था नदी के किनारे, एक अंजीर का पेड़ था जिस पर फल लगते थे

1005 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1006 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1007 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1008 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1009 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के।

जब मैं उस पेड़ की तलाश कर रहा था
मैंने विश्व के नेता को देखा। (1) [1879]

एक पेंडानस1010 को खिलते हुए देखकर, एक डंठल काटने के बाद,
मैंने इसे बुद्ध को भेंट किया,
सिख धर्म, दुनिया का रिश्तेदार। (2) [1880]

“शाश्वत, अमर अवस्था के बारे में आपने जो भी ज्ञान प्राप्त किया है,
मैं उस ज्ञान की प्रशंसा करता हूँ,
हे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, हे महान ऋषि।” (3) [1881]

ज्ञान के लिए इस प्रकार पूजा करते हुए ,
मैंने [तब] फलदार अंजीर का पेड़ देखा; मुझे वह अनुभूति प्राप्त हुई:
यह ज्ञान- पूजा का फल है । (4) [1882]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने वह फूल [उन्हें] अर्पित किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह ज्ञान का फल है- पूजा । (5) [1883]

तेरहवें युग पूर्व
बारह [नाम वाले] फलुग्गता थे, 1011 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी। (6) [1884]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1885]

इस प्रकार पूज्य सुदस्सन थेरा ने ये श्लोक कहे
सुदस्सना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

केक या जंकेट (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

1010 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1011 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

---

133. चंदनपूजक 1012

चंदभागा नदी के किनारे, मैं उस समय एक किन्नर था
मैं फूलों को अपने भोजन के रूप में इस्तेमाल करता था
और फूलों से बने कपड़े पहनता था। (1) [1886]

लेकिन अत्थादस्सी, हे भगवान,
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, जंगल की छत से चले गए,
जैसे हंस-राजा हवा में उड़ता है। (2) [1887]

“हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो;
आपका हृदय [इतना] शुद्ध है।
आपका रंग [आपकी] खुशी दर्शाता है;
आपका चेहरा [आपकी] इंद्रियों की स्पष्टता दर्शाता है।” (3) [1888]

महान बुद्धि वाले ज्ञानी, आकाश से अवतरित होकर, अपना ऊपरी वस्त्र फैलाते हुए
[बैठा] 1015 उस पर, पैर एक साथ क्रॉस करके। (4) [1889]

चंदन का तेल लेकर, मैं विक्टर के पास गया। खुश, मेरे दिल में आनंद के साथ,
मैंने [वह तेल] बुद्ध को दिया। (5) [1890]

संसार के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के बैल, संबुद्ध की पूजा करने के बाद, मुझे बहुत आनंद आया,
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (6) [1891]

चंदन पूजा करने के बाद से अठारह सौ युगों में ,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (7) [1892]

चौदहवें युग पूर्व

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1012 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1013 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1014 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1015 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

वहाँ तीन लोग थे [जो तब रहते थे], [सभी] रोहिणी नाम से जाने जाते थे, 1016
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा। (8) [1893]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [1894]

इस प्रकार पूज्य चंदनपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

चंदनपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

134. पुप्फचदानीय 1017

सुनंदा 1018 के नाम से जाने जाने वाले ब्राह्मण
जो मंत्रों का ज्ञाता था, विद्वान पुरुष था, भीख मांगने के योग्य था, उसने वाजपेय की बलि दी। 1019 (1) [1895]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता,
शीर्ष, दयालु, ऋषि, लोगों पर दया करने वाले,
आकाश में इधर-उधर विचरण करते रहे। (2) [1896]

इस प्रकार, सर्वज्ञ, विश्व नेता, इच्छा रहित संबुद्ध ने उनके प्रति प्रेम रखते हुए उनका अनुसरण किया।
तब 1020 अनगिनत प्राणियों को रोमांचित किया। (3) [1897]

फूलों की एक डंडी तोड़कर, मंत्रों के उस ब्राह्मण गुरु ने अपने सभी छात्रों को इकट्ठा किया,
उन्हें सीधे आकाश में फेंक दिया। (4) [1898]

वहाँ एक पुष्पीय छत्र था

1016 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1017 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1018 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1019 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1020 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

पूरे शहर पर 1021 फिर;
बुद्ध की शक्ति से,
वे वहाँ पूरे एक सप्ताह तक रहे। 1022 (5) [1899]

केवल उन्हीं पौष्टिक जड़ों के माध्यम से, सुख का अनुभव करते हुए,
सभी दोषों को अच्छी तरह जानते हुए,
मैंने सांसारिक बंधनों को पार कर लिया है। (6) [1900]

ग्यारहवें युग में
पैंतीस [अलग-अलग] राजा थे1023
अंबरमसासमा के नाम से जाने जाने वाले, 1024
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा। (7) [1901]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8)

इस प्रकार पूज्य पुप्पचादनिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

पुप्पचादनिया थेरा की कथा समाप्त होती है

135. रहोसञ्ञक 1025

हिमालय श्रृंखला के पास,
वासभा नाम का एक पर्वत है। मेरा आश्रम बहुत अच्छी तरह से बना है
[वहाँ] उस पर्वत की तलहटी में। (1) [1902]

उस ब्राह्मण ने उस समय तीन हज़ार वर्षों तक [अपनी शिक्षाएँ] दीं। छात्रों को एक साथ लाकर,1026
वह एक तरफ [वहाँ, बैठे] रहते थे। (2) [1903]

मंत्रों के ब्राह्मण गुरु, एक तरफ [वहाँ] बैठे हुए,

1021 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1022 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
1023 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1024 lit., "गया"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1025 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1026 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

बुद्ध के ज्ञान की खोज में, 1027
ज्ञान पर उनका हृदय प्रसन्न हुआ [तब]। (3) [1904]

वहाँ अपने मन को प्रसन्न करने के बाद, मैं पत्तों से बनी चटाई पर बैठ गया; पद्मासन में,1028
मैं मौके पर ही चल बसा। (4) [1905]

तब से इकत्तीस युगों में
मुझे वह बोध प्राप्त हुआ [तब], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
ज्ञान को समझने का फल। (5) [1906]

सत्ताईसवें युग में एक राजा था, सिरिधारा, 1030
एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (6) [1907]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1908]

इस प्रकार पूज्य रहोसंञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे।

रहोसंञ्चक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

136. कैम्पकपुप्पिया 1031

[मैंने बुद्ध को देखा], भोर का तारा, 1032
डिनर-प्लेट वृक्ष की तरह चमकता हुआ, 1033

1027 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

1028 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1029 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1030 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1031 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1032 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1033 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

एक पर्वत के भीतर बैठकर, सभी दिशाओं का सर्वेक्षण कर रहे थे। (1) [1909]

तब तीन युवा ब्राह्मण पुरुष थे, जो अपनी-अपनी [ब्राह्मण] कलाओं में अच्छी तरह से प्रशिक्षित थे।1034
तपस्वियों का सामान लेकर,
वे मेरे पीछे आ रहे थे। (2) [1910]

एक थैले में सात फूल थे
वे तपस्वी वहाँ लेट गए थे। उन्हें उठाकर मैंने उन्हें
वेसभु के ज्ञान के लिए दिया। (3) [1911]

तब से इकत्तीस युगों में

मैंने वे फूल [उसे] अर्पित किए,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह ज्ञान का फल है- पूजा । (4) [1912]

उन्नीसवें युग में [इसलिए,] विहताभ नामक एक राजा, 1035
महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (5) [1913]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1914]

इस प्रकार पूज्य चंपकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

कैम्पाकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

137. अत्थासंदसक 1036

एक बड़ी, नुकीली इमारत में बैठे, 1037
मैंने विश्व के नेता को देखा, निष्कलंक, शक्ति से परिपूर्ण,
भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित। (1) [1915]

1034 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
1035 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1036 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1037 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

"देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा
एक लाख को तीन गुना ज्ञान, विशेष ज्ञान, 1038 महाशक्तियों के साथ,
संबुद्ध के चारों ओर? (2) [1916]

असीम ज्ञान वाले संबुद्ध को देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा, जिनके ज्ञान में कोई निकट नहीं आता
[इस दुनिया में] इसके देवताओं और मनुष्यों के साथ? (3) [1917]

देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता
[उसे,] संपूर्ण,1039 रत्नों की खान, धम्म -शरीर की व्याख्या1040

[जिसे कोई] कभी चोट नहीं पहुँचा सकता?” (4) [1918]

नारद सरगच्छिया
इन तीन श्लोकों को कहकर [तब]
स्तुति की 1041 [बुद्ध] पदुमुत्तरा,
अजेय, संबुद्ध। (5) [1919]

मेरे हृदय में उस आनंद और बुद्ध की मेरी स्तुति के कारण, एक लाख युगों तक
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (6) [1920]

तीसवें युग में [इसलिए]
सुखित्त1042 नामक क्षत्रिय
वह एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला था, सात रत्नों का स्वामी था। (7) [1921]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (8) [1922]

इस प्रकार पूज्य अत्थासंदसक थेरा ने ये श्लोक कहे।

अत्थासंदसक थेरा की कथा समाप्त होती है

1038 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1039 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1040 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1041 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
1042 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

---

138. एकपासादनिया 1043

[यद्यपि] मेरा नाम “नारद” था, फिर भी मैं [तब] “केशव” के नाम से जाना जाता था,1044 जो अच्छे और बुरे दोनों की तलाश करता था,1045
मैं बुद्ध की उपस्थिति में आया। (1) [1923]

प्रेममय हृदय वाले, करुणामय, अत्थादस्सी, इतने महान ऋषि, [संसार के] प्राणियों को सांत्वना देने वाले,
आँखों से परिपूर्ण व्यक्ति ने अपने धम्म का उपदेश दिया । (2) [1924]

अपने दोनों हाथों को अपने सिर पर रखकर, अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए,
शिक्षक की पूजा करने के बाद,
मैं पूर्व की ओर मुख करके चला गया। (3) [1925]

सत्रह सौवें युग में मैं राजा था, पृथ्वी का शासक, अमितवासना के नाम से जाना जाता था, 1046
एक शक्तिशाली पहिया घुमाने वाला। (4) [1926]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1927]

इस प्रकार पूज्य एकापासादनिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

एकापासादनिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

139. सालपुप्फदायक 1047

मैं उस समय जानवरों का राजा था, एक [जंगली] शेर जो निडर था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1043 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1044 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1045 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1046 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1047 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

एक पहाड़ी चट्टान में शिकार करते समय,

मैंने दुनिया के नेता को देखा। (1) [1928]

“यही महान नायक होगा;
वह बहुत से लोगों को मुक्त करेगा। 1050
तो फिर क्या मुझे उसके पास नहीं जाना चाहिए?
देवताओं के देवता, मनुष्यों में बैल?” (2) [1929]

साल के पेड़ की एक शाखा तोड़ना
मैं [इसे] ले गया, फूल [और] कलियाँ।1051
संबुद्ध के पास पहुँचकर,
मैंने [उन्हें] वे उत्कृष्ट फूल दिए। (3) [1930]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उसे] वे फूल अर्पित किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (4) [1931]

और नौ युग पहले
उस समय तीन [अलग-अलग] राजा थे
विरोचना नाम से जाने जाते थे, 1052
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (5) [1932]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1933]

इस प्रकार पूज्य सालपुप्पदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

सालपुप्पदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

1048 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1049 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1050 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1051 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1052 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

140. पियालाफलदायक 1053

मैं तब दूसरों को हानि पहुँचाने वाला था, अन्य प्राणियों का हानिकर्ता। 1054
मैं एक [पहाड़] ढलान पर विश्राम कर रहा था
शिक्षक के पास [जिन्हें] सिख धर्म के नाम से जाना जाता है। (1) [1934]

शाम और सुबह में
मैंने विश्व-प्रमुख बुद्ध को देखा। [लेकिन] मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं था
द्विपद-स्वामी, तटस्थ। (2) [1935]

एक पियाला फल लेकर , मैं
बुद्ध की उपस्थिति में गया।
भगवान ने इसे स्वीकार किया,
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल। (3) [1936]

तब से दूसरों के हित में मैंने मार्गदर्शक सिख की सेवा की,1055 और उस प्रसन्नता के साथ अपने हृदय में
मैं वहीं पर मर गया। (4) [1937]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने वह फल [बुद्ध को] दिया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
फल देने का फल यही है। (5) [1938]

पंद्रहवें युग पूर्व
तीन [पुरुष] थे जिनका नाम मालाभी था, महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी। (6) [1939]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [1940]

इस प्रकार पूज्य पियालफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे

पियालाफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1053 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है

1054 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1055 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन

(पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सारांश:

सोभी और सुदस्सना भी, चंदन, पुप्पचदना, राहो और चंपकपुफ्फी और अत्थासंदसक, एकदुस्सी, सालददा के साथ
[और] फलाडायक, दसवां।
गिनने पर स्पष्ट रूप से [यहाँ] हैं
सत्तर श्लोक और दो [अधिक]

शोभिता अध्याय, चौदहवाँ।

छत्त अध्याय, पंद्रहवाँ

---

141. अधिच्छत्तिया 1056

जब भगवान बुद्ध का देहांत हुआ, 1057
अत्थादस्सी, परम पुरुष, ने एक ऊपरी छत्र बनवाया, 1058
मैंने इसे [उनके] स्तूप पर [तब] रखा। (1) [1941]

समय-समय पर [वहाँ] आकर, मैंने विश्व-नेता का आदर किया। एक पुष्प आवरण बनवाकर
मैंने इसे छाते पर रख दिया। (2) [1942]

मैंने सत्रहवें युग [पहले] में दैवीय शासन किया।
मैं मानवीय अवस्था में नहीं गया:
यह स्तूप -पूजा का फल है । (3) [1943]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [1944]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1056 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

1057 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1058 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन

(पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

इस प्रकार पूज्य अधिच्छत्तीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अधिच्छत्तीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

142. थंबरोपक 1059

जब जगत के स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए, तो पुरुषों के बैल, धम्मदस्सी,
मैंने बैनरों वाला एक स्तंभ लगाया
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध स्तूप पर [तब]। (1) [1945]

सीढ़ी बनाने के बाद
मैं उस सबसे अच्छे स्तूप पर चढ़ गया। एक सफेद चमेली का फूल लेकर
मैंने उसे उस खंभे पर रख दिया। (2) [1946]

हे! बुद्ध! हे! शिक्षा!
हे! हमारे गुरु की [महान] उपलब्धि! मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का ज्ञान नहीं है:
यह स्तूप -पूजा का फल है । (3) [1947]

इसके बाद चौरानवेवें युग में
थूपसिखा नाम से जाने जाने वाले सोलह [विभिन्न] सम्राट थे, 1060
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (4) [1948]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1949]

इस प्रकार पूज्य थंबरोपका थेरा ने ये श्लोक कहे।

थंबरोपका थेरा की कथा समाप्त होती है

---

143. वेदिकारक 1061

जब जगत के स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए, पियादस्सी, परम पुरुष,

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1059 अपदान क्रमांक बीजेटीएस संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें पीटीएस संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है
1060 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1061 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से, मैंने बुद्ध की एक रेलिंग बनाई। (1) [1950]

इसे रत्नों से घेरकर मैंने वह अंतिम [रेल] बनाई, और उस महान रेलिंग को बनाकर
मैं मौके पर ही चल बसा। (2) [1951]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, आकाश में रत्न ले जाए जाते हैं:
यह अच्छे कर्मों का फल है। (3) [1952]

सोलहवें युग में
बत्तीस [अलग-अलग] राजा थे, [सभी] महान शक्ति वाले चक्र-चालक,
[और उनका नाम] मणिप्पभा रखा गया।1062 (4) [1953]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (5) [1954]

इस प्रकार पूज्य वेदिकारक थेरा ने ये श्लोक कहे।

वेदिकारक थेरा की कथा समाप्त होती है

144. सपरीवारिया 1063

विजेता, पद्ममुत्तरा,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, आग के धधकते स्तंभ की तरह,
तब संबुद्ध का देहांत हो गया।1064 (1) [1955]

जब महान वीर का देहांत हुआ,1065

1062 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1063 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1064 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1065 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

वहाँ एक स्तूप बनाया गया था। दिन-रात वे सेवा करते रहे।
परम उत्तम अवशेष-गर्भ। (2) [1956]

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से
मैंने चंदन की रेलिंग बनाई,
और ढेर सारी धूप भी दी,
तब स्तूप उपयुक्त था। (3) [1957]

अस्तित्व में स्थानांतरण करते हुए, चाहे वह मानवीय हो या दिव्य, मैंने कोई निम्न अवस्था नहीं देखी:
यह पूर्व कर्मों का फल है। (4) [1958]

पंद्रह सौ युग पहले, आठ लोग थे
उन सभी का नाम समात्ता था, 1068
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (5) [1959]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1960]

इस प्रकार पूज्य सपरिवरीय थेरा ने ये श्लोक कहे

सपरिवरीय थेरा की कथा समाप्त होती है।

---

145. उम्मापुप्पिया 1069

जब सिद्धार्थ, धन्य, यज्ञ प्राप्तकर्ता,
विश्व पूजित का देहांत हुआ, 1070
एक स्तूप उत्सव 1071 हुआ। (1) [1961]

1066 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
1067 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1068 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1069 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1070 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1071 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

जब उत्सव चल रहा था
महान ऋषि सिद्धार्थ के लिए, एक [नीला] अलसी का फूल लेकर1072 [तब
मैंने इसे स्तूप पर रखा। (2) [1962]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [वहाँ] अर्पित किया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह स्तूप -पूजा का फल है । (3) [1963]

और नौ युग पहले
अस्सी सम्राट थे। [सभी] सोमदेव के नाम से जाने जाते थे, 1073
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (4) [1964]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1965]

इस प्रकार पूज्य उम्मापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

उम्मापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

146. अनुलेपादायक 1074

मैंने [महान] ऋषि, अनोमादस्सी की बोधि-रेलिंग1075 बनाई। प्लास्टर के गोले देने के बाद,

मैंने [सारा] काम हाथ से किया। (1) [1966]

अनोमादस्सी, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति,
शिक्षक, भिक्षुओं के साथ बैठे हुए, 1076
उस कार्य को इतनी अच्छी तरह से किया हुआ देखकर,
[तब] मेरे बारे में यह श्लोक कहा: (2) [1967]

1072 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है
1073 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1074 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1075 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1076 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

"इस प्लास्टरिंग कार्य के कारण, और [उसके] इरादे1077 और संकल्प के कारण, सुख का आनंद लेने के बाद,
वह दुख का अंत करेगा।" (3) [1968]

मेरे चेहरे के भाव मेरी खुशी दर्शाते हैं; मैं शांत और आत्म-नियंत्रित हूँ।
मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ
बुद्ध के 1078वें युग में। (4) [1969]

जब सौवां युग पहले और उससे कम नहीं पूरा हो गया था,
मुझे 1079 में राजा सब्बागघना नाम दिया गया, 1080
एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला। (5) [1970]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1971]

इस प्रकार पूज्य अनुलेपादायक थेरा ने ये श्लोक कहे

अनुलेपादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

147. मग्गदायक 1081

आँखों से परिपूर्ण वह नदी पार करने के बाद जंगल में चला गया
मैंने सिद्धार्थ, 1082 संबुद्ध को देखा,
सभी उत्कृष्ट लक्षणों को धारण करते हुए। (1) [1972]

कुदाल 1083 और टोकरी लिए हुए
मैंने [तब] उस रास्ते को समतल किया,

1077 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है

1078 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1079 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

1080 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1081 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1082 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1083 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।

और शिक्षक की पूजा करने के बाद,
मैंने अपने हृदय को बहुत प्रसन्नता दी। (2) [1973]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
सड़क बनाने का यही फल है। (3) [1974]

सत्तावनवें युग में,
शीर्ष पर एक ही व्यक्ति था;
वह एक स्वामी, मनुष्यों का शासक था,
[जो] सुप्पबुद्ध के नाम से जाने जाते थे।1084 (4) [1975]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (5) [1976]

इस प्रकार पूज्य मगदायका थेरा ने ये श्लोक कहे।

मगदायका थेरा की कथा समाप्त होती है

---

148. फलकदायक 1085

शहर में एक गाड़ी बनाने वाला,
मैं लकड़ी के काम में कुशल था। चंदन का तख्ता बनाने के बाद
मैंने इसे दुनिया के रिश्तेदार को दे दिया। (1) [1977]

सोने से बना, यह दिव्य महल [सभी दिशाओं] को रोशन करता है। हाथी, दिव्य और अश्व
मुझे रथ उपलब्ध कराए जाते हैं। (2) [1978]

महल और पालकी भी
इच्छा अनुसार निर्मित किए जाते हैं;
बिना छाने, 1086 रत्न मेरे पास आते हैं:
यह एक तख्ते-[उपहार] का फल है। (3) [1979]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उसे] वह तख्ता-[उपहार] तब दिया था,

1084 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1085 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

1086 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
जो एक तख्ते-[उपहार] का फल है। (4) [1980]

सत्तावनवें युग में,
चार [पुरुष जिनका नाम] भवानीमित्त1087 था
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले राजा थे। (5) [1981]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1982]

इस प्रकार पूज्य फलकदायक थेरा ने ये श्लोक कहे

फलकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

149. वटंसकिया 1088

स्वयं-रूप, अजेय, सुमेधा के नाम से जाने जाने वाले [बुद्ध], अपने विरह को सुदृढ़ करते हुए,
एक बड़े जंगल में चला गया। (1) [1983]

एक साल के पेड़ को खिलते हुए देखकर ,
मैंने [तभी] एक बालों का हार बांधा। विश्व नेता के आमने-सामने,
मैंने [वह हार] बुद्ध को दिया। (2) [1984]

जब से मैंने [उन्हें] वह फूल अर्पित किया है, तब से तीस हज़ार युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [1985]

उन्नीस सौवें युग में
सोलह [नाम वाले] निम्मिता, 1089 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी थे। (4) [1986]

1087 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1088 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1089 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1987]

इस प्रकार पूज्य वतंसकिया थेरा ने ये श्लोक कहे

वतंसकिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

150. पल्लंकडायक 1090

मैंने सुमेधा को, जो विश्व का सर्वश्रेष्ठ, धन्य, तटस्थ है,
एक [अच्छी तरह से बना हुआ] सोफा [उसके उपयोग के लिए,]
जिस पर एक ऊपरी आवरण था। (1) [1988]

उस समय वह [अच्छी तरह से बना हुआ] सोफा सात रत्नों से जड़ा हुआ था
मेरी सोच के अनुसार,
[वह] हमेशा मेरे लिए उत्पादित होता है।1091 (2) [1989]

तीस हज़ार युगों में
जब से मैंने [उसे] वह सोफा दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
जो सोफे-[उपहार] का फल है। (3) [1990]

बीस हज़ारवें युग में,
वहाँ तीन [नाम वाले] सुवन्नाभ थे, 1092 चक्र घुमाने वाले राजा, महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी। (4) [1991]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [1992]

इस प्रकार पूज्य पल्लंकडायक थेरा ने ये श्लोक कहे

पल्लंकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1090 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1091 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1092 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सारांश:

चट्टा, थंबा और वेदी, परिवार', उम्मापुफिया, अनुलेपा, मग्गदायि, फलदायि, वातांसक, पल्लंकादायि, छप्पन
श्लोक [इस प्रकार] यहाँ घोषित किए गए हैं।

चट्टा अध्याय, पंद्रहवाँ।

बंधुजीवक अध्याय, सोलहवाँ

---

151. बंधुजीव 1093

मैंने उसे देखा, चाँद की तरह निर्मल, शुद्ध और उज्ज्वल, शांत,
उसकी आनंदमय अवस्थाएँ समाप्त हो गईं, संसार के बंधनों से परे, लोगों को निर्वाण तक पहुँचाते हुए,
पार कर लिया है, और दूसरों को पार करने में मदद कर रहा हूँ, जंगल में ध्यान कर रहा हूँ,
शांत और पूरी तरह से आत्म-नियंत्रित। (1-2) [1993-1994]

फिर, श्रेडिंग1094 बंधुजी'व'आका 1095
एक डोरी पर फूल,
मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया,
सिख धर्म, संसार का रिश्तेदार। (3) [1995]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [1996]

सातवें युग पूर्व
मनुष्यों के स्वामी, जो बहुत प्रसिद्ध हैं,

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1093 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1094 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1095 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

वहाँ एक शक्तिशाली चक्र-घुमाने वाला राजा था
जिसका नाम समंतचक्खु था।1096 (5) [1997]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [1998]

इस प्रकार पूज्य बंधुजीवका थेरा ने ये श्लोक कहे

बंधुजीवका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

152. ताम्बापुप्पिया 1097

दूसरों के परिवहन कार्य में कार्यरत रहते हुए, मैंने 1098 में एक अपराध किया था। मुझे जंगल में निर्वासित कर दिया गया था;
डर से भरा हुआ, मैं भयभीत था। (1) [1999]

फूलों से लदे एक पेड़ को देखकर
छोटे, सुव्यवस्थित गुच्छों के साथ, तांबे के रंग का एक फूल चुनते हुए,
मैंने इसे बोधि पर बिखेर दिया। (2) [2000]

उस बोधि, परम पाटली वृक्ष के चारों ओर झाड़ू लगाने के बाद,
पद्मासन में आना,1099
मैं बोधि वृक्ष की जड़ों में रुका था। (3) [2001]

जिस रास्ते पर मैं गया था, उसे खोजते हुए, वे मेरे सामने आ गए। और उन्हें देखते ही, वहीं पर
मुझे उत्कृष्ट बोधि याद आया। (4) [2002]1101

1096 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1097 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1098 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1099 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1100 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1101 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

बोधि [वृक्ष] की पूजा करने के बाद
एक ऐसे मन के साथ जो बहुत स्पष्ट था,
मुझे विभिन्न प्रकार के 1102 पेड़ मिले [तब]

एक भयानक पहाड़ी चट्टान के अंदर। (5) [2003]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [2004]

इसके तीसवें युग में
एक राजा था, शमफुशिता,1103 एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (7) [2005]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [2006]

इस प्रकार पूज्य तंबपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

ताम्बापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

153. विथिसमज्जक 1104

[मैंने देखा] विश्व-प्रमुख सौ किरणों वाले उगते सूरज की तरह, दोपहर के पीले किरणों वाले सूरज की तरह निकलते हुए
पंद्रहवें [दिन] को चंद्रमा1105 की तरह।1106 (1) [2007]

वहाँ अड़सठ हज़ार [भिक्षु] थे, जिन्होंने संबुद्ध के चारों ओर सभी दोषों को नष्ट कर दिया था,
द्विपाद-स्वामी, मनुष्यों का बैल। (2) [2008]

1102 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं बीजेटीएस सिंहली व्याख्या बलन्ना वु मामा का अनुसरण करता हूँ

1103 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1104 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1105 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1106 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस सड़क को साफ करने के बाद
विश्व नेता, सारथी, मैंने [तब] वहाँ एक बैनर फहराया,
एक ऐसे दिमाग के साथ जो बहुत स्पष्ट था। (3) [2009]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह बैनर [उसे] दिया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
बैनर देने का यही फल है। (4) [2010]

उसके बाद चौथे युग में मैं एक महान शक्ति वाला राजा था, जो सुधज1107 के नाम से प्रसिद्ध था।
और सभी लक्षणों से युक्त था। (5) [2011]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2012]

इस प्रकार पूज्य विथिसमज्जक थेरा ने ये श्लोक कहे

विथिसमज्जक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

154. कक्कारूपुजक 1108

एक देवता का पुत्र होने के नाते,
मैंने 1109 सिख धर्म, जो कि नेता है, की पूजा की। कक्कारू का फूल लेकर
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (1) [2013]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2014]

और नौ युग पहले
मैं राजा सत्तुत्तमा था, 1110

1107 रत्तंबरधारो , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबर धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1108 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

1109 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1110 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर वाली रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2015]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2016]

इस प्रकार पूज्य कक्कारूपुजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

कक्कारूपुजक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

155. मंदारवपूजक 1111

एक देवता का पुत्र होने के नाते,
मैंने मंदारवा के फूलों से सिख धर्म के नेता की पूजा की [जो]
मैंने [तब] बुद्ध को अर्पित किया। (1) [2017]

उस दिव्य माला ने
तथागत को पूरे एक सप्ताह तक ढके रखा। सभी लोग वहाँ एकत्रित होकर तथागत का आदर कर रहे थे। (2) [2018]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2019]

और दसवें युग पूर्व
मैं राजा था, जुटिंदारा, 1113
महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2020]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2021]

संभवतः और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1111 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1112 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1113 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

इस प्रकार पूज्य मंदारवपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

मंदारवपूजक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

156. कदंबपुप्पिया 1114

हिमालयी क्षेत्र में,
कुक्कुट नाम का एक पर्वत है।
उसी पर्वत की तलहटी में,
सात [अकेले] बुद्ध निवास करते थे।1116 (1) [2022]

खिले हुए कदम [वृक्ष] को देखकर, जैसे सभी दीपों के उठे हुए राजा,1117 दोनों हाथों से [फूल] लेते हुए
मैंने उन्हें बुद्धों पर रखा। (2) [2023]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2024]

बानवेवें युग में
सात [नाम वाले] फुल्लानायका1118
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले राजा थे। (4) [2025]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2026]

इस प्रकार पूज्य कदंबपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

कदंबपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1114 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है

1115 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1116 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1117 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1118 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

---

157. तिणासुलका 1119

हिमालयी क्षेत्र में,
वहाँ एक पर्वत है, भूतगण।1120
एक [अकेला] विजेता वहाँ रहता था,
स्वयं-निर्मित, एक संसार-अस्वीकारक। (1) [2027]

चमेली के फूल लेकर
मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया। एक लाख युगों से एक कम
मैं [पुनर्जन्म में] पीछे नहीं हटा।1121 (2) [2028]

ग्यारहवें युग में
[मैं] एक धरणीरुहा था,1122
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2029]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2030]

इस प्रकार पूज्य तिनसुलक थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिनसुलक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

158. नागपुप्फिया 1123

सुवच्छा नाम का एक व्यक्ति था 1124
मंत्रों का एक ब्राह्मण गुरु, जिसे उसके अपने छात्रों ने आगे रखा था, एक पर्वत पर रहता था। (1) [2031]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1119 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1120 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1121 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1122 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1123 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1124 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

विजेता, पदुमुत्तरा, बलि प्राप्तकर्ता,
मेरे उत्थान की कामना के साथ
तब मेरी उपस्थिति में आए। (2) [2032]

वह आकाश में इधर-उधर चलता रहा, मानो वह धुआँ छोड़ रहा हो और जल रहा हो,1125 [और] मुझे मुस्कुराने के बाद,1126 वह पूर्व की ओर मुँह करके चला गया। (3) [2033]

और उस चमत्कार को देखकर, अजूबे से रोंगटे खड़े हो गए, एक आयरनवुड फूल लेकर,
मैंने [इसे] उसके रास्ते में बिखेर दिया।1127 (4) [2034]

उस फूल को बिखेरने के बाद से लेकर अब तक के लाखों युगों में, मेरे हृदय में उत्पन्न आनंद के कारण,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (5) [2035]

इकतीसवें युग में [इसलिए] मैं राजा, महारथ, 1128 था
महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (6) [2036]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2037]

इस प्रकार पूज्य नागपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

नागपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

1125 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (PSI यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" BJTS सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है

1126 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1127 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1128 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

159. पुन्नागपुप्पिया 1129

एक वन उपवन में गोता लगाते हुए,
मैं [तब] एक शिकारी के रूप में वहाँ रहता था। एक लॉरेल1130 के पेड़ को खिलते हुए देखकर,
मुझे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की याद आई। (1) [2038]

[उससे] एक फूल तोड़कर,
अच्छी तरह से सुगंधित [और] सुगंधों से महका हुआ, रेत का एक स्तूप बनाकर,1131
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (2) [2039]

तब से बानवे युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2040]

इक्यावनवें युग में [तब से]
तामोनुदा, 1132 नामक एक शासक रहता था
एक चक्र-घुमाने वाला राजा, जिसके पास बहुत शक्ति थी और जो सात रत्नों का स्वामी था। (4) [2041]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2042]

इस प्रकार पूज्य पुन्नागपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

पुन्नागपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

160. कुमुददायक 1133

हिमालय पर्वतमाला के पास एक बड़ी, प्राकृतिक झील थी

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1129 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1130 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1131 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1132 रत्तंबरधरो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करने वाला।" धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1133 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

गुलाबी और नीले कमलों से ढका हुआ,
चारों ओर बिखरे हुए सफेद कमलों के साथ।1134 (1) [2043]

उस समय मैं वहाँ एक पक्षी था, जिसे काकुधा नाम से जाना जाता था,1135 पुण्य/अपराध में विद्वान,1136
नैतिक और बुद्धिमान भी। (2) [2044]

पद्ममुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, यज्ञ प्राप्तकर्ता,
महान ऋषि उस [महान] झील के आसपास भटकते रहे। (3) [2045]

जल में उगा हुआ कमल लेकर,
मैंने इसे [तब] महान ऋषि को दे दिया। मेरे विचारों को समझते हुए,
उस महान ऋषि ने इसे स्वीकार किया। (4) [2046]

अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, एक लाख युगों तक वह उपहार देने के बाद
मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का ज्ञान नहीं हुआ है। (5) [2047]

सोलह सौवें युग में
आठ लोग थे, [जिनमें से सभी का] नाम वरुण था,
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (6) [2048]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2049]

इस प्रकार पूज्य कुमुददायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

कुमुददायक थेरा की कथा समाप्त होती है

सारांश:

बंधुजीव, तांबपुप्फी, वीथी, कक्कारापुप्फिया,

1134 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1135 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1136 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मंदारवा, कदंबी, सुलिका, नागपुप्पिया, पुन्नागा और कोमुदी: इनमें छप्पन श्लोक हैं।
[इस अध्याय में, पूर्ण रूप से] घोषित किया गया।

बंधुजीवक अध्याय, सोलहवाँ

सुपरीकारिया अध्याय, सत्रहवां

---

161. सुपारिकारिया 1137

जिसका नाम पद्म था, मनुष्यों का बैल, द्विपद स्वामी, नेत्रों से परिपूर्ण, जो प्रस्थान कर रहा था
वन, [तब] धम्म का प्रचार कर रहा था । (1) [2050]

वहाँ एक आत्माओं का समूह (1138) उस महान ऋषि के निकट ठहर रहा था। वे जिस भी कार्य के लिए आए थे।
उन्होंने हर समय देखभाल की। (2) [2051]

बुद्ध के वचनों और अमरता के उपदेश को समझते हुए, प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से,
मैंने उंगलियां चटकाकर उसकी सेवा की। (3) [2052]

अच्छे अभ्यास के फल को देखो, महान शिक्षक की सेवा के फल को देखो: तीस हजार युगों में,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (4) [2053]

उनतीस सौवें युग में, समलंकटा नाम के एक [पुरुष],1139
वह एक महान शक्ति वाला पहिया घुमाने वाला था,
सात रत्नों का स्वामी। (5) [2054]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1137 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1138 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1139 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2055]

इस प्रकार पूज्य सुपारीचरिया थेरा ने ये श्लोक कहे

सुपारीचरिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

162. काणवेरापुप्पिया 1140

सिद्धार्थ नामक धन्य, विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित, 1141 तब शहर में प्रवेश किया। (1) [2056]

राजा के भीतरी कक्षों में1142 [वहाँ] मैं एक विश्वसनीय1143 पहरेदार के रूप में रहता था। जब मैं महल के अंदर होता था,

मैंने [बुद्ध], विश्व-नेता को देखा। (2) [2057]

एक काणवेरा फूल लेकर,
मैंने इसे भिक्षुओं में बाँट दिया।1144
फिर मैंने उनमें से कुछ और बाँट दिए
बुद्ध के लिए, अलग से। (3) [2058]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह पुष्प-अर्पण किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
पुष्प-अर्पण का फल । (4) [2059]

सत्तासीवें युग में
वहाँ चार [नाम] महिद्धिका, 1145 चक्र घुमाने वाले महान शक्ति वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी थे। (5) [2060]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1140 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1141 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1142 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1143 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1144 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1145 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2061]

इस प्रकार पूज्य काणवेरापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

काणवेरापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

163. खज्जकदायक 1146

पहले मैंने कुछ फल दिए थे [तब]
हे भगवान तिस्सा, मैंने [उन्हें] नारियल और साथ ही
मिठाई भी दी, जो उनके लिए उपयुक्त थी। (1) [2062]

और उसे बुद्ध को, महान ऋषि तिस्सा को, आनंद चाहने वाले1147 को देते हुए, मैं प्रसन्न हुआ,
जैसा मैंने चाहा, वैसे ही पुनर्जन्म हुआ। (2) [2063]

तब से बानवे युगों में
मैंने उसे तब वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही फल देने का फल है। (3) [2064]

तेरहवें युग पूर्व एक राजा थे, इंदसमा, 1148
एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2065]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2066]

इस प्रकार पूज्य खज्जकदायक थेरा ने ये श्लोक कहे

खज्जकदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1146 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है

1147 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1148 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।

---

164. देसपूजक 1149

अत्थादस्सी, धन्य पुरुष,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, आकाश में आरोहित हुए
उस समय हवा में जा रहा था। (1) [2067]

मैंने उस स्थान की पूजा की जहाँ
गुरुजी खड़े ही थे कि तभी वह महान ऋषि ऊपर की ओर उठे।
[अपने] हाथों से प्रसन्न होकर। (2) [2068]

अठारह सौ युगों में
जब से मैंने महान ऋषि को देखा है [उस समय], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह क्षेत्र- पूजा का फल है । (3) [2069]

ग्यारह सौवें युग में
मैं गोसुजाता के नाम से जाना जाता था, 1150
एक महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2070]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2071]

इस प्रकार पूज्य देसपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

देसपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

165. कणिकारच्छदनिया 1151

वेसभु नामक संबुद्ध,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, ऋषि ने एक विशाल वन में प्रवेश किया
एक दोपहर आराम करने के लिए। (1) [2072]

डिनर-प्लेट फूल तोड़कर मैंने उसके लिए एक चंदवा बनाया

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1149 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1150 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1151 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

वह पुष्प चंदवा बनाते हुए,
मैंने इसे बुद्ध को भेंट किया। (2) [2073]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने [उन्हें] वे फूल अर्पित किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2074]

इसके बीसवें युग में
आठ राजा थे1152 [नाम] सोन्णाभ, चक्र-चालक जिनके पास महान शक्ति थी, सात रत्नों के स्वामी। (4) [2075]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2076]

इस प्रकार पूज्य कणिकारच्छदनिया थेरा ने ये श्लोक कहे

कणिकारच्छदनिया थेरा की कथा समाप्त होती है।

---

166. सप्पिदायक 1153

फिर, भगवान, जिनका नाम फुस्सा, यज्ञ प्राप्तकर्ता है,
हीरो, सड़क पर जा रहा था,
कई लोगों को निर्वाण तक पहुँचा रहा था। (1) [2077]

कुछ समय बाद भगवान
तब वह मेरे [स्वयं] सामने आया, [और] मैंने [उसका] भीख का कटोरा लेकर,
[उसे] कुछ घी दिया।1154 (2) [2078]

तब से बानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह घी दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही घी देने का फल है। (3) [2079]

इसके बाद छप्पनवें युग में

1152 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1153 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1154 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

सन्दोदक नाम का एक व्यक्ति था, 1155
एक महान शक्ति वाला, सात रत्नों का स्वामी, चक्र घुमाने वाला राजा। (4) [2080]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2081]

इस प्रकार पूज्य सप्पिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

सप्पिदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

167. युथिकपुप्पिया 1156

चंदाभागा नदी के किनारे, धारा के साथ यात्रा करते हुए, मैंने वहाँ स्वयं-एकत्व को देखा,
खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह। (1) [2082]

चमेली का फूल लिए हुए,
मैं [तब] उस महान ऋषि के पास पहुँचा। प्रसन्न होकर, मेरे हृदय में आनंद था,
मैंने बुद्ध को [वह फूल] दिया। (2) [2083]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2084]

सड़सठवें युग में
एक [नाम] समुद्धरा था, 1157
एक चक्र-घुमाने वाला राजा, महान शक्ति वाला, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2085]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2086]

1155 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1156 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

1157 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

इस प्रकार पूज्य युथिकापुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

युथिकापुप्फिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

168. दुस्सादायक 1158

सुंदर तिवारा शहर में,
मैं तब राजा का पुत्र था। उपहार प्राप्त करने के बाद, 1159
मैंने इसे शांत [बुद्ध] को दिया। (1) [2087]

भगवान ने इसे स्वीकार किया;
उन्होंने कपड़े को अपने दोनों हाथों से छुआ। स्वीकार करने के बाद, सिद्धार्थ
फिर हवा में, आकाश में ऊपर उठ गया। (2) [2088]

जब बुद्ध जा रहे थे [दूर]
वह कपड़ा उसके पीछे उड़ गया।
मैंने वहाँ अपने दिल को खुशी दी:
'बुद्ध सर्वोच्च व्यक्ति हैं।' (3) [2089]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह कपड़ा [उसे] तब दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही कपड़ा देने का फल है। (4) [2090]

सड़सठवें युग में
वहाँ एक चक्र घुमाने वाला सम्राट था, एक महान शक्ति वाला लोगों का स्वामी,
जिसे परिशुद्ध नाम से जाना जाता था।1160 (5) [2091]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2092]

इस प्रकार पूज्य दुस्सादायक थेरा ने ये श्लोक कहे

दुस्सादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1158 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है

1159 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1160 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

169. समादपका 1161

शहर बंधुमती में,
वहाँ एक बड़ी भीड़ थी1162 [तब]। मैं उनमें सबसे उत्तम था,
और वे सब मेरे साथी थे।1163 (1) [2093]

उन सबको एक साथ बुलाकर
मैंने [तब] अच्छे कर्मों को बढ़ावा दिया,1164
"आइए अतुलनीय पुण्य-क्षेत्र का निर्माण करें,
[भिक्षुओं की] सभा, एक इमारत।"1165 (2) [2094]

मेरी इच्छाओं के वे अनुयायी1166
सहमत हुए [यह कहते हुए], "उत्कृष्ट!"
और [जब] उन्होंने इमारत का निर्माण पूरा कर लिया,
हमने इसे विपस्सी को दे दिया [तब]। (3) [2095]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने उसे वह इमारत तब दे दी थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह इमारतों को देने का फल है। (4) [2096]

उनसठवें युग में [इसलिए]
वहाँ लोगों का एक स्वामी था,
एक महान शक्ति वाला चक्र घुमाने वाला राजा, जिसे आवेय्या के नाम से जाना जाता था।1168 (5) [2097]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2098]

इस प्रकार पूज्य समादपक थेरा ने ये श्लोक कहे

समादपक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1161 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है
1162 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1163 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1164 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1165 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1166 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
1167 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1168 lit., "गया"

---

170. पंचांगुलिया 1169

तिस्सा के नाम से जाने जाने वाले भगवान,
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, ऋषि, अपनी सुगंधित कुटिया के अंदर, 1170
समय अच्छे से बीत रहा था। (1) [2099]

एक माला और कुछ सुगंध लेकर, मैं विजेता के पास गया। चुपचाप,1171 धन्य व्यक्ति पर,
मैंने 1172 सुगंधित हथेली का निशान 1173 [तब] बनाया। (2) [2100]

तब से बानवे युगों में
मैंने उसे वे इत्र भेंट किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
सुगंधित हथेली के निशान का फल। (3) [2101]

बहत्तरवें युग में
मैं राजा था, सायंभ, 1174
एक महान शक्ति वाला चक्र-चालक, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2102]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2103]

इस प्रकार पूज्य पंचांगुलिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

पंचांगुलिया थेरा की कथा समाप्त होती है

सारांश:

सुपारी और काणवेरी, खुज्जक, देसपूजक, काणिकारा, सप्पिदद, युथिका, दुस्सादायक,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1169 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है

1170 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1171 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1172 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1173 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1174 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

माल और पंचांगुलिका, चौवन श्लोक।

सत्रहवाँ सुपारीचरीय अध्याय

कुमुदा अध्याय, अठारहवाँ

---

171. कुमुदमालिया 1175

हिमालय पर्वत में एक बड़ी, प्राकृतिक झील थी। मैं वहाँ जन्मा एक राक्षस था,
भयानक रूप का, महान शक्ति वाला। (1) [2104]

वहाँ सफेद कमल खिल रहे थे, जो पहियों जितने बड़े थे,1176
और मैंने [तब] उन 1177 कमलों को चुना।
बलवान का 1178 समूह 1179 भी [वहाँ] था। (2) [2105]

लेकिन अत्थादस्सी, हे भगवान,
दो पैरों वाले भगवान, मनुष्यों के बैल,
यह देखकर कि वे फूल तोड़ लिए गए थे,1180
तब मेरी उपस्थिति में आया। (3) [2106]

देवताओं का ईश्वर, मनुष्यों का बैल,
तब संबुद्ध मेरे पास आए। उन सभी फूलों को उठाते हुए
मैंने उन सभी को बुद्ध को दे दिया। (4) [2107]

फिर वह कंपनी हिमालय के छोर तक फैल गई। 1181
उसके ऊपर एक छत्र के साथ 1182

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1175 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1176 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1177 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1178 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1179 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1180 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1181 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1182 शाब्दिक रूप से, "गया"

तथागत ने आगे यात्रा की। (5) [2108]

अठारह सौ युगों में
जब से मैंने [उसे] वह फूल अर्पित किया है, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [2109]

पंद्रहवें युग पूर्व,
लोगों के सात स्वामी थे,
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, [सभी] सहस्रथ के नाम से जाने जाते थे।1183 (7) [2110]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [2111]

इस प्रकार पूज्य कुमुदमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे

कुमुदमालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

172. निस्सेणिदायक 1184

मैंने महल में ऊपर चढ़ने के लिए एक सीढ़ी बनवाई थी
कोंडञ्ञ के, धन्य,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ। (1) [2112]

मेरे हृदय में उस आनंद के कारण, महान सुख प्राप्त करके, मैं अपना अंतिम शरीर धारण कर रहा हूँ
परम बुद्ध की शिक्षा में। (2) [2113]

इकतीस हजारवें युग में उस समय तीन [लोग] थे, राजा जिन्होंने [कानून का] पहिया घुमाया, [सभी] नाम पहासाम्बाहुला.1185 (3) [2114]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2115]

पीटीएस संजालेसी के लिए बीजेटीएस के साथ 1183 पठन संजालेसी
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1184 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1185 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इस प्रकार पूज्य निस्सेणिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

निस्सेनिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

173. रत्तीपुप्पिया 1186

मैं उस समय जंगल में एक उपवन के भीतर हिरण का शिकारी था
मैंने विपस्सी बुद्ध को देखा [तब],
देवताओं के देवता, मनुष्यों के बैल। (1) [2116]

एक शीतकालीन चेरी1187 के पेड़ पर लाल [फूल] खिलते हुए देखकर, [उन्हें] उनकी डंडियों सहित लेकर,
मैंने उन्हें महान ऋषि को अर्पित किया। (2) [2117]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उन्हें] वे फूल अर्पित किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
फूल देने का यही फल है। (3) [2118]

और आठवें युग पहले,
मैं सुप्पसन्ना नाम का एक महान शक्तिवान सम्राट था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (4) [2119]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2120]

इस प्रकार पूज्य रत्तीपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

रत्तीपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1186 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है
1187 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1188 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

174. उदपानदायक 1189

मैंने भगवान विपस्सी के लिए एक [जल] कुआँ बनवाया। उन्हें भिक्षा देने के बाद
फिर मैंने [कुएँ] को समर्पित किया। (1) [2121]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
कुएँ देने का यही फल है। (2) [2122]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2123]

इस प्रकार पूज्य उदपानडायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

उदपानडायक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

175. सिहासनदायक 1190

जब जगत के स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए, पद्ममुत्तरा, नेता,
मैंने [उन्हें] एक सिंह-सिंहासन दिया
प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से। (1) [2124]

दुनिया में खुशियाँ लाते हुए, बहुत सुगंधित फूलों से वहाँ पूजा करने के बाद , [मैं]
कई लोगों को राहत मिली।1191 (2) [2125]

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से उस उत्कृष्ट बोधि की पूजा करते हुए,
एक लाख युगों के लिए
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (3) [2126]

पंद्रह हज़ारवें युग में आठ [अलग-अलग लोग] थे,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1189 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1190 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1191 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162। यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

वे सम्राट जिन्होंने [कानून का] पहिया घुमाया,
[सभी] सिलुकाया नाम से जाने जाते हैं।1192 (4) [2127]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2128]

इस प्रकार पूज्य सिहासनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे

सिहासनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

176. मगदत्तिका 1193

अनोमदस्सी, हे भगवान,
दो पैरों वाले भगवान, मनुष्यों के बैल, संसार में सुख लाने वाले,
आकाश में इधर-उधर चलता रहा।1194 (1) [2129]

प्रसन्न, अपने हृदय में आनंद के साथ, पूजा करते हुए मैंने फूल बिखेरे
फूल उसके उठे हुए पैरों पर और उसके सिर के ऊपर भी टिके रहे।1195 (2) [2130]

बीस हज़ारवें युग में पाँच अलग-अलग लोग रहते थे, जिनका नाम पुप्पच्छदानिया था।1196
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा। (3) [2131]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2132]

1192 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1193 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1194 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1195 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1196 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

इस प्रकार पूज्य मगदत्तिका थेरा ने ये श्लोक कहे।

मगदत्तिका थेरा की कथा समाप्त होती है

---

177. एकादशी 1197

प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से, मैंने उस समय एक दीपक दिया था।
उत्कृष्ट साला 1198 बोधि में
ऋषि पद्ममुत्तरा का। (1) [2133]

जन्म-मृत्यु के चक्र में, पुण्य के ढेरों के साथ पुनर्जन्म लेकर, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं जाना है:
जो कि एक दीपक-उपहार का फल है। (2) [2134]

सोलह हज़ारवें युग में
तब ये चार [अलग-अलग] पुरुष थे, [सभी] चंदाभा नाम से जाने जाते थे, 1199
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा। (3) [2135]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2136]

इस प्रकार पूज्य एकादशी थेरा ने ये श्लोक कहे

एकादशीया थेरा की कथा समाप्त हो गई।

---

178. मणिपूजक 1200

एक छोटी हिमालयी नदी
तब उसके किनारे-किनारे सुचारू रूप से बहती थी।1201

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1197 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1198 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1199 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1200 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक संख्या में अंश शामिल हैं।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1201 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

उस समय स्वयं-एक-स्वरूप1202 उस [नदी] के निकट एक खेत में निवास करते थे। (1) [2137]

प्रसन्न हृदय [और] प्रसन्न मन से, मैंने बुद्ध को [तभी] दिया
रत्नों से बना एक सोफा, उत्कृष्ट, मनमोहक और विविध। (2) [2138]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने उसे वे रत्न भेंट किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2139]

और बारहवें युग पूर्व
उस समय आठ [अलग-अलग] राजा थे, [सभी] सतरांगसी के नाम से जाने जाते थे, 1203
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (4) [2140]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2141]

इस प्रकार पूज्य मणिपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

मणिपूजक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

179. टिकिच्चक 1204

शहर बंधुमती में,
मैं एक प्रशिक्षित चिकित्सक था, जो कई लोगों को खुशी देता था
जब मरीज़ों को बहुत [बीमारी] हुई। (1) [2142]

एक भिक्षु को देखकर जो बीमार था, [लेकिन] नैतिक [भी] बहुत उज्ज्वल था,
प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से,
मैंने तब उसे कुछ दवा दी। (2) [2143]

1202 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के

रूप में (पीएसआई: सिंह.   रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1203 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1204 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

उस भिक्षु ने, जिसकी इंद्रियाँ अच्छी तरह से संरक्षित थीं, इसके कारण स्वस्थ हो गया।
वह विपस्सी का सेवक था,
अशोक के नाम से जाना जाता है।1205 (3) [2144]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने [उसे] औषधीय जड़ी-बूटियाँ दीं,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
जो औषधि का फल है। (4) [2145]

उसके बाद आठवें युग में
सब्बोसधा1206 के नाम से जाना जाने वाला
वह महान शक्ति वाला एक चक्र-चालक था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (5) [2146]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2147]

इस प्रकार पूज्य तिचिच्चक थेरा ने ये श्लोक कहे

टिकिच्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

180. संघुपट्टक 1207

जब वेस्साभू बुद्ध थे, 1208
मैं [तब] वनवासी था
प्रसन्न हृदय और प्रसन्न मन से, मैंने सर्वश्रेष्ठ सभा की सेवा की। (1) [2148]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही सेवा करने का फल है। (2) [2149]

1205 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1206 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1207 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1208 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

सातवें युग पूर्व,
सात समोत्थत थे, 1209 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी। (3) [2150]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2151]

इस प्रकार पूज्य संघपट्टक थेरा ने ये श्लोक कहे

संघुपट्टक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: कुमुदा, फिर निस्सेनी,
रत्तिका, उदपानद, सिहासनी, मगगवाद, एकादीपी, मणिप्पद, टिकिच्चक, उपट्टाक,
पचास श्लोकों से एक कम [यहाँ]

कुमुद अध्याय, अठारहवाँ।

कुटजपुप्पिया अध्याय, उन्नीसवाँ

---

181. कुटजपुप्पिया 1210

[मैंने देखा] स्वर्ण संबुद्ध,
जैसे उदय हुआ सौ किरणों वाला [सूर्य], सभी दिशाओं का सर्वेक्षण करते हुए,
जब वह आकाश में यात्रा कर रहा था। (1) [2152]

कुछ शीतकालीन चेरी देखकर,
अच्छी तरह से फैले हुए1211 और खिल रहे [वहाँ], उस पेड़ से [एक फूल] तोड़ते हुए,

मैंने [तब] इसे फुस्सा को अर्पित किया। (2) [2153]

1209 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1210 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

1211 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

तब से बानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फूल भेंट किया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2154]

सत्रहवें युग में
तीन [पुरुष थे जिनका नाम] पुफ्फीता था, 1212 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, सात रत्नों के स्वामी। (4) [2155]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2156]

इस प्रकार पूज्य कुटजपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे

कुटजपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

182. बंधुजीवका 1213

सिद्धार्थ नामक संबुद्ध,
स्वयं-बनकर, भले लोगों द्वारा प्रशंसित,1214
एकाग्रता में प्रवेश करके,1215
एक पर्वत पर बैठ गया [तब]। (1) [2157]

एक प्राकृतिक झील में एक शानदार कमल के फूल की तलाश में,
मैंने बंधुजीवका के फूल देखे
आस-पास के क्षेत्र में। (2) [2158]

उन्हें अपने दोनों हाथों से उठाकर, मैं फिर उस महान ऋषि के पास पहुँचा। प्रसन्न, अपने हृदय में आनंद के साथ,

मैंने [उन्हें] सिद्धार्थ को अर्पित किया। (3) [2159]

1212 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1213 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।

1214 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1215 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

तब से चौरानवे युगों में
मैंने [उन्हें] वे फूल अर्पित किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह पुष्प- पूजा का फल है । (4) [2160]

चौदहवें युग पहले, लोगों का एक शासक था
जिसका नाम समुद्दकप्पा था, 1216
एक महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला राजा। (5) [2161]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2162]

इस प्रकार पूज्य बंधुजीवका थेरा ने ये श्लोक कहे
बंधुजीवका थेरा की कथा समाप्त होती है

---

183. कोटुंबरिया 1217

खुश, [और] प्रसन्न हृदय से,
मैं पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ के पास पहुँचा, जो डिनर-प्लेट के पेड़ की तरह चमक रहे थे,1218 पहाड़ों के बीच बैठे हुए, असीम सागर की तरह,1219 पृथ्वी तक फैले हुए,
देवताओं की सभा द्वारा पूजित 1220, 1221
मनुष्यों के बैलों की सर्वश्रेष्ठ नस्ल का। (1-2) [2163-2164]

मैंने [एक बार] बुद्ध को अर्पित किया
सिख धर्म, जगत के सगे-संबंधी,
कपड़े का एक टुकड़ा 1222 [जिसे मैंने] भरा था

1216 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1217 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें और भी बहुत कुछ है।
इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताएँ।
1218 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1219 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1220 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1221 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1222 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

सात फूल [मैंने] तोड़े थे। (3) [2165]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2166]

इसके बीसवें युग में
मैं एक अत्यंत शक्तिशाली
महान शक्ति वाला चक्र-घुमाने वाला सम्राट था, [जिसे] महाणेल.1223 (5) [2167] नाम से जाना जाता था

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2168]

इस प्रकार पूज्य कोटुंबरिया1224 थेरा ने ये श्लोक कहे

कोटुंबरिया1225 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

184. पंचहत्थिया 1226

तिस्सा के नाम से जाने जाने वाले भगवान
वह दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल था; भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित, 1227
वह 1228 राजमार्ग पर चला गया। (1) [2169]

भेंट देने की इच्छा से
अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए, मैंने 1229
मुट्ठी भर कमल के फूल उठाए
और मेरे द्वारा रखे गए चार [और मुट्ठी भर] 1230। (2) [2170]

1223 सप्पी , शाब्दिक रूप से, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)
1224 शाब्दिक रूप से, "गया"
1225 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1226 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1227 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1228 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1229 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1230 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

बुद्ध की किरणों से प्रसन्न होकर, मैंने [उन्हें] सर्वश्रेष्ठ द्विपाद, स्वर्ण-रंग के संबुद्ध को दे दिया
जो बाज़ार से होकर चल रहा था। (3) [2171]

तब से बानवे युगों में
मैंने [उसे] वे फूल भेंट किए, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2172]

इसके तीसवें युग में
पाँच सुभाषम्मत थीं, 1235
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (5) [2173]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2174]

इस प्रकार पूज्य पंचहत्तिया थेरा ने ये श्लोक कहे

पंचहत्थिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

185. इसिमुग्गदायक 1236

उगते हुए सौ किरणों वाले [सूर्य] की तरह, जैसे सूर्य [जब] उग चुका था, शाही आभूषणों की तरह चमक रहा था,
भगवान पद्ममुत्तरा थे। (1) [2175]

मधुमक्खियों से रहित मधुमक्खी के शहद में ऋषि के मूंग को पीसना,1237

1231 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1232 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1233 शाब्दिक रूप से, "गया"
1234 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
1235 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1236 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1237 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1238 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

आनंद में स्थापित होकर,
मैंने उन्हें दुनिया के रिश्तेदार को दे दिया। (2) [2176]

आठ लाख अनुयायी
तब बुद्ध [उनके साथ थे]। उन सभी के कटोरे भरते हुए,
[मैंने] बहुत बड़ी मात्रा प्रदान की। (3) [2177]

उन सुखद जड़ों से प्रेरित उस मानसिक आनंद के कारण,
एक लाख युगों के लिए

मैं बुरी हालत में पैदा नहीं हुआ था।1239 (4) [2178]

चालीस हज़ारवें युग में
[पहले], उनकी संख्या अड़तीस थी,
वे महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले राजा, जिनके नाम महिषमंत थे।1240 (5) [2179]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (6) [2180]

इस प्रकार पूज्य इसिमुग्गदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

इसिमुग्गदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

186. बोधिउपाट्ठायक 1241

शहर में, राममावती,
मेरा नाम मुराजा था।1242
निरंतर सेवा के लिए प्रतिबद्ध,
मैं महान बोधि वृक्ष के पास गया। (1) [2181]

उन सुखी जड़ों से प्रेरित होकर, अठारह सौ युगों तक सुबह और शाम प्रयास करते हुए
मैं बुरी हालत में पैदा नहीं हुआ था।1243 (2) [2182]

1239 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है
1240 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1241 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1242 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1243 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के।

पंद्रह सौवें युग में
मैं एक राजा था, मनुष्यों का शासक,
दमाथा के नाम से जाना जाता था, 1244
एक महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला राजा। (3) [2183]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2184]

इस प्रकार पूज्य बोधिउपात्यक थेरा ने ये श्लोक कहे।

बोधिउपात्यक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

187. एकचिन्तित 1245

जब [उसके] जीवनकाल के अनुसार, कोई देवता संसार से गिरता है,1246
तब तीन बातें1247 निकलती हैं,
देवताओं के आनंद में। (1) [2185]1248

"यहाँ से, महोदय,1249 लोगों की संगति में एक अच्छे राज्य में जाइए
मनुष्य बनकर प्राप्त करें
उत्तम सत्य में महान विश्वास।1250 (2) [2186]

"यह स्थापित करने के बाद, आपका विश्वास, सुप्रसिद्ध उत्तम सत्य में,
[अच्छी तरह से] स्थिर, [उन सुखद] जड़ों से जन्मा,
जब तक [तुम] जीवित रहो, दृढ़ रहो। (3) [2187]

केक या जंकेट (PSI: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

1244 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1245 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1246 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1247 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1248 रत्तंबरधारो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करने वाला।" धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।
1249 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1250 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

"अपने शरीर से अच्छे कर्म करो,
और अपनी वाणी से बहुत अच्छे कर्म करो;
अपने मन से भी अच्छा करो,
घृणा और आसक्ति से मुक्त रहो। (4) [2188]

"इस प्रकार [अपने जीवन को] ऊंचा उठाकर, बहुत दान देकर पुण्य कर्म करके, दूसरे लोगों को भी प्रवेश कराओ
पवित्र जीवन [और] उत्कृष्ट सत्य में।" (5) [2189]

जब देवताओं को पता चलता है कि कोई देवता गिर गया है,1255 [इस प्रकार की] करुणा से भरकर, वे [उसके पुनर्जन्म पर] प्रसन्न होते हैं:
"हे भगवान, बार-बार [वापस] आओ।" (6) [2190]

मैं उस समय भावुक हो गया जब देवताओं की सभा एकत्रित हुई थी,
"तो अब मुझे किस गर्भ में
जाना चाहिए जब मैं यहाँ से गिर गया हूँ?" (7) [2191]

पदुमुत्तरा के अनुयायी,
सुमना नाम से जाने जाते हैं, 1256
एक भिक्षु जिसकी इंद्रियाँ [अच्छी तरह से] नियंत्रित थीं, यह महसूस करते हुए कि मैं प्रभावित हुआ था
[और] मुझे ऊपर उठाने की इच्छा से,
तब मेरे सामने आया
[और] मुझे निर्देश देते हुए मुझे प्रेरित किया
अर्थ और शिक्षा में।1257 (8-9) [2192-2193]

उनके शब्दों को सुनकर, मैं
बुद्ध ने मेरे हृदय को प्रसन्न किया। उस बुद्धिमान [भिक्षु] को प्रणाम करने के बाद,
मैं [तब] वहीं पर चल बसा। (10) [2194]

मैं उसी क्षण और वहीं पुनर्जन्म लिया, उन सुखद जड़ों से प्रेरित होकर।

1251 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल)
1252 शाब्दिक रूप से, "गया"
1253 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ पाठ्येलेसी पढ़ना
1254 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
1255 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

1256 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद बनाए रखने के लिए "हज़ार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेज़ी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली शाब्दिक अर्थ है, "एक हज़ार कंड (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"
1257 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

एक लाख युगों के लिए
मैं बुरी हालत में पैदा नहीं हुआ था।1258 (11) [2195]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [2196]

इस प्रकार पूज्य एकचिन्तिता थेरा ने ये श्लोक कहे

एकासिंतिता थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

188. टिकाण्निपुप्फिया 1259

मैं, [तब] एक देवता होने के नाते,
अप्सराओं द्वारा सम्मानित,1260
मेरे पिछले कर्मों के कारण पुनर्जन्म हुआ,
उन्हें याद किया, जो बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ थे। (1) [2197]

तीन काण्णी फूल तोड़कर , जिनसे मेरे मन को आनंद मिला, मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया
विपस्सी, पुरुषों में बैल। (2) [2198]

तब से इक्यावन युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2199]

तिहत्तर युग पहले
चार नरुत्तम थे, 1261
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (4) [2200]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2201]

1258 येनिच्चका , बीजेटीएस सिंहली व्याख्या कामाती तनका के अनुसार
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1259 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1260 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1261 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

इस प्रकार पूज्य तिकण्णिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिकण्णिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

189. एकाचारिया 1262

उस समय तावतिंसा देवताओं के बीच बहुत शोर मच गया:
"संसार के बुद्ध का देहांत हो गया है1263
और हम [अभी भी] वासना से ग्रस्त हैं।" (1) [2202]

उनमें से जो [इस प्रकार] विचलित हो गए थे, शोक के तीरों से ग्रस्त थे,
मेरी अपनी मानसिक शक्ति से दृढ़ होकर,
मैं बुद्ध की उपस्थिति में गया। (2) [2203]

जादू से निर्मित कोमल मंदारवा के फूल को तोड़ते हुए ,
मैंने [तब] इसे उस समय अर्पित किया
बुद्ध के देहांत के समय।1265 (3) [2204]

सभी देवता और स्वर्गीय
उस समय अप्सराएँ मेरे लिए प्रसन्न हुईं। एक लाख युगों तक
मैं बुरी हालत में पैदा नहीं हुआ था।1266 (4) [2205]

साठ हज़ार युग पहले
सोलह महान लोग पैदा हुए थे
[सभी] नाम महामल्लजन 1267
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट। (5) [2206]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2207]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1262 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

1263 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1264 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1265 र'अट्टम्बरधारो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करना।"," the latter referring to a type of cloth as well as an upper इससे बना वस्त्र।

1266 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1267 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

इस प्रकार पूज्य एकाचार्य थेरा ने ये श्लोक कहे।

एकाचार्य थेरा की कथा समाप्त होती है

---

190. तिवन्तिपुप्पिया 1268

वे सभी, एक साथ एकत्रित होकर,
मुझे देख रहे हैं, अभिभूत हैं। 1269
[मन में] जलन उत्पन्न हुई 1270
उन [लोगों] में से जो देख रहे हैं। (1) [2208]

उस समय एक अनुयायी
बुद्ध धम्मदस्सी, ऋषि, जो सुनंदा1271 के नाम से जाने जाते थे, मेरे पास आए। (2) [2209]

जो मेरे सहयोगी थे1272 उन्होंने मुझे उस समय एक फूल दिया। उस फूल को लेकर [जो उन्होंने दिया था,]
मैंने इसे अनुयायी को दे दिया। (3) [2210]

मैं उसी स्थान पर मर गया
[और फिर] मेरा पुनर्जन्म हुआ

अठारह सौ युगों में [इसलिए]
मैं किसी शोक के स्थान पर नहीं गया। (4) [2211]

तेरह सौवें युग में, आठ धूमकेतुना थे, 1273
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (5) [2212]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2213]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1268 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1269 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1270 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1271 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1272 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1273 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

इस प्रकार पूज्य तिवन्तिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिवन्तिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

सारांश:

कुटजा और बंधुजीवी, कोटुम्बारिका, हत्थिया, इसिमुग्गा और [तब] बोधि, एकसिंति, टिकानिका, एकाकारी और तिवंती,
यहां बासठ 1274 श्लोक बताए गए हैं।

कुटजपुप्पिया अध्याय, उन्नीसवाँ

तमालपुप्पिया अध्याय, बीसवाँ

---

191. तमालपुप्पिया 1275

मेरा जादुई ढंग से बना महल, चौरासी लाख स्तंभों के साथ, एक [सुंदर] सुनहरा [रंग] का था,
एक दिव्य वृक्ष के समतुल्य।1276 (1) [2214]

एक तमाला फूल तोड़ना
बहुत ही स्पष्ट मन से, मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया।
सिख धर्म, जगत का सगे-संबंधी। (2) [2215]

तब से इकत्तीस युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2216]

बीस युग पहले
एक [नाम] चंदतित्ता थी, 1277

1274 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, स्पष्ट मक्खन (गी तेल))
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1275 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1276 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1277 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2217]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2218]

इस प्रकार पूज्य तमालपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

तमालपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

192. तिणासंथारदायक 1278

वन में रहने वाला ऋषि [महान] शिक्षक के लिए कौन सी घास काट रहा है?
वे सभी [पत्तियाँ] दाईं ओर मुड़ रही हैं1279
[उस समय] धरती पर गिर पड़ा। (1) [2219]

कि मैं, घास का [भार] लेकर
और घास की पत्तियों और ताड़ के पत्तों को लाकर एक चटाई बनाई,
उत्कृष्ट भूमि पर बिछाई। (2) [2220]

उस घास और उन पत्तों से चटाई बनाकर मैंने वह चटाई सिद्धार्थ को दी;
मैं उसे सात दिनों तक वहाँ ढोता रहा
देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक के लिए। (3) [2221]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने तब [बुद्ध को] घास दी थी
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह घास के उपहार का फल है। (4) [2222]

इसके बाद पैंसठवें युग में
1281 में चार [नाम वाले] महाधन थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1278 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1279 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1280 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1281 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (5) [2223]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2224]

इस प्रकार पूज्य तिनसंथारदायक थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिनसंथारदायक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

193. खंडफुल्लिया 1282

विशाल जंगलों में एक स्तूप था
फुस्सा, धन्य [बुद्ध] का।
उस समय वहाँ एक पेड़ था, जिसे हाथियों ने [आधे] तोड़ दिया था। (1) [2225]

उनके गुणों से प्रसन्न होकर1283
तीनों लोकों में सम्मानित, असमान [भूमि] को समतल करते हुए,1284
मैंने कुछ शुद्ध दान दिया। (2) [2226]

तब से बानवे युगों में
मैंने तब वह [अच्छा] कर्म किया था,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही शुद्ध दान देने का फल है। (3) [2227]

सत्तरह युग बाद 1285
सोलह जितसेन थे 1286
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (4) [2228]
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1282 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1283 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1284 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1285 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1286 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
[मैंने] वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया! (5) [2229]

इस प्रकार पूज्य खंडफुल्लिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

खंडफुल्लिया थेरा की कथा समाप्त होती है

---

194. अशोकपूजक 1287

सुंदर तिवारा शहर में,
तब एक शाही उद्यान था। मैं एक शाही परिचारक था, 1288
वहाँ के बगीचे का वार्डन। (1) [2230]

स्वयं-एक हो चुके, प्रकाश से परिपूर्ण, 1289 पद्मा नाम के [बुद्ध तब] थे। कमल की छाया में बैठे हुए
वह ऋषि अभी तक [संसार] नहीं छोड़े थे।1290 (2) [2231]

एक अशोक1291 को फूलों से लदे, सुंदर रूप में देखकर, मैंने बुद्ध को एक फूल दिया,
उत्कृष्ट कमल-नाम वाले ऋषि। (3) [2232]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उन्हें] अर्पित किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2233]

सत्तरवें युग में
सोलह अरुणांजह थे, 1292
महान शक्ति वाले, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (5) [2234]
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

1287 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1288 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1289 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1290 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1291 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1292 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2235]

इस प्रकार पूज्य अशोकपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

अशोकपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

195. अंकोलाक 1293

खिलते हुए अंकोला को देखकर
उत्कृष्ट फूलों और कलियों के साथ,1294
उसमें से एक फूल तोड़कर,
मैं बुद्ध के समक्ष गया। (1) [2236]

उस काल में सिद्धार्थ
वह छिपे हुए थे, 1295 महान ऋषि। एक क्षण के लिए उनका सम्मान करते हुए,
मैंने उस फूल को गुफा में फेंक दिया। (2) [2237]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2238]

इसके छत्तीसवें युग में
मैं देवगज्जिता था, 1296
एक महान शक्ति वाला, सात रत्नों का स्वामी, चक्र घुमाने वाला राजा। (4) [2239]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2240]

इस प्रकार पूज्य अंकोलाका थेरा ने ये श्लोक कहे

अंकोलाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1293 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

1294 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1295 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1296 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

---

196. किसलयपूजक 1297

द्वारवती शहर में,
मेरे पास एक छोटा फूल वाला पेड़ था। 1298
वहाँ [उस जगह पर] एक कुआँ था
[जिसके जल] ने वृक्षों को लंबा किया।1299 (1) [2241]

सिद्धार्थ, अजेय,
अपनी [मानसिक] 1300 शक्ति से दृढ़ किया, मेरे प्रति अपनी करुणा दिखाते हुए,
हवा के मार्ग में यात्रा की। 1301 (2) [2242]

मैं और कुछ नहीं देख रहा हूँ,
महान ऋषि की पूजा पर ध्यान केंद्रित है। अशोक वृक्ष को अंकुरित होते हुए देखकर
मैंने इसे आकाश में फेंक दिया। (3) [2243]

वे शाखाएँ बुद्ध की ओर पीछे की ओर जा रही हैं [आकाश में]
उस चमत्कार को देखकर,
[सोचा], "ओह! बुद्ध की महानता!"1302 (4) [2244]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने [बुद्ध को] वह अंकुर अर्पित किया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (5) [2245]

सत्ताईसवें युग पूर्व एकास्सर नामक एक व्यक्ति रहता था, 1303
एक महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (6) [2246]
चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1297 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1298 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1299 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1300 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1301 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1302 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
1303 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2247]

इस प्रकार पूज्य किसलयपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे

किसलयपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

197. तिन्दुकदायक 1304

एक खराब पहाड़ी सड़क पर यात्रा करते हुए,
मैं एक बंदर था, 1305 मजबूत और तेज। जंगली मैंगोस्टीन 1306 को फल में देखकर,
मुझे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की याद आई। (1) [2248]

कई दिनों तक प्रसन्नतापूर्वक, अपने हृदय में आनंद लिए, मैं विश्व के नेता की खोज में निकला,
सिद्धार्थ, तीन लोकों का अंत करने वाला।1308 (2) [2249]

अपने उस विचार को समझते हुए,
विश्व में सर्वोच्च शिक्षक मेरे निकट आए
एक हजार मुक्त प्रवाह के साथ।1309 (3) [2250]

अत्यंत आनंद उत्पन्न करते हुए1310 [तब,]
मैं हाथ में फल लेकर [उनके] पास पहुँचा।

भगवान ने इसे स्वीकार किया,
सर्वज्ञ, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता। (4) [2251]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे वह] फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह फल के उपहार का फल है। (5) [2252]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1304 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है
1305 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1306 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1307 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1308 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1309 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama
1310 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

सत्तावनवें युग में
[एक था] जिसका नाम उपनंद था, 1311
एक चक्र-घुमाने वाला राजा, महान शक्ति वाला, सात रत्नों का स्वामी। (6) [2253]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2254]

इस प्रकार पूज्य तिन्दुकदायका थेरा ने ये श्लोक कहे

तिन्दुकदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

198. मुट्ठिपूजक 1312

सुमेधा नामक भगवान, जो विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, विजेता हैं, ने 1313

दीन-हीनों के प्रति करुणा के साथ। (1) [2255]

मैंने बुद्ध को प्रस्तुत किया,
द्विपादों के स्वामी, तटस्थ, चलते हुए ध्यान करते हुए,1314
मुट्ठी भर गिरिनिल फूल। (2) [2256]

उन सुखद जड़ों द्वारा उत्तेजित उस मानसिक आनंद के कारण, तीस हजार युगों के दौरान
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है। (3) [2257]

तेईस सौवें युग में
एक [पुरुष] था जो बहुत बलवान था, एक राजा1316 जिसका नाम सुनेला था,1317

1311 शाब्दिक रूप से, "गया"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1312 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1313 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1314 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह.   रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
1315 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1316 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1317 निज्झायामानो , शाब्दिक रूप से, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना;" मैं BJTS सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता हूँ balannā vu mama

---

सात रत्नों का स्वामी। (4) [2258]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2259]

इस प्रकार पूज्य मुट्ठिपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे।

मुट्ठिपूजक थेरा की कथा समाप्त होती है

---

199. किंकनिपुप्पिया 1318

स्वयंभू, अजेय, सुमंगला नाम से जाने जाने वाले,
विजेता, नगर में प्रवेश किया,
जंगल से बाहर आकर। (1) [2260]

भिक्षा के लिए इधर-उधर भटकने के बाद, ऋषि [तब] शहर से चले गए
अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद, संबुद्ध,
[फिर से] जंगल में रहने लगे। (2) [2261]

एक किंकणी फूल लेकर,
प्रसन्नता से, मेरे हृदय में आनंद के साथ, मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया,
स्वयं-एक हो चुके, महान ऋषि। (3) [2262]

तब से चौरानवे युगों में
मैंने वह फूल [उसे] भेंट किया,
मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2263]

इसके बाद छियासीवें युग में अपिलापिया नाम का एक व्यक्ति था। 1319
एक चक्र-घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2264]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2265]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1318 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं
1319 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इस प्रकार पूज्य किंकणिपुप्पिया1320 थेरा ने ये श्लोक कहे।

किंकणिपुप्पिया1321 थेरा की कथा समाप्त होती है

---

200. युथिकापुप्पिया 1322

विक्टर पदुमत्तरा 1323

बलि प्राप्तकर्ता,
जंगल छोड़कर जाता है
मठ, आँखों वाला। (1) [2266]

मैंने अपने दोनों हाथों से एक अद्वितीय चमेली का फूल इकट्ठा किया।
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया
प्रेममय हृदय वाला, तटस्थ। (2) [2267]

सफलता का अनुभव करने के कारण, उस मानसिक सुख से,
एक लाख युगों के लिए
मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का ज्ञान नहीं है। (3) [2268]

पचासवें युग में
समित्तनंदन नाम का एक जनस्वामी था, 1325
एक महान शक्ति वाला, चक्र घुमाने वाला राजा। (4) [2269]

चार विश्लेषणात्मक विधियाँ, और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2270]

इस प्रकार पूज्य युथिकापुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

1320 कुम्मासा , संस्कृत कुलमासा , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर के केक या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अधिक संभावित लगता है और मैंने तदनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है

1321 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1322 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1323 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1324 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1325 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

युथिकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

तमाली, तिणासंथारा, खंडाफुल्ली, अशोकिया, अंकोलाकी, किसलय, तिन्दुका, नेलापुप्पिया,
किंकणिका 1326 [और] युथिका:
पचास श्लोक और आठ हैं।

तमालपुप्पिया अध्याय, बीसवाँ
फिर अध्यायों का सारांश है: भिक्खदा और परिवार,
छत्त और बंधुजीवी और साथ ही सुपारिकरिया, कुमुद, कुटज भी,
तमलिका, दसवां भाग पूरा हो गया है।
यहां छह सौ श्लोक हैं और उससे भी छियासठ अधिक हैं।

दस अध्याय जिन्हें भिक्खा कहा जाता है

दूसरा सौ पूरा हो गया है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.4 थेरपदाना

स्रोत: जेएस वाल्टर्स
नोट: जैसा है वैसा ही प्रस्तुत किया गया है

<<<< पिछला । अगला >>>>

विषय-सूची
1अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 201-300
1.1201. कणिकारापुप्पिया 1329
1.2202. विनेलापुप्पिया 1332
1.3203. किंकणिकपुप्पिया 1339
1.4204. ताराणिया 1346
1.5205. निग्गुंडिपुप्पिया 1350
1.6206. उदकदायका 1353
1.7207. सलामालिया 1356
1.8208. कोरण्डपुप्पिया 1361
1.9209. आधारद्यक 1365
1.10210. वातातपनिवारिया 1369
1.11211. हत्थिदायक 1375
1.12212. पाणधिदायक 1379
1.13213. सक्कासञ्ञक 1384
1.14214. एकासञ्ञक 1388
1.15215. रांगसिसाञ्क 1391

1.16216. संठिता 1397
1.17217. तलवन्तदायक 1401
1.18218. अक्कन्तसञ्ञक 1405
1.19219. सप्पिदायक 1408
1.20220. पापनिवारिया 1414
1.21221. आलंबनदायक 1421
1.22222. अजिनदायक 1427
1.23223. द्वेरतनिया 1431
1.24224. आरक्खदायक 1436
1.25225. अव्याधिका 1439
1.26226. अंकोलापुप्पिया 1444
1.27227. वटांगसकिया 1448
1.28228. मिंजावटांगसकिया 1451
1.29229. सुकतवेलिया 1454
1.30230. एकावंदिया 1460
1.31231. उदकासनदायक 1462
1.32232. भजनदायक 1464
1.33233. सालपुप्पिया 1468
1.34234. किलंजदायका 1474
1.35235. वेदीयदायक 1478
1.36236. वण्णकारक 1480
1.37237. पियालापुप्पिया 1483
1.38238. अंबयागदायका 1486
1.39239. जगतिकारक 1489
1.40240. वासिदायक 1490
1.41241. तुवरदायक 1492
1.42242. नागकेसरिया 1497
1.43243. नलिनाकेसरिया 1504
1.44244. वीरवापुप्पिया 1510
1.45245. कुटिधूपक 1513
1.46246.
1.47दायक 1514
1.48247. धातुपूजक 1515
1.49248. पातालीपूजक 1517
1.50249. बिम्बिजलिया 1519
1.51250. उद्दालदायका 1522
1.52251. थोमादायक 1526
1.53252. एकासनादायक 1532
1.54253. चितपुजक 1538
1.55254. तिचमपकपुप्पिया 1542
1.56255. सत्तपातलिया 1545
1.57256. पाहनदायक 1548

1.58257. मंजरीपूजक 1550
1.59258. पान्नदायक 1554
1.60259. कुटिडायक 1557
1.61260. अग्गपुप्पिया 1560
1.62261. आकाशुक्खीया 1565
1.63262. तेलमक्खीया 1569
1.64263. अद्धचंडीय 1573
1.65264. अरणदीपीय 1578
1.66265. बिलादायक 1580
1.67266. मच्छादायक 1582
1.68267. जवाहंगसाका 1585
1.69268. साल्लपुप्पिया 1586
1.70269. उपागतभाषणीय 1589
1.71270. तराणीय 1592
1.72271. सुवण्णबिम्बोहनिया 1595
1.73272. तिलमुत्तिदायक 1598
1.74273. चांगोटकीय 1600
1.75274. अब्भंजनदायक 1602
1.76275. एकंजलिया 1607
1.77276. पोत्थादायका 1614
1.78277. चितकपूजक 1619
1.79278. आलुवादायक 1623
1.80279. एकपुंडरीका 1625
1.81280. तरणीय 1627
1.82281. पन्नदायक 1630
1.83282. फलदायक 1633
1.84283. पच्चुग्गमानिया 1650
1.85284. एकपुप्पिया 1656
1.86285. मग़वपुप्पिया 1660
1.87286. उपत्थायक 1662
1.88287. अपदानिया 1665
1.89288. सत्ताहबब्ब
1.901666
1.91289. बुद्धूपट्टायक 1673
1.92290. पब्बंगमनिया 1677
1.93291. चितपूजक 1685
1.94292. पुप्पधारक 1692
1.95293. चट्टदायका 1696
1.96294. सद्दसाञ्ञक 1699
1.97295. गोसीसानिकखेपा 1702
1.98296. पदपूजक 1707
1.99297. देशकित्तिया 1711

1.100298. सरणगमानिया 1713
अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 201-300
कणिकारपुप्पिया अध्याय, इक्कीसवाँ

---

201. कणिकारापुप्पिया 1329

एक खाने की थाली 1330 खिली हुई देखकर, और उसे उस समय तोड़कर, मैंने [फिर] उसे तिस्सा को अर्पित किया,
बाढ़ पार करने वाला, तटस्थ व्यक्ति। (1) [2271]
पिछले बानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1329 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1330 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2272]

इसके बाद पैंतीसवें युग में
[रहते थे] प्रसिद्ध अरुणपाल, 1331
महान शक्ति वाला एक चक्र घुमाने वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2273]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2274]

इस प्रकार पूज्य कणिकारापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कणिकारापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

202. विनेलापुप्पिया 1332

स्वर्ण रंग के धन्य, सौ किरणों वाले, राजसी, 1333
प्रेममय हृदय, अग्नि के समान तेजस्वी1334
वहाँ पैदल मार्ग पर चढ़ गया था। (1) [2275]

प्रसन्नता से भरे हृदय से, सर्वोच्च ज्ञान की आराधना करते हुए, एक वाइनला 1335 फूल लेते हुए,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (2) [2276]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2277]

1331 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1332 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1333 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1334 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1335 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

सत्ताईसवें युग में [इसलिए] मेरा नाम सुमेघाघना रखा गया, 1336
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2278]
विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2279]
इस प्रकार पूज्य विनेलापुप्पिया1337 थेरा ने ये श्लोक कहे।
विनेलापुप्पिया 1338 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

203. किंकणिकपुप्पिया 1339

सोने के समान बहुमूल्य, 1340
सर्वज्ञ, जगत के स्वामी, जगत के स्वामी ने जलकुंड में डुबकी लगाकर स्नान किया। (1) [2280]

प्रसन्नता से, मन मग्न होकर, एक किंखाणी 1341 फूल लेकर,
मैंने इसे विपस्सी को दे दिया।
द्विपद भगवान, तटस्थ एक। (2) [2281]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2282]

सतहत्तर युगों बाद 1342
एक राजा था, भीमर्थ, 1343

1336 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए कहीं और "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
1337 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1338 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1339 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1340 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1341 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1342 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1343 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2283]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2284]

इस प्रकार पूज्य किंकणिकपुप्फिया1344 थेरा ने ये श्लोक कहे।

किंकणिकपुप्फिया1345 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

204. ताराणिया 1346

अत्थादस्सी, भगवान,
दो पैरों वाले भगवान, मनुष्यों के बैल, उनके अनुयायियों द्वारा सम्मानित [तब]
गंगा के तट पर पहुँचे। (1) [2285]

गंगा नदी पूरी तरह से पानी से भरी होने के कारण उसे पार करना काफी मुश्किल था।1347
मैंने भिक्षुओं के समूह को पार कराया1348
और बुद्ध, सर्वोच्च द्विपद। (2) [2286]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह नौका विहार का फल है। (3) [2287]

तेरहवें युग में
सन्भोगव नाम के पाँच व्यक्ति थे, 1349
महान शक्ति वाले, चक्र घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी। (4) [2288]
विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

1344 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1345 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1346 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1347 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1348 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1349 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2289]

इस प्रकार पूज्य ताराणिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ताराणीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

205. निग्गुंडिपुप्पिया 1350

मैं भगवान विपस्सी के आश्रम में निवास कर रहा था। निग्गुंडी 1351 फूल इकट्ठा करते हुए,
मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया। (1) [2290]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2291]

इसके पैंतीसवें युग में लोगों का एक स्वामी था जिसका नाम महापतापा था।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (3) [2292]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2293]

इस प्रकार पूज्य निग्गुंडिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

निग्गुंडिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1350 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1351 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1352 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

206. उदकदायका 1353

भिक्षु को देखकर, 1354 जो भोजन कर रहा था, अत्यंत तेजस्वी और शांत, एक छोटे बर्तन में पानी ला रहा था,
मैंने इसे सिद्धार्थ को दिया। (1) [2294]

आज मैं शुद्ध हो गया हूँ;
निर्मल, मेरे सारे संदेह दूर हो गए। अस्तित्व में पुनर्जन्म लेकर,
वह फल मेरे लिए भी पुनर्जन्म लेता है। (2) [2295]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] पानी पिलाया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
पानी देने का यही फल है। (3) [2296]

इकसठवें युग में [अतः]
1355 में विमला नाम का एक व्यक्ति था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2297]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2298]

इस प्रकार पूज्य उदकदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

207. सलामालिया 1356

[मैंने देखा] सिद्धार्थ, प्रशिक्षक, 1357
एक पर्वत की ढलान पर बैठे हुए [तब,]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1353 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1354 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1355 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1356 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1357 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

खाने की थाली जैसे पेड़ की तरह चमक रहा है,1358
हर दिशा का सर्वेक्षण। (1) [2299]

धनुष के दोनों सिरों को इकट्ठा करके,1359 फिर मैंने उसे एक तीर से जोड़ा। फूल को उसकी डंठल सहित काटकर,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (2) [2300]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2301]

इसके बाद इक्यावनवें युग में
एक व्यक्ति था जिसका नाम जुटिंधरा था, 1360
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2302]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2303]

इस प्रकार पूज्य सलामालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सलामालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

208. कोरण्डपुप्फिया 1361

मैंने महान ऋषि, [बुद्ध] विपस्सी के कदमों को देखा, जो कदम दर कदम आगे बढ़ रहे थे;
[यह] सुंदर था, पहिये से चिह्नित। (1) [2304]

एक कोरण्ड 1362 फूल देखना

1358 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1359 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1360 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1361 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1362 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मैंने इसे 1363 में इसके मूल के साथ जोड़ा। प्रसन्न, [और] प्रसन्न हृदय से,
मैंने उस अद्वितीय पद की पूजा की। (2) [2305]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2306]

सत्तावनवें युग में
अतः एक वीतमला, 1364 थी।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2307]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2308]

इस प्रकार पूज्य कोरण्डपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कोरण्डपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

209. आधारद्यक 1365

मेरे द्वारा एक सिंहासन दान किया गया था
सिख धर्म को, विश्व के सगे-संबंधी। [तब] मैं 1366 का स्वामी था
इस पूरी पृथ्वी की सारी भूमि। (1) [2309]

मेरे सारे दोष जलकर राख हो गए हैं, मेरा हर अस्तित्व समाप्त हो गया है।
अब मेरे पास मेरा अंतिम शरीर है
बुद्ध के 1367वें युग में। (2) [2310]

1363 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1364 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1365 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1366 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1367 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

इसके सत्ताईसवें युग में समंतचारण नामक चार व्यक्ति विद्यमान थे, 1368
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (3) [2311]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2312]

इस प्रकार पूज्य आधारदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आधाराडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

210. वातातपनिवारिया 1369

एकदम स्पष्ट मन से, मैंने एक छाता दिया
धन्य संत तिस्सा को,
देवताओं का ईश्वर, तटस्थ। (1) [2313]

मेरे भीतर की बुराई1370 को दबा दिया गया है;
अच्छाई की प्राप्ति हुई है।1371
आकाश में ले जाया गया छाता:1372
पूर्व कर्मों का फल। (2) [2314]

यह मेरा आखिरी पुनर्जन्म है, सभी जन्म समाप्त हो गए हैं।
अब मेरे पास मेरा अंतिम शरीर है

बुद्ध के 1373 युग में। (3) [2315]

पिछले बानवे युगों में
मैंने वो छाता तब वापस दे दिया था।

संभवतः, और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी प्रकार का जौ से बना भोजन है।

1368 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1369 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1370 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1371 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1372 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1373 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह छाता-उपहारों का फल है। (4) [2316]

इसके बाद बहत्तरवें युग में आठ जनस्वामी थे, जो सभी महानिदान के नाम से जाने जाते थे।
वे राजा जो चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे। (5) [2317]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2318]

इस प्रकार पूज्य वातातपनिवारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वातातपनिवरिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: कणिकारा और विनेला,
और किंकिनी के साथ तारण, निग्गुंडीपुप्पा, 'दकाडा, सलदा और कोरंडका, अधरका, वातातप:
इसमें अड़तालीस श्लोक हैं। कणिकारापुप्पिया अध्याय, इक्कीसवाँ।

हाथी अध्याय, बाईसवाँ

211. हत्थिदायक 1375

मैंने एक उत्तम हाथी भेंट किया,
जिसके दांत हल के डंडों के समान थे, पूर्ण विकसित, भगवान सिद्धार्थ को,
द्विपादों का स्वामी, तटस्थ। (1) [2319]

मुझे इसका अंतिम अर्थ समझ आ गया है।
शांति का अद्वितीय मार्ग। मैंने एक बहुत ही कीमती उपहार दिया।
सभी लोकों के शुभचिंतक को.1376 (2) [2320]

1374 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1375 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1376 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
हाथियों को देने का फल। (3) [2321]

अठहत्तरवें युग में
1377 में राजवंश के सोलह लोग थे।
समंतपासादिका नाम दिया गया, 1378
महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट। (4) [2322]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2323]

इस प्रकार पूज्य हत्थिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

हत्थिदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

212. पाणधिदायक 1379

[एक बार] मैंने एक जोड़ी जूते दिए
एक वनवासी ऋषि को
जो लंबे समय से तपस्या का अभ्यास कर रहे थे,
वृद्ध हो गया, सुसंस्कृत विचार के साथ। (1) [2324]

उस कर्म के कारण, द्विपद स्वामी, 1380
हे पुरुषों के श्रेष्ठ बैल, विश्व में सर्वश्रेष्ठ, मुझे हर वाहन पसंद है:
यह पिछले कर्मों का फल है। (2) [2325]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह जूतों की एक जोड़ी का फल है। (3) [2326]

1377 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1378 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1379 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1380 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

सतहत्तर युगों बाद 1381
राजसी जाति के आठ लोग थे 1382
सुयाना नाम से जाने जाते थे, 1383
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (4) [2327]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2328]

इस प्रकार पूज्य पाणधिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पाणधिडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

213. सक्कासञ्जक 1384

उस काल में वेस्साभू
भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित, 1385
चार आर्य सत्यों का प्रचार कर रहा है, 1386
लोगों की [वासना] को बुझाना। (1) [2329]

महान कृपा के पात्र,
मैं उस भीड़ में घुस गया।
वहाँ बैठे हुए मैं [तब]
शिक्षक की शिक्षा सुनी। (2) [2330]

उनकी शिक्षा सुनने के बाद मैंने
[फिर] देवताओं के लोक में गया। तीस हजार युगों तक मैं
वहाँ देवताओं के नगर में निवास किया। (3) [2331]

पिछले इकत्तीस युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई थी।

1381 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1382 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1383 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1384 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1385 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1386 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
सत्यों को समझने का यही फल है। (4) [2332]

इसके छब्बीसवें युग में लोगों का एक ही स्वामी था; उसका नाम एकाफुसिता था,1387

एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (5) [2333]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2334]

इस प्रकार पूज्य सच्चसाञ्जक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सच्चसाञ्ञाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

214. एकासञ्ञक 1388

मैंने शिक्षक का चिथड़ों का वस्त्र एक पेड़ के शीर्ष पर लटका हुआ देखा। 1389
मैंने अपने हाथों को एक साथ दबाया
मैंने [बुद्ध के] चिथड़े-कपड़े की पूजा की। (1) [2335]

पिछले इकत्तीस युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2336]

इसके पच्चीसवें युग में, लोगों का एक स्वामी था, जिसे अमिताभ के नाम से जाना जाता था।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (3) [2337]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

1387 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1388 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1389 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1390 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2338]

इस प्रकार पूज्य एकाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकासन्चका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

215. रांगसिसाञ्क 1391

[मैंने देखा] उत्कृष्ट बाघ-बैल,
उच्च कुल का, पर्वत की ढलान पर, उगते हुए सौ किरणों वाले [सूर्य] के समान,
जैसे सूर्य [जब उसकी] किरणें ठंडी होती हैं।1392 (1) [2339]

बुद्ध की महिमा
पर्वत की ढलान पर चमक रहा था। [मेरा] हृदय किरणों में प्रसन्न हुआ; एक युग के लिए मैं स्वर्ग में आनंदित हुआ। (2) [2340]

इसके बाद के सभी 1393 युगों में, उस मानसिक आनंद के कारण मेरे द्वारा अच्छाई 1394 को पूरा किया गया।
और बुद्ध को याद करते हुए। (3) [2341]

तीस हजार युगों में
जब से मुझे वह धारणा प्राप्त हुई,1395
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
बुद्ध-बोध का फल। (4) [2342]

सत्तावनवें युग में
वहाँ एक जनस्वामी था, जिसका नाम सुजाता था, 1396
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (5) [2343]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1391 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1392 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1393 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1394 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1395 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1396 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2344]

इस प्रकार पूज्य रांसिसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

रांगसिसाञ्चका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

216. संठिता 1397

मुझे सचेतन व्यक्ति का दर्शन प्राप्त हुआ, [देखते हुए] एक बुद्ध अश्वत्थ 1398 वृक्ष के नीचे गए हुए थे,
पूर्ण विकसित और चमकीला हरा। (1) [2345]

पिछले इकत्तीस युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्ध को समझने का फल। (2) [2346]

इसके तीसवें युग में
1399 में धनित्थ नामक सम्राट रहते थे, 1400 में एक चक्र-घुमाने वाला राजा, महान शक्ति वाला, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2347]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2348]

इस प्रकार पूज्य संठित थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

संठित थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1397 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1398 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1399 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1400 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

217. तालवन्तदायक 1401

मैंने सूर्य के रिश्तेदार तिस्सा को ताड़ के पत्तों का पंखा दिया, 1402
गर्मी की तपिश में उसकी प्यास बुझाने के लिए,
[और] सूर्य की जलन को शांत करो। (1) [2349]

मैं कामवासना की आग बुझा रहा हूँ, और घृणा की आग भी; मैं भ्रम की आग बुझा रहा हूँ:
यह प्रशंसक को देने का फल है। (2) [2350]

मेरे सारे दोष जलकर राख हो गए हैं, मेरा हर अस्तित्व समाप्त हो गया है।
अब मेरे पास मेरा अंतिम शरीर है
बुद्ध के 1403 युग में। (3) [2351]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2352]

इसके बाद तिरसठवें युग में
वहाँ महाराम नाम का एक व्यक्ति था, 1404
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2353]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2354]

इस प्रकार पूज्य तालवन्तदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तलवंतायक थेर की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1401 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1402 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1403 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1404 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

218. अक्कन्तसञ्ञक 1405

अतीत में, मैंने
अपने गुरु के पास एक मोटा सा लबादा लेकर, मैं एक मंत्र का अध्ययन कर रहा हूँ
तीर से तीरों को विभाजित करना। (1) [2355]

मैंने बुद्ध को देखा, जो निष्कलंक और बलिदान ग्रहण करने वाले थे।
प्रमुख, उत्कृष्ट, पुरुषों में श्रेष्ठ, तिस्सा बुद्ध, सर्वश्रेष्ठ हाथी। (2) [2356]

वह साधारण सा लबादा मैंने उस श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए बिछाया था, जो चल रहा था,1406 महान व्यक्ति, महान नायक।
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल। (3) [2357]

उस निष्कलंक दीपक को देखकर, जो चंद्रमा के समान निर्दोष था,
तब मैंने गुरु के चरणों की पूजा की।
बहुत स्पष्ट मन के साथ। (4) [2358]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने वह साधारण सा लबादा [बुद्ध को] दे दिया, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
एक भद्दा लबादा देने का फल। (5) [2359]

सैंतीसवें युग में
अतः लोगों का एक स्वामी था, जिसे सुनंदा के नाम से जाना जाता था (1407)।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (6) [2360]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2361]

इस प्रकार पूज्य अक्कंतसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अक्कंतसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1405 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1406 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1407 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

219. सप्पिदायक 1408

एक शानदार महल में बैठे, हरम की महिलाओं से घिरे हुए, 1409 एक बीमार भिक्षु को देखकर
मैंने उसे उसके घर वापस जाने में मदद की।
[जहाँ] महान नायक, देवताओं के देवता, मनुष्यों के सांड ने प्रवेश किया था। [तब] मैंने घी दिया।
सिद्धार्थ, महान ऋषि को। (1-2) [2362-2363]

उसे देखकर भय कम हो गया।
[उसका] चेहरा और इंद्रियाँ1411 बहुत स्पष्ट, उस शिक्षक के चरणों की पूजा करने के बाद, मैं अतीत में बहुत अच्छी तरह से रहा। (3) [2364]

मुझे अत्यंत प्रसन्न और मेरी सभी इंद्रियों को परिपूर्ण देखकर,
हीरो 1412 आकाश में उड़ गया
ठीक हवा में हंस-राजा की तरह। (4) [2365]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
स्पष्ट मक्खन का फल। (5) [2366]

सत्रहवें युग में
वहाँ जुटिदेव नाम का एक व्यक्ति रहता था, 1413
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (6) [2367]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2368]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1408 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1409 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1410 कुम्मासा , संस्कृतः कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1411 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1412 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1413 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य सप्पिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सप्पिदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

220. पापनिवारिया 1414

हे भगवान, मैंने पियादस्सी के मार्ग को सरकंडों से बने आवरण से शुद्ध किया। 1415
उसके लिए हवा और गर्मी को रोकने के लिए। (1) [2369]

पाप को दंडित करने के लिए,1416
अच्छाई की प्राप्ति हुई है।1417
अशुद्धियों को नष्ट करने के लिए 1418 I
व्यवस्था में कड़ी मेहनत की।1419 (2) [2370]

ग्यारहवें युग में
[एक जीवित व्यक्ति] जिसे अग्गिदेव के नाम से जाना जाता था, 1420
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2371]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2372]

इस प्रकार पूज्य पापनिवारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पापनिवारिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

हत्थी, पानाधि, सच्च, एकासञ्ञी और रंगसिया, संठित और तालवन्ती,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1414 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1415 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1416 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
1417 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1418 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1419 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1420 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

इसी प्रकार अक्कांतसन्नका; सप्पी और पापनिवारी,
यहां चार और पचास छंद बनाएं।

हत्थी अध्याय, बाईसवाँ

आलंबनदायक अध्याय, तेईसवाँ

---

221. आलंबनदायक 1421

मैंने [चीज़ें] टांगने के लिए एक तख्ता दिया
द्विपद भगवान, तटस्थ, धन्य, अत्थदस्सी को,
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [2373]

मैं विशाल पृथ्वी पर शासन कर रहा हूँ (1422)
समुद्र और आकाश के साथ। मैं 1423 आधिपत्य का प्रयोग करता हूँ।
पृथ्वी पर [सभी] प्राणियों1424 के बीच। (2) [2374]

मेरे सारे दोष जलकर राख हो गए हैं, मेरा हर अस्तित्व समाप्त हो गया है।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2375]

बासठवें युग में
अतः वे तीन शाही जाति के थे, 1425
[सभी का] नाम एकापस्सिता रखा गया, 1426
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (4) [2376]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2377]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1421 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1422 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1423 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1424 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1425 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1426 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य आलमबनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आलंबनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

222. अजिनदायक 1427

इकत्तीस युग पहले, 1428
मैंने भीड़ के लिए चटाई बनाई। मैंने बुद्ध, निर्मल, यज्ञ प्राप्तकर्ता को देखा। (1) [2378]

मैंने चमड़े का एक वस्त्र दिया

सिख धर्म, संसार का सगे-संबंधी।
उस कर्म के फलस्वरूप, हे द्विपाद स्वामी, हे जगत के श्रेष्ठ, हे पुरुषों के श्रेष्ठ बैल, सुख का अनुभव करते हुए,
मैंने अपने पापों को नष्ट कर दिया। अब मेरे पास मेरा अंतिम शरीर है।
बुद्ध के 1429 के युग में। (2-3) [2379-2380]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे हिरण की चमड़ी दी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह हिरण के चमड़े का फल है। (4) [2381]

उसके बाद पाँचवें युग में
सन् 1430 में सुदायका नाम का एक राजा था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति का राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2382]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2383]

इस प्रकार पूज्य अजिनादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1427 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1428 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1429 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1430 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

अजिनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

223. द्वेरतनिया 1431

मैं उस समय जंगल में एक उपवन के भीतर हिरण का शिकारी था
मैंने बुद्ध को देखा, निष्कलंक, बलिदान प्राप्तकर्ता। (1) [2384]

तब मैंने महान ऋषि विपस्सी (बुद्ध) को मांस का एक टुकड़ा दिया। मैंने उन पर आधिपत्य स्थापित किया।
दुनिया में, उसके देवताओं सहित। (2) [2385]

उस समय मांस देने के कारण,
gems1432 मेरे लिए अस्तित्व में आया।
इस दुनिया में मेरे पास दो रत्न1433 थे
सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए। (3) [2386]

मुझे मांस के उपहार के लाभ के रूप में सब कुछ अच्छा लग रहा है। मेरा शरीर कोमल है।
[और] ज्ञान, एक तीक्ष्ण बुद्धि।1434 (4) [2387]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय उसे वह मांस दिया था, मुझे कभी भी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह मांस देने का फल है। (5) [2388]

और चौथे युग पूर्व में एक जन-प्रभु था। उसका नाम महारोहित था।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (6) [2389]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1431 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1432 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1433 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1434 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1435 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2390]

इस प्रकार पूज्य द्वेरतनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

द्वेरातानिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

224. आरक्खदायक 1436

मैंने भगवान सिद्धार्थ के लिए एक वेदी 1437 बनवाई और मैंने उनकी रक्षा भी की
सुप्रसिद्ध व्यक्ति, महान ऋषि को। (1) [2391]

उस कर्म के अवशेष के रूप में, मुझे भय और आतंक दिखाई नहीं देता। जहाँ कहीं भी मेरा पुनर्जन्म हुआ हो,
मुझे कभी कोई डर नहीं लगता। (2) [2392]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस वेदी का निर्माण करवाया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह वेदी [उपहार] का फल है। (3) [2393]

और छठे युग में
1438 में अपसेना नाम का एक व्यक्ति रहता था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2394]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2395]

इस प्रकार पूज्य आरक्खदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आरक्खडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1436 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1437 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1438 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

225. अव्याधिका 1439

मैंने [उस समय] विपस्सी को एक गर्म कमरा 1440 दिया था, और बीमारों के लिए एक निवास स्थान भी दिया था

जिसमें गर्म पानी की व्यवस्था थी। (1) [2396]
उस अच्छे कर्म के फलस्वरूप,

मेरी स्वयं की स्थिति अच्छी है।1441
मुझे कोई बीमारी नहीं हुई है:
यह अच्छे कर्मों का फल है।1442 (2) [2397]
पिछले इक्यावन युगों में

पिछले इक्यावन युगों में
यह गर्म कमरे का फल है। (3) [2398]
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
सातवें युग पूर्व में एक अपराजिता थे, 1443

एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2399]
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
इस प्रकार पूज्य अव्याधिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अव्याधिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

The legend of Avyādhika Thera is finished.

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1439 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1440 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1441 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1442 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1443 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

226. अंकोलापुप्पिया 1444

मेरा नाम [उस समय] नारद था
[और] मैं कस्सपा के नाम से जाना जाता था। मैंने [बुद्ध] विपस्सी को देखा,
भिक्षुओं के प्रमुख, देवताओं द्वारा सम्मानित, बुद्ध, कम चिह्नों को धारण करते हुए, 1445
बलिदान प्राप्तकर्ता। एक अलंगियम फूल लेते हुए,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (1-2) [2401-2402]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2403]

चौहत्तरवें युग में
रोमासा नामक क्षत्रिय , 1446
नौकरों और वाहनों से संपन्न 1447
उसे मालाओं से सजाया गया था। (4) [2404]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2405]

इस प्रकार पूज्य अंकोलापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंकोलापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1444 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1445 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1446 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
1447 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

227. वटांगसकिया 1448

मैंने विश्व के नेता को एक बगीचे में ले जाते हुए देखा। 1449

सोने से बना, उत्कृष्ट रूप से गढ़ा हुआ, सिर के लिए एक पुष्पमाला उठाकर, [और] वहाँ से जल्दी से उठकर, हाथी की पीठ पर सवार होकर,
मैंने इसे बुद्ध को दे दिया।
सिख धर्म के लिए, विश्व के रिश्तेदार। (1-2) [2406-2407]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2408]

सत्ताईसवें युग में
अतः लोगों का एक स्वामी रहता था।
[जिनका नाम] महापतापा रखा गया था (1450)
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (4) [2409]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2410]

इस प्रकार पूज्य वटांगसकिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वटांगसकिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

228. मिंजावटांगसकिया 1451

जब जगत के भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए, सिख धर्म, वाद-विवाद में सर्वश्रेष्ठ,
मैंने बोधि 1452 की पूजा की।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1448 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1449 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1450 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1451 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1452 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

बालों की मालाओं से ढककर। (1) [2411]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय वह पूजा की थी।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बोधि- पूजा का फल है । (2) [2412]

इसके बाद छब्बीसवें युग में
मेघभा नाम की एक महिला थी, 1453
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2413]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2414]

इस प्रकार पूज्य मिंजवतंगसकिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मिंजावतंगसकिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

229. सुकतवेलिया 1454

उस समय मेरा नाम असिता था, 1455 और मैं माला बनाने वाली थी। एक पुष्प-माला उठाते हुए, 1456
मैं इसे राजा को देने गया था। (1) [2415]

राजा से अभी तक मुलाकात न होने के कारण, मैंने नेता, सिख धर्म को देखा।
प्रसन्न, और प्रसन्न हृदय से,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (2) [2416]

1453 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1454 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1455 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1456 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1457 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1458 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2417]

इसके पच्चीसवें युग में
मैं एक महान शक्तिवान राजा था, जिसे द्वेभार के नाम से जाना जाता था, 1459
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (4) [2418]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2419]

इस प्रकार पूज्य सुकतवेलीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुकातावेलीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

230. एकावंदिया 1460

प्रसन्नता से, अपने हृदय में आनंद लिए, मैंने बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ, वेसभु, विजयी, की पूजा की
बैल, उत्कृष्ट, नायक। (1) [2420]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यही उपासना का फल है। (2) [2421]

चौबीसवें युग में विगतानन्द नामक एक व्यक्ति (1461) निवास करता था।

एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2422]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2423]

इस प्रकार पूज्य एकावंदिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

1459 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1460 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1461 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

एकावंदिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश: आलंबन और अजिना, मानस, अरक्खादायका, अव्याधि, अंकोला, सोना, मिंजा, अवेसा, वंदना;
पचपन श्लोक गिने गए हैं
जिनका अर्थ उन्हें पता है, उनके द्वारा।

आलंबनदायक अध्याय, तेईसवाँ

उदकासनदयी अध्याय, चौबीसवाँ

---

231. उदकासनदायक 1462

आश्रम के द्वार से बाहर आकर मैंने बैठने के लिए एक तख्ता बिछाया और मैंने पानी पिलाया
अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए। (1) [2424]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह सीटों और पानी का फल है। (2) [2425]

पंद्रहवें युग पूर्व
सन् 1463 में अभिसामा नाम का एक व्यक्ति रहता था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2426]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2427]

इस प्रकार पूज्य उदकासनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदकासनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1462 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1463 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

---

232. भजनदायक 1464

बंदुमती शहर में,
मैं उस समय कुम्हार था
मैंने लंबे समय तक 1465 की रक्षा की
भिक्षुओं की सभा के लिए पात्र।1466 (1) [2428]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने भिक्षुओं के पात्रों की रक्षा की, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है:
[सुरक्षा] पात्रों का फल। (2) [2429]

इसके तिरपनवें युग में अनंतजली नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ, 1467
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2430]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2431]

इस प्रकार पूज्य भाजनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भाजनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

233. सालपुप्फिया 1468

अरुणावती शहर में
मैं उस समय केक बनाने वाला था। मैंने सिख धर्म [बुद्ध], विक्टर को देखा,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1464 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1465 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1466 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1467 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1468 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1469 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मेरे द्वार 1471 से होकर यात्रा 1470। (1) [2432]

मैंने अत्यंत स्पष्ट मन से बुद्ध का कटोरा ग्रहण किया और उन्हें एक साल का फूल भेंट किया।
बुद्ध, सर्वोच्च बिंदु प्राप्त करने वाले। (2) [2433]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे मिठाई 1472 दान की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह साल के फूल का फल है । (3) [2434]

चौदहवें युग पूर्व
मेरा नाम अमितंजला था, 1473
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2435]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2436]

इस प्रकार पूज्य सालपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सालपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

234. किलंजदायका 1474

तिवारा में, सुंदर शहर,
मैं तब टोकरी बनाने वाला था (1475)।
वहाँ मौजूद भीड़ ने खूब आनंद उठाया।
सिद्धार्थ में, विश्व का दीपक। (1) [2437]

पूजा के लिए1476

1470 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1471 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1472 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1473 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1474 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1475 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1476 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या खमीर रहित भोजन के रूप में।

हे जगत के स्वामी, एक व्यक्ति चटाई मांग रहा है। पूछे जाने पर मैंने उसे चटाई दे दी।
बुद्ध- पूजा करने वाले । (2) [2438]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यही चटाई देने का फल है। (3) [2439]

सत्तरवें युग में जुटिंधरा नाम का एक राजा था (1477)।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2440]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2441]

इस प्रकार पूज्य किलांजदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

किलांजदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

235. वेदीयदायक 1478

प्रसन्न होकर, अपने हृदय में आनंद लिए, मैंने एक रेलिंग बनवाई
धन्य के शानदार आधार पर
विपस्सी का बोधि वृक्ष। (1) [2442]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने वह रेलिंग बनवाई थी।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2443]

ग्यारहवें युग में
मेरा नाम सूरीअस्समा (1479) रखा गया था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2444]

केक या जंकेट (PSI: Sinh. roṭiya)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई खाद्य पदार्थ है।

1477 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1478 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1479 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2445]

इस प्रकार पूज्य वेदियदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वेदियादायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

236. वण्णकारक 1480

अरुणावती शहर में
मैं उस समय एक रंगसाज़ था। मैंने विभिन्न रंगों से रंगा
स्तूप पर वस्त्र वस्तुएँ.1481 (1) [2446]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय रंगों से खुद को रंगा था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है;
रंगों का यही फल है। (2) [2447]

इसके बाद तेईसवें युग में
[मेरा नाम] चंदुपमा था, 1482
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2448]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2449]

इस प्रकार पूज्य वण्णकारक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वन्नकारक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1480 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1481 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1482 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

237. पियालापुप्फिया 1483

मैं उस समय जंगल में एक उपवन में हिरण का शिकारी था। एक पियाला फूल देखकर

मैंने इसे सड़क पर फेंक दिया।1485 (1) [2450]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2451]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2452]

इस प्रकार पूज्य पियालापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पियालापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

238. अंबयागदायका 1486

उस समय अपने क्षेत्र में एक विशेषज्ञ 1487 होने के नाते, मैं एक वन उपवन में गया,
और बुद्ध, शांत स्वभाव वाले व्यक्ति को देखकर,
मैंने उसे आमों का उपहार दिया। (1) [2453]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह दान दिया था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1483 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1484 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1485 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1486 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1487 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1488 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह आम के उपहार का फल है। (2) [2454]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2455]

इस प्रकार पूज्य अंबयागदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबयागडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

239. जगतिकारक 1489

जब विश्व के स्वामी, पुरुषों में श्रेष्ठ, अत्थादस्सी निर्वाण प्राप्त हुए, तो भूनिर्माण मेरे द्वारा किया गया था
बुद्ध के उत्कृष्ट स्तूप के लिए। (1) [2456]

उस कर्म को करने के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह [अच्छी] भूनिर्माण का फल है। (2) [2457]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2458]

इस प्रकार पूज्य जगतिकारका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जगतिकारका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

240. वासिदायक 1490

अतीत में मैं तिवारा में एक लोहार था, 1491 जो सबसे अच्छे शहरों में से एक है। एक रेज़र वह उपहार था जो मैंने बनाया था
एक अजेय अकेले व्यक्ति को। (1) [2459]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1489 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1490 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1491 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे तब वो रेज़र दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला: एक उपहार में मिले रेज़र का फल। (2) [2460]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2461]

इस प्रकार पूज्य वासिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वासिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: उदाकासन, भाजनादा
सालपुप्पी, किलांजदा, वेदिका और वनकर, पियालम, अंबयागड़ा, जगती और वासिदयी:
इसमें तीस श्लोक और आठ श्लोक अतिरिक्त हैं।

उदकासनदयी अध्याय, चौबीसवाँ

तुवरदया अध्याय, पच्चीसवाँ

---

241. तुवरदायक 1492

मैं उस समय जंगल में एक उपवन के भीतर हिरण का शिकारी था
मैं भिक्षुओं के लिए एक [पात्र] लाया जो भरा हुआ था14931494
तुवारा 1495 के साथ [उनके खाने के लिए].1496 (1) [2462]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उन्हें उस समय वह उपहार दिया था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1492 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1493 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1494 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
1495 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1496 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह तुवारा का फल है । (2) [2463]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2464]

इस प्रकार पूज्य तुवरदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तुवरदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

242. नागकेसरिया 1497

धनुष के दोनों सिरों को इकट्ठा करके, 1498
मैं जंगल में प्रवेश कर गया
मैंने वहाँ एक छोटी झील देखी, जिसमें 1499 लोग एकत्रित थे।
बहुत साफ 1500 और फूलों से भरा हुआ।1501 (1) [2465]

दोनों हाथों से एक तोड़कर और माथे पर प्रणाम करके,1502
फिर मैंने इसे टिस्सा को भेंट किया।
बुद्ध, जगत के रिश्तेदार। (2) [2466]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2467]

सतहत्तरवें युग में,

मेरा नाम पामोक्खरण रखा गया, 1503
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2468]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1497 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1498 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1499 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1500 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1501 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1502 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1503 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2469]

इस प्रकार पूज्य नागकेसरिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नागकेसरिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

243. नलिनाकेसरिया 1504

मैं एक जलपक्षी था1505 जो एक प्राकृतिक झील1506 [वहाँ] में रहता था।
फिर मैंने उसे देखा, जो देवताओं का परमेश्वर है।
[जब] वह आकाश में उड़ रहा था। (1) [2470]

एक ऐसे मन के साथ जो बिल्कुल स्पष्ट था
मैंने अपनी चोंच से कुछ परागकण (1508) तोड़े
[और फिर] इसे टिस्सा को दे दिया।
बुद्ध, जगत के रिश्तेदार। (2) [2471]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2472]

तिहत्तरवें युग में
मेरा नाम सतपट्टा था, सन् 1509
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2473]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2474]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1504 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1505 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1506 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1507 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1508 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1509 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य नलिनाकेसरिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नलिनाकेसरिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

244. वीरवापुप्पिया 1510

विश्व नेता तब बाहर चले गए।
एक हजार दोषरहित अरहंतों के साथ।1511
विरावा 1512 का फूल तोड़ना ,
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (1) [2475]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2476]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2477]

इस प्रकार पूज्य वीरवपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वीरवपुप्पिया थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

---

245. कुटिधूपक 1513

मैं उस झोपड़ी में चौकीदार था।
भगवान सिद्धार्थ की। मैं समय-समय पर इसे सुगंधित करता था।
[अपने] हाथों से अच्छा महसूस कर रहा हूँ-] प्रसन्न। (1) [2478]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
बुद्ध की पूजा का फल। (2) [2479]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1510 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1511 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1512 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1513 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2480]

इस प्रकार पूज्य कुटिधूपका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुटिधूपका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

246. पट्टादायक 1514

जब उसने मुझे पूरी तरह से वश में कर लिया, तो मैंने उसे भिक्षापात्र भेंट किया।
महान ऋषि सिद्धार्थ को, जो सत्यनिष्ठा के साक्षात स्वरूप और तटस्थ हैं। (1) [2481]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय वह दान किया था, और मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
वह कटोरे के उपहार का फल है। (2) [2482]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2483]

इस प्रकार पूज्य पट्टाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पट्टाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

247. धातुपूजक 1515

जब सिद्धार्थ, जो पुरुषों में श्रेष्ठ और जगत के स्वामी थे, निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, तब मुझे उनका एक अवशेष प्राप्त हुआ।
द्विपद भगवान, तटस्थ एक। (1) [2484]

मैंने उस अवशेष को लेकर
बुद्ध के, सूर्य के रिश्तेदार के,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1514 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1515 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

फिर उन्होंने पाँच वर्षों तक उसकी पूजा की।
मानो वहाँ सर्वश्रेष्ठ पुरुष खड़े थे। (2) [2485]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय उस अवशेष की पूजा की थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
अवशेषों की देखभाल का फल। (3) [2486]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2487]

इस प्रकार पूज्य धातुपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धातुपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

248. पातालीपूजक 1517

उस समय मैंने अपने सिर पर सात तुरही के फूल रखे; मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
वेसभु, पुरुषों में सर्वोच्च। (1) [2488]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (2) [2489]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2490]

इस प्रकार पूज्य पातालिपुक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पाटलिपजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

1516 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1517 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1518 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

---

249. बिम्बिजलिया 1519

विजेता पद्ममुत्तरा,
स्वयं एक हो जाओ, प्रधान व्यक्ति, चार [महान] सत्यों की व्याख्या करते हुए,
अमरता का मार्ग घोषित किया। (1) [2491]

उस समय मैंने [वहाँ] फैलकर अपना काम किया।
फूल [जिन्हें] बिम्बिजलिका 1520 कहा जाता है
और उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
द्विपादों का स्वामी, तटस्थ। (2) [2492]

इसके बाद अड़सठवें युग में चार [नाम] किंजाकेसरा, 1521 थे
महान शक्ति वाले, चक्र घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी। (3) [2493]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2494]

इस प्रकार पूज्य बिम्बिजलिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बिम्बिजलिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

250. उद्दालदायका 1522

महान वन से निकले बुद्ध, जिनका नाम काकुसंध1523 है, जो स्वयं एक हो गए हैं, अजेय हैं।
एक बड़ी नदी पर पहुँच गया था। (1) [2495]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1519 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1520 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1521 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1522 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1523 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

सुनहरी बौछार लेना1524 [खिलना], आनंद से भरा मन होना,
मैंने इसे स्वयं-विकास को दे दिया।
आत्म-नियंत्रित व्यक्ति, ईमानदार व्यक्ति.1525 (2) [2496]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (3) [2497]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2498]

इस प्रकार पूज्य उद्दालदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उद्दालदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: तुवारा, नागा, नलिना,
विरव, कुटिधूपका, पत्ता, धातु, पाटलिया,
[और] बिम्बी; उद्दालक सहित सैंतीस श्लोक गिने गए
जिनका अर्थ उन्हें पता है, उनके द्वारा।

तुवरदया अध्याय, पच्चीसवाँ

1524 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1525 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

थोमाका अध्याय, छब्बीसवाँ

251. थोमादायक 1526

देवताओं के लोक में खड़े होकर (1527), शिक्षा को सुनकर (1528)
विपस्सी [बुद्ध], महान ऋषि,
संतुष्ट1529 मैंने ये शब्द कहे:1530 (1) [2499]

हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो!1531
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! [आप] अमरता की स्थिति समझाते हुए कई लोगों को पार ले जाते हैं।" (2) [2500]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह भाषण दिया था, और तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यही प्रशंसा करने का फल है। (3) [2501]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2502]

इस प्रकार पूज्य थोमाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

थोमाडायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1526 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1527 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1528 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1529 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1530 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1531 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

252. एकासनादायक 1532

मेरे दिव्य रंग को त्यागते हुए1533,1534
मैं अपनी पत्नी के साथ यहाँ सेवा करने की इच्छा से आया हूँ।
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की व्यवस्था.1535 (1) [2503]

पदुमुत्तरा का अनुयायी
देवला नाम से जाना जाता था। 1536
एक बहुत ही स्पष्ट मन के साथ,
मैंने उसे भिक्षा भोजन दिया। (2) [2504]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
भीख मांगने का फल यही है।1537 (3) [2505]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2506]

इस प्रकार पूज्य एकासनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकासनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

253. चितपुजक 1538

आनंद नाम से जाने जाने वाले बुद्ध,
स्वयंभू, अजेय, सन् 1539 में अपने वनवास में इस दुनिया से विदा हो गए।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1532 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1533 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1534 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1535 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1536 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1537 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1538 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1539 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

जंगलों में, लोगों से रहित। (1) [2507]

देवताओं के लोक से यहाँ आकर, मैंने एक चिता बनाकर, उसके शरीर को उसी स्थान पर जला दिया।
और मैंने [इस पर] ध्यान दिया।1541 (2) [2508]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2509]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2510]

इस प्रकार पूज्य चितपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चितपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

254. तिचमपकपुप्पिया 1542

हिमालयी क्षेत्र में
विकट नाम का एक पर्वत है।1543
इसके बीच में [उस समय] 1544 आवास थे।
एक भिक्षु जिसकी इंद्रियाँ [अच्छी तरह से] नियंत्रित हैं। (1) [2511]

उस [भिक्षु] की शांति देखकर, [स्वयं] का मन अत्यंत स्पष्ट था, और मैंने तीन चंपक फूल एकत्र किए।
मैं उन [फूलों] को [वहाँ] बिखेर देता हूँ। (2) [2512]

1540 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1541 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1542 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1543 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1544 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2513]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2514]

इस प्रकार पूज्य तिकामपकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

टिकाम्पाकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

255. सत्तपातलिया 1545

मैंने [तब] बुद्ध को सात तुरही-फूल (1546) अर्पित किए, जो भोजन-प्लेट वृक्ष (1547) की तरह चमक रहे थे।
पहाड़ के भीतर बैठे हुए। (1) [2515]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [2516]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2517]

इस प्रकार पूज्य सत्तपातलिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सत्तपातलिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1545 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1546 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1547 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

256. पाहनदायक 1548

उस समय मैं बुद्ध का पुत्र था।
[एक लड़का जिसका] नाम कैंडाना था।1549
मैंने अपने जूतों में से एक जूता दान कर दिया।
जब आपका जागरण हुआ। (1) [2518]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस जूते को तब दान कर दिया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह एक उपहार स्वरूप प्राप्त जूते का फल है। (2) [2519]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति मार्ग;
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2520]

इस प्रकार पूज्य पाहनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पाहनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

257. मंजरीपूजक 1550

फूलों का एक गुच्छा बनाकर, मैं राजमार्ग पर निकल गया।
मैंने उस भिक्षु को देखा, जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।
भिक्षु सभा द्वारा सम्मानित। (1) [2521]

मैं प्रसन्न हूँ, मेरे हृदय में आनंद है, और मैं परम प्रसन्नता से परिपूर्ण हूँ, इसे अपने दोनों हाथों से ग्रहण करता हूँ।
मैंने बुद्ध को [वह गुलदस्ता] भेंट किया। (2) [2522]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1548 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1549 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1550 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1551 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1552 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2523]

तिहत्तरवें युग में
पृथ्वी पर एक शासक था, जिसका नाम ज्योतिया था, 1553
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (4) [2524]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2525]

इस प्रकार पूज्य मंजरीपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मांजारिपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

258. पन्नदायक 1554

हिमालय पर्वत पर,
मैं छाल के वस्त्र धारण करने वाला एक तपस्वी था, जो बिना नमक के पत्तों पर जीवन यापन करता था।
मेरी आवश्यकताओं के संदर्भ में आत्म-नियंत्रित।1555 (1) [2526]

जब मुझे नाश्ता मिल गया, तब सिद्धार्थ (बुद्ध) मेरे पास आए।
मैंने वह [भोजन] बुद्ध को दिया।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (2) [2527]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वे पत्ते दिए थे, मुझे कभी भी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह पत्तों के दान का फल है। (3) [2528]

सत्ताईसवें युग में यदत्तिया नामक एक राजा था (1556)।

1553 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1554 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1555 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1556 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2529]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति मार्ग;
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2530]

इस प्रकार पूज्य पन्नदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पन्नदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

259. कुटिडायक 1557

उस समय संबुद्ध वृक्ष की जड़ में निवास करते हुए वनों में विचरण करते थे। पत्तों का एक कक्ष बनाकर, मैंने इसे अजेय के लिए दिया।1558 (1) [2531]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने पत्तों की वह झोपड़ी [उसे] दे दी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह झोपड़ी-दान का फल है। (2) [2532]

इसके बाद अड़तीसवें युग में
सोलह [पुरुष] थे जो राजा थे, चक्र-घुमाने वाले सम्राट जिन्हें कहा जाता था, उद्धरण, सब्तथा-अभिवस्सी.1559 (3) [2533]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2534]

इस प्रकार पूज्य कुटिडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुटिडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1557 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1558 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1559 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

260. अग्गपुप्पिया 1560

एक अग्गजा 1561 को खिलने देना ,
मैंने परम पुरुष, स्वर्ण रंग के संबुद्ध, सिख धर्म के पास पहुँचकर प्रार्थना की, जो आग के ढेर की तरह थे।
वह पर्वत की ढलान पर बैठे हुए अपनी हजार किरणें बिखेर रहे थे। प्रसन्न, मेरे हृदय में आनंद भरा हुआ था।
मैंने बुद्ध को [वह फूल] अर्पित किया। (1-2) [2535-2536]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2537]

पच्चीसवें युग में [अतः]
मुझे अमिता, 1563 के नाम से जाना जाता है।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2538]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2539]

इस प्रकार वास्तव में आदरणीय अग्गपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे।

अग्गपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

थोमाका, भिक्खा, चिताका, चंपाका, सत्तपातली,
पाहन, मंजरी, पन्ना, कुटिदा, अग्गपुप्पिया 1564

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1560 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1561 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1562 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1563 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1564 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

और यहाँ छंदों की संख्या ठीक चालीस और एक अधिक है।

थोमाका अध्याय, छब्बीसवाँ

पदुमुखेपा अध्याय, सत्ताईसवाँ

---

261. आकाशुक्खीया 1565

दो जलप्रजनित फूल लेकर, 1566
मैं बाज़ार में घूमते हुए पुरुषों में श्रेष्ठ, सिद्धार्थ, स्वर्ण रंग के [बुद्ध] के पास पहुँचा। (1) [2540]

मैंने एक फूल बुद्ध की प्रतिमा के दोनों चरणों में रख दिया। और दूसरा फूल लेकर...
मैंने इसे आकाश में फेंक दिया। (2) [2541]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
फूल देने का यही फल है। (3) [2542]

बत्तीसवें युग में
सन् 1568 में अंतालिक्खाचारा नामक एक पृथ्वी स्वामी रहते थे।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (4) [2543]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति मार्ग;
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2544]

इस प्रकार पूज्य आकाशुक्खिपिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1565 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1566 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1567 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1568 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

आकाशुक्खिपिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

262. तेलमक्खीया 1569

जब सिद्धार्थ, परम पूज्य, पुरुषों में श्रेष्ठ, का देहांत हुआ, सन् 1570 में मैंने उन पर तेल मल दिया।
उसके बोधि वृक्ष पर रेलिंग। (1) [2545]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [रेलिंग पर] तेल लगाया, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह तेल मलने का फल है। (2) [2546]

इसके चौबीसवें युग में
मैं शासक हूँ, 1571 जिसका नाम सुच्छवी है, 1572
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2547]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति मार्ग;
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2548]

इस प्रकार पूज्य तेलमक्खिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तेलमक्खिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1569 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1570 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1571 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1572 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

263. अद्धचंडीय 1573

एक अर्धचंद्र 1574 मेरे द्वारा दिया गया था
पृथ्वी से उगते वृक्ष 1575 पर, धन्य तिस्सा के चरणों में
बोधि, [मगरमच्छ की छाल वाला वृक्ष].1576 (1) [2549]

पिछले बानवे युगों में

मैंने उसे वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बोधि- पूजा का फल है । (2) [2550]

अतः पच्चीसवें युग में देवपा नामक एक क्षत्रिय ने (1577)
वह एक महान शक्तिवान चरखा चलाने वाला था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (3) [2551]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2552]

इस प्रकार पूज्य अद्धचंडीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अद्धचंडीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

264. अरणदीपीय 1578

मैं, देवता के रूप में पुनर्जन्म लेकर,
उस समय धरती पर आकर उन्होंने पाँच दीपक दान किए।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (1) [2553]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1573 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1574 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1575 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1576 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1577 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1578 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय वह दीपक दान कर दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:

यह दीपक दान का फल है। (2) [2554]

पचपनवें युग में [अतः]
पृथ्वी पर एक शासक रहता था,
[जिनका नाम] समंतचक्खु था, 1579
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (3) [2555]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2556]

इस प्रकार पूज्य अरणदीपीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अरणदीपीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

265. बिलादायक 1580

हिमालयी क्षेत्र में,
रोमासा नाम का एक पहाड़ है।1581
उस पर्वत की तलहटी में रहता था
एक भिक्षु जिसकी इंद्रियाँ [अच्छी तरह से] नियंत्रित हैं। (1) [2557]

मैंने कंदयुक्त जड़ें एकत्र करके उस भिक्षु को दान कर दीं।
महान नायक ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की।
स्वयं-बनने वाला, अजेय: (2) [2558]

"आपने मुझे अत्यंत स्पष्ट मन से कंदयुक्त जड़ें दी हैं। अस्तित्व में पुनर्जन्म हो रहा है।"
फल तुम्हारे लिए पुनर्जन्म लेगा।" (3) [2559]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे वे कंदयुक्त जड़ें दीं, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह कंदयुक्त जड़ों का फल है। (4) [2560]

1579 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1580 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1581 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2561]

इस प्रकार पूज्य बिलादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बिलादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

266. मच्छादायक 1582

चंदाभागा नदी के किनारे
उस समय मेरा यूजरनेम osprey1583 था।
मैं 1584 एक बड़ी मछली लाया और उसे दे दी
सिद्धार्थ नामक बुद्ध को। (1) [2562]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस मछली को तब दान कर दिया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह मछली दान का फल है। (2) [2563]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2564]

इस प्रकार पूज्य मच्छडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।
मच्छडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

267. जवाहंगसाका 1585

चंदाभागा नदी के किनारे
मैं उस समय वनपाल था।
मैंने बुद्ध, सिद्धार्थ को देखा।
आकाश में यात्रा करते हुए [वहाँ]। (1) [2565]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1582 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1583 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1584 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1585 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

मैंने अपने हाथों को जोड़कर ऊपर उठाया, उस महान ऋषि के दर्शन किए, जिससे मेरे हृदय को आनंद मिला।
मैंने नेता को आदर दिया। (2) [2566]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने पुरुषों में श्रेष्ठ बैल का आदर किया, मैंने कभी बुरे पुनर्जन्म को नहीं जाना है:
यही श्रद्धा का फल है। (3) [2567]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2568]

इस प्रकार पूज्य जवाहांसक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जावहंसक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

268. साललपुप्पिया 1586

सन् 1587 में, चंदाभागा नदी के किनारे मैं एक किन्नर था । मैंने बुद्ध और विपस्सी के दर्शन किए।
किरणों के जाल से घिरा हुआ। (1) [2569]

प्रसन्न, हृदय में आनंद और परम प्रसन्नता से परिपूर्ण, सालल का फूल लेकर,
मैं इसे विपस्सी के सामने बिखेरता हूँ। (2) [2570]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2571]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1586 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1587 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1588 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2572]

इस प्रकार पूज्य साललपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

साललपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

269. उपागतभाषणीय 1589

हिमालय पर्वतों के बीच एक सुंदर झील थी। मैं उस स्थान पर एक दानव था।
निम्न नैतिकता के साथ,1591 भयानक। (1) [2573]

विपस्सी, विश्व के नेता, दयालु, करुणामयी,
तब वह मेरे सामने आया।
मुझे ऊपर उठाने की इच्छा के साथ। (2) [2574]

आशा के साथ आगे बढ़ते हुए, मैंने गुरु को नमन किया।
वह महान नायक जो आ चुका था,
देवताओं का देवता, मनुष्यों का बैल। (3) [2575]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने परमेश्वर की पूजा की, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यही उपासना का फल है। (4) [2576]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2577]

इस प्रकार पूज्य उपागतभाषनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उपागतभासनीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1589 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1590 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1591 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

270. तराणीय 1592

विपस्सी बुद्ध, 1593 स्वर्ण बुद्ध, नदी के किनारे खड़े थे, वे श्रद्धा के योग्य गुरु थे।
भिक्षु सभा द्वारा सम्मानित। (1) [2578]

उस स्थान पर विशाल महासागर पार करने के लिए नावें नहीं मिलती थीं। उस नदी से आगे बढ़ने पर
मैंने विश्व के नेता को पार कराने में मदद की।1594 (2) [2579]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को पार करने में मदद की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह नौका विहार का फल है। (3) [2580]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2581]

इस प्रकार पूज्य ताराणिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ताराणीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

उक्खेपी, तेला और कैंडी, दिपाड़ा और बिलालिदा, माचा, जावा, सलालादा,

रक्खसा, तराणा [से] दस बनते हैं और यहाँ श्लोकों की गणना ठीक चालीस प्लस एक के रूप में की गई है।

पदुमुखेपा अध्याय, सत्ताईसवाँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1592 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1593 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1594 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सुवन्नबिम्बोहना अध्याय, अट्ठाईसवाँ

---

271. सुवण्णबिम्बोहनिया 1595

मैंने एक कुर्सी दान की।
अपने हाथों से किए गए काम से मुझे बहुत खुशी हुई, और मैंने एक तकिया भी दिया।
अंतिम लक्ष्य की कामना करते हुए। (1) [2582]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब वह तकिया दान कर दिया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह तकिये का फल है। (2) [2583]

इसके बाद तिरसठवें युग में
क्या 1596 में शासक का नाम असमा था, 1597
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2584]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2585]

इस प्रकार पूज्य सुवन्नबिम्बोहनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुवन्नबिम्बोहनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

272. तिलमुत्तिदायक 1598

मेरी सोच को समझते हुए,
शिक्षक, विश्व के प्रमुख नेता, अपने शरीर के माध्यम से जो बना हुआ है
मन ने अपनी शक्तियों के माध्यम से मुझसे संपर्क किया।1599 (1) [2586]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1595 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1596 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1597 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1598 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1599 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

गुरु की सेवा करते हुए, परम पुरुष की पूजा करते हुए, प्रसन्नता से अपने हृदय में आनंद भरते हुए,
मैंने तिल की एक मुट्ठी दी। (2) [2587]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने एक मुट्ठी तिल दिए।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
तिल के फल की एक मुट्ठी। (3) [2588]

सोलहवें युग पूर्व
नंदिया नामक क्षत्रिय
वह एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा था, जो सात रत्नों का स्वामी था। (4) [2589]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2590]

इस प्रकार पूज्य तिलमुट्ठिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिलमुथिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

273. चांगोटकीय 1600

पहाड़ों के बीच रहते हुए, समुद्र से प्राप्त भोजन पर निर्भर रहते हुए,
पीछे की ओर गिरने की इच्छा न रखते हुए,
दान किया, एक बॉक्स.1601 (1) [2591]

फूलों का एक डिब्बा देने के बाद
सिद्धार्थ को, जो परम ऋषि हैं, समस्त प्राणियों पर दया करने वाले हैं।
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (2) [2592]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने वह डिब्बा [बुद्ध को] दे दिया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं भुगतना पड़ा है:
यह एक बॉक्स देने का फल है। (3) [2593]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1600 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1601 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2594]

इस प्रकार पूज्य चांगोटकीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चांगोटकीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

274. अब्भंजनदायक 1602

मैंने मरहम दिया था
कोण्डाञ्ञ को, हे भगवान, जो वासना से मुक्त, तटस्थ, जिनका मन आकाश के समान विशाल था, जो विलंब नहीं करते थे, 1603 ध्यानी, 1604
सभी भ्रमों का पलटना,

समस्त संसार का शुभचिंतक, 1605
द्विपद स्वामी, तटस्थ एक। (1-2) [2595-2596]

बुद्ध को मरहम लगाने के बाद से अनगिनत युगों के दौरान, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
[उपहार देने का] फल। (3) [2597]

पंद्रहवें युग पूर्व
सन् 1606 में सिराप्पा नाम का एक शासक था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2598]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2599]

इस प्रकार पूज्य अब्भंजनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अब्भंजनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1602 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1603 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1604 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1605 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1606 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

275. एकंजलिया 1607

मैंने एक खुला निवास स्थान दिया
एकांतवासी को, सबसे महान ऋषि को, जो एक अंजीर के पेड़ की छाया में निवास करते हैं।
पत्तों की [अच्छी तरह से] तैयार की गई1609 चटाई पर। (1) [2600]

मैंने अपने हाथों को आपस में जोड़कर ऊपर उठाया, 1610
मैंने दो पैरों वाले प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ, टिस्सा के लिए फूलों की चटाई बिछाई।

विश्व का स्वामी, तटस्थ। (2) [2601]

पिछले बानवे युगों में
मैंने फूलों की वो चटाई बनाई, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है:
यही चटाई देने का फल है। (3) [2602]

चौदहवें युग पूर्व
मैं 1611 में लोगों का शासक था।
एक पहिया घुमाने वाला राजा, महान शक्ति के साथ, जिसे 1612 एका-अंजलिका के नाम से जाना जाता है। 1613 (4) [2603]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2604]

इस प्रकार पूज्य एकंजलिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकंजलिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1607 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1608 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1609 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1610 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1611 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1612 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1613 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

---

276. पोत्थादायका 1614

मैंने प्लास्टरिंग1615 के लिए उपहार दिया
उपहार के योग्य, अद्वितीय 1616
1617 में महान ऋषि के नाम पर,

शिक्षक, और शिक्षण, और भिक्षु.1618 (1) [2605]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह प्लास्टर-उपहार का फल है। (2) [2606]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2607]

इस प्रकार पूज्य पोत्थाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पोत्थाडायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

277. चितकपूजक 1619

चंदाभागा नदी के किनारे
मैं मौजूदा हालात के साथ चल रहा था।
मैंने सात मालुवा 1620 फूल रखे
[और] एक मंदिर में पूजा की।1621 (1) [2608]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1614 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1615 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1616 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1617 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1618 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1619 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1620 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1621 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस मंदिर में पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह श्रिन- पूजा का फल है । (2) [2609]

सतहत्तर युगों बाद
सात चक्र घुमाने वाले राजा थे, [जिन सभी का नाम] पतिजग्ग था, 1622 सात रत्नों के स्वामी। (3) [2610]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2611]

इस प्रकार पूज्य चित्तकपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सीतापूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

278. आलुवादायक 1623

हिमालय पर्वत पर
सुंदर, महान सिंधु नदी बहती है।
वहाँ मैंने निर्विचारित व्यक्ति को देखा।
दीप्तिमान एक, 1624 सुंदर। (1) [2612]

उन्हें देखकर मैं चकित रह गया, वे परम शांति में लीन थे।
मैंने उसे कुछ कंदयुक्त जड़ें दीं।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (2) [2613]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब उन कंदयुक्त जड़ों को जन्म दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह कंद-जड़-उपहारों का फल है। (3) [2614]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2615]

1622 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1623 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1624 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इस प्रकार पूज्य आलुवदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आलुवदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

279. एकपुंडरीका 1625

स्वयंभू, प्रकाशमान [बुद्ध] को तब रोमासा नाम से जाना जाता था।1626
मैंने उन्हें एक सफेद कमल भेंट किया।
एक ऐसे मन के साथ जो बहुत स्पष्ट था। (1) [2616]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब एक सफेद कमल दिया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह सफेद कमल का फल है। (2) [2617]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2618]

इस प्रकार पूज्य एकपुंडरीका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकपुंडरीका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

280. तरणीय 1627

राजमार्ग के एक ऊबड़-खाबड़ स्थान पर,
मैंने एक पुल का निर्माण करवाया।

दुनिया को पार करने के लिए,
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (1) [2619]

पिछले इक्यावन युगों में
वह पुल मैंने बनवाया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
पुल देने का यही फल है। (2) [2620]

इसके बाद पचपनवें युग में

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1625 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1626 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1627 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

वहाँ एक [पुरुष] था, समोगधा, 1628
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2621]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2622]

इस प्रकार पूज्य ताराणिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ताराणीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

सोवण्ण और तिलमुट्ठी, चंकॉट', 1629 अब्भंजम, अंजलि, पोत्थक, चितक, माला, एकपुण्डरी, सेतुना:
जब बुद्धिमान लोग इन श्लोकों की गिनती करते हैं तो उनकी संख्या बयालीस होती है।

सुवन्नबिम्बोहना अध्याय, अट्ठाईसवाँ

पन्नदायक अध्याय, उनतीसवाँ

---

281. पन्नदायक 1630

पत्तों से बने कमरे में बैठकर मैं पत्तों को ही भोजन के रूप में खा रहा हूँ।
सिद्धार्थ (बुद्ध), विश्व की मशाल, 1631
हर दुनिया के चिकित्सक, 1632

1628 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1629 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1630 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1631 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1632 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

तब परम संत उस कमरे में बैठे हुए मेरे पास आए।
मैंने उसे छुट्टियाँ दीं [जब वह]
पत्तों से बनी चटाई पर बैठे हुए। (1-2) [2623-2624]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे वे पत्ते दिए थे, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
पत्ते देने का फल यही है। (3) [2625]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2626]

इस प्रकार पूज्य पन्नदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पन्नदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

282. फलदायक 1633

ध्यान से उठते हुए, 1634
[बुद्ध] 1635 में मुझसे भिक्षा मांगने आए। ठीक उसी प्रकार जैसे ब्रह्मांडीय पर्वत, 1636 में उन्होंने
वह पृथ्वी के वाहक के समान था।1637 (1) [2627]

मायरोबलन 1638 [और] आंवला, 1639
आम, 1640 गुलाब-सेब, 1641 बहेरा, 1642

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1633 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

1634 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1635 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1636 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1637 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1638 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1639 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

1640 शाब्दिक रूप से, "गया"

1641 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ संजलेसी पढ़ना

1642 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

जुजुबे,1643 मार्किंगनट,1644 बेल,1645 और फारुसका के फल 1646 — ये सब मैंने दिए थे।
एकदम स्पष्ट मन से,
सिद्धार्थ [बुद्ध], महान ऋषि,
हर दुनिया का दयावान.1647 (2-3) [2628-2629]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (4) [2630]

सत्तावनवें युग में
अतः [रहते थे] एक शासक, 1648 एकज्जा, 1649
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2631]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2632]

इस प्रकार पूज्य फलाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

फलाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

283. पच्चुग्गमानिया 1650

एकदम शांत मन से मैं बाहर गया और विश्व के मशाल, सिद्धार्थ (बुद्ध) को 1651 में प्रणाम किया।

1643 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
1644 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं मीटर बनाए रखने के लिए "हज़ार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी शोषण का उपयोग करता हूँ। पाली शाब्दिक रूप से है, "एक हज़ार कंड (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"
1645 में बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
1646 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
1647 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
1648 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
1649 लिट., "एक फूल पर"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1650 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1651 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

हर दुनिया का चिकित्सक, 1652; मनुष्यों का बैल, जो जंगल में शेर की तरह आया था, 1653
सर्वोत्तम नस्ल के बैल की तरह,
अर्जुन वृक्ष के समान भव्य।1654 (1-2) [2633-2634]

पिछले चौरानवे युगों में
मैं पुरुषों के महापुरुष से मिलने गया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
मिलने जाने का यही फल है। (3) [2635]

सत्ताईसवें युग में
अतः मनुष्यों का एक ही शासक था।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, जिसका नाम सुपरिवारा था।1655 (4) [2636]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2637]

इस प्रकार पूज्य पच्चुग्गमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पच्चुग्गमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

284. एकपुप्फिया 1656

उस समय मैं एक जिन्न था, 1657
दक्षिणी द्वार पर निवास करते हुए।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
[चमकीला लेकिन ठंडा] किरणहीन सूर्य की तरह।1658 (1) [2638]

1652 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1653 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1654 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1655 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1656 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1657 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1658 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने मनुष्यों के मुखिया विपस्सी को एक फूल भेंट किया।
समस्त संसार का शुभचिंतक, 1659
सर्वश्रेष्ठ द्विपद, तटस्थ। (2) [2639]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब उसे वह फूल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2640]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2641]

इस प्रकार पूज्य एकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

285. मग़वपुप्पिया 1660

स्वयंभू स्वरूप, अजेय, उन्होंने ध्यान की कला से परिपूर्ण किया।
प्रकाशमान, निष्कलंक
[निवास] नर्मदा नदी के किनारे पर। (1) [2642]

प्रसन्न मन से, यह देखकर
संबुद्ध, अजेय, फिर एक माघवा फूल के साथ
मैंने पूजा की1661 कि स्वयं एक हो गया। (2) [2643]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2644]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2645]

1659 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1660 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1661 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

इस प्रकार पूज्य मगहावपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मघावपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

286. उपत्थायक 1662

मैंने उसे आमंत्रित करने के बाद—
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का सांड, सर्वश्रेष्ठ द्विपाद प्राणी, महान हाथी, बलि का पात्र,
जो सड़क पर आ गए थे —
यह सेवा मेरे द्वारा प्रदान की गई थी
सिद्धार्थ [बुद्ध], महान ऋषि,
हर दुनिया का शुभचिंतक.1663 (1-2) [2646-2647]

इसे स्वीकार करते हुए, संबुद्ध ने
तब परम ऋषि उस आसन से उठे जो उनकी सेवा के लिए तैयार किया गया था।
[और] पश्चिम की ओर मुख करके आगे बढ़ा। (3) [2648]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह सेवा प्रदान की थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही सेवा देने का फल है। (4) [2649]

सत्तावनवें युग में
अतः, [वह] 1664 में बालासेना नामक स्थान पर रहे।
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2650]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान जिन पर महारत हासिल की गई:
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2651]

इस प्रकार पूज्य उपत्थायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उपत्थायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1662 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1663 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1664 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

287. अपदानिया 1665

मैंने अपदानों की प्रशंसा की।
महान ऋषि, वे लोग जो अब इस दुनिया में नहीं हैं,
और उन्होंने उनके चरणों में सिर रखकर उनकी पूजा की।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (1) [2652]

पिछले बानवे युगों में
मैंने अपदान [कविताओं] की प्रशंसा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यही प्रशंसा का फल है। (2) [2653]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2654]

इस प्रकार पूज्य अपदानिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अपदानीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

288. सत्ताहबब्बजित 1666

भिक्षुओं को सम्मानित और आदरणीय माना जाता था।1667
भगवान विपस्सी की स्तुति हो। मुझ पर विपत्ति आ पड़ी है; 1668
घर पर पारिवारिक कलह थी।16691670 (1) [2655]

त्याग में प्रवेश करना
अपने दुःख को कम करने के लिए,
मैंने वहाँ एक सप्ताह आनंदपूर्वक बिताया,
शिक्षक की शिक्षा की इच्छा रखते हुए।1671 (2) [2656]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1665 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1666 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1667 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1668 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1669 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1670 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1671 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

पिछले इक्यावन युगों में
तब मैं संन्यासी बनकर निकल पड़ा।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
त्याग का फल। (3) [2657]

सड़सठवें युग में
अतः पृथ्वी के सात स्वामी थे।
[जिनका] नाम सुनिक्खमा था, 1672
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (4) [2658]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2659]

इस प्रकार पूज्य सत्ताहबब्बजित थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सत्ताहबब्बजित थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

289. बुद्धूपट्ठायक 1673

वेटांबरी 1674 का नाम था
वह व्यक्ति जो उस समय मेरे पिता थे, उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने हाथों में ले लिया।
वह मुझे सबसे बड़े ऋषि के पास ले गया। (1) [2660]

“ये सभी बुद्ध, जगत के प्रधान स्वामी, मुझे दिखाए जाएंगे;”
मैंने उन सभी की आदरपूर्वक सेवा की।
[अपने] हाथों से [अच्छी तरह से] संतुष्ट महसूस कर रहा हूँ। (2) [2661]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब बुद्ध की देखभाल की थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
सेवा प्रदान करने का फल। (3) [2662]

इसके बाद तेईसवें युग में
1675 में शासक वर्ग के चार लोग थे।

1672 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1673 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1674 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1675 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

[जिन्हें] सभी समनुपट्टक कहा जाता था, 1676
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (4) [2663]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2664]

इस प्रकार पूज्य बुद्धूपट्टायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बुद्धूपट्टायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

290. पब्बंगमनिया 1677

चौरासी हजार [महान लोगों] ने संसार का, सब कुछ त्याग दिया। मैंने [तब] उन्हें प्राथमिकता दी।
अंतिम लक्ष्य की कामना करते हुए। (1) [2665]

वासना और अस्तित्व की इस दुनिया में, उन्होंने ध्यानपूर्वक ध्यान दिया
अबाधित व्यक्ति, 1678, स्पष्ट व्यक्ति, 1679
अपने हाथों से [अच्छी तरह से] संतुष्ट महसूस करते हुए। (2) [2666]

[उनके] दोष नष्ट किए गए, 1680 दोष दूर किए गए, 1681
उन्होंने बिना किसी गलती के अपना कर्तव्य निभाया, 1682
प्रेममय हृदयों से सर्वव्यापी,
स्वयं-स्वयं-स्वयं, अजेय लोग; (3) [2667]

उन संबुद्धों को याद करते हुए, 1683
उनकी सेवा करने के बाद,
जब मेरी मृत्यु का समय आया,
मैं दिव्य अस्तित्व में गया। (3-4) [2668]

1676 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1677 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1678 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1679 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1680 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1681 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1682 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1683 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय नैतिकता की रक्षा की थी।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
संयम बरतने का यही फल है। (5) [2669]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2670]

इस प्रकार पूज्य पुब्बांगमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुब्बांगमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

पन्ना, फल, उग्गमिया, एकपुप्फी और मगव, उपट्टाक का अपदान , पब्बज्जा और उपट्टाहा,
और पुब्बंगमा; इन श्लोकों की संख्या अड़तालीस है।

पन्नदायक अध्याय, उनतीसवाँ

चितपुजक 1684 अध्याय, तीसवाँ

---

291. चितपूजक 1685

उस समय मैं एक ब्राह्मण था, जिसका नाम अजिता था।1686
बलिदान करने की इच्छा से, 1687
मैंने कई तरह के फूल इकट्ठा किए थे। (1) [2671]

1688 में सिख धर्म के विश्ववासी रिश्तेदार की जलती हुई चिता देखने के बाद,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1684 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1685 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1686 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1687 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1688 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

उन फूलों को [फिर से] इकट्ठा करना
मैं उन्हें उस जलती हुई चिता पर बिखेर देता हूँ। (2) [2672]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2673]

सत्ताईसवें युग में
अतः, मनुष्यों के सात स्वामी थे।
उनका नाम सुपज्जलिता रखा गया, 1689
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले राजा। (4) [2674]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2675]

इस प्रकार पूज्य चितपूजक1690 थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सिटपुजका 1691 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

292. पुप्फधारक 1692

मैं छाल के वस्त्र धारण करने वाला एक तपस्वी था, जो हिरण के चमड़े के बाहरी वस्त्र पहनता था। मुझे पाँच विशेष ज्ञान प्राप्त थे;1693
एक व्यक्ति जो चंद्रमा को छू सकता था। (1) [2676]

विश्व की मशाल विपस्सी को देखना, 1694
मेरे साथ उसी स्थान पर आओ, मैंने पुष्पों की छतरी धारण की।
शिक्षक के [सिर के ऊपर]। (2) [2677]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस पुष्पीय [छतरी] को धारण किया,

1689 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1690 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

1691 शाब्दिक रूप से, "गया"

{फैंसी कोष्ठकों} में दिए गए 1692 अपदान संख्याएँ BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करती हैं

1693 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1694 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह [फूलों] के फल हैं। (3) [2678]

अस्सीवें युग में
अतः, समंतधारण नामक पृथ्वी का एक स्वामी था (1695)।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (4) [2679]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2680]

इस प्रकार पूज्य पुप्पधारक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुप्पधारक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

293. चट्टदायका 1696

उस समय मेरा पुत्र संन्यासी था और भगवा वस्त्र धारण करता था। उसने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया था।
और निर्वाण, विश्व का दीपक। (1) [2681]

अपने बेटे के बारे में पता चलने के बाद, मैं उस जगह गया, मैं चिता पर गया।
उस महान व्यक्ति का जो गुजर गया था।1697 (2) [2682]

मैंने वहां हाथ जोड़कर चिता की पूजा की।
और एक सफेद छाता लेकर
मैंने उस समय इसे वहाँ उठाया। (3) [2683]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने वह [सफेद] छाता पेश किया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
छतरियां देने का फल। (4) [2684]

अतः पच्चीसवें युग में लोगों के सात स्वामी थे।

1695 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1696 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1697 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

जिनके नाम [सभी] महाराजा, 1698 थे
महान शक्ति वाले पहिए घुमाने वाले सम्राट। (5) [2685]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2686]

इस प्रकार पूज्य चट्टडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चट्टडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

294. सद्दसाञ्ञक 1699

जब सूरज पूरी तरह से नहीं निकला हो,
अभी भी प्रचुर मात्रा में चमक है 1700 :
दुनिया के भीतर उत्पन्न होने वाली
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, महान ऋषि। (1) [2687]

मैंने [तब] वहाँ उसकी आवाज़ सुनी।
लेकिन1701 मैंने विक्टर को नहीं देखा।
जब मेरी मृत्यु का समय आ गया,
मुझे बुद्ध की ध्वनि याद आ गई। (2) [2688]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2689]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2690]

इस प्रकार पूज्य सद्दसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

1698 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1699 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1700 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1701 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सद्दसञ्जक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

295. गोसीसानिकखेपा 1702

मैंने 1703 में सुनहरी चंदन की लकड़ी बिछाई
आश्रम के द्वार से बाहर निकलने के लिए। अब मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ:
यह पिछले कर्मों का फल है। (1) [2691]

शुद्ध नस्ल के घोड़े, हवा की तरह तेज दौड़ने वाले घोड़े, सिंध के घोड़े, तेज रफ्तार वाहन:
मुझे इन सब चीजों का आनंद आ रहा है:
वह चंदन का फल है। (2) [2692]

ओह! मेरा कर्म, 1704 एक अंतिम कर्म, एक उत्तम मैदान में अच्छी तरह से किया गया।
भिक्षुओं के लिए किए गए कार्यों के अलावा और कुछ नहीं। 1705
इसका थोड़ा सा भी मूल्य है (3) [2693]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने चंदन वहाँ रख दिया, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
लकड़ी बिछाने का यही फल है। (4) [2694]

अतः पचहत्तरवें युग में एक अत्यंत शक्तिशाली प्राणी था।
वह पहिया घुमाने वाला, जिसके पास जबरदस्त ताकत थी, जिसका नाम सुप्पतित्तिता था।1706 (5) [2695]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2696]

इस प्रकार पूज्य गोसीसानिकखेपा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1702 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1703 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1704 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1705 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1706 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

गोसीसानिकखेपा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

296. पदपूजक 1707

हिमालय पर्वत पर,
मैं उस समय 1708 का किन्नरा था।
मैंने बुद्ध, निर्मल, [चमकीले लेकिन शीतल] को देखा, जो उस समय मेरे पास आए थे, विपस्सी बुद्ध, विश्व-नेता।
और फिर मैंने उसके पैरों को रगड़ा
चंदन और धूप भी।1710 (1-2) [2697-2698]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उन चरणों की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
पाद -पूजा करने का फल । (3) [2699]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2700]

इस प्रकार पूज्य पादपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पदपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

297. देशकित्तिया 1711

उस समय मैं उपसालक नाम का एक ब्राह्मण पुरुष था।1712

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1707 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1708 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1709 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1710 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1711 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1712 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

दुनिया के सर्वश्रेष्ठ बैल को देखकर, दुनिया के बलिदान प्राप्त करते हुए,
जंगल में, वन में डूब गया
मैंने वहां बुद्ध के चरणों की पूजा की। अपनी मानसिक प्रसन्नता को समझते हुए,
बुद्ध वहीं से गायब हो गए। (1-2) [2701-2702]

जंगल से बाहर आने के बाद,
मुझे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की याद आ गई। इस क्षेत्र में यह घोषणा करते हुए,
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (3) [2703]

पिछले बानवे युगों में

मैंने इस क्षेत्र के लिए यह घोषणा की है कि मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यही प्रचार का फल है। (4) [2704]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2705]

इस प्रकार पूज्य देशकित्तिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

देशकित्तिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

298. सरणगमानिया 1713

मैं उस समय हिमालय के एक पर्वत पर शिकारी था। मैंने बुद्ध और विपस्सी को देखा।
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल। (1) [2706]

संबुद्ध की सेवा करना
मैंने बड़ों के लिए उचित कार्य किया।
और [फिर] मैं दो पैरों वाले भगवान के पास गया,
तटस्थ [बुद्ध,] शरण के लिए। (2) [2707]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय शरण ली थी, मुझे कभी कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
शरण लेने का फल। (3) [2708]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1713 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2709]

इस प्रकार पूज्य सरणगमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सरणगमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

299. अम्बापिंडिया

मैं [तब] एक प्रसिद्ध टाइटन था [1714]
रोमासा नाम से जाना जाता है।1715
मैंने दान में कुछ आम दिए
विपस्सी [बुद्ध], महान ऋषि को। (1) [2710]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब उसे वो आम दिए थे, मुझे अब तक कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:
आम देने का यही फल है। (2) [2711]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2712]

इस प्रकार पूज्य अंबपिंडिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबापिंडिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

300. अनुसावक 1716

मैंने विजेता विपस्सी को भिक्षा मांगते हुए देखा।
मैंने उल्लू के भोजन की मात्रा दी1717
सर्वश्रेष्ठ द्विपद, तटस्थ एक के लिए। (1) [2713]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1714 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1715 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1716 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1717 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

उस समय मैंने प्रसन्नता और आनंद से भरे हृदय से बुद्ध का अभिवादन किया।
मैंने बुद्ध की स्तुति की।
अंतिम लक्ष्य की कामना करते हुए। (2) [2714]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब बुद्ध की स्तुति की थी, और तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं भुगतना पड़ा है।
यह प्रशंसा गीत गाने का फल है। (3) [2715]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2716]

इस प्रकार पूज्य अनुसावक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अनुसावका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:

चितक और परिच्छत्त, सद्दा, गोसीससंथार, पद, पदेसा, शरण, अम्बा और संसावक भी:
इसमें सैंतालीस श्लोक हैं।
जिनकी गिनती जानकार लोग करते हैं।

चितकापूजक अध्याय, तीसवाँ
इसके बाद अध्यायों का सारांश है: कण्णिकारा, हत्थिददा,
आलंबन, उदकासन, तुवरा और थोमना भी, उक्खेपा, शिशुपधान, पणदा और सीतापूजी:
कुल मिलाकर यहाँ सभी छंद
[संख्या] चार [बार] एक सौ और पचास से एक अधिक भी।1718

कुल पच्चीस सौ [श्लोक] और इसके अतिरिक्त बहत्तर और: तीन सौ अपदान [कविताएँ]
सत्य को देखने वाले ही इनकी गिनती करते हैं।

1718 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

तीसरा सौ पूरा हो गया है।
[टिपिटक]] >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.5 थेरपदाना
स्रोत: जेएस वाल्टर्स
नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अंतर्वस्तु

1अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 301-400
1.1301. पदुमकेसरिया1720
1.2302. सब्बूगंधिया1726
1.3303. परमन्नदायक 1729
1.4304. धम्मसंञ्च1732
1.5305. फलदायक 1739
1.6306. संससादक 1742
1.7307. आरामदायक 1748
1.8308. अनुलेपायक 1754
1.9309. बुद्धसंज्ञक 1755
1.10310. पब्भारद्यक 1756
1.11311. अरखदयक 1765
1.12312. भोजनालयक 1767
1.13313. गतासन्नाका1774
1.14314. सत्तपदुमिया 1776
1.15315. पुप्पासानिया 1781
1.16316. अनंतविका 1783
1.17317. सद्दसंज्ञका1789
1.18318. तिरंगसिया 1792
1.19319. कंदलपुप्पिया1798
1.20320. कुमुदमलिया 1801
1.21321. उम्मापुप्पिया1802
1.22323. हासजनक 1811
1.23324. सन्न्यासमिका 1814
1.24325. निमित्तसंज्ञका1825
1.25326. अन्नसावका 1827
1.26327. निग्गुण्डिपुप्पिया 1829
1.27328. सुमनवेलिया 1856
1.28329. पप्पच्छत्तिया 1865
1.29330. सपरिवरचट्टदैक1871
1.30331. गंधथुपिया 1883
1.31332. {335.}1905 फुसिटाकामिया1906
1.32333. {336.}1925 पभंकर1926
1.33334. {337.}1947 तिनकुतिदायक1948
1.34335. {338.}1964 उत्तरेयाद्यक1965
1.35336. {339.}1990 धम्मसावनिया1991
1.36337. {340.}2013 उखिट्तापाडुमिया2014
1.37338. {341.}2021 एकपाडुमिया2022
1.38339. {342.}2032 तिनुप्पलमालिया2033
1.39340. {343.}2038 धजदायक2039
1.40341. {344.}2044 तिन्निकिङ्खणिकापूजक2045

1.41342. {345.}2052 नलगारिका2053
1.42343. {346.}2059 कैम्पकापुप्फहिया2060
1.43344. {347.}2064 पदुमपूजक2065
1.44345. {348.}2069 तिनामुथिदायक2070
1.45346. {349.}2081 टिंडुकफलदायका2082
1.46347. {350.}2087 एकांजलि2088
1.47348. {351.}2096 सदसांका2097
1.48349. {352.}2104 यवकलापिय2105
1.49350. {353.}2108 किससुकापुजाका2109
1.50351. {354.}2111 साकोटकाकोरांडदायका2112
1.51352. {355.}2119 दण्डदायक2120
1.52353. {356.}2123 अंबयागुडायक2124
1.53354. {357.}2127 सुपूतकपूजक2128
1.54355. {358.}2129 सज्जादायक2130
1.55356. {359.}2134 सारनागमानिया2135
1.56357. {360.}2137 पृथ्वीका2138
1.57358. {361.}2140 एकमंदरिया2141
1.58359. {362.}2144 Kekkhārupupphiya2145
1.59360. {363.}2148 भिसामुदलदायक2149
1.60361. {364.}2154 केसरपुप्फहिया2155
1.61362. {365.}2158 Aṅkolapupphiya2159
1.62363. {366.}2163 चरणबप्पपहिया2164
1.63364. {367.}2166 उद्दालपुप्पिया2167
1.64365. {368.}2170 एककंपकपुप्फहिया2171
1.65366. {369.}2174 तिमिरापुप्पिया2175
1.66367. {370.}2176 Salaḷapupphiya2177
1.67368. {371.}2183 बोधिवन्दक2184
1.68369. {372.}2192 पाटलिपुप्पिया2193
1.69370. {373.}2198 तिनप्पलमलिया2199
1.70371. {374.}2205 Paṭṭipupphiya2206
1.71372. {375.}2212 सत्तपनीय2213
1.72373. {376.}2216 गंधमुठिया2217
1.73374. {377.}2223 सीतापूजक2224
1.74375. {378.}2228 सुमनतालवंतिया2229
1.75376. {379.}2232 सुमनदामादैका2233
1.76377. {380.}2236 कसुमरिफलदायका2237
1.77378. {381.}2240 अवनफलदायक2241
1.78379. {382.}2244 लबुजफलदायका2245
1.79380. {383.}2251 उदंबरफलदायक2252
1.80381. {384.}2257 पिल्लकफलदायका2258
1.81382. {385.}2261 चरणफलदायका2262
1.82383. {386.}2264 वल्लिफ़लायक2265

1.83384. {387.}2267 कदलीफलदायक2268
1.84385. {388.}2271 पनसफलदायक2272
1.85386. {389.}2278 सोनाकोटीसा2279
1.86387. {390.} पिछले कर्मों के चिथड़े 2293
1.87388. {391.}2317 पिलिंडावाच्चा2318
1.88389. {392.}2912 Sela2913
1.89390. {393.}3154 सब्बाकित्तिका3155
1.90391. {394.}3223 मधुदायक3224
1.91392. {395.}3246 पदुमकुतागारिया3247
1.92393. {396.}3282 बक्कुला3283
1.93394. {397.}3330 गिरीमानंद3331
1.94395. {398.}3379 सलामामंदापिया3380
1.95396. {399.}3389 सब्बदायक3390
1.96397. {400.}3429 अजिता3430
1.97398. {401.}3468 तिसामेतेय3469
1.98399. {402.}3487 पंक3488
1.99400. {403.}3504 Mettagu3505
अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 301-400

---

301. पदुमकेसरिया1720

[मैं रहता था]1721 ऋषि-सभा में,1722 एक भयंकर मातंग 1723 हाथी। ऋषियों के लिए प्रसन्नता का अनुभव करते हुए1724
मैंने [कुछ] कमल के पराग छिड़के।1725 (1) [2717]

उन सर्वश्रेष्ठ आत्म-प्रबुद्ध, वासना रहित, तटस्थ पुरुषों के बीच रहकर मेरे हृदय को प्रसन्नता प्राप्त हुई।
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (2) [2718]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय पराग बिखेरा था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
वह पुष्प- पूजा का फल है । (3) [2719]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2720]

इस प्रकार पूज्य पद्मकेसरिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पद्मकेसरिया थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1720 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।

यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1721 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1722 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1723 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1724 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1725 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

302. सब्बागंधिया1726

मैंने फूलों की माला दी
मैंने विपस्सी [बुद्ध], महान ऋषि को, और सत्यनिष्ठ व्यक्ति को दिया।
[एक टुकड़ा] उत्तम रेशमी कपड़े का। (1) [2721]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने पहले उसे वह कपड़ा दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह इत्र देने का फल है। (2) [2722]

पंद्रहवें युग पूर्व
1727 में सुसेला नाम का एक शासक रहता था, 1728
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (3) [2723]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2724]

इस प्रकार पूज्य सब्बागंधिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सब्बागंधिया थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

---

303. परमन्नदायक 1729

मैंने बुद्ध, विपस्सी को देखा।
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में सांड, भोजन की थाली के समान चमकता हुआ वृक्ष, 1730
ठीक वैसे ही जैसे सूरज उगता है। (1) [2725]

अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाते हुए,
मैं बुद्ध को अपने घर ले आया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1726 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1727 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1728 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1729 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1730 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

संबुद्ध को [वहाँ लाकर]
मैंने उसे दूध-चावल 1731 दान किया। (2) [2726]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे वह दूध-चावल दिया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:
यह दूध-चावल-दान का फल है। (3) [2727]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2728]

इस प्रकार पूज्य परमन्नादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

परमन्नाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

304. धम्मसंञ्क1732

वहाँ एक विशाल उत्सव था
परम पूज्य विपस्सी के बोधि वृक्ष के लिए।
संबुद्ध उसकी जड़ों में विराजमान थे।
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में बैल।1733 (1) [2729]

उस समय, भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित भगवान,
चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए, अपना राजसी भाषण दे रहे थे। (2) [2730]

संक्षिप्त और विस्तृत प्रवचनों के माध्यम से उपदेश देना,
संबुद्ध, आवरण हटाए गए, 1735
शुद्ध किया गया 1736 महान भीड़। (3) [2731]

1731 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1732 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1733 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1734 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1735 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1736 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति ने गुरु के चरणों की पूजा की।
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (4) [2732]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने सुना है कि उस समय शिक्षा देने से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
शिक्षा को समझने का फल.1737 (5) [2733]

इसके तैंतीसवें युग में, सूतवा नाम से जाना जाने वाला एक शासक था।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (6) [2734]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2735]

इस प्रकार पूज्य धम्मसंञ्क थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धम्मसनक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

305. फलाडायक 1739

भागीरथी नदी के किनारे उस समय एक आश्रम था। मैं एक बार उस आश्रम में गया था।
उम्मीद से, मेरे हाथों में फल। (1) [2736]

मैंने वहां विपस्सी [बुद्ध] को देखा।
[चमकीला लेकिन ठंडा] जैसे किरणहीन सूर्य।1741
मैंने शिक्षक को दान दिया
मेरे हाथ में जितने भी फल थे। (2) [2737]

1737 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1738 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1739 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1740 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1741 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (3) [2738]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2739]

इस प्रकार पूज्य फलाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

फलाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

306. संपसादक 1742

हे बुद्ध-वीर, आपकी जय हो!
आप सर्वव्यापी निर्मल हैं। मुझ पर विपत्ति आ पड़ी है;
मेरे लिए शरण बनो।" (1) [2740]

सिद्धार्थ [बुद्ध], संसार में
अद्वितीय व्यक्ति ने 1743 में [मुझे] समझाया:1744
"भिक्षुओं की सभा सागर के समान असीम और अद्वितीय है।"
भिक्षुओं में अपने दिल को आनंदित करें 1745
और खुशी का बीज बो दें
उस क्षेत्र में, जो त्रुटिहीन है,
जो असीमित फल प्रदान करता है।"1746 (2-3) [2741-2742]

यह कहते हुए, सर्वज्ञानी,
दुनिया के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में बैल की तरह, ने मुझे उस तरह से निर्देश देने के बाद,
आकाश में उठ गया, आकाश!1747 (4) [2743]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1742 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1743 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1744 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1745 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1746 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1747 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

पुरुषों के सांड, सर्वज्ञ, के चले जाने के कुछ ही समय बाद, मेरी मृत्यु का समय आ गया; मेरा पुनर्जन्म तुसिता में हुआ। (5) [2744]

फिर उस खेत में, जो दोषरहित है और असीमित फल देता है,
भिक्षुओं में, मेरे हृदय को प्रसन्न करके, मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (6) [2745]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे उस समय वह सुख प्राप्त हुआ था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही सुख की अनुभूति का फल है। (7) [2746]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2747]

इस प्रकार पूज्य संपसादक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

संपसादक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

307. आरामदायक 1748

1749 में भगवान सिद्धार्थ के लिए एक बगीचा लगाया गया था।
जब पक्षी पेड़ों पर बसेरा कर रहे थे
[और वे घनी छाया पैदा करने आए थे],1750
मैंने बुद्ध को देखा, जो निर्मल और बलिदान ग्रहण करने वाले थे।
मैं दुनिया का सबसे बेहतरीन वाला लाया हूँ।
पुरुषों में बैल, बगीचे में। (1-2) [2748-49]

प्रसन्न, और प्रसन्न हृदय से,
मैंने उसे फल और फूल दिए।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1748 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1749 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1750 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

और उससे उत्पन्न आनंद के साथ,
मैंने औपचारिक दान किया।1751 (3) [2750]

जो कुछ मैंने बुद्ध को अत्यंत स्पष्ट मन से अर्पित किया,
मेरे लिए एक [महान] फल के रूप में पुनर्जन्म हुआ जबकि
मैं अस्तित्व में पुनर्जन्म लिया।1752 (4) [2751]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे अब बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है:
बगीचा देने का फल। (5) [2752]

सैंतीसवें युग में सात मुदुसीतल थे, 1753
महान शक्ति वाले, चक्र घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी। (6) [2753]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2754]

इस प्रकार पूज्य आरामदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आरामदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

308. अनुलेपादायक 1754

मैंने एक भिक्षु को देखा, एक अनुयायी को।
अत्थादस्सी [बुद्ध], ऋषि के।
मैं उसके पास तब पहुंचा जब वह यह कर रहा था।
सीमा पर मरम्मत [वहाँ]। (1) [2755]

जब मरम्मत का काम पूरा हो गया, तो मैंने [उन्हें] मरहम दान में दिया।
खुश, मेरा दिल आनंद से भर गया
अद्वितीय योग्यता क्षेत्र में। (2) [2756]

अठारह सौ युगों में
क्योंकि मैंने तब वह अच्छा कर्म किया था,

1751 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
1752 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1753 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1754 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह मरहम देने का फल है। (3) [2757]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2758]

इस प्रकार पूज्य अनुलेपादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अनुलेपादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

309. बुद्धसंञ्ञक 1755

मैंने सपने में विश्व के नेता, सिद्धार्थ बुद्ध को देखा।
जैसे उगता हुआ सौ किरणों वाला [सूर्य], [चमकीला लेकिन शीतल] जैसे किरणहीन सूर्य,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में श्रेष्ठ बैल, जो [तब] जंगल में गया था। वहाँ मेरे दिल को आनंदित करते हुए।
मैं सुदाए हुए [बुद्ध] के पास पहुँचा। (1-2) [2759-2760]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्धों को समझने का फल। (3) [2761]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2762]

इस प्रकार पूज्य बुद्धसंञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बुद्धसंञ्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

310. पब्भारद्यक 1756

मैंने भगवान पियादस्सी के लिए एक पहाड़ी गुफा की सफाई की।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1755 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1756 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

और पानी के बर्तन की देखभाल की।
तटस्थ व्यक्ति के उपभोग के लिए। (1) [2763]

पियादस्सी, महानतम ऋषि,
बुद्ध ने मुझे यह समझाया।
“a mil- kaṇḍa 1757 cent- bheṇḍu 1758 [large]
1759 के बाद बलिदान होगा, जो सोने का बना होगा और झंडों से ढका होगा;
साथ ही रत्नों का एक छोटा समूह भी नहीं।" एक पहाड़ी गुफा देने के बाद, 1760
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (2-3) [2764-2765]

बत्तीसवें युग में
1761 में सुसुद्ध नामक शासक रहता था, 1762 में
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (4) [2766]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2767]

इस प्रकार पूज्य पब्भारद्यक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पब्भारडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

केसर, गंध और अन्ना, धम्मस्ना और फल भी, पसाद, अरमादायि,
लोमका, बुद्धसन्नाका, [और] पब्भारदा; छंद,
वे कहते हैं कि 1763 पचास से एक कम है।

पदुमकेसरिया अध्याय, इकत्तीसवाँ

1757 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1758 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1759 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1760 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1761 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1762 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1763 शाब्दिक रूप से, "गया"

आरक्खदायक, 1764 अध्याय, बत्तीसवाँ

---

311. आरक्खदायक 1765

मैंने एक बाड़ का निर्माण किया।
महान ऋषि धम्मदासी और मैंने उनकी रक्षा की।
सर्वश्रेष्ठ द्विपद के लिए, तटस्थ एक। (1) [2768]

मैंने वह कर्म अठारह सौ युग पहले किया था।
उस [अच्छे] कर्म के शेष प्रभाव से, मैं अब एक अरहंत हूँ।1766 (2) [2769]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [2770]

इस प्रकार पूज्य आरक्खदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आरक्खडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

312. भोजनादायक 1767

साल के पेड़ की शाखा के समान उत्तम कुल का , सहजन के पेड़ की तरह ऊपर उठता हुआ, इंद्र के बाण की तरह आकाश में विचरण करता हुआ।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1764 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1765 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1766 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह.   रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1767 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
1768 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1769 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह.   रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1770 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

विक्टर हमेशा चमकता रहता था। (1) [2771]

एकदम स्पष्ट मन से, मैंने खाने-पीने की चीजें दान कीं।
वह, जो अन्य देवताओं से श्रेष्ठ ईश्वर है,
वेस्साभू [बुद्ध], महान ऋषि। (2) [2772]

स्वयं-निर्मित, अजेय,
बुद्ध ने इसके लिए मुझे धन्यवाद दिया1771: “इसे तुम्हारे लिए फल के रूप में उत्पन्न होने दो,
जैसे [आप] अस्तित्व में पुनर्जन्म लेते हैं।"1772 (3) [2773]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब उसे वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह भोजन देने का फल है। (4) [2774]

इसके पच्चीस युग बाद अमित्तभा नाम का एक व्यक्ति हुआ, 1773
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (5) [2775]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2776]

इस प्रकार पूज्य भोजनाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भोजनाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

313. गतासान्नाका1774

हवा में कोई पदचिह्न नहीं हैं; आकाश पर हवा के कोई निशान नहीं हैं। मैंने विजेता, सिद्धार्थ को देखा।
देवताओं की दुनिया की यात्रा।1775 (1) [2777]

मैंने सम्मासंबुद्ध के वस्त्र को हवा से लहराते हुए देखा।

1771 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
1772 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1773 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1774 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1775 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

ऋषि की यात्रा देखकर,
मेरे लिए आनंद सदा के लिए जन्म लेता है। (2) [2778]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्ध-बोध का फल। (3) [2779]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2780]

इस प्रकार पूज्य गतासञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गतसंनाका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

314. सत्तपदुमिया 1776

मैं ब्राह्मण था, नेसादा, 1777
उस समय नदी किनारे निवास करते थे।
मैंने वहां के आश्रम की सफाई की।
कमल के फूलों के साथ [मेरी झाड़ू के रूप में]। (1) [2781]

स्वर्ण संबुद्ध को देखकर, विश्व के नेता सिद्धार्थ, जंगल से होकर गुजर रहे थे [एक बार]
मुझे आनंद का अनुभव हुआ।1778 (2) [2782]

विश्व के नेता, संबुद्ध, सिद्धार्थ से मिलने के लिए मैं उन्हें आश्रम ले आया।
और कमल और लिली फैलाए।1779 (3) [2783]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1776 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1777 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1778 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1779 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2784]

सातवें युग पूर्व
1780 में चार पादपावर थे।
महान शक्ति वाले, चक्र घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी। (5) [2785]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2786]

इस प्रकार पूज्य सत्तापदुमिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सत्तपदुमिया थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

---

315. पुप्फासानिया 1781

स्वर्ण रंग के संबुद्ध, सौ किरणों वाले सूर्य के समान, पास ही से गुजर रहे थे [ग्रंथ]।
सिद्धार्थ, अजेय। (1) [2787]

बुद्ध से मिलने के लिए बाहर जाकर, उन्हें अपने आश्रम में आमंत्रित करके, मैंने उन्हें फूलों का आसन भेंट किया।
एक ऐसे मन के साथ जो बहुत स्पष्ट था। (2) [2788]

दोनों हाथों को एक साथ दबाकर, उस समय मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ। बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए,
मैंने उस कर्म को अपने उपयोग में लाया। (3) [2789]

मैं इस व्यवस्था में पवित्र हूँ
उस सारी अच्छाई के कारण,1782
मेरे द्वारा अर्जित योग्यता
अजेय, स्वयं-रूप। (4) [2790]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब वह फूलों वाली कुर्सी वापस दे दी थी।

1780 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1781 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1782 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
पुष्प आसन देने का फल। (5) [2791]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2792]

इस प्रकार पूज्य पुप्पासानिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुप्पासानिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

316. आसनत्थविका 1783

सिख धर्म [बुद्ध], सर्वोच्च स्तूप, उस समय संसार का सगे-संबंधी था। मैं एक अंधकारमय मार्ग पर यात्रा कर रहा था।
वन, एक बंजर जंगल। (1) [2793]

जंगल से बाहर निकलने के बाद,
मैंने बुद्ध का सिंह सिंहासन देखा।1784
आत्मविश्वास से अपने हाथों को दबाते हुए,
मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की। (2) [2794]

पूरे दिन (1785) मैंने विश्व के प्रधान नेता बुद्ध की स्तुति की। प्रसन्नतापूर्वक और प्रसन्न हृदय से।
मैंने उस समय यह भाषण दिया: (3) [2795]

हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो!1786
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! आप सर्वज्ञ, महान नायक हैं।
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में बैल।" (4) [2796]

सिख धर्म की इस प्रकार प्रशंसा करने के बाद, वहाँ उनके सिंहासन को प्रणाम करने के बाद,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1783 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1784 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1785 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1786 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

अन्य चिंताओं के कारण, 1787
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (5) [2797]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता की प्रशंसा की [तब,] मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह प्रशंसा गीत गाने का फल है। (6) [2798]

सत्ताईसवें युग पूर्व सात अतुल्य थे, 1788
महान शक्ति वाले, चक्र घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी। (7) [2799]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [2800]

इस प्रकार पूज्य आसनत्थविका थेरा ने इन श्लोकों का उच्चारण किया।

आसनत्थविका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

317. सद्दसाञ्ञाका1789

महान नायक, सुंदर पुरुष, 1790 में अमरता के मार्ग का उपदेश देते हुए, अपने अनुयायियों से घिरे एक शानदार घर में निवास कर रहे थे। (1) [2801]

उसने लोगों के मोह को नष्ट कर दिया।
अपने मधुर शब्दों के माध्यम से।
उस समय बहुत हंगामा मच गया था।
देवताओं और मनुष्यों के लिए अच्छे की कामना।1791 (2) [2802]

उन कथनों को सुनकर
सिद्धार्थ [बुद्ध], महान ऋषि,

1787 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1788 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1789 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1790 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1791 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

और उस ध्वनि से मेरा हृदय प्रसन्न हो गया।
मैंने तब विश्व के नेता की पूजा की। (3) [2803]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्धों को समझने का फल। (4) [2804]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2805]

इस प्रकार पूज्य सद्दसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सद्दसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

318. तिरांगसिया 1792

पर्वत की ढलान पर, सिद्धार्थ ने एक कुलीन सिंह की तरह सभी दिशाओं को प्रकाशित कर दिया था।
पहाड़ पर आग के ढेर की तरह 1793। (1) [2806]

बुद्ध की आभा को देखकर, जो सूर्य की आभा के समान थी,
और चंद्रमा की चमक की तरह, मेरे लिए भी बड़ी खुशी उत्पन्न हुई। (2) [2807]

तीनों प्रकाशों को देखकर, परम श्रोता को देखकर, 1794 में एक कंधे पर हिरण की खाल रखते हुए,
मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की। (3) [2808]

संसार में अंधकार को दूर करने वाले प्रकाश के तीन निर्माता, 1795

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1792 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1793 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1794 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1795 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

चंद्रमा भी है, और सूर्य भी।
और बुद्ध, विश्व के नेता। (4) [2809]

इन उपमाओं को स्पष्ट करते हुए,
मैंने महान ऋषि की प्रशंसा की।1796
बुद्ध के गुणों की प्रशंसा करने के बाद,
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (5) [2810]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उस समय] बुद्ध की प्रशंसा की थी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यही प्रशंसा का फल है। (6) [2811]

इसके बाद इकसठवें युग में
वहाँ एक [पुरुष] था, Ñāṇadhara,1797
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी। (7) [2812]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [2813]

इस प्रकार पूज्य तिरांसिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिरांगसिया थेरा की कथा का अंत हो गया है।

---

319. कंदलपुप्पिया1798

उस समय मैं सिंधु नदी के किनारे एक किसान था। दूसरों की सेवा में लगा हुआ था।
मैंने दूसरे के चावल नहीं ढूंढे।1799 (1) [2814]

सिंधु नदी के किनारे घूमते हुए,
मैंने सिद्धार्थ, जो विजेता थे, को ध्यान मुद्रा में बैठे देखा (1800)

1796 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1797 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1798 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1799 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

1800 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

खिले हुए कमल के फूल की तरह। (2) [2815]

मैंने सभी तने काट दिए हैं
फिर उसने सात केले के फूलों को सिर पर फैला दिया।
बुद्ध का, सूर्य का रिश्तेदार। (3) [2816]

प्रोटोकॉल का ध्यान रखते हुए,
[उस समय] जब मैं स्वर्ण रंग के संबुद्ध के पास पहुंचा था,
हे ज्ञानी, अपनी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाले,
— हाथी की तरह पहुँचना कठिन है, तीन गुना लय में डूबा हुआ मातंग — मैंने अपने हाथों को एक साथ दबा लिया है
मैंने गुरु [बुद्ध] की पूजा की। (4-5) [2817-2818]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [2819]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [2820]

इस प्रकार पूज्य कंदलपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कंदलिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

320. कुमुदमालिया 1801

एक सफेद कमल का फूल लेकर मैं
इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, बलि प्राप्तकर्ता के समक्ष रखा गया।
बैल, श्रेष्ठ, वीर, विजयी, महान ऋषि, विपस्सी [बुद्ध], महान वीर
जैसे कोई शेर जो उच्च कुल का हो। (1-2) [2821-2822]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [2823]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1801 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2824]

इस प्रकार पूज्य कुमुदमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुमुदमालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: अरक्खाड़ा, भोजनदा,
गतासानि और पदुमिका, पुप्पासानि, संथवाका, सद्दासानि, तिरांसिय, कंडाली और कोमुदी भी: सत्तावन छंद हैं।

आरक्खदाय अध्याय, बत्तीसवाँ

उम्मापुप्पिया अध्याय, तैंतीसवाँ

---

321. उम्मापुप्पिया1802

मैंने परम पुरुष, सिद्धार्थ, अजेय, एकाग्र, सिद्ध पुरुष को देखा।
ध्यान में बैठे हुए 1803. (1) [2825]

नीले रंग के अलसी के फूल इकट्ठा करके, मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
सभी फूल एक ही दिशा में मुंह किए हुए थे।
तने ऊपर की ओर मुड़े हुए, सिर नीचे की ओर मुड़े हुए। (2) [2826]

सुंदर चित्रों की तरह वे आकाश में पुष्पों की छतरी की तरह बने रहे।
उस मानसिक आनंद के कारण,

मेरा पुनर्जन्म तुसिता में हुआ। (3) [2827]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1802 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1803 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1804 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [2828]

इसके बाद पचपनवें युग में
एक व्यक्ति था, पृथ्वी का स्वामी, जिसे समंतच्छदना के नाम से जाना जाता था, 1805
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (5) [2829]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2830]

इस प्रकार पूज्य उम्मापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उम्मापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

322. पुलिनापुजका 1806===

अर्जुन वृक्ष के समान तेजस्वी, उत्तम नस्ल के बैल के समान।
भोर के तारे की तरह चमकता हुआ, 1807
पुरुषों के बैल ने [दुनिया] को रोशन किया। (1) [2831]

अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाते हुए,
मैंने गुरु [बुद्ध] की पूजा की। [फिर] मैंने अपने कर्मों से प्रसन्न होकर गुरु की स्तुति की। (2)[2832]

1808 में मैंने कुछ बहुत साफ रेत इकट्ठा की और उसे उस रास्ते पर फैला दिया जिस पर वह चला था, 1809 में मैंने उसे 1810 अपनी गोद में रखा था।

1805 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 1806 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।

यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

1807 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1808 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1809 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

1810 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

विपस्सी बुद्ध, महान ऋषि के लिए। (3) [2833]

दोपहर के आराम के समय, मेरा मन बिल्कुल शांत था।
मैंने उस रेत का आधा हिस्सा छिड़क दिया।
द्विपद भगवान के लिए, तटस्थ एक। (4) [2834]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह रेत छिड़की थी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
रेत देने का फल यही है। (5) [2835]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2836]

इस प्रकार पूज्य पुलिनापूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुलिनपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

323. हासजनक 1811

मैंने शिक्षक का चिथड़ों से बना वस्त्र एक पेड़ की चोटी पर टंगा हुआ देखा।

अपने हाथों को आपस में दबाकर,
मैंने इसे और ऊपर उठा लिया। (1) [2837]

दूर से एक झलक देखने के बाद
उस चोगे को देखकर मुझे हंसी आ गई।
अपने हाथों को आपस में दबाकर,
मैंने अपने दिल को और भी अधिक आनंद दिया। (2) [2838]

पिछले इक्यावन युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्धों को समझने का फल। (3) [2839]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1811 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1812 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1813 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [2840]

इस प्रकार पूज्य हासजनक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

हासजनक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

324. सन्यासमिका 1814

मैं [केवल] सात वर्ष का था, 1815 में मंत्रों का एक विद्वान गुरु। वंश परंपरा को आगे बढ़ाते हुए,
मैंने बलिदानों को प्रोत्साहित किया। (1) [2841]

चौरासी हजार [जीवित] जानवरों को मैं प्रतिदिन बलि देता हूँ। उन्हें लकड़ी के खंभे से बांधकर बलि के लिए रखा जाता है। (2) [2842]

जैसे भट्टी के ऊपर पीटा हुआ 1817 [सोना], 1818 [तेज जलता हुआ] जैसे देवदार का कोयला, 1819 जैसे सूरज [जब] उग रहा हो,
जैसे 1820 के पंद्रहवें दिन का चंद्रमा।

सिद्धार्थ, समस्त सफलता का लक्ष्य,
त्रिविध जगत द्वारा 1821 में पूजित, मित्र, 1822
संबुद्ध के पास पहुँचने पर
[मैंने] यह भाषण [तभी और वहीं] दिया: (3-4) [2843-2844]

“हे युवक, सभी जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा ही मुझे सबसे अधिक प्रसन्न करती है।”

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1814 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1815 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1816 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1817 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1818 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1819 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1820 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1821 शाब्दिक रूप से, "गया"
1822 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

और चोरी करने, अपराध करने और शराब पीने से परहेज़ करना। (5) [2845]

मुझे अच्छे व्यवहार से प्रसन्नता होती है, और विद्वानों के प्रति कृतज्ञता भी; किए गए कार्य भी प्रशंसनीय हैं।
इस दुनिया में दूसरों के लिए। (6) [2846]

उन चीजों का अभ्यास करते हुए, सभी के प्रति दयालुता में आनंद लेते हुए,1823 बुद्ध में अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, परम मार्ग का अभ्यास करो।” (7) [2847]

यह कहते हुए, सर्वज्ञानी ने कहा,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, पुरुषों में श्रेष्ठ बैल, ने मुझे इस प्रकार सलाह दी,
आकाश में उठा और उड़ गया।1824 (8) [2848]

मैंने पहले अपने हृदय को शुद्ध किया, फिर बाद में अपने हृदय को सुख प्रदान किया। उस मानसिक सुख के कारण,
मेरा पुनर्जन्म तुसिता में हुआ। (9) [2849]

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने उस आनंद को अपने हृदय में समाहित कर लिया है, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
बुद्धों को समझने का फल। (10) [2850]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [2851]

इस प्रकार पूज्य सन्ज्ञासामिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सन्ज्ञासामिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

325. निमित्तसञ्ञाका1825

मैं चंदाभागा नदी के किनारे एक कुटिया में रहता था। मैंने एक सुनहरे रंग का हिरण देखा।
[जो] जंगल में भटक रहा था। (1) [2852]

1823 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
1824 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1825 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

उस हिरण को देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया, तब मुझे विश्व के सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की याद आई।
उसी आनंद के साथ, मैंने अन्य बुद्धों को याद किया: (2) [2853]

"वे बुद्ध जो इस दुनिया से चले गए हैं,
जो लोग इस दुनिया से चले गए, वे अपने जीवनकाल में ठीक इसी तरह प्रकाशमान हुए।
जैसे [सुनहरे] हिरण-राजा हृदय के लिए।" (3) [2854]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्धों को समझने का फल। (4) [2855]

सत्ताईसवें युग में
अतः पृथ्वी का एक ही स्वामी था, जिसका नाम अरञ्ञसत्त था (1826)।
एक पहिया घुमाने वाला, अत्यंत शक्तिशाली राजा। (5) [2856]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2857]

इस प्रकार पूज्य निमित्तसञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

निमित्तसञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

326. अन्नसावका 1827

संबुद्ध को 1828 में रोके रखना —
स्वर्ण रंग का संबुद्ध, सोने से बनी किसी कीमती वस्तु के समान, बत्तीस महान चिह्नों से युक्त, सिद्धार्थ, समस्त सफलता का लक्ष्य।
वह निर्मल, अजेय, जो बाजार से होकर गुजर रहा था—
मैंने [उस संबुद्ध को] भोजन कराया, हे महान ऋषि। (1-2) [2858-2859]

1826 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1827 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1828 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

उस समय संसार के प्राणियों के प्रति दयालु ऋषि ने मुझ पर अपना प्रकाश प्रज्वलित किया। बुद्ध में मेरा हृदय प्रसन्न हो गया।
मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (3) [2860]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे भिक्षा में भोजन दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह दान देने का फल है। (4) [2861]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [2862]

इस प्रकार पूज्य अन्नसावका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अन्नासावका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

327. निग्गुण्डिपुप्फिया 1829

जब [उसके] जीवनकाल के अनुसार, एक देवता संसार से विदा हो जाता है, 1830
तीन कहावतें 1831 उत्सर्जित होती हैं [तब,]
देवताओं के आनंद में। (1) [2863]1832
"यहाँ से, महोदय, 1833 में अच्छे राज्य की ओर जाइए, लोगों की संगति में।"
मनुष्य बनना ही प्राप्त करना है
उत्कृष्ट सत्य में महान विश्वास।1834 (2) [2864]

यह स्थापित करने के बाद, आपका विश्वास सुप्रसिद्ध उत्कृष्ट सत्य में है,
[अच्छी तरह से] स्थापित, [उन सुखद] जड़ों से उत्पन्न,
जब तक तुम जीवित रहो, दृढ़ रहो। (3) [2865]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1829 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

1830 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1831 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1832 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1833 में शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

1834 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

अपने शरीर से अच्छे कर्म करना1835
और अपने भाषण से बहुत अच्छा काम करना;
अपने मन का भी ख्याल रखना।
घृणा और आसक्ति से मुक्त हो।1836 (4) [2866]

इस प्रकार अपने जीवन को ऊंचा उठाकर, पुण्य कर्म करते हुए और भरपूर दान देकर, दूसरों को भी इसमें प्रवेश करने के लिए प्रेरित करो।
पवित्र जीवन [और] उत्कृष्ट सत्य।" (5) [2867]

जब देवताओं को पता चलता है कि एक देवता का पतन हो रहा है,1837 [इस प्रकार की] करुणा से भरकर, वे [उसके पुनर्जन्म पर] प्रसन्न होते हैं:
"हे भगवान, बार-बार लौट आओ।" (6) [2868]

उस समय जब देवताओं की सभा एकत्रित हुई तो मैं भावुक हो गया।
तो अब मुझे किस गर्भ में जाना चाहिए?
जब मैं यहाँ से गिर जाऊँ तो क्या करूँ? (7) [2869]

पदुमुत्तरा के अनुयायी,
सुमाना नाम से जानी जाती थी, 1838
एक भिक्षु जिसकी इंद्रियां [अच्छी तरह से] नियंत्रित थीं, यह समझते हुए कि मैं भावुक हो गया था।
और मुझे ऊपर उठाने की इच्छा रखते हुए,
तब वह मेरे सामने आया था
और मुझे निर्देश देते हुए उत्तेजित किया।
अर्थ और शिक्षा में.1839 (8-9) [2870-2871]

बारहवाँ पाठ भाग, 1840
उनकी बातें सुनने के बाद मैंने
बुद्ध को प्रणाम करने से मेरा हृदय प्रसन्न हुआ। 1841
मैं [तब] वहीं मर गया। (10) [2872]

उन सुखद जड़ों से प्रेरित होकर, मेरा वहीं पर पुनर्जन्म हुआ।

1835 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1836 शाब्दिक रूप से, "गया"
1837 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पाठ किया गया
1838 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
1839 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
1840 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
1841 में बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

मां के गर्भ में निवास करते हुए भी,
मैं अपनी माँ का प्रशिक्षक था।1842 (11) [2873]

उस शरीर से गिरने के बाद
मेरा पुनर्जन्म 33, 1843 को हुआ था।
उस [स्वर्ग] के भीतर, मेरे लिए,
मानसिक विक्षोभ नहीं देखा गया। (12) [2874]

तावतिंसा से भी गिर गया,
1844 में मैं एक माँ के गर्भ में आया। उस गर्भ से बाहर आते ही मुझे पता चल गया।

[काले और सफेद के बीच का अंतर] 1845 (13) [2875]

केवल सात वर्ष का होने के कारण,
मैंने 1846 में पार्क-आश्रम में प्रवेश किया।
भगवान गौतम के बारे में,
शाक्यान पुत्र, तटस्थ व्यक्ति। (14) [2876]

जब व्यवस्था फैल गई
[और] 1847 की शिक्षा लोकप्रिय थी, 1848
मैंने वहाँ शिक्षक के स्वयं के भिक्षुओं को देखा, जो उनके उपदेशों का पालन करते थे। (15) [2877]

वहां श्रावस्ती नामक एक नगर था, जिसका एक राजा था जिसका नाम कोसल था।
हाथी रथ से वह
सर्वोच्च बोधि वृक्ष के पास आया। (16) [2878]

वहाँ उसके हाथी को देखकर, अपने पिछले कर्मों को याद करते हुए, मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाया,
मैं भी उस कार्यक्रम में गया था।1849 (17) [2879]

केवल सात वर्ष का होने के कारण,
मैं बेघर हो गया। बुद्ध की देखभाल करने वाला उनका अनुयायी आनंद था, जो 1850 में पूर्णतः सुसंस्कृत और दृढ़ निश्चयी था।

1842 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
1843 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
1844 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
1845 साहित्य, "एक फूल पर"
1846 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
1847 khiḍḍāratiyaa
1848 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
1849 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
1850 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

सचेत और बहुत ज्ञानी भी।
उन्होंने 1851 में ब्रिलियंट वन का कार्यभार संभाला।
राजा के हृदय को प्रसन्नता प्रदान करना। (18-19) [2880-2881]

उनकी शिक्षा सुनने के बाद, मुझे अपने पिछले कर्म याद आ गए। ठीक उसी स्थान पर खड़े होकर...
[तब] मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (20) [2882]

एक कंधे पर चोगा डालना।

मैंने अपने हाथों को सिर पर जोड़कर, संबुद्ध को प्रणाम किया।
मैंने यह भाषण [तभी और वहीं] दिया: (21) [2883]

मैंने 1852 निग्गुंडी फूल एकत्र किए और उन्हें पद्ममुत्तरा बुद्ध के सिंह-सिंहासन पर रखा।
दो पैरों वाले जीवों के स्वामी, शिक्षक। (22) [2884]

उस कर्म के द्वारा, हे द्विपाद प्रभु,
हे विश्व के सर्वश्रेष्ठ, हे पुरुषों में श्रेष्ठ, मैंने विजय या पराजय के बिना अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।(23) [2285]

पच्चीस हज़ार युग में, 1853 में, 1854 में, करोड़ों-सैकड़ों-खरबों और सैकड़ों की संख्या में पुरुषों के शाही-स्वामी थे।
ट्रिलियन-सौ-ट्रिलियन, प्रत्येक आठ.1855 (24) [2886]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [2887]

इस प्रकार पूज्य निग्गुंडिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

निग्गुंडिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

1851 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”
1852 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
1853 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
1854 pariḷāho
1855 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

---

328. सुमनवेलिया 1856

सभी लोग एकत्रित होकर वेस्साभु [बुद्ध], भगवान बुद्ध की महान पूजा कर रहे थे।
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [2888]

शुद्ध भिक्षा भोजन का गोला बनाना
और, खुशी से, फूलों की माला।
फिर मैंने उन्हें सबके सामने पेश किया
बुद्ध का सिंह-सिंहासन। (2) [2889]

सभी लोग एकत्रित होकर उस अद्भुत फूल को देख रहे हैं।
यह फूल किसके द्वारा भेंट किया गया था? (1857)
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, तटस्थ व्यक्ति?” (3) [2890]

उस मानसिक सुख के कारण, मेरा पुनर्जन्म निम्माना में हुआ। (1858)
मैं अपने कर्मों का फल भोगता हूँ।
मैंने अतीत में अच्छा किया है। (4) [2891]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, मैं सभी लोगों को प्रिय हूं।
वह पुष्प- पूजा का फल है । (5) [2892]

मुझे अपने शरीर के माध्यम से आत्मसंयमित तपस्वियों की निंदा करने का कोई वाकया नहीं मिला है।
न ही 1860 मेरे भाषण से न ही मेरे मन से। (6) [2893]

उस अच्छे व्यवहार के कारण
[और मेरा] मानसिक संकल्प, 1861
मैं सभी [लोगों] द्वारा सम्मानित महसूस करता हूँ:

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1856 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1857 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1858 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1859 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1860 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1861 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1862 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

निंदा न करने का यही फल है। (7) [2894]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (8) [2895]

ग्यारहवें युग में
एक राजा था, 1863 सहस्सारा, 1864
महान शक्ति से युक्त, सात रत्नों के स्वामी, चक्र घुमाने वाले सम्राट। (9) [2896]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [2897]

इस प्रकार पूज्य सुमनवेलीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुमनवेलीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

329. पुप्फच्छत्तिया 1865

जल में उगे कमलों को लाते हुए, 1866 सौ पत्तियों वाले, मन को प्रसन्न करते हुए, और उसे प्रसन्न करते हुए, मैंने एक भेंट प्रस्तुत की।
भगवान बुद्ध, सिद्धार्थ को पुष्पों से सजा हुआ छाता।
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति, जब वह सत्य की घोषणा कर रहा था,
जीवित प्राणियों को सहायता प्रदान करना। (1-2) [2898-2899]

और सिद्धार्थ, जगत के ज्ञाता, यज्ञ के प्राप्तकर्ता,
भिक्षुओं की सभा में खड़े हुए, 1867
शिक्षक ने मेरे लिए यह आयत कही: (3) [2900]

1863 शाब्दिक रूप से, "गया"
1864 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पाठ किया गया
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1865 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1866 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1867 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

“[यही वह व्यक्ति] जिसने मुझमें उसके दिल को प्रसन्न किया
और उस मानसिक आनंद के कारण उसने फूलों की छतरी बनाई।
बुरे पुनर्जन्म में नहीं जाएगा।” (4) [2901]

यह कहकर, विश्व के नेता, सिद्धार्थ संबुद्ध ने अपने दल से विदा ली।
आकाश में उठ गया, आकाश!1868 (5) [2902]

जब ईश्वर-मानव 1869 का उदय हुआ तो सफेद छतरी भी उठ खड़ी हुई।
वह अद्वितीय छाता [तब]
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के सामने गया। (6) [2903]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे वह छाता दिया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
पुष्प छत्र का फल। (7) [2904]

चौहत्तरवें युग में
आठ [नाम] जलसिखा, 1870 महान शक्ति वाले चक्र-घुमाने वाले सम्राट, सात रत्नों के स्वामी थे। (8) [2905]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [2906]

इस प्रकार पूज्य पुप्पच्छत्तिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुप्पच्छत्तीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

330. सपरिवरचट्टदायक1871

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
धम्म की वर्षा हो रही थी

1868 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
1869 में शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1870 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1871 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

जैसे 1872 से आकाश से बारिश का पानी। (1) [2907]

मैंने तब संबुद्ध को अमरता का मार्ग उपदेश देते हुए देखा। इससे मेरे हृदय को आनंद मिला।
मैं [तब] अपने घर वापस चला गया। (2) [2908]

एक सजी हुई छतरी लेकर,
मैं परम पुरुष के पास पहुँचा। प्रसन्न होकर, और प्रसन्न हृदय से, मैंने उसे आकाश में उठा लिया। (3)[2909]

प्रमुख अनुयायियों में से एक, एक सुव्यवस्थित 1873 वाहन की तरह नियंत्रित होकर, संबुद्ध की ओर जा रहा था।
[फिर] उसने [इसे] अपने सिर के ऊपर उठा लिया। (4) [2910]

दया से परिपूर्ण, करुणामय
विश्व के प्रमुख नेता बुद्ध, 1874 में भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए।
[तब] मेरे बारे में ये आयतें बोलीं: (5) [2911]

“जिसने मुझे यह सुशोभित, मन को प्रसन्न करने वाला छाता दिया है, वह मुझे मानसिक सुख प्रदान करता है।”
बुरे पुनर्जन्म में नहीं जाएगा। (6) [2912]

और वह सात बार देवताओं के बीच दिव्य शासन करेगा।
और वह छत्तीस बार होगा
एक [शक्तिशाली] पहिया घुमाने वाला राजा। (7) [2913]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (8) [2914]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला

1872 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1873 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1874 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।” (9) [2915]

बुद्ध के वचनों को समझकर, उनके द्वारा कहे गए उन महान शब्दों को सुनकर, मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद का संचार हुआ।
मैंने और भी अधिक भाषण को जन्म दिया। (10) [2916]

मैंने मनुष्य गर्भ का त्याग कर एक देवता का गर्भ प्राप्त किया। मेरा भव्य स्वर्गीय महल
ऊँचा उठा, 1875 मन को प्रसन्न करते हुए। (11) [2917]

जब मैं उस हवेली से बाहर निकलता हूँ, तो एक सफेद छाता साथ ले जाया जाता है।1876
मुझे यही धारणा बन रही है:
पूर्व कर्मों का फल। (12) [2918]

देवताओं के लोक से गिरकर मैं मनुष्य रूप में आया, छत्तीस बार चक्र घुमाने वाला।
सात सौ युग पहले। (13) [2919]

उस शरीर से गिरने के बाद,
मैं तैंतीसवीं कक्षा में गया। 1877
मैं धीरे-धीरे स्थानांतरित हो रहा हूँ
मानव जीवन में पुनः लौट आया। (14) [2920]

उनके पास एक सफेद छाता था।
मेरे लिए अपनी माँ के गर्भ से बाहर आना। फिर सात साल की उम्र में,
मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (15) [2921]

[एक आदमी था] जिसका नाम सुनंदा था, 1878
मंत्रों के एक ब्राह्मण गुरु। 1879 का क्रिस्टल छाता लेकर आ रहे हैं।
, प्रमुख अनुयायी को उपहार दिया। (16) [2922]

महान नायक, महान वक्ता
सारिपुत्त ने आभार व्यक्त किया।1880
उनकी कृतज्ञता सुनकर,
मुझे अपना पिछला काम याद आ गया। (17) [2923]

1875 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1876 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1877 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1878 शाब्दिक रूप से, "गया"
1879 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी पढ़ा गया
1880 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाते हुए,
मैंने अपने मन को सुख दिया। अपने पिछले कर्मों को याद करते हुए,
मैंने अरहंत अवस्था प्राप्त की। (18) [2924]

फिर मैं अपनी सीट से उठकर, अपने हाथों को सिर पर जोड़कर, सम्बुद्ध को प्रणाम किया।
[और] उस समय ये शब्द कहे: (19) [2925]

एक लाख युगों बाद

पद्ममुत्तरा बुद्ध,
विश्वज्ञानी, विश्व में अद्वितीय, बलिदान का पात्र
स्वयं-एक हो चुके, प्रधान व्यक्ति ने अपने दोनों हाथों में ग्रहण किया।
मेरे द्वारा दी गई छतरी,
पूरी तरह से अलंकृत और सुशोभित। (20-21) [2926-2927]

हे बुद्ध! हे शिक्षा!
ओह! हमारे शिक्षक की उपलब्धि!
एक छाते के उपहार के माध्यम से,
मेरा पुनर्जन्म किसी बुरी स्थिति में नहीं हुआ। (22) [2928]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। अपने सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए, मैं अब बिना किसी दोष के रहता हूँ। (23) [2929]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [2930]

इस प्रकार पूज्य सपरिवाराचत्तदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सपरिवाराचट्टदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: उम्मापुप्फी और पुलिना,
हासा, सान्या, निमित्तका, सासावाका और निगुंडी, 1881
सुमना, पुप्पचट्टका, और सुपरिवरचट्टा:
एक सौ सात श्लोक।

1881 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

उम्मापुप्पिया अध्याय, तैंतीसवाँ

गंधतूपिया, 1882 अध्याय, चौंतीसवाँ

---

331. गंधथूपिया 1883

मैंने सिद्धार्थ बुद्ध के लिए चमेली के फूलों से लिपटा हुआ एक सुगंधित स्तूप भेंट किया।
जैसा कि संबुद्ध के लिए उपयुक्त था।1884 (1) [2931]

विश्व के नेता, संबुद्ध, सोने की कीमती वस्तु के समान थे।

नीले जल लिली की तरह चमकीला, 1885
अग्नि-वेदी की तरह धधक रहा है। (2) [2932]

भिक्षुओं के मुखिया को बैठे हुए और भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हुआ।
एक उत्कृष्ट बाघ-बैल की तरह, एक उत्तम नस्ल के शेर की तरह,
और मैंने गुरु के चरणों की पूजा करने के बाद अपने हाथों को जोड़कर उन्हें जोड़ा।
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (3-4) [2933-2934]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय उन [अच्छी] सुगंधों को दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
सुगंध पूजा करने का फल । (5) [2935]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [2936]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1882 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1883 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1884 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1885 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

इस प्रकार पूज्य गंधतूपीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गंधाथुपिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{*332, केवल BJTS: Udakapūjaka1886}1887

मैंने स्वर्ण संबुद्ध को हवा के मार्ग पर चलते हुए देखा, जो तेल की वेदी की तरह चमक रहा था।
अग्नि-वेदी की तरह धधक रहा है।1889 [2937]

मैंने हाथ में थोड़ा पानी लेकर उसे आसमान में उछाल दिया।
दयालु बुद्ध, ऋषि, महान नायक, ने [तब] इसे स्वीकार किया। [2938]

आकाश में खड़े होकर, पद्ममुत्तरा नाम के गुरु ने मेरे मन के विचारों को जान लिया।
[उसी समय मेरे बारे में] यह श्लोक बोला: [2939]

“पानी के इस उपहार के कारण
और जो आनंद उसने तब उत्पन्न किया, वह एक लाख युगों तक बना रहा।
उसे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं होगा। [2940]

बुद्ध के लिए उस कार्य के कारण, 1890
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।
सभी विजय और पराजय से परे। [2941]

पैंसठ सौवें युग में,
तीन चक्र-घुमाने वाले सम्राट थे; [सभी का] नाम सहस्रराज था, 1891
चारों ओर से लोगों पर प्रभुत्व रखता है। [2942]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1886 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1887 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
1888 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1889 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1890 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1891 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [2943]

इस प्रकार पूज्य उदकपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदकपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{*333, केवल BJTS: Punnāgapupphiya1892}

एक वनक्षेत्र में प्रवेश करते हुए,
मैं तब वहां शिकारी के रूप में रहता था। 1893 में एक लॉरेल के पेड़ को खिलते हुए देखकर,
मुझे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की याद आ गई। [2944]

उसमें से एक फूल तोड़कर,
अच्छी तरह से सुगंधित और खुशबूदार, रेत का स्तूप बनाकर, 1894
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। [2945]

पिछले बानवे युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [2946]

इक्यावनवें युग में [अतः]
एक शासक रहता था, तामोनुडा, 1895
एक चक्र घुमाने वाला, महान शक्ति से परिपूर्ण, सात रत्नों का स्वामी। [2947]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [2948]

इस प्रकार पूज्य पुन्नागपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1892 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1893 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1894 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1895 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

पुन्नागपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{*334, केवल BJTS: Ekadussadāyaka1896}

हंसवती नगर में,

मैं उस समय घास ढोने वाला था। मैं घास ढोकर ही अपना जीवन यापन करता हूँ।
और इसी से मैं अपने बच्चों का पेट भरता हूँ। [2949]

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का स्वामी था।1897
अंधकार को दूर भगाते हुए,
उस समय विश्व नेता का उदय हुआ। [2950]

अपने घर में बैठे हुए, उस समय मेरे मन में ये विचार आया:
"बुद्ध संसार में अवतरित हो चुके हैं, [परन्तु] मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है।"
मेरे पास केवल यही एक लबादा है, मेरा अपना कोई दाता नहीं है। पीड़ा नरक का एक नमूना है; 1898
मैं अब दान दूंगा।" [2951-2952]

इस प्रकार विचार करते हुए,
मैंने अपने मन को प्रसन्न किया। उस एक कपड़े के टुकड़े को लेकर,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। [2953]

वह एक कपड़ा देने के बाद,
मैंने खुशी के जोरदार नारों को जन्म दिया, "यदि आप बुद्ध हैं, तो ज्ञानी,
मुझे पार ले चलो, हे महान ऋषि।" [2954]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
अपनी प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए,
[बुद्ध] ने तब मुझे धन्यवाद दिया: [2955]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1896 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
1897 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1898 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

"इस एक ही वस्त्र के उपहार के कारण, जो इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ दिया गया है, वह किसी बुरी जगह पर नहीं जाएगा।"
एक लाख 1899 युगों के लिए। [2956]

वह छत्तीस बार देवताओं के स्वामी के रूप में दिव्य शासन करेगा।
और वह तैंतीस बार बनेगा
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। [2957]

क्षेत्रीय शासन का काफी प्रभाव होगा, जिसकी गणना करना असंभव है।
देवताओं की दुनिया में हो या मनुष्यों की दुनिया में,
आप अस्तित्व में पुनर्जन्म लेंगे। [2958]

सुंदर और सद्‌गुणों से परिपूर्ण, अद्वितीय शरीर के साथ, आप जब चाहें, अटूट असीमित वस्त्र प्राप्त करेंगे। [2959]

जब उन्होंने यह कहा, तब सर्वोच्च कमल के नाम से प्रसिद्ध बुद्ध, ज्ञानी पुरुष, आकाश में विलीन हो गए।
ठीक हवा में उड़ते हंस-राजा की तरह। [2960]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं होगी:
यह एक ही कपड़े का फल है। [2961]

मेरे हर कदम के साथ, 1901 [कुछ] कपड़ा मेरे लिए उत्पन्न होता है। मैं नीचे कपड़े पर खड़ा हूँ;
मेरे ऊपर एक चंदवा। [2962]

और आज भी मैं यही कामना कर रहा हूँ।
कि मैं किसी कपड़े से पूरे ब्रह्मांड को भी ढक सकूँ।
अपने जंगलों और पहाड़ों के साथ। [2963]

सिर्फ उस एक कपड़े की वजह से, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मैं 1902 में सुनहरे रंग का था।

1899 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
1900 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1901 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1902 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

जन्म से जन्म तक स्थानांतरण।1903 [2964]

उस एक कपड़े का एक परिणाम:
कहीं भी कोई विनाश नहीं हुआ। 1904
यह मेरा आखिरी जीवन होगा;
अब इसका फल मुझे मिल रहा है। [2965]

उस समय जब मैंने वह वस्त्र दिया था, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने किसी भी बुरे पुनर्जन्म को नहीं जाना है:
यह एक ही कपड़े का फल है। [2966]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [2967]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [2968]

इस प्रकार पूज्य एकदुसदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकदुस्सादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

332. {335.}1905 फुसिटाकामिया1906

संबुद्ध, जिनका नाम विपस्सी था,
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों में बैल, भिक्षुओं के आश्रम में निवास करता था 1907 [तब], साथ में अरहंत। 1908 (1) [2969]

विपस्सी, विश्व के नेता,
वह आश्रम के दरवाजे से बाहर निकल गया।

1903 शाब्दिक रूप से, "गया"
1904 में पीटीएस sañjālesi के लिए BJTS के साथ sañcālesi पढ़ा गया
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1905 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1906 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1907 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1908 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

उन लोगों के साथ जो दोषों से रहित हैं, 1909
[जिनकी संख्या] आठ लाख थी। (2) [2970]

तब मैंने हिरण की खाल से बने वस्त्र पहने थे, और साथ ही छाल से बने कपड़े भी पहने थे। मैं कुसुम का पानी ले जा रहा था।
मैं संबुद्ध के पास आया। (3) [2971]

अपने हृदय को आनंदित करते हुए, प्रसन्न होकर, हाथों को जोड़कर, कुसुम का पानी पीते हुए, 1911
मैंने इसे बुद्ध पर छिड़का। (4) [2972]

उस कर्म के कारण, सर्वोच्च कमल के नाम से विख्यात सम्बुद्ध ने, 1912 में मेरे उस कर्म की प्रशंसा करने के बाद,
उनकी इच्छा के अनुसार चला गया। (5) [2973]

पाँच हज़ार [सुगंधित] बूँदें थीं, जो मैंने 1913 में विक्टर को भेंट की थीं।
पच्चीस सौ के कारण, मैंने देवताओं के संसार पर शासन किया; पच्चीस सौ के कारण, मैं चक्र चलाने वाला सम्राट था; शेष कर्मों के कारण,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।1914 (6-7) [2974-2975]

जब मैं देवताओं का राजा बनूंगा,
और इसी प्रकार जब मैं मनुष्यों का स्वामी बनूंगा, तो मुझे वही नाम दिया जाएगा:
मेरा नाम [हमेशा] “फुसिता” है। 1915 (8) [2976]

क्या मैं भगवान बन गया हूँ?
या इसी प्रकार, चाहे मैं पुरुष हूँ या नहीं,
ऐसा लगता है मानो 1916 में बूँदें बरस रही हों

1909 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।
1910 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
1911 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1912 शाब्दिक रूप से, "गया"
1913 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पाठ किया गया
1914 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
1915 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
1916 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

सभी दिशाओं में एक फ़ैदम 1917.1918 (9) [2977]

मेरा अस्तित्व खुल गया, 1919
मेरे सारे पाप जलकर राख हो गए हैं।
सभी बहिर्वाह अब नष्ट हो चुके हैं:
यह बूंदों को देने का फल है। (10) [2978]

मेरी बारिश चंदन जैसी महकती है, और यह वैसी ही सुगंध फैलाती है।
मेरे शरीर की गंध भी मीठी है;
एक छोटा कमरा व्याप्त है। (11) [2979]

एक दिव्य सुगंध फैलती है

अच्छे कर्म वाले लोगों के लिए।1920
उस गंध को सूंघने के बाद, वे जान जाते हैं, "फुसिता इस जगह पर आई है।" (12) [2980]

शाखाएँ, पत्तियाँ, टहनियाँ, यहाँ तक कि घास भी, पूरी दुनिया में ऐसा लगता है मानो पौधे मेरे विचारों को पहचान रहे हों।
पल भर में सुगंध उत्पन्न होती है। (13) [2981]

चंदन पूजा करने के बाद से लाखों युगों में ,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बूंदों को देने का फल है। (14) [2982]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [2983]

इस प्रकार पूज्य फुस्सिताकम्मिया1923 थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

फुस्सिटकम्मिया 1924 थेरा की गाथा समाप्त हो गई है।

1917 में बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के संदर्भ में, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
1918 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
1919 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
1920 में PTS uddhalomikā के स्थान पर BJTS द्वारा uddalomika° का पाठ किया गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)
1921 साहित्य, "एक फूल पर"
1922 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
1923 khiḍḍāratiyaa
1924 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

---

333. {336.}1925 पभंकर1926

घने जंगल में, जो जंगली जानवरों से भरा हुआ था, वहाँ धन्य पद्ममुत्तरा का एक स्तूप (1927) स्थित था।
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [2984]

वहां जाने की हिम्मत किसी ने नहीं की।
स्तूप को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए।
स्तूप टूट गया था, [खंडहर में बदल गया था]।
घास, टहनियों और लताओं से ढका हुआ। (2) [2985]

मैं उस समय वनकर्मी था।
मेरे पिता और दादाजी भी 1928 में इसी तरह के थे। मैंने जंगल में वह स्तूप देखा था।
टूटा हुआ, घास और लताओं में उलझा हुआ। (3) [2986]

बुद्ध के स्तूप को देखने के बाद,
मैंने श्रद्धापूर्वक उसकी सेवा की: "सर्वश्रेष्ठ बुद्ध का स्तूप, टूटा हुआ, जंगल में परित्यक्त पड़ा है।"
यह उचित नहीं है, उपयुक्त नहीं है।
जो सही और गलत में फर्क कर सकता है।1929
लेकिन मैं अन्य कामों में संलग्न रहता हूँ।
बुद्ध के स्तूप की सफाई नहीं करना।" (4-5) [2987-2988]

स्तूप की आठ बार पूजा करने के बाद उस पर उगने वाली घास, टहनियों और लताओं को साफ करना।
[अभी भी] झुकी हुई थी, मैं [फिर] चली गई। (6) [2989]

उस कर्म के फलस्वरूप, मैंने इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ अपने मानव शरीर का त्याग कर दिया, और वह भी बहुत अच्छे से।
मैं तब तावतिंसा गया। (7) [2990]

वहाँ मेरा सुनिर्मित महल है

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1925 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1926 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1927 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1928 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1929 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित।

वह सोने का बना था, चमकीला था। उसकी ऊंचाई साठ मील थी।
[और यह] तीस लीग चौड़ा था। (8) [2991]

और मैंने तीस बार ऐसा किया।
देवताओं पर शासन करना।
और मैं पच्चीस बार था
एक पहिया घुमाने वाला राजा [महान शक्ति के साथ]। (9) [2992]

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे अपार संपदा प्राप्त होती है। मेरे पास कभी संपदा की कमी नहीं होती।
स्तूपों की सफाई का यही फल है। (10) [2993]

जब मैं जंगल में हाथी की पीठ पर बैठा होता हूँ, 1930 में मैं जिस भी दिशा में जाता हूँ,
जंगल मुझे शरण प्रदान करता है। (11) [2994]

मैं अपनी दोनों आँखों से नहीं देख सकता
कोई भी पेड़ का ठूंठ या कांटा।
मेरे कर्मों के अनुसार, 1931
यह अपने आप ही हट जाता है। (12) [2995]

मुझे खुजली नहीं होती, 1932 दाद, 1933 चकत्ते, 1934 फोड़े, 1935 कुष्ठ रोग, 1936 मिर्गी, 1937 खुजली और 1938 खुजली भी नहीं होती:
यह [स्तूपों] की सफाई का फल है। (13) [2996]

मेरे लिए एक और चमत्कार:
स्तूप की सफाई करने के बाद, 1940, 1941

1930 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1931 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

1932 शाब्दिक रूप से, "गया"

1933 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पाठ किया गया

1934 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

1935 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

1936 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

1937 में बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा गया है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

1938 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

1939 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

1940 में uddalomika° को BJTS द्वारा PTS uddhalomikā के स्थान पर पढ़ा गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)

1941 में, "एक फूल पर"

मुझे मुहांसों का एहसास नहीं था
या मेरे शरीर पर धब्बे उत्पन्न हुए। (14) [2997]

मेरे लिए एक और चमत्कार:

स्तूप की सफाई करने के बाद, 1942
मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:
वह किसी देवता का हो, या किसी मनुष्य का। (15) [2998]

मेरे लिए एक और चमत्कार:
स्तूप की सफाई करने के बाद, 1943
हर जगह जहाँ मैं रह रहा हूँ
यह सुनहरे रंग का और बहुत चमकीला है। (16) [2999]

मेरे लिए एक और चमत्कार:
स्तूप की सफाई करने के बाद, 1944
अप्रिय चीजों से बचा जाता है।
और मनभावन चीजें प्रकट होती हैं। (17) [3000]

मेरे लिए एक और चमत्कार:
स्तूप की सफाई करने के बाद, 1945
मेरा मन [हमेशा बहुत] शुद्ध रहता है।
एकाग्रचित्त, बहुत चौकस। (18) [3001]

मेरे लिए एक और चमत्कार:
स्तूप की सफाई करने के बाद, 1946
एक ही बैठक में बैठे हुए,
मैंने अरहंत अवस्था प्राप्त कर ली। (19) [3002]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
स्तूपों की सफाई का यही फल है। (20) [3003]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [3004]

इस प्रकार पूज्य पभंकरा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पभंकरा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

1942 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

1943 khiḍḍāratiyaa

1944 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

1945 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

1946 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

334. {337.}1947 तिणकुटिदायक1948

शहर में, बंदुमती में,
मैं उन लोगों में से था जो दूसरों के लिए काम करते थे। हालाँकि मैं दूसरों की सेवा में बंधा हुआ था।
मैंने दूसरे के चावल नहीं ढूंढे।1949 (1) [3005]

अकेले जाकर बैठते हुए मैंने इस बारे में इस प्रकार सोचा: "बुद्ध संसार में अवतरित हुए हैं।"
और मैंने कोई सेवा प्रदान नहीं की है। (2) [3006]

अब मेरे जीवन को सुधारने का समय आ गया है; 1950 का वो क्षण मेरे लिए तैयार है। पीड़ा नरक का एक नमूना है।
गुणहीन प्राणियों के लिए। (3) [3007]

इस तरह सोच-विचार करने के बाद, मैंने श्रम प्रमुख से संपर्क किया।1951
उससे कुछ काम मांगने के बाद, 1952
मैं जंगल में प्रवेश कर गया।1953 (4) [3008]

उस समय कुछ घास, लकड़ियाँ और लताएँ इकट्ठा करके, और तीन खंभे 1954 लगाकर,
मैंने वहाँ घास की झोपड़ी बनाई। (5) [3009]

मैंने उसे समर्पित करने के बाद
1955 में भिक्षुओं की सभा के लिए बनी झोपड़ी से मैं उसी दिन वापस आया था।
और श्रम फोरमैन के पास पहुंचा। (6) [3010]

उस कर्म के फलस्वरूप,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1947 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

1948 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1949 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1950 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा शब्द एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1951 में शाब्दिक अर्थ में, "जाना", संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित किया गया है।

1952 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1953 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

1954 शाब्दिक रूप से, "गया"
1955 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पठन

फिर मैं तावतिंस गया।
वहाँ मेरा महल, जो बहुत अच्छी तरह से बनाया गया था, घास की झोपड़ी से बनाया गया था। (7) [3011]

जो हवेली मुझे दिखाई दी,
एक मिल- कण्ड 1956 सेंट- भेण्डु 1957 [बड़ा], सोने का बना, झंडों से ढका हुआ,
उसमें एक लाख दरवाजे थे। (8) [3012]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव रूप हो या दिव्य, अपने विचारों को पहचानते हुए,
मेरे लिए एक महल बन जाता है। (9) [3013]

मुझे डर नहीं लगता, मैं सुन्न नहीं होता, मेरे रोंगटे नहीं खड़े होते;
मुझे अपने भीतर उन चीजों का ज्ञान नहीं है:1958
घास की झोपड़ी देने का यही फल है। (10) [3014]

शेर, बाघ और तेंदुए,
भालू 1959 [और] भेड़िये, 1960 k'ara bānā भालू 1961 —
वे सब मुझसे दूर रहते हैं:
घास की झोपड़ी देने का यही फल है। (11) [3015]

वाइपर्स 1962 और घोस्ट्स, 1963 कोबरा [भी],
कुंभण्ड , रक्खासा -[राक्षस];
वे सब भी मुझसे बच रहे हैं:
घास की झोपड़ी देने का यही फल है। (12) [3016]

मुझे याद नहीं आ रहा कि मैंने देखा था
जब मेरे सपने बुरे होते हैं, तो मुझे सचेतनता प्राप्त होती है।
घास की झोपड़ी देने का यही फल है। (13) [3017]

उस घास की झोपड़ी के उपहार की बदौलत ही मुझे सफलता मिली है।

1956 में, "गिर गया"
1957 साहित्य, "योग्य"
1958 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
1959 में बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा गया है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

1960 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
1961 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
1962 में पीटीएस उद्धालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा उद्दालोमिका° का पाठ किया गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
1963 साहित्य, "एक फूल पर"

मैंने शिक्षण को देखा है
गौतम [बुद्ध], धन्य। (14) [3018]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
घास की झोपड़ी देने का यही फल है। (15) [3019]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [3020]

इस प्रकार पूज्य तिणकुटिडायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिणकुटिडायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

335. {338.}1964 उत्तरेयाद्ययक1965

हंसवती नगर में,
मैं उस समय ब्राह्मण था।
एक विद्वान जो मंत्रों को जानता था,
तीनों वेदों के स्वामी। (1) [3021]

मुझे अपने उन छात्रों से सम्मान प्राप्त हुआ, जो अच्छे कुल के थे और सुशिक्षित थे।
मैं तब शहर से बाहर चला गया
जल-पवित्रीकरण के लिए.1966 (2) [3022]

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का उस्ताद था।1967
विक्टर ने शहर में प्रवेश किया
एक हजार निर्दोषों के साथ.1968 (3) [3023]

उन्हें संतों से घिरा देखकर, 1969
इससे मेरे हृदय को अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1964 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
1965 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
1966 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
1967 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
1968 में, इसका अर्थ है "जाना", अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए इसका अनुवाद "उड़ना" के रूप में किया गया है।
1969 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मानो [न्याय] द्वारा कामवासना से मुक्त कर दिया गया हो।
उसे देखकर, सुंदर दिखने वाला।1970 (4) [3024]

मेरे सिर पर हाथ एक साथ दबाए हुए
मैंने आज्ञाकारी व्यक्ति की पूजा की।
मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने एक ऊपरी लबादा दान किया।1973 (5) [3025]

इसे दोनों हाथों से पकड़कर,
मैंने वह लबादा आकाश में फेंक दिया। वह लबादा एक छत्र बन गया। 1974
बुद्ध के अनुचरों जितना बड़ा। (6) [3026]

यह वहीं रुका रहा और भिक्षुओं और अन्य लोगों के उस विशाल समूह को भिक्षा मांगते हुए घेरे रहा; 1975
तब [उस चमत्कार] ने मुझे मुस्कुराने पर मजबूर कर दिया। (7) [3027]

जब वह 1976 में घर से चले गए
स्वयं एक हो जाने वाला, प्रधान व्यक्ति, शिक्षक, सड़क पर खड़ा, 1977
मुझे यह धन्यवाद व्यक्त किया:1978 (8) [3028]

मैं उसके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा।
जिसने प्रसन्नता से भरे हृदय से मुझे यह लबादा उपहार में दिया;
आप सब मेरी बात सुनो: (9) [3029]

तीस हजार युगों तक वह देवताओं के लोक में आनंदित रहेगा। पचास बार देवताओं का स्वामी।
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा। (10) [3030]

जबकि वह, अच्छे कर्मों से संपन्न, 1979

1970 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
1971 शाब्दिक रूप से, "गया"
1972 में पीटीएस सांजलेसी के लिए बीजेटीएस के साथ सांजलेसी का पठन
1973 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
1974 साहित्य, "योग्य"
1975 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंढ (भाग, अंश, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेण्डु [लंबा? मोटा?]"।
1976 में बीजेटीएस के बाद, पीटीएस ने कई रूपों में gendu पढ़ा । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
1977 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
1978 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
1979 में PTS uddhalomikā के स्थान पर BJTS द्वारा uddalomika° का पाठ किया गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)

देवताओं के लोक में निवास करने वाले व्यक्ति के लिए एक वस्त्र चंदवा होगा।
हर तरफ सौ मील। (11) [3031]

और वह छत्तीस बार होगा
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, [और उसके पास] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत।(12) [3032]

अच्छे कर्मों से संपन्न होकर, 1980 में जब वह संसार में पुनर्जन्म ले रहा था, 1981 में उसने अपने मन में जो कुछ भी चाहा, वह सब प्राप्त कर लिया।
1982 में हर समय साकार होगा। (13) [3033]

इस व्यक्ति को बहुत महंगा कपड़ा मिलने वाला है:
रेशमी कपड़ा (1983) और ऊनी कंबल (1984) भी।
खोमा और सूती कपड़ा भी।1985 (14) [3034]

इस व्यक्ति को वह सब कुछ मिलेगा जिसकी वह कामना करता है।
वह हमेशा आनंद उठाएगा
कपड़े के एक टुकड़े का परिणाम। (15) [3035]

और बाद में, अपनी अच्छी जड़ों से प्रेरित होकर, वह स्वयं ही इस बात को समझ जाएगा।

धन्य गौतम की शिक्षा.1986 (16) [3036]

ओह! मैंने तो खूब अच्छा कर्म किया!
सर्वज्ञ, महान ऋषि! एक ही आवरण देकर,
मैंने अमरता की अवस्था प्राप्त कर ली है। (17) [3037]

जब मैं एक मंडप में हूँ, 1987
पेड़ की जड़ हो या खाली घर, कपड़े की छतरी ले जाई जाती है।
मेरे लिए, प्रत्येक तरफ एक फ़ैदम। (18) [3038]

और उस वस्त्र के कारण जो मैंने दिया था,

1980 साहित्य, "एक फूल पर"
1981 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
1982 khiḍḍāratiyaa
1983 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
1984 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
1985 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
1986 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
1987 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली पार्टी वाला व्यक्ति,"

मुझे बिना पूछे ही कपड़े पहना दिए गए हैं।1988
मुझे 1989 भोजन [और साथ ही] पेय प्राप्त होता है:
यह ऊपरी आवरण का फल है। (19) [3039]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यही वस्त्र देने का फल है। (20) [3040]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [3041]

इस प्रकार पूज्य उत्तरेय्यदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उत्तरेय्यदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

336. {339.}1990 धम्मसावनिया1991

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का उस्ताद था।1992
चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए उन्होंने कई लोगों को पार कराया। (1) [3042]

फिर मैंने जटाधारी तपस्वी (1993) का अभ्यास किया।
मैंने छाल से बने अपने कपड़े उतार फेंके,
मैंने उस समय आकाश में यात्रा की थी। (2) [3043]

तब मैं 1995 में उड़ान भरने में असमर्थ था।
उसके ऊपर, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध। जैसे कोई पक्षी 1996 में पहाड़ से टकराता है,

---

1988 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

1989 pariḷāho

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 1990 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

1991 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

1992 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

1993 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

1994 में, "जाना" का अनुवाद संदर्भ के आधार पर अन्यत्र "उड़ना" के रूप में किया गया है।

1995 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

1996 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मुझे आगे यात्रा करने का अवसर नहीं मिला।1997 (3) [3044]

पहले मेरी आवाजाही इस तरह बाधित नहीं होती थी; 1998 मानो पानी से ऊपर उठ रही हो, 1999
मैं आसानी से 2000 उड़ गया 2001 आकाश से। (4) [3045]

"एक महान इंसान को अवश्य ही 2002
वह अभी मेरे नीचे बैठा होगा।
मेरे लिए 2003 में उसकी तलाश करना अच्छा रहेगा;
मुझे कुछ सार्थक मिल सकता है।"2004 (5) [3046]

फिर आकाश से नीचे उतरते हुए, मैं
शिक्षक की आवाज सुनी,

जो अनित्यता का उपदेश दे रहा था;
मैंने उस समय वह [सबक] सीखा। (6) [3047]

2005 में अनित्यता को समझना सीखते हुए मैं अपने आश्रम लौट गया। वहीं मैंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया।
मैं वहीं मर गया। (7) [3048]

मेरे बाद के जीवन में,
मुझे वह शिक्षा याद आ गई। उस कर्म के फलस्वरूप मैंने बहुत अच्छा कर्म किया।
मैं तब तावतिंसा गया। (8) [3049]

तीस हजार युगों तक मैंने देवताओं के संसार में आनंद लिया। और मैंने दिव्य शासन का संचालन किया।
पचास से अधिक [विभिन्न] बार। (9) [3050]

और इकहत्तर [अलग-अलग] बार
मैं एक ऐसा सम्राट था जो हर काम को अपने तरीके से अंजाम देता था।

1997 शाब्दिक रूप से, "गया"
1998 में पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ सांचेलेसी पढ़ना
1999 में, "गिर गया"
2000 लिट., “मेधावी”
2001 में यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंड (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
2002 में BJTS के बाद, PTS ने geṇḍu को कई रूपों में पढ़ा। कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
2003 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के बाद
2004 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
2005 में PTS uddhalomika ° के स्थान पर BJTS द्वारा uddhalomika° का पाठ किया गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)

वहाँ बहुत स्थानीय शासन भी था, जिसकी गिनती करना असंभव था। (10) [3051]

[तब] मैं अपने पिता के घर में बैठा था,
एक भिक्षु जो अपनी इंद्रियों पर पूर्णतः नियंत्रण रखता है और छंदों के माध्यम से सत्य का चित्रण करता है, 2006
चीजों को क्षणभंगुर बताया।2007 (11) [3052]

उस धारणा को याद रखते हुए, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए भी, मुझे अंत का अहसास नहीं हुआ।
निर्वाण, शाश्वत अवस्था। (12) [3053]

"वास्तव में, सब कुछ परिवर्तनशील है;
चीजें अस्तित्व में आती हैं [और फिर] नष्ट हो जाती हैं।
वे उत्पन्न होते हैं [और फिर] वे विलीन हो जाते हैं;
उनका समापन 2008 खुशी है।" (13) [3054]2009

उस श्लोक को सुनने के बाद, 2010
मुझे अपनी पिछली धारणा याद आ गई। एक ही बैठक में बैठे हुए,
मैंने अरहंत अवस्था प्राप्त कर ली। (14) [3055]

मात्र सात वर्ष की आयु में ही मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया था। मेरे सद्‌गुणों को पहचानते हुए...
बुद्ध, नेत्रपूर्ण ने मुझे दीक्षा दी। (15) [3056]

हालांकि मैं तब एक [महज] लड़का था,
मैंने अपना काम पूरा कर लिया है। आज मुझे क्या करना है?
शाक्यान के विधान में?2011 (16) [3057]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
शिक्षण को सुनने में फल.2012 (17) [3058]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

2006 साहित्य, "एक फूल पर"
क्या ये 2007 की बात है या शायद फूलों की? या दोनों की, यानी खिले हुए पेड़ों की?
2008 khiḍḍāratiyaÁ
2009 tidase , ie, in Tāvatiṃsa heaven
2010 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या शानदार) महल में"
2011 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद पहले चरण में "नया" और दूसरे चरण में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
2012 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [3059]

इस प्रकार पूज्य धम्मसवानीया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धम्मसवानीया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

337. {340.}2013 उक्खित्तापडुमिया2014

हंसवती नगर में,
मैं उस समय फूल विक्रेता था। कमल के तालाब में डुबकी लगाते हुए,
मैंने कुछ कमल के फूल एकत्र किए। (1) [3060]

विक्टर पदुमत्तरा
वह हर चीज का उस्ताद था।2015
एक लाख के साथ
ऐसे ही लोग जिनका मन शांत था, शुद्ध थे और जिनके सारे दोष नष्ट हो चुके थे।
छह विशेष ज्ञान-धारकों के पास, परम पुरुष ने संपर्क किया।
मेरी उन्नति की कामना करते हुए.2016 (2-3) [3061-3062]

[उन्हें] देखकर, देवताओं के देव, स्वयंभू एक, विश्व-नेता, ने तनों को तोड़कर कमलों को हवा में उछाल दिया। (4) [3063]

“यदि आप बुद्ध हैं, नायक हैं,
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के सांड, इन कमलों को अपने आप खिलने दो।
जाओ [और] अपने सिर पर ले जाया जाए।” (5) [3064]

विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, महान नायक ने बुद्ध की शक्ति से ऐसा चाहा।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2013 अपादान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।
2014 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
2015 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2016 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2017 में, "जाना" का अनुवाद संदर्भ के आधार पर कहीं और "उड़ना" के रूप में किया गया है।

वे [फूल] उसके सिर पर ले जाए गए थे। (6) [3065]

उस कर्म के फलस्वरूप, मैंने इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ अपने मानव शरीर का त्याग कर दिया, और वह भी बहुत अच्छे से।
मैं तब तावतिंसा गया। (7) [3066]

वहाँ मेरा सुनिर्मित महल है
इसे 2018 में "सौ पंखुड़ियाँ" के नाम से जाना जाता था। 2019
यह साठ लीग (लगभग 10 किमी) की ऊंचाई तक फैला हुआ था;
[और यह] तीस लीग चौड़ा था। (8) [3067]

हजार बार देवताओं के स्वामी, मैंने [तब] दिव्य शासन किया।
और पचहत्तर बार मैं था
एक राजा जिसने [कानून का] पहिया घुमाया। (9) [3068]

वहाँ स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव है।
मैंने अपने कर्मों का फल भोगा।
पहले मेरे द्वारा अच्छी तरह से किया गया। (10) [3069]

उस एक कमल के कारण ही सौभाग्य प्राप्त हुआ।
मुझे शिक्षा का एहसास हुआ
धन्य [बुद्ध], गौतम। (11) [3070]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [3071]

जब से मैंने [उसे] 2020 का वह फूल भेंट किया है, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने किसी बुरे पुनर्जन्म को नहीं जाना है:
एक कमल का फल । (13) [3072]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [3073]

इस प्रकार पूज्य उक्खित्तपदुमिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उक्खित्तपदुमिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

2018 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ: "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2019 sappi , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (gī tel)
2020 lit., "गया"

समीक्षा:

गंधोदक और पूजनी, पुन्नागा, एकदुस्सिका, फुसिता और पभंकर, कुटिदा, उत्तरायका, सावनी, एकपादुमी:
वहाँ छंदों का समूह [संख्याएँ]
एक सौ श्लोक और साथ ही चौवालीस [अतिरिक्त श्लोक]।

गंधतूपीय अध्याय, चौंतीसवाँ

एकपादुमिया अध्याय, पैंतीसवाँ

338. {341.}2021 एकपाडुमिया2022

विक्टर पदुमत्तरा
वह हर चीज का स्वामी था। 2023
2024 में सभी अस्तित्वों की व्याख्या, 2025
उसने कई लोगों को पार कराया। (1) [3074]

उस समय मैं हंसों का राजा था;
मैं पक्षियों में विशिष्ट था। एक प्राकृतिक झील में डुबकी लगाई,
मैं हंसों के खेल खेल रहा हूँ। (2) [3075]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
विक्टर विमान 2026 तक हर समय उड़ता रहेगा।
उस प्राकृतिक झील के ऊपर [वहाँ]। (3) [3076]

मैंने देवताओं के ईश्वर को देखा है,
स्वयं को एक बनाओ, विश्व नेता बनो,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2021 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद के मुख्य क्रमांकन को निर्धारित करता है।

2022 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2023 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर वाली रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2024 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

2025 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2026 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मैंने अपनी चोंच से कमल के फूल तोड़े—सुंदर, सौ पंखुड़ियों वाले—और उनकी डंठलें तोड़कर आकाश में उछाल दीं, मैं
मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की ।
2027 तक विश्व के नेता से प्रसन्न। (4-5) [3077-3078]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
शिक्षक, आकाश में खड़े हैं,
मुझे यह धन्यवाद व्यक्त किया:2028 (6) [3079]

“इस एक कमल [उपहार] के कारण, दृढ़ संकल्प और इरादे के साथ, एक लाख युगों तक
आप 2029 के कष्ट में नहीं पड़ेंगे। 2030 (7) [3080]

यह सब कहने के बाद, सम्बुद्ध, जिसका नाम परम कमल था, ने 2031 में मेरे कर्मों का विस्तृत वर्णन किया।
उनकी इच्छा के अनुसार चला गया। (8) [3081]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (9) [3082]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [3083]

इस प्रकार पूज्य एकपदुमिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकपदुमिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

2027 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2028 शाब्दिक रूप से, "गया"
2029 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
2030 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
2031 शाब्दिक रूप से, "योग्य"

---

339. {342.}2032 तिनुप्पलमालिया2033

चंदाभागा नदी के किनारे पर,
उस समय मैं एक बंदर 2034 था।
मैंने स्टेनलेस बुद्ध को देखा [जो]
पहाड़ की ढलान पर बैठा था। (1) [3084]

मैं उन्हें देखकर मंत्रमुग्ध हो गया, वे चारों दिशाओं में प्रकाशमान थे, मानो कोई भव्य साल का वृक्ष खिला हुआ हो।
महान और छोटे चिह्न धारण करना.2035 (2) [3085]

प्रसन्नता से, परमानंदित हृदय से और आनंद से भरे मन से, मैंने बुद्ध के सिर पर अर्पण किया।
तीन [सुंदर] नीले कमल के फूल। (3) [3086]

उन फूलों को विपस्सी, परम ऋषि को अर्पित करने के बाद, आदरपूर्वक उनके पास जाकर
फिर मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (4) [3087]

2036 पर झुककर [वहां से] जा रहा है,
एकदम स्पष्ट मन से मैं एक पहाड़ पर उतरा।
[और] मैंने अपने जीवन का अंत प्राप्त कर लिया। (5) [3088]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण, 2037
मैं तब तावतिंसा गया। (6) [3089]

और [उसके बाद,] तीन सौ बार मैंने देवताओं के [जगत] पर शासन किया।
और [इसके अलावा] पाँच सौ बार
मैं वह राजा था जिसने पहिया घुमाया। (7) [3090]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2032 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2033 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2034 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2035 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2036 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2037 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब पुष्प पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (8) [3091]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [3092]

इस प्रकार पूज्य तिनुप्पलामालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिनुप्पलामालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

340. {343.}2038 धजदायक2039

उस शिक्षक का नाम तिस्सा रखा गया, जो विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल था। उनके निधन को देखकर, 2040
मैंने [उस स्थान पर] एक झंडा फहराया।2041 (1) [3093]

उस कर्म के फलस्वरूप, मैंने इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ अपने मानव शरीर का त्याग कर दिया, और वह भी बहुत अच्छे से।
मैं तब तावतिंसा गया। (2) [3094]

और [उसके बाद,] तीन सौ बार मैंने देवताओं के [जगत] पर शासन किया।
और [इसके अलावा] पाँच सौ बार
मैं वह राजा था जिसने पहिया घुमाया। (3) [3095]

वहाँ स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव है।
मैंने अपने कर्मों का फल भोगा।
पहले मेरे द्वारा अच्छी तरह से किया गया। (4) [3096]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2038 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2039 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
2040 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2041 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
झंडा देने का यही फल है। (5) [3097]

आज, यदि मैं इसकी कामना करूं,
जंगलों और पहाड़ों से ढकी दुनिया खोमा के कपड़े से ढकी हुई है:
2042 का फल जो मैंने 2043 में किया था। (6) [3098]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [3099]

इस प्रकार पूज्य धजदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धजदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

341. {344.}2044 तिन्निकिङ्खणिकापूजक2045

हिमालय पर्वतमाला के निकट, एक पर्वत है, भूतगण।2046
वहाँ मैंने चिथड़ों से बना एक वस्त्र देखा,2047
पेड़ के शीर्ष पर फंसा हुआ.2048 (1) [3100]

उस समय मैंने वहाँ तीन सुंदर किंखाणी (2049 फूल) बिखेरे। प्रसन्न होकर, और प्रसन्न हृदय से।
मैंने उस चिथड़े-दुबले वस्त्र की पूजा की। (2) [3101]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था।

2042 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

2043 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2044 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

2045 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2046 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2047 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

2048 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2049 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह तीन फूलों का फल है। (3) [3102]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3103]

इस प्रकार पूज्य तिणिकिंखाणिकपूजक2050 थेरा ने ये श्लोक कहे।

Tīṇikiṅkhaṇikapūjaka2051 Thera की कथा समाप्त हो गई है।

---

342. {345.}2052 नलगारिका2053

हिमालय पर्वतमाला के निकट,
हरिता नाम का एक पर्वत है।2054
स्वयं एक हो जाओ, नारद,
तब वह एक पेड़ की जड़ों में रहता था। (1) [3104]

मैंने सरकंडों से एक घर बनाया, उसे घास से ढक दिया, और फिर एक रास्ता साफ किया।
उन्होंने [उन्हें] स्वयं-एक हो जाने को दे दिया। (2) [3105]

चौदहवें युग में [पूर्व में]
मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया, और मैंने चौहत्तर बार ऐसा किया।
देवताओं पर शासन का प्रयोग करें। (3) [3106]

और सतहत्तर बार मैंने
वह [तब] एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट था।
वहाँ बहुत स्थानीय शासन भी था, जिसकी गिनती करना असंभव था। (4) [3107]
मेरा निवास स्थान बहुत ऊंचा था, जो इंद्र के खंभे की तरह ऊंचा उठता था।

2050 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2051 शाब्दिक रूप से, "गया"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2052 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2053 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2054 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

एक हजार स्तंभों वाला, अद्वितीय, प्रकाश से परिपूर्ण एक महल। (5) [3108]

दोनों उपलब्धियों का आनंद लेते हुए, 2055
अपनी पवित्र पृष्ठभूमि से प्रेरित होकर, मैं धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ा।
गौतम, भगवान के। (6) [3109]

परिश्रम करने के लिए तत्पर रहने वाला व्यक्ति होने के नाते,
शांत, 2057 पुनर्जन्म के आधारों से रहित, 2058
टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [3110]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [3111]

इस प्रकार पूज्य नलगारिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नलगारिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

343. {346.}2059 कैम्पकापुप्पहिया2060

हिमालयी क्षेत्र में,
कावला नाम का एक पहाड़ है।2061
बुद्ध ने सुदस्सन का नाम रखा।
पहाड़ की ढलान पर रह रहा था। (1) [3112]

हिमालयी फूल लेकर,
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
बाढ़ पार करने वाला, 2062 अछूता, 2063

2055 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है।

2056 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

2057 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

2058 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2059 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2060 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2061 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2062 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2063 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

आकाश से यात्रा करते हुए [ठीक उसी समय]। (2) [3113]

उस समय मैंने उनके सिर पर सात सुगंधित चंपक फूल रखे। मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
स्वयं-एक हो जाओ, महान ऋषि। (3) [3114]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उन फूलों से पूजा की , मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [3115]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3116]

इस प्रकार पूज्य कैम्पकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कैम्पाकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

344. {347.}2064 पदुमपूजक2065

हिमालय पर्वतमाला के निकट,
रोमासा नाम का एक पहाड़ है।2066
संभव के नाम से जाने जाने वाले बुद्ध
फिर वह वहाँ खुले में रहने लगा। (1) [3117]

अपने निवास से बाहर निकलते हुए,
मैं उसके लिए एक कमल का फूल लाया। एक ही फूल लाने के बाद
मैं पुनर्जन्म की ओर आगे बढ़ा। (2) [3118]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2064 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2065 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2066 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2067 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2068 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3119]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3120]

इस प्रकार पूज्य पद्मपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पद्मपुजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

345. {348.}2069 तिनामुथिदायक2070

हिमालयी क्षेत्र में,
वहाँ लंबका नाम का एक पर्वत है।2071
संबुद्ध, उपतिस्सा,
खुली हवा में इधर-उधर चलता रहा। (1) [3121]

उस समय मैं जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।
उस परम देव, स्वयंभू स्वरूप, अजेय, अत्यंत निर्मल मन वाले व्यक्ति को देखकर,
फिर मैंने मुट्ठी भर घास दी
परम संत, बुद्ध को,
ताकि वह उस पर बैठ सके। (2-3) [3122-3123]

देवताओं के ईश्वर को कुछ और देते हुए,
मैंने अपने हृदय को प्रसन्न किया। संबुद्ध को प्रणाम करते हुए, मैंने
[तब] उत्तर की ओर मुख करके प्रस्थान किया। (4) [3124]

कुछ समय बाद ही, जानवरों का एक राजा 2072
यात्रा के दौरान मुझे चोट लगी।2073

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2069 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2070 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2071 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2072 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2073 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

उस शेर द्वारा गिराए जाने पर,
मैं वहीं मर गया। (5) [3125]

जब मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, निष्कलंक बुद्ध के लिए वह कर्म किया, 2074 तो तुरंत ही 2075 तीर छूट गया।
मैं देवताओं के लोक में गया। (6) [3126]

मेरी प्यारी बलिदानी पोस्ट, 2076
good2077 karma द्वारा बनाया गया,
was mil- kaṇḍa 2078 cent- bheṇḍu 2079 [large]
सोने से बना, झंडों से ढका हुआ। (7) [3127]

अपनी शानदार रोशनी बिखेरते हुए,
जैसे सौ किरणों वाला [सूर्य] उदय हुआ हो, वैसे ही यह दिव्य कन्याओं से भरा हुआ है।
मुझे वहाँ बहुत आनंद आया। (8) [3128]

देवताओं के लोक से गिरकर, अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, मानव अवस्था में वापस लौटकर,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।2080 (9) [3129]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे बैठने के लिए जगह दी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
मुट्ठी भर घास का फल। (10) [3130]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [3131]

इस प्रकार पूज्य तिनमुट्ठिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिनमुट्ठिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

2074 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2075 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2076 शाब्दिक रूप से, "गया"
2077 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
2078 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
2079 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
2080 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

---

346. {349.}2081 तिन्दुकफलदायका2082

मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
बाढ़ पार करने वाला, अछूता, 2083
पहाड़ की ढलान पर बैठे हुए,
डिनर-प्लेट ट्री की तरह चमक रहा है।2084 (1) [3132]

जंगली मैंगोस्टीन2085 को खिलते हुए देखना,
मैंने फल सहित 2086 टहनियाँ तोड़ लीं। प्रसन्न होकर मेरा हृदय आनंद से भर गया।
मैंने उन्हें [उसे] दे दिया, वेसभु। (2) [3133]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने वह फल [बुद्ध को] दे दिया, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ:

फल देने का फल यही है। (3) [3134]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3135]

इस प्रकार पूज्य तिण्डुकफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिण्डुकफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2081 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2082 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2083 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2084 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2085 शाब्दिक रूप से, "जा रहा है," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ रहा है" के रूप में अनुवादित
2086 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

347. {350.}2087 एकांजलिया2088

संबुद्ध ने रेवता2089 नाम दिया
उस समय वे नदी किनारे रहते थे।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
जैसे सूर्य अपनी सुनहरी किरणों के साथ, 2090
जैसे पीटे हुए2091 [सोने]2092 को भट्टी के ऊपर रखा गया हो,2093 [तेज जल रहा हो] जैसे देवदार का कोयला,2094 भोर के तारे की तरह चमक रहा हो।2095
मैंने अपने हाथों को एक बार जोड़ा। (1-2) [3136-3137]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने अपने हाथ जोड़े [तब], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
यही अभिवादन का फल है। (3) [3138]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3139]

इस प्रकार पूज्य एकंजलिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकंजलिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

पदुमा, उप्पलहत्था, धजा, किंखानिका, नाला, कैम्पका, पदुमा, मुठी, तिंडुक और इस प्रकार एकांजलि।
इसमें छह और साठ श्लोक हैं।
जिनकी गिनती जानकार लोग करते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2087 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2088 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2089 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से तैयार किया गया एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर वाली रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2090 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल रंग धारण करने वाला" अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2091 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2092 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2093 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2094 शाब्दिक रूप से, "गया"
2095 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

एकपदुमिया अध्याय, पैंतीसवाँ

सद्दसाञ्ञक अध्याय, छत्तीसवाँ

---

348. {351.}2096 सद्दासानका2097

उस समय मैं जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।
वहाँ मैंने एक बार संबुद्ध को देखा था।
देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित।2098 (1) [3140]

चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए उन्होंने कई लोगों को समुद्र पार पहुंचाया।
मैंने उनकी मीठी-मीठी बातें भी सुनीं।
जैसे2099 कोयल का गीत2100.2101 (2) [3141]

हे जगत के सगे भाई, सिख धर्म के गीत (बुद्ध) से मेरा हृदय प्रसन्न हुआ।
ऋषि, दिव्य ध्वनि स्वरक, 2102
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।2103 (3) [3142]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह आनंद की अनुभूति का फल है। (4) [3143]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3144]

इस प्रकार पूज्य सद्दसाञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2096 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2097 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2098 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2099 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2100 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2101 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2102 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2103 शाब्दिक रूप से, "गया"

सद्दसञ्जक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

349. {352.}2104 यवकलापिय2105

अरुणावती नगर में,
मैं तब जौ का किसान था2106। सड़क पर बुद्ध2107 को देखकर,
मैंने जौ का गट्ठा फैला दिया। (1) [3145]

हे सिख धर्म, विश्व के प्रमुख नेता, दयालु, करुणामयी, मेरे विचारों को समझने वाले,
जौ के उस गट्ठे पर बैठ गया। (2) [3146]

बैठे हुए निष्कलंक, महान ध्यानी, नेता को देखकर, और अत्यंत आनंद उत्पन्न करते हुए,
मैं वहीं मर गया। (3) [3147]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
जौ फैलाने में फल। (4) [3148]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3149]

इस प्रकार पूज्य यवकलापिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

यवकलापिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2104 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2105 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2106 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2107 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

350. {353.}2108 किसुकापुजाका2109

एक खिले हुए पुलस वृक्ष को देखकर, 2110 हाथों को जोड़कर फैलाते हुए, सिद्धार्थ बुद्ध को याद करते हुए,
मैंने आकाश में पूजा की। (1) [3150]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [3151]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3152]

इस प्रकार पूज्य किंशुकापूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

किंसुकापुजका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

351. {354.}2111 साकोटकाकोरांडदायका2112

विश्व के सगे-संबंधी सिख [बुद्ध] द्वारा एक कंधे पर हिरण की खाल रखकर चलाए गए मार्ग को देखकर,
मैंने उस शानदार पदचिह्न की पूजा की। (1) [3153]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2108 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

2109 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2110 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 2111 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

2112 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2113 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2114 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2115 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

खिले हुए कोरण्ड को देखकर ,
धरती में उगने वाला पैर-पीने वाला जीव, 2116
फूलों वाली एक टहनी लेकर, मैं
पूजा की2117 उस पदचिह्न पर पहिया.2118 (2) [3154]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह पदचिह्न पूजा का फल है । (3) [3155]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3156]

इस प्रकार पूज्य सकोटककोरण्डदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सकोटककोरण्डडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

352. {355.}2119 दण्डदायक2120

जंगल में डूबा हुआ, वनों में,
मैंने उस समय कुछ बांस काटे थे। एक छड़ी लेकर,2121
मैंने इसे विधानसभा को दे दिया।2122 (1) [3157]

मेरे मन में उमड़ी खुशी के कारण, "आपको सुख मिले!" कहकर मैंने वह छड़ी भेंट की थी।
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (2) [3158]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय भिक्षुओं को वह छड़ी दी थी।

2116 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

2117 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2118 शाब्दिक रूप से, "गया"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2119 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2120 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2121 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2122 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
छड़ी देने का यही फल है। (3) [3159]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3160]

इस प्रकार पूज्य दंडदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

दंडदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

353. {356.}2123 अम्बयागुडायक2124

संबुद्ध, सौ किरणों वाला, 2125
स्वयं-निर्मित, अजेय, ध्यान से उठकर, 2126
मेरे पास भीख मांगने आया। (1) [3161]

पच्चेकबुद्ध को देखकर,
एकदम स्पष्ट मन से,
मैंने आम से बना दलिया दिया
उनके लिए, स्पष्ट मन वाले [बुद्ध]। (2) [3162]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।

यह आमों के दलिया का फल है। (3) [3163]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3164]

इस प्रकार पूज्य अंबयागुदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबयागुडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2123 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2124 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2125 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2126 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

354. {357.}2127 सुपूतकपूजक2128

दोपहर के आराम के बाद, विश्व नेता विपस्सी (बुद्ध) भिक्षा मांगने के लिए बाहर निकले।
उस समय मेरी उपस्थिति में आया। (1) [3165]

उसके बाद, प्रसन्न होकर, प्रफुल्लित होकर, नमक से भरा एक अच्छा थैला दिया।
विश्व के सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ ईश्वर के लिए, मैंने स्वर्ग में एक युग का आनंद लिया। (2) [3166]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने [बुद्ध को] वह अच्छा थैला दिया, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह एक अच्छे उपहार का फल है। (3) [3167]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3168]

इस प्रकार पूज्य सुपुटकपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुपुटकपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

355. {358.}2129 सज्झादायक2130

मैंने चांदी का एक टुकड़ा उपहार में दिया।
अत्यंत प्रसन्नता के साथ, दोनों हाथों से, भगवान विपस्सी को प्रणाम करता हूँ।
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [3169]

हाथी और घोड़े जैसे वाहन, दिव्य वाहन प्राप्त होते हैं;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2127 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2128 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2129 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2130 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2131 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस चांदी के उपहार के कारण,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (2) [3170]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब वह चांदी का टुकड़ा दे दिया था, और तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:
चांदी देने का यही फल है। (3) [3171]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3172]

इस प्रकार पूज्य सज्जादायका2132 थेरा ने ये श्लोक कहे।

सज्जादायका2133 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

356. {359.}2134 सारनागमानिया2135

उस समय हम एक नाव पर सवार हुए, भिक्षु और मैं,2136 एक अजीवक ।
जब नाव टुकड़े-टुकड़े हो गई,
उस बौद्ध भिक्षु ने मुझे शरण दी। (1) [3173]

पिछले इकत्तीस युगों में
उन्होंने मुझे [उस समय] शरण दी थी, मुझे कभी भी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
शरण लेने का फल। (2) [3174]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3175]

इस प्रकार पूज्य सरणागमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सरणागमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

2132 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है।
2133 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2134 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2135 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2136 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

357. {360.}2137 पिंडपतिका2138

संबुद्ध का नाम तिस्सा था; वे उस समय जंगल में रहते थे। तुसिता से यहाँ आते हुए, मैं
मैंने उस बुद्ध को भिक्षा दी। (1) [3176]

मैंने संबुद्ध को प्रणाम किया।
वह महान यशायाह, जिसका नाम तिस्सा है। मेरे हृदय को आनंदित करते हुए,
मैं [तब] तुसिता लौट गया। (2) [3177]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय दान दिया था, मुझे अब तक कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:
यह भिक्षा देने का फल है। (3) [3178]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3179]

इस प्रकार पूज्य पिंडपातिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पिंडपातिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: सददासन्या, यवासिका,
Kiŋsuka, 'Raṇḍapupphiya, Ālamba and Ambayāgu, Supuṭi, Sajjhadāyaka, Saraṇa� andPiṇḍapāta [meta] exactly forty verses.

सद्दसञ्ञक अध्याय, छत्तीसवाँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2137 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2138 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मंदारपुप्पिया 2139, अध्याय सैंतीसवाँ

---

358. {361.}2140 एकमंदारिय2141

तावतिंस से यहाँ आते हुए,
मैं मंगला नाम का एक आदमी था।2142
मैंने मंदारव का एक फूल लिया और उसे अपने सिर पर उठा लिया।
विपस्सी [बुद्ध], महान ऋषि, ध्यान में बैठे हुए।2143
मैंने इसे एक सप्ताह तक इसी प्रकार ढोया।
[तब] देवताओं के लोक में लौट आया। (1-2) [3180-3181] इक्यावन युगों में
मैंने बुद्ध की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3182]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3183]

इस प्रकार पूज्य एकमंदारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकमंदारिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2139 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2140 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2141 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2142 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2143 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

359. {362.}2144 Kekkhārupupphiya2145

मृतकों की दुनिया से आ रहा है, 2146
मैंने गौतम को देखा, महानजन।2147
केक्खारा का फूल लेना
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (1) [3184]

पिछले बानवे युगों में
मैंने बुद्ध की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [3185]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3186]

इस प्रकार पूज्य केक्खारुपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

केक्खारुपुप्फिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

360. {363.}2148 भिसामुदलदायक2149

संबुद्ध को 2150 फुस्सा, सर्वस्व के [महान] स्वामी का नाम दिया गया। 2151
एकांत प्रेमी, 2152 बुद्धिमान व्यक्ति, 2153

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2144 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2145 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2146 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2147 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2148 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2149 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2150 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2151 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2152 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2153 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

उस समय मेरी उपस्थिति में आया। (1) [3187]

हे विजयदाता, महान करुणा के देवता, कमल की जड़ों और तनों को धारण करने वाले, उनमें अपने हृदय को आनंदित करते हुए, मैं उन्हें सर्वश्रेष्ठ बुद्धों को दे दिया। (2) [3188]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय वह कमल की जड़ दी थी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यह कमल की जड़ के उपहारों का फल है। (3) [3189]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3190]

इस प्रकार पूज्य भीष्ममूलाडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भीसमुलालदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

361. {364.}2154 केसरपुप्पहिया2155

मैं उस समय एक जादूगर था [2156]
हिमालय पर्वत पर।
मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा।
महान प्रसिद्ध व्यक्ति, इधर-उधर टहलते हुए। (1) [3191]

उस समय मैंने 2157 स्थान प्राप्त किए थे
मेरे सिर पर तीन केसर के फूल हैं।
मैंने संबुद्ध के पास जाकर वेसभु की पूजा की । (2) [3192]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3193]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2154 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2155 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2156 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2157 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3194]

इस प्रकार पूज्य केसरपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

केसरापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

362. {365.}2158 Aṅkolapupphiya2159

उस समय चित्तकूट 2160 में पद्मा नामक सम्बुद्ध निवास करते थे। उन्हें देखकर मैं उनके पास गया।
बुद्ध, स्वयं एक हो जाओ। (1) [3195]

अंकोला का फूल देखकर ,
मैंने उस समय 2161 [इसे] एकत्र किया। संबुद्ध के पास पहुँचकर, मैंने 2162 विजेता पद्म की पूजा की। (2) [3196]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3197)
विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3198]

इस प्रकार पूज्य अंकोलापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंकोलापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2158 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

2159 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2160 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2161 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2162 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

363. {366.}2163 कदम्बपुप्फहिया2164

महल के द्वार पर बैठा हुआ
मैंने विश्व के नेता को देखा,
स्वर्ण रंग के संबुद्ध, सोने से बनी किसी कीमती वस्तु के समान, महान पुरुष के चिह्नों को धारण किए हुए, आकाश में विचरण कर रहे थे। कदंब का फूल लिए हुए,
मैंने इसे विपस्सी को अर्पित किया। (1-2) [3199-3200]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3201]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3202]

इस प्रकार पूज्य कदंबपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कदंबपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

364. {367.}2166 उद्दालपुप्पिया2167

अनाथ नामक सम्बुद्ध गंगा नदी के तट पर निवास करते थे।2168

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2163 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2164 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2165 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2166 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें और भी बहुत कुछ है।

यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

2167 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2168 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सुनहरी बौछार [फूलों] को लेते हुए
मैंने अजेय की पूजा की। (1) [3203]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [3204]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3205]

इस प्रकार पूज्य उद्दालपुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उद्दालपुप्फिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

365. {368.}2170 एककम्पकपुप्फहिया2171

उपसंत2172 नामक सम्बुद्ध पर्वत की ढलान पर निवास कर रहे थे। वे एक चंपक [फूल] लिए हुए थे।
मैंने परम पुरुष से संपर्क किया। (1) [3206]

प्रसन्नता से, हृदय में आनंद लिए, इसे दोनों हाथों से ग्रहण करते हुए।
मैंने अजेय की पूजा की,
अतुलनीय पाचेका -ऋषि। (2) [3207===

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3208]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

2169 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है।

{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 2170 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।

यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

2171 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

2172 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2173 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3209]

इस प्रकार पूज्य एकाचमपकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकाकाम्पाकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

366. {369.}2174 तिमिरापुप्पिया2175

चंदाभागा नदी के किनारे मैं धारा के साथ बह रहा था।
मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा।
खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह। (1) [3210]

मन में प्रसन्नता लिए, तिमिरा का फूल लेकर।
परम पच्चेका ऋषि को,
मैं इसे [उस बुद्ध के] सिर पर बिखेर देता हूँ। (2) [3211]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [3212]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3213]

इस प्रकार पूज्य तिमिरपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिमिरपुफिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

367. {370.}2176 Salaḷapupphiya2177

चंदाभागा नदी के किनारे
उस समय मैं किन्नरा 2178 था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2174 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2175 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2176 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2177 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2178 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या खमीर रहित भोजन के रूप में।

और फिर मैंने देवताओं के ईश्वर को देखा,
पुरुषों का बैल, इधर-उधर चलता हुआ। (1) [3214]

मैंने एक सालला फूल तोड़कर बुद्ध को भेंट किया।
महान नायक, [बुद्ध] ने सूंघा
[वह] दिव्य सुगंधित फूल.2179 (2) [3215]

उन्हें संबुद्ध के रूप में स्वीकार करना

विपस्सी, विश्व के नेता,
महान नायक, [बुद्ध] ने सूंघा, मेरी इच्छा के प्रति सचेत होकर।2180 (3) [3216]

प्रसन्नता से भरे हृदय से मैंने उनका आदर किया, जो दो पैरों पर चलने वाले सर्वश्रेष्ठ प्राणी थे। दोनों हाथों को जोड़कर मैंने उनकी पूजा की।
मैं फिर से पहाड़ पर चढ़ गया। (4) [3217]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (5) [3218]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3219]

इस प्रकार पूज्य सलापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सलापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

मंदारव और केकखारु, भीसा, केसरपुप्पिया, अंकोलक और कदंबी, उद्दालि, एकामपाका, तिमिरा, सलसा भी:
और ठीक चालीस श्लोक।

मंदारपुप्पिया 2182 अध्याय, सैंतीसवाँ

केक या जंकेट (PSI: सिंह. रोटिया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई खाद्य पदार्थ है।

2179 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2180 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2181 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2182 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

बोधिवन्दक अध्याय, अड़तीसवाँ

---

368. {371.}2183 बोधिवन्दक2184

मैंने एक हरा पाटली 2185 पेड़ देखा,
धरती में उगने वाला पैर-जलपायक।2186
दृढ़तापूर्वक 2187 अपने हाथों को दबाते हुए,
मैंने उस पाटली वृक्ष की पूजा की। (1) [3220]

हाथों को जोड़कर, श्रद्धा से अपने मन को भर कर, भीतर और बाहर दोनों ओर से शुद्ध होकर,
मैंने उस पाटली वृक्ष की पूजा की।
मानो 2190 से पहले संबुद्ध, पूर्णतः मुक्त, निष्कलंक, 2191
विश्व द्वारा सम्मानित विपस्सी
करुणा और ज्ञान का सागर। (2-3) [3221-3222]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस बोधि वृक्ष की पूजा की थी, और मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का सामना नहीं करना पड़ा।
यह उपासना का फल है। (4) [3223]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3224]

इस प्रकार पूज्य बोधिवन्दक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बोधिवन्दक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2183 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2184 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2185 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2186 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2187 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2188 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2189 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2190 lit., "गया"

2191 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

---

369. {372.}2192 पाटलिपुप्फिया2193

विपस्सी नामक भगवान,
स्वयं-एक हो गया, प्रमुख व्यक्ति, सूर्य, विजेता, तब अपने सभी छात्रों से घिरा हुआ प्रवेश किया।(1) [3225]

उस समय मेरी गोद में तीन ताजे पाटली फूल रखे गए थे। सिर धोने की इच्छा से मैं चला गया।
नदी [किनारे] स्नान स्थल.2195 (2) [3226]

बंधुमती से बाहर निकलते हुए,
मैंने विश्व के नेता को देखा, नीले जल लिली की तरह चमकीला, अग्नि-वेदी की तरह प्रज्वलित, बाघ बैल की तरह उत्कृष्ट,
एक सुसंस्कृत शेर की तरह, भिक्षुओं के आगे-आगे यात्रा करते हुए,
भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित। (3-4) [3227-3228]

उसमें प्रसन्न होकर, सुप्रसिद्ध [बुद्ध], अपवित्रता के दाग को धोते हुए,2197 उन तीन फूलों को लेकर मैं
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की। (5) [3229]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [3230]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [3231]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2192 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2193 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2194 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2195 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2196 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2197 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य पाटलिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पाटलिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

370. {373.}2198 तिनुप्पलमलिया2199

चंदाभागा नदी के किनारे पर,
उस समय मेरा नाम मंकी2200 था।
मैंने स्टेनलेस बुद्ध को देखा [जो]
पहाड़ की ढलान पर बैठा था। (1) [3232]

मैं उन्हें देखकर मंत्रमुग्ध हो गया, वे चारों दिशाओं में प्रकाशमान थे, मानो कोई भव्य साल का वृक्ष खिला हुआ हो।
महान और छोटे चिह्न धारण करना.2201 (2) [3233]

प्रसन्नता से, परमानंदित हृदय से और आनंद से भरे मन से, मैंने बुद्ध के सिर पर अर्पण किया।
तीन [सुंदर] नीले कमल के फूल। (3) [3234]

उन फूलों को अर्पित करने के बाद
परम आदर की भावना रखते हुए, महान ऋषि फुस्सा [बुद्ध] के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हुए।
मैं [वहाँ से] उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (4) [3235]

वहां से 2203 नंबर पर झुककर आगे बढ़ रहा है।
एकदम स्पष्ट मन से मैं एक पहाड़ पर उतरा।
[और] मैंने अपने जीवन का अंत प्राप्त कर लिया। (5) [3236]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,2204

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2198 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2199 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
2200 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2201 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2202 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2203 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2204 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मैं तब तावतिंसा गया। (6) [3237]

और [उसके बाद,] तीन सौ बार मैंने देवताओं के [जगत] पर शासन किया।
और [इसके अलावा] पाँच सौ बार
मैं वह राजा था जिसने पहिया घुमाया। (7) [3238]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस फूल से पूजा की ।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (8) [3239]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [3240]

इस प्रकार पूज्य तिनुप्पलामालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिनुप्पलामालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

371. {374.}2205 Paṭṭipupphiya2206

जब सम्बुद्ध, महान ऋषि पद्ममुत्तरा का निधन हुआ, 2207
सभी लोग एक साथ आए;
वे [उसके] शव को ले जा रहे हैं।2208 (1) [3241]

जब शव को हटाया जा रहा था, जब ढोल बज रहे थे,2209 मैं खुश था, मेरे दिल में आनंद था,
मैंने 2210 [एक] लाल लोध फूल की पेशकश की। (2) [3242]

उस पुष्प पूजा के बाद से एक लाख युगों में ,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2205 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2206 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2207 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2208 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2209 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2210 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
अवशेषों की पूजा का फल.2211 (3) [3243]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3244]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3245]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3246]

इस प्रकार पूज्य पट्टिपुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पट्टिपुप्फिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

372. {375.}2212 सत्तपनीय2213

विश्व के नेता, सुमना नामक सम्बुद्ध का जन्म हुआ। मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद का संचार हुआ।
मैंने 2214 रुक-अट्टाना फूल चढ़ाए। (1) [3247]

जब से मैंने 2215 रुक-अत्तना अर्पित किए हैं, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में ,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
रुक-अट्टन-पूजा का फल . (2) [3248]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

2211 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2212 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2213 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2214 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2215 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3249]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3250]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3251]

इस प्रकार पूज्य सत्तपण्णिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सत्तपण्णीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

373. {376.}2216 गंधमुठिया2217

जब एक स्तूप2218 का निर्माण हो रहा था, तब विभिन्न सुगंध2219 एकत्रित की गईं। प्रसन्नता से, मेरे हृदय में आनंद था।
मैंने 2220 को मुट्ठी भर धूप दी। (1) [3252]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उस स्तूप की पूजा की है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह स्तूप -पूजा का फल है । (2) [3253]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना2222
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3254]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2216 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2217 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2218 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2219 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2220 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2221 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2222 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3255]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3256]

इस प्रकार पूज्य गंधमुट्ठिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गंधमुट्ठिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

374. {377.}2223 सीतापूजक2224

जब भगवान बुद्ध का देहांत हुआ2225 — [वह] जिन्हें “परम कमल”2226 कहा जाता है — जब स्तूप खड़ा किया गया था,
मैंने इसे एक साल का फूल भेंट किया। (1) [3257]

उस पुष्प पूजा के बाद से एक लाख युगों में ,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह स्तूप -पूजा का फल है । (2) [3258]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3259]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3260]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2223 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2224 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
2225 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2226 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2227 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3261]

इस प्रकार पूज्य चितपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चितपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

375. {378.}2228 सुमनतालवन्तिया2229

मैंने भगवान सिद्धार्थ को चमेली के फूलों से ढका हुआ ताड़ का पंखा दिया, [और]

इसे महान प्रसिद्धि वाले के लिए वहन किया। (1) [3262]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब वह ताड़ के पत्ते का पंखा उसे दे दिया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह ताड़ के पत्तों का फल है। (2) [3263]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना2231
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3264]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3265]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3266]

इस प्रकार पूज्य सुमनतालवन्तीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2228 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2229 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2230 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2231 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

सुमनतालवन्तीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

376. {379.}2232 सुमनदामादायका2233

चमेली की माला बनाकर मैं उसे लेकर आगे खड़ी हो गई।

भगवान सिद्धार्थ के बारे में,
अच्छी तरह से स्नान किया हुआ, तपस्वी.2234 (1) [3267]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने वह [चमेली की] माला धारण की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला:
चमेली ले जाने में फल। (2) [3268]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना2235
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3269]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3270]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3271]

इस प्रकार पूज्य सुमनदामदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुमनदामदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2232 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2233 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2234 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2235 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

377. {380.}2236 कसुमरिफलदायका2237

मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, पुरुषों का बैल, पहाड़ की ढलान पर बैठा हुआ था।

डिनर-प्लेट ट्री की तरह चमक रहा है।2238 (1) [3272]

प्रसन्न, हृदय में आनंद लिए, हाथों को सिर पर जोड़कर, फल इकट्ठा करते हुए ,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (2) [3273]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने वह फल [बुद्ध को] दे दिया, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ:
फल देने का फल यही है। (3) [3274]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3275]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3276]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3277]

इस प्रकार पूज्य कासुमारीफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कासुमारीफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

बोधि और पाटलिपुप्पी,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2236 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2237 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2238 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2239 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

उप्पलि, सत्तपनिय, गंधमुथि और सीताका, ताल, सुमनदमका,

और कासुमारीफला भी:
साठ छंदों से एक कम।

बोधिवन्दक अध्याय, अड़तीसवाँ

अवन्तफल अध्याय, उनतीसवाँ

---

378. {381.}2240 अवनफलदायक2241

हे भगवान, सौ किरणों वाले, स्वयं स्वरूपित, अजेय, एकांतप्रिय, संबुद्ध,
भोजन की तलाश में निकले। (1) [3278]

हाथ में फल लिए हुए, मैंने पुरुषों के उस श्रेष्ठ बैल को आते देखा। मैं प्रसन्न और आनंदित था।
मैंने उसे डंठल हटाकर फल दिए। (2) [3279]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फल [उस समय] दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [3280]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3281]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2240 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2241 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2242 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2243 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3282]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3283]

इस प्रकार पूज्य अवन्तफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अवन्तफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

379. {382.}2244 लबुजफलदायका2245

शहर में, बंधुमती,
मैंने तब एक आश्रम में काम किया।2246
मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा।
[जो] आकाश में यात्रा कर रहा था। (1) [3284]

मैंने ब्रेडफ्रूट2247 [वृक्ष] का फल लेकर उसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया। आकाश में विराजमान, शांत,
महान ख्यातिवान ने इसे स्वीकार किया। (2) [3285]

बुद्ध को वह फल अर्पित करने के बाद, अत्यंत निर्मल मन से, जो मेरे लिए आनंद का स्रोत था और इस संसार में सुख लाता था, मुझे अपार आनंद और असीम, परम सुख प्राप्त हुआ।
एक रत्न 2248 वास्तव में इसके लिए निर्मित किया गया था
[मैं,] यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म लेता रहता हूँ।2249 (3-4) [3286-3287]2250

पिछले इक्यावन युगों में

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2244 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2245 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2246 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2247 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

2248 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2249 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

2250 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मैंने उस समय [बुद्ध को] फल दिए थे, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (5) [3288]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3289]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [3290]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [3291]

इस प्रकार पूज्य लबुजफलदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

लाबुजाफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

380. {383.}2251 उदंबरफलदायक2252

परम पुरुष विनता नदी के तट पर निवास करते थे।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
शांत व्यक्ति,2253 बहुत संयमित व्यक्ति.2254 (1) [3292]

मेरा मन उसमें आनंद से भर गया है, जो अशुद्धता के दाग को धोता है, 2255 उदुंबरा 2256 फल एकत्रित करता है
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (2) [3293]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2251 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

2252 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2253 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2254 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

2255 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2256 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने [बुद्ध को] फल दिए थे [उस समय], मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
फल देने का फल यही है। (3) [3294]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3295]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3296]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3297]

इस प्रकार पूज्य उदंबरफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदंबरफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

381. {384.}2257 पिलक्खफलदायका2258

जंगल में बुद्ध को देखना,2259
हे महान यशस्वी अत्थादस्सी, मैं प्रसन्न हूं, मेरे हृदय में आनंद है।
मैंने उसे लहरदार पत्तों वाला अंजीर 2260 फल दिया। (1) [3298]

बुद्ध को फल देने के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
फल देने का फल यही है। (2) [3299]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2257 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2258 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2259 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2260 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3300]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3301]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3302]

इस प्रकार पूज्य पिलक्खफलदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पिलाक्खफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

382. {385.}2261 चरणफलदायका2262

मैंने उस समय स्वर्ण रंग के संबुद्ध, बलि प्राप्तकर्ता को 2263 फल दिए थे ।
जो सड़क पर जा रहा था। (1) [3303]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने वह फल [बुद्ध को] दे दिया, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ:
फल देने का फल यही है। (2) [3304]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [3305]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2261 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2262 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2263 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [3306]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [3307]

इस प्रकार पूज्य फारुसफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

फ़ारुसफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

383. {386.}2264 वल्लिफलदायक2265

उस समय सभी लोग एक साथ जंगल में गए थे।
वहाँ जंगली रूप से उगने वाले फलों की तलाश में,
उन्होंने उस समय ऐसा फल प्राप्त किया। (1) [3308]

मैंने वहाँ सम्बुद्ध, स्वयंभू स्वरूप, अजेय को देखा। मैं प्रसन्न था, मेरे हृदय में आनंद व्याप्त था।
मैंने उसे कुछ वल्ली 2266 फल दिए। (2) [3309]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध] को वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (3) [3310]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3311]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3312]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2264 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2265 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2266 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3313]

इस प्रकार पूज्य वल्लिफलदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वल्लिफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

384. {387.}2267 कदलिफलदायक2268

मैंने विश्व के नेता को देखा, जो खाने की थाली जैसे पेड़ की तरह चमक रहा था, 2269 पंद्रहवें दिन के चंद्रमा की तरह, 2270
दीपकों के वृक्ष की तरह प्रज्वलित। (1) [3314]

मैंने कुछ केले के फल इकट्ठा किए और फिर उन्हें शिक्षक को दे दिया।
मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
उनकी पूजा करने के बाद, मैं चला गया। (2) [3315]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध] को वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (3) [3316]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3317]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3318]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2267 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2268 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
2269 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2270 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3319]

इस प्रकार पूज्य कदलीफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कदलीफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

385. {388.}2271 पणासफलदायक2272

उस समय हिमालय में अज्जुन नामक सम्बुद्ध निवास करते थे।
उन्हें सुचारु आचरण का वरदान प्राप्त था।
[और] ध्यान में कुशल.2274 (1) [3320]

पानी के घड़े के आकार का जीवजीवका 2275 जक 2276 लेकर , 2277 [और] उसे पत्तों के पंखे पर रखकर,
मैंने इसे शिक्षक को दे दिया। (2) [3321]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध] को वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (3) [3322]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [3323]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2271 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2272 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2273 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2274 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2275 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2276 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2277 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [3324]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3325]

इस प्रकार पूज्य पनासाफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पनासाफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

386. {389.}2278 सोनाकोटिविसा2279

जब विपस्सी की व्यवस्था2280 उत्पन्न हुई, तो मैंने राज नगरी बंधुमा में एक गुफा2281 बनवाई।

भिक्षुओं के लिए 2282 चार दिशाओं में। (1) [3326]

गुफा के फर्श को कालीनों से ढककर, मैंने इसे समर्पित किया।
मेरे हृदय में आनंद और उल्लास का संचार हो रहा है।
तब मैंने यह आकांक्षा व्यक्त की: (2) [3327]

यदि मैं किसी संबुद्ध को प्रसन्न करूँ
और संसार का त्याग करने के लिए,2285
मुझे परम शांति प्राप्त करनी चाहिए
और अतुलनीय निर्वाण।" (3) [3328]

उन अच्छे वंशों के कारण ही, नब्बे युगों का पुनर्जन्म लेकर, चाहे देवता के रूप में जन्म हो या मनुष्य के रूप में,
मैं चमक उठा, पुण्य कर्म करने वाला। (4) [3329]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2278 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2279 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2280 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2281 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2282 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2283 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2284 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2285 लिट., "गया"

उस कर्म के शेष भाग के रूप में, इस अंतिम अस्तित्व में,
मैं इकलौते बेटे के रूप में पैदा हुआ था।
कैम्पा के सबसे प्रमुख करोड़पति का। (5) [3330]

यह सुनकर कि मेरा जन्म हुआ था,2286
मेरे पिता की यही इच्छा थी: "मैं इस [युवक] लड़के को यह दे रहा हूँ।"
पूरे दो सौ मिलियन।"2287 (6) [3331]

मेरे दोनों पैरों के तलवों पर चार उंगल चौड़े बाल उग आए थे।
यह छूने में महीन और मुलायम था।

सुंदर, बिल्कुल रुई की तरह ।2288 (7) [3332]

अतीत में नब्बे युगों तक,
और इस युग में, मुझे अभी तक यह पता नहीं चला है कि मेरे पैर कहाँ रखे हैं।
किसी भी ऐसी जमीन पर जिस पर कालीन न हो। (8) [3333]

संबुद्ध मुझसे प्रसन्न हुए; मैं बेघर होकर निकल पड़ा।
मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया है;
शांत हो गया, मैं निर्वाण में हूँ ।2289 (9) [3334]

सर्वज्ञानी द्वारा नियुक्त
"दृढ़ निश्चयी [भिक्षुओं] में सबसे आगे,"2290
मैं निष्कलंक हूँ, एक अरहंत हूँ।
छह ज्ञान-धारक, शक्तिशाली.2291 (10) [3335]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब [बुद्ध को] वह उपहार दिया था, और तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:
गुफा देने का यही फल है। (11) [3336]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

2286 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
2287 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
2288 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
2289 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
2290 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
2291 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [3337]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (13) [3338]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [3339]

सोना कोटिविसा थेरा
भिक्षुओं की सभा के सामने,
महान अनोटट्टा झील पर प्रश्न पूछे जा रहे हैं [और फिर] उनके उत्तर दिए जा रहे हैं। [3340]2292

इस प्रकार पूज्य सोनकोटिवीसा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सोनकोटिवीसा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

387. {390.} पिछले कर्मों के चिथड़े 2293

अनोटट्टा नामक झील के पास, सुंदर समतल चट्टानी भूमि पर,
जहां विभिन्न प्रकार के रत्न चमकते थे
और विभिन्न सुगंधों से जंगल भर गए, (1) [3341]

विधानसभा से घिरा हुआ 2294
भिक्षुओं के बीच, विश्व के नेता ने वहाँ बैठे हुए [तब] समझाया
उसके द्वारा किए गए पूर्ववर्ती कार्य2295: (2) [3342]

हे भिक्षुओं, मुझसे सुनो, मेरे द्वारा पूर्व में किए गए कर्मों और उन कर्मों के परिणामों के बारे में।

2292 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2293 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें और भी बहुत कुछ है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
2294 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2295 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

स्वयं बुद्ध में परिपक्व.2296 (3) [3343]

मेरे अन्य पूर्व जन्मों में से
मैं मुनाली नाम का एक बदतमीज़ लड़का था।
मैंने सरभू, 2297 के बारे में झूठ बोला था।

एक निर्दोष अकेला बुद्ध। (4) [3344]

उस कर्म के फलस्वरूप,
मैंने बहुत समय तक नरक के चक्कर लगाए।2298
मैंने पीड़ा का अनुभव किया2299
कई हज़ार वर्षों से। (5) [3345]

इसके अंतिम कर्मफल के रूप में, मेरे इस अंतिम जन्म में,
मुझे [कुछ घृणित] निंदा का सामना करना पड़ा
सुंदरिका से संबंधित.2300 (6) [3346]

मैं नंदा था, एक अनुयायी।
बुद्ध सब्बाभिभु के। मेरा पुनर्जन्म नरक में हुआ था।
मैंने उसकी बदनामी करने के बहुत समय बाद तक। (7) [3347]

नरक में मेरा लंबा पुनर्जन्म दस हजार वर्षों तक चला। जब मुझे पुनः मनुष्य का जन्म प्राप्त हुआ,
मुझे भी बहुत बदनामी झेलनी पड़ी। (8) [3348]

उस कर्म के बचे हुए फल के कारण, लेडी सिंका ने मेरी बदनामी की।
लोगों के एक समूह के सामने
तथ्य में बिना किसी आधार के.2301 (9) [3349]

मैं एक विद्वान ब्राह्मण था, जिसकी सेवा की जाती थी, जिसे पूजा जाता था।
एक विशाल जंगल में, मैं पढ़ा रहा था
पांच सौ युवकों को मंत्र। (10) [3350]

उस स्थान पर ऋषि गीमा आए थे (2302)
जिनके पास अपार महाशक्तियाँ थीं।2303

2296 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
2297 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2298 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2299 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2300 लीटर, “गया”
2301 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
2302 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
2303 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

उसे आते हुए देखकर,

मैंने उस निर्दोष [व्यक्ति] पर बदनामी का आरोप लगाया। (11) [3351]

मैंने तब अपने छात्रों से यह कहा था: "यह ऋषि सुखों में आनंदित होता है!"
जब मैंने वह घोषणा की, तो वहाँ के युवकों ने उसे दिल से ले लिया। (12) [3352]

फिर सभी युवक, [मेरे छात्र], कबीले-कबीले में भीख मांगते हुए, बहुत से लोगों को यह बात दोहराते रहे,2304
“यह ऋषि सुखों में आनंदित होता है!” (13) [3353]

उस कर्म के फलस्वरूप,
ये पाँच सौ भिक्षु [अब मेरे साथ] सभी को सुंदरीका से जुड़ी [कुछ बुरी] निंदा मिली।(14) [3354]

एक बार धन की लालसा में मैंने दूसरी माँ से पैदा हुए भाइयों की हत्या कर दी।2305
मैंने उन्हें पहाड़ी सड़क पर रख दिया
[और] उन्हें हिमस्खलन में कुचल दिया।2306 (15) [3355]

उस कर्म के फलस्वरूप, देवदत्त ने एक बड़ा पत्थर फेंका।
और उस चट्टान का एक टुकड़ा
[तब] मेरे पैर के अंगूठे को कुचल दिया।2307 (16) [3356]

एक समय की बात है, मैं एक छोटा लड़का था,
मुख्य मार्ग के किनारे खेलते हुए। एक अकेले बुद्ध को देखकर,
मैंने उस पर मिट्टी का एक ढेला फेंका। (17) [3357]

उस कर्म के फलस्वरूप, मेरे इस अंतिम जन्म में, देवदत्त ने कुछ हत्यारों को काम पर रखा।
मुझे मारने के लिए.2308 (18) [3358]

एक बार, जब मैं अपने हाथी पर सवार था,

2304 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
2305 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
2306 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
2307 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
2308 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

मैंने एक परम एकांत ऋषि को भिक्षा मांगते हुए देखा।

मैंने हाथी से उस पर हमला किया। (19) [3359]

उस कर्म के फलस्वरूप, हाथी नालागिरि का जन्म हुआ।
उत्तेजित, क्रूर, मेरी ओर बढ़ा
गिद्ध शिखर पर स्थित सुंदर शहर में।2309 (20) [3360]

मैं पथिव नामक राजा था; मैंने एक आदमी को खंजर से मार डाला।
उस कर्म के फलस्वरूप,
मैं लंबे समय तक नरक में जलता रहा। (21) [3361]

उस कर्म के बचे-खुचे फल के कारण मेरे पैर की त्वचा पूरी तरह से फट गई।
और इसकी वजह से मुझे काफी परेशानी हुई।
कर्म तो यूं ही गायब नहीं हो जाता! (22) [3362]

मैं एक समय मछुआरों के गांव में एक मछुआरे के लड़के के रूप में रहता था।
मछलियों को मरते हुए देखकर,
सुखद विचार मेरे मन में भर गए।2310 (23) [3363]

उस कर्म के फलस्वरूप,
मुझे एक बार सिरदर्द हुआ था;
सभी शाक्यनों की हत्या कर दी गई,2311
जब विदुड़भा ने उनकी हत्या की।2312 (24) [3364]

मैंने फुस्सा (बुद्ध) के पवित्र शब्दों और अनुयायियों की निंदा की, "घटिया अनाज चबाकर खाओ"।
तुम सब, और चावल मत खाना।" (25) [3365]

उस कर्म के फलस्वरूप,
मुझे तीन महीने तक अनाज खाना पड़ा, जब एक ब्राह्मण ने मुझे आमंत्रित किया।
मैं विभिन्न राज्यों में रहा। (26) [3366]

कुश्ती के दौरान,
एक पहलवान का बेटा, मैंने [लड़ाई] रोक दी;2313
उस कर्म के फलस्वरूप,
[एक बार] मुझे पीठ दर्द हुआ। (27) [3367]

2309 लिट., "एक फूल पर"
2310 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
2311 khiḍḍāratiyaÁ
2312 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
2313 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"

मैं एक [अभ्यास करने वाला] डॉक्टर था
और एक धनी व्यक्ति के पुत्र को शुद्ध किया;2314
उस कर्म के फलस्वरूप,
मुझे पेचिश हो गई। (28) [3368]

एक बार मैंने, ज्योतिपाला ने कहा
कासपा को, जो अच्छी तरह से चला गया है,
तो फिर यह गंजा आदमी कहाँ से जाग रहा है?
जागृति तक पहुँचना इतना कठिन क्यों है? (29) [3369]

उस कर्म के फलस्वरूप,
मैंने उरुवेला में छह साल तक घोर तपस्या की।
और फिर ज्ञानोदय प्राप्त किया। (30) [3370]

"उस मार्ग पर चलकर मुझे परम ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ," [मैंने सोचा], "तो फिर मुझे किस मार्ग पर चलना चाहिए, जो मेरे पूर्व कर्मों से बाधित है? अच्छे और बुरे कर्मों को समाप्त करते हुए।"
और हर तरह की पीड़ा से बचना
दुःख, कष्ट और भावनाओं के प्रवाह से मुक्त,
मैं निर्वाण को प्राप्त करूँगा।" (31-32) [3371-72]

इस प्रकार उन्होंने भिक्षुओं की सभा के समक्ष सर्वशक्तिशाली विजयदाता, 2316 का वर्णन किया।
महान अनोटट्टा झील पर। (33) [3373]

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने धर्म पर यह संक्षिप्त प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व आचरण का खुलासा किया, जिसे बुद्ध- उपदान के नाम से जाना जाता है, जिसका नाम "पूर्व कर्मों के चिथड़े" है।

"पूर्व कर्मों के चिथड़े" नामक बुद्ध- उपदान पूरा हो गया है।

समीक्षा:

अवंता और लबुजा भी, उदुंबरा और पिलक्खु, फारु, वल्ली और कदली, पनासा, कोटिविसका
और पूर्व कर्मों के वस्त्र, महान ऋषि की कथा: श्लोकों की संख्या 91
बुद्धिमान लोग ही इनकी गिनती करते हैं।

2314 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
2315 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
2316 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

अवन्तफल अध्याय, उनतीसवाँ

पिलिंडावच्छ अध्याय, चालीसवाँ

---

388. {391.}2317 पिलिंडावाच्चा2318

हंसवती नगर में,
मैं उस समय द्वारपाल था।2319 अबाधित,2320 असीम धन
घर में मेरे लिए ढेर लगा दिया गया था। (1) [3374]

भव्य महल में बैठकर, एकांत में बैठकर, मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो गया था।
मैंने उस समय इस प्रकार विचार किया: (2) [3375]

मैंने बहुत धन अर्जित किया है; मेरे पास एक समृद्ध हरम है।
पृथ्वी के स्वामी राजा आनंद, 2321
स्वयं ने मुझे आमंत्रित किया.2322 (3) [3376]

और अब इस बुद्ध का जन्म हुआ है, स्वतःस्फूर्त रूप से जन्मे ऋषि।
और यह सारी दौलत मेरे लिए ही मौजूद है;
मैं शिक्षक को उपहार दूंगा। (4) [3377]

राजसी राजकुमार, [जिनका नाम] पद्मा2326 था, ने विजेता के लिए शानदार उपहार दिए: शक्तिशाली2327 हाथी और पालकी

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2317 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

2318 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

2319 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

2320 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

2321 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

2322 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

2323 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

2324 शाब्दिक रूप से, "गया"

2325 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

2326 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

2327 शाब्दिक रूप से, "योग्य"

और बड़े2328 समर्थन2329 [उन्हें ऊपर रखने के लिए]। (5) [3378]

मैं भिक्षुओं को भी उपहार दूंगा।
अत्यंत उत्कृष्ट सद्‌गुण के साथ।2332
मैं ही उकसाने वाला बनूंगा2333
अन्य [चीजों] का जो अभी तक नहीं दी गई हैं।"2334 (6) [3379]

विभिन्न प्रकार के दान के बारे में विचार करना23352336
जिसका फल सुख है, मैंने 2337 एक आवश्यक उपहार जलाया, 2338
[जो] मेरे इरादों को पूरा करेगा: (7) [3380]

मैं आवश्यक सामग्री दान करूँगा।
असाधारण सद्‌गुण वाले भिक्षुओं के लिए।2340
मैं ही उकसाने वाला बनूंगा2341
अन्य [चीजों] का जो अभी तक नहीं दी गई हैं।"2342 (8) [3381]

टोकरी बनाने वालों के पास पहुँचते हुए,2343
मैंने एक ऐसा छाता बनाया जो टिकाऊ हो,2344
एक में एकजुट करना,
एक लाख छतरियाँ। (9) [3382]

मैंने इन्हें एक में समाहित कर दिया,
मैंने एक लाख कपड़े की पट्टियों को एक साथ मिलाकर एक पट्टी बनाई।
एक लाख भिक्षापात्र। (10ए-बी)2345 [3383]

2328 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

2329 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

2330 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

2331 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

2332 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

2333 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

2334 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

2335 khiḍḍāratiyaÁ

2336 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

2337 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”

2338 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

2339 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”

2340 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

2341 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी

2342 pariḷāho

2343 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

2344 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

2345 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

और छोटी चाकूएँ2346 [और] कुल्हाड़ीयाँ,2347
सुई 2348 [और] नाखून काटने वाले कटर 2349
उन्हें इसके लिए उपयुक्त बनाकर
उन्हें छाते के नीचे लटका दिया। (10सी-डी, 11ए-बी) [3384]

मैंने उसके लिए भी पंखे बनवाए थे, ताड़ के पत्तों से बने पंखे, मोर के पंख और याक की पूंछ से बने पंखे;
जल-छानने वाले,2354 तेल-कंटेनर.2355 (11सी-डी, 12ए-बी) [3385]

मैंने भी उसी के अनुरूप बनाया था।
सुई के डिब्बे 2356 [और] कंधे की पट्टियाँ 2357
साथ ही कमर के लिए गर्डल2358
और [भी] अच्छी तरह से निर्मित स्टूल.2359 (12सी-डी, 13ए-बी) [3386]

मैंने खाने के बर्तनों और दवाइयों से भरे तांबे के तेल के बर्तनों को भी ठीक किया।
छाते के नीचे की तरफ। (13बी-सी, 14ए-बी) [3387]

मैंने इन सभी चीजों से बर्तन भर दिए:
स्वीट-फ्लैग,2360 कस्कस घास,2361 मुलेठी,2362
काली मिर्च,2363 और काली मिर्च के दाने,2364
मायरोबालन2365 [और] अदरक2366 [भी]। (14सी-डी, 15ए-बी) [3388] मैंने भी ऐसा ही किया था, उसके लिए उपयुक्त,

---

2346 samādhikusalo ahaŋ

2347 iddhipādesu kovido

2348 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

2349 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

2350 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

2351 mahābhisakkasaṅkāso

2352 dosavyādhitikicchako

2353 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

2354 दिट्ठिगण्ड°

2355 लोकापज्जोटो

2356 sanarāmarasakkato

2357 नारदिको

2358 लिट., “में”

2359 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

2360 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

2361 महास्सादंग

2362 महरसंग

2363 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"

2364 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

2365 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

2366 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं

जूते [पैरों के लिए],2367 [और] सैंडल2368 [भी], तौलिए2369 [स्नान के बाद उपयोग करने के लिए],
[और] अच्छी तरह से निर्मित चलने वाली छड़ें.2370 (15सी-डी, 16ए-बी) [3389]

जड़ी-बूटियों और मलहमों को रखने के लिए नलियाँ2371,2372 कास्टिक की छड़ें,2373 सामान रखने के लिए बर्तन,2374 [ताले और उनकी चाबियाँ]2375 और चाबी के डिब्बे2376
पाँच रंगों के [कपड़े] से सिला हुआ। (16सी-डी, 17ए-बी) [3390]

मैंने उसी के लिए पट्टियाँ2377 और [साथ ही] धुएँ की नलियाँ2378, दीपक धारक2379 और पानी के पात्र2380 भी बनवाए थे।
और विकर की बुनी हुई टोकरियाँ।2381 (17सी-डी, 18ए-बी) [3391]

मैंने उसी के लिए चिमटी2382 [खींचने के लिए], कैंची2383 [काटने के लिए], दवाइयों के लिए थैले2384 भी बनवाए थे।
और कान के मैल को हटाने के उपकरण।2385 (18सी-डी, 19ए-बी) [3392]

मैंने भी उसी के अनुरूप एक छतरी बनवाई थी और उसे उसके नीचे लगा दिया था।
लंबी बेंचें2386 और साथ ही छोटी कुर्सियाँ2387
और चार [पैरों] से निर्मित सोफे2388।2389 (19सी-डी, 20ए-बी) [3393] मैंने भी इसी प्रकार बनवाए थे, उसके लिए उपयुक्त,

---

2367 शाब्दिक रूप से, "मेरी माँ का शरीर सुगंध से भरा हुआ था"

2368 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]

2369 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”

2370 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”

2371 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो

2372 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।

2373 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"

2374 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।

2375 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।

2376 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"

2377 sampahaŋsitā

2378 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।

2379 chettā

2380 sotā

2381 pasaŋsitā

2382 akhilo

2383 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है

2384 anīgho

2385 अकथानकथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"

2386 अनेजो

2387 विराजो

2388 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है।

2389 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा (“सुगंधित”)

ऊनी कुशन 2390 और सूती कुशन 2391
छोटी कुर्सियों के लिए बनाए गए कुशन
और बहुत अच्छी तरह से बने तकिए2392 [भी]; (20सी-डी, 21ए-बी) [3394]

मालिश करने वाले पत्थर2393 और मधुकोश,2394
और हाथों को गर्म करने के लिए तेल,2395
छोटे केस, 2396 तख्ते 2397 और सुइयां 2398 [भी],
और एक बिस्तर जिस पर कालीन बिछे हुए थे,2399 (21सी-डी, 22ए-बी) [3395]

रहने के स्थान 2400 और पैर पोंछने के तौलिए 2401
और कुर्सियों और बिस्तरों के लिए इस्तेमाल करने के लिए लकड़ियाँ,2402
टूथपिक्स2403 और [भी अच्छे] टूथ-स्टिक्स,2404
[और] सिर पर मलने के लिए सुगंध,2405 (22सी-डी, 23ए-बी) [3396]

आग जलाने के लिए लकड़ी2406 और पुआल से बनी कुर्सियाँ2407
भिक्षापात्रों को ढकने के लिए छोटी प्लेटें, 2408
पानी के लिए बनाए गए चम्मच,2409
चुन्नम [भंडारण] के लिए चांदी के गर्त, 2410 (23सी-डी, 24ए-बी) [3397]

झाड़ू2411 और पानी के जग2412 और इसी तरह बारिश के मौसम में पहनने के लिए कपड़े2413, बैठने पर खुजली से बचने के लिए ढँकने के लिए कपड़े2414

2390 रीडिंग वट्टा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस मेट्टा (“लव”)

2391 pakāsitā

2392 t'āretā

2393 में तारेटा ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ अत्थकारेता का पाठ किया गया है।

2394 k'āretā
2395 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
2396 पापेटा
2397 साहित्य , या "सहनकर्ता"
2398 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS में hantā की पुनरावृत्ति है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।
2399 hantā
2400 रीडिंग ātāpī with BJTS for PTS tātâpi ("also the Protector")
2401 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में
2402 samacitto
2403 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , "हमेशा एक जैसा")
2404 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, "मित्रहीन"
2405 दयासयो (और उसके बाद की व्याख्या) को पीटीएस दयासयो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ना
2406 accherasanto
2407 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"
2408 क'तावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए
2409 i'sisattamo
2410 nittiṇṇakaṅkho
2411 nimmāno
2412 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"
2413 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"
2414 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं"

और2415 मध्यवर्ती वस्त्र2416 [भी], (24सी-डी, 25ए-बी) [3398]

मठवासी वस्त्र और ऊपरी वस्त्र,2417 मुँह और नाक साफ करने वाले,2418 प्रचुर मात्रा में नमक और खट्टा दलिया,2419
शहद2420 और खट्टा दूध पीने के लिए,2421 (25सी-डी, 26ए-बी) [3399]

धूप,2422 उबले हुए चावल के टुकड़े,2423 और चिथड़े,2424 चेहरे को पोंछने के लिए रुमाल:2425 जो कुछ भी दिया जाना चाहिए
जो शिक्षक के लिए उपयुक्त है, इन सभी चीजों को इकट्ठा करने के बाद।
मैं [राजा] आनंद के पास गया।2426
राजा के पास जाने के बाद,
सबसे महान ऋषि के पिता2427,2428
सिर झुकाकर प्रणाम करने के बाद,
मैंने उस समय उससे ये शब्द कहे थे: (26सी-डी, 27-28) [3400-3401]

[नायक:]2429
"हम साथ-साथ पैदा हुए और पले-बढ़े; हम दोनों एक ही सोच के हैं।"

2415 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है जिसे समझा जाना है [या निर्देश दिया जाना है, नेतृत्व किया जाना है, मार्गदर्शन किया जाना है (नेति का क्रियापद)]"
2416 जिनो
2417 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट लगती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।
2418 रीडिंग akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ with BJTS for PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ ("मैं धम्म- प्रचारक मैं")
2419 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭatаṭa heḷana vātaya ("वह हवा जिसे मैं नीचे फेंक देता हूँ/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ")
2420 रीडिंग sabbagandhe 'tiseti (= atisayati) BJTS के साथ PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंध' को नीचे रखता है")
") और इसके बाद बीजेटीएस सिंहली ग्लॉस
2421 BJTS में एटिसैंटो के लिए एडिसैंटो ("घोषणा") पढ़ा जाता है
2422 रीडिंग guṇatthavassa sabbaṃ taṃ phalaṃ tu paramambhūtaṃ with BJTS for PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारिक रूप से खिलता है" [?]), और BJTS ग्लॉस का अनुसरण किया: buddha guṇakitiyāge ē siyalu vipāka atiśaya vismayajanaka ya .
2423 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) पद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। IPTS इसे rasaddhovisamāyuto पढ़ता है । "शुद्ध स्वाद से बंधा हुआ।" BJTS में लिखा है (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto ?)। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS के सिंहली अनुवाद का अनुवाद करता हूँ, mad- hura svaradhvani yukta vūyem (- mihirihaddha ättem), "मैं मधुर ध्वनि से बंध गया (मेरे पास एक मधुर ध्वनि है)"।
2424 रीडिंग khīṇe ayusi with BJTS for PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है")
2425 शाब्दिक रूप से, "आप सभी इसे सुनें" (द्वितीय व्यक्ति बहुवचन क्रिया)
2426 ya'sassī
2427 शाब्दिक रूप से, "इसलिए मैं खुश हूँ"
2428 दुःखान्तकरण बुद्ध , शाब्दिक अर्थ: "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध"
2429 धम्मॅ ...
2430 जनायण , लिट., "मैंने उत्पादन किया"

और 2431 में हम दोनों समान रूप से अनुसरण करते हैं
[एक मार्ग] सुख और दुख के माध्यम से।"2432 (29) [3402]

[राजा:]
"हे शत्रुओं पर विजय पाने वाले2433, आपके मन में असंतोष2434 है।
अगर तुम कर सकते हो, योद्धा, तो तुम्हें ऐसा करना चाहिए
उस असंतोष को दूर करो। (30) [3403]

आपकी असंतुष्टि मेरी असंतुष्टि है;2435
हम दोनों एकमत हैं।2436
मेरा वाला 'बाहर' के रूप में जाना जाता है।
यदि आपका भी [निष्कासन कर दिया गया है]।" (31) [3404]

[नायक:]
“हे महान राजा, मेरे बारे में जान लो,2437 कि मेरा दुख2438 दूर करना कठिन है।
[यदि आप] सक्षम हैं2439 तो आपको चिल्लाना चाहिए2440 [यह]: (32) [3405]

एक2441 वरदान2442 आपके लिए देना कठिन है2443 [मुझे]।” [राजा:]
जब तक मुझे जीत मिलती रहेगी,
यदि यह आपके लिए उपयोगी हो, तो मैं अपने पूरे जीवन भर ऐसा करने के लिए तैयार हूँ।
बिना हिचकिचाए मैं 2445 [इसे] दे दूंगा।” (33) [3406]

[नायक:]
“हे राजा, आपने यह गर्जना की है, लेकिन बहुत अधिक गर्जना करना अनुचित होगा।” [राजा:]

2431 या “विधर्मी”: कुटित्थिये
2432 रीडिंग titthikākiṇṇe with BJTS for PTS titthikâkiṇṇo (“मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ”)
2433 v'adanto , शाब्दिक अर्थ, “कहना,” “बताना”
2434 में पीटीएस varaŋ (“उत्कृष्ट”) के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ vadaṃ पढ़ा जा रहा है।
2435 पीटीएस °jinassa (“विजेता का”) के लिए BJTS (और PTS विकल्प) के साथ janassa का पाठ
2436 रीडिंग sarado va sasaṅko 'haṃ with BJTS for PTS saraŋ divasasanko 'haŋ (“मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ” [?])
2437 शाब्दिक रूप से, “मैं था”
2438 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चला गया व्यक्ति," सुगाताŋ
2439 y'athāsattivasena
2440 v'āgīso , “[मैं एक हूँ] वाणी पर महारत के साथ”
2441 में विमतिपट्टा को पीटीएस विमतिंग पट्टा के स्थान पर बीजेटीएस से पढ़ा गया है , हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक दृष्टि से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है।
2442 apades' ahaṃ को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS apaniŋ (समान अर्थ, apaneti से) के लिए पढ़ना
2443 tiṇṇasamsārasāgaro
2444 BJTS mañcado (“Mañcada”) पढ़ता है
2445 BJTS में supaṭo (“Supaṭa”) पढ़ा जाता है
2446 यह पीटीएस शब्द bodhisammajako (“बोधिसम्मजक”) का बीजेटीएस पाठ है ।
2447 r'akkhasā = rākṣasā

आज मैं आपको इस रूप में पहचानूंगा
वह जो सभी चीजों में समर्थित है।"2448 (34) [3407]

[नायक:]
“[जब] तुम्हें पता चल जाएगा कि मैं तुम्हें क्या देना चाहता हूँ, तो तुम हठपूर्वक2449 मुझे नीचे उतार दोगे।”2450 [राजा:]
“तुम्हें रोकने का क्या फायदा?2451
आपको अपनी इच्छा मुझे बतानी चाहिए! (35) [3408]

[नायक:]
“हे महान राजा, मैं यह चाहता हूँ,
उन्हें भोजन कराने के बारे में, संबुद्ध, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, अतुलनीय बुद्ध;
मेरे जीवन को व्यर्थ न जाने दो!2452 (36) [3409]

[राजा:]
मैं तुम्हें एक अलग वरदान दूंगा:
जो इस दुनिया से चले गए हैं, उनसे विनती नहीं की जा सकती;2455
किसी को भी उस दिवंगत व्यक्ति के बारे में नहीं बताना चाहिए।
इच्छा पूरी करने वाले रत्न की तरह दिया जाए।2456 (37) [3410]

[नायक:]
“हे राजा, क्या आपने अभी-अभी यह नहीं कहा था कि2457
क्या तुम मुझे अपना जीवन भी दे दोगे?
जो इस दुनिया से चले गए हैं, वे देने के योग्य हैं।
एक व्यक्ति द्वारा [अपना] जीवन देकर।" (38) [3411]

[राजा:]
“महान नायक को अलग रखा जाता है;
उसे किसी को भी नहीं दिया जाना चाहिए।
बुद्ध की प्राप्ति का वादा मैं नहीं करता;
2460 असीमित धन [इसके बजाय] चुनें।" (39) [3412]

2448 पन्नागा
2449 mahānubhāvā isayo
2450 k'amaṇḍalu-dharā . यह विशेष पात्र गैर-बौद्ध तपस्वियों का एक विशिष्ट चिह्न है।
2451 jaṭā-bhāra-bharita , शाब्दिक अर्थ, “गुंथी हुई चोटी और भार/भारी बोझ से भरा हुआ”।
2452 युगामत्तं च पेक्खंत , शाब्दिक अर्थ, "हल की लंबाई तक आगे देखना," यानी, बस थोड़ा सा, अपनी निगाहें सामने की जमीन पर टिकाए रखना।
2453 गच्चन्ति , शाब्दिक अर्थ, "जाना"
2454 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ सयान च उपसम्पन्ना पढ़ना अयम च उपसम्पन्नो ("और यह आपूर्ति की गई है"
2455 पतिहिरस्स इदान फलां
2456 lohadoṇiŋ gahetvāna
2457 v'anamajjhe , शाब्दिक अर्थ, "जंगल के बीच में"
2458 PTS में apassitā पढ़ा जाता है , BJTS में avassitā पढ़ा जाता है ; ये शब्द समानार्थी हैं और एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हैं।
2459 reading uggatejāna with BJTS for PTS uggatejana
2460 °saddena , शाब्दिक अर्थ, "ध्वनि के साथ"

[नायक:]
आइए किसी निष्कर्ष पर पहुँचें;

हम अदालत में इस पर सवाल उठाएंगे।
वे2461 उचित मार्ग घोषित करेंगे;2462
हम इस बारे में पूछताछ करेंगे। (40) [3413]

राजा को अपने कब्जे में लेने के बाद,
फिर मैं अदालत में गया। वहाँ, सभी न्यायाधीशों के सामने,2463
मैंने [उनसे तब] ये शब्द कहे: (41) [3414]

[नायक:]
“हे न्यायाधीशों, मेरी बात सुनो: राजा ने मुझे वरदान दिया है। बिना किसी अपवाद के।”
उसने अपना जीवन भी अर्पित कर दिया।2464 (42) [3415]

जब उन्होंने मुझे वह वरदान दिया, तो मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की कामना की।
बुद्ध ने मुझे भरपूर दान दिया है;
अन्यथा मैं संदेह से भरा हुआ हूँ।”2465 (43) [3416]

[न्यायाधीश:]
हम आपके और पृथ्वी की रक्षा करने वाले राजा के इन शब्दों को सुनेंगे। दोनों के शब्दों को सुनना...
हम आपके सभी संदेह दूर कर देंगे। (44) [3417]

हे राजा, क्या आपने इस व्यक्ति को सब कुछ, बिना किसी अपवाद के, पूर्ण रूप से दिया था?
[और] अपना जीवन भी अर्पित करोगे?” (45) [3418]

[राजा:]
“दुख में डूबे हुए,2468 उन्होंने एक अद्वितीय वरदान की प्रार्थना की। उन्हें इतना व्याकुल जानकर,2469
मैंने इसे पूरी तरह से दिया। (46) [3419]

2461 या "प्रशिक्षित:" विनीता

2462 appamaññāsu kovidā , अर्थात् “ईश्वरीय अवस्थाओं” (ब्रह्मविहारा) के अभ्यास में कुशल, अर्थात् प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव।

2463 में abhilāsino शब्द को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS abhilābhino , “प्राप्त करना” के स्थान पर पढ़ा गया है।

2464 samayaŋ saŋviditvāna

2465 अतापी , शाब्दिक अर्थ, "जलना"

2466 saŋviggamānaso

2467 अगलुम , सिंह। अगिल, अगरु, अगुरु

2468 reading panasaṃ devagandhikaṃ with BJTS for PTS vansaṇḍe va gandhika� (“वन उपवन में सुगंधित”)

2469 या “हाथी के ललाट लोब जितना बड़ा:” कुंभमट्टंग

[न्यायाधीश:]
“हे राजा, आप यहाँ पराजित हो चुके हैं;
जो इस दुनिया से चला गया है, उसे दे दिया जाना चाहिए।

दोनों के संदेह दूर हो गए हैं;
[इसमें] सही मार्ग पर दृढ़ रहो।”2470 (47) [3420]

[नायक/कथावाचक:]
राजा को उसके पद से हटा दिया गया
तब राजा ने न्यायाधीशों से ये शब्द कहे:
"मुझे भी ठीक लग रहा है, आपको भी वापस लौटना चाहिए।"
[उसे]; मैं फिर से बुद्ध को लाऊंगा।” (48) [3421]

[न्यायाधीश, नायक से:]
“अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के बाद, दिवंगत आत्मा को भोजन कराने के बाद,
आपको संबुद्धा को 2473 लौटाना चाहिए
[महान] ख्याति के [राजा] आनंद को।" (49) [3422]

[नायक:]
न्यायाधीशों को सलाम करने के बाद
और राजा आनंद भी,2474, [तब] प्रसन्न होकर, आनंदित हुए।
मैं संबुद्ध के पास गया। (50) [3423]

जलप्रपात पार करने वाले, निष्कलंक संबुद्ध के पास पहुँचकर, सिर झुकाकर प्रणाम करने के बाद,
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (51) [3424]

“हे सुंदर आँखों वाले, अपनी सहमति दीजिए, जिससे मेरा हृदय प्रसन्न हो उठे; मेरे निवास स्थान की ओर आइए।”
एक लाख स्वामियों के साथ।”2475 (52) [3425]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता

2470 cittaŋ , शाब्दिक अर्थ, "विचार" या "मन"
2471 शाब्दिक रूप से, "ऐसा व्यक्ति बन गया है जो"
2472 शाब्दिक अर्थ, “अविचलित” “अविचलित”
2473 शाब्दिक रूप से, "अस्तित्व में आना"
2474 adantadamako का अर्थ या तो "अनियंत्रित को वश में करने वाला" या "अनियंत्रित को वश में करने वाला" हो सकता है; मैं हाइफ़न के साथ अस्पष्टता को खुला छोड़ देता हूँ, यहाँ "अनियंत्रित को वश में करने वाला" के लिए अपनी प्राथमिकता स्वीकार करता हूँ (जो कि BJTS का भी पाठ है, dametar पर RD देखें), और जप में उच्चारण की अनुशंसा करता हूँ जो यौगिक में पहले शब्द पर जोर और स्वर के माध्यम से इस बात पर जोर दे सकता है कि बुद्ध वह हैं जो अनियंत्रित/जंगली लोगों को वश में करते हैं।
2475 bodhento bodhapakkhiye , जिसे BJTS (37) जागृति या ज्ञानोदय के पहलुओं या गुणों के रूप में व्याख्यायित करता है-उल्लेख (बोध , यहाँ = बोधि , आरडी एसवी देखें)

आँखों से देखने वाले ने मेरी सोच को समझकर सहमति दी। (53) [3426]

शिक्षक को प्रणाम करने के बाद, यह समझते हुए कि उन्होंने सहमति दे दी है,

प्रसन्न, मेरे हृदय में परमानंद व्याप्त है।
मैं अपने निवास स्थान पर गया। (54) [3427]

मित्रों और मंत्रियों को एकत्रित करना
मैंने उनसे तब ये शब्द कहे थे: "मुझे वो चीज मिली है जो पाना बहुत मुश्किल है,
ठीक इच्छा पूरी करने वाले रत्न की तरह।" (55) [3428]

[मित्रों और मंत्रियों:]
"तो फिर हम उसकी उपासना किससे करेंगे?"
विक्टर2477 असीम है,2478
अतुलनीय, 2479 बेजोड़, 2480 हीरो, 2481
अमापनीय,2482 अद्वितीय।"2483 (56) [3429]

और इस प्रकार हमेशा एक जैसा ही,2484
बिना किसी दूसरे के,2485 पुरुषों का बैल.2486
ऐसी सेवा जो आपके लिए करना कठिन हो
बुद्ध के लिए उपयुक्त है। (57) [3430]

विभिन्न प्रकार के फूलों को मिलाकर हम एक पुष्प मंडप बना सकते हैं।2487
यही बात बुद्ध के लिए उपयुक्त है;
वहाँ सब कुछ होगा- पूजा।" (58) [3431]

[नायक:]
मैंने वह मंडप बनाया [से]
नीले कमल, 2488 गुलाबी कमल, 2489

2476 ācāra-upacāraññū
2477 धम्मनुच्चवासंवरं (बीजेटीएस इसे धम्मनुच्चवी° पढ़ता है)
2478 pade padaŋ nikkhipantā , शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए [अपने पैर] सावधानीपूर्वक रखना"
2479 pade padaŋ nikkhipantā , शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए [अपने पैर] रखना"
2480 durūpansaṅkamā
2481 अप्पासद्दा
2482 रीडिंग यदा 'हं बीजेटीएस के साथ पीटीएस यवाहां के लिए , "जहाँ तक मैं..."
2483 munibhutā va , ie, silently
2484 रीडिंग desesi with BJTS for PTS desesi , "आप उपदेश देते हैं"
2485 nisāmetha
2486 लिट., "महान शिक्षण," सद्धम्मसवनं सुखं
2487 k'athaŋ vītisāretvā
2488, अर्थात् महापुरुष के शरीर पर स्थित बत्तीस शुभ चिह्न , जो यह संकेत देते हैं कि वह या तो एक बुद्ध या फिर चक्र घुमाने वाला सम्राट।
2489 r'eading iddhiyā* with BJTS for PTS itthiyaÁ ("to a woman," sic!)*

जैस्मीन2490 और अतिमुत्तका 2491
चंपक2492 और आयरनवुड फूल.2493 (59) [3432]

मैंने एक लाख सीटें लगाईं, जिन पर छतरियों से छाया की व्यवस्था थी।
मेरे लिए आरक्षित सबसे नीची सीट,
शानदार था [और] सौ के लायक था। (60) [3433]

मैंने एक लाख कुर्सियाँ बिछाईं, जिन पर छतरियों से छाया की गई थी। खाना-पीना तैयार करने के बाद,
मैंने [शुरू करने का] समय घोषित किया। (61) [3434]

जब मैंने घोषणा की कि समय आ गया है, तो महान ऋषि पद्ममुत्तरा ने कहा,
[फिर] मेरे निवास पर पहुंचे
एक लाख स्वामियों के साथ। (62) [3435]

तब परम पुरुष एक लाख गुरुओं के साथ पुष्पमय मंच पर बैठ गए।2494
छतरी ऊपर रखी हुई है। (63) [3436]

उचित रूप2495 में और बिना किसी त्रुटि के, उस नेत्रपूर्ण व्यक्ति ने [तब] स्वीकार किया
एक लाख छतरियां,
[और] एक लाख सीटें भी। (64) [3437]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
मुझे पार कराने की इच्छा से,
महान ऋषि ने [उन बातों को] स्वीकार किया। (65) [3438]

प्रत्येक भिक्षु के लिए एक,2496
मैंने प्रत्येक को एक भिक्षापात्र भेंट किया।
उन्होंने अपने पिछले 2498 कटोरे नीचे रख दिए;
मैंने प्रत्येक के लिए एक कांस्य2499 कटोरा ले गया। (66) [3439]

सात रात और सात दिन बुद्ध

2490 k'osohitaŋ vatthaguyhaŋ , BJTS इसे kosohitavatthaguyhaŋ पढ़ता है
2491 k'aṇṇasote , "उसके श्रवण अंग पर"
2492 reading patamasi nalāṭantaṃ with BJTS for PTS paṭtimasanalāṭaŋ taŋ
2493 niṭṭhaŋ gantvā , शाब्दिक अर्थ, "निष्कर्ष पर पहुँचकर"
2494 सब्बे पत्त' अम्हा निब्बुतिन
2495 एकाटो , लिट., "एक के रूप में"
2496 शाब्दिक रूप से, "देने के बाद"
2497 reading gopānasīyo with BJTS for PTS gopānasī
2498 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ

पुष्प मंडप में बैठा था। अनेक प्राणियों को जागृत करते हुए,
उन्होंने शिक्षण का पहिया घुमाया।2500 (67) [3440]

जब वह अपना उपदेश दे रहे थे, तब पुष्प मंडप के नीचे चौरासी हजार लोग उपस्थित थे।
शिक्षण में अंतर्दृष्टि प्राप्त की।2502 (68) [3441]

जब सातवां दिन आया, तब महान ऋषि पद्ममुत्तरा ने भीड़ से ये श्लोक कहे।
अपनी छाता-छाया वाली सीट से: (69) [3442]

[पदुमत्तरा बुद्ध:]
मैं इस आदमी के बारे में विस्तार से बताऊंगा।
जिसने मुझे बिना किसी कमी के यह [सर्वोत्तम] भेंट दी;
आप सब मेरी बात सुनो: (70) [3443]

हाथी, सैनिक, रथ, घोड़ा:
उसे चार गुना सेना मिलेगी;
वे लगातार उसकी प्रतीक्षा करेंगे2503:
यही सब कुछ का फल है - उपहार.2504 (71) [3444]

पालकी भी, जिन्हें जोड़ा गया है2505
हाथियों और घोड़ों को,
हमेशा 2506 उसके लिए उपलब्ध रहेगा:
यही सब उपहारों का फल है। (72) [3445]

और साठ हजार रथ, सभी अलंकृत और सुशोभित।
मैं इस [आदमी] का लगातार इंतजार करूंगा:
यही सब उपहारों का फल है। (73) [3446]

साठ हजार यंत्र2507 [और]

2500 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस अतक लबमि) के रूप में समझने में बीजेटीएस की व्याख्या का अनुसरण करता हूँ । बीजेटीएस हेतु (जो शायद मेट्रिक कॉसा हो) के प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार करता है: "उस अच्छे कर्म, यानी उस कर्म को कारण बनाना।" मैं यहाँ आठ को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) सर्वत्र पूजित, (2) अमृतमय भोजन, (3) सभी द्वारा समर्थित, (4) कोई भय नहीं, (5) कोई रोग नहीं, (6) दीर्घायु, (7) उत्तम त्वचा, (8) चुने हुए या वांछित निवास स्थान।

2501 पूजितो

2502 पीटीएस पतिथ भोसियन सब्बेसन के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ पतिठ होमी सब्बेसां पढ़ना

2503 शाब्दिक अर्थ, “होना,” “पाना”

2504 tā'so

2505 ā'vā'se patthite vase

2506 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ
2507 pūgadhamme

अच्छी तरह से सजाए गए केतली-ढोल 2508
उसके लिए लगातार आवाज करता रहेगा:
यही सब उपहारों का फल है। (74) [3447]

और महिलाएं भी, सभी सजी-धजी, जिनकी संख्या छियासी हजार थी, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई थीं।
रत्न जड़ित झुमके पहने हुए, (75) [3448]

लंबी पलकों, प्यारी मुस्कान 2509 और पतली कमर वाली, देखने में मनमोहक, 2510 इस [आदमी] की लगातार सेवा करती रहेगी:
यही सब उपहारों का फल है। (76) [3449]

वह तीस हजार युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेगा।
हजार बार देवताओं के स्वामी,
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा। (77) [3450]

वह एक हजार बार ऐसा राजा बनेगा जो [कानून का] पहिया घुमाएगा, [और उसके पास] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत। (78) [3451]

जबकि वह, अच्छे कर्मों से संपन्न,2511
देवताओं के लोक में निवास करते हुए, एक रत्न-छतरी ले जाई जाएगी
उसके लिए देवताओं की दुनिया के चारों ओर। (79) [3452]

जब भी उसे छाया की आवश्यकता हो,2512
इस व्यक्ति की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए, कपड़े और फूलों से बनी एक छतरी,2513
उसे लगातार छाया प्रदान करेगा। (80) [3453]

अपने उत्तम मूल के कारण देवताओं के लोक से गिरकर,
उसके कर्मों के अनुसार,2514
वह ब्रह्मा का रिश्तेदार होगा।2515 (81) [3454]

2508 lit., "देने के बाद"
2509 या, "उन आठ के अतिरिक्त"
2510 पटिसम्भिदा , अर्थात् (चार) विश्लेषणात्मक गुणों में निपुणता, अरहंतत्व का एक लक्षण।
2511 शाब्दिक अर्थ, "और"। यहाँ ' ca' दो अलग-अलग ānisaṃsas को एक में जोड़ता है, जिसे अंतिम पद में एकवचन सर्वनाम etaŋ से संदर्भित किया गया है।
2512 sabbavositavosāno , शाब्दिक अर्थ, "वह व्यक्ति जिसने सभी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों," "अरहंत होना"
2513 कातािककिो , यानी, "अरिहंत होना"
2514 अनासावो , यानी, "अरिहंत होना"
2515 अठगोपनासि नाम

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (82) [3455]

भिक्षुओं की सभा में विराजमान, शाक्यों के श्रेष्ठ पुरुष गौतम।
उसे सर्वोच्च स्थान पर पहुंचा देगा
सब कुछ समझने का.2516 (83) [3456]

वह शिक्षक का अनुयायी होगा और उसका नाम पिलिंडावच्चा होगा।
उन्हें सभी देवताओं द्वारा सम्मानित किया जाएगा।
टाइटन्स2519 और संगीत-अप्सराएँ.2520 (84) [3457]

उन सभी के प्रिय होने के कारण,
बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां, और इसी प्रकार आम लोग भी।
वह बिना किसी दोष के निवास करेगा।"2522 (85) [3458]

[नायक:]
कर्म ने एक लाख का फल दिया
[युगों बाद] ने मुझे यहाँ [इसका] फल दिखाया:
पूरी तरह से मुक्त, तीर की तरह तेज,
मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (86) [3459]

ओह! मेरे कर्मों का फल मुझे बहुत अच्छे से मिला।
अद्वितीय योग्यता क्षेत्र में।2523
उस स्थान पर वह कार्य करने के बाद2524
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।2525 (87) [3460]

एक ऐसा व्यक्ति जिसने उत्कृष्ट भेंट दी,2526 जिसमें किसी चीज की कमी नहीं थी,

2516 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ

2517 pūgadhamme

2518 thamhāni

2519 शाब्दिक रूप से, "देने के बाद"

2520 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बीजेटीएस का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) के रूप में समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) प्रेम से अविचलित, (2) धनी, (3) जिसके वचन सुने जाते हैं, जिससे कोई अपराध नहीं होता, (4) मन अनियंत्रित नहीं, अविचलित, और (5) अरहंतत्व (निर्मल, आदरणीय, आज्ञाकारी, कर्तव्य पूर्ण, बुद्ध का निष्कलंक अनुयायी)।

2521 acalo homi mettāya

2522 अनुनाभोगवा

2523 adeyyavacano homi

2524 न धनसेमि यथा अहं
2525 में बीजेटीएस के अनुसार abhantù� mānasaù� mama (भंत = डगमगाना, डगमगाना, अस्थिर, अनियंत्रित गाड़ी के लिए प्रयुक्त) का पाठ पीटीएस के āgataŋ mānasaŋ mamaŋ (वैकल्पिक mama) से लिया गया है, जिसका अर्थ है "मेरा मन आ गया है"। पीटीएस asantaŋ (शांति का अभाव, विचलित) को भी एक वैकल्पिक पाठ के रूप में देता है, जो āgataŋ से बेहतर होगा ।
2526 vimalo homi sāsane

शुरू से ही प्राथमिकता दी गई:2527
यह उस भेंट का फल है। (88) [3461]

बुद्ध 2528 के लिए छाते देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2529
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए, 2530
मेरे कर्म के अनुसार: (89) [3462]

मुझे 2531 ठंड [या] गर्मी के बारे में जानकारी नहीं है।
मैं गंदगी और धूल से मैला नहीं हूँ।
मैं सुरक्षित हूँ, उत्पीड़न से मुक्त हूँ,
[और] मुझे हर समय सम्मानित किया जाता है। (90) [3463]

मैं कोमल त्वचा वाला व्यक्ति हूँ,2537 मेरा मन हमेशा बहुत स्पष्ट रहता है,2538 और इस वर्तमान जन्म को छोड़कर,2539 जब मैं संसार में जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करता हूँ,2540
सभी अलंकरणों से सुसज्जित एक लाख छतरियाँ
मेरे सिर के ऊपर ले जाए जाते हैं,
परिणामस्वरूप2541 उस कर्म के। (91-92) [3464-3465]

इस जीवन में मुझे छाता धारण करने की कमी क्यों है? क्योंकि सभी कर्मों को करने से मैं
निर्वाण की छत्रछाया में.2545 (93) [3466]

2527 sagāravo
2528 sappaṭisso
2529 काताकिको , यानी, "अरिहंत होना"
2530 अनासावो , यानी, "अरिहंत होना"
2531 भिक्खु तन वन्दते , शाब्दिक अर्थ, "एक भिक्षु जिसकी पूजा की जाती है"
2532 paññapes' ahaŋ
2533 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बी.जे.टी.एस. का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अच्छा जन्म, (2) अपार धन, (3) सर्वोपरि सफलता, (4) कंजूसी या लोभ का अभाव, (5) जादुई पालकी।

2534 ucce kule
2535 mahābhogo bhavāmi
2536 पीटीएस सब्बासंपट्टिको होमी को बीजेटीएस के साथ पढ़ना

2537 शाब्दिक अर्थ, “मुझे नहीं मिला”, “मुझे नहीं पता”, “मुझे अनुभव नहीं होता”

2538 मैकचेराŋ = मैकचेरियाŋ2

2539 उपतित्तति , शाब्दिक अर्थ, "वहाँ खड़ा है," "दृढ़ता से खड़ा हो जाता है"

2540 थेरो , “बुजुर्ग”

2541 सब्बाभिन्ना-बालापट्टो

2542 para-kiccatta-kiccāni , “वे कर्तव्य जो दूसरों द्वारा किए जाने हैं”। मैं इस संयुक्त वाक्य को पढ़ते समय BJTS की व्याख्या का अनुसरण करता हूँ; इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि उसने अपने स्वयं के कर्तव्यों का पालन किया, जिसमें दूसरों की सेवा से संबंधित कर्तव्य भी शामिल हैं।

2543 पविसिं अभयं पुराण अर्थात निर्वाण।

2544 PTS seṭṭhan taŋ के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ seṭṭhattaṃ (शाब्दिक रूप से, "सर्वोत्तमता") का पाठ

2545 कैरेत्वा (बीजेटीएस पढ़ता है करित्वा) कैराना नाना

दिवंगत व्यक्ति के लिए कपड़े देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2546
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए, 2547
मेरे कर्म के अनुसार: (94) [3467]

जैसे ही मैं दुनिया में पुनर्जन्म लेता हूँ,2548
मेरा शरीर बेदाग है, सुनहरे रंग का, सुंदर।
भव्यता से संपन्न, और चिकना.2550 (95) [3468]

एक लाख कपड़े की पट्टियाँ, सफेद, पीली और लाल रंग की।
मेरे सिर के ऊपर ले जाए जाते हैं:
यही वस्त्र देने का फल है। (96) [3469]

रेशमी कपड़ा2551 और ऊनी कंबल2552 भी,
खोमा और सूती कपड़ा:2553
मुझे ये हर जगह मिल रहे हैं।
परिणामस्वरूप2554 [उन्हें देने के].2555 (97) [3470]

दिवंगत आत्मा के लिए कटोरे भेंट करना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2556
मुझे दस परिणाम प्राप्त हुए,2557
मेरे कर्म के अनुसार: (98) [3471]

मैं हमेशा खाना खाता रहता हूँ
सोने की थालियाँ और क्रिस्टल की थालियाँ, 2558
चांदी से बनी प्लेटें भी
[और] प्लेटें जो माणिक से बनी हैं। (99) [3472]

मैं सुरक्षित हूँ, उत्पीड़न से मुक्त हूँ, उत्पीड़न से मुक्त हूँ।

2546 रीडिंग dāruṇena damenti te with BJTS for PTS dārune na damenti te , “They do not tame the cruel ones.”

2547 reading na h'evaṃ with BJTS for PTS na heva

2548 adaṇḍena

2549 अ'सत्तेना

2550 उत्तम महिला

2551 रीडिंग vaṇṇe kittento with BJTS for PTS vaṇṇaŋ kittento , “प्रशंसा करना सद्‌गुण”

2552 रीडिंग ekapañhaṃ with BJTS for PTS ekapañhe , “एकल प्रश्न”

2553 सारथी । सारथी , कोचमैन या सारथी, घोड़ों के प्रशिक्षक को भी दर्शाता है, जो घोड़ों को नियंत्रण में रखता है।

2554 s'u'vimiuttā

2555 अनासावा

2556 निब्बुता , शाब्दिक अर्थ, "बुझा हुआ," "ठंडा," अर्थात् निर्वाण में।

2557 उपाधिक्खये , अर्थात्, "पुनर्जन्म के आधार के विनाश में।" उपाधि (पुनर्जन्म से आसक्ति, पुनर्जन्म का कारण, निर्वाण में बाधा) को उपाधियों (बहुवचन) की विभिन्न सूचियों में वर्गीकृत किया गया है , जैसे आसक्ति, गलत विचार, दोष, कर्म, बुरा आचरण आदि।

2558 बीजेटीएस, मानक छंद के इस भिन्न रूप को प्रस्तुत करने में पीटीएस से सहमत है।

2559 anīti

2560 अनुपद्दवा , साथ ही “अक्षुब्ध,” “सुरक्षित”

और मुझे हर समय सम्मानित किया जाता है। मुझे भोजन और पेय पदार्थ प्राप्त होते हैं।
कपड़े और सोफे [आराम करने के लिए]। (100) [3473]

मेरी संपत्ति कभी खत्म नहीं होती; मैं स्थिर हृदय वाला व्यक्ति हूँ। मैं शिक्षण का हमेशा शौकीन रहा हूँ।
कुछ खामियां हैं2563 और मैं अछूता हूँ.2564 (101) [3474]

देवताओं के संसार में हो या मनुष्यों के संसार में, ये गुण मेरे पीछे-पीछे चलते हैं। हर जगह छाया मेरा पीछा नहीं छोड़ती।
जैसे कि [मैं] एक पेड़ के नीचे था।2566 (102) [3475]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध प्रतिमा देने के बाद,
और इसी प्रकार भिक्षुओं की सभा में, कई अच्छी तरह से निर्मित चाकू, 2567 विभिन्न 2568 बंधन शैलियों से बंधे हुए, मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए, 2569
मेरे कर्मों के अनुसार: (103) [3476]2570

मैं एक देवता हूँ, और मैं कांपता नहीं,2571 आत्मविश्वास में परिपूर्ण,2572 [मेरे पास]2573 साहस2574 [और] पौरुष है,2575

2561 अपासिटा

2562 रीडिंग होमी विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस भोमी , जो संभवत: *“हो॰*” को “ भो॰ ” के रूप में गलत पढ़ना है — सिंहली लिपि में उनकी समानता को देखते हुए एक आसान गलती।

2563 appakilesa

2564 अनासावा

2565 बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) पीटीएस अनुबद्धा के स्थान पर अनुबन्धा पढ़ते हैं , जिसका अर्थ समान है।

2566 लिट., "पेड़ की छाया जैसी छाया हर जगह मेरा साथ नहीं छोड़ रही है"

2567 vā'sī
2568 citta° . मैं BJTS का अनुसरण करते हुए इसे vicitta , यानी "विविध" पढ़ता हूँ।
2569 अट्ठानिसंसे । मैंने यहाँ आठ को इस प्रकार पढ़ा: (1) देवता होना, (2) अविचल होना, (3) आत्मविश्वासी होना, (4) साहसी होना, (5) पौरुषी होना, (6) मानसिक रूप से सतर्क या ऊर्जावान होना, (7) अशुद्धता दूर करने वाला ज्ञान प्राप्त करना और (8) उत्तम और असीम पुण्य प्राप्त करना।
2570 PTS और BJTS इस बात से सहमत हैं कि इसे चार पैरों वाली कविता के बजाय छह पैरों वाली कविता माना जाए। मेरा मानना है कि कवियों
वे यह स्पष्ट करना चाहते थे कि ये चाकू ऊपर बताए अनुसार प्रकार और शैली में भिन्न थे, और इसलिए वे इन कथनों के लिए चार-फुट के टेम्पलेट से असंतुष्ट थे, जो एक सामान्य "चाकू" से अधिक कुछ भी अनुमति नहीं देता था।
2571 में 'visārī ' को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS visālīī ("व्यापक व्यक्ति," visāla से ?) के लिए पढ़ा गया है और सिंहली पाठ को लिया गया है।
अनुवाद में मैंने मुख्य शब्द के रूप में gloss (sasala no vūyem) का प्रयोग किया है।
2572 v'esārajjesu , शाब्दिक अर्थ, "बुद्ध या अरहंत के आत्म-विश्वास में", जिसके चार प्रकार बताए गए हैं। आरडी, एसवी: "चारों का पूर्ण वर्णन एम i.71 sq. में दिया गया है, अर्थात् सर्वोच्च ज्ञान, खीणासव अवस्था, बाधाओं का ज्ञान, मोक्ष के मार्ग का ज्ञान और उपदेश।"
2573 होमी = शाब्दिक अर्थ, "हूँ"
2574 धिति
2575 viriyavā

[और] मेरा दिमाग हमेशा सतर्क रहता है।2576 (104) [3477]

परिणामस्वरूप [उन्हें देने के],2577
मुझे सर्वत्र ऐसा ज्ञान प्राप्त हो रहा है जो अशुद्धता को दूर करता है।
[और] असीम योग्यता। (105) [3478]

मैंने प्रसन्नता से 2578 रुपये दिए
बुद्ध और भिक्षुओं के लिए,2579 कई कैंची2580 जो खुरदरी नहीं थीं2581 और न ही असमान थीं,2582 और अच्छी तरह से धुली हुई थीं।2583
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2584
मेरे कर्मों के अनुसार: (106) [3479, 3480ए-बी]2585

मुझे उन्हें देने के कारण प्राप्त होता है:
एक शुद्ध हृदय2586 [और] पौरुष,
धैर्य, प्रेम-कृपा की तलवार,2587 [और] सर्वोच्च2588 ज्ञान-हथियार2589 लालसा-बाण को तोड़ने के लिए:
ज्ञान हीरे जितना मजबूत है।25902591 (107) [3480सी-डी, 3481]

बुद्ध के लिए सुई देना 2592
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2593
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2594
मेरे कर्म के अनुसार: (108) [3482]

2576 पग्गहिता-मन , लिट., "जोरदार ढंग से लगाया गया दिमाग"
2577 में tāsaṃ को PTS और BJTS tassa ("इसका") के स्थान पर PTS वैकल्पिक शब्द से पढ़ा गया है, और "उन" को "उन चाकुओं" के रूप में लिया गया है।
2578 शाब्दिक रूप से, "देने के बाद"
2579 संघ
2580 सत्थके , एक छोटी चाकू या कैंची, यहाँ = पिप्पला
2581 ए-फारुसा
2582 ए-कक्कासे
2583 रीडिंग सुधोते विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस अधोते ('अशुद्ध,' 'बिना धुला')
2584 pañcānisaŋse . मैंने यहाँ पाँच को इस प्रकार पढ़ा: शुद्ध हृदयता, पौरुष, धैर्य, प्रेम और ज्ञान।
2585 यहाँ पीटीएस दो छह-चरण वाले श्लोक देता है, जबकि बीजेटीएस पाठ को तीन चार-चरण वाले श्लोकों में विभाजित करता है। मैं फिर से एबीसीडी पद्धति को अपनाता हूँ, इस बार बीजेटीएस संख्याओं पर लागू करते हुए, यह इंगित करने के लिए कि प्रासंगिक सामग्री दोनों ग्रंथों में कहाँ पाई जाती है।
2586 k'alyāṇacittaŋ , शुद्ध या सुंदर या दयालु हृदय वाला
2587 मेट्टा-सत्थक
2588 अनुत्तरा
2589 paññā-sattham
2590 लिट., "के समान"
2591 या वज्रपात: v'aijrena
2592 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2593 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षु": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है gaṇavaruttame , "सर्वोच्च शानदार समूह"
2594 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) पूजित होना, (2) संदेह से मुक्त होना, (3) बहुत सुंदर होना, (4) बहुत धनी होना और (5) तीक्ष्ण बुद्धि होना।

जन्म-जन्मांतर तक स्थानांतरण करते हुए,
मेरी हमेशा पूजा की जाती है, 2595 संदेह से मुक्त, 2596
बहुत सुंदर, धनवान
[और मेरी] बुद्धि बहुत तेज है। (109) [3483]

मैं गहन तथ्यों और सूक्ष्म स्थितियों के ज्ञान से देखता हूँ। मेरा ज्ञान सभी अंधकार को दूर करता है।
ठीक एक सर्वोच्च वज्रपात की तरह।2599 (110) [3484]

बुद्ध के लिए क्लिपर्स2600 देना2601
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2602
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2603
मेरे कर्म के अनुसार: (111) [3485]

मुझे हर जगह प्राप्त होता है
दासी लड़कियाँ और दास, गायें और घोड़े, नौकर और असंख्य पहरेदार,2604
नाई, भोजन प्रदाता2605 [और] रसोइये। (112) [3486]

वेल-गॉन-वन के लिए पंखे 2606 और ताड़ के पत्तों से बने पंखे 2607
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए, 2608
मेरे कर्म के अनुसार: (113) [3487] मुझे ठंड [या] गर्मी का पता नहीं है,

---

2595 नमासियो
2596 k'aṅkhachedo , [मेरा] संदेह दूर हो गया है या कट गया है
2597 शाब्दिक रूप से, "मैंने देखा," passayiŋ । PTS alt. passāmi (वर्तमान काल) इस पूरे अनुच्छेद में वर्तमान काल के प्रयोग के अनुरूपता बनाए रखने के लिए उपयुक्त है।
2598 गंभीर , शाब्दिक अर्थ, "गहरा"
2599 या हीरा, वजिरग्गसमंग । यहाँ "अंधकार को दूर करने" पर ज़ोर देने के कारण "बिजली" शब्द अधिक उपयुक्त है, हालाँकि एक चमकदार हीरा भी यही काम कर सकता है।
2600 लीटर, "नाखून काटने वाला"
2601 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2602 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षु": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है gaṇavaruttame , "सर्वोच्च शानदार समूह"
2603 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँच को (1) दासों, (2) घरेलू पशुओं, (3) नौकरों/परिचारकों, (4) चौकीदारों/रक्षकों और (5) निजी परिचारकों (जो बाल काटते हैं, खाना लाते और पकाते हैं) की प्राप्ति के रूप में गिनता हूँ।
2604 रीडिंग ārakkhake with BJTS for PTS ārakkhe , "सुरक्षा"
2605 पाठ भट्टके को BJTS के साथ PTS भटके के लिए पढ़ा जा रहा है , "सेवक," जो इस श्लोक के दूसरे भाग में पहले से ही निर्धारित है।
2606 विधुपने
2607 लिट., "अच्छा (सोभने) पलमायरा-पत्ती-पंखे (तलवंते)"
2608 अट्ठानिसंगसे । मैं यहाँ आठ की गणना इस प्रकार करता हूँ: (1) अत्यधिक तापमान के प्रति अचेतनता, (2) बुखार से पीड़ित न होना, (3) कष्ट का अनुभव न करना, (4) हृदय की पीड़ा का अनुभव न करना, (5) कामवासना की आग बुझाना, (6) घृणा की आग बुझाना, (7) अभिमान की आग बुझाना और (8) गलत विचारों की आग बुझाना।
2609 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

[और] तेज बुखार2610 ज्ञात नहीं है। मुझे कोई तकलीफ नहीं होती2611
न ही ऐसी यातनाएँ जो मेरे हृदय को झुलसा दें।2612 (114) [3488]

मेरी सारी आग बुझ गई है 2613
इसके परिणामस्वरूप:
कामवासना की आग2614 और घृणा की आग,2615
अभिमान और गलत विचारों की आग.2616 (115) [3489]

भिक्षुओं के लिए मोर के पंख और बैल की पूंछ देना, सर्वोच्च सभा, 2617
मैं उन लोगों में से एक हूँ जिनके दोष शांत हो गए हैं;
मैं दोषरहित निवास कर रहा हूँ। (116) [3490]

बुद्ध के लिए छलनी देना26182619

[और वे भिक्षु जो] शिक्षा देते हैं,2620
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2621
मेरे कर्मों के अनुसार। (117) [3491]

अन्य सभी से आगे बढ़कर, मुझे एक दिव्य जीवनकाल प्राप्त होता है।
सहने के लिए हमेशा कुछ न कुछ कम ही होता है।
चोरों या [अन्य] दुश्मनों से.2624 (118) [3492]

कोई परेशानी भी नहीं हुई है
न तो हथियारों से और न ही जहर से,2625
असमय मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है2626
मेरे2627 [उन्हें देने] का परिणाम। (119) [3493]

2610 pariḷāho
2611 दरथांग , जिसका अर्थ "बुखार" भी हो सकता है।
2612 cittasantāpanaŋ , शाब्दिक अर्थ, "हृदय की जलन," आरडी के अनुसार लाक्षणिक अर्थ है पीड़ा, यातना
2613 nibbutā
2614 r'āgaggī
2615 dosaggī
2616 शाब्दिक रूप से, "अभिमान की आग (मानाग्गी) और गलत विचारों की आग (दिट्ठी-अग्गी)"
2617 saṅghe gaṇuttame , शाब्दिक अर्थ, “भिक्षुओं की सभा, सर्वोच्च समूह को”। ध्यान दें कि यहाँ PTS में gaṇa लिखा है। इन आवर्ती यौगिकों में गुण ("सद्गुण") के लिए ("समूह") का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि बीजेटीएस काफी हद तक लगातार करता है।
2618 parissavane
2619 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2620 में धम्मकरुत्तमे (शाब्दिक अर्थ, "शिक्षा के सर्वोच्च कर्ता") को पीटीएस गनुत-तमे ("सर्वोच्च समूह") के स्थान पर बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ पढ़ा जा रहा है।
2621 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँच की गणना इस प्रकार करता हूँ (1) दिव्य जीवनकाल, (2) चोरों और शत्रुओं से थोड़ा सहना, (3) हथियारों से कोई परेशानी नहीं या (4) जहर से, और (5) असमय मृत्यु नहीं।
2622 शाब्दिक रूप से, “मैं वह हूँ जो...”
2623 अप्पासायहा
2624 c'ora-paccatthikehi vā
2625 लिट., “जहर द्वारा”
2626 अंतरामरण
2627 BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ मामा (सामान्य) पढ़ना PTS मामाŋ (सामान्य या कर्म कारक) के लिए

तेल के कंटेनर 2628 देने के लिए
बुद्ध2629 [और भिक्षुओं के लिए भी],2630
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2631
मेरे 2632 कर्म के अनुसार: (120) [3494]

मेरा रूप-रंग बहुत आकर्षक है।
अच्छी वाणी2633 और उच्च इरादे;2634
मेरा दिमाग भ्रमित नहीं है।
मैं सभी सुरक्षा उपायों से सुरक्षित हूँ। (121) [3495]

सुई के डिब्बे 2635 देने के लिए
बुद्ध2636 [और भिक्षुओं के लिए भी],2637
मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2638
मेरे 2639 कर्म के अनुसार: (122) [3496]

मेरे मन और शरीर में आनंद 2640
[और] इंद्रियों से उत्पन्न आनंद:2641
मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (123) [3497]

बुद्ध 2643 के लिए कंधे की पट्टियाँ 2642 देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2644
मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2645
मेरे कर्म के अनुसार: (124) [3498]

2628 t'eladhare
2629 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2630 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षुओं के लिए": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है
gaṇavaruttame , "सर्वोच्च शानदार समूह"
2631 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) आकर्षक रूप, (2) अच्छी वाणी, (3) उच्च इरादे (या मानसिक गतिविधि), (4) मानसिक भ्रम या अशांति का अभाव और (5) सभी प्रकार की सुरक्षा द्वारा संरक्षित।
2632 रीडिंग मामा (सामान्य) पीटीएस मामाŋ (सामान्य या कर्म कारक) के लिए बीजेटीएस के साथ
2633 रीडिंग सुगाडो विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस सुगाटो , "वेल-गॉन"
2634 s'usamuggata-mānasa
2635 s'ūcighare
2636 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2637 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षुओं के लिए": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है
gaṇavaruttame , "सर्वोच्च शानदार समूह"
2638 tīṇānisaŋse . मैं यहाँ तीनों को (1) मानसिक सुख, (2) शारीरिक सुख और (3) इंद्रियों के माध्यम से उत्पन्न सुख के रूप में गिनता हूँ।
2639 BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ मामा (सामान्य) पढ़ना PTS मामाŋ (सामान्य या कर्म कारक) के लिए
2640 लिट., "मानसिक सुख और शारीरिक सुख"
2641 iriyāpathaja
2642 रीडिंग aṃsabandhe with JPTS and PTS alt for PTS aŋsabaddhe (baddha = lucky, arrow or bull)
2643 लिट., "विजेता के लिए" (जाइन)

2644 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षुओं के लिए": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है
gaṇavaruttame , “सर्वोच्च शानदार समूह”
2645 tīnānisaŋse . मैं यहाँ तीन को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) शिक्षा की गहरी समझ (या मन-पढ़ना), (2) दूसरे जीवन को याद करना, और (3) अच्छी त्वचा होना।

मैं महान शिक्षा को गहराई से जानता हूँ;2646
मुझे दूसरा जीवन याद है;2647
हर जगह मेरी त्वचा अच्छी है।
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (125) [3499]

विक्टर 2650 के लिए गर्डल 2649 देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2651
मुझे छह परिणाम प्राप्त हुए, 2652
मेरे कर्म के अनुसार: (126) [3500]

ध्यान की अवस्थाओं में दृढ़2653,2654
मैं ध्यान की अवस्थाओं में लीन रहता हूँ;
मैं गुटों के बिना एक समूह में हूँ,2655
मेरे शब्दों को हमेशा अच्छी तरह से लिया जाता है।2656 (127) [3501]

मुझमें जागरूकता उत्पन्न होती है;
मुझे कभी डर नहीं लगता।2657
देवताओं की दुनिया में हो या मनुष्यों की दुनिया में,
ये गुण 2658 [मुझे] के बाद आते हैं। (128) [3502]

विक्टर [और] के लिए मल त्यागना 2659
वे भिक्षु जिनमें असाधारण सद्गुण हैं,2660
मैं पाँच [विभिन्न] प्रकार का उत्तराधिकारी हूँ;2661

2646 sadhamme gādhaŋ vindāmi , शाब्दिक अर्थ, “मैं महान शिक्षा की गहराई को जानता हूँ।” BJTS (और PTS वैकल्पिक) इसे ce- toñanañ ca vindāmi पढ़ते हैं , “मैं मन के ज्ञान को जानता हूँ,” जिसे BJTS दूसरों के मन में निहित ज्ञान को जानने, अर्थात् मन-पढ़ने के रूप में व्याख्यायित करता है।
2647 dutiyaŋ bhavaŋ , BJTS व्याख्या करता है deveni bhavaya . मेरा अनुमान है कि इसका अर्थ है “मुझे दो पिछली बातें याद हैं”
क्या यह तीन जन्मों की अवस्थाओं में से दूसरी अवस्था (जिसे भाव भी कहते हैं) यानी निर्मित (रूप) को संदर्भित करता है? अस्तित्व की अवस्था?
2648 s'ucchavi homi
2649 k'ā'y'abandhane
2650 रीडिंग जाइन विद बी.जे.टी.एस. (और पी.टी.एस. वैकल्पिक) पी.टी.एस. सुगेट ("वेल-गॉन-वन") के लिए, जो एक मेट्रिकली-असंतुलित ध्वनि छंद उत्पन्न करता है।

2651 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षुओं के लिए": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है

gaṇavaruttame , “सर्वोच्च शानदार समूह”

2652 चानिसंसे । मैं यहाँ छह की गणना करता हूँ: (1) ध्यान की अवस्था में न कांपना, (2) ध्यान की अवस्था में रहना, (3) गुटों के बिना समूहों में रहना, (4) हमेशा स्वीकार्य या सुखद या अच्छी तरह से लिए गए शब्दों को बोलना, (5) सती (सती) होना, और (6) भय न होना।

2653 ना कंपामी , शाब्दिक अर्थ, "मैं कांपता (थरथराता, डगमगाता) नहीं हूँ"

2654 समाधीसु , शाब्दिक अर्थ, " समाधियों के बीच" । बहुवचन विभिन्न प्रकार की समाधि या विभिन्न प्रकार की ध्यान अवस्थाओं का सुझाव देता है।

2655 abhejjapariso homi

2656 ādeyyavacano sadā

2657 tā'so na mayhaŋ vijjati , शाब्दिक अर्थ, “मुझमें भय नहीं पाया जाता”

2658 बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) पीटीएस अनुबद्धा के स्थान पर अनुबन्धा पढ़ते हैं , जिसका अर्थ समान है।

2659 आधारके , साथ ही स्टैंड, पल्पिट, डेस्क। बीजेटीएस इसे भिक्षापात्र रखने के लिए एक स्टैंड के रूप में समझता है।

2660 शाब्दिक रूप से, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण वाले भिक्षुओं के लिए": संघे गुणवरुत्तमे । अन्यत्र की तरह, बीजेटीएस पढ़ता है

gaṇavaruttame , “सर्वोच्च शानदार समूह”

2661 pancavaṇṇehi dāyādo एक रहस्यमय पद है, क्योंकि vaṇṇa (रंग, जाति, रूप, चमक, सौंदर्य, अभिव्यक्ति, प्रकार, स्वर, बनावट, समानता, गुण, प्रशंसा, कारण) शब्द का अर्थ व्यापक है । BJTS

मैं किसी भी बात से विचलित नहीं होता। (129) [3503]

जो भी शिक्षाएँ मैंने सुनी हैं, जो ज्ञान और जागरूकता उत्पन्न करती हैं, वे मेरे मन में बनी रहती हैं2662 वे कभी लुप्त नहीं होतीं।
बहुत अच्छी तरह से पहचाना जा रहा है। (130) [3504]

बर्तन और भोजन देने के बाद
बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए,2663
मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2664
मेरे कर्म के अनुसार: (131) [3505]

मुझे खाने के बर्तन मिल रहे हैं
सोने और रत्नों से बने, उसी प्रकार क्रिस्टल से बने बर्तन।
और यहाँ तक कि माणिक्य से बने हुए भी। (132) [3506]

मेरे पास हमेशा आनंद लेने के लिए चीजें होती हैं: 2665 पत्नियां और दासियां और दासी लड़कियां भी, हाथी-घोड़ा-रथ-सैनिक, 2666 और महिलाएं समर्पित हैं।2667 (133) [3507]

मुझे हमेशा आनंद लेने के लिए कुछ न कुछ मिलता रहता है;
मैं सीखने के सभी रूपों का अवलोकन करता हूँ:2668
प्राचीन ज्ञान2670 और वैदिक मंत्र2671
और अनेक विविध विषय।2672 (134) [3508]

सुप्रसिद्ध आत्मा और भिक्षुओं, सर्वोच्च समूह के लिए थालियाँ अर्पित करते हुए, मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं।2673
मेरे कर्मों के अनुसार। (135) [3509]

सिंहली व्याख्या के अनुसार इसका अर्थ "'पाँच अलग-अलग प्रकार का उत्तराधिकारी'" या "पात्र के पाँच रूप (अनुस = अनुहसा) प्राप्त करने वाला व्यक्ति" हो सकता है। यहाँ अनुवाद के लिए "प्रकार" शब्द का चयन करने से अस्पष्टता बनी रहती है: पाँच प्रकारों का उल्लेख न करने से अर्थ की व्यापक व्याख्या की गुंजाइश रहती है, हालाँकि यह स्वीकार करना होगा कि अपने आप में यह अनिश्चितता के अलावा कोई विशेष अर्थ नहीं देता।

2662 में पीटीएस वता के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ धता का पाठ , जिसका अर्थ है "प्रतिज्ञाएँ," अर्थात्, "मेरी प्रतिज्ञाएँ नष्ट नहीं होतीं"
2663 में पीटीएस भी ऊपर दिए गए guṇ° के बजाय gaṇuttame पढ़ता है।
2664 tīṇānisaŋse . मैं यहाँ तीनों को (1) के रूप में गिनता हूँ
यहां 2665 और अगले श्लोक में मैंने परिभोगानि सब्बादा पढ़ा है , जहां बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) में परिभोगादिसम्पदा का अर्थ है , "आनंद लेने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति आदि।" परिभोगा का अर्थ "उपयोगिता" और "आनंदनीयता" दोनों हो सकता है।
2666, यानी चार गुना सेना
2667 itthī patibbatā c'eva , "महिलाएं तो समर्पित पत्नियां भी हैं!"
2668 nisāmemi
2669 सब्बां सिप्पां (संस्कृत: शिल्प), सभी उदार कलाएँ, सभी प्रकार का ज्ञान या सीखी हुई कलाएँ
2670 vijjā
2671 मंतापड़े
2672 āgame
2673 tīṇānisaŋse . मैं यहाँ तीन को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) कीमती थालियों की प्राप्ति, (2) जैविक थालियों की प्राप्ति और (3) निर्धारित गुणों की प्राप्ति।

मुझे [महंगी] प्लेटें मिल रही हैं
सोने और रत्नों से बने, उसी प्रकार क्रिस्टल से बने बर्तन।
और यहाँ तक कि माणिक्य से बने हुए भी। (136) [3510]

मुझे प्लेटें भी मिल रही हैं।
बोधि2674 [पत्तियों] से बना,2675 लौकी से बना,2676
और इसी प्रकार कमल के पत्तों से बना हुआ,2677
[और] शहद पीने के लिए गोले।2678 (137) [3511]

इसके परिणामस्वरूप,
ये गुण भी प्राप्त होते हैं:
सद्गुण के लिए प्रतिज्ञाओं में अच्छा आचरण2679,2680
और अच्छे शिष्टाचार के संबंध में।2681 (138) [3512]

बुद्ध 2682 के लिए दवाइयाँ देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2683

मुझे दस परिणाम प्राप्त हुए,2684
मेरे कर्मों के अनुसार। (139) [3513]

मैं 2685 साल का, दीर्घायु, बलवान और वीर, सुंदर, प्रसिद्ध और खुशहाल हूँ।
उत्पीड़न से मुक्त,2686 [भी] सुरक्षित,2687
और मुझे हर समय सम्मानित महसूस होता है। मुझे अपनों से अलग नहीं रखा जाता।
इसके परिणामस्वरूप। (140) [3514]2689

2674 अ'सत्थका , " अश्वत्थ [वृक्ष] का," फ़िकस रिलिजियोसा, गौतम बुद्ध का बोधि वृक्ष
2675 को एक पवित्र वृक्ष मानते हुए, यह संभावना नहीं है कि यहाँ फिकस रिलिजियोसा की लकड़ी का उल्लेख किया गया हो। मुझे नहीं पता कि इसकी पत्तियों से बनी प्लेट कैसी होगी, लेकिन यह एक बेहतर व्याख्या प्रतीत होती है।
2676 फलामाये , शाब्दिक अर्थ, "फलों से बना।" मैं बीजेटीएस का अनुसरण करते हुए इसे लौकी , लाबु के "फल" के संदर्भ में लेता हूँ।
इसके विपरीत , आर.डी., phalamaye sv, जो कहते हैं कि यह phalikāmaye का संक्षिप्त रूप है , कम से कम वर्तमान मामले में यह संभावना नहीं है क्योंकि पिछले श्लोक में क्रिस्टल से बनी प्लेटों का उल्लेख किया गया है।
2677 पोखरापट्टे
2678 मधुपानकसंखे । सांखे शब्द का प्रयोग शंख के साथ-साथ सीप के लिए भी किया जा सकता है।
2679 paṭipatti को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS paṭilabhe , "प्राप्त होते हैं" के लिए पढ़ा जाता है
2680 v'atte guṇe , BJTS व्याख्याएँ: vatāvat guṇehi
2681 ācārakiriyāsu ca , या "सही अभ्यास के रूपों में से"
2682 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2683 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।
2684 dasānisaṇse . मैं यहाँ दस को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) दीर्घायु, (2) शारीरिक शक्ति, (3) वीरता, (4) सौंदर्य, (5) प्रसिद्धि, (6) सुख, (7) उत्पीड़न से मुक्ति, (8) सुरक्षा, (9) सम्मान, और (10) प्रियजनों के साथ रहना।
2685 होमी को BJTS के साथ PTS भोमी के लिए पढ़ना, जो संभवतः *"हो°*" को " भो° " के रूप में गलत पढ़ना है — एक आसान
सिंहली लिपि में समानता के कारण यह एक गलती है।
2686 अनुपद्दवा , साथ ही "अक्षुब्ध," "सुरक्षित"
2687 anīti
2688 अपासिटा
2689 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।

विक्टर के लिए shoes2690 देना [और]
सर्वोच्च उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षुओं, मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2691
मेरे कर्मों के अनुसार। (141) [3515]

[प्रथम], पालकी जिन्हें जोता गया है2692
हाथियों और घोड़ों को मिलाकर कुल छह मिलियन।
हर समय मेरी प्रतीक्षा करते रहते हैं। (142) [3516]

जैसे ही मैं संसार में पुनर्जन्म लेता हूँ, 2693 रत्नों और ऊन से बनी सैंडल 2694, 2695 सोने और चांदी से भी बनी हुई।
अस्तित्व में आना; [वे] मेरे पैर उठाते हैं।2696 (143) [3517]

वे सही दिशा में दौड़ रहे हैं26972698
और दोषी आचरण को शुद्ध करें।2699
मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (144) [3518]

बुद्ध के लिए 2700 चप्पलें देना 2701 [और] उत्कृष्ट गुणों वाले भिक्षुओं के लिए, 2702 जादुई चप्पलें पहनकर, 2703
मैं इच्छा के अनुसार निवास करता हूँ।2704 (145) [3519]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए चेहरा पोंछने के लिए नैपकिन देना2705, मुझे पाँच परिणाम अनुभव होते हैं,2706
मेरे कर्मों के अनुसार। (146) [3520]

2690 उपाहने

2691 tīṇānisaŋse . मैं यहाँ तीनों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) पालकी द्वारा सेवा की गई (2) कीमती जूतों का उठना (3) जूते दोषी आचरण को शुद्ध करते हैं

2692 सैंडामानिका को सैंडाहमानिका के रूप में पढ़ना , न कि इसे सैंडति से लेना , बहना।

2693 भावे , शाब्दिक अर्थ, "अस्तित्व में"

2694 °pādukā

2695 bambalikā को BJTS के साथ PTS maṇḍalikā , "जिला अधिकारियों" के लिए पढ़ना

2696 पदुद्धारे को पद (पैर) + उद्धारा (उद्धरति के मूल अर्थ , "ऊपर उठाता है") के रूप में लेते हुए, हालांकि आर.डी. कहा गया है कि इस यौगिक शब्द का प्रयोग SnA में "श्लोक का सारांश" के अर्थ में किया जाता है, शाब्दिक रूप से, "पैरों को हटाना"।

2697 पतिधावंती (बीजेटीएस पति° पढ़ें)

2698 में PTS niyamaŋ ("संयम," "सीमा," "ब्रह्मांडीय नियम") के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ niyāmaṃ का पाठ किया गया है।

2699 रीडिंग āgu-ācāra-sodhanaṃ with BJTS for PTS ācāraguṇasodhanaŋ ("पुनर्गुणी आचरण")

2700 पादुका

2701 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"

2702 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्‌गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।

2703 iddhipādukam āruyha , शाब्दिक अर्थ, " इद्धि [महाशक्तियों] से युक्त सैंडल पर कदम रखते हुए "

2704 y'adicchakaŋ , शाब्दिक अर्थ, "जो मेरी इच्छा है" या शायद "जैसा मैं चाहता हूँ"

2705 मुख-पुंचना-कोले , शाब्दिक अर्थ, "चेहरा पोंछने के लिए नैपकिन (या चिथड़े, कपड़े के टुकड़े, रूमाल)"

2706 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) सुनहरे रंग का, बेदाग शरीर; (2) सुंदर, (3) मजबूत, (4) चिकना, (5) गंदगी और धूल से मैला नहीं।

सुनहरे रंग की, बेदाग, सुंदर और शक्ति से परिपूर्ण, मेरा शरीर बहुत चिकना है।
मैं गंदगी और धूल से मैला नहीं हूँ।
मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (147) [3521]2709

बुद्ध को चलने की छड़ी भेंट करना 2710
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2711
मुझे छह परिणाम प्राप्त हुए,2712
मेरे कर्मों के अनुसार। (148) [3522]

मेरे अनेक पुत्र हैं, मैं कभी भयभीत नहीं होती;2713 सहने के लिए हमेशा थोड़ा ही होता है,2715
मैं हर तरह की सुरक्षा से सुरक्षित हूँ। मुझे किसी भी तरह की असफलता का अनुभव नहीं है;2716
मेरा दिमाग नियंत्रण से बाहर नहीं है।2717 (149) [3523]2718

जड़ी-बूटियाँ2719 [और] मलहम2720 देने के बाद
बुद्ध और सर्वोच्च भिक्षुओं के लिए,2721
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए हैं2722
मेरे कर्मों के अनुसार। (150) [3524]

मैं उन लोगों में से हूं जिनकी आंखें [हमेशा] बड़ी रहती हैं।

2707 बीजेटीएस और पीटीएस वैकल्पिक पाठ पीटीएस लिप्पाटी ("गंदा होना" पीएसई शब्दकोश, सिंह. गैल्वेई के अनुसार ; आरडी लिप्पाटी को लिम्पाटी का निष्क्रिय रूप मानता है) के लिए लिम्पाटी ("धब्बा लगा हुआ") पढ़ता है , लेकिन चूंकि पूर्व का अर्थ "गंदा" भी हो सकता है, इसलिए अंतर महत्वपूर्ण नहीं है।

2708 r'ajojallaŋ

2709 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।

2710 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"

2711 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।

2712 chānisaŋse . मैं यहाँ छह को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अनेक संतानें, (2) भय का अभाव, (3) कम सहनशीलता, (4) अच्छी तरह से संरक्षित, (5) असफलता का अभाव, और (6) अच्छी तरह से नियंत्रित मन (या गंजेपन का अभाव, आदि)

2713 tā'so mayhaŋ na vijjati , शाब्दिक अर्थ, "मुझे डर नहीं लगता"

2714 शाब्दिक रूप से, "मैं वह हूँ जो..."

2715 अप्पासायहा

2716 में, BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ khalitampi na jānāmi का पाठ PTS calitaŋ maŋ na jānāmi ("मुझे कंपन का अनुभव नहीं होता") के लिए किया गया है। विफलता (गलत काम, लड़खड़ाना, ठोकर खाना, परेशान होना या बुरा बर्ताव होना) के अलावा, khalitaṃ का अर्थ "गंजापन" भी हो सकता है। इन गुणों का न होना पुण्य का सकारात्मक परिणाम होगा।

2717 रीडिंग abhantù� mānasaù� mama with BJTS (bhant = मुड़ना, डगमगाना, अस्थिर, एक गाड़ी के लिए प्रयुक्त) नियंत्रण से बाहर है) पीटीएस के लिए āgataŋ mānasaŋ mamaŋ (वैकल्पिक: मामा), "मेरा मन आ गया है"। पीटीएस asantaŋ भी देता है।
(शांति का अभाव, अशांत) एक वैकल्पिक पाठ के रूप में, जो आगतंग की तुलना में अधिक उपयुक्त होगा ।

2718 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।

2719 ओसाधम , विशेष रूप से औषधीय जड़ी-बूटियाँ या औषधियाँ बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली हर्बल सामग्रियाँ

2720 añjanaŋ

2721 संघे गणुत्तमे , शाब्दिक अर्थ, "भिक्षुओं की सभा जो सर्वोच्च समूह है"

2722 अट्ठानिसंगसे । मैं यहाँ आठ को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) बड़ी आँखें [चाहे वे हों] (2) सफेद आँखें, (3) पीली आँखें, [या] (4) लाल आँखें; (5) निर्मल आँखें, (6) साफ आँखें, (7) रोगमुक्त आँखें, (8) “दिव्य आँख”।

चाहे वे सफेद हों, पीले हों या लाल। मेरी आँखें निर्मल और निर्मल हैं।
और [वे] सभी रोगों से मुक्त हैं।2725 (151) [3525]

मुझे “दिव्य दृष्टि” प्राप्त हो रही है।
अद्वितीय ज्ञान की दृष्टि। मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं।
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (152) [3526]

वेल-गॉन-वन के लिए कीज़2726 देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2727
मुझे नॉलेज-की प्राप्त हो रही है
जो धम्म का द्वार खोलता है .2728 (153) [3527]

बुद्ध2729 के लिए प्रमुख मामले प्रस्तुत करना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2730
मुझे दो परिणाम प्राप्त होते हैं,2731
मेरे कर्मों के अनुसार:
जैसे ही मैं दुनिया में पुनर्जन्म लेता हूँ,2732
[वहाँ] थोड़ा क्रोध है,2733 कोई दुख नहीं है।2734 (154) [3528]2735
बुद्ध 2736 के लिए पट्टियाँ देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2737
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2738
मेरे कर्मों के अनुसार। (155) [3529] ध्यान की अवस्थाओं में स्थिर2739,2740

2723 यह बीजेटीएस सिंहली व्याख्या का अनुसरण करता है। मेरा मानना है कि "सफेद आँखें" (या "सफेद भाग वाली आँखें") मनुष्यों को, "पीली (या "सुनहरी") आँखें" देवताओं को और "लाल आँखें" (लोहितक्खा) साँपों या आत्माओं (यक्षों) को संदर्भित करती हैं। हम इन रंगों को उनकी बड़ी आँखों से स्पष्ट रूप से दिखाई देने के रूप में भी समझ सकते हैं।

2724 anāvila-pasanna-akkha

2725 sabba-roga-vivajjita

2726 कुन्सिके

2727 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, “सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का”। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa (“समूह”) पढ़ता है।

2728 धम्म-द्वार-विवरणन , लिट., "जो धम्म का द्वार खोलता है। "

2729 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"

2730 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, “सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का”। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa (“समूह”) पढ़ता है।

2731 d'v'ānisaŋse . मैं यहाँ इन दोनों को (1) कम क्रोध वाला और (2) बिना दुःख (या कष्ट) वाला मानता हूँ।

2732 भावे , शाब्दिक अर्थ, "अस्तित्व में"

2733 appakodho , शाब्दिक अर्थ, "मैं कम क्रोध वाला व्यक्ति हूँ"
2734 anāyāso , शाब्दिक अर्थ, "मैं एक हूँ, दु:ख रहित"
2735 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।
2736 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2737 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्‌गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।
2738 pañcānisaṇse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) समाधियों में दृढ़ता , (2) समाधियों में निवास , (3) एक एकजुट समूह में होना, (4) ऐसे शब्द बोलना जो अच्छी तरह से लिए जाते हैं, और (5) संपत्ति का बड़ा धन।
2739 ना कंपामी , शाब्दिक अर्थ, "मैं कांपता (थरथराता, डगमगाता) नहीं हूँ"
2740 समाधीसु , शाब्दिक अर्थ, " समाधियों के बीच" । बहुवचन विभिन्न प्रकार की समाधि या विभिन्न प्रकार की ध्यान अवस्थाओं का सुझाव देता है।

मैं ध्यान की अवस्थाओं में लीन रहता हूँ;
मैं गुटों के बिना एक समूह में हूँ,2741
मेरी बातों को हमेशा सराहा जाता है।2742
जैसे ही मैं दुनिया में पुनर्जन्म लेता हूँ,2743
वहाँ बहुत अधिक संपत्ति है।

विक्टर के लिए स्मोक-ट्यूब्स2747 देना
[और] उत्कृष्ट सद्‌गुण वाले भिक्षु,2748
मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2749
मेरे कर्मों के अनुसार। (157) [3531]

मेरी अंतरात्मा2750 कभी भी2751 कुटिल नहीं होती, [और मेरी] मांसपेशियां2752 सुस्पष्ट हैं;2753
मुझे "दिव्य दृष्टि" प्राप्त हो रही है।
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (158) [3532]

बुद्ध के लिए दीपक-प्लेट देना27542755
[और] उत्कृष्ट सद्‌गुण वाले भिक्षु,2756
मुझे तीन परिणाम प्राप्त होते हैं,2757
मेरे कर्मों के अनुसार। (159) [3533]

मैं अच्छे कुल का हूं, मेरा शरीर अच्छा है।
[और मैं] बुद्धिमान हूँ,2760 और बुद्धिमान के रूप में सम्मानित हूँ।2761

2741 abhejjapariso homi
2742 ādeyyavacano sadā
2743 भावे , शाब्दिक अर्थ, "अस्तित्व में"
2744 पीटीएस जतिक्का , बीजेटीएस जयति
2745 भोगसंपत्ति
2746 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।

2747 धूमनत्ते . आरडी: “अर्थात चिकित्सा दवाओं के धुएं को सूंघने के लिए एक शल्य चिकित्सा उपकरण Vin i.204; ii.120; J iv.363; Tha 14”
2748 गुणवरुत्तमे , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। बीजेटीएस यहाँ अन्यत्र की तरह गण ("समूह") पढ़ता है।
2749 tīṇānisaṇse . मैं यहाँ तीन को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) स्वच्छ अंतरात्मा, (2) अच्छी मांसपेशियां और (3) “दिव्य दृष्टि”
2750 सती , स्मृति (संस्कृत: स्मृति), सजगता, चेतना आदि।
2751 शाब्दिक अर्थ, “नहीं”
2752 PTS nahāruyo , BJTS nahāravo
2753 BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS susambaddhā (सुव्यवस्थित, सुव्यवस्थित) का पठन (अच्छी तरह से बंधे हुए), हालांकि बाद वाला एक सुगठित शरीर का भी आभास कराता है।
2754 dīpathāle . (BJTS [और PTS वैकल्पिक] dpaṭṭhāne , “दीपक रखने के स्थान” पढ़ते हैं)। (18a-b) [3391] पर वास्तविक दाना के वर्णन में हमें “दीपक-धारक,” dīpadhārake मिलता है । मैं इन सभी शब्दों को एक ही प्रकार की वस्तु के संदर्भ में लेता हूँ, जिसे मैं (संभवतः छोटे मिट्टी के) दीपों के लिए प्लेट जैसे धारक के रूप में कल्पना करता हूँ।
2755 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
2756 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, “सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का”। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa (“समूह”) पढ़ता है।
2757 tīṇānisaṇse . मैं यहाँ तीन को (1) अच्छा जन्म, (2) अच्छा शरीर, और (3) ज्ञान और बुद्धि के रूप में गिनता हूँ।
2758 जातिमा , शाब्दिक अर्थ, "जन्मजात व्यक्ति" या "उच्च जाति का व्यक्ति"
2759 aṅgasampanno , शाब्दिक अर्थ, “मेरे पास अंग हैं”
2760 paññavā
2761 में बुद्धि-सम्मतो को बीजेटीएस द्वारा पीटीएस बुद्ध-सम्मतो ("बुद्ध के रूप में [या बुद्ध द्वारा?] पूजनीय") के रूप में पढ़ा गया है। बाद वाले का अर्थ "बुद्ध द्वारा चयनित" भी हो सकता है।

मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं
इसके परिणामस्वरूप [देने के]। (160) [3534]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए पात्र2762 और टोकरियाँ2763 देते हुए,
मुझे दस परिणाम प्राप्त हुए,2764
मेरे कर्मों के अनुसार। (161) [3535]

मैं हमेशा सतर्क रहता हूँ, 2765 को बहुत प्रसिद्धि मिली है, 2766
[और] खुशी,2767 इसी प्रकार [मेरी] स्थिति;2768
मैं समर्पित हूँ,2769 और नाज़ुक हूँ,2770
[और] सभी कष्टों से दूर रहे।2771 (162) [3536]

मैं अपने व्यवसाय के लिए बर्तनों और टोकरियों के भी कई गुणों का प्राप्तकर्ता हूं।
मैं वह व्यक्ति हूँ जिसकी परेशानियाँ दूर हो गई हैं।2775 (163) [3537]

मुझे चारों रंग मिल रहे हैं
हाथियों, घोड़ों और रत्नों का।
वे चीजें कभी खत्म नहीं होतीं:
यही पात्र देने में फल है। (164) [3538]

मलहम रखने के लिए ट्यूब देना2776
बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए, मुझे पाँच परिणाम प्राप्त होते हैं,2777

2762 तुम्बाके , जल-पात्र
2763 या “बक्से”: करांडे
2764 dasānisaŋse . मैं यहाँ दस को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अच्छी तरह से संरक्षित, (2) सुख से युक्त, (3) महान प्रसिद्धि वाले, (4) अच्छी स्थिति में, (5) समर्पित, (6) नाजुक, (7) संकट से बचा हुआ, (8) अच्छे कार्य कौशल, बर्तन और टोकरियों के प्राप्तकर्ता, (9) परेशानियाँ दूर हो जाती हैं, (10) अक्षय हाथियों, घोड़ों और चार रंगों के रत्नों के प्राप्तकर्ता।
2765 गुट्टो
2766 महायासवा
2767 s'ukhasamaṅgī
2768 में पीटीएस tathāgattī के लिए BJTS (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ tathā gatī का पाठ किया गया है , जिसका अर्थ है "और इस प्रकार का [अर्थात, महान] शरीर"।
2769 भट्टिकातो , “सेवा की,” यहाँ तक कि “एक सेवक”
2770 s'ukhumālo , जिसे परिष्कृत, कोमल भी कहा जाता है
2771 sabba-īti-parivajjito
2772 विपुल
2773 गुण
2774 reading samāvacaraṇaṃ mama with BJTS for PTS samāvacaraṇā mama
2775 s'u'vivajjita-ubbego
2776 यहाँ मैंने añjana-nāḷiyo (“मरहम की डंठलें” या “मरहम की नलियाँ”) पढ़ा, BJTS ने PTS hatthī līlaṅgake (“खेल-कूद वाले शरीर वाले हाथी”?) के लिए इसका इस्तेमाल किया है। पाठ दूषित है, और BJTS कम से कम समझ में आता है, हालाँकि यह मूल दान के क्रम से बाहर है (अर्थ में अपात्त्व योग्य होने की बात तो छोड़ ही दें), इसलिए यह एक नकली श्लोक हो सकता है - शायद किसी बाद के संपादक का पसंदीदा विषय, या बस कुछ ऐसा जो प्रसारण प्रक्रिया में किसी बिंदु पर जीवित अनुभव का हिस्सा नहीं रह गया हो? PTS के वैकल्पिक पाठों में °lilaṅgate , hatthalīlaṅgane और hattholiṅgake (!) शामिल हैं, जिनमें से कोई भी सहायक नहीं है। PTS पाठ के अलावा, BJTS वैकल्पिक पाठों का भी उल्लेख करता है। malabharaṇiyo , जिसका अर्थ भी संदिग्ध है (“रंजित आभूषणों वाली महिलाएं,” या इसे māla° , “पुष्प आभूषण?” पढ़ा जाए?)
2777 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) एक [अच्छा] शरीर होना, (2) सभी शुभ गुणों से संपन्न होना

मेरे कर्मों के अनुसार। (165) [3539]

हर समय मेरे पास एक शरीर होता है
सभी शुभ चिह्नों से युक्त, 2778 दीर्घायु और ज्ञान से सुसज्जित, 2779 सभी दुखों से मुक्त। 2780 (166) [3540]

कैंची2781 देना जो पतली2782 थीं
[और] भिक्षुओं के लिए भी बहुत तीखा27832784
मुझे ज्ञान प्राप्त होता है, बेजोड़ 2785 और
शुद्ध, जो अशुद्धियों को दूर करता है। (167) [3541]

बुद्ध के लिए चिमटी देना27862787

[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2788
मुझे ज्ञान प्राप्त होता है, बेजोड़ 2789 और
शुद्ध, जो अशुद्धियों को दूर करता है। (168) [3542]

बुद्ध के लिए नाक साफ करने वाले 2790 रुपये देना 2791
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2792
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए, 2793
मेरे कर्मों के अनुसार। (169) [3543]

मुझे आस्था है2794 [और] नैतिकता है,2795

अंक, (3) लंबी आयु, (4) ज्ञान, (5) सभी दुखों से मुक्ति।

2778 सब्बा-लक्खाना-सम्पन्नो

2779 ā'yu-paññā-samāhito

2780 sabbāyāsa-vinimutto

2781 पिप्पले

2782 t'anu-dhāre = “ले जाने में पतला”? या जैसा कि आरडी सुझाव देते हैं, क्या इसे tanu के रूप में “शरीर” पढ़ा जाना चाहिए , यानी “शरीर पर ले जाया गया”?

2783 s'unisite

2784 यहाँ, जैसा कि पूरे पाठ में है, शाब्दिक रूप से, "भिक्षुओं की सभा के लिए," " संघ के लिए "

2785 अतुल , जिसका वजन नहीं किया जा सकता, जिसे मापा नहीं जा सकता, जिसकी बराबरी नहीं की जा सकती

2786 saṇḍāse

2787 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”

2788 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, “सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का”। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa (“समूह”) पढ़ता है।

2789 अतुल , जिसका वजन नहीं किया जा सकता, जिसे मापा नहीं जा सकता, जिसकी बराबरी नहीं की जा सकती

2790 नत्थुके । बीजेटीएस में इसे तत्थुके पढ़ा गया है । मूल दान के विवरण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह दान मुख (मुख) और नाक (नत्थुकंग) के लिए शोधनंग (वहाँ शोधनंग) का था। मुख-सफाई करने वालों के लिए अलग-अलग आनिसंसा नीचे दिए गए हैं (श्लोक 194 [3568])। वर्तमान श्लोक में आनिसंसा का संबंध अंग्रेजी में जिसे हम "नाक साफ रखना" कहते हैं, उससे प्रतीत होता है, हालांकि मुझे नहीं पता कि पाली में भी आमतौर पर यही अर्थ निकाला जाता है या नहीं। मुख-सफाई करने वालों के लिए आनिसंसा (श्लोक 194 [3468], नीचे) निश्चित रूप से मूल दान की प्रकृति से मेल खाते हैं।

2791 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”

2792 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।

2793 aṭṭhānisaṇse . मैं यहाँ आठ को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) विश्वास, (2) नैतिकता, (3) शर्म, (4) गलत काम का डर, (5) खुशी, (6) उदारता, (7) धैर्य और (8) ज्ञान।

2794 साधना

2795 sīlaŋ

शर्म,2796 पाप से डरने का गुण,2797

मैं खुशमिजाज, उदार और धैर्यवान हूं।
और ज्ञान मेरा आठवां गुण है। (170) [3544]

बुद्ध के लिए छोटी कुर्सियाँ देना27982799
[और] असाधारण सद्गुण वाले भिक्षु,2800
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2801
मेरे कर्मों के अनुसार। (171) [3545]

मैं एक प्रतिष्ठित कुल में पैदा हुआ हूँ,2802
मैं बहुत अमीर आदमी बन गया,2803
सभी लोग मेरा सम्मान कर रहे हैं,2804
मेरे लिए गौरव उत्पन्न हो रहा है।2805 (172) [3546]

एक लाख युगों से चार घोड़ों पर सवार पालकी2806 निरंतर मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं,
उन्हें देने में आनंद आ रहा है।2807 (173) [3547]

बुद्ध के लिए तकिए देना28082809
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2810
मुझे छह परिणाम प्राप्त हुए,2811
मेरे कर्मों के अनुसार। (174) [3548]

मेरा शरीर आनुपातिक है,2812
मुझे सम्मानित महसूस हो रहा है,2813 सौम्य,2814 सुंदर,2815

2796 hiriŋ
2797 ओट्टाप्पियाŋ
2798 पीठके
2799 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2800 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।
2801 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) प्रतिष्ठित जन्म, (2) बहुत धनी, (3) बहुत सम्मानित, (4) गौरवशाली, और (5) घोड़ों के साथ पालकियों की निरंतर आपूर्ति
2802 ucce kule
2803 mahābhogo bhavāmi
2804 sabbe maŋ apacāyanti
2805 रीडिंग मामा (सामान्य) पीटीएस मामाŋ (सामान्य या कर्म कारक) के लिए बीजेटीएस के साथ
2806 में पीटीएस शब्द caturassarā , "चार कोनों वाला," "आयताकार" के स्थान पर caturassakā ("चार घोड़ों वाला") पढ़ा गया है , हालाँकि बाद वाला भी इस संदर्भ में समझ में आता है।
2807 या उन्हें वितरित करना या साझा करना: सविभागा-रतो [अहाṃ]
2808 bhisiyo
2809 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"

2810 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, “सर्वोच्च [और] शानदार सद्‌गुण का”। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa (“समूह”) पढ़ता है।
2811 चानिसांगसे । मैं यहाँ छह को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) गद्दे, (2) विभिन्न प्रकार के आवरण, (3) विभिन्न प्रकार के लबादे, (4) विभिन्न प्रकार के गलीचे, (5) खाली या व्यर्थ नहीं, और (6) ध्यानमग्न/ झानों का साधक।
2812 समागत्तो , शाब्दिक अर्थ, "मैं एक समरूप शरीर वाला हूँ"
2813 apacito
2814 मुडुको
2815 c'ārudassano , शाब्दिक अर्थ, "देखने में सुखद"

मुझे एक ऐसा दल मिलता है जो बुद्धिमान है:2816
तकिये देने का यही फल है। (175) [3549]

सूती गद्दे 2817 और विभिन्न प्रकार के 2818
ऊन के आवरण2819 और रेशम के आवरण;2820
मुझे कई तरह की चीजें प्राप्त होती हैं
महीन भांग का कपड़ा2821 और ऊनी कंबल.2822 (176) [3550]

और लबादे2823 जो त्वचा पर कोमल हों,
और मुलायम चमड़े2824 और बांस2825 वाले; मुझे विभिन्न प्रकार के कालीन मिल रहे हैं:2826
तकिये देने का यही फल है। (177) [3551]

जहां तक मुझे याद है,2827
जब से मैंने विवेक प्राप्त किया है,2828
व्यर्थ नहीं, ध्यान ही मेरा बिस्तर है:2830
तकिये देने का यही फल है। (178) [3552]

विक्टर के लिए तकिए 2831 देना
[और] उत्कृष्ट सद्‌गुण वाले भिक्षु,2832
मुझे छह परिणाम प्राप्त हुए,2833
मेरे कर्मों के अनुसार। (179) [3553]

मुझे 2834 पर आराम दिया जा रहा है

2816 लभामि नानापरिवरण
2817 tūlikā
2818 PTS cittikā के लिए BJTS के साथ cittakā पढ़ना
2819 vikatikāyo
2820 k'aṭṭhissā
2821 v'ara-potthake
2822 k'ambale
2823 pāvārike

2824 मदुका-अजिना° , "नरम [मृग-चमड़े से बने]
2825 v'eṇiyo
2826 ° अत्थारे
2827 y'ato sarāmi attānaŋ , शाब्दिक अर्थ, "जब से मुझे स्वयं की याद आती है"
2828 या "जब से मैं यौवनारंभ में पहुंचा," yato patto 'smi viññuta , शाब्दिक रूप से, "जब से मैं यौवनारंभ में पहुंचा;" लेकिन BJTS सिंहली व्याख्या (näṇavat , "ज्ञान रखने वाला") का अनुसरण करते हुए, मैं इस शब्द का अनुवाद इसके व्यापक अर्थ में करता हूं, "समझ" या "विवेक"।
2829 या खाली: a-tuccho
2830 रीडिंग atuccho jhāna-mañco (शाब्दिक अर्थ, "मैं वह हूँ जिसका बिस्तर ध्यान है , ध्यान संबंधी उपलब्धि") BJTS (और PTS विकल्प) के साथ PTS atucchojjhānamañño के लिए
2831 बिम्बोहेन
2832 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।
2833 चानिसांगसे । मैं यहाँ छह की गणना इस प्रकार करता हूँ: (1) गद्दीदार होना और एक महान शरीर होना, (2) अष्टांग मार्ग और भिक्षुत्व के चार फलों का ज्ञान, (3) दान, वशीकरण, आत्म-संयम और असीमता के रूपों का ज्ञान, (4) प्रतिज्ञाओं, सद्गुणों, प्रथाओं और अच्छे शिष्टाचार का ज्ञान, (5) आगे-पीछे चलने, प्रयास करने और परिश्रम का ज्ञान, और (6) नैतिकता, ध्यान, ज्ञान और अतुलनीय स्वतंत्रता का ज्ञान।
2834 या "ऊपर उठाया गया" "ऊपर रखा गया": पीटीएस उपपादमी के लिए बीजेटीएस के साथ उपपादमी पढ़ना

ऊन और कमल से बने तकिए, और साथ ही लाल चंदन से बने तकिए;
मेरे पास 2835 एक उत्कृष्ट शरीर है। 2836 (180) [3554]

उत्कृष्ट अष्टांगिक मार्ग और
भिक्षु जीवन से प्राप्त होने वाले चार फल:
मुझे इन बातों की जानकारी दी जाती है।
[और] मैं हर समय वहीं रहता हूँ। (181) [3555]

देना,2838 वश में करना,2839 और आत्म-संयम;2840 [और] असीमता के [चार] रूप:2841 इनका ज्ञान [मुझे] प्राप्त होता है
[और] मैं वहाँ हर समय निवास करता हूँ। (182) [3556]

प्रतिज्ञाएँ2843 और सद्गुण2844 और आचरण,2845 और अच्छे शिष्टाचार के प्रकार:2846 मुझे इनका ज्ञान दिया गया है।
[और] मैं प्रतिदिन 2847 [वहाँ] निवास करता हूँ। (183) [3557]

आगे-पीछे चलना2848 या प्रयास करना; वह प्रयास जो ज्ञान की ओर ले जाता है:2849 इन सबका ज्ञान मुझे प्राप्त होता है;
मैं अपनी इच्छा के अनुसार निवास करता हूँ। (184) [3558]

नैतिकता,2851 ध्यान2852
और ज्ञान,2853 अद्वितीय स्वतंत्रता:2854
मुझे इन बातों की जानकारी दी जाती है।

2835 रीडिंग मामा (सामान्य, शाब्दिक रूप से, "मेरे लिए [वहाँ हैं]") BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS मामांग (सामान्य या कर्म कारक) के लिए।
2836 उत्तमांगन , "सर्वोच्च अंग"
2837 विहार
2838 दाने
2839 महिला
2840 saññame = saṃyame की वैकल्पिक वर्तनी
2841 appamaññesu (BJTS में appamaññāsu लिखा है) rūpisu , अर्थात् चार ब्रह्मा-विहार या ईश्वरीय अवस्थाएँ: प्रेम (मेट्टा), करुणा (करुणा), सहानुभूतिपूर्ण आनंद (मुदिता) और समभाव (उपेक्खा)।
2842 विहार
2843 v'atte
2844 गुण
2845 रीडिंग paṭipatti with BJTS for PTS pañcame , "the fifth"
2846 ācārakiriyāsu ca , या "सही अभ्यास के रूपों में से"
2847 विहार
2848 c'aṅkame
2849 या "ज्ञानोदय की ओर" या "जागृति की ओर": बोधा-पक्खिके
2850 विहारमी
2851 sīlaŋ
2852 समाधि
2853 पन्ना
2854 vimutti ca anuttarā

[और] मैं 2855 [पूर्ण] आनंद में रहता हूँ। (185) [3559]

विक्टर के लिए पुआल की कुर्सियाँ 2856 देना
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2857
मुझे चार परिणाम प्राप्त होते हैं,2858
मेरे कर्मों के अनुसार। (186) [3560]

मैं सबसे अच्छी पालकी ढूंढ रहा हूँ।
सोने से बना [और] रत्नों से बना, हाथीदांत से बना [और] उत्तम लकड़ी से बना:2859
यह पुआल से बने स्टूल का फल है। (187) [3561]

विक्टर के लिए फुटस्टूल 2860 दे रहे हैं
[और] उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षु,2861
मुझे दो परिणाम प्राप्त होते हैं, 2862
मेरे कर्मों के अनुसार। (188) [3562]

मुझे कई वाहन प्राप्त हुए: 2863
यह एक पायदान का फल है।

दासी लड़कियां, दास और पत्नियां और मेरे सभी अन्य आश्रित
मेरी ठीक से देखभाल करो:
वह एक पायदान का फल है। (189) [3563]2865

अभिषेक के लिए तेल देना2866
बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए, मुझे पाँच परिणाम प्राप्त होते हैं,2867
मेरे कर्मों के अनुसार। (190) [3564]

रोग का अभाव, सौंदर्य का होना,
[और] शिक्षा को शीघ्रता से समझ लेना2868

2855 विहारमी

2856 palālapīṭhe , BJTS में phalapīṭhe लिखा है , फल (लौकी?) से बने स्टूल।

2857 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।

2858 BJTS (और PTS alt.) PTS caturānisaŋse के लिए dvānisaŋse ("दो परिणाम") पढ़ते हैं (दो परिणाम) पढ़ा जाता है । मैं यहाँ चार परिणाम गिन रहा हूँ, इसलिए PTS पाठ को ही मान रहा हूँ: (1) सोने, (2) रत्नों, (3) हाथीदांत और (4) उत्तम लकड़ी से बनी उत्कृष्ट पालकी।

2859 danta-sāra-maye

2860 pādapīṭhe

2861 गुणवरुत्तमे , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्गुण का"। बीजेटीएस यहाँ अन्यत्र की तरह गण ("समूह") पढ़ता है।

2862 d'v'ānisaŋse . मैं यहाँ दो को (1) कई वाहन प्राप्त करना, और (2) दासों, पत्नियों और अन्य आश्रितों द्वारा उचित रूप से देखभाल करना मानता हूँ।

2863 y'āne

2864 सम्मा

2865 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।

2866 t'el'abbhañjane , BJTS ग्लॉस निर्दिष्ट करता है कि ये शरीर पर मलने के लिए तेल हैं।

2867 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अच्छा स्वास्थ्य, (2) सुंदरता, (3) त्वरित समझ (या अनुप्रयोग) धम्म का , (4) भोजन और पेय की प्राप्ति, और (5) दीर्घायु।

2868 nisantitā , शाब्दिक रूप से, लागू करना, ध्यानपूर्वक अवलोकन करना; मैं इस शब्द के अनुवाद में BJTS सिंह. ग्लॉस (väṭahena) का अनुसरण करता हूँ, जिसका अर्थ है "समझना" (समझना)।

बहुत सारा खाना और पेय प्राप्त करना,
[और लंबा] जीवन2869 मेरे लिए पाँचवाँ है। (191) [3565]

शुद्ध मक्खन देने के लिए 2870
सर्वोच्च, उत्कृष्ट सद्गुण वाले भिक्षुओं, मुझे पाँच परिणाम प्राप्त होते हैं,2871
मेरे कर्मों के अनुसार। (192) [3566]

मैं बलवान हूँ, सुंदरता से परिपूर्ण हूँ, हमेशा खुश रहती हूँ2872 और जन्म से ही दुबली-पतली हूँ।2873
मैं रोगमुक्त और पवित्र हूँ।

घी देने का फल यही है। (193) [3567]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए मुख शोधक 2874 प्रदान करना,
मुझे पाँच परिणाम प्राप्त हुए,2875
मेरे कर्मों के अनुसार। (194) [3568]

मेरी आवाज़ साफ़ है2876 [और] मधुर है,2877
मुझे अस्थमा की खांसी नहीं है।
और नीले कमलों की सुगंध2879
हमेशा मेरे मुँह से हवा निकलती रहती है। (195) [3569]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए अच्छी तरह से तैयार किए गए 2880 दूध-दही 2881 देना,
मुझे बहुत आनंद आ रहा है।
[और] मेरे शरीर के प्रति सजगता।2885 (196) [3570]

2869 वर्ष
2870 सप्पिटेला , "घी-तेल"
2871 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) शक्ति, (2) सुंदरता, (3) खुशी, (4) पतलापन, और (5) स्वास्थ्य और पवित्रता।
2872 pahaṭṭha°
2873 ° tanujo
2874 मुखधोवनका ŋ । BJTS (और PTS वैकल्पिक) ने मुखशोधनकम् पढ़ा , उसी अर्थ के साथ।
2875 pañcānisaŋse . मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) एक साफ (या स्पष्ट) गला, (2) मधुर ध्वनि वाली [आवाज], (3) खांसी से मुक्त, (4) अस्थमा से मुक्त, और (5) सांस जो नीले कमल की तरह महकती है।
2876 visuddhakaṇṭho
2877 मधुरसारो (बीजेटीएस मधुरसारो पढ़ता है)
2878 कासस्सासविज्जितो (बीजेटीएस कासासा° पढ़ता है)
2879 reading uppalagandho with BJTS for PTS upphalagandho (probably a typo)
2880 संपन्नांग
2881 दधिं
2882 भुंजमी । इस पद में मूल अर्थ "खाना" अधिक उपयुक्त हो सकता है, लेकिन मैं क्रिया को भोजन के संदर्भ में लेता हूँ। शरीर के प्रति सजगता का भी "आनंद" लिया जा सकता है, इसलिए अधिक सामान्य "आनंद लेने" को ही प्राथमिकता दें।
2883 amataŋ
2884 में vittaṃ (संपत्ति, धन) का पाठ PTS cittaŋ (“हृदय”) के लिए BJTS के साथ किया गया है, हालांकि BJTS का वैकल्पिक रूप bhattaṃ (“चावल”) है।
इससे सबसे स्पष्ट पठन प्राप्त होगा।
2885 शाब्दिक रूप से, " शरीर की उत्कृष्ट (वरं) जागरूकता (कायगतं सतिं); बीजेटीएस वरम कयागतासतिं पढ़ता है , जिसका अर्थ समान है।

2886 रंगों और सुगंधों वाला शहद प्रदान करना
[और] बुद्ध के प्रति रुचि2887 [और] समूह, मैं [अब] स्वतंत्रता का रस पीता हूँ,2888

जो अद्वितीय है,2889 अतुलनीय.2890 (197) [3571]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह के लिए वास्तविक 2891 रस अर्पित करते हुए, मैं चार फलों का अनुभव करता हूँ, 2892
मेरे कर्मों के अनुसार। (198) [3572]

बुद्ध और सर्वोच्च समूह को भोजन और पेय पदार्थ देने के बाद मुझे दस परिणाम प्राप्त हुए।2893
मेरे कर्मों के अनुसार। (199) [3573]

मैं हमेशा लंबी आयु वाला और बलवान, एक नायक, सुंदर और प्रसिद्ध व्यक्ति हूँ।
और खुश; एक प्राप्तकर्ता
खाने-पीने के मामले में, साहसी, 2894 होशियार। 2895
जैसे ही मैं दुनिया में पुनर्जन्म लेता हूँ,2896
मुझे ये गुण प्राप्त हो रहे हैं। (200) [3574]2897

बुद्ध के लिए धूप अर्पित करना28982899
[और] असाधारण सद्‌गुण वाले भिक्षु,2900
मुझे दस परिणाम प्राप्त हुए,2901
मेरे कर्मों के अनुसार। (201) [3575]

मेरे शरीर से अच्छी खुशबू आती है, मैं मशहूर हूँ।

2886 °upetaŋ , जिसका शाब्दिक अर्थ है, "से सुसज्जित"। इसका तात्पर्य यह है कि शहद का रंग, सुगंध और स्वाद अच्छा था।
2887 लिट., "विजेता के लिए"
2888 pive muttirasam ahaŋ
2889 अतुलियां .
2890 अनुपमा॑
2891 य'अथाभूतं, जिसका अर्थ है "मूल", "प्राकृतिक"। मैं इसे पिछले श्लोक में मुक्ति के रस के संकेत से जुड़ा हुआ मानता हूँ।
2892 c'aturo phale , ie, the four fruits of monkhood, the four stages of the path: sotāpatti , sakadāgāmi , anāgāmi ,
अरहतफला (धारा में प्रवेश करने वाला, एक बार लौटने वाला, न लौटने वाला, अरिहंत)
2893 dasānisaŋse . मैं यहाँ दस को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) दीर्घायु, (2) शक्ति, (3) वीरता, (4) सौंदर्य, (5) प्रसिद्धि, (6) सुख, (7) भोजन प्राप्त करना, (8) पेय प्राप्त करना, (9) साहस, (10) बुद्धि।
2894 s'ūro
2895 paññāavā
2896 भावे , शाब्दिक अर्थ, "अस्तित्व में"
2897 पीटीएस और बीजेटीएस इस बात से सहमत हैं कि इसे छह पैरों वाला श्लोक माना जाना चाहिए।
2898 धूमा॑ ...
2899 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
2900 guṇavaruttame , शाब्दिक अर्थ, "सर्वोच्च [और] शानदार सद्‌गुण का"। BJTS यहाँ अन्यत्र की तरह gaṇa ("समूह") पढ़ता है।
2901 dasānisaŋse . मैं यहाँ दस को (1) के रूप में गिनता हूँ
2902 s'ugandhadeho , शाब्दिक अर्थ, "मैं वह व्यक्ति हूँ जिसके शरीर से सुखद गंध आती है"

तेज-सोचने वाला2903 साथ ही चतुर;2904
मेरे पास तीक्ष्ण और व्यापक ज्ञान है;2905
मेरे पास उज्ज्वल 2906 [और] गहन ज्ञान है। (202) [3576]

जैसे ही मैं दुनिया में पुनर्जन्म लेता हूँ,2907
मेरे पास व्यापक और सजग ज्ञान है।2908
अब, ऐसा करने की वजह से, मुझे
शुभ, सुखी शांति प्राप्त की।2909 (203) [3577]

बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (204) [3578]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (205) [3579]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (206) [3580]

इस प्रकार पूज्य पिलिन्दवच्च2910 थेरा ने ये श्लोक कहे।

पिलिन्दवच्चा2911 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

2903 sīghapañño , "मैं उस बुद्धि के साथ एक हूँ जो शीघ्र है"
2904 कित्तिमा
2905 tikkhapañño bhūripañño , शाब्दिक अर्थ, "मैं तीक्ष्ण बुद्धि से एक हूँ, मैं व्यापक बुद्धि से एक हूँ"
2906 रीडिंग hāsa < hāsu° with BJTS (and PTS alt.) for PTS bhāsa-gambhīra-pañño
2907 भावे , शाब्दिक अर्थ, "अस्तित्व में"
2908 v'epulla-javana-pañño . javana का मूल अर्थ "तेज़" है और इसे कभी-कभी इसके समतुल्य माना जाता है
sīgha , जिसका उल्लेख पिछले श्लोक में पहले ही किया जा चुका है।
2909 santisukhaŋ sivaŋ
2910 cf. #15, और ऊपर दिए गए नोट को देखें। BJTS में नाम पिलिन्दवच्च लिखा गया है । ऐसा लगता है कि वे एक ऐतिहासिक भिक्षु थे, जिनका उल्लेख धर्मग्रंथों और टीकाओं में बार-बार मिलता है। "पिलिंदा" उनका दिया गया नाम था, "वच्चा" उनके गोत्र (वंश) को दर्शाता है।
2911 BJTS में नाम Piḷindavaccha लिखा गया है ।

389. {392.}2912 Sela2913

हंसवती नगर में,
मैं सड़क व्यवस्था का प्रभारी था।2914
अपने सभी रिश्तेदारों को बुलाते हुए,
मैंने [उनसे तब] ये शब्द कहे: (1) [3581]

"बुद्ध का जन्म संसार में हुआ है, जो पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।
फाउंडेशन फॉर एवरी वर्ल्ड, 2916
बलिदान प्राप्तकर्ता। (2) [3582]

क्षत्रिय और शहरवासी,
धनी लोग और ब्राह्मण, प्रसन्नता से भरे हुए,
उन्होंने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया है।2917 (3) [3583]

हाथियों पर सवार,2919 शाही अंगरक्षक,2920 रथ चालक2921 और पैदल सैनिक2922 अपने दिलों में आनंद के साथ प्रसन्न थे।
उन्होंने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया है।2923 (4) [3584]

शक्तिशाली स्वामी2925 और राजकुमार,2926

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 2912 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
2913 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
2914 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
2915 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
2916 शाब्दिक रूप से, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
2917 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
2918 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
2919 शाब्दिक रूप से, "गया"
2920 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
2921 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
2922 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
2923 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

2924 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

2925 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

2926 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

वैश्य और ब्राह्मण दोनों ही प्रसन्न थे, उनके हृदयों में आनंद व्याप्त था।
उन्होंने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया है।2927 (5) [3585]

रसोइये2929 [और] बाल संवारने वाले,2930
स्नान कराने वाले लड़के,2931 माला बनाने वाले,2932
प्रसन्न, उनके हृदयों में आनंद से भरा हुआ।
उन्होंने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया है।2934 (6) [3586]

रंगसाज़,2935 और बुनकर,2936
चमड़ा बनाने वाले,2937 और स्नान करने वाली लड़कियां,2938
प्रसन्न, उनके हृदयों में आनंद से भरा हुआ।
उन्होंने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया है।2939 (7) [3587]

तीर बनाने वाले,2941 चमड़े के कारीगर,2942 बढ़ई2943 और सोने के कारीगर,2944 टिन के कारीगर,2945 और चटाई बनाने वाले,2946
उन्होंने स्वयं को एक संघ में संगठित कर लिया है।2948 (8) [3588-3589]2949
किराए पर रखे गए नौकर2950 [और] संगीतकार,2951 और असंख्य दास और नौकर,2952 अपनी क्षमता के अनुसार,2953

2927 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

2928 लिट., "एक फूल पर"

2929 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

2930 khiḍḍāratiyaÁ

2931 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

2932 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"

2933 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

2934 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

2935 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

2936 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

2937 pariḷāho

2938 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

2939 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

2940 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

2941 samādhikusalo ahaŋ

2942 iddhipādesu kovido
2943 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”
2944 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
2945 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
2946 mahābhisakkasaṅkāso
2947 dosavyādhitikicchako
2948 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
2949 दिठ्ठिगण्ड°
2950 लोकापज्जोटो
2951 sanarāmarasakkato
2952 नारदिको
2953 लिट., “में”

---

have2954 ने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया.2955 (9) [3590]

जल लाने वाले, 2956 लकड़ी इकट्ठा करने वाले, 2957
जुताई करने वाले,2958 और घास ढोने वाले,2959
अपनी सामर्थ्य की सीमा तक,2960
have2961 ने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया.2962 (10) [3591]

फूलवाले2963 और माली2964, साथ ही फल-सब्जी विक्रेता2965 और फल ढोने वाले2966, अपनी-अपनी क्षमता2967 के अनुसार
have2968 ने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया.2969 (11) [3592]

वेश्याएं, 2970 दासी लड़कियां जो पानी लाती हैं, 2971
केक बेचने वाली महिलाएं [या] मछली बेचने वाली महिलाएं,2972
अपनी सामर्थ्य की सीमा तक,2973
have2974 ने स्वयं को एक गिल्ड में गठित किया.2975 (12) [3593]

आप सभी एकत्रित होकर, आइए हम भी एक समूह के रूप में एकजुट हों; आइए अब हम सेवा करें
योग्यता का अतुलनीय क्षेत्र।" (13) [3594]

मेरी बातें सुनकर,

2954 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
2955 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
2956 महास्सादंग
2957 महरसंग
2958 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए
2959 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
2960 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

2961 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
2962 लिट., “मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था”
2963 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
2964 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
2965 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
2966 या “जो आगे बढ़ चुका था”: पब्बाजितो
2967 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
2968 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"
2969 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
2970 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय उसके ऊपर रखता है।
2971 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
2972 sampahaŋsitā
2973 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।
2974 chettā
2975 sotā
2976 pasaŋsitā
2977 akhilo
2978 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है

एक ऐसा समूह बनाया जो हमेशा के लिए कायम रहेगा
[और] एक अच्छी तरह से निर्मित बैठक-कक्ष का निर्माण किया गया29792980
भिक्षु सभा में [उन लोगों के लिए].2981 (14) [3595]

उस हॉल को समर्पित करने के बाद, प्रसन्न मन से, उन सभी लोगों से घिरे हुए,
मैं संबुद्ध के पास गया। (15) [3596]

जगत के स्वामी, मनुष्यों के श्रेष्ठ बैल, संबुद्ध के पास पहुँचकर और गुरु के चरणों की पूजा करके,
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (16) [3597]

“ये तीन सौ लोग, हीरो, एक समूह के रूप में एक साथ हैं,
हे ऋषि, मैंने आपके लिए नियुक्त किया है।
यह अच्छी तरह से निर्मित बैठक-कक्ष।" (17) [3598]

आँखों को तृप्त करने वाला, इसे स्वीकार करते हुए
भिक्षुओं की सभा के सामने, 2984
तब बुद्ध ने ये श्लोक कहे।
मेरे तीन सौ [लोगों] के सामने: (18) [3599]

“तीन सौ और यह सर्वश्रेष्ठ भी2985, एक साथ एक के रूप में अनुरूप2986
इस [महान] उपलब्धि को हासिल करने के बाद,2987

आप सभी इसका आनंद लेने वाले हैं। (19) [3600]

जब आपका अंतिम पुनर्जन्म होगा, तब आप सभी निर्वाण प्राप्त करेंगे।
शीतलता की अवस्था, अतुलनीय,2988
अजन्मा, अमर शांति।" (20) [3601]

बुद्ध ने इसी प्रकार भविष्यवाणी की थी,2989
सर्वज्ञानी, 2990 सर्वश्रेष्ठ भिक्षु, 2991

2979 anīgho
2980 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"
2981 अनेजो
2982 विराजो
2983 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है ("विनम्र")
2984 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा ("सुगंधित")
2985 रीडिंग वट्टा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस मेट्टा ("लव")
2986 pakāsitā
2987 t'āretā
2988 अत्थकारेता का पाठ बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ तारेता ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए किया गया है।
2989 k'āretā
2990 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
2991 पापेटा

और बुद्ध के वचन सुनकर,
मैंने [अपनी] मानसिक खुशी की घोषणा की।2992 (21) [3602]

तीस हजार युगों तक मैं
देवताओं की दुनिया में आनंदित।
देवताओं के स्वामी से पांच सौ बार,
मैंने वहाँ दैवीय शासन का प्रयोग किया। (22) [3603]

मैं भी एक हजार बार था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। दैवीय शासन का प्रयोग करते हुए
तब सभी महान देवताओं ने मेरी पूजा की। (23) [3604]

यहाँ, इस मानव साम्राज्य में,2993 [मेरा]
मेरे रिश्तेदार मेरे अनुचर हैं।2994
जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब वहाँ एक ब्राह्मण, वासेट्ठ, 2995 उपस्थित थे।
आठ सौ मिलियन की संपत्ति के साथ;2996
मैं उनका पुत्र था।

जन्म के समय मेरा नाम "सेला" था।
वैदिक विज्ञान के एक मास्टर।2997 (24-25) [3605-3606]

मैं पैदल घूमते हुए,2998 अपने छात्रों की सेवा करते हुए2999, तपस्वी केनिया3000 को देखा3000
उलझे बालों के साथ, राख लगाए हुए, 3002
बलिदान करने के लिए तैयार।3003
[उसे देखकर] मैंने ये शब्द कहे: [सेला:]
“पत्नी को साथ ला रहे हो? किसी शादी में जा रहे हो?3004
या आपने राजा को आमंत्रित किया है?3005 (26-27) [3607-3608]

2992 साहित्य , या "सहनकर्ता"
2993 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS द्वारा hantā की पुनरावृत्ति की गई है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।
2994 हंत
2995 रीडिंग ātāpī with BJTS for PTS tātâpi (“also the Protector”)
2996 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में
2997 samacitto
2998 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह की व्याख्या के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , जिसका अर्थ है "हमेशा एक जैसा")
2999 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, “मित्रहीन”
3000 रीडिंग दयासायो (और निम्नलिखित व्याख्या) पीटीएस दयायासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए बीजेटीएस के साथ
3001 accherasanto
3002 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"
3003 क'अतावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए
3004 i'sisattamo
3005 nittiṇṇakaṅkho

मैं बलिदान करना चाहता हूँ3006
ब्राह्मणों के लिए जो देवताओं की तरह सोचते हैं,3007
लेकिन मुझे राजाओं ने आमंत्रित नहीं किया है।
[और] कोई बलिदान नहीं मिला है।” (28) [3609]

[केन्या:]
मेरे लिए दुल्हनें लाने का कोई मतलब नहीं है; मैं खुद भी दुल्हनों के पास नहीं जाता।
जिसे मैंने आज आमंत्रित किया है
यह अपने देवताओं के साथ दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है, शाक्यों को आनंदित करने वाला है।
जो प्राणियों को सुख प्रदान करता है 3008
सभी प्राणियों के प्रति मित्रता के कारण;3009

ये तैयारियाँ उनके लिए हैं। (29-30) [3610-3611]

जंगली मैंगोस्टीन का चमकीला रंग, 3010
अतुलनीय, असीम, बुद्ध, स्वरूप में अद्वितीय।
कल के लिए आमंत्रित किया गया है। (31) [3612]

जैसे भट्टी के ऊपर पीटा हुआ सोना, देवदार के कोयले की तरह चमकता हुआ, महान नायक बिजली की तरह चमकता है।
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को।3015 (32) [3613]

पहाड़ पर जलती हुई आग की तरह, पंद्रहवें दिन के चंद्रमा की तरह,3016 जलते हुए सरकंडों के समान रंग का —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (33) [3614] निडर, भय पर विजय पाने वाला,3017

3006 nimmāno
3007 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"
3008 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"
3009 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं"
3010 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है ताकि उसे समझा जा सके [या निर्देश दिया जा सके, नेतृत्व किया जा सके, मार्गदर्शन किया जा सके (नेति का क्रियापद)]"
3011 जिनो
3012 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट प्रतीत होती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।
3013 रीडिंग akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ with BJTS for PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ ("मैं धम्म- प्रचारक मैं")
3014 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭataṭa heḷana vātaya ("वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ")
3015 रीडिंग sabbagandhe 'tiseti (= atisayati) BJTS के साथ PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंध' को नीचे रखता है
") और इसके बाद बीजेटीएस सिंहली ग्लॉस
3016 बीजेटीएस में एटिसैंटो के लिए एडिसैंटो ("घोषणा") पढ़ा जाता है
3017 रीडिंग guṇatthavassa sabbaṃ taṃ phaleṃ tu paramambhūtaṃ with BJTS for PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारी रूप से खिलता है")

अस्तित्व-समाप्तकर्ता, 3018 ऋषि,
महान नायक शेर के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (34) [3615]

बुद्ध की शिक्षाओं में निपुण, दूसरों से कम कष्ट सहने वाला।
महान नायक हाथी के समान होता है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (35) [3616]

महान शिक्षा देने में निपुण, अद्वितीय, बुद्ध-हाथी, महान नायक बैल के समान है।

मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (36) [3617]

असीम सौंदर्य, असीम प्रसिद्धि, विभिन्न चिह्नों को धारण किए हुए,
महान नायक इंद्र3022 के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (37) [3618]

शक्तिशाली व्यक्ति,3023 जिसका समूह शक्तिशाली है,3024
मैजेस्टिक वन, 3025 हार्ड टू अप्रोच, 3026
महान नायक ब्रह्मा के समान हैं।3027 —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (38) [3619]

टीचिंग-रीचर,3028 टेन-पावर्ड वन,3029
सर्वोत्कृष्ट शक्ति के स्वामी, 3030
महान नायक पृथ्वी के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (39) [3620]

नैतिकता नामक लहरों से परिपूर्ण, शिक्षा के ज्ञान को मथने वाला,

[?]), और BJTS ग्लॉस का अनुसरण किया: बुद्ध गुणकितियागे ए सियालु विपाक अतिशय विस्मयाजनक य ।
3018 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) भाग त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। IPTS में rasaddhovisamāyuto लिखा है , जिसका अर्थ है "शुद्ध स्वाद से बंधा हुआ"। BJTS में (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto ?) लिखा है। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS के सिंहली अनुवाद का अनुवाद करता हूँ, mad-hura svaradhvani yuktavūyem (- mihirihaddha ättem), जिसका अर्थ है "मैं मधुर ध्वनि से बंधा हुआ (मेरी ध्वनि मधुर है)"।

3019 reading khīṇe ayusi with BJTS for PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है")
3020 शाब्दिक रूप से, "आप सभी इसे सुनें" (द्वितीय व्यक्ति बहुवचन क्रिया)
3021 ya'sassī
3022 शाब्दिक रूप से, "इसलिए मैं खुश हूँ"
3023 दुःखान्तकरण बुद्ध , शाब्दिक अर्थ: "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध"
3024 धम्मॅ ...
3025 जनायण , लिट., "मैंने उत्पादन किया"
3026 या "विधर्मी": कुटित्थिये
3027 रीडिंग titthikākiṇṇe with BJTS for PTS titthikâkiṇṇo ("मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ")
3028 v'adanto , शाब्दिक अर्थ, "कहना," "बताना"
3029 में पीटीएस varaŋ ("उत्कृष्ट") के लिए BJTS (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ vadaṃ पढ़ा गया है।
3030 रीडिंग जनास्सा विद बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) फॉर पीटीएस °जिनासा ("विजेता का")

महान नायक समुद्र के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (40) [3621]

पहुँचना कठिन,3031 वश में करना कठिन,3032

अडिग,3033 उठा हुआ,3034 ऊंचा,3035
महान नायक माउंट मेरु3036 की तरह —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (41) [3622]

अनंत ज्ञान का, निष्पक्ष, 3037
अमापनीय, 3038 शीर्ष पर पहुंच गए, 3039
महान नायक आकाश के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (42) [3623]

डर और भय से ग्रस्त लोगों के लिए सहायता 3040, शरणार्थियों के लिए संरक्षण 3041, 3042
महान नायक सांत्वना प्रदान करता है3043 — मैंने उसे आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (43) [3624]

ज्ञान और मंत्रों का निवास स्थान,3045
पुण्य-क्षेत्र सुख चाहने वालों के लिए 3046
महान नायक, रत्नों की खान —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (44) [3625]

कम्फर्टर,3047 विस्मयकारी,3048
भिक्षुत्व के फल का दाता,
महान नायक बादल की तरह है3049 —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (45) [3626]

3031 रीडिंग sarado va sasaṅko 'haṃ with BJTS for PTS saraŋ divasasanko 'haŋ ("मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ" [?])

3032 लिट., "मैं था"

3033 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चला गया व्यक्ति," सुगाताŋ

3034 y'athāsattivasena

3035 v'āgīso , "[मैं एक हूँ] वाणी पर महारत के साथ"

3036 में विमतिपट्टा को पीटीएस विमतिंग पट्टा के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है , हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक दृष्टि से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है।

3037 apades' ahaṃ को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS apaniŋ (समान अर्थ, apaneti से) के लिए पढ़ना

3038 tiṇṇasamsārasāgaro

3039 BJTS mañcado ("Mañcada") पढ़ता है

3040 BJTS में supaṭo ("Supaṭa") पढ़ा जाता है

3041 यह पीटीएस शब्द bodhisammajako ("बोधिसम्मजक") का बीजेटीएस पाठ है ।

3042 r'akkhasā = rākṣasā

3043 पन्नागा

3044 mahānubhāvā isayo

3045 k'amaṇḍalu-dharā . यह विशेष पात्र गैर-बौद्ध तपस्वियों का एक विशिष्ट चिह्न है।

3046 jaṭā-bhāra-bharita , शाब्दिक अर्थ, "गुंथी हुई चोटी और भार/भारी बोझ से भरा हुआ"।

3047 युगामत्तं च पेक्खंत , शाब्दिक अर्थ, "हल की लंबाई तक आगे देखना," यानी, बस थोड़ा सा, अपनी निगाहें सामने की जमीन पर टिकाए रखना।

3048 गच्चन्टी , शाब्दिक अर्थ, "जाना"
3049 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ सयान च उपसम्पन्न पढ़ना ("और यह आपूर्ति की गई है")

द आई ऑफ द वर्ल्ड, 3050 द हीरो, 3051
हर अंधकार का निवारण करने वाला, 3052
महान नायक सूर्य के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (46) [3627]

ऋषि, प्रकृति के द्रष्टा, वस्तुओं से मुक्ति के द्रष्टा, महान नायक चंद्रमा के समान है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (47) [3628]

हे पूजनीय, संसार में विराजमान, शुभ चिह्नों से सुशोभित, अतुलनीय, महान ऋषि —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। [3629]3056

जिसका ज्ञान असीम है,3057
अतुलनीय नैतिकता,3058
जिसकी स्वतंत्रता का कोई सानी नहीं है,3059
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (48) [3630]

जिसका साहस3060 अतुलनीय है, जिसकी दृढ़ता अकल्पनीय है3061, जिसका प्रयास सर्वश्रेष्ठ है —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (49) [3631]

जुनून, नफरत, मूर्खता
और सभी विष नष्ट हो जाते हैं;
महान नायक एक नशे की तरह है3062 —
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (50) [3632]

सभी प्रकार के दर्द, अपवित्रता, रोग के अंधकार का निवारण होता है; महान नायक एक चिकित्सक के समान है।
मैंने उन्हें आमंत्रित किया है, बुद्ध को। (51) [3633]

3050 पतिहिरस्स इदान फलां
3051 lohadoṇiŋ gahetvāna
3052 v'anamajjhe , शाब्दिक अर्थ, "जंगल के बीच में"
3053 पीटीएस में 'अपैसिता' और बीजेटीएस में 'अवसिता' लिखा है ; ये दोनों शब्द समानार्थी हैं और एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हैं।
3054 reading uggatejāna with BJTS for PTS uggatejana
3055 °saddena , शाब्दिक अर्थ, "ध्वनि के साथ"
3056 या "प्रशिक्षित:" विनीता
3057 appamaññāsu kovidā , अर्थात् "ईश्वरीय अवस्थाओं" (ब्रह्मविहारा) के अभ्यास में कुशल, अर्थात् प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव।
3058 में abhilāsino शब्द को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS abhilābhino , "प्राप्त करना" के स्थान पर पढ़ा गया है।

3059 samayaŋ saŋviditvāna
3060 अतापी , शाब्दिक अर्थ, "जलना"
3061 saŋviggamānaso
3062 अगलम , सिंह। अगिल, अगरु, अगुरु

“मित्र, यह ध्वनि प्राप्त करना कठिन है, जिसे [यहाँ] “बुद्ध” कहा गया है। “बुद्ध”, “बुद्ध” सुनना।”
आप सभी को मेरी तरह आनंदित होना चाहिए।”3063 (52) [3634]

[सेला:]
अपनी खुशी को अपने अंदर दबाकर न रखना
यह मेरे बाहर के लोगों तक प्रवाहित हुआ। मैं, आनंदमय विचारों से परिपूर्ण होकर,3064
उस समय मैंने उससे ये शब्द कहे: (53) [3635]

“तो फिर वह परम पूज्य, संसार का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का श्रेष्ठ पुरुष कहाँ है? उसके चले जाने के बाद मैं उसे कहाँ देख पाऊँगा?”
भिक्षुत्व के फल का दाता?” (54) [3636]

उन्होंने मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया,3065 रोमांचित होकर, अपने हाथों को आपस में जोड़कर, मुझे शिक्षाओं का राजा दिखाया,3066
जो दु:ख के तीरों को हटाता है। (55) [3637]

[केन्या:]
“क्या आप इस विशाल जंगल को देख रहे हैं, जो एक बड़े तूफानी बादल की तरह उठा हुआ है, गहरे नीले रंग का, बिल्कुल काजल की तरह।”
क्या यह समुद्र जितना ही दृश्यमान है?3068 (56) [3638]

बुद्ध अब वहां निवास कर रहे हैं।
अनियंत्रित-संरक्षक,3069 [महान] ऋषि, जो प्रशिक्षित किए जा सकने वालों को निर्देश देते हैं,
जागृति के भागों को ज्ञात करना।"3070 (57) [3639]

[सेला:]
जैसे प्यासा पानी की तलाश करता है, जैसे भूखा भोजन की खोज करता है, जैसे गाय अपने बछड़े के लिए ललचाती है,

---

3063 reading panasaṃ devagandhikaṃ with BJTS for PTS vansaṇḍe va gandhika� (“वन उपवन में सुगंधित”)
3064 या “हाथी के ललाट लोब जितना बड़ा:” कुंभमट्टंग
3065 cittaŋ , शाब्दिक अर्थ, "विचार" या "मन"
3066 शाब्दिक रूप से, "ऐसा व्यक्ति बन गया है जिसके पास है"
3067 शाब्दिक अर्थ, “अडिग” “अविचलित”
3068 शाब्दिक रूप से, "अस्तित्व में आना"
3069 adantadamako का अर्थ या तो "अनियंत्रित को वश में करने वाला" या "अनियंत्रित को वश में करने वाला" हो सकता है; मैं हाइफ़न के साथ अस्पष्टता को खुला छोड़ देता हूँ, यहाँ "अनियंत्रित को वश में करने वाला" के लिए अपनी प्राथमिकता स्वीकार करता हूँ (जो कि BJTS का भी पाठ है, dametar पर RD देखें), और जप में उच्चारण की अनुशंसा करता हूँ जो यौगिक में पहले शब्द पर जोर और स्वर के माध्यम से इस बात पर जोर दे सकता है कि बुद्ध वह हैं जो अनियंत्रित/जंगली लोगों को वश में करते हैं।

3070 bodhento bodhapakkhiye , जिसे BJTS (37) जागृति या ज्ञानोदय के पहलुओं या गुणों के रूप में व्याख्यायित करता है- उल्लेख (बोध , यहाँ = बोधि , आरडी एसवी देखें)

मैं विजेता की तलाश में गया। (58) [3640]

शिष्टाचार और अच्छे आचरण का ज्ञान3071
मैंने अपने छात्रों को बुद्ध की उपस्थिति में जाने का प्रशिक्षण दिया।
शिक्षा के अनुरूप संयम:3072 (59) [3641]

'आशीर्वाद प्राप्त लोगों तक पहुंचना कठिन होता है, जैसे अकेले भटकते शेर।'
सावधानी से, कदम दर कदम चलते हुए,3073
मेरे पीछे आओ, हे पुरुषों। (60) [3642]

सांप के जहर की तरह भयानक, शेर की तरह, जानवरों के राजा की तरह, मदमस्त हाथी की तरह,
अतः बुद्धों तक पहुँचना कठिन है। (61) [3643]

हे मनुष्यों, [किसी भी आवश्यकता] की उपेक्षा करने वाले
[आपको खांसी या छींक आ सकती है], सावधानी से, कदम-दर-कदम चलते हुए,3074
बुद्ध की उपस्थिति में जाओ। (62) [3644]

बुद्धों के पास जाना कठिन है,3075
वे ऐसे लोग हैं जो एकांत का आनंद लेते हैं।
कम आवाज़ करो, 3076 पहुँचना मुश्किल, अपने देवताओं के साथ [दुनिया में] पूजनीय। (63) [3645]

जब मैं उससे प्रश्न पूछ रहा होता हूँ, या मैत्रीपूर्ण अभिवादन का आदान-प्रदान कर रहा होता हूँ,
तो आप सभी को कम आवाज करनी चाहिए;
वहाँ ऐसे खड़े हो जाओ जैसे तुम ऋषि हो।3078 (64) [3646]

वह किस महान शिक्षा का प्रचार कर रहा है?3079
शांतिपूर्ण, जो निर्वाण की ओर ले जाता है।
अर्थ को ध्यान से सुनें,3080
शिक्षा को प्रसन्नतापूर्वक सुनकर।"3081 (65) [3647]

संबुद्ध के पास पहुँचने पर

3071 ācāra-upacāraññū

3072 धम्मनुच्चवासंवरं (बीजेटीएस इसे धम्मनुच्चवी° पढ़ता है)

3073 pade padaŋ nikkhipantā , शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए [अपने पैर] रखना"

3074 pade padaŋ nikkhipantā , शाब्दिक अर्थ, "धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए [अपने पैर] रखना"

3075 durūpansaṅkamā

3076 अप्पासद्दा

3077 रीडिंग यदा 'हं बीजेटीएस के साथ पीटीएस यवाहां के लिए , "जहाँ तक मैं..."
3078 munibhutā va , ye, silently
3079 रीडिंग देसेटी विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस देसेसी , “आप उपदेश देते हैं”
3080 nisāmetha
3081 लिट., "महान शिक्षण," सद्धम्मसवनं सुखं

मैंने ऋषि से अभिवादन का आदान-प्रदान किया। [जब मैं] उनसे बातचीत कर रहा था,
मैंने [महान व्यक्ति] के निशान देखे।3083 (66) [3648]

मुझे तीस अंक दिखाई दे रहे हैं, केवल दो अंकों पर संदेह है:
अपनी शक्तियों के माध्यम से3084 ऋषि ने मुझे दिखाया
[उसका] लिंग एक आवरण में बंद है.3085 (67) [3649]

[और फिर बुद्ध ने] अपनी जीभ [उसके] कान3086 में और उसकी नाक पर रखी।
विजेता ने अपने माथे के ऊपरी सिरे को छुआ।3087
[और] उसने इसे अपनी जीभ से ढक लिया। (68) [3650]

मैंने उनके शुभ चिह्नों को देखकर, सभी गुणों को पूरा करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला है कि, "वे एक बुद्ध हैं।"
मैं अपने सभी छात्रों के साथ आगे बढ़ा। (69) [3651]

मैं उन तीन सौ लोगों के साथ बेघर होने के लिए निकल पड़ा।
जब आठ महीने [अभी भी] नहीं बीते थे, हम सभी ने निर्वाण प्राप्त कर लिया।3089 (70) [3652]

अतुलनीय पुण्य क्षेत्र के लिए [अच्छे] कर्म करते हुए, हम सबने मिलकर पुनर्जन्म लिया।
हम सब मिलकर [दुनिया से] मुँह मोड़ लिया। (71) [3653]

मैंने [उस नए हॉल के लिए] 3091 छत की कड़ियाँ 3092 दीं, गिल्ड के नियमों के भीतर रहते हुए।
उस कार्य के कारण, मुझे शाबाश!
मुझे आठ अच्छे परिणाम मिल रहे हैं।3095 (72) [3654]

3082 k'athaŋ vītisāretvā
3083, अर्थात् महापुरुष के शरीर पर स्थित बत्तीस शुभ चिह्न , जो यह संकेत देते हैं कि वह या तो एक बुद्ध या फिर चक्र घुमाने वाला सम्राट।
3084 r'eading iddhiyā* with BJTS for PTS itthiyaÁ (“to a woman,” sic!)*
3085 k'osohitaŋ vatthaguyhaŋ , BJTS इसे kosohitavatthaguyhaŋ पढ़ता है
3086 k'aṇṇasote , “उसके श्रवण अंग पर”
3087 reading patamasi nalāṭantaṃ with BJTS for PTS paṭtimasanalāṭaŋ taŋ
3088 niṭṭhaŋ gantvā , शाब्दिक अर्थ, “निष्कर्ष पर पहुँचकर”
3089 सब्बे पत्त' अम्हा निब्बुतिन
3090 एकाटो , लिट., "एक के रूप में"
3091 शाब्दिक अर्थ, “देने के बाद”

3092 रीडिंग gopānasīyo with BJTS for PTS gopānasī
3093 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ
3094 pūgadhamme
3095 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं इन्हें ānisaṃsas (सिंह. anusas aṭak labami) के रूप में समझने में BJTS की व्याख्या का अनुसरण करता हूँ। BJTS
हेतु (जो शायद मेट्री कॉसा हो सकता है) के प्रयोग की व्याख्या इस प्रकार की गई है: "उस अच्छे कर्म, यानी उस कर्म को, वास्तविक बनाना-"

मेरी पूजा सभी दिशाओं में की जाती है, और मेरे पास अमृतमय भोजन है;
मैं सबका सहारा हूँ;3097
मुझे आतंक का अनुभव नहीं होता।3098 (73) [3655]

मुझे कोई बीमारी नहीं होती।
और मैं अपनी लंबी आयु की रक्षा करता हूँ। मैं उत्तम त्वचा वाला व्यक्ति हूँ।
मैं उन आवासों में रहता हूँ जिन्हें मैं चुनता हूँ।3100 (74) [3656]

गिल्ड के नियम के भीतर शेष3101,3102 मैंने आठ शहतीर दिए3103 [संख्यांकित]। आठवें के बाद3104 [मुझे प्राप्त हुआ] विश्लेषण3105 अरहंतशिप के साथ। (75) [3657]

सभी उपलब्धियाँ प्राप्त,3107 कर्तव्य पूर्ण,3108 दोषमुक्त,3109 [मैं] आज आपका पुत्र हूँ, महान ऋषि।
[और] “आठ राफ्टर्स”3110 [अब मेरा] नाम है। (76) [3658]

गिल्ड के नियम के भीतर शेष3111,3112 स्तंभ3113 मैंने दिए3114 [संख्यांकित] पाँच। उस कार्य के कारण, शाबाश [मेरे द्वारा],
मुझे पाँच अच्छे परिणाम मिल रहे हैं।3115 (77) [3659]

पुत्र।" मैं यहाँ आठ को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) हर जगह पूजा जाता है, (2) अमृतमय भोजन, (3) सभी द्वारा समर्थित, (4) कोई भय नहीं, (5) कोई रोग नहीं, (6) लंबी आयु, (7) उत्तम त्वचा, (8) चुने हुए या वांछित निवास।

3096 पूजितो
3097 पीटीएस पतिट्ठा भोसिŋ सब्बेसां के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ पतिठ होमी सब्बेसां पढ़ना
3098 शाब्दिक रूप से, "होना," "पाना"
3099 tā'so
3100 ā'vā'se patthite vase
3101 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ
3102 pūgadhamme
3103 शाब्दिक अर्थ, "देने के बाद"
3104 या, "उन आठ के अतिरिक्त"
3105 पटिसम्भिदा , अर्थात् (चार) विश्लेषणात्मक गुणों में निपुणता, अरहंतत्व का एक लक्षण।
3106 शाब्दिक अर्थ, "और"। यहाँ ' ca' दो अलग-अलग ānisaṃsas को एक में जोड़ता है, जिसे अंतिम पद में एकवचन सर्वनाम etaŋ से संदर्भित किया गया है।
3107 sabbavositavosāno , शाब्दिक अर्थ, "वह व्यक्ति जिसने सभी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों," "अरहंत होना"

3108 काताकिको , यानी, "अरिहंत होना"

3109 अनासावो , यानी, "अरिहंत होना"

3110 अठगोपनासि नाम

3111 रीडिंग vasī with BJTS (and PTS alt.) for PTS vasiŋ

3112 pūgadhamme

3113 thamhāni

3114 शाब्दिक रूप से, "देने के बाद"

3115 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बीजेटीएस का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) के रूप में समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) प्रेम से अविचलित, (2) धनी, (3) जिसके वचन सुने जाते हैं, जिससे कोई अपराधबोध नहीं होता, (4) मन अनियंत्रित नहीं, अविचलित, और (5) अरहंत (निर्मल, आदरणीय, आज्ञाकारी, कर्तव्य पूर्ण)।

मैं प्रेम से अविचलित रहता हूँ,3116
मेरे पास संपत्ति की कमी नहीं है,3117
मैं उन लोगों में से एक हूँ जिनके शब्दों को लोग अच्छे से लेते हैं।3118
[और] इसी प्रकार मैं कोई अपराध नहीं करता।3119 (78) [3660]

मेरा दिमाग बेकाबू नहीं है,3120
मैं किसी भी बात से विचलित नहीं होता, ईश्वर की कृपा से मेरा कोई दाग नहीं है।
उस कार्य के कारण, शाबाश [मेरे द्वारा]। (79) [3661]

मैं आदरणीय हूँ,3122 आज्ञाकारी हूँ,3123
कर्तव्य पूर्ण,3124 दोषमुक्त;3125
मैं आपका अनुयायी हूँ, महान नायक।
एक पूजनीय भिक्षु,3126 हे ऋषि। (80) [3662]

एक अच्छी तरह से बनी पालकी बनाकर, मैंने [फिर] उस हॉल को समर्पित किया।3127
उस कार्य के कारण, मुझे शाबाश!
मुझे पाँच अच्छे परिणाम मिल रहे हैं।3128 (81) [3663]

मैं एक प्रतिष्ठित कुल में पैदा हुआ हूँ,3129
मैं बहुत अमीर आदमी बन गया,3130
मैं वह व्यक्ति हूं जो सभी सफलताएं प्राप्त करता है।
मैं लालच से ग्रस्त नहीं हूँ।3133 (82) [3664]

जिस भी गाँव में मैं चाहूँ

बुद्ध का निष्कलंक अनुयायी)।

3116 acalo homi mettāya

3117 अनुनाभोगवा

3118 adeyyavacano homi

3119 न धनसेमि यथा अहं

3120 पाठ abhantù� mānasaù� mama, BJTS के अनुसार (भंत = डगमगाना, डगमगाना, अस्थिर, अनियंत्रित गाड़ी के लिए प्रयुक्त) PTS āgataŋ mānasaŋ mamaŋ (वैकल्पिक mama) के लिए, जिसका अर्थ है "मेरा मन आ गया है"। PTS एक वैकल्पिक पाठ के रूप में asantaŋ (शांति का अभाव, विचलित) भी देता है , जो āgataŋ से बेहतर होगा ।

3121 vimalo homi sāsane

3122 sagāravo

3123 sappaṭisso

3124 कातािकको , यानी, "अरिहंत होना"

3125 अनासावो , यानी, "अरिहंत होना"

3126 भिक्खु तन वन्दते , शाब्दिक अर्थ, "एक भिक्षु जिसकी पूजा की जाती है"

3127 paññapes' ahaŋ

3128 हेतु , शाब्दिक अर्थ, कारण; मैं बी.जे.टी.एस. का अनुसरण करते हुए इन्हें आनिसंस (सिंह. अनुसस पहक लबामि) समझता हूँ। मैं यहाँ पाँचों को इस प्रकार गिनता हूँ: (1) अच्छा जन्म, (2) अपार धन, (3) सर्वोपरि सफलता, (4) कंजूसी या लोभ का अभाव, (5) जादुई पालकी।

3129 ucce kule

3130 mahābhogo bhavāmi

3131 पीटीएस सब्बासंपत्तिको के लिए बीजेटीएस के साथ सब्बासंपत्तिको होमी पढ़ना

3132 शाब्दिक अर्थ, “मुझे नहीं मिला”, “मुझे नहीं पता”, “मुझे अनुभव नहीं होता”

3133 मैकचेराŋ = मैकचेरियाŋ2

मेरी पालकी आकर रुकती है,3134
उस सर्वश्रेष्ठ पालकी के माध्यम से,
मैं इच्छा अनुसार यात्रा करता हूँ। (83) [3665]

उस पालकी के उपहार के कारण, मैंने अपने भीतर के सारे अंधकार को दूर कर दिया।
ऋषि, यह भिक्षु,3135 सभी शक्तियों से संपन्न
विशेष ज्ञान,3136 आपकी पूजा करता है। (84) [3666]

मैंने अपने सभी कर्तव्यों का निर्वाह किया।
और दूसरों के कर्तव्य भी।3137
उस नेक काम की वजह से, मैं
निर्भय शहर में प्रवेश किया।3138 (85) [3667]

मैंने बुद्ध को भोजन दिया और
साथ ही वह अच्छी तरह से निर्मित हॉल भी।
उस कार्य के कारण, मुझे शाबाश!
मैं उस सर्वोत्तम अवस्था में पहुँच गया।3139 (86) [3668]

संसार में जो लोग पशुओं को वश में करने में कुशल हैं, वे इन हाथियों और घोड़ों को वश में करें। विभिन्न प्रकार के दंडों का प्रयोग करते हुए।3140

वे क्रूरता के माध्यम से पालतू बनाते हैं।3141 (87) [3669]

ऐसा नहीं,3142 हे महान नायक, क्या तुम यहाँ पुरुषों और महिलाओं को वश में करते हो?
बल का प्रयोग न करना,3143 बिना हथियारों के,3144
आप सर्वोच्च वशीकरण में वश में करते हैं।3145 (88) [3670]

दान देने के गुणों की प्रशंसा करते हुए3146
हे ऋषि, आप उपदेश देने में निपुण हैं;
एक ही प्रश्न का उत्तर देते हुए3147
हे ऋषि, आपने तीन सौ को मुक्त किया। (89) [3671]

3134 उपतित्तति , शाब्दिक अर्थ, "वहाँ खड़ा है," "दृढ़ता से खड़ा हो जाता है"
3135 थेरो , "बुजुर्ग"
3136 सब्बाभिन्ना-बालापट्टो
3137 para-kiccatta-kiccāni , "वे कर्तव्य जो दूसरों द्वारा किए जाने हैं"। मैं इस संयुक्त शब्द को पढ़ते समय BJTS की व्याख्या का अनुसरण करता हूँ; इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि उसने अपने स्वयं के कर्तव्यों का पालन किया, जिसमें दूसरों की सेवा से संबंधित कर्तव्य भी शामिल हैं।
3138 पविसिं अभयं पुराण अर्थात निर्वाण।
3139 PTS seṭṭhan taŋ के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ seṭṭhattaṃ (शाब्दिक रूप से, "सर्वोत्तमता") का पाठ करना
3140 कैरेत्वा (बीजेटीएस पढ़ता है करित्वा) कैराना नाना
3141 रीडिंग dāruṇena damenti te with BJTS for PTS dārune na damenti te , "They do not tame the cruel ones."
3142 रीडिंग na h'evaṃ with BJTS for PTS na heva
3143 adaṇḍena
3144 अ'सत्थेना
3145 उत्तम महिला
3146 रीडिंग vaṇṇe kittento with BJTS for PTS vaṇṇaŋ kittento , "प्रशंसा करना सद्गुण"
3147 रीडिंग ekapañhaṃ with BJTS for PTS ekapañhe , "एकल प्रश्न"

हम सारथी के वश में हैं,3148
पूरी तरह से मुक्त,3149 पवित्र,3150 सभी विशेष ज्ञानों द्वारा सशक्त,
बेस को नष्ट करने में बुझा दिया गया।3152 (90) [3672]

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, हर भय पर विजय प्राप्त कर ली गई है:
हॉल देने का यही फल है। (91) [3673]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना3153
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (92) [3674]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (93) [3675]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (94) [3676]

इस प्रकार पूज्य सेला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सेला थेरा की कथा का अंत हो गया है।

3148 सारथी । सारथी , कोचमैन या सारथी, घोड़ों के प्रशिक्षक को भी दर्शाता है, जो घोड़ों को नियंत्रण में रखता है।
3149 s'u'vimiuttā
3150 anāsavā
3151 निब्बुता , शाब्दिक अर्थ, "बुझा हुआ," "शांत," अर्थात् निर्वाण में।
3152 उपाधिक्खये , अर्थात्, "पुनर्जन्म के आधार के विनाश में।" उपाधि (पुनर्जन्म से आसक्ति, पुनर्जन्म का कारण, निर्वाण में बाधा) को उपाधियों (बहुवचन) की विभिन्न सूचियों में वर्गीकृत किया गया है , जैसे आसक्ति, गलत विचार, दोष, कर्म, बुरा आचरण आदि।
3153 बीजेटीएस, मानक छंद के इस भिन्न रूप को प्रस्तुत करने में पीटीएस से सहमत है।

---

390. {393.}3154 सब्बाकित्तिका3155

मैंने विश्व के नेता को देखा, (3d) [3679]3156
डिनर प्लेट के समान चमकता हुआ वृक्ष,3157 दीपों के वृक्ष के समान प्रज्वलित, भोर के तारे के समान दीप्तिमान,3158
बादलों के समूह में बिजली की तरह, (1) [3677]

भयभीत नहीं, कभी भयभीत नहीं, शेर की तरह, पशुओं का राजा, ज्ञान के प्रकाश को प्रकाशित करता हुआ,3159
विधर्मियों के समूहों को कुचलना,3160 (2) [3678]

इस [संपूर्ण] दुनिया को ऊपर उठाते हुए, हर संदेह को दूर करते हुए,3161
जानवरों के राजा की तरह दहाड़ते हुए। (3a-c) [3679a-c]3163

उलझे बालों के साथ, खाल ओढ़े, ऊंचे, मजबूत और शक्तिशाली, मैं
took3164 [my] منا ...
इसे [उसके] पैरों के तलवों पर फैला दो। (4) [3680]

एक [सुगंधित] काली लता लेते हुए,3167
मैंने तथागत को अभिषेक किया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3154 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

3155 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
3156 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3157 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3158 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3159 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3160 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3161 शाब्दिक अर्थ, “गया”
3162 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3163 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3164 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3165 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3166 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में गेण्डु पढ़ा जाता है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3167 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3168 °विकुटी°; मैं इसे परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तुलिका°) के रूप में समझता हूँ।

बुद्ध का अभिषेक करने के बाद,3169
मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की: (5) [3681]

“हे महान ऋषि, बाढ़ पार करने वाले, आप [संपूर्ण] विश्व को ऊपर उठा रहे हैं। आप ज्ञान के प्रकाश से जगमगा रहे हैं।”
[आपका] सर्वोच्च बिजली जैसा ज्ञान। (6) [3682]

आप शिक्षा का पहिया घुमाते हैं, आप प्रतिद्वंद्वी विधर्मियों को कुचलते हैं,3172
बुल, बैठकों में विजेता, 3173
आप [पूरी] दुनिया को हिला रहे हैं। (7) [3683]

विशाल सागर की लहरों की तरह, जो किनारे से टकराकर टूट जाती हैं, हर भ्रामक दृष्टिकोण बिखर जाता है।
[जब यह दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है]3174 आपकी जानकारी पर। (8) [3684]

जब एक नेट3175 जिसमें बहुत महीन
झील में जाल बिछाया गया है3176, जीव3177 जाल में उलझ गए हैं3178

तुरंत [खुद को] उत्पीड़ित पाते हैं। (9) [3685]

अतः संसार में विभिन्न संप्रदायों से जुड़े विधर्मी,3179
हे सुखी, छटपटाओ,3180
आपके महान ज्ञान में उलझा हुआ।3181 (10) [3686]

बाढ़ में फंसे लोगों के लिए आप ही सहारा हैं, आप ही प्रभु हैं, जिनके कोई रिश्तेदार नहीं हैं, भय से पीड़ित लोगों के लिए आप ही शरण हैं।

घास या ऊन (देखें आरडी., एसवी)

3169 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3170 लिट., "एक फूल पर"
3171 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3172 khiḍḍāratiyaÁ
3173 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3174 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3175 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3176 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
3177 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3178 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3179 pariḷāho
3180 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3181 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3182 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3183 samādhikusalo ahaŋ
3184 iddhipādesu kovido

राहत3185 स्वतंत्रता चाहने वालों के लिए, (11) [3687]

एकमात्र नायक,3186 अद्वितीय व्यक्ति,3187
करुणा और प्रेम का ढेर, 3188
नैतिक एक, 3189 अद्वितीय, 3190 शांतिपूर्ण, 3191
मास्टर,3192 न्यूट्रल,3193 द विनिंग रोड,3194 (12) [3688]

ज्ञानी,3195 जिसका भ्रम नष्ट हो गया,3196
कामवासना रहित,3197 जो अनकही बातें कहता है,3198
आपने नफ़रत को त्याग दिया है (3199)
स्टेनलेस वन,3201 प्रतिबंधित,3202 शुद्ध वन,3203 (13) [3689]

आसक्ति-मुक्त,3204 अभिमान का नाश,3205
अरहंत, 3206 त्रिलोक-अग्रदूत, 3207
सीमा-मुक्त,3208 शिक्षण-सम्मानकर्ता,3209
लक्ष्य-प्राप्तकर्ता,3210 जिसका नियम मित्रता है,3211 (14) [3690]

आप फेरी अक्रॉस3212 एक जहाज की तरह,

3185 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"
3186 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3187 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
3188 mahābhisakkasaṅkāso
3189 dosavyādhitikicchako
3190 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3191 दिठ्ठिगण्ड°
3192 लोकापज्जोटो
3193 sanarāmarasakkato
3194 नारदिको
3195 लिट., "में"
3196 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3197 निब्बाती , या "वह शांत हो जाता है"
3198 महास्सादंग
3199 महरसंग
3200 शब्द, "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
3201 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
3202 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
3203 पीटीएस याहिŋ ताहिŋ; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
3204 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंध से भरा हुआ था"
3205 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
3206 या "शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना"
3207 लिट., "बहिर्वाहों का विनाश"
3208 या "जो बाहर गया था": पब्बाजितो
3209 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
3210 लिट., "यहाँ"
3211 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
3212 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय उसके ऊपर रखता है।

राहत लाओ3213 जैसे दबा हुआ खजाना,3214
निर्भयता से भरे हुए हैं, जैसे शेर होता है।

अभिमानी3216 हाथी-राजा की तरह।" (15) [3691]

उन दस छंदों से प्रशंसा करने के बाद
महान प्रसिद्धि के पद्ममुत्तरा
गुरु के चरणों की पूजा करने के बाद, मैं चुपचाप खड़ा रहा। (16) [3692]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
भिक्षुओं के बीच खड़े शिक्षक
सभा ने तब ये आयतें पढ़ीं: (17) [3693]

जिसने मेरी नैतिकता की प्रशंसा की,
मैं अपने ज्ञान और शिक्षण के आधार पर उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (18) [3694]

वह साठ हजार युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेगा। अन्य देवताओं पर विजय प्राप्त करते हुए,
वह शासन करेगा। (19) [3695]

इसके बाद, अपने पुण्यमय मूल से प्रेरित होकर, वह भगवान गौतम के विधान में आगे बढ़ेगा। (20) [3696]

आगे बढ़ते हुए, बचते हुए
उसके शरीर के साथ किए गए बुरे कर्म3217, उसके सभी दोषों को नष्ट करते हुए,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा,3218 बेदाग।" (21) [3697]

"जैसे कोई बादल गरजते हुए इस दुनिया की [बारिश की] प्यास बुझाता है,"
आपने भी ऐसा ही किया, महान नायक!
मुझे अपनी गर्जना से तृप्त करो। (22) [3698]

नैतिकता, ज्ञान की प्रशंसा करते हुए,
शिक्षण और विश्व के नेता,

3213 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
3214 sampahaŋsitā
3215 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।
3216 chettā
3217 sotā
3218 pasaŋsitā

मुझे परम शांति प्राप्त हुई।
निर्वाण, अविचल अवस्था। (23) [3699]

अतः अब वास्तव में भगवान,

वह मनमोहक आकृति लंबे समय तक बनी रहे;
[लोगों]3219 को यह सीखना चाहिए कि [अब] क्या ज्ञात है,3220
और [उन्हें] अमर अवस्था प्राप्त करनी चाहिए।3221 (24) [3700]

यह मेरा आखिरी प्रयास है;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं [अब] जीवित हूँ, बेदाग। (25) [3701]

एक लाख युगों में
क्योंकि मैंने [उस समय] बुद्ध की प्रशंसा की थी, इसलिए मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यह बुद्धों की प्रशंसा का फल है। (26) [3702]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (27) [3703]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना3222
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [3704]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [3705]

इस प्रकार पूज्य सब्बकित्तिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सब्बकित्तिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

3219 akhilo
3220 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है
3221 anīgho
3222 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"

---

391. {394.}3223 मधुदायक3224

सिंधु नदी के किनारे मेरा एक सुंदर आश्रम था।
There3225 मैं छात्रों को निर्देश दे रहा हूँ
इतिहास और [संकेतों को पढ़ने] में। (1) [3706]

वे सिंधु नदी की ढलानों पर रहते थे।
शिक्षाओं की इच्छा रखने वाले,3226 विद्वान लोग,3227
वैदिक विज्ञान में स्नातकोत्तर,3228
अच्छी शिक्षा सुनना चाहते हैं.3229 (2) [3707]

वे व्याख्या करने में कुशल थे3230
शकुन और संकेतों को पढ़ना।3231
जीवन के अंतिम अर्थ की खोज में,
फिर वे जंगल में रहने लगे। (3) [3708]

उस समय सुमेधा नामक सम्बुद्ध संसार में प्रकट हुए। हम पर दया से भरकर,
[बुद्ध, मार्गदर्शक] 3232 हमारे पास आए। (4) [3709]

घास से चटाई बनाना3233
विश्व के नेता सुमेधा के लिए,
वह महान नायक जो पास आ रहा था,
मैंने इसे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को दे दिया। (5) [3710]

मैंने जंगल से शहद लाकर सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया।
संबुद्ध ने उपभोग कर लिया था
[इसने] [उस समय हमसे] ये शब्द कहे: (6) [3711]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3223 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3224 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3225 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3226 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3227 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3228 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3229 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3230 लिट., "गया"
3231 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3232 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3233 शाब्दिक रूप से, "योग्य"

जिसने मुझे यह शहद दिया,
अपने हाथों से किए गए कार्यों से [अच्छी तरह संतुष्ट होकर], मैं उनके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (7) [3712]

इस शहद देने की वजह से, और घास की चटाई की वजह से, तीस हजार युगों तक वह
देवताओं के संसार में आनंदित होगा। (8) [3713]

तीस हजार युगों के बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (9) [3714]

उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी , धम्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (10) [3715]

देवताओं के लोक से यहाँ आकर, जब मैं अपनी माँ के गर्भ के पास पहुँचा, तब शहद की वर्षा हुई;3234
पृथ्वी शहद से ढकी हुई थी।3235 (11) [3716]

जब मैं गर्भ से बाहर आ रहा था, मानो बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से,3236 तभी शहद की बारिश हुई
मेरे लिए लगातार बारिश हो रही है। (12) [3717]

घर छोड़कर मैं बेघर हो गया।
मुझे 3237 खाद्य पदार्थ और पेय प्राप्त हो रहे हैं:
शहद देने का यही फल है। (13) [3718]

चाहे मैं मनुष्य के रूप में जन्म लूं या दिव्य रूप में, मेरी सभी इच्छाएं पूरी होती हैं।
सिर्फ उस शहद के उपहार की वजह से,

3234 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

3235 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

3236 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

3237 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।3238 (14) [3719]

जब भगवान बारिश कर रहे होते हैं, मैं हमेशा चार उंगल ऊँची घास पर पवित्र और सुखी रहता हूँ।
या3239 एक पेड़ से ढका हुआ3240 जो पूरी तरह से खिल गया है,3241
एक खाली घर में, एक मंडप में, [या] पेड़ की जड़ में।3242 (15-16) [3720]3243

मैंने अस्तित्व के सभी पहलुओं पर विजय प्राप्त कर ली है।
बड़ा [या] छोटा [या] मध्यम.3244
आज मैं दोषों से मुक्त हूँ;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (17) [3721]

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से तीस हजार युगों में मैंने कभी भी पुनर्जन्म का अनुभव नहीं किया है:
शहद देने का यही फल है। (18) [3722]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (19) [3723]

बुद्ध की उपस्थिति में मेरा होना3245
यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [3724]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [3725]

इस प्रकार पूज्य मधुदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मधुदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

3238 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

3239 लिट., "एक फूल पर"

3240 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

3241 khiḍḍāratiyaÁ

3242 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

3243 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

3244 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

3245 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

---

392. {395.}3246 पदुमकुतागारिया3247

पियादस्सी, भगवान
स्वयं एक हो जाओ, विश्व नेता, एकांत प्रेमी, संबुद्ध
ध्यान में निपुण, ऋषि थे। (1) [3726]

जंगल में एक उपवन में प्रवेश करते हुए, महान ऋषि पियादस्सी ने चिथड़ों से बने अपने वस्त्रों को फैलाया।
बैठ गया, परम व्यक्ति। (2) [3727]

मैं उस समय जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।3249
मैं लगभग 3250 मीटर पीछे घूम रहा था
फिर, चित्तीदार3251 हिरण की खोज। (3) [3728]

[तब] मैंने वहाँ संबुद्ध को देखा, बाढ़ पार करने वाले, निष्कलंक, एक भव्य साल के पेड़ की तरह खिले हुए।
जैसे उदय हुआ सौ किरणों वाला [सूर्य]। (4) [3729]

देवताओं के देव, महान ख्यातिप्राप्त पियादस्सी को एक प्राकृतिक झील में प्रवेश करते हुए देखकर,
मैं तब कुछ कमल लेकर आया था। (5) [3730]

उन सौ पंखुड़ियों वाले सुंदर कमलों को लाने के बाद, एक छज्जे वाली झोपड़ी बनाने के बाद, मैंने
[तब] इसे कमलों से ढक दिया। (6) [3731]

दयालु, करुणामयी, पियादस्सी, महान ऋषि
बुद्ध ने सात रात और सात दिन तक यह यात्रा की।
विक्टर उस छज्जे वाली झोपड़ी में रहता था। (7) [3732]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3246 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

3247 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

3248 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3249 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

3250 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

3251 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

पुराने [कमलों] को फेंकते हुए,
मैंने [तब] इसे नए से ढक दिया।
मैं उस पूरे समय वहीं खड़ा रहा।
हाथों को आपस में जोड़कर [पूजा में]। (8) [3733]

ध्यान से उठते हुए, महान ऋषि पियादस्सी सभी दिशाओं में देख रहे हैं।
विश्व का नेता बैठ गया। (9) [3734]

उस समय सुदस्सन3252 बुद्ध के शक्तिशाली सेवक थे। वे बुद्ध, गुरु पियादस्सी के विचारों को जानते थे।
अस्सी हजार सिद्ध भिक्षुओं से घिरे हुए, वह विश्व नेता के पास गए।
जंगल में खुशी से बैठे।3253 (10-11) [3735-3736]

उस वन में निवास करने वाले सभी देवता, बुद्ध के विचारों को जानते हुए,
फिर वहाँ एकत्रित हुए। (12) [3737]

जब आत्माएं, कुंभण्ड और राक्षस एक साथ आए, और भिक्षुओं की सभा पहुंची,
विजेता ने ये पद कहे: (13) [3738]

"जिसने एक सप्ताह तक मेरी उपासना की और मेरे लिए निवास स्थान बनाया,
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (14) [3739]

मैं अपने ज्ञान के माध्यम से उन बातों का वर्णन करूंगा जिन्हें बताना बहुत कठिन है, जो गहरी, बहुत सूक्ष्म और अच्छी तरह से समझाई गई हैं;
आप सब मेरी बात सुनो: (15) [3740]

चौदह युगों तक [यह] देवताओं पर शासन करेगा।
वे उन्हें आकाश में ले जाएंगे

3252 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3253 लिट., "गया"
3254 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3255 लिट., "गिर गया"
3256 लिट., "योग्य"

उसके लिए एक ऊँची छत वाली झोपड़ी,
कमल के फूलों से अच्छी तरह ढका हुआ:
यह पूर्व कर्मों का फल है। (16) [3741]3257

चौबीस सौ 3258 युगों के लिए

वह इधर-उधर जन्म लेगा।3259
फूलों से बना एक उड़ता हुआ महल32603261
वहाँ आकाश में ले जाया जाएगा। (17) [3742]

जैसे कमल के पत्ते की सतह पर पानी नहीं चिपकता, वैसे ही अशुद्धियाँ भी नहीं चिपकतीं।
[इस ज्ञान का धारक]। (18) [3743]

यह वाला, 3262 को चकनाचूर करने के बाद
पाँच बाधाएँ3263 [अपने] मन से, इरादे को जन्म देते हुए,3264 घर से निकलते हुए वह त्याग देगा; उसके बाद पुष्पमय महल
ले जाया जा रहा है, आगे बढ़ेगा। (18e-f, 19) [3744]3265
जब वह किसी पेड़ के नीचे निवास कर रहा होता है, या जब उसकी जागरूकता तीव्र होती है,3266 तब फूलों से बना वह महल दिखाई देता है
उसके सिर पर ले जाया जाएगा। (20) [3745]

वस्त्र, दान, भोजन, आवश्यक वस्तुएँ और रहने के स्थान प्रदान करने के बाद
भिक्षुओं की सभा को,3267
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (21) [3746]

गैबल वाली झोपड़ी के साथ actions3268 के माध्यम से,

3257 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

3258 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

3259 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

3260 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

3261 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

3262 लिट., "एक फूल पर"

3263 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

3264 khiḍḍāratiyaÁ

3265 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

3266 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"

3267 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

3268 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

मैं दीक्षा लेने के लिए आगे बढ़ा;3269
जब मैं किसी पेड़ के नीचे बैठा होता हूँ,

गैबल वाली झोपड़ी मेरे लिए ले जाई गई है। (22) [3747]

मुझमें इरादों का कोई अस्तित्व नहीं है।
भिक्षा के रूप में वस्त्र या भोजन प्राप्त करने के लिए। मेरे कर्म के संबंध में।
मैं [दोनों] पहले से तैयार कर लेता हूँ। (23) [3748]

मैंने अनगिनत लाखों युगों तक जीवन व्यतीत किया है, जिनकी गिनती करना असंभव है।
वे मेरे लिए व्यर्थ ही बीत गए;3274
विश्व-नेताओं को मुक्त कर दिया गया है।3275 (24) [3749]

अठारह सौ युग पहले पियादस्सी नामक मार्गदर्शक रहते थे। उनकी लगन से सेवा करने के बाद,3276
मैं इस [वर्तमान] गर्भ में आया। (25) [3750]

यहाँ3277 मैंने3278 संबुद्ध अनोमा को देखा,3279 पाँच आँखों वाले। [फिर] उनके पास जाकर, मैं
बेघर जीवन में आगे बढ़ गया। (26) [3751]

रोग के अंत करने वाले, विजय प्राप्त करने वाले बुद्ध ने मुझे मार्ग का उपदेश दिया। उनके उपदेश सुनने के बाद,
मुझे अमर अवस्था का अहसास हुआ। (27) [3752]

उन्हें प्रसन्न करके, संबुद्ध, गौतम, शाक्यों के श्रेष्ठ बैल,
सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं [अब] निष्कलंक होकर जीवित हूँ। [3753]

अठारह सौ युगों में

3269 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3270 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3271 pariḷāho
3272 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3273 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
3274 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3275 samādhikusalo ahaŋ
3276 iddhipādesu kovido
3277 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
3278 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3279 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
3280 mahābhisakkasaṅkāso

जब से मैंने बुद्ध की पूजा की है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (29) [3754]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (30) [3755]

बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (31) [3756]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (32) [3757]

इस प्रकार पूज्य पद्मकूटागरिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पद्माकुटागरिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

393. {396.}3282 बक्कुला3283

हिमालयी क्षेत्र में,
शोभिता नाम का एक पर्वत है। मेरा सुव्यवस्थित आश्रम
इसका निर्माण [मेरे] स्वयं के छात्रों द्वारा [वहाँ] किया गया था। (1) [3758]

वहाँ कई छतरियाँ थीं,3284
और फूलदार चीनी पवित्र वृक्ष।3285
वहाँ बहुत सारे लकड़ी के सेब के पेड़ थे3286,3287

3281 dosavyādhitikicchako
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3282 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3283 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3284 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3285 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3286 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

3287 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

और जीवजीवक 3288 खिले हुए हैं। (2) [3759]

वहाँ बहुत से निग्गुंडी के पेड़ थे, बेर, आंवला, फारुसका और लौकी भी थीं।
और सफेद कमल3295 खिले हुए फूल। (3) [3760]

वहाँ आलका और बेल3296 थे , केला3297 और नींबू3298 के पेड़ भी थे; वहाँ बहुत सारा गन्ना3299 था, अर्जुन3300 और पियांगुक 3301 (4) [3761]

नीम,3302 सलाला ,3303 पीला
चीज़वुड्स,3304 बरगद,3305 वुड-एप्पल के पेड़,3306
मेरा आश्रम भी कुछ ऐसा ही था;
मैं तब अपने छात्रों के साथ वहाँ रहता था। (5) [3762]

अनोमादस्सी, हे भगवान!
स्वयं को एक करने वाला, विश्व नेता, एकांत स्थान की तलाश में है,
[तब] मेरे आश्रम में आ गया। (6) [3763]

जब महान नायक पास आया,3307
महान प्रसिद्धि के अनोमादस्सी

3288 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3289 शाब्दिक रूप से, "गया"
3290 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3291 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3292 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3293 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3294 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3295 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3296 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
3297 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3298 लिट., “एक फूल पर”
3299 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

3300 khiḍḍāratiyaÁ
3301 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3302 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
3303 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
3304 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”
3305 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3306 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
3307 pariḷāho

अचानक [कुछ] आंतरिक दर्द,3308
जगत के स्वामी के लिए उठ खड़ा हुआ। (7) [3764]

आश्रम में घूमते हुए,
मैंने विश्व के नेता को देखा। सम्बुद्ध, नेत्रपूर्ण, महान प्रसिद्धि वाले, के पास जाकर और उनके आचरण को देखकर,3309
मैंने उस समय उसका निदान किया था: "निस्संदेह [कुछ] बीमारी है।"
बुद्ध के भीतर जन्म हुआ है।” (8-9) [3765-3766] चिकित्सा का अभ्यास करने की इच्छा रखते हुए,
मैं वापस आश्रम की ओर भागा।
मेरे छात्रों की उपस्थिति में,
फिर मैंने अपने सभी छात्रों को संबोधित किया। (10) [3767]

सभी छात्र सम्मानजनक थे; मेरी बात सुनने के बाद, वे एक समूह में एकत्रित हो गए।
मैं, जिसने शिक्षक का सम्मान किया। (11) [3768]

पहाड़ पर तेजी से चढ़ने के बाद,
मैंने सभी औषधीय जड़ी-बूटियाँ एकत्र कर लीं।
उन्हें तरल में बदलना,3313
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (12) [3769]

जब महान नायक ने 3314 [इसे] ग्रहण किया, सर्वज्ञ, विश्व नेता,
जल्दी ही [उस] बीमारी3315 को दबा दिया गया3316
अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए, महान ऋषि। (13) [3770]

उसकी पीड़ा दूर होते देख,3317
महान ख्याति प्राप्त अनोमादस्सी, अपनी सीट पर बैठने के बाद,
उन्होंने [उस समय हमसे] ये छंद कहे: (14) [3771]

“जिसने मुझे दवा दी”

3308 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3309 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3310 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

3311 samādhikusalo ahaŋ

3312 iddhipādesu kovido

3313 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

3314 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

3315 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।

3316 mahābhisakkasaṅkāso

3317 dosavyādhitikicchako

और [इस प्रकार] मेरी बीमारी से मुझे राहत मिली, मैं उनके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (15) [3772]

वह एक लाख युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेगा।
जब वहां वाद्ययंत्र 3318 बजाए जाते हैं,
यह व्यक्ति लगातार रोमांचित रहेगा। (16) [3773]

अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर, वह मनुष्यों की दुनिया में आकर, हजार बार प्रार्थना करेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (17) [3774]

पचपनवें युग में [अतः]
वह राजा होगा3319 जिसका नाम अनोमा होगा,3320 गुलाब-सेब के उपवन का स्वामी,3321 चारों दिशाओं में विजयी।3322 (18) [3775]

एक शक्तिशाली, चक्र घुमाने वाला राजा, सात रत्नों का स्वामी।
वह संप्रभुता का प्रयोग करेगा।
आकाश को भी हिला देने वाला।3323 (19) [3776]

चाहे वह मनुष्य के रूप में जन्म ले या दिव्य रूप में, वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसमें बहुत कम रोग होंगे।
अपनी संपत्ति त्यागते हुए,3324
वह दुनिया में 3325 बीमारियों से ऊपर उठ जाएगा। (20) [3777]

अब से अनगिनत युगों बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (21) [3778]

उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी , धम्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।” (22) [3779]

3318 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

3319 दिट्ठिगण्ड°

3320 लोकापज्जोटो

3321 sanarāmarasakkato

3322 नारदिक्को
3323 लिट., “में”
3324 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3325 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

अपने सभी दोषों को जलाकर वह आसक्ति की बाढ़ को पार करेगा। वह गुरु का अनुयायी होगा।
[भिक्षु] जिसका नाम बक्कुला है। (23) [3780]

यह सब जानकर, शाक्य वंश के श्रेष्ठ गौतम, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए...
उसे उस प्रमुख स्थान पर स्थापित करेगा।”3326 (24) [3781]

अनोमादस्सी, हे भगवान!
स्वयं को एक करने वाला, विश्व नेता, एकांत स्थान की तलाश में है,
मेरे आश्रम में आया [उस समय]। (25) [3782]

मैंने सभी औषधीय जड़ी-बूटियों के साथ उस महान नायक की सेवा की जो मेरे पास आए थे, सर्वज्ञानी, विश्व नेता।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (26) [3783]

मैं उस बीज की फसल को खर्च करने की शुरुआत भी नहीं कर सकता जिसे अच्छी तरह से बोया गया था, उस कर्म का फल जो मैंने उसके लिए अच्छा किया था।
बहुत समय पहले मेरे द्वारा किया गया अच्छा काम।3329 (27) [3784]

विश्व के नेता को देखने वाले मुझे अच्छा लाभ प्राप्त हुआ; उस कार्य के शेष भाग के माध्यम से,
मुझे अमर अवस्था का अहसास हुआ। (28) [3785]

यह सब जानकर, शाक्य वंश के श्रेष्ठ गौतम, भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
[ने] उस प्रमुख स्थान पर रखा है। (29) [3786]

युगों की विशाल संख्या में
मैंने उस समय जो कर्म किया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह औषधि का फल है। (30) [3787]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (31) [3788]

3326 महास्सादंग
3327 महरसंग
3328 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
3329 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

---

बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (32) [3789]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (33) [3790]

इस प्रकार पूज्य बक्कुला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बक्कुला थेरा की कथा का अंत हो गया है।

---

394. {397.}3330 गिरीमानन्द3331

मेरी पत्नी का देहांत हो गया था, मेरा बेटा कब्रिस्तान गया था;
मैंने एक ही चिता पर खुद को जलाया था
[मेरी] माँ, पिता और भाई। (1) [3791]

मैं उस दुःख से व्याकुल हो गया था, मैं कमजोर और पीला पड़ गया था और मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गया था।
उस दुःख के कारण बहुत पीड़ा हुई। (2) [3792]

दुःख के तीर से घायल होकर, मैं जंगल के किनारे तक गया। वहाँ मुझे केवल जंगली फल मिले, जिन्हें खाकर मैं आगे बढ़ा।
मैं एक पेड़ की तलहटी में रहता था। (3) [3793]

सम्बुद्ध ने सुमेधा नाम दिया, विजेता, रोग-सहजता को दूर करने वाला,
मुझे ऊपर उठाने की इच्छा के साथ,
तब वह मेरी उपस्थिति में आया। (4) [3794]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3330 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3331 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3332 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3333 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3334 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

महान ऋषि सुमेधा के चरणों की आहट सुनकर,
मैंने अपना सिर ऊपर उठाया
महान ऋषि पर दृष्टि डाली।3335 (5) [3795]

जब वह महान नायक मेरे पास आया, तब मुझे बहुत खुशी हुई। विश्व नेता को देखकर,
अंततः मेरा मन शांत हो गया। (6) [3796]

होश में आने के बाद,3337
मैंने उसे मुट्ठी भर पत्ते दिए।
तब भगवान [वहाँ] करुणावश बैठ गए, हे दृष्टिवान। (7) [3797]

वहाँ बैठे हुए, भगवान सुमेधा, जगत के नेता, बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया।
जो शोक के तीरों को दूर करता है: (8) [3798]

“अनचाहे3338 [वे]3339 वहाँ से आए हैं3340;
छुट्टी नहीं ले रहे हैं3341 [वे] यहाँ से चले गए हैं। जैसे [वे] आए थे, वैसे ही [वे] चले गए हैं;
उस पर विलाप करने से क्या लाभ है?3342 (9) [3799]

जैसे, जब बारिश हो रही होती है, तो लोग3343 सड़क पर यात्रा कर रहे होते हैं,3344 अपना सामान लेकर,3345 जा रहे होते हैं
[एक जगह जहाँ] बारिश नहीं हो रही है, (10) [3800]

और जब बारिश बंद हो जाती है,

3335 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3336 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3337 शाब्दिक रूप से, "गया"
3338 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3339 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
3340 लिट., “योग्य”
3341 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3342 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

3343 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3344 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
3345 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3346 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

वे अपनी योजना के अनुसार कार्य जारी रखते हैं;
इस प्रकार तुम्हारी माता और पिता भी:3349
उस पर विलाप करने से क्या लाभ है? (11) [3801]

हम सब अजनबी हैं, मेहमान हैं, डगमगा रहे हैं, आगे बढ़ रहे हैं, और कांप रहे हैं।
इस प्रकार तुम्हारे माता-पिता भी:
उस पर विलाप करने से क्या लाभ है? (12) [3802]

जैसे एक सर्प3350 अपनी पुरानी केंचुली को त्यागकर रेंगता है,3351,3352 वैसे ही तुम्हारी माता और पिता भी:
उनके शव3353 यहाँ छोड़ दिए गए हैं।" (13) [3803]

बुद्ध के वचनों को समझते हुए, मैंने दुःख के तीर को हटा दिया। सुख उत्पन्न करते हुए, मैंने
सर्वश्रेष्ठ बुद्धों की पूजा की। (14) [3804]

महान हाथी की पूजा,3355
मैंने 3356 सुमेधा, नेता की पेशकश की
दुनिया का, फूलों का एक डंठल3357
दिव्य सुगंध से परिपूर्ण। (15) [3805]

संबुद्ध की पूजा करने के बाद, अपने हाथों को अपने सिर पर रखकर, उनके प्रमुख गुणों का स्मरण करते हुए,
मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की: (16) [3806]

"महान नायक, आप ही वह हैं जिन्होंने 3359 को पार किया है।"
सर्वज्ञ, विश्व-नेतृत्वकर्ता। आप समस्त प्राणियों का उत्थान कर रहे हैं।
हे महान ऋषि, आपके ज्ञान से। (17) [3807]

आपने सारी उलझन दूर कर दी

3347 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3348 khiḍḍāratiyaÁ
3349 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3350 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3351 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3352 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

3353 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3354 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
3355 pariḷāho
3356 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3357 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3358 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3359 samādhikusalo ahaŋ

और संदेह भी, हे महान ऋषि। आप मुझे मार्ग दिखा रहे हैं।
हे दृष्टिवान, आपके ज्ञान के माध्यम से। (18) [3808]

लक्ष्य प्राप्त कर चुके अरहंत, 3361 छह ज्ञान धारक, शक्तिशाली, 3362 आकाश में विचरण करने वाले बुद्धिमान,
हर समय आपको घेरे रहते हैं। (19) [3809]

आपके अनुयायी फल दे रहे हैं।
जिन्होंने उपलब्धि प्राप्त कर ली है;3364 और जो प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं;3365
आपके अनुयायियों की संख्या लगातार बढ़ रही है।
जैसे सूर्योदय के समय कमल [फूल].3366 (20) [3810]

जैसे सागर3367 अविचलित, अद्वितीय और पार करना कठिन है, वैसे ही तुम भी हो, हे नेत्रपूर्ण।
ज्ञान से परिपूर्ण, अनंत।” (21) [3811]

विश्व के विजेता की पूजा करने के बाद,3368
वह दृष्टिभ्रमित, महान प्रसिद्धि वाला, प्रत्येक दिशा की प्रशंसा करने वाला,
झुककर 3369 मैं [वहाँ से] चला गया। (22) [3812]

देवताओं के लोक से गिरते हुए,3370
जन्म-जन्मांतर से गुजरते हुए, मैं अपनी माँ के गर्भ से सचेत और स्मरणशील होकर निकला। (23)[3813]

घर छोड़कर मैं बेघर हो गया। उत्साही,3371 और बुद्धिमान भी।
मैंने ध्यान में चराई की।3372 (24) [3814]

3360 iddhipādesu kovido
3361 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”
3362 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3363 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
3364 mahābhisakkasaṅkāso
3365 dosavyādhitikicchako
3366 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3367 दिट्ठिगण्ड°
3368 लोकपज्जोटो

3369 sanarāmarasakkato

3370 नारदिक्को

3371 लिट., “में”

3372 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

बहुत प्रयास करने के बाद,3373
उस महान ऋषि को प्रसन्न करने के बाद, मैं अब भटक रहा हूँ।
जैसे चंद्रमा बादलों के समूह से मुक्त हो गया हो।3374 (25) [3815]

मैं अब एकांतवास पर दृढ़ संकल्पित हूँ,3375
शांत,3376 पुनर्जन्म के आधार से रहित;3377
सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (26) [3816]

तीस हजार युगों में
जब से मैंने बुद्ध की पूजा की है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (27) [3817]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (28) [3818]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [3819]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [3820]

इस प्रकार पूज्य गिरिमानंद थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गिरिमानंद थेरा की कथा का अंत हो गया है।

3373 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

3374 महास्सादंग

3375 महरसंग

3376 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”

3377 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

3378 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

---

395. {398.}3379 सलामामंदापिया3380

जब काकुसंध का देहांत हुआ,3381 ब्राह्मण, सिद्ध पुरुष,3382 साला इकट्ठा करते हुए 3383 फूल,3384
मैंने एक मंडप का निर्माण किया।3385 (1) [3821]

तावतिंसा जाकर,
मुझे एक आलीशान हवेली मिली।
मैंने अन्य सभी देवताओं को पीछे छोड़ दिया:
यह अच्छे कर्मों का फल है। (2) [3822]

चाहे दिन हो या रात, चलते-फिरते रहूँ या खड़े रहूँ, मैं साला के फूलों से ढका रहता हूँ:
यह अच्छे कर्मों का फल है। (3) [3823]

इसी [वर्तमान] युग 3387 के भीतर
चूंकि मैंने बुद्ध की पूजा की है, इसलिए मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [3824]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (5) [3825]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [3826]

विश्लेषण के चार तरीके,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3379 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

3380 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

3381 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3382 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

3383 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3384 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3385 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3386 शाब्दिक रूप से, "गया"
3387 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3388 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"

और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [3827]

इस प्रकार पूज्य सलामण्डपिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सलामण्डपिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

396. {399.}3389 सब्बदायक3390

विशाल महासागर में तैरता हुआ, मेरा महल [तब] बहुत अच्छी तरह से बनाया गया था।
वहाँ एक तालाब भी था, जो अच्छी तरह से बना हुआ था।
[लाल हंसों की चीखों से भरा हुआ],3392 (1) [3828]

मंडलक 3393 के फूलों और गुलाबी और नीले कमलों से ढका हुआ ।
और वहाँ एक नदी बह रही थी,
सुंदर, उत्कृष्ट किनारों के साथ, (2) [3829]

मछलियों और कछुओं से ढका हुआ,3394
विभिन्न पक्षियों के साथ3395 लगभग फैले हुए,3396
मोरों और बगुले की आवाज़ों से शोरगुल भरा हुआ।3397 [और] बगुले,3398
[और] कोयल जैसी पक्षियों की [पुकार]।3399 (3) [3830]

कबूतर 3400 [और] रवि हंस 3401 [भी],

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3389 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3390 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

3391 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3392 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

3393 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

3394 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

3395 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

3396 शाब्दिक रूप से, "गया"

3397 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

3398 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

3399 शाब्दिक रूप से, "योग्य"

3400 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

3401 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे ऐतिहासिक स्थिति के सुराग हों, फिर भी वे शायद आज की तुलना में अधिक समझने योग्य नहीं रहे होंगे।

रूड्डी गीज़3402 और नादिकारास ,
लैपविंग3403 [और] मैना पक्षी3404 यहाँ हैं, छोटे बंदर,3405 जीवजीवक .3406 (4) [3831]

यह हंसों और बगुले, उल्लू और कई पिंगलों की आवाज़ों से गूंजता है ।
इस रेत में सात रत्न समाहित हैं।
[रत्नों और कीमती मोतियों से भरा हुआ]। (5) [3832]

सोने से बने सभी वृक्षों में तरह-तरह की सुगंध व्याप्त थी।
वे मेरे महल को रोशन कर रहे हैं [वहाँ],
दिन-रात, हर समय। (6) [3833]

सुबह-शाम साठ हजार वाद्य यंत्र बजाए जा रहे हैं। सोलह हजार महिलाएं भी शामिल हैं।
वे लगातार मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (7) [3834]

अपने महल से विदा होकर, हृदय में प्रसन्नता लिए,
मैंने उस महान यशस्वी सुमेधा, विश्व के नेता की पूजा की। (8) [3835]

संबुद्ध का अभिवादन करने के बाद, उन्हें [और] सभा को आमंत्रित करते हुए,3408
तब उस बुद्धिमान व्यक्ति3409 ने आने के लिए सहमति दी।
सुमेधा, विश्व के नेता। (9) [3836]

मुझे धम्म का उपदेश देने के बाद ,3410 महान ऋषि ने [बाद में] विदा ली। संबुद्ध को प्रणाम करने के बाद,
मैं [तब] अपने महल लौट आया। (10) [3837]

मैंने वहां मौजूद सभी लोगों को बुलाया: "आप सभी एक साथ इकट्ठा हो जाओ।

जिसकी मूल रचना की गई थी।

3402 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3403 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
3404 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3405 लिट., "एक फूल पर"
3406 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3407 khiḍḍāratiyaÁ
3408 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3409 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3410 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3411 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "

दिन के पहले भाग में,
बुद्ध महल में आएंगे।" (11) [3838]

"हम, जो आपके आस-पास रहते हैं, हमें कुछ ऐसा मिला है जो हमारे लिए फायदेमंद है।
हम भी पूजा करेंगे
शिक्षक, बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ।" (12) [3839]

खाना-पीना परोसने के बाद, मैंने घोषणा की कि अब समय आ गया है।
विश्व नेता आ गया
एक लाख स्वामी के साथ.3413 (13) [3840]

मैं पाँच लोगों के साथ उससे मिलने गया।
संगीत वाद्ययंत्र [ध्वनि]।
सर्वोच्च व्यक्ति3416 बैठ गया
ठोस सोने से बनी कुर्सी.3417 (14) [3841]

मैंने ऊपर एक चंदवा रखा, 3418, 3419
जो ठोस सोने से बना था;3420
फिर पंखे [इत्र]3421 फैला रहे हैं
भिक्षुओं की सभा के भीतर। (15) [3842]

मैंने भिक्षुओं की सभा को अपने भाषण से मंत्रमुग्ध कर दिया।
बहुत अधिक भोजन और पेय के साथ; मैंने अलग-अलग जोड़े दिए
भिक्षुओं की सभा को वस्त्र 3422। (16) [3843]

जिसे वे सुमेधा कहते थे, संसार की आहुतियों का पात्र,3423 भिक्षुओं की सभा में बैठा हुआ था,
उस समय ये [छह] आयतें बोलीं: (17) [3844]

"जिसने मुझे भोजन और पेय दिया और सभा को भी भोजन कराया,

3412 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3413 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3414 pariḷāho
3415 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3416 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3417 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3418 samādhikusalo ahaŋ
3419 iddhipādesu kovido
3420 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
3421 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3422 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
3423 mahābhisakkasaṅkāso
3424 dosavyādhitikicchako

मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (18) [3845]

अठारह सौ युगों तक वह देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। वह हज़ार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (19) [3846]

चाहे वह किसी भी गर्भ में पुनर्जन्म ले, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ,
ठोस सोने की छत
हमेशा 3425 उसके लिए ले जाया जाएगा। (20) [3847]

तीस हजार युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (21) [3848]

उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी , धम्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। (22) [3849]

भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
तब वह शेर की दहाड़ मारेगा।3426
उनकी चिता पर एक छतरी रखी हुई है;3427
इसके नीचे3428 उसका अंतिम संस्कार किया जाता है।" (23) [3850]

मैंने भिक्षुत्व प्राप्त कर लिया है; मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं। किसी मंडप या वृक्ष की जड़ में,
मुझे जलती हुई गर्मी का ज्ञान नहीं है। (24) [3851]

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से तीस हजार युगों में मैंने कभी भी पुनर्जन्म का अनुभव नहीं किया है:
सब कुछ देने का फल। (25) [3852]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (26) [3853]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

3425 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3426 दिठ्ठिगण्ड°
3427 लोकापज्जोटो
3428 sanarāmarasakkato

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [3854]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [3855]

इस प्रकार पूज्य सब्बडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सब्बडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

397. {400.}3429 अजिता3430

द विक्टर, 3431 पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का स्वामी था।3432

हिमालय में समाहित,
विश्व का नेता बैठ गया। (1) [3856]

मैंने संबुद्ध को नहीं देखा।
मुझे उसकी आवाज भी नहीं सुनाई दी। मेरे खाने के लिए भोजन की तलाश में,
मैं जंगल में भटक रहा था। (2) [3857]

वहाँ मैंने संबुद्ध के दर्शन किए।
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए।3433
बुद्ध को देखकर मुझे यह विचार आया,3434
"यह किस प्रकार का प्राणी हो सकता है?" (3) [3858]

उसके शरीर पर मौजूद निशानों की जांच करते हुए, मुझे अपने लोककथाओं के अध्ययन की याद आ गई।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3429 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3430 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3431 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3432 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3433 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3434 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3435 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3436 शाब्दिक रूप से, "गया"

जो अच्छे शब्द मैंने [एक बार] सुने थे,
से3437 बुजुर्ग3438 बुद्धिमान पुरुष:3439 (4) [3859]

"उनके उस वचन के अनुसार, यह [व्यक्ति] बुद्ध होगा; तो फिर मुझे उसका सम्मान करना चाहिए;
यह मेरी स्थिति को शुद्ध करेगा।"3440 (5) [3860]

जल्दी ही मेरे आश्रम में आ रहा हूँ,
मैंने कुछ भैंस का घी लिया, और उसे ले जाने के लिए एक बर्तन लिया।
मैं [उसके पास] गया, पुरुषों का बैल।3443 (6) [3861]

तीन टांगों वाला [स्टूल] लेकर,3444 मैंने उसे एक खुली जगह में खड़ा कर दिया। [उस स्टूल पर रखे] एक दीपक को जलाकर,
मैंने [बुद्ध] की आठ बार पूजा की। (7) [3862]

सात रात और सात दिन तक बुद्ध, परम पुरुष, वहां विराजमान रहे।
फिर [आखिरी] रात के अंत में,3445
[बुद्ध] विश्व नेता बनकर खड़े हुए। [3863]

खुशी से, अपने दिल में आनंद लिए, मैंने सात रातों और सात दिनों तक रोशनी जलाई।
[बैठे हुए] बुद्ध के लिए वह दीपक,
अपने हाथों से किए गए काम से [बहुत संतुष्ट]। [3864]

जंगलों की सभी मनमोहक सुगंधें3446
गंधमादन पर्वत पर,
बुद्ध की महिमा के माध्यम से3447
फिर विजेता के पास गया। [3865]

3437 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3438 शाब्दिक रूप से, "गिर गया"
3439 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
3440 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3441 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3442 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3443 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
3444 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3445 लिट., “एक फूल पर”
3446 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3447 khiḍḍāratiyaÁ

उस समय सभी वृक्ष खिले हुए थे। बुद्ध की महिमा के कारण
उत्पादित सभी पुष्प सुगंध,3448
उसी क्षण एक में एकत्रित हो गया। [3866]

हिमालय के सभी क्षेत्रों में, नागदेव और गरुड़ दोनों ही शिक्षा सुनने की इच्छा रखते थे।
बुद्ध की उपस्थिति में आया। [3867]

देवला नाम का भिक्षु बुद्ध का प्रमुख सेवक था। उसके एक लाख गुरु थे।
उन्होंने बुद्ध से भी संपर्क किया।3449 [3868]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
[तब] उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कहीं: [3869]

जिसने मेरे लिए दीपक जलाया है,
अपने हाथों से किए गए कार्यों से प्रसन्न होकर, मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: [3870]

साठ हजार युगों तक वह
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा। वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। [3871]

देवताओं के स्वामी के रूप में छत्तीस बार, वह दिव्य शासन का संचालन करेंगे।
पृथ्वी पर सात सौ [गुना] 3450
वह एक विशाल राज्य पर शासन करेगा,3451 [और उसके पास] बहुत सारे स्थानीय शासन होंगे, जिनकी गिनती करना असंभव होगा।[3872]3452

इस दीपक-अर्पण के कारण, उसमें "दिव्य दृष्टि" विकसित होगी।
यह वाला हमेशा देखने वाला है
आठ कोसा 3453 सभी दिशाओं में.3454 [3873]

3448 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3449 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3450 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3451 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
3452 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3453 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3454 pariḷāho

देवताओं के लोक से पतित होकर, जब इस व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, चाहे दिन में हो या रात में,
उसके लिए एक दीपक ले जाया जाएगा। [3874]

जब इस व्यक्ति का 3455वां पुनर्जन्म होता है, तो वह अच्छे कर्मों का स्वामी होता है,
वह [दुनिया को] रोशन करेगा
पूरे शहर में जहाँ वह है। [3875]

वह जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता है, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, उसके द्वारा किए गए दीपक अर्पण के कारण।
उन आठ दीपों के फल के कारण, लोग इस एक दीप से आगे नहीं बढ़ पाएंगे:

यही दीपक देने का फल है। [3876]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। [3877]

उस व्यक्ति के धम्म का योग्य उत्तराधिकारी , धम्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। [3878]

उन्हें प्रसन्न करके, संबुद्ध, गौतम, शाक्यों के श्रेष्ठ बैल,
वह गुरु का अनुयायी होगा।
और उसका नाम अजिता होगा। [3879]

साठ हजार युगों तक मैं
देवताओं की दुनिया में आनंदित।
उस स्थान पर भी मेरे सौ दीपक हैं
हर समय [तेजी से] जल रहे हैं।3456 [3880]

देवताओं के लोक में हो या मनुष्यों के लोक में, मेरी [स्वयं की] दीप्ति3457 फैलती है। सर्वश्रेष्ठ बुद्ध का स्मरण करते हुए,
मैं अत्यधिक हंसी उत्पन्न करता हूँ। [3881]

तुसिता स्वर्ग से गिरते हुए,
मैं मां के गर्भ से बाहर आया।

3455 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3456 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
3457 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

जब वह व्यक्ति 3458 पैदा हो रहा था, तब [हमेशा] बहुत प्रकाश था। [3882]

घर छोड़कर मैं बेघर हो गया। बावरी जाकर,
मैं उनका छात्र बनने के लिए सहमत हो गया।3459 [3883]

हिमालय में रहना,
मैंने वर्ल्ड-लीडर 3460 के बारे में सुना। परम अर्थ की खोज में,
मैंने [बुद्ध], मार्गदर्शक से संपर्क किया।3461 [3884]

वश में करने वाला, बुद्ध, वश में करने वाला, बाढ़ पार करने वाला, पुनर्जन्म से परे, 3462 बुद्ध ने निर्वाण के बारे में बात की।
सभी बीमारियों से मुक्ति। [3885]

उनका मेरे पास आना सफल रहा;

मैंने महान ऋषि का सत्कार किया। तीनों ज्ञान प्राप्त करने के बाद,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [3886]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उसे वह दीपक दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यही दीपक देने का फल है। [3887]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (26) [3888]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [3889]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [3890]

3458 samādhikusalo ahaŋ
3459 iddhipādesu kovido
3460 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"
3461 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3462 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

इस प्रकार पूज्य अजिता थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अजिता थेरा की कथा का अंत हो गया है।
सारांश: पिलिंडावाचा3463 और सेला,
सब्बाकिट्टी, मदुंददा, कुतागारी और बक्कुला, गिरि, सलसासावहया,3464
सब्बादा और अजिता भी:
यहां आयतों की संख्या एक सौ पांच है और इसके अलावा बीस और हैं।

पिलिन्दवच्चा3465 अध्याय, चालीसवाँ।
इसके बाद पद्म और आरक्खड़ अध्यायों का सारांश है।
उम्मा और गंधोदेकेना, एकपदमा, सद्दासानि, मंदारम, बोधियावंदका, अवनंद और पिलिंडी [भी]।
और इन आयतों की भी गिनती की गई है, ग्यारह सौ आयतों के अलावा चौहत्तर आयतें।

दस अध्याय3466 जिन्हें पदुमा कहा जाता है।

चौथा सौ3467 समाप्त हो गया है।

मेत्तेय्या अध्याय, इकतालीसवाँ

---

398. {401.}3468 तिसामेटेय्य3469

शोभिता नामक तपस्वी
वह पहाड़ों के बीच रहता था।

3463 mahābhisakkasaṅkāso
3464 dosavyādhitikicchako
3465 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3466 दिठ्ठिगण्ड°
3467 लोकापज्जोटो
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3468 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3469 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

पर्वत की ढलान के शीर्ष के पास,
केवल जंगली फल खाकर [जो उसे मिले]। (1) [3891]

कुछ आग और लकड़ी लाने के बाद, मैं इसे प्रज्वलित कर रहा हूँ।
अंतिम लक्ष्य की तलाश में
ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेना। (2) [3892]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
मुझे ऊपर उठाने की इच्छा के साथ,
तब वह मेरी उपस्थिति में आया। (3) [3893]

[पदुमत्तरा बुद्ध]:
"हे पुण्यवान, तुम क्यों परिश्रम कर रहे हो? मुझे आग और लकड़ी दो। मैं आग की पूजा करूँगा।"
यह मेरे लिए 3471 पवित्रता होगी।" (4) [3894]

[नायक]:
आप बहुत भाग्यशाली हैं, महोदय।
हे दिव्यात्मा, आप समझते हैं।3473
आप मेरे लिए आग बुझा दें;
तो यहाँ आग [और] लकड़ी है।" (5) [3895]

उसके बाद, विक्टर ने लकड़ियाँ लेकर, लकड़ियों को जलाए बिना आग को प्रज्वलित किया:
महान ऋषि द्वारा रचित एक चमत्कार। (6) [3896]

[पदुमत्तरा बुद्ध]:
"तुम्हारी यह आग नहीं जल रही है;
आपकी भेंट का कोई अस्तित्व नहीं है;
तुम्हारी यह प्रतिज्ञा अर्थहीन है;
तुम्हें मेरी इस अग्नि की पूजा करनी चाहिए।" (7) [3897]

[नायक]:
"हे महान नायक, यह कैसी आग है?"

3470 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3471 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3472 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3473 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3474 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3475 lit., "गया"

क्या आप उसी के बारे में बात कर रहे हैं? आपको मुझे भी इसके बारे में बताना चाहिए;
हम दोनों तुम्हारी उस [अग्नि] की पूजा करेंगे।" (8) [3898]

[पदुमत्तरा बुद्ध]: "कारणों सहित वस्तुओं का अंत, दोषों का भस्म होना, और क्रोध और घृणा का त्याग करना:
वे तीनों चीजें मेरी भेंट हैं।" (9) [3899]

[नायक]:
"हे महान वीर, आप किस प्रकार के हैं? हे सुखी, आपका कुल क्या है? अभ्यास करने की आपकी विधि क्या है?"
यह मुझे बेहद प्रसन्न करता है।" (10) [3900]

[पदुमत्तरा बुद्ध]:
"मैं योद्धा 3476 वंश में जन्मा हूँ, विशेष ज्ञान का स्वामी हूँ। सभी दोष समाप्त हो चुके हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा।" (11) [3901]

[नायक]:

"यदि आप बुद्ध हैं, सर्वज्ञानी हैं,3477
प्रकाश-निर्माता,3478 अंधकार-निवारक,3479 [तब] मैं आपकी स्तुति करूँगा3480 हे दिव्य;3481 आप रोग के अंतकर्ता हैं।" (12) [3902]

मैंने अपनी हिरण की चमड़ी की चादर बिछाकर उसे बैठने के लिए जगह दी।
"हे सर्वज्ञ, कृपया वहीं बैठिए;
[और] मैं [तब] आपकी सेवा करूंगा।" (13) [3903]

भगवान बुद्ध वहाँ बैठ गए।
उस हिरण की चमड़ी पर, अच्छी तरह फैला हुआ। सम्बुद्ध को आमंत्रित करते हुए,
फिर मैं पहाड़ों में चला गया। (14) [3904]

3476 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3477 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3478 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3479 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3480 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3481 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

कंधे पर रखे बैग को भर लेने के बाद,3482
मैं कुछ जंगली मैंगोस्टीन3483 फल लाया। इसे शहद के साथ मिलाकर,
मैंने वह फल बुद्ध को दिया। (15) [3905]

जब मैं [उसके बारे में] ध्यान कर रहा था,
फिर विजेता ने [वह फल] खा लिया।
विश्व नेता को निहारते हुए मुझे वहाँ आनंद मिला। (16) [3906]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
मैं अब भी अपनी कुटिया में बैठा हूँ।
[तब] मेरे बारे में ये आयतें बोलीं: (17) [3907]

[पदुमत्तरा बुद्ध]:
"जिसने मुझे [यह फल] खिलाया, मैं उसके हाथों से [बहुत प्रसन्न होकर] उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (18) [3908]

पच्चीस बार [भविष्य में,]
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा।

वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (19) [3909]

उसके लिए, जो अपने पूर्व कर्मों से ग्रसित है और अपने विचारों को भलीभांति समझता है,
वहाँ भोजन, पेय पदार्थ, कपड़े और बिस्तर होंगे जो बहुत महंगे होंगे। (20) [3910]

वह अपने अच्छे कर्मों के अनुसार बार-बार पुनर्जन्म लेगा;3484 वह सुखी होगा।
और हमेशा कष्ट से मुक्त। (21) [3911]

वह जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म ले, चाहे वह मानव रूप हो या दिव्य रूप, हर स्थान पर सुखी रहे।
वह मानव अवस्था को प्राप्त करेगा। (22) [3912]

एक विद्वान [और] मंत्र-ज्ञाता,3486

3482 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
3483 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3484 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"
3485 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3486 khiḍḍāratiyaÁ

तीनों वेदों के ज्ञाता,
संबुद्ध के पास पहुँचने पर,
वह अरहंत बनने जा रहा है।" (23) [3913]

[नायक]:
जहां तक मुझे अपने जीवन की याद है,
जब तक मुझे ज्ञान प्राप्त है, मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है:
फल देने का फल यही है। (24) [3914]

सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करके मैंने अपनी समस्त कामवासना और घृणा का नाश कर दिया;
सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (25) [3915]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (26) [3916]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [3917]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [3918]

इस प्रकार पूज्य तिस्सा-मेत्तेय्या थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिस्सा-मेत्तेय्या थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

399. {402.}3487 पुणक3488

स्वयंभू, अजेय, बुद्ध, जो एक बीमारी से ग्रसित थे,
वह पहाड़ों के बीच रहता था।
पर्वत ढलान के शीर्ष के पास। (1) [3919]

मेरे आश्रम के चारों ओर [वहाँ,]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3487 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3488 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

जब बुद्ध का निधन हो रहा था,3489
हर समय चीख-पुकार मची रहती थी।
हर समय [तेज रोशनी] थी। (2) [3920]

उस पूरे वन क्षेत्र में सभी भालू3490 और भेड़िये,3491 कारा बाना भालू,3492 बाघ3493 और शेर भी,
हर समय जोर-जोर से दहाड़ रहे हैं। (3) [3921]

उन अजीबोगरीब अपशकुनों को देखने के बाद3494
मैंने पहाड़ की ढलान पर चढ़ाई की।
वहाँ मैंने [उन्हें] देखा, संबुद्ध, अजेय, एक भव्य साल के पेड़ की तरह खिले हुए, देह त्यागते हुए।
जैसे सौ किरणों वाला उगता हुआ सूर्य, कोयले की तरह चमकता हुआ (जो अभी भी गर्म है),
3497 अजेय का निधन हो गया। (4-5) [3922-3923]

इसे घास और लकड़ियों से भर देना,
फिर मैंने वहाँ उसके लिए एक चिता बनाई। उस सुव्यवस्थित चिता को बनाने के बाद,
मैंने [बुद्ध के] शव का दाह संस्कार किया। (6) [3924]

मैंने उसके शव का अंतिम संस्कार कर दिया था,
मैंने वहाँ सुगंधित जल छिड़का। आकाश में खड़ी एक आत्मा3498
मेरे लिए हमेशा के लिए एक नाम तय कर दिया: (7) [3925]

“वह कर्तव्य आपने महान ऋषि, स्वयं-स्वरूप के लिए पूरा किया था।

3489 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3490 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3491 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3492 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3493 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3494 शाब्दिक रूप से, "गया"
3495 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3496 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3497 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
3498 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"
3499 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

हे ऋषि, आप सदा ऋषि ही रहेंगे।
नाम दिया गया “पूर्ण एक”3500 [प्रत्येक जीवनकाल में]।” (8) [3926]

उस शरीर से गिरने के बाद,
मैं देवताओं के लोक में गया।
वहाँ एक दिव्य रूप से निर्मित इत्र है3501
तब आकाश में उत्सर्जित होता है। (9) [3927]

उस [देवताओं के संसार] में भी
मुझे दिया गया नाम “पूरा नाम” था।3502
चाहे जन्म से मनुष्य हो या दिव्य,
मैं अपने सभी इरादों को पूरा करता हूँ। (10) [3928]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।3503
और यहाँ भी “पूरा वाला” है
मुझे दिया गया नाम [जो] सुप्रसिद्ध है। (11) [3929]

शाक्यों के श्रेष्ठ पुरुष, गौतम संबुद्ध को सभी दोषों का भली-भांति ज्ञान रखते हुए भी, उन्होंने उनका मनोरंजन किया।
मैं अब भी बेदाग़ हूँ। (12) [3930]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
शव के लिए कर्तव्यों का फल। (13) [3931]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। अपने सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (14) [3932]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [3933]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [3934]

3500 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3501 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
3502 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3503 लिट., “एक फूल पर”

इस प्रकार पूज्य पुण्णक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुण्णक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

400. {403.}3504 Mettagu3505

हिमालयी क्षेत्र में,

अशोक नाम का एक पर्वत है।3506
उस स्थान पर मेरा आश्रम था, जिसका निर्माण विस्साकम्मा ने करवाया था।3507 (1) [3935]

सम्बुद्ध का नाम सुमेधा था,
प्रमुख,3508 दयालु,3509 ऋषि,3510
सुबह खुद कपड़े पहनना,
मेरे पास भीख मांगने आया। (2) [3936]

[देखकर] वह महान नायक जो आया था,3511
विश्व के नेता सुमेधा ने एक अच्छा भिक्षापात्र लेकर कहा, मैं
इसे स्पष्ट मक्खन से भर दिया।3512 (3) [3937]

मैं अपने दोनों हाथों को जोड़कर इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, सुमेधा, विश्व के नेता को अर्पित करता हूँ।
मैंने वहाँ अपने हृदय को प्रसन्नता प्रदान की। (4) [3938]

इस घी-अर्पण के कारण, जो दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ किया गया, चाहे वह मनुष्य के रूप में जन्मा हो या दिव्य,
मुझे अत्यधिक आराम मिलता है। (5) [3940]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3504 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

3505 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

3506 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3507 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

3508 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

3509 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

3510 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

3511 लिट., "गया"

3512 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

3513 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

कष्ट की अवस्थाओं से बचना,3514
मैं जन्म-जन्मांतर तक जन्म लेता हूँ। इस पर अपना मन दृढ़ करते हुए,3515
मैं अमरता की अवस्था प्राप्त कर रहा हूँ। (6) [3941]

“हे ब्राह्मण, यह लाभ तुम्हारे लिए अच्छा है कि तुमने मुझे देखा। मुझे देखने के लिए तुम यहाँ आए थे।”
तुम अरहंत बनने जा रहे हो। (7) [3942]

महान ख्याति प्राप्त करने के बाद आत्मविश्वास रखें और भयभीत न हों। इस घी के ग्रंथ को देने के बाद,
तुम जन्म लेने से मुक्त हो जाओगे। (8) [3943]

इस घी-अर्पण के कारण
और प्रेमपूर्ण हृदय से अभ्यास करते हुए,3516
अठारह सौ युगों तक तुम
देवताओं के संसार में आनंदित होगा। (9) [3944]

और अठारह बार तुम सभी देवताओं के राजा बनोगे, और तुम्हारा बहुत अधिक स्थानीय शासन होगा।
गिनती से असंख्य। (10) [3945]

और इक्यावन बार आप होंगे
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, गुलाब-सेब के उपवन का स्वामी,3517 चारों दिशाओं में विजयी।3518 (11) [3946]

विशाल सागर की तरह शांत, पृथ्वी की तरह स्थिर,
ठीक इसी तरह से आपकी संपत्ति
अथाह होने वाले हैं।"3519 (12) [3947]

मैंने हार मानकर आगे बढ़ना शुरू किया।
छह सौ मिलियन मूल्य का सोना।

3514 लिट., “योग्य”

3515 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

3516 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

3517 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

3518 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

3519 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

जो अच्छा है उसकी तलाश करना,
मैं [पहले] बावरी गया। (13) [3948]

जब मैं वहाँ मंत्रों, वैदिक विज्ञान3520 और चिह्नों का अध्ययन कर रहा था, तभी आप (महाराज) प्रकट हुए।

उस भ्रम को नष्ट करना.3521 (14) [3949]

आपसे मिलने की तीव्र इच्छा रखते हुए,
हे महान ऋषि, मैं आपके पास आया हूँ। आपका उपदेश सुनकर,
तब मैंने अमरता की अवस्था प्राप्त की। (15) [3950]

तीस हजार युग पहले
मैंने वो घी बुद्ध को दे दिया। 3522 के अंतराल में मुझे नहीं पता
मेरे द्वारा घी की भीख माँगना3523. (16) [3951]

जब मेरे इरादे स्पष्ट हो जाते हैं, तब मेरी इच्छाएं प्रकट होती हैं।
मेरे हृदय ने यह जान लिया है कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है, और मैं सभी को प्रसन्न करता हूँ। (17) [3952]

हे बुद्ध! हे शिक्षा!
ओह! हमारे गुरु की [महान] उपलब्धि! थोड़ा सा घी देने के बाद,
मुझे असीम रूप से प्राप्त होता है। (18) [3953]

विशाल महासागर का जल, माउंट मेरु की ढलान का विस्तार,
3524 आधा चौथाई 3525 नहीं होगा
मेरे लिए उत्पन्न हो रहे घी का। (19) [3954]

ब्रह्मांड का संपूर्ण विस्तार, एक [विशाल] ढेर में समाहित
3526 [भरने में सक्षम नहीं होगा]
मेरे द्वारा पहने गए कपड़ों का स्थान। (20) [3955]

हिमालय, पर्वतों का राजा, हालांकि यह सबसे श्रेष्ठ पर्वत है,

3520 लिट., "एक फूल पर"
3521 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3522 khiḍḍāratiyaÁ
3523 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3524 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3525 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3526 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

यह तुलनीय भी नहीं है।
मुझे अभिषेक करने वाले इत्रों के लिए। (21) [3956]

कपड़े, इत्र, घी और भोजन, या दुनिया में मौजूद हर चीज,
और निर्वाण, बिना शर्त:3527
घी देने का फल यही है। (22) [3957]

आज मेरा सोफा सचेतनता है,3528 मेरे चरागाह की ध्यानमग्न अवस्थाएँ हैं,3529 मेरा भोजन ज्ञान के सात भाग हैं:3530
घी देने का फल यही है। (23) [3958]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। अपने सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (24) [3959]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [3960]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [3961]

इस प्रकार पूज्य मेट्टागु थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मेट्टागु थेरा की कथा का अंत हो गया है।

3527 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3528 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3529 pariḷāho
3530 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.6 थेरपदाना
स्रोत: जेएस वाल्टर्स
नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अंतर्वस्तु
1अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 401-500
1.1401. {404.}3531 ढोटाका3532
1.2402. {405.}3572 उपसिव3573
1.3403. {406.}3729 नंदा3730
1.4404. {407.}3748 हेमाका3749
1.5405. {408.}3798 Todeyya3799
1.6406. {409.}3881 जातुकणिका3882
1.7407. {410.}4009 उडेना4010
1.8408. {411.}4112 भड्डुलि4113

1.9409. {412.}4141 एकचट्टिय4142
1.10410. {413.}4226 तिनासुलकचादानिया4227
1.11411. {414.}4256 मधुमासदायक4257
1.12412. {415.}4268 नागपल्लवक4269
1.13413. {416.}4271 एकादश4272
1.14414. {417.}4280 उच्चांगपुप्पिया4281
1.15415. {418.}4289 यगुदायक4290
1.16416. {419.}4319 पथोदानदायक4320
1.17417. {420.}4325 मंकदायक4326
1.18418. {421.}4331 साकिŋसम्मज्का4332
1.19419. {422.}4353 एकदुस्सडायका4354
1.20420. {423.}4364 एकासनदायक4365
1.21421. {424.}4381 सत्तकदमपुप्पह्य4382
1.22422. {425.}4386 कोरंडपुफ़िया4387
1.23423. {426.}4398 घटमाण्डयक4399
1.24424. {427.}4410 एकदमसवानिय4411
1.25425. {428.}4425 Sucintita4426
1.26426. {429.}4459 सोहानाकिनखानिया4460
1.27427. {430.}4477 सोवनकट्टारिका4478
1.28428. {431.}4497 एकविहारिया4498
1.29429. {432.}4525 एकसंखिया4526
1.30430. {433.}4537 पतिहिरासन्नक4538
1.31431. {434.}4543 शांतिविका4544
1.32432. {435.}4559 उच्छुकाण्डिका4560
1.33433. {436.}4564 कलाम्बडिका4565
1.34434. {437.}4569 अम्बातक4570
1.35435. {438.}4572 हरितकाडयक4573
1.36436. {439.}4587 अम्बापिनडिया4588
1.37437. {440.}4596 जंबुफलिया4597
1.38438. {441.}4603 विभीतकामिञ्जय4604
1.39439. {442.}4607 कोलायका4608
1.40440. {443.}4614 बिलाफालिया4615
1.41441. {444.}4617 भल्लाताकड़यक4618
1.42442. {445.}4624 उतुऽहिपुफिया4625
1.43443. {446.}4630 अम्बाताकिया4631
1.44444. {447.}4637 सिंहासनिका4638
1.45445. {448.}4642 पदपीठिया4643
1.46446. {449.}4651 वेदिकार्क4652
1.47447. {450.}4659 बोधिघरिया4660
1.48448. {451.}4671 जगत्दायक4672
1.49449. {452.}4677 मोरहथिया4678
1.50450. {453.}4682 शिक्षणशास्त्र4683

1.51451. {454.}4684 तिनुक्कधारिया4685
1.52452. {455.}4687 अक्कमनाडिका4688
1.53453. {456.}4691 वनकोरडिया4692
1.54454. {457.}4694 एकचट्टिय4695
1.55455. {458.}4702 जातिपुफिया4703
1.56456. {459.}4714 पत्तिपुप्पिया4715
1.57457. {460.}4722 गंधपूजक4723
1.58458. {461.}4729 सलाकुसुमिया4730
1.59459. {462.}4734 सीतापूजक4735
1.60460. {463.}4738 सीताकानिब्बूपाका4739
1.61461. {464.}4740 सेतुदायक4741
1.62462. {465.}4742 सुमनतालवन्तिया4743
1.63463. {466.}4745 अवंताफलिया4746
1.64464. {467.}4751 लबज्दायका4752
1.65465. {468.}4757 पिल्लकफलदायका4758
1.66466. {469.}4761 सयंपतिभाणिय4762
1.67467. {470.}4772 निमित्तव्यकारण्य4773
1.68468. {471.}4792 नामामालिया4793
1.69469. {472.}4799 मणिपूजक4800
1.70470. {473.}4820 उक्कासाटिका4821
1.71471. {474.}4837 सुमनविजनिया4838
1.72472. {475.}4841 कुम्मासडिका4842
1.73473. {476.}4844 कुशथकदायक4845
1.74474. {477.}4848 गिरिपुन्नगिया4849
1.75475. {478.}4854 वल्लिकाराफलदायका4855
1.76476. {479.}4860 पंधिदायक4861
1.77477. {480.}4868 पुलिनाकामिया4869
1.78478. {481.}4873 पौंशुकुलासनिका4874
1.79479. {482.}4883 बुद्धसंज्ञक4884
1.80480. {483.}4905 भिसादायक4906
1.81481. {484.}4917 Ñāṇatthavika4918
1.82482. {485.}4939 कैंडनामालिया4940
1.83483. {486.}4965 धातुपूजक4966
1.84484. {487.}4969 पुनिनुप्पादक4970
1.85485. {488.}5004 तारानिया5005
1.86486. {489.}5017 धम्मरुसी5018
1.87487. {490.}5051 सलामंदपिया5052
1.88488. {491.}5069 तिन्निकिनखानिपुफिया5070
1.89489. {492.}5075 पौंसकुलपुजाका5076
1.90490. {493.}5080 कोरंडपुफ़िया5081
1.91491. {494.}5093 किसुकापुप्पिया5094
1.92492. {495.}5096 उपादहदुस्सादायका5097

1.93493. {496.}5102 घाटमांडयक5103
1.94494. {497.}5114 उदकदायका5115
1.95495. {498.}5117 पूसीनाथुपिया5118
1.96496. {499.}5162 निसाकुटिकादायक5163
1.97497. {500.}5167 पियालाफलदायका5168
1.98498. {501.}5179 तिनिकाणिकारापुफिया5180
1.99499. {502.}5213 एकपट्टाक5214
1.100500. {503.}5232 कसुमरिफलदायक5233
अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 401-500

---

401. {404.}3531 धोताका3532

भागीरथी नदी का नाम 3533 रखा गया
इसे हिमालय से पानी मिलता है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3531 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3532 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3533 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

यह हमेशा बहता रहता है।
हंसवती के द्वार से होकर गुजरा। (1) [3962]

शोभिता नामक आश्रम, 3535
अच्छी तरह से निर्मित, यह नदी की ढलानों पर स्थित है।
बुद्ध, पद्ममुत्तरा,
विश्व का नेता वहाँ निवास कर रहा था। (2) [3963]

उन्हें लोगों द्वारा उसी प्रकार सम्मानित किया गया, जैसे इंद्र को तीस देवताओं द्वारा सम्मानित किया गया था।
भगवान वहां बैठे थे।
निडर होकर [बिल्कुल] शेर की तरह। (3) [3964]

मैं हंसवती नगर में रहने वाला एक ब्राह्मण था।
उस समय मेरा नाम चालंगा था,3537
मुझे इस प्रकार नाम दिया गया [क्योंकि] मैं एक ऋषि था। (4) [3965]

उस समय मेरे चारों ओर एक हजार आठ सौ 3538 छात्र मौजूद थे।
उन छात्रों के साथ मिलकर 3539 लोगों को शामिल किया गया,
मैं नदी के किनारे गया। (5) [3966]

उस स्थान पर मैंने [बौद्ध] भिक्षुओं को देखा, बिना छल के,3540 बुराई से शुद्ध होकर,3541 भागीरथी [नदी] पार करते हुए।
उस समय मैंने इस प्रकार विचार किया: (6) [3967]

"बुद्ध के ये महान ख्यातिप्राप्त पुत्र संध्या और सूर्योदय के बीच से गुजर रहे हैं; वे स्वयं ही व्याकुल हैं।"
[और] उनकी चीजें3542 बर्बाद हो रही हैं। (7) [3968]

बुद्ध को देवताओं सहित संसार का मुखिया कहा जाता है।

3534 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
3535 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3536 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3537 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3538 lit., "गया"
3539 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3540 लिट., "गिर गया"
3541 लिट., "योग्य"
3542 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

मैंने अभी तक दान नहीं किया है3543
जो मेरे पुनर्जन्म के मार्ग को शुद्ध करेगा। (8) [3969]

तो फिर मैं बेस्ट बुद्धा के लिए नदी पर पुल क्यों नहीं बनवा देता? उस काम को करवाने के लिए, मैं
इस अस्तित्व में पुनर्जन्म लें।" (9) [3970]

एक लाख का दान
मैंने [उसके लिए वहाँ] एक पुल बनवाया, इस विश्वास के साथ कि "यह कार्य करने से
मेरे लिए बहुत बड़ा [लाभ] होगा।3546 " (10) [3971]

उस पुल का निर्माण करवाने के बाद, मैं विश्व नेता के पास गया।
मेरे सिर पर हाथ एक साथ दबे हुए थे,
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (11) [3972]

“एक लाख का दान देकर, मैंने आपके लिए इस भव्य पुल का निर्माण करवाया है;
कृपया इसे स्वीकार करें, हे महान ऋषि।" (12) [3973]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (13) [3974]

“जिसने मेरे लिए यह पुल बनवाया, अपने हाथों से इसे बनवाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (14) [3975]

किसी गुफा में गिर गया (3549) या (3550)
किसी पर्वत या वृक्ष का शिखर
मरने पर भी वह पकड़ा जाएगा:3552

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 3543 में कई भिन्नताओं के साथ 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
3544 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3545 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
3546 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3547 लिट., “एक फूल पर”
3548 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3549 khiḍḍāratiyaÁ
3550 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3551 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
3552 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

पुल बनाने का यही फल है। (15) [3976]

जैसे हवा3553 अपनी बढ़ती जड़ों को फैलाते हुए बरगद3554 को विचलित नहीं करती, वैसे ही शत्रु3556 उसे पराजित नहीं कर पाएंगे3557:
पुल बनाने का यही फल है। (16) [3977]

कोई चोर उसे पराजित नहीं कर पाएगा3558 और राजा3559 उसका तिरस्कार नहीं करेगा। वह अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेगा:3561
पुल देने का यही फल है। (17) [3978]

यहां तक कि एक असुरक्षित स्थान में भी,
सूर्य की भीषण गर्मी से झुलसते हुए, अपने अच्छे कर्मों के अनुरूप,3562
उसे कोई असुविधा महसूस नहीं होगी।3563 (18) [3979]

चाहे देवताओं का संसार हो या मनुष्यों का, एक सुगठित हाथी-गाड़ी हमेशा अस्तित्व में आएगी।
वह क्या सोच रहा है, यह समझना। (19) [3980]

एक हजार तेज रफ्तार गाड़ियां
सिंध के घोड़े हवा की तरह तेज़ होते हैं
वह सुबह और शाम को उसके पास आएगा:
पुल बनाने का यही फल है। (20) [3981]

मनुष्य अवस्था में आकर, यह व्यक्ति प्रसन्न होगा; यहाँ भी इसी व्यक्ति के लिए...
हाथी-गाड़ी दिखाई देगी.3564 (21) [3982]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (22) [3983]

3553 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
3554 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3555 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3556 pariḷāho
3557 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3558 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3559 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3560 samādhikusalo ahaŋ
3561 iddhipādesu kovido
3562 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
3563 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3564 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, सभी दोषों को भली-भांति जानने वाला
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (23) [3984]

ओह! मैंने तो खूब कर्मों का फल भुगता।
जिसका नाम "सर्वश्रेष्ठ कमल" है, उसके लिए, यह कार्य करने के बाद, वहाँ
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।3567 (24) [3985]

प्रयास करने के बाद,3568 मैं
शांत,3569 पुनर्जन्म के आधारों से रहित;3570
टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (25) [3986]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (26) [3988]3571
मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [3987]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [3989]

इस प्रकार पूज्य धोतका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धोतका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

3565 mahābhisakkasaṅkāso
3566 dosavyādhitikicchako
3567 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3568 दिठ्ठिगण्ड°
3569 लोकापज्जोटो
3570 sanarāmarasakkato
3571 नारदिक्को

---

402. {405.}3572 उपासिव3573

हिमालयी क्षेत्र में,
अनोमा नाम का एक पहाड़ है। मेरी सुंदर ढंग से बनी कुटिया वहीं है।
पत्तों से अच्छी तरह से निर्मित हॉल के साथ। (1) [3990]

और वहाँ एक नदी बह रही है, सुंदर, उत्कृष्ट किनारों वाली।
और उन किनारों के साथ-साथ 3574 बढ़ रहे हैं
कई गुलाबी और नीले कमल। (2) [3991]

वह नदी तब बह रही थी, मछलियों और कछुओं से ढकी हुई, शीशफिश,3575 पावुसा ,3576 व'अलजा ,3577
रीड-फिश,3578 रेड-फिश3579 [और] मैगुरा .3580 (3) [3992]

तिमिरा [पेड़] वहां खिल रहे हैं, अशोक, 3581 खुद्दामलका , 3582
लॉरेल,3583 और माउंटेन लॉरेल3584 के पेड़
मेरे आश्रम को सुगंधित कर रहे हैं। (4) [3993]

वहाँ शीतकालीन चेरी3585 खिल रही है, और अरबी चमेली के जंगल;3586

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3572 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3573 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3574 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3575 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3576 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3577 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3578 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3579 लिट., "गया"
3580 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3581 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3582 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3583 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3584 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम संचरण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3585 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3586 °विकुटी°; मैं इसे परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तुलिका°) के रूप में समझता हूँ।

---

sal 3587 और salalā 3588 [पेड़] वहां हैं,
और बहुत सारे खिलते कैम्पाका .3589 (5) [3994]

अर्जुन के वृक्ष 3590, हिप्टेज लताएँ 3591 और गन्ना 3592 खिल रहे हैं; सिल्वर ग्रेवुड 3593, मधुगंधी 3594
मेरे आश्रम में खिल रहा है। (6) [3995]

प्रत्येक तरफ आधा लीग क्षेत्र बिम्बिजलिका 3595 से ढका हुआ है।
गोल्डन शावर,3596 ट्रम्पेट-फूल,3597
चमेली,3598 भी पियांगुका .3599 (7) [3996]

म'आतंगव   और सत्तली 3600
ट्रम्पेट-फूल,3601 चीनी चेस्ट ट्री,3602
वहां बहुत सारे सेज-लीफ अलंगियम3603 हैं,
[और] तालकूट 3604 खिल रहा है। (8) [3997]

वहाँ बहुत सारे सालेय्यक 3605 हैं, जो मेरे आश्रम में खिल रहे हैं। बहुत से पेड़ सुंदर लगते हैं जब वे फूल से भर जाते हैं।
चारों ओर से उसकी सुगंध फैली हुई थी
मेरे आश्रम में मंडरा रही हैं। (9-10ए-बी) [3998]3606

मायरोबलान3607 [और] गूजबेरी,3608

घास या ऊन (देखें आरडी., एसवी)
3587 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

3588 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"
3589 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3590 khiḍḍāratiyaÁ
3591 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3592 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
3593 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
3594 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”
3595 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3596 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
3597 pariḷāho
3598 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3599 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
3600 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3601 samādhikusalo ahaŋ
3602 iddhipādesu kovido
3603 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”
3604 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3605 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
3606 mahābhisakkasaṅkāso
3607 dosavyādhitikicchako
3608 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

आम,3609 गुलाब-सेब,3610 बहेड़ा,3611
बेर, 3612 मार्किंगनट, 3613 [और] बेल, 3614
साथ ही फ़ारुसका 3615 फल, (10सी-डी, 11ए-बी) [3999]

जंगली मैंगोस्टीन, 3616 चिरौली-अखरोट, 3617
महुवा3618 और कसुमरी ,3619
ब्रेडफ्रूट3620 [और] जैक3621 [वहाँ उग रहे हैं], केले3622 [और] जुजुबे फल,3623 (11सी-डी, 12ए-बी) [4000]

वहाँ बड़ी मात्रा में हॉग-प्लम3624 और साथ ही वल्लीकारा 3625 फल भी पाए जाते हैं।
सिट्रॉन3626 और सपारिया 3627 [पेड़]
मेरे आश्रम में खिल रहे हैं। (12सी-डी, 13ए-बी) [4001]

आलका और इसिमुग्गा ,3628
उसके बाद बहुत सारे मोडा -फल;3629
चारों ओर, पके फलों से लदा हुआ,3630
वेव-लीफ़ेड3632 और ग्लोमेरस3633 फ़िगर्स हैं। (13सी-डी, 14ए-बी) [4002]

वहां काली मिर्च,3634 और काली मिर्च के दाने3635 हैं।

3609 दिट्ठिगण्ड॰
3610 लोकापज्जोटो
3611 sanarāmarasakkato
3612 नारदिक्को
3613 शाब्दिक रूप से, “में”
3614 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3615 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
3616 महास्सादंग
3617 महरसंग
3618 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
3619 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
3620 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
3621 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
3622 लिट., “मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंध से महकता था”
3623 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
3624 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
3625 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
3626 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो
3627 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
3628 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"
3629 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
3630 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
3631 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
3632 sampahaŋsitā
3633 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।

3634 chettā

3635 sotā

बरगद,3636 और लकड़ी के सेब के पेड़,3637
बहुत सारे गुच्छेदार अंजीर के पेड़,3638
कंडपक्का और परी [पेड़]। (14सी-डी, 15ए-बी) [4003===

मेरे आश्रम में ये और कई अन्य पेड़ भी फल दे रहे हैं। साथ ही कई फूल वाले पेड़ भी हैं।
मेरे आश्रम में फूल खिल रहे हैं। (15सी-डी, 16ए-बी) [4004]

टाइटन अरुम,3639 भी बाइंडवीड,3640
बिलानी , तक्कादानी [बल्ब],
ālaka और tālaka [भी]
मेरे आश्रम में [सभी] पाए जाते हैं। (16सी-डी, 17ए-बी) [4005]

मेरे उस आश्रम के पास, लगभग 3641 नंबर पर, एक बड़ी प्राकृतिक झील थी।
यह खूबसूरत था, और इसके किनारे अच्छे थे।
ठंडा पानी, [क्रिस्टल-] साफ़ पानी। (17सी-डी, 18ए-बी) [4006]

कई गुलाबी और नीले कमल
वहां सफेद कमलों के साथ मिश्रित हैं;
मंडलक के 3642 फूलों से ढका हुआ ,
यह विभिन्न [अच्छी] सुगंधों से भरा है। (18सी-डी, 19ए-बी) [4007]

वहाँ गुलाबी कमल अंकुरित होते हैं; अन्य, फूल खिलते हैं और पराग उत्पन्न करते हैं। कई गुलाबी कमल की कलियाँ और पत्तियाँ [और] पेरिकार्प्स3643 तैरते हैं3644 [उस झील पर]। (19सी-डी, 20ए-बी) [4008]

कमल के तनों से शहद बहता है3645
[और] दूध [और] घी3646 कमल की जड़ों से।3647
चारों ओर, उसी की गंध फैली हुई थी,
यह विभिन्न [अच्छी] सुगंधों से भरा है। (20सी-डी, 21ए-बी) [4009]

श्वेत कमल, 3648 अम्बगन्धि , और अनेक नैयिता देखी जाती हैं;

3636 pasaŋsitā

3637 akhilo

3638 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है

3639 anīgho

3640 अकथानकथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"

3641 अनेजो

3642 विराजो
3643 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है।
3644 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा (“सुगंधित”)
3645 रीडिंग वट्टा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस मेट्टा (“लव”)
3646 pakāsitā
3647 t'āretā
3648 अत्थकारेता का पाठ बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ तारेता ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए किया गया है।

एक प्राकृतिक झील के अनुरूप,
बहुत सारे स्क्रू-पाइन3649 खिले हुए हैं। (21सी-डी, 22ए-बी) [4010]

बंधुजीव 3650 पूर्ण रूप से खिले हुए, मीठी सुगंध वाले 3651 सेतवारी 3652 मगरमच्छ 3653 और घड़ियाल 3654
[और अन्य] भयंकर जानवर3655 वहाँ पैदा होते हैं। (22सी-डी, 23ए-बी) [4011]

उस प्राकृतिक झील में कई उग्गहा 3656 और अजगर 3657 रहते हैं; शीशफिश 3658 पावुसा 3659 व'अलजा 3660
रीड-फिश,3661 रेड-फिश3662 [और] मैगुरा .3663 (23सी-डी, 24ए-बी) [4012]

यह मछलियों और कछुओं से ढका हुआ है,3664 साथ ही छोटे, बिना पूंछ वाले बंदरों से भी;3665 कबूतर3666 और रवि हंस3667 भी।
जंगली जंगल फाउल,3668 नादिकारस , (24सी-डी, 25ए-बी) [4013]

वाटल्ड लैपविंग्स3669 और रूडी गीज़,3670
चम्पाकस 3671 और तीतर,3672

3649 k'āretā
3650 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
3651 पापेता
3652 साहित्य , या "सहनकर्ता"
3653 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS में hantā की पुनरावृत्ति है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।
3654 हंता
3655 रीडिंग ātāpī with BJTS for PTS tātâpi (“also the Protector”)
3656 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में
3657 samacitto
3658 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , “हमेशा एक जैसा”)
3659 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, “मित्रहीन”
3660 रीडिंग दयासायो (और निम्नलिखित व्याख्या) बीजेटीएस के साथ पीटीएस दयायासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए

3661 accherasanto

3662 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"

3663 क'तावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए

3664 i'sisattamo

3665 nittiṇṇakaṅkho

3666 nimmāno

3667 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"

3668 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"

3669 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं"

3670 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है जिसे समझा जाना है [या निर्देश दिया जाना है, नेतृत्व किया जाना है, मार्गदर्शन किया जाना है (नेति का क्रियापद)]"

3671 जिनो

3672 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट प्रतीत होती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।

गिलहरी,3673 [भी] ओस्प्रे3674 [और] बाज,3675
[और] कई [पक्षी जिन्हें] उद्धारा कहा जाता है , (25सी-डी, 26ए-बी) [4014]

धान के पक्षी,3676 सीलोन लोरिकेट्स,3677 केकड़े3678 और कई याक-बैल3679 [भी], कारेणिया 3680 और तिलक
वे [तब] उस झील पर निवास कर रहे हैं। (26सी-डी, 27ए-बी) [4015]

शेर, बाघ और तेंदुए,
भालू3681 [और] भेड़िये,3682 k'ara bānā भालू,3683
बंदर,3684 और यहाँ तक कि सेंटॉर3685
मेरे आश्रम के अंदर देखे जाते हैं। (27सी-डी, 28ए-बी) [4016]

उन [मीठी] सुगंधों को सूंघते हुए, उन फलों का सेवन करते हुए, सुगंधित पानी पीते हुए, मैं
मैं अपने आश्रम में रहता हूँ। (28सी-डी, 29ए-बी) [4017]

एनी -हिरण 3686 साथ ही जंगली सूअर, 3687 चित्तीदार हिरण, 3688 [भी] छोटी नस्लें, 3689 और अग्गिका [और] जोतिका 3690
मेरे आश्रम में रह रहे हैं। (29सी-डी, 30ए-बी) [4018]

3673 रीडिंग akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ with BJTS for PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ ("मैं धम्म- प्रचारक मैं")

3674 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭataṭa heḷana vātaya ("वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ")

3675 रीडिंग sabbagandhe 'tiseti (= atisayati) BJTS के साथ PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंध' को नीचे रखता है")

") और इसके बाद बीजेटीएस सिंहली ग्लॉस

3676 BJTS में एटिसैंटो के लिए एडिसैंटो ("घोषणा") पढ़ा जाता है

3677 guṇatthavassa sabbaṃ taṃ phalaṃ tu paramambhūtaṃ को BJTS के साथ PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्‌गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारी रूप से खिलता है" [?]) के लिए पढ़ा गया, और BJTS व्याख्या का अनुसरण किया गया: buddha guṇakitiyāge ē siyalu vipāka atiśaya vismayajanaka ya .
3678 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) पद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। IPTS इसे rasaddhovisamāyuto पढ़ता है । "शुद्ध स्वाद से बंधा हुआ।" BJTS में लिखा है (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto ?)। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS के सिंहली अनुवाद का अनुवाद करता हूँ, mad- hura svaradhvani yukta vūyem (- mihirihaddha ättem), "मैं मधुर ध्वनि से बंधा हुआ (मेरे पास एक मधुर ध्वनि है)"।
3679 रीडिंग khīṇe ayusi with BJTS for PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है")
3680 lit., "तुम सब इसे सुनो" (द्वितीय व्यक्ति बहुवचन क्रिया)
3681 ya'sassī
3682 शाब्दिक रूप से, "इसलिए मैं खुश हूँ"
3683 दुःखान्तकरण बुद्ध , शाब्दिक अर्थ: "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध"
3684 धम्मॅ ...
3685 जनायण , लिट., "मैंने उत्पादन किया"
3686 या "विधर्मी": कुटिंत्थिये
3687 BJTS द्वारा PTS के लिए titthikākiṇṇe का पाठ titthikâkiṇṇo ("मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ")
3688 v'adanto , शाब्दिक अर्थ, "कहना," "बताना"
3689 में पीटीएस varaŋ ("उत्कृष्ट") के लिए BJTS (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ vadaṃ पढ़ा जा रहा है।
3690 रीडिंग जनास्सा विद बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) फॉर पीटीएस °जिनासा ("विजेता का")

हंस3691 [और] कर्ल्यू3692 और मोर3693 भी, मैना पक्षी3694 और कोयल भी;3695
कई मांजारीकाएं हैं , 3696
owls3697 और poṭṭhasīsas 3698 वहाँ। (30c-d, 31a-b) [4019]

वहाँ भूत-प्रेत हैं,3699 साथ ही टाइटन भी हैं,3700 कई परियाँ हैं,3701 [साथ ही] राक्षस भी हैं,3702 गरुल हैं , साथ ही सर्प-राक्षस भी हैं,3703
वहाँ मेरे आश्रम में रहते हुए। (31सी-डी, 32ए-बी) [4020]

महान शक्तियों से युक्त ऋषि,3704 शांत हृदय वाले और एकाग्र, लंबे मुंह वाले जलपात्र धारण किए हुए,3705 सभी हिरण के चमड़े के वस्त्र पहने हुए,
चोटी पहने और [वजन उठाए हुए],3706
मेरे आश्रम में रह रहे हैं। (32सी-डी, 33) [4021]

बस हल की लंबाई जितनी दूरी तक आगे देखते हुए,3707
चतुर और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला, चाहे कुछ मिले या न मिले, सुखी।
वे मेरे आश्रम में रह रहे हैं। (34) [4022]

छाल से बने अपने वस्त्रों को उतार फेंकते हुए, हिरण के चमड़े के अपने वस्त्रों को खड़खड़ाते हुए, केवल अपनी ही ताकत के सहारे,
फिर वे आकाश में उड़ रहे हैं। (35) [4023]

वे पानी नहीं ले जा रहे हैं।

3691 रीडिंग sarado va sasaṅko 'haṃ with BJTS for PTS saraŋ divasasanko 'haŋ ("मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ" [?])
3692 लिट., "मैं था"
3693 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चला गया व्यक्ति," सुगातांग
3694 y'athāsattivasena
3695 v'āgīso , "[मैं एक हूँ] वाणी पर महारत के साथ"
3696 में विमतिपट्टा को पीटीएस विमतिंग पट्टा के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है , हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक दृष्टि से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है।
3697 apades' ahaṃ को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS apaniŋ (समान अर्थ, fr. apaneti) के लिए पढ़ना
3698 tiṇṇasamsārasāgaro
3699 BJTS mañcado ("Mañcada") पढ़ता है
3700 BJTS supaṭo ("Supaṭa") पढ़ता है
3701 यह पीटीएस शब्द bodhisammajako ("बोधिसम्मजक") का बीजेटीएस पाठ है ।
3702 r'akkhasā = rākṣasā
3703 पन्नागा
3704 mahānubhāvā isayo
3705 k'amaṇḍalu-dharā . यह विशेष पात्र गैर-बौद्ध तपस्वियों का एक विशिष्ट चिह्न है।
3706 jaṭā-bhāra-bharita , शाब्दिक अर्थ, "गुंथी हुई चोटी और भार/भारी बोझ से भरा हुआ"।
3707 युगामत्तं च पेक्खंत , शाब्दिक अर्थ, "हल की लंबाई तक आगे देखना," यानी, बस थोड़ा सा, अपनी निगाहें सामने की जमीन पर टिकाए रखना।
3708 गच्चनती , शाब्दिक अर्थ, "जाना"

न तो आग जलाने के लिए शाखाएँ और न ही लकड़ी;
[वे चीजें] स्वयं ही उपलब्ध हो जाती हैं:3709
यह एक चमत्कार का फल है।3710 (36) [4024]

लोहे का टब लेकर,3711 वे जंगल के अंदर रह रहे हैं;3712 यहाँ तक कि हाथी, बड़े कोबरा भी
और शेर उन्हें डराते नहीं हैं। (37) [4025]

कुछ लोग गोयाना की यात्रा करते थे, अन्य लोग पुब्बाविदेह की।
और कुछ लोग उत्तरुकुरु की ओर जा रहे हैं।
3713 [केवल उनकी] अपनी ताकत पर निर्भर;
वहां से अपना भिक्षा भोजन लेकर आना,
वे इसे एक साथ खा रहे हैं। (38, 39ए-बी) [4026]

जब वे सभी प्रखर तपस्वी,3714 वे तटस्थ तपस्वी, प्रस्थान कर रहे थे, तब जंगल शोरगुल से भर गया।
हिरण के चमड़े के वस्त्रों का फड़फड़ाना। (39सी-डी, 40ए-बी) [4027]

मेरे छात्र, वे महान नायक, वे प्रखर तपस्वी, इसी प्रकार के थे; मैं हमेशा उनसे घिरा रहता था।
मैं अपने आश्रम में रह रहा हूँ। (40सी-डी, 41ए-बी) [4028]

अपने कर्मों से संतुष्ट होकर, शिक्षित होकर,3716 लोग एक साथ आते हैं,
नैतिक रूप से ईमानदार और चतुर,
[चार] असीम अवस्थाओं में कुशल,3717
wishing3718 [to boost their] own karma,
वे मुझे प्रसन्न कर रहे हैं। (41सी-डी, 42) [4029]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञाता, बलिदान प्राप्तकर्ता, उचित समय को पहचानते हुए,3719

3709 पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ सयान च उपसम्पन्ना पढ़ना अयम च उपसम्पन्नो ("और यह आपूर्ति की गई है"
3710 पातिहिरस्स इदान फलन
3711 lohadoṇiŋ gahetvāna
3712 v'anamajjhe , शाब्दिक अर्थ, "जंगल के बीच में"
3713 पीटीएस में 'अपैसिता' और बीजेटीएस में 'अवसिता' पढ़ा जाता है ; ये शब्द समानार्थी हैं और एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हैं।
3714 reading uggatejāna with BJTS for PTS uggatejana
3715 °saddena , शाब्दिक अर्थ, "ध्वनि के साथ"
3716 या "प्रशिक्षित:" विनीता
3717 appamaññāsu kovidā , अर्थात् "ईश्वरीय अवस्थाओं" (ब्रह्मविहारा) के अभ्यास में कुशल, अर्थात् प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव।
3718 में abhilāsino शब्द को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS abhilābhino , "प्राप्त करना" के स्थान पर पढ़ा गया है।
3719 samayaŋ saŋviditvāna

गाइड मेरे आश्रम के पास आया। (43) [4030]

पास आकर, उत्साही संबुद्ध, चतुर ऋषि, संबुद्ध ने अपना कटोरा उठाया,
मेरे पास भीख मांगने आया। (44) [4031]

घास की चटाई बिछाना
उस महान नायक के लिए जो पास आया था, जिसका नाम "सर्वश्रेष्ठ कमल" था।
मैंने उसे साल के फूलों से नहला दिया। (45) [4032]

संबुद्ध को बिठाकर,
मेरा मन भावनाओं से उफान मार उठा।
तेजी से पहाड़ पर चढ़ते हुए,
मैं [कुछ सुगंधित] एलोवेरा की लकड़ी लाया।3722 (46) [4033]

दिव्य सुगंध लेते हुए
जैक फ्रूट3723 पानी के जग जितना बड़ा,3724
इसे अपने कंधे पर उठाते हुए,
मैं नेता के पास गया। (47) [4034]

मैंने बुद्ध को फल देकर उन पर एलोवेरा का लेप लगाया।
मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की। (48) [4035]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
उन महान ऋषियों के बीच बैठे हुए,
[तब] मेरे बारे में ये आयतें बोलीं: (49) [4036]

"जिसने मुझे फल और एलोवेरा दिया, और बैठने के लिए जगह भी दी,"
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (50) [4037]

किसी गाँव या जंगल में,
पहाड़ों की चोटियों पर या गुफाओं के अंदर, इस आदमी की इच्छाओं को पहचानते हुए,3725
भोजन अस्तित्व में आएगा। (51) [4038]

3720 अतापी , शाब्दिक अर्थ, "जलना"
3721 saŋviggamānaso
3722 अगलम , सिंह। अगिल, अगरु, अगुरु
3723 reading panasaṃ devagandhikaṃ with BJTS for PTS vansaṇḍe va gandhika� ("वन उपवन में सुगंधित")
3724 या "हाथी के ललाट लोब जितना बड़ा:" कुंभमट्टंग
3725 cittaŋ , शाब्दिक अर्थ, "विचार" या "मन"

चाहे वह देवताओं के लोक में जन्मा हो या मनुष्यों के लोक में, यह व्यक्ति
वह अपने दल को संतुष्ट करेगा
भोजन और [साथ ही] वस्त्रों के साथ। (52) [4039]

चाहे वह जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म ले, चाहे वह मानव हो या दिव्य, उसके पास असीमित भोजन हो।
यह व्यक्ति पुनर्जन्म लेने वाला है। (53) [4040]

तीस हजार युगों तक वह देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। हजार बार वह राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (54) [4041]

वह इकहत्तर [अलग-अलग] बार दैवीय शासन करेगा।
[और उसके पास] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत। (55) [4042]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (56) [4043]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।” (57) [4044]

मुझे इससे काफी लाभ हुआ, जो यह था कि मैंने नेता के दर्शन किए। तीनों ज्ञान प्राप्त करने के बाद,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (58) [4045]

किसी गाँव या जंगल में,
पहाड़ों की चोटियों पर या गुफाओं के अंदर, यह पहचानते हुए कि मैं क्या कामना कर रहा हूँ,
खाना हमेशा मेरे पास आता रहता है। (59) [4046]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (60) [4047]

3726 शाब्दिक अर्थ, "ऐसा व्यक्ति बन गया है जो"
3727 शाब्दिक अर्थ, “अडिग” “अविचलित”
3728 शाब्दिक रूप से, "अस्तित्व में आना"

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (61) [4048]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (62) [4049]

इस प्रकार पूज्य उपासिव थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उपासिव थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

403. {406.}3729 नंदा3730

उस समय मैं जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।
3731 चित्तीदार हिरणों की खोज करते समय,
मैंने वहाँ स्वयं को एक होते देखा। (1) [4050]

अनुराद्ध नामक सम्बुद्ध,3732 स्वयंभू, अजेय, एकांतप्रिय, ज्ञानी,3733
उस समय जंगल में डूब गया3734। (2) [4051]

लकड़ी की चार छड़ें इकट्ठा करके, मैंने उन्हें चारों कोनों पर रख दिया। एक सुदृढ़ मंडप का निर्माण करते हुए,
मैंने इसे कमल के फूलों से ढक दिया।3735 (3) [4052]

पैवेलियन को ढकने के बाद,
मैंने स्वयं-एकत्व को प्रणाम किया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3729 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3730 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
3731 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3732 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3733 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3734 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3735 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मैंने अपना धनुष वहीं एक तरफ रख दिया।
मैं बेघर हो गया। (4) [4053]

बाहर जाने के कुछ ही समय बाद मैं बीमार पड़ गया।3736
भूतपूर्व कर्मों के माध्यम से पुनर्जन्म लेना,
मैं वहीं मर गया। (5) [4054]

अपने पूर्व कर्मों से बंधा हुआ, मैं तुसिता स्वर्ग गया।
वहाँ सोने से बना एक महल है3737
इच्छा के अनुसार उत्पादित किया जाता है। (6) [4055]

मेरा दिव्य रथ प्रतीक्षा कर रहा है, एक हजार घोड़ों से युक्त वाहन। उस रथ में सवार होकर,
मैं इच्छा अनुसार यात्रा करता हूँ। (7) [4056]

जब मैं वहां से बाहर जा रहा हूँ,3738 एक देवता के रूप में पुनर्जन्म लेकर,3739
मेरे लिए एक मंडप खड़ा किया गया है
हर तरफ सौ मील। (8) [4057]

मैं [हमेशा] बिस्तर पर आराम से लेट जाता हूँ।

जो हमेशा फूलों से भरा रहता है। और आकाश से, गुलाबी कमल गिरते हैं।
हर समय मुझ पर बारिश हो रही है। (9) [4058]

जब प्रकाश की किरणें धड़क रही हों और सूर्य की गर्मी दुनिया को झुलसा रही हो, तब भी वह गर्मी मुझे परेशान नहीं कर रही है:
यह एक मंडप का फल है। (10) [4059]

मैं सभी बुरे पुनर्जन्मों से परे हूं;
दुख की अवस्थाएँ 3741 मेरे लिए बंद हैं। एक मंडप या वृक्ष की जड़ में,
मुझे जलती हुई गर्मी का ज्ञान नहीं है। (11) [4060]

3736 शाब्दिक रूप से, "गया"
3737 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3738 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
3739 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3740 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3741 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में genḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

पृथ्वी पर धारणा को ठीक करना,3742
मैं [विशाल] महासागर पार करता हूँ।3743
ये मेरे अच्छे कर्मों का फल है।
उस बुद्ध- पूजा को करने का । (12) [4061]

सड़कें बनाते हुए, भले ही कोई सड़क न हो, मैं आकाश में यात्रा कर रहा हूँ।
ओह! मैंने अच्छा कर्म किया!
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (13) [4062]

मुझे पूर्व जन्मों का ज्ञान है, "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो चुकी है।
मेरे सारे दोष नष्ट हो गए हैं:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (14) [4063]

बुद्ध की वैध संतान, महान शिक्षा के योग्य उत्तराधिकारी, मैंने अपने पिछले जन्म का त्याग कर दिया है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (15) [4064]

मैं वह हूं जिसने शाक्यों के श्रेष्ठ बैल, गौतम को प्रसन्न किया।
धम्म का उत्तराधिकारी होने के नाते , मैं इसका ध्वज धारण करता हूँ:3745
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (16) [4065]

शाक्य वंश के सांड, गौतम संबुद्ध की सेवा करने के बाद,
मैंने विश्व के नेता से पूछा
[के बारे में] वह रास्ता जो आगे जाता है.3746 (17) [4066]

पूछे जाने पर, बुद्ध ने [तब] उस गहन और सूक्ष्म अवस्था के बारे में बताया। उनकी उस शिक्षा को सुनकर,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।3747 (18) [4067]

ओह! मैंने कितना अच्छा कर्म किया! मैं जन्म लेने के बंधन से पूरी तरह मुक्त हो गया हूँ;
मैंने सभी अशुद्धियों को नष्ट कर दिया है;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (19) [4068]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

3742 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3743 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
3744 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3745 लिट., "एक फूल पर"
3746 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3747 khiḍḍāratiyaÁ

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (20) [4069]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [4070]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (22) [4071]

इस प्रकार पूज्य नंदा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नंदा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

---

404. {407.}3748 हेमाका3749

पर्वत की ढलान के शीर्ष के पास, अनोमा नामक तपस्वी ने एक सुव्यवस्थित आश्रम का निर्माण करवाया,
तब पत्तों से बने एक हॉल में निवास किया। (1) [4072]

उनके द्वारा किए गए प्रयास (3750) सफल रहे;
लक्ष्य 3751 उसकी अपनी ताकत से 3752 प्राप्त किया गया।
अपने भिक्षु जीवन में भी वीर,
वह उत्साही, चतुर और बुद्धिमान था। (2) [4073]

अपने धर्म में विश्वास रखते हुए,3754
वह दूसरों के सिद्धांतों में निपुण था,3755
विशेषज्ञ3756 और कुशल [पढ़ने में]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3748 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3749 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3750 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3751 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3752 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3753 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3754 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3755 लिट., "गया"
3756 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

पृथ्वी और आकाश में शगुन3757। (3) [4074]

ध्यानमग्न, समाधि-प्रेमी ऋषि
उसे लालच नहीं था,3758 वह शोकमुक्त था,3759
मुझे खुशी होगी चाहे मिले या न मिले।
कम खाना खाया,3760 जानवरों को नहीं मारा।3761 (4) [4075]

पियादस्सी, संबुद्ध,
प्रधान,3762 दयालु, ऋषि, जो सभी प्राणियों की सहायता करना चाहते हैं,3763
करुणा के साथ शिक्षा का प्रसार करें।3764 (5) [4076]

पियादस्सी, महान ऋषि,
ऐसे लोगों को देखकर जो समझ सकते थे,3766
जाकर वह उन्हें प्रोत्साहित कर रहा है।
हजार ब्रह्मांडों में.3767 (6) [4077]

मुझे ऊपर उठाने की इच्छा से,
फिर वह मेरी कुटिया के पास आया। मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा था।3768
और न ही मैंने उसके बारे में किसी से सुना था। (7) [4078]

उस समय मुझे शकुन, सपने और शुभ संकेत बहुत स्पष्ट रूप से समझ आते थे।
कुंडली का विशेषज्ञ, 3769
[दोनों] पृथ्वी पर और आकाश में। (8) [4079]

बुद्ध के बारे में सुनकर,
मुझे उसके लिए बहुत खुशी हुई।3770
चाहे खाना खा रहे हों या बैठे हों,

3757 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

3758 लिट., “योग्य”

3759 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

3760 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में gendu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

3761 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

3762 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

3763 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

3764 लिट., “एक फूल पर”

3765 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

3766 khiḍḍāratiyaÁ

3767 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

3768 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

3769 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

3770 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”

मुझे वह हर समय याद रहता है। (9) [4080]

जब मैं इस प्रकार स्मरण कर रहा था,
भगवान बुद्ध ने मेरे बारे में भी सोचा। मुझे हर पल आनंद मिलता रहा।
जब मैंने बुद्ध के बारे में सोचा। (10) [4081]

बाद में लौटकर,
वह महान ऋषि मेरे पास आए। जब वे आए (3771) तब मुझे पता नहीं था।
कि वह बुद्ध हैं, महान ऋषि। (11) [4082]

दया से परिपूर्ण, करुणामय, महान ऋषि पियादस्सी ने तब अपना परिचय मुझसे कराया:
"मैं संसार में बुद्ध हूँ।"3772 (12) [4083]

महान ऋषि संबुद्ध, पियादस्सी को जानने के बाद,
मेरा हृदय आनंद से भर गया।
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (13) [4084]

आप दूसरों पर बैठे हैं
कुर्सियाँ, पालकी और डेक-कुर्सियाँ, परन्तु आप, समस्त चीजों के द्रष्टा,
रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठना चाहिए।3775 (14) [4085]

उस समय [किसी ने]3776 ने 3777 बनाया
सभी रत्नों से बनी एक कुर्सी, एक जादुई रूप से निर्मित 3778 सीटें
पियादस्सी, महान ऋषि के लिए। (15) [4086]

फिर मैंने एक गुलाब सेब का फल दिया,3779
पानी के घड़े जितना बड़ा,3780
उस कुर्सी पर बैठे [बुद्ध] के लिए
रत्नों से जादुई रूप से निर्मित। (16) [4087]

उस समय महान ऋषि ने इसे खाया।

3771 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

3772 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

3773 pariḷāho

3774 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

3775 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)

3776 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

3777 samādhikusalo ahaŋ

3778 iddhipādesu kovido

3779 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "

3780 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

मेरे लिए [बहुत] हंसी पैदा कर रहा है3781.
फिर मेरे हृदय को प्रसन्नता प्रदान करते हुए,
मैंने शिक्षक को प्रणाम किया। (17) [4088]

लेकिन हे भगवान पियादस्सी,
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, उस रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान है।
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (18) [4089]

"जिसने मुझे यह रत्नजड़ित कुर्सी और यह अमृतमय फल दिया है,
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (19) [4090]

"सत्तर युगों तक
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा, और सत्तावन बार वह ऐसा करेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (20) [4091]

देवताओं के स्वामी, बत्तीस बार, वह दिव्य शासन का संचालन करेंगे।
[और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव है। (21) [4092]

उन्हें रत्नों से बनी और माणिक्य से बनी हुई कुर्सियाँ प्राप्त होंगी।
और कई पालकी अच्छी तरह से बनी हुई थीं
सोने में से 3783 [और] चांदी में से 3784 (22) [4093]

यहां तक कि जब हम इधर-उधर पैदल चलते थे, तब भी विभिन्न प्रकार की पालकीें दिखाई देती थीं।
हर समय प्रतीक्षा करेगा
[यह] व्यक्ति अच्छे कर्मों से युक्त है। (23) [4094]

छज्जों वाली झोपड़ियाँ, महल और बेहद महंगे पलंग, ये सब समय के साथ अस्तित्व में आ जाएँगे।
वह क्या सोच रहा है, यह समझना। (24) [4095]

और साठ हजार हाथी, सभी आभूषणों से सजे हुए, सोने के मुकुट पहने हुए , सोने के बने साज-सामान से ढके हुए।

3781 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
3782 mahābhisakkasaṅkāso
3783 dosavyādhitikicchako
3784 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3785 दिठ्ठिगण्ड°

हाथ में भाले और अंकुश लिए हाथी प्रशिक्षकों द्वारा सवार 3786 लोग इस [आदमी] की प्रतीक्षा करने जा रहे हैं:
यह रत्नजड़ित कुर्सी का फल है। (25-26) [4096-4097]

साठ हजार घोड़े, सभी आभूषणों से सजे हुए, उत्तम नस्ल के, सिंध से लाए गए 3787 घोड़े, तेज रफ्तार वाहन, कवचधारी और हाथों में धनुष लिए घोड़ों के प्रशिक्षकों द्वारा सवार 3788 लोग इस [आदमी] की सेवा में आ रहे हैं।
यह रत्नजड़ित कुर्सी का फल है। (27-28) [4098-4099]

साठ हजार रथ भी, सभी अलंकरणों से सजे हुए, तेंदुओं और बाघों की खालों से ढके हुए, झंडे फहराए हुए, कवच पहने और हाथों में धनुष लिए पशु प्रशिक्षकों द्वारा संचालित, निरंतर इस व्यक्ति की सेवा करेंगे:
यह रत्नजड़ित कुर्सी का फल है। (29-30) [4100-4101]

साठ हजार दुधारू गायें, लाल रंग की,3792 सर्वश्रेष्ठ में से सर्वश्रेष्ठ,3793 अनेक अच्छे बछड़ों को जन्म देंगी:
यह रत्नजड़ित कुर्सी का फल है। (31) [4102]

साठ हजार महिलाएं भी थीं, जो सभी प्रकार के आभूषणों, विभिन्न प्रकार के कपड़ों और गहनों से सजी हुई थीं।
और रत्नजड़ित बालियां पहने, लंबी पलकों वाली, प्यारी मुस्कान वाली3794 और पतली कमर वाली, देखने में मनमोहक3795 वह लगातार इस [आदमी] की सेवा करेगी:
यह रत्नजड़ित कुर्सी का फल है। (32-33) [4103-4104]

3786 लोकापज्जोटो
3787 sanarāmarasakkato
3788 नारदिको
3789 लिट., “में”
3790 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3791 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
3792 महास्सादंग
3793 महरसंग
3794 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
3795 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

---

अब से अठारह सौ युगों बाद,
गौतम नामक नेत्रपूर्ण देव, अंधकार का निवारण करते हैं।
संसार में बुद्ध होंगे। (34) [4105]

उसे देखने पर, [यह व्यक्ति] खाली हाथ चला जाएगा। गुरु को प्रसन्न करके, वह
व्यवस्था में आनंद लें। (35) [4106]

उनकी शिक्षा सुनकर, वे दोषों का नाश करेंगे। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। (36) [4107]

मेरे लिए पूर्ण शांति लाने वाला जुए में लगा बैल भी बहुत मेहनत से ही संभव है।3796
परम अर्थ की कामना करते हुए,
मैं व्यवस्था में निवास करता हूँ। (37) [4108]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।3797
सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो चुकी हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (38) [4109]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (39) [4110]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (40) [4111]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (41) [4112]

इस प्रकार पूज्य हेमका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

हेमका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

3796 पणिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
3797 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं

---

405. {408.}3798 Todeyya3799

केतुमती में, सबसे अच्छा शहर,
3800 ईस्वी में विजया नाम का एक राजा था।
एक नायक, जो महान शक्ति से संपन्न है,3801
तब उस शहर में निवास करते हुए। (1) [4113]

उस राजा की आलस्य के कारण, जंगल के जंगली लोग3802 उठ खड़े हुए।
वे जासूस थे,3803 और गंदी ज़बान वाले लोग थे;3804
उन्होंने तब देश को तबाह कर दिया। (2) [4114]

जब सीमावर्ती क्षेत्रों ने [उसे] क्रोधित किया, तो राजा3805 ने तुरंत [अपने] आश्रितों3806 और अधिकारियों3807 को इकट्ठा किया।
उन सभी शत्रुओं को रोकने के लिए। (3) [4115]

हाथी सवार,3809 संतरी,3810 योद्धा,3811 ढालधारी सैनिक,3812 तीरंदाज,3813 और पराक्रमी कुलीन:3814

वे सब उस समय एकत्रित हुए। (4) [4116]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3798 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3799 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3800 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

3801 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3802 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3803 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
3804 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3805 लिट., "गया"
3806 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3807 lit., "गिर गया"
3808 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
3809 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
3810 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3811 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3812 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
3813 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3814 लिट., "एक फूल पर"

रसोइये3815 [और] बाल संवारने वाले,3816 स्नान कराने वाले लड़के,3817 माला बनाने वाले,3818 नायक3819 [और] विजयी सैनिक:3820
वे सब उस समय एकत्रित हुए। (5) [4117]

तलवारबाज3821 और साथ ही वेटर3822
धनुर्धर और कवचधारी लोग, शिकारी3823 और विजयी सैनिक:3824 वे सब उस समय एकत्रित हुए। (6) [4118]

म'आतंगस 3825 तीन तरीकों से संभोग करते हुए 3826 [और] साठ वर्ष की आयु के हाथी, सोने के मुकुट से सजे हुए:
वे सब उस समय एकत्रित हुए। (7) [4119]

जिन सैनिकों ने यह काम किया है,
शीत [साथ ही] गर्मी सहन करना:3829 साथ ही मल-त्याग:3830
वे सब उस समय एकत्रित हुए। (8) [4120]

शंखों की ध्वनि, ढोलों की ध्वनि, और इस प्रकार तुरहियों की ध्वनि;3831
वे उन [आवाजों] से प्रसन्न हो रहे थे।
उस समय सभी एकत्रित हुए। (9) [4121]

जो कुचलते हैं और जो चोट पहुँचाते हैं3832
त्रिशूल3833 [और] चाकू3834 [और] मंत्रों3835 के साथ

3815 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3816 khiḍḍāratiyaÁ
3817 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3818 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
3819 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
3820 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
3821 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3822 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
3823 pariḷāho
3824 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3825 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
3826 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3827 samādhikusalo ahaŋ
3828 iddhipādesu kovido
3829 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
3830 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3831 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
3832 mahābhisakkasaṅkāso
3833 dosavyādhitikicchako
3834 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3835 दिट्ठिगण्ड°

कवच और भाले:
वे सब उस समय एकत्रित हुए। (10) [4122]

कवच धारण किए हुए,3836 वह राजा, विजयहीन विजेता,3837 उस समय त्रिशूलों पर लटका दिया गया था।

साठ हजार जीव। (11) [4123]

तब लोगों ने चीख मारी, “हाय! राजा अधर्मी है। इसका अंत कब होगा?”
जो नरक में जल रहा है उसके लिए?3839 (12) [4124]

फिर मैं बिस्तर पर करवटें बदलता रहा।
[मानो]3841 मैं लेटा हुआ हूँ3842 नरक में:3843
मैं दिन-रात नहीं सोता;
वे मुझे त्रिशूल से यातना देते हैं। (13) [4125]

“इस लापरवाह राजशाही, इन वाहनों या इस सेना का क्या फायदा है?”
वे मेरा भरण-पोषण करने में सक्षम नहीं हैं;
वे मुझे हर समय डराते रहते हैं। (14) [4126]

इन बेटों और इन पत्नियों का, और साथ ही इस पूरे राजतंत्र का क्या फायदा है?
तो फिर मैं अब आगे क्यों न बढ़ूँ?
मैं पुनर्जन्म के मार्ग को शुद्ध करूँगा। (15) [4127]

मेरी सारी संपत्ति की उपेक्षा करते हुए
युद्ध लड़ते हुए मैंने अपने साठ हजार हाथियों को छोड़ दिया, जो सभी आभूषणों से सजे हुए थे, सोने के मुकुटों से युक्त थे , सोने के बने साज-सामान से ढके हुए थे, और हाथी प्रशिक्षकों द्वारा सवार थे।
उनके हाथों में भाले और अंकुश थे।3845

3836 लोकापज्जोटो
3837 sanarāmarasakkato
3838 नारदिको
3839 लिट., “में”
3840 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3841 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
3842 महास्सादंग
3843 महरसंग
3844 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
3845 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

---

अपने ही बुरे कर्मों से भयभीत होकर,
मैं बेघर हो गया। (16-18ए-बी) [4128-4129]3846

मेरे साठ हजार घोड़े भी, सभी आभूषणों से सजे हुए, उत्तम नस्ल के, सिंध से लाए गए 3847 घोड़े, तेज गति से चलने वाले वाहन, जिन पर कवचधारी और हाथों में धनुष लिए घोड़ों के प्रशिक्षक सवार थे - उन सभी को मैंने त्याग दिया।
मैं बेघर हो गया। (18सी-डी-20ए-बी) [4130-4131]

साठ हजार रथ भी, सभी आभूषणों से सजे हुए, तेंदुओं की खालों से ढके हुए।
और इसी प्रकार बाघों के लिए 3850 झंडे फहराए गए —
उन सभी को त्यागकर,
मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (20c-d-21) [4132]3851

साठ हजार दुधारू गायें [साथ ही], [और] दूध के लिए सभी धातु की बाल्टियाँ3852 — उन्हें भी हटा देना,
मैं बेघर हो गया। (22) [4133]

मेरी साठ हज़ार स्त्रियाँ भी, सभी आभूषणों से सजी हुई, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और गहनों से सुसज्जित।
और रत्नजड़ित बालियां पहने हुए, लंबी पलकों के साथ, प्यारी मुस्कान के साथ3853
और पतली कमर, देखने में आकर्षक3854 —
उन्हें रोते हुए छोड़कर,
मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (23-24) [4134-4135]

और साठ हजार गाँव, हर तरह से परिपूर्ण — उस संपूर्ण राजशाही को त्यागकर।
मैं बेघर हो गया। (25) [4136]

3846 पणिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
3847 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
3848 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
3849 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
3850 या "शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना"
3851 लिट., "बहिर्वाहों का विनाश"
3852 या "जो बाहर गया था": पब्बाजितो
3853 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
3854 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"

शहर से बाहर निकलकर मैं हिमालय की ओर बढ़ा।
भागीरथी3855 नदी के तट पर,
मैंने एक आश्रम का निर्माण किया। (26) [4137]

पत्तियों से एक हॉल बनाने के बाद
मैंने अपने लिए एक गर्म कमरा बनाया;3856
प्रयास करने पर दृढ़,3857 संकल्पित,3858
मैं अपने आश्रम में रह रहा हूँ। (27) [4138]

मेरे मन में भय उत्पन्न नहीं होता;
मुझे कोई भय या डरावनी चीजें दिखाई नहीं देतीं।
पेड़ों के नीचे ध्यान करते समय,
मंडपों में 3859 या खाली घरों में। (28) [4139]

सम्बुद्ध, सुमेधा, प्रधान, करुणामय, ज्ञान के प्रकाश से प्रज्वलित ऋषि,
उस समय दुनिया में उत्पन्न हुआ। (29) [4140]

उस समय मेरे आश्रम के पास एक शक्तिशाली आत्मा3860 निवास करती थी। जब सर्वश्रेष्ठ बुद्ध का जन्म हुआ,
फिर उन्होंने मुझे [वह तथ्य] बताया: (30) [4141]

"इस संसार में एक बुद्ध का उदय हुआ है, एक दर्शनीय पुरुष जिसका नाम सुमेधा है; वह सभी लोगों को पार करने में सहायता कर रहा है;
वह तुम्हें भी पार करा देगा।" (31) [4142]

आत्मा के वचन सुनने के बाद,
मैं हर समय बहुत भावुक था;
सोचते हुए, "एक बुद्ध! एक बुद्ध!"
मैंने अपना आश्रम तैयार किया। (32) [4143]

आग जलाने के लिए लकड़ी काटने के बाद
और अपने आश्रम की पूजा करने के बाद, मैंने अपनी सोने की चटाई को समतल किया।
मैं [तब] जंगल से बाहर निकल गया। (33) [4144]

3855 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।

3856 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
3857 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
3858 sampahaŋsitā
3859 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।
3860 chettā
3861 sotā
3862 pasaŋsitā

चंदन को गांव-गांव, शहर-शहर ले जाना,
देवताओं के परमेश्वर, [उनकी] खोज में
फिर मैं गाइड के पास गया। (34) [4145]

उस समय, भगवान सुमेधा, विश्व के नेता,
तब वे चार [महान] सत्यों का प्रचार कर रहे थे और लोगों को ज्ञान प्रदान कर रहे थे। (35) [4146]

मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाया और चंदन को अपने सिर पर रखा, संबुद्ध को प्रणाम किया।
मैंने तब उससे ये आयतें कही थीं: (36) [4147]

जब चमेली के पेड़3864 फूल रहे होते हैं

उनकी सुगंध उनके चारों ओर फैली हुई है;3865
हे वीर, सदाचार की सुगंध से तुम हर दिशा में व्याप्त हो। (37) [4148]

जब साल के पेड़3867 फूलते हैं, चंपक,3868 आयरनवुड,3869 वैनिका ,3870
हिप्टेज लताएँ,3871 और [भी] स्क्रू-पाइन,3872
[उनकी सुगंध] हवा के साथ फैल जाती है। (38) [4149]

आपकी [इत्र जैसी] खुशबू सूंघकर मैं हिमालय से यहां आया हूं।
मैं आपकी पूजा करता हूँ,3873 हे महान ऋषि,
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, हे महान प्रसिद्धि का।” (39) [4150]

मैंने विश्व नेता सुमेधा का उत्तम चंदन से अभिषेक किया, जिससे मेरे हृदय को प्रसन्नता हुई।
मैं उस समय चुपचाप खड़ा रहा। (40) [4151]

सुमेधा नामक भगवान,
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का सांड,

3863 akhilo
3864 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है
3865 anīgho
3866 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"
3867 अनेजो
3868 विराजो
3869 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है।
3870 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा (“सुगंधित”)
3871 PTS mettā (“प्रेम”) के लिए BJTS के साथ vattā का पाठ
3872 pakāsitā
3873 t'āretā

भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (41) [4152]

“जिसने मेरे गुणों की प्रशंसा की और
जिसने चंदन से मेरी पूजा की; मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (42) [4153]

पच्चीस युगों तक वह एक सुंदर पुरुष बना रहेगा।
जो स्वागत योग्य शब्द बोलता है, pious3875
[और] सीधा, महान शक्ति से परिपूर्ण।3876 (43) [4154]

छब्बीसवें युग में उसने

वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा। वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (44) [4155]

देवताओं के स्वामी, तैंतीस बार दिव्य शासन करेंगे।
[और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव है। (45) [4156]

वहां से गिरने के बाद, यह व्यक्ति मानव अवस्था में प्रवेश करेगा।
अपने अच्छे कर्मों से बंधा हुआ वह है
ब्रह्मा का संबंधी बनने जा रहा है।3878 (46) [4157]

विद्वान, सभी मंत्रों का ज्ञाता, तीनों वेदों का ज्ञाता।
तीन शुभ चिह्नों से युक्त
ब्राह्मण बावरी होगा। (47) [4158]

उस व्यक्ति का शिष्य बनकर वह मंत्रों का उस्ताद बन जाएगा।
शाक्यों के सांड, गौतम संबुद्ध की ओर बढ़ते हुए,
सूक्ष्म प्रश्न पूछकर, सीधे मार्ग पर चलते हुए, वह सभी दोषों को भली-भांति जानता था।
निर्वाण प्राप्त करेंगे, बेदाग। (48-49) [4159-4160]

3874 में तारेटा ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ अत्थकारेता का पाठ किया गया है।
3875 k'āretā
3876 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
3877 पापेता
3878 साहित्य , या "सहनकर्ता"
3879 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS में hantā की पुनरावृत्ति है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।

मेरे भीतर की तीनों अग्नियां3880 बुझ गई हैं; समस्त [नया] अस्तित्व नष्ट हो गया है; समस्त अशुद्धियों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (50) [4161]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (51) [4162]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (52) [4163]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (53) [4164]

इस प्रकार पूज्य तोदेय्या थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तोदेय्या थेरा की कथा का अंत हो गया है।

---

406. {409.}3881 जातुकणिका3882

हंसवती नगर में,
मैं एक धनी व्यक्ति का पुत्र था।3883
मैं हर समय अपना मनोरंजन करता रहता हूँ।
इंद्रिय सुखों से संपन्न। (1) [4165]

तीन महलों में से एक पर चढ़ना 3884
वास्तुकारों द्वारा मेरे लिए उठाया गया 3885,3886

3880 हंता
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 3881 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
3882 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
3883 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
3884 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
3885 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
3886 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मैं लगातार अपना मनोरंजन करता रहता हूँ
वहाँ नृत्य और गायन के साथ। (2) [4166]

मेरे लिए संगीत वाद्ययंत्र बजाए गए, सही धुन बनाए रखें।
सभी महिलाएं नृत्य कर रही हैं;
वे मेरा ध्यान भटका रहे हैं। (3) [4167]

सिर घुमाने वाले,3890 छोटे बौने नर्तक,3891 कुटिया में बैठने वाले,3892 बीच में बैठने वाले,3893 उछलने वाले,3894 और हास्य नर्तक3895
वे हमेशा मेरा मनोरंजन करते हैं। (4) [4168]

झांझ बजाने वाले, 3896 कुंभथून बजाने वाले, 3897 अनेक नर्तक, 3898 कठपुतली कलाकार; 3899 [वे] नर्तक और कठपुतली कलाकार
वे हमेशा मेरा मनोरंजन करते हैं। (5) [4169]

स्नान कराने वाले लड़के3900 [और] बाल संवारने वाले,3901 रसोइये,3902 माला बनाने वाले,3903 पासा खेलने वाले,3904 सभी मुक्केबाज3905 [और] पहलवान3906
वे हमेशा मेरा मनोरंजन करते हैं। (6) [4170]

3887 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
3888 शाब्दिक रूप से, "गया"
3889 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
3890 लिट., “गिर गया”
3891 शाब्दिक अर्थ, “योग्य”
3892 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]" ।
3893 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
3894 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
3895 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
3896 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
3897 लिट., “एक फूल पर”
3898 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
3899 khiḍḍāratiyaÁ
3900 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
3901 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
3902 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
3903 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”
3904 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
3905 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
3906 pariḷāho

जब वे सुप्रशिक्षित3907 पेशेवर3908
वे [विभिन्न3909 कलाओं] में खेल रहे हैं, मुझे रात और दिन का अंतर नहीं पता,

जैसे इंद्र3910 तीस देवताओं के साथ।3911 (7) [4171]

राहगीर,3912 सड़क पर लोग,3913 भिखारी3914 और कई यात्री,3915 वे हमेशा मेरे पास आते रहते हैं।
[और] मेरे घर पर भोजन करते हैं। (8) [4172]

[बौद्ध] भिक्षु और ब्राह्मण भी, पुण्य के लिए अद्वितीय क्षेत्र3916 हैं, जो मेरे पुण्य को बढ़ाने के लिए काम कर रहे हैं3917
मेरे घर भी आ रहे हैं। (9) [4173]

सभी जैन: पादक 3918
Laṭakas ,3919 Pupphasāṭakas ,3920
T'edaṇḍakas ,3921 Ekasikhas 3922
मेरे घर भी आ रहे हैं। (10) [4174]

अजीविका: गोधम्मस , 3923
विलुट्टाविस , 3924 देव'अधम्मिस , 3925
[और] राजोज्जल्लाधर , 3926
मेरे घर भी आ रहे हैं। (11) [4175] तपस्वी और वनवासी:
3907 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
3908 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

3909 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
3910 samādhikusalo ahaŋ
3911 iddhipādesu kovido
3912 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
3913 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
3914 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
3915 mahābhisakkasaṅkāso
3916 dosavyādhitikicchako
3917 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
3918 दिट्ठिगण्ड°
3919 लोकापज्जोटो
3920 sanarāmarasakkato
3921 नारदिक्को
3922 लिट., "में"
3923 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
3924 निब्बाती , या "वह शांत हो जाता है"
3925 महास्सादंग
3926 महरसंग

परिवत्तकस , 3927 सिद्धिपट्ट 3928

अनेक कोंड , 3929 पुग्गलिका , 3930
मेरे घर भी आ रहे हैं। (12) [4176]

ओ'ड्डकस , 3931 और दामिलास , 3932
साकुलस ,3933 मलयाकास ,3934
सबरस ,3935 और योनाकास 3936 भी
मेरे घर भी आ रहे हैं। (13) [4177]

अंधक ,3937 सभी मुण्डक ,3938
कोलकास ,3939 सानुविंदकास ,3940
और अरवाचिनारथस 3941
मेरे घर भी आ रहे हैं। (14) [4178]

अलसंदकास ,3942 पल्लावकास ,3943
बब्बारस ,3944 भग्गा-कारुसास ,3945
रोहिता 3946 और सेतापुत्ता 3947
मेरे घर भी आ रहे हैं। (15) [4179]

मधुरकास ,3948 कोसलकास ,3949
कासिकास ,3950 हत्थिपोराकास ,3951
इसिंदस 3952 और मत्तलस 3953 [भी]

3927 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”

3928 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha

3929 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

3930 पीटीएस याहिŋ ताहिŋ; बीजेटीएस ताहिं ताहिं

3931 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"

3932 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]

3933 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”

3934 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”

3935 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो

3936 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।

3937 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"

3938 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।

3939 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।

3940 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"

3941 sampahaŋsitā

3942 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।

3943 chettā

3944 sotā

3945 pasaŋsitā

3946 akhilo

3947 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है

3948 anīgho

3949 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"

3950 अनेजो

3951 विराजो

3952 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है ("विनम्र")

3953 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा (“सुगंधित”)

मेरे घर भी आ रहे हैं। (16) [4180]

वेलावकास 3954 और अराममास ,3955
ओक्कलास ,3956 अनेक मेकलास ,3957
खुद्दाकास 3958 और सुद्दाकास 3959 [भी]
मेरे घर भी आ रहे हैं। (17) [4181]

रोहनास , 3960 और सिंधवस , 3961
चित्तस 3962 [और] एकांकिकास ,3963
सूरत 3964 और अपारंत 3965
मेरे घर भी आ रहे हैं। (18) [4182]

सुपारिकास ,3966 किकुमारस 3967
M'alayas ,3968 Soṇṇabhūmakas ,3969
वज्जिहारस 3970 भी, वे सभी
मेरे घर भी आ रहे हैं। (19) [4183]

टोकरी बनाने वाले,3971 बुनकर,3972 चमड़े का काम करने वाले,3973 और बढ़ई,3974 धातु शिल्पकार,3975 साथ ही कुम्हार,3976
मेरे घर भी आ रहे हैं। (20) [4184]

रत्न विक्रेता3977 और कांस्य विक्रेता3978

3954 PTS mettā (“प्रेम”) के लिए BJTS के साथ vattā का पाठ

3955 pakāsitā

3956 t'āretā

3957 में तारेटा ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृत्ति के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ अत्थकारेता का पाठ किया गया है।

3958 k'āretā

3959 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता

3960 पापेता

3961 साहित्य , या "सहनकर्ता"

3962 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS में hantā की पुनरावृत्ति है , जिसे दोनों ग्रंथों में श्लोक में अगला शब्द माना गया है।
3963 हंताई
3964 रीडिंग ātāpī with BJTS for PTS tātâpi ("also the Protector")
3965 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में
3966 samacitto
3967 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , जिसका अर्थ है "हमेशा एक जैसा")
3968 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, "मित्रहीन"
3969 रीडिंग दयासायो (और निम्नलिखित व्याख्या) बीजेटीएस के साथ पीटीएस दयायासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए
3970 accherasanto
3971 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"
3972 क'अतावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए
3973 i'sisattamo
3974 nittiṇṇakaṅkho
3975 nimmāno
3976 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"
3977 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"
3978 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं"

सोने के कामगार3979 और कपड़े के व्यापारी3980
और जो लोग टिन में काम करते हैं, वे सभी
मेरे घर भी आ रहे हैं। (21) [4185]

तीरंदाज3981 और धनुष बनाने वाले,3982 बुनकर3983 और इत्र बनाने वाले,3984 साथ ही दर्जी,3985 ये सभी
मेरे घर भी आ रहे हैं। (22) [4186]

तेल-हैंडलर3986 और लकड़ी-संग्रहकर्ता,3987
पानी ढोने वाले3988 और नौकर,
रसोइये3989 और वे जो सूप3990 की रक्षा करते हैं
मेरे घर भी आ रहे हैं। (23) [4187]

द्वारपाल3991 और प्रहरी,3992 स्तुतिगानकर्ता,3993 फूल तोड़ने वाले, हाथी सवार3994 और रखवाले3995
मेरे घर भी आ रहे हैं। (24) [4188]

मैंने आलसी लोगों को [धन] दे दिया
महाराजा आनंद

3979 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है जिसे समझा जाना है [या निर्देश दिया जाना है, नेतृत्व किया जाना है, मार्गदर्शन किया जाना है (नेति का क्रियापद)]"
3980 जिनो
3981 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट लगती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।
3982 रीडिंग akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ with BJTS for PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ ("मैं धम्म- प्रचारक मैं")
3983 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭataṭa heḷana vātaya ("वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ")
3984 रीडिंग sabbagandhe 'tiseti (= atisayati) BJTS के साथ PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंधों' को नीचे रखता है")
") और इसके बाद बीजेटीएस सिंहली ग्लॉस
3985 BJTS में एटिसैंटो के लिए एडिसैंटो ("घोषणा") पढ़ा जाता है
3986 रीडिंग guṇatthavassa sabbaṃ taṃ phalaṃ tu paramambhūtaṃ with BJTS for PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्‌गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारी रूप से खिलता है" [?]), और BJTS ग्लॉस का अनुसरण किया: buddha guṇakitiyāge ē siyalu vipāka atiśaya vismayajanaka ya .
3987 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) पद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। IPTS इसे rasaddhovisamāyuto पढ़ता है । "शुद्ध स्वाद से बंधा हुआ।" BJTS में लिखा है (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto ?)। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS के सिंहली अनुवाद का अनुवाद करता हूँ, mad- hura svaradhvani yukta vūyem (- mihirihaddha ättem), "मैं मधुर ध्वनि से बंधा हुआ (मेरे पास एक मधुर ध्वनि है)"।
3988 रीडिंग khīṇe ayusi with BJTS for PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है")
3989 शाब्दिक रूप से, "आप सभी इसे सुनें" (द्वितीय व्यक्ति बहुवचन क्रिया)
3990 ya'sassī
3991 शाब्दिक रूप से, "इसलिए मैं खुश हूँ"
3992 दुःखान्तकरण बुद्ध , शाब्दिक अर्थ: "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध"
3993 धम्मॅ ...
3994 जनायण , लिट., "मैंने उत्पादन किया"
3995 या "विधर्मी": कुटित्थिये

उसकी कमी को कवर करना 3996
सात रंगों के रत्नों के साथ। (25) [4189]

मैं सभी रत्नों से संतुष्ट हूँ।
जिन लोगों की मैंने प्रशंसा की, यानी विभिन्न रंगों के लोगों का समूह,
वे क्या सोच रहे थे, यह समझना। (26) [4190]

जब मधुर शब्द बोले जा रहे थे, जब ढोल बज रहे थे, जब शंख बजाए जा रहे थे,
मैं अपने घर में आनंदित हूँ। (27) [4191]

उस काल में बुद्ध3997 नेता पदुमत्तरा थे।

वह एक लाख लोगों के साथ था
जिनके दोष [अब] विलुप्त हो गए थे।3998 (28) [4192]

आँखों को भाने वाला आगे बढ़ चुका था
भिक्षुओं के साथ सड़क। हर दिशा को रोशन करते हुए।
वह दीपकों के वृक्ष की तरह प्रज्वलित हुआ। (29) [4193]

वे सभी यात्रा करने वाले विश्व नेता के लिए अपने ढोल पीट रहे हैं।
उनकी [शानदार] रोशनी फैल रही है,
जैसे सूरज उग चुका हो। (30) [4194]

यहां तक कि उन 4001 पैनल वाली खिड़कियों के पीछे भी, जिन तक इसकी किरणें नहीं पहुंच पातीं,
हर समय, घरों के अंदर,
वहाँ एक जबरदस्त प्रतिभा थी। (31) [4195]

बुद्ध की ज्योति देखने के बाद मैंने सभा में उपस्थित लोगों से कहा, “निस्संदेह, यह सर्वश्रेष्ठ बुद्ध हैं।”
क्या यह सड़क पर जा रहा है? (32) [4196]

महल से नीचे उतरकर मैं तुरंत बाजार की ओर चल पड़ा।

3996 रीडिंग titthikākiṇṇe with BJTS for PTS titthikâkiṇṇo (“मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ”)
3997 v'adanto , शाब्दिक अर्थ, “कहना,” “बताना”
3998 में पीटीएस varaŋ (“उत्कृष्ट”) के लिए BJTS (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ vadaṃ पढ़ा गया है।
3999 रीडिंग जनास्सा विद बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) फॉर पीटीएस °जिनासा (“विजेता का”)
4000 रीडिंग sarado va sasaṅko 'haṃ with BJTS for PTS saraŋ divasasanko 'haŋ (“मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ” [?])
4001 लिट., “मैं था”

संबुद्ध को प्रणाम करने के बाद,
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (33) [4197]

हे बुद्ध, मुझ पर दया करो।
नेता [जिसका नाम] सर्वोच्च कमल है।"
तब ऋषि ने आने की सहमति दी।
एक लाख स्वामियों के साथ। (34) [4198]

इस प्रकार संबुद्ध को आमंत्रित करते हुए,
मैं उसे अपने विशाल घर ले गया।
वहाँ मैंने महान ऋषि को संतुष्ट किया।
खाने-पीने के साथ। (35) [4199]

यह जानते हुए कि खाने के लिए बहुत देर हो चुकी है
हे तटस्थ, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के लिए, मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की सेवा की।
सौ संगीत वाद्ययंत्र। (36) [4200]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
अपने ही घर के अंदर बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (37) [4201]

"जिसने मुझे यंत्रों से सेवा की और जिसने मुझे भोजन और पेय पदार्थ दान में दिए, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (38) [4202]

यह व्यक्ति पूरी दुनिया को एक राज्य में बदलने जा रहा है। सोने और धन से संपन्न होकर,
वह प्रचुर भोजन वाला होगा। (39) [4203]

पाँच सिद्धांतों का पालन करना,4003 [और] फिर दस प्रकार के कार्यों का पालन करना;4004 प्रगति करना,
वह [तब] अपने दल को प्रशिक्षित करेगा। (40) [4204]

साठ हजार यंत्र [और]
जो महिलाएं पूरी तरह से सजी-धजी हैं
इसके लिए लगातार खेलते रहेंगे:
यही उपस्थिति का फल है। (41) [4205]

वह तीस हजार युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंदित रहेगा।

4002 lit., "द वेल-गॉन-वन," सुगाताŋ
4003 y'athāsattivasena
4004 v'āgīso , "[मैं एक हूँ] वाणी पर महारत के साथ"

देवताओं के स्वामी, चौंसठ बार,
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा। (42) [4206]

और चौहत्तर बार वह ऐसा ही करेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, [और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत। (43) [4207]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (44) [4208]

वह जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता है, चाहे वह मानव रूप हो या दिव्य रूप, धन की कमी से रहित होकर।
वह मानवीय अवस्था में जाएगा। (45) [4209]

एक विद्वान बनकर, तीनों वेदों के ज्ञाता बनकर,
यह व्यक्ति परम अर्थ की खोज में [पूरी] पृथ्वी पर भटकेगा। (46) [4210]

और उसके बाद वह अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर आगे बढ़ेगा। वह इस व्यवस्था में रोमांचित होगा।
गौतम, भगवान। (47) [4211]

शाक्यों के श्रेष्ठ बैल गौतम संबुद्ध को प्रसन्न करने के बाद,
अपने पापों को जलाकर,
यह अरहंत बनेगा।" (48) [4212]

जंगल के शेर-राजा की तरह, जानवरों के राजा शेर की तरह, आज मैं बिना किसी डर के जी रहा हूँ।
बुद्ध के 4005 युग में। (49) [4213]

मुझे नहीं लगता कि मेरा जन्म अभाव में होगा या मेरा पुनर्जन्म बुरा होगा।
देवताओं या मनुष्यों की दुनिया में:
यही उपस्थिति का फल है। (50) [4213] मैं [अब] एकांतवास पर ध्यान केंद्रित कर रहा हूँ,4006
4005 में विमतिपट्टा को पीटीएस विमतिंग पट्टा के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है , हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक दृष्टि से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है।
4006 में apades' ahaṃ को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS apaniŋ (समान अर्थ, apaneti से) के लिए पढ़ा गया है।

शांत, 4007 पुनर्जन्म के आधार से रहित; 4008
टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (51) [4215]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (52) [4216]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (53) [4217]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (54) [4218]

इस प्रकार पूज्य जतुकण्णिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जतुकन्निक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

407. {410.}4009 उडेना4010

हिमालयी क्षेत्र में,
पद्मा नाम का एक पर्वत है।4011
मेरा सुगठित आश्रम [वहाँ है]
पत्तों से बने सुव्यवस्थित हॉल के साथ। (1) [4219]

वहां बहने वाली नदियों के किनारे अच्छे हैं और वे सुंदर हैं, उनका पानी साफ और ठंडा है;
[वे] नदियाँ हमेशा सुंदर होती हैं। (2) [4220]

4007 tiṇṇasamsārasāgaro
4008 BJTS mañcado (“Mañcada”) पढ़ता है
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4009 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4010 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4011 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

वहाँ शीशफ़िश, 4012 पावुसा 4013 मछली हैं,
v'alaja ,4014 रीड-फिश4015 [और] रेड-फिश.4016
वे नदी में चमक रहे हैं;
नदियाँ हमेशा [उन्हें] ले जाती हैं।4018 (3) [4221]

वे आम, गुलाब सेब आदि के रंग में लिपटे हुए हैं।
k'areri 4022 [और] कोरल-बीन वृक्ष,4023 गोल्डन शावर,4024 ट्रम्पेट-फूल,4025 मेरे आश्रम को सुशोभित करते हुए। (4) [4222===

Alangium,4026 red bimbijāl ,4027
और मायाकारी 4028 [वृक्ष] खिले हुए हैं और सुगंध फैला रहे हैं, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (5) [4223]

हिप्टेज लताएँ4029 और सत्तलिका ,4030 आयरनवुड4031 [और] साल 4032 फूल में दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (6) [4224]

4012 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को संदर्भित करता है।
4013 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4014 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4015 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4016 शाब्दिक रूप से, "गया"
4017 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4018 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4019 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
4020 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4021 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेण्डु पढ़ता है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4022 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4023 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
4024 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4025 लिट., "एक फूल पर"
4026 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4027 khiḍḍāratiyaÁ
4028 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4029 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4030 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
4031 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
4032 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

नीम, 4033 सलाला , 4034 पीली चीज़वुड 4035
और अट्ठंग 4036 [वृक्ष] पूरी तरह खिले हुए हैं, दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (7) [4225]

मेरे आश्रम में बहुत सारे फल हैं: मायरोबलन4037 [और] आंवला,4038 आम,4039 गुलाब-सेब,4040 बहेरा,4041 बेर,4042 मार्किंगनट,4043 बेल.4044 (8) [4226]

मेरे आश्रम में कदम4045 और केले के पेड़ खिल रहे हैं। दिव्य सुगंध बिखेरते हुए, वे मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (9) [4227]

अशोकपिंडी , 4046 कैवरी , 4047
और पीले चीज़वुड4048 [पेड़] खिले हुए हैं, जिनसे दिव्य सुगंध निकल रही है।
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (10) [4228]

वहाँ लॉरेल4049 [और] माउंटेन लॉरेल4050 [पेड़] [और] तिमिरा [पेड़] खिले हुए हैं।
दिव्य सुगंध बिखेर रही हैं, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रही हैं। (11) [4229]

निग्गुंडी , 4051 सिरिनिगुंडी 4052

4033 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
4034 pariḷāho
4035 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4036 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
4037 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4038 samādhikusalo ahaŋ
4039 iddhipādesu kovido
4040 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”
4041 mārasenāpamaddano , BJTS reads mārasenappamaddano
4042 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
4043 mahābhisakkasaṅkāso
4044 dosavyādhitikicchako
4045 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
4046 दिठ्ठिगण्ड°
4047 लोकापज्जोटो
4048 sanarāmarasakkato
4049 नारदिको
4050 लीटर, “में”
4051 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
4052 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

और खिले हुए चंपक के वृक्षों से दिव्य सुगंध निकल रही है।
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (12) [4230]

[आश्रम] के पास एक तालाब है, जो लाल हंसों के गीतों से भरा है,4054 और मंडलक के फूलों से ढका है4055
और गुलाबी और नीले कमलों के साथ।4056 (13) [4231]

इसमें साफ पानी है, ठंडा पानी है।
अच्छे स्नान-फोर्ड4057 जो सुंदर हैं। यह स्पष्ट है, क्रिस्टल के समान, मेरे आश्रम को सुशोभित करता है। (14) [4232]

वहाँ गुलाबी कमल खिल रहे हैं, और सफेद और नीले कमल भी। यह मंडलक से ढका हुआ है ।
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (15) [4233]

शीटफिश4059 [भी] पावुसा 4060 मछली,
v'alaja ,4061 रीड-फिश4062 [और] रेड-फिश4063
उस [तालाब] में तैर रहे हैं 4064,4065
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (16) [4234]

मगरमच्छ4066 और घड़ियाल,4067 कछुए और [अन्य] भयंकर जानवर,4068 ओगाहा ,4069 [और] अजगर4070 [भी] मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (17) [4235]

4053 महास्सादंग
4054 महरसंग
4055 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
4056 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
4057 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
4058 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
4059 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
4060 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
4061 या “शिक्षा में उन चारों का पोषण करना”
4062 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
4063 या “जो आगे बढ़ चुका था”: पब्बाजितो
4064 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
4065 लिट., “यहाँ”
4066 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
4067 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
4068 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
4069 sampahaŋsitā
4070 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।

कबूतर4071 और रवि -हंस4072, साथ ही रूडी गीज़4073 और नादिकारा , लैपविंग्स4074 [और] मैना पक्षी4075 मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (18) [4236]

नायिता , अंबागंधी , जैसी झाड़ियाँ
और स्क्रू-पाइन4076 वहाँ खिल रहे हैं, अपनी दिव्य सुगंध बिखेर रहे हैं, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (19) [4237]

शेर, बाघ और तेंदुए,
भालू4077 [और] भेड़िये,4078 k'ara bānā भालू4079
जंगल में घूम रहे हैं, मेरे आश्रम को सुंदर बना रहे हैं। (20) [4238]

उलझे हुए बालों का भार उठाने वाले,4080
जो हिरण के चमड़े के बाहरी वस्त्र पहने हुए हैं, वे जंगल में घूम रहे हैं, मेरी कुटिया को सुशोभित कर रहे हैं। (21) [4239]

हिरण की चमड़ी के वस्त्र पहनने वाले वे [सन्यासी] चतुर हैं और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।
और वे सब थोड़ा-थोड़ा खाना खा रहे हैं, मेरे आश्रम को सजा रहे हैं। (22) [4240]

अपने 4081 कंधे के जुए को ढोते हुए, 4082

फिर जंगल में घुसते हुए,
केवल जड़ वाली सब्जियां और जंगली फल खाना,
[वे] तब आश्रम में रहते हैं.4083 (23) [4241]

वे न तो आग जलाने के लिए लकड़ी ले जाते हैं और न ही पैर धोने के लिए पानी; उनकी सामूहिक महिमा के कारण,4084
[कि सब कुछ] अपने आप ही आगे बढ़ जाता है। (24) [4242]

4071 chettā
4072 sotā
4073 pasaŋsitā
4074 akhilo
4075 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है
4076 anīgho
4077 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"
4078 अनेजो
4079 विराजो
4080 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत पढ़ता है ("विनम्र" "आज्ञाकारी")
4081 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा (“सुगंधित”)
4082 रीडिंग वट्टा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस मेट्टा (“लव”)
4083 pakāsitā
4084 t'āretā

वे चौरासी हजार ऋषि उस स्थान पर एकत्रित हुए थे;
सभी ध्यान का अभ्यास करते हैं4085 और
अंतिम अर्थ की तलाश कर रहे हैं। (25) [4243]

सभी तपस्वी, ब्रह्मचारी हैं।
निंदा करते हुए,4086 स्थिर मन के लिए प्रतिज्ञाओं के साथ4087
और आकाश में उड़ने में सक्षम;4088
वे तब आश्रम में रहते हैं। (26) [4244]

वे पाँच दिनों तक शांतिपूर्वक एकत्रित होते, एक दूसरे की पूजा करते।
वे जिस दिशा में जा रहे हैं, उसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।4089 (27) [4245]

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का स्वामी था।4090
अंधकार को दूर भगाते हुए,
उस समय विजेता उठा। (28) [4246]

वहाँ एक शक्तिशाली आत्मा थी4091
[तब,] मैं अपने आश्रम के पास रहता था।

उन्होंने मेरे सामने संबुद्ध की प्रशंसा की।
जिसका नाम "अल्टीमेट लोटस" है।4093 (29) [4247]

"यह एक बुद्ध हैं जिनका पुनरुत्थान हुआ है।"
महान ऋषि, पद्ममुत्तरा;
जल्दी जाने के बाद, महोदय, 4094 अब आप
संबुद्ध को [उससे] मिलना चाहिए।"4095 (30) [4248]

आत्मा के वचन सुनने के बाद, अत्यंत स्पष्ट मन से, आश्रम को सहारा देकर;
फिर मैं जंगल से निकल पड़ा। (31) [4249]

4085 अत्थकारेता का पाठ बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ, पीटीएस में तारेता ("क्रॉसर") के पुनरावृति के लिए।
4086 k'āretā
4087 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
4088 पापेता
4089 साहित्य , या "सहनकर्ता"
4090 में, BJTS के साथ kantā का पाठ किया गया है, जिसमें PTS में hantā की पुनरावृत्ति है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।
4091 hantā
4092 रीडिंग ātāpī with BJTS for PTS tātâpi ("also the Protector")
4093 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में
4094 samacitto
4095 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह की व्याख्या के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , जिसका अर्थ है "हमेशा एक जैसा")
4096 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, "मित्रहीन"

मानो मेरे कपड़े अब आग की लपटों में घिरे हों,4097
आश्रम से जल्दी निकलकर, केवल एक रात रुककर,4098
मैं मार्गदर्शक [बुद्ध] के पास आया। (32) [4250]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
चार आर्य सत्यों की व्याख्या करते हुए,
अमर मार्ग की घोषणा कर रहा था। (33) [4251]

खिलते हुए गुलाबी कमल को लेते हुए,4099
मैं उस महान ऋषि के पास गया। प्रसन्नता से, मेरे हृदय में आनंद था।
मैंने इसे बुद्ध को अर्पित किया। (34) [4252]

"परम कमल" नाम के संबुद्ध की पूजा करने के बाद, एक कंधे पर हिरण की खाल रखकर,

मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की: (35) [2453]

“जिस ज्ञान के बल पर बुद्ध [अब] यहाँ निर्मल होकर निवास करते हैं, मैं उस ज्ञान की स्तुति करूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो। (36) [2454]

अस्तित्व की धारा को अवरुद्ध करते हुए,4101 आप सभी प्राणियों को पार ले जाते हैं। आपके उपदेश को सुनकर,
वे लालसा की धारा को पार कर रहे हैं।4102 (37) [2455]

आप ही सांस लेने वालों के गुरु हैं, आप ही ध्वज, झंडा और स्तंभ हैं;
तुम ही लक्ष्य हो, तुम ही आधार हो।
द्वीप,4103 द्विपादों में सर्वश्रेष्ठ। (38) [2456]

विश्वभर में समूहों4104 के प्रमुखों को अग्रणी शिक्षक कहा जाता है।4105
आप सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट हैं;

4097 रीडिंग दयासायो (और निम्नलिखित व्याख्या) बीजेटीएस के साथ पीटीएस दयायासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए

4098 accherasanto

4099 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"

4100 क'तावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए

4101 i'sisattamo

4102 nittiṇṇakaṅkho

4103 nimmāno

4104 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"

4105 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"

वे सब आपके समूह में आ गए हैं।4106 (39) [4257]

हे सर्वज्ञ, आपके ज्ञान के माध्यम से, 4107
आप कई लोगों को पार कराते हैं। आपको देखने आ रहा हूँ,
वे पीड़ा का अंत करते हैं। (40) [4258]

चाहे जो भी परफ्यूम बनाए जाएं,
हे सुंदरी, इस संसार में अपनी सुगंध बिखेरो। तुम्हारी [मधुर] सुगंध की कोई बराबरी नहीं।
हे पुण्य का क्षेत्र, हे महान ऋषि। (41) [4259]

हे सुंदर दृष्टि वाले, तुम मुक्ति दिलाते हो
दयनीय अवस्थाओं से,4108 [और] पशुओं के गर्भों से।4109
हे महान ऋषि, आप व्याख्या कर रहे हैं
शांति का निःशर्त मार्ग।” (42) [4260]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (43) [4261]

“जिसने [इस प्रकार] मेरे ज्ञान की पूजा की, [अपने हाथों से] प्रसन्न होकर,
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (44) [4262]

तीस हजार युगों तक वह देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। हजार बार वह राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है।" (45) [4263]

मुझे इससे अच्छा लाभ हुआ, क्योंकि मैंने संबुद्ध को प्रसन्न किया। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (46) [4264]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

---

4106 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, “वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं”
4107 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है जिसे समझा जाना है [या निर्देश दिया जाना है, नेतृत्व किया जाना है, मार्गदर्शन किया जाना है (नेति का क्रियापद)]"
4108 जिनो
4109 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट लगती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।
4110 रीडिंग akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ with BJTS for PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ (“मैं धम्म- प्रचारक मैं")

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (47) [4265]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (48) [4266]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (49) [4267]

इस प्रकार पूज्य उदेना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदेना थेरा की कथा का अंत हो गया है।

समीक्षा:

मेटेय्या, पुणका थेरा, मेट्टागु, और धोवका भी,4111
उपासिव, जिसे नंदा भी कहते हैं,
और हेमका वहां से सातवें स्थान पर हैं। तोदेय्या और जतुकण्णी,
और उदेना, जो बहुत प्रसिद्ध थे।
यहां तीन सौ श्लोक हैं, इसके अलावा अस्सी-तीन और श्लोक हैं।

मेत्तिया अध्याय, इकतालीसवाँ

भद्दाली अध्याय, बयालीसवाँ

---

408. {411.}4112 भड्डलि4113

सुमेधा नामक सम्बुद्ध, जो प्रधान, करुणावान, ऋषि, जगत के प्रधान, एकांतप्रिय थे, हिमालय में आए। (1) [4268]

4111 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭataṭa heḷana vātaya (“वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ”)
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 4112 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है। यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
4113 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

हिमालय में प्रवेश करते हुए, विश्व के नेता, परम पुरुष सुमेधा, बैठ गए।
कमल मुद्रा में आना.4115 (2) [4269]

सुमेधा, विश्व के नेता, उनकी ध्यान अवस्था प्राप्त हुई,4116 परम पुरुष, बुद्ध,
वहाँ सात रातों और सात दिनों तक बैठा रहा। (3) [4270]

भार ढोने वाले खंभे को ले जाना,4117
मैं भी जंगल में घुस गया।4118
वहाँ मैंने संबुद्ध को देखा।
बाढ़ पार करने वाला, निष्कलंक। (4) [4271]

झाड़ू उठाने के बाद,
फिर मैंने आश्रम की सफाई की। चारों कोनों में लकड़ियाँ गाड़कर,
मैंने तब उसके लिए एक मंडप बनाया। (5) [4272]

मैंने साल के पेड़ से फूल लाकर मंडप को फूलों से ढक दिया।

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने उनकी पूजा की, जो इस दुनिया से चले गए थे। (6) [4273]

जिसे वे “सुमेधा” कहते हैं,4119
बहुत बुद्धिमान4120 [और] समझदार,4121
भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (7) [4274]

यह जानकर कि बुद्ध बोलेंगे,4122 सभी देवता एक साथ आए, [सोचते हुए],
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, दर्शनीय बुद्ध
निःसंदेह धम्म का प्रचार करेगा ।”4123 (8) [4275]

4114 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4115 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

4116 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4117 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

4118 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

4119 शाब्दिक रूप से, "गया"

4120 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

4121 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

4122 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

4123 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं "तू" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का फायदा उठाता हूँ-

---

सम्बुद्ध, सुमेधा, यज्ञ प्राप्तकर्ता,
देवताओं की सभा में बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (9) [4276]

“जिसने एक सप्ताह तक मेरे लिए साल के फूलों से ढका हुआ मंडप धारण किया था,”
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (10) [4277]

चाहे वह देवता के रूप में जन्म ले या मनुष्य के रूप में, उसका रंग स्वर्णमय होगा।
प्रचुर धन-संपत्ति के साथ एक हो जाना,
वह कामुक सुखों का आनंद लेगा।4124 (11) [4278]

[तब] साठ हजार हाथी, सभी आभूषणों से सजे हुए, सोने के मुकुट पहने हुए ,
सोने से बने हार्नेस में लिपटा हुआ, (12) [4279]

हाथ में भाले और अंकुश लिए हाथी प्रशिक्षकों द्वारा सवार, 4125 इस आदमी के स्वामित्व में आ जाएंगे।
और शाम और सुबह उसकी सेवा करो।4126
उन हाथियों से घिरा हुआ,
यह व्यक्ति [संसार में] आनंदित होगा। (13) [4280]4127

साठ हजार घोड़े [भी], सभी आभूषणों से सजे हुए, उत्तम नस्ल के, अच्छी वंशावली वाले,4128
सिंध से घोड़े, तेज वाहन, (14) [4281]

घोड़ों के प्रशिक्षकों द्वारा सवार, धनुष और एकधारी तलवारें लिए हुए, 4129 लोग लगातार इस [आदमी] की सेवा करेंगे:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (15) [4282]

मीटर को बनाए रखने के लिए "रेत" और "सौ" का प्रयोग किया गया है। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "हजार कंढ (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4124 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

4125 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4126 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4127 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4128 लिट., “एक फूल पर”
4129 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4130 khiḍḍāratiyaÁ

साठ हजार रथ भी, सभी आभूषणों से सजे हुए, तेंदुओं की खालों से ढके हुए।
और इसी प्रकार बाघ,4132 झंडे फहराए गए, (16) [4283]

कवच पहने और हाथों में धनुष लिए पशु प्रशिक्षकों4133 द्वारा सवार होकर, वे लगातार इस [आदमी] की प्रतीक्षा करेंगे:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (17) [4284]

और साठ हजार गाँव, हर तरह से पूर्ण रूप से परिपूर्ण।
अनाज और प्रचुर धन से समृद्ध,4134
कुल मिलाकर शानदार,4135
वह हर समय उसके लिए प्रकट होगा:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (18) [4285]4136
सेना के चार भाग: हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिक।

मैं इस [आदमी] का लगातार इंतजार करूंगा:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (19) [4286]

अठारह सौ युगों तक वह देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। वह 4137 हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (20) [4287]

उस दौरान वह तीन सौ बार दैवीय शासन करेगा।
[और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव है। (21) [4288]

तीस हजार युगों के बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (22) [4289]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (23) [4290]

4131 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
4132 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4133 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
4134 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
4135 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4136 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
4137 pariḷāho

तीस हजार युग पहले
मैंने विश्व के नेता को देखा।
तब से लेकर अब तक के पूरे समय में,4138
मैं अमर अवस्था की तलाश में था। (24) [4291]

मुझे इस बात का लाभ मिला कि मुझे इस नियम की जानकारी थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [4292]

हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो!4139
हे परम पुरुष, आपकी जय हो!
आपके ज्ञान की प्रशंसा करने के बाद,
मैंने अब अमरता की अवस्था प्राप्त कर ली है। (26) [4293]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव रूप हो या दिव्य रूप, मैं हर जगह खुश हूं।
मेरे प्रशंसात्मक ज्ञान का फल। (27) [4294]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4140
टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (28) [4295]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (29) [4296]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [4297]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (31) [4298]

इस प्रकार पूज्य भद्दाली थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भद्दाली थेरा की कथा का अंत हो गया है।

4138 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4139 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
4140 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

---

409. {412.}4141 एकचट्टिय4142

चंदाभागा नदी के किनारे मेरा एक सुव्यवस्थित आश्रम था।
यह अत्यंत सफेद रेत से भरा हुआ था।
[और] पत्तों से बने हॉल से सुसज्जित। (1) [4299]

वहाँ की नदी बहुत सुंदर थी।
समतल किनारों और अच्छे स्नान-मार्गों के साथ। यह मछलियों और कछुओं से भरा हुआ था;
मगरमच्छों ने इसका सहारा लिया। (2) [4300]

वहाँ भालू, मोर और तेंदुए, भारतीय4143 कोयल और मैना पक्षी थे;
वे हमेशा चहकते और गुर्राते रहते हैं,4144
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (3) [4301]

अपनी प्यारी आवाज़ों के साथ कोयल4145

और हंस4146 अपनी मधुर आवाज़ में वहाँ हमेशा अपने गीत गाते रहते हैं4147, मेरे आश्रम को सुशोभित करते हैं। (4) [4302]

शेर, बाघ और जंगली सूअर भी।
भेड़िये,4148 [अधिक] भेड़िये,4149 क'रा बाना भालू,4150 दहाड़ना4151 खराब पहाड़ी सड़कों पर भी,4152 मेरे आश्रम को सुंदर बनाना। (5) [4303===

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4141 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4142 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4143 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4144 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4145 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4146 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4147 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4148 शाब्दिक रूप से, "गया"
4149 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4150 लीटर, "गिर गया"
4151 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4152 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

एनी -हिरण4153 और सरभ -हिरण,4154 सियार4155 और कई सूअर4156 [भी], खराब पहाड़ी रास्तों पर भी रोते हैं4157,4158 मेरे आश्रम को सुंदर बनाते हैं। (6) [4304]

गोल्डन शावर4159 और चंपक [पेड़],4160 ट्रम्पेट-फूल,4161 चीनी चेस्ट ट्री,4162 हिप्टेज4163 लताएँ और अशोक के पेड़4164 मेरे आश्रम में खिल रहे हैं। (7) [4305]

सेज-लीफ अलंगियम,4165 चमेली,4166
सत्तलि , 4167 बिम्बिजालिका , 4168
k'aṇṇikā और डिनर-प्लेट वृक्ष4169
मेरे आश्रम में खिल रहे हैं। (8) [4306]

आयरनवुड,4170 साल 4171 और सलाला ,4172 खिले हुए सफेद कमल यहाँ हैं; दिव्य सुगंध बिखेरते हुए, वे मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (9) [4307]

अर्जुन4173 और सिल्वर ग्रेवुड,4174
फूलदार गन्ना4175 यहाँ है,

बीजेटीएस के अनुसार 4153 में, पीटीएस में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।

4154 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4155 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
4156 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4157 लिट., "एक फूल पर"
4158 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4159 khiḍḍāratiyaÁ
4160 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4161 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4162 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
4163 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
4164 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4165 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
4166 pariḷāho
4167 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4168 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
4169 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4170 samādhikusalo ahaŋ
4171 iddhipādesu kovido
4172 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
4173 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
4174 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
4175 mahābhisakkasaṅkāso

---

sal 4176 और kaṅgu 4177 - फूल [भी, हैं]
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (10) [4308]

आम,4178 गुलाब-सेब,4179 मूंगा-बीन का पेड़,4180 नीम,4181 और साल-कल्याणी ,4182 दिव्य सुगंध बिखेरते हुए मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (11) [4309]

अशोक4183 और बेल4184 [पेड़], यहाँ खिलते हुए भगिनीमाला ,

दिव्य सुगंधों का प्रवाह मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहा है। (12) [4310]

कदम4185 और केला4186 [पेड़] और
i'simugga 4187 को वहाँ लगाया गया है।
वे निरंतर फल देते हैं, जिससे मेरा आश्रम सुशोभित होता है। (13) [4311]

मायरोबलन4188 [और] आंवला,4189 आम,4190 गुलाब-सेब,4191 बहेरा,4192 बेर,4193 मार्किंगनट,4194 बेल4195
मेरे आश्रम में फल-फूल रहे हैं। (14) [4312]

[आश्रम] के पास एक तालाब है, जिसमें नहाने के लिए अच्छे घाट हैं, सुंदर है, और मंडलक के फूलों से ढका हुआ है।4196

4176 dosavyādhitikicchako
4177 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
4178 दिठ्ठिगण्ड°
4179 लोकापज्जोटो
4180 sanarāmarasakkato
4181 नारदिक्को
4182 लिट., “में”
4183 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
4184 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
4185 महास्सादंग
4186 महरसंग
4187 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
4188 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
4189 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
4190 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
4191 शाब्दिक अर्थ, "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
4192 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
4193 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
4194 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
4195 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो
4196 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।

और गुलाबी और नीले कमलों के साथ।4197 (15) [4313]

वहाँ गुलाबी कमल अंकुरित होते हैं; अन्य, फूलने पर पराग उत्पन्न करते हैं। गिरे हुए पत्तों वाले काण्निका वृक्ष4198
मेरे आश्रम में खिल रहे हैं। (16) [4314]

शीटफ़िश,4199 [भी] पावुसा 4200 मछली, वलाजा ,4201 रीड-फ़िश4202 [और] रेड-फ़िश4203 तैर रही हैं4204 साफ़ पानी में, मेरे आश्रम को सुंदर बना रही हैं। (17) [4315]

नायिता , अंबागंधी , जैसी झाड़ियाँ
और स्क्रू-पाइन, 4205 पानी के अनुकूल, दिव्य सुगंध बिखेरते हुए मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (18) [4316]

जड़ों से शहद बह रहा है
[और] दूध [और] तेल4206 तनों से बहता है;
दिव्य सुगंध बिखेरते हुए, वे मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (19) [4317]

वहाँ की रेत बहुत सुंदर है, पानी के किनारे बिखरी हुई है।4207
युवा कलियाँ4208 हमेशा खिलती रहती हैं,
मेरे आश्रम को सुशोभित करना। (20) [4318]

उलझे हुए बालों का भार उठाने वाले,4210 हिरण के चमड़े के बाहरी वस्त्र पहनने वाले, छाल से बने वस्त्रों में सजे हुए, मेरे आश्रम को सुशोभित कर रहे हैं। (21) [4319]

बस हल की लंबाई जितनी दूरी आगे देखते हुए,4211

4197 शाब्दिक रूप से, "यहाँ"
4198 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
4199 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय उसके ऊपर रखता है।
4200 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
4201 sampahaŋsitā
4202 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।
4203 chettā
4204 sotā
4205 pasaŋsitā
4206 akhilo
4207 visālo . BJTS इसे visallo ("दर्द से मुक्त") पढ़ता है
4208 anīgho
4209 अकाथंकाथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"
4210 अनेजो
4211 विराजो

चतुर और शांतिपूर्ण जीवन जी रहे हैं,
मैं वासना में लिप्त होने की तलाश में नहीं हूँ।
वे मेरे आश्रम में रह रहे हैं। (22) [4320]

नाखून और बगल के बाल लंबे हो गए हैं,
उनके दांतों में कीचड़, सिर मिट्टी से सने हुए, सभी कीचड़ से सने वस्त्र पहने हुए,4213 वे मेरे आश्रम में रह रहे हैं। (23) [4321]

[छह] विशेष ज्ञान-पूर्णताकर्ता,4214
वे सभी हवा में यात्रा कर सकते हैं।
वे आकाश में ऊपर उठ रहे हैं, मेरे आश्रम को सुंदर बना रहे हैं। (24) [4322]

उन छात्रों से घिरा हुआ, मैं
मैं जंगल में रह रहा हूँ।
मुझे दिन और रात का फर्क नहीं पता।
हमेशा ध्यान करते रहना.4215 (25) [4323]

उस काल में बुद्ध4216 अत्थादस्सी थे, जो महान ऋषि थे। अंधकार को दूर करने वाले,
विश्व का नेता उठा। (26) [4324]

उस समय एक विद्यार्थी मेरे आश्रम में आया,4217 गुप्त मंत्रों के बारे में पूछने के लिए,4218
छह शाखाएँ, [पढ़ना] चिह्न। (27) [4325]

"बुद्धों का अवतार हुआ, महान ऋषि अत्थादस्सी; उन्होंने चार आर्य सत्यों की व्याख्या की।"
वह अमर मार्ग की घोषणा कर रहा है।" (28) [4326]

रोमांचित, खुशी से मेरे रोंगटे खड़े हो गए,4220
आश्रम से बाहर निकलकर, शिक्षण में प्रवेश करने की आशा में,
मैंने ये शब्द [अपने छात्रों से] कहे: (29) [4327]

4212 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है।
4213 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा ("सुगंधित")
4214 PTS mettā ("प्रेम") के लिए BJTS के साथ vattā का पाठ
4215 pakāsitā
4216 t'āretā
4217 अत्थकारेता का पाठ बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ तारेता ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए किया गया है।
4218 k'āretā
4219 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता
4220 पापेता
4221 साहित्य , या "सहनकर्ता"

"बृहत्तर महान लक्षणों से युक्त एक बुद्ध ने संसार में जन्म लिया है। आओ, तुम सब, चलो अब चलें।"
महान संबुद्ध के मध्य में।" (30) [4328]

तब उन सभी ने महान शिक्षा में निपुण होकर मेरी सलाह का पालन किया। वे परम अर्थ के साधक थे।
उन्होंने सहमति जताते हुए कहा, "उत्कृष्ट!" (31) [4329]

उलझे हुए बालों का भार ढोते हुए, हिरण के चमड़े के बाहरी वस्त्र पहने हुए, परम अर्थ की खोज में लगे हुए,

फिर जंगल से चले गए। (32) [4330]

उस काल में बुद्ध4223 अत्थादस्सी के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने चार आर्य सत्यों की व्याख्या की।
वह अमर मार्ग की घोषणा कर रहा है। (33) [4331]

मैंने एक सफेद छाता लिया और उसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध प्रतिमा के लिए ले गया। पूरे एक दिन तक उसे अपने साथ लिए घूमता रहा।
मैंने [तब] सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की। (34) [4332]

अत्थादस्सी, भगवान
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, भिक्षुओं की सभा में विराजमान।
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (35) [4333]

"मेरे लिए यह छाता किसने उठाया?"
अपने हाथों से किए गए कार्य से प्रसन्न होकर, मैं उसके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा:
आप सब मेरी बात सुनो: (36) [4334]

जब भी इसका पुनर्जन्म होगा, चाहे देवता के रूप में हो या मनुष्य के रूप में, इसके लिए छतरियां4224 उठाई जाएंगी:
छतरियां देने का फल। (37) [4335]

सतहत्तर युगों तक
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा। वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (38) [4336]

4222 में बीजेटीएस के साथ कांटा का पाठ किया गया है, जिसमें पीटीएस पाठ में हंता शब्द की पुनरावृत्ति की गई है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।
4223 hantā
4224 PTS tātâpi ("रक्षक भी") के लिए BJTS के साथ ātāpī का पाठ

वह सतहत्तर बार दैवीय शासन करेगा।
[और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव है। (39) [4337]

अठारह सौ युगों बाद, शाक्यों के श्रेष्ठ पुरुष गौतम
अंधकार को दूर करना,
वह उठेगा, पाँच आँखों वाला। (40) [4338]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (41) [4339]

चूंकि मैं ही वह कर्मकर्ता था, जो बुद्ध की छत्रछाया धारण किए हुए था, [अब तक] मुझे नहीं पता।
एक सफेद छाता नहीं ले जाया गया। (42) [4340]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है;4225
आज छाता लेकर चलने वाले
यह हर समय होता रहता है। (43) [4341]

ओह! मेरे कर्मों का फल मुझे खूब मिला।
अत्थादस्सी, तटस्थ। सभी दोष समाप्त हो गए हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (44) [4342]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (45) [4343]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (46) [4344]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (47) [4345]

इस प्रकार पूज्य एकाचत्तीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

4225 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।
"स्लेयर" में

एकचट्टिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

410. {413.}4226 तिनासुलकचादानिया4227

उस समय मैंने विचार किया
जन्म और बुढ़ापा [और] मृत्यु। अकेले [घर से] बाहर जाना,4228
मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (1) [4346]

भटकते हुए, मैं
नदी के किनारे आकर रुका।
वहाँ नदी के किनारे मैंने देखा
[पृथ्वी का एक टुकड़ा] पूर्ण रूप से.4231 (2) [4347]

मैंने वहां एक आश्रम बनाया है और मैं उसी आश्रम में रह रहा हूं।
मेरा पैदल मार्ग अच्छी तरह से बना हुआ है।
आवास4232 विभिन्न पक्षियों के झुंड4233.4234 (3) [4348]

वे विश्वासपूर्वक मेरे पास आते हैं।
और वे अपने प्यारे गीत मुझे सुनाते हैं। उनके साथ आनंद लेते हुए, मैं आश्रम में रह रहा हूँ। (4) [4349]

मेरी उस कुटिया के पास चार अलग-अलग प्रकार के जंगली जानवर थे।
जो अपने 4237 [वन] ठिकानों से बाहर आए
और मेरे लिए गरज की तरह दहाड़ा। (5) [4350]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4226 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4227 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4228 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4229 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4230 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4231 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4232 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4233 शाब्दिक रूप से, "गया"
4234 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4235 लिट., "गिर गया"
4236 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4237 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

जब वे जंगली जानवर आवाजें निकाल रहे थे, तब मुझे बहुत आनंद आया। उन जानवरों की तलाश करते हुए,4238
मैंने विश्व के नेता को देखा। (6) [4351]

फिर, देवताओं के ईश्वर, विश्व के प्रधान नेता तिस्सा को प्रसन्न और प्रसन्न हृदय से देखकर,
मैंने 4239 आयरनवुड पराग की पेशकश की। 4240 (7) [4352]

मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की, जैसे सूर्योदय के समय सूर्य की, जैसे खिलते हुए राजसी साल के वृक्ष की।
भोर के तारे की तरह चमकते हुए:4241 (8) [4353]

"हे सर्वज्ञ, अपने ज्ञान से आप इस संसार को इसके देवताओं से प्रकाशित करते हैं। आपको प्रसन्न करने के बाद,
वे पुनर्जन्म से मुक्त हैं। (9) [4354]

सर्वज्ञ, सब कुछ देखने वाले 4242 बुद्धों को न देखकर, कामवासना और घृणा से अवरुद्ध लोग 4243 अविची नरक में उतरते हैं। 4244 (10) [4355]

हे सर्वज्ञ, हे विश्व नेता, आपको देखने आने वाले सभी लोग अस्तित्व से मुक्त हो जाते हैं।
[और] अमर अवस्था को महसूस करें। (11) [4356]

जब बुद्ध, दृष्टिहीन, प्रकाश फैलाने वाले प्रकट होते हैं,
वे सत्य के प्रकाश को प्रदर्शित करते हैं।
सभी अशुद्धियों को जलाकर राख कर देना। (12) [4357]

विश्व के प्रमुख नेता, संबुद्ध तिस्सा की प्रशंसा करने के बाद,

बीजेटीएस के अनुसार 4238 में, पीटीएस में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
4239 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4240 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
4241 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4242 लिट., "एक फूल पर"
4243 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4244 khiḍḍāratiyaÁ
4245 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

खुश, और प्रसन्न हृदय से,
मैंने 4246 अरबी चमेली 4247 फूल भेंट किए। (13) [4358]

मेरी सोच को भांपते हुए, विश्व के प्रमुख नेता टिस्सा अपनी सीट पर बैठ गए।
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (14) [4359]

"जिसने मुझे फूलों से सजाया, अपने हाथों से प्रसन्न होकर, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगी;
आप सब मेरी बात सुनो: (15) [4360]

वह पच्चीस बार देवताओं पर शासन करेगा।
और वह पचहत्तर बार होगा

एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (16) [4361]

और वहां बहुत अधिक स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव है।
उसके कर्मों के फलस्वरूप
4248 फूलों से पूजा करने का । (17) [4362]

जब यह व्यक्ति अपना सिर धो ले, यदि वह फूल की इच्छा करे,
[तब] उसके अच्छे कर्मों से बंधा हुआ,
[यह] उसके सामने प्रकट होगा। (18) [4363]

जो भी कामना की जाती है, वह सब पूरा हो जाता है।
अपने इरादों को पूरा करने के बाद,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। (19) [4364]

अठारहवाँ पाठ भाग: अशुद्धियों को जलाकर, सजग और बुद्धिमान होकर,
एक ही सीट पर बैठे हुए,
वह अरहंत पद प्राप्त करेगा।" (20) [4365]

इधर-उधर चलते हुए, लेटते हुए, बैठते हुए या खड़े होते हुए, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध का स्मरण करते हुए,

---

4246 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4247 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
4248 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
4249 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4250 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

मैं हर समय जीवित हूँ।4251 (21) [4366]

मुझमें कोई कमी नहीं है
मैं जिन वस्त्रों और भोजन की भीख मांगता हूँ, उनमें
आवश्यकताओं [और] बिस्तर और सीट:4252
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (22) [4367]

अब अमरता प्राप्त हो गई है, शांति की अतुलनीय [महान] अवस्था। समस्त दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ।4253 (23) [4368]

पिछले बानवे युगों में
मैंने बुद्ध की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (24) [4369]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (25) [4370]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [4371]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [4372]

इस प्रकार पूज्य तिनसूलकचादनिया4254 थेरा ने ये श्लोक कहे।

तिनसूलकचादनिया4255 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4251 pariḷāho
4252 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4253 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
4254 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4255 samādhikusalo ahaŋ

---

411. {414.}4256 मधुमासदायक4257

शहर में, बंधुमती,
मैं उस समय सूअर का मांस बेचने वाला था।4258 तिल्ली और फेफड़े पकाकर,4259
मैंने उस मांस पर शहद डाला।4260 (1) [4373]

एक सभा में जाने के बाद,4261
मैंने एक कटोरा उठाया।
उस कटोरे को [मांस से] भरते हुए, मैं
इसे भिक्षुओं की सभा को दे दिया। (2) [4374]

वहाँ के सबसे वरिष्ठ भिक्षु ने मुझे 4262 [पुण्य] प्रदान किया: "इस कटोरे को [मांस से] भरने के कारण,
उसे बहुत खुशी मिलेगी। (3) [4375]

अपने अंतिम भ्रमण के दौरान, अपनी उत्तम जड़ों से प्रेरित होकर, दो उपलब्धियों को प्राप्त करते हुए,
वह अशुद्धियों को नष्ट कर देगा। (4) [4376]

वहाँ मेरे हृदय को प्रसन्नता प्राप्त हुई, फिर मैं तावतिंसा गया।

वहाँ खाना-पीना भी।
मुझे बहुत खुशी मिलती है। (5) [4377]

किसी मंडप या वृक्ष की जड़ में, पूर्व कर्मों को याद करते हुए,
भोजन और पेय दोनों की मूसलाधार बारिश
मुझ पर हर समय बारिश हो रही है। (6) [4378]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4256 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4257 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4258 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4259 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4260 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4261 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4262 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4263 शाब्दिक रूप से, "गया"
4264 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4265
यहां भी भोजन और पेय दोनों 4266 हैं।
हर समय मुझ पर बारिश हो रही है। (7) [4379]

मांस दान करने के कारण, जन्म-मृत्यु के चक्र में रहने के कारण, और सभी दोषों को भली-भांति जानने के कारण,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ।4267 (8) [4380]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह भेंट दी थी।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
मांस देने का फल यही है। (9) [4381]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [4382]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4383]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4384]

इस प्रकार पूज्य मधुमंसदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मधुमंगसादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

412. {415.}4268 नागपल्लवक4269

शहर में, बंधुमती,
मैं शाही बगीचे में रहता था।

4265 लिट., "गिर गया"
4266 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4267 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4268 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें और भी बहुत कुछ है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
4269 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

[उस समय], मेरे आश्रम के पास,
विश्व का नेता बैठ गया। (1) [4385]

मैंने लोहे की लकड़ी का एक अंकुर लेकर बुद्ध को अर्पित किया।
मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने वेल-गॉन-वन को सलाम किया। (2) [4386]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने 4270 की पेशकश की [कि] अंकुर [उस समय], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [4387]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [4388]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4389]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4390]

इस प्रकार पूज्य नागपल्लवक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नागपल्लवका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

413. {416.}4271 एकादिपिय4272

जब सुप्रसिद्ध व्यक्ति का निधन हुआ,4273
सिद्धार्थ, विश्व के नेता,

4270 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 4271 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
4272 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4273 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सभी देवता और मनुष्य
सर्वश्रेष्ठ द्विपाद की पूजा कर रहे हैं। (1) [4391]

और जब विश्व नेता सिद्धार्थ के लिए एक मंदिर4275 स्थापित किया गया था,
वे शिक्षक के मंदिर की पूजा यथासंभव उत्साहपूर्वक कर रहे हैं। (2) [4392]

मंदिर के आसपास, मैं
बुद्ध के लिए एक दीपक जलाया।
मैंने पूरी रात अपना दीपक जलाए रखा।
अगले दिन सूर्योदय होने तक। (3) [4393]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (4) [4394]

वहाँ मेरा सुनिर्मित महल है
"एकल दीपक" के नाम से जाना जाता था। हवेली में मेरे लिए एक लाख दीपक हमेशा जलाए जाते हैं। (5) [4395]

जैसे सूरज उगता है, वैसे ही मेरा शरीर हमेशा चमकता रहता है।
मेरे लिए हर समय प्रकाश रहता है
मेरे शरीर के सभी प्रकाश के माध्यम से। (6) [4396]

दीवारों के आर-पार, चट्टानों के आर-पार और पहाड़ों की चोटियों को पार करते हुए,4276
मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ,
[यहाँ तक कि] सौ मील [दूर]। (7) [4397]

और सतहत्तर बार मैंने देवताओं के संसार में आनंद लिया। और इकतीस बार,
मैंने वहाँ दैवीय शासन का प्रयोग किया। (8) [4398]

और [फिर] अट्ठाईस बार मैं एक ऐसा राजा बना जिसने [कानून का] पहिया घुमाया।
वहाँ बहुत स्थानीय शासन भी था, जिसकी गिनती करना असंभव था। (9) [4399]

देवताओं के लोक से गिरते हुए,

4274 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

4275 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4276 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मेरा जन्म मां के गर्भ में हुआ था।
मेरी माँ के गर्भ में भी,
मेरी एक आँख खुली रहती है।4278 (10) [4400]

मैं मात्र चार वर्ष की आयु में बेघर हो गया था।
आठ महीने बीतने से पहले ही मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया। (11) [4401]

मैंने अपनी "दिव्य दृष्टि" को शुद्ध किया;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। हर तरह की अशुद्धि दूर हो जाती है:
यह एक ही दीपक का फल है। (12) [4402]

दीवारों के आर-पार, चट्टानों के आर-पार भी; मैं देख रहा हूँ, पार कर रहा हूँ
यहां तक कि पूरी पर्वत चोटी भी:4279
यह एक ही दीपक का फल है। (13) [4403]

असमान स्थान भी इसके लिए उपयुक्त हैं
मुझे अंधकार का ज्ञान नहीं है; मैं किसी भी चीज को अंधकारमय नहीं देखता।
यह एक ही दीपक का फल है। (14) [4404]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध] को एक दीपक दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह एक ही दीपक का फल है। (15) [4405]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (16) [4406]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) [4407]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [4408]

इस प्रकार पूज्य एकादीपीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

4277 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4278 lit., "गया"
4279 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

एकादीपीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

414. {417.}4280 उच्चांगपुप्पिया4281

शहर में, बंधुमती,
मैं उस समय माली का काम करता था।
मेरी गोद4282 [फूलों से भर जाने के बाद,]
मैं उनके साथ बाज़ार गया। (1) [4409]

उस काल में बुद्ध (4284), भिक्षुओं की सभा द्वारा सम्मानित, विश्व नेता, गुजर रहे थे (4285)।
उनकी अपार महिमा के माध्यम से।4286 (2) [4410]

विश्व के दीपक को देखकर, विपस्सी, विश्व को पार करने वाले,
मेरी गोद से एक फूल लेते हुए,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित किया। (3) [4411]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने [उस समय] 4288 को एक फूल भेंट किया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [4412]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4413]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4280 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4281 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4282 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4283 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4284 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4285 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4286 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4287 शाब्दिक रूप से, "गया"
4288 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4414]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4415]

इस प्रकार पूज्य उच्चांगपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उच्चांगपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

415. {418.}4289 यगुदायक4290

किसी अनजान व्यक्ति को ले जाना,4291
मैं उस समय एक गाँव में गया था। वहाँ मैंने एक भरी हुई नदी देखी।
मैं एक मठ के पास पहुँचा।4293 (1) [4416]

वनवासी,4294 सजग,4295 ध्यानमग्न,4296 खुरदुरे वस्त्र धारण करने वाले4297 बुद्धिमान, एकांतप्रिय थे।
उस मठ में रहना। (2) [4417]

उनकी नियति4298 काट दी गई थी, अच्छी तरह से मुक्त, तटस्थ लोगों की;
वे भीख मांगने नहीं गए
यदि नदी ने [उन्हें] अवरुद्ध कर दिया.4299 (3) [4418]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4289 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4290 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4291 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4292 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4293 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4294 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4295 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4296 लिट., “गया”
4297 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4298 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4299 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

विस्मय से, 4300 हाथों को जोड़कर, मेरे पास जो चावल के दाने थे, उन्हें लेकर, 4301
मैंने तब दलिया दान किया। (4) [4419]

उन भिक्षुओं को पाँच बार दलिया देकर, अपने हाथों से प्रसन्न होकर, अपने कर्मों से संतुष्ट होकर,
तब मैं तावतिंसा गया। (5) [4420]

तीस.4303 के समूह में मेरे लिए रत्नों से बना एक महल अस्तित्व में आया।
मैंने महिलाओं के एक समूह के साथ आनंद लिया
उस शानदार हवेली में [मेरी]। (6) [4421]

मैंने तैंतीस बार देवताओं के स्वामी के रूप में वहां दिव्य शासन किया।
तीस बार एक पहिया घुमाने वाला राजा,
मैंने आधिपत्य का प्रयोग किया।4304 (7) [4422]

वहाँ स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव है।
देवताओं या मनुष्यों की दुनिया में,
मुझे [हमेशा] बहुत प्रसिद्धि मिली। (8) [4423]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तो मैं बेघर हो गया।
जैसे ही 4305 [मेरे] बाल काटे गए,
मुझे पूर्ण सफलता का एहसास हुआ।4306 (9) [4424]

क्षय के कारण, वृद्धावस्था के कारण,4308 इस शव पर विचार करते हुए43094310 [मेरा], प्रशिक्षण नियम सिखाए जाने से पहले,4311

4300 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4301 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4302 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4303 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

4304 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4305 लिट., “एक फूल पर”
4306 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4307 khiḍḍāratiyaÁ
4308 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
4309 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
4310 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
4311 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (10) [4425]

मेरा उत्कृष्ट उपहार बहुत ही सदुपयोग साबित हुआ;
[मेरा] ट्रेड4312 बहुत अच्छी तरह से लागू किया गया था।4313
उस दलिया-उपहार के कारण ही,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (11) [4426]

मुझे 4314 का कोई अनुभव नहीं है
दुःख, विलाप और बीमारी, न ही मन को सताने वाली पीड़ा:
यह दलिया देने का फल है। (12) [4427]

ओह! वह दलिया तो बहुत ही सार्थक रहा! भिक्षुओं की सभा को दलिया देना, असाधारण पुण्य के क्षेत्र में!
मुझे ये पाँच अच्छे परिणाम पसंद हैं: (13) [4428]

मैं बीमार नहीं पड़ती, मैं खूबसूरत हूं।
शिक्षण प्रक्रिया शीघ्र ही देखी जाती है।
मुझे [भरपूर] खाना और पेय पदार्थ मिलते हैं।
और [मेरा लंबा] जीवनकाल पाँचवाँ है। (14) [4429]

जो कोई भी श्रद्धा से भरकर भिक्षुओं की सभा को दलिया देगा, उस बुद्धिमान व्यक्ति को भी लाभ मिलेगा।
ये पाँच [सबसे स्वागत योग्य] लाभ.4315 (15) [4430]

जो होना चाहिए था वह सब हो चुका है; मैंने पुनर्जन्मों का अंत कर दिया है।4316
सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो चुकी हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (16)4317

मैं गांव-गांव, शहर-शहर भटक रहा हूँ।
उनकी स्तुति करते हुए, संबुद्ध
और [बुद्ध की] सद्गुणी शिक्षा। (17)4318

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से तीस हजार युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:

4312 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4313 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
4314 pariḷāho
4315 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4316 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
4317 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4318 samādhikusalo ahaŋ

यह दलिया देने का फल है। (18) [4431]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (19) [4432]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [4433]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [4434]

इस प्रकार पूज्य यागुदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

यागुदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

416. {419.}4319 पथोदानदायक4320

उस समय मैं जंगल में घूमता था और नियमित वन कार्य करता था।4321
आधा पिंट पका हुआ चावल लेकर,4322
मैं जंगल में काम करने गया। (1) [4435]

वहाँ मैंने उन्हें देखा, संबुद्ध, स्वयंभू, अजेय, भिक्षा मांगने के लिए जंगल से निकले हुए।
उसे देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हुआ। (2) [4436]

मैं दूसरों के लिए काम करने के लिए बाध्य हूँ।
और मेरे लिए कोई योग्यता नहीं है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4319 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4320 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4321 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4322 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4323 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मेरे पास आधा पाइंट पका हुआ चावल है;
मैं इसे [महान] ऋषि को खिलाऊँगा। (3) [4437]

मैंने आधा पाइंट चावल लेकर उसे स्वयंभू एक को दे दिया। जब मैं [उनका] ध्यान कर रहा था,
तब ऋषि ने [वह पका हुआ चावल] खाया। (4) [4438]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (5) [4439]

देवताओं के स्वामी ने छत्तीस बार वहाँ दिव्य शासन किया।
मैं तैंतीस बार राजा बना।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (6) [4440]

वहाँ स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव है।
मैं [हमेशा] खुश और प्रसिद्ध हूं:
आधा पिंट चावल का फल। (7) [4441]

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे असीमित धन प्राप्त होता है।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
आधा पिंट चावल का फल। (8) [4442]

मेरे लिए संपत्ति नदी की धारा के समान हो जाती है;4324
मैं उन्हें माप भी नहीं सकता:
आधा पिंट चावल का फल। (9) [4443]

लोग कहते हैं, "यह खाओ," "इसका आनंद लो," "इस अच्छे बिस्तर पर लेटकर सो जाओ।" इसी वजह से मैं हमेशा खुश रहता हूँ।
आधा पिंट चावल का फल। (10) [4444]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
आधा पिंट चावल का फल। (11) [4445]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [4446]

4324 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4447]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [4448]

इस प्रकार पूज्य पथोदनदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पथोदानदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

417. {420.}4325 Mañcadāayaka4326

जब सिद्धार्थ निर्वाण प्राप्त कर चुके, हे करुणावान, हे विश्व नेता,
[और] पूरी दुनिया में फैल गया,4327
देवता और मनुष्य उनका सम्मान कर रहे थे, (1) [4449]

मैं वहाँ एक निम्न जाति का व्यक्ति था, लंबी कुर्सियाँ और स्टूल बनाने वाला।
मैं उस काम से अपनी जीविका कमाता हूँ।
और इसके द्वारा मैं अपने बच्चों का पेट भरता हूँ। (2) [4450]

एक अच्छी तरह से बनी लंबी कुर्सी बनाने के बाद, अपने हाथों से किए गए काम से संतुष्ट होकर, मैं स्वयं उसके पास गया और फिर...
इसे भिक्षुओं की सभा को दे दिया। (3) [4451]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (4) [4452]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4325 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4326 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4327 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4328 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

देवताओं के लोक में जाकर, मैं तीस लोगों के समूह में आनंदित होता हूँ।4329
बहुत महंगे बिस्तर आते हैं
मेरी इच्छा के अनुसार हो। (5) [4453]

पचास बार मैं देवताओं का स्वामी बना, और मैंने वहाँ दिव्य शासन किया। अस्सी बार मैं राजा बना।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (6) [4454]

वहाँ स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव है।
मैं [हमेशा] खुश और प्रसिद्ध हूं:
बिस्तर देने का यही फल है। (7) [4455]

यदि मैं देवताओं के लोक से गिरकर मनुष्य के रूप में आ जाऊं,
बहुत महंगा, बिस्तर बेहतरीन हैं
मेरे लिए स्वयं ही आ गए। (8) [4456]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4330
अब भी, जब झूठ बोलने का समय आता है
नीचे, मेरे लिए एक बिस्तर इंतज़ार कर रहा है। (9) [4457]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
बिस्तर देने का यही फल है। (10) [4458]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (11) [4459]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4460]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4461]

इस प्रकार पूज्य मंचडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

4329 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4330 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मांचदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

भद्दली और एकचट्टा, तिनसुला और मानसदा। नागपल्लविका, दीप्ति, उच्चांगि, यागुदायका, पथोदनी, मनकादादा:
यहां जिन आयतों की गिनती की गई है उनकी संख्या दो सौ है और
उन दो सौ श्लोकों से एक श्लोक अधिक।

भद्दाली अध्याय, बयालीसवाँ

साकिंसममज्जका अध्याय, तैंतालीसवाँ

---

418. {421.}4331 साकिŋसम्मज्जका4332

सभी वृक्षों के प्रमुख, भगवान विपस्सी के बोधि वृक्ष (तुरही-पुष्प) को देखकर,
मैंने वहाँ अपने हृदय को प्रसन्नता प्रदान की। (1) [4462]

मैं हमेशा अपने साथ झाड़ू लेकर उस बोधि वृक्ष की सफाई करता था। उस बोधि वृक्ष की सफाई करने के बाद,
मैंने तुरही-फूल की पूजा की। (2) [4463]

वहाँ मेरे हृदय को आनंदित करते हुए, मैंने अपने सिर पर हाथ रखकर उस बोधि वृक्ष की प्रशंसा की।
झुककर, 4334 वहाँ से चले गए। (3) [4464]

पैदल पथ पर चलते हुए,4335

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4331 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4332 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4333 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4334 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4335 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

सर्वोच्च वृक्ष को याद करते हुए,4336
[उस समय] एक python4337 ने मुझे हरा दिया।
भयानक रूप का, अत्यंत बलवान। (4) [4465]

मेरे कर्मों के फल के कारण,4338
मृत्यु के निकट होने पर भी मैं खुश था।
[अजगर ने] मेरा शरीर निगल लिया;4340
मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया। (5) [4466]

मेरा मन हमेशा शांत, शुद्ध और एकदम स्पष्ट रहता है।4341
मुझे दुःख के तीरों का ज्ञान नहीं है।
[और न ही] मेरे दिल में कोई पीड़ा। (6) [4467]

मुझे खुजली, दाद, चकत्ते, फोड़े, कुष्ठ रोग, मिर्गी और खुजली नहीं होती है।
वह सफाई का फल है। (7) [4468]

दुःख और विलाप दोनों
मेरे हृदय में 4349 ज्ञात नहीं हैं। मेरा मन स्पष्ट और अनासक्त है:4350
वह सफाई का फल है। (8) [4469]

मेरा मन शुद्ध है, ध्यान की अवस्था में मैं किसी चीज से आसक्त नहीं रहता।4351
इनमें से जो भी राज्य4352 मैं चाहूँ,

4336 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4337 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4338 शाब्दिक रूप से, "गया"
4339 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

4340 लिट., “गिर गया”
4341 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4342 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4343 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4344 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4345 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
4346 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4347 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"
4348 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4349 khiḍḍāratiyaÁ
4350 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
4351 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4352 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

यह [हमेशा] मेरे लिए होता है। (9) [4470]

मैं वासनापूर्ण मार्गों से आसक्त नहीं हूँ और न ही घृणास्पद मार्गों से; मैं अज्ञानता में भ्रमित नहीं हूँ।
वह सफाई का फल है। (10) [4471]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह कर्म किया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
वह सफाई का फल है। (11) [4472]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [4473]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4474]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [4475]

इस प्रकार पूज्य साकिंशम्मज्जक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

साकिंशम्माज्जका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

419. {422.}4353 एकदुस्सदायका4354

हंसवती नगर में
मैं तब घास ढोने वाला था।
मैं घास ढोकर अपना जीवन यापन करता हूँ।
और इसके ज़रिए मैं अपने बच्चों का पेट भरता हूँ। (1) [4476]

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का स्वामी था।4355

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4353 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4354 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4355 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर वाली रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

अंधकार को दूर भगाते हुए,
उस समय विश्व नेता का उदय हुआ। (2) [4477]

अपने घर में बैठे हुए, उस समय मेरे मन में ये विचार आया:
"बुद्ध संसार में अवतरित हुए हैं,
[लेकिन] मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। (3) [4478]

मेरे पास केवल यही एक लबादा है, मेरे पास अपना कोई दाता नहीं है। पीड़ा नरक का एक नमूना है;4356
मैं अब दान लगाऊंगा।" (4) [4479]

इस प्रकार विचार करते हुए,
मैंने अपने मन को प्रसन्न किया। उस एक कपड़े के टुकड़े को लेकर,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (5) [4480]

वह एक कपड़ा देने के बाद,

मैंने खुशी के जोरदार नारों को जन्म दिया, "यदि आप बुद्ध हैं, तो ज्ञानी,
मुझे पार ले चलो, हे महान ऋषि।" (6) [4481]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
अपनी प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए,
[बुद्ध] ने तब मुझे धन्यवाद दिया: (7) [4482]

"इस एक ही वस्त्र के उपहार के कारण, जो इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ दिया गया है, वह किसी बुरी जगह पर नहीं जाएगा।"
एक लाख4357 युगों के लिए। (8) [4483]

वह छत्तीस बार देवताओं के स्वामी के रूप में दिव्य शासन करेगा।
और वह तैंतीस बार बनेगा
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (9) [4484]

क्षेत्रीय शासन का काफी प्रभाव होगा, जिसकी गणना करना असंभव है।
देवताओं की दुनिया में हो या मनुष्यों की दुनिया में,
आप अस्तित्व में पुनर्जन्म लेंगे। (10) [4485]

सुंदर और गुणों से परिपूर्ण,

संभवतः, और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी प्रकार का जौ से बना भोजन है।

4356 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4357 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

एक ऐसे शरीर के साथ जो अतुलनीय है, आप जब चाहें, अटूट असीमित वस्त्र प्राप्त करेंगे।" (11) [4486]

जब उन्होंने यह कहा, तब सर्वोच्च कमल के नाम से प्रसिद्ध बुद्ध,4358 वीर4359 आकाश में विराजमान हो गए।
ठीक हवा में हंस-राजा की तरह। (12) [4487]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं होगी:
यह एक ही कपड़े का फल है। (13) [4488]

मेरे हर कदम के साथ, 4360 कपड़ा मेरे लिए उत्पन्न होता है। मैं नीचे कपड़े पर खड़ा होता हूँ;
मेरे ऊपर एक चंदवा। (14) [4489]

और आज भी मैं यही कामना कर रहा हूँ।
कि मैं किसी कपड़े से पूरे ब्रह्मांड को भी ढक सकूँ।
अपने जंगलों और पहाड़ों के साथ। (15) [4490]

सिर्फ उस एक कपड़े की वजह से, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मैं 4361वें नंबर पर सुनहरे रंग का था।
जन्म से जन्म तक स्थानांतरण.4362 (16) [4491]

उस एक कपड़े का एक परिणाम:
कहीं भी कोई विनाश नहीं हुआ।4363
यह मेरा आखिरी जीवन होगा;
[कि] अब मेरे लिए फल दे रहा है। (17) [4492]

उस समय जब मैंने वह वस्त्र दिया था, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह एक ही कपड़े का फल है। (18) [4493]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

4358 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4359 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4360 लिट., "गया"
4361 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4362 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4363 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (19) [4494]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [4495]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [4496]

इस प्रकार पूज्य एकदुसदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकदुस्सादायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

420. {423.}4364 एकासनदायक4365

हिमालयी क्षेत्र में,
कोसिका नाम का एक पर्वत है। मेरा सुगठित आश्रम वहीं स्थित है।
पत्तों से बने सुव्यवस्थित हॉल के साथ। (1) [4497]

उस समय मेरा नाम नारदा था, और मुझे कस्सपा के नाम से जाना जाता था।
मैं कोसिका में रह रहा हूँ।
पवित्रता के मार्ग की खोज.4366 (2) [4498]

विजेता, पदुमुत्तरा,
सर्वथा के महान स्वामी, एकांत प्रेमी, सम्बुद्ध
हवा के रास्ते में [वहाँ] आया। (3) [4499]

महान ऋषि की किरणों को जंगल के ऊपर से उड़ते हुए देखकर, [तब]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4364 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4365 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4366 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4367 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4368 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मैंने लकड़ियों से एक सोफा बनाया।
और [मैंने] चमड़े का चोला4369 [उस पर] फैला दिया। (4) [4500]

उसके लिए वह सीट तैयार करने के बाद,
मैंने अपने हाथों को अपने सिर पर दबाकर अपनी महान मानसिक स्थिति को व्यक्त किया।
मैंने उस समय उससे ये शब्द कहे थे: (5) [4501]

"[आप]4370 सर्जन हैं,4371 [महान] हीरो हैं, बीमारों के लिए चिकित्सक4372 हैं।
हे मार्गदर्शक, मुझे अपना उपचार प्रदान करें।
जो किसी बीमारी से पीड़ित हो। (6) [4502]

हे ऋषि, जो लोग सही मार्ग की खोज में लगे हैं, हे श्रेष्ठ बुद्ध, वे आपको देखकर सदा अपने लक्ष्य में सफल होते हैं।
उनका अस्तित्व चकनाचूर हो गया है।4375 (7) [4503]

मेरे पास आपको देने के लिए कुछ नहीं है; मैं केवल जंगली फल खाकर ही अपना जीवन यापन करता हूँ। लेकिन मेरे पास देने के लिए यह कुर्सी है।
इस लकड़ी से बने सोफे पर बैठ जाओ। (8) [4504]

भगवान बुद्ध वहाँ सिंहराज की तरह निडर होकर बैठ गए। वहाँ कुछ क्षण बिताने के बाद,
उन्होंने ये शब्द मुझसे तब कहे थे: (9) [4505]

आत्मविश्वास रखो, डरो मत;
आपको मनोकामना पूरी करने वाला पत्थर प्राप्त हुआ है।4376
भविष्य में आपकी सभी मनोकामनाएं पूरी होंगी। (10) [4506]

आपने असाधारण योग्यता के क्षेत्र में जो कुछ किया है, वह कोई मामूली बात नहीं है। आप स्वयं का उत्थान कर सकते हैं।

4369 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4370 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4371 शाब्दिक अर्थ, "गया"
4372 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4373 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4374 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4375 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4376 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

जिसका मन [अच्छी तरह से] नियंत्रित है। (11) [4507]

इस आसन के उपहार के कारण, जो इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ एक लाख युगों तक किया गया।
आप कष्ट में नहीं पड़ेंगे।

हे देवताओं के स्वामी, पचास बार आप दिव्य शासन का संचालन करेंगे।
और अस्सी बार तुम राजा बनोगे।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (13) [4509]

और वहां बहुत अधिक स्थानीय शासन होगा, जिसकी गिनती करना असंभव होगा।
हर जगह खुश रहना,
तुम अस्तित्व में पुनर्जन्म लोगे।" (14) [4510]

यह सब कहने के बाद, संबुद्ध, नेता, परम कमल,
हीरो4379 आकाश में उड़ान भर गया।
ठीक हवा में हंस-राजा की तरह। (15) [4511]

हाथी और घोड़े से चलने वाले वाहन, रथ और पालकी सहित—मैं ये सब प्राप्त कर रहा हूँ:
यह एक सीट का फल है। (16) [4512]

जंगल में प्रवेश करने के बाद भी, जब भी मुझे बैठने की इच्छा होती है, मैं अपने विचारों को समझने की कोशिश करता हूँ,
एक पालकी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। (17) [4513]

जब भी मुझे बैठने की इच्छा होती है, मैं पानी में चला जाता हूँ, यह समझने की कोशिश करता हूँ कि मैं क्या सोच रहा हूँ।
एक पालकी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। (18) [4514]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूँ, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, एक लाख पालकीों के साथ।
हर समय मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (19) [4515]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:

4377 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4378 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4379 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4380 लिट., "एक फूल पर"

चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
[जब मैं इंसान था] मैं दो कुलों में पैदा हुआ था:
क्षत्रिय या ब्राह्मण। (20) [4516]

एक सीट देने के बाद
असाधारण योग्यता के क्षेत्र में, शिक्षण की पालकी लेकर,
मैं दोषरहित जीवन जी रहा हूँ। (21) [4517]

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह एक सीट का फल है। (22) [4518]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [4519]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [4520]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [4521]

इस प्रकार पूज्य एकासनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकासनदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

421. {424.}4381 सत्तकदमपुप्फ़्य4382

हिमालयी क्षेत्र में,
कदंबा नाम का एक पहाड़ है।4383
सात बुद्ध एक साथ रहते थे।
[वहाँ] पहाड़ की तरफ। (1) [4522]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4381 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4382 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

4383 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

एक कदम4384 [वृक्ष] को खिलते हुए देखकर, मैंने अपने दोनों हाथों को एक साथ दबाकर उसके सात फूल तोड़ लिए।
मैंने उन्हें योग्यता को ध्यान में रखते हुए रखा।4385 (2) [4523]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [4524]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [4525]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4526]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4527]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4528]

इस प्रकार पूज्य सत्तकदंबपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सत्तकदंबपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4384 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4385 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

422. {425.}4386 कोरंडपुफिया4387

मैं उस समय वनकर्मी था,4388
जैसे कि 4389 पिता और दादा थे।4390
मैं जानवरों को मारकर अपनी जीविका कमाता हूँ,4391
मेरे लिए कोई अच्छाई4392 मौजूद नहीं है। (1) [4529]

जिस इलाके में मैं रहता था,
टिस्सा, विश्व के प्रमुख नेता, दृष्टिपूर्ण व्यक्ति, करुणापूर्वक
मुझे अपने तीन पदचिह्न दिखाए। (2) [4530]

और तिस्सा नामक शिक्षक के पदचिह्नों को देखकर, प्रसन्न होकर, और प्रसन्न हृदय से,
मैंने उसके पैरों के बारे में अपने दिल को प्रसन्न किया। (3) [4531]

एक कोरण्ड 4394 को खिलते हुए देखकर,
धरती में उगने वाला पैर-पीने वाला,4395
फूलों वाली एक टहनी लेकर, मैं
उन श्रेष्ठ चरणों की पूजा की। (4) [4532]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (5) [4533]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, मैं कोरण्ड के रंग की ही हूं ।
[और] बेहद खूबसूरत.4396 (6) [4534]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4386 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4387 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4388 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4389 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4390 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4391 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4392 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4393 शाब्दिक रूप से, "गया"
4394 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4395 लिट., "गिर गया"
4396 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह 4397 फीट की पूजा का फल है। (7) [4535]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (8) [4536]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4537]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [4538]

इस प्रकार पूज्य कोरण्डपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कोरण्डपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

423. {426.}4398 घटमांडायक4399

विश्व के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के श्रेष्ठ, सुविचारित, धन्य पुरुष को देखकर, वह विशाल वन में प्रवेश कर गया।
आंतरिक पीड़ा से व्याकुल,4401
मेरे मन को प्रसन्नता प्रदान करना,
मैंने कुछ घी से मलाई प्रस्तुत की।4402 (1) [4539]4403

4397 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, अंश, गांठ, एक छोटी माप), सौ भेंदु। " [लंबा? मोटा?]।"
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 4398 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
4399 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4400 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4401 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4402 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4403 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

ऐसा करने और उसे इकट्ठा करने से,4404 भागीरथी नदी,4405 और यहाँ तक कि चारों महान महासागर भी अस्तित्व में आए।
मुझे घी की क्रीम दे रहे हैं। (2) [4540]

और यह [संपूर्ण] भयानक पृथ्वी भी, असीम, गिनती से परे, मेरे विचारों को समझ नहीं पा रही है।
शहद और चीनी में बदल जाता है.4406 (3) [4541]

चारों महाद्वीपों पर ये वृक्ष, धरती में उगने वाले, पैरों से पानी पीने वाले, 4407 जो मेरे विचारों को समझते हैं,
मेरे लिए 4408 इच्छा वृक्षों में बदल जाओ। (4) [4542]

पचास बार देवताओं के स्वामी के रूप में, मैंने वहाँ दिव्य शासन किया। और इक्यावन बार मैं वहाँ था।

एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। [और मैंने] अनगिनत स्थानीय शासन का आनंद लिया। (5) [4543]4409

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह घी से प्राप्त मलाई का फल है। (6) [4544]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4545]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4546]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

4404 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4405 lit., “गया”
4406 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4407 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4408 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4409 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4547]

इस प्रकार पूज्य घटमण्डायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

घटमण्डायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

424. {427.}4410 एकधम्मसवानिय4411

विजेता, पदुमुत्तरा,
वह हर चीज का उस्ताद था।
चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए उन्होंने कई लोगों को पार कराया। (1) [4548]

फिर मैंने जटाधारी तपस्वी4412 के रूप में कठोर तपस्या की।4413

मैंने छाल से बने अपने कपड़े उतार फेंके,
मैंने उस समय आकाश में यात्रा की थी। (2) [4549]

मैं [तब] उनके बारे में, जो बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ हैं, चर्चा करने में असमर्थ हूँ। जैसे कोई पक्षी चट्टान से टकरा जाता है,
मैं आगे बढ़ने में असमर्थ हूँ।4415 (3) [4550]

पानी पर चलने के बाद, मैं आकाश में उड़ रहा हूँ। पहले मेरा व्यवहार
कभी बाधित नहीं हुआ था। (4) [4551]

"ठीक है, अब मैं इसकी जांच करूंगा।"
मुझे शायद थोड़ा-बहुत फायदा मिल जाए। आकाश से उतरते हुए मैं फिर
शिक्षक की मधुर ध्वनि सुनी।
जो अनित्यता का उपदेश दे रहा था

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4410 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4411 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4412 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4413 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4414 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4415 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4416 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

एक ऐसी आवाज के साथ जो मोहक थी, सुनने में अच्छी थी, सुंदर थी।
मैंने उस समय [शिक्षण] का कार्यभार संभाला। (5-6) [4552-4553]

अनित्यता को समझते हुए,4417
मैं अपने आश्रम लौट गया। जीवन भर वहीं रहा।
मैं [बाद में] वहीं पर चल बसा। (7) [4554]

बाद के जन्मों में,
मुझे शिक्षण.4418 के बारे में सुनने की याद आई।
उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (8) [4555]4419

तीस हजार युगों तक मैं
देवताओं की दुनिया में आनंदित,
और [वहाँ रहते हुए] मैंने इक्यावन बार ऐसा किया।
देवताओं पर शासन किया। (9) [4556]

और इक्कीस बार मैं [तब] था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। [और मैंने] बहुत स्थानीय शासन का आनंद लिया, गिनती में अनगिनत। (10) [4557]

मैंने अपने अच्छे कर्मों का फल भोगा, जन्म-जन्मांतर तक सुखी रहा। उस अनुभूति को याद करते हुए, मैं जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेता रहा।
मुझे अंत समझ नहीं आया,4421
निर्वाण, शाश्वत अवस्था। (11) [4558]4422

अपने पिता के घर में बैठे हुए,
एक भिक्षु, जिसने अपनी इंद्रियों पर पूर्णतः नियंत्रण रखा हुआ था, इस उपदेश की व्याख्या कर रहा था।4423

4417 शाब्दिक रूप से, "गया"
4418 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4419 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4420 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4421 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4422 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4423 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

अनित्यता के बारे में बात की गई:4424 (12) [4559]

“वास्तव में, सब कुछ परिवर्तनशील है;
जो चीजें उत्पन्न होती हैं और फिर नष्ट हो जाती हैं, वे जन्म लेने और फिर मरने के समान हैं;
उनसे राहत मिलना सुखद है।” (13) [4560]

उस श्लोक को सुनने के तुरंत बाद, मुझे अपनी पिछली धारणा याद आ गई।
एक ही सीट पर बैठते हुए,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (14) [4561]

जब मैं महज सात वर्ष का था, तब मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।
स्वयं बुद्ध ने मुझे दीक्षा दी थी:

शिक्षा सुनने का फल। (15) [4562]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उस समय की शिक्षा सुनी है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
शिक्षा सुनने का फल। (16) [4563]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (17) [4564]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [4565]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [4566]

इस प्रकार पूज्य एकधम्मसवनीया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकधम्मसवनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4424 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

---

425. {428.}4425 Sucintita4426

हंसवती नगर में,
मैं उस समय किसान था।
मैं खेती करके अपना जीवन यापन करता हूँ।
और इसके द्वारा मैं अपने बच्चों का पेट भरता हूँ। (1) [4567]

उस समय मेरा खेत उपजाऊ था, और मेरा अनाज बीज पैदा कर रहा था;4427 जब फल लगने का समय आया,
फिर मैंने इसके बारे में इस प्रकार सोचा: (2) [4568]

"यह सही नहीं है, यह उचित नहीं है।"
जो व्यक्ति सद्‌गुणों को जानता है,4428
कि भिक्षुओं को दिए बिना,4429
मुझे इसका सर्वोत्तम सेवन करना चाहिए। (3) [4569]

यह बुद्ध निष्पक्ष हैं,4430
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए;
उनके द्वारा पाले गए 4431 भिक्षुओं की सभा
यह अद्वितीय योग्यता क्षेत्र है। (4) [4570]

मैं वहां दान दूंगा।
नई फसल में से प्रत्येक का पहला भाग।"4432
इस तरह से सोचने पर, मैं
प्रसन्न था, प्रसन्न मन से।4433 (5) [4571]

फिर मैं अपने खेत से अनाज लेकर संबुद्ध के पास गया।
विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, पुरुषों के सांड, संबुद्ध के पास पहुँचकर,
और गुरु के चरणों की पूजा करना,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4425 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4426 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4427 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4428 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4429 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4430 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4431 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4432 शाब्दिक रूप से, "गया"
4433 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

मैंने बुद्ध से ये शब्द कहे: (6) [4572]4434

“अनाज की नई फसल अच्छी हुई है;
आप उपहार प्राप्तकर्ता हैं।
हे ऋषि, मुझ पर दया करो,
कृपया इसे स्वीकार करें, हे सुंदर आँखों वाले।”4437 (7) [4573]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
मैं क्या सोच रहा था, यह समझने की कोशिश करते हुए,

उन्होंने [उस समय मुझसे] ये शब्द कहे: (8) [4574]

“चार लोग [रास्ते में] प्रवेश कर चुके हैं;
इसके फल में चार स्थापित हैं।4438
भिक्षुओं की यह सभा ईमानदार है।
ज्ञान और नैतिकता में स्थिर। (9) [4575]

अनुष्ठान करने वाले लोगों के [अच्छे] पुनर्जन्मों के लिए किया गया पुण्य,4439
पुण्य अर्जित करने की चाह रखने वाले प्राणी,
भिक्षुओं के लिए उपहार स्वरूप,4440 बहुत फल देता है। (10) [4576]

नई फसल, और उससे भी अधिक, इन भिक्षुओं को दी जानी है।4441
यह प्रस्ताव रखते हुए, सभा के भिक्षुओं को अपने उस घर में ले चलो। तुम्हारे घर में जो कुछ तैयार किया गया है,
इसे भिक्षुओं की सभा को दे दो।” (11) [4577]4442

प्रमुख भिक्षुओं ने इसका प्रस्ताव रखा।
मेरे घर में जो कुछ तैयार किया गया था, उस सभा में उपस्थित हों।
मैंने भिक्षुओं की सभा को दिया। (12) [4578]

उस कर्म के फलस्वरूप,

4434 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4435 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4436 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4437 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4438 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4439 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4440 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4441 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"
4442 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करते हुए,
मैं तब तावतिंसा गया। (13) [4579]

वहाँ मेरा सुगठित महल सोने का बना हुआ था, जो चमकीला था। वह साठ मील ऊँचा था।

[और यह] तीस लीग चौड़ा था। (14) [4580]

उन्नीसवाँ पाठ भाग।
मेरा वह महल खचाखच भरा हुआ था, जिसमें महिलाओं के विभिन्न समूह मौजूद थे। वे वहाँ खाना-पीना कर रही थीं।
मैं तीस देवताओं के बीच रहता हूँ।4443 (15) [4581]

और मैंने [उस समय] लगातार तीन बार दैवीय शासन किया, और लगातार पाँच बार मैंने
वह एक ऐसा सम्राट था जो सत्ता का पहिया घुमाता था, [और मैंने] अनगिनत स्थानीय शासन का आनंद लिया। (16) [4582]4444

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे असीमित धन प्राप्त होता है।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
वह नई फसल का फल है। (17) [4583]

हाथी और घोड़े से चलने वाले वाहन, पालकी और रथ भी —
मैं इन सभी को प्राप्त कर रहा हूँ:
यह नई फसल का फल है। (18) [4584]

नए कपड़े [और इसी प्रकार] नए फल, नया भोजन जिसका स्वाद सर्वोत्तम हो —
मैं इन सभी को प्राप्त कर रहा हूँ:
यह नई फसल का फल है। (19) [4585]

रेशमी कपड़ा4445 और ऊनी कंबल4446 भी,
खोमा और सूती कपड़ा4447 — मैं ये सब प्राप्त कर रहा हूँ:
वह नई फसल का फल है। (20) [4586]

दास महिलाओं के समूह, दासों के समूह,

4443 khiḍḍāratiyaÁ
4444 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
4445 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4446 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
4447 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”

और वो महिलाएं जो पूरी तरह से सजी-धजी हैं - मैं उन सभी को प्राप्त कर रहा हूँ:
वह नई फसल का फल है। (21) [4587]

मुझे न ठंड लग रही है, न गर्मी; तेज बुखार भी नहीं है। और न ही मानसिक पीड़ा है।
मेरे मन में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। (22) [4588]

लोग कहते हैं, “यह खाओ,” “इसका आनंद लो,” “इस अच्छे बिस्तर पर लेटकर सो जाओ।” मुझे ये सब मिल रहा है:
यह नई फसल का फल है। (23) [4589]

अब मेरे लिए आखिरी समय है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।
आज मैंने जो फल दान किए, उनकी कीमत 4450 है।
यह मुझे हमेशा खुश करता है। (24) [4590]

अपनी नई फसल दान करने के बाद,
असाधारण सद्‌गुण वाले भिक्षुओं के लिए,4451
मुझे आठ परिणाम प्राप्त हुए,4452
मेरे कर्मों के अनुसार। (25) [4591]

मैं सुंदर हूँ और प्रसिद्ध भी, बहुत धनी4453 और हानि से मुक्त; हमेशा बहुमत में,4454
मेरे दल में कोई गुट नहीं है।
मैं दुनिया में जिनसे भी मिलता-जुलता हूँ, वे सभी मुझे सम्मान देते हैं।
और जो भी उपहार4455 हों,
मुझे [हमेशा] प्रत्येक का पहला मिलता है।4456 (26-27) [4592-4593]

भिक्षुओं के बीच में4457 या सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के आमने-सामने, सभी [अन्य] को पार करते हुए,
दानदाता मुझे दान दे रहे हैं। (28) [4594]

4448 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4449 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
4450 pariḷāho
4451 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4452 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
4453 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4454 samādhikusalo ahaŋ
4455 iddhipādesu kovido
4456 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
4457 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

पहली नई फसल देने के बाद,
उत्कृष्ट सद्‌गुण वाले भिक्षुओं के लिए,4458
मुझे ये परिणाम बहुत अच्छे लग रहे हैं:
यह नई फसल का फल है। (29) [4595]

उस दान के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह नई फसल का फल है। (30) [4596]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (31) [4597]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (32) [4598]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (33) [4599]

इस प्रकार पूज्य सुसिंतिता थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुसिंटिटा थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

---

426. {429.}4459 सोवनाकिंखानिया4460

विश्वास के साथ घर छोड़कर, मैं बेघर होकर निकल पड़ा। छाल से बने वस्त्र पहने हुए, मैं
मैंने तपस्या में विश्वास रखा।4461 (1) [4600]

अत्थादस्सी, भगवान
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का सांड,

4458 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4459 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4460 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4461 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस काल में अस्तित्व में आया,
कई लोगों को पार ले जाना। (2) [4601]

मेरी सारी शक्ति एक गंभीर बीमारी के कारण समाप्त हो गई थी। सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद करते हुए।
एक उत्कृष्ट स्तूप का निर्माण
मैंने प्रसन्न मन से उस स्तूप पर हजारों सुनहरे किंखनी फूल बिखेरे।
मेरा मन [उत्साह से भरा हुआ] है।4463 (3-4) [4602-4603]

मानो मैं संबुद्ध के सामने खड़ा था, मैंने उस स्तूप की सेवा की।
उसके बारे में मानसिक आनंद के साथ, अत्थादस्सी, तटस्थ व्यक्ति। (5) [4604]

4465 में देवताओं के लोक में पुनर्जन्म लेकर, मैं अपार आनंद प्राप्त कर रहा हूँ।
वहाँ मेरा रंग स्वर्णिम था:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [4605]

[वहाँ] मेरे पास आठ सौ मिलियन महिलाएं थीं जो अपने आभूषणों से सजी हुई थीं।4466
वे हर समय मेरी प्रतीक्षा करते रहते हैं:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (7) [4606]

वहाँ साठ हजार वाद्ययंत्र, भेरा- ढोल4467 और पणव -ढोल4468, शंख और देण्डिमा मौजूद हैं। ढोल4469 भी हैं।
ढोल की मधुर ध्वनि बोलते हुए.4470 (8) [4607]

और साथ ही चौरासी हजार अलंकृत हाथी।

4462 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4463 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4464 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4465 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4466 शाब्दिक रूप से, "गया"
4467 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4468 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4469 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
4470 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

तीन रास्तों से संभोग करते हुए 4471 नर हाथी 4472 [और] साठ वर्ष के हाथी, सोने के जालों से ढके हुए, [हमेशा] मेरी सेवा में रहते हैं 4473
और युद्ध के लिए सुसज्जित हाथी,4474
मुझे कभी कमी नहीं होती।4475 (9-10) [4608-4609]

मुझे परिणाम से खुशी हो रही है
सुनहरे किंखानी के 4476 फूल। मैंने 58 बार अभ्यास किया।
सभी देवताओं पर संप्रभुता। (11) [4610]

और इकहत्तर बार मैं था

एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। पृथ्वी पर, एक सौ एक बार।
मैंने विश्व-शासन का प्रयोग किया। (12) [4611]

अब उसने अमरता प्राप्त कर ली है, वह असीम है, उसे समझना कठिन है।
सभी बेड़ियाँ नष्ट हो चुकी हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (13) [4612]

उस फूल को भेंट करने के बाद से अठारह सौ युग बीत चुके हैं,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (14) [4613]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (15) [4614]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [4615]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 4471 में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद उतने ही अस्पष्ट रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
4472 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4473 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4474 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4475 लिट., "एक फूल पर"
4476 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) [4616]

इस प्रकार पूज्य सोवण्णकिंखनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सोवण्णकिंखनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

427. {430.}4477 सोवनकट्टारिका4478

स्वयं-संयमित,4479 बुद्ध, स्वयं को वश में करने वाला,4480 सजग,4481
ब्रह्मा के पथ पर विचरण करते हुए, 4482
मानसिक राहत में आनंद लेना,4483 (1) [4617]

बाढ़ पार करने वाला, 4484 ध्यान और समाधि से प्रेम करने वाला संबुद्ध, 4485 बैठा हुआ ऋषि, 4486 प्राप्तकर्ता, 4487
नीले कमल की पंखुड़ियों की तरह शानदार:4488 (2) [4618]

मैं पानी रखने के लिए लौकी लेकर सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के पास पहुँचा।
बुद्ध के चरणों को धोने के बाद,
मैंने वह [पानी] लौकी [उसे] दी। (3) [4619]

तब संबुद्ध ने नेता पद्ममुत्तरा को बुलवाया।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4477 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4478 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4479 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4480 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4481 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4482 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4483 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4484 शाब्दिक रूप से, "गया"
4485 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4486 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4487 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
4488 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4489 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

"इस [लौकी] के साथ [और अधिक] पानी लाते हुए,

इसे मेरे पैरों के तलवों पर रख दो।" (4) [4620]

सहमत होते हुए, "उत्कृष्ट" कहते हुए, और शिक्षक के प्रति आदर दिखाते हुए, लौकी से पानी ढोते हुए,4490
मैं इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के पास लाया। (5) [4621]

महान नायक ने इसके लिए धन्यवाद दिया, मेरे हृदय की पीड़ा को शांत करते हुए कहा, "मुझे यह लौकी देने के कारण,
जो तुम सोचते हो, उसे पूरा होने दो। (6) [4622]

उसके बाद पंद्रह-पंद्रह युगों तक मैंने देवताओं की दुनिया में आनंद लिया और तीस बार मैं राजा बना।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (7) [4623]

चाहे दिन हो या रात, चलते-फिरते हो या खड़े रहते हो, सोने से बना पानी का घड़ा4492
मेरे ठीक सामने खड़ा है। (8) [4624]

बुद्ध को लौकी अर्पित करने पर मुझे सोने का पानी का पात्र प्राप्त होता है:
यह कार्य बिना किसी परेशानी के संपन्न हुआ।4493
बाद में यह इतना विशाल हो जाता है। (9) [4625]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उसे वह लौकी दी है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह लौकी देने का फल है। (10) [4626]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (11) [4627]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4628]

4490 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4491 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4492 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4493 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4629]

इस प्रकार पूज्य सोवण्णकट्ट्रिक4494 थेरा ने ये श्लोक कहे।

सोवण्णकट्ट्रिका 4495 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: Sakiŋsammajjaka Thera,
Ekadussī, thus Āsanī,
फिर कदंब [और] कोरांडा, घटाओन, सावनिका, सुसिंतिता, किखनिका,
और सोना-कट्टारिका4496 भी:
यहां सौ श्लोक हैं और साथ ही इकहत्तर और श्लोक हैं।

साकिंसममज्जका अध्याय, तैंतालीसवाँ

एकविहार्य अध्याय, चौवालीसवाँ

---

428. {431.}4497 एकविहारिया4498

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के सगे संबंधी, महान यशार्ज, जिनका वंश कश्यप कहलाता है,4499
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता, [बुद्ध] प्रकट हुए। (1) [4630]

नॉन-डिलेड वन, 4500 असमर्थित, 4501

4494 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4495 khiḍḍāratiyaÁ
4496 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4497 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4498 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4499 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4500 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4501 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

जिसका मन अंतरिक्ष के समान समतल है,4502
बहुत खाली, 4503 तटस्थ, 4504 पसंद नहीं

उपस्थिति का,4505 स्वामी,4506 (2) [4631]

हृदय अनासक्त,4507 दोषमुक्त,4508
कबीले और समूह में घुलमिल न जाना,4509
अत्यंत दयालु, नायक
अनुशासन के साधनों में कुशल,4510 (3) [4632]

दूसरों के प्रति कर्तव्यों में सक्रिय,4511
[संपूर्ण विश्व को] उसके देवताओं के साथ प्रशिक्षित करना,4512
निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग पर जमी कीचड़ को सुखाना — अमर, परम आनंद, बुढ़ापे और मृत्यु की बाधा —4513
वह जो दुनिया भर में मदद करता है 4515
वह एक विशाल भीड़ के बीच बैठा था। (4-5) [4633-4634]

भगवान, 4516 कोयल की आवाज के साथ, 4517
ब्रह्मा की ध्वनि, 4518 तथागत, 4519
बहुत खराब सड़कों पर फंसे लोगों को उठाना4520
जो नेता के बिना खो गए हैं, 4521 (6) [4635]

4502 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

4503 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

4504 लिट., "गया"

4505 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

4506 लिट., "गिर गया"

4507 लिट., "योग्य"

4508 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

4509 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

4510 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

4511 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

4512 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

4513 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

4514 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

4515 khiḍḍāratiyaÁ

4516 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

4517 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"

4518 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

4519 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”
4520 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4521 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
4522 pariḷāho

तब मुझे विश्व नेता का दर्शन हुआ, जो निर्मल शिक्षा का प्रचार कर रहे थे। उनकी शिक्षा सुनने के बाद,
मैं बेघर हो गया। (7) [4636]

आगे बढ़ते हुए, मैं विजेता के विधान के बारे में सोच रहा था; कई धारणाओं से बोझिल था।
मैं सुंदर जंगलों में अकेला रहता था। (8) [4637]

शारीरिक एकांत बन गया
महान स्थिति4523 [तब] मेरे लिए, मानसिक एकांत से ग्रस्त,
बैठकों को भयभीत होकर देखते हुए.4524 (9) [4638]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [4639]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4640]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4641]

इस प्रकार पूज्य एकविहार्य थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकविहारीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

429. {432.}4525 एकसंखिया4526

वहाँ एक बड़ा उत्सव था
विपस्सी बुद्ध का 4527 बोधि [वृक्ष].

4523 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4524 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 4525 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।

यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।

4526 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

4527 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या खमीर रहित भोजन के रूप में।

जनता एकजुट हो गई,
पूजा करना4528 [कि] उत्कृष्ट बोधि। (1) [4642]

“निश्चित रूप से वह किसी से कमतर नहीं है।”
जिसका यह बोधि वृक्ष है;
यह बुद्धों का सर्वश्रेष्ठ संग्रह होगा;
शिक्षक के [वृक्ष] की पूजा की जानी चाहिए।”4529 (2) [4643]

उसके बाद, मैंने एक शंख लेकर उस बोधि वृक्ष के समक्ष प्रार्थना की।
हर रोज [उस शंख को] बजाते हुए,
मैंने सर्वोच्च बोधि की पूजा की। (3) [4644]

मृत्यु के निकट उस कर्म को करने से मुझे देवताओं का लोक प्राप्त हुआ। जब मेरा [मानव] शरीर नष्ट हो गया,
मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया। (4) [4645]

रोमांचित, खुश, बेहद खुश, [खेलते हुए]4530
साठ हजार यंत्र [वे]
मुझे हर समय सेवा प्रदान करो:
यह बुद्ध- पूजा का फल है , (5) [4646]

इस युग में मैं 4531 इकहत्तर राजाओं में से एक था जिनका नाम सुदस्सन4532 था।
गुलाब-सेब के बाग के स्वामी,4533
चारों तरफ से विजयी.4534 (6) [4647]

सौ प्रकार के 4535 उपकरण हर समय मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।
मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ:
यही उपस्थिति का फल है। (7) [4648]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव रूप हो या दिव्य, मेरे लिए ढोल हमेशा बजते रहते हैं।
यहां तक कि [मेरी] माँ के गर्भ में भी। (8) [4649]

केक या जंकेट (PSI: Sinh. roṭiya)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई खाद्य पदार्थ है।

4528 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4529 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4530 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4531 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4532 लिट., "गया"
4533 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4534 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4535 लिट., "योग्य"

संबुद्ध की सेवा करने के बाद, उस समस्त आनंद का अनुभव करने के बाद,4536
[अब] मैंने अमर अवस्था, शुभ, शांत, अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (9) [4650]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय वह कर्म किया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (10) [4651]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (11) [4652]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4653]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4654]

इस प्रकार पूज्य एकाॅखिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकासंखिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

430. {433.}4537 पतिहिरासन्नक4538

विजेता, पदुमत्तरा, बलि प्राप्तकर्ता,
उस समय शहर में प्रवेश किया,
एक लाख स्वामी के साथ.4539 (1) [4655]

4536 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 4537 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
4538 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4539 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

जब परम शांतिप्रिय,
तटस्थ व्यक्ति शहर में प्रवेश कर गया,
कई रत्न चमक रहे थे, और
हर समय तेज शोर होता रहता था। (2) [4656]

बुद्ध की [महान] महिमा के माध्यम से,4540
ढोल बजाए और पीटे जा रहे थे;
जब बुद्ध ने नगर में प्रवेश किया, तो वीणाएँ अपने आप बजने लगीं। (3) [4657]

मैं सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, पद्ममुत्तरा, महान ऋषि 4542 का सम्मान कर रहा हूँ;
चमत्कार देखने के बाद,
मैंने [इस पर] अपने दिल को प्रसन्न किया। (4) [4658]

"हे बुद्ध! हे शिक्षा!"
ओह! हमारे शिक्षक की [महान] उपलब्धि!
किसी की इच्छा के बिना, उपकरणों
ये सब अपने आप ही खेले जा रहे हैं!" (5) [4659]

उस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद से एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
बुद्धों को समझने का फल। (6) [4660]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4661]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4662]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4663]

इस प्रकार पूज्य पाटिहीरसंञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पाटिहीरसंञ्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4540 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4541 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4542 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

431. {434.}4543 शाणथविका4544

मैंने अल्टीमेट बाइपेड देखा,
खाने की थाली जैसे पेड़ की तरह चमक रहा है,4545
दीपकों के वृक्ष की तरह प्रज्वलित,
मानो सोने से बना हो, चमक रहा हो। (1) [4664]

मैंने अपना पानी का घड़ा,4546 अपने छाल के वस्त्र और अपना सुराही,4547 एक कंधे पर हिरण की खाल रखकर,
मैंने [तब] सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की प्रशंसा की: (2) [4665]

"महान ऋषि, ज्ञान के प्रकाश को फैलाते हुए,4548
जो भ्रम और अंधकार को दूर करता है
भ्रम के जाल द्वारा निर्मित
तुम ही हो जिसने पार कर लिया है। (3) [4666]

हे अद्वितीय, आप इस संसार को संपूर्ण रूप से ऊपर उठाते हैं;
यह अपने संपूर्ण विस्तार में नहीं है4552
आपकी जानकारी के लिए एक उपमा4553। (4) [4667]

उस ज्ञान के कारण, बुद्ध4554
उन्हें 4555 "सर्वज्ञ" के रूप में जाना जाता है।4556

मैं महान नायक हूं, मैं उनकी पूजा करता हूं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4543 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4544 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4545 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4546 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4547 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4548 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4549 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4550 लीटर, "गया"
4551 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4552 लिट., "गिर गया"
4553 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4554 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4555 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4556 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

अबाधित,4557 सर्वज्ञ।"4558 (5) [4668]

मैंने जब से सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की प्रशंसा की है, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
ज्ञान की प्रशंसा करने का यही फल है। (6) [4669]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4670]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4671]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4672]

इस प्रकार पूज्य ञाणथविका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ञाणथविका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

432. {435.}4559 उच्छुकाण्डिका4560

शहर में, बंधुमती,
मैं उस समय द्वारपाल था।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
[जो] हर चीज का स्वामी था। (1) [4673]

प्रसन्नता से, हृदय में आनंद लिए, गन्ने की एक डंडी लाते हुए,4561

4557 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4558 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4559 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4560 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4561 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने इसे [उन्हें] दिया, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध।
महान ऋषि [जिन्हें विपस्सी के नाम से जाना जाता है]। (2) [4674]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने [बुद्ध को] गन्ना दिया, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
गन्ने के डंठल का फल। (3) [4675]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [4676]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4677]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4678]

इस प्रकार पूज्य उच्छुकण्डिका 4562 थेरा ने ये श्लोक कहे।

उच्छुकंडिका 4563 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

433. {436.}4564 कलामबदायका4565

संबुद्ध 4566 ने रोमासा 4567 नाम दिया
वह पहाड़ की ढलान पर रहता था।
मैंने उस [बुद्ध] को bindweed4568 दिया।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (1) [4679]

4562 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4563 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4564 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4565 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4566 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4567 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4568 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने तब वह दान दिया था, मुझे कभी भी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह बेलदार घास देने का फल है। (2) [4680]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4681]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4682]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4683]

इस प्रकार पूज्य कलांबडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कलाम्बाडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

434. {437.}4569 अम्बातक4570

जंगल में बुद्ध को देखकर,
स्वयं-निर्मित, अजेय, ने एक बेर लिया,4571 I
इसे स्वयं-एक हो जाने को दिया। (1) [4684]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (2) [4685]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4569 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4570 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4571 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4686]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4687]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4688]

इस प्रकार पूज्य अंबाटक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबाटक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

435. {438.}4572 हरितकाडयक4573

मायरोबलन4574 और आंवला,4575 आम, गुलाब सेब,4576 बहेरा,4577 बेर,4578 मार्किंगनट,4579 बेल4580 —
मैं इसे स्वयं ले जा रहा हूँ। (1) [4689]

ध्यान करने वाले, ऋषि को देखना,
समाधि-प्रेमी, एक [पहाड़] की ढलान पर, एक महान ऋषि [वहाँ निवास करते हुए] अकेले, जो रोग से पीड़ित थे, एक मरुबलन का सेवन करते हुए, मैं
इसे स्वयं-स्वरूपित को दिया गया। जब औषधि का सेवन किया गया,4581

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4572 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4573 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

4574 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4575 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

4576 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4577 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4578 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4579 lit., “गया”
4580 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4581 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

इससे [बुद्ध की] बीमारी दूर हो गई। (2-3) [4690-4691]

दर्द दूर होने के साथ,
तब बुद्ध ने धन्यवाद व्यक्त किया:4582
“चिकित्सा के इस वरदान और रोग निवारण4583 के कारण, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य, या किसी अन्य अस्तित्व में जन्मा हो,4584
आप हर जगह खुश रहें।
और आपको कभी कोई बीमारी न हो। (4-5) [4692-4693]

यह सब कहने के बाद, संबुद्ध ने कहा,
स्वयं एक हो जाने वाले, महान ऋषि, नायक, 4585 आकाश में विलीन हो गए।
ठीक हवा में हंस-राजा की तरह। (6) [4694]

जब से मैंने मायरोबालन दिया
महान ऋषि, स्वयं-रूपी, इस [वर्तमान] जन्म [मेरे] तक मुझे कोई बीमारी नहीं हुई। (7) [4695]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4586
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4696]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे दवा दी थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह औषधि का फल है। (9) [4697]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [4698]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

4582 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4583 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4584 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप

भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

4585 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

4586 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4699]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4700]

इस प्रकार पूज्य हरितकदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

हरिटकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

436. {439.}4587 अंबापिनडिया4588

मैं उस समय हाथियों का राजा था।
हल के डंडों जैसे नुकीले दांतों के साथ, पूरी तरह से विकसित। एक विशाल जंगल में भटकते हुए,4589
मैंने विश्व के नेता को देखा। (1) [4701]

आमों का एक गुच्छा लेते हुए,4590
मैंने उन्हें शिक्षक को दे दिया।
महान नायक ने उन्हें स्वीकार कर लिया।
सिद्धार्थ, विश्व के नेता। (2) [4702]

जब I4591 उसके बारे में ध्यान कर रहा था,
फिर विजेता ने [उस फल] का सेवन किया। वहाँ मेरे हृदय को प्रसन्नता पहुँचाते हुए, मेरा तुसिता में पुनर्जन्म हुआ।4592 (3) [4703]

वहां से गिरने के बाद, मैं
वह एक ऐसा सम्राट था जो पहिया घुमाता था। [फिर] उसी विधि से, मुझे, महान सौभाग्य प्राप्त हुआ,4593 परिश्रम पर दृढ़ रहने वाला व्यक्ति होने के नाते,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4587 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4588 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

4589 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4590 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

4591 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4592 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

4593 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

शांत, 4594 पुनर्जन्म के आधार से रहित, 4595
सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं [यहाँ अभी] बेदाग रह रहा हूँ। (4-5) [4704-4705]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (6) [4706]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4707]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4708]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4709]

इस प्रकार पूज्य अंबपिंडिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबापिंडिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

437. {440.}4596 जंबुफलिया4597

जब पद्ममुत्तरा बुद्ध,
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति, भीख माँगते हुए घूम रहा था, सर्वोच्च प्रसिद्धि बनाए हुए, (1) [4710]
सबसे अच्छे [गुलाब-सेब]4598 फल को लेते हुए, एक ऐसे दिमाग के साथ जो बिल्कुल स्पष्ट था,

---

4594 लिट., "गया"
4595 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4596 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4597 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4598 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने इसे शिक्षक को दे दिया,
हीरो, उपहारों का हकदार। (2) [4711]

हे द्विपाद स्वामी, हे विश्व के सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के बैल, उस कर्म के कारण,
मैंने अविचल स्थान प्राप्त कर लिया है
सभी विजय और पराजय से परे। (3) [4712]

उस दान के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यही सर्वोत्तम देने का फल है। (4) [4713]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4714]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4715]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4716]

इस प्रकार पूज्य जंबुफालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जंबुफालिया थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।
सारांश: एकविहारी थेरा और
सांखिका, पाटिहीरक,

थविका और उच्छुकांडी4600
कलंब', अम्बातकपाद,4601
हरिटक और अम्बापिंडी
जंबुदा दसवीं [कविता] के रूप में आती है।
यहां छियासी श्लोक हैं, जिनकी गणना जानकार लोग करते हैं।

एकविहार्य अध्याय, चौवालीसवाँ

4599 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4600 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4601 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

विभीतकी 4602 अध्याय, पैंतालीसवाँ

---

438. {441.}4603 विभीतकामिञ्जय4604

महान नायक काकुसंध सर्वज्ञ थे। उन्होंने 4605 को समूह से अलग कर दिया।
वह [तब] जंगल में चला गया। (1) [4717]

अनेक बीज एकत्र करने के बाद,4606
मैंने उन्हें बेल के एक टुकड़े पर पिरो दिया। उस समय भगवान एक पर्वत पर ध्यान कर रहे थे। (2) [4718]

देवताओं के देव को देखकर, मैंने अत्यंत स्पष्ट मन से, उन सभी बीजों को, हे वीर, उपहारों के योग्य, उनके समक्ष प्रस्तुत किया। (3) [4719]

वर्तमान युग के भीतर, तब से
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह अनेक बीजों का फल है। (4) [4720]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4721]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4722]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4602 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4603 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

4604 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4605 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

4606 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4723]

इस प्रकार पूज्य विभीतकमिंजय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

विभीतकमिंजय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

439. {442.}4607 कोलादायका4608

मैं उस समय हिरण के चमड़े के वस्त्र पहने हुए था। खारी का बोझ ढोते हुए, मैं
आश्रम में बेर लाए गए4610। (1) [4724]

उस समय बुद्ध, सिख धर्म के अनुयायी, अकेले थे और उनके साथ कोई और नहीं था।4611
फिर वह मेरी कुटिया के पास आया, हर समय चमकता हुआ। (2) [4725]

अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, आज्ञाकारी4612 की उपासना करते हुए,4613 उन्हें अपने दोनों हाथों से ग्रहण करते हुए
मैंने बुद्ध को बेर दिए। (3) [4726]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
बेर देने का फल। (4) [4727]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4728]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4607 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4608 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4609 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4610 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4611 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4612 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4613 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4729]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4730]

इस प्रकार पूज्य कोलडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कोलाडायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

440. {443.}4614 बिलाफालिया4615

चंदाभागा नदी के किनारे, मेरा सुव्यवस्थित आश्रम
इसमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाए जाते थे।
[और] फलों से लदे बेल के पेड़ों से भरा हुआ। (1) [4731]

एक सुगंधित बेल वृक्ष को देखकर,4616 मैंने, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद करते हुए, एक खारी भार भर लिया ,
काकुसंध के पास पहुँचकर, रोमांचित और भावों से अभिभूत होकर,
एकदम स्पष्ट मन से,

मैंने वह बेल फल दिया जो मैं लाया था।
[उसे,] हीरो, मेरिट-फील्ड। (2-3) [4732-4733]

वर्तमान युग के भीतर, तब से
मैंने तब उसे वह फल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (4) [4734]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4614 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4615 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4616 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4735]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4736]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4737]

इस प्रकार पूज्य बिलफलिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बिलाफालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

441. {444.}4617 भल्लाताकाडयक4618

स्वर्ण रंग के संबुद्ध के लिए घास से बनी चटाई बिछाते हुए, बत्तीस महान चिह्नों को धारण किए हुए, जंगल के शिखर पर उड़ते हुए, घास4619

खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह,
मैंने उनसे, बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ से, पूछा: “बुद्ध मुझ पर दया करें;
मैं तुम्हें भिक्षा भोजन देना चाहूँगा। (1-2) [4738-4739]

दयालु, करुणामयी, अत्थादस्सी, महान यशस्वी, मेरे मन की बात जानकर, मेरे आश्रम में अवतरित हुए। (3) [4740]

नीचे उतरते हुए, संबुद्ध तब
पत्तों से बनी उस चटाई पर बैठ गया।4622

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4617 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4618 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4619 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4620 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4621 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4622 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

कुछ मार्किंगनट लेने के बाद,4623
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (4) [4741]

जब मैं [उनका] ध्यान कर रहा था,
फिर विजेता ने उस फल का सेवन किया। इससे मेरे हृदय को आनंद प्राप्त हुआ।
तब मैंने [उनकी] पूजा की, विजेता की। (5) [4742]

अठारह सौ युगों में
जब से मैंने उसे वह फल दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
फल देने का फल यही है। (6) [4743]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4744]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4745]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4746]

इस प्रकार पूज्य भल्लाटकडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भल्लाटकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

442. {445.}4624 उतुऽहिपुफिया4625

मैंने एक उतुल्ही फूल लेकर उसे बोधि को अर्पित किया।
जब वह बरगद का पेड़ बड़ा हो गया था,

4623 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4624 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4625 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4626 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सुनहरे रंग के सूर्यप्रकाश में.4627 (1) [4747]

वर्तमान युग के भीतर, तब से
मैंने तब एक फूल भेंट किया था।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बोधि -पूजा का फल है । (2) [4748]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4749]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4750]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4751]

इस प्रकार पूज्य उतुहिपुप्पिया4628 थेरा ने ये श्लोक कहे।

Utuḷhipupphiya4629 Thera की कथा समाप्त हो गई है।

---

443. {446.}4630 अम्बाताकिया4631

ऋषि वेस्साभू खिले हुए साल के जंगल में प्रवेश कर गए,
एक खराब पहाड़ी सड़क पर बैठ गया
शेर की तरह, कुलीन व्यक्ति.4632 (1) [4752]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।

4627 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4628 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4629 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4630 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4631 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4632 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह.   रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मैंने उन्हें 4633 हॉग-प्लम 4634 भेंट किए, जो पुण्य-क्षेत्र, महान नायक हैं।
अपने हाथों से [अच्छी तरह से] संतुष्ट महसूस कर रहा हूँ। (2) [4753]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया4635, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (3) [4754]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो गए हैं। सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं;
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [4755]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4756]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4757]

इस प्रकार पूज्य अम्बाटकीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अंबाटकीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

444. {447.}4637 सिहासनिका4638

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद का भाव लिए मैंने उन्हें सिंह-सिंहासन भेंट किया, हे पद्ममुत्तरा, हे भगवान!
सभी प्राणियों का शुभचिंतक.4639 (1) [4758]

4633 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4634 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4635 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4636 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4637 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4638 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4639 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

देवताओं के संसार में हो या मनुष्यों के संसार में, मैं जहाँ कहीं भी रह रहा हूँ, मुझे एक विशाल महल प्राप्त हो रहा है:
यह सिंह-सिंहासन का फल है। (2) [4759]

कई सोफे4640 जो सोने के बने थे, चांदी के बने थे, माणिक के बने थे,
रत्नों से बना, क्रिस्टल से बना,
मेरे लिए हर समय उत्पादित होते हैं। (3) [4760]

बोधि के लिए आसन बनाना
मैं "सर्वश्रेष्ठ कमल" नामक [बुद्ध] के वंश में जन्मा हूँ;
ओह! शिक्षण की उपयुक्तता!4641 (4) [4761]

जब से मैंने उसके लिए वह सिंह-सिंहासन बनाया है, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह सिंह-सिंहासन का फल है। (5) [4762]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (6) [4763]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4764]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4765]

इस प्रकार पूज्य सिहासानिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सिहासानिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4640 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4641 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

445. {448.}4642 पदपीठिया4643

सम्बुद्ध, सुमेधा नामक प्रधान, दयालु, ऋषि, जिन्होंने अनेक प्राणियों को पार कराया,
[तब] निर्वाण प्राप्त किया, महान-प्रसिद्ध। (1) [4766]

प्रसन्नता से, मन में आनंद लिए, मैंने पैरों के लिए एक स्टूल बनवाया।
उसके सिंह-सिंहासन के निकट,

सुमेधा, महान ऋषि। (2) [4767]

वह पुण्य कर्म करना जो फलदायी हो और सुख की ओर ले जाए,4644 अपने अच्छे4645 कर्मों के अनुरूप होना,
मैं [तब] तावतिंसा गया। (3) [4768]

जब मैं उस [दुनिया] में रह रहा था, अच्छे कर्मों से संपन्न होकर, जब मैंने अपने पैरों को सोने की तरह ऊपर उठाया
तब मेरे लिए पाँव-पीठ [होने लगता है]। (4) [4769]

जो लोग ध्यान आकर्षित कर रहे हैं, उनके लिए यह लाभ अच्छा है; निर्वाण में [बुद्ध] की सेवा करना,4647
उन्हें अपार खुशी मिल रही है। (5) [4770]

मेरा कर्म भी बहुत अच्छा फलदायी रहा, [सावधानीपूर्वक] व्यापारियों को काम पर रखकर। एक पायदान बनवाने के बाद,
मुझे सोने की कुर्सी मिल रही है। (6) [4771]

मैं जिस भी दिशा में जाऊं, 4649
किसी भी कारण से, मैं

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4642 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4643 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4644 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4645 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4646 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4647 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4648 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4649 शाब्दिक रूप से, "गया"

सोने की कुर्सी पर कदम रखते हुए:
यह अच्छे कर्मों का फल है। (7) [4772]

उस कर्म को करने के बाद से तीस हजार युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
वह एक पायदान का फल है। (8) [4773]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (9) [4774]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [4775]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4776]

इस प्रकार पूज्य पादपीठिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पादपीठिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

446. {449.}4651 वेदिकारक4652

पद्मुत्तरा बुद्ध की उत्कृष्ट बोधि प्रतिमा (4653) के चरणों के लिए एक अच्छी तरह से बनी रेलिंग का निर्माण करना।
मैंने अपने दिल को खुशी दी। (1) [4777]

वास्तव में उत्कृष्ट 4654 सामान, 4655

4650 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4651 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4652 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4653 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4654 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4655 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

मानव निर्मित वस्तुएँ और गैर-मानव निर्मित वस्तुएँ,4656
आकाश से मुझ पर वर्षा हो रही है:

वह रेलिंग का फल है। (2) [4778]

जब धमकी देने वाली सेनाएँ एकत्रित हो रही हों, तब दोनों ओर से हमला किया जाना,4657
मुझे कोई भय या डर नहीं दिख रहा है:
वह रेलिंग का फल है। (3) [4779]

मैं क्या सोच रहा हूँ, यह समझना
एक अच्छा महल मेरे लिए कई महंगे बिस्तरों के साथ बनाया जाता है:
वह रेलिंग का फल है। (4) [4780]

उस रेलिंग को बनवाने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
वह रेलिंग का फल है। (5) [4781]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (6) [4782]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4783]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4784]

इस प्रकार पूज्य वेदिकारक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वेदिकारक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4656 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4657 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4658 lit., "गया"

---

447. {450.}4659 बोधिघरिया4660

प्रसन्नता से भरे हृदय से मैंने भगवान सिद्धार्थ के लिए एक बोधिवृक्ष मंदिर4661 बनवाया।
द्विपद-स्वामी, तटस्थ एक। (1) [4785]

तुसिता में पुनर्जन्म, 4662

मैं रत्नों से बने घर में रहता हूँ।
मेरे लिए न तो ठंड है और न ही गर्मी;
हवा मेरे शरीर को नहीं छूती। (2) [4786]

इसके बाद छप्पनवें युग में
मैं एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट था; मेरा नगर कासिका (4663) विस्साकम्मा (4664) द्वारा निर्मित किया गया था।
वह शहर दस लीग लंबा था और आठ लीग चौड़ा था। उस शहर में कुछ भी नहीं बना था।
]4665 छड़ें [या] लताओं [या] मिट्टी। (3-4) [4787-4788]

विस्साकम्मा द्वारा निर्मित मंगला नामक मेरा महल, जिसकी लंबाई एक लीग है,
और यह आधा लीग चौड़ा था। (5) [4789]

इसके चौरासी हजार स्तंभ पूरी तरह से ठोस सोने के बने थे; शिखर रत्नों से बने थे।
और छतें चांदी की बनी थीं। (6) [4790]

वह घर जो पूरी तरह से ठोस सोने का बना था, जिसका निर्माण विस्साकम्मा ने करवाया था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4659 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4660 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4661 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4662 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4663 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4664 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4665 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4666 शाब्दिक रूप से, "गया"

उस समय मुझ पर कब्जा था:
यह एक मंदिर देने का फल है।4667 (7) [4791]

इन सब चीजों का आनंद लेने के बाद,
देवताओं और मनुष्यों के संसार में, आज मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
वह शांतिपूर्ण अवस्था जिसकी कोई तुलना नहीं है। (8) [4792]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने वह बोधि वृक्ष मंदिर बनवाया था, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है।
यह मंदिर देने का फल है। (9) [4793]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [4794]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4795]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4796]

इस प्रकार पूज्य बोधिघारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बोधिघारिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: विभीतकी, 4669 कोलाफली,
बिल्ला-भल्लातकप्पादा, निग्रोधा4670 और अंबाटाकी, आसनी, पदपीठका,
वेदिका, बोधिघारिका:
इस अध्याय में जिन आयतों की गणना की गई है, वे कुल मिलाकर अस्सी से एक कम हैं।

4667 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4668 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4669 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4670 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

विभीतकी अध्याय, पैंतालीसवाँ

जगतिदायीक अध्याय, छियालीसवाँ

---

448. {451.}4671 जगतिदायक4672

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने उत्कृष्ट बोधि 4674 के चरणों के लिए पृथ्वी 4673 का स्थान साफ करवाया था।

धम्मदस्सी [बुद्ध], ऋषि का। (1) [4797]

किसी चट्टान या पहाड़ से गिरने पर, [जब] मैं पेड़ से गिरता हूँ, तो मुझे गिरने से बचाने के लिए सहारा मिलता है:
यह धरती के एक छोटे से टुकड़े का फल है। (2) [4798]

चोर मुझे परेशान नहीं कर रहे हैं [और] शासक4675 भी मुझे तुच्छ नहीं समझते; मैं अपने सभी मित्रों से आगे निकल रहा हूँ:
यह धरती के एक छोटे से टुकड़े का फल है। (3) [4799]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लेता हूँ, चाहे वह मानव हो या दिव्य, हर जगह मेरी पूजा की जाती है:4676
यह धरती के एक छोटे से टुकड़े का फल है। (4) [4800]

अठारह सौ युगों में जब से मैंने उस धरती के टुकड़े को तैयार किया है, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह धरती के एक छोटे से टुकड़े का फल है। (5) [4801]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4671 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4672 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4673 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4674 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4675 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4676 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (6) [4802]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4803]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4804]

इस प्रकार पूज्य जगतिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जगतिदायीक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

449. {452.}4677 मोरहत्थिया4678

कुछ मोर के पंख इकट्ठा करना,
तब मैं विश्व नेता के पास पहुँचा। प्रसन्नता से, मेरे हृदय में आनंद का संचार हो रहा था।
मैंने उसे वे मोर के पंख दिए। (1) [4805]

उन 4679 मोर के पंखों के माध्यम से, [दिया गया]
इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ,
मेरे भीतर की तीनों आग बुझ गई हैं; मुझे अपार खुशी मिल रही है। (2) [4806]

हे बुद्ध! हे शिक्षा!
ओह! हमारे गुरु की [महान] उपलब्धि! उन्होंने मोर के पंख दिए हैं,
मुझे अपार खुशी मिल रही है। (3) [4807]

मेरे भीतर की तीनों आग बुझ गई हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4677 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4678 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4679 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4680 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4681 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

सभी अशुद्धियाँ समाप्त हो गई हैं।
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (4) [4808]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब [उसे] वह दान दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह मोर के पंखों का फल है। (5) [4809]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (6) [4810]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4811]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4812]

इस प्रकार पूज्य मोराहथिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मोराहथिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

450. {453.}4682 सिहासनविज्ञान4683

मैंने भगवान तिस्सा (बुद्ध) के बोधि वृक्ष की पूजा की। वहाँ पंखा लेकर,
मैंने [बोधि के] सिंह-सिंहासन को हवा दी। (1) [4813]

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय उस सिंह-सिंहासन को हवा दी थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
यह उसे हवा देने का फल है। (2) [4814]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4815]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4682 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4683 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4816]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4817]

इस प्रकार पूज्य सिहासनवीजनीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सिहासनविजनीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

451. {454.}4684 तिनुक्कधारिया4685

प्रसन्नता से, हृदय में आनंद लिए, मैंने तीन घास की मशालें उठाईं।
उत्कृष्ट बोधि4686 के चरण
पदुमुत्तारा बुद्ध की. (1) [4818]

जब से मैंने उन मशालों को थामे हुए लाखों युग बीत चुके हैं, तब से मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
मशालें देने का यही फल है। (2) [4819]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4820]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4821]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4684 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4685 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4686 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4822]

इस प्रकार पूज्य तिनुक्कधारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिनुक्कधारिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

452. {455.}4687 अक्कमनादायका4688

मैंने काकुसंध, महान ऋषि, ब्राह्मण, सिद्ध पुरुष, 4690 को दोपहर के आराम के दौरान कदम रखने के लिए एक तख्ता दिया। (1) [4823]

इस [वर्तमान] युग में, जब से मैंने [उसे] वह दान दिया है, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
वह पैर के तख्ते का फल है। (2) [4824]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4825]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4826]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4827]

इस प्रकार वास्तव में आदरणीय अक्कमनदायका थेरा ने ये श्लोक कहे।

अक्कमनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4687 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4688 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4689 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4690 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

453. {456.}4691 वनकोराडिया4692

जंगली कोरण्ड [फूल] लेना ,4693
मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।
सिद्धार्थ, भगवान,
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [4828]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब [उसे] वह फूल भेंट किया था, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्म के बारे में कुछ नहीं जाना है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [4829]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4830]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4831]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4832]

इस प्रकार पूज्य वनकोरांडिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वनकोरंडिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4691 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4692 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4693 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

454. {457.}4694 एकचट्टिय4695

दुनिया जलते हुए कोयले में तब्दील हो गई थी, धरती गर्म अंगारों से भर गई थी।4696
पद्ममुत्तरा, हे भगवान!
खुली हवा में इधर-उधर चलते रहे। (1) [4833]

सफेद छाता लिए मैं सड़क पर आगे बढ़ गया।
वहाँ संबुद्ध के दर्शन करके,
मुझे खुशी का अनुभव हुआ। (2) [4834]

धरती सूर्य की किरणों से भरी हुई है;
यह धरती जलते हुए कोयले के समान है।
तेज हवाएँ चल रही हैं4697
शरीर की सांस को कम करना।4698 (3) [4835]

कृपया इसे स्वीकार करें, [मेरी] छतरी।
जो [सूर्य की] गर्मी [और] हवाओं को रोकता है, गर्मी और ठंड दोनों को मारता है; [इसके माध्यम से] मैं निर्वाण को स्पर्श करूँगा। (4) [4836]

हे दयालु, करुणामयी, पद्ममुत्तरा, महान ख्यातिप्राप्त, मेरे मन की बात जानने वाले,
तब विजेता ने इसे स्वीकार कर लिया। (5) [4837]

तीस युगों तक देवताओं के स्वामी,
मैंने [तब] दैवीय शासन का प्रयोग किया।
और पाँच सौ [अलग-अलग] बार,
मैं एक राजा था जो पहिया घुमाता था। (6) [4838]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था।
मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ।
पहले मेरे द्वारा अच्छी तरह से किया गया। (7) [4839]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4694 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4695 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

4696 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4697 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4698 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4699 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4700
अभी भी 4701 एक सफेद छाता
यह मेरे लिए हर समय ले जाया जाता है। (8) [4840]

जब से मैंने वह छाता दिया था, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
छतरियां देने का फल। (9) [4841]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [4842]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [4843]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [4844]

इस प्रकार पूज्य एकाचत्तीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकचट्टिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

455. {458.}4702 जातिपुफिया4703

जब भगवान बुद्ध का देहांत हुआ, 4704
पद्ममुत्तरा, अत्यंत प्रसिद्ध, फूलों को एक डिब्बे में रखते हुए, 4705

4700 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4701 lit., "गया"

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4702 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4703 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4704 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4705 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मैंने उन्हें अवशेषों को अर्पित किया।4706 (1) [4845]

वहाँ मेरे हृदय को सुख पहुँचाकर, मैं निम्माना (स्वर्ग) चला गया।4707
4708 में देवताओं के लोक में निवास करते हुए,
मुझे अपने अच्छे कर्म याद आ गए। (2) [4846]

आकाश से मुझ पर लगातार फूलों की वर्षा हो रही है। मनुष्यों के बीच स्थानांतरण4710
मैं एक ऐसा राजा था जिसकी बहुत प्रसिद्धि थी। (3) [4847]

उस स्थान पर प्रतिदिन मुझ पर फूलों की वर्षा हो रही है, उस पुष्प अर्पण के कारण।4711
उस एक को जो सब कुछ देखता है। (4) [4848]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।4712
आज भी, फूलों की बारिश होती है
मुझ पर हर दिन बारिश हो रही है। (5) [4849]

उस फूल को भेंट करने के बाद से लेकर अब तक के लाखों युगों में,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह अवशेष-पूजा का फल है।4713 (6) [4850]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [4851]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [4852]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

4706 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4707 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4708 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4709 lit., “गया”
4710 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4711 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4712 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4713 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?] ।"

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [4853]

इस प्रकार पूज्य जतिपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

जातिपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

456. {459.}4714 पट्टिपुप्पिया4715

जब अवशेषों को ले जाया जा रहा था, जब ढोल बज रहे थे, मैं प्रसन्न था, मेरे हृदय में आनंद था।
मैंने एक लाल लोध4716 फूल भेंट किया। (1) [4854]

एक लाख युगों में
जब से मैंने [उस समय] वह फूल भेंट किया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह अवशेष-पूजा का फल है।4719 (2) [4855]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4856]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4857]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4858]

इस प्रकार पूज्य पट्टिपुप्पिया4720 थेरा ने ये श्लोक कहे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4714 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4715 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4716 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4717 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4718 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4719 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4720 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

पट्टिपुप्पिया 4721 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

457. {460.}4722 गंधपूजक4723

जब चिताएं बनाई गईं तो विभिन्न सुगंधें4724 एकत्रित की गईं। प्रसन्न, मेरे हृदय में आनंद के साथ,
मैंने कुछ सुगंधों की पेशकश की। (1) [4859]

एक लाख युगों में
क्योंकि मैंने उस चिता की पूजा की थी [उस समय], इसलिए मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह 4726 चिताओं की पूजा का फल है। (2) [4860]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4861]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4862]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4863]

इस प्रकार पूज्य गंधपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गंधपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

4721 शाब्दिक अर्थ, “गया”
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4722 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4723 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4724 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) । खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4725 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4726 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

जगती और4727 मोरहत्थी, आसनी, उक्कधारका, अक्कामी, वनकोरंडी, चट्टादा, जातिपूजक,
और बड़े पट्टिपुफ्फी,4728
दसवां गंधपूजक है।
इसमें सड़सठ श्लोक हैं।
जिनकी गिनती जानकार लोग करते हैं।

जगतिदायीक अध्याय, छियालीसवाँ

सालकुसुमिया अध्याय, सैंतालीसवाँ

---

458. {461.}4729 सलाकुसुमिया4730

जब भगवान बुद्ध का देहांत हुआ—जिनका नाम “सर्वश्रेष्ठ कमल” था—जब चिता खड़ी की गई,
मैंने वहाँ एक साल का फूल चढ़ाया। (1) [4864]

उस फूल को भेंट करने के बाद से लेकर अब तक के लाखों युगों में,
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह 4733 चिताओं की पूजा का फल है। (2) [4865]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। मैं अपने सभी दोषों को भली-भांति जानता हूँ।
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4866]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

4727 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4728 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4729 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4730 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4731 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4732 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4733 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4867]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4868]

इस प्रकार पूज्य सालकुसुमिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सालकुसुमिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

459. {462.}4734 सीतापूजक4735

जब बुद्ध4736 को जलाया जा रहा था, सिख धर्म, विश्व का रिश्तेदार,
मैंने अंतिम संस्कार की चिता अर्पित की
आठ [सुगंधित] चंपक फूल। (1) [4869]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने तब वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह 4737 चिताओं की पूजा का फल है। (2) [4870]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4871]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4872]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4734 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4735 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4736 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4737 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4873]

इस प्रकार पूज्य चितपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चितपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

460. {463.}4738 सीताकानिब्बापाका4739

जब वेस्साभू [बुद्ध] के शव का अंतिम संस्कार किया जा रहा था, तब महान ऋषि ने सुगंधित जल ग्रहण किया।
मैंने अंतिम संस्कार की चिता बुझा दी। (1) [4874]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस चिता को बुझा दिया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह सुगंधित जल का फल है। (2) [4875]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4876]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4877]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4878]

इस प्रकार पूज्य चित्तकनिब्बापक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सीताकानिब्बापक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4738 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4739 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

461. {464.}4740 सेतुदायक4741

प्रसन्नता से, मन में आनंद भरकर, मैंने एक पुल का निर्माण करवाया।
[ध्यान] मार्ग के पास
विपस्सी, भगवान का। (1) [4879]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस पुल का निर्माण [उस समय] करवाया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
वह एक पुल का फल है। (2) [4880]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4881]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4882]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4883]

इस प्रकार पूज्य सेतुदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सेतुदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

462. {465.}4742 सुमनतालवन्तिया4743

मैंने ताड़ के पौधे का एक पंखा दिया,4744
चमेली के फूलों से ढका हुआ,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4740 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4741 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4742 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4743 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4744 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

सिद्धार्थ, भगवान, [और]
इसे महान प्रसिद्धि वाले के लिए वहन किया। (1) [4884]

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने तब वह ताड़ के पत्ते का पंखा उसे दे दिया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह ताड़ के पत्तों का फल है। (2) [4885]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [4886]

बुद्ध की उपस्थिति में रहना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (3) [4887]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4888]

इस प्रकार पूज्य सुमनतालवन्तीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुमनतालवन्तीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

463. {466.}4745 अवंताफलिया4746

हे भगवान, सौ किरणों वाले, 4747 स्वयंभू, अजेय, एकांतप्रिय, 4748 संबुद्ध,
भोजन की तलाश में निकले। (1) [4889]

मैंने हाथ में फल पकड़े हुए देखा
पुरुषों का वह बैल जो पास आ रहा था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4745 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4746 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4747 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4748 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने उसे डंठल हटाकर फल दिए। (2) [4890]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फल [उस समय] दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [4891]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [4892]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4893]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4894]

इस प्रकार पूज्य अवन्तफालिया4749 थेरा ने ये श्लोक कहे।

अवन्तफालिया 4750 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

464. {467.}4751 लबुजदायका4752

शहर में, बंधुमती,
मैंने तब एक आश्रम में काम किया।4753
मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा।
[जो] आकाश में यात्रा कर रहा था। (1) [4895]

ब्रेडफ्रूट4754 [वृक्ष] का फल लेकर, मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया।

4749 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4750 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4751 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4752 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

4753 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4754 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

आकाश में विराजमान, शांत, महान ख्यातिप्राप्त ने इसे स्वीकार किया। अत्यंत निर्मल मन से, बुद्ध को वह फल अर्पित करके, जो मेरे लिए आनंददायी था, इस संसार में सुख लेकर आया।
तब मुझे अपार आनंद और असीम, परम प्रसन्नता का अनुभव हुआ।
सचमुच एक अनमोल रत्न का निर्माण हुआ था।
[मैं,] यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म लेता रहता हूँ।4755 (2-3) [4896-4898]4756

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध को] फल दिए थे, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (4) [4899]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4900]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4901]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4902]

इस प्रकार पूज्य लाबुजादायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

लबुजदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

465. {468.}4757 पिलक्खफलदायका4758

जंगल में बुद्ध को देखना,4759
अत्थादस्सी, महान प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति,

4755 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4756 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4757 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4758 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4759 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या खमीर रहित भोजन के रूप में।

प्रसन्न, मेरे हृदय में आनंद से भरा हुआ।
मैंने उसे लहरदार पत्तों वाला अंजीर 4760 फल दिया। (1) [4903]

बुद्ध को फल देने के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
फल देने का फल यही है। (2) [4904]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4905]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4906]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4907]

इस प्रकार पूज्य पिलक्खफलदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पिलाक्खफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

466. {469.}4761 सयंपतिभाणिय4762

“देवताओं के परमेश्वर, मनुष्यों के सांड को भोजन की थाली जैसे चमकते वृक्ष के समान देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा?”
[जब वह] सड़क पर जा रहा है? (1) [4908]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
क्या वह ज्ञान का प्रकाश फैलाकर, [सभी] अंधकार को दूर भगाकर, बहुत से लोगों को पार ले जा रहा है? (2) [4909]

केक या जंकेट (PSI: Sinh. roṭiya)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई खाद्य पदार्थ है।

4760 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4761 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4762 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

विश्व के नेता को जाते देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा?
एक लाख स्वामियों के साथ, [और] अनेक प्राणियों को ऊपर उठाना? (3) [4910]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
उसने शिक्षा का ढोल बजाया, जो शेर की दहाड़ की तरह गूंज रहा था।
फोर्ड-पूजा करने वालों के समूहों को कुचलना?4764 (4) [4911]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
ब्रह्मा समेत सभी देवता
ब्रह्मा के लोक से इतनी दूर आकर [बुद्ध] से सूक्ष्म प्रश्न पूछते हैं? (5) [4912]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
[दुनिया] अपने देवताओं के साथ उसके लिए प्रार्थना करते हुए, दोनों हाथ जोड़कर, उसके कारण पुण्य का आनंद ले रही है? (6) [4913]

सभी लोगों को एक साथ आकर 4765 को आयोजित होने वाले 'आकर्षक कार्यक्रम' में भाग लेते देख कौन प्रसन्न नहीं होगा?
आमंत्रित,4766 वह विचलित नहीं होता। (7) [4914]

असंख्य ढोलों की गर्जना और मदमस्त हाथियों की चिंघाड़ सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होगा?
जब वह शहर में प्रवेश कर रहा है? (8) [4915]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
सर्व-उज्ज्वल वन4767 हमेशा चमकता रहता है, [और] उभरे हुए धब्बे4768 समतल हो जाते हैं,
जब वह सड़क पर जा रहा है?4769 (9) [4916]

इसे देखकर कौन खुश नहीं होगा?
वह प्रत्येक प्राणी को निर्देश दे रहा है।

4763 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4764 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4765 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4766 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4767 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4768 lit., “गया”
4769 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

पूरे ब्रह्मांड में सुनी जा रही है,4770
जब धन्य व्यक्ति4771 बोल रहे हों?” (10) [4917]

एक लाख युगों में
जब से मैंने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की है, तब से मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यही उसकी प्रशंसा करने का फल है। (11) [4918]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [4919]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4920]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [4921]

इस प्रकार पूज्य सायम्पाटिभाणिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सायम्पाटिभाणिय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

467. {470.}4772 निमित्तव्यकारण्य4773

हिमालय में डूबा हुआ, मैं मंत्रों का जाप कर रहा हूँ, और चौवन हजार छात्र
उस स्थान पर मेरी सेवा की। (1) [4922]

उन सभी ने इसे कंठस्थ किया, 4774 सच्चे ज्ञानी, 4775

4770 lit., “गिर गया”
4771 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4772 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4773 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4774 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4775 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

वे वैदिक विज्ञान के स्वामी थे;4776 अपनी मर्जी से आए थे,4777 वे हिमालय में निवास करते थे। (2) [4923]

एक महान ख्यातिप्राप्त ईश्वर का पुत्र, तुसिता [स्वर्ग] से गिरकर, 4778 एक माता के गर्भ में पुनर्जन्म लिया।
ध्यानपूर्वक [और] याद रखना। (3) [4924]

जब बुद्ध4779 का जन्म हो रहा था, तब दस हजार विश्व-व्यवस्था कांप उठी।
[और] जो अंधे थे उन्हें 4780 आंखें प्राप्त हुईं,4781
जब नेता का जन्म हो रहा था। (4) [4925]

यह पूरी [महान उदार]4782 पृथ्वी हर तरह से कांप उठी।4783
चिल्लाने की आवाज सुनकर,
तब जनता भयभीत हो गई थी। (5) [4926]

सभी लोग एक साथ आ गए,
और वे मेरे सामने आ गए।
“[महान उदार] धरती कांप उठी है, इसका क्या परिणाम होगा?” (6) [4927]

मैंने उनसे कहा, “डरो मत;
आपको डरने की कोई बात नहीं है। आप सभी को आत्मविश्वास रखना चाहिए;
यह शगुन खुशी का संकेत देता है। (7) [4928]

[यह महान प्रचुर] भूकंप आठ कारणों में से [एक] के साथ संपर्क4784 के माध्यम से आता है। इसी प्रकार [यह] संकेत भी [देखा जाता है]:
प्रकाश की एक विशाल चमक है। (8) [4929]

निःसंदेह सर्वश्रेष्ठ बुद्ध प्रतिमा।
एक बेहद खूबसूरत जीव का जन्म जल्द ही होगा!

4776 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4777 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4778 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4779 शाब्दिक रूप से, "गया"
4780 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4781 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4782 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4783 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4784 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

इस प्रकार लोगों को सूचित करने के बाद,
मैंने पाँच सिद्धांतों के बारे में बात की।4785 (9) [4930]

पांच उपदेशों के बारे में सुनकर,4786 और बुद्ध के जन्म के बारे में सुनकर, जो प्राप्त करना कठिन है, खुशी और उत्साह से भरपूर,4787
खुशी से उनके बाल खड़े हो गए।4788 (10) [4931]

पिछले बानवे युगों में
मैंने [उस समय] लक्षणों की व्याख्या की थी, मुझे अब तक कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही व्याख्या का फल है। (11) [4932]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [4933]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [4934]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [4935]

इस प्रकार पूज्य निमित्तव्याकरणीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

निमित्तव्याकरणीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश: सालकुसुमिया थेरा, 4789

पूजा और निब्बापक [भी], सेतुदा और तलावंती, अवना, 4790 लबुजा-प्पाडा, पिलक्खा4791 और पतिभानि, ब्राह्मण वेय्यकरनका:

4785 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

4786 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

4787 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

4788 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

4789 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

4790 khiḍḍāratiyaÁ

4791 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

ठीक दो सौ छंद
यहां उनकी गिनती उन लोगों द्वारा की जाती है जो जानते हैं।

सालकुसुमिया अध्याय, सैंतालीसवाँ

नलमाली अध्याय, अड़तालीसवाँ

---

468. {471.}4792 नामामालिया4793

मैंने विश्व के नेता को देखा,
स्वर्ण रंग का संबुद्ध, बलि का पात्र,
जंगल के शीर्ष के साथ उड़ना 4794। (1) [4936]

एक सरकंडे का फूल लेकर,4795
मैं हर समय यात्रा पर निकलता रहता हूँ।
वहाँ मैंने संबुद्ध को देखा।
बाढ़ पार करने वाला, निष्कलंक। (2) [4937]

प्रसन्नता से, अपने हृदय में आनंद लिए, मैंने वह सरकंडे का फूल भेंट किया।
महान नायक, उपहारों के योग्य, 4797
संपूर्ण विश्व का दयावान.4798 (3) [4938]

पिछले इकत्तीस युगों में

मैंने उसे वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [4939]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [4940]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4792 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4793 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4794 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4795 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4796 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4797 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4798 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [4941]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [4942]

इस प्रकार पूज्य नलमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नलमालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

469. {472.}4799 मणिपूजक4800

विजेता पद्ममुत्तरा सर्वज्ञ, एकांतप्रिय और संबुद्ध थे।

वह आकाश में उड़ रहा था [उस समय]। (1) [4943]

हिमालयी क्षेत्र में,
वहाँ एक बड़ी प्राकृतिक झील थी। मेरा महल वहीं स्थित था।
मेरे अच्छे कर्मों से जुड़ा हुआ। (2) [4944]

महल से बाहर निकलने पर मैंने विश्व के नेता को देखा, जो नीले जल लिली की तरह चमक रहा था।4803
अग्नि-वेदी की तरह धधक रहा है। (3) [4945]

[सोचते हुए,] "मैं नेता की पूजा करूँगा," [हालाँकि] मैंने खोजा, मुझे कोई फूल नहीं दिखा।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4799 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4800 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4801 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4802 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4803 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4804 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4805 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मेरे स्वयं के हृदय को आनंद प्रदान करते हुए,
मैंने तब गुरु की पूजा की। (4) [4946]

मेरे सिर पर जो रत्न था,4806
मैंने विश्व नेता, उनकी पूजा की: "शुभकामना हो कि परिणाम अच्छा हो।"
इस भेंट का 4808 एक रत्न का।" (5) [4947]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
शिक्षक, आकाश में खड़े हैं,
तब मेरे बारे में यह आयत कही गई: (6) [4948]

"अपने विचार का अच्छा परिणाम आने दो; तुम्हें अपार सुख प्राप्त हो। इस अनमोल रत्न को अर्पित करने के कारण..."
आपको महान प्रसिद्धि का अनुभव करने दें। (7) [4949]

यह सब कहने के बाद, भगवान,
जिसका नाम "सर्वश्रेष्ठ कमल" था।
तब सर्वश्रेष्ठ बुद्ध उड़ गए,4810
जहां [उसका] मन उसे निर्देशित करता था। (8) [4950]

हे देवताओं के स्वामी, मैंने साठ युगों तक दिव्य शासन किया।
और सौ बार और मैं
वह एक सम्राट था जो पहिया घुमाता था। (9) [4951]

जब मैं अपने पूर्व कर्मों को याद रखने वाला देवता बन गया, तब मुझे एक रत्न प्राप्त हुआ।
[जो मेरे प्रकाश के स्रोत के रूप में कार्य करता था] 4811 (10) [4952]

उस समय छियासी हजार स्त्रियाँ मुझसे पत्नियाँ बनकर विवाहित हुईं, उन्हें विभिन्न प्रकार के वस्त्र और आभूषण पहनाए गए।
और रत्नों से बनी बालियां पहने हुए,

4806 लिट., "गया"
4807 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4808 lit., "गिर गया"
4809 लिट., "योग्य"
4810 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4811 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

लंबी पलकों, प्यारी मुस्कान4812 और पतली कमर के साथ, देखने में मनमोहक।4813 [वे] लगातार मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं:
रत्नों की भेंट चढ़ाने का यही फल है। (11-12) [4953-4954]

खुद को सजाने के लिए अच्छी तरह से बनाई गई 4814 चीजें
वे मेरी इच्छा के अनुसार मेरे पास आ रहे हैं।
सोने और रत्नों से बना हुआ,
[और] इसी प्रकार माणिक से बनाया गया। (13) [4955]

मनमोहक छज्जेदार झोपड़ियाँ और गुफाएँ, और बेहद महंगे बिस्तर, यह समझते हुए कि मैं क्या सोच रहा हूँ,
इच्छा के अनुसार उत्पादित होते हैं। (14) [4956]

जो लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने का अवसर पाते हैं, उन्हें इससे भरपूर लाभ मिलता है।
मानव जाति के लिए पुण्य क्षेत्र,
सभी सांस लेने वालों के लिए औषधि। (15) [4957]

मेरा कर्म भी इतना अच्छा रहा कि मुझे नेता के दर्शन हुए।
मैं सभी कष्टों से मुक्त हूँ;4815
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (16) [4958]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, चारों ओर सात रत्न विद्यमान रहेंगे;
मेरे लिए हर समय प्रकाश रहता है। (17) [4959]

उस अनमोल भेंट के कारण,4816
सौभाग्य का आनंद लेते हुए,4817
मुझे ज्ञान का प्रकाश दिखाई देता है;
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (18) [4960]

जब से मैंने वह रत्न [उसे] भेंट किया है, तब से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह रत्नों की भेंट का फल है।4819 (19) [4961]

4812 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4813 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4814 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4815 लिट., "एक फूल पर"
4816 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4817 khiḍḍāratiyaÁ
4818 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4819 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (20) [4962]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [4963]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (22) [4964]

इस प्रकार पूज्य मणिपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मणिपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

470. {473.}4820 उक्कासाटिका4821

कोसिका नामक धन्य पुरुष, ध्यानमग्न, समाधि-प्रेमी, बुद्ध, एकांतप्रिय, ऋषि।
उस समय Cittakṭa4822 पर रहते थे। (1) [4965]

महिलाओं की टुकड़ियों के साथ हिमालय में छलांग लगाई।
मैंने [उन्हें] देखा, कोसिका बुद्ध।
पंद्रहवें दिन चंद्रमा की तरह.4824 (2) [4966]

सौ जलती हुई मशालों के साथ,
मैंने उस समय उनकी सेवा की।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4820 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4821 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4822 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4823 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4824 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4825 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4826 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

शेष सात रातें और दिन,
आठवें दिन मैं चला गया।4827 (3) [4967]

स्वयंभू, अजेय कोसिका बुद्ध की पूजा करने के बाद प्रसन्न हृदय से वे उठे।
मैंने उसे एक बार भोजन भी दिया। (4) [4968]

विश्व के सर्वश्रेष्ठ, दो पैरों वाले स्वामी, पुरुषों के बैल के लिए उस कर्म के माध्यम से,
तुसिता:4828 में मेरा पुनर्जन्म हुआ।
वह उस एक भोजन का फल है। (5) [4969]

दिन के दौरान और साथ ही
रात में, मेरे लिए हमेशा रोशनी रहती है;
चारों ओर सौ मील तक,
मैं प्रकाश से परिपूर्ण हूँ। (6) [4970]

इसके बाद पचपनवें युग में
मैं पहिया घुमाने वाला राजा था, गुलाब-सेब के बाग का स्वामी, 4829 चारों तरफ से विजयी। 4830 (7) [4971]

उस समय मेरा शहर समृद्ध, खुशहाल और सुव्यवस्थित था।
इसकी लंबाई तीस लीग थी।
और [यह] बीस लीग चौड़ा था। (8) [4972]

मेरे शहर का नाम शोभना रखा गया था;4831
इसका निर्माण विस्साकम्मा ने करवाया था।
इसमें दस ध्वनियों की कमी नहीं थी,4832
झांझों के साथ अच्छी तरह से संगत।4833 (9) [4973]

उस शहर में कुछ भी 4834 लकड़ियों या लताओं या मिट्टी से नहीं बना था।

4827 lit., "गया"
4828 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4829 lit., "गिर गया"
4830 लिट., "योग्य"
4831 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4832 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में gendu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4833 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4834 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

सब कुछ सोने का बना हुआ था।
[और] यह हर समय चमक रहा था। (10) [4974]

इसके चारों ओर चार प्राचीर दीवारें थीं; वे रत्नों से निर्मित थीं। बीच में एक ताड़ का पेड़ था।
पॉन्ड 4835 विस्साकम्मा द्वारा बनाया गया था। (11) [4975]

वहाँ दस हजार तालाब भी थे, जो गुलाबी और नीले कमलों से ढके हुए थे।
सफेद कमलों से ढका हुआ [भी],

[सभी] विभिन्न सुगंधों का उत्सर्जन करते हुए। (12) [4976]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसके लिए वो मशालें उठाईं4836, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
मशालें ले जाने का फल। (13) [4977]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (14) [4978]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [4979]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [4980]

इस प्रकार पूज्य उक्कासतिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उक्कासटिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

4835 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4836 लिट., "एक फूल पर"

---

471. {474.}4837 सुमनविजनिया4838

मैंने चमेली से ढके पंखे से बोधि को हवा दी।
उत्कृष्ट बोधि4840 के चरण
विपस्सी, भगवान का। (1) [4981]

ग्यारह युगों में
मैंने उस शानदार बोधि वृक्ष को हवा दी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
वह फूँकने का फल है। (2) [4982]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4983]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4984]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4985]

इस प्रकार पूज्य सुमनवीजनीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुमनविजनीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4837 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4838 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4839 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4840 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

472. {475.}4841 कुम्मासदायका4842

जब महान ऋषि विपस्सी अपनी इच्छा अनुसार घूम रहे थे, तब उन्होंने देखा कि उनका कटोरा खाली है।
मैंने इसे जौ के दलिया से भर दिया।4843 (1) [4986]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय दान में भोजन दिया था, मुझे कभी कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला:
यह जौ के दलिया का फल है। (2) [4987]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4988]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4989]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4990]

इस प्रकार पूज्य कुम्मासादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुम्मासादायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4841 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4842 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4843 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

473. {476.}4844 कुशत्थकदायक4845

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने दान के लिए आठ टिकट दिए (4846)
हे भगवान कस्सपा को,
ब्राह्मण, सिद्ध पुरुष.4847 (1) [4991]

वर्तमान युग के भीतर, तब से
मैंने तब उन आठ लोगों को रोजी-रोटी दी थी, और तब से मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह आठ भोजन-भुगतानों का फल है। (2) [4992]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4993]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4994]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [4995]

इस प्रकार पूज्य कुसत्तकदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुसट्टकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4844 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4845 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4846 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4847 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

474. {477.}4848 गिरिपुन्नगिया4849

उस समय चित्तकूट 4850 में शोभिता नामक भगवान निवास करते थे।
कुछ माउंटेन लॉरेल4851 [फल] लेते हुए,
मैंने स्वयं-एक हो जाने की पूजा की। (1) [4996]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उस समय] बुद्ध की पूजा की थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (2) [4997]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [4998]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [4999]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5000]

इस प्रकार पूज्य गिरिपुन्नागीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गिरिपुन्नागिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4848 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4849 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4850 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4851 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4852 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4853 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

475. {478.}4854 वल्लिकाराफलदायका4855

उस समय तक्कारा 4856 में सुमना नामक सम्बुद्ध निवास करते थे। कुछ वल्लिकार 4857 फल लेकर,
मैंने इसे स्वयं-निर्माण को दे दिया। (1) [5001]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (2) [5002]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5003]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5004]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5005]

इस प्रकार पूज्य वल्लिकारफलदायक4858 थेरा ने ये श्लोक कहे।

वल्लिकारफलदायक4859 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4854 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4855 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4856 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4857 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4858 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4859 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

476. {479.}4860 पणधिदायक4861

अनोमादस्सी, हे भगवान!
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, पुरुषों का सांड, दोपहर के आराम के समय बाहर चला गया।
सड़क पर आ गया, आँखों से भरा हुआ। (1) [5006]

मैंने अच्छे से बने जूते पहने और सड़क पर चल पड़ा।
वहाँ मैंने संबुद्ध को देखा।
कटोरा ले जाना,4862 सुंदर.4863 (2) [5007]

अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, मैंने अपने उन जूतों को निकालकर बुद्ध के चरणों में रख दिया।
मैंने ये शब्द [उस समय उससे] कहे थे: (3) [5008]

"हे महान ऋषि, हे सफल व्यक्ति, हे प्रभु, हे मार्गदर्शक, इन जूतों को पहन लो।"
मुझे इससे फल प्राप्त होगा;
मेरे उद्देश्य को सफल होने दो!" (4) [5009]

अनोमादस्सी, हे भगवान!
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, पुरुषों का बैल, उन जूतों को पहनने के बाद,
उन्होंने [मेरे बारे में उस समय] ये शब्द कहे: (5) [5010]

"जिस व्यक्ति ने मुझे ये जूते दिए, अपने हाथों से इन्हें पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;

आप सब मेरी बात सुनो:" (6) [5011]

यह जानकर कि बुद्ध बोलेंगे,4866 सभी देवता वहाँ एकत्रित हो गए।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4860 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4861 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4862 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4863 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4864 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4865 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4866 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

प्रसन्न, भावनाओं से ओतप्रोत,
रोमांचित होकर, उन्होंने अपने हाथ जोड़ लिए। (7) [5012]

"जूतों की इस भेंट के कारण, यह व्यक्ति खुश होने वाला है, और पचपन बार अलग-अलग तरीके से खुश होगा।"
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा। (8) [5013]

वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, [और वहाँ] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत। (9) [5014]

अब से अनगिनत युगों बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (10) [5015]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। (11) [5016]

पुण्य से परिपूर्ण होकर, वह देवताओं या मनुष्यों के लोक में पुनर्जन्म लेगा; उसे वाहन प्राप्त होंगे, जो
दिव्य वाहनों से मिलते-जुलते हैं।" (12) [5017]

मेरे महल और पालकी, सजे-धजे हाथी और
रथों को उत्तम नस्ल के घोड़ों से जोता गया

वे हमेशा मेरे लिए प्रकट होते हैं। (13) [5018]

जब मैं घर से निकलता हूँ, तो मैं रथ पर निकलता हूँ।
जब मेरे बाल काटे जा रहे थे,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (14) [5019]

मुझे इससे काफी लाभ हुआ, क्योंकि मैंने [ध्यानपूर्वक] व्यापारियों को नियुक्त किया, [फिर] उन्हें [केवल] एक जोड़ी जूते दिए।
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (15) [5020]

अनगिनत युगों के दौरान
जब से मैंने [उस समय] वे जूते दिए हैं, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह जूतों की एक जोड़ी का फल है। (16) [5021]

4867 lit., “गया”

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (17) [5022]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [5023]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [5024]

इस प्रकार पूज्य पाणधिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पानधिडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

477. {480.}4868 पुलिनाकाकमिया4869

अतीत में, एक वन उपवन में,
मैं हिरण का शिकार करने वाला व्यक्ति था। एक हिरण की तलाश में ,4870
मैंने [वहाँ] बुद्ध का मार्ग देखा। (1) [5025]

दिल में खुशी लिए, अपनी गोद की जेब में रेत लिए हुए, मैं प्रसन्न था।
मैंने इसे फुटपाथ पर छिड़क दिया

अच्छी तरह से चले गए एक, शानदार एक.4871 (2) [5026]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय वह रेत छिड़की थी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
रेत देने का फल यही है। (3) [5027]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4868 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4869 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4870 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4871 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5028]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5029]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5030]

इस प्रकार पूज्य पुलिनाचंकमिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुलिनाचंकमिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: नाममाली, मनिददा,
उक्कासतिका, विजानी,
कुम्मासा और कुसौथा [भी], गिरिपुन्नगिया, वल्लिकारा,4872 पनाधिदा भी
[और] फिर पुलिनाचंकमा:
ये पच्चीस आयतें हैं।
जिनकी गिनती जानकार लोग करते हैं।

नलमाली अध्याय, अड़तालीसवाँ

पांसुकुला अध्याय, उनतालीसवाँ

---

478. {481.}4873 पौंशुकुलासनिका4874

तिस्सा नामक धन्य पुरुष थे
स्वयं को एक बनाओ, सर्वोपरि मनुष्य।4875

4872 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4873 अपदाना नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4874 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4875 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

अपने चिथड़े-चिट्टे वस्त्र को पीछे छोड़ते हुए,
विजेता ने अपने निवास में प्रवेश किया।4876 (1) [5031]

मैंने अपना धनुष उठाया जो फैला हुआ था,4877
भोजन की तलाश में भटकना,4878
साथ4879 एक गोलाकार तलवार4880 [भी,]
मैं [तब] उपवन में प्रवेश कर गया। (2) [5032]

वहाँ मैंने [बुद्ध का] फटे-पुराने वस्त्र को एक पेड़ की चोटी पर लटका हुआ देखा।4881
वहीं पर धनुष फेंकते हुए,
मैंने अपने हाथों को अपने सिर पर दबाया, (3) [5033]

मुझे बहुत खुशी है, मेरे दिल में प्रसन्नता है, और अपार आनंद है, सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद करते हुए।
मैंने तब [उसके] चिथड़े-चिथड़े वस्त्र की पूजा की थी। उसके बाद के बानवे युगों में
मैंने उस फटे-पुराने वस्त्र की पूजा की थी [उस समय], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यही उपासना का फल है। (4) [5034-5035]4882

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5036]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5037]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5038]

इस प्रकार पूज्य पांशुकुलसंनिक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

संभवतः, और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी प्रकार का जौ से बना भोजन है।

4876 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
4877 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4878 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4879 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4880 lit., "गया"
4881 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4882 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

पांसुकुलासंनिक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

479. {482.}4883 बुद्धसञ्ञक4884

[पढ़ने में] अंक4885 और इतिहास,4886
ग्लॉसेस4887 [और] अनुष्ठानिक कानून के साथ,
मैं विद्वान था, मंत्रों का ज्ञाता था,4888
तीनों वेदों के स्वामी। (1) [5039]

तब कई छात्र मेरे पास आए, मानो नदी की धारा बह रही हो।
मैं उन्हें मंत्र सिखा रहा हूँ।
दिन-रात, मैं आलसी नहीं हूँ। (2) [5040]

उस समय सिद्धार्थ नामक सम्बुद्ध का संसार में उदय हुआ। उन्होंने अंधकार को दूर भगाया।
उन्होंने ज्ञान का प्रकाश प्रदर्शित किया। (3) [5041]

मेरे छात्रों में से एक

मैंने अपने 4889 [अन्य] छात्रों से बातचीत की;
उस तथ्य को सुनकर [जिस पर उन्होंने चर्चा की],
फिर उन्होंने मुझे [यह तथ्य] बताया: (4) [5042]

"दुनिया में एक बुद्ध का उदय हुआ है,
सर्वज्ञानी, विश्व नेता।
लोग उनकी ओर रुख कर रहे हैं;
हमें कुछ भी नहीं मिलने वाला है।"4890 (5) [5043]

"बुद्ध स्वतः ही जन्म लेते हैं,4891
वे आकर्षक व्यक्तित्व वाले, बेहद प्रसिद्ध व्यक्तित्व वाले।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4883 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4884 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4885 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4886 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4887 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4888 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4889 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4890 लिट., "गया"
4891 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

तो फिर मैं भी जाकर क्यों न देख लूँ?
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, विश्व-नेता?"4892 (6) [5044]

मेरी हिरण की चमड़ी ले जाने के बाद,
[मेरे] छाल के वस्त्र, [और] पानी का घड़ा,4893
अपने आश्रम से प्रस्थान करते हुए,
मैंने अपने छात्रों को इस प्रकार सलाह दी: (7) [5045]

"एक घने अंजीर के पेड़ के खिलने की तरह,4894
[और] चंद्रमा में खरगोश की तरह,4895

[और] कौवों के [मां के] दूध की तरह,4896
विश्व नेता को पाना कठिन है। (8) [5046]

संसार में एक बुद्ध का उदय हुआ है! मनुष्य का जन्म भी मुश्किल से मिलता है, और श्रवण शक्ति तो और भी कठिन है।
जब दोनों एक साथ घटित होते हैं। (9) [5047]

संसार में एक बुद्ध का उदय हुआ है!
हम उन्हें अपने जीवन में देखेंगे।4898
चलो, अब हम सब अंदर चलते हैं
सम्मासंबुद्ध की उपस्थिति।" (10) [5048]

वे सभी पानी के बर्तन पकड़े हुए थे।
और उन्होंने खुरदरी छाल और हिरण की खाल से बने वस्त्र पहने थे।
वे,4899 उलझे हुए बालों का भार वहन करते हुए,4900
फिर जंगल से चले गए। (11) [5049]

बस हल की लंबाई जितनी दूरी आगे देखते हुए,4901
परम अर्थ की खोज में, नन्हे हाथियों की तरह आते हुए,
वे निडर थे, शेरों की तरह। (12) [5050]

4892 लिट., "गिर गया"
4893 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4894 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4895 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4896 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4897 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4898 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4899 लिट., "एक फूल पर"
4900 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4901 khiḍḍāratiyaÁ

चिंताओं से मुक्त और अडिग, 4902 चतुर और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए, 4903
वे सर्वश्रेष्ठ बुद्धों के पास पहुँचे। (13) [5051]

जब डेढ़ मील शेष रह गया था, तब मुझे बीमारी हो गई। सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद करते हुए,
मैं वहीं मर गया। (14) [5052]

पिछले चौरानवे युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
बुद्धों को समझने का फल। (15) [5053]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (16) [5054]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) [5055]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [5056]

इस प्रकार पूज्य बुद्धसंञ्चक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बुद्धसंञ्चक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

480. {483.}4905 भिसादायक4906

मैं हाथियों से भरे एक तालाब में डुबकी लगाकर वहां से कमल की जड़ उखाड़ रहा हूँ।
क्योंकि [वे ही हैं] जो मैं तब खा रहा हूँ। (1) [5057]

4902 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4903 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4904 नवा , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4905 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4906 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

उस काल में बुद्ध 4907 का नाम पद्ममुत्तरा था।
लाल रंग से रंगे वस्त्र पहने हुए, 4908 बुद्ध

वह आकाश में यात्रा कर रहा है [वहाँ], चिथड़ों से बने अपने वस्त्रों को हिला रहा है।
फिर मैंने [उसके वस्त्रों की] आवाज सुनी, [और] ऊपर [आकाश की ओर] देखते हुए,
मैंने विश्व के नेता को देखा। (2-3) [5058-5059]

वहीं पर रहते हुए, मैंने विश्व नेता को आमंत्रित किया: "जड़ों से शहद बह रहा है"
[और] दूध [और] तेल4911 तनों से बहता है;
हे दृष्टिभ्रमित बुद्ध, कृपा करके मुझसे कुछ स्वीकार करें।
फिर दयालु शिक्षक,
महान प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति अवतरित हुए। (4-5ए-बी) [5060-5061]4912

उस सुंदर नेत्र ने दया भाव से मेरा भिक्षापात्र स्वीकार कर लिया। उसे स्वीकार करते हुए, संबुद्ध ने
उन्होंने मुझे इस प्रकार धन्यवाद व्यक्त किया: (5सी-डी, 6ए-बी) [5062]

हे पुण्यवान, प्रसन्न रहो;
आपका पुनर्जन्म संपन्न हो। कमल की जड़ के इस उपहार के कारण,
आपको अपार सुख प्राप्त हो। (6सी-एफ) [5063]

हालांकि, संबुद्ध,
जिसका नाम "सर्वश्रेष्ठ कमल" था।
संबुद्ध ने वह भोजन ग्रहण किया,
विक्टर आसमान से उड़ गया। (7) [5064]

और अधिक कमल की जड़ लेकर मैं अपने आश्रम लौट आया। उस जड़ को एक पेड़ पर लटकाकर,

---

4907 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4908 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
4909 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
4910 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4911 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4912 शाब्दिक रूप से, "गया"
4913 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

मुझे अपनी भेंट याद आ गई। (8) [5065]

फिर एक भीषण आंधी चली:

इसने जंगल को हिला दिया।
वह स्थान शोर से भर गया था।
वहाँ बिजली की कड़क फूट रही है। (9) [5066]

फिर आसमान से बिजली गिरी और सीधे मेरे सिर पर जा लगी। इसी वजह से मैं बैठ गया।
मैं वहीं मर गया। (10) [5067]

[तब] मेरे अच्छे कर्मों से बंधे होने के कारण, मेरा तुसिता में पुनर्जन्म हुआ।
जब मेरा शरीर गिर पड़ा,
मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया। (11) [5068]

तब छियासी हजार स्त्रियाँ [सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई] शाम और सुबह मेरी सेवा करती थीं:
कमल की जड़ देने का फल। (12) [5069]

मानव गर्भ में आने के बाद, मैं हर समय खुश रहती हूँ।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
कमल की जड़ देने का फल। (13) [5070]

फिर, हे देवताओं के परमेश्वर, तटस्थ परमेश्वर द्वारा दया किए जाने पर, समस्त दोष दूर हो जाते हैं;
अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (14) [5071]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उस समय भिक्षा में भोजन दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
कमल की जड़ देने का फल। (15) [5072]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (16) [5073]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

4914 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4915 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
4916 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (17) [5074]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [5075]

इस प्रकार पूज्य भीषदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

भीषदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

481. {484.}4917 Ñāṇatthavika4918

मेरा सुव्यवस्थित आश्रम [वहाँ] था।
दक्षिणी हिमालय में। जीवन के परम अर्थ की खोज में।
मैं तब जंगल में रह रहा हूँ। (1) [5076]

जड़ों और फलों से संतुष्ट, चाहे मुझे वे मिलें या न मिलें, एक उचित शिक्षक की तलाश में,4919
मैं [उस समय] अकेला रह रहा हूँ। (2) [5077]

उस समय सुमेधा नामक सम्बुद्ध का संसार में उदय हुआ।
चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हुए;
उसने कई लोगों को पार कराया। (3) [5078]

मैंने बुद्ध के बारे में नहीं सुना था, और किसी ने मुझे उनके बारे में बताया भी नहीं था। जब आठवां वर्ष बीत गया, तब मैंने
विश्व के नेता के बारे में सुना। (4) [5079]

आग जलाने के लिए लकड़ी लाने के बाद, कुटिया की सफाई करने के बाद,

---

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4917 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4918 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
4919 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
4920 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

मेरे कंधे का बोझ उठा लेने के बाद,4921
मैं तब जंगल से निकल पड़ा। (5) [5080]

गांवों और कस्बों में एक रात रुकते हुए, धीरे-धीरे मैं आगे बढ़ा।
[शहर का नाम] चंदावती.4923 (6) [5081]

उस काल में बुद्ध 4924
सुमेधा, विश्व-नेता थे। अमरता की अवस्था का उपदेश देते हुए, वे अनेक प्राणियों का उत्थान कर रहे हैं। (7) [5082]

लोगों की भीड़ को पार करते हुए, ईश्वर की आराधना करते हुए,4925 एक कंधे पर हिरण की खाल रखते हुए
मैंने विश्व के नेता की प्रशंसा की: (8) [5083]

"तुम ही सांस लेने वालों के गुरु हो, तुम ही ध्वज, झंडा और स्तंभ हो;
तुम ही लक्ष्य हो, तुम ही आधार हो।
द्वीप,4926 द्विपादों में सर्वश्रेष्ठ। (9) [5084]

इक्कीसवाँ पाठ भाग
दर्शन में तेज, 4927 हीरो, आप लोगों को पार ले जाते हैं।
दुनिया में इसके जैसा कोई दूसरा सितारा नहीं है
वह [आपसे] ऊँचा है, हे ऋषि। (10) [5085]

इसे मापना संभव है
समुद्र4928 घास के एक तिनके के साथ,4929
लेकिन इसे कभी मापा नहीं जा सकता था
हे सर्वज्ञ, आपका ज्ञान। (11) [5086]

पृथ्वी को एक तुलनीय गोले पर उठाना संभव है।

4921 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4922 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

4923 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

4924 शाब्दिक रूप से, "गया"

4925 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

4926 लिट., "गिर गया"

4927 शाब्दिक रूप से, "योग्य"

4928 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

4929 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

लेकिन इसे कभी मापा नहीं जा सकता था
हे सर्वज्ञ, आपकी बुद्धिमत्ता। (12) [5087]

किसी रस्सी से या इंच-इंच में सभी स्थान को मापना संभव है, लेकिन कभी भी किसी को मापना संभव नहीं है।
हे सर्वज्ञ, आपका अच्छा आचरण। (13) [5088]

विशाल महासागर का जल,
और इस उपजाऊ धरती का स्थान,
ये दोनों ही चीजें मापी जा सकती हैं;
तुम अतुलनीय हो, आँखों से परिपूर्ण।" (14) [5089]

उन छह श्लोकों में परम प्रसिद्ध, सर्वज्ञ ईश्वर की स्तुति करने के बाद, दोनों हाथों को जोड़कर,
फिर मैं वहाँ चुपचाप बैठा रहा। (15) [5090]

जिसे वे "सुमेधा" कहते हैं,4930
बहुत बुद्धिमान4931 [और] समझदार,4932
भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (16) [5091]

"जिसने मेरे ज्ञान की प्रशंसा की है, अपने हाथों से प्रसन्न होकर, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: (17) [5092]

सतहत्तर युगों तक
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा।
हजार बार देवताओं के स्वामी,
वह दैवीय शासन का प्रयोग करेगा। (18) [5093]

इसके अलावा, सौ बार अलग-अलग, वह एक ऐसा राजा होगा जो पहिया घुमाएगा। [और] बहुत स्थानीय शासन होगा, गिनती में अनगिनत। (19) [5094]

चाहे जन्म से मनुष्य हो या दिव्य, अच्छे कर्मों से युक्त हो, और विचारों से रहित इरादे रखता हो,
वह तीक्ष्ण बुद्धि वाला होगा। (20) [5095]

4930 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4931 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4932 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4933 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

तीस हजार युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (21) [5096]

घर से निकलकर वह खाली हाथ बाहर जाएगा। उसकी उम्र केवल सात साल है।
वह 4934 अरहंत पद प्राप्त करेगा।" (22) [5097]

जहां तक मुझे याद है, 4935
जब से मैंने विवेक प्राप्त किया है,4936
अंतराल 4937 में मुझे नहीं पता
कोई भी विचार जो सुखद नहीं है। (23) [5098]

प्रत्येक जन्म में पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे सौभाग्य प्राप्त होता है।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
ज्ञान की प्रशंसा करने का फल यही है। (24) [5099]

मेरे भीतर की तीनों आग बुझ गई हैं; समस्त [नया] अस्तित्व नष्ट हो गया है; समस्त अशुद्धियों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब पवित्र निवास कर रहा हूँ। (25) [5100]

तीस हजार युगों में
क्योंकि मैंने बुद्ध के ज्ञान की प्रशंसा की है, इसलिए मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का सामना नहीं करना पड़ा है।
ज्ञान की प्रशंसा करने का फल यही है। (26) [5101]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (27) [5102]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [5103]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

4934 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
4935 khiḍḍāratiyaÁ
4936 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4937 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4938 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [5104]

इस प्रकार पूज्य ञाणत्थविका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ञाणत्थविका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

482. {485.}4939 कैंडनामालिया4940

पांचों इंद्रिय सुखों का त्याग करना, जो प्रिय और आनंददायक हैं; आठ सौ मिलियन का त्याग करना,
मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (1) [5105]

आगे बढ़ने के बाद मैंने हार मान ली।
शरीर के साथ बुरे कर्म4942 [किया गया]। शब्दों के माध्यम से बुरे आचरण को त्यागकर, मैं नदी के किनारे निवास करता था। (2) [5106]

[तब] सर्वश्रेष्ठ बुद्ध मेरे पास आए, जो उस नदी के पास अकेले रहते थे।4943
मुझे नहीं पता था कि "वह बुद्ध हैं;"
मैंने [उसका] सौहार्दपूर्ण स्वागत किया।4944 (3) [5107]

उन्हें वह मैत्रीपूर्ण स्वागत देते हुए,
तब मैंने उससे उसका नाम और गोत्र पूछा: “क्या तुम देवता हो, संगीत की अप्सरा हो?”
या4945 [यहाँ तक कि] उदार इंद्र? (4) [5108]

अन्यथा तुम कौन हो? किसके पुत्र हो?
[जैसे] स्वयं भगवान4946 यहाँ आए हों [अभी], आप सभी दिशाओं में चमक रहे हैं,
जैसे सूरज उग रहा हो। (5) [5109]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4939 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

4940 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

4941 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4942 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

4943 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4944 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
4945 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
4946 शाब्दिक रूप से, "गया"

हे सौभाग्यशाली! तुम्हारे पैर पर हजार तीलियों वाले पहियों के निशान दिखाई दे रहे हैं।
तो आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? फिर हम यह कैसे जान सकते हैं? कृपया अपना नाम और अपने कुल का उल्लेख करें;
कृपया मेरे संदेह दूर कर दीजिए!” (6) [5110]4948

मैं न तो देवता हूँ, न संगीत की अप्सरा, और न ही उदार इंद्र।
और मेरा ईश्वर के रूप में कोई अस्तित्व नहीं है:
मैं उनसे श्रेष्ठ हूँ। (7) [5111]

अतीत में मैं बिखर गया था
उनका दायरा, इंद्रिय सुखों की जंजीरें;4949
सभी अशुद्धियों को नष्ट करके,
सर्वश्रेष्ठ जागृति प्राप्त हुई.4950 (8) [5112]

उनकी ये बातें सुनकर,
मैंने उस समय उनसे ये शब्द कहे थे: “यदि आप बुद्ध हैं, हे महान ऋषि,
कृपया यहाँ बैठ जाइए, सर्वज्ञानी। मैं आपकी पूजा करने जा रहा हूँ।
आप दुखों के अंतकर्ता हैं। (9) [5113]4952

मैंने अपनी हिरण की खाल से बनी वस्तु को फैलाकर [तब] शिक्षक को दे दिया।
भगवान बुद्ध वहाँ बैठ गए
एक शेर पहाड़ी गुफा में। (10) [5114]

तेजी से पहाड़ पर चढ़ते हुए,
मैंने आम के पेड़ का फल, एक सुंदर साल का फूल और
[कुछ] बहुत ही कीमती चंदन। (11) [5115]

मैंने जल्दी से वह सब लेकर विश्व नेता के पास जाकर बुद्ध को फल भेंट किए।
मैंने उसे वह साल का फूल भेंट किया। (12) [5116]

4947 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
4948 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
4949 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
4950 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4951 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप

भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

4952 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

चंदन से अभिषेक करना,4953
तब मैंने प्रसन्नतापूर्वक, हृदय में आनंद के साथ गुरु की उपासना की।
[और] अत्यधिक आनंद के साथ। (13) [5117]

मेरे हिरण के चमड़े के वस्त्र पर विराजमान, सुमेधा, विश्व के नेता,
तब मैंने अपने कर्मों की प्रशंसा की।
जिससे मुझे मुस्कुराने का मौका मिला4954 [उसके बारे में]: (14) [5118]

"आम के इस उपहार के कारण, और सुगंध और फूलों दोनों के कारण, पच्चीस सौ युगों से
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा।
इरादों में विचार की कमी नहीं थी,4955
वह बहुत शक्तिशाली होगा।4956 (15) [5119]4957

छब्बीस सौ युगों के लिए
वह देवताओं की दुनिया में आनंदित होगा। वह एक ऐसा राजा होगा जो पहिया घुमाएगा, चारों ओर विजयी होगा।4958 (16) [5120]

विस्साकम्मा द्वारा निर्मित वेभारा नामक नगर पूरी तरह से सोने का बना होगा।
विभिन्न रत्नों से सुशोभित। (17) [5121]

इसी विधि से वह विवेकपूर्ण ढंग से पुनर्जन्म लेगा। प्रत्येक स्थान पर सुखी रहते हुए, चाहे वह देवता हो या मनुष्य, जब उसे अपना अंतिम पुनर्जन्म प्राप्त होगा,
वह ब्राह्मण के रूप में जन्म लेगा। (18) [5122]4959

घर से निकल जाने पर वह बेघर हो जाएगा। विशेष ज्ञान में महारत हासिल करना,4960
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।" (19) [5123]

4953 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)

4954 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

4955 लिट., "एक फूल पर"

4956 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

4957 khiḍḍāratiyaÁ

4958 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

4959 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

4960 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

यह सब कहने के बाद, जब मैंने [उनका] ध्यान किया, तब मैंने उस संबुद्ध, सुमेधा, जगत के नेता का भी ध्यान किया।
[तब] आकाश में विदा हो गया। (20) [5124]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। [5125]4961

तुसिता से गिरने के बाद,
मेरा जन्म मां के गर्भ में हुआ था।
संपत्ति की कोई कमी नहीं है।
[यहाँ तक कि] जब मैं गर्भ में हूँ। (21) [5126]

माँ के गर्भ में रहते हुए भी मुझे भोजन और पेय पदार्थों का आनंद मिलता है; मेरी इच्छा के कारण ही इनका उत्पादन होता है।
मेरी माँ के लिए, जैसा वह चाहती है। (22) [5127]

जब मैं [केवल] पाँच साल का था, तब मैं बेघर हो गया था।
मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया
जब मेरे बाल काटे जा रहे थे। (23) [5128]

अपने पूर्व कर्मों की खोज करते हुए, मैंने उन्हें बच्चे की तरह नहीं देखा;4962
मुझे कर्म याद आ गया
[संपूर्ण] तीस हजार युग। (24) [5129]

हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो!4963
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! आपके युग में आने पर,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (25) [5130]

तीस हजार युगों में
चूंकि मैंने बुद्ध की पूजा की है, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (26) [5131]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (27) [5132]

4961 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
4962 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
4963 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
4964 pariḷāho

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [5133]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [5134]

इस प्रकार पूज्य चंदनमालिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चंदनमालिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

483. {486.}4965 धातुपूजक4966

जब जगत के स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया, तब जगत के नेता सिद्धार्थ ने...
अपने रिश्तेदारों को बुलाकर,
मैंने 4967 [बुद्ध के] अवशेषों की पूजा की। (1) [5135]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उन अवशेषों की पूजा की थी, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यह अवशेष-पूजा का फल है। (2) [5136]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5137]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5138]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 4965 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4966 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
4967 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4968 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5139]

इस प्रकार पूज्य धातुपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धातुपूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

484. {487.}4969 पुणिनुप्पादक4970

हिमालय के एक पर्वत पर, मैं देवला नामक तपस्वी हूँ।
वहाँ मेरा ध्यान करने का मार्ग
गैर-मानव प्राणियों द्वारा बनाया गया था।4971 (1) [5140]

उलझे बालों का बोझ ढोते हुए, पानी का घड़ा लिए, फिर जीवन के अंतिम अर्थ की तलाश में।
मैं जंगल से चला गया। (2) [5141]

वहाँ छियासी हजार छात्र थे।
उस समय मेरी सेवा में लगे हुए थे।
अपने कार्यों सहित सुप्रसिद्ध,4972
वे जंगल में रह रहे हैं। (3) [5142]

आश्रम से बाहर निकलकर मैंने रेत से एक स्तूप बनाया। विभिन्न प्रकार के फूलों को इकट्ठा करके,
मैंने तब उस स्तूप की पूजा की। (4) [5143]

वहाँ मेरे हृदय को प्रसन्नता हुई और मैं पुनः आश्रम में प्रवेश कर गया।
मेरे सभी छात्र एक साथ आओ,
मुझसे पूछा [कि] इसका क्या मतलब है:4974 (5) [5144]

4969 अपदाना नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
4970 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

4971 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

4972 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

4973 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

4974 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

हम सभी यह जानना चाहेंगे कि आप किस देवता का सम्मान कर रहे हैं।
उस रेत से बने स्तूप पर:
पूछे जाने पर, कृपया हमें बताएं।4975 (6) [5145]

"जो देखने में सुंदर हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हैं, उनके पास कोई दृष्टि नहीं है4976 [और] कोई जादू टोना नहीं है;4977 मैं उन्हीं का सम्मान कर रहा हूँ,
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, महान प्रसिद्धि वाले।" (7) [5146]

"वे किस प्रकार महान नायक, सर्वज्ञ, विश्व स्वामी हैं? वे कैसे दिखते हैं? उनका आचरण कैसा है?"
वे किस प्रकार से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं?" (8) [5147]

"बुद्धों के बत्तीस महान चिह्न होते हैं, और चालीस [वयस्क] दांत भी होते हैं।4979
उनकी आंखें बछिया जैसी पलकों वाली थीं4980
जंगली मुलेठी के फलों से मिलते जुलते हैं।4981 (9) [5148]

और जब वे बुद्ध चल रहे होते हैं,4982
वे बस हल की लंबाई जितनी दूरी तक ही आगे देखते हैं।4983
उनमें किसी व्यक्ति की आवाज नहीं होती;4984
उनकी सुरीली ध्वनि4985 सुनाई नहीं देती। (10) [5149]

और जब वे सुप्रसिद्ध लोग चलते हैं, तो वे [एक-एक करके] पैर उठाते हैं,4986 [हमेशा] दाहिने पैर से शुरू करते हैं: यही बुद्धों का स्वभाव है। (11) [5150]

और वे बुद्ध भयभीत नहीं होते, ठीक वैसे ही जैसे शेर, पशुओं के राजा।

4975 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

4976 lit., "गया"

4977 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

4978 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

4979 शाब्दिक रूप से, "योग्य"
4980 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
4981 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
4982 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
4983 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
4984 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
4985 लिट., “एक फूल पर”
4986 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

वे कभी भी अपनी प्रशंसा नहीं करते और न ही जीवित प्राणियों की निंदा करते हैं। (12) [5151]

वे अहंकार और तिरस्कार से मुक्त हैं, सभी प्राणियों के प्रति उनका यही भाव है। बुद्ध केवल निस्वार्थ भाव से ही स्तुति करते हैं।
यही बुद्धों का स्वभाव है। (13) [5152]

और जब बुद्धों का जन्म होता है, तो वे अपने आप से प्रकाश विकीर्ण करते हैं।
[और] छह [अलग-अलग] तरीकों से4987 वे कारण बनते हैं
इस पूरी [समृद्ध] पृथ्वी को हिला देने के लिए। (14) [5153]

और वे नरक को देख सकते हैं, और उस समय नरक ठंडा हो जाता है।
एक विशाल बादल से भी बारिश होती है:
यही बुद्धों का स्वभाव है। (15) [5154]

ऐसे ही महान हाथी हैं, अतुलनीय,4988 महान प्रसिद्धि वाले;
सौंदर्य में वे बेजोड़ हैं,4989
इस प्रकार चले गए लोग, माप से परे।" (16) [5155]

मेरे सभी छात्र, आदरणीय,
[तब] उन्होंने मेरे भाषण के लिए धन्यवाद व्यक्त किया, और 4990 ने भी [मेरे साथ] सहमति जताई।
जहां तक वे कर सकते थे और उनके पास शक्ति थी। (17) [5156]

अपने अच्छे कर्मों की कामना करते हुए, वे उस रेत के स्तूप की पूजा कर रहे हैं। मेरे उस भाषण पर विश्वास रखते हुए,
उनका मन बुद्धत्व की ओर विचरण करने लगा। (18) [5157]

फिर ईश्वर का एक महान पुत्र तुसिता स्वर्ग से नीचे आ गिरा।
उनका जन्म मां के गर्भ में हुआ था।

दस हजार [जगत] को हिला देना। (19) [5158]

मैं उस रास्ते पर खड़ा था जो उस समय मेरे आश्रम के पास था। मेरे सभी छात्र वहाँ इकट्ठा हो गए थे,
ठीक उसी समय मेरी उपस्थिति में आया। (20) [5159]

4987 khiḍḍāratiyaÁ
4988 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
4989 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
4990 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
4991 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”

“धरती बैल की तरह गरज रही है; यह जानवरों के राजा की तरह दहाड़ रही है। यह मगरमच्छ की तरह कांप रही है4992;
इसका परिणाम क्या होगा?” (21) [5160]

“बुद्ध4993 के बारे में मैंने [आपके लिए] विस्तार से बताया था,
रेत से बने स्तूप के पास, भगवान, गुरु, अब
मां के गर्भ में जन्म लिया है।” (22) [5161]

उनके लिए शिक्षा पर चर्चा करते हुए, [और] महान ऋषि का विस्तृत वर्णन करते हुए, [वहाँ] अपने छात्रों को उपदेश देते हुए, मैं पद्मासन में बैठा। (23) [5162]

एक गंभीर बीमारी के कारण मेरी सारी शक्ति समाप्त हो गई थी। सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को याद करते हुए।
मैं वहीं मर गया। (24) [5163]

मेरे सभी छात्र एकत्रित हुए; उन्होंने उस समय मेरे लिए चिता बनाई और मेरे नश्वर अवशेषों को लेकर,4995
उन्होंने मुझे चिता पर उठा लिया। (25) [5164]

चिता की देखभाल करने के बाद,
शोक के तीरों से घायल होकर, उन्होंने अपने सिर पर हाथ रखे हुए थे।
एक साथ आओ। उन्होंने विलाप किया। (26) [5165]

जब वे व्यर्थ ही विलाप कर रहे थे,4997
मैं [तब] चिता के पास [वापस] आया। “मैं तुम्हारा [मृत] गुरु हूँ, हे ज्ञानियों;
मेरे निधन पर शोक मत करो। (27) [5166]

सर्वोच्च भलाई के लिए दिन-रात प्रयास करो, आलसी मत बनो। तुम सब लापरवाही मत करो;
आपका मोमेंट4998 आपको दिया जाता है।” (28) [5167]

4992 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

4993 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
4994 pariḷāho
4995 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
4996 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
4997 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
4998 samādhikusalo ahaŋ

मैंने अपने छात्रों को इस प्रकार उपदेश दिया और फिर देवताओं की दुनिया में लौट आया।
उसके बाद अठारह युगों तक
मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया। (29) [5168]

और [फिर] सौ बार मैं था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। और सौ बार ऐसा ही।
मैं एक राजा था जो पहिया घुमाता था। और सौ बार ऐसा ही करता था।
मैंने [तब] दैवीय शासन का प्रयोग किया। (30) [5169]4999
शेष युगों में मैं
देवता या मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लिया।5000
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह उत्पन्न करने का फल है.5001 (31) [5170]

जैसे कि कत्तिका माह में बहुत से वृक्ष पूरी तरह खिल जाते हैं, उसी प्रकार उस मौसम में भी,
मैं एक महान ऋषि के रूप में विकसित हुआ हूँ। (32) [5171]

मेरे लिए पूर्ण शांति लाने वाला जुए में लगा बैल भी बलि का बकरा है।5003
टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह
मैं बिना किसी बंधन के रह रहा हूँ। (33) [5172]

एक लाख युगों में
क्योंकि मैंने [उस समय] बुद्ध की प्रशंसा की थी, इसलिए मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:
यह बुद्धों की प्रशंसा का फल है। (34) [5173]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (35) [5174]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (36) [5175]

विश्लेषण के चार तरीके,

4999 iddhipādesu kovido

5000 lit., “did pūjā ”

5001 mārasenāpamaddano , BJTS reads mārasenappamaddano

5002 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

5003 mahābhisakkasaṅkāso

और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (37) [5176]

इस प्रकार पूज्य पुलिनुप्पादक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पुलिनुप्पादक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

485. {488.}5004 तारानिया5005

अत्थादस्सी, भगवान
स्वयं-एक, विश्व-नेता, तथागत तब विनता नदी के तट पर आ गया।5006 (1) [5177]

फिर एक जल में रहने वाला कछुआ, [मैं] पानी से बाहर आया था।
मैं विश्व नेता के पास गया,
बुद्ध; वह पार करना चाहता था। (2) [5178]

“हे अत्थादस्सी, हे महान ऋषि, बुद्ध मुझ पर आरोहण करें;
मैं तुम्हें पार ले जाऊँगा; तुम
वे दुखों का अंत करने वाले हैं।” (3) [5179]

मेरी सोच को भांपते हुए, महान ख्यातिप्राप्त अत्थादस्सी मेरी पीठ पर चढ़ गए।
वहाँ विश्व का नेता खड़ा था। (4) [5180]

जहां तक मुझे याद है, 5008
जब से मैंने विवेक प्राप्त किया है,5009
मुझे ऐसी खुशी कभी नहीं मिली।
जैसे जब उसके तलवे [तब] मेरी पीठ को छूते हैं। (5) [5181]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5004 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5005 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

5006 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) । खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5007 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5008 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5009 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5010 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

नदी पार करने के बाद, सम्बुद्ध, अत्थादस्सी, जो परम प्रसिद्ध थे, नदी के किनारे पर ही रह गए।
तब उन्होंने मेरे बारे में ये आयतें कही थीं: (6) [5182]

"जैसे ही मैं लोगों को पार ले जाता हूँ
मन में उठने वाली शंकाओं की धारा, यह कछुआ राजा, गुणों से परिपूर्ण है।
मुझे नदी पार कराता है। (7) [5183]

बुद्ध की यात्रा और प्रेममय हृदयता के अभ्यास के माध्यम से,
अठारह सौ युगों तक वह
देवताओं के संसार में आनंदित होगा। (8) [5184]

देवताओं की दुनिया से यहाँ वापस आकर, अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर,
एक ही सीट पर बैठे हुए,
वह संदेह की धारा को पार कर जाएगा। (9) [5185]

जैसे किसी बीज को उपजाऊ खेत में बोया जाता है:5011
जब बारिश होती है, 5012 उचित समर्थन के साथ, 5013
फल किसान को प्रसन्न करता है;
इसी प्रकार, सम्मासंबुद्ध द्वारा प्रचारित इस बुद्ध-क्षेत्र में भी: जब वर्षा होती है,5014 उचित समर्थन के साथ,
यह फल मुझे प्रसन्न करेगा।" (10-11) [5186-5187]

मैं परिश्रम करने के लिए दृढ़ संकल्पित व्यक्ति हूँ।
शांत, 5015 पुनर्जन्म के आधार से रहित, 5016
सभी दोषों को भली-भांति जानते हुए,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (12) [5188]

उस कर्म को करने के बाद से अठारह सौ युगों में, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह नौका विहार का फल है। (13) [5189]

5011 lit., “गया”
5012 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5013 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5014 लिट., “योग्य”
5015 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5016 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेण्डु पढ़ता है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (14) [5190]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [5191]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [5192]

इस प्रकार पूज्य ताराणिय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

ताराणीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

486. {489.}5017 धम्मरुसी5018

जब दीपांकर बुद्ध थे, तब विजेता ने सुमेधा के बारे में कहा:
अब से अनगिनत युगों बाद,
यह बुद्ध बनेगा। (1) [5193]

माया नाम की स्त्री इस [व्यक्ति] की जन्मदाता माता होगी; पिता का नाम शुद्धोधन है;
इसका नाम गौतम रखा जाएगा। (2) [5194]

परिश्रम करने में दृढ़ रहने वाला, तपस्या का अभ्यास करने वाला,
संबुद्ध जागृत होंगे5019

महान प्रसिद्ध, बोधि वृक्ष की जड़ों में.5020 (3) [5195]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5017 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5018 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)

5019 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5020 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

उपतिस्सा5021 और कोलिता5022
ये [दो] मुख्य अनुयायी होंगे;5023
जिसका नाम आनंद है
इस विजेता की सेवा करेगा। (4) [5196]

खेमा और उप्पलावण्णा
प्रमुख महिला अनुयायी होंगी;5024
चित्त और आलवक
प्रमुख धर्मनिष्ठ गृहस्थ बनें।5025 (5) [5197]

खुज्जुत्तारा, नंदमाता
प्रमुख धर्मनिष्ठ गृहस्थ महिलाएं होंगी;5026
इस नायक का बोधि वृक्ष
अश्वत्थ वृक्ष के नाम से जाना जाता है।"5027 (6) [5198]

उन शब्दों को सुनने के बाद
महान ऋषि, अद्वितीय, 5028
देवता और मनुष्य दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न हैं।
उसकी प्रशंसा करते हुए, हाथ जोड़कर। (7) [5199]

उस समय मैं मेघा नाम का एक सुशिक्षित युवक था।5030
सुमेधा के लिए सर्वश्रेष्ठ भविष्यवाणी सुनकर, [तब] एक महान ऋषि, सुमेधा में करुणा का विश्वास पैदा करते हुए, font5031
जब उस नायक ने संसार का त्याग किया,5032
मैंने भी उनके साथ ही त्याग कर दिया। (8-9) [5200-5201] मठवासी नियमों में संयमित5033,5034

5021 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5022 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5023 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5024 लिट., “गया”
5025 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5026 लिट., “गिर गया”
5027 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5028 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5029 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5030 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5031 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5032 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5033 लिट., “एक फूल पर”
5034 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

और [भी] पाँचों अर्थों में,
वह पवित्र, सचेत और एक नायक के समान जीवन जीता था।
विक्टर ने जो सिखाया, उसका कर्ता।5035 (10) [5202]

जब मैं उस तरह से जी रहा था,
मैं सही रास्ते से भटक गया, बुरे व्यवहार के लिए उकसाया गया
मेरा एक खास दुष्ट मित्र। (11) [5203]

तर्क द्वारा नियंत्रित होने के कारण,5037
मैं व्यवस्था से गिर गया;5038
उसके बाद, उस बुरे दोस्त द्वारा,
मेरी माँ की हत्या की साजिश रची गई थी। (12) [5204]

मैंने बिना अंतराल वाला कर्म किया, 5039
और मैंने दुष्ट इरादे से हत्या की;
मैं वहां से सीधे नरक में गिर गया,5040
बहुत ही क्रूर [स्थान] में जन्म हुआ। (13) [5205]

उस दयनीय स्थिति में चले जाने के कारण,5041

मैं लंबे समय तक पीड़ा में पुनर्जन्म लेता रहा,5042
हीरो को दोबारा न देख पाना,
सुमेधा, पुरुषों में बैल। (14) [5206]

इस युग में, सागर में, मैं एक तिमिंगला मछली थी।5043
समुद्र में एक जहाज देखकर,
मैं भोजन की तलाश में उसके पास गया। (15) [5207]

मुझे देखकर व्यापारी भयभीत हो गए और उन्हें बुद्धों के श्रेष्ठ दर्शन की याद आ गई; मैंने एक बहुत तेज आवाज सुनी,
“गौतामा!” [वे भयभीत होकर चिल्लाए]। (16) [5208]

अतीत की धारणा को याद करते हुए,
मैं वहीं पर मर गया। मेरा पुनर्जन्म श्रावस्ती में हुआ।
एक उच्च श्रेणी के कुल में ब्राह्मण। (17) [5209]

5035 khiḍḍāratiyaÁ
5036 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5037 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, “मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में”
5038 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
5039 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”
5040 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5041 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
5042 pariḷāho
5043 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

मेरा नाम धम्मरुची था, जो हर बुराई से घृणा करता था।
विश्व का दीपक देखकर, [केवल] सात वर्ष की आयु में, (18) [5210]

मैं महान जेतवन गया, 5044
[और] बेघर हो गया। मैं हर रात तीन बार बुद्ध के पास जाता हूँ, और हर दिन भी। (19) [5211]

मुझे देखकर, मुझे देखकर, ऋषि ने मुझे “दीर्घकालीन धम्मरुचि” कहकर पुकारा। इसके बाद मैंने बुद्ध को बताया।
[मेरे] पिछले कर्म कैसे आगे बढ़े थे: (20) [5212]

बहुत लंबा, सैकड़ों अच्छे कार्यों से चिह्नित,5045
स्थितियाँ [तब] धीरे-धीरे 5046 शुद्ध की गईं। आज मैं वास्तव में बारीकी से देख रहा हूँ,
मैं तुम्हारा अद्वितीय शरीर देख रहा हूँ। (21) [5213]5047

बहुत लंबा, इससे अंधकार नष्ट हो जाता है।5048
पवित्रता की रक्षा करने के कारण, धारा को शुद्ध किया गया है। बहुत लंबे समय से, अब बिना किसी दोष के शुद्ध किया गया है।

हे महान ऋषि, क्या आँख ज्ञान से बनी है? (22) [5214]

बहुत समय बीत गया, अब हम फिर से आपके साथ हैं; नष्ट नहीं हुए, फिर से लंबा अंतराल था; आज, फिर से हम आपके साथ हैं। हे गौतम, कर्म यूं ही गायब नहीं हो जाते। (23) [5215]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (24) [5216]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [5217]

5044 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5045 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5046 samādhikusalo ahaŋ
5047 iddhipādesu kovido
5048 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"
5049 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5050 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [5218]

इस प्रकार पूज्य धम्मरुची थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

धम्मरुची थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

487. {490.}5051 सलामंदपिया5052

साल के पेड़ों के घने जंगल में स्थित , मैंने एक सुव्यवस्थित आश्रम बनाया था।
जो साल के फूलों से ढका हुआ था ;
मैं उस समय जंगल में रहता हूँ। (1) [5219]

हे भगवान, पियादस्सी,
स्वयं एक हो जाओ, प्रधान व्यक्ति, एकांत प्रेमी, सम्बुद्ध
फिर साल के जंगल में आ गया । (2) [5220]

आश्रम छोड़कर मैं जंगल में चला गया। खाने के लिए जड़ें और फल ढूंढते हुए।
मैं तब जंगल में घूम रहा हूँ। (3) [5221]

वहाँ मैंने उन्हें देखा, सम्बुद्ध, पियादस्सी, महान यशात्मा।
अच्छी तरह से बैठा हुआ, [लक्ष्य] प्राप्त करना,
विशाल जंगल में चमकता [प्रकाश]। (4) [5222]

वहाँ लकड़ी की चार छड़ें रखकर, एक सुव्यवस्थित मंडप का निर्माण किया गया।
उस समय बुद्ध के ऊपर
मैंने इसे साल के फूलों से ढक दिया। (5) [5223]

मैंने सात दिनों तक [उसे] पकड़े रखा।
साल के फूलों से ढका हुआ मंडप।
इससे मेरे हृदय को आनंद मिलता है।
मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की। (6) [5224] उस समय भगवान [तब]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5051 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5052 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

वह ध्यान से उठ खड़ा हुआ।5053
बस हल की लंबाई जितनी दूरी आगे देखते हुए,5054
परम पुरुष बैठ गया। (7) [5225]

वरुण नाम के इस व्यक्ति ने गुरु पियादस्सी के शिष्य से शिक्षा प्राप्त की।
एक लाख गुरुओं के साथ,5055
फिर मार्गदर्शक [बुद्ध] के पास पहुँचे। (8) [5226]

पियादस्सी, भगवान
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल, भिक्षुओं की सभा में विराजमान।
फिर विक्टर ने मुस्कुराहट दिखाई।5056 (9) [5227]

अनुरुद्ध, परिचारक, पियादस्सी, शिक्षक,
उसने अपना चोगा एक कंधे पर रख लिया।
[तब] ने महान ऋषि से [यह] पूछा: (10) [5228]

"हे भगवान, गुरु के मुस्कुराने का कारण क्या है?"
जब कारण ज्ञात हो रहा था
क्या आपने उसे प्रदर्शित किया, हे शिक्षक?" (11) [5229]

“इस युवक ने मेरे लिए एक सप्ताह तक फूलों की छतरी पकड़ी रखी:
अपने कर्मों को याद करके,
मैंने उस समय वह मुस्कान प्रदर्शित की। (12) [5230]

मुझे उस अच्छे कर्म के फलने-फूलने के लिए पर्याप्त जगह नज़र नहीं आती। चाहे देवताओं की दुनिया हो या मनुष्यों की।
पर्याप्त स्थान नहीं मिला। (13) [5231]

जब [यह] अच्छे कर्मों का स्वामी 5058 देवताओं के लोक में रह रहा होता है,
जहां तक उनके [पूरे] दल का सवाल है,
वहाँ एक साल का चंदवा होगा । (14) [5232]

5053 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5054 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5055 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5056 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5057 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5058 lit., “गया”

इसके अच्छे कर्मों के फल के रूप में,5059
वहाँ रहकर वह उन नृत्यों से प्रसन्न होगा जो सभी दिव्य हैं।
और गीतों [और] भाषणों [के द्वारा भी]। (15) [5233]

जहां तक उनके [पूरे] दल का सवाल है,
कई 50-60 उत्तम इत्र होंगे, और साल के फूलों की बारिश होगी।
वहाँ हर समय बारिश होती रहेगी। (16) [5234]

जब यह व्यक्ति वहां से गिर जाएगा, तो वह मानव अवस्था में चला जाएगा।
यहां भी फूलों की छतरी है
हर समय ले जाया जाएगा। (17) [5235]

और यहाँ भी नृत्य और गीत, झांझ की संगति में,5061 निरंतर उसकी सेवा में रहेंगे:
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (18) [5236]

साथ ही, जब सूरज उग रहा होता है,

साल की मूसलाधार बारिश होगी। उसके अच्छे कर्मों से जुड़ा हुआ,5062
[वह बारिश] हर समय होती रहेगी। (19) [5237]

अठारह सौ युगों के बाद, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (20) [5238]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। (21) [5239]

वहाँ एक साल की छतरी होगी
जो इस शिक्षा को समझ लेता है, उसके लिए वह छत्रछाया मौजूद रहेगी ।
उसे चिता पर जलाए जाने के लिए।" (22) [5240]

परिणाम का विस्तृत विवरण देते हुए [मेरे लिए], पियादस्सी [बुद्ध], महान ऋषि।

5059 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5060 लिट., "गिर गया"
5061 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5062 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

मैंने अपने अनुयायियों को धर्म का उपदेश दिया।
धर्म-वर्षा से उन्हें तरोताज़ा करते हुए। (23) [5241]

देवताओं के बीच तीस युगों तक मैंने दैवीय शासन किया, और चौंसठ से अधिक बार मैं
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (24) [5242]

देवताओं की दुनिया से यहाँ आकर मुझे अपार आनंद मिल रहा है।
यहां भी एक साल का चंदवा है:
यह चंदवा का फल है.5063 (25) [5243]

यह मेरे लिए आखिरी बार है;
मेरा अंतिम पुनर्जन्म चल रहा है।5064
यहां भी एक साल की छतरी है
मेरे लिए यह हर समय मौजूद रहता है। (26) 5065

महान ऋषि गौतम, शाक्यों के श्रेष्ठ पुरुषोत्तम को प्रसन्न करके,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।

सभी विजय और पराजय से परे। (27) [5244]

अठारह सौ युगों में
जब से मैंने बुद्ध की पूजा की है [तब से], मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं हुआ है:
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (28) [5245]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (29) [5246]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [5247]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

बीजेटीएस के अनुसार 5063 में, पीटीएस में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
5064 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5065 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5066 में uddalomika° को BJTS द्वारा PTS uddhalomikā के स्थान पर पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (31) [5248]

इस प्रकार पूज्य सालमंडपिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सालमंडपिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: नाममाली, मनिददा,
उक्कासतिका, विजानी,
कुम्मासा और कुसंठा [भी], गिरिपुन्नगिया, वल्लिकारा, 5067 पनाधिदा भी
[और] फिर पुलिनाचंकमा:
ये पच्चीस आयतें हैं।
जिनकी गिनती जानकार लोग करते हैं।

पांसुकुला अध्याय, उनतालीसवाँ

किंखानिपुप्पिया 5068, अध्याय पचासवाँ

488. {491.}5069 तिन्निकिनखानिपुफिया5070

मैंने बुद्ध को देखा, जो निष्कलंक, विपस्सी, विश्व के नेता थे, एक थालीनुमा वृक्ष की तरह चमक रहे थे।
पहाड़ की ढलान पर बैठे हुए। (1) [5249]

मैंने तीन किंखानी 5071 फूल लेकर [बुद्ध को] अर्पित किए।
संबुद्ध की पूजा करने के बाद,
मैं दक्षिण की ओर मुख करके चला गया। (2) [5250]

5067 lit., "एक फूल पर"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5068 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5069 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5070 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5071 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5072 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [5251]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस बुद्ध की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध -पूजा का फल है । (4) [5252]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5253]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5254]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5255]

इस प्रकार पूज्य तिनिकिंखानिपुप्पिया5073 थेरा ने ये श्लोक कहे।

टीनिकिंखानिपुप्पिया5074 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

489. {492.}5075 पौंसुकुलपुजाका5076

हिमालयी क्षेत्र में,
उदाका नाम का एक पर्वत है।5077
वहाँ मैंने बुद्ध का फटे-पुराने वस्त्र देखा।
पेड़ के शीर्ष पर फंसा हुआ.5078 (1) [5256]

5073 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5074 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5075 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5076 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5077 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5078 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी भाग को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

उस समय वहाँ उग रहे तीन किंखानी (5079) फूलों को प्रसन्नतापूर्वक और प्रसन्न हृदय से तोड़ते हुए,
मैंने उन्हें उस चिथड़े-मटके को अर्पित किया। (2) [5257]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [5258]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस बुद्ध की पूजा की।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [5259]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5260]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5261]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5262]

इस प्रकार पूज्य पांशुकुलपूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पांसुकुलपुजका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5079 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

490. {493.}5080 कोरंडपुफिया5081

मैं उस समय वनकर्मी था।5082
जैसे कि 5083 पिता और दादा थे।5084
मैं जानवरों को मारकर अपनी जीविका कमाता हूँ,5085
मेरे लिए कोई अच्छाई5086 मौजूद नहीं है। (1) [5263]

जिस इलाके में मैं रहता था,
टिस्सा, विश्व के प्रमुख नेता, दृष्टिपूर्ण व्यक्ति, करुणापूर्वक
मुझे अपने तीन पदचिह्न दिखाए। (2) [5264]

और तिस्सा नामक शिक्षक के पदचिह्नों को देखकर, प्रसन्न होकर, [और] प्रसन्न हृदय से,
मैंने उसके पैरों के बारे में अपने दिल को प्रसन्न किया। (3) [5265]

खिले हुए कोरण्ड 5088 को देखकर ,
धरती में उगने वाला पैर-पीने वाला,5089
फूलों वाली एक टहनी लेकर, मैं

उन श्रेष्ठ चरणों की पूजा की । (4) [5266]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (5) [5267]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव हो या दिव्य, मेरी त्वचा 5090 कोरण्ड रंग की होगी;
मैं बेहद खूबसूरत हूँ।5091 (6) [5268]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5080 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5081 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5082 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5083 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5084 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5085 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5086 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5087 lit., "गया"
5088 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5089 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5090 लिट., "योग्य"
5091 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं "तू" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का फायदा उठाता हूँ-

---

पिछले बानवे युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह 5092 फीट की पूजा का फल है। (7) [5269]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (8) [5270]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [5271]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [5272]

इस प्रकार पूज्य कोरण्डपुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कोरण्डपुप्फिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

491. {494.}5093 किसुकापुप्फिया5094

एक खिले हुए पुलस वृक्ष को देखकर, हाथों को जोड़कर फैलाकर, सिद्धार्थ बुद्ध को याद करते हुए,
मैंने आकाश में पूजा की। (1) [5273]

उस कर्म के अच्छे ढंग से, इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए जाने के कारण,

---

मीटर को बनाए रखने के लिए "रेत" और "सौ" का प्रयोग किया गया है। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "हजार कंढ (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5092 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में gendu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 5093 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
5094 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5095 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह.   रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

अपने मानव शरीर का त्याग करते हुए,
मैं तब तावतिंसा गया। (2) [5274]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [5275]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5276]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5277]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5278]

इस प्रकार पूज्य किंशुकापुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

किंशुकापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

492. {495.}5096 उपाडहदुस्सादायका5097

पद्ममुत्तरा बुद्ध के अनुयायी सुजाता नामक व्यक्ति,5098 चिथड़ों से बने वस्त्र की खोज कर रहा था।
हमेशा 5099 कचरे के बीच से गुजर रहा है। (1) [5279]

हंसवती नगर में,
मैं दूसरों का भाड़े का कर्मचारी था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5096 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5097 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5098 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5099 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5100 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

उसे आधा कपड़ा देकर,
मैंने सिर झुकाकर [उन्हें] प्रणाम किया। (2) [5280]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [5281]

मैंने तैंतीस बार देवताओं के स्वामी के रूप में वहाँ दिव्य शासन किया। मैं सतहत्तर बार था।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (4) [5282]

[वहाँ] बहुत से स्थानीय नियम भी थे, जिनकी गिनती करना असंभव था। आधा कपड़ा देने के कारण,
मुझे किसी बात का डर नहीं है, मैं प्रसन्न हूँ।5101 (5) [5283]

और आज [अगर] मैं कामना कर रहा हूँ,
चाहे जंगल में हो या पहाड़ पर, मैं खोमा के कपड़े से ढका रहता हूँ।
वह आधे कपड़े का फल है। (6) [5284]

उस दान के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
वह आधे कपड़े का फल है। (7) [5285]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (8) [5286]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [5287]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [5288]

इस प्रकार पूज्य उपद्धदुस्सादायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उपाद्दुस्सदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5101 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

493. {496.}5102 घटमंड़ायक5103

विश्व के सर्वश्रेष्ठ, मनुष्यों के श्रेष्ठ, सुविचारित, धन्य पुरुष को देखकर, महान वन में प्रवेश किया।
आंतरिक पीड़ा से व्याकुल,5105

मेरे मन को प्रसन्नता प्रदान करना,
मैंने कुछ घी से मलाई प्रस्तुत की।5106 (1) [5289]5107

ऐसा करने और उसे इकट्ठा करने से,5108 भागीरथी नदी,5109 और यहाँ तक कि चारों महान महासागर भी अस्तित्व में आए।
मुझे घी की क्रीम उपलब्ध करा रहे हैं। (2) [5290]

और यह [संपूर्ण] भयानक पृथ्वी भी, असीम, गिनती से परे, मेरे विचारों को समझ नहीं पा रही है।
शहद और चीनी में बदल जाता है.5110 (3) [5291]

चारों महाद्वीपों पर ये वृक्ष, धरती में उगने वाले, पैरों से पानी पीने वाले,5111 जो मेरे विचारों को समझते हैं,
मेरे लिए 5112 इच्छा वृक्षों में बदल जाओ। (4) [5292]

पचास बार देवताओं के स्वामी के रूप में, मैंने वहाँ दिव्य शासन किया। और इक्यावन बार मैं वहाँ था।
एक ऐसा राजा जो कानून का पहिया घुमाता है। [और मैंने] स्थानीय शासन का भरपूर आनंद लिया।
गिनती से असंख्य। (5) [5293]5113

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5102 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5103 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5104 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5105 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

5106 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5107 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

5108 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

5109 lit., "गया"

5110 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

5111 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

5112 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

5113 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं "तू" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का फायदा उठाता हूँ-

---

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह उपहार दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह घी से प्राप्त मलाई का फल है। (6) [5294]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [5295]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [5296]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [5297]

इस प्रकार पूज्य घटमण्डायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

घटमण्डायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

494. {497.}5114 उदकदायका5115

प्रसन्नता से, मन में आनंद लिए, मैंने पीने के पानी का जग भर दिया।
उत्कृष्ट भिक्षुओं की सभा के लिए
पदुमुत्तारा बुद्ध की. (1) [5298]

पहाड़ की चोटी पर या खराब सड़क पर 5116
या पृथ्वी पर किसी भी स्थान पर, यदि मुझे पीने का पानी चाहिए हो,
यह मेरे लिए जल्दी से तैयार किया जाता है। (2) [5299]

मीटर को बनाए रखने के लिए "रेत" और "सौ" का प्रयोग किया गया है। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "हजार कंढ (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटी माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।"

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5114 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
5115 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5116 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस दान के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
पानी देने का यही फल है। (3) [5300]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5301]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5302]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5303]

इस प्रकार पूज्य उदकदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उदकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

495. {498.}5117 पूसीनाथुपिया5118

हिमालयी क्षेत्र में,
समांग नाम का एक पर्वत है।5119
मेरे पास एक सुव्यवस्थित आश्रम था
पत्तों के हॉल से सुसज्जित [वहाँ तब]। (1) [5304]

मेरा नाम नारद था, मेरे बाल उलझे हुए थे, और मैंने कठोर तपस्या की।
उस समय चौदह हजार 5120 छात्र थे।
वे मेरी पूजा कर रहे हैं [उस स्थान पर]। (2) [5305]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5117 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5118 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5119 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5120 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5121 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

तब एकांत में रहने के कारण,
मैंने इस प्रकार विचार किया:
सभी लोग मेरी पूजा करते हैं।
[लेकिन] मैं किसी की पूजा नहीं करता। (3) [5306]

मेरे पास कोई सलाहकार नहीं है;
मुझसे बात करने वाला कोई नहीं है;
न कोई शिक्षक और न कोई गुरु,
मैं जंगल में एक घर में आता हूँ। (4) [5307]

मेरे लिए ऐसा कोई शिक्षक नहीं है जिसे मैं सम्मान देता हूँ।
और आदरपूर्ण हृदय से सेवा करना;
मेरा वनवास अर्थहीन है। (5) [5308]

मैं किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करूंगा जिसे मैं उपहार दे सकूं और जिसका मैं सम्मान कर सकूं;
मैं उनकी सहायता का आनंद लेते हुए जीवन व्यतीत करूंगा।
जिसे कोई भी दोषी नहीं ठहराएगा।5123 (6) [5309]

मेरे आश्रम के बहुत पास,
वहाँ ऊँचे किनारों और अच्छी ढलानों वाली एक नदी थी, जो बहुत सुंदर थी।
[और] शुद्ध सफेद रेत से बिखरा हुआ। (7) [5310]

उस समय जब मैं उस नदी के पास पहुँचा, जिसका नाम अमरिका था, और कुछ रेत जमा करने के बाद, मैंने
उस रेत से स्तूप बनाया। (8) [5311]

“वे [पुरुष] जो संबुद्ध थे, सृजन के अंतकर्ता थे, ऋषि थे,
मैं इसे एक के निशानों के साथ बनाऊंगा
उनके लिए इस प्रकार के स्तूप बनाए गए थे। (9) [5312]

मैंने अपना स्तूप रेत से बनाया है, मानो मैंने उसे सोने से बनाया हो।
मैंने इसे 5124 से 5125 तीन हजार से ढक दिया
स्वर्ण रंग के किंखानी 5126 फूल। (10) [5313]

मैं संध्या और सूर्योदय की प्रशंसा कर रहा हूँ।
खुशी से भरे हुए, हाथ आपस में जुड़े हुए।

5122 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5123 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5124 लिट., “गया”
5125 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5126 लिट., “गिर गया”

मानो संबुद्ध के सामने खड़े हों,
मैंने रेत के उस स्तूप की पूजा की। (11) [5314]

जब अशुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं5127 [या]
घर से जुड़ी चिंताएँ,5128
मुझे वह सुगठित 5129 स्तूप याद है,
और हमेशा [उन्हें इस तरह देखो]: (12) [5315]

“Living5130 निर्भर होने के कारण
अर्थ संवाहक, 5131 मार्गदर्शक, 5132
यह आपके लिए उपयुक्त नहीं है
5133 दोषों के साथ रहना, महोदय.5134 (13) [5316]

जब मैं स्तूप के सामने सिर झुकाता हूँ, तब मेरे मन में श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है;
मैं बुरी प्रतिबिंबों को दूर भगाता हूँ 5135 जैसे
एक हाथी को अंकुश से पीड़ा हुई। (14) [5317]

मृत्यु के राजा5137 ने [तब] मुझे कुचल दिया, और इस प्रकार मेरा जीवन5138 समाप्त कर दिया। मैं वहीं पर मर गया5139
मैं ब्रह्मा के लोक में गया। (15) [5318]

वहाँ जीवन भर निवास करते हुए,5140
मेरा जन्म तीस लोगों के बीच हुआ था।5141
देवताओं के स्वामी से अस्सी बार,
मैंने वहाँ दैवीय शासन किया। (16) [5319] और [फिर] तीन सौ बार मैं था

5127 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5128 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5129 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5130 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

5131 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5132 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5133 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"
5134 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5135 khiḍḍāratiyaÁ
5136 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
5137 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5138 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5139 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
5140 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5141 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है, [और मैंने] बहुत स्थानीय शासन का आनंद लिया, गिनती में अनगिनत। (17) [5320]

मुझे इसके परिणाम अच्छे लग रहे हैं।
तीन [हज़ार] किंखानी 5142 फूल। बाईस हज़ार [लोग] हर जीवन में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (18) [5321]

स्तूप की पूजा करने के कारण,
मैं धूल-मिट्टी से सना हुआ नहीं हूँ;5144
मेरे अंगों से पसीना नहीं निकल रहा है; मैं बेहद खूबसूरत हूँ। (19) [5322]

ओह! मेरे द्वारा निर्मित यह स्तूप कितना सुंदर है; अमरिका नदी का सुंदर दृश्य! मैंने 5145 रेत से स्तूप का निर्माण किया है।
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (20) [5323]

"फील्ड" या "नॉन-फील्ड" में कोई अंतर नहीं है।
सार की तलाश करने वाले व्यक्ति द्वारा,5146
जो अच्छे कर्म करने की इच्छा रखता हो;
[उसका] अभ्यास [इस प्रकार] पूरा हो गया है।5147 (21) [5324]

जैसे कोई बलवान व्यक्ति नदी पार कर सकता है;5148
सुरक्षात्मक छड़ी लेकर चलना,
वह एक बड़ी झील के पार छलांग लगाता था, इसलिए मैं इस छड़ी पर निर्भर था,
अस्तित्व के विशाल सागर को पार करेगा:
उनके प्रयासों और ऊर्जा के माध्यम से
एक आदमी समुद्र पार करेगा। (22-23) [5325-5326]

और इसी प्रकार मेरे कर्मों का फल भी मिला।
जो मेरी थोड़ी सी सुरक्षा थी;5149
उस कर्म के आधार पर,

मैंने पुनः बनने की प्रक्रिया को पार कर लिया।5150 (24) [5327]

5142 pariḷāho
5143 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5144 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5145 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5146 samādhikusalo ahaŋ
5147 iddhipādesu kovido
5148 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5149 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5150 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

जब मेरे पुण्य कर्मों से प्रेरित होकर मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,
मेरा पुनर्जन्म श्रावस्ती, 5151 में हुआ है।
एक धनी [कुल] में बड़े हॉल के साथ.5152 (25) [5328]

मेरे माता-पिता को आस्था थी, इसलिए उन्होंने बुद्ध की शरण ली;
उन दोनों ने [अमर] अवस्था को देखा था, व्यवस्था की ओर मुड़ते हुए। (26) [5329]

बोधि वृक्ष से छाल लेना5153
उन्होंने सोने का स्तूप बनवाया।
वे शाम और सुबह इसकी प्रशंसा कर रहे हैं।
शाक्यों के पुत्र से आमने-सामने। (27) [5330]

उन्होंने रात के तीन पहर सोने के स्तूप के बाहर बुद्ध के प्रकट होने की प्रशंसा करते हुए बिताए।
जिस दिन पूर्णिमा थी.5155 (28) [5331]

मैंने [सोने का] स्तूप देखकर रेत के स्तूप की याद कर ली। एक आसन पर बैठते हुए,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (29) [5332]

बाईसवाँ पाठ भाग
उस महान नायक की खोज करते हुए, मैंने धम्म के सेनापति को देखा।5156
घर से निकल जाने के बाद,
मैं उसकी उपस्थिति में बाहर गया। (30) [5333]

मात्र सात वर्ष की आयु में ही मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया था। मेरे गुणों को जानकर, बुद्ध ने...
आँखों को भाने वाले ने [तब] मुझे नियुक्त किया। (31) [5334]

यह काम मैंने बचपन में ही पूरा कर लिया था; जो भी करना था, वह मैंने ही किया था।
बुद्ध के 5157 युग में। (32) [5336]5158

5151 mahābhisakkasaṅkāso
5152 dosavyādhitikicchako
5153 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
5154 दिठ्ठिगण्ड°
5155 लोकापज्जोटो
5156 sanarāmarasakkato
5157 नारदिको
5158 लिट., “में”

सारी नफरत और डर अतीत की बात है; सारे बंधन टूट गए हैं, मैं एक ऋषि हूँ। मैं आपका अनुयायी हूँ, महान नायक। स्वर्ण स्तूप का फल.5159 (33) [5337]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5338]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5339]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5340]

इस प्रकार पूज्य पुलिनथूपिया5160 थेरा ने ये श्लोक कहे।

पुलिनथुपिया5161 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

496. {499.}5162 नासिकाकुटिकादायक5163

हिमालयी क्षेत्र में,
भारिका नाम का एक पर्वत है।5164
स्वयं एक हो जाओ, नारद,
तब वह एक पेड़ की जड़ों में रहता था। (1) [5341]

मैंने सरकंडों से एक घर बनाया, उसे घास से ढक दिया, और फिर एक रास्ता साफ किया।
उन्होंने [उन्हें] स्वयं-एक हो जाने को दे दिया। (2) [5342]

5159 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5160 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
5161 महास्सादंग
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5162 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5163 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5164 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [5343]

वहाँ मेरा सुव्यवस्थित महल था, जो एक छोटी सी सरकंडे की झोपड़ी की तरह बना हुआ था।
लंबाई में साठ लीग मापा गया, [और]
[इसकी माप] चौड़ाई में तीस लीग थी। (4) [5344]

मैंने उस समय चौदह युगों तक देवताओं की दुनिया में आनंद लिया, और बाद में इकहत्तर बार।
मैंने वहाँ दैवीय शासन का प्रयोग किया। (5) [5345]

और उसके बाद चौंतीस बार मैं एक ऐसा राजा बना जिसने शासन किया। बहुत स्थानीय शासन भी था, जिसकी गिनती करना असंभव है। (6) [5346]

शिक्षण-महल पर चढ़ना, हर तरह से एक उत्कृष्ट रूपक,5165
मैं वहीं रहना चाहूंगा जहां मैं रहना चाहता हूं।
बुद्ध के 5166 युग में। (7) [5347]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।
एक छोटी सी सरकंडे की झोपड़ी का फल। (8) [5348]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (9) [5349]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [5351]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [5352]

5165 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
5166 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

इस प्रकार पूज्य नलकुटिकदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नलकुटिकडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

497. {500.}5167 पियालाफलदायका5168

मैं पहले शिकारी था।
उस समय मैं जंगलों में घूम रहा था। मैंने बुद्ध की प्रतिमा देखी, स्टेनलेस वन।
[जो] हर चीज का स्वामी था। (1) [5353]

पियाला फल ले जाते हुए ,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, पुण्य के क्षेत्र, नायक को दिया।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (2) [5354]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [5355]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5356]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5357]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5358]

इस प्रकार पूज्य पियालफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पियालाफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:
किंखानी5169 और पांसुकूला,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5167 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5168 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5169 कुम्मासा , संस्कृत कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, जो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में होता है (PSI yavayen kaḷ)

कोरांडापुप्पी, 5170 किन्नसुका, उपान्धदुस्सी, घाटदा, उदका, थुपकारक, नादागरी नौवां है, पियालाफलादायका।
यहां सौ आयतें हैं, और उससे नौ आयतें अधिक भी हैं।

किंखानिपुप्पिया अध्याय, पचासवाँ अध्याय।5171
इसके बाद अध्यायों का सारांश है: मतेय्या अध्याय, भद्दाली, 5172
और साकिंसममज्जका भी;
एक अध्याय [जिसका नाम] विभेतकी, जगती, सालपुप्पिया है,
Naḷamāla, Paŋsukūla,
और इस प्रकार5173 किंखाणिपुप्पिया.5174
यहां बयासी श्लोक हैं।
और चौदह सौ [और भी]।
दस अध्याय 5175 जिन्हें मतेय्या 5176 कहा जाता है।

पांचवां सौ5177 पूरा हो गया है।5178

अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षापात्र"), या फिर बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटिया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला अर्थ अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5170 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5171 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5172 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5173 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5174 शाब्दिक अर्थ, "गया"
5175 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5176 lit., "गिर गया"

5177 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5178 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

कणिकारा अध्याय, इक्यावनवाँ

---

498. {501.}5179 तिनिकाणिकारापुफिया5180

सम्बुद्ध नामक सम्बुद्ध, बत्तीस महान लक्षणों को धारण करने वाले, एकांतप्रिय, सम्बुद्ध।
हिमालय तक आ गया। (1) [5359]

हिमालय में समाहित,
प्रधान, दयालु, ऋषि, कमल मुद्रा में आसीन,5181
बैठ गया, परम व्यक्ति। (2) [5360]

मैं उस समय जादूगर 5182 था।
[जो] आकाश में यात्रा कर सकता था;
अपना सुगठित त्रिशूल लेकर मैं
वह आकाश से होकर गुजर रहा था [ठीक वहीं]। (3) [5361]

जैसे पहाड़ पर आग जल रही हो, जैसे पंद्रहवें दिन चाँद चमक रहा हो,5183 बुद्ध जंगल में प्रज्वलित हुए, जैसे खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह। (4) [5362]

जंगल के ऊपर से नीचे आते हुए,
बुद्ध की किरणें [सारे] अंतरिक्ष में फैल गईं,5184
नरकट की आग के रंग के साथ।5185
यह देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ। (5) [5362]

घूमते-घूमते मुझे एक फूल दिखाई दिया,
दिव्य सुगंध से युक्त एक डिनर प्लेट 5186। तीन फूल लिए हुए।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5179 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5180 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5181 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5182 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

5183 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5184 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

5185 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

5186 lit., "गया"

मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।5187 (6) [5363]

बुद्ध की महान शक्ति से, ठीक उसी समय मेरे वे तीनों फूल, जिनकी डंठलें ऊपर की ओर और पंखुड़ियाँ नीचे की ओर मुड़ी हुई थीं,
वे शिक्षक के लिए छाया बना रहे हैं। (7) [5364]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (8) [5365]

वहाँ मेरा सुनिर्मित महल है
इसे "डिनर-प्लेट" के नाम से जाना जाता था।5189
इसकी लंबाई साठ लीग थी।
[और यह] तीस लीग चौड़ा था। (9) [5366]

एक लाख शिखर,
एक मिल- कण्ड 5190 सेंट- भेण्डु 5191 [बड़ा], सोने का बना हुआ, झंडों से ढका हुआ,
उस हवेली पर मेरे लिए प्रकट हुआ। (10) [5367]

क्रिस्टल से बनी पालकी,
सोने से बना [या] रत्नों से बना, और माणिक्य से भी बना।
मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँगा 5192 यदि मैं चाहूँ। (11) [5368]

और वहाँ एक महंगा बिस्तर था, जिसमें एक असेंबल किया हुआ गद्दा था, जिसके एक सिरे पर ऊनी कंबल था।
और [बहुत सारे] तकियों से सुसज्जित। (12) [5369]

महल से निकलकर, मैं दिव्य यात्राओं पर विचरण कर रहा हूँ, अपनी इच्छा के अनुसार चल रहा हूँ।
देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित। (13) [5370]

5187 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

5188 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

5189 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

5190 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5191 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5192 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5193 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5194 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

मैं नीचे फ्लावर्स5195 पर खड़ा हूँ;
मेरे ऊपर एक छत्र है।
हर तरफ सौ मील
डिनर-प्लेट [पेड़ों] से ढका हुआ है.5196 (14) [5371]

वहाँ साठ हजार वाद्ययंत्र शाम और सुबह मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं।
वे लगातार मेरी देखभाल कर रहे हैं।
दिन-रात वे आलसी नहीं हैं। (15) [5372]

मुझे खेल और सुख-सुविधाओं में आनंद आता है;5197
इच्छाओं की कामना करते हुए, मैं आनंदित होता हूँ
नृत्य और गायन के कारण,
वहाँ तालवाद और भाषण। (16) [5373]

वहाँ खाने-पीने के बाद मैं तीस,5198 लोगों के बीच महिलाओं की टुकड़ियों के साथ आनंद मना रहा हूँ।
मैं अपने महान महल में आनंदित होता हूँ।5199 (17) [5374]

और मैंने वहां पांच सौ [अलग-अलग] बार दैवीय शासन का प्रयोग किया।
और तीन सौ [अलग-अलग] बार, मैं एक ऐसा राजा था जो शासन करता था। [और मैंने] स्थानीय शासन का भरपूर आनंद लिया।
गिनती से असंख्य। (18) [5375]5200

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (19) [5376]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:
चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
मुझे पुनर्जन्म की कोई अन्य अवस्था ज्ञात नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (20) [5377]

मैं दो उच्च कुलों, क्षत्रिय और ब्राह्मण में जन्मा हूँ।
मैं निम्न कुलों में जन्म नहीं लेता:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (21) [5378]

5195 लिट., “एक फूल पर”
5196 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5197 khiḍḍāratiyaÁ
5198 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5199 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5200 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद पहले चरण में “नया” और दूसरे चरण में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

मुझे हाथी और घोड़े से चलने वाले वाहन, पालकी और रथ, सब कुछ प्राप्त हो रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (22) [5379]

दासों की टुकड़ियाँ, दासी कन्याओं की टुकड़ियाँ और सजी-धजी स्त्रियाँ।
मुझे ये सब मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (23) [5380]

रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा,
मुझे खोमा का कपड़ा और सूती सामान भी मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (24) [5381]

नए कपड़े और ताजे, शुद्ध फल, 5201 सबसे स्वादिष्ट भोजन,
मुझे ये सब मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (25) [5382]

लोग कह रहे हैं, "इसे खाओ, आनंद लो।"
कृपया इस [सुंदर] बिस्तर पर लेट जाइए,” मुझे यह सब मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (26) [5383]

मुझे हर जगह सम्मान दिया जाता है5202 [और] मेरी बहुत ऊँची ख्याति है, मैं हमेशा बहुमत में रहता हूँ,5203
मेरे दल में कोई गुटबाजी नहीं है। मैं अपने रिश्तेदारों में सबसे श्रेष्ठ हूँ।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (27) [5384]5204

मुझे सर्दी-जुकाम के बारे में जानकारी नहीं है, और न ही गर्मी के बारे में, और न ही तेज बुखार के बारे में। इसी तरह, मुझमें भी यह नहीं पाया जाता है।
मन [या] हृदय की पीड़ा। (28) [5385]

सुनहरे रंग का होने के कारण,
मैं जन्म-जन्मांतर तक जन्म लेता हूँ। मुझे कोई बुरा रंग नहीं पता।

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (29) [5386]

5201 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”
5202 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5203 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
5204 pariḷāho
5205 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5206 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

देवताओं की दुनिया से गिरते हुए, मेरी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर,
मेरा पुनर्जन्म श्रावस्ती, 5207 में हुआ है।
एक धनी [कुल] में बड़े हॉल के साथ.5208 (30) [5387]

पांचों इंद्रिय सुखों का त्याग करना,5209
मैं बेघर हो गया। मेरी उम्र सिर्फ सात साल थी।
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (31) [5388]

मेरे गुणों को जानकर, बुद्ध
उस अद्‌भुत व्यक्ति ने [तब] मुझे नियुक्त किया। एक युवा बालक जो सम्मान के योग्य है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (32) [5389]

“दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो जाती है;
मैं ध्यान की अवस्थाओं में निपुण हूँ।5210
सिद्ध किए गए विशेष ज्ञान:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (33) [5390]

विश्लेषणात्मक विधियों में निपुण, जादुई शक्तियों में पारंगत, विशेष ज्ञान में परिपूर्ण:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (34) [5391]

तीस हजार युगों में
जब से मैंने बुद्ध की पूजा की है, तब से मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (35) [5392]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (36) [5393]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (37) [5394]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

5207 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

5208 samādhikusalo ahaŋ

5209 iddhipādesu kovido

5210 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

5211 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

5212 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (38) [5395]

इस प्रकार पूज्य तिणिकणिकारपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

टीणिकणिकारपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

499. {502.}5213 एकपट्टादायक5214

हंसवती नगर में,
मैं उस समय कुम्हार था।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
बाढ़ पार करने वाला, निष्कलंक। (1) [5396]

मैंने उन्हें सर्वश्रेष्ठ बुद्ध प्रतिमा भेंट की।
मिट्टी से बना एक सुंदर कटोरा। वह कटोरा बुद्ध को अर्पित करना,5215
ईमानदार व्यक्ति,5216 तटस्थ व्यक्ति, (2) [5397]

अस्तित्व में पुनर्जन्म होना,
मुझे सोने की प्लेटें 5217 और चांदी, सोने आदि से बने चपटे कटोरे 5218 प्राप्त हो रहे हैं।
और कुछ रत्नों से बने हुए; (3) [5398]

मुझे ये सभी व्यंजन बहुत पसंद आ रहे हैं:5219
यह अच्छे कर्मों का फल है।
मैं 5221 कटोरे बनाने का मालिक हूँ।
प्रसिद्ध और धनी लोगों के लिए। (4) [5399]

जैसे किसी बीज को उपजाऊ खेत में बोया जाता है:5222

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5213 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5214 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5215 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5216 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5217 शाब्दिक रूप से, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5218 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5219 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5220 lit., “गया”
5221 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5222 लिट., “गिर गया”

जब बारिश होती है, 5223 उचित समर्थन के साथ, 5224
फल किसान को प्रसन्न करता है;
इस प्रकार यह कटोरा दान भी है।
बुद्ध-क्षेत्र में अच्छी तरह से रोपित:
जब बारिश होती है, आनंद लाने वाली [बारिश,]5225
यह फल मुझे प्रसन्न करेगा। (5-6) [5400-5401]

योग्यता के क्षेत्र जहां तक मौजूद हैं —
यहां तक कि सभाएँ5226 और समूह5227 भी —
बुद्ध-क्षेत्र का कोई सानी नहीं है,5228
सभी को [महान] खुशी देना.5229 (7) [5402]

हे सुसंस्कृत व्यक्ति, आपकी प्रशंसा हो!5231
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! एक कटोरा देने के बाद,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (8) [5403]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह कटोरा दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (9) [5404]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [5405]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [5406]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

5223 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5224 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5225 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5226 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5227 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5228 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5229 लिट., “एक फूल पर”
5230 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5231 khiḍḍāratiyaÁ

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [5407]

इस प्रकार पूज्य एकपट्टडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

एकपट्टडायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

500. {503.}5232 कसुमरिफलदायक5233

मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, पुरुषों का बैल, पहाड़ की ढलान पर बैठा हुआ था।
डिनर-प्लेट ट्री की तरह चमक रहा है.5234 (1) [5408]

प्रसन्न, हृदय में आनंद लिए, हाथों को सिर पर जोड़कर, कासुमारी 5235 फल इकट्ठा करते हुए,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। (2) [5409]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने वह फल [बुद्ध को] दे दिया, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ:
फल देने का फल यही है। (3) [5410]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5411]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5412]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5232 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5233 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5234 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5235 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5413]

इस प्रकार पूज्य कासुमारीफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कासुमारीफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 3.7 थेरपदाना
स्रोत: जेएस वाल्टर्स
नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अंतर्वस्तु

1अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 501-559
1.1501. {504.}5236 अवतफलिया5237
1.2502. {505.}5239 पैराफलिया5240
1.3503. {506.}5244 मातुलुंगफलदायका5245
1.4504. {507.}5249 अजेलाफलदायका5250
1.5505. {508.}5258 अमोरफालिया5259
1.6506. {509.}5263 तलफलिया5264
1.7507. {510.}5266 नाइकेरदायक5267
1.8508. {511.}5276 कुरेंजियाफलदायका5277
1.9509. {512.}5281 कपित्थफलदायक5282
1.10510. {513.}5284 कोसुम्भफलिया5285
1.11511. {514.}5289 केतकपुफिया5290
1.12512. {515.}5296 नागपुष्पिया5297
1.13513. {516.}5299 अज्जुनपुफिया5300
1.14514. {517.}5308 कुटजपुफिया5309
1.15515. {518.}5314 घोसासन्नका5315
1.16516. {519.}5319 सब्बाफलदायका5320
1.17517. {520.}5348 पदुमधारिया5349
1.18518. {521.}5355 तिनामुथिदायक5356
1.19519. {522.}5367 पेच्चदायक5368
1.20520. {523.}5372 सारनागमानिया5373
1.21521. {524.}5375 अभांजनदायक5376
1.22522. {525.}5381 सुपतादायक5382
1.23523. {526.}5388 दण्डदायक5389
1.24524. {527.}5392 गिरीनेलपूजक5393
1.25525. {528.}5399 बोधिसम्मज्जका5400
1.26526. {529.}5430 अमाण्डफलदायक5431
1.27527. {530.}5434 सुगंधा5435
1.28528. {531.}5564 महाकच्चन5565
1.29529. {532.}5609 वक्कली5610
1.30530. {533.}5648 महाकप्पिन5649
1.31531. {534.}5692 डब्बामल्ला5693
1.32532. {535.}5746 कुमार-कस्सापा5747
1.33533. {536.}5775 बाहिया5776
1.34534. {537.}5835 महाकौष्ठिका5836
1.35535. {538.}5866 उरुवेलकासापा5867
1.36536. {539.}5924 राधा5925
1.37537. {540.}5957 मोघराजा5958
1.38538. {541.}6001 लकुङकभद्दिया6002
1.39539. {542.}6037 कनख-रेवता6038
1.40540. {543.}6060 Sīvali6061
1.41541. {544.}6104 वांगीसा6105

1.42542. {545.}6164 नंदका6165
1.43543. {546.}6190 कादुदायि6191
1.44544. {547.}6220 अभया6221
1.45545. {548.}6259 लोमसाकांगिया6260
1.46546. {549.}6302 वनवाच्चा6303
1.47547. {550.}6326 कुलसुगन्धा6327
1.48{551.}6386 Yasa6387
1.49{552.}6416 नादी-कस्सापा6417
1.50{553.}6419 गया-कस्सापा6420
1.51{554.}6426 किम्बिला6427
1.52{555.}6435 वज्जीपुत्त6436
1.53{556.}6438 उत्तरा6439
1.54{557.}6470 अपारा उत्तरा6471
1.55{558.}6474 भद्दाजी6475
1.56{559.}6485 Sīvaka6486

अपदाना: प्रमुख थेरा (प्रबुद्ध शिष्य) 501-559

---

501. {504.}5236 अवतफलिया5237

हे भगवान, सौ किरणों वाले, स्वयंभू, अजेय, अपने एकांत से उठ खड़े हुए।
भोजन की तलाश में निकले। (1) [5414]

हाथ में फल लिए हुए, मैंने पुरुषों के उस श्रेष्ठ बैल को आते हुए देखा। मैं प्रसन्न और आनंदित था।
मैंने उसे डंठल हटाकर फल दिए। (2) [5415]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फल [उस समय] दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [5416]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5417]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5418]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5419]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5236 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5237 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5238 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

इस प्रकार पूज्य अवताफलीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अवताफलीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

502. {505.}5239 पैराफलिया5240

मैंने स्वर्णमय संबुद्ध, बलि ग्रहणकर्ता को देखा।
जो सड़क पर आ गए थे,
डिनर प्लेट के पेड़ की तरह चमक रहा है। (1) [5420]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने तब उसे पारा- फल5241 दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (2) [5421]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5422]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5423]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5424]

इस प्रकार पूज्य पारफलीय5242 थेरा ने ये श्लोक कहे।

पाराफलीय5243 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5239 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5240 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5241 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5242 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5243 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

503. {506.}5244 मातुलुंगफलदायका5245

मैंने विश्व के नेता को देखा, जो भोजन की थाली जैसे पेड़ की तरह चमक रहा था,5246 पंद्रहवें दिन के चंद्रमा की तरह,5247
दीपकों के वृक्ष की तरह प्रज्वलित। (1) [5425]

नींबू का फल लेने के बाद
फिर मैंने इसे शिक्षक को दे दिया।
उपहारों के योग्य, 5248 नायक,
[अपने] हाथों से अच्छा महसूस कर रहा हूँ-] प्रसन्न। (2) [5426]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [5427]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5428]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5429]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5430]

इस प्रकार पूज्य मातुलुंगफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मातुलंगफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5244 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5245 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दश:, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5246 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5247 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5248 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

504. {507.}5249 अजेलाफलदायका5250

सम्बुद्ध का नाम अज्जुना5251 था
तब वे हिमालय में रहते थे।
वह अच्छे आचरण से संपन्न है,
ध्यान में निपुण,5252 ऋषि। (1) [5431]

पानी के जग के बराबर 5253
अजेला ,5254 जी'व'आजी'व'अका ,
[और] छाते के पत्ते भी ले रहे हैं,5255
मैंने [उन्हें] शिक्षक को दे दिया। (2) [5432]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [5433]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5434]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5435]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5436]

इस प्रकार पूज्य अजेलफलादायका5256 थेरा ने ये श्लोक कहे।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5249 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5250 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5251 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5252 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5253 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5254 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5255 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5256 लिट., "गया"

अजेलफलादायका5257 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

505. {508.}5258 अमोरफालिया5259

मैंने अमोरा 5260 नामक एक फल दिया।
स्वर्ण रंग के संबुद्ध को, बलि प्राप्तकर्ता को,
जो सड़क पर आ गए थे। (1) [5437]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (2) [5438]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5439]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5440]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5441]

इस प्रकार पूज्य अमोरफालिया5261 थेरा ने ये श्लोक कहे।

अमोरफालिया5262 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5257 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5258 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5259 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5260 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5261 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5262 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

---

506. {509.}5263 तलफलिया5264

हे भगवान, सौ किरणों वाले, स्वयंभू, अजेय, अपने एकांत से उठ खड़े हुए।
भोजन की तलाश में निकले। (1) [5442]

हाथ में फल लिए हुए, मैंने पुरुषों के उस श्रेष्ठ बैल को आते हुए देखा। मैं प्रसन्न और आनंदित था।
मैंने उसे ताड़ का फल दिया। (2) [5443]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फल [उस समय] दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:

फल देने का फल यही है। (3) [5444]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5445]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5446]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5447]

इस प्रकार पूज्य तालफलीय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तालफलीय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5263 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5264 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5265 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

507. {510.}5266 नाइकेरदायक5267

शहर में, बंधुमती,
मैंने तब एक आश्रम में काम किया।5268
मैंने निष्कलंक बुद्ध को देखा।
[जो] आकाश में यात्रा कर रहा था। (1) [5448]

एक नारियल लेने के बाद,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया। आकाश में विराजमान, शांत स्वभाव वाले,
महान ख्यातिवान ने इसे स्वीकार किया। (2) [5449]

अत्यंत स्पष्ट मन से, बुद्ध को वह फल अर्पित करने के बाद, जो मेरे लिए आनंद का स्रोत था, इस संसार में सुख लाने वाला था, तब मुझे महान आनंद और विशाल, परम सुख प्राप्त हुआ।
सचमुच एक अनमोल रत्न का निर्माण हुआ था।
[मैं,] यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म ले रहा हूँ।5269 (3-4) [5450-5451]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [बुद्ध को] फल दिए थे, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (5) [5452]

दिव्य दृष्टि शुद्ध हो जाती है;
मैं ध्यान की अवस्थाओं में निपुण हूँ।5270
सिद्ध किए गए विशेष ज्ञान:
फल देने का फल यही है। (6) [5453]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [5454]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5266 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5267 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5268 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5269 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5270 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [5455]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [5456]

इस प्रकार पूज्य नालिकराडायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नालिकरदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: कणिकार और एकपट्टा
Kāsumārī, thus Āvaṭa,
पारा5271 और मातुलुंगा [भी], अजेला, अमोरा भी,5272
ताला और इस प्रकार नालिकेरा:
यहां जिन आयतों की गिनती की गई है, उनकी संख्या ठीक सौ है, इससे कम या ज्यादा नहीं।5273

कणिकारा अध्याय, इक्यावनवाँ अध्याय 5274

कुरेंजियफलदायक 5275 अध्याय, बावनवाँ

---

508. {511.}5276 कुरेंजियाफलदायका5277

मैं पहले शिकारी था।
उस समय मैं जंगलों में घूम रहा था। मैंने बुद्ध की प्रतिमा देखी, स्टेनलेस वन।
[जो] हर चीज का स्वामी था। (1) [5457]

5271 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5272 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5273 lit., "गया"
5274 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5275 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5276 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5277 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

कुरेंजिया 5278 फल ले जा रहा है ,
मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, पुण्य के क्षेत्र, नायक को दिया।
[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (2) [5458]

पिछले इकत्तीस युगों में

मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (3) [5459]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5460]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5461]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5462]

इस प्रकार पूज्य कुरेंजियफलदायका5279 थेरा ने ये श्लोक कहे।

कुरेंजियफलदायका5280 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

509. {512.}5281 कपित्थफलदायक5282

मैंने स्वर्ण रंग के संबुद्ध, बलि प्राप्तकर्ता को लकड़ी का सेब5283 नामक फल दिया।
जो सड़क पर आ गए थे। (1) [5463]

5278 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

5279 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5280 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5281 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5282 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5283 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (2) [5464]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5465]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5466]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5467]

इस प्रकार पूज्य कपित्थफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कपित्थफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

510. {513.}5284 कोसुम्भफलिया5285

मैंने मार्गोसा5286 [फल] दिया
स्वर्ण रंग के संबुद्ध, देवताओं के देवता, मनुष्यों के बैल,
जो सड़क पर आ गए थे। (1) [5468]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उस समय [उसे] वह फल दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। (2) [5469]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5284 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5285 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5286 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5470]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5471]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5472]

इस प्रकार पूज्य कोसुम्भाफालिया5287 थेरा ने ये श्लोक कहे।

कोसुम्भाफालिया5288 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

511. {514.}5289 केतकपुफिया5290

परम पुरुष विनाता नदी के तट पर निवास करते थे।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
शांत व्यक्ति,5292 बहुत संयमित व्यक्ति.5293 (1) [5473]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
मैंने [तब] चीड़ के फूल से सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पूजा की,5294
शहद जैसी सुगंध के साथ। (2) [5474]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे तब वह फूल दिया था।

5287 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
5288 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5289 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5290 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5291 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5292 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5293 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5294 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5295 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [5475]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5476]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5477]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5478]

इस प्रकार पूज्य केतकपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

केतकापुफिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

512. {515.}5296 नागपुप्पिया5297

मैंने आयरनवुड5298 फूल दिया
स्वर्ण रंग के संबुद्ध को, बलि प्राप्तकर्ता को,
जो सड़क पर आ गए थे। (1) [5479]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे तब वह फूल दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
फल देने का फल यही है। (2) [5480]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5481]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5296 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5297 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5298 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5482]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5483]

इस प्रकार पूज्य नागपुप्फिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नागपुप्फिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

513. {516.}5299 अज्जुनपुफिया5300

उस समय मैं चंदाभागा नदी के किनारे पर किन्नरा 5301 हुआ करता था।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
स्वयं-निर्मित, अजेय। (1) [5484]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।
विस्मय से, हाथ जोड़कर, अर्जुन का फूल लेते हुए।
मैंने स्वयं-एक हो जाने की पूजा की। (2) [5485]

उस कर्म के उत्तम कर्मफल के कारण, दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ, मैंने अपना किन्नर शरीर त्याग दिया।
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [5486]

देवताओं के स्वामी ने चौंतीस बार वहां दिव्य शासन किया।
और दस बार एक पहिया घुमाने वाला राजा,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5299 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5300 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5301 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) । खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5302 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5303 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5304 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मैंने आधिपत्य का प्रयोग किया।5305 (4) [5487]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था।
[जैसे] एक अच्छे खेत में बोया गया बीज5306
स्वयं-एकत्व में मेरा है। (5) [5488]

मेरे लिए अच्छा कर्म फल मिला; मैं बेघर हो गया। आज मैं सम्मान का पात्र हूँ।
बुद्ध के 5307 युग में। (6) [5489]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [5490]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [5491]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [5492]

इस प्रकार पूज्य अजुनपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अजजुनापुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

514. {517.}5308 कुटजपुफिया5309

हिमालयी क्षेत्र में,
कावला नाम का एक पहाड़ है।5310

5305 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5306 lit., "गया"
5307 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5308 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5309 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5310 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

बुद्ध ने सुदस्सन का नाम रखा।
पहाड़ की ढलान पर रह रहा था। (1) [5493]

हिमालयी फूल लेकर,
मैंने उस समय आकाश में यात्रा की। मैंने निर्मल बुद्ध को देखा।
बाढ़ पार करने वाला,5311 अछूता.5312 (2) [5494]

शीतकालीन चेरी के फूल को लेते हुए,
मैंने उसे उसी वक्त उसके सिर पर रख दिया। मैंने उसे बुद्ध को अर्पित किया।
स्वयं-एक हो जाओ, महान ऋषि। (3) [5495]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (4) [5496]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5497]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5498]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5499]

इस प्रकार पूज्य कुटजपुप्पिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुटजपुप्पिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5311 रत्तंबरधरो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करने वाला।" धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
5312 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5313 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

---

515. {518.}5314 घोसासन्नका5315

उस समय मैं जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित।5316 (1) [5500]

चार आर्य सत्यों की व्याख्या,
वह अमरता का उपदेश दे रहा था। मैंने उसकी मधुर शिक्षा सुनी।
सिख धर्म का, विश्व का रिश्तेदार। (2) [5501]

मैंने अद्वितीय, बेजोड़ की ध्वनि से अपने हृदय को प्रसन्न किया।5317
वहाँ मेरा मन प्रसन्न हो जाने के बाद,
मैंने अस्तित्व को पार किया, पार करना कठिन है। (3) [5502]

पिछले इकत्तीस युगों में
मुझे तब यह धारणा प्राप्त हुई, और तब से मैंने बुरे पुनर्जन्मों के बारे में कुछ नहीं जाना है:
यह ध्वनि को समझने का फल है। (4) [5503]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5504]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5505]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5504 (5506)]5318

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5314 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5315 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5316 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह जौ से बना कोई भोजन है।
5317 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5318 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

इस प्रकार पूज्य घोषासञ्ञक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

घोषासञ्ञक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

516. {519.}5319 सब्बाफलदायका5320

उस समय मेरा नाम वरुण था, जो मंत्रों का एक ब्राह्मण गुरु था।
दस बेटों को त्यागने के बाद,
फिर मैं जंगल में घुस गया। (1) [5505]

एक सुगठित, सुव्यवस्थित और सुंदर आश्रम बनाकर, पत्तों का एक हॉल बनाकर, मैं जंगल में रह रहा हूँ। (2) [5506]

पदुमुत्तरा, विश्व-ज्ञानी, यज्ञ-प्राप्तकर्ता
मुझे ऊपर उठाने की इच्छा के साथ,

[तब] मेरे आश्रम में आ गया। (3) [5507]

उस पूरे वनक्षेत्र में, उनके प्रकाश की एक विशाल चमक फैली हुई थी।
बुद्ध की विशेष शक्तियों द्वारा5323
उसने उस समय जंगल को रोशन कर दिया था। (4) [5508]

उस 5324 चमत्कार को देखने के बाद
सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, तटस्थ व्यक्ति, पत्तों से बना थैला लिए हुए,5325
मैंने उस समय इसे फलों से भर दिया। (5) [5509]

बुद्ध के पास जाकर,
मैंने उसे फल थैली के साथ दे दिए।5326

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5319 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5320 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5321 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5322 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5323 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5324 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5325 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5326 lit., “गया”

बुद्ध ने मुझ पर दया करते हुए कहा,
उन्होंने [उस समय मुझसे] ये शब्द कहे: (6) [5510]

“ खारी भार लाने के बाद, तुम मेरे पीछे-पीछे आ जाना, और जब सभा इसे खा लेगी,
आपके लिए अच्छा कर्म होगा। (7) [5511]

उस पत्तों से भरे थैले को लेकर,5330 मैं
इसे भिक्षुओं की सभा को दे दिया।
वहाँ अपने मन को प्रसन्न करने के बाद, मेरा पुनर्जन्म तुसिता में हुआ। (8) [5512]

वहाँ, मेरे अच्छे कर्मों से बंधे होने के कारण, मैं हर समय आनंद ले रहा हूँ।

मेरे लिए प्रस्तुत किए गए नृत्य और गीत,
और वे भाषण जो दिव्य हैं। (9) [5513]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ, मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं होगी:
फल देने का फल यही है। (10) [5514]

बुद्ध को फल देने के बाद,5332
मैं आधिपत्य का प्रयोग कर रहा हूँ
चारों महान महाद्वीपों के माध्यम से,
जिसमें महासागर और पर्वत शामिल हैं। (11) [5515]

जहां तक वे पक्षियों के झुंड आकाश में उड़ रहे हैं, वे
मेरे अधिकार का पालन भी करो5333:
फल देने का फल यही है। (12) [5516]

सभी आत्माएँ,5334 भूत,5335 और राक्षस, कुंभण्ड और गरूण ,

5327 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5328 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5329 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5330 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंढ (भाग, अंश, गांठ, एक छोटी माप), सौ भेंदु। " [लंबा? मोटा?]"।
5331 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में gendu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5332 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5333 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5334 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा जा रहा है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5335 लिट., "एक फूल पर"

उस जंगल में उस उपवन में, मेरी सेवा करने के लिए मेरे पास आओ। (13) [5517]

कछुए [और] कुत्ते5336 [और] मधुमक्खियाँ, मक्खियाँ5337 और मच्छर5338 वे भी5339 मेरे अधिकार का पालन करते हैं:
फल देने का फल यही है। (14) [5518]

सुपर्ण कहलाने वाले पक्षी, जो पक्षियों से उत्पन्न होते हैं, लेकिन उनमें बहुत शक्ति होती है, वे भी मेरी शरण में आते हैं:
फल देने का फल यही है। (15) [5519]

नाग-देवता जो दीर्घायु, महाशक्तियों और महान प्रसिद्धि से परिपूर्ण हैं; वे भी मेरे अधिकार का पालन करते हैं।
फल देने का फल यही है। (16) [5520]

शेर, बाघ और तेंदुए,
भालू,5341 भेड़िये,5342 k'ara bānā भालू;5343 वे भी मेरे अधिकार का पालन करते हैं:
फल देने का फल यही है। (17) [5521]

जो लोग जड़ी-बूटियों5344 और घास5345 में रहते हैं
और वे भी जो आकाश में रहते हैं;
वे सब मुझसे शरण लेने आते हैं:
फल देने का फल यही है। (18) [5522]

देखना मुश्किल है 5346 [और] बहुत सूक्ष्म, गहरा, बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया;
उस शिक्षा को देखकर मैं निवास करता हूँ:
फल देने का फल यही है। (19) [5523]

देखी गई आठ मुक्तियाँ,
मैं अब निर्मल अवस्था में निवास कर रहा हूँ;
ऊर्जावान, बुद्धिमान:

5336 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5337 khiḍḍār'ati'y'ā
5338 टाइडेस , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
5339 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5340 नवा , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5341 शाब्दिक रूप से, " पूजा" "
5342 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5343 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5344 pariḷāho
5345 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5346 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)

फल देने का फल यही है। (20) [5524]

वे बुद्ध के पुत्र, जो आठ फलों से परिपूर्ण, दोषरहित और अत्यंत प्रसिद्ध थे,
मैं भी अब उनमें से एक हूँ:
फल देने का फल यही है। (21) [5525]

विशेष ज्ञान में महारत हासिल करना, मेरी उत्तम जड़ों से प्रेरित होना, सभी दोषों को भली-भांति जानना,
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (22) [5526]

तीन ज्ञान, शक्तियाँ5347 प्राप्त, बुद्ध के पुत्र हैं, जो अत्यधिक प्रसिद्ध हैं, और जिन्हें "दिव्य श्रवण" की शक्ति प्राप्त है:
मैं भी अब उनमें से एक हूँ। (23) [5527]

एक लाख युगों में,
जब से मैंने उसे वह फल दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
फल देने का फल यही है। (24) [5528]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (25) [5529]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [5530]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [5531]

इस प्रकार पूज्य सब्बफलदायका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सब्बफलदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5347 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

---

517. {520.}5348 पदुमधारिया5349

हिमालय पर्वतमाला के निकट,
रोमासा नाम का एक पहाड़ है।5350
संभव के नाम से जाने जाने वाले बुद्ध
फिर वह वहाँ खुले में रहने लगा। (1) [5532]

अपने निवास से बाहर निकलते हुए,
मैं उसके लिए एक कमल का फूल लाया। एक ही फूल लाने के बाद,
मैं पुनर्जन्म की ओर आगे बढ़ा। (2) [5533]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया।
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [5534]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5535]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5536]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5537]

इस प्रकार पूज्य पद्मधारिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पद्मधारिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

5348 अपदाना नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5349 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5350 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5351 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5352 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

कुरेंजिया और कपित्था, कोसुम्भा, केतका, नागपुप्प, अज्जुना, कुटजी, घोसासन्याका और सब्बाफलदा थेरा,
फिर पदुमधारिका [दसवां]:
यहां अस्सी श्लोक हैं, इसके अलावा
उस [संख्या] से तीन श्लोक अधिक।

कुरेंजियाफलदायक अध्याय, बावनवाँ अध्याय (5353)

तिणदायक 5354 अध्याय, तिरपनवाँ

---

518. {521.}5355 तिनामुथिदायक5356

हिमालयी क्षेत्र में,
वहाँ लंबका नाम का एक पर्वत है।5357
संबुद्ध, उपतिस्सा,
खुली हवा में इधर-उधर चलते रहे। (1) [5538]

उस समय मैं जंगल में एक छोटे से बाग में हिरण का शिकार करता था।
देवताओं में श्रेष्ठ उस ईश्वर को देखकर,
फिर मैंने मुट्ठी भर घास दी। (2) [5539]

इसे बुद्ध को देने के लिए
वहाँ बैठकर, मैंने अपने मन को प्रसन्न किया। संबुद्ध को प्रणाम करते हुए, मैंने
[तब] उत्तर की ओर मुख करके प्रस्थान किया। (3) [5540]

कुछ समय बाद ही, जानवरों का एक राजा5358
यात्रा के दौरान मुझे चोट लगी।5359

5353 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5354 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5355 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5356 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5357 रत्तंबरधरो , लिट., "लाल अम्बरा धारण करने वाला।" धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

5358 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5359 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

उस शेर द्वारा गिराए जाने पर,
मैं वहीं मर गया। (4) [5541]

जब मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्ध, निष्कलंक बुद्ध के लिए वह कर्म किया, 5360 तो वह तुरंत 5361 तीर की तरह छूट गया।
मैं देवताओं के लोक में गया। (5) [5542]

मेरी प्यारी बलिदानी पोस्ट 5362
good5363 कर्म द्वारा बनाया गया
was mil- kaṇḍa 5364 cent- bheṇḍu 5365 [large]
सोने से बना, झंडों से ढका हुआ। (6) [5543]

अपनी शानदार रोशनी बिखेरते हुए,
जैसे सौ किरणों वाला [सूर्य] उदय हुआ हो, वैसे ही यह दिव्य कन्याओं से भरा हुआ है।
मुझे वहाँ बहुत आनंद आया। (7) [5544]

देवताओं के लोक से गिरकर, अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, मानव अवस्था में वापस लौटकर,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।5366 (8) [5545]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उसे बैठने के लिए जगह दी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
मुट्ठी भर घास का फल। (9) [5546]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [5547]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [5548]

5360 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5361 lit., "गया"
5362 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5363 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5364 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5365 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5366 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [5549]

इस प्रकार पूज्य तिनमुट्ठिदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तिनमुट्ठिदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

519. {522.}5367 पेच्चदायक5368

मैंने एक पेच्चा उपहार में दिया । कहते हैं] उपहार में दी , 5369
अत्यंत प्रसन्नता के साथ, दोनों हाथों से, भगवान विपस्सी को प्रणाम करता हूँ।
दुनिया का सबसे अच्छा, तटस्थ। (1) [5550]

हाथी और घोड़े जैसे वाहन, दिव्य वाहन प्राप्त होते हैं; यह सब एक पेच्छा के उपहार के कारण होता है। ।
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (2) [5551]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे वह पेक्का दिया दिया था , मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
पेच्चा देने का फल । (3) [5552]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (10) [5553]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [5554]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5367 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5368 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5369 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [5555]

इस प्रकार पूज्य पेच्चादायक5370 थेरा ने ये श्लोक कहे।

पेच्चादायक5371 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

520. {523.}5372 सारनागमानिया5373

उस समय हम एक नाव पर सवार हुए, भिक्षु और मैं,5374 एक अजीवक ।
जब नाव टुकड़े-टुकड़े हो गई,
उस बौद्ध भिक्षु ने मुझे शरण दी। (1) [5556]

पिछले इकत्तीस युगों में
उन्होंने मुझे [उस समय] शरण दी थी, मुझे कभी भी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
शरण लेने का फल। (2) [5557]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5558]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5559]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5560]

इस प्रकार पूज्य सरणागमनिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सरणागमनिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5370 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
5371 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5372 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5373 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5374 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

---

521. {524.}5375 अभांजनदायक5376

शहर में, बंधुमती,
मैं शाही बगीचे में रहता था।
तब मैंने हिरण के चमड़े के वस्त्र पहने थे,5377
पानी के बर्तन का वाहक। (1) [5561]

मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
स्वयं-निर्मित, अजेय, ऊर्जावान, 5378 ध्यानी,
समाधि के प्रेमी, उस्ताद, 5379
हे जलप्रपात पार करने वाले, निष्कलंक, समस्त सुखों में सफल। उन्हें देखकर प्रसन्न और प्रसन्न।
मैंने उसे कुछ मरहम दिया। (2-3) [5562-5563]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने तब उसे वह मरहम दिया था, और तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
वह मरहम का फल है। (4) [5564]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5565]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5566]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5567]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5375 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5376 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5377 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5378 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

5379 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5380 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

इस प्रकार पूज्य अब्भंजनदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अब्भंजनदायका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

522. {525.}5381 सुपतादायक5382

विश्व के नेता विपस्सी दोपहर की नींद से उठ रहे थे।
हल्के कपड़े का एक अच्छा टुकड़ा देना,5383
तब मुझे स्वर्ग में आनंद आया। (1) [5568]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उसे कपड़े का वह अच्छा टुकड़ा दिया,5384
मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:
अच्छे कपड़े का फल.5385 (2) [5569]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [5570]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [5571]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5572]

इस प्रकार पूज्य सुपटाडायक5386 थेरा ने ये श्लोक कहे।

सुपटाडायक5387 थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5381 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5382 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5383 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5384 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5385 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5386 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5387 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

523. {526.}5388 दण्डदायक5389

जंगल में डूबा हुआ, वनों में,
मैंने उस समय कुछ बांस काटे थे। एक छड़ी लेकर,5390
मैंने इसे विधानसभा को दे दिया।5391 (1) [5573]

मेरे मन में उमड़ी खुशी के कारण, "आपको सुख मिले!" कहकर मैंने वह छड़ी आपको भेंट की।
मैं उत्तर की ओर मुख करके चला गया। (2) [5574]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उस समय [भिक्षुओं को] वह छड़ी दी थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:
छड़ी देने का यही फल है। (3) [5575]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5576]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5577]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5578]

इस प्रकार पूज्य दंडदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

दंडदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5388 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5389 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5390 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5391 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

---

524. {527.}5392 गिरीनेलपूजक5393

मैं पहले शिकारी था।
उस समय मैं जंगलों में घूम रहा था। मैंने बुद्ध की प्रतिमा देखी, स्टेनलेस वन।
[जो] हर चीज का स्वामी था। (1) [5579]

प्रसन्नता से, अपने हृदय में आनंद लिए, मैंने 5394 गिरिनिल 5395 फूल अर्पित किए
दयालु के लिए,
डिलाइटर,5396 सभी प्राणियों का मित्र.5397 (2) [5580]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे वह फूल भेंट किया था, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (3) [5581]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [5582]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [5583]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5584]

इस प्रकार पूज्य गिरिनलापूजक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

गिरीनेलापूजक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5392 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5393 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5394 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5395 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5396 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5397 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5398 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

---

525. {528.}5399 बोधिसम्मज्जका5400

पहले मैं स्तूप के प्रांगण में गिरे बोधि के पत्ते उठाता था।
और [झाड़ू लगाने के बाद] उन्हें फेंक दिया।
मैंने [तब] बीस गुण प्राप्त किए:5401 (1) [5585]

उस कर्म के बल पर, जन्म-जन्मांतर करते हुए, मैं [केवल] दो अवस्थाओं में जन्म-जन्मांतर करता हूँ:
वह किसी देवता का हो, या किसी मनुष्य का। (2) [5586]

देवताओं के लोक से गिरकर, मनुष्य रूप में आकर, मेरा जन्म [केवल] दो कुलों में हो रहा है:
क्षत्रिय और ब्राह्मण। (3) [5587]

मेरे अंग परिपूर्ण हैं, उचित लंबाई और परिधि के साथ; मैं बहुत सुंदर और भव्य हूँ।
[के साथ] पूर्ण अंग, कोई कमी नहीं। (4) [5588]

देवताओं के लोक में हो या मनुष्यों के लोक में, मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूं, जीवन भर सुनहरे रंग का ही रहूंगा।
पिघले हुए सोने से तुलना की जानी है।5402 (5) [5589]

5403 पूरी तरह से फेंके गए बोधि पत्तों के कारण, मेरी बाहरी त्वचा हर समय
लचीला [और] नरम [और] चिकना है,5404
[और] एक बहुत छोटे लड़के की तरह बढ़िया।5405 (6) [5590]

जब मेरा शरीर उठ खड़ा हुआ
पुनर्जन्म की किसी भी अवस्था में,5406

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5399 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5400 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5401 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5402 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5403 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5404 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5405 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5406 lit., "गया"

मैं धूल-मिट्टी से सना हुआ नहीं हूँ:5407
5408 फेंके गए पत्तों का परिणाम। (7) [5591]

जब गर्मी हो या जलती हुई हवा हो, या उस पर आग की गर्मी हो,
मेरे शरीर से पसीना नहीं निकलता:
फेंके गए पत्तों का परिणाम। (8) [5592]

मेरे शरीर पर दाद नहीं है,5409
चकत्ते,5410 फोड़े,5411 कुष्ठ रोग,5412
और इसी प्रकार [न तो] तिल5413 [और न ही] फोड़े:5414
फेंके गए पत्तों का परिणाम। (9) [5593]

और इसका एक और गुण है, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म होना;
मेरे शरीर में कोई बीमारी नहीं है:5415

फेंके गए पत्तों का परिणाम। (10) [5594]

और इसका एक और गुण है, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म होना;
ऐसी कोई पीड़ा नहीं है जो मन से उत्पन्न हो:
फेंके गए पत्तों का परिणाम। (11) [5595]

और इसका एक और गुण है, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म होना;
इसके कोई शत्रु नहीं हैं:5416
फेंके गए पत्तों का परिणाम। (12) [5596]

और इसका एक और गुण है, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म होना; संपत्ति की कोई कमी नहीं होती:
फेंके गए पत्तों का परिणाम। (13) [5597] और इसमें एक और गुण है,

---

5407 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5408 lit., "गिर गया"
5409 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5410 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5411 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5412 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5413 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5414 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5415 लिट., "एक फूल पर"
5416 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

जन्म-जन्मांतर होना;
पानी में कोई डर नहीं होता।
न ही आग से, न राजाओं से, और न ही चोरों से। (14) [5598]

और इसका एक और गुण है, जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म होना;
दास और दासी महिलाएं मेरी सेवा कर रही हैं।
[उनके] दिलों के अनुसार.5418 (15) [5599]

जब वह 5419 मानव अवस्था में जन्म लेता है, तो जीवनकाल के किसी भी माप के साथ, वह जीवनकाल फिर कम नहीं होता है।
यह जीवनकाल की पूरी सीमा तक रहता है। (16) [5600]

मेरे शहर और देश के लोग, जो अंदर और बाहर घूमते रहते हैं, हर समय व्यस्त रहते हैं।
बढ़ने और खुश रहने की इच्छा।5421 (17) [5601]

मैं धनी, प्रसिद्ध और वैभवशाली हूँ;
मेरे रिश्तेदारों की तरफ से।
कांपने और भूतों के भय से मुक्त,5422
प्रत्येक जीवन से [प्रत्येक नए] जीवन तक। (18) [5602]

देवता [और] मनुष्य [और] टाइटन्स5423 [साथ ही], संगीत-अप्सराएँ, आत्माएँ5424 [और] राक्षस;5425 वे हमेशा मेरी रक्षा करते हैं,
अस्तित्व में पुनर्जन्म लेते हैं। (19) [5603]

देवताओं और मनुष्यों दोनों के लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करने के बाद,
अंत में मैंने [अब] प्राप्त कर लिया है
शांतिपूर्ण, अतुलनीय निर्वाण। (20) [5604]

धनवान व्यक्ति के लिए जो 5426 पुण्य अर्जित करता है, संबुद्ध का उल्लेख करते हुए,
या शिक्षक का बोधि,

5417 khiḍḍār'ati'y'ā
5418 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
5419 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5420 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5421 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5422 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5423 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5424 pariḷāho
5425 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5426 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)

ऐसी कौन सी चीज़ है जिसे प्राप्त करना कठिन है? [5605]5427

धर्म में मार्ग-फल के मामले में दूसरों से श्रेष्ठ होना,
समाधि की अवस्था में, विशेष ज्ञान, सद्गुण;
मैं निर्वाण प्राप्त करता हूँ, निष्कलंक। (21) [5606]

पहले, प्रसन्न मन से,
मैंने बोधि के उन पत्तों को फेंक दिया;5428
इन बीस [गुणों] से संपन्न 5429
मैं हर समय विद्यमान हूँ। (22) [5607]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [5608]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [5609]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [5610]

इस प्रकार पूज्य बोधिसम्मज्जक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बोधिसम्मज्जक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

526. {529.}5430 अमाण्डफलदायक5431

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। ध्यान से उठते हुए,5432

5427 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

5428 samādhikusalo ahaŋ

5429 iddhipādesu kovido

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5430 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5431 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है। 472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5432 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

विश्व नेता इधर-उधर टहलते रहे। (1) [5611]

खारी भार लेने के बाद ,
मैं उस समय फल ले जा रहा था।
मैंने निर्मल बुद्ध की प्रतिमा देखी।
महान ऋषि इधर-उधर टहल रहे थे। (2) [5612]

प्रसन्नता से भरे हृदय से, हाथों को सिर पर जोड़कर, संबुद्ध को प्रणाम करते हुए,

मैंने उसे अरंडी का फल दिया।5433 (3) [5613]

उस समय मैंने जो फल दिया था, उसके बाद से लेकर अब तक लाखों युगों में मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
यह अरंडी के तेल का फल है। (4) [5614]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [5615]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [5616]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [5617]

इस प्रकार पूज्य आमण्डफलदायक थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आमण्डफलदायक थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

527. {530.}5434 सुगंधा5435

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के संबंधी, महान यशस्वी,

5433 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
{बड़े कोष्ठकों} में दिए गए 5434 अपदान क्रमांक BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें अधिक जानकारी शामिल है।
यह अनुवाद की मुख्य क्रमांकन प्रणाली को निर्धारित करने वाले पीटीएस संस्करण की तुलना में व्यक्तिगत कविताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है।
5435 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

उनके वंश के माध्यम से कस्सपा नाम दिया गया,5436
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,5437 [बुद्ध] का उदय हुआ। (1) [5617]5438

अस्सी छोटे चिह्नों से युक्त, बत्तीस बड़े चिह्नों को धारण करने वाला, 5439 फ़ैदम-विशाल आभा वाला,
प्रकाश-किरणों के जाल में चला गया,5440 (2) [5618]

चंद्रमा की तरह सुखदायक, सूर्य के समान प्रकाश का स्रोत, वर्षा के बादल के समान प्यास बुझाने वाला।
समुद्र की तरह रत्नों की खान, (3) [5619]

पृथ्वी के समान नैतिक मूल्यों के माध्यम से; आकाश के समान ज्ञान के माध्यम से; ध्यान के माध्यम से5442
हिमालय की तरह; हवा की तरह
वह किसी बात पर अडिग नहीं रहता। (4) [5620]

एक समय में, हे महान ऋषि, जो असंख्य लोगों के बीच विश्वासयोग्य हैं,5443 [महान] सत्यों की व्याख्या कर रहे हैं।
[और] जनता को ऊपर उठाना। (5) [5621]

उस समय मैं बनारस में एक करोड़पति का बेटा था, बहुत मशहूर था।
उस समय मैं मास्टर5444 था
पर्याप्त धन और अनाज। (6) [5622]

पैदल घूमते हुए,
मैं "हिरण-पार्क"5445 [वन] तक आया।
वहाँ मैंने बुद्ध के समान एक प्रतिमा देखी।
जो स्पष्ट और मनमोहक शब्दों में अमरता की अवस्था का उपदेश दे रहा था।

5436 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5437 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5438 शाब्दिक अर्थ, "जाना," संदर्भ को देखते हुए अन्यत्र "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5439 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5440 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5441 शाब्दिक अर्थ, "गया"
5442 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5443 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5444 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5445 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

कोयल की मधुर ध्वनि के साथ, हंस या ढोल की आवाज के साथ,
लोगों को समझाना। (7-8) [5623-5624]

उस ईश्वर को देखकर जो देवताओं से भी ऊपर है,
और उसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर, उसने काफी धन-संपत्ति त्याग दी थी,
मैं बेघर हो गया। (9) [5625]

इस प्रकार, थोड़े ही समय में, वे एक अत्यंत विद्वान भिक्षु बन गए।
मैं धम्म का प्रचारक बन गया।
विविध बुद्धि होना। (10) [5626]

तब विशाल जनसमूह के बीच, मैं प्रसन्न मन से बार-बार बुद्ध के स्वर्णिम रंग की प्रशंसा करता रहा।
[उसकी] सुंदरता की प्रशंसा करने में कुशल:5447 (11) [5627]

"यह बुद्ध हैं, जो निष्कलंक हैं,5448
स्पष्ट, 5449 संदेह दूर, 5450
जिसके सारे कर्म नष्ट हो गए हों,5451
शर्तों के अंत में मुक्त.5452 (12) [5628]

ये हैं भगवान बुद्ध;
वह अतुलनीय है, वह शेर है।
ब्रह्मा-चक्र का टर्नर 5453
देवताओं सहित दुनिया के लिए; (13) [5629]

वश में करने वाला, वश में करने वाला, शांतिप्रिय
द अपीज़र,5454 ब्लोन आउट,5455 द सेज,5456
द क्वेंचर5457 और द कम्फर्टेड,5458

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 5446 में कई भिन्नताओं के साथ 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
5447 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5448 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
5449 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5450 लिट., "एक फूल पर"
5451 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5452 khiḍḍār'ati'y'ā
5453 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5454 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5455 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5456 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5457 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5458 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

लोगों का दिलासा देने वाला 5459; (14) [5630]

नायक, ईश्वर, ज्ञानी, बुद्धि, करुणामय, स्वामी, विजेता और विजयी
पुनर्जन्म नहीं होना, 5460 बेघर एक; 5461 (15) [5631]

वासना रहित, 5462 अडिग, बुद्धिमान, 5463
अविभाजित, अद्वितीय, 5464 ऋषि, 5465
जुए का वाहक,5466 बैल, हाथी, शेर, इंद्र5467 गुरुओं में; (16) [5632]

भावहीन व्यक्ति, 5468 निर्मल व्यक्ति, 5469 ईश्वर, 5470
वक्ताओं के ईश्वर, 5471 दोष-त्यागी, 5472
अबाधित5473 और दुःख से मुक्त,5474
अद्वितीय,5475 संयमित,5476 शुद्ध एक;5477 (17) [5633]

ब्राह्मण,5478 भिक्षु5479 [और] भगवान,5480
चिकित्सक 5481 [और] सर्जन 5482
योद्धा, 5483 बुद्ध, पवित्र विद्या, 5484

5459 pariḷāho
5460 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5461 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5462 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5463 samādhikusalo ahaŋ
5464 iddhipādesu kovido
5465 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5466 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5467 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
5468 महाभिऽसक्कसंकाऽसो
5469 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
5470 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
5471 दिट्ठिगण्ड°
5472 लोकापज्जोटो
5473 sanar'āmar'a'sakk'at'o
5474 नारदिको
5475 लिट., "में"
5476 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5477 निब्बाती , या "वह शांत हो जाता है"
5478 mahā'ssādaŋ
5479 mahār'a'saŋ

5480 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
5481 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
5482 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
5483 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
5484 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"

अविचलित,5485 प्रसन्न,5486 स्वतंत्र;5487 (18) [5634]

समर्थक, 5488 तैयार, 5489 संहारक, 5490 कर्ता, 5491 मार्गदर्शक, 5492 व्याख्याता, 5493 प्रसन्न करने वाला, 5494 आनंद लेने वाला, 5495
काटने वाला,5496 सुनने वाला,5497 प्रशंसित;5498 (19) [5635]

अबाधित 5499 और व्यापक, 5500
स्पष्ट एक, 5501 अनिश्चित नहीं, 5502
वासना रहित,5503 बेदाग,5504 साथी,5505
गोअर,5506 स्पीकर,5507 व्याख्याता;5508 (20) [5636]

क्रॉसर,5509 अर्थ-निर्माता,5510
निर्माता,5511 [भी] फाड़ने वाला,5512
प्राप्तकर्ता, 5513 वाहक, 5514 प्रिय, 5515
स्लेयर,5516 एनर्जेटिक,5517 एसेटिक,5518 (21) [5637]

5485 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
5486 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
5487 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
5488 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो
5489 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
5490 लिट., “यहाँ”
5491 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
5492 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
5493 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
5494 sampahaŋsit'ā
5495 भोट्टा , बीजेटीएस में इसे भेट्टा ("तोड़ने वाला") पढ़ा जाता है।
5496 चेत्त्'आ
5497 sotā
5498 pa'saŋsitā
5499 akhilo
5500 visālo . BJTS इसे visallo (“दर्द से मुक्त”) पढ़ता है
5501 anīgho
5502 अकथाकथि , ilt. "नहीं कह रहा, 'क्यों'?"

5503 अनेजो

5504 विराजो

5505 खट्टा । बीजेटीएस इसे खंत (विनम्र) पढ़ता है ("विनम्र")

5506 रीडिंग गंटा विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस गंधा ("सुगंधित")

5507 pTS mettā ("प्रेम") के लिए BJTS के साथ v'atta का पाठ

5508 pakā'sit'ā

5509 t'ār'et'ā

5510 अत्थकारेता का पाठ बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ तारेता ("क्रॉसर") के पीटीएस पुनरावृति के लिए।

5511 k'ār'et'ā

5512 सम्पदालता , बीजेटीएस सम्पदालता

5513 पापेता

5514 साहित्य , या "सहनकर्ता"

5515 में k'antā का पाठ BJTS द्वारा PTS में hantā के पुनरावर्तन के साथ किया गया है , जिसे दोनों पाठ श्लोक में अगले शब्द के रूप में पढ़ते हैं।

5516 hant'ā

5517 PTS tātâpi ("रक्षक भी") के लिए BJTS के साथ ātāpī का पाठ

5518 t'āpaso , इससे पंक्ति में नौ अक्षर बनते हैं, जिसे "हत्यारा" को संक्षिप्त करके आठ अक्षरों के रूप में उच्चारित करने की आवश्यकता है।

समभाव वाला 5519 [और] निष्पक्ष, 5520
आत्मनिर्भर, 5521 दयालुता का घर, 5522
बेहद शांतिपूर्ण,5523 ईमानदार,5524
कर्मकर्ता, 5525 सातवाँ ऋषि; 5526 (22) [5638]

संदेह से परे पार किया, 5527 अहंकार से मुक्त, 5528
असीम एक, 5529 अतुलनीय, 5530
सभी कहावतों के रास्तों पर यात्रा की,5531
सत्य को जानने के लिए प्राप्त किया,5532 विक्टर.5533 (23) [5639]

[बुद्ध का] महल सर्वश्रेष्ठ प्राणियों में अमरता लाता है;5534
शक्तिशाली लोगों को इस पर भरोसा है
बुद्ध, शिक्षण और सभा।" (24) [5640]

इन गुणों के माध्यम से,
मैंने धम्म का प्रचार किया ,5535
भीड़ के बीच प्रशंसा करना
तीनों लोकों का अतुलनीय शरणस्थल। (25) [5641]

तुसिता में, जहाँ से मुझे बहुत सुख मिला, वहाँ से गिरकर, लोगों के बीच से गिरकर,
मुझे जन्म से ही बहुत अच्छी खुशबू आती है। (26) [5642]

मेरी हवा,5536 मेरे मुँह की सुगंध,

"स्लेयर" में

5519 samacitt'o

5520 'समासामो , (बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस के अनुसार; इसका मूल रूप समासामो भी हो सकता है , जिसका अर्थ है "हमेशा एक जैसा")

5521 a'sahāyo , शाब्दिक अर्थ, “मित्रहीन”

5522 रीडिंग दयासायो (और निम्नलिखित व्याख्या) बीजेटीएस के साथ पीटीएस दयायासो ("दयालुता के लिए प्रसिद्ध" "दयालुता-प्रसिद्ध") के लिए

5523 accherasanto

5524 अकुहो , शाब्दिक अर्थ, "धोखे से मुक्त" "ईमानदार"

5525 क'तावी , अर्थात् एक अरहंत, जिसने वह किया है जो किया जाना चाहिए

5526 i'si'satt'amo

5527 nittiṇṇak'aṅkho

5528 nimmāno

5529 अप्पमेय्या , शाब्दिक अर्थ, "मापा नहीं जा सकता"

5530 अनुपमा , शाब्दिक अर्थ, "वह जिसके लिए कोई रूपक नहीं है"

5531 sabbavākyapathātīto , शाब्दिक अर्थ, “वह जिसके लिए सभी कथनों के मार्ग अतीत में हैं”

5532 saccaneyyantago , शाब्दिक अर्थ, "वह जो सत्यों के अंत तक पहुँच चुका है जिसे समझा जाना है [या निर्देश दिया जाना है, नेतृत्व किया जाना है, मार्गदर्शन किया जाना है (नेति का क्रियापद)]"

5533 जिनो

5534 sattasāravare . BJTS इसे महल को संशोधित करने के रूप में व्याख्या करता है, लेकिन पाली मुझे इससे अधिक अस्पष्ट लगती है। v. [5887] और [6287] में बुद्ध-विशेषण के रूप में sattasāra° के प्रयोग की तुलना करें।

5535 BJTS के साथ akaṃ dhammakathaṃ ahaṃ पढ़ना PTS ahaŋ dhammakathaŋ ahaŋ (“मैं धम्म -प्रचारक मैं")

5536 nissāso , BJTS ग्लॉस māgē piṭatața heḷana vātaya (“वह हवा जिसे मैं नीचे फेंकता/अपने बाहरी हिस्से में निकाल देता हूँ”)

इसी प्रकार मेरे शरीर की दुर्गंध भी।
और मेरे पसीने की गंध, हमेशा अन्य सभी इत्रों से श्रेष्ठ होती है। (27) [5643]

मेरे मुंह से हमेशा गुलाबी और नीले कमल और चमेली की खुशबू आती है। और मेरे शरीर से भी वैसी ही खुशबू आती है।
हमेशा बहुत शांति से बह रहा है.5538 (28) [5644]

आप सभी एकाग्र मन से मेरी बात सुनें, मैं उस अद्भुत फल की प्रशंसा करूंगा।
जिसने सद्गुण के मूल्य की प्रशंसा की।5539 (29) [5645]

जब लोग एकत्रित होते हैं, तब दयालुतापूर्वक बुद्ध के गुणों का वर्णन करते हुए, मधुर ध्वनि से बंधे हुए,5540
मैं हर जगह खुश हूँ, (30) [5646]

प्रसिद्ध, खुशहाल, प्रिय, शानदार, देखने में सुंदर
एक वक्ता, जिसे नजरअंदाज नहीं किया गया।
दोषरहित और [अत्यंत] बुद्धिमान भी। (31) [5647]

जब जीवन समाप्त हो जाता है, तो बुद्ध के भक्तों के लिए निर्वाण तक पहुंचना आसान होता है।
मैं उनकी [सुविधा] का कारण बता रहा हूँ;
अब इसे सच्चाई से सुनो: (32) [5648]

मैंने विधिपूर्वक अभिवादन किया।
परम पूज्य ईश्वर की शांतिप्रियता के कारण ही मैं प्रसिद्ध हूँ।5543
[जब] मैं यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म लेता हूँ। (33) [5649]

5537 रीडिंग sabbagandhe "tiseti (= atisayati) BJTS के साथ PTS sabbagandho ti seti ("यह 'सभी अच्छी सुगंध' को नीचे रखता है") और BJTS सिंहला ग्लॉस का अनुसरण करते हुए
5538 BJTS में एटिसैंटो के लिए एडिसैंटो ("घोषणा") लिखा है
5539 guṇatthavassa sabbaṃ taṃ phalaṃ tu paramambhūtaṃ को BJTS के साथ PTS guṇatthavassapupphan tan phalan tu param abbhutaŋ ("वह फल जो सद्गुण के अर्थ में अत्यंत चमत्कारी रूप से खिलता है" [?]) के लिए पढ़ा गया, और BJTS व्याख्या का अनुसरण किया गया: buddha guṇakitiyāge ē siyalu vipāka atiśaya vismayajanaka ya .
5540 पाठ का चौथा (अनुवाद में तीसरा) पद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। IPTS इसे rasaddhovisamāyuto पढ़ता है । "शुद्ध स्वाद से बंधा हुआ।" BJTS में लिखा है (टाइपोग्राफिकल त्रुटि?) saradvadhanisamāyuto (= rasad- hvanisaāmyuto ?)। दोनों ही मामलों में वैकल्पिक अनुवाद और भी अनिश्चित हैं। मैं BJTS के सिंहली अनुवाद का अनुवाद करता हूँ, mad- hura svaradhvani yukta vūyem (- mihirihaddha ättem), "मैं मधुर ध्वनि से बंधा हुआ (मेरे पास एक मधुर ध्वनि है)"।
5541 रीडिंग khīṇe ayusi with BJTS for PTS khīṇ' ev' āyu pi ("जीवन भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है")
5542 lit., "तुम सब इसे सुनो" (द्वितीय व्यक्ति बहुवचन क्रिया)
5543 ya'sassī

मैं खुश हूँ क्योंकि मैंने दुखों का अंत करने वाले बुद्ध की प्रशंसा की।
[और] शांतिपूर्ण, बिना शर्त सत्य,5546
प्राणियों को सुख प्रदान करना। (34) [5650]

बुद्ध के गुणों की घोषणा करते हुए, बुद्ध में आनंद से लीन होकर,
मैंने उसे स्वयं और दूसरों के लिए प्रिय बना दिया।
अन्य; इसलिए मैं प्रिय हूँ। (35) [5651]

दुष्ट प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करना 5548
प्रतिद्वंद्वियों से भरी भीड़ में, सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए मैंने प्रकाश फैलाया।
नेता; इसलिए मैं शानदार हूँ। (36) [5652]

संबुद्ध के गुणों का वर्णन करके, मैंने उन्हें लोगों के लिए प्रिय बना दिया।
जैसे शरद ऋतु में चंद्रमा होता है;5553
इसलिए मैं देखने में सुंदर हूँ। (37) [5653]

मैंने अपने सभी शब्दों से बुद्ध की प्रशंसा की।
जहां तक मैं सक्षम था;5556
इसलिए मैं धाराप्रवाह बोलता हूँ,5557
[और] विविध बुद्धि रखते हैं। (38) [5654]

महान शिक्षा से मैंने उन मूर्खों को रोका जो संदेह से ग्रस्त होकर,5558 उस महान ऋषि का तिरस्कार करते हैं; इसलिए मेरी उपेक्षा नहीं की जाती। (39) [5655]

बुद्ध के गुणों के माध्यम से,

5544 शाब्दिक अर्थ, "इसलिए मैं खुश हूँ"
5545 दुःखान्तकरण 'बुद्धं , शाब्दिक अर्थ: "दुखों का अंत करने वाला बुद्ध"
5546 धम्मॅ ...
5547 जनायण , लिट., "मैंने उत्पादन किया"
5548 या "विधर्मी": कुटित्थिये
5549 रीडिंग titthikākiṇṇe with BJTS for PTS titthikâkiṇṇo ("मैं प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ हूँ")
5550 v'adanto , शाब्दिक अर्थ, "कहना," "बताना"
5551 में पीटीएस varaŋ ("उत्कृष्ट") के लिए BJTS (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ v'adaṃ पढ़ा जा रहा है।
5552 पीटीएस °jinassa ("विजेता का") के लिए BJTS (और PTS विकल्प) के साथ janassa का पाठ
5553 रीडिंग sarado va sasaṅko 'haṃ with BJTS for PTS saraŋ divasasanko 'haŋ ("मैं झील के लिए दिन में चंद्रमा हूँ" [?])
5554 लिट., "मैं था"
5555 शाब्दिक रूप से, "अच्छी तरह से चला गया व्यक्ति," सुगातांग
5556 y'athā'sattiv'a'sena
5557 v'āgīso , "[मैं एक हूँ] वाणी पर महारत के साथ"
5558 में विमतिपट्टा को पीटीएस विमतिंग पट्टा के स्थान पर बीजेटीएस से पढ़ा गया है , हालांकि बाद वाला (व्याकरणिक दृष्टि से कुछ हद तक गलत) समान अर्थ व्यक्त करता है।

मैंने प्राणियों के दोषों को दूर भगा दिया। मैं अब दोषों से मुक्त हूँ।
उस कर्म के फलस्वरूप। (40) [5656]

मैं एक उपदेशक हूँ जो बुद्ध का स्मरण कराता है, और मैं श्रोताओं के लिए बुद्ध को लेकर आया।
इसलिए मैं सूक्ष्म अर्थों पर चिंतन करने की बुद्धि से संपन्न हूँ। (41) [5657]

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं; मैंने अस्तित्व के सागर को पार कर लिया है।5560
अग्नि के समान, [मैं] किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं हूँ; मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। (42) [5658]

इसी [वर्तमान] युग के भीतर
क्योंकि मैंने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की है, इसलिए मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं भुगतना पड़ा है।
यह बुद्धों की प्रशंसा का फल है। (43) [5659]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (44) [5660]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (45) [5661]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (46) [5662]

इस प्रकार पूज्य सुगंधा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सुगंधा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

समीक्षा:

तिनदा और पेच्चदा5561 भी, सरण', अभंजनप्पाडा, पुपति5562 और दंडदायि, और इसी तरह नेलापूजी भी,

---

5559 apades' 'ahaṃ को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS apaniŋ (समान अर्थ, fr. apaneti) के लिए पढ़ना
5560 टीना'संसार'सागर'ओ
5561 BJTS mañcado (“Mañcada”) पढ़ता है
5562 BJTS में supaṭo (“Supaṭa”) पढ़ा जाता है

बोधिसम्मजक', 5563 आमंड, और दसवें सुगंधा, एक ब्राह्मण। यहाँ कुल मिलाकर गिने गए हैं
एक सौ तेईस श्लोक।

तिणदायक अध्याय, तिरपनवाँ

कच्चाना अध्याय, चौवनवाँ

---

528. {531.}5564 महाकच्चन5565

विजेता, पदुमुत्तरा,
वासना रहित,5566 अजेय विजेता,5567
नेता का अस्तित्व सामने आया।
एक लाख युगों बाद। (1) [5663]

कमल के पत्ते जैसी आंखों वाला नायक, 5568
चंद्रमा के समान पवित्र मुख के साथ,5569
सोने के पहाड़ की तरह चमकता हुआ,5570
जब सूर्य धधक रहा हो तो उतना ही चमकीला,5571 (2) [5664]

प्राणियों की आँखों [और] मन का परिवहन,5572
उत्कृष्ट अंकों से सुशोभित, 5573
सभी कहावतों के रास्तों पर यात्रा की,5574
लोगों और देवताओं द्वारा सम्मानित, 5575 (3) [5665]

5563 यह पीटीएस शब्द bodhisammajako ("बोधिसम्मजक") का बीजेटीएस पाठ है ।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5564 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5565 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5566 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5567 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5568 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5569 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5570 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5571 lit., "गया"
5572 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5573 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5574 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5575 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

संबुद्ध, जागृत प्राणियों को जगाना, 5576
वाक्पटु, 5577 मधुर ध्वनि वाला, 5578
करुणा का निरंतर घोंसला, 5579
भीड़ के बीच आत्मविश्वास से भरपूर,
वहाँ वे मधुर शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं, चार आर्य सत्यों को ग्रहण कर रहे हैं।5580
वह सांस लेने वालों को ऊपर उठा रहा है।

जब वे भ्रम के दलदल में डूब जाते हैं। (4-5) [5666-5667]

एक तपस्वी होने के नाते, अकेले,
तब मेरा घर हिमालय था। मैंने विक्टर को यात्रा करते हुए देखा।5581
आकाश के माध्यम से मनुष्यों की दुनिया। (6) [5668]

उसके समक्ष जाकर,
तब मैंने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना।
और महान सद्गुण की प्रशंसा करते हुए
उस हीरो के अनुयायियों में से एक: (7) [5669]

"जिसके द्वारा5582 यह [भिक्षु] कच्चायना5583
5584 विस्तृत स्पष्टीकरण प्रदान करता है
मेरे द्वारा कही गई बातों के अनुसार, संक्षेप में, वह बहुत से लोगों को और मुझे भी प्रसन्न करता है।
मुझे कोई और अनुयायी नहीं दिख रहा है
या फिर कोई भी व्यक्ति जो इस तरह से उपदेश देता हो।
इस प्रकार वह शीर्ष पर है, उस अग्रणी स्थान पर;5586
इसलिए आपको 5587 [उसे] विचार करना चाहिए, भिक्षुओं।" (8-9) [5670-5671]

उस समय, उस मधुर वाणी को सुनकर आश्चर्यचकित होकर, वे हिमालय की ओर चल पड़े।
ढेर सारे फूल वापस लाते हुए,

बीजेटीएस के अनुसार 5576 में, पीटीएस में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
5577 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5578 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तूलिका°) के रूप में समझता हूँ (देखें आर.डी., एस.वी.)
5579 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5580 लिट., "एक फूल पर"
5581 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5582 khiḍḍār'ati'y'ā
5583 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5584 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5585 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5586 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5587 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

विश्व के शरणस्थल की पूजा करने के बाद,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था।
उस समय, मेरी इच्छा को समझते हुए,

शरणहीन व्यक्ति5590 ने भविष्यवाणी की: (10-11) [5672-5673]

आप सभी इस महान ऋषि को देखिए,5591
चमकदार सोने के रंग की त्वचा,
ऊपर की ओर बढ़ते बाल, चौड़े कंधे,5592 दृढ़ता से खड़ा,5593 हाथ जोड़े हुए,5594 हँसी से भरी आँखें,
घर पर बुद्ध की प्रशंसा करने में,5595
शिक्षा को उत्कृष्ट रूप से ग्रहण करते हुए,5596
छिड़के हुए अमृत के समान।5597 (12-13) [5673-5674]5598

कच्चाना के सद्गुणों के बारे में सुनकर,
वह वहाँ खड़ा होकर उस जगह की कामना कर रहा है। बहुत दूर भविष्य में,
वह महान ऋषि गौतम हैं, जो उस धर्म के योग्य उत्तराधिकारी हैं , धर्म की वैध संतान हैं।
यह व्यक्ति उस गुरु का अनुयायी होगा;
तब उसका नाम कच्चना होगा। (14-15) [5675-5676]

अत्यंत विद्वान, महान ज्ञान से परिपूर्ण, निष्कर्ष निकालने में कुशल, एक ऋषि।
वह उस [इच्छित] स्थान को प्राप्त कर लेगा।
जैसा कि मैंने पहले ही भविष्यवाणी कर दी है। (16) [5677]

उस कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (17) [5678]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:

5588 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5589 pariḷāho
5590 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5591 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके के रूप में और भी बल दिया गया है) , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
5592 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5593 samādhikusalo ahaŋ
5594 iddhipādesu kovido
5595 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5596 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5597 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
5598 महाभि'सक्कसंका'सो
5599 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
5600 ॰विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
मैं दूसरे पुनर्जन्मों में नहीं जाता:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (18) [5679]

[जब मैं इंसान था] मैं दो कुलों में पैदा हुआ था:
क्षत्रिय या ब्राह्मण।
मैं निम्न कुलों में जन्म नहीं लेता:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (19) [5680]

अब, अपने अंतिम जन्म में, मेरा जन्म उज्जैन नगर में हुआ, 5601 तेज, वेदों का स्वामी, तिरितिवच्छ का पुत्र, 5602
ब्राह्मण परामर्शदाता कौन था?5603
[राजा] का, पज्जोत चंद;5604
मेरी माँ का कैंडापडुमा;5605
मैं कच्चाना हूँ, जिसकी त्वचा उत्कृष्ट है। (20-21) [5681-5682]

पृथ्वी के रक्षक द्वारा भेजा गया 5606
पुण्य के ढेर, नेता, स्वतंत्रता नगर के द्वार को देखकर बुद्ध को आमंत्रित करने के लिए, 5607
और उनके त्रुटिहीन भाषण को सुनकर, जो पुनर्जन्म के मैल को धो देता है,
मैंने अमर शांति प्राप्त कर ली।
पाँच सौ [सहयोगियों] के साथ। (22-23) [5683-5684]

जन्मजात ही निष्कर्ष निकालने में कुशल, बेहद धनी और आकर्षक।
मुझे उस सबसे प्रमुख स्थान पर रखा गया था।
अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति का, बुद्धिमान व्यक्ति का।5608 (24) [5685]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (25) [5686]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

5601 diṭṭhigaṇḍa°
5602 लोकापज्जोटो
5603 sanar'āmar'a'sakk'at'o
5604 नारदिक्को
5605 लिट., “में”
5606 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5607 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
5608 mahā'ssādaŋ

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [5687]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (27) [5688]

इस प्रकार पूज्य महाकच्चाना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

महाकच्चाना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

529. {532.}5609 वक्कली5610

एक लाख युगों बाद [संसार में] एक नेता का उदय हुआ।
श्रेष्ठ नाम वाला, 5611 असीम एक, 5612
जिसका नाम पदुमुत्तरा था। (1) [5689]

[उनका] भाषण कमल के गुणों से युक्त था,5613 त्वचा5614 कमल की तरह निर्मल थी;5615 [बुद्ध] संसार से अछूते थे, जैसे गुलाबी कमल पानी से। (2) [5690]

बुद्धिमान,5616, कमल के पत्तों जैसी आँखों वाला,5617
प्रिय, कमल के समान,5618
उसमें कमल जैसी अद्‌भुत सुगंध थी;5619
इसलिए उसका [नाम] "सर्वश्रेष्ठ कमल" था।5620 (3) [5691]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5609 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5610 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5611 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5612 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5613 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5614 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5615 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5616 lit., "गया"

5617 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5618 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5619 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5620 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंड (भाग, अंश, पिंड, एक छोटा सा हिस्सा) "

दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, अभिमान से मुक्त, 5621
कहावत 5622 अंधों के लिए आंखें, 5623
सद्गुण-खजाना,5624 शांति का मुखौटा,5625
करुणामय विचारों का सागर, 5626 (4) [5692]

ब्रह्मा, दैत्यों और देवताओं द्वारा सराहे गए,5627
महान नायक, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, 5628
देवताओं के साथ-साथ पुरुषों से भी भरा हुआ,5629
एक बार, लोगों के बीच निवास करते हुए,5630 वह (5) [5693]

उन्होंने अपने मधुर भाषण से पूरी भीड़ को प्रसन्न कर दिया।
और उसकी आवाज शहद जैसी मीठी थी।
[जबकि] अपने ही अनुयायी की प्रशंसा कर रहे हैं: (6) [5694]

“विश्वास में दृढ़, नेक मन से, और अपनी दिखावट के लिए ललक से भरा हुआ,5631 उसके जैसा कोई दूसरा नहीं है”
जैसा कि यह भिक्षु [नाम] वक्कली है।”5632 (7) [5695]

उस समय मैं हंसवती नगर में एक ब्राह्मण का पुत्र था।
बुद्ध का भाषण सुनने के बाद,
मुझे उस जगह की बहुत चाह थी। (8) [5696]

स्टेनलेस स्टील वाले को आमंत्रित करते हुए,
तथागत, अपने अनुयायियों को एक सप्ताह तक भोजन कराने के बाद,
मैंने उन्हें नए कपड़े से ढक दिया। (9) [5697]

असीम सागर में डूबे बुद्ध को प्रणाम करते हुए, मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]।” .

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 5621 में कई भिन्नताओं के साथ 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
5622 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5623 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

5624 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5625 लिट., “एक फूल पर”
5626 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5627 khiḍḍār'ati'y'ā
5628 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5629 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5630 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।
5631 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”
5632 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

सद्गुणों से परिपूर्ण, आनंद से लबालब,
मैंने उससे ये शब्द कहे [तभी]: (10) [5698]

“हे [महान] ऋषि, सात दिन पहले,
आपने उस भिक्षु की प्रशंसा की जो आस्थावान भिक्षुओं में सबसे आगे है;
मैं [किसी दिन] उसके जैसा बन जाऊँगा।” (11) [5699]

जब यह कहा गया, तो महान नायक, जिसकी दृष्टि अबाधित है,
उस महान ऋषि ने यह भाषण दिया।
[इकट्ठी] भीड़ के लिए: (12) [5700]

आप सभी लोग इस युवक को देखिए,
चमकीले सुनहरे रंग के वस्त्र पहने हुए,5633
उसके धड़ पर सोने की ब्राह्मण की माला 5634,
लोगों की आँखों [और] दिमागों को स्थानांतरित करना। (13) [5701]

बहुत दूर भविष्य में,
यह अनुयायी होगा
गौतम [बुद्ध], महान ऋषि,
विश्वास पर दृढ़ रहने वालों में सबसे आगे। (14) [5702]

चाहे वह मनुष्य के रूप में जन्मा हो या दिव्य रूप से, वहाँ हर तरह की पीड़ा से बचता हो, हर संपत्ति से सुसज्जित हो।
वह खुशी-खुशी पुनर्जन्म लेगा। (15) [5703]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (16) [5704]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम वक्काली है

शिक्षक का अनुयायी होगा। (17) [5705]

उस कर्म की श्रेष्ठता के कारण,5635 और [मेरे] इरादे और संकल्प के कारण, [अपने] मानव शरीर का त्याग करते हुए,
मैं तब तावतिंसा गया। (18) [5706]

जन्म-जन्मांतर तक आवागमन करते हुए, हर स्थान पर सुखी रहना।

5633 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5634 pariḷāho
5635 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

मेरा जन्म एक विशेष 5636 कबीले में हुआ था।
श्रावस्ती नगर में। (19) [5707]

महान ऋषि के चरणों में, [मेरे माता-पिता], भूत-प्रेतों के भय से भयभीत होकर,5637 दुखी मन से मुझे [वहाँ] लिटा दिया, मैं [अपनी पीठ के बल] सीधा लेटा हुआ सो रहा था, ताजा मक्खन की तरह कोमल।
नवजात कमल के अंकुर की तरह कोमल। "हे प्रभु, हम आपको यह [लड़का] सौंप रहे हैं;
कृपया उनका समर्थन करें,5638 हे [विश्व-]नेता।" (20-21) [5708-5709]

भयभीत लोगों के लिए शरणस्थली, [महान] ऋषि ने तब मुझे अपने कमल के समान कोमल हाथों से स्वीकार किया।
जो जालीदार था और शंखों से चिह्नित था। (22) [5710]

तब से मैं उसकी रक्षा में हूँ जिसकी रक्षा कोई नहीं करता;5639 पुनर्जन्म के सभी आधारों से मुक्त,5640 मैं
[मैं] बहुत खुशी से पला-बढ़ा हूँ। (23) [5711]

हर पल जब मैं उससे, उस बिछड़े हुए इंसान से वंचित रहती हूँ, तो मुझे उसकी बहुत याद आती है; क्योंकि मैं केवल सात साल की हूँ।
मैं बेघर हो गया। (24) [5712]

असंतुष्ट, मैं तरस रहा हूँ
उसका रूप सभी अच्छे गुणों से युक्त है,5641
सभी पूर्णता द्वारा उत्पादित, 5642
सौभाग्य का सर्वोच्च घर.5643 (25) [5713]

बुद्ध के स्वरूप के प्रति मेरे प्रेम को जानते हुए, विजेता ने मुझे फटकारा: "बस करो, वक्काली! आनंद क्यों ले रहे हो?"
रूप में, मूर्खों द्वारा आनंदित? (26) [5714]

जो महान शिक्षा को देखता है, वह बुद्धिमान व्यक्ति मुझे देख रहा है;

5636 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5637 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5638 samādhikusalo ahaŋ

5639 iddhipādesu kovido
5640 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”
5641 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5642 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
5643 महाभिऽसक्कसंकाऽसो

[परन्तु] महान शिक्षा को न देखकर, वह मुझे भी नहीं देख रहा है। (27) [5715]

शरीर अनंत खतरों से भरा है, इसे विषैले वृक्ष के समान बताया गया है; यह हर बीमारी का घर है।
यह तो बस दुखों का ढेर है। (28) [5716]

रूप से ऊब जाना, इसे इस रूप में देखना
भागों का उत्थान और पतन,5644
खुशी से, कोई पहुँचने वाला है
सभी अशुद्धियों का अंत।" (29) [5717]

इस प्रकार उनके द्वारा निर्देश दिए जाने पर,
नेता द्वारा, मित्रवत ऋषि द्वारा, गिद्ध शिखर पर आरोहण करने के बाद, 5645
मैंने एक गुफा में ध्यान किया।5646 (30) [5718]

पर्वत की तलहटी में खड़े महान ऋषि ने मुझसे कहा, “हे वक्कली,” और विजेता के शब्दों को सुनकर रोमांचित हो गए।5647
मैं उस पर्वत की ढलान से छलांग लगाकर सैकड़ों आदमियों की लंबाई जितनी ऊँचाई तक पहुँचा, फिर बुद्ध की भव्य प्रतिमा के बीच से गुजरा।
मैं आराम से जमीन पर पहुँच गया। (31-32) [5719-5720]

उन्होंने एक बार फिर धम्म का उपदेश दिया , जिसमें शरीर के अंगों के उत्थान और पतन का वर्णन था।
[और इस बार,] शिक्षा को समझते हुए,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (33) [5721]

फिर एक विशाल जनसमूह के बीच,
हे महान बुद्धि वाले, मृत्यु के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके उस व्यक्ति ने मुझे नियुक्त किया है।
विश्वास पर दृढ़ रहने वालों में सबसे आगे। (34) [5722]

उस [अच्छे] कर्म को करने के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । (35) [5723]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;
सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

5644 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
5645 ०विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

5646 दिट्ठिगण्ड°
5647 लोकापज्जोटो

टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (36) [5724]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (37) [5725]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (38) [5726]

इस प्रकार पूज्य वक्कली थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वक्कली थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

530. {533.}5648 महाकप्पिन5649

विजेता, पद्ममुत्तरा, हर चीज में पारंगत थे।
वह विश्व के दायरे में ऊपर उठा,5650
शरद ऋतु के आकाश में सूर्य की तरह। (1) [5727]

अपनी शब्द-किरणों से वह ज्ञान की वस्तुओं नामक कमलों को जागृत करता है।
अपने विचार-किरणों से नेता सफाई करता है
गंदगी [जिसे] अपवित्रता के रूप में जाना जाता है। (2) [5728]

प्रतिद्वंद्वियों की प्रसिद्धि सूर्य द्वारा जुगनू की रोशनी की तरह नष्ट हो जाती है;
वह सत्यता का प्रकाश फैलाता है5652
जैसे कोई रत्न सूर्य के प्रकाश को प्रतिबिंबित करता है। (3) [5729]

जैसे सागर रत्नों के लिए होता है, वैसे ही वह गुणी लोगों के लिए भविष्य है;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5648 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5649 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5650 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5651 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5652 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

जैसे जीवित प्राणियों के लिए वर्षा का बादल,
वह शिक्षा के बादल से वर्षा करता है। (4) [5730]

मैं उस समय “हंसा” नामक नगर में मजिस्ट्रेट5653 था;5654 पास आते ही मैंने शिक्षा सुनी,
“सुपरब लोटस” नामक एक का,5655
जो मेरे मन को शुद्ध कर रहा था5656
[जबकि] गुण की व्याख्या करते हुए
एक अनुयायी जिसने यह कृत्य किया था,5657
भिक्षुओं का उपदेशक। (5-6) [5731-5732]

प्रसन्न होकर,5658 खुश होकर,5659 सुनकर, [तब] तथागत को आमंत्रित करके, [उन्हें] अपने छात्रों के साथ भोजन कराकर,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (7) [5733]

तब उस परम भाग्यशाली ने हंस या ढोल की तरह ऊँची आवाज़ में कहा,5660 “उसे देखो, एक महान मंत्री, मामलों की जाँच करने में कुशल।”
मेरे पैरों के सामने गिर पड़ा,
उसके शरीर के बाल 5661 ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं,
वर्षा-बादल के रंग का5662 [और] चौड़े कंधों वाला,5663
मनमोहक आँखों और चेहरे के साथ, (8-9) [5734-5735]

एक विशाल दल-बल के साथ, राजत्व की ओर अग्रसर, अत्यंत प्रसिद्ध। दयालुता के साथ वह शुभकामनाएं दे रहा है।
इस विलेखकर्ता के स्थान के लिए.5665 (10) [5736]

5653 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5654 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5655 lit., “गया”
5656 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5657 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5658 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

5659 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5660 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5661 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5662 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5663 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5664 शाब्दिक अर्थ, "एक फूल पर"
5665 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

इस दान-पुण्य के कारण, जो इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ एक लाख युगों तक किया गया,5666
वह बुरे राज्य में पैदा नहीं होगा।5668 (11) [5737]

देवताओं में दिव्य भाग्य5669; मनुष्यों में महानता [जन्म के समय]: उसका आनंद लेने के बाद, विश्राम के माध्यम से,5670 वह निर्वाण प्राप्त करेगा। (12) [5738]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (13) [5739]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्मा की वैध संतान, जिसका नाम कप्पिना है।
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (14) [5740]

और अतः, अच्छे कर्म करने के बाद, विजेता के विधान में, अपने मानव शरीर का त्याग करके,
मैं तब तावतिंसा गया। (15) [5741]

मैंने धार्मिक रूप से5671 [दोनों] दैवीय और मानवीय राज्यों पर शासन किया, और मेरा जन्म बनारस के निकट हुआ।
नौकरों के एक कबीले में जो बुनाई करते हैं.5672 (16) [5742]

हजारों अनुयायियों के साथ, अपनी मुख्य रानी के साथ, मैंने पाँच सौ लोगों की सेवा की।
स्वयं से प्रबुद्ध बुद्ध।5673 (17) [5743]

तीन महीने तक उन्हें भोजन कराने के बाद, हमने उन्हें तीन वस्त्र दिए। वहाँ से गिरकर हम सब

5666 khiḍḍār'ati'y'ā
5667 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

5668 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5669 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5670 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5671 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5672 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5673 pariḷāho
5674 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

तीस [देवताओं] के बीच उत्पन्न हुआ.5675 (18) [5744]

वहां से गिरने के बाद हम सभी फिर से मानव अस्तित्व में लौट आए।
हम कुक्कुटा शहर में 5676 नंबर पर पैदा हुए थे।
हिमालय की ओर। (19) [5745]

जन्म के समय मेरा नाम कप्पिना था;
राजा का पुत्र, बहुत प्रसिद्ध।
बाकी लोग एक कबीले में पैदा हुए थे।
मंत्रीगण; उन्होंने मेरी सेवा की। (20) [5746]

राजत्व का सुख प्राप्त करके, मैं हर सुख में समृद्ध हो गया।
व्यापारियों से सुनकर मुझे पता चला,5678
कि बुद्ध का उदय हुआ था: (21) [5747]

"संसार में एक बुद्ध का उदय हुआ है; अद्वितीय,5679 एकमात्र व्यक्ति,5680 वे महान शिक्षा की घोषणा कर रहे हैं: परम, अमर आराम। (22) [5748]

और उनके विद्यार्थी पूरी तरह से सक्रिय, स्वतंत्र और पवित्र हैं।"
वह अच्छी बात सुनने के बाद, [और]
व्यापारियों को सम्मान देते हुए, (23) [5749]

मैंने राजसत्ता त्याग दी, मंत्रियों सहित, मैं बुद्ध के प्रति समर्पित होकर चला गया।
महान कनाडा नदी को देखना5683 —
समतल किनारों वाला, पानी से भरा हुआ, थोड़ा ऊबड़-खाबड़, बिना सहारे के।
एक तीव्र धारा जिसे पार करना कठिन है —
बुद्ध के सद्गुणों को याद करते हुए,
मैं सुरक्षित रूप से पार हो गया। (24-25) [5750-5751]

"यदि [वह] अस्तित्व की धारा को पार कर जाए, बुद्ध, ज्ञाता, संसार के अंत की ओर जाने वाला,

---

5675 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5676 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

5677 samādhikusalo ahaŋ
5678 iddhipādesu kovido
5679 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5680 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5681 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
5682 महाभिऽसक्कसङ्काऽसो
5683 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

उस सत्यता के कारण,
मेरी यात्रा सफल हो! (26) [5752]

यदि यह मार्ग शांति की ओर जाता है,
और मुक्ति एक शांतिपूर्ण आराम है, क्योंकि यह सत्य है।
मेरी यात्रा सफल हो! (27) [5753]

यदि भिक्षुओं5684 ने बंजर भूमि को पार कर लिया है, जो पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है,
उस सत्यता के कारण,
मेरी यात्रा सफल हो!" (28) [5754]

जब वह सत्य-इच्छा 5685 पूरी हो गई, तो सड़क से पानी हट गया।
इस प्रकार मैंने सुरक्षित रूप से पार कर लिया।
नदी के सुंदर तट पर। (29) [5755]

मैंने बुद्ध को बैठे हुए देखा, जैसे सूर्योदय के समय सूर्य सोने के पहाड़ की तरह चमक रहा हो।
दीपकों के वृक्ष की तरह चमकते हुए, (30) [5756]

अपने अनुयायियों से घिरा हुआ
चंद्रमा और तारों की तरह, देवताओं के राजा की तरह 5686 वर्षा करते हुए
आनंदमय उपदेश-जल। (31) [5757]

मंत्रियों के साथ आराधना करते हुए, मैं एक तरफ से उनके पास गया।
और फिर, अपनी इच्छा को पहचानते हुए,
बुद्ध ने वहाँ धम्म का उपदेश दिया । (32) [5758]

उस निष्कलंक शिक्षा को सुनकर, हमने विजेता से यह कहा:
"हे महान ऋषि, कृपया [अब] हमें दीक्षा दें, हम अस्तित्व से विरक्त हैं।" (33) [5759]

"हे भिक्षुओं, धर्म का उपदेश भली-भांति दिया गया है , जिससे आप दुखों का अंत कर सकते हैं;
ब्रह्मचर्य का मार्ग अपनाते हुए विचरण करना।
इस प्रकार सातवें ऋषि ने कहा। (34) [5760]

जब यह बात कही गई, तो हम सभी भिक्षुओं के समान दिखने लगे;

5684 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
5685 diṭṭhigaṇḍa°
5686 लोकपज्जोटो

हम सब तब पूरी तरह से पुरोहित हो चुके थे।
शिक्षाओं में धारा-प्रवेशकर्ता.5687 (35) [5761]

फिर जेतवन की ओर प्रस्थान करते हुए,
मार्गदर्शक ने हमें निर्देश दिए। इस प्रकार विजेता द्वारा निर्देश दिए गए।
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (36) [5762]

इसके बाद मैंने उन्हें फटकारा,5688
मेरे साथ हज़ार भिक्षु भी थे। फिर, मेरे निर्देश के कारण,
वे भी अशुद्धियों से मुक्त हो गए।5689 (37) [5763]

विजेता, उस सद्गुण से प्रसन्न होकर, [तब] उसे उस सर्वोपरि स्थान पर रखा, "भिक्षुओं के उपदेशकों के बीच,
कप्पिना का शीर्ष," [उसने] लोगों से कहा। (38) [5764]

कर्म ने एक लाख का फल दिया
[युगों बाद] ने मुझे यहाँ [इसका] फल दिखाया:
पूरी तरह से मुक्त, तीर की तरह तेज,
मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (39) [5765]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (40) [5766]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (41) [5767]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (42) [5768]

इस प्रकार पूज्य महाकप्पिना थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

महाकप्पिना थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5687 sanar'āmar'a'sakk'at'o

5688 नारदिको
5689 लिट., “में”
5690 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5691 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

---

531. {534.}5692 डब्बामल्ला5693

विजेता, पदुमुत्तरा,
समस्त लोकों के ज्ञाता, पाँच नेत्रों वाले ऋषि उठे।
एक लाख युगों बाद। (1) [5769]

उपदेशक,5694 प्रशिक्षक,5695
सभी सांसों पर विजय प्राप्त करने वाला, उपदेश देने में कुशल, बुद्ध।
कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [5770]

दयालु, 5698 करुणामय, 5699
सभी प्राणों के शुभचिंतक5700 ने पाँच सिद्धांतों में यह स्थापित किया।
सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [5771]

इस प्रकार वह प्रतिद्वंद्वियों द्वारा अस्पष्ट5701 और बहुत प्रसिद्ध5702 था, तथा अरहंतों द्वारा सुशोभित5703 था।
जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [5772]

उस महान ऋषि का शरीर अट्ठावन क्यूबिट (5704) लंबा था; वह सोने के समान मूल्यवान था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5692 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5693 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
5694 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5695 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5696 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5697 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

5698 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5699 lit., “गया”
5700 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5701 lit., “गिर गया”
5702 लिट., “योग्य”
5703 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5704 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5705 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए। (5) [5773]

उस समय लोगों की जीवन अवधि एक लाख वर्ष थी। इतने लंबे समय तक इस दुनिया में रहना,
उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [5774]

मैं उस समय हंसवती में एक करोड़पति का पुत्र था, और बहुत प्रसिद्ध था। (संसार के दीपक की ओर अग्रसर, 5706)
मैंने धम्म का उपदेश सुना । (7) [5775]

यह सुनकर मुझे खुशी हुई
बुद्ध के वे शब्द जो अपने अनुयायी, उस भिक्षु की प्रशंसा करते हैं।
भिक्षुओं के लिए आवास नियुक्त करना5707. (8) [5776]

मैंने अपना सिर उनके चरणों में झुकाया।
हे महान ऋषि, मैं आपकी आकांक्षाओं को पूरा करना चाहता था।
वह स्थान, उन लोगों में सबसे आगे जो
विधानसभा का प्रबंधन करें। (9) [5777]

उस समय महान नायक ने कहा;5708 उन्होंने मेरे कर्मों की इस प्रकार प्रशंसा की: “जिसने विश्व के नेता को भोजन कराया,
विधानसभा के साथ, एक सप्ताह के लिए, (10) [5778]

जिसकी आंखें कमल के पत्तों के समान हैं, सिंह के समान कंधे वाला, सुनहरी त्वचा वाला; मेरे चरणों के सामने गिरा हुआ।
उसने उस [सर्वोच्च] स्थान की कामना की है। (11) [5779]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (12) [5780]

वह बुद्ध का अनुयायी होगा

डब्बा नाम से प्रसिद्ध।
यह वाला सबसे ऊपर रहने वाला है
तब आवास का आवंटनकर्ता।" (13) [5781]

उस कर्म के अच्छे ढंग से, इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए जाने के कारण,

---

5706 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5707 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5708 lit., "एक फूल पर"

अपने मानव शरीर का त्याग करते हुए,
मैं तब तावतिंसा गया। (14) [5782]

मैंने तीन सौ बार [देवताओं के स्वामी] ने [वहाँ] दिव्य शासन किया।
और [फिर] पाँच सौ बार मैं था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (15) [5783]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था।
उस कर्म की शक्ति से,
मैं हर जगह खुश था। (16) [5784]

विपस्सी के नाम से प्रसिद्ध नेता, जिन्हें हर चीज की गहरी समझ है, 5709
आकर्षक आँखों वाला, उदय हुआ
विश्व, इक्यावन युग पहले। (17) [5785]

मैंने दुष्ट विचारों वाले उस तटस्थ व्यक्ति के एक अनुयायी को फटकारा।
जिसने सभी अशुद्धियों को नष्ट कर दिया था,
यह जानते हुए भी कि, "वह पवित्र है।" (18) [5786]

भोजन टिकट उपलब्ध कराने के बाद,5710
मैंने महान ऋषियों और उनके अनुयायियों को दूध में पका हुआ चावल अर्पित किया।
उसी पुरुष नायक का।5711 (19) [5787]

इस शुभ युग के दौरान
ब्रह्मा के सगे संबंधी, महान यशादा, जिनका वंश कश्यप कहलाता है,5712
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,5713 [बुद्ध,] उठे। (20) [5788]

व्यवस्था को रोशन करते हुए, दुष्ट प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करते हुए, सीखने के इच्छुक लोगों को शिक्षा देते हुए, वह
निर्वाण प्राप्त किया,5714 अनुयायियों के साथ.5715 (21) [5789]

बाल बिखरे हुए, आँखों में आँसू लिए, देवता।
वे भावुक हो गए और जब प्रभु ने उन्हें देखा तो वे रोने लगे।

5709 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5710 khiḍḍār'ati'y'ā
5711 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
5712 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5713 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5714 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5715 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

और छात्र निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, [उनके]
वितरण 5716 [अपने] लक्ष्य तक पहुँच रहा है: (22) [5790]

अफसोस! हममें कोई खास गुण नहीं हैं।
धम्म -नेत्र नष्ट हो जाता है ।5717
हमें अनुपालन करने वालों को देखने का अवसर नहीं मिलेगा।
हम महान शिक्षा नहीं सुनेंगे।" (23) [5791]

ठीक उसी समय, यह सारी पृथ्वी, जो अविचल है, कांप उठी, और सागर मानो शोक में डूबा हुआ था।5718
एक दयनीय गीत गा रहा था। (24) [5792]

और चारों दिशाओं में ढोल गैर-मानव प्राणियों द्वारा बजाए जा रहे थे; हर तरफ से बिजली कड़क रही थी।5719
डरावने5720 [वहाँ मौजूद प्राणी]। (25) [5793]

उल्कापिंड 5721 आकाश से नीचे गिरा।
और जिसका झंडा धुआँ है5722 देखा गया5723।
जंगली जानवर दर्दनाक ढंग से दहाड़ रहे थे।
और पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले सभी प्राणी। (26) [5794]

भयंकर अपशकुनों को देखकर, जो व्यवस्था की स्थापना को चिह्नित करते हैं,5724572555555555555657265 ...
वहाँ [अभी भी बचे हुए] हम भिक्षुओं ने हिलकर [इसके बारे में इस तरह सोचा]: (27) [5795]

"[अब], हमारी अनुमति के बिना, हमारे लिए जीवन ही काफी है। जंगल में प्रवेश करके हम प्रयास करेंगे।"
विजेता के विधान में।" (28) [5796]

हमने एक ऊँचा, शानदार पहाड़ देखा
उस समय जंगल में।

5716 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

5717 pariḷāho
5718 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5719 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
5720 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5721 samādhikusalo ahaŋ
5722 iddhipādesu kovido
5723 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5724 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5725 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
5726 महाभिऽसक्कसङ्काऽसो
5727 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते हुए, 5728
हम सीढ़ियों से गिर गए। (29) [5797]

फिर एक बुजुर्ग5730 ने हमें चेतावनी दी: "बुद्ध का उदय पाना कठिन है; तुम्हारे लिए अच्छी बात यह है कि तुम्हें विश्वास प्राप्त हो, जो इस युग का छोटा सा अवशेष है।
वे गिर पड़े हैं, अंतहीन दुख के सागर में अपना मौका गंवा रहे हैं।
इसलिए भरपूर प्रयास किए जाने चाहिए
जबकि ऋषि का विचार बना रहता है।" (30-31) [5798-5799]

वह बुजुर्ग अरहंत थे।
एक गैर-वापसीकर्ता उसके पीछे-पीछे गया।5731
अच्छे नैतिक मूल्यों में दृढ़ रहते हुए,
हम में से बाकी लोग देवताओं के लोक में चले गए। (32) [5800]

उस पवित्र धाम में उस एक [भिक्षु]5732 ने निर्वाण प्राप्त किया, अस्तित्व को पार किया;5733 [परन्तु] मैं और पुक्कुसाती [भी],
साभिया, वैसे ही बाहिया, वैसे ही कुमार-कस्सप,
हम यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म लेते हैं [अब]5734
जीवन के बंधनों से मुक्त,
गौतम [बुद्ध] द्वारा दया की गई। (33-34) [5801-5802]

कुसिनारन मल्ल में जन्मे,
गर्भ में भी मैं सचेत थी। मृत माँ5735 को चिता पर उठाया गया;
मैं [उनमें से एक था] जो उससे अलग हो गया था। (35) [5803]

मैं लकड़ी के ढेर पर उतरा;5738
इसलिए मुझे "डब्बा" के नाम से जाना जाता था।5739
पवित्र जीवन की शक्ति के माध्यम से,5740

5728 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

5729 दिट्ठिगण्ड°
5730 लोकापज्जोटो
5731 sanar'āmar'a'sakk'at'o
5732 नारदिक्को
5733 लिट., “में”
5734 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5735 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
5736 mahā'ssādaŋ
5737 mahār'a'saŋ
5738 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
5739 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
5740 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

मुझे रिहा कर दिया गया, [महज] सात साल का। (36) [5804]

दूध-चावल के फल के कारण,5741
मुझे पाँच उत्तम गुण प्राप्त हैं;5742
शुद्ध भिक्षु को फटकार लगाने के कारण,5743
मुझे कई बुरे लोगों ने उकसाया।5744 (37) [5805]

अब मैं पुण्य और पाप दोनों से परे हो चुका हूँ। परम शांति प्राप्त कर चुका हूँ।
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (38) [5806]

जो लोग मेरी बात मान रहे थे, उन्हें हंसाते हुए मैंने उनके लिए आवास की व्यवस्था कर दी।
विजेता, उस सद्गुण से प्रसन्न होकर,
[तब] मुझे उस सबसे आगे वाले स्थान पर रख दिया। (39) [5807]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (40) [5808]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (41) [5809]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (42) [5810]

इस प्रकार पूज्य दब्बमल्लपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

दब्बमल्लपुत्त थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

5741 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
5742 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
5743 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
5744 या "शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना"
5745 लिट., "बहिर्वाहों का विनाश"

532. {535.}5746 कुमार-कस्सापा5747

एक लाख युगों बाद [संसार में] नेता का उदय हुआ।
हीरो, हर दुनिया का दोस्त, 5748
जिसका नाम पदुमुत्तरा था। (1) [5811]

उस समय एक ब्राह्मण होने के नाते, एक प्रतिष्ठित वैदिक गुरु, दोपहर के आराम के दौरान भ्रमण करते हुए,5749
मैंने विश्व के नेता को देखा, जो चार आर्य सत्यों की व्याख्या कर रहे थे, देवताओं के साथ दुनिया को जागृत कर रहे थे, और भीड़ में उनकी स्तुति कर रहे थे।
विविध प्रवचन वाले शीर्ष पर। (2-3) [5812-5813]

उस समय, प्रसन्न हृदय से, उस दिवंगत आत्मा को आमंत्रित करते हुए, एक मंडप को सजाया गया था।
विभिन्न रंगों से रंगे हुए, विभिन्न रत्नों से जगमगाते हुए कपड़ों के थानों के साथ,
मैंने [उसे] उसमें मौजूद 5750 भिक्षुओं के साथ भोजन कराया।
एक सप्ताह तक उन्हें विविध, उत्तम और स्वादिष्ट भोजन खिलाने के बाद, विभिन्न रंगों के फूलों से उनकी और उनके अनुयायियों की पूजा करने के बाद,
उसके पैरों के सामने गिरते हुए,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (4-6) [5814-5816]

तब परम पूज्य ऋषि,5752 करुणा के स्वाद के एकमात्र भंडार,5753 ने कहा: "उस परम पूज्य ब्राह्मण को देखो,
कमल के समान चेहरे और आंखों वाला

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5746 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5747 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5748 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5749 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5750 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5751 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5752 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5753 lit., "गया"

अत्यंत आनंद और प्रसन्नता से भरा हुआ, उसके शरीर के बाल ऊपर की ओर बढ़ रहे थे, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अत्यंत प्रसन्न थीं, वह मेरी कृपा पाने के लिए लालची था।
मेरे पैरों के सामने गिर पड़ा,
खुशी-खुशी एक उद्देश्य की ओर मुड़ा [उद्देश्य:]5754
वह उस [सर्वोच्च] स्थान की कामना कर रहा है
[उपदेशकों के साथ] विविध प्रवचन.5755 (7-9) [5617-5819]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (10) [5820]

उस धर्म के योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, कुमार-कस्सपा, वह
शिक्षक का अनुयायी होगा। (11) [5821]

उस वस्त्र की शक्ति के माध्यम से, जिस पर अनेक प्रकार के फूल और रत्न जड़े हुए थे,
वह सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगा।
विभिन्न प्रवचनों वाले [उपदेशकों] का।" (12) [5822]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (13) [5823]

मंच पर एक अभिनेता की तरह अस्तित्व के दायरे का भ्रमण करना,5756
हिरण का पुत्र [नाम] साखा,5758
मैं एक हिरणी के गर्भ में प्रवेश कर गया। (14) [5824]

और फिर जब मैं गर्भ में था, मेरी माँ की मृत्यु का समय निकट आ गया।5759
मेरी माँ साखा द्वारा बनाया गया 5760

5754 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5755 लिट., "गिर गया"
5756 लिट., "योग्य"

5757 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5758 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5759 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5760 °विकुटी°; मैं इसे परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तुलिका°) के रूप में समझता हूँ।

निग्रोधा की शरण लेने गया। (15) [5825]

उस हिरण-राजा [निग्रोध] द्वारा, वह
उसे [उसकी आसन्न] मृत्यु से मुक्त कर दिया गया। उसने [इसके बजाय] अपने जीवन का बलिदान दिया।
[निग्रोधा] ने तब मुझे इस प्रकार सलाह दी: (16) [5826]

केवल निग्रोधा ही परोसी जानी चाहिए;
साखा के साथ संगति मत रखो।5761
निरोध की देखरेख में मृत्यु बेहतर है।
साखा की देखरेख में जीवन से बेहतर।" (17) [5827]

हिरणों के राजा की उस सलाह से प्रेरित होकर, मेरी माँ और मैं, उनकी सलाह के कारण,
मनमोहक तुसिता स्वर्ग में आए5762
मानो हम अपना घर लेकर विदेश चले गए हों। (18-19) [5828]5763

फिर, जब हीरो कस्सपा का उपदेश अपने लक्ष्य तक पहुँच गया, तो वे पर्वत की चोटी पर चढ़ गए।
विक्टर की शिक्षाओं में लगे हुए,5764 (20) [5829]

अब, राजगृह 5765 [शहर] में,
मेरा जन्म एक धनी परिवार में हुआ था।
मेरी माँ, जब मैं उनके गर्भ में थी,
बेघर हो गया था। (21) [5830]

जब उन्हें पता चला कि वह गर्भवती है, तो वे देवदत्त5768 के पास गए। उन्होंने कहा, "तुम सब लोग निर्वासित हो जाओ5769"
यह बौद्ध भिक्षुणी5770 जो दुष्ट है।" (22) [5831]

अब [उसे] भी ऋषियों के स्वामी,5771 विजेता द्वारा दया दिखाई गई है,
मेरी माँ खुशहाल जीवन जी रही है।
बौद्ध भिक्षुणियों के लिए एक मठ में। (23) [5832]

घास या ऊन (देखें आरडी., एसवी)

5761 में उद्दालोमिका॰ को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5762 लिट., "एक फूल पर"
5763 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5764 khiḍḍār'ati'y'ā
5765 टाइडेस , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5766 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5767 नवा , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5768 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
5769 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5770 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5771 pariḷāho

यह जानकर, कोसला के पृथ्वी रक्षक ने राजकुमार की तरह मेरी देखभाल की।5772
और नाम से मैं "कस्सापा" था। (24) [5833]

क्योंकि वहाँ "महान कस्सपा" थे, इसलिए मुझे "लड़का कस्सपा" के नाम से जाना जाता था। बुद्ध के इस उपदेश को सुनकर कि शरीर चींटी के टीले के समान है,5773 मेरा मन पूरी तरह से आसक्ति से मुक्त हो गया।
राजा पायासी को वश में करने के बाद, 5774
तब मैंने वह सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। (25-26) [5834-5835]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (27) [5836]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [5837]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [5838]

इस प्रकार पूज्य कुमार-कस्सपा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कुमार-कस्सपा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

533. {536.}5775 बाहिया5776

एक लाख युगों बाद [संसार में] नेता का उदय हुआ।

5772 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5773 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5774 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5775 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5776 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

महान प्रकाश, 5777 तीनों लोकों के प्रमुख, 5778
जिसका नाम पदुमुत्तरा था। (1) [5839]

एक भिक्षु के सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए ऋषि की बातें सुनकर मेरा मन रोमांचित हो उठा।
जिन्हें तुरंत समझ आ गई थी;5779
महान ऋषि के लिए एक कार्य करते हुए, एक सप्ताह तक दान दिया।
अपने छात्रों के साथ ऋषि के पास, मैं
उन्हें प्रणाम करते हुए, संबुद्ध।
तब उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा की। (2-3) [5840-5841]

बुद्ध ने मेरे विषय में भविष्यवाणी की थी: "तुम सब इस ब्राह्मण को देखो, जो मेरे चरणों में गिरा हुआ है।"
चौड़े कंधों वाला, [मुझे] निहारता हुआ, [उसके] धड़ पर सोने की ब्राह्मण की माला5781, उसके शरीर पर सफेद त्वचा,
जिसके होंठ उभरे हुए और तांबे जैसे लाल हैं,
सफेद, नुकीले और समरूप दांत, सद्गुण की चरम शक्ति के साथ, [उसके] शरीर के बाल ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं, इंद्रियां सद्गुण से सराबोर हैं,5783 आनंद से खिलते चेहरे के साथ, तात्कालिक समझ रखने वाले भिक्षु के स्थान की कामना करते हुए।
भविष्य में, एक महान नायक
गौतम नाम से अस्तित्व में आएगा। (4-7) [5842-5845]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम बाहिया है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (8) [5846]

तब बहुत प्रसन्न होकर, जागृत होकर, जब तक मैं जीवित रहा, करता रहा।

5777 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5778 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।
5779 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5780 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5781 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5782 lit., “गया”
5783 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

ऋषि के लिए कर्म, पतन, मैं चला गया
स्वर्ग में, मानो मेरा अपना घर हो। (9) [5847]

उस कर्म के प्रभाव के कारण, चाहे मैं देवता के रूप में जन्म लूं या मनुष्य के रूप में, मैं [तब] पुनर्जन्म लेता हूं।
हर जगह सौभाग्य का आनंद लिया। (10) [5848]

फिर, जब हीरो कस्सपा का आदेश अपने लक्ष्य तक पहुँच गया, यानी पर्वत की चोटी पर चढ़ गया,
विक्टर की शिक्षाओं में लगे हुए,5784 (11) [5849]

शुद्ध नैतिक मूल्यों वाले, बुद्धिमान, विजेता की योजना के अनुयायी,
वहाँ से गिरे, [हम] पाँच लोग,5785
[तब] देवताओं के लोक में गया। (12) [5850]

फिर मेरा जन्म बाहिया के रूप में हुआ, 5786
भारुकच्छा में, 5787 सर्वश्रेष्ठ शहर।
वहाँ से मैं नाव द्वारा आगे बढ़ता हूँ।
खतरों से भरे समुद्र पर।5788 (13) [5851]

कुछ दिनों के बाद
वहाँ से नाव को तोड़ दिया गया;5789
फिर मैं 5790 [महासागर] में गिर गया,
भयानक, डरावना, समुद्री-राक्षस-खदान.5791 (14) [5852]

उस समय, बहुत संघर्ष के बाद, समुद्र पार करने के बाद, दिशाहीन अवस्था में,5792 मैं पहुंचा।
अच्छे बंदरगाह सुप्पारा.5793 (15) [5853]

5784 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5785 लिट., “योग्य”
5786 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5787 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप

भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

5788 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

5789 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

5790 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

5791 lit., "एक फूल पर"

5792 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

5793 khiḍḍār'ati'y'ā

मैंने छाल से बने वस्त्र पहने और भिक्षा मांगने के लिए गांव में प्रवेश किया।
तब वहाँ एक व्यक्ति प्रसन्न होकर बोला, "यह एक अरहंत हैं जो आए हैं;5795 उनका आदर करो5796 भोजन और पेय, वस्त्र और बिस्तर देकर।"
और [इसके अलावा] दवा के साथ,
हम उस कर्म के फल से प्रसन्न होंगे।" (16-17) [5854-5855]

उसे प्राप्त करने के बाद, वापस जाना,
[इस प्रकार] उनके द्वारा सम्मानित और पूजित,5797
मैंने गलती से इस विचार को जन्म दिया
[कि] "यह एक अरहंत है।" (18) [5856]

बाद में, अपने मन को समझने के बाद,
वापस न लौटने वाले ईश्वर ने 5798 को फटकारा: 5799 "तुम मार्ग, विधि नहीं जानते; 5800 तुम अरहंत कैसे हो सकते हो?" (19) [5857]

उसके द्वारा फटकारे जाने पर मैं विचलित हो गया; मैंने उससे वापस इस प्रकार पूछा: "वे कौन हैं, या संसार में कहाँ हैं?"
[वे] सर्वोच्च पुरुष, अरहंत? (20) [5858]

"अत्यंत बुद्धिमान,5801 अत्यंत बुद्धिमान,5802
विक्टर, श्रावस्ती में, कोसल के महल में,
शाक्यों का पुत्र, अरहंत, निष्कलंक
अरहंतत्व प्राप्त करने के लिए धम्म का प्रचार कर रहा है ।" (21-22) [5859]5803

तब उसके बारे में यह सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ, मानो कोई गरीब खजाना पाकर आश्चर्यचकित हो गया हो।
परम अरहंत पद के लिए मन रोमांचित हो गया, और
जानो 5804 सुंदर दिखने वाला, 5805 असीमित चरागाह। 5806 (23-24) [5860]

5794 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

5795 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

5796 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

5797 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”
5798 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5799 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी
5800 pariḷāho
5801 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5802 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5803 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5804 samādhikusalo ahaŋ
5805 iddhipādesu kovido
5806 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

उस समय प्रसन्न होकर, शिक्षक के लिए प्रस्थान करते हुए,5807
मैं हमेशा उस विजेता को देखता हूँ जिसका चेहरा बेदाग है।5808
विजिता नामक रमणीय उपवन की ओर बढ़ते हुए, 5809
मैंने ब्राह्मणों से पूछा, “विश्व का आनंद कहाँ है?”5810 (25-26) [5861]

तब उन्होंने उत्तर दिया, “वह जिसकी पूजा मनुष्य और देवता दोनों करते हैं।”5811
कुछ खाने की इच्छा से शहर में प्रवेश किया है;5812
बहुत जल्दी ही, ऋषि को देखने के लिए उत्सुक, 5813
उसके पास जाओ और उसकी पूजा करो, जो लोगों में सबसे श्रेष्ठ है।5814 (27-28) [5862]

और फिर, शीघ्रता से सर्वश्रेष्ठ नगर श्रावस्ती जाकर,
मैंने बुद्ध को विचरण करते देखा
भिक्षा के लिए, लोभ या इच्छा के बिना, हाथ में कटोरा लिए, एकाग्र दृष्टि से, मानो अमृत बाँट रहे हों,5815 सौभाग्य के निवास के समान,5816
चेहरा सूर्य की तेज रोशनी से जगमगा रहा है। (29-30) [5863-5864]

एक साथ आना, सिर झुकाना,
तब मैंने उनसे ये शब्द कहे: “हे गौतम, आप ही मेरी शरण बनो।”
जो गलत रास्ते पर भटक गया हो।” (31) [5865]

सातवें ऋषि ने मुझसे यह कहा: “मैं जीवों को पार कराने के लिए भिक्षायात्रा पर निकला हूँ;
आपको धम्म बताने का समय आ गया है । (32) [5866]

मैंने बार-बार बुद्ध से धर्म के प्रति लालसा रखते हुए प्रार्थना की । तब उन्होंने मुझे धर्म का उपदेश दिया।
वह अवस्था जो गहरी और खाली है। (33) [5867]

उनकी शिक्षा सुनकर, मैंने बहिर्वाहों का विनाश प्राप्त किया।5817

5807 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5808 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

5809 महाभि'सक्कसंका'सो

5810 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

5811 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

5812 दिट्ठिगण्ड°

5813 लोकापज्जोटो

5814 sanar'āmar'a'sakk'at'o

5815 नारदिको

5816 लिट., “में”

5817 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

मेरी जीवन अवधि पूरी तरह से नष्ट हो गई।
हे!5818 शिक्षक की दयालुता!5819 (34) [5868]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (35) [5869]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (36) [5870]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (37) [5871]

इस प्रकार बाहिया दारुचिरिया नामक बुजुर्ग ने भविष्यवाणी की।5821
वह कूड़े के ढेर पर गिर गया।5822
जब उसे एक गाय ने सींगों से घायल कर दिया था। (38) [5872]

अपने पूर्व आचरण का विस्तृत वर्णन करने के बाद, वह अत्यंत बुद्धिमान वीर पूर्णतः स्वर्ग सिधार गया।5824
श्रावस्ती में, सर्वोच्च नगरी। (39) [5873]

फिर शहर से प्रस्थान करते हुए,
सातवें ऋषि ने उसे देखकर— लकड़ी के वस्त्र धारण करने वाले ज्ञानी, बाह्यलोक में आए बाह्यलोक से आए व्यक्ति को देखकर,5825
अब सुरक्षित जमीन पर गिर गया है,5826
इंद्र के गिरे हुए ध्वज के समान,
जीवनकाल समाप्त, अपवित्रता समाप्त, 5827 ए
विजेता की शिक्षाओं का पालन करने वाला 5828 — (40-41) [5874-5875]

5818 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

5819 mahā'ssādaŋ

5820 mahār'a'saŋ
5821 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
5822 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
5823 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
5824 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
5825 लिट., “मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था”
5826 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
5827 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
5828 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”

शिक्षक ने अपने अनुयायियों से कहा
जो शिक्षाओं में आनंदित होते थे:5829
“प्राप्त करो, और उसे लेकर जला दो,
आपके साथी भिक्षु का शरीर.5830 (42) [5876]

एक स्तूप बनाओ [और] उसकी पूजा करो5831; इस महान ज्ञानी ने निर्वाण प्राप्त किया, तात्कालिक समझ में अग्रणी5832, मेरे शब्दों पर ध्यान देने वाला अनुयायी। (43) [5877]

किसी श्लोक का एक शब्द, जिसे सुनकर मन शांत हो जाता है, हजार श्लोकों से भी बेहतर है, यदि
उनके पास अर्थहीन शब्द हैं।5833 (44) [5878]

जहां जल और पृथ्वी, अग्नि और वायु का कोई आधार नहीं होता, वहां तारे नहीं चमकते, और सूर्य अदृश्य रहता है;
वहां चंद्रमा से प्रकाश नहीं मिलता, [और]
वहाँ अंधकार नहीं पाया जाता। (45, 46ए-बी) [5879]5834

और जब कोई स्वयं उस स्थान को जान लेता है, तो वह एक ऋषि या बुद्धिमान ब्राह्मण बन जाता है।
वह रूप और रूपहीनता से, सुख और दुख से मुक्त हो चुका है।
इस प्रकार [बुद्ध] ने कहा, हे भगवान,
ऋषि, तीनों लोकों के शरणस्थल। (46सी-डी, 47) [5880]

इस प्रकार पूज्य बाहिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

बाहिया थेरा की कथा का अंत हो गया है।

5829 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो
5830 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
5831 शाब्दिक अर्थ, “यहाँ”
5832 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
5833 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
5834 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"

---

534. {537.}5835 महाकौष्ठिका5836

विजेता, पदुमुत्तरा,
समस्त लोकों के ज्ञाता, पाँच नेत्रों वाले ऋषि उठे।
एक लाख युगों बाद। (1) [5881]5837
उपदेशक, 5838 प्रशिक्षक, 5839
सभी सांसों पर विजय प्राप्त करने वाला, उपदेश देने में कुशल, बुद्ध।
कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [5882]

दयालु,5842 करुणामय,5843
सभी प्राणों के शुभचिंतक5844 ने पाँच सिद्धांतों में यह स्थापित किया।
सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [5883]

इस प्रकार वह प्रतिद्वंद्वियों द्वारा अस्पष्ट5845 और बहुत प्रसिद्ध5846 था, तथा अरहंतों द्वारा सुशोभित5847 था।
जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [5884]

उस महान ऋषि का शरीर अट्ठावन क्यूबिट (5848) लंबा था; वह सोने के समान मूल्यवान था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5835 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

5836 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5837 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

5838 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

5839 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ को देखते हुए "उड़ना" के रूप में अनुवादित

5840 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

5841 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

5842 लिट., "गया"

5843 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

5844 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

5845 लिट., "योग्य"

5846 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5847 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5848 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5849 °विकुटी°; मैं इसे परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (तुलिका°) के रूप में समझता हूँ।

बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए। (5) [5885]

उस समय लोगों की जीवन अवधि एक लाख वर्ष थी। इतने लंबे समय तक इस दुनिया में रहना,
उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [5886]

फिर मैं वेदों के ब्राह्मण गुरु हंसवती में रहने लगा। (सर्वश्रेष्ठ कठोर लकड़ी के पास पहुँचते हुए, 5850)
मैंने धम्म का उपदेश सुना । (7) [5887]

फिर [बुद्ध] ने एक अनुयायी को नियुक्त किया,
जो विकसित चिंतन में परिचारित थे,5851 अर्थ और शिक्षण, व्युत्पत्ति और उपदेश में कुशल थे,
एक हीरो, उस सर्वोपरि स्थान पर। यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया; फिर एक हफ्ते तक मैंने उसे खाना खिलाया।
बेस्ट विक्टर, 5852 अपने अनुयायियों के साथ। (8-9) [5888-5889]

अपने शिष्यों के साथ ज्ञान सागर5853 को नए वस्त्रों से ढककर, अपने चरणों में प्रणाम करते हुए,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (10) [5890]

इसके बाद विश्व प्रमुख ने कहा: “उस उत्कृष्ट ब्राह्मण को देखो,
[अब] मेरे पैरों के सामने झुकी हुई, कमल-पेट की चमक के साथ।5854 (11) [5891]

यह व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के भिक्षु का स्थान प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है।
उस आस्था, उदारता और शिक्षा को सुनने के कारण,
वह जन्म-जन्मांतर तक जन्म लेता रहेगा और हर स्थान पर सुखी रहेगा;
बहुत दूर भविष्य में,
उसे वह रमणीय [स्थान] प्राप्त होगा। (12-13) [5892-5893]

एक लाख युगों में,

घास या ऊन (देखें आरडी., एसवी)

5850 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5851 लिट., “एक फूल पर”

5852 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5853 khiḍḍār'ati'y'ā
5854 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

ओक्काका (इक्ष्वाकु) कुल में उत्पन्न,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (14) [5894]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम कोट्टिता है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (15) [5895]

यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया, और फिर जीवन भर सचेत, प्रेममय और बुद्धिमान बना रहा।
मैंने विजेता (16) [5896] की सेवा की।

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (17) [5897]

मैंने तीन सौ बार [देवताओं के स्वामी] ने [वहाँ] दिव्य शासन किया।
और [फिर] पाँच सौ बार मैं था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (18) [5898]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था।
उस कर्म की शक्ति से,
मैं हर जगह खुश था। (19) [5899]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:
चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
मैं दूसरे पुनर्जन्मों में नहीं जाता:
यह अच्छे अभ्यास का फल है।5856 (20) [5900]

मैं दो उच्च कुलों, क्षत्रिय और ब्राह्मण में जन्मा हूँ।
मैं निम्न कुलों में जन्म नहीं लेता:
यह अच्छे अभ्यास का फल है। (21) [5901]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब मैं ब्रह्मा का वंशज था, और ब्राह्मण कुल में पुनर्जन्म लिया था।
श्रावस्ती में, बहुत धनी। (22) [5902]

5855 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5856 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5857 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

5858 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

माता का नाम चंदवती था;
मेरे पिता अस्सलायन।
जब पूरी बुद्धिमत्ता के साथ
बुद्ध ने मेरे पिता को उपदेश दिया,
अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति से प्रसन्न होकर, मैं बेघर हो गया। मोग्गलाना मेरे शिक्षक थे;
सारी का बालक5861 मेरा गुरु था। (23-24) [5903-5904]

जब मेरे बाल काटे जा रहे थे,
दृष्टियाँ भी अपनी जड़ों सहित कट गईं। भगवा वस्त्र धारण करके रहते हुए,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (25) [5905]

क्योंकि मेरे विचार का अर्थ और शिक्षण, व्युत्पत्ति और उपदेश अच्छी तरह से विकसित थे,
विश्व प्रमुख ने मुझे उस स्थान पर रखा।5862 (26) [5906]

उपतिस्सा द्वारा प्रश्न पूछा गया, 5863 I
explained5864 with no[thing] indistinct.
इस प्रकार विश्लेषणात्मक तरीकों में,
मैं धर्म में सर्वोपरि हूँ।5865 (27) [5907]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (28) [5908]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [5909]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [5910]

इस प्रकार पूज्य महाकोट्ठिका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

5859 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी

5860 pariḷāho

5861 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

5862 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)

5863 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

5864 samādhikusalo ahaŋ

5865 iddhipādesu kovido

महाकोट्ठिका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

535. {538.}5866 उरुवेलकासापा5867

विजेता, पदुमुत्तरा,
समस्त लोकों के ज्ञाता, पाँच नेत्रों वाले ऋषि उठे।
एक लाख युगों बाद। (1) [5911]5868
उपदेशक, 5869 प्रशिक्षक, 5870
सांस लेने वाले सभी जीवों में से क्रॉसर-ओवर5871
उपदेश देने में कुशल,5872 [वह], बुद्ध,
कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [5912]

दयालु, 5873 करुणामय, 5874
सभी प्राणों के शुभचिंतक5875 ने पाँच सिद्धांतों में यह स्थापित किया।
सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [5913]

इस प्रकार वह प्रतिद्वंद्वियों द्वारा अस्पष्ट5876 और बहुत प्रसिद्ध5877 था, तथा अरहंतों द्वारा सुशोभित5878 था।
जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [5914]

उस महान ऋषि का शरीर

5866 अपदाना नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5867 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5868 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5869 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5870 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5871 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5872 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5873 lit., "गया"

5874 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5875 lit., “गिर गया”
5876 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5877 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5878 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस इसे गेण्डु पढ़ता है। लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

अट्ठावन क्यूबिट 5879 [ऊंचाई] तक बढ़ गया;
वह सोने के समान मूल्यवान था,5880
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करना। (5) [5915]

उस समय लोगों की जीवन अवधि एक लाख वर्ष थी। इतने लंबे समय तक इस दुनिया में रहना,
उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [5916]

तब मैं हंसवती में रहता था।
एक उच्च सम्मानित ब्राह्मण। विश्व के लिए मशाल की ओर अग्रसर, 5881
मैंने धम्म का उपदेश सुना । (7) [5917]

उस महान व्यक्ति के 5882 अनुयायियों में से एक के पास एक विशाल दल था।
उन्हें सुनकर मैं रोमांचित हो गया।
उस प्रमुख स्थान पर रखा जाना। (8) [5918]

महान विजेता को आमंत्रित करते हुए,5883
मैंने उसे दान दिया।
मेरे 5884 बड़े दल के साथ, जिसमें एक हजार ब्राह्मण भी शामिल थे। (9) [5919]

नेता को प्रणाम करने के बाद, खुशी से एक तरफ खड़े होकर, भारी दान देते हुए,
मैंने उससे ये शब्द कहे [तभी]: (10) [5920]

“हे वीर, आप पर मेरे विश्वास और आपकी सेवा करने के कारण, मुझे एक बड़ा दल प्रदान कीजिए।”
[जबकि] इधर-उधर प्रवास करते हुए।” (11) [5921]

[बुद्ध], कोयल की आवाज वाले5886 शिक्षक, हाथी की तुरही जैसी आवाज वाले,5887 ने उस समय अनुचरों से बात की:
आप सभी इस ब्राह्मण को देखिए,

5879 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5880 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

5881 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5882 लिट., "एक फूल पर"
5883 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5884 khiḍḍār'ati'y'ā
5885 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5886 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5887 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।

सुनहरे रंग की विशाल भुजाओं वाला, कमल के समान चेहरे और आंखों वाला, ऊपर की ओर बढ़ते शरीर के बालों वाला।
खुश, अपने सद्गुण में विश्वास के साथ।5888 (12-13) [5922-5923]

यह उस स्थान तक पहुंचने की आकांक्षा रखता है
शेर की दहाड़ वाले भिक्षु का।5889
बहुत दूर भविष्य में,
उसे वह रमणीय [स्थान] प्राप्त होगा। (14) [5924]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (15) [5925]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम कस्सपा है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (16) [5926]

[तब] बानवे युग पहले,
एक शिक्षक थे, अद्वितीय, 5890
अतुलनीय, 5891 अद्वितीय: 5892
फुस्सा, विश्व का प्रमुख नेता। (17) [5927]

उस एक ने, समस्त अंधकार का नाश करके, उस विशाल उलझन को सुलझाकर,5893
अमरता की वर्षा हुई,
[दुनिया] को [उसके] देवताओं से ताज़ा करना। (18) [5928]

बनारस शहर में,
[पुनर्जन्म] राजा के पुत्र5894 उस समय, हम तीन भाई थे, हम सभी
राजा के विश्वास में। (19) [5929]

बलवान, वीर अंगों और रूप-रंग के साथ,5895
हम युद्ध में कभी पराजित नहीं हुए हैं।
फिर सीमावर्ती क्षेत्रों में अशांति फैल गई,

पृथ्वी के स्वामी ने हमसे कहा: (20) [5930]

5888 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
5889 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5890 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5891 pariḷāho
5892 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5893 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5894 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5895 samādhikusalo ahaŋ

"आओ, सीमावर्ती क्षेत्रों में जाकर, उस वन सेना का सफाया करो,5896 मेरे राज्य को शांत करने के बाद,
फिर से आना," उसने कहा। (21) [5931]

इसके बाद हमने [राजा से] कहा: "यदि आप हमें [बुद्ध], [विश्व के] नेता की सेवा करने की [अनुमति] देंगे,
तब हम तुम्हारे 5897 [शत्रुओं] को साफ कर देंगे।" (22) [5932]

फिर, पृथ्वी के रक्षक द्वारा भेजी गई हमारी इच्छा पूरी होने पर, हम सीमावर्ती क्षेत्रों को हथियारबंद बना देते हैं।
मुक्त होकर, हम फिर उसके पास आए। (23) [5933]

राजा से यह निवेदन करके कि हमें गुरु, विश्व-नेता की सेवा करने की अनुमति दी जाए, और इस प्रकार श्रेष्ठ ऋषि को प्राप्त करके,5898 हम
जब तक हम जीवित रहे, उसकी पूजा करते रहे। (24) [5934]

बहुत महंगा कपड़ा देना,
और प्रचुर मात्रा में 5900 स्वादिष्ट [दान भोजन],
और आवास5901 [जो] आनंददायक थे, और लाभकारी5902 दवाइयाँ
भिक्षुओं के साथ ऋषि के पास,5903 शिक्षा के कारण जन्म के प्रति तटस्थ, हम, नैतिक [और] दयालु,
ध्यान में लीन मन, प्रेममय हृदय, जो हर समय विश्व नेता की सेवा करते रहे हों,
जब विश्व प्रमुख ने निर्वाण प्राप्त किया,
अपनी पूरी ताकत से पूजा करना,5905 (25-27) [5935-5937]

वहाँ से गिरकर स्वर्ग चला गया,5906
हम तीनों ने अनुभव किया
उस स्थान पर होने पर बहुत खुशी मिलती है:

5896 iddhipādesu kovido
5897 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
5898 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
5899 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।
5900 महाभि'सक्कसंका'सो

5901 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
5902 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
5903 दिट्ठिगण्ड°
5904 लोकापज्जोटो
5905 sanar'āmar'a'sakk'at'o
5906 narādicco

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (28) [5938]

मंच पर एक जादूगर की तरह5907 जो खुद को बहुत बड़ा दिखाता है, इस प्रकार अस्तित्व में भ्रमण करता है5908
विदेह का राजा बन गया।5909 (29) [5939]

नग्न5910 गुण,5911 के शब्द पर
गलत विचारों पर निर्भर हो जाना,
मैं एक बुरे रास्ते पर चल पड़ा।
दी गई सलाह पर ध्यान न देना5914
मेरी बेटी [जिसे रुजा के नाम से जाना जाता है] द्वारा, 5915
मुझे [बाद में] बहुत सलाह दी गई
ब्राह्मण नारद द्वारा, 5916
गुण के बुरे विचारों का त्याग करके, विशिष्टता के साथ पूर्णता प्राप्त करके
दस [स्वास्थ्यवर्धक] कार्य करने के तरीके,5917
अपने शरीर को त्यागकर, मैं
महल के साथ स्वर्ग गया। (30-32) [5940-5942]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब मैं ब्रह्मा का संबंधी था।
बनारस में अपार धन-दौलत के साथ जन्म हुआ,5919
एक बड़े ब्राह्मण परिवार में.5920 (33) [5943]

मृत्यु, बीमारी और बुढ़ापे से भयभीत होकर, अपनी अपार संपत्ति का त्याग करके, निर्वाण के मार्ग की खोज में,
मैं जटिला के रूप में निकला।5921 (34) [5944]

और फिर मेरे वो दो भाई
वह भी मेरे साथ चला गया।

5907 लिट., “में”
5908 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
5909 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
5910 mahā'ssādaŋ
5911 mahār'a'saŋ
5912 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”

5913 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
5914 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
5915 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
5916 lit., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
5917 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
5918 या "शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना"
5919 लिट., "बहिर्वाहों का विनाश"
5920 या "जो बाहर गया था": पब्बाजितो
5921 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।

उरुवेला में निर्माण करने के बाद
एक आश्रम, मैं [तब] वहाँ रहता था। (35) [5945]

मेरे वंश के कारण मुझे "कस्सापा" नाम दिया गया, क्योंकि मैं उरुवेला में रहता था।
इसलिए मैं [इस नाम से] जाना जाता था।
"उरुवेला कस्सपा" का 5922 (36) [5946]

मेरा भाई नदी के पास रहता था;5923
उनका नाम "नदी कस्सपा" था। [दूसरा व्यक्ति] गया के पास रहता था;
नाम से वह "गया कस्सपा" है। (37) [5947]

नादिकसप्पा के लिए दो सौ, और मंझले भाई के लिए तीन सौ। मेरे लिए कम से कम पाँच सौ।
वे सभी छात्र जो [तब] मेरे पीछे आए। (38) [5948]

फिर बुद्ध, अनेक चमत्कार करते हुए, मेरे पास, विश्व-प्रमुख, मनुष्यों के सारथी के पास आए।
उन्होंने मुझे [सही मार्ग पर] निर्देशित किया। (39) [5949]

मुझे एक लाख लोगों के साथ "भिक्षु बनो" कहकर दीक्षा दी गई थी;
मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया।
उन सभी के साथ भी। (40) [5950]

वे और कई अन्य लोग भी
वे मेरे विद्यार्थी थे। मैं उन्हें निर्देश देने में सक्षम था।
जैसा कि सातवें ऋषि ने मुझे सलाह दी। (41) [5951]

उन्होंने मुझे सबसे आगे रखा
विशाल दल-भरी मंडली वालों में से! हे! बुद्ध के लिए किया गया यह कार्य कितना अद्भुत है!
[निश्चित रूप से] मेरे लिए फलदायी साबित हुआ। (42) [5952]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (43) [5953]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

5922 शाब्दिक अर्थ, "यहाँ"
5923 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (44) [5954]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (45) [5955]

इस प्रकार पूज्य उरुवेलकस्सपा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

उरुवेलकसप्पा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

536. {539.}5924 राधा5925

विजेता, पदुमुत्तरा,
समस्त लोकों के ज्ञाता, पाँच नेत्रों वाले ऋषि उठे।
एक लाख युगों बाद। (1) [5956]5926
उपदेशक, 5927 प्रशिक्षक, 5928
सभी सांसों पर विजय प्राप्त करने वाला, उपदेश देने में कुशल, बुद्ध।
कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [5957]

दयालु,5931 करुणामय,5932
सभी प्राणों के शुभचिंतक5933 ने पाँच सिद्धांतों में इसकी स्थापना की।
सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [5958]

इस तरह वह अनकंफ्यूज्ड5934 था

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5924 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5925 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

5926 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया) । खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5927 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5928 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5929 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
5930 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
5931 शाब्दिक अर्थ, "गया"
5932 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5933 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
5934 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

और प्रतिद्वंद्वियों द्वारा बहुत प्रसिद्ध5935, अरहंतों द्वारा अलंकृत5936
जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [5959]

उस महान ऋषि का शरीर अट्ठावन क्यूबिट5937 लंबा था; वह सोने के समान मूल्यवान था।
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करना। (5) [5960]

उस समय लोगों की जीवन अवधि एक लाख वर्ष थी। इतने लंबे समय तक इस दुनिया में रहना,
उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [5961]

फिर मैं मंत्रों के ब्राह्मण गुरु हंसवती में रहने लगा। उत्तम पुरुष के पास पहुँचते हुए, 5939
मैंने धम्म का उपदेश सुना , (7) [5962]

महान नायक, विश्व नेता, जनसमूहों में विश्वासयोग्य,5940 ने 5941 एक बुद्धिमान भिक्षु को नियुक्त किया,5942
उस [गुण] के सर्वोपरि स्थान में। (8) [5963]

उस समय नेता और सभा के लिए कार्य करने के बाद,
मैंने उनके चरणों में सिर झुकाया,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (9) [5964]

अपनी मधुर आवाज से5943 सभी अशुद्धियों और दागों को दूर करते हुए, वह सोने की ईंटों की तरह चमकदार,5944
तब भगवान ने मुझसे कहा,

5935 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए लैटिन शब्द "हजार" और "सौ" के संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

5936 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5937 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5938 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5939 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5940 लिट., "एक फूल पर"
5941 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5942 khiḍḍār'ati'y'ā
5943 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
5944 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

आप सुखी और दीर्घायु हों; आपका उद्देश्य पूर्ण हो। आपके लिए अत्यंत फलदायी होगा।
यह कार्य भिक्षुओं5946 और मेरे लिए किया गया। (10-11) [5965-5966]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (12) [5967]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसे राधा नाम दिया गया।
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (13) [5968]

तुम्हारे सद्गुणों से प्रसन्न होकर, शाक्यों के पुत्र, पुरुषों के श्रेष्ठ, नेता तुम्हें नियुक्त करने जा रहे हैं।5947
जो लोग तेज बुद्धि रखते हैं उनमें सबसे आगे। (14) [5969]

यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया, और फिर जीवन भर सचेत, प्रेममय और बुद्धिमान बना रहा।
मैंने विजेता की सेवा की। (15) [5970]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (16) [5971]

मैंने तीन सौ बार [देवताओं के स्वामी] ने [वहाँ] दिव्य शासन किया।
और [फिर] पाँच सौ बार मैं था
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। (17) [5972]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था।
उस कर्म की शक्ति से,
मैं हर जगह खुश था। (18) [5973]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब मेरा जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था।
गरीब, 5949 [और] कपड़ों और भोजन की कमी से जूझ रहे हैं,

5945 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5946 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
5947 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
5948 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
5949 pariḷāho

राजगीर में, अंतिम शहर.5950 (19) [5974]

जब मैं बूढ़ा और कमजोर हो गया था, तब मैंने तटस्थ सारिपुत्त को एक करछुल भर भोजन दिया।
और मैं [उनके] आश्रम में आया। (20) [5975]

मुझे कोई भी दीक्षा नहीं दे रहा था।
वृद्ध और कमजोर होते हुए;5952
इसी कारण से, पुराना और बदरंग हो गया है।
मैं उस समय दुखी था। (21) [5976]

मुझे देखकर, महान करुणा,5953 महान ऋषि ने मुझसे कहा: "इस दुःख का क्या अर्थ है, पुत्र?
मुझे अपनी मानसिक पीड़ा के बारे में बताओ।" (22) [5977]

मैं पुरोहित नहीं बनूंगा, हीरो।
आपके सुप्रसिद्ध शासनकाल में;
इसलिए मैं दुःख से व्याकुल हूँ;
हे नेता, मेरी शरण बनो।" (23) [5978]

फिर भिक्षुओं को एक साथ बुलाकर,
सातवें ऋषि ने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया: "जो लोग स्मरण रखते हैं, वे बोलें।"
इसकी सेवा [हमारे लिए]।" (24) [5979]

उस समय सारिपुत्त ने कहा:
मुझे उनका [हमारे लिए] किया गया कार्य याद है। उन्होंने हमें एक चम्मच भर खाना दिया था।
मुझे [तब] भिक्षा के लिए भटकना पड़ा।" (25) [5980]

उत्कृष्ट, उत्कृष्ट, आभारी सारिपुत्त! [अब] आप इस [पुरुष, एक] वृद्ध ब्राह्मण को नियुक्त करें;
वह एक शुद्ध नस्ल का घोड़ा बनने जा रहा है।5954 (26) [5981]

फिर मुझे आगे बढ़ना पड़ा और मुझे मिल गया।
उचित अनुष्ठान के साथ नियुक्त।5955

थोड़े ही समय में [मैंने] यह उपलब्धि प्राप्त कर ली

5950 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
5951 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
5952 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
5953 samādhikusalo ahaŋ
5954 iddhipādesu kovido
5955 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "

अपवित्रताओं का विनाश.5956 (27) [5982]

मैं रोमांचित और सचेत होकर ऋषि के शब्दों को ध्यानपूर्वक सुन रहा हूँ।
फिर विजेता ने मुझे उसमें बिठा दिया।
तेज बुद्धि वालों का सर्वोपरि स्थान। (28) [5983]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (29) [5984]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [5985]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (31) [5986]

इस प्रकार पूज्य राधा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

राधा थेरा की कथा का अंत हो गया है।

---

537. {540.}5957 मोघराजा5958

विजेता, पदुमुत्तरा,
समस्त लोकों के ज्ञाता, पाँच नेत्रों वाले ऋषि उठे।
एक लाख युगों बाद। (1) [5987]5959
उपदेशक, 5960 प्रशिक्षक, 5961
क्रॉसर-5962 से अधिक सभी सांस लेने वाले,

5956 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 5957 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
5958 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
5959 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
5960 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
5961 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
5962 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

उपदेश देने में कुशल,5963 [वह], बुद्ध,
कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [5988]

दयालु, 5964 करुणामय, 5965
सभी प्राणों के शुभचिंतक5966 ने पाँच सिद्धांतों में यह स्थापित किया।
सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [5989]

इस प्रकार वह प्रतिद्वंद्वियों द्वारा अस्पष्ट5967 और बहुत प्रसिद्ध5968 था, तथा अरहंतों द्वारा सुशोभित5969 था।
जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [5990]

उस महान ऋषि का शरीर अट्ठावन क्यूबिट (5970) लंबा था; वह सोने के समान मूल्यवान था।
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करना। (5) [5991]

उस समय लोगों की जीवन अवधि एक लाख वर्ष थी। इतने लंबे समय तक इस दुनिया में रहना,
उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [5992]

मैं उस समय हंसवती में था;
मैं एक विशेष 5972 कुल में पैदा हुआ था। दूसरों के लिए काम करने के लिए बाध्य, 5973 मैं
कोई संपत्ति नहीं थी। (7) [5993]

अधूरे तल पर रहना 5974
विशेष सीटों के लिए एक भंडारगृह का, 5975
मैंने वहाँ [उस फर्श पर] आग जलाई;

5963 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल))

5964 lit., “गया”
5965 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
5966 lit., “गिर गया”
5967 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
5968 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
5969 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
5970 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
5971 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
5972 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस द्वारा पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
5973 lit., “एक फूल पर”
5974 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
5975 khiḍḍār'ati'y'ā

धरती कठोर होकर काली पड़ गई। (8) [5994]

फिर भगवान ने अपने अनुयायियों को चार आर्य सत्य समझाते हुए एक अनुयायी की जमकर प्रशंसा की।
जिन्होंने निम्न दर्जे के कपड़े के वस्त्र पहने थे।5976 (9) [5995]

तब, उनके उस सद्‌गुण से रोमांचित होकर, वे तथागत के समक्ष गिर पड़े।
मैं उस सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था।
खुरदुरे वस्त्रों वालों में सबसे आगे। (10) [5996]

तब बुद्ध पद्ममुत्तरा ने अपने सभी अनुयायियों से कहा: “तुम सब उस व्यक्ति को देखो, फटे-पुराने कपड़े पहने हुए, दुबला-पतला शरीर लिए हुए,
उसके चेहरे पर आनंद और प्रसन्नता थी, वह आस्था से भरपूर था, खुश था, शरीर के बाल ऊपर की ओर बढ़े हुए थे।
दृढ़, हॉल में भोजन करते हुए।5977 (11-12) [5997-5998]

वह उस स्थान को प्राप्त करने की इच्छा रखता है।
इस भिक्षु का नाम सक्कासेना है;5978
उनकी आशा है कि यह प्रकट होगा
यह [भिक्षु] खुरदुरे कपड़े के वस्त्र पहने हुए है।” (13) [5999]

यह सुनकर,5979 रोमांचित होकर, विजेता के सामने सिर झुकाकर, विजेता के विधान में जीवन भर अच्छे कर्म करते हुए5980
उस कर्म के फलस्वरूप, मैंने दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ अपने मानव शरीर का त्याग कर दिया।
मैं तावतिंसा गया था। (14-15) [6000-6001]

विशेष सीटों के लिए भंडारगृह में फर्श जलाने के कृत्य के माध्यम से,
पूरे हजार [वर्षों] के लिए, मैं
नरक में जलते हुए, पीड़ा में रहते हुए। (16) [6002]

उस कर्म के शेष के कारण,
मैंने पाँच सौ [और] पुनर्जन्म लिए।

5976 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
5977 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "मेरे परम (या उत्कृष्ट) महल में"
5978 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
5979 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
5980 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

मानव वंश में जन्म लेने के कारण,
[और] मेरी जाति के चिह्नों से चिह्नित।5981 (17) [6003]

उन्हीं पांच सौ पुनर्जन्मों के लिए, मैं त्वचा रोग से पीड़ित हूं।
मुझे बहुत कष्ट सहना पड़ा।
उस कर्म की शक्ति के माध्यम से। (18) [6004]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में, आनंद से परिपूर्ण मन के साथ,
मैंने भीख मांगकर प्राप्त भोजन से लोगों का मनोरंजन किया।
उपरिट्ठ, प्रसिद्ध व्यक्ति.5982 (19) [6005]

शेष कर्म5983 के दौरान मैंने इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ अपने मानव शरीर का त्याग किया,
मैं तब तावतिंसा गया। (20) [6006]

जब मेरा आखिरी 5984 पुनर्जन्म हुआ, तो मैं एक योद्धा 5985 कबीले में पैदा हुआ।
मेरे पिता की मृत्यु के बाद,
तब मेरे पास एक बड़ा राज्य था। (21) [6007]

त्वचा रोग से पीड़ित होने के कारण मुझे रात में आराम नहीं मिलता। निरर्थक शाही आराम के कारण,5986
तब मुझे "बेकार लोगों का राजा" कहा जाता था।5987
शरीर की खामियों को देखकर,
मैं बेघर हो गया। मैंने विद्यार्थी के रूप में दाखिला लिया।
बावरी, प्रमुख ब्राह्मण का। (23) [6009]

एक विशाल दल के साथ, पुरुषों के नेता के पास पहुँचते हुए,5988
मैंने एक सूक्ष्म प्रश्न पूछा
हीरो, डिबेटर-क्रशर.5989 (24) [6010] "[इस दुनिया में या अगली दुनिया में]

5981 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी

5982 pariḷāho

5983 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

5984 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)

5985 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

5986 samādhikusalo ahaŋ

5987 iddhipādesu kovido

5988 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

5989 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

[या] ब्रह्मा के लोक में [उसके] देवताओं के साथ, [क्या] वह आपको, गौतम, प्रसिद्ध व्यक्ति, के दर्शन नहीं जान सकता? (25) [6011]

इस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान रखने वाला व्यक्ति5991 प्रश्न के माध्यम से इस बिंदु पर आता है, [जबकि] उस दुनिया को देखते हुए, [तब], क्या मृत्यु का राजा उसे नहीं देखता? (26) [6012]

सभी रोगों के चिकित्सक, 5992
बुद्ध ने मुझे उत्तर दिया: “संसार को खाली समझो।”
मोगराज;5995 हमेशा सचेत,
[और] अपने [झूठे] विचारों को जड़ से उखाड़ फेंकना,5996
इस तरह वह मृत्यु से परे चला जाएगा।
इस प्रकार दुनिया को देखते हुए,
मृत्यु का राजा उसे नहीं देखता। (27-28) [6013-6014]

और उस आयत का समापन इस प्रकार है, अपने बाल और दाढ़ी काटकर, केसरिया वस्त्र धारण करना।
मैं अरहंत भिक्षु बन गया। (29) [6015]

बीमारी से पीड़ित होने के कारण मैं सभा मठों में नहीं रहता।
“मठ को नाराज मत करो” —
उस शब्द से मैं और भी अधिक उत्पीड़ित हो जाता हूँ। (30) [6016]

कूड़े के ढेरों के ऊपर से, श्मशान भूमि से, गाड़ियों के रास्तों से [कपड़ा] लेकर, मैंने उससे [अपना] वस्त्र बनाया।
मैंने मोटे कपड़े का चोला पहना हुआ है। (31) [6017]

मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई कि मेरे सद्गुणों के कारण, महान चिकित्सक, नेता ने मुझे सर्वोच्च स्थान पर बिठाया।
जो खुरदुरे कपड़े के वस्त्र पहनते हैं। (32) [6018]

5990 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।

5991 महाभि'सक्कसंका'सो

5992 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

5993 ॰विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

5994 दिठ्ठिगण्ड°
5995 लोकापज्जोटो
5996 sanar'āmar'a'sakk'at'o
5997 narādicco
5998 लिट., “में”
5999 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

पुण्य और पाप दोनों ही नष्ट हो जाते हैं;
हर बीमारी दूर हो जाती है।
आग की तरह, [मैं] किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं हूँ; मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। (33) [6019]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (34) [6020]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (35) [6021]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (36) [6022]

इस प्रकार पूज्य मोगराज थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

मोगराज थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

Kaccāna, Vakkalī Thera,
जिसका नाम महाकप्पिना, डब्बा, और उसका नाम कुमार, बहिया, मास्टर कोथिता, उरुवेलकस्सप, राधा,
और पंडित मोगराजा।
यहां तीन सौ छंद हैं, जो अन्य बासठ छंदों पर ढेर किए गए हैं।

कच्चाना अध्याय, चौवनवाँ (6000)

6000 nibbāti , या “वह शांत हो जाता है”

भद्दिया अध्याय, पचपनवाँ

538. {541.}6001 लकुङ्कभद्दिया6002

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाली दृष्टि वाला, पाँच आँखों वाला, प्रकट हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6023]

तब मैं हंसवती में रहता था।
एक करोड़पति का बेटा, बहुत अमीर। पैदल घूमते हुए,
मैं भिक्षुओं के आश्रम में गया।6003 (2) [6024]

उस समय, विश्व के मशाल, नेता, धम्म का उपदेश दे रहे थे । उन्होंने एक अनुयायी की जमकर प्रशंसा की।
मधुर आवाज वालों में विशिष्ट। (3) [6025]

यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया और मैंने महान ऋषि के लिए एक नेक काम किया।
गुरु के चरणों की पूजा करने के बाद,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (4) [6026]

फिर भिक्षुओं की सभा के बीच,
बुद्ध, मार्गदर्शक,6005 ने भविष्यवाणी की: "बहुत दूर भविष्य में,
उसे वह रमणीय [स्थान] प्राप्त होगा। (5) [6027]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (6) [6028]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान,

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6001 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6002 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6003 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी के रूप में (पीएसआई यवयेन कल अहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या जंकेट के रूप में (पीएसआई: सिंह. रोटीया))। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6004 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6005 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

जिसका नाम भद्दिया है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (7) [6029]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (8) [6030]

[तब] बानवे युग पहले,
फुस्सा नाम का नेता उठा,
पहुँचना कठिन, 6006 वश में करना कठिन, 6007
सभी लोकों में सर्वोच्च,6008 विजेता। (9) [6031]

उन्हें सुचारु आचरण का वरदान प्राप्त था।
भव्य, 6010 सीधा और राजसी, 6011
हर प्राणी के लिए शुभकामनाएँ, 6012
उसने बहुतों को गुलामी से मुक्त कराया। (10) [6032]

मैं [तब] एक चित्तीदार कोयल थी,6013
उनके उत्तम आश्रम, "नंदा" में।6014
मैं आम के पेड़ में रह रहा हूँ।
[फुस्सा बुद्ध की] सुगंधित कुटिया के पास.6015 (11) [6033]

सर्वोच्च विजेता को देखकर,6016
दान के योग्य, 6017 भीख मांगने जाना, [मेरे] हृदय को आनंदित करना,
तब मैंने मधुर स्वर में पुकारा। (12) [6034]

फिर राजमहल उद्यान में जाकर आमों का एक गुच्छा ले आए,
बहुत पका हुआ, सुनहरे रंग की त्वचा वाला।
मैं उन्हें संबुद्ध के पास लाया। (13) [6035]

6006 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6007 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

6008 शाब्दिक रूप से, "गया"

6009 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

6010 लिट., "गिर गया"

6011 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

6012 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

6013 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप

भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

6014 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

6015 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

6016 में uddalomika° को BJTS द्वारा PTS uddhalomikā के स्थान पर पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, RD, sv देखें)

6017 शाब्दिक रूप से, "एक फूल पर"

तब मेरे हृदय को जानकर, विजेता ने, महान करुणा के साथ, नेता ने, भिक्षा ग्रहण करने के लिए अपना कटोरा उठाया।
उसके परिचारक के हाथ से.6018 (14) [6036]

मैं प्रसन्न मन से दे रहा हूँ
ग्रेट सेज6019 में आमों का एक गुच्छा रखा गया है
कटोरे में अपने दोनों पंख दबाकर (प्रशंसा में), मैंने मधुर स्वर में, कानों को भाने वाली ध्वनि में पुकारा।
सुनने योग्य, बहुत सुंदर, बुद्ध पूजा के लिए ।
[फिर] मेरे घोंसले6021 में जा रहा हूँ। (15-16) [6037-6038]

फिर एक बाज़6022 दुष्ट मन से,6023 ऊपर उड़कर,6024 मुझे मार डाला, मेरे हृदय में प्रेम और दया थी, मेरे
इच्छाएँ बुद्ध के प्रेम में बदल गईं। (17) [6039]

वहाँ से गिरकर, तुसिता में, जहाँ मैंने बहुत सुख का अनुभव किया था, मैं एक मानव गर्भ में आ गई।
उस कर्म की शक्ति के माध्यम से। (18) [6040]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के संबंधी, महान यशस्वी, जिनकी वंश परंपरा के अनुसार उनका नाम कश्यप है,6026
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,6027 [बुद्ध,] उत्पन्न हुए। (19) [6041]

व्यवस्था को रोशन करते हुए, दुष्ट प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करते हुए, सीखने के इच्छुक लोगों को शिक्षा देते हुए, वह
निर्वाण प्राप्त किया, 6028 अनुयायियों के साथ। 6029 (20) [6042]

जब विश्व प्रमुख ने निर्वाण प्राप्त किया,

6018 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

6019 khiḍḍār'ati'y'ā

6020 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

6021 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

6022 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

6023 शाब्दिक रूप से, “ पूजा ”

6024 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

6025 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी

6026 pariḷāho
6027 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6028 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
6029 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

असंख्य लोग प्रसन्न होकर गुरु का स्तूप बना रहे हैं।
बुद्ध की पूजा करने के लिए 6030. (21) [6043]

उन्होंने आपस में इस प्रकार सलाह दी: "आइए, हम उस महान ऋषि के लिए सात मील ऊँचा स्तूप बनाएँ।"
सभी सात रत्नों से सुशोभित। (22) [6044]

6031 कासी के राजा की सेना का नेता, 6032 किकी,
मैंने एक मामूली उपाय की बात की थी,
स्तूप के माप के रूप में 6033। (23) [6045]

उस समय, मेरे कहने पर, उन्होंने उस वीर पुरुष के लिए एक मील ऊँचा स्तूप बनवाया।
[जो] विभिन्न रत्नों से सुशोभित था। (24) [6046]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (25) [6047]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मैं एक करोड़पति परिवार में पैदा हुआ हूँ, जो धनी, समृद्ध और बेहद अमीर है।
महान नगर श्रावस्ती में। (26) [6048]

शहर के प्रवेश द्वार पर देखकर
बुद्ध,6035 [मेरा] मन चकित हो गया, आगे बढ़ते हुए, थोड़े ही समय में,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (27) [6049]

स्तूप का आकार छोटा करने के कर्म के फल स्वरूप, मैं बौने शरीर के साथ पैदा हुआ हूँ।
जो अनादर के योग्य है। (28) [6050]

सातवें ऋषि की मधुर ध्वनि से आराधना करने के बाद,

6030 samādhikusalo ahaŋ
6031 iddhipādesu kovido
6032 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"
6033 mārasenāpamaddano , BJTS reads mārasenappamaddano
6034 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
6035 महाभि'सक्कसंका'सो
6036 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

मैंने शीर्ष स्थान प्राप्त किया
मधुर आवाज वाले भिक्षु। (29) [6051]

बुद्ध को फल देने और सद्गुणों के अनुरूप चलने के कारण, मुझे भिक्षुत्व का फल प्राप्त हुआ।
मैं अब भी बेदाग़ जीवित हूँ। (30) [6052]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (31) [6053]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (32) [6054]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (33) [6055]

इस प्रकार पूज्य लकुंटकभद्दिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

लकुंटकभद्दिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

539. {542.}6037 कनख-रेवता6038

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6056]

सिंह-जबड़े वाला6039 और ब्रह्मा-स्वर वाला,6040 उसकी ध्वनि6041 हंस या ढोल जैसी थी;

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6037 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6038 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
6039 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

6040 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6041 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

हाथी की तरह वीर चाल,6042
बहुत चमकीला [जैसे] चंद्रमा [या] सूर्य, (2) [6057]

बहुत बुद्धिमान, 6043 महान नायक,
महान ध्यानी, महान मित्र, 6044
अत्यंत दयालु,6045 प्रभु,
महान अंधकार का निरोधक,6046 (3) [6058]

तीनों लोकों के प्रमुख, 6047 संबुद्ध, ऋषि, प्राणियों की इच्छाओं के ज्ञाता, 6048
कई लोगों का नेतृत्व करना जिनका नेतृत्व किया जा सकता है6049
जब भी वह धम्म का उपदेश देता है , (4) [6059]

विक्टर ने अपने दल के बीच प्रशंसा करते हुए 6050 लोगों को प्रसन्न किया।
एक नायक, ध्यान करने वाला, शांत
[और] अबाधित समाधि-प्रेमी [भिक्षु]। (5) [6060]

तब मैं वेदों के ब्राह्मण गुरु हंसवती में रहने लगा। उपदेश सुनकर मैं रोमांचित हो गया,
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (6) [6061]

तब विजेता ने भविष्यवाणी की,
नेता, सभा के बीच में,
“हे ब्राह्मण, तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि
आप उस रमणीय [स्थान] को प्राप्त करेंगे। (7) [6062]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (8) [6063]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

6042 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6043 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6044 शाब्दिक रूप से, "गया"
6045 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6046 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

6047 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
6048 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6049 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6050 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6051 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

धम्म की वैध संतान, जिसका नाम रेवता है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (9) [6064]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (10) [6065]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मेरा जन्म कोलिया शहर में हुआ है।
एक समृद्ध क्षत्रिय कुल में,
धनी, समृद्ध, बहुत धनी। (11) [6066]

जब बुद्ध ने धम्म का उपदेश दिया
कपिलवस्तु [शहर] में,
वेल-गॉन-वन में प्रसन्न होना6052
मैं बेघर हो गया। (12) [6067]

मुझे इधर-उधर कई संदेह थे, [क्या] उचित है, [क्या] अनुचित है;6053 [जब] मैं सर्वोच्च धम्म का प्रचार कर रहा था ।
बुद्ध ने उन सभी समस्याओं का समाधान किया। (13) [6068]

उसके बाद मैंने अस्तित्व को पार कर लिया।
फिर समाधि की अवस्था में मिलने वाले आनंद के शौकीन
मैं जीवित था। उस समय, मुझे देखकर,
बुद्ध ने मेरे बारे में यह कहा: (14) [6069]

"इस दुनिया में या दूसरी दुनिया में जो भी संदेह मौजूद हों,6055 [चाहे] वे स्वयं को ज्ञात हों या किसी और को, ध्यान करने वाले उन सभी को त्याग देते हैं।"
पवित्र जीवन जीना,6056 ऊर्जावान रूप से।"6057 (15) [6070]6058

कर्म ने एक लाख का फल दिया
[युगों बाद] ने मुझे यहाँ [इसका] फल दिखाया:
पूरी तरह से मुक्त, तीर की तरह तेज,

मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (16) [6071]

फिर विश्व-श्रेष्ठ,6059 ऋषि,

6052 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6053 लिट., "एक फूल पर"
6054 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6055 khiḍḍār'ati'y'ā
6056 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6057 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6058 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6059 शाब्दिक रूप से, " पूजा "

ट्रान्स संगीत के प्रति मेरा प्रेम देखकर,
तब उस महान ऋषि ने मुझे नियुक्त किया:
"ध्यान करने वाले भिक्षुओं में सबसे आगे।" (17) [6072]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (18) [6073]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [6074]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [6075]

इस प्रकार पूज्य कंख-रेवत थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कंख-रेवत थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

540. {543.}6060 Sīvali6061

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6076]

उनके नैतिक मूल्यों को मापा नहीं जा सकता था, उनकी ध्यान अवस्थाएँ बिजली की तरह तीव्र थीं, उनका विशाल ज्ञान भी मापा नहीं जा सकता था।
और किसी भी चीज़ से अलग स्वतंत्रता।6064 (2) [6077]

नेता ने धम्म का उपदेश दिया

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6060 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6061 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6062 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6063 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6064 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

पुरुष, देवता,6065 सर्प-देवता [और]
सभी ब्रह्मा एक साथ आते हैं।
[बौद्ध] भिक्षुओं और ब्राह्मणों के साथ मिश्रित। (3) [6078]

भीड़ में आत्मविश्वास से भरे हुए, 6066 [बुद्ध] ने पुण्य से भरपूर, बहुत ग्रहणशील और उपहार के योग्य स्थान रखा।
उस प्रमुख स्थान पर अनुयायी। (4) [6079]

मैं उस समय क्षत्रिय था।
"हंसा" नामक नगर में;6067
विक्टर के शब्दों को सुनकर [के बारे में]
अनुयायी की सदाचारिता,6068 (5) [6080]

बुद्ध को एक सप्ताह के लिए आमंत्रित करना
मैंने [उसे] उसके अनुयायियों के साथ भोजन कराया। बड़े पैमाने पर दान दिया।
मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (6) [6081]

फिर [वह], लोगों में श्रेष्ठ, मुझे अपने चरणों में झुकते हुए देखकर, महान नायक ने अपनी मधुर आवाज में कहा,
मेरे विषय में ये शब्द कहे: (7) [6082]

फिर भीड़, चाहत में
विजेता, देवताओं, टाइटन्स, संगीत अप्सराओं, अत्यंत शक्तिशाली ब्रह्माओं के वचन सुनने के लिए,6070

और [बौद्ध] भिक्षुओं और ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा की: "हे श्रेष्ठ पुरुष, आपकी जय हो!"
हे परम पुरुष, आपकी जय हो! इस क्षत्रिय ने एक सप्ताह तक यह सेवा प्रदान की।
आपको भारी दान दिया जा रहा है।6072
हम उनके लिए फल सुनने की कामना करते हैं;

6065 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6066 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

6067 शाब्दिक रूप से, "गया"

6068 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

6069 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

6070 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

6071 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

6072 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

हे महान ऋषि, भविष्यवाणी कीजिए। (8-10) [6083-6085]

उसके बाद भगवान बुद्ध ने कहा, "तुम सब मेरी बातें ध्यान से सुनो:
कौन बता सकता है कि उपहार का फल क्या है?
बुद्ध के लिए सुस्थापित
[या] सभा, हद से ज़्यादा?
इसके फल असीम होंगे।
यह धनी व्यक्ति सचमुच कामना कर रहा है
उस परम स्थान को प्राप्त करने के लिए। (11-12) [6086-6087]

वह भिक्षु सुदस्सना की तरह ही अपार धन अर्जित करेगा,6074 [और] मेरी तरह भी [भी];
उसे भविष्य में वह प्राप्त होगा। (13) [6088]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (14) [6089]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम सीवली है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (15) [6090]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (16) [6091]

[तब] इक्यावन युग पहले,
विश्व नेता विपस्सी का उदय हुआ, सुंदर आँखों वाले,6075
हर चीज़ में अंतर्दृष्टि के साथ.6076 (17) [6092]

फिर मैं बंधुमती में रहने लगा।
किसी विशेष गोत्र का सदस्य;6077
मुझ पर दया की जाती थी और मुझे चाहा जाता था।
एक कर्म को समाप्त करने के इरादे से.6079 (18) [6093]

6073 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6074 °विकुटी°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6075 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6076 लिट., “एक फूल पर”
6077 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6078 khiḍḍār'ati'y'ā
6079 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में

फिर एक निगम6080 ने महान ऋषि विपस्सी के लिए एक मठवासी विद्यालय6081 का निर्माण किया।
जो बड़ा और व्यापक रूप से प्रसिद्ध था। (19) [6094]

ठोस भोजन के साथ देने के लिए नए प्रकार के दही और शहद की खोज
महान दान-दान के अंत में,
उन्हें 6083 [देने के लिए कोई नहीं मिला]। (20) [6095]

फिर उसमें से कुछ लेकर,6084
ताजा दही और शहद भी।
मैं निरीक्षक के घर गया,6085
और यह खोजते हुए कि उन्होंने मुझे देखा।6086 (21) [6096]

एक हजार की पेशकश करने पर भी,
उन्हें वे दोनों चीजें प्राप्त नहीं हुईं।6087
तब मैंने इस बारे में इस प्रकार सोचा: “वह [कीमत] बहुत कम नहीं होगी। चूंकि ये सभी लोग उस दिवंगत आत्मा का सम्मान कर रहे हैं, इसलिए मैं भी एक [पुण्य] कार्य करूंगा।”
विश्व-प्रभु के लिए सभा के साथ।" (22-23) [6097-6098]

फिर इस तरह सोचने के बाद, दही और

मैंने उन्हें शहद दे दिया
सभा के साथ विश्व का स्वामी। (24) [6099]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (25) [6100]

फिर से, बनारस में, होने के कारण
एक राजा [जो] बहुत प्रसिद्ध था, एक शत्रु पर क्रोधित हो गया [तब,]
मैंने गेटवे को अवरुद्ध करवा दिया। (26) [6101]

6080 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6081 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6082 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
6083 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6084 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6085 pariḷāho
6086 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6087 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
6088 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

फिर, तपस्वियों को भी रोकते हुए, इसकी एक सप्ताह तक इस प्रकार रखवाली की गई।6089
इसलिए, इसके परिणामस्वरूप
कर्म, मैं बुरी तरह नरक में गिर गया।6091 (27) [6102]

और अब मेरे अंतिम पुनर्जन्म में,
क्षत्रिय के अच्छे कर्मों के कारण,6092
मेरा जन्म कोलिया शहर में हुआ है;
मेरी माँ सुप्पावासा,6093 थीं
पिता महाली लिच्छवी.6094
द्वार अवरुद्ध करने के कारण, मेरी गर्भावस्था सात साल तक चली।
मेरी माँ के गर्भ में पीड़ा। (28-29) [6103-6104]

जन्म नलिका में एक सप्ताह का उल्लंघन, 6095
मुझे बहुत कष्ट सहना पड़ता है। क्योंकि उसने [तब] स्वीकृति दे दी थी।
मेरी माँ को बहुत कष्ट हुआ [अब].6096 (30) [6105]

श्रावस्ती से प्रस्थान करते हुए, मैं
बुद्ध को उस पर दया आई थी;
जिस दिन मैंने यात्रा शुरू की, उसी दिन
मैं बेघर हो गया। (31) [6106]

मेरे गुरुः सारिपुत्त; शक्तिशाली 6097 मोग्गलाना, ज्ञानी, ने मुझे [शिक्षक के रूप में] शिक्षा दी।
[जब वह] मेरे बाल हटा रहा था। (32) [6107]

जब मेरे बाल काटे जा रहे थे, उसी दौरान मुझे अरहंत पद प्राप्त हुआ।
देवता, नागदेव और मनुष्य
मुझे आवश्यक वस्तुएँ ला रहे हैं।6098 (33) [6108]

क्योंकि, प्रसन्न होकर, मैंने पूजा की6099
[बुद्ध] ने पद्ममुत्तरा नाम रखा

6089 samādhikusalo ahaŋ
6090 iddhipādesu kovido
6091 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
6092 mārasenāpamaddano , BJTS reads mārasenappamaddano
6093 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
6094 महाभि'सक्कसंका'सो
6095 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
6096 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
6097 diṭṭhigaṇḍa°
6098 लोकपज्जोटो
6099 sanar'āmar'a'sakk'at'o

और मार्गदर्शक, विपस्सी [बुद्ध],
मैं आवश्यकताओं से विशिष्ट हूँ। (34) [6109]

उन कर्मों की विशिष्टता के कारण, मुझे हर जगह अपार और असीम धन प्राप्त हो रहा है।
जंगलों, गाँव, पानी [और] ज़मीन में। (35) [6110]

जब गाइड रेवता को देखने के उद्देश्य से यात्रा कर रहा हो,
विश्व के प्रमुख नेता, तीस हजार भिक्षुओं के साथ, महान ज्ञानी, 6100 महान नायक,
विश्व के प्रमुख नेता भिक्षुओं के साथ, 6101
तब मैंने बुद्ध को देवताओं द्वारा मेरे लिए लाई गई आवश्यक वस्तुओं से सेवा की; जाने के बाद उन्होंने रेवता को देखा।
फिर जेतवन की ओर प्रस्थान करते हुए,
[उन्होंने] मुझे उस सबसे प्रमुख स्थान पर रखा। (36-38) [6111-6113]

शिक्षक, हर दुनिया का मित्र, 6103
भीड़ के बीच मेरी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा: "हे भिक्षुओं, सिवली सबसे आगे हैं।"
मेरे छात्रों में प्राप्तकर्ता।" (39) [6114]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (40) [6115]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (41) [6116]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (42) [6117]

इस प्रकार पूज्य सिवली थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सिवली थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

6100 narādicco
6101 लिट., “में”
6102 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
6103 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”

---

541. {544.}6104 वांगीसा6105

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6118]

जैसे सागर की लहरें, और जैसे आकाश में तारे, वैसे ही संबुद्ध का वचन है।
अरहंतों द्वारा विचार किया जाता है। (2) [6119]

भीड़ में सर्वोच्च विजेता
बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों के साथ मिश्रित होने के कारण, लोगों द्वारा उनका सम्मान किया जाता है।
देवताओं, टाइटन्स और सर्प-देवताओं के साथ। (3) [6120]

विजेता, विश्व को पार करने वाला,6106 अपनी किरणों से दुनिया को प्रकाशित करता है,6107 और अपने शब्दों से द्वार खोलता है,6108
आज्ञाकारी कमल[-लोग].6109 (4) [6121]

सर्वोच्च पुरुष, चार पूर्ण विश्वासों से परिपूर्ण,6110
भय और कायरता का त्याग,6111
शांति प्राप्त होने पर आश्वस्त है,6112.6113 (5) [6122]

विश्व-प्रमुख को बुद्धत्व के संपूर्ण क्षेत्र के रूप में मान्यता प्राप्त है,6114 [जो कि] उत्कृष्ट बैल का स्थान है;6115

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6104 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

6105 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

6106 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

6107 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

6108 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

6109 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6110 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

6111 शाब्दिक रूप से, "गया"

6112 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

6113 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

6114 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

6115 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में, मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंड (भाग, अंश, टुकड़ा, छोटा) "

इसका खंडन करने वाला कोई नहीं है। (6) [6123]

जब तटस्थ व्यक्ति, [बुद्ध], निर्भय होकर सिंह की गर्जना करते हैं6116
न कोई ईश्वर, न कोई मनुष्य, न स्वयं ईश्वर6117
मौजूद है जो [उसके शब्दों] का खंडन करता है। (7) [6124]

उत्तम धम्म का उपदेश देते हुए , देवताओं सहित संसार का भ्रमण कराते हुए, जनसमूहों के बीच आत्मविश्वास से परिपूर्ण।
वह धम्म के पहिये को घुमा रहा है । (8) [6125]

एक सम्मानित अनुयायी के उच्च गुणों की प्रशंसा करते हुए,
वाक्पटुता में अग्रणी6118 [भिक्षुओं],
उसने उसे उस प्रमुख स्थान पर नियुक्त किया। (9) [6126]

तब मैं हंसवती में रहता था।
एक ब्राह्मण [इसी प्रकार] सम्मानित, जन्म से ही समस्त वेदों का ज्ञान रखने वाला।
भाषण का स्वामी,6119 वाद-विवाद-कुचलने वाला.6120 (10) [6127]

उस महान नायक के पास पहुँचकर, धम्म उपदेश सुनकर , मुझे अपार आनंद प्राप्त हुआ।
अनुयायी के सद्गुण से प्रेम करना। (11) [6128]

विश्व के आनंददाता, सुशोभित व्यक्ति को सभा के साथ आमंत्रित करते हुए,
मैंने उन्हें सात दिनों तक भोजन परोसा।
[और] फिर मैंने [उन्हें] कपड़े से ढक दिया।6123 (12) [6129]

उनके चरणों में सिर झुकाकर, मुझे विदा मिल गई, हाथ जोड़कर, प्रसन्नता से, एक तरफ खड़ा था।
मैंने परम विजेता की प्रशंसा की: (13) [6130]

माप), सौ भेण्डु [लंबा? मोटा?]।"

बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में 6116 में कई रूपों में 'गेण्डु' लिखा है । कम से कम प्रसारण के दौरान, ये अस्पष्ट छंद आज की तुलना में शायद उतने ही अस्पष्ट रहे होंगे, भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के संकेत हों जिसमें मूल रचना की गई थी।
6117 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6118 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6119 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6120 लिट., “एक फूल पर”
6121 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6122 khiḍḍār'ati'y'ā
6123 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

हे ऋषियों के तेंदुए, आपकी जय हो!6124
हे श्रेष्ठ पुरुष, आपकी जय हो! हे समस्त लोकों के स्वामी, आपकी जय हो!
हे निर्भीकता के निर्माता, आपकी प्रशंसा हो!6125 (14) [6131]

हे मृत्यु के भ्रम को दूर करने वाले, आपकी जय हो!6126
आपको सलाम, झूठे विचारों का नाश करने वाले!6127
हे शांतिदायक दिलासा देने वाले, आपकी जय हो!6128
आपकी प्रशंसा हो, शरण से परे चले गए!6129 (15) [6132]

हे पूजनीय: 6130 प्रभुहीनों के प्रभु, भयभीतों के साहसदाता, 6131 थके हुए लोगों के विश्राम स्थल, 6132
शरण चाहने वालों के लिए शरण।” (16) [6133]

महान सद्गुण वाले की प्रशंसा करते हुए,6133
मैंने संबुद्ध से इसी प्रकार वक्ताओं के ईश्वर से कहा:6134
“मैं उस भिक्षु की स्थिति प्राप्त कर रहा हूँ।”6135 (17) [6134]

असीम वाक्पटुता वाले,6136
उस समय भगवान ने कहा:
"यह वह व्यक्ति था जिसने अनुयायियों के साथ एक सप्ताह तक बुद्ध की उपासना की, और
उन्होंने मेरे सद्गुणों की प्रशंसा की।
अपने हाथों से किए गए कार्यों से प्रसन्न होकर, वह उस स्थान को प्राप्त करने की इच्छा रखता है।
उस भिक्षु का जो वक्ताओं का देवता है। (18-19) [6135-6136]

बहुत दूर भविष्य में,
उसे वह रमणीय स्थान प्राप्त होगा।
आनंद लेते हुए, बिना किसी कमी के।

6124 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6125 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6126 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
6127 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6128 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6129 pariḷāho
6130 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6131 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
6132 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
6133 samādhikusalo ahaŋ
6134 iddhipādesu kovido
6135 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
6136 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
6137 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख 6138। (20) [6137]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (21) [6138]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम वांगीसा है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (22) [6139]

यह सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ, और फिर जीवन भर, प्रेममयी हृदय से, मैंने अपना जीवन यापन किया।
इस प्रकार जाने वाला व्यक्ति आवश्यक शर्तों के साथ। (23) [6140]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (24) [6141]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मेरा जन्म एक भिक्षु वंश में हुआ है।
जब मैं थी तब मेरा जन्म हो चुका था।
[केवल] मेरे जन्म के सात साल बाद। (25) [6142]

मैं जन्म से ही सभी वेदों का ज्ञाता हूं, वाणी शिक्षकों के बीच आत्मविश्वास से भरा हूं, मेरी आवाज मधुर है और मैं विविध भाषाओं में बोलने में सक्षम हूं।
अन्य भाषणों को कुचलते हुए। (26) [6143]

वंग में जन्मा, मैं “वंग लॉर्ड” हूँ,6139
या [मैं] “शब्दों का स्वामी” के रूप में जाना जाता हूँ;6140
इस प्रकार मेरा नाम “वांगीसा” पड़ गया।
जिसे विश्व भर में सम्मानित किया जाता है। (27) [6144]

जब मुझे विवेक प्राप्त हो गया,
अभी भी6141 मेरी जवानी के पहले चरण6142 में, तब प्यारे राजगीर [शहर] में
मैंने [भिक्षु] सारिपुत्त को देखा, (28) [6145]

पच्चीसवाँ पाठ भाग

6138 महाभिऽसक्कसंकाऽसो
6139 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
6140 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
6141 दिट्ठिगण्ड°
6142 लोकापज्जोटो

भिक्षा और भोजन की तलाश में इधर-उधर भटकते हुए, हाथ में कटोरा लिए, अत्यंत संयमित, आँखें स्थिर, कम बोलने वाला,6143
हल की लंबाई से आगे नहीं देख रहे.6144 (29) [6146]

उन्हें देखकर, मैं विस्मयचकित हो गया, और मैंने अपने लिए उचित शब्दों में बात की।
[सुंदर] छंदों और पंक्तियों में,
क्षणिक विचारों के धब्बों से मुक्त।6145 (30) [6147]

तब उस बुद्धिमान, उस नायक ने उत्तर में मुझसे इस प्रकार कहा: “जिसका वर्णन मेरे गुरु ने किया है,
संबुद्ध, विश्व के नेता।” (31ए-बी) [6148]6146

[फिर उन्होंने] एक भावुक भाषण दिया, जिसका सामना करना कठिन था,6147 अंतिम।
6148 [कि] रंगीन 6149 बोलने से प्रसन्न
तटस्थ [सारिपुत्त] द्वारा,
उनके चरणों में सिर झुकाकर,
मैंने कहा, “मुझे दीक्षा प्रदान करो।” (31सी-डी, 32) [6149]6151

तब, महान ज्ञान से परिपूर्ण उस व्यक्ति ने मुझे श्रेष्ठ बुद्ध के पास ले जाया। मैंने उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया।
मैं शिक्षक की उपस्थिति में बैठा था। (33क-ख) [6150]6152

बेस्ट डिबेटर6153 ने मुझसे कहा, "वांगीसा, क्या तुम किसी को जानते हो?
क्या कला का कोई अस्तित्व ही नहीं है? मैंने इस बारे में बात की।
और [तब] मैंने [उससे] कहा, "मुझे पता है"। (33सी-डी) [6151]6154

"अपने ज्ञान की विशिष्टता के आधार पर, यदि संभव हो तो, [तो अब] इसके बारे में बात करें।"
जंगल में फेंकी गई एक मृत खोपड़ी,

6143 sanar'āmar'a'sakk'at'o
6144 नारदिक्को
6145 लिट., "में"
6146 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सकलता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
6147 निब्बाती , या "वह शांत हो जाता है"
6148 mahā'ssādaŋ
6149 mahār'a'saŋ
6150 लिट., "अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए"
6151 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
6152 पनिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव
6153 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
6154 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"

बारह वर्ष बीत जाने के बाद भी।" (34) [6152]

जब मैंने सहमति जताते हुए कहा, "जी हाँ, महोदय।"
उसने मुझे तीन (ऐसे मृत) खोपड़ियाँ दिखाईं। मैंने कहा कि वे (अब) पुनर्जन्म ले चुके हैं।
नरक में, मनुष्य के रूप में,6156 देवताओं के साथ। (35) [6153]

उस समय नेता ने मुझे दिखाया
एक एकाकी बुद्ध की खोपड़ी। उसके बाद, बिना किसी आधार के, 6157
मैंने दीक्षा का अनुरोध किया। (36) [6154]

आगे बढ़ने के बाद, मैंने प्रशंसा की
इस और उस जगह पर एक व्यक्ति का अच्छा जाना।6158
इसलिए भिक्षु नाराज हो गए।
मेरी ओर देखते हुए, "उसके पास कवि का दिमाग है।" (37) [6155]

अतः मेरी परीक्षा लेने के लिए, बुद्ध ने मुझसे कहा:

“क्या ये छंद विचारोत्तेजक अलंकार हैं?
या क्या वे निराधार बोले गए हैं?” (38) [6156]

“हीरो, मैं कवि बनने की प्रवृत्ति का नहीं हूँ;
मैंने इन्हें तर्क सहित कहा है। “तो फिर, हे वांगीसा,
अब तुम मेरी प्रशंसा में गीत गाते हो।"6160 (39) [6157]

उस समय मैंने हीरो की प्रशंसा की थी।
सातवें ऋषि, मेरे छंदों के साथ।
फिर तुरंत ही, प्रसन्न होकर,
विजेता ने मुझे सबसे आगे रखा। (40) [6158]

मेरे बोलने और मेरे मन के माध्यम से
तब मैं कुछ अन्य लोगों से घृणा करता था जो
अच्छे व्यवहार वाले थे।6161 उत्तेजित होकर6162 मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (41) [6159]

"वाक्पटुता में अग्रणी कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिलता।"

6155 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
6156 या “शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना”
6157 लिट., “बहिर्वाहों का विनाश”
6158 या “जो बाहर गया था”: पब्बाजितो
6159 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।
6160 शाब्दिक अर्थ, “यहाँ”
6161 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
6162 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।

जैसे कि यह भिक्षु [नाम] वांगीसा है;
इसलिए आपको 6163 [उसे] विचार करना चाहिए, भिक्षुओं।" (42) [6160]

कर्म ने एक लाख का फल दिया
[युगों बाद] ने मुझे यहाँ [इसका] फल दिखाया:
पूरी तरह से मुक्त, तीर की तरह तेज,
मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (43) [6161]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (44) [6162]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (45) [6163]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (46) [6164]

इस प्रकार पूज्य वांगीसा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वांगीसा थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

542. {545.}6164 नंदका6165

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6165]

सभी प्राणियों के प्रति मित्रता भाव से, उनकी खुशी और लाभ के लिए, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता, सुसंस्कृत पुरुष,
[दुनिया] में [इसके] देवताओं के साथ अभ्यास किया गया। (2) [6166]

6163 धारेथा , शाब्दिक अर्थ, "ले जाना", "याद करना", "स्मरण करना", "ध्यान रखना"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6164 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6165 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6166 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

कौन प्रसिद्धि की ऊंचाइयों पर पहुंचा, 6167 शानदार, 6168
प्रशंसा द्वारा समर्थित, 6169 विजेता,
प्रत्येक लोक के पूजनीय6170, सभी दिशाओं में सुप्रसिद्ध6171, (3) [6167]

जिसने उलझन को पार किया,6172
जो "कैसे? कैसे?" कहने से आगे बढ़ गए,6173
जिनके मन के इरादे पूरे हो गए हैं,6174
सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया।6175 (4) [6168]

द अल्टीमेट मैन, प्रोड्यूसर6176
उत्पादन न होने की राह पर,6177
जो घोषित नहीं किया गया था, उसे घोषित कर दिया गया।
और उसने अजन्मे को जन्म दिया। (5) [6169]

मार्ग-ज्ञाता,6178 मार्ग-परीक्षक,6179 वह मार्ग-वक्ता है,6180 पुरुषों का सांड। कुशल6181 मार्ग पर,6182 शिक्षक है
ड्राइवरों का सर्वश्रेष्ठ6183.6184 (6) [6170]

तब महान करुणावान, मार्गदर्शक, धम्म का उपदेश देते हुए , फंसे हुए प्राणियों को ऊपर उठाते हैं।
सड़क पर [जिसे] भ्रम के रूप में जाना जाता है। (7) [6171]

महान ऋषि ने एक अनुयायी की प्रशंसा की।

6167 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
6168 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6169 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6170 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6171 शाब्दिक अर्थ, “गया”
6172 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6173 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6174 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
6175 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6176 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6177 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6178 °vikutī; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6179 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6180 लिट., “एक फूल पर”
6181 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6182 khiḍḍār'ati'y'ā
6183 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6184 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

जिसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता था

बौद्ध भिक्षुणियों को उपदेश देते हुए,
[और] उसे उस सबसे आगे वाले स्थान पर रखा। (8) [6172]

यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया। [उद्धृत], उस दिवंगत को आमंत्रित करके, [उद्धृत] को सभा में भोजन कराकर,
मैंने उस सर्वोच्च स्थान की आकांक्षा की। (9) [6173]

उस समय प्रभु भी रोमांचित हो गए।
महान ऋषि ने मुझसे ये शब्द कहे: "हे दीर्घायु, प्रसन्न रहो;
वह सुंदर [स्थान] प्राप्त करेगा। (10) [6174]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (11) [6175]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम नंदका है
शिक्षक का अनुयायी होगा।" (12) [6176]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तावतिंसा गया था। (13) [6177]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मैं एक करोड़पति परिवार में पैदा हुआ हूँ, जो धनी, समृद्ध और बेहद अमीर है।
महान नगर श्रावस्ती में। (14) [6178]

शहर के द्वार पर उस सुधरे हुए व्यक्ति को देखकर मैं चकित रह गया;6186 जब [उसे] जेता आश्रम मिला,6187
मैं बेघर हो गया। (15) [6179]

कुछ ही समय बाद,
मैंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया।
तब मैं वह हूँ जिसने अस्तित्व को पार कर लिया है, सर्व-द्रष्टा द्वारा निर्देशित।6188 (16) [6180]

6185 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6186 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
6187 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6188 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी

मैंने भिक्षुणियों को धम्म का उपदेश दिया और प्रश्नोत्तर सत्र संपन्न कराया। मेरे द्वारा निर्देशित होकर, उन सभी ने धम्म का उपदेश दिया।
[अरहंत] बन गए, अपवित्र। (17) [6181]

उनमें से पांच सौ थे, किसी को भी किसी चीज की कमी नहीं थी;
उस समय प्रसन्न होकर महान मित्र,6189 ने मुझे सर्वोपरि स्थान पर बिठाया।

जो ननों को निर्देश देते हैं। (18) [6182]

कर्म ने एक लाख का फल दिया
[युगों बाद] ने मुझे यहाँ [इसका] फल दिखाया:
पूरी तरह से मुक्त, तीर की तरह तेज,
मैंने अपने दोषों को नष्ट कर दिया है। (19) [6183]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (20) [6184]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [6185]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (22) [6186]

इस प्रकार पूज्य नंदका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नंदका थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

543. {546.}6190 कादुदायि6191

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6187]

6189 pariḷāho
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6190 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6191 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

शिक्षक, नेताओं में सर्वश्रेष्ठ, 6192
विक्टर, सही-गलत का ज्ञाता, 6193
आभारी, 6194 लाभों के प्रति सचेत, 6195
चौराहे पर उन लोगों को प्रोत्साहित करता है।6196 ...

दयालुता का घर, 6198 की जाँच
[चीज़ें] उनके सर्वज्ञ ज्ञान से, सद्‌गुणों का असीम भंडार6199
अपने उत्कृष्ट धम्म का प्रचार कर रहे हैं । (3) [6189]

एक समय में, महान नायक ने असंख्य लोगों को एकत्रित किया और मधुर धम्म का उपदेश दिया ।
चार [महान] सत्यों के साथ। (4) [6190]

आरंभ, मध्य और अंत में शुद्ध उस उत्कृष्ट शिक्षा को सुनकर धम्म का अंतर्मन हुआ।
एक लाख प्राणियों के लिए। (5) [6191]

उस समय पृथ्वी गर्जना करने लगी और बादल गरजने लगे; देवता, ब्रह्मा, मनुष्य और दैत्य।
जारी 6202 कहते हुए "उत्कृष्ट!" (6) [6192]

हे दयालु शिक्षक!
हे! महान धम्म का उपदेश ! हे! विजेता डूबे हुओं को उठाता है!
अस्तित्व के सागर में।" (7) [6193]

6192 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6193 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6194 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6195 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6196 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6197 शाब्दिक रूप से, "गया"
6198 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6199 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6200 शब्द, "योग्य"
6201 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6202 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

जब ब्रह्मा देवताओं और मनुष्यों के साथ इस प्रकार भावनाओं से उत्तेजित हो गए,6203 तो विजेता ने एक अनुयायी की प्रशंसा की,

कुलों में प्रसन्न करने वालों में सबसे आगे। (8) [6194]

मैं तब हंसवती में रहता था, मंत्रियों के कुल में जन्मा था। सुखमय और सुंदर।
मैं धनी था, मेरे पास प्रचुर धन था। (9) [6195]

स्वान आश्रम पहुँचकर, तथागत की आराधना करते हुए, उनके मधुर धम्म को सुनकर ,
तटस्थ व्यक्ति की सेवा करने के बाद, (10) [6196]

उनके चरणों में झुककर, मैं
मैंने उस समय उनसे ये शब्द कहे: “हे ऋषि, जिनकी आपने प्रशंसा की है, जो कुलों को प्रसन्न करने वालों में श्रेष्ठ हैं,
मैं उनके समान बनूंगा, हे वीर।
बुद्ध के 6208 युग में।” (11) [6197, 6198a-b]6209

तब महान करुणावान ने मुझे अमृत छिड़कते हुए कहा, “पुत्र, हे प्रयासशील, तुम उस सुंदर स्थान को प्राप्त करोगे। विजेता के लिए कर्म करके।”
तो फिर यह फल के बिना कैसे हो सकता है? (12) [6198सी-डी, 6199]

एक लाख युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। (13) [6200]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,
धम्म की वैध संतान, जिसका नाम उदयी है
शिक्षक का अनुयायी होगा।” (14) [6201]

6203 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6204 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6205 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6206 लिट., “एक फूल पर”
6207 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6208 khiḍḍār'ati'y'ā
6209 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
6210 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

यह सुनकर मैं रोमांचित हो गया, और फिर जीवन भर, प्रेममय हृदय से, मैंने मार्गदर्शक की सेवा की।
विजेता, आवश्यकताओं के साथ। (15) [6202]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (16) [6203]

और अब मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, सुंदर कपिलवस्तु में,
मैं एक पादरी के परिवार में पैदा हुआ हूँ।
सुद्धोदना6211 को [हमारे] राजा के रूप में। (17) [6204]

जब रमणीय लुम्बिनी उपवन में, पुरुषों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले सिद्धार्थ का जन्म हुआ, तो उनका जन्म कल्याण और कल्याण के लिए हुआ।
प्रत्येक दुनिया की खुशी, (18) [6205]

उसी दिन मेरा भी जन्म हुआ, और मैं उनके साथ बड़ा हुआ, प्रिय, मित्रवत और बेहद प्यारा।
कानून में आत्मविश्वासी और कुशल। (19) [6206]

उनतीस वर्ष की आयु में, वह वहाँ से प्रस्थान करके आगे बढ़ा। छह वर्षों तक उसने अपने आप को विकृत किया।
वह [तब] बुद्ध, मार्गदर्शक थे। (20) [6207]

मृत्यु और उसकी सेना पर विजय प्राप्त करके, सभी अशुद्धियों को दूर करके, जीवन के जलप्रपात को पार करके,
वह [तब] दुनिया में बुद्ध थे।6212 (21) [6208]

ईसा 6213 नामक स्थान पर जाकर उन्होंने पाँच लोगों के समूह को निर्देश दिया; 6214 फिर धन्य परमेश्वर ने निर्देश दिया
[लोग], इधर-उधर जा रहे हैं। (22) [6209]

जो लोग नेतृत्व करने योग्य थे, उन्हें निर्देश देते हुए, देवताओं के साथ [संसार] की सहायता करते हुए, मंगला पर्वत के पास पहुँचते हुए,6215

6211 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6212 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
6213 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6214 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6215 pariḷāho

फिर विक्टर उस स्थान पर रहने लगा। (23) [6210]

फिर पृथ्वी के रक्षक सुद्धोदन द्वारा भेजा गया, 6216 जाते हुए, देखकर
दस शक्तियों वाला एक, 6217 आगे बढ़ रहा है,
मैं भी अरहंत बन गया। (24) [6211]

फिर मैंने महान ऋषि से इसके बारे में पूछा और उसे कपिला वापस ले आया।6218
फिर वहाँ दोबारा जाने के बाद
मैं महान कबीले को आनंद ला रहा हूँ।6219 (25) [6212]

उस सद्‌गुण से प्रसन्न होकर, विजय प्राप्त करने वाले, जनमानस के बैल ने मुझसे बात की।

गाइड ने मुझे सर्वप्रथम नियुक्त किया।
कुलों को प्रसन्न करने वालों के बीच। (26) [6213]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (27) [6214]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (28) [6215]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [6216]

इस प्रकार पूज्य कालुदायी थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

कालुदयी थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

6216 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6217 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)
6218 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
6219 samādhikusalo ahaŋ

---

544. {547.}6220 अभया6221

विजेता, पदुमुत्तरा,
सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।
एक लाख युगों बाद। (1) [6217]

तथागत शरण लेने जा रहे किसी व्यक्ति को उपदेश देता है, [और]
वह किसी को नैतिकता के बारे में उपदेश देता है।
कार्य करने के सर्वोच्च दस तरीकों में।6222 (2) [6218]

हीरो किसी को कुछ देता है
भिक्षुत्व का अंतिम फल,
और इसी प्रकार आठ उपलब्धियाँ;6223
वह तीनों ज्ञान प्रदान करता है। (3) [6219]

सुप्रीम मैन6224 छह विशेष ज्ञानों में से किसी एक प्राणी से आग्रह करता है,

और प्रभु किसी को देता है
चार विश्लेषणात्मक तरीके। (4) [6220]

लोगों को जागृत होते देखकर,
अनगिनत लीगों में, पलक झपकते ही उनके पास पहुँच गए।
मनुष्यों का सारथी उपदेश देता है। (5) [6221]

तब मैं हंसवती में रहता था; मैं एक ब्राह्मण का पुत्र था, समस्त वेदों का ज्ञाता था, व्याकरणविद् के रूप में पूजनीय था, व्युत्पत्ति में कुशल था, परिभाषाओं में आत्मविश्वासी था।
श्लोक-ज्ञाता,6225 अनुष्ठान-ज्ञाता,6226

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6220 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6221 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, शामिल किया गया है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
6222 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6223 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6224 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6225 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6226 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

[भी] छंदशास्त्र में चतुर.6227 (6-7) [6222-6223]

पैदल घूमते हुए,
स्वान हर्मिटेज,6228 के पास पहुँचने पर
मैंने उसे देखा, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,6229
महान जनता द्वारा सम्मानित,6230 (8) [6224]

धम्म का निर्मल प्रचार करना । मैं, विपरीत विचारों के साथ,
उसके पास जाने के बाद,
उनके निष्कलंक शब्दों को सुनने के बाद, (9) [6225]

[एक शब्द की तलाश में] जो ऋषि द्वारा गलत या दोहराया गया था।
or6231 फेंका हुआ या अर्थहीन,
मुझे कोई नहीं दिखा; इसलिए मैं आगे बढ़ गया। (10) [6226]

कुछ ही समय बाद, सभी शिक्षकों के बीच विश्वास हासिल करने के कारण, मुझे एक विशेषज्ञ के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।6232
बुद्ध के सूक्ष्म शब्दों में। (11) [6227]

6233 को एक साथ रखने के बाद
उनके लिए चार सुगठित 6234 छंद, जो तीनों लोकों के मुखिया की प्रशंसा करते हैं।
मैंने [उन्हें] प्रतिदिन उपदेश दिया। (12) [6228]

“इस भयावह अस्तित्व में तुम
वासना से मुक्त हैं, 6236 महान नायक; 6237
दया के कारण, तुम नहीं मरते,6238
इस प्रकार [आप] 'दयालु ऋषि' हैं। (13) [6229]

6227 शाब्दिक रूप से, "गया"
6228 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6229 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6230 लिट., “योग्य”
6231 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6232 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6233 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6234 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6235 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6236 लिट., “एक फूल पर”
6237 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6238 khiḍḍār'ati'y'ā

कोई ऐसा व्यक्ति जो आम इंसान हो और अपवित्रताओं से अप्रभावित हो।
[होगा] चौकस6240 और सचेत;6241
इस प्रकार [बुद्ध का] अकल्पनीय। (14) [6230]

ये अपने आप नष्ट नहीं होते, यहाँ तक कि किसी के कमजोर दोष भी, जो ज्ञान की अग्नि में भस्म हो जाते हैं।
अगर ऐसा हुआ तो यह एक चमत्कार होगा। (15) [6231]

वह जो समस्त लोकों का गुरु है:6242

उसके लिए दुनिया ही एक शिक्षक है;
इसलिए उन्हें 'विश्व-शिक्षक' के रूप में जाना जाता है।6243
[और] दुनिया उसका अनुसरण कर रही है।" (16) [6232]

मैंने उन [उत्कृष्ट छंदों] की प्रशंसा की।
संबुद्ध,6244 धम्म -उपदेशक;6245
ऐसा मैं जीवन भर करता रहूंगा।
मृत्यु के बाद6246 मैं स्वर्ग गया।6247 (17) [6233]

एक लाख युगों में
जब से मैंने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की है, तब से मुझे किसी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध की प्रशंसा का फल है। (18) [6234]

मुझे बहुत कुछ अनुभव हुआ।
देवताओं के लोक में महान राजसत्ता, और [यहाँ पृथ्वी पर] स्थानीय राजसत्ता।
[और] पहिया घुमाने वाली राजशाही [भी]। (19) [6235]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:
चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
मुझे अन्य पुनर्जन्मों के बारे में जानकारी नहीं है;
यह बुद्ध की प्रशंसा का फल है। (20) [6236]

[जब मैं इंसान था] मैं दो कुलों में पैदा हुआ था:
क्षत्रिय या ब्राह्मण।

6239 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में
6240 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6241 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6242 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
6243 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6244 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6245 pariḷāho
6246 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6247 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

मुझे छोटे कुलों में जन्म संख्या 6248 नहीं मिलती:
यह बुद्ध की स्तुति का फल है। (21) [6237]

अब, मेरे अंतिम अस्तित्व में, राजगीर में, परम नगरी,6249
मैं राजा बिम्बिसार का पुत्र हूँ।
और [मेरा दिया गया] नाम अभया है। (22) [6238]

एक दुष्ट मित्र से प्रभावित,6250
मैं एक जैन को देखकर अचंभित रह गया।
जैन धर्म के नेता द्वारा भेजा गया, 6252
मैंने सर्वश्रेष्ठ बुद्धों से संपर्क किया। (23) [6239]

एक सूक्ष्म प्रश्न पूछने के बाद, बुद्ध का सर्वोच्च उत्तर सुनकर, आगे बढ़ने पर, कुछ ही समय में,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (24) [6240]

सर्वश्रेष्ठ विजेता की प्रशंसा करने के बाद, 6253
मेरी [स्वयं] हर समय प्रशंसा होती है। मेरे शरीर और मुख से अच्छी सुगंध आती है।
मुझे खुशी का वरदान प्राप्त है। (25) [6241]

इस प्रकार मैं वास्तव में बहुत बुद्धिमान हूँ।
मैं तीक्ष्ण, चतुर और त्वरित बुद्धि से बोलता हूँ, और विविध प्रकार की भाषा का प्रयोग करता हूँ।
उस कर्म की शक्ति के माध्यम से। (26) [6242]

मेरे हृदय में प्रसन्नता के साथ, योग्य की प्रशंसा करते हुए,6254
अतुलनीय, 6255 स्वयं-बनना 6256 पदुमुत्तरा, उसके फल के रूप में, दुख से भरे स्थान पर,
एक लाख 6257 युगों तक, मैं नहीं गया। (27) [6243]6258

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (28) [6244]

6248 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

6249 samādhikusalo ahaŋ

6250 iddhipādesu kovido

6251 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

6252 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है

6253 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-खेल है।

6254 महाभिऽसक्कसंकाऽसो

6255 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

6256 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना

6257 diṭṭhigaṇḍa°

6258 लोकापज्जोटो

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [6245]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [6246]

इस प्रकार पूज्य अभय थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

अभय थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

545. {548.}6259 लोमसाकांगिया6260

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के संबंधी, महान यशस्वी, कस्सपा नाम से जाने जाने वाले, 6261
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,6262 [बुद्ध,] उत्पन्न हुए। (1) [6247]

उस समय चंदन और मैं, दोनों ही धर्म के मार्ग पर चलते हुए, अंत तक धम्म का पालन कर रहे थे।
व्यवस्था में जीवन का, (2) [6248]

वहां से गिरने वाले दोनों का पुनर्जन्म हुआ।
तुसिता स्वर्ग में [देवताओं के रूप में]।
वहाँ अन्य लोगों को पछाड़ते हुए6264, दिव्य नृत्यों, गीतों, भाषणों और दृष्टि से शुरू होने वाली दस उपलब्धियों के माध्यम से,
अपने जीवनकाल को पूरी तरह से जीना,
हम बेहद खुश हैं। (3-4) [6249-6250]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6259 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6260 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
6261 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6262 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6263 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6264 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

वहां से गिरने के बाद, चंदना का पुनर्जन्म तीस देवताओं के बीच हुआ;

मैं शाक्य वंश का पुत्र था, 6265
कपिलवस्तु नगर में. (5) [6251]

जब विश्व के नेता [बुद्ध] से वरिष्ठ उदयि ने पूछा, 6266
शाक्यों के प्रति करुणा के साथ कपिलवस्तु लौट आए, (6) [6252]

शाक्यों में से जो अभिमानी थे, वे बुद्ध के गुणों को न जानते हुए संबुद्ध को प्रणाम नहीं कर रहे थे।
जाति-अभिमानी,6268 अनादरपूर्ण.6269 (7) [6253]

आकाश में इधर-उधर घूमते हुए, उनके मन में उठ रहे विचारों को समझने की कोशिश करते हुए,
विक्टर ने वर्षा के देवता की तरह बारिश की,6270
[और] अग्नि देवता की तरह प्रज्वलित हुआ।6271 (8) [6254]

अपनी अद्वितीय आकृति का प्रदर्शन करते हुए, उन्होंने उसे फिर से लुप्त कर दिया। एक होते हुए भी वे अनेक हो गए।
[और फिर] वह फिर अकेला हो गया। (9) [6255]

उन्होंने अनेक रूपों में, अंधकार में और प्रकाश में भी स्वयं को प्रकट किया। उस चमत्कार को करने के बाद,
ऋषि ने अपने रिश्तेदारों को निर्देश दिया। (10) [6256]

एक विशाल बादल जो चार महाद्वीपों जितना चौड़ा है।
हर समय [दुनिया पर] वर्षा होती रहती थी।
फिर बुद्ध ने उन सभी को उपदेश दिया।
वेस्संतरा जातक .6272 (11) [6257]

उस समय वे सभी क्षत्रिय,

6265 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6266 lit., "गया"
6267 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6268 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6269 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
6270 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6271 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6272 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

अपनी जातिगत अभिमान का नाश करके, उन्होंने बुद्ध की शरण ली।
तब [राजा] सुद्धोदना6273 ने यह कहा: (12) [6258]

“हे परम बुद्धिमान6274, यह तीसरी बार है जब मैं आपके चरणों की पूजा कर रहा हूँ, सर्वव्यापी दृष्टि वाले;6275
[पहली बार] तब हुआ था जब [तुम्हारे] जन्म से धरती कांप उठी थी।
[अगला] जब गुलाब-सेब की छाया तुम्हें नहीं छोड़ती थी।”6276 (13) [6259]6277

बुद्ध की अपार शक्ति को देखकर,6278 मैं भी चकित रह गया।6279
ठीक उसी स्थान से आगे बढ़ते हुए,
मैं निवास करता था, मेरी माँ द्वारा पूजा की जाती थी।6280 (14) [6260]

चंदन, जो अब एक देवता का पुत्र था, मेरे पास आया और फिर उसने भद्देकरत्त सूत्र पर मेरी परीक्षा ली ।
संक्षिप्त [और] विस्तारित रूपों में.6283 (15) [6261]

फिर उसके उकसाने पर,
मैंने पुरुषों के नेता से संपर्क किया।6284
भद्देकरत्ता सुनकर ,
स्थानांतरित,6285 मुझे जंगल के जीवन की लालसा थी। (16) [6262]

फिर मैंने अपनी माँ से इसके बारे में पूछा।
अकेले जंगल जाना।
मेरी मां ने कहा, "तुम बहुत नाज़ुक हो।"
उस [मार्ग] से दूर रहो।”6286 फिर मैंने कहा: (17) [6263]

“[जब] मैं एकांत का अभ्यास कर रहा हूँ,6287
मैं अपनी छाती से धक्का दूंगा

6273 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

6274 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

6275 लिट., “एक फूल पर”

6276 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

6277 khiḍḍār'ati'y'ā

6278 तिदास , अर्थात्, तावतिंस स्वर्ग में

6279 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

6280 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में “नया” और द्वितीय पद में “ताज़ा” के रूप में किया गया है।

6281 शाब्दिक अर्थ, “ पूजा ”

6282 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

6283 या “मुझे नहीं पता,” ना जानामी

6284 pariḷāho

6285 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"

6286 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया गया है)

6287 pañca-kāma-guṇe , “इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र,” अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

बलि घास6288 [और] गन्ना घास,6289
कस्कस घास,6290 कोमल घास,6291 खुरदरी घास.6292 (18) [6264]

जंगल में जाकर, विजेता के आदेश और भद्देकरत्ता में दी गई सलाह को याद करते हुए ,
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (19) [6265]

अतीत का पीछा नहीं करना चाहिए; भविष्य की कामना नहीं करनी चाहिए। जो बीत चुका है, उसे पीछे छोड़ देना चाहिए।
और भविष्य अप्राप्य है। (20) [6266]

हर जगह 6293 जो किसी चीज को स्पष्ट रूप से देखता है जो उठती है [फिर गिरती है],
वह बुद्धिमान व्यक्ति6294 निर्वाण का पोषण करता है6295
अजेय [और] स्थिर। (21) [6267]

[अब,] आज6296 प्रयास किया जाना चाहिए;6297
कौन जानता है कि कल मृत्यु होगी या नहीं?
us6299 के लिए कोई अनुबंध मौजूद नहीं है
मृत्यु की विशाल सेना के साथ। (22) [6268]

"इस प्रकार जीवन जीना, दिन-रात अथक परिश्रम करना, आलस्य से दूर रहना, यही वास्तव में भद्देकरत्तो है ।"
[तो] कहते हैं6300 ऋषि, शांतिप्रिय।"6301 (23) [6269]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (24) [6270]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

6288 samādhikusalo ahaŋ
6289 iddhipādesu kovido
6290 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
6291 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
6292 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
6293 महाभि'सक्कसंका'सो
6294 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ
6295 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
6296 diṭṭhigaṇḍa°
6297 लोकापज्जोटो
6298 sanar'āmar'a'sakk'at'o
6299 narādicco
6300 लीटर, "में"

6301 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सकलता की ओर अग्रसर"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [6271]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (26) [6272]

इस प्रकार पूज्य लोमसकंगिया थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

लोमासकांगिया थेरा की कथा समाप्त हो गई है।

---

546. {549.}6302 वनवाच्चा6303

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के संबंधी, महान यशस्वी, कस्सपा नाम से जाने जाने वाले, 6304
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,6305 [बुद्ध,] उत्पन्न हुए। (1) [6273]

फिर मैं, बुद्ध के उपदेशों का अनुसरण करते हुए, पवित्र जीवन में विचरण करने के बाद,6306
जब तक मैं जीवित रहा, वहाँ से गिरता रहा।6307 (2) [6274]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (3) [6275]

वहाँ से गिरकर, जंगल में,
मैं [तब] एक कबूतर के रूप में पैदा हुआ था।6308
वहाँ एक बौद्ध भिक्षु6309 रह रहा था।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6302 अपदान नंबर BJTS संस्करण से मेल खाते हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6303 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6304 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई:

सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6305 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6306 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6307 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना” “चिंतन करना” “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6308 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6309 lit., “गया”

हमेशा समाधि में आनंदित रहने वाला,6310
प्रेममय हृदय वाला, दयालु,
हमेशा बेहद प्रसन्न चेहरे के साथ,6311
निष्पक्ष, एक महान नायक,
[चार] असीम [अवस्थाओं] में सीखा.6312 (4-5) [6276-6277]

कुछ ही समय में मुझे भरोसा हो गया
बुद्ध का वह अनुयायी,6313
जिनके विचार अवरोध रहित थे, सभी जीवित प्राणियों के प्रति मित्रवत थे। (6) [6278]

फिर जब भी मैं उनके पास जाता, वे प्रतिदिन धम्म का उपदेश देते और मुझे थोड़ा भोजन देते।
मुझे, उनके चरणों के सामने बैठा हुआ। (7) [6279]

उस समय विक्टर के पुत्र के प्रति अपार प्रेम के साथ [इस प्रकार] जीवन व्यतीत करने के बाद, मृत्यु के बाद6315 मैं6316 स्वर्ग चला गया,
विदेश में रहने के बाद घर जैसा लगता है।6317 (8) [6280]

अच्छे कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग से गिरकर मेरा पुनर्जन्म मनुष्य के रूप में हुआ है।
घर में जीवन को त्याग देना,
मैं [तब] बार-बार बाहर गया।6318 (9) [6281]

भिक्षु, तपस्वी या ब्राह्मण के रूप में,
इस प्रकार मैं उन लोगों में से एक था जो जंगल में रहने के लिए निकल पड़ा था।
[विभिन्न] सैकड़ों [जीवनों] में। (10) [6282]

और अब मेरे अंतिम पुनर्जन्म में,
सुंदर कपिलवस्तु में एक ब्राह्मण [नाम] वचागोट्टा,

6310 reading sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6311 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

6312 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
6313 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6314 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6315 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6316 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6317 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के स्थान पर बीजेटीएस से पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6318 शाब्दिक अर्थ, "एक फूल पर"

मैं अपनी पत्नी के साथ रवाना हुआ।6319 (11) [6283]

मेरी माँ को प्रसव के समय तीव्र इच्छा हुई, जिसके कारण उन्होंने जंगल में रहने का निश्चय कर लिया।
जब मैं उसके गर्भ से बाहर आया था। (12) [6284]

मेरी मां ने मुझे एक खूबसूरत जंगल में जन्म दिया।
जब मैं उसके गर्भ से निकला,
उन्होंने मुझे केसरिया कपड़े में लपेट दिया।6320 (13) [6285]

उसके बाद शाक्यन वंश के ध्वजवाहक राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ।6321
मैं उनका प्रिय मित्र बन गया।
विश्वास में रखा गया और सम्मानित किया गया। (14) [6286]

जब बीइंग्स हार्डवुड6322 ने अपनी अपार प्रसिद्धि का त्याग करते हुए प्रस्थान किया,
आगे बढ़ने के बाद,
मैं हिमालय गया। (15) [6287]

जंगलों में आदरणीय कस्सपा, कठोरता के उपदेशक को देखकर,6323 विजेता के उठने की खबर सुनकर,
मैंने पुरुषों के कोचमैन से संपर्क किया।6324 (16) [6288]

फिर उन्होंने मुझे धम्म का उपदेश दिया , जिसमें सभी अर्थों की व्याख्या भी शामिल थी।
फिर, [बुद्ध के नेतृत्व में] आगे बढ़ते हुए,
मैं फिर से जंगल में गया। (17) [6289]

वहाँ उत्साहपूर्वक रहते हुए मैंने [तब] छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए। ओह! मुझे अच्छा लाभ प्राप्त हुआ है!
मेरे अच्छे दोस्त द्वारा दया की जा रही है। (18) [6290]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह, मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (19) [6291]

6319 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6320 khiḍḍār'ati'y'ā
6321 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6322 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6323 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6324 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
6325 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [6292]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (21) [6293]

इस प्रकार पूज्य वनवच्छ थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

वनवच्छ थेरा की कथा यहीं समाप्त होती है।

---

547. {550.}6326 कुलसुगन्धा6327

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में
ब्रह्मा के संबंधी, महान यशस्वी, कस्सपा नाम से जाने जाने वाले, 6328
सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,6329 [बुद्ध,] उत्पन्न हुए। (1) [6294]

अस्सी छोटे अंक रखने वाले, 6330
बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए,6331
एक फ़ैदम-विशाल आभा होना,
प्रकाश-किरणों के जाल में चला गया,6333 (2) [6295]

चंद्रमा की तरह सुखदायक, सूर्य के समान प्रकाश का स्रोत, वर्षा के बादल के समान प्यास बुझाने वाला।
सागर की तरह रत्नों की खान, (3) [6296]

पृथ्वी के समान नैतिक मूल्यों के माध्यम से; ज्ञान के माध्यम से

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6326 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6327 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6328 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6329 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6330 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6331 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ
6332 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6333 शाब्दिक रूप से, "गया"
6334 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

आकाश की तरह; ध्यान के माध्यम से6335
हिमालय की तरह; हवा की तरह
वह किसी बात पर अडिग नहीं रहता। (4) [6297]

उसी समय मेरा जन्म बनारस में एक बड़े परिवार में हुआ था।
अनाज और प्रचुर धन से समृद्ध,6336
विभिन्न रत्नों के ढेर के साथ। (5) [6298]

नेता के पास पहुँचते हुए, जो एक बड़े दल के साथ बैठे थे,
मैंने [उन्हें उपदेश देते हुए] धम्म सुना , जो अमर है, मन को प्रसन्न करता है।6337 (6) [6299]

नक्षत्रों वाले चंद्रमा के समान बत्तीस चिह्नों को धारण करने वाला, अस्सी छोटे चिह्नों को धारण करने वाला,
खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह, (7) [6300]

किरणों के जाल से घिरा हुआ, 6340
जैसे सोने का चमकता पहाड़,6341
एक फ़ैदम-विशाल आभा होना,
जैसे सूर्य झील पर चमक रहा हो, (8) [6301]

उत्कृष्ट सुनहरे चेहरे वाला 6343 विक्टर,
रत्नों से बने पर्वत के समान, करुणा से परिपूर्ण हृदय के साथ,6344
जैसे सागर [उसके] सद्गुण के माध्यम से।6345 (9) [6302]

परम पुरुष, मेरु पर्वत की तरह,
उनकी प्रशंसा विश्व भर में प्रसिद्ध है;6346

6335 लिट., "गिर गया"
6336 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"
6337 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6338 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6339 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6340 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6341 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)
6342 लिट., "एक फूल पर"
6343 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6344 khiḍḍār'ati'y'ā
6345 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6346 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

प्रसिद्धि से व्यापक, 6347 [महान] नायक,
ऋषि, जो अंतरिक्ष के समान है,6348 (10) [6303]

हृदय अनासक्त6349 हर जगह, नेता [इस प्रकार] हवा के समान है; सभी जीवित प्राणियों के लिए सहारा6350,
सातवां ऋषि पृथ्वी के समान है। (11) [6304]

[कस्सापा,] संसार से अछूता, जैसे पानी में गुलाबी कमल,
आग के पहाड़ की तरह चमकता है
बुरी वाणी की झाड़ियों को जलाना.6351 (12) [6305]

हर जगह, एक विषनाशक की तरह,6352
वह अपवित्रता-विष को नष्ट करता है,6353
सद्गुण की सुगंध से सुशोभित,6354
गंधमादन पर्वत की तरह। (13) [6306]

हीरो गुणों का खजाना है6355
जैसे सागर रत्नों से बना होता है;
थोरब्रेड मैन6356 सिंधी घोड़े की तरह,

वह अपवित्रता की गंदगी को दूर ले जाता है।6357 (14) [6307]

एक महान योद्धा की तरह,
वह मृत्यु की सेना को कुचल देता है;6358
वह एक पहिए को घुमाने वाले राजा के समान है।
ज्ञान के स्वामी के [सात] रत्न.6359 (15) [6308]

ठीक वैसे ही जैसे कोई चिकित्सक,6360
वह रोग का उपचार करता है [जिसे] दोष कहा जाता है;6361
ठीक वैसे ही जैसे एक बेहतरीन सर्जन होता है,

6347 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6348 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
6349 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6350 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6351 pariḷāho
6352 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6353 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
6354 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
6355 samādhikusalo ahaŋ
6356 iddhipādesu kovido
6357 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "
6358 mārasenāpamaddano , BJTS इसे mārasenappamaddano पढ़ता है
6359 bojjhaṅgaratan'issaro , जो चक्र घुमाने वाले सम्राट के "सात रत्नों" (चक्र आदि) पर आधारित एक शब्द-क्रीड़ा है।
6360 महाभि'सक्कसंका'सो
6361 दोसाऽव्यऽआधितिकिऽचाकऽओ

वह फोड़े को निकालता है [जिसे झूठा कहा जाता है] विचार.6363 (16) [6309]

उस समय, विश्व की मशाल,6364
देवताओं और मनुष्यों दोनों द्वारा सम्मानित,6365
पुरुषों के बीच सूर्य,6366 विजेता,
उन्होंने अपने अनुचरों को धम्म का उपदेश दिया । (17) [6310]

"दान देने से धनवान बनता है, नैतिकता से सुख मिलता है, ध्यान से निर्वाण प्राप्त होता है।"
इस प्रकार उन्होंने निर्देश दिया। (18) [6311]

दल में सभी लोग
यह सुनकर, [उसका] बहुत मधुर उपदेश, आरंभ, मध्य और अंत में शुद्ध,
बहुत स्वादिष्ट, 6371 अमृत के समान। (19) [6312]

उनकी मधुर शिक्षा सुनकर, विक्टर के विधान से प्रसन्न होकर,
बुद्ध6372 की शरण लेने जा रहा हूँ।
मैंने जीवन भर उसकी प्रशंसा की। (20) [6313]

उस समय, प्रत्येक माह आठ दिनों के लिए,6373
मैंने जमीन को ढक दिया
सुगंधित कुटिया [जहाँ] ऋषि रहते थे, चार प्रकार की सुगंधित [वस्तुओं] के साथ, उस अच्छी सुगंध के लिए मेरी इच्छा6374 के कारण।
मेरे स्वयं के गंधहीन शरीर के लिए।
तब विजेता ने भविष्यवाणी की कि
[मैं] उस सुगंधित शरीर को प्राप्त करूँगा: (21-22) [6314-6315]

जिसने जमीन को ढक दिया
उस कर्म के फलस्वरूप, मेरी अपनी सुगंधित झोपड़ी में भी सुगंध फैली हुई थी।

6362 °विफालाको , लिट., "डी-फ्रूटर," बीजेटीएस सिंह। चमकदार सिंदुना
6363 diṭṭhigaṇḍa°
6364 लोकपज्जोटो
6365 sanar'āmar'a'sakk'at'o
6366 narādicco
6367 लिट., “में”
6368 s'ugatūpago , शाब्दिक अर्थ, "सदाबहारता की ओर अग्रसर होना"। इसे इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है: नैतिकता के माध्यम से उस सुखी व्यक्ति की ओर अग्रसर होना।
6369 निब्बाती , या “वह शांत हो जाता है”
6370 mahā'ssādaŋ
6371 mahār'a'saŋ
6372 लिट., “अच्छी तरह से चले गए व्यक्ति के लिए”
6373 reading māse aṭṭhadinesv-ahaṃ with BJTS for PTS māse aṭṭhadine svaha
6374 पणिधाय , या "दृढ़ संकल्प", सिंह। प्रार्थनाव

[यथा] यहाँ-वहाँ पुनर्जन्म लेते हुए,6375
यह पुरुष ऐसा होगा जिसका संपूर्ण शरीर सुगंधित होगा। सद्‌गुणों की सुगंध से परिपूर्ण।
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग।” (23-24) [6316-6317]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। (25) [6318]

और अब अपने अंतिम पुनर्जन्म में, मैं ब्राह्मणों के कुल में जन्म लेता हूँ। जब मैं गर्भ में निवास कर रहा था,
मेरी माँ का शरीर सुगंधित था।6376 (26) [6319]

और जब मैं अपनी माता के गर्भ से निकल रहा था, तब श्रावस्ती नगर में खुशियों की लहर दौड़ गई।
सुगंध, मानो इसे सुगंधित किया गया हो। (27) [6320]

और सुगंधित फूलों की वर्षा, दिव्य सुगंध वाली, मनमोहक और बहुत ही कीमती धूप भी।
उस पूरे समय हवा चलती रही। (28) [6321]

और देवताओं ने उस घर पर वर्षा की, जिस घर में मेरा जन्म हुआ था।
सभी अच्छी सुगंधों से भरपूर सुगंधित [बारिश]
धूप और फूलों के प्रकार भी। (29) [6322]

और जब मैं, एक भाग्यशाली युवक, अपनी जवानी के चरम पर था, तब पुरुषों का सारथी बना।
सेला6377 को अनुचरों के साथ निर्देशित किया। (30) [6323]

मैं भी उन सभी के साथ श्रावस्ती नगर आया। बुद्ध की भव्य प्रतिमा को देखकर
शक्ति, मैं उस समय निकल गया। (31) [6324]

नैतिकता, ध्यान, ज्ञान
और वह स्वतंत्रता जिसकी कोई तुलना नहीं है;
उन चार चीजों की खेती करना,6378

6375 पीटीएस याहिन ताहिन; बीजेटीएस ताहिं ताहिं
6376 लिट., "मेरी माँ का पूरा शरीर सुगंधित था"
6377 #389 {392}, ऊपर, विशेष रूप से vv.66-71 [3648-3653]
6378 या "शिक्षा में उन चारों का पालन-पोषण करना"

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।6379 (32) [6325]

और जब मैं संन्यासी था,6380
और जब मैं अरहंत था, और जब मैंने निर्वाण प्राप्त किया,
तब एक अच्छी महक वाली बारिश हुई। (33) [6326]

मेरे शरीर से हमेशा कीमती चंदन, चंपा और नीले कमल की सुगंध आती रहती है।
ठीक इसी तरह, मैं इधर-उधर जाकर इत्र लगा रही हूँ।
हर तरह से सभी विभिन्न गंधों को दबाना। (34) [6327]6381

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (35) [6328]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (36) [6329]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (37) [6330]

इस प्रकार पूज्य चूलसुगंध थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

चूलसुगंध थेरा की कथा समाप्त हो गई है।
सारांश: भद्दिया, बुजुर्ग रेवता,
और सिवली, महान प्राप्तकर्ता, वंगिसा, नंदका, कंडुदायि, इस प्रकार अभय, लोमसा और वनवाचा,
और सुगंधा ने दसवें के रूप में यह कार्य किया।
यहां तीन सौ श्लोक हैं।
और उससे सोलह अधिक।

इसके बाद अध्यायों का सारांश दिया गया है:

कनिकारा, फलदा, तिनदायका नामक अध्याय,

6379 लिट., "बहिर्वाहों का विनाश"
6380 या "जो बाहर गया था": पब्बाजितो
6381 यह श्लोक बारह-अक्षर वाले चरणों के साथ अधिक जटिल छंद में है।

कच्चाना, भद्दिया अध्याय;
यहां जिन छंदों की गणना की गई है
इस 6382 [समूह] में नौ सौ हैं
और ठीक चौरासी [और]।
पांच गुना एक सौ पचास
यहां अपदानों की व्याख्या की गई है। सारांश श्लोकों के साथ।
ये छह हजार [श्लोक] हैं
और दो सौ श्लोक भी।
इसके अलावा अठारह और छंद।

इस हद तक बुद्धपदाना, पच्चेकबुद्धपदाना और थेरापदाना पूर्ण हो चुके हैं। इसे निर्वाण का आधार बनाया जाए!6383

भद्दिया अध्याय, पचपनवाँ 6384

यासा अध्याय, छप्पनवाँ 6385

{551.}6386 Yasa6387

विशाल महासागर में तैरता हुआ, मेरा महल [तब] बहुत अच्छी तरह से बनाया गया था।
वहाँ एक तालाब भी था, जो अच्छी तरह से बना हुआ था।
लाल हंसों की चीखों से भरा हुआ,6389 [6331]

मंडलक 6390 के फूलों और गुलाबी और नीले कमलों से ढका हुआ ।
और वहाँ एक नदी बह रही थी, सुंदर, उत्कृष्ट किनारों के साथ, [6332]

6382 शाब्दिक अर्थ, "यहाँ"
6383 बीजेटीएस इन दो समापन पंक्तियों को छोड़ देता है, क्योंकि अपदान का बीजेटीएस संस्करण यहाँ समाप्त नहीं होता है, भले ही बीजेटीएस एक अपूर्ण सौ (सातकं) के लिए इन अध्याय सारांश छंदों को शामिल करता है।
6384 BJTS इस कथन को सारांश के बाद के बजाय ऊपर रखता है।
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6385 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6386 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6387 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6388 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6389 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6390 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मछलियों और कछुओं से ढका हुआ,6391
विभिन्न पक्षी चारों ओर फैले हुए हैं, 6392
मोरों और बगुले की आवाज़ों से शोरगुल भरा हुआ है।
[और] कोयल जैसी पक्षियों की [पुकार]।6395 [6333]

कबूतर6396 [और] रवि हंस6397 [भी], रूडी गीज़6398 और नादिचार ,
लैपविंग6399 [और] मैना पक्षी6400 यहाँ हैं, छोटे बंदर,6401 जीवजीवक .6402 [6334]

यह हंसों और बगुले, उल्लू और कई पिंगलों की आवाज़ों से गूंजता है ।
इस रेत में सात रत्न समाहित हैं।
[कीमती मोतियों और रत्नों से भरा हुआ]। [6335]

सोने से बने सभी वृक्षों में तरह-तरह की सुगंध व्याप्त थी।
वे मेरे महल को रोशन कर रहे हैं [वहाँ],
दिन-रात, हर समय। [6336]

सुबह-शाम साठ हजार वाद्ययंत्र बजाए जा रहे हैं। सोलह हजार महिलाएं भी लगातार मेरी सेवा में लगी हुई हैं। [6337]

अपने महल से विदा होकर, हृदय में प्रसन्नता लिए,
मैंने उस महान यशस्वी सुमेधा, विश्व के नेता की पूजा की। [6338]

संबुद्ध को प्रणाम करने के बाद,

6391 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6392 लिट., "गया"
6393 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
6394 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6395 लिट., "योग्य"
6396 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।
6397 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस में कई रूपों में geṇḍu लिखा है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।
6398 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार
6399 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)
6400 पठन uddalomika° BJTS के साथ PTS uddhalomikā के लिए (जिसका अर्थ लगभग समान है, देखें RD, sv)
6401 लिट., "एक फूल पर"
6402 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?
6403 khiḍḍār'ati'y'ā

उन्हें [और] विधानसभा को आमंत्रित करना,
तब उस ज्ञानी ने आने की सहमति दी, सुमेधा, विश्व के नेता। [6339]

मुझे धम्म का उपदेश देने के बाद ,6404 महान ऋषि ने [बाद में] विदा ली। संबुद्ध को प्रणाम करने के बाद,
मैं [तब] अपने महल लौट आया। [6340]

मैंने वहां मौजूद सभी लोगों को बुलाया: "आप सभी एक साथ इकट्ठा हो जाओ।
दिन के पहले भाग में,
बुद्ध महल में आएंगे। [6341]

"हम, जो आपके निकट रहते हैं, हमें कुछ ऐसा प्राप्त हुआ है जो हमारे लिए लाभकारी है। हम भी आपकी पूजा करेंगे।"
शिक्षक, बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ। [6342]

खाना-पीना परोसने के बाद, मैंने घोषणा की कि अब समय आ गया है।

विश्व नेता आ गया
एक लाख स्वामी के साथ.6406 [6343]

मैं पाँच वाद्ययंत्र बजाते हुए [उससे] मिलने गया।
सर्वोच्च व्यक्ति 6407 बैठ गया
ठोस सोने से बनी कुर्सी। [6344]

मैंने ऊपर एक चंदवा लगाया,
जो ठोस सोने से बना था; पंखे फिर भिक्षुओं की सभा में [इत्र] फैला रहे हैं। [6345]

मैंने भिक्षुओं की सभा को अपने भाषण से मंत्रमुग्ध कर दिया।
बहुत अधिक भोजन और पेय के साथ; मैंने अलग-अलग जोड़े दिए
भिक्षुओं की सभा को वस्त्र 6409। [6346]

जिसे उन्होंने सुमेधा, बलिदान प्राप्तकर्ता कहा,6410

6404 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6405 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"
6406 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6407 शाब्दिक रूप से, " पूजा "
6408 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6409 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6410 pariḷāho

भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए,
उस समय उन्होंने ये [छह] छंद कहे: [6347]

"जिसने मुझे भोजन और पेय दिया और इन सभी भिक्षुओं को भी भोजन कराया,"
मैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी दूंगा;
आप सब मेरी बात सुनो: [6348]

अठारह सौ युगों तक वह देवताओं के संसार में आनंदित रहेगा। वह हजार बार राजा बनेगा।
एक राजा जो [कानून का] पहिया घुमाता है। [6349]

चाहे वह किसी भी गर्भ में पुनर्जन्म ले, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ,
ठोस सोने की छत
हमेशा 6412 उसके लिए ले जाया जाएगा। [6350]

तीस हजार युगों में, ओक्काका (इक्ष्वाकु) के वंश में उत्पन्न होकर,
जिसका नाम गौतम है
वह दुनिया में शिक्षक होगा। [6351]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, समस्त दोषों का भली-भांति ज्ञाता,
वह निर्वाण प्राप्त करेगा, बेदाग। [6352]

भिक्षुओं की सभा में बैठे हुए
तब वह शेर की दहाड़ मारेगा।6413
उनकी चिता पर एक छतरी रखी हुई है;6414
इसके नीचे6415 उसका अंतिम संस्कार किया जाता है।" [6353]

मैंने भिक्षुत्व प्राप्त कर लिया है; मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं। किसी मंडप या वृक्ष की जड़ में,
मुझे भयंकर गर्मी का ज्ञान नहीं है। [6354]

उस समय मैंने जो उपहार दिया था, उसके बाद से तीस हजार युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
सब कुछ देने का फल। [6355]

6411 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6412 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
6413 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।
6414 samādhikusalo ahaŋ
6415 iddhipādesu kovido

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6356]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6357]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6358]

इस प्रकार पूज्य यासा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

प्रथम यासा थेरा की कथा।

{552.}6416 नादी-कस्सापा6417

जब पद्ममुत्तरा बुद्ध,
विश्व का सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति, भिक्षा मांगते हुए, अपनी असाधारण प्रसिद्धि को बनाए हुए था।
किसी प्रकार का सर्वोत्तम फल लेना,
मैंने इसे शिक्षक को दे दिया, [6359]

दो पैरों वाला स्वामी, 6418 विश्व का सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों का बैल। उस कर्म के कारण,
मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।
सभी विजय और पराजय से परे। [6360]

उस दान के बाद से लेकर अब तक के एक लाख युगों में, मैंने कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखा है:
यही सर्वोत्तम देने का फल है। [6361]

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6416 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6417 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6418 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6362]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6363]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6364]

इस प्रकार पूज्य नादिकसप्पा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

द्वितीय नादिकसप्पा थेरा की कथा।

{553.}6419 गया-कस्सापा6420

मैं [तब] हिरण के चमड़े के वस्त्र पहने हुए था, और कंधे पर एक भारी जुआ लादे हुए था। खारी का बोझ ढोते हुए, मैं
बेर6422 को आश्रम में लाया गया। [6365]

उस युग में भगवान
वह अकेला था, उसके साथ कोई और नहीं था।
फिर वह मेरी कुटिया की ओर बढ़ा, हर समय तेज रोशनी बिखेरता हुआ। [6366]

अपने हृदय को प्रसन्न करते हुए, आज्ञाकारी ईश्वर की पूजा करते हुए,6424

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6419 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

6420 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।

472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

6421 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

6422 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

इससे बना वस्त्र।

6423 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

6424 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना", "चिंतन करना", "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6425 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

उन्हें अपने दोनों हाथों से लेते हुए
मैंने बुद्ध को बेर दिए। [6367]

पिछले इकत्तीस युगों में
मैंने उसे वह फल तब दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई ज्ञान नहीं है: बेर देने का फल। [6368]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6369]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6370]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6371]

इस प्रकार पूज्य गया-कस्सपा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

तीसरे गया-कसप्पा थेरा की कथा।

{554.}6426 किम्बिला6427

जब काकुसंध का देहांत हुआ,6428 ब्राह्मण, सिद्ध पुरुष,6429 सालाला इकट्ठा करते हुए 6430 फूल,
मैंने एक मंडप का निर्माण किया।6431 [6372]

तावतिंसा जाकर,
मुझे एक आलीशान हवेली मिली।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6426 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6427 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6428 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।
6429 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।
6430 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित
6431 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

मैंने अन्य सभी देवताओं को पीछे छोड़ दिया:
यह अच्छे कर्मों का फल है। [6373]

चाहे दिन हो या रात, चलते-फिरते रहूँ या खड़े रहूँ, मैं सलाला के फूलों से ढका रहता हूँ:
यह अच्छे कर्मों का फल है। [6374]

इसी [वर्तमान] युग 6433 के भीतर
चूंकि मैंने बुद्ध की पूजा की है, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6375]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6376]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6377]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6378]

इस प्रकार पूज्य किम्बिला थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

किम्बिला थेरा, चौथे की कथा।

{555.}6435 वज्जीपुत्त6436

धन्य पुरुष, हजार किरणों वाले, 6437
स्वयं-निर्मित, अजेय,

6432 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)
6433 शाब्दिक रूप से, "गया"
6434 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6435 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6436 “शुभ,” एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक (“जौ का दलिया दाता”)
6437 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

अपने एकांत से उठते हुए,
भोजन की तलाश में निकल पड़ा। [6379]

हाथ में फल लिए हुए, मैंने पुरुषों के उस श्रेष्ठ बैल को आते हुए देखा। मैं प्रसन्न और आनंदित था।
मैंने उसे डंठल सहित फल दिए। [6380]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने [उसे] वह फल [उस समय] दिया था, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:
फल देने का फल यही है। [6381]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6382]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6383]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6384]

इस प्रकार पूज्य वज्जीपुत्त थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

पांचवें वज्जीपुत्त थेरा की कथा।

{556.}6438 उत्तरा6439

सम्बुद्ध सुमेधा, बत्तीस महान लक्षणों वाले, एकांतप्रिय, धन्य पुरुष।
हिमालय तक आ गया। [6385]

हिमालय में समाहित,
प्रधान, दयालु, ऋषि

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6438 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6439 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

पद्मासन में आना,6440
बैठ गया, परम व्यक्ति। [6386]

मैं उस समय जादूगर6441 था।
[जो] आकाश में यात्रा कर सकता था;
मैं अपना पुराना 6442 त्रिशूल ले जा रहा हूँ।

वह आसमान से होकर गुजर रहा था [ठीक वहीं]। [6387]

जैसे पहाड़ पर आग जल रही हो, जैसे पंद्रहवें दिन चाँद चमक रहा हो,6443 बुद्ध जंगल में प्रज्वलित हुए, जैसे खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह। [6388]

जंगल के ऊपर से उतरते हुए, बुद्ध की किरणें नरकट की आग के रंग से पूरे आकाश को भर गईं।6444
यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

घूमते-घूमते मुझे एक फूल दिखाई दिया,
दिव्य सुगंध से युक्त एक डिनर प्लेट6445। तीन फूल लिए हुए,
मैंने उन्हें बुद्ध को अर्पित किया।

बुद्ध की राजसी शक्ति के माध्यम से, [तभी] मेरे वे तीन फूल, तने ऊपर की ओर मुड़े हुए, पंखुड़ियाँ नीचे की ओर, वे गुरु के लिए छाया बना रहे हैं। [6391]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,
मैं तब तावतिंसा गया। [6392]

वहाँ मेरा सुनिर्मित महल है
इसे "डिनर-प्लेट" के नाम से जाना जाता था।6448

6440 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

6441 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

6442 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

6443 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, "ध्यान करना" "चिंतन करना" "सोचना"; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6444 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

6445 lit., "गया"

6446 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

6447 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"

6448 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

इसकी लंबाई साठ लीग थी।
[और यह] तीस लीग चौड़ा था। [6393]

एक लाख शिखर,

एक मिल- कण्ड 6449 सेंट- भेण्डु 6450 [बड़ा], सोने का बना हुआ, झंडों से ढका हुआ,
वह हवेली मेरे लिए प्रकट हुई। [6394]

क्रिस्टल से बनी पालकी,
सोने से बना [या] रत्नों से बना, और माणिक्य से भी बना।
मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँगा, यदि मैं चाहूँ। [6395]

और वहाँ एक महंगा बिस्तर था, जिसमें एक असेंबल किया हुआ गद्दा था, जिसके एक सिरे पर ऊनी कंबल था।
और [बहुत सारे] तकियों से सुसज्जित। [6396]

महल से निकलकर, मैं दिव्य यात्राओं पर विचरण कर रहा हूँ, अपनी इच्छा के अनुसार चल रहा हूँ।
देवताओं की सभा द्वारा सम्मानित। [6397]

मैं नीचे फ्लावर्स6454 पर खड़ा हूँ;
मेरे ऊपर एक छत्र है।
हर तरफ सौ मील
डिनर-प्लेट [पेड़ों] से ढका हुआ है.6455 [6398]

वहाँ साठ हजार वाद्ययंत्र शाम और सुबह मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं।
वे लगातार मेरी देखभाल कर रहे हैं।
दिन-रात वे आलसी नहीं हैं। [6399]

मुझे खेल और सुख-सुविधाओं में आनंद आता है;6456
इच्छाओं की कामना करते हुए, मैं आनंदित होता हूँ

6449 यहाँ और निम्नलिखित नवशब्द में मैं छंद को बनाए रखने के लिए "हजार" और "सौ" के लिए लैटिन संक्षिप्त रूप के अंग्रेजी उपयोग का लाभ उठाता हूँ। पाली में इसका शाब्दिक अर्थ है, "एक हजार कंद (भाग, हिस्सा, गांठ, एक छोटा माप), सौ भेंदु [लंबा? मोटा?]"।

6450 बीजेटीएस के अनुसार, पीटीएस कई रूपों में गेण्डु पढ़ता है । कम से कम प्रसारण में, ये अस्पष्ट माप
भले ही वे उस ऐतिहासिक परिस्थिति के सुराग हों जिसमें मूल रचना की गई थी, फिर भी वे आज की तुलना में शायद अधिक बोधगम्य नहीं रहे होंगे।

6451 y'enicchakā , BJTS सिंहली व्याख्या kämäti tänaka के अनुसार

6452 °vikutī°; मैं इसे घास या ऊन की परतों को ढेर करके ("इकट्ठा करके") निर्मित गद्दे (tūlikā°) के रूप में समझता हूँ (देखें आरडी., एसवी)

6453 में उद्दालोमिका° को पीटीएस उद्दालोमिका के लिए बीजेटीएस के साथ पढ़ा गया है (जिसका अर्थ लगभग समान है, आरडी, एसवी देखें)

6454 लिट., "एक फूल पर"

6455 या शायद फूल? या दोनों, यानी खिले हुए पेड़?

6456 khiḍḍār'ati'y'ā

नृत्य और गायन के कारण,

वहाँ के वाद्य यंत्र और भाषण। [6400]

वहाँ खाने-पीने के बाद मैं तीस,6457 लोगों के बीच, महिलाओं की टोलियों के साथ, आनंद मना रहा हूँ।
मैं अपने महान महल में आनंदित हूँ।6458 [6401]

और मैंने वहां पांच सौ [अलग-अलग] बार दैवीय शासन का प्रयोग किया।
और तीन सौ [विभिन्न] बार, मैं एक राजा था जो पहिया घुमाता था। [और मैंने] अनगिनत स्थानीय शासन का आनंद लिया। [6402]

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मुझे अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6403]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:
चाहे वह किसी देवता का हो या किसी मनुष्य का।
मुझे पुनर्जन्म की कोई अन्य अवस्था ज्ञात नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6404]

मैं दो उच्च कुलों, क्षत्रिय और ब्राह्मण में जन्मा हूँ।
मुझे छोटे कुलों के बारे में जानकारी नहीं है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6405]

मुझे हाथी और घोड़े से चलने वाले वाहन, पालकी और रथ, सब कुछ प्राप्त हो रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6406]

दासों की टुकड़ियाँ, दासी कन्याओं की टुकड़ियाँ और सजी-धजी स्त्रियाँ।
मुझे ये सब मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6407]

रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा,
मुझे खोमा का कपड़ा और सूती सामान भी मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6408]

नए कपड़े और ताजे फल।

6457 तिदास , अर्थात् तावतिंस स्वर्ग में
6458 vyamha-m-uttame , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे] परम (या उत्कृष्ट) महल में"

मुझे सबसे स्वादिष्ट प्योर6459 भोजन मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6409]

लोग कह रहे हैं, "इसे खाओ, आनंद लो।"

कृपया इस [सुंदर] बिस्तर पर लेट जाइए," मुझे यह सब मिल रहा है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6410]

मुझे हर जगह सम्मान दिया जाता है6460 [और] मेरी बहुत ऊँची ख्याति है, मैं हमेशा बहुमत में रहता हूँ,6461
मेरे दल में कोई गुट नहीं है। [6411]

मुझे सर्दी-जुकाम का ज्ञान नहीं है, और न ही बुखार का। इसी प्रकार मुझमें मन या हृदय का कोई कष्ट नहीं है।

सुनहरे रंग का होने के कारण,
मैं जन्म-जन्मांतर तक जन्म लेता हूँ। मुझे कोई बुरा रंग नहीं पता।
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6413]

देवताओं की दुनिया से गिरते हुए, मेरी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर,
मेरा पुनर्जन्म श्रावस्ती, 6464 में हुआ है।
एक धनी [कुल] में बड़े हॉल के साथ.6465 [6414]

पांचों इंद्रिय सुखों का त्याग करना,6466
मैं बेघर हो गया। मेरी उम्र सिर्फ सात साल थी।
मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। [6415]

मेरे गुणों को जानकर, बुद्ध
उस अद्भुत व्यक्ति ने [तब] मुझे नियुक्त किया। एक युवा बालक जो सम्मान के योग्य है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6416]

6459 nava , वही विशेषण जिसका अनुवाद प्रथम पद में "नया" और द्वितीय पद में "ताज़ा" के रूप में किया गया है।
6460 शाब्दिक अर्थ, " पूजा "
6461 महापक्खो , शाब्दिक अर्थ, "महान गुटों में से एक" "एक शक्तिशाली दल वाला व्यक्ति,"
6462 या "मुझे नहीं पता," ना जानामी
6463 pariḷāho
6464 शाब्दिक रूप से, "शहर में, श्रावस्ती,"
6465 महासाले , धन का प्रतीक (जिसे सु-अढके , "अत्यंत धनी" या "अत्यंत प्रभावशाली" के रूप में और भी बल दिया जाता है)
6466 pañca-kāma-guṇe , "इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र," अर्थात् पाँच इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सुख।

दिव्य दृष्टि शुद्ध हो जाती है;
मैं ध्यान की अवस्थाओं में निपुण हूँ।
सिद्ध किए गए विशेष ज्ञान:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6417]

विश्लेषणात्मक तरीके प्राप्त किए गए,
सभी महाशक्तियों में कुशल,6468
विशेष ज्ञान में निपुण:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6418]

तीस हजार युगों में
जब से मैंने बुद्ध की पूजा की है, तब से मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं हुआ है:
यह बुद्ध- पूजा का फल है । [6419]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6420]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6421]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6422]

इस प्रकार पूज्य उत्तरा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

छठे उत्तरा थेरा की कथा।

{557.}6470 अपारा उत्तरा6471

जब जगत के स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया, तब जगत के नेता सिद्धार्थ ने...

6467 samādhikusalo ahaŋ
6468 iddhipādesu kovido
6469 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"
{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6470 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6471 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

अपने रिश्तेदारों को बुलाकर,
मैंने [बुद्ध के] अवशेषों की पूजा की। [6423]

पिछले चौरानवे युगों में
मैंने उन अवशेषों की पूजा की थी, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला है:

यह अवशेष पूजा का फल है। [6424]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6425]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6426]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6427]

इस प्रकार पूज्य अपरा उत्तरा थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

सातवें अपारा उत्तरा थेरा की कथा।

{558.}6474 भद्दाजी6475

मैं हाथियों से भरे एक तालाब में डुबकी लगाकर वहां से कमल की जड़ उखाड़ रहा हूँ।
क्योंकि [वे ही] मैं तब खा रहा होता हूँ। [6428]

उस काल में बुद्ध 6476

6472 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

6473 r'attambaradharo , शाब्दिक अर्थ, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," यहाँ अंबारा एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।
इससे बना वस्त्र।

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6474 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।

6475 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")

6476 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा") के रूप में, या बिना खमीर की रोटी या जंकेट (पीएसआई: सिंह. रोटीया) के रूप में। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

उनका नाम पदुमुत्तरा था।
लाल रंग से रंगे वस्त्र पहने हुए,6477 बुद्ध आकाश में यात्रा कर रहे हैं,6478 चिथड़ों से बने अपने वस्त्रों को झटकते हुए।
फिर मैंने [उसके वस्त्रों की] आवाज सुनी, [और] ऊपर [आकाश की ओर] देखते हुए,
मैंने विश्व के नेता को देखा। [6429-6430]

वहीं पर रहते हुए, मैंने विश्व नेता को आमंत्रित किया: “जड़ों से शहद बह रहा है”
[और] दूध [और] तेल6480 तनों से बहता है;
बुद्ध को, जो दृष्टि को परिपूर्ण करने वाले हैं,
दया करके मुझसे कुछ स्वीकार करो। [6431]

तब दयालु, महान ख्याति प्राप्त गुरु अवतरित हुए।
उस सुंदर नेत्र ने दया भाव से मेरा भिक्षापात्र स्वीकार कर लिया। उसे स्वीकार करते हुए, संबुद्ध ने
उन्होंने मुझे इस प्रकार धन्यवाद व्यक्त किया: [6432]

हे पुण्यवान, प्रसन्न रहो;
आपका पुनर्जन्म संपन्न हो। कमल की जड़ के इस उपहार के कारण,
आपको अपार सुख प्राप्त हो। [6433]

हालांकि, संबुद्ध,
जिसका नाम "सर्वश्रेष्ठ कमल" था।
संबुद्ध ने वह भोजन ग्रहण किया,
विक्टर आसमान से उड़ गया। [6434]

और अधिक कमल की जड़ लेकर मैं अपने आश्रम लौट आया। उस जड़ को एक पेड़ पर लटकाकर,
मुझे अपनी भेंट याद आ गई। [6435]

फिर एक भीषण आंधी चली;
इसने जंगल को हिला दिया।

संभवतः, और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी प्रकार का जौ से बना भोजन है।

6477 r'attambaradharo , शाब्दिक रूप से, "लाल अंबारा धारण करने वाला ," बाद वाला एक प्रकार के कपड़े के साथ-साथ उससे बने ऊपरी वस्त्र को भी संदर्भित करता है।

6478 शाब्दिक अर्थ, "जाना," अन्यत्र संदर्भ के अनुसार "उड़ना" के रूप में अनुवादित

6479 nijjhāyamāno , शाब्दिक अर्थ, “ध्यान करना”, “चिंतन करना”, “सोचना”; मैं BJTS सिंहली व्याख्या balannā vu mama का अनुसरण करता हूँ

6480 सप्पी , शाब्दिक अर्थ, घी, शुद्ध मक्खन (गी तेल)

6481 शाब्दिक अर्थ, “गया”

6482 रीडिंग sañcālesi with BJTS for PTS sañjālesi

वह स्थान शोर से भर गया था।
वहाँ बिजली की कड़क फूट रही थी। [6436]

फिर आकाश से बिजली गिरी और सीधे मेरे सिर पर लगी। इसी वजह से मैं बैठ गया।
मैं मौके पर ही मर गया। [6437]

[तब] मेरे अच्छे कर्मों से बंधे होने के कारण, मेरा तुसिता में पुनर्जन्म हुआ।
जब मेरा [मानव] शरीर नीचे गिरा, तो मुझे देवताओं की दुनिया में आनंद आया। [6438]

तब छियासी हजार स्त्रियाँ [सुंदर वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई] शाम और सुबह मेरी सेवा करती थीं:
कमल की जड़ देने का फल। [6439]

मानव गर्भ में आने के बाद, मैं हर समय खुश रहती हूँ।
मेरे पास संपत्ति की कोई कमी नहीं है:
कमल की जड़ देने का फल। [6440]

फिर, हे देवताओं के परमेश्वर, तटस्थ परमेश्वर द्वारा दया किए जाने पर, समस्त दोष दूर हो जाते हैं;
अब पुनर्जन्म नहीं होगा। [6441]

एक लाख युगों में
जब से मैंने उस समय भिक्षा में भोजन दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:
कमल की जड़ देने का फल। [6442]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6443]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6444]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

6483 शाब्दिक अर्थ, "गिर गया"
6484 शाब्दिक अर्थ, "योग्य"

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6445]

इस प्रकार पूज्य भद्दाजी थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

आठवें भद्दाजी थेरा की कथा।

{559.}6485 Sīvaka6486

जब महान ऋषि विपस्सी अपनी इच्छा अनुसार घूम रहे थे, तब उन्होंने देखा कि उनका कटोरा खाली है।
मैंने इसे जौ के दलिया से भर दिया।6487 [6446]

पिछले इक्यावन युगों में
मैंने उस समय दान में भोजन दिया था, मुझे कभी कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला:
यह जौ के दलिया का फल है। [6447]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,
मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। [6448]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।
तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6449]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,
छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,
मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! [6450]

इस प्रकार पूज्य सिवका थेरा ने ये श्लोक कहे थे।

नौवें शिवक थेरा की कथा।

उसका सारांश यह है:

{फैंसी ब्रैकेट} में दिए गए 6485 अपदान नंबर BJTS संस्करण के अनुरूप हैं, जिसमें PTS संस्करण की तुलना में अधिक व्यक्तिगत कविताएँ हैं, जो इस अनुवाद की मुख्य संख्या निर्धारित करता है।
6486 "शुभ," एक ऐतिहासिक भिक्षु, देखें डीपीपीएन II: 1162. यही अपदान ऊपर, शब्दशः, इस प्रकार शामिल है।
472 {475}, कुम्मासादायक ("जौ का दलिया दाता")
6487 कुम्मासा , संस्कृत: कुलमाष , जौ से बना एक व्यंजन, या तो नरम दलिया या खिचड़ी (पीएसआई यवयेन कल आहारयक , "जौ से बना भोजन;" बीजेटीएस सिंह. ग्लॉस कोमुपिंडु , "नरम उबला हुआ भिक्षा"), या बिना खमीर की रोटी या व्यंजन (पीएसआई: सिंह. रोटीया)। खाली कटोरे को "भरने" के वर्णन को देखते हुए, पहला विकल्प अधिक संभावित लगता है और मैंने उसी के अनुसार अनुवाद किया है। यह किसी भी तरह से जौ से बना कोई भोजन है।

यासा और नदी-कस्सप, गया, किम्बिला, वज्जिता, दो उत्तर और भद्दाजी और शिवक अंतिम।

यासा अध्याय, छप्पनवाँ अध्याय।

थेरापदान समाप्त हो गया है ।

(पुस्तक "मचसा" [बीजेटीएस के वैकल्पिक संस्करणों में से एक] में थेरा रट्ठपाल और उपवान के अपदानों को यस अध्याय के अंत में समाहित दिखाया गया है। यह समझना चाहिए कि इन्हें यहाँ नहीं दिखाया गया है क्योंकि ये अपदानपाली के प्रथम भाग के दूसरे और तीसरे अध्यायों में आते हैं [रट्ठपाल दूसरे अध्याय में क्रमांक 18 पर है; उपवान तीसरे अध्याय में क्रमांक 22 पर है]।)

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 1.सुमेधा

स्रोत: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
थेरीस (वरिष्ठ ननों) की किंवदंतियाँ

अब थेरीस की कथाएँ सुनो:1

सुमेधा अध्याय, पहला

1. सुमेधा2
जब कोणागमना, हे भगवान,

अपने नए निवास, मठवासी आश्रम में था,3 [हम] जो तीन महिला मित्र थीं, [तब] एक मठ दान किया।4 (1) [1]

दस बार [और फिर] सौ बार, और फिर सौ सौ बार,5 हम देवताओं के बीच पुनर्जन्म हुए;

कौन बता सकता है कि मनुष्य पुनर्जन्म कैसे होते हैं? (2) [2]

देवताओं में हमारे पास अपार शक्ति थी; मनुष्य की शक्ति का कौन वर्णन कर सकता है? सात रत्नों वाली प्रमुख रानी,6

मैं एक अनमोल महिला थी। (3) [3]

1 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत करता है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

2 ka'ssape 'jinasāsane , शाब्दिक अर्थ, "विजयी कस्सपा [बुद्ध] के विधान में" 3 पीटीएस °brahmaceram के स्थान पर बीजेटीएस ° brahmacariyam का पाठ , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन" "पवित्र जीवन" "ब्रह्मवास" 4 अर्थात्, तैंतीस देवता। 5 पीटीएस mahāmuni , महान ऋषि के स्थान पर बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ mahāmune का पाठ। 6 यह पीटीएस bhikkhunī Selā के लिए बीजेटीएस पाठ है। 7 यह पंक्ति केवल बीजेटीएस में है, जो यहां और अन्यत्र Pesalā पढ़ता है।

यहां अच्छे कर्मों का संचय होने के कारण, हम सफल कुलों से हैं: धनंजनी और खेमा भी।

मेरे साथ, तीन महिलाएं। (4) [4]

उस आश्रम को अच्छी तरह से बनवाकर, उसके हर हिस्से को सजाकर, हमने प्रसन्नतापूर्वक उसे दान कर दिया।

बुद्ध के नेतृत्व वाली सभा को।9 (5) [5]

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूं,

10 के अनुसार, उस कर्म के अनुसार, देवताओं और मनुष्यों में भी,

मैं सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता हूँ। (6) [6]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप11 के नाम से जाना जाता है

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (7) [7]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (8) [8]

उस [शासक] की सात बेटियाँ थीं, शाही कन्याएँ जो आराम से पली-बढ़ी थीं। वे बुद्ध की सेवा करने की शौकीन थीं।

उन्होंने धार्मिक जीवन का अभ्यास किया।12 (9) [9]

उन [लड़कियों] की सहयोगी बनकर, नैतिक सिद्धांतों में दृढ़ रहकर, बहुत सावधानी से उपहार देते हुए,

मैंने घर में रहते हुए प्रतिज्ञाओं का अभ्यास किया।(10) [10]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (11) [11] वहाँ से गिरकर मैं यम के पास गया,13

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

9 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

10 यह उपसंहार केवल BJTS में ही मिलता है; PTS में यह नहीं है।

11 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

पीटीएस महामुनि , महान ऋषि के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ महामुने का 12वां पाठ।

13 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक रूप से, "[मैं] पूरा कर रहा हूँ (या भर रहा हूँ, यह अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है]

फिर मैं तुसिता गया, और फिर निम्मानारती गया।

और फिर वासावत्ती नगर। (12) [12]

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूँ, अच्छे कर्म करने में दृढ़ रहूँ,14

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

उन सभी [स्वर्गों] में राजाओं के। (13) [13]

फिर मानवता में विलीन हो गया,

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

उन राजाओं के बारे में जिन्होंने [कानून का] पहिया घुमाया

और राजा [बड़े क्षेत्रों पर शासन करते हुए] ।15 (14) [14]

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख का अनुभव करने के बाद, हर जगह सहज महसूस करने के बाद,

मैंने कई जन्मों के माध्यम से 16 यात्रा की। (15) [15]

यही कारण है, यही वजह है, जड़ है, व्यवस्था के लिए धैर्य है,

पहली पहचान,18

इस धम्म प्रेमी का निर्वाण। (16) [16]19

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (17) [17]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (18) [18]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [19]

उसका नाम) एक अपूर्ण सौ," यानी, "मैं 100वां गुलाम था"

14 puṇṇā ti nāmaŋ

15 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

16 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

17 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

18 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

19 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

इस प्रकार पूज्य भिक्षुणी सुमेधा ने ये श्लोक कहे। [सुमेधा थेरी की कथा यहीं समाप्त होती है।]

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 2.मेखलादायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स
नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
2. मेखलदायिका22
मैंने एक स्तूप का निर्माण करवाया था।23

भगवान सिद्धार्थ के लिए, मैंने अपना कमर का आभूषण अर्पित किया।24

ताकि शिक्षक की मरम्मत की जा सके।25 (1) [20]

जब वह विशाल स्तूप बनकर तैयार हो गया, तो मैंने एक और आभूषण दिया।26

विश्व के मार्गदर्शक, ऋषि के लिए,

[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (2) [21]

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने तब वह कमर का आभूषण दिया था, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:

स्तूपों के निर्माण का यही फल है। (3) [22]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [23]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [24]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [25]

इस प्रकार भिक्खुनी मेखलादायिका थेरी27 ने ये श्लोक कहे।

20 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

21 danto , या "वश में किया हुआ"

22 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

23 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

24 का'स्सपे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कस्पा (बुद्ध) की व्यवस्था में"

25 पठन °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

26 अर्थात् तैंतीस देवता।

27 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

मेखलादायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 3.मण्डपादायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
3. मंडपदायिका 28

मैंने बुद्ध कोणागमना के लिए एक मंडप बनवाया और निरंतर वस्त्र दान करता रहा।

बुद्ध को, जगत के संबंधी। (1) [26]

मैं जिस भी देश में जाऊं,

चाहे वह छोटा शहर हो या शाही नगर, मुझे हर जगह पूजा दी जाती है :

यह अच्छे कर्मों का फल है।29 (2) [27]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (3) [28]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (4) [29]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [30]

इस प्रकार, भिक्खुनी मंदपदायिका ने ये श्लोक कहे थे।

मांडपदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान 4.1-थेरिस सूची >> 4.संकमनात्त

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40

4. संकमनत्ता30

जब भगवान कोंडञ्ञ ने

दुनिया का सर्वश्रेष्ठ, तटस्थ व्यक्ति, सड़क पर यात्रा कर रहा था।

जीवित प्राणियों को पार कराना, (1) [31]

28 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

29 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

30 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

मेरे घर से बाहर आने के बाद,

मैंने चेहरा नीचे करके वहीं लेट गया।

दुनिया का सबसे अच्छा, दयालु,

फिर मेरे सिर पर एक कदम रखा। (2) [32]

मेरे सिर पर पैर रखने के बाद, विश्व के नेता ने [तब] छोड़ दिया। मेरे दिल में जो खुशी थी, उसके कारण।

मैं तुसिता [स्वर्ग] गया। (3) [33]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (4) [34]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (5) [35]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [36]

इस प्रकार भिक्खुनी संकमनात्ता ने ये श्लोक कहे।

संकमनत्ता थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 5.तीनिनामलिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
5. तिनिन◌मालिका31

उस समय मैं चंदाभागा नदी के किनारे किन्नरी हुआ करती थी।32

मैंने वहां स्टेनलेस बुद्ध की मूर्ति देखी।

स्वयं-बनें, अजेय। (1) [37]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।

विस्मय से व्याकुल होकर,33 हाथ जोड़कर, सरकंडों से बनी माला धारण करते हुए,

मैंने स्वयं-एकत्व की पूजा की। (2) [38]

31 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

32 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

33 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

उस कर्म के फलस्वरूप,

मैं तैंतीस [देवताओं] के पास गया।34

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

देवताओं के छत्तीस राजाओं में से। (3) [39-40]

मैं दस चक्र-चालकों के प्रधान राजा की रानी के स्थान पर स्थिर थी। मेरा हृदय व्याकुल था,35

मैं बेघर हो गया। (4) [40]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

मेरे लिए अस्तित्व का वध हो गया है।36

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (5) [42]37

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने उस फूल से पूजा की ।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (6) [41]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (7) [43]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [44]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [45]

इस प्रकार, भिक्खुनी तिणिनलमालिका ने ये श्लोक कहे थे।

तिणिनलमालिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

34 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

35 यानी तैंतीस देवता।

36 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

37 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 6.एकपिण्डदायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
6. एकपिण्डदायिका38

शहर में, बंधुमती,

बंधुमा नाम का एक राजा था।3940

मैं [तब] उस राजा की पत्नी थी, एक निश्चित तरीके से व्यवहार कर रही थी।41 (1) [46]

अकेले जाकर, बैठकर, मैंने इस प्रकार चिंतन किया:

मैंने कोई भी ऐसा नेक काम नहीं किया है जो मुझे

जब मेरी मृत्यु हो जाएगी, तो मैं ले जा सकता हूँ। (2) [47]

मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मैं निश्चित रूप से नरक में जाऊंगा, जो धधकती हुई आग से भरा होगा और दुखों से लदा होगा।

भयानक रूप का, [और] बहुत क्रूर।" (3) [48]

राजा से संपर्क करने के बाद,

तब मैंने उससे ये शब्द कहे: "हे क्षत्रिय, मुझे दे दो।"

एक भिक्षु, [जिसे] मैं [इसके बाद] भोजन कराऊंगा।" (4) [49]

उस महान राजा ने मुझे एक प्रतिभाशाली भिक्षु दिया।

अपना कटोरा लेने के बाद,

मैंने उसे दूध-चावल से संतुष्ट किया।42 (5) [50]

मैंने इसे दूध-चावल से भर दिया और फिर उस पर सुगंधित मरहम लगाया। इसके ऊपर जाली लगाकर,

मैंने इसे नीले कमल से बंद कर दिया।43 (6) [51]

उसे अपने जीवन भर के चिंतन का विषय बनाकर, वहाँ अपने हृदय को सुख प्रदान करते हुए, मैं तावतिंसा गया। (7) [52]

मुझे देवताओं के बीच तीस राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

38 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

39 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

40 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

41 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

42, अर्थात् तैंतीस देवता।

43 पीटीएस महामुनि , महान ऋषि के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

44 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है

मेरे मन की जो इच्छा हो

इच्छानुसार अस्तित्व में आता है। (8) [53]

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

बीस राजाओं में से जिन्होंने पहिया घुमाया। संचित [पुण्य] के साथ,

मैंने जन्मों के माध्यम से पुनर्जन्म लिया। (9) [54]

मैं हर बंधन से मुक्त हो गया हूँ;

मेरी आधारभूत परतें नष्ट हो गई हैं;45

सभी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (10) [55]

पिछले इक्यावन युगों में

मैंने उस समय दान दिया था, मुझे अब तक कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:

यही उस भोजन का फल है जिसके लिए भीख मांगी जाती है। (11) [56]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (12) [57]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [58]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [59]

इस प्रकार भिक्खुनी एकपिण्डदायिका ने ये श्लोक कहे।

एकपिंडदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
7. कटच्छुभिक्खदायिका46

मैंने भीख मांगकर प्राप्त भोजन का एक चम्मच लेकर उसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को अर्पित कर दिया।

शिक्षक, जिनका नाम तिस्सा था,

जो भोजन की भीख मांगते हुए भटक रहा था। (1) [60]

45 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

46 "पत्थर," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

इसे स्वीकार करते हुए, संबुद्ध, तिस्सा, विश्व के प्रधान नेता, शिक्षक, मार्ग पर खड़े हैं,

उन्होंने मुझे यह धन्यवाद दिया: (2) [61]

"भीख में मिले इस एक चम्मच भोजन को देने से तुम तावतिंस जाओगे।"

आपको देवताओं के छत्तीस राजाओं की मुख्य रानी के स्थान पर स्थापित किया जाएगा। (3) [62]

आप पचास राजाओं की मुख्य रानी के स्थान पर स्थिर रहेंगे जो पहिया घुमाते हैं। आपके मन में जो भी इच्छा हो, वह आपको प्रतिदिन प्राप्त होगी। (4) [63]

अत्यधिक सुख का अनुभव करने के बाद, आप निःसंपन्न होकर आगे बढ़ेंगे।48

तुम्हारे सभी दोषों को नष्ट करते हुए,

तुम निर्वाण प्राप्त करोगे, बेदाग।" (5) [64]

यह कहकर संबुद्ध, तिस्सा, विश्व के प्रधान नेता, वीर, आकाश में उड़ गए।

ठीक हवा में हंस-राजा की तरह। (6) [65]

मेरी शानदार प्रस्तुति बहुत अच्छी रही।

मैंने अपना बलिदान बखूबी दिया।49

भीख मांगकर दिया गया वह एक चम्मच भोजन देना,

मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है। (7) [66]

पिछले बानवे युगों में

मैंने उस समय दान दिया था, मुझे अब तक कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं मिला है:

भीख मांगने पर भोजन देने का यही फल है। (8) [67]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (9) [68]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [69]

47 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

48 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

49 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [70]

इस प्रकार, भिक्खुनी कटच्छुभिक्खदायिका ने ये श्लोक कहे।

कटच्छुभिक्खदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 8.सत्तुप्पलमलिकाय
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
8. सत्तूपलमालिकाय 50

अरुणावती नगर में,

अरुणवा नाम का एक राजा रहता था।51

मैं उस राजा की पत्नी थी।

उसके द्वारा यात्रा पर भेजा गया।52 (1) [71]

सात फूल लेकर, दिव्य सुगंध से भरपूर नीले कमल को लेकर, उस सुंदर महल में लेटकर,

तब मैंने इस प्रकार विचार किया: (2) [72]

“ये फूल मेरे किस काम के हैं?”

मेरे सिर के ऊपर लगाया गया?

वे मेरे लिए बेहतर विकल्प होंगे।

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध के [महान] ज्ञान के लिए। (3) [73]

वे संबुद्ध का सम्मान कर रहे हैं; महल के द्वार के पास बैठे हुए, जब संबुद्ध यहाँ आते हैं,

मैं भी महान ऋषि की पूजा करूँगा।" (4) [74]

अर्जुन वृक्ष के समान तेजस्वी,54 पशुओं के राजा सिंह के समान, भिक्षुओं की सभा के साथ,

विक्टर [तब] सड़क पर आया। (5) [75]

बुद्ध की किरणों को देखकर, प्रसन्न होकर, भावविभोर होकर, द्वार खोलकर, मैं

[तब] उन्होंने सर्वश्रेष्ठ बुद्धों की पूजा की। (6) [76]

50 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

51 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

52 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

53 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

54 अर्थात् तैंतीस देवता।

मैंने आकाश में वे सात नीले कमल बिखेर दिए। फिर बुद्ध के सिर को ढकते हुए,

वे [आकाश में] रुके हुए थे। (7) [77]

दिल में उत्साह और मन में प्रसन्नता लिए हुए,

विस्मय से भर गया,55 हाथों को जोड़कर, मेरे दिल को वहां खुशी पहुंचाते हुए,

मैं तब तावतिंसा गया। (8) [78]

मेरे सिर के ऊपर नीले कमल के फूल की छतरियाँ हैं।

तब मुझसे दिव्य सुगंध निकलती है:

सात कमलों का फल। (9) [79]

जब भी मुझे अपने रिश्तेदारों के समूह के साथ कहीं भेजा जाता है, तो साथ में नीले कमल ले जाए जाते हैं।

मेरे पूरे दल पर। (10) [80]

मैं देवताओं के सत्तर राजाओं की प्रधान रानी के पद पर नियुक्त थी। हर जगह एक महिला शासक थी।

मैं जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेता रहा। (11) [81]

मुझे 63 चक्र-घुमाने वाले राजाओं की मुख्य रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

वे सभी मेरी [इच्छाओं] के अनुरूप हैं;

मैं वह व्यक्ति हूँ जिसके शब्दों को सुना जाता है।58 (12) [82]

मेरा रंग और उससे निकलने वाली सुगंध

वे नीले कमल के फूलों के समान हैं; मैंने कभी बुरे पुनर्जन्म को नहीं जाना है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (13) [83]

महाशक्तियों में निपुण,

ज्ञान के भागों को केंद्र बिंदु के रूप में पसंद करने वाला,59

विशेष ज्ञान में निपुणता प्राप्त की:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (14) [84]

ध्यान बनाए रखने में कुशल,60

55 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने का पठन।

56 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

57 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

58 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

59 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

60 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

शांत ध्यान में चरते हुए, उपयुक्त परिश्रम करते हुए:61

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (15) [85]

मेरा प्रयास इस बोझ को वहन कर रहा है

मुझे आसक्तियों से मुक्ति दिलाई;62

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं।

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (16) [86]

पिछले इकत्तीस युगों में

मैंने उस फूल से उनकी पूजा की, मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं पता चला;

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (17) [87]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (18) [88]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [89]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [90]

इस प्रकार भिक्खुनी सत्तुप्पलामालिकाय ने ये श्लोक कहे।

सत्तुप्पलामालिकाया थेरी63 की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 9.पंचादिपिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
9. पंचदीपिका 64

हंसवती नगर में,

मैं उस समय घुमक्कड़ था। एक आश्रम से दूसरे आश्रम भटकता रहता था।

मैं भलाई की कामना करते हुए भटकता रहा।65 (1) [91]

61 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

62 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

63 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

64 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

65 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

एक दिन जब चंद्रमा घट रहा था,66

मैंने सर्वोच्च बोधि वृक्ष के दर्शन किए। वहाँ जाकर मेरे हृदय को अपार प्रसन्नता हुई।

मैं उस बोधि की जड़ों में बैठ गया। (2) [92]

श्रद्धा भाव से हृदय को थामे, हाथों को सिर पर जोड़े, वहाँ मानसिक सुख का अनुभव करते हुए,

फिर मैंने इस प्रकार विचार किया: (3) [93]

यदि [उसके पास] असीम सद्गुण हैं, वह अद्वितीय है, उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है,

बुद्ध मुझे कोई चमत्कार दिखाएँ;

उसे इस बोधि वृक्ष को चमकाने दो। (4) [94]

जब मैंने वह आकांक्षा व्यक्त की,

तब बोधि वृक्ष प्रज्वलित हो उठा। यह सभी दिशाओं में चमक उठा, हर अच्छे रंग को प्रदर्शित करते हुए।67 (5) [95]

मैं सात रात और सात दिन उस बोधि वृक्ष की जड़ों में बैठा रहा, और जब सातवां दिन आया,

मैंने दीयों का एक भेंट चढ़ाया। (6) [96]

मैंने उन्हें अपनी सीट के चारों ओर रखकर पाँच दीपक जलाए।

[और] फिर मेरे सभी दीपक जलते रहे, जब तक कि सूरज दोबारा नहीं उग गया। (7) [97]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (8) [98]

वहाँ मेरा सुनिर्मित दिव्य महल "पंचदीपी"70 के नाम से जाना जाता था।

इसकी ऊंचाई सौ मील थी।

[और] उस समय चौड़ाई में साठ लीग.71 (9) [99]

मेरे आसपास अनगिनत दीपक जल रहे हैं।

66 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

67 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

68 यानी तैंतीस देवता।

69 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

70 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

71 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

तब दिव्य जगत प्रकाशित हो जाता है

लैंप की रोशनी से, इसके किनारों तक।72 (10) [100]

यदि पूर्व दिशा की ओर देखते हुए खड़े होने पर, मैं ऊपर, नीचे और सामने कुछ देखना चाहूँ,

मैं सब कुछ अपनी आँखों से देखता हूँ। (11) [101]

जहां तक मैं देखना चाहूँ,73

अच्छे से किए गए काम और अच्छे से नहीं किए गए काम,74

मेरी दृष्टि में कोई बाधा नहीं है।

वहाँ पेड़ों और पहाड़ों में। (12) [102]

मुझे देवताओं के बीच अस्सी राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

सौ पहिए घुमाने वाले राजाओं में से। (13) [103]

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ,

मेरे आस-पास, एक [पूरा] लाख

मेरे लिए वहाँ दीपक जल रहे हैं। (14) [104]

देवताओं के लोक से गिरकर, एक माँ के गर्भ में जन्म लेकर, जब मैं उस माँ के गर्भ में था,

मेरी आँखें हर समय खुली रहती थीं।75 (15) [105]

मेरे अच्छे कर्मों के कारण,76

प्रसव कक्ष में पूरे एक लाख दीपक जलाए गए हैं:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (16) [106]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

मैंने अपना मन कामवासना से दूर कर लिया। मैंने अमरता प्राप्त कर ली।

अमर शीतल अवस्था, निर्वाण। (17) [107]

जब मैं मात्र सात वर्ष का था, तब मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। मेरे गुणों को पहचानते हुए, बुद्ध ने

गौतम ने [मुझे उसी समय] दीक्षा दी। (18) [108]

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, बीजेटीएस में दिखाई देते हैं लेकिन पीटीएस में नहीं।

73 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

74 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

75 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

76 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

एक चबूतरे पर ध्यान करते हुए,77

पेड़ के नीचे, महलों में,

गुफाओं या खाली इमारतों में [तब]

मेरे लिए वहाँ पाँच दीपक जल रहे हैं। (19) [109]

मेरी दिव्य दृष्टि शुद्ध हो गई है;

मुझे एकाग्रता में निपुणता प्राप्त है। मैं विशेष ज्ञान में उत्कृष्ट हूं:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (20) [110]

हर उपलब्धि हासिल हो गई है; मेरा कर्तव्य पूरा हो गया है, मैं बेदाग हूँ।

मैं पाँच दीपों से आपकी पूजा कर रहा हूँ।

पैर, महान नायक, हे आँखों को भाने वाले। (21) [111]

एक लाख युगों में

जब से मैंने उसे वे दीपक दिए हैं, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (22) [112]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [113]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [114]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [115]

इस प्रकार भिक्खुनी पंचदीपिका ने ये श्लोक कहे।

पंचदीपिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान 4.1-थेरिस सूची >> 10.उदकदायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
10. उदकदायिका 78

शहर में, बंधुमती,

तब मैं पानी लाने का काम करता था।

77 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

78 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

पानी ढोकर जीवन यापन करना

मैं अपने बच्चों का पालन-पोषण इसी तरह कर रहा हूँ।79 (1) [116]

मुझे वे चीजें नहीं दी जा सकतीं।

अद्वितीय योग्यता के क्षेत्र में।" पानी के टावर पर जाना,80

मैंने [बुद्ध को]81 पानी दिया। (2) [117]

उस कर्म के अच्छे फल के कारण मैं तावतिंस गया।

वहाँ मेरे पास पानी ढोकर बनाया गया एक सुव्यवस्थित महल था।82 (3) [118]

मैं हर समय घिरा रहता हूँ

हजार अप्सराओं द्वारा, [और] मैं हमेशा उनसे आगे निकल रहा हूँ

उन सभी को [सभी] दस तरीकों से।83 (4) [119]

मुझे देवताओं के बीच पचास राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

बीस राजाओं में से जिन्होंने पहिया घुमाया। (5) [120]

मानव और दिव्य, दो अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेते हुए।

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

पानी देने का यही फल है। (6) [121]

पहाड़ की चोटी पर हो या खराब सड़क पर, हवा में हो या जमीन पर, जब भी मुझे पानी की जरूरत होती है,

मुझे यह बहुत जल्दी मिल जाता है। (7) [122]

सूखे के समय में [मेरा] क्षेत्र न तो भीषण गर्मी से झुलसता है और न ही उबलता है; मैं जो सोच रहा हूँ उसे समझने की कोशिश कर रहा हूँ

एक बड़ा वर्षा-बादल [हमेशा] वर्षा करता है। (8) [123]

जब भी मुझे कहीं भेजा जाता है,

अपने परिजनों की सभा के साथ, यदि मैं बारिश की कामना कर रहा हूँ

तब एक बड़ा वर्षा-बादल उत्पन्न होता है। (9) [124]

79 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

80 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

81 पाठ °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

82, अर्थात् तैंतीस देवता।

83 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

जलने या बुखार होने से मेरे शरीर पर कभी कोई असर नहीं पड़ता; मेरे शरीर पर धूल नहीं है:

पानी देने का यही फल है। (10) [125]

आज मेरा मन शुद्ध हो गया है और दुष्ट व्यक्ति चला गया है।

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (11) [126]

पिछले इक्यावन युगों में

मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।

पानी देने का यही फल है। (12) [127]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (13) [128]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [129]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [130]

इस प्रकार वास्तव में भिखुनी उदकादायिका ने ये श्लोक कहे।

उदकदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

समीक्षा:

सुमेधा, मेखलादादा, मंडपपा, संकमंडला, नलामलि, पिंडदादा, कटच्चु, उप्पलप्पादा, दीपाद-ओडकाडा भी;

यहां के श्लोक 85 की गणना इस प्रकार की जाती है:

एक श्लोक और सौ [भी]

और उसमें सत्रह और जोड़ दिए गए।

सुमेधा अध्याय, पहला

84 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

85 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 11.एकोपोसथिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
11. Ekūposathikā86

एकुपोसाथिका अध्याय, द्वितीय

शहर में, बंधुमती,

बंधुमा नाम का एक राजा था।87

पूर्णिमा के दिन, वह

89 पूर्णिमा दिवस का पालन किया। 90 (1) [131]

उस समय मैं भी वहीं रहती थी; मैं पानी ढोने वाली दासी थी। सेना को राजा के साथ देखकर,

तब मैंने इस प्रकार विचार किया: (2) [132]

स्वयं राजा ने अपने शासनकाल को भंग करते हुए पूर्णिमा के दिन का पालन करना शुरू कर दिया। निश्चय ही यह कर्म फलदायी साबित हो रहा है।

जनता प्रसन्न है। (3) [133]

अपने बुरे पुनर्जन्म और दरिद्रता पर गहन विचार करने के बाद, अपने मन को प्रसन्न करने के बाद, मैंने

पूर्णिमा दिवस का पालन किया। (4) [134]

बुद्ध के 91वें युग में पूर्णिमा के दिन का अवलोकन करने के बाद,

उस कर्म के फलस्वरूप,

मैं तब तावतिंसा गया। (5) [135]

वहाँ मेरा सुनिर्मित दिव्य महल एक [संपूर्ण] लीग ऊँचाई तक फैला हुआ था, जिसमें सुंदर छज्जे वाली कोठरियाँ थीं, जो बड़े सोफे से सजी थीं। (6) [136]

एक लाख अप्सराएँ सदा मेरी देखभाल करती हैं। अन्य देवताओं से श्रेष्ठ होने के कारण,

मैं हमेशा उनसे बेहतर प्रदर्शन करता हूँ। (7) [137]

86 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

87 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

88 का'स्सपे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कस्पा (बुद्ध) की व्यवस्था में"

89 BJTS के साथ PTS के लिए °ब्रह्मचर्यम का पाठ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

90 यानी तैंतीस देवता।

91 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

मुझे देवताओं के चौसठ राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

तिरसठ पहिए घुमाने वाले राजाओं में से। (8) [138]

सुनहरे रंग की त्वचा होने के कारण,

मैंने कई जन्मों का सफर तय किया है। हर जगह मेरी विशिष्टता है:

पूर्णिमा दिवस के पालन का फल। (9) [139]

हाथी और घोड़े की गाड़ियाँ, और रथों के लिए संपूर्ण साज-सामान; मैं ये सब प्राप्त करता हूँ:

पूर्णिमा के दिन के पालन का फल। (10) [140]

सोने की बनी वस्तुएँ, चाँदी की वस्तुएँ, और क्रिस्टल की बनी वस्तुएँ भी।

और इसी प्रकार माणिक से भी बना हुआ;

मुझे वे सभी [अच्छी चीजें] प्राप्त होती हैं। (11) [141]

रेशमी और ऊनी वस्त्र, खोमा और कपास से बने कपड़े, और [अन्य] बहुत महंगे कपड़े;

मुझे वे सभी [अच्छी चीजें] प्राप्त होती हैं। (12) [142]

मैं भोजन, पेय पदार्थ, ठोस खाद्य पदार्थ, और इसी प्रकार वस्त्र, बिस्तर और कुर्सियाँ प्राप्त करूँगा।

पूर्णिमा दिवस के पालन का फल। (13) [143]

बेहतरीन सुगंध, साथ ही फूलों की मालाएँ, चेहरे के पाउडर और मलहम भी; मैं ये सब [मेकअप] प्राप्त करना चाहूँगी।

पूर्णिमा दिवस के पालन का फल। (14) [144]

छज्जेदार छत वाले महल, मंडप, बहुमंजिला हवेली, गुफाएँ;

मैं उन सभी [आवासों] को प्राप्त कर लूंगा:

पूर्णिमा दिवस के पालन का फल। (15) [145]

जब मैं महज सात साल का था, तब मैं बेघर हो गया था।

जब आठवां महीना [तब] आ गया, तब मैंने [अपना] अरहंत पद प्राप्त किया। (16) [146]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (17) [147]

पिछले इक्यावन युगों में

मैंने उस समय अच्छा कर्म किया था, इसलिए मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है।

पूर्णिमा दिवस के पालन का फल। (18) [148]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [149]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [150]

इस प्रकार, भिक्खुनी एकुपोसाथिका ने ये श्लोक कहे।

एकुपोसाथिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 12.सललापुफिका

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
12. सलालापुप्पिका 92
उस समय मैं चंदाभागा नदी के किनारे एक किन्नरी हुआ करती थी।

और फिर मैंने देवताओं के ईश्वर को देखा,

पुरुषों का बैल, इधर-उधर चलता हुआ। (1) [151]

सलाला [फूल] तोड़ना

मैंने इसे सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को दे दिया।

[और फिर] महान नायक ने दिव्य सुगंध से सलाल को सूंघा । (2) [152]

इसे स्वीकार करते हुए संबुद्ध, विपस्सी, विश्व के नेता, महान नायक ने इसे फिर से सूंघा।

[मेरे लिए] जब मैं [उसे] देख रहा था। (3) [153]

तब मैंने अपने हाथों को जोड़कर दो पैरों वाले प्राणियों में श्रेष्ठ की पूजा की। इससे मेरे हृदय को आनंद मिला।

फिर मैं पर्वत पर चढ़ गया। (4) [154]

पिछले इक्यावन युगों में

मैंने उसे तब वह फूल दिया था।

92 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

मुझे कभी भी कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह बुद्ध- पूजा का फल है । (5) [155]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (6) [156]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [157]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (8) [158]

इस प्रकार, भिक्खुनी सललापुप्पिका ने ये श्लोक कहे थे।

सलालापुप्पिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान 4.1-थेरिस सूची >> 13.मोदकादायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
13. मोदकदायिका 93

शहर में, बंधुमती,

मैं पानी ढोने वाली दासी थी। अपनी मजदूरी मिलने के बाद,

मैं पानी लाने वाले के साथ गया। (1) [159]

मार्ग में एक भिक्षु को देखकर, जो शांत हृदय से एकाग्र था, प्रसन्न था, और उसके हृदय में आनंद था,

मैंने [भिक्षु] को तीन मिठाई दी [तब]। (2) [160]

उस कर्म के कारण, जो उसने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ नब्बे युगों से भी अधिक समय तक किया।

मैं शोक के स्थान पर नहीं गया। (3) [161]

उसे भौतिक वस्तुएं देना,

फिर मैंने उन सभी चीजों का अनुभव किया।

उन तीन मिठाइयों को देने के बाद

मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली। (4) [162]

93 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (5) [163]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (6) [164]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (7) [165]

इस प्रकार भिक्खुनी मोदकदायिका94 ने ये श्लोक कहे।

मोदकदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
14. एकासनदायिका 95

हंसवती नगर में,

मैं तब माला बनाने का काम करती थी। मेरी माँ और मेरे पिताजी भी।

[हर दिन] काम पर चला गया। (1) [166]

जब सूर्य आकाश में ऊँचा था,96

मैंने उसी समय एक [बौद्ध] भिक्षु को देखा।

जो सड़क पर जा रहा था,

[इसलिए] मैंने उसके लिए एक सीट बिछा दी। (2) [167]

ऊनी गलीचों और सजावटों से उस आसन को तैयार करते हुए,97 प्रसन्नता से, मेरे हृदय में आनंद है,

मैंने [तब] उस भिक्षु से ये शब्द कहे: (3) [168]

जमीन झुलस गई है और बहुत गर्म है;

सूर्य दोपहर के चरम पर है;98

94 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

95 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

96 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

97 का'स्सपे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कस्पा (बुद्ध) की व्यवस्था में"

98 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

अभी हवा नहीं चल रही है;

अब बैठने का सही समय है।99 (4) [169]

हे महान ऋषि, यह आसन [पहले से ही] आपके लिए तैयार किया गया है; मुझ पर दया करके।

कृपया मेरी इस सीट पर बैठ जाइए।” (5) [170]

वह भिक्षु, जो शांत स्वभाव का और शुद्ध मन वाला था, मेरी विनती पर वहीं बैठ गया। उसने अपना भिक्षापात्र उठाया और...

मैंने उतना ही दिया जितना वह धारण कर सकता था।100 (6) [171]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (7) [172]

वहाँ मेरा सुनिर्मित दिव्य महल, उस आसन को प्रदान करने से सुशोभित, साठ मील की ऊँचाई तक फैला हुआ था।

[और तब] तीस लीग चौड़ा था। (8) [173]

मेरे लिए कई तरह के सोफे थे, सोने के बने और चांदी के बने, इसी तरह [कुछ] क्रिस्टल के बने थे, और माणिक के भी बने थे। (9) [174]

मेरा सोफा तकियों से अच्छी तरह सजा हुआ था, और उस पर कढ़ाईदार ऊनी कालीन बिछे हुए थे।

और रत्नों से जड़ी रेशम की चादरें,

साथ ही [कुछ] झालरदार फर.101 (10) [175]

जब भी मुझे यात्रा करने की इच्छा होती है,

हंसी और मनोरंजन से भरपूर, मैं सबसे अच्छे सोफे के साथ जा रहा हूँ।

मेरी इच्छाओं के अनुसार। (11) [176]

मुझे देवताओं के बीच अस्सी राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

सत्तर चक्र-घुमाने वाले राजाओं में से। (12) [177]

जन्म-जन्मांतर तक पुनर्जन्म लेते हुए, मैंने [हमेशा] अपार धन-संपत्ति प्राप्त की।

99, अर्थात् तैंतीस देवता।

पीटीएस महामुनि , महान ऋषि के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ 100 पठन महामुने।

101 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

धन-संपत्ति की कोई कमी नहीं थी:

एक सीट देने का यही फल है। (13) [178]

मानव और दिव्य, दो अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेते हुए।

मुझे किसी दूसरे राज्य के बारे में पता नहीं था:

एक सीट देने का यही फल है। (14) [179]

मैं केवल दो जातियों में पुनर्जन्म लेता हूँ, 102 क्षत्रिय या फिर ब्राह्मण। मैं हर जगह उच्च कुल का हूँ:

एक सीट देने का यही फल है। (15) [180]

मुझे किसी प्रकार की मानसिक उथल-पुथल का अनुभव नहीं है।

और न ही मेरा हृदय तब व्याकुल होता है। मैं कुरूपता को भी नहीं जानता।

एक सीट देने का यही फल है। (16) [181]

मेरी सेवा के लिए दाइयां इंतजार कर रही हैं।

और अनेक कुबड़ी नौकरानियाँ;103

मैं एक चक्कर से दूसरे चक्कर में जा रहा हूँ:

एक सीट देने का यही फल है। (17) [182]

दूसरे लोग मुझे नहलाते और खिलाते हैं, और प्रतिदिन मुझे दुलारते हैं। दूसरे लोग मुझे इत्र लगाते हैं:

एक सीट देने का यही फल है। (18) [183]

जब मैं किसी खाली कमरे में, किसी मंडप में, किसी पेड़ के नीचे बैठकर, अपने विचारों को समझने का प्रयास करता हूँ,

फिर मेरे लिए एक सोफा लाया जाता है। (19) [184]

अब यह मेरा अंतिम जीवनकाल है, मैं अपना आखिरी अस्तित्व जी रहा हूँ।

आज भी, मेरे शासन को तोड़ते हुए,104

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (20) [185]

एक लाख युगों में

जब से मैंने उसे वह उपहार दिया है, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म नहीं देखने को मिला है:

एक सीट देने का यही फल है। (21) [186]

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

102 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, बीजेटीएस में दिखाई देते हैं लेकिन पीटीएस में नहीं।

104 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (22) [187]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (23) [188]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [189]

इस प्रकार पूज्य भिक्षुणी एकासनदायिका ने ये श्लोक कहे।

एकासनदायिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 15.पंचादिपिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
15. पंचदीपिका 106

हंसवती नगर में,

मैं उस समय घुमक्कड़ था। आश्रम से मठ तक,

मैं भलाई की चाह में भटकता रहा। (1) [190]

एक दिन जब चंद्रमा घट रहा था, मैंने सर्वोच्च बोधि वृक्ष के दर्शन किए। उसे देखकर मेरे हृदय को अत्यंत आनंद प्राप्त हुआ।

मैं उस बोधि की जड़ों में बैठ गया। (2) [191]

श्रद्धा भाव से खड़े होकर, हाथों को सिर पर जोड़े हुए, वहाँ मानसिक सुख का अनुभव करते हुए,

फिर मैंने इस प्रकार विचार किया: (3) [192]

यदि [उसके पास] असीम सद्गुण हैं, वह अद्वितीय है, उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है,

बुद्ध मुझे कोई चमत्कार दिखाएँ;

उसे इस बोधि वृक्ष को चमकाने दो। (4) [193]

जब मैंने वह आकांक्षा व्यक्त की,

इसके बाद बोधि वृक्ष में आग भड़क उठी।

105 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

106 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

यह सभी दिशाओं में चमक उठा, हर अच्छे रंग को प्रदर्शित करते हुए। (5) [194]

मैं सात रात और सात दिन उस बोधि वृक्ष की जड़ों में बैठा रहा, और जब सातवां दिन आया,

मैंने दीपों का अर्पण किया। (6) [195]

मैंने उन्हें अपनी सीट के चारों ओर रखकर पाँच दीपक जलाए।

[और] फिर मेरे सभी दीपक जलते रहे, जब तक कि सूरज दोबारा नहीं उग गया। (7) [196]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (8) [197]

वहाँ मेरा सुनिर्मित दिव्य महल "पंचदीपी"108 के नाम से जाना जाता था।

इसकी ऊंचाई पूरी तरह से साठ लीग थी।

[और] उस समय चौड़ाई में तीस लीग थे। (9) [198]

मेरे आसपास अनगिनत दीपक जल रहे हैं।

तब दिव्य जगत प्रकाशित हो जाता है

लैंप की रोशनी से, इसके किनारों तक।109 (10) [199]

यदि पूर्व दिशा की ओर देखते हुए खड़े होने पर, मैं ऊपर, नीचे और सामने कुछ देखना चाहूँ,

मैं सब कुछ अपनी आँखों से देखता हूँ। (11) [200]

जहां तक मैं देखना चाहूँ,

अच्छे से किए गए कार्य और अच्छे से नहीं किए गए कार्य,110

मेरी दृष्टि में कोई बाधा नहीं है।

वहाँ पेड़ों और पहाड़ों में। (12) [201]

मुझे देवताओं के बीच अस्सी राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

सौ पहिए घुमाने वाले राजाओं में से। (13) [202]

107 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

108 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

109 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

110 यानी तैंतीस देवता।

मैं जिस भी गर्भ में पुनर्जन्म लूं, चाहे वह मानव गर्भ हो या दिव्य गर्भ,

मेरे आस-पास, एक [पूरा] लाख

मेरे लिए वहाँ दीपक जल रहे हैं। (14) [203]

देवताओं के लोक से गिरकर, मेरा जन्म एक माँ के गर्भ में हुआ। जब मैं उस माँ के गर्भ में था...

मेरी आँखें हर समय खुली रहती थीं। (15) [204]

मेरे अच्छे कर्मों के कारण,

प्रसव कक्ष में एक लाख दीपक जलाए गए हैं:111

यह पाँच दीपक देने का फल है। (16) [205]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

मैंने अपना मन कामवासना से दूर कर लिया। मैंने अमरता प्राप्त कर ली।

अमर शीतल अवस्था, निर्वाण। (17) [206]

जब मैं मात्र सात वर्ष का था, तब मैंने अरहंत पद प्राप्त किया।

बुद्ध ने मुझे उसी समय दीक्षा दी:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (18) [207]

एक चबूतरे पर ध्यान करते हुए,112

पेड़ के नीचे, खाली जगहें,113

वहां हमेशा एक दीपक जलता रहता है:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (19) [208]

मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है;

मुझे एकाग्रता में निपुणता प्राप्त है। मैं विशेष ज्ञान में उत्कृष्ट हूं:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (20) [209]

हर उपलब्धि हासिल हो गई है; मेरा कर्तव्य पूरा हो गया है, मैं बेदाग हूँ।

फाइव लैंप्स अब आपकी पूजा कर रहा है।

पैर, महान नायक, हे आँखों को भाने वाले। (21) [210]

एक लाख युगों में

जब से मैंने उसे वे दीपक दिए हैं, तब से मुझे कोई बुरा पुनर्जन्म देखने को नहीं मिला है:

यह पाँच दीपक देने का फल है। (22) [211]

111 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

112 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

113 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें यहाँ और अन्यत्र Pesalā लिखा है।

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [212]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [213]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [214]

इस प्रकार भिक्खुनी पंचदीपिका ने ये श्लोक कहे।

पंचदीपिका थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 16.सलामलिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
16. सालमालिका 114

उस समय मैं चंदाभागा नदी के किनारे एक किन्नरी हुआ करती थी।

मैंने स्टेनलेस स्टील वाला बुद्ध देखा।

स्वयं-बनने वाला, अजेय। (1) [215]

मेरे हृदय में प्रसन्नता और आनंद है।

विस्मय से,115 हाथ जोड़कर, एक साल 116 [-फूल] की माला लेते हुए,

मैंने स्वयं-एकत्व की पूजा की। (2) [216]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (3) [217]

मैं देवताओं के छत्तीस राजाओं की प्रधान रानी के पद पर विराजमान थी। मेरे मन में जो भी इच्छा हो,

इच्छानुसार अस्तित्व में आता है। (4) [218]

114 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

115 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

116 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कस्पा (बुद्ध) की व्यवस्था में"

मुझे दस चक्र-चालकों वाले राजाओं की प्रधान रानी के पद पर नियुक्त किया गया था। एक नेक दिल महिला होने के नाते,

मैंने जन्मों के माध्यम से पुनर्जन्म लिया। (5) [219]

मेरी पवित्रता स्पष्ट है; मैं बेघर होकर निकला। आज मैं पूजा के योग्य हूँ।

बुद्ध के 117वें युग में। (6) [220]

आज मेरा मन शुद्ध हो गया है, और वह दुष्ट व्यक्ति चला गया है।

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (7) [221]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (8) [223]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (9) [224]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (10) [225]

पिछले चौरानवे युगों में

मैंने उस समय बुद्ध की पूजा की थी, मुझे बुरे पुनर्जन्म का कोई अनुभव नहीं है:

यह एक साल 118 -माला का फल है । (11) [222]119

मेरे सारे दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं।

मेरे सभी दोष नष्ट हो गए हैं;

अब पुनर्जन्म नहीं होगा। (12)

इस प्रकार भिक्खुनी सालमालिका120 ने ये श्लोक कहे।

सालामालिका121 थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

117 रीडिंग ०ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस ०ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

118 यानी तैंतीस देवता।

119 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

120 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

121 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें यहाँ और अन्यत्र Pesalā लिखा है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान 4.1-थेरिस सूची >> 17.महापजापति गौतमी
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: बुद्ध की माता का अंतिम दिन; जैसा है वैसा ही प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
17. गौतमी (महापजापति गौतमी-रानी, बुद्ध की मौसी और सौतेली माँ) 122

एक दिन [महान] विश्व का दीपक, मनुष्यों का कारवां नेता,

महावन हॉल में निवास करते थे।

वेसाली की ढलानदार छतों के बीच। (1) [226]

उस समय विजेता की माता की बहन, बौद्ध भिक्षुणी महान गौतमी, भिक्षुणियों के एक आश्रम में रह रही थीं।

उस रमणीय शहर में निर्मित।123 (2) [227]

यह विचार उसके मन में तब आया जब वह मुक्त बौद्ध भिक्षुणियों से अलग होकर अकेले चली गई थी।

पांच गुना सौ की गिनती: (2e-f, 3a-b)124 [228]

मैं बुद्ध के अंतिम निर्वाण को नहीं देख पाऊंगा, जो कि दो प्रमुख अनुयायियों का निर्वाण है।

न ही राहुल, आनंद, नंदा। (3सी-एफ) [229]

जीवन के 126 घटकों को नष्ट करके और उन्हें त्यागकर, मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा, जिसकी अनुमति [उसने] दी है।

महान ऋषि, जगत के स्वामी।" (4) [230]

वह तर्क भी हुआ

पांच सौ बौद्ध भिक्षुणियों को;

वह तर्क भी [उत्पन्न हुआ]

खेमा से शुरू होने वाली [ननों] को। (5) [231]

उस समय भूकंप आया; देवताओं की गर्जना हुई। शोक से व्याकुल होकर, उस आश्रम में रहने वाली देवियाँ (ननों के लिए) दयनीय रूप से रोने लगीं।

वहाँ [शरणस्थल में] उन्होंने अपने आँसू बहाए। (6) [232]127

122 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

123 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

124 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

125 पठन °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

126 यानी तैंतीस देवता।

127 PTS महामुनि , महान ऋषि के लिए BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

[और फिर] वे सभी 128 बौद्ध भिक्षुणियां, गौतमी के पास पहुँचने के बाद,

उन्होंने अपने सिर उसके पैरों पर रख दिए।

उन्होंने ये शब्द कहे [उन्होंने उससे कहा]: (7) [233]

"बहन, अकेले चली गई थी, और हम पर पानी की बूँदें छिड़की गईं।"

अविचल पृथ्वी कांप रही है, देवताओं की गर्जना गूंज रही है, विलाप सुनाई दे रहे हैं:130

तो फिर इसका क्या अर्थ है, गोतमी?" (8) [234]131

फिर उसने उन्हें सब कुछ बता दिया।

ठीक वैसे ही जैसे उसने तर्क दिया था। उन सभी ने भी गौतमी को यही बताया।

ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने तर्क दिया था। (9) [235]

"यदि आप चाहें, बहन—अतुलनीय और पवित्र निर्वाण—तो हम सब भी निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।"

बुद्ध की सहमति से, हे धर्मात्मा.132 (10) [236]

हम तुम्हारे साथ ही घर और अस्तित्व से भी निकल चुके हैं; और निश्चित रूप से तुम्हारे साथ ही आगे बढ़ेंगे।

निर्वाण, सर्वोच्च नगर की ओर।" (11) [237]

उसने कहा, "बाहर जाने वाली महिलाओं से क्या कहा जा सकता है?"133 [और] फिर उन सभी के साथ

उसने बौद्ध ननों का घोंसला छोड़ दिया।134 (12) [238]

"इस शरणस्थल में निवास करने वाली देवियाँ मुझे क्षमा करें; यही मेरा अंतिम दर्शन होगा।"

[इस] बौद्ध भिक्षुणियों के निवास का। (13) [239]

मैं बिना शर्तपन की ओर जाऊंगा।

जहां न तो मृत्यु है और न ही क्षय।

128 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

129 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, बीजेटीएस में दिखाई देते हैं लेकिन पीटीएस में नहीं।

131 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

132 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

133 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

134 पीटीएस महामुनि , महान ऋषि के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) के साथ महामुने पढ़ना।

किसी को अप्रिय परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ता,

और न ही सुखद चीजों से अलग हो जाओ।" (14) [240]

उन शब्दों को सुनकर, भावहीन न होते हुए, सुशोभित बुद्ध के उन वंशजों ने शोक से भर कर विलाप किया:

अफसोस, हमारे पास बहुत कम योग्यता है। (15) [241]

उन महिलाओं के बिना बौद्ध भिक्षुणियों का यह आश्रम अब वीरान हो गया है; विजेता के उत्तराधिकारी अब कहीं नजर नहीं आते।

जैसे ही तारे भोर में गायब हो जाते हैं। (16) [242]

गौतमी निर्वाण प्राप्त करती है

पांच सौ भिक्षुणियों के साथ, जैसे गंगा समुद्र में बहती है,

पाँच सौ सहायक नदियों के साथ।"136 (17) [243]

विश्वासी गृहस्थ स्त्रियों ने,137 उसे138 सड़क पर जाते हुए देखकर, अपने घरों से बाहर आकर,

उसके चरणों में झुककर उसने यह कहा: (18) [244]

“हे महान सौभाग्यशाली,139 संतुष्ट रहो।140

"हमें बेसहारा छोड़कर चले जाने पर निर्वाण तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"

उस तरह से व्याकुल होकर वे महिलाएं विलाप करने लगीं। (19) [245]

उनके दुख को दूर करने के लिए,

गौतमी ने मधुर शब्दों में कहा: “बच्चों, रोना बंद करो।”

आज, जो आपके हंसने का समय है; (20) [246]

मैंने पीड़ा को समझ लिया है,141 पीड़ा का कारण दूर हो गया है, मैंने पीड़ा का निवारण अनुभव किया है।

मैंने मार्ग का निर्माण किया है। (21) [247] (प्रथम पाठ भाग)142

135 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

136 puṇṇā ti nāmaŋ

137 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

138 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

139 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

140 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

141 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

142 सहसक्खेना , अर्थात्, शकरा/इंद्र, देवताओं के राजा

मैंने गुरु की पूजा की है, मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था!

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध हटा दिए गए। (22) [248]

जिस कारण से मैं निकला

[मेरे] घर से बेघर होने तक — मैंने [अब] वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया है: सभी बंधनों का विनाश। (23) [249]

जब तक बुद्ध और उनकी महान शिक्षाएं हमारे बीच मौजूद हैं, तब तक किसी चीज की कमी नहीं है - यही मेरे निर्वाण का समय है;

मेरे लिए शोक मत करो, बच्चों। (24) [250]

कोंडान्या, 143 आनंद, 144 नंद, 145

राहुल,146 विजेता शेष;

विधानसभा का हंसमुख और घनिष्ठ माहौल,

प्रतिद्वंद्वियों का अहंकार नष्ट हो गया है। (25) [251]

ओक्काका वंश में प्रसिद्ध 147 व्यक्ति उच्च कोटि का है, 148 मृत्यु-नाशक; 149 बच्चों, क्या अब समय नहीं आ गया है?

[मेरे लिए] निर्वाण प्राप्त करना? (26) [252]

मेरी बहुत पुरानी इच्छा आज आखिरकार पूरी हो गई है।

यह आनंद के ढोल बजाने का समय है।

तो फिर इन आँसुओं का क्या मतलब है, बच्चों? (27) [253]

अगर आपको मुझ पर दया आती है, और अगर आप सभी इसकी सराहना करते हैं

143 डांटो , या "वश में किया हुआ"

144 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

145 vimutt'o

146 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

147 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

148 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

149 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

महान शिक्षा की स्थिरता,

तो आपको मजबूत और उत्साही होना चाहिए। (28) [254]

मेरे अनुरोध पर, संबुद्ध ने महिलाओं को दीक्षा दी।

इसलिए जैसा कि मैंने स्वयं को दिखाया है,

आप सभी को उसका अनुसरण करना चाहिए।” (29) [255]

इस प्रकार सलाह देने के बाद, बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा आगे रखी गई उन महिलाओं ने ऊपर जाकर पूजा की।

बुद्ध से उसने यह कहा: (30) [256]

“शाबाश, मैं तुम्हारी माँ हूँ, और तुम मेरे पिता हो, हीरो;

हे प्रभु,150 जो अच्छी शिक्षा का आनंद प्रदान करता है,151

हे गौतम, मैं आपसे ही जन्मा हूँ। (31) [257]

हे सुपुर्दगी करने वाले, तुम्हारा शरीर, जो मांस और हड्डियों से बना है,153 मेरे द्वारा निर्मित किया गया था; मेरा निष्कलंक शरीर, जो सत्य से बना है,154

इसका पालन-पोषण आपने किया था, [गौतम।] (32) [258]

मैंने तुम्हें माँ के दूध से पाला, जो क्षण भर के लिए प्यास बुझाता है। तुमसे मैंने सत्य का दूध पिया, जो बिना किसी रुकावट के शांतिपूर्ण था। (33) [259]

हे महान ऋषि, आपकी रक्षा और पालन-पोषण के लिए आप मेरे ऋणी नहीं हैं। ऐसा पुत्र प्राप्त करना ही मेरा उद्देश्य है।

पुत्र चाहने वाली महिलाएं [इच्छा].156 (34) [260]

राजाओं की माताएँ, मंधाता की तरह, अस्तित्व के सागर में विलीन हो जाती हैं।

हे पुत्र, तेरे द्वारा ही मैंने पार किया है

150 #23, ऊपर

खंड 151 में कहा गया है, " बीस करोड़ लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है धम्म की अंतर्दृष्टि, धम्म में प्रवेश , धम्म की समझ या धम्म में प्रवेश, शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

152 y'akkho

153 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

154 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

155 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

156 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

[जीवन,] यह बनने का सागर। (35) [261]

महिलाएं आसानी से प्राप्त कर सकती हैं

"राजा की माता" या "प्रधान रानी" नाम।

नाम, "बुद्ध की माता"

प्राप्त करना सबसे कठिन [नाम] है। (36) [262]

हे वीर, मुझे वह नाम मिल गया! आपकी कृपा से मेरी मनोकामना पूरी हुई। चाहे छोटी बात हो या बड़ी बात,

वह सब मेरे द्वारा पूरा किया गया है। (37) [263]

इस शरीर को त्यागकर,

मैं पूर्ण निर्वाण प्राप्त करना चाहता हूँ। हे वीर, मुझे इसकी अनुमति दीजिए।

ओ रोग-समाधानकर्ता,157 ओ नेता। (38) [264]

अपने पैरों को लिली के फूलों की तरह फैलाओ।

जिन पर पहिया, अंकुश और ध्वज अंकित हैं। मैं आपको प्रणाम करूंगा।

अपने बेटे के लिए [माँ के] प्यार के साथ।158 (39) [265]

मुझे अपना शरीर दिखाओ;

यह सोने के ढेर जैसा दिखता है।

अपने शरीर पर एक आखिरी अच्छी नज़र डाल लो।

[तब] मैं शांति की ओर चलता हूँ, नेता।" (40) [266]

बत्तीस महान चिह्नों से चिह्नित, यह प्रकाश से सुशोभित था:

विक्टर ने उसे अपना शरीर दिखाया।

एक हल्का सूरज160 से 161 एक शाम का बादल.162 (41) [267]

फिर उसने अपना सिर नीचे रख दिया

उसके पैरों के तलवे पहियों से चिह्नित थे, जो खिले हुए कमलों के समान थे।

[जैसे] उगते सूरज की तरह चमकीला। (42) [268]

मैं पुरुषों के लिए सूर्य को प्रणाम कर रहा हूँ,163

सौर कबीले का ध्वज;164

157 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

158 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

159 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

160 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

161 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

162 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

163 जाताम्ह (BJTS के साथ) पीटीएस अजाता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजातो "वह अजन्मा है")

164 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

जब मैं अंतिम बार मर जाऊँगा,

मैं तुम्हें फिर कभी नहीं देख पाऊंगा। (43) [269]

विश्व के मुखिया के तौर पर यह माना जाता है कि हर गलती महिलाएं ही करती हैं।166

अगर मुझसे कोई गलती हुई हो,

इसे क्षमा करो, करुणा की मेरी।167 (44) [270]

मैंने बार-बार आपसे महिलाओं को पुरोहित बनाने की विनती की थी।

अगर मुझसे इसमें कोई गलती हुई हो,

इसे क्षमा कर दो, हे पुरुषों में श्रेष्ठ बैल। (45) [271]

हे वीर, आपकी अनुमति से,

मैंने बौद्ध भिक्षुणियों को निर्देश दिए। अगर मैंने उस दौरान कोई गलत सलाह दी हो,

क्षमा करो, क्षमा के स्वामी।"168 (46) [272]

जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता, उसे क्षमा करना भी असंभव है।

[जो] सद्‌गुणों से सुशोभित है?169

मैं आपसे और क्या कहूँ?

आप निर्वाण कब प्राप्त करेंगे? (47) [273]

मेरे पवित्र और पूर्ण भिक्षु सभा में संसार से मुक्ति पाने की इच्छा रखने वाले लोग भोर में ढलते हुए अर्धचंद्र के समान हैं।

इसके चंगुल के विनाश को देखने के बाद।"170 (48) [274]171

जैसे मेरु पर्वत के चारों ओर तारे और चंद्रमा परिक्रमा करते हैं, वैसे ही अन्य ननों ने भी उनकी परिक्रमा की।

मुख्य विजेता ने उनके चरणों में झुककर प्रणाम किया,

वे वहाँ खड़े होकर [भगवान] के चेहरे को निहार रहे थे। (49) [275]

पहले [मेरी] आँखें और कान आपको देखकर और आपकी वाणी सुनकर संतुष्ट नहीं होते थे। [परन्तु अब,] पूर्णता प्राप्त कर लेने के बाद, मेरा मन

शिक्षा के स्वाद से संतुष्ट है। (50) [276]

जब तुम भीड़ के बीच दहाड़ते हो,

165 लिट., “हम हर समय नहीं हैं...”

166 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ (“कीचड़ भरे रास्तों पर जाना”)

167 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato (“after the fruit of previous karma”)

168 संसारपथ-नित्तिना

169 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo (“अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा”)

170 t'ato tato

171 बीजेटीएस और पीटीएस में वैकल्पिक रूप से सहा के स्थान पर समा ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

सोफिस्टों के अहंकार को नष्ट करते हुए,

जो लोग आपका चेहरा देख रहे हैं, वे भाग्यशाली हैं, हे पुरुषों के बैल।172 (51) [277]

बैटल-एंडर, 173 भाग्यशाली भी,

क्या वे आपके सुंदर पैरों की पूजा करते हैं, जिनकी चौड़ी एड़ियाँ, फैली हुई उंगलियाँ और तांबे के रंग के नाखून हैं। (52) [278]

हे सर्वश्रेष्ठ पुरुष, तुम भी भाग्यशाली हो।

वे लोग जो आपकी बातों को ध्यान से सुनते हैं, अपूर्णताओं को मिटाने वाले, मित्रवत होते हैं।

शहद की तरह मीठा और आनंद से भरपूर। (53) [279]

मैं भाग्यशाली हूँ, महान नायक!

आपके चरणों की पूजा करने के इरादे से174।

अस्तित्वगत रेगिस्तान पार कर लिया,

[मैं] अच्छी शिक्षा के कारण चमकता हूँ।”175 (54) [280]

तब उस धर्मपरायण महिला176 ने भिक्षुओं की सभा को [अपने विचार]177 समझाए, और राहुल की पूजा करने के बाद,

आनंद [और] नंदा, उसने कहा:178 (55) [281]

"मैं अपने शरीर से थक गया हूँ, जो एक साँप के बिल के समान है।"

एक रोगगृह, बीमारियों का ढेर,180

वृद्धावस्था और मृत्यु में चरना,

विभिन्न दोषों और लार से ढका हुआ,181

दूसरों पर निर्भर, निष्क्रिय।182

इसलिए मैं निर्वाण की कामना करता हूँ;

मुझे अपनी अनुमति दो, बच्चों।" (56-57) [282-283]

172 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

173 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

174 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

175 लिट., "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

176 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

177 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

178 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

179 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

180 लिट., “मेरे मन में कोई हलचल नहीं है”

181 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

182 लिट., “और एक महिला”

नंदा और भाग्यशाली राहुल,

जो शोकमुक्त, बिना किसी बंधन के, बुद्धिमान [और] अडिग रूप से दृढ़ थे, उन्होंने चीजों के तरीके पर विचार किया: (58) [284]

“स्थायी वस्तुओं के प्रति लालच पर धिक्कार है:

केले की लकड़ी के समान बेकार, एक भ्रामक मृगतृष्णा के समान।

क्षणभंगुर और लगातार बदलता रहता है। (59) [285]

सभी परिस्थितिजन्य वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, जहाँ तक विक्टर की चाची का संबंध है।

जिसने बुद्ध का दूध पिया,

गोतामी, बिना किसी निशान के चली जाती है।"183 (60) [286]

आनंद तब [अभी भी] प्रशिक्षण ले रहा था, विजेता से प्रेम करता था, [पर अभी भी] दुखी था। [उससे विनती करते हुए] वहाँ, आँसू बहाते हुए, वह दयनीय रूप से विलाप कर रहा था: (61) [287]

“गौतमी मुस्कुराते हुए जा रही हैं;184 निश्चय ही जल्द ही बुद्ध भी निर्वाण की ओर अग्रसर होंगे।”

जैसे आग जिसका ईंधन खत्म हो गया हो।” (62) [288]

गौतमी ने आनंद से कहा

जो इस प्रकार विलाप कर रहा था: “हे पुत्र, बुद्ध की सेवा करने के इच्छुक,

आपकी बुद्धि समुद्र जितनी गहरी है,185 (63) [289]

इसलिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए, जब मुस्कुराने का समय आ गया है! पुत्र, तुमने मेरी सहायता की है।

मैंने निर्वाण का अनुभव किया है।186 (64) [290]

हे प्रिय, तुम्हारे अनुरोध पर ही बुद्ध ने हमें दीक्षा दी। अतः पुत्र, व्याकुल मत हो;

आपका प्रयास अब फलदायी हो रहा है। (65) [291]

वह अवस्था जो प्राचीन काल में नहीं देखी गई थी,187

और इसी प्रकार प्रतिद्वंद्वी शिक्षकों द्वारा भी।

183 लिट., "और एक महिला"

184 etesaŋ devedevānaŋ

185 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ, "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

186 या करें: कारती से

187 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

यह बात [बौद्ध] युवतियों को ज्ञात है।

जब वे [केवल] सात वर्ष के होते हैं। (66) [292]

इसलिए [मुझे] अंतिम बार देख लो,

बुद्ध के वचन का संरक्षक;188

बेटा, मैं उस जगह जा रहा हूँ

जहां जो चला गया है उसे देखा नहीं जा सकता। (67) [293]

एक बार जब वे धम्म का उपदेश दे रहे थे , तब विश्व के प्रधान नेता को छींक आ गई। उस समय, करुणावश,

मैंने उससे शुभकामनाओं के शब्द कहे: (68) [294]

“हे महान वीर, दीर्घायु हो! हे महान ऋषि, युगों तक जीवित रहो! समस्त विश्व के कल्याण के लिए,”

बूढ़े मत हो [और] मर मत जाओ! (69) [295]

तब बुद्ध ने मुझसे, जिसने उनसे इस प्रकार बात की थी, यह कहा: “बुद्धों की पूजा नहीं की जानी चाहिए।”

जैसे तुम उपासना कर रहे हो, गौतमी।” (70) [296]

तो फिर, हे सर्वज्ञतावान,

क्या तथागतों की पूजा की जानी चाहिए? बुद्धों की पूजा कैसे नहीं की जानी चाहिए? पूछे जाने पर, मुझे यह सब बताएँ। (71) [297]

“मेरे अनुयायियों को देखो, एकजुट, अत्यंत ऊर्जावान,

अपने प्रयास में निरंतर दृढ़ रहना —

यह बुद्धों की पूजा है।”189 (72) [298]

फिर, शरणस्थल पर वापस जाकर, अकेले ही मैं सोचने लगा:

“प्रभु, जो तीनों लोकों के छोर तक पहुँचे,190

एक संयुक्त दल की तरह। (73) [299]

तो फिर, मैं पूर्ण निर्वाण प्राप्त करूँगा; मुझे इसमें कोई बाधा नहीं दिखनी चाहिए!” मैं इस प्रकार चिंतन करते हुए,

सातवें ऋषि को देखने के बाद, (74) [300]

मैंने अपने पूर्ण निर्वाण के समय की घोषणा बुद्ध, यानी मार्गदर्शक को की।

188 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

189 aṭṭhamāse , BJTS में addhamāse ("आधा महीना") लिखा है

190 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

और फिर उन्होंने मुझे अपनी सहमति दे दी:

"तुम्हें समय का ज्ञान है, हे गौतमी।" (75) [301]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (76) [302]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (77) [303]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (78) [304]

"कुछ मूर्ख लोग इस बात पर संदेह करते हैं कि महिलाएं

धम्म -प्रवेश प्राप्त करना.191

उनकी उस [गलत] धारणा को दूर करने के लिए, चमत्कार दिखाओ, गौतमी।" (79) [305]

फिर संबुद्ध को प्रणाम करके, आकाश में ऊपर उठकर,

बुद्ध की सहमति से, गौतमी ने अनेक चमत्कार प्रदर्शित किए। (80) [306]

अकेले होने पर, [तब] उसका क्लोन बनाया गया; और क्लोन होने पर, फिर से192 अकेली। प्रकट होना [फिर] गायब हो जाना,

वह दीवारों से होकर गुजरी, आसमान से होकर गुजरी। (81) [307]

वह पृथ्वी से अनासक्त होकर यात्रा करती थी;

वह भी उसमें डूब गई।

वह पानी पर वैसे ही चलती थी जैसे जमीन पर, उसकी सतह को बिना तोड़े। (82) [308]

पालथी मारकर बैठी वह पक्षी की तरह आकाश में उड़ती चली गई।

191 यह और इसके बाद के समापन छंद पीटीएस में यहां नहीं दिखाई देते हैं, और ये असामान्य हैं (हालांकि अद्वितीय नहीं)।

अपदाना के लिए जिसमें व्यक्तिगत कविताएँ आमतौर पर उस चीज़ के साथ समाप्त होती हैं जिसे मैंने "समापन छंद" कहा है (श्लोक)।

85-87) [1023-1025]। दिलचस्प बात यह है कि वे (साथ ही एक और, जो कहीं और भी दोहराया गया है) उसी असामान्य दोहराव के बाद की स्थिति में, नीचे, अपदान #30, यशोधरा के साथ अठारह हजार ननों के श्लोक 57-59 (साथ ही 60) के रूप में दिखाई देते हैं, और उस अपदान के बीजेटीएस संस्करण में भी इसी स्थिति में हैं (श्लोक [1100-1102] साथ ही [1103])।

192 पीटीएस में थेरी शब्द नहीं है, जिसे मैंने बीजेटीएस से लिया है।

193 में s'ūnā vaṇitakibbisā को BJTS (और PTS वैकल्पिक) के साथ PTS sūnā 'va nītakibbisā ("पाप की ओर ले जाने वाले कसाईखाने की तरह" ?) के लिए पढ़ा गया है।

उसने अपने शरीर से नियंत्रण हासिल किया।

ब्रह्मा के घर तक अंतरिक्ष का। (83) [309]

माउंट मेरु को आधार मानते हुए,

उसने विशाल धरती को अपना छाता बना लिया। जड़ समेत उसे थामे हुए, घुमाते हुए।

वह आकाश में इधर-उधर चलती रही। (84) [310]

और ठीक उसी तरह जैसे छह सूर्य एक साथ उगे थे, उसने पूरी दुनिया को क्रोधित कर दिया। मानो यह समय का अंत हो।

उसने पृथ्वी को ज्वालाओं से सजाया। (85) [311]

उसने मेरु, मंदरा, दद्दारा, महान मुक्कालिंडा - पर्वतों पर अधिकार कर लिया।

उन सभी को एक ही मुट्ठी में,

जैसे वे [छोटे] सरसों के बीज थे। (86) [312]

उसने अपनी उंगली की नोक से दिन और रात दोनों के निर्माताओं को छुपा लिया।

मानो हजारों सूर्य और चंद्रमा हों

वह एक हार था जिसे उसने पहन रखा था। (87) [313]

उसने एक ही हाथ में चारों महान महासागरों का जल धारण कर रखा था; उसने मूसलाधार वर्षा की।

जैसे कोई प्रलयकारी बादल। (88) [314]

उसने आकाश में एक चरखेबाज को उसके दल के साथ प्रकट किया।

उसने [विष्णु को] सूअर और दहाड़ते हुए शेर और गरुड़ के रूप में दिखाया। (89) [315]

अकेले होने पर, उसने कल्पना की

बौद्ध भिक्षुणियों का एक विशाल समूह। उन्हें फिर से गायब कर देना,

अकेले में उसने ऋषि से यह कहा: (90) [316]

"तुम्हारी माँ की बहन, महान नायिका,"

वह व्यक्ति वही है जिसने वही किया है जो आपने उसे सिखाया है।194

अपने 195 लक्ष्यों को प्राप्त करने वाली,

वह आपके चरणों की पूजा करती है, हे आँखों वाले।" (91) [317]

आकाश से उतरते हुए, अनेक चमत्कार दिखाते हुए,

194 jegucchaŋ ; BJTS में इसे bībhaccham̤ पढ़ा गया है , जिसका अर्थ लगभग समान है (घृणित, भयानक, डरावना)

195 या, बीजेटीएस के साथ विपस्सन्ती को पढ़ना , "जांच करना" "अंतर्दृष्टि लागू करना"

196 lit., “in the” “in that”

विश्व के दीपक की पूजा करना,

वह एक तरफ बैठ गई। (92) [318]

“हे महान ऋषि, मैं एक [बुजुर्ग महिला] हूँ,197

जन्म से एक सौ बीस वर्ष बाद।

हे वीर, इतना ही काफी है;

मैं निर्वाण प्राप्त कर रहा हूँ, नेता।” (93) [319]

सभी भीड़ आश्चर्यचकित रह गई।

फिर [उनके] हाथों को एक साथ दबाकर कहा, “बहन, [तुम्हारे पास] अलौकिक चमत्कारों में 198 [महान] क्षमता है।” (94) [320]

विजेता, पदुमुत्तरा,

सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।

एक लाख युगों बाद। (95) [321]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

मंत्रियों के एक कुल में,

सभी प्रकार के नौकरों से सुसज्जित, धनी, समृद्ध, बहुत धनी। (96) [322]

एक बार, जब मैं पिता के साथ घूम रहा था —

दासों के एक समूह द्वारा उपस्थित —

अपने विशाल दल के साथ,

[मैंने] उस पुरुषों के बीच के उस सांड से संपर्क किया। (97) [323]

विजेता, शरद ऋतु के पुत्र की तरह, किरणों की मालाओं से घिरा हुआ है।

बिना किसी बंधन के, वह धम्म -बादल

देवताओं के राजा की तरह बरसा। (98) [324]

उसे देखकर, मन प्रसन्न होकर और उसकी मधुर आवाज सुनकर,

पुरुषों के नेता ने अपनी चाची को नियुक्त किया

ननों में सबसे आगे। (99) [325]

पूरे दिन यह सब सुनते हुए,

मैंने तटस्थ व्यक्ति को बड़े-बड़े गिफ और बहुत सारी आवश्यक वस्तुएँ दीं।

सभा के साथ पुरुषों का मुखिया। (100) [326]

उनके चरणों में गिरकर, मैंने उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा की।

197 चित्तस्मिं वसिभूतस्मिं , शाब्दिक अर्थ, "जब मैं अपने मन का स्वामी (या "अपने मन पर नियंत्रण") बन गया"

198 सुभाविता , शाब्दिक अर्थ, “[मेरे द्वारा] सुविकसित” या “सुसंस्कृत” “सुचारू ध्यानमग्न”

और फिर वह अत्यंत सचेत व्यक्ति,

सातवें ऋषि ने [भीड़ से] कहा: (101) [327]

वह महिला जिसने एक सप्ताह तक विश्व के नेता को सभा का भोजन कराया, मैं उसके बारे में विस्तार से बताऊंगा:

आप सब मेरी बात सुनो: (102) [328]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (103) [329]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान, जिसका नाम गौतमी है।

शिक्षक का अनुयायी होगा। (104) [330]

वह उसकी मां की बहन होगी।

बुद्ध की धाय माँ ने जीवन भर उनकी सेवा की। उन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त होगा।

वरिष्ठ बौद्ध भिक्षुणियों के बीच।" (105) [331]

यह सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ, और फिर जीवन भर मैंने विजेता की सभी आवश्यक सेवाओं के साथ सेवा की।

उसके बाद, [मृत्यु हो जाने के बाद], (106) [332]

तावतिंसा के बीच जन्म हुआ

सभी सुख-सुविधाओं और धन से परिपूर्ण देवताओं को भी मैं दस गुना अधिक श्रेष्ठ मानता था।

[वहाँ रहने वाले] अन्य सभी [देवता]: (107) [333]

आकृतियों, ध्वनियों और सुगंधों के माध्यम से, स्वादों और उन चीजों के माध्यम से जिन्हें मैं स्पर्श करता हूँ,

जीवनकाल, रंग-रूप, खुशी और प्रसिद्धि के संदर्भ में भी (108) [334]

और इसी प्रकार सर्वोच्च शक्ति के माध्यम से

मैंने उन दस चीजों को प्राप्त करके चमक बिखेरी।

वहाँ मैं प्रिय बन गया

देवताओं के राजा की प्रमुख रानी। (109) [335]

कर्म के चक्र में घूमते हुए, कर्म की हवा से बहते हुए, मेरा जन्म एक दास-गाँव में हुआ था।

199 sattisūlūpamā kāmā , शाब्दिक अर्थ, "तलवारें और कटार इंद्रिय सुखों के समान हैं (या उनके लिए उपमाएँ हैं)"

कासी200 राजा के राज्य में। (110) [336]

प्रतिदिन उस स्थान पर पांच सौ गुलाम रहते थे।

मैं उसकी पत्नी थी जो था

वहाँ रहने वाले सभी दासों में से सर्वश्रेष्ठ। (111) [337]

पांच सौ स्वयंभू बुद्ध भिक्षा मांगने हमारे गांव में आए। मेरे सभी स्त्री संबंधी भी साथ आए।

उन्हें देखकर मैं रोमांचित हो गया। (112) [338]

हम सभी ने मिलकर एक संघ बनाया है,201

हमने उन [बुद्धों] की चार महीने तक सेवा की। प्रत्येक को तीन वस्त्र देकर,

हम पतियों के साथ स्थानांतरित हुए202। (113) [339]

हम सब अपने पतियों के साथ वहां से गिर गए और तावतिंसा चले गए।

और अब, [मेरे] अंतिम पुनर्जन्म में, देवदहा नगर में जन्म लेकर, (114) [340]

मेरे पिता, अंजना203 शाक्य,204

मेरी माँ सुलाखाना थीं।205

हम कपिलवस्तु [नगर] में सुद्धोदना के घर के लिए निकले। (115) [341]

शाक्यन वंश की अन्य स्त्रियाँ206 भी शाक्यन परिवार में आईं। उन सब में विशिष्ट थीं,

मैं विक्टर की धाय थी। (116) [342]

मेरे बेटे के चले जाने के बाद

बुद्ध बन गया, [विश्व का] मार्गदर्शक। उसके बाद मैंने पाँच सौ लोगों के साथ संसार का त्याग कर दिया।207 (117) [343]

शाक्यन नायकों के साथ-साथ,

मैंने शांति के सुख का अनुभव किया।

200 khandhā pi adhikuṭṭanā , शाब्दिक अर्थ, “यहाँ तक कि समुच्चय (या आयाम [व्यक्तिगत अस्तित्व के: नाम और रूप, संवेदना, बोध, विन्यास और चेतना])

201 शाब्दिक रूप से, "अब मुझे नापसंद है"

202 शाब्दिक रूप से, “में” “उसमें”

203 शाब्दिक रूप से, "के बीच"

204 या सभाएँ (यहाँ तक कि सभा के चार भाग भी), जनसमूह, अनुचर

205 seṭṭhaŋ , व्युत्पत्ति के अनुसार उनके पदनाम "करोड़पति" से संबंधित है; BJTS, जो पूरे काम के लिए अधिक विशिष्ट है, aggaṃ पढ़ता है , "[वह] सबसे आगे है"

206 °matīnaŋ , शाब्दिक अर्थ, "उन (स्त्रियों) में से जो वरदान प्राप्त हैं"

207 शाब्दिक रूप से, "बाहर निकल जाने के बाद"

वे [पुरुष] थे जो पहले

हमारे [स्वयं] पतियों के रूप में जन्म हुआ था। (118) [344]

गुण सृजित करने वाले एक साथ,208

उन्होंने [अब] महत्वपूर्ण क्षण को पकड़ लिया है। वेल-गॉन-वन द्वारा दया किए जाने पर, उन्होंने अरहंतत्व का अनुभव किया। (119) [345]

वहाँ मौजूद शेष बौद्ध भिक्षुणियाँ तब सब हवा में ऊपर उठ गईं।

चमकीले तारों की तरह एक साथ आओ

वे महिलाएं, जिनमें अपार शक्तियां थीं, चमक उठीं। (120) [346]

उन्होंने अपनी विविध शक्तियों का प्रदर्शन उसी प्रकार किया जैसे कोई सुनार 209 प्रकार के आभूषण प्रदर्शित करता है।

जो कारीगरी में अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। (121) [347]

कई तरह के चमत्कारों को प्रदर्शित करने के बाद,

कुशल वाद-विवादकर्ता को प्रसन्न करने के बाद,211

फिर ऋषि और उनके अनुयायी आकाश से अवतरित होकर, मनुष्यों के मुखिया द्वारा अनुमति प्राप्त सातवें ऋषि की पूजा करने के बाद,

वे उस जगह पर फिर से बैठ गए। (122-123) [348-349]

“अरे, हीरो, यह गौतमी ही थी जिसने हम सब पर दया दिखाई।”

आपके अच्छे कर्मों से सुगंधित,212 [हम]

हमारी बाधाओं के विनाश तक पहुँच गया।213 (124) [350]

हमारे पाप अब जलकर राख हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

हम बिना किसी बंधन के जी रहे हैं। (125) [351]

बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना हमारे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (126) [352]

208 सहा । मैं इस सामाजिक कर्मिक रूप से अधिक निर्धारित अनुवाद को देने में बी.जे.टी.एस. सिंहला ग्लॉस (एक वा) का अनुसरण करता हूँ।

209 का उच्चारण करते समय दो शब्दांशों के रूप में उच्चारण करें, “diff 'rent”

210 लिट., “का”

211 v'ādipa'v'ar'aŋ

212 या “योग्यता,” पुन्नेही । “अच्छे कर्म” बहुवचन को बनाए रखेंगे।

213 ā'sa'v'akkha'y'aŋ

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (127) [353]

हम चमत्कारों के उस्ताद हैं।

हे महान ऋषि, हम “दिव्य श्रवण” क्षमता के स्वामी हैं।

[और] दूसरों के दिलों में क्या है, यह जानना। (128) [354]

हम अपने सभी पूर्व जन्मों को जानते हैं; अब "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी प्रतिबंध नष्ट हो गए हैं;

अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा। (129) [355]

हे महान ऋषि, आपकी उपस्थिति में ही हमारा ज्ञान, अर्थ और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश का ज्ञान प्राप्त हुआ। (130) [356]

हे गुरुदेव, आप प्रेम से परिपूर्ण हृदय वाली बौद्ध भिक्षुणियों से घिरे हुए हैं; हे महान ऋषि, अपनी अनुमति दीजिए।

हम सभी निर्वाण प्राप्त कर सकें। (131) [357]

विजेता ने कहा, "मैं उन महिलाओं से क्या कहूँ जो मुझसे कह रही हैं..."

क्या हम निर्वाण प्राप्त करने जा रहे हैं?

जान लो कि अब यही तुम्हारा समय है।" (132) [358]

उस समय गौतमी से शुरू होकर, सभी बौद्ध भिक्षुणियां, जो विजेता की पूजा करती थीं, उठ खड़ी हुईं।

अपनी सीटों से उठकर चले गए।214 (133) [359]

विश्व के प्रमुख नेता, बुद्धिमान व्यक्ति, 215

लोगों के एक बड़े समूह के साथ, उसने अपनी मौसी का अनुसरण किया।

जब तक वह द्वार तक नहीं पहुँच गई। (134) [360]

फिर गौतमी जमीन पर गिर पड़ी।

विश्व के रिश्तेदार के चरणों में, और अन्य सभी [ननों] के साथ

अंतिम चरण-पूजा की। (135) [361]

यह मेरा अंतिम दृष्टिकोण होगा

214 बीजेटीएस के साथ agamaŋsu पढ़ना (पीटीएस वैकल्पिक agamiṃsu की तुलना में) पीटीएस agamīsu ("गैर-गांवों के बीच"?) के लिए

215 बीजेटीएस में पीटीएस के लिए वीरो , "नायक" लिखा है, जबकि पीटीएस में धीरो , "बुद्धिमान व्यक्ति" लिखा है।

हे समस्त जगत के स्वामी, मैं तुम्हें फिर कभी नहीं देख पाऊंगा।

चेहरा, अमृत का स्रोत। (136) [362]

अब तुम्हारे उन पैरों को और प्रणाम नहीं; मैं उन्हें फिर कभी नहीं छूऊंगा।

हे वीर, [संपूर्ण] विश्व के प्रमुख, आज मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा! (137) [363]

जैसी परिस्थितियाँ हैं, उनमें आपका शारीरिक स्वरूप या चेहरा कैसा है? सभी परिस्थितिजन्य वस्तुएँ ऐसी ही होती हैं।

कोई आराम प्रदान नहीं करना, तुच्छ। (138) [364]

उनके साथ वापस अपने ननों के आश्रम में जाकर वह अर्धपद्मासन में बैठ गई।

अपनी श्रेष्ठ सीट पर। (139) [365]

उस समय वहां मौजूद गृहस्थ महिलाएं, जो बुद्ध के उपदेशों की भक्त थीं, उन्हें आगे बढ़ते हुए सुनकर,

वे पैर पूजने वाले उसके पास पहुँचे, (140) [366]

वे अपनी मुट्ठियों से अपनी छाती पीट रहे थे और जोर-जोर से दयनीय चीखें मार रहे थे।

दुःख से व्याकुल होकर वे धरती पर गिर पड़े।

जैसे लताएँ जड़ से काट दी जाती हैं। (141) [367]

"हे शरणदाता, प्रभु, हमें निर्वाण की ओर जाने के लिए मत छोड़ो।"

हम सब अपना सिर झुकाकर

[हे गौतमी] आपसे विनती कर रहे हैं।" (142) [368]

उनमें से एक साधारण महिला, जो निष्ठावान और बुद्धिमान थी, सबसे अधिक प्रयास कर रही थी। उसके सिर पर धीरे से हाथ फेरते हुए,

[गोतामी] ने उससे ये शब्द कहे: 217 (143) [369]

“बस करो इस अवसाद से, बच्चे, जो मृत्यु के जाल में फंसा हुआ है;218 सब कुछ क्षणभंगुर है,

निरंतर कांपता हुआ, हानि में समाप्त होता है।” (144) [370]

216 addhapallaṅkam ābhujya (BJTS read aḍḍhapallaṅkam ābhujja), with one leg crossed and one bend hook-wise.

217 पीटीएस abraviŋ (“मैंने बोला”) के लिए बीजेटीएस (और पीटीएस विकल्प) के साथ अंतिम क्रिया abravi (“उसने बात की”) को पढ़ना।

218 mār'apā'sānu'v'attinā

फिर उन सभी को विदा करने के बाद, वह पहली, दूसरी और तीसरी परिवर्तित अवस्था में प्रवेश कर गई।

और फिर उसने चौथा प्राप्त किया। (145) [371]

क्रम में, [और ऊपर की ओर बढ़ते हुए:]

अनंत अंतरिक्ष का तल,

वह तल जिसमें अनुभूति शुद्ध होती है,

और जहाँ शून्यता दिखाई देती है। (146) [372]

उल्टे क्रम में, गोतमी

उन सभी परिवर्तित अवस्थाओं में प्रवेश किया, अंतिम से लेकर पहली तक।

और फिर वापस चौथे पर। (147) [373]

ऊपर उठते हुए, वह निर्वाण की अवस्था में पहुँच गई, जैसे बिना ईंधन के जलते दीपक की लौ।

एक भीषण भूकंप आया था;

आकाश से बिजली की चमक गिरी। (148) [374]

गरज की आवाज तेज थी; वहां एकत्रित देवता विलाप कर रहे थे। आकाश से फूलों की वर्षा हो रही थी।

पृथ्वी पर वर्षा हो रही थी। (149) [375]

राजसी मेरु पर्वत भी मंच पर नर्तकी की तरह कांप उठा;

विशाल सागर को बहुत दुख हुआ।

और वह दुख से रो रहा था। (150) [376]

देवता, नागदेव और टाइटन भी, यहाँ तक कि ब्रह्मा भी उस समय भयभीत होकर बोले,220 [कहा,] "यह अब विलीन हो गया है; वास्तव में सब कुछ प्रवाह में है।" (151) [377]

उसके चारों ओर मौजूद [अन्य ननें],

जिन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं का अभ्यास किया,221

तब उन्होंने भी निर्वाण प्राप्त कर लिया।

जैसे बिना ईंधन के दीपकों की लौ। (152) [378]

अफसोस! अंत में अटैचमेंट कट ही जाते हैं!

हाय! सब कुछ बदल जाता है! हाय! जीवन का अंत विनाश में होता है।

इस तरह [लोग] विलाप कर रहे थे। (153) [379]

219 लिट., "अंतिम प्रथम परिवर्तित अवस्था"

220 पीटीएस में tavade लिखा है , जबकि बीजेटीएस (और पीटीएस का वैकल्पिक संस्करण) में taṅkhaṇe ("उस क्षण में") लिखा है।

221 शाब्दिक अर्थ, "छूट"

फिर ब्रह्मा और देवता

वह सातवें ऋषि के पास गया और उचित कार्य किया।

सांसारिक रीति-रिवाज के अनुसार। (154) [380]

तब शिक्षक ने आनंद से कहा,

जिसका ज्ञान सागर के समान गहरा था, उसने कहा, "अब जाओ, आनंद, भिक्षुओं को बताओ।"

मेरी माँ निर्वाण प्राप्त कर चुकी हैं।" (155) [381]

तब आनंद, जो अपना आनंद खो चुके थे,222 जिनकी आँखें आँसुओं से भर रही थीं, अपने शब्दों में रुंधते हुए बोले,223 "हे बौद्ध भिक्षुओं, एक साथ आओ,

जो उत्तर में रह रहे हैं,

या पूर्व में, या दक्षिण में, या पश्चिम में। वे सब मेरी बातें ध्यान से सुनें।

भिक्षु जो वेल-गॉन-वन के उत्तराधिकारी हैं। (156-157) [382-383]

इस गौतमी ने, जिसने ऋषि के शरीर को सावधानीपूर्वक ऊपर उठाया,

शांति से चला गया है, [अब दिखाई नहीं देता,]

जैसे सूर्योदय के समय तारे दिखाई देते हैं। (158) [384]

वह घर चली गई है, 224 उसे पीछे छोड़कर।

"बुद्ध की माता" पदनाम

जहां तक कि वह पंच-नेत्र वाला भी,

नेता किसी को जाते हुए नहीं देख सकता। (159) [385]

प्रत्येक को उस दिवंगत आत्मा पर विश्वास था, और ऋषि के प्रत्येक शिष्य को भी।

अब बुद्ध के पुत्र को आना चाहिए,225

बुद्ध की माता का सम्मान करने के लिए।" (160) [386]

यह सुनकर भिक्षु तुरंत आ गए, यहां तक कि वे भी जो दूर-दूर रहते थे।

कुछ लोग बुद्ध की महिमा से आए थे।

कुछ महाशक्तियों में कुशल थे। (161) [387]

[वहाँ के लोगों ने] उस स्थान पर एक शवयात्रा बनाई जहाँ गौतमी को [अब] रखा गया था,226

222 उनके नाम के अर्थ पर आधारित एक व्यंग्य: tadā 'nando nirānando

223 लिट., "गड़गड़ाहट की आवाज़ के साथ"

224 पीटीएस पाठ gatāsayaŋ को स्वीकार करते हुए । बीजेटीएस (और पीटीएस वैकल्पिक) gatāsamaṃ पढ़ता है , "अतुलनीय के पास चला गया"

[राज्य?]"

225 लिट., "अच्छे से चले गए व्यक्ति का उत्तराधिकारी"

226 पीटीएस सुत्ता 'पी गौतमी , बीजेटीएस सुत्तासी गोतमी (सुत्ता-असी गौतमी)

एक अच्छी, सुंदर छज्जे वाली झोपड़ी में,

उत्कृष्ट [और] सोने से बना हुआ। (162) [388]

चार "विश्व रक्षक" देवताओं ने शवयात्रा को अपने कंधों पर उठाया; शकरा से शुरू होने वाले अन्य देवताओं ने भी ऐसा ही किया।

गैबल वाली झोपड़ी के अंदर इकट्ठा हुए। (163) [389]

वहाँ पाँच सौ छज्जेदार झोपड़ियाँ थीं, जिनका रंग शरद ऋतु के सूरज जैसा था।

जिनका निर्माण विस्साकम्मा ने करवाया था।

[उन सभी महान बौद्ध भिक्षुणियों के लिए]। (164) [390]

उन सभी [पांच सौ] बौद्ध भिक्षुणियों को शवयात्रा के लिए अर्थी पर लिटाया गया था।

देवताओं के कंधों पर उठाया गया,

उचित क्रम में पंक्तिबद्ध। (165) [391]

आकाश में एक छतरी

यह हर चीज पर फैला हुआ था।

सूर्य, चंद्रमा और सभी तारे

उस पर [तरल] सोने से चित्र बनाए गए थे। (166) [392]

विभिन्न प्रकार के झंडे फहराए गए, फूलों का आवरण फैलाया गया; धरती से फूल उग आए।

जैसे आकाश में उठती हुई धूप227। (167) [393]

सूर्य और चंद्रमा दोनों दिखाई दे रहे थे, और सभी तारे टिमटिमा रहे थे;228 और यहाँ तक कि जब दोपहर का समय था,

सूर्य चंद्रमा की तरह नहीं जलता था। (168) [394]

देवताओं ने दिव्य सुगंधों से सुगंधित मालाओं की भेंट चढ़ाई और गीतों से गौतमी का सम्मान किया।

नृत्यों और प्रवचनों के साथ। (169) [395]

नागदेवों, दैत्यों और ब्रह्माओं ने अपनी-अपनी शक्तियों और सामर्थ्य के अनुसार, निर्धारित स्थान पर भेंटें अर्पित कीं।

माता जो निर्वाण में थीं। (170) [396] आगे सभी को ले जाया गया

227 बीजेटीएस में ogatākāsapadumā (“आकाश में उगते कमल”) लिखा है।

228 मंत्रोच्चार करते समय "ट्विंकलिंग" का उच्चारण पूरे तीन शब्दांशों के रूप में करें, ताकि लय बनी रहे, या यदि इसे दो शब्दांशों में संक्षिप्त किया जाए तो "और [सभी] तारे टिमटिमा रहे थे" में संशोधित करें।

229 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

निर्वाण प्राप्त कर चुके व्यक्ति के उत्तराधिकारियों के बाद गौतमी को ले जाया गया।

बुद्ध की सम्मानित धाय माँ। (171) [397]

सबसे आगे देवता और मनुष्य हैं, नागदेव, दानव और ब्रह्मा, और उनके पीछे अनुयायियों के साथ बुद्ध हैं।

अपनी माँ की पूजा करने के लिए आगे बढ़े।230 (172) [398]

बुद्ध का अंतिम निर्वाण इस प्रकार का नहीं था। गौतमी का अंतिम निर्वाण।

यह अत्यंत चमत्कारिक था। (173) [399]

बुद्ध और भिक्षु बुद्ध के अंतिम निर्वाण में दिखाई नहीं देंगे।

बुद्ध गौतमी के यहाँ हैं;231

सारिपुत्त और इसी प्रकार आगे भी। (174) [400]

फिर उन्होंने अंत्येष्टि की चिताएं बनाईं।

इसमें तरह-तरह की सुगंधित लकड़ियों का इस्तेमाल किया गया है और इस पर सुगंधित पाउडर छिड़का गया है।

उन [महान ननों] का वहीं अंतिम संस्कार किया गया था। (175) [401]

शेष भाग और हड्डियाँ232 पूरी तरह से आग में भस्म हो गईं। और उस समय आनंद ने कहा

यह भाषण, [जो] बहुत मार्मिक था:233 (176) [402]

“गौतमी का कोई निशान नहीं बचा है234 और उनके शव का दाह संस्कार कर दिया गया है, जो इस बात का संकेत देता है कि बुद्ध का

निर्वाण भी शीघ्र ही प्राप्त होगा।” (177) [403]

बुद्ध के आग्रह पर आनंद ने उस समय गौतमी के पवित्र अवशेषों को उनके भिक्षापात्र में रख दिया।

[और] उन्हें प्रभु के समक्ष प्रस्तुत किया। (178) [404]

230 शाब्दिक रूप से, "अपनी माँ की पूजा करने जा रहा है"

231 शाब्दिक अर्थ, "गोतमी के [अंतिम] निर्वाण पर"

232 लिट., "शेष भाग, शेष हड्डियाँ।" मैंने पहले अनुवाद किया था "केवल उसकी हड्डियाँ ही बची थीं," लेकिन अब मेरा मानना है कि यह गलत था; मांसल भाग (आदि) और हड्डियाँ दोनों पूरी तरह से जल गई थीं; नीचे संदर्भित "अवशेष" श्मशान की राख में बचे हुए छोटे रत्न जैसे टुकड़े होंगे, न कि हड्डियाँ।

233 saŋvegajanakaŋ vaco , शाब्दिक अर्थ, "भावना उत्पन्न करने वाला शब्द।" Saṃvega एक गहन भावनात्मक अंतर्दृष्टि है

वास्तविकता की प्रकृति, जो अक्सर धार्मिक कार्यों को प्रेरित करती है, की तुलना उब्बेगा से की जानी चाहिए , जो मृत्यु के प्रति सामान्य भावनात्मक प्रतिक्रियाएं, सामान्य शोक, दुःख आदि हैं।

234 निधानं , शाब्दिक अर्थ, "कर्मों के धन के बिना," या अधिक शाब्दिक रूप से, "अधिकारहीन"

सातवें ऋषि, बुद्ध ने उन्हें अपने दोनों हाथों से उठाकर कहा: "जिस प्रकार एक विशालकाय, लकड़ी से लदे पेड़ का तना, चाहे वह कितना भी विशाल क्यों न हो, टुकड़ों में टूट जाता है,

इसलिए गौतमी, जो एक नन थीं,235

वह अपने अंतिम निर्वाण तक पहुँच चुकी है। (179-180) [405-406]

ओह! यह तो एक अद्भुत चीज है!

मेरी माँ, जो निर्वाण प्राप्त कर चुकी हैं, अपने पीछे केवल अवशेष छोड़ गई हैं।236

शोक नहीं किया [और विलाप नहीं कर रहा था]। (181) [407]

दूसरों के लिए शोक न करते हुए, उसने अस्तित्व के सागर को पार कर लिया है। वह शांत हो गई है, वह निर्वाण में है।

अब उसकी पीड़ा टल गई है। (182) [408]

हे भिक्षुओं, उसके बारे में यह जान लो कि वह बहुत बुद्धिमान स्त्री थी।237

विशाल और व्यापक ज्ञान के साथ,238

बौद्ध भिक्षुणियों में विशिष्ट। (183) [409]

उसने "दिव्य कान" नामक महाशक्ति में महारत हासिल कर ली थी। गौतमी इस तत्व की पारखी थी।

दूसरों के हृदयों में संचित ज्ञान। (184) [410]

उसे अपने पिछले जन्म याद आ गए; उसकी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई।

सभी अशुद्धियों को नष्ट कर दिया गया;

उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। (185) [411]

उसने अर्थ और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश के अपने ज्ञान को शुद्ध कर लिया था।

इसी कारण उसने शोक नहीं किया। (186) [412]

आग से चमकती हुई लोहे की छड़ को पीटने पर वह धीरे-धीरे ठंडी हो जाती है, [जिससे कोई राख नहीं बचती:]

235 शाब्दिक रूप से, "भिक्षुओं की सभा का:" भिक्खुनीसंघास्सा

236 sarīramattasesāya , शाब्दिक अर्थ, "[केवल] कुछ अवशेष शेष हैं"

237 paṇḍitā' si

238 शाब्दिक अर्थ, "विशाल ज्ञान के साथ, व्यापक ज्ञान के साथ"

इस तरह यह ज्ञात नहीं है कि [वह] कहाँ गई।239 (187) [413]

सच्चे रूप से मुक्त व्यक्ति के पुनर्जन्म स्थान का पता नहीं लगाया जा सकता है।

जो वासना के बंधनों की बाढ़ को पार करते हैं,

जो अटूट खुशी तक पहुँच चुके हैं।240 (188) [414]

इसलिए स्वयं अपने लिए दीपक बनो; जागरूकता के क्षेत्र में चरते रहो। ज्ञान के सात भागों को प्राप्त करके,

आप सभी को अपना कष्ट समाप्त करना चाहिए।241 (189) [415]

इस प्रकार, भिक्खुनी महापजापतिगोतमी ने ये श्लोक कहे थे।

महापजापतिगोतमी थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 18.खेमा
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
18. खेमा242

विजेता, पदुमुत्तरा,

सब कुछ देखने वाला, दुनिया का नेता, उदय हुआ।

एक लाख युगों बाद। (1) [416]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

फिर करोड़पतियों के एक परिवार में, जो विभिन्न रत्नों से जगमगा रहा था,

परम सुख से संपन्न। (2) [417]

उस महान नायक से संपर्क करने के बाद,

मैंने [उन्हें] उनके धम्म का उपदेश देते हुए सुना । उसके बाद, प्रसन्न होकर, मैंने विजयदाता की शरण ली। (3) [418]

माता-पिता से विनती करने के बाद, मार्गदर्शक को आमंत्रित करने के बाद,

मैंने बुद्ध को उनके अनुयायियों के साथ एक सप्ताह तक भोजन कराया। (4) [419]

उन सात दिनों के अंत में, मनुष्यों के सारथी ने रखा

239 शाब्दिक रूप से, "[उसकी] पुनर्जन्म की अवस्था (गति) ज्ञात नहीं है"। उपमा यह है कि गोतमी, भट्टी में लोहे की छड़ में जलती हुई लौ की तरह, बिना किसी निशान के गायब हो गई है, "ठंडी हो गई है"।

240 acalaŋ sukhaŋ . BJTS, Apadāna के समग्र स्वरूप के अनुरूप , acalaŋ padaŋ ("अविचल अवस्था") पढ़ता है।

241 या "बीमारी का अंत करो:" dukkhass' antaŋ karissathā ti .

242 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

एक महान नन243 सर्वोपरि स्थान पर

उन लोगों में जो बहुत बुद्धिमान हैं। (5) [420]

यह सुनकर, अत्यंत प्रसन्न होकर,

उसके लिए और भी अच्छे काम करते हुए,

महान ऋषि ने प्रणाम करने के बाद,

मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (6) [421]

तब विजेता ने मुझसे यह कहा: "तुम्हारी आकांक्षा पूरी हो! सभा में मेरे लिए किए गए कार्य

[तुम्हारे लिए] असीम फल देगा। (7) [422]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (8) [423]

उस धर्म की योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, तुम ही हो जिसका नाम खेमा है।

[और] वह सर्वोपरि स्थान प्राप्त करेगा।" (9) [424]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (10) [425]

वहाँ से गिरकर मैं यमराज के पास गया,245

[और] फिर मैं तुसिता गया, और फिर निम्मानारती गया,246

और फिर वासावट्टी नगर। (11) [426]

जिस भी स्थान पर मेरा पुनर्जन्म होता है, उस कर्म के अनुसार, हर जगह मुझे प्रधान रानी बनाया जाता है।

[वहाँ] राजाओं के [देवताओं के]। (12) [427]

वहाँ से पतित होकर, मानव अवस्था में, [हर जगह] मुझे उन राजाओं की प्रधान रानी बनाया गया जो [कानून का] पहिया घुमाते हैं।

और [शक्तिशाली] क्षेत्रीय राजा। (13) [428]

243 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

244 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

245 पठन °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

246 यानी तैंतीस देवता।

देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच सफलता का अनुभव करने के बाद, हर जगह सुखी होने के कारण,

मैंने युगों तक पुनर्जन्म लिया।247 (14) [429]

[तब] इक्यावन युग पहले,

विश्व नेता विपस्सी उठे, सुंदर नेत्रों वाले,248

हर चीज़ में अंतर्दृष्टि के साथ.249 (15) [430]

मैं उस विश्व नेता, पुरुषों के बीच सारथी के पास गया। उनकी उदात्त शिक्षा सुनकर,

मैं बेघर हो गया। (16) [431]

पवित्र जीवन जीने के बाद250

उस ज्ञानी व्यक्ति के शासनकाल में, पूरे दस हजार वर्षों के दौरान,

प्रयास पर दृढ़, बहुत विद्वान, (17) [432]

अनेक कारणों में निपुण,251 चार [नोअर] सत्यों में विशेषज्ञ, चतुर, विविध वक्ता, [मैं था]

जिसने शिक्षक की शिक्षाओं का पालन किया है। (18) [433]

वहाँ से गिरने के बाद मेरा पुनर्जन्म हुआ

तुसिता, प्रसिद्धि और वैभव के साथ।

मैंने वहां मौजूद अन्य [देवताओं] को पीछे छोड़ दिया।

पवित्र जीवन के फल के रूप में।252 (19) [434]

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूं, मैं बहुत धनी, समृद्ध, बुद्धिमान और सुंदर होऊंगी।

[और] मेरा दल अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। (20) [435]

मेरे कर्मों के फलस्वरूप, विजेता के शासनकाल में किए गए प्रयासों के कारण,

मुझे हर उपलब्धि से आनंद मिलता है।

आसानी से प्राप्त हुआ, मन को प्रसन्न करने वाला। (21) [436]

मेरे अच्छे आचरण के फल स्वरूप,

247 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

248 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

249 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

251 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

252 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

कोई भी मेरे साथ अपमानजनक व्यवहार नहीं करता, यहाँ तक कि वह भी जो मेरा पति था।

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूँ।253 (22) [437]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, जिनका नाम कोणागमना था,

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता, [बुद्ध,] प्रकट हुए। (23) [438]

हम उस समय बनारस के एक बहुत ही समृद्ध कुल में पैदा हुए थे: धनंजनी, सुमेधा भी।

मेरे साथ, तीन महिलाएं। (24) [439]

हम गृहस्थ दानदाताओं ने ऋषि को एक हजार पाउंड और एक आश्रम दान में दिए।

विधानसभा के लिए, 254 का दान करते हुए

उस स्थान255 को सभा के साथ उसके पास। (25) [440]

हम तीनों महिलाएं वहां से गिर गईं।

तावतिंसा में पुनर्जन्म हुआ था256

[जहाँ] हमने सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त की, और लोगों के बीच भी उतनी ही प्रसिद्धि। (26) [441]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में,

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप के नाम से जाना जाता है257

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (27) [442]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (28) [443]

मैं उस [राजा की] सबसे बड़ी बेटी थी।

"समानी" नाम से प्रसिद्ध।258

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (29) [444]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

हम उस दौरान घर पर ही रहे।

253 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

254 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

255 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

256 puṇṇā ti nāmaŋ

257 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

258 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्निका के लिए

आरामदायक 259 शाही युवतियां ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पूरे जोश के साथ [हमारा] अभ्यास कर रही हैं,

हजार वर्षों के बीस गुना तक, बुद्ध की सेवा करने के शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (30-31) [445-446]

समानी और समानगुट्टा,260

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (32) [447]

[अब] मैं, और उप्पलवन्ना, पटाचारा और कुंडाला,261

किसागोतामी, धम्मदिन्ना,262

और विशाखा सातवां है। (33) [448]

एक बार जब सूर्य लोगों के बीच था

अद्भुत सत्य का प्रचार कर रहे थे,263 इसे सुनकर, मैंने महानिदानसुत्तंत को याद कर लिया ।264 (34) [449]

उन कर्मों (265) के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, अपने मानव शरीर का त्याग करके,

मैं तब तावतिंसा गया। (35) [450]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, सर्वश्रेष्ठ नगर सागाला में,

मैं मद्दा राजा की पुत्री हूँ, 266

बहुत पसंद किया जाने वाला, प्रिय [और] प्यारा। (36) [451]

उस शहर में सब कुछ शांतिपूर्ण था।

259 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

260 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

261 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

262 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

263 डांटो , या "वश में किया हुआ"

264 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

265 vimutt'o

266 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

267 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-पंक्ति वाले छंदों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो अनुवाद के दौरान विकृत हो गया है? मैंने अपदाना में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो अनुवाद में अपेक्षाकृत पहले कहीं सात शब्दांशों के लोप [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ शब्दांशों के लोप [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] का संकेत देता है)।

जब मेरा जन्म हो रहा था। उसके बाद, उस गुण के कारण,268

उन्होंने मुझे “खेमा” नाम दिया। (37) [452]

जब मैंने यौवन की चरम अवस्था प्राप्त की,

मैं सौंदर्य और गरिमा से परिपूर्ण थी।270

उस समय मेरे पिता ने मुझे

[महान] राजा बिम्बिसार को। (38) [453]

मैं उनकी सबसे प्रिय [रानी] थी।

अपनी सुंदरता पर बहुत गर्व करते हुए। [सोचते हुए,] "वह सुंदरता की बुराई करता है।"

मैंने दयालु व्यक्ति को चकमा दिया।273274 (39) [454]

उस समय, राजा बिम्बिसार,

मेरे प्रति ज्ञान और अपार प्रेम के साथ, बांस के जंगल की प्रशंसा करने के बाद,275

मेरे लिए गायक लाए [इसकी प्रशंसा करने के लिए]: (40) [455]

"हमारा मानना है कि जिसने बांस के इस रमणीय वन को नहीं देखा है, वह इसे देख ही नहीं सकता।"

और न ही वेल-गॉन-वन का अड्डा,

[जॉय नाम के बगीचे] को नहीं देखा है।276 (41) [456]

लेकिन जिसने बांस के जंगल को देखा है, लोगों द्वारा अनुभव किए जाने वाले 'आनंद' को देखा है,277

कि किसी ने 'जॉय' नामक [बगीचा] देखा है।

देवताओं के राजा द्वारा बहुत आनंद लिया गया।278 (42) [457]

'जॉय' नामक बगीचे को त्यागते हुए,

मिशन प्रक्रिया (क्योंकि यह सभी विद्यमान पांडुलिपियों को प्रभावित करती है)। अपादान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले छंद-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन बुनियादी इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो तब चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

268 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

269 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"

270 #23, ऊपर

खंड 271 में कहा गया है, " बीस करोड़ लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है धम्म की अंतर्दृष्टि, धम्म में प्रवेश , धम्म की समझ या धम्म में प्रवेश, शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

272 y'akkho

273 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

274 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

275 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

276 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

277 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

278 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

पृथ्वी की सतह पर उतरते हुए, देवता संतुष्ट और आश्चर्यचकित हैं।

सुंदर बांस के उपवन को देखकर। (43) [458]

कौन सा वक्ता राजाओं के पुण्य से उत्पन्न संचित सद्गुणों का पूरी तरह से वर्णन कर सकता है?

बुद्ध के पुण्य से सुशोभित? (44) [459]

इसकी भव्यता के बारे में सुनकर, जो मेरे कानों को बहुत भाया, उस बगीचे को देखने की इच्छा हुई।

फिर मैंने राजा को इसकी सूचना दी। (45) [460]

फिर पृथ्वी के स्वामी राजा, अपने विशाल दल के साथ,

मुझे जुलूस के माध्यम से वहाँ ले जाया गया

मैं उस बगीचे को देखने के लिए तरस रहा था। (46) [461]

“जाओ और उस उपवन की अपार संपदा को देखो, जो आँखों को भाता है; वह सदा प्रकाशमान रहता है।”

बुद्ध की आभा से रंगा हुआ।" (47) [462]

और जब ऋषि भिक्षा मांगते हुए राजगीर, सर्वश्रेष्ठ नगर में प्रवेश कर गए,281

ठीक उसी समय282 मैं बाहर गया,

उस उपवन को देखने की इच्छा रखते हुए। (48) [463]

फिर मैं उस खिले हुए उपवन में प्रवेश किया, जो विभिन्न प्रकार की मधुमक्खियों की भिनभिनाहट से जीवंत था।

भारतीय कोयल के गीतों से भरपूर,

[और] मोर मंडली द्वारा नृत्य, (49) [464]

शोरगुल से मुक्त, साफ-सुथरा, विभिन्न प्रकार के पैदल मार्गों से सुशोभित, और जगह-जगह झोपड़ियों और मंडपों से युक्त।

विविध योगियों से सुशोभित। (50) [465]

वहाँ घूमते हुए मैंने सोचा,

"मेरी आँखें अब अपनी उपयोगिता साबित कर रही हैं।"283

279 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

280 सम्मुख , अर्थात् "एक साथ"

281 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

282 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

283 जटाम्ह का पाठ, पीटीएस अजाता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजातो "वह अजन्मा है") के लिए बीजेटीएस के साथ

उस स्थान पर देखकर

मैंने उसके बारे में सोचा, एक युवा भिक्षुः (51) [466]

एक रमणीय उपवन में ठहरना

इस तरह, प्रारंभिक युवावस्था में मानो वसंत ऋतु हो, भरपूर संपदा से भरपूर

एक ऐसे शरीर के साथ जो मनभावन हो, (52) [467]

गंजे सिर वाले, केसरिया वस्त्रों में लिपटे हुए,284

पेड़ की तलहटी में बैठा हुआ

वह ध्यान करता है, एक बौद्ध भिक्षु, इंद्रिय सुख का त्याग करते हुए।285 (53) [468]

क्या इस शुभ शिक्षा का अभ्यास वृद्ध लोगों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए,286 गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद?

अपनी पसंद के अनुसार आनंद का आनंद ले रहे हैं? (54) [469]

यह जानकर कि वह खाली था,

मैं सुगंधित घर, विक्टर के घर के पास पहुँचा, [लेकिन] विक्टर को देखा, जैसे सूरज उग रहा हो, (55) [470]

वह अकेले ही खुशी से बैठा था,287

एक खूबसूरत महिला द्वारा पंखा किया जा रहा है।

उस दृश्य को देखकर मैंने कुछ इस तरह सोचा:

"क्या यह पुरुषों का बैल दयनीय नहीं है?288 (56) [471]

वह स्त्री, सोने की तरह चमक रही थी, उसकी आंखें और चेहरा गुलाबी कमलों की तरह थे।

लाल होंठों वाली, चमेली जैसी दिखने वाली,289

मन और आँखों को भाने वाला, (57) [472]

सुनहरे झूलों जैसे कानों वाली, पानी के घड़ों जैसी सुडौल छातियाँ, पतली कमर, आकर्षक नितंबों वाली,

सुंदर जांघें आकर्षक आभूषणों के साथ, (58) [473]

उत्तम नीले रेशम के वस्त्र पहने हुए,

284 °पुत्ता° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

285 लिट., "हम हर समय नहीं हैं..."

286 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

287 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("पिछले कर्मों के फल के बाद")

288 संसारपथ-नित्तिना

289 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo ("अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा")

290 t'ato tato

291 बीजेटीएस और पीटीएस में वैकल्पिक रूप से सहा के स्थान पर समा ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

लाल रंग की सीमा से सुसज्जित, असंतोषजनक दिखने वाला,292

उसका व्यवहार मुस्कुराता हुआ है।" (59) [474]

उसे देखकर मैंने सोचा: "वाह! यह तो बेहद खूबसूरत है! मैंने पहले कभी ऐसी सुंदरता नहीं देखी।"

मेरी अपनी आँखों से [ऐसी सुंदरता]!" (60) [475]

फिर बुढ़ापे ने उसे जकड़ लिया, उसका रंग फीका पड़ गया, उसका चेहरा विकृत हो गया।

उसके दांत गिर गए, उसके बाल सफेद हो गए,

उसका मुँह लार से सना हुआ था, (61) [476]

कान सिकुड़ गए, आँखों में मोतियाबिंद हो गया,294 स्तन लटक गए और बदसूरत हो गए; झुर्रियाँ उसके पूरे शरीर पर फैल गईं।

[और] उस शरीर पर नसें उभर आईं, (62) [477]

टेढ़े-मेढ़े अंगों वाला, छड़ी के सहारे झुका हुआ, उभरी हुई पसलियों वाला, दुबला-पतला, कांपता हुआ, जमीन पर गिरा हुआ।

वह हर सांस के लिए हांफ रही थी।295 (63) [478]

और फिर मैं अत्यंत भावुक हो गया।296

आश्चर्यचकित होकर, मेरे रोंगटे खड़े हो गए, मैंने कहा, "अशुद्ध सुंदरता पर धिक्कार है!"

यह वह जगह है जहाँ [केवल] मूर्ख आनंदित होते हैं! (64) [479]

तब महान करुणावान ने यह जानकर कि मेरा मन प्रसन्न और रोमांचित था,

उन्होंने मुझसे इन छंदों में बात की: (65) [480]

“खेमा, इस जटिल ढेर को देखो, यह बीमार, घिनौना और सड़ा हुआ है।

इसमें से रिसाव हो रहा है और यह टपक रहा है।

मूर्ख लोगों का आनंद। (66) [481]

292 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

293 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

294 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

295 लिट., “महान नायक ने भविष्यवाणी की”

296 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

297 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

298 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

एकाग्रचित्त होकर, दृढ़ता से, अशुद्धता पर अपना ध्यान केंद्रित करो।

अपने शरीर के प्रति सचेत रहें;

मोहभंग पर दृढ़ रहना। (67) [482]

जैसा यह है, वैसा ही वह भी है;

ठीक वैसे ही, यह भी वैसा ही है:

अंदर और बाहर दोनों तरफ,

शरीर-सुख से विरक्त हो जाओ। (68) [483]

मुक्ति को बढ़ावा दें

और अंतर्निहित अहंकार को त्याग दें।299

फिर, अहंकार को समझकर, तुम शांति से विचरण करोगे। (69) [484]

जो लोग उस धारा का अनुसरण कर रहे हैं, कामवासना से उत्तेजित होकर, मकड़ी की तरह अपने लिए जाले बुन रहे हैं; दूसरे, उन्हें काटकर आगे बढ़ रहे हैं।

उदासीन, कामवासना के सुखों का त्याग करते हुए।" (70-71) [485].300

तब मनुष्यों के सारथी ने मेरी मानसिक तत्परता को जानते हुए,

मुझे निर्देश देने के लिए उपदेश दिया गया

महनिदानसुत्तन्त .301 (72) [486

उस सर्वश्रेष्ठ सूत्र को सुनकर , मैं

मुझे अपनी पुरानी यादें ताजा हो गईं।

वहाँ खड़े रहने मात्र से ही मुझे शांति मिल रही थी;

मैंने अपनी " धम्म दृष्टि" को शुद्ध किया। (73) [487]

तुरंत नीचे गिरना

महान ऋषि के चरणों में,

मैंने उस समय ये शब्द कहे थे।

अपराध स्वीकार करने के लिए [उसके समक्ष]। (74) [488]

हे समस्त द्रष्टा, आपकी जय हो!

करुणा के घर, आपकी जय हो! अस्तित्व को पार करने वाले, आपकी जय हो!

आपको बधाई हो, अमरता का मार्ग!302 (75) [489]

दृश्यों के घने जंगल में डूब गया,

299 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

300 लिट., "मेरे मन में कोई हलचल नहीं है"

301 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

302 लिट., "और एक महिला"

303 लिट., "और एक महिला"

मैं तीव्र वासना से मदहोश था। [अब] मुझे अनुशासन में आनंद आता है।

आपके धार्मिक चाल द्वारा अनुशासित।304 (76) [490]

उन्हें आनंद नहीं मिलता क्योंकि वे आप जैसे महान ऋषियों को नहीं देखते, अस्तित्व के सागर में विराजमान प्राणी,305

बहुत बेचैनी से गुजर रहे हैं। (77) [491]

यद्यपि निकट था306 मैं संसार के सहायक,307 अहिंसा,308 मृत्यु का अंत करने वाले को देखने नहीं गया;309

मैं उस अपराध को स्वीकार करता/करती हूँ। (78) [492]

सौंदर्य के प्रति जुनूनी होने के कारण, मैं नहीं गई।

परोपकारी को,310 महान मित्र,311

उसे संदेह था कि वह unfriendly होगा;

मैं उस अपराध को स्वीकार करता/करती हूँ।" (79) [493]

और फिर मधुर वाणी वाले,312 महान करुणामयी विजेता ने,313 मुझे अमृत से सराबोर करते हुए कहा,

"खेमा, तुम्हें [हमारे साथ] यहीं रहना चाहिए।" (80) [494]

फिर सिर झुकाकर परिक्रमा करने के बाद,

राजा को देखने के बाद,

मैंने ये शब्द [उससे ठीक उसी समय] कहे। (81) [495]

"हे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले,

वह नेक चाल314 जो तुमने सोची! उपवन देखने की इच्छा से, मैंने देखा315

304 etesaŋ devedevānaŋ

305 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

306 या करें: कारती से

307 सधम्म॰ , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

308 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

309 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse (“आधा महीना”) पढ़ता है

310 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

311 यह और इसके बाद के समापन श्लोक पीटीएस में यहाँ नहीं मिलते हैं, और ये असामान्य हैं (हालाँकि अद्वितीय नहीं)।

अपदाना के लिए जिसमें व्यक्तिगत कविताएँ आमतौर पर उस चीज़ के साथ समाप्त होती हैं जिसे मैंने "समापन छंद" कहा है (श्लोक)।

85-87) [1023-1025]। दिलचस्प बात यह है कि वे (साथ ही एक और, जो कहीं और भी दोहराया गया है) उसी असामान्य दोहराव के बाद की स्थिति में, नीचे, अपदान #30, यशोधरा के साथ अठारह हजार ननों के श्लोक 57-59 (साथ ही 60) के रूप में दिखाई देते हैं, और उस अपदान के बीजेटीएस संस्करण में भी इसी स्थिति में हैं (श्लोक [1100-1102] साथ ही [1103])।

312 पीटीएस में थेरी शब्द शामिल नहीं है, जिसे मैंने बीजेटीएस से लिया है।

313 रीडिंग s'ūnā vaṇitakibbisā with BJTS (and PTS alt.) for PTS sūnā 'va nītakibbisā (“like a slaughterhouse leading to pap” ?)

314 jegucchaŋ ; BJTS में इसे bībhacchaṃ पढ़ा गया है , जिसका अर्थ लगभग समान है (घृणित, भयानक, डरावना)

315 या, बीजेटीएस के साथ विपस्सन्ती का पाठ करते हुए , "जांच करना" "अंतर्दृष्टि लागू करना"

ऋषि, वह जो लालसा से मुक्त है।316 (82) [496]

हे राजा, यदि यह आपको पसंद हो,

मैं तटस्थ ईश्वर के विधान में आगे बढ़ूंगा, सौंदर्य से थक चुका हूं।

क्योंकि ऋषि ने मुझे जो बताया था।” (83) [497]

फिर पृथ्वी के स्वामी, राजा ने अपने हाथ जोड़कर कहा, “हे भाग्यशाली, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ।”

आपका आगे बढ़ना सफल हो!” (84) [498]

और फिर मेरे जाने के बाद,

जब मैंने सात महीने तक सेवा की, और दीपक की लौ को उठते-गिरते देखा,

मेरा मन अत्यंत विचलित हो गया, (85) [499]

सभी सांसारिक चीजों से तंग आकर, कारणों के ढेरों में निपुण होकर,317 चारों प्रकार की बाढ़ को पार करते हुए,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (86) [500]

मैंने "दिव्य श्रवण" नामक महाशक्ति में महारत हासिल कर ली थी। मैं इसमें भी निपुण था।

दूसरों के हृदयों में संचित ज्ञान। (87) [501]318

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (88) [502]

बुद्ध के युग में,

मैंने अर्थ और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश के अपने ज्ञान को शुद्ध किया है। (89) [503]

शुद्धिकरण में कुशल,319 कथावत्थु में विश्वास रखने वाला ,320 और उस व्यवस्था में जो मैंने दी है

अभिधामिक पद्धति में महारत हासिल की।321 (90) [504]

316 lit., “in the” “in that”

317 चित्तस्मिं वसिभूतस्मिं , शाब्दिक अर्थ, "जब मैं अपने मन का स्वामी (या "नियंत्रण") बन गया"

318 सुभाविता , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे द्वारा] सुविकसित" या "सुसंस्कृत" "सुचारू ध्यान"

319 sattisūlūpamā kāmā , शाब्दिक अर्थ, “तलवारें और कटार इंद्रिय सुखों के समान हैं (या उनकी उपमाएँ हैं)”

320 khandhā pi adhikuṭṭanā , शाब्दिक अर्थ, “यहाँ तक कि समुच्चय (या आयाम [व्यक्तिगत अस्तित्व के: नाम और रूप, संवेदना, बोध, विन्यास और चेतना])

321 शाब्दिक अर्थ, "अब मुझे नापसंद है"

फिर, तोरणवत्थु,322 में सूक्ष्म प्रश्न पूछे जाने पर,

कोसल [राजा] की पत्नी, रानी

मैंने सत्य के अनुसार व्याख्या की।323 (91) [505]

उस समय राजा पास आ रहा था...

वेल-गॉन-वन ने भी उससे यही पूछा।

तब बुद्ध ने ठीक इसी प्रकार समझाया।

[उन प्रश्नों] की व्याख्या मैंने की थी। (92) [506]

विजेता उस गुण से रोमांचित होकर मुझे सबसे आगे बिठा दिया; परम पुरुष ने मुझे यह उपाधि दी।

“महान ज्ञान वाली ननों की प्रमुख।” (93) [507]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (94) [508]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (95) [509]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (96) [510]

इस प्रकार भिक्खुनी खेमा ने ये श्लोक कहे थे।

खेमा थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
19. उप्पलावण्णा 324

उपलवण्णा नामक भिक्षुणी, महाशक्तियों की स्वामिनी,

गुरु के चरणों की पूजा करने के बाद,

मैंने उस समय उससे ये शब्द कहे: (1) [511]

322 lit., “in the” “in that”

323 शाब्दिक अर्थ, "के बीच"

324 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

“जन्म और पुनर्जन्म325 पार हो चुके हैं, मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली है।

मैंने समस्त कष्टों का नाश कर दिया है;

मैं इसकी घोषणा कर रहा हूँ, हे महान ऋषि। (2) [512]

बुद्ध के उपदेशों से प्रसन्न असंख्य लोगों में,

यदि मैंने [कुछ] लोगों के साथ अन्याय किया है, तो क्या वे विजेता का सामना करते हुए [इसे] क्षमा कर देंगे? (3) [513]

हे महान ऋषि, मैं यह घोषणा करता हूँ कि

अगर मुझसे कोई गलती हुई है,

अस्तित्व में स्थानांतरण करना,

आप उस अपराध को क्षमा कर दें। (4) [514]

"मेरी विधि का पालन करने वालों को अपनी महाशक्तियाँ दिखाओ। आज से ही सारे संदेह दूर कर दो।"

भीड़, जो चौगुनी है।"330 (5) [515]

"महान नायक, मैं आपकी पुत्री हूँ।"

हे ज्ञानी,331 हे तेजस्वी,332

मैंने बहुत कठिन कार्य किए हैं।

कठिन और अनेक [भी]। (6) [516]

मेरी त्वचा का रंग नीले कमल के रंग जैसा है;

मेरा नाम "ब्लू लोटस" है।333

मैं आपका अनुयायी हूँ, महान नायक।

हे आँखों वाले, आपके चरणों की पूजा करते हुए। (7) [517]

राहुल334 और मैं स्वयं

हमारी समान सोच के कारण,

समान परिस्थितियों में पैदा हुए थे335

विभिन्न सौ कई [बार]। (8) [518]

पुनर्जन्म उसके साथ है।

325 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

326 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

327 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

328, अर्थात् तैंतीस देवता।

329 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

330 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

331 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

332 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

333 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

334 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

335 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

और जन्म के बाद भी, साथ-साथ। [अब] हमारे अंतिम अस्तित्व में

दोनों, [विभिन्न]336 परिस्थितियों में पैदा हुए, (9) [519]

एक साथ: राहुल का [तुम्हारा] पुत्र;

मैं आपकी बेटी हूँ, मेरा नाम "ब्लू लोटस" है। मेरे महाशक्तियों को देखो, हीरो;

मैं शिक्षक को अपनी शक्ति दिखाऊंगा।" (10) [520]

उसने चारों महान महासागरों को अपनी हथेली पर रख दिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई युवा चिकित्सक करता है।337

क्या मूत्राशय के लिए तेल नियत है.338 (11) [521]

मिट्टी को उखाड़कर, उसने उसे अपने हाथ की हथेली पर रख दिया, मानो कोई कोमल छोटा लड़का उसे चुन रहा हो।339

एक [फूल जो] रंगों से भरा है.340 (12) [522]

उसकी हथेली, जो ब्रह्मांड जितनी विशाल थी,341 ऊपर से दुनिया को ढके हुए थी, जिससे विभिन्न रंगों की बारिश की बूंदें गिरीं।

बार-बार बरसना। (13) [523]

मिट्टी को ओखली में बदलना, मेरु पर्वत को अपना मूसल बनाना, मानो कोई युवा पीसने वाली लड़की हो।

342 अनाज [आटा] पीसते हुए, [उसने] बजरी बनाई। (14) [524]

"मैं सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की पुत्री हूँ; मेरा नाम "नीला कमल" है। मैं महाशक्तियों की स्वामी हूँ।"

मैं आपके विधान का पालन करता हूँ।" (15) [525]

विभिन्न रूपांतरण करते हुए,343 उन्हें विश्व के नेता को दिखाते हुए, नाम और वंश की घोषणा करते हुए,

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे आँखों वाले। (16) [526]

336 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

337 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

338 puṇṇā ti nāmaŋ

339 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

340 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

341 पाठ mahāmune (voc.) BJTS के साथ PTS tadā muni ("तब ऋषि [नामवाचक];" PTS वैकल्पिक tadā mune , "तब, हे ऋषि")

342 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

343 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

मैंने "दिव्य श्रवण" नामक महाशक्ति में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (17) [527]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (18) [528]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा ज्ञान विशाल344 और त्रुटिहीन है,

महान ऋषि की महिमा के माध्यम से। (19) [529]

उपस्थिति और अनुपस्थिति में345

पूर्व में, मुख्य विजेताओं में से,

मेरे द्वारा बहुत सेवाएँ प्रदान की गईं

हे महान ऋषि, आपके लिए,346 (20) [530]

हे ऋषि, पूर्व में मेरे द्वारा कौन से अच्छे कर्म किए गए थे?

मेरे द्वारा अर्जित पुण्य का कारण यह था कि

हे महान नायक, आपके लिए। (21) [531]

गलत व्यवहार से बचना348349 [और]

[नौ] असंभव स्थान;350

जीवन का अंतिम लक्ष्य मेरा कर्तव्य है।

हे महान नायक, आपके लिए। (22) [532]

मैंने अपने [निजी धन] से दान दिया।

दस हजार दस मिलियन351 [सोने में];

344 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

345 डांटो , या "वश में किया हुआ"

346 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

347 vimutt'o

348 सिंगी-निक्खा-सवण्नो , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

349 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

350 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

351 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"

मेरा जीवन ही त्याग दिया गया था

हे महान नायक, आपके लिए।" (23) [533]

तब वे सभी अत्यंत संयमित होकर, अपने हाथों को सिर पर रखकर बोले, “बहन, तुमने यह प्रयास कैसे किया?”

ऐसी बेजोड़ महाशक्ति के लिए?” [534]352

एक लाख युगों बाद

मैं नागदेवी कन्या थी, जिसका नाम विमला था।353

युवतियों में बहुत सम्मानित। (24) [535]

बुद्ध के विधान से प्रसन्न महान नाग महोरागा ने पद्ममुत्तरा को आमंत्रित किया।

महान शक्ति का,356 अनुयायियों के साथ। (25) [536]

संगीत वाद्ययंत्र बजाना, संबुद्ध से मिलने जाना,

उन्होंने बुद्ध के मार्ग को तैयार किया357 —

रत्नों से बना एक मंडप,

रत्नों से बनी पालकी, रत्नों से बनी आनंद की वस्तुएँ,

रत्नों से मिश्रित रेत बिखरी हुई थी।

रत्नों से सजे झंडों से सुशोभित। (26-27) [537-538]

विश्व के नेता, अपने चारों ओर मौजूद भारी जनसमूह से घिरे हुए, एक उत्कृष्ट स्थान पर बैठ गए।

वहाँ महोरागा के महल में। (28) [539]

नागराज, जो अत्यंत प्रसिद्ध था, ने उत्कृष्ट और उत्कृष्ट उपहार दिए।

भोजन और पेय पदार्थ, ठोस भोजन [जो पेट भरता है,]

so[x] भोजन [पीने के लिए,] बहुत महंगा। (29) [540]

खाना खाने के बाद, कुल्ला करने के बाद

352 #23, ऊपर

खंड 353 में कहा गया है, " बीस करोड़ लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है धम्म की अंतर्दृष्टि, धम्म में प्रवेश , धम्म की समझ या धम्म में प्रवेश, शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

354 य'अक्खो

355 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, "वे लोग जिनके पास नहीं है"

356 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

357 PTS महामुनि (नामवाचक) के लिए BJTS के साथ महामुने (भाषण) पढ़ना

कटोरा पूरी तरह से, संबुद्ध

फिर धन्यवाद व्यक्त किया।

[हमारे लिए,] नाग-देवता कन्याएँ। (30) [541]

मेरे दिल में जो था उसे समझना

और मेरा मन जो उन पर स्थिर था, गुरु में आनंद ले रहा था,

जब नाग कन्याओं ने उस महान नायक को देखा जिसका नाम सर्वश्रेष्ठ कमल, सर्वज्ञ358 था, खिलते हुए, उस क्षण,

एक नन को महाशक्तियों के साथ दिखाया गया। (31-32) [542-543]

वह बौद्ध भिक्षुणी, जो अत्यंत कुशल थी, ने अनेक प्रकार की महाशक्तियों का प्रदर्शन किया।

बेहद आनंदित और विस्मयचकित।

मैंने शिक्षक से यह कहा: (33) [544]

मैंने भी महाशक्ति देखी

इस खुश [बौद्ध भिक्षुणी] का।359

हीरो, आखिर वो कैसे बन गई?

महाशक्तियों में इतना कुशल? (34) [545]

“[यह नन] महान शक्तियों वाली मेरी वैध पुत्री है, मुख से जन्मी;361 उसने मेरे निर्देशों का पालन किया है, इस प्रकार362

वह महाशक्तियों में इतनी कुशल है363 ।” (35) [546]

बुद्ध के वचन सुनकर मैं वास्तव में प्रसन्न हुआ और मेरी आकांक्षा जागी।

मैं भी वैसा ही बनूंगा।

महाशक्तियों में इतना कुशल। (36) [547]

मैं बेहद खुश हूँ, मैं प्रसन्न हूँ;

अभी तक न आए भविष्य में, मेरी सर्वोच्च आकांक्षा पूरी हो गई।

मैं उसके समान बनूँगी, हे नेता।” (37) [548]

खाने-पीने से संतुष्टिदायक364

विधानसभा के साथ विश्व का अग्रणी,

358 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

359 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

360 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ y'e keci हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

361 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

362 सम्मुखा , अर्थात् “एक साथ”

363 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

364 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca (“और आप सभी आपकी सेवा करेंगे”)

रत्नों से बनी पालकी पर,

एक चमकते मंडप के भीतर, (38) [549]

मैंने विश्व के नेता की पूजा की, और यह भी कि मेरा रंग उन्हीं के रंग का हो।

अरुणा 365 [प्रकार] नीला कमल,

कोबरा का सबसे प्रमुख फूल। (39) [550]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (40) [551]

वहाँ से गिरकर, मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेकर, मैंने दिया

स्वयं-निर्माण [अकेला बुद्ध]

भिक्षा भोजन कमलों से ढका हुआ। (41) [552]

इसी युग के इक्यावनवें भाग में विपस्सी नामक नेता का उदय हुआ, जो देखने में सुंदर थे।366

वह जिसकी निगाहें हर चीज़ पर टिकी हैं। (42) [553]

बनारस के सर्वोच्च नगर में एक करोड़पति की पुत्री होने के नाते, संबुद्ध को आमंत्रित करना।

विश्व के नेता सभा के साथ, (43) [554]

बहुत दान करने के बाद

मार्गदर्शक को बड़ा दान देना,367 और कमलों से पूजा करना368, मैं

उनके माध्यम से शानदार रंग की कामना की।369 (44) [555]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप के नाम से जाना जाता है370

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (45) [556]

उस समय महान ऋषि का सेवक ही मनुष्यों का शासक था।

365 रीडिंग जटाम्हा, पीटीएस अजाता ("[हम] अजन्मे हैं;" इसका बुरा रूप है अजातो "वह अजन्मा है") के लिए बीजेटीएस के साथ

366 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

367 शाब्दिक रूप से, "हर समय हम नहीं हैं..."

368 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

369 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("पिछले कर्मों के फल के बाद")

370 संसारपथ-नित्तिना

काशी के राजा, जिनका नाम किकी था,

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (46) [557]

मैं उस [राजा की] दूसरी पुत्री थी, जिसका नाम समणगुट्टा था।371

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (47) [558]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

हम उस दौरान घर पर ही रहे, आरामदायक 372 शाही युवतियाँ

ब्रह्मचर्य के पालन में पूरी लगन से अभ्यास करना।

हजार वर्षों के बीस गुना तक, बुद्ध की सेवा करने के शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (48-49) [559-560]

समानी और समानगुट्टा,373

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (50) [561]

[अब] मैं, और [भिक्षुणी] खेमा, पटाचारा और कुण्डला,374

किसागोतामी, धम्मदिन्ना,375

और विशाखा सातवां है। (51) [562]

उन कर्मों376 के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, अपने मानव शरीर का त्याग करके,

मैं तब तावतिंसा गया। (52) [563]

वहां से गिरकर, एक महान कुल में मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेना,

मैंने एक अरहंत को एक वस्त्र दिया

कीमती केसरिया रंग के रेशम का।377 (53) [564]

वहाँ से गिरकर, पुनर्जन्म लेकर

371 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo (“अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा”)

372 t'ato tato

373 बीजेटीएस और पीटीएस में वैकल्पिक रूप से सहा के स्थान पर समा ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

374 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक रूप से tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

375 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

376 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

377 शाब्दिक रूप से, "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

अरिट्ठपुरा में ब्राह्मण 378, तिरीतवच्छ की पुत्री,

मैं आकर्षक था379 उम्मादंती.380 (54) [565]

वहाँ से गिरकर, मेरा जन्म एक साधारण से ग्रामीण परिवार में हुआ। मैं उस समय पहरा देने में व्यस्त था।

अधपके खेत में चावल। (55) [566]

एक एकांत बुद्ध को देखकर, उन्हें भुने हुए धान के पाँच सौ दाने देकर,383 कमलों से आच्छादित,

मैं पाँच सौ पुत्र चाहता था।384 (56) [567]

उन इच्छाओं385 के साथ, उस आत्म-स्वरूप को शहद देने के बाद, मैं वहाँ से गिरकर पुनर्जन्म लिया।

जंगल में कमल में। (57) [568]

काशी राजा की प्रमुख रानी होने के नाते,

मुझे सम्मान और पूजा प्राप्त थी।386

मैंने उसके लिए राजसी राजकुमारों को जन्म दिया।

पाँच सौ से कम नहीं। (58) [569]

जब [मेरे बेटे] जवान हो गए,387 अपने जल क्रीड़ाओं में भाग लेते हुए, गिरे हुए कमल [पंखुड़ियों] को देखकर,

वे 388 अकेले-नेताओं में बदल गए।389 [59] [570]

तब मुझे बहुत दुख हुआ, क्योंकि मैं शोक में डूबा हुआ था।

उन नायकों में से जो मेरे पुत्र थे।390

378 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

379 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

380 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

381 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

382 लिट., "मेरे मन में कोई हलचल नहीं है"

383 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

384 शाब्दिक रूप से, "और एक महिला"

385 लिट., "और एक महिला"

386 etesaŋ devedevānaŋ

387 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

388 या करें: कारती से

389 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

390 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

वहाँ से गिरकर, मेरा जन्म इसिगिली के पास एक गाँव में हुआ।391 (60) [571]

जब [मैं], बुद्ध-माता [पुनर्जन्म लेती हूँ,]

फिर मैंने अपनी अच्छी तरह से रक्षा की,392

चावल का दलिया लेकर जा रहा था,393 उसने आठ अकेले नेताओं को गांव में भिक्षा मांगने जाते देखा था,

मुझे अपने पूर्व बेटों की याद आ गई।

फिर दूध की एक धार फूट पड़ी।

मेरे बेटों के प्रति प्रेम के कारण मुझसे। (61-62) [572-573]

और फिर मैंने उन्हें चावल का दलिया खिलाया, अपने हाथों से किए काम से मुझे बहुत संतुष्टि मिली। वहीं से गिरकर मेरा पुनर्जन्म हुआ।

“आनंद” में तैंतीस देवताओं के साथ। (63) [574]

सुख और दुख दोनों का अनुभव करते हुए, जन्म-जन्मांतर तक भटकते हुए, मेरा जीवन ही त्याग दिया गया था।

हे महान नायक, आपके लिए। (64) [575]

इस प्रकार, विभिन्न रूपों में दुख, विभिन्न रूपों में सुख:

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब मेरा जन्म श्रावस्ती नगर में हुआ।

एक धनी करोड़पति के परिवार में, आरामदायक, सजा हुआ, विभिन्न रत्नों से जगमगाता हुआ, 395

सभी इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण। (65-66) [576-577]

मुझे सम्मान और पूजा प्राप्त थी,396

आदरणीय, साथ ही सम्मानित भी। मैंने दीप्तिमान सौंदर्य प्राप्त किया।

कुलों में बहुत सम्मानित। (67) [578]

और मेरी बहुत मांग थी।

391 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse (“आधा महीना”) पढ़ता है

392 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

393 यह और इसके बाद के समापन श्लोक पीटीएस में नहीं मिलते हैं, और ये असामान्य हैं (हालांकि अद्वितीय नहीं)।

अपदाना के लिए जिसमें व्यक्तिगत कविताएँ आमतौर पर उस चीज़ के साथ समाप्त होती हैं जिसे मैंने "समापन छंद" कहा है (श्लोक)।

85-87) [1023-1025]। दिलचस्प बात यह है कि वे (साथ ही एक और, जो कहीं और भी दोहराया गया है) उसी असामान्य दोहराव के बाद की स्थिति में, नीचे, अपदान #30, यशोधरा के साथ अठारह हजार ननों के श्लोक 57-59 (साथ ही 60) के रूप में दिखाई देते हैं, और उस अपदान के बीजेटीएस संस्करण में भी इसी स्थिति में हैं (श्लोक [1100-1102] साथ ही [1103])।

394 पीटीएस में थेरी शब्द का उल्लेख नहीं है, जिसे मैंने बीजेटीएस से लिया है।

395 रीडिंग s'ūnā vaṇitakibbisā with BJTS (and PTS alt.) for PTS sūnā 'va nītakibbisā (“like a slaughterhouse leading to pap” ?)

396 jegucchaŋ ; BJTS में इसे bībhaccham̩ पढ़ा गया है , जिसका अर्थ लगभग समान है (घृणित, भयानक, डरावना)

सुंदरता के सौभाग्य से, सैकड़ों लोगों द्वारा चाही गई

करोड़पति के बेटों में से [वहाँ रहते हैं]। (68) [579]

अपना घर छोड़ने के बाद,

मैं बेघर हो गया।

जब आठ महीने भी नहीं बीते थे,

मैंने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (69) [580]

“397 महाशक्तियों ने मिलकर चार घोड़ों वाला रथ बनाया,

मैं उनके चरणों की पूजा करूंगा

बुद्ध, जगत के स्वामी, तेजस्वी।” (70) [581]

“हे भिक्षुणी, खिले हुए वृक्ष के पास पहुँचकर, तुम उस साला वृक्ष की जड़ों में अकेली रह जाती हो।”

प्राकृतिक सुंदरता में आपका कोई सानी नहीं है।

हे मूर्ख, क्या तुम व्यभिचारी पुरुषों से नहीं डरते?” (71) [582]398

“भले ही एक लाख व्यभिचारी पुरुष हों

अगर कोई इस जगह पर आए और इस तरह से व्यवहार करे, तो मैं बिल्कुल भी भयभीत नहीं होऊंगा, मेरा रोंगटे भी नहीं खड़े होंगे:

मुझे अकेले में मृत्यु से डर नहीं लगता। (72) [583]

मैं, यह [नन] गायब हो रही हूँ; मैं तुम्हारे गर्भ में छिप रही हूँ;

आप मुझे यहाँ खड़े हुए नहीं देख सकते।

आपकी भौहों के बीच [जगह] पर। (73) [584]

अपने मन का स्वामी बनना,399

मैंने 400 महाशक्तियाँ विकसित कर ली हैं; मैं सभी बंधनों से मुक्त हो गया हूँ:

मैं तुमसे नहीं डरता, मित्र। (74) [585]

इंद्रिय सुख तलवारें और खंजर हैं;

हीप्स402 जल्लाद के ब्लॉक। अब मुझे403 आनंद नापसंद है।

जिन इंद्रिय-सुखों की आपने बात की। (75) [586]

हर जगह सुखों का वध हो रहा है;

397 या, बीजेटीएस के साथ विपस्सन्ती को पढ़ते हुए , "जांच करना" "अंतर्दृष्टि लागू करना"

398 शाब्दिक रूप से, “में” “उसमें”

399 चित्तस्मिं वसिभूतस्मिं , शाब्दिक अर्थ, "जब मैं अपने मन का स्वामी (या "नियंत्रण") बन गया"

400 सुभाविता , शाब्दिक अर्थ, "[मेरे द्वारा] सुविकसित" या "सुसंस्कृत" "सुचारू ध्यान"

401 sattisūlūpamā kāmā , शाब्दिक अर्थ, “तलवारें और कटार इंद्रिय सुखों के समान हैं (या उनके लिए उपमाएँ हैं)”

402 khandhā pi adhikuṭṭanā , शाब्दिक अर्थ, “यहाँ तक कि समुच्चय (या आयाम [व्यक्तिगत अस्तित्व के: नाम और रूप, संवेदना, बोध, विन्यास और चेतना])

403 शाब्दिक अर्थ, "अब मुझे नापसंद है"

अंधकार का समूह नष्ट हो गया है। हे दुष्ट, इसे इस प्रकार जान लो:

हे अंत-निर्माता, तुम मारे जा चुके हो।” (76) [587]

विजेता, मेरे 404 गुणों से प्रसन्न होकर, मुझे उस सबसे आगे वाले स्थान पर बिठा दिया।

To405 भीड़406 गाइड ने मुझे [घोषणा की]

“उनमें से सर्वश्रेष्ठ407 जिनके पास महाशक्तियाँ हैं।” (77) [588]

मैंने गुरु की पूजा की है; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (78) [589]

जिस कारण से मैं निकला

[मेरे] घर से बेघर होने तक — मैंने [अब] वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया है: सभी बंधनों का विनाश। (79) [590]

जब तक वे मेरे लिए मठवासी वस्त्र और भिक्षापात्र ला रहे हैं, तब तक सभी आवश्यक वस्तुएँ और आवास उपलब्ध हो चुके होंगे।

हर जगह से हजारों की संख्या में। (80) [591]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (81) [592]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (82) [593]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (83) [594]

इस प्रकार भिक्खुनी उप्पलावण्णा ने ये श्लोक कहे।

उप्पलावन्ना थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

404 lit., “in the” “in that”

405 लिट., “के बीच”

406 या सभाएँ (यहाँ तक कि सभा के चार भाग भी), जनसमूह, अनुचर

407 seṭṭhaŋ , व्युत्पत्ति के अनुसार उनके पदनाम "करोड़पति" से संबंधित है; BJTS, जो पूरे काम के लिए अधिक विशिष्ट है, aggaṃ पढ़ता है , "[वह] सबसे आगे है"

408 °matīnaŋ , शाब्दिक अर्थ, "उन (स्त्रियों) में से जो वरदान प्राप्त हैं"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 20.पताचार
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
20. पटचारा409

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [595]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

फिर करोड़पतियों के एक परिवार में, जो विभिन्न रत्नों से जगमगा रहा था,

परम सुख से संपन्न। (2) [596]

उस महान नायक से संपर्क करने के बाद,

मैंने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना ।

फिर, मेरे हृदय में आनंद उत्पन्न हुआ, मैं

शरण के लिए विजेता के पास पहुँचे। (3) [597]

फिर विजेता की प्रशंसा उन लोगों में सबसे श्रेष्ठ के रूप में की गई जो अनुशासन का पालन करते हैं,410

एक बौद्ध भिक्षुणी, विनम्र, तटस्थ,

क्या अनुमति है और क्या नहीं, इस बारे में सावधान रहें। (4) [598]

फिर, आनंद से भरे हृदय से, उस स्थान पर स्थिर होने की कामना करते हुए, दस शक्तियों वाले ईश्वर को आमंत्रित करते हुए,411

विश्व के नेता, सभा के साथ, (5) [599]

एक सप्ताह तक उन्हें भोजन कराने के बाद, उन्हें मठवासी वस्त्र पहनाकर,412 उनके चरणों में सिर झुकाकर,

मैंने ये शब्द [उस बुद्ध से] कहे: (6) [600]

“हे नेता, यदि यह सफल रहा, तो मैं बिल्कुल उसी के समान हो जाऊंगा जिसकी आपने प्रशंसा की थी, हे वीर।”

आज से आठ दिन पहले।" (7) [601]

तब गुरु ने मुझसे कहा: “हे सौभाग्यशाली, डरो मत; निश्चिंत होकर सांस लो। अभी जो भविष्य आया है, उसमें...”

आप उस इच्छित स्थान को प्राप्त कर लेंगे। (8) [602]

409 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

410 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

411 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

412 पठन °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (9) [603]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान, जिसे पटाचारा के नाम से जाना जाता है।

शिक्षक का अनुयायी होगा।” (10) [604]

उस समय अत्यधिक प्रसन्न होकर,

जब तक जीवन रहा, प्रेम से भरे हृदय से, मैंने विक्टर की सेवा की।

विश्व के नेता अपनी सभा के साथ। (11) [605]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (12) [606]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप के नाम से जाना जाता है413

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (13) [607]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (14) [608]

मैं उनकी तीसरी [शाही] पुत्री थी, जिसका नाम समणगुट्टा था।414

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (15) [609]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

हम उस दौरान घर पर ही रहे, आरामदायक 415 शाही युवतियाँ

ब्रह्मचर्य के पालन में पूरी लगन से अभ्यास करना।

हजार वर्षों के बीस गुना तक, बुद्ध की सेवा करने के शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (16-17) [610-611]

413, अर्थात् तैंतीस देवता।

414 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

415 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

समानी और समानगुट्टा,416

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (18) [612]

[अब] मैं और उप्पलावण्णा,

खेमा और भद्दा नाम की भिक्षुणी, 417

किसागोतामी, धम्मदिन्ना,418

और विशाखा सातवां है। (19) [613]

उन कर्मों419 के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, अपने मानव शरीर का त्याग करके,

मैं तब तावतिंसा गया। (20) [614]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मैं एक करोड़पति परिवार में पैदा हुआ हूँ, जो धनी, समृद्ध और बेहद अमीर है।

श्रावस्ती में, जो सर्वश्रेष्ठ नगर है। (21) [615]

जब मैं एक युवती बन गई, 420 अपने ही विचारों से अभिभूत होकर, एक आदमी को देखने के बाद

देश, मैं उसके साथ चला गया। (22) [616]

मुझे एक ही पुत्र हुआ था;

दूसरा बच्चा मेरे गर्भ में था। उस समय मैंने यह निश्चय कर लिया था,

मैं माता-पिता से मिलने जाऊंगा। (23) [617]

मेरे पति421 इससे खुश नहीं थे।

फिर, जब वह यात्रा पर था, तो मैं चुपके से घर से अकेले निकल गई।

परम श्रावस्ती जाने के लिए. (24) [618]

फिर मेरे पति423 मेरे पीछे आए;

वह रास्ते में मुझसे मिल गया।

416 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

417 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

418 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

419 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

420 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

421 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

422 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

423 puṇṇā ti nāmaŋ

फिर मेरे कर्मों से उपजी प्रसव पीड़ा424

शुरू हुआ, [और वे] बहुत क्रूर थे। (25) [619]

मेरे प्रसव के समय,

वहाँ एक विशाल वर्षा का बादल उठा, और फिर मेरे पति के चले जाने के बाद

घास ढूंढने के लिए, 425 को एक साँप ने मार डाला। (26) [620]

तब दुखी और असहाय,

दर्दनाक प्रसव पीड़ा में,426

रिश्तेदार के घर की ओर जा रहे हैं,427

एक उफनती धारा को देखकर,428 (27) [621]

अपने नवजात शिशु को गोद में लेकर मैं अकेले ही नदी के दूसरे किनारे पर चली गई। अपने नवजात बेटे को दूध पिलाने के बाद,

मेरे दूसरे [बेटे] को पार कराने में मदद करने के लिए, (28) [622]

मैंने मुड़कर देखा; एक मछली पकड़ने वाला पक्षी उड़ गया।

मेरा रोता हुआ बच्चा। [फिर] धारा उसे बहा ले गई, [मेरे] दूसरे [बेटे] को।

मैं दु:ख से व्याकुल हो गया था। (29) [623]

श्रावस्ती नगर जा रहा हूँ,

मुझे पता चला कि मेरे रिश्तेदार मर गए हैं। उस समय मैं बहुत दुखी था, मैंने कहा,

अत्यंत शोक से अभिभूत, (30) [624]

मेरे दोनों बेटे गुजर चुके हैं, मेरे पति सड़क पर ही मृत पाए गए; मेरी माँ, पिता और भाई भी।

एक ही चिता पर जल रहे हैं।" (31) [625]

फिर मैं पीला और दुबला पड़ गया, असहाय हो गया; मैं मानसिक रूप से बहुत उदास था।

उसके बाद, घूमते-फिरते मैंने देखा

[उसे,] मनुष्यों का सारथी। (32) [626]

तब शिक्षक ने मुझसे यह कहा: "दु:ख मत करो, बच्चे; निश्चिंत होकर सांस लो।"

आपको स्वयं की खोज करनी चाहिए;

क्यों व्यर्थ ही खुद को कष्ट दे रहे हो? (33) [627]

424 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

425 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

426 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

427 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

428 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

आश्रय देने के लिए कोई पुत्र नहीं है, न पिता हैं और न ही रिश्तेदार।

रिश्तेदारों के पास कोई आश्रय नहीं है

जब अंत-निर्माता द्वारा किसी को पकड़ लिया जाता है।" (34) [628]

ऋषि का भाषण सुनने के बाद, मुझे प्रथम [मार्ग] फल का अहसास हुआ। आगे बढ़ने के कुछ ही समय बाद,

मैंने अपना अरहंत पद प्राप्त किया। (35) [629]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] "दिव्य कान" तत्व।

मैं दूसरों के दिलों को भी जानता हूँ।

मैंने वही किया जो शिक्षक ने सिखाया था।429 (36) [630]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैं 430 शुद्ध हूँ, [मैं] बेदाग हूँ। (37) [631]

फिर मैंने सर्वदर्शी432 की उपस्थिति में संपूर्ण अनुशासन431 सीखा, और मैंने [उनके लिए] उसका पाठ किया।

हर विवरण में सही। (38) [632]

विजेता, मेरे गुणों से प्रसन्न होकर, मुझे उस सर्वोपरि स्थान पर बिठाया: "केवल पाटाचारा ही सर्वोपरि है।"

जो लोग अनुशासन का पालन करते हैं।"434 (39) [633]

मैंने गुरु की पूजा की है; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (40) [634]

429 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

430 डांटो , या "वश में किया हुआ"

431 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

432 vimutt'o

433 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

434 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

जिस कारण से मैंने अपना घर छोड़कर बेघर होने का फैसला किया था, वह उद्देश्य अब मैंने प्राप्त कर लिया है:

सभी बंधनों का विनाश। (41) [635]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (42) [636]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (43) [637]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (44) [638]

इस प्रकार भिक्खुनी पातचारा ने ये श्लोक कहे थे।

पटाचारा थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

सारांश:435

एकुपोसथिका, और साथ ही सलादा और तिमोदका, एकासनप्पादा, दीपा, नलामली और गोतमी, खेमा, उप्पलवन्ना और बौद्ध भिक्षुणी पटाचारा।

यहां चार सौ श्लोक हैं।

इसके अलावा छियानवे [श्लोक और भी]।

एकुपोसाथिका अध्याय, द्वितीय
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 21.भद्दा-कुंडलकेसा
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

अपादान: प्रमुख थेरिस (प्रबुद्ध भिक्षुणियाँ) 1-40
21. भद्दा-कुंडलकेश436

कुण्डलकेसा अध्याय, तीसरा

विजेता, पद्ममुत्तरा, हर चीज में पारंगत थे।

435 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

436 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

वह नेता दुनिया में उभरा

एक लाख युगों बाद। (1) [639]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

फिर करोड़पतियों के एक परिवार में, जो विभिन्न रत्नों से जगमगा रहा था,

परम सुख से परिपूर्ण। (2) [640]

उस महान नायक से संपर्क करने के बाद,

मैंने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना ।

फिर, मेरे हृदय में आनंद उत्पन्न हुआ, मैं

शरण के लिए विजेता के पास पहुँचे। (3) [641]

फिर महान करुणावान, मार्गदर्शक, पद्ममुत्तरा,

एक नन437 को सबसे आगे [स्थान]438 पर स्थापित किया

जिनकी अंतर्ज्ञान शक्ति तीव्र होती है.439 (4) [642]

यह सुनकर, अत्यंत प्रसन्न होकर, मैंने महान ऋषि को दान दिया और उनके चरणों में सिर झुकाया।

मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (5) [643]

महान नायक ने इसकी पुष्टि की: “भाग्यशाली, तुम जो भी चाहोगे उसमें सफलता प्राप्त करोगे।”

खुश रहो, [तुम्हें] संतुष्टि महसूस होनी चाहिए। (6) [644]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (7) [645]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी , धर्म की वैध संतान, जिसका नाम भद्दाकुंडलकेसा है।

तुम शिक्षक के अनुयायी बनोगे।” (8) [646]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (9) [647]

437 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

438 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

439 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

440, अर्थात् तैंतीस देवता।

441 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

वहाँ से गिरकर मैं यमराज के पास गया,442

[और] फिर मैं तुसिता गया, और फिर निम्मानारती गया,443

और फिर वासावत्ती शहर। (10) [648]

जिस भी स्थान पर मेरा पुनर्जन्म होता है, उस कर्म के अनुसार, हर जगह मुझे प्रधान रानी बनाया जाता है।

[वहाँ] राजाओं के [देवताओं के]। (11) [649]

वहाँ से पतित होकर, मानव अवस्था में, [हर जगह] मुझे उन राजाओं की प्रधान रानी बनाया गया जो [कानून का] पहिया घुमाते हैं।

और [शक्तिशाली] क्षेत्रीय राजा। (12) [650]

देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच सफलता का अनुभव करने के बाद, हर जगह सुखी होने के कारण,

मैंने युगों तक पुनर्जन्म लिया।444 (13) [651]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में,

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप के नाम से जाना जाता है445

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (14) [652]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (15) [653]

मैं उस राजा की चौथी पुत्री थी, जो भिक्खदायिका के नाम से प्रसिद्ध थी।446

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (16) [654]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

हम उस दौरान घर पर ही रहे, आरामदायक 447 शाही युवतियाँ

ब्रह्मचर्य के पालन में पूरी लगन से अभ्यास करना।

हजार वर्षों के बीस गुना के लिए,

442 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

443 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, बीजेटीएस में दिखाई देते हैं लेकिन पीटीएस में नहीं।

445 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

446 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

447 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

बुद्ध की सेवा करने का शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (17-18) [655-656]

समानी और समानगुट्टा,448

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (19) [657]

[अब] उप्पलवन्ना, खेमा [भी] पटाचारा और मैं, किसागोतमी, धम्मदिन्ना,449

और विशाखा सातवां है। (20) [658]

उन कर्मों (450) के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, अपने मानव शरीर का त्याग करके,

मैं तब तावतिंसा गया। (21) [659]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, गिरिब्बाजा में, 451 सर्वश्रेष्ठ शहर,

मैं अमीर करोड़पतियों के परिवार में पैदा हुआ था।452

जब मैं एक युवती बन गई थी,453 (22) [660]

मैं एक चोर की ओर आकर्षित हुआ जिसे फांसी के लिए ले जाया जा रहा था,454

मेरे पिता ने एक हजार का भुगतान किया।

उसे फांसी से मुक्त करा दिया। (23) [661]

उसके बाद, मेरे विवेक को समझते हुए, [मेरे पिता] ने मुझे उस [चोर] को सौंप दिया। मैं उसके लिए भरोसेमंद था, [और]

अत्यंत दयालु [और] मित्रवत। (24) [662]

उसने मेरे गहनों के लालच में आकर,455

वह शत्रु बुरे इरादे से,456

मुझे चोरों के कगार पर ले गया457

448 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

449 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

450 puṇṇā ti nāmaŋ

451 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

452 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

453 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

454 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

455 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

456 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

457 डांटो , या "वश में किया हुआ"

पहाड़ पर, हत्या की साजिश रचते हुए। (25) [663]

फिर सत्तुका तक फैला हुआ,458

हाथ जो अच्छी तरह से एक साथ दबाए हुए थे,459

अपनी सांस की रक्षा करना।

मैंने उससे ये शब्द कहे [तभी] (26) [664]

यह सोने का कंगन, जिसमें कई मोती और रत्न जड़े हैं, महोदय, इसे आप सब अपने साथ ले जाइए;

घोषणा करो कि [मैं तुम्हारा] बिस्तर-दास हूँ।"460 (27) [665]

"इसे उतार दो, हे सुंदरी, और अधिक दुःख मत करो; मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

वह धन जिसे मैंने हत्या करके प्राप्त नहीं किया। (28) [666]

जब तक मुझे याद है,

जब से मैंने विवेक प्राप्त किया है,461

मैंने कोई और विकल्प स्वीकार नहीं किया है

मुझसे भी अधिक प्रिय। (29) [667]

"इधर आओ! तुम्हें गले लगाने के बाद, [बस एक और] परिक्रमा।"

और 462 के बाद अब ऐसा नहीं होगा

आपके और मेरे बीच संभोग।"463 (30) [668]

हर परिस्थिति में बुद्धिमान होना ही मनुष्य का काम नहीं है; उसे इधर-उधर ध्यान देना चाहिए।

स्त्री ही बुद्धिमान है। (31) [669]

हर परिस्थिति में बुद्धिमान होना ही सही नहीं है;

458 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

459 vimutt'o

460 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

461 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

462 त'अŋ...'गुण'सं'अ'य'अŋ

463 शाब्दिक रूप से, "पूजा की "

तेज सोच और अच्छी रणनीति वाला

स्त्री ही बुद्धिमान है। (32) [670]

बहुत जल्दी, पलक झपकते ही, मुझे एक चतुर तरकीब सूझी: जैसे कोई हिरण शक्तिशाली धनुष से शिकार हो जाता है,

सत्तुका का वध मैंने किया। (33) [671]

जो उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों को जल्दी समझने में विफल रहता है,

उस मूर्ख चोर की हत्या कर दी जाती है।

पर्वत के गर्भ में। (34) [672]

जो व्यक्ति उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों को शीघ्रता से समझने में विफल नहीं होता,

वह सांसारिक बंधनों से मुक्त हो चुकी है;

मैं तब सत्तुका से ऐसा ही था। (35) [673]

फिर मैंने उसे, सत्तुका को, गिरा दिया

464 से एक खतरनाक पहाड़ी सड़क। उपस्थिति में आना

कुछ सफेद वस्त्रधारी [प्रशिक्षुओं] के साथ, मैं आगे बढ़ा। (36) [674]

फिर 465 चिमटियों का इस्तेमाल करके मेरे सारे बाल नोचने के बाद, कुछ ही समय में मेरा दीक्षा संस्कार हो गया।

उन्होंने अपनी परंपरा का विस्तार से वर्णन किया। (37) [675]

फिर जब मैंने यह सब जान लिया, तो मैं अकेले जाकर बैठ गया और उस परंपरा के बारे में सोचने लगा।

[तब] एक कुत्ता एक इंसान का हाथ लाया, उसे चबाकर अलग कर दिया,466 और मेरे पास गिराने के बाद भाग गया।

उस सड़े हुए हाथ को देखकर, मैं

इसे ध्यान के लिए ले लिया।467 (38-39) [676-677]

फिर गहरी भावना उत्पन्न करते हुए, मैंने अपने सहधर्मियों से पूछा।

उन्होंने कहा: “शाक्यन [बौद्ध] भिक्षुओं

464 #23, ऊपर

खंड 465 में कहा गया है, " बीस करोड़ लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है धम्म की अंतर्दृष्टि, धम्म में प्रवेश , धम्म की समझ या धम्म में प्रवेश, शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

466 y'akkho

467 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

अपने प्रश्नों के उत्तर जानो। (40) [678]

“मैं बुद्ध के अनुयायियों से जाकर इसका अर्थ पूछूंगा।” वे सब मुझे अपने साथ ले गए।

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में। (41) [679]

उन्होंने मुझे धम्म का उपदेश दिया : विचार-क्षेत्रों और तत्वों में व्याप्त ढेर; गुरु ने अप्रियता का उपदेश दिया।

अनित्यता, रोग, अनात्म। (42) [680]

उनके धर्म को सुनने के बाद , मैं

[तब] मैंने “ धम्म दृष्टि” को शुद्ध किया । उत्तम शिक्षा में पारंगत होकर, मैंने दीक्षा लेने के लिए आगे बढ़ने का अनुरोध किया।468

उस समय उन्होंने मुझसे कहा: “आओ, भाग्यशाली,” नेता ने कहा।

फिर पूर्णतः पुरोहित होने के बाद, मैं

थोड़ा सा पानी देखा। (43-44) [681-682]

अपने पैरों को साफ करते हुए, यह समझते हुए कि

कुछ पानी उछला, कुछ नीचे गिरा।

तब मुझे यह एहसास हुआ,

“सभी सशर्त चीजें ऐसी ही होती हैं।” (45) [683]

तब मेरा हृदय पूर्णतः मुक्त हो गया, बिना किसी आसक्ति के।470

फिर विजेता ने मुझे सबसे आगे घोषित किया

जिनकी अंतर्ज्ञान शक्ति तीव्र होती है। (46) [684]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] “दिव्य कान” तत्व।

मैं दूसरों के दिलों को भी जानता हूँ।

मैंने वही किया जो शिक्षक ने सिखाया था।471 (47) [685]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैं 472 शुद्ध हूँ, [मैं] बेदाग हूँ। (48) [686]

मैंने गुरु की पूजा की है;

468 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

469 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

470 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे भिक्खुनी सुक्का पढ़ता है।

471 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

472 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (49) [687]

जिस कारण से मैंने अपना घर छोड़कर बेघर होने का फैसला किया था, वह उद्देश्य अब मैंने प्राप्त कर लिया है:

सभी बंधनों का विनाश। (50) [688]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा ज्ञान विशाल473 और त्रुटिहीन है,

महान ऋषि की महिमा के माध्यम से। (51) [689]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (52) [690]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (53) [691]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (54) [692]

इस प्रकार भिक्खुनी भद्दा-कुंडलकेसा ने ये श्लोक कहे थे।

भद्दा-कुंडलकेसा थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 22.किसागोतामी
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

22. किसागोतमी474

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [693]

तब मैं हंसवती में रहता था।

एक साधारण परिवार में जन्म।

473 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

474 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के पास पहुँचने पर,475

मैं उसके पास शरण लेने गया। (2) [694]

और मैंने उनके धम्म को सुना , जिसमें चार [महान] सत्य समाहित थे, जो शहद के समान अत्यंत मधुर थे।

खुशी और मानसिक शांति लाता है। (3) [695]

एक समय था जब नायक, [बुद्ध,]

उसे उस प्रमुख स्थान पर रखा जा रहा था

एक बौद्ध भिक्षुणी जो खुरदुरे वस्त्र पहनती थी;476

उन्होंने [उसकी] प्रशंसा की, परम पुरुष। (4) [696]

काफी आनंद उत्पन्न करते हुए,

उस बौद्ध भिक्षुणी के सद्गुणों के बारे में सुनकर, जो बुद्ध की सेवा कर रही थी,

शक्तियों और सामर्थ्य के अनुसार, (5) [697]

उस वीर ऋषि को प्रणाम करते हुए, मैंने उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा की।

संबुद्ध ने [उसकी] स्वीकृति दी।

उस [सर्वोच्च] स्थान की प्राप्ति, (6) [698]

“एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश से उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (7) [699]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान, जिसका नाम किसागोतमी है।

शिक्षक का अनुयायी होगा।” (8) [700]

उस समय अत्यधिक प्रसन्न होकर,

जब तक जीवन रहा, प्रेम से भरे हृदय से, मैंने विक्टर की सेवा की।

गाइड, आवश्यक शर्तें प्रदान करता है। (9) [701]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (10) [702]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में,

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध व्यक्ति

475 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

476 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

[बुद्ध] जिन्हें कश्यप477 के नाम से जाना जाता है

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (11) [703]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (12) [704]

मैं उनकी शाही बेटी थी।

धम्मा के नाम से सुप्रसिद्ध।478

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (13) [705]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

हम उस दौरान घर पर ही रहे, आरामदायक 479 शाही युवतियाँ

ब्रह्मचर्य के पालन में पूरी लगन से अभ्यास करना।

हजार वर्षों के बीस गुना तक, बुद्ध की सेवा करने के शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (14-15) [706-707]

समानी और समानगुट्टा,480

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (16) [708]

[अब] खेमा, उप्पलवन्ना, पटाचारा और कुंडाला,481

[भिक्षुणी] धम्मदिन्ना और मैं

और विशाखा सातवां है। (17) [709]

उन कर्मों (482) के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, अपने मानव शरीर का त्याग करके,

मैं तब तावतिंसा गया। (18) [710]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मेरा जन्म एक करोड़पति परिवार में हुआ है।

गरीब, धनहीन, अपंग

477 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

478, अर्थात् तैंतीस देवता।

479 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

480 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

481 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

482 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

[लेकिन] एक धनी कुल में शादी कर ली। (19) [711]

मेरे पति को छोड़कर, बाकी सब मेरी तरफ इशारा करते हुए कह रहे हैं, "बेचारी!" लेकिन 484 के बाद मैं गर्भवती हो गई।

तब मुझे उन सभी से प्यार मिला। (20) [712]

जब वह भाग्यशाली छोटा लड़का [मेरा,]

कोमल शरीर वाला, आरामदायक,485

मुझे उतना ही प्रिय जितना मेरी अपनी सांस।

फिर यम के वश में आ गया,486 (21) [713]

दु:ख से व्याकुल, अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए, आँखों में आँसू लिए, मुँह से रोते हुए, उस लड़के के मृत शरीर को ढोते हुए, मैं विलाप करते हुए घूम रहा हूँ। (22) [714]

फिर एक डॉक्टर द्वारा जांच की गई।

सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक से संपर्क करना,488

मैंने कहा, "मुझे दवा दो।"

मेरे बेटे को वापस जीवन में लाने के लिए, महोदय।"489 (23) [715]

विजेता, जो विचित्र भाषण में कुशल था,490 ने कहा, "मेरे लिए एक सफेद सरसों का बीज लाओ,491 जो किसी भी घर से इकट्ठा किया गया हो।"

जहां [लोगों] की मृत्यु ज्ञात नहीं है।" (24) [716]

फिर श्रावस्ती जाकर, वहाँ ऐसा कोई घर न देखकर,

मुझे सफेद सरसों के बीज कहाँ मिल सकते हैं?

तब मुझे जागरूकता प्राप्त हुई। (25) [717]

अपने बच्चे के शव को फेंककर मैं विश्व नेता के पास गई। दूर से मुझे देखकर

मधुर स्वर वाली492 [तब] ने [मुझसे] कहा। (26) [718]

483 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

484 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

485 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

486 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

487 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

488 puṇṇā ti nāmaŋ

489 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

490 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

491 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

492 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

“सौ साल के जीवन से बेहतर,

चीजों के उत्थान और पतन को न देखना, एक दिन के लिए जीना है।

चीजों को उठते-गिरते देखना। (27) [719]

न तो गाँव की स्थिति493, न ही कस्बे की, और न ही किसी एक कबीले की स्थिति।

यही पूरी दुनिया की हालत है।

इसके देवताओं के साथ: जो कुछ भी है उसकी अस्थिरता।" (28) [720]494

उन [दो] श्लोकों को सुनकर मैंने अपनी “ धम्म दृष्टि” को शुद्ध किया।

फिर महान शिक्षा में सीखा,

मैं बेघर हो गया। (29) [721]

फिर जो व्यक्ति प्रस्थान कर चुका था, वह सेवा कार्य में लगा हुआ था,495

कुछ ही समय बाद,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (30) [722]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] “दिव्य कान” तत्व।

मैं दूसरों के दिलों को भी जानता हूँ।

मैंने वही किया जो शिक्षक ने सिखाया था।496 (31) [723]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैं 497 शुद्ध हूँ, [मैं] बेदाग हूँ। (32) [724]

मैंने गुरु की पूजा की है; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (33) [725]

जिस कारण से मैंने अपना घर छोड़कर बेघर होने का फैसला किया था, वह उद्देश्य अब मैंने प्राप्त कर लिया है:

सभी बंधनों का विनाश। (34) [726]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

493 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

494 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

495 डांटो , या "वश में किया हुआ"

496 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

497 vimutt'o

महान ऋषि की महिमा के कारण मेरा ज्ञान विशाल498 और त्रुटिहीन है। (35) [727]

मैंने खुरदुरे वस्त्र पहने हैं, मेरी संघा भी खुरदुरे वस्त्रों से बनी है।

[एक कफ़न उठाया गया और] सड़क के किनारे एक कब्रिस्तान से लाया गया। (36) [728]

विजेता, मेरे गुणों से प्रसन्न होकर, मार्गदर्शक ने भीड़ में मुझे सबसे आगे रखा।

जो खुरदुरे वस्त्र पहनते हैं। (37) [729]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (38) [730]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (39) [731]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (40) [732]

इस प्रकार भिक्खुनी किसागोतमी ने ये श्लोक कहे थे।

किसागोतमी थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

498 सिंगी-निक्खा-सवण्णो , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या वजन भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

499 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-

12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

23. धम्मदिन्ना501

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [733]

तब मैं हंसवती में रहता था।

[जन्म] एक साधारण परिवार में हुआ। मैंने दूसरों के लिए काम किया, नैतिकता से प्रेरित, बुद्धिमान। (2) [734]

पद्ममुत्तरा बुद्ध के प्रमुख अनुयायी सुजाता मठ से प्रस्थान करते हुए।

भिक्षा-भोजन के लिए भीख मांग रहा था। (3) [735]

मैं उस समय पानी ढोने वाला था, और घड़ा लेकर जाता था।

उसे देखकर मैंने उसे थोड़ा सा सूप दिया।

[अपने] हाथों से बहुत प्रसन्न महसूस कर रहा हूँ। (4) [736]

[मेरी बात मानकर]

वह वहाँ बैठ गया और उसका आनंद लेने लगा। उसे उस घर तक ले जाने के बाद,

मैंने उसे कुछ ठोस भोजन दिया। (5) [737]

तब मेरे मालिक,502 प्रसन्न होकर, मुझे अपनी बहू बना लिया। अपनी सास के साथ जाते हुए,

मैंने संबुद्ध की पूजा की। (6) [738]

फिर उन्होंने एक बौद्ध भिक्षुणी की प्रशंसा की जो धम्म की प्रचारक थीं ।

उन्होंने उसे उस सर्वोपरि स्थान पर बिठाया;

यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई। (7) [739]

फिर, सुशोभित विश्व नेता को सभा के साथ आमंत्रित करके, उन्हें एक बड़ा दान दिया गया।

मैं उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता था। (8) [740]

तब उस दूर जा चुके व्यक्ति ने मुझसे कहा,

501 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

502 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

झांझ की मधुर ध्वनि के साथ:503

"हे मेरी सेवा करने वाले, हे सभा के सेवक,

हे अच्छे उपदेश के श्रोता, हे धर्मनिष्ठ, हे सौभाग्यशाली, हर्षित हो जाओ:

तुम अपनी इच्छा का फल प्राप्त करोगे। (9-10) [741-742]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (11) [743]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान,

जिसका नाम धम्मदिन्ना होगा, वह गुरु का अनुयायी होगा।" (12) [744]

उस समय अत्यधिक प्रसन्न होकर,

जब तक जीवन रहा, प्रेम से भरे हृदय से, मैंने विक्टर की सेवा की।

गाइड, आवश्यक शर्तें प्रदान करता है। (13) [745]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (14) [746]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप505 के नाम से जाना जाता है।

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (15) [747]

उस महान ऋषि का सेवक उस समय काशी का राजा, किकी, मनुष्यों का शासक था।

बनारस में, सबसे बड़ा शहर। (16) [748]

मैं उनकी छठी [शाही] पुत्री थी।

सुधम्मा नाम से प्रसिद्ध।506

सर्वश्रेष्ठ विक्टर की शिक्षा को सुनना,

मैंने दीक्षा लेने का विकल्प चुना। (17) [749]

हमारे पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी;

503 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

504 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

505 यानी तैंतीस देवता।

506 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

हम उस दौरान घर पर ही रहे, आरामदायक 507 शाही युवतियाँ

ब्रह्मचर्य के पालन में पूरी लगन से अभ्यास करना।

हजार वर्षों के बीस गुना तक, बुद्ध की सेवा करने के शौकीन,

[राजा की] सात आनंदित पुत्रियाँ। (18-19) [750-751]

समानी और समानगुट्टा,508

भिक्खुनी, भिक्खदायिका, धम्मा और सुधम्मा भी,

और सातवीं संघदायिका, (20) [752]

[अब] खेमा उप्पलवन्ना, पटाचारा और कुंडला, 509 [किसा] गोतमी, मैं भी,

और विशाखा सातवां है। (21) [753]

उन कर्मों (510) के कारण, जो मैंने अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किए, मैंने अपने मानव शरीर का त्याग कर दिया।

मैं तब तावतिंसा गया। (22) [754]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मैं एक करोड़पति परिवार में, धनी, हर सुख से संपन्न, राजगीर में, एक उत्कृष्ट शहर में जन्म लेता हूँ। (23) [755]

जब मैं युवती बन गई,511 सौंदर्य के गुण से युक्त, दूसरे [अच्छे] कुल में विवाह किया,512

मैं सुख से परिपूर्ण होकर निवास करता था। (24) [756]

विश्व शरणस्थल पर आकर, बुद्ध के माध्यम से [उनके] धम्म -उपदेश को सुनकर,513 मेरे पति ने एक अनित्य का फल प्राप्त किया। (25) [757]

फिर मुझे अनुमति मिलने पर मैं भी बेघर हो गया।

507 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

508 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

509 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

510 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

511 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

512 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

513 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

कुछ ही समय बाद,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (26) [758]

फिर एक आम आदमी मेरे पास आया और उसने मुझसे कई गहरे और सूक्ष्म प्रश्न पूछे;

मैंने उन सभी को [उसे] समझाया। (27) [759]

विजेता, मेरे गुणों से प्रसन्न होकर, मुझे बौद्ध भिक्षुणी और धम्म प्रचारक के रूप में उस सर्वोपरि स्थान पर स्थापित किया ।

मुझे कोई और ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो

धम्मदिन्ना के समान बुद्धिमान;

इसलिए आपको भिक्षुओं पर विचार करना चाहिए। मैं वास्तव में एक बुद्धिमान महिला हूँ।

जिस पर नेता को दया आई। (28-29) [760-761]

मैंने गुरु की पूजा की है; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (30) [762]

जिस कारण से मैं अपने घर से निकलकर बेघर हो गया था — मैंने अब वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया है: सभी बंधनों का विनाश। (31) [763]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] "दिव्य कान" तत्व।

मैं दूसरों के दिलों को भी जानता हूँ।

मैंने वही किया जो शिक्षक ने सिखाया था।516 (32) [764]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैं 517 शुद्ध हूँ, [मैं] बेदाग हूँ। (33) [765]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (34) [766]

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध की उपस्थिति में होना

514 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

515 puṇṇā ti nāmaŋ

516 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

517 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

यह मेरे लिए बहुत अच्छी बात थी।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (35) [767]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (36) [768]

इस प्रकार भिक्खुनी धम्मदिन्ना ने ये श्लोक कहे।

धम्मदिन्ना थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 24.सकुला
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

24. सकुला 518

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [769]

सभी प्राणियों के कल्याण, सुख और लाभ के लिए,

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता, शुद्ध नस्ल का आदमी, 519

520 में [दुनिया] में [अपने] देवताओं के साथ आया। (2) [770]

सर्वोत्कृष्ट यश प्राप्तकर्ता,521 विजेता, भाग्यशाली,522 प्रशंसा से सुशोभित,523 समस्त विश्व के लिए विजेता,

व्यापक रूप से ज्ञात 524 सभी दिशाओं में 525, (3) [771]

संदेह का नाश करने वाला,526 अनिश्चितता से परे जाने वाला,527 इरादों से भरे मन वाला,528

518 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

519 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

520 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

521 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

522, अर्थात् तैंतीस देवता।

523 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

524 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

525 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

526 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

527 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

528 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

सर्वोच्च जागृति प्राप्त की।529 (4) [772]

अल्टीमेट मैन,530 प्रोजेनिटर531

उस पथ का जो अभी तक बनना बाकी था,532

घोषित किया [जो] अघोषित था, उत्पन्न किया [जो] अउत्पादित था। (5) [773]

पथ-ज्ञाता,533 पथ-समझदार,534

पथ-प्रचारक,535 पुरुषों का बैल, पथ-कुशल, शिक्षक, [बुद्ध,] सर्वश्रेष्ठ सारथी थे।536 (6) [774]

महान करुणावान शिक्षक, मार्गदर्शक, धम्म का उपदेश दे रहे थे , सभी जीवित प्राणियों को जीवन प्रदान कर रहे थे।

भ्रम के दलदल में डूबा हुआ। (7) [775]

मैं हंसवती में पैदा हुआ था, सभी क्षत्रियों को प्रसन्न करते हुए;537

मैं तब बहुत खूबसूरत थी।

धन के लिए निर्धारित,538 प्रिय, तेजस्वी। (8) [776]

मैं एक मनमोहक बेटी थी

महान राजा आनंद की पुत्री और इस प्रकार, दूसरी माता से सगी बहन।539

उसका नाम पदुमुत्तरा है। (9) [777]

मैं अपने सभी आभूषणों से सजी हुई, राजसी युवतियों के साथ, महान नायक के पास जा रही थी।

मैंने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना । (10) [778]

और फिर, भीड़ के बीच,

[संपूर्ण] विश्व के गुरु ने 540 प्रशंसा की

529 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

530 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

531 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

532 puṇṇā ti nāmaŋ

533 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

534 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

535 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

536 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

537 या गिरिब्बाजा, यहाँ राजगाहन

538 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

539 डांटो , या "वश में किया हुआ"

540 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

एक बौद्ध भिक्षुणी जिसके पास "दिव्य दृष्टि" है।

[और] उसे उस सबसे आगे वाले स्थान पर रखा। (11) [779]

यह सुनकर मुझे खुशी हुई;

शिक्षक को दान देने के बाद,

और संबुद्ध की पूजा करना,

मैंने “दिव्य दृष्टि” की आकांक्षा की। (12) [780]

फिर गुरु ने मुझसे कहा: “हे प्रसन्न जन, तुम्हारी कामना सर्वस्व सिद्ध हो; तुम्हें तुम्हारी आकांक्षा के अनुसार फल मिलेगा।”

धम्म के लिए भिक्षा का फल -लैंप.541 (13) [781]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (14) [782]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान, जिसका नाम सकुला है।

शिक्षक का अनुयायी होगा।" (15) [783]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (16) [784]

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप के नाम से जाना जाता है542

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (17) [785]

मैं उस समय एक भिक्षु था, अकेले ही अपना जीवन व्यतीत करता था। भीख मांगते हुए इधर-उधर भटकते हुए,

मुझे कुछ 543 तिल का तेल प्राप्त हुआ। (18) [786]

541 vimutt'o

542 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

543 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-पंक्ति वाले छंदों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मुझे इस "श्लोक" को छंदबद्ध रूप से समझने में कठिनाई हो रही है। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो अनुवाद के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो यह दर्शाता है कि पीटीएस के पाठ में सात शब्दांश या बीजेटीएस के

पाठ में आठ शब्दांश अपेक्षाकृत शुरुआती दौर में लुप्त हो गए होंगे (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी मिलने वाले श्लोक रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है।

उस तेल से दीपक जलाकर, एकदम शांत मन से, मैं हर रात ध्यान देता था।

द्विपादों में सर्वश्रेष्ठ का मंदिर 544। (19) [787]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (20) [788]

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लेता हूँ, उस कर्म के अनुसार, मैं जहाँ भी भटकता हूँ,

जब मैं वहां से चला जाता हूँ, तो वहाँ बड़े-बड़े लैंप होते हैं। (21) [789]

किसी भी दीवार को पार करके, किसी भी चट्टान को पार करके, पहाड़ की चोटी के पार जाकर,

मैं जो चाहूँ देख सकता हूँ:

यही दीपक देने का फल है। (22) [790]

मैं एक ऐसा व्यक्ति हूं जिसकी आंखें पवित्र हैं;

मैं अपनी प्रसिद्धि के बल पर आगे बढ़ रहा हूँ; मैं निष्ठावान, बुद्धिमान और सचेत हूँ:

यही दीपक देने का फल है। (23) [791]

और अब, अपने अंतिम पुनर्जन्म में, मैं ब्राह्मण कुल में जन्म लेता हूँ।

अनाज और प्रचुर धन से समृद्ध,

राजा द्वारा प्रसन्न और सम्मानित545। (24) [792]

मैं हर तरह से परिपूर्ण था, सभी आभूषणों से सुशोभित था। [एक बार] खिड़की में खड़े होकर मैंने उस सुदाग़ व्यक्ति को देखा।

शहर का द्वार, यश की बुलंदियों से जगमगाता हुआ, देवताओं और लोगों द्वारा सम्मानित, [महान] चिह्नों से सुशोभित,

अस्सी छोटे चिह्नों से संपन्न। (25-26) [793-794]

प्रसन्नता से भरे और रोमांचित हृदय के साथ, मैंने पुरोहित बनने का निर्णय लिया।

कुछ ही समय बाद,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (27) [795]

जो मिलकर चार अलग-अलग पैर बनाते हैं।

544 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

545 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"

546 #23, ऊपर

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] "दिव्य कान" तत्व।

मैं दूसरों के दिलों को भी जानता हूँ।

मैंने वही किया जो शिक्षक ने सिखाया था।547 (28) [796]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैं 548 शुद्ध हूँ, [मैं] बेदाग हूँ। (29) [797]

मैंने गुरु की पूजा की है; मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था।

भारी सामान नीचे रख दिया गया है।

अस्तित्व से संबंध टूट गए। (30) [798]

जिस कारण से मैं अपने घर से निकलकर बेघर हो गया था — मैंने अब वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया है: सभी बंधनों का विनाश। (31) [799]

फिर अत्यंत दयालु

एक व्यक्ति ने मुझे उस सर्वोच्च स्थान पर नियुक्त किया:

सर्वोच्च पुरुष549 [ने कहा,] "सकुला

'दिव्य दृष्टि' [ननों] में सबसे आगे है। (32) [800]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (33) [801]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (34) [802]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (35) [803]

इस प्रकार भिक्खुनी सकुला ने ये श्लोक कहे।

547 शाब्दिक अर्थ, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश " , शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

548 y'akkho

549 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “वे लोग जिनके पास नहीं है”

सकुला थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 25.नंद(जनपदकल्याणी)
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

25. नंदा (जनपदकल्याणी)550

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [804]

उपदेशक,551 प्रशिक्षक,552

सभी सांसों पर विजय प्राप्त करने वाला, उपदेश देने में कुशल, बुद्ध।

कई लोगों को बाढ़ पार करने के लिए मजबूर किया। (2) [805]

दयालु,555 करुणामय,556

सभी प्राणों के शुभचिंतक557 ने पाँच सिद्धांतों में यह स्थापित किया।

सभी प्रतिद्वंद्वी जो आ चुके थे। (3) [806]

इस प्रकार वह प्रतिद्वंद्वियों द्वारा अस्पष्ट558 और बहुत प्रसिद्ध559 था, तथा अरहंतों द्वारा सुशोभित560 था।

जो स्वामी और तटस्थ थे। (4) [807]

उस महान ऋषि का शरीर अट्ठावन क्यूबिट561 लंबा था; वह सोने के समान मूल्यवान था।562

बत्तीस महान चिह्नों को धारण करते हुए। (5) [808]

उस समय लोगों की जीवन अवधि

[पूरे] एक लाख वर्ष।

550 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

551 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

552 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

553 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

554, अर्थात् तैंतीस देवता।

555 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

556 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

557 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

558 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

559 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

560 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

561 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

562 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

इतने लंबे समय तक [दुनिया में] रहना,

उसने कई लोगों को पार कराया। (6) [809]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

फिर करोड़पतियों के एक परिवार में, जो विभिन्न रत्नों से जगमगा रहा था,

परम सुख से संपन्न। (7) [810]

महान नायक के पास पहुँचने पर,

मैंने उन्हें धम्म का उपदेश देते हुए सुना , अंततः यह बहुत ही मधुर था।

जो परम सत्य को प्रकट करता है। (8) [811]

फिर [उसे आमंत्रित करने के बाद]

थ्री-वर्ल्ड्स-एंडर, असेंबली के साथ मिलकर, उसे एक बड़ा दान देते हैं।

अपने हाथों से प्रसन्न होकर, मैंने नायक के सामने सिर झुकाया।

विधानसभा के साथ विश्व के अग्रणी के रूप में, मैंने उस सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखी।

ध्यान करने वाली बौद्ध भिक्षुणियों के बारे में। (9-10) [812-813]

फिर अनटेम्ड-टेमर,565 मास्टर,566

तीनों लोकों के लिए शरण,567 [बुद्ध,]

मनुष्यों के तेंदुए ने भविष्यवाणी की थी:568

"आपको वह शुभ [स्थान] प्राप्त होगा। (11) [814]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (12) [815]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान,

वह जो नंदा नाम से जानी जाती है,

शिक्षक का अनुयायी होगा।” (13) [816]

उस समय अत्यधिक प्रसन्न होकर,

जब तक जीवन है, हृदय प्रेम से भरा रहेगा।

563 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

564 puṇṇā ti nāmaŋ

565 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

566 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्निका के लिए

567 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

568 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

मैंने विक्टर में भाग लिया,

गाइड, आवश्यक शर्तें प्रदान करता है। (14) [817]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (15) [818]

वहाँ से गिरकर मैं यमराज के पास गया,569

[और] फिर मैं तुसिता गया, और फिर निम्मानारती गया,570

और फिर वासावट्टी नगर। (16) [819]

जिस भी स्थान पर मेरा पुनर्जन्म होता है, उस कर्म के अनुसार, हर जगह मुझे प्रधान रानी बनाया जाता है।

[वहाँ] राजाओं के [देवताओं के]। (17) [820]

वहाँ से पतित होकर, मानव अवस्था में, [हर जगह] मुझे उन राजाओं की प्रधान रानी बनाया गया जो [कानून का] पहिया घुमाते हैं।

और [शक्तिशाली] क्षेत्रीय राजा। (18) [821]

देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच सफलता का अनुभव करने के बाद, हर जगह सुखी होने के कारण,

मैंने युगों तक पुनर्जन्म लिया।571 (19) [822]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तब मैं राजा सुद्धोदन की निष्कलंक572 पुत्री थी,573 [जो यहाँ रहती थी]

रमणीय574 कपिलवस्तु.575 (20) [823]

569 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

570 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

571 डांटो , या "वश में किया हुआ"

572 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

573 vimutt'o

574 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

575 ये पंक्तियाँ (पीटीएस में 41 शब्दांश, बीजेटीएस में 40 शब्दांश [जो पुराणजतिलेहि के बाद 'च' को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों

को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

मेरी शान और सुंदरता देखकर वह शाक्यन वंश हर्षित हो रहा था।577

इसलिए उन्होंने इसका नाम "नंदा" रखा।

मुझे सुखद और उत्कृष्ट लगा। (21) [824]

[मैं]578 "सुंदरता"579 के रूप में प्रसिद्ध थी

उसी रमणीय शहर की सभी युवतियों में से,

सिवाय [बेशक] यशोदरा.581 (22) [825]

मेरे बड़े भाई बुद्ध हैं,582 और बीच वाले भाई583 भी संत हैं;584 वे गृहस्थ जीवन में अकेले रहते हैं।

मुझे माँ द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है:585 (23) [826]

"पुत्र, तुम बुद्ध के अनुयायी शाक्य वंश में जन्मे हो।"

आप घर में 586 [वहाँ] क्यों बैठे हैं?

आपके सभी आनंद से वंचित होना?587 (24) [827]

अशुद्ध विचार588 यौवन सौंदर्य है,589

वृद्धावस्था के प्रभाव में;

यहां तक कि एक स्वस्थ जीवन भी,

रोग में समाप्त होता है, मृत्यु में समाप्त होता है। (25) [828]

अपने ही सुंदर रूप को देखो: मनमोहक, आकर्षक,590 यह सुशोभित और अलंकृत है।

576 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

577 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

578 #23, ऊपर

खंड 579 में कहा गया है, " बीस करोड़ लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है धम्म की अंतर्दृष्टि, धम्म में प्रवेश , धम्म की समझ या धम्म में प्रवेश, शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

580 y'akkho

581 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

582 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti नहीं तोड़ता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

583 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

584 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे भिक्खुनी सुक्का पढ़ता है।

585 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

586 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

587 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

588 सम्मुखा , अर्थात् “एक साथ”

589 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

590 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca (“और आप सभी आपकी सेवा करेंगे”)

जैसे 591 देवी भाग्य अलंकृत, 592 (26) [829]

जैसे सांद्रित593 विश्व-सार594 आँखों के लिए औषधीय मरहम,595 योग्यता के लिए प्रशंसा उत्पन्न करना,596 ओक्काका कबीले को प्रसन्न करना; (27) [830]

बहुत जल्द ही बुढ़ापा इस पर हावी हो जाएगा।

बच्चा घर छोड़कर चला गया,

हे निर्दोष, शिक्षा को चुनो। (28) [831]

अपनी माँ की बातें सुनकर मैं बेघर हो गया।

शरीर में, लेकिन मेरे दिल में नहीं।

[अभी भी] युवावस्था और सुंदरता से मोहित। (29) [832]

मदर599 ने कहा कि परिवर्तित अवस्थाओं के अध्ययन के माध्यम से अपना आधार बनाओ,601 [इसे आगे बढ़ाते हुए] बड़े प्रयास के साथ।

मुझे इस बारे में उत्साह नहीं था। (30) [833]

तब महान करुणावान ने मुझे इंद्रिय सुखों में लीन देखा। अपनी असाधारण शक्ति से मुझे सौंदर्य से विरक्त करने के लिए,

विक्टर ने मेरे मन में जो कल्पना की थी

दृष्टि रेखा, एक चमकती हुई महिला;

591 में जटाम्ह का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस अजता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

592 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

593 लिट., "हर समय हम नहीं हैं..."

594 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

595 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("पिछले कर्मों के फल के बाद")

596 संसारपथ-नित्तिना

597 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo ("अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा")

598 t'ato tato

599 बीजेटीएस और पीटीएस में वैकल्पिक रूप से सहा के स्थान पर समा ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

600 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

601 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

602 पाठ mahā-isiṃ (acc.) BJTS के साथ PTS mahā-isi (nom.) के लिए

603 शाब्दिक अर्थ, "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

604 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

605 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

वह बेहद खूबसूरत थी, सचमुच प्रतिभाशाली थी।

मुझसे भी अधिक सुंदर। (31-32) [834-835]

और मैं उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

बहुत ही आश्चर्यजनक शरीर,

मैंने मन ही मन सोचा, “आज का दिन फलदायी रहा।”

यह मानव आँखों की प्राप्ति है।” (33) [836]

मैंने उससे कहा, “ओह, भाग्यशाली!609

मुझे बताओ कि तुम यहाँ कैसे आए, और अगर हो सके तो मुझे ज़रूर बताओ।

[आपका] गोत्र, [आपका] नाम, [आपका] परिवार।" (34) [837]

“सवाल पूछने का समय नहीं है, तुम भाग्यशाली हो;

मुझे अपना सिर आपकी गोद में रखने दीजिए।

जैसे कि मेरे अंगों में धंस रहा हो611

वह एक पल के लिए आराम से लेट गई। (35) [838]

फिर उसने अपना सिर मेरी गोद में रख दिया

वह सुंदर आँखों से वहाँ फैली हुई थी। एक मकड़ी,613 बहुत जहरीली,

उस [महिला] के माथे पर गिरा। (36) [839]

जब वह उस पर गिरा, तो उसके पूरे शरीर पर फोड़े निकल आए; वे फूटकर मवाद से भर गए।

रक्त के साथ मिश्रित सड़े हुए मवाद के टुकड़े। (37) [840]

और उसका चेहरा भी विकृत हो गया था, लाश की सड़ी हुई दुर्गंध से; और उसका शरीर भी सड़ रहा था।614

[अब] सूज गया है और नीला पड़ रहा है। (38) [841]

उसके सभी अंग कांप रहे थे, वह हर सांस के लिए हांफ रही थी,615 अपनी पीड़ा को प्रकट कर रही थी,

606 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

607 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

608 लिट., "[मेरे मन में] कोई हलचल नहीं है"

609 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

610 लिट., “और एक महिला”

611 शाब्दिक रूप से, "और एक महिला"

612 etesaŋ devedevānaŋ

613 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

614 या करें: कारती से

615 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

वह दयनीय ढंग से विलाप करती थी [इस प्रकार:] (39) [842]

मैं पीड़ा से ग्रस्त हूँ,616

असहनीय पीड़ा महसूस करना;

मैं घोर पीड़ा में डूब गया हूँ।

हे मित्र, मेरे लिए शरण बनो।" (40) [843]

"तुम्हारे चेहरे की वो चमक कहाँ गई? तुम्हारी वो आकर्षक लंबी नाक कहाँ गई? तुम्हारे वो खूबसूरत तांबे जैसे लाल होंठ कहाँ गए?"

तुम्हारा [सुंदर] चेहरा कहाँ चला गया? (41) [844]

तुम्हारा वो मुँह कहाँ है, जो चाँद की तरह चमकता था? तुम्हारी शंख जैसी गर्दन कहाँ चली गई? और तुम्हारे वो दोनों कान, जो झूलों की तरह हिलते थे?

अब [बुरी तरह से] बदरंग हो गए हैं। (42) [845]

तुम्हारे दूध से भरे स्तन, जो जग के आकार के थे और नुकीली युवा कलियों जैसे दिखते थे, खुल गए हैं; तुम एक

भयानक दुर्गंध से सड़ा हुआ शव। (43) [846]

[तुम्हारी] पतली कमर619 [और] नितंब,

मांस की दुकान 620 जहाँ घाव और पाप 621 जन्म लेते हैं

अब मल से सुशोभित हैं। हे! सुंदरता शाश्वत नहीं है! (44) [847]

हर जन्मा शरीर एक जैसा है: सड़ा हुआ और डरावना, किसी घिनौने कब्रिस्तान की तरह।

जहां [केवल] मूर्ख ही [अपना] आनंद पाते हैं।" (45) [848]

तब महान दयालु, मेरे भाई, जगत के नेता, ने मुझे देखकर मेरे हृदय में परिवर्तन ला दिया।

उन्होंने मुझसे ये आयतें कही थीं: (46) [849]

616 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

617 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse ("आधा महीना") पढ़ता है

618 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

619 यह और इसके बाद के समापन श्लोक पीटीएस में यहाँ नहीं मिलते हैं, और ये असामान्य हैं (हालाँकि अद्वितीय नहीं)।

अपदाना के लिए जिसमें व्यक्तिगत कविताएँ आमतौर पर उस चीज़ के साथ समाप्त होती हैं जिसे मैंने "समापन छंद" कहा है (श्लोक)।

85-87) [1023-1025]। दिलचस्प बात यह है कि वे (साथ ही एक और, जो कहीं और भी दोहराया गया है) उसी असामान्य दोहराव के बाद की स्थिति में, नीचे, अपदान #30, यशोधरा के साथ अठारह हजार ननों के श्लोक 57-59 (साथ ही 60) के रूप में दिखाई देते हैं, और उस अपदान के बीजेटीएस संस्करण में भी इसी स्थिति में हैं (श्लोक [1100-1102] साथ ही [1103])।

620 PTS में Therī शब्द शामिल नहीं है, जिसे मैंने BJTS से लिया है।

621 रीडिंग s'ūnā vaṇitakibbisā with BJTS (and PTS alt.) for PTS sūnā 'va nītakibbisā ("like a slaughterhouse leading to pap" ?)

622 jegucchaŋ ; BJTS में इसे bībhacchaṃ पढ़ा जाता है , जिसका अर्थ लगभग समान है (घृणित, भयानक, डरावना)

"नंदा, अपने शरीर को देखो, यह भी एक बीमार और सड़ता हुआ शव है।"

घृणा के माध्यम से खेती करना

आपका मन, सुव्यवस्थित और शांत। (47) [850]

जैसा यह है, वैसा ही वह है; जैसा वह है, वैसा ही यह है: सड़ा हुआ और दुर्गंधयुक्त।

केवल मूर्खों को ही आनंदित करने वाला। (48) [851]

इस प्रकार दिन-रात परिश्रम करते हुए,

तुम अपनी बुद्धि से देखोगे, घृणा से मुँह मोड़कर। (49) [852]

उसके बाद मैं बहुत भावुक हो गया।

उन सुशोभित छंदों को सुनकर;

वहाँ शांति से रहना,623

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (50) [853]

मैं जहाँ भी बैठता हूँ,

मैं उच्चतम परिवर्तित अवस्थाओं तक पहुँचता हूँ।

विजेता, मेरे सद्गुण से प्रसन्न होकर,

[तब] मुझे उस सबसे आगे वाले स्थान पर रख दिया। (51) [854]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (52) [855]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (53) [856]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (54) [857]

इस प्रकार भिक्खुनी नंदा ने ये श्लोक कहे।

नंदा थेरी की कथा समाप्त हो गई है।

623 या, बीजेटीएस के साथ विपस्सन्ती का पाठ करते हुए , "जांच करना" "अंतर्दृष्टि लागू करना"

624 लिट., “में” “उसमें”
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 26.सोना
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

26. सोना 625

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [858]

उनका जन्म एक करोड़पति परिवार में हुआ था।

मैं प्रसन्न, सम्मानित, प्रिय था। उत्कृष्ट ऋषि के पास पहुँचते हुए,

मैंने उसके शब्द सुने, शहद जैसे मीठे। (2) [859]

यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई।

विजेता ने नन की प्रशंसा उन लोगों में सबसे आगे की, जो शिक्षक की सेवा में दृढ़ प्रयास करती हैं। (3) [860]

फिर संबुद्ध की पूजा करते हुए, मैंने उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा की।

महान नायक ने इसकी पुष्टि की: “तुम्हारी आकांक्षा सफल होगी। (4) [861]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (5) [862]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान, जिसे सोना के नाम से जाना जाता है।

शिक्षक का अनुयायी होगा।" (6) [863]

उस समय अत्यधिक प्रसन्न होकर,

जब तक जीवन रहा, प्रेम से भरे हृदय से, मैंने विक्टर की सेवा की।

गाइड, आवश्यक शर्तें प्रदान करता है। (7) [864]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (8) [865]

625 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

626 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

627 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

628 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मैं एक करोड़पति परिवार में पैदा हुआ हूँ, जो धनी, समृद्ध और बेहद अमीर है।

श्रावस्ती में, जो सर्वश्रेष्ठ नगर है। (9) [866]

जब मैं एक युवती बन गई,629

पति के कुल में जाकर, मैं 630 दस पुत्रों की माता बनी।

बहुत सुंदर और विशिष्ट। (10) [867]

वे सभी सुखमय थे, जनता की नजरों में मनभावन थे, और शत्रुओं के लिए भी प्रतिभाशाली थे।

कहने की जरूरत नहीं, वे मुझे बहुत प्यारे हैं। (11) [868]

फिर, मेरी इच्छा के बिना ही,632

जो मेरे पति थे, वे बुद्ध के 633वें युग में प्रस्थान कर गए थे।

मेरे उन बेटों से घिरा हुआ। (12) [869]

और फिर, अकेले में, मैंने चिंतन किया:

"मेरे लिए इस जीवन से बहुत हो गया,636

बुढ़ापा और दुख में जीना,

bere^{x} of637 [मेरे] पति [और] पुत्र। (13) [870]

मैं भी उस जगह जाऊंगा

जहां मेरे पति अब पहुंच चुके हैं।"638

इस तरह से विचार करने के बाद,

मैं बेघर हो गया। (14) [871]

और फिर भिक्षुणियां मुझे बौद्ध भिक्षुणियों के आश्रम में अकेला छोड़कर यह निर्देश लेकर चली गईं:

"हमारे जाने के दौरान पानी गर्म कर देना।" (15) [872]

फिर मैंने पानी लाकर उसे डाला।

629, अर्थात् तैंतीस देवता।

630 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

631 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

632 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

634 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

635 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

636 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

637 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

638 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

एक छोटे बर्तन में639 [उसके लिए प्रयुक्त]। [इसे चूल्हे पर रखने के बाद,]

बैठे-बैठे मैंने अपने दिल को प्रज्वलित किया। (16) [873]

शरीर की रोगग्रस्तता, सारहीनता, अनित्यता को देखकर, सभी दोषों को दूर करना,

मैंने अपना अरहंत पद प्राप्त कर लिया। (17) [874]

फिर वापस आने पर, उन बौद्ध भिक्षुणियों ने मुझसे गर्म पानी के बारे में पूछा।

आग पर ध्यान केंद्रित करने के माध्यम से,641

मैंने जल्दी से लौ जला दी। (18) [875]

आश्चर्यचकित होकर, [ननों] ने यह बात सर्वश्रेष्ठ विजेता को सुना दी।

यह सुनकर प्रभु अत्यंत प्रसन्न हुए।

उन्होंने [मेरे बारे में ठीक उसी समय] यह श्लोक कहा: (19) [876]

"कठोर प्रयास से जिया गया एक दिन भी एक सदी से बेहतर है।"

निष्क्रिय अवस्था में रहते थे, ऊर्जा का अभाव था।" (20) [877]

महान नायक मेरे अनुकरणीय आचरण से अत्यंत प्रसन्न हुए।

उस महान ऋषि ने कहा कि मैं सर्वोपरि हूँ

उन लोगों में से जो कड़ी मेहनत करते हैं। (21) [878]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (22) [879]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (23) [880]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [881]

इस प्रकार भिक्खुनी सोना ने ये श्लोक कहे।

639 puṇṇā ti nāmaŋ

640 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

641 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

सोना थेरी की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 27.भद्दा-कपिलानि
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

27. भद्दा-कापिलानी

विक्टर पदुमत्तरा

वह एक था जिसकी निगाहें हर चीज़ पर थीं। [विश्व का] वह नेता पैदा हुआ था।

एक लाख युगों बाद। (1) [882]

उस समय हंसवती में विदेह नाम का एक नेता था।642

एक करोड़पति जिसके पास कई रत्न हैं;

मैं उस समय उसकी पत्नी थी। (2) [883]

एक बार वह अपने नौकरों के साथ मानव सूर्य के पास गया।

[और] बुद्ध की शिक्षा सुनी, जिससे समस्त दुख का अंत हुआ। (3) [884]

नेता ने तपस्या में श्रेष्ठ अनुयायी की प्रशंसा की; यह सुनकर उसने एक सप्ताह तक दान दिया।

बुद्ध को, तटस्थ व्यक्ति। (4) [885]

बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर, उन्होंने उस सर्वोच्च स्थान की आकांक्षा की, जिससे उनके अनुयायी मुस्कुरा उठे।

ठीक तब644 [कि] लोगों के बीच बैल (5) [886]

करोड़पति पर दया करते हुए, उसने ये छंद [उससे ज़ोर से] कहे: "तुम्हें इच्छित अवस्था प्राप्त होगी;

हे पुत्र, तुम निर्वाण प्राप्त करोगे। (6) [887]

एक लाख युगों में, ओक्काका के वंश में उत्पन्न होकर,

जिसका नाम गौतम है

वह दुनिया में शिक्षक होगा। (7) [888]

उस धर्म का योग्य उत्तराधिकारी, धर्म की वैध संतान,

642 "पत्थर," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

643 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

644 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

जिसका नाम कस्सपा है

शिक्षक का अनुयायी होगा।" (8) [889]

यह सुनकर प्रसन्न होकर कि जब तक वह जीवित रहेगा, वह विक्टर, गाइड की आवश्यक सेवाओं के साथ सेवा करेगा,

एक ऐसे हृदय के साथ जो प्रेम से भरा हुआ था। (9) [890]

व्यवस्था को रोशन करना, गंदे विधर्मियों को कुचलना,

जिन्हें सिखाया जा सकता है, उन्हें निर्देश देना,645

वह अपने अनुयायियों के साथ 646 पर चल बसे। (10) [891]

जब उस विश्व-प्रमुख ने निर्वाण प्राप्त किया, तो उसने अपने सगे-संबंधियों और मित्रों को एकत्रित किया।

शिक्षक की पूजा करना,

उनके साथ [उन्होंने तब] निर्माण किया था (11) [892]

एक स्तूप जो रत्नों से बना था, सात मील [ऊंचाई में] तक उठता था, जो सूर्य की तरह चमकता था; जैसे खिले हुए राजसी साल के पेड़ की तरह। (12) [893]

वहाँ [स्तूप पर] उन्होंने सात प्रकार के रत्नों से सात लाख [उत्कृष्ट] कटोरे बनवाए थे।

वे आग में जलते सरकंडों की तरह चमक रहे थे। (13) [894]

उसके बाद उन्होंने वहां सुगंधित तेल से भरे दीपक जलाए और महान ऋषि की पूजा की।

जो हर जीवित प्राणी पर दया करता था। (14) [895]

उन्होंने वहाँ सात लाख "समृद्धि के पात्र" बनवाए, जो सभी महान ऋषि की पूजा करने के लिए रत्नों से भरे हुए थे। (15) [896]

सोने की माला खड़ी की गई, जिसके चारों ओर चौंसठ कलश रखे थे;647

यह रंगों से जगमगा रहा था।

जैसे शरद ऋतु में दिन बनाने वाला648। (16) [897]

रत्नों से निर्मित मेहराब

645 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

646, अर्थात् तैंतीस देवता।

647 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

648 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

चारों द्वार भव्य हैं। रत्नों से बने तख्ते, खूबसूरती से ऊपर उठाए गए, भव्य हैं। (17) [898]

बेहद खूबसूरती से बने आभूषण उस स्तूप को घेरे हुए हैं, चमक रहे हैं। झंडे आसमान में लहरा रहे हैं;

रत्नों से निर्मित, वे चमकते हैं। (18) [899]

रत्नों से बना वह लाल मंदिर, सुगठित और बहुरंगी,649

रंगों से अत्यधिक चमक रहा था।

जैसे सूर्य650 शाम को करता है। (19) [900]

स्तूप में तीन चबूतरे थे;

एक को उसने पीले मरहम से भर दिया,651

एक जिसमें लाल रंग का आर्सेनिक है,652

एक काले काजल के पेस्ट के साथ.653 (20) [901]

उस प्रकार पूजा करने के बाद, हे प्रिय, उस परम पूज्य के लिए,654 उसने भिक्षुओं के समुदाय को दे दिया।

जितना वह कर सकता था, उसने अपना पूरा जीवन भर भिक्षा दी।655 (21) [902]

उस करोड़पति के साथ-साथ मैंने भी, जब तक मैं जीवित रहा, यही किया।

उन पुण्यपूर्ण कार्यों का पूरी तरह से अध्ययन करें;

[और] उसके साथ मुझे अच्छे पुनर्जन्म मिले। (22) [903]

खुशी का अनुभव करना,656

मनुष्य और देवता दोनों के रूप में,

मेरा भी उनके साथ पुनर्जन्म हुआ था।

शरीर के साथ एक परछाई की तरह। (23) [904]

विपस्सी के नाम से जाने जाने वाले नेता का उदय इक्यावन युग पहले हुआ था, [बुद्ध,] जो आंखों को भाने वाले हैं।

सभी चीजों में अंतर्दृष्टि रखने वाला। (24) [905]

649 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

651 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

652 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

653 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

654 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

655 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

656 puṇṇā ti nāmaŋ

फिर वह 657 बंधुमती में रहने लगा।

उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध एक ब्राह्मण,658

शास्त्रों और धर्म से समृद्ध,659

लेकिन 660 धन के मामले में बहुत गरीब। (25) [906]

और उस समय, उसी विचार से, मैं उनकी ब्राह्मण स्त्री [पत्नी] थी। एक बार उस श्रेष्ठ द्विज पुरुष ने

उस महान ऋषि से मुलाकात हुई, (26) [907]

जनसभा के बीच बैठकर, अमरता की अवस्था का उपदेश देते हुए। धम्म सुनकर, अत्यंत प्रसन्न होकर,

उसने अपना लबादा [उस ऋषि को] दे दिया। (27) [908]

एक ही कपड़े में घर जाते हुए,

उन्होंने मुझसे उसी वक्त ये शब्द कहे: "इस महान अच्छे कर्म में आनंद लो,

बुद्ध को दिया गया लबादा।" (28) [909]

फिर मैंने हाथ जोड़कर, पूर्णतः संतुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा: "पतिदेव, यह लबादा बहुत अच्छा है।"

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को, तटस्थ एक।" (29) [910]

खुश और [अच्छी तरह से] तैयार होकर, जन्म-जन्मांतर तक वह सुंदर बनारस शहर में राजा, पृथ्वी का स्वामी था। (30) [911]

मैं उस [राजा] की मुख्य रानी थी, उसकी स्त्रियों के दल में सर्वोच्च।

मैं उनके लिए बेहद प्रिय था।

मेरे पति के प्रति अतीत के प्रेम के कारण।661 (31) [912]

आठ एकाकी नेताओं662 को भीख मांगते हुए देखकर, वह अत्यधिक प्रसन्न हो गया,

उन्हें बहुत महंगी भिक्षा दी। (32) [913]

उन्हें फिर से आमंत्रित करने के बाद,

657 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

658 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

659 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

660 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

661 या गिरिब्बाजा, यहाँ राजगाहन

662 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

एक रत्न मंडप बनाकर,

सुनारों द्वारा बनाए गए संग्रहण कटोरे, साथ ही ठोस सोने की एक ट्रे भी।

फिर उसने उन सभी को, जो सोने की सीटों पर बैठे थे,664 एक अत्यंत समृद्ध दान की पेशकश की।

[अपने] हाथों से संतुष्ट महसूस करते हुए। (33-34) [914-915]

मैंने वही दान दिया।

उस समय कासी665 के राजा के साथ। फिर से मेरा पुनर्जन्म हुआ।

कासी फाटकों के बाहर गांव.666 (35) [916]

वह अपने भाइयों के साथ एक समृद्ध पारिवारिक परिवार में खुश था।

मैं बड़े भाई की पत्नी थी।

एक महिला जिसने अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा किया।668 (36) [917]

एक अकेले बुद्ध को देखकर,

जो मेरा सबसे छोटा भाई था, उसने अपना हिस्सा [उस बुद्ध को] दे दिया;

जब वह आया तो मैंने उसे यह बताया। (37) [918]

उन्होंने उस दान की प्रशंसा नहीं की, इसलिए बुद्ध से वह भोजन वापस लेकर मैंने उन्हें दे दिया;

फिर उसने उसे [स्वयं] दे दिया। (38) [919]

फिर क्रोधित होकर उस भोजन को फेंककर,670 मैंने बुद्ध का कटोरा [दूसरी बार] वापस लिया, और उसे मिट्टी से भर दिया।

663 डांटो , या "वश में किया हुआ"

664 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

665 vimutt'o

666 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

667 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

668 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

669 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

670 #23, ऊपर

[और] इसे उस तटस्थ व्यक्ति को दे दिया। (39) [920]

और ठीक उसी समय जब उसने वे भिक्षाएँ प्राप्त कीं, जो सड़ी हुई और अपवित्र थीं,671

उसका मन भी उतना ही प्रसन्न था;672

यह देखकर मैं बहुत भावुक हो गया।673 (40) [921]

मैंने फिर उससे वह कटोरा लिया और उसे सुगंधित इत्र से साफ किया। मेरा मन तब आनंद से भर गया था।

मैंने उन्हें आदरपूर्वक घी दिया।674 (41) [922]

मैं जिस भी स्थान पर पुनर्जन्म लूं, दान देने के कारण मैं सुंदर हूं; बुद्ध को बेस्वाद भोजन देने के कारण,

मेरी सांसों से भयानक दुर्गंध आ रही है। (42) [923]

फिर जब बुद्ध-कस्सापा का स्तूप पूरा हो रहा था, तो प्रसन्न होकर मैंने [तब] इसके लिए दान दिया।

सोने से बनी एक उत्कृष्ट टाइल। (43) [924]

चार जन्मों तक उस टाइल पर सुगंधित पदार्थों का प्रयोग करते रहने के कारण,

मेरे प्रत्येक अंग से दुर्गंध का दोष दूर हो गया था। (44) [925]

सात हजार कटोरे बनाकर, जिनमें से प्रत्येक सात रत्नों से सुशोभित था और घी से भरा हुआ था,

उनमें हजार बत्तियाँ रखना,676 (45) [926]

अत्यंत प्रसन्न मन से मैंने उन सभी को जलाना शुरू कर दिया।

और उन्हें सात पंक्तियों में बिछा दिया।

जगत के स्वामी की पूजा करना (46) [927]

671 शाब्दिक अर्थ में, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिसामय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश ", शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

672 y'akkho

673 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

674 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

675 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

676 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

677 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

और उस समय विशेष रूप से

मुझे भी उस पुण्य में हिस्सा मिला। फिर से कासियनों में678

वह सुमित्ता थे, जो एक प्रसिद्ध ऋषि थे।679 (47) [928]

मैं [ऋषि सुमित्ता की] पत्नी थी, खुश, आनंदित और [बहुत] प्रिय। और फिर उन्होंने [कुछ] अकेले लोगों को दे दिया।

एक विशाल लबादा [वस्त्रों के लिए उपयोग करने हेतु]। (48) [929]

मैंने भी उस पुण्य में भाग लिया, उस महान दान का अनुमोदन करते हुए। फिर काशी देश में680

उसका पुनर्जन्म हुआ, एक कोलियन.681 (49) [930]

और फिर, कोलियन वंश के पाँच सौ पुत्रों के साथ,

उन्होंने लोनली पर 682 में भाग लिया

बुद्ध, पाँच सौ [संख्या में]। (50) [931]

तीन महीने के लिए 683 [उन्हें] संतुष्ट करना

उन्होंने उन बुद्धों को तीन वस्त्र दिए। मैं उस समय कोलियन की पत्नी थी।

योग्यता के मार्ग का अनुसरण करते हुए। (51) [932]

वहां से गिरने के बाद वह नंदा के नाम से प्रसिद्ध राजा बन गया।

मैं [राजा नंदा की] प्रधान रानी थी;

मेरी हर इच्छा पूरी हो गई। (52) [933]

वहाँ से गिरकर, बन गया

ब्रह्मदत्त, पृथ्वी के स्वामी, अपने जीवनकाल तक,

फिर उन्होंने सभी की सेवा की।

पद्मावती के पुत्र पाँच सौ एकांत ऋषि राजमहल में निवास करते थे।

मैंने भी उन दिवंगत आत्माओं की पूजा की। (53-54) [934-935]

678 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

679 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

680 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

681 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

682 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

683 रीडिंग जटाम्ह (बीजेटीएस के साथ पीटीएस अजता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

684 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

685 लिट., "हम हर समय नहीं हैं..."

हम दोनों ने स्तूपों का निर्माण किया था,

संसार का त्याग करके आगे बढ़ना,

असीम अवस्थाओं का अनुभव किया,686

[और] फिर हम ब्रह्मा के लोक में गए। (55) [936]

महातीथ में पतित होकर वह उच्च कुल का पिप्पलायन है। माता: सुमनदेवी और

पिता: ब्राह्मण कोसिगोत्ता। (56) [937]

मद्दा देश में, मैं ब्राह्मण कपिल की पुत्री थी; मेरी माता का नाम सुचीमती था।

सागला सर्वश्रेष्ठ नगर है। (57) [938]

मेरे पिता ने मुझे एक मोटे सोने के आभूषण से सजाकर बुद्धिमान कस्सपा को सौंप दिया।

जिसने मेरे प्रति इच्छा से परहेज किया था। (58) [939]

एक बार कर्मों के अंत की कामना करते हुए आगे बढ़े उस दयालु व्यक्ति को कुछ प्राणियों को देखकर भय आ गया।

कौवों और इसी तरह के पक्षियों द्वारा खा लिया गया। (59) [940]

तब मैं भी घर में विचलित हो गया,689 तिल में पैदा हुए और फिर धूप से पके हुए कीड़ों को देखकर।

कुछ कौवों द्वारा खाया जा रहा है। (60) [941]

जब बुद्धिमान [कसप्पा] ने त्याग कर दिया, तो मैंने भी उनका अनुसरण करते हुए त्याग कर दिया।

मैं [तब] पाँच वर्षों तक वहाँ रहा।

त्यागियों के पथ690 के साथ। (61) [942]

जब विजेता की धाय गोतमी संन्यासिनी बनकर चली गईं, तब वे बुद्ध से मिलीं,

मुझे भी उनका निर्देश प्राप्त हुआ। (62) [943]

कुछ ही समय बाद,

686 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

687 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("after the fruit of previous karma")

688 संसारपथ-नित्तिना

689 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo (“अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा”)

690 t'ato tato

मैंने अरहंत अवस्था प्राप्त कर ली।

ओह! "सुंदर दोस्त" होने का क्या ही मज़ा है!

तेजस्वी कस्सपा का! (63) [944]

बुद्ध का वैध पुत्र,691

बहुत ध्यान देने वाला, कस्सपा।

वह व्यक्ति जो पिछले जन्मों के बारे में जानता है।

और वह स्वर्ग और नरक देखता है। (64) [945]

फिर उसने जन्म का नाश प्राप्त किया;

विशेष ज्ञान में निपुणता प्राप्त की;

तीनों ज्ञानों से परिपूर्ण एक ऋषि,

वह ब्राह्मण त्रिगुण ज्ञाता है। (65) [946]

ठीक इसी प्रकार भद्दा-कापिलानी,

त्रिज्ञ जिसने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। वह वह है जो अपना अंतिम शरीर धारण करती है, मारा और उसके वाहन को पराजित करती है। (66) [947]

दुनिया में व्याप्त खतरों को देखते हुए,

हम दोनों संन्यासी बनकर निकले। अब हम दोषों से मुक्त हैं;

शांत हो गया, ठंडा हो गया, निर्वाण प्राप्त कर लिया। (67) [948]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (68) [949]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (69) [950]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (70) [951]

इस प्रकार भिक्खुनी भद्दा-कापिलानी ने ये श्लोक कहे।

भद्दा-कापिलानी थेरी 692 की कथा समाप्त हुई।

691 बीजेटीएस और पीटीएस में वैकल्पिक रूप से सहा के स्थान पर समा ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

692 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक नाम tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके मुझे जानने के लिए" भी किया जा सकता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 28.यशोधरा, भगवान बुद्ध की पत्नी

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

<<<< पिछला । अगला >>>>

यह पृष्ठ वास्तव में अपदाना ग्रंथ से संबंधित है। यह भगवान बुद्ध की पत्नी, यशोदरा के बारे में है, जिन्हें यशोवती, भद्धकंचना या बिम्बादेवी भी कहा जाता है। वे अपनी सास, रानी महा-प्रजापजी-गोतमी के साथ भिक्षुणी बन गईं और भिक्षुणियों के लिए बने अलग मठ में रहने लगीं। उन्होंने धम्म के मार्ग पर चलते हुए सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध के परिवार के बारे में बौद्ध धर्म से संबंधित अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न 20 भी देखें ।
78 वर्ष की आयु में अपने शरीर त्यागने के दिन उन्होंने ये बातें कहीं:

28. यशोदरा (बुद्ध की पत्नी)

एक समय पुरुषों का नेता राजगाह शहर में एक पहाड़ी गुफा में ठहरा हुआ था।

जो सुंदर और समृद्ध था। [952]693

उस समय यही तर्क दिया गया था।

उस नगर में निवास करने वाली यशोधरा नामक भिक्षुणी द्वारा,

एक सुंदर मठ के अंदर [वहाँ]: [953]

"नंदा, राहुल (पुत्र) और भद्दा; साथ ही दो प्रमुख अनुयायी; सुद्धोदना महाराजा (राजा और ससुर)।"

और गोतमी प्रजापति (रानी, बाद में भिक्षुणियों की प्रमुख); [954]

महान ख्याति के महान थेरा; और महान शक्तियों वाली थेरी:694 वे शांतिपूर्ण [निर्वाण] में चले गए हैं, दीपक की लौ की तरह निशानहीन। [955]

जब तक जगत का स्वामी जीवित है, मैं भी उसी शांतिपूर्ण मार्ग पर चलूंगा।" और इन सब बातों पर विचार करने के बाद,

उसने अपने जीवन के अंत का पूर्वाभास कर लिया था। [956]

यह पूर्वाभास करते हुए कि जीवन के सभी तत्व उसी दिन नष्ट हो जाएंगे, वह अपने आश्रम से निकल पड़ी।

अपना वस्त्र और कटोरा लिए हुए। [957]

एक लाख 695 भिक्षुणियों द्वारा सम्मानित, [यशोधरा नामक भिक्षुणी,] अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत बुद्धिमान,

[तब] संबुद्ध के पास गया। (1) [958]

संबुद्ध की पूजा करने के बाद,

पहिए के निशान वाले [पैरों के तलवों] पर, एक तरफ बैठे हुए [उसके बगल में]

उसने शिक्षक से ये शब्द कहे: (2) [959]

693 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

694 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

695 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

अब मेरी उम्र अठहत्तर वर्ष हो गई है, बुढ़ापे का अंतिम चरण आ चुका है;

मैं महान ऋषि को रिपोर्ट कर रहा हूँ:

मैंने गुफा में [संतत्व] प्राप्त किया है। (3) [960]

अब मेरे लिए बुढ़ापा परिपक्व हो चुका है;

सचमुच मेरा जीवन तुच्छ है। मैं तुम्हें सब कुछ त्यागकर चला जाऊंगा।

मेरी शरण स्वयं में ही बनी है। (4) [961]

बुढ़ापे के अंतिम दिनों में,

मृत्यु शरीर को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ देती है;

आज रात को, महान नायक,

मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। (5) [962]

जहां न जन्म है, न बुढ़ापा, न बीमारी और न मृत्यु, हे महान ऋषि, मैं उस महान नगर की ओर जा रहा हूँ।

[जो,] बिना शर्त, उसकी कोई मृत्यु नहीं होती। (6) [963]

इस विशाल जनसमूह में,696 ये सभी शिक्षक का आदर करते हैं,697 और जानते हैं कि प्रत्येक अपूर्णता

आमने-सामने क्षमा की जाती है, ऋषि। (7) [964]

पिछले जन्मों में (पूर्व जन्मों में) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना।

अगर मैंने कभी आपको परेशान किया हो,699

मैं इसकी घोषणा कर रहा हूँ, महान नायक;

कृपया मेरी अपूर्णता को क्षमा करें। (8) [965]

उसकी बात सुनकर ऋषियों के स्वामी (बुद्ध) ने 700 कहा: "मैं तुमसे इससे बेहतर और क्या कह सकता हूँ?

आप निर्वाण कब प्राप्त करेंगे? [966]

अब अपनी महाशक्तियों का प्रदर्शन करो, हे मेरे विधान के कर्ता;

व्यवस्था में संदेह को रहने दो

सभी सभाओं के लिए काट दिया जाए।"702 (9) [967]

696 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

697, अर्थात् तैंतीस देवता।

698 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

699 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

700 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

702 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

ऋषि के वचन सुनकर, बौद्ध भिक्षुणी यशोदरा ने ऋषियों के राजा की आराधना की।

[तब] ने [बुद्ध] से यह भाषण दिया: [968]

मैं यशोदरा हूं, हीरो;

घर में मैं तुम्हारी मुख्य रानी थी,703

शाक्य वंश में जन्मा,

महिलाओं के बीच स्थापित.704 (10) [969]

हे वीर, आपके घर में, मैं

वह नेता था, सबका स्वामी था।

वहाँ मौजूद [महिलाओं की संख्या]

एक लाख छियानवे. (11) [970]

वे सभी महिलाएं, जो सौंदर्य और शालीनता के गुणों से परिपूर्ण हैं, युवा और सुभाषी हैं, आदर करती हैं...

मुझे, जैसे लोग देवताओं की पूजा करते हैं।705 (12) [971]

शाक्यन पुत्र के घर में हजार कन्याओं की नेता,

सुख और दुख में वे एक समान हैं,706

जैसे देवता [उस बगीचे में जिसका नाम] “आनंद” है। (13) [972]

इच्छा के सार से परे, सौंदर्य के सार के रूप में स्थिर,

सुंदरता के मामले में उनका कोई मुकाबला नहीं है।

विश्व के नेता के अलावा।" (14) [973]

इन शब्दों से शुरू होने वाले शब्द बोलते हुए, आकाश में उठकर,

यशोदरा ने विविध प्रकार के प्रदर्शन किए।

बुद्ध की अनुमति से शक्तियाँ,707। [974]708

संबुद्ध की उपासना करते हुए, उसने गुरु को अलौकिक शक्तियाँ दिखाईं।

उसने असाधारण महाशक्तियों का प्रदर्शन किया।

703 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

704 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

705 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

706 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, “[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है),” अर्थात्, “मैं 100वीं दासी थी”

707 puṇṇā ti nāmaŋ

708 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

709 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

710 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

विविध, विभिन्न रूपों वाला। (15)711

शरीर ब्रह्मांड जितना विशाल है,712

उसने उत्तर में महाद्वीप713 को अपना सिर बनाया; पूर्व और पश्चिम को अपने पंख; और भारत को अपना धड़ बनाया; (16) [975]

पूंछ के पंख: दक्षिणी महासागर; [अन्य] पंख: विभिन्न नदियाँ;

उसकी आंखें चांद और सूरज जैसी थीं।

[उसका] प्रतीक ब्रह्मांडीय माउंट मेरु था। (17) [976]

[उसकी] चोंच में, दुनिया के छोर पर स्थित पर्वत,714 [वह] एक पेड़715 को उसकी जड़ों सहित ले जा रही थी। उसके पास आकर, [उसे] पंखा झलते हुए,]

वह विश्व नेता की पूजा कर रही है। (18) [977]

उसने स्वयं को हाथी, घोड़ा, पर्वत, सागर, चंद्रमा और सूर्य, मेरु पर्वत का रूप धारण किया।

और शकरा, [देवताओं का राजा]। (19) [978]

उसने हजार गुना संसार को खिलते हुए कमलों से ढक दिया,717 [और फिर कहा,] "मैं यशोदरा हूँ, वीरांगना;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे आँखों वाले।" (20) [979]

और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का रूप प्रकट करते हुए, उन्होंने पुण्य के सिद्धांत का प्रचार किया;718 "मैं यशोदरा, वीरांगना हूँ;

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।" (21) [980]

711 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

712 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

713 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

714 डांटो , या "वश में किया हुआ"

715 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

716 vimutt'o

717 सिंगी-निक्खा-सवण्नो , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

718 ये पंक्तियाँ (पीटीएस में 41 अक्षर, बीजेटीएस में 40 अक्षर [जो पुराणजतिलेहि के बाद 'च' को छोड़ देता है]) पीटीएस और बीजेटीएस दोनों द्वारा एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, हालांकि वे दो पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ती हैं और मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि इस "श्लोक" को छंद के अनुसार कैसे समझा जाए। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण में विकृत हो गया है? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे सटीक अनुवाद का प्रयास किया है , अर्थात् 12-12-12-12 छंद (जो संचरण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों के लोप [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों के लोप [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को

प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले छंद-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूलभूत इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (22) [981]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (23) [982]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान नायक। (24) [983]

विश्व-स्वामियों, 719 सभी बुद्धों के साथ मेरी मुलाकात आप लोगों को अच्छी तरह से दिखाई दी; 720 उनके प्रति मेरी व्यापक सेवा

यह आपके लिए था, हे महान ऋषि। (25) [984]

हे ऋषि, मेरे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों को याद कीजिए; उनसे मुझे पुण्य प्राप्त हुआ था।

हे महान नायक, आपके लिए। (26) [985]

मैंने कदाचार से परहेज किया, बाधा उत्पन्न की 721

[नौ] असंभव स्थान;722

मैंने जीवन का बलिदान दिया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (27) [986]

मैंने स्वयं को पत्नी बनने के लिए समर्पित कर दिया।

कई दसियों अरब गुना। मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं थी।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (28) [987]

मैंने स्वयं को सेवा में समर्पित कर दिया, कई दसियों अरब बार। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (29) [988]

719 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

720 शाब्दिक रूप से, "पूजा की"

721 #23, ऊपर

722 शाब्दिक अर्थ, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश " , शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

723 y'akkho

मैंने कई दसियों अरब बार भोजन उपलब्ध कराने के लिए खुद को समर्पित किया। मुझे इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (30) [989]

मैंने तुम्हें अपने सारे जीवन दे दिए हैं, कई दसियों अरब बार। मैं स्वयं को भय से मुक्त करूँगा।

मैं अपना जीवन [एक बार फिर] त्याग दूँगा। (31) [990]

हे महान ऋषि, आपके लिए मैं एक स्त्री की चीजों को नहीं छुपाती, विभिन्न प्रकार के कई वस्त्रों को छुपाती हूँ।

725 [मेरे] अंगों पर लगे आभूषण। (32) [991]

धन-दौलत और अनाज, गाँव और छोटे कस्बे भी त्याग दिए गए हैं।

खेत और बेटे और बेटियाँ [भी]

हे महान ऋषि, त्याग दिया गया है। (33) [992]

हाथी, घोड़े, गायें, गुलाम और नौकरानियाँ सभी को अनगिनत मात्रा में त्याग दिया गया है।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (34) [993]

मुझे जो भी देने को कहा जाएगा

मैं भिखारियों को दान के रूप में वह देता हूँ; मुझे किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं दिखती।

अंतिम उपहार देने से। (35) [994]

मुझे 727 बीमारियों का अनुभव हुआ है

इस बहुविविध अस्तित्व में अनगिनत प्रकार के लोग मौजूद हैं।728

हे महान नायक, आपके लिए। (36) [995]

मुझे सुख-सुविधाएं प्राप्त करने में कोई रोमांच नहीं मिलता;

मुझे 729 परेशानियों से कोई परेशानी नहीं होती। मैं हर जगह संतुलित रहता हूँ।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (37) [996]

[दोनों] का अनुभव करने के बाद

724 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “वे लोग जिनके पास नहीं है”

725 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

726 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

727 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

728 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

729 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप पढ़ रहे हैं

मार्ग में सुख और दुख दोनों का सामना करते हुए, महान ऋषि ने ज्ञानोदय प्राप्त किया।

वह शिक्षा जिसके लिए बुद्ध ने प्रयास किया। (38) [997]

आपके और मेरे द्वारा अन्य विश्व-स्वामियों से बहुत मुलाकातें हुईं, चाहे आप ब्रह्मा हों या कोई और।

गौतम बुद्ध, 733 विश्व के नेता। (39) [998]

मैंने बहुत सारी सेवाएँ कीं।

हे महान ऋषि, आपके लिए;

जब आप बुद्ध की शिक्षाओं की खोज कर रहे थे,734

मैं [हमेशा] आपका परिचारक था। (40) [999]

एक लाख युग [और]

चार अगणनीय [युग]

अतः, दीपांकर, महान नायक,

विश्व के नेता का जन्म हुआ। (41) [1000]

पास के किसी देश में, उसे आमंत्रित करते हुए, उस दिवंगत आत्मा के प्रसन्न मन वाले लोग सफाई कर रहे हैं।

जिस सड़क से वह आ रहा है। (42) [1001]

उस समय सुमेधा नाम का एक ब्राह्मण था। वह मार्ग तैयार करवा रहा था।

उस सर्वज्ञ के लिए जो आ रहा था। (43) [1002]

उस समय मैं एक कुंवारी लड़की थी, जो एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी थी और सुमित्ता नाम से जानी जाती थी।

मैं उस सभा में गया। (44) [1003]

शिक्षक को अर्पित करने के लिए नीले कमल के आठ मुट्ठी भर फूल (735) के साथ

सभी लोगों के बीच

मैंने उस भयंकर [तपस्वी] ऋषि को देखा।736 (45) [1004]

730 शाब्दिक अर्थ, "भविष्य में" (एकवचन)

731 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

732 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

733 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

734 में जटाम्ह का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस अजता ("हम अजन्मे हैं;" इसका गलत अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

735 °putta° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

736 लिट., "हर समय हम नहीं हैं..."

उसे छाल के ऊपर बैठे हुए देखकर,737 उत्कृष्ट738 और मनमोहक,739 तब मैंने [अपने मन में इस प्रकार सोचा:]

"[यह] मेरा जीवन फलदायी हो रहा है।" (46) [1005]

उस समय मैंने उस ऋषि को देखा

वह प्रयास [जो उस समय] फलदायी हो रहा था;

पिछले कर्मों के कारण, मेरा

संबुद्ध में हृदय प्रसन्न हुआ। (47) [1006]

मेरे हृदय को और भी प्रसन्न करते हुए, मैंने कहा, "हे उच्च विचारों वाले ऋषि,

कोई और उपहार न देखकर [देने के लिए]

मैं तुम्हें फूल दे रहा हूँ, ऋषि।740 (48) [1007]

हे ऋषि, आपके लिए पाँच मुट्ठी भर हैं;

शेष तीन741 मेरे लिए हैं।

इस [उपहार] के माध्यम से सफलता मिले।

हे ऋषि, आपके जागरण के लिए। (49) [1008]

चौथा पाठ भाग

तब उस ऋषि ने, ज्ञानोदय के लिए फूल लेकर, लोगों के बीच पूजा की।

हे प्रसिद्ध, महान ऋषि 745 जो आ रहे थे। (50) [1009]

महान ऋषि [जिनका नाम] दीपांकर था, ने लोगों के बीच [उन्हें] देखकर [भविष्य में बुद्धत्व प्राप्त होने की] भविष्यवाणी की।746

[उस] ऋषि के लिए जिसका मन ऊँचा है। (51) [1010]

महान ऋषि दीपांकर ने भविष्यवाणी की कि मेरा कर्म असंख्य युगों तक जारी रहेगा।

737 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

738 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("पिछले कर्मों के फल के बाद")

739 संसारपथ-नित्तिना

740 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo ("अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा")

741 t'ato tato

742 BJTS और PTS में वैकल्पिक रूप से saha के स्थान पर samā ("बराबर") पढ़ा जाता है ।

743 bodhanatthāya tavaŋ (PTS वैकल्पिक शब्द tava); इस वाक्यांश का अनुवाद "आपके ज्ञान के लिए" भी किया जा सकता है।

[मुझे]"

744 या, जैसा कि ऊपर बताया गया है, "मुझे जानने के लिए"

745 PTS mahā-isi (nom.) के लिए BJTS के साथ mahā - isiṃ (acc.) पढ़ना

746 शाब्दिक अर्थ, "महान नायक ने भविष्यवाणी की"

हे महान ऋषि, आपकी महिमा हो: (52)747

वह आपके जैसी ही स्वभाव और आचरण वाली पत्नी होगी; इसी कर्म के फलस्वरूप वह प्रेममय होगी।

हे महान ऋषि, आपके लिए।748 (53) [1011]

सुंदर दिखने वाली और बेहद प्रिय, आकर्षक, मीठी बातें करने वाली, वह एक प्यारी महिला होगी।

[और] आपके सिद्धांतों में एक उत्तराधिकारी। (54) [1012]

जिस प्रकार स्वामी अपने द्वारा संचित वस्तुओं की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार यह भी उनकी रक्षा करेगा।

[सभी] चीजें जो स्वास्थ्यवर्धक हैं। (55) [1013]

आपके भविष्य के प्रति करुणा से भरी, वह आपकी सभी खूबियों को पूरा करेगी। पिंजरे से मुक्त हुए शेर की तरह,

वह जागृति प्राप्त करेगी।" (56) [1014]

बुद्ध के वचन से प्रसन्न होकर, मैंने उसी प्रकार व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत किया।

बुद्ध ने असंख्य युग पहले मेरे लिए भविष्यवाणी की थी। (57) [1015]

जब मैंने वह कर्म सफलतापूर्वक पूरा किया तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

मैंने अनगिनत गर्भाशयों का अनुभव किया है,

दैवीय [साथ ही] मानवीय [लोग]। (58) [1016]

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख और दुख का अनुभव करते हुए, जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

मैं शाक्यान वंश में पैदा हुआ था। (59) [1017]

सुंदर और अत्यंत धनी, प्रसिद्ध और उतनी ही गुणी; हर योग्यता से संपन्न।

मैं कुलों में बहुत सम्मानित हूँ। (60) [1018]

747 बीजेटीएस इस श्लोक को एक तारांकित फुटनोट में रखता है, यह मानते हुए कि यह इसके कई वैकल्पिक संस्करणों में आता है।

748 बीजेटीएस, पीटीएस से सहमत होते हुए इसे महा-इसे (वोक.) के रूप में प्रस्तुत करता है , लेकिन वैकल्पिक पाठ महा-इसी का संदर्भ देता है।

(नामवाचक), संभवतः बुद्ध द्वारा सुमेधा को "महान ऋषि" कहकर संबोधित करने से परेशान थे।

749 रीडिंग manāpā with BJTS for PTS manasā

750 पढ़ना यथा... पीटीएस यथा के लिए बीजेटीएस के साथ अनुरक्खंति 'सामिनो ... अनुरक्खति सामि नं ("जैसा कि हमारे गुरु रक्षा करते हैं")

धन-दौलत, शोहरत, आतिथ्य सत्कार,

और सांसारिक चीजों में लिप्त होना – ये मेरे मन को विचलित नहीं करते;751

मुझे किसी भी चीज से डर नहीं है। (61) [1019]

मुझे उपस्थित होने के लिए नियुक्त किया गया था

भगवान बुद्ध ने राजा के हरम में जो कहा था, उस पर

तब क्षत्रिय नगर में। (62)752

मैं एक नौकरानी हूं।

और [वह] जो सुख और दुख का अनुभव करती है, एक महिला753 जो तथ्यों की घोषणा करती है,

एक महिला754 जो दयालु है। (63)

मैंने पाँच अरब बुद्धों को, और नौ अरब अन्य बुद्धों को भी, विशाल दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के ऊपर देवता.755 (64)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

ग्यारह अरब [अन्य लोगों] के लिए

और पचास अरब [बुद्ध और]। (65)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (66)

बीस अरब [अन्य] बुद्ध और [एक और] तीस अरब –

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (67)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

चालीस अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] पचास अरब। (68)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

751 लिट., “मेरे मन में कोई हलचल नहीं है”

752 यह और इसके बाद के 19 श्लोक (कुल 20 श्लोक) बीजेटीएस में शामिल नहीं हैं। श्लोक (62) और (63) बीजेटीएस [1092]-[1093] में दिखाई देते हैं।

753 लिट., “और एक महिला”

754 लिट., “और एक महिला”

755 etesaŋ devedevānaŋ

756 अधिकारं सदा मयहं , शाब्दिक अर्थ: "मेरी सेवा निरंतर है" "मेरी सेवा दैनिक है"

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (69)

साठ अरब [अन्य] बुद्ध, [एक और] सत्तर अरब —

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (70)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

अस्सी अरब [और बुद्धों के लिए,]

और [एक और] नब्बे अरब। (71)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (72)

लाखों-करोड़ों

जो विश्व के प्रमुख नेता थे; मैंने उन्हें व्यापक दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी देवता। (73)

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ।

एक और नब्बे ट्रिलियन तक

जो विश्व के नेता भी थे। (74)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ (75)

महान ऋषियों को [जिनकी संख्या थी]

आठ सौ पचास ट्रिलियन, और सात सौ पचासी अरब [अतिरिक्त बुद्ध]। (76)

मैंने उन्हें बहुत दान दिया।

वे [बुद्ध,] देवताओं के भी स्वामी देवता;

हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (77)

हे अकेले बुद्धों, वासना से मुक्त, छह सौ चालीस मिलियन; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (78)

बुद्धों के अनगिनत अनुयायी,

मैं दोषों से मुक्त और निष्कलंक हूँ; हे महान राजा, मेरी बात सुनो: मैं निरंतर सेवा कर रहा हूँ। (79)

मैं हमेशा शिक्षण का अभ्यास करता हूँ।

उन लोगों में से जो शिक्षाओं का अभ्यास करते हैं,759

शिक्षण का अभ्यास करते समय सहज महसूस करना,

इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में। (80)

शिक्षण-अभ्यास का अच्छी तरह से अभ्यास किया जाना चाहिए;

वह अभ्यास कुप्रथा नहीं है। [मैं] इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में शिक्षण का अभ्यास करने में सहज हूँ। (81)

पुनर्जन्मों से विरक्ति होकर, मैं हजारों भिक्षुणियों से घिरी हुई, निर्जनता (त्याग) की राह पर चल पड़ी।

कुछ भी त्यागने के बाद। (82) [1020]

अपना घर छोड़ने के बाद,

मैं बेघर हो गया।

जब आठ महीने 760 अभी बीते भी नहीं थे

मैंने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (83) [1021]

समुद्र की लहरों की तरह, लोग अनेक प्रकार के मठवासी वस्त्र और भिक्षा लेकर भोजन के लिए आ रहे हैं।

आवश्यकताएँ [साथ ही] आवास। (84) [1022]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (85) [1023]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (86) [1024]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान (महाशक्तियां) प्राप्त कर लीं।

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (87) [1025]

757 या करें: कारती से

758 सधम्म° , प्रकाशित "अच्छी शिक्षा"

759 धम्मेसु सीनानां सदा सद्धम्म-कारिनो

760 aṭṭhamāse , BJTS इसे addhamāse (“आधा महीना”) पढ़ता है

761 पीटीएस बुहुन एके के लिए बीजेटीएस के साथ बहु 'नेके पढ़ना

इस प्रकार अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुख होते हैं;

अब शुद्ध जीवन प्राप्त हो चुका है।

मैंने सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। [1026]762

जो स्त्री स्वयं को महान ऋषि के पुण्य के लिए समर्पित करती है, उसे [उनका] साथ और [अपूर्ण निर्वाण] प्राप्त होता है। [1027]

अतीत पूरी तरह से नष्ट हो गया है, और वर्तमान और भविष्य भी; मेरे सारे कर्म नष्ट हो गए हैं:

मैं आपके चरणों की पूजा करता हूँ, हे दृष्टिपूर्ण।” [1028]

इस प्रकार भिक्खुनी यशोदरा ने ये श्लोक कहे।

यशोदरा थेरी763 की कथा समाप्त हुई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> अपादान >> अपदान 4.1-थेरिस सूची >> 29.यासोवती द्वारा निर्देशित दस हजार भिक्षुणियाँ
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

29. यासोवती के नेतृत्व में दस हजार ननें 764

एक लाख युग [और]

चार अगणनीय [युग]

अतः, दीपांकर, विजेता,

विश्व के नेता का जन्म हुआ। (1) [1029]

महान नायक दीपांकर

मार्गदर्शक ने उस समय भविष्यवाणी की थी कि

सुमेधा और सुमित्ता

सुख और दुख में एक समान रहो। (2) [1030]

देखना और घूमना-फिरना

दुनिया अपने देवताओं समेत, हमसे मिलने में शामिल थी।

[बुद्ध ने] उनके लिए जो भविष्यवाणी की थी। (3) [1031] “तुम,765 [सुमेधा,] सब होगे

762 यह और इसके बाद के समापन श्लोक पीटीएस में नहीं मिलते हैं, और ये असामान्य हैं (हालांकि अद्वितीय नहीं)।

अपदाना के लिए जिसमें व्यक्तिगत कविताएँ आमतौर पर उस चीज़ के साथ समाप्त होती हैं जिसे मैंने "समापन छंद" कहा है (श्लोक)।

85-87) [1023-1025]। दिलचस्प बात यह है कि वे (साथ ही एक और, जो कहीं और भी दोहराया गया है) उसी असामान्य दोहराव के बाद की स्थिति में, नीचे, अपदान #30, यशोधरा के साथ अठारह हजार ननों के श्लोक 57-59 (साथ ही 60) के रूप में दिखाई देते हैं, और उस अपदान के बीजेटीएस संस्करण में भी इसी स्थिति में हैं (श्लोक [1100-1102] साथ ही [1103])।

763 PTS में Therī शब्द शामिल नहीं है, जिसे मैंने BJTS से लिया है।

764 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

765 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

हमारे पति भविष्य में मिले;

हम सब आपके लिए वांछनीय होंगे

पत्नियों से कहो कि तुम्हें क्या प्रिय है। (4) [1032]

यह सब दान-पुण्य और नैतिक मूल्यों, तथा ध्यान का संवर्धन था;

लंबे समय तक हमारा सब कुछ

हे महान ऋषि, इसे त्याग दिया गया है। (5) [1033]

सुगंधित पदार्थ और मलहम, मालाएँ और दीपक, जो शुद्ध सोने से बने थे, जो कुछ भी हम चाहते थे, वह सब हमें मिल जाता था।

हे महान ऋषि, सब कुछ त्याग दिया गया था। (6) [1034]

और हमने जो अन्य कर्म किए हैं, और मनुष्य के सभी सुख, लंबे समय से हमारे लिए सब कुछ हैं।

हे महान ऋषि, इसे त्याग दिया गया है। (7) [1035]

विभिन्न जन्मों में पुनर्जन्म लेते हुए, हमने बहुत अच्छा कर्म किया; [आपको] पति के रूप में अनुभव करते हुए, जन्म-जन्मांतर लेते हुए, (8) [1036]

जब हमारा अंतिम जन्म शाक्यन राजकुमार के घर में हुआ,767 तब हम विभिन्न कुलों में उत्पन्न हुए।

आकर्षक स्वर्गीय अप्सराएँ.768 (9) [1037]

हमने प्रसिद्धि प्राप्त की है, सबसे अधिक लाभ के साथ; हमारी पूजा की जाती है769 और हमारा बहुत सम्मान किया जाता है। हम हमेशा आदरणीय हैं।

खाने-पीने की चीजें प्राप्त करना। (10) [1038]

घर छोड़ने के बाद, बेघर होने की ओर अग्रसर,

जब आठ महीने771 अभी बीते भी नहीं थे,

हम सभी ने निर्वाण प्राप्त किया। (11) [1039]

हमें हमेशा पूजा और सम्मान मिलता है, और हमें खाने-पीने की चीजें मिलती हैं।

766 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

767 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मवास"

768, अर्थात् तैंतीस देवता।

769 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

770 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

771 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

और कपड़े [और साथ ही] रहने की जगह [भी;]

[लोग] हमें सभी आवश्यक वस्तुएँ लाते हैं। (12) [1040]

हमारे 772 दोष अब जलकर नष्ट हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

हम बिना किसी बंधन के जी रहे हैं। (13) [1041]

बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना हमारे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (14) [1042]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [1043]

इस प्रकार, यशोवती के नेतृत्व में दस हजार बौद्ध भिक्षुणियों ने भगवान बुद्ध के समक्ष आमने-सामने इन श्लोकों का पाठ किया।

यशोदरा के नेतृत्व में दस हजार बौद्ध भिक्षुणियों की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 30. अठारह हजार भिक्षुणियों का नेतृत्व यशोधरा ने किया
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

30. यशोदरा के नेतृत्व में अठारह हजार ननों का समूह 773

यशोदरा के नेतृत्व में शाक्यन वंश में जन्मीं अठारह हजार बौद्ध भिक्षुणियां।

संबुद्ध के पास गया। (1) [1044]

वे सभी अठारह हजार महिलाएं महाशक्तियों से परिपूर्ण हैं। ऋषि के चरणों की पूजा करने वाली महिलाएं...

वे अपनी शक्ति की सीमा की घोषणा कर रहे हैं। (2) [1045]

"जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु सब नष्ट हो जाते हैं, हे महान ऋषि; हमें शांतिपूर्ण मार्ग पर ले चलो।"

अमर और अपवित्र। (3) [1046]

यदि शहर में मुसीबत आ जाए, तो हे महान ऋषि, यह सबके लिए भी मुसीबत का कारण बन सकता है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

773 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

वे सब हमारी कमियों को जानते हैं;

नेता, [हमें अपनी] क्षमा प्रदान करें।” (4) [1047]

“[अब] अपनी महाशक्तियों का प्रदर्शन करो, मेरे विधान का पालन करने वालों;

उस हद तक संदेह को दूर करें

सभी सभाओं के बीच।” (5) [1048]

“हम यशोदरा हैं, हे महान वीर; हम मनभावन हैं, मधुर शब्द बोलते हैं। [और] घर में, हे महान वीर,

हम सभी को आपकी प्रमुख रानियों के रूप में नियुक्त किया गया था।774 (6) [1049]

हे वीर, आपके घर में हम ही मुखिया थे, हम ही सबके स्वामी थे।

वहाँ मौजूद [महिलाओं की संख्या]

एक लाख छियानवे। (7) [1050]

हम सभी महिलाएं सौंदर्य और शालीनता के गुणों से संपन्न हैं; युवा, सुस्पष्ट वक्ता, हम आदरणीय हैं।

जैसे देवता775 [लोगों द्वारा पूजे जाते हैं]। (8) [1051]

हम सभी अठारह हजार महिलाएं

शाक्य वंश में जन्मा,

ये प्रसिद्ध हैं,776 [यशोधरा,]

उस समय हजारों के नेता। (9) [1052]

इच्छा के सार से परे, सौंदर्य के सार के रूप में स्थिर,

सुंदरता के मामले में हमारा कोई मुकाबला नहीं है।

अन्य हजारों लोगों के बीच, महान ऋषि।" (10) [1053]

संबुद्ध की उपासना करते हुए, उन्होंने गुरु को महाशक्तियाँ दिखाईं।

उन्होंने महान महाशक्तियाँ प्रदर्शित कीं, विविध, विभिन्न रूपों वाली। (11) [1054]

शरीर ब्रह्मांड जितना विशाल है,779

उन्होंने उत्तर में महाद्वीप 780 बनाया

774 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

775 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

776 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम (बीजेटीएस द्वारा पीटीएस के लिए) °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ: "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

777, अर्थात् तैंतीस देवता।

778 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

779 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

780 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

[उनके] सिर; दोनों अन्य द्वीप पंख; [और बनाया] भारत [उनके] धड़; (12) [1055]

पूंछ के पंख: दक्षिणी महासागर; [अन्य] पंख: विभिन्न नदियाँ;

उनकी आंखें चांद और सूरज थीं।

[उनके] शिखर [थे] ब्रह्मांडीय माउंट मेरु। (13) [1056]

[उनकी] चोंच में, दुनिया के छोर पर स्थित पर्वत,781

वे जड़ों समेत एक पेड़ उठा लाए। उसके पास आकर, उसे पंखा झलते हुए,

वे विश्व के नेता की पूजा कर रहे हैं। (14) [1057]

[तब] उन्होंने अपने लिए 783 हाथी बनाए, उसी प्रकार घोड़े, पहाड़, महासागर भी बनाए।

चंद्रमा और सूर्य, मेरु पर्वत,

और शकरा, [देवताओं का राजा]। (15) [1058]

“हम यशोदराओं की तरह हैं, 784 हीरो;

हम आपके चरणों की पूजा करते हैं, हे दर्शनीय प्रभु।

हे महामहिम, हे नायक,

हम परिपूर्ण हो चुके हैं, हे पुरुषों के नेता। (16) [1059]

हमने “दिव्य श्रवण” जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। हम ही स्वामी हैं, महान ऋषि।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (17) [1060]

हम अपने पूर्व जन्मों को याद करते हैं; हमारी “दिव्य दृष्टियाँ” शुद्ध हो जाती हैं। सभी दोष नष्ट हो जाते हैं;

हम दोबारा जन्म नहीं लेंगे। (18) [1061]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

हमारा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान नायक.785 (19) [1062]

सभी बुद्धों के साथ हमारी मुलाकात,786

विश्व-स्वामियों को [आपके सामने] प्रदर्शित किया गया था;

781 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

782 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

783 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

784 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

785 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

786 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

हमारी व्यापक सेवा [उन्हें]

यह आपके लिए था, हे महान ऋषि। (20) [1063]

हे ऋषि, हमारे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों को याद कीजिए; उनसे हमने पुण्य अर्जित किया था।

हे महान नायक, आपके लिए। (21) [1064]

हमने दुर्व्यवहार से परहेज किया, बाधा डाली 787

[नौ] असंभव स्थान;788

हमने जीवन का बलिदान दिया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (22) [1065]

हमें कई दसियों अरब बार आपकी पत्नियाँ बनने का अवसर दिया गया। हमें इस बात का कोई दुख नहीं था।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (23) [1066]

हमें कई दसियों अरब बार सेवा करने का अवसर दिया गया। हमें इस बात की कोई चिंता नहीं थी।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (24) [1067]

हमें कई दसियों अरब बार भोजन उपलब्ध कराने का दायित्व सौंपा गया था। हमें इस बात की कोई चिंता नहीं थी।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (25) [1068]

हमने तुम्हें अपना सारा जीवन, कई दसियों अरब बार दिया है। हम भय से मुक्त होंगे।

एक बार फिर अपनी जान दे रहे हैं। (26) [1069]

हे महान ऋषि, आपके लिए हम एक स्त्री की चीजों को नहीं छिपाते, विभिन्न प्रकार के कई वस्त्र।

हमारे अंगों पर लगाए गए आभूषण। (27) [1070]

धन-दौलत और अनाज, गाँव और छोटे कस्बे भी त्याग दिए गए हैं।

खेत और बेटे और बेटियाँ [भी]

हे महान ऋषि, त्याग दिया गया है। (28) [1071]

787 puṇṇā ti nāmaŋ

788 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

789 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

790 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

791 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

हाथी, घोड़े, गायें, गुलाम और नौकरानियां असंख्य संख्या में त्याग दिए गए हैं।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (29) [1072]

हमें जो भी देने को कहा जाए

हम भिखारियों को दान के रूप में वह देते हैं;

हमें किसी प्रकार की परेशानी नहीं दिखती।

अंतिम उपहार देने से। (30) [1073]

हमने इस विविध जीवन में अनगिनत प्रकार की 793 बीमारियों का अनुभव किया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (31) [1074]

सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने पर भी हम रोमांचित नहीं होते; हम परेशानियों से विचलित नहीं होते। हम हर जगह संतुलित रहते हैं।

हे महान ऋषि, आपके लिए। (32) [1075]

[दोनों] का अनुभव करने के बाद

मार्ग में सुख और दुख दोनों का सामना करते हुए, महान ऋषि ने ज्ञानोदय प्राप्त किया।

वह शिक्षा जिसके लिए बुद्ध ने प्रयास किया। (33) [1076]

आपके और हमारे द्वारा अन्य विश्व-स्वामियों से बहुत मुलाकातें हुईं, चाहे आप ब्रह्मा हों या कोई और।

गौतम बुद्ध, 799 विश्व के नेता। (34) [1077]

हमने बहुत सारी सेवाएँ प्रदान कीं।

हे महान ऋषि, आपके लिए;

792 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

793 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

794 डांटो , या "वश में किया हुआ"

795 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

796 vimutt'o

797 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

798 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

799 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

जब आप बुद्ध की शिक्षाओं की खोज कर रहे थे,800

हम [हमेशा] आपके सेवक थे। (35) [1078]

एक लाख युग [और]

चार अगणनीय [युग]

अतः, दीपांकर, महान नायक,

विश्व के नेता का जन्म हुआ। (36) [1079]

पास के किसी देश में, उसे आमंत्रित करते हुए, उस दिवंगत आत्मा के प्रसन्न मन वाले लोग सफाई कर रहे हैं।

जिस सड़क से वह आ रहा है। (37) [1080]

उस समय सुमेधा नाम का एक ब्राह्मण था। वह मार्ग तैयार करवा रहा था।

उस सर्वज्ञ के लिए जो आ रहा था। (38) [1081]

उस समय हम सब कुंवारी लड़कियां थीं।

जो ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे;

हम उस सभा में ले गए

पानी में, ज़मीन पर उगाए गए फूल.801 (39) [1082]

ठीक उसी समय महान वीर बुद्ध, दीपांकर ने भविष्य में बुद्धत्व की भविष्यवाणी की।802

[उस] ऋषि के लिए जिसका मन प्रेममय है। (40) [1083]

जब वह अपने कर्मों की प्रशंसा कर रहा था, तब पृथ्वी अपने देवताओं सहित कांप रही थी, गरज रही थी और हिल रही थी।

[उस] ऋषि के लिए जिसका मन प्रेममय है। (41) [1084]

दिव्य कन्याएँ, मानव स्त्रियाँ,

हम और [संपूर्ण विश्व] अपने देवताओं के साथ, विभिन्न वस्तुओं से पूजा करते हुए803

प्रस्तावित किया जाना, 804 हमने इच्छाएँ कीं। (42) [1085]

बुद्ध प्रतिमा जिसका नाम "उज्ज्वल दीपक" है।

800 शाब्दिक अर्थ, " पूजा की "

801 #23, ऊपर

802 शाब्दिक अर्थ में, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश ", शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

803 y'akkho

804 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “वे लोग जिनके पास नहीं है”

उन्होंने [उस समय] उनसे भविष्यवाणी की: “जिन्होंने आज इच्छा की है, वे आमने-सामने [एक साथ पुनर्जन्म लेंगे] ।” (43) [1086]

बुद्ध के वचन से प्रसन्न होकर, हम उसी प्रकार व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत करते थे।

बुद्ध ने असंख्य युगों पहले हमारे लिए भविष्यवाणी की थी। (44) [1087]

जब हमने वह कर्म सफलतापूर्वक पूरा किया तो हमें मन में प्रसन्नता हुई;

हमने अनगिनत गर्भाशयों का अनुभव किया,

दैवीय [साथ ही] मानवीय [वाले]। (45) [1088]

देवताओं और मनुष्यों के बीच सुख और दुख का अनुभव करते हुए, जब हमारा अंतिम पुनर्जन्म हुआ,

हम शाक्यान वंश में पैदा हुए थे। (46) [1089]

सुंदर और अत्यंत धनी, प्रसिद्ध और उतनी ही गुणी; हर योग्यता से संपन्न।

हम कुलों में बहुत सम्मानित हैं। (47) [1090]

धन-दौलत, शोहरत, आतिथ्य सत्कार,

और सांसारिक चीजों में लिप्त होना – ये हमारे मन को विचलित नहीं करते;805

हमें किसी भी चीज से डर नहीं है। (48) [1091]

हमें उपस्थित होने के लिए नियुक्त किया गया था

भगवान बुद्ध ने राजा के हरम में जो कहा था, उस पर

तब क्षत्रिय नगर में। (49) [1092]

हम ऐसी महिलाएं हैं जो नौकरानियां हैं।

और वे लोग जो सुख और दुख का अनुभव करते हैं, और वे महिलाएं जो तथ्यों को प्रकट करती हैं,

जो महिलाएं दयालु हैं। (50) [1093]

शिक्षण-अभ्यास का सही अभ्यास होने पर वह अभ्यास गलत अभ्यास नहीं कहलाता। शिक्षण का अभ्यास करने में हमें सहजता महसूस होती है।

इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में। (51) [1094]

घर छोड़ने के बाद,

805 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

बेघर होने की ओर आगे बढ़ना,

जब आठ महीने807 अभी बीते भी नहीं थे,

हमने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (52) [1095]

समुद्र की लहरों की तरह, लोग अनेक प्रकार के मठवासी वस्त्र और भिक्षा लेकर भोजन के लिए आ रहे हैं।

आवश्यकताएँ [साथ ही] आवास। (53) [1096]

हमारे पाप अब जलकर राख हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

हम बिना किसी बंधन के जी रहे हैं। (54) [1097]

बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना हमारे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (55) [1098]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (56) [1099]

इस प्रकार अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुख होते हैं;

अब शुद्ध जीवन प्राप्त हो चुका है।

हमने सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। (57) [1100]

वे महिलाएं जो महान ऋषि के पुण्य के लिए स्वयं को समर्पित कर रही हैं

उसके साथ संगति प्राप्त करना,809

[और] बिना शर्त निर्वाण.810 (58) [1101]

अतीत पूरी तरह से नष्ट हो गया है, और वर्तमान और भविष्य भी; हमारे सारे कर्म नष्ट हो गए हैं।

हम आपके चरणों की पूजा करते हैं, हे दृष्टिपूर्ण।” (59) [1102]

मैं महिलाओं से और क्या कह सकता हूँ?

806 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

807 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे भिक्खुनी सुक्का पढ़ता है।

808 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

809 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए BJTS के साथ y'e keci हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

810 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

811 सम्मुखा , अर्थात् “एक साथ”

812 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

जो निर्वाण की ओर जा रहे हैं? बद्ध दोषों को शांत करना

आपको अमरता की अवस्था प्राप्त करनी चाहिए।” (60) [1103]

इस प्रकार, यशोदरा के नेतृत्व में अठारह हजार बौद्ध भिक्षुणियों ने इन श्लोकों का उच्चारण किया।

यशोदरा के नेतृत्व में अठारह हजार बौद्ध भिक्षुणियों की कथा समाप्त होती है।

सारांश: कुण्डला, जिसे गोतमी भी कहते हैं,

धम्मदिन्ना और सकुला, 815

उत्कृष्ट नंदा और सोना

कपिलाणी, यशोदरा,

और दस हजार बौद्ध भिक्षुणियाँ [भी] अठारह हजार भिक्षुणियाँ: 816 यहाँ गिने गए श्लोकों की संख्या एक सौ चालीस है

और साथ ही अठहत्तर [और भी]।

कुण्डलकेसा अध्याय, तीसरा

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 31. यासावती द्वारा संचालित अठारह हजार क्षत्रिय युवती बौद्ध भिक्षुणियाँ
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

31. यशवती के नेतृत्व में अठारह हजार क्षत्रिय कन्या बौद्ध भिक्षुणियां 818

खत्तिया अध्याय, 817, चौथा

हे महान ऋषि, हम घोषणा करते हैं कि “संपूर्ण अस्तित्व नष्ट हो गया है; हम अस्तित्व के बंधनों से मुक्त हो गए हैं।”

सभी बहिर्वाह 819 हमारे लिए मौजूद नहीं हैं। 820 (1) [1104]

पिछले अच्छे कर्मों का फल 821,

813 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca (“और आप सभी आपकी सेवा करेंगे”)

814 में जटाम्ह का पाठ बीजेटीएस द्वारा पीटीएस अजता (“हम अजन्मे हैं;” इसका गलत अर्थ है अजतो “वह अजन्मा है”)

815 °putta° शाब्दिक अर्थ, “पुत्र”

816 शाब्दिक रूप से, "हर समय हम नहीं हैं..."

817 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

818 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

819 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

820 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

821, अर्थात् तैंतीस देवता।

जो भी कामना की गई हो,822

यह सब सामान 823 दिया गया है

हे महान ऋषि, आपके लिए।824 (2) [1105]

बुद्धों की इच्छाएँ, एकाकी

बुद्ध और उनके अनुयायियों के बारे में,

यह सब सामान 825 दिया जा चुका है

हे महान ऋषि, आपके लिए।826 (3) [1106]

यह कर्म, चाहे छोटा हो या बड़ा, बौद्ध भिक्षुओं की उत्कृष्ट इच्छा और उच्च पदस्थ कुलों की सेवा है।

हमारे द्वारा किया गया है,827 हे महान ऋषि.828 (4) [1107]

उस पुण्यकारी मूल से प्रेरित होकर, उस कर्म का फल भोगते हुए, सभी मनुष्यों से श्रेष्ठ होते हुए,

हम क्षत्रिय वंश में पैदा हुए थे। (5) [1108]

[हमेशा] साथ में जन्म लेते हैं, जब कर्म पूरा हो जाता है, और जाति के अनुसार, इस अंतिम [जन्म] में 831 एक साथ जन्म लेते हैं।

[हम] क्षत्रिय हैं, 832 कुलों में जन्मे। (6) [1109]

हे महान वीर, हरम में

मानो देवताओं के [बगीचे] "आनंद" में, [हम] सुंदर हैं, बहुत धनी हैं,

सम्मान और पूजा प्राप्त करना.833 (7) [1110]

थककर हम घर से निकलकर बेघर हो गए। कुछ दिन वहीं रुके रहे,

हम सभी ने निर्वाण प्राप्त किया। (8) [1111]

लोग बहुत सारे उपहार ला रहे हैं।

822 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

823 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

824 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

826 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

827 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

828 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

829 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

830 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

831 puṇṇā ti nāmaŋ

832 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

833 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्निका के लिए

मठवासी वस्त्र और भोजन के लिए भिक्षा, आवश्यक वस्तुएँ [साथ ही] आवास;

हम हमेशा सम्मानित और पूजे जाते हैं।834 (9) [1112]

हमारे पाप अब जलकर राख हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

हम बिना किसी बंधन के जी रहे हैं। (10) [1113]

बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना हमारे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [1114]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (11) [1115]

इस प्रकार अठारह हजार क्षत्रिय कन्या बौद्ध भिक्षुणियाँ

यशवती के नेतृत्व में इन श्लोकों का उच्चारण किया गया।

अठारह हजार क्षत्रिय बौद्ध भिक्षुणियों की कथा

यशवती द्वारा निर्देशित नाटक का समापन हो चुका है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 32. चौरासी हजार ब्राह्मण युवती नन
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

32. चौरासी हजार ब्राह्मण कन्या ननें 835

हे महान ऋषि, आपके नगर में 836 लोग हैं

चौरासी हजार [युवतियां,]

बहुत कोमल हाथों और पैरों से,

जो ब्राह्मण वंश में जन्मे हैं। (1) [1116]

हे महान ऋषि, आपके नगर में हर देश से कई कन्याएँ हैं, जो वैश्य और शूद्र वंश में जन्मी हैं।

और देवता, सर्प-देवता और किन्नर । (2) [1117]

उनमें से कुछ लोग पहले ही निकल चुके हैं;

कई लोगों को सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त है;

834 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

835 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

836 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

837 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

838 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

देवता, किन्नर और नाग देवता

भविष्य में इसका आनंद लेंगे। (3) [1118]

हर तरह की प्रसिद्धि का अनुभव करना, हर उपलब्धि हासिल करना,

[जिन्होंने] आपमें आनंद प्राप्त किया है, वे भविष्य में भी इसका आनंद उठाएंगे। (4) [1119]

और 840 हम ब्राह्मणों की पुत्रियाँ हैं, जो ब्राह्मण कुलों में जन्मी हैं। हमारी इच्छा से, 841 हे महान ऋषि,

हम आपके चरणों की पूजा करते हैं, हे दृष्टिपूर्ण प्रभु। (5) [1120]

सभी अस्तित्वों तक पहुँच चुके हैं, 842 लालसाओं को जड़ से उखाड़ दिया गया है; सुप्त प्रवृत्तियों को काट दिया गया है।

योग्यता[-आधारित] समुच्चय टूट गया। (6) [1121]

सभी चरागाह ध्यान में,843

इसी प्रकार परिवर्तित अवस्थाओं में महारत हासिल कर ली है;844

हम हमेशा आनंदमय जीवन जिएंगे

परिवर्तित अवस्थाओं के माध्यम से शिक्षण में.845 (7) [1122]

अस्तित्व से संबंध, अज्ञानता,

सभी तत्व भी त्याग दिए जाते हैं। हे नेता, हम यहाँ से जाने के बाद जन्म लेते हैं।

रास्ते में देखना बहुत मुश्किल है। (8) [1123]

“बहुत समय से तुम मेरे 846 सेवक रहे हो, जो करना आवश्यक है वो करते रहे हो। बहुतों के संदेह दूर करते हुए,

आप सभी निर्वाण प्राप्त करें। (9) [1124]

ऋषि के चरणों की पूजा करने के बाद,

उन्होंने अपनी महाशक्तियों का प्रदर्शन किया।847

कुछ में [बहुत तेज रोशनी] दिखाई दे रही है।

और उसके बाद अंधेरा कर दिया। (10) [1125]

वे चंद्रमा और सूर्य को दिखा रहे हैं।

839, अर्थात् तैंतीस देवता।

840 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

841 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

842 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

844 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

845 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

846 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

847 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

और विशाल महासागर अपनी मछलियों के साथ;

वे माउंट मेरु और उसे दिखा रहे हैं

कोरल ट्री 848 [स्वर्ग में,] घेरा हुआ। (11) [1126]

महाशक्ति के माध्यम से वे दिखा रहे हैं

तावतिंसा और यम क्षेत्र, तुसिता [और] निम्मिता देवता,

[और] वासवत्ती महान स्वामी। (12) [1127]

कुछ चित्र ब्रह्मा [देवताओं] को दर्शा रहे हैं।

और एक बहुत ही महंगा पैदल मार्ग;

स्वयं को ब्रह्मा के समान दिखाने का प्रयास करना

वे उस धम्म का प्रचार करते हैं जो निरर्थक है।850 (13) [1128]

विभिन्न रूपांतरण करते हुए, बुद्ध की 851 महाशक्तियों का प्रदर्शन करते हुए,

उन सभी ने अपनी ताकत का प्रदर्शन किया।

[तब उन्होंने] शिक्षक के चरणों की पूजा की। (14) [1129]

हमने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। हम ही स्वामी हैं, महान ऋषि।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (15) [1130]

हम अपने पूर्व जन्मों को याद करते हैं; हमारी "दिव्य दृष्टियाँ" शुद्ध हो जाती हैं। सभी दोष नष्ट हो जाते हैं;

हम पुनर्जन्म नहीं लेंगे। (16) [1131]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

हमारा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान नायक।852 (17) [1132]

विश्व के सभी भगवानों, बुद्धों के साथ हमारी 853वीं मुलाकात आपको दिखाई गई; उनके प्रति हमारी व्यापक सेवा का भी वर्णन किया गया।

यह आपके लिए था, हे महान ऋषि। (18) [1133]

हे ऋषि, अपने अच्छे कर्मों को याद कीजिए।

848 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

849 puṇṇā ti nāmaŋ

850 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

851 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

852 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

853 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

जो काम पहले हम करते थे; वह पुण्य हमने अर्जित किया था।

हे महान नायक, आपके लिए। (19) [1134]

एक लाख युगों बाद

पदुमुत्तरा ऋषि थे।854

हंसवती नामक नगर

वह बुद्ध के वंश का घर था। (20) [1135]

गंगा नदी हमेशा हंसवती के द्वार से होकर बहती है।

बौद्ध भिक्षु नदी से परेशान हैं, आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। (21) [1136]

एक दिन, फिर दो, फिर तीन, उसके बाद एक सप्ताह, फिर एक महीना।

फिर पूरे चार महीने [हो सकते हैं]

वे भिक्षु], आगे बढ़ने में असमर्थ। (22) [1137]

तब भविष्य के बुद्ध 857 एक स्थानीय नेता थे, 858 जिनका नाम जटिला था।

उन फंसे हुए बौद्ध भिक्षुओं को देखकर

उन्होंने नदी पर एक पुल बनाया।860 (23) [1138]

फिर, एक लाख [खर्च करके,]

नदी पर बना पुल, he861

उसके लिए एक मठ बनाया

निकटवर्ती तट पर सभा। (24) [1139]

महिलाएं और पुरुष दोनों,

उच्च और निम्न स्थिति वाले कुलों से,

854 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

855 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

856 डांटो , या "वश में किया हुआ"

857 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

858 vimutt'o

859 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

860 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

861 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

862 [धन] समान शेयरों के लिए प्रदान किया गया

उसके पुल और मठ में। (25) [1140]

हम और दूसरी महिलाएं भी,

शहर और ग्रामीण इलाकों में,

जिनका दिमाग बहुत ही स्पष्ट था,

वे उस कर्म के [सही] उत्तराधिकारी थे। (26) [1141]

महिलाएं [और] पुरुष863 और लड़के [भी,]

और साथ ही कई युवा लड़कियां भी,

[एक साथ जुड़कर] अपने पुल और मठ के लिए [साफ] रेत फैलाई। (27) [1142]

सड़क की सफाई करना, झंडे बनाना, केले के बैनर बनाना, 864 प्रचुरता के बर्तन बनाना, 865 और शिक्षक का सम्मान करना

धूप, कुन्नम और मालाओं के साथ, (28) [1143]

मठ बनाने के बाद

और पुल ने, व्यापक दान देने के बाद, मार्गदर्शक को आमंत्रित किया।

he866 जागृति की आकांक्षा रखता था.867 (29) [1144]

पद्ममुत्तरा, महान नायक,

सांस लेने वाले सभी जीवों में से क्रॉसर-ओवर868

महान ऋषि ने [बोधिसत्व] जटिला को धन्यवाद दिया:870 (30) [1145]

“जन्म-जन्मांतर से गुजरते हुए,

जब एक लाख [युग]

बीत चुके हैं, [भाग्यशाली] युग में, वह ज्ञानोदय प्राप्त करेगा। (31) [1146]

इन पुरुषों और महिलाओं ने व्यवस्था की है

862 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

863 #23, ऊपर

864 शाब्दिक अर्थ, " बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।" धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है " धम्म की अंतर्दृष्टि", " धम्म में प्रवेश ", " धम्म की समझ " , या "धम्म में प्रवेश ", शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

865 y'akkho

866 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “जिनके पास नहीं है”

867 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

868 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

869 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे bhikkhunī Sukkā पढ़ता है।

870 रीडिंग "k'ā'si' 'jaṭilassa with BJTS for PTS kāsi-jaṭilassa , see previous note

हाथ से 871 क्या काम करना था, क्या सब कुछ भविष्य में 872 अभी आना बाकी है

आमने-सामने होना.873 (32) [1147]

उस कर्म के फलस्वरूप,

इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ किया गया, देवताओं के स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ।

वे सब आपके परिचारक होंगे।"874 (33) [1148]

जन्म-जन्मांतर तक, हमने लंबे समय तक अनगिनत वर्षों के दिव्य आनंद का अनुभव किया।

और अनगिनत [ऐसे] मानव [पुनर्जन्म]। (34) [1149]

एक लाख युगों तक, अच्छे कर्मों की प्राप्ति से, हम पुरुषों के बीच कोमल कन्याएँ हैं; इसी प्रकार

देवताओं के शानदार शहर में। (35) [1150]

सुंदर, धनी और प्रसिद्ध होने के साथ-साथ प्रशंसित और सम्मानित भी, हमें निरंतर प्रशंसा और सम्मान प्राप्त होता रहता है।

[कि] अच्छे कर्मों की प्राप्ति। (36) [1151]

जब हमारा अंतिम पुनर्जन्म हुआ, तो हम ब्राह्मण कुल में, अत्यंत कोमल हाथों और पैरों के साथ जन्म लेते हैं।876

शाक्यान राजकुमार के घर में.877 (37) [1152]

हम पृथ्वी को कभी भी बिना सजावट के नहीं देख रहे हैं।

और हमें कीचड़ भरी सड़कें दिखाई नहीं देतीं।

[जब] उन्हें साफ नहीं किया गया है,879 महान ऋषि। (38) [1153]

जब हम उस घर में रहते थे, तो हमारा हमेशा सम्मान किया जाता था; वे हमेशा सब कुछ लाते रहते थे।

871 पीटीएस केसी हत्थापदाओन ("कुछ, हाथ [और] पैर") के लिए बीजेटीएस के साथ आप केसी हत्थपरिकम्मम पढ़ रहे हैं

872 शाब्दिक रूप से, "भविष्य में" (एकवचन)

873 सम्मुखा , अर्थात् "एक साथ"

874 तुयहम , संभवतः बोधिसत्व को संबोधित करते हुए।

875 पठन anubhontī ciraṃ kālaṃ with BJTS for PTS tuyhaŋ vo paricāre ca ("और आप सभी आपकी सेवा करेंगे")

876 रीडिंग जटाम्ह (बीजेटीएस के साथ पीटीएस अजता के लिए) ("[हम] अजन्मे हैं;" इसका बुरा अर्थ है अजतो "वह अजन्मा है")

877 °पुत्ता° शाब्दिक अर्थ, "पुत्र"

878 शाब्दिक रूप से, "हर समय हम नहीं हैं..."

879 रीडिंग cikkhallabhūmimasuciṃ with BJTS for PTS cikkhallabhūmiŋ gamanaŋ ("कीचड़ भरे रास्तों पर जाना")

हमारे पिछले कर्मों की शक्ति के माध्यम से।880 (39) [1154]

अपने घरों को छोड़कर बेघर होने के बाद,

हमने पुनर्जन्म का मार्ग पार कर लिया है;881

हम वासना से मुक्त हो गए हैं।882 (40) [1155]

वे हर समय हमारे लिए मठवासी वस्त्र और भोजन के लिए भिक्षा लाते रहते हैं, साथ ही आवश्यक वस्तुएं और आवास भी उपलब्ध कराते हैं।

हजारों की संख्या में और अधिक से अधिक।883 (41) [1156]

हमारे पाप अब जलकर राख हो गए हैं;

सभी [नए] अस्तित्व नष्ट हो जाते हैं। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

हम बिना किसी बंधन के जी रहे हैं। (42) [1157]

बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना हमारे लिए बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (43) [1158]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

हमने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (44) [1159]

इस प्रकार वास्तव में चौरासी हजार ब्राह्मण बौद्ध भिक्षुणियों ने इन श्लोकों का उच्चारण किया।

चौरासी हजार ब्राह्मण बौद्ध भिक्षुणियों की कथा समाप्त हो गई है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपदान4.1-थेरिस सूची >> 33. उप्पलादायिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

33. उप्पलादायिका 884

अरुणावती नगर में,

क्षत्रिय अरुण रहते थे।

मैं उस राजा की पत्नी थी;

880 reading pubbakammabalena no with BJTS for PTS pubbakammaphalan tato ("after the fruit of previous karma")

881 संसारपथ-नित्तिना

882 पाठ vītarāgā bhavāmase with BJTS (and PTS alt.) for PTS n'atthi dāni punabbhavo ("अब कोई पुनर्जन्म नहीं होगा")

883 t'ato tato

884 "पत्थर," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

उस स्थान पर885 मैं अभ्यास कर रहा था.886 (1) [1160]

अकेले जाकर बैठ जाने पर मैंने इस पर इस प्रकार विचार किया: "मैंने कोई अच्छा कर्म नहीं किया है।"

अपनी यात्रा पर साथ ले जाने के लिए।888 (2) [1161]

तो क्या मैं नरक में नहीं जा रहा हूँ, जो धधकती हुई लाल आग की तरह जल रहा है, अत्यंत क्रूर है?

एक भयानक रूप के साथ, और कड़वा?

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है।" (3) [1162]

इस प्रकार सोच-विचार करने के बाद, राजा के पास जाकर मुझे जो प्रसन्नता हुई,

मैंने उससे ये शब्द कहे [विनती करते हुए:] (4) [1163]

"हे राजा, 889 हम [जिन्हें] "स्त्री" कहा जाता है"

हमेशा हमारे आदमियों के पीछे-पीछे चलो।890

मुझे एक बौद्ध भिक्षु दे दीजिए;

मैं उसे भोजन कराऊंगा, हे क्षत्रिय।" (5) [1164]

उस समय राजा ने मुझे दिया

एक भिक्षु जिसकी इंद्रियां [अच्छी तरह से] नियंत्रित थीं। भिक्षापात्र उठाने के बाद,

मैंने इसे उत्कृष्ट भोजन से भर दिया। (6) [1165]

इसे उत्तम भोजन से भरकर, एक हजार रुपये मूल्य का एक उत्तम वस्त्र उतारकर,

मैंने इसे प्रसन्न मन से दिया। (7) [1166]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (8) [1167]

मुझे देवताओं के एक हजार राजाओं की प्रधान रानी के स्थान पर स्थापित किया गया था।

मुझे मुख्य रानी के पद पर नियुक्त किया गया था।

885 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

886 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

887 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

888, अर्थात् तैंतीस देवता।

889 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

890 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

891 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

एक हजार पहिए घुमाने वाले राजाओं का। (9) [1168]

[वहाँ] स्थानीय शासन भी बहुत अधिक था, जिसकी गिनती करना असंभव था,892

[और भी बहुत कुछ था],893 विविध

इसके बाद उस कर्म का फल। (10) [1169]

मैं हमेशा नीले कमल के रंग की, बहुत सुंदर, आकर्षक हूँ।

एक स्त्री जो हर तरह से परिपूर्ण है,

कुलीन जन्म [और] तेजस्वी.894 (11) [1170]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म हुआ

मैं शाक्यान वंश में जन्मी थी, जो एक हजार महिलाओं की मुखिया थी।

सुद्धोदना के पुत्र से संलग्न.895 (12) [1171]

घर में ऊबकर मैं बेघर हो गया। सातवीं रात आने से पहले ही मैं घर से बाहर निकल गया।896

मैंने चार [महान] सत्यों को प्राप्त किया। (13) [1172]

मुझे प्राप्त उपहारों, मठवासी वस्त्रों, भोजन के लिए दान, आवश्यक वस्तुओं और आवासों की गिनती नहीं कर सकता।

यह भिक्षा देने का फल है।897 (14) [1173]

हे ऋषि, मेरे द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों को याद कीजिए; मैंने अपने बहुत से कर्मों का बलिदान दिया है।

हे महान नायक, आपके लिए। (15) [1174]

पिछले इकत्तीस युगों में

मैंने उस समय दान दिया था, मुझे कभी बुरे पुनर्जन्म का अनुभव नहीं हुआ:

यह भिक्षा देने का फल है।898 (16) [1175]

मैं [केवल] दो अवस्थाओं में ही पुनर्जन्म लेता हूँ:

एक देवी या एक महिला के रूप में।

892 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

893 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

894 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

895 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

896 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

897 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

898 puṇṇā ti nāmaŋ

मुझे अन्य पुनर्जन्मों के बारे में जानकारी नहीं है;

यह भिक्षा देने का फल है। (17) [1176]

[जब मैं इंसान था] मैं उच्च कुलों में पैदा हुआ हूँ, जिनके पास बड़े-बड़े हॉल हैं, बहुत धनी हैं;

मैं छोटे कबीलों को नहीं देखता:

यह भिक्षा देने का फल है। (18) [1177]

जन्म-जन्मांतर करते हुए, अपनी पवित्र जड़ों से प्रेरित होकर, मुझे वह कुछ भी नहीं दिखता जो मुझे अप्रिय लगे:

प्रसन्न मन से किए गए कर्मों का फल। (19) [1178]

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (20) [1179]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (21) [1180]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान वीर। (22) [1181]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [1182]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [1183]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [1184]

इस प्रकार, भिक्षुणी उप्पलादायिका ने भगवान बुद्ध के समक्ष इन श्लोकों का उच्चारण किया।

एक।

899 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

900 बीजेटीएस रीडिंग, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

भिक्खुनी उप्पलादायिका की कथा समाप्त हो गई है

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

34. सिगालका-माता901

विजेता, पद्ममुत्तरा, सर्वज्ञ थे। वह नेता संसार में प्रकट हुए।

एक लाख युगों बाद। (1) [1185]

मेरा जन्म हंसवती में हुआ था।

मंत्रियों के एक कुल में,

धनी, समृद्ध, अत्यंत धनी, विभिन्न रत्नों से जगमगाता हुआ। (2) [1186]

अपने पिता के साथ चलते हुए, चारों ओर भीड़ से घिरे हुए,

बुद्ध की शिक्षा सुनकर,

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (3) [1187]

आगे बढ़ने के बाद मैंने शरीर सहित अपने बुरे कर्मों का त्याग कर दिया।

मैंने अपने जीवन जीने के तरीके को शुद्ध किया।

भाषण के माध्यम से खराब आचरण को छोड़कर। (4) [1188]

बुद्ध, उनकी शिक्षाओं और उनसे प्रसन्न होकर

सभा; उत्सुक, सम्मानजनक,

महान शिक्षाओं को सुनने का आदी;

मुझे बुद्ध के दर्शन करने की तीव्र इच्छा है। (5) [1189]

फिर मैंने एक बौद्ध भिक्षुणी के बारे में सुना, जो आस्था के माध्यम से मुक्ति पाने वालों में अग्रणी थीं।902

उस स्थान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हुए,

फिर मैंने तीनों प्रशिक्षण पूरे किए।903

दया चाहने वालों के लिए विश्राम, 904

इसके बाद, जाने वाले ने यह कहा: (6, 7ए-बी) [1190]905

“वह व्यक्ति जिसकी आस्था तथागत में दृढ़ है, जो डगमगा नहीं है,

901 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

902 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

903 का'स्सपे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कस्पा (बुद्ध) की व्यवस्था में"

904 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

905, अर्थात् तैंतीस देवता।

906 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

और जिनके नैतिक मूल्य907 सुंदर हैं,

कुलीन लोगों को प्रिय, और प्रशंसित; (7सी-डी, 8ए-बी) [1191]

जिसकी अंतर्दृष्टि निष्पक्ष है और जिसे सभा में आनंद मिलता है:

ऐसा कहा जाता है, "वह दुखी नहीं है;"

उसका जीवन व्यर्थ नहीं माना जाता। (8सी-डी, 9ए-बी) [1192]

इसलिए, हे बुद्धिमानों, अपने आप को समर्पित करो।

आस्था और नैतिकता के लिए,

धम्म की ओर - अंतर्दृष्टि और आनंद;909

बुद्ध के उपदेश का सार।" (9सी-डी, 10ए-बी) [1193]

यह सुनकर, अत्यंत प्रसन्न होकर,

मैंने उनसे अपनी इच्छा के बारे में सवाल किया।

फिर सर्वोच्च,910 असीम,911

गाइड,912 ने [इस तरह से] भविष्यवाणी की: (10सी-डी, 11ए-बी) [1194]

"सुंदर स्त्री, बुद्ध में प्रसन्न,913

आपको वह शुभ मनोकामना पूरी होगी। एक लाख युगों में।

ओक्काका के वंश में उत्पन्न,

जिसका नाम गौतम है

वह संसार में शिक्षक होगा। (11सी-डी, 12) [1195]

उस व्यक्ति के धर्म का योग्य उत्तराधिकारी ,

धम्म की वैध संतान को उसने सिगालक की माता नाम दिया।

शिक्षक का अनुयायी होगा।" (13) [1196]

यह सुनकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई कि मैं प्रेम से भरे हृदय से जीवन भर सेवा करता रहूँगा।

विक्टर, गाइड, मेरे अभ्यासों के माध्यम से।914 (14) [1197]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

907 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

908 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

909 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

910 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

911 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

912 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

913 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

914 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

मैं तब तावतिंसा गया। (15) [1198]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, गिरिब्बाजा में, 915 सर्वश्रेष्ठ शहर,

मैं अमीर करोड़पतियों के परिवार में पैदा हुआ था।

बहुत अधिक मात्रा में रत्नों के साथ। (16) [1199]

मेरे बेटे का नाम सिगालका था, जो गलत रास्ते पर चलने में आनंद लेता था और दृश्यों के जंगल में खो जाता था।

दिशाओं की पूजा करने के लिए उत्सुक। (17) [1200]

सड़क पर खड़े होकर, मार्गदर्शक बुद्ध ने उसे शहर की ओर आते हुए देखकर सलाह दी और उसकी प्रशंसा की।

निर्देश 917 भोजन के गोले के साथ। (18) [1201]

जब वे धम्म का उपदेश दे रहे थे , तब आनंद की अद्भुत चीखें सुनाई दीं; बीस मिलियन पुरुष और महिलाएं

शिक्षण में अंतर्दृष्टि प्राप्त की।921 (19) [1202]

फिर भीड़ में जाकर,

वेल-गॉन-वन का भाषण सुनकर, धारा-प्रवेश का फल प्राप्त करके,

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (20) [1203]

कुछ ही समय बाद, बुद्ध के दर्शन की तीव्र इच्छा से, उनके माध्यम से ध्यान को परिष्कृत करते हुए,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (21) [1204]

मैं बुद्ध के दर्शन के लिए प्रतिदिन 923 बजे जाता हूँ। मुझे उन्हें देखकर संतुष्टि नहीं मिलती।

केवल [उसका] आँखों को भाने वाला शरीर,924 (22) [1205]

सभी पूर्णताओं द्वारा निर्मित,

915 puṇṇā ti nāmaŋ

916 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

917 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

918 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

919 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

920 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

921 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

922 डांटो , या "वश में किया हुआ"

923 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

924 vimutt'o

सौभाग्य का उत्कृष्ट आश्रय स्थल,

उनका शरीर, सभी अच्छाइयों से परिपूर्ण था:

असंतुष्ट, मैं रह रहा हूँ 925 [वहाँ]। (23) [1206]

विजेता उस सद्गुण से प्रसन्न होकर मुझे उस सर्वोपरि स्थान पर बिठाया: "सिगालक की माता"

विश्वास द्वारा मुक्त किए गए लोगों में सबसे आगे।"926 (24) [1207]

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (25) [1208]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (26) [1209]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

हे महान वीर, आपकी उपस्थिति में। (27) [1210]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (28) [1211]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (29) [1212]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

925 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

926 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (30) [1213]

इस प्रकार वास्तव में भिक्खुनि सिगलाका-माता ने ये श्लोक कहे।

सिगलका-माता थेरी927 की कथा समाप्त हो गई है

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 35. सुक्का
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

35. सुक्का 928

इक्यावन युग पहले

नेता, जिसका नाम विपस्सी था, उठा, जो देखने में सुंदर था।

वह जिसकी निगाहें हर चीज़ पर टिकी हैं। (1) [1214]

मैं उस समय बंधुमती में था।

एक साधारण कुल में जन्म हुआ। ऋषि की शिक्षा सुनकर,

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (2) [1215]

शिक्षा की विद्वान वाहक, कुशल उपदेशक, विविध प्रवचन देने वाली, मैं एक ऐसी नन थी जिसने अभ्यास किया।

बुद्ध का विधान। (3) [1216]

फिर जनता के साथ मित्रतापूर्ण ढंग से अनेक धम्म प्रवचन देने के बाद, वहीं से मेरा पुनर्जन्म हुआ।

तुसिता में वैभव से परिपूर्ण। (4) [1217]

इकत्तीस युगों बाद, सिख धर्म।

आग का ढेर, 930 प्रसिद्धि की धधकती आग, विजेता, सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता,

[बुद्ध,] 931 में दुनिया में अवतरित हुए। (5) [1218]

उसी समय आगे बढ़ते हुए, बुद्ध के उपदेशों में निपुण होकर, विजयी के वचनों को प्रकाशमान करते हुए,

फिर मैं तीस [देवताओं] के पास गया। (6) [1219]

नेता का नाम भी वेस्साभू था।

यह घटना इकत्तीस युगों बाद उत्पन्न हुई।

927 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

928 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

929 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

930 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

931 रीडिंग °ब्रह्मचरियम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

और तब भी मैं वही था:932

[एक बौद्ध भिक्षुणी] विशाल ज्ञान के साथ। (7) [1220]

मैं धर्म का वाहक बनकर आगे बढ़ा हूँ ।

बुद्ध के 933वें उपदेश को प्रकाशमान किया। सुंदर देवताओं के नगर में चले गए।

मुझे बहुत आराम मिला। (8) [1221]

इस [वर्तमान] शुभ युग में, सर्वोच्च विजेता काकुसंध, 934 का उदय हुआ, उत्कृष्ट तेंदुआ, 935

और तब भी मैं वैसा ही था। (9) [1222]

आगे बढ़ गया, [मैं] प्रकाशित

ऋषि का विचार, जीवन भर रहेगा।936

वहाँ से गिरने के बाद, मैं इतनी दूर चला गया

तीस [देवताओं] के क्षेत्र के रूप में। (10) [1223]

और इसी युग में नेता कोनागमना

इसके बाद उत्कृष्ट दीपक 937 प्रकट हुआ।

सभी प्राणियों में सर्वोच्च। (11) [1224]

उस समय भी, तटस्थ धर्म के मार्ग पर चलते हुए, हे धम्म के विद्वान वाहक , मैं

बुद्ध के 938 उपदेश को प्रकाशमान किया। (12) [1225]

इस [भाग्यशाली] युग में भी

कस्सपा [बुद्ध,] सातवें ऋषि, उठे, जगत के शरणस्थल,939

गैर-शत्रुतापूर्ण एक, 940 मृत्यु का अंत.941 (13) [1226]

व्यवस्था में आगे बढ़ गया

उस हीरो अमंग मेन942 का भी,

932, अर्थात् तैंतीस देवता।

933 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

934 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

935 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

936 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

937 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

938 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

939 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

940 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

941 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

942 puṇṇā ti nāmaŋ

मैंने अच्छी शिक्षा को कंठस्थ कर लिया, पूछताछ में आत्मविश्वास था, (14) [1227]

बहुत नैतिक, साथ ही विनम्र भी।

तीनों प्रशिक्षणों में [अत्यंत] कुशल,943

धम्म पर अनेक प्रवचन देते हुए

जब तक मैं जीवित रहा, मित्रता के साथ।944 (15) [1228]

उस कर्म के फलस्वरूप, अच्छे इरादे और दृढ़ संकल्प के साथ, अपने मानव शरीर का त्याग करने के कारण,

मैं तब तावतिंसा गया। (16) [1229]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, गिरिब्बाजा में, 945 सर्वश्रेष्ठ शहर,

मैं अमीर करोड़पतियों के परिवार में पैदा हुआ था।

बहुत अधिक मात्रा में रत्नों के साथ। (17) [1230]

जब विश्व के नेता गौतम एक हजार भिक्षुओं से घिरे हुए राजगीर नगर में प्रवेश किया, तब

हजार आंखों वाले [ईश्वर:]948 (18) [1231] द्वारा प्रशंसा की गई

"संयमित व्यक्ति,949 पूर्व तपस्वियों950 के साथ संयमित;

मुक्त व्यक्ति,951 उन मुक्त लोगों के साथ;

[जिसका रंग] सोने के सिक्के जैसा था, भगवान राजगृह नगर में प्रवेश कर गए।" (19) [1232]953

बुद्ध की महिमा देखकर,

943 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

944 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

945 पाठ महामुने (भाषण) बीजेटीएस के साथ पीटीएस तदा मुनि ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

946 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

947 या गिरिब्बाजा, यहां राजगहां

948 सहसक्खेना , अर्थात्, देवताओं के राजा शक्र/इंद्र

949 डांटो , या "वश में किया हुआ"

950 पुराणजतिलेहि , शाब्दिक अर्थ, "पूर्व जटाधारी [तपस्वी]"

951 vimutt'o

952 Siṅgī-nikkha-savaṇṇo , शाब्दिक रूप से, "सुनहरे/अदरक के सिक्के के समान रंग वाला;" निक्खा एक आभूषण या एक भार भी हो सकता है। वैसे भी, जोर इस बात पर है कि बुद्ध सोने की तरह चमकदार थे।

953 ये पंक्तियाँ (PTS में 41 शब्दांश, BJTS में 40 शब्दांश [जो purāṇajaṭilehi के बाद ca को छोड़ देता है]) पूर्व-

पीटीएस और बीजेटीएस दोनों ने इसे एक ही श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है, हालांकि वे दो-चरणों वाली पंक्तियों को अलग-अलग तरीके से तोड़ते हैं और मैं इस "श्लोक" को छंद के अनुसार समझने में असमर्थ हूँ। क्या यह किसी गद्य पाठ का उद्धरण है? क्या यह अधिक जटिल छंद में लिखा गया कोई श्लोक है, जो प्रसारण के दौरान विकृत हो गया हो? मैंने अपदान में बाद वाली संभावना के सबसे निकट अनुवाद किया है , अर्थात् एक 12-12-12-12 श्लोक (जो प्रसारण प्रक्रिया में अपेक्षाकृत पहले सात अक्षरों [पीटीएस के पाठ के मामले में] या आठ अक्षरों [बीजेटीएस के पाठ के मामले में] के संभावित लोप का संकेत देता है (क्योंकि यह सभी मौजूदा पांडुलिपियों को प्रभावित करता है)। अपदान में कहीं और कभी-कभी पाए जाने वाले श्लोक-रूप के अनुरूप होने के अलावा , यह अंतर्निहित 12-12-12-12 संरचना उन मूल इकाइयों के लिए बहुत अच्छी तरह से काम करती है जो फिर चार अलग-अलग चरणों का निर्माण करती हैं।

और उसे सुनकर, गुणों का ढेर, 954

बुद्ध में मेरी रुचि जगाते हुए,

मैंने पूरी शक्ति से उसकी पूजा की। (20) [1233]

इसके कुछ समय बाद, धम्मदिन्ना की उपस्थिति में,956

अपने घर से निकल जाने के बाद,

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (21) [1234]

बाल कटते समय मैंने सभी अशुद्धियों को नष्ट कर दिया। आगे बढ़ते हुए, कुछ ही समय में, मैंने सीख लिया।

[बुद्ध का] संपूर्ण प्रवचन। (22) [1235]

उसके बाद मैंने धम्म का प्रचार किया।

लोगों की एक विशाल सभा में।

जब धम्म का प्रचार किया जा रहा था, तब शिक्षा में अंतर्दृष्टि थी।957 (23) [1236]

हजारों लोगों को [अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हुए] देखकर, आश्चर्यचकित होकर, एक आत्मा,958 मुझसे बहुत प्रसन्न हुई,

राजगीर में घूमते हुए [यह कहा]: (24) [1237]

राजगीर के ये लोग शहद से मदहोश अप्सराओं की तरह क्यों व्यवहार कर रहे हैं, जब तक कि वे सुक्का का सम्मान नहीं कर रहे हों?

अमृतमय अवस्था का उपदेश कौन दे रहा है? (25) [1238]

मुझे लगता है कि बुद्धिमान लोग उस अप्रतिरोध्य और शुद्ध पेय का सेवन कर रहे हैं।

यात्रियों की तरह शक्ति प्रदान करने वाला

[बारिश के बादल से बारिश का पानी पीना]। (26) [1239]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

[जैसे] “दिव्य कान” तत्व।

954 t'aŋ...'guna'sañc'a'y'aŋ

955 शाब्दिक रूप से, “पूजा की ”

956 #23, ऊपर

957 शाब्दिक अर्थ, “ बीस मिलियन लोगों को धम्म की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई ।” धम्मभिशमय , जिसका अर्थ है “ धम्म की अंतर्दृष्टि”, “ धम्म में प्रवेश ”, “ धम्म की समझ ” , या “धम्म में प्रवेश ” , शिक्षा के मूल तत्वों पर दृढ़ पकड़ प्राप्त करना। बुद्धवंश में प्रत्येक बुद्ध के विवरण में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है , जो वहां वर्णित बुद्ध-उपलब्धियों की कई श्रेणियों में से एक है।

958 y'akkho

959 y'e...na , शाब्दिक अर्थ, “वे लोग जिनके पास नहीं है”

960 PTS में payirupāsanti छंद को तोड़ता है; BJTS में upāsanti ऐसा नहीं करता। दोनों मूलतः एक ही क्रिया हैं, पहले वाले में अतिरिक्त pari < payir लगा हुआ है।

मैं भी एक गुरु हूँ, महान ऋषि, 961

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (27) [1240]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (28) [1241]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

हे महान वीर, आपकी उपस्थिति में। (29) [1242]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (30) [1243]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (31) [1244]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (32) [1245]

इस प्रकार भिक्षुणी सुक्का ने ये श्लोक कहे।

सुक्का थेरी 962 की कथा समाप्त हो गई है।

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

36. अभिरूपानंदा 963

इक्यावन युग पहले

नेता, जिसका नाम विपस्सी था, उदय हुआ, जो देखने में सुंदर था,964

वह जिसकी निगाहें हर चीज़ पर टिकी हैं। (1) [1246]

मैं उस समय बंधुमती में था।

एक बड़े कुल में जन्मा, समृद्ध

961 रीडिंग महामुने (वोक.) पीटीएस महामुनि (नोम.) के लिए बीजेटीएस के साथ

962 यह बीजेटीएस का पाठ है। पीटीएस इसे भिक्खुनी सुक्का पढ़ता है।

963 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

964 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

[और] समृद्ध; सुंदर और प्रिय,

मैं लोगों द्वारा पूजा जाता हूँ। (2) [1247]

विश्व के नेता, महान नायक विपस्सी के पास जाकर, उनकी शिक्षा सुनकर, मैं आगे बढ़ा।

पुरुषों के नेता की शरण में। (3) [1248]

नैतिक रूप से संयमित रहते हुए, जब सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति967 को निर्वाण प्राप्त हुआ, तो मैंने968 को एक सोने का छाता भेंट किया।

अवशेष स्तूप के ऊपर। (4) [1249]

मैं उदार और नैतिक हूं।

जीवन भर; वहाँ से गिरकर, अपने मानव शरीर को त्यागकर,

मैं तब तावतिंसा गया। (5) [1250]

मैं दस मायनों में दूसरों से बेहतर प्रदर्शन कर रहा था

वहाँ रहने वाले अन्य सभी देवता:

आकृतियों [और] ध्वनियों [और] सुगंधों के माध्यम से, स्वादों और [जिन चीजों को मैं] छूता हूँ, (6) [1251]

जीवनकाल, रंग-रूप, खुशी और प्रसिद्धि के मामले में भी

और इसी प्रकार सर्वोच्च शक्ति के माध्यम से

मैंने उन दस को प्राप्त करके प्रकाशमान किया। (7) [1252]

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, मेरा जन्म कपिलवस्तु में हुआ है।969

मैं नंदा नाम से प्रसिद्ध हूँ।

शाक्यान खेमाका की पुत्री। (8) [1253]

उपनाम970 "बहुत सुंदर"971

मेरी सुंदरता का संकेत दिया;972

जब मुझे विवेक प्राप्त हो गया,

मैं भव्य सौंदर्य से सुशोभित हूँ।973 (9) [1254]

965 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

966 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम विद बीजेटीएस फॉर पीटीएस °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

967, अर्थात् तैंतीस देवता।

968 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

969 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

970 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

971 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

972 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

973 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

फिर एक बहुत बड़ी लड़ाई हुई 974

शाक्यनों के बीच me975 से अधिक।

फिर मेरे पिता ने मेरा पुरोहिती संस्कार करवाया।

“शाक्यों नष्ट न होने दें।”976 (10) [1255]

इस तरह आगे बढ़ते हुए, यह सुनकर

क्योंकि परम पुरुष सौंदर्य से घृणा करता है, इसलिए मैं बुद्ध के पास नहीं गया।

अपनी सुंदरता पर गर्व करना। (11) [1256]

सलाह लेने भी नहीं जा रहा, मुझे बुद्ध के दर्शन करने से भी डर लगता है।

फिर विक्टर मुझे ले गया

एक चाल के माध्यम से उसकी उपस्थिति। (12) [1257]

मार्ग में चतुर, [बुद्ध]

तीन अलग-अलग स्त्रियों को दिव्य अप्सराओं के समान रूप में प्रकट किया गया:

[एक] युवा, [एक] बीमार, [तीसरा] मृत। (13) [1258]

उन्हें देखकर, मैं अत्यंत भावुक हो गया, और शरीरों में आनंद लेने की मेरी इच्छा समाप्त हो गई। मैं वहाँ अस्तित्व से ऊबकर खड़ा रहा।

तब नेता ने मुझसे यह कहा: (14) [1259]

“नंदा, इस जटिल ढेर को देखो, यह बीमार, घिनौना और सड़ा हुआ है।

इसमें से रिसाव हो रहा है और यह टपक रहा है।

मूर्ख लोगों का आनंद। (15) [1260]

एकाग्रचित्त होकर, दृढ़ता से, अशुद्धता पर अपना ध्यान केंद्रित करो।

जैसा यह है, वैसा ही वह भी है;

जैसा वह है, वैसा ही यह भी है। (16) [1261]

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इस तरह दिन-रात परिश्रम करने से,

तुम अपनी बुद्धि से देख लोगे।

घृणा से मुँह मोड़कर।" (17) [1262]

उस [उद्देश्य] में देरी न करते हुए,

974 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

975 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

976 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

977 puṇṇā ti nāmaŋ

978 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

इस सब पर अच्छी तरह से विचार करने के बाद, मैंने इस शरीर को वैसे ही देखा जैसा वह है।

अंदर और बाहर। (18) [1263]

तब मुझे शरीरों से घृणा होती है, और आंतरिक रूप से मैं वासना से मुक्त हो जाता हूँ; मैं लापरवाह नहीं रहता, अब बंधनों में नहीं बंधा रहता।

शांति में, और [मैंने] निर्वाण प्राप्त कर लिया है। (19) [1264]

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ, 980।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (20) [1265]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (21) [1266]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

हे महान वीर, आपकी उपस्थिति में। (22) [1267]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (23) [1268]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (24) [1269]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (25) [1270]

इस प्रकार भिक्षुणी अभिरूपानंद ने ये श्लोक कहे।

अभिरूपानंद थेरी 981 की कथा समाप्त हुई।

979 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

980 पाठ महामुने (भाषण) पीटीएस तदा मुनि के लिए बीजेटीएस के साथ ("तब ऋषि [नामवाचक];" पीटीएस वैकल्पिक तदा मुने , "तब, हे ऋषि")

981 यह पीटीएस भिक्षुणी अभिरूपानंद के लिए बीजेटीएस पाठ है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 37. अद्धकासिका

अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

37. अड्डकासिका 982

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में,

ब्रह्मा के संबंधी, परम प्रसिद्ध, [बुद्ध] जिन्हें कश्यप983 के नाम से जाना जाता है

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (1) [1271]

उस समय, बुद्ध के उस संप्रदाय में दीक्षा प्राप्त करने के बाद,

मैं पांचों इंद्रियों में संयमित हूँ।

और मठवासी अनुशासन में।984 (2) [1272]

खाने-पीने में संयम बरतते हुए, मैं सतर्क रहने के लिए प्रतिबद्ध था, अभ्यास पर ध्यान केंद्रित करता था। एक बार [हालाँकि] गंदे मन से,

मैंने एक पवित्र 987 नन की मानहानि की

[यह कहकर,] "[वह] एक वेश्या है।" उस बुरे कर्म के कारण,

मैं एक [भयानक] नरक में जल रहा था। (3-4) [1273-1274]

उस कर्म के शेष फल के कारण,

मैं वेश्याओं के कुल में पैदा हुई थी, बार-बार पाप करती रही;

और [फिर] मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, (5) [1275]

मैं कसिअन समुदाय में, 988 में एक करोड़पति परिवार में पैदा हुआ था। 989 [पूर्व] ब्रह्मचर्य के कारण मैं

खूबसूरत,990 देवताओं के बीच अप्सरा की तरह। (6) [1276]

राजगीर जैसे सर्वश्रेष्ठ शहर में मेरी असाधारण सुंदरता को देखकर, उन्होंने मुझे 991 के कारण वेश्यावृत्ति में धकेल दिया।

[मेरी] पूर्व में निंदा की गई। (7) [1277]

982 “पत्थर,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

983 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

984 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्या [बुद्ध] की व्यवस्था में"

985 रीडिंग °ब्रह्मचर्यम, बीजेटीएस के साथ पीटीएस के लिए °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

986, अर्थात् तैंतीस देवता।

987 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

988 यह पीटीएस भिक्षुणी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

989 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में तो दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

991 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

अच्छी शिक्षा सुनने के बाद

जिसका उपदेश पूर्व अनुभवों से परिपूर्ण सर्वश्रेष्ठ बुद्ध ने दिया था।

मैं बेघर होकर निकल पड़ा। (8) [1278]

विजयदाता की उपस्थिति में जाने के बाद, दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए।

यह सुनकर कि बदमाश सड़क पर थे,

मुझे दूत द्वारा दीक्षा दी गई।996 (9) [1279]

मेरे सारे कर्म जलकर राख हो गए, पुण्य और पाप दोनों ही;

जन्म और पुनर्जन्म 997 पार हो गया,

और वेश्यावृत्ति को त्याग दिया गया है। (10) [1280]

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (11) [1281]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (12) [1282]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान वीर। (13) [1283]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (14) [1284]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [1285]

विश्लेषण के चार तरीके,

992 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है।

993 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

994 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

995 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

996 puṇṇā ti nāmaŋ

997 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [1286]

इस प्रकार भिक्षुणी अद्धकासिका ने ये श्लोक कहे।

अड्ढकासिका थेरी 998 की कथा समाप्त हो गई है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान 4.1-थेरिस सूची >> 38. पुणिका
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

38. पुण्णिका999

भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में विपस्सी, सिख धर्म और वेसाभु के मार्ग पर चलते हुए,

ऋषि काकुसंध [बुद्ध], कोनागमन, तटस्थ एक,

और बुद्ध कश्यप के बारे में,

मैं नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण एक नन हूँ।

चतुर, इंद्रियों पर [अच्छी तरह से] नियंत्रण रखने वाला। (1-2) [1287-1288]

शिक्षा के विद्वान वाहक, शिक्षा के अर्थ के जिज्ञासु, शिक्षा के अध्ययनकर्ता, शिक्षा के श्रोता

और शिक्षा का उपासक, (3) [1289]

मैं विजय के युग में लोगों के बीच उपदेश दे रहा हूँ। मेरे गहन ज्ञान के कारण,

मैंने दयालु साथियों को तुच्छ समझा।1001 (4) [1290]

और अब, अपने अंतिम पुनर्जन्म में, मैं श्रावस्ती में जन्मी एक जल-घड़ा चलाने वाली दासी हूँ, जो सर्वश्रेष्ठ नगर है।

अनाथपिंडी[का] के घर में.1002 (5) [1291]

पानी का बोझ ढोते हुए, मैंने एक विद्वान ब्राह्मण को ठंडे पानी में खड़ा देखा।

उसे देखने के बाद मैंने यह कहा: (6) [1292]

998 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्णिका के लिए

999 "स्टोन," केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= "सुखद")

1000 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

1001 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

1002 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

"पानी ढोने के लिए मैं हमेशा ठंड में पानी के पास जाता हूँ।"

गुरु की 1003 छड़ी के डर से भयभीत,

गलतियों के भय से पीड़ित। (7) [1293]1004

किस बात से डरते हो, ब्राह्मण? ठंड से कांपते हुए तुम हमेशा पानी में उतर जाते हो, इतनी ठंड में।

आपके द्वारा अनुभव किया जा रहा है।" (8) [1294]1005

"पुणिक्ा, तुम निश्चित रूप से जानती हो।"

आप मुझसे पूछ रहे हैं कि कौन अच्छा कर्म कर रहा है और किसे नुकसान पहुंचा रहा है।

बुरे कर्मों का परिणाम (9) [1295]1008

चाहे वह बूढ़ा हो या जवान, चाहे वह बुरे कर्म करता हो,

केवल अपने ऊपर पानी छिड़ककर,

वह उस बुरे कर्म से मुक्त हो जाता है। (10) [1296]1010

मैंने जल से बाहर आते समय उनसे धम्म का श्लोक 1011 कहा । यह सुनकर वे बहुत भावुक हो गए;

आगे बढ़ने पर, वह एक अरहंत था। (11) [1297]

जब मेरा जन्म दास कुल में हुआ, तब मैंने पूरे सौ की संख्या पूरी की।1012

इसलिए उन्होंने मुझे "पूर्णकर्ता" नाम दिया,1013

और मुझे मेरी गुलामी से मुक्त किया। (12) [1298]

करोड़पति की सहमति मिलने पर, मैं बेघर हो गया। कुछ ही समय बाद,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (13) [1299]

मैंने महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है

1003, अर्थात् तैंतीस देवता।

1004 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

1005 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

1006 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जिसमें अन्यत्र की तरह यहाँ भी Pesalā लिखा है।

1007 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

1008 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

1009 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

1010 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं होता।

1011 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

1012 pūrentī ūnakasataŋ , शाब्दिक अर्थ, "[मैं] एक अपूर्ण सौ को पूरा कर रही हूँ (या भर रही हूँ, यह उसके नाम के अर्थ पर आधारित कई शब्दों में से एक है)," अर्थात्, "मैं 100वीं दासी थी"

1013 puṇṇā ti nāmaŋ

[जैसे] "दिव्य कान" तत्व। मैं भी एक गुरु हूँ, महान ऋषि हूँ।

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (14) [1300]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (15) [1301]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

हे महान वीर, आपकी उपस्थिति में। (16) [1302]

ध्यान के माध्यम से, बहुत ज्ञान प्राप्त होता है;

सुनी-सुनाई बातों के माध्यम से ही व्यक्ति ने सीखा है;

लेकिन कर्म नष्ट नहीं होगा1014

उच्च कुल के लोगों के अभिमान के माध्यम से। (17) [1303]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (18) [1304]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (19) [1305]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (20) [1306]

इस प्रकार, भिक्षुणी पुन्गिका ने ये श्लोक कहे।

पुन्निका थेरी 1015 की कथा समाप्त हुई।

1014 PTS का अर्थ है panassati , BJTS का अर्थ है vinassati

1015 बीजेटीएस पाठ, पीटीएस भिक्खुनी पुन्गिका के लिए
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 39. अम्बपाली
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला । अगला >>>>

39. अंबपाली 1016

महान ऋषि फुस्सा [बुद्ध] थे, [जैसे] चित्तीदार किरणों की माला।1017

मैं [उस बुद्ध की] सगी बहन थी।

बुद्ध के क्षत्रिय वंश में जन्म हुआ। (1) [1307]

उनकी शिक्षा को सुनने के बाद, अत्यंत स्पष्ट मन से, उन्हें बड़ी मात्रा में दान दिया।

मैं सुंदरता प्राप्त करने की आकांक्षा रखती थी। (2) [1308]

इकत्तीस युग पहले, 1018

विश्व के प्रमुख नेता सिख धर्म का उदय हुआ, जो विश्व का प्रकाशमान दीपक है।

तीनों लोकों का शरणस्थल, विजेता। (3) [1309]

फिर मेरा जन्म एक ब्राह्मण कुल में, सुंदर आरुण नगर में हुआ।

किसी बात पर क्रोधित होकर मैंने मुक्त मन वाली एक नन को शाप दिया। (4) [1310]

मैंने वेश्या की तरह दुर्व्यवहार किया, मैंने व्यवस्था को दूषित कर दिया।1019

उस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षुणी को इस प्रकार शाप देने के कारण,

मैं एक भयानक नरक में गया, जो भयंकर पीड़ा से भरा हुआ था।

वहाँ से गिरकर, [फिर से] पुनर्जन्म हुआ

मानव,1020 मैं एक तपस्वी था।1021 (5-6) [1311-1312]

दस हजार [विभिन्न] जन्मों तक मैं वेश्यावृत्ति में फंसी रही;

इस प्रकार मैं बुराई से मुक्त नहीं हुआ।

जैसे कि मैंने 1022 तीव्र विष खा लिया हो। (7) [1313]

कस्सपा के शासनकाल में, 1023

1016 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

1017 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

1018 कासापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

1019 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

1020, अर्थात् तैंतीस देवता।

1021 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज।

1022 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

1023 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ता है।

मैंने ब्रह्मचर्य का पालन किया (ननहुयन का पालन किया) 1024। उस कर्म के फलस्वरूप मेरा जन्म हुआ।

तीस के शहर में.1025 (8) [1314]

जब मेरा अंतिम पुनर्जन्म स्वतःस्फूर्त रूप से हुआ,1026

मेरा जन्म आम के पेड़ों की शाखाओं के बीच हुआ था;

इसलिए मैं “आम-सुरक्षित” था। (9) [1315]

दस मिलियन प्राणियों के साथ, जो इस युग में आगे बढ़े,1027

मैंने अविचल अवस्था प्राप्त कर ली।

बुद्ध की वैध पुत्री। (10) [1316]

मैंने "दिव्य श्रवण" जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ, 1028

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (11) [1317]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी "दिव्य दृष्टि" शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (12) [1318]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान वीर। (13) [1319]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (14) [1320]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (15) [1321]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

1024 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

1025 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

1026 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

1027 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं है

1028 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (16) [1322]

इस प्रकार भिक्षुणी अंबपाली ने ये श्लोक कहे।

भिक्षुणी अंबपाली की कथा समाप्त होती है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> अपादान >> अपादान4.1-थेरिस सूची >> 40. सेला
अनुवादक: जेएस वाल्टर्स

नोट: इसे यथावत प्रस्तुत किया गया है।

<<<< पिछला

40. सेला 1029

इस [वर्तमान] सौभाग्यशाली युग में,

ब्रह्मा के सगे संबंधी, परम प्रसिद्ध, कस्सपा के नाम से जाने जाने वाले बुद्ध।

सर्वश्रेष्ठ वाद-विवादकर्ता का जन्म हुआ। (1) [1323]

मैं श्रावस्ती नामक एक शानदार शहर में एक गृहस्थ बौद्ध परिवार में पैदा हुआ हूँ।

उस शानदार विक्टर को देखने के बाद,

और [उन्हें] धम्म का उपदेश देते हुए सुनकर , (2a-d)1030 [1324]

जब भी मैं उस महान नायक की शरण में गया, मैंने नैतिकता का मार्ग अपनाया।

बड़ी आबादी के बीच, (2e-f, 3a-b) [1325]

पुरुषों का महारथी अपने सर्वोच्च ज्ञानोदय की व्याख्या कर रहा था।

ऐसी बातें जो पहले कभी सुनी नहीं गई थीं,

“[जीवन] पीड़ा है,” (3सी-एफ) [1326] से शुरू करते हुए

यह सुनकर और इसे अपनाकर, मेरे भीतर अंतर्दृष्टि, चिंतन, ज्ञान, विज्ञान और अंतर्ज्ञान का विकास हुआ।

और मैंने भिक्षुओं से उनके बारे में पूछा। (4) [1327]

कस्सपा के शासनकाल में, 1031

मैंने ब्रह्मचर्य का पालन किया।1032

उस कर्म के फलस्वरूप मेरा जन्म हुआ।

तीस के शहर में.1033 (5) [1328]

1029 “स्टोन,” केवल यहीं ज्ञात है, लेकिन मलालासेकेरा द्वारा इसे एक ऐतिहासिक नन के रूप में माना गया है, डीपीपीएन II: 1290. बीजेटीएस पढ़ता है

P'esalā , यहाँ और इस apadāna में अन्यत्र (= “सुखद”)

1030 पीटीएस इस और अगले श्लोक को छह-चरणों वाले श्लोकों के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें कुल तीन श्लोकों में वही सामग्री उसी क्रम में प्रस्तुत की जाती है जिस क्रम में बीजेटीएस चार श्लोकों में प्रस्तुत करता है।

1031 का'सापे 'जिनसासने , लिट., "विक्टर, कास्पा [बुद्ध] की व्यवस्था में"

1032 पठन °ब्रह्मचर्यम, पीटीएस के लिए बीजेटीएस के साथ °ब्रह्मचरम , शाब्दिक अर्थ, "ब्रह्म-जीवन", "पवित्र जीवन", "ब्रह्मचर्य"

1033, अर्थात् तैंतीस देवता।

और अब, मेरे अंतिम पुनर्जन्म में, एक बड़े करोड़पति परिवार में जन्म लेकर, मैंने उनसे संपर्क किया और उनके बारे में सुना।

बुद्ध की महान सत्य से परिपूर्ण शिक्षा, (6) [1329]

वहाँ से निकलने के कुछ ही समय में मैंने सत्य के मूल सिद्धांतों को समझ लिया; सभी अशुद्धियों को दूर करते हुए,

मैंने अरहंत पद प्राप्त किया। (7) [1330]

मैंने “दिव्य श्रवण” जैसी महाशक्तियों में महारत हासिल कर ली है। मैं एक महान ऋषि भी हूँ, 1034

दूसरों के हृदयों में मौजूद ज्ञान का। (8) [1331]

मुझे अपने पूर्व जन्म याद हैं; मेरी “दिव्य दृष्टि” शुद्ध हो गई है।

सभी अशुद्धियाँ नष्ट हो गई हैं;

मैं पुनर्जन्म नहीं लूंगा। (9) [1332]

अर्थ में और शिक्षा, व्युत्पत्ति और उपदेश में,

मेरा यह ज्ञान उत्पन्न हुआ था

आपकी उपस्थिति में, हे महान वीर। (10) [1333]

मेरे सारे दोष अब जलकर राख हो गए हैं; समस्त नया अस्तित्व नष्ट हो गया है। टूटी हुई जंजीरों वाले हाथियों की तरह,

मैं बिना किसी बंधन के जी रहा हूँ। (11) [1334]

मेरे लिए बेस्ट बुद्धा की उपस्थिति में रहना बहुत अच्छा अनुभव था।

तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं;

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (12) [1335]

विश्लेषण के चार तरीके और ये आठ मुक्ति,

छह विशेष ज्ञान प्राप्त किए गए,

मैंने वही किया है जो बुद्ध ने सिखाया था! (13) [1336]

इस प्रकार भिक्षुणी सेला ने ये श्लोक कहे।

सेला थेरी (1035) की कथा समाप्त हुई।

समीक्षा:

1034 रीडिंग महामुने विद बीजेटीएस (और पीटीएस ऑल्ट.) फॉर पीटीएस महामुनि , ग्रेट सेज.

1035 यह पीटीएस भिक्खुनी सेला के लिए बीजेटीएस पाठ है।

क्षत्रिय और ब्राह्मण, इसी तरह उप्पलादायिका, सिगलामाता और सुक्का,

अभिरूप, अधकासिका,

वेश्या, पुण्णा और बौद्ध भिक्षुणी अंबपाली भी।

और सेला [तब] दसवां बनाता है।1036

यहां दो सौ श्लोक हैं, साथ ही बयालीस और श्लोक हैं।1037

क्षत्रिय अध्याय, चौथा अध्याय।1038

और फिर अध्यायों का सारांश है: सुमेधा, एकुपोसाथा,

कुण्डलकेसी खत्तिया

एक हजार तीन सौ श्लोकों के साथ सैंतालीस और श्लोक मिश्रित हैं। उद्दाना श्लोकों के साथ।

जो लोग जानते हैं, उनके द्वारा गिने जाने पर, एक हजार तीन सौ आयतें और सत्तावन [अधिक] हैं।1039

थेरी -अपदान का समापन 1040 में हुआ।

अपदान समाप्त हुआ

1036 यह पंक्ति केवल BJTS में है, जो यहाँ और अन्यत्र Pesalā पढ़ती है।

1037 अध्याय में छंदों की गणना करने वाले ये अंतिम दो चरण, अपेक्षित अध्याय सारांश के अधिकांश भाग की तरह, BJTS में दिखाई देते हैं लेकिन PTS में नहीं।

1038 यह केवल BJTS में दिखाई देता है, और अध्याय सारांश के बाद के बजाय पहले दिखाई देता है।

1039 यह उपसंहार केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS इसे छोड़ देता है।

1040 यह केवल BJTS में दिखाई देता है; PTS में यह नहीं होता।

चरियापिताका

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> करियापिटक

अंतर्वस्तु

1करिया पिताका
1.1करियापिता-पूर्णता प्राप्त करना
1.1.1I. भाग 1-दान की पूर्णता
1.1.2भाग 2-नैतिकता की पूर्णता
1.1.3भाग 3- त्याग की पूर्णता
1.1.4दृढ़ संकल्प की पूर्णता
1.1.5सत्य की पूर्णता
1.1.6भाग 6- प्रेमपूर्ण दयालुता की पूर्णता
1.1.7भाग 7- समभाव की पूर्णता
1.2स्कैन किया गया संस्करण-कारिया पिताका-पूर्णता
1.3अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
1.4मूल पाली संस्करण
1.4.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
1.4.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

कारियापिताका

यह एक छोटी काव्य रचना है जिसमें बुद्ध के पूर्व जन्मों के पैंतीस वृत्तांत शामिल हैं (जातक कथाओं के समान) जब उन्होंने, एक बोधिसत्व (भविष्य के बुद्ध) के रूप में, असाधारण व्यवहार प्रदर्शित किए जिन्हें "पूर्णता" के रूप में जाना जाता है, जो बुद्धत्व के लिए आवश्यक शर्तें हैं।

नोट: 'C' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

कारियापिताक-पूर्णता प्राप्त करना

I. भाग 1-दान की पूर्णता
I.1 अकित्ति (अगस्त्य) का आचरण
I.2 शंख का आचरण
I.3 कुरु नैतिकता के अनुसार आचरण
I.4 महा-सुदस्सन का आचरण
I.5 महा-गोविन्द का आचरण
I.6 राजा निमि का आचरण
I.7 राजकुमार चंद का आचरण
I.8 राजा शिवी का आचरण
I.9 वेस्सन्तरा का आचरण
I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण
भाग 2-नैतिकता की पूर्णता
II.1 माता के समर्थक का आचरण (11)
II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)
II.3 नागा कैंपेय का आचरण(13)
II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
II.5 भैंस-राजा का आचरण(15)
II.6 रूरु हिरण-राजा का आचरण(16)
II.7 मतंग का आचरण(17)
II.8 देवपुत्र का धम्म आचरण(18)

II.9 अलिनसत्तू का आचरण(19)
II.10 शंखपाल का आचरण(20)

भाग 3- त्याग की पूर्णता
III.1 युधांजय का आचरण(21)
III.2 सोमनाश का आचरण(22)
III.3 अयोघरा का आचरण(23)
III.4 कमल के डंठलों का आचरण(24)
III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण(25)
दृढ़ संकल्प की पूर्णता
III.6 बुद्धिमान तेमत्या का आचरण (26)
सत्य की पूर्णता
III.7 वानर राजा का आचरण (27)
III.8 बुद्धिमान सक्का का आचरण (28)
III.9 युवा बटेर का आचरण (29)
III.10 मत्स्य राजा का आचरण (30)
III.11 कन्हादीपायन का आचरण (31)
III.12 सुतसोमा का आचरण (32)
भाग 6- प्रेमपूर्ण दयालुता की पूर्णता
III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
III.14 एकराजा का आचरण(34)
भाग 7- समभाव की पूर्णता
III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण (35)
एनवॉई-श्लोक

स्कैन किया हुआ संस्करण-कारियापिताका-पूर्णता
भाग 1-दान की पूर्णता
भाग 2-नैतिकता की पूर्णता
भाग 3-त्याग की पूर्णता भाग
4-दृढ़ संकल्प की पूर्णता भाग
5-सत्य की पूर्णता
भाग 6-प्रेमपूर्ण दया की पूर्णता
भाग 7-समभाव की पूर्णता

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> कैरियापिटक >> कैरियापिटक पाठ

अंतर्वस्तु

1करिया पिताका पाठ
1.1भाग 1: दान देने की पूर्णता
1.1.1I.1 अकित्ति (अगस्त्य) का आचरण (1)
1.1.2I.2 शंख का आचरण(2)
1.1.3I.3 कुरु अभिनय के अनुसार आचरण(3)
1.1.4I.4 महा-सुदासन का ऑपरेशन(4)
1.1.5I.5 महागोविंद का आचरण(5)
1.1.6I.6 राजा निमी का आचरण(6)
1.1.7I.7 प्रिंस चंदा का आचरण(7)

1.1.8I.8 राजा शिवी का आचरण(8)
1.1.9I.9 वेसंतारा का आचरण(9)
1.1.10I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण(10)
1.2भाग II: फ़िल्म की पूर्णता
1.2.1II.1 माता के समर्थकों का आचरण (11)
1.2.2II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)
1.2.3II.3 नागालैंड कैम्पेया का आचरण(13)
1.2.4II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
1.2.5II.5 बफ़ेलो राजा का आचरण (15)
1.2.6II.6 हिरण-राजा रुरु का आचरण (16)
1.2.7II.7 मातंगा का आचरण(17)
1.2.8II.8 देवपुत्र धम्म का आचरण (18)
1.2.9II.9 एलिनासत्तू का आचरण(19)
1.2.10II.10 शंखपाल का आचरण(20)
1.3भाग III: त्याग की पूर्णता
1.3.1III.1 युधाञ्जय का आचरण(21)
1.3.2III.2 सोमनासा का आचरण(22)
1.3.3III.3 योगाहार का ऑपरेशन(23)
1.3.4III.4 आचरण (उद्देश्य] कमल के खिलौने शामिल हैं (24)
1.3.5III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण (25)
1.4दृढ़ संकल्प की पूर्णता
1.4.1III.6 बुद्धि का आचरण (26)
1.5सत्य की पूर्णता
1.5.1III.7 बंदर राजा का आचरण(27)
1.5.2III.8 बुद्धिमता का आचरण (28)
1.5.3III.9 युवा बेटे का आचरण(29)
1.5.4III.10 मछली-राजा का आचरण (30)
1.5.5III.11 कन्हादीपायन का आचरण(31)
1.5.6III.12 सुतासोमा का आचरण(32)
1.6प्रेम और करुणा की पूर्णता
1.6.1III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
1.6.2III.14 एकराज का आचरण(34)
1.7समभाव की पूर्णता
1.7.1III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण(35)
1.8ENVOI-VERSES

कारियापिताका पाठ
(आचरण-सुधारने वाली पूर्णताओं की टोकरी)
नोट: 'C' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

नमो तस्स भगवतो, अराहतो,
सम्मा सैम बुद्धस्स

उस भगवान, अरिहंत,
पूर्णतः आत्म जागृत, बुद्ध को श्रद्धांजलि

भाग 1: दान देने की पूर्णता
(दानपारमिता)

I.1 अकित्ती (अगस्त्य) का आचरण (1)
(अकित्तिकारियम) अकित्त-जातक क्रमांक 480 देखें

1 अब से लेकर एक लाख युग
और चार असंख्य युग पहले के बीच के अंतराल में, सभी आचरण
ज्ञानोदय के लिए परिपक्व हो रहे थे।

2 बीते युगों के अनेक जन्मों के आचरण को त्यागकर, मैं
इस युग के आचरण के विषय में बात करूँगा। मेरी बात सुनो।

3 जब मैं एक विशाल वन में, एक खाली
खुले वन-घाटी में, अकित्ति (अगस्त्य) नामक तपस्वी के रूप में निवास कर रहा था।

4 तब त्रिवंश के अधिपति (तवतिंसा के सक्क राजा) स्वर्ग (उनका अलंकृत
आसन), मेरी तपस्या की प्रज्वलन से प्रज्वलित होकर,
ब्राह्मण के वेश में भिक्षा मांगने मेरे पास आए।

5 उन्हें अपने (पत्तेदार झोपड़ी के) द्वार पर भोजन पात्र के साथ खड़ा देखकर,
मैंने उनके सामने वन से एकत्रित पत्ते बिखेर दिए
, बिना तेल और बिना नमक के।

6 उसे पत्ते देकर, मैंने (भोजन का) पात्र
उल्टा करके, उस दिन भिक्षा की और खोज छोड़ दी और
पत्तों की छोटी सी झोपड़ी में प्रवेश किया।

7 और वह दूसरी और तीसरी बार मेरे पास आया। अविचलित,
बिना किसी आसक्ति के, मैंने पहले की तरह ही दिया।

8 इस (दान) के कारण मेरे शरीर में कोई परिवर्तन नहीं आया । मैंने वह दिन
उत्साह और प्रसन्नता से बिताया । 9 यदि मुझे केवल एक या दो महीने के लिए भी कोई योग्य प्राप्तकर्ता मिल जाए, तो मैं अविचलित, अडिग रहकर वह सर्वोच्च दान दे दूंगा। 10. दान देते समय मैंने यश या लाभ की आकांक्षा नहीं की । सर्वज्ञता की आकांक्षा से मैंने वे पुण्य कर्म किए।

I.2 शंख का आचरण(2)
(संखचर्यम) संख-जातक # 442 देखें

1 और फिर, जब मैं संख नामक ब्राह्मण था और

विशाल सागर पार करना चाहता था, तब मैं बंदरगाह की ओर जा रहा था।
(सुवर्णभूमि [थाईलैंड?] के लिए नाव लेने हेतु तमलित्ती)।

2 वहाँ मैंने मार्ग के दूसरी ओर एक स्वयंभू
बुद्ध (पच्चेकबुद्ध) को देखा, जो एक अजेय थे और
एक रेगिस्तानी मार्ग पर चल रहे थे, जिसकी भूमि गर्म और ऊबड़-खाबड़ थी।

3 जब मैंने उसे सड़क के दूसरी ओर देखा, तो मैंने
इस बात की जाँच की: "यह पुण्य का खेत है, जहाँ
पुण्य चाहने वाला व्यक्ति पहुँचा है।

4 जैसे एक किसान, भरपूर उपज देने वाले खेत को देखकर भी
उसमें बीज नहीं बोता, तो उसे अनाज की आवश्यकता नहीं होती,

5 वैसे ही मैं, पुण्य की इच्छा रखते हुए, उस उत्तम और शानदार खेत को देखकर
, यदि मैं वहाँ सेवा नहीं करता, तो मुझे
पुण्य की आवश्यकता नहीं होती।

6 जैसे एक मंत्री, राजा के महल में बैठे लोगों पर अधिकार की इच्छा रखते हुए
, उन्हें धन और अनाज नहीं देता, तो उसकी
शक्ति कम हो जाती है,

7 वैसे ही मैं, पुण्य की इच्छा रखते हुए, विश्वास के वरदान के योग्य व्यक्ति को देखकर
, यदि मैं उसे वरदान नहीं देता, तो मेरा
पुण्य कम हो जाएगा।"

8 ऐसा सोचकर, मैंने अपने जूते उतारकर, उसके चरणों का आदर करते हुए,
उसे धूप से बचने के लिए छाँव और जूते दिए।

9 मैं, जो उससे सौ गुना अधिक कोमल और आराम
से पोषित था, फिर भी देने की पूर्णता को पूरा करते हुए
, मैंने उसे (ये चीजें दीं जिनकी मुझे उससे अधिक आवश्यकता थी
)।

I.3 कुरु नैतिकता के अनुसार आचरण(3)
(कुरुधम्मचरियम) कुरुधम्म-जातक #276 देखें
1 फिर, जब मैं
इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) के शानदार शहर में धनंजय नामक राजा था,
तब मुझे दस कुशल (कार्य विधियाँ) प्राप्त थीं।

2 कलिंग (उड़ीसा) राज्य के ब्राह्मण
मेरे पास आए; उन्होंने मुझसे उस हाथी का अनुरोध किया जिसे
शुभ और शुभ माना जाता था।

3 "देश में सूखा पड़ा है, भोजन की कमी है, भयंकर
अकाल है। हमें अंजना नामक तेजस्वी काले हाथी को दे दीजिए।"

4 जब कोई याचक आया हो तो मेरा इनकार करना उचित नहीं था
। (मैंने सोचा), “मैं अपना वचन न तोड़ूँ। मैं
शक्तिशाली हाथी दे दूँगा।” 5 हाथी को सूंड से पकड़कर, एक रत्नजड़ित औपचारिक पात्र से हाथ पर

(समर्पण का) जल छिड़ककर मैंने हाथी को ब्राह्मणों को सौंप दिया। 6 जब उन्होंने यह हाथी भेंट किया, तो मंत्रियों ने यों कहा, “आपने इस तेजस्वी हाथी को याचिकाकर्ताओं को क्यों भेंट किया? 7 हे शुभ, शुभ संकेत देने वाले, युद्ध में विजय प्राप्त करने में श्रेष्ठ, अब जब हाथी भेंट कर दिया गया है, तो आपका राज्य क्या करेगा?” 8 मैं अपना सारा राज्य भी दे देता, मैं अपना शरीर भी दे देता। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसीलिए मैंने हाथी भेंट किया।

I.4 महा-सुदासन का संचालन(4)
(महासुदस्सनचार्यम) महासुदस्सन-जातक क्रमांक 95 देखें

1 जब मैं कुशवती नगर में
महासुदस्सन नामक पृथ्वी स्वामी, अत्यंत शक्तिशाली चक्रचालक के रूप में था,

तब मैंने वहाँ प्रतिदिन तीन बार इस स्थान और
उस स्थान पर यह घोषणा करवाई: किसे क्या चाहिए? किसे क्या धन
दिया जाएगा?

3 कौन भूखा है? कौन प्यासा है? किसे माला चाहिए, किसे
मरहम? कौन नंगा होकर अनेक रंगों के वस्त्र पहनेगा?

4 कौन राजमार्ग पर छाता लेकर चलेगा, कौन कोमल
और सुखदायक चप्पलें पहनेगा? इस प्रकार मैंने संध्या और सूर्योदय के समय
इस स्थान और उस स्थान पर यह घोषणा करवाई।

5 केवल दस स्थानों पर या सौ स्थानों पर नहीं, बल्कि असंख्य
सैकड़ों स्थानों पर प्रार्थना करने वालों के लिए धन तैयार किया जाता था।

6 यदि कोई भिक्षु या भिखारी दिन हो या
रात, आता, तो वह अपनी इच्छा की वस्तुएँ पाकर
हाथ भरकर चला जाता।

7 मैंने अपने जीवन भर ऐसा ही महान दान दिया। मैंने
धन इसलिए नहीं दिया क्योंकि वह अप्रिय था या मेरे
पास कोई धन-संग्रह नहीं था।

8 जैसे कोई बीमार व्यक्ति
डॉक्टर को कुछ धन देकर रोगमुक्त हो जाता है,

9 वैसे ही मैंने भी, यह जानकर, पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करने
और मन को संतोष से मुक्त करने के लिए, आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु,
निसंतुष्टि से भिखारियों को दान दिया,
प्रतिफल की अपेक्षा किए बिना।

I.5 महागोविंदा का आचरण(5)
(महागोविन्दचार्यर्म) महागोविन्द सूत्र

1 देखें। फिर, जब मैं ब्राह्मण महागोविन्द था,
सात राजाओं का पुरोहित, तब मुझे मनुष्यों में देवताओं द्वारा सम्मानित किया गया।
2 तब मैंने सात राज्यों में जो भी भेंटें थीं, उनसे
सागर के समान शांत भाव से महान दान दिया।

3 धन और अन्न मुझे अप्रिय नहीं थे, और न ही मैंने
कोई भंडार रखा था। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने
वैभवशाली धन दान किया।

I.6 राजा निमी का आचरण(6)
(निमिराजचर्यम) निमि-जातक #541 देखें

1 और फिर, जब मैं मिथिला के शानदार नगर में
निमि नामक एक महान राजा था, जो विद्वान और कल्याणकारी था।

2 तब मैंने चार प्रवेश द्वारों वाले चार महल बनवाए। वहाँ
मैंने पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों आदि को उपहार दिए।

3 वस्त्र, पलंग, भोजन, पेय और (अन्य अनेक प्रकार की)
खाद्य सामग्री—मैंने महान उपहार दिए, और उन्हें निरंतर प्रदान किया।

4 जैसे एक सेवक धन की प्राप्ति के लिए स्वामी के पास जाकर
हावभाव, वाणी और विचार से तृप्ति चाहता है,

5 वैसे ही मैं प्रत्येक जन्म में जागृति के लिए उत्पन्न होने वाली वस्तु की खोज करूँगा
, प्राणियों को उपहारों से परिपूर्ण करूँगा; मैं
परम जागृति की कामना करता हूँ।

I.7 राजकुमार चंदा का आचरण(7)
(चंदकुमाराचार्यम) खंडाहल जातक #542

1 फिर, जब मैं पुप्पवती नगर में
चंदा नामक राजकुमार एकराज का पुत्र था, 2 तब मैंने यज्ञ से मुक्त होकर, यज्ञकुंड

से निकलकर , एक गहन रोमांच उत्पन्न करते हुए, एक महान दान दिया। 3 मैंने पाँच-छह रातों तक बिना किसी योग्य दान दिए न पिया, न खाया और न ही कोई मदिरा ग्रहण किया । 4 जैसे कोई व्यापारी माल का भंडार वहाँ रखता है जहाँ अधिक लाभ होता है, 5 वैसे ही, स्वयं द्वारा उपयोग की गई वस्तु से भी जो दूसरों को दिया जाता है, वह महान फलदायी होता है; अतः जो दूसरों को दिया जाता है, वह सौ गुना हो जाता है। 6 इस सत्य को जानकर मैंने जन्म-जन्मांतर तक दान दिया। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मैंने दान देने से कभी विमुख नहीं हुआ।

I.8 राजा शिवी का आचरण(8)

(शिराजचर्यम) सिवि-जातक क्रमांक 499

1 अरित्थ नामक नगर में, मैं सिवि नामक एक योद्धा-राजकुमार था।
एक भव्य महल में बैठा हुआ मैं इस प्रकार सोच रहा था:

2 "मनुष्यों
द्वारा दी जाने वाली कोई भी देन ऐसी नहीं है जो मैंने न दी हो। यदि कोई मुझसे आँख भी माँगे तो
मैं उसे बिना विचलित हुए दे दूँगा।"

3 मेरी इच्छा जानकर, देवताओं के स्वामी सक्का, जो देवताओं के समूह में बैठे थे
, ने ये शब्द कहे:

4 "एक भव्य महल में बैठे हुए, महान मानसिक शक्ति वाले राजा सिवि

, अनेक वरदानों के विचार में, ऐसी किसी चीज को नहीं देख रहे जो
दी न जा सके।

5 आओ, मैं इसकी परीक्षा लूँ कि यह सत्य है या असत्य।
एक क्षण रुको, जब तक मैं उसके मन को न जान लूँ।"

6 काँपते हुए, भूरे बालों वाले, झुर्रीदार अंगों वाले, बूढ़े, बीमार और अंधे व्यक्ति के रूप में प्रकट होकर
, वह राजा के पास आया।

7 फिर उसने अपने बाएँ और दाएँ हाथ फैलाकर, अपने
जुड़े हुए हाथों को अपने सिर पर लाकर ये शब्द कहे:

"हे महान राजा, जिन्होंने राज्य का
धर्मपूर्वक पालन-पोषण किया है, जिनकी दानशीलता की प्रसिद्धि
देवताओं और मनुष्यों में फैली हुई है;

9 मेरी दोनों आँखें, मेरे मार्गदर्शक, अंधी हो गई हैं, नष्ट हो गई हैं।
मुझे एक आँख दे दीजिए, आप भी एक आँख से ही आगे बढ़ते रहिए।"

10 जब मैंने उनके ये शब्द सुने, तो मैं प्रसन्न हुआ, मन में अत्यंत रोमांचित हुआ, अपने हाथ जोड़कर, उत्साह से भर गया, और ये शब्द कहे : 11 "अब मैं (इसी बात को ध्यान में रखते हुए) महल से यहाँ आया हूँ; आप, मेरे मन को जानते हुए, एक आँख माँगने आए हैं। 12 आह, मेरा उद्देश्य पूरा हो गया है, मेरी इच्छा पूरी हो गई है। आज मैं एक ऐसा गौरवशाली दान दूँगा जो पहले किसी याचक को नहीं दिया गया।" 13 "आओ, शिवक, उठो और काम करो, देर मत करो, काँपो मत। अपनी दोनों आँखें भी मैं इस भिखारी को दे देता हूँ ।" 14 तब शिवक ने, मेरे उकसाने पर, मेरी आज्ञा का पालन करते हुए, उन्हें ताड़ के पेड़ के गूदे की तरह निकाल कर याचक को दे दिया। 15 जब मैं देने की इच्छा कर रहा था, जब मैं दे रहा था, और जब मैंने दे दिया, तब मेरे मन में कोई दुविधा नहीं थी; यह सब ज्ञानोदय के लिए ही था। 16 मुझे वे दोनों आँखें अप्रिय नहीं लगीं और न ही मैं स्वयं अप्रिय लगा। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने वे आँखें दे दीं।

I.9 वेसंतारा का आचरण(9)
(वेसन्तरचरियार्) वेसन्तर-जातक क्रमांक 547 देखें

1 जो मेरी माता थीं, वीरांगना
पुषती और पिछले जन्म में सक्का की प्रमुख संगिनी —

2 उनका जीवनकाल समाप्त होते देख, देवताओं के स्वामी ने
कहा, "हे प्रिय, मैं तुम्हें दस वरदान दे रहा हूँ,
जो वरदान तुम चाहो चुन लो।"

3 और यह सुनकर देवी ने फिर सक्का से कहा , "मुझमें क्या दोष है? मैं तुम्हें
किस प्रकार अप्रिय हूँ कि तुम मुझे एक रमणीय स्थान से उसी प्रकार विदा कर रहे हो जैसे हवा किसी धरणीरुह (वृक्ष) को गिरा देती है?" 4 और यह सुनकर सक्का ने फिर उनसे कहा, "ऐसा बिल्कुल नहीं है कि आपने कोई बुराई की है और न ही आप मुझे प्रिय नहीं हैं। 5 आपका जीवनकाल बस इतना ही है; अब तो मृत्यु का समय आ गया है। मेरे द्वारा दिए गए दस अतुलनीय वरदान स्वीकार करो।" 6 सक्का द्वारा वरदान प्राप्त करने वाली फुसती ने प्रसन्नतापूर्वक, आनंदित होकर , मुझे सहित दस वरदान स्वीकार किए। 7 फुसती वहाँ से मृत्यु को प्राप्त करके जेतुत्तरा नगर में योद्धा-कुलीनों के बीच उठीं और संजय से विवाह किया। 8 जब मैं फुसती के गर्भ में अवतरित हुआ, तो मेरी प्रिय माता, मेरी माता, मेरे तेज से सदा दान करने में प्रसन्न रहती थीं। 9 उन्होंने दरिद्रों, बीमारों, बूढ़ों, याचकों, यात्रियों, संन्यासियों और ब्राह्मणों, संपत्ति खो चुके लोगों और निर्धनों को दान दिया। 10 फुसती ने मुझे दस माह तक गर्भ में धारण करके, नगर का चक्कर लगाते हुए, वेस्सा की गली में जन्म दिया। 11 मेरा नाम न तो मेरी माता के पक्ष से था और न ही मेरे पिता के पक्ष से। क्योंकि मेरा जन्म व्यापारियों की गली में हुआ था, इसलिए मुझे वेस्सानातारा कहा गया। 12 जब मैं आठ वर्ष का बालक था, महल में बैठा हुआ

था, तब मैंने दान देने का विचार किया। 13 मैंने यह घोषणा कर दी थी कि मैं अपना हृदय, आँखें, मांस और यहाँ तक कि अपना रक्त भी दे दूँगा, यदि कोई मुझसे विनती करे तो मैं अपना शरीर भी दे दूँगा। 14 जब मैं अपनी स्थिर, दृढ़ मन की स्थिति पर विचार कर रहा था, तब सिनेरु के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी काँप उठी। 15 प्रत्येक पखवाड़े (और हमेशा) पूर्णिमा के दिन, व्रत के दिन, मैं हाथी पचया पर सवार होकर दान देने जाता था। 16 कलिंग राज्य के ब्राह्मण मेरे पास आए; उन्होंने मुझसे नाग हाथी माँगा, जिसे शुभ और शुभ माना जाता था। 17 देश में सूखा पड़ा है, भोजन की कमी है, और एक बड़ी आपदा आई है।

अकाल। हमें वह तेजस्वी श्वेत हाथी दीजिए, जो
हाथियों में श्रेष्ठ है।"

18 मैं अविचलित रहा, मैंने ब्राह्मणों
की हर विनती पूरी कर दी। मेरे पास जो कुछ था, मैंने उसे छिपाया नहीं;
मेरा मन देने में प्रसन्न था।

19 जब कोई याचक आया था, तब मेरा इनकार करना उचित नहीं था।
मैंने सोचा, "मैं अपना वचन न तोड़ूँ। मैं वह
शक्तिशाली हाथी दे दूँगा।"

20 हाथी को सूंड से पकड़कर,
एक रत्नजड़ित पात्र से अपने हाथ पर जल छिड़ककर, मैंने
हाथी ब्राह्मणों को दे दिया।

21 और फिर, जब मैं उस उत्तम श्वेत हाथी को दे रहा था , तब भी
सिनरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी काँप उठी । 22 हाथी के दान से क्रोधित होकर शिवी लोग एकत्रित हुए ; उन्होंने मुझे मेरे ही राज्य से निर्वासित कर दिया और कहा, "इसे वांका पर्वत पर जाने दो।" 23 जब वे मुझे शहर से निकाल रहे थे, तब भी मैं अविचलित और दृढ़ रहा और मैंने एक वरदान माँगा: एक बड़ा दान देना। 24 मेरे अनुरोध पर सिवी नगर के सभी लोगों ने मुझे वह वरदान दिया। मैंने दो ढोल बजवाकर बड़ा दान दिया। 25 तब उस ध्वनि से वहाँ बहुत शोरगुल और भय का माहौल छा गया। उस (पहले) दान के कारण उन्होंने मुझे शहर से निकाल दिया था—मैंने फिर से दान दिया। 26 हाथी, घोड़े, रथ, दास स्त्रियाँ और पुरुष, मवेशी और धन-संपत्ति देकर—बड़ा दान देने के बाद मैं नगर से चला गया। 27 जब मैं नगर से चला गया और पीछे मुड़कर देखा, तो सिनेरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सजी पृथ्वी भी काँप उठी। 28 चार घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ को देकर, एक बड़े चौराहे पर अकेले, बिना किसी साथी के खड़े होकर, मैंने महिला मद्दी से कहा: 29 "मद्दी, तुम कान्हा को ले लो, वह कोमल और छोटी है। मैं जाली को उठा लूँगा क्योंकि भाई होने के नाते वह भारी भार है। 30 मद्दी ने कन्हाजिना को ऐसे उठाया जैसे वह नीला कमल हो या सफेद कमल-मुलायम। मैंने वीर योद्धा जाली को ऐसे उठाया जैसे वह सोने का लौकी हो। 31 चार वीर योद्धा, उच्च कुल के, सुसंस्कृत, ऊबड़-खाबड़ और समतल भूमि पर चलते हुए, वांका पर्वत की ओर जा रहे थे। 32 जो भी लोग उसी दिशा से या विपरीत दिशा से आ रहे थे, हमने उनसे रास्ता पूछते हुए कहा, " वांका पर्वत कहाँ है?" 33 हमें वहाँ देखकर उन्होंने करुणा भरे शब्द कहे, उन्होंने अपना दुख व्यक्त किया कि वांका पर्वत बहुत दूर है। 34 यदि बच्चों ने जंगल में फलदार वृक्ष देखे, तो वे उन फलों के लिए रोने लगे।

35 जब विशाल वृक्षों ने देखा कि बच्चे रो रहे हैं, तो
वे स्वतः झुक गए और
बच्चों के पास आ गए।

36 इस अद्भुत, आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर,
हर अंग से सुंदर मद्दी ने प्रशंसा की।

37 "यह सचमुच संसार में एक चमत्कार है, अद्भुत, आश्चर्यजनक। वेसंतारा के प्रकाश
से वृक्ष स्वतः झुक गए हैं ।" 38 बच्चों पर दया करके यक्षों ने मार्ग छोटा कर दिया ; जिस दिन वे निकले, उसी दिन वे चेत राज्य पहुँच गए। 39 उस समय मतुला में साठ हजार राजा रहते थे। सभी हाथ जोड़कर रोते हुए आगे आए। 40 वहाँ चेत (राजाओं) और उनके पुत्रों से बातचीत करने के बाद , वे वहाँ से वांका पर्वत पर आ पहुँचे। 41 देवों के स्वामी ने महान मानसिक शक्ति वाली विस्साकम्मा को संबोधित करते हुए कहा, "एक सुगठित कुटिया, एक सुंदर पत्तों की कुटिया बनाओ।" 42 जब विस्साकम्मा, जो अत्यंत शक्तिशाली

मानसिक शक्ति से संपन्न थीं, ने सक्का के वचन सुने, तो उन्होंने एक सुंदर, रमणीय पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया बनवाई। 43 शांत और निर्मल वन में जाकर हम चारों उस पर्वत पर रहने लगे। 44 मैं, मद्दी और जली एवं कन्हाजिना उस कुटिया में एक-दूसरे के दु:खों को दूर करते हुए रहते थे। 45 बच्चों की देखभाल करते हुए मैं संन्यास के दौरान निष्क्रिय नहीं रहती थी । मद्दी फल लाती थी और तीनों का पेट भरती थी। 46 जब मैं वन में रह रही थी, एक यात्री मेरे पास आया। उसने मुझसे जली एवं कन्हाजिना दोनों बच्चों को माँग लिया। 47 उस याचक को आते देख मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने दोनों बच्चों को गोद में लेकर ब्राह्मण को सौंप दिया। 48 जब मैं अपने बच्चों को ब्राह्मण को सौंप रहा था , तब भी सिनरू के उपवनों से सुशोभित पृथ्वी कांप उठी। 49 फिर, ब्राह्मण के वेश में अवतरित होकर सक्का ने मुझसे गुणी, पवित्र पत्नी मद्दी को मांगा। 50 मद्दी का हाथ थामकर, दोनों हाथों में जल भरकर, अपने उद्देश्य में दृढ़ विश्वास रखते हुए, मैंने उसे मद्दी सौंप दी। 51 जब मद्दी सौंपी जा रही थी, तब स्वर्ग में देवता प्रसन्न हुए; सिनरू के उपवनों से सुशोभित पृथ्वी कांप उठी। 52 जली (मेरा पुत्र), कन्हाजिना (मेरी पुत्री), और पवित्र पत्नी मद्दी—इन्हें छोड़ने में मुझे कोई संकोच नहीं हुआ; यह तो आत्मज्ञान के लिए ही था।
53 मुझे दोनों में से कोई भी संतान अप्रिय नहीं थी, मद्दी तो मुझे अत्यंत प्रिय थी।
मुझे यह अप्रिय नहीं लगा। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने
अपने प्रिय लोगों को दान कर दिया।

54 फिर विशाल वन में अपने माता-पिता के साथ,
जब वे करुणापूर्वक विलाप कर रहे थे और
मेरे सुख-दुख के बारे में बातें कर रहे थे,

55 मैं लज्जा और निंदा के भय से,
आदरपूर्वक उनके पास गया; सिनरू के (स्वर्गीय)
उपवनों से सुशोभित पृथ्वी तब भी कांप उठी।

56 फिर अपने रिश्तेदारों के साथ विशाल वन से निकलकर , मैं नगरों में
श्रेष्ठ रमणीय नगर जेतुत्तरा में प्रवेश किया । 57 सात प्रकार के रत्नों की वर्षा हुई, एक विशाल वर्षा हुई; सिनरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी तब भी कांप उठी। 58 सुख-दुख से अनभिज्ञ यह पृथ्वी भी, मेरे दान की शक्ति से सात बार कांप उठी। (उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तुषिता स्वर्ग में हुआ)

I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण(10)
(ससपंडितचर्यम्) देखें सस-जातक क्रमांक 316

1 फिर, जब मैं एक खरगोश था जो जंगल में
घास, पत्ते, जड़ी-बूटियाँ और फल खाकर घूमता था, और
दूसरों पर अत्याचार नहीं करता था,

2 तब एक बंदर, एक सियार, एक छोटा ऊदबिलाव और मैं
उसी पड़ोस में रहते थे और शाम-सुबह दिखाई देते थे।

5 मैंने उन्हें अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में बताया: "
बुरे कर्मों से दूर रहो, अच्छे कर्मों का पालन करो।"

4 एक व्रत के दिन पूर्णिमा का चाँद देखकर, मैंने
उन्हें वहाँ बताते हुए कहा, "आज व्रत का दिन है।

5 उपहार के योग्य व्यक्ति को देने के लिए उपहार तैयार करो;
उपहार के योग्य व्यक्ति को उपहार देकर व्रत का पालन करो।"

6 मुझे "बहुत अच्छा" कहते हुए,

उन्होंने अपनी सामर्थ्य और साधनों के अनुसार उपहार तैयार किए और
उपहार के योग्य व्यक्ति की खोज की।

7 वहाँ बैठे-बैठे मैंने एक योग्य, उपयुक्त उपहार के बारे में सोचा: "यदि
मुझे कोई उपहार के योग्य व्यक्ति मिले, तो मैं उसे क्या उपहार दूँ?

8 मेरे पास तिल, चना, दाल, चावल, घी नहीं है।
मैं घास खाकर ही अपना जीवन यापन करता हूँ; घास देना संभव नहीं है।

9 यदि कोई उपहार के योग्य व्यक्ति भोजन के लिए मेरे पास आए, तो
मैं स्वयं को ही दे दूँगा; वह खाली हाथ नहीं लौटेगा।"

10 मेरा इरादा जानकर, सक्का ब्राह्मण के वेश में
मेरी गुफा में आया ताकि वह मेरे दान की परीक्षा ले सके।

11 जब मैंने उसे देखा, तो प्रसन्न होकर मैंने ये शब्द कहे, "अच्छा हुआ
कि तुम भोजन के लिए मेरे पास आए हो।

12 आज मैं तुम्हें एक ऐसा उत्तम उपहार दूँगा जो पहले कभी नहीं दिया गया। तुम
नैतिक गुणों से परिपूर्ण हो; तुममें
दूसरों पर अत्याचार करना उचित नहीं है।

13 आओ, आग जलाओ, और तरह-तरह की लकड़ियाँ इकट्ठा करो। मैं स्वयं को भूनूँगा
, और तुम मुझे भूनकर खाओगे।"

14 उसने "ठीक है" कहते हुए, प्रसन्न होकर, तरह
-तरह की लकड़ियाँ इकट्ठा कीं; अंगारों का एक कोना बनाकर उसने एक विशाल
चिता बनाई।

15 उसने वहाँ ऐसी आग जलाई जो जल्दी ही बड़ी हो गई।
धूल से सने अपने अंगों को झटकते हुए मैं एक तरफ बैठ गया।

16 जब लकड़ियों का विशाल ढेर जल रहा था और गर्जना कर रहा था, तब मैं उछलकर धधकती लपटों
के बीच गिर पड़ा । 17 जैसे कोई ठंडे पानी में प्रवेश करता है तो उसकी पीड़ा और बुखार शांत हो जाता है और उसे संतुष्टि और आनंद
मिलता है। 18 वैसे ही जब मैं जलती हुई आग में प्रवेश किया तो मेरी सारी पीड़ा शांत हो गई, मानो वह ठंडा पानी हो। 19 मैंने ब्राह्मण को
अपना पूरा शरीर, बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें, हड्डियाँ और हृदय की मांसपेशियाँ , सब कुछ अर्पित कर दिया।

भाग II: नैतिकता की पूर्णता
(सिलापरामिता) मति-पोसाका-जातक 455 देखें

II.1 माता के समर्थक का आचरण (11)
(मतिपोषकचर्यम्)

1 जब मैं वन में अपनी
माता का सहारा बनकर एक भव्य हाथी था, तब पृथ्वी पर मेरे समान
नैतिक गुण किसी और में नहीं थे।

2 एक वनपाल ने मुझे वन में देखकर राजा को
मेरे बारे में बताया, "महाराज, आपके योग्य एक हाथी
वन के एक उपवन में रहता है।

3 उसके लिए किसी प्रकार की सावधानी की आवश्यकता नहीं है, न ही उसे
पकड़ने के लिए गड्ढे या खंभे की। यदि उसे सूंड से पकड़ा जाए तो वह
स्वयं यहाँ आ जाएगा।"

4 यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने
एक कुशल, प्रशिक्षित हाथी प्रशिक्षक को भेजा।

5 वह हाथी प्रशिक्षक वहाँ जाकर मुझे एक कमल-कुंड में
अपनी माता के भोजन के लिए कमल की जड़ें निकालते हुए देखा।

6 मेरे नैतिक गुणों को पहचानकर उन्होंने मुझे विशिष्ट
लक्षणों से अवगत कराया। 'आओ पुत्र' कहकर उन्होंने मुझे मेरी सूंड से पकड़ लिया।

7 उस समय मेरे शरीर की जो स्वाभाविक शक्ति थी,
वह आज एक हजार हाथियों की शक्ति के समान है।

8 यदि मैं उन लोगों पर क्रोधित होता जो मुझे पकड़ने आए थे, तो मैं मनुष्य जाति
के पूरे राज्य को भी कुचल कर मार डालता ।9 फिर भी, नैतिकता की रक्षा के लिए, नैतिकता की पूर्णता को पूरा करने के लिए, मैं अपना मन नहीं बदलता, भले ही वे मुझे खंभे से बांध रहे होते। 10 यदि वे वहाँ कुल्हाड़ी और भाले से मुझ पर हमला करते, तो भी मैं अपनी नैतिकता के टूटने के डर से उन पर क्रोधित नहीं होता।

II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)

(भूरिदत्तचर्यम) भूरिदत्त-जातक क्रमांक 543 देखें

1 और फिर, जब मैं भूरिदत्त था, महान मानसिक शक्ति वाला,
मैं महान राजा विरुपाक्खा के साथ एक देवलोक में गया।

2 वहाँ मैंने पूर्णतः सुख में लीन देवताओं को देखकर, उस स्वर्ग
में जाने के लिए नैतिकता का व्रत लिया ।3 अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करके, पर्याप्त भोजन करके , चार सिद्धांतों पर दृढ़ निश्चय करके, मैं एक चींटी के टीले पर लेट गया। 4 जिसे भी मेरी भीतरी त्वचा, बाहरी त्वचा, मांस, नसें या हड्डियों की आवश्यकता हो, वह उसे ले जाए, जैसा है वैसा ही। 12 5 जब मैं लेटा हुआ था, कृतघ्न अलम्पन ने मुझे पकड़ लिया। मुझे एक टोकरी में डालकर उसने मुझे यहाँ- वहाँ कर्म करने के लिए मजबूर किया। 6 टोकरी में डाले जाने पर भी, उसके हाथों से कुचले जाने पर भी , मैंने अपनी नैतिकता भंग होने के भय से अलम्पन पर क्रोधित नहीं हुआ ।7 मेरे लिए अपने प्राणों का बलिदान घास के बलिदान से भी तुच्छ था ।नैतिकता का उल्लंघन मेरे लिए उलटी हुई पृथ्वी के समान था। 8 मैं सौ जन्मों तक अपने प्राणों का बलिदान कर सकता था, लेकिन चारों महाद्वीपों पर शासन करने के लिए भी नैतिकता का उल्लंघन नहीं करता ।9 इसलिए, नैतिकता की रक्षा के लिए, नैतिकता की पूर्णता को पूरा करने के लिए, मैं अपना मन नहीं बदलता, चाहे वे मुझे टोकरी में फेंक ही क्यों न दें।

II.3 नागा कैम्पेय्या का आचरण(13)

(कैंपेय्यनागचरीयम) देखें कैम्पेय्य-जातक क्रमांक 506

1 और फिर, जब मैं महान मानसिक शक्ति वाला कैम्पेय्यक (नागों का राजा) था,
तब भी मैं धर्मनिष्ठ था और नैतिक व्रतों का पालन करता था।

2 तब भी, एक सपेरे ने मुझे, जो धर्मनिष्ठ था और
व्रतों का पालन करता था, पकड़कर
राजद्वार पर प्रदर्शन करवाया।

3 उसने जो रंग सुझाया था—नीला, पीला या लाल—उधार लेकर,
मैंने उसकी इच्छा का पालन किया और उसके विचारों को साकार किया।

4 मैं सूखी भूमि को जल में और जल को सूखी भूमि में बदल सकता था
। यदि मैं उस पर क्रोधित होता, तो मैं
उसे पल भर में राख कर देता।

5 यदि मैं मन के वश में होता, तो मैं नैतिकता से विमुख हो जाता ; जो नैतिकता से विमुख हो जाता है,
वह सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता । 6 मैं स्वेच्छा से इस शरीर को चूर-चूर होने दूं, इसे इसी स्थान पर बिखेरने दूं —मैं किसी भी
कीमत पर नैतिकता का उल्लंघन नहीं करूंगा , भले ही इसे भूसे की तरह बिखेर दिया जाए।

II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
(चुलाबोधिचरीयम) चुल्ला-बोधि-जातक # 443

1 फिर, जब मैं चुलाबोधि था, अत्यंत गुणी,
पुनर्जन्म को संकट समझते हुए, मैंने संसार त्याग दिया।

2 मेरी पत्नी, सुनहरे रंग की त्वचा वाली ब्राह्मण स्त्री
, ने पुनर्जन्म के चक्र में कोई अपेक्षा न रखते हुए,
संसार त्याग दिया।

3 आसक्ति रहित, सगे-संबंधियों से विमुख,
परिवार या संगति से कोई अपेक्षा न रखते हुए, गाँव और
बाज़ार की ओर चलते हुए, हम बनारस पहुँचे।

4 वहाँ हम विवेकपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे, परिवार या संगति में नहीं रहे
; हम दोनों राजमहल में एकांत में,
जहाँ शोरगुल कम था, निवास करते रहे।

5 जब राजा राजमहल देखने गए, तो उन्होंने ब्राह्मण
स्त्री को देखा। मेरे पास आकर उसने पूछा, "क्या वह तुम्हारी है?
वह किसकी पत्नी है?"

6 यह सुनकर मैंने उससे कहा, "वह मेरी पत्नी नहीं है;
वह उसी मत की है, उसी धर्म की है।"
(उसने उसे पत्नी मानना छोड़ दिया)

7 उस पर मोहित होकर उसने अपने भाड़े के लोगों से उसे पकड़वाया;
उसे बलपूर्वक महल के भीतरी कमरों में ले गया।

8 वह जो जल के घड़े को छूने मात्र से मेरी हो गई थी, जन्मजात,
उसी धर्म की—जब वह उसे घसीटकर
ले जा रहा था, तो मुझमें क्रोध उत्पन्न हुआ।

9 क्रोध उत्पन्न होते ही मुझे नैतिकता के व्रत का स्मरण आया
; उसी क्षण मैंने अपने क्रोध को रोक लिया,
उसे और बढ़ने नहीं दिया।

10 यदि कोई उस ब्राह्मण स्त्री पर तेज चाकू से हमला करे
, तो भी मैं आत्मज्ञान के लिए कभी
नैतिकता का उल्लंघन नहीं करूँगा।

11 वह ब्राह्मण स्त्री मुझसे असहमत नहीं थी, और न ही
मुझमें कोई शक्ति बची थी। मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी,
इसलिए मैंने नैतिकता की रक्षा की।

II.5 भैंस राजा का आचरण (15)

(महिसारजचार्यम) महिषा-जातक क्रमांक 278 देखें

1 फिर, जब मैं एक भैंसा था, जो जंगल में घूम रहा था,
शरीर से बहुत सुविकसित, बलवान, विशाल और देखने में भयानक,

2 इधर-उधर किसी पर्वत-गुफा में, किसी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी पर और
किसी जलधारा के पास किसी वृक्ष की जड़ में,
भैंसों के लिए कोई न कोई स्थान था।

2 विशाल जंगल में घूमते हुए मुझे एक अनुकूल
स्थान दिखाई दिया। उस स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ और लेट गया।

4 तब एक दुष्ट, घिनौना, फुर्तीला बंदर वहाँ आया और
मेरे कंधे, माथे और भौहों पर पेशाब और मल त्याग किया।

5 और एक दिन, दूसरे, तीसरे और चौथे दिन भी,
उसने मुझे अपवित्र किया। मैं हर समय उससे व्याकुल रहता था।

6 एक यक्ष ने मेरी व्याकुलता देखकर मुझसे कहा, "
सींगों और खुरों वाले उस दुष्ट को मार डालो।"

7 यह कहकर मैंने उस यक्ष से कहा, "
तुम मुझे एक दुष्ट और
घिनौने शव से क्यों मढ़ रहे हो?

2 8 यदि मैं उस पर क्रोधित हो जाऊँ, तो मैं
उससे भी अधिक पतित हो जाऊँगा; और
मेरे द्वारा नैतिकता का उल्लंघन हो सकता है और बुद्धिमान लोग मेरी निंदा कर सकते हैं।

9 वास्तव में, तिरस्कारपूर्ण जीवन से बेहतर है पवित्रता का जीवन जीकर मरना
। 4 मैं अपने जीवन के लिए भी
किसी दूसरे को कैसे हानि पहुँचा सकता हूँ?

10 यह मेरे बारे में ऐसा सोचकर दूसरों के साथ भी ऐसा ही करेगा
और वे उसे वहीं मार डालेंगे; मेरे लिए यही मुक्ति होगी।

11 यह बुद्धिमान, निम्न, मध्यम और
उच्च वर्ग के लोगों के बीच अपमान को क्षमा करके, इस प्रकार अपने अभिमान के अनुसार, अपनी इच्छा के अनुसार, प्राप्ति करता है
।"

II.6 हिरण-राजा रुरु का आचरण (16)

(रुरुमिगारजचार्यम) रुरु-जातक क्रमांक 482 देखें

1 फिर, जब मैं रुरु, हिरणों का राजा, उत्तम
चमकीले सोने के समान, सर्वोच्च नैतिकता पर ध्यान केंद्रित कर रहा था,

तब मैं एक रमणीय, एकांत, निर्जन क्षेत्र में पहुँचा और वहाँ गंगा
के एक सुंदर तट पर निवास किया । 3 तब गंगा के ऊपरी भाग में, ऋणदाताओं से व्याकुल एक व्यक्ति गंगा में गिर पड़ा (यह सोचते हुए), "मैं जीऊँगा या मरूँगा"। 4 वह दिन-रात गंगा के विशाल जल में बहता हुआ , दयनीय विलाप करता हुआ गंगा के मध्य में चला गया। 5 मैंने गंगा के तट पर खड़े होकर, उसके विलाप की दयनीय ध्वनि सुनकर पूछा, "तुम कौन हो?" 6 और मेरे पूछने पर उसने अपने कार्य का स्पष्टीकरण दिया, " ऋणदाताओं से भयभीत होकर, मैं भयभीत होकर इस विशाल नदी में कूद गया।" 7 उस पर दया करके, अपनी जान जोखिम में डालकर, मैं नदी में उतरा और रात के अंधेरे में उसे बाहर खींच लाया। 8 जब मुझे पता चला कि वह ठीक हो गया है, तो मैंने उससे कहा, "मैं तुमसे एक वरदान मांगता हूँ: मेरे बारे में किसी को मत बताना।" 9 नगर जाकर, पूछे जाने पर उसने धन के लालच में यह बात बता दी। राजा को लाकर वह मेरे पास आया। 10 मैंने जो कुछ किया था, वह सब राजा को बता दिया। राजा ने ये शब्द सुनकर अपना तीर तैयार किया और कहा, "यहाँ मैं अपने इस नीच, विश्वासघाती मित्र को मार डालूँगा।" 11 मैंने उसकी रक्षा करते हुए स्वयं को उसके स्थान पर रखा और कहा, "हे महाराज, उसे रहने दीजिए, मैं आपकी इच्छा और प्रसन्नता पूरी करूँगा।" 12 मैंने अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा की, अपने जीवन की नहीं, क्योंकि उस समय मैं स्वयं जागृति के लिए नैतिक मूल्यों का पालन कर रहा था।

II.7 मतंगा का आचरण(17)

(मटंगचर्यम्) मातंग-जातक क्रमांक 497 देखें 1 और फिर, जब मैं मटंग नाम

का एक जटाधारी तपस्वी था, जो घोर तपस्या कर रहा था, तब मैं नैतिकता का पालन करने वाला, एकाग्रचित्त व्यक्ति था। 2 मैं और एक ब्राह्मण दोनों गंगा के किनारे रहते थे; मैं ऊपरी भाग में रहता था, ब्राह्मण निचले भाग में। 3 नदी के किनारे घूमते हुए उसने नदी के ऊपर स्थित मेरी कुटिया देखी। वहाँ मेरा अपमान करते हुए उसने मुझे श्राप दिया कि मेरा सिर फट जाए (सातवें दिन सात टुकड़ों में)। 4 यदि मैं उससे क्रोधित होता, यदि मैंने नैतिकता की रक्षा न की होती, तो मैं (केवल) उसे देखकर ही उसे राख कर सकता था। 5 जब उसने क्रोधित होकर, भ्रष्ट मन से मुझे श्राप दिया, तो वह श्राप उसके ही सिर पर पड़ा—मैंने एक (चतुर) युक्ति से उसे मुक्त कर दिया । (जातक में वर्णित है कि बोधिसत्व (मतंग) ने सातवें दिन सूर्योदय को रोककर लोगों से कहा कि यदि वे सूर्योदय होने देंगे तो ब्राह्मण तपस्वी का सिर सात टुकड़ों में टूट जाएगा। इसलिए उन्होंने लोगों को मिट्टी का एक ढेला लाकर ब्राह्मण के सिर पर रखने का निर्देश दिया। फिर उन्होंने सूर्योदय होने दिया, जिसके बाद मिट्टी का ढेला सात टुकड़ों में टूट गया। इस प्रकार ब्राह्मण अपने श्राप के प्रभाव से मुक्त हो गया।) 6 मैंने अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा की, मैंने अपने जीवन की रक्षा नहीं की, क्योंकि उस समय मैं स्वयं ज्ञानोदय के लिए नैतिक मूल्यों का पालन कर रहा था।

II.8 देवपुत्र धम्म का आचरण (18)

(धम्मदेवपुत्तचर्यम्) धम्म-जातक क्रमांक 457 देखें

1 और फिर, जब मैं, एक विशाल दल और महान मानसिक
शक्ति से युक्त, धम्म नाम से था, तब मैं एक महान यक्ष था,
समस्त जगत के प्रति करुणामय।

2 दस कुशल कर्मों के प्रति जनता को प्रेरित करते हुए, मैं
मित्रों और सेवकों के साथ गांवों और बाज़ारों का भ्रमण करता था।

3 एक दुष्ट, लोभी यक्ष, दस दुष्ट
कर्मों का प्रचार करते हुए, वह भी मित्रों और
सेवकों के साथ पृथ्वी पर भ्रमण कर रहा था।

4 हम, धम्म और अधम्म के वक्ता, दोनों शत्रु,
रथ के डंडों को रथ के डंडों से टकराते हुए, आमने-
सामने आए।

5 अच्छे और बुरे के बीच एक भयंकर झगड़ा हुआ
और मार्ग से उतरने के लिए एक महान युद्ध आसन्न था।
(यह मुठभेड़ आकाश में हुई)

6 यदि मैं उससे क्रोधित होता, यदि मैंने तपस्वी गुणों को भंग किया होता , तो मैं उसे और उसके साथियों को धूल
में मिला सकता था । 7 परन्तु मैंने नैतिकता की रक्षा करते हुए, अपने मन को शांत किया (खन्ती और मेट्टा, धीरज और प्रेम जैसे दो गुणों
को जागृत करते हुए), और अपने लोगों के साथ दुष्ट यक्ष के मार्ग पर उतर गया । 8 जैसे ही मैं अपने विचारों को शांत करके उस मार्ग से
उतरा, धरती ने तुरंत दुष्ट यक्ष के लिए एक दरार बना दी।

II.9 एलिनासत्तू का आचरण(19)

(अलिनासत्तुचरियाम्) जयअदिष-जातक क्रमांक 513 देखें

1 पंचाल राज्य में, अतुलनीय
नगर कामिला में, जयअदिष नामक राजा ने नैतिकता के गुण प्राप्त किए थे।

2 मैं उस राजा का पुत्र था, सुशिक्षित, महान नैतिकता वाला,
अलिनासत्तु, सद्गुणों से युक्त, और अपने
सेवकों की सदादेखभाल करने वाला।

3 मेरे पिता हिरण का शिकार करने गए थे, तभी उनकी मुलाकात एक आदमखोर से हुई। उसने
मेरे पिता को पकड़ लिया और कहा, “तुम मेरे शिकार हो, हिलना मत।”

4 उसके ये शब्द सुनकर मेरे पिता भयभीत हो गए और
डर से कांपने लगे; उस आदमखोर को देखकर उनकी जांघें अकड़ गईं।

5 “हिरण का मांस लेकर मुझे जाने दो।”
ब्राह्मण को धन देने और वापस आने का वादा करके, मेरे पिता ने
मुझसे कहा:

6 “पुत्र, राज्य की देखभाल करना, इस नगर की उपेक्षा मत करना। मैंने
उस आदमखोर से वापस आने का वादा किया है।”

7 अपने माता-पिता का आदर करते हुए, स्वयं को उनके स्थान पर रखकर,
धनुष और तलवार त्यागकर मैं नरभक्षी के पास गया।

8 शायद मेरे हाथों में हथियार होने से वह
डर जाए। यदि मैं उसमें भय उत्पन्न करता तो नैतिकता का
उल्लंघन होता।

9 मैंने नैतिकता भंग होने के भय से उससे अप्रिय बातें नहीं कहीं
। प्रेम और दया भाव से
, मैंने ये शब्द कहे:

10 "एक बड़ी आग जलाओ। मैं पेड़ से गिरकर उस पर आ गिरूँगा।
समय आने पर, हे दादाजी, तुम मुझे खा सकते हो।"

11 इस प्रकार नैतिक प्रतिज्ञा के कारण मैंने अपने जीवन की रक्षा नहीं की। और मैंने प्राणियों
पर आक्रमण करने की उसकी प्रवृत्ति को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया ।

II.10 शंखपाल का आचरण(20)
(संखपालचर्यम) संखपाल-जातक क्रमांक 524 देखें

1 और फिर, जब मैं संखपाल (सांप) था, तब मैं महान मानसिक
शक्ति से परिपूर्ण था, मेरे हथियार के रूप में मेरे नुकीले दांत थे, मैं अत्यंत विषैला, दो
जीभों वाला और नागों का स्वामी था।

2 विभिन्न लोगों से भरी एक राजमार्ग के चौराहे पर,
चार कारकों पर दृढ़ निश्चय करके, मैंने अपना
निवास स्थान बनाया।

3 जिसे भी मेरी भीतरी त्वचा, बाहरी त्वचा, मांस,
स्नायु या हड्डियों की आवश्यकता हो, वह उसे ले जाए, जैसा है वैसा ही। 4 कठोर, निर्दयी और निर्दयी शिकारी लड़कों ने मुझे देखा और
अपने हाथों में लाठी और डंडे लेकर मेरे

पास आए । 5 मेरी नाक, पूंछ और रीढ़ की हड्डी को छेदकर, मुझे एक डंडे पर रखकर, शिकारी लड़के मुझे ले गए। 6 यदि मैं चाहूँ तो अपनी नाक की साँस से ही इस समुद्र से घिरी धरती को, जंगलों और पहाड़ों सहित, जला सकता था। 7 चाहे मुझे खंभों से छेदा गया हो, चाहे चाकुओं से काटा गया हो, मैं शिकारी-लड़कों से क्रोधित नहीं था—यही मेरी नैतिकता की पूर्णता थी।

भाग III: त्याग की पूर्णता

(नेक्खम्मपरमिता)

III.1 युधांजय का आचरण(21)
(युधंजयचार्यम) युवंजय-जातक # 460 देखें

1 जब मैं युधंजय था, राजा का पुत्र, अतुलनीय यश वाला, सूर्य की गर्मी
में गिरी ओस की एक बूंद को देखकर रोमांचित हो गया । 2 इसे ही संकेत मानकर मैंने अपना रोमांच और बढ़ा लिया। अपने माता-पिता का आदर करते हुए मैंने संन्यास लेने के लिए (उनकी सहमति) मांगी । 3 राज्य के नागरिकों और निवासियों ने हाथ जोड़कर मुझसे विनती की, "पुत्र, आज ही इस समृद्ध और संपन्न राज्य की देखभाल कर लेना।" 4 जब राजा, दरबारी महिलाएं, नागरिक और राज्य के निवासी बड़ी पीड़ा से विलाप कर रहे थे, तब मैं बिना किसी अपेक्षा के निकल पड़ा। 5 आत्मज्ञान के लिए ही मैंने समस्त पृथ्वी, अपने रिश्तेदारों, अपने दल-पत्नियों और यश का त्याग कर दिया और इसके बारे में कुछ भी नहीं सोचा। 6 मुझे अपने माता-पिता से कोई घृणा नहीं थी, न ही अपने दल-पत्नियों से। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी , इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.2 सोमनासा का आचरण(22)
(सोमनसचरियार्) सोमनस-जातक क्रमांक 505 देखें

1 और फिर, जब मैं अतुलनीय नगर इंदपट्टा (वर्तमान में दिल्ली) में था, तब
मैं (राजा का) पुत्र सोमनस था। मैं
अपने माता-पिता का प्रिय था, उन्हें मेरी बहुत चाह थी, मैं उनका प्रिय था और मेरी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

2 मैं गुणी, अच्छे गुणों से युक्त, सहज और
मधुर वाणी वाला, बड़ों का आदर करने वाला, विनम्र और
सहानुभूति के मूल सिद्धांतों में निपुण था।

3 एक पाखंडी तपस्वी उस राजा का प्रिय था। वह
बाग-बगीचे और फूलों की झाड़ियाँ उगाकर अपना जीवन यापन करता था।

4 उसे देखकर, जो धान के दाने के बिना भूसे के ढेर के समान
और अंदर से खोखले केले के पेड़ के समान था,
मैंने सोचा,

5 "यह तो अपनी जीविका के लिए
अच्छे आचरण का पालन नहीं करता, संन्यास से विमुख हो गया है
और लज्जा और पवित्र आचरण को त्याग दिया है।"

6 सीमावर्ती क्षेत्र में पड़ोसी जंगली
जनजातियों का आतंक था। मेरे पिता उसे शांत करने के लिए जाते समय मुझे निर्देश दिया,

7 "हे मेरे प्रिय, कठोर तपस्या करने वाले जटाधारी तपस्वी की उपेक्षा मत करना
। वह हमारी सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है;
उसकी इच्छाओं के अनुरूप कार्य करना।"

8 उसकी सेवा में जाते हुए मैंने ये शब्द कहे, "आशा है आप
कुशल मंगल होंगे, गृहस्थ, या आपके लिए क्या लाया जा सकता है?"

9 इस पर अहंकार से भरा वह ढोंगी क्रोधित हो गया और

बोला, “मैं तुम्हें मरवा दूंगा या राज्य से निकाल दूंगा।”

10 सीमावर्ती क्षेत्र में शांति स्थापित करने के बाद राजा ने उस
धोखेबाज से कहा, “आशा है आदरणीय महोदय, आप कुशल मंगल होंगे और
आपका सम्मान हुआ होगा?” उस दुष्ट ने राजा को बताया कि राजकुमार को क्यों
मारा जाना चाहिए।

11 उसकी बातें सुनकर पृथ्वी के स्वामी (राजा) ने आज्ञा दी,
“जहाँ वह हो, उसका सिर काट डालो और उसके
चार टुकड़े करके गली-गली घुमाओ—यही
उन लोगों का अंजाम है जो जटाधारी
तपस्वियों का अपमान करते हैं।”

12 तदनुसार, क्रूर, निर्दयी और बेरहम जल्लाद चले गए
और मुझे, जो अपनी माता की गोद में बैठा था, घसीटकर
ले गए।

13 जब वे मुझे कसकर बाँध रहे थे, तब मैंने उनसे कहा, “
मुझे तुरंत राजा के सामने पेश होने दीजिए—मुझे
राजा से कुछ काम है।”

14 उन्होंने मुझे उस दुष्ट राजा के सामने पेश होने दिया, जो उस दुष्ट का अनुयायी था
। जब मैंने उसे देखा, तो मैंने उसे
अपने वश में कर लिया।

15 उसने मुझसे क्षमा माँगी और मुझे महान राज्य दे दिया।
लेकिन मैंने अंधकार को चीरते हुए,
बेघरपन (सन्यासी जीवन) की ओर प्रस्थान किया।

16 ऐसा नहीं था कि मुझे महान राज्य अप्रिय था,
इंद्रिय सुखों का आनंद लेना अप्रिय नहीं था। सर्वज्ञता
मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.3 योगाहार का संचालन(23)
(आयोगराचर्यम) देखें योगरा-जातक # 510

1 और फिर, जब मैं काशी के राजा का अपना पुत्र था,
लोहे के घर में पला-बढ़ा, तो मेरा नाम अयघरा था।
(घनिष्ठ कारावास में पाला-पोसा गया, उसे यहाँ इसलिए पाला गया ताकि
अमानवीय प्राणियों से परेशानी न हो,
मादा यक्षों ने उसके दो भाइयों को खा लिया था)

2 (मेरे पिता ने कहा), “कठिनाई से जीवन प्राप्त करके,

3 राज्यों, नगरों और लोगों के साथ।” उस वीर योद्धा को प्रणाम करते हुए
, हाथ जोड़कर

अभिवादन करते हुए, मैंने ये शब्द कहे:

4 “पृथ्वी पर चाहे जो भी प्राणी हों, नीच, ऊँचे, मध्यम,
बिना किसी संरक्षण के वे सब अपने-अपने घर में अपने
सगे-संबंधियों के साथ बड़े होते हैं।

3 मुझे इस तरह कैद में पालने का यह तरीका
संसार में अनोखा है। मैं लोहे के घर में पला-बढ़ा हूँ, जहाँ न
चाँद की रोशनी है और न सूरज की।

6 अपनी माँ के गर्भ से, जो घृणित और आपत्तिजनक पदार्थों से भरा था, मुक्त होकर
, मुझे फिर से
लोहे के घर में और भी भयानक पीड़ा में डाल दिया गया।

7 यदि मैं, इस तरह की सबसे क्रूर पीड़ा सहकर, संप्रभुता में आनंद पाता, तो मैं दुष्टों में
सबसे नीच होता । 8 मैं शरीर से ऊब गया हूँ, मुझे संप्रभुता की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं ऐसी जगह पर विलीन होना चाहता हूँ जहाँ
मृत्यु मुझे कुचल न सके।” 9 जब जनता ज़ोर-ज़ोर से विलाप कर रही थी, तब मैंने ऐसा सोचते हुए, जैसे हाथी अपनी लालसाओं के बंधन
तोड़कर जंगल में प्रवेश कर जाता है । 10 मुझे माता-पिता अप्रिय नहीं थे, न ही मुझे महान यश अप्रिय था । सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी,
इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.4 आचरण (जिसमें] कमल के डंठल शामिल हैं (24)
(भिसचर्यम) भीस-जातक #488 देखें

1 फिर, जब मैं काशी नगर के तेजस्वी और अतुलनीय नगर में था, तब एक विद्वान (ब्राह्मण) परिवार
में मेरी एक बहन और सात भाई पैदा हुए । 2 मैं उनमें से पहला था, और शुद्ध विवेक से परिपूर्ण था। पुनर्जन्म को एक जोखिम मानते हुए,
मैंने वैराग्य में अत्यंत प्रसन्नता पाई। 3 मेरे माता-पिता द्वारा भेजे गए मेरे मित्रों ने सर्वसम्मति से मुझे इंद्रिय सुखों की ओर आमंत्रित किया:
“वंश को बनाए रखो”, उन्होंने कहा। 4 गृहस्थी में सुख लाने वाली बातों के बारे में उन्होंने जो कुछ भी कहा , वह मुझे कठोर, गर्म हल के
समान लगा। 5 फिर उन्होंने मुझसे, जो गृहस्थी का त्याग कर रहा था, मेरी आकांक्षा के बारे में पूछा, “मित्र, तुम्हारी क्या आकांक्षा है कि
तुम इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते?” 6 मैंने अपना भला चाहकर, जो लोग मेरी भलाई चाहते थे, उनसे कहा, “मैं गृहस्थ जीवन की
इच्छा नहीं रखता, मुझे त्याग में अत्यंत प्रसन्नता होती है।” 7 जब उन्होंने मेरी बात सुनी, तो उन्होंने मेरे माता-पिता को सूचित किया । मेरे
माता-पिता ने कहा, “तो फिर, हम सब चल रहे हैं।” 8 हम, मेरे माता-पिता, बहन और सातों भाई, अपार धन-संपत्ति त्यागकर, घने जंगल
में प्रवेश कर गए।

III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण (25)

(सोनापंडितचर्यम) सोना-नंद-जातक क्रमांक 532 देखें

1 फिर, जब मैं ब्रह्मवद्धन (बनारस) नगर में था, तब मेरा
जन्म एक उच्च, प्रतिष्ठित और अत्यंत धनी परिवार में हुआ था।

2 तब भी, जब मैंने देखा कि (संपूर्ण) संसार अंधकार
में डूबा हुआ है, तो मेरा मन पुनर्जन्म से ऐसे विमुख हो गया मानो
किसी अंकुश से बुरी तरह चुभ गया हो।

3 अनेक प्रकार की बुराइयाँ देखकर, मैंने तब सोचा,
"घर के जीवन से विदा होकर मैं वन में कब प्रवेश करूँगा
?"

4 तब भी मेरे सगे-संबंधियों ने मुझे इंद्रिय-सुखों के भोग के लिए आमंत्रित किया । मैंने उन्हें भी अपनी इच्छा बताते हुए कहा, " मुझे इन चीजों के लिए आमंत्रित
न करें ।" 5 मेरे छोटे भाई, जिनका नाम नन्द था, उन्होंने भी मेरे नैतिक उपदेशों का अनुसरण करते हुए, वनवास में उतना ही आनंद पाया। 6 मैं सोना, नंदा और मेरे माता-पिता, सबने अपनी संपत्ति त्यागकर उस विशाल वन में प्रवेश किया।

दृढ़ संकल्प की पूर्णता
(अधित्थनपरमिता)

III.6 बुद्धिमान तेमत्या का आचरण (26)
(तेमियापंडितचर्यम) मुगा-पक्खा-जातक क्रमांक 538 देखें ।

1 फिर, जब मैं काशी के राजा का इकलौता पुत्र था और
मेरा नाम मुगापक्खा (मूक और लंगड़ा) था, तो उन्होंने मुझे तेमिया कहा।
(जन्म के दिन भारी वर्षा हुई और मैं भीग गया, इसलिए मेरा नाम तेमिया पड़ा।)

2 उस समय राजा की सोलह हजार स्त्रियों में से किसी को भी पुत्र
जन्म नहीं हुआ था। कई दिनों और रातों के बाद, मैं
इकलौता पुत्र बनकर उठा।

3 मेरे पिता ने मेरे पलंग पर एक सफेद पर्दा डालकर मेरा
पालन-पोषण किया, मैं एक प्रिय पुत्र था, अच्छे कुल का, प्रकाश लाने वाला, जो
बड़ी मुश्किल से प्राप्त हुआ था।

4 जब मैं उस शानदार पलंग पर सोने के बाद जागा, तो मैंने
वह पीला पर्दा देखा जिसके सहारे मैं नरक में गया था।
(राजाओं को बहुत कठोर होना पड़ता था, जिसके कारण उन्हें बहुत कर्मफल भुगतने पड़ते थे और
निरय (नरक) में जाना पड़ता था। वह अपने पिछले जन्म में निरय को प्राप्त हुआ था।)

5 धूपदानी को देखकर मेरे मन में घोर भय उत्पन्न हुआ। मैंने
निर्णय लिया, "मैं इससे कैसे मुक्ति पाऊँगा?"

6 एक देवी (जो पहले मेरी रक्त संबंधी थीं,
पिछले जन्म में मेरी माता)
, मेरी इच्छा जानकर, मुझे व्यथित देखकर, मुझे

राजा बनने से बचने के लिए कुछ व्यवहार करने का सुझाव दिया:

7 “बुद्धिहीन बनो, सभी प्राणियों के सामने मूर्ख की तरह व्यवहार करो, सभी
लोग तुम्हारा उपहास करें—इस प्रकार तुम्हें मुक्ति मिलेगी।”
(गूंगा, बहरा और अपंग की तरह व्यवहार करो)

8 यह सुनकर मैंने उनसे कहा, “
देवी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आप मेरी मुक्ति चाहती हैं,
प्रिय, आप मेरा कल्याण चाहती हैं, देवी।”

9 जब मैंने उसकी बातें सुनीं, तो मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे
समुद्र में सूखी ज़मीन मिल गई हो। मैं प्रसन्न और रोमांचित होकर
तीन बातों पर दृढ़ निश्चय कर बैठा:

10 मैं गूंगा, बहरा और लंगड़ा था—चल नहीं सकता था।
इन्हीं बातों पर दृढ़ निश्चय करके मैं सोलह वर्ष तक जीवित रहा।

11 तब उन्होंने मेरे हाथ, पैर, जीभ और कान मलकर,
मुझमें कोई दोष न देखकर, मुझे अशुभ घोषित कर दिया।

12 तब देश के सभी लोग, सेनापति और पुजारी,
सब एकमत होकर मुझे त्यागने के पक्षधर हो गए।

13 जब मैंने उनकी राय सुनी, तो मैं प्रसन्न और रोमांचित हो गया,
क्योंकि जिस उद्देश्य से मैंने तपस्या की थी,
वह उद्देश्य मेरे लिए सफल हुआ था।

14 मुझे स्नान कराकर, मरहम मलकर,
मेरे सिर पर राजसी मुकुट बांधकर, विधिपूर्वक अभिषेक करके,
उन्होंने मुझे धूप सेंकने के लिए शहर का चक्कर लगवाया।

15 उसे सात दिनों तक ऊपर उठाए रखने के बाद, (एक दिन) जब सूर्य उदय
हुआ, सारथी मुझे बाहर ले गया।
रथ एक जंगल में आया।

16 रथ को खुले स्थान पर रोककर, लगाम लगे घोड़े को
अपने हाथ से मुक्त करके, सारथी ने मुझे दफनाने के लिए एक गड्ढा खोदा
।

17 विभिन्न
मार्गों में मेरे दृढ़ संकल्प से भयभीत होकर, मैंने उस दृढ़ संकल्प को नहीं तोड़ा जो स्वयं
ज्ञानोदय के लिए था । 18 माता-पिता मुझे अप्रिय नहीं थे और न ही स्वयं मुझे अप्रिय था। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने उसी पर दृढ़ संकल्प किया। 19 इन्हीं कारकों पर दृढ़ संकल्प करते हुए मैं सोलह वर्ष तक जीवित रहा। दृढ़ संकल्प में मेरे समान कोई नहीं था, यही मेरे दृढ़ संकल्प की पूर्णता थी।

सत्य की पूर्णता
(सक्कापरामिता)

III.7 बंदर राजा का आचरण(27)
(कपिराजचार्यम) वानरिन्द-जातक क्रमांक 57 देखें

1 जब मैं नदी के किनारे की दरार में बने मांद में रहने वाला बंदर था और
मगरमच्छ मुझे परेशान कर रहा था, तब मेरे पास (द्वीप पर) जाने का कोई अवसर नहीं था।

2 जिस स्थान पर मैं (चट्टान पर) खड़ा होता था, जब मैं
इस किनारे से कूदकर दूसरे किनारे पर उतरता था, वहाँ
मेरा शत्रु, हत्यारा और भयंकर रूप वाला मगरमच्छ बैठा था।

3 उसने मुझसे कहा, 'आओ'। मैंने उससे कहा, 'मैं आ रहा हूँ'।
उसके सिर पर पैर रखकर मैं दूसरे किनारे पर पहुँच गया।

4 मैंने उससे कोई झूठ नहीं बोला, मैंने अपने वचन के अनुसार कार्य किया।
सत्य में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी
सत्य की पूर्णता थी।

III.8 बुद्धिमान सक्का का आचरण (28)
(सच्चसवयपंडितचर्यम)

1 और फिर, जब मैं सच्च नामक तपस्वी था, तब मैंने
सत्य के माध्यम से संसार की रक्षा की, मैंने लोगों को एकजुट किया।

III.9 युवा बटेर का आचरण(29)
(वट्टपोतकचरीयम्) वट्टक-जातक क्रमांक 35 देखें

1 फिर, जब मैं मगध में एक छोटा बटेर था, पंख अभी
तक विकसित नहीं हुए थे, नवजात शिशु, घोंसले में मांस का एक टुकड़ा,

2 मेरी माँ ने मुझे अपनी चोंच में लाए भोजन से पाला;
मैं उसके संपर्क में रहकर जीवित रहा, मुझमें शारीरिक
शक्ति नहीं थी।

3 हर साल गर्मी के मौसम में जंगल में आग लग जाती थी। एक बार
, काली लकीरों वाली आग हमारे करीब आ गई।

4 धूम-धूम की आवाज करती हुई वह भीषण
आग धीरे-धीरे मेरे करीब आ गई।

5 आग की भयंकरता से भयभीत होकर मेरे माता-पिता ने
मुझे घोंसले में ही छोड़ दिया और अपनी जान बचाई।

6 मैंने अपने पैरों और पंखों से संघर्ष किया। मुझमें शारीरिक शक्ति नहीं थी। क्योंकि मैं
जा नहीं सका, तब मैंने वहाँ यह सोचा:

7 जिनके पास मुझे भयभीत, डरी हुई, कांपती हुई भागना चाहिए था, वे
मुझे पीछे छोड़कर चले गए हैं। आज मुझे क्या करना चाहिए?

8 संसार में नैतिकता का गुण है, सत्य है, पवित्रता है,
दया है। इसी सत्य से मैं सत्य की सर्वोच्च प्रतिज्ञा करूँगा
:

9 धम्म की शक्ति पर चिंतन करते हुए, पूर्व विजेताओं को याद करते हुए , सत्य की शक्ति पर भरोसा करते हुए, मैंने सत्य की
प्रतिज्ञा की : 10 "ऐसे पंख हैं जो उड़ नहीं सकते, ऐसे पैर हैं जो चल नहीं सकते। माता-पिता चले गए हैं। जातवेद (अग्नि), पीछे हट
जाओ।" 11 मेरे द्वारा प्रतिज्ञा किए गए सत्य से, भयंकर जलती हुई अग्नि सोलह कार्लस पीछे हट गई (और) जल तक पहुँची हुई अग्नि
के समान हो गई। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी सत्य की पूर्णता थी।

III.10 मछली-राजा का आचरण (30)
(मच्छराजचर्यम) मच्छा-जातक #75 देखें

1 फिर, जब मैं एक विशाल झील में मछली-राजा था, तो
गर्मी के मौसम में सूर्य की भीषण गर्मी से झील का पानी सूख गया।

2 तब कौवे, गिद्ध, बगुले, बाज और फाल्कन
मछलियों के पास बैठकर उन्हें दिन-रात खा जाते थे।

3 वहाँ अपने सगे-संबंधियों के साथ पीड़ित होकर मैंने सोचा,
"अब मैं अपने सगे-संबंधियों को इस कष्ट से कैसे मुक्त करूँ
?"

4 धर्म में निहित अच्छाई पर विचार करके, मैंने सत्य को
सहारा पाया। सत्य में दृढ़ रहकर, मैंने
अपने सगे-संबंधियों के उस भीषण विनाश को दूर किया।

5 सच्चे धर्म का स्मरण करते हुए, सर्वोच्च
हित को ध्यान में रखते हुए, मैंने सत्य की ऐसी प्रतिज्ञा की जो
संसार में शाश्वत और स्थायी रहेगी:

6 "जहाँ तक मुझे स्वयं का स्मरण है, जब से मैं
विवेकवान हुआ हूँ, मैंने
जानबूझकर किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाई है। इस सत्य की प्रतिज्ञा से
पज्जुन्न (देवताओं के राजा, सक्का/इंद्र) वर्षा करें।

7 हे पज्जुन्न, गरज! कौवों के खजाने को नष्ट कर दे,
कौवों को दुःख से घेर ले, मछलियों को दुःख से मुक्त कर दे।"

8 और सत्य की इस गौरवशाली प्रतिज्ञा के तुरंत बाद
, पज्जुन्न गरज उठे; और क्षण भर में उन्होंने इतनी
वर्षा की कि ऊँचे-नीचे क्षेत्र जल से भर गए।

9 सत्य की गौरवशाली प्रतिज्ञा के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाते हुए
, सत्य की शक्ति और प्रज्वलन पर भरोसा करते हुए, मैंने
एक भयंकर तूफानी बादल से वर्षा करवाई। सत्य के मामले में मेरे बराबर कोई नहीं था
—यही सत्य की मेरी पूर्णता थी।

III.11 कन्हादीपायन का आचरण(31)

(कन्हदीपायनचर्यम्) कंहड़ीपायन-जातक #444

1 फिर, जब मैं कफदीपायन नामक ऋषि था, तब मैं
पचास वर्षों से अधिक समय तक असंतुष्ट रहा।

2 मेरे इस असंतुष्ट मन के बारे में किसी को पता नहीं था क्योंकि मैंने
किसी को नहीं बताया था; असंतोष मेरे मन में बना रहा।

3 मेरे एक मित्र, महान
ऋषि, मंदाब्य, जो ब्रह्मयात्रा में मेरे साथी थे, ने एक पूर्व कर्म के कारण
सूली पर चढ़ाए जाने का दंड प्राप्त किया।

4 मैंने उनकी देखभाल करने के बाद उन्हें स्वस्थ किया।
अनुमति लेकर मैं अपने आश्रम लौट गया।

5 मेरे एक ब्राह्मण मित्र, अपनी पत्नी और छोटे बेटे के साथ—
तीनों एक साथ अतिथि बनकर आए।

6 जब मैं अपने
आश्रम में बैठकर उनसे अभिवादन कर रहा था, तभी उस युवक ने एक गेंद फेंकी और एक
विषैले साँप को क्रोधित कर दिया।

7 तब वह छोटा लड़का गेंद के
जाने का रास्ता खोजते हुए विषैले साँप के सिर को हाथ से छू गया।

8 उसके छूने से क्रोधित साँप ने अपने प्रबल विष के बल पर
तुरंत उस युवक को काट लिया।

9 विषैले साँप के काटने से युवक
ज़मीन पर गिर पड़ा, जिससे मुझे बहुत पीड़ा हुई; माता-पिता के उस दुःख ने
मुझे भी प्रभावित किया।

10 दुःख से व्याकुल और विचलित लोगों को सांत्वना देते हुए,
मैंने सर्वप्रथम सत्य का सर्वोच्च और अत्यंत गौरवशाली कथन किया
:

11 "सात दिनों तक मैंने श्रद्धा भाव से, पुण्य की कामना करते हुए
ब्रह्मयात्रा की। उसके बाद,

पचास वर्षों से अधिक समय तक

मैंने यह यात्रा अनिच्छा से ही की। इस सत्य से उनका कल्याण हो
, विष नष्ट हो, और यन्नदत्त (लड़के का नाम) जीवित रहे।” 13 मेरे द्वारा इस सत्य की पुष्टि करने पर, विष के प्रभाव से कांप रहा

ब्राह्मण युवक संभलकर खड़ा हो गया और ठीक हो गया। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था —यही सत्य में मेरी पूर्णता थी।

III.12 सुतासोमा का आचरण(32)

(सुतसोमाचरियाम्) महा-सुतसोमा-जातक #537

1 फिर, जब मैं सुतसोमा, पृथ्वी का स्वामी,
एक नरभक्षी द्वारा बंदी बनाया गया, तब मुझे एक ब्राह्मण से किया अपना वचन याद आया।

2 उसने सौ योद्धाओं को हथेलियों से बांधकर
(रस्सी के लिए छेद बनाकर) सुखा दिया और
मुझे यज्ञ के लिए ले आया।

3 नरभक्षी ने मुझसे पूछा, “क्या तुम अपनी मुक्ति चाहते हो? यदि तुम मुझसे फिर
मिलने आओगे तो मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार कार्य करूंगा ।” 4 मैंने उसे भोर में लौटने का आश्वासन दिया और रमणीय नगर की ओर बढ़ते हुए राज्य का त्याग कर दिया। 5 पूर्व विजेताओं द्वारा अनुसरण किए गए अच्छे धर्म का स्मरण करते हुए , ब्राह्मण को धन देकर, मैं नरभक्षी के पास गया। 6 मुझे कोई संदेह नहीं था कि वह मुझे धोखा देगा या नहीं। सत्य की रक्षा करते हुए मैं अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए आगे बढ़ा। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था —यही सत्य की मेरी पूर्णता थी।

प्रेम और करुणा की पूर्णता
(मेट्टापरमिता)

III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
(सुवन्नसमाचरियम) समा-जातक #540 देखें

1 जब मैं, सक्का द्वारा सृजित समा, एक वन में था, तब मैंने
वन के शेरों और बाघों को प्रेम भाव से भर दिया।

2 शेरों और बाघों, तेंदुओं, भालुओं, भैंसों
और चित्तीदार हिरणों और जंगली सूअरों से घिरा हुआ मैं वन में रहता था।

3 न तो कोई मुझसे भयभीत होता था और न ही मैं किसी से भयभीत होता था;
प्रेम भाव की शक्ति से पोषित होकर मैं उस वन में आनंदित रहता था।

III.14 एकराज का आचरण(34)
(एकराजचर्यम्) एकराज-जातक क्रमांक 303 देखें

1 और फिर, जब मैं एकराज कहलाया, व्यापक रूप से प्रसिद्ध,
सर्वोच्च नैतिकता पर दृढ़ निश्चयी होकर, इस विशाल

पृथ्वी पर शासन करता था।

2 बिना किसी अपवाद के, मैंने दस कुशल कर्मों का अभ्यास किया, और
उदारता के चार आधारों के साथ जनता के प्रति दयालुता का भाव रखा।

3 जब मैं इस लोक और परलोक के लिए इस प्रकार परिश्रम कर रहा था, तब दहसेना ने मेरे नगर को (शस्त्र बल
से) लूटकर , 4 राजा के आश्रितों, नगरवासियों, सशस्त्र बलों और देशवासियों सहित सभी को अपने कब्जे में लेकर, मुझे एक गड्ढे में दफना दिया। 5 जब उसने (सभी) मंत्रियों, समृद्ध राज्य, मेरे भीतरी नगर (राजमहल) पर कब्जा कर लिया, तो मैंने अपने प्रिय पुत्र को भी ले जाते हुए देखा। प्रेम-कृपा में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी प्रेम-कृपा की पूर्णता थी।

समभाव की पूर्णता
(उपक्खपारमिता)

III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण(35)
(महालोमहामशकारियम)

1 मैं एक श्मशान में एक कंकाल के सहारे लेट गया।
देहाती बच्चों की भीड़ मेरे पास आई और मेरा बहुत
उपहास करने लगी।

2 कुछ अन्य लोग, प्रसन्न और उत्साहित होकर, मुझे
अनेक प्रकार के इत्र, मालाएँ और तरह-तरह के भोजन भेंट करने आए।

3 जिन्होंने मुझे पीड़ा दी और जिन्होंने मुझे
सुख दिया—मैं उन सभी के प्रति एक समान था; मुझमें दया या क्रोध का
भाव नहीं था।

4 सुख और दुःख, सम्मान और निंदा के प्रति संतुलित होकर
, मैं सभी परिस्थितियों में एक समान था
—यही मेरी समता की पूर्णता थी।

समता की पूर्णता पर व्याख्या यहीं समाप्त होती है।

ENVOI-VERSES

1. अनेक पूर्व जन्मों में अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करके , मैंने परम
आत्मज्ञान प्राप्त किया।

2. उचित दान देकर,
नैतिकता का पूर्ण पालन करके, और
वैराग्य में परिपूर्ण होकर, मैंने परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।
3. विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करके, परम
ऊर्जा में संलग्न होकर, और धैर्य की परिपूर्णता प्राप्त करके, मैंने
परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

4. दृढ़ संकल्प करके, सत्य
का पालन करते हुए, और प्रेम की परिपूर्णता प्राप्त करके, मैंने
परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

5. लाभ और हानि, मान-सम्मान और निंदा,
आदर और अपमान—सभी परिस्थितियों में एकसमान रहकर
, मैंने परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

6. आलस्य को संकट और ऊर्जा के उपयोग को शांति मानकर
, ऊर्जा का सदुपयोग करना—यही
बुद्धों का उपदेश है।

7 विवाद को संकट और अहिंसा को
शांति मानकर, एकजुट और कोमल हृदय बनो—यह
बुद्धों की शिक्षा है।

8 लापरवाही को संकट और परिश्रम को शांति मानकर,
अष्टमार्ग का अनुसरण करो—यह
बुद्धों की शिक्षा है।
भगवान ने अपने पूर्व
आचरण का उदाहरण देते हुए धम्म पर प्रवचन दिया, जिसे
बुद्धों की वीर गाथाएँ कहा जाता है

। अंत में आचरण की टोकरी आती है।

नेटिपाकराना

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> नेत्तिपकरण

अंतर्वस्तु

1नेतिपकराना
1.1नेतिपाकरण पाठ्य (पीटीएस)
1.1.1अंतर्वस्तु
1.1.2ए. व्यापक खंड (पैरा 1)
1.1.3बी. विश्ष्ठ खंड (पैरा 2)
1.1.4भाग 1.1. सांकेतिक उपधारा (पैरा 2)
1.1.5भाग II.2. प्रदर्शनात्मक उपधारा (पैरा 5)
1.1.6भाग III.3. प्रति-प्रदर्शन उपधारा (पैरा 31)
1.1.7 अध्याय I 16 परिवहन के तरीके, अलग-अलग विवेचन में (पैरा 31)
1.1.8भाग IV अध्याय ii. संयुक्त उपचार में परिवहन के 16 तरीके (पैरा 489)
1.1.9भाग V अध्याय iii. दिशा-निर्देशों का निर्माण (पैरा 644)
1.1.10भाग VI अध्याय IV. व्यवस्था का स्वरूप (पैरा 759)
1.2अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
1.3मूल पाली संस्करण
1.3.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
1.3.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

नेटिपाकराना
(पथप्रदर्शक)

नेट्टीकरण एक मार्गदर्शिका है जो उन लोगों की मदद करती है जो पहले से ही इस शिक्षा को समझते हैं ताकि वे इसे दूसरों के सामने प्रस्तुत कर सकें। नेट्टी विधियों का उपदेश बुद्ध के शिष्य कच्चान (जिन्हें कात्यायन या कच्चायन भी कहा जाता है) ने दिया था।
नेट्टीकरण को दो भागों में विभाजित किया गया है:
1. संघवार: विषय-सूची का संग्रह
2. विभागवार: वह भाग जो वर्गीकृत तालिकाओं में व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत करता है। इस खंड में तीन उपखंड हैं:
2.1 उद्देसावारा
2.2 निद्देसवारा
2.3 पतिनिद्देसवारा।
उद्देसावारा में तीन अलग-अलग श्रेणियां दी गई हैं (पाली शब्द और नानामोली के अनुवाद): सोलह हार (संचारण, या संचारण के तरीके) हैं: देसना (शिक्षा), विचया (जांच), युत्ति (व्याख्या), पदत्थाना (आधार), लक्खाना (विशेषताएं), चतुव्यूह (चार गुना क्रम), आवत्त (रूपांतरण), विभत्ति (विश्लेषण), परिवत्तना (उलट), वेवचन (पर्यायवाची), पञ्ञत्ति (विवरण), ओतरण (प्रवेश के तरीके), शोधन (स्पष्टीकरण), अधित्थाना (अभिव्यक्ति के शब्द), परिक्खारा (आवश्यकताएं), और समरोपण (समन्वय)।

पांच नय (दिशानिर्देश) हैं: नंदियावत्त (स्वाद का रूपांतरण); टिपुक्खला (ट्रेफ़ोइल); सिहाविक्किलिता (शेर का खेल); दिसालोकन (दिशाओं का आलेखन); अंकुसा (हुक)।

अठारह मूलपदों में नौ कुसल और नौ अकुसल शामिल हैं।
नौ अकुशल हैं:

तन्हा (लालसा), अविज्जा (अज्ञान (समाधि-झाना का)),
लोभा (लालच), दोसा (नफरत), मोह (भ्रम),
सुभा सन्ना (सुंदरता की धारणा), निक्का सन्ना (स्थायित्व की धारणा), सुख सन्ना (आनंद की धारणा)। अत्तासन्या (स्वयं की धारणा);

नौ कुशल गुण हैं:
समाथा (शांति), विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान),
अलोभ (लालच रहित), अदोसा (घृणा रहित), अमोह (भ्रम रहित),
असुभासंज्ञा (कुरूपता की अनुभूति), दुःखसंज्ञा (पीड़ा की अनुभूति), अनिच्चसंज्ञा
(अस्थिरता की अनुभूति), और अनत्तसंज्ञा (अनात्मता की अनुभूति) आदि।

नेटिपाकरण पाठ (पीटीएस)

अंतर्वस्तु

ए. व्यापक अनुभाग (पैरा 1)
बी. विनिर्देश अनुभाग (पैरा 2)
भाग 1.1. सांकेतिक उपधारा (पैरा 2)
भाग II.2. प्रदर्शनात्मक उपधारा (पैरा 5)
भाग III.3. प्रति-प्रदर्शन उपधारा (पैरा 31)
    अध्याय i. 16 परिवहन के तरीके, अलग-अलग विवेचन में (पैरा 31)
भाग IV   अध्याय ii. संयुक्त उपचार में परिवहन के 16 तरीके (पैरा 489)
भाग V   अध्याय iii. दिशा-निर्देशों का निर्माण (पैरा 644)
भाग VI   अध्याय IV. व्यवस्था का स्वरूप (पैरा 759)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> नेत्तिपकरण >> सामग्री

नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

नेटिपाकरना <<<<-----||-1-||----->>>> अगला

अंतर्वस्तु

नेटिप्पकरण (मार्गदर्शक)

महा-कक्काना थेरा के अनुसार

भिक्कू नानामोली द्वारा पाली से अनुवादित

संकेताक्षर की सूची

एक।   अंगुत्तरा निकया
अभफ.   अभिधानप्पादीपिका (सिन्ह संस्करण)
बी ० ए। नेटी का बर्मी लिपि में मुद्रित संस्करण, 1917

बीबी. वही, 1956

सी। नेट्टी का सिंहली लिपि में मुद्रित संस्करण, 1923

सीपीडी.

डी।

ट्रेंकनर का क्रिटिकल पाली शब्दकोश, खंड 1 (कोपेनहेगन)

दीघा निकया

ध. धम्मपद (श्लोक संख्या)

डीएचए. धम्मपद टीका

ध्स. धम्मसंगानी (§ क्रमांक)

डीएचएसए. धम्मसंगम भाष्य (अट्ठहासलीन)

इति. इतिवुत्तका

जेडी. जातक

खपा. खुद्दकपथा टीका

केवी. कथवत्थु

केवीए. कथावत्थु भाष्य (पंचप्पकरणा)

में) '

केवीएए. मूल-टीका (बर्मी संस्करण, पं. IV)

एम। मज्झिमा निकया

एमए. मज्झिमा निकया टिप्पणी (पपनकासुदानी)

एमएए. मज्झिमा निकया टीका (बर्मी संस्करण)

मिल्न. मिलिंदपन्हा

एनडीएल. महा-निद्देश

एनडी2. कुला-निद्देसा (बर्मी संस्करण)

नेटी. नेटिप्पकारणा

नेटीए. नेति. टिप्पणी (पं. पी.टी.एस. नेति. संस्करण, शेष सिंहली-लिपि हेवाविटर्न संस्करण.)

नेटीएए. नेति विभावना टीका (बर्मी संस्करण)

पे. पेटाकोपदेसा

बाल रोगपाली टेक्स्ट सोसाइटी का पाली-अंग्रेज़ी शब्दकोश

पीटीएस. पाली पाठ सोसायटी

पीपीएन. शुद्धि का मार्ग (विशुद्धिमाग्ग अनुवाद, कोलंबो, 1956)

पी.एस. पतिसंभिदामग्गा

पग ए. पुग्गलपन्नत्ती टिप्पणी (पंचप्पकरणा. II)

एस. संयुक्त निकाय

एस.एन. सुत्तनिपाता

ठग. थेरागाथा

उद. उदाना '

Vbh. विभंगा

विसुद्धिमाग्ग (§ संदर्भ, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस संस्करण के लिए)

विस ए. विशुद्धिमग्गा महा-टीका (परमत्थामंजुसा-सिंहली संस्करण। अध्याय xviii तक, बर्मी संस्करण। अध्याय xix-xxiii)

वि.वि. विमानवत्थु

याम. यामाका

विषय-सूची का विस्तृत विवरण (पैरा)

क. व्यापक अनुभाग 1

ख. विनिर्देशन अनुभाग 2

भाग 1

1. सांकेतिक उपधारा 2

भाग II

2. प्रदर्शनात्मक उपधारा 5

3. प्रति-प्रदर्शन उपधारा 31

भाग III

अध्याय i.—16 संचार के तरीके: अलग-अलग विवेचन

मोड 1: शिक्षण का संचार करना 31

—चार सत्यों के 6 पहलू: संतुष्टि, निराशा,

पलायन; फल, साधन, निषेधाज्ञा 32

—छह पहलुओं के लिए उद्धरण 33

—जिन व्यक्तियों को यह शिक्षा दी जाती है उनके प्रकार 41

—प्रगति के 4 मार्ग और 4 स्वभाव 42

—शिक्षा को कैसे समझा जाता है 45

—चार सत्यों की प्रस्तुति के रूप में शिक्षण 48

—शिक्षण को विभिन्न तरीकों से कैसे प्रस्तुत किया जाता है 53

—जिनके लिए यह शिक्षा अभिप्रेत है 60

मोड 2: जांच का संचार 61

—जांच किए जाने वाले विषयों की सूची:

(1) पद, प्रश्न, उत्तर, क्रमानुसार;

(2) संतुष्टि, निराशा, मुक्ति; फल, साधन, आदेश;

(3) श्लोक-पुनर्कथन; (4) कोई भी धागा 62

—पहला उदाहरण 63

—दूसरा उदाहरण 70

—तीसरा उदाहरण 77

विलुप्ति के सत्यापन की दिशा में प्रगति 78

—चौथा उदाहरण 93

भगवान बुद्ध का वर्णन 96

संज्ञान की सुरक्षा 97

चार सही प्रयास 98

आस्था की क्षमताएँ, आदि। 100

विश्व 103

ज्ञान 104

कौशल 111

ध्यान और जागरूकता 112

सिद्ध पुरुषों और दीक्षा प्राप्त करने वालों के लिए आचरण 113

चार सत्यों का साकार होना 114

कामवासना, घृणा और भ्रम का अंत 115

(—मोड 1 देखें)

श्लोक-पुनर्कथन 116

—कोई भी थ्रेड 117

मोड 3: व्याख्या करना 119

—अधिकार के समक्ष अपील के 4 प्रमुख तरीके 120

— ऐसी अपीलों का परीक्षण कैसे करें 121

—उदाहरण— पूछे गए प्रश्न की जाँच 126

—अर्थ में अंतर 131

—समान अर्थ वाले पर्यायवाची शब्द 134

—उचित और अनुचित व्याख्या 139

मोड 4: नींव 158 को स्थानांतरित करना

—18 बूट-टर्म्स की परिभाषाएँ, विशेषता और आधार के अनुसार 159

—इंद्रिय सुख की लालसा, अस्तित्व की लालसा और धारणा की 5 श्रेणियाँ 161

— आस्था की 5 शक्तियों आदि में से 162

—अतार्किक ध्यान और आश्रित सदस्यों के बारे में-

उत्पन्न सूत्र 164

— अस्तित्व कैसे उत्पन्न होता है 165

—परिभाषाएँ, विशेषता और आधार के अनुसार, पथ 166

—विचारों का कथन आधार के रूप में (अनिवार्य शर्तें)

अन्य विचार 167

— 'फुटिंग' शब्द की परिभाषा 168

मोड 5: विशेषताओं का संचार 170

—की एकल विशेषताएँ:

सिक्सफोल्ड बेस 172

5 श्रेणियाँ 173

ध्यान के 4 आधार 174

5 संकाय 174

ज्ञानोदय में भाग लेने वाले विचार 175

लाभहीन का परित्याग 176

आश्रित रूप से उत्पन्न 180

आश्रित रूप से उत्पन्न लोगों का परित्याग 181

सारांश 182

मोड 6: एक चौगुनी सरणी को संप्रेषित करना 184

(i) भाषाविज्ञान 185

कुछ व्याकरणिक शब्द 186

(ii) आशय (इरादा) 187

उद्धरणों द्वारा उदाहरण 187

(iii) स्रोत 192

उद्धरणों द्वारा उदाहरण 192

(iv) लगातार-अनुक्रम 198

उद्धरणों द्वारा उदाहरण 198

4 प्रकार:

(क) अर्थ-अनुक्रम 214

(ख) वाक्यांश-अनुक्रम 216

(ग) शिक्षण-अनुक्रम 217

(घ) प्रदर्शन-अनुक्रम 218

मोड 7: रूपांतरण को संप्रेषित करना 220

— आंशिक रूप से बताए गए आधारों की पूर्णता, चार सत्यों में रूपांतरण के लिए संबंधित नैतिक विरोधाभासों का विवरण:

पहला उदाहरण 221

दूसरा उदाहरण 233

तीसरा उदाहरण 238

चौथा उदाहरण 250

मोड 8: विश्लेषण प्रस्तुत करना 263

—नैतिकता या अंतर्दृष्टि के रूप में सूत्र, गुण या फल के रूप में मार्ग,

संयम या त्याग के रूप में सद्गुण 264

—विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के बीच साझा किए गए विचार 271

—विचार आपस में साझा नहीं किए गए 273

—प्लेन और फुटिंग 275

मोड 9: उलटफेर का संचार 277

—दस अच्छाइयाँ 278

—लाभदायक कार्रवाई के 10 मार्ग 279

—आठ कारकों वाले मार्ग की निंदा करने वालों द्वारा उलटफेर और

10 सही बातें 281

उन लोगों द्वारा उलटफेर जो कहते हैं कि कामुक इच्छाओं को नियंत्रित किया जाना चाहिए

खेती की गई, आदि। 282

—4 विकृतियों का परित्याग 283

मोड 10: समानार्थी शब्दों का संचार 285

—विभिन्न समानार्थी शब्द 286

—प्रबुद्ध व्यक्ति का स्मरण 296

—सच्चे विचार का स्मरण 297

—समुदाय की यादें 298

—सद्‌गुण का स्मरण 299

— उदारता की यादें 300

मोड 11: विवरण संप्रेषित करना 302

— विवरण की परिभाषा 303

—उद्धरणों द्वारा उदाहरण 304

मोड 12: (चार सत्यों तक) प्रवेश के मार्ग बताना 351

—उद्धरणों के माध्यम से उदाहरण दर्शाते हैं कि कैसे एक मार्ग

संकायों के माध्यम से सत्यों तक पहुँच प्राप्त की जा सकती है।

श्रेणियाँ, तत्व, आधार और आश्रित उत्पत्ति 352

मोड 13: स्पष्टीकरण देना 414

—उद्धरणों के माध्यम से उदाहरण दर्शाते हैं कि विषय किस प्रकार है-

प्रश्न का विषय उत्तर में शामिल होना चाहिए 415

मोड 14: अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करना 422

—एकता और विविधता को व्यक्त करने वाले वैकल्पिक शब्द:

चार सत्य 424

पथ 428

समाप्ति 429

रूप और उसके घटक 430

अज्ञान (अज्ञान) 439

विज्ञान 440

उपलब्धि 441

ध्यानदाता 442

सांद्रता 443

मार्ग 444

बॉडी 445

अभिव्यक्ति के अन्य वैकल्पिक शब्द:

जीव और विचार 446

मोड 15: आवश्यकताओं को संप्रेषित करना {कारण और

स्थिति) 448

—विचार की अनिवार्यता की परिभाषा 449

—कारण और स्थिति 451

बीज और दूध की उपमाएँ 453

—पुनर्जन्म के चक्रक्रम का कारण और शर्त 454

—निकटता और दूर के संबंधों में कारणता 455

—दीपक की उपमा 456

—निरंतरता 457
—विभिन्न विचार और उनकी शर्तें 458

—आश्रित उत्पत्ति का सूत्र: किसी भी विचार की शर्त क्या होती है

एक और विचार, और इसके कारण ही यह स्वयं का विचार है।

व्यक्तिगत सार 462

—आवश्यकता की पुनर्परिभाषा 463

मोड 16: समन्वय संप्रेषित करना 465

—उल्लेखित विचार को प्रभावित करने वाले सभी विचारों का समन्वय:

(क) फुटिंग 468 द्वारा

(ख) पर्यायवाची 478 द्वारा

(ग) अस्तित्व में बनाए रखकर (अर्थात, जो अस्तित्व में रखा जाता है)

पथ) 482

(घ) त्यागने से (अर्थात, जो कुछ भी उसके साथ त्याग दिया जाता है)

त्यागना) 484

भाग IV

अध्याय ii.—16 परिवहन के तरीके: संयुक्त उपचार

मोड 1 489

—मूल श्लोक (पहला भाग): लाभहीन 491

—शिक्षा के रूप में मूल श्लोक की व्याख्या 492

मोड 2

—अनुपयोगी और लाभदायक लालसा और अहंकार, और

लाभदायक लालसा से प्रेरित जांच, और

अस्थायी हृदय-मुक्ति जिसकी ओर यह अग्रसर होता है 505

— अटूट समझ-मुक्ति को सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में मानना और

जांच को बढ़ावा दिया गया 509

— सांद्रता की जांच में 518 अंक प्राप्त हुए

—अष्टांगिक मार्ग की खोज 519

— अनित्यता, पीड़ा, अनात्म 527

—मुक्ति के 3 द्वार 528

—मार्ग की 3 श्रेणियाँ 533

शरीर, सद्गुण, चेतना और चेतना को बनाए रखना

समझना 535

—पांच गुना आगमन 539

—एक परिपूर्ण व्यक्ति की 10 शक्तियों की जांच 541

मोड 3 595

—मूल श्लोक (दूसरा भाग): लाभदायक 595

— मूल श्लोक 595 की व्याख्या

मोड 4-16 596-643

भाग V

अध्याय iii.—5 दिशा-निर्देशों का स्वरूपण 644

परिचयात्मक 644-5

रेलिशिंग गाइडलाइन 646-72 का रूपांतरण

ए. भ्रष्टाचार 646-65

लालसा-प्रवृत्ति और दृष्टिकोण-प्रवृत्ति: व्यवहार में

भ्रष्टाचार 646-8

(i) आत्म-यातना और कामुक भोग से होने वाला भ्रष्टाचार:

शांति और अंतर्दृष्टि द्वारा शुद्धि: चार सत्य 649-51

(ii) देहधारण द्वारा भ्रष्टाचार: अधिकार द्वारा शुद्धि-

दृश्य: चार सत्य 652-7

(iii) विनाशवादी और शाश्वतवादी विचारों द्वारा भ्रष्टाचार:

मध्य मार्ग से शुद्धि: चार सत्य 657-61

(iv) 62 प्रकार के गलत दृष्टिकोणों द्वारा भ्रष्टाचार: शुद्धि द्वारा

ज्ञानोदय आदि से संबंधित 43 विचार:

भ्रम के जाल का फटना 662-5

बी. शुद्धिकरण 666-72

लालसा-प्रवृत्ति और दृष्टिकोण-प्रवृत्ति: व्यवहार में

सफाई 666-9

दो स्वभाव, चार तरीके, और सुस्ती और तत्परता

संकायों आदि का 670-1

चार मार्ग: निष्कर्ष: सारांश श्लोक 672

दिशा-निर्देशों को निर्धारित करने संबंधी दिशानिर्देश 673-740

परिचयात्मक 673

ए. अलाभकारी

10 चतुष्पद, सभी विकृतियों-चतुष्पद 674 के अंतर्गत समाहित हैं।

—10 चतुष्कोण 675 का क्रमिक समावेशन

—दो प्रकार के स्वभाव पर लागू 676-85

—10 चतुष्कोणीय समूहों का प्रगतिशील संबंध 686-96

चार दिशाएँ: लाभहीन 697

—अपवित्रता और चार स्वभाव 698-701

—अपवित्रता और मुक्ति के 3 द्वार 702-11

— सारांश 712

बी. लाभ

लाभदायक धारणाओं के अंतर्गत सभी 10 चतुर्भुज समाहित हैं।

टेट्राड 713

—10 चतुष्कोण 714 का क्रमिक समावेशन

—10 चतुष्कोण 715 की प्रगतिशील पूर्ति

4 दिशाएँ: लाभ (आउटलेट) 724

—चार स्वभावों के लिए औषधि के रूप में 725-8

—10 लाभदायक चतुष्कोण और मुक्ति के 3 द्वार 729-38

द प्ले-ऑफ-लायंस गाइडलाइन 739

—उनका खेल: 739 के विपरीत चतुर्भुजों के 2 सेट

—शेर और उनका खेल: चारों इंद्रियों की अभिव्यक्ति

आस्था का चरागाह, और 4 विकृतियों की अभिव्यक्ति नहीं 740

—सारांश श्लोक 740

तिपतिया घास (हुक सहित) 741-58

(i) 4 प्रकार के व्यक्ति जिन्हें 4 तरीकों 741 द्वारा परिभाषित किया गया है

ए. भ्रष्टाचार: 10 अलाभकारी चतुष्कोण 742

बी. शुद्धिकरण: 10 लाभदायक चतुष्पद 743-4

(ii) चार प्रकार के व्यक्तियों को घटाकर तीन प्रकार के व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना, जैसे कि लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति।

संक्षेपित ज्ञान, इत्यादि। 745

—अनुदेश आदि को 3 प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है 746-52

ए. भ्रष्टाचार: 12 त्रिक जो सभी 3 मूलों के अंतर्गत समाहित हैं

लाभहीनता 753

b. शुद्धिकरण: 12 त्रिक जो सभी 3 मूलों के अंतर्गत समाहित हैं

लाभ 754

(iii) लालसा और दृष्टिकोण 755 के अंतर्गत तीन प्रकार के व्यक्तियों को घटाकर दो प्रकार के व्यक्तियों में बदलना

क. भ्रष्टाचार: 15 द्वैत जो सभी लालसा और अज्ञान के अंतर्गत आते हैं 756

बी. शुद्धिकरण: 18 द्वैत जो सभी शांति और अंतर्दृष्टि 757 के अंतर्गत समाहित हैं

— श्लोक 758 का सारांश

भाग VI

अध्याय iv.—व्यवस्था का प्रतिरूप

पहला समूह 759

अनुसूची:

1. भ्रष्टाचार से संबंधित चर्चा का प्रकार

2. नैतिकता

3. „ „ „ प्रवेश

4. „ „ „ द एडेप्ट

5. „ „ „ भ्रष्टाचार और नैतिकता

6. „ „ „ भ्रष्टाचार और घुसपैठ

7. „ „ „ भ्रष्टाचार और सिद्ध पुरुष

8. „ „ „ भ्रष्टाचार, घुसपैठ और निपुण

9. „ „ „ भ्रष्टाचार, नैतिकता और घुसपैठ

10. नैतिकता और पैठ

11. लालसा से भ्रष्टाचार

12. „ „ „ दृष्टिकोण से भ्रष्टाचार

13. कदाचार द्वारा भ्रष्टाचार

14. लालसा से शुद्धि

15. „ „ „ दृश्य से शुद्धिकरण

16. दुराचार से शुद्धि

उद्धरणों द्वारा उदाहरण 761

चर्चा 855

दूसरा समूह 860

अनुसूची:

i. (क) संसारों से संबंधित, (ख) संसारों से पृथक,

(सी) दोनों

ii. (क) प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया गया, (ख) विचारों के संदर्भ में व्यक्त किया गया,

(सी) दोनों

iii. (क) ज्ञान, (ख) जानने योग्य, (ग) दोनों

iv. (क) देखना, (ख) अस्तित्व में रखना, (ग) दोनों

(क) हमारा स्वयं का कथन, (ख) किसी अन्य व्यक्ति का कथन,

(सी) दोनों

vi. (a) उत्तर देने योग्य, (b) उत्तर न देने योग्य, (c) दोनों

vii. (a) क्रिया, (b) पकना, (c) दोनों

viii. (a) लाभदायक, (b) अलाभदायक, (c) दोनों

ix. (a) सहमत, (b) अस्वीकृत, (c) दोनों

x. शोक संदेश

उद्धरणों द्वारा उदाहरण 861

चर्चा एवं निष्कर्ष 941

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> नेत्तिपकरण >> ए.व्यापक खंड

नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

पिछला <<<<-----ll-2-ll----->>>> अगला

ए. व्यापक अनुभाग (पैरा 1)
[पेज 3]

पथप्रदर्शक

(नेटिप्पकरण)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स

[ए. व्यापक अनुभाग]

1.

[1] बुद्धिमान लोग व्यवस्था को जान सकते हैं

उस महान व्यक्ति की महिमा,

जिन्हें दुनिया और दुनिया के रक्षक

सदा आदर और श्रद्धा रखें। (1)

*

बारह शब्द 1 [सूत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं], 2 [जिनके] वाक्यांश और [जिनके] अर्थ दोनों ही मामलों में ज्ञात होने चाहिए:

यह वाक्यांश क्या है? इसका अर्थ क्या है? (2)

सोलह संदेश 3 [एक] मार्गदर्शक 4

[और] व्यवस्था के पांच दिशानिर्देश

खोजें [और] अठारह मूल-पद, 5 [भी],

महा-कक्काना 6 का प्रदर्शन (पे 3)। (3)

1/1 '12 पद' धारा 27-8 और 49ff में हैं। प्रस्तावना देखें, (धारा 7बी)।

1/2 इस सूत्र के 'धागा' या 'तर्क का धागा' के रूप में अनुवाद के लिए प्रस्तावना (खंड 8) देखें। इस ग्रंथ में इस शब्द का प्रयोग तीन प्रकार से किया गया है: 'धागा' के रूप में, बुद्ध के संपूर्ण ('नौ गुना') कथन के अर्थ में; 'धागे के एक प्रकार' के रूप में (उदाहरण के लिए, अंतिम अध्याय में प्रयुक्त); और 'एक धागा' के रूप में, जिसका अर्थ है कोई व्यक्तिगत प्रवचन या प्रवचन का कोई भाग। इस श्लोक में 'धागा' पहले अर्थ में है, जिसका अर्थ है कि संपूर्ण कथन '6 वाक्यांश-पदों' और '6 अर्थ-पदों' से आच्छादित है, जो '12 पदों' का निर्माण करते हैं (ऊपर नोट 1/1 देखें)। इस वाक्य का अनुवाद 'बारह शब्द एक धागा हैं' के रूप में करना व्याकरणिक रूप से तो बिल्कुल सही होगा, लेकिन अर्थ की दृष्टि से बिल्कुल गलत होगा।

1/3 प्रस्तावना देखें, (अनुभाग 8)।

1/4 इस अनुवाद के लिए प्रस्तावना देखें। यहाँ शब्द 1 नेट्टी' ('मार्गदर्शक') को मुख्य रूप से संज्ञा के रूप में लिया जाना चाहिए, न कि उचित नाम के रूप में, जिसे §965 में कार्य के अंतिम शीर्षक में उच्चारित किया गया है।

1/5 '18 मूल-पदों' के लिए परिचय देखें, (अनुभाग 7बी), साथ ही एन. 764/2.

1/6 नेटीए, कच्चयनगोत्तनिदित्था (एक पाठ जो पे पृष्ठ 3 पर भी दिखाई देता है) के अस्तित्व का उल्लेख करते हुए कहते हैं, 'इस श्लोक को यहाँ कार्य के उद्देश्य के सारांश के रूप में, गाइड का पाठ करने वालों द्वारा रखा गया माना जा सकता है, और इसी तरह प्रत्येक मोड ऑफ़ कन्वेइंग को समाप्त करने वाले समापन वाक्यांश के साथ' (पृष्ठ 10)।

[पृष्ठ 4] मार्गदर्शिका

संदेशवाहक धागे की जांच करते हैं

वाक्य रचना, तीन मार्गदर्शक बिंदु जो विषय के अर्थ को स्पष्ट करते हैं; 7

इन दोनों तरीकों से मिलकर बना एक धागा

इसे 'धागे के अनुसार' कहा जाता है। 8 (4)

♦

इसलिए, शिक्षण और शिक्षा के बीच

यदि दोनों का पता हो, तो क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

अब यहां दिए गए निर्देशों का पालन करें और परीक्षण करें।

तर्क का नौ गुना सूत्र। 9 (5)

♦

व्यापक अनुभाग।

1/7 अन्य 2 दिशानिर्देश, दिशा-निर्देशों की योजना और हुक, केवल वाक्यांशों से संबंधित हैं (§§29-30); परिचय देखें, (अनुभाग 7बी)।

1/8 संभवतः प्राधिकरण के चार प्रमुख अपीलों का संकेत (§§120ff.)।

1/9 'तर्क का नौ गुना सूत्र' से तात्पर्य एम. आई, 133 में दिए गए वर्गीकरण से है, जैसे 'तर्क का सूत्र, गीत, गद्य-व्याख्या, पद्य, विस्मयादिबोधक, कथन, जन्म-कथा, अद्‌भुत और चमत्कारी विचार, और प्रश्नों के उत्तर'। इन नौ को §29 में उल्लिखित 'नौ पदों' से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> नेत्तिपकरण >> बी.भाग 1. 1. सांकेतिक उपखंड

नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित
पिछला <<<<-----||-3-||----->>>> अगला

बी.विनिर्देश अनुभाग
भाग I. 1. सांकेतिक उपधारा (पैरा 2 - 4)

[पृष्ठ 5]

बी. विनिर्देश अनुभाग

भाग 1. सांकेतिक उपधारा]

2. इसमें, संप्रेषण के सोलह तरीके क्या हैं (§1, श्लोक 3)? [ये संप्रेषण के सोलह तरीके हैं:]

1. शिक्षण, 1

2. एक जांच,

3. व्याख्या करना,

4. नींव,

5. विशेषताएँ,

6. एक चार गुना सरणी,

7. रूपांतरण,

8. एक विश्लेषण,

9. एक उलटफेर,

10. समानार्थी शब्द,

11. विवरण,

12. प्रवेश के तरीके,

13. एक स्पष्टीकरण,

14. अभिव्यक्ति की शर्तें,

15. आवश्यक शर्तें,

16. समन्वय {पी 3).

[2] यहाँ एक पुनर्कथन-श्लोक दिया गया है:

शिक्षण, जांच, व्याख्या के रूप में

नींव और विशेषताओं के रूप में,

चार गुना सरणी, और फिर रूपांतरण,

विश्लेषण, उलटफेर भी,

पर्यायवाची के रूप में, और विवरण के रूप में, (1)

प्रवेश के तरीकों के रूप में, सफाई करना,

अभिव्यक्ति की शर्तें, आवश्यक शर्तें,

और सोलहवें समन्वय के लिए (तुलना करें पे 3)। (2)

ये सोलह परिवहन विधियाँ हैं (तुलना करें पे 3);

और प्रत्येक के महत्व के संबंध में

2/1 इन और शेष तकनीकी शब्दों के स्पष्टीकरण के लिए, परिचय (अनुभाग 8) देखें।
[पृष्ठ 6] मार्गदर्शिका

एक अलग कथन [इसके बाद आता है (धारा 5-20)]

प्रत्येक के लिए विस्तृत विधि-विश्लेषण के साथ 2 (3)

3. इसमें, पाँच दिशा-निर्देश क्या हैं (§1, उपधारा 3)? [वे इस प्रकार हैं:]

1. आनंद लेने का रूपांतरण,

2. तिपतिया घास, 1

3. शेरों का खेल;

4. दिशाओं का निर्धारण,

5. हुक (पी 3)।

यहां एक भावार्थ-श्लोक दिया गया है: 2

आनंद लेने की प्रक्रिया में बदलाव सबसे पहले आता है।

दूसरे स्थान पर ट्रेफोइल है, 3

उन्होंने इसे 'द लायंस प्ले' नाम दिया है।

तीसरे दिशानिर्देश सूत्र के लिए; (1)

चौथी गाइडलाइन को वे सबसे दुर्लभ कहते हैं

फिर दिशाओं की योजना बनाना

पांचवें को हुक कहा जाता है:

इसी प्रकार सभी पाँच दिशा-निर्देश आगे बढ़ते हैं (देखें पृष्ठ 4)। (2)

4. इसमें अठारह मूल-पद (§1, vse. 3) क्या हैं? वे नौ लाभदायक मूल-पद और नौ अलाभदायक मूल-पद हैं।

यहां, नौ अनुपयोगी मूल-पद कौन से हैं? [वे हैं:]

तीव्र इच्छा,

अज्ञानता;

लालच,

2/2 नेत्तिया कहते हैं कि यह श्लोक (पाली में अंतिम दो पंक्तियाँ) सभी पांडुलिपियों में नहीं है। (यह पाली में नहीं है।) इसके बाद में जोड़े जाने की संभावना बहुत अधिक है, क्योंकि इसमें 'अत्था' और 'नय अ' शब्दों का भ्रामक प्रयोग किया गया है, जो यहाँ न तो छठे अत्थापद (छठे बियंजनपद के विपरीत—§§27-8) और न ही पाँचवें नय (§§21-5) को संदर्भित करते हैं, बल्कि सोलह गुणों के व्यक्तिगत महत्व को संदर्भित करते हैं, जो स्वयं बियंजन से संबंधित हैं, अत्था से नहीं, और उनकी अलग-अलग व्याख्या की विस्तृत विधि को भी संदर्भित करते हैं (§§5-20)। प्रमुख तकनीकी शब्दों का ऐसा असंगत प्रयोग इस ग्रंथ के बाकी हिस्सों से अलग है। यहाँ नेत्तिया 'नय-विभत्ती' की व्याख्या 'उपायेन विभागो' से करते हैं (यहाँ विभत्ती शब्द विभत्ती-हारा को संदर्भित नहीं करता है)। यह विट्ठरेना के साथ विसंगतिपूर्ण विट्ठरताय (विट्ठरताय के लिए मेट्री कारण?) को उजागर करता है और विट्ठरा-नया के पढ़ने को बुरा मानकर खारिज कर देता है।

3/1 प्रस्तावना देखें, (खंड 7बी और 8)।

3/2 अनुगिति का यही अर्थ होना चाहिए; पी.ई.डी. में नहीं, सी.पी.डी. देखें। नेट्टिया संगहा-गाथा (पृष्ठ 19) के साथ व्याख्या करते हैं; अनुक्रमणिका देखें; साथ ही पी.ई. पृष्ठ 87 भी देखें।

3/3 यह क्रम केवल गणना का है। अध्याय 3 और अध्याय 8 देखें।
[पृष्ठ 7] विनिर्देश अनुभाग

घृणा,

भ्रम;

सौंदर्य की धारणा,

सुख की अनुभूति,

स्थायित्व की धारणा,

स्वयं की धारणा (तुलना करें पे 4)।

ये नौ अलाभकारी मूल-पद हैं, जिनमें अलाभकारी पक्ष से संबंधित सभी चीजें शामिल और संकलित की गई हैं।

यहां, नौ लाभदायक मूल शब्द कौन से हैं? [वे हैं:]

शांत,

अंतर्दृष्टि;

लोभ रहित

नफरत रहित

भ्रम रहित;

कुरूपता की धारणा

दर्द की अनुभूति,

अनित्यता की धारणा,

गैर-स्वयं की धारणा (cf. Pe 4)।

ये नौ लाभदायक मूल पद हैं, जिनमें लाभदायक पक्ष से संबंधित सभी चीजें समाहित और संकलित हैं।

इसे याद रखने का एक आसान तरीका यहाँ दिया गया है:

नौ पद: लालसा और अज्ञान

और लोभ, घृणा और भ्रम भी।

और विकृतियों के साथ चार और भी हैं

अपवित्रता के तल का गठन करते हैं। (1)

[3] नौ पद - शांत और फिर अंतर्दृष्टि

तीन लाभदायक जड़ों के साथ

और माइंडफुलनेस-फाउंडेशन्स चार 1

संकायों के तल का निर्माण करते हैं। (2)

लाभ के पक्ष में नौ शर्तों के साथ

और गैर-लाभकारी संस्थाओं की तरफ से नौ पद।

व्याख्या करने पर, ये मूल-पद [इस प्रकार] आते हैं

[कुल मिलाकर] अठारह पदों की संख्या तक (तुलना करें पे 4)। (3)

अंत: सांकेतिक उपखंड।

4/1 'सचेतनता के चार आधार' (चट्टारो सतिपथाना) शब्द का प्रयोग अविकृत बोध (विपल्लसा-वत्थुनी) के चार विषयों को संदर्भित करने के लिए असामान्य है। (तुलना करें पे 185)।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> नेत्तिपकरण >> भाग II.2.प्रदर्शनात्मक उपखंड

नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

पिछला <<<<-----||-4-||----->>>> अगला

भाग II.2. प्रदर्शन उपधारा (पैरा 5 - 30)

[पृष्ठ 8]

[भाग 2. प्रदर्शनात्मक उपधारा]

5. यह मार्गदर्शिका का संक्षिप्त विवरण है।

[संचार के 16 तरीके]

संतुष्टि, निराशा,

पलायन, फल, साधन, भगवान बुद्ध का भक्तों को उपदेश, 1 यह विधि

क्या यह शिक्षा का संचार है (तुलना करें पे 81,11. 4-6)। (1)

6. इस चर्चा में क्या पूछा गया है और किसका उत्तर दिया गया है?

साथ ही एक श्लोक का भावार्थ भी,

और थ्रेड की [शब्द-] जांच 1

यह विधा जांच को दर्शाती है (cf. Pe 82)। (2)

7. सही और गलत व्याख्या की तलाश करना

सभी हस्तांतरणों के मामले में

विमान और रिसॉर्ट 1 [प्रदर्शन करेंगे]

व्याख्या को संप्रेषित करने का तरीका (cf. Pe 88,11. 3-4)। (3)

8. विजेता एक विचार सिखा रहा है

यह सिखाता है कि उस विचार में क्या है

आधार के रूप में; प्रत्येक विचार के साथ भी ऐसा ही है:

यह नींव ले जाने का तरीका है (पी 89,11. 8-9)। (4)

9. जब एक विचार का उल्लेख किया जाता है, तो सभी

समान विशेषताओं के विचार 1

इनका भी उल्लेख किया गया है: यह गठित करता है

विशेषताएँ व्यक्त करने का तरीका (cf. Pe 90)। (5)

5/1 ये छह शब्द (पहले तीन के लिए देखें, उदाहरण के लिए, ए. i, 258; एम. iii, 18; 8. v, 193) इस पद्धति की विशिष्ट विशेषताओं के रूप में नहीं, बल्कि शिक्षा की एक सामान्य प्रस्तुति के रूप में लिए जाने चाहिए, जैसे कि 4 सत्य, जिनके साथ इन्हें §48 में मेल कराया गया है। ये अध्याय 2, §§489ff में नहीं मिलते हैं। पे में ये इसके अध्याय 2 (शासनपट्टाना) के एक समूह में मिलते हैं, पद्धतियों में नहीं।

6/1 सभी ग्रंथों में पाविको पढ़ा जाता है, लेकिन नेट्टी ए (पृष्ठ 19) इसे पदा-विको का प्रतिनिधित्व करने के लिए लेता है और शब्दों i पदम विसिनाती' (§62; पीटीएस नेट्टी पृष्ठ 10) का संदर्भ देता है; पीटीएस नेट्टी पृष्ठ 252 और 259 और एमएए. i, 127-8 (यहां परिशिष्ट में पुनरुत्पादित) में इस मोड के उपचार की तुलना करें।

7/1 नेट्टी ए यहां प्लेन को 'वाक्य रचना' और रिसॉर्ट को 'अर्थ' के रूप में समझाती हैं।

9/1 टेना केसी के बजाय दोनों एमए.आई, 31 (जहां उद्धृत) और पे 90.

[पृष्ठ 9] विनिर्देश अनुभाग

10. वाक्यांश के माध्यम से, 1 (i) भाषाई, 2

(ii) आशय, और (iii) शिक्षा का स्रोत,

और (iv) क्रमानुसार अनुक्रम:

यह मोड एक चौगुना सरणी को दर्शाता है (cf. Pe 91)। (6)

11. वह तरीका, जब एक ही आधार हो,

बचे हुए आधार की तलाश

और फिर विपरीत को परिवर्तित करता है

क्या इससे रूपांतरण का संकेत मिलता है (पे 93)। (7)

12. यह विचार, आधार का विश्लेषण करता है,

[पुरुषों के प्रकारों का] तल, साझा

और साझा नहीं किया गया: इस मोड के बारे में जानकारी होनी चाहिए।

जैसा कि विश्लेषण को संप्रेषित करना। 1 (8)

13. विपरीत में उलटना

लाभ और हानि के विचार

अस्तित्व में बनाए रखने और छोड़ने के लिए दिखाया गया

इसे मोड कन्वेइंग रिवर्सल कहा जाता है। (9)

14. [4] धागों का ज्ञाता वही है जो जानता है

एक के कितने पर्यायवाची शब्द हैं?

विचार इस थ्रेड में हैं: यह मोड

क्या यह पर्यायवाची शब्द व्यक्त कर रहा है (cf. Pe 96)। (10)

15. भगवान बुद्ध एक ही विचार की शिक्षा देते हैं।

अनेक प्रकार के वर्णनों के माध्यम से;

इस मनोदशा को इस प्रकार जाना जा सकता है

वह विधा जो विवरण प्रस्तुत करती है। (11)

16. आश्रित-उदय, संकाय,

श्रेणियाँ, तत्व, आधार:

वह विधि जिसके द्वारा इन साधनों से प्रवेश मिलता है

क्या यह प्रवेश के तरीकों को दर्शाता है? (12)

———————————————————————————————

10/1 बयांजनम के लिए यहां नामांकन के रूप में। इंस्ट्र के लिए खड़े, §184 में पुनर्कथन देखें (पीटीएस नेटी पृष्ठ 32)। इसके लिए, निरुत्ती, और पुब्बापारा- ('लगातार - क्रम') ए देखें। iii. 201.

10/2 'नेरुत्त—भाषाई': निरुत्ती ('भाषा'—किसी कम सरल शब्द की तलाश करने की आवश्यकता नहीं है) से प्रबलित रूप। दोनों रूप §185 में एक साथ दिखाई देते हैं। n. 186/1 भी देखें।

12/1 विभत्ती ('विश्लेषण' यहाँ), विभंग ('पृथक'—शीर्षक §31 ऊपर) और विभाग ('विनिर्धारण'—शीर्षक §2 ऊपर) शब्दों को भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।

[पृष्ठ 10] गाइड

17. किसी प्रश्न का उत्तर मिलने पर उसकी अपेक्षा करना।

श्लोक में ऐसा क्या था जिसने उकसाया?

इसका प्रश्न स्पष्ट हुआ या नहीं:

यह तरीका स्पष्टता का संकेत देता है। (13)

18. विचारों को प्रदर्शित करने पर

एकता और विविधता दोनों

इसलिए किसी भी प्रकार के वियोजन की आवश्यकता नहीं है: 1

यह विधा अभिव्यक्ति के पदों को व्यक्त करती है। (14)

19. वे विचार जो प्रत्येक एक विचार को जन्म देते हैं

उचित संबंध में शर्तें भी हैं;

और इसके द्वारा 1 कारण का चयन करके

यह मोड आवश्यक जानकारी देता है (cf. Pe 104)। (15)

20. उन विचारों को साझा करना जिनकी जड़ें उनसे जुड़ी हैं।

और जिन्हें ऋषि ने दिखाया है

एक अर्थ यह है कि, समन्वय होना चाहिए:

यह मोड समन्वय को दर्शाता है (cf. Pe 110)। (16)

*

[5 दिशा-निर्देश]

21. लालसा और अज्ञानता द्वारा निर्देशित मार्गदर्शक रेखा

शांति और अंतर्दृष्टि द्वारा, और व्याख्या करते हुए

उचित रूप से चार सत्य

क्या आनंद लेने का रूपांतरण है (cf. Pe 259)। (17)

22. लाभ और [के विचारों] का मार्गदर्शन करना

उनकी [तिहरी] जड़ों से लाभहीन

वे वास्तव में, अवास्तविक नहीं हैं,

उस दिशा-निर्देश को वे तिपतिया घास कहते हैं (देखें पे 259)। (18)

18/1 शब्द विकप्पा व्याकरणविदों द्वारा वियोजक कण वा ('या') के लिए इस्तेमाल किया जाता है, जैसे सम्पिंडना संयोजन च ('और') के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

19/1 'अवकद्धयित्व—चुनकर निकालना' : शाब्दिक अर्थ है 'नीचे खींचना'। हालाँकि पीईडी में यह संदर्भ दिया गया है, लेकिन यह केवल जातक-अनुवाद अर्थ देता है, जो यहाँ उपयुक्त नहीं है। सीपीडी 1 s 'किसी पाठ से निकालना' नेत्तिआ के 'सुत्ततो निद्धरित्व' पर आधारित है; लेकिन यह बहुत शाब्दिक है। तुलना करें अपकद्धति एट पी 74f. (पीडी या सीपीडी में नहीं, स्पष्ट रूप से इसका अर्थ है 'आरक्षित करना')। यहाँ तात्पर्य अनेक 'स्थितियों' में से एकमात्र 'कारण' को 'चुनकर निकालना' है।

[पृष्ठ 11] विनिर्देश अनुभाग

23. मार्गदर्शक सिद्धांतों में बुद्धिमानों ने इसे कहा है

लायंस प्ले जो कि संकायों द्वारा 1

क्या आस्था के सच्चे उद्देश्य 2 मार्गदर्शक हैं, और भी

विकृतियों और अपवित्रताओं द्वारा (तुलना करें पे 259)। (19)

24. मानसिक रूप से कौन 1 [विचारों] की रूपरेखा तैयार करता है?

लाभ और हानि का उल्लेख किया गया है

या फिर प्रदर्शनियों में इधर-उधर

वे इसे दिशाओं का निर्धारण कहते हैं (cf. Pe 259)। (20)

25. प्लॉटिंग के साथ इस प्रकार प्लॉटिंग करने के बाद

निर्देशों के बारे में, फिर क्या सामने आता है

सभी लाभ [विचार] और हानि

और उन्हें अंदर ले जाने वाले को हुक कहा जाता है (cf. Pe 259)। (21)

*

[संचार के तरीके और दिशा-निर्देश कैसे अपनाए जाते हैं]

26. सोलह परिवहन, प्रथम, सर्वेक्षण

फिर दिशाओं की रूपरेखा तैयार करने के साथ,

और हुक से इकट्ठा करने के बाद,

तीन दिशा-निर्देश 1 एक सूत्र को प्रदर्शित करते हैं। (22)

27. (i) पत्र, (ii) शब्द, और फिर (iii) वाक्यांश,

इसके अलावा (iv) भाषाई [विभक्ति],

(v) प्रदर्शन, और (vi) मनोदशा

छठे के रूप में: यह बात वाक्यांश से संबंधित है। (23)

28. [5] (vii) व्याख्या करना, (viii) प्रदर्शित करना, और (ix) खुलासा करना,

(x) विश्लेषण करना, (xi) प्रदर्शित करना, (xii) वर्णन करना:

इन छह शब्दों द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है

एक अर्थ और एक क्रिया 1 भी। (24)

23/I यहाँ 'क्षमताओं' से तात्पर्य विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और समझ से है। लेकिन यहाँ इन क्षमताओं का इस मार्गदर्शिका में स्वभाव के अनुसार स्पष्ट वर्गीकरण का तात्पर्य है (देखें §§645fF. और साथ ही 947)।

23/2 सद्धम्म (यहाँ 'विश्वास का सच्चा लक्ष्य' - संस्कृत: सद्धर्म) को सद्दाहति ('विश्वास रखना', 'विश्वास स्थापित करना') का ग्द्वे माना जा सकता है, जो पाली में सद्ध ('विश्वास' - संस्कृत: श्रद्धा) के लिए क्रिया रूप में कार्य करता है। यहाँ चार अक्षत बोधों का उल्लेख है, जो अनित्यता के बोध से शुरू होते हैं।

24/1 'ओलोकायते—प्लॉट्स आउट': शाब्दिक अर्थ 'सर्वेक्षण करता है', 'नीचे देखता है'।

26/1 रेलिशिंग का उलटफेर, शेरों का खेल और तिपतिया घास।

28/1 नेत्तिया कहते हैं कि यहाँ 'अर्थ' (अत्था) एक धागे का है, जबकि 'क्रिया' (कम्म) संघनन (उग्घटना) आदि की है, देखें §§41-7।

[पृष्ठ 12] गाइड

29. भगवान बुद्ध के कथन का अर्थ

यह अपने अर्थ के लिए नौ शब्दों को जोड़ता है, अर्थात्:

पहले तीन दिशा-निर्देश, जिनमें से किसी को भी नहीं छोड़ा गया है (§§21-3),

और अर्थ-शब्द जिनकी संख्या छह है (§28)। (25)

30. नौ शब्दों (§29) के अर्थ के लिए, चौबीस

वाक्यांश की खोज के लिए भी, 1

इनकी कुल संख्या तैंतीस है।

और यही मार्गदर्शक है। (26)

♦

प्रदर्शनात्मक उपखंड।

30/1 अंकगणित इस प्रकार है: अर्थ के लिए 9 पद (§28) + वाक्यांश के लिए 24 (16 मोड (§§5-20) + 6 वाक्यांश-पद (§27) + अंतिम 2 दिशानिर्देश (§§24-5) से बना) :9+24 = 33.

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> नेत्तिपकरण >> भाग III। Ch-i-16 अलग उपचार
नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

पिछला <<<<-----||-5-||----->>>> अगला

[पृष्ठ 13]

अंतर्वस्तु
1भाग 3. प्रति-प्रदर्शन उपधारा
1.1संदेश पहुंचाने के 16 तरीके: अलग-अलग विश्लेषण
1.1.11. शिक्षा प्रदान करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.22. जांच को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.33. व्याख्या करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.44. नींव ले जाने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.55. विशेषताओं को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.66. चार गुना सरणी को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.77. रूपांतरण को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.88. विश्लेषण को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना सूत्र
1.1.99. उलटफेर को दर्शाने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1010. पर्यायवाची शब्दों को व्यक्त करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1111. वर्णन संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1212. सत्यों तक पहुँचने के मार्गों को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1313. स्पष्टीकरण देने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1414. अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1515. आवश्यकताओं को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
1.1.1616. समन्वय को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
भाग 3. प्रति-प्रदर्शन उपधारा
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके: अलग-अलग विश्लेषण
1. शिक्षा प्रदान करने के तरीके में नौ गुना धागा
31. इसमें, शिक्षा को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? शिक्षा को संप्रेषित करने का तरीका निम्नलिखित श्लोक में संक्षेप में बताया गया है:
'संतुष्टि, निराशा,
पलायन, फल, साधन, भगवान बुद्ध के
भक्तों के लिए आदेश: यह विधि
क्या यह शिक्षा का संप्रेषण है? (§5)।
[शिक्षण की क्रिया और जो पढ़ाया जाता है]

32. यह क्या सिखाता है? [यह निम्नलिखित प्रकार से सिखाता है:]
[सफलता, निराशा, मुक्ति, फल, साधन और आदेश के पहलुओं में],1 < भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक सच्चा विचार सिखाऊंगा जो अच्छा है शुरुआत, मध्य में अच्छा, और अंत में अच्छा, अपने अर्थ और अपने वाक्यांश के साथ; मैं एक दिव्य जीवन प्रदर्शित करूँगा जो पूरी तरह से परिपूर्ण और शुद्ध है > (एम. आई, 280)।
33. इसमें संतुष्टि क्या है ?
जब कोई व्यक्ति कुछ इच्छा करता है , और यदि उसकी इच्छा पूरी हो जाती है,
उसे अपनी मनचाही चीज पाकर जरूर खुशी होगी ।
यही संतुष्टि है। (पे 45; एसएन 766)।
34. इसमें निराशा क्या है?
[6] इच्छा से उत्पन्न और स्वेच्छाचारी , यदि उसकी इच्छाएँ उससे दूर हो जाएँ ,
वह इतना विकृत हो जाता है मानो उसे किसी कांटे से छेदा गया हो> (एसएन. 767)।
यही निराशा की बात है।

32/1 इन छह शब्दों के लिए n. 5/1 देखें। यहाँ सभी छह शब्द (assadam . . . anattim) कर्म कारक में हैं और निम्नलिखित उद्धरण में शब्द dhammam ('एक सच्चा विचार') के समानांतर हैं। ये सभी उद्धरण में क्रिया desissami ('मैं सिखाऊँगा') द्वारा नियंत्रित हैं। इन छह शब्दों के बारे में और अधिक अभ्यास के लिए Pe 43-8 देखें।

[पृष्ठ 14]
पथप्रदर्शक
35. इसमें बचने का तरीका क्या है ?
जो व्यक्ति इच्छाओं से दूर रहता है, वह सांप के सिर को अपने पैर से कुचलने के समान है।
और सचेतनता इस संसार से लगाव से दूर रहती है ।
यही बचने का रास्ता है। (पे 46; एसएन 768)।
36. इसमें संतुष्टि क्या है?
खेत , बाग-बगीचे और धन, मवेशी और घोड़े, दास और मजदूर , स्त्रियाँ और रिश्तेदार: मनुष्य की अनेक इच्छाएँ होती हैं ।
यही संतुष्टि है। (संख्या 769)
36ए. इसमें निराशा क्या है ?
< अत्यंत अक्षम प्रतीत होने वाली विपत्तियाँ उसे अभिभूत कर देती हैं और कुचल देती हैं;
फिर दर्द उस पर हावी हो जाता है, जैसे पानी टूटी हुई नाव पर (Sn. 770)।
यही निराशा की बात है।
36बी. इसमें बचने का तरीका क्या है ?
अतः मनुष्य को इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से हमेशा दूर रहने का ध्यान रखना चाहिए;
उसे उन्हें त्यागकर बाढ़ पार करने दो > (स्न. 771)।
यही बचने का रास्ता है।
37. इसमें फल क्या है ?
जो व्यक्ति सच्चे आदर्श के मार्ग पर चलता है, वह उसकी रक्षा करता है ।
जैसे बारिश के समय एक बड़ी छतरी काम आती है।
आदर्श का सही मार्ग अपनाने पर मिलने वाला पुरस्कार यह है:
जो भी उस मार्ग पर चलता है, उसका गंतव्य कभी बुरा नहीं होता ।
यह फल है। (पे 44; तुलना करें थाग. 303)।
38. इसमें साधन क्या है ?

सभी निर्धारण क्षणभंगुर होते हैं, . . .
और सभी निर्णय भी कष्टदायी होते हैं ...
[और फिर इसके अलावा] अनात्म के अलावा सभी विचार हैं:
और जब वह इस प्रकार समझदारी से देखता है,
फिर वह दुख में भी वैराग्य पाता है;
यही वह मार्ग है जो शुद्धिकरण की ओर ले जाता है > (पे 44; ध . 277-9)।
यह साधन है।
39. [7] इसमें निषेधाज्ञा क्या है ?
ठीक वैसे ही जैसे अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति यात्रा करता है
ज्ञात खतरे वाले स्थानों से दूर रहना चाहिए।
एनीमेशन की इस दुनिया में भी यही बात लागू होती है।
बुद्धिमान लोग बुरी चीजों से दूर रहें > (उद. 50).
यह निषेधाज्ञा है।

[पृष्ठ 15]
पृथक उपचार में संप्रेषण के 16 तरीके
40. < हे मोगराज , संसार को शून्य समझो > यही आदेश है। < निरंतर सचेत रहना ही साधन है ।
< इस प्रकार आत्म-दृष्टि को जड़ से उखाड़ फेंककर , तुम मृत्यु को मात दे सकते हो > यही फल है (पे 45; एसएन 1119)।

[इसे कैसे पढ़ाया जाता है]
41. इसमें भगवान बुद्ध संक्षेपित ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को पलायन सिखाते हैं, 1 वे विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को निराशा और पलायन सिखाते हैं, 2 वे मार्गदर्शन योग्य व्यक्ति को संतुष्टि , निराशा और पलायन सिखाते हैं।
42. इसमें चार मार्ग और चार प्रकार के व्यक्ति हैं। 1 मंदबुद्धि स्वभाव वाला व्यक्ति, जो लालसा से भरा होता है, ध्यान के आधारों को आधार बनाकर और अपनी चेतना की शक्ति से, सुस्त परिचय के कष्टदायी मार्ग पर आगे बढ़ता है। 2 मंदबुद्धि स्वभाव वाला व्यक्ति, जो बुद्धिमान होता है , 2 चार ध्यान विधियों को आधार बनाकर और अपनी एकाग्रता की शक्ति से, तीव्र परिचय के कष्टदायी मार्ग पर आगे बढ़ता है। 3

41/1 ' उग्घतीत —संक्षिप्त': देखें ए. ii, 135; पुग. 41. यह संदिग्ध है कि पीईडी में दिए गए अर्थों में से कोई भी किसी संदर्भ के लिए सही है या नहीं, क्योंकि ये सभी ए . संदर्भ से व्युत्पन्न प्रतीत होते हैं। यहाँ अर्थ वही है जैसा कि प्रस्तुत किया गया है, जैसा कि यह संदर्भ स्पष्ट रूप से दर्शाता है। संबंधित क्रिया 'उग्घतीत' के लिए देखें n. 54/1. इस शब्द की व्याख्या पुग. 41 में भी की गई है। व्युत्पत्ति में संशोधन की आवश्यकता है। 41/2 ' 4 विपंचीत —विस्तारित': यहाँ भी वही टिप्पणियाँ लागू होती हैं जो ऊपर ' उग्घतीत' पर टिप्पणी में हैं। पीईडी का 'अविभ्रमित समझ, स्पष्ट बुद्धि, पूर्वाग्रह रहित' बिल्कुल गलत है। बात यह है कि जहाँ उग्घतीतन्नु को चार सत्यों का ज्ञान (अन्ना) प्राप्त करने के लिए केवल एक संक्षिप्त (उग्घतीत) कथन की आवश्यकता होती है, वहीं विपंचीतन्नु को उसी उद्देश्य के लिए एक विस्तृत (विपंचीत) कथन की आवश्यकता होती है। अत: वह दूसरे की तुलना में मंदबुद्धि है। 'मार्गदर्शनयोग्य' (नेय्या), यद्यपि मंदबुद्धि है, फिर भी मार्गदर्शन का पालन करने में सक्षम है। यह बात अ. ii, 135 पर लागू होती है। और विपंचना (§55) का अर्थ पीईडी में दिए गए 'वाक्य सुनाना' नहीं है, बल्कि 'संक्षिप्त कथन का विस्तार करना' है (जैसा कि उदाहरण के लिए, एम. सुत्त 18 में किया गया है)। इसी प्रकार व्युत्पन्न शब्द विपंचयति (§54) और विपंचीयन्त (§56) हैं। इस शब्द की व्याख्या पुग. 41 में भी की गई है ।
42/1 'तन्हा —लालसा': यह सामान्य अनुवाद है और ठीक है। यह शब्द संस्कृत के अनुवाद 'प्यास' के समान है, लेकिन इसका प्रयोग कभी भी 'प्यास' के लिए नहीं किया जाता, जिसके लिए ' पिपसा ' शब्द का प्रयोग होता है । 'आवश्यकता' शायद बेहतर अनुवाद होगा।

42/2 i उदत्त(ह)ा — बुद्धिमान ': नेट्टीए और सी ने उदत्था लिखा है और नेट्टीए ने ' उदा-अत्थो; उलारा-पन्नो ति अत्थो ' (पृष्ठ 43) की व्याख्या की है। बा और बीबी पीटीएस का समर्थन करते हैं । अर्थ के लिए पीईडी (केवल नेट्टी संदर्भ) 'उन्नत, उच्च, उदात्त, चतुर' देता है, लेकिन यहाँ यह मनआ ('सुस्त') का ठीक विपरीत है ।

42/3 t अभिनना —परिचय: इस शब्द (क्रिया अभिजनति से बना प्रतिस्थापन) के तीन मुख्य अर्थ हैं: (1) व्यक्तिगत अनुभव द्वारा प्रत्यक्ष परिचय, (2) पुस्तक ज्ञान द्वारा या किसी अन्य से सुनकर परिचय, 'मस्तिष्क करना', जो 'सुने गए ज्ञान' (§46) के समतुल्य है, और (3) छह प्रकार के अभिनना या पांच अलौकिक शक्तियां जो लोकों से संबंधित हैं और एक ज्ञान जो लोकों से अलग है और दोषों के निवारण का ज्ञान है, जिन्हें सामूहिक रूप से चलभिनना कहा जाता है । यहां अर्थ (2) या (3) के अर्थ में है।

[पृष्ठ 16]

पथप्रदर्शक

कम बुद्धि वाले व्यक्ति को सही प्रयासों और ऊर्जा के बल पर धीमी गति से चलने वाले सुखद संपर्कों के माध्यम से अपनी प्रतिभा को व्यक्त करने का रास्ता मिल जाता है। इसी प्रकार, बुद्धिमान व्यक्ति को सत्यों और समझ के बल पर तीव्र गति से चलने वाले सुखद संपर्कों के माध्यम से अपनी प्रतिभा को व्यक्त करने का रास्ता मिल जाता है।

43. दोनों प्रकार की व्यथाएँ, शांति द्वारा प्रकट अंतर्दृष्टि के माध्यम से, कामवासना के लुप्त होने से हृदय की मुक्ति की ओर अग्रसर होती हैं । दोनों प्रकार की दृष्टियाँ, अंतर्दृष्टि द्वारा प्रकट शांति के माध्यम से, अज्ञान के लुप्त होने से समझ की मुक्ति की ओर अग्रसर होती हैं ।

44. यहाँ, जो लोग शांति द्वारा घोषित मार्गों से निकास मार्ग (cf. §§529ff.) पाते हैं, उन्हें आनंद के रूपांतरण मार्गदर्शक रेखा (§§644-72) के माध्यम से 1 को त्यागने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जबकि जो लोग अंतर्दृष्टि द्वारा घोषित मार्गों से निकास मार्ग पाते हैं, उन्हें शेरों के खेल मार्गदर्शक रेखा (§§673-757) के माध्यम से त्यागने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

[इसे कैसे समझा जाता है]

45. [8] यह संदेश देने का तरीका वास्तव में कहाँ से आता है ? जब गुरु, या दिव्य जीवन में कोई सम्मानित साथी, किसी को सच्चा विचार सिखाता है, तो वह व्यक्ति, उस सच्चे विचार को सुनकर, विश्वास प्राप्त करता है।

46. इसमें, पूछताछ, रुचि, आकलन, जांच-पड़ताल, सुनी गई बातों से युक्त समझ है (देखें डी. iii, 219)। इसी प्रकार की पूछताछ, आकलन, जांच-पड़ताल, सुनी गई बातों को आधार बनाकर मानसिक अवलोकन करना, चिंतन से युक्त समझ है। ज्ञान-

---

43/1 यह संकेत ए. ii, 157 की ओर है। 'शांत' (समाथा) 'एकाग्रता' (समाधि) का पर्यायवाची है ।

43/2 अविज्जा —यहाँ 'अज्ञान'—को यहाँ 'अज्ञान' के रूप में अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है, जो विज्जा (यहाँ 'विज्ञान' के रूप में व्यक्त) का व्युत्पन्न-विपरीत है। तकनीकी रूप से अविज्जा चार सत्यों का 'अज्ञान' है, जबकि विज्जा के अर्थ हैं (1) व्यापक रूप से कोई भी ज्ञान या 'विज्ञान' (पुराने अर्थ में) और (2) तकनीकी रूप से 'त्रिविध विज्ञान' (तिविज्जा) जैसे कि भूतपूर्व जीवन का स्मरण (पुब्बेनिवासनुस्सति), दिव्य दृष्टि (दिब्ब-चक्खु) और दोषों के निवारण का ज्ञान (आसव-खया-नाना)।

44/1 ' हताब्बा - परित्यक्त करने के लिए लाया जा सकता है':/ एचडी परित्याग करने के लिए (?)। नेट्टिया कहते हैं ' यामेतब्बा; नेतब्बा ती अत्थो '; देखा गया। 181/ली.

[पृष्ठ 17]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

जब कोई व्यक्ति अपना ध्यान इन दो प्रकार की समझों से जोड़ता है, तो देखने के स्तर पर या अस्तित्व में बने रहने के स्तर पर जो समझ उत्पन्न होती है, वह अस्तित्व में बने रहने से संबंधित समझ है। [अब] सुनी गई बातों से संबंधित समझ दूसरे के कथन से उत्पन्न होती है। चिंतन से संबंधित समझ स्वयं के लिए गढ़े गए तर्कसंगत ध्यान से उत्पन्न होती है । अस्तित्व में बने रहने से संबंधित समझ वह ज्ञान है जो दूसरे के कथन और स्वयं के लिए गढ़े गए तर्कसंगत ध्यान से उत्पन्न होता है (देखें पे 233)।

47. जिसमें दो प्रकार की समझ होती है, अर्थात् श्रवण और चिंतन, वह संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है। जिसमें श्रवण संबंधी समझ तो होती है, पर चिंतन संबंधी समझ नहीं होती, वह विस्तृत ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है। जिसमें न तो श्रवण संबंधी समझ होती है और न ही चिंतन संबंधी समझ, वह मार्गदर्शन योग्य होता है (तुलना करें पीई 30)।

[चार सत्यों की प्रस्तुति के रूप में शिक्षा]

48. सच्चे विचार की शिक्षा क्या सिखाती है? चार सत्य, अर्थात् दुख, उत्पत्ति, समाप्ति और मार्ग।

निराशा और फल दुख हैं; संतुष्टि उत्पत्ति है; पलायन समाप्ति है; साधन और आदेश मार्ग हैं (धारा 32 देखें)। ये चार सत्य हैं।

46/1 तकनीकी शब्द 'दर्शन' (दशाना) प्रथम मार्ग को दर्शाता है, जिस क्षण निर्वाण का प्रथम दर्शन होता है। शेष तीन मार्गों के लिए 'अस्तित्व में बनाए रखना' (भावना - कारणवाचक संज्ञा, भू से उत्पन्न) समान तकनीकी शब्द है, जो निर्वाण के उस दर्शन को दोहराकर उसे अस्तित्व में बनाए रखते हैं। इस प्रकार इस अंतिम शब्द का एक महत्वपूर्ण तात्विक महत्व है।

46/2 ' योनिसो मनसिकारा —तर्कसंगत ध्यान'। योनि (शाब्दिक अर्थ 'गर्भ') का प्रयोग लाक्षणिक रूप से उस 'कारण' के लिए किया जाता है जिससे कोई विचार 'जन्म लेता है", अर्थात् एक अनिवार्य शर्त (पच्चया), देखें एम. iii, 142। मनसिकारा का अर्थ वही है जो यह कहता है, अर्थात् 'मन में क्रिया करना'। यह हमेशा अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। तकनीकी शब्द योनिसो मनसिकारा ('तर्कसंगत ध्यान') का अर्थ है अस्तित्व की विशिष्ट सशर्तता के संदर्भ में सोचना। इसका उत्कृष्ट उदाहरण एस. ii, 105f. में दिया गया है; इसका विपरीत, अयोनिसो मनसिकारा , विचारों की कोई भी ऐसी श्रृंखला है जो अस्तित्व की उस विशिष्ट सशर्त संरचना की अनदेखी करती है (देखें एम. i, 7), और जिसके परिणामस्वरूप गलत विचार बनते हैं और फलस्वरूप पीड़ा उत्पन्न होती है। इसे लौकिक ('ऐतिहासिक') कारणता के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।

46/3 'स्वयं के लिए ढाला गया' मुख्य रूप से एस . ii, 105f में वर्णित 'तर्कसंगत ध्यान' द्वारा मूल सोच को संदर्भित करता है।

46/4 तुलना करें. पे 1-2.

[पृष्ठ 18]

पथप्रदर्शक

49. [अब] यह सच्चे विचार का चक्र है, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है:

<' यह पीड़ा है * बनारस में , भिक्षुओं , इसिपताना के हिरण पार्क में , मेरे द्वारा सत्य विचार का अद्वितीय चक्र इस प्रकार चलाया गया था जिसे भिक्षु 1 या देवता 2 या भगवान या मारा या देवत्व या दुनिया में किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता था ... > और संपूर्ण 'सत्य विचार का चक्र' [प्रवचन उद्धृत किया जाना चाहिए] (cf. एस. v, 424)।

इसमें मापहीन शब्द, मापहीन अक्षर (देखें ए . ii, 182), वाक्यांश, भाव, भाषाविज्ञान और मापहीन प्रदर्शन (देखें §27) हैं, लेकिन उसी अर्थ [नौ गुना धागे में] की व्याख्या, प्रदर्शन, प्रकटीकरण, विश्लेषण, प्रस्तुतिकरण और वर्णन (देखें §28) भी है (देखें पे 5)। यही दुख का आर्य सत्य है।

50. <' यही दुख का मूल है': बनारस में , भिक्षुओं , इसिपताना के हिरण पार्क में , मेरे द्वारा सच्चे विचार का अद्वितीय चक्र घुमाया गया था ... >.. .

51. [9] < ' यह बनारस में दुखों का निवारण है , भिक्षुओं ,...>

52. <' यही दुख के निवारण का मार्ग है': बनारस में , भिक्षुओं , इसिपताना के हिरण पार्क में , मेरे द्वारा सत्य विचार का अद्वितीय चक्र इस प्रकार चलाया गया था जिसे भिक्षु, देवता, ईश्वर, मार, दिव्यता या संसार में किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता> (देखें एस.वी. , 424)।

इसमें असीमित माप के शब्द, असीमित माप के अक्षर, मुहावरे, भाव, भाषाविज्ञान और असीमित माप के प्रदर्शन हैं, लेकिन उसी अर्थ का स्पष्टीकरण, प्रदर्शन, प्रकटीकरण, विश्लेषण, प्रस्तुतिकरण और वर्णन है [नौ प्रकार के सूत्र में]। यही दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य है।

49/1 समना का कोई पर्याप्त अनुवाद नहीं है । एम.ए. i, 113 में इसे 'कोई भी व्यक्ति जो गृहस्थ जीवन से बाहर चला गया है' के रूप में परिभाषित किया गया है और एम.ए. ii, 201 में आगे समझाया गया है।

49/2 पाली भाषा के तीन शब्द ब्रह्मा ('दिव्य' जैसे ब्रह्मा-विहार = 'दिव्य निवास', ब्रह्मचर्य = 'दिव्य जीवन' (ब्रह्मचर्य), ' ब्रह्मयान = 'दिव्य वाहन' (श्लोक 4)), ब्रह्मा ('उच्च देवत्व'), और ब्राह्मण ('दिव्य', 'पुजारी देव, पुजारिन-देव जाति, 'दिव्य जाति का') व्युत्पत्ति और अर्थ दोनों दृष्टियों से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। इन शब्दों पर अक्सर शब्द-खेल होते हैं, और प्रत्येक शब्द का अर्थ दूसरे से प्रभावित होता है। ब्रह्मा (विशेषण) ब्रह्मा ईश्वर की पूर्णता के गुण को दर्शाता है, और ब्राह्मण जाति सृष्टिकर्ता माने जाने वाले ब्रह्मा से अपनी उत्पत्ति का दावा करती है ।

[पृष्ठ 19]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
[शिक्षण को विभिन्न तरीकों से कैसे प्रस्तुत किया जाता है]
53. इसमें भगवान बुद्ध अक्षरों द्वारा व्याख्या करते हैं, शब्दों द्वारा प्रदर्शित करते हैं, वाक्यांशों द्वारा प्रकट करते हैं, भावों द्वारा विश्लेषण करते हैं, भाषा विज्ञान द्वारा प्रदर्शित करते हैं और प्रदर्शनों द्वारा वर्णन करते हैं।
54. इसमें, भगवान बुद्ध अक्षरों और शब्दों द्वारा 1 को संक्षेपित करते हैं, वे वाक्यांशों और भावों द्वारा 2 का विस्तार करते हैं, वे भाषा विज्ञान और प्रदर्शनों द्वारा विस्तृत करते हैं।
55. इसमें, संक्षेपण 1 आरंभ है, विस्तार 2 मध्य है, और विस्तृत करना अंत है (देखें §32)।
56. यह सच्चा विचार और मार्गदर्शक (अनुशासन), जब संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह उस प्रकार के व्यक्ति का मार्गदर्शन (अनुशासन) करता है जो संक्षिप्त रूप से प्राप्त ज्ञान से लाभान्वित होता है; अतः 'आरंभ में अच्छा' कहा गया है (§32)। जब इसे विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह उस प्रकार के व्यक्ति का मार्गदर्शन (अनुशासन) करता है जो विस्तृत ज्ञान से लाभान्वित होता है; अतः 'मध्य में अच्छा' कहा गया है (§32)। जब इसे विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो यह उस प्रकार के व्यक्ति का मार्गदर्शन (अनुशासन) करता है जो मार्गदर्शन के योग्य होता है; अतः 'अंत में अच्छा' कहा गया है (§32)।
57. इसमें, छह शब्द अर्थ से संबंधित हैं, अर्थात् व्याख्या करना , प्रदर्शित करना , प्रकट करना , विश्लेषण करना , दिखाना और वर्णन करना (§28); ये छह शब्द अर्थ से संबंधित हैं। [और] छह शब्द वाक्यांश से संबंधित हैं, अर्थात् अक्षर , शब्द , वाक्यांश , भाव , भाषाई और प्रदर्शन (§27); ये छह शब्द वाक्यांश से संबंधित हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, <भिक्षुओं , मैं तुम्हें एक सच्चा विचार सिखाऊंगा जो आरंभ में अच्छा , मध्य में अच्छा और अंत में अच्छा है , अपने अर्थ और अपने वाक्यांश के साथ; मैं एक दिव्य जीवन प्रदर्शित करूंगा जो पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध है> (§32)।
58. [10] 'पूरी तरह से': 1 संसारों से अलग, संसारों के साथ मिश्रित नहीं

54/1 ' उग्घतेति —संक्षेपित करना': (देखें n. 41/1) पीटीएस नेट्टी इंडेक्स में दिया गया और पीईडी में उद्धृत 'खोलना, प्रकट करना' का अर्थ गलत है। संभवतः वहाँ विज़. 113 और 327 में वर्णित < 'हसिना > के 'हटाने' (उग्घती) के साथ भ्रम है।
54/2 ' विपंचयति - विस्तार करना' (अर्थात, संक्षिप्त अर्थ का विस्तार करना): देखें n. 41 /2.
55/1 ' उग्घटना —(संघनन की क्रिया)': पी.ई.डी. में नहीं है।
55 1 2 ' विपंचन —(विस्तार करने की क्रिया)' (अर्थात, एक संक्षिप्त कथन का विस्तार करना) : देखें n. 41 /2.
56/1 उग्घातीयन्तो , विपंचीयन्तो और विट्ठरीयन्तो, पीटीएस नेट्टी इंडेक्स में बताए गए अनुसार संज्ञावाचक शब्द नहीं हैं , बल्कि क्रियावाचक रूप के वर्तमान कृदंत हैं। 58/1 यह अनुच्छेद, पूर्णता के लिए, उद्धरण (§32) के अंतिम खंड को लेता है और उसकी व्याख्या करता है, जो इस अभिव्यक्ति विधि का आधार बनता है और जिस पर अब तक चर्चा नहीं की गई है। पीटीएस में छोटे अक्षरों में छापने की कोई आवश्यकता नहीं है।

[पृष्ठ 20]
पथप्रदर्शक
विचार। ' परिपूर्ण ': परिपूर्ण, जिसमें किसी चीज की कमी न हो और कोई फालतू चीज न हो। ' शुद्ध ': बेदाग, सभी दाग-धब्बों से मुक्त, सभी प्रकार के भेदों के लिए उपयुक्त।

59. < इसे 'पूर्ण पुरुष का पदचिह्न ' , ' पूर्ण पुरुष द्वारा प्रयुक्त वस्तु ' और ' पूर्ण पुरुष द्वारा अंकित वस्तु ' कहा जाता है > x (एम. i, 182)। इससे यह दिव्य जीवन स्पष्ट होता है। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'मैं एक पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध दिव्य जीवन प्रदर्शित करूँगा।'

[जिनके लिए यह शिक्षा अभिप्रेत है]

60. यह सत्य विचार की शिक्षा किसके लिए है? भक्तों के लिए। इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

'संतुष्टि, निराशा,
पलायन, फल, साधन, भगवान बुद्ध के
भक्तों के लिए कोमना; यह विधि
क्या यह शिक्षा का संप्रेषण है? (§5)।

शिक्षा प्रदान करने का यह माध्यम समाप्त हो गया है।

*

2. जांच को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा

61. इसमें, जांच को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? जांच को संप्रेषित करने का तरीका निम्नलिखित श्लोक में संक्षेप में बताया गया है:

'इस थ्रेड में क्या पूछा गया है और किसका उत्तर दिया गया है?'
साथ ही एक श्लोक का भावार्थ भी,
और थ्रेड की शब्द-जांच:
यह विधि जांच को दर्शाती है' (§6)।

62. यह किस बात की जाँच करता है ? 2. यह जाँच करता है:

(1) अवधि, प्रश्न, उत्तर, निरंतरता (§§63-115) ;*

(2) संतुष्टि, निराशा, पलायन; फल, साधन, आदेश * (मोड 1);

59/1 तथागतरंजितम् (इस प्रकार पढ़ें) — तथागत+अरंजिता; मूल उपमा के लिए एम. i, 178 देखें ।

62/1 नेटीए (पृष्ठ 52) बताते हैं कि जांच में शब्दों के व्याकरणिक पहलू शामिल हैं , चाहे अभिव्यक्ति प्रश्न के रूप में हो (या उत्तर के रूप में , या उत्तर किस प्रकार प्रश्न के उत्तर के बाद आता है), और साथ ही पहले तरीके से व्यक्त करने के प्रारंभ में दिए गए छह शीर्षक , और यदि कोई हो तो 'पुनर्कथन-श्लोक ' भी । ' एत्था अनुरुपम गीति “ अनुगिति ” ति अयम पि अत्थो इच्चितो ' (पृष्ठ 52)।

[पृष्ठ 21]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

(3) व्याख्या-श्लोक (§116);

(4) वह सब जो नौ गुना तर्क-सूत्र में है (§117)।

यह कैसा रहेगा?

[(1) अवधि , प्रश्न , उत्तर , क्रमिकता]

63. यह सर्वप्रथम पूज्य अजिता द्वारा सुत्तनिपात के परायण अध्याय में भगवान बुद्ध से पूछे गए प्रश्न के अनुसार होगा :

<'बताओ] दुनिया किससे घिरी हुई है?'
आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।
और यह किस माध्यम से प्रदर्शित नहीं होता?
और इस पर क्या लगा है? बताइए।
और इसका सबसे बड़ा डर क्या होगा ?
(एसएन. 1032; पी.ई. 82).

64. ये चारों पद एक ही प्रश्न हैं। 1 क्यों? क्योंकि इनमें एक ही वस्तु समाहित है। [11] क्योंकि इस प्रकार पूछने पर '[बताओ] वह संसार क्या है जो V द्वारा बंद है ', वह संसार के संदर्भ में व्यक्त प्रश्न पूछता है, [पूछने पर] 'और यह क्यों प्रदर्शित नहीं है?' वह संसार के अप्रदर्शित होने के बारे में पूछता है, [पूछने पर] 'और क्या है?'

63/1 4 निवुता (बंद करना) और 4 निवारण (बाधा डालना) को प्रत्यक्ष अवरोध के रूप में नहीं, बल्कि सड़क पर यातायात को रोकने वाली बाड़ या नदी के तटबंधों के रूप में समझा जाना चाहिए, जो पार्श्व निकास को रोकते हैं। धारा 66 और 499 देखें।

64/1 Imani cattari padani pucchitani, so eko panho को एक वाक्य के रूप में पढ़ें । यह एक नियम का उदाहरण है (जिसका हमेशा पालन नहीं किया जाता, उदाहरण के लिए, Pe 117 देखें) जो संकेतवाचक और संबंधवाचक सर्वनामों को नियंत्रित करता है, जहाँ अलग-अलग लिंग, वचन या कारक वाले दो संज्ञाओं को, जिनमें से एक या दोनों के साथ संकेतवाचक सर्वनाम हों, समरूप क्रिया द्वारा जोड़ा जाता है। इस उदाहरण में पुल्लिंग एकवचन, so, यद्यपि अर्थ में नपुंसक पुल्लिंग cattari padani को संदर्भित करता है , फिर भी दूसरे संज्ञा, यहाँ पुल्लिंग एकवचन, panho, के लिंग, वचन और कारक से सहमत होना चाहिए , जो पहले संज्ञा पर आधारित है (यहाँ सहसंयोजक hoti द्वारा समझा जाता है)। आगे के उदाहरण नीचे दिए गए हैं (पीटीएस पृष्ठ 28, 42, 86: देखें n. 469/1), और अन्य पुस्तकों में, जैसे, 'अनिच्चा भिक्खवे कामा तुच्च मूसा मोगधम्म , मायाकतम् एतम् भिक्खवे बललपानम् (एम. ii, 261), जहाँ नपुंसक एकवचन, एतम् अर्थ में पुल्लिंग कृदंत कामा को संदर्भित करता है , लेकिन बललपानम् के साथ वचन, लिंग और कारक में मेल खाता है , जिसमें संयोजक होति को समझा जाता है ('अस्थायी, भिक्षुओं, (हैं) कामुक इच्छाएँ और खाली और झूठे और घमंड के विचार से अविभाज्य, वे (हैं) मूर्खों की बातें जो छल से बनी हैं')। इस नियम को लागू करते समय पहचानने में विफलता अर्थ के बहुत भ्रम और बिना विराम चिह्नों वाली पांडुलिपियों के गलत विराम चिह्नों का कारण बन सकती है।

[पृष्ठ 22]
पथप्रदर्शक
क्या यह किससे सना हुआ है? कहो , 'वह दुनिया के सने होने के बारे में पूछता है, [और पूछते हुए] ' और इसका सबसे बड़ा डर क्या होगा?' वह उसी दुनिया के सबसे बड़े डर के बारे में पूछता है।
दुनिया 2 तीन प्रकार की है: अपवित्रता की दुनिया, अस्तित्व की दुनिया और क्षमताओं की दुनिया।
65. इसका उत्तर यह है:
अज्ञानता के कारण संसार कैद है ।
भगवान बुद्ध ने कहा, 'अजिता।'
यह गलत इच्छा और उपेक्षा के कारण प्रदर्शित नहीं होता है ।
और लालसा इसे धूमिल कर देती है, मैं कहता हूँ;
पीड़ा ही इसका सबसे बड़ा भय है ।
(एसएन. 1033; पे 13, 83).
66. उन चार पदों का उत्तर इन चार पदों द्वारा दिया जाता है: पहले का उत्तर पहले से, दूसरे का उत्तर दूसरे से, तीसरे का उत्तर तीसरे से और चौथे का उत्तर चौथे से।
'अज्ञान से संसार अवरुद्ध है' (9) प्रश्न का उत्तर है: '[बताइए] संसार किससे अवरुद्ध है? संसार अवरोधों से अवरुद्ध है; क्योंकि सभी प्राणियों के लिए अज्ञान ही अवरोध है, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: <भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि सापेक्षतः सभी प्राणियों , सभी प्राणवायु प्राणियों , सभी जीवों के लिए केवल एक ही अवरोध है , अर्थात् अज्ञान; क्योंकि सभी प्राणियों के लिए अज्ञान ही अवरोध है । और भिक्षुओं, अज्ञान के पूर्ण अंत से , उसे त्यागने और मुक्त करने से ही प्राणियों के लिए कोई अवरोध नहीं रह जाता , मैं कहता हूँ> ( )। इससे प्रथम पद का उत्तर उचित रूप से सिद्ध होता है।
67. [और फिर से] 'यह इच्छा और उपेक्षा के कारण प्रदर्शित नहीं होता ' प्रश्न 6 का उत्तर है। और यह क्यों प्रदर्शित नहीं होता ? जब कोई व्यक्ति

64/2 लोक ('विश्व') शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है, जिनमें विशेष रूप से (1) अन्य लोगों और वस्तुओं का जगत (जैसे, एम. iii, 120), जो 'त्रित तत्व' (§§80, 353) है, (2) यह शरीर (जैसे, 8. i, 62; iv, 52), आदि को भेदकर देखा जा सकता है। भजन i, 122 में दस परिभाषाएँ दी गई हैं, जबकि दर्शन 204 में एक और त्रिविध परिभाषा है। यहाँ प्रयुक्त 'विश्व' शब्द लगभग 'ब्रह्मांड' के समान है।

65/1 ' विविचा -मिसविशिंग': एनडी2 (बर्म. एड., पृष्ठ 13) मैकचरिया द्वारा ग्लोस। यह संदिग्ध लगता है कि क्या यह पीटीएस नेटी इंडेक्स और पीईडी द्वारा सुझाए गए vid का एक वांछनीय है। देखा गया। 67/ली. नेत्तिया (पृ. 54) कहते हैं, ' विविच्चा ति विकिसिच्चा-हेतु विविचमच्चरियां ति संगहे वुट्टम। सी एफ पग पर वेविचम । 19, आदि.

66/1 ' परियायतो - सापेक्षतः' को यहाँ करनतो ('तर्क के अनुसार') द्वारा नेट्टिया में व्याख्यायित किया गया है ।

[पृष्ठ 23]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

जब वह बाधाओं से घिरा होता है, तो वह गलत कामना करता है (विविच्छति), 1 और 'गलत कामना' (विविच्छति) 1 को ही अनिश्चितता (विविच्छति) कहा जाता है। जब वह अनिश्चित (विद्किच्छन्तो) होता है , तो वह अपने विश्वास को स्थिर नहीं करता। जब वह अपने विश्वास को स्थिर नहीं करता, तो वह अनुपयोगी विचारों के त्याग और लाभकारी विचारों के सत्यापन के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यहाँ वह लापरवाही में लीन रहता है। जब वह लापरवाह होता है, तो वह उन विचारों को जागृत नहीं करता जो श्वेत पक्ष से संबंधित हैं। 2 जागृत न होने के कारण, वे उसे प्रकट नहीं होते, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है:

सत्य दूर से ही प्रदर्शित होते हैं।
जैसे हिमालय का पर्वत है;
लेकिन असत्य बातें यहाँ दिखाई नहीं देतीं ।
रात में तीरों की तरह उड़ो > (ध . 304).
इन्हें गुणों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है,
प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि से > ( ).

68. इससे दूसरे पद के उत्तर की उचित व्याख्या की जाती है।

6 और लालसा इसे दूषित करती है, मैं कहता हूँ 9 ' और यह किससे दूषित होती है? बताइए' का उत्तर है । ' लालसा ' नाम से जानी जाने वाली चीज़ को ही व्याकुलता कहते हैं। यह कैसे दूषित करती है? भगवान बुद्ध द्वारा बताए गए तरीके से:

जो वासना में लिप्त रहता है, उसे कभी अर्थ का ज्ञान नहीं होता।
जो वासना में डूबा रहता है उसे कभी कोई विचार नहीं आता,
अंधकार की धुंध एक आदमी को घेर लेती है
जब वह वासना को सहन करेगा > (cf. ए. iv, 96)।

अस्तित्व से अत्यधिक लगाव रखने वाले व्यक्ति में इस प्रकार की तीव्र लालसा को जब घोर प्रचंडता के रूप में लिया जाता है, तो संसार उसी से 'कलंकित' हो जाता है। इस प्रकार तीसरे पद का उत्तर उचित रूप से व्यक्त होता है।

69. [और अंत में] ' पीड़ा ही इसका सबसे बड़ा भय है' प्रश्न का उत्तर है: ' और इसका सबसे बड़ा भय क्या होगा?' पीड़ा दो प्रकार की होती है: शारीरिक और मानसिक। शारीरिक पीड़ा दर्द है, जबकि मानसिक पीड़ा शोक है। सभी प्राणी पीड़ा के प्रति संवेदनशील होते हैं। चूंकि पीड़ा के बराबर कोई भय नहीं है, तो उससे बड़ा भय कैसे हो सकता है? पीड़ा तीन प्रकार की होती है: शारीरिक पीड़ा, परिवर्तन में पीड़ा और निर्धारण में पीड़ा (देखें डी. iii, 216) ।

67/1 ' विविचति - बुरी कामना करना': देखें n. 65/1; यह यहाँ संज्ञा श्लोक में संज्ञा से बना एक क्रिया है।

67/2 पढ़ें सुक्के धम्मे , सीएफ। पे 95 (सुक्कदम्मा) और 131 (सुक्कापक्खो), 69/1 सीएफ। पे 19-20.

[पृष्ठ 24]

पथप्रदर्शक

यहाँ, संसार कभी न कभी शारीरिक पीड़ा और परिवर्तन दोनों से सीमित रूप से मुक्त होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि संसार में ऐसे लोग हैं जिन्हें कम बीमारियाँ होती हैं और वे दीर्घायु होते हैं। परन्तु केवल पूर्ण मृत्यु ही नियति की पीड़ा से मुक्ति दिलाती है। इसीलिए ' पीड़ा ही इसका सबसे बड़ा भय है', क्योंकि नियति की पीड़ा ही संसार की पीड़ा का अंतर्निहित कारण है। इस प्रकार चौथे प्रश्न का उत्तर उचित रूप से निकलता है।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, ' अज्ञान के कारण संसार बंद है ...' (§65)।

70. <' धाराएँ हर जगह लगातार बहती रहती हैं'

आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।

'वह क्या है जो धाराओं को बंद कर देता है?'

तो फिर बताओ, धाराओं का अवरोध क्या होता है?

जिससे जलधाराएँ अवरुद्ध हो जाती हैं

(स्व..1034; पे 83). 1

71. [13] पूछे गए ये चार पद दो प्रश्न हैं (देखें §126)। क्यों? क्योंकि यहाँ [प्रश्न] अनेक पदनामों के साथ पूछा गया है। इस प्रकार से आगे बढ़ते हुए, इस प्रकार दूषित दुनिया के साथ, (1) इसका शुद्धिकरण और (2) इसका उद्भव क्या है?

72. तदनुसार उन्होंने कहा, ' धाराएँ हर जगह बहती रहती हैं ': जब कोई व्यक्ति एकाग्र नहीं होता और लोभ, द्वेष और लापरवाही में अधिक लिप्त होता है, तो ये भावनाएँ उसमें निरंतर बहती रहती हैं। यहाँ, 'लोभ' लोभ से उत्पन्न होने वाला निष्फल मूल है, 'द्वेष' घृणा से उत्पन्न होने वाला निष्फल मूल है, और 'लापरवाही' भ्रम से उत्पन्न होने वाला निष्फल मूल है। जब कोई व्यक्ति एकाग्र नहीं होता, तो उसकी छह आधारों में तृष्णा निरंतर बहती रहती है: रूपों की तृष्णा, ध्वनियों की तृष्णा, गंधों की तृष्णा, स्वादों की तृष्णा, स्पर्शनीय वस्तुओं की तृष्णा और विचारों की तृष्णा; जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: 'यह बहती रहती है ', भिक्षुओं: यह स्वयं में छह आधारों का संकेत है। आँख सुखद रूपों की ओर बहती रहती है और अप्रिय रूपों का विरोध करती है । कान... नाक... जीभ... शरीर...

70/1 इसी सूत्र में एक बाद के श्लोक पर एस. ii, 47f. पर चर्चा की गई है; §72 में अप्रमाणित उद्धरण एक समान चर्चा का हिस्सा प्रतीत होता है।

72/1 ' पतिहन्नति - प्रतिरोध करता रहता है': यह यहाँ पतिघ ('प्रतिरोध') संज्ञा के लिए क्रिया के रूप में कार्य करता है ; §75 भी देखें। पी.ई.डी. में नहीं है , लेकिन वहाँ पतिहन्ती के अंतर्गत देखें, साथ ही §96 में अप्पतिहता ('अप्रतिरोधित') और पतिघता ('प्रतिरोध') भी देखें।

[पृष्ठ 25]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

मन सुखद विचारों की ओर निरंतर प्रवाहित होता रहता है और अप्रिय विचारों का विरोध करता रहता है ( )। इसलिए यह हर तरह से प्रवाहित होता रहता है ( ) ।

हर तरह से। इसीलिए उन्होंने कहा , ' धाराएँ हर जगह बहती रहती हैं।'

73. [इन शब्दों के साथ] ' वह क्या है जो धाराओं को बंद कर देता है?' वह जुनून के निवारण के बारे में पूछता है। यह शुद्धि है। [इन शब्दों के साथ] 'तो बताओ , धाराओं का अवरोध क्या है, जिससे धाराएँ बंद हो जाती हैं ?' वह अंतर्निहित प्रवृत्तियों के उन्मूलन के बारे में पूछता है। यह उद्भव है (देखें §71)।

74. ये रहे उत्तर:

दुनिया में जो भी धाराएँ हैं ,

भगवान बुद्ध ने कहा, 'अजिता'

वे सचेतनता से अलग हो जाते हैं;

मैं धाराओं के संयम के बारे में बताता हूँ, जिससे

इन्हें सील किया जा सकता है, यह समझना महत्वपूर्ण है ।
(एसएन. 1035; पे 17, 84).
75. जब शरीर पर केंद्रित ध्यान को निरंतर बनाए रखा जाता है और उस पर विशेष ध्यान दिया जाता है, तो आँख सुखद रूपों की ओर आकर्षित नहीं होती और अप्रिय रूपों के प्रति अप्रतिरोध्य रहती है। कान... नाक ... जीभ ... शरीर ... मन सुखद विचारों की ओर आकर्षित नहीं होता , अप्रिय विचारों के प्रति अप्रतिरोध्य रहता है (देखें श्लोक 4, 200)। इसका कारण क्या है? क्योंकि इंद्रियाँ नियंत्रित और बंद हो जाती हैं। [14] किस कारण से नियंत्रित और बंद होती हैं? ध्यान के संरक्षण द्वारा। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा , 'वे ध्यान द्वारा बंद हो जाती हैं। '
76. [और फिर] अंतर्निहित प्रवृत्तियों का त्याग समझ से होता है। अंतर्निहित प्रवृत्तियों का त्याग होने पर आसक्ति भी त्याग जाती है। अंतर्निहित प्रवृत्तियों के त्याग के साथ ही क्यों ? जैसे किसी वृक्ष को उसके तने सहित पूरी तरह उखाड़ने पर फूल, फल, कोंपलें और कलियों का क्रम टूट जाता है (भजन संहिता 2, 218 देखें), उसी प्रकार अंतर्निहित प्रवृत्तियों का त्याग होने पर आसक्ति का क्रम टूट जाता है, समाप्त हो जाता है, ढक जाता है। किसके द्वारा? समझ द्वारा। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा है कि ' समझ ही वह तरीका है जिससे इन्हें समाप्त किया जा सकता है '।
*

72/2 सब्बा ('सभी तरीकों से'): abl. adv.
75/1 4 अविंचति - आकर्षित होना': अविज्जति के अंतर्गत पी.ई.डी. देखें ; यहाँ §72 में सवती ('लगातार बहते रहना') के विकल्प के रूप में कार्य करता है। नेटिए (पृष्ठ 57) अकद्धति द्वारा व्याख्या करता है।
76/1 किस्सा ('क्यों') यहाँ सामान्य सर्वनाम क्रियाविशेषण है, न कि सामान्य प्रश्नवाचक सर्वनाम, अनुसयस्सा के अनुरूप। तुलना करें किस्सा (भी 'क्यों') §94 में।

[पृष्ठ 26]
पथप्रदर्शक
77. <' समझ और जागरूकता।'
आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।
और अब, महोदय, यह नाम और प्रपत्र:
तो मुझे बताओ कि मैं तुमसे क्या पूछ रहा हूँ?
इसका अंत कहाँ होगा?'
आपके द्वारा पूछे गए प्रश्न के संबंध में,
अजिता, मैं अब तुम्हें बताऊँगी।
जहां यह नाम और रूप दोनों आते हैं
उनकी शेषहीन मुक्ति के लिए:
चेतना के समाप्त होने के साथ,
'यहीं पर इसका अंत होता है '
(एसएन . 1036; पे 84-5).
78. यह प्रश्न अर्थ के क्रम के बारे में पूछता है (धारा 198f भी देखें)। अर्थ के क्रम के बारे में पूछते समय, यह किस बारे में पूछता है? बिना कोई निशान छोड़े विलुप्त होने के तत्व के बारे में ।
79. तीन सत्य निर्धारित हैं, जो समाप्ति के विचार से अविभाज्य हैं: वे हैं दुख, उत्पत्ति और मार्ग; समाप्ति अनिश्चित है। इसमें, उत्पत्ति को दो स्तरों पर त्यागा जाता है: देखने के स्तर पर और अस्तित्व में बने रहने के स्तर पर। 1 देखने से तीन बंधन त्यागे जाते हैं: देहधारण दृष्टि, 2 अनिश्चितता और सद्गुण एवं कर्तव्य की गलत धारणा। 3 सात बंधन त्यागे जाते हैं।

78/1 यदि Pe को हटा दिया जाए, तो संभवतः यह 'अनुसंधि ' का अर्थवाचक या तार्किक 'अनुक्रम' के रूप में सबसे पहला प्रयोग है । PED ने PTS नेट्टी इंडेक्स में दिए गए 'पूर्ण समाप्ति' के अनुमान पर सही सवाल उठाया है , जो कि वाक्यविन्यास नियम को विषय-वस्तु (अर्थात 'विलुप्ति') से भ्रमित करने के कारण हुई गलती है, जो कि यहाँ नियम का उदाहरण है।

78/2 सा-उपदिशेष ('अंक शेष रहने पर') और अनुपदिशेष ('अंक शेष न रहने पर') शब्दों के लिए एम. ii, 257 देखें, जहाँ एक गैर-रूपकात्मक उपयोग से पता चलता है कि ये मूल रूप से चिकित्सा संबंधी शब्द थे, जिन्हें बाद में सादृश्य के आधार पर क्रमशः अरहंत के जीवनकाल में काम, घृणा और भ्रम के निवारण और उनके जीवनकाल के अंत में पंचश्रेणी प्रक्रिया के (भविष्य काल में) निवारण के लिए विस्तारित किया गया। इस दूसरे अर्थ के लिए इति. 38 देखें।

79/1 देखा गया। 46/1।

79/2 'देह-दृष्टिकोण' (सक्काया-दित्थी) स्वयं (अत्ता) की पहचान के 20 तरीकों को 5 श्रेणियों (देखें एम. आई, 300 और एम.ए.) के साथ संदर्भित करता है , यानी, यह विश्वास कि वे किसी न किसी रूप में स्वयं को 'देह' करते हैं।

79/3 'सद्गुण और कर्तव्य की गलतफहमी' शब्द, 'अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों का पालन' की तुलना में अधिक शाब्दिक है, जो सिलब्बत्तपरमासा के लिए प्रयोग किया जाता है। देखें ए. iv, 55; तुलना करें वीभ. 365 और विस. 684 में परमासा की परिभाषाएँ । इसका अर्थ केवल पुरस्कार की गलत अपेक्षाएँ हैं, न केवल 'बैल-सद्गुण' आदि जैसे अनुष्ठानिक आदतों और कर्तव्यों के अभ्यास के संबंध में (उदाहरण के लिए, एम. सुत्त 57 देखें), बल्कि यह विश्वास भी कि एकाग्रता और समझ के बिना केवल सद्गुण ही पर्याप्त है (देखें §895)।

[पृष्ठ 27]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

इन बातों को बनाए रखना: कामुक इच्छा, द्वेष, रूप की लालसा, निराकारता की लालसा, अहंकार, 4 बेचैनी, और शेष अज्ञान। 5

80. ये त्रितत्व [अस्तित्व] में दस बंधन हैं: 1 पाँच इस तरफ से संबंधित हैं और पाँच दूर की तरफ से।

81. [15] इसमें, तीन बंधन, अर्थात् देहधारण का दृष्टिकोण, अनिश्चितता और सद्गुण एवं कर्तव्य की गलतफहमी, उस क्षमता की अभिव्यक्ति के साथ समाप्त हो जाते हैं जो यह दर्शाती है कि मैं अंततः उस चीज़ को जान लूँगा जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, और सात बंधन, अर्थात् इंद्रिय-इच्छा, द्वेष, रूप के प्रति वासना, निराकारता के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और शेष अज्ञान, अंतिम ज्ञान की क्रिया की अभिव्यक्ति के साथ समाप्त हो जाते हैं। अब दो प्रकार का ज्ञान, अर्थात् वह जो इस प्रकार जानता है कि 'मेरे लिए जन्म समाप्त हो गया है', जो समाप्ति का ज्ञान है, और वह जो इस प्रकार जानता है कि 'इसके आगे और कुछ नहीं है', जो गैर-उत्पत्ति का ज्ञान है, अंतिम ज्ञाता क्षमता का निर्माण करते हैं (देखें §890)।

82. इसमें, जो व्यक्ति अरहंतत्व के सर्वोच्च फल को प्राप्त करता है, उसमें 'मैं अंततः उस अज्ञात को जान लूँगा' की क्षमता और 'अंततः जानने की क्रिया' की क्षमता समाप्त हो जाती है।

यहाँ, दो प्रकार के ज्ञान, अर्थात् समाप्ति का ज्ञान और गैर-उत्पत्ति का ज्ञान, एक ही प्रकार की समझ हैं; परन्तु आरोपण के अनुसार इसके दो नाम हैं: 1. जो इस प्रकार समझता है कि 'मेरे लिए जन्म समाप्त हो गया है', उसके लिए इसका नाम 'समाप्ति का ज्ञान' है, जबकि जो इस प्रकार समझता है कि 'इसके आगे और कुछ नहीं है', उसके लिए इसका नाम 'गैर-उत्पत्ति का ज्ञान' है। यही 'समझ' (§77) है।

79/4 माना (अस्मि-मान के रूप में 'मैं हूँ' का अहंकार—देखें एस. iii, 128-32) मननना और मन्निता (जैसे, एम. iii, 246) और मननति (एम. i, 1) से निकटता से संबंधित है, जिनका अर्थ है 'अहंकार' और 'कल्पना करना'। इन सभी का मूल मन ('मापना', जिससे मनो 'मन' बनता है) है। पाली और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में 'अहंकार' और 'अहंकार' या 'अवधारणा' के रूप में 'अहंकार' के बीच का शब्द-क्रीड़ा जीवंत है। 'अभिमान' इस शब्द-क्रीड़ा को नष्ट कर देता है, लेकिन इसका प्रयोग अतिमाना के लिए किया जा सकता है , जिसके प्रयोग काफी सीमित हैं।

79/5 नेट्टी ए और बी बी द्वारा दिया गया अविज्जावसेसा पाठ शायद अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, हालांकि नेट्टी ए ने पीटीएस पाठ को वैकल्पिक बताया है , जिसका समर्थन बी और सी दोनों करते हैं। यदि निरवसेसा सही है, तो इसका अर्थ 'शेषरहित' ('कुछ भी शेष नहीं') होगा, न कि पीटीएस नेट्टी सूचकांक में दिए गए 'समावेशी' का।

80/1 'त्रित तत्व' इंद्रिय-इच्छा तत्व (या अस्तित्व का तरीका), रूप तत्व (या अस्तित्व का तरीका), और निराकार तत्व (या अस्तित्व का तरीका) है; देखें पे 116, और तुलना करें जैसे, एम. iii, 63.
83/1 ' संकेतेना - आरोपण के अनुसार': संकेत का शाब्दिक अर्थ है 'मुलाकात' या 'नियुक्ति', देखें §96. यहाँ तात्पर्य यह है कि समझ के अलग-अलग नाम होते हैं, इस बात के अनुसार कि यह किस बारे में है।

[पृष्ठ 28]
पथप्रदर्शक
समझ की क्रिया का अर्थ (तुलना करें भजन 1, 1), 2 और यह ' सचेतनता (§77) है, जो [अपनी वस्तु से] दूर न जाने की क्रिया के अर्थ में है 3 जैसा कि [इसने] देखा है।
84. इसमें, धारणा की पाँच श्रेणियाँ ' नाम-और-रूप ' (§77) का निर्माण करती हैं। 1 और इसमें, पाँचवें के रूप में संपर्क रखने वाले विचार 2 नाम का निर्माण करते हैं; जबकि पाँच रूप-सक्षमताएँ [आँख से शुरू होकर] रूप का निर्माण करती हैं; और ये दोनों, संबंधित चेतना के साथ, नाम-और-रूप का निर्माण करते हैं (cf. Pe 116)।
85. भगवान बुद्ध से उस [नाम-और-रूप] के अंत के बारे में पूछते हुए, पूज्य अजित ने पृच्छना में इस प्रकार कहा , ' समझ और जागरूकता। और [अब], हे प्रभु , इस नाम-और-रूप के बारे में , मुझे वह बताइए जो मैं आपसे पूछता हूँ , यह कहाँ समाप्त होता है ? (§77)।
86. यहाँ, सजगता और समझ चार क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं: सजगता दो क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करती है, अर्थात् सजगता क्षमता और एकाग्रता क्षमता, जबकि समझ दो क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करती है, अर्थात् समझ क्षमता और

83/2 अंग्रेजी, क्रिया 'समझना' के मामले में, पन्ना (पदनाम 'समझ') और पजानना (पदनाम '(समझने की क्रिया)') के दो रूपों के बीच अंतर नहीं करती है, जैसा कि वह समानांतर रूपों नाना (पदनाम 'ज्ञान') और जनाना (पदनाम 'जानना') के साथ करती है ।
83/3 ' अपिलापना —न भटकना': यह शब्द नेट्टी और इसी तरह के सभी संदर्भों के लिए पीईडी में दिए गए अर्थ से भिन्न है। यह शब्द अमूर्त रूप अपिलापनाता (अर्थात, अ + पिलापना + ता : पीईडी देखें) के समान है और नेट्टीए में इसे ओगहाना के साथ व्याख्यायित किया गया है। मूल शब्द पिन (तैरना या तैरना) है, लैप नहीं; पीईडी पिलावती और सीपीडी भी देखें । सचेतनता को मन को उसके विषय पर 'स्थिर' रखने और उसे उससे 'भटकने' से रोकने के रूप में माना जाता है।
84/1 सूत्रों में 'नाम-रूप' (नामरूप) में चेतना (विन्नन) कभी शामिल नहीं होती है —उदाहरण के लिए, एम. i, 53; डी. ii, 62-3; एम. iii, 17 देखें (यह बिंदु जितना अनुमान लगाया जा सकता है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है)—लेकिन बाद के साहित्य में इसे अक्सर (वास्तविक आश्रित-उत्पत्ति संदर्भों के बाहर) चेतना को शामिल करने के लिए लिया जाता है (अर्थात, सभी 5 श्रेणियों को शामिल करने के लिए, न कि केवल पहली चार को; उदाहरण के लिए, विज़. 590)। यह कृति अनिर्णीत प्रतीत होती है; यह अंश नाम-रूप को सभी 5 श्रेणियों के साथ पहचानता है, जिसकी पुष्टि §226 द्वारा की गई है, लेकिन §445 में 'नाम-शरीर' की परिभाषा भिन्न है और एम. i, 53 में दी गई परिभाषा के अधिक निकट है; तुलना करें §92 भी।
84/2 ' फस्सापंचमका —संपर्क पाँचवें के रूप में' (इस अभिव्यक्ति के लिए विज़. 626 और एम.ए. i, 276; iii, 262 देखें)। यहाँ जिस सूत्र का उल्लेख किया गया है, वह §445 में वर्णित 6 चीज़ें हैं, जिनमें से संपर्क पाँचवीं है। लेकिन एक अन्य समान अभिव्यक्ति, फस्सापंचक ('संपर्क-पंचक'), टीकाओं (जैसे, एम.ए. i, 249) में Dhs. §1 में सूचीबद्ध संज्ञान के पहले 5 अपरिहार्य सहवर्ती तत्वों, अर्थात् 'संपर्क, भावना, बोध, चुनाव, संज्ञान' को संदर्भित करने के लिए प्रयोग की जाती है । एम. i, 53 में 'नाम' की परिभाषा को 5 तत्वों, अर्थात् 'भावना, बोध, चुनाव, संपर्क और ध्यान' द्वारा परिभाषित किया गया है, और एम. iii, 26fF में 5 तत्वों के समूह 'संपर्क, भावना, बोध, चुनाव, संज्ञान' को भी देखें।

[पृष्ठ 29]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
ऊर्जा संकाय। इन चारों संकायों में विश्वास रखने का कोई भी कार्य, भरोसा करने का कार्य, आस्था संकाय कहलाता है।

87. इसमें, सर्वोपरिता में विश्वास के साथ संज्ञान का कोई भी एकीकरण इच्छाशक्ति की एकाग्रता है। संज्ञान की एकाग्रता के दौरान विकारों के दमन से प्राप्त कोई भी विचार-शक्ति, या अस्तित्व में बनाए रखने की कोई भी शक्ति, प्रयास है। 1 [16] इसमें, कोई भी श्वास लेना और छोड़ना, कोई भी चिंतन और अन्वेषण, कोई भी बोध और भावना, कोई भी स्मृति और इरादे, संकल्प हैं। अतः इच्छाशक्ति की पूर्व एकाग्रता, और फिर विकारों के दमन से प्राप्त प्रयास 1 —और ये संकल्प—इन दोनों को वह इस [प्रथम] <सफलता के आधार के रूप में अस्तित्व में रखता है जिसमें प्रयास 1 और संकल्पों के साथ इच्छाशक्ति की एकाग्रता होती है > (देखें एस.वी. , 254), जो < एकांत द्वारा समर्थित है, लुप्त होने द्वारा समर्थित है, समाप्ति द्वारा समर्थित है, और त्याग में परिवर्तित होती है > (एस.वी. , 340)।

88. इसमें, प्रमुखता में ऊर्जा के साथ संज्ञान का कोई भी एकीकरण ऊर्जा का संकेंद्रण है...

89. इसमें, प्रमुखता में संज्ञान के [प्राकृतिक संकेंद्रण] के साथ संज्ञान का कोई भी एकीकरण संज्ञान का संकेंद्रण है...

90. इसमें, ज्ञान और जिज्ञासा का सर्वोपरि एकीकरण जिज्ञासा का केंद्रीकरण है। जब ज्ञान केंद्रित होता है, तब विकारों के दमन से उत्पन्न विचार-शक्ति या अस्तित्व बनाए रखने की शक्ति प्रयास है। इसमें, प्रत्येक श्वास लेना और छोड़ना, कोई भी चिंतन और अन्वेषण, कोई भी बोध और भावना, कोई भी स्मृति और इरादे, संकल्प हैं। अतः, जिज्ञासा का पूर्व केंद्रीकरण, और फिर विकारों के दमन से उत्पन्न प्रयास—और ये संकल्प—इन दोनों को वह इस [चौथे] <सफलता के आधार के रूप में अस्तित्व में रखता है जिसमें जिज्ञासा , प्रयास और संकल्प तीनों समाहित हैं >, जो <एकांत, क्षीणन, समाप्ति और अंत में त्याग द्वारा समर्थित है>।

91. सभी एकाग्रता का मूल ज्ञान है, ज्ञान द्वारा ही इसकी घोषणा की जाती है, और ज्ञान के साथ इसका समानांतर घटित होना 1 है।

87/1 सभी संपादक पीटीएस पाठ ' पहाना' की पुष्टि करते हैं , हालांकि नेट्टिया ने 'पधाना' को एक विकल्प के रूप में दिया है और दोनों पर टिप्पणी की है। बाद वाला सूत्र 'सफलता के आधार' के लिए सूत्र (चंदा-) समाधि-पधाना-संखारा-सामन्नगत को देखते हुए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, जिस पर यहां चर्चा की जा रही है।

91/1 'अनुपरिवत्तति - के साथ समानांतर घटित होना': सही अर्थ (जो पी.ई.डी. में नहीं दिया गया है) के लिए 'समानांतर' के अपने सामान्य अर्थ में ' आर्म ', ' पूर्ण ' के अपने व्यापक अर्थ में (= 'पूरी तरह से') और 'घटित होना' के अर्थ में वत्तति (तुलना करें: पावत्तति , निब्बत्तति , आदि) को लेना आवश्यक है ; अर्थात्, 'साथ-साथ घटित होता है'।

[पृष्ठ 30]

पथप्रदर्शक

वह खुले और अबाधित ज्ञान को स्पष्टता के साथ बनाए रखता है:
जैसा पहले , वैसा बाद में; जैसा बाद में , वैसा पहले; . . .
और जैसे रात में , वैसे ही दिन में; और जैसे दिन में , वैसे ही रात में >
(ए. आई, 236; एस. वी, 277).

92. पाँच लाभकारी शक्तियाँ [विश्वास आदि की] चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं , चेतना के उत्पन्न होने पर उत्पन्न होती हैं और चेतना के समाप्त होने पर समाप्त हो जाती हैं; 2 और नाम-रूप का कारण चेतना है, और इसका घटित होना चेतना के साथ इसकी स्थिति है। जब इसका कारण मार्ग द्वारा बाधित होता है, तो चेतना पोषण रहित, किसी भी प्रत्याशा से तृप्त न होने पर, 3 बिना किसी आधार के, बिना किसी पुनर्सबंध के, समाप्त हो जाती है (cf. §306)। बिना कारण और बिना किसी स्थिति के नए अस्तित्व में कोई नाम-रूप घटित नहीं होता है। [17] इसलिए चेतना के समाप्त होने के साथ, नाम-रूप समाप्त हो जाता है, और साथ ही समझ और जागरूकता भी। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:

आपके द्वारा पूछे गए प्रश्न के संबंध में ,
अजिता , मैं अब तुम्हें बताऊँगी।
जहां यह नाम और रूप दोनों आते हैं
उनकी शेषहीन मुक्ति के लिए:
चेतना के समाप्त होने के साथ
' यहीं पर इसका अंत होता है' > (§77).

*

93. <' विचारों के स्वामी हैं'
आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।
और यहाँ कई दीक्षा प्राप्त करने वाले लोग हैं:
महोदय, यदि पूछा जाए तो आपमें वह कौशल है।
मुझे उनके व्यवहार के बारे में बताने के लिए' > (Sn. 1038; Pe 85).

इसका अर्थ धारा 92 में स्पष्ट किया गया है, देखें Dhs . पृष्ठ 5. क्या PED का अर्थ 'घूमना-फिरना' कभी उचित है? देखें CPD , साथ ही n. 92/1 और Pe 82.

92/1 ' सहभु —साथ में विद्यमान': देखें ध्स. §1197. यह, अनुपरिवत्ती के विचार के साथ (अंतिम टिप्पणी देखें), बाद के टीका साहित्य में रूपधम्म और अरूपधम्म की घटना के संबंध में 'एक साथ उत्पन्न होने और समाप्त होने वाले विचार, और एक साथ उत्पन्न होने और अलग-अलग समाप्त होने वाले या अलग-अलग उत्पन्न होने और एक साथ समाप्त होने वाले विचार' के सिद्धांत में विकसित किया गया था (VbhA. 25ff.)।

92/2 cf. यामाहा ii, इफ़.

92/3 अभिनंदति (अपने संज्ञा अभिनंदन की तरह) का प्रयोग अधिकतर 'भविष्य की ओर आशापूर्वक देखने' के अर्थ में किया जाता है, जबकि नंदति का सीधा अर्थ 'आनंदित होना' है; लेकिन यह अंतर कठिन नहीं है।

[पृष्ठ 31]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

94. पूछे गए ये तीनों शब्द तीन प्रश्न हैं। क्यों? क्रमशः सिद्ध पुरुष, दीक्षित पुरुष, और अंतर्दृष्टि द्वारा घोषित त्याग के प्रकार के रूप में व्याख्या करके । क्योंकि जब उन्होंने कहा ' विचारों के स्वामी हैं', तो वे अरहंत पद के बारे में पूछ रहे थे; जब उन्होंने कहा ' और यहाँ कई दीक्षित पुरुष हैं ', तो वे सात प्रकार के दीक्षितों के बारे में पूछ रहे थे; और जब उन्होंने कहा 'महोदय, यदि पूछा जाए, तो आपमें उनके व्यवहार को बताने का कौशल है ' , तो उनसे अंतर्दृष्टि द्वारा घोषित त्याग के प्रकार के बारे में पूछा जा रहा था।

95. यहाँ उत्तर दिया गया है:
वह कामुक इच्छाओं को नहीं चाहेगा।
भगवान बुद्ध ने कहा, 'अजिता।'
'उनका मन शांत रहेगा;'
और सभी विचारों में निपुण, एक भिक्षु
वह अपनी यात्राओं में सचेत रहता है > (संख्या 1039; पतरस 85)। 1

96. भगवान बुद्ध की सभी शारीरिक क्रियाएँ ज्ञान द्वारा निर्देशित होती हैं और ज्ञान के साथ ही घटित होती हैं। उनकी सभी मौखिक क्रियाएँ ज्ञान द्वारा निर्देशित होती हैं और ज्ञान के साथ ही घटित होती हैं। उनकी सभी मानसिक क्रियाएँ ज्ञान द्वारा निर्देशित होती हैं और ज्ञान के साथ ही घटित होती हैं। उनका ज्ञान और दृष्टि अतीत काल, भविष्य काल और वर्तमान काल, सभी में अप्रतिबंधित है । उनके ज्ञान और दृष्टि में क्या प्रतिरोध हो सकता है?[18] ज्ञान और दृष्टि में प्रतिरोध वह अज्ञान और दृष्टिहीनता है जो अनित्य, पीड़ादायक और अनात्म से संबंधित है। जैसे कोई व्यक्ति तारों के रूप तो देख सकता है, पर उन्हें गिनने का तरीका नहीं जानता: यही ज्ञान और दृष्टि में प्रतिरोध है। परन्तु भगवान बुद्ध का ज्ञान और दृष्टि अप्रतिबंधित है; क्योंकि प्रबुद्धों, भगवान बुद्धों का ज्ञान और दृष्टि अबाधित है।

97. यहाँ एक दीक्षित व्यक्ति को दो प्रकार के विचारों के प्रति सचेत रहना होगा: उकसाने वाले विचारों के प्रति अज्ञानता से बचना होगा।

94/1 देखा गया। 76/1।

94/2 ' असेखा - सिद्ध' (शाब्दिक अर्थ: 'जिसका प्रशिक्षण पूरा हो चुका है') उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द है जिसने अरहंतत्व का फल प्राप्त कर लिया है। ' सेखा - दीक्षित' सात प्रकार के व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त शब्द है, अर्थात् वे व्यक्ति जिन्होंने चार मार्ग और प्रथम तीन फल प्राप्त कर लिए हैं।

95 /I प्रबुद्ध व्यक्ति के स्वरूप की जाँच -पड़ताल यहाँ एक रूप में, यहाँ वर्णित संचार विधि के रूप में, और दूसरे रूप में §§541-94 में (उसी विधि का संयुक्त विवेचन) प्रस्तुत है। बुद्ध का कथन, पूछताछ करने के आदेश के रूप में, विशेष रूप से एम. सुत्त 47 (विमंसक-सुत्त) में पाया जाता है, देखें एम. सुत्त 91 भी।

96/1 सर्वज्ञता के लिए n. 326/2 देखें।

[पृष्ठ 32]

पथप्रदर्शक

वासना से प्रेरित और जुनून को भड़काने वाले विचारों के प्रति घृणा से प्रेरित। 1

98. इनके संबंध में भगवान बुद्ध ने कहा, ' वह कामुक इच्छाओं को नहीं चाहेगा ' (§93) किसी भी इच्छा, मोह, आकांक्षा, लालसा या क्रीड़ा के विरुद्ध चेतावनी देते हुए ; और ' वह मन से अविचलित रहेगा ' शब्दों के साथ उन्होंने आसक्ति के निवारण का उल्लेख किया । क्योंकि जब कोई दीक्षित व्यक्ति इस प्रकार चाहता है तो वह अजन्मे दोष को जागृत करता है और उत्पन्न दोष को बढ़ाता है। परन्तु जो व्यक्ति अविचलित इरादे से (देखें पे 146) और बिना किसी चाहत के प्रयास करता है, <(i) वह अजन्मे बुरे और लाभहीन विचारों के अजन्मे होने के लिए इच्छा उत्पन्न करता है , प्रयास करता है , ऊर्जा को प्रेरित करता है , ध्यान लगाता है और प्रयास करता है; (ii) वह उत्पन्न बुरे और लाभहीन विचारों के त्याग के लिए इच्छा उत्पन्न करता है , प्रयास करता है , ऊर्जा को प्रेरित करता है , ध्यान लगाता है और प्रयास करता है ; (iii) वह अजन्मे लाभकारी विचारों के उद्भव के लिए इच्छाशक्ति उत्पन्न करता है , प्रयास करता है , ऊर्जा को प्रेरित करता है , ध्यान लगाता है और परिश्रम करता है , और (iv) वह उत्पन्न लाभकारी विचारों की निरंतरता , स्मरण , वृद्धि , प्रचुरता , निरंतरता और पूर्ति के लिए इच्छाशक्ति उत्पन्न करता है , और वह प्रयास करता है , ऊर्जा को प्रेरित करता है , ध्यान लगाता है और परिश्रम करता है।

(एम. ii, 11).

99. (i) अजन्मे, बुरे और निष्फल विचार क्या हैं? ये हैं इंद्रिय-संबंधी सोच, द्वेषपूर्ण सोच और क्रूरतापूर्ण सोच। ये अजन्मे, बुरे और निष्फल विचार हैं। (ii) उत्पन्न, बुरे और निष्फल विचार क्या हैं? ये अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ हैं, निष्फलता की जड़ें हैं। ये उत्पन्न, बुरे और निष्फल विचार हैं। (iii) अजन्मे, लाभकारी विचार क्या हैं? ये वे क्षमताएँ हैं जो धारा-प्रवेशकर्ता से संबंधित हैं। ये अजन्मे, लाभकारी विचार हैं। [19] (iv) उत्पन्न, लाभकारी विचार क्या हैं? ये वे क्षमताएँ हैं जो उस व्यक्ति से संबंधित हैं जो [किसी मार्ग पर] खड़ा है। ये उत्पन्न, लाभकारी विचार हैं।

97/1 नेट्टिया पतिघत्थनियेसु और परि-युत्थनियेसु को अस्वीकार किए बिना वैकल्पिक पाठन पर चर्चा करता है ।

98/1 पुच्चा की जगह C, Ba और Bb के साथ मुच्चा पढ़ें।

98/2 यह अंश 4 सही प्रयासों (समप्पधान) का वर्णन करता है।

99/I नेटिया यहाँ 'उत्पन्न होने' के प्रकार को संदर्भित करता है जिसे 'बढ़ने के लिए मिट्टी मिलने से उत्पन्न होना' कहा जाता है (विज़. 687)। यहाँ 'अंतर्निहित प्रवृत्तियों' के विचार में निहित उत्पन्न होने की क्षमता का तात्पर्य है। इस 'उत्पन्न क्षमता' या दायित्व को यहाँ उत्पन्न बुराई के रूप में माना गया है।

99/2 ' अत्थमकस्स - जो किसी मार्ग पर खड़ा हो': §274 भी देखें, जहाँ संदर्भ द्वारा अर्थ स्पष्ट किया गया है (तुलना करें भजन 2, 193; केव 243-51; याम 1, 322; 2, 197; एमएए 1, 137)। पीईडी और सीपीडी दोनों में दिए गए स्पष्टीकरण सही नहीं हो सकते, और अरहंतत्व के फल के स्वामी को प्रथम मानकर 'आठ व्यक्तियों' की गिनती पीछे की ओर करने और इस प्रकार इस शब्द के लिए धारा-प्रवेश मार्ग तक पहुँचने का कोई पूर्व उदाहरण नहीं दिखता। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि यह अत्था ('आठ') से व्युत्पन्न नहीं है, बल्कि अ + था ('खड़े होना') से व्युत्पन्न है, इस स्थिति में यह पतिपन्नक का पर्यायवाची है। नेट्टिया , धारा 274 पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि धारा 274 में पहले उल्लेख के लिए 'अत्थमकस्सा [साधन] उस व्यक्ति का है जो धारा-प्रवेश के फल के सत्यापन के मार्ग पर है (पतिपन्नस्स) ', और फिर से ' अत्थमकस्सा [पुनः उल्लेखित] [साधन] उस व्यक्ति का है जो वापसी के मार्ग पर खड़ा है' (पृष्ठ 95-96)।

अतः इस अनुच्छेद में, क्रमांक (iii) धारा-प्रवेश के फल के धारक की क्षमताएँ हैं, और क्रमांक (iv) किसी भी मार्ग पर 'खड़े' व्यक्ति की क्षमताएँ हैं। देखें अभिव्यक्ति चतुमग्गत्थ पुग्गला (अभिधम्मत्थसंगहा , संखीपवन्नन-लोकोत्तरचित्त खंड)।

[पृष्ठ 33]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

100. जिस शक्ति से वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से प्रेरित चिंतन को रोकता है, वह सजगता है। जिस शक्ति से वह द्वेष से प्रेरित चिंतन को रोकता है, वह एकाग्रता शक्ति है। जिस शक्ति से वह निर्दय और बुरे विचारों को उत्पन्न होते ही त्याग देता है , समाप्त कर देता है , नष्ट कर देता है और सहन नहीं करता है (एम. i, 11), वह समझ शक्ति है। और इन चारों शक्तियों पर भरोसा करने का कोई भी कार्य विश्वास शक्ति है (cf. §96)।

101. < यहाँ, आस्था की क्षमता कहाँ मिलती है? धारा-प्रवेश के चार कारकों में। ऊर्जा की क्षमता कहाँ मिलती है? चार सही प्रयासों में (देखें §98)। जागरूकता की क्षमता कहाँ मिलती है? जागरूकता के चार आधारों में। एकाग्रता की क्षमता कहाँ मिलती है? चार ध्यान में। समझ की क्षमता कहाँ मिलती है? चार आर्य सत्यों में > (तुलना करें पीई 128; एस.वी.वी. , 196)।

102. इसीलिए भगवान बुद्ध ने लाभकारी विचारों में तल्लीन रहने वाले दीक्षित व्यक्ति के बारे में मानसिक अविचलितता का वर्णन किया है। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'वह मन से अविचलित रहेगा।'

103. 'सभी विचारों में कुशल': संसार तीन प्रकार का है: अपवित्रता का संसार, अस्तित्व का संसार और क्षमताओं का संसार (§64)।

104. इसमें, अस्तित्व (सम्मोहन) का जगत अशुद्धता के जगत के माध्यम से उत्पन्न होता है। यही इंद्रियों की उत्पत्ति का कारण बनता है। जब इंद्रियों को अस्तित्व में रखा जाता है, तब ज्ञान का निदान होता है। 1 उस निदान की दो प्रकार से जांच की जानी चाहिए: दृष्टि द्वारा निदान और त्याग द्वारा निदान। क्योंकि जब कोई ज्ञाता ज्ञान को समझता है, तब ज्ञान का निदान 1 दृष्टि और ध्यान के साथ-साथ वैराग्य से होता है, और तब उसमें दो विचार निपुणता प्राप्त करते हैं: दृष्टि की निपुणता और अस्तित्व में बनाए रखने की निपुणता।

104/1 बा और नेट्टिया के साथ नेय्यम पढ़ना, और केवल पहली बार बी बी ; सी पीटीएस का समर्थन करता है ।

[पृष्ठ 34]

पथप्रदर्शक

उस ज्ञान को पांच भागों में समझा जाना चाहिए, अर्थात् परिचय, निदान, त्याग, अस्तित्व में बनाए रखना और सत्यापन।

105. [20] इसमें, परिचय क्या है? यह विचारों की व्यक्तिगत विशेषताओं (§§159ff.) और विचारों के भेदभाव तथा अर्थों के भेदभाव के बारे में कोई भी ज्ञान है। यही परिचय है।

106. इसमें निदान क्या है? इन तरीकों से परिचित होने के बाद, यह निम्नलिखित प्रकार का कोई भी निदान है: 'यह लाभदायक है, यह अलाभदायक है, यह निंदनीय है, यह निर्दोष है, यह काला है, यह उज्ज्वल है, इसकी खेती की जानी चाहिए, इसकी खेती नहीं की जानी चाहिए, इन विचारों को इस प्रकार लेने पर यह फल प्राप्त होता है—इस प्रकार लेने पर इनका यही अर्थ है।' यही निदान है।

107. इस प्रकार निदान करने के बाद, तीन प्रकार के विचार शेष रहते हैं: जिन्हें त्यागना है, जिन्हें अस्तित्व में रखना है, और जिन्हें सत्यापित करना है।

108. इसमें किन विचारों को त्यागना है? वे सभी विचार जो लाभहीन हैं।

109. इसमें किन विचारों को कायम रखा जाना चाहिए? कोई भी विचार जो लाभदायक हो।

110. इसमें किन विचारों का सत्यापन किया जाना है? अनिर्धारित विचारों का ।

111. जो इसे जानता है, वह अर्थों में कुशल, विचारों में कुशल, अच्छाई में कुशल, फलों में कुशल, मार्गों में कुशल, बेचैनी में कुशल, आराम में कुशल, महान कौशल से युक्त कहलाता है।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'सभी विचारों में निपुण' (§95)।

112. 'भिक्षु अपने भ्रमण में सचेत रहता है' (§95): उसे यहाँ और अभी सुखद निवास के उद्देश्य से आगे बढ़ने और पीछे हटने में, देखने और दूर देखने में, मुड़ने और फैलाने में, चितकबरा लबादा, कटोरा और [अन्य] वस्त्र पहनने में, खाने, पीने, चबाने और स्वाद लेने में,

शौच करने और शौच करने में, चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बात करने और चुप रहने में सचेत और जागरूक रहना चाहिए (तुलना करें डी. ii, 292)।

113. भगवान बुद्ध द्वारा स्वीकृत आचरण के दो प्रकार ये हैं: एक उन लोगों के लिए जो पहले से ही शुद्ध हो चुके हैं, और दूसरा उन लोगों के लिए जो अभी शुद्धिकरण की प्रक्रिया में हैं। जो लोग पहले से ही शुद्ध हो चुके हैं, वे कौन हैं? वे अरहंत हैं। जो लोग अभी शुद्धिकरण की प्रक्रिया में हैं, वे कौन हैं? वे दीक्षा प्राप्त करने वाले हैं; एक अरहंत की इंद्रियों ने अपना कार्य पूरा कर लिया है।

114. खोजी जा सकने वाली चीज़ चार प्रकार की है: पीड़ा के निदान की प्राप्ति, उत्पत्ति के त्याग की प्राप्ति, मार्ग के अस्तित्व में बने रहने की प्राप्ति और समाप्ति के सत्यापन की प्राप्ति। यही चार प्रकार की खोजी जा सकने वाली चीज़ है।

---

110 1 1 यम असंखतम का नपुंसक लिंग यहाँ उल्लेखनीय है।

[पृष्ठ 35]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

115. जो इसे जानता है [21] उसे सचेत होकर आगे बढ़ने वाला, सचेत होकर पीछे हटने वाला कहा जाता है (cf. एम. iii, 135), कामवासना की समाप्ति, घृणा की समाप्ति और भ्रम की समाप्ति के साथ।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:

वह कामुक इच्छाओं को नहीं चाहेगा ।
वह मन से अविचलित रहेगा;
और सभी विचारों में निपुण , एक भिक्षु
अपनी यात्राओं में सचेत रहता है > (§95).

इस प्रकार से प्रश्न पूछा जा सकता है , और इस प्रकार से उत्तर दिया जा सकता है (देखें §62)।

[(2) संतुष्टि , आदि: मोड देखें]।

(3) श्लोक का पुनर्कथन]

116. और किसी वाक्य के पुनर्कथन-श्लोक (§62) को अर्थ और वाक्यांश दोनों के संदर्भ में उचित रूप से निर्देशित किया जाना चाहिए; क्योंकि अर्थहीन वाक्यांश निरर्थक बकवास है। साथ ही, गलत तरीके से प्रस्तुत शब्दों और वाक्यांशों के अर्थ को समझने के लिए कोई दिशा-निर्देश लागू करना कठिन है (देखें ए. i, 58-9, iii, 178)। इसीलिए [एक पुनर्कथन-श्लोक] को अर्थ और वाक्यांश दोनों से युक्त तरीके से पद्यबद्ध किया जाना चाहिए।

[(4) जो कुछ भी नौ गुना तर्क-सूत्र में है]

117. इस तर्क-सूत्र की भी इस प्रकार जाँच की जानी चाहिए: यह किस प्रकार का तर्क-सूत्र है? क्या यह एक मूल कथन से बना है, 1 एक कथन जो अर्थों के अनुक्रम को स्पष्ट करता है? 2 एक

116/1 C, Ba, Bb , सभी में PTS के sangahitabbam के बजाय sangayitabbam लिखा है। यह शब्द संभवतः अनुच्छेद का अंत करता है क्योंकि suttan ca pavicitabbam शब्द आगे आने वाले भाग की शुरुआत प्रतीत होते हैं; वे §§6 और 62 का संदर्भ देते प्रतीत होते हैं और आगे आने वाले भाग में उनका विस्तार किया जाना है।

117/1 'अहच्च-वचन - एक मूल कथन': एक कठिन शब्द का स्वतंत्र अनुवाद। तुलना करें DhsA. 9, Miln. 148. सामान्य अर्थ बुद्ध द्वारा स्वयं दिए गए कथन का प्रतीत होता है, इस मामले में यह, उदाहरण के लिए, एम. सुत्त 18 में बुद्ध द्वारा दिए गए दो संक्षिप्त कथनों का वर्णन कर सकता है, जो वहाँ दूसरे कथन के एल्डर महाकच्चन के विस्तार के विपरीत है (अगली टिप्पणी भी देखें)। लेकिन नेत्तिआ की व्याख्या के लिए हान ('टकराना') आवश्यक है , जो इस प्रकार है: ' भगवतो थाना-करणदिम अहच्च अभिहन्त्व पावत्त-वचनम्; सम्मसंबुद्धेन समम् देसितयुत्तन ति अत्थो ' (पृष्ठ 67), जिसका अनुवाद 'भगवान बुद्ध की (मौखिक) स्थिति, उपकरण आदि को आपस में टकराने से उत्पन्न कथन' के रूप में किया जा सकता है; इसका अर्थ है, 'पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के स्वयं के शिक्षण के लिए उपयुक्त'। इस तकनीकी व्याकरणविद् द्वारा थाना-करण-आदि के प्रयोग के लिए रूपसिद्धि देखें : ' थानाकरणप्पयतनेहि वन्न जयन्ते' 'अक्षर मुखीय

स्थिति (अर्थात, कंठ्य, तालव्य, मस्तिष्कीय, दंत्य, ओष्ठ्य), उपकरण (अर्थात, जीभ, आदि) और ध्वनि (अर्थात, करणी है या नहीं) के माध्यम से उत्पन्न होते हैं' (बर्मी लिपि पाली शब्दकोश सद्दा-त्थारतनवली में उद्धृत)।

117/2 ' अनुसंधि-वचन —अर्थ के क्रम का कथन': एक अन्य वाक्यविन्यास संबंधी शब्द। नेत्तिआ कहते हैं, 'शिष्य द्वारा उच्चारित; क्योंकि इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह भगवान बुद्ध के कथन के बाद क्रमानुसार आता है (अनुसंधेत्व) ' (पृष्ठ 67)। यह उदाहरण के लिए, एम. सूत्र 18 में वरिष्ठ महा-कच्चना द्वारा दिए गए व्याख्यात्मक प्रवचन पर लागू होता है। इस प्रकार इसका अर्थ अनुच्छेद 198 के बाद के संधि के अर्थ से भिन्न है ।

[पृष्ठ 36]

पथप्रदर्शक

जिसका अर्थ पहले से ही निर्देशित है? जिसका अर्थ अभी निर्देशित होना बाकी है? 3 और क्या यह भ्रष्टाचार से संबंधित है, नैतिकता से संबंधित है, 4 जो भेदन से संबंधित है, 5 या जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है (देखें §760)? इस तर्क-सूत्र में चारों सत्य कहाँ मिलते हैं: इसके आरंभ में, इसके मध्य में, या इसके अंत में? इसी प्रकार तर्क-सूत्र की जाँच की जानी चाहिए।

118. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

'इस थ्रेड में क्या पूछा गया है और किसका उत्तर दिया गया है?'
साथ ही एक श्लोक का भावार्थ भी,
और थ्रेड की शब्द-जांच:
यह विधि जांच को दर्शाती है' (§6)।

जांच की प्रक्रिया यहीं समाप्त होती है।

♦

---

3. व्याख्या करने के तरीके में नौ गुना धागा

119. इसमें, व्याख्या को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? व्याख्या को संप्रेषित करने का तरीका यह है:

117/3 ' नित्तत्था —जिसका अर्थ पहले से ही निर्देशित है' और ' नेय्यात्था — जिसके अर्थ को मार्गदर्शन की आवश्यकता है' अ. i, 60 पर मिलते हैं; इन्हें क्रमशः 'स्पष्ट अर्थ के साथ' और 'अस्पष्ट अर्थ के साथ' के रूप में समझा जा सकता है, हालांकि यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यहां 'अर्थ' का अर्थ ' उद्देश्य के रूप में अर्थ' है। शेष 4 प्रकार चौथे अध्याय (§760) से हैं।

117/4 ' वासंद - नैतिकता': से. वास 'निवास करना', देखें एसएन. 1009, मिल्न. 263, विस. 185. यहाँ संदर्भों से पता चलता है कि इसका अर्थ पुण्य की खेती है, अतः 'नैतिकता'; लेकिन तुलना करें विन. iv, 120, जहाँ मिट्टी को दुर्गंधयुक्त होने से रोकने के लिए 'उपचार' या 'इलाज' (vdsetum) करने की अनुमति है।

li7/5 सभी संस्करणों में nibbedha लिखा गया है , जिसका अर्थ है vidh (= संस्कृत vyadh); फिर भी संभवतः सभी उदाहरणों में nibbheda ('भिद से 'बाहर निकलना') पढ़ा जा सकता है। abhinibbhida और n. 326/1 देखें। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों का vid (nibbida , 'वैराग्य') के साथ कुछ वास्तविक विलय हो गया है ।

[पृष्ठ 37]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
सही और गलत की व्याख्या की तलाश करना
सभी हस्तांतरणों के मामले में
विमान और रिसॉर्ट प्रदर्शित करेंगे
व्याख्या करने का तरीका 5 (§7)।

120. इसका क्या अर्थ है? अधिकार के चार प्रमुख आह्वान (देखें ए. ii, 167)। ये हैं: प्रबुद्ध व्यक्ति को अधिकार के रूप में मानना, समुदाय को अधिकार के रूप में मानना, अनेक वरिष्ठों को अधिकार के रूप में मानना और एक ही वरिष्ठ को अधिकार के रूप में मानना। ये अधिकार के चार प्रमुख आह्वान हैं। 1

121. [अधिकार के लिए ऐसे सभी अपीलों में] <ये शब्द और वाक्यांश, धागे के मामले में, प्रवेश के तरीकों के अनुरूप होने चाहिए,1 और, बहिर्मार्गदर्शन (अनुशासन) के मामले में, स्वयं के लिए [वहाँ] देखे जाने चाहिए> (ए. ii, 167), और उन्हें, विचार की आवश्यक प्रकृति के मामले में,2 इसके अनुकूल होना चाहिए।

122. [22] वह कौन सा सूत्र है जिसके प्रवेश मार्गों के अनुरूप उन्हें होना चाहिए (धारा 351 भी देखें)? चार आर्य सत्य।

123. वह कौन सा मार्गदर्शन (अनुशासन) है जिसे स्वयं देखना आवश्यक है? कामवासना का मार्गदर्शन, घृणा का मार्गदर्शन और भ्रम का मार्गदर्शन।

124. उस विचार का मूल स्वरूप क्या है जिसके लिए उन्हें अनुकूलनीय होना चाहिए? आश्रित उत्पत्ति (देखें §462; एस. ii, 25)।

125. यदि आर्य सत्यों के मामले में, उनमें प्रवेश करने का कोई मार्ग है, 1 और यदि दोषों के निवारण के मामले में, यह मार्ग है

120/1 यह अंश स्पष्ट रूप से महापदेश को महा + अपदेश से बना मानता है , न कि महा + पदेश से । पीईडी में ए. ii, 167 का संदर्भ अपदेश के अंतर्गत होना चाहिए , न कि पदेश के अंतर्गत , और डी. ii, 123 का संदर्भ वहाँ जोड़ा जाना चाहिए; सीपीडी में अपदेश के अंतर्गत का उल्लेख नहीं है । इस प्रकार अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि यह स्वयं प्राधिकार नहीं है, बल्कि प्राधिकार के समक्ष की गई अपील है, जिसकी सत्यता की जाँच सूत्रों और विनय के संदर्भ में करने की अनुशंसा की जाती है।

121/1 ओतारायितब्बा ('प्रवेश के तरीकों के अनुरूप होना चाहिए'—अर्थात, 4 सत्यों के अनुरूप) के लिए प्रस्तावना (अनुभाग 8) देखें।

121/2 धम्मत (शाब्दिक अर्थ 'विचार-प्रथा'—वह विशिष्ट विचार जिसके द्वारा 'वस्तु' की पहचान की जाती है) 'विचार' (धम्म), 'प्रकृति' (पकति) और 'सार' (भाव —पिटक काल के बाद के प्रयोग में) की अवधारणाओं को समाहित करता है, बल्कि अंग्रेजी अभिव्यक्ति 'यह सार का है...' के अर्थ में। यहाँ जिस बात का उल्लेख किया गया है वह है आश्रित उत्पत्ति, जो समस्त अस्तित्व की अनिवार्य बद्धता है।

125/1 ' अवतारति —प्रवेश का एक मार्ग है': = ओतारति ; पीईडी में नहीं , सीपीडी देखें ; लेकिन सीपीडी में 'उतरना' का अनुवाद , शाब्दिक होते हुए भी, इस संदर्भ के लिए उपयुक्त नहीं है।

[पृष्ठ 38]

पथप्रदर्शक

स्वयं देखने पर, यदि विचार के मूल स्वरूप के संदर्भ में कोई विरोधाभास न हो, तो किसी प्रकार का दोष उत्पन्न नहीं होता। चारों प्रमुख आधिकारिक अपीलों में से जो भी व्याख्या योग्य हो, उसे स्वीकार किया जा सकता है, चाहे वह किसी भी प्रकार से व्याख्या योग्य हो और किसी भी तरह से व्याख्या की गई हो।

126. जब [चर्चा के दौरान] किसी से कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो उस प्रश्न को उसके शब्दों के संदर्भ में इस प्रकार समझा और परखा जाना चाहिए: 'प्रश्न में कितने शब्द हैं (धारा 63f देखें)? यदि सभी शब्द एक ही अर्थ के अनुरूप हैं, तो वह एक ही प्रश्न है। यदि चार शब्द एक ही अर्थ के अनुरूप हैं, तो वह एक ही प्रश्न है। यदि तीन शब्द एक ही अर्थ के अनुरूप हैं, तो वह एक ही प्रश्न है। यदि दो शब्द एक ही अर्थ के अनुरूप हैं, तो वह एक ही प्रश्न है। यदि एक शब्द एक ही अर्थ के अनुरूप है, तो वह एक ही प्रश्न है।'

127. इसकी जांच करते समय, हमें यह पहचानने की आवश्यकता है: 'क्या ये विचार अर्थ में भिन्न हैं और वाक्यांश में भिन्न हैं, या इन विचारों का एक ही अर्थ है, केवल वाक्यांश भिन्न है (cf. एम. i, 297)।

128. यह कैसे होगा? जैसा कि देवता ने भगवान बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे:

दुनिया: किस चीज से तबाह हुई है?

और फिर यह किस चीज से ग्रस्त है?

इसे किस कांटे ने दर्ज किया है?

और जिसके द्वारा 1 को लगातार परेशान किया गया V > (एस. आई, 40).

129. पूछे गए ये चार शब्द तीन प्रश्न हैं: इसकी पहचान कैसे होती है? क्योंकि भगवान बुद्ध ने देवता को इस प्रकार उत्तर दिया:

मृत्यु ने दुनिया को नष्ट कर दिया ।

और फिर यह बुढ़ापे की चपेट में आ जाता है।
और लालसा का कांटा उसमें प्रवेश कर चुका है।
और इच्छाएँ इसे लगातार परेशान करती हैं' > (एस.आई , 40).
130. इसमें, वृद्धावस्था और मृत्यु दो निर्धारित विशेषताएँ हैं।

ठीक है; इसके लिए 'प्रवेश का मार्ग प्रदान करना या अनुमति देना (अर्थात, चार सत्यों में)' के अधिक विशिष्ट अर्थ की आवश्यकता है। इसका पूरा अर्थ बारहवें विधि (§§351ff.) में दिया गया है।
127/1 'एवा - केवल': यह बहुत आम तौर पर पाया जाता है, लेकिन इसका अर्थ प्राचीन संहिता में नहीं मिलता। 128/1 ' धूपायिता - परेशान': प्राचीन संहिता में इसका कोई उपयुक्त अर्थ नहीं दिया गया है ; शाब्दिक अर्थ 'धूम्रपान किया' है, लेकिन यहाँ नेत्तिया ने इसे संतापिता के रूप में व्याख्यायित किया है ; तुलना करें स्तोत्र 448। इसी प्रकार धूपयना (§136) भी । तुलना करें ए. ii, 215 पर धूपयति ।

[पृष्ठ 39]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
निर्धारित का; क्योंकि वृद्धावस्था <स्थिरता में परिवर्तन> है [और] मृत्यु <अवसाद> है (ए. i, 152)। 1
131. यहाँ वृद्धावस्था और मृत्यु के अर्थों में अंतर है। इसका क्या कारण है? [23] क्योंकि जो लोग मरते हैं
गर्भ कभी बूढ़ा नहीं होता। और देवताओं में मृत्यु होती है, यद्यपि उनके शरीर बूढ़े नहीं होते। 1 बुढ़ापे से तो बचा जा सकता है , लेकिन मृत्यु से नहीं, सिवाय उन लोगों के जो असाधारण सफलता (शक्ति; देखें डी. ii, 99) रखते हैं ।
132. अब जब कहा जाता है कि ' लालसा का कांटा उसमें प्रवेश कर गया है', तो कामवासना से रहित लोग वृद्ध होकर मर जाते हैं। और यदि लालसा वृद्धावस्था और मृत्यु के समान होती, तो सभी युवा लालसा से रहित होते। और यदि जिस प्रकार लालसा दुख का कारण है, उसी प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु भी दुख का कारण होती, तो वृद्धावस्था और मृत्यु वास्तव में दुख का कारण होती और लालसा दुख का कारण नहीं होती; परन्तु वृद्धावस्था और मृत्यु दुख का कारण नहीं हैं, बल्कि लालसा दुख का कारण है। और यदि जिस प्रकार लालसा मार्ग से नष्ट हो सकती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु भी नष्ट हो सकती, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी मार्ग से नष्ट हो सकती।
133. इस प्रकार की संरचना के माध्यम से अन्य कई कारणों से यह जांच की जा सकती है कि क्या संरचना स्वयं के लिए देखी जाती है और क्या अर्थ की भिन्नता समन्वित है (cf. §§465ff.); और इसकी वाक्यांश रचना के संदर्भ में भी जांच की जानी चाहिए।
134. अब, 'चुभन' और ' उत्पीड़न' (धारा 128) इन दो विचारों के मामले में, अर्थ में एकरूपता है; क्योंकि ' इच्छाओं' और ' लालसा ' (धारा 129) के अर्थों में कोई अंतर नहीं है। जब लालसा की भावना पूरी नहीं होती, तो नौ आधारों (देखें ए.वी. , 408) के संबंध में क्रोध और द्वेष उत्पन्न होता है।
135. इस संरचना के माध्यम से वृद्धावस्था, मृत्यु और लालसा के अर्थों में भिन्नता है।
136. हालांकि, जब भगवान बुद्ध इसे 'इच्छा' और 'लालसा' इन दो नामों से पुकारते हैं, तो यह उन बाह्य कारणों के कारण होता है जो

130/1 पढ़ें जरा यं थितस्सा अन्नथत्तम; मरारियम वायो.
131/1 देवताओं की मृत्यु के लिए देखें इति. 76f.
131 /2 ' पटिक्कमम कटुम — काम चलाना': पीडी में नहीं , शाब्दिक अर्थ 'बाई-पास करना'; तुलना करें परिक्कमनया (एम . आई, 43)। शायद यहाँ पाठ परिक्का - मम होना चाहिए।
133/1 'विभिन्न अन्य' या 'यह और अन्य' के रूप में अन्नमन्ना का यह उपयोग असामान्य है, शायद इस काम के लिए अजीब है, सामान्य अर्थ 'एक दूसरे' या 'परस्पर' है। नेत्तिया कहते हैं ' अन्नमन्नेहि ति अन्नेहि करनुपपत्ति: अत्थतो सी अन्नट्टम तदन्नम पि; ब्यंजनातो गवेसीताब्बन ति अत्थो' (पृ. 72)।

[पृष्ठ 40]

पथप्रदर्शक
इसका उद्देश्य ही इसे 'इच्छा' और 'लालसा' दो नामों से पुकारना है; क्योंकि सभी लालसाओं में एक ही विशेषता होती है - किसी चीज से चिपके रहना। जिस प्रकार सभी अग्नि का एकमात्र गुण ऊष्मा उत्पन्न करना है, यद्यपि इसके उपभोग के अनुसार इसके अनेक अन्य नाम हैं, जैसे कि 'लकड़ी की आग', 'घास की आग', 'झाड़ियों की आग', 'गोबर की आग', 'भूसे की आग' और 'कूड़े की आग' (देखें एम. आई, 259), फिर भी सभी अग्नि का केवल ऊष्मा उत्पन्न करने का गुण होता है, उसी प्रकार सभी लालसा का भी केवल एक ही गुण होता है, अर्थात् आसक्ति का गुण, [24] यद्यपि इसके उद्देश्य के अनुसार इसे विभिन्न अन्य नामों से पुकारा जाता है, जैसे कि 'इच्छाएँ', 'लालसा', 'चुभन', 'उत्पीड़न', ' धारा ', 'आसक्ति', 'स्नेह (नमी)', 'यातना', 'लता', '[मैं] और 'मेरा] के संदर्भ में कल्पना करना', 'जिम्मेदारी', 'आवश्यकता'। 'प्यास' और 'प्रतीक्षा-आनंद'; फिर भी सभी लालसा में केवल एक ही विशेषता होती है, अर्थात् आसक्ति की विशेषता, जैसा कि [संचार का तरीका] पर्यायवाची शब्दों में कहा गया है (देखें §§285fif.):

137. < आवश्यकता और लालसा , प्रत्याशापूर्ण आनंद ,
प्रलोभन 1 कई तत्वों पर आधारित है ,
वह लालसा जिसका अस्तित्व अज्ञान में निहित है:
मैंने उन सभी चीजों का अंत कर दिया जिनकी जड़ तक पहुंच चुकी थी ।
(पी 17; तुलना करें एस. i, 181; देखें §286)।

138. यह लालसा का पर्यायवाची है, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: < तिस्सा , जब कोई कामवासना से रहित नहीं होता , इच्छा से रहित नहीं होता , प्रेम से रहित नहीं होता , प्यास से रहित नहीं होता , बुखार से रहित नहीं होता, दूर रूप से ... भावना से ... बोध से ... संकल्प से ... चेतना से ...> इन सभी तर्कों को विस्तार से उद्धृत किया जा सकता है (देखें एस. iii, 107)।

139. लालसा 1 के इस पर्यायवाची शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'दुख की सभी पहुँच का मूल निर्धारण इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं की लालसा से होता है।' इसकी व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'सभी

136/1 'सरिता - धारा' का अर्थ 'स्मृति-निर्माता' हो सकता है और यह एम. iii, 132 के सारा-संकप्पा या एम. iii, 217 के समनुस्सारतो को संदर्भित करता है , जो मूल पर निर्भर करता है।

137/1 'सारा—प्रलोभन': यह शब्द सम्युत्त पाठ में नहीं है, जो इस उद्धरण से काफी भिन्न है। नेत्तिया (पृष्ठ 99) इसे तन्हा के समतुल्य मानता है , लेकिन कहीं भी इस शब्द की व्याख्या नहीं करता।

139/1 C , Ba और Bb इस बात पर सहमत हैं कि शब्द tanhay ' etam vevacanam evam yujjati एक ही उपवाक्य हैं। Ba और Bb इसे पहले वाले शब्द के साथ जोड़ते हैं, जबकि C अगले अनुच्छेद की शुरुआत इसी से करता है, जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

[पृष्ठ 41]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
वैराग्य प्राप्त करने के लिए इंद्रिय सुख की लालसा का कुछ हद तक का होना आवश्यक है।' 2
इस संरचना के माध्यम से इसे अन्य कई कारणों से भी जांचा जा सकता है।

140. जिस प्रकार भगवान बुद्ध कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति को कुरूपता का उपदेश देते हैं, घृणा से ग्रस्त व्यक्ति को प्रेम का उपदेश देते हैं, और भ्रम से ग्रस्त व्यक्ति को आश्रित-उत्पत्ति का उपदेश देते हैं—क्योंकि यदि वे कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति को प्रेम की हृदय-मुक्ति, या सुस्त परिचय का सुखद मार्ग, या तीव्र परिचय का सुखद मार्ग, या अंतर्दृष्टि द्वारा घोषित त्याग का उपदेश देते, तो उपदेश की व्याख्या नहीं की जा सकती थी—उसी प्रकार, जो कुछ भी कामवासना के त्याग के अनुरूप है, जो कुछ भी घृणा के त्याग के अनुरूप है, और जो कुछ भी भ्रम के त्याग के अनुरूप है, [25] उन सभी की व्याख्या, ज्ञान के तल तक, जांच के तरीके से जांच करने के बाद, व्याख्या के तरीके से की जा सकती है।

141. जब कोई प्रेम और दया में रहता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'इच्छा उसके हृदय को जकड़े रखती है,' बल्कि इस प्रकार की जा सकती है: 'इच्छा का त्याग हो जाता है और वह उसमें विलीन हो जाती है।'

142. जब कोई करुणा में रहता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'क्रूरता उसके हृदय को जकड़े रखती है,' बल्कि इस प्रकार की जा सकती है: 'क्रूरता का त्याग हो जाता है और वह उसमें विलीन हो जाती है।'

143. जब कोई व्यक्ति प्रसन्नता में रहता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'ऊब उसके हृदय को जकड़े रखती है,' बल्कि इस प्रकार की जा सकती है: 'ऊब का त्याग हो जाता है और वह उसमें विलीन हो जाती है।'
144. जब कोई व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी समभाव में रहता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'कामना उसके हृदय को जकड़े रखती है,' बल्कि इस प्रकार की जा सकती है: 'कामना का त्याग हो जाता है और वह उसमें विलीन हो जाती है।'
145. जब कोई व्यक्ति चिह्नहीन अवस्था में रहता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'उसकी जानकारी संकेतों का अनुसरण करके इस या उस माध्यम से प्राप्त होती है,' बल्कि शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'उसमें कोई भी चिह्न त्याग दिया जाता है और लुप्त हो जाता है।'
146. जब 'मैं' की अवधारणा अनुपस्थित होती है, तो शिक्षा नहीं दी जा सकती।

139/2 'कामतन्हापरिक्खरमुलको —जिसकी जड़ में इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं की लालसा का कुछ आवश्यक तत्व है' को नेट्टीए द्वारा वस्तुनिष्ठ इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं (वांछित वस्तुओं) के रूप में व्यक्तिपरक इंद्रिय-संबंधी इच्छा (लालसा) के आधार के रूप में समझाया गया है। एन डी जे. 1 में वस्तु-काम और क्लेसा-काम के बीच अंतर देखें।
140/1 जहां पीटीएस में यथा भगव, सी में यथा अहा भगव , ब और ब में यथा ही भगव है।
144/1 Cf. एम. i, 424, जिसमें यहाँ पतिघा है, राग नहीं।

[पृष्ठ 42]
पथप्रदर्शक
इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है: "मैं इस प्रकार नहीं देखता कि 'मैं यह हूँ', फिर भी अनिश्चितता और आश्चर्य का चुभन 'मैं क्या हूँ?, मैं कैसे हूँ? ' मेरे मन को जकड़े रखता है ।" शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: "अनिश्चितता और आश्चर्य का चुभन त्याग दिया जाता है और [मुझमें] गायब हो जाता है।"
147. [पुनः,] जब कोई व्यक्ति प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश कर चुका होता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'इंद्रिय सुख और द्वेष की लालसा उसकी भेद्यता में उत्पन्न होती है ' ; शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी निम्न अवस्था में उत्पन्न होती हैं'; या वैकल्पिक रूप से, शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'बिना विचार के जो कुछ भी है, उसके साथ बोध और ध्यान उसकी निम्न अवस्था में उत्पन्न होते हैं'; शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी भेद्यता में उत्पन्न होती हैं।'
148. जब कोई व्यक्ति द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश कर लेता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'धारणा और ध्यान, जो चिंतन और अन्वेषण से युक्त हैं, उसकी विशिष्टता में घटित होते हैं'; शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं'; या वैकल्पिक रूप से, शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'धारणा और ध्यान, जो अवलोकन-समभाव से प्राप्त आनंद से युक्त हैं, उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं'; शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी विशिष्टता में घटित होते हैं'।
149. [26] जब कोई व्यक्ति तृतीय ध्यान में प्रवेश कर चुका होता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'उसकी विशिष्टता में सुख के कारण प्राप्त होने वाले सुख से युक्त बोध और ध्यान होता है,' शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी निम्न अवस्था में होते हैं/ या वैकल्पिक रूप से, शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'उसकी निम्न अवस्था में अवलोकन-समभाव के कारण प्राप्त होने वाली शुद्धता से युक्त बोध और ध्यान होता है/ शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी विशिष्टता में होते हैं।'
150. जब कोई व्यक्ति चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश कर लेता है, तो शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती: 'दृष्टि और ध्यान के साथ-साथ जो कुछ भी देखने से प्राप्त होता है, वह समभाव है ।'

146/1 जहां पीटीएस में किसमिन्सी कैटासमिन ती है , बा में किसमिनसी कैटासमिन ती है और बीबी और सी में किसमिनसी कैटस्मीन ती है, नेट्टिया नजरअंदाज कर देता है। चूँकि संकेत निश्चित रूप से एम की ओर है। i, 8, Bb और C सही हैं और संकल्प इस प्रकार है किम अस्मि? ती, कथम अस्मि? ति.

147/1 पीटीएस पृष्ठ 25, पंक्ति 23 (= §147 का आरंभ) पर स्थित शब्द यथा व पाना, पीटीएस पृष्ठ 26, पंक्ति 38 ('इसी प्रकार' §156 में) पर स्थित एवं से संबंधित होना चाहिए। फलस्वरूप, पाली में §§147-56 एक ही वाक्य हैं , जिसकी शुरुआत 'जैसे...' से मानी जा सकती है, जिसके बाद उचित समय पर '...इसी प्रकार...' आता है। 147/2 ' समवत्तन्ति —घटित होना': यह अर्थ, जो असामान्य नहीं है, पीईडी में नहीं दिया गया है ; तुलना करें निब्बत्तति और पवत्तति।
150/1 उपेक्खसुखसहागाता पढ़ें।

____

____

[पृष्ठ 43]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
'उसकी भेद में,' इस शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं;' या वैकल्पिक रूप से, 'अंतरिक्ष की अनंतता से युक्त आधार के साथ बोध और ध्यान उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं ' इस शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: 'वे उसकी भेद में घटित होते हैं।'
151. जब कोई व्यक्ति अंतरिक्ष की अनंतता से युक्त आधार में प्रवेश कर चुका होता है, तो यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'उसके भेद में रूप सहित बोध और ध्यान घटित होते हैं,' बल्कि यह इस प्रकार समझी जा सकती है कि 'वे उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं;' या वैकल्पिक रूप से, यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'उसके निम्न अवस्था में चेतना की अनंतता से युक्त बोध और ध्यान घटित होते हैं,' बल्कि यह इस प्रकार समझी जा सकती है कि 'वे उसकी भेद में घटित होते हैं।'
152. जब कोई व्यक्ति चेतना की अनंतता से युक्त आधार में प्रवेश कर चुका होता है, तो यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'उसकी भेदभाव में अनंतता से युक्त आधार के साथ बोध और ध्यान घटित होते हैं,' बल्कि यह शिक्षा समझी जा सकती है कि 'वे उसकी निम्न अवस्था में घटित होते हैं;' या वैकल्पिक रूप से, यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'उसकी निम्न अवस्था में अनाप-स्वामित्व से युक्त आधार के साथ बोध और ध्यान घटित होते हैं,' बल्कि यह शिक्षा समझी जा सकती है कि 'वे उसकी भेदभाव में घटित होते हैं।'
153. जब कोई व्यक्ति किसी आधार पर प्रवेश कर चुका हो जिसमें कोई भी शामिल न हो-

____

150/2 ' आकाश —स्थान': पाली भाषा का अर्थ उपसर्ग a+ (संस्कृत + kas 'प्रकाशित होना') से है (हालाँकि यह रहस्य है कि रूप रहित स्थान ऐसा कैसे कर सकता है)। पाली की पुरानी परिभाषाएँ सभी नकारात्मक हैं और उपसर्ग d- को एक सशक्त नकारात्मक (जैसे कि किंचन्ना में) + या तो kds (संस्कृत y'fcas) 'प्रदर्शित करना', 'प्रकाशित होना' या फिर y'kas (संस्कृत krs) 'रेखा खींचना', 'हल चलाना' के रूप में दर्शाती हैं; आकाश तब या तो 'वह जो प्रकाशित नहीं होता' या 'वह जिस पर कोई रेखा नहीं खींची जा सकती' होता है (देखें एम. i, 127 पर उपमा : स्थान (एक kdsa) पर चित्र बनाने की असंभवता)। विभाविनी टीका अद अभिधम्मत्थसंगह में नकारात्मक परिभाषा देखें: 'न कस्सति ति आकाशो , न कसो वा' अकासो\ बहुत देर से और संस्कृतकृत अभिधानप्पदीपिका टीका एक सकारात्मक परिभाषा को स्वीकार करती है, हालांकि: 'भूसम कासन्ते दिप्पंते पदत्थ एतेना ति अकदसो; न कसासति न विलेख्यति ति वा अकसो'।
152/1 ' अकिंचनयतना - स्वामित्वविहीनता से युक्त आधार': पीईडी अकिंचन को नकारात्मक उपसर्ग अ- + सर्वनाम किम + प्रत्यय -काना से व्युत्पन्न करता है ; लेकिन यह शब्द + किक ('दबाना', 'बाधा डालना') का नकारात्मक व्युत्पन्न प्रतीत होता है ; देखें एम. i, 298 'रागो किंचनो ' ('वासना एक स्वामित्व है'), आदि, जिसकी व्याख्या एम.ए. ii, 354 में किंचति - मद्दति द्वारा की गई है। एम . ii, 263 और एम.ए. iv, 64 = विस . 654 में किंचनता (इस प्रकार पढ़ा गया) की भी तुलना करें । अकिंचनयतना के वर्णन में ' न'अत्थी किंची' (एम. i, 41) शब्द दो अलग-अलग शब्दों किंची (सर्वनाम) और किंचन (प्रतिरूप/ किक) पर आधारित है । अन्यथा 'शून्यता से युक्त आधार' द्वारा इसे अच्छी तरह से व्यक्त किया गया है।

____

____

[पृष्ठ 44]
पथप्रदर्शक
यह मानते हुए कि, 'चेतना की अनंतता से युक्त आधार के साथ बोध और ध्यान उसकी विशिष्टता में घटित होते हैं' इस प्रकार शिक्षा की व्याख्या नहीं की जा सकती; या वैकल्पिक रूप से, 'बोध और ध्यान, जो न तो बोध और न ही अबोध से युक्त आधार के साथ उसकी

निम्न अवस्था में घटित होते हैं' इस प्रकार शिक्षा की व्याख्या की जा सकती है; या इस प्रकार शिक्षा की व्याख्या की जा सकती है कि 'बोध और ध्यान उसकी विशिष्टता में घटित होते हैं'।

154. जब कोई व्यक्ति ऐसी अवस्था में प्रवेश कर चुका हो जिसमें न तो बोध हो और न ही अबोध, तो यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'बोध की प्राप्ति उसकी भेद्यता में होती है,' बल्कि यह इस प्रकार समझी जा सकती है कि 'यह उसकी निम्न अवस्था में होती है;' या वैकल्पिक रूप से, यह शिक्षा इस प्रकार नहीं समझी जा सकती कि 'बोध और ध्यान, बोध और भावना की समाप्ति के साथ, उसकी निम्न अवस्था में होते हैं,' बल्कि यह इस प्रकार समझी जा सकती है कि 'यह उसकी भेद्यता में होती है।'

155. इस प्रकार शिक्षण की व्याख्या नहीं की जा सकती है कि 'संज्ञान स्वस्थ होता है जब वह निर्देशात्मक प्रबंधन के अधीन नहीं होता है,' 1 इस प्रकार शिक्षण की व्याख्या की जा सकती है कि 'संज्ञान स्वस्थ होता है जब वह निर्देशात्मक प्रबंधन के अधीन होता है।'

156. इस प्रकार सभी नौ गुना धागे को, जांच के तरीके के अनुसार सभी तरीकों (§62) में जांच किए जाने के बाद, व्याख्या के तरीके के अनुसार व्याख्या की जानी चाहिए, ऐसा सच्चे विचार के अनुसार, मार्गदर्शक (अनुशासन) [27] के अनुसार, और गुरु के विधान के अनुसार किया जाना चाहिए।

157. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

सही और गलत की व्याख्या की तलाश करना
सभी हस्तांतरणों के मामले में
विमान और रिसॉर्ट प्रदर्शित करेंगे
व्याख्या करने का तरीका' (§7)।

व्याख्या करने की प्रक्रिया समाप्त हो गई है।

♦

154/1 नेटी ए बताते हैं कि इस मामले में ऐसी धारणा और ध्यान उस तैयारी के काम के साथ होता है जो उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसने धारणा और भावना की समाप्ति की प्राप्ति में प्रवेश करने का निर्णय लिया है (पृष्ठ 76)।

166/1 ' अभिनिहारा - निर्देशात्मक प्रबंधन': इसका अर्थ है, संकल्प लेना और उसे बनाए रखना, लेकिन इस शब्द का तकनीकी संदर्भ भी है जो दुनिया से संबंधित 5 अलौकिक अभिन्न के विकास से संबंधित है (देखें, उदाहरण के लिए, डी. i, 76)।

[पृष्ठ 45]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

4. नींव ले जाने के तरीके में नौ गुना धागा

158. इसमें नींव को स्थानांतरित करने का तरीका क्या है? नींव को स्थानांतरित करने का तरीका इस प्रकार है:

'विक्टर एक विचार सिखा रहा है'
यह सिखाता है कि उस विचार में क्या है
आधार के रूप में; प्रत्येक विचार के साथ भी ऐसा ही है:
यह नींव ले जाने का तरीका है (§9)।

159. यह [मोड] क्या सिखाता है? [यह इस प्रकार सिखाता है:]

[18 मूल शब्दों की परिभाषाएँ— धारा 4 देखें]

अज्ञान की विशेषता यह है कि वह वास्तविकता के अनुसार विचारों को भेद नहीं पाता; इसका आधार चार विकृतियाँ हैं। लालसा की विशेषता यह है कि वह किसी चीज़ से चिपकी रहती है; इसका आधार आकर्षक रूप या मोहक रूप है। लोभ की विशेषता यह है कि वह आकांक्षा रखती है; इसका आधार वह लेना है जो दिया नहीं गया है। [घृणा 1 की विशेषता यह है कि वह बुराई की कामना करती है; इसका आधार जीवित प्राणियों को मारना है। भ्रम की विशेषता यह है कि वह चीजों के बारे में गलत सिद्धांत बनाती है; इसका आधार गलत सिद्धांत है। 2] सौंदर्यबोध की विशेषता यह है कि वह रंग, आकार और विशेषताओं को समझती है; 3 इसका आधार इंद्रियों (आँख से शुरू होकर) पर नियंत्रण न रखना है। सुखबोध की विशेषता यह है कि वह दोषों से प्रभावित संपर्क के करीब जाती है; इसका आधार संतुष्टि है। स्थायित्व का बोध उन विचारों को अनदेखा करने की विशेषता रखता है जो निर्धारित (कि वे ऐसे हैं) हैं; इसका आधार

चेतना है। स्वयं की धारणा में अनित्यता और पीड़ा की धारणा के साथ न देखने की विशेषता होती है; इसका आधार नाम-शरीर है (cf. Pe 121f.)।

160. विज्ञान में सभी विचारों को भेदने की विशेषता होती है; इसका आधार ज्ञेय है। शांति में चेतना के विकर्षण को रोकने की विशेषता होती है; इसका आधार कुरूपता के प्रकार हैं ।

159/1 घृणा और भ्रम के लिए खंड सभी संस्करणों में अजीब तरह से गायब हैं; उन्हें §160 में उनके समकक्षों से आसानी से पुनर्निर्मित किया जा सकता है।

159/2 देखा गया। 160/2।

159/3 इस संदर्भ में ' ब्यंजना ' को 'वेश्यावृत्ति' के रूप में प्रस्तुत करने का कोई औचित्य नहीं है जैसा कि पीटीएस नेट्टी सूचकांक में किया गया है; यहाँ 'व्यक्तिगत विशेषताओं' जैसे नाक, हाथ आदि का तात्पर्य है।

160/1 'कुरूपता के प्रकार' को शरीर के 31 (या 32) भागों (जैसे, डी. ii, 293) या 9 शव-ध्यान (डी. ii, 295f.), या विभिन्न शव-ध्यान (जैसा कि ए. i, 42 पर) के रूप में लिया जा सकता है।

[पृष्ठ 46]

पथप्रदर्शक

लोभहीनता की विशेषता इच्छाओं का सहारा लेने से रोकना है; इसका आधार वह न लेना है जो दिया नहीं गया है। घृणाहीनता की विशेषता द्वेषहीनता है; इसका आधार सजीव प्राणियों की हत्या न करना है। भ्रमहीनता की विशेषता चीजों के बारे में गलत सिद्धांत न बनाना है ; इसका आधार सही सिद्धांत है। कुरूपता की अनुभूति की विशेषता फीके पड़े [लाश-अवस्था] और सड़ते [लाश-अवस्था] को समझना है; इसका आधार वैराग्य है। पीड़ा की अनुभूति की विशेषता दोषों से प्रभावित संपर्क का निदान करना है; इसका आधार भावना है। अनित्यता की अनुभूति की विशेषता उन विचारों को देखना है जिनमें निश्चितता की विशेषता होती है; [28] इसका आधार उत्थान और अवसाद (पतन) है। अनात्म की अनुभूति की विशेषता सभी विचारों के मामले में गैर-जोरदारता है ; इसका आधार विचारों की अनुभूति है (cf. Pe 127f.) ।

[अतिरिक्त परिभाषाएँ]

161. इंद्रिय-इच्छा के पाँच सूत्र इंद्रिय-इच्छाओं के प्रति वासना का आधार हैं। पाँच इंद्रियाँ (आँख से शुरू होकर) जिनका स्वरूप होता है, स्वरूप के प्रति वासना का आधार हैं । छठा आधार (अर्थात् मन) अस्तित्व के प्रति वासना का आधार है। अस्तित्व को घटित होते हुए देखने वाले की अवस्था पाँच प्रकार की धारणाओं का आधार है। पूर्व जन्मों का स्मरण ज्ञान और दृष्टि का आधार है ।

160/2 4 अविप्पतिपादना - गलत सिद्धांत के बिना': पी.ई.डी. में नहीं , सी.पी.डी. देखें।

160/3 'सम्मापतिपट्टी -सही सिद्धांत': इस अर्थ में पतिपत्ति PED में नहीं है, अंतिम नोट देखें। यह शब्द विस में प्रकट होता है। (पृ. 468, 471, आदि), जिसने निस्संदेह इसे यहीं से उधार लिया था; सी एफ पीई 33, 35; मिल्न. 96.A. iii पर , 325 मिच्चापतिपन्ना मिच्चादित्तिका के साथ होता है ।

160/4 सी पीटीएस रीडिंग की पुष्टि करता है ; बा और बब सब्बाधम्म-अभिनिवेश-; परंतु इंद्रिय देमानस सब्बधम्मनाभिनिवेश--- सब्बधम्मनं अनाभि-निवेश-।

160/5 संयुक्त शब्द सब्बधम्म को सब्बे धम्म के समतुल्य माना जाना चाहिए और इसका अनुवाद 'सभी विचार' के रूप में किया जाना चाहिए; लेकिन संयुक्त शब्दों की अस्पष्टता के कारण इसे 'सभी के विचार' के अर्थ में भी लिया जा सकता है, जैसे कि 'सभी' (सब्बा: विशेष रूप से एम. i, 3; 329; और एस. iv, 15 देखें) की धारणा पर आधारित कल्पनाएँ (मन्नाना) , हालाँकि यह एक असंभावित अर्थ है।

160/6 एक संकेत, स्पष्ट रूप से, §38 में उद्धृत धम्मनुपस्सना 279 के लिए, लेकिन साथ ही साथ माइंडफुलनेस (धम्मनुपस्सना) के चौथे आधार के लिए , देखें n. 4/1.

161/1 सभी प्राच्य संस्करणों और नेट्टिया में (सही) चत्थयातनम लिखा है। यहाँ संकेत केवल 'छठी' (अर्थात मन) अवस्था के अस्तित्व की ओर है, जो चार निराकार अवस्थाओं में से एक है।

161/2 'अनुपस्सिता - चिंतन की अवस्था': स्त्रीलिंग सार संज्ञा, पी.ई.डी. में नहीं, सी.पी.डी. देखें ।

[पृष्ठ 47]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

[पांच संकायों की परिभाषाएँ]

162. आस्था का गुण है भरोसा करना, और इसकी अभिव्यक्ति है विश्वास। विश्वास का गुण है अविचलित रहना, और इसकी अभिव्यक्ति है भरोसा करना (स्पष्टीकरण)। 1 आस्था का गुण है विश्वास करना; 2 इसका आधार अनुभव से प्राप्त विश्वास है। 3 विश्वास का गुण है अविचलित रहना; इसका आधार आस्था है।

163. ऊर्जा में प्रेरणा का गुण होता है; इसका आधार सही प्रयास है। सजगता में भटकाव न होने का गुण होता है; इसका आधार सजगता की नींव है। एकाग्रता में एकीकरण का गुण होता है; इसका आधार ध्यान है। समझ में समझने की क्रिया का गुण होता है; इसका आधार चार सत्य हैं (देखें §295; साथ ही पतरस 128-9)।

[आश्रित उत्पत्ति के सूत्र के सदस्यों की परिभाषाएँ]

164. एक अन्य दिशानिर्देश:

अतार्किक ध्यान संतुष्टि की ओर ध्यान केंद्रित करने की विशेषता रखता है; इसका आधार अज्ञान है। अज्ञान सत्य को भ्रमित करने की विशेषता रखता है; यह निर्णयों का आधार है। निर्णयों में नवीनीकरण विकसित करने की विशेषता होती है ।

162/1 ' पसाद —विश्वास' का शाब्दिक अर्थ है 'पारदर्शिता' या 'स्थिरता' (अर्थात, मैला पानी का साफ हो जाना), और ' पसिदाति' शब्द का प्रयोग पानी के साफ होने और विश्वास प्राप्त करने दोनों के लिए किया जाता है। इस प्रकार, विश्वास को संदेह की अशांति के शांत होने और संकल्प या भरोसे द्वारा मन के साफ होने के रूप में देखा जाता है।

162/2 ' अभिपत(ह)याना - विश्वास': पी.ई.डी. में नहीं , सी.पी.डी. देखें ; नेट्टिया , जो अभिपत्थियाना की वर्तनी करता है , ' सद्दाहनम एव' ('केवल विश्वास रखना', पृष्ठ 78) द्वारा व्याख्या करता है।

162/3 ' अवेक्का —अनुभव करने के बाद': यह अनुवाद शाब्दिक और सटीक दोनों है। जर्मन शब्द ava- ('नीचे', 'के नीचे') + i ('जाना') से बना है। इसका अर्थ म. सूत्र 47 (म. i, 320) के सार को देखकर स्पष्ट किया जा सकता है । अवेक्का-पसदा ('अनुभव करने के बाद विश्वास') का अर्थ है (तीन रत्नों में) वह विश्वास जो स्वयं प्रथम मार्ग की प्राप्ति से प्राप्त होने वाली तृष्णा की समाप्ति का अनुभव करने के कारण होता है, क्योंकि उस अनुभव से पहले केवल सुनी-सुनाई बातों पर ही विश्वास होता था।

163/1 देखा गया। 83/3.

164/1 ' तम -यह', लिंग, वचन और कारक में पदत्थनम (नपुंसक) से सहमत होते हुए भी, अर्थ में अविज्जा (स्त्रीलिंग) को संदर्भित करता है। इस वाक्यविन्यास नियम के लिए n. 64/1 देखें। पाली में इस अनुच्छेद में उदाहरणों की एक श्रृंखला है।

164/2 4 विरोहना —विकासशील': पी.ई.डी. में नहीं ; कारणवाचक संज्ञा fm. विरुहति.

[पृष्ठ 48]

पथप्रदर्शक

अस्तित्व (होना); ये चेतना का आधार हैं। चेतना में पुनरागमन का मार्ग खोलकर घटना को घटित करने की विशेषता होती है; 3 यह नाम-और-रूप का आधार है। नाम-और-रूप में नाम-शरीर और रूप-शरीर को जोड़ने की विशेषता होती है; 4 यह छह गुना आधार का आधार है। 5 छह गुना आधार में [छह] इंद्रियों को परिभाषित करने की विशेषता होती है; यह संपर्क का आधार है। 6 संपर्क में आँख, रूप और चेतना की समरूपता उत्पन्न करने की विशेषता होती है; यह भावना (प्रभावशीलता) का आधार है। भावना में इच्छित और अनपेक्षित के साथ सह-अत्यावश्यक होने की विशेषता होती है ; 7 यह लालसा का आधार है। 8 लालसा में आसक्ति की विशेषता होती है; यह धारणा का आधार है। 9 धारणा पुनरागमन का मार्ग खोलती है; 3 यह अस्तित्व (होना) का आधार है। 10 अस्तित्व (होना) नाम-शरीर और रूप-शरीर को वास्तविक अस्तित्व (होना) प्रदान करने की विशेषता रखता है; [29] यह जन्म का आधार है। जन्म श्रेणियों को प्रकट अस्तित्व (होना) प्रदान करने की विशेषता रखता है ; यह वृद्धावस्था का आधार है। वृद्धावस्था

164/3 'ओपपच्चयिका - पुन: प्रकट होने का मार्ग खोलना'; उपपत्ति + अया + क से उत्पन्न; पीईडी में नहीं ; नेट्टी ए चेतना की परिभाषा में पहले उल्लेख के बारे में कहते हैं , 'इसका अर्थ है कि इसका व्यक्तिगत सार अस्तित्व-रूप-प्रकट अवस्था के रूप में घटित होने का कारण है (उपपत्ति-भाव-भावन , इस शब्द के लिए भजन 1, 52 देखें)' और धारणा की परिभाषा में दूसरे उल्लेख के बारे में कहते हैं, 'यह पुन: प्रकट होने [नए अस्तित्व में] में श्रेणियों के घटित होने का कारण बनता है' (पृष्ठ 79)।

164/4 पीईडी , नामरूपा के अंतर्गत , उस शब्द को नामाकाया के समतुल्य मानता है —जो एक घोर त्रुटि है। §445 में परिभाषा देखें; साथ ही n. 84/1 भी देखें।

164/5 'छह गुना आधार' (सलायतन) आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के लिए एक शब्द है।

164/6 'फासा - संपर्क': परिभाषा देखें, उदाहरण के लिए, एम.आई , 111.

164/7 'अनुभवना —सह-अंतर्निहित होना': अनु- = 'समानांतर' या 'सह-', और भू 'होना', जिसका तात्विक महत्व यहाँ किसी अन्य व्याख्या से अस्पष्ट नहीं होना चाहिए, यह याद रखते हुए कि आश्रित उत्पत्ति का सूत्र सकारात्मक और नकारात्मक दोनों अस्तित्व (भाव) की संरचना (और समाप्ति की क्षमता) के साथ-साथ इसकी जटिलता का वर्णन करने के लिए है; यहाँ भावात्मक उत्तेजना की लालसा भविष्य के अस्तित्व को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है ...

164/8 ' तन्हा -तृष्णा': देखें एन. 42/1. अज्होसाना ('क्लीविंग टू') के लिए देखें, उदाहरणार्थ, डीईएफ़। एमए में अज्झोसया तिट्ठति की । द्वितीय, 311' तंहज्जहोसनेन गिलित्वा परिणित्थ- पेत्वा गंहति।

164/9 ' उपादान -मानना': अधिकतर 'चिपकना' द्वारा अनुवादित; लेकिन प्रस्तावना देखें, (खंड 14)।

164/10 ' भव - अस्तित्व (अस्तित्व)': अनुवाद के लिए KhpA. Trsln. Appx. I देखें। 164/11 ' पटुभवन - प्रकट अस्तित्व प्रदान करना': patu(r) ('प्रकट') + bhu ('होना') से; जन्म (ऐतिहासिक आरंभ के रूप में) वैयक्तिक 5-श्रेणी प्रक्रिया को प्रकट नवीकृत अस्तित्व में लाता है।

[पृष्ठ 49]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

इसमें अस्तित्व के मूल तत्वों को अतिपरिपक्व करने की विशेषता है; 12 यह मृत्यु का आधार है। मृत्यु में जीवन-संधि को बाधित करने की विशेषता है; यह शोक का आधार है। शोक (सोका) चिंता (उसुक्का) का कारण बनता है; यह विलाप का आधार है। विलाप निरंतर रोने का कारण बनता है; यह पीड़ा का आधार है। पीड़ा शरीर का दमन है; यह शोक का आधार है। शोक चेतना का दमन है; यह निराशा का आधार है। निराशा समर्पण का कारण बनती है; 13 यह अस्तित्व का आधार है (तुलना करें पे 117-18)।

[अस्तित्व की उत्पत्ति कैसे होती है]

165. जब ये अस्तित्व के कारक 1 सामंजस्य में घटित होते हैं , तब वह अस्तित्व है; वह पुनर्जन्मों के चक्र का आधार है।

[अतिरिक्त परिभाषाएँ]

166. मार्ग में निकास प्रदान करने की विशेषता होती है; यह समाप्ति का आधार है।

167. जल-स्रोतों का ज्ञान, पर्याप्त मात्रा में पीने के ज्ञान का आधार है (देखें एम. i, 220)। पर्याप्त मात्रा में पीने के ज्ञान का आधार है...

164/12 ' उपाधि —अस्तित्व के आवश्यक तत्व': उप + धा (रखना)। यहाँ जीवन के लिए आवश्यक किसी भी तत्व को व्यापक अर्थ में समझा जा सकता है। लेकिन तुलना करें पे 117: इंद्रियानम परिभेदो उपनाहो (गलत अनुवाद, उपादहो या उपाधि पढ़ें ?) परिपको और (पृष्ठ 118) उपनाय- (गलत अनुवाद, उपादहा- या उपाधि- भी पढ़ें ?) परिपकलक्खना जरा। 164/13 ' ओदहन —समर्पण' (यदि यह अनुवाद सही है): पीईडी में 'रखना, लाक्षणिक अर्थ, ध्यान, भक्ति' का अर्थ , इस संदर्भ में, उचित नहीं है क्योंकि यह संदर्भ को ध्यान में नहीं रखता है। नेट्टिया कहते हैं 'अवदहनम, अत्तनो निस्सयस्स संतप्पनम एव* ('= अवदहन, सीधे शब्दों में अपने ही भौतिक आधार को सताना'—पृष्ठ 79)।

165/1 ' भवंग —अस्तित्व का कारक': नेत्तिया कहते हैं, ' भवंगणी का अर्थ या तो "अस्तित्व के कारक" है या "अस्तित्व कहलाने वाले कारक"। इनमें से, दोष "अस्तित्व के कारक" हैं और कर्म के परिपक्व होने का चक्र "अस्तित्व कहलाने वाले कारक" हैं। "सामंजस्य" का अर्थ यह सब है' (पृष्ठ 70)। आचार्य बुद्धघोष और अन्य विद्वानों द्वारा इस शब्द का प्रयोग अक्सर चेतना की निरंतरता को समझाने के

लिए किया जाता है। यद्यपि उन्होंने यह शब्द पत्थाना से लिया है, जो त्रिपिटक में एकमात्र स्थान है जहाँ यह मिलता है (हालाँकि बिना किसी व्याख्या के— पिटक 159, 160, 169, 324), किसी भी पिटक टीका में इसकी कोई व्याख्या नहीं दी गई है। यहाँ इसका अर्थ शायद उतना स्पष्ट नहीं है, और यह अधिक सरल अर्थ प्रतीत होता है कि आश्रित उत्पत्ति के सूत्र में प्रत्येक तत्व ('अज्ञान' से लेकर 'मान्यता' तक) को 'अस्तित्व का कारक' (स्वयं सूत्र का एक सदस्य) माना जाना चाहिए।

[पृष्ठ 50]
पथप्रदर्शक
[उचित] मात्रा। 1. [उचित] मात्रा (मत्तन्नुता) का ज्ञान आत्मज्ञान (अत्तन्नुता) का आधार है। आत्मज्ञान पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों की अवस्था का आधार है। पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों की अवस्था उपयुक्त स्थानों में रहने का आधार है। उपयुक्त स्थानों में रहना सच्चे पुरुषों की सेवा करने का आधार है। सच्चे पुरुषों की सेवा करना आत्म-मार्गदर्शन में सही स्वभाव का आधार है (देखें ए. 2, 32)। आत्म-मार्गदर्शन में सही स्वभाव सद्‌गुणों का आधार है। सद्‌गुणों के प्रकार प्रसन्नता का आधार हैं। प्रसन्नता शांति का आधार है। शांति आनंद का आधार है। आनंद एकाग्रता का आधार है। एकाग्रता चीजों के स्वरूप को जानने और देखने का आधार है। चीजों के स्वरूप को जानना और देखना वैराग्य का आधार है। वैराग्य कामवासना के लुप्त होने का आधार है। कामवासना का लुप्त होना ही मुक्ति का आधार है। मुक्ति ही मुक्ति को जानने और देखने का आधार है।
168. इस प्रकार सभी प्रकार के सामान्य समर्थन, सभी प्रकार की शर्तें, एक आधार हैं ।
169. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'विक्टर एक विचार सिखा रहा है'
यह सिखाता है कि उस विचार में क्या है
आधार के रूप में; सभी विचारों के साथ भी ऐसा ही है:
यह नींव ले जाने का तरीका है (§8)।
नींव ले जाने का कार्य समाप्त हो गया है।
*

5
5. विशेषताओं को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
170. [30] इसमें, विशेषताओं को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? विशेषताओं को संप्रेषित करने का तरीका यह है:

167/1 नेट्टिया मत्तन्नुता के स्थान पर पट्टान्नुता पढ़ता है और इसे 'अस्तित्व में बने रहने के माध्यम से प्राप्त ज्ञान' के रूप में समझाता है (पृष्ठ 79)। लेकिन सभी संपादक पीटीएस की पुष्टि करते हैं , जो भोजने मत्तन्नुता का सुझाव देता है (देखें एम. iii, 2), हालांकि तब संबंध बहुत स्पष्ट नहीं होता है।
167/2 ' अत्तनुता —स्वयं का ज्ञान' का अर्थ है 'प्रयास के पाँच कारकों से युक्त होना (देखें ए. iii, 65)' नेटीए के अनुसार । यह यहाँ 'अत्त' को 'अ + दा ' ('अपनाया गया ज्ञान') के रूप में लेने को अस्वीकार करता है , तुलना करें असामत्त (§§575f.)।
168/1 C y Ba और Bb PTS का समर्थन करते हैं , लेकिन NettiA में yo koci upanissayo balavapaccayo लिखा है , हालाँकि इसमें एक वैकल्पिक पाठ evam yo koci upanisa yogato ca paccayato ca का उल्लेख है, जो Pe ग्रंथों के अनुरूप एक उल्लेखनीय विकृति का संकेत देता है । यह वाक्य नीचे §463 में दोहराया गया है।

[पृष्ठ 51]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
'जब एक विचार का जिक्र होता है, तो सभी
समान विशेषताओं के विचार

इनका भी उल्लेख किया गया है: यह गठित करता है
विशेषताओं को व्यक्त करने का तरीका (§9)। 1

171. यह कैसे विशेषता बताता है? [यह इस प्रकार बताता है: जब] कुछ विचारों में एक ही [सामान्य] विशेषता होती है, तो जब उनमें से एक विचार कहा जाता है, तो बाकी विचार भी कहे जाते हैं।

172. यह कैसे होगा? उदाहरण के लिए, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: <भिक्षुओं, आँख अस्थिर , छोटी, तुच्छ, क्षणभंगुर है; इसके अलावा (?) यह पीड़ादायक, नाशवान, विस्थापित होने योग्य, राख (?) है; यह एक दृढ़ संकल्प (?) है; यह शत्रुओं के बीच वध के लिए एक बलि है> ( )। अब जब इस आँख का उल्लेख किया जाता है, तो अपने भीतर के शेष आधारों (कान से शुरू होकर) का उल्लेख किया जाता है। इसका क्या कारण है ? क्योंकि अपने भीतर के सभी आधारों में वध के लिए बलि के रूप में एक ही (सामान्य) विशेषता है ।

173. और जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: <राधा, अतीत के रूप की लालसा से पीछे मुड़कर मत देखो ; भविष्य के रूप की आशा मत रखो; वर्तमान रूप के प्रति वैराग्य, कामवासना का नाश , निरोध , त्याग और परित्याग का मार्ग अपनाओ > ( )। अब जब इस रूप श्रेणी का उल्लेख किया जाता है, तो शेष श्रेणियों का भी उल्लेख किया जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि यमकोवाद सूत्र (श्लोक 3, 113) में, ग्रहण की सभी पाँच श्रेणियों में वध के लिए बलि के रूप में एक ही विशेषता है।

174. और जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है:
वे लोग जो शरीर के प्रति सजग रहते हैं
लगातार अच्छी तरह से प्रेरित किया जाता है
जो काम नहीं करना चाहिए, उसे कभी न करें।
और हमेशा वही करो जो किया जाना चाहिए> (ध. 293; पे 91)।

अतः जब शरीर से संबंधित ध्यान की बात की जाती है, तो भावना से संबंधित ध्यान, चेतना से संबंधित ध्यान और विचारों से संबंधित ध्यान की बात की जाती है (देखें डी. सुत्त 22, एम. सुत्त 119)। और इसी प्रकार जब कुछ भी, चाहे वह देखा जाए या सुना जाए,

---

170/1 यानी, एक बात कही गई है, बाकी बातें सकारात्मक या नकारात्मक रूप से निहित हैं। 172/1 यह अज्ञात उद्धरण, जिसे नेट्टिया और टीका अनदेखा करते हैं, कई कठिनाइयों से भरा है। यह स्पष्ट नहीं है कि परतो (जिसका अनुवाद 'इसके अतिरिक्त' किया गया है) का क्या अर्थ लिया जाए; इसका अर्थ 'पराया' हो सकता है। साथ ही, इस संदर्भ में कुक्कुलम और संखारम शब्द अस्पष्ट हैं।

172/2 वधाकत्थेना पढ़ें.

173/I वाक्य के अंत में ' पतिपज्जा ' को देखते हुए , होटी के स्थान पर होही पढ़ें ।

[पृष्ठ 52]

पथप्रदर्शक

बोध 1 कहा गया है, जो बोध किया गया है वह कहा गया है। और भगवान बुद्ध ने तदनुसार कहा: [31] <इसलिए , भिक्षुओं , शरीर को शरीर के रूप में ध्यान करते हुए , उत्साही, जागरूक और सचेत होकर , संसार के प्रति लोभ और दुःख को दूर करते हुए, ध्यान लगाओ> (cf. एम . iii, 83)।

यहां 'उत्साही' से तात्पर्य ऊर्जा शक्ति से है, 'जागरूक' से समझ शक्ति से, 'सचेत' से ध्यान शक्ति से और 'लोभ और दुःख को दूर करने' से एकाग्रता शक्ति से। अतः जब कोई शरीर को शरीर के रूप में ध्यान में रखता है, तो चेतना में बने रहने से ध्यान के चारों आधार पूर्ण हो जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि चारों शक्तियों का एक ही गुण होता है।

175. जब ध्यान के चार आधारों को बनाए रखा जाता है, तो चारों सही प्रयास उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। जब चारों सही प्रयास बने रहते हैं, तो सफलता के चार आधार (शक्ति के मार्ग) उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। जब सफलता के चार आधार बने रहते हैं, तो पाँचों शक्तियाँ (विश्वास से शुरू होकर) उनके बने रहने से पूर्ण हो जाती हैं। जब पाँचों शक्तियाँ बनी रहती हैं, तो पाँचों शक्तियाँ उनके बने रहने से पूर्ण हो जाती हैं। जब पाँचों शक्तियाँ बनी रहती हैं, तो ज्ञान के सात कारक उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। जब ज्ञान के सात कारक बने रहते हैं, तो आर्य अष्टांगिक मार्ग उनके बने रहने से पूर्ण हो जाता है। और वे सभी विचार जो ज्ञान की ओर प्रवृत्त होते हैं

और ज्ञान में भाग लेते हैं, वे उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। इसका क्या कारण है? क्योंकि ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होने वाले और ज्ञानोदय में भाग लेने वाले सभी विचारों में एक ही विशेषता होती है, और वह है अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करना। अपनी इसी एक विशेषता के कारण वे अस्तित्व में बने रहने से पूर्णता प्राप्त करते हैं (धारा 451-2 भी देखें)।

174/1 ' मुता —अनुभूति': यह एक व्यापक शब्द है जिसका अर्थ है वह सब कुछ जिसे सूंघा, चखा और छुआ जा सकता है (देखें Nd2 ad Sn. 789); स्पष्ट रूप से इसका अर्थ कभी भी 'विचार, अनुमान, कल्पना' नहीं होता जैसा कि PED में दिया गया है, जो संभवतः गलत व्युत्पत्ति के कारण है। इसका मूल अभी निश्चित नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि पाह दित्था-सुता-मुता-विन्नता का संस्कृत संस्करण drste . . . srute cintite vijnate है (देखें लैमोट, पृष्ठ 608) जो पाली टीकाओं में मुता की व्याख्या से भिन्न है (देखें निद्देसा , आदि)।

175/1 '5 शक्तियाँ' (बल) वही पाँच हैं जो '5 संकाय' (इन्द्रिय) हैं , लेकिन उनके 'संभाव्यता' या 'प्रधानता' के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि उनके संबंधित विरोधों के विरुद्ध शक्तियों के रूप में बने रहने पर उनकी 'अविचलता' के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है (देखें भजन 1, 21)।

175/2 'आठ-कारक पथ' अधिक सुरुचिपूर्ण और परिचित 'आठ गुना पथ' की तुलना में केवल अधिक शाब्दिक है।

[पृष्ठ 53]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

176. इसके अलावा, निरर्थक विचार अपनी एकरूपता के कारण त्याग दिए जाते हैं और लुप्त हो जाते हैं। जब सचेतनता के चार आधारों को बनाए रखा जाता है, तो विकृतियाँ त्याग दी जाती हैं, पोषक तत्व पहचाने जाते हैं, व्यक्ति मान्यताओं के संबंध में धारणाओं से मुक्त हो जाता है, व्यक्ति बंधनों से मुक्त हो जाता है, व्यक्ति संबंधों से अलग हो जाता है, व्यक्ति दोषों से अछूता हो जाता है, व्यक्ति बाढ़ को पार कर लेता है, व्यक्ति कांटों के संबंध में कांटों से रहित हो जाता है, चेतना के स्थिर बिंदु पहचाने जाते हैं , और व्यक्ति बुरे रास्तों पर चलने के संबंध में कोई गलत रास्ता नहीं अपनाता है (cf. §§484-7)। [32] इस प्रकार भी व्यक्ति के निरर्थक विचार त्याग दिए जाते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

177. अन्यथा, जहाँ किसी रूप वाली संकाय (जैसे आँख आदि) को सिखाया जाता है, वहाँ रूप तत्व, रूप श्रेणी और रूप आधार भी सिखाए जाते हैं।

178. अन्यथा, जहाँ सुखद अनुभूति सिखाई जाती है, वहाँ सुख की अनुभूति, आनंद की अनुभूति और दुख की उत्पत्ति को आर्य सत्य के रूप में सिखाया जाता है।

179. अन्यथा, जहाँ पीड़ादायक भावना सिखाई जाती है, वहाँ पीड़ा की अनुभूति, शोक की अनुभूति और पीड़ा को एक महान सत्य के रूप में भी सिखाया जाता है।

180. अन्यथा, जहाँ न दुखदायी और न सुखदायी भावना सिखाई जाती है, वहाँ प्रत्यक्ष समभाव और सभी आश्रित उत्पत्ति भी सिखाई जाती है। 1 इसका क्या कारण है? क्योंकि अज्ञान न दुखदायी और न सुखदायी भावना का आधार है (देखें एम. i, 303); अज्ञान की स्थिति में निर्धारण; निर्धारण की स्थिति में चेतना; चेतना की स्थिति में नाम और रूप; नाम और रूप की स्थिति में छह गुना आधार; छह गुना आधार की स्थिति में संपर्क; संपर्क की स्थिति में,

---

176/1 ' विन्नानत्थिति —चेतना का स्थिर बिंदु': इनकी व्याख्या कुछ हद तक §§304, 306 में की गई है (अनुक्रमणिका में दिए गए संदर्भ भी देखें)। D. iii, 228 में चार प्रकार और D. iii, 253 में सात प्रकार (एक अलग आधार पर) दिए गए हैं। PED स्पष्टीकरण से अधिक अस्पष्टता पैदा करता है; क्योंकि 'अवधि' और 'चरण' का प्रत्यक्ष रूप से अभिप्रेत नहीं है, बल्कि उस विशेष 'मूल चुनाव' का अभिप्रेत है जिसके द्वारा चेतना सर्वप्रथम अपने मूल विषय पर जड़ जमाती है, जिस पर जीवन के अनुभव में शाखाएँ निकलती हैं। मृत्यु के समय 'स्थिर बिंदु' खो जाता है और लालसा की क्रिया द्वारा दूसरा स्थिर बिंदु ग्रहण कर लिया जाता है, और इस प्रकार उस पर एक नया जीवन फिर से शाखाबद्ध हो जाता है। और इसी प्रकार आगे भी। (धारा 840 में उद्धृत S. ii, 65 भी देखें)।

180/1 नेटिया कहती हैं, 'इसका निर्माण इस प्रकार है: आश्रित उत्पत्ति का संपूर्ण सूत्र भी सिखाया जाता है; क्योंकि अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति के कारण न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति अंतर्निहित होती है (देखें एम. i, 303)। अतः इस प्रकार की अनुभूति अज्ञान को दर्शाती है, और अज्ञान आश्रित उत्पत्ति के संपूर्ण सूत्र को दर्शाता है, जिसका यह प्रारंभिक सदस्य है' (पृष्ठ 83)।

[पृष्ठ 54]

पथप्रदर्शक

भावना; भावना के साथ, लालसा; लालसा के साथ, ग्रहण करना; ग्रहण करने के साथ, अस्तित्व; अस्तित्व के साथ, जन्म; जन्म के साथ, वृद्धावस्था और मृत्यु का वास्तविक अस्तित्व है, और साथ ही दुःख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा भी; इसी प्रकार इस संपूर्ण श्रेणी के दुःख का उद्गम है (देखें धारा 2, 1)।

181. अब इस [आश्रित उत्पत्ति] को कामवासना, घृणा और भ्रम से प्रभावित होकर भ्रष्टता की ओर ले जाने वाले तत्वों के माध्यम से त्यागा जा सकता है; और इसे कामवासना, घृणा और भ्रम से रहित श्रेष्ठ विचारों के माध्यम से भी त्यागा जा सकता है ।

182. इस प्रकार, उन विचारों के संबंध में जिनमें उनके कार्य 1 और उनकी विशेषता और उनकी व्यापकता में, और साथ ही उनकी मृत्यु और पुन: प्रकट होने में एक ही विशेषता होती है, जब इनमें से एक विचार कहा जाता है तो ऐसे बाकी विचार भी कहे जाते हैं।

183. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

जब एक विचार का जिक्र होता है, तो सभी

समान विशेषताओं के विचारों का भी उल्लेख किया गया है: यह विशेषताओं को व्यक्त करने वाले तरीके का गठन करता है (§9)।

विशेषताओं को संप्रेषित करने का तरीका समाप्त हो गया है।

*

181/1 हताब्बा के लिए n. 44/1 देखें। नेत्तिया (पृष्ठ 83) इस प्रकार व्याख्या करते हैं: '"और" का अर्थ नकारात्मक (ब्यतिरेका , अर्थात् समाप्ति) है, जिससे वे यह स्पष्ट करते हैं कि यह आश्रित उत्पत्ति "साथ" और "विरुद्ध" के रूप में दोहरी है, जैसा कि बाद में बताया जाएगा। जिसे "विकृति की ओर" (अर्थात "उत्पत्ति") कहा जाता है वह पूर्व है और दूसरा (अर्थात "समाप्ति") बाद वाला है।' यहाँ हताब्बा वाक्यांश को संभवतः 'उचित तर्क द्वारा लालसा के त्याग की ओर लाया जाना' के अर्थ में लिया जा सकता है।

182/1 नेत्तिया निम्नलिखित रूप से भेद करता है: '"कार्य" का अर्थ है, उदाहरण के लिए, पृथ्वी का रूप के घटक के रूप में धारण करना, या संपर्क का मेल कराना (देखें n. 164/6), जो निराकार है, या किसी उत्पन्न अवस्था-विचार का किसी उपयुक्त रूप से सशर्त उत्पन्न विचार को प्रभावित करना। "विशेषता" का अर्थ है कोई भी व्यक्तिगत सार, जैसे पृथ्वी की कठोरता, या संपर्क का स्पर्श। "सामान्यीकरण" का अर्थ है रूप (रूप) की "विरूपणशीलता" (रूपना), नाम (नामा) का " नामकरण के लिए झुकाव" (नामना)। "मृत्यु और पुन: प्रकट होना" का अर्थ है निर्धारित विचारों का विघटन और पुन: उद्भव, या रूप और निराकार का सह-उत्पत्ति और सह-समाप्ति (देखें n. 92/1)।'

[पृष्ठ 55]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

6. चार गुना सरणी को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा

184. इसमें, चार गुना सरणी का संप्रेषण क्या है? [यह] यह है:

'शब्दों के माध्यम से, (i) भाषाई,

(ii) आशय, और (iii) शिक्षा का स्रोत,

और (iv) क्रमानुसार अनुक्रम:

यह मोड एक चौगुना सरणी को व्यक्त करता है' (§10)।

वाक्य रचना के माध्यम से, थ्रेड की भाषाई प्रकृति, उसका आशय (इरादा), उसका स्रोत [जैसे कि उसके उच्चारण की परिस्थिति], और उसका क्रम-क्रम की जांच की जानी चाहिए।

[(i) भाषाई]
185. [33] इसमें, भाषाई क्या है? यह कोई भी भाषा है जो शब्दों का प्रयोग करती है, विचारों का कोई भी ज्ञान नाम से। 1
186. जब कोई भिक्षु किसी अर्थ का नाम और किसी विचार का नाम जानता है, और वह उसे तदनुसार लागू करता है , तो उसे अर्थों में कुशल, विचारों में कुशल, वाक्यांशों में कुशल, भाषा में कुशल, क्रमविन्यास (सिंटेक्स) में कुशल, शिक्षण में कुशल, भूतकाल के पदनामों में कुशल, भविष्यकाल के पदनामों में कुशल, वर्तमान काल के पदनामों में कुशल, स्त्रीलिंग के पदनामों में कुशल, पुल्लिंग के पदनामों में कुशल, नपुंसक लिंग के पदनामों में कुशल, एकवचन के पदनामों में कुशल, बहुवचन के पदनामों में कुशल कहा जाता है (देखें पे 91-2)। 2 सभी क्षेत्रीय भाषाविज्ञान (देखें एम. iii, 234-5) और सभी क्षेत्रीय भाषाओं को इस प्रकार माना जा सकता है। यह 'शब्दों का प्रयोग करने वाली भाषा' है।
[(ii) आशय (इरादा)]
187. इसमें क्या आशय (उद्देश्य) है? [उदाहरण के लिए, निम्नलिखित अंश लें:]

185/1 एनबी नामा ('नाम') व्याकरणविदों द्वारा संज्ञाओं, विशेषणों और सर्वनामों के लिए सामूहिक शब्द है, जो प्राच्य व्याकरण में 'भाषण के चार भागों' में से एक है (नाम, आख्यात, उपासग्ग , निपात - 'नाम, क्रिया, पूर्वसर्ग (उपसर्ग), और कण')।
186/1 अभिनिरोपेति और निरुत्ती के बीच यहाँ अर्थ संबंधी संबंध निरुत्ती के साथ vac (cf. vutta; Skr. uk) के बजाय uh के साथ एक व्यंग्यात्मक जुड़ाव को दर्शाता है ।
186/2 इन शर्तों में अंतर देखें पृष्ठ 91-2 पर।

[पृष्ठ 56]
पथप्रदर्शक
जो व्यक्ति सच्चे आदर्श के मार्ग पर चलता है, वह उसकी रक्षा करता है।
जैसे बारिश के समय एक बड़ी छतरी काम आती है ।
सही ढंग से अमल में लाने पर इस विचार का पुरस्कार यह है:
जो उसमें चलता है उसका कोई बुरा गंतव्य नहीं होता> (§37).
भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है? [यह है कि] जो लोग अभाव की अवस्थाओं से मुक्ति पाना चाहते हैं, वे ही सच्चे दर्शन के मार्ग पर चलने वाले होंगे: यही भगवान बुद्ध का यहाँ तात्पर्य है।
188. [पुनः:]
ठीक वैसे ही जैसे कोई लुटेरा घर में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया हो।
वह अपने कृत्य से ग्रस्त है और इसके लिए जिम्मेदार भी है ।
इसी प्रकार , भविष्य में जब मनुष्य की मृत्यु हो जाएगी , तब भी ऐसा ही होगा।
वह अपने कृत्य से ग्रस्त है और उसके लिए जिम्मेदार है> (cf. एम. ii, 74)।
भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है? [उनका तात्पर्य यह है कि] जब किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से किए गए कर्मों का फल भोगने के लिए संचित हो जाता है, तो उनका अनचाहा और अप्रिय परिणाम भविष्य की स्थिति के साथ अंतर्निहित होगा। यही भगवान बुद्ध का यहाँ तात्पर्य है।
189. [पुनः:]
जो दंड से प्राणियों पर क्रूरता करता है
जो आनंद की प्राप्ति के इच्छुक हैं
उसके चले जाने पर कोई सुख नहीं मिलेगा ।
वह चाहे जितना भी सुख चाहे (ध . 131).
भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है? [यथा] जो सुख की प्राप्ति चाहते हैं, वे बुरे कर्म न करें: यही भगवान बुद्ध का यहाँ तात्पर्य है।
190. [34] [पुनः:]
अत्यधिक भोजन करने से सुस्त पड़ा एक मंदबुद्धि व्यक्ति ।

नींद में डूबा हुआ , जो लेटे-लेटे कराह रहा है
जैसे कोई बड़ा सूअर चर्बीदार भोजन से भरा हो ,
बार-बार दुनिया में लौटता है> (ध. 325).
भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है? [यह है कि] जो लोग वृद्धावस्था और मृत्यु से दुखी होना चाहते हैं, वे ऐसे होंगे जो भोजन की सही मात्रा जानते हों और अपनी इंद्रियों के द्वार खुले रखते हों।

188/1 ' सा-कम्मुना . . . बज्झते —अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है'; बज्झती (शाब्दिक रूप से 'बंधा हुआ है') के इस अर्थ के लिए, पी.ई.डी. में नहीं , §912 देखें, साथ ही ख्मा. 28f.
190/1 ' अत्तियितम —शाब्दिक रूप से 'आहत महसूस करना'; ए. आई, 145 का संकेत ।

[पृष्ठ 57]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
सावधान रहते हैं, रात के पहले और आखिरी [तीन] पहरों में जागृति के प्रति समर्पित रहते हैं (देखें एम. iii, 2), लाभकारी विचारों के संबंध में अंतर्दृष्टि का अभ्यास करते हैं, और दिव्य जीवन में अपने साथियों का सम्मान करते हैं चाहे वे बड़े हों, नए हों या मध्य [भिक्षु]: 2 यह भगवान बुद्ध का तात्पर्य है।
191. [पुनः:]
अमर अवस्था परिश्रम है;
मृत्यु और उपेक्षा का विषय:
मेहनती व्यक्ति कभी नहीं मरता;
लापरवाही करने वाला लगभग मृत ही होता है> (ध. 21; पे 92)।
भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है ? [यह है कि] जो लोग अमरत्व की खोज में लगे रहना चाहते हैं, वे लगन से लगे रहेंगे। यही भगवान बुद्ध का यहाँ तात्पर्य है।
[(iii) स्रोत]
192. यहाँ स्रोत क्या है? [उदाहरण के लिए, यह किसी सूत्र के उच्चारण का कारण है,] जैसा कि पशुपालक धानिया 1 ने भगवान बुद्ध से कहा था।
' बच्चों वाला व्यक्ति अपने बच्चों के माध्यम से आनंद प्राप्त करता है।'
और इसी प्रकार एक पशुपालक भी अपने पशुओं के माध्यम से ऐसा ही करता है।
जीवन की ये मूलभूत बातें मनुष्य के लिए आनंद का स्रोत हैं;
जिनके पास ये नहीं हैं, उन्हें कभी भी इनका आनंद नहीं मिलेगा (खंड 33)।
और जैसा कि भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया
'बच्चे वाला आदमी अपने बच्चों के माध्यम से दुख पाता है;'
और इसी प्रकार एक पशुपालक भी अपने पशुओं के माध्यम से ऐसा ही करता है।
जीवन की ये मूलभूत बातें ही मनुष्य के दुख का कारण हैं;
जिनके पास ये नहीं हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं मिलेगा। (Sn. 34; cf. Pe 55)
यहां 2 यह ज्ञात है कि इस परिस्थिति के साथ, इस स्रोत के साथ, भगवान बुद्ध एक बाहरी वस्तु को अस्तित्व के एक आवश्यक तत्व के रूप में बताते हैं।

190/2 'वरिष्ठ भिक्षु' को पूर्ण दीक्षा (उपसंपदा) के बाद दस वर्ष या उससे अधिक का अनुभव होता है, 'मध्य भिक्षु' को पाँच से दस वर्ष का अनुभव होता है, और 'नव भिक्षु' को पाँच वर्ष से कम का अनुभव होता है। गर्भाधान के 20वें वर्ष के पूरा होते ही पूर्ण दीक्षा दी जा सकती है।
192/1 एस.एन. पाठ में यह धनिया नहीं बल्कि मारा है जो यह कहता है।

192/2 इधा पूर्ववर्ती न्यति से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है बजाय अनुवर्ती भगव . . . अहा के।

[पृष्ठ 58]
पथप्रदर्शक
193. और जब दुष्ट मारा ने युल्चुर-पीक चट्टान से एक बड़ा पत्थर गिराया, तो भगवान बुद्ध ने कहा:
भले ही आप स्थानांतरित होने का विकल्प चुनें
पूरा वल्चर-पीक, निश्चित रूप से।
कोई भी पूर्णतः मुक्त जागृत व्यक्ति नहीं है
इस कारण से परेशान होंगे' > (एस. आई, 109)
[और]
अगर आकाश फट जाए, अगर धरती कांप उठे, अगर सब कुछ
जिन चीजों से डर पैदा होता है, अगर तुम उनमें डूब जाओ तो
उसके दिल में खंजर, कोई जागृत व्यक्ति नहीं
अस्तित्व की अनिवार्यताओं में शरण लेता है' > (एस. आई, 107).
यहां यह ज्ञात है कि इसी परिस्थिति और इसी स्रोत को ध्यान में रखते हुए, भगवान बुद्ध शरीर को अस्तित्व का एक अनिवार्य तत्व बताते हैं।
194. और जैसा उसने कहा...
दृढ़ निश्चयी व्यक्ति इसे कभी भी मजबूत बंधन नहीं कहेगा।
लोहे से बना हुआ या लकड़ी या पट्टियों से युक्त। 1
लेकिन गहनों [और रत्नों] की लालसा से भरा लालच
और पत्नी और बच्चों के लिए भी चिंता: . . .
लेकिन गहनों [और रत्नों] की लालसा से भरा लालच
(एस.आई. , 77; अगला पैराग्राफ देखें)।
यहां यह ज्ञात है कि इसी परिस्थिति और इसी स्रोत के आधार पर भगवान बुद्ध ने बाह्य वस्तुओं की लालसा की बात की है।
195. और जैसा उसने कहा
दृढ़ निश्चयी लोग इन्हीं को मजबूत बंधन कहेंगे।
जो मनुष्य को नीचे की ओर खींचता है , सूक्ष्म होता है, जिससे मुक्त होना कठिन होता है;
फिर भी वे इसे भी तोड़ देते हैं और [स्वतंत्रता में] भटकते हैं।
उदासीन, और सभी इंद्रिय सुखों का त्याग कर दिया गया ।
(एस.आई , 77; पे 25, 214).
यहां यह ज्ञात है कि इसी परिस्थिति और इसी स्रोत को ध्यान में रखते हुए, भगवान बुद्ध ने बाह्य वस्तुओं की लालसा का त्याग करने की बात कही है।
196. और जैसा उसने कहा

194/1 पीडी (यह संदर्भ) पब्बाजा (यहाँ 'पट्टियाँ' के रूप में प्रस्तुत) को बब्बाजा (जड़ों के गुच्छे वाली एक प्रकार की घास) के बराबर मानता है, लेकिन यह संदर्भ से मेल नहीं खाता। यहाँ पब्बाजा शब्द पब्बा ('खंड', 'लता की जोड़-से-जोड़ लंबाई', आदि) और जा ('से उत्पन्न', 'से बना') से मिलकर बना हो सकता है। &A इसे अनदेखा करता है।

[पृष्ठ 59]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

यह बीमार , अशुद्ध , घिनौनी , बदबूदार चीज
शवों से रिसने वाले स्रावों से भरा हुआ
दिन-रात लगातार:
[केवल] एक मूर्ख ही इसका आनंद ले सकता है'> (cf. Thag. 394).
यहां यह ज्ञात है कि इसी परिस्थिति और इसी स्रोत को ध्यान में रखते हुए, भगवान बुद्ध अपने भीतर वस्तुओं की लालसा का त्याग करने की बात करते हैं।
197. और जैसा उसने कहा
[36]< ' स्वयं के प्रति स्नेह को त्याग दो ,
जैसे हाथ से शरद ऋतु की लिली को छूना;
और इसलिए शांति के मार्ग का अनुसरण करो ।
परम पूज्य ने जो सिखाया, उसे बुझाना (ध. 285)।
यहां यह ज्ञात है कि, इसी परिस्थिति को आधार बनाकर, इसी स्रोत को मानते हुए, भगवान बुद्ध अपने भीतर वस्तुओं की लालसा का त्याग करने की बात करते हैं।
[(iv) क्रमिक अनुक्रम]
198. यहाँ, क्रमिक अनुक्रम क्या है? यह भगवान बुद्ध के कथनानुसार है, अर्थात्:
' इंद्रिय सुख के अंधकार में फँसा हुआ '
और लालसा के बंधन से अवरुद्ध ,
उपेक्षा की बाड़ से घिरे हुए, जैसे मछली किसी फनल-ट्रैप में फंसी हो।
ये बुढ़ापे और मृत्यु के बाद घटित होते हैं।
जैसे दूध पीने वाला बछड़ा अपनी माँ से दूध पीता है (पे 24; उद. 76)।
यहां जिस बात का जिक्र किया गया है वह है इंद्रिय सुख की तीव्र इच्छा। इसे किस क्रम से समझा जा सकता है?
199. यह उनके कहे अनुसार है
जो वासना में लिप्त रहता है, उसे कभी अर्थ का ज्ञान नहीं होता ।
जो वासना में डूबा रहता है उसे कभी कोई विचार नहीं आता;
अंधकार की धुंध एक आदमी को घेर लेती है
जब वह वासना से पीड़ित होगा> (§68).
200. अतः वही लालसा 'अंधकार 5' और 'फंसे होने' (§198) शब्दों द्वारा व्यक्त की जाती है। और जब कहा जाता है 'इंद्रिय अंधकार के जाल में फंसा हुआ, और लालसा के बंधन से अवरुद्ध' (§198), और जब कहा जाता है 'जो वासना करता है वह कभी अर्थ नहीं जानता, जो वासना करता है वह कभी कोई विचार नहीं देखता' (§199), तो वही लालसा इन शब्दों द्वारा व्यक्त की जाती है जो जुनून को दर्शाते हैं।

[पृष्ठ 60]
पथप्रदर्शक
201. 'अंधकार' (§198) पीड़ा का मूल है, और यही वह लालसा है जो अस्तित्व का नवीनीकरण प्रदान करती है।
202. और जब 'इंद्रिय-संबंधी' (§198) कहा जाता है, तो यह कामुकता-इच्छा को अपवित्रता के रूप में दर्शाता है; और जब 'जाल में फँसा हुआ' (§198) कहा जाता है, तो उन्हीं कामुकता-इच्छाओं को साधन बनाकर आसक्ति को दर्शाया जाता है। परिणामस्वरूप, लालसा को अपवित्रता और आसक्ति के रूप में 'बाड़' (§198) कहा जाता है। ये ऐसी ही हैं जो 'बुढ़ापे और मृत्यु के बाद आती हैं' (§198) ।
203. [37] भगवान बुद्ध द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित श्लोक यह दिखाने के लिए दिया गया है कि वे किस शक्ति 1 का अनुसरण करते हैं बुढ़ापे और मृत्यु के बाद:
जिसके पास कोई स्थिर बिंदु नहीं है, कोई विविधीकरण नहीं है , 2
चेन और बार के बगल वाले हिस्से को किसने पीछे छोड़ दिया है:

यहां तक कि समस्त देवताओं से युक्त संसार भी नहीं जान सकता।
उस शांत व्यक्ति का आचरण जो लालसा से मुक्त है > (उद. 77)।
204. 'विविधताएँ' लालसा, दृष्टिकोण और अहंकार हैं, और इनसे सक्रिय रूप से निर्धारित होने वाले निर्धारण हैं। 'स्थिरता बिंदु' अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ हैं । 'श्रृंखला ' लालसा से ग्रस्त जुनून है, जो लालसा के जाल द्वारा खोजे गए छत्तीस मार्ग हैं (देखें ए. ii, 211ff.)। 'बाधा' भ्रम है। विविधताओं, स्थिरता बिंदुओं, श्रृंखला और बाधा द्वारा निर्धारित निर्धारण: जो कोई भी इन सभी पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसे 'लालसा से मुक्त' कहा जाता है।

203/1 पढ़ें ais दो शब्द या तो yathanikkhittagatha balena या . . . phalena? §205 बाद वाले का सुझाव देता है लेकिन §209 पहले वाले का।
203/2 पापंचा ('विविधीकरण' या 'द्वंद्वात्मकता') के लिए, जिस अर्थ में 'p.' का प्रयोग सूत्रों में निब्बाना (जिसे अप्पपंचा और निप्पपंचा कहा जाता है) के विपरीत के रूप में किया गया है, ख्यीए. अनुवाद, परिशिष्ट I ' निरोध देखें , साथ ही §297 भी देखें। यह जोर दिया जा सकता है कि इन संदर्भों में पापंचा का अनुवाद 'बहुलता' द्वारा ठीक से नहीं किया जा सकता है, जो निब्बाना (निप्पपंचा के रूप में) को एकतरफा 'एकता' बना देगा। पाली में 'बहुलता' और 'एकता' के लिए क्रमशः नानत्त और एकत्त शब्द हैं , जिनका प्रयोग 'रूप' (रूप - सन्ना : एम. i, 41) और उसके विपरीत, अर्थात् चार निराकार (अरूप) अवस्थाओं के लिए किया जाता है। पापंचा और निप्पपंचा की ऐसी व्याख्या से (संखता) अरूप-धातु और असंखता-धातु (निर्वाण) के बीच आसानी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है । परन्तु रूप और अरूप दोनों ही समान रूप से 'निर्धारित' हैं। मात्र 'बहुलता' और 'एकता' के बीच का 'विविधीकरण' या 'द्वंद्वात्मकता' स्वयं एक निर्धारण है, जबकि निर्वाण अनिर्धारित रहता है। बहुलता-एकता और निर्वाण के लिए, उदाहरण के लिए, खंड 714 देखें । निर्वाण को 'विशेषता के विपरीत निरपेक्ष' (ल कसिना ' अद्वय ') या दार्शनिक रूप से 'परमात्मा' के रूप में गलत समझा जा सकता है।
204/1 लेकिन 'स्थिरीकरण बिंदुओं' (थिति) के लिए धारा 484 और आगे देखें। अनुसया द्वारा थिति की यह परिभाषा असामान्य है। नोट 176/1 भी देखें।

[पृष्ठ 61]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
205. यहाँ, आसक्ति के कारण उत्पन्न संकल्पों को वर्तमान क्षण में (उनके परिपक्व होने पर) अनुभव किया जा सकता है, या अगली बार प्रकट होने पर (या किसी बाद के समय में) अनुभव किया जा सकता है। अतः लालसा तीन प्रकार से फल देती है: वर्तमान क्षण में (इस जीवन में), या अगली बार प्रकट होने पर (या किसी बाद के समय में)।
206. इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा: < जो भी कर्म वह शरीर, वाणी या मन से लोभ के कारण करता है , वह उसके अस्तित्व को उसके परिपक्वता के साथ सह-अनिवार्य बना देता है , चाहे वह यहीं हो या अगले पुनर्जन्म में या किसी बाद के काल में> (cf. ए. i, 134)।
इसे भगवान बुद्ध के कथनों के क्रमबद्ध अनुक्रम के रूप में समझा जाता है।
207. यहाँ, आसक्ति वह क्रिया है जिसका परिपक्व होना यहीं और अभी महसूस किया जा सकता है, या यह वह क्रिया है जिसका परिपक्व होना अगली बार प्रकट होने पर महसूस किया जा सकता है, या यह वह क्रिया है जिसका परिपक्व होना किसी बाद के काल में महसूस किया जा सकता है। अतः क्रिया इन तीन तरीकों से परिपक्व होती है : यहीं और अभी [इस अस्तित्व में] या अगली बार प्रकट होने पर या किसी बाद के काल में। जैसा कहा गया है:
208. <और जब मूर्ख वह होता है जो यहाँ साँस लेने वाले प्राणियों को मारता है , . . . गलत दृष्टिकोण रखता है , परिणामस्वरूप वह यहाँ और अभी या अगली पुनरावृति पर या किसी बाद की अवधि में उस परिपक्वता को महसूस करता है> ( )।
[38] यह भगवान बुद्ध के [कथनों] के एक क्रमिक अनुक्रम द्वारा समझा जाता है।
209. यहाँ, विचार-विमर्श की शक्ति के माध्यम से आसक्ति को त्यागा जा सकता है, दृष्टि की शक्ति के माध्यम से निर्धारणों को त्यागा जा सकता है, और लालसा द्वारा खोजे गए छत्तीस तरीकों को अस्तित्व में बनाए रखने की शक्ति के माध्यम से त्यागा जा सकता है। अतः लालसा को तीन तरीकों से त्यागा जा सकता है।
210. 'लालसा से मुक्ति' (§203) विलुप्ति का वह तत्व है जिसका कोई अंश शेष नहीं रहता, परन्तु शरीर के विघटन के साथ यह विलुप्ति का वह तत्व है जिसका कोई अंश शेष नहीं रहता। 'विविधीकरण' (§203) को ही एक साथ बंधे रहने का नाम दिया गया है।

211. और जब भगवान बुद्ध कहते हैं <वह अतीत , भविष्य या वर्तमान में उत्पन्न हुए किसी रूप से प्रेरित होकर विविधता उत्पन्न करता है जिसे आँख से देखा जा सकता है> (

---

207 /I विपच्चति। शायद न तो इस शब्द, न ही पच्चति, और न ही इनके व्युत्पन्न शब्दों का अनुवाद कर्म संदर्भों में 'पकाना' के रूप में किया जाना चाहिए, विशेषकर जहाँ नरकों का उल्लेख हो। आग के बावजूद, नरक में बुरे कर्मों का 'परिपक्व होना' ही अभिप्रेत है, यानी उनका पकने का क्षण पाना और साथ ही साथ स्वयं को समाप्त करना। यह उपमा रसोई के चूल्हे से नहीं, बल्कि फल के पकने से प्रेरित प्रतीत होती है।

210/1 ' अनुबंध - एक साथ बांधे रखना': क्या इसका अर्थ विपरीत विचारों को एक साथ बांधे रखना है या 'बाधा डालना'? नेट्टी ए केवल 'तन्हादिनम अनुप्पबंधनपवत्ति ' (पृष्ठ 86) कहते हैं।

[पृष्ठ 62]

पथप्रदर्शक

), और जब भगवान बुद्ध कहते हैं <राधा, अतीत के रूप की लालसा से पीछे मुड़कर मत देखो, भविष्य के रूप की आशा से प्रसन्न मत रहो, वर्तमान में उत्पन्न रूप के लिए वैराग्य, कामवासना के लुप्त होने, रुकने, त्यागने और परित्याग के मार्ग का अभ्यास करो> (§173), तो इसे भगवान बुद्ध के [कथन] की निरंतरता से समझा जाता है।

212. और यद्यपि विविधताएँ, निर्धारण, और अतीत, भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न हुए का आनंद लेना एक विलक्षणता है, फिर भी भगवान बुद्ध द्वारा विभिन्न अन्य शब्दों, विभिन्न अन्य अक्षरों, विभिन्न अन्य वाक्यांशों के साथ व्यक्त किए गए सच्चे विचार की शिक्षा का अर्थ असीमित है (cf. §49)।

213. इस प्रकार, धागे को धागे से मिलाकर, अनुक्रम को क्रमिकता के आधार पर जोड़कर, धागे को प्रदर्शित किया जाता है। 1

[लगातार अनुक्रम के 4 प्रकार]

214. अब यह क्रमिक अनुक्रम चार प्रकार का है: अर्थ-अनुक्रम, वाक्यांश-अनुक्रम, शिक्षण-अनुक्रम और प्रदर्शन-अनुक्रम।

215. (i) यहाँ, अर्थ-अनुक्रम छह पद हैं, अर्थात् व्याख्या करना, प्रदर्शित करना, खुलासा करना, विश्लेषण करना, प्रदर्शित करना और वर्णन करना (§53)।

216. (ii) वाक्यांश-अनुक्रम छह पद हैं, अर्थात् अक्षर, पद, वाक्यांश, मनोदशा, भाषा और प्रदर्शन (§53)।

217. (iii) शिक्षण-क्रम: वह पृथ्वी को आधार बनाकर ध्यान नहीं करता, फिर भी वह ध्यान करने वाले के रूप में ध्यान करता है। वह जल... अग्नि... [39] वायु... अनंत अंतरिक्ष से बने आधार... अनंत चेतना से बने आधार... स्वामित्वहीनता से बने आधार... न तो बोध और न ही अबोध से बने आधार पर ध्यान नहीं करता। वह इस संसार या दूसरे संसार को आधार बनाकर ध्यान नहीं करता, फिर भी वह ध्यान करने वाले के रूप में ध्यान करता है। और इन दोनों के बीच जो कुछ भी है—देखा, सुना, महसूस किया, जाना, खोजा , सोचा, खोजा और मन से विचारा—वह उसे भी आधार बनाकर ध्यान नहीं करता, फिर भी वह ध्यान करने वाले के रूप में ध्यान करता है। 2. इस संसार में, अपने देवताओं, अपने मारों और अपने उच्च देवत्वों के साथ, इस पीढ़ी में अपने भिक्षुओं और धर्मगुरुओं, अपने राजकुमारों और मनुष्यों के साथ, जब ऐसा कोई व्यक्ति बिना किसी सहारे के ध्यान करता है, तो वह ज्ञात नहीं होता (देखें ए.वी. , 324एफ.)। ठीक वैसे ही जैसे

213/1 सैंडहिम यहाँ सद्धिम की तुलना में बेहतर पाठ प्रतीत होता है ।

217/1 देखें एन. 174/1.

217/2 यह क्रम सूत्रों में पाई जाने वाली सामान्य गणना का क्रम है। इसे एम.ए. i, 175 पर यथानुसंधि कहा जाता है , जैसा कि वहाँ वर्णित 3 प्रकारों में से एक है।

[पृष्ठ 63]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

दुष्ट मारा, गोधिका नामक कुल के व्यक्ति की चेतना की खोज में, न तो उसे जान सका और न ही देख सका (श्लोक 1, 120f.; पे 11); क्योंकि व्यथा का त्याग करने के बाद वह विविधता से परे चला गया था, और उसके विचारों का कोई आधार नहीं रह गया था। और गोधिका की ही तरह वक्कली भी (श्लोक 3, 119ff.)। जब ऐसे लोग बिना किसी आधार के ध्यान करते हैं, तो वे संसार के देवताओं, मारों और उच्च देवों, इस पीढ़ी के भिक्षुओं और धर्मगुरुओं, राजकुमारों और मनुष्यों द्वारा ज्ञात नहीं होते।
यह शिक्षण क्रम है।
218. (iv) इसमें प्रदर्शन-अनुक्रम क्या है?
जिनके पास समर्थित संज्ञान (cf. §364) है, उन्हें लाभहीन पक्ष के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिनके पास असमर्थित संज्ञान (cf. §364) है, उन्हें लाभप्रद पक्ष के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिनके संज्ञान का प्रमाण मौजूद है, उसे भ्रष्टाचार के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिनके संज्ञान का प्रमाण नहीं है, उसे शुद्धिकरण के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन लोगों को इस बात की जानकारी है, उन्हें गोलचक्कर के बनने से दर्शाया जा सकता है; जिन लोगों को इस बात की जानकारी नहीं है, उन्हें गोलचक्कर के न बनने से दर्शाया जा सकता है।
जिन लोगों में समर्थित चेतना होती है, उन्हें लालसा और अज्ञान के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिन लोगों में असमर्थित चेतना होती है, उन्हें शांति और अंतर्दृष्टि के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन लोगों को इस बात का पुख्ता प्रमाण होता है, उन्हें निर्विरोध और निर्लज्जता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिन लोगों को इस बात का पुख्ता प्रमाण नहीं होता, उन्हें विवेक और लज्जा के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन लोगों में समर्थित चेतना होती है, उन्हें असावधानी और अनभिज्ञता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिन लोगों में असमर्थित चेतना होती है, उन्हें सचेतनता और जागरूकता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
समर्थित संज्ञान वाले लोगों को बिना किसी कारण के (देखें एम. iii, 140) और [40] अतार्किक ध्यान के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें एम . i, 7); और असमर्थित संज्ञान वाले लोगों को कारण और तर्कसंगत ध्यान के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन व्यक्तियों में समर्थित चेतना होती है, उन्हें आलस्य और कठिन निंदनीयता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिन व्यक्तियों में असमर्थित चेतना होती है, उन्हें ऊर्जा के उत्तोलन और आसान निंदनीयता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। 1

218/1 'डोवाकासाटा - कठिन चेतावनी' और 'सोवाकासाटा - आसान चेतावनी' का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसे व्यक्ति की स्थिति जिससे बात करना कठिन या आसान हो (उसकी गलतियों को बताने के लिए)'। इनका क्रमशः कोई अर्थ नहीं है।

[पृष्ठ 64]
पथप्रदर्शक
जिनके संज्ञान का समर्थन किया जा सकता है, उन्हें अविश्वास और लापरवाही के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिनके संज्ञान का समर्थन नहीं किया जा सकता, उन्हें विश्वास और परिश्रम के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन लोगों में पुष्ट चेतना होती है, उन्हें आस्था के सच्चे विषय से इतर बातों को सुनने और संयम न बरतने के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जबकि जिन लोगों में पुष्ट चेतना नहीं होती, उन्हें आस्था के सच्चे विषय को सुनने और संयम बरतने के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिनके पास समर्थित ज्ञान है, उसे लोभ और दुर्भावना के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिनके पास असमर्थित ज्ञान है, उसे लोभहीनता और दुर्भावनाहीनता के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिन लोगों में चेतना का समर्थन होता है, उन्हें बाधाओं और बंधनों के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है; जबकि जिन लोगों में चेतना का समर्थन नहीं होता, उन्हें कामवासना के लुप्त होने से हृदय की मुक्ति और अज्ञान के लुप्त होने से समझ की मुक्ति के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
जिनके पास समर्थित ज्ञान है, उन्हें विनाश के दृष्टिकोण और शाश्वतता के दृष्टिकोण से प्रदर्शित किया जा सकता है; जिनके पास असमर्थित ज्ञान है, उन्हें निशान शेष रहने के साथ विलुप्त होने के तत्व और निशान शेष न रहने के तत्व के माध्यम से प्रदर्शित किया जा

सकता है।

यह प्रदर्शन-क्रम है।
219. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'शब्दों के माध्यम से कहें तो, भाषाई,
इसका आशय और शिक्षा का स्रोत
और क्रमिक अनुक्रम:
यह मोड एक चौगुना सरणी को व्यक्त करता है' (§10)।
चार गुना सरणी को संप्रेषित करने का तरीका समाप्त हो गया है।

---

7. रूपांतरण को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
220. इसमें, रूपांतरण को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? यह इस प्रकार है:
'वह तरीका, जब एक ही आधार होता है,
बचे हुए आधार की तलाश
और फिर विपरीत को परिवर्तित करता है
क्या यह रूपांतरण को दर्शाता है? (§11)।

'बुरे ढंग से बोलने वाला' और 'अच्छे ढंग से बोलने वाला'। देखें Dhs. 1325 और 1327; साथ ही A. v, 90 (suvaca = khamo padakkhinagahi anusasanim)। 'अच्छे ढंग से बोलने वाला' = kalyanavaca (A. v, 155)।

[पृष्ठ 65]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
221. < स्वयं को प्रेरित करो, आगे बढ़ो, समर्पित करो
[आप स्वयं] प्रबुद्ध व्यक्ति के युग में;
मृत्यु की सेनाओं को तितर-बितर कर दो
जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी बनाता है >
(पे 71; एस. आई, 157).
'स्वयं को प्रेरित करो, आगे बढ़ो' ये शब्द ऊर्जा का आधार हैं। 'प्रबुद्ध व्यक्ति के उपदेशों में स्वयं को समर्पित करो' ये शब्द एकाग्रता का आधार हैं। 'मनुष्यों की सेनाओं को उसी प्रकार तितर-बितर कर दो जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को तितर-बितर कर देता है' ये शब्द समझ का आधार हैं।
'स्वयं को प्रेरित करो, आगे बढ़ो' ये शब्द ऊर्जा शक्ति का आधार हैं। 'प्रबुद्ध व्यक्ति के मार्गदर्शन में स्वयं को समर्पित करो' ये शब्द एकाग्रता शक्ति का आधार हैं। 'मनुष्यों की सेनाओं को उसी प्रकार तितर-बितर कर दो जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को तितर-बितर कर देता है' ये शब्द समझ शक्ति का आधार हैं।
[41] ये आधार शिक्षा का गठन करते हैं ['स्वयं को उकसाओ' से शुरू करते हुए]।
222. यह प्रेरणा उन प्राणियों के लिए है जो या तो पहले से ही समर्पित हैं या जो अभी तक समर्पित नहीं हैं।
223. यहाँ, जो लोग अभी तक स्वयं को समर्पित नहीं कर रहे हैं, वे लापरवाही में डूबे होने के कारण स्वयं को समर्पित नहीं कर रहे हैं। वह लापरवाही दो प्रकार की होती है: लालसा में निहित और अज्ञान में निहित।
224. यहाँ, अज्ञानता में निहित उस [लापरवाही] के संबंध में, ऐसी [लापरवाही] जो इस प्रकार के अज्ञान से घिरी हुई है कि वह यह नहीं समझ पाती कि पाँच श्रेणियाँ उत्पत्ति और अवसाद के विचार से अविभाज्य हैं, लापरवाही में निहित है।
ऐसी [लापरवाही] जो लालसा में निहित है, तीन प्रकार की होती है: (i) जब कोई व्यक्ति अप्राप्त गुणों के उत्पन्न होने की खोज करता है तो वह लापरवाही में पड़ जाता है; [और जब वह खोज करता है] (ii) संरक्षण के संकेत, और

उपयोग के संकेत, उत्पन्न गुणों के संबंध में, वह लापरवाही का शिकार हो जाता है।

संसार में लापरवाही के चार प्रकार हैं: एक प्रकार अज्ञान के कारण और तीन प्रकार लालसा के कारण।

225. इसमें नाम-शरीर अज्ञान का आधार है, और रूप-शरीर लालसा का आधार है। ऐसा क्यों है? रूप वाले अस्तित्व में उनसे आसक्ति होती है, और निराकार अस्तित्व में उनके प्रति भ्रम होता है।

यहां, रूप-शरीर 1 रूप श्रेणी है, [और] नाम-शरीर चार निराकार श्रेणियां हैं (cf. §§84 और 445)।

226/1 देखा गया। 84/1।

[पृष्ठ 66]

पथप्रदर्शक

227. किस आधार पर धारणा के साथ, पाँचों धारणा की श्रेणियाँ हैं? लालसा और अज्ञान के आधार पर।

228. यहाँ, लालसा दो प्रकार की धारणाएँ हैं, अर्थात् इंद्रिय-इच्छा धारणा और सद्गुण-कर्तव्य धारणा, जबकि अज्ञान दो प्रकार की धारणाएँ हैं, अर्थात् दृष्टिकोण धारणा और आत्म-सिद्धांत धारणा ।

229. इन चार प्रकार की मान्यताओं के कारण किसी भी प्रकार की मान्यताएँ (देखें एम. iii, 16) दुख का कारण होती हैं। भगवान बुद्ध इन मान्यताओं के निदान और त्याग के लिए सत्य विचार का उपदेश देते हैं: दुख के निदान और उसके मूल कारण के त्याग के लिए।

230. यहाँ, लालसा में निहित तीन प्रकार की उपेक्षाओं में से कोई भी (1) अ-उत्पन्न संपत्तियों के उत्पन्न होने की कामना करता है, और (2) उत्पन्न संपत्तियों के संरक्षण के लिए कार्य करता है, और (3) उत्पन्न संपत्तियों के उपयोग का संकेत देता है।

231. शांति पूर्ण अंतर्दृष्टि के माध्यम से उस [उपेक्षा] से रक्षा करती है और उसे रोकती है। यह कैसे संभव है? जब कोई इंद्रिय सुखों के संदर्भ में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, निराशा [42] को निराशा के रूप में, मुक्ति को मुक्ति के रूप में, और साथ ही पतन, भ्रष्टाचार और शुद्धि को, और त्याग के लाभों को जानता है, तो उसमें कोई भी पूछताछ, कोई भी जांच, अंतर्दृष्टि है। ये दो विचार बने रहने से, अर्थात् शांति और अंतर्दृष्टि से पूर्ण होते हैं। जब ये दो विचार बने रहते हैं, तो दो विचार त्याग दिए जाते हैं, अर्थात् तृष्णा और अज्ञान। जब ये दो विचार त्याग दिए जाते हैं, तो चारों प्रकार के आरोहण समाप्त हो जाते हैं; आरोहण के समाप्त होने से, अस्तित्व समाप्त हो जाता है; अस्तित्व के समाप्त होने से, जन्म समाप्त हो जाता है; जन्म के समाप्त होने से, वृद्धावस्था और मृत्यु समाप्त हो जाती है, और साथ ही दुःख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा भी समाप्त हो जाती है; इस प्रकार दुख की इस पूरी श्रेणी का अंत हो जाता है।

232. अतः ये दो प्रथम सत्य हैं, अर्थात् दुख और उत्पत्ति; शांति और अंतर्दृष्टि ही मार्ग हैं; और अस्तित्व का अंत ही निर्गमन है। ये चार सत्य हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'स्वयं को प्रेरित करो, आगे बढ़ो,...'

*

233. < जिस प्रकार एक वृक्ष, भले ही काट दिया जाए, फिर से उग आता है
जब तक इसकी जड़ मजबूत और अक्षुण्ण है,
इसी प्रकार यह दर्द भी बार-बार उभरता रहता है।
लालसा की प्रवृत्ति अबाधित > (ध. 338).

228/1 'धारणा (मानना)' के लिए n. 164/9 देखें। यहाँ और §257 में 4 प्रकार वही हैं जो सुत्तों में हैं (जैसे, एम. i, 67), लेकिन §§484-7 और 678 में सिलब्बत्तुपादन को भावुपादन से प्रतिस्थापित किया गया है । क्या बाद वाला शब्द पे 94 को छोड़कर इस ग्रंथ के बाहर कहीं और दिखाई देता है?

[पृष्ठ 67]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

यह लालसा की मूल प्रवृत्ति है। किस प्रकार की लालसा? अस्तित्व की लालसा। इस विचार की शर्त अज्ञान है; क्योंकि अज्ञान की शर्त पर ही अस्तित्व की लालसा उत्पन्न होती है। ये दो दोष हैं, अर्थात् लालसा और अज्ञान। और ये चार प्रकार की धारणाएँ हैं (देखें §228)।

234. इन चार प्रकार की धारणाओं के आधार पर किसी भी प्रकार की धारणाएँ दुख का कारण बनती हैं। ये चार प्रकार की धारणाएँ उत्पत्ति हैं, जबकि पाँच श्रेणियाँ दुख हैं। भगवान बुद्ध इनके निदान और त्याग के लिए सत्य विचार का उपदेश देते हैं: दुख के निदान और उत्पत्ति के त्याग के लिए।
235. [43] वह विधि जिससे लालसा की अंतर्निहित प्रवृत्ति का उन्मूलन होता है, मौन है; वह विधि जिससे अज्ञान का अंत होता है, जो लालसा की अंतर्निहित प्रवृत्ति की स्थिति है, अंतर्दृष्टि है। ये दोनों विचार, अर्थात् मौन और अंतर्दृष्टि, को बनाए रखने से पूर्ण होते हैं।
236. इसमें, शांति का फल कामवासना के लुप्त होने से हृदय की मुक्ति है; अंतर्दृष्टि का फल अज्ञान के लुप्त होने से समझ की मुक्ति है।
237. अतः ये दो प्रथम सत्य हैं, अर्थात् दुख और उसका उद्गम; शांति और अंतर्दृष्टि ही मार्ग हैं; और दो प्रकार की मुक्ति ही निवारण है। ये चार सत्य हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'जैसे एक वृक्ष... (§233)।
*
238. किसी भी प्रकार की बुराई न करना,
लाभदायक कौशल को परिपूर्ण करना,
और अपने हृदय को शुद्ध करना:
यह बुद्धों का उपदेश है।
(पीई 54, 91; डीएच. 183; डी. द्वितीय, 49)।
जिसे 'किसी भी प्रकार की बुराई' कहा जाता है, वह तीन प्रकार के दुराचार हैं, अर्थात् शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार और मानसिक दुराचार। ये दस निष्फल कर्म हैं, अर्थात् सजीव प्राणियों को मारना, बिना दी हुई वस्तु लेना और इंद्रिय-इच्छाओं में लिप्त होना; झूठी वाणी, द्वेषपूर्ण वाणी, कठोर वाणी और चुगली; और लोभ, दुर्भावना और गलत दृष्टिकोण। 1

238/1 पहले 3 को शारीरिक, अगले 4 को मौखिक और अंतिम 3 को मानसिक, लाभहीन क्रिया के रूप में जाना जाता है।

[पृष्ठ 68]
पथप्रदर्शक
239. ये दो प्रकार की क्रियाएँ हैं, अर्थात् चुनाव और संज्ञान का सहवर्ती (तुलना करें पे 35-6)। 1
240. इसमें, सजीव प्राणियों को मारना, द्वेषपूर्ण वाणी और कठोर वाणी घृणा से उत्पन्न होती हैं; बिना दी हुई वस्तु लेना, कामुक इच्छाओं में लिप्त होना और झूठ बोलना लोभ से उत्पन्न होता है; और चुगली भ्रम से उत्पन्न होती है। ये सात प्रकार के कर्म चुनाव के रूप में कर्म हैं।
241. लोभ, निरर्थक का मूल है; दुर्भावना, निरर्थक का मूल है; गलत दृष्टिकोण, गलत मार्ग है। ये तीनों प्रकार की क्रियाएँ, बोध के साथ होने वाली क्रियाएँ हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'क्रिया एक विकल्प के रूप में और क्रिया एक बोध के साथ होती है' (देखें §239)।
242. जब निष्लाप का कोई मूल [शरीर या वाणी से युक्त] साधनों द्वारा [अभिव्यक्ति] में आता है, तो वह [चार बुरे मार्गों] में से एक के रूप में] अभिव्यक्ति में आता है, अर्थात् इच्छा, घृणा, भय या भ्रम के माध्यम से।
243. [44] इसमें, जब इच्छा के माध्यम से बुरे मार्ग की अभिव्यक्ति की बात आती है, तो यह लालच से आकारित होता है; जब घृणा के माध्यम से बुरे मार्ग की अभिव्यक्ति की बात आती है, तो यह घृणा से आकारित होता है; जब भय और भ्रम के माध्यम से बुरे मार्गों की अभिव्यक्ति की बात आती है, तो यह भ्रम से आकारित होता है।
244. इसमें, कुरूपता पर चिंतन के द्वारा लोभ का त्याग किया जाता है, प्रेम और करुणा के द्वारा घृणा का और समझ के द्वारा भ्रम का। इसी प्रकार, समभाव के द्वारा लोभ का त्याग किया जाता है, प्रेम और करुणा के द्वारा घृणा का और सहानुभूतिपूर्ण प्रसन्नता के द्वारा भ्रम का त्याग किया जाता है और वह विलीन हो जाता है। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'किसी भी प्रकार की बुराई न करो।' (§243)
245. और जिसे 'किसी भी प्रकार की बुराई ' कहा जाता है , वह आठ गलतियां हैं, अर्थात् गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता और गलत

239/1 यह दोहरा विभाजन इस कृति और पे के लिए विशिष्ट प्रतीत होता है। निम्नलिखित अनुच्छेदों से, पहला स्पष्ट रूप से शारीरिक और मौखिक क्रिया दोनों को दर्शाता है और दूसरा मानसिक क्रिया को।

240/1 यहाँ क्रिया के विश्लेषण को समझना आसान हो जाता है यदि निम्नलिखित भेदों को ध्यान में रखा जाए। 'क्रिया का क्रम' (कम्मपथ) एक पूर्ण 'ऐतिहासिक क्रिया' है जिसे उसकी पहली योजना से लेकर उसके क्रियान्वयन तक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया माना जाता है, जिसमें शरीर और/या वाणी शामिल होती है। यहाँ 'चयन' (चेतना) क्रिया के प्रत्येक चरण में क्षणिक मानसिक 'इच्छा' (या 'पुष्टि') है। 'मानसिक क्रिया'—यहाँ 'संज्ञान के साथ होने वाली क्रिया'—केवल लोभ, दुर्भावना और गलत दृष्टिकोण है, और उनके क्रमशः लाभकारी विपरीत रूप हैं। देखें धस अ. 82 और आगे।

[पृष्ठ 69]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

एकाग्रता। इन्हें 'किसी भी प्रकार की बुराई' कहा जाता है। इन आठ गलतियों में से किसी का भी न होना, न करना, न अभ्यास करना 'किसी भी प्रकार की बुराई न करना' कहलाता है।

246. जब आठ कुकर्मों का त्याग कर दिया जाता है, तो आठ गुण उत्कृष्टता (संपज्जन्ति) प्राप्त कर लेते हैं। आठ गुणों में उत्कृष्टता उत्पन्न करने वाला कोई भी कार्य (संपदन) 'उपसंपदा (लाभदायक कौशल)' कहलाता है।

247. 'और अपने हृदय को शुद्ध करना' प्राचीन मार्ग (श्लोक 2, 105) का क्रियान्वयन और पालन करना है, यह उसी का ध्यान है। जब हृदय शुद्ध हो जाता है, तो सभी श्रेणियाँ शुद्ध हो जाती हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, <भिक्षुओं, हृदय की शुद्धि के उद्देश्य से एक पूर्ण पुरुष के अधीन दिव्य जीवन व्यतीत किया जाता है > ( )

248. शुद्धि दो प्रकार की होती है, अर्थात् बाधाओं का त्याग और अंतर्निहित प्रवृत्तियों का उन्मूलन। शुद्धि के दो स्तर भी हैं, अर्थात् दृष्टि का स्तर और यथार्थ का स्तर।

249. इसमें, जिसके प्रवेश से शुद्धि होती है वह दुख है। जिससे शुद्धि होती है वह मूल है। जिसके द्वारा शुद्धि होती है वह मार्ग है। और जो शुद्ध होता है वह निश्चिंतता है (देखें पे 91)। ये चार सत्य हैं। इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'किसी भी प्रकार का पाप न करो... (§238)।

*

250. < सच्चा विचार चलने वाले की रक्षा करता है
उसमें,
जैसे बारिश के समय एक बड़ी छतरी काम आती है।
[45] सही मार्ग पर चलने पर आदर्श का पुरस्कार यह है:
जो भी उस मार्ग पर चलता है, उसका गंतव्य कभी बुरा नहीं होता ।
(§37).

जिसे 'सच्चा विचार' कहा जाता है, वह दो प्रकार का होता है, अर्थात् (1) संभाव्यता-संयम और (2) मार्ग। 'बुरा गंतव्य' दो प्रकार का होता है, जैसा कि नीचे दिया गया है: देवताओं और मनुष्यों की तुलना में, बेचैनी की अवस्थाएँ।

247/1 'प्राचीन मार्ग' का तात्पर्य 'महान मार्ग' के अलावा किसी अन्य मार्ग से नहीं है, जैसा कि पीटीएस नेट्टी , पृष्ठ 222 पर टिप्पणी 1 में सुझाया गया है । टीका में वैकल्पिक शब्द (वा) 'प्राचीन' (अतीत) को या तो 'पूर्व बुद्धों, जिनमें बुद्ध विपस्सी भी शामिल हैं, द्वारा खोजे गए प्राचीन महान मार्ग' या 'प्राचीन बुद्ध विपस्सी द्वारा खोजे गए महान मार्ग' के संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहता प्रतीत होता है। यह वही मार्ग है जिसे सभी बुद्ध खोजते हैं।

[पृष्ठ 70]

पथप्रदर्शक

पुन: प्रकट होना एक बुरा गंतव्य है; लेकिन विलुप्ति की तुलना में, सभी प्रकार के पुन: प्रकट होना एक बुरा गंतव्य है।

251. (1) यहाँ, संयम के रूप में सद्‌गुण के मामले में, इसे अटूट रखना है (देखें ए. iv, 53, और नीचे §299), और यह सच्चा विचार जब सही ढंग से पालन किया जाता है तो व्यक्ति को बेचैनी की अवस्थाओं से बचाता है। तदनुसार भगवान बुद्ध ने कहा <भिक्षुओं, सद्‌गुणी व्यक्ति के लिए दो प्रकार के गंतव्य हैं: देवता और मनुष्य> ( )।

और तदनुसार, नालंदा नगर में गमानी असिबंधकपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, पश्चिम देश (f) के कुछ धर्मगुरु हैं, 1 जो कमनालु (तपस्वी का पीने का पात्र) का उपयोग करते हैं, 2 जो जलीय शैवाल की माला पहनते हैं, जो सुबह-शाम जल में उतरते हैं और अग्नि की पूजा करते हैं। जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो वे उसे फुसलाते और विवश करते हैं , 3 ताकि उसे स्वर्ग में स्थान मिल सके । 4 हे पूज्यवर, क्या भगवान बुद्ध ऐसा कर सकते हैं कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर समस्त संसार एक शुभ स्थान, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हो सके?" - "इस विषय में, गमानी, मैं आपसे एक प्रश्न पूछूंगा; आप जैसा चाहें उत्तर दें। आप इसे कैसे समझते हैं, गमानी?" यहाँ एक व्यक्ति जीवित प्राणियों का हत्यारा , बिना माँगे लेने वाला, कामुक इच्छाओं में लिप्त, झूठ बोलने वाला, द्वेषपूर्ण वक्ता , कठोर वक्ता, चुगलखोर, लालची, द्वेषपूर्ण हृदय वाला और गलत विचारों वाला हो सकता है। तब लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हुआ और उन्होंने हाथ जोड़कर विनती की, "हे प्रभु, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, यह व्यक्ति स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान पर पुनः प्रकट हो।" हे गमानी, आप इसे कैसे समझते हैं? लोगों के उस बड़े समूह की विनती, उनकी प्रार्थना, उनके हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के कारण, क्या वह व्यक्ति शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान पर पुनः प्रकट होगा? - 'नहीं, आदरणीय महोदय' - ' गमानी, मान लीजिए कि...'

251/1 देखें एस.ए. iii, 104.

251/2 कामनालुका - कुंडिका (अभ्प. 443)। एसए के पास केवल 'सकामनालूनो ' कस्सा जलास्सा मनाओ पस्न्नाभावो कामनाओ , तम लटि ती कामनालु 9 (अभ्प. टीका) है।

251/3 नेट्टिया ने उपरी यापेंती (= एसए. iii, 104) द्वारा उय्यपेंती ('आग्रह') और सम्मा यापेंती (पृष्ठ 92; एसए: सम्मा नेपेंती - एक गलत वर्तनी?) द्वारा सन्नापेंती ('जबरदस्ती') को दर्शाया है । तो सन्नापेंती साम्यपेंती की वर्तनी के रूप में प्रकट होती है (संयोजना के लिए सीएफ। सन्नोजाना), और दोनों शब्द कारक एफएम हैं। ya क्रमशः उपसर्गों u(d) और sam के साथ। न ही PED में है . (सन्नपेटि भी संजानाति का एक संभावित कारक रूप है , लेकिन इसका मतलब यहां नहीं है।)

251/4 NettiA में okkamenti के लिए uggamenti है , जो C द्वारा समर्थित है ; Ba और Bb PTS का समर्थन करते हैं ।

[पृष्ठ 71]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

एक आदमी ने एक बड़े ठोस पत्थर को पानी के एक गहरे कुंड में फेंक दिया, और फिर लोगों का एक बड़ा समूह [46] इकट्ठा हुआ और उन्होंने हाथ जोड़कर विनती की, गिड़गिड़ाया और गिड़गिड़ाया, "हे सज्जनों, ठोस पत्थर को उभरने दो, हे सज्जनों, ठोस पत्थर को ऊपर तैरने दो, हे सज्जनों, ठोस पत्थर को सूखी भूमि पर तैरने दो", हे गमानी , आप इसे कैसे समझते हैं, उनकी विनती के कारण, उनकी गिड़गिड़ाहट के कारण, हाथ जोड़कर विनती करने के कारण, क्या वह ठोस पत्थर उभरेगा, क्या वह ऊपर तैरेगा, क्या वह सूखी भूमि पर तैरेगा? V — 'नहीं, आदरणीय महोदय' — 'तो हे गमानी, जब कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों का हत्यारा होता है, . . . और उनकी दृष्टि में यह गलत है, भले ही बड़ी संख्या में लोग इकट्ठा होकर हाथ जोड़कर विनती करें, "हे ईश्वर, मृत्यु के बाद जब इस व्यक्ति का शरीर नष्ट हो जाए, तो वह स्वर्ग में, अच्छे स्थान पर पुनः प्रकट हो", फिर भी मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति बेचैनी की स्थिति में, बुरे स्थान पर, नरक में, विपत्ति में पुनः प्रकट हो सकता है। हे गमानी, आप इसे कैसे समझते हैं? यहाँ एक व्यक्ति जीवित प्राणियों को मारने से परहेज कर सकता था , ... उनकी दृष्टि में यह सही था। फिर लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हुआ और उन्होंने हाथ जोड़कर विनती की, "हे प्रभु, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद , यह व्यक्ति बेचैनी की स्थिति में, बुरे गंतव्य में , नरक में, पुनर्प्रकट हो जाए।" हे गमानी, आप इसे कैसे समझते हैं? क्या इतने सारे लोगों की विनती, उनकी प्रार्थना और हाथ जोड़कर की गई प्रार्थना के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति बेचैनी की स्थिति में, बुरे गंतव्य में, नरक में, पुनर्प्रकट हो जाएगा? - नहीं, आदरणीय महोदय। —' गामनी, मान लीजिए कि एक व्यक्ति ने घी या तेल का बर्तन एक गहरे तालाब में डुबो दिया और उसे इस प्रकार स्थापित कर दिया कि उसमें मौजूद कोई भी रेत या बजरी नीचे बैठ जाए और उसमें मौजूद कोई भी घी या तेल ऊपर आ जाए, और फिर लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हुआ और उन्होंने हाथ जोड़कर विनती की, "हे महोदय, घी , तेल को नीचे बैठने दीजिए; हे महोदय, घी, तेल को नीचे जाने दीजिए", गामनी, आप

इसे कैसे समझते हैं, [47] लोगों के उस बड़े समूह की विनती, उनकी विनती, उनके हाथ जोड़कर विनती करने के कारण, क्या वह घी, वह तेल नीचे बैठ जाएगा, नीचे चला जाएगा? —' नहीं, आदरणीय महोदय।' इसी प्रकार, गामनी, जब कोई व्यक्ति सजीव प्राणियों को मारने से परहेज करता है, . . . उनकी दृष्टि में यह बिल्कुल सही था, भले ही लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा होकर हाथ जोड़कर विनती करे, गिड़गिड़ाए और प्रार्थना करे, "हे ईश्वर , शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, यह व्यक्ति बेचैनी की स्थिति में, बुरे गंतव्य में, विनाश में , नरक में फिर से प्रकट हो", फिर भी वह व्यक्ति, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद

[पृष्ठ 72]

पथप्रदर्शक

मृत्यु , अच्छे गंतव्य में , स्वर्गिक लोक में फिर से प्रकट हो सकती है' (एस. iv, 312ff.)।

अतः यही सच्चा विचार है, जिसका सही ढंग से पालन करने पर व्यक्ति बेचैनी की अवस्थाओं से सुरक्षित रहता है।

252. (2) इसमें, मार्ग की तीव्रता, उसकी उत्कृष्टता ही 'सच्चा विचार' है, जिस पर सही ढंग से चलने पर व्यक्ति सभी प्रकार के पुनर्जन्मों से सुरक्षित रहता है। तदनुसार भगवान बुद्ध ने कहा:

अतः उसकी चेतना को सतर्क रखा जाए ।
चरागाह के लिए सही इरादा रखते हुए ,
सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि महत्व देना, ज्ञान के माध्यम से।
उठना और गिरना; उनींदापन से परे जाना
और आलस्य , भिक्षु को हो सकता है
सभी बुरे गंतव्यों को त्याग दो > (उद. 38).

253. यहाँ, बुरे गंतव्यों का कारण लालसा और अज्ञान है। ये चार प्रकार के अनुमान हैं (देखें §228)।

254. इन चार प्रकार के आलिंगनों के आधार पर उत्पन्न होने वाले किसी भी प्रकार के आलिंगन दुख हैं। ये चार प्रकार के आलिंगन ही मूल हैं, जबकि पाँच प्रकार के आलिंगन दुख हैं। भगवान बुद्ध इनके निदान और त्याग के लिए सत्य विचार का उपदेश देते हैं: दुख के निदान और उसके मूल के त्याग के लिए।

255. इसमें, पाँच इंद्रियाँ जिनका आकार है, वे लालसा का आधार हैं जबकि मन की इंद्रिय अज्ञान का आधार है।

256. जो व्यक्ति सजीव पाँच इंद्रियों की रक्षा करता है, वह एकाग्रता बनाए रखता है और लालसा को रोकता है, जबकि जो व्यक्ति मन की इंद्रिय की रक्षा करता है, वह अंतर्दृष्टि बनाए रखता है और अज्ञान को रोकता है।

257. भोग की इच्छा के निवारण से दो प्रकार के अनुमान त्याग दिए जाते हैं, अर्थात् इंद्रिय-इच्छा अनुमान और सद्गुण-और-कर्तव्य अनुमान, जबकि अज्ञान के निवारण से दो प्रकार के अनुमान त्याग दिए जाते हैं, अर्थात् दृष्टिकोण अनुमान और आत्म-सिद्धांत अनुमान।

258. [48] जब चार प्रकार के आशय त्याग दिए जाते हैं, तो दो विचार अस्तित्व में बने रहने के माध्यम से पूर्ण होते हैं, अर्थात् शांति और अंतर्दृष्टि: इसे दिव्य जीवन कहा जाता है।

259. यहाँ, दिव्य जीवन का फल भिक्षु अवस्था के चार फल हैं, अर्थात् धारा-प्रवेश का फल, एक बार वापसी का फल, अनावर्तीता का फल और सर्वोच्च फल जो अरहंतत्व है। ये दिव्य जीवन के चार फल हैं (देखें पे 130, 135)।

252/1 रक्खिताचित्तसा को रक्खिताचित्तो असा में हल करना।

[पृष्ठ 73]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

260. अतः ये दो प्रथम सत्य हैं, अर्थात् दुख और उसका उद्गम (§254); शांति, अंतर्दृष्टि और दिव्य जीवन ही मार्ग हैं; और दिव्य जीवन के फल और अनिर्धारित तत्व, जो इन सबका विषय है, ही निश्चिंतता हैं। ये चार सत्य हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'सच्चा विचार रक्षा करता है...' (§250)।

261. इसमें, जिसके प्रवेश से यह रक्षा करता है वह दुख है। जिससे यह रक्षा करता है वह उत्पत्ति है। जिसके द्वारा यह रक्षा करता है वह मार्ग है। और जो रक्षा करता है वह समाप्ति है (देखें §249)। ये चार सत्य हैं।
262. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'वह तरीका, जब एक ही आधार होता है,
बचे हुए आधार की तलाश
और फिर विपरीत को परिवर्तित करता है
क्या यह रूपांतरण को दर्शाता है? (§11)।
रूपांतरण प्रक्रिया समाप्त हो गई है।
*

---

8. विश्लेषण को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना सूत्र
263. इसमें विश्लेषण को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
'यह विचार, आधार का विश्लेषण करता है,
[पुरुषों के प्रकारों का] तल, साझा
और साझा नहीं किया गया: इस मोड के बारे में जानकारी होनी चाहिए।
जैसा कि विश्लेषण को संप्रेषित करना (§12)।
264. दो प्रकार के सूत्र, अर्थात् नैतिकता से संबंधित और प्रवेश से संबंधित (देखें §§117 और 270), दो मार्ग हैं, अर्थात् योग्यता से संबंधित और [दिव्य जीवन के] फल से संबंधित (देखें §444), जो सद्‌गुण के दो प्रकार हैं, अर्थात् संयम के रूप में सद्‌गुण और त्याग के रूप में सद्‌गुण।
265. यहाँ, योग्यता से निपटने के तरीके के उद्देश्य से ही यह कहा गया है कि

260/1 Tadarammana ca asamkhatadhatu : 'अनिर्धारित तत्व'
(असंखतधातु —एक ऐसा शब्द जो केवल निर्वाण के लिए आरक्षित है) को टीकाओं में कभी-कभी ' संसारों से विरक्त चेतना' का 'विषय' (अरम्मना —शाब्दिक अर्थ 'जिससे चिपका हुआ है' या 'जिस पर टिका हुआ है') कहा जाता है। यहाँ संयुक्त शब्द तदराममन का प्रयोग सामान्य टीकात्मक प्रयोग नहीं है, जिसे 'उसका विषय होना' (स्वतंत्र रूप से 'पंजीकरण': देखें I 7 /.*. 459-60) के रूप में अनुवादित किया जा सकता है; परन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'जो उसका विषय है' (पे. 108 पर प्रयोग देखें)।

[पृष्ठ 74]
पथप्रदर्शक
भगवान बुद्ध नैतिकता से संबंधित एक उपदेश देते हैं। जिसे इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता होती है, वह इससे संयम के रूप में सद्‌गुणों में स्थिर हो जाता है, और वह इस प्रकार के दिव्य जीवन के द्वारा दिव्य जीवन का अनुभव करता है।
266. [49] इसमें, भगवान बुद्ध ने [दिव्य जीवन के] फल से निपटने के मार्ग के उद्देश्य से प्रवेश से संबंधित एक सूत्र का उपदेश दिया है। जिसे [इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता है] वह त्याग के रूप में सद्‌गुण में स्थिर हो जाता है, और वह उस प्रकार के दिव्य जीवन द्वारा दिव्य जीवन जीने वाला होता है।
267. इसमें, नैतिकता से संबंधित सूत्र क्या है? नैतिकता से संबंधित सूत्र यह है: दान पर चर्चा, सद्‌गुण पर चर्चा, स्वर्ग पर चर्चा और इंद्रिय सुख में निराशा तथा त्याग के लाभ (देखें एम. आई, 379)।
268. इसमें प्रवेश से संबंधित धागा क्या है? प्रवेश से संबंधित धागा यह है: चार सत्यों का कोई भी प्रदर्शन।
269. नैतिकता से संबंधित विषय में न तो समझ की क्रिया होती है, न ही मार्ग होता है, और न ही मार्ग का फल होता है। वहीं, अंतर्मन से संबंधित विषय में समझ की क्रिया होती है, मार्ग होता है, और मार्ग का फल होता है।

270. ये चार प्रकार के धागों में से पहले दो प्रकार हैं (देखें §§117 और 760) जिनकी सभी प्रकार से (§62) जांच के बाद, इन चार प्रकार के धागों की शिक्षा, फल, गुण और दिव्य जीवन (देखें §§264-5) के संबंध में व्याख्या की जानी चाहिए , जहाँ तक ज्ञान का तल विस्तारित होता है (cf. §156)।

*

271. (1) इसमें, किस प्रकार के विचार समान रूप से साझा किए जाते हैं? 1

270/I यह वाक्य बहुत ही संक्षिप्त और जटिल है; लेकिन टिप्पणी के साथ या उसके बिना भी, इससे वह अर्थ निकालना असंभव प्रतीत होता है जो पीटीएस पृष्ठ 223, टिप्पणी 1 में दिया गया है (और वास्तव में इसका क्या अर्थ है?)। नेटीए, केवल ' देसनया ति देसननायेना' कहने के बाद आगे कहते हैं * "जांच की विधि के अनुसार सभी प्रकार से जांच किए जाने के बाद": इसे जांच की विधि के माध्यम से, ग्यारह शीर्षों (धारा 62 में) के अंतर्गत संसाधित करके सभी भागों के संबंध में जांचा जाना चाहिए। "व्याख्या की विधि के अनुसार व्याख्या की जानी चाहिए": इससे वह यह दर्शाता है कि जांच और व्याख्या की विधियाँ (विचाराहार-युत्तिहारा पढ़ें) विश्लेषण की विधि के लिए प्रारंभिक कार्य का क्षेत्र हैं। "ज्ञान के तल के संदर्भ में": इससे वह दर्शाता है कि विश्लेषण को संप्रेषित करने का तरीका कितना व्यापक क्षेत्र रखता है' (पृष्ठ 94)। 270/2 सी और नेटीए दोनों योजेतब्बानी; बीए और बीबी पीटीएस का समर्थन करते हैं ।
271/1 आम लोगों और स्ट्रीम-एंटरर्स द्वारा साझा किया गया, सबसे पहले, §272 देखें।

[पृष्ठ 75]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
दो प्रकार के विचार समान रूप से साझा किए जाते हैं, अर्थात् नाम के माध्यम से साझा किए गए विचार और किसी वस्तु या व्यक्ति या किसी अन्य प्रकार के विचार के माध्यम से साझा किए गए विचार।
272. दृष्टि द्वारा त्यागे जाने वाले दोष (देखें एम. i, 7f.) सामान्य मनुष्यों में पाए जाते हैं, चाहे वे गलत के प्रति निश्चित हों या अनिश्चित। कामुक इच्छाओं और द्वेष की लालसा सामान्य मनुष्य और धारा में प्रवेश करने वाले दोनों में समान है। परलोक के बंधन सामान्य मनुष्य और अनावर्ती दोनों में समान हैं। किसी भी दीक्षा प्राप्त श्रेष्ठ शिष्य द्वारा प्राप्त की गई कोई भी उपलब्धि उसके और वासना रहित लोगों के लिए समान है। क्योंकि साझा किए गए विचार इस प्रकार प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र की क्रमिक सीमाओं के भीतर ही रहते हैं, और इनमें से किसी भी विचार से युक्त व्यक्ति का प्रकार उस विचार द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक नहीं होता।
इस तरह के विचार सभी में समान रूप से पाए जाते हैं।
273. यहाँ, यह जाँच करनी होगी कि किस प्रकार के विचार आम तौर पर साझा नहीं किए जाते हैं, यह देखते हुए कि शिक्षा दीक्षा प्राप्त करने वालों या सिद्ध पुरुषों [कुलीन व्यक्तियों के मामले में] के बारे में है या उन लोगों के बारे में है जो [इस जीवन में ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं, साधारण पुरुषों के मामले में]।
274. कामुक इच्छाओं और द्वेष की लालसा [50] धारा में प्रवेश करने वाले (जो उस मार्ग पर खड़ा है) और साधारण मनुष्य दोनों में समान है , परन्तु धारा में प्रवेश के विचार का मूल स्वरूप दोनों में समान नहीं है। और परवर्ती बंधन उस मार्ग पर खड़े (जो उस मार्ग पर खड़ा है) और उससे नीचे वालों दोनों में समान हैं , परन्तु (जो उस मार्ग पर खड़ा है) और (जो उस मार्ग पर खड़ा है) दोनों में समान नहीं हैं। (परमप्रशिक्षित का नाम) सभी सात प्रकार के दीक्षितों में समान है, परन्तु (प्रत्येक प्रकार के विचार का मूल स्वरूप) शेषों में समान नहीं है। (मार्ग पर) नाम अपने-अपने मार्गों पर चलने वाले सभी चार प्रकारों में समान है, परन्तु (प्रत्येक प्रकार के विचार का मूल स्वरूप) शेषों में समान नहीं है। दीक्षा प्राप्त करने वालों का सद्गुण सभी प्रकार के दीक्षा प्राप्त करने वालों में समान होता है, परन्तु प्रत्येक प्रकार के दीक्षा प्राप्त करने वालों के विचार का मूल स्वरूप भिन्न होता है। इसी कारण निम्न, उच्च और मध्यम स्तरों के अनुसार, भेदों को समझने वाले व्यक्ति द्वारा इसका परीक्षण किया जाना चाहिए।

272/1 'सिद्धांत के प्रति आश्वस्त' (सम्मत्त-नियाता) का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने पहली बार अष्टांगिक मार्ग को प्राप्त किया हो। 'अशुद्धता के प्रति आश्वस्त' (मिच्छत्त-नियाता) का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने मार्ग को प्राप्त नहीं किया है और कोई ऐसा कर्म किया है या कोई ऐसा गलत मत धारण किया है, जिसका पुनर्जन्म होने पर निश्चित रूप से दोष सिद्ध हो जाता है। 'इस प्रकार आश्वस्त नहीं' का अर्थ उन सभी पर लागू होता है जिन्होंने मार्ग को प्राप्त नहीं किया है। तुलना करें §562, और पे 32।

274/1 देखें एन. 99/2.

[पृष्ठ 76]
पथप्रदर्शक
275. (2) देखने का तल (3) निश्चितता में आधार खोजने का आधार है। 1 (2) अस्तित्व में बने रहने का तल (3) उच्चतर फलों को प्राप्त करने का आधार है । सुस्त परिचय का कष्टदायक मार्ग शांति का आधार है। तीव्र परिचय का सुखद मार्ग अंतर्दृष्टि का आधार है। दान देने से पुण्य कमाने का आधार (देखें अनुच्छेद 2, 241) वह साझा आधार है, जो दूसरे के कथन से [सच्चे विचार के बारे में सुनने] के लिए आवश्यक है। सद्गुण से पुण्य कमाने का आधार वह साझा आधार है, जो चिंतन से प्राप्त समझ (देखें अनुच्छेद 46) के लिए आवश्यक है। अस्तित्व में बने रहने से पुण्य कमाने का आधार वह साझा आधार है, जो अस्तित्व में बने रहने से प्राप्त समझ के लिए आवश्यक है। दान देने से पुण्य कमाने का आधार वह साझा आधार है, जो दूसरे के कथन से [सच्चे विचार के बारे में सुनने] और सुनी गई बातों से प्राप्त समझ के लिए आवश्यक है। सद्गुण से उत्पन्न पुण्य का आधार वह साझा आधार है, जो चिंतन से उत्पन्न समझ और तर्कसंगत ध्यान का आधार बनता है। अस्तित्व में बने रहने से उत्पन्न पुण्य का आधार वह साझा आधार है, जो अस्तित्व में बने रहने से उत्पन्न समझ और सही दृष्टिकोण का आधार बनता है।
उपयुक्त स्थानों में रहना (देखें अनुच्छेद 2, 32) एकांत और एकाग्रता का साझा आधार है। सच्चे पुरुषों की प्रतीक्षा करना, अनुभव से प्राप्त तीन प्रकार के विश्वास (देखें उदाहरण के लिए §788) और शांति का साझा आधार है। आत्म-मार्गदर्शन में आठ प्रकार की प्रवृत्ति, विवेक और अंतर्दृष्टि का साझा आधार है।
अनुपयोगी मार्ग का त्याग करना, लाभकारी मार्ग की खोज और एकाग्रता के लिए साझा आधार है। सच्चे विचार का सुप्रसिद्ध होना, लाभकारी जड़ बोने और मार्गों के फल प्राप्त करने के लिए साझा आधार है। समुदाय का उत्तम मार्ग से प्रगति करना, समुदाय की अच्छाई के लिए साझा आधार है। गुरु की श्रेष्ठता, अविश्वासियों में विश्वास जगाने और पहले से ही आत्मविश्वासी लोगों को मजबूत करने के लिए साझा आधार है। पतिमोक्ख नियम [51] का विरोध न करने की स्थिति , अवज्ञाकारी व्यक्तियों को रोकने और धर्मपरायण व्यक्तियों को सांत्वना देने के लिए साझा आधार है।

275/1 नियमवक्कन्ति (== नियदमोक्कन्ति: देखें एस. iii, 225) शब्द धारा-प्रवेश मार्ग को संदर्भित करता है, जिसे 'देखना' भी कहा जाता है। इन संदर्भों में 'अस्तित्व में बने रहना' 3 उच्चतर मार्गों को संदर्भित करता है।

[पृष्ठ 77]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
276. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
यह विचार, आधार का विश्लेषण करता है,
[पुरुषों के प्रकारों का] तल, साझा
और साझा नहीं किया गया: इस मोड के बारे में जानकारी होनी चाहिए।
जैसा कि विश्लेषण को संप्रेषित करना (§12)।
विश्लेषण प्रस्तुत करने का मोड समाप्त हो गया है।
*

---

9. उलटफेर को दर्शाने के तरीके में नौ गुना धागा
277. इसमें उलटफेर को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
'विपरीत में उलटना
लाभ और हानि के विचार
अस्तित्व में बनाए रखने और छोड़ने के लिए दिखाया गया

इसे 'मोड कन्वेइंग रिवर्सल' कहा जाता है (§13)।
278. सही दृष्टिकोण वाले परिपक्व व्यक्ति में गलत दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है, और गलत दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न होने वाले अनेक लाभहीन विचार भी समाप्त हो जाते हैं, और सही दृष्टिकोण के कारण वास्तविक अस्तित्व प्राप्त करने वाले अनेक लाभकारी विचार अस्तित्व में बने रहने के कारण उसमें पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं (देखें एम. iii, 76)।
एक परिपक्व व्यक्ति में, सही इरादे के साथ...
...सही भाषण...
। । । सही कार्रवाई । । ।
...सही आजीविका...
...सही प्रयास...
...सही जागरूकता...
...सही एकाग्रता...
...सही मुक्ति...
एक परिपक्व व्यक्ति में, उद्धार के सही ज्ञान और दृष्टि से, उद्धार के गलत ज्ञान और दृष्टि का उन्मूलन हो जाता है, और उद्धार के गलत ज्ञान और दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे और लाभहीन विचार भी समाप्त हो जाते हैं, तथा उद्धार के गलत ज्ञान और दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक लाभकारी विचार भी समाप्त हो जाते हैं।

[पृष्ठ 78]
पथप्रदर्शक
अपनी स्थिति से मुक्ति का सही ज्ञान और दर्शन प्राप्त करने से वे उसमें पूर्णता प्राप्त करते हैं ।
279. जो व्यक्ति सजीव प्राणियों को मारने से परहेज करता है, उसने सजीव प्राणियों को मारना छोड़ दिया है।
जो व्यक्ति अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है, वह अनचाही वस्तुएँ लेने का त्याग कर चुका होता है।
जो व्यक्ति दिव्य जीवन जीता है, वह उस चीज का त्याग कर चुका है जो दिव्य जीवन नहीं है।
सत्य बोलने वाला व्यक्ति असत्य का त्याग कर देता है। निस्वार्थ भाव से बोलने वाला व्यक्ति द्वेषपूर्ण बातों का त्याग कर देता है।
समय पर बोलने वाला व्यक्ति कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करता।
लोभ [52] ने लोभ रहित व्यक्ति में त्याग दिया है।
जिस व्यक्ति को दुर्भावना का ज्ञान नहीं होता, वह दुर्भावना का त्याग कर चुका होता है।
सही दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति ने गलत दृष्टिकोण को त्याग दिया है।
280. यदि कोई आठ-कारक मार्ग की निंदा करता है, तो उनके कथनों से स्वयं देखने योग्य कुछ वैध निष्कर्ष निकलते हैं जो निंदनीय हैं (एम. iii, 77) [इस प्रकार]।
281. क्योंकि जब योग्य व्यक्ति सही दृष्टिकोण की निंदा करते हैं, तो इसका परिणाम यह होता है कि गलत दृष्टिकोण रखने वालों को योग्य व्यक्तियों द्वारा सम्मानित और सराहा जाना चाहिए।
क्योंकि जब वे योग्य व्यक्ति सही इरादे के विचार की निंदा करते हैं।
...सही भाषण...
। । । सही कार्रवाई । । ।
...सही आजीविका...
...सही प्रयास...
...सही जागरूकता...
...सही एकाग्रता...
...सही मुक्ति...
क्योंकि जब योग्य व्यक्ति मुक्ति के सही ज्ञान और दृष्टि के विचार की निंदा करते हैं , तो इसका परिणाम यह होता है कि जिन लोगों को मुक्ति का गलत ज्ञान और दृष्टि है, उन्हें योग्य व्यक्तियों द्वारा सम्मानित और सराहा जाना चाहिए (cf. एम. iii, 77)।

282. और यदि कोई यह कहे कि 'इंद्रिय सुख की इच्छाओं को नियंत्रित किया जाना चाहिए'

278/1 'दस सही बातें' आमतौर पर मार्ग के 8 कारकों के साथ-साथ 'सही ज्ञान' और 'सही मुक्ति' से मिलकर बनी होती हैं (एम. iii, 78)। यह प्रस्तुति विधि सीधे एम. सूत्र 117, अंत से ली गई है ।

[पृष्ठ 79]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
आनंद लिया जाना चाहिए, कामुक इच्छाओं में आनंद लिया जाना चाहिए, कामुक इच्छाओं को दोहराया जाना चाहिए, कामुक इच्छाओं का उपयोग किया जाना चाहिए, कामुक इच्छाओं को अस्तित्व में रखा जाना चाहिए, कामुक इच्छाओं को बहुत महत्व दिया जाना चाहिए' (cf. एम. i, 130), तो उनके अनुसार कामुक इच्छाओं से परहेज करना सच्चा विचार नहीं है।
या यदि कोई ऐसा है जो कहता है 'सच्चा विचार आत्म-यातना के प्रति समर्पण है' (cf. एम. i, 92f.), तो सच्चा विचार जो आउटलेट है, उनके अनुसार सच्चा विचार नहीं है।
और अगर कोई ऐसा है जो कहता है 'सच्चा विचार कष्टदायक है' (cf. एम. i, 93f.), तो उनके अनुसार सुखद सच्चा विचार सच्चा विचार नहीं है।
283. जिस प्रकार एक भिक्षु कुरूपता का चिंतन करते समय सभी निर्धारणों में सौंदर्य की धारणा को त्याग देता है, जिस प्रकार वह पीड़ा का चिंतन करते समय सुख की धारणा को त्याग देता है, जिस प्रकार वह अनित्यता का चिंतन करते समय स्थायित्व की धारणा को त्याग देता है, और जिस प्रकार वह अनात्म का चिंतन करते समय आत्म-बोध को त्याग देता है (देखें भजन 1, 46-7), तो वह जिस भी विचार का चयन या अनुमोदन करता है, [इस प्रकार] वह ऐसे किसी भी विचार के विपरीत को अवांछित के रूप में शामिल कर लेता है।
284. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'विपरीत में उलटना
लाभ और हानि के विचार
अस्तित्व में बनाए रखने और छोड़ने के लिए दिखाया गया
इसे 'मोड कन्वेइंग रिवर्सल' कहा जाता है (§13)।
उलटफेर की सूचना देने का माध्यम समाप्त हो गया है।
*

10. पर्यायवाची शब्दों को व्यक्त करने के तरीके में नौ गुना धागा
285. [53] इसमें, समानार्थी शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
धागों का ज्ञाता वही है जो जानता है
एक के कितने पर्यायवाची शब्द हैं?
इस थ्रेड में ये विचार हैं: यह मोड
क्या यह पर्यायवाची शब्द संप्रेषित कर रहा है? (§14)
286. जिस प्रकार भगवान बुद्ध अनेक पर्यायवाची शब्दों के माध्यम से एक ही विचार को स्पष्ट करते हैं। [उदाहरण के लिए:]

[पृष्ठ 80]
पथप्रदर्शक
आवश्यकता और लालसा, प्रत्याशापूर्ण आनंद, विभिन्न तत्वों पर आधारित प्रलोभन, अज्ञान में निहित लालसा:
मैं उन सभी चीजों को उनकी जड़ से समाप्त करता हूँ > (§137).
287. जिसे 'आवश्यकता' (आसा) कहा जाता है, वह किसी लाभ के लिए होने वाली लालसा (असिंसन) है; *▪ 'आवश्यकता' इस प्रकार उत्पन्न होती है 'निश्चित रूप से यह आएगा'।

288. जिसे 'लालसा' कहा जाता है, वह वर्तमान में प्राप्त किसी लाभ की आकांक्षा है, या फिर किसी बेहतर व्यक्ति को देखकर मन में यह लालसा उत्पन्न होती है कि 'काश मैं भी वैसा ही हो जाऊं' ।
289. लाभ के उत्पादन को बढ़ावा देना ही 'प्रतीक्षित आनंद' कहलाता है, या इस प्रकार कोई प्रिय रिश्तेदार की अपेक्षा करता है, या इस प्रकार किसी प्रिय विचार की अपेक्षा करता है, या इस प्रकार किसी अप्रिय चीज़ की अपेक्षा करता है।
290. 'विभिन्न तत्व' हैं: आँख तत्व, रूप तत्व और आँख-चेतना तत्व; कान तत्व, ध्वनि तत्व और कान-चेतना तत्व; नाक तत्व, गंध तत्व और नाक-चेतना तत्व; जीभ तत्व, स्वाद तत्व और जीभ-चेतना तत्व; शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व और शरीर-चेतना तत्व; मन तत्व, विचार तत्व और मन-चेतना तत्व (cf. एम. iii, 62)।
291. 'प्रलोभन': कुछ रूपों में विश्वास करते हैं, कुछ ध्वनियों में विश्वास करते हैं, कुछ गंधों में विश्वास करते हैं, कुछ स्वादों में विश्वास करते हैं, कुछ मूर्त चीजों में विश्वास करते हैं, कुछ विचारों में विश्वास करते हैं (cf. §568)।
इसमें चौबीस शब्द, अर्थात् गृहस्थ जीवन को आधार बनाकर शोक के छह प्रकार (देखें एम. iii, 218), गृहस्थ जीवन को आधार बनाकर आनंद के छह प्रकार (देखें एम. iii, 217), त्याग को आधार बनाकर शोक के छह प्रकार (देखें एम . iii, 218), त्याग को आधार बनाकर आनंद के छह प्रकार (देखें एम. iii, 217), लालसा से संबंधित पक्ष में होने के कारण लालसा के पर्यायवाची हैं।
लेकिन गृहस्थ जीवन को आधार बनाकर समभाव बनाए रखने के छह प्रकार (देखें एम. iii, 219) विचारों से संबंधित हैं। आकांक्षा की अवस्था में वही [समभाव बनाए रखने का भाव], सत्य विचार का आनंद लेना, सत्य विचार से प्रेम करना, सत्य विचार से जुड़े रहना, लालसा का पर्यायवाची है (cf. §506)।
293. संज्ञान, [54] मन, और चेतना, 1 संज्ञान के पर्यायवाची हैं (cf. एस . ii, 94)।

287/1 भविस्सास्सा: भविष्य कृदंत का जनन.
288/1 पढ़ें पत्तन, सेय्यातरम वा दिस्व 'एडिसो । . .
293/1 mano vinnanam को दो शब्दों के रूप में पढ़ें।

[पृष्ठ 81]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
294. मन की क्षमता, मन का तत्व, मन का आधार और सचेत होने की क्रिया, मन के पर्यायवाची हैं।
समझ की क्षमता, समझ की शक्ति, उच्च समझ में प्रशिक्षण, समझ की श्रेणी, विचारों की जांच, ज्ञान का कारक, ज्ञान, सही दृष्टिकोण, निर्णय, अंतर्दृष्टि, किसी विचार के बारे में ज्ञान, किसी अर्थ के बारे में ज्ञान, किसी निष्कर्ष के बारे में ज्ञान, थकावट के बारे में ज्ञान, गैर-उत्पत्ति के बारे में ज्ञान, मैं अंततः उस चीज़ को जान लूँगा जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, अंतिम ज्ञान की क्षमता, अंतिम ज्ञाता की क्षमता, दृष्टि (आँख), विज्ञान, खोज, व्यापकता, बुद्धि, प्रकाश, या इस तरह के कोई अन्य शब्द: ये सभी समझ के पर्यायवाची हैं (cf. §440)।
295. जब सभी पाँचों इंद्रियाँ संसार से अलग हो जाती हैं, तो वे समझ बन जाती हैं। इसके अतिरिक्त, आस्था में प्रभुत्व का भाव होता है, ऊर्जा में प्रेरणा का भाव होता है, सजगता में [अपने विषय से] विचलित न होने का भाव होता है, एकाग्रता में विचलित न होने का भाव होता है, और समझ में समझने की क्रिया का भाव होता है (cf. §§162-3)।
296. और जैसा कि प्रबुद्ध व्यक्ति के स्मरण में कहा गया है: <भगवान बुद्ध ऐसे हैं क्योंकि वे सिद्ध हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, 1 विज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं , उदात्त हैं , संसारों के ज्ञाता हैं, मनुष्यों के अतुलनीय नेता हैं जिन्हें वश में किया जाना है , देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, प्रबुद्ध हैं, धन्य हैं> (पे 131; ए. iii, 285), [और आगे] वे जो शक्तियों को उत्पन्न करने आए हैं, 2 निर्भीकता के प्रकारों तक पहुँचे हैं, विवेक तक पहुँचे हैं, चार बंधनों को पीछे छोड़ दिया है, बुरे रास्तों से परे चले गए हैं, कांटों को निकाल दिया है, घावों को ठीक कर दिया है, 3 कांटों को कुचल दिया है, जुनूनों का इलाज किया है, बंधन से आगे निकल गए हैं, बंधनों को खोल दिया है, प्रवृत्ति से परे चले गए हैं, अंधकार को भंग कर दिया है; वह कौन है जो दृष्टि का स्वामी है, जिसने सांसारिक विचारों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो वांछित और अवांछित विचारों के बीच पक्ष लेने और विरोध करने से विरक्त है, जो संचय का सहारा नहीं लेता, जो बंधन से परे चला गया है, जिसने युद्ध करना छोड़ दिया है, जो सबसे प्रख्यात है, जो मशालवाहक है, प्रकाश -निर्माता है, प्रकाशक है, अंधकार को दूर करने

वाला है, संघर्ष का त्याग करने वाला है, गुणों में असीम है, गुणों में विशाल है, गुणों में अगणनीय है, दीप्ति का निर्माता है, प्रकाशमान है, सच्चे आदर्श का प्रकाशक है, प्रबुद्ध है, धन्य है।

296/1 शायद संबुद्ध को अनुबुद्ध ('दूसरे द्वारा प्रबुद्ध') के विपरीत 'स्वयं प्रबुद्ध' के रूप में अनुवादित किया जाना चाहिए ।
296/2 Read balanipphattigato.
296/3 ' निरुलहवानो - जिसने घाव ठीक किया है' : पी.ई.डी. में इस अर्थ में निरुलह नहीं।
296/4 ' ओक्कधारो - मशाल वाहक': रूप पी.ई.डी. में नहीं है, जहाँ ukkd देखें ; सी. और बी.बी. में u kkadharo है, लेकिन बा. पी.टी.एस. का समर्थन करता है ।

[पृष्ठ 82]
पथप्रदर्शक
ये प्रबुद्ध व्यक्ति की स्मृति के पर्यायवाची हैं।
297. और जैसा कि सच्चे विचार के स्मरण [55] में कहा गया है < सच्चे विचार को भगवान बुद्ध द्वारा अच्छी तरह से घोषित किया गया है, जिसे स्वयं देखा जाना चाहिए, विलंबित नहीं (कालजयी), निरीक्षण के लिए आमंत्रित, आगे बढ़ने वाला, और बुद्धिमानों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है > (ए. iii, 285), < अर्थात्, अहंकार का मोहभंग, प्यास का मार्गदर्शन , निर्भरता का उन्मूलन , चक्र का अंत, शून्य, बहुत कठिन प्राप्ति, लालसा की समाप्ति, लुप्त होना, समाप्ति, विलुप्त होना > (पे 131; cf. ए. ii, 34), [और आगे:]
अनिर्धारित, अनंत और निष्कलंक
सत्य, दूर का किनारा, सूक्ष्म, जिसे देखना बहुत कठिन है,
जो शाश्वत, अमर और कभी नष्ट न होने वाला है,
कोई उपस्थिति न दिखाना, 1 अविविधीकरण, शांति,
अमर, सर्वोच्च, आनंदमय और सुरक्षित, प्यास की अतृप्ति, अद्भुत, चमत्कारी,
जो विपत्तियों से मुक्त हैं, जिनका स्वभाव ही विपत्तियों से मुक्त होना है।
विलुप्ति (देखें अनुच्छेद 4, 368-71)—यही वह शिक्षा है जो परम पूज्य ने दी है—
अजन्मे और अस्तित्व में न आए हुए (उद. 80),
खतरों से मुक्त,
अजन्मा (उद. 80), और शोकरहित, शोकमुक्त,
जो खतरे से मुक्त है, जिसका स्वभाव ही खतरे से मुक्त होना है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाना—यही परम पूज्य ने सिखाया है—
गहन, और साथ ही समझना भी बहुत मुश्किल।
उत्कृष्ट भी, और अतुलनीय भी।
वह भिन्न है, उसकी कोई समानता नहीं है।
इसे सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है।
ढाल, आश्रय, बिना संघर्ष के, 2 बिना किसी दोष के,
बेदाग, निर्मल, जैसा कि इसे कहा जाता है।
दीपक (द्वीप), और परमानंद, असीम, स्थिति, गैर-स्वामित्व, गैर-विविधीकरण कहलाते हैं।
ये "सच्चे विचार की स्मृति" के पर्यायवाची शब्द हैं।

297/1 ' अनिदासना —जो प्रकट नहीं होता': यह शब्द एम. i, 329 पर मिलता है (जहाँ यह बुद्ध द्वारा बोला गया है, ब्रह्मा द्वारा नहीं—देखें एम. का बर्मी चत्था-सांगलती संस्करण) और डी. i, 223 पर दोहराया गया है, और यह अभिधम्म मतिका या 'अनुसूची' (धस्. पृ. 3) के 9वें द्वैत में भी एक शब्द है। आमतौर पर इसका अनुवाद 'अदृश्य' किया जाता है। देखें ख्या. अनुवाद. परिशिष्ट I/ भू.

297/2 पीटीएस नेट्टी इंडेक्स यहां सरना के लिए 'शरण' देता है , इसे एस. iv, 372 पर 'परना' के बराबर मानते हुए । सर-आना (y'sar 'बहना' से प्रतिस्थापन) को सा-राना ('संघर्ष के साथ') के साथ भ्रमित करना आसान है, जो अरना का विपरीत है (देखें एम. iii, 235)। 'अरानो ती अराजो निक्कीलेसो ' (एमए. वी., 32)।

[पृष्ठ 83]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

298. और जैसा कि समुदाय के स्मरण में कहा गया है < भगवान बुद्ध के श्रोताओं का समुदाय अच्छे मार्ग से आगे बढ़ा है, भगवान बुद्ध के श्रोताओं का समुदाय सीधे मार्ग से आगे बढ़ा है, भगवान बुद्ध के श्रोताओं का समुदाय सच्चे मार्ग से आगे बढ़ा है, भगवान बुद्ध के श्रोताओं का समुदाय उचित मार्ग से आगे बढ़ा है, अर्थात् , चार जोड़ी पुरुष, आठ प्रकार के परिपक्व व्यक्ति । भगवान बुद्ध के श्रोताओं का यह समुदाय दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, क्योंकि यह दुनिया के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है > (ए. iii, 286), [56] [और आगे] सद्गुण में परिपूर्ण, एकाग्रता में परिपूर्ण, मुक्ति में परिपूर्ण, मुक्ति के ज्ञान और दर्शन में परिपूर्ण; यह प्राणियों का मूल तत्व है (देखें एम. iii, 80), प्राणियों का सूक्ष्म सार, प्राणियों का सूक्ष्म अर्क, प्राणियों का स्तंभ, प्राणियों की सुगंध का फूल, 1 जिसे देवताओं और मनुष्यों द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए। ये समुदाय की स्मृति के पर्यायवाची हैं।

299. और जैसा कि सद्गुणों के स्मरण में कहा गया है < वे सद्गुण जो अखंड, अक्षत, बेदाग, बेदाग, श्रेष्ठ, श्रेष्ठों द्वारा वांछित , मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, गलत न समझे जाने वाले और एकाग्रता में सहायक होते हैं> (ए. iii, 286), [और आगे] सद्गुण सर्वोच्च अंग को सुशोभित करने वाले आभूषण के रूप में, 1 और सद्गुण सभी दोषों पर विजय प्राप्त करने के अर्थ में संचित खजाने के रूप में, और सद्गुण लक्ष्य को भेदने के लिए धनुर्धर की कला के रूप में, और सद्गुण उल्लंघन न करने के अर्थ में नियम के रूप में, और सद्गुण दरिद्रता को समाप्त करने के अर्थ में अनाज के धन के रूप में, और सद्गुण [शांति और अंतर्दृष्टि के] विचारों का अवलोकन करने के उद्देश्य से दर्पण के रूप में, और सद्गुण अवलोकन के लिए एक महल के रूप में, और सद्गुण जो चारों तलों के साथ समानांतर घटित होने के कारण, 2 अमरता में समाप्त होता है। ये सद्गुणों के स्मरण के पर्यायवाची हैं।

300. और जैसा कि उदारता की स्मृति में कहा गया है <एक पर

298/1 'सुरभि-पसुना - सुगंध से खिलना': एक यौगिक के रूप में पढ़ें। सुरभि (सुगंध, सुगंध) पीईडी में नहीं, जेडी देखें । vi, 236, Abhp. 146; पसुना पीईडी में नहीं है । नेत्तिया : ' सुरभि-कुसुमन ति अथच >' (पृ. 102). एबीएचपी देखें । टीएलकेडी एबीएचपी। 16.

299/1 उत्तमांगोपशोभनाटय पढ़ें और उत्तमांग ('सिर') -एफ- उपसोभनाटय में संकल्प लें। पीटीएस नेटी इंडेक्स ('उत्तमंगा (एम.)') में नोट '(एम.)' ने संधि ओ (— ए -\-यू) को मास्क समझ लिया है। नामांकित. गाओ, समाप्ति.

299/2 इसका अर्थ है कि यह अस्तित्व के 3 तलों (इंद्रिय-इच्छा, रूप और निराकारता) के साथ-साथ असंलग्न (अपरिदपन्न) चौथे तल (सकारात्मक या नकारात्मक, अस्तित्व का नहीं) के साथ भी सहविस्तारित है, जो संसारों से विच्छेदित है और समाप्ति (अमर अंत) से संबंधित है।

[पृष्ठ 84]

पथप्रदर्शक

वह अवसर जिस पर एक नेक श्रोता घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग करने में प्रसन्न, भीख मांगे जाने का आदी, और देने और साझा करने में प्रसन्न ...> (ए. iii, 287)। ये उदारता की स्मृति के पर्यायवाची हैं।

301. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

धागों का ज्ञाता वही है जो जानता है

एक के कितने पर्यायवाची शब्द हैं?

इस थ्रेड में ये विचार हैं: यह मोड

क्या यह पर्यायवाची शब्द संप्रेषित कर रहा है? (§14)

पर्यायवाची शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका समाप्त हो गया है।

*

11. वर्णन संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
302. इसमें, विवरण संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
भगवान बुद्ध एक ही विचार सिखाते हैं
अनेक प्रकार के वर्णनों के माध्यम से:
इस मनोदशा को इस प्रकार जाना जा सकता है
वह विधि जो विवरण व्यक्त करती है' (§15)।
303. [57] किसी भी वस्तु के स्वरूप के बारे में व्याख्यात्मक प्रवचन द्वारा दिया गया कोई भी शिक्षण, प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है। 1 और किसी भी वस्तु के स्वरूप के बारे में व्याख्यात्मक प्रवचन के रूप में दिया गया शिक्षण क्या है? यह चार सत्य हैं, जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा है: <यह दुख है > (§49)। यह एक वर्णन है। यह पाँच श्रेणियों, छह तत्वों, अठारह तत्वों, बारह आधारों और दस इंद्रियों पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है। 2

303/1 ' निक्खेपपन्नत्ति - प्रस्तुति के संदर्भ में वर्णन': नेत्ति ए : 'यह भगवान बुद्ध के अर्थ को, उनके आशय के अनुसार, एक मार्गदर्शक निरंतरता (अर्थात, एक प्रशिक्षित व्यक्ति के मन में) में प्रस्तुत करता है (निक्खिपति , शाब्दिक रूप से "बाहर फेंकता है"), इसलिए इसे "प्रस्तुति" (निक्खेपा) कहा जाता है (पृष्ठ 102)। टीका आगे कहती है ' निक्खिपति ति पतित्थापेति, यथा चत्तरो सुत्तनिक्खेपा (एमए. i, 15) आदि अत्था-कथासु वच्चति' (पृष्ठ 70)। यहाँ दिए गए 'वर्णन' के प्रकारों का पुग ए में सूचीबद्ध सेटों से कोई संबंध नहीं है (पृष्ठ नोट अध्याय viii, टिप्पणी 11 देखें : वहाँ इसे 'अवधारणा' के रूप में प्रस्तुत किया गया है)।
303/2 नेटिया के अनुसार , 'दस इंद्रियां' 'आठ इंद्रियां हैं जिनमें रूप होता है (अर्थात, आंख, कान, नाक, जीभ, शरीर, स्त्रीत्व, पुरुषत्व और जीवन—देखें,

[पृष्ठ 85]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
304. भिक्षुओं, यदि शारीरिक पोषण के लिए कामवासना, लालसा, या तृप्ति हो, तो वहाँ चेतना को स्थिरता मिलती है और वह विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना को स्थिरता मिलती है और वह विकसित होती है, वहाँ नाम-रूप का आधार स्थापित होता है। जहाँ कहीं भी नाम-रूप का आधार स्थापित होता है, वहाँ संकल्प परिपक्व होते हैं। जहाँ कहीं भी संकल्प परिपक्व होते हैं, वहाँ भविष्य में नवजन्म होता है। जहाँ भविष्य में नवजन्म होता है, वहाँ भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, वह दुःख, कष्ट और निराशा से भरी होती है, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ। यदि संपर्क के लिए कामवासना हो, तो निराशा होती है। यदि मन की इच्छा के लिए विशालता हो, तो निराशा होती है। यदि चेतना के लिए कामवासना हो , तो निराशा होती है। निराशा > (पे 49, 97; एस. ii, 101ff.). 2
305. यह दुख और उसके मूल के लिए दिए जाने-अस्तित्व के संदर्भ में वर्णन है।
306. भिक्षुओं , यदि शारीरिक पोषण के लिए कामवासना, भोग-विलास और लालसा न हो, तो चेतना को स्थिरता न मिलती है और न ही उसका विकास होता है। जहाँ चेतना को स्थिरता न मिलती है और न ही उसका विकास होता है, वहाँ नाम-रूप का आधार नहीं मिलता। जहाँ नाम-रूप का आधार नहीं मिलता, वहाँ संकल्प परिपक्व नहीं होते। जहाँ संकल्प परिपक्व नहीं होते, वहाँ भविष्य में अस्तित्व का नवीकरण नहीं होता। जहाँ भविष्य में अस्तित्व का नवीकरण नहीं होता , [58] वहाँ भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जहाँ भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, वहीं दुख रहित, भिक्षुओं, निर्मल और निराशा से मुक्त, मैं कहता हूँ। यदि संपर्क की कामवासना न हो, तो निराशा से मुक्त । यदि मन की कामवासना न हो-

उदाहरण के लिए, विज़. 491), मन-सत्ता, और भाव-सत्ता (पाप, आनंद, पीड़ा, दुःख और समभाव को एक मानते हुए)' (पृष्ठ 102)। यह क्रमांकन असामान्य है। अन्य 10 के लिए §405 देखें।

304/1 'पोषण' (आहार) की अवधारणा बौद्ध चिंतन का मूल आधार है। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'प्राप्त करना' और इसका प्रयोग मूलतः भौतिक भोजन के लिए किया जाता है, लेकिन सादृश्य के आधार पर इसे अन्य तीन प्रकार के भोजनों पर भी लागू किया जाता है, और इस प्रकार यह ' अनिवार्य स्थिति ' (पच्चय) का पर्यायवाची है। तुलना करें: 'सभी प्राणी पोषण से ही जीवित रहते हैं' (अ.व. , 50-1), एक ऐसा तथ्य जिसका प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए (डी. iii, 273)। इसलिए, किसी भी प्रकार के पोषण के बिना स्व-निर्भर मानी जाने वाली स्थिति को मात्र एक काल्पनिक अमूर्त अवधारणा माना जाएगा, जिसका सत्यापन संभव नहीं है और जिसे प्रभावी रूप से शून्य से अलग नहीं किया जा सकता है।
304/2 यह उद्धरण और इसका प्रतिरूप §306 में अनुभव की सशर्तता को गतिशील रूप में वर्णित करते हैं, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि अस्तित्व (होना) अज्ञान और निर्धारणों के माध्यम से कैसे विकसित होता है। §840 में उद्धरण देखें।

[पृष्ठ 86]
पथप्रदर्शक
विकल्प, . . . निराशा से मुक्त। यदि कोई वासना नहीं है . . . चेतना के लिए, . . . निराशा से मुक्त > (एस. ii, 102f.; पे 49, 97)।
307. यह पीड़ा पर लागू निदान का वर्णन है, उत्पत्ति पर लागू त्याग का वर्णन है, मार्ग पर लागू अस्तित्व में बनाए रखने का वर्णन है, समाप्ति पर लागू सत्यापन का वर्णन है।
308. < भिक्षुओं, एकाग्रचित्त रहो: जो भिक्षु परिश्रमी, विवेकशील, सचेत और एकाग्रचित्त होता है, वह समझता है कि [चीजें] कैसी हैं। वह चीजों को कैसे समझता है? आँख क्षणभंगुर है: इसी तरह वह चीजों को समझता है। रूप क्षणभंगुर हैं: इसी तरह वह चीजों को समझता है। दृष्टि चेतना क्षणभंगुर है: इसी तरह वह चीजों को समझता है। नेत्र संपर्क क्षणभंगुर है: इसी तरह वह चीजों को समझता है। नेत्र संपर्क के कारण जो भी अनुभूति होती है, चाहे वह सुखद हो या पीड़ादायक या न पीड़ादायक-न ही सुखद, वह भी क्षणभंगुर है: इसी तरह वह चीजों को समझता है। कान क्षणभंगुर हैं... ध्वनियाँ क्षणभंगुर हैं... नाक क्षणभंगुर है... गंध क्षणभंगुर हैं... जीभ क्षणभंगुर है... स्वाद क्षणभंगुर हैं... शरीर क्षणभंगुर है... स्पर्शनीय वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं ... मन क्षणभंगुर है: वह इसे इसी प्रकार समझता है। विचार क्षणभंगुर हैं: वह इसे इसी प्रकार समझता है। मन-चेतना क्षणभंगुर है: वह इसे इसी प्रकार समझता है। मन-संपर्क क्षणभंगुर है: वह इसे इसी प्रकार समझता है। जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो , जो मन-संपर्क के साथ उत्पन्न होता है, वह भी क्षणभंगुर है: वह इसे इसी प्रकार समझता है (देखें श्लोक 4, 80)।
309. यह मार्ग पर लागू होने के संदर्भ में एक विवरण है, पीड़ा पर लागू होने वाले निदान के संदर्भ में एक विवरण है, उत्पत्ति पर लागू होने वाले त्याग के संदर्भ में एक विवरण है, समाप्ति पर लागू होने वाले सत्यापन के संदर्भ में एक विवरण है।
310. [59] < राधा, रूप का त्याग करो, उसे चकनाचूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो, समझ के माध्यम से, कृप के अंत का मार्ग अपनाओ। कृप के अंत से दुख का अंत होता है। दुख के अंत से मृत्यु होती है। भावना का त्याग करो... बोध का त्याग करो... संकल्पों का त्याग करो... चेतना का त्याग करो , उसे चकनाचूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो, समझ के माध्यम से, कृप के अंत का मार्ग अपनाओ। कृप के अंत से दुख का अंत होता है। दुख के अंत से मृत्यु होती है > (देखें श्लोक iii, 190)।
311. यह समाप्ति के संदर्भ में समाप्ति पर लागू किया गया एक विवरण है, वैराग्य के संदर्भ में संतुष्टि पर लागू किया गया एक विवरण है, एक

[पृष्ठ 87]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
पीड़ा के लिए निदान के संदर्भ में वर्णन, उत्पत्ति के लिए त्याग के संदर्भ में वर्णन, मार्ग के लिए अस्तित्व में बनाए रखने के संदर्भ में वर्णन, और समाप्ति के लिए सत्यापन के संदर्भ में वर्णन।
312. < 'यही पीड़ा है': वह इसे इसी प्रकार समझता है। ' यही पीड़ा का मूल है, वह इसे इसी प्रकार समझता है। 'यही पीड़ा का अंत है, वह इसे इसी प्रकार समझता है।
'यही वह मार्ग है जो पीड़ा के अंत की ओर ले जाता है ': वह इसे इसी तरह समझता है > (एम. आई, 183; पे 41)।

313. यह सत्यों पर लागू प्रवेश के संदर्भ में एक विवरण है, देखने के तल पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक विवरण है, पथ पर लागू अस्तित्व में बनाए रखने के संदर्भ में एक विवरण है, धारा-प्रवेश के फल पर लागू सत्यापन के संदर्भ में एक विवरण है।
314. <' ये दोष हैं': वह इसे इसी प्रकार समझता है। ' यह दोषों का मूल है': वह इसे इसी प्रकार समझता है। 'यह दोषों का निवारण है': वह इसे इसी प्रकार समझता है। 'यह दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है': वह इसे इसी प्रकार समझता है > (एम. आई, 183)।
315. यह उत्पत्ति के संदर्भ में एक वर्णन है जो थकावट के ज्ञान पर लागू होता है, अवसर के संदर्भ में एक वर्णन है जो गैर-उत्पत्ति के ज्ञान पर लागू होता है, अस्तित्व में बनाए रखने के संदर्भ में एक वर्णन है जो मार्ग पर लागू होता है, निदान के संदर्भ में एक वर्णन है जो पीड़ा पर लागू होता है, त्याग के संदर्भ में एक वर्णन है जो उत्पत्ति पर लागू होता है, उकसाने के संदर्भ में एक वर्णन है जो ऊर्जा संकाय पर लागू होता है, 'कीड़ों' पर लागू 'हटाने' 1 के संदर्भ में एक वर्णन है (देखें एम. आई, 220; ए. वी, 347ff.), अस्तित्व में बनाए रखने के तल पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है, और बुरे अनुपयोगी विचारों पर लागू प्रतिकार 2 के संदर्भ में एक वर्णन है।
316. <' यह पीड़ा है': ऐसा ही दर्शन, ज्ञान , समझ, विज्ञान, प्रकाश था जो उन विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे। 'यह पीड़ा का मूल है': ऐसा ... ' यह पीड़ा का निवारण है': ऐसा... ' यह पीड़ा के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है': ऐसा ही दर्शन, ज्ञान, समझ , विज्ञान, प्रकाश था जो उन विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे (तुलना करें एस.वी. , 424एफ.)।
317. यह सत्यों पर लागू शिक्षण के संदर्भ में एक विवरण है, समझ पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक विवरण है।

315/1 ' अहतना -हटाना': पी.ई.डी. में नहीं है ।
315/2 'अभिनिघात - प्रतिकार': पी.ई.डी. में नहीं , सी.पी.डी. देखें ; तुलना भी निघाटा।

[पृष्ठ 88]
पथप्रदर्शक
जो सुना जाता है उसमें निहित, सत्यापन के संदर्भ में एक विवरण जो 'मैं अंततः उस अभी तक अनिर्धारित ज्ञात संकाय को जान लूँगा' पर लागू होता है, 'सच्चे विचार के पहिये (आशीर्वाद)' पर लागू 'चालू करने' (घटित करने) के संदर्भ में एक विवरण।
318. <' इस पीड़ा का निदान किया जाना चाहिए ': ऐसा ही दर्शन , ज्ञान , समझ , विज्ञान , प्रकाश था जो उन विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे। 'पीड़ा के इस मूल को त्याग देना चाहिए ' : ऐसा ... 'पीड़ा के इस निवारण की पुष्टि की जानी चाहिए... 'पीड़ा के निवारण की ओर ले जाने वाले इस मार्ग को बनाए रखना चाहिए 9 : ऐसा ही दर्शन , ज्ञान , समझ , विज्ञान , प्रकाश था जो उन विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे ।
(तुलना करें /एस.वी, 424एफ.).
319. यह मार्ग पर लागू होने के संदर्भ में एक विवरण है, समझ-संकल्पित-चिंतन पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक विवरण है, अंतिम-ज्ञान संकाय पर लागू सत्यापन के संदर्भ में एक विवरण है।
320. <' इस पीड़ा का निदान हो गया है ': ऐसा ही दर्शन , ज्ञान , समझ , विज्ञान , प्रकाश उन विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ जो मैंने पहले कभी नहीं सुने थे। 'पीड़ा का यह मूल त्याग दिया गया है ': ऐसा... ' पीड़ा की इस समाप्ति की पुष्टि हो गई है ': ऐसा... ' पीड़ा की समाप्ति की ओर ले जाने वाली यह संभावना बनी हुई है': ऐसा ही दर्शन , ज्ञान , समझ ,
विज्ञान , प्रकाश, जो मेरे द्वारा पहले नहीं सुने गए विचारों के संबंध में उत्पन्न हुआ > (cf. एस. वी, 424)।
321. यह मार्ग पर लागू होने के संदर्भ में एक वर्णन है, अस्तित्व में बने रहने में निहित समझ पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है, अंतिम ज्ञाता संकाय पर लागू सत्यापन के संदर्भ में एक वर्णन है, और 'सच्चे विचार के पहिये' पर लागू 'चालू करने' के संदर्भ में एक वर्णन है।
*
322. < स्थिर एक ने अस्तित्व-निर्धारक को त्याग दिया
इससे अस्तित्व को मापा और अनमापा दोनों रूप मिलते हैं।
और वह स्वयं में प्रसन्न और एकाग्रचित्त था।
उसने कवच की तरह, आत्म-अस्तित्व को विखंडित कर दिया ।

{पे 68; एस.वी , 263).
323. [61] 'मापा गया' निर्धारण-तत्व है। 'अमापा गया' विलुप्तिकरण-तत्व है।
'जो अस्तित्व को मापित और अमापित करता है' एक वर्णन है

[पृष्ठ 89]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
परिचय के संदर्भ में, सभी विचारों पर लागू होने वाला विवरण, विचारों के भेदभाव पर लागू होने वाली प्रस्तुति के संदर्भ में एक विवरण है।
324. 'स्थिर व्यक्ति ने अस्तित्व-निर्धारक को त्याग दिया' उत्पत्ति पर लागू त्याग के संदर्भ में एक वर्णन है, पीड़ा पर लागू निदान के संदर्भ में एक वर्णन है।
325. 'और अपने आप में प्रसन्न और एकाग्र' शरीर के साथ व्यस्त माइंडफुलनेस पर लागू होने वाले अस्तित्व में बने रहने के संदर्भ में एक वर्णन है, चेतना के एकीकरण पर लागू स्थिरता के संदर्भ में एक वर्णन है।
326. 'उसने कवच की तरह आत्म-अस्तित्व को विच्छेदित किया' यह वर्णन 'भटकने' 1 के संदर्भ में संज्ञान पर लागू होता है, यह वर्णन 'मानने' 2 के संदर्भ में सर्वज्ञता पर लागू होता है, यह वर्णन 'अज्ञान के अंडे के छिलके' पर लागू 'फटने' के संदर्भ में होता है (cf. एम. i, 104)।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:
'स्थिर व्यक्ति ने अस्तित्व-निर्धारक को त्याग दिया'
जो अस्तित्व को मापा और अनमापा देता है...' (§322)।
*
327. मनुष्य कामुक इच्छाओं के आगे कैसे झुक सकता है ?
किसने पीड़ा देखी है और यह कहाँ से उत्पन्न होती है?
कौन जाने, वे दुनिया से चिपके रहने के लिए ही बने हैं।
उन्हें दूर ले जाने में सचेत प्रशिक्षण देना चाहिए > (पे 15; एस. आई, 117)।

326/1 'अभिनिबिदा —उभरना': मूल शब्द भिद होना चाहिए , न कि विधि या विद, और यहाँ सही वर्तनी वास्तव में अभिनिबिदा या अभिनिबिधा (जैसा कि पीडी और पीटीएस नेट्टी इंडेक्स नोट में है) नहीं बल्कि अभिनिभिदा (जैसा कि §574 = पीटीएस नेट्टी पृष्ठ 98 में है) है; सीपीडी देखें । इसका अर्थ 'उभरना' है, और प्रत्यक्ष संकेत एम. i, 104 (जहाँ अभिनिभिदा लिखा गया है) की ओर है। हालाँकि, उल्लिखित तीनों मूल शब्द आपस में जुड़ने की प्रवृत्ति दर्शाते हैं। नेट्टिया यहां कहते हैं ' अभिनिबिदा-पन्नति (एसआईसी) चित्तस्स ती आयुसंखरोस्साजनवसेना चित्तस्स अभिनिहारपन्नति ' (पृ. 104), लेकिन §574 पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं एल न च भब्बो अभिनिबिधा (एसआईसी) गनटुन ती किलेसा- भिसंखरम अभिनिबिज्जनतो (एसआईसी) अभिनिबिधा-संखतम (एसआईसी) अरिया-मग्गम अभिगन्तुम न च भब्बो ' (पृ. 140)। एनबी वर्तनी जैसा कि वे उद्धृत संस्करण में दिखाई देते हैं। क्या इन स्पष्टीकरणों का अर्थ यह है कि टिप्पणीकार ने उन्हें एक ही शब्द नहीं माना? क्या उसने उन्हें एम. आई, 104 से जोड़ा? 326/2 'उपादान-पन्नति -धारणा के संदर्भ में विवरण': नेट्टिया गहना-पन्नति के साथ चमकता है । तकनीकी रूप से सर्वज्ञ ज्ञान (§594 भी देखें) केवल संसारों से संबंधित है (नेट्टिया पृ. 147-8)। शब्द 'सर्वज्ञता 1 (सब्बन्नु-ता) पहली बार पीएस में दिखाई देता है। i, 131. बुद्ध ने सभी के एक साथ ज्ञान को अस्वीकार कर दिया (एम. ii, 127)। चर्चा के लिए पीपीएन देखें। चौ. vii, नोट 7.
327/1 ' नेमय्या ' शाब्दिक रूप से 'झुकना' और 'नाम देना' को नेट्टिया में अभिनेमय्या के साथ व्याख्यायित किया गया है (पीडी या सीपीडी में नहीं ; एसए. शब्द की व्याख्या नहीं करता है)।

[पृष्ठ 90]
पथप्रदर्शक

328. 'जो दर्द' दर्द (पीड़ा) के लिए लागू एक पर्यायवाची के संदर्भ में एक वर्णन है और यह उस पर लागू निदान के संदर्भ में एक वर्णन है।
329. 'और वह जिससे यह उत्पन्न होता है' उत्पत्ति पर लागू होने वाले देने-होने के संदर्भ में एक वर्णन है और यह उस पर लागू होने वाले त्याग के संदर्भ में एक वर्णन है।
330. 'देखा है' ज्ञान की आँख पर लागू एक पर्यायवाची के संदर्भ में एक वर्णन है और यह उस पर लागू पैठ के संदर्भ में एक वर्णन है।
331. 'मनुष्य कामुक इच्छाओं के आगे कैसे झुक सकता है' यह कामुक इच्छाओं के संदर्भ में एक वर्णन है जो कामुक इच्छाओं की लालसा पर लागू होता है और यह उस पर लागू आग्रह के संदर्भ में एक वर्णन है।
332. 'कौन जानता है कि वे संसार में आसक्ति पैदा करते हैं' यह वर्णन 'शत्रु को देखने' के संदर्भ में कामुक इच्छाओं पर लागू किया गया है; क्योंकि कामुक इच्छाओं की उपमा कोयले के गड्ढे (एम . i, 130), मांस के लोथड़े (एम. i, 130) से है, वे आग की लपटों (ए. iv, 128f.) के समान हैं, और उनकी उपमा खाई और सर्प के सिर (एम. i, 130; साथ ही §35) से है।
333. 'सचेत... उन्हें' परित्याग पर लागू फैलाव के संदर्भ में एक वर्णन है, शरीर के साथ व्यस्त सचेतनता पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है, और मार्ग पर लागू अस्तित्व में बनाए रखने के संदर्भ में एक वर्णन है।
334. 'मार्गदर्शन करने में प्रशिक्षित होना चाहिए... दूर' यह एक ऐसा वर्णन है जो वासना, घृणा और भ्रम को दूर करने के लिए प्रवेश के संदर्भ में लागू होता है।
335. 'एक आदमी' एक भक्त पर लागू होने वाले पर्यायवाची के संदर्भ में एक वर्णन है।
336. अब जब कोई भक्त यह समझ लेता है कि 'वे आसक्ति उत्पन्न करते हैं', तो वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं को उत्पन्न किए बिना लाभकारी विचारों को जागृत करता है, वह अप्रकट लाभकारी विचारों को जागृत करने का प्रयास करता है। [62] यह अभी तक अछूते तक पहुँचने के प्रयास के संदर्भ में एक वर्णन है, यह उस असंतोष के प्रति प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है जो इस पक्ष से संबंधित है।
337. इसमें, <वह उत्पन्न 'लाभदायक विचारों' की स्थिरता के लिए प्रयास करता है> (एम . ii, 11): यह अस्तित्व में बनाए रखने के लिए लागू परिश्रम के संदर्भ में एक विवरण है, ऊर्जा संकाय के लिए लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक विवरण है, लाभदायक विचारों के लिए लागू संरक्षण के संदर्भ में एक विवरण है, उच्च चेतना में प्रशिक्षण के लिए लागू स्थिरता के संदर्भ में एक विवरण है।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:

[पृष्ठ 91]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
'कोई व्यक्ति कामुक इच्छाओं के आगे कैसे झुक सकता है?'
किसने पीड़ा देखी है और यह कहाँ से उत्पन्न होती है?
(§338)
*
338. दुनिया भ्रम के बंधन में जकड़ी हुई है ।
और ऐसा लगता है मानो यह सक्षम हो:
असमंजस में डूबा एक मूर्ख पकड़ा हुआ है
जीवन के मूलभूत तत्वों के बंधन में;
जो इसे देखेगा, उसे यह खाली ही दिखाई देगा।
विशेषताओं में से, उसके पास वहाँ कोई स्वामित्व नहीं होगा 1 > (उद. 79)।
339. 'दुनिया भ्रम के बंधन में जकड़ी हुई है' विकृतियों पर लागू शिक्षा के संदर्भ में वर्णन है।
340. 'और केवल ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'यह सक्षम है' विकृत के संदर्भ में दुनिया पर लागू किया गया एक वर्णन है।
341. 'एक मूर्ख अस्तित्व के मूल तत्वों द्वारा बंधन में जकड़ा हुआ है' यह बुरी इच्छाओं के सहारा लेने के संदर्भ में देने-होने के संदर्भ में एक वर्णन है, जुनून के संदर्भ में कार्य 1 के संदर्भ में एक वर्णन है, विकारों के संदर्भ में शक्ति के संदर्भ में एक वर्णन है, और निर्धारणों के संदर्भ में विकास के संदर्भ में एक वर्णन है।
342. 'भ्रम में लिपटा हुआ' अज्ञानता के अंधकार पर लागू शिक्षण के संदर्भ में एक वर्णन है, और इस पर लागू एक पर्यायवाची के संदर्भ में एक वर्णन है।

343. 'यह विशेषताओं से रहित प्रतीत होगा' यह वर्णन दिव्य दृष्टि से देखने के संदर्भ में है, यह वर्णन समझ की दृष्टि से प्रस्तुति के संदर्भ में है।
344. 'जो देखता है... उसका वहाँ कोई स्वामित्व नहीं होगा' प्राणियों पर लागू प्रवेश के संदर्भ में एक वर्णन है: <वासना एक स्वामित्व है , घृणा एक स्वामित्व है, भ्रम एक स्वामित्व है> (cf. एम. i, 298)।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:
'विश्व भ्रम के बंधन में जकड़ा हुआ है...' (§338)।
*
345. भिक्षुओं , एक अजन्मा, एक अजन्मा, एक अनिर्मित, एक अनिर्धारित है। यदि वह अजन्मा, अजन्मा, अनिर्मित, अनिर्धारित न होता, तो जन्म, जन्म, निर्माण और निर्धारण से मुक्ति का कोई मार्ग यहाँ स्पष्ट न होता। और इसका कारण यह है कि

338/1 किंकाना के लिए 'स्वामित्व' के रूप में देखें n. 152/1.
341/1 तुलना करें. पे 102.

[पृष्ठ 92]
पथप्रदर्शक
एक अजन्मा, एक अन-अस्तित्व में लाया गया, एक अनिर्मित, एक अनिर्धारित है, इसलिए जन्म, अस्तित्व में लाए गए , निर्मित, निर्धारित से मुक्ति स्पष्ट है > (Vd . 80f.)।
346. [63] 'यदि वह अजन्मा, अस्तित्वहीन, अनिर्मित, अनिर्धारित नहीं होता' यह विलुप्ति पर लागू शिक्षा के संदर्भ में एक वर्णन है, और इस पर लागू समानार्थी शब्दों के संदर्भ में एक वर्णन है।
347. 'जन्मजात, अस्तित्व में लाए गए, निर्मित, निर्धारित से कोई बच निकलने का रास्ता यहाँ स्पष्ट नहीं होगा' यह निर्धारित पर लागू समानार्थी शब्दों के संदर्भ में एक वर्णन है, और इस पर लागू मार्गदर्शक-उदाहरण 1 के संदर्भ में एक वर्णन है।
348. 'और ऐसा इसलिए है क्योंकि एक अजन्मा, एक अस्तित्वहीन, एक अनिर्मित, एक अनिर्धारित है' विलुप्ति पर लागू पर्यायवाची शब्दों के संदर्भ में एक वर्णन है, और इस पर लागू दृष्टांत प्रमाण के संदर्भ में एक वर्णन है।
349. 'इसलिए जन्म, अस्तित्व, निर्माण, निर्धारण से मुक्ति स्पष्ट है' विलुप्ति पर लागू पर्यायवाची शब्दों के संदर्भ में एक वर्णन है, पथ पर लागू आउटलेट के संदर्भ में एक वर्णन है, पुनर्जन्म के चक्र पर लागू पलायन के संदर्भ में एक वर्णन है।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा: 'यदि ऐसा न होता तो... ' (§345)।
*
350. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
भगवान बुद्ध एक ही विचार सिखाते हैं
अनेक प्रकार के वर्णनों के माध्यम से;
इस मनोदशा को इस प्रकार जाना जा सकता है
वह विधि जो विवरण व्यक्त करती है' (§15)।
विवरण संप्रेषित करने का तरीका समाप्त हो गया है।
*

347/1 ' उपनयन ; - मार्गदर्शक उदाहरण': शास्त्रीय भारतीय न्यायशास्त्र में उदाहरण के लिए सामान्य तार्किक शब्द । नेत्तिया कहते हैं, 'यहाँ, (इस उदाहरण में, जहाँ तक) "मार्गदर्शक उदाहरण के संदर्भ में वर्णन" का संबंध है, मार्गदर्शक उदाहरण का वर्णन विपरीत विपरीत में मध्य पद (हेतु) देता है। (जहाँ तक) "उदाहरण के संदर्भ में वर्णन" (§348) का संबंध है, वर्णन प्रस्ताव की विषयवस्तु (पतिन्नतस्स अत्थस्स) की स्थापना (सिद्धि) का प्रदर्शन है (पृष्ठ 106)।

[पृष्ठ 93]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
12. सत्यों तक पहुँचने के मार्गों को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
351. इसमें प्रवेश के तरीकों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है?
[यह यह है:]
'आश्रित-उदय, संकाय,
श्रेणियाँ, तत्व, आधार:
वह विधि जिसके द्वारा इन साधनों से प्रवेश मिलता है
क्या यह प्रवेश के तरीकों को बताता है' (§16)।
352. ऊपर , नीचे, हर तरह से मुक्त,
और यह बिल्कुल भी न देखते हुए कि 'मैं यह हूँ'
इस प्रकार मुक्त होकर उसने बाढ़ पार कर ली है।
पहले पार नहीं किया गया, प्राणियों के नवीनीकरण न होने के कारण >
(पे 24; उद. 74).
353. 'ऊपर' रूप-तत्व और निराकार-तत्व है। 'नीचे' इंद्रिय-इच्छा तत्व है। 'हर तरह से मुक्त': यही त्रितत्व [अस्तित्व के] में सिद्ध पुरुष की मुक्ति है। यही सिद्ध पुरुष की पाँच इंद्रियाँ हैं। यही इंद्रियों द्वारा प्रवेश का मार्ग है।
354. इन्हीं सिद्ध पुरुषों की पाँचों इंद्रियाँ विज्ञान हैं। विज्ञान के उदय से अज्ञान का अंत होता है; अज्ञान के अंत से निर्धारणों का अंत होता है; निर्धारणों के अंत से चेतना का अंत होता है; चेतना के अंत से नाम-रूप का अंत होता है; नाम-रूप के अंत से छह प्रकार के आधारों का अंत होता है; छह प्रकार के आधारों के अंत से संपर्क का अंत होता है; संपर्क के अंत से संवेदना का अंत होता है; संवेदना के अंत से लालसा का अंत होता है; लालसा के अंत से ग्रहणशीलता का अंत होता है; ग्रहणशीलता के अंत से अस्तित्व का अंत होता है; अस्तित्व के अंत से जन्म का अंत होता है; जन्म के अंत से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है, और शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा का भी अंत होता है; इस प्रकार दुखों की इस पूरी श्रेणी का अंत होता है। यह आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का तरीका है।
355. उन्हीं सिद्ध पुरुषों की पाँचों इंद्रियाँ तीन श्रेणियों में समाहित हैं, अर्थात् सद्गुण श्रेणी, एकाग्रता श्रेणी और समझ श्रेणी। 1 श्रेणियों के अनुसार प्रवेश का यही तरीका है।

355/1 ये एम.आई. , 301 में दिए गए 8-कारक पथ के 3 विभाजन हैं। नेटी ए (पृष्ठ 106) कहते हैं कि चूंकि सही इरादे को सही दृष्टिकोण के समान श्रेणी में गिना जाता है 'क्योंकि यह सही दृष्टिकोण के लिए सहायक है' (देखें एम.ए. ii, 36If.)।

[पृष्ठ 94]
पथप्रदर्शक
356. उन्हीं सिद्ध पुरुष की पाँचों शक्तियाँ निर्धारणों में समाहित हैं। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारक नहीं—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। यही तत्वों द्वारा प्रवेश का मार्ग है।
357. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
358. 'और यह बिल्कुल न देखते हुए कि "मैं यह हूँ"': यही देहधारण के दृष्टिकोण का उन्मूलन है। यही दीक्षित की मुक्ति है। यही दीक्षित की पाँचों इंद्रियाँ हैं। यही इंद्रियों द्वारा प्रवेश का मार्ग है।
359. उन्हीं दीक्षितों की पाँचों इंद्रियाँ विज्ञान हैं। विज्ञान के उद्भव के साथ... (जैसा कि §354 में पूर्ण है)... इस प्रकार संपूर्ण आश्रित उत्पत्ति। आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का यही मार्ग है।
360. वही विज्ञान समझ की श्रेणी है। श्रेणियों के माध्यम से प्रवेश करने का यही तरीका है।
361. वही विज्ञान निर्धारणों में समाहित है। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारक नहीं—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

362. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
363. यह वह व्यक्ति है जो दीक्षित की मुक्ति और सिद्ध पुरुष की मुक्ति के माध्यम से मुक्त हुआ है, जिसने 'अस्तित्व के नवीनीकरण न होने के कारण पहले कभी पार न की गई बाढ़ को पार कर लिया है'।
[65] इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:
'ऊपर, नीचे, . . .' (§352).
*
364. < जिस पर सहारा दिया गया है, वह हिल सकता है; जिस पर सहारा नहीं दिया गया है, वह हिल नहीं सकता। जब हिलने की कोई संभावना नहीं होती , तब शांति होती है। जब शांति होती है , तब नामकरण की प्रवृत्ति नहीं होती। जब नामकरण की प्रवृत्ति नहीं होती , तब आना-जाना नहीं होता। जब आना-जाना नहीं होता , तब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता। जब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता, तब...

इसी प्रकार, पाँच संकायों को 'विज्ञान' कहा गया है (§354), पहले चार को समझ के लिए उनकी 'सहायता' के कारण पथ-श्रेणियों के भीतर वर्गीकृत किया जा सकता है, क्योंकि समझ सही दृष्टिकोण से मेल खाती है।

[पृष्ठ 95]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
यहाँ या उससे परे या बीच में: यही पीड़ा का अंत है > (पे 18, 110; उद . 81, एम. iii, 266 पर उद्धृत)।
365. 'सहारा पाने वाला भी विस्थापित हो सकता है': सहारा दो प्रकार का होता है, अर्थात् लालसा द्वारा सहारा और दृष्टि द्वारा सहारा। यहाँ, कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी चुनाव लालसा द्वारा सहारा है, और भ्रमित व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी चुनाव दृष्टि द्वारा सहारा है।
366. अब चुनाव ही निर्धारण है। निर्धारण को शर्त मानकर ही चेतना का वास्तविक अस्तित्व है; चेतना को शर्त मानकर ही नाम-रूप का अस्तित्व है; . . . और इसी प्रकार संपूर्ण आश्रित उत्पत्ति (तुलना करें पे 110) 1 [तक . . . जन्म को शर्त मानकर ही वृद्धावस्था और मृत्यु का वास्तविक अस्तित्व है, और [साथ ही] दुःख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा का भी; इसी प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा वर्ग का उद्गम है।] आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का यही मार्ग है।
367. यहाँ वासना से ग्रस्त व्यक्ति की कोई भी भावना सुखद भावना है, और भ्रमित व्यक्ति की कोई भी भावना न तो कष्टदायक है और न ही सुखद। ये भावनाएँ भावना श्रेणी में आती हैं। श्रेणियों के अनुसार प्रवेश का यही तरीका है।
368. इसमें, सुखद अनुभूति दो इंद्रियों से संबंधित है, अर्थात् [शारीरिक] सुख की इंद्री और [मानसिक] आनंद की इंद्री, और न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति समभाव की इंद्री है। इंद्रियों द्वारा प्रवेश का यही मार्ग है।
369. वही क्षमताएँ निर्धारणों में समाहित हैं। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों और अस्तित्व के कारकों से प्रभावित—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।
370. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों और अस्तित्व के कारक से प्रभावित है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
371. 'असमर्थित व्यक्ति विस्थापन के योग्य नहीं है 5 : लालसा से असमर्थित और शांति के कारण, और दृष्टि से असमर्थित और अंतर्दृष्टि के कारण।
372. कोई भी अंतर्दृष्टि विज्ञान है। विज्ञान के उदय के साथ अज्ञान का अंत होता है; अज्ञान के अंत के साथ निर्धारणों का अंत होता है; निर्धारणों के अंत के साथ चेतना का अंत होता है; ...और इस प्रकार संपूर्ण आश्रित उत्पत्ति होती है। [66] आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का यही मार्ग है।

366/1 यह अंश /Vs 16वें मोड से लिया गया है और यहाँ बेहतर रूप में रखा गया है।

[पृष्ठ 96]
पथप्रदर्शक
373. वही अंतर्दृष्टि समझ की श्रेणी है। श्रेणियों के माध्यम से प्रवेश का यही तरीका है।
374. वही अंतर्दृष्टि दो संकाय हैं, अर्थात् ऊर्जा संकाय और समझ संकाय। संकायों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।
375. वही अंतर्दृष्टि निर्धारणों में समाहित है। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारक नहीं—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।
376. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
377. 'जब शांति होती है': शांति दो प्रकार की होती है, शारीरिक और मानसिक। कोई भी शारीरिक सुख शारीरिक शांति है, और कोई भी मानसिक सुख मानसिक शांति है। जिसे शारीरिक शांति प्राप्त होती है, वह सुख का अनुभव करता है। जब वह प्रसन्न होता है, तो उसकी चेतना एकाग्र हो जाती है (देखें एम. i, 37)। जो एकाग्र होता है, वह समझता है कि चीजें कैसी हैं। जब वह समझता है कि चीजें कैसी हैं, तो उसे वैराग्य प्राप्त होता है। वैराग्य प्राप्त होने पर उसकी कामवासना समाप्त हो जाती है। कामवासना के समाप्त होने से वह मुक्त हो जाता है। उसे यह ज्ञान होता है कि 'मैं मुक्त हो गया हूँ'। वह समझता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, दिव्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो गया है, इसके बाद कुछ भी नहीं है* (देखें एम. iii, 280)।
378. कामुकता की समाप्ति, घृणा की समाप्ति, भ्रम की समाप्ति के कारण, रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, मूर्त वस्तुओं या विचारों के संबंध में उसमें 'नामकरण की प्रवृत्ति नहीं' है।
379. वह उस रूप की पूर्ण समाप्ति से मुक्त हो जाता है, जो उस रूप के क्षीण होने, लुप्त होने, समाप्त होने, त्यागने और परित्याग करने के कारण होता है, जिसके द्वारा वह किसी पूर्ण सत्ता का खड़े या चलते हुए वर्णन कर सकता है। वह यह मानकर नहीं चलता कि 'एक पूर्ण सत्ता है' (देखें §908); और वह यह मानकर नहीं चलता कि 'नहीं है'; वह यह मानकर नहीं चलता कि 'है भी और नहीं भी है'; वह यह मानकर नहीं चलता कि 'न है न नहीं भी है' (देखें एम. i, 486; एस. iv, 383); बल्कि [वह जानता है] कि कामवासना, घृणा और भ्रम की समाप्ति के कारण उसे गहन, असीम (देखें §783), अगणनीय और क्षीण माना जाता है।
380. वह भावनाओं की पूर्ण समाप्ति में मुक्त हो जाता है...
381. ...धारणा का...
382. ... निर्धारणों का . . .

[पृष्ठ 97]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
383. वह चेतना की पूर्ण समाप्ति में मुक्त हो जाता है [67], जो उस चेतना के समाप्त होने, लुप्त होने, रुकने, त्यागने और छोड़ने के कारण होती है जिसके द्वारा वह किसी पूर्ण सत्ता को खड़े या चलते हुए वर्णित कर सकता है। वह यह मानकर नहीं चलता कि 'एक पूर्ण सत्ता है'; और वह यह मानकर नहीं चलता कि 'नहीं है'; वह यह मानकर नहीं चलता कि 'है भी है और नहीं भी है'; वह यह मानकर नहीं चलता कि 'न है न नहीं है'; बल्कि [वह जानता है] कि कामवासना, घृणा और भ्रम के समाप्त होने के कारण वह गहन, असीम, अगणनीय और शांत हो जाता है।
384. 'आना' का अर्थ है यहाँ आना। 'जाना' का अर्थ है इस जीवन से विदा होने के बाद कोई भी अस्तित्व। आना और जाना दोनों ही अब नहीं रहते।
385. 'न ही यहाँ': [वह स्वयं को नहीं देखता] स्वयं में छह आधारों में।
386. 'और न ही परे': [वह स्वयं को नहीं देखता] छह बाह्य आधारों में।
387. 'न ही बीच में': 1 वह संपर्क से उत्पन्न विचारों में स्वयं को नहीं देखता। 2
388. 'यह दुख का अंत है' आश्रित उत्पत्ति है। यह दो प्रकार की होती है, अर्थात् संसार से संबंधित और संसार से विरक्त। इसमें, संसार से संबंधित उत्पत्ति अज्ञान की स्थिति और निर्धारण से शुरू होकर वृद्धावस्था और मृत्यु तक जाती है (धारा 2, 1)। संसार से विरक्त उत्पत्ति एक गुणी व्यक्ति के पश्चातापहीन होने से शुरू होकर इसके परे के अस्तित्व तक जाती है (धारा 806 देखें)।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'सहारा पाने वाला भी विस्थापित हो सकता है, सहारा न पाने वाला विस्थापित नहीं हो सकता... यही दुख का अंत है' (§364)।

♦

389. < चाहे कितने भी दुख, विलाप , पीड़ाएँ हों
दुनिया में अनेक प्रकार के जीव पाए जाते हैं।
उनका अस्तित्व किसी प्रिय चीज की बदौलत है;
जिन लोगों को कोई प्रिय चीज नहीं होती, उनका कभी अस्तित्व ही नहीं होता।
इसलिए वे आनंदित हैं, दुःख से मुक्त हैं।
दुनिया में किसी भी चीज को वह बिल्कुल भी प्रिय नहीं मानता।

387/1 उदा. उभयंतरेना के अंतर्गत ' भवन्तर ' ('जन्म और मृत्यु के बीच का अंतराल') की अवधारणा की अनुपयुक्तता पर चर्चा करता है। 387/2 यह चेतना के उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली भावना (प्रभावशीलता), आदि को संदर्भित करता है (उदाहरण के लिए, एम. iii, 279, 285 देखें; साथ ही §308 की भी तुलना करें)। 'संपर्क' का अर्थ 'उपस्थिति' है, एम. iii, 285 में दिए गए विवरण को देखें।

[पृष्ठ 98]
पथप्रदर्शक
तो क्या तुम दुःख रहित और निष्कलंक बनना चाहते हो?
दुनिया में किसी भी चीज को प्रिय न मानो > (पतरस 14; उदा. 92)। 1

390. 'इस संसार में अनेक प्रकार के जितने भी दुःख, विलाप, पीड़ाएँ पाई जाती हैं, उनका अस्तित्व किसी प्रिय वस्तु के कारण ही है': यह पीड़ादायक भावना है। 'जिनके लिए कोई प्रिय वस्तु न हो, वे कभी अस्तित्व में नहीं आतीं' : यह सुखद भावना है। [68] भावनाएँ, भावना श्रेणी हैं। श्रेणियों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

391. भावना को शर्त मानकर, तृष्णा; तृष्णा को शर्त मानकर, ग्रहण करना; ग्रहण करने को शर्त मानकर, जन्म; जन्म को शर्त मानकर, वृद्धावस्था और मृत्यु... और इसी प्रकार अन्य सभी। यही आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

392. यहाँ, सुखद अनुभूति दो इंद्रियों से मिलकर बनी है, अर्थात् सुख और आनंद की इंद्री। दुखदायी अनुभूति भी दो इंद्रियों से मिलकर बनी है, अर्थात् पीड़ा और शोक की इंद्री। इंद्रियों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

393. वही क्षमताएँ निर्धारणों में समाहित हैं। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों और अस्तित्व के कारकों से प्रभावित—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

394. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों और अस्तित्व के कारक से प्रभावित है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।

395. 'इसलिए वे आनंदित हैं, दुःख से मुक्त हैं, संसार में किसी भी चीज़ को प्रिय नहीं मानते। तुम भी दुःख रहित और निर्मल बनो, संसार में किसी भी चीज़ को प्रिय न मानो': यही लालसा का त्याग है। लालसा के त्याग से धारणा का त्याग होता है; धारणा के त्याग से अस्तित्व का त्याग होता है; ...और इसी प्रकार बाकी सब कुछ। यही आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

396. उसी लालसा का त्याग ही शांति है। वह शांति दो प्रकार की होती है, अर्थात् जागरूकता और एकाग्रता। यही इंद्रियों द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

397. वही शांति एकाग्रता श्रेणी है। श्रेणियों के अनुसार प्रवेश का यही तरीका है।

398. वही शांति निर्णयों में भी शामिल है। ये निर्णय—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारकों से रहित—

389/1 वही भावनाएँ §192 में उद्धृत सुत्तनिपात के श्लोकों में दिखाई देती हैं और एम. सुत्त 87 और उद. 91-2 में बहुत तीक्ष्णता से प्रस्तुत की गई हैं। लेकिन तुलना करें एसएन. 262। कोई विरोधाभास नहीं है, क्योंकि अस्तित्व में जो 'सबसे बड़ा आशीर्वाद' है, वह स्वतः ही अपनी अनित्यता में आशीर्वाद नहीं है :

[पृष्ठ 99]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

ये सभी विचार-तत्व के अंतर्गत समाहित हैं। तत्वों के प्रवेश का यही तरीका है।

399. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।

*

400. <[69] < जब कोई व्यक्ति इच्छा करता है, यदि उसकी इच्छा पूरी हो जाती है,
उसे अपनी मनचाही चीज पाकर जरूर खुशी होगी।
इच्छा से प्रेरित और दृढ़ निश्चयी, यदि उसकी इच्छा विफल हो जाए ,
उसका चेहरा इस कदर विकृत हो जाता है मानो उसे किसी कांटे से छेद दिया गया हो।
जो इच्छाओं को उसी प्रकार त्यागता है जैसे सांप का सिर अपने पैर से कुचलता है,
और सचेत है, दुनिया से इस लगाव से बचता है > (§§33-5)।

401. यहाँ 'सुख' स्वीकृति है। 'वह इतना विकृत हो जाता है मानो किसी कांटे से छेद दिया गया हो' से जो बात कही गई है, वह प्रतिरोध है। स्वीकृति और प्रतिरोध दोनों ही लालसा के पहलू हैं। रूप 1 वाले दस आधार लालसा की नींव हैं। यही आधारों द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

402. वही आधार, जिनमें रूप होता है, नाम से संबंधित रूप-शरीर होते हैं। 1 ये दोनों मिलकर नाम-और-रूप हैं। नाम-और-रूप को शर्त मानकर, छह प्रकार का आधार; छह प्रकार के आधार को शर्त मानकर, संपर्क; संपर्क को शर्त मानकर, भावना; भावना को शर्त मानकर, लालसा; . . . और इसी प्रकार बाकी सभी। यह आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

403. वही नाम और स्वरूप पाँच श्रेणियाँ हैं। श्रेणियों के अनुसार प्रवेश का यही तरीका है।

404. वही नाम और स्वरूप अठारह तत्व हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

405. यहाँ, रूप-शरीर पाँच रूपधारी इंद्रियाँ हैं, 1 और नाम-शरीर पाँच निराकार इंद्रियाँ हैं। ये दस इंद्रियाँ हैं। इंद्रियों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

406. इसमें, 'जो इच्छाओं से इस प्रकार दूर रहता है जैसे साँप अपने पैर से अपना सिर समेट लेता है, और सचेत रहता है, वह संसार से इस आसक्ति से बच जाता है' द्वारा जो कहा गया है, वही है।

401/1 'रूप धारण करने वाले दस आधार' पाँच युग्म प्रतीत होते हैं, अर्थात् आँख-सह-रूप, . . . शरीर-सह-स्पष्ट वस्तुएँ। नेट्टिया इसे अनदेखा करती है। यह गणना पृष्ठ 99 से ली गई है। एक भिन्न संख्यात्मक गणना विस. 590 पर दी गई है।

402/1 नामासम्पायुत्तो को एक यौगिक के रूप में पढ़ें।

405/1 'रूप धारण करने वाली पाँच इंद्रियाँ' आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर की इंद्रियाँ मानी जा सकती हैं, और 'रूपहीन पाँच इंद्रियाँ' आस्था, ऊर्जा, सजगता, एकाग्रता और समझ की इंद्रियाँ मानी जा सकती हैं। इस प्रकार ये '10 इंद्रियाँ' वही 10 इंद्रियाँ नहीं हैं जो धारा 303 में वर्णित हैं, कम से कम नेट्टिया द्वारा दिए गए पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार , जो इन्हें अनदेखा करता है।

[पृष्ठ 100]

पथप्रदर्शक

यह विलुप्त हो चुके तत्वों का वह रूप है जिसके केवल कुछ अंश शेष रह जाते हैं। तत्वों के प्रवेश का यही तरीका है।

407. वही विलुप्तिकरण तत्व, जिसका अंश शेष रह जाता है, विज्ञान है। विज्ञान के उदय के साथ अज्ञान का अंत; अज्ञान के अंत के साथ निर्धारणों का अंत; . . . और इसी प्रकार बाकी सब। [70] यह आश्रित उत्पत्ति के [दो] पहलुओं द्वारा प्रवेश का मार्ग है।

408. वही विज्ञान समझ की श्रेणी है। श्रेणियों के माध्यम से प्रवेश का यही तरीका है।

409. वही विज्ञान दो संकायों से मिलकर बना है, अर्थात् ऊर्जा संकाय और समझ संकाय। संकायों द्वारा प्रवेश का यही मार्ग है।

410. वही विज्ञान निर्धारणों में समाहित है। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारक नहीं—विचार-तत्व के भीतर समाहित हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।

411. वह विचार-तत्व विचार-आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'जब कोई मनुष्य इच्छा करता है...' (§400)।
412. इस बिंदु पर आश्रित उत्पत्ति, शक्तियों, श्रेणियों, तत्वों और आधारों को प्रवेश के मार्ग और मिलन स्थल बना दिया गया है। इस प्रकार आश्रित उत्पत्ति, शक्तियों, श्रेणियों और आधारों को प्रवेश के मार्ग के रूप में स्थापित किया जा सकता है।
413. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'आश्रित-उदय, संकाय,
श्रेणियाँ, तत्व, आधार:
वह विधि जिसके द्वारा इन साधनों से प्रवेश मिलता है
क्या यह प्रवेश के तरीकों को बताता है' (§16)।
प्रवेश के मार्गों को संप्रेषित करने का माध्यम समाप्त हो गया है।

---

13. स्पष्टीकरण देने के तरीके में नौ गुना धागा
414. इसमें स्पष्टीकरण देने का तरीका क्या है? [इस आयत में बताया गया है]:
♦

[पृष्ठ 101]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
किसी प्रश्न का उत्तर मिलने पर उसकी तलाश करना
श्लोक में ऐसा क्या था जिसने उकसाया?
इसका प्रश्न स्पष्ट हुआ या नहीं:
यह तरीका स्पष्टीकरण को दर्शाता है' (§17)।
415. उदाहरण के लिए, परायण [सुत्तनिपात के अध्याय] में पूज्य अजित ने भगवान बुद्ध से प्रश्न पूछा [और उन्हें इस प्रकार उत्तर प्राप्त हुआ:]
<' [बताओ] दुनिया किससे घिरी हुई है?
और इसे प्रदर्शित क्यों नहीं किया जा रहा है?
और इस पर क्या लगा है? बताइए।
और इसका सबसे बड़ा डर क्या होगा?
अज्ञानता के कारण संसार कैद है ।
भगवान बुद्ध ने कहा, 'अजिता।'
' यह इच्छा की कमी और उपेक्षा के कारण प्रदर्शित नहीं होता है।'
और लालसा इसे धूमिल कर देती है , मैं कहता हूँ।
पीड़ा ही इसका सबसे बड़ा भय है' (§§63, 65)।
416. प्रश्न के संदर्भ में, '[बताइए] संसार किससे घिरा हुआ है?' भगवान बुद्ध [अपने उत्तर के साथ] कहते हैं, 'अज्ञान से संसार घिरा हुआ है', जिससे एक शब्द स्पष्ट हो जाता है, लेकिन कारण स्पष्ट नहीं होता। 1 प्रश्न के संदर्भ में, 'और यह क्यों प्रदर्शित नहीं होता?' भगवान बुद्ध [अपने उत्तर के साथ] कहते हैं, 'यह इच्छा और उपेक्षा के कारण प्रदर्शित नहीं होता।' इससे एक शब्द स्पष्ट हो जाता है, लेकिन कारण स्पष्ट नहीं होता। प्रश्न के संदर्भ में, 'और यह किससे मढ़ा हुआ है? बताइए', भगवान बुद्ध [अपने उत्तर के साथ] कहते हैं, 'और मैं कहता हूँ, लालसा इसे मढ़ती है।' इससे एक शब्द स्पष्ट हो जाता है, लेकिन कारण स्पष्ट नहीं होता। [लेकिन] प्रश्न के संदर्भ में, 'और इसका सबसे बड़ा भय क्या होगा?' भगवान बुद्ध [अपने उत्तर के साथ] कहते हैं, 'दुःख इसका सबसे बड़ा भय है।' इससे एक शब्द स्पष्ट हो जाता है, और कारण भी स्पष्ट हो जाता है।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'अज्ञान से संसार घिरा हुआ है...' (§415)।

*

416/1 ' आरंभ —उत्तेजना' (अर्थात, 'प्रारंभिक रूप से प्रेरित करने वाला विषय-वस्तु'): रभ 'शुरू करना, उकसाना'। शब्द का यह प्रयोग इस रचना और पे (जैसे, पृष्ठ 101) के लिए विशिष्ट प्रतीत होता है। नेट्टिया के पास इस बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं है। तुलना करें आरंभ-धातु ('उत्तेजना का तत्व' या 'पहल का तत्व': एस. वी, 66) और जर्मन अरभ का क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग 'द्वारा उकसाया गया', 'द्वारा प्रेरित', 'पर निर्भर' (§17; साथ ही विज़. 197) के अर्थ में। यह मूल कभी-कभी लानिब (लटकाना, तुलना करें आलमबना और अरम्मना) और राध (संतुष्ट करना, आमंत्रित करना, जिसके साथ यह अपना पीपी. ए रद्ध साझा करता है) के साथ जुड़ जाता है।

[पृष्ठ 102]
पथप्रदर्शक
417. [फिर से निम्नलिखित प्रश्न और उत्तर हैं:]
हर जगह धाराएँ लगातार प्रवाहित हो रही हैं ।
आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।
'वह क्या है जो धाराओं को बंद कर देता है?'
तो फिर बताओ, धाराओं का अवरोध क्या होता है ?
जिससे धाराएँ सील हो जाती हैं V
दुनिया में जो भी धाराएँ हैं ,
भगवान बुद्ध ने कहा, 'अजिता'
'वे सचेतनता से अलग-थलग हो गए हैं;'
मैं धाराओं के संयम के बारे में बताता हूँ, जिससे
इन्हें सील किया जा सकता है , यह समझ है' > (§§70 और 74)।
418. प्रश्न के संदर्भ में, "धाराएँ हर जगह बहती रहती हैं; उन्हें कौन रोकता है? " भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "संसार में जो भी धाराएँ हैं, वे ध्यान से रुक जाती हैं।" इससे एक शब्द स्पष्ट हो जाता है, लेकिन मूल प्रश्न नहीं। प्रश्न के संदर्भ में, "तो फिर बताइए, धाराओं को रोकने का क्या तरीका है, जिससे धाराएँ रुक जाती हैं? " उत्तर में, "धाराओं को रोकने का तरीका, जिससे वे रुक जाती हैं, वह है समझ।" इससे मूल प्रश्न स्पष्ट हो जाता है।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'संसार में जो भी धाराएँ हैं... (§417)।
♦
419. [पुनः,] प्रश्न के मामले में
समझ और जागरूकता
आदरणीय अजिता ने ऐसा कहा था।
और अब, महोदय, यह नाम और प्रपत्र ,
तो मुझे बताओ कि मैं तुमसे क्या पूछ रहा हूँ ?
इसका अंत कहाँ होता है ? (§77)
[उत्तर सहित]
आपके द्वारा पूछे गए प्रश्न के संबंध में,
अजिता, मैं अब तुम्हें बताऊँगी।
जहां यह नाम और रूप दोनों आते हैं
उनकी शेषहीन मुक्ति के लिए:
चेतना के समाप्त होने के साथ ,
'यहीं पर इसका अंत होता है' > (§77).
उकसावे का कारण स्पष्ट हो गया है।

[पृष्ठ 103]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'तुम्हारे प्रश्न के संबंध में...'
420. [72] जहाँ कहीं भी इस तरह उकसावे को स्पष्ट कर दिया जाता है, प्रश्न का उत्तर मिल जाता है; परन्तु जहाँ कहीं भी उकसावे को स्पष्ट नहीं किया जाता, उस प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं मिला है।
421. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
किसी प्रश्न का उत्तर मिलने पर उसकी तलाश करना
श्लोक में ऐसा क्या था जिसने उकसाया?
इसका प्रश्न स्पष्ट हुआ या नहीं:
यह तरीका स्पष्टीकरण को दर्शाता है' (§17)।
स्पष्टीकरण देने का माध्यम समाप्त हो गया है।
*

---

14. अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
422. इसमें, अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
'विचारों को प्रदर्शित करने पर
एकता और विविधता दोनों
इसलिए किसी भी प्रकार के वियोग का सामना नहीं करना पड़ेगा:
यह विधि अभिव्यक्ति की शर्तों को व्यक्त करती है (§18.)
423. उन [विचारों] को याद रखना चाहिए जैसा कि वे वहाँ प्रदर्शित होते हैं जहाँ वे दिखाई देते हैं [उनके संदर्भों में इस प्रकार]।
424. 'पीड़ा' एक एकता है।
यहां दुख क्या है? < जन्म दुख है , बुढ़ापा दुख है, बीमारी दुख है, मृत्यु दुख है , नापसंद लोगों के साथ रहना दुख है, प्रिय लोगों से बिछड़ना दुख है, इच्छा पूरी न होना दुख है; संक्षेप में, ये पांचों प्रकार के दुख हैं > (एस.वी. 421; तुलना करें पे 5): रूप दुख है, भावना दुख है, बोध दुख है, संकल्प दुख हैं, चेतना दुख है। यह विविधता है।
425. 'दुख की उत्पत्ति' एक एकता है।
तो दुख का मूल कारण क्या है? < यह वह लालसा है जो अस्तित्व को नवीकृत करती है, जिसमें आनंद और कामवासना होती है , इस और उस का आनंद लेना , अर्थात् इंद्रिय सुख की लालसा , अस्तित्व की लालसा, गैर-अस्तित्व की लालसा > (एस.वी. , 421)। यह विविधता है।

[पृष्ठ 104]
पथप्रदर्शक
426. 'दुखों का निवारण' एक एकता है।
इसमें दुख का निवारण क्या है ? < यह उसी लालसा का पूर्णतः लुप्त होना, उसका रुक जाना , उसे त्याग देना, उसे छोड़ देना, उस पर निर्भर न रहना और उसे अस्वीकार करना है > (एस.वी. , 421)। यही विविधता है ।
427. 'दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग' एक एकता है।
[73] इसमें, दुख के निवारण का मार्ग क्या है ? < यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है, अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता > (एस.वी. , 421-2)। यह विविधता है
428. 'पथ' एक एकता है।

यहां, मार्ग क्या है? यह नरक की ओर जाने वाला मार्ग है, पशु गर्भ की ओर जाने वाला मार्ग है, प्रेतलोक की ओर जाने वाला मार्ग है, असुर गर्भ की ओर जाने वाला मार्ग है, स्वर्ग की ओर जाने वाला मार्ग है, मानवता की ओर जाने वाला मार्ग है, विनाश की ओर जाने वाला मार्ग है। यही विविधता है।

429. 'समाप्ति' एक एकता है।

इसमें, समाप्ति क्या है? यह जानबूझकर की गई समाप्ति है, अनजाने में की गई समाप्ति है; स्वीकृति की समाप्ति, प्रतिरोध की समाप्ति; अहंकार की समाप्ति, तिरस्कार की समाप्ति, प्रभुत्व की समाप्ति, ईर्ष्या की समाप्ति, लोभ की समाप्ति, सभी विकारों की समाप्ति। यही विविधता है।

430. 'रूप' एक एकता है।

इसमें, रूप क्या है? रूप चार महान सत्ताएँ हैं (cf. एम. आई.

429/1 ' पतिसंख-निरोध - जानबूझकर समाप्ति' और 'अत्यंतसंखनिरोध - अनजाने में समाप्ति': ये दोनों यौगिक शब्द पीईडी में नहीं हैं और बाद वाला सीपीडी (खंड 1) में नहीं है; देखें केवी. 226 और केवी. अनुवाद ('विवाद के बिंदु') 137, टिप्पणी; मिल्न भी देखें (तुलना करें पीई 151, पंक्ति 15 निरोधसमापत्ति(म) अप्तसंखया)। नेटिआ कहते हैं, ' पतिसंखनिरोध जानबूझकर (पतिसंखया) के कारण, विरोध को अस्तित्व में रखने (उत्पन्न होने - पतिपक्खभावनया) के कारण समाप्ति है ; या जब उस तरह से विरोध नहीं हुआ है, तो यह उस चीज का न उत्पन्न होना है जो उत्पन्न होने के लिए तैयार है, क्योंकि उसके उत्पन्न होने का विरोध पहले से ही अस्तित्व में है।' अप्पा - तिसंखनिरोध का अर्थ है निर्धारित विचारों और उनके व्यक्तिगत स्वरूपों का अंत: इसका तात्पर्य क्षण-क्षण के लिए होने वाला अंत है (पृष्ठ 109)। यह उल्लेखनीय है कि ये दोनों शब्द यहाँ उपस्थित हैं जबकि पे में अनुपस्थित हैं। नेत्तिया के अनुसार, दूसरे शब्द का अर्थ है अनित्यता की प्रक्रिया में निरंतर घटित होने वाला अंत। तुलना करें केवीए (बर्मी संस्करण, पृष्ठ 140) और केवीएए (बर्मी संस्करण, पृष्ठ 56)। ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिखता कि इन शब्दों के बाद के स्वतंत्र संस्कृत महायान विकास का यहाँ किसी भी तरह से संकेत दिया गया है (जिसके लिए देखें, उदाहरण के लिए, ओ. रोसेनबर्ग, डाई प्रोब्लेमे डेर बुद्धिस्टिशेन फिलोसोफिक, हीडलबर्ग, 1924, पृष्ठ 128; ई. ओबरमिलर, द डॉक्ट्रिन ऑफ प्रज्ञा-परमिता , लेनिनग्राद, 1932; और ई. लामोट, हिस्टोइरे डू बौद्धिस्मे इंडेन , लौवेन, 1958, पृष्ठ 675)।

[पृष्ठ 105]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

185), और चार महान संस्थाओं को मानने वाले रूप का कोई भी विवरण (एम. iii, 17)।

431. इसमें चार प्रमुख तत्व क्या हैं? वे हैं पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व और वायु तत्व। इन तत्वों को दो रूपों में समझाया जा सकता है, संक्षेप में [जैसा कि ऊपर बताया गया है] और विस्तार से।

432. तत्वों को विस्तार से कैसे समाहित किया जाता है? पृथ्वी तत्व को बीस भावों में, जल तत्व को बारह भावों में, अग्नि तत्व को चार भावों में तथा वायु तत्व को छह भावों में विस्तार से समाहित किया जाता है।

433. पृथ्वी तत्व को किन बीस अवस्थाओं में विस्तार से वर्णित किया जा सकता है? [74] इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दा; हृदय, यकृत, मध्य भाग, तिल्ली, आंतें; आंत्र, अंतःस्रावी अंग, गला, मल (तुलना करें एम. i, 421), और सिर में मस्तिष्क (भजन 1, 7) हैं। पृथ्वी तत्व को इन बीस अवस्थाओं में विस्तार से वर्णित किया जा सकता है।

434. बारह भावों में जल तत्व का विस्तृत वर्णन किस प्रकार होता है? इस शरीर में पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा; आँसू, चिकनाई, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल और मूत्र होते हैं (देखें एम. i, 422)। जल तत्व का विस्तृत वर्णन इन बारह भावों में होता है।

435. किन चार अवस्थाओं में अग्नि तत्व का विस्तृत वर्णन होता है? इनमें वे अवस्थाएँ शामिल हैं जिनसे शरीर को गर्मी मिलती है, जिनसे बुढ़ापा आता है, जिनसे शरीर जलता है, और जिनसे खाया, पिया, चबाया और चखा गया भोजन पूरी तरह से पच जाता है (देखें एम. आई, 422)। इन चार अवस्थाओं में अग्नि तत्व का विस्तृत वर्णन होता है।

436. वायु तत्व को विस्तार से किन छह भावों में समाहित किया जा सकता है? ऊपर की ओर जाने वाले बल, नीचे की ओर जाने वाले बल, पेट में लगने वाले बल, उदर में लगने वाले बल, अंगों से होकर गुजरने वाले बल और श्वास अंतर्ग्रहण एवं श्वास बहिर्ग्रहण (देखें एम. आई, 422)। इस प्रकार वायु तत्व को छह भावों में विस्तार से समाहित किया जा सकता है।
437. जो व्यक्ति इन बयालीस अवस्थाओं में व्यक्तिगत सार 1 के संदर्भ में तत्वों का विस्तृत पुनर्वर्णन, आकलन, विश्लेषण, पूछताछ और समीक्षा करता है, उसे शरीर या शरीर के किसी भी अंग में कुछ भी लेने योग्य नहीं दिखता। जैसे कोई गंदे नाले की जाँच करे तो उसे कुछ भी लेने योग्य नहीं दिखेगा, जैसे कोई शौचालय की जाँच करे तो उसे कुछ भी लेने योग्य नहीं दिखेगा, उसी प्रकार [75] जो व्यक्ति इन बयालीस अवस्थाओं में व्यक्तिगत सार 1 के संदर्भ में तत्वों का विस्तृत पुनर्वर्णन, आकलन, विश्लेषण, पूछताछ और समीक्षा करता है, उसे शरीर या शरीर के किसी भी अंग में कुछ भी लेने योग्य नहीं दिखता।

437/1 देखें n. 453/1. इस पैराग्राफ के लिए यह भी देखें Vis. ch. viii, §47 /p. 241.

[पृष्ठ 106]
पथप्रदर्शक
इन बयालीस मनोदशाओं में व्यक्तिगत सार के संदर्भ में, शरीर या शरीर के किसी भी अंग को लेने लायक कुछ भी नहीं दिखता है।
438. इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा: < अब अपने भीतर के पृथ्वी तत्व और बाह्य पृथ्वी तत्व दोनों को, उनके स्वरूप को सही ढंग से समझते हुए, इस प्रकार देखना चाहिए: 'मैं यह नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' 9 इस प्रकार, उनके स्वरूप को सही ढंग से समझते हुए देखने पर, व्यक्ति को पृथ्वी तत्व में वैराग्य प्राप्त होता है, और पृथ्वी तत्व के प्रति वासना उसके हृदय से विलीन हो जाती है । अब अपने भीतर के जल तत्व और बाह्य जल तत्व ... अपने भीतर के अग्नि तत्व और बाह्य अग्नि तत्व ... अपने भीतर के वायु तत्व और बाह्य वायु तत्व दोनों को, उनके स्वरूप को सही ढंग से समझते हुए, इस प्रकार देखना चाहिए: 'मैं यह नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है ।' इस प्रकार, उनके स्वरूप को सही ढंग से समझते हुए देखने पर, व्यक्ति को वायु तत्व में वैराग्य प्राप्त होता है, और वायु तत्व के प्रति वासना उसके हृदय से विलीन हो जाती है > (cf. एम. i, 421)। यह विविधता है।
439. 'अज्ञान' एक एकता है।
यहाँ, अज्ञान क्या है? यह दुख के बारे में अनभिज्ञता, दुख के कारण के बारे में अनभिज्ञता, दुख के निवारण के बारे में अनभिज्ञता और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के बारे में अनभिज्ञता है (देखें पे 116); अतीत के बारे में अनभिज्ञता, भविष्य के बारे में अनभिज्ञता, अतीत और भविष्य दोनों के बारे में अनभिज्ञता; विशिष्ट परिस्थिति और आश्रित रूप से उत्पन्न विचारों के बारे में अनभिज्ञता; यह ऐसी कोई भी अनभिज्ञता, दृष्टिहीनता, अवास्तविकता, दूसरे से ज्ञान प्राप्त करने में विफलता, स्वयं को ज्ञान प्राप्त करने में विफलता, अंतर्भेदनहीनता, विशेषता बताने में विफलता, पुनर्विशेषता बताने में विफलता, प्रतिविशेषता बताने में विफलता [76], उपेक्षा, अनुभवहीनता, बुद्धिहीनता, मूर्खता, अनभिज्ञता, भ्रम, माया, उलझन, अज्ञान, अज्ञान की बाढ़, अज्ञान का बंधन, अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति, अज्ञान का जुनून, अज्ञान का बंधन, निष्फलता की जड़ के रूप में भ्रम है। यह विविधता है।
440. 'विज्ञान' एक एकता है।
यहाँ विज्ञान क्या है? यह दुख के बारे में ज्ञान है, दुख के कारण के बारे में ज्ञान है, दुख के निवारण के बारे में ज्ञान है, दुख के निवारण के मार्ग के बारे में ज्ञान है; अतीत के बारे में ज्ञान है, भविष्य के बारे में ज्ञान है, अतीत और भविष्य दोनों के बारे में ज्ञान है; विशिष्ट परिस्थितियों और आश्रित विचारों के बारे में ज्ञान है; यह इस प्रकार का कोई भी अंतर्संबंधी ज्ञान है।

438/1 यह वाक्यांश, nev' csaham , इस सूत्र के सामान्य कथन के अतिरिक्त है।

[पृष्ठ 107]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
स्थिर रहना, समझ की क्रिया , जांच, पुनर्जांच, विचारों की जांच, चरित्र-निर्धारण, पुनर्-चरित्र-निर्धारण, प्रति-चरित्र-निर्धारण, ज्ञान, कौशल, चतुराई, स्पष्टीकरण, चिंतन , जांच-पड़ताल, व्यापकता, बुद्धि, मार्गदर्शन, अंतर्दृष्टि, जागरूकता, प्रेरणा , समझने की क्षमता,

समझने की शक्ति, समझने का हथियार, समझने का [कहानी वाला] महल, समझने का प्रकाश, समझने की रोशनी, समझने की स्पष्टता, समझने का रत्न, भ्रमहीनता, विचारों की जांच, सही दृष्टिकोण, विचारों की जांच, ज्ञानोदय कारक, मार्ग में शामिल पथ-कारक (धस्. 292; तुलना करें पे 122)। यह एक विविधता है।

441. 'उपलब्धि' एक एकता है।

इसमें, प्राप्ति क्या है? प्रत्यक्ष प्राप्ति, अप्रत्यक्ष प्राप्ति, न प्रत्यक्ष न अप्रत्यक्ष प्राप्ति, शून्यता की प्रत्यक्ष प्राप्ति, और समाप्ति की प्राप्ति। यह विविधता है।

442. 'ध्यान करने वाला' एक एकता है।

यहाँ, ध्यान करने वाला कौन है? एक दीक्षित ध्यान करने वाला है, एक सिद्ध ध्यान करने वाला है, एक न दीक्षित न सिद्ध ध्यान करने वाला है, एक 'शुद्ध नस्ल' का ध्यान करने वाला है, एक 'शौकिया' ध्यान करने वाला है (देखें ए. वी, 323; तुलना करें पे 146), एक ध्यान करने वाला है जो विचारों से शासित है, एक ध्यान करने वाला है जो लालसा से शासित है, एक ध्यान करने वाला है जो समझ से शासित है। [77] यह एक विविधता है।

443. 'एकाग्रता' एक एकता है।

यहां एकाग्रता क्या है? संघर्ष के साथ एकाग्रता, संघर्ष के बिना एकाग्रता; जोखिम के साथ एकाग्रता , जोखिम के बिना एकाग्रता; दुर्भावना के साथ एकाग्रता, दुर्भावना रहित एकाग्रता; सुख के साथ एकाग्रता [अर्थात, पहले दो ध्यान], सुख रहित एकाग्रता [अर्थात, अंतिम दो ध्यान]; भौतिकवादी एकाग्रता, गैर-भौतिकवादी एकाग्रता; प्रेरणा -प्रेरित संकल्पों के साथ एकाग्रता, एकाग्रता-

---

441/1 ' विभूतसन्नसमापत्ति - शून्यता की अनुभूति करने वाला बोध': नेत्तिआ: 'चेतना की अनंतता से युक्त आधार की प्राप्ति; क्योंकि यह प्रथम निराकार अवस्था (अर्थात, अंतरिक्ष) का संज्ञान करने वाली चेतना (अब समाप्त और विगत) और प्रथम निराकार अवस्था का संज्ञान करने वाली चेतना (सचेतन बोध) की शून्यता (विभवनातो) (इसके अब समाप्त और अतीत होने के कारण) के कारण है, इसलिए इसे ऐसा कहा जाता है (देखें विस. अध्याय x, §§60-5/पृष्ठ 339-40)। लेकिन कुछ लोग इसे विभूतरूपसन्न पढ़ते हैं, और उनके मत में इसका अर्थ शेष निराकार अवस्थाएँ होगा' (पृष्ठ 113)। यह व्याख्या अस्पष्ट विभवति को उसके नकारात्मक अर्थ में लेती है। देखें n. 843 /I लेकिन यहां संदर्भ शायद ' पथविसन्न विभूत' आदि का है, ए. वी., 325 पर । 441/2 निरोधसमापत्ति को §580 पर पढ़ें ।

443/1 सा-राना और अ-राना के लिए n. 297/2 देखें।

443/2 ' अमिसा —भौतिकवादी': यह शब्द सामान्यतः भोजन और दवा जैसी भौतिक आवश्यकताओं को संदर्भित करता है, और समिसा का संबंध इनसे है।

[पृष्ठ 108]

पथप्रदर्शक

बिना किसी प्रोत्साहन के निर्धारण; 3 एकतरफा एकाग्रता, द्विपक्षीय एकाग्रता, और दोनों तरीकों से बनी रहने वाली एकाग्रता; 4 विचार और अन्वेषण के साथ एकाग्रता, बिना विचार और मात्र अन्वेषण के एकाग्रता, बिना विचार और बिना अन्वेषण के एकाग्रता (देखें डी. iii, 219); निम्न अवस्था से संबंधित एकाग्रता, स्थिरता से संबंधित एकाग्रता, भेद से संबंधित एकाग्रता, भेद से संबंधित एकाग्रता (देखें पी.एस. i, 48); संसारों से संबंधित एकाग्रता, संसारों से अलग एकाग्रता; गलत एकाग्रता, सही एकाग्रता। यही विविधता है।

444. 'मार्ग' एक एकता है।

यहाँ मार्ग क्या है? विलासिता का मार्ग है, सादगी का मार्ग है, मध्य मार्ग है (ए. i, 295); अधीर का मार्ग है, धैर्यवान का मार्ग है; शांत करने का मार्ग है, वश में करने का मार्ग है (डी. iii, 229 देखें); सुस्त परिचय का कष्टदायक मार्ग है, तीव्र परिचय का कष्टदायक मार्ग है, सुस्त परिचय का सुखद मार्ग है, तीव्र परिचय का सुखद मार्ग है (डी. iii, 228 देखें)। यह विविधता है (धारा 264 भी देखें)।

445. 'शरीर' एक एकता है।

इसमें शरीर क्या है? नाम-शरीर और रूप-शरीर हैं। इसमें रूप-शरीर क्या है? यह सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दा; हृदय, यकृत, मध्य भाग, तिल्ली, फेफड़े; आंतें, अंतर्वस्त्र, गला, गोबर; पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा; आँसू, चिकनाई, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल, मूत्र; और सिर में स्थित मस्तिष्क (भजन संहिता 1, 7 देखें)। [78] यह रूप-

शरीर है (धारा 226 देखें)। नाम-शरीर में भावना, बोध, चुनाव, संज्ञान, संपर्क और ध्यान शामिल हैं। यह नाम-शरीर है (धारा 226 देखें)। यह विविधता है।

446. इस प्रकार, जबकि कुछ विचार [जैसे, 'जन्म'] का सार समान होता है।

जबकि निरमिसा उससे विरक्त है। 'शरीर और आत्मा' भी इन्हीं विपरीत भावों को व्यक्त करते हैं।

443/3 ' ससंखारा —प्रेरणा-निर्धारण के साथ' और ' असंखारा —प्र.-डी. के बिना' पीईडी में नहीं हैं ; बाद वाला सीपीडी में है। धस. 146 और ए. iv, 72 भी देखें । 443/4 नेटिआ : '"एकतरफा रूप से अस्तित्व में रखी गई एकाग्रता" वह है जो एक नंगे-(शुष्क-) अंतर्दृष्टि कार्यकर्ता में होती है (नीचे देखें)। "द्विपक्षीय रूप से अस्तित्व में रखी गई एकाग्रता" वह है जिसका वाहन शांत है (विज़. अध्याय xviii. §3/पृष्ठ 587); और "एकाग्रता जिसका अस्तित्व में रहना दोनों तरह से अस्तित्व में रखा जाता है" एक शरीर-साक्ष्य में एकाग्रता है (एम. i, 478; पुग. 14; विज़. अध्याय xxi, §§74-5/ पृष्ठ 659 देखें); क्योंकि वह ऐसा व्यक्ति है जिसकी एकाग्रता दोनों तरीकों से (अधिकतम शांति और अंतर्दृष्टि के साथ) बनी रहती है (पृष्ठ 114)। 'शुद्ध अंतर्दृष्टि कार्यकर्ता' (सुक्खा विपस्सक) शब्द के लिए दर्शनशास्त्र के अध्याय 18 और 21 देखें ।

[पृष्ठ 109]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

[अर्थात इस उदाहरण में 'पीड़ा'] किसी [अन्य संबंधित] विचार के रूप में, [जैसे, इस उदाहरण में 'बुढ़ापा'], वह पूर्व विचार इस बाद वाले विचार के साथ [उनकी सामान्य] एकता के माध्यम से एकता पाता है, फिर भी यह उस चीज़ के कारण इससे भिन्न है जिसके द्वारा इसकी विशिष्ट विशेषता है।

अतः जब किसी से शिक्षण के सभी रूपों को समाहित करने वाले पद्य-प्रकार, या गद्य-व्याख्याओं, या पद्य-व्याख्याओं के बारे में पूछा जाए, तो प्रश्न इस प्रकार पूछा जाना चाहिए: 'तो फिर, वह एकता या विविधता के अनुसार कैसे पूछता है? ' यदि एकता के अनुसार पूछा जाए, तो उत्तर एकता के अनुसार दिया जाना चाहिए। यदि विविधता के अनुसार पूछा जाए, तो उत्तर विविधता के अनुसार दिया जाना चाहिए। यदि प्राणियों के संदर्भ में पूछा जाए, तो उत्तर प्राणियों के संदर्भ में दिया जाना चाहिए। यदि विचारों के संदर्भ में पूछा जाए, तो उत्तर विचारों के संदर्भ में दिया जाना चाहिए (देखें अनुच्छेद 860 और 943)। जैसा प्रश्न पूछा गया है, वैसा ही उत्तर दिया जाना चाहिए।

447. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

'विचारों को प्रदर्शित करने पर
एकता और विविधता दोनों
इसलिए किसी भी प्रकार के वियोग का सामना नहीं करना पड़ेगा:
यह मोड अभिव्यक्ति की शर्तों को व्यक्त करता है (§18)।
अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने का माध्यम समाप्त हो गया है।

*

---

15. आवश्यकताओं को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा

448. इसमें आवश्यकताओं को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]

'ऐसे विचार जो प्रत्येक विचार को जन्म देते हैं'
उचित संबंध में शर्तें भी हैं;
और इसके द्वारा कारण का पता लगाकर
यह मोड आवश्यक को व्यक्त करता है' (§15)।

449. कोई भी विचार जो किसी विचार को जन्म देता है, वह उस विचार की आवश्यकता है।

450. आवश्यक वस्तु की विशेषता क्या है? आवश्यक वस्तु में जनरेटर की विशेषता है।

449/1 यानी, एक विचार जो दूसरे विचार की अनिवार्य शर्त है , जैसे, मान लीजिए, अज्ञानता निर्धारण के लिए है।

[पृष्ठ 110]

पथप्रदर्शक

451. दो प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं, अर्थात् कारण और शर्त।

452. इसमें, कारण की विशेषता क्या है? स्थिति की विशेषता क्या है? कारण की विशेषता यह है कि वह साझा नहीं होता, जबकि स्थिति की विशेषता यह है कि वह साझा होती है। 1

453. ऐसा कैसे हो सकता है? उसी तरह जैसे किसी बीज के अंकुरण के लिए बीज और अंकुर एक समान नहीं होते, जबकि मिट्टी और जल दोनों बीज और अंकुर के लिए समान होते हैं; क्योंकि यद्यपि मिट्टी और जल दोनों अंकुरण के लिए एक शर्त हैं, फिर भी उसका कारण उसका व्यक्तिगत सार है; 1 या उसी तरह जैसे बर्तन में रखा दूध दही बन जाता है , फिर भी एक साथ कोई घटना नहीं होती।

452/1 यह भेद और ये दो परिभाषाएँ शायद इस काम की विशेषता हैं।

453/1 'सभाव —व्यक्तिगत सार' के लिए देखें पृ. सं. अध्याय 8, संख्या 68, जहाँ इस शब्द पर चर्चा की गई है और विभिन्न टीका संबंधी व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं। एकमात्र पिटक संदर्भ भजन 2, 178 में मिलता है (या तो 'जन्मजात रूप व्यक्तिगत सार से रहित है ' या 'जन्मजात रूप व्यक्तिगत सार से रहित है', यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस अंश में क्रियापद (सभावने) को कैसे लिया गया है, जिसने भजन संहिता को बहुत परेशान किया है)। मिलन सं. 90, 164, 212, 360 भी देखें; साथ ही पे 104 भी। टीकाओं में यह शब्द बहुत बार प्रयोग किया गया है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग 'कारण' (हेतु) के पर्यायवाची के रूप में किया गया है, जो टीकाओं में 'प्रकृति' (पकति) या किसी भी विचार (धम्म) के पर्यायवाची के रूप में किए गए प्रयोग से भिन्न है, जो केवल एक नाम या निषेध नहीं है। नेटी ए : "इसका व्यक्तिगत सार ही इसका कारण है": वही (अस्तित्ववान) सार (समान-भाव), बीज, ही कारण है। लेकिन क्या यह तथ्य नहीं है कि बीज अंकुर आदि के समान नहीं है? —ऐसा कहना असंभव है; क्योंकि किसी अन्य प्रकार के बीज से उस प्रकार के (अंकुर) का उद्भव नहीं होता है।" (पृष्ठ 115)। नेटी के तर्क में यहाँ एक छिपी हुई (और स्पष्ट रूप से अनजाने में?) अस्पष्टता है, अर्थात्, बीज-वस्तु (व्यक्तिगत) और बीज-प्रकृति (सिद्धांत) के बीच की अस्पष्टता। विस स्पष्ट रूप से गैर-बौद्ध 'अंतर्निहितता' या 'अंतर्निहितता' (समवया) के सिद्धांत का खंडन करता है, जिसके अनुसार कारण परिणाम में अंतर्निहित माना जाता है (विस. 513), और विस ए पर्याप्त और पर्याप्त कारण के रूप में स्वभाव के सिद्धांत को अस्वीकार करता है (पीपीएन., अध्याय xvi, टिप्पणी 23); डी. i, 53 में मक्खली गोसला को दिए गए गलत सिद्धांत की भी तुलना करें, जिसमें भाव का प्रयोग किया गया है (कुछ लोग इसे स्वभाव पढ़ते हैं)। स्वभाव शब्द का भारतीय संस्कृत दर्शन में, महायान-बौद्ध और गैर-बौद्ध दोनों में, व्यापक प्रचलन था, और इसने कई रूप धारण किए, कभी-कभी अरस्तू द्वारा 'गुणों' से अलग 'सार' के प्रयोग के करीब पहुँच गया। दोहराने के लिए, ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध ने इस शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया। *

453/2 यह एक ऐसा उदाहरण है जहाँ भवति का अनुवाद 'बन जाता है' के रूप में करना गलत होगा। नेत्तिया एक तात्विकीय कठिनाई को महसूस करते हैं जब वे कहते हैं, "'दही है (दधि भवति)' यह कथन पहचान मार्गदर्शक रेखा (एकत्त-नय - देखें दृष्टि 585) या अभेदीकरण के रूपक (अभेदोपचार - देखें पृष्ठ संख्या अध्याय 8, संख्या 65) के अनुसार है, न कि किसी अन्य तरीके से; क्योंकि दूध दही नहीं है (न होती) , इसीलिए 'और फिर भी दूध और दही का एक साथ होना संभव नहीं है' कहा गया है' (पृष्ठ 115)। 'बन जाता है' के रूप में अनुवाद करने से व्याख्या के लिए कुछ भी नहीं बचता और उस 'प्रथम क्षण' को निर्धारित करने की कठिनाई छिप जाती है जब यह दही होता है ।

[पृष्ठ 111]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

दूध और दही का बनना, दोनों ही स्थितियों में कारण और परिस्थिति का एक साथ होना संभव नहीं है।

454. अब पुनर्जन्मों का यह चक्र कारण और शर्त दोनों के साथ घटित होता है; क्योंकि यह कहा गया है: <अज्ञान को शर्त मानकर, निर्धारण; निर्धारण को शर्त मानकर, चेतना; ... और इसी प्रकार आश्रित उत्पत्ति का पूरा सूत्र (धारा 2, 1 देखें)। परिणामस्वरूप अज्ञान कारण है और अतार्किक ध्यान शर्त है (पे. 104 और धारा 462 देखें)।

455. पूर्व अज्ञान ही परवर्ती अज्ञान का कारण है। यहाँ पूर्व अज्ञान अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति है, जबकि परवर्ती अज्ञान अज्ञान का प्रत्यक्ष जुनून है। पूर्व अंतर्निहित अज्ञान प्रवृत्ति, निकटवर्ती कारणता के आधार पर, परवर्ती अज्ञान के जुनून का कारण है, जैसे बीज और अंकुर बढ़ते हैं, लेकिन जहाँ कहीं भी उस बीज का कोई फल होता है, तो वह बीज उस फल का परवर्ती कारण होता है; क्योंकि कारण दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् निकटवर्ती कारण (जैसे बीज का अंकुर के लिए) और परवर्ती कारण (जैसे बीज का फल के लिए)। 2 अतः अज्ञान का कारण भी दो प्रकार का होता है, अर्थात् निकटवर्ती कारण और परवर्ती कारण।

456. या उसी प्रकार जैसे पात्र, बाती और तेल, मानो, प्रकाश की अवस्था हैं, परन्तु उसका कारण-स्वयं-सार नहीं—क्योंकि लौ के बिना पात्र, बाती और तेल, जो प्रकाश की अवस्था हैं, को प्रज्वलित नहीं किया जा सकता—; स्वयं-सार-सार प्रकाश के समान है। अतः स्वयं-सार कारण है, जबकि अन्य-सार अवस्था है; 1 स्वयं में कारण है जबकि उससे बाह्य अवस्था है; जनक कारण है जबकि सहायक 2

455/1 4 परिब्रुहाना —बढ़ रहा है': पी.ई.डी. में नहीं है ।

455/2 देखें वि. 532 (अनंतरपच्चया और समनंतरपच्चया) और 536 (अनंतरूपनिस्सायपच्चया) चर्चा के लिए। यह स्पष्ट नहीं है कि नेट्टी में पट्टाना को ध्यान में रखा गया है या नहीं। समनंतर-हेतु और परंपरा-हेतु इसी कृति और पे (देखें पे 77 और 104-5) तक सीमित प्रतीत होते हैं ।

456/1 सबावा ('व्यक्तिगत सार') और परावा ('अन्य सार') का यह प्रयोग सीधे पे (पृष्ठ 104) से लिया गया है। यह इस तर्क को विशुद्ध रूप से सत्तामीमांसा संबंधी बनाता है। भाव कारणवाचक संज्ञा है जो भू से उत्पन्न हुई है, अर्थात् 'अस्तित्व बनाना', 'अस्तित्व में बनाए रखना', 'सार', 'स्वरूप' या 'स्वरूप', एक पहचानने योग्य विशिष्ट गुण के अर्थ में।

456/2 हेतु ('कारण') की यह परिभाषा, पच्चया ('स्थिति') की तुलना में सामान्यता के निचले स्तर पर, इस कृति के लिए विशिष्ट प्रतीत होती है। सूत्रों में कोई अंतर नहीं देखा जा सकता। अभिधम्म में हेतु छह हेतुओं तक ही सीमित रहता है , अर्थात् लोभ आदि, जबकि पच्चया या तो पूर्ववर्ती (जैसे, कर्म) हो सकता है, या परवर्ती (अर्थात, किसी समकालीन रूप-धम्म के विरुद्ध चेतसिकधम्म जो पहले उत्पन्न हुआ हो लेकिन दीर्घ उपस्थिति (तिथि) के कारण समाप्त हो जाता है)।

[पृष्ठ 112]

पथप्रदर्शक

यह स्थिति है; जो साझा नहीं है वह कारण है जबकि जो साझा है वह स्थिति है।

457. निरंतरता का अर्थ, गैर-बाधा का अर्थ, फल का अर्थ, घटित होने का अर्थ, अस्तित्व के नवीनीकरण का अर्थ, पुनः जोड़ने का अर्थ, जुनून का अर्थ, बाधा का अर्थ, अंतर्निहित प्रवृत्ति का अर्थ, उन्मूलन न होने का अर्थ, अज्ञानता का अर्थ, प्रवेश न होने का अर्थ, निदान न होने का अर्थ, चेतना के बीज का अर्थ है (cf. ए. i, 224)।

458. जहाँ व्यवधान नहीं होता, वहाँ निरंतरता होती है, जहाँ निरंतरता होती है, वहाँ [80] घटना होती है, जहाँ घटना होती है, वहाँ फल होता है, जहाँ फल होता है, वहाँ पुनर्संबंध होता है, 1 जहाँ पुनर्संबंध होता है, वहाँ अस्तित्व का नवीनीकरण होता है, जहाँ अस्तित्व का नवीनीकरण होता है, वहाँ बाधा होती है, जहाँ बाधा होती है, वहाँ जुनून होता है, जहाँ जुनून होता है, वहाँ उन्मूलन नहीं होता, जहाँ उन्मूलन नहीं होता, वहाँ अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है, जहाँ अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है, वहाँ प्रवेश नहीं होता, जहाँ प्रवेश नहीं होता, वहाँ अज्ञान होता है, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ दोषों से प्रभावित अविभाजित चेतना होती है, जहाँ दोषों से प्रभावित अविभाजित चेतना होती है, वहाँ बीज का अर्थ होता है (देखें §3°4)। ... .

459. सद्गुण श्रेणी एकाग्रता श्रेणी की शर्त है, एकाग्रता श्रेणी समझ श्रेणी की शर्त है, समझ श्रेणी मुक्ति श्रेणी की शर्त है, मुक्ति श्रेणी मुक्ति के ज्ञान और दर्शन श्रेणी की शर्त है।

या समरूप (अर्थात, चेतसिका धम्म जो एक साथ उत्पन्न और समाप्त होते हैं, या जो रूप-धम्म के साथ उत्पन्न होते हैं लेकिन पहले समाप्त हो जाते हैं)। हेतुपच्चय भी पत्थाना में सूचीबद्ध पच्चय के 24 प्रकारों में से एक है (देखें दर्शनशास्त्र अध्याय 17)। बौद्ध धर्म प्रथम कारण की अनुमति नहीं देता (§644; दर्शनशास्त्र अध्याय 17, §§35ff./पृष्ठ 525)।

458/1 ' पतिसंधि -पुनर्मिलन' (या 'पुनर्जन्म-संिलन'): पी.ई.डी. का लेख अपर्याप्त है, और 'पुनर्जन्म' शब्द के दुर्भाग्यपूर्ण चयन के कारण भ्रामक भी है (इसके अलावा, एकमात्र सूत्र संदर्भ एम. iii, 230 की अनदेखी की गई है, जिसका एक अलग, गैर-तकनीकी अर्थ

है)। कुछ तकनीकी अभिधम्म और टीका संदर्भ हैं: पीटीएन, 320, आदि, पीएस. ii, 72, आदि, विस. 460। टीका के अनुसार अर्थ: जबकि मरणासन्न व्यक्ति की अंतिम चेतना के लिए चुति-चित्त का प्रयोग किया जाता है, वहीं पुनर्जन्म के बाद की पहली चेतना के लिए पतिसंधि - चित्त का प्रयोग किया जाता है, जो मृत्यु-चेतना के तुरंत बाद आती है और उससे जुड़ जाती है। इस प्रकार, बिना किसी 'वस्तु'—चेतना या किसी अन्य वस्तु—के स्थायित्व के अटूट निरंतरता बनी रहती है। अज्ञान और लालसा के कारण, मरते हुए मन से पुनः जुड़ने वाले मन तक केवल कर्म की 'गति' ही संप्रेषित या 'स्थानांतरित' होती है।

[पृष्ठ 113]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।

460. जल-स्थानों का ज्ञान इस बात के ज्ञान की शर्त है कि क्या [पर्याप्त] पिया गया है, [पर्याप्त] पिया गया है इसका ज्ञान [सही] मात्रा के ज्ञान की शर्त है, [सही] मात्रा का ज्ञान स्वयं के ज्ञान की शर्त है (§167)।

461. या उसी तरह जैसे <आँख चेतना आँख और रूपों पर निर्भर करती है > (एम. i, 111; iii, 285): इसमें, आँख प्रधानता की सशर्तता के माध्यम से एक स्थिति है, जबकि रूप वस्तु की सशर्तता के माध्यम से एक स्थिति हैं, प्रकाश 1 सह-समर्थन के माध्यम से एक स्थिति है, और ध्यान, व्यक्तिगत-सार के रूप में, कारण है (cf. §454)।

462. जब चेतना की स्थिति निर्धारण है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब नाम-रूप की स्थिति चेतना है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब छह प्रकार के आधार की स्थिति नाम-रूप है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब संपर्क की स्थिति छह प्रकार के आधार है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब अनुभूति की स्थिति संपर्क है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब लालसा की स्थिति अनुभूति है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब धारणा की स्थिति लालसा है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब अस्तित्व की स्थिति धारणा है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब जन्म की स्थिति अस्तित्व है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब वृद्धावस्था और मृत्यु की स्थिति जन्म है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब दुःख की स्थिति वृद्धावस्था और मृत्यु है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब विलाप की स्थिति दुःख है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। जब पीड़ा की स्थिति विलाप है, तब उसका व्यक्तिगत सार ही उसका कारण है। दुःख की अवस्था पीड़ा है, जबकि उसका मूल तत्व उसका कारण है। वहीं निराशा की अवस्था दुःख है, जबकि उसका मूल तत्व उसका कारण है।

461/1 नेत्र-चेतना के उद्भव की शर्तों में से एक के रूप में 'प्रकाश' (आलोक) का समावेश त्रिपिटक से बाद में हुआ है, जिसमें इसका उल्लेख उस रूप में नहीं है। तुलना करें: विस . 488-9 (पूर्व शिक्षकों का उद्धरण)। यह किसी भी मौजूदा पाली कृति में सबसे पहला उल्लेख होना चाहिए, हालांकि एनडी2 (234) में दिए गए अंश की तुलना करें: ' चक्खुनपुरिसो आलोकेति रूपगतनि\ तुलना करें 1). iii, 223 —' आलोकसन्ना\ 462/1 इससे पहले (§§452 और 456) इसका अर्थ निरंतरता में पूर्व चेतना होना चाहिए, और यही बात बाकी सब पर भी लागू होती है। नेत्तिया कहते हैं, 'पुण्य (अपराध और अविचलितता) के निर्णायक कर्म पुनर्जन्म में चेतना के पुनः जुड़ने की शर्त हैं। इसमें, जो व्यक्तिगत सार है, वही कारण है। और यहाँ "निर्धारण" से तात्पर्य किसी भी प्रकार की चेतना के उद्भव से है, चाहे वह लाभकारी हो या नलाभकारी, जो संसार से संबंधित हो (पृष्ठ 116)। आश्रित उत्पत्ति के लिए पिटक संदर्भ इस प्रकार हैं: डी. सूत्र 15; एम. सूत्र 9 और 38; एस. निदान संयुत्त; ए. i, 177; वी.बी. पच्चयकरविभंग; पीएस. i, 50-2।

[पृष्ठ 114]

पथप्रदर्शक

463. इस प्रकार सभी प्रकार के सामान्य समर्थन एक आवश्यकता है (cf. §168)।

464. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

'ऐसे विचार जो प्रत्येक विचार को जन्म देते हैं'

उचित संबंध में शर्तें भी हैं;

और इसके द्वारा कारण का पता लगाकर

यह मोड आवश्यक को व्यक्त करता है' (§19)।
आवश्यकताओं को संप्रेषित करने का माध्यम समाप्त हो गया है।
*

---

16. समन्वय को संप्रेषित करने के तरीके में नौ गुना धागा
465. [81] इसमें समन्वय संप्रेषित करने का तरीका क्या है?
[यह यह है:]
'जिन लोगों से ये विचार जुड़े हैं, उनके साथ अपने विचार साझा करें।'
और जिन्हें ऋषि ने दिखाया है
एक अर्थ यह है कि, समन्वय होना चाहिए:
यह मोड समन्वय को दर्शाता है' (§20)।
466. प्रवेश मार्ग उपलब्ध कराने वाले सभी फुटिंग को किसी एक फुटिंग [उल्लेखित] के साथ समन्वित किया जाना चाहिए, उसी तरह जैसे रूपांतरण के हस्तांतरण के तरीके में, प्रवेश मार्ग उपलब्ध कराने के लिए कई फुटिंग बनाए जाते हैं।
467. इसमें समन्वय चार प्रकार का है, अर्थात् (i) आधार, (ii) पर्यायवाची, (iii) अस्तित्व में रखना, और (iv) त्यागना (cf. §§107ff.)।
[(i) नींव]
468. इसमें, फुटिंग का समन्वय क्या है?
किसी भी प्रकार का बुरा काम न करें ।
लाभदायक कौशल को परिपूर्ण बनाना
और अपने हृदय को शुद्ध करना:
यह बुद्धों का विधान है > (§238)।
469. इसका आधार क्या है? अच्छे आचरण के तीन प्रकार, अर्थात् शारीरिक अच्छा आचरण, मौखिक अच्छा आचरण और मानसिक अच्छा आचरण। ये आधार हैं ।

469/I शब्दों की व्याख्या के लिए Tini sucaritani . . . idam padatthanam देखें n. 64/1. NettiA : 'यह (idam) त्रिगुण अच्छा आचरण (sucaritam) एक आधार (- padatthanam) है क्योंकि यह प्रबुद्धों के प्रवचन, उनकी सलाह के लिए क्षेत्र और नींव है' (पृष्ठ 117)।

[पृष्ठ 115]
संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
470. इसमें, शारीरिक और मौखिक रूप से अच्छे आचरण को सद्गुण श्रेणी में रखा गया है। मानसिक अच्छे आचरण के मामले में, लोभ रहित होना और द्वेष रहित होना एकाग्रता श्रेणी में आता है, और सही दृष्टिकोण समझ श्रेणी में आता है (देखें §238)। ये आधार हैं।
471. इसमें, सद्गुण श्रेणी और एकाग्रता श्रेणी शांत हैं, और समझ श्रेणी अंतर्दृष्टि है। ये एक आधार हैं।
472. इसमें, शांति का फल कामवासना के लुप्त होने से प्राप्त हृदय की मुक्ति है, और अंतर्दृष्टि का फल अज्ञान के लुप्त होने से प्राप्त समझ की मुक्ति है। ये आधार हैं।
*
473 <लकड़ी> x <लकड़ीपन> का आधार है (ध. 283)। 'लकड़ी' क्या है और 'लकड़ीपन' क्या है? 'लकड़ी' से तात्पर्य पांच प्रकार की कामुक इच्छाओं से है, जबकि 'लकड़ीपन' का अर्थ लालसा है। यह एक आधार है।
474. [82] 'लकड़ी' का अर्थ है संकेतों (एम. आई, 180) द्वारा 'स्त्री' या 'पुरुष' को समझना, जबकि 'लकड़ीपन' का अर्थ है ऐसे और ऐसे अंगों को समझना जैसे विशेषताएं 'ओह एक आँख! ओह एक कान! ओह एक नाक! ओह एक जीभ! ओह एक शरीर!'। यह एक आधार है।

475. 'लकड़ी' का अर्थ है स्वयं में और उससे बाहर के अज्ञात आधार, और 'लकड़ीपन' का अर्थ है इन पर निर्भर कोई भी बंधन (cf. डी. ii, 302)। यह एक आधार है।
476. 'लकड़ी' अंतर्निहित प्रवृत्ति है और 'लकड़ीपन' प्रकट जुनून है। यही आधार है।
477. इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:
< लकड़ी और वनक्षेत्र को काटकर > (ध. 283).
यह नींव का समन्वय है।
*

473/1 यहाँ संपूर्ण ध श्लोक पहले आना चाहिए था, लेकिन वह अनुपस्थित है। एमए. i, 11 (= KhpA. Ill) में 'वन' शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी गई है: 'यह वह है जो कोई चाहे (वनयते), अतः यह एक वन (वन) है; यह अपनी श्रेष्ठता के कारण प्राणियों में स्नेह उत्पन्न करता है; इसका अर्थ है कि यह उनमें अपने प्रति स्नेह जगाता है। या वैकल्पिक रूप से, यह चाहे (वनुत), अतः यह एक वन (वन) है; इसका अर्थ है कि कोयल की आवाज़ों के साथ... यह मानो सभी प्राणियों से "आओ और मेरा आनंद लो" कहकर विनती कर रहा है।' वना और वना पर शब्द-क्रीड़ा विस. 293 में भी मिलती है। वनाथ का अर्थ 'वनता' है, अर्थात् 'अतिवृद्धि' या 'वनों से आच्छादित', न कि पीईडी का 'अंडरवुड'; प्रत्यय -था (= -नेस) के लिए समा-था देखें।

[पृष्ठ 116]
पथप्रदर्शक
[(ii) पर्यायवाची]
478. यहाँ पर्यायवाची शब्दों का समन्वय क्या है? कामवासना के क्षीण होने से प्राप्त हृदय-मुक्ति दीक्षित का फल है, और अज्ञान के क्षीण होने से प्राप्त समझ-मुक्ति सिद्ध पुरुष का फल है। ये पर्यायवाची शब्द हैं।
479. कामवासना के क्षीण होने से प्राप्त हृदय की मुक्ति, अनावर्ती का फल है, और अज्ञान के क्षीण होने से प्राप्त समझ की मुक्ति, अरहंतत्व है, जो सर्वोच्च फल है। ये पर्यायवाची हैं।
480. कामवासना के लुप्त होने से प्राप्त हृदय की मुक्ति, इंद्रिय-संबंधी इच्छा के तत्व पर विजय प्राप्त करती है, और अज्ञान के लुप्त होने से प्राप्त समझ की मुक्ति, इंद्रिय-संबंधी इच्छा, रूप और निराकार अस्तित्व के त्रिगुणों पर विजय प्राप्त करती है। ये पर्यायवाची हैं।
481. समझ क्षमता, समझ शक्ति, उच्च समझ में प्रशिक्षण, समझ श्रेणी, विचारों की जांच प्रबुद्धता कारक, समता प्रबुद्धता कारक, ज्ञान, सही दृष्टिकोण, निर्णय, न्याय, विवेक, अंतर्दृष्टि, सच्चे विचार का ज्ञान (cf. §294): ये सभी पर्यायवाची हैं।
यह पर्यायवाची शब्दों का समन्वय है।
♦
[(iii) यथावत रखते हुए]
482. इसमें, अस्तित्व बनाए रखने का समन्वय क्या है? यह भगवान बुद्ध के अनुसार है: < इसलिए , भिक्षुओं , शरीर को शरीर के रूप में ध्यान करते हुए , उत्साही , जागरूक और सचेत होकर, संसार के प्रति लोभ और दुःख को दूर करते हुए, बने रहो > (§174)।
[83] अब 'उत्साही' का अर्थ ऊर्जा संकाय, 'जागरूक' का अर्थ समझ संकाय, 'सचेत' का अर्थ सचेतनता संकाय, और 'संसार के बारे में लोभ और दुःख को दूर करना' का अर्थ एकाग्रता संकाय है (§174)।
अतः जब कोई शरीर को शरीर के रूप में ध्यान में रखता है, तो चेतना के चारों आधार अस्तित्व में बने रहने के माध्यम से पूर्ण हो जाते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि चारों इंद्रियों की एकल विशेषता की स्थिति होती है (§174)।
483. जब ध्यान के चार आधारों को बनाए रखा जाता है, तो चारों सही प्रयास उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। जब चारों सही प्रयास बने रहते हैं, तो सफलता के चार आधार (शक्ति के मार्ग) उनके बने रहने से पूर्ण हो जाते हैं। जब सफलता के चार आधार बने रहते हैं, तो पाँचों इंद्रियाँ उनके बने रहने से पूर्ण हो जाती हैं... और इसी प्रकार सब कुछ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे सभी विचार जो

[पृष्ठ 117]

संदेश पहुंचाने के 16 तरीके, अलग-अलग विवेचन में।
ज्ञानोदय की ओर ले जाने वाले, ज्ञानोदय में भाग लेने वाले, एक ही विशेषता रखते हैं, वह है मुक्ति का गुण। वे इस गुण की एकरूपता के कारण अस्तित्व में बने रहने से पूर्णता प्राप्त करते हैं (धारा 175 देखें) ।
यह अस्तित्व को बनाए रखने का समन्वय है।
*
[(iv) त्यागना]
484. इसमें, परित्याग का समन्वय क्या है?
जो शरीर को शरीर के रूप में निहारता है, वह कुरूपता में सुंदरता की धारणा को त्याग देता है; शारीरिक पोषण उसके निदान के अंतर्गत आता है; वह कामुक इच्छाओं के संबंध में अनुमान नहीं लगाता; वह कामुक इच्छाओं के बंधन से मुक्त होता है; वह लोभ के शारीरिक बंधन से विरक्त होता है; वह कामुक इच्छाओं के कलंक से मुक्त होता है; वह कामुक इच्छाओं की बाढ़ को पार कर चुका होता है; वह कामवासना के कांटों से मुक्त होता है; 1 रूप चेतना के आगे बढ़ने के लिए एक स्थिर बिंदु के रूप में उसके निदान के अंतर्गत आता है; 2 रूप तत्व के प्रति उसकी वासना का त्याग हो जाता है; और वह इच्छाशक्ति के माध्यम से गलत रास्ते पर नहीं जाता।
485. जो व्यक्ति भावनाओं को भावनाओं के रूप में चिंतन करता है , वह इस विकृति को त्याग देता है कि पीड़ा में आनंद है, पोषण के रूप में संपर्क उसके निदान के अंतर्गत आता है, वह अस्तित्व-धारणा के संबंध में बिना किसी धारणा के है, वह अस्तित्व के बंधन के संबंध में मुक्त है, वह दुर्भावना के शारीरिक बंधन के संबंध में वियोगित है, वह अस्तित्व के कलंक के संबंध में बेदाग है, उसने [84] अस्तित्व की बाढ़ को पार कर लिया है, वह घृणा के कांटे के संबंध में कांटे रहित है, चेतना के आगे बढ़ने के लिए एक स्थिर बिंदु के रूप में भावना उसके निदान के अंतर्गत आती है, भावना तत्व 2 के लिए उसकी वासना त्याग दी जाती है, और वह घृणा के माध्यम से बुरे रास्ते पर नहीं जाता है।
486. जो चेतना को चेतना के रूप में चिंतन करते हुए स्थिर रहता है, वह इस विकृति का त्याग कर देता है कि क्षणभंगुर में स्थायित्व है, चेतना को पोषण के रूप में देखना उसके निदान के दायरे में आता है, वह है

484/1 यहाँ चार 'कंठ' (सल्ला) कामवासना, घृणा, अहंकार और भ्रम हैं, जैसा कि §§674ff में है। लेकिन पे (पृष्ठ 245) में वे कामवासना, घृणा, भ्रम और विचार हैं। §753 में 3 प्रकार दिखाई देते हैं। ये गणनाएँ स्पष्ट रूप से सूत्रों में नहीं मिलती हैं। 484/2 देखें n. 176/1.
485/1 भावुपदना ('अस्तित्व ग्रहण करने वाला') त्रिपिटक में नहीं पाया जाता है। 228/1 देखें।
485/2 वेदना-धातु ('भावना-तत्व'), सन्ना-धातु ('धारणा-तत्व': §486), और संखरा-धातु ('संकल्प-तत्व') शब्दों के लिए :
§§323, 487), देखें, उदा.*, एस. iii, 10.

[पृष्ठ 118]
पथप्रदर्शक
गलत धारणाओं के संबंध में कोई अनुमान लगाए बिना, वह विचारों के बंधन से मुक्त है, वह सद्गुण और कर्तव्य की गलतफहमी के शारीरिक बंधन से अलग है, वह विचारों के कलंक से बेदाग है, उसने विचारों के सैलाब को पार कर लिया है, वह अहंकार के कांटों से रहित है, चेतना के आगे बढ़ने के लिए एक स्थिर बिंदु के रूप में धारणा उसके निदान के अंतर्गत आती है, धारणा-तत्व के लिए उसकी वासना का त्याग हो जाता है, और वह भय के कारण गलत रास्ते पर नहीं जाता है।
487. जो व्यक्ति विचारों को विचारों के रूप में चिंतन करता है, वह इस विकृति का त्याग कर देता है कि अनात्म में भी आत्म है, मन-चयन को पोषण के रूप में देखना उसके निदान के अंतर्गत आता है, वह आत्म-सिद्धांत के संबंध में अनुमान लगाने से रहित होता है, वह अज्ञान के बंधन से मुक्त होता है, वह इस ज़िद के शारीरिक बंधन से विरक्त होता है कि 'केवल यही सत्य है ' , वह अज्ञान के कलंक से निष्कलंक होता है, वह अज्ञान की बाढ़ को पार कर चुका होता है, वह भ्रम के कांटों से रहित होता है, चेतना के आगे बढ़ने के लिए निर्धारण को एक स्थिर बिंदु के रूप में देखना उसके निदान के अंतर्गत आता है, निर्धारण-तत्व के लिए उसकी वासना का त्याग हो जाता है, और वह भ्रम के माध्यम से बुरे रास्ते पर नहीं जाता है।
यह परित्याग का समन्वय है।

488. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'जिन लोगों से ये विचार जुड़े हैं, उनके साथ अपने विचार साझा करें।'
और जिन्हें ऋषि ने दिखाया है
एक अर्थ यह है कि, समन्वय होना चाहिए:
यह मोड समन्वय 5 (§16) को दर्शाता है।
समन्वय संप्रेषित करने का माध्यम समाप्त हो गया है।
*
अलग-अलग विवेचन में उल्लिखित संचार के 16 तरीके समाप्त हो गए हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> नेत्तिपकरण >> च-ii-16 संयुक्त उपचार
नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

पिछला <<<<-----||-6-||----->>>> अगला

भाग IV अध्याय-II. संयुक्त उपचार में परिवहन के 16 तरीके (पैरा 489 - 643)

[पृष्ठ 119]

अंतर्वस्तु
1संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
1.1मोड 1
1.2मोड 2
1.3मोड 3
1.4मोड 4
1.5मोड 5
1.6मोड 6
1.7मोड 7
1.8मोड 8
1.9मोड 9
1.10मोड 10
1.11मोड 11
1.12मोड 12
1.13मोड 13
1.14मोड 14
1.15मोड 15
1.16मोड 16
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
मोड 1
489. [85] यह इस प्रकार कहा गया था:
'सोलह परिवहन पहले, सर्वेक्षण
फिर दिशाओं की रूपरेखा तैयार करने के साथ,
और हुक से इकट्ठा करने के बाद,

तीन दिशानिर्देश एक सूत्र को प्रदर्शित करते हैं' (§26)।
490. अब इसका प्रमाण कहाँ मिलेगा? संयुक्त उपचार में संचार के तरीकों में। 1
*
[1]
491. इसमें, संयुक्त उपचार में शिक्षा देने का तरीका क्या है? [उदाहरण के लिए, यह इस प्रकार है]
एक अनभिज्ञ चेतना के साथ,
गलत दृष्टिकोण से बोझिल, उत्पीड़ित
सुस्ती और नींद आने से,
मारा की शक्ति में आगे बढ़ते रहो >
(तुलना करें उद. 38; समकक्ष श्लोक §595 पर)।
492. 'लापरवाही से सचेत रहना' क्या सिखाता है? लापरवाही। यही मृत्यु की अवस्था है।
493 'गलत दृष्टि से ग्रस्त 5 : किसी व्यक्ति को 'गलत दृष्टि से ग्रस्त 5' कहा जाता है जब वह क्षणभंगुर में स्थायित्व देखता है। यह एक विकृति है। अब विकृति की विशेषता क्या है? विकृति में विकृत बोध की विशेषता होती है। यह किसे विकृत करती है? तीन विचारों को, अर्थात् बोध, संज्ञान और दृष्टि (देखें ए. ii, 52)। यह किसमें विकृति उत्पन्न करती है? आत्म-पहचान के चार आधारों में। 1 [यह ऐसा करती है] इस प्रकार <वह रूप को आत्मा के रूप में, या आत्मा को रूप से युक्त, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है>

490/1 यहाँ 16 मोड को उद से एकल उद्धरण पर दो भागों में, क्रमशः §§491 और 595 में लागू किया गया है।
493/1 पृष्ठ 121 देखें , जो अतत्भव-वत्थु शब्द का सबसे पुराना उदाहरण प्रतीत होता है और एकमात्र अन्य पुस्तक है जहाँ इसका प्रयोग किया गया है। वहाँ 4 हैं

[पृष्ठ 120]
पथप्रदर्शक
(एम. आई, 299एफ.; iii, 17). इसी प्रकार भावना, धारणा, निर्धारण और चेतना के साथ।
494. इसमें, रूप विकृति का पहला आधार है, अर्थात् कुरूप में सुंदरता; भावना विकृति का दूसरा आधार है, अर्थात् पीड़ा में आनंद; बोध और निर्धारण विकृति का तीसरा आधार हैं, अर्थात् अनात्म में आत्मा; और चेतना विकृति का चौथा आधार है, अर्थात् क्षणभंगुर में स्थायित्व (तुलना करें पे 20-1)।
495. [86] दो विचार चेतना को विकृत करते हैं: वे हैं लालसा और अज्ञान। लालसा से अवरुद्ध चेतना दो विकृतियों से प्रभावित होती है: कुरूपता में सुंदरता और पीड़ा में सुख। अज्ञान से अवरुद्ध चेतना दो विकृतियों से प्रभावित होती है: अनित्य में स्थायित्व और अनात्म में आत्मा।
496. इसमें, दृष्टिकोण का कोई भी विकृति अतीत के रूप को स्वयं के रूप में देखता है, अतीत की भावना को देखता है... अतीत की धारणा को देखता है... अतीत के निर्धारण को देखता है... अतीत की चेतना को स्वयं के रूप में देखता है।
497. इसमें, लालसा का कोई भी विकृति भविष्य के रूप का, भविष्य की भावना का, भविष्य की धारणा का, भविष्य के निर्धारण का, भविष्य की चेतना का, प्रत्याशापूर्वक आनंद लेता है।
498. दो विचार चेतना की अपूर्णताएँ हैं, वे हैं लालसा और अज्ञान। इनसे शुद्ध होने पर ही चेतना शुद्ध होती है।
499. जिन लोगों के लिए अज्ञान ही बाधा है और लालसा ही बंधन, उनका कोई आरंभ स्पष्ट नहीं है (देखें §644), क्योंकि वे लगातार दौड़ते रहते हैं और गोल-गोल घूमते रहते हैं (तुलना करें एस. 2, 178ff.), कभी नरक में, कभी पशुओं के बीच, कभी प्रेतलोक में, कभी असुर राक्षसों के शरीर में, कभी देवताओं के बीच, कभी मनुष्यों के बीच।
500. 'सुस्ती और उनींदापन से पीड़ित': सुस्ती किसी भी अस्वस्थता, बेढंगेपन, चेतना की कमी है; उनींदापन शरीर की कोई भी सुस्ती है (तुलना करें पे 137)।
501. 'एक व्यक्ति मारा की शक्ति में यात्रा करता है': वह मारा (मृत्यु-विक्रेता) की शक्ति में अपवित्रता और मारा के रूप में प्राणी के रूप में यात्रा करता है; क्योंकि वह [जन्मों के] चक्र का सामना करता है।

502. अब भगवान बुद्ध ने इन दो सत्यों का उपदेश दिया है: दुख और उसका कारण। भगवान बुद्ध इनके निदान और त्याग के लिए सही विचार सिखाते हैं: दुख के निदान के लिए

यहां दिए गए तरीके के बजाय, माइंडफुलनेस के 4 आधारों के अंतर्गत 5 श्रेणियों को समाहित करके व्युत्पन्न किया गया है। केवल 'शरीर' (भौतिक और मानसिक) के रूप में अतभाव के लिए , उदाहरण के लिए, ए. आई, 279 देखें।

[पृष्ठ 121]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
और इसके उद्गम का त्याग करना। जिस मार्ग से निदान किया जाता है और जिस मार्ग से त्याग किया जाता है, वही मार्ग है। भोग और अज्ञान का त्याग करना ही मुक्ति है। ये चार सत्य हैं।
503. इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'असुरक्षित चेतना के साथ...' (§491)।
504. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'संतुष्टि, निराशा,
मुक्ति, फल, साधन, भगवान बुद्ध का भक्तों को उपदेश: यह मार्ग
क्या यह शिक्षा का संप्रेषण है? (§5)।
शिक्षा को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 2
505. [87] इसमें, संयुक्त उपचार में जांच को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह, उदाहरण के लिए, इस प्रकार है।]
506. यहाँ, लालसा दो प्रकार की है: लाभदायक और अलाभदायक (cf. Pe 97)। जबकि अलाभदायक प्रकार घुमावदार मार्ग से जुड़ा है, लाभदायक प्रकार त्याग की लालसा है, जो फैलाव से जुड़ा है (cf. D . iii, 216)।
507. अभिमान भी दो प्रकार का होता है: लाभदायक और अलाभदायक। कोई भी अभिमान जिसके समर्थन में व्यक्ति अभिमान का त्याग करता है, लाभदायक होता है; परन्तु कोई भी अभिमान जो पीड़ा उत्पन्न करता है, अलाभदायक अभिमान होता है (तुलना करें पे 160-1)।
508. यहाँ, [उदाहरण के तौर पर] उस शोक के मामले में जिसका आधार त्याग है [इस प्रकार वर्णित] <'मैं कब सत्यापन द्वारा उस नीच अवस्था में प्रवेश करूँ और उसमें स्थिर रहूँ , जिस शांतिप्रिय अवस्था में श्रेष्ठ पुरुष सत्यापन द्वारा प्रवेश कर सकते हैं और उसमें स्थिर रह सकते हैं, और उनमें लालसा उत्पन्न होती है, और लालसा के साथ शोक उत्पन्न होता है'> (तुलना करें एम. iii, 218 और पे 161): ऐसी लालसा लाभदायक है; क्योंकि कामवासना के लुप्त होने के कारण हृदय की मुक्ति होती है, [ऐसी लालसा] उसे अपना लक्ष्य बनाकर लाभदायक होती है।
509. [अब यहाँ] अज्ञान के लुप्त होने के कारण ज्ञान-मुक्ति भी है । 1. उसकी जाँच का आधार क्या है?

509/1 पढ़ें . . . रागविरागा सेतोविमुत्ती तदारम्मना कुसल । (नया पैरा।) अविज्जाविरागा पन्नविमुत्ती, तस्सा को पविकायो? . . .

[पृष्ठ 122]
पथप्रदर्शक
[आठ कारकों वाले मार्ग की जांच]
510. [इसका आधार] आठ पथ कारक हैं: 1 सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

511. इसकी [जांच का उदाहरण] कहाँ पाया जा सकता है? [सबसे उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में] चौथे ध्यान की पूर्णता में (देखें पे 153)। क्योंकि चौथे ध्यान में चेतना आठ गुणों से युक्त रहती है: यह पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः उज्ज्वल, दोषरहित, अपूर्णता रहित, लचीली, सुगम, स्थिर और अविचलित होती है (देखें एम. i, 22)। जो व्यक्ति चौथे ध्यान की इस पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, वह तब आठ प्रकार की अवस्था में पहुँच जाता है, अर्थात् [अलौकिक शक्ति से] छह प्रकार की परिचितता (देखें एम. सूत्र 6) और दो भेद, [अर्थात, मन-निर्मित शरीर और अंतर्दृष्टि-ज्ञान (देखें एम. ii, 27)]।

512. जब वह चेतना पूर्णतः शुद्ध हो जाती है, तो वह पूर्णतः उज्ज्वल होती है; पूर्णतः उज्ज्वल होने पर, वह दोषरहित होती है; दोषरहित होने पर, वह अपूर्णताओं से मुक्त होती है; अपूर्णताओं से मुक्त होने पर, वह लचीली होती है; लचीली होने पर, वह सुगम होती है; सुगम होने पर, वह स्थिर होती है; स्थिर होने पर, वह अविचलितता की अवस्था प्राप्त कर लेती है।

513. [88] इसमें दोष और अपूर्णता दोनों लालसा की ओर से संबंधित हैं, और चेतना की कोई भी गड़बड़ी और अस्थिरता विचारों की ओर से संबंधित है।

514. चौथी ध्यान अवस्था में चार इंद्रियाँ—अर्थात् [शारीरिक] पीड़ा इंद्री, [मानसिक] दुःख इंद्री, [शारीरिक] सुख इंद्री और [मानसिक] आनंद इंद्री—समाप्त हो जाती हैं। 1 इसमें केवल समभाव इंद्री शेष रह जाती है। यह [ध्यानकर्ता] अगली उच्चतर उपलब्धि को अधिक शांतिपूर्ण मानकर उस पर ध्यान केंद्रित करता है। जब वह अगली उच्चतर उपलब्धि को अधिक शांतिपूर्ण मानकर उस पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उसकी स्थूलता की धारणा चौथी ध्यान अवस्था के अनुरूप ढल जाती है और उसकी प्रतिरोध की धारणा ऊपर की ओर (किसी बेहतर चीज़ की ओर) बढ़ जाती है।

510/1 यहाँ 8 पथ-कारकों का अचानक परिचय असंगत लग सकता है। लेकिन यह विधि जांच के संदर्भ में सूत्र प्रस्तुत करती है । अब जिस प्रकार की जांच या खोज हृदय-मुक्ति की ओर ले जाती है, उसका वर्णन §508 में किया गया है। इसके बाद (§§510-13) हृदय-मुक्ति के चरणों में केवल शांति की प्रत्येक प्राप्ति से असंतोष के लिए आधार तैयार किया जाता है, और इसलिए किसी उच्चतर की खोज (जांच) (§§514-17), और परिणामस्वरूप प्रश्न (§§518-19), अंतर्दृष्टि के साथ-साथ शांति के विकास की ओर ले जाते हैं जब तक कि मुक्ति के 3 द्वारों द्वारा निकास मार्ग समझ-मुक्ति (§§528ff.) के रूप में नहीं पाया जाता है; और यही वह सही दृष्टिकोण है जो 8-कारक पथ की पहली प्राप्ति के साथ उभरता है (cf. एम. सुत्त 111)। 514/1 Cf. चौथे ध्यान का निरूपण (जैसे, एम.आई. , 22 पर)।

[पृष्ठ 123]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

515. रूप की धारणाओं पर पूर्ण विजय के साथ, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने के साथ, और अंतर की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, [यह जानते हुए कि] 'अंतरिक्ष अनंत है', वह अहसास द्वारा प्रवेश करता है और अंतरिक्ष की अनंतता से युक्त आधार की प्राप्ति में रहता है (cf. एम. i, 41)।

516. अलौकिक शक्ति से परिचित होने के प्रकारों में [ज्ञान का] निर्देशात्मक प्रबंधन रूप की धारणा है; विविधता का गठन अंतर की धारणा है। 1 वह [इन पर] विजय प्राप्त करता है और प्रतिरोध की उसकी धारणा गायब हो जाती है।

517. एकाग्रता ऐसी ही होती है। जब वह एकाग्र होता है, तो उसका प्रकाश गायब हो जाता है और साथ ही रूपों को देखना भी (cf. एम. iii, 158)।

518. उस [प्रकार की] एकाग्रता की समीक्षा छह कारकों के रूप में की जा सकती है: '(1) समस्त संसार के प्रति मेरी धारणा लोभहीनता से युक्त है; (2) समस्त प्राणियों के प्रति मेरा ज्ञान द्वेष से अप्रभावित है, (3) मेरी ऊर्जा प्रेरित और प्रयोग की जाती है, (4) मेरा शरीर शांत और अविचलित है, (5) मेरा ज्ञान एकाग्र और अविचलित है, (6) मेरी जागरूकता स्थापित और अविचलित है' (cf. एम. i, 21)।

519. इसमें, समस्त संसार के प्रति लोभ रहित कोई भी धारणा, द्वेष से अप्रभावित समस्त प्राणियों का कोई भी ज्ञान, प्रेरित और प्रयुक्त कोई भी ऊर्जा, तथा एकाग्र और स्थिर ज्ञान: ये सभी शांत अवस्थाएँ हैं। [परन्तु] शांत और अविचलित शरीर एकाग्रता के लिए आवश्यक है (देखें एम. iii, 71), और विस्मृति के साथ स्थापित सचेतनता ही अंतर्दृष्टि है।

520. उस प्रकार की एकाग्रता को निम्नलिखित पाँच तरीकों से समझा जा सकता है: (1) 'इस एकाग्रता में वर्तमान में उत्पन्न सुख है': इस प्रकार उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती है। और 'इस एकाग्रता में भविष्य में सुखद परिपक्वता है': इस प्रकार उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती है। (2) 'यह एकाग्रता श्रेष्ठ और भौतिकताहीन है': इस प्रकार [89] उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती

है। (3) 'यह एकाग्रता तुच्छ लोगों द्वारा विकसित नहीं की जाती है': इस प्रकार उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती है। (4) 'यह एकाग्रता सबसे शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ [लक्ष्य] है, और इसने शांति प्राप्त कर ली है और एकाग्रता तक पहुँच गई है और इसे प्रेरित करने वाले संकल्पों के निवारण से [अपवित्रता से] बचाने की आवश्यकता नहीं है': 1

516/1 पढ़ें अभिनाभिनिहरो रूपसन्ना; वोकारो नानाट्टसन्ना. समतिक्कमति , पतिघसन्ना चअस्सा अब्बत्थम गच्छति।
520/1 नेट्टिया के साथ वैरिटावेटो पढ़ना (पृ. 127)।

[पृष्ठ 124]

पथप्रदर्शक

इस प्रकार उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती है। (5) 'अब मैं इस एकाग्रता को सचेत रूप से प्राप्त करता हूँ और इससे सचेत रूप से निकलता हूँ': इस प्रकार उसका ज्ञान और दृष्टि स्वयं में प्रकट होती है (तुलना करें डी. iii, 278-9; ए. iii, 24)।

521. इसमें, वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सुख और भविष्य में सुखद परिपक्वता प्राप्त करने वाली कोई भी एकाग्रता शांत है। और कोई भी एकाग्रता जो श्रेष्ठ और भौतिकता से रहित हो, और कोई भी एकाग्रता जो तुच्छ लोगों द्वारा विकसित न की गई हो, और कोई भी एकाग्रता जो सबसे शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ लक्ष्य हो, जिसने शांति प्राप्त कर ली हो, एकाग्रता की अवस्था में पहुँच गई हो, और जिसे उत्तेजक संकल्पों के निवारण द्वारा दूषित होने से बचाने की आवश्यकता न हो, और कोई भी एकाग्रता जिसके बारे में व्यक्ति जागरूक हो, 'अब मैं इस एकाग्रता की प्राप्ति में सचेत हूँ, और मैं इससे सचेत होकर बाहर निकलता हूँ', अंतर्दृष्टि है।

522. उस एकाग्रता को [फिर से] पाँच तरीकों से समझा जा सकता है [इस प्रकार]: खुशी का विस्तार, आनंद का विस्तार, चेतना का विस्तार, प्रकाश का विस्तार, और एकाग्रता का संकेत (cf. डी. iii, 278-9; ए . iii, 27)।

523. इसमें, खुशी का कोई भी विस्तार, आनंद का कोई भी विस्तार, चेतना का कोई भी विस्तार शांत है, जबकि प्रकाश का कोई भी विस्तार और समीक्षा का कोई भी विस्तार अंतर्दृष्टि है।

524. समग्रता के दस आधार हैं: पृथ्वी की समग्रता (ठोसता), जल की समग्रता (सामंजस्य), अग्नि की समग्रता (तापमान), वायु की समग्रता (बल); नीले-काले की समग्रता, पीले की समग्रता, लाल की समग्रता, सफेद की समग्रता; अंतरिक्ष की समग्रता, और चेतना की समग्रता (cf. एम. ii, 14-15)।

525. इसमें, पृथ्वी की समग्रता... से लेकर... श्वेत की समग्रता तक: ये आठ समग्रताएँ शांत हैं, जबकि अंतरिक्ष की समग्रता और चेतना की समग्रता अंतर्दृष्टि हैं। 1

526. इस प्रकार संपूर्ण नोबल पथ, चाहे इसे किसी भी रूप में कहा जाए, को शांति और अंतर्दृष्टि के रूप में समझा जा सकता है (देखें §510)।

521/1 पथ-प्राप्ति द्वारा 'महान' और भौतिक चीजों के प्रति अनासक्ति के कारण 'अमूर्तवादी' (देखें एन. 443/2)।
524/1 ' कासिनायतन —समग्रता का आधार': कसिना (विशेषण के रूप में 'संपूर्ण, संपूर्ण') के गैर-तकनीकी उपयोग के लिए एम. i, 328 और इस कृति §899 देखें (ये संदर्भ पीईडी में नहीं हैं)। यहाँ दिए गए 10 शब्द त्रिपिटक में दिए गए हैं (जैसे, एम. ii, 14; ए. v, 46) न कि टीकाओं में, जहाँ अंतिम दो शब्दों को, अस्पष्ट कारणों से, क्रमशः 'प्रकाश' (देखें n. 461/l) और 'सीमित स्थान' से प्रतिस्थापित किया गया है (अध्याय iii और xxxv देखें)।
525/I 10 का यह विभाजन उल्लेखनीय है; देखें अंतिम टिप्पणी।

[पृष्ठ 125]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

527. [90] ये [विचार] तीन विचारों से मिलकर बने हैं: अनित्यता, पीड़ा और अनात्म।

528. [इसलिए,] जब वह शांत और अंतर्दृष्टि में स्थिर रहता है, तो वह मुक्ति के तीन द्वारों में स्थिर रहता है (भजन संहिता 2, 48; और अगला अनुच्छेद)। जब वह मुक्ति के तीन द्वारों में स्थिर रहता है, तो वह [सद्‌गुण, एकाग्रता और समझ] की तीन श्रेणियों में स्थिर रहता है। जब वह इन तीन श्रेणियों में स्थिर रहता है, तो वह आर्य अष्टांगिक मार्ग में स्थिर रहता है।
529. कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति को मुक्ति के निराकार द्वार से मुक्ति मिलती है, उच्च चेतना के प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त होता है, लाभहीनता के मूल के रूप में लोभ का त्याग होता है, सुखद अनुभव के लिए संपर्क नहीं किया जाता है, सुखद भावना का निदान किया जाता है, कामवासना के दाग को धोया जाता है, कामवासना की धूल को झाड़ा जाता है, कामवासना के विष को उगल दिया जाता है, कामवासना की आग को बुझा दिया जाता है, कामवासना के कांटे को निकाला जाता है और कामवासना के जाल को सुलझाया जाता है (cf. §44)।
530. घृणा स्वभाव वाला व्यक्ति मुक्ति के लिए विस्थापनहीन द्वार से रास्ता पाता है, उच्च सद्गुणों के प्रशिक्षण से प्रशिक्षण प्राप्त करता है, घृणा को हानि का मूल मानकर त्याग देता है, किसी भी संपर्क को पीड़ादायक नहीं मानता, पीड़ादायक भावना का निदान करता है, घृणा के दाग को धो डालता है, घृणा की गंदगी को झाड़ देता है, घृणा के विष को उगल देता है, घृणा की आग को बुझा देता है, घृणा के कांटे को निकाल देता है और घृणा के जाल को सुलझा देता है।
531. भ्रमित स्वभाव वाला व्यक्ति शून्य के द्वार से मुक्ति पाता है, उच्चतर समझ के प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षित होता है, हानि के मूल कारण के रूप में भ्रम का त्याग करता है, न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव किए जाने वाले संपर्क के पास नहीं जाता है, न-दर्दनाक-न-सुखद भावना का निदान करता है, भ्रम के दाग को धोता है, भ्रम की गंदगी को झाड़ता है, भ्रम के जहर को उगल देता है, भ्रम की आग को बुझाता है, भ्रम के कांटे को निकालता है, और भ्रम के जाल को सुलझाता है।
532. इसमें, मुक्ति का शून्य द्वार बोध श्रेणी है, मुक्ति का चिह्नरहित द्वार एकाग्रता श्रेणी है, और मुक्ति का चिह्नरहित द्वार सद्‌गुण श्रेणी है। 1 जब वह मुक्ति के तीनों द्वारों को धारण करता है, तो वह तीनों श्रेणियों को धारण करता है, और जब वह धारण करता है

532/1 इस त्रिविध संबंध की तुलना भजन संहिता 2, 58 (दृष्टिकोण 658 में उद्धृत) से करें, जहाँ शून्यता को 'ज्ञान' (वेद) से, स्वभावहीनता को 'शांति' (पासद्धि) से और चिह्नहीनता को 'विश्वास' (अधिमोक्ख-सद्धा) से जोड़ा गया है, जिसके द्वारा सर्वप्रथम विश्वास (आस्था) सद्‌गुण का पालन किया जाता है (दृष्टिकोण 511)। यह अंश, समझ के विषय में भजन संहिता से सहमत है , लेकिन सद्‌गुण और एकाग्रता के विषय में असहमत है।

[पृष्ठ 126]
पथप्रदर्शक
जिन तीन श्रेणियों में वह रहता है, वे अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करती हैं।
533. [91] इसमें, सही वाणी, सही कर्म और सही आजीविका, सद्‌गुण श्रेणी हैं; सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता, एकाग्रता श्रेणी हैं; सही दृष्टिकोण और सही इरादा, समझ श्रेणी हैं (cf. एम. आई, 301)।
534. इसमें, सद्‌गुण श्रेणी और एकाग्रता श्रेणी शांत हैं, जबकि समझ श्रेणी अंतर्दृष्टि है।
535. जब कोई शांत और अंतर्दृष्टि में स्थिर रहता है, तो उसमें दो तत्व स्थिर रहते हैं, अर्थात् शरीर और चेतना (देखें एम. i, 209); और अस्तित्व के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग दो मूलभूत अवस्थाएँ हैं, अर्थात् सद्‌गुण और एकाग्रता। इस भिक्षु ने शरीर को स्थिर रखा है, सद्‌गुण को स्थिर रखा है, [एकाग्र] चेतना को स्थिर रखा है और समझ को स्थिर रखा है (देखें ए . i, 249; एस. iv, 111; पे 191)।
536. जब तक शरीर विद्यमान रहता है, तब तक दो विचार भी विद्यमान रहते हैं, अर्थात् सही कर्म और सही प्रयास। जब तक सद्‌गुण विद्यमान रहता है, तब तक दो विचार भी विद्यमान रहते हैं, अर्थात् सही वाणी और सही जीविका। जब तक एकाग्रचित्त चेतना विद्यमान रहती है, तब तक दो विचार भी विद्यमान रहते हैं, अर्थात् सही सजगता और सही एकाग्रता। जब तक समझ विद्यमान रहती है, तब तक दो विचार भी विद्यमान रहते हैं, अर्थात् सही दृष्टि और सही अभिशय।
537. इसमें उचित क्रिया और उचित प्रयास शारीरिक और मानसिक दोनों हो सकते हैं।
538. इसमें, शरीर के भीतर जो कुछ भी समाहित है, वह शरीर के अस्तित्व में रहने पर भी अस्तित्व में रहता है, और मन के भीतर जो कुछ भी समाहित है, वह [एकाग्र] चेतना के अस्तित्व में रहने पर भी अस्तित्व में रहता है।

539. जब वह शांत और अंतर्दृष्टि में बना रहता है, तो वह पांच प्रकार की प्राप्ति करता है: 1 शीघ्रता की प्राप्ति, मुक्ति की प्राप्ति, महानता की प्राप्ति, प्रचुरता की प्राप्ति और शेषहीनता की प्राप्ति।
540. इसमें, शीघ्रता, महानता और प्रचुरता की प्राप्ति शांति के माध्यम से होती है, जबकि मुक्ति और पूर्णता की प्राप्ति अंतर्दृष्टि के माध्यम से होती है।

539/1 4 अधिगम —आगमन: तुलना करें एम.ए. i, 6 और ख्वा. 103 में समानांतर प्रयोग (ख्वा.ए. अनुवाद में आगमधिगम का अनुवाद 'शास्त्र और लेखन' के रूप में किया गया है, जिसमें ' परियत्ति और भुत्तरा-धम्म ' की स्वीकृत व्याख्या है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'आगमन (= शिक्षा) और आगमन (= अभ्यास और बोध)')। यह संदर्भ इस तकनीकी अर्थ में अधिगम के सबसे पुराने प्रयोग को दर्शाता है ।

[पृष्ठ 127]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
[एक परिपूर्ण व्यक्ति की दस शक्तियों का अन्वेषण]
541. इसमें, जो शिक्षा देता है वह दस शक्तियों से युक्त गुरु है (देखें एम. i, 71f.), और वह अपने श्रोताओं को अपनी सलाह से गुमराह नहीं करता। वह तीन तरीकों से सलाह देता है: [92] यह करो; इसे इस तरीके से करो; जब वह हो जाएगा तो यह तुम्हारे कल्याण और प्रसन्नता के लिए होगा (तुलना करें §§37-40)।
[i. उदाहरण और उदाहरण का ज्ञान नहीं (cf. Pe 32-4)]
542. ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि इस प्रकार सलाह और निर्देश प्राप्त करने पर, और इस प्रकार मार्ग का अनुसरण और अभ्यास करने पर भी वह उस स्तर तक न पहुँचे। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि इस प्रकार सलाह और निर्देश प्राप्त करने पर भी वह सद्गुणों की श्रेणी में पूर्ण हुए बिना उस स्तर तक पहुँच जाए। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि इस प्रकार सलाह और निर्देश प्राप्त करने पर वह सद्गुणों की श्रेणी में पूर्ण होने पर उस स्तर तक पहुँच जाए। ऐसा उदाहरण मिलता है।
543. यह [कोई भी पूर्ण पुरुष पर सत्य आरोप लगाएगा]: 'यद्यपि आप पूर्णतः प्रबुद्ध (पूरी तरह से खोजे हुए) हैं, फिर भी ये विचार आपके द्वारा नहीं खोजे गए हैं': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह [कोई भी पूर्ण पुरुष पर सत्य आरोप लगाएगा]: 'यद्यपि आपने सभी दोषों को पूर्णतः समाप्त कर दिया है, फिर भी ये दोष आप में शेष हैं': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह [कोई भी पूर्ण पुरुष पर सत्य आरोप लगाएगा]: 'जब आप किसी को सत्य विचार सिखाते हैं, तो जब वह उस पर अमल करता है, तो क्या वह उसे दुखों के पूर्ण निवारण का मार्ग नहीं देता': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह [कोई भी पूर्ण पुरुष पर सत्य आरोप लगाएगा]: 'जब कोई श्रोता सत्य विचार के अनुसार विचारों के मार्ग का अभ्यास करता है, मार्ग का उचित अभ्यास करता है, सत्य विचार के अनुसार आचरण करता है, तो क्या वह उत्तरोत्तर उच्चतर भेदों की प्राप्ति को सत्यापित नहीं करेगा': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह [कि कोई भी किसी पूर्ण व्यक्ति पर सत्य का आरोप लगाएगा]: 'जिन विचारों को आप बाधा कहते हैं, वे उनका अनुसरण करने वाले को पर्याप्त रूप से बाधित नहीं करते हैं': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है।
544. यह कहना कि जो विचार पीड़ा से मुक्ति नहीं देते, उनका अभ्यास करने पर व्यक्ति को पीड़ा की पूर्ण समाप्ति प्राप्त हो जाती है, इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह कहना कि जो विचार पीड़ा से मुक्ति देते हैं, उनका अभ्यास करने पर व्यक्ति को पीड़ा की पूर्ण समाप्ति प्राप्त हो जाती है, इसका एक उदाहरण मिलता है।
545. यह [कि कोई भी सत्य के साथ पूर्ण पर आरोप लगाएगा]: 'आपके श्रोता, अभी भी कुछ अंश शेष रखते हुए, बिना किसी अंश के विलुप्त होने वाले तत्व तक पहुँचेंगे': ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता।
546. वह व्यक्ति जो उसकी दृष्टि में [स्ट्रीम एंटरर या उससे उच्चतर के रूप में] परिपूर्ण हो चुका हो।

[पृष्ठ 128]
पथप्रदर्शक

किसी साधारण व्यक्ति द्वारा अपनी माता का वध करना या हाथ-पैर से उसकी हत्या करना : ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। किसी साधारण व्यक्ति द्वारा [जिसने मार्ग प्राप्त नहीं किया है] अपनी माता का वध करना या हाथ-पैर से उसकी हत्या करना: ऐसा उदाहरण मिलता है... इसी प्रकार पिता और अरहंत भिक्षु के मामले में भी ... किसी सिद्ध पुरुष द्वारा समुदाय में फूट डालना या कलह उत्पन्न करना: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। किसी साधारण व्यक्ति द्वारा [93] समुदाय में फूट डालना या कलह उत्पन्न करना: ऐसा उदाहरण मिलता है। किसी सिद्ध पुरुष द्वारा घृणा की भावना से किसी सिद्ध पुरुष का रक्त बहाना, या घृणा की भावना से किसी सिद्ध पुरुष के स्मारक को नष्ट करना : ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह उदाहरण मिलता है कि कोई साधारण व्यक्ति घृणा बोध रखते हुए किसी पूर्ण पुरुष का रक्त बहाए, या घृणा बोध रखते हुए किसी पूर्ण पुरुष के निर्वाण को प्राप्त स्मारक को नष्ट करे। यह उदाहरण भी मिलता है कि जो व्यक्ति स्वयं को पूर्ण मानता है, वह जीविका चलाने के लिए किसी दूसरे गुरु को स्वीकार करे। यह उदाहरण भी मिलता है कि कोई साधारण व्यक्ति किसी दूसरे गुरु को स्वीकार करे।

547. ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि कोई सिद्ध पुरुष बाहरी व्यक्ति को भेंट चढ़ाने की कोशिश करे। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि कोई साधारण व्यक्ति बाहरी व्यक्ति को भेंट चढ़ाने की कोशिश करे। ऐसा उदाहरण मिलता है। ऐसा कोई सिद्ध पुरुष नहीं मिलता कि वह वाद-विवाद से भरे शुभ संकेत से शुद्धिकरण की अपेक्षा करे। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि कोई साधारण व्यक्ति वाद-विवाद से भरे शुभ संकेत से शुद्धिकरण की उम्मीद करे। ऐसा उदाहरण मिलता है।

548. कि चक्र घुमाने वाली सम्राट 1 महिला हो सकती है: ऐसा कोई नहीं है

546/1 ' सुहतम् करेय्या —हत्या करनी चाहिए': पीईडी में नहीं है ; नेत्तिया द्वारा अतिवादिता के साथ व्याख्या की गई है, जो पीईडी या सीपीडी में भी नहीं है ; संभवतः इसका अर्थ 'पीट-पीट कर मार डालना' है। यह वाक्यांश पिटक संस्करण के अतिरिक्त है।

546/2 बा और बीबी के अनुसार, अरहन्तम भिक्खुम शब्दों को सी और पीटीएस की तरह दो खंडों के बजाय एक ही अभिव्यक्ति (जो सही है) के रूप में लिया गया है । यहाँ सूत्र ग्रंथों में किए गए परिवर्धन और परिवर्तन उल्लेखनीय हैं। पे. इस मामले में सूत्रों से और भी अधिक भिन्न है।

546/3 पाठों में इस परिवर्धन के लिए पी.टी.एस. नेट्टी पृष्ठ सीसीवी देखें (पी.ई. में नहीं)।

547/1 ' कुतुहाला-मंगला - एक प्रकार का शुभ संकेत जिस पर वाद-विवाद का कोलाहल होता है': इसका विस्तृत वर्णन Nd2 ad Sn. 789 और KhpA. 118/. में मिलता है, जहाँ बताया गया है कि कैसे उन लोगों के बीच बहसें होती थीं जो अलग-अलग अंधविश्वासों को मानते थे कि शुभ संकेत वास्तव में देखने में है या सुनने में, आदि। यह संदेहजनक है कि PED का अर्थ 'उत्सव, समारोह' कितना न्यायसंगत है।

548/1 चक्र-घुमाने वाले सम्राट (चक्कवत्ती) के लिए एम. सुत्त 129 देखें ।

[पृष्ठ 129]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

उदाहरण मिलता है कि चक्र-घुमाने वाला सम्राट पुरुष हो सकता है: ऐसा उदाहरण मिलता है। कि देवताओं के शासक सक्का स्त्री हो सकते हैं: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। कि देवताओं के शासक सक्का पुरुष हो सकते हैं: ऐसा उदाहरण मिलता है। कि दुष्ट मारा स्त्री हो सकती है: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। कि दुष्ट मारा पुरुष हो सकते हैं: ऐसा उदाहरण मिलता है। कि सर्वोच्च देवत्व स्त्री हो सकते हैं: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। कि सर्वोच्च देवत्व पुरुष हो सकते हैं: ऐसा उदाहरण मिलता है। 2 कि पूर्णतः प्रबुद्ध और सिद्ध पुरुष स्त्री हो सकते हैं: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। कि पूर्णतः प्रबुद्ध और सिद्ध पुरुष पुरुष हो सकते हैं: ऐसा उदाहरण मिलता है। कि एक ही विश्व-तत्व में दो पूर्णतः प्रबुद्ध और सिद्ध पुरुष एक साथ उत्पन्न होकर सत्य विचार का उपदेश दे सकते हैं: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। कि एक ही विश्व-तत्व में एक पूर्णतः प्रबुद्ध और सिद्ध पुरुष उत्पन्न होकर सत्य विचार का उपदेश दे सकते हैं: ऐसा उदाहरण मिलता है।

549. यह कहना गलत है कि तीनों प्रकार के दुराचार (शरीर, वाणी और मन से) का परिपक्व होना वांछनीय, वांछित, पसंद करने योग्य और सुखद होगा: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। तीनों प्रकार के दुराचार का परिपक्व होना अवांछित, नापसंद, अप्रिय और अप्रिय होगा: ऐसा एक उदाहरण मिलता है। तीनों प्रकार के अच्छे आचरण का परिपक्व होना अवांछित, नापसंद, अप्रिय और अप्रिय होगा: ऐसा

कोई उदाहरण नहीं मिलता। तीनों प्रकार के अच्छे आचरण का परिपक्व होना वांछनीय, वांछित, पसंद करने योग्य और सुखद होगा: ऐसा एक उदाहरण मिलता है।

550. ऐसा कोई भिक्षु या साधु जो षड्यंत्रकारी, वाक्पटु और संकेत देने वाला हो, जो षड्यंत्र , वाक्पटुता और संकेत देने को प्राथमिकता देता हो, पाँच बाधाओं, हृदय के उन दोषों का त्याग किए बिना जो समझ को कमजोर करते हैं, सात ज्ञानोदय कारकों को धारण किए बिना, और ध्यान के चार आधारों में स्थापित न होकर, अद्वितीय पूर्ण ज्ञानोदय प्राप्त करेगा: ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। ऐसा कोई भिक्षु या साधु जो सभी दोषों से मुक्त हो, त्याग कर...

548/2 टीकाओं में दिए गए इस कथन के विरुद्ध कि रूप-ब्रह्मलोक में लिंग प्रकट नहीं होता (विज़. 552), नेत्तिया ने इस कथन को निम्नलिखित व्याख्या से उचित ठहराया है: कि जहाँ एक वर्तमान पुरुष सर्वोच्च देवत्व (ब्रह्मा) के रूप में पुनर्जन्म ले सकता है, वहीं एक वर्तमान स्त्री केवल सर्वोच्च देवत्व के अनुचर के रूप में ही पुनर्जन्म ले सकती है (देखें एम.ए. iv, 122)। चाहे जो भी हो, लिंग परिवर्तन संभव माना जाता है और यह एक ही जीवन या एक ही पुनर्जन्म में हो सकता है।

550/1 ' नेमित्तिका - एक संकेतकर्ता': यानी, जो अपनी इच्छा के लिए संकेतों द्वारा संकेत देता है (देखें एम. iii, 75: विस. 23), पी.ई.डी. में नहीं।

[पृष्ठ 130]

पथप्रदर्शक

पांच बाधाएं, हृदय की अशुद्धियाँ जो समझ को कमजोर करती हैं, और सात ज्ञानोदय कारकों को ध्यान में रखते हुए, ध्यान के चार आधारों में स्थापित ध्यान के साथ बने रहने से, अतुलनीय पूर्ण ज्ञानोदय प्राप्त होगा: 2 ऐसा उदाहरण पाया जाता है।

551. इस असीमता के बारे में कारण और उदाहरण के संबंध में ज्ञान (तुलना करें पतरस 36) को पूर्ण सत्ता की प्रथम शक्ति कहा जाता है, जिसमें उदाहरण और गैर-उदाहरण का ज्ञान शामिल है (तुलना करें पतरस 32-4)। 1

[ii. कहीं भी ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान]

552. उपरोक्त वर्णित उदाहरण और गैर-उदाहरण के अंतर्गत आने वाले सभी लोग क्षीणता, पतन, लुप्त होने और समाप्ति के विचार से अविभाज्य हैं; कुछ स्वर्ग की ओर जाते हैं, कुछ बेचैनी की अवस्थाओं में जाते हैं, कुछ अंत:स्रावी हो जाते हैं। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा:

सभी प्राणी निश्चित रूप से मरेंगे
क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु है।
उनके कार्यों के अनुसार वे जाते हैं
पुण्य और पाप दोनों के फल भोगना:
बुरे कर्म करने वाले नरक में जाते हैं;
पुण्य कर्म करने वाले स्वर्ग में प्रवेश करते हैं > (पे 9; एस. i, 97);
अन्य लोग अस्तित्व में मार्ग बनाए रखते हैं
और दोषों से मुक्त विलुप्ति पाओ > (cf. Dh. 126).

553. 'सभी प्राणी' श्रेष्ठ और नीच; वे जो देहधारी हैं (भजन संहिता 2, 131 देखें) और वे जो देहहीन हैं। 1 'दो प्रकार की मृत्यु से मरेंगे', अर्थात् सुस्त मृत्यु और असुस्त मृत्यु। असुस्त मृत्यु देहधारी प्राणियों की है और सुस्त मृत्यु देहहीन प्राणियों की है। 2 'क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु है': जीवन का पूर्ण अंत, मृत्यु द्वारा पूर्ण अंत, जीवनकाल की समाप्ति के साथ, इंद्रियों के निष्क्रिय होने के साथ आता है (म. 1, 295 देखें)। 'अपने कर्मों के अनुसार वे जाते हैं' का अर्थ है कर्म का स्वामित्व। 3 'पुण्य और पाप के फल भोगना' का अर्थ है कर्मों और अपराओं के फल देखने की अवस्था।

550/2 देखा गया। 296/1।

551/1 दस शक्तियों का क्रम सूत्रों (जैसे, एम. i, 69-70) में दिए गए क्रम के समान नहीं है और पे 32-8 से भी भिन्न है ; सर्वज्ञता (देखें एन. 326/2) को 10वें में जोड़ा गया है।

553/1 'देहाति से परे' कौन हैं? नेटिया और टिक्का दोनों इसे अनदेखा करते हैं। 'देहाति' की सीमा के लिए एम. ii, 265 देखें।
553/2 यह किस प्रकार की मृत्यु है? नेटिया और टिक्का, दोनों अनदेखा करते हैं।
553/3 नेट्टिया का अनुसरण करते हुए, पीटीएस की तरह कम्मा-स्सकटा पढ़ें , न कि कम्म्स्सा काटा ।

[पृष्ठ 131]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

उनसे वियोग। जिन्होंने दोष का निर्धारण किया है, वे 'दुराचारी' होने के कारण सहायता करने के लिए आगे बढ़ते हैं, जबकि 'पुण्य करने वाले' स्वर्ग की ओर जाते हैं: [95] जिन्होंने पुण्य का निर्धारण किया है, वे अच्छे गंतव्य की ओर जाएंगे। 'अन्य लोग जीवन में मार्ग का अनुसरण करते हैं और दोषरहित निर्वाण प्राप्त करते हैं' का अर्थ है सभी संकल्पों पर विजय प्राप्त करना। इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा, 'सभी प्राणी... दोषरहित निर्वाण प्राप्त करते हैं।'

554. 'सभी प्राणी निश्चित रूप से मरेंगे क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु है। वे अपने कर्मों के अनुसार पुण्य और पाप का फल भोगते हैं: पापी नरक में जाते हैं' - यह विलासिता और तपस्या के दो चरम मार्ग हैं। 'अन्य लोग जीवन के मार्ग पर चलते हैं और दोषरहित होकर मृत्यु प्राप्त करते हैं' - यह मध्य मार्ग है।

555. 'सभी प्राणी निश्चित रूप से मरेंगे क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु है। वे अपने कर्मों के अनुसार पुण्य और पाप का फल भोगते हैं: पापी नरक में जाते हैं': यही भ्रष्टाचार है। इसी प्रकार चक्र चलता है।

556. 'सभी प्राणी [निश्चित रूप से] मरेंगे... दुष्ट नरक में जाएंगे': ये तीन चक्र हैं: दुख का चक्र, कर्म का चक्र और अपवित्रता का चक्र। 'अन्य लोग जीवन में मार्ग का अनुसरण करते हैं और दोषरहित होकर मृत्यु पाते हैं' इन तीनों चक्रों का रुकना (अपूर्ण होना) है।

557. 'सभी प्राणी [निश्चित रूप से] मरेंगे... दुष्ट नरक में जाते हैं' निराशा है। 'पुण्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं' संतोष है। 'अन्य लोग जीवन में मार्ग का अनुसरण करते हैं और दोषरहित होकर मृत्यु पाते हैं' मुक्ति है (देखें §32)।

558. 'सभी प्राणी [निश्चित रूप से] मरेंगे... दुष्ट नरक में जाएंगे' कारण और फल दोनों है। पाँच श्रेणियाँ फल हैं और लालसा कारण। 'अन्य लोग जीवन में मार्ग का अनुसरण करते हैं और दोषरहित होकर निर्वाण पाते हैं' मार्ग और उसका फल दोनों है।

559. 'सभी प्राणी [निश्चित रूप से] मरेंगे... दुष्ट लोग नरक में जाते हैं' यह भ्रष्टाचार है। यह भ्रष्टाचार तीन प्रकार का होता है: लालसा से उत्पन्न भ्रष्टाचार, विचारों से उत्पन्न भ्रष्टाचार और दुराचार से उत्पन्न भ्रष्टाचार (देखें §760)। इसमें, लालसा से उत्पन्न भ्रष्टाचार को तीन प्रकार की लालसाओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् इंद्रिय सुख की लालसा, अस्तित्व की लालसा और गैर-अस्तित्व की लालसा (§425); या फिर इसे किसी भी चीज़ से चिपके रहने से प्रदर्शित किया जा सकता है। विस्तार से यह लालसा के जाल के व्यवहार के छत्तीस तरीके हैं (ए. ii, 211ff.)। इसमें भी, विचारों से उत्पन्न भ्रष्टाचार को विनाशवाद और शाश्वतवाद द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है; या फिर इसे किसी भी ऐसी चीज़ से प्रदर्शित किया जा सकता है जिस पर कोई व्यक्ति [गलत] दृष्टिकोण से जोर देता है जैसे [96] 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है' (एम . ii, 233)। इसका विवरण बासठ प्रकार हैं

[पृष्ठ 132]

पथप्रदर्शक

विचारों के संदर्भ में (देखें डी. सुत्त 1; एम. सुत्त 102)। और इसमें, दुराचार द्वारा भ्रष्टाचार को कर्म के रूप में, चुनाव के रूप में और संज्ञान के सहवर्ती के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है (§§239-41), [अर्थात] तीन प्रकार के दुराचारों द्वारा, अर्थात् शारीरिक दुराचार और मौखिक दुराचार [पूर्व के रूप में], और मानसिक दुराचार [बाद वाले के रूप में]। इसका विवरण दस निष्फल कर्मों में निहित है। 'अन्य लोग अस्तित्व में मार्ग का पालन करते हैं और दोषरहित होकर निर्वाह पाते हैं' शुद्धि है (cf. §760)। अब यह शुद्धि भी तीन प्रकार की है, अर्थात्: लालसा द्वारा भ्रष्टाचार शांति द्वारा शुद्ध होता है, और वह शांति एकाग्रता श्रेणी है; विचारों द्वारा भ्रष्टाचार अंतर्दृष्टि द्वारा शुद्ध होता है, और वह अंतर्दृष्टि समझ श्रेणी है; और दुराचार द्वारा भ्रष्टाचार अच्छे आचरण द्वारा शुद्ध होता है, और वह अच्छा आचरण सद्गुण श्रेणी है।

560. 'सभी प्राणी निश्चित रूप से मरेंगे क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु है। वे अपने कर्मों के अनुसार पुण्य और पाप का फल भोगते हैं: पापी नरक में जाते हैं' - यह पाप का मार्ग है। 'पुण्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं' - यह पुण्य का मार्ग है। 'अन्य लोग जीवन में मार्ग का अनुसरण करते हैं और दोषरहित होकर मृत्यु पाते हैं' - यह पुण्य और पाप से ऊपर उठने का मार्ग है।
561. यहाँ, 'पुण्य के मार्ग' और 'अपराध के मार्ग' के संबंध में, ये एक मार्ग हैं जो कहीं भी ले जाते हैं, एक बेचैनी की अवस्थाओं में और दूसरा देवताओं में। और 'पुण्य और अपराध से परे' मार्ग, यह मार्ग या तो यहाँ ले जाता है या वहाँ (देखें §562)।
562. अब तीन वर्ग हैं, अर्थात्, गलत होने के प्रति निश्चितता रखने वालों का वर्ग, सही होने के प्रति निश्चितता रखने वालों का वर्ग, और इस प्रकार निश्चितता न रखने वालों का वर्ग (तुलना करें पीई 32; डी. iii, 217)। जबकि गलत होने की निश्चितता रखने वाले वर्ग और सही होने की निश्चितता रखने वाले वर्ग एक ही मार्ग हैं, अर्थात् वह मार्ग जो या तो यहाँ या वहाँ ले जाता है (§561), यहाँ इस निश्चितता के बिना लोगों का वर्ग वह मार्ग है जो कहीं भी ले जाता है। इसका क्या कारण है? यदि इस वर्ग में किसी को आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह नरक में पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह पशुओं के बीच पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, [97] तो वह प्रेतलोक में पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह असुर राक्षसों के बीच पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह देवताओं के बीच पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह मनुष्यों के बीच पुनः प्रकट होगा; यदि उसे आवश्यक शर्त मिल जाती है, तो वह निर्गमन प्राप्त करेगा। इसीलिए यही वह मार्ग है जो कहीं भी ले जाता है।
563. इस असीम के बारे में कारण और उदाहरण के बारे में ज्ञान को पूर्ण सत्ता की दूसरी शक्ति कहा जाता है, जिसमें कहीं भी ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान शामिल है (तुलना करें पे 34-5)।

[पृष्ठ 133]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
[iii. विश्व का ज्ञान, जिसमें इसके अनेक और विविध तत्व शामिल हैं]
564. जो रास्ता कहीं भी जाता है वह अनेक तत्वों का संसार है; जो रास्ता यहाँ या वहाँ जाता है वह विभिन्न तत्वों का संसार है।
565. इसमें, अनेक तत्वों का संसार क्या है? यह नेत्र तत्व, रूप तत्व, नेत्र-चेतना तत्व, कान तत्व, ध्वनि तत्व, कान-चेतना तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, शरीर-चेतना तत्व, मन तत्व, विचार तत्व, मन-चेतना तत्व; पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व, चेतना तत्व; इंद्रिय-इच्छा तत्व, द्वेष तत्व, क्रूरता तत्व, त्याग तत्व, अदम्यता तत्व, अक्रूरता तत्व; पीड़ा तत्व, शोक तत्व, अज्ञान तत्व, सुख तत्व, आनंद तत्व, समता तत्व; रूप तत्व, निराकार तत्व, समाप्ति तत्व; निर्धारण तत्व, समाप्ति तत्व (देखें एम. iii, 62-3)। यही अनेक तत्वों का संसार है।
566. इसमें विभिन्न तत्वों की दुनिया क्या है? आँख तत्व एक है, रूप तत्व दूसरा है, आँख-चेतना तत्व तीसरा है, ...और इसी तरह बाकी सभी तत्व भी हैं...विलुप्ति तत्व चौथा है।
567. इस असीम के बारे में कारण और उदाहरण के बारे में ज्ञान को पूर्ण सत्ता की तीसरी शक्ति कहा जाता है, जिसमें अनेक और विभिन्न तत्वों का ज्ञान शामिल है (तुलना करें पे 35)।
[iv. विश्वास में अंतर का ज्ञान]
568. किस संसार के अनेक तत्व और विभिन्न तत्व? वे जिस भी तत्व में विश्वास करते हैं, उसे व्यक्त करते हैं और उस पर ज़ोर देते हैं। कुछ रूपों में विश्वास करते हैं, कुछ ध्वनियों में, कुछ गंधों में, कुछ स्वादों में, कुछ स्पर्शनीय वस्तुओं में, कुछ विचारों में, कुछ स्त्रीत्व में, कुछ पुरुषत्व में, कुछ उदारता में, कुछ हीनता में, [98] कुछ श्रेष्ठता में, कुछ देवताओं में, कुछ मनुष्यों में, कुछ विलुप्ति में विश्वास करते हैं। 1

568/1 इन सभी 'मान्यताओं' को निम्नलिखित 'वादों' के रूप में व्यक्त किया जा सकता है: भौतिकवाद या यथार्थवाद (5 प्रकार, इस आधार पर कि कौन सी 'इंद्रियों' से 'सच्चा' डेटा प्राप्त होता है), आदर्शवाद, पुरुषवाद, नारीवाद, उदारवाद, विकासवाद (उत्पत्ति से), अवनतिवाद (लक्ष्य की ओर), आस्तिकतावाद, मानवतावाद और विलुप्तिवाद (अंतिम के लिए दिठ्ठधम्मनिब्बाना देखें)।

[पृष्ठ 134]

पथप्रदर्शक

569. इस असीमित ज्ञान के बारे में कारण और उदाहरण के बारे में 'यह मार्गदर्शन योग्य है, यह मार्गदर्शन योग्य नहीं है, यह स्वर्ग जा रहा है, यह बुरे गंतव्य की ओर जा रहा है' को पूर्ण सत्ता की चौथी शक्ति कहा जाता है जिसमें प्राणियों के विश्वासों में भिन्नता का ज्ञान शामिल है (तुलना करें पे 35)।

[क्रिया की परिपक्वता का ज्ञान]

570. जैसा ये प्राणी मानते हैं, वैसा ही इनका अस्तित्व होता है। 1 [क्योंकि] वे इस या उस प्रकार का कर्म करते हैं। वे छह प्रकार से कर्म करते हैं: कुछ लोभ से, कुछ घृणा से, कुछ भ्रम से, कुछ विश्वास से, कुछ ऊर्जा से और कुछ समझ से।

571. उस [क्रिया को] दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, एक वह जो घुमाव के साथ चलती है और दूसरी वह जो विलुप्ति की ओर जाती है।

572. इसमें, लोभ, घृणा और भ्रम के कारण किया गया कोई भी कार्य काला कर्म है और उसका फल भी काला ही होता है (देखें §844)। इसमें, विश्वास और ऊर्जा के कारण किया गया कोई भी कार्य सफेद कर्म है और उसका फल भी सफेद ही होता है। इसमें, लोभ, घृणा, भ्रम और विश्वास के कारण किया गया कोई भी कार्य काला-सफेद कर्म है और उसका फल भी काला-सफेद ही होता है। इसमें, ऊर्जा और समझ के कारण किया गया कोई भी कार्य न तो काला है और न ही सफेद, और उसका फल भी न काला है और न ही सफेद। यही सर्वोच्च कर्म है, सर्वश्रेष्ठ कर्म है, और यह कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाता है (तुलना करें एम . i, 389f.)।

573. कर्म करने के चार तरीके हैं: एक तरीका है कर्म करने का जिससे वर्तमान में सुख उत्पन्न होता है और भविष्य में पीड़ा के रूप में परिपक्व होता है। एक तरीका है कर्म करने का जिससे वर्तमान में पीड़ा उत्पन्न होती है और भविष्य में सुख के रूप में परिपक्व होती है। एक तरीका है कर्म करने का जिससे वर्तमान में पीड़ा उत्पन्न होती है और भविष्य में पीड़ा के रूप में परिपक्व होती है। एक तरीका है कर्म करने का जिससे वर्तमान में सुख उत्पन्न होता है और भविष्य में सुख के रूप में परिपक्व होता है (cf. M. i, 305): ^इस प्रकार का कोई भी कर्म करना।

574. भगवान बुद्ध, [जब वे देखते हैं कि] 'एक उपक्रम

डी.आई. , 36 और एम.आई. , 509 पर गलत दृष्टिकोण और एम.आई. , 4 पर निब्बानम मन्नति । §291 भी देखें।

570/1 भवन्ति के बाद प्रश्नवाचक वाक्य नहीं, पूर्ण विराम होना चाहिए । यह आश्रित उत्पत्ति सूत्र के संबंध का संकेत है: उपदानप्पच्चया भावो (कुछ उदाहरणों में उपदान के स्थान पर अधिमोक्खा के विशेष प्रतिस्थापन के लिए - जो सद्धा का प्रतीक है - देखें Vbh. 165)।

[पृष्ठ 135]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

इस व्यक्ति द्वारा अनुत्पादक कर्म संचित किया गया है, जो [यद्यपि अभी तक] अपरिपक्व है, लेकिन पकने ही वाला है, और [इसलिए] वह फूटने में असमर्थ है' (देखें §326; साथ ही एम. i, 104), [99] उसे सलाह नहीं देता, जैसा कि देवदत्त (एफ.एम. ii, 197ff.), कोकालिका (एस.एन. पृ. 123f.), लिच्छवी के पुत्र सुनक्खत्त (डी. सुत्त 24; एम. i, 68), और किसी अन्य प्राणी के मामले में, जो निश्चित रूप से गलत हैं।

575. भगवान बुद्ध, जब देखते हैं कि 'इन व्यक्तियों ने कुछ निष्फल कर्म संचित किए हैं, परन्तु उनका क्रियान्वयन अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है; यह अभी पूर्ण होने से पहले, फल देने से पहले, मार्ग में बाधा उत्पन्न करने से पहले, मार्गदर्शन की सीमा से बाहर निकलने से पहले की अवस्था में है', तो वे उन्हें तब तक सलाह देते हैं जब तक उनका कर्म पूर्णतः संपन्न नहीं हो जाता, जैसा कि बैल-कर्म तपस्वी पुन्ना और नग्न कुत्ते-कर्म तपस्वी के मामले में है (देखें एम. सूत्र 57)।

576. भगवान बुद्ध, [जब वे देखते हैं कि] 'इस व्यक्ति द्वारा किए गए निष्फल कर्म के पूर्ण होने पर यह मार्ग में बाधा उत्पन्न करेगा, [परन्तु] यह [अभी] पूर्ण होने से पहले, फल देने से पहले, मार्ग में बाधा उत्पन्न करने से पहले, मार्गदर्शन की सीमा से आगे बढ़ने से पहले है', तो वे उसे तब सलाह देते हैं जब [उसका कर्म] [पूरी तरह से] शुरू नहीं हुआ होता है, जैसा कि पूज्य अंगुलिमाला के मामले में हुआ था (एम. सूत्र 86)।

577. सभी मामलों में प्रकाश, 1 माध्यम और उत्कृष्ट अवस्था होती है। इसमें, अविचलित निर्धारक क्रियाएँ प्रकाश हैं, शेष लाभकारी निर्धारण माध्यम हैं, और अनुपयोगी निर्धारण उत्कृष्ट हैं।
578. कारण और उदाहरण के बारे में असीमित ज्ञान, इस प्रकार 'इस प्रकार की क्रिया का अनुभव यहीं और अभी (इस जीवन में) होना है, इस प्रकार की क्रिया का अनुभव पुनर्जन्म में होना है, इस प्रकार की क्रिया का अनुभव किसी बाद के काल में होना है; इसका अनुभव नरक में होना है, इसका अनुभव पशु के रूप में होना है, इसका अनुभव प्रेतलोक में होना है, इसका अनुभव असुर राक्षस के रूप में होना है, इसका अनुभव देवता के रूप में होना है, इसका अनुभव मनुष्य के रूप में होना है', इसे पूर्ण पुरुष की पाँचवीं शक्ति कहा जाता है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न कर्मों के कारण और उदाहरण के बारे में असीमित ज्ञान होता है, जो परिपक्वता में विविधता का ज्ञान है (देखें पे 35-6)।

577/1 मुदु (यहाँ 'प्रकाश' के रूप में अनुवादित) के स्पष्ट रूप से दो अलग-अलग, यद्यपि परस्पर संबंधित नहीं, अर्थ हैं: (1) जैसा कि §512 में है, जहाँ इसका अर्थ 'नरम', 'लचीला' है, और (2) जैसा कि §§577, 586, 670 और 747 (मुदुका) में है, जहाँ इसका अर्थ 'कुंद' या 'प्रकाश' है। यहाँ नेट्टिया ने अविसादा ('अस्पष्ट') के साथ व्याख्या की है , और इस अनुच्छेद में मुदु का अनुवाद 'कुंद' के रूप में किया गया है; लेकिन §§511-12 में इसकी व्याख्या लाहुका ('प्रकाश') के साथ की गई है ; वहाँ मुदु एक प्रशंसा शब्द है, लेकिन यहाँ नहीं है।

[पृष्ठ 136]
पथप्रदर्शक
[vi. ध्यान , मुक्ति , एकाग्रता और उपलब्धियों के मामलों में अपवित्रता , शुद्धि और उद्भव का ज्ञान]
579. इस प्रकार किए गए कार्यों और इस प्रकार किए गए ध्यान, मुक्ति, एकाग्रता और उपलब्धियों का अबाधित ज्ञान है, [यह जानते हुए] कि 'यह भ्रष्टाचार है, यह शुद्धि है, यह उद्भव है, यह इस प्रकार भ्रष्ट होता है, यह इस प्रकार शुद्ध होता है, यह इस प्रकार उद्भव होता है'।
580. इसमें कितने ध्यान हैं? [100] चार ध्यान।
कितनी मुक्तियाँ? ग्यारह, आठ, सात और तीन
और दो। 1
कितने एकाग्रता स्तर? तीन एकाग्रता स्तर: चिंतन और अन्वेषण के साथ एकाग्रता; चिंतन के बिना और केवल अन्वेषण के साथ एकाग्रता; चिंतन के बिना और अन्वेषण के बिना एकाग्रता (धारा 443 देखें)।
कितनी उपलब्धियाँ? पाँच उपलब्धियाँ: प्रत्यक्ष प्राप्ति, अप्रत्यक्ष प्राप्ति, न प्रत्यक्ष न अप्रत्यक्ष प्राप्ति, शून्यता की प्रत्यक्ष प्राप्ति, समाप्ति की प्राप्ति (§441)।
581. इसमें भ्रष्टाचार क्या है? कामुक इच्छाओं और द्वेष की लालसा प्रथम ध्यान का भ्रष्टाचार है, और पहले दो ध्यान शर्मीले ध्यानी के लिए हैं, 1 या किसी भी निम्न अवस्था से संबंधित एकाग्रता के लिए। यही भ्रष्टाचार है।
582. इसमें शुद्धि क्या है? प्रथम ध्यान को बाधाओं से मुक्त करना और अंतिम ध्यान की प्राप्ति।

580/1 नेत्तिया '11' को 8 मुक्ति (विमोक्खा : देखें एम. ii, 12-13) के साथ-साथ 3, अर्थात् शून्यता, संकेतहीनता और स्वभावहीनता (भजन ii, 35) के रूप में देता है; '8' को पहले से उल्लिखित 8 के रूप में; '7' को समाप्ति-प्राप्ति के बिना 8 के रूप में; '3' को पहले से उल्लिखित के रूप में, जो सूत्रों द्वारा अनुमत हैं; और '2' को शून्यता और स्वभावहीनता के रूप में, जो अभिधम्म द्वारा अनुमत हैं, जबकि वहां संकेतहीनता को अस्वीकार किया गया है (देखें विजन अध्याय xxi, §72/ पृष्ठ 658)।
580/2 विभूतसन्नसमापत्ति को §441 पर पढ़ें।
581/1 'कुक्कुतज्जयी - एक शर्मीला ध्यानी': पीईडी में नहीं; नेत्तिया: ' अज्ञान के प्रति अरुचि के अभाव (अजन्नजिगुच्चनमुखेना) के अंतर्गत उस अधिकतम (तप्परामता) अवस्था को "शर्मीला" (कुक्कु-तम) कहा जाता है। " कुक्कुतज्जयी" ध्यान को व्यक्तियों के संदर्भ में व्यक्त करता है; यहाँ प्रथम और द्वितीय ध्यान का तात्पर्य है। जब कोई व्यक्ति प्रथम या द्वितीय ध्यान करता है और फिर रुक जाता है, तो उसके मामले में चारों ध्यान में से कोई भी "शर्मीला ध्यान" कहलाता है। जो व्यक्ति इन अवस्थाओं को धारण करता है, उसे "शर्मीला

ध्यानी" कहा जाता है' (पृष्ठ 142)। यहाँ कुक्कुत संभवतः कर (?) का एक रूप है ; तुलना करें कु-कटा (फि«9. 470); सेरेब्रल टी के लिए कटट्टा देखें (सार. संज्ञा. से. काटा , कर का पीपी.)।

[पृष्ठ 137]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

शर्मीले ध्यान करने वाले व्यक्ति या भेद से संबंधित किसी भी एकाग्रता के लिए ये दो ध्यान विधियां शुद्धिकरण का काम करती हैं।

583. इसमें उद्भव क्या है? किसी उपलब्धि से उभरने का कौशल (तुलना करें भजन 1, 48)।

584. इस असीम ज्ञान के बारे में कारण और उदाहरण के संबंध में पूर्ण व्यक्ति की छठी शक्ति कहलाती है, जिसमें सभी ध्यान, मुक्ति, एकाग्रता और उपलब्धियों के मामलों में भ्रष्टाचार, शुद्धि और उद्भव का ज्ञान शामिल है।

[vii. प्राणियों की क्षमताओं के स्वभाव का ज्ञान]

585. उसी एकाग्रता के उपकरण के लिए तीन विचार हैं, अर्थात् क्षमताएँ, शक्तियाँ और ऊर्जा। वही क्षमताएँ ऊर्जा के कारण शक्तियाँ बन जाती हैं: वे प्रभुत्व के अर्थ में क्षमताएँ हैं, जबकि वे अविचलता के अर्थ में शक्तियाँ हैं (देखें भजन संहिता 1, 21)।

586. उनमें कुंद, मध्यम और उत्कृष्ट अवस्थाएँ इस प्रकार हैं: इसमें कुंद शक्तियाँ हैं, इसमें मध्यम शक्तियाँ हैं, इसमें उत्कृष्ट शक्तियाँ हैं।

587. इसमें, भगवान बुद्ध तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति को संक्षिप्त सलाह देते हैं; भगवान बुद्ध मध्यम बुद्धि वाले व्यक्ति को संक्षिप्त और विस्तृत सलाह देते हैं; भगवान बुद्ध कुंद बुद्धि वाले व्यक्ति को विस्तृत सलाह देते हैं।

इसमें, भगवान बुद्ध तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति को सच्चे विचार की एक कुंद (हल्की) शिक्षा प्रकट करते हैं; भगवान बुद्ध मध्यम बुद्धि वाले व्यक्ति को सच्चे विचार की कुंद से तीव्र शिक्षा प्रकट करते हैं [101]; भगवान बुद्ध कुंद बुद्धि वाले व्यक्ति को सच्चे विचार की एक तीव्र शिक्षा प्रकट करते हैं।

यहां, भगवान बुद्ध तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति को शांति का ज्ञान देते हैं; भगवान बुद्ध मध्यम बुद्धि वाले व्यक्ति को शांति और अंतर्दृष्टि का ज्ञान देते हैं; भगवान बुद्ध कुंद बुद्धि वाले व्यक्ति को अंतर्दृष्टि का ज्ञान देते हैं।

इसमें, भगवान बुद्ध तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति की ओर पलायन का मार्ग बताते हैं; भगवान बुद्ध निराशा और मध्यम बुद्धि वाले व्यक्ति की ओर पलायन का मार्ग बताते हैं; भगवान बुद्ध संतुष्टि और निराशा और कुंद बुद्धि वाले व्यक्ति की ओर पलायन का मार्ग बताते हैं।

यहां, भगवान बुद्ध तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति को उच्चतर ज्ञान के प्रशिक्षण के माध्यम से समझाते हैं; भगवान बुद्ध मध्यम बुद्धि वाले व्यक्ति को उच्चतर चेतना के प्रशिक्षण के माध्यम से समझाते हैं; भगवान बुद्ध कुंद बुद्धि वाले व्यक्ति को उच्चतर सद्गुण के प्रशिक्षण के माध्यम से समझाते हैं।

[पृष्ठ 138]

पथप्रदर्शक

588. इस विषय में कारण और उदाहरण के बारे में असीमित ज्ञान, जैसे कि 'यह इस तल पर गया है और इस काल में, इस प्रकार की शिक्षा के साथ अस्तित्व में है; और इसमें अमुक-अमुक तत्व हैं [निम्न से शुरू करते हुए], और ऐसा पूर्वाग्रह था [उसके दृष्टिकोण में], और ऐसी अंतर्निहित प्रवृत्ति थी', इसे पूर्ण पुरुष की सातवीं शक्ति कहा जाता है, जिसमें अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की विभिन्न क्षमताओं में विविधता का ज्ञान शामिल है।

[viii. पूर्व जीवन का ज्ञान]

589. इसमें वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, एक हजार जन्म, एक लाख जन्म, कई सौ जन्म, कई हजार जन्म, कई लाख जन्म, कई युगों का [विश्व] संकुचन, कई युगों का [विश्व] विस्तार, कई युगों का [विश्व] संकुचन और विस्तार: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसी जाति का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; और वहाँ से निकलकर मैं कहीं और प्रकट हुआ; और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसी जाति का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; [102] और वहाँ से गुज़रकर, मैं यहाँ फिर से प्रकट हुआ', इस प्रकार अपने मनोदशाओं और चरणों के साथ वह अपने विविध अतीत के जीवन को याद करता है (एम. आई, 22; 70)।

590. इसमें, स्वर्ग की ओर अग्रसर होने वाले प्राणियों, मनुष्य जाति की ओर अग्रसर होने वाले प्राणियों और बेचैनी की अवस्थाओं की ओर अग्रसर होने वाले प्राणियों के बीच, भगवान बुद्ध बिना किसी संकोच के, अमुक प्राणियों का स्मरण करते हुए, इस प्रकार जानते हैं: 'इस व्यक्ति में लोभ आदि प्रमुख है और लोभ आदि का अभाव है; इस व्यक्ति में लोभ आदि प्रमुख है और लोभ आदि का अभाव है; या जो भी प्रमुख हो और जो भी अभाव हो; इस व्यक्ति में ये क्षमताएँ संचित हैं, इस व्यक्ति में ये क्षमताएँ संचित नहीं हैं, उस दस लाख युगों, एक लाख युगों, हज़ार युगों, सौ युगों, युग, युग-अंतराल, अर्धयुग, वर्ष, अर्धवर्ष, माह, अर्धचंद्र, दिन या घंटे में, इस लापरवाही के कारण या इस विश्वास के कारण।'

[ix. स्वर्गीय दृष्टि]

591. इसमें, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, निम्न और उच्चतर, सुंदर और बदसूरत, अच्छे और बुरे व्यवहार वाले देखता है।

[पृष्ठ 139]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके

यह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं, इस प्रकार 'ये योग्य प्राणी, शरीर, वाणी और मन से दुराचारी, श्रेष्ठों की निंदा करने वाले, अपने विचारों में गलत, गलत दृष्टिकोण के कारण कर्म करने वाले, शरीर के विघटन पर, मृत्यु के बाद, बेचैनी की स्थिति में, बुरे गंतव्य में, विनाश में, नरक में, फिर से प्रकट हुए हैं; लेकिन ये योग्य प्राणी, शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण वाले, श्रेष्ठों की निंदा न करने वाले, अपने विचारों में सही, सही दृष्टिकोण के कारण कर्म करने वाले, शरीर के विघटन पर, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, स्वर्ग लोक में फिर से प्रकट हुए हैं 5 (cf. एम. i, 22-3; 70-1)।

592. इसमें, स्वर्ग की ओर जाने वाले प्राणियों, मनुष्य जाति की ओर जाने वाले प्राणियों और बेचैनी की अवस्थाओं की ओर जाने वाले प्राणियों के बीच, [भगवान बुद्ध निःसंकोच जानते हैं] 'इस व्यक्ति द्वारा ऐसा कर्म उन लाखों युगों में संचित हुआ, [103] . . . दिन, या घंटे, इस लापरवाही के कारण, या इस विश्वास के कारण 5 .

593. भगवान बुद्ध के ये दो प्रकार के ज्ञान, पूर्व जन्म की याद का ज्ञान और दिव्य दृष्टि, सिद्ध पुरुष की आठवीं और नौवीं शक्तियाँ हैं (देखें पे 38)।

[x. दोषों की समाप्ति के ज्ञान में सर्वज्ञता]

594. इसमें, जब सर्वज्ञता प्राप्त हुई, जब सभी विचार पाए गए, जब निर्मल, निष्कलंक सर्वज्ञ ज्ञान उत्पन्न हुआ, जब ज्ञान के वृक्ष के चरणों में मारा को पराजित किया गया: यही पूर्ण स्वरूप की दसवीं शक्ति है, जो समस्त दोषों के पूर्ण निवारण के ज्ञान से युक्त है। क्योंकि प्रबुद्ध जन, भगवान बुद्ध, दस शक्तियों से संपन्न हैं।

किसी जांच को संप्रेषित करने का तरीका

संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।

*

मोड 3

595. इसमें, संयुक्त उपचार में व्याख्या करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]

अतः उसकी चेतना को सतर्क रखा जाए।
चरागाह के लिए सही इरादा रखते हुए,
सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि महत्व देना, ज्ञान के माध्यम से।

[पृष्ठ 140]

पथप्रदर्शक

उठना और गिरना, उनींदापन से परे जाना
और एक भिक्षु में आलस्य हो सकता है।

सभी हानिकारक गंतव्यों को त्याग दें।
(§252; §491 में उद्धरण का निरंतरता)।
'अतः, अपने विवेक को सतर्क रखें, सही इरादे को चरागाह के रूप में रखें': इसका अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है: सतर्क विवेक वाला व्यक्ति सही इरादे को चरागाह के रूप में रखता है। इसका अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है: सही इरादे को चरागाह के रूप में रखने वाला व्यक्ति सही दृष्टि वाला होता है। इसका अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है: जब वह सही दृष्टि को सर्वोपरि रखता है, तो वह उतार-चढ़ाव को भलीभांति समझ लेगा। इसका अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है: जब वह उतार-चढ़ाव को भलीभांति समझ लेता है, तो वह सभी बुरी मंजिलों को त्याग देगा। इसका अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है: जब वह सभी बुरी मंजिलों को त्याग देता है, तो वह बुरी मंजिलों के सभी भय और बेचैनी की अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर लेगा।
व्याख्या को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 4
596. [104] इसमें, संयुक्त उपचार में नींव ले जाने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
597. 'इसलिए उसकी जागरूकता का ध्यान रखा जाए': यही तीन प्रकार के अच्छे आचरण का आधार है।
'चरागाह के लिए सही इरादा रखना 5 : यही शांति का आधार है। 'सही दृष्टिकोण को प्रथम स्थान देना 5 : यही अंतर्दृष्टि का आधार है।
'उतार-चढ़ाव को जानने के माध्यम से': यही दृष्टि के तल का आधार है [धारा प्रवेश के मार्ग के रूप में]।
'उदासी और सुस्ती से ऊपर उठकर एक भिक्षु 5 मई : यही ऊर्जा का आधार है।
'सभी बुरी मंजिलों का त्याग करो': यही तीन उच्चतर मार्गों की प्राप्ति के रूप में अस्तित्व में बने रहने का आधार है।
नींव को ले जाने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

[पृष्ठ 141]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
मोड 5
598. इसमें, संयुक्त उपचार में विशेषताओं को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
599. 'इसलिए उसकी चेतना को सुरक्षित रखा जाए, सही इरादे को चरागाह बनाकर 5 : यही सचेतनता की शक्ति है। जब सचेतनता की शक्ति को स्वीकार कर लिया जाता है तो पाँचों शक्तियाँ [विश्वास, ऊर्जा, सचेतनता, एकाग्रता और समझ] भी स्वीकार कर ली जाती हैं।
600. 'सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि स्थान देना': जब सही दृष्टिकोण को स्वीकार किया जाता है, तो आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग को स्वीकार किया जाता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि सही दृष्टिकोण से ही सही इरादे का जन्म होता है, सही इरादे से ही सही वाणी का जन्म होता है, सही वाणी से ही सही कर्म का जन्म होता है, सही कर्म से ही सही आजीविका का जन्म होता है, सही आजीविका से ही सही प्रयास का जन्म होता है, सही प्रयास से ही सही जागरूकता का जन्म होता है, सही जागरूकता से ही सही एकाग्रता का जन्म होता है, सही एकाग्रता से ही सही मुक्ति का जन्म होता है, और सही मुक्ति से ही मुक्ति का सही ज्ञान और दर्शन प्राप्त होता है (देखें एम. iii, 76)।
विशेषताओं को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 6

601. [105] इसमें, संयुक्त उपचार में चार गुना सरणी को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
602. [शब्द 'सुरक्षित' के मामले में] (i) भाषा [निम्नलिखित शब्दों की कोई स्थापना है:] वह इसे सुरक्षित रखता है, इस प्रकार यह सुरक्षित है, [और इसी तरह अन्य शब्दों के साथ।]
603. (ii) भगवान बुद्ध का यहाँ क्या तात्पर्य है ? भगवान बुद्ध का तात्पर्य यह है: जो लोग बुरे गंतव्यों से मुक्ति पाने की इच्छा रखेंगे, वे ही सच्चे विचार के मार्ग पर चलेंगे।
604. (iii) [स्रोत के संबंध में :] क्योंकि कोकालिका ने अपने विवेक को भ्रष्ट कर दिया था

[पृष्ठ 142]
पथप्रदर्शक
सारिपुत्त और मोग्गलाना नामक बुजुर्गों के प्रति घृणा के साथ वह महान पद्मा नरक में पुनः प्रकट हुआ (देखें एसएन. पृष्ठ 123flf)। 1
605. (iv) और [क्रमिक क्रम के संबंध में :] भगवान बुद्ध के पास ऐसी चेतना है जिसने सचेतनता को संरक्षित रखा है; क्योंकि सूरह में कहा गया है कि <चेतना को सचेतनता द्वारा संरक्षित किया जा सकता है> (
), [जो यहां क्रमिक अनुक्रम प्रदान करता है।]
चार गुना सरणी को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 7
606. संयुक्त उपचार में रूपांतरण को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
607. 'इसलिए उसकी जागरूकता को सुरक्षित रखा जाए, चरागाह के लिए सही इरादा रखते हुए': यह शांत है।
'सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि रखना': यही अंतर्दृष्टि है।
'उदय और पतन को जानने के माध्यम से' दुख का निदान होता है। 'सुस्ती और आलस्य से ऊपर उठकर भिक्षु बनना' दुख के मूल कारण का त्याग करना है।
'सभी बुरे गंतव्यों को त्याग देना' का अर्थ है समाप्ति।
ये चार सत्य हैं।
धर्म परिवर्तन को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 8
608. इसमें विश्लेषण को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
609. इस आयत में वर्णित लाभप्रद पक्ष को सिद्ध किया जा सकता है।

604/1 यह वह स्रोत नहीं है, जैसा कि यहाँ उम्मीद की जा सकती थी, जो उदाना श्लोकों का स्रोत है और इस अध्याय का विषय है। आश्चर्यजनक रूप से, इस अध्याय में उनके स्रोत का उल्लेख बिल्कुल नहीं है। नरक के लिए n. 786/2 देखें।

[पृष्ठ 143]

संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
लाभदायक पक्ष के विवरण 1 द्वारा , जबकि अनुपयोगी पक्ष (इस आयत में बताए गए के विपरीत (§491)) अनुपयोगी पक्ष के विवरण 1 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
विश्लेषण को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 9
610. [106] इसमें, संयुक्त उपचार में उलटफेर को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
611. जब शांति और अंतर्दृष्टि बनी रहती है, तब उनका फल निवारण होता है, दुख का निदान हो जाता है, उसके मूल का त्याग हो जाता है, और विपरीतताओं के माध्यम से मार्ग बना रहता है। 1
किसी परिवर्तन को व्यक्त करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 10
612. इसमें, संयुक्त उपचार में समानार्थी शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
613. 'इसलिए उसकी चेतना को सुरक्षित रखा जाए': चेतना, मन, चेतना, मन-क्षमता, मन-आधार, सचेत होने की क्रिया, संज्ञान, ये सभी पर्यायवाची हैं।
614. 'सही इरादे से चरागाह करना': त्याग का इरादा, दुर्भावना न रखने का इरादा, क्रूरता न करने का इरादा, ये समानार्थी हैं।
615. 'सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि स्थान देना': सही दृष्टिकोण को समझ का हथियार, समझ की तलवार, समझ का रत्न कहा जाता है।

609/1 यहां विश्लेषण में 'प्रदर्शित' किए जाने वाले विवरण शामिल हैं।
611/1 'विपरीत के माध्यम से, "एक लापरवाह संज्ञान के साथ" (§491: विपरीत के लिए §595 देखें) से शुरू होने वाला श्लोक अभिप्रेत है। या फिर विश्लेषण को संप्रेषित करने के तरीके में लाभहीन पक्ष के माध्यम से' (नेटीए पृ. 150)।

[पृष्ठ 144]
पथप्रदर्शक
समझ का प्रकाश, समझ की प्रेरणा, समझ का [प्रसिद्ध] महल, ये सभी पर्यायवाची हैं।
पर्यायवाची शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 11
616. इसमें, संयुक्त उपचार में विवरण संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
617. 'इसलिए उसकी चेतना को सुरक्षित रखा जाए' यह वर्णन सचेतनता पर लागू आधार के संदर्भ में है।
618. 'चारागाह के लिए सही इरादा रखना' शांत रहने के संदर्भ में एक वर्णन है।
619. 'उदय और पतन को जानकर सही दृष्टिकोण को प्रथम स्थान देना' देखने के तल पर लागू प्रस्तुति के संदर्भ में एक वर्णन है।

620. 'नींद और आलस्य से ऊपर उठकर, एक भिक्षु' उत्पत्ति पर लागू त्याग के संदर्भ में एक वर्णन है।
621. 'सभी बुरे गंतव्यों को त्याग दें' यह मार्ग पर लागू होने वाले अस्तित्व को बनाए रखने के संदर्भ में एक वर्णन है।
विवरणों को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 12
622. [107] इसमें प्रवेश के मार्गों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
623. 'अतः उसकी चेतना को सतर्क रखा जाए, सही इरादे को आधार बनाकर, सही दृष्टि को सर्वोपरि रखा जाए': जब सही दृष्टि को स्वीकार कर लिया जाता है, तो पाँचों इंद्रियाँ भी स्वीकार कर ली जाती हैं [सही दृष्टि, समझ की इंद्रिय का पर्यायवाची है]। इंद्रियों के प्रवेश का यही मार्ग है।
624. वही क्षमताएँ विज्ञान हैं। विज्ञान के उदय के साथ ही अज्ञान का अंत होता है; अज्ञान के अंत के साथ ही,

---

[पृष्ठ 145]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
निर्धारणों की समाप्ति; . . . और इस प्रकार संपूर्ण आश्रित उत्पत्ति . . . यह आश्रित उत्पत्ति द्वारा प्रवेश का मार्ग है।
625. वही क्षमताएँ श्रेणियों, सद्गुण श्रेणी, एकाग्रता श्रेणी और समझ श्रेणी में समाहित हैं। श्रेणियों के माध्यम से प्रवेश का यही तरीका है।
626. वही श्रेणियाँ निर्धारणों में शामिल हैं। ये निर्धारण—[इस मामले में] दोषों से मुक्त और अस्तित्व के कारक नहीं—विचार तत्व के अंतर्गत आते हैं। तत्वों द्वारा प्रवेश का यही तरीका है।
627. वह विचार तत्व विचार आधार में समाहित है, जो आधार [इस मामले में] दोषों से मुक्त है और अस्तित्व का कारक नहीं है। यह आधारों द्वारा प्रवेश का तरीका है।
प्रवेश के मार्गों को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 13
628. इसमें, संयुक्त उपचार में सफाई पहुंचाने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
629. जहाँ उकसावे का स्पष्टीकरण हो जाता है, प्रश्न का उत्तर मिल जाता है; परन्तु जहाँ उकसावे का स्पष्टीकरण नहीं होता, उस प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं मिलता (§420)।
किसी बात को स्पष्ट करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

मोड 14
630. इसमें, संयुक्त उपचार में अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
631. 'तो उसकी जानकारी सुरक्षित रखी जाए' एक एकता है।
संज्ञान, मन, चेतना: यही विविधता है।

632. 'चारागाह के लिए सही इरादा रखना' एक एकता है।
त्याग का इरादा, दुर्भावना न रखने का इरादा, [108] क्रूरता न करने का इरादा: यह एक विविधता है।

[पृष्ठ 146]
पथप्रदर्शक
633. 'सही दृष्टिकोण को प्रथम स्थान देना' एक एकता है।
सही दृष्टिकोण को दुख के बारे में ज्ञान, दुख के कारण के बारे में ज्ञान, दुख के निवारण के बारे में ज्ञान, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के बारे में ज्ञान (देखें §440); मार्ग के बारे में ज्ञान, पथ के बारे में ज्ञान (देखें §428-9); कारण के बारे में ज्ञान, कारण से उत्पन्न विचारों के बारे में ज्ञान, स्थिति के बारे में ज्ञान, सशर्त रूप से उत्पन्न विचारों के बारे में ज्ञान (देखें Vbh. 104); विभिन्न स्थितियों में चीजों को कैसे जानना और देखना, किसी भी प्रकार का वास्तविककरण, पूर्ण अंतर्दृष्टि, सत्य तक पहुँचना: यह विविधता है।
634. 'उदय और पतन को जानने के माध्यम से' एक एकता है।
'उदय' के माध्यम से: अज्ञान को स्थिति मानकर, निर्धारणों को; निर्धारणों को स्थिति मानकर, चेतना को; ...और इसी प्रकार बाकी सब... इसी तरह इस संपूर्ण प्रकार के दुख का उद्गम होता है। 'पतन' के माध्यम से, अज्ञान का अंत; अज्ञान के अंत के साथ, निर्धारणों का अंत; ...और इसी प्रकार बाकी सब... इसी तरह इस संपूर्ण प्रकार के दुख का अंत होता है। यह विविधता है।
635. 'सुस्ती और आलस्य से परे, एक भिक्षु' एक एकता है। 'आलस्य' चेतना की असंयम का नाम है, 'सुस्ती' का।
यह शरीर के किसी भी आलसीपन का नाम है। यह एक विविधता है (cf. §500)।
636. 'सभी बुरे गंतव्यों को त्याग दें' एक एकता है।
देवताओं और मनुष्यों की तुलना में बेचैनी की अवस्थाएँ बुरी मंजिलें हैं; लेकिन विलुप्ति की तुलना में सभी प्रकार के रूप बुरे मंजिलें हैं (§250)। यह एक विविधता है।
संयुक्त उपचार में अभिव्यक्ति के शब्दों को संप्रेषित करने का तरीका समाप्त हो गया है।
*

मोड 15
637. इसमें, संयुक्त उपचार में आवश्यकताओं को संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी जानकारी को सुरक्षित रखा जाए ...
638. यही शांति और अंतर्दृष्टि की आवश्यकता है।
आवश्यकताओं को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*

[पृष्ठ 147]
संयुक्त उपचार में संचार के 16 तरीके
मोड 16
639. इसमें, संयुक्त उपचार में समन्वय संप्रेषित करने का तरीका क्या है? [यह इस प्रकार है:]
अतः उसकी चेतना को सतर्क रखा जाए।
चरागाह के लिए सही इरादा रखते हुए,
सही दृष्टिकोण को सर्वोपरि महत्व देना, ज्ञान के माध्यम से।
उठना और गिरना, उनींदापन से परे जाना
और एक भिक्षु में आलस्य हो सकता है।
सभी बुरे गंतव्यों को त्याग दें > (§595).

640. [109] (i) 'इसलिए उसकी चेतना की रक्षा की जाए' तीन प्रकार के अच्छे आचरण का आधार है, (ii) जब चेतना की रक्षा की जाती है, तो शारीरिक क्रिया, मौखिक क्रिया और मानसिक क्रिया की रक्षा की जाती है।
641. (iii) 'सही इरादे को चरागाह के रूप में रखना': जब सही दृष्टि बनी रहती है, तो श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग बना रहता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि सही दृष्टि से ही सही इरादे को जन्म मिलता है, सही इरादे से... [धारा 600 के अनुसार पूरा]... सही मुक्ति से ही मुक्ति का सही ज्ञान और दर्शन प्राप्त होता है।
642. (iv) यह एक ऐसा व्यक्ति है जिसका कोई निशान नहीं बचा है और विलुप्तिकरण तत्व जिसका कोई निशान नहीं बचा है।
समन्वय को संप्रेषित करने का तरीका
संयुक्त उपचार समाप्त हो गया है।
*
643. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:
'सोलह परिवहन प्रथम, सर्वेक्षण
फिर दिशाओं की रूपरेखा तैयार करने के साथ,
और हुक से इकट्ठा करने के बाद,
तीन दिशानिर्देश एक सूत्र को प्रदर्शित करते हैं' (§26)।
संयुक्त उपचार में संचार के तरीके समाप्त हो गए हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> नेत्तिपकरण >> अध्याय III.मोल्डिंग दिशानिर्देश
नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

———————————————————

पिछला <<<<-----||-7-||----->>>> अगला

———————————————————

भाग V. अध्याय iii. दिशा-निर्देशों का निर्माण (पैरा 644 - 758)

———————————————————

[पृष्ठ 148]

अंतर्वस्तु
1भाग V
1.1अध्याय iii: दिशा-निर्देशों का निर्माण
1.1.1परिचयात्मक
1.1.2आनंद लेने संबंधी दिशा-निर्देशों का रूपांतरण
1.1.2.1ए. भ्रष्टाचार
1.1.2.2बी. सफाई
1.1.3दिशा-निर्देशों को निर्धारित करने के लिए दिशानिर्देश
1.1.3.1परिचयात्मक
1.1.3.2चार दिशाएँ: लाभहीनता और लाभ
1.1.3.3चार दिशाएँ: लाभ (आउटलेट)
1.1.3.4शेरों का खेल
1.1.3.5तिपत्ती और हुक
भाग V
अध्याय iii: दिशा-निर्देशों का निर्माण
644. इसमें दिशा-निर्देशों का स्वरूपण क्या है? [यह इस प्रकार है।]
परिचयात्मक

अज्ञान (अ.व. , 113) और अस्तित्व की लालसा (अ.व. , 116) का कोई भूतकाल प्रमाण नहीं है । यहाँ अज्ञान बाधा है और लालसा बंधन (तुलना करें पे. 243) ।

645. जिन प्राणियों को अज्ञान बाधा बनाता है और जो भोग-विलास से बंधे होते हैं, वे अज्ञान की ओर खोज करते हैं। इन्हें 'दृष्टि-प्रधान' कहा जाता है। जिन प्राणियों को भोग-विलास बंधन बनाता है और जो भोग-विलास से बंधे होते हैं, वे भोग-विलास की ओर खोज करते हैं। इन्हें 'भोग-प्रधान' कहा जाता है।

आनंद लेने संबंधी दिशा-निर्देशों का रूपांतरण

ए. भ्रष्टाचार

646. [110] दृष्टि-प्रवण वाले जो इस [व्यवस्था] से बाहर [बेघर] हो गए हैं, वे आत्म-यातना में लिप्त रहते हैं। भोग-प्रवण वाले जो इस [व्यवस्था] से बाहर [बेघर] हो गए हैं, वे इंद्रिय सुखों में लिप्त रहते हैं (तुलना करें पे 243-4)।

647. इसमें क्या कारण है कि इस युग से बाहर जाने वाले दृष्टि-प्रधान लोग आत्म-यातना में लिप्त रहते हैं, इस युग से बाहर जाने वाले तृष्णा-प्रधान लोग इंद्रिय सुखों में लिप्त रहते हैं? इस युग से बाहर सत्य की कोई परिभाषा नहीं है, तो फिर चार सत्यों की व्याख्या, शांति और अंतर्दृष्टि का कौशल, या शांति का सुख प्राप्त करने की क्षमता कहाँ से आती है ?

648. शांति के सुख से अपरिचित होने के कारण विकृत चेतना के साथ, उन्होंने ऐसे कथन दिए हैं: < सुख से सुख प्राप्त नहीं होता: सुख तो शांति के अनुभव से ही प्राप्त होता है।

644/1 शब्दों को इस प्रकार अलग करें: tattha avijja nivaranam, tanha samyo- janam. इस अनुच्छेद और अगले अनुच्छेद को 'परिचयात्मक' मानते हुए n. 673/1 देखें।

647/1 समथविपस्सनकोसलम को एक यौगिक के रूप में पढ़ें।

[पृष्ठ 149]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

पीड़ा (कष्ट) के माध्यम से प्राप्त किया जाता है (एम. आई, 93), और जो इंद्रिय सुखों का पोषण करता है वह संसार को समृद्ध करता है; जो संसार को समृद्ध करता है वह बहुत पुण्य त्याग देता है । इस प्रकार , ऐसा समझते हुए और ऐसे दृष्टिकोणों के साथ, पीड़ा के माध्यम से सुख की आकांक्षा रखते हुए, या इंद्रिय सुखों में पुण्य देखते हुए, वे आत्म-यातना की खोज में और इंद्रिय सुखों में लिप्त रहने में लगे रहते हैं। इस प्रकार के उनके संबंध से, वे केवल रोग को ही समृद्ध करते हैं, वे केवल फोड़े को ही समृद्ध करते हैं, वे केवल कांटे को ही समृद्ध करते हैं। रोग से अभिभूत, फोड़े से पीड़ित, कांटे से घायल, नरक, पशु गर्भ, भूत-प्रेतों और राक्षसों में गोता लगाते हुए, अपने अस्तित्व को उत्साह और अवसाद के साथ सह-आवश्यक बनाते हुए, उन्हें रोग, फोड़े, कांटे के लिए कोई दवा नहीं मिलती।

649. (i) यहाँ, आत्म-यातना और इंद्रिय सुखों में लिप्त होना भ्रष्टाचार है; शांति और अंतर्दृष्टि शुद्धि हैं। आत्म-यातना और इंद्रिय सुखों में लिप्त होना रोग है; शांति और अंतर्दृष्टि रोग की प्रतिकारक औषधि हैं। आत्म-यातना और इंद्रिय सुखों में लिप्त होना फोड़ा है; शांति और अंतर्दृष्टि फोड़े की प्रतिकारक औषधि हैं। आत्म -यातना और इंद्रिय सुखों में लिप्त होना कांटा है; शांति और अंतर्दृष्टि कांटा निकालने वाली औषधि हैं।

650. इसमें भ्रष्टाचार ही दुख है; भोग, जो उससे आसक्ति है, उसका मूल कारण है; भोग का निवारण ही दुख का निवारण है; शांति और अंतर्दृष्टि दुख के निवारण का मार्ग हैं।

651. [अस्पष्ट] ये चार सत्य हैं। दुख का निदान करना होगा, उत्पत्ति का त्याग करना होगा, मार्ग को बनाए रखना होगा और समाप्ति की पुष्टि करनी होगी।

652. (iii) [पुनः] इसमें, दृष्टि-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति रूप को आत्मा के रूप में देखता है, भावना... बोध... निर्धारण... चेतना को आत्मा के रूप में देखता है। लालसा-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति स्वयं को रूप धारण करने वाले, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है; या वह

648/1 * उग्घता - 'उत्साह' और 'निग्घता - अवसाद' दोनों पी.ई.डी. में नहीं हैं । देखें विज़. 370. उपसर्ग नि(र) +घाटा।

649/1 i नि(ग)घटक —प्रतिकारक: अंतिम अनुच्छेद में वर्णित निघता से भिन्न शब्द है और इसे केवल एक 'ग' के साथ लिखा जाना चाहिए; निघता (§943) और अभिनिघता (§315) देखें । उपसर्ग नि (निर् नहीं) + घट। पीई 65, 98 और 123 पर प्रयोग देखें । (टी या टी के बारे में भी अनिश्चितता है।)

[पृष्ठ 150]

पथप्रदर्शक

स्वयं को भावना, बोध, संकल्प, चेतना, या स्वयं में चेतना, या चेतना में स्वयं के रूप में देखता है। इसे ही बीस-आधारित देहधारण दृष्टिकोण कहा जाता है (देखें एम. आई, 300; पे 242)।

653. इसके विपरीत, संसार से विरक्त सही दृष्टिकोण है, और इसके साथ ही सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता भी आती है। यही आठ गुणों वाला श्रेष्ठ मार्ग है।

654. ये तीन श्रेणियाँ हैं: सद्गुण श्रेणी, एकाग्रता श्रेणी और समझ श्रेणी। सद्गुण श्रेणी और एकाग्रता श्रेणी शांत हैं, और समझ श्रेणी अंतर्दृष्टि है।

655. इसमें, शरीर का अस्तित्व ही दुख है, शरीर का उद्भव ही दुख का उद्भव है, शरीर का अंत ही दुख का अंत है, और श्रेष्ठ अष्टम मार्ग ही दुख के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।

656. ये चार सत्य हैं। दुख का निदान करना होगा, उत्पत्ति का त्याग करना होगा, मार्ग को बनाए रखना होगा और समाप्ति की पुष्टि करनी होगी।

657. (iii) इसमें, जो लोग रूप को आत्मा के रूप में देखते हैं, जो भावना... बोध... निर्धारण... चेतना को आत्मा के रूप में देखते हैं, उन्हें विनाशवादी कहा जाता है। जो लोग आत्मा को रूप धारण करने वाली, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में, जो आत्मा को भावना धारण करने वाली... बोध धारण करने वाली... निर्धारण धारण करने वाली... चेतना धारण करने वाली, या चेतना को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में मानते हैं, उन्हें शाश्वतवादी कहा जाता है (cf. Pe 242)।

658. इसमें, विनाशवाद और शाश्वतवाद दो चरम सीमाएँ हैं। वे [दोनों ही] इस चक्र के घटित होने का कारण बनते हैं।

659. [112] इसके विपरीत मध्य मार्ग है, श्रेष्ठ आठ-कारक पथ। यह गोल चक्कर का न होना है।

660. इसमें, घटना दुख है; भोग, उससे आसक्ति के रूप में, मूल है; भोग का निवारण दुख का निवारण है; श्रेष्ठ अष्टम मार्ग दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।

661. ये चार सत्य हैं। दुख का निदान करना होगा, उत्पत्ति का त्याग करना होगा, मार्ग को बनाए रखना होगा और समाप्ति की पुष्टि करनी होगी।

662. (iv) इसमें, संयुक्त रूप से विनाशवाद और शाश्वतवाद बीस-आधारित देहधारण दृष्टिकोण हैं (देखें एम. i, 300; iii, 17), जबकि विस्तार से वे बासठ प्रकार के दृष्टिकोण हैं (देखें 2)। सुत्त 1; एम. सुत्त 102; एस. iii, 262ff.; पीएस . i, 135ff.)।

[पृष्ठ 151]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

663. इनके विपरीत वे तैंतालीस विचार हैं जो ज्ञानोदय का पक्ष लेते हैं, आठ मुक्ति, पूर्णता के दस आधार।

664. बासठ प्रकार के विचार भ्रम का जाल हैं, जिसका कोई आरंभ नहीं है और जो निरंतर घटित होता रहता है। 1 तैंतालीस विचार जो ज्ञान का हिस्सा हैं, ज्ञान का वह हीरा हैं जो भ्रम के जाल को भेद देते हैं।

665. इसमें भ्रम अज्ञान है, और जाल अस्तित्व की लालसा है ।

इसीलिए ऊपर कहा गया है कि 'कोई भी भूतकाल अज्ञान और अस्तित्व की लालसा का प्रमाण नहीं है' (§644)।

बी. सफाई

666. इसमें, जब दृष्टि-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति इस युग में [बेघरपन में] चला जाता है, तो वह निरंतर मिटने के साथ जीवन व्यतीत करता है , मिटने के प्रति गहरी श्रद्धा रखता है, जबकि जब लालसा-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति इस युग में चला जाता है, तो वह संरक्षित प्रशिक्षण के साथ जीवन व्यतीत करता है, प्रशिक्षण के प्रति गहरी श्रद्धा रखता है (तुलना करें पे 243)।

667. जब दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सही होने की निश्चितता में आधार पाता है (देखें एस. iii, 225), तो वह विचारों द्वारा अनुयायी होता है, जबकि जब लालसा-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सही होने की निश्चितता में आधार पाता है, तो वह विश्वास द्वारा अनुयायी होता है (तुलना करें पे 243)।

668. दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सुस्त परिचय और तीव्र परिचय के साथ सुखद मार्ग पर निकास पाता है, और लालसा-प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सुस्त परिचय और तीव्र परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग पर निकास पाता है (cf. §42)।

669. इसमें, कारण क्या है (cf. §647) कि लालसा-प्रधान स्वभाव वाला व्यक्ति सुस्त और तीव्र परिचय के माध्यम से कष्टदायी मार्ग पर ही अपनी इच्छाओं का समाधान पाता है? क्योंकि उसने अपनी कामुक इच्छाओं का त्याग नहीं किया है। [113] जब

663/1 ' 43' '37' हैं (अर्थात, विश्वास से शुरू होने वाली 5 क्षमताएँ, 5 शक्तियाँ, ध्यान के 4 आधार, सफलता के 4 आधार, 4 सही प्रयास, 7 ज्ञानोदय कारक, और 8-कारक मार्ग; उदाहरण के लिए देखें, एम. ii, 245; तुलना करें पे 114) साथ ही अनित्यता, पीड़ा, अनात्म, त्याग, लुप्त होना और समाप्ति के 6 चिंतन (तुलना करें डी. iii, 251)।

664/1 ' अनिधाना -निरंतर': न तो पीईडी में और न ही सीपीडी में । एफ.एम. नकारात्मक. अ +नि- +धा.

665/1 पढ़ें मोहो अविज्जा , जलं भवतंहा।

666/1 ' अनुसंतता —निरंतर': पी.ई.डी. में नहीं , सी.पी.डी. देखें ; यह पैराग्राफ इस बात का अच्छा उदाहरण है कि पी.ई. का उपयोग कैसे किया गया है लेकिन इस कार्य में इसे बदल दिया गया है।

[पृष्ठ 152]

पथप्रदर्शक

जब वह स्वयं को इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से अलग करता है, तो वह बड़ी पीड़ा से उनका त्याग करता है और बड़ी धीमी गति से सच्चे विचार का ज्ञान प्राप्त करता है। अब, जहाँ तक दृष्टिकोण-प्रवण व्यक्ति की बात है, वह प्रारंभ से ही इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं का साधक नहीं होता। इसलिए, जब वह स्वयं को उनसे अलग करता है, तो वह शीघ्र ही उनका त्याग करता है और शीघ्र ही सच्चे विचार का ज्ञान प्राप्त करता है (देखें पे 243)।

670. कष्टदायी मार्ग दो प्रकार का होता है: सुस्त परिचय और शीघ्र परिचय। और सुखदायी मार्ग भी दो प्रकार का होता है: सुस्त परिचय और शीघ्र परिचय। और प्राणी दो प्रकार के होते हैं: कुंद बुद्धि वाले और तीक्ष्ण बुद्धि वाले। 1 कुंद बुद्धि वाले लोग धीरे-धीरे त्याग करते हैं और धीरे-धीरे सत्य विचार का ज्ञान प्राप्त करते हैं। तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग शीघ्रता से त्याग करते हैं और शीघ्रता से सत्य विचार का ज्ञान प्राप्त करते हैं (तुलना करें पतरस 243)।

671. ये चार तरीके हैं। इन्हीं चार तरीकों से किसी ने भी कभी न कभी रास्ता पाया है, या रास्ता पाता है, या रास्ता पाएगा (तुलना करें पे 244)।

672. इस प्रकार श्रेष्ठ जन अज्ञानी लोगों के लिए, मूर्खों के लिए इच्छा करने के लिए, और कामुक लोगों के लिए अपनी वासना पर काबू पाने के लिए एक चतुर्भुज मार्ग (पे 244) का वर्णन करते हैं , जिसका उद्देश्य आनंद लेने, और अस्तित्व की लालसा को परिवर्तित करना है।

इसे आनंद के रूपांतरण का तल कहा जाता है। इसीलिए ऐसा कहा गया था।

'[मार्गदर्शक रेखा] लालसा और अज्ञानता [मार्गदर्शन]

शांति और अंतर्दृष्टि द्वारा, [और चार सत्यों की उचित व्याख्या करना आनंद का रूपांतरण है] (§21)।

*

669/1 Patinissarati यहाँ patinissajjati के लिए काम करता है, जिसके लिए यह संभवतः एक पाठ है।

669/2 अजनाति के दो मुख्य अर्थ हैं: (1) जानना, अर्थात् कही गई बात का अर्थ समझना, और (2) अरहंत के अंतिम ज्ञान तक पहुँचना, संज्ञा अन्न ('अंतिम ज्ञान')।

670/1 लेकिन तुलना करें 3 kds. धारा 586 पर।

672/1 ' अबुधा - नासमझ': पी.ई.डी. या सी.पी.डी. में नहीं है ।

[पृष्ठ 153]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

दिशा-निर्देशों को निर्धारित करने के लिए दिशानिर्देश

परिचयात्मक

673. 'मानसिक रूप से विचारों की रूपरेखा क्या तैयार करता है?'

लाभ और हानि का उल्लेख किया गया है।

या फिर प्रदर्शनियों में इधर-उधर

[वे इसे दिशाओं का निर्धारण कहते हैं]' (§24). 1

[अब] इन [विचारों] की दो तरह से जांच की जा सकती है, अर्थात् क्या वे संसार के चक्र का अनुसरण करते हैं या संसार के ठहराव का, जिसे 'चक्र' कहा जाता है वह पुनर्जन्म का चक्र है और जिसे 'ठहराव' कहा जाता है वह अंत:विनाश है, जिसमें कर्म और दोष 2 चक्र के कारण हैं (cf. Pe 246)। इसमें, कर्म को चुनाव और संज्ञान के सहवर्ती के रूप में सिद्ध किया जा सकता है (cf. §239)। 3 इसे कैसे माना जाए? 3 संचय के माध्यम से।

ए. अलाभकारी

674. अब सभी अशुद्धियाँ चार विकृतियों के माध्यम से सिद्ध की जा सकती हैं। वे कहाँ पाई जाती हैं? अशुद्धता के समूह में, उसके दस आधारों के साथ। [114] वे दस आधार क्या हैं?

1. चार पोषक तत्व [शारीरिक पोषण, संपर्क, विकल्प और चेतना (डी. iii, 228)]। 1

2. चार विकृतियाँ [सौंदर्य, सुख, स्थायित्व और स्वयं को देखना, जहाँ कुछ भी नहीं है (ए. ii, 52)]।

3. चार मान्यताएँ [इंद्रिय-इच्छा, विचार, सद्गुण-और-कर्तव्य, और आत्म-सिद्धांत (डी. iii, 230; लेकिन §§257 और 484-7 देखें)]।

4. चार बंधन [इंद्रिय-इच्छा, अस्तित्व, विचार और अज्ञान (डी. iii, 230)]।

5. चार बंधन [लालच, दुर्भावना, सद्गुण और कर्तव्य की गलतफहमी, और इस बात पर जोर देना कि 'केवल यही सत्य है' (डी. iii, 230)]।

6. चार दोष [इंद्रिय-इच्छा, अस्तित्व, विचार और अज्ञान (ए. ii, 211)]।

7. चार बाढ़ें [इंद्रिय-इच्छा, अस्तित्व, विचार और अज्ञान (. डी . iii, 230)]

8. चार कांटे [वासना, घृणा, अहंकार और भ्रम (तुलना करें पीटर 245)]।

673/1 अंतिम शीर्षकों के कारण अक्सर आरंभिक बिंदुओं को खोजना कठिन हो जाता है। इस अध्याय की सामान्य संरचना पर विचार करने और पे . अध्याय 8 से तुलना करने के बाद, पहला दिशानिर्देश §646 से शुरू होना चाहिए और यह श्लोक एक नए खंड की शुरुआत करेगा।

673/2 Bb: kammakilesa.

673/3 Bb: उपचयेना। पीटीएस पाठ उपचय के अनुसार , कत्था , कथम की तुलना में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

674/1 देखें. पे 244. इस पैराग्राफ में वर्ग कोष्ठक में दिए गए विवरण निम्नलिखित से लिए गए हैं।

[पृष्ठ 154]

पथप्रदर्शक

9. चेतना के लिए चार स्थिर बिंदु [रूप, भावना, धारणा और निर्धारण (डी. iii, 228)]।

10. चार बुरे रास्ते पर चलना [इच्छा, घृणा, भय और भ्रम के माध्यम से (डी . iii, 228)] (तुलना करें पे 244)।

675. 1-2. पहले पोषण में पहला विकृति है; दूसरे पोषण में, दूसरी विकृति; तीसरे पोषण में, तीसरी विकृति; चौथे पोषण में, चौथी विकृति (तुलना करें पे 244)।

2-3. पहले विकृति में पहली धारणा है; दूसरी विकृति में दूसरी धारणा; तीसरी विकृति में तीसरी धारणा; चौथी विकृति में चौथी धारणा।

3-4. पहली मान्यता में पहला बंध है; दूसरी मान्यता में दूसरा बंध है; तीसरी मान्यता में तीसरा बंध है; चौथी मान्यता में चौथा बंध है।
4-5. पहले बंधन में पहला बंधन है; दूसरे बंधन में दूसरा बंधन; तीसरे बंधन में तीसरा बंधन; चौथे बंधन में चौथा बंधन।
5-6. पहले टाई में पहला दोष है; दूसरे टाई में दूसरा दोष; तीसरे टाई में तीसरा दोष; चौथे टाई में चौथा दोष।
6-7. पहले दोष में पहली बाढ़ है; दूसरे दोष में,
दूसरी बाढ़; तीसरे दोष में, तीसरी बाढ़; चौथे दोष में,
चौथी बाढ़।
7-8. पहली बाढ़ में पहला कांटा है; दूसरी बाढ़ में दूसरा कांटा; तीसरी बाढ़ में तीसरा कांटा; चौथी बाढ़ में चौथा कांटा।
8-9. पहले कांटे में चेतना के लिए पहला स्थिर बिंदु है; दूसरे कांटे में, चेतना के लिए दूसरा स्थिर बिंदु; तीसरे कांटे में, चेतना के लिए तीसरा स्थिर बिंदु; चौथे कांटे में, चेतना के लिए चौथा स्थिर बिंदु।
9-10. चेतना के पहले स्थिर बिंदु में पहली बार गलत रास्ते पर चलना शुरू होता है; चेतना के दूसरे स्थिर बिंदु में दूसरी बार गलत रास्ते पर चलना शुरू होता है; चेतना के तीसरे स्थिर बिंदु में तीसरी बार गलत रास्ते पर चलना शुरू होता है; चेतना के चौथे स्थिर बिंदु में चौथी बार गलत रास्ते पर चलना शुरू होता है (तुलना करें पे 244)।
676.1. इसमें, शारीरिक पोषण और संपर्क के रूप में पोषण, लालसा-प्रवण व्यक्ति में अपूर्णताएं हैं, जबकि पोषण

[पृष्ठ 155]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

मन-चुनाव और पोषण जैसे चेतना, दृष्टिकोण-स्वभाव वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं (cf. पे 244)।
677. 2. इसमें कुरूपता में सुंदरता देखना और पीड़ा में आनंद देखना, ये दोनों ही लालसा-प्रधान व्यक्ति की अपूर्णताएँ हैं, जबकि अनित्य में स्थायित्व देखना और अ-स्व में आत्म देखना, ये दोनों ही दृष्टि-प्रधान व्यक्ति की अपूर्णताएँ हैं।
678. [115] 3. इसमें, कामुक-इच्छा-धारणा और अस्तित्व-धारणा, लालसा-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं, जबकि दृष्टिकोण-धारणा और आत्म-सिद्धांत-धारणा, दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं।
679. 4. इसमें, कामुक इच्छा का बंधन और अस्तित्व का बंधन, कृप-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं, जबकि दृष्टिकोण का बंधन और अज्ञान का बंधन, दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं।
680. 5. लोभ का देह-बंधन और द्वेष का देह-बंधन लालसा-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में दोष हैं, जबकि सद्गुण और कर्तव्य की गलतफहमी का देह-बंधन और केवल यही सत्य है इस बात पर जोर देने का देह-बंधन दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में दोष हैं।
681. 6. इसमें, कामुक इच्छा का दोष और अस्तित्व का दोष, कृप-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं, जबकि दृष्टिकोण का दोष और अज्ञान का दोष, दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं।
682. 7. इसमें, कामुक इच्छाओं की बाढ़ और अस्तित्व की बाढ़, भोग-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं, जबकि विचारों की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़, विचार-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं।
683. 8. इसमें, कामवासना का कांटा और घृणा का कांटा, भोग-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में दोष हैं, जबकि अहंकार का कांटा और भ्रम का कांटा, दृष्टि-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में दोष हैं।
684. 9. इसमें, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में रूप और चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में भावना, लालसा-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं, जबकि चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में धारणा और चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में संकल्प, दृष्टिकोण-प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में अपूर्णताएँ हैं।
685. 10. इसमें, इच्छाशक्ति के माध्यम से गलत रास्ते पर चलना और आगे बढ़ना शामिल है।

677/1 पढ़ें असुभे सुभान ति विपल्लसो , यो च दुक्खे सुखं ति विपल्लसो।

[पृष्ठ 156]

पथप्रदर्शक

घृणा के कारण बुरे रास्ते पर चलना लालसा-प्रकृति वाले व्यक्ति की अपूर्णताएँ हैं, जबकि भय के कारण बुरे रास्ते पर चलना और भ्रम के कारण बुरे रास्ते पर चलना दृष्टिकोण-प्रकृति वाले व्यक्ति की अपूर्णताएँ हैं (cf. Pe 244)।
686. 1-2. इसमें, कुरूपता में सुंदरता का विकृति शारीरिक पोषण के संबंध में घटित होती है; पीड़ा में आनंद का विकृति पोषण के संबंध में संपर्क के रूप में घटित होती है; क्षणभंगुर में स्थायित्व का विकृति पोषण के संबंध में चेतना के रूप में घटित होती है; अनात्म में स्वयं का विकृति पोषण के संबंध में मन-चुनाव के रूप में घटित होती है (तुलना करें पे 244-5)।
687. 2-3. प्रथम विकृति में स्थिर व्यक्ति कामुक इच्छाओं को अपनाता है: इसे कामुक-इच्छा-धारणा कहा जाता है। दूसरी विकृति [116] में स्थिर व्यक्ति भविष्य के अस्तित्व को अपनाता है: इसे अस्तित्व-धारणा कहा जाता है। तीसरी विकृति में स्थिर व्यक्ति घुमावदार मार्ग के लिए प्रत्याशात्मक आनंद वाला दृष्टिकोण अपनाता है: इसे दृष्टिकोण-धारणा कहा जाता है। चौथी विकृति में स्थिर व्यक्ति, स्वयं को मानकर, तदनुसार अपनाता है: इसे आत्म-सिद्धांत-धारणा कहा जाता है (cf. §304)।
688. 3-4. वह कामुक इच्छाओं के कारण कामुक इच्छाओं से जकड़ा हुआ है: इसे कामुक इच्छाओं का बंधन कहते हैं। वह विभिन्न प्रकार के अस्तित्वों के कारण अस्तित्व के बंधन से जकड़ा हुआ है: इसे अस्तित्व का बंधन कहते हैं। वह बुरी दृष्टियों के कारण बुरी दृष्टियों से जकड़ा हुआ है: इसे दृष्टियों का बंधन कहते हैं। वह अज्ञानता के कारण स्वयं-सिद्धांतों के बंधन से जकड़ा हुआ है: इसे अज्ञानता का बंधन कहते हैं।
689. 4-5. प्रथम बंधन में स्थिर रहने वाला व्यक्ति शरीर को लोभ से बांधता है : इसे लोभ का देह-बंधन कहते हैं। द्वितीय बंधन में स्थिर रहने वाला व्यक्ति शरीर को द्वेष के बंधन से बांधता है: इसे द्वेष का देह-बंधन कहते हैं। तृतीय बंधन में स्थिर रहने वाला व्यक्ति शरीर को [सद्गुण और कर्तव्य के] भ्रम से बांधता है: इसे भ्रम का देह-बंधन कहते हैं। चतुर्थ बंधन में स्थिर रहने वाला व्यक्ति शरीर को इस ज़िद से बांधता है कि केवल यही सत्य है: इसे इस ज़िद का देह-बंधन कहते हैं कि केवल यही सत्य है।
690. 5-6. इस प्रकार उसके दोष, उसे दूषित करते हैं। और किस रूप में वे उसे दूषित करते हैं? अंतर्निहित प्रवृत्ति के रूप में, या खुले जुनून के रूप में (cf. §455)? इसमें कामुक इच्छा का दोष निहित है।

689/I 'शरीर' को यहाँ नाम-शरीर और रूप-शरीर दोनों के रूप में लिया जाना चाहिए। पाली में (अंग्रेजी की तरह) ' काया ' ('शरीर') शब्द का अर्थ 'समूह' या 'समूहन' होता है।

[पृष्ठ 157]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

लोभ के देह बंधन के माध्यम से, द्वेष के देह बंधन के माध्यम से अस्तित्व का कलंक, [सद्गुण और कर्तव्य के] गलत आशय के देह बंधन के माध्यम से विचारों का कलंक, और इस ज़िद के देह बंधन के माध्यम से अज्ञानता का कलंक कि केवल यही सत्य है।
691. 6-7. जब ये चारों दोष बहुतायत में होते हैं, तो बाढ़ आती है, इसलिए दोषों की बहुतायत से बाढ़ आती है। इसमें, कामुक इच्छाओं के दोष से कामुक इच्छाओं की बाढ़, अस्तित्व के दोष से अस्तित्व की बाढ़, विचारों के दोष से विचारों की बाढ़ और अज्ञान के दोष से अज्ञान की बाढ़ आती है।
692. 7-8. ये चारों प्रकार की भावनाएँ, अंतर्निहित प्रवृत्तियों के साथ, व्यक्ति के झुकावों में तब तक प्रवेश करती हैं जब तक कि वे हृदय पर प्रहार करके वहीं स्थिर न हो जाएँ: इसीलिए इन्हें 'काँटे' कहा जाता है। इनमें कामवासना की भावना के साथ कामवासना का काँटा, अस्तित्व की भावना के साथ घृणा का काँटा, विचारों की भावना के साथ अहंकार का काँटा और अज्ञान की भावना के साथ भ्रम का काँटा शामिल है।
693. 8-9. जब किसी की चेतना इन चार कांटों से जकड़ी होती है तो वह स्वयं को निम्नलिखित चार विचारों के अनुरूप ढाल लेती है, अर्थात् रूप, भावना, बोध और निर्धारण (cf. §304)।
694. यहाँ, रूप [117] चेतना के लिए स्थिर बिंदु है जब चेतना में कामवासना के काँटे से आनंद का संक्रमण होता है ; भावना चेतना के लिए स्थिर बिंदु है जब चेतना में घृणा के काँटे से आनंद का संक्रमण होता है; बोध चेतना के लिए स्थिर बिंदु है जब चेतना में अहंकार के काँटे से आनंद का संक्रमण होता है; निर्धारण चेतना के लिए स्थिर बिंदु है जब चेतना में भ्रम के काँटे से आनंद का संक्रमण होता है (cf. Pe 218)।

695. 9-10. जब किसी की चेतना चेतना के इन चार स्थिर बिंदुओं द्वारा कठोर हो जाती है, तो वह निम्नलिखित चार विचारों के कारण गलत रास्ते पर चला जाता है, अर्थात् इच्छा, घृणा, भय और भ्रम के कारण।

696. इसमें, कामवासना के कारण ही व्यक्ति इच्छाशक्ति से बुरे रास्ते पर जाता है, घृणा के कारण ही व्यक्ति घृणा से बुरे रास्ते पर जाता है, भय के कारण ही व्यक्ति भय से बुरे रास्ते पर जाता है, और भ्रम के कारण ही व्यक्ति भ्रम से बुरे रास्ते पर जाता है (तुलना करें पे 245-6)।

इस प्रकार वह क्रिया और वे अपवित्रताएँ चक्र का कारण बनती हैं। इस प्रकार सभी अपवित्रताओं को चार विकृतियों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है (देखें §674)।

694/1 एस. iv, 78 पर 'cutam vyasincati ' की तुलना यहाँ 'nandupasecana' से करें।

[पृष्ठ 158]

पथप्रदर्शक

चार दिशाएँ: लाभहीनता और लाभ

697. इसमें, ये चार निर्देश दिए गए हैं (धारा 723 देखें): (i) शारीरिक पोषण, कुरूपता में सुंदरता का भ्रम, कामुक इच्छा का आशय, कामुक इच्छा का बंधन, लोभ का देह बंधन, कामुक इच्छा का कलंक, कामुक इच्छा की बाढ़, कामवासना का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में रूप, इच्छा के माध्यम से गलत रास्ते पर जाना, पहला निर्देश है, (ii) संपर्क के रूप में पोषण, पीड़ा में आनंद का भ्रम, अस्तित्व का आशय, अस्तित्व का बंधन, दुर्भावना का देह बंधन, अस्तित्व का कलंक, अस्तित्व की बाढ़, घृणा का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में भावना, घृणा के माध्यम से गलत रास्ते पर जाना, दूसरा निर्देश है, (iii) चेतना के रूप में पोषण, क्षणभंगुर में स्थायित्व का भ्रम, दृष्टिकोण का आशय, दृष्टिकोण का बंधन, शरीर का बंधन। गलत धारणा, विचारों का दोष, विचारों की बाढ़, अहंकार का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में धारणा, भय के कारण गलत रास्ते पर जाना, तीसरी दिशा है, (iv) मन की पसंद के रूप में पोषण, यह विकृति कि स्वयं में स्वयं है, स्वयं-सिद्धांत-धारणा, अज्ञान का बंधन, इस बात पर जोर देने का शारीरिक बंधन कि केवल यही सत्य है, अज्ञान का दोष, अज्ञान की बाढ़, भ्रम का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में निर्धारण, भ्रम के कारण गलत रास्ते पर जाना, चौथी दिशा है (cf. Pe 246)।

698. (i) इसमें (धारा 724 देखें), निम्नलिखित दस सूत्र-पदों के संबंध में: शारीरिक पोषण, कुरूपता में सुंदरता की विकृति, कामुक इच्छा की धारणा, कामुक इच्छा का बंधन, लोभ का देह बंधन, कामुक इच्छा का कलंक, कामुक इच्छा की बाढ़, कामवासना का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में रूप, और इच्छाशक्ति के माध्यम से गलत रास्ते पर जाना: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का प्रयोग भिन्न है। ये कामुक स्वभाव वाले व्यक्ति की अपूर्णताएं हैं।

699. (ii) [118] इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-पदों के संबंध में, पोषण को संपर्क के रूप में, पीड़ा में आनंद की विकृति, अस्तित्व-धारणा, अस्तित्व का बंधन, दुर्भावना का देह-बंधन, अस्तित्व का कलंक, अस्तित्व की बाढ़, घृणा का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में भावना, और घृणा के माध्यम से गलत रास्ते पर जाना: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दांकन भिन्न है। ये घृणाशील स्वभाव वाले व्यक्ति की अपूर्णताएं हैं।

700. (iii) इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-[पदों] के संबंध में, पोषण हमें चेतना, विकृति जो स्थायित्व में निहित है

[पृष्ठ 159]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

क्षणभंगुरता, दृष्टिकोण-धारणा, दृष्टिकोणों का बंधन, गलतफहमी का शारीरिक बंधन, दृष्टिकोणों का कलंक, दृष्टिकोणों की बाढ़, अहंकार का चुभन, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में बोध, और भय के कारण गलत रास्ते पर जाना; इन सबका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का प्रयोग भिन्न है। ये सभी मंद दृष्टिकोण-प्रवृत्ति में निहित अपूर्णताएं हैं।

701. (iv) इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-पदों के संबंध में, पोषण को मन की पसंद के रूप में, यह विकृति कि अनात्म में भी आत्म है, अज्ञान का बंधन, आत्म-सिद्धांत की धारणा, इस ज़िद का शारीरिक बंधन कि केवल यही सत्य है, अज्ञान का कलंक, अज्ञान की बाढ़,

भ्रम का कांटा, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में निर्धारण, और भ्रम के माध्यम से गलत रास्ते पर जाना: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का प्रयोग भिन्न है। ये बुद्धिमान दृष्टिकोण-स्वभाव में अपूर्णताएं हैं (तुलना करें पे 246-7)।

702. 1. इसमें, शारीरिक पोषण और संपर्क के रूप में पोषण, मुक्ति के लिए स्वभावहीन द्वार के माध्यम से निदान तक पहुँचते हैं, चेतना के रूप में पोषण शून्य [मुक्ति के द्वार] के माध्यम से, और मन-चुनाव के रूप में पोषण संकेतहीन [मुक्ति के द्वार] के माध्यम से निदान तक पहुँचते हैं।

703. 2. इसमें, कुरूपता में सुंदरता और पीड़ा में आनंद की विकृति, मुक्ति के स्वभावहीन द्वार से लुप्त हो जाती है, अनित्य में स्थायित्व की विकृति शून्य के माध्यम से लुप्त हो जाती है, और अनात्म में आत्मा की विकृति चिह्नहीन के माध्यम से लुप्त हो जाती है।

704. 3. इसमें, कामुक-इच्छा-धारणा और अस्तित्व-धारणा, निस्वार्थता के द्वार से मुक्ति की ओर परित्याग की ओर, दृष्टि-धारणा शून्य की ओर, और आत्म-सिद्धांत-धारणा चिह्नहीनता की ओर जाती है।

705. 4. इसमें, कामुक इच्छा का बंधन और अस्तित्व का बंधन, निर्भावित मुक्ति द्वार के माध्यम से त्याग दिया जाता है, दृष्टियों का बंधन शून्य के माध्यम से, और अज्ञान का बंधन संकेतहीन के माध्यम से त्याग दिया जाता है।

706. 5. इसमें, लोभ का देह-बंधन और द्वेष का देह-बंधन मुक्ति के स्वभावहीन द्वार के माध्यम से त्याग दिया जाता है, [119] शून्य के माध्यम से गलतफहमी का देह-बंधन, और संकेतहीन के माध्यम से इस बात पर जोर देने का देह-बंधन कि केवल यही सत्य है।

707.6. इसमें, कामुक इच्छा का कलंक और निर्दयता के द्वार से परित्याग की स्थिति का कलंक शामिल है।

[पृष्ठ 160]

पथप्रदर्शक

मुक्ति, शून्य के माध्यम से विचारों का कलंक, और चिह्नहीनता के माध्यम से अज्ञान का कलंक।

708. 7. इसमें, कामुक इच्छा की बाढ़ और अस्तित्व की बाढ़, स्वभावहीन द्वार से मुक्ति के लिए त्याग की ओर आती है, दृष्टियों की बाढ़ शून्य के माध्यम से और अज्ञान की बाढ़ संकेतहीन के माध्यम से आती है।

709. 8. इसमें, कामवासना का कांटा और घृणा का कांटा, निर्दयता के द्वार से मुक्ति की ओर, अहंकार का कांटा शून्य से, और भ्रम का कांटा चिह्नहीन से होकर त्याग दिया जाता है।

710. 9. इसमें, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में रूप और चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में भावना, मुक्ति के लिए स्वभावहीन द्वार के माध्यम से निदान तक पहुँचती है, चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में धारणा शून्य के माध्यम से ऐसा करती है, और चेतना के आगे बढ़ने के लिए स्थिर बिंदु के रूप में निर्धारण संकेतहीन के माध्यम से ऐसा करते हैं।

711. 10. इसमें, इच्छा के माध्यम से बुरा मार्ग अपनाना और घृणा के माध्यम से बुरा मार्ग अपनाना, स्वभावहीन द्वार से मुक्ति के लिए परित्याग की ओर ले जाता है, भय के माध्यम से बुरा मार्ग अपनाना शून्य के माध्यम से होता है, और भ्रम के माध्यम से बुरा मार्ग अपनाना संकेतहीन के माध्यम से होता है।

712. इसलिए दुनिया के चक्र का अनुसरण करने वाले सभी विचार (धारा 673 देखें) तीन मुक्ति द्वारों के माध्यम से त्रिविध दुनिया से बाहर निकलते हैं।

बी. लाभ

713. यहाँ आउटलेट है (धारा 674 में समकक्ष देखें):

1. चार तरीके (§42; डी. iii, 228)।
2. सचेतनता के चार आधार [शरीर, भावनाएँ, बोध, विचार (डी. iii, 221; लेकिन cf. §4 और §730)]।
3. चार ध्यान [प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ (डी . iii, 222)]।
4. चार निवास स्थान [स्वर्गीय, दिव्य, महान, अविचलित (डी. iii, 220)]।
5. चार सही प्रयास [अपरिहार्य अलाभकारीता को उत्पन्न होने से रोकने का प्रयास, उत्पन्न अलाभकारीता से छुटकारा पाने का प्रयास, अपरिहार्य लाभ को उत्पन्न करने का प्रयास, और उत्पन्न लाभ को बढ़ाने का प्रयास (डी . iii, 221)]।
6. चार अद्भुत चमत्कारी विचार [अभिमान का त्याग, निर्भरता का उन्मूलन, अज्ञान का त्याग, अस्तित्व की शांति (पे 247)]।
7. चार अभिव्यक्तियाँ [सत्य, उदारता, समझ, शांति (डी. iii, 229)]।

[पृष्ठ 161]
दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना
8. एकाग्रता को बनाए रखने के चार तरीके [इच्छाशक्ति, ऊर्जा, बोध, पूछताछ = सफलता के 4 आधार (डी . iii, 222)] ।
9. आनंद से संबंधित चार विचार [संयम, उत्साह, खोज, अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग (पे)]
247)].
10. चार असीम अवस्थाएँ [प्रेम, करुणा, प्रसन्नता, समभाव (डी. iii, 223; पे 247)] । 1
714. 1-2. पहला मार्ग [संदर्भित है] ध्यान की पहली नींव से; दूसरा मार्ग ध्यान की दूसरी नींव से; तीसरा मार्ग ध्यान की तीसरी नींव से; चौथा मार्ग ध्यान की चौथी नींव से।
2-3. ध्यान का पहला आधार पहले ध्यान के अनुरूप है; ध्यान का दूसरा आधार दूसरे ध्यान के अनुरूप है; ध्यान का तीसरा आधार तीसरे ध्यान के अनुरूप है; ध्यान का चौथा आधार चौथे ध्यान के अनुरूप है।
3-4. पहला ध्यान पहले निवास के अनुरूप है; दूसरा ध्यान दूसरे निवास के अनुरूप है; तीसरा ध्यान तीसरे निवास के अनुरूप है; चौथा ध्यान चौथे निवास के अनुरूप है।
4-5. पहला पालन पहले सही प्रयास के अनुरूप है; दूसरा पालन दूसरे सही प्रयास के अनुरूप है; तीसरा पालन तीसरे सही प्रयास के अनुरूप है ; चौथा पालन [120] चौथे सही प्रयास के अनुरूप है।
5-6. पहला सही प्रयास पहले अद्भुत अद्भुत विचार के अनुरूप है; दूसरा सही प्रयास दूसरे अद्भुत अद्भुत विचार के अनुरूप है; तीसरा सही प्रयास तीसरे अद्भुत अद्भुत विचार के अनुरूप है; चौथा सही प्रयास चौथे अद्भुत अद्भुत विचार के अनुरूप है।
6-7. पहला अद्भुत, शानदार विचार [के अनुरूप है] पहला
अभिव्यक्ति; दूसरी अभिव्यक्ति के लिए दूसरा अद्भुत विचार; तीसरी अभिव्यक्ति के लिए तीसरा अद्भुत विचार; चौथी अभिव्यक्ति के लिए चौथा अद्भुत विचार।
7-8. पहली अभिव्यक्ति एकाग्रता को बनाए रखने की पहली अवस्था से मेल खाती है; दूसरी अभिव्यक्ति एकाग्रता को बनाए रखने की दूसरी अवस्था से; तीसरी अभिव्यक्ति एकाग्रता को बनाए रखने की तीसरी अवस्था से; चौथी अभिव्यक्ति एकाग्रता को बनाए रखने की चौथी अवस्था से।

718/1 वर्ग कोष्ठकों में दिए गए विवरण निम्नलिखित अनुच्छेदों से लिए गए हैं।

[पृष्ठ 162]
पथप्रदर्शक
8-9. एकाग्रता को पहली बार बनाए रखना आनंद से संबंधित पहले विचार के अनुरूप है; एकाग्रता को दूसरी बार बनाए रखना आनंद से संबंधित दूसरे विचार के अनुरूप है; एकाग्रता को तीसरी बार बनाए रखना आनंद से संबंधित तीसरे विचार के अनुरूप है; एकाग्रता को चौथी बार बनाए रखना आनंद से संबंधित चौथे विचार के अनुरूप है।
9-10. आनंद से संबंधित पहला विचार पहली असीम अवस्था से मेल खाता है; आनंद से संबंधित दूसरा विचार दूसरी असीम अवस्था से मेल खाता है; आनंद से संबंधित तीसरा विचार तीसरी असीम अवस्था से मेल खाता है; आनंद से संबंधित चौथा विचार चौथी असीम अवस्था से मेल खाता है।
715. 1-2. जब पहले मार्ग को कायम रखा जाता है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह ध्यान की पहली नींव को पूरा करता है; जब दूसरे मार्ग को कायम रखा जाता है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह ध्यान की दूसरी नींव को पूरा करता है; जब तीसरे मार्ग को कायम रखा जाता है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह ध्यान की तीसरी नींव को पूरा करता है; जब चौथे मार्ग को कायम रखा जाता है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह ध्यान की चौथी नींव को पूरा करता है (पे 247)।
716. 2-3. जब ध्यान की पहली नींव को बनाए रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह पहले ध्यान को पूरा करता है; जब ध्यान की दूसरी नींव को बनाए रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह दूसरे ध्यान को पूरा करता है; जब ध्यान की तीसरी

नींव को बनाए रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह तीसरे ध्यान को पूरा करता है; जब ध्यान की चौथी नींव को बनाए रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह चौथे ध्यान को पूरा करता है।

717. 3-4. जब प्रथम ध्यान को निरंतर रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो वह प्रथम अवस्था को पूर्ण करता है; जब द्वितीय ध्यान को निरंतर रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो वह द्वितीय अवस्था को पूर्ण करता है; जब तृतीय ध्यान को निरंतर रखा जाता है, उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो वह तृतीय अवस्था को पूर्ण करता है; जब चतुर्थ ध्यान को निरंतर रखा जाता है, [121] उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो वह चतुर्थ अवस्था को पूर्ण करता है।

718. 4-5. जब प्रथम अवस्था को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह अजन्मे बुरे और निष्फल विचारों के उत्पन्न न होने की पूर्ति करती है। जब द्वितीय अवस्था को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह उत्पन्न हुए बुरे और निष्फल विचारों के त्याग की पूर्ति करती है। जब तृतीय अवस्था को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह अजन्मे लाभकारी विचारों के उत्पन्न होने की पूर्ति करती है; जब चतुर्थ अवस्था को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व बढ़ाया जाता है, तो यह उत्पन्न हुए लाभकारी विचारों की स्थिरता, अटूटता और प्रचुरता की पूर्ति करती है।

719. 5-6. जब पहला सही प्रयास जारी रखा जाता है, तो

[पृष्ठ 163]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

जब दूसरे सही प्रयास को निरंतर और महत्वपूर्ण बनाया जाता है, तो यह अहंकार के त्याग को पूर्ण करता है। जब दूसरे सही प्रयास को निरंतर और महत्वपूर्ण बनाया जाता है, तो यह निर्भरता के उन्मूलन को पूर्ण करता है।1 जब तीसरे सही प्रयास को निरंतर और महत्वपूर्ण बनाया जाता है, तो यह अज्ञान के त्याग को पूर्ण करता है। जब चौथे सही प्रयास को निरंतर और महत्वपूर्ण बनाया जाता है, तो यह अस्तित्व की शांति को पूर्ण करता है।2

720. 6-7. जब अहंकार का त्याग निरंतर बना रहता है और उसे महत्व दिया जाता है, तो वह सत्य की अभिव्यक्ति को पूर्ण करता है। जब निर्भरता का उन्मूलन निरंतर बना रहता है और उसे महत्व दिया जाता है, तो वह उदारता की अभिव्यक्ति को पूर्ण करता है। जब अज्ञान का त्याग निरंतर बना रहता है और उसे महत्व दिया जाता है, तो वह समझ की अभिव्यक्ति को पूर्ण करता है। जब मन की शांति को निरंतर बनाए रखा जाता है और उसे महत्व दिया जाता है, तो वह शांति की अभिव्यक्ति को पूर्ण करता है।

721. 7-8. जब सत्य की अभिव्यक्ति निरंतर बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह इच्छा की एकाग्रता को पूर्ण करती है। जब उदारता की अभिव्यक्ति निरंतर बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह ऊर्जा की एकाग्रता को पूर्ण करती है। जब समझ की अभिव्यक्ति निरंतर बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह चेतना की शुद्धता की एकाग्रता को पूर्ण करती है। जब शांति की अभिव्यक्ति निरंतर बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह जिज्ञासा की एकाग्रता को पूर्ण करती है।

722. 8-9. जब इच्छाशक्ति की एकाग्रता बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह विवेक-संयम को पूर्ण करती है। जब ऊर्जा की एकाग्रता बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह उत्साह को पूर्ण करती है। जब चेतना की (शुद्धता की) एकाग्रता बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह खोज को पूर्ण करती है। जब जिज्ञासा की एकाग्रता बनी रहती है, उसे महत्व दिया जाता है, तो वह अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों के त्याग को पूर्ण करती है।

723. 9-10. जब विवेक-संयम को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व समझा जाता है, तो वह प्रेमपूर्ण करुणा को पूर्ण करता है। जब उत्साह को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व समझा जाता है, तो वह करुणा को पूर्ण करता है। जब खोज को बनाए रखा जाता है और उसका महत्व समझा जाता है, तो वह [दूसरों की सफलता पर] प्रसन्नता को पूर्ण करता है। जब अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग बनाए रखा जाता है और उसका महत्व समझा जाता है, तो वह प्रत्यक्षदर्शी समभाव को पूर्ण करता है (तुलना करें पे 247)।

चार दिशाएँ: लाभ (आउटलेट)

724. इसमें, चार दिशाएँ ये हैं (cf. §697): (i) पहला मार्ग, सचेतनता का पहला आधार, पहला ध्यान, पहला निवास,

---

719/1 पीटीएस नेट्टी इंडेक्स में ' आलय ' के विपरीत 'दिखावा' शब्द का प्रयोग किया गया है , लेकिन यहाँ यह बिल्कुल गलत है। यहाँ 'भरोसा' का तात्पर्य है, चाहे वह भरोसे की क्रिया हो या जिस वस्तु पर भरोसा किया जाता है, यहाँ संकेत 18 प्रमुख अंतर्दृष्टियों में से 16वीं अंतर्दृष्टि (महा-विपस्सना : भजन 1, 45, दर्शन पृष्ठ 50 पर उद्धृत) की ओर है।

719/2 ' उपसमा - शांति' को यहाँ 'समाप्ति' के अर्थ में लिया जाना चाहिए (अर्थात, केवल निषेध नहीं, बल्कि शेष के बिना समाप्ति)।

[पृष्ठ 164]

पथप्रदर्शक

प्रथम सही प्रयास, प्रथम अद्‌भुत चमत्कारी विचार, सत्य की अभिव्यक्ति, इच्छाशक्ति की एकाग्रता, विवेक-संयम और प्रेमपूर्ण करुणा, [122] प्रथम दिशा हैं, (ii) द्वितीय मार्ग, सचेतनता का द्वितीय आधार, द्वितीय ध्यान, द्वितीय स्थिरता, द्वितीय सही प्रयास, द्वितीय अद्‌भुत चमत्कारी विचार, उदारता की अभिव्यक्ति, ऊर्जा की एकाग्रता, उत्साह और करुणा, द्वितीय दिशा हैं, (iii) तृतीय मार्ग, सचेतनता का तृतीय आधार, तृतीय ध्यान, तृतीय स्थिरता, तृतीय सही प्रयास, तृतीय अद्‌भुत चमत्कारी विचार, समझ की अभिव्यक्ति, चेतना की एकाग्रता, खोज और प्रसन्नता, तृतीय दिशा हैं, (iv) चतुर्थ मार्ग, सचेतनता का चतुर्थ आधार, चतुर्थ ध्यान, चतुर्थ स्थिरता, चतुर्थ सही प्रयास, चतुर्थ अद्‌भुत चमत्कारी विचार, शांति की अभिव्यक्ति, जिज्ञासा की एकाग्रता, अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग और प्रत्यक्ष-समभाव, चतुर्थ दिशा हैं (cf. Pe 247-8).

725. (i) इसमें (धारा 698 देखें), निम्नलिखित दस सूत्र-पदों के संबंध में, प्रथम मार्ग, सचेतनता का प्रथम आधार, प्रथम ध्यान, प्रथम स्थिरता, प्रथम सही प्रयास, प्रथम अद्‌भुत चमत्कारी विचार, सत्य की अभिव्यक्ति, इच्छाशक्ति की एकाग्रता, कर्म-संयम और प्रेम: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का प्रयोग भिन्न है। ये कामुक स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए औषधि हैं।

726. (ii) इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-शब्दों के संबंध में, द्वितीय मार्ग, सचेतनता का द्वितीय आधार, द्वितीय ध्यान, द्वितीय स्थिरता, द्वितीय उचित प्रयास, द्वितीय अद्‌भुत चमत्कारी विचार, उदारता की अभिव्यक्ति, ऊर्जा का संकेंद्रण, उत्साह और करुणा: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का चयन भिन्न है। ये घृणा स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए औषधि हैं।

727. (iii) इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-पदों के संबंध में, तीसरा मार्ग, चेतना का तीसरा आधार, तीसरा ध्यान, तीसरा स्थिर रहना, तीसरा सही प्रयास, तीसरा अद्‌भुत चमत्कारी विचार, समझ की अभिव्यक्ति, चेतना की एकाग्रता, खोज और प्रसन्नता: इनका अर्थ एक ही है, केवल शब्दों का चयन भिन्न है। ये मंद बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए औषधि हैं।

728. (iv) इसमें, निम्नलिखित दस सूत्र-[शब्दों] के संबंध में, चौथा मार्ग, जागरूकता का चौथा आधार, चौथा ध्यान, चौथा ठहराव, चौथा सही प्रयास, चौथा अद्‌भुत चमत्कारी विचार, शांति की अभिव्यक्ति, जिज्ञासा की एकाग्रता, अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग, और प्रत्यक्ष-समभाव;

[पृष्ठ 165]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

अर्थ एक ही है, केवल वाक्यांश भिन्न है। [123] ये बुद्धिमान दृष्टिकोण-स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए दवा हैं।

729. 1. इसमें (cf. §702), सुस्त परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग और तीव्र परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग मुक्ति का स्वभावहीन द्वार है; सुस्त परिचय के साथ सुखद मार्ग मुक्ति का शून्य द्वार है: और तीव्र परिचय के साथ सुखद मार्ग मुक्ति का संकेतहीन द्वार है।

730. 2. इसमें, शरीर को शरीर के रूप में ध्यान करने वाले की अवस्था के रूप में ध्यान की नींव और भावनाओं को भावनाओं के रूप में ध्यान करने वाले की अवस्था के रूप में ध्यान की नींव, मुक्ति का स्वभावहीन द्वार है; चेतना को चेतना के रूप में ध्यान करने वाले की अवस्था के रूप में ध्यान की नींव, मुक्ति का शून्य द्वार है; और विचारों को विचारों के रूप में ध्यान करने वाले की अवस्था के रूप में ध्यान की नींव, मुक्ति का संकेतहीन द्वार है।

731. 3. इसमें, पहला ध्यान और दूसरा ध्यान, स्वभावहीन मुक्ति का द्वार हैं; तीसरा ध्यान, शून्य मुक्ति का द्वार है; और चौथा ध्यान, संकेतहीन मुक्ति का द्वार है।

732. 4. इसमें, प्रथम स्थिर और द्वितीय स्थिर, स्वभावहीन मुक्ति का द्वार हैं; तृतीय स्थिर, शून्य मुक्ति का द्वार है; और चतुर्थ स्थिर, संकेतहीन मुक्ति का द्वार है।

733. 5. इसमें, प्रथम सही प्रयास और द्वितीय सही प्रयास मुक्ति के लिए स्वभावहीन द्वार हैं; तृतीय सही प्रयास मुक्ति के लिए शून्य द्वार है; और चतुर्थ सही प्रयास मुक्ति के लिए चतुर्थ द्वार है।

734. 6. इसमें, अहंकार का त्याग और निर्भरता का उन्मूलन मुक्ति का स्वभावहीन द्वार है; अज्ञान का त्याग मुक्ति का शून्य द्वार है; और अस्तित्व का शांत होना मुक्ति का संकेतहीन द्वार है।
735. 7. इसमें सत्य की अभिव्यक्ति और उदारता की अभिव्यक्ति, मुक्ति का निर्गुण द्वार है; समझ की अभिव्यक्ति, मुक्ति का शून्य द्वार है; और शांति की अभिव्यक्ति, मुक्ति का निराकार द्वार है।
736. 8. इसमें, इच्छा की एकाग्रता और ऊर्जा की एकाग्रता मुक्ति का स्वभावहीन द्वार है; चेतना की एकाग्रता मुक्ति का शून्य द्वार है; और पूछताछ की एकाग्रता मुक्ति का संकेतहीन द्वार है।

[पृष्ठ 166]
पथप्रदर्शक
737. 9. इसमें, फैकल्टी-संयम 1 और उत्साह, मुक्ति का स्वभावहीन द्वार है; खोज, मुक्ति का शून्य द्वार है; अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग, मुक्ति का संकेतहीन द्वार है।
738. 10. [124] इसमें, प्रेम और करुणा, स्वभावहीनता से मुक्ति का द्वार है; प्रसन्नता, शून्यता से मुक्ति का द्वार है; और समभाव, संकेतहीनता से मुक्ति का द्वार है।
शेरों का खेल
739. इनका खेल [इस प्रकार है]: .
चार पोषक तत्व हैं: उनके विपरीत चार मार्ग हैं। चार विकृतियाँ हैं: उनके विपरीत ध्यान के चार आधार हैं। चार धारणाएँ हैं: उनके विपरीत चार ध्यान हैं। चार बंधन हैं: उनके विपरीत चार स्थिरताएँ हैं। चार संबंध हैं: उनके विपरीत चार सही प्रयास हैं। चार दोष हैं: उनके विपरीत चार अद्भुत और चमत्कारी विचार हैं। चार बाढ़ हैं: उनके विपरीत चार अभिव्यक्तियाँ हैं। चार कांटे हैं: उनके विपरीत एकाग्रता बनाए रखने के चार तरीके हैं। चेतना के लिए चार स्थिर बिंदु हैं: उनके विपरीत आनंद से संबंधित चार विचार हैं। चार बुरे रास्ते पर चलना हैं: उनके विपरीत चार असीम अवस्थाएँ हैं (देखें पतरस 248-9)।
740. सिंह वे प्रबुद्ध हैं, वे संन्यासी प्रबुद्ध हैं, और वे श्रोता हैं जिन्होंने कामवासना, घृणा और भ्रम को नष्ट कर दिया है।
उनका खेल अस्तित्व में बने रहने, सत्यापन करने और समाप्ति में निहित है।
नाटक , विश्वास से शुरू होने वाली (धारा 670 देखें) क्षमताओं की अभिव्यक्ति है, और नाटक विकृतियों की अअभिव्यक्ति है: ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और समझ की चार क्षमताएँ विश्वास की सच्ची वस्तु के लिए चारागाह हैं, विकृतियाँ अपवित्रता के लिए चारागाह हैं। इसे शेरों के खेल का मार्गदर्शक और दिशा-निर्देशों की योजना का मार्गदर्शक कहा जाता है। इसीलिए कहा गया है:

737/1 इन्द्रियसंवरो (एक यौगिक) या इन्द्रियं संवरो के लिए इन्द्रियाणं संवरो पढ़ें ।
740/मैं ' विपरियसा —विकृतता' : पीईडी में नहीं ; विपल्लसा की भिन्न वर्तनी । विन देखें. चतुर्थ, 79 = एम । द्वितीय, 248.

[पृष्ठ 167]
दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना
'मार्गदर्शन में बुद्धिमानों ने इसे कहा है
लायंस प्ले, जिसे संकायों द्वारा
क्या आस्था के सच्चे उद्देश्य मार्गदर्शन करते हैं, और क्या
विकृतियों और अपवित्रताओं के द्वारा (§23),
और भी
'मानसिक रूप से विचारों की रूपरेखा क्या तैयार करता है?'
लाभ और हानि का उल्लेख किया गया है।
या फिर प्रदर्शनियों में इधर-उधर
वे इसे दिशाओं का कथानक कहते हैं (§§24, 673)।

*

तिपत्ती और हुक

741. इसमें, वे दो प्रकार के व्यक्ति हैं जो धीमी गति से जान-पहचान बनाकर कष्टदायक मार्ग से मुक्ति पाते हैं और वे दो प्रकार के व्यक्ति हैं जो धीमी गति से जान-पहचान बनाकर सुखदायक मार्ग से मुक्ति पाते हैं और वे दो प्रकार के व्यक्ति हैं जो धीमी गति से जान-पहचान बनाकर सुखदायक मार्ग से मुक्ति पाते हैं (पे 249)।

742. उन चार प्रकार के व्यक्तियों के लिए भ्रष्टाचार इस प्रकार है: चार पोषक तत्व, चार विकृतियाँ, चार धारणाएँ, चार बंधन, चार संबंध, चार कलंक, चार बाढ़, चार कांटे, चेतना के लिए चार स्थिर बिंदु, और चार बुरे रास्ते पर चलना (देखें §674)।

743. [125] इन चार प्रकार के व्यक्तियों के लिए शुद्धि इस प्रकार है: चार मार्ग, ध्यान के चार आधार, चार ध्यान, चार निवास, चार सही प्रयास, चार अद्भुत चमत्कारी विचार, चार अभिव्यक्तियाँ, एकाग्रता बनाए रखने के चार तरीके, आनंद से संबंधित चार विचार, और चार असीम अवस्थाएँ (देखें §713)।

744. इसमें, वे लोग जो सुस्त परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग से और तीव्र परिचय के साथ मार्ग से मुक्ति पाते हैं, दो प्रकार के व्यक्ति हैं, और वे लोग जो सुस्त परिचय के साथ सुखद मार्ग से और तीव्र परिचय के साथ मार्ग से मुक्ति पाते हैं, दो प्रकार के व्यक्ति हैं (देखें §668; पे 249)।

745. इसमें, जो व्यक्ति शीघ्र परिचय के साथ सुखद मार्ग से मुक्ति पाता है, वह संक्षेपित ज्ञान प्राप्त करता है। जो व्यक्ति ऐसा शीघ्र और कष्टदायक मार्ग से करता है, वह भी ऐसा ही करता है।

[पृष्ठ 168]

पथप्रदर्शक

परिचय और सुस्त परिचय के सुखद तरीके में समानता (देखें पतरस 30) यह है कि जो व्यक्ति विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है। जो व्यक्ति सुस्त परिचय के कष्टदायक तरीके से मुक्ति पाता है, वह मार्गदर्शन योग्य होता है (देखें पतरस 249J. 1) ।

746. इसमें, भगवान बुद्ध उस व्यक्ति को शांति प्रकट करते हैं जो संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, उस व्यक्ति को अंतर्दृष्टि जो मार्गदर्शनीय है, और उस व्यक्ति को शांति और अंतर्दृष्टि जो विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है।

747. इसमें, भगवान बुद्ध सच्चे विचार की एक स्पष्ट शिक्षा उस व्यक्ति को प्रकट करते हैं जो संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, एक तीक्ष्ण शिक्षा उस व्यक्ति को जो मार्गदर्शनीय है, और एक कुंद से तीक्ष्ण शिक्षा उस व्यक्ति को जो विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है (cf. §587)।

748. इसमें भगवान बुद्ध सच्चे विचार को संक्षेप में उस व्यक्ति को सिखाते हैं जो संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, संक्षेप में और विस्तार से उस व्यक्ति को जो विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, और विस्तार से उस व्यक्ति को जो मार्गदर्शन योग्य है (cf. §587)।

749. इसमें भगवान बुद्ध ने संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को मुक्ति, विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को निराशा और मुक्ति, और मार्गदर्शन योग्य व्यक्ति को संतुष्टि, निराशा और मुक्ति का खुलासा किया है (cf. §§41ff.; §587)।

750. इसमें भगवान बुद्ध ने उच्च समझ में प्रशिक्षण का वर्णन किया है, जो संक्षेपित ज्ञान से प्राप्त होता है, उच्च चेतना में प्रशिक्षण का वर्णन किया है, जो विस्तारित ज्ञान से प्राप्त होता है, और उच्च सद्गुण में प्रशिक्षण का वर्णन किया है, जो मार्गदर्शन योग्य है (cf. §587)।

751. इसमें, [दोहराते हुए,] वे लोग दो प्रकार के व्यक्ति हैं जो सुस्त परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग से और तीव्र परिचय के साथ कष्टदायक मार्ग से मुक्ति पाते हैं। और वे लोग दो प्रकार के व्यक्ति हैं जो सुस्त परिचय के साथ सुखदायक मार्ग से और तीव्र परिचय के साथ सुखदायक मार्ग से मुक्ति पाते हैं (§744)।

752. [लेकिन यद्यपि] इस तरह से चार हैं, फिर भी वे तीन हैं, अर्थात् एक जो संक्षेपित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, एक जो विस्तारित ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता है, और एक जो मार्गदर्शन योग्य है (cf. §745)।

753. इन तीन प्रकार के व्यक्तियों का भ्रष्टाचार इस प्रकार है:

1. अलाभकारीता की तीन जड़ें: अलाभकारीता की जड़ के रूप में लालच, अलाभकारीता की जड़ के रूप में घृणा, अलाभकारीता की जड़ के रूप में भ्रम [126] (डी . iii, 214)।

745/1 तुलना करें। Pe 31 पर काफी समान उपचार।

[पृष्ठ 169]

दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना

2. तीन प्रकार के दुराचार: शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार, मानसिक दुराचार (डी. iii, 214)।

3. तीन निष्फल प्रकार की सोच: कामुक इच्छाओं की सोच, द्वेष की सोच, क्रूरता की सोच (डी. iii, 215)।

4. धारणा के तीन लाभहीन प्रकार: कामुक इच्छाओं की धारणा, दुर्भावना की धारणा, क्रूरता की धारणा (डी . iii, 215)।

5. धारणा के तीन विकृत प्रकार: स्थायित्व की धारणा, सुख की धारणा, स्वयं की धारणा ( )।

6. तीन प्रकार की भावनाएँ: सुखद भावना, पीड़ादायक भावना, न पीड़ादायक न सुखद भावना (डी. iii, 216)।

7. तीन प्रकार की पीड़ा: दर्द में पीड़ा, परिवर्तन में पीड़ा, निर्धारण में पीड़ा (डी . iii, 216)।

8. तीन अग्नियाँ: कामवासना की अग्नि, घृणा की अग्नि, भ्रम की अग्नि (डी . iii, 217)।

9. तीन कांटे: कामवासना का कांटा, घृणा का कांटा, भ्रम का कांटा ( )।

10. तीन उलझनें: कामवासना की उलझन, घृणा की उलझन, भ्रम की उलझन ( )।

11. तीन निष्फल जाँच: निष्फल शारीरिक क्रिया, निष्फल मौखिक क्रिया, निष्फल मानसिक क्रिया (cf. एम. आई, 415)।

12. तीन विफलताएँ: सद्‌गुण में विफलता, विचारों में विफलता, आचरण में विफलता (तुलना करें ए. i, 268, 270; वी.बी. 246-7; पे 250)।

754. इन तीन प्रकार के व्यक्तियों का शुद्धिकरण इस प्रकार है:

1. लाभ के तीन मूल: लाभ के मूल के रूप में लोभ नहीं, लाभ के मूल के रूप में घृणा नहीं, लाभ के मूल के रूप में भ्रम नहीं (डी . iii, 214)।

2. तीन प्रकार के अच्छे आचरण: शारीरिक अच्छा आचरण, मौखिक अच्छा आचरण, मानसिक अच्छा आचरण (डी . iii, 215)।

3. तीन लाभदायक प्रकार की सोच: त्याग की सोच, द्वेषहीनता की सोच, निर्दयता की सोच (डी. iii, 215)।

4. एकाग्रता के तीन प्रकार: सोच और अन्वेषण के साथ एकाग्रता, बिना सोचे और केवल अन्वेषण के साथ एकाग्रता, बिना सोचे और बिना अन्वेषण के एकाग्रता (डी . iii, 219)।

5. धारणा के तीन लाभदायक प्रकार: त्याग की धारणा, दुर्भावना रहित धारणा, क्रूरता रहित धारणा (डी . iii, 215)।

6. धारणा के तीन अविकृत प्रकार: अनित्यता की धारणा, दुख की धारणा, अनात्म की धारणा ( )।

7. तीन लाभदायक जांच: लाभदायक शारीरिक क्रिया, लाभदायक मौखिक क्रिया, लाभदायक मानसिक क्रिया (cf. एम. आई, 415ff.)।

[पृष्ठ 170]

पथप्रदर्शक

8. तीन प्रकार की शुद्धताएँ: शारीरिक शुद्धता, मौखिक शुद्धता, मानसिक शुद्धता (डी. iii, 219)।

9. तीन सफलताएँ: सद्‌गुण में सफलता, एकाग्रता में सफलता, समझ में सफलता ( )।

10. तीन प्रशिक्षण: उच्च सद्‌गुण में प्रशिक्षण, उच्च एकाग्रता में प्रशिक्षण, उच्च समझ में प्रशिक्षण (डी. iii, 219)।

11. तीन श्रेणियाँ: सद्‌गुण श्रेणी, एकाग्रता श्रेणी, समझ श्रेणी (देखें एम. आई, 301)।

12. मुक्ति के तीन द्वार: शून्य, चिन्हहीन, स्वभावहीन (भजन संहिता 2, 48, 69 देखें) (तुलना करें पतरस 252)।

755. [अब यद्यपि] इस प्रकार चार हैं [फिर भी] वे तीन हैं, तीन होते हुए भी [फिर भी] वे दो हैं, 1 अर्थात् एक लालसा-स्वभाव वाला और एक दृष्टि-स्वभाव वाला (§645; तुलना करें पे 253-4)।

756. इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों का भ्रष्टाचार इस प्रकार है:

1. लालसा और अज्ञान (धारा 2, 178)

2. विवेकहीनता और निर्लज्जता (ए.आई. , 95)

3. असावधानी और अनभिज्ञता (ए. आई, 95), [127]

4. [अतार्किक और] अतार्किक ध्यान, 1
5. आलस्य और कठिन चेतावनी देने की क्षमता,
6. मैं-निर्माण और मेरा-निर्माण (ए. आई, 132),
7. विश्वासघात और लापरवाही,
8. आस्था के सच्चे उद्देश्य को न सुनना और संयम न बरतना,
9. लोभ और द्वेष,
10. बाधाएँ और बंधन (एस. ii, 178; तुलना करें भजन i, 143),
11. क्रोध और द्वेष (ए.आई. , 95)
12. अवमानना और दबंगई (ए. आई, 95),
13. ईर्ष्या और लोभ (ए. आई, 95),

755/1 यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि Pe अपने सहायक द्वैतों के दो सेटों को अन्य दो अर्थ-मार्गदर्शिकाओं की तरह ही मूल द्वैतों के युग्म के अंतर्गत रूपांतरण-स्वाद के लिए आवंटित करता है; साथ ही यह भी कि यह इस मार्गदर्शक रेखा को पहले नहीं, बल्कि अंत में रखता है। हालाँकि, यहाँ इसे मूल द्वैतों के युग्म के साथ पहले स्थान पर रखा गया है, परन्तु समामेलन की पूरी प्रक्रिया को इससे हटा दिया गया है, सहायक द्वैतों के दो सेटों को ट्रेफ़ॉयल के अंतर्गत उसके मूल त्रैतों के सहायक के रूप में रखा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूल युग्म के अंतर्गत युग्मों के सेटों के 'समामेलन' की प्रक्रिया मात्र एक विवरण है, न कि किसी विशेष मार्गदर्शक रेखा की अनिवार्य विशेषता।
756/1 ayoni ca ayonisomanasikaro ca पढ़ें (देखें §218 जहाँ इनमें से 10 द्वैत आते हैं। तुलना करें Pe पृष्ठ 254 भी, जहाँ वे काफी भिन्न हैं)।

[पृष्ठ 171]
दिशा-निर्देशों का सांचा बनाना
14. छल और धोखाधड़ी (ए.आई. , 95)
15. शाश्वतवादी दृष्टिकोण और विनाशवादी दृष्टिकोण (तुलना करें एस. iv, 400-1; तुलना करें पे 254)।
757. इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों का शुद्धिकरण इस प्रकार है:
1. शांति और अंतर्दृष्टि (ए.आई. , 61),
2. अंतरात्मा और शर्म (ए. आई, 95),
3. सचेतनता और जागरूकता (ए.आई. , 95)
4. [कारण और] तर्कसंगत ध्यान, 1
5. ऊर्जा का उद्दीपन और आसानी से निंदनीयता,
6. सही विचार का ज्ञान और निष्कर्षों का ज्ञान,
7. समाप्ति का ज्ञान और उत्पत्ति न होने का ज्ञान,
8. विश्वास और परिश्रम,
9. विश्वास के सच्चे उद्देश्य और संयम को सुनना,
10. लोभहीनता और द्वेषहीनता,
11. कामवासना और समझ के लुप्त होने से हृदय की मुक्ति-
अज्ञान के मिटने के कारण मुक्ति (ए.आई. , 61)
12. इच्छाओं की कमी और संतोष,
13. क्रोध और द्वेषहीनता (ए. आई, 96),
14. अवमानना और प्रभुत्वहीनता (ए. आई, 95)
15. ईर्ष्या और लोभ का त्याग (तुलना करें ए. i, 95)

16. विज्ञान और मुक्ति (ए.आई. , 83),
17. उस प्रकार की मुक्ति जिसका उद्देश्य निर्धारित है और उस प्रकार की मुक्ति जिसका उद्देश्य निर्धारित है
वह मुक्ति जिसका उद्देश्य अनिश्चित है, 2
18. विलुप्तिकरण तत्व जिसके अवशेष बचे हैं और विलुप्तिकरण तत्व
बिना कोई निशान छोड़े (इति . 38).
758. इसे ट्रेफ़ोइल गाइड-लाइन और हुक गाइड-लाइन का तल कहा जाता है।
इसीलिए ऐसा कहा गया था:
'लाभ और [के विचारों] का मार्गदर्शन करना
उनकी [तिहरी] जड़ों से लाभहीन
वे वास्तव में, अवास्तविक नहीं हैं,
उस दिशा-निर्देश को वे तिपतिया घास कहते हैं (§22),

757/1 देखें n. 756/1. पढ़ें yoni ca yonisomanasikaro ca (देखें §218).
757/2 ' संखतरम्मन —जिसका उद्देश्य निर्धारित है': अर्थात्, चार ध्यान और चार निराकार अवस्थाओं से युक्त 'अस्थायी' मुक्ति (देखें पुग. 11)। 'असंखतरम्मन —जिसका उद्देश्य अनिर्धारित है': अर्थात्, 'गैर-अस्थायी' मुक्ति 'जिसका उद्देश्य निर्वाण है', और जिसमें चार मार्ग, मार्गों के चार फल और निश्चिंतन प्राप्ति शामिल है।

[पृष्ठ 172]
पथप्रदर्शक
[और भी]
'इस प्रकार प्लॉटिंग के साथ साजिश रचने के बाद
निर्देशों के बारे में, फिर क्या सामने आता है
सभी लाभ [विचार] और हानि
और उन्हें अंदर ले जाने को हुक कहा जाता है (§25)।
*
दिशा-निर्देशों को आकार देने का कार्य समाप्त हो गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> नेत्तिपकरण >> Ch.iv.पैटर्न ऑफ डिस्पेंसेशन
नेतिप्पाकरण: भिक्कू नानामोली द्वारा अनुवादित

पिछला <<<<-----||-8-||अंत

भाग VI. अध्याय IV. व्यवस्था का स्वरूप (पैरा 759 - 965)

[पृष्ठ 173]

अंतर्वस्तु

1भाग VI
1.1अध्याय iv: व्यवस्था का स्वरूप
1.1.1पहला समूह
1.1.1.11. भ्रष्टाचार

1.1.1.22. नैतिकता
1.1.1.33. प्रवेश
1.1.1.44. कुशल
1.1.1.55. भ्रष्टाचार और नैतिकता
1.1.1.66. भ्रष्टाचार और घुसपैठ
1.1.1.77. भ्रष्टाचार और निपुण
1.1.1.88. भ्रष्टाचार, घुसपैठ और निपुण
1.1.1.99. भ्रष्टाचार, नैतिकता और घुसपैठ
1.1.1.1010. नैतिकता और प्रवेश
1.1.1.1111. भ्रष्टाचार और लालसा
1.1.1.1212. भ्रष्टाचार का दृश्य
1.1.1.1313. कदाचार द्वारा भ्रष्टाचार
1.1.1.1414-16. लालसा, दृष्टिकोण और दुराचार से शुद्धि
1.1.1.15बहस
1.1.2दूसरा समूह
1.1.2.1अनुसूची
1.1.2.2उदाहरण उद्धरण
भाग VI
अध्याय iv: व्यवस्था का स्वरूप
पहला समूह
759. इसमें अठारह मूल शब्द हैं: वे कहाँ देखे जा सकते हैं? व्यवस्था के प्रतिरूप में (cf. §964)। 1
760. इसमें व्यवस्था का स्वरूप क्या है? [यह सूत्र है, जिसे सबसे पहले निम्न प्रकार से समूहीकृत किया गया है:]
[पहला समूह — अनुसूची]
[128] [ए] 1. भ्रष्टाचार से संबंधित थ्रेड का प्रकार,
[बी] 2. नैतिकता से संबंधित विषयवस्तु का प्रकार,
[सी] 3. प्रवेश से निपटने वाले धागे का प्रकार,
[डी] 4. सिद्ध पुरुष से संबंधित धागे का प्रकार; 1
[AB] 5. भ्रष्टाचार और नैतिकता से संबंधित विषय का प्रकार,
[एसी] 6. भ्रष्टाचार और घुसपैठ से संबंधित थ्रेड का प्रकार,
[AD] 7. भ्रष्टाचार और सिद्ध पुरुष से संबंधित धागे का प्रकार, [ACD] 8. भ्रष्टाचार, घुसपैठ से संबंधित धागे का प्रकार,
और सिद्ध पुरुष,

759/1 नेटिया इस संक्षिप्त वाक्य की व्याख्या इस प्रकार करते हैं: 'मार्गदर्शन के स्वरूप का सर्वथा विश्लेषण करने के बाद, अब व्यवस्था के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा, "अठारह मूल-पद कहाँ देखे जा सकते हैं? व्यवस्था के स्वरूप में", और चूंकि स्वरूप को व्यापक खंड (§1) में केवल मूल-पदों द्वारा ही समाहित किया गया है, न कि अपने मूल रूप में, यह दिखाने के लिए कहा गया है कि जिस प्रकार स्वरूप को मूल-पदों से व्युत्पन्न किया जा सकता है, उसी प्रकार मूल-पदों को भी स्वरूप से व्युत्पन्न किया जा सकता है' (पृष्ठ 184)। पुनः '(दो अभिव्यक्तियों के संबंध में) "अठारह मूल-पद" और "व्यवस्था का प्रतिरूप" प्रत्येक दूसरे को समाहित करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे (उदाहरण के लिए, तीनों में से प्रत्येक) अर्थ से संबंधित मार्गदर्शक रेखाएँ (अन्य दो को समाहित करती हैं, या जैसे दोनों में से प्रत्येक) निर्धारण के त्रय (अर्थात् निर्धारक - गुण, दोष और अविचलितता के कार्य, और शारीरिक, शाब्दिक और मानसिक का त्रय दूसरे त्रय को समाहित करता है)' (पृष्ठ 2; टीका , पृष्ठ 16-17)। n. 764/2. 760/1 भी देखें। ये 4 मूल प्रकार अपने संयोजनों के साथ Pe 23ff. और Pe 153 से उस अध्याय के अंत तक धागों के वर्गीकरण में भी दिखाई देते हैं (उदाहरण के लिए, Pe 163, पंक्ति 1 देखें)। नेटिया कहती हैं, 'लालसा आदि को अपवित्रता मानकर उससे संबंधित विषय को 'अपवित्रता से संबंधित विषय' कहा जाता है; दान आदि

तथा पुण्य कमाने के आधारों से संबंधित विषय को 'नैतिकता से संबंधित विषय' कहा जाता है; दीक्षितों में सद्‌गुणों आदि से संबंधित विषय को 'प्रवेश से संबंधित विषय' कहा जाता है; और सिद्ध पुरुषों में सद्‌गुणों आदि से संबंधित विषय को 'सिद्ध पुरुष से संबंधित विषय' कहा जाता है' (पृष्ठ 185)। प्रस्तावना (अनुभाग 7ख) देखें।

[पृष्ठ 174]

पथप्रदर्शक

[एबीसी] 9. भ्रष्टाचार, नैतिकता और घुसपैठ से संबंधित विषयवस्तु का प्रकार,

[ईसा पूर्व] 10. नैतिकता और प्रवेश से संबंधित धागे का प्रकार; 2

[अल] 11. लालसा द्वारा भ्रष्टाचार से निपटने वाले धागे का प्रकार,

[A2] 12. दृश्य द्वारा भ्रष्टाचार से निपटने वाले थ्रेड का प्रकार,

[A3] 13. कदाचार द्वारा भ्रष्टाचार से निपटने वाले थ्रेड का प्रकार;

[बी-डीएल] 14. लालसा से शुद्धि से संबंधित धागे का प्रकार।

[बी-डी2] 15. दृष्टि से शुद्धिकरण से संबंधित धागे का प्रकार,

[बी-डी3] 16. दुराचार से शुद्धि से संबंधित धागे का प्रकार

(तुलना करें पे 22ff.). 3

1. भ्रष्टाचार

761. इसमें भ्रष्टाचार तीन प्रकार का है: लालसा द्वारा भ्रष्टाचार, दृष्टि द्वारा भ्रष्टाचार और दुराचार द्वारा भ्रष्टाचार।

762. इसमें, लालसा से उत्पन्न भ्रष्टाचार शांति से शुद्ध होता है, और वह शांति एकाग्रता की श्रेणी में आती है। दृष्टि से उत्पन्न भ्रष्टाचार अंतर्दृष्टि से शुद्ध होता है, और वह अंतर्दृष्टि समझ की श्रेणी में आती है। दुराचार से उत्पन्न भ्रष्टाचार अच्छे आचरण से शुद्ध होता है, और वह अच्छा आचरण सद्‌गुण की श्रेणी में आता है।

763. जब कोई व्यक्ति सद्‌गुण में स्थापित हो जाता है, यदि उसमें विभिन्न प्रकार के अस्तित्व को पकड़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, तो उसकी कोई भी शांति और अंतर्दृष्टि, अस्तित्व में बने रहने में निहित पुण्य का आधार बन जाती है, क्योंकि इससे किसी न किसी प्रकार के [अस्तित्व] में पुन: प्रकट होना संभव हो जाता है।

764. ये चार मूल प्रकार के धागे, जब एक साथ मिलाए जाते हैं, तो आठ होते हैं; और उन्हीं आठों को एक साथ मिलाने पर सोलह होते हैं। 1 संपूर्ण नौ गुना धागे को इन सोलह प्रकारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। 2

760/2 नेटिआ टिप्पणी करते हैं कि मूल 4 के संयोजन के रूप में संभावित 6 द्वैत, 4 त्रैत और 1 चतुष्क (देखें एन. 764/1) में से केवल 4 द्वैत और 2 त्रैत चुने गए हैं, हालांकि 'अन्य को छोड़ने का कोई कारण नहीं है' और इसलिए 'पाठ को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत माना जाना चाहिए' (पृष्ठ 185)। तुलना करें पे अध्याय ii।

760/3 अंतिम 6 क्रमशः पहले और अन्य 3 के उपविभाजन मात्र हैं, और नेटिया ने बताया है कि वे कुछ पांडुलिपियों में अनुपस्थित थे। देखें पे 29।

764/1 नेटिए निम्नलिखित अंकगणित देता है: '8' में चार सरल संख्याएँ A, B, C, D (संख्या 1-4) और चार संयुक्त संख्याएँ AB, AC, AD, BC (संख्या 5, 6, 7 और 10) शामिल हैं, जिनका योग 8 है। दूसरी '8' निम्नलिखित संयोजनों से बनी है: BD, CD, ABC (संख्या 9), ABD, ACD (संख्या 8), BCD, ABCD, और ऋणात्मक चतुर्भुज not-A-not-B-not-C-not-D। इस प्रकार कुल योग 16 है। तुलना करें पृष्ठ 29 ।

764/2 इसका अर्थ यह है कि जिसे ' सूत्र ' कहा जाता है—बुद्ध के कथन के अर्थ में 'सूत्र'—उसे नौ वर्गों में (देखें n. 1/9) इन 16 विभाजनों के अंतर्गत रखा गया है। इसलिए यह अध्याय इन सभी को समाहित करने का दावा करता है।

[पृष्ठ 175]

व्यवस्था का प्रतिरूप

765. श्लोक का मूल्यांकन श्लोक के अनुसार किया जाना चाहिए, गद्य-व्याख्या का मूल्यांकन गद्य-व्याख्या के अनुसार किया जाना चाहिए (तुलना करें पतरस 10, 11, 19), विषयवस्तु का मूल्यांकन विषयवस्तु के अनुसार किया जाना चाहिए। 1

[पहला समूह—उदाहरण सहित उद्धरण]

[1]

766. इसमें भ्रष्टाचार से निपटने वाले विषय का प्रकार क्या है?

कामुक अंधकार के जाल में फंसा हुआ,
और लालसा के बंधन से अवरुद्ध ,
[129] उपेक्षा की बाड़ से घिरा हुआ
जैसे मछली किसी फनल-ट्रैप में फंसी हो,
ये बुढ़ापे और मृत्यु के बाद घटित होते हैं।
जैसे दूध पीने वाला बछड़ा अपनी माँ से दूध पीता है > (§198; पे 24)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

767. <' भिक्षुओं, ये चार प्रकार के बुरे मार्ग हैं। वे कौन से चार हैं? एक इच्छा से बुरे मार्ग पर चलता है, दूसरा घृणा से , तीसरा भय से, और चौथा भ्रम से ।' भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा। यह कहकर, गुरु ने आगे कहा:

जब मनुष्य सच्चे विचार से भटक जाता है
इच्छाशक्ति, घृणा , भय या भ्रम के माध्यम से,
उसे पता चलता है कि उसकी प्रसिद्धि धीरे-धीरे फीकी पड़ रही है।
जैसे इसके अंधेरे आधे हिस्से में चंद्रमा (तुलना करें पे 48, 64; ए. ii, 18)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

768. < विचार मन द्वारा घोषित किए जाते हैं 1 ,
उनका मस्तिष्क उन्हें नियंत्रित करता है , और वे मस्तिष्क द्वारा निर्मित होते हैं।
यदि कोई व्यक्ति भ्रष्ट मानसिकता वाला हो
बोलने या कार्य करने की आदत है , फिर दर्द होता है

बुद्ध के संपूर्ण कथन को वर्गीकृत उद्धरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, इसे एक 'पैटर्न' के रूप में स्थापित किया गया है, जिससे '18 मूल-शब्दों' (देखें §§4, 759 और 964) के अंतर्गत इसे समाहित करके, दिशा-निर्देशों को 'ढाला' जा सकता है (देखें n. 759/1)।

765/1 पृष्ठ 10, पंक्ति 3 देखें।

768/1 पुब्बंगमा विशेषण के रूप में 'से पहले' का अर्थ है। पाली में दिया गया उदाहरण एक राजा का है जो अपनी सेना के आगे चल रहा है। 'हेराल्ड' संक्षिप्त रूप है।

[पृष्ठ 176]

पथप्रदर्शक

श्योर उसके पीछे-पीछे चलता है, जैसा कि वह भी करता है।
पहिया जोतित [बैल का] खुर > (Dh. 1; cf. §787).

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

769. < अत्यधिक भोजन के कारण सुस्त और मंदबुद्धि व्यक्ति,
नींद में डूबा हुआ, जो लेटे-लेटे कराह रहा है
जैसे किसी बड़े सूअर को चर्बीदार भोजन से भर दिया गया हो,
बार-बार गर्भ में लौटता है > (§190).

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

770. लोहे पर लगने वाले जंग के धब्बे की तरह
यह उस लोहे को खा जाता है जिससे इसका विकास होता है।
इसी प्रकार, आदतन अपराध करने वालों का नेतृत्व भी किया जाता है।
अपने ही कर्मों से बुरे गंतव्यों की ओर > (पे 8, 49; ध. 240)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
771. [130] < ठीक वैसे ही जैसे घर में सेंधमारी करते हुए पकड़ा गया एक लुटेरा
वह अपने कृत्य से ग्रस्त है और इसके लिए जिम्मेदार भी है।
इसी प्रकार, भविष्य में जब मनुष्य की मृत्यु हो जाएगी,
वह अपने कृत्य से ग्रस्त है और उसके लिए जिम्मेदार है > (§188)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
772. < छड़ी से क्रूरतापूर्वक दुर्व्यवहार करने वाला
वे प्राणी जो केवल सुख की इच्छा रखते हैं,
जब वह भी अपनी ही खुशी की तलाश करता है
यहाँ से प्रस्थान करने पर, उसे यह नहीं मिलता> (उद. 12; ध. 131; तुलना करें §789)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
773. जब मवेशी नदी पार करते हैं
और बैल का नेता भटक जाता है
फिर बाकी सब लोग भटक जाते हैं
क्योंकि मार्गदर्शक भटक गया है।
मानवजाति में भी ऐसा ही है:
यदि नियुक्त शासक कार्य करता है
सच्चे विचार के विपरीत,
बाकी सभी लोगों की हालत तो और भी ज्यादा होगी;
जब राजा का प्रकोप होता है तो पूरा राज्य पीड़ित होता है।
सच्चे विचार के विपरीत कार्य > (ए. ii, 75ff.; cf. §790).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

[पृष्ठ 177]
व्यवस्था का प्रतिरूप
774. < बुरे काम करने वाले पुरुषों का काम वाकई बहुत अच्छा होता है।
जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति लालसा के माध्यम से
फिर उस निरंतर नरक में भीड़ उमड़ पड़ती है
वहाँ सबसे भयानक पीड़ाओं को सहना !> ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
775. फल लगने से केले का पेड़ मर जाता है
और यह बांस और सरकंडे को नष्ट कर देता है।
और सम्मान अयोग्य पुरुषों का वध कर देता है।
जैसे मादा खच्चर बच्चे को जन्म देती है > (एस.आई, 154)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
776. < एक भिक्षु जो बहुत क्रोधशील होता है
और लाभ और सम्मान के माध्यम से तिरस्कार

सच्चे विचार में अब और वृद्धि नहीं होती
अच्छी मिट्टी में सड़ा हुआ बीज > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
777. <' हे भिक्षुओं, मैं प्रबुद्ध व्यक्ति की दृष्टि से किसी व्यक्ति की चेतना में प्रवेश करता हूँ और इस प्रकार समझता हूँ: इस व्यक्ति के आचरण, उसके अभ्यास और उसके मार्ग के अनुसार, [131] यदि वह इस अवसर पर मर जाए, तो मानो उसे वहाँ ले जाया जाए, तो उसे नरक में रखा जाएगा। 1 ऐसा क्यों है? उसका हृदय भ्रष्ट है। उसके हृदय की भ्रष्टता के कारण ही शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, व्यक्ति बेचैनी की अवस्था में , बुरे गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होता है।' भगवान बुद्ध ने यही अर्थ बताया है। इसमें आगे कहा गया है:
यहां किसी व्यक्ति को पहचानकर
जिसका हृदय भ्रष्टाचार से भरा हुआ था,
गुरु ने अर्थ की व्याख्या की।
भिक्षुओं की उपस्थिति में इस प्रकार:
'अब अगर ऐसा हो जाए कि यह व्यक्ति
ऐसे क्षण में मरने आया था
फिर वह नरक में पुनः प्रकट होगा
उसके हृदय की भ्रष्टता के कारण;

777/1 यह कठिन और मुहावरेदार वाक्यांश, जो कई सूत्रों में दोहराया गया है, संभवतः यहाँ इस श्लोक-व्याख्या द्वारा सबसे अच्छी तरह से प्रमाणित है। एक टीकात्मक व्याख्या उदाहरण के लिए, एम.ए. ii, 32 पर दी गई है।

[पृष्ठ 178]
पथप्रदर्शक
हृदय से भ्रष्ट प्राणियों के लिए
एक भयावह गंतव्य की ओर।
मानो उसे अगवा कर लिया गया हो
और वहाँ रख दिया , ताकि ऐसा मूर्ख व्यक्ति ...
शरीर के विघटन के बाद,
नरक में पुनः प्रकट होता है।
भगवान बुद्ध ने यही अर्थ बताया था, जैसा कि मैंने सुना है (तुलना करें इति. 12f.;तुलना करें §795)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
778. < अब अगर आपको दर्द से डर लगता है
और अगर आपको दर्द अप्रिय लगता है
फिर सार्वजनिक रूप से या गुप्त रूप से किसी भी प्रकार का बुरा काम न करें।
यदि आप ऐसा करते हैं या यदि आप ऐसा करेंगे
एक बुरा काम, चाहे कुछ भी हो जाए।
आपको दर्द से कोई सुरक्षा नहीं मिलेगी।
भविष्य की अवस्थाओं में उड़ान भरकर भी > (पे 43, 44; एस. आई, 209)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
779. < उन्हें जो भी वृद्धि मिले
गैरकानूनी रूप से, और वह भी झूठ के बल पर,
मूर्ख लोग दोनों को ही अपना समझते हैं ;

अब इसका परिणाम क्या होगा?
परेशानियां तो होंगी ही, और इसके अलावा,
जो कुछ भी एकत्रित किया गया है, वह लुप्त हो जाता है;
मरने के बाद उनके लिए कोई स्वर्ग नहीं है:
क्या अब वे इससे बर्बाद नहीं हो जाते ?
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
780. <' एक आदमी खुद का उपभोग कैसे करता है ?
वह अपने दोस्तों को कैसे खो देता है?
वह सच्चे विचार से कैसे विमुख हो जाता है ?
वह स्वर्ग जाने में कैसे असफल हो सकता है?
लालच के कारण मनुष्य अपना ही विनाश कर लेता है।
लालच के कारण वह अपने दोस्तों को खो देता है ।

780/1 'खानाती - उपभोग करना': इस अर्थ में पी.ई.डी. में नहीं; तुलना करें विस. 145 और 527; नेटीए अनदेखा करता है।
780/2 ' विवत्तते —से मुड़ता है': नेटिआ ने निवत्तति के साथ व्याख्या की है , न कि वत्तति के साथ जैसा कि पीटीएस नेट्टी इंडेक्स (पृष्ठ 280, नोट 1) में कहा गया है ।

[पृष्ठ 179]
व्यवस्था का प्रतिरूप
लालच के कारण वह सच्चे विचार से विमुख हो जाता है।
लालच के कारण वह स्वर्ग जाने में असफल रहता है ।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
781. जब मूर्ख अपनी मूर्खता दिखाते हैं
वे स्वयं अपने ही शत्रु हैं;
क्योंकि वे बुरे काम करते हैं, जो
इसका बुरा परिणाम होगा।
[132] यह कार्य ठीक से नहीं किया गया है, जिसके लिए
जब काम हो जाता है तो पछतावा जरूर होता है।
जिसका परिपक्वन होता है
आँसू भरे चेहरे से शोक मनाना > (ध. 66; एस. i, 57).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
782. < भिक्षु की अवस्था में अयोग्य व्यक्ति को पाया जाता है
इन्हें पाना भी कठिन है और सहना भी कठिन है;
वहाँ बहुत सी परेशानियाँ हैं
जिसमें मूर्ख को दुःख हो सकता है > (एस. i, 7).
क्योंकि यदि कोई मूर्ख अपने मन को भ्रष्ट कर ले तो
जबकि एक परिपूर्ण व्यक्ति व्याख्या करता है
कोई अन्य अर्थ या विचार,
इस प्रकार उसका जीवन निष्फल हो जाता है > ( )।
< 'मैं इस पीड़ा का वास्तव में हकदार हूँ, और इससे भी बदतर, हे आदरणीय महोदय; क्योंकि मैं कामवासना से मुक्त नहीं हूँ, मैंने असीम परिपूर्णों के लिए हृदय में घृणा पाली है '> ( ). 1

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
783. < फिर ऐसा कौन है जो जानता है कि वह सोचेगा
असीम को मापना?
मैं उसे मूर्ख, बेवकूफ समझता हूँ, जो कोशिश करता है
अमापनीय को मापना > (एस.आई. , 149).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
784. < एक बार जब कोई व्यक्ति जन्म ले लेता है
उसके मुंह के अंदर एक कुल्हाड़ी पैदा होती है।
जिससे मूर्ख स्वयं को चोट पहुँचाएगा
अपशब्द बोलकर > (एस. आई, 149).

782/1 शायद यह उद्धरण पद्य होना चाहिए, जैसा कि Bb में मुद्रित है।

[पृष्ठ 180]
पथप्रदर्शक
तेज धार वाली तलवार कभी अच्छी नहीं होती ।
या कालाहला का जहर
तो निश्चित रूप से एक आदमी को बर्बाद कर दो
जैसे कि अपशब्द > (जेडी. iii, 103)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
785. < जो निंदनीय की प्रशंसा करता है
या प्रशंसनीय निंदा करता है
उसने अपने मुंह से एक गेंद फेंकी , जो अशुभ साबित हुई।
एक ऐसा प्रयास जिसके माध्यम से उसे कोई आनंद नहीं मिलता।
पासे पर दुर्भाग्यपूर्ण चाल को तुच्छ समझना
इससे सबकी संपत्ति दांव पर लग जाती है।
खुद को भी शामिल करें; यह तो वाकई कहीं ज्यादा बुरा है।
क्या यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण थ्रो है?
इससे परम पूज्यों के प्रति हृदय कठोर हो जाता है।
एक लाख छत्तीस
निरब्बुदास और पाँच अब्बुदास
कई वर्षों तक दुष्ट नरकीय अवस्थाओं में
[133] उन पुरुषों को काट डालो जिनकी महान आत्माएँ निंदा करती हैं
अपने हृदय और वाणी को इस प्रकार व्यवस्थित करने के लिए > (स्न. 658-60)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
786. जब कोई व्यक्ति लोभ की सेवा में समर्पित हो
वह दूसरों की निंदा करने वालों को ही अपनी ओर आकर्षित करता है।
वह अविश्वासी, नीच है, और वाणी का न्याय नहीं कर सकता ।
लालची और द्वेषपूर्ण भी।
हे अपशब्द बोलने वाले, हे धोखेबाज, हे नीच व्यक्ति,
विनाशक और बागी, बुराई करने वाला,

हे दुष्ट, पापी और गटर के पुत्र,
अभी यहाँ ज्यादा कुछ मत बोलो, तुम नरक के ही हो। 2
तुमने दूसरों के दुर्भाग्य के लिए प्रदूषण फैलाया है ।

785/1 ' विसिनाटी -कास्ट्स': शाब्दिक रूप से (दुर्भाग्य को 'अशुभ थ्रो' के रूप में) संचित करना:
हालांकि यह पत्र v के अंतर्गत PED में शामिल नहीं है , लेकिन काली (qv) के अंतर्गत इसमें शामिल है।
786/1 यहां अनारियो, लेकिन एसएन पर। 663 कादारियो; यहाँ अवजातकपुत्त भी है ,
जहां एस.एन. 664 में अवजाता है। मार्ग यो लोभगुने ।. . को ।. . पेसुनियाम
anuyutto श्लोक में होना चाहिए जैसा कि Sn. 663 में है।
786/2 'नरक' का प्रयोग यहाँ निरय को व्यक्त करने के लिए किया गया है (टिप्पणी संबंधी व्याख्या के लिए, एमए देखें)।
(ii, 37)। लेकिन बुद्ध की शिक्षाओं में, नरक, स्वर्ग और बाकी सब चीजों की तरह ही है।
जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह क्षणभंगुर है, और वहाँ कोई भी अस्तित्व शाश्वत नहीं है (देखें एम. सुत्त) ।
130). इसके अलावा, एक प्राणी नरक में भी स्वर्ग की तरह अपना अस्तित्व स्वयं बनाता है, ऐसा करते हुए
अपने कार्यों से, जिनके भावी परिणाम वह अपने अभिनय में स्वयं बनाता है, और वह
किसी और द्वारा वहाँ नहीं भेजा जा सकता। यहाँ 'पापी' (काली के लिए) का अर्थ भी केवल यही है।

[पृष्ठ 181]
व्यवस्था का प्रतिरूप
आपने सत्य की निंदा की है और घृणित कार्य किए हैं;
आपके द्वारा किए गए सभी कुकर्मों के माध्यम से,
आप गड्ढे में लंबे समय तक रहने वाले हैं > (Sn. 663-5)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
2. नैतिकता
787. इसमें, नैतिकता से संबंधित विषय किस प्रकार का है?
विचार मन द्वारा उत्पन्न होते हैं ।
उनका नियंत्रण दिमाग के हाथों में होता है, और वे दिमाग से ही निर्मित होते हैं।
यदि कोई शांत मन वाला व्यक्ति
बोलने या कार्य करने की आदत होने पर, आनंद मिलता है
श्योर उसके पीछे-पीछे चलता है, जैसा कि वह भी करता है।
उसकी परछाई उसका साथ देती है > (पे 24, 163; ध. 2; cf. §768).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
788. शाक्य महानामा ने भगवान बुद्ध से कहा: 'आदरणीय महोदय, यह कपिलवस्तु नगर सफल, समृद्ध, घनी आबादी वाला और लोगों से भरा हुआ है, इसकी गलियाँ भीड़भाड़ वाली हैं। अब, आदरणीय महोदय, ऐसा होता है कि जब मैं भगवान बुद्ध या पूज्य भिक्षुओं को प्रणाम करता हूँ, तो शाम को कपिलवस्तु जाता हूँ, और वहाँ मुझे शायद एक अनियंत्रित हाथी, या एक अनियंत्रित घोड़ा, या एक अनियंत्रित रथ, या एक अनियंत्रित बैलगाड़ी, या एक अनियंत्रित व्यक्ति मिलता है । उस समय , आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा प्रेरित ध्यान भूल जाता है, सत्य विचार द्वारा प्रेरित ध्यान भूल जाता है, समुदाय द्वारा प्रेरित ध्यान भूल जाता है। आदरणीय महोदय, मैं सोचता हूँ: यदि मैं उस शाम को चल बसूँ, तो मेरा गंतव्य क्या होगा, मेरा भविष्य क्या होगा?' -[134] 4 डरो मत, महानामा, डरो मत। तुम्हारी मृत्यु बुराई से मुक्त होगी , तुम्हारा चलना बुराई से मुक्त होगा। जब किसी श्रेष्ठ श्रोता के मन में चार विचार होते हैं, तो वह विनाश की ओर अग्रसर होता है, विनाश की ओर झुकता है। वे चार विचार क्या हैं? यहाँ एक श्रेष्ठ श्रोता, अपने अनुभव के आधार पर, प्रबुद्ध व्यक्ति में इस प्रकार विश्वास रखता है: 'भगवान बुद्ध ऐसे हैं क्योंकि वे सिद्ध हैं , ... [जैसा कि अनुच्छेद 296 में है] ... देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक, सच्चे विचार में प्रबुद्ध धन्य ...

इस श्लोक का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो इतना 'दुर्भाग्यशाली' है कि वह अपने ही कल्याण के विरुद्ध इतना बड़ा कार्य करता है। अतः यह श्लोक किसी भी प्रकार से अभिशाप या निंदा नहीं है—नर्क में भेजना, जो कि असंभव है—बल्कि यह मात्र एक वर्णन और एक चेतावनी है कि दूसरे लोग लालच, घृणा और भ्रम के कारण वही दुखद गलती न दोहराएँ।
787/1 4 "कार्य के नियम और उसके परिपक्व होने में विश्वास के माध्यम से शांत" (नेटी ए. 192)।

[पृष्ठ 182]
पथप्रदर्शक
[जैसा कि §297 में है] ... समुदाय में ... [जैसा कि §298 में है] ... और तब वह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा वांछित गुणों से परिपूर्ण होता है, अक्षुण्ण ... [जैसा कि §299 में है] ... और एकाग्रता के लिए सहायक। मान लीजिए कि एक वृक्ष पूर्व की ओर झुका हुआ है, पूर्व की ओर मुड़ा हुआ है, पूर्व की ओर झुका हुआ है, तो जड़ से काटे जाने पर वह किस ओर गिरेगा? - ' आदरणीय महोदय, वह वहीं गिरेगा जहाँ वह झुका हुआ है, वहीं गिरेगा जहाँ वह मुड़ा हुआ है।' - 6 इसी प्रकार, महानामा, जब एक श्रेष्ठ श्रोता के मन में चार विचार होते हैं, तो वह विनाश की ओर प्रवृत्त होता है, वह विनाश की ओर प्रवृत्त होता है, वह विनाश की ओर झुका हुआ होता है। डरो मत, महानामा , डरो मत। तुम्हारी मृत्यु बुराई से मुक्त होगी, तुम्हारा अंत बुराई से मुक्त होगा (तुलना करें पतरस 24, 170; शमूएल 5, 371)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
789. <छड़ी से क्रूरतापूर्वक दुर्व्यवहार न करें
वे प्राणी जो केवल सुख की इच्छा रखते हैं,
जब वह भी अपनी ही खुशी की तलाश करता है
यहाँ से प्रस्थान करते हुए वह इससे मिलता है> (उद. 12; ध. 132; cf. §772).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
790. जब मवेशी नदी पार करते हैं
और बैल का नेता दाईं ओर जाता है
फिर बाकी सब ठीक हो जाते हैं
क्योंकि गाइड सही दिशा में जा रहा है।
मानव जाति में भी यही स्थिति है;
यदि नियुक्त शासक कार्य करता है
सच्चे विचार के अनुसार,
बाकी सभी लोगों की हालत तो और भी ज्यादा होगी;
जब राजा राजा होता है तो पूरा राज्य समृद्ध होता है।
सच्चे विचार का अनुसरण करने वाले कार्य > (ए. ii, 7जी; cf. §773)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
791. भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु भगवान बुद्ध के लिए वस्त्र बनाने में लगे हुए थे , [135] [यह सोचकर] 'वस्त्र तैयार होने पर भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाएंगे। ' उसी समय अधिकारी, इसिदत्त और पुराण, किसी कार्य के लिए साकेत में ठहरे हुए थे। उन्होंने सुना: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कई भिक्षु भगवान बुद्ध के लिए वस्त्र बनाने में लगे हुए हैं [यह सोचकर] "वस्त्र तैयार होने पर भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाएंगे ।"' तब उन्होंने मार्ग पर एक व्यक्ति को नियुक्त किया, [उसे यह कहते हुए] 6 हे सज्जन, जब तुम भगवान बुद्ध को पूर्ण और सिद्ध अवस्था में आते हुए देखो

[पृष्ठ 183]
व्यवस्था का प्रतिरूप

' प्रबुद्ध हो जाओ , फिर हमें बताओ।' जब उस व्यक्ति ने दो-तीन दिन प्रतीक्षा की, तो उसने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा। उन्हें देखकर वह इसिदत्त और पुराण के पास गया और उनसे कहा, 'महोदय , भगवान बुद्ध सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध होकर आ रहे हैं। अब आप अपनी इच्छा अनुसार कार्य करें।' तब अधिकारी, इसिदत्त और पुराण, भगवान बुद्ध के पास गए और प्रणाम करने के बाद उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब भगवान बुद्ध सड़क से हटकर एक पेड़ की जड़ में बने आसन पर बैठ गए। अधिकारी, इसिदत्त और पुराण ने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। ऐसा करने के बाद उन्होंने कहा, 'आदरणीय महोदय, जब हमने सुना कि भगवान बुद्ध श्रावस्ती से कोसल पर्वतमाला में विचरण करने जा रहे हैं, तो हम इस अवसर पर असंतुष्ट हैं और हमें इस बात का दुख है कि भगवान बुद्ध हमसे दूर रहेंगे।' और जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध श्रावस्ती से कोसलों के बीच भ्रमण करने गए हैं, तो हम उस अवसर पर असंतुष्ट होते हैं और शोक करते हैं कि भगवान बुद्ध हमसे दूर हैं। जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध काशी और मगध के लोगों के बीच भ्रमण करने जा रहे हैं, तो हम उस अवसर पर असंतुष्ट होते हैं और शोक करते हैं कि भगवान बुद्ध [136] हमसे दूर रहेंगे। और जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध काशी और मगध के लोगों के बीच भ्रमण करने गए हैं, तो हम उस अवसर पर काफी असंतुष्ट होते हैं और शोक करते हैं कि भगवान बुद्ध हमसे दूर हैं। जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध मगध और काशी के लोगों के बीच भ्रमण करने जा रहे हैं, तो हम उस अवसर पर असंतुष्ट होते हैं और शोक करते हैं कि भगवान बुद्ध हमसे दूर रहेंगे। और जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध मगध और काशी के लोगों के बीच भ्रमण करने गए हैं, तो हम उस अवसर पर असंतुष्ट होते हैं और शोक करते हैं कि भगवान बुद्ध हमसे दूर हैं। लेकिन जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध कोसलों में विचरण करते हुए सावत्थी लौट रहे हैं, तो हम उस अवसर पर संतुष्ट होते हैं और प्रसन्न होते हैं कि भगवान बुद्ध हमारे निकट होंगे। और जब हम सुनते हैं कि भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं, तो हम अत्यंत संतुष्ट होते हैं और प्रसन्न होते हैं कि भगवान बुद्ध हमारे निकट हैं।' — 'यह, अधिकारियों, इसलिए है क्योंकि गृहस्थ जीवन एक सीमित और मैला स्थान है; परन्तु परलोक का जीवन खुला है: इसलिए आपके लिए सजग रहना पर्याप्त है' — 'आदरणीय महोदय, हमारे पास इससे भी अधिक बाध्यकारी और बाध्यकारी मानी जाने वाली एक बाध्यता है।' — 'आपकी वह कौन सी बाध्यता है जो इससे भी अधिक बाध्यकारी और बाध्यकारी मानी जाती है?' — 'हे पूज्यवर, जब कोसल के राजा पसेनादि जुलूस मैदान में जाते थे, तो हमें यह सुनिश्चित करना होता था कि कोसल के राजा पसेनादि के हाथी उनके सवार होने के लिए तैयार हों , और फिर हमें राजा की प्रिय पत्नियों को उनके सामने एक-एक करके बिठाना होता था।'

[पृष्ठ 184]

पथप्रदर्शक

पीछे ... आदरणीय महोदय, उन महिलाओं की सुगंध किसी अभी-अभी खोले गए इत्र के डिब्बे जैसी है, जैसा कि राजाओं के लिए उपयुक्त सुगंधों से सजी महिलाओं से अपेक्षित है। और आदरणीय महोदय, उन महिलाओं का शारीरिक स्पर्श तुला-कपास या कपास-कपास जैसा है , जैसा कि सुख-सुविधाओं में पली-बढ़ी राजाओं की पुत्रियों से अपेक्षित है। आदरणीय महोदय, उस अवसर पर हाथी की रक्षा करनी होगी, महिलाओं की रक्षा करनी होगी और हमें भी अपनी रक्षा करनी होगी। फिर भी हमने कभी उन महिलाओं के प्रति बुरे विचार उत्पन्न होते नहीं देखे हैं। आदरणीय महोदय, हमारे पास इससे भी अधिक बाध्यकारी और बाध्यकारी यह बाध्यता है - ' अधिकारियों, ऐसा इसलिए है क्योंकि गृहस्थी जीवन एक सीमित और गंदा स्थान है; परन्तु बाहर का जीवन खुला है: इसलिए आपके लिए सतर्क रहना पर्याप्त है।' जब एक श्रेष्ठ श्रोता चार विचारों को ग्रहण कर लेता है, तो वह ज्ञान की धारा में प्रवेश कर जाता है; वह विनाश के विचार से विभाज्य नहीं रह जाता; वह सत्य के प्रति आश्वस्त हो जाता है और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होता है। वे चार विचार क्या हैं? यहाँ एक सुशिक्षित श्रेष्ठ श्रोता, अपने अनुभव से, भगवान बुद्ध में इस प्रकार विश्वास रखता है: 'भगवान बुद्ध ऐसे हैं क्योंकि ... [जैसा कि अनुच्छेद 296 में है] ... धन्य हैं ... सत्य विचार में ... [जैसा कि अनुच्छेद 297 में है] ... समुदाय में ... [जैसा कि अनुच्छेद 298 में है] ... 'संसार के लिए पुण्य का क्षेत्र'। और फिर वह अपने हृदय को दोष और लोभ से मुक्त रखते हुए, उदार , खुले हाथों से, त्याग में प्रसन्नता का अनुभव करते हुए, दान की अपेक्षा रखते हुए और देने एवं साझा करने में आनंदित होते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है । इन चार विचारों को ग्रहण करने वाला श्रेष्ठ श्रोता ज्ञान की धारा में प्रवेश कर चुका होता है; वह विनाश के विचार से विभाज्य नहीं रह जाता; वह सत्य के प्रति आश्वस्त हो जाता है और ज्ञानोदय की ओर अग्रसर होता है। अब, अधिकारियों, आप अपने अनुभव से प्रबुद्ध व्यक्ति में इस प्रकार विश्वास रखते हैं: ... सच्चे विचार में इस प्रकार: ... समुदाय में इस प्रकार: ... और कुल में जो कुछ भी देने योग्य है, वह सद्गुणी लोगों से नहीं रोका जाता जो अच्छाई के विचार से अविभाज्य हैं। आप इसे कैसे समझते हैं: कोसलन में

कितने लोग आपके समान देने और साझा करने में हैं? V—'हमारे लिए, आदरणीय महोदय, यह लाभ है, हमारे लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि भगवान बुद्ध हमारे बारे में यह जानते हैं' > (एस.वी , 348f.)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

792. [138] < मैंने केवल एक फूल दिया;
उसके बाद अस्सी असंख्य युग बीतेंगे।
मैं देवताओं और मनुष्यों के बीच रहता था।
विलुप्ति तक पहुँचने के लिए, शेष निशान छोड़ते हुए > (तुलना करें थैग. 96)। 1

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

792/1 KhpA. 222 पर इसी तरह का अप्रमाणित उद्धरण देखें।

[पृष्ठ 185]

व्यवस्था का प्रतिरूप

793. < एक ज्ञान वृक्ष के नीचे
चौड़ी, पेड़ों से भरी और हरी-भरी चमकती हुई।
जब मैं ध्यान में बैठा था
मुझे ऐसा संकेत मिला मानो कोई प्रबुद्ध व्यक्ति संकेत दे रहा हो।
आज ये तीस युग...
मैं पास हो चुका हूँ , और तब से मैं कभी नहीं गया हूँ।
एक बुरे गंतव्य की ओर ,
और ट्रिपल साइंस की पुष्टि हो चुकी है ।
उस चिन्ह का नैतिक > (तुलना करें थाग. 217-18).

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

794. भिक्षा मांगने के लिए सबसे आगे रहने वाले पुरुष
कोसला की राजधानी
भोजन से पहले , दयालु ,
शांत रहने वाला , सभी प्रकार की लालसाओं का उपचार करने वाला।
एक आदमी के हाथ में एक माला थी
हर प्रकार के फूलों से सुशोभित;
उन्होंने पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा।
भिक्षुओं के समुदाय के साथ
राजा के राजमार्ग पर प्रवेश करते हुए ,
देवताओं और मनुष्यों द्वारा सम्मानित।
प्रसन्न , हृदय में आत्मविश्वास के साथ ,
वह भगवान बुद्ध के पास गया।
फूलों की सुगंध से भरी माला
कई आकर्षक रंगों के साथ समलैंगिक
उन्होंने आस्था के साथ अपने हाथों से दान दिया।
पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को अनुग्रह प्रदान करने के लिए ।
फिर बुद्ध के मुख से यह बात निकली
धधकती लपटों के समान रंग के साथ

एक हजार किरणों की एक किरण ,
जैसे उसके मुंह से बिजली चमक रही हो।
उसे दाईं ओर से घेरने के बाद
यह सिर के ऊपर तीन बार घूमा
सूर्य के रिश्तेदार के बारे में , और उस पर
उसके माथे से ओझल हो गया।
इस अद्भुत दृश्य को देखकर ,
यह अद्भुत और रोंगटे खड़े कर देने वाली बात है ,
आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा ,
अपना वस्त्र एक कंधे पर रखते हुए:
हे सर्वशक्तिमान, शांत प्रभु , कारण बताइए
इसलिए आपके चेहरे पर मुस्कान आ जाती है।

[पृष्ठ 186]
पथप्रदर्शक
यह सच्चे आदर्श 1 को रोशन करेगा
यदि आप हमारी शंकाओं को दूर कर दें।'
फिर वह जो हमेशा तैयार रहता है
हर चीज के बारे में ज्ञान
[139] क्या बड़े आनंद ने उत्तर दिया था?
[जो वहाँ खड़ा था] संदेह में आश्चर्यचकित था
'यह आदमी, आनंद, क्योंकि उसने
उन्हें मुझ पर पूरा भरोसा था।
कोई बुरा गंतव्य नहीं होगा
चौरासी हजार युगों तक।
और स्वर्गिक लोकों पर शासन करने के बाद
देवताओं में से दिव्य प्राणियों में से,
वह मनुष्यों में शासक होगा।
वह एक पूरे राज्य का राजा होगा ।
और अंत में वह आगे बढ़ेगा
सच्चे विचार के स्वयं के नियम को खोजना
और एकांतवासी प्रबुद्ध व्यक्ति बनो
वातंसक, जो सभी कामवासनाओं से मुक्त है।
यह कोई मामूली भेंट नहीं है
दृढ़ संकल्प के साथ बनाया गया
किसी आदर्श व्यक्ति पर भरोसा करना
पूर्णतः प्रबुद्ध, या उसका श्रोता।
ज्ञानी पुरुष असीम होते हैं।
असीमता ही उनका वास्तविक विचार है ।
उन लोगों के लिए असीमित फल जो रखते हैं
असीम में उनका विश्वास > ( ).

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
795. <' हे भिक्षुओं, मैं प्रबुद्ध व्यक्ति की दृष्टि से किसी व्यक्ति के मन में प्रवेश करता हूँ और समझता हूँ कि: इस व्यक्ति के आचरण, अभ्यास और मार्ग के अनुसार, यदि इस समय उसकी मृत्यु हो जाए, तो मानो उसे स्वर्ग में ले जाया जाएगा। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसका हृदय आश्वस्त है। उसके हृदय के इसी विश्वास के कारण शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, व्यक्ति स्वर्ग में एक शुभ स्थान पर पुनः प्रकट होता है।' भगवान बुद्ध ने यही अर्थ बताया है। इसमें आगे कहा गया है:
यहां किसी व्यक्ति को पहचानकर
जिसका हृदय आत्मविश्वास से भरा हुआ था,

794/1 धम्मलोको को एक यौगिक के रूप में पढ़ें और धम्मस्सा अलोको के रूप में संकल्प करें।

[पृष्ठ 187]
व्यवस्था का प्रतिरूप
गुरु ने अर्थ स्पष्ट कर दिया था।
भिक्षुओं की उपस्थिति में इस प्रकार:
अब अगर ऐसा हो जाए कि वह व्यक्ति
ऐसे क्षण में मरने आया था
फिर वह स्वर्ग में पुनः प्रकट होगा।
अपने हृदय की बात प्रकट करके;
आत्मविश्वास से भरे प्राणियों के लिए
एक सुखद मंजिल की ओर।
मानो उसे अगवा कर लिया गया हो
और वहाँ रखा गया, ताकि इस तरह का एक बुद्धिमान व्यक्ति
शरीर के विघटन के बाद
स्वर्ग में प्रकट होता है
मैंने सुना है कि भगवान बुद्ध ने यही अर्थ बताया था (तुलना करें इति. 13f.; तुलना करें §777)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
796. [140] < नाव पर सवार एक महिला थी
सोने की छतरी फैली हुई है ।
उसने अपना हाथ पूल में डुबो दिया।
और इसके साथ एक कमल का फूल तोड़ा> (Vv. p. 4).
आपमें जो सुंदरता है, वह कहाँ से आती है?
आपके व्यक्तित्व की चमक कहाँ से आती है?
ऐसा लगता है मानो सारी दौलत तुम्हारी ओर ही आ रही हो।
आपके मन में जो भी इच्छा हो;
हे देवता, जब मुझसे पूछा जाए तो मुझे बताइए,
इस फल को प्राप्त करने वाली क्रिया क्या है?
देवता अत्यंत प्रसन्न हैं,
इस प्रकार देवताओं के राजा ने उनसे प्रश्न किया।
उत्तर देते हुए उन्होंने इस प्रकार जवाब दिया।
सक्का के प्रश्न के उत्तर में, जैसा कि मैंने सुना:
'जब मैं यात्रा पर था'

मैंने एक बेहद खूबसूरत मंदिर देखा।
जिसमें मेरे हृदय को विश्वास था
कासापा में, जो बहुत प्रसिद्ध है ।
मैंने वहां कमल के फूल अर्पित किए।
अपने हाथों से पूरे भरोसे के साथ।
यही उस कर्म का फल है, यही उस कर्म का फल है।
जो लोग पुण्य कमाते हैं, उन्हें प्राप्त होता है > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

[पृष्ठ 188]
पथप्रदर्शक
797. < दान पर बात , सद्गुण पर बात , स्वर्ग पर बात> (एम. आई, 379), <योग्यता पर बात , योग्यता के परिपक्व होने पर बात > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
798. इसके अलावा, जिन पुरुषों ने निर्माण में मदद की है
पृथ्वी-स्मारक समर्पित किए गए
उन लोगों के लिए जो दस शक्तियों का उपयोग करते हैं
स्वर्ग के आनंद में बने रहो > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
799. < सभी का शारीरिक रूप ईश्वर के पुत्र जैसा है
और सुंदर सुडौलपन के आशीर्वाद से ,
मिट्टी को पानी से अच्छी तरह गीला करके तैयार कर लें।
और कासापा के लिए एक स्मारक का निर्माण करें।
सुंदर अंगों वाली महिलाओं , यह एक ऋषि के लिए बनाया गया मंदिर है।
दस शक्तियों से परिपूर्ण, सत्य के मार्ग पर चलने वाला:
ये देवता और वे मनुष्य हैं जो आत्मविश्वास के साथ काम करते हैं
इसके बाद बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्ति मिलेगी > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
800. < यह वास्तव में एक बहुत बड़ी बात थी
कि मैं स्मारक पर
महानतम ऋषि को समर्पित
[141] चार लिली और एक माला रखी ।
आज ये तीस युग बीत चुके हैं।
और तब से मैं कभी नहीं रहा।
एक बुरे गंतव्य की ओर;
मैंने गुरु के स्मारक का सम्मान किया > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
801. < मैंने एक बार उस व्यक्ति के स्मारक का सम्मान किया जिसने पहना था
एक महान व्यक्ति के बत्तीस लक्षण होते हैं,
विश्व का सहायक, युद्ध में विजयी,
जिसके लिए मैं एक लाख युगों से आनंदित हूँ ।
इस प्रकार मैंने पुण्य संचित किया।

और इस पुण्य के फलस्वरूप ईश्वरीय आशीर्वाद प्राप्त हुआ।
मुझे उस पूरे समय राजाओं का काम करना था।
बिना कभी विनाश की ओर जाए । [अब]
मेरा हृदय ऐसा है कि मैंने पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया।

799/1 < 7 , Ba और Bb वद्धेथा पढ़ते हैं .

[पृष्ठ 189]
व्यवस्था का प्रतिरूप
उस व्यवस्था में [समझ की] वह आँख
उस महान व्यक्ति के बारे में जिसने जंगली जानवरों को वश में किया;
मेरा दिल मुक्त हो गया है , और अब लता भी छंट गई है ।
( )•
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
802. < यह चावल की केवल एक समाका माप थी 1
जो मैंने एक ज्ञानी संन्यासी को दिया था ,
जिसका हृदय पाँचों निर्जन क्षेत्रों से मुक्त हो गया था , 2
जो निष्कलंक , बिना किसी संघर्ष के पालन करते रहे ,
और उसके दिल में कोई आसक्ति नहीं थी। मुझे ऐसा लगा।
उनमें अद्वितीय सच्चे आदर्श का वास है।
और मैंने अपना मन उसी सच्चे विचार की ओर लगाया:
मुझे उन लोगों से मिलने दो जो इस प्रकार रहते हैं >
किसी भी प्रकार के प्राणी के प्रति बिल्कुल उदासीन।
फिर उस क्रिया के परिपक्व होने के कारण
क्या मैंने कुरु वंश में हजार जन्म लिए थे?
वे दीर्घायु प्राणी जो किसी भी चीज़ को 'मेरा' नहीं कहते,*
जो ऐसी उपलब्धियां हासिल करते हैं जिन्हें वे कभी नहीं खोते।
और उस क्रिया के परिपक्व होने के कारण
तीस में से मेरे एक हजार बच्चे हुए थे , 5
जिन लोगों के शरीर विशिष्ट हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:
कई पुष्पमालाओं से सजे होने के लिए प्रसिद्ध।
और उस क्रिया के परिपक्व होने के कारण
मेरा हृदय पाँचों निर्जन क्षेत्रों से मुक्त हो गया है ।
निर्मल , मैं उन लोगों से मिला जो अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए थे ।
[142] और जो दुख और सुख दोनों से परे जा चुके हैं; 6
मुझे समझ आ गया कि उस परिपूर्ण व्यक्ति ने क्या कहा था:
' सद्‌गुणी पुरुषों की जो इच्छा होती है, वह उन्हें मिल ही जाती है। '
जैसा मेरे दिमाग ने सोचा था
ऐसा ही हुआ। यही मेरा आखिरी अस्तित्व है > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

802/1 नेट्टिया (पृ. 196) में समकपट्टोडरियामट्टम पढ़ा जाता है और इसका विस्तार समक-तिंडनम नालिक-ओदाना-मट्टम तक होता है।
802/2 'हृदय के जंगल' (चेतो-खिला) के लिए एम. सुत्त 16 देखें ।
802/3 1 कुरुसु - कुरुओं में से यहाँ उत्तरा-कुरु का तात्पर्य उत्तरा-कुरु से है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे उत्तरा-कुरु के 'उत्तरी महाद्वीप' में निवास करते हैं।
802/4 ' अममा —जो किसी को भी "मेरा" नहीं कहते': = अप्पारिगहा (नेत्तिया)। 802/5 तिदास: तवतिमसा का एक वैकल्पिक नाम , छह इंद्रिय-मंडल स्वर्गों में से दूसरा, देवताओं के शासक सक्का द्वारा शासित। देखें खंड 679।
802/6 नेट्टिया पैराफ्रेसेस हितहितासिहि कुसलकुसले विटीवेटेही (पृष्ठ 196) द्वारा ।

[पृष्ठ 190]
पथप्रदर्शक
803. < धन्य विजेता के इकत्तीस युग पहले
सिख धर्म असीम दृष्टि से अविचलित होकर जीवन व्यतीत करता था।
उनके भाई का नाम शिखंडी था।
बुद्ध और सच्चे विचार पर भरोसा रखना।
जब उस विश्वमार्गदर्शक का पूर्ण रूप से विलुप्त होना
राजा ने एक भव्य स्मारक का निर्माण करवाया।
लगभग एक चौथाई मील की दूरी पर, उस महान ऋषि के पास,
वह देवताओं का देवता, वह सर्वोपरि मनुष्य।
एक दिन एक आदमी वहाँ भेंट लेकर आया।
और जब उसने जंगली चमेली की एक टहनी भेंट की, 1
उसका एक फूल हवा के झोंके से गिर गया।
मैंने उसे उठाया और उसे वापस दे दिया।
तब उसने पूरे विश्वास के साथ कहा:
'यह फूल मैं आपको उपहार के रूप में देता हूँ।'
मैंने उसे वहीं पर ले लिया और उसे पेश कर दिया।
बार-बार प्रबुद्ध व्यक्ति का ध्यान करते हुए।
आज ये तीस युग बीत चुके हैं।
और तब से मैं कभी नहीं रहा।
एक बुरे गंतव्य की ओर , के माध्यम से
उस स्मारक पर रखा गया वह फूल > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
804. < कपिला नाम का एक कस्बा है
ब्रह्मदत्त राजा से संबंधित
व्यस्त, आबादी वाला और भीड़भाड़ वाला इलाका
सफल, समृद्ध भी।
अब जब मैं वहां रोटी बेच रहा था 1
पौकालस के आखिरी घर में
[143] ने [सन्यासी] प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा
पवित्र प्रसिद्धि के उपरित्थ।
प्रसन्न और आत्मविश्वास से भरे हृदय से
मैंने उस सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को आमंत्रित किया था।

अरित्था , नियमित भोजन के लिए
मेरे घर में उपलब्ध कराया जाए।

———————————————————————————————

803/1 सी और बीबी में (सही) जातिसुमनम एक शब्द के रूप में है (बी ज्यादातर अपने शब्दों को विभाजित नहीं करता है); पी.ई.डी. में नहीं , जहाँ सुमन देखें।

803 /2 पति तस्सा को दो शब्दों के रूप में पढ़ें (यहाँ पति, पटति का अओरिएंट है); पतितस्सा को पटति के जेनेटिव पीपी. के रूप में पढ़ना यहाँ समझ में नहीं आता।

804/I कुम्मासा को यहाँ 'रोटी' के रूप में अनुवादित किया गया है क्योंकि विन . टीकाओं में इसे गेहूँ (यवा) से बना बताया गया है , इसलिए यह पी.ई.डी. में 'जंकेट' नहीं हो सकता ; शायद ' चपाती ' (या 'पास्ता') हो।

————————————————————
————————————————————

[पृष्ठ 191]
व्यवस्था का प्रतिरूप
और जब चाँद पूर्णिमा पर था
बाद में , कत्तिका महीने 2 में
मैंने कपड़ों का एक नया सेट निकाला
और उसने इसे अरित्था को भेंट किया।
मेरे दिल में बसे भरोसे को जानते हुए ,
सर्वश्रेष्ठ पुरुषों ने इसे स्वीकार किया ।
वह शांत व्यक्ति , जो सभी लालसाओं से मुक्त हो चुका है ,
दया और करुणा से प्रेरित होकर।
अब मेरे ऐसे अच्छे कर्म करने से
जैसा कि प्रबुद्धों ने प्रशंसा की है
मैंने देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच अपना जीवन व्यतीत किया।
जब तक मैं उस संपत्ति से गिर नहीं गया
एक धनी परिवार में पुनः प्रकट होना
बनारस शहर में निवास करने वाले;
मैं एक बैंकर का इकलौता बेटा था।
किसी भी जीवित प्राणी से अधिक प्रिय।
लेकिन जब मुझे विवेकाधिकार प्राप्त हुआ
तब एक ईश्वर के पुत्र ने मुझे उपदेश दिया:
मैंने अपने महल का [ऊपरी कक्ष] छोड़ दिया।
और वे ज्ञानी पुरुष के पास गए।
वह , गौतम , दयालु ,
उन्होंने ही मुझे सच्चा विचार सिखाया:
दुःख और उसका कारण
और वह क्या है जो सभी दुखों से परे है ?
और आर्य अष्टांगिक मार्ग
इससे दुख का अंत हो जाता है।
ये चार सत्य जो श्रेष्ठजनों द्वारा बताए गए हैं ,
उन्होंने सिखाया कि यही शांत व्यक्ति का सच्चा आदर्श है।
जब मैंने उसकी बात सुनी

मैं उस युग में प्रसन्नतापूर्वक निवास करता था;
मैंने क्वाइट में प्रवेश किया , इसके अलावा ,
दिन-रात लगातार;
और मुझमें मौजूद सभी कलंक

———————————————————————————————

804/2 कट्टिका वर्षा ऋतु का चौथा महीना है; इसे 'वस्त्र ग्रहण करने का महीना' (सिवरा-मास) भी कहा जाता है। पीईडी वर्षा ऋतु को (कट्टिका के अंतर्गत) पाँच महीनों का बताता है, लेकिन क्या यह सच है? भारत में तीनों ऋतुओं में चार चंद्र महीने होते हैं, और जब कुछ वर्षों में एक 'अतिरिक्त महीना' (अधिक-मास) जोड़ा जाता है ताकि ऋतुओं को सौर वर्ष के अनुरूप लाया जा सके, तो इसे ग्रीष्म ऋतु (गिम्हा) के अंत में, आषाढ़ (उस ऋतु का चौथा महीना) के बाद , पाँचवें महीने के रूप में जोड़ा जाता है। जिस दिन पूर्णिमा होती है (दिन की शुरुआत भोर से मानी जाती है) वह महीने का अंतिम दिन होता है।

————————————————————

————————————————————

[पृष्ठ 192]
पथप्रदर्शक
मेरे भीतर, मेरे बाहर की वस्तुएँ
अंततः अलगाव हो गया
और वे फिर कभी नहीं उठे।
अब सभी कष्ट समाप्त हो गए हैं;
यह मेरा अंतिम शरीर भी है;
आगे कोई भविष्य नहीं है,
या जन्म और मृत्यु का चक्कर > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
3. प्रवेश
805. इसमें प्रवेश से निपटने वाले धागे का प्रकार क्या है?
ऊपर , नीचे, हर तरह से मुक्त,
और यह बिल्कुल भी नहीं देखते हुए कि मैं यह हूँ
इस प्रकार मुक्त होकर उसने बाढ़ पार कर ली है।
पहले पार नहीं किया गया, अस्तित्व के नवीनीकरण न होने के कारण >
(§352; पे 24, 176)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
806. [144] आनंद, किसी भी गुणी व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मैं पश्चाताप कैसे न करूँ?” क्योंकि गुणी व्यक्ति का मूल विचार ही पश्चातापहीन होना है। पश्चाताप रहित व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मैं प्रसन्न कैसे रहूँ ?” क्योंकि पश्चाताप रहित व्यक्ति का मूल विचार प्रसन्न रहना है। प्रसन्न व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मैं प्रसन्न कैसे रहूँ?” क्योंकि प्रसन्न व्यक्ति का मूल विचार प्रसन्न रहना है। प्रसन्न व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मेरा शरीर शांत कैसे हो?” क्योंकि प्रसन्न व्यक्ति का मूल विचार शांत शरीर का होना है। शरीर से शांत व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मैं शारीरिक सुख कैसे महसूस करूँ?” क्योंकि शरीर से शांत व्यक्ति का मूल विचार शारीरिक सुख महसूस करना है। शारीरिक सुख महसूस करने वाले व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि “मैं एकाग्र कैसे होऊँ?” क्योंकि शारीरिक सुख महसूस करने वाले व्यक्ति का मूल विचार एकाग्र होना है । जो एकाग्रचित्त है, उसे यह चुनने की आवश्यकता नहीं है कि “मैं कैसे समझूँ कि चीजें कैसी हैं”, क्योंकि एकाग्रचित्त व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह समझे कि चीजें कैसी हैं। जो व्यक्ति समझ चुका है कि चीजें कैसी हैं, उसे यह चुनने की आवश्यकता नहीं है कि “मैं वैराग्य कैसे प्राप्त करूँ”, क्योंकि जो व्यक्ति समझ चुका है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह वैराग्य प्राप्त करे। वैराग्य प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यह चुनने की आवश्यकता नहीं है कि (6) मुझमें कामवासना कैसे दूर होगी, क्योंकि वैराग्य प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कामवासना दूर हो जाए ।जिस व्यक्ति में कामवासना दूर हो गई है, उसे यह नहीं चुनना है कि (6)

[पृष्ठ 193]

व्यवस्था का प्रतिरूप

मुझे यह चुनना नहीं पड़ता कि मैं कैसे मुक्त होऊँगा, क्योंकि जिस व्यक्ति में कामवासना समाप्त हो गई है, उसके लिए मुक्त होना आवश्यक है । किसी भी मुक्त व्यक्ति को यह नहीं चुनना पड़ता कि "मैं मुक्ति का ज्ञान और दर्शन कैसे प्राप्त करूँ?" क्योंकि मुक्त व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे मुक्ति का ज्ञान और दर्शन हो (तुलना करें ए. वी, 2एफ.; तुलना करें पीई 44, 182)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

807. [145] < जब सच्चे विचार जीवित व्यक्ति के समक्ष प्रकट होते हैं
जैसे गहन ध्यान से व्यक्ति दिव्य बन जाता है;
तब उसके सारे संदेह दूर हो जाते हैं क्योंकि वह समझ जाता है।
प्रत्येक विचार [उत्पन्न होने] का कारण कैसे होता है > (उद. 2; विन. i, 2)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

808. < जब सच्चे विचार जीवित प्राणी के समक्ष प्रकट होते हैं
जैसे गहन ध्यान से व्यक्ति दिव्य बन जाता है;
तब उसके सारे संदेह दूर हो जाते हैं क्योंकि वह समझ जाता है।
उत्पन्न होने की शर्तों की समाप्ति > (उद. 2; विन. i, 2)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

809. < तुम क्रोधित क्यों हो? कभी क्रोधित मत हो।
हे तिस्सा , क्रोध न करना ही तुम्हारा नियम होना चाहिए ।
दिव्य जीवन का जिया उद्देश्य मार्गदर्शन करना है।
क्रोध, अहंकार और तिरस्कार > (एस. ii, 282)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

810. < मैं नंदा, जो वनवासी है , को कब देख पाऊंगा?
चिथड़े - चिथड़ों से बने वस्त्र पहनने वाला
बिना पहचाने अपनी जीविका जुटाते हुए
और कामुक इच्छाओं के प्रति उदासीन ?> (एस. ii, 281)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

811. <' जो जलकर राख हो गया है, उसके साथ आनंद में लेटा रहता हूँ 1
जो चीज जलकर राख हो गई, उस पर शोक क्यों करते हैं?
एक विचार का विनाश
क्या आप घोषणा करते हैं , हे गौतम?
क्रोध पूरी तरह से शांत हो जाने पर व्यक्ति परमानंद की स्थिति में रहता है।
क्रोध शांत होने पर शोक नहीं होता।

811/1 अनेक वीडियो में से झटवा पढ़ना ।

[पृष्ठ 194]

पथप्रदर्शक

महान जन विनाश की प्रशंसा करते हैं
क्रोध, विष की जड़ के रूप में

मीठे स्वाद वाले अंकुर के साथ; उसके साथ
जला हुआ, दिव्य, कोई शोक नहीं करता' > (एस. i, 161; cf. एस. i, 41).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
812. <' एक बार उग जाने पर क्या मार डाला जाना चाहिए?
जन्म के समय किसे बाहर ले जाना चाहिए ?
दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को क्या त्यागना चाहिए?
और जब यह साकार हो जाता है, तो क्या होता है?
[146] 'गुस्से को जब उत्पन्न हो तो उसे मार देना चाहिए।
जब कामवासना उत्पन्न हो तो उसे नियंत्रित कर लेना चाहिए।
दृढ़ निश्चयी लोग अज्ञानता को अस्वीकार करते हैं।
और सत्य को साकार करना आनंद है ' > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
813. <' जैसे नीचे गिरते हुए भाले से छेदा गया हो,
मानो उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक सचेत भिक्षु आगे बढ़ता है
इंद्रिय सुखों के लिए वासना का त्याग करना।
' जैसे किसी गिरते हुए भाले से छेद दिया गया हो,'
मानो उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक सचेत भिक्षु आगे बढ़ता है
देह-दृष्टिकोण का त्याग करना' > (एस. आई, 13, 53; पे 48). 1
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
814. < 'सभी भंडारों का अंत समाप्ति है,
निर्मित संरचना अंततः गिर जाती है।
ऐसा कोई नहीं है जिसे मृत्यु का सामना न करना पड़े।
और किसी को भी शाश्वत जीवन प्राप्त नहीं है।
तो फिर, मृत्यु के इस भय को याद रखते हुए,
पुण्य कर्म करो क्योंकि पुण्य कर्म से ही आनंद मिलता है ।

812/1 उपपतितम का पाठ C, Ba , Bb और NettiA के साथ किया गया है , उपपतितम के स्थान पर । 813/1 SA (NettiA द्वारा पुनरुत्पादित) बताते हैं कि प्रथम कथन कहने वाले देवता की त्रुटि यह है कि वे यह सोचते हैं कि इंद्रिय-इच्छाओं को पूरी तरह से त्यागने के बजाय (ध्यान द्वारा या उच्चतर स्वर्ग में पुनर्जन्म द्वारा) केवल दमन द्वारा त्याग देना ही पर्याप्त है। इसलिए बुद्ध अपने उत्तर में बताते हैं कि गलत दृष्टिकोण का त्याग करना आवश्यक है। अगला प्रश्न और उत्तर (§814) भी इसी प्रकार के हैं।

[पृष्ठ 195]
व्यवस्था का प्रतिरूप
सभी भंडारों का अंत उनकी कमी से होता है ।
निर्मित संरचना अंततः गिर जाती है ।
वहां कोई नहीं है, मार तो पड़नी ही है।
और किसी को भी अनन्त जीवन प्राप्त नहीं है ।
तो फिर , मृत्यु के इस भय को याद रखते हुए,
सांसारिक मामलों को छोड़ो, शांति की ओर देखो ' > ( ).

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
815. < शांत लोग ही आनंद में लीन रहते हैं,
वे कभी दुखी नहीं होते, माविधा।
जिनके मन ध्यान में आनंदित होते हैं > ( ).
जो बुद्धिमान है, एकाग्रचित्त है,
ऊर्जावान और आत्म-नियंत्रित,
बाढ़ को पार करना बहुत मुश्किल है।
इंद्रिय-इच्छाओं की धारणाओं का त्याग करते हुए,
हर तरह के बंधन से परे,
बड़े चाव से और साथ ही थकावट महसूस करते हुए,
वह कभी गहरे पानी में नहीं डूबता > (cf. एस. i, 53)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
816. जब उसे सच्चे विचार पर विश्वास होता है
जिसके द्वारा सिद्ध पुरुष विलुप्त हो जाते हैं।
सुनने की इच्छा से समझ प्राप्त होती है।
वह मेहनती और विवेकशील है।
सही काम करता है, वफादार है, सतर्क है।
वह इसकी समृद्धि का अनुभव करेगा।
और सच्चाई उसे प्रसिद्धि दिलाएगी।
और दान देने से उसे दोस्त मिल जाते हैं।
और जब इस दुनिया से अगली दुनिया में
वह जाता है, वह शोक नहीं जानता > (एस.आई , 214एफ.).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
817. <' तुम्हारे लिए, जिन्होंने यह सब अस्वीकार कर दिया है
एक पूर्णतः मुक्त भिक्षु के रूप में,

814/1 सी.एफ. उदानवर्ग I. 22 (चक्रवर्ती संस्करण, पृष्ठ 4):
सर्वि क्षयन्त निश्चयः पतनन्तः समुच्चरायः
समयोग विप्रयोगान्त मरणन्तं च जीवितम्
(लैमोटे, हिस्ट, डु बौद्धिज़्म इंडियन , पृष्ठ 548, एन. 21 उद्धृत), और महा-वास्तु III, पृष्ठ देखें। 152, 183; दिव्यावदान , पृ. 27, 100, 486. सी.एफ. भी डीएचपी. 148: मरणन्तं हि जीवितम्।
18

[पृष्ठ 196]
पथप्रदर्शक
यह अनुचित है कि आप
दूसरों को निर्देश देना ।
'सक्का, चाहे कुछ भी हो जाए
सहभागिता संभव हो सकती है,
उसके मन को इससे प्रभावित होने देना
यह किसी समझदार व्यक्ति को शोभा नहीं देता।

लेकिन यदि, स्पष्ट और आत्मविश्वासी मन से,
उसे किसी और को निर्देश देना चाहिए।
वह इससे किसी भी तरह से बंधा हुआ नहीं है ।
किसी भी भावना के उभार के साथ > (एस.आई , 206).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
818. वासना और घृणा का स्रोत क्या है?
आनंद, ऊब, भय: ये सब किससे उत्पन्न होते हैं?
और मन में आने वाले विचारों का सांचा कहाँ है?
क्या आपको वे लड़के पसंद हैं जो एक कौवे को [रस्सी से] लटकाते हैं?
वासना और घृणा का स्रोत यही एक है ।
आनंद, ऊब, भय: इन्हीं से वे खलिहान बनते हैं।
और यही मन में आने वाले विचारों का आधार है।
जैसे लड़के कौवे को रस्सी से लटकाते थे।
वे जन्म लेते हैं और [भावुक] स्नेह से अस्तित्व प्राप्त करते हैं।
जैसे बरगद के पेड़ के ठूंठ से अंकुर निकलते हैं;
और कामुक इच्छाओं के बीच दूर-दूर तक फैली हुई हैं
जैसे लकड़ी का एक तंबू मालुवा लता से ढका हो।
जब पुरुष इसे और इसके स्रोत को समझ जाते हैं
उन्होंने इसे रख दिया। और अब सुनो, हे आत्मा:
वे ही कठिन बाढ़ को पार करते हैं।
अस्तित्व के नवीनीकरण न होने के कारण पहले पार नहीं किया गया > (एसएन. 270-3)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
819. [148] <' हे भगवान बुद्ध, यह करना कठिन है; हे भगवान बुद्ध, यह बहुत
करने में मुश्किल !'
फिर भी, जो काम दीक्षा प्राप्त करने वालों के लिए कठिन होता है , वह वे कर लेते हैं।
भगवान बुद्ध ने कहा, 'कामदा'
'सद्गुणों में एकाग्रता के माध्यम से, स्वयं में स्थिर,

817/1 सी.एम. iii, 221 पर '3 सतिपथाना' देखें, विद्यार्थियों के प्रति इस समता के लिए।
818/1 'यह' का अर्थ है 'यह व्यक्तित्व' (नेटिआ 200)।
819/1 प्रत्येक मामले में 'वापी' पढ़ें और ईवा आपी में परिवर्तित करें। ' कामदा ' नाम का अर्थ है 'इंद्रिय-इच्छा में लिप्त'।

[पृष्ठ 197]
व्यवस्था का प्रतिरूप
सामग्री बेघर व्यक्ति को आनंद प्रदान करती है।
'हे भगवान बुद्ध , संतोष प्राप्त करना कठिन है!'
फिर भी जो चीजें मुश्किल से मिलती हैं, उन्हें भी वे पा लेते हैं ।
कामदा' भगवान बुद्ध ने कहा ,
'जिनका शांतिपूर्ण संज्ञान प्रसन्न करता है , जिनके मन
इसे दिन-रात कायम रखना आनंददायक है।
'हे भगवान बुद्ध , उनका ध्यान केंद्रित करना कठिन है! '

वे उन चीजों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिन पर ध्यान केंद्रित करना कठिन होता है ।
कामदा' भगवान बुद्ध ने कहा ,
' जिनकी इंद्रियां शांत हों, उन्हें प्रसन्नता होती है ,'
मृत्यु ने जो जाल बनाया है उसे किसने काटा?
और इस प्रकार महान बनकर जाओ , कामादा।'
'हे भगवान बुद्ध , यह ऊबड़-खाबड़ रास्ता बहुत कठिन है!'
फिर भी, कामाडा , प्रतिष्ठित लोग वहीं जाते हैं जहाँ उन्हें जाना होता है।
यह कठिन , असमान है। जबकि नीच लोग
ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर सिर के बल गिर पड़ना,
उन लोगों के लिए जिन्हें उच्च पद प्राप्त है, वही मार्ग और भी सुगम है ।
चूँकि वे विषमता में भी सम हैं > (एस.आई, 48)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
820. < हे उपचारक जेतवन, जहाँ अक्सर लोग आते हैं
द्रष्टाओं के समुदाय द्वारा ,
जहां सच्चे विचार का अपना राजा रहता है ,
मेरी सारी खुशियों का स्रोत।
कर्मों द्वारा , विज्ञान द्वारा, सच्चे विचार द्वारा ,
सद्गुणवश , परम उत्कृष्ट जीवन ,
इन्हीं के द्वारा मनुष्य शुद्ध होते हैं।
और यह वंश या धन-दौलत के आधार पर नहीं है।
इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति , जब वह देखता है
अपने भले के लिए उसे जांच करनी चाहिए
तर्कसंगत तरीके से सच्चा विचार ,
ताकि वहां उसका शुद्धिकरण हो सके।
सारिपुत्त सबसे पहले
सद्गुण , समझ और शांति में:
अधिक से अधिक एक भिक्षु जो चला गया है
अक्रॉस केवल उसके बराबर हो सकता है > (एम. iii, 262; $. i, 33).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।
821. < किसी व्यक्ति को अतीत का पता नहीं लगाना चाहिए
या फिर भविष्य को लेकर चिंता करें:
अतीत तो बीत चुका है... लेकिन जो पीछे छूट गए हैं,

[पृष्ठ 198]
पथप्रदर्शक
भविष्य... लेकिन अभी तक अछूता।
[149] बल्कि, उसे अंतर्दृष्टि से देखने दो
वर्तमान में उत्पन्न प्रत्येक विचार:
यह जानना और इस बात का यकीन होना,
अजेय, अविचल।
आज ही प्रयास करना होगा:

कल मृत्यु आ सकती है, कौन जाने?
मृत्यु के साथ कोई समझौता नहीं
इससे उसे और उसके गिरोह को दूर रखा जा सकता है।
लेकिन जो इस प्रकार उत्साहपूर्वक प्रतीक्षा करता है,
दिन-रात, निरंतर,
शांत साधु ने कहा है, 'यह वही है।'
वह 'एक सौभाग्यशाली लगाव रखता है ' > (एम. iii, 187).

[पृष्ठ 199]

व्यवस्था का प्रतिरूप

822. भिक्षुओं, ये चार प्रमाणित हैं। वे चार क्या हैं? (1) कुछ विचार दृष्टि और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं । (2) कुछ विचार ध्यान और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं। (3) कुछ विचार शरीर और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं। (4) कुछ विचार समझ के द्वारा अनुभव किए जा सकते हैं और समझ द्वारा प्रमाणित भी होते हैं। (7) कौन से विचार दृष्टि और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं? दिव्य दृष्टि , जो शुद्ध और मनुष्य से परे है , दृष्टि और समझ द्वारा प्रमाणित होती है। (2) कौन से विचार ध्यान और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं? पूर्व जन्म का स्मरण ध्यान और समझ द्वारा प्रमाणित होता है। (3) कौन से विचार शरीर और समझ द्वारा प्रमाणित होते हैं? असाधारण सफलता और निर्वाण की शक्ति शरीर और समझ द्वारा प्रमाणित होती है। (4) कौन से विचार समझ के द्वारा अनुभव किए जा सकते हैं और समझ द्वारा प्रमाणित भी होते हैं? दोषों की समाप्ति का ज्ञान समझ के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है और समझ के माध्यम से सत्यापित किया जा सकता है > (cf. ए. ii, 182f.)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो प्रवेश से संबंधित है।

4. कुशल

823. इसमें, सिद्ध पुरुष से संबंधित धागे का प्रकार क्या है?
जिसकी चेतना चट्टान की तरह स्थिर है
और इसे कभी भी भयभीत नहीं किया जा सकता ।
कामवासना और कामवासना को उत्तेजित करने वाली चीजों से मुक्त है
किसी भी परेशानी से अविचलित;
जिसकी चेतना इस प्रकार अस्तित्व में बनी रहती है ,
तो फिर उसे कष्ट कैसे सहना पड़ेगा?
(उद. 41; पे 24-5, 190).

[150] यह उस प्रकार का धागा है जो कुशल व्यक्ति से संबंधित है।

824. पूज्य सारिपुत्त की दसवीं (?) गद्य व्याख्या भी उद्धृत की जा सकती है [एक भिक्षु के इस आरोप के उत्तर में कि उनका अपमान करने के बाद वे बिना क्षमा मांगे भटकने जा रहे थे] (ए. iv, 373-8; पे 25, 195)। 1

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।

[पृष्ठ 200]

पथप्रदर्शक

825. जब कोई धर्मगुरु बुराई के विचारों को अस्वीकार करता है,
'हा-हम' से परहेज करता है, 1 बेदाग, आत्म-नियंत्रित है,
और, विज्ञान में परिपूर्ण होकर , दिव्य जीवन व्यतीत करता है।
तब शायद वह अधिकार के तौर पर ' दिव्य' शब्द का प्रयोग कर सकता है ।
दुनिया में किसी का पक्षपात न करने वाले व्यक्ति के रूप में >

(उद. 3; विन. i, 3).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
826. < हे प्रबुद्ध जन, बंधनों से मुक्त,
बुराई के सभी विचारों को छोड़कर
हमेशा सचेत होकर चलना:
वे संसार में दिव्य हैं > (उद. 4).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
827. < जहाँ न तो पानी है और न ही धरती
न आग को, न हवा को कोई सहारा मिलता है।
वहाँ सफेद तारे कभी नहीं चमकते।
वहां सूर्य का गोला प्रदर्शित नहीं होता है।
वहां कभी पूर्णिमा की रोशनी नहीं पड़ती।
वहां अंधेरा नहीं पाया जा सकता।
जब उसे स्वयं इस बात का पता चल जाएगा,
शांति से दिव्य निर्मित वह स्थिर आत्मा,
तब वह निराकार और निराकार होता है।
और दर्द और सुख से भी मुक्त > (उद. 9).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
828. < जब कोई दिव्य आत्मा दूसरे छोर पर पहुँच जाती है
अपने सभी विचारों के संबंध में,
तब [यह निश्चित है कि] उसने उसे पीछे छोड़ दिया है।
यह जिन्न 'पक्कुला!' चिल्लाता है > (उद. 5).
यह उस प्रकार का 'थ्रेड' है जो 'एडेप्ट' से संबंधित है।
829. < उसे उसके आने में कोई खुशी नहीं थी,
और उसके जाने पर मुझे कोई दुख नहीं हुआ।
संगमजी आसक्ति (संग) से मुक्त हो गए हैं।
एक होकर , मैं कहता हूँ, दिव्य बनो > (उद. 6).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।

825/1 'हुहुंकाजातिको ब्रह्मनो? पर टिप्पणी की गई है 'जो गर्व से "हम, हम" कहता है', और ' निहुहुनको ' का अर्थ है उसके बिना।

[पृष्ठ 201]
व्यवस्था का प्रतिरूप
830. [151] < शुद्धता जल से नहीं आती;
बहुत से लोग उसमें नहाते हैं।
जिनमें सत्य और सच्चा विचार निहित हैं,
वह पवित्र है, वह दिव्य है > (यू डी. 6)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
831. < जब सच्चे विचार जीवित प्राणी के समक्ष प्रकट होते हैं
जैसे कोई गहन ध्यान से दिव्य बन जाता है,
फिर जहाँ वह खड़ा होता है, वहीं से मारा की [संलग्न] सेनाओं को तितर-बितर कर देता है।

जैसे सूर्य का गोला आकाश को प्रकाशित करता है > (उद. 2; विन. i, 2)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
832. < देखो वह कैसे अपनी सभी क्षमताओं को शांत करके आगे बढ़ता है।
उसके पास त्रिविध विज्ञान है, कुछ भी शेष नहीं है।
उसके परित्याग करने के कारण, सभी बंधन टूट गए।
वह बिना किसी संपत्ति के जाता है, चिथड़े-चिट्टे कपड़े पहनता है।
और अनेक शक्तिशाली देवता निकट आते हैं
उस [महान] शुद्ध नस्ल के लिए, जिसे दिव्य रूप से बनाया गया था, 1
किसने वंशानुगत सत्ता को अस्वीकार किया, और उन्होंने
यहां उन्हें पूरे विश्वास के साथ श्रद्धांजलि अर्पित करें :
हे श्रेष्ठ पुरुष, मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ, आपको सम्मान मिले ।
हम किसके ध्यान क्षेत्र को नहीं जानते > ( ).
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
833. < वास्तव में, भिक्षुओं, ये [दो] साथी [यहाँ]
बहुत लंबे समय से साथ-साथ मिलते रहे हैं, 1
और उनकी आस्था का सच्चा लक्ष्य पूरा हो जाता है
उस आदर्श में जिसे प्रबुद्ध व्यक्ति ने घोषित किया था।
कप्पिना ने उन्हें अच्छी तरह से रास्ता दिखाया।
महानजनों द्वारा घोषित आदर्श में,

832/1 ' ब्रह्म-विमानम् ' में ' विमान ' शब्द सामान्य अर्थों में से किसी में भी प्रयुक्त नहीं प्रतीत होता है। नेत्तिया इसे अनदेखा करता है।
832/2 ' एन-इधा ' संभवतः नाम इधा के लिए है। जी निधम पढ़ता है ।
832/3 G और Bb के साथ पढ़ना yassa te ndbhijanama y अभिव्यक्ति yassa te एक दोहरा सर्वनाम है, cf. so' ham , tassa me , आदि।
833/1 ' समेटिका (विशेषण)—मिलना (एक साथ जाना)': पीडी केवल एक संदर्भ देता है, अर्थात् 'एसएन. 285' एस. ii, 285 (= यह संदर्भ) के लिए त्रुटि में , और कोई कारण बताए बिना समाहिता को प्रतिस्थापित करता है ; लेकिन सभी ग्रंथ और नेट्टिया समेटिका की पुष्टि करते हैं , जो संदर्भ के अनुकूल है और अगली पंक्ति में समेटी ('मिलता है') के साथ शब्द-क्रीड़ा को अर्थपूर्ण बनाता है ।

[पृष्ठ 202]
पथप्रदर्शक
और अब आखिरी बार वे एक शव को ले जा रहे हैं,
अपने घोड़े के साथ मारा पर विजय प्राप्त करने के बाद > (एस. ii, 285)।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
834. विलुप्ति सभी बंधनों से मुक्ति दिलाती है,
किसी भी हालत में उस तक नहीं पहुंचा जा सकता।
या तो कमजोरी के कारण
या फिर अपर्याप्त धैर्य के कारण।
[152] और इस युवा भिक्षु ने [यहाँ अब प्राप्ति कर ली है]
वह अवस्था जो मानव जाति में सर्वोपरि है
चूंकि अब वह अंतिम बार किसी शरीर को धारण कर रहा है,
अपने घोड़े के साथ मारा पर विजय प्राप्त करने के बाद > (एस. ii, 278)।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
835. < बदसूरत मोगराजा,
मोटे वस्त्र पहने हुए, कलश का ध्यान रखते हुए,
कलंक मिट गए, बंधन मुक्त हो गए,
कार्य पूर्ण हुआ, कलंक मुक्त।
ट्रिपल साइंस, जादुई शक्तियों के साथ,
लोगों के दिलों में पैठ बनाने की कुशलता;
और अब आखिरी बार वह एक शव को अपने कंधों पर उठाएगा,
अपने वाहन से मारा पर विजय प्राप्त करने के बाद > ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।

836. <' भिक्षुओं, पूर्णतः सिद्ध, पूर्ण रूप से प्रबुद्ध, जो वैराग्य, कामवासना के नाश, निरासना और अजन्मा होने के कारण रूप के मामले में मुक्त हो जाता है, उसे "पूर्णतः प्रबुद्ध " कहा जाता है, [और] जो भिक्षु समझ के माध्यम से मुक्त हो जाता है, 1 जो वैराग्य, कामवासना के नाश, निरासना और अजन्मा होने के कारण रूप के मामले में मुक्त हो जाता है, उसे "समझ के माध्यम से मुक्त " कहा जाता है... [इसी प्रकार के अनुच्छेद] भावना... बोध ... संकल्प ... चेतना ... इसमें, पूर्णतः सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध भिक्षु और समझ के माध्यम से मुक्त भिक्षु के बीच क्या अंतर है, क्या भिन्नता है, क्या भिन्नता है? V—'आदरणीय महोदय, हमारे विचार भगवान बुद्ध में निहित हैं , [भगवान बुद्ध उनके मार्गदर्शक और उनका घर हैं। यह अच्छी बात है कि इन शब्दों का अर्थ भगवान बुद्ध को समझ में आया । भगवान बुद्ध से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे। - 'तो सुनो, भिक्षुओं, और ध्यान दो।'

836/1 देखा गया। 946/2।

[पृष्ठ 203]
व्यवस्था का प्रतिरूप

मेरी कही हुई बातों को ध्यानपूर्वक सुनें।'—'पुनः आदरणीय महोदय, ' उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:— ' भिक्षुओं, पूर्णतः सिद्ध, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भिक्षु अजन्मे मार्ग का प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग का उद्घोषक, मार्ग - ज्ञाता, मार्ग-द्रष्टा और मार्ग में निपुण होता है । परन्तु जब उसके श्रोता मार्ग का अनुसरण करते हुए मार्ग से ओतप्रोत हो जाते हैं, तो वे उसका अनुसरण करते हैं। यही पूर्णतः सिद्ध, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भिक्षु और बोध द्वारा मुक्त भिक्षु के बीच भेद, अंतर और भिन्नता है। (श्लोक 3, 65f.)
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है।

5. भ्रष्टाचार और नैतिकता

837. इसमें, भ्रष्टाचार और नैतिकता से संबंधित विषय किस प्रकार का है?
[153] < बारिश से ढकी हुई चीज़ें भीग जाती हैं,
लेकिन जो खुला होता है, वह उसे गीला नहीं करता।
तो जो ढका हुआ है उसे खोल दो,
वह बारिश तुम्हें कभी भीगने न दे > (उद. 56; पे 25, 202)।

'बारिश से ढका हुआ भीग जाता है' भ्रष्टाचार है। 'लेकिन जो खुला है, बारिश उसे नहीं भिगोती' नैतिकता है। 'इसलिए ढके हुए को खोल दो ताकि बारिश तुम्हें कभी न भिगोए' भ्रष्टाचार और नैतिकता दोनों का प्रतीक है। यह चर्चा भ्रष्टाचार और नैतिकता दोनों से संबंधित है।

838. < हे महाराज, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? गहरे सर्वोच्च मूल्य वाले अंधकारमय, उज्ज्वल सर्वोच्च मूल्य वाले अंधकारमय, गहरे सर्वोच्च मूल्य वाले उज्ज्वल, उज्ज्वल सर्वोच्च मूल्य वाले उज्ज्वल > (ए. 2, 85; एस. 1, 93; पे 25, 207)।

यहां दो प्रकार के व्यक्ति हैं: एक 'अंधकारमय सर्वोच्च मूल्यों वाला उज्ज्वल व्यक्ति' और दूसरा 'अंधकारमय सर्वोच्च मूल्यों वाला अंधकारमय व्यक्ति', जो भ्रष्टाचार से निपटते हैं, जबकि दो प्रकार के व्यक्ति हैं: एक 'अंधकारमय सर्वोच्च मूल्यों वाला उज्ज्वल व्यक्ति'

और दूसरा 'अंधकारमय सर्वोच्च मूल्यों वाला उज्ज्वल व्यक्ति', जो नैतिकता से निपटते हैं। यह भ्रष्टाचार और नैतिकता से संबंधित विषयवस्तु का प्रकार है।

[पृष्ठ 204]
पथप्रदर्शक
6. भ्रष्टाचार और घुसपैठ
839. इसमें, भ्रष्टाचार और घुसपैठ से निपटने वाले थ्रेड का प्रकार क्या है?
दृढ़ निश्चयी व्यक्ति इसे कभी मजबूत बंधन नहीं कहेगा।
लोहे से बना हुआ या लकड़ी या चमड़े की पट्टियों से युक्त।
लेकिन गहनों [और रत्नों] की लालसा से भरा लालच
और पत्नी और बच्चों के लिए भी चिंता ।
(धारा 194-5; पे 25, 214)
भ्रष्टाचार है, जबकि
दृढ़ निश्चयी लोग इन्हीं को मजबूत बंधन कहते हैं ।
जो मनुष्य को उदास कर देता है , सूक्ष्म होता है, जिससे छुटकारा पाना कठिन होता है;
लेकिन वे इसे भी तोड़ देते हैं और [स्वतंत्रता में] भटकते हैं।
और सभी कामुक इच्छाओं का त्याग कर दिया गया >
(धारा 194-5; पे 25, 214)
प्रवेश है।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार और घुसपैठ से संबंधित मुद्दों से निपटता है।
840. < जो कुछ भी चुना जाता है, जो कुछ भी कहा जाता है, और जो कुछ भी प्रवृत्तियों को आधार बनने दिया जाता है, वही चेतना का स्थिर बिंदु बन जाता है। जब कोई वस्तु होती है, तभी चेतना का आधार होता है। जब स्थिर बिंदु वाली चेतना [154] उस पर विकसित हो जाती है, तब भविष्य में अस्तित्व का नवीनीकरण होता है, तब जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा का भविष्य में वास्तविक अस्तित्व होता है। इसी प्रकार दुख की इस पूरी श्रेणी का उद्‌गम होता है। यदि कोई चुनाव नहीं करता और यदि कोई कहा नहीं जाता, बल्कि प्रवृत्तियों को आधार बनने दिया जाता है, तो वही चेतना का स्थिर बिंदु बन जाता है। जब कोई वस्तु होती है, तभी चेतना का आधार होता है।

840/1 यहाँ 'पकप्पति ' का अर्थ है 'दावा करना' या किसी एक पक्ष का समर्थन करना (द्वंद्वात्मकता के; देखें अनुरुद्ध और पतिविरवद्ध एम. i, 65 पर ; शब्द 'विकप्पना' द्वंद्वात्मकता के या तो/या का प्रतिनिधित्व करता है जो एक पक्ष लेने के लिए आमंत्रित करता है। यहाँ 'चुनता है', 'दावा करता है' और 'प्रवृत्तियों को अंतर्निहित होने देता है' के रूप में प्रस्तुत तीन शब्द ' सेतेति', 'पकप्पति ' और ' अनुसेति ' को (मनोवैज्ञानिक रूप से) इस प्रकार समझा जा सकता है: वह एक प्रारंभिक चुनाव करता है (एक धारणा के आधार पर), वह अपने व्यवहार में उस चुनाव को या तो पुष्टि या खंडन (मान्यता प्राप्त विचार की स्वीकृति या अस्वीकृति) द्वारा प्रमाणित करता है, वह प्रारंभिक चुनाव और उसकी धारणा को जागरूकता की सीमा से नीचे जाने देता है जहाँ से यह उसके व्यवहार को प्रभावित करता रहता है, बिना यह समझे कि क्यों (और उसके बाद के चुनाव, दावे और अंतर्निहित प्रवृत्तियों को प्रभावित करता है)।

[पृष्ठ 205]
व्यवस्था का प्रतिरूप
जब चेतना एक निश्चित बिंदु के साथ विकसित हो जाती है , तो भविष्य में अस्तित्व का नवीनीकरण होता है। जब भविष्य में अस्तित्व का नवीनीकरण होता है , तब जन्म , वृद्धावस्था और मृत्यु , दुःख और विलाप , पीड़ा , शोक और निराशा का भविष्य में वास्तविक अस्तित्व होता है । इसी प्रकार इस संपूर्ण प्रकार के दुःख की उत्पत्ति होती है (श्लोक 2, 65; पतरस 25, 218)। यही क्षय है।

लेकिन जैसे ही कोई चुनाव करना बंद कर देता है, कोई दावा करना बंद कर देता है और कोई प्रवृत्तियों को हावी नहीं होने देता , तब चेतना के लिए कोई स्थिर बिंदु नहीं रह जाता। जब कोई वस्तु नहीं होती, तभी चेतना का कोई आधार नहीं होता। जब चेतना , जिसका कोई आधार नहीं होता , आगे विकसित नहीं होती , तब भविष्य में अस्तित्व का कोई नवीनीकरण नहीं होता। जब भविष्य में अस्तित्व का कोई नवीनीकरण नहीं होता , तब जन्म , वृद्धावस्था और मृत्यु , दुःख और विलाप , पीड़ा, शोक और निराशा , भविष्य में समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार दुख की इस पूरी श्रेणी का अंत होता है । (धारा 2, 65f.; पे 218)

यह प्रवेश है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

और प्रवेश से निपटना।

7. भ्रष्टाचार और निपुण

841. इसमें, भ्रष्टाचार और सिद्ध पुरुष से निपटने वाले धागे का प्रकार क्या है?

<'भिक्षुओं, अशिक्षित साधारण मनुष्य कहता है " समुद्र , समुद्र", फिर भी जल का वह विशाल भंडार , जल का वह विशाल विस्तार श्रेष्ठ भिक्षुओं के मार्गदर्शन (अनुशासन) में समुद्र नहीं है। आँख ही मनुष्य का समुद्र है , जिसकी लहरें रूप हैं ' > (श्लोक 4, 157)।

यह भ्रष्टाचार है।

< ' जो कोई भी रूपों की उस लहर पर विजय प्राप्त करता है , उसके बारे में कहा जाता है: उसने आँख के सागर को पार कर लिया है , उसकी लहरों , उसके भंवरों , उसके राक्षसों [155] और उसके दानवों के साथ; वह पार कर गया है , दूसरे किनारे पर चला गया है , और वह दृढ़ भूमि पर खड़ा है , जैसे कोई दिव्य' > (एस. iv, 157)।

यह सिद्ध पुरुष है।

<' कान मनुष्य का सागर है ... नाक... जीभ... शरीर... मन मनुष्य का सागर है , जिसकी लहरें विचार हैं' > (एस. iv, 157)।

यह भ्रष्टाचार है।

840/2 देखें धारा 304 और 306.

[पृष्ठ 206]

पथप्रदर्शक

<' जो कोई विचारों की उस लहर पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसके बारे में कहा जाता है: उसने मन के सागर को , उसकी लहरों, उसके भंवरों , उसके राक्षसों और उसके दानवों के साथ पार कर लिया है; वह दूसरे किनारे पर चला गया है , और वह एक दिव्य व्यक्ति के रूप में दृढ़ भूमि पर खड़ा है' > (एस. iv, 157)।

यह सिद्ध पुरुष है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। यह कहने के बाद , गुरु ने आगे कहा:

'जिसने अपने सभी राक्षसों , दानवों, लहरों के साथ समुद्र को पार किया ,'

उसके पार जाना बेहद कठिन है, उसके बारे में यही कहा जा सकता है:

उन्होंने विज्ञान का अंत खोज लिया; उन्होंने दिव्य जीवन जिया;

उसने दुनिया का अंत पा लिया है , और वह दूसरे छोर की ओर चला गया है ।

(एस. iv, 157).

यह सिद्ध पुरुष है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

और उस कुशल व्यक्ति से निपटना।

842. भिक्षुओं , संसार में प्राणियों को भटकाने और उन्हें कष्ट पहुँचाने के लिए छह प्रकार के प्रलोभन हैं। वे छह क्या हैं? कुछ रूप ऐसे हैं जो आँखों से दिखाई देते हैं , जिनकी कामना की जाती है , जो आकर्षक और मनभावन होते हैं , जो इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से जुड़े होते हैं और कामवासना उत्पन्न करते हैं। यदि कोई भिक्षु इन रूपों का आनंद लेता है, इनकी पुष्टि करता है और दृढ़ता से इनसे जुड़ा रहता है , तो उसके बारे में कहा जाता है: उसने मार का प्रलोभन निगल लिया है , उसने स्वयं को भटकने दिया है, वह विनाश की ओर बढ़ रहा है , वह

ऐसा व्यक्ति है जिसके साथ राक्षस अपनी इच्छा अनुसार कर सकता है। कुछ ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनाई देती हैं ... कुछ गंध हैं जो नाक से सुनाई देती हैं... कुछ स्वाद हैं जो जीभ से महसूस किए जा सकते हैं... कुछ स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं जो शरीर से महसूस की जा सकती हैं... मन के द्वारा बोधगम्य कुछ विचार ऐसे होते हैं जो वांछित, वांछनीय, सुखद और मनभावन होते हैं, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से जुड़े होते हैं और कामवासना उत्पन्न करते हैं। यदि कोई भिक्षु [156] उनका आनंद लेता है, उन्हें स्वीकार करता है और दृढ़ता से उनसे जुड़ा रहता है, तो उसके बारे में कहा जाता है: उसने मारा का चारा निगल लिया है , उसने स्वयं को गुमराह होने दिया है, वह विनाश की ओर बढ़ रहा है , वह ऐसा व्यक्ति है जिसके साथ शैतान अपनी इच्छा अनुसार कुछ भी कर सकता है (श्लोक 4, 159)।

यह भ्रष्टाचार है।

फिर , कुछ ऐसे रूप हैं जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है, जो वांछित , वांछनीय , सुखद और मनभावन होते हैं , जो इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से जुड़े होते हैं और कामवासना उत्पन्न करते हैं। यदि कोई भिक्षु उनका आनंद नहीं लेता, उनकी पुष्टि नहीं करता या उनसे दृढ़तापूर्वक जुड़ा नहीं रहता , तो उसके बारे में कहा जाता है: उसने उन्हें आत्मसात नहीं किया है।

842/1 बायदबधया यहाँ बेहतर पाठ है।

[पृष्ठ 207]

व्यवस्था का प्रतिरूप

मारा का चारा , उसने चारा नष्ट कर दिया है , उसने चारा पूरी तरह नष्ट कर दिया है , उसने खुद को गुमराह नहीं होने दिया है , वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके साथ शैतान अपनी मनमानी कर सके। फिर , कान से पहचानी जाने वाली ध्वनियाँ हैं ... नाक से पहचानी जाने वाली गंध हैं ... जीभ से पहचाने जाने वाले स्वाद हैं ... शरीर से पहचानी जाने वाली स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं... मन से पहचानी जाने वाली ऐसी धारणाएँ हैं जो वांछित , वांछित , सुखद और पसंद करने योग्य हैं , जो इंद्रिय सुख से जुड़ी हैं और वासना उत्पन्न करती हैं। यदि कोई भिक्षु उनका आनंद नहीं लेता, उनकी पुष्टि नहीं करता, या दृढ़ता से उनका पालन नहीं करता, तो उसके बारे में कहा जाता है: उसने मारा का चारा नहीं निगला, उसने चारा नष्ट कर दिया , उसने चारा पूरी तरह नष्ट कर दिया, उसने खुद को गुमराह नहीं होने दिया, वह विनाश की ओर नहीं बढ़ रहा है, वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके साथ दुष्ट अपनी इच्छा अनुसार कर सके (श्लोक 4, 159)।

यह सिद्ध पुरुष है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।

8. भ्रष्टाचार, घुसपैठ और निपुण

843. इसमें, भ्रष्टाचार, घुसपैठ और निपुणता से निपटने वाले धागे का प्रकार क्या है?

यह दुनिया 1 पीड़ा के लिए पैदा हुई है, और [दर्दनाक] संपर्क के अधीन है;
यह एक बीमारी है जिसे यह स्वयं कहता है;
चाहे वह इसे किसी भी रूप में समझे, 3
यह उससे बिल्कुल अलग है।
अपने अस्तित्व को [अपनी कल्पना से अलग] बनाए रखते हुए, 4
दुनिया अपने अस्तित्व से चिपटी रहती है, केवल अस्तित्व में रहने की ही आशा से भरी रहती है।
लेकिन जिस चीज से इसे आनंद मिलता है, उससे भय उत्पन्न होता है।
और यह जिस बात से डरता है वह है दर्द > (उद. 32-3; पतरस 26, 223)।

यह भ्रष्टाचार है।

843/1 यहाँ दिए गए पाठ पीटीएस उदाना पाठ में दिए गए पाठों से बेहतर प्रतीत होते हैं। संपूर्ण अंश दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका उचित अनुवाद करना अत्यंत कठिन है।

843/2 रोडम (अट्टानो के साथ), यदि सही माना जाए, तो यह पीपीआर. नॉमिन. मैस्क. सिंग होगा, जो लोको ('रोते हुए यह स्वयं बोलता है') से मेल खाता है। दूसरा विकल्प रोगम ('बीमारी') है, जो एक्यूस. मैस्क. सिंग होगा, जो वदति (अट्टाटो के साथ) द्वारा नियंत्रित होता

है, और अनुवाद में यही लिया गया है। पे पाठ (पृष्ठ 224) स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इसके लेखक के पास केवल रोगम पाठ था ; उदा. ए. इससे सहमत है।

843/3 मन्नति ('कल्पना करना (कल्पना)') के अर्थ के लिए एम. सुत्त 1 और एस. iii, 128-32 देखें (मन ('कल्पना') से इसके संबंध के लिए अस्मि-मन ('कल्पना "मैं हूँ"') के रूप में)।

843/4 पे (पृष्ठ 224) कहता है, हालांकि, अन्नथाभावी (इसलिए वहां 'मन्नथा भवर्ती' के लिए पढ़ें) का अर्थ है 'अस्तित्व में रहते हुए, यह भविष्य के अस्तित्व की आकांक्षा रखता है'।

[पृष्ठ 208]

पथप्रदर्शक

अब यह दिव्य जीवन अस्तित्व को त्यागने के लिए जिया जाता है (वही)।

यह प्रवेश है।

[157] < भिक्षुओं और धर्मगुरुओं ने जिस भी प्रकार के अस्तित्व के माध्यम से अस्तित्व से मुक्ति की घोषणा की है, मैं कहता हूँ कि उनमें से कोई भी अस्तित्व से मुक्त नहीं है । और भिक्षुओं या धर्मगुरुओं ने जिस भी प्रकार के अस्तित्वहीनता के माध्यम से अस्तित्व से मुक्ति की घोषणा की है, मैं कहता हूँ कि उनमें से कोई भी अस्तित्व से मुक्ति नहीं पाता। यह पीड़ा अस्तित्व के मूल तत्वों पर निर्भर रहने (उन पर जोर देने) से ही वास्तविक रूप से अस्तित्व में आती है: > (वही)।

यह भ्रष्टाचार है।

सभी प्रकार की धारणाओं के समाप्त होने के साथ, पीड़ा का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं रह जाता है (वही)।

यह प्रवेश है।

इस विशाल संसार को अज्ञानता के अधीन देखिए ।
जो अस्तित्व में आनंदित होता है, लेकिन कभी भी अस्तित्व से मुक्त नहीं होता:
फिर भी, चाहे किसी भी प्रकार का प्राणी हो, किसी भी तरह से, कहीं भी,
सभी क्षणभंगुर हैं, पीड़ा से ग्रस्त हैं , परिवर्तन के विचार से अविभाज्य हैं (वही)।

यह भ्रष्टाचार है।

इसलिए जब कोई व्यक्ति इस प्रकार देखता है
इसे सही ढंग से समझने के साथ,
उसके अस्तित्व की लालसा का त्याग हो गया है ।
और अब वह अस्तित्वहीनता का आनंद लेने के लिए उत्सुक नहीं रहता।
यह सभी प्रकार की लालसाओं की पूर्ण समाप्ति है।
वह शेषहीन लुप्त होना, समाप्ति, वह विलुप्ति है (वही)।

यह प्रवेश है।

वह भिक्षु जो अनुमान न लगाने के कारण तृप्त हो गया ,
अब उसके अस्तित्व का कोई नवीनीकरण नहीं होता।
मृत्यु का परिक्रमण हो गया है*, युद्ध जीत लिया गया है।
इस प्रकार का एक अस्तित्व सभी प्रकार के अस्तित्व से परे है (वही)।

यह सिद्ध पुरुष है।

843/5 विभाव (शाब्दिक अर्थ शायद 'अति-अस्तित्व') के दो विपरीत अर्थ हैं: 'उत्कृष्ट अस्तित्व' और 'अस्तित्वहीनता'। उपसर्ग vi- (= 'बाहर') के वर्धक और निषेधात्मक दोनों अर्थ हैं (अंग्रेजी के 'पुट आउट द फ्लैग्स' और 'पुट आउट द लाइट्स' की तुलना करें)। भावभाव शब्द का भी ऐसा ही दोहरा अर्थ है (देखें n. 877/1)।

843/6 अभिभूत शाब्दिक अर्थ 'पार किया गया'; तुलना करें अभिभू ('सर्वोच्च सत्ता', 'पारलौकिक सत्ता') जैसा कि उच्च देवत्व (डी. i, 221) और बुद्ध (§§252, 917; एम. i, 171) के लिए प्रयुक्त होता है, और अभिभयताना ('पारलौकिकता का आधार', अर्थात्, कामुक इच्छा का: एम. ii, 13), आदि।

[पृष्ठ 209]
व्यवस्था का प्रतिरूप
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार, घुसपैठ और निपुणता से संबंधित मुद्दों से निपटता है।
844. < भिक्षुओं, ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं । कौन से चार? एक धारा के साथ बहता है , एक धारा के विपरीत बहता है , एक ने स्वयं को स्थिर कर लिया है , और एक पार कर गया है , दूसरे तट पर चला गया है , और एक दिव्य व्यक्ति के रूप में दृढ़ भूमि पर खड़ा है > (अ. 2, 5; पे 28, 228)। 1
यहां, 'धारा के साथ बहने वाला' व्यक्ति भ्रष्टाचार से निपटने वाला [सूत्र का प्रकार] है। यहां दो व्यक्ति, अर्थात् 'धारा के विपरीत बहने वाला' और 'स्वयं को स्थिर करने वाला', प्रवेश से संबंधित हैं। [158] यहां, 'पार कर जाने वाला, दूसरे किनारे पर जाकर एक दिव्य व्यक्ति के रूप में दृढ़ भूमि पर खड़ा होने वाला' व्यक्ति सिद्ध पुरुष से संबंधित है।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करता है।
भेदन क्षमता के साथ और विशेषज्ञ से निपटते हुए।
9. भ्रष्टाचार, नैतिकता और घुसपैठ
845. इसमें, भ्रष्टाचार, नैतिकता और घुसपैठ से संबंधित विषय किस प्रकार के हैं?
जन्म देने के छह प्रकार होते हैं । एक प्रकार का जन्म अश्वेत व्यक्ति का होता है जो अश्वेतता से जन्म लेकर एक अश्वेत आदर्श को जन्म देता है। एक प्रकार का जन्म अश्वेत व्यक्ति का होता है जो अश्वेतता से जन्म लेकर एक श्वेत आदर्श को जन्म देता है। एक प्रकार का जन्म अश्वेत व्यक्ति का होता है जो अश्वेतता से जन्म लेकर अनंत लक्ष्य के रूप में विनाश में रुचि रखता है , न अश्वेत , न श्वेत , और न ही अश्वेत या श्वेत के परिपक्व होने की संभावना होती है। एक प्रकार का जन्म श्वेत व्यक्ति का होता है जो श्वेतता से जन्म लेकर एक अश्वेत आदर्श को जन्म देता है। एक प्रकार का जन्म श्वेत व्यक्ति का होता है जो श्वेतता से जन्म लेकर एक श्वेत आदर्श को जन्म देता है। एक प्रकार का जन्म श्वेत व्यक्ति का होता है जो श्वेतता से जन्म लेकर अनंत लक्ष्य के रूप में विनाश में रुचि रखता है, न अश्वेत , न श्वेत , और न ही अश्वेत या श्वेत के परिपक्व होने की संभावना होती है । (तुलना करें ए . iii, 384)
यहां, दो व्यक्ति, अर्थात् 'कालेपन से जन्मा काला व्यक्ति जो काले आदर्श को जन्म देता है' और 'गोरेपन से जन्मा सफेद व्यक्ति जो काले आदर्श को जन्म देता है', भ्रष्टाचार से संबंधित हैं। यहां, दो व्यक्ति, अर्थात् 'कालेपन से जन्मा काला व्यक्ति जो सफेद आदर्श को जन्म देता है' और 'गोरेपन से जन्मा सफेद व्यक्ति जो सफेद आदर्श को जन्म देता है', भ्रष्टाचार से संबंधित हैं।

844/1 नेटीए (पृष्ठ 209) के अनुसार 1 = 'साधारण व्यक्ति', 2 = 'अच्छा साधारण व्यक्ति' (हल्याना-पुथुज्जना) यानी, अभ्यास करने वाला जो प्रथम मार्ग तक नहीं पहुंचा है), 3 = दीक्षित, और 4 = सिद्ध।

[पृष्ठ 210]
पथप्रदर्शक
'श्वेत आदर्श से जन्म' नैतिकता से संबंधित है। इसमें, दो व्यक्ति, अर्थात् 'कालेपन से जन्मा काला व्यक्ति जो अनंत लक्ष्य के रूप में विलुप्ति में रुचि रखता है, न काला, न सफेद' और 'काले या सफेद का कोई परिपक्वन नहीं' और 'श्वेतता से जन्मा श्वेत व्यक्ति जो अनंत लक्ष्य के रूप में विलुप्ति में रुचि रखता है, न काला, न सफेद, काले या सफेद का कोई परिपक्वन नहीं', प्रवेश से संबंधित हैं।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करता है।
नैतिकता और प्रवेश से निपटने के साथ।
846. < भिक्षुओं, ये चार प्रकार की क्रियाएँ हैं। वे चार क्या हैं? [159] काली कर्म क्रिया है जिसका फल काला होता है। सफेद कर्म क्रिया है जिसका फल सफेद होता है। काला-सफेद कर्म क्रिया है जिसका फल काला-सफेद होता है। काला-सफेद कर्म क्रिया है जिसका फल

काला-सफेद होता है। काला-सफेद कर्म क्रिया है जिसका फल काला-सफेद होता है। काला-सफेद कर्म क्रिया है जिसका फल काला-सफेद होता है , जो सर्वोच्च प्रकार की कर्म क्रिया है , जो कर्म की समाप्ति की ओर ले जाती है > (ए. 2, 230)।

यहां, 'काले फल से उत्पन्न होने वाला कोई भी काला कर्म' और 'काले-सफेद फल से उत्पन्न होने वाला कोई भी काला-सफेद कर्म' भ्रष्टाचार है। 'सफेद फल से उत्पन्न होने वाला कोई भी सफेद कर्म' नैतिकता है। 'न काले, न सफेद फल से उत्पन्न होने वाला कोई भी कर्म, जो सर्वोच्च प्रकार का कर्म है, सर्वोत्तम प्रकार का कर्म है, जो कर्म की पूर्णता की ओर ले जाता है', वह भेदन है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करता है।

नैतिकता और प्रवेश से निपटने के साथ।

10. नैतिकता और प्रवेश

847. इसमें, नैतिकता और प्रवेश से संबंधित विषय पर चर्चा किस प्रकार की है?

मानव अवस्था प्राप्त करने के बाद , दो [चीजें]:

कार्य क्या है और कार्य क्या नहीं है?

सही कार्य 'किसी भी प्रकार की योग्यता ' है।

और फिर [सभी] बेड़ियों का त्याग > (;§ 866).

'उचित कार्य किसी भी प्रकार का पुण्य है' यह नैतिकता है। 'सभी बंधनों का त्याग करना' अंतर्दृष्टि है।

वे लोग जिन्होंने उत्कृष्ट प्रदर्शन किया
पुण्य का संचार स्वर्ग से स्वर्ग तक हो।
लेकिन जिन्होंने सभी बंधनों को त्याग दिया है
वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं > (;§ 866).

[पृष्ठ 211]

व्यवस्था का प्रतिरूप

'जो लोग पुण्य कर्मों से पुण्य कमाते हैं, वे स्वर्ग से स्वर्ग तक पहुंचते हैं' यह नैतिकता है। 'परन्तु जिन्होंने सभी बंधनों का त्याग कर दिया है, वे वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं' यह अंतर्दृष्टि है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।

और प्रवेश से निपटना।

848. भिक्षुओं , ये दो प्रमुख प्रयास हैं। 1 वे दो क्या हैं? (i) वह जो गृहस्थ जीवन से विमुख होकर गृहस्थ जीवन में चले गए लोगों में वस्त्र , भिक्षा , आवास और बीमारों के उपचार हेतु आवश्यक औषधियाँ वितरित करता है ; और (ii) वह जो अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग , तृप्ति का अंत , क्षीणता, समाप्ति , क्षीणता है , जो गृहस्थ जीवन से विमुख होकर गृहस्थ जीवन में चले गए लोगों में पाई जाती है > (तुलना करें ए . i, 49)।

[160] इसमें, 'जो वस्त्र दान करता है... बीमारों का इलाज करता है... बेघर लोगों में 5 नैतिकता है। 'जो अस्तित्व के सभी आवश्यक तत्वों का त्याग है... विलुप्ति, [जो पाया जाता है] बेघर लोगों में' पैठ है।

यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता और यौन प्रवेश से संबंधित विषयों पर चर्चा करता है।

11. भ्रष्टाचार और लालसा

849. यहाँ, लालसा से उत्पन्न भ्रष्टाचार से निपटने वाले सूत्र के प्रकार को लालसा के पक्ष में मौजूद किसी भी चीज़ द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है: लालसा के तीन प्रकारों द्वारा, अर्थात् <इंद्रिय सुख की लालसा , अस्तित्व की लालसा और गैर-अस्तित्व की लालसा > (§425), या इसे उस वस्तु द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिससे चिपका हुआ है। इसका विवरण लालसा के जाल के व्यवहार के छत्तीस तरीके हैं (देखें ए. ii, 211 आगे)।

12. भ्रष्टाचार का दृश्य

850. इसमें, विचारों द्वारा भ्रष्टाचार से संबंधित सूत्र के प्रकार को विचारों के पक्ष में मौजूद किसी भी चीज़ से प्रदर्शित किया जा सकता है: विनाशवाद और शाश्वतवाद (देखें सू. iv, 400), या इसे किसी भी वस्तु से प्रदर्शित किया जा सकता है जिस पर कोई व्यक्ति इस प्रकार

के विचार के माध्यम से जोर देता है <केवल यही सत्य है , बाकी सब गलत है > (एम. ii, 233; डी. ii, 282)। इसका विवरण विचारों के बासठ प्रकारों में है (डी. सूत्र 1; एम. सूत्र 102) ।

———

848/1 पधना का अर्थ 'सर्वोच्च' ('मुख्य') और 'प्रयास' दोनों है।
850/1 '62 प्रकारों' को 19 द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिगत विचारों के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।
[13]

[पृष्ठ 212]
पथप्रदर्शक
13. कदाचार द्वारा भ्रष्टाचार
851. यहाँ, दुराचार द्वारा भ्रष्टाचार से संबंधित विषयवस्तु को [विकल्प के रूप में] और संज्ञान के साथ होने वाली क्रिया के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है (§239): दुराचार के तीन प्रकारों द्वारा, अर्थात् शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार और मानसिक दुराचार (§913)। इसका विवरण दस निष्फल कार्यविधियों में निहित है (एम. आई, 46-7; तुलना करें §238)।
14-16. लालसा, दृष्टिकोण और दुराचार से शुद्धि
852. इसमें, लालसा से शुद्धि से निपटने वाले धागे के प्रकार को शांति द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
853. विचारों से शुद्धि से संबंधित धागे के प्रकार को अंतर्दृष्टि द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
854. दुराचार से शुद्धि से संबंधित धागे के प्रकार को अच्छे आचरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
बहस
855. < अनुपयोगी के तीन मूल ... ऐसा क्यों है? गोल चक्कर के घटित होने के कारण ... जब इस प्रकार गोल चक्कर घटित होता है , तो शरीर का कुकर्म ... शरीर का अच्छा आचरण ... वाणी का कुकर्म ... वाणी का अच्छा आचरण ... मन का कुकर्म ... मन का अच्छा आचरण ... कर्म के इस कुरूप परिपक्वन से ही मूर्ख का यह लक्षण उत्पन्न होता है > ( ).
[161] यह भ्रष्टाचार से निपटने वाला धागा है। <यह क्रिया के इस सुंदर परिपक्वता के द्वारा ही महान व्यक्ति की यह विशेषता प्रकट होती है> ( )।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो नैतिकता से संबंधित है।
856. यहाँ, भ्रष्टाचार से संबंधित सूत्र के प्रकार को अपवित्रता के चार स्तरों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है: अंतर्निहित प्रवृत्तियों का स्तर, आसक्ति का स्तर, बंधनों का स्तर और धारणाओं के प्रकार का स्तर। जिसमें अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है, उसमें आसक्ति जन्म लेती है; जो आसक्त होता है, वह बंधनों में जकड़ा जाता है; जब वह बंधनों में जकड़ा जाता है, तो वह धारणाएँ बनाता है; धारणा को शर्त मानकर, अस्तित्व; अस्तित्व को शर्त मानकर, जन्म; जन्म को शर्त मानकर।

———

बुद्ध के समकालीन शिक्षकों द्वारा, लेकिन एक व्यापक योजना के रूप में - 'दिव्य जाल' (ब्रह्म-जल) जिसमें सभी संभावित सट्टा विचारों को फंसाया जाना चाहिए।

[पृष्ठ 213]
व्यवस्था का प्रतिरूप
अवस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु का वास्तविक अस्तित्व है, साथ ही दु:ख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा का भी; इसी प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्गम होता है। सभी दोष इन चार स्तरों में समाहित हैं।
यह उस प्रकार का थ्रेड है जो भ्रष्टाचार से संबंधित है।
857. नैतिकता से संबंधित विषयवस्तु को तीन प्रकार के अच्छे आचरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
858. प्रवेश से संबंधित धागे के प्रकार को चार सत्यों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

859. सिद्ध पुरुष से संबंधित धागे के प्रकार को तीन प्रकार के विचारों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है: प्रबुद्धों के विचारों द्वारा, संन्यासी प्रबुद्धों के विचारों द्वारा, और ध्यानी के क्षेत्र में श्रोता के स्तर द्वारा।

*

दूसरा समूह

860. इसमें अठारह मूल पदों का क्या अर्थ है? 1

अनुसूची

i. (क) संसारों से संबंधित, (ख) संसारों से अलग, (ग) संसारों से संबंधित और संसारों से अलग (पे 23, सं. 1);

ii. (क) प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त, (ख) विचारों के संदर्भ में व्यक्त, (ग) प्राणियों और विचारों के संदर्भ में व्यक्त (पे 23, सं. 8);

iii. (क) ज्ञान, (ख) जानने योग्य, (ग) ज्ञान और जानने योग्य

(पे 23, संख्या 4);

iv. (क) देखना, (ख) अस्तित्व में बनाए रखना, (ग) देखना और अस्तित्व में बनाए रखना

(पे 23, संख्या 5);

v. (क) हमारा स्वयं का कथन, (ख) किसी अन्य का कथन, (ग) हमारा स्वयं का कथन और किसी अन्य का कथन (पे 23, सं. 7);

vi. (क) उत्तर देने योग्य, (ख) उत्तर न देने योग्य, (ग) उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य; 2

vii. (क) क्रिया, (ख) पकना, (ग) क्रिया और पकना (पे 23, सं. 2);

___

860/1 देखें नेटीए, जिसका उल्लेख एन. 759/1 में किया गया है। यह समूह, यद्यपि पे अध्याय ii से लिया गया है, फिर भी इसे बदला, सरलीकृत और बेहतर बनाया गया है।

860/2 यह त्रयी पे अध्याय ii में नहीं है और पे अध्याय iv के तीसरे खंड से ली गई प्रतीत होती है (पे 78, पंक्ति 23 से पृष्ठ 79, पंक्ति 22)।

___

___

[पृष्ठ 214]

पथप्रदर्शक

viii. (क) लाभदायक, (ख) अलाभदायक, (ग) लाभदायक और अलाभदायक; 3

ix. (a) सहमत, (b) अस्वीकृत, (c) सहमत और अस्वीकृत

(पे 23, संख्या 10);

x. स्तुतिगान (तुलना करें पे 23, सं. 9)।

उदाहरण उद्धरण

[i (a)]

860. इसमें, संसारों से संबंधित क्या है?

जब कोई बुरा कर्म किया जाता है,

जैसे ताजा दूध, तुरंत नहीं बदलता; 1

यह एक छिपी हुई चिंगारी की तरह पीछा करता है,

मूर्ख, उसे [बाद में] जला रहा है > (ध. 11; पे 48).

[162] यह दुनिया से संबंधित है।

861. भिक्षुओं , बुरे मार्ग पर चलने के ये चार प्रकार हैं। वे कौन से चार हैं? . . . [सभी अनुच्छेद 767 से नीचे तक] .. .

जैसे इसके अंधेरे आधे भाग में चंद्रमा > (§767)।

यह उन दुनियाओं से जुड़ाव है।

860. < भिक्षुओं, ये आठ सांसारिक विचार हैं। कौन से आठ? लाभ, हानि, यश, यश, निंदा, प्रशंसा , सुख , दुख। ये आठ सांसारिक विचार > (ए. iv, 157).

यह उन दुनियाओं से जुड़ाव है।

[i (b)]
864. इसमें वह क्या है जो संसारों से अलग है?
जिनकी इंद्रियां पूरी तरह से शांत हो चुकी हैं ,
जैसे एक कुशल रथ चालक घोड़ों की देखभाल करता है,
उसने अपने सारे अहंकार को त्याग दिया था, वह निष्कलंक था।
तब वह देवताओं को भी प्रिय होगा > (ध. 94; पे 48)।
यह उन दुनियाओं से अलग है।

860/3 यह त्रयी भी पे अध्याय 2 में नहीं है, और ऐसा प्रतीत होता है कि यह पे अध्याय 4 के पहले खंड से ली गई है (पे पृष्ठ 74, पंक्ति 1 से पृष्ठ 77, पंक्ति 10 तक, शब्द देसीतम)। 861/1 टीका का अनुसरण किया गया है। मुच्चति की व्याख्या वहाँ परिणमति के रूप में की गई है , और यह समझाया गया है कि नया दूध तुरंत क्यों नहीं फटता (धारा 453 में दूध-दही उपमा देखें)। श्लोक के प्रारंभ में नकारात्मक ना उपमा को भी नियंत्रित करता है, जो तब बिल्कुल सटीक बैठता है। दहन्तम (एक शब्द) की व्याख्या विपच्चमनम के रूप में की गई है, जो कि एक नपुंसक एकवचन है और कम्मम को योग्य बनाता है ।

[पृष्ठ 215]
व्यवस्था का प्रतिरूप
865. < भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं जो संसार से विबद्ध हैं। वे पाँच कौन सी हैं? विश्वास इंद्री , ऊर्जा इंद्री , ध्यान इंद्री, एकाग्रता इंद्री, समझ इंद्री। ये पाँच इंद्रियाँ संसार से विबद्ध हैं > (एस. वी, 193)।
यह उन दुनियाओं से अलग है।
[मैं सी)]
866. इसमें वह क्या है जो संसारों से संबंधित है और संसारों से अलग है? दो श्लोक [शुरू]
मानव अवस्था प्राप्त करने के बाद , दो बातें: . . .(§847).
यहां 'उचित कार्य किसी भी प्रकार का पुण्य है' और 'पुण्य कर्मों द्वारा पुण्य का फल पाने वाले स्वर्ग से स्वर्ग तक पहुंचते हैं' ये शब्द संसार से संबंधित हैं। परन्तु 'और फिर सभी बंधनों का त्याग' और 'परन्तु जिन्होंने सभी बंधनों का त्याग कर दिया है वे वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं' ये शब्द संसार से असंबंधित हैं।
यह वह है जो संसारों से संबंधित है और संसारों से अलग भी है।
867. [163] < भिक्षुओं, जब चेतना पोषण के रूप में होती है, तब नाम-रूप का आधार मिलता है। जब नाम-रूप का आधार मिलता है, तब अस्तित्व का नवीनीकरण होता है। जब अस्तित्व का नवीनीकरण होता है, तब जन्म होता है। जब जन्म होता है , तब वृद्धावस्था और मृत्यु का वास्तविक अस्तित्व होता है , और साथ ही दुःख और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा का भी; इसी प्रकार इस संपूर्ण श्रेणी के दुःख का उद्गम होता है (cf. §304)। मान लीजिए कि एक विशाल वृक्ष है जिसकी जड़ें, चाहे वे नीचे की ओर जाएं या चारों ओर, सभी पोषण ऊपर लाती हैं, तो उस प्रकार, उस पोषण के साथ, उस आरोहण के साथ, वह विशाल वृक्ष दीर्घ रहेगा, 1 उसी प्रकार , जब चेतना पोषण के रूप में होती है, तब नाम-रूप का आधार मिलता है... इसी प्रकार इस संपूर्ण श्रेणी के दुःख का उद्गम होता है > ( )•
यह दुनिया से संबंधित है।
भिक्षुओं , जब चेतना पोषण के रूप में न हो, तब नाम-रूप का कोई आधार न मिले। जब नाम-रूप का कोई आधार न मिले, तब अस्तित्व का नवीनीकरण न हो। जब अस्तित्व का नवीनीकरण न हो, तब वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है , और साथ ही दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा का भी; इसी प्रकार अस्तित्व बना रहता है।

867/1 वृक्ष की उपमा के लिए एस. ii, 87-8 देखें।

[पृष्ठ 216]

पथप्रदर्शक

इस संपूर्ण प्रकार के दुख का अंत। मान लीजिए एक विशाल वृक्ष था, और फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आया, और उसने वृक्ष को काट डाला, फिर उसने उसके चारों ओर खुदाई की, और फिर उसने उसकी जड़ों को रेशों तक उखाड़ दिया? और फिर उसने उसे तने और शाखा सहित काट डाला, फिर उसने उसे फाड़ दिया, फिर उसने उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिया, फिर उसने उसे धूप में सुखाया, फिर उसने उसे आग में जला दिया , और फिर उसने उसे राख में बदल दिया, 3 और फिर उसने उसे तेज हवा में उड़ा दिया, और फिर उसने उसे एक तेज बहती नदी में बहा दिया; इस तरह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह हो जाएगा, नष्ट हो जाएगा, और भविष्य में उत्पन्न होने के विचार से अविभाज्य हो जाएगा;—ठीक उसी प्रकार, जब चेतना पोषण के रूप में नहीं होती [164] तो नाम-और-रूप के लिए कोई आधार नहीं मिलता ... इस प्रकार इस संपूर्ण प्रकार के दुख का अंत होता है > ( )•

यह अन्य दुनियाओं से अलग है।

यह वह है जो संसारों से संबंधित है और संसारों से अलग भी है।

[ii (a)]

868. इसमें, प्राणियों के संदर्भ में क्या व्यक्त किया गया है?

मैंने मन से सभी दिशाओं का भ्रमण किया।

और मुझे खुद से ज्यादा प्रिय कोई नहीं मिला;

इसी प्रकार, स्वयं भी एक दूसरे के प्रति प्रिय होता है।

जो स्वयं से प्रेम करता है वह कभी दूसरे को हानि नहीं पहुँचाएगा > (उद. 47).

इसे प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।

869. < सभी प्राणी जो मौजूद हैं, और जो अस्तित्व में आएंगे,

वे अपने शरीर को त्यागकर आगे यात्रा करेंगे;

जन्म-प्रबंधन में कुशल, यह सब जानने वाला व्यक्ति,

सबसे उत्साहपूर्वक दिव्य जीवन व्यतीत करेगा > (उद. 48; तुलना करें पे 55)।

इसे प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।

870. भिक्षुओं , जब एक अच्छे मित्र में सात गुण हों, तो जीवन भर उसे कभी अस्वीकार नहीं करना चाहिए, चाहे उसे निकाल दिया जाए या बर्खास्त कर दिया जाए, चाहे उसे भगा दिया जाए। 1 वे सात गुण क्या हैं? वह प्रिय, आदरणीय और अनुकरणीय है, 2 वह बात करने को तैयार रहता है और

867/2 ' उसिरा —रेशे': पी.ई.डी. में अर्थ यहाँ उपयुक्त नहीं है। यिन. iv, 130 देखें। 867/3 मम्सिम के स्थान पर मसिम पढ़ें ।

870/1 Read panujjamanena ? For someone who should not be abandoned, see M. i, 108: na pakkamitabbam api panujjamanena pi.

870/2 भवानीया , व्यक्तियों के लिए एक प्रशंसा शब्द है, जिसका अनुवाद शिथिल रूप से ही किया जा सकता है; शाब्दिक अर्थ है 'जिसे बनाया जाना चाहिए'। नेत्तिया कहते हैं ' उत्तरिमनुस्सा-धम्मवसेन सम्भवेतब्बतया' जिसका अर्थ है 'सम्मानित किया जाना चाहिए'।

[पृष्ठ 217]

व्यवस्था का प्रतिरूप

वह अपने साथ बात करने के लिए तत्पर रहता है, और वह कभी भी निराधार उपदेश नहीं देता [सच्चे विचार और मार्गदर्शक अनुशासन के अनुरूप न होने वाले तरीके से]। जब एक अच्छे मित्र में ये सात गुण होते हैं ... तो चाहे उसे दूर भगा दिया जाए। भगवान बुद्ध ने यही कहा था । जब परम पुरुष ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा:

प्रिय, आदरणीय, अनुकरणीय

जो किसी से बात करता है और जिससे बात भी की जा सकती है,

गहन बातों को समझाने के लिए तैयार है।

और वह कभी भी निराधार उपदेश नहीं देता:

ऐसा मित्र जीवन भर काम आ सकता है।
जो मित्र की इच्छा रखता है > (तुलना करें ए. iv, 32)।
इसे प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।
[ii (बी)]
871. [165] इसमें, विचारों के संदर्भ में क्या व्यक्त किया गया है?
इंद्रियों को जो भी आनंद की इच्छा हो
या फिर संसार में स्वर्ग का आनंद,
सभी का सोलहवें भाग के बराबर भी मूल्य नहीं है।
उस आनंद का जो लालसा की थकावट के साथ आता है > (उद. 11; पे 55)।
इसे विचारों के रूप में व्यक्त किया जाता है।
872. विलुप्ति वास्तव में सच्चा आनंद है
जैसा कि प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा सिखाया गया है:
दुःख रहित, सुरक्षित, निष्कलंक,
जहां पीड़ा का अंत होता है > ( ).
इसे विचारों के रूप में व्यक्त किया जाता है।
[ii (सी)]
873. इसमें प्राणियों और विचारों के संदर्भ में क्या व्यक्त किया गया है?
माता-पिता की हत्या करने के बाद ,
और फिर दो योद्धा-राजाओं ने वध कर दिया
एक राज्य अपने शासक सहित, > 1
इसे विचारों के रूप में व्यक्त किया जाता है।

873/1 ' सानुकारा - इसके राज्यपाल के साथ': अनुकारा पी.ई.डी. में नहीं है , सी.पी.डी. देखें ; व्याख्या में टिप्पणी का अनुसरण किया गया है।

[पृष्ठ 218]
पथप्रदर्शक
< एक व्यक्ति दिव्य सुरक्षा में विचरण करता है > (ध. 294)2
इसे प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।
इसे प्राणियों के संदर्भ में और इसमें व्यक्त किया जाता है
विचारों के संदर्भ में।

873/2 कुछ अनुवादक इस श्लोक और इसके बाद आने वाले श्लोक (ध. 294 और 295) को लेकर नैतिक रूप से विवादों में घिर गए हैं। इसलिए, इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन करना उचित है। इसमें तीन समस्याएं हैं: (1) व्याकरण, (2) प्रत्यक्ष अर्थ और (3) व्याख्या। पाली पाठ है: mataram pitaram hantva rajano dve ca khattiye rattham sanucaram hantva anigho yati brahmano. अब (1) व्याकरण (वाक्य रचना) असामान्य रूप से सरल है, क्योंकि इसमें क्रियावाचक संज्ञा (हन्त्व) के बाद परिमित क्रिया (यति) आती है, जो पाली में एक बहुत ही सामान्य रचना है जो समय या कारण अनुक्रम को दर्शाती है ('वध करके... जाता है' या 'वध करके... जाता है')। जैसा कि कुछ लोगों ने किया है, 'हालाँकि' ('वध किए जाने के बावजूद ... जाता है') डालने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि पाली में कोई संबंधित शब्द नहीं है और वाक्यविन्यास को इसकी आवश्यकता नहीं है। गेरुंड और क्रिया के लिए दो संभावित विषय हैं: या तो (ए) ब्राह्मणो ('एक दिव्य') संज्ञा के रूप में, एनीघो ('प्रतिरक्षा') के साथ क्वालीफाइंग विशेषण के रूप में, या (बी) 'एक' (एकाको या ऐसा) समझा जाता है, जिनमें से एनीघो और ब्राह्मणो दोनों क्वालीफाइंग विशेषण हैं। (यह निर्माण पाली में बहुत आम है, सीएफ। एसएन। 35 '

सब्बेसु भुतेसु निधया (गेर।) दंडम। ... एको (एडज।) केयर (क्रिया) खग्गविसनकप्पो (एडज।)', दोनों adj. एक समझे गए 'एक' को क्रिया-विषय के रूप में योग्य बनाते हैं)। (2) प्रत्यक्ष अर्थ के संबंध में : प्रथम (क), यदि ब्राह्मण को क्रिया के कर्ता के रूप में लिया जाए ('एक ब्राह्मण (जो पहले से ही ऐसा है) माता का वध करके (या वध के द्वारा) . . . पापमुक्त हो जाता है'), तो इसका तात्पर्य 'नैतिकता के प्रयोजनिक निलंबन' जैसे किसी सिद्धांत से होना चाहिए (उदाहरण के लिए, 'शुद्ध हृदय वाला संत बिना पाप किए कोई भी अपराध कर सकता है', आदि)। परन्तु संपूर्ण त्रिपिटक में कहीं भी ऐसा कोई सिद्धांत नहीं सिखाया गया है, जो असंख्य प्रवचनों का निरर्थक अर्थ निकाल दे, और विशेष रूप से 'उदाहरण और गैर-उदाहरण' (§546), '10 प्रकार के कर्म' और अष्टांगिक मार्ग को निरर्थक बना दे। यदि कोई विकल्प है, तो उस पर विचार किया जाना चाहिए। एक विकल्प है। वास्तव में, (ख) ब्राह्मण को उसके स्वाभाविक विशेषण अर्थ में क्रिया के कर्ता के रूप में समझे जाने वाले 'एक' को योग्य बनाने के लिए लिया जा सकता है (जैसा कि ऊपर संदर्भित खंड 35 में है : cf. §829, आदि)। तब समझे गए कर्ता के दो योग्य विशेषण होते हैं। अनिघा और ब्राह्मणोऔर स्वाभाविक प्रत्यक्ष अनुवाद तब यह है: 'एक माँ का वध करके... दो राजा... [एक] निर्धन, दिव्य रूप से विचरण करता है।' यह निश्चित रूप से बेहतर है क्योंकि यह व्याकरणिक और शाब्दिक है और जब तक लाक्षणिक अर्थ संभव है, तब तक अन्य ग्रंथों के साथ कोई आवश्यक विरोधाभास नहीं है। (3) व्याख्या शाब्दिक या लाक्षणिक हो सकती है। यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाए (अर्थात, ' माँ की वध करने के बाद... दो राजाओं की... कि कोई निर्धन, दिव्य रूप से विचरण करता है'), तो ऊपर उल्लिखित विरोधाभास (2क) के अलावा, पूरा कथन ही बेतुका है क्योंकि ' दो ' राजाओं (दोनों श्लोकों में 'दो') की व्याख्या बिल्कुल नहीं की जा सकती। वास्तव में, यह शाब्दिक व्याख्या को खारिज करता है। इसलिए, अपने आंतरिक प्रमाणों के आधार पर यह श्लोक स्पष्ट रूप से एक 'आघातक रूपक' है (धारा 812 में एक और, कम स्पष्ट रूपक है, और नीचे देखें), और इसे पाली में जैसा है वैसा ही, इसकी पूरी 'आघातक' सरलता के साथ, बिना किसी अस्पष्टता के शब्दों को जोड़े बिना, ठीक वैसे ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। रूपक अर्थ को नेट्टी ने 'विचारों के संदर्भ में व्यक्त' शब्द के प्रयोग द्वारा अपने तरीके से रेखांकित किया है। यह किसके लिए एक रूपक है, यह नेट्टी ने बताया है।

[पृष्ठ 219]

व्यवस्था का प्रतिरूप

874. < भिक्षुओं, सफलता के ये चार आधार हैं। वे चार कौन से हैं? सफलता का वह आधार जिसमें इच्छाशक्ति की एकाग्रता , प्रयास और दृढ़ संकल्प शामिल हैं... सफलता का वह आधार जिसमें ऊर्जा की एकाग्रता शामिल है... सफलता का वह आधार जिसमें चेतना की एकाग्रता शामिल है... सफलता का वह आधार जिसमें जिज्ञासा की एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प शामिल हैं > (देखें एस.वी., 254).

. . . .

इसे विचारों के रूप में व्यक्त किया जाता है।

वह शरीर पर चेतना धारण करता है, और चेतना पर शरीर को धारण करता है, और सहज बोध और शीघ्र बोध में आधार पाकर, वह उसमें प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है (तुलना करें भजन 2, 210)।

इसे प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।

इसे प्राणियों और विचारों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।

[iii (a)]

875. इसमें ज्ञान क्या है?

वह ज्ञान जो संसारों में व्याप्त है, 1
इसलिए उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है।
जो कभी कमजोर नहीं होता, और जो
सभी समयों तक पहुंच रखता है > ( ). 2
यह ज्ञान है।

(तुलना करें DhA) इस प्रकार है: 'माता तृष्णा है, जो अस्तित्व के तीन स्तरों में प्राणियों को जन्म देती है; पिता 'मैं हूँ' का अहंकार है, जो व्यक्तिवाद को अहमियत देता है; दो राजा शाश्वतवादी और विनाशवादी विचार हैं, जो (विचारों के) संसार को आपस में बाँटते हैं; क्षेत्र

आँख-सह-रूपों से शुरू होने वाले आधारों के छह जोड़े हैं; शासक इच्छा और उनके प्रति वासना है' (पृष्ठ 212-13)। (ध्यान दें: DhA के सभी श्लोक अपने संदर्भ से बाहर हैं)।

एक और, कम गंभीर, 'आघातक रूपक' श्लोक 4, 136 में व्याख्या सहित दिया गया है ('यह दिव्य जीवन बिना शिष्यों और बिना गुरु के जिया जाता है')। 875/I ' लोकउत्तरा - संसारों में व्याप्त': यह सामान्य प्रयोग नहीं है, जिसका अर्थ है 'संसारों से विरक्त', उनके अंत (निर्वाण) से जुड़ा हुआ। नेत्तिया बताते हैं कि सर्वज्ञ ज्ञान (सब्बन्नुता) तकनीकी रूप से 'संसारों से संबंधित' (लोकिया) है , न कि सामान्य अर्थ में 'संसारों से विरक्त' (लोकउत्तरा) (देखें n. 326/2)। इसलिए यहाँ इस शब्द को शाब्दिक रूप से 'जो सभी संसारों को पार करके (उत्तराति) उन्हें जान चुका है' के रूप में लिया जाना चाहिए, न कि सामान्य अर्थ 'जो निर्वाण को जानने के लिए सभी संसारों को पार कर चुका है ' के रूप में।

875/2 नेत्तिआ: "'जिसकी पहुंच सभी कालों तक है'' यह इसलिए कहा गया है क्योंकि इसका अस्तित्व इसके ध्यान देने पर निर्भर करता है। यह निरंतर और सतत रूप से घटित नहीं होता; क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान बुद्ध में एक साथ सर्वज्ञ ज्ञान प्रकट होता है' (पृष्ठ 213)। तुलना करें एम. ii, 127, साथ ही पीपीएन., अध्याय 7, टिप्पणी 7।

[पृष्ठ 220]
पथप्रदर्शक
876. [160] < दुनिया में सबसे अच्छी चीज समझ है —
वह प्रकार जो विलुप्ति की ओर ले जाता है —
जिससे व्यक्ति पूरी तरह समझ जाता है
जन्म और मृत्यु दोनों की थकावट > (इति. 36; तुलना करें पे 51)।
यह ज्ञान है।
[iii (बी)]
877. इसमें, जानने योग्य क्या है?
तब मैं तुम्हें बताऊंगा कि शांति क्या है।
भगवान बुद्ध ने धोतका से कहा
'शांति यहीं और अभी, सुनी-सुनाई बातों पर आधारित नहीं।'
जिसे जानकर, सचेत होकर आगे बढ़ा जा सकता है,
यह संसार से लगाव को दूर करता है।'
हे महान द्रष्टा , मैं आशा से देखता हूँ।
उस स्थिति में, सर्वोच्च शांति की अवस्था प्राप्त होती है।
जिसे जानकर, सचेत होकर आगे बढ़ा जा सकता है,
यह संसार से लगाव को दूर करता है।'
जो कुछ भी है, उसे समझो।
भगवान बुद्ध ने कहा, 'धोताका'
'या ऊपर या नीचे, चारों ओर, बीच में,
यह जान लो कि यह इच्छाएँ हैं , और उनसे आसक्ति मत रखो।
बेहतर या बदतर होने के लिए दुनिया में 1 होना 9 > (Sn. 1066-8).
यह जानने योग्य है।

878. < ' भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों की खोज न होने, उनका गहन अध्ययन न हो पाने के कारण ही मुझे और आपको इस लंबी यात्रा में बार-बार चक्कर लगाना पड़ा है। जब दुख के इस आर्य सत्य की खोज और गहन अध्ययन हो जाए, जब दुख के कारण के इस आर्य सत्य की खोज और गहन अध्ययन हो जाए, जब दुख के निवारण के इस आर्य सत्य की खोज और गहन अध्ययन हो जाए, जब दुख के निवारण के इस आर्य सत्य की खोज और गहन अध्ययन हो जाए, तब अस्तित्व की आवश्यकता समाप्त हो जाती है , वह मार्गदर्शक

समाप्त हो जाता है, अब अस्तित्व का कोई नवीनीकरण नहीं होता। 9 भगवान बुद्ध ने यही कहा था , जब परम पुरुष ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा:
'चार आर्य सत्यों को न देख पाने के कारण'
[समझ के साथ] कि वे कैसे हैं

[पृष्ठ 221]
व्यवस्था का प्रतिरूप
यात्रा लंबी थी
विभिन्न जन्मों का चक्रव्यूह।
वह मार्गदर्शक जो पुरुषों को अस्तित्व की ओर ले जाता है
इन्हें देखते ही मार डाला जाता है;
दर्द की जड़ों को नष्ट कर दिया गया
अस्तित्व का कोई नवीनीकरण नहीं है > (एस.वी , 43इफ.).
[167] यह जानने योग्य है.
[iii (सी)]
879. इसमें, ज्ञान और जानने योग्य क्या है?
< रूप क्षणभंगुर है , भावना क्षणभंगुर है, बोध क्षणभंगुर है , निर्धारण क्षणभंगुर हैं , चेतना क्षणभंगुर है > (एस. iii, 21)।
यह जानने योग्य है।
< इस प्रकार जानने और देखने पर , श्रेष्ठ श्रोता रूप को क्षणभंगुर देखता है , भावना को क्षणभंगुर देखता है , धारणा को क्षणभंगुर देखता है , निर्धारणों को क्षणभंगुर देखता है , चेतना को क्षणभंगुर देखता है > ( )।
यह ज्ञान है।
< वह रूप से मुक्त है, 1 भावना से मुक्त है , धारणा से मुक्त है , निर्धारण से मुक्त है , चेतना से मुक्त है; वह दुख से मुक्त है , मैं कहता हूँ > ( )।
यह ज्ञान है और जानने योग्य है।
880. < सभी निर्धारण अस्थाई हैं > (§38).
यह जानने योग्य है।
और इसलिए जब वह इस प्रकार समझदारी से देखता है (वही)।
यह ज्ञान है।
तब वह दुख में भी वैराग्य पाता है;
यही वह मार्ग है जो शुद्धि की ओर ले जाता है (वही)।
यह ज्ञान है और जानने योग्य है ।
881. <[और] ' सभी निर्धारण भी कष्टदायक होते हैं > (वही)।
यह जानने योग्य है।

879/1 रूपेना , रूपम्हा की गलत व्याख्या होनी चाहिए , उद्धरण के अंतिम खंड में विन्नमाम्हा देखें ।

[पृष्ठ 222]
पथप्रदर्शक
और इसलिए जब वह इस प्रकार समझ के साथ देखता है > (वही)।
यह ज्ञान है।

तब वह दुख में भी वैराग्य पाता है ;
यही वह मार्ग है जो शुद्धि की ओर ले जाता है। (वही)।
यह ज्ञान है और जानने योग्य है।
882. <[और फिर इसके अलावा] अनात्म सभी विचार हैं > (वही)।
यह जानने योग्य है।
और इसलिए जब वह इस प्रकार समझदारी से देखता है (वही)।
यह ज्ञान है।
तब वह दुख में भी वैराग्य पाता है ;
यही मार्ग शुद्धिकरण की ओर ले जाता है > (वही; पे 5 2)।
यह ज्ञान है और जानने योग्य है।
883. [168] < सोना , जब कोई भिक्षु या धर्मगुरु, रूप को कारण मानकर , जो कि रूप क्षणभंगुर, पीड़ा के योग्य और परिवर्तन के विचार से अविभाज्य है, 'मैं बेहतर हूँ', 'मैं वैसा ही हूँ ' या 'मैं बदतर हूँ ' देखता है, तो यह वास्तविकता को न देखने के अलावा और क्या है? जब , भावना ... बोध ... निर्धारण ... चेतना को कारण मानकर , जो कि चेतना क्षणभंगुर, पीड़ा के योग्य और परिवर्तन के विचार से अविभाज्य है, 'मैं बेहतर हूँ', 'मैं वैसा ही हूँ ' या 'मैं बदतर हूँ' देखता है, तो यह वास्तविकता को न देखने के अलावा और क्या है?> (एस. iii, 48).
यह जानने योग्य है।
सोना , जब कोई भिक्षु या धर्मगुरु रूप को आधार मानकर, जो कि रूप क्षणभंगुर, पीड़ादायी और परिवर्तन के विचार से अविभाज्य है, यह नहीं देखता कि 'मैं बेहतर हूँ', 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ', तो वह यथास्थिति को देखने के अतिरिक्त और क्या है? जब वह भावना , बोध , संकल्प और चेतना को आधार मानकर , जो कि चेतना क्षणभंगुर, पीड़ादायी और परिवर्तन के विचार से अविभाज्य है, यह नहीं देखता कि 'मैं बेहतर हूँ ', 'मैं समान हूँ' या 'मैं बदतर हूँ', तो वह यथास्थिति को देखने के अतिरिक्त और क्या है? (श्लोक 3, 48f.)
यह ज्ञान है।
यह ज्ञान है और जानने योग्य है।

[पृष्ठ 223]
व्यवस्था का प्रतिरूप
[iv- (a)]
884. इसमें, देखना क्या है ? 1
जो स्पष्ट रूप से आर्य सत्यों को प्रकट करते हैं
उन्होंने गहन ज्ञान से भरपूर होकर अच्छी शिक्षा प्रदान की।
हालांकि वे बेहद लापरवाह हो सकते हैं,
फिर भी वे कभी आठवां अस्तित्व नहीं ले सकते > (स्न. 230)।
यह देखना है।
885. < पृथ्वी में गहराई से गड़ा हुआ ताला-खल्ला
चारों दिशाओं से आने वाली हवाओं के झोंकों से अविचलित रहेगा।
[169] मैं कहता हूँ, सच्चा मनुष्य भी ऐसा ही है, जो देखता है
आर्य सत्यों का अनुभव करके > (खंड 229)।
यह देखना है।
886. < भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ श्रोता में धारा-प्रवेश के चार कारक होते हैं, तो वह चाहे तो स्वयं से इस प्रकार कह सकता है: 'मैंने [नरक, पशु गर्भ, प्रेतलोक, बेचैनी की अवस्थाओं, बुरे गंतव्यों और विनाशों में पुनर्जन्म के जोखिम] को समाप्त कर दिया है; मैं एक धारा-प्रवेशक हूँ, अब विनाश के विचार से अविभाज्य नहीं, [धर्म के प्रति] निश्चित, और ज्ञानोदय के लिए बाध्य (ए. वी, 182; पे 52) < देवताओं और मनुष्यों के बीच अधिक से अधिक सात बार चक्कर लगाने के बाद , मैं दुख का अंत करूँगा > (तुलना करें ए. आई,

233)। <चार क्या? यहाँ, भिक्षुओं, (i) एक श्रेष्ठ श्रोता का पूर्ण पुरुष में विश्वास पूर्णतः स्थापित है, जिसकी जड़ें पूर्णतः विकसित हैं, जो भिक्षु, दिव्य, ईश्वर, मार, उच्च देवत्व या संसार में किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी तरह से अजेय है जो [सत्य के] विचार के अनुरूप है, (ii) वह सच्चे विचार में अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है:> (cf. एम. i, 320) <'सच्चे विचार का भगवान बुद्ध द्वारा अच्छी तरह से प्रचार किया गया है, जिसे स्वयं देखना है, विलंबित नहीं (कालजयी), निरीक्षण के लिए आमंत्रित, आगे बढ़ने वाला, और बुद्धिमानों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है> (§297; ए. iii, 285), <अर्थात, व्यर्थता का मोहभंग, . . . समाप्ति '> (§297 ; ए. ii, 34)। <(iii) और उसके लिए गृहस्थ और गृहस्थ जीवन से बाहर निकले हुए, जो उसके साथ सच्चे विचार में हैं, सभी वांछनीय, वांछित , सुखद और प्रिय हैं> ( )। <(iv) और वह उन गुणों से युक्त है जो श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा वांछित हैं - अक्षत , अविभाजित, बेदाग, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, गलत न समझे जाने वाले और एकाग्रता के लिए सहायक> (cf. §298)। <जब एक श्रेष्ठ श्रोता में धारा-प्रवेश के ये चार कारक होते हैं, तो वह...

884/1 देखा गया। 46/1।

[पृष्ठ 224]
पथप्रदर्शक
यदि वह चाहे , तो स्वयं से इस प्रकार कह सकता है: ' मैं ... [ऊपर जैसा] हूँ...'
मैं पीड़ा का अंत करूँगा > [जैसा ऊपर बताया गया है]।
[170]यह देखना है.
[iv (b)]
887. इसमें, क्या चीज़ अस्तित्व में बनी हुई है?
जिनकी क्षमताएं अच्छी तरह से संरक्षित हैं
स्वयं के लिए, बाहरी दुनिया के लिए और पूरी दुनिया के लिए,
जो इस और अगले संसार को जानते हुए अपने समय की प्रतीक्षा करता है
अपने भीतर अस्तित्व बनाए रखते हुए [मार्ग] को धारण करना,
ऐसे ही व्यक्ति को 'अच्छी तरह से वश में किया हुआ' कहा जा सकता है ।
(एसएन. 576;पीई52).
यह सिलसिला जारी है।
888. < भिक्षुओं, सच्चे विचार के ये चार लक्षण हैं। 1 वे चार क्या हैं? लोभ रहित होना सच्चे विचार का एक लक्षण है, द्वेष रहित होना सच्चे विचार का एक लक्षण है, सही जागरूकता सच्चे विचार का एक लक्षण है , और सही एकाग्रता सच्चे विचार का एक लक्षण है । ये सच्चे विचार के चार लक्षण हैं > (अ. 2, 29; पे 52)।
यह सिलसिला जारी है।
[iv (c)]
889. इसमें, देखना और अस्तित्व में बनाए रखना क्या है?
पांच को अलग कर देना चाहिए, पांच को त्याग देना चाहिए।
और पाँच को भी अस्तित्व में बनाए रखना चाहिए;
वह भिक्षु जो पाँच आसक्तियों से परे हो जाता है 1
इसे 'वह व्यक्ति जिसने बाढ़ पार कर ली है' कहा जाता है (ध. 370)।
'पांचों का त्याग करना चाहिए, पांचों को छोड़ देना चाहिए' यह देखना है। 'और पांचों को भी धारण करना चाहिए, जो भिक्षु पांचों आसक्तियों से परे जाकर 'जलप्रपात पार करने वाला' कहलाता है' यह धारण करना है।
यह देखना और अस्तित्व में बनाए रखना है। 2

887/1 आस्था, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और समझ की 5 शक्तियाँ।

888/1 नेट्टिया ने धम्म-कोत्थसा द्वारा धम्मपद ('सच्चे विचार के निशान') की व्याख्या की , जिसका अर्थ है 'सच्चे विचार के भाग'; लेकिन यहां पद को 'निशान' या 'पदचिह्न' के रूप में लेना स्वीकार्य लगता है (जैसा कि एम. सुत्तस 27 और 28 में है)।

889/1 'पहले “पांच” 5 निकटवर्ती बंधन हैं, दूसरे “पांच” 5 दूरवर्ती बंधन हैं (डी. iii, 234), तीसरे “पांच” विश्वास से शुरू होने वाली क्षमताएं हैं, “पांच आसक्ति” कामवासना, घृणा, भ्रम, अभिमान और विचारों की हैं' (नेटिए, 216)।

889/2 यह व्याख्यात्मक पैराग्राफ Ba और Bb दोनों में अनुपस्थित है।

[पृष्ठ 225]

व्यवस्था का प्रतिरूप

890. < भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? वह शक्ति जो मैं अंततः उस सत्य को जान लूँगा जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, वह है 'अंततः ज्ञात होने वाली शक्ति' , वह शक्ति जो अंतिम ज्ञान की क्रिया है , और वह शक्ति जो अंतिम ज्ञाता है > (एस. वी, 204 ; पे 51, 66)। <वह शक्ति जो मैं अंततः उस सत्य को जान लूँगा जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, वह क्या है? यहाँ , भिक्षुओं, एक भिक्षु दुख के अभी तक अप्राप्त महान सत्य को साकार करने की इच्छा को जागृत करता है, वह प्रयास करता है, ऊर्जा को प्रेरित करता है , अपनी चेतना को उलट देता है , और प्रयास करता है। वह दुख की उत्पत्ति के अभी तक अवास्तविक [171] महान सत्य को साकार करने की इच्छा को जागृत करता है... दुख के निवारण के मार्ग के अभी तक अवास्तविक महान सत्य को साकार करने की इच्छा को जागृत करता है, वह प्रयास करता है, ऊर्जा को प्रेरित करता है , अपनी चेतना का प्रयोग करता है और प्रयास करता है। यही वह क्षमता है जिसके द्वारा मैं अंततः उस अवास्तविक सत्य को जान लूँगा जो अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है (; पे 66)।

यह देखना है।

अंतिम ज्ञान की क्रिया क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु समझता है कि यह कैसा है, इस प्रकार वह समझता है कि यह कैसा है, इस प्रकार 'यह दुख का मूल है, इस प्रकार वह समझता है कि यह कैसा है, इस प्रकार 'यह दुख का निवारण है, वह समझता है कि यह कैसा है, इस प्रकार 'यह दुख के निवारण का मार्ग है। ' यही अंतिम ज्ञान की क्रिया है। अंतिम ज्ञाता की क्रिया क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु , अपने प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यापित करते हुए, यहीं और अभी हृदय-मुक्ति और बोध-मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो दोषों के अंतिम अंत के साथ दोषरहित हैं। वह समझता है कि जन्म समाप्त हो गया है, दिव्य जीवन जी लिया गया है, जो किया जा सकता था वह किया जा चुका है, इसके आगे और कुछ नहीं है ।यही अंतिम ज्ञाता की क्रिया है (पे 67) ।

यह सिलसिला जारी है।

यह देखना और उसे अस्तित्व में बनाए रखना है।

[v (a)]

891. इसमें हमारा अपना कथन क्या है ?

किसी भी प्रकार का बुरा काम न करें।

लाभदायक कौशल को परिपूर्ण करना,

890/1 तीनों शक्तियों का वर्णन करने वाले उद्धरण सूत्रों में सीधे तौर पर नहीं हैं। विषयवस्तु लगभग इस प्रकार है: पहला सूत्र द्वितीय, 11 (चार सही प्रयास), दूसरा सूत्र प्रथम, 183 (चार सत्यों की प्राप्ति का ज्ञान), और तीसरा सूत्र प्रथम , 35-6 और 184 (क्षय और अनात्म का ज्ञान)। 891/1 'स्वयं का कथन' (सकवचन) का अर्थ है बुद्ध या उनके किसी शिष्य द्वारा दिया गया और उनके द्वारा स्वीकृत कथन।

[पृष्ठ 226]

पथप्रदर्शक

और अपने हृदय को शुद्ध करना:

यह बुद्धों का विधान है > (§238)।

यह हमारा स्वयं का बयान है।
892. भिक्षुओं , मूर्ख के ये तीन लक्षण होते हैं जिनसे दूसरों को पता चलता है कि वह मूर्ख है। वे तीन लक्षण क्या हैं? मूर्ख बुरे विचार रखता है, बुरे वचन बोलता है और उसके कर्म भी बुरे होते हैं। ये मूर्ख के वे लक्षण हैं जिनसे दूसरों को पता चलता है कि वह मूर्ख है। [172] भिक्षुओं, बुद्धिमान व्यक्ति के ये तीन लक्षण होते हैं जिनसे दूसरों को पता चलता है कि वह बुद्धिमान है । वे तीन लक्षण क्या हैं? बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे विचार रखता है, अच्छे वचन बोलता है और उसके कर्म भी अच्छे होते हैं। ये बुद्धिमान व्यक्ति के वे तीन लक्षण हैं जिनसे दूसरों को पता चलता है कि वह बुद्धिमान है । (तुलना करें ए. 1 102)
यह हमारा स्वयं का बयान है।
[v (b)]
893. इसमें किसी और का कथन क्या है?
पृथ्वी के समान विशाल कुछ भी नहीं है ।
ऐसी कोई खाई नहीं है जो गड्ढे के बराबर हो, 1
मेरु पर्वत के बराबर ऊँचा कुछ भी नहीं है।
और कोई भी व्यक्ति पहिया घुमाने वाले सम्राट की बराबरी नहीं कर सकता ।
यह किसी और का बयान है।
894. <' देवताओं के स्वामी, अच्छी वाणी से विजय प्राप्त हो।' —'वेपचित्ति , अच्छी वाणी से विजय प्राप्त हो ।' — ... —'वेपचित्ति , एक श्लोक कहिए।' तब असुर दैत्यों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक कहा:
'मूर्ख लोग अपना क्रोध अधिक प्रदर्शित करेंगे'
यदि कोई उनका सामना करने वाला न हो, तो
दृढ़ निश्चयी लोग मूर्खों को नियंत्रण में रखें।
कड़ी सजा के साथ।'

सच्चा विचार (उदाहरण के लिए, एम. सुत्तस 18 और 44 देखें)। 'किसी और का कथन' (परवचन: §893) वह है जो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया गया हो, जो स्वीकार्य हो भी सकता है और नहीं भी।
893/1 नेत्तिया इस श्लोक को अनदेखा करता है। पाताल ('गड्ढा') एस. iv, 206 (और अन्यत्र) पर प्रकट होता है और एस'ए. iii, 75 पर इसकी टिप्पणी की गई है; ' patassa alam pariyanto n'atthi ettha patittha ti patalo ' (पीटीएस एस.ए. संस्करण में n' atthi के बाद गलत तरीके से पूर्ण विराम लगाया गया है)।

[पृष्ठ 227]
व्यवस्था का प्रतिरूप
भिक्षुओं, जब असुर वृहदों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक बोला, तो असुर वृहदों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब असुर वृहदों के स्वामी वेपचित्ति ने देवताओं के स्वामी सक्का से कहा, 'हे देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' तब देवताओं के स्वामी सक्का ने यह श्लोक बोला:
'मेरी राय में, [महोदय,] ऐसा है
लेकिन मूर्ख का सामना करने का एक तरीका यह है:
जब एक दूसरे का गुस्सा जान लेते हैं,
वह सचेत होकर अपनी शांति बनाए रखता है।
भिक्षुओं , जब देवताओं के स्वामी सक्का ने यह श्लोक बोला , तो देवताओं ने तालियाँ बजाईं, परन्तु असुर राक्षस मौन रहे। तब देवताओं के स्वामी सक्का ने असुर राक्षसों के स्वामी वेपचित्ति से कहा: 'वेपचित्ति , एक श्लोक बोलो।' तब असुर राक्षसों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक बोला:
[173] ' सहनशीलता के संबंध में, वासावा ,
मुझे इसमें यह दोष मिला:

एक बार मूर्ख ने कल्पना करने का विकल्प चुना
मेरी सहनशीलता भय से उत्पन्न होती है ।
तब तो वह निश्चित रूप से मेरा और भी पीछा करेगा।
जैसे एक बैल भगोड़े को भगाता है।
भिक्षुओं , जब असुर वृहदों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक बोला, तो असुर वृहदों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब असुर वृहदों के स्वामी वेपचित्ति ने देवताओं के स्वामी सक्का से कहा, 'हे देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' तब देवताओं के स्वामी सक्का ने ये श्लोक बोले:
'उसे कल्पना करने दो, या न करने दो,'
मेरी सहनशीलता भय से उत्पन्न होती है:
अपना भला ही सर्वोपरि है।
और धैर्य से बढ़कर कुछ नहीं है।
यह तब होता है जब किसी व्यक्ति को शक्ति प्राप्त होती है।
कमजोरों के प्रति सहनशीलता दिखाएंगे
वे कहते हैं कि धैर्य ही सर्वोच्च गुण है:
यदि कमजोर हो तो मनुष्य हमेशा धैर्यवान होता है ।
जिसकी शक्ति तो मूर्खों की शक्ति मात्र है।
कहते हैं ना , उसकी ताकत ही उसकी कमजोरी है ;
लेकिन कोई भी इसका प्रतिकार नहीं कर सकता।
सच्चे आदर्शों से पुष्ट शक्ति।
क्रोधित लोगों को उसी प्रकार से जवाब देना

894/1 ख्पीए अनुवाद देखें। अध्याय v, नोट 94.

[पृष्ठ 228]
पथप्रदर्शक
पहले गुस्सा करने से भी बदतर है यह;
क्रोधित पुरुषों को उसी प्रकार का उत्तर न दें।
और एक कठिन लड़ाई जीतना।
वह दोनों के भले को बढ़ावा देता है।
पहले उसका अपना और फिर दूसरे का भी,
दूसरे के क्रोध को कौन जानेगा?
और सचेतनतापूर्वक उसकी शांति बनाए रखें।
सच्चे आदर्श के ज्ञान में अकुशल मनुष्य ही इसके लिए जिम्मेदार हैं।
जो व्यक्ति दोनों के लिए संयम बरतता है
उसका अपना भला और दूसरे का भी भला।
मुझे लगता है कि वह मूर्ख है।
अब, भिक्षुओं, जब देवताओं के शासक सक्का ने यह श्लोक बोला, तो देवताओं ने ताली बजाई और असुर राक्षस चुप रहे > (एस. i, 222f.; cf. पे 54)।
यह किसी और का बयान है।
[v (c)]
895. इसमें हमारा अपना कथन और किसी दूसरे का कथन क्या है?

जो कुछ प्राप्त हो चुका है और जो कुछ अभी प्राप्त होना बाकी है, दोनों ही उस व्यक्ति में मैल से सने होते हैं जो बीमार की तरह अभ्यास करता है। और वे लोग जिनके लिए मूल तत्व केवल प्रशिक्षण (उपदेशों का पालन) करना है, जिनके लिए मूल तत्व केवल सद्‌गुण, कर्तव्य, जीविका और पवित्रता में निहित दिव्य जीवन को बनाए रखना है ; ये एक चरम सीमा हैं। और वे लोग जिनके सिद्धांत और विचार हैं कि 'इंद्रिय सुख में कुछ भी गलत नहीं है': ये दूसरी चरम सीमा हैं । इस प्रकार ये दोनों चरम सीमाएं कब्रिस्तानों को भरती जाती हैं, और कब्रिस्तान गलत विचारों से भरते जाते हैं। इन दोनों चरम सीमाओं से अपरिचित होने के कारण ही कुछ लोग पीछे हट जाते हैं और कुछ अति कर बैठते हैं । (उद, 71-2; पे 54)
यह किसी और का बयान है।
लेकिन जो लोग इन दोनों चरम सीमाओं से परिचित होने के कारण उनमें अस्तित्व नहीं पाते , जो इसके द्वारा ' मैं हूँ' की धारणा को नहीं अपनाते , उनके लिए किसी भी पुनर्जीवन चक्र का वर्णन करना असंभव है। (वही) ।
यह हमारा स्वयं का बयान है।
यह विस्मयादिबोधक चिह्न हमारा अपना कथन है और
किसी और का बयान।

895/1 इस उद्धरण के स्रोत के लिए, देखें सुत्त एट इति. 43-4 (पृष्ठ 689 पर उद्धृत) ।

[पृष्ठ 229]
व्यवस्था का प्रतिरूप
896. कोसल के राजा पसेनादि ने भगवान बुद्ध से कहा: ' आदरणीय महोदय, यहाँ जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: “किसे आत्मप्रिय है? किसे आत्मप्रिय नहीं है?” आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आया: “जो लोग शरीर, वाणी या मन से दुराचार करते हैं, उन्हें आत्मप्रिय नहीं होता; और चाहे वे कहें कि उन्हें आत्म प्रिय है, फिर भी ऐसा नहीं है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे स्वयं के कारण वही करते हैं जो कोई प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के साथ करता है। इसीलिए उन्हें आत्म प्रिय नहीं होता। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का पालन करते हैं, उन्हें आत्म प्रिय होता है; और चाहे वे कहें कि उन्हें आत्म प्रिय नहीं है, फिर भी उन्हें आत्म प्रिय होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे स्वयं के कारण वही करते हैं जो कोई प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के साथ करता है। इसीलिए उन्हें आत्म प्रिय होता है।” 5 — ' ऐसा ही है, महाराज, ऐसा ही है।' जो लोग शरीर, वाणी या मन से दुराचार करते हैं, उन्हें आत्मा प्रिय नहीं होती; चाहे वे कहें कि आत्मा उन्हें प्रिय है, फिर भी ऐसा नहीं है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे स्वयं के कारण वही करते हैं जो एक प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के साथ करता है। इसीलिए आत्मा उन्हें प्रिय नहीं होती। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का पालन करते हैं, उन्हें आत्मा प्रिय होती है; चाहे वे कहें कि आत्मा उन्हें प्रिय नहीं है, फिर भी आत्मा उन्हें प्रिय होती है। [175] ऐसा क्यों है? क्योंकि वे स्वयं के कारण वही करते हैं जो एक प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के साथ करता है। इसीलिए आत्मा उन्हें प्रिय होती है।'> भगवान बुद्ध ने यही कहा। यह कहकर, गुरु ने आगे कहा:
यदि कोई व्यक्ति स्वयं को प्रिय समझना चाहे,
तो फिर कोई बुराई उसे जकड़ न ले;
क्योंकि सुख आसानी से नहीं मिलता।
जो व्यक्ति अन्याय करता है, उसे ही दंड मिलता है।
एक बार संहारक द्वारा कब्जा कर लिए जाने के बाद,
एक बार मानवीय अवस्था को त्याग देने पर ,
फिर ऐसी कौन सी चीज है जो उसकी अपनी है?
जब वह जाता है तो अपने साथ क्या ले जाता है ?
और उसके पीछे क्या आएगा?
क्या उसकी परछाई उसका साथ देती है?
गुण और दोष, दोनों ही।
कि यहाँ किसी नश्वर व्यक्ति ने यह कार्य किया है,

तो फिर वह चीज वहां मौजूद है और उसकी अपनी है।
वह इसे अपने साथ ले जाता है जब वह जाता है।
और वह उसके पीछे-पीछे आएगा, जैसा कि
उसकी परछाई उसका साथ देती है।

[पृष्ठ 230]
पथप्रदर्शक
इसलिए उसे अच्छी चीजों का भंडार बनाने दो
ताकि आने वाले जन्मों में उसे इसका फल मिले:
इस दुनिया से परे योग्यता के लिए
किसी जीवित प्राणी की नींव प्रदान करता है > (एस.आई , 71एफ.).
यहां थ्रेड किसी और का कथन है और पैराफ्रेजिंग-वर्स हमारा अपना कथन है।
यह हमारा अपना बयान है और किसी और का भी बयान है।
[के जरिए)]
897. इसमें उत्तर देने योग्य क्या है?
जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या इससे परिचित होना चाहिए, क्या इसका निदान किया जाना चाहिए, क्या इसे त्याग दिया जाना चाहिए, क्या इसे अस्तित्व में रखा जाना चाहिए, क्या इसका सत्यापन किया जाना चाहिए, क्या इन विचारों को इस प्रकार लेने से यह फल प्राप्त होता है, क्या इस प्रकार लिए गए उन विचारों का यही अर्थ है, तो इसका उत्तर दिया जा सकता है।
898. [जब यह पूछा जाता है कि] क्या किसी को निःसंकोच प्रबुद्ध व्यक्ति की महानता को इस प्रकार प्रदर्शित करना चाहिए, 'प्रबुद्ध व्यक्ति, भगवान बुद्ध महान हैं', और सच्चे विचार की सुप्रसिद्धि, और समुदाय के उत्तम अभ्यास को [तदनुसार], या जब यह पूछा जाता है कि] क्या किसी को निःसंकोच प्रदर्शित करना चाहिए कि < सभी निर्धारण अनित्य हैं > (§38), <[और] सभी निर्धारण कष्टदायी भी हैं > (§38) [या] <[और फिर इसके अलावा] सभी विचार अनात्म हैं > (§38), या इसी तरह का कुछ और, तो यह उत्तर देने योग्य है।
[vi (b)]
899. [176] इसमें, अनुत्तरित क्या है? [जब इसे इस प्रकार पूछा जाता है:]
हे वश में किए जाने वाले मनुष्यों के नेता ,
जब आप डिजाइन करते हैं ,
न तो देवता, न मनुष्य, न ही सब कुछ
संपूर्ण [सरणी]
जीवित प्राणी जान सकते हैं कि क्या है
आपके मन में विचार आया
शांत एकाग्रता का उपयोग करना
बिना संघर्ष के (; पीई 71):

[पृष्ठ 231]
व्यवस्था का प्रतिरूप
भगवान बुद्ध का संदेश क्या है ?
क्या इरादा है?' > ( ).
इसका कोई जवाब नहीं है।

900. [जब यह पूछा जाता है कि] भगवान बुद्ध सद्गुण श्रेणी, एकाग्रता श्रेणी, समझ श्रेणी, मुक्ति श्रेणी, या मुक्ति के ज्ञान और दर्शन श्रेणी के संबंध में, व्यवहार के संबंध में, गरिमा के संबंध में, कल्याण की खोज के संबंध में, करुणा के संबंध में, असाधारण सफलता के संबंध में इतने अधिक हैं, तो इसका उत्तर देना असंभव है।
901. [जब यह कहा जाता है] < भिक्षुओं, संसार में पूर्णतः सिद्ध और प्रबुद्ध व्यक्ति के उदय के साथ ही तीन रत्नों का उदय होता है, प्रबुद्ध रत्न, सत्य विचार रत्न और समुदाय रत्न ( ) [और यह पूछा जाता है] ' तीनों रत्नों का माप क्या है ?', यह उत्तरहीन है ।
902. [जब इसी प्रकार प्रबुद्ध व्यक्ति के क्षेत्र के बारे में पूछा जाता है] (देखें ए. ii, 80), तो यह अनुत्तरित है।
903. [जब इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों की क्षमताओं में विविधता के ज्ञान के बारे में पूछा जाता है] (देखें §585), तो यह अनुत्तरित है।
904. [जब यह कहा जाता है] < भिक्षुओं, उन प्राणियों का भूतकाल स्पष्ट नहीं है जो अज्ञान को बाधा और भोग को बंधन मानकर निरंतर नरक, पशु गर्भ, प्रेतलोक, असुर-राक्षस गर्भ, देवताओं और मनुष्यों के बीच चक्कर लगाते रहते हैं> (देखें श्लोक 2, 178 श्लोक, 326; देखें §644), [और यह पूछा जाता है] 'भूतकाल क्या है?' , जिसका उत्तर देना असंभव है। श्रोता के ज्ञान की कमी के कारण यह 'स्पष्ट नहीं' है ।
905. [अब] प्रबुद्धों, भगवान बुद्धों की शिक्षा दो प्रकार की है, अर्थात् स्वयं को मार्गदर्शक उदाहरण मानकर और दूसरों को मार्गदर्शक उदाहरण मानकर। [शिक्षा] <स्पष्ट नहीं है> (§905) दूसरों को मार्गदर्शक उदाहरण मानकर दी जाती है, जबकि [

901/1 रतननं उप्पादो पढ़ना।
901/2 संभवतः पढ़ें . . . संघरतनस्सा ;' (उद्धरण का अंत). किम-पमनानी तिनि रतनानी? ति इदं अविसज्जानीयम् (नया पैरा.)।
904/1 यह, हालांकि अजीब तरह से व्यक्त किया गया है, इसका मतलब यह नहीं है कि कोई 'प्रथम पद (शुरुआत)' है जिसे वे देख नहीं सकते, बल्कि यह उनके ज्ञान में 'कमी' है जो उन्हें भ्रामक 'प्रथम पद' की तलाश करने के लिए प्रेरित करती है, अर्थात् निम्नलिखित के उनके ज्ञान में कमी, अर्थात्, 'अथ पना पन्नयति "इदप्पच्चया अविज्जा " ति ' (ए.वी. , 113) और ' "इदप्पच्चया भवतन्हा " ति ' (ए.वी. , 116)।

[पृष्ठ 232]
पथप्रदर्शक
शिक्षा] < प्रबुद्ध जन, भगवान बुद्ध, अज्ञान नहीं रखते > ( ) स्वयं को मार्गदर्शक उदाहरण के रूप में रखते हैं।
जैसा कि भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु कोकालिका के बारे में बताया: [177] < भिक्षु, मान लीजिए कि बीस खरीका माप की क्षमता वाली एक कोसलन तिल-बीज की गाड़ी है , [और हर सौ साल या हर हज़ार साल के अंत में एक आदमी एक तिल का बीज ले जाता है, तो बीस खरीका माप की क्षमता वाली वह कोसलन तिल-बीज की गाड़ी इस तरह से जल्दी समाप्त हो जाएगी और उसका अंत हो जाएगा] इससे पहले कि अब्बुद 1 नरक समाप्त हो; और बीस अब्बुद नरकों के समान एक निरब्बुद नरक है; और बीस निरब्बुद नरकों के समान एक अतत नरक है; और बीस अतत नरकों के समान एक अहहा नरक है; और बीस अहहा नरकों के समान एक कुमुद नरक है; और बीस कुमुद नरकों के समान एक सोगंधिका नरक है; और बीस सोगंधिका नरकों के समान एक उप्पला नरक है; और बीस उपपाल नरकों के समान एक पुंडरीका नरक है; और बीस पुंडरीका नरकों के समान एक पद्मा नरक है। अब कोकालिका ने सारिपुत्त और मोग्गलाना के विरुद्ध हृदय कठोर करके इसी पद्मा नरक में पुनः प्रवेश किया है।
(एस. आई, 152).
906. या वास्तव में, किसी भी ऐसी चीज़ के माप के बारे में कोई भी प्रश्न जिसका भगवान बुद्ध ने कहा है 'यह असीम है, अगणनीय है' हमेशा अनुत्तरित रहता है।
इसका कोई जवाब नहीं है।
[vi (c)]
907. इसमें उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य क्या है?
जब तपस्वी उपक ने भगवान बुद्ध से पूछा, 'हे मित्र गौतम पंचम, आप कहाँ जा रहे हैं ?' तो भगवान बुद्ध ने कहा, 'मैं बनारस जा रहा हूँ। मैं वहाँ सत्य विचार के चक्र, अमर ढोल को गतिमान करने जा रहा हूँ, जिसे संसार में रोका नहीं जा सकता।' तब तपस्वी उपक ने पूछा, 'क्या आप स्वयं को विजेता मानते हैं?' तो भगवान बुद्ध ने कहा:

< ' मेरे जैसे विजेता, उपका ,
क्या वे लोग हैं जिनके दाग पूरी तरह से मिट चुके हैं?
मैंने बुराई के सभी विचारों को पराजित कर दिया।
और इसीलिए मैं विजेता हूँ > (एम.आई. , 171) . 1

905/1 यह और इसके बाद के सभी नाम उत्तरोत्तर विशाल संख्याओं के नाम हैं, जिनमें से अंतिम नाम विभिन्न प्रकार के (बहु-पंखुड़ी वाले) कमल के फूलों से लिए गए हैं।
907/1 इस पैराग्राफ का पहला भाग, श्लोक तक, उद्धरण नहीं बल्कि सारांश है।

[पृष्ठ 233]
व्यवस्था का प्रतिरूप
[अब सवाल] 'विजेता V कैसे होता है ?' या 'विजेता V किस कारण से होता है?' के जवाब दिए जा सकते हैं; [लेकिन सवाल] 'विजेता क्या है? ' का जवाब नहीं दिया जा सकता। [फिर से, सवाल] 'कलंकों की कौन सी समाप्ति? क्या यह कामवासना की समाप्ति है, घृणा की समाप्ति है, भ्रम की समाप्ति है?' का जवाब दिया जा सकता है; [लेकिन सवाल] 'कलंकों की कितनी समाप्ति?' का जवाब नहीं दिया जा सकता।
[178] यह उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य है।
908. [प्रश्न] 'क्या कोई पूर्ण (तथागत) है?' का उत्तर दिया जा सकता है ।
[प्रश्न] 'क्या रूप V मौजूद है?' उत्तर देने योग्य है। [प्रश्न] <'क्या एक पूर्ण सत्ता रूप में है? ' (श्लोक 4, 383) उत्तर देने योग्य नहीं है; [प्रश्न] 'क्या एक पूर्ण सत्ता रूप में है?' उत्तर देने योग्य नहीं है; [प्रश्न] <'क्या एक पूर्ण सत्ता रूप में है ?' (श्लोक 4, 383) उत्तर देने योग्य नहीं है; [प्रश्न] 'क्या एक पूर्ण सत्ता में रूप है ?' उत्तर देने योग्य नहीं है।
इसी प्रकार 'क्या कोई भावना है?' . . .
इसी प्रकार 'क्या कोई बोध है?' . . .
इसी प्रकार 'क्या कोई निर्णय लिए गए हैं?' . . .
[इसी प्रकार] 'क्या चेतना है?' उत्तर देने योग्य है। <'क्या एक पूर्ण सत्ता चेतना है ?'> (श्लोक 4, 383) उत्तर देने योग्य नहीं है; 'क्या एक पूर्ण सत्ता चेतना धारण करती है?' उत्तर देने योग्य नहीं है; <'क्या एक पूर्ण सत्ता चेतना में है ?'> (श्लोक 4, 383) उत्तर देने योग्य नहीं है।
क्या रूप से अलग कोई परिपूर्ण सत्ता है? यह प्रश्न अनुत्तरित है ; क्या कोई
पूर्ण एक, भावना से अलग... बोध से... संकल्पों से... चेतना से ... हम अनुत्तरित हैं।
क्या यह पूर्ण स्वरूपहीन है? ... क्या इसमें कोई भावना नहीं है?
बिना बोध के... बिना दृढ़ निश्चय के... बिना चेतना के हम अनुत्तरित हैं।
यह उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य दोनों है।

907/2 ' कटामो जिनो —विजेता क्या है?': नेटिआ : 'क्या विजेता रूप है या भावना है या धारणा है या निर्धारण है या चेतना है? या वह उनसे अलग है?' (पृष्ठ 220); देखें §379.
908/1 प्रश्न 'अत्थि तथागतो? =

अत्थी सत्टो ?' (नेत्तिआ , पृ. 220); साथ ही 'इस व्यक्ति (अयस्मा) का वर्णन पाँच श्रेणियों के आधार पर इस प्रकार किया जा सकता है, जैसे कि अमुक परिवार का, और यह, क्योंकि यह उस वर्णित व्यक्ति को संदर्भित करता है, उत्तरदायित्वपूर्ण है' (पृ. 220)। 'व्यक्ति' को अन्यथा ' अविज्जमान-पन्नत्ति' (पुगआ, अर्थात् 'गैर-तथ्यात्मक के संदर्भ में वर्णन') कहा जाता है, श्रेणियाँ आदि ' विज्जमान-पन्नत्ति ' (तथ्यात्मक के संदर्भ में वर्णन) हैं। तुलना करें श्लोक 4, 52।

[पृष्ठ 234]

पथप्रदर्शक

909. 'क्या भगवान बुद्ध, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और फिर से प्रकट होते हुए देखते हैं... और इसी प्रकार बाकी सब (देखें §591)... क्या वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे मरते हैं? V उत्तरदायी है।

'प्राणी V क्या हैं' और 'परिपूर्ण V क्या है' जैसे प्रश्न अनुत्तरित हैं।

यह उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य दोनों है।

910. 'क्या कोई पूर्ण सत्ता है ?' का उत्तर दिया जा सकता है। 'क्या मृत्यु के बाद कोई पूर्ण सत्ता है ?' का उत्तर नहीं दिया जा सकता ।

यह उत्तर देने योग्य और उत्तर न देने योग्य दोनों है।

[vii (a)]

911. इसमें क्रिया क्या है?

जब कोई मृत्यु से पराजित हो जाता है 1

और मानवीय अवस्था को त्याग देना,

फिर उसमें ऐसा क्या है जो उसका अपना है?

जब वह जाता है तो अपने साथ क्या ले जाता है?

और उसके पीछे क्या आएगा?

क्या उसकी परछाई उसका साथ देती है?

गुण और दोष, दोनों ही।

कि यहाँ किसी नश्वर व्यक्ति ने यह कार्य किया है,

तो फिर वह चीज वहां मौजूद है और उसकी अपनी है ।

वह इसे अपने साथ ले जाता है जब वह जाता है ।

और वह उसके पीछे-पीछे आएगा, जैसा कि

उसकी परछाई उसका साथ देती है > (§896).

यह कार्रवाई है।

912. < हे भिक्षुओं, जब कोई मूर्ख अपनी कुर्सी [179] या अपने पलंग पर बैठा हो या जमीन पर आराम कर रहा हो , तो उसके द्वारा अतीत में किए गए बुरे कर्म, चाहे वह देह, वाणी या मन से किए गए दुराचार के कारण हों, उसे ढक लेते हैं और घेर लेते हैं। जैसे शाम के सूरज में किसी विशाल चट्टानी चोटी की छाया जमीन को ढक लेती है और घेर लेती है, वैसे ही जब कोई मूर्ख अपनी कुर्सी या अपने पलंग पर बैठा हो या जमीन पर आराम कर रहा हो, तो उसके द्वारा अतीत में किए गए बुरे कर्म, चाहे वह देह, वाणी या मन से किए गए दुराचार के कारण हों, उसे ढक लेते हैं और घेर लेते हैं। तब

910/1 सभी त्रिपिटक संदर्भों में, इन संदर्भों में होटी है, अत्थी नहीं ।

911/1 अंतकेनाधिपन्नस्स §896 पर और मारा नेनाधिभूतस्स यहाँ, हालाँकि श्लोक का शेष भाग समान है।

[पृष्ठ 235]

व्यवस्था का प्रतिरूप

मूर्ख के मन में यह विचार आता है , 'मैंने अच्छे कर्म नहीं किए, मैंने लाभप्रद कर्म नहीं किए, मैंने अपने लिए पीड़ा से कोई आश्रय नहीं बनाया, मैंने बुराई की है , मैंने क्रूरता की है, मैंने दुष्टता की है। जो भी ऐसे कर्म करने वालों का गंतव्य हो, मैं भी वहीं जाऊंगा।' (एम. iii, 164-5) वह शोक करता है और विलाप करता है, अपनी छाती पीटता है , रोता है और व्याकुल हो जाता है। जैसे शाम के सूरज में किसी विशाल चट्टानी चोटी की छाया ज़मीन को ढक लेती है, उस पर फैल जाती है और उसे अपने आलिंगन में ले लेती है, ठीक वैसे ही जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति अपनी कुर्सी पर, अपने बिस्तर पर या ज़मीन पर आराम कर रहा होता है, तो उसके द्वारा अतीत में किए गए अच्छे कर्म, शरीर , वाणी और मन के अच्छे आचरण से उसे ढक लेते हैं, उस पर फैल जाते हैं और उसे अपने आलिंगन में ले लेते हैं। तब

बुद्धिमान व्यक्ति के मन में यह विचार आता है , 'मैंने बुराई नहीं की है, मैंने क्रूरता नहीं की है , मैंने दुष्टता नहीं की है, मैंने अच्छाई की है , मैंने लाभप्रद किया है , मैंने अपने लिए पीड़ा का आश्रय बनाया है। जो भी [180] उन लोगों का गंतव्य है जिन्होंने ऐसा कर्म किया है, मैं अपने जाने पर वहीं जाऊँगा ', और वह न तो शोक करता है, न विलाप करता है , न ही छाती पीटकर रोता है और व्याकुल होता है (एम. iii, 171)। [वह जानता है] 'मैंने पुण्य किया है और कोई बुराई नहीं की है। जो लोग बुराई, क्रूरता और दुष्टता से दूर रहकर अच्छे और लाभकारी कार्य करते हैं और कष्टों से मुक्ति पाते हैं, उनका गंतव्य चाहे जो भी हो, मैं मृत्यु के बाद आने वाले जीवन में उनके साथ सहअस्तित्व में रहूंगा। इसलिए उन्हें कोई पश्चाताप नहीं है। भिक्षुओं, मैं कहता हूं कि मृत्यु शुभ है, समय की समाप्ति शुभ है, चाहे स्त्री हो या पुरुष, गृहस्थ हो या गृहस्थ जीवन से विमुख, जिसे कोई पश्चाताप नहीं है ।

यह कार्रवाई है।

913. < भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के दुराचार हैं। वे तीन क्या हैं? देह संबंधी दुराचार, वाणी संबंधी दुराचार और मन संबंधी दुराचार। ये तीन प्रकार के दुराचार > (इति. 54; पे 49)। < भिक्षुओं , अच्छे आचरण के तीन प्रकार हैं। वे तीन क्या हैं? देह संबंधी अच्छा आचरण, वाणी संबंधी अच्छा आचरण और मन संबंधी अच्छा आचरण । ये तीन प्रकार के अच्छे आचरण > (इति. 55; पे 53)।

यह कार्रवाई है।

[पृष्ठ 236]

पथप्रदर्शक

[vii (b)]

914. इसमें क्या पक रहा है?

भिक्षुओं , आपके लिए यह लाभ है, यह आपके लिए बहुत बड़ा लाभ है कि आपने दिव्य जीवन जीने का अवसर पा लिया है। भिक्षुओं, मैंने ऐसे नरक देखे हैं जो संपर्क के छह आधार प्रदान करते हैं । वहाँ आँख से जो भी रूप देखा जाए, केवल अवांछित ही देखा जाता है, वांछित कभी नहीं, केवल अनचाहा ही देखा जाता है, वांछित कभी नहीं, केवल अप्रिय ही देखा जाता है, सुखद कभी नहीं। कान से जो भी ध्वनि सुनी जाए... नाक से जो भी गंध सूँघी जाए ... जीभ से जो भी स्वाद चखा जाए ... शरीर से जो भी स्पर्श किया जाए... मन से जो भी विचार उत्पन्न किया जाए, केवल अवांछित ही देखा जाता है, वांछित कभी नहीं, केवल अनचाहा ही देखा जाता है, वांछित कभी नहीं, केवल अप्रिय ही देखा जाता है, सुखद कभी नहीं। भिक्षुओं, आपके लिए यह लाभ है, आपके लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि आपने दिव्य जीवन जीने का क्षण पा लिया है । भिक्षुओं, मैंने ऐसे स्वर्ग देखे हैं जो संपर्क के छह आधार प्रदान करते हैं। वहाँ आँख से जो भी रूप देखा जाए, केवल इच्छित रूप ही देखा जाए, कभी अनचाहा नहीं; केवल वांछित देखा जाए, कभी अवांछित नहीं; केवल सुखद देखा जाए, कभी अप्रिय नहीं। कान से जो भी ध्वनि सुनी जाए... नाक से जो भी गंध सूँघी जाए... जीभ से जो भी स्वाद चखा जाए... शरीर से जो भी स्पर्श किया जाए... मन से जो भी विचार उत्पन्न हो, केवल इच्छित ही देखा जाए, कभी अनचाहा नहीं; केवल वांछनीय देखा जाए, कभी अवांछनीय नहीं; केवल सुखद देखा जाए, कभी अप्रिय नहीं। 1 भिक्षुओं, आपके लिए यह लाभ है, आपके लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि आपने दिव्य जीवन जीने का अवसर पा लिया है (श्लोक 4, 126)। 2

यह पक रहा है।

915. पूरे साठ हजार साल बीत गए
नरक में परिपक्व हुआ। इसका अंत कब होगा?
इसका कोई अंत नहीं है! अंत कहाँ है?
अंत का कोई संकेत नहीं
यह आपके और मेरे लिए प्रतीत होता है, महोदय;
क्योंकि हमने तब बुराई की थी > (यहूदी iii, 47; पतरस 49)।

यह पक रहा है।

914/1 'नरक* के लिए n. 786/2 देखें.

914/2 इस पैराग्राफ के लिए देखें. पी.ई. 49, पंक्तियाँ 13-14 और 58, पंक्ति 17.

[पृष्ठ 237]

व्यवस्था का प्रतिरूप

[vii (c)]

916. इसमें क्रिया और परिपक्वता क्या है?
जब भी किसी लापरवाह व्यक्ति ने कोई गलती की हो ,
फिर वह जहां भी जाता है, बुरी जगहों पर
उसने जो गलत किया है, उसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ेगा।
जैसे काला कोबरा सांप खुद को जकड़ लेता है > ( )}
सही विचार और गलत विचार
पकने की प्रक्रिया कभी एक जैसी नहीं रही:
गलत धारणा मनुष्य को नरक की ओर ले जाती है।
सही विचार उन्हें स्वर्ग तक ले जाता है > (थाग. 304).
यह क्रिया और परिपक्वता की प्रक्रिया है।

917. भिक्षुओं , किसी भी प्रकार के पुण्य से भयभीत न हों। यह उस सुख का नाम है जिसकी कामना की जाती है , जो प्रिय है और जो सुखद है, [182] अर्थात् 'पुण्य के प्रकार 9 '। लंबे समय तक मुझे ऐसे पुण्य का ज्ञान रहा , जिसका परिपक्व होना वांछित , वांछनीय , प्रिय और सुखद के साथ अनिवार्य था। सात वर्षों तक मैंने अपने हृदय में प्रेममयी भाव बनाए रखा। उसके बाद सात युगों के संसार-संकुचन और संसार-विस्तार के दौरान मैं इस संसार में कभी वापस नहीं आया; क्योंकि युग के संकुचन के साथ, मैं आभासर (प्रवाहित-दीप्ति) [उच्च देवत्व] के लोक में चला गया; और युग के विस्तार के साथ , मैं [अगले निम्न लोक में] एक उच्च देवत्व के खाली महल में पुनः प्रकट हुआ। वहाँ मैं देवत्व, उच्च देवत्व, पारलौकिक, अचूक दृष्टि वाला, प्रभुत्व का स्वामी था। 1. फिर छत्तीस बार मैं देवताओं का शासक सक्का बना [इंद्रिय सुख के दूसरे स्वर्ग में]। और सैकड़ों बार मैं एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट बना? धर्म के आदर्शों वाला एक न्यायसंगत सम्राट, पृथ्वी के चारों कोनों का विजेता, स्थिर प्रांतों वाला और सात रत्नों का स्वामी। स्थानीय राजत्व की बात करने की क्या आवश्यकता है? मेरे मन में यह विचार आया [कि] 'यह मेरे किस कर्म का फल है, किस कर्म के फलस्वरूप से मुझे इतनी विशाल सफलता और शक्ति प्राप्त हुई है?' [और उत्तर] मेरे मन में आया 'यह मेरे तीन प्रकार के कर्मों का फल है, तीन प्रकार के कर्मों के फलस्वरूप से मुझे इतनी विशाल सफलता और शक्ति प्राप्त हुई है।'

916/1 पाठ 'सयम' है। इस उपमा का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि बुरे कर्म स्वयं को पीड़ा पहुँचाते हैं, जैसे कि एक कोबरा स्वयं को काटता है।

917/1 ब्रह्मा ('उच्च देवत्व') के इस विवरण के लिए एम. सुत्त 49 और डी. i, 221 देखें।

917/2 'पहिया घुमाने वाले सम्राट' (चक्कवत्ती) के लिए एम. सुत्त 129 देखें ।

[पृष्ठ 238]

पथप्रदर्शक

शक्ति: यह देने के कारण है , यह [स्वयं] को वश में करने के कारण है, और यह संयम के कारण है'> (इति. 14f.).

यहां, 'देना', 'वश में करना' और 'संयम रखना' क्रिया हैं, जबकि परिपक्वता, जिसकी स्थिति वह है जो अनुभव के साथ सह-अनिवार्य थी, परिपक्वता है।

918. इसी तरह कुला-कम्माविभंगा-सुत्त (एम. सुत्त 135) को छात्र सुभा टोडेयपुत्त को पढ़ाए गए उद्धरण के रूप में उद्धृत किया जाना चाहिए।

इसमें, वे विचार जो अल्प जीवन और दीर्घ जीवन, अधिक कष्ट और अल्प कष्ट, अल्प प्रभाव और अधिक प्रभाव, कुरूप रूप और सुंदर रूप, निम्न जन्म और उच्च जन्म, अल्प संपत्ति और अधिक संपत्ति, बुद्धि की कमी और बुद्धि की उपलब्धता की ओर ले जाते हैं, [183] क्रिया हैं, जबकि अल्प जीवन और दीर्घ जीवन, . . . बुद्धि की कमी और बुद्धि की उपलब्धता, इसमें परिपक्वता हैं। 1

यह क्रिया और परिपक्वता की प्रक्रिया है।

[viii (a)]

919. इसमें लाभदायक क्या है?
जो अपनी वाणी पर नियंत्रण रखता है , वह मन से संयमित रहता है ।
संस्था के साधनों से कोई अलाभकारी कार्य नहीं करता:
इस त्रिविध कार्यप्रणाली को कौन शुद्ध करता है ?
ऋषियों द्वारा प्रकट किए गए मार्ग पर विजय प्राप्त करेंगे > (ध. 281; पे 70)।
यह लाभदायक है।

920. < जिसने अब कोई और कुकर्म नहीं किया है
शरीर से, वाणी से या मन से ,
जो तिहरे मोड में प्रतिबंधित है ,
' मैं उसे ही दिव्य कहता हूँ > (ध. 391).
यह लाभदायक है।

921. < भिक्षुओं, लाभ के ये तीन मूल हैं। वे तीन क्या हैं? लाभ के मूल के रूप में लोभ रहित होना , लाभ के मूल के रूप में घृणा रहित होना और लाभ के मूल के रूप में भ्रम रहित होना। ये लाभ के तीन मूल हैं > (ए. आई, 203)।
यह लाभदायक है।

918/1 क्रिया का परिपक्व होना भावना के कारणों में से केवल एक है- देखें एस. iv, 230-1.

[पृष्ठ 239]

व्यवस्था का प्रतिरूप

922. < भिक्षुओं , विज्ञान लाभदायक विचारों की पूर्णता का अग्रदूत है, जिसके बाद विवेक और लज्जा आती है > (इति. 34)।
यह लाभदायक है।

[viii (b)]

923. इसमें, अलाभकारी क्या है?
जो व्यक्ति दुराचार में अतिप्रवण हो,
जैसे मालुवा की लताएँ साला के वृक्षों का गला घोंट देती हैं,
वह इस तरह से व्यवहार करता है जिससे वह खुद को
ठीक वैसे ही जैसे उसका शत्रु चाहेगा > (ध. 162).
यह लाभहीन है।

924. < स्वयं द्वारा किया गया, स्वयं उत्पन्न हुआ पाप,
स्वयं के कारण ही इसका वास्तविक अस्तित्व है,
उन्हें इतनी मूर्खता से पीसता है [कि ऐसा करता है]।
जैसे अडिग पत्थरीले रत्न को करता है > (Dh. 161).
यह लाभहीन है।

925. [184] <लाभहीन , जो लाभ से वंचित हैं
कर्म के दस गुना मार्ग को पूरा करते हुए,
निंदनीय हैं, देवता,
जैसे मूर्ख जो नरक में परिपक्व होते हैं > ( ).
यह लाभहीन है।

926. < भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के अपितु हैं। वे तीन कौन से हैं? वे हैं लोभ, घृणा और मोह। ये तीन अपितु हैं > (ए. आई, 201)।

यह लाभहीन है।

[viii (c)]

927. इसमें लाभदायक और अलाभदायक क्या है?
जैसा बोया गया है
अतः [बाद में] फसल काटी जाती है:
और भलाई करने वाले को भी भलाई ही मिलती है।
और बुराई करने वाले के लिए बुराई > (एस. i, 227; cf. पे 46).

यहां, 'अच्छा करने वाले को अच्छा ही मिलता है' ये शब्द लाभदायक हैं, जबकि 'बुरा करने वाले को बुरा ही मिलता है' ये शब्द अलाभदायक हैं।

यह लाभदायक और अलाभदायक दोनों है।

[पृष्ठ 240]

पथप्रदर्शक

928. < कर्मों से ही सुंदरता आती है
कि मनुष्य स्वर्ग की ओर अग्रसर होते हैं,
और उनके घृणित कृत्यों के कारण ,
उन राज्यों में जहां कोई राहत नहीं है।
लेकिन सभी कार्यों के समाप्त होने के साथ
हृदय मुक्त हो गया है;
जैसे दीपक का सारा ईंधन खत्म हो गया हो
वे विलुप्ति तक पहुँचते हैं > ( ).

यहां, 'सुंदर कर्मों से ही मनुष्य स्वर्ग की ओर अग्रसर होता है' ये शब्द लाभदायक हैं, जबकि 'और उनके कुरूप कर्मों के कारण, ऐसी अवस्थाओं में पहुँच जाते हैं जहाँ कोई शांति नहीं होती' ये शब्द अनुपयोगी हैं।

यह लाभदायक और अलाभदायक दोनों है।

[ix (a)]

929. इसमें, क्या सहमति हुई है?
और जैसे ही मधुमक्खी फूल के पास आती है
और जल्द ही भोजन लेकर उड़ जाता है ।
रंग और सुगंध को बरकरार रखते हुए,
तो शांत व्यक्ति शहर की ओर जाता है > (ध. 49)।

यही सहमति बनी है।

930. [185] < भिक्षुओं, भिक्षुओं द्वारा किए जाने वाले ये तीन [कार्य] हैं। वे तीन क्या हैं? यहाँ (i) एक भिक्षु पतिमोक्ख नियम के संयम से बंधा रहता है, आचरण और साधना में परिपूर्ण होता है, और थोड़ी सी भी गलती में भय देखकर, वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करता है और उनमें अभ्यास करता है; फिर, चूंकि उसका शारीरिक, मौखिक और मानसिक कर्म लाभप्रद है, उसने अपनी आजीविका को शुद्ध कर लिया है, (ii) फिर उसने ऊर्जा को प्रेरित किया है, दृढ़ता और लगन से दृढ़ है, लाभहीन विचारों को त्यागने और लाभप्रद विचारों को बनाए रखने और सत्यापित करने के कार्य से कभी पीछे नहीं हटता, (iii) और फिर उसे समझ प्राप्त होती है , उसके पास ऐसी समझ होती है जो उदय और अपाप तक फैली होती है; वह महान और मर्मस्पर्शी होती है, और दुख के पूर्ण अंत तक फैली होती है। ये, भिक्षुओं, भिक्षुओं द्वारा किए जाने वाले तीन [कार्य] हैं > (; cf.Pe 57)।

यही सहमति बनी है।

931. भिक्षुओं , गृहस्थ जीवन से विमुख हुए व्यक्ति को इन दस विचारों की निरंतर समीक्षा करनी चाहिए। वे दस विचार कौन से हैं? ' मैं जातिविहीन अवस्था में आ गया हूँ ' यह विचार गृहस्थ जीवन से विमुख हुए व्यक्ति को निरंतर समीक्षा के लिए आवश्यक है। ['मेरी आजीविका दूसरों से जुड़ी हुई है' ... मेरा एक अलग (विशेष) है]

[पृष्ठ 241]
व्यवस्था का प्रतिरूप
व्यवहार का तरीका' ... 'क्या मेरा मन मेरे सद्गुणों के कारण मुझे धिक्कारता है?' ... 'क्या दिव्य जीवन में मेरे बुद्धिमान साथी, मेरा विचार करके, मेरे सद्गुणों के कारण मुझे धिक्कारते हैं? '... 'मुझे उन सभी से अलगाव और जुदाई होगी जो मुझे प्रिय और प्यारे हैं' ... ' मैं कर्म का स्वामी हूँ, कर्म का उत्तराधिकारी हूँ, कर्म की कोख हूँ, कर्म का (वंशज) हूँ, कर्म का घर हूँ, मैं जो भी कर्म करता हूँ, चाहे अच्छा हो या बुरा, मुझे उसका उत्तराधिकार मिलेगा '... 'क्या रातों और दिनों का बीत जाना कैसा रहा है?'... 'क्या मुझे खाली घर में आनंद आता है ?'... क्या मैंने कोई ऐसा अलौकिक विचार प्रस्तुत किया है जो श्रेष्ठजनों के जानने और देखने योग्य हो, ताकि यदि मेरे अंतिम क्षणों में मेरे दिव्य जीवन के साथियों द्वारा मुझसे प्रश्न पूछे जाएं, तो मेरा प्रयास व्यर्थ न हो। (यह एक ऐसा विचार है जिसकी गृहस्थ जीवन से बाहर निकल चुके व्यक्ति द्वारा निरंतर समीक्षा की जानी चाहिए।) गृहस्थ जीवन से बाहर निकल चुके व्यक्ति द्वारा इन दस विचारों की निरंतर समीक्षा की जानी चाहिए (ए.वी. , 87-8)।
यही सहमति बनी है।
932. < भिक्षुओं, ये तीन कार्य करने हैं। वे तीन क्या हैं? वे हैं शरीर द्वारा अच्छा आचरण, वाणी द्वारा अच्छा आचरण और मन द्वारा अच्छा आचरण। ये तीन कार्य करने हैं > ( ).
यही सहमति बनी है।
[ix (b)]
933. इसमें, अस्वीकृत क्या है?
[जब यह कहा गया]
किसी के लिए अपने बच्चे के समान कोई प्रियजन नहीं होता ।
किसी की गाय के बराबर कोई धन नहीं होता।
सूर्य के समान कोई प्रकाश नहीं है।
समुद्र निःसंदेह सभी जल निकायों में सबसे महान है ।
भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया
अपने समान कोई प्रियजन नहीं होता ।
अनाज के बराबर कोई धन नहीं होता।
कोई भी प्रकाश समझ के बराबर नहीं हो सकता।
बारिश निश्चित रूप से पानी में सबसे बड़ी है > (एस. i, 6; पे 54, 57)।
यहां पहले श्लोक को दूसरे श्लोक द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।
934. [186] < भिक्षुओं, ये तीन [कार्य] नहीं किए जाने चाहिए। वे तीन क्या हैं? वे हैं शरीर द्वारा दुराचार, वाणी द्वारा दुराचार और मन द्वारा दुराचार। ये तीन कार्य नहीं किए जाने चाहिए > (; पे 57)।
यह अस्वीकृत है।

[पृष्ठ 242]
पथप्रदर्शक
[ix (c)]
935. इसमें सहमत और अस्वीकृत क्या है?
यहां भीड़ किस बात से डर रही है ?

एक ऐसा रास्ता जिसके कई आधार उजागर हुए हैं—मैं पूछता हूँ,
हे गौतम, व्यापक समझ वाले !
वह कहाँ खड़ा है जो परलोक से नहीं डरता?
जब वाणी और मन सही ढंग से व्यवस्थित हो जाएं,
जब शारीरिक रूप से कोई बुराई न की जाए,
फिर [यहाँ तक कि] एक समृद्ध घर में रहते हुए भी,
एक ऐसा व्यक्ति जो चार विचारों पर अपना रुख अपनाता है —
जो निष्ठावान, सौम्य, उदार और बुद्धिमान हो —
यहाँ वह खड़ा है जो दूसरे लोक से नहीं डरता > (एस. आई, 42एफ.).

यहाँ, जब कहा जाता है 'जब वाणी और मन सही ढंग से व्यवस्थित हो जाएँ', तो यह सहमति है। जब कहा जाता है 'जब शारीरिक रूप से कोई बुराई न की जाए', तो यह अस्वीकृति है। जब कहा जाता है 'तब [यहाँ तक कि] एक समृद्ध घर में रहने वाला व्यक्ति जो चार विचारों पर दृढ़ रहता है—जो वफादार, विनम्र, उदार और बुद्धिमान है—यहाँ वह खड़ा है जो परलोक से नहीं डरता', तो यह सहमति है।

यह सहमति और अस्वीकृति का मामला है।

936. किसी भी प्रकार की बुराई न करना ,
लाभदायक कौशल को परिपूर्ण करना,
और अपने हृदय को शुद्ध करना:
यह बुद्धों का विधान है (§238)।

यहां, जब कहा जाता है 'किसी भी प्रकार का बुरा कार्य न करना', तो इसका अर्थ है अस्वीकृति। जब कहा जाता है 'लाभदायक कौशल को परिपूर्ण करना', तो इसका अर्थ है सहमति।

यह सहमति और अस्वीकृति का मामला है।

937. हे देवताओं के स्वामी, शारीरिक व्यवहार दो प्रकार का होता है, मैं कहता हूँ , एक जिसे संवारा जा सकता है और दूसरा जिसे संवारा नहीं जा सकता। और मौखिक व्यवहार [187] भी दो प्रकार का होता है , मैं कहता हूँ, एक जिसे संवारा जा सकता है और दूसरा जिसे संवारा नहीं जा सकता। और मानसिक व्यवहार भी दो प्रकार का होता है , मैं कहता हूँ, एक जिसे संवारा जा सकता है और दूसरा जिसे संवारा नहीं जा सकता। और खोज भी दो प्रकार की होती है, मैं कहता हूँ, एक जिसे संवारा जा सकता है और दूसरा जिसे संवारा नहीं जा सकता। 'शारीरिक व्यवहार दो प्रकार का होता है, मैं कहता हूँ, एक जिसे संवारा जा सकता है और दूसरा जिसे संवारा नहीं जा सकता ': ऐसा कहा गया था; और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? एक प्रकार का शारीरिक व्यवहार ऐसा होता है कि जब मनुष्य उसे संवारा जाता है तो उसमें अनुत्पादक विचार बढ़ते हैं और लाभकारी विचार घटते हैं । ऐसे शारीरिक व्यवहार को संवारा नहीं जाना चाहिए। इसमें, जब वह किसी भी

[पृष्ठ 243]

व्यवस्था का प्रतिरूप

शारीरिक व्यवहार के संदर्भ में यह कहा गया है कि ' यह शारीरिक व्यवहार ऐसा है कि जब मैं इसका अभ्यास करता हूँ तो अनुत्पादक विचार कम हो जाते हैं और लाभकारी विचार बढ़ जाते हैं '। इस प्रकार के शारीरिक व्यवहार का अभ्यास करना चाहिए। इसी संदर्भ में यह कहा गया है कि ' शारीरिक व्यवहार दो प्रकार का होता है, एक जिसका अभ्यास करना चाहिए और दूसरा जिसका अभ्यास नहीं करना चाहिए'। ' मौखिक व्यवहार' .... ' मानसिक व्यवहार' ... ' खोज दो प्रकार की होती है, एक जिसका अभ्यास करना चाहिए और दूसरा जिसका अभ्यास नहीं करना चाहिए'; और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? एक प्रकार की खोज ऐसी होती है कि जब कोई व्यक्ति इसका अभ्यास करता है तो अनुत्पादक विचार बढ़ जाते हैं और लाभकारी विचार कम हो जाते हैं। ऐसी खोज का अभ्यास नहीं करना चाहिए। यहाँ, जब व्यक्ति किसी ऐसी खोज के बारे में जानता है कि ' यह खोज ऐसी है कि जब मैं इसका अभ्यास करता हूँ तो अनुत्पादक विचार कम हो जाते हैं और लाभकारी विचार बढ़ जाते हैं', तो ऐसी खोज का अभ्यास करना चाहिए। इसलिए इसी संदर्भ में कहा गया था कि ' खोज दो प्रकार की होती है, मैं कहता हूँ, खेती की जानी चाहिए और खेती नहीं की जानी चाहिए' > ( ) (cf. एम. iii, 45ff.).

यहां, जब यह कहा जाता है कि 4 की खेती की जानी है 5, तो इसका अर्थ है कि सहमति हो गई है। और जब यह कहा जाता है कि 4 की खेती नहीं की जानी है 5, तो इसका अर्थ है कि इनकार हो गया है।
यह सहमति और अस्वीकृति का मामला है।
[एक्स]
938. [188] इसमें, स्तुतिगान क्या है?
अष्टांगिक मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।
ये चारों अवस्थाएँ सर्वश्रेष्ठ सत्य हैं।
वासना का लुप्त होना सबसे अच्छा विचार है।
और एक जिसकी दृष्टि द्विपदों में सर्वश्रेष्ठ है > (Dh. 273; Pe 56).
यह शोक संदेश है।
939. भिक्षुओं, ये तीन प्रमुख बातें हैं। वे तीन क्या हैं? जहाँ तक प्राणियों का संबंध है, चाहे वे निराकार हों, दो पैरों वाले हों, चार पैरों वाले हों या अनेक पैरों वाले हों, सजीव हों या निराकार हों, बोधशील हों या अबोधशील हों या न बोधशील हों, उनमें पूर्ण पुरुष को सर्वोपरि, श्रेष्ठ और सर्वोच्च माना जाता है, अर्थात् सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध। जहाँ तक सत्य विचारों का वर्णन है, चाहे वे निर्धारित हों या अनिर्धारित, उनमें से कामवासना का नाश होना सर्वोपरि, श्रेष्ठ और सर्वोच्च माना जाता है, अर्थात् अहंकार का नाश होना, प्यास का नाश होना, निर्भरता से मुक्ति, चक्र का अंत, लालसा का क्षीण होना, नाश होना, समाप्ति, विलुप्त होना। जहाँ तक समुदायों का, समाजों का, एकत्रित जनसमूहों का वर्णन है, उनमें से पूर्ण पुरुष के श्रोताओं का समुदाय सर्वोपरि है।

[पृष्ठ 244]
पथप्रदर्शक
सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, सर्वोच्च माना जाता है , अर्थात् परिपक्व पुरुषों के चार जोड़े , परिपक्व व्यक्तियों के आठ प्रकार... (देखें §298) ... दुनिया के लिए योग्यता > (तुलना करें इति. 87-8; तुलना करें पे 56)।
940. < एक गुरु जिसने सभी लोकों को पार किया,
लाभ के पक्ष में एक सच्चा विचार,
एक शेर-मानव का समाज:
' ये तीन सबसे विशिष्ट हैं> ( )।
यह समुदाय संतों का एक समूह है।
उस गौरवशाली आदर्श ने अपने ज्ञाता का सम्मान किया।
मनुष्य को वश में करने वाला गौरवशाली, पूर्ण दृष्टि से परिपूर्ण:
यह दुनिया से परे त्रिमूर्ति है> ( )।
< कहीं भी अद्वितीय स्वामी,
एक ऐसा आदर्श जिसमें अस्तित्व की कोई मूलभूत तत्व नहीं है।
एक गौरवशाली समुदाय को गौरव प्राप्त हुआ
यह त्रिमूर्ति सबसे विशिष्ट है> ( )।
विजेता का नाम सचमुच सुरक्षित है
सत्य को अपना आदर्श मानने वाला सर्वव्यापी,
उनके सिवा कोई और नहीं । उनकी सहभागिता
बुद्धिमान लोग सदा श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर करते हैं।
[189] यह दुनिया से परे त्रिमूर्ति है > ( )।
जन्म-जन्म की सारी पीड़ा को समझने वाले द्रष्टा ने
एकल लक्ष्य का मार्ग, कल्याण के लिए करुणावान ,
और इसी मार्ग से होकर वे लोग बाढ़ पार करते हैं।

अतीत में पार कर गया और भविष्य में भी पार करेगा> (एस.वी, 108)।
और वह ऐसा ही था, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ।
जिन प्राणियों की पूजा की जाती है, पवित्रता की आशा में > ( )।
यह शोक संदेश है।

*

[बहस]

941. इसमें, (i (a)) संसारों से संबंधित धागे के प्रकार [दूसरे समूह में] को दो प्रकार के धागे [पहले समूह में] द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् (1) भ्रष्टाचार से निपटने वाले और (2) नैतिकता से निपटने वाले।

940/1 ' निरुपदहा - अस्तित्व की कोई अनिवार्यता के साथ': किसी भी रूप में पीईडी में नहीं। नेत्तिया : 4 रागपरिलहदिहि निरूपदाहो ' (पृ. 226)। यदि एफ.एम. धा , यह शब्द निरुपाधि का ही एक रूप है, लेकिन शायद परिलाहा से जुड़ा है।

940/2 'एकायना - एक ही उद्देश्य का' (शाब्दिक रूप से 'एक ही दिशा में जाना') = एकम मगगम (नेत्तिया , 226)। अक्सर इसे 'एकमात्र मार्ग' के रूप में अनुवादित किया जाता है, लेकिन एम. i, 55 के संदर्भ के अलावा, एम. i, 74 के संदर्भ पर भी विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि यह अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से सामने लाता है।

[पृष्ठ 245]

व्यवस्था का प्रतिरूप

(i (b)) संसारों से विच्छेदित धागे के प्रकार को तीन प्रकार के धागे द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् [(3) प्रवेश से संबंधित उपविभाजित] (3a) देखने से संबंधित (पे 39) और (3b) अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित (पे 39), और (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित।

(i (c)) संसारों से संबंधित और संसारों से पृथक धागों के प्रकार को , संसारों से संबंधित धागों के संबंध में, उस शब्द के उपयुक्त किसी भी प्रकार के धागे द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् (1) भ्रष्टाचार से संबंधित या (2) नैतिकता से संबंधित , और संसारों से पृथक धागों के संबंध में, इसे उस शब्द के उपयुक्त किसी भी प्रकार के धागे द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् (3a) दृष्टि से संबंधित , (3b) अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित, या (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित। 1

942. (2) नैतिकता से संबंधित सूत्र का प्रकार भ्रष्टाचार से संबंधित सूत्र के प्रकार का प्रतिकार करने के लिए है । (3a) दृष्टि से संबंधित सूत्र का प्रकार नैतिकता से संबंधित सूत्र के प्रकार का प्रतिकार करने के लिए है । (3b) अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित सूत्र का प्रकार दृष्टि से संबंधित सूत्र के प्रकार का त्याग करने के लिए है । (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित सूत्र का प्रकार अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित सूत्र के प्रकार का त्याग करने के लिए है । (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित सूत्र का उद्देश्य यहाँ और अभी सुखद निवास भी है।

943. (i (b)) संसारों से वियोगित धागे का प्रकार जो (ii (a)) प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है, उसे [निम्नलिखित] छत्तीस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, और उन्हें तीन प्रकार के धागों में खोजा जाना है, अर्थात् (3a) जो देखने से संबंधित है, (3b) जो अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित है , और (4) जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है ।

944. इसमें, (3क) देखने से संबंधित धागे के प्रकार को पाँच प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् एकल-बीज, कुल-से-कुल, अधिकतम सात, आस्था द्वारा अनुयायी और विचारों द्वारा अनुयायी। 1 देखने से संबंधित धागे के प्रकार को इन पाँच प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें पतरस 42)।

945. (3b) अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित धागे का प्रकार यह हो सकता है

941/1 'और इसी तरह शेष त्रय को पहले समूहीकरण में चार बुनियादी प्रकारों के साथ जोड़ा जा सकता है' (नेटी ए, 227)।

944/1 धारा प्रवेशकर्ता के तीन प्रकार ए. i, 233 पर दिए गए हैं, अन्य दो एस. iii, 225 और एम. i, 479 पर दिए गए हैं; लेकिन पुग. 15-16 भी देखें , जहाँ आस्था द्वारा अनुयायी और विचारों द्वारा अनुयायी को केवल धारा-प्रवेश मार्ग पर लागू किया गया है, न कि उसके फल पर। तुलना करें पे 42। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ नेट्टी द्वारा दस्साना ('देखना') को धारा प्रवेश के मार्ग और फल दोनों पर लागू करने से एक अंतर है ।

[पृष्ठ 246]

गाइड

बारह प्रकार के व्यक्तियों द्वारा इसे प्रदर्शित किया गया है, अर्थात् एक बार लौटकर आने वाले व्यक्ति द्वारा, एक बार लौटकर आने वाले व्यक्ति द्वारा, न लौटकर आने वाले व्यक्ति द्वारा, न लौटकर आने वाले व्यक्ति द्वारा, [190] अपने अगले जन्म में शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा, अपने अगले जन्म में विलंबित होने वाले व्यक्ति द्वारा, बिना किसी प्रेरणा के निर्वाण प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा, प्रेरणा सहित निर्वाण प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा, वरिष्ठ देवताओं की ओर अग्रसर होने वाले व्यक्ति द्वारा, आस्था द्वारा मुक्त व्यक्ति द्वारा, सही दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति द्वारा, और शारीरिक साक्षी द्वारा। अस्तित्व में बने रहने से संबंधित सूत्र के प्रकार को इन बारह प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें पे 42)।

946. (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित सूत्र के प्रकार को नौ प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् विश्वास द्वारा मुक्त व्यक्ति, समझ द्वारा मुक्त व्यक्ति, शून्यता द्वारा मुक्त व्यक्ति , चिह्नहीनता द्वारा मुक्त व्यक्ति, स्वभावहीनता द्वारा मुक्त व्यक्ति, दोनों दिशाओं से मुक्त व्यक्ति, शांत मन वाला व्यक्ति, प्रबुद्ध संन्यासी व्यक्ति और पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति। सिद्ध पुरुष से संबंधित सूत्र के प्रकार को इन नौ प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें पतरस 30-32, 42)।

इस प्रकार प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त किए गए अलौकिक प्रकार के सूत्र को इन छत्तीस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

947. (i (a)) संसारों (ii (a)) से संबंधित धागे का प्रकार व्यक्त किया गया

945/1 इनमें से पहले 4 के लिए, पुग. 17 देखें; इनमें क्रमशः प्रत्येक जोड़ी मामलों में पथ और फल हैं।

945/2 5 प्रकार के गैर-वापसीकर्ता के लिए देखें ए. i, 233; पुग. 16-17.

945/3 इन 3 के लिए एम. आई, 478 देखें। यहाँ उनका समावेश पे में उनकी पूर्ण चूक को दूर करता है ।

946 /I Cf. पुग. 14-15, भी एम. i, 478; 'विश्वास द्वारा मुक्त' पिटकों में अरहंतत्व के फल तक विस्तारित नहीं है, लेकिन वि. 659 में वह और 'शरीर-साक्ष्य' दोनों हैं।

946/2 'पन्नविमुत्त- समझ से मुक्ति': उदाहरण देखें, ए. iv, 452-3,

[1] i, 191; ii, 121-7;एम.i, 477-8;डी. ii, 70;पग14.

946/3 §528ff देखें मुक्ति के 3 द्वारों के लिए।

946/4 देखें एम.आई. , 477.

946/5 भजन संहिता 1, 101 देखें । यह वह है जो अरहंतत्व और अपने मृत्यु-क्षण को एक साथ प्राप्त करता है।

946/6 संन्यासी प्रबुद्ध (पच्चेक-बुद्ध) वह है जो पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति और उसके घोषित उपदेश की अनुपस्थिति में स्वयं चार सत्यों का ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रकार दुख का अंत करता है; परन्तु वह अपनी खोज को मौखिक रूप से किसी और को संप्रेषित करने में असमर्थ है।

[पृष्ठ 247]

व्यवस्था का प्रतिरूप

प्राणियों के संदर्भ में, इसे निम्नलिखित उन्नीस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है, और इन्हें स्वभाव के प्रकारों में खोजा जाना चाहिए। कुछ कामुक स्वभाव के होते हैं, कुछ घृणा स्वभाव के होते हैं, कुछ भ्रमित स्वभाव के होते हैं; कुछ कामुक स्वभाव और घृणा स्वभाव के होते हैं, कुछ कामुक स्वभाव और भ्रमित स्वभाव के होते हैं, कुछ घृणा स्वभाव और भ्रमित स्वभाव के होते हैं, कुछ कामुक स्वभाव, घृणा स्वभाव और भ्रमित स्वभाव के होते हैं (तुलना करें पतरस 141 और 144-5)।

[फिर हैं:] एक वासना से ग्रस्त स्वभाव का, एक वासना से ग्रस्त घृणा से ग्रस्त स्वभाव का, एक वासना से ग्रस्त भ्रमित स्वभाव का, और एक वासना, घृणा और भ्रमित स्वभाव का, तीनों ही वासना से ग्रस्त। [और हैं:] एक घृणा से ग्रस्त स्वभाव का, एक घृणा से ग्रस्त भ्रमित स्वभाव का, एक वासना से ग्रस्त घृणा से ग्रस्त, और एक वासना, घृणा और भ्रमित स्वभाव का, तीनों ही वासना से ग्रस्त। [और हैं:] एक

भ्रम से ग्रस्त स्वभाव का, एक भ्रम से ग्रस्त वासना से ग्रस्त, एक भ्रम से ग्रस्त घृणा से ग्रस्त, और एक वासना, घृणा और भ्रमित स्वभाव का, तीनों ही वासना से ग्रस्त। प्राणियों के संदर्भ में व्यक्त की गई दुनियाओं से संबंधित धागे के प्रकार को इन उन्नीस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

948. (2) नैतिकता से संबंधित सूत्र के प्रकार को गुणी व्यक्तियों के प्रकारों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। ये [191] गुणी व्यक्तियों के पाँच प्रकार हैं, अर्थात् [वे व्यक्ति जिनमें निम्नलिखित विचार होते हैं:] 1. स्वाभाविक सद्गुण, कर्म के रूप में सद्गुण, विवेक (हृदय) का विश्वास, शांति, अंतर्दृष्टि। नैतिकता से संबंधित सूत्र के प्रकार को इन पाँच प्रकार के व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

949. इन पाँच विचारों के माध्यम से, (1 (बी)) संसारों से अलग हुए धागे के प्रकार को तीन प्रकार के धागे द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् (3ए) जो देखने से संबंधित है , (3बी) जो अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित है , और (4) जो सिद्ध पुरुष से संबंधित है ।

950. (i (c)) जो संसारों से संबंधित है और संसारों से पृथक है

948/1 इस वाक्य का व्याकरण कुछ अजीब है: (नपुंसक) पकातिसिलम , आदि, (पुल्लिंग) पुग्गला नहीं हैं ।

[पृष्ठ 248]

पथप्रदर्शक

(ii (ग)) प्राणियों के संदर्भ में और विचारों के संदर्भ में व्यक्त किया जा सकता है, दोनों तरीकों से प्रदर्शित किया जा सकता है।

951. (iii (a)) ज्ञान को समझ द्वारा, और समझ की क्षमता, समझ की शक्ति, उच्च समझ में प्रशिक्षण, विचारों की जांच, ज्ञानोदय कारक, सही दृष्टिकोण, निर्णय, निर्णय, किसी विचार के बारे में ज्ञान, किसी निष्कर्ष के बारे में ज्ञान, समाप्ति के बारे में ज्ञान, गैर-उत्पत्ति के बारे में ज्ञान, मैं-अंततः-जानूँगा-अभी-तक-अंततः-ज्ञात-को-जानूँगा क्षमता, अंतिम-ज्ञान-की-क्रिया क्षमता, अंतिम-ज्ञाता क्षमता, दृष्टि, (आँख), विज्ञान, खोज, व्यापकता, बुद्धि (cf. §294) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है; या इसे समझ के लिए उपयुक्त किसी भी पदनाम द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

952. (iii (b)) जानने योग्य को भूतकाल, भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न, स्वयं में और बाह्य, निम्न और उच्च, दूर और निकट, निर्धारित और अनिर्धारित, लाभदायक, अलाभदायक और अघोषित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है; या संक्षेप में [स्वयं में छह आधारों के] छह वस्तुओं द्वारा।

953. (iii (c)) ज्ञान और जानने योग्य दोनों को सिद्ध किया जा सकता है। और वह समझ जिसे [अगले ज्ञान का] विषय बनाया जाता है, वह जानने योग्य है; और वह सब कुछ, चाहे वह स्वयं में हो या बाह्य, जिसे [ज्ञान का] विषय बनाया जाता है , वह जानने योग्य है , और वह सब कुछ जिसे निर्धारित और अनिर्धारित के रूप में सिद्ध किया जा सकता है।

954. (iv (a)) देखना और (iv (b)) अस्तित्व में रखना , (v (a)) हमारा अपना कथन और (v (b)) किसी और का कथन , (vi (a)) उत्तर देने योग्य और (vi (b)) उत्तर न देने योग्य, (vii (a)) क्रिया और (vii (b)) परिपक्वता, और (c) प्रत्येक उदाहरण में दोहरा रूप, धागे में इसके प्रदर्शन को देखकर उचित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है; या भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए किसी भी अन्य कथन को धागे में इसके प्रदर्शन को देखकर प्रदर्शित किया जा सकता है (cf. Pe 42)।

955. कारण दो प्रकार का होता है: क्रिया और दोष। दोष मूल कारण हैं।

956. [192] इसमें, अशुद्धियों को [केवल] (1) भ्रष्टाचार से संबंधित धागे के प्रकार द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है । उत्पत्ति को (1) भ्रष्टाचार से संबंधित धागे के प्रकार और (2) नैतिकता से संबंधित धागे के प्रकार द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है ।

957. इसमें (viii (a)) लाभप्रद को चार प्रकार के धागों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है, अर्थात् (2) नैतिकता से संबंधित, (3a) देखने से संबंधित , (3b) अस्तित्व में बनाए रखने से संबंधित, और (4) सिद्ध पुरुष से संबंधित।

[पृष्ठ 249]

व्यवस्था का प्रतिरूप

958. (viii (b)) अलाभकारी को (1) भ्रष्टाचार से निपटने वाले थ्रेड के प्रकार द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है ।

959. (viii (c)) लाभदायक और अलाभदायक दोनों को [जैसा उपयुक्त हो] प्रदर्शित किया जा सकता है।

960. (9 (क)) सहमत को भगवान बुद्ध द्वारा सहमत बातों से सिद्ध किया जा सकता है, जो पाँच प्रकार की हैं, अर्थात् संयम, त्याग, धारण, सत्यापन, और जो [ग्रंथों में स्पष्ट रूप से] अनुमेय है और जो उसके अनुरूप है। विभिन्न लोकों में [साधारण मनुष्य के लोक से शुरू होकर] जो कुछ भी पाया जाता है, उसे अनुमेय और उसके अनुरूप बातों से सिद्ध किया जा सकता है। 1

961. (ix (b)) भगवान बुद्ध द्वारा अस्वीकार की गई बात को अस्वीकृति के कारण से सिद्ध किया जा सकता है।

962. (ix (c)) सहमत और अस्वीकृत को दोनों द्वारा [जैसा उपयुक्त हो] प्रदर्शित किया जा सकता है।

963. (x) प्रशंसा को स्तुति द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। इसे पाँच प्रकार से समझा जाना चाहिए, अर्थात् भगवान बुद्ध की प्रशंसा, सच्चे विचार की प्रशंसा, श्रेष्ठ समुदाय की प्रशंसा, श्रेष्ठ विचारों के प्रशिक्षण की प्रशंसा और सांसारिक गुणों में सफलता की प्रशंसा। इस प्रकार प्रशंसा को सिद्ध किया जा सकता है।

964. गुणों के तल को नौ पदों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है और दोषों के तल को नौ पदों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। अतः ये पद अठारह हैं: नौ लाभकारी पद और नौ लाभकारी पद, जैसा कि [पहले] कहा गया था, 'अठारह मूल-पद: वे कहाँ देखे जा सकते हैं? व्यवस्था के प्रतिरूप में' (§759)।

965. इसीलिए पूज्य महाकच्चना ने कहा:

'लाभ पक्ष में नौ शर्तों के साथ'
और गैर-लाभकारी संस्थाओं की तरफ से नौ पद।
व्याख्या करने पर, ये मूल-पद [इस प्रकार] आते हैं
[कुल मिलाकर] अठारह पदों की संख्या तक' (§4 अंत)।

इस व्यवस्था का स्वरूप समाप्त हो गया है।

960/1 नेटीए के अनुसार , 'अनुमत' (कप्पिया) वह है जो ग्रंथों में स्पष्ट रूप से कहा गया है, जबकि 'उसके अनुरूप' (अनुलोमा) वह है जो प्राधिकरण के प्रधान अपीलों (§120ff.) के तहत वर्णित तरीके से उसके साथ संगत है।

पथप्रदर्शक

[193] इस बिंदु पर गाइड पूरा हो गया है, जिसे महा- कच्चना ने बोला था, भगवान बुद्ध द्वारा अनुमोदित किया गया था, और मूल परिषद में जपा गया था।

गाइड का अंत

मिलिंदपन्हा

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा

मिलिंद पन्हा (पाली में "मिलिंद के प्रश्न") एक बौद्ध ग्रंथ है जो लगभग 100 ईसा पूर्व का है। यह थेरवाद बौद्ध धर्म के पाली कैनन के बर्मी संस्करण में खुद्दक निकाय की एक पुस्तक के रूप में शामिल है; हालाँकि, यह थाई या श्रीलंकाई संस्करणों में नहीं मिलता है। इसका एक संक्षिप्त संस्करण चीनी महायान अनुवादों में मिलता है। ऐसा माना जाता है कि इसमें दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में शासन करने वाले बैक्ट्रिया के इंडो-ग्रीक राजा मेनेंडर प्रथम (पाली में मिलिंदा) द्वारा ऋषि नागसेन से बौद्ध धर्म के बारे में पूछे गए प्रश्नों का वर्णन है।

अंतर्वस्तु

1राजा मिलिंडा के प्रश्न
1.1अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
2मूल पाली संस्करण
2.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
2.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)
राजा मिलिंदा के प्रश्न
भाग I: धर्मनिरपेक्ष आख्यान
बाहिरा-कथा
भाग II: नैतिक गुणों की विशिष्ट विशेषताएँ
लक्खना पन्हा अध्याय 1
लक्खना पन्हा अध्याय 2
लक्खना पन्हा अध्याय 3
भाग III: कठिनाइयों का निवारण
विमातिखदाना पन्हा अध्याय 4
विमातिखदाना पन्हा अध्याय 5
विमातिखदाना पन्हा अध्याय 6
विमातिखदाना पन्हा अध्याय 7
पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान
मेंडाका पन्हा अध्याय 1
मेंडाका पन्हा अध्याय 2
मेंडाका पन्हा अध्याय 3
मेंडाका पन्हा अध्याय 4
पुस्तक IV. दुविधाओं का समाधान
अध्याय 5
अध्याय 6
अध्याय 7
अध्याय 8
पुस्तक V: अनुमान की समस्या
पुस्तक VI: धुतंग
पुस्तक VII: उपमाएँ
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 1
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 2
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 3
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 4
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 5
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 6
ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 7

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-2-||----->>>> अगला

1. अब राजा मिलिंदा आदरणीय नागसेन के पास गए और उन्हें मित्रता और शिष्टाचार के अभिवादन से संबोधित किया और आदरपूर्वक अलग बैठ गए। नागसेन ने भी उनके शिष्टाचार का उत्तर दिया, जिससे राजा का हृदय प्रसन्न हो गया।

और मिलिंडा ने यह पूछकर बात शुरू की, 'आप किस नाम से जाने जाते हैं, और महोदय, आपका नाम क्या है?'

'हे महाराज, मुझे नागसेना के नाम से जाना जाता है और मेरे धर्म के साथी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। परन्तु हे महाराज, चाहे माता-पिता नागसेना, सूरसेना, वीरसेना या शिहसेना जैसे नाम दें, फिर भी, हे महाराज, यह नागसेना इत्यादि केवल एक सामान्य रूप से समझा जाने वाला नाम है, एक प्रचलित पदनाम है। क्योंकि इसमें कोई स्थायी व्यक्तित्व (कोई आत्मा) निहित नहीं है।'

तब मिलिंदा ने योनाकों और भाइयों को साक्षी मानकर कहा, 'यह नागसेन कहता है कि उसके नाम में कोई स्थायी व्यक्तित्व (कोई आत्मा) निहित नहीं है। क्या अब इस आधार पर उसे स्वीकार करना भी संभव है?' और नागसेन की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, 'हे परम पूज्य नागसेन, यदि इस मामले में कोई स्थायी व्यक्तित्व (कोई आत्मा) निहित नहीं है, तो कृपया बताएं कि कौन है जो संघ के सदस्यों को वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करता है? कौन है जो दी गई इन वस्तुओं का आनंद लेता है? कौन है जो धर्ममय जीवन जीता है? कौन है जो ध्यान में स्वयं को समर्पित करता है? कौन है जो श्रेष्ठ मार्ग के लक्ष्य, अरहतत्व के निर्वाण को प्राप्त करता है? और कौन है जो जीवित प्राणियों का संहार करता है? कौन है जो दूसरों की वस्तुएँ लेता है?' वह कौन है जो सांसारिक वासनाओं में लिप्त होकर बुरा जीवन जीता है, जो झूठ बोलता है, जो शराब पीता है, जो (संक्षेप में) उन पाँच पापों में से कोई एक करता है जिनका कड़वा फल इसी जीवन में मिलता है? यदि ऐसा है तो न तो पुण्य है और न पाप; न तो अच्छे या बुरे कर्मों का कर्ता है और न ही कारण; न तो अच्छे या बुरे कर्मों का फल है और न ही परिणाम। -हे परम पूज्य नागसेना, यदि हम यह सोचें कि यदि कोई मनुष्य

अगर तुम्हें मार डाला जाए तो वह हत्या नहीं होगी, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तुम्हारे संघ में कोई वास्तविक गुरु या शिक्षक नहीं हैं, और तुम्हारी दीक्षाएँ व्यर्थ हैं। तुम कहते हो कि तुम्हारे संघ के साथी तुम्हें नागसेना कहकर पुकारते हैं। अब यह नागसेना क्या है? क्या तुम्हारा मतलब यह है कि बाल नागसेना हैं?

'मैं ऐसा नहीं कहता, महान राजा।'

'या फिर शरीर के बाल, शायद?'

'हरगिज नहीं।'

या फिर क्या नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, पेट, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, पेट, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, सीरम, लार, बलगम, जोड़ों को चिकनाई देने वाला तेल, मूत्र, या मस्तिष्क, या इनमें से कोई भी या सभी, नागसेन हैं?

और इन सभी सवालों का जवाब उन्होंने ना में दिया।

'तो क्या नागसेन बाह्य रूप (रूप) है, या संवेदनाएँ (वेदना), या विचार (संज्ञा), या संरचनाएँ (चरित्र के घटक तत्व, संखार), या चेतना (विज्ञान) है?'

और इन सभी सवालों का जवाब भी उन्होंने 'नहीं' में दिया।

'तो क्या ये सभी स्कंध मिलकर नागसेन हैं?'

'नहीं! महान राजा।'

लेकिन क्या पांच स्कंधों के अलावा भी कुछ ऐसा है जो नागसेन है?

फिर भी उसने जवाब में 'नहीं' कहा।

तो फिर, चाहे मैं कितना भी पूछ लूँ, मुझे कोई नागसेना नहीं मिलता। नागसेना तो बस एक खोखली ध्वनि है। फिर हमारे सामने जो नागसेना है, वह कौन है? आपके आदरणीय, यह एक झूठ है, एक असत्य है!

और आदरणीय नागसेन ने राजा मिलिंद से कहा, 'हे महाराज, आपकी कुलीनता के अनुरूप आपका पालन-पोषण बड़े ही विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ है। यदि आप इस शुष्क मौसम में गर्म और रेतीली भूमि पर चलें, और कठोर रेत के किरकिरे कणों को पैरों तले रौंदें, तो आपके पैरों में दर्द होगा। और जैसे-जैसे आपके शरीर में पीड़ा होगी, आपका मन व्याकुल होगा, और आपको शारीरिक कष्ट का अनुभव होगा। तो फिर आप पैदल आए, या रथ में?'

'मैं पैदल नहीं आया, महोदय। मैं एक गाड़ी में आया हूँ।'

'तो अगर आप, महाराज, रथ में आए हैं, तो मुझे समझाइए कि वह क्या है। क्या वह खंभा ही रथ है?'

'में ऐसी बात नहीं की।'

'क्या धुरी ही रथ है?'

'हरगिज नहीं।'

'क्या रथ पहिए हैं, या ढांचा है, या रस्सियां हैं, या जुआ है, या पहियों की तीलियां हैं, या अंकुश है?'

और इन सभी सवालों का जवाब उन्होंने फिर भी 'नहीं' ही दिया।

'तो क्या इसके ये सभी भाग मिलकर रथ बनाते हैं?'

'नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्या उनके बाहर ऐसी कोई चीज है जो रथ है?'

फिर भी उसने जवाब में 'नहीं' कहा।

तो फिर, चाहे मैं कितना भी पूछ लूँ, मुझे कोई रथ नहीं मिलता। रथ तो बस एक खोखली बात है। फिर वह रथ क्या है जिसके बारे में आप कहते हैं कि आप उसमें आए हैं? महाराज, आपने जो कहा है वह झूठ है, असत्य है! रथ जैसी कोई चीज नहीं होती! आप पूरे भारत के राजा हैं, एक शक्तिशाली सम्राट हैं। फिर आप किससे डरकर असत्य बोल रहे हैं? और उन्होंने योनकियों और भाइयों को साक्षी बनाकर कहा: 'यहाँ राजा मिलिंद ने कहा है कि वे रथ से आए हैं। लेकिन जब उनसे पूछा गया कि रथ क्या था, तो वे अपनी बात साबित करने में असमर्थ रहे। क्या सचमुच उनकी बात पर विश्वास किया जा सकता है?'

जब उसने ऐसा कहा तो पाँच सौ योनाकाओं ने तालियाँ बजाकर राजा से कहा: 'महाराज, अगर आप कर सकते हैं तो अब आप इससे बाहर निकलें?'

तब राजा मिलिंद ने नागसेन को उत्तर देते हुए कहा, 'मैंने कोई असत्य नहीं कहा है, आदरणीय महोदय। इसमें ये सभी चीजें होने के कारण ही—ध्रुव, धुरी, पहिए, ढांचा, रस्सियाँ, जुआ, तीलियाँ और अंकुश—इसे सामान्यतः प्रचलित शब्द, यानी आम बोलचाल की भाषा में "रथ" कहा जाता है।'

बहुत खूब! महाराज, आपने "रथ" का अर्थ बिल्कुल सही समझा है। और ठीक इसी कारण से, आपने मुझसे जिन सभी बातों के बारे में प्रश्न पूछे - मानव शरीर में पाए जाने वाले बत्तीस प्रकार के कार्बनिक पदार्थ और अस्तित्व के पाँच मूलभूत तत्व - उन्हीं के कारण मुझे आम तौर पर प्रचलित शब्द "नागसेना" के अंतर्गत रखा जाता है।

[पैराग्राफ जारी है] क्योंकि हे महाराज, हमारी बहन वगीरा ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में कहा था:

"जिस प्रकार विभिन्न भागों के सह-अस्तित्व की पूर्व शर्त के आधार पर 'रथ' शब्द का प्रयोग किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जब स्कंध उपस्थित होते हैं तो हम 'प्राणी' की बात करते हैं।"

'अत्यंत अद्भुत, नागसेना, और अत्यंत विचित्र। आपने अत्यंत कठिन पहेली को बखूबी सुलझा लिया है। यदि स्वयं बुद्ध यहाँ होते तो वे आपके उत्तर की सराहना करते। शाबाश, शाबाश, नागसेना!'

2. 'नागसेना, आपकी वरिष्ठता कितने वर्षों की है?'

'सात, महाराज।'

लेकिन आप यह कैसे कह सकते हैं कि यह आपका "सात" है? क्या आप ही "सात" हैं, या संख्या ही "सात" है?

उसी क्षण राजसी आभूषणों से सुशोभित राजा की आकृति की छाया जमीन पर पड़ी और जल से भरे एक पात्र में प्रतिबिंबित हुई। नागसेन ने उनसे पूछा, 'हे राजा, आपकी आकृति की छाया जमीन पर पड़ रही है और जल में प्रतिबिंबित हो रही है, अब क्या हुआ? क्या आप राजा हैं या आपकी परछाई राजा है?'

'मैं राजा नागसेन हूँ, लेकिन छाया का अस्तित्व मेरे कारण ही होता है।'

'ठीक वैसे ही, हे राजा, वर्षों की संख्या सात है, मैं सात नहीं हूँ। परन्तु हे राजा, मेरे कारण ही संख्या सात अस्तित्व में आई है; और यह मेरी उसी अर्थ में है जैसे परछाई आपकी है।'

'नागसेना, यह एक बार फिर बहुत अद्भुत और विचित्र है। आपने अपने सामने रखे गए प्रश्न का, चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो, बहुत अच्छे से समाधान कर लिया है!'

3. राजा ने कहा: 'आदरणीय महोदय, क्या आप मुझसे फिर से चर्चा करेंगे?'

'यदि महाराज एक विद्वान (पंडित) के रूप में चर्चा करेंगे, तो ठीक है; लेकिन यदि आप एक राजा के रूप में चर्चा करेंगे, तो नहीं।'

'तो फिर विद्वान किस बात पर चर्चा करते हैं?'

जब विद्वान आपस में किसी विषय पर चर्चा करते हैं, तो उसमें एक निष्कर्ष निकलता है, एक सुलझन होती है; कोई न कोई अपनी गलती का दोषी पाया जाता है और फिर अपनी गलती स्वीकार करता है; भेद और प्रतिभेद किए जाते हैं; फिर भी वे क्रोधित नहीं होते। हे राजा, विद्वान इसी प्रकार चर्चा करते हैं।

'और राजा आपस में कैसे चर्चा करते हैं?'

'जब कोई राजा, महाराज, किसी मामले पर चर्चा करता है और कोई बात रखता है, तो यदि कोई उससे असहमत होता है, तो वह उसे जुर्माना लगाकर कहता है: "उस व्यक्ति को ऐसा दंड दो!" महाराज, राजा इसी प्रकार चर्चा करते हैं।'

'बहुत खूब। मैं एक विद्वान के रूप में चर्चा करूँगा, राजा के रूप में नहीं। आदरणीय महोदय, आप बेझिझक बात करें, जैसे आप किसी भाई, शिष्य, गृहस्थ छात्र या यहाँ तक कि किसी सेवक से करते हैं। डरें नहीं!'

'बहुत अच्छा, महाराज,' नागसेना ने कृतज्ञतापूर्वक कहा।

'नागसेना, मुझे तुमसे एक प्रश्न पूछना है;' राजा ने कहा।

'कृपया पूछिए, महाराज।'

'मैंने यह अनुरोध किया है, महोदय।'

'इसका जवाब पहले ही दिया जा चुका है।'

आपने क्या उत्तर दिया है?

तो फिर महाराज, आपका तात्पर्य किससे है?

लेकिन राजा मिलिंदा ने सोचा, 'यह भिक्षु तो बड़ा विद्वान है। वह मुझसे चर्चा करने में पूर्णतः सक्षम है। मुझे उससे कई प्रश्न पूछने हैं, और उन सभी को पूछने से पहले ही सूर्य अस्त हो जाएगा। कल घर पर चर्चा जारी रखना बेहतर होगा।' और उसने देवमंतिया से कहा, 'आप महाराज को सूचित कर दीजिए कि राजा से चर्चा कल महल में पुनः शुरू होगी।' और ऐसा कहकर उसने नागसेन से विदा ली, अपने घोड़े पर सवार हुआ और बुदबुदाते हुए चला गया, 'नागसेन, नागसेन!'

और देवमंतिया ने नागसेन को अपना संदेश दिया, जिसे नागसेन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अगले दिन सुबह-सुबह देवमंतिया, अनंतकाय, मनकुरा और सब्बदिन्ना राजा के पास गए और बोले: 'हे महाराज, क्या नागसेन आज आएँगे?'

'हां, वह आने वाला है।'

वह कितने भाइयों के साथ आने वाला है?

'जितने चाहे उतने लोगों के साथ।'

और सब्बादिन्ना ने कहा: 'उसे दस लोगों के साथ आने दो।' लेकिन राजा ने अपनी बात दोहराई। और जब सब्बादिन्ना ने अपना सुझाव फिर से दोहराया, तो राजा ने कहा: 'यह सारी तैयारी हो चुकी है, और मैं कहता हूँ:

"उसे जितने चाहे उतने लोगों के साथ आने दो," फिर भी सब्बादिन्ना कहती है: "उसे दस लोगों के साथ आने दो।" क्या उसे लगता है कि हम इतने लोगों को भोजन कराने में सक्षम नहीं हैं?

तब सब्बादिन्ना को शर्मिंदगी हुई।

4. देवमंतीय, अनंतकाय और मनकुरा नागसेन के पास गए और उन्हें राजा की कही हुई बातें बताईं। आदरणीय नागसेन ने दोपहर के समय वस्त्र धारण किए और अपने हाथ में पान का पात्र लेकर सभी भाइयों के साथ सागल चले गए। अनंतकाय नागसेन के साथ चलते हुए बोले:

'जब, आदरणीय महोदय, मैं कहता हूँ, "नागसेना," तो वह नागसेना क्या है?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'तुम्हारे विचार से नागसेना क्या है?'

'आत्मा, वह आंतरिक श्वास जो आती-जाती रहती है, मैं उसे नागसेना मानता हूँ।'

लेकिन अगर वह सांस निकल जाने के बाद वापस न लौटे, या वापस लौटने के बाद न निकले, तो क्या वह व्यक्ति जीवित रहेगा?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

लेकिन क्या तुरही बजाने वाले जब अपनी तुरही बजाते हैं, तो उनकी सांस वापस उन्हीं में लौट आती है?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं है।'

'या फिर, जब वे बांसुरी या सींग बजाते हैं, तो क्या उनकी सांस वापस उन्हीं में लौट आती है?'

'नहीं, महोदय।'

'तो फिर वे मर क्यों नहीं जाते?'

'मैं ऐसे तर्कवादी से बहस करने में सक्षम नहीं हूं। कृपया मुझे बताएं, महोदय, मामला क्या है।'

'श्वास में आत्मा नहीं होती। ये श्वास लेना और छोड़ना मात्र शरीर की क्रियाशील शक्तियाँ हैं,' गुरु ने कहा। और उन्होंने अभिधम्म से इस प्रकार बात की कि अनंतकाय ने स्वयं को संघ का समर्थक घोषित कर दिया।

5. आदरणीय नागसेन राजा के पास गए और उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। राजा ने नागसेन और उनके साथियों को आवश्यकतानुसार पौष्टिक और पौष्टिक भोजन दिया; प्रत्येक भाई को वस्त्रों का एक जोड़ा भेंट किया, और नागसेन को स्वयं तीन वस्त्रों का एक सेट दिया। फिर उन्होंने नागसेन से कहा: 'कृपापूर्वक यहीं बैठे रहें, और अपने साथ दस भाइयों को भी। शेष को जाने दें।'

और जब उसने देखा कि नागसेन ने अपना भोजन समाप्त कर लिया है, तो वह एक नीची कुर्सी पर बैठ गया और उसके बगल में आकर बोला: 'हम किस विषय पर चर्चा करें?'

'हम सत्य तक पहुंचना चाहते हैं। हमारी चर्चा सत्य के बारे में होनी चाहिए।'

और राजा ने कहा: 'हे महाराज, आपके त्याग का उद्देश्य क्या है, और आपका सर्वोच्च लक्ष्य क्या है?'

'तुम क्यों पूछते हो? हमारा त्याग इसलिए है ताकि यह दुःख दूर हो जाए और आगे कोई दुःख उत्पन्न न हो; संसार से आसक्ति रखे बिना पूर्णतः इस संसार से विलीन हो जाना ही हमारा सर्वोच्च लक्ष्य है।'

'यह क्या बात है, महोदय! क्या इतने उच्च कारणों से इसके सभी सदस्य संघ में शामिल हुए हैं?'

'बिल्कुल नहीं, महाराज। कुछ कारणों से,'

लेकिन कुछ लोग राजाओं के अत्याचार से भयभीत होकर दुनिया छोड़कर चले गए हैं। कुछ लोग लूट से बचने के लिए, कुछ कर्ज के बोझ से दबे होने के कारण और कुछ शायद जीविका कमाने के लिए हमारे साथ जुड़ गए हैं।

लेकिन महोदय, आप स्वयं किस उद्देश्य से शामिल हुए थे?

'जब मैं एक छोटा लड़का था, तभी मुझे संघ में शामिल कर लिया गया था; तब मुझे अंतिम लक्ष्य का पता नहीं था। लेकिन मैंने सोचा: "ये बौद्ध समन तो ज्ञानी विद्वान हैं, ये मुझे सिखा सकेंगे।" और उन्होंने ही मुझे सिखाया है; और अब मैं त्याग के कारण और लाभ दोनों को जानता और समझता हूँ।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

6. राजा ने कहा: 'नागसेन, क्या कोई ऐसा है जो मृत्यु के बाद पुन: व्यक्ति के रूप में प्रकट नहीं होता?'

'कुछ ऐसे हैं, और कुछ नहीं।'

'कौन हैं वे?'

'पापी व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, पापरहित व्यक्ति का नहीं।'

'क्या आपका पुनर्व्यक्तिगतकरण होगा?'

'अगर मेरी मृत्यु के समय मेरे हृदय में अस्तित्व की लालसा बनी रहे, तो हाँ; लेकिन अगर ऐसा न हो, तो नहीं।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'नागसेन, जो व्यक्ति पुन: वैयक्तिकरण से बच जाता है, क्या वह तर्क के द्वारा इससे बच जाता है?'

'महामहिम, तर्कशक्ति, बुद्धिमत्ता और अन्य अच्छे गुणों के द्वारा।'

लेकिन क्या तर्क और बुद्धिमत्ता काफी हद तक एक ही नहीं हैं?

बिलकुल नहीं। तर्क करना एक बात है, बुद्धिमत्ता नहीं।

एक और बात। भेड़ और बकरियां, बैल और भैंस, ऊंट और गधे तर्क कर सकते हैं, लेकिन उनमें बुद्धि नहीं होती।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

8. राजा ने कहा: 'तर्कशक्ति की विशेषता क्या है, और बुद्धिमत्ता की विशेषता क्या है?'

'तर्क की पहचान हमेशा समझ से होती है; लेकिन बुद्धिमत्ता में अलगाव होता है।'

लेकिन समझ, तर्कशक्ति की विशेषता कैसे है, और बुद्धिमत्ता का अवरोध कैसे है? मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'तुम्हें जौ काटने वाले याद हैं?'

'हां बेशक।'

'वे जौ की कटाई कैसे करते हैं?'

'वे बाएं हाथ से जौ को एक गुच्छे में पकड़ते हैं, और दाएं हाथ में दरांती लेकर उससे जौ को काटते हैं।'

'ठीक इसी प्रकार, हे राजा, संन्यासी अपने चिंतन से अपने मन को वश में कर लेता है और अपनी बुद्धि से अपनी कमियों को दूर कर लेता है। इस प्रकार, बोध तर्क का गुण है, परन्तु बुद्धि का गुण है।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

9. राजा ने कहा: 'जब तुमने अभी कहा, "और अन्य अच्छे गुणों से," तो तुम्हारा तात्पर्य किन गुणों से था?'

'अच्छा आचरण, महान राजा, विश्वास, दृढ़ता, सजगता और ध्यान।'

'और अच्छे आचरण की विशेषता क्या है?'

इसकी विशेषता यह है कि यह सभी अच्छे गुणों का आधार है। पाँच नैतिक शक्तियाँ—विश्वास, दृढ़ता, सजगता, ध्यान और ज्ञान—; अरहतत्व की सात अवस्थाएँ—आत्म-संयम, धम्म का अध्ययन, दृढ़ता, आनंद, शांति, ध्यान और समभाव—; मार्ग; स्मृति की तत्परता (अखंड आत्म-संयम); चार प्रकार के उचित प्रयास; असाधारण शक्तियों के चार मूलभूत आधार; परमानंद की चार अवस्थाएँ; आध्यात्मिक मुक्ति के आठ रूप; आत्म-एकाग्रता के चार तरीके; और गहन चिंतन की आठ अवस्थाएँ—इन सभी का आधार अच्छा आचरण (बाह्य नैतिकता का पालन) है। और हे राजा, जो इस आधार पर निर्माण करता है, उसके लिए ये सभी अच्छे गुण कम नहीं होंगे।

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, जिस प्रकार पशु और वनस्पति जीवन के सभी रूप जो बढ़ते, विकसित होते और परिपक्व होते हैं, पृथ्वी को अपना आधार बनाकर ऐसा करते हैं; ठीक उसी प्रकार एक संन्यासी, जो प्रयास में लगा रहता है, सद्गुण के माध्यम से, सद्गुण के आधार पर, अपने भीतर पांच नैतिक शक्तियों आदि का विकास करता है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, जिस प्रकार शारीरिक परिश्रम से जुड़े सभी कार्य अंततः पृथ्वी पर निर्भर होकर किए जाते हैं, ठीक उसी प्रकार संन्यासी सद्गुण के माध्यम से, सद्गुण के आधार पर, अपने भीतर पाँच नैतिक शक्तियों आदि का विकास करता है।'

'मुझे इससे भी बेहतर उदाहरण दीजिए।'

'हे राजा, जिस प्रकार एक नगर निर्माता नगर निर्माण करते समय पहले भूमि को साफ करता है, फिर सभी ठूंठों और कंटीली झाड़ियों को हटाकर उसे समतल करता है, और उसके बाद ही सड़कों, चौकों, चौराहों और बाजारों का निर्माण करता है; ठीक उसी प्रकार संन्यासी सद्गुणों के माध्यम से, सद्गुणों के आधार पर, अपने भीतर पांच नैतिक शक्तियों आदि का विकास करता है।'

'क्या आप मुझे एक और उपमा दे सकते हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार एक कलाबाज अपनी कुशलता दिखाने से पहले जमीन खोदता है और उसमें से सारे पत्थर और टूटे हुए मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े हटाकर उसे चिकना बनाता है, और फिर नरम मिट्टी पर अपने करतब दिखाता है; ठीक इसी प्रकार संन्यासी सद्गुणों के बल पर पाँचों नैतिक शक्तियों का विकास करता है। क्योंकि हे महाराज, ऐसा कहा गया है।

"सद्गुण ही वह आधार है जिस पर बुद्धिमान व्यक्ति अपने हृदय को प्रशिक्षित कर सकता है और अपनी बुद्धि को बढ़ा सकता है। इस प्रकार परिश्रमी भिक्षु, जो छल से मुक्त है, जीवन के सभी उलझे हुए धागों को सुलझा सकता है।"

"यह आधार है—मनुष्यों के लिए विशाल पृथ्वी के समान—और यही अच्छाई में सभी वृद्धि का मूल है, सभी बुद्धों की शिक्षाओं का आरंभिक बिंदु है, सद्गुण, अर्थात्, जिस पर सच्चा आनंद निर्भर करता है।"

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

10. राजा ने कहा, 'आदरणीय नागसेन, आस्था की विशेषता क्या है?'

'हे राजा, शांति और आकांक्षा।'

'और शांति किस प्रकार आस्था का प्रतीक है?'

हे राजा, जब हृदय में आस्था उत्पन्न होती है, तो वह पाँचों बाधाओं—कामवासना, द्वेष, मानसिक आलस्य, आध्यात्मिक अभिमान और संशय—को तोड़ देती है, और इन बाधाओं से मुक्त होकर हृदय निर्मल, शांत और चिंतामुक्त हो जाता है।

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई अधिपति राजा अपनी चार गुना सेना के साथ यात्रा करते समय किसी छोटी नदी को पार करता है, और हाथियों, घुड़सवारों, रथों और धनुर्धारियों द्वारा अशांत होने से पानी गंदा, मैला और कीचड़युक्त हो जाता है।'

जब राजा दूसरी ओर होता, तो वह अपने सेवकों को आदेश देते हुए कहता: "मेरे सज्जनों, थोड़ा पानी लाओ। मैं पीना चाहता हूँ।" मान लीजिए कि राजा के पास जल को शुद्ध करने वाला एक रत्न है, और वे सेवक आदेश का पालन करते हुए उस रत्न को पानी में फेंक देते हैं; तो तुरंत ही सारी मिट्टी जम जाती है, सीप के रेतीले कण और जलीय पौधों के टुकड़े गायब हो जाते हैं, और पानी साफ, पारदर्शी और शांत हो जाता है, और फिर वे राजा को पीने के लिए थोड़ा पानी लाते हैं। पानी हृदय है; शाही सेवक संन्यासी हैं; मिट्टी, रेतीले कण और जलीय पौधों के टुकड़े बुरी प्रवृत्तियाँ हैं; और जल को शुद्ध करने वाला रत्न विश्वास है।

और आकांक्षा किस प्रकार आस्था की पहचान है?

'चलोभार्थी दूसरों के हृदयों को मुक्त होते देखकर, श्रेष्ठ मार्ग के प्रथम, द्वितीय या तृतीय चरण के फल को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, या स्वयं अरहतत्व प्राप्त करने की इच्छा रखता है, और इस प्रकार जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं किया है, उसे प्राप्त करने, जिसका उसने अभी तक अनुभव नहीं किया है, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है, इसलिए आकांक्षा ही आस्था का चिह्न है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे किसी पर्वत की चोटी पर भयंकर तूफान आ जाए और मूसलाधार बारिश होने लगे, तो पानी ढलान के अनुसार नीचे बहता हुआ दरारों, खाइयों और नालों को भरता हुआ आगे बढ़ता है।'

पहाड़ी से उठने वाला पानी नीचे बहने वाली छोटी नदी में मिल जाता है, जिससे नदी दोनों किनारों को उफान पर लाते हुए तेजी से बहने लगती है। अब मान लीजिए कि लोगों का एक समूह एक के बाद एक ऊपर आता है, और पानी की वास्तविक चौड़ाई या गहराई से अनजान होने के कारण, किनारे पर भयभीत और संकोची होकर खड़ा हो जाता है। और मान लीजिए कि एक व्यक्ति आता है, जो अपनी शक्ति और सामर्थ्य को भलीभांति जानते हुए, दृढ़ता से कमर कस लेता है और एक छलांग लगाकर दूसरी ओर पहुँच जाता है। तब बाकी लोग उसे दूसरी ओर सुरक्षित देखकर, उसी प्रकार पार कर जाते हैं। यही वह तरीका है जिससे संन्यासी, आस्था के बल पर, एक छलांग में ही उच्चतर चीजों की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। क्योंकि हे राजा, भगवान बुद्ध ने संयुत्त निकाय में यही कहा है।

"विश्वास से वह नदी पार करता है, लगन से जीवन के सागर को पार करता है; दृढ़ता से वह सभी दुःखों को शांत करता है, और ज्ञान से वह शुद्ध होता है।"

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

11. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, दृढ़ता की विशेषता क्या है?'

'हे राजा, समर्थन प्रदान करना दृढ़ता की निशानी है। इससे समर्थित सभी अच्छे गुण कभी नष्ट नहीं होते।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'जैसे कोई व्यक्ति, यदि उसका घर गिरने लगे, तो उसे सहारा देने के लिए एक और खंभा लगा देता है, और इस प्रकार सहारा दिया गया घर नहीं गिरता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, सहारा देना दृढ़ता का प्रतीक है, और वे सभी अच्छे गुण जिन्हें यह सहारा देता है, कभी नष्ट नहीं होते।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

जैसे जब एक बड़ी सेना एक छोटी सेना को हरा देती है, तो छोटी सेना का राजा अपने सभी संभावित सहयोगियों को याद करके अपनी छोटी सेना को सुदृढ़ करता है, और इस प्रकार छोटी सेना भी बड़ी सेना को हरा देती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, सहायता प्रदान करना दृढ़ता का चिह्न है, और इससे पोषित सभी अच्छे गुण नष्ट नहीं होते। क्योंकि भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भिक्षुओं, जो दृढ़ता से सत्य का श्रवण करता है, वह बुराई को त्यागकर अच्छाई का पालन करता है, कुकर्म को त्यागकर अपने भीतर अच्छाई का विकास करता है, और इस प्रकार वह स्वयं को शुद्ध रखता है।"

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

12. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, ध्यान का विशिष्ट लक्षण क्या है?'

'हे राजा, बार-बार दोहराते रहो और निरंतर प्रयास करते रहो।'

'और पुनरावृत्ति किस प्रकार सचेतनता की निशानी है?'

'हे राजा, जब उनके हृदय में जागरूकता उत्पन्न होती है, तो वे अच्छे और बुरे, सही और गलत, छोटे और बड़े, अंधकारमय और उजाले गुणों और उनसे मिलते-जुलते गुणों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए मन ही मन कहते हैं: "ये स्वयं को तैयार और जागरूक रखने के चार तरीके हैं, ये आध्यात्मिक प्रयास के चार तरीके हैं, ये असाधारण शक्तियों के चार आधार हैं, ये नैतिक इंद्रियों के पाँच अंग हैं, ये पाँच मानसिक शक्तियाँ हैं, ये अरहतत्व के सात आधार हैं, ये उत्तम मार्ग के आठ विभाजन हैं, यही शांति है और यही अंतर्दृष्टि है, यही ज्ञान है और यही मुक्ति है।" इस प्रकार संन्यासी अनुसरण करता है।

वह वांछनीय गुणों का ही अभ्यास करता है, अवांछनीय गुणों का नहीं; इस प्रकार वह उन गुणों को विकसित करता है जिनका अभ्यास किया जाना चाहिए, न कि जिनका नहीं किया जाना चाहिए। यही सचेतनता की पहचान है।

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह शाही सम्राट के कोषाध्यक्ष के समान है, जो अपने राजा को समय-समय पर उनकी महिमा याद दिलाते हुए कहता है: "हे राजा, तेरे युद्ध हाथी इतने हैं, तेरे घुड़सवार, रथ और धनुर्धर इतने हैं, तेरे धन, सोने और संपत्ति की मात्रा इतनी अधिक है, महाराज, कृपया इसे याद रखें।"'

'और महोदय, सचेतनता का स्तर बनाए रखना कैसा है?'

'हे राजा, जब उनके हृदय में जागरूकता उत्पन्न होती है, तो वे अच्छे गुणों और उनके विपरीत गुणों की श्रेणियों की खोज करते हुए अपने मन में कहते हैं: "अमुक गुण अच्छे हैं, और अमुक बुरे; अमुक गुण सहायक हैं, और अमुक प्रतिकूल।" इस प्रकार संन्यासी अपने भीतर की बुराई को दूर कर देता है और अच्छाई को बनाए रखता है। यही जागरूकता का प्रतीक है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह उस शाही परिवार के गोपनीय सलाहकार की तरह है।'

प्रभु उसे भले और बुरे का ज्ञान देते हुए कहते हैं: "ये बातें राजा के लिए बुरी हैं और ये अच्छी, ये सहायक हैं और ये इसके विपरीत।" और इस प्रकार राजा अपने भीतर की बुराई को दूर कर अच्छाई को बनाए रखता है।

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

13. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, ध्यान का विशिष्ट लक्षण क्या है?'

'हे राजा, नेता होने के नाते, सभी अच्छे गुणों का मूल तत्व ध्यान है; वे ध्यान की ओर प्रवृत्त होते हैं, ध्यान की ओर अग्रसर होते हैं; वे ध्यान के पर्वत की ओर जाने वाली अनेक ढलानों के समान हैं।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, जिस प्रकार किसी घर की छत के सभी शहतीर शिखर तक जाते हैं, उसकी ओर ढलान बनाते हैं, और अंत में आपस में जुड़ जाते हैं, और शिखर को ही सर्वोच्च माना जाता है; ठीक उसी प्रकार ध्यान की आदत का संबंध अन्य अच्छे गुणों से है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

महाराज, यह एक राजा के समान है, जब वह अपनी सेना के साथ चार रूपों में युद्ध में उतरता है। पूरी सेना—हाथी, घुड़सवार, युद्ध रथ और धनुर्धारी—उसे अपना सरदार और अपना स्वामी मानती है।

रेखाएँ उनकी ओर झुकती हुई, उनकी ओर जाती हुई प्रतीत होतीं, वे अनेक पर्वतीय ढलानें होतीं, एक के ऊपर एक, उनका शिखर वे ही होते, वे सब उनके चारों ओर व्यवस्थित होतीं। और हे राजा, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भिक्षुओं, अपने भीतर ध्यान का अभ्यास करो। जो इसमें स्थिर हो जाता है, वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जान लेता है।"

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

14. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, बुद्धिमत्ता की विशेषता क्या है?'

'मैंने आपको पहले ही बता दिया है, हे राजा, कि इसका चिन्ह है काटना, विच्छेद करना, लेकिन ज्ञानोदय भी इसका चिन्ह है।'

और ज्ञानोदय इसकी पहचान कैसे है?

'हे राजा, जब हृदय में ज्ञान का संचार होता है, तो वह अज्ञान के अंधकार को दूर करता है, ज्ञान की चमक को बढ़ाता है, बुद्धि के प्रकाश को प्रज्वलित करता है और आर्य सत्यों को स्पष्ट करता है। इस प्रकार, परिश्रम में लीन संन्यासी सर्वथा स्पष्ट ज्ञान से सभी प्राणियों और वस्तुओं की अनित्यता, व्यक्तिवाद में निहित पीड़ा और आत्मा के अभाव को भलीभांति समझ लेता है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, यह एक दीपक के समान है, जिसे कोई व्यक्ति अंधेरे में डूबे घर में जलाता है। दीपक जलाने से अंधेरा दूर हो जाता है।'

प्रकाश उत्पन्न करना, रोशनी फैलाना और वहां की वस्तुओं को स्पष्ट रूप से दृश्यमान बनाना। ठीक इसी प्रकार, मनुष्य में ज्ञान का भी वही प्रभाव होता है जो अभी बताया गया है।

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

15. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या ये इतने भिन्न गुण एक ही परिणाम देते हैं?'

'वे ऐसा करते हैं। बुरी प्रवृत्तियों का अंत करते हैं।'

'यह कैसे संभव है? मुझे एक उदाहरण दीजिए।'

'वे सेना के विभिन्न भागों की तरह हैं - हाथी, घुड़सवार सेना, युद्ध रथ और तीरंदाज - जो सभी एक ही उद्देश्य के लिए काम करते हैं, अर्थात्: युद्ध में विरोधी सेना पर विजय प्राप्त करना।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

पहला अध्याय यहीं समाप्त होता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक II: नैतिक गुणों की विशिष्ट विशेषताएं - लक्खाना पन्हा अध्याय 2

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-3-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जो जन्म लेता है, क्या वह वही रहता है या बदल जाता है?'

'न तो वही, न ही कोई दूसरा।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब आप क्या सोचते हैं, हे राजा? आप भी कभी शिशु थे, कोमल और छोटे कद के, पीठ के बल लेटे हुए। क्या आप वही थे जो अब बड़े हो गए हैं?'

'नहीं। वह बच्चा एक था, मैं दूसरा हूं।'

'यदि तुम वह बच्चा नहीं हो, तो इसका अर्थ है कि न तो तुम्हारी माँ थी, न पिता, नहीं! न ही शिक्षक। तुम्हें न तो विद्या सिखाई गई, न ही व्यवहार, न ही बुद्धि। हे महाराज! क्या प्रथम अवस्था में भ्रूण की माँ द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ अवस्था में भ्रूण की माँ से भिन्न है? क्या शिशु की माँ वयस्क पुरुष की माँ से भिन्न है? क्या विद्यालय जाने वाला व्यक्ति एक है और विद्यालय की शिक्षा पूरी करने के बाद वही व्यक्ति दूसरा है? क्या अपराध करने वाला एक है और हाथ-पैर काटकर दंडित किया जाने वाला दूसरा?'

'बिल्कुल नहीं। लेकिन आप इस बारे में क्या कहेंगे, महोदय?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'मुझे कहना चाहिए कि मैं वही व्यक्ति हूँ, अब जब मैं बड़ा हो गया हूँ, जैसा कि मैं तब था जब मैं एक नन्हा सा शिशु था, पीठ के बल लेटा हुआ। क्योंकि ये सभी अवस्थाएँ इस शरीर के माध्यम से एक में समाहित हैं।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, यदि कोई व्यक्ति दीपक जलाए, तो क्या वह पूरी रात को रोशन कर पाएगा?'

'हां, ऐसा हो सकता है।'

'क्या यह वही लौ है जो रात के पहले पहर और दूसरे पहर में जलती है, महोदय?'

'नहीं।'

'या वही जो दूसरे और तीसरे पहर में जलता है?'

'नहीं।'

तो क्या पहले पहर में एक दीपक है, दूसरे में दूसरा और तीसरे में तीसरा?

'नहीं। रात भर रोशनी एक ही दीपक से आती है।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की निरंतरता बनी रहती है। एक का जन्म होता है, दूसरे का अंत होता है; और पुनर्जन्म मानो एक साथ ही होता है। इस प्रकार मनुष्य न तो समान रूप में और न ही किसी भिन्न रूप में अपनी आत्मचेतना के अंतिम चरण तक पहुँचता है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'यह दूध की तरह है, जो गाय से निकालने के बाद कुछ समय बाद पहले दही में बदल जाता है, फिर दही से मक्खन में और फिर मक्खन से घी में। अब क्या यह कहना सही होगा कि दूध, दही, मक्खन या घी एक ही चीज हैं?'

'बिल्कुल नहीं; लेकिन वे उसी से उत्पन्न होते हैं।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की निरंतरता बनी रहती है। एक का जन्म होता है, दूसरे का अंत होता है; और पुनर्जन्म मानो एक साथ ही होता है। इस प्रकार मनुष्य न तो समान रूप में और न ही किसी भिन्न रूप में अपनी आत्मचेतना के अंतिम चरण तक पहुँचता है।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

2. राजा ने कहा: 'क्या नागसेन जैसा व्यक्ति, जिसका पुनर्जन्म नहीं होगा, इस तथ्य से अवगत है?'

'जी हां, हे राजा।'

और उसे यह कैसे पता चला?

'पुनर्जन्म के निकटवर्ती या दूरस्थ सभी कारणों के समाप्त होने से।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, महाराज, एक किसान ने खेत जोता और बोया और अपना भंडार भर लिया; और फिर कुछ समय के लिए न तो खेत जोते और न ही बोए, बल्कि भंडारित अनाज से अपना जीवन यापन करे, या उसका लेन-देन करे, या आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करे। क्या किसान को इस बात का एहसास होगा, महाराज, कि उसका भंडार भर नहीं रहा है?'

'हां, उसे यह पता होना चाहिए।'

'आख़िर कैसे?'

'उसे पता चल गया होगा कि अन्न भंडार के भरने का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों कारण समाप्त हो गया था।'

'ठीक वैसे ही जैसे आपने जिस व्यक्ति की बात की, उसके साथ हुआ। पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाली हर चीज के समाप्त होने से, वह इस बात से अवगत हो जाएगा कि वह पुनर्जन्म के प्रति अपनी जिम्मेदारी से बच गया है।'

'बहुत बढ़िया समझाया, नागासेना!'

3. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जिसके पास बुद्धि है, क्या उसके पास ज्ञान भी है?'

'जी हां, महान राजा।'

'क्या; क्या ये दोनों एक ही हैं?'

'हाँ।'

'तो क्या वह अपनी बुद्धि के साथ—जिसे आप ज्ञान के समान मानते हैं—अभी भी असमंजस में रहेगा या नहीं?'

'कुछ मामलों में हां; अन्य मामलों में नहीं।'

'वह किस बात को लेकर असमंजस में होगा?'

'ज्ञान के उन हिस्सों के बारे में जो उसने नहीं सीखे थे, उन देशों के बारे में जो उसने नहीं देखे थे, और उन नामों या शब्दों के बारे में जो उसने नहीं सुने थे, वह अब भी असमंजस में रहेगा।'

और किस बात में वह असमंजस में नहीं होगा?

'अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञान के संबंध में—अर्थात्, सभी प्राणियों की अनित्यता, व्यक्तिवाद में निहित पीड़ा और किसी भी आत्मा के अस्तित्वहीन होने की अनुभूति।'

'तो फिर उन मुद्दों पर उनके भ्रमों का क्या होता?'

'एक बार बुद्धि जागृत हो जाने पर, उसी क्षण भ्रम दूर हो जाता है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह उस दीपक के समान है, जिसे जब कोई व्यक्ति अंधेरे कमरे में लाता है, तो अंधेरा दूर हो जाता है और प्रकाश प्रकट हो जाता है।'

'और दूसरी ओर, नागसेना की बुद्धिमत्ता का क्या हुआ?'

जब तर्कशील बुद्धि अपना कार्य पूरा कर लेती है, तब तर्क प्रक्रिया रुक जाती है। लेकिन इसके द्वारा अर्जित ज्ञान शेष रहता है—अर्थात् प्रत्येक प्राणी की अनित्यता का ज्ञान, व्यक्तित्व में निहित पीड़ा का ज्ञान और आत्मा के अभाव का ज्ञान।

'हे आदरणीय महोदय, आपने जो अंतिम बात कही है, उसका एक उदाहरण दीजिए।'

'यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति रात में पत्र भेजना चाहता है, अपने क्लर्क को बुलाता है, दीपक जलाता है और पत्र लिखवाता है। फिर, जब यह हो जाता है, तो वह दीपक बुझा देता है। लेकिन दीपक बुझ जाने के बावजूद लिखावट वहीं रहती है। इस प्रकार तर्क समाप्त हो जाता है, और ज्ञान शेष रहता है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

पूर्वी जिलों में किसानों की यह प्रथा है कि वे प्रत्येक झोपड़ी के पीछे पानी से भरे पांच घड़े रखते हैं ताकि आग की किसी भी चिंगारी को तुरंत बुझाया जा सके। मान लीजिए कि घर में आग लग गई, और उन्होंने झोपड़ी पर पानी से भरे पांच घड़े डाल दिए, और आग बुझ गई, तो क्या वे किसान तब भी पानी के घड़ों का उपयोग जारी रखने के बारे में सोचेंगे?

'नहीं, महोदय, पानी के बर्तनों का काम तो खत्म हो चुका होगा। उस समय उनकी क्या आवश्यकता होगी?'

'पांच जल पात्र नैतिक इंद्रियों के पांच अंग हैं - विश्वास, बुद्धि, परिश्रम में दृढ़ता, सजगता, ध्यान और तर्कशक्ति। किसान संन्यासी हैं, जो परिश्रम में लीन रहते हैं; अग्नि पाप है। जैसे पांच पात्रों में रखे जल से अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही नैतिक इंद्रियों के पांच अंगों से पाप बुझ जाता है, और एक बार बुझ जाने पर वह फिर कभी उत्पन्न नहीं होता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'यह उस चिकित्सक की तरह है जो औषधीय जड़ों से बनी पांच प्रकार की औषधियाँ लेकर बीमार व्यक्ति के पास जाता है, उन्हें पीसकर उसे पिलाता है, और इस प्रकार उसकी बीमारी दूर हो जाती है। क्या उस स्थिति में चिकित्सक उस औषधि का आगे कोई उपयोग करने के बारे में सोचेगा?'

'बिल्कुल नहीं, दवा ने अपना काम कर दिया है। और दवा लेने का क्या फायदा?'

'ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जब पांच नैतिक शक्तियों द्वारा पाप का नाश हो जाता है, तब तर्कशक्ति समाप्त हो जाती है, परन्तु ज्ञान शेष रहता है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'यह एक ऐसे योद्धा की तरह है, जो युद्ध में माहिर है, पाँच भाले लेकर शत्रु को जीतने के लिए युद्ध में जाता है। और जब वह उन्हें चला देता है, तो शत्रु पराजित हो जाता है। उसे अब और भाले चलाने की आवश्यकता नहीं रहती।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

4. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जो पुनर्जन्म नहीं लेगा, क्या उसे अब भी कोई पीड़ा महसूस होती है?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'कुछ बातें उसे महसूस होती हैं और कुछ नहीं।'

'वह कौन से है?'

'हे राजा, उसे शारीरिक पीड़ा तो हो सकती है; लेकिन मानसिक पीड़ा वह नहीं सहेगा।'

'ऐसा कैसे हो सकता है?'

'क्योंकि शारीरिक पीड़ा के निकटवर्ती या दूरस्थ कारण अभी भी मौजूद हैं, इसलिए वह इसके प्रति उत्तरदायी होगा। परन्तु मानसिक पीड़ा के निकटवर्ती या दूरस्थ कारण समाप्त हो जाने के कारण वह इसे अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि भगवान बुद्ध ने कहा है: "वह एक ही प्रकार की पीड़ा सहता है, शारीरिक पीड़ा, परन्तु मानसिक पीड़ा नहीं।"'

'तो फिर, महोदय, वह मर क्यों नहीं जाता?'

हे राजा, अरहत को न तो चापलूसी करने की आवश्यकता है और न ही द्वेष रखने की। वह कच्चे फल को नहीं गिराता, बल्कि उसके पूर्ण परिपक्व होने की प्रतीक्षा करता है। क्योंकि हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"न तो मुझे मृत्यु का स्वागत है, न ही जीवन का; जैसे एक मजदूर अपनी मजदूरी का इंतजार करता है, वैसे ही मैं अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ। न तो मुझे मृत्यु चाहिए, न ही जीवन; मैं सचेत और विचारशील होकर अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ।"

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

5. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या सुखद अनुभूति अच्छी है, बुरी है या उदासीन है?'

'यह तीनों में से कोई भी हो सकता है।'

लेकिन निश्चित रूप से, महोदय, यदि अच्छी परिस्थितियाँ कष्टदायी नहीं होतीं और कष्टदायी परिस्थितियाँ अच्छी नहीं होतीं, तो ऐसी कोई अच्छी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती जो एक ही समय में कष्टदायी भी हो।

'अब, हे महाराज, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि कोई व्यक्ति एक हाथ में लोहे का लाल-गरम गोला और दूसरे हाथ में बर्फ का एक टुकड़ा पकड़े हुए हो, तो क्या दोनों उसे चोट पहुँचाएँगे?'

'हां; वे दोनों ऐसा करेंगे।'

'लेकिन क्या वे दोनों आकर्षक हैं?'

'हरगिज नहीं।'

'लेकिन क्या दोनों को ठंड लग रही है?'

'नहीं।'

तो फिर अपनी गलती मानो! अगर गर्मी से दर्द होता है, और दोनों गर्म नहीं हैं, तो दर्द गर्मी से नहीं हो सकता। अगर ठंड से दर्द होता है, और दोनों ठंडी नहीं हैं, तो दर्द ठंड से नहीं हो सकता। तो फिर, हे राजा, ये दोनों तुम्हें कैसे नुकसान पहुंचा सकते हैं, क्योंकि न तो दोनों गर्म हैं और न ही दोनों ठंडी, और (क्योंकि एक गर्म है और दूसरी ठंडी) दर्द न तो गर्म से आता है और न ही ठंडी से?

'मैं आपसे बहस करने की स्थिति में नहीं हूँ। महोदय, कृपया मामले की वर्तमान स्थिति स्पष्ट करें।'

तब वृषभ ने राजा मिलिंदा से अभिधम्म से लिए गए विषय पर चर्चा करके उन्हें समझाया, जैसे: 'हे राजा, संसार में जीवन से जुड़े ये छह सुख हैं, और ये छह वैराग्य से जुड़े हैं। संसार में जीवन से जुड़े छह दुःख हैं, और छह वैराग्य से जुड़े हैं। संसार में जीवन से जुड़े सुख और दुःख के प्रति छह प्रकार की उदासीनता है, और छह वैराग्य से जुड़ी हैं। कुल मिलाकर छह-छह के छह समूह हैं, अर्थात् वर्तमान में छत्तीस प्रकार की संवेदनाएँ हैं, भूतकाल में भी इतनी ही संख्या में हैं, और भविष्यकाल में भी इतनी ही संख्या में हैं। इन सभी को जोड़कर हमें एक सौ आठ प्रकार की संवेदनाएँ प्राप्त होती हैं।'

'बहुत खूब कहा, नागासेना!'

6. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, पुनर्जन्म लेने वाली कौन सी चीज है?'

'नाम और स्वरूप का पुनर्जन्म हुआ है।'

'क्या, यही नाम और रूप पुनर्जन्म लेता है?'

नहीं: बल्कि इसी नाम और रूप से कर्म किए जाते हैं, अच्छे या बुरे, और इन कर्मों (इस कर्म) से एक नया नाम और रूप पुनर्जन्म लेता है।

'यदि ऐसा है, महोदय, तो क्या नया प्राणी अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो जाएगा?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'हां, यदि इसका पुनर्जन्म न हुआ होता। लेकिन हे राजा, केवल पुनर्जन्म होने मात्र से ही यह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से आम चुरा ले, और आम का मालिक उसे पकड़कर राजा के सामने लाए और उस पर अपराध का आरोप लगाए। और चोर कहे: "महाराज! मैंने इस आदमी के आम नहीं चुराए हैं। जो आम उसने ज़मीन में गाड़ दिए थे, वे उन आमों से अलग हैं जो मैंने चुराए हैं। मैं दंड का पात्र नहीं हूँ।" तो फिर वह दोषी कैसे होगा?'

'बिल्कुल, महोदय। वह सजा का पात्र होगा।'

लेकिन किस आधार पर?

क्योंकि, चाहे वह कुछ भी कहे, पहले आम (जिसे मालिक ने जमीन में लगाया था) से उत्पन्न अंतिम आम के संबंध में वह दोषी होगा।

'हे महाराज, इसी प्रकार, इस नाम और रूप से अच्छे या बुरे कर्म किए जाते हैं और एक और जन्म लेता है। लेकिन इससे वह दूसरा अपने कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'यह चोरी हुए चावल या चीनी की तरह है, जिसके बारे में आम के समान ही कहा जा सकता है। या यह उस आग की तरह है जिसे कोई व्यक्ति सर्दी के मौसम में जलाता है, और जब वह खुद को गर्म कर लेता है, तो उसे जलता हुआ छोड़कर चला जाता है। फिर यदि वह आग किसी दूसरे व्यक्ति के खेत में आग लगा दे, और खेत का मालिक उसे पकड़कर राजा के सामने लाए, और उस पर नुकसान का आरोप लगाए, और वह कहे: "महाराज! मैंने इस आदमी के खेत में आग नहीं लगाई। जो आग मैंने जलती हुई छोड़ी थी, वह उस आग से अलग थी जिसने उसके खेत को जलाया। मैं दोषी नहीं हूँ।" तो क्या अब, हे राजा, वह आदमी दोषी होगा?'

'जी हां, महोदय।'

'लेकिन क्यों?'

क्योंकि, चाहे वह कुछ भी कहे, पिछली आग के परिणामस्वरूप लगी अगली आग के लिए वह दोषी होगा।

'हे महाराज, इसी प्रकार, इस नाम और रूप से अच्छे या बुरे कर्म किए जाते हैं और एक और जन्म लेता है। लेकिन इससे वह दूसरा अपने कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, एक आदमी दीपक लेकर अपने घर की ऊपरी मंजिल पर जाता है और वहाँ भोजन करता है। दीपक की लौ से छप्पर में आग लग जाती है, जिससे घर में आग लग जाती है और उस घर में आग लगने से पूरा गाँव जल जाता है। लोग उसे पकड़कर पूछते हैं, "अरे, तुमने हमारे गाँव में आग क्यों लगाई?" वह कहता है, "मैंने तुम्हारे गाँव में आग नहीं लगाई! जिस दीपक की रोशनी में मैं भोजन कर रहा था, उसकी लौ एक बात थी; और जिस आग ने तुम्हारे गाँव को जलाया, वह दूसरी बात थी।" अब यदि वे इस प्रकार विवाद करते हुए आपके समक्ष न्यायालय में जाएँ, हे राजा, तो आप किसके पक्ष में निर्णय देंगे?'

'ग्रामीणों के पक्ष में।'

'लेकिन क्यों?'

'क्योंकि, महोदय, चाहे वह व्यक्ति कुछ भी कहे, एक आग दूसरी से ही उत्पन्न हुई थी।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार एक नाम-रूप मृत्यु में समाप्त हो जाता है, और दूसरा नाम-रूप पुनर्जन्म लेता है। परन्तु दूसरा पहले का परिणाम है, और इसलिए वह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो पाता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, एक पुरुष किसी युवती को विवाह के लिए चुनता है, उसकी कीमत चुकाता है और चला जाता है। समय आने पर वह युवती बालिग हो जाती है, और फिर दूसरा पुरुष उसकी कीमत चुकाकर उससे विवाह कर लेता है। जब पहला पुरुष लौटकर आता है, तो वह कहता है, "अरे, तुमने मेरी पत्नी को क्यों अगवा कर लिया?" और दूसरा कहता है, "मैंने तुम्हारी पत्नी को नहीं अगवा किया

है! वह नन्ही बच्ची, जिसे तुमने विवाह के लिए चुना और जिसकी कीमत चुकाई, वह एक है; और वह लड़की जो बालिग हो गई है और जिसकी मैंने विवाह के लिए चुना और कीमत चुकाई, वह दूसरी है।" अब यदि वे इस प्रकार विवाद करते हुए आपके समक्ष कानूनी कार्यवाही के लिए आते हैं, हे राजा, तो आप किसके पक्ष में निर्णय देंगे?'

'पहले विकल्प के पक्ष में।'

'लेकिन क्यों?'

'क्योंकि, दूसरी लड़की चाहे जो भी कहे, वयस्क लड़की की उत्पत्ति दूसरी लड़की से ही हुई होगी।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार एक नाम-रूप मृत्यु में समाप्त हो जाता है, और दूसरा नाम-रूप पुनर्जन्म लेता है। परन्तु दूसरा पहले का परिणाम है, और इसलिए वह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो पाता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, एक आदमी एक चरवाहे से दूध का एक बर्तन खरीदता है और उसे उसके भरोसे छोड़कर यह कहता है: "मैं कल इसे लेने आऊंगा;" और अगले दिन वह बर्तन दही बन जाता है। और जब वह आदमी आकर उसे मांगता है, तो मान लीजिए कि दूसरा उसे दही देता है, और वह कहता है: "मैंने आपसे दही नहीं खरीदा था; मुझे मेरा दूध का बर्तन वापस दीजिए।" और दूसरा जवाब देता है: "मेरी कोई गलती नहीं है, आपका दूध दही बन गया है।" अब यदि वे इस प्रकार विवाद करते हुए आपके समक्ष मुकदमा दायर करते हैं, हे राजा, तो आप किसके पक्ष में फैसला करेंगे?'

'चरवाहे के पक्ष में।'

'लेकिन क्यों?'

'क्योंकि, दूसरे चाहे कुछ भी कहें, दही तो दूध से ही बनता है।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, एक नाम और रूप मृत्यु में समाप्त हो जाता है, और दूसरा पुनर्जन्म लेता है। परन्तु वह दूसरा पहले का परिणाम है, और अतः वह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'क्या तुम, नागसेन, पुनर्जन्म लेना चाहोगे?'

नहीं, हे महाराज, यह प्रश्न दोबारा पूछने का क्या लाभ? क्या मैंने आपको पहले ही नहीं बताया है कि यदि मेरी मृत्यु के समय मेरे हृदय में लालसा बनी रहे, तो मैं मर जाऊँगा; लेकिन यदि नहीं, तो नहीं?

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, कोई व्यक्ति राजा की सेवा करे और राजा उससे प्रसन्न होकर उसे कोई पद प्रदान करे। फिर वह व्यक्ति उस पद पर रहते हुए, सभी इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए, सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करे कि राजा ने उसे कुछ भी प्रतिफल नहीं दिया है। तो क्या, हे राजा, वह व्यक्ति न्यायसंगत कार्य कर रहा होगा?'

'बिल्कुल नहीं।'

'तो फिर, हे महाराज, उस प्रश्न को दोबारा पूछने का क्या लाभ? क्या मैंने आपको पहले ही नहीं बताया है कि यदि मेरी मृत्यु के समय मेरे हृदय में लालसा बनी रहे, तो ऐसा ही होगा; और यदि नहीं, तो नहीं?'

'तुम जवाब देने के लिए तैयार हो, नागसेना।'

8. राजा ने कहा: 'तुम अभी नाम और रूप की बात कर रहे थे। उस अभिव्यक्ति में "नाम" का क्या अर्थ है, और "रूप" का क्या?'

'उसमें जो कुछ भी स्थूल है, वही "रूप" है; जो कुछ भी सूक्ष्म, मानसिक है, वही "नाम" है।'

'हे नागसेना, ऐसा क्यों है कि नाम का पुनर्जन्म अलग से नहीं होता, न ही रूप का पुनर्जन्म अलग से होता है?'

'हे महाराज, ये परिस्थितियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं; और एक साथ ही उत्पन्न होती हैं।'
मुझे एक उदाहरण दीजिए।
'हे महान राजा, जिस प्रकार मुर्गी को जुआ या अंडे का छिलका अलग-अलग नहीं मिलता, बल्कि दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वे दोनों एक दूसरे पर घनिष्ठ रूप से निर्भर होते हैं; ठीक उसी प्रकार, यदि नाम न हो तो रूप भी न हो। उस अभिव्यक्ति में नाम का अर्थ रूप पर घनिष्ठ रूप से निर्भर है, इसलिए वे एक साथ उत्पन्न होते हैं। और अनादिकाल से यही उनका स्वभाव रहा है।'
'तुम जवाब देने के लिए तैयार हो, नागसेना।'

9. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, तुम अनादि काल की बात कर रहे हो। इस शब्द "काल" का क्या अर्थ है?'
'हे राजा, अतीत, वर्तमान और भविष्य।'
'लेकिन क्या? क्या समय जैसी कोई चीज होती है?'
'समय का अस्तित्व भी है और अस्तित्वहीनता भी।'
'तो फिर कौन सा अस्तित्व में है और कौन सा नहीं?'
'हे राजा, कुछ ऐसी रचनाएँ (अस्तित्व की अंतर्निहित क्षमताएँ) हैं जो बीत चुकी हैं, जिनका अर्थ है कि वे समाप्त हो चुकी हैं, उनका अस्तित्व समाप्त हो गया है, या वे विलीन हो गई हैं, या पूरी तरह से बदल गई हैं। उनके लिए समय का कोई महत्व नहीं है। परन्तु हृदय की कुछ ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अब अपना प्रभाव उत्पन्न कर रही हैं, या उनमें अभी भी प्रभाव उत्पन्न करने की अंतर्निहित क्षमता है, या जो अन्यथा पुन: वैयक्तिकरण की ओर ले जाएँगी। उनके लिए समय का महत्व है। जहाँ ऐसे प्राणी हैं जो मरने के बाद पुनर्जन्म लेंगे, वहाँ समय का महत्व है। जहाँ ऐसे प्राणी हैं जो मरने के बाद पुनर्जन्म नहीं लेंगे, वहाँ समय का महत्व नहीं है; और जहाँ ऐसे प्राणी हैं जो पूरी तरह से मुक्त हो चुके हैं (जिन्होंने अपने वर्तमान जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लिया है और उस जीवन का अंत कर लिया है), वहाँ समय का महत्व नहीं है - क्योंकि वे पूर्णतः मुक्त हो चुके हैं।'
'तुम जवाब देने के लिए तैयार हो, नागसेना।'
यहां दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक II: नैतिक गुणों की विशिष्ट विशेषताएं - लक्खाना पन्हा अध्याय 3

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-4-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, भूतकाल का मूल क्या है, वर्तमान काल का मूल क्या है और भविष्य काल का मूल क्या है?'

अज्ञान। अज्ञान के कारण ही रचनाएँ उत्पन्न हुईं, रचनाओं के कारण चेतना, चेतना के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण ही छह इंद्रियाँ, उनके कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण संवेदना, संवेदना के कारण प्यास, प्यास के कारण लालसा, लालसा के कारण जन्म, जन्म के कारण जन्म, जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, शोक, पीड़ा और निराशा। इस प्रकार, इस समस्त समय के अतीत का अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है।

'तुम तैयार हो, नागसेना, जवाब देने के लिए!'

2. राजा ने कहा: 'तुम कहते हो कि समय का अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है। मुझे इसका एक उदाहरण दो।'

'मान लीजिए, हे राजा, एक व्यक्ति जमीन में एक छोटा सा बीज बोता है, और वह अंकुर बनकर उगता है, और समय के साथ बढ़ता है, विकसित होता है और परिपक्व होकर फल देता है। फिर वह व्यक्ति उस फल से एक बीज लेकर उसे फिर से जमीन में बो देता है, और सब कुछ पहले जैसा ही हो जाता है। क्या इस क्रम का कोई अंत होगा?'

बिलकुल नहीं, महोदय।

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, इस पूरे कालखंड के अतीत का अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मुर्गी अंडा देती है। अंडे से मुर्गी निकलती है। मुर्गी से एक अंडा। क्या इस सिलसिले का कोई अंत है?'

'नहीं।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, इस पूरे कालखंड के अतीत का अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

तब बुजुर्ग ने जमीन पर एक वृत्त खींचा और राजा से पूछा: 'क्या इस वृत्त का कोई अंत है?'

'नहीं, इसका कोई अंत नहीं है।'

4. यह तो भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित उन चक्रों के समान है। "आँख और रूपों के कारण दृष्टि उत्पन्न होती है, जब ये तीनों एक साथ आते हैं तो स्पर्श उत्पन्न होता है, स्पर्श से संवेदना उत्पन्न होती है, संवेदना से तड़प (तन्हा, प्यास) उत्पन्न होती है, तड़प से कर्म उत्पन्न होता है, और कर्म से फिर से आँख उत्पन्न होती है।" क्या इस श्रृंखला का कोई अंत है?

'नहीं।'

फिर अन्य सभी इंद्रियों (कान, नाक, जीभ, शरीर और मन) के लिए एक सटीक संगत वृत्त बनाकर, उन्होंने प्रत्येक मामले में वही प्रश्न पूछा। और उत्तर हमेशा एक जैसा होने पर, उन्होंने निष्कर्ष निकाला:

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार अतीत में समय का अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है।'

'तुम जवाब देने के लिए तैयार हो, नागसेना।'

3. राजा ने कहा: 'जब आप कहते हैं कि अंतिम बिंदु स्पष्ट नहीं है, तो "अंतिम बिंदु" से आपका क्या तात्पर्य है?'

'जो भी समय बीत चुका है, हे राजा, मैं उसी के अंतिम बिंदु की बात कर रहा हूँ।'

लेकिन, यदि ऐसा है, तो जब आप कहते हैं कि यह स्पष्ट नहीं है, तो क्या आपका मतलब हर चीज के बारे में यही है? क्या हर चीज का अंतिम बिंदु अज्ञात है?

'कुछ हद तक सही, और कुछ हद तक नहीं।'

तो फिर इनमें से कौन सा सच है और कौन सा नहीं?

'हे राजा, पूर्वकाल में, प्रत्येक रूप में, प्रत्येक स्वरूप में, सब कुछ अज्ञान था। यह हमारे लिए ऐसा है मानो वह अज्ञान ही हो। इस संदर्भ में परम आरंभ अज्ञात है। परन्तु जो अस्तित्व में नहीं है, वह अस्तित्व में आता है; जैसे ही उसका अस्तित्व शुरू होता है, वह फिर विलीन हो जाता है। इस संदर्भ में परम आरंभ ज्ञात है।'

लेकिन, आदरणीय महोदय, यदि जो अस्तित्व में नहीं था, वह अस्तित्व में आ जाए, और जैसे ही वह अस्तित्व में आना शुरू हो, वैसे ही फिर से लुप्त हो जाए।

अगर यह अलग हो जाए, तो निश्चित रूप से, इस प्रकार दोनों सिरों से कट जाने के कारण, यह पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा?

'नहीं, हे राजा, यदि इसे दोनों सिरों से इस प्रकार काट दिया जाए, तो क्या इसे दोनों सिरों से फिर से उगाया नहीं जा सकता?'

'हां, ऐसा हो सकता है। लेकिन मेरा सवाल यह नहीं है। क्या यह उस जगह से दोबारा उग सकता है जहां से इसे काटा गया था?'

'निश्चित रूप से।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

तब बड़े गुरु ने वृक्ष और बीज की उपमा दोहराई और कहा कि स्कंध (सम्मय जीवन के घटक तत्व, जैविक और अजैविक) इतने सारे बीज हैं, और राजा ने स्वयं को संतुष्ट पाया।

4. राजा ने कहा: 'क्या यहाँ कोई मिठाई बनाई जाती है?'

'निश्चित रूप से।'

'वह कौन से है?'

जहां आंख होती है और आकृतियां भी होती हैं, वहां दृष्टि होती है, जहां दृष्टि होती है वहां आंख के माध्यम से संपर्क होता है, जहां आंख के माध्यम से संपर्क होता है वहां संवेदना होती है, जहां संवेदना होती है वहां लालसा होती है, जहां लालसा होती है वहां अभिलाषा होती है, जहां अभिलाषा होती है वहां विकास होता है।

जहां विकास होता है, वहां जन्म होता है, और जन्म के समय ही वृद्धावस्था और मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा का जन्म होता है। इस प्रकार इस प्रकार के सभी दुःखों का उदय होता है। जहां न आंख है, न रूप, वहां दृष्टि नहीं है; जहां दृष्टि नहीं है, वहां आंख के माध्यम से संपर्क नहीं है; जहां संपर्क नहीं है, वहां संवेदना नहीं है; जहां संवेदना नहीं है, वहां लालसा नहीं है; जहां लालसा नहीं है, वहां अभिलाषा नहीं है; जहां अभिलाषा नहीं है, वहां विकास नहीं है; जहां विकास नहीं है, वहां जन्म नहीं है; और जहां जन्म नहीं है, वहां न वृद्धावस्था है, न मृत्यु, न शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा है। इस प्रकार इस प्रकार के सभी दुःखों का अंत होता है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

5. राजा ने कहा: 'क्या कोई ऐसी रचनाएँ (गुण) हैं जो क्रमिक विकास के बिना अचानक अस्तित्व में आ जाती हैं?'

'नहीं। उन सभी का विकास क्रमिक रूप से होता है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा? क्या यह घर जिसमें आप बैठे हैं, अचानक अस्तित्व में आ गया?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। यहाँ कुछ भी इस तरह से उत्पन्न नहीं हुआ है। इसका प्रत्येक भाग क्रमिक रूप से बना है - ये बीम जंगल में बने, और यह मिट्टी धरती में, और महिलाओं और पुरुषों के परिश्रम और मेहनत से यह घर निर्मित हुआ है।'

'ठीक वैसे ही, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आती। मिठाइयाँ विकास की प्रक्रिया से ही बनती हैं!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'वे सभी प्रकार के वृक्षों और पौधों की तरह हैं, जो जमीन में लगाए जाने पर बढ़ते, विकसित होते और परिपक्व होते हैं, और फिर अपने फल और फूल देते हैं। वृक्ष बिना विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आते। विकास की प्रक्रिया से ही वे अपना स्वरूप प्राप्त करते हैं। ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आती। मिठाई भी विकास की प्रक्रिया से ही बनती है!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'ये उन विभिन्न प्रकार के बर्तनों के समान हैं जिन्हें कुम्हार मिट्टी खोदकर बनाता है। बर्तन बिना किसी प्रक्रिया के अचानक अस्तित्व में नहीं आ जाते। विकास की प्रक्रिया से ही वे अपना स्वरूप प्राप्त करते हैं। ठीक वैसे ही, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना किसी क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आ जाती। मिठाई भी विकास की प्रक्रिया से ही बनती है!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, अगर मैंडोलिन पर धातु का कोई पुल न हो, चमड़ा न हो, कोई खोखली जगह न हो, कोई ढांचा न हो, कोई गर्दन न हो, कोई तार न हो, कोई धनुष न हो, और कोई मानवीय प्रयास या परिश्रम न हो, तो क्या संगीत होगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन अगर ये सब चीजें होतीं, तो क्या कोई आवाज नहीं होती?'

'बेशक ऐसा होगा।'

'ठीक वैसे ही, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आती। मिठाईयों का निर्माण विकास की प्रक्रिया से ही होता है!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, यदि आग जलाने का कोई उपकरण न हो, कोई घुमाने वाली छड़ी न हो, घुमाने वाली छड़ी के लिए कोई रस्सी न हो, कोई आधार न हो, आग जलाने के लिए कोई जला हुआ कपड़ा न हो, और कोई मानवीय प्रयास और परिश्रम न हो, तो क्या घर्षण से आग लग सकती है?'

'हरगिज नहीं।'

लेकिन अगर ये सभी स्थितियां मौजूद हों, तो क्या आग नहीं लग सकती?

'हां बेशक।'

'ठीक वैसे ही, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आती। मिठाईयों का निर्माण विकास की प्रक्रिया से ही होता है!'

'मुझे एक और उदाहरण दीजिए।'

'मान लीजिए, हे राजा, यदि न तो जलने वाला कांच हो, न सूर्य की ऊष्मा हो, और न ही जलाने के लिए सूखी गोबर की सामग्री हो, तो क्या आग लग सकती है?'

'हरगिज नहीं।'

'लेकिन जहां ये चीजें मौजूद हों, वहां आग लग सकती है, है ना?'

'हाँ।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, ऐसी कोई मिठाई नहीं है जो...'

यह किसी क्रमिक विकास के बिना अचानक अस्तित्व में आया है। मिठाइयाँ विकास की प्रक्रिया से ही अस्तित्व में आती हैं!

'मुझे एक और उदाहरण दीजिए।'

'मान लीजिए, हे राजा, कि न तो कोई दर्पण हो, न कोई प्रकाश हो, और न ही उसके सामने कोई चेहरा हो, तो क्या कोई छवि प्रकट होगी?'

'नहीं।'

'लेकिन इन बातों को देखते हुए, शायद इसका कोई प्रतिबिंब हो सकता है?'

'जी हां, हो सकता है।'

'ठीक वैसे ही, हे महाराज, कोई भी मिठाई बिना क्रमिक विकास के अचानक अस्तित्व में नहीं आती। मिठाईयों का निर्माण विकास की प्रक्रिया से ही होता है!'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

6. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या आत्मा जैसी कोई चीज होती है?'

'हे राजा, यह आत्मा (वेदगु) क्या है?'

'वह सजीव सिद्धांत जिसके भीतर आँख से रूप देखता है, कान से आवाज़ें सुनता है, जीभ से स्वाद का अनुभव करता है, नाक से गंध महसूस करता है, शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है और मन से चीजों (स्थितियों, "धम्म") को समझता है - ठीक वैसे ही जैसे हम, यहाँ महल में बैठे हुए, अपनी इच्छा अनुसार किसी भी खिड़की से बाहर देख सकते हैं, चाहे वह पूर्व की खिड़की हो या पश्चिम की, या उत्तर की या दक्षिण की।'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'मैं तुम्हें पाँचों के बारे में बताऊंगा'

हे महाराज, ध्यानपूर्वक सुनिए। यदि भीतर का सजीव तत्व आपकी बताई गई विधि से आँखों के माध्यम से आकृतियों को देखता है, और अपनी इच्छानुसार द्वार चुनता है, तो क्या वह केवल आँखों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि अन्य पाँचों इंद्रियों के माध्यम से भी आकृतियों को नहीं देख सकता? और इसी प्रकार, क्या वह आपके द्वारा प्रत्येक मामले में निर्दिष्ट इंद्रिय के अलावा अन्य पाँचों इंद्रियों के माध्यम से

भी ध्वनियाँ नहीं सुन सकता, स्वाद का अनुभव नहीं कर सकता, गंध को नहीं सूंघ सकता, स्पर्श को महसूस नहीं कर सकता और स्थितियों को नहीं समझ सकता?

'नहीं, महोदय।'

तो ये शक्तियाँ एक दूसरे से अविभेदित रूप से जुड़ी नहीं हैं, न ही एक इंद्रिय दूसरी से जुड़ी है, और इसी प्रकार आगे भी। अब हम, जैसा कि हम यहाँ महल में बैठे हैं, इन सभी खिड़कियों के खुले होने और पूर्ण प्रकाश में, यदि हम केवल अपना सिर आगे बढ़ाएँ, तो सभी प्रकार की वस्तुएँ स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। क्या सजीव तत्व भी ऐसा कर सकता है जब आँखों के द्वार खुले हों? क्या कानों के द्वार खुले होने पर वह ऐसा कर सकता है? क्या वह न केवल ध्वनियाँ सुन सकता है, बल्कि दृश्य देख सकता है, स्वाद का अनुभव कर सकता है, गंध सूंघ सकता है, स्पर्श महसूस कर सकता है और स्थितियों को समझ सकता है? और क्या उसकी प्रत्येक खिड़की के साथ ऐसा ही है?

'नहीं, महोदय।'

'तो ये शक्तियां एक दूसरे से अंधाधुंध रूप से एकजुट नहीं हैं। अब फिर से, महान राजा, यदि दिन्ना यहाँ बाहर जाकर द्वार पर खड़ा हो जाए, तो क्या आपको पता चलेगा कि उसने ऐसा किया है?'

'हां, मुझे यह पता होना चाहिए।'

और यदि वही दिन्ना फिर से लौटकर तुम्हारे सामने खड़ा हो जाए, तो क्या तुम्हें उसके ऐसा करने का एहसास होगा?

'हां, मुझे यह पता होना चाहिए।'

'हे महान राजा, क्या भीतर का सजीव सिद्धांत उसी प्रकार पहचान पाएगा, यदि जीभ पर स्वादयुक्त कोई वस्तु रखी जाए, तो उसका खट्टापन, नमकीनपन, अम्लता, तीखापन, कसैलापन या मिठास?'

'हां, उसे पता होगा।'

लेकिन जब स्वाद पेट में चला जाएगा तो क्या वह इन चीजों को पहचान पाएगा?

'हरगिज नहीं।'

तो ये शक्तियाँ एक दूसरे से अंधाधुंध रूप से जुड़ी नहीं हैं। अब मान लीजिए, हे राजा, कि एक व्यक्ति सौ बर्तन शहद मंगवाकर एक पात्र में भरवा दे, और फिर दूसरे व्यक्ति का मुँह बंद करके उसे शहद से भरे पात्र में फेंक दे। क्या वह जान पाएगा कि जिसमें उसे फेंका गया है वह मीठा है या नहीं?

'नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'क्योंकि शहद उसके मुंह में नहीं जा सका।'

'तो, हे महान राजा, ये शक्तियां एक दूसरे से अंधाधुंध रूप से एकजुट नहीं हैं।'

'मैं ऐसे तर्कशील व्यक्ति से चर्चा करने में सक्षम नहीं हूँ। महोदय, कृपया मुझे समझाएँ कि मामला क्या है।'

तब वृद्ध ने अभिधम्म से लिए गए प्रवचन से राजा मिलिंदा को समझाते हुए कहा: 'हे राजा, दृष्टि और रूप के कारण ही दृष्टि उत्पन्न होती है, और अन्य स्थितियाँ—संपर्क,

संवेदना, विचार, चिंतन, अमूर्तता, जीवन का बोध और ध्यान—ये सभी अपने पूर्ववर्ती के साथ एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। और इसी प्रकार कारण और प्रभाव का क्रम तब भी उत्पन्न होता है जब अन्य पाँचों इंद्रियों को सक्रिय किया जाता है। अतः यहाँ आत्मा (वेदगु) जैसी कोई वस्तु नहीं है।

7. राजा ने कहा: 'क्या दृष्टि उत्पन्न होने पर विचार-बोध भी उत्पन्न होता है?'

'जी, हे राजा, जहाँ एक है, वहाँ दूसरा भी है। और इन दोनों में से पहले कौन उत्पन्न होता है?'

'पहले नजर पड़ी, फिर विचार आया।'

तब क्या दृष्टि, मानो, विचार को आदेश देती है, यह कहते हुए: "क्या तुम वहाँ उत्पन्न होगे जहाँ मैं हूँ? या क्या विचार दृष्टि को आदेश देता है, यह कहते हुए: जहाँ तुम उत्पन्न होगे, मैं वहाँ उत्पन्न होऊंगा।"

'ऐसा नहीं है, महाराज। उन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है।'

'तो फिर ऐसा कैसे होता है, महोदय, कि जहाँ भी दृष्टि होती है, वहाँ विचार उत्पन्न होते हैं?'

'ढलान होने के कारण, दरवाजा होने के कारण, आदत होने के कारण और जुड़ाव होने के कारण।'

'यह कैसे संभव है? मुझे एक उदाहरण दीजिए जिसमें ढलान होने के कारण दृष्टि के स्थान पर मन उत्पन्न होता हो।'

'अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा? जब बारिश होती है, तो पानी कहाँ जाता है?'

'यह जमीन की ढलान का अनुसरण करेगा।'

और अगर दोबारा बारिश हुई तो पानी कहाँ जाएगा?

'यह उसी तरह बहेगा जैसे पहला पानी बहा था।'

तो फिर क्या? क्या पहली जलधारा, मानो, दूसरी जलधारा को आदेश देती है, यह कहते हुए: "क्या तुम वहीं जाओगे जहाँ मैं तुम्हें ले जाऊँगी?" या क्या दूसरी जलधारा पहली जलधारा को आदेश देती है, यह कहते हुए: "तुम जहाँ भी जाओगे, मैं वहीं जाऊँगी"?

'ऐसा नहीं है, महोदय। दोनों के बीच कोई संपर्क नहीं है। जमीन की ढलान के कारण दोनों अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं।'

'हे महाराज, यही प्राकृतिक ढलान का नियम है कि जहाँ दृष्टि उत्पन्न होती है, वहीं विचार भी उत्पन्न होते हैं। न तो दृष्टि मन को यह आदेश देती है कि "जहाँ मैं उत्पन्न हुआ हूँ, वहीं तुम भी उत्पन्न हो जाओ;" और न ही मन दृष्टि को यह सूचना देता है कि "जहाँ तुम उत्पन्न हुए हो, वहीं मैं भी उत्पन्न हो जाऊँगा।" उनके बीच कोई संवाद नहीं होता। जो कुछ भी घटित होता है, वह प्राकृतिक ढलान के कारण ही होता है।'

'अब मुझे एक उदाहरण दीजिए जिसमें दरवाजा दिखाया गया हो।'

'हे महान राजा, आप क्या सोचते हैं? मान लीजिए कि एक राजा का एक सीमावर्ती शहर है, जो मीनारों और बुर्जों से मज़बूती से सुरक्षित है, और उसमें केवल एक ही प्रवेश द्वार है। यदि कोई व्यक्ति शहर छोड़ना चाहता है, तो वह बाहर कैसे जाएगा?'

'गेट के पास, बिल्कुल।'

'और अगर कोई दूसरा आदमी इसे छोड़ना चाहे, तो वह कैसे बाहर जाएगा?'

'बिल्कुल पहले की तरह।'

तो फिर क्या? क्या पहला आदमी दूसरे को बताएगा?

[पैराग्राफ जारी है] "ध्यान रहे, तुम भी उसी रास्ते से बाहर जाओगे जिस रास्ते से मैं जाता हूँ?" या दूसरा पहले से कहेगा: "जिस रास्ते से तुम बाहर जाओगे, मैं भी उसी रास्ते से बाहर जाऊँगा?"

'बिल्कुल नहीं, महोदय। उनके बीच कोई संवाद नहीं होगा। वे उस रास्ते से जाएंगे क्योंकि वही द्वार था।'

'हे महान राजा, ठीक इसी प्रकार, विचार और दृष्टि से।'

'अब मुझे एक ऐसा उदाहरण दीजिए जिसमें आदत के कारण देखने पर विचार उत्पन्न होता हो।'

'हे महाराज, आपका क्या विचार है? यदि एक गाड़ी आगे चली जाए, तो दूसरी गाड़ी किस दिशा में जाएगी?'

'पहले वाले जैसा ही।'

लेकिन क्या पहला दूसरे को यह बताएगा कि वह वहीं जाए जहां वह गया था, या दूसरा पहले को यह बताएगा कि वह वहीं जाएगा जहां वह (पहला) गया था?

'नहीं, महोदय। उन दोनों के बीच कोई संवाद नहीं होगा। दूसरा व्यक्ति आदतवश पहले का अनुसरण करेगा।'

'हे महान राजा, दृष्टि और विचार से ठीक ऐसा ही करो।'

'अब मुझे एक उदाहरण देकर समझाइए कि दृष्टि उत्पन्न होने पर, साहचर्य के माध्यम से विचार कैसे उत्पन्न होता है।'

उंगलियों के जोड़ों को संकेतों या चिह्नों के रूप में उपयोग करके गणना करने की कला में, शुद्ध और सरल अंकगणित की कला में, संभाव्यता का अनुमान लगाने की कला में।

फसल की पैदावार में वृद्धि होती है, और लेखन कला में, हे राजा, आरंभिक व्यक्ति अनाड़ी होता है। परन्तु कुछ समय बाद ध्यान और अभ्यास से वह निपुण हो जाता है। ठीक इसी प्रकार, जहाँ दृष्टि उत्पन्न होती है, वहाँ संगति के कारण विचार भी उत्पन्न होते हैं।

और इसी तरह के प्रश्नों के उत्तर में, एल्डर ने घोषणा की कि जहाँ भी श्रवण, स्वाद, गंध या स्पर्श होता है, वहाँ विचार उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं: कि प्रत्येक मामले में यह दूसरे के बाद आता है, लेकिन ऊपर बताए गए प्राकृतिक कारणों से बिना किसी संचार के उत्पन्न होता है।

8. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जहाँ विचार (मानसिक बोध) होता है, क्या वहाँ हमेशा संवेदना भी होती है?'

'हाँ, जहाँ विचार उत्पन्न होता है, वहाँ संपर्क होता है, वहाँ संवेदना होती है, वहाँ विचार होता है, वहाँ कल्पित इरादा होता है, वहाँ चिंतन होता है; और वहाँ अन्वेषण होता है।'

9. 'आदरणीय महोदय, संपर्क (फस्सा) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

'हे राजा, स्पर्श करो।'

लेकिन मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह ऐसा है जैसे दो भेड़ें आपस में टक्कर मार रही हों, ओ'

राजा। आँख को उन दो में से एक, रूप (वस्तु) को दूसरा और संपर्क को उन दोनों के मिलन के रूप में देखा जाना चाहिए।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'यह ऐसा है जैसे दो झांझ आपस में टकराते हैं। एक आँख की तरह है, दूसरा वस्तु की तरह, और दोनों का मिलन संपर्क की तरह है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

10. 'आदरणीय महोदय, वेदना (संवेदना) की विशेषता क्या है?'

'वह अनुभव, महान राजा, और आनंदित हो रहा है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

यह उस व्यक्ति के समान है जिसे राजा उसकी किसी सेवा से प्रसन्न होकर कोई पद प्रदान करता है। वह उस पद पर रहते हुए, सभी इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए, सोचेगा: "पहले मैंने राजा की सेवा की थी। इसके लिए राजा मुझसे प्रसन्न होकर मुझे यह पद दिया। इसी कारण मैं अब ऐसी संवेदनाओं का अनुभव कर रहा हूँ।" और यह उस व्यक्ति के समान है जिसने अच्छे कर्म किए हैं और मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर स्वर्ग में आनंदमय अवस्था में पुनर्जन्म लेता है। वह वहाँ रहते हुए, सभी इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए, सोचेगा: "पहले मैंने अच्छे कर्म किए होंगे। इसी कारण मैं अब ऐसी संवेदनाओं का अनुभव कर रहा हूँ।" इस प्रकार, हे महाराज, अनुभव और आनंदित होना ही संवेदना का विशिष्ट लक्षण है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

11. 'नागसेन, विचार (संज्ञा) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

'हे राजा, पहचान! और वह क्या पहचानता है? नीलापन, पीलापन, लालपन, सफेदी और भूरापन।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह राजा के कोषाध्यक्ष के समान है। हे राजा, जब वह खजाने में प्रवेश करते समय राजा की संपत्ति को उन सभी रंगों में देखता है, तो वह पहचान लेता है (कि वे ऐसे ही हैं)। इसी प्रकार, हे महान राजा, पहचान ही विचार की पहचान है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

'हे नागसेन, परिकल्पित उद्देश्य (केतना) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

'हे राजा, गर्भ धारण करने की प्रक्रिया और तैयारी की प्रक्रिया।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, यह उस व्यक्ति के समान है जो विष तैयार करे और स्वयं भी उसे पी ले और दूसरों को भी पीने को दे। उसे स्वयं भी पीड़ा सहनी होगी और दूसरों को भी। उसी प्रकार, कोई व्यक्ति जानबूझकर कोई बुरा कर्म करने का निश्चय करके, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन से

नरक में किसी दुखद पीड़ा में पुनर्जन्म लेगा, और उसके अनुयायी भी उसी प्रकार पीड़ा में रहेंगे। और यह एक ऐसे व्यक्ति के समान है जो...

हे महाराज, वह मनुष्य जो घी, मक्खन, तेल, शहद और गुड़ का मिश्रण तैयार करे और उसे स्वयं भी पिए तथा दूसरों को भी पिलाए, तो उसे स्वयं भी आनंद मिलेगा और दूसरों को भी। इसी प्रकार, कोई व्यक्ति, किसी अच्छे कर्म का निश्चय करके, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर स्वर्ग में किसी सुखमय अवस्था में पुनर्जन्म लेगा, और उसके उपदेश का पालन करने वाले भी उसी प्रकार स्वर्ग में प्रवेश करेंगे। इस प्रकार, हे महाराज, परिकल्पना और परिकल्पना, परिकल्पना के उद्देश्य के ही लक्षण हैं।

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

12. 'हे नागसेन, बोध (विज्ञाना) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

'मान्यता, महान राजा।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह उस नगर के रक्षक के समान है जो नगर के मध्य में चौराहे पर बैठा हुआ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर से आने वाले व्यक्ति को देख सकता है। उसी प्रकार, हे राजा, वह उस वस्तु को जानता है जिसे वह अपनी आँखों से देखता है, या उस ध्वनि को जिसे वह अपने कानों से सुनता है, या उस गंध को जिसे वह अपनी नाक से सूंघता है, या उस स्वाद को जिसे वह अपनी जीभ से अनुभव करता है, या उस स्पर्शनीय वस्तु को जिसे वह अपने शरीर से स्पर्श करता है, या उस गुण को जिसे वह अपने मन से पहचानता है। इस प्रकार, हे महाराज, जानना ही बोध का चिन्ह है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

13. 'हे नागसेन, चिंतन (वितक्का) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

'किसी उद्देश्य की पूर्ति।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह उस बढ़ई के मामले के समान है, हे महान राजा, जो लकड़ी के एक सुगठित टुकड़े को जोड़ में ठीक से लगाता है। इसी प्रकार, किसी लक्ष्य की प्राप्ति चिंतन का प्रतीक है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

14. 'हे नागसेन, जांच (विकार) की विशिष्ट विशेषता क्या है?'

बार-बार छानना।

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह तांबे के बर्तन के समान है, जिसे आकार देते समय बार-बार ध्वनि उत्पन्न होती है। आकार देने की प्रक्रिया को चिंतन और बार-बार ध्वनि उत्पन्न होने को अन्वेषण माना जाना चाहिए। इसी प्रकार, हे महाराज, बार-बार पीटना ही अन्वेषण का प्रतीक है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

तीसरा अध्याय यहीं समाप्त होता है।

15. राजा ने कहा: 'जब वे स्थितियाँ (जिनके लक्षण आपने अभी बताए हैं) आपस में मिल जाती हैं, तो क्या उन्हें एक तरफ और दूसरी तरफ मोड़कर उनके बीच का अंतर स्पष्ट करना संभव है, ताकि यह कहा जा सके: 'यह संपर्क है, और यह संवेदना है, और यह विचार है, और यह इरादा है, और यह बोध है, और यह चिंतन है, और यह अन्वेषण है'?'

'नहीं: ऐसा नहीं किया जा सकता।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे महाराज, राजमहल का रसोइया एक चाशनी या चटनी बनाए और उसमें दही, नमक, अदरक, जीरा, काली मिर्च और अन्य सामग्रियाँ डाले। मान लीजिए, महाराज उससे कहें: "मुझे दही, नमक, अदरक, जीरा, काली मिर्च और उन सभी चीजों का स्वाद बताइए जो आपने इसमें डाली हैं।" तो क्या यह संभव होगा, हे महाराज, कि इस प्रकार आपस में मिल गए उन स्वादों को अलग-अलग करके यह बताया जा सके: "यहाँ खट्टापन है, यहाँ नमकीनपन है, यहाँ तीखापन है, यहाँ अम्लता है, यहाँ कसैलापन है और यहाँ मिठास है?"

'नहीं, ऐसा संभव नहीं होगा। लेकिन फिर भी प्रत्येक स्वाद अपने विशिष्ट चिह्न द्वारा स्पष्ट रूप से मौजूद होगा।'

'और ठीक यही बात, महान राजा, उन शर्तों के संबंध में भी लागू होती है जिन पर हम चर्चा कर रहे थे।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

16. बड़े ने कहा: 'हे राजा, क्या नमक को आँखों से पहचाना जा सकता है?'

'जी हां, महोदय, ऐसा ही है।'

लेकिन सावधान रहें, हे राजा।

तो फिर, महोदय, क्या इसे जीभ से महसूस किया जा सकता है?

'हां वह सही है।'

'लेकिन, महोदय, क्या नमक के हर प्रकार को केवल जीभ से ही पहचाना जा सकता है?'

'हां, हर तरह के।'

'अगर ऐसा है, महोदय, तो बैलगाड़ी भर-भरकर इसे क्यों लाते हैं? क्या सिर्फ नमक ही नहीं, बल्कि और कुछ नहीं, वही तो लाया जाना चाहिए?'

'नमक को अकेले लाना असंभव है। लेकिन ये सभी परिस्थितियाँ मिलकर एक विशिष्ट वस्तु, नमक, का निर्माण करती हैं। (उदाहरण के लिए): नमक भी भारी होता है। लेकिन हे राजा, क्या नमक को तौलना संभव है?'

'जी हां, महोदय।'

नहीं, हे महाराज, आप नमक नहीं तोल रहे हैं, बल्कि वजन तोल रहे हैं।

'नागसेना, तुम बहस के लिए तैयार हो।'

यहीं पर मिलिंदा द्वारा नागसेना से की गई पूछताछ समाप्त होती है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक III: कठिनाइयों का निवारण - विमटिकखेदान पन्हा अध्याय 4

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-5-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'क्या पाँच आयतन, नागसेन (आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर) विभिन्न कर्मों से उत्पन्न होते हैं, या एक ही कर्म से?' (अर्थात, विभिन्न कर्मों के परिणाम स्वरूप, या एक ही कर्म के परिणाम स्वरूप।)

'विभिन्न कार्यों के माध्यम से, न कि केवल एक कार्य से।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब, हे राजा, आप क्या सोचते हैं? यदि मैं एक ही खेत में पाँच प्रकार के बीज बोऊँ, तो क्या उन विभिन्न बीजों की उपज अलग-अलग प्रकार की होगी?'

'हां बेशक।'

'ठीक वैसे ही जैसे आयतनों के निर्माण के संबंध में है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

2. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, ऐसा क्यों है कि सभी मनुष्य एक समान नहीं होते, बल्कि कुछ अल्प आयु वाले होते हैं और कुछ दीर्घ आयु वाले, कुछ बीमार होते हैं और कुछ स्वस्थ, कुछ बदसूरत होते हैं और कुछ सुंदर, कुछ प्रभावहीन होते हैं और कुछ महान शक्ति वाले, कुछ गरीब होते हैं और कुछ धनी, कुछ नीच कुल के होते हैं और कुछ उच्च कुल के, कुछ मूर्ख होते हैं और कुछ बुद्धिमान?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'ऐसा क्यों है कि सभी सब्जियां एक जैसी नहीं होतीं, कुछ खट्टी, कुछ नमकीन, कुछ तीखी, कुछ खट्टी, कुछ कसैली और कुछ मीठी होती हैं?'

'मुझे लगता है, महोदय, ऐसा इसलिए है क्योंकि वे अलग-अलग प्रकार के बीजों से आते हैं।'

और हे महाराज, आपने मनुष्यों के बीच जिन भेदों का उल्लेख किया है, ठीक इसी प्रकार उनका स्पष्टीकरण किया जाना है। क्योंकि भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे ब्राह्मण, प्रत्येक प्राणी का अपना कर्म होता है, वे कर्म के उत्तराधिकारी होते हैं, अपने कर्म के गोत्र से संबंधित होते हैं, कर्म के अनुसार रिश्तेदार होते हैं, और प्रत्येक का कर्म ही उनका संरक्षक होता है। कर्म ही उन्हें निम्न और उच्च तथा इसी प्रकार के अन्य वर्गों में विभाजित करता है।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

3. राजा ने कहा: 'नागसेन, तुमने मुझे बताया था कि तुम्हारा त्याग इस उद्देश्य से था कि यह दु:ख दूर हो जाए और आगे कोई दु:ख उत्पन्न न हो।'

'हां, ऐसा ही है।'

लेकिन क्या वह त्याग पूर्व प्रयासों के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है, या फिर वर्तमान समय में उसके लिए प्रयास करना होगा?

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'अब प्रयास उस काम पर केंद्रित है जो अभी बाकी है, पूर्व प्रयास ने अपना काम पूरा कर लिया है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब आप क्या सोचते हैं, हे राजा? क्या प्यास लगने पर ही आप पीने के लिए पानी प्राप्त करने के इरादे से कुआँ या कृत्रिम झील खुदवाने का काम शुरू करते हैं?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'ठीक उसी प्रकार, हे महान राजा, अब प्रयास उस कार्य से संबंधित है जो अभी भी शेष है, पूर्व प्रयास अपना कार्य पूरा कर चुका है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? क्या भूख लगने पर ही आप खेतों की जुताई, बीज बोने और फसल काटने का काम शुरू करते हैं ताकि आपको खाने के लिए कुछ मिल सके?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'ठीक उसी प्रकार, हे महान राजा, अब प्रयास उस कार्य से संबंधित है जो अभी भी शेष है, पूर्व प्रयास अपना कार्य पूरा कर चुका है।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? क्या जब आपके विरुद्ध युद्ध की तैयारी हो जाती है, तब आप खाई खुदवाने, प्राचीर बनवाने, पहरेदारी मीनार बनवाने, गढ़ बनवाने और भोजन भंडार इकट्ठा करने का काम शुरू करते हैं? क्या तब आप स्वयं हाथियों का प्रबंधन, घुड़सवारी, रथ और धनुष का उपयोग या तलवारबाजी की कला सीखना चाहते हैं?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, अब प्रयास उस कार्य से संबंधित है जो अभी शेष है, पूर्व प्रयास ने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है। क्योंकि हे महाराज ने ऐसा कहा है:

समय रहते हर बुद्धिमान व्यक्ति को वही करना चाहिए जो उसे अपना भला लगे! उसे गाड़ीवान की तरह नहीं सोचना चाहिए, बल्कि दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ना चाहिए। जैसे कोई गाड़ीवान जो सुगम सड़क छोड़कर ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चला जाता है, बेचैन हो जाता है (जैसे कोई जुआरी सब कुछ दांव पर लगाकर हार जाता है) - वैसे ही वह दुर्बल मन जो अच्छाई की उपेक्षा करता है और बुराई का अनुसरण करता है, मृत्यु के चंगुल में फंसकर दुखी होता है, जैसे कोई बर्बाद जुआरी अपनी जरूरत के समय दुखी होता है।

'बहुत बढ़िया, नागासेना।'

4. राजा ने कहा: 'तुम (बौद्ध) ऐसा कहते हो: "नरक की आग साधारण आग से कहीं अधिक भयंकर होती है। साधारण आग में डाला गया एक छोटा पत्थर एक दिन तक बिना नष्ट हुए धुआँ छोड़ सकता है; परन्तु नरक की भट्ठी में ऊपरी कक्ष जितना बड़ा पत्थर डाला जाए तो वह उसी क्षण नष्ट हो जाएगा।" यह कथन मुझे विश्वास नहीं होता। अब, दूसरी ओर तुम ऐसा कहते हो: "वहाँ जो भी प्राणी पुनर्जन्म लेते हैं, यद्यपि वे

"वे लाखों वर्षों तक नरक में जलते रहते हैं, फिर भी उनका नाश नहीं होता।" यह भी एक ऐसा कथन है जिस पर मुझे विश्वास नहीं है।

बुजुर्ग ने कहा: 'अब आप क्या सोचते हैं, हे राजा? क्या शार्क, मगरमच्छ, कछुए, मोर और कबूतरों की मादाएं पत्थर और कंकड़ के कठोर टुकड़े नहीं खातीं?'

'जी हां, महोदय। वे करते हैं।'

'तो फिर क्या? क्या ये कठोर चीजें, जब पेट में, उदर के अंदरूनी भाग में पहुँच जाती हैं, तो नष्ट हो जाती हैं?'

'हां, वे नष्ट हो गए हैं।'

और जो भ्रूण उन्हीं जानवरों के अंदर हो सकता है, क्या वह भी नष्ट हो जाता है?

'हरगिज नहीं।'

'लेकिन क्यों नहीं।'

'मुझे लगता है, महोदय, यह कर्म के प्रभाव से विनाश से बच गया।'

"हे महाराज, कर्म के प्रभाव से ही प्राणी, चाहे वे हजारों वर्षों से नरक में हों, नष्ट नहीं होते। यदि उनका वहाँ पुनर्जन्म होता है, तो वे वहीं बड़े होते हैं और वहीं उनकी मृत्यु होती है। हे महाराज, इस बारे में यही कहा गया है: 'जब तक उस बुरे कर्म का फल नहीं मिल जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।'"

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'अब आप क्या सोचते हैं, हे राजा? क्या शेरों, बाघों, तेंदुओं और कुत्तों की मादाएं हड्डी और मांस के कठोर टुकड़े नहीं खातीं?'

'हां, वे ऐसी चीजें खाते हैं।'

'तो फिर क्या? जब ऐसी कठोर चीजें पेट में, उदर के अंदरूनी भाग में पहुँच जाती हैं, तो क्या वे नष्ट हो जाती हैं?'

'हां, वे नष्ट हो गए हैं?'

और जो भ्रूण उन्हीं जानवरों के अंदर हो सकता है, क्या वह भी नष्ट हो जाता है?

'हरगिज नहीं।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'मुझे लगता है, महोदय, यह कर्म के प्रभाव से विनाश से बच गया।'

'ठीक इसी प्रकार, हे महाराज, कर्म के प्रभाव से ही नरक में रहने वाले प्राणी, यद्यपि वे हजारों वर्षों तक जलते रहते हैं, नष्ट नहीं होते।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? क्या कोमल स्त्रियाँ—योनाकों की पत्नियाँ, कुलीनों की पत्नियाँ, ब्राह्मणों की स्त्रियाँ और गृहस्थ—कठोर रोटी और मांस नहीं खातीं?'

'हां, वे बहुत सख्त चीजें खाते हैं।'

और जब वे कठोर चीजें पेट में, उदर के अंदरूनी भाग में पहुँच जाती हैं, तो क्या वे नष्ट नहीं हो जातीं?

'हां, वे।'

लेकिन क्या उनके गर्भ में पल रहे बच्चे नष्ट हो जाते हैं?

'हरगिज नहीं।'

'और क्यों नहीं?'

'मेरा मानना है, महोदय, वे कर्म के प्रभाव से विनाश से बच जाते हैं?'

'हे महान राजा, ठीक इसी प्रकार, यह प्रभाव के माध्यम से है।'

हे राजा, इस कर्म के फल से पीड़ित प्राणी हजारों वर्षों तक नरक की आग में जलते रहते हैं, फिर भी उनका नाश नहीं होता। यदि उनका वहाँ पुनर्जन्म होता है, तो वे वहीं बड़े होते हैं और वहीं उनकी मृत्यु होती है। हे महाराज, इस विषय में भगवान बुद्ध ने कहा है: "जब तक उस बुरे कर्म का फल नहीं निकल जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

5. राजा ने कहा: 'आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं कि संसार जल पर, जल वायु पर और वायु आकाश पर टिकी है। यह बात भी मुझे विश्वास नहीं होती।'

तब बुजुर्ग व्यक्ति एक मानक बर्तन में पानी लेकर आए और राजा मिलिंदा को यह कहकर आश्वस्त किया: 'जिस प्रकार यह पानी वायुमंडल द्वारा समर्थित है, उसी प्रकार वह पानी हवा द्वारा समर्थित है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

6. राजा ने कहा: 'क्या निश्चिंतता निर्वाण है?'

'जी हां, महाराज।'

'नागसेना, यह कैसा है?'

'हे राजा, सभी मूर्ख व्यक्ति आनंद लेते हैं'

मनुष्य इंद्रियों और इंद्रिय-विषयों में आनंद पाते हैं, उनसे जुड़े रहते हैं। इसी कारण वे उस (मानवीय भावनाओं के) सैलाब में बह जाते हैं; वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे दुख से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ। परन्तु हे राजा, ज्ञानी, श्रेष्ठ जनों का शिष्य, न तो इन चीजों में आनंद पाता है, न इनमें प्रसन्न होता है, और न ही इनसे जुड़ा रहता है। और क्योंकि वह ऐसा नहीं करता, उसमें तृष्णा समाप्त हो जाती है, और तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है, और आसक्ति के समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है, और इसके समाप्त होने से जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह समाप्ति सभी दुःखों के समूह का अंत कर देती है। इस प्रकार यही समाप्ति निर्वाण है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'हे आदरणीय नागसेन, क्या सभी मनुष्यों को निर्वाण प्राप्त होता है?'

'हे राजा, सभी नहीं। परन्तु जो धर्मपरायण मार्ग पर चलता है, जो उन परिस्थितियों को स्वीकार करता है जिन्हें स्वीकार करना चाहिए, उन परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से समझता है जिन्हें स्पष्ट रूप से समझना चाहिए, उन परिस्थितियों का त्याग करता है जिनका त्याग करना चाहिए, उन परिस्थितियों में अभ्यास करता है जिनमें अभ्यास करना चाहिए, उन परिस्थितियों को प्राप्त करता है जिन्हें प्राप्त करना चाहिए—वही निर्वाण प्राप्त करता है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

8. राजा ने कहा: 'हे आदरणीय नागसेन, क्या निर्वाण प्राप्त न करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि निर्वाण कितनी सुखद अवस्था है?'

'हां, उसे पता है।'

लेकिन निर्वाण प्राप्त किए बिना वह यह कैसे जान सकता है?

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? क्या वे लोग जिनके हाथ-पैर नहीं काटे गए हैं, जानते हैं कि उन्हें काट देना कितना दुखद होता है?'

'जी हां, महोदय, उन्हें यह बात पता है।'

'लेकिन उन्हें यह कैसे पता चला?'

'खैर, जिनके हाथ-पैर काट दिए गए हैं, उनके विलाप की आवाज सुनकर वे यह जान जाते हैं।'

'ठीक इसी प्रकार, हे महाराज, निर्वाण प्राप्त कर चुके लोगों के आनंदमय शब्दों को सुनकर ही वे लोग जो निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाए हैं, जान पाते हैं कि यह कितनी सुखद अवस्था है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

यहां चौथा अध्याय समाप्त होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक III: कठिनाइयों का निवारण - विमटिकखेदान पन्हा अध्याय 5

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-6-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'क्या तुमने, नागसेन, बुद्ध को देखा है?'

'नहीं, महाराज।'

'तो क्या आपके शिक्षकों ने बुद्ध को देखा है?'

'नहीं, महाराज।'

'तो फिर, आदरणीय नागसेना, बुद्ध का कोई अस्तित्व नहीं है!'

लेकिन, हे महाराज, क्या आपने हिमालय पर्वतमाला में ऊहा नदी देखी है?

'नहीं, महोदय।'

'या क्या तुम्हारे पिता ने इसे देखा है?'

'नहीं, महोदय।'

'तो फिर, महाराज, क्या ऐसी कोई नदी नहीं है?'

'यह वहां है। हालांकि न तो मैंने और न ही मेरे पिता ने इसे देखा है, फिर भी यह वहां मौजूद है।'

'जी हाँ, हे महाराज, यद्यपि न तो मैंने और न ही मेरे गुरुओं ने भगवान बुद्ध को देखा है, फिर भी ऐसा एक व्यक्ति अवश्य था।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

2. राजा ने कहा: 'क्या बुद्ध, नागसेन, सर्वोत्कृष्ट हैं?'

'हां, उनकी कोई तुलना नहीं है।'

लेकिन आप किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में कैसे जान सकते हैं जिसे आपने कभी देखा ही नहीं है कि वह सर्वोत्कृष्ट है?

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? जिन्होंने कभी सागर नहीं देखा, क्या वे इसके बारे में जान पाएंगे?'

यह: "विशाल, असीम, अथाह है विशाल सागर। इसमें पाँच महान नदियाँ बहती हैं—गंगा, यमुना, अकीरावती, सरभू और माही—और फिर भी इसमें कहीं भी अधिक खाली या अधिक भरा होने का आभास नहीं होता!"

'हां, उन्हें यह पता होगा।'

'हे महाराज, जब मैं अपने उन महान शिष्यों के बारे में सोचता हूँ जो इस दुनिया से चले गए हैं, तभी मुझे पता चलता है कि बुद्ध अतुलनीय हैं।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

3. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या दूसरों के लिए यह जानना संभव है कि बुद्ध कितने अतुलनीय हैं?'

'हां, उन्हें शायद पता हो।'

'लेकिन वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

'बहुत समय पहले, हे राजा, तिस्सा द एल्डर नाम का एक लेखन विशेषज्ञ था, और उसके निधन को कई वर्ष बीत चुके हैं। लोग उसके बारे में कैसे जान सकते हैं?'

'उनके लेखन से, महोदय।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, जो कोई भी सत्य को देख लेता है, वह देख लेता है कि भगवान बुद्ध कौन थे, क्योंकि सत्य का उपदेश भगवान बुद्ध ने ही दिया था।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

4. राजा ने कहा: 'क्या तुमने, नागसेन, सत्य को देखा है?'

'हे राजा, क्या हमें शिष्यों के रूप में अपना जीवन बुद्ध की दृष्टि और उनके आदेश के अधीन रहकर व्यतीत नहीं करना चाहिए?'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

5. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जहाँ पुनर्जन्म नहीं होता, वहाँ क्या पुनर्जन्म संभव है?'

'हां, हो सकता है।'

'लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? मुझे एक उदाहरण दीजिए।'

'हे राजा, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि एक दीपक दूसरे से निकलता है या दूसरे में जाता है?'

'हरगिज नहीं।'

'हे महाराज, पुनर्जन्म ठीक इसी प्रकार होता है, जिसमें शरीर का स्थानांतरण नहीं होता।'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'हे महाराज, क्या आपको याद है कि आपने बचपन में अपने शिक्षक से कोई श्लोक सीखा था?'

'हां, मुझे याद है।'

'तो फिर, क्या वह श्लोक आपके शिक्षक से आप तक पहुंचा?'

'हरगिज नहीं।'

'हे महाराज, पुनर्जन्म ठीक इसी प्रकार होता है, जिसमें शरीर का स्थानांतरण नहीं होता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

6. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या आत्मा जैसी कोई वस्तु होती है?'

'हे राजा, सर्वोच्च अर्थ में ऐसी कोई चीज नहीं है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या कोई ऐसा प्राणी है जो इस शरीर से दूसरे शरीर में जन्म लेता है?'

'नहीं वहां नहीं है।'

लेकिन अगर ऐसा है, तो क्या यह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो जाएगा?

'हां, अगर इसका पुनर्जन्म न हुआ हो; लेकिन अगर हुआ हो, तो नहीं।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के आम चुरा ले, तो क्या चोर दंड का पात्र होगा?'

'हाँ।'

लेकिन उसने दूसरे द्वारा जमीन में गाड़े गए आम नहीं चुराए होंगे। उसे सजा क्यों मिलनी चाहिए?

'क्योंकि जो चीजें उसने चुराईं, वे उन चीजों का परिणाम थीं जिन्हें जानबूझकर पैदा किया गया था।'

'हे महाराज, इसी प्रकार यह नाम-रूप शुद्ध या अशुद्ध कर्म करता है, और उस कर्म के फलस्वरूप एक अन्य नाम-रूप का पुनर्जन्म होता है। तो क्या इसलिए वह अपने बुरे कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता?'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

8. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जब एक ही नाम और रूप से कर्म किए जाते हैं, तो उन कर्मों का क्या होता है?'

'हे राजा, कर्म उसका पीछा ऐसे करेंगे जैसे कोई छाया जो कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती।'

क्या कोई उन कार्यों की ओर इशारा करते हुए कह सकता है: "ये कार्य यहाँ हैं, या वहाँ हैं"?

'नहीं।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब हे राजा, आप क्या सोचते हैं? क्या कोई ऐसे पेड़ के फलों की ओर इशारा कर सकता है जिन्हें अभी तक उसने पैदा नहीं किया है, यह कहते हुए: "वे यहाँ हैं, या वहाँ हैं"?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'हे महाराज, जब तक जीवन की निरंतरता नहीं टूटती, तब तक किए गए कर्मों की ओर इशारा करना असंभव है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

9. राजा ने कहा: 'क्या नागसेन, जो पुनर्जन्म लेने वाला है, यह जानता है कि उसका जन्म होगा?'

'हां, वह यह जानता है, हे राजा।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, मान लीजिए कि एक किसान, एक गृहस्थ, जमीन में बीज बोता है, और अच्छी बारिश होती है, तो क्या वह जान पाएगा कि फसल पैदा होगी?'

'हां, उसे यह पता होगा।'

'ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, जो पुनर्जन्म लेने वाला है, वह जानता है कि उसका जन्म होगा।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

10. राजा ने कहा: 'क्या नागसेन नाम का कोई बुद्ध भी है?'

'हाँ।'

'तो क्या नागसेना को यहाँ या वहाँ होने के रूप में इंगित किया जा सकता है?'

'हे राजा, भगवान का उस प्रकार निधन हो गया है जिसमें कुछ भी शेष नहीं रहता जो किसी अन्य के निर्माण में सहायक हो सके।'

व्यक्तिगत। भगवान को यहाँ या वहाँ इंगित करना संभव नहीं है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'अब आप क्या सोचते हैं, हे राजा? जब आग का एक विशाल पिंड धधक रहा हो, तो क्या यह संभव है कि किसी एक बुझी हुई लौ को इंगित किया जा सके, कि वह यहाँ है या वहाँ?'

'नहीं, महोदय। वह लौ बुझ गई है, वह गायब हो गई है।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध का देहांत हुआ है, जिसमें किसी अन्य व्यक्ति के निर्माण के लिए कोई आधार शेष नहीं रहता। भगवान बुद्ध का अंत हो चुका है, और यह बताना असंभव है कि वे यहाँ हैं या वहाँ। परन्तु हे महाराज, उनके उपदेशों में उन्हें देखा जा सकता है। क्योंकि उपदेश तो भगवान बुद्ध ने ही दिए थे।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

यहां पांचवां अध्याय समाप्त होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक III: कठिनाइयों का निवारण - विमातिखदाना पन्हा अध्याय 6

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-7-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या यह शरीर तुम संन्यासियों को प्रिय है?'

'नहीं, वे शरीर से प्रेम नहीं करते।'

'तो फिर आप इसका पोषण क्यों करते हैं और इस पर इतना ध्यान क्यों देते हैं?'

'हे राजा, आप जितनी बार और जितने स्थान पर युद्ध के लिए गए हैं, क्या आप कभी तीर से घायल नहीं हुए?'

'हां, मेरे साथ ऐसा हो चुका है।'

'ऐसे मामलों में, हे राजा, क्या घाव पर मरहम नहीं लगाया जाता, तेल नहीं मला जाता और पट्टी नहीं बांधी जाती?'

'हां, इसके साथ ऐसा किया जाता है।'

'तो फिर क्या? क्या वह घाव तुम्हें इतना प्रिय है कि तुम उसके साथ इतनी कोमलता से पेश आते हो और उस पर इतना ध्यान देते हो?'

'नहीं, इन सब के बावजूद यह मुझे प्रिय नहीं है, क्योंकि यह केवल इसलिए किया जाता है ताकि शरीर फिर से बढ़ सके।'

'हे महाराज, संन्यासियों और शरीर के साथ भी ऐसा ही है। वे शरीर से चिपके बिना, जीवन के धार्मिक मार्ग के लिए शरीर धारण करते हैं। हे महाराज ने शरीर को घाव के समान बताया है। इसलिए संन्यासी शरीर को केवल एक घाव की तरह धारण करते हैं, उससे चिपके बिना। क्योंकि महाराज ने ऐसा कहा है:

"चिपचिपी त्वचा से ढका हुआ, एक अशुद्ध और घिनौनी वस्तु, नौ छिद्रों वाला, यह एक घाव की तरह रिसता है।"

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

2. राजा ने कहा: 'क्या सर्वज्ञ बुद्ध नागसेन ने सब कुछ पहले से ही देख लिया था?'

'जी हां। भगवान बुद्ध न केवल सर्वज्ञ थे, बल्कि उन्होंने सब कुछ पहले ही देख लिया था।'

'तो फिर ऐसा क्यों था कि वह समय-समय पर और आवश्यकता पड़ने पर ही संघ के सदस्यों के लिए नियम निर्धारित करने की आदत रखता था?'

'हे राजा, क्या कोई ऐसा चिकित्सक है जो पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी औषधीय पदार्थों को जानता हो?'

'हां, ऐसा कोई व्यक्ति हो सकता है।'

'अच्छा, हे राजा, क्या वह रोगी को बीमारी शुरू होने के समय या उससे पहले ही काढ़ा पीने के लिए देता है?'

'जब बीमारी उत्पन्न हो गई हो।'

'इसी प्रकार, हे महान राजा, भगवान बुद्ध, यद्यपि वे सर्वज्ञ थे और सब कुछ पहले से जानते थे, उन्होंने किसी भी नियम को अनुचित समय पर नहीं बनाया, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर ही उन्होंने एक नियम स्थापित किया जिसका उनके शिष्यों को जीवन भर उल्लंघन नहीं करना था।'

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

3. राजा ने कहा: 'क्या यह सच है, नागसेन, कि बुद्ध महान पुरुष के बत्तीस शारीरिक लक्षणों से संपन्न थे, और अस्सी सहायक गुणों से सुशोभित थे; कि उनका रंग स्वर्णिम था, त्वचा स्वर्णमय थी, और उनके चारों ओर एक फ़ैदम की लंबाई का तेजस्वी प्रभामंडल फैला हुआ था?'

'हे राजा, भगवान ऐसे ही थे।'

'लेकिन क्या उनके माता-पिता भी ऐसे ही थे?'

'नहीं, वे नहीं थे।'

'उस स्थिति में आपको कहना होगा कि वह जन्म से ही ऐसा था। लेकिन निश्चित रूप से एक बेटा या तो अपनी माँ जैसा होता है, या अपने माता-पिता जैसा।

या तो वह अपनी माँ की तरफ से है, या वह अपने पिता की तरह है, या पिता की तरफ से है!'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'हे राजा, क्या सौ पंखुड़ियों वाला कमल का फूल जैसी कोई चीज होती है?'

'हाँ वहाँ है।'

'यह कहाँ उगता है?'

'यह कीचड़ में उत्पन्न होता है, और पानी में यह पूर्णता प्राप्त करता है।'

लेकिन क्या कमल अपने उद्‌गम स्थल की कीचड़ से रंग, गंध या स्वाद में मिलता-जुलता है?

'हरगिज नहीं।'

'तो क्या यह पानी जैसा दिखता है?'

'और वह भी नहीं।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, भगवान बुद्ध के शरीर पर वे सभी शारीरिक चिह्न और लक्षण थे जिनका आपने उल्लेख किया है, यद्यपि उनके माता-पिता में वे चिह्न नहीं थे।'

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

4. राजा ने कहा: 'क्या बुद्ध, नागसेन, आचरण में शुद्ध थे (क्या वे ब्रह्मकारिन थे)?'

'जी हां, भगवान बुद्ध पवित्र थे।'

'तो, नागसेन, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह ब्रह्मा का अनुयायी था।'

'क्या आपके पास राजसी हाथी है, हे राजा?'

'निश्चित रूप से।'

'अच्छा, क्या वह हाथी कभी चिंघाड़ता है (शाब्दिक रूप से "बगुले की चीख")?'

'ओह हां।'

लेकिन क्या इस वजह से वह बगुले का अनुयायी है?

'बिल्कुल नहीं।'

'अब मुझे बताइए, हे महाराज, क्या ब्रह्मा के पास बुद्धि है या नहीं?'

'वह एक बुद्धिमान प्राणी है।'

'तो (आपके तर्क के अनुसार) वह निश्चित रूप से बुद्ध का अनुयायी है।'

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

5. राजा ने कहा: 'क्या दीक्षा समारोह एक अच्छी बात है?'

'हां, यह अच्छी बात है और खूबसूरत भी।'

लेकिन क्या बुद्ध ने इसे प्राप्त किया था या नहीं?

'हे महाराज, जब भगवान बुद्ध ने ज्ञान के वृक्ष के चरणों में सर्वज्ञता प्राप्त की, तो वह उनके लिए एक दीक्षा थी। उन्हें किसी और के हाथों दीक्षा प्रदान नहीं की गई थी—जिस प्रकार भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों के लिए नियम बनाए थे, जिनका उन्हें जीवन भर उल्लंघन नहीं करना था!'

'बिल्कुल सही, नागसेना!'

6. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, इन दोनों में से किसके आँसू—एक वह जो अपनी माँ की मृत्यु पर रोता है, और दूसरा वह जो सत्य (धम्म) के प्रति प्रेम से रोता है—के लिए उपचार हैं?'

'हे राजा, एक के आँसू तीन प्रकार की वासनाओं से प्रज्वलित और गर्म हैं। दूसरे के आँसू निर्मल और शीतल हैं। शीतलता और शांति में ही उपचार है, परन्तु वासना और उत्तेजना में कोई उपचार नहीं हो सकता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, उस व्यक्ति में क्या अंतर है जो वासना से परिपूर्ण है और जो वासना से रहित है?'

'हे राजा, एक तो लालसा से ग्रस्त है, दूसरा नहीं।'

'लेकिन इसका क्या मतलब है?'

'हे राजा, एक को अभाव है, दूसरे को नहीं।'

'मैं इसे इस तरह देखता हूँ, महोदय। चाहे वह कामुक हो या न हो—दोनों ही समान रूप से—जो अच्छा खाना चाहता है, चाहे वह कठोर हो या नरम। और उनमें से कोई भी कुछ भी गलत नहीं चाहता।'

'हे राजा, कामुक मनुष्य भोजन करते समय स्वाद और स्वाद से उत्पन्न होने वाली कामुकता दोनों का आनंद लेता है, परन्तु कामुकता से मुक्त मनुष्य केवल स्वाद का अनुभव करता है, उससे उत्पन्न होने वाली कामुकता का नहीं।'

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

8. राजा ने कहा: 'हे आदरणीय नागसेन, ज्ञान कहाँ निवास करता है?'

'कहीं नहीं, हे राजा।'

'तो फिर, महोदय, ज्ञान जैसी कोई चीज नहीं होती।'

'हे राजा, हवा कहाँ निवास करती है?'

'कहीं नहीं, महोदय।'

'तो हवा जैसी कोई चीज नहीं होती।'

'बहुत अच्छा जवाब दिया, नागासेना!'

9. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, जब तुम पुनर्जन्म की बात करते हो, तो उसका क्या अर्थ है?'

'हे राजा, जो प्राणी यहाँ जन्म लेता है, यहीं मरता है। यहाँ मरने के बाद वह कहीं और जन्म लेता है। वहाँ जन्म लेकर वहीं मरता है। वहाँ मरने के बाद वह कहीं और जन्म लेता है। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'यह उस व्यक्ति के समान है जो आम खाने के बाद उसका बीज जमीन में बो देता है। उससे एक विशाल वृक्ष उत्पन्न होगा और फल देगा। और इस प्रकार आम के वृक्षों की श्रृंखला कभी समाप्त नहीं होगी।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

10. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, बीते हुए समय और बहुत पहले किए गए कार्यों को कोई कैसे याद रख सकता है?'

'स्मृति के आधार पर।'

लेकिन क्या हम स्मृति से नहीं, बल्कि मन से याद करते हैं?

'हे राजा, क्या आपको कोई ऐसा काम याद है जो आपने किया हो और फिर भूल गए हों?'

'हाँ।'

'तो फिर क्या? क्या तब तुम बिना दिमाग के थे?'

'नहीं। लेकिन मेरी याददाश्त कमजोर हो गई थी।'

'तो फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं कि हम स्मृति से नहीं बल्कि मन से याद करते हैं?'

'बहुत बढ़िया, नागसेना'

11. राजा ने कहा: 'नागसेन, क्या स्मृति हमेशा व्यक्तिपरक रूप से उत्पन्न होती है, या यह बाहरी सुझाव से प्रेरित होती है?'

'दोनों ही।'

लेकिन क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी स्मृति मूल रूप से व्यक्तिपरक होती है, और कभी कृत्रिम नहीं होती?

'हे राजा, यदि कृत्रिम (प्रदान की गई) स्मृति न होती, तो कारीगरों को अभ्यास, कला या शिक्षा की आवश्यकता न होती और शिक्षक बेकार होते। परन्तु इसके विपरीत स्थिति है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

यहां छठा अध्याय समाप्त होता है।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक III: कठिनाइयों का निवारण - विमटिकखेदान पन्हा अध्याय 7

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-8-||----->>>> अगला

1. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, स्मृति कितने तरीकों से उत्पन्न होती है?'

'सोलह तरीकों से, हे राजा।' कहने का तात्पर्य यह है कि: व्यक्तिगत अनुभव से, जैसे कि पूज्य आनंद, या समर्पित स्त्री खुग्गुत्तरा, या अन्य जिन्होंने यह शक्ति प्राप्त की थी, अपने पिछले जन्मों को याद करते थे—या बाहरी सहायता से, जैसे कि जब दूसरे लोग स्वभाव से भूलने वाले व्यक्ति को याद दिलाते रहते हैं—या किसी अवसर की महानता से उत्पन्न प्रभाव से, जैसे कि राजा अपने राज्याभिषेक दिवस को याद करते हैं, या जैसे कि हम अपने धर्म परिवर्तन के दिन को याद करते हैं—आनंद से उत्पन्न प्रभाव से, जैसे कि जब कोई उस चीज़ को याद करता है जिसने उसे आनंद दिया—या दु:ख से उत्पन्न प्रभाव से, जैसे कि जब कोई उस चीज़ को याद करता है जिसने उसे पीड़ा दी—या रूप-रूप की समानता से, जैसे कि अपने जैसे किसी को देखकर हम अपने माता-पिता, बहन या भाई को याद करते हैं, या ऊंट, बैल या गधे को देखकर हम उनके जैसे अन्य लोगों को याद करते हैं—या रूप-रूप के अंतर से, जैसे कि जब हम याद करते हैं कि अमुक रंग, ध्वनि, गंध, स्वाद या स्पर्श अमुक वस्तु से संबंधित हैं—या वाणी के ज्ञान से, जैसे कि स्वभाव से भूलने वाले व्यक्ति को भूलने वाले व्यक्ति को दूसरों द्वारा याद दिलाया जाता है और फिर वह स्वयं याद कर लेता है—या किसी संकेत द्वारा, जैसे कि जब हम किसी बैल को ब्रांड चिह्न या किसी अन्य चिह्न से पहचानते हैं—या याद करने के प्रयास से, जैसे कि जब कोई व्यक्ति

भूलने की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को बार-बार याद दिलाने के लिए प्रेरित किया जाता है: "इसके बारे में सोचने की कोशिश करो"—या गणना द्वारा, जैसे कि लेखन के प्रशिक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि फलां अक्षर के बाद फलां अक्षर आना चाहिए—या अंकगणित द्वारा, जैसे कि लेखाकार संख्याओं के ज्ञान से बड़ी-बड़ी गणनाएँ करते हैं—या कंठस्थ करने द्वारा, जैसे कि शास्त्रों का पाठ करने वाले अपनी कंठस्थता के कौशल से इतना कुछ याद कर लेते हैं—या ध्यान द्वारा, जैसे कि भिक्षु अपने बीते दिनों की अस्थायी अवस्थाओं को याद करते हैं—पुस्तक के संदर्भ द्वारा, जैसे कि राजा किसी पूर्व नियम को याद करते हुए कहते हैं: "पुस्तक यहाँ लाओ," और स्वयं को उससे याद दिलाते हैं—या किसी गिरवी द्वारा, जैसे कि जमा की गई वस्तुओं को देखकर व्यक्ति को (वे परिस्थितियाँ याद आ जाती हैं जिनके तहत उन्हें गिरवी रखा गया था)—या संगति द्वारा, जैसे कि किसी वस्तु को देखने के कारण, किसी ध्वनि को सुनने के कारण, किसी गंध को सूंघने के कारण, या किसी स्पर्श के कारण याद रखना। क्योंकि किसी ने इसे महसूस किया है, या कोई अवधारणा क्योंकि किसी ने इसे समझा है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

2. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, तेरे लोग कहते हैं कि यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष भी जीवित रहे तो भी

वर्षों तक पापमय जीवन जीने के बावजूद, यदि मृत्यु के समय किसी के मन में बुद्ध के विचार आ जाएं, तो उसका पुनर्जन्म देवताओं के बीच होगा। यह मुझे विश्वास नहीं होता। और वे यह भी कहते हैं: "एक बार जीवन का अंत होने से मनुष्य का पुनर्जन्म नरक में हो सकता है।" यह भी मुझे विश्वास नहीं होता।

लेकिन हे राजा, मुझे बताइए। क्या नाव के बिना एक छोटा सा पत्थर भी पानी पर तैर सकता है?

'हरगिज नहीं।'

'बहुत अच्छा; लेकिन अगर सौ बैलगाड़ियों में भरे पत्थरों को नाव में लाद दिया जाए तो क्या वे पानी पर नहीं तैरने लगेंगे?'

'हां, वे आसानी से तैर सकते हैं।'

'अच्छे कर्म नाव की तरह होते हैं।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

3. राजा ने कहा: 'क्या तुम (सन्यासी), नागसेन, बीते हुए दु:खों को दूर करने का प्रयास करते हो?'

'नहीं।'

'तो फिर क्या? क्या आप भविष्य के दुखों को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं?'

'नहीं।'

'तो क्या यह वर्तमान दुख है?'

'वो भी नहीं।'

'तो यदि यह न तो अतीत का, न भविष्य का, न वर्तमान का दुख है जिसे आप दूर करने का प्रयास कर रहे हैं, तो आप किस लिए प्रयास कर रहे हैं?'

'हे राजा, आप क्या मांग रहे हैं? कि यह दुख समाप्त हो जाए और कोई दूसरा दुख उत्पन्न न हो—यही हमारा लक्ष्य है।'

लेकिन, नागसेना, क्या भविष्य के दुःख जैसी कोई चीज भी होती है?

'नहीं। मैं यह बात मानता हूँ।'

'तो फिर तुम लोग वाकई बहुत चतुर हो जो उस चीज को हटाने की कोशिश कर रहे हो जो अस्तित्व में ही नहीं है!'

'हे राजा, क्या कभी ऐसा हुआ है कि प्रतिद्वंद्वी राजा आपके विरुद्ध शत्रु और विरोधी बनकर उठ खड़े हुए हों?'

'हां बेशक।'

'फिर, मेरा मानना है कि आप खाई खुदवाने, प्राचीरें बनवाने, निगरानी मीनारें खड़ी करवाने, गढ़ बनवाने और भोजन भंडार इकट्ठा करने के काम में जुट गए?'

'बिल्कुल नहीं। वह सब पहले से ही तैयार था।'

'या आपने युद्ध हाथियों के प्रबंधन, घुड़सवारी, युद्ध रथों के उपयोग, तीरंदाजी और तलवारबाजी में प्रशिक्षण प्राप्त किया था?'

'बिल्कुल नहीं। मैंने यह सब पहले ही सीख लिया था।'

'लेकिन क्यों?'

'भविष्य के खतरे को टालने के उद्देश्य से।'

'ऐसा कैसे? क्या भविष्य के खतरे जैसी कोई चीज (अभी) मौजूद है?'

'नहीं। मुझे यह मानना पड़ेगा।'

'तो फिर तुम राजा लोग बड़े ही चतुर हो कि तुम उस चीज से बचाव के बारे में चिंता कर रहे हो जो अस्तित्व में ही नहीं है!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, मुझे बताइए। क्या प्यास लगने पर ही आप पीने के लिए कुएँ खुदवाते हैं, तालाब खुदवाते हैं या जलाशय बनवाते हैं?'

'बिल्कुल नहीं। वह सब पहले से ही तैयार किया जा चुका है।'

लेकिन इसका उद्देश्य क्या होगा?

'भविष्य में प्यास को रोकने के उद्देश्य से।'

'ऐसा कैसे? क्या भविष्य की प्यास जैसी कोई चीज होती है?'

'नहीं, महोदय।'

'तो हे राजा, आप तो वाकई बहुत बुद्धिमान लोग हैं, जो भविष्य में होने वाली उस प्यास को रोकने के लिए इतनी मेहनत करते हैं जो अभी अस्तित्व में ही नहीं है!'

मुझे एक और उदाहरण दीजिए।

[फिर बुजुर्ग ने पहले की तरह ही, भविष्य में भूख से बचने के लिए लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले उपायों का जिक्र किया, और राजा ने पहेली के हल होने के तरीके पर अपनी खुशी व्यक्त की।]

4. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, यहाँ से ब्रह्मलोक कितनी दूर है?'

'हे राजा, यह बहुत दूर है। यदि वहाँ से एक चट्टान, जो एक ऊपरी कक्ष के आकार की हो, गिरे, तो उसे पृथ्वी तक पहुँचने में चार महीने लगेंगे, भले ही वह प्रतिदिन और रात अड़तालीस हजार मील की दूरी तय करे।'

'अच्छा, नागसेना! क्या आपके लोग यह नहीं कहते कि इद्धि की शक्ति और मन पर नियंत्रण रखने वाला भिक्षु गम्बुद्वीप से उतनी ही शीघ्रता से विलीन होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हो सकता है, जितनी शीघ्रता से कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या फैलाकर वापस मोड़ सकता है? यह बात मुझे समझ नहीं आती। भला वह इतनी शीघ्रता से सैकड़ों मील की दूरी कैसे तय कर सकता है?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'हे राजा, आपका जन्म किस जिले में हुआ था?'

'अलसांडा नाम का एक द्वीप है। मेरा जन्म वहीं हुआ था।'

'और अलासांडा यहाँ से कितनी दूर है?'

'लगभग दो सौ लीग।'

'क्या आपको निश्चित रूप से पता है कि आपने वहां कोई व्यवसाय किया था और अब आपको याद है?'

'ओह हां।'

'हे महान राजा, आप इतनी जल्दी लगभग दो सौ मील की दूरी तय कर चुके हैं।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

5. राजा ने कहा: 'यदि एक व्यक्ति, नागसेन, यहाँ मरकर ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म ले, और दूसरा यहाँ मरकर कश्मीर में पुनर्जन्म ले, तो इन दोनों में से कौन पहले पहुँचेगा?'

'हे राजा, दोनों एक साथ।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'हे राजा, आपका जन्म किस नगर में हुआ था?'

'कलासी नाम का एक गांव है। मेरा जन्म वहीं हुआ था।'

'और कलासी यहाँ से कितनी दूर है?'

'लगभग दो सौ लीग।'

'कश्मीर यहां से कितनी दूर है?'

'बारह लीग।'

'अब, हे महान राजा, कलासी के बारे में सोचो।'

मैंने ऐसा कर दिया है।

और अब, कश्मीर के बारे में सोचें।

मैंने ऐसा कर दिया है।

'अच्छा, आपको सबसे जल्दी कौन सा विचार आया?'

'प्रत्येक का एक ही समय में।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म लेने में उतना ही समय लगेगा जितना कश्मीर में पुनर्जन्म लेने में। और हे महाराज, मुझे बताइए, मान लीजिए दो

पक्षी उड़ रहे थे, एक को एक ऊंचे पेड़ पर और दूसरे को एक छोटी झाड़ी पर उतरना था। यदि वे दोनों एक ही समय पर उतरें, तो किसकी छाया पहले जमीन पर पड़ेगी?

'दोनों परछाइयाँ एक साथ पड़ेंगी।'

'जी हां, महाराज, जैसा आपने कहा है वैसा ही होगा।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

6. राजा ने कहा: 'आदरणीय नागसेन, ज्ञान के कितने प्रकार होते हैं?'

'सात, हे राजा।'

और कितने प्रकार के ज्ञान से मनुष्य बुद्धिमान बनता है?

'एक के द्वारा: अर्थात् उस प्रकार की बुद्धिमत्ता द्वारा जिसे "सत्य की खोज" कहा जाता है।'

'तो फिर ऐसा क्यों कहा जाता है कि सात हैं?'

'हे राजा, मुझे बताइए। मान लीजिए कि एक तलवार म्यान में पड़ी है और हाथ में नहीं ली गई है, तो क्या वह आपकी इच्छानुसार किसी भी चीज को काट सकती है?'

'हरगिज नहीं।'

'हे महाराज, इसी प्रकार अन्य प्रकार के ज्ञान से सत्य की खोज किए बिना कुछ भी नहीं समझा जा सकता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

7. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, गुण अधिक है या दोष?'

'योग्यता।'

'लेकिन क्यों?'

हे राजा, जो बुराई करता है, उसे पश्चाताप होता है और वह अपने पाप को स्वीकार करता है। अतः उसका पाप नहीं बढ़ता। परन्तु जो अच्छा करता है, उसे पश्चाताप नहीं होता, और पश्चाताप न होने से प्रसन्नता होती है।

उसके भीतर आनंद का संचार होगा, और वह प्रसन्न होकर आनंदित होगा, और इस प्रकार आनंदित होकर उसका संपूर्ण शरीर शांत हो जाएगा, और इस प्रकार शांत होकर वह संतोष की आनंदमय अनुभूति का अनुभव करेगा, और उस आनंद में उसका हृदय शांत होगा, और जिसका हृदय इस प्रकार शांत होता है वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता है। इसी कारण पुण्य बढ़ता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने हाथ-पैर कट जाने पर भी भगवान को मुट्ठी भर कमल अर्पित कर दे, तो उसे इक्यावन कल्पों तक नरक में नहीं जाना पड़ेगा। इसीलिए मैंने कहा, हे राजा, कि पुण्य दोष से अधिक है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

8. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, किसका दोष अधिक है—उसका जिसने जानबूझकर पाप किया हो, या उसका जिसने अनजाने में पाप किया हो?'

'हे राजा, जो अनजाने में पाप करता है, उसका दोष अधिक होता है।'

'ऐसे में, महोदय, हम अपने परिवार या अपने दरबार के किसी भी सदस्य को, जो अनजाने में कोई गलती करता है, दुगुनी सजा देंगे।'

'पर हे राजा, आपका क्या विचार है? यदि एक व्यक्ति जानबूझकर आग से सुलगते हुए धातु के ढेर को पकड़ ले, और दूसरा अनजाने में उसे पकड़ ले, तो कौन अधिक जलेगा?'

'वह व्यक्ति जिसे पता नहीं था कि वह क्या कर रहा है।'

'जो व्यक्ति गलत काम करता है, उसके साथ भी यही बात लागू होती है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

9. राजा ने कहा: 'क्या कोई है, नागसेन?'

इस शरीर के साथ कौन उत्तरकुरु या ब्रह्मलोक या दुनिया के चार प्रमुख महाद्वीपों में से किसी अन्य महाद्वीप में जा सकता है?

'हां, ऐसे लोग होते हैं।'

'लेकिन वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?'

'हे राजा, क्या आपको याद है कि आपने कभी जमीन पर एक या दो फुट की छलांग लगाई है?'

'जी हां, नागसेना, मैं बारह फीट कूद सकता हूं।'

'आख़िर कैसे?'

'मैं वहां उतरने के विचार पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूं, और मेरे इस दृढ़ संकल्प के क्षण में मेरा शरीर मुझे हल्का प्रतीत होने लगता है।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, इद्धि की शक्ति से युक्त और अपने मन पर प्रभुत्व रखने वाला भिक्षु, जब अपने मन को उस अवसर के अनुरूप तैयार कर लेता है, तो अपने मन के बल पर आकाश में यात्रा कर सकता है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

10. राजा ने कहा: 'तुम्हारे लोग कहते हैं कि सौ मील लंबी हड्डियाँ भी होती हैं। अब सौ मील लंबा कोई पेड़ ही नहीं है, तो फिर इतनी लंबी हड्डियाँ कैसे हो सकती हैं?'

लेकिन हे राजा, मुझे बताइए। क्या आपने समुद्र में पाँच सौ मील लंबी मछलियों के बारे में नहीं सुना है?

'हां। मैंने इसके बारे में सुना है।'

'अगर ऐसा है, तो क्या उनकी हड्डियाँ सौ मील लंबी नहीं हो सकतीं?'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

11. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, तुम्हारी प्रजा कहती है कि श्वास लेने और छोड़ने को रोकना संभव है।'

'हां, ऐसा किया जा सकता है।'

'आख़िर कैसे?'

'हे राजा, मुझे बताइए। क्या आपने कभी किसी आदमी को खर्राटे लेते हुए सुना है?'

'हाँ।'

'अच्छा, अगर वह अपना शरीर झुका ले तो क्या वह आवाज़ बंद नहीं हो जाएगी?'

'हाँ।'

'तो फिर, यदि वह ध्वनि शरीर, आचरण, मन और बुद्धि में अप्रशिक्षित व्यक्ति के शरीर के मात्र झुकने से ही रुक सकती है, तो इन सभी पहलुओं में प्रशिक्षित और परमानंदमय ध्यान की चौथी अवस्था तक पहुँच चुके व्यक्ति की श्वास को रोकना क्यों संभव नहीं होना चाहिए?'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

12. राजा ने कहा: 'नागसेन, सागर शब्द का प्रयोग होता है। जल को सागर क्यों कहते हैं?'

बुजुर्ग ने उत्तर दिया: 'हे राजा, क्योंकि नमक और पानी की मात्रा बराबर है, और पानी और नमक की मात्रा बराबर है, इसीलिए इसे सागर कहा जाता है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

13. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, क्या सारा सागर एक ही स्वाद का है, नमक के स्वाद का?'

'क्योंकि इसमें पानी बहुत देर तक रखा रहा है, इसलिए इसका स्वाद एक जैसा हो गया है, नमक का स्वाद।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

14. राजा ने कहा: 'क्या नागसेन जैसी सबसे छोटी चीज को भी विभाजित किया जा सकता है?'

'हाँ, यह कर सकते हैं।'

'और महोदय, सबसे छोटी बात क्या है?'

'हे राजा, सत्य (धम्म) अत्यंत सूक्ष्म और सूक्ष्म है। परन्तु यह सभी गुणों (धम्म) के लिए सत्य नहीं है। सूक्ष्मता या इसके विपरीत, गुणों के विशेषण हैं। परन्तु जिसे विभाजित किया जा सकता है, उसे बुद्धि (पञ्ञ) भी विभाजित कर सकती है, और ऐसा कोई अन्य गुण नहीं है जो बुद्धि को विभाजित कर सके।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

15. राजा ने कहा: 'हे नागसेन, ये तीनों—अवधारणा, तर्क और आत्मा—क्या ये सब शाब्दिक और सार दोनों में भिन्न हैं, या सार में एक समान हैं, केवल शाब्दिक रूप से भिन्न हैं?'

'हे राजा, पहचान बोध की निशानी है, और विवेक तर्क की, और प्राणियों में आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती।'

लेकिन यदि आत्मा जैसी कोई चीज ही नहीं है, तो फिर वह क्या है जो आंखों से रूप देखता है, कानों से आवाजें सुनता है, नाक से गंध सूंघता है, जीभ से स्वाद चखता है, शरीर से स्पर्श महसूस करता है, या मन से गुणों को अनुभव करता है?

बड़े ने उत्तर दिया: 'यदि कोई आत्मा (शरीर से अलग) है जो यह सब करती है, तो यदि आँख का द्वार तोड़ दिया जाए (यदि आँख निकाल दी जाए), तो क्या वह अपना सिर, मानो, बड़े छिद्र से फैलाकर (अधिक विस्तार से) आकृतियों को पहले से कहीं अधिक स्पष्ट रूप से देख पाएगी? क्या कोई आवाज़ें बेहतर ढंग से सुन पाएगा यदि उसके शरीर को हटा दिया जाए, या सूंघने की शक्ति बेहतर ढंग से प्राप्त कर पाएगा यदि उसकी नाक काट दी जाए, या स्वाद बेहतर ढंग से प्राप्त कर पाएगा यदि उसकी जीभ निकाल दी जाए, या स्पर्श का अनुभव बेहतर ढंग से कर पाएगा यदि उसका शरीर नष्ट हो जाए?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तब शरीर के भीतर आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

16. बड़े ने कहा: 'हे राजा, यह एक कठिन कार्य है, जो परमेश्वर ने किया है।'

'और वह क्या है?'

'उन सभी मानसिक स्थितियों का निर्धारण जो एक ही इंद्रिय अंग पर निर्भर करती हैं, जो हमें बताती हैं कि ऐसा संपर्क है, ऐसी संवेदना है, ऐसा विचार है, ऐसा इरादा है और ऐसा विचार है।'

मुझे एक उदाहरण दीजिए।

'मान लीजिए, हे राजा, एक आदमी समुद्र में उतरता है, और अपनी हथेली में थोड़ा पानी लेकर उसे अपनी जीभ से चखता है। क्या वह

क्या मैं यह पहचान सकता हूँ कि यह गंगा का जल है, यमुना का, अकीरावती का, सरभू का या माही का?

'असंभव, महोदय।'

'हे महाराज, इससे भी अधिक कठिन यह है कि किसी भी इंद्रिय अंग के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली मानसिक स्थितियों में अंतर कर पाना!'

'बहुत बढ़िया, नागसेना!'

सातवां अध्याय यहीं समाप्त होता है। ____________________

17. बड़े ने कहा: 'हे राजा, क्या आप जानते हैं कि अब क्या समय हुआ है?'

'जी हाँ, महोदय, मुझे पता है। रात का पहला पहर बीत चुका है। मध्य पहर चल रहा है। मशालें जल रही हैं। चारों झंडे फहराने का आदेश दिया गया है, और खजाने से आपको उचित उपहार दिए जाएँ।'

योनाकों ने कहा: 'बहुत अच्छा, महान राजा। भिक्षु सबसे योग्य है।'

'जी हां, मेरे साथियों। भिक्षु सबसे योग्य होता है। यदि गुरु उसके समान और शिष्य मेरे समान होता, तो एक चतुर विद्वान को सत्य तक पहुँचने में अधिक समय नहीं लगता।'

तब राजा नागसेन द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों से प्रसन्न होकर उन्हें एक लाख रुपये मूल्य का कढ़ाईदार वस्त्र पहनाकर उनसे कहा: 'हे पूज्य नागसेन, मैं आदेश देता हूँ कि आपको आठ सौ दिनों तक प्रतिदिन भोजन उपलब्ध कराया जाए; और आपको यह दिया जाए...'

महल में जो कुछ भी लेना आपके लिए वैध है, आप उसे ले सकते हैं।' और जब बुजुर्ग ने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि उनके पास गुजारा करने के लिए पर्याप्त है, तो राजा ने जवाब दिया: 'मुझे पता है, महाराज, आपके पास गुजारा करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन आपको मेरी और अपनी दोनों की रक्षा करनी चाहिए - अपनी रक्षा इस संभावना से करें कि सार्वजनिक रूप से यह अफवाह फैल जाए कि आपने मुझे मना लिया लेकिन मुझसे कुछ नहीं लिया, और मेरी रक्षा इस संभावना से करें कि सार्वजनिक रूप से यह अफवाह फैल जाए कि हालांकि मैं मान गया था, मैंने बदले में कुछ नहीं दिया।'

'जैसा आप चाहें, महाराज,' यह उत्तर मिला।

तब राजा ने कहा, "जैसे सिंह, जो पशुओं का राजा है, जब उसे सोने के पिंजरे में भी बंद कर दिया जाता है, तो वह बाहर की ओर लालसा से देखता है; ठीक वैसे ही मैं भी, यद्यपि संसार में रहता हूँ, आप संन्यासियों के उच्चतर जीवन की ओर लालसा से देखता हूँ। परन्तु, महाराज, यदि मैं गृहस्थ जीवन त्याग दूँ और संसार का त्याग कर दूँ, तो मेरा जीवन अधिक समय तक नहीं चलेगा, क्योंकि मेरे शत्रु बहुत हैं।"

तब पूज्य नागसेना ने राजा मिलिंदा द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देकर अपने आसन से उठकर आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

18. नागसेन के जाने के कुछ ही समय बाद, राजा मिलिंद ने मन ही मन विचार किया कि क्या उन्होंने अपने प्रश्न सही ढंग से पूछे थे और क्या उत्तर उचित थे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि सही ढंग से पूछे गए प्रश्नों के सही उत्तर दिए गए थे। नागसेन ने भी जब आश्रम पहुँचकर इस विषय पर विचार किया, तो उन्होंने भी यही निष्कर्ष निकाला कि सही ढंग से पूछे गए प्रश्नों के सही उत्तर दिए गए थे।

नागसेन ने सुबह सवेरे वस्त्र धारण किए और अपने हाथ में कटोरा लेकर महल की ओर चल पड़ा।

और वह अपने लिए तैयार की गई सीट पर बैठ गया। मिलिंदा ने आदरणीय नागसेना को प्रणाम किया और आदरपूर्वक उनके पास बैठ गया और उनसे कहा: 'कृपा करके यह न सोचें, महोदय, कि मैं आपसे प्रश्न पूछने के विचार से प्रसन्न होकर पूरी रात जागता रहा। मैं मन ही मन सोच रहा था कि क्या मैंने सही प्रश्न पूछा था और क्या मुझे सही उत्तर मिला था। और अंत में मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि हाँ, मैंने सही उत्तर दिया था।'

और बड़े ने अपनी ओर से कहा: 'हे महाराज, कृपया यह न समझें कि मैंने आपके सभी प्रश्नों का उत्तर देकर सारी रात आनंद मनाया। मैं भी हम दोनों के बीच हुई बातों पर विचार कर रहा था। और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आपने उचित प्रश्न पूछे थे और मैंने सही उत्तर दिए थे।'

इस प्रकार इन दोनों महान पुरुषों ने एक-दूसरे को उनके द्वारा कही गई अच्छी बातों के लिए बधाई दी।

मिलिंदा के प्रश्नों की समस्याओं का उत्तर यहीं समाप्त होता है।
पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान - मेंडका पन्हा अध्याय 1

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-9-||----->>>> अगला

1. शब्दों और वाक्पटुता के उस्ताद, चतुर और बुद्धिमान मिलिंद ने महान नागसेन की कुशलता की परीक्षा लेने का प्रयास किया। उन्हें छोड़े बिना, बार-बार उनसे प्रश्न और प्रतिवाद करते रहे, जब तक कि उनकी अपनी कुशलता मूर्खता सिद्ध नहीं हो गई। तब वे पवित्र ग्रंथों के विद्यार्थी बन गए। सारी रात, गुप्त रूप से, उन्होंने नौ प्रकार के शास्त्रों का चिंतन किया, और उनमें उन्हें कठिन और जटिल दुविधाएँ मिलीं। तब उन्होंने सोचा: 'विजयी बुद्ध के वचन बहुआयामी हैं, कुछ व्याख्यात्मक हैं, कुछ अवसर के अनुसार बोले गए हैं, कुछ सारगर्भित हैं। प्रत्येक बार के अर्थ की अज्ञानता के कारण, भविष्य में इस बात पर विवाद होगा कि धर्म के राजा ने इन विविध और सूक्ष्म कथनों में क्या कहा है। अब मुझे महान नागसेन का ध्यान आकर्षित करना चाहिए, और उनसे उस बात को, जो इतनी विचित्र और कठिन—यहाँ तक कि विरोधाभासी—लगाकर उन्हें हल करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।' इसलिए भविष्य में जब मनुष्य संदेह करने लगें, तो उनके समाधानों का प्रकाश उन्हें भी सत्य के मार्ग पर मार्गदर्शन करेगा।

2. जब रात ढलकर दिन में बदल रही थी और सूरज निकल आया, तब राजा मिलिंद ने स्नान किया और हाथ जोड़कर माथे पर रखकर अतीत, वर्तमान और भविष्य के बुद्धों का स्मरण किया और पूर्णतया अष्टांग व्रत का पालन करते हुए मन ही मन कहा: 'अब से सात दिनों तक मैं अष्टांग नियमों का पालन करते हुए तपस्या करूंगा और व्रत पूर्ण होने पर गुरु के पास जाकर उनसे इन दुविधाओं के प्रश्न पूछूंगा।' इस प्रकार राजा मिलिंद ने अपने सामान्य वस्त्र और आभूषण त्याग दिए; पीले वस्त्र धारण करके, केवल सिर पर एक संन्यासी की पगड़ी बांधकर, एक साधु के समान रूप में, उन्होंने अष्टांग व्रत का पालन किया और व्रत को ध्यान में रखा - 'इन सात दिनों तक मैं कोई भी विधि संबंधी मामला नहीं लूंगा। मैं कोई भी कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार या भ्रम उत्पन्न करने वाला विचार नहीं रखूंगा।' सभी दासों, सेवकों और आश्रितों के प्रति मुझे नम्र और दीन स्वभाव दिखाना है। मुझे अपने प्रत्येक शारीरिक कार्य और अपनी छह इंद्रियों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना है। और मुझे अपने हृदय को सभी प्राणियों के प्रति प्रेम के विचारों से भरना है।' इस अष्टांग प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, अपने हृदय को इस अष्टांग नैतिक नियम में स्थापित करते हुए, वह सात दिनों तक बाहर नहीं निकला। परन्तु जब रात दिन में परिवर्तित हो रही थी, आठवें दिन सूर्योदय के समय, उसने सुबह जल्दी नाश्ता किया, और फिर दृष्टि झुकाए, संयमित शब्दों में, सौम्य व्यवहार से, एकाग्रचित्त, प्रसन्न और आनंदित हृदय से नागसेन के पास गया। और उनके चरणों में प्रणाम करते हुए, वह आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हुआ, और बोला:

3. 'हे पूज्य नागसेना, एक विशेष विषय है,

मैं आपसे अकेले में इस विषय पर बात करना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि कोई तीसरा व्यक्ति उपस्थित हो। किसी सुनसान जगह पर, जंगल के किसी एकांत स्थान पर, जो संन्यासी के लिए आठों मायनों में उपयुक्त हो, वहाँ मेरी यह बात रखी जाए। और वहाँ मुझसे कुछ भी छिपाया न जाए, कुछ भी गुप्त न रखा जाए। गहन विचार-विमर्श के दौरान मैं अब गुप्त बातें सुनने के लिए उपयुक्त अवस्था में हूँ।

और मेरी कही हुई बातों का अर्थ उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा। हे नागसेन, जिस प्रकार अवसर आने पर खजाना जमा करने के लिए विशाल पृथ्वी को सौंपना उचित है, उसी प्रकार गहन विचार-विमर्श के दौरान गुप्त बातें सौंपना मेरे लिए उचित है।

4. फिर गुरु के साथ एक एकांत स्थान पर जाकर उन्होंने आगे कहा: 'हे नागसेन, आठ प्रकार के स्थान हैं जिनसे परामर्श करने वाले व्यक्ति को पूरी तरह बचना चाहिए। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे स्थानों पर किसी विषय पर चर्चा नहीं करेगा, अन्यथा विषय निष्फल हो जाएगा और उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा। और वे आठ स्थान कौन से हैं? ऊबड़-खाबड़ भूमि, मनुष्यों के भय से असुरक्षित स्थान, हवादार स्थान, छिपने के स्थान, पवित्र स्थान, राजमार्ग, हल्के बांस के पुल और सार्वजनिक स्नानागार।'

बुजुर्ग ने पूछा: 'इनमें से प्रत्येक पर क्या आपत्ति है?'

राजा ने उत्तर दिया: 'हे नागसेन, ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर चर्चा का विषय अटपटा, लंबा-चौड़ा और अस्पष्ट हो जाता है, और उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। असुरक्षित स्थानों में मन विचलित हो जाता है, और विचलित होने के कारण मुख्य बात स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आती। हवादार स्थानों में आवाज़ अस्पष्ट हो जाती है। छिपने की जगहों में छुपकर बातें सुनने वाले होते हैं। पवित्र स्थानों में चर्चा का विषय गंभीर विषय की ओर मुड़ जाता है। ऊँची सड़क पर यह विषय बेतुका हो जाता है, और...

पुल अस्थिर और डगमगा रहा था, सार्वजनिक स्नान स्थल पर यह चर्चा आम बातचीत का विषय होती। इसीलिए कहा जाता है:

"ऊबड़-खाबड़ ज़मीन, असुरक्षित और हवादार जगहें, और छिपने की जगहें, और देवी-देवताओं द्वारा आबाद मंदिर, ऊँची सड़कें, और पुल, और सभी स्नान घाट— इन आठों से बचना चाहिए जब उच्च चीजों की बात हो रही हो।"

5. 'हे नागसेन, आठ प्रकार के लोग होते हैं जो किसी विषय पर चर्चा करते समय उसे बिगाड़ देते हैं। वे आठ कौन हैं? कामवासना में लिप्त, द्वेष में लिप्त, भ्रम में लिप्त, अहंकार में लिप्त, लोभी, आलसी, एकतरफा सोच वाला और मूर्ख।'

'इनमें से प्रत्येक पर क्या आपत्ति है?' बुजुर्ग ने पूछा।

'पहला व्यक्ति अपनी वासना से, दूसरा अपनी दुर्भावना से, तीसरा अपने भ्रमों से, चौथा अपने अभिमान से, पाँचवाँ अपने लोभ से, छठा अपने आलस्य से, सातवाँ अपनी संकीर्णता से और अंतिम अपनी मूर्खता से चर्चा को बिगाड़ता है। इसलिए कहा जाता है:

"कामुक, क्रोधित या भ्रमित व्यक्ति, अभिमानी, लालची या आलसी व्यक्ति, एक ही विचार वाला व्यक्ति और मूर्ख व्यक्ति—ये आठों ही उच्च तर्क-वितर्क को बिगाड़ने वाले हैं।"

6. नागसेन, नौ प्रकार के लोग होते हैं जो किसी गुप्त बात को अपने मन में छिपाए बिना ही प्रकट कर देते हैं। वे नौ कौन हैं? कामुक व्यक्ति किसी कामवासना के वश में आकर उसे प्रकट करता है, और क्रोधी व्यक्ति उसके परिणामस्वरूप।

किसी दुर्भावना के कारण, भ्रमित व्यक्ति किसी गलती के कारण। डरपोक व्यक्ति भय के कारण इसे प्रकट करता है, और लालची व्यक्ति इससे कुछ हासिल करने के लिए। स्त्री अपनी दुर्बलता के कारण, शराबी शराब की लालसा के कारण, नपुंसक अपनी अपूर्णता के कारण, और बच्चा चंचलता के कारण इसे प्रकट करता है। इसलिए कहा जाता है:

"कामुक, क्रोधित या भ्रमित व्यक्ति, डरपोक व्यक्ति, और लाभ चाहने वाला व्यक्ति, स्त्री, शराबी, नपुंसक या बच्चा—ये नौ चंचल, अस्थिर और नीच होते हैं। जब गुप्त बातें उनसे कही जाती हैं, तो वे तुरंत सार्वजनिक हो जाते हैं।"

7. 'हे नागसेन, अंतर्दृष्टि की उन्नति और परिपक्वता के आठ कारण हैं। वे आठ क्या हैं? उम्र का बढ़ना, प्रतिष्ठा में वृद्धि, बार-बार प्रश्न पूछना, शिक्षकों का साथ, आत्मचिंतन, बुद्धिमानों से बातचीत, प्रेमयोग्य लोगों का पालन-पोषण और सुखद देश में निवास करना। इसलिए कहा गया है:

"प्रतिष्ठा और उम्र में वृद्धि से, प्रश्न पूछने से और गुरु के मार्गदर्शन से, चिंतन और बुद्धिमानों के साथ वार्तालाप से, प्रेम के योग्य पुरुषों के साथ मेलजोल से, और एक सुखद स्थान पर निवास करने से—इन नौ गुणों से अंतर्दृष्टि शुद्ध होती है। जिनके पास ये गुण होते हैं, उनकी बुद्धि बढ़ती है।"

8. 'यह स्थान, नागसेना, बातचीत करने में किसी भी प्रकार की आपत्ति से मुक्त है। और जो कोई भी ऐसा करना चाहता है, मैं उसके लिए एक आदर्श साथी हूँ। मैं एक

मैं आपका रहस्य गुप्त रखूंगा, और जब तक जीवित रहूंगा तब तक रखूंगा। ऊपर वर्णित सभी आठ तरीकों से मेरी अंतर्दृष्टि परिपक्व हुई है। आपके लिए मुझ जैसा शिष्य मिलना मुश्किल होगा।

अब, जो शिष्य इस प्रकार सही आचरण करता है, उसके प्रति गुरु को गुरु के पच्चीस गुणों के अनुरूप आचरण करना चाहिए। वे पच्चीस गुण क्या हैं? गुरु को सदा और बिना किसी चूक के अपने शिष्य की रक्षा करनी चाहिए। उसे यह बताना चाहिए कि उसे क्या अपनाना चाहिए और क्या नहीं; किस बात पर उसे गंभीर होना चाहिए और किस बात की वह उपेक्षा कर सकता है। उसे नींद, स्वास्थ्य, भोजन और अन्य चीजों के बारे में निर्देश देना चाहिए। उसे भोजन में विवेक का ज्ञान देना चाहिए और अपने कटोरे में दान के रूप में जो कुछ भी आता है, उसे शिष्य के साथ बाँटना चाहिए। उसे प्रोत्साहित करते हुए कहना चाहिए, "डरो मत। तुम्हें यहाँ जो सिखाया जा रहा है, उससे लाभ होगा।" उसे उन लोगों के बारे में सलाह देनी चाहिए जिनकी संगति में उसे रहना चाहिए और उन गाँवों और विहारों के बारे में सलाह देनी चाहिए जहाँ उसे जाना चाहिए। उसे कभी भी शिष्य के साथ व्यर्थ की बातें नहीं करनी चाहिए। जब वह उसमें कोई दोष देखे, तो उसे आसानी से क्षमा कर देना चाहिए। उसे उत्साही होना चाहिए, उसे कुछ भी अधूरा नहीं सिखाना चाहिए, कुछ भी गुप्त नहीं रखना चाहिए और कुछ भी छुपाना नहीं चाहिए। उसे अपने हृदय में उसे पुत्र के समान समझना चाहिए और मन ही मन कहना चाहिए: "मैंने उसे जन्म दिया है।"

शिक्षा। उसे उसे आगे बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए, मन ही मन यह कहते हुए: "मैं उसे पीछे हटने से कैसे रोक सकता हूँ?" उसे उसे ज्ञान में मजबूत बनाने का निश्चय करना चाहिए, मन ही मन यह कहते हुए: "मैं उसे शक्तिशाली बनाऊँगा।" उसे उससे प्रेम करना चाहिए, आवश्यकता पड़ने पर कभी उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिए, उसके लिए जो भी करना उचित हो उसमें कभी उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, और जब वह गलती करे तो हमेशा उसका मित्र बनना चाहिए—जहाँ तक वह उचित रूप से कर सकता है। हे प्रभु, ये एक शिक्षक के पच्चीस अच्छे गुण हैं। मेरे साथ पूर्णतः इन्हीं के अनुरूप व्यवहार करें। हे प्रभु, संदेह ने मुझे घेर लिया है। विजेता के वचन में स्पष्ट विरोधाभास हैं। इनके बारे में भविष्य में विवाद उत्पन्न होगा, और भविष्य में आपके समान अंतर्दृष्टि वाला शिक्षक मिलना कठिन होगा। इन दुविधाओं पर मुझे प्रकाश डालें, ताकि शत्रुओं का पतन हो सके।

9. तब गुरु ने उनकी बात मान ली और बदले में गृहस्थ शिष्य में पाए जाने वाले दस अच्छे गुणों का वर्णन किया: 'हे महाराज, ये दस गुण गृहस्थ शिष्य के गुण हैं। वह संघ के समान पीड़ा सहता है और आनंद का अनुभव करता है। वह धर्म (धम्म) को अपना गुरु मानता है। वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान करने में आनंदित होता है। विजेता के धर्म (धम्म) को पतित होते देख वह उसे पुनर्जीवित करने का भरसक प्रयास करता है। वह सही दृष्टिकोण रखता है। उत्तेजना के प्रति उदासीन रहते हुए वह दौड़ता है।

जीवन भर वह किसी अन्य गुरु के पीछे नहीं भागता। वह अपने विचारों और कर्मों में स्वयं पर नियंत्रण रखता है। वह शांति में प्रसन्न रहता है, शांति का प्रेमी है। वह ईर्ष्या नहीं करता और झगड़ालू स्वभाव से धर्म का पालन नहीं करता। वह बुद्ध की शरण लेता है, वह धर्म की शरण लेता है, वह संघ की शरण लेता है। हे महाराज, ये दस गुण एक गृहस्थ शिष्य के गुण हैं। ये सभी गुण आप में विद्यमान हैं। इसलिए यह उचित, सही और आपके लिए उपयुक्त है कि विजेता के धर्म के पतन को देखकर आप उसकी समृद्धि की कामना करते हैं। मैं आपको अनुमति देता हूँ। आप मुझसे जो चाहें मांग सकते हैं।

[यहाँ दुविधाओं के समाधान की प्रस्तावना समाप्त होती है।] दुविधाएँ। [बुद्ध को दिए गए सम्मानों पर।]

10. तब राजा मिलिंदा को जब अनुमति मिल गई, तो वे गुरु के चरणों में गिर पड़े और अपने हाथ माथे पर रखकर बोले: "आदरणीय नागसेन, अन्य संप्रदायों के ये नेता ऐसा कहते हैं: "यदि बुद्ध उपहार स्वीकार करते हैं तो वे पूर्णतः परास्त नहीं हो सकते। वे अभी भी संसार से जुड़े हुए हैं, उनका अस्तित्व कहीं न कहीं संसार में है, वे संसार की वस्तुओं में भागीदार हैं; इसलिए उन्हें दिया गया कोई भी सम्मान व्यर्थ और निरर्थक हो जाता है। दूसरी ओर, यदि वे

जो व्यक्ति पूर्णतः जीवन से विमुख हो जाए, संसार से अनासक्त हो जाए, समस्त अस्तित्व से मुक्त हो जाए, तब उसे सम्मान नहीं दिया जाएगा। क्योंकि जो पूर्णतः मुक्त हो जाता है, वह किसी सम्मान को स्वीकार नहीं करता, और जो सम्मान स्वीकार नहीं करता, उसके प्रति किया गया कोई भी कार्य व्यर्थ और निरर्थक हो जाता है। यह एक ऐसी दुविधा है जिसके दो पहलू हैं। यह बुद्धिहीन लोगों के वश में

नहीं है, यह महान लोगों के लिए उपयुक्त प्रश्न है। इस विधर्म के जाल को चीर-फाड़ कर एक तरफ रख दो। यह पहेली तुम्हारे समक्ष रखी गई है। विजेता के भावी पुत्रों को ऐसी दृष्टि प्रदान करो जिससे वे इस पहेली को देखकर अपने शत्रुओं को भ्रमित कर सकें।

“हे महाराज,” बड़े गुरु ने उत्तर दिया, “भगवान पूर्णतः मुक्त हैं। और भगवान कोई उपहार स्वीकार नहीं करते। ज्ञान वृक्ष के चरणों में भी उन्होंने उपहारों को स्वीकार करना त्याग दिया था, तो अब तो वे और भी अधिक मुक्त होंगे, जब वे उस प्रकार के अंतःकरण द्वारा पूर्णतः परास्त हो गए हैं जो किसी नए अस्तित्व के निर्माण के लिए कोई जड़ नहीं छोड़ता। हे महाराज, यही बात धर्म के सेनापति सारिपुत्त ने कही है।”

"यद्यपि पूज्य, ये अद्वितीय पुरुष, देवताओं और मनुष्यों द्वारा समान रूप से पूजे जाते हैं, फिर भी उन सभी के विपरीत, वे न तो किसी उपहार को स्वीकार करते हैं और न ही पूजा को। वे इसे न तो ग्रहण करते हैं और न ही अस्वीकार करते हैं। युगों-युगों से सभी बुद्ध ऐसे ही थे, और सदा ऐसे ही रहेंगे!"

11. राजा ने कहा: 'आदरणीय नागसेन, एक पिता अपने पुत्र की प्रशंसा कर सकता है, या पुत्र अपने पिता की। लेकिन यह शत्रुओं को लज्जित करने का कोई आधार नहीं है। यह तो केवल उनके अपने विश्वास की अभिव्यक्ति है। अब आइए! मुझे इस मामले को पूरी तरह से समझाइए, ताकि आप अपने सिद्धांत को स्थापित कर सकें और विधर्मियों के जाल को उजागर कर सकें।'

बड़े ने उत्तर दिया: 'हे राजा, भगवान पूर्णतः जीवन से मुक्त हैं। और भगवान कोई उपहार स्वीकार नहीं करते। यदि देवता या मनुष्य किसी ऐसे तथागत के अवशेषों के रत्न-संग्रह को रखने के लिए भवन का निर्माण करें जो उनका उपहार स्वीकार नहीं करते, तब भी उनकी बुद्धि के रत्न-संग्रह के रूप में परम सुख की प्राप्ति के प्रति अर्पित उस श्रद्धा से वे स्वयं तीन तेजस्वी अवस्थाओं में से किसी एक को प्राप्त कर लेते हैं। हे राजा, मान लीजिए कि एक बड़ी और तेजस्वी अग्नि प्रज्वलित हो जाए और बुझ जाए, तो क्या वह फिर से सूखी घास या लकड़ियों की आपूर्ति स्वीकार करेगी?'

'जब यह जल रहा था, तब भी यह ईंधन ग्रहण नहीं कर सकता था, महोदय, तो बुझ जाने और जलना बंद हो जाने के बाद, एक अचेतन वस्तु होने के नाते, यह ईंधन कैसे ग्रहण कर सकता है?'

और जब वह भीषण अग्नि समाप्त हो जाएगी, तो क्या संसार अग्नि से वंचित हो जाएगा?

'बिल्कुल नहीं। सूखी लकड़ी आग का आधार है, और आग चाहने वाला कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग करके, लकड़ी को घुमाकर, आग उत्पन्न कर सकता है, और उस आग से कोई भी ऐसा काम कर सकता है जिसके लिए आग की आवश्यकता हो।'

तब संप्रदायवादियों का यह कथन कि "जो व्यक्ति दान स्वीकार नहीं करता, उसके प्रति किया गया कर्म व्यर्थ और निरर्थक होता है" असत्य सिद्ध होता है। जिस प्रकार वह महान और तेजस्वी अग्नि प्रज्वलित हुई, उसी प्रकार, हे महाराज, भगवान बुद्ध दस हजार संसारों पर अपने बुद्धत्व की महिमा से प्रज्वलित हुए। जैसे वह अग्नि बुझ गई, वैसे ही वे उस प्रकार के परलोक में विलीन हो गए जिसमें कोई जड़ शेष नहीं रहती। जैसे अग्नि बुझने पर ईंधन ग्रहण नहीं करती, ठीक उसी प्रकार, जगत के कल्याण के लिए, उन्होंने दान ग्रहण करना बंद कर दिया और निश्चय कर लिया। जैसे मनुष्य, जब आग बुझ जाती है और जलने का कोई साधन नहीं बचता, तो अपनी सामर्थ्य और प्रयास से, जो भी मनुष्य में निहित होता है, वे आग जलाने वाली लकड़ी को घुमाकर आग उत्पन्न करते हैं और आग से आवश्यक कोई भी कार्य करते हैं—ठीक वैसे ही देवता और मनुष्य, यद्यपि तथागत का देहांत हो गया है और वे अब उनके उपहार स्वीकार नहीं करते, फिर भी उनके अवशेषों के रत्न-संग्रह के लिए एक घर बनाते हैं और उनकी बुद्धि के रत्न-संग्रह के रूप में सर्वोच्च पुण्य की प्राप्ति के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए, वे तीन गौरवशाली अवस्थाओं में से किसी एक को प्राप्त करते हैं। अतः, हे महाराज, तथागत के देहांत हो जाने और उनके उपहार स्वीकार न करने के बावजूद, उनके प्रति किए गए कर्म भी मूल्यवान होते हैं और फलदायी होते हैं।

12. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। मान लो, हे राजा, एक तेज और शक्तिशाली हवा चले और फिर शांत हो जाए। क्या वह हवा दोबारा उत्पन्न होने के लिए तैयार होगी?'

'एक थम सी चुकी हवा में पुनरुत्पादन की कोई कल्पना या विचार नहीं हो सकता। और क्यों? क्योंकि हवा एक अचेतन तत्व है।'

या फिर, हे राजा, क्या "हवा" शब्द भी सही रहेगा?

क्या यह बात उस हवा पर भी लागू होती है, जबकि वह हवा लगभग शांत हो चुकी थी?

'बिल्कुल नहीं, महोदय। लेकिन पंखे और हवा तो हवा पैदा करने के साधन हैं। गर्मी से परेशान या बुखार से व्याकुल कोई भी व्यक्ति पंखे और पंखों की सहायता से और अपनी आंतरिक शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग करके हवा पैदा कर सकता है और उस हवा से अपनी गर्मी को शांत कर सकता है या बुखार को कम कर सकता है।'

तब संप्रदायवादियों का यह कथन कि "जो व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करता, उसके साथ किया गया कर्म व्यर्थ और निरर्थक होता है" असत्य सिद्ध होता है। जैसे महान और शक्तिशाली वायु बहती है, वैसे ही, हे महाराज, भगवान बुद्ध ने अपने प्रेम की शीतल, मधुर, शांत और कोमल वायु से दस हजार संसारों को विसर्जित किया है। जैसे वह वायु पहले बही और फिर थम गई, वैसे ही भगवान बुद्ध, जिन्होंने अपने प्रेम की शीतल, मधुर, शांत और कोमल वायु से प्रवाह किया, अब उस प्रकार के विसर्जन के साथ विलीन हो गए हैं जिसमें कोई जड़ नहीं रहती। जैसे वे मनुष्य गर्मी से पीड़ित और बुखार से व्याकुल हुए, वैसे ही देवता और मनुष्य तीन प्रकार की अग्नि और गर्मी से पीड़ित और व्याकुल हैं। जैसे पंखे और हवा उत्पन्न करने के साधन हैं, वैसे ही तथागत के ज्ञान के अवशेष और रत्न-संग्रह तीन प्रकार की प्राप्ति के साधन हैं। और जिस प्रकार गर्मी से पीड़ित और बुखार से व्याकुल मनुष्य पंखे और हवा से गर्मी को कम कर सकते हैं और बुखार से राहत पा सकते हैं, उसी प्रकार देवता और मनुष्य भी अवशेषों के प्रति श्रद्धा अर्पित करके ऐसा कर सकते हैं।

तथागत की ज्ञान की अनमोल धरोहर, भले ही उनका देहांत हो गया हो और वे इसे स्वीकार न करते हों, फिर भी उनमें सत्त्व का भाव उत्पन्न करती है, और उस सत्त्व से त्रिगुण अग्नि के बुखार और पीड़ा को शांत किया जा सकता है। अतः, हे महाराज, तथागत के देहांत होने और उन्हें स्वीकार न करने के बावजूद, उनके प्रति किए गए कर्म मूल्यवान होते हैं और फलदायी होते हैं।

13. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। मान लो, हे राजा, कोई व्यक्ति ढोल बजाए, और फिर वह ध्वनि लुप्त हो जाए। क्या वह ध्वनि पुनः उत्पन्न होने के लिए तैयार होगी?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। ध्वनि लुप्त हो चुकी है। इसमें पुनरुत्पादन की कोई संभावना नहीं है। ढोल की ध्वनि एक बार उत्पन्न होकर लुप्त हो जाने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। लेकिन, महोदय, ढोल ध्वनि उत्पन्न करने का एक साधन है। और कोई भी व्यक्ति, आवश्यकता पड़ने पर, अपने भीतर निहित शक्ति के बल पर उस ढोल को बजाकर ध्वनि उत्पन्न कर सकता है।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, भगवान बुद्ध—अपने गुरु और उनके द्वारा दिए गए उपदेशों और अनुशासन तथा उनके अवशेषों के अनमोल खजाने को छोड़कर, जिनका मूल्य उनके धार्मिकता, चिंतन, ज्ञान, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान से प्राप्त अंतर्दृष्टि से है—ठीक इसी प्रकार उस प्रकार के परलोक में विलीन हो गए हैं जिसमें कोई जड़ शेष नहीं रहती। परन्तु भगवान बुद्ध के परलोक में विलीन होने से तीनों सिद्धियों को प्राप्त करने की संभावना समाप्त नहीं होती। जन्म के दुःख से पीड़ित प्राणी, जब वे सिद्धियों की इच्छा रखते हैं, तो उनके अवशेषों के अनमोल खजाने तथा उनके उपदेशों, अनुशासन और शिक्षा के माध्यम से उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। अतः, हे महाराज, यही कारण है कि

तथागत के देहांत हो जाने और उनके न मानने के बावजूद, उनके प्रति किए गए सभी कर्म मूल्यवान और फलदायी होते हैं। हे महाराज, इस भविष्य की संभावना का पूर्वाभास भगवान बुद्ध ने किया था, और इसके बारे में कहा, घोषित किया और बताया था, जब उन्होंने कहा: "हे आनंद, हो सकता है कि तुममें से कुछ के मन में यह विचार आए: 'गुरु का वचन समाप्त हो गया है। अब हमारा कोई गुरु नहीं है!' परन्तु हे आनंद, तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। जो सत्य मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, जो नियम मैंने संघ के लिए निर्धारित किए हैं, मेरे जाने के बाद वे ही तुम्हारे गुरु हों।" अतः तथागत के देहांत हो जाने और उनके न मानने के कारण उनके प्रति किया गया कोई भी कर्म व्यर्थ और निरर्थक है—यह शत्रु का कथन असत्य सिद्ध होता है। यह असत्य, अन्यायपूर्ण, तथ्य के विपरीत, गलत और विकृत है। यह दुःख का कारण है, दुःख ही इसका फल है, और यह विनाश के मार्ग की ओर ले जाता है!

14. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। हे राजा, क्या विशाल पृथ्वी सभी प्रकार के बीजों को अपने ऊपर बोए जाने देती है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर ऐसा कैसे होता है कि वे बीज, जो धरती की सहमति के बिना बोए जाते हैं, फिर भी मजबूती से जड़ जमाए खड़े रहते हैं, और विशाल तनों, रस और शाखाओं वाले वृक्षों में विकसित हो जाते हैं, और फल और फूल धारण करते हैं?'

'यद्यपि धरती, महोदय, सहमति नहीं देती, फिर भी वह उन बीजों के लिए एक स्थान, उनके विकास का साधन बनती है। उस स्थान पर बोए जाने पर वे बढ़ते हैं,

इसका अर्थ है, शाखाओं, फूलों और फलों से लदे इतने विशाल वृक्षों में बदलना।

'तो, हे महाराज, संप्रदायवादी नष्ट हो जाते हैं, पराजित हो जाते हैं, अपने ही शब्दों से गलत साबित हो जाते हैं जब वे कहते हैं कि "जो व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करता, उसके प्रति किया गया कर्म व्यर्थ और निरर्थक है।" हे महाराज, जिस प्रकार विशाल पृथ्वी है, उसी प्रकार तथागत, अरहत, परम बुद्ध हैं। वे इसके समान कुछ भी स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार इसके माध्यम से बीज ऐसे विकास को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार देवता और मनुष्य तथागत के अवशेषों और ज्ञान के रत्न-संग्रह के माध्यम से—यद्यपि वे देहांतित हो चुके हैं और इसे स्वीकार नहीं करते—पुण्य की जड़ों से दृढ़तापूर्वक जड़े जमाकर, ध्यान के तने, सच्चे सिद्धांत के रस और धर्म की शाखाओं के माध्यम से घनी छाया देने वाले वृक्षों के समान हो जाते हैं, और मुक्ति के फूल और समनत्व के फल धारण करते हैं। अतः, हे महाराज, तथागत के प्रति किए गए कर्म, उनके देहांतित होने और उन्हें स्वीकार न करने के बावजूद, अभी भी मूल्यवान हैं और फलदायी हैं।'

15. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। क्या ऊंट, भैंस, गधे, बकरियां, बैल या मनुष्य अपने भीतर कीड़े पैदा होने को स्वीकार करते हैं?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर ऐसा कैसे होता है कि उनकी सहमति के बिना ही कृमि इस प्रकार पैदा होते हैं और पुत्रों और पोतों के तीव्र प्रजनन द्वारा फैलते हैं?'

'बुरे कर्मों के फल से, महोदय।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, दिवंगत तथागत की पवित्र अवशेषों की शक्ति और ज्ञान के कारण, जो किसी भी बात को स्वीकार नहीं करते, उनके प्रति किया गया कोई भी कार्य मूल्यवान होता है और फलदायी होता है।'

16. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। हे राजा, क्या मनुष्य इस बात से सहमत हैं कि उनके शरीर में अट्ठानवे रोग उत्पन्न हों?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर ये बीमारियां आती कैसे हैं?'

'पूर्व जन्मों में किए गए बुरे कर्मों के कारण।'

लेकिन, हे महाराज, यदि पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्मों का फल इस जन्म में भुगतना ही है, तो इस जन्म में या पहले किए गए अच्छे और बुरे दोनों कर्मों का महत्व है और वे फलदायी होते हैं। इसीलिए तथागत के निधन और उनकी अनिच्छा के बावजूद, उनके प्रति किए गए कर्म भी मूल्यवान हैं और फलदायी होते हैं।

17. 'अब इसी बात का एक और कारण सुनो। हे राजा, क्या तुमने कभी नंदक नामक राक्षस के बारे में सुना है, जिसने सारिपुत्त पर हाथ उठाया और धरती में समा गया?'

'जी हां, महोदय, यह पुरुषों के बीच आम बातचीत का विषय है।'

'तो क्या सारिपुत्त ने इस बात को स्वीकार कर लिया था?'

हे प्रभु, भले ही देवताओं और मनुष्यों का संसार नष्ट हो जाए, भले ही सूर्य और चंद्रमा पृथ्वी पर गिर पड़ें, भले ही पर्वतों के राजा सिनेरु का नाश हो जाए, फिर भी सारिपुत्त संत किसी भी प्राणी को कष्ट पहुँचाने की अनुमति नहीं देते। और क्यों नहीं? क्योंकि उनके हृदय में क्रोध या आक्रोश उत्पन्न करने वाली हर भावना नष्ट हो चुकी है। और इस प्रकार क्रोध के सभी कारण दूर हो जाने के कारण, हे प्रभु, सारिपुत्त उन लोगों से भी क्रोधित नहीं हो सकते जो उन्हें जान से मारने का प्रयास करते हैं।

लेकिन यदि सारिपुत्त, हे राजा, ने इसकी सहमति नहीं दी, तो नंदक इस प्रकार कैसे निगल लिया गया?

'उसके बुरे कर्मों की शक्ति से।'

'यदि ऐसा है, तो हे महाराज, अनिच्छुक व्यक्ति के प्रति किया गया कार्य भी शक्तिशाली और फलदायी होता है। और यदि यह किसी बुरे कर्म के लिए ऐसा है, तो अच्छे कर्म के लिए कितना अधिक होगा? अतः, हे महाराज, तथागत के निधन और उनकी अस्वीकृति के बावजूद, उनके प्रति किए गए कार्य मूल्यवान और फलदायी होते हैं।'

18. 'हे राजा, ऐसे कितने लोग हैं जो इस जीवन में ही पृथ्वी में समा गए? क्या आपने इस विषय पर कुछ सुना है?'

'जी हां, महोदय, मैंने सुना है कि उनकी संख्या कितनी है।'

'तो मुझे बताओ।'

'किंका ब्राह्मण स्त्री, सुप्पबुद्ध शाक्यन, देवदत्त वृद्ध, नंदक राक्षस और नंदा ब्राह्मण—ये पाँच लोग पृथ्वी में समा गए।'

'और हे राजा, उन्होंने किसके साथ अन्याय किया था?'

'भगवान और उनके शिष्य।'

'तो क्या भगवान बुद्ध या उनके शिष्यों ने उनके इस प्रकार निगल लिए जाने की सहमति दी थी?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

अतः, हे राजा, तथागत के निधन और उनकी सहमति न होने के बावजूद, उनके प्रति किया गया कार्य मूल्यवान होता है और फलदायी होता है।

हे पूज्य नागसेना, आपने इस गहन प्रश्न का बहुत अच्छे से उत्तर दिया है और इसे स्पष्ट कर दिया है। आपने गुप्त बात को स्पष्ट कर दिया है, आपने उलझन सुलझा दी है, आपने जंगल को खुला मैदान बना दिया है, शत्रु पराजित हो गए हैं, गलत धारणा गलत साबित हो गई है, संप्रदायवादियों का पर्दाफाश हो गया है।

हे विद्यालय के सर्वोत्कृष्ट नेता! जब वे आपसे मिले तो उनके सामने अंधेरा छाया हुआ था।

[यहाँ दिए गए सम्मानों को स्वीकार न करने का प्रश्न समाप्त होता है।] [बुद्ध का सर्वज्ञता।]

19. 'आदरणीय नागसेना, क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे?'

जी हाँ, हे राजा, वे थे। परन्तु ज्ञान की अंतर्दृष्टि उनमें सदा और निरंतर (सचेतन रूप से) विद्यमान नहीं रहती थी। भगवान बुद्ध की सर्वज्ञता चिंतन पर निर्भर थी। परन्तु यदि वे चिंतन करते तो वे जो कुछ जानना चाहते थे, जान लेते थे।

'तो फिर, महोदय, बुद्ध सर्वज्ञ नहीं हो सकते, यदि उनका सर्वव्यापी ज्ञान खोज के माध्यम से प्राप्त हुआ था।'

'[यदि ऐसा है, हे महाराज, तो हमारे बुद्ध का ज्ञान अन्य बुद्धों के ज्ञान की तुलना में कम परिष्कृत रहा होगा। और यह निष्कर्ष निकालना कठिन है। लेकिन मुझे थोड़ा और समझाने दीजिए।] मान लीजिए, हे महाराज, आपके पास सौ बैलगाड़ी चावल हैं, जिनमें से प्रत्येक में साढ़े सात अम्मन चावल हैं। क्या कोई व्यक्ति, बिना सोचे-समझे, आपको एक पल में बता सकता है कि कुल कितने लाख चावल हैं?'

20. 'अब, सात प्रकार के मन होते हैं। हे महाराज, जो कामवासना, द्वेष, भ्रम या कुकर्म से भरे होते हैं, जो अपने शरीर के प्रबंधन, आचरण, विचार या बुद्धि में प्रशिक्षित नहीं होते, उनकी सोचने-समझने की शक्तियाँ कठिनता से काम करती हैं और धीमी गति से कार्य करती हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि उनके मन अप्रशिक्षित होते हैं। यह एक विशाल बांस के धीमे और भारी कदमों के समान है—जब उसे उसकी फैली हुई, विस्तृत, घनी और आपस में उलझी हुई वनस्पति के साथ घसीटा जा रहा हो, और उसकी शाखाएँ एक-दूसरे से जटिल रूप से उलझी हों। हे महाराज, ऐसे ही लोगों के मन धीमे और भारी होते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि कुकर्मों के जटिल उलझावों के कारण। यह मन का पहला प्रकार है।'

21. 'इससे दूसरी श्रेणी को अलग किया जाना है। हे राजा, जो परिवर्तित हो चुके हैं, जिनके लिए नरक के द्वार बंद हो गए हैं, जिन्होंने सही दृष्टिकोण प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने गुरु के उपदेश को समझ लिया है—उनकी चिंतन शक्ति, जहाँ तक तीन निम्न चरणों का संबंध है, शीघ्रता से विकसित होती है।

वे सहजता से कार्य करते हैं। परन्तु उच्चतर स्तरों के संदर्भ में उन्हें कठिनाई होती है और वे धीमी गति से कार्य करते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि इन तीन स्तरों के संदर्भ में उनके मन स्पष्ट हो चुके हैं, और उनमें अभी भी कुछ कमियाँ (जिन्हें उच्चतर स्तरों में दूर किया जाना है) मौजूद हैं। यह एक विशाल बांस के चलने के समान है जिसका तना तीसरी गांठ तक साफ है, परन्तु उसके ऊपर उसकी शाखाएँ जटिल रूप से उलझी हुई हैं। चिकने तने के संदर्भ में तो वह घसीटने पर आसानी से चल सकता है, परन्तु ऊपरी शाखाओं के संदर्भ में वह हठपूर्वक अटक जाता है। यही दूसरे प्रकार के मन हैं।

22. 'इनमें से तीसरे वर्ग को अलग करना है। हे राजा, जो सकाद् आगामिन हैं, जिनमें काम, द्वेष और भ्रम न्यूनतम हो गए हैं, उनकी सोचने की शक्ति, निम्न पाँच स्तरों के संबंध में, शीघ्रता से सक्रिय हो जाती है और वे सहजता से कार्य करते हैं। परन्तु उच्च स्तरों के संबंध में, वे कठिनाई से सक्रिय होते हैं और धीमी गति से कार्य करते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उनके मन उन पाँच स्तरों के संबंध में स्पष्ट हो चुके हैं, और उनमें (उच्च स्तरों में पराजित होने वाली) कमियाँ अभी भी शेष हैं। यह एक विशाल बांस की गति के समान है जिसका तना पाँचवें भाग तक साफ है, परन्तु उसके ऊपर उसकी शाखाएँ जटिल रूप से उलझी हुई हैं। चिकने तने के संबंध में, उसे घसीटने पर वह आसानी से चल सकता है, परन्तु उसकी ऊपरी शाखाओं के संबंध में, उसे हिलाना कठिन होगा। यही तीसरे वर्ग के मन हैं।'

23. 'इनमें से चौथे वर्ग को अलग करना है। हे राजा, जो अनागामिन हैं, जिन्होंने पाँच निम्न बंधनों से पूर्णतः मुक्ति पा ली है, उनकी चिंतन शक्ति दस अवस्थाओं के संदर्भ में शीघ्रता से सक्रिय हो जाती है और वे सहजता से कार्य करते हैं। परन्तु उच्चतर अवस्थाओं के संदर्भ में वे कठिनाई से सक्रिय होती हैं और धीमी गति से कार्य करती हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उनके मन उन दस अवस्थाओं के संदर्भ में स्पष्ट हो चुके हैं, और उनमें अभी भी कुछ दोष (जिन्हें उच्चतर अवस्थाओं में दूर किया जाना है) शेष हैं। यह एक विशाल बांस की गति के समान है जिसका तना दसवें भाग तक चिकना है, परन्तु उसके ऊपर उसकी शाखाएँ जटिल रूप से उलझी हुई हैं। यही चौथे वर्ग के मन हैं।'

24. 'इनमें से पाँचवाँ वर्ग अलग है। हे राजा, वे अरहत हैं जिनमें चारों महापाप समाप्त हो गए हैं, जिनके दाग धुल गए हैं, जिनकी बुराई की प्रवृत्ति त्याग दी गई है, जिन्होंने जीवन जीया है, अपना कार्य पूरा किया है, हर बोझ उतार दिया है और अच्छाई को प्राप्त किया है, जिनके लिए किसी भी प्रकार के भविष्य के जीवन की लालसा का बंधन टूट गया है, जिन्होंने उच्चतर अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली है, और जो हृदय की उन सभी अवस्थाओं के संबंध में शुद्ध हो गए हैं जिनमें एक

एक श्रोता शुद्ध हो सकता है—शिष्य जो कुछ भी हो सकता है या कर सकता है, उसके बारे में उसकी चिंतन शक्ति शीघ्रता से सक्रिय हो जाती है और वह सहजता से कार्य करता है। परन्तु जो बातें पक्केका-बुद्धों (जो स्वयं बुद्ध हैं, परन्तु अपने लिए) की पहुँच में हैं, उनके बारे में उसकी चिंतन शक्ति कठिनाई से सक्रिय होती है और वह धीमी गति से कार्य करता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि श्रोता के दायरे में आने वाली सभी बातों के संबंध में वह शुद्ध हो चुका है, परन्तु उन बातों के संबंध में नहीं जो बुद्धों (यद्यपि वे केवल अपने लिए) की पहुँच में हैं। यह एक विशाल बांस की गति के समान है जिसकी सभी गांठों से निकली शाखाओं को काट दिया गया है—और इसलिए, जब उसे घसीटा जाता है, तो वह अपनी चिकनी सतह और वनस्पति की जंगली वृद्धि से मुक्त होने के कारण तेजी से और सहजता से चलता है। यह पाँचवाँ प्रकार का मन है।

25. 'इनमें से छठे वर्ग को अलग करना है। हे राजा, जो पक्केका-बुद्ध हैं, जो केवल स्वयं पर निर्भर हैं, जिन्हें किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है, जो गैंडे के एक सींग के समान अकेले रहते हैं, जिनका अपने उच्च जीवन के संबंध में हृदय शुद्ध और निर्मल है, उनकी चिंतन शक्ति, अपने क्षेत्र के संबंध में, शीघ्रता से सक्रिय हो जाती है और सहजता से कार्य करती है। परन्तु जो कुछ विशेष रूप से पूर्ण बुद्ध (जो स्वयं बुद्ध हैं, अर्थात् प्रबुद्ध हैं, परन्तु दूसरों को प्रकाश की ओर ले जा सकते हैं) के क्षेत्र में आता है, उसमें उनकी चिंतन शक्ति कठिनाई से सक्रिय होती है और वे धीमी गति से कार्य करते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे अपने क्षेत्र के सभी पहलुओं में शुद्ध हैं, और सर्वज्ञ बुद्धों के क्षेत्र की विशालता के कारण। हे राजा, यह उस व्यक्ति के समान है जो निर्भय होकर, और अपनी इच्छा से,

दिन हो या रात, वह अपनी ही ज़मीन पर एक उथली सी धारा को बहाता है। लेकिन जब उसके सामने विशाल, गहरा, चौड़ा और निरंतर गतिमान सागर आता है और उसे आगे कोई किनारा दिखाई नहीं देता, तो वह झिझकता और भयभीत होकर खड़ा रह जाता है और उसे पार करने का प्रयास भी नहीं करता। और क्यों? क्योंकि वह अपने सागर से भली-भांति परिचित है और सागर की विशालता के कारण। यही छठी श्रेणी के मन हैं।

26. 'इनमें से सातवीं श्रेणी को अलग करना है। हे राजा, जो पूर्ण बुद्ध हैं, सर्वज्ञानी हैं, अपने भीतर दस प्रकार की अंतर्दृष्टि की दस गुना शक्ति धारण किए हुए हैं, न्यायपूर्ण आत्म-विश्वास के चार गुणों में दृढ़ हैं, बुद्ध के अठारह गुणों से संपन्न हैं, जिनकी महारत की कोई सीमा नहीं है, जिनकी पकड़ से कुछ भी छिपा नहीं है, उनकी चिंतन शक्ति हर बिंदु पर शीघ्रता से कार्य करती है और सहजता से कार्य करती है। मान लीजिए, हे राजा, एक अच्छी तरह से चमकाया हुआ, जंग रहित, बिल्कुल चिकना, तेज धार वाला, सीधा, बिना किसी टेढ़ेपन या दोष के बाण एक शक्तिशाली धनुष पर लगा हो। क्या इसकी क्रिया में कोई अनाड़ीपन होगा, इसकी गति में कोई रुकावट आएगी, यदि इसे एक शक्तिशाली व्यक्ति द्वारा महीन लिनेन, सूती कपड़े या नाजुक ऊन के काम पर चलाया जाए?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। और क्यों? क्योंकि सामग्री बहुत उत्तम है, और बाण बहुत उच्च स्तर पर तपा हुआ है, और इसका विस्फोट बहुत शक्तिशाली है।'

'और ठीक इसी प्रकार, हे महाराज, मैंने जिन बुद्धों का वर्णन किया है, उनकी चिंतन शक्तियाँ शीघ्रता से सक्रिय हो जाती हैं और सहजता से कार्य करती हैं।'

[पैराग्राफ जारी है] और क्यों? क्योंकि वे हर तरह से शुद्ध हैं। यह सातवीं श्रेणी के मन हैं।'

27. हे महाराज, इन सब में से अंतिम—सर्वज्ञ बुद्धों की चिंतन शक्ति—अन्य छह शक्तियों से कहीं श्रेष्ठ है, और अपने उच्च गुण में इतनी स्पष्ट और सक्रिय है कि हमारी समझ से परे है। भगवान बुद्ध का मन इतना स्पष्ट और सक्रिय है कि हे महाराज, वे दोहरा चमत्कार प्रदर्शित करते हैं। इससे हमें, हे महाराज, उनकी मानसिक शक्तियों की स्पष्टता और सक्रियता का ज्ञान होता है। और उन चमत्कारों के लिए कोई और कारण नहीं बताया जा सकता। (फिर भी) हे महाराज, सर्वज्ञ बुद्धों के मन के कारण होने वाले उन चमत्कारों को न तो गिना जा सकता है, न ही गणना की जा सकती है, न ही विभाजित किया जा सकता है, न ही अलग किया जा सकता है, क्योंकि हे महाराज, भगवान बुद्ध का ज्ञान चिंतन पर निर्भर है, और चिंतन के माध्यम से ही वे जो कुछ जानना चाहते हैं, जान लेते हैं। (पर) यह ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति अपने एक हाथ में रखी वस्तु को दूसरे हाथ में दे दे, या मुँह खुला रखकर कोई ध्वनि निकाले, या मुँह में रखा भोजन निगल ले, या बंद आँखों को खोले, या खुली बाहों को बंद करे, या मुड़ी हुई बांह को फैलाए, या फैली हुई बांह को मोड़े—हे महाराज, इससे भी अधिक तीव्र और सहज है भगवान बुद्ध का सर्वव्यापी ज्ञान, और इससे भी अधिक तीव्र है उनका चिंतन। और यद्यपि वे चिंतन से ही जो कुछ जानना चाहते हैं, जान लेते हैं, फिर भी जब वे

जो लोग ईश्वरीय बोध को प्रतिबिंबित नहीं कर रहे हैं, वे भी सर्वज्ञता के सिवा कुछ और नहीं हैं।

लेकिन, आदरणीय नागसेन, चिंतन का उद्देश्य उस चीज़ की खोज करना है जो चिंतन शुरू होने पर स्पष्ट नहीं होती। अब मुझे इस मामले में कुछ तर्क देकर समझाइए।

'मान लीजिए, हे राजा, एक धनी व्यक्ति है, जो धन और संपत्ति में समृद्ध है—जिसके पास सोने, चांदी और कीमती वस्तुओं का भंडार है, और हर प्रकार के गेहूं का भंडार है; जिसके पास चावल, धान, जौ, सूखा अनाज, तिलहन, सेम, मटर और हर प्रकार के खाने योग्य बीज हैं; जिसके पास घी, तेल, मक्खन, दूध, दही, शहद, चीनी और गुड़ है, और ये सब भंडारगृहों में घड़ों, बर्तनों और हर प्रकार के पात्रों में भरा हुआ है। अब यदि कोई यात्री आता है, जो आतिथ्य सत्कार के योग्य है और भोजन की उम्मीद कर रहा है; और घर में तैयार किया

गया सारा भोजन समाप्त हो चुका है, और वे घड़े से कुछ पके हुए चावल निकालकर उसके लिए भोजन तैयार करते हैं। क्या उस धनी व्यक्ति को केवल उस असामान्य समय में खाने-पीने की चीजों की कमी के कारण गरीब या जरूरतमंद कहना उचित होगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। यहां तक कि एक शक्तिशाली राजाओं के राजा के महल में भी समय से पहले भोजन तैयार नहीं होता, तो एक साधारण आदमी के घर में ऐसा होना कितना मुश्किल होगा।'

'ठीक वैसे ही, हे महाराज, तथागत के सर्वव्यापी ज्ञान के साथ, जब केवल चिंतन की आवश्यकता होती है; लेकिन चिंतन करने पर वे जो चाहें ग्रहण कर लेते हैं। अब मान लीजिए, हे महाराज, एक फलदार वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ फलों के गुच्छों के भार से इधर-उधर झुकी हुई हैं, परन्तु उस पर से एक भी फल नहीं गिरा है।'

[पैराग्राफ जारी है] क्या उस पेड़ को, मामले की परिस्थितियों में, केवल इसलिए बंजर कहा जा सकता है क्योंकि उस पर कोई फल नहीं गिरा है?

'नहीं, महोदय। क्योंकि फल का गिरना उसका आनंद लेने के लिए एक पूर्व शर्त है, लेकिन एक बार जब वह गिर जाता है तो कोई भी जितना चाहे उतना ले सकता है।'

'हे महाराज, इसी प्रकार, यद्यपि तथागत के ज्ञान के लिए चिंतन एक आवश्यक शर्त है, फिर भी चिंतन करने पर तथागत वह सब कुछ जान लेता है जो वह जानना चाहता है।'

'क्या ऐसा हमेशा होता है, नागसेना, चिंतन के क्षण में?'

'जी हां, हे राजा। जिस प्रकार राजाओं के पराक्रमी राजा (कक्कवत्ती) अपने विजयचक्र का स्मरण करते हुए उसे प्रकट करने की इच्छा करते हैं, और स्मरण करते ही वह प्रकट हो जाता है—ठीक उसी प्रकार तथागत का ज्ञान चिंतन के द्वारा निरंतर प्राप्त होता है।'

'नागसेना, आपने बुद्ध के सर्वज्ञ होने का जो कारण बताया है, वह बहुत ठोस है। मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा ही है।'

[यहाँ बुद्ध की सर्वज्ञता के चिंतन पर निर्भर होने का प्रश्न समाप्त होता है।] [देवदत्त को संघ में क्यों प्रवेश दिया गया?]

28. 'आदरणीय नागसेना, देवदत्त को संघ में किसने प्रवेश दिया था?'

'हे राजा, वे छह युवा कुलीन, भद्दिया, अनुरुद्ध, आनंद, भागु, किंबिला और देवदत्त, और सातवें उपाली नाई—जब गुरु बुद्ध को प्राप्त हुए, तो वे सभी उनसे प्रसन्न होकर शाक्य घर छोड़कर भगवान बुद्ध का अनुसरण करते हुए संसार का त्याग कर गए। अतः भगवान बुद्ध ने उन सभी को संघ में प्रवेश दिया।'

लेकिन क्या यह देवदत्त ही नहीं थे जिन्होंने संघ में प्रवेश करने के बाद उसके भीतर फूट डाल दी थी?

'जी हां। कोई भी गृहस्थ फूट नहीं डाल सकता, न ही संघ की कोई सदस्य, न ही प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रही कोई सदस्य, न ही किसी भी लिंग का कोई नौसिखिया। यह फूट केवल एक भिक्षु द्वारा ही डाली जा सकती है, जो किसी भी प्रकार से अक्षम न हो, पूर्ण रूप से संघ से जुड़ा हो और सह-निवासी हो।'

'और एक विधर्मी व्यक्ति को कौन सा कर्म प्राप्त होता है?'

'ऐसा कर्म जो कल्प (बहुत लंबी अवधि) तक कार्य करता रहता है।'

'तो फिर, नागसेना! क्या बुद्ध को इस बात का ज्ञान था कि देवदत्त संघ में प्रवेश करने के बाद एक फूट उत्पन्न करेगा, और ऐसा करने पर उसे एक कल्प के लिए नरक में यातना भोगनी पड़ेगी?'

'जी हां, तथागत यह बात जानते थे।'

लेकिन, नागसेन, यदि ऐसा है, तो यह कथन कि बुद्ध दयालु और करुणामय थे, कि वे दूसरों का भला चाहते थे, कि वे हानि करने वाले को दूर करने वाले और सभी प्राणियों का भला करने वाले थे—यह कथन गलत होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है—यदि वह यह नहीं जानता था कि देवदत्त

संघ में प्रवेश करने के बाद यदि कोई फूट उत्पन्न करता है, तो वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। यह दूसरी जटिल समस्या आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पेचीदा रहस्य को सुलझाइए, विरोधियों के तर्कों का खंडन कीजिए। भविष्य में आपके समान ज्ञानवान भिक्षु मिलना कठिन होगा। इसलिए, इसमें अपनी कुशलता दिखाइए!

29. हे राजा, भगवान अत्यंत दयालु और सर्वज्ञानी थे। जब भगवान ने अपनी दया और ज्ञान से देवदत्त के जीवन इतिहास का अध्ययन किया, तब उन्हें यह ज्ञान हुआ कि कर्मों का संचय करते-करते वह अनंत काल तक कष्टों से कष्टों और विनाशों से विनाशों की ओर अग्रसर होते रहेंगे। भगवान यह भी जानते थे कि संघ में प्रवेश करने के कारण उस व्यक्ति के अनंत कर्म सीमित हो जाएंगे और पिछले कर्मों से उत्पन्न दुःख भी सीमित हो जाएगा। परन्तु यदि वह मूर्ख व्यक्ति संघ में प्रवेश न करे तो वह कर्मों का संचय करता रहेगा जो एक कल्प तक ही चलेगा। और यह जानते हुए ही उन्होंने अपनी दया से उसे संघ में प्रवेश दिया।

'तो, नागसेन, बुद्ध पहले एक आदमी को घायल करते हैं और फिर घाव पर तेल डालते हैं, पहले एक आदमी को खाई में फेंक देते हैं और फिर उसकी सहायता के लिए हाथ बढ़ाते हैं, पहले उसे मार डालते हैं और फिर उसे जीवन देने का प्रयास करते हैं, पहले दर्द देते हैं और फिर दिए गए दर्द में आनंद जोड़ते हैं।'

हे राजा, तथागत लोगों को घायल तो करते हैं, पर उनके हित में; उन्हें गिराते तो उनके लाभ के लिए; उन्हें मारते तो उनके फायदे के लिए। ठीक वैसे ही जैसे हे राजा, माता-पिता अपने बच्चों को चोट पहुँचाते हैं और यहाँ तक कि उन्हें गिरा भी देते हैं, यह सोचकर कि उनके

अच्छा; इसलिए जिस भी विधि से जीवों के सद्गुणों में वृद्धि की जा सकती है, उसी विधि से वह उनके कल्याण में योगदान देता है। हे राजा, यदि देवदत्त संघ में प्रवेश न करते, तो गृहस्थ के रूप में वे अनेक कर्म संचित करते, जिससे उन्हें दुख की अवस्थाओं का सामना करना पड़ता, और इस प्रकार लाखों कल्पों तक कष्ट से दुःख और एक विनाश से दूसरे विनाश की अवस्था में निरंतर पीड़ा भोगते। यह जानकर ही भगवान ने अपनी कृपा से देवदत्त को संघ में प्रवेश दिया। यह सोचकर कि भगवान के उपदेशों के अनुसार संसार का त्याग करने से देवदत्त का दुःख अविभाज्य हो जाएगा, उन्होंने अपनी कृपा से उनके भारी दुःख को हल्का करने का यह उपाय अपनाया।

30. हे राजा, जैसे कोई प्रभावशाली व्यक्ति अपने धन, प्रतिष्ठा, समृद्धि या जन्म के बल पर, जब राजा द्वारा अपने किसी मित्र या रिश्तेदार पर कोई गंभीर दंड लगाया जाता है, तो उस पर रखे गए भरोसे से उत्पन्न सामर्थ्य के बल पर उसे हल्का कर देता है; ठीक उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने उन्हें संघ में प्रवेश देकर और धर्म, ध्यान, ज्ञान और हृदय की मुक्ति के प्रभाव से देवदत्त के भारी दुःख को हल्का कर दिया, जिसे लाखों कल्पों तक कष्ट भोगना पड़ता। हे राजा, जैसे कोई चतुर चिकित्सक और सर्जन किसी शक्तिशाली औषधि की सहायता से किसी गंभीर बीमारी को हल्का कर देता है, ठीक उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने उचित साधन के ज्ञान से देवदत्त को संघ में प्रवेश देकर और दया की शक्ति से परिपूर्ण धर्म की औषधि से उनके गंभीर दुःख को हल्का कर दिया। तब, हे राजा,

क्या भगवान ने देवदत्त को अत्यधिक दुःखग्रस्त व्यक्ति से कम दुःखग्रस्त व्यक्ति में परिवर्तित करके कोई पाप किया है?

'जी नहीं, बिल्कुल नहीं। उन्होंने कोई गलती नहीं की, जरा सी भी नहीं।'

'तो हे महाराज, इसे पूर्णतः स्वीकार कीजिए, यही वह कारण है जिसके लिए भगवान बुद्ध ने देवदत्त को संघ में प्रवेश दिया।'

31. हे महाराज, भगवान बुद्ध द्वारा देवदत्त को स्वीकार किए जाने का एक और कारण सुनिए। मान लीजिए कि कुछ लोग किसी दुष्ट डाकू को पकड़कर राजा के सामने लाते हैं और कहते हैं, "यह वही दुष्ट डाकू है, महाराज। इसे वह दंड दीजिए जो आपको उचित लगे!" तब राजा उनसे कहते हैं, "हे मेरे दूतों, इस डाकू को नगर के बाहर ले जाओ और वहाँ फाँसी के स्थान पर इसका सिर काट दो।" राजा के आदेशानुसार वे उस व्यक्ति को फाँसी के स्थान की ओर ले जाते हैं। तभी राजा के निकट उच्च पदस्थ, प्रतिष्ठित, धनी और संपत्ति से संपन्न कोई व्यक्ति, जिसकी वाणी का बहुत महत्व हो और जिसका प्रभाव बहुत अधिक हो, उसे देखता है। वह उस पर दया करता है और उन लोगों से कहता है, "रुको, हे सज्जनों। इसका सिर काटने से तुम्हारा क्या भला होगा? इसे जीवित छोड़ दो और केवल एक हाथ या

पैर काट दो। मैं राजा से इसकी ओर से बात करूँगा।" और उन्होंने उस प्रभावशाली व्यक्ति के कहने पर ऐसा किया। अब क्या वह अधिकारी, जिसने उसके प्रति ऐसा व्यवहार किया था, उस लुटेरे का उपकारक होता?

'वह अपनी जान बचा लेता, महोदय। और ऐसा करने के बाद वह क्या नहीं करता?'

लेकिन क्या हाथ या पैर कटने पर उस व्यक्ति को जो पीड़ा हुई, उसके कारण उसने कोई गलती नहीं की होगी?

'महोदय, चोर को जो पीड़ा सहनी पड़ी, वह उसकी अपनी गलती थी। लेकिन जिस व्यक्ति ने उसकी जान बचाई, उसने उसे कोई नुकसान नहीं पहुंचाया।'

'हे महाराज, यह उनकी कृपा ही थी कि भगवान ने देवदत्त को प्रवेश दिया, इस ज्ञान के साथ कि इससे उसका दुःख कम हो जाएगा।'

32. हे राजा, देवदत्त का दुःख कम हो गया। क्योंकि देवदत्त ने अपनी मृत्यु के समय, अपने शेष जन्मों के लिए उसकी शरण ली और कहा:

"जो सर्वश्रेष्ठ में भी सबसे श्रेष्ठ है, देवताओं का देवता, देवताओं और मनुष्यों का मार्गदर्शक, जो सब कुछ देखता है और अच्छाई के सौ चिह्नों को धारण करता है, उसी में मैं अपने सभी जन्मों में शरण लेता हूँ।"

'हे राजा, यदि आप इस कल्प को छह भागों में विभाजित करें, तो पहले भाग के अंत में ही देवदत्त ने संघ में फूट डाली थी। अन्य पाँच भागों में नरक भोगने के बाद वह मुक्त हो जाएगा और अत्तिसार नाम से पक्केका-बुद्ध बन जाएगा।'

नागसेना, भगवान बुद्ध ने देवदत्त को जो वरदान दिया है, वह महान है। तथागत

जिसने उसे पक्केका-बुद्ध की अवस्था तक पहुँचाया है, उसने उसके लिए क्या नहीं किया है?'

लेकिन हे राजा, देवदत्त ने संघ में फूट डालकर नरक में कष्ट भोगा है, तो क्या भगवान ने उसके साथ अन्याय नहीं किया?

'नहीं, श्रीमान। यह देवदत्त की स्वयं की गलती है; और भगवान ने, जिन्होंने उनके कष्टों को कम किया है, उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचाई है।'

'तो हे राजा, इसे पूर्णतः इस कारण के रूप में स्वीकार करो कि भगवान ने देवदत्त को संघ में प्रवेश दिया।'

33. हे राजा, उसके ऐसा करने का एक और कारण सुनो। मान लो कि एक ऐसे घाव का उपचार करते समय, जो मवाद और खून से भरा हो, जिसके गहरे गड्ढे में घाव करने वाला हथियार ही रह गया हो, जिसमें सड़े हुए मांस की दुर्गंध आ रही हो, और जो लगातार बदलते लक्षणों, तापमान में उतार-चढ़ाव और तीनों दोषों—वात, पित्त और कफ—के मिश्रण से बढ़ते दर्द के कारण और भी बदतर हो गया हो, एक कुशल चिकित्सक और सर्जन सूजन को शांत करने के लिए उस पर एक खुरदुरा, तीखा, कड़वा और चुभने वाला मरहम लगाए। और जब सूजन कम हो जाए और घाव में मिठास आ जाए, तो मान लो कि वह उसे एक लैंसेट से काटे और उस पर कास्टिक से जलाए। और जब उसने घाव को दाग दिया, मान लीजिए कि वह क्षारीय घोल से धोने की सलाह दे और घाव भरने और बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्य में सुधार के लिए उस पर कोई दवा लगाए - तो हे राजा, मुझे बताइए, क्या सर्जन द्वारा इस प्रकार मरहम लगाना, लैंसेट से काटना और दागना क्रूरता होगी?

क्या उन्होंने कास्टिक की छड़ी से नमकीन घोल से धोया?

'बिल्कुल नहीं, महोदय; वह अपने हृदय में दया भाव और उस व्यक्ति के कल्याण की इच्छा से ही ये सब कार्य करेगा।'

'और उपचार के प्रयासों से उत्पन्न होने वाले दर्द की भावनाओं के संबंध में क्या सर्जन किसी प्रकार का अपराध नहीं करेगा?'

'ऐसा कैसे? नेक इरादे से और उस व्यक्ति के कल्याण के लिए कार्य करते हुए, वह इसमें कैसे गलत हो सकता है? बल्कि यह तो स्वर्गिक आनंद की बात है कि वह दयालु सर्जन इसके योग्य हो।'

'हे महाराज, यही उनकी कृपा थी कि भगवान ने देवदत्त को अपने पास स्वीकार किया, ताकि अंत में उन्हें पीड़ा से मुक्ति मिल सके।'

34. हे राजा, एक और कारण सुनो, कि भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों किया। मान लो कि किसी व्यक्ति को कांटा चुभ गया है। और कोई दूसरा व्यक्ति दयालुता से और उसकी भलाई के लिए उस जगह के चारों ओर एक और नुकीले कांटे या छुरी से चीरता है, और खून बहते हुए उस कांटे को निकालता है। तो क्या उसका ऐसा करना क्रूरता होगी?

'बिल्कुल नहीं, महोदय। क्योंकि उन्होंने नेक इरादे से और उस व्यक्ति की भलाई के लिए ऐसा किया। और अगर उन्होंने ऐसा न किया होता तो वह व्यक्ति मर सकता था, या उसे इतना दर्द हो सकता था कि वह मौत के कगार पर पहुँच जाता।'

'हे महाराज, तथागत की कृपा से ही तथागत ने देवदत्त को अपने गर्भ में प्रवेश दिया, ताकि उसे उसके कष्टों से मुक्ति मिल सके। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता, तो देवदत्त को लाखों-लाखों कल्पों के क्रम में नरक में कष्ट भोगना पड़ता।'

'जी हां, नागसेन, तथागत ने देवदत्त को, जो बाढ़ में बह रहा था, धारा की ओर सिर करके मोड़ा; जब देवदत्त जंगल में खो गया था, तब उसे फिर से रास्ता दिखाया; जब देवदत्त खाई में गिर रहा था, तब उसे सहारा दिया; जब देवदत्त निराशा में डूब गया था, तब उसे शांति प्रदान की। लेकिन इन बातों का कारण और अर्थ, नागसेन, कोई नहीं बता सकता था, जब तक कि वह तुम्हारे समान बुद्धिमान न हो!'

[देवदत्त के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [वेसंतारा का भूकंप।]

35. आदरणीय नागसेन, भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा: "हे भिक्षुओं, भयंकर भूकंप के ये आठ कारण हैं, चाहे वे निकट हों या दूर।" यह एक व्यापक कथन है, एक ऐसा कथन जिसमें किसी भी बात को जोड़ने की गुंजाइश नहीं है, एक ऐसा कथन जिसमें कोई व्याख्या नहीं जोड़ी जा सकती। भूकंप का कोई नौवां कारण नहीं हो सकता। यदि होता, तो भगवान बुद्ध ने उसका उल्लेख अवश्य किया होता। यही कारण है कि कोई अन्य कारण नहीं था, इसलिए उन्होंने उसका उल्लेख नहीं किया। लेकिन हमें एक और, और नौवां कारण, तब मिलता है जब हमें बताया जाता है कि वेसंतारा के दान से पृथ्वी सात बार कांपी। यदि, नागसेन, भूकंप के आठ कारण हैं, तो वेसंतारा के दान से आए भूकंप के बारे में जो हमने सुना है वह असत्य है। और यदि यह सत्य है, तो आठ कारणों के बारे में दिया गया कथन गलत है।

भूकंप के कारणों के बारे में कही गई बात गलत है। यह दोहरा प्रश्न भी सूक्ष्म, सुलझाने में कठिन, अंधकारमय और गहन है। अब यह आपके सामने है। कम ज्ञान वाला कोई भी व्यक्ति इसे हल नहीं कर सकता, केवल आप जैसा बुद्धिमान ही कर सकता है।

36. 'हे राजा, जिस कथन का आप उल्लेख कर रहे हैं, वह भगवान बुद्ध ने कहा था, फिर भी वेसंतारा की उदारता से पृथ्वी सात बार कांपी। परन्तु वह समय से बाहर था, वह एक पृथक घटना थी, वह आठ सामान्य कारणों में शामिल नहीं थी, और इसलिए उसे उनमें से एक नहीं गिना गया। हे राजा, यह न्यायसंगत है, क्योंकि संसार में तीन प्रकार की सुप्रसिद्ध वर्षाएँ होती हैं - वर्षा ऋतु की, शीत ऋतु की, और आषाढ़ और सावन ऋतुओं की। यदि इनके अतिरिक्त कोई अन्य वर्षा होती है, तो उसे सामान्य वर्षाओं में नहीं गिना जाता, बल्कि उसे "समय से बाहर की वर्षा" कहा जाता है।' और फिर, हे राजा, जैसे हिमालय से पाँच सौ नदियाँ बहती हैं, परन्तु नदियों की गणना में केवल दस ही गिनी जाती हैं—गंगा, यमुना, अकीरावती, सरभू, माही, सिंधु, सरस्वती, वेत्रावती, वीतंसा और कंदभागा—अन्य नदियाँ अनियमित प्रवाह के कारण गणना में शामिल नहीं की जातीं। और फिर, हे राजा, जैसे राजा के अधीन एक सौ दो सौ अधिकारी होते हैं, परन्तु उनमें से केवल छह ही राजकीय अधिकारी गिने जाते हैं—सेनापति, प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश, उच्च कोषाध्यक्ष, राजकीय छत्रवाहक और राजकीय तलवारवाहक। और क्यों? क्योंकि उन्हें राजसी विशेषाधिकार प्राप्त हैं। बाकी गिने नहीं जाते, उन्हें केवल अधिकारी कहा जाता है। हे महान राजा, इन सभी मामलों की तरह, वेसंतारा की कृपा से सात बार आया भूकंप भी एक अलग और असाधारण घटना थी।

यह एक सामान्य घटना है, और आठ सामान्य घटनाओं से अलग है, और उन आठ कारणों में इसकी गणना नहीं की जाती है।

37. 'हे राजा, क्या आपने हमारे धर्म के इतिहास में किसी ऐसे धार्मिक कार्य के बारे में सुना है जिसका प्रतिफल आपको इसी जीवन में प्राप्त हुआ हो, और जिसकी प्रसिद्धि देवताओं तक पहुंची हो?'

'जी प्रभु, मैंने इनके बारे में सुना है। ऐसे कार्यों के सात मामले हैं।'

'ये सब काम करने वाले लोग कौन थे?'

'माला बनाने वाला सुमना, ब्राह्मण एका-सातक, किराए का सेवक पुन्ना, रानी मल्लिका, गोपाल की माता के रूप में जानी जाने वाली रानी, भक्त सुप्पिया और दासी पुन्ना। ये सातों ऐसे थे जिन्होंने भक्ति के ऐसे कार्य किए जिनका फल इस जीवन में भी मिला और जिनकी प्रसिद्धि देवताओं तक भी पहुंची।'

'हे राजा, क्या आपने दूसरों के बारे में सुना है, जो अपने मानव शरीर में रहते हुए भी, महान तैंतीस के पवित्र निवास तक पहुंचे?'

'हां, मैंने भी उनके बारे में सुना है।'

और वे कौन थे?

'संगीतकार गुट्टिला, राजा साधीना, राजा निमि और राजा मंधाता—ये चारों। बहुत समय पहले यह गौरवशाली और कठिन कार्य संपन्न हुआ था।'

लेकिन क्या आपने कभी सुना है, हे राजा, कि पृथ्वी एक बार, दो बार या तीन बार कांपी हो, चाहे अभी हो या अतीत में, जब कोई उपहार दिया गया हो?

'नहीं, महोदय, मैंने इसके बारे में नहीं सुना है।'

और हे राजा—यद्यपि मैंने भी—यद्यपि मैंने परंपराएँ ग्रहण की हैं, अध्ययन में, विधि को सुनने में, उसे याद करने में, और शिष्यत्व की योग्यताओं को प्राप्त करने में, तथा यद्यपि मैं सीखने में, प्रश्न पूछने और उत्तर देने में, तथा शिक्षकों के चरणों में बैठने में तत्पर रहा हूँ—फिर भी मैंने कभी नहीं सुना

ऐसी घटना का मैंने केवल वेसंतारा नामक तेजस्वी राजा के असाधारण दान के अलावा कहीं और उल्लेख नहीं किया है। और भगवान कस्सपा और शाक्य ऋषि के समय के बीच लाखों वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु उस पूरे कालखंड में मैंने ऐसा कोई मामला नहीं सुना। हे राजा, यह कोई साधारण प्रयास या संघर्ष नहीं है जिससे विशाल पृथ्वी हिलती है। यह तब होता है जब धर्म के भार से, परम पवित्रता की गवाही देने वाले अच्छे कर्मों के बोझ से दबकर, विशाल पृथ्वी कांप उठती है, थरथराने लगती है और हिल जाती है। तब ऐसा होता है जैसे किसी रथ पर अत्यधिक भार लाद दिया जाए, और उसका केंद्र और तीलियां फट जाएं, और धुरी दो टुकड़ों में टूट जाए। तब ऐसा लगता है जैसे हवा से चलने वाले तूफ़ान के पानी से भरा आकाश, घने वर्षा बादलों के बोझ से दबा हुआ, बवंडर के आगमन पर गरजता, कांपता और प्रचंड होता है। हे महाराज, ऐसा ही हुआ जब विशाल पृथ्वी, राजा वेसंतारा की उदारता के विशाल और व्यापक प्रभाव के असहनीय भार को सहन न कर पाने के कारण, कांप उठी और हिल गई। क्योंकि राजा वेसंतारा का हृदय न तो कामवासना, न द्वेष, न सुस्ती, न अहंकार, न भ्रम, न पाप, न विवाद, न असंतोष की ओर झुका था, बल्कि वह पूरी तरह से उदारता की ओर मुड़ा हुआ था। और यह सोचते हुए कि, "जो लोग चाहते हैं और अभी तक नहीं आए हैं, वे अब आ जाएं! जो भी आएं, उन्हें उनकी इच्छा की हर चीज मिले और वे तृप्त हो जाएं!" उनका मन निरंतर और अनंत दान देने में लगा रहा। और हे राजा, उनका मन हृदय की इन दस अवस्थाओं पर ही केंद्रित था—आत्मसंयम पर, आंतरिक शांति पर, और

उन्होंने धीरज, आत्मसंयम, संयम, पुण्य व्रतों के प्रति स्वैच्छिक समर्पण, क्रोध और क्रूरता के सभी रूपों से मुक्ति, सत्यवादिता और हृदय की पवित्रता पर ध्यान केंद्रित किया। हे राजा, उन्होंने अपनी पशुवत वासनाओं की पूर्ति की सभी खोजों का त्याग कर दिया था; उन्होंने भविष्य के जीवन की सभी लालसाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी; उनका सारा प्रयास केवल उच्चतर जीवन की ओर ही लगा हुआ था। हे राजा, उन्होंने स्वयं की चिंता छोड़ दी थी और तब से केवल दूसरों की देखभाल में ही अपना जीवन व्यतीत किया। उनका मन इस विचार पर अडिग था: "मैं सभी प्राणियों को शांति, स्वास्थ्य, समृद्धि और दीर्घायु कैसे प्रदान करूँ?" और जब, हे राजा, वह दान दे रहा था, तो उसने किसी गौरवशाली पुनर्जन्म की इच्छा से नहीं दिया, न ही धन की लालसा से, न ही प्रतिफल पाने की लालसा से, न ही चापलूसी की लालसा से, न ही अपने लिए दीर्घायु की लालसा से, न ही उच्च कुल की लालसा से, न ही सुख की लालसा से, न ही शक्ति की लालसा से, न ही प्रसिद्धि की लालसा से, न ही पुत्र-पुत्रियों की लालसा से—बल्कि उसने परम ज्ञान और उसके खजाने की लालसा से इतना विशाल, इतना अतुलनीय, इतना अद्वितीय दान दिया। जब उसने उस परम ज्ञान को प्राप्त कर लिया, तब उसने यह श्लोक कहा:

"गाली, मेरा पुत्र, और काला मृग, मेरी पुत्री, और मेरी रानी, मेरी पत्नी, मद्दी, मैंने इन सबको बिना सोचे-समझे त्याग दिया— और यह सब मैंने बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए किया।"

38. 'हे राजा, महान राजा वेसंतारा ने क्रोधी पुरुष को नम्रता से, दुष्ट पुरुष को दयालुता से और लालची पुरुष को उदारता से पराजित किया।'

और उसने झूठ बोलने वाले को सत्य से, और समस्त बुराई को धर्म से परास्त किया। जब वह इस प्रकार दान कर रहा था—वह जो धर्म का अनुयायी था, जिसने धर्म को अपना लक्ष्य बनाया था—तब पृथ्वी को स्थिर रखने वाली तीव्र हवाएँ उसकी उदारता के प्रभाव से पूरी शक्ति से व्याकुल हो उठीं, और धीरे-धीरे, एक-एक करके, तीव्र हवाएँ बेकाबू होकर बहने लगीं, और पृथ्वी ऊपर-नीचे और हर ओर डगमगाने लगी, और मिट्टी में जड़े विशाल वृक्ष लड़खड़ाने लगे, और आकाश में बादलों का समूह उमड़ पड़ा, और धूल से भरी भयानक हवाएँ चलने लगीं, और आकाश में हलचल मच गई, और तूफान ज़ोरदार झटकों के साथ चलने लगे, और एक भयंकर और प्रचंड शोर सुनाई दिया। और उन तेज हवाओं के प्रचंड चलने से जल धीरे-धीरे हिलने लगा, और जल की हलचल से बड़ी मछलियाँ और शल्कमय जीव विचलित हो गए, और लहरें दोहरी लहरों के रूप में उठने लगीं, और जल में रहने वाले जीव भयभीत हो गए, और जैसे ही लहरें जोड़े में टकराईं, सागर का दहाड़ तेज हो गया, और फुहार उग्र हो गई, और झाग की मालाएँ उठ उठीं, और विशाल सागर अपनी गहराई में खुल गया, और जल इधर-उधर बहने लगा, उनकी उग्र लहरों की चोटियाँ इधर-उधर टकराने लगीं; और असुर, गरुल, यक्ष और नाग भय से कांप उठे, और अपनी घबराहट में सोचने लगे: "अब क्या! अब क्या! क्या विशाल सागर उलट-पुलट हो रहा है?"

और भयभीत मन से वे बचने का रास्ता खोजने लगे। जिस जल पर यह टिका हुआ था, वह व्याकुल और अशांत हो उठा, जिससे विशाल पृथ्वी कांप उठी, और उसके साथ ही पर्वत श्रृंखलाएं और समुद्र की गहराई भी कांप उठी, और सिनेरु घूमने लगा, और उसकी पथरीली पर्वत चोटी मुड़ गई। पृथ्वी के कांपने से सर्प, नेवले, बिल्लियां, सियार, सूअर, हिरण और पक्षी बहुत व्याकुल हो गए, और कम शक्ति वाले यक्ष रोने लगे, जबकि अधिक शक्ति वाले यक्ष प्रसन्न हुए।

39. हे राजा, जैसे जब पानी से भरे और चावल के दानों से लदे हुए एक विशाल और शक्तिशाली कड़ाहे को भट्टी में रखा जाता है, तो नीचे जलती हुई आग सबसे पहले कड़ाहे को गर्म करती है, और जब वह गर्म हो जाता है तो पानी उबलने लगता है, और जैसे-जैसे पानी उबलता है, चावल के दाने गर्म होकर पानी में इधर-उधर उछलते हैं, और बुलबुलों का एक समूह उठता है, और झाग की एक माला बन जाती है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, राजा वेसंतारा ने संसार में जो कुछ भी देना सबसे कठिन माना जाता है, उसे दान कर दिया, और उनकी उदारता के कारण नीचे की तेज हवाएँ पूरी तरह से उत्तेजित होने से खुद को रोक नहीं पाईं, और तेज हवाओं के अशांत होने पर जल कांप उठा, और जल के अशांत होने पर विशाल पृथ्वी कांप उठी, और इस प्रकार हवाएँ, जल और पृथ्वी तीनों, मानो, उस विशाल और शक्तिशाली प्रभाव से एक हो गए।

उस महान दान का परिणाम यही था। और हे राजा, महान राजा वेसंतारा की उस उदारता के समान शक्ति रखने वाला कोई दूसरा दान कभी नहीं हुआ।

40. हे राजा, जिस प्रकार पृथ्वी पर अनेक बहुमूल्य रत्न पाए जाते हैं—नीलम, बड़ा नीलम, मनोकामना पूरी करने वाला रत्न, काँटे की आँख, सन का रत्न, बबूल का रत्न, मोहक रत्न, सूर्य का प्रिय रत्न, चंद्रमा का प्रिय रत्न, क्रिस्टल, कग्गोपक्कमक, पुखराज, माणिक्य और मसार पत्थर—परन्तु राजाओं के राजा का तेजस्वी रत्न इन सब में श्रेष्ठ और सबसे बढ़कर माना जाता है, क्योंकि हे राजा, उस रत्न की चमक चारों ओर एक मील तक फैलती है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, उन सभी उपहारों में जो

पृथ्वी पर आज तक दिए गए सभी उपहारों में, यहाँ तक कि सबसे महान और अद्वितीय उपहारों में भी, अच्छे राजा वेसंतारा का वह उपहार उन सभी से श्रेष्ठ माना जाता है। और हे राजा, उस उपहार के दिए जाने पर ही विशाल पृथ्वी सात बार काँपी।

41. हे नागसेन, बुद्धों में यह एक अद्भुत और अत्यंत आश्चर्यजनक बात है कि तथागत बुद्ध बोधिसत्व अवस्था में भी संसार में अद्वितीय, सौम्य और दयालु थे, तथा उनके लक्ष्य और प्रयास इतने ऊंचे और महान थे। हे नागसेन, आपने बोधिसत्वों की शक्ति को प्रकट किया है, आपने विजेताओं की पूर्णता पर अत्यंत स्पष्ट प्रकाश डाला है, आपने दिखाया है कि समस्त देवी-देवताओं के संसार में तथागत अपने श्रेष्ठ जीवन के अभ्यास में सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ हैं। हे पूज्य नागसेन, आपने बहुत अच्छा कहा। विजेता के सिद्धांत का महिमामंडन हुआ है, विजेता की पूर्णता का गुणगान हुआ है, विरोधियों के तर्कों की गुत्थी सुलझ गई है, विरोधियों के सिद्धांतों का घड़ा

चकनाचूर हो गया है, गहन दुविधा स्पष्ट हो गई है, जंगल खुला मैदान बन गया है, विजेता के बच्चों को उनके दिल की इच्छा पूरी हो गई है। हे श्रेष्ठ धर्मगुरु, जैसा आपने कहा है, वैसा ही है, और मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ!

[यहाँ वेसंतारा के उपहार स्वरूप आए भूकंप को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[राजा शिव]

42. 'आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं: "राजा शिव ने अपनी आँखें उस व्यक्ति को दे दीं जिसने उनसे आँखें माँगी थीं, और जब वह अंधा हो गया, तो उसे स्वर्ग से नई आँखें मिलीं।" यह कथन स्वीकार्य नहीं है, यह वक्ता को निंदा का पात्र बनाता है, यह त्रुटिपूर्ण है। क्योंकि सूत्र में कहा गया है: "जब कारण पूरी तरह से नष्ट हो जाता है, जब कोई कारण, कोई आधार शेष नहीं रहता, तब दिव्य दृष्टि उत्पन्न नहीं हो सकती।" अतः यदि उन्होंने अपनी आँखें दे दीं, तो यह कथन कि उन्हें नई (दिव्य) आँखें प्राप्त हुईं, असत्य है; और यदि उन्हें दिव्य आँखें प्राप्त हुईं; तो यह कथन कि उन्होंने अपनी आँखें दे दीं, असत्य है। यह दुविधा भी दोधारी है, गाँठ से भी अधिक पेचीदा, तीर से भी अधिक भेदी, जंगल से भी अधिक उलझी हुई। अब यह आपके समक्ष प्रस्तुत है। अपने भीतर उस कार्य को पूरा करने की इच्छा जागृत कीजिए जो आपको सौंपा गया है, ताकि आप विरोधियों का खंडन कर सकें!'

'हे राजा, राजा सिवी ने अपनी आँखें त्याग दीं। इस बात पर संदेह न करें। और उनके स्थान पर दिव्य आँखें उनके लिए उत्पन्न की गईं। इस बात पर भी आपको संदेह नहीं करना चाहिए।'

लेकिन फिर, नागसेन, क्या दिव्य दृष्टि तब उत्पन्न हो सकती है जब उसका कारण पूरी तरह से नष्ट हो गया हो, जब उसका कोई कारण, कोई आधार शेष न रह जाए?

'बिल्कुल नहीं, हे राजा।'

तो फिर वह कौन सा कारण है जिसके चलते यह इस मामले में उत्पन्न हुआ, जबकि इसका मूल कारण पूरी तरह से नष्ट हो चुका था और इसका कोई आधार या कारण शेष नहीं था? अब मुझे इस बात का कारण समझाइए।

43. 'तो फिर, हे राजा? क्या संसार में सत्य जैसी कोई वस्तु है, जिसके कथन से सच्चे विश्वासी सत्य का कार्य कर सकते हैं?'

'जी प्रभु, ऐसा है। और इसके द्वारा सच्चे विश्वासी वर्षा करवाते हैं, आग बुझाते हैं, जहर के प्रभावों को दूर करते हैं और कई अन्य काम पूरे करते हैं जो वे करना चाहते हैं।'

'तो, हे महान राजा, यह बात बिल्कुल सही बैठती है, यह पूरी तरह से मेल खाती है। सत्य की शक्ति से ही राजा सिवि के लिए वे दिव्य नेत्र उत्पन्न हुए थे। सत्य की शक्ति से ही दिव्य नेत्र उत्पन्न हुए, जबकि कोई अन्य कारण मौजूद नहीं था, क्योंकि उस स्थिति में सत्य स्वयं ही उनके उत्पन्न होने का कारण था। मान लीजिए,

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, यदि कोई सिद्ध (सिद्ध पुरुष) मंत्र का उच्चारण करके और यह कहकर: "अब भयंकर वर्षा हो!" भारी वर्षा उत्पन्न कर दे, तो क्या उस स्थिति में आकाश में वर्षा का कोई ऐसा कारण होगा जिससे वर्षा हो सके?

'नहीं, महोदय। इसका कारण स्वयं आकर्षण ही होगा।'

'हे महाराज, इस मामले में ऐसा ही है। कोई साधारण कारण नहीं होगा। स्वयं सत्य ही दिव्य दृष्टि के विकास के लिए पर्याप्त कारण होगा!'

44. 'अब मान लीजिए, हे राजा, कि एक सिद्ध किसी मंत्र का उच्चारण करे और कहे: "अब इस भयंकर, प्रचंड अग्नि के गोले को पीछे हटने दो!" और जैसे ही मंत्र दोहराया जाए, वह पीछे हट जाए—क्या कोई ऐसा कारण बताया जा सकता है जिससे यह परिणाम उत्पन्न हो?'

'नहीं, महोदय। इसका कारण स्वयं आकर्षण ही होगा।'

'हे महाराज, हमारे मामले में भी कोई साधारण कारण नहीं होगा। सत्य की शक्ति ही अपने आप में पर्याप्त कारण होगी!'

45. 'अब मान लीजिए, हे राजा, कि उन सिद्धों में से कोई एक मंत्र का उच्चारण करे और फिर कहे: "यह घातक विष एक औषधि बन जाए!" और जैसे ही मंत्र दोहराया जाए, ऐसा ही हो जाए—क्या उस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए कोई पूर्व-निर्धारित कारण होगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। वह मंत्र स्वयं ही उस घातक विष को दूर भगा देगा।'

'ठीक इसी प्रकार, हे महान राजा, राजा सिवी के मामले में, किसी साधारण कारण के बिना, स्वयं सत्य ही उनकी आँखों के पुनरुत्पादन के लिए पर्याप्त कारण था।'

46. हे राजा, अब चार आर्य सत्यों की प्राप्ति का कोई अन्य कारण नहीं है। ये केवल सत्य कर्म के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। हे राजा, चीन देश में एक राजा है, जो जब विशाल सागर को वश में करना चाहता है, तो चार महीने के अंतराल पर सत्य कर्म करता है, और फिर अपने सिंहों द्वारा खींचे गए राज रथ पर सवार होकर विशाल सागर में एक मील की दूरी तक प्रवेश करता है। तब उसके रथ के आगे विशाल लहरें पीछे हट जाती हैं, और जब वह लौटता है तो वे फिर से उसी स्थान पर बहने लगती हैं। लेकिन क्या सभी देवताओं और मनुष्यों की संयुक्त साधारण शारीरिक शक्ति से सागर को इस प्रकार पीछे हटाया जा सकता है?

'महोदय, एक छोटे से टैंक का पानी भी इस तरह पीछे नहीं हट सकता, विशाल महासागर के पानी की तो बात ही क्या!'

'इससे सत्य की शक्ति का ज्ञान होता है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ यह न पहुँचे।'

47. हे राजा, जब धर्मात्मा राजा अशोक एक दिन पाटलिपुत्त नगर में नगरवासियों, देशवासियों, अपने अधिकारियों, सेवकों और राज्य मंत्रियों के बीच खड़े थे, तब उन्होंने पहाड़ियों से बहकर आई बाढ़ से भरी हुई, लबालब भरी और उफान मारती गंगा नदी को देखा—वह विशाल नदी जिसकी लंबाई पाँच सौ मील और चौड़ाई एक मील थी—तो उन्होंने अपने अधिकारियों से कहा: "हे मेरे मित्रों, क्या कोई ऐसा है जो इस महान गंगा को विपरीत दिशा में और ऊपर की ओर बहा सके?"

"नहीं, महाराज, यह असंभव है," उन्होंने कहा।

नदी किनारे भीड़ में बिंदूमती नाम की एक वेश्या थी, और उसने लोगों को राजा द्वारा पूछे गए प्रश्न को दोहराते हुए सुना। तब उसने मन ही मन कहा: "मैं यहाँ हूँ, एक

हे वेश्या, पातलिपुत्त के इस नगर में, मैं अपने शरीर को बेचकर जीविका कमाती हूँ, मैं सबसे नीच पेशा अपनाती हूँ। राजा को मुझ जैसी स्त्री द्वारा किए गए सत्य के कार्य की शक्ति देखनी चाहिए। और उसने सत्य का कार्य किया। और उसी क्षण शक्तिशाली गंगा नदी, गरजती और उग्र होती हुई, सभी लोगों के सामने वापस ऊपर की ओर बहने लगी!

'तब जब राजा ने शक्तिशाली गंगा के भंवरों की लहरों की गर्जना और शोर सुना, तो वह चकित और विस्मय से भर गया और उसने अपने अधिकारियों से कहा: "यह कैसे संभव है कि महान गंगा उल्टी दिशा में बह रही है?"'

और उन्होंने उसे सब कुछ बताया। तब भावुक होकर राजा स्वयं शीघ्रता से गया और वेश्या से पूछा: "क्या यह सच है कि तुम्हारे सत्य कर्म के कारण ही गंगा उल्टी दिशा में बहने लगी है?"

"जी हां, महाराज," उसने कहा।

और राजा ने पूछा, "इस मामले में तुम्हें इतनी शक्ति कहाँ से मिली? या कौन है जो तुम्हारी बातों को दिल से मानता है (और उन पर अमल करता है)? किस अधिकार से तुम, जो तुच्छ हो, इस विशाल नदी को उल्टी दिशा में बहाने में सक्षम हो गए हो?"

और उसने उत्तर दिया: "यह सत्य की शक्ति से ही संभव है, महान राजा।"

लेकिन राजा ने कहा: "तुम्हारे अंदर वह शक्ति कैसे हो सकती है—तुम तो दुष्ट और व्यभिचारी स्त्री हो?"

क्या वे लोग सद्‌गुणहीन, संयमहीन, पापी हैं जिन्होंने सभी सीमाएँ पार कर ली हैं, और जो अपराधों से भरे हुए हैं, और मूर्खों की लूट पर जीते हैं?

"हे राजा, आपकी बात सत्य है। मैं ठीक वैसा ही प्राणी हूँ। लेकिन मुझ जैसे प्राणी में भी सत्य के कार्य की शक्ति इतनी महान है कि मैं इसके द्वारा देवताओं और मनुष्यों के पूरे संसार को उलट-पुलट कर सकता हूँ।"

तब राजा ने कहा, "यह सत्य का कार्य क्या है? अब मुझे इसके बारे में बताओ।"

"हे महाराज, जो कोई भी मुझे सोना देता है—चाहे वह कुलीन हो, ब्राह्मण हो, व्यापारी हो या सेवक—मैं उन सभी को एक समान मानता हूँ। जब मैं देखता हूँ कि वह कुलीन है तो मैं उसके प्रति कोई भेदभाव नहीं करता। यदि मैं जानता हूँ कि वह दास है तो मैं उसका तिरस्कार नहीं करता। चापलूसी और द्वेष से मुक्त होकर मैं उसकी सेवा करता हूँ जिसने मुझे खरीदा है। महाराज, यही सत्य के उस कार्य का आधार है जिसके बल पर मैंने गंगा को वापस मोड़ दिया।"

48. 'हे राजा, यही कारण है कि सत्य के प्रति दृढ़ रहने वालों को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इसलिए राजा शिवी ने अपनी आँखें उस व्यक्ति को दे दीं जिसने उनसे आँखें माँगी थीं, और उन्हें स्वर्ग से आँखें प्राप्त हुईं, और यह उनके सत्य कर्म के फलस्वरूप हुआ। परन्तु सूत्र में जो कहा गया है कि जब देहधारी आँख नष्ट हो जाती है, और उसका कारण, उसका आधार, हटा दिया जाता है, तब कोई दिव्य आँख उत्पन्न नहीं हो सकती, वह केवल उस आँख, उस अंतर्दृष्टि के बारे में कहा गया है, जो चिंतन से उत्पन्न होती है। और हे राजा, आपको इसी प्रकार इसे ग्रहण करना चाहिए।'

'बहुत खूब कहा, नागसेना! आपने सराहनीय काम किया है।'

आपने मेरी दुविधा का समाधान कर दिया है; आपने उस बिंदु को सही ढंग से समझाया है जिसमें मैंने आपको गलत साबित करने की कोशिश की थी; आपने अपने प्रतिद्वंद्वी को पूरी तरह से परास्त कर दिया है। बात यही है, और मैं इसे इसी रूप में स्वीकार करता हूँ।

[यहाँ राजा सिवी के सत्य के कार्य से संबंधित दुविधा समाप्त होती है।]

गर्भाधान संबंधी दुविधा।

49. यह दुविधा विस्तृत है, जिसके बारे में पाली भाषा में बेहतर जानकारी मिल सकती है।

[विश्वास की अवधि।]

55. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "परन्तु अब, आनंद, यह उत्तम विधि केवल पाँच सौ वर्षों तक ही स्थिर रहेगी।" परन्तु दूसरी ओर, भगवान बुद्ध ने ठीक पहले घोषणा की।

उनकी मृत्यु सुभद्दा संन्यासी के इस प्रश्न के उत्तर में हुई: "पर यदि इस प्रणाली में बंधुओं को परिपूर्ण जीवन प्राप्त हो, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं रहेगा।" यह अंतिम वाक्य पूर्ण और सर्वव्यापी है; इसे नकारा नहीं जा सकता। यदि पहला कथन सत्य है, तो दूसरा भ्रामक है, और यदि दूसरा सही है, तो पहला असत्य है। यह भी एक दोधारी प्रश्न है, जो जंगल से भी अधिक उलझा हुआ, बलवान पुरुष से भी अधिक शक्तिशाली और गाँठ से भी अधिक पेचीदा है। अब यह प्रश्न आपसे पूछा जाता है। अपने ज्ञान की शक्ति का विस्तार दिखाइए, जैसे समुद्र के बीच में विशालकाय जीव।

56. 'हे राजा, भगवान बुद्ध ने वे दोनों कथन कहे हैं जिनका आपने उल्लेख किया है। परन्तु वे भाव और शाब्दिक अर्थ दोनों में एक दूसरे से भिन्न हैं। एक कथन धर्म की अवधि की सीमा से संबंधित है, दूसरा धार्मिक जीवन के अभ्यास से - ये दो बातें एक दूसरे से उतनी ही अलग हैं जितनी आकाश पृथ्वी की सतह से, स्वर्ग नरक से, अच्छाई बुराई से और सुख दुख से। परन्तु ऐसा होने पर भी, कहीं आपका प्रश्न व्यर्थ न हो जाए, इसलिए मैं इस विषय को इसके मूल संदर्भ में और अधिक स्पष्ट करूँगा।'

57. जब भगवान बुद्ध ने कहा कि अच्छा विधान केवल पाँच सौ वर्षों तक ही कायम रहेगा, तो उन्होंने इसके विनाश का समय घोषित करते हुए, इसके शेष अस्तित्व को सीमित कर दिया। क्योंकि उन्होंने कहा: "अच्छा विधान, आनंद, एक हजार वर्षों तक कायम रहेगा यदि इसमें किसी स्त्री को प्रवेश न दिया गया होता।"

[पैराग्राफ जारी है] व्यवस्था। लेकिन अब, आनंद, यह केवल पाँच सौ वर्षों तक ही चलेगी। लेकिन ऐसा कहकर, हे राजा, क्या भगवान ने अच्छे विधान के लुप्त होने की भविष्यवाणी की, या उसके स्पष्ट ज्ञान पर दोष मढ़ा?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'बिल्कुल सही। यह किए गए नुकसान की घोषणा थी, शेष बचे हुए की सीमा का ऐलान था। जैसे कोई व्यक्ति जिसकी आमदनी कम हो गई हो, सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करता है कि उसके पास क्या बचा है: "मैंने इतनी संपत्ति खो दी है; इतना बचा है"— उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने देवताओं और मनुष्यों को यह बताया कि क्या बचा है, जब उन्होंने यह घोषणा की कि क्या खो गया है: "आनंद, अब यह उत्तम धर्म पाँच सौ वर्षों तक कायम रहेगा।" ऐसा कहकर वे धर्म की सीमा निर्धारित कर रहे थे। लेकिन जब सुभद्दा से बात करते हुए, और सच्चे समनों की पहचान बताते हुए, उन्होंने कहा: "लेकिन यदि इस व्यवस्था में भाई पूर्ण जीवन व्यतीत करें, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा"—ऐसा कहकर वे यह बता रहे थे कि धर्म किसमें निहित है। आपने किसी वस्तु की सीमा को उसके वास्तविक स्वरूप के कथन से भ्रमित कर दिया है। लेकिन यदि आप चाहें तो मैं आपको इन दोनों के बीच का वास्तविक संबंध बताऊँगा। ध्यान से सुनिए, और मेरी बातों पर विश्वासपूर्वक विचार कीजिए।'

58. 'हे राजा, मान लीजिए कि एक जलाशय ताजे ठंडे पानी से पूरी तरह भरा हुआ है, जो किनारे तक छलक रहा है, लेकिन उसका आकार सीमित है और उसके चारों ओर एक तटबंध बना हुआ है। अब यदि उस जलाशय में पानी कम न हुआ हो, और एक विशाल बादल लगातार बारिश करे, और उसमें पहले से मौजूद पानी पर अतिरिक्त वर्षा करे, तो क्या जलाशय में पानी की मात्रा कम हो जाएगी या वह समाप्त हो जाएगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं, हे राजा?'

'लगातार हो रही भारी बारिश के कारण।'

"हे राजा, ठीक इसी प्रकार, विजेता बुद्ध की शिक्षाओं के उत्तम नियम का गौरवशाली भंडार कर्तव्य, सद्गुण, नैतिकता और जीवन की पवित्रता के अभ्यास के निर्मल, शीतल जल से भरा रहता है और सर्वोच्च स्वर्ग तक भी निरंतर बहता रहता है। और यदि बुद्ध के संतान निरंतर इसमें जल बरसाते रहें, और इसके अतिरिक्त, कर्तव्य, सद्गुण, नैतिकता और जीवन की पवित्रता के अभ्यास की वर्षा होती रहे, तो यह भंडार दीर्घकाल तक बना रहेगा और संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा। गुरु के इन शब्दों का यही अर्थ था: "परन्तु हे सुभद्दा, यदि इस पद्धति में बंधुओं का जीवन पूर्ण होता रहे, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा।"

59. 'अब फिर से मान लो, हे राजा, कि लोग लगातार एक भयंकर भट्टी में सूखा गोबर, सूखी लकड़ियाँ और सूखे पत्ते डालते रहें—क्या वह आग बुझ जाएगी?'

'जी नहीं, बिल्कुल नहीं। बल्कि यह और भी अधिक प्रचंड होकर जलेगा और और भी अधिक चमकेगा।'

'हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, कर्तव्य, सद्गुण, नैतिकता और पवित्र जीवन के अभ्यास से विजेता बुद्ध की महिमामयी शिक्षा दस हजार संसारों पर प्रकाशमान होती है। और हे महाराज, इसके अतिरिक्त, यदि बुद्ध के संतान पाँच प्रकार के आध्यात्मिक परिश्रम में स्वयं को समर्पित करते हुए उत्साहपूर्वक प्रयास करते रहें—यदि वे त्रिविध अनुशासन की लालसा रखते हुए उसमें स्वयं को प्रशिक्षित करें—'

यदि वे निरंतर सही आचरण का पूर्णतया पालन करें, सभी कुकर्मों से पूर्णतया दूर रहें और धार्मिक जीवन का अभ्यास करें, तो विजेता का यह गौरवशाली सिद्धांत वर्षों के बीतने के साथ-साथ और अधिक दृढ़ होता जाएगा, और संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा। हे राजा, इसी संदर्भ में गुरु ने कहा था: "परन्तु हे सुभद्दा, यदि इस प्रणाली में बंधु परिपूर्ण जीवन जीते रहें, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा।"

60. 'हे राजा, मान लीजिए कि लोग पहले से ही चमकदार, अच्छी तरह से पॉलिश किए गए, चिकने और चमकदार बेदाग दर्पण को लगातार महीन मुलायम लाल पाउडर से पॉलिश करते रहें, तो क्या उसकी सतह पर गंदगी, धूल और कीचड़ जमा हो जाएगी?'

'जी नहीं, महोदय। बल्कि यह निश्चित रूप से पहले से भी अधिक बेदाग हो जाएगा।'

हे महाराज, ठीक इसी प्रकार, विजेता का गौरवशाली सिद्धांत स्वभाव से निष्कलंक और बुराई की धूल-मिट्टी से पूर्णतः मुक्त है। और यदि बुद्ध के संतानें इसे बुराई के निवारण, कर्तव्य, सद्‌गुण, नैतिकता और जीवन की पवित्रता के अभ्यास से उत्पन्न पुण्य द्वारा शुद्ध करें, तो यह गौरवशाली सिद्धांत दीर्घायु रहेगा और संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा। इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने कहा था: "परन्तु हे सुभद्दा, यदि इस सिद्धांत में बंधुओं का जीवन सदाचारपूर्ण बना रहे, तो संसार अरहतों से वंचित नहीं होगा।" क्योंकि हे महाराज, गुरु की शिक्षा का मूल आचरण में है, आचरण ही उसका सार है, और यह तब तक स्थिर रहती है जब तक आचरण में ढिलाई नहीं आती।

61. 'आदरणीय नागसेना, जब आप अच्छे धर्म के लुप्त होने की बात करते हैं, तो आपका इससे क्या तात्पर्य है?'

हे राजा, किसी धर्म-प्रणाली के लुप्त होने के तीन तरीके हैं। वे तीन क्या हैं? उस धर्म-प्रणाली की बौद्धिक समझ में कमी आना, उसके अनुरूप आचरण में कमी आना और उसके बाहरी स्वरूप में कमी आना। जब उसकी समझ समाप्त हो जाती है, तो उस धर्म-प्रणाली में सही आचरण करने वाले व्यक्ति को भी उसकी स्पष्ट समझ नहीं रहती। आचरण में कमी आने से अनुशासन के नियमों का प्रचार-प्रसार बंद हो जाता है, केवल धर्म का बाहरी स्वरूप ही शेष रह जाता है। जब बाहरी स्वरूप समाप्त हो जाता है, तो परंपरा का क्रम टूट जाता है। ये किसी धर्म-प्रणाली के लुप्त होने के तीन रूप हैं।

'हे पूज्य नागसेन, आपने इस गहन दुविधा को भली-भांति समझाया है और इसे स्पष्ट कर दिया है। आपने उलझन सुलझा दी है; आपने विरोधी के तर्कों को नष्ट कर दिया है, उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया है, उन्हें गलत साबित कर दिया है—हे श्रेष्ठ गुरुओं!'

[यहाँ आस्था की अवधि को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] [बुद्ध का निष्पाप होना।]

62. 'आदरणीय नागसेन, क्या भगवान बुद्ध ने बुद्ध बनने पर अपने भीतर की सारी बुराई को जलाकर राख कर दिया था, या उनमें अभी भी कुछ बुराई शेष थी?'

'उसने सारी बुराई को जलाकर राख कर दिया था। अब कुछ भी शेष नहीं बचा था।'

'लेकिन कैसे, महाराज? क्या तथागत के शरीर में चोट नहीं लगी?'

जी हाँ, हे राजा। रागगृह में एक चट्टान का टुकड़ा उनके पैर में चुभ गया था, और एक बार उन्हें पेचिश हो गई थी, और एक बार जब उनके शरीर के रस असंतुलित हो गए थे तो उन्हें दस्त की दवा दी गई थी, और एक बार जब वे वात रोग से पीड़ित थे तो उनकी सेवा करने वाले बड़े (अर्थात आनंद) ने उन्हें गर्म पानी दिया था।

'तो, महोदय, यदि तथागत ने बुद्ध बनने पर अपने भीतर के सभी दोषों का नाश कर लिया था, तो उनके पैर में कांटा चुभने, पेचिश होने आदि का यह कथन असत्य होना चाहिए। परन्तु यदि ये सत्य हैं, तो वे दोषमुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि कर्म के बिना कोई पीड़ा नहीं होती। सभी पीड़ाओं का मूल कर्म में है, कर्म के कारण ही दुख उत्पन्न होता है। यह दोधारी दुविधा आपके समक्ष है, और आपको इसका हल निकालना है।'

63. 'नहीं, हे राजा। सभी दुख कर्म से उत्पन्न नहीं होते। दुख उत्पन्न होने के आठ कारण हैं, जिनसे अनेक प्राणी पीड़ा भोगते हैं। और वे आठ कारण क्या हैं? वायु, पित्त और कफ की अधिकता, इन दोषों का मिश्रण, तापमान में उतार-चढ़ाव, और इनसे बचना।

विषमताएं, बाह्य कारक और कर्म। इनमें से प्रत्येक से कुछ न कुछ कष्ट उत्पन्न होते हैं, और ये आठ कारण हैं जिनसे अनेक प्राणी पीड़ा भोगते हैं। और जो कोई यह मानता है कि कर्म ही प्राणियों को हानि पहुँचाता है, और इसके अतिरिक्त पीड़ा का कोई अन्य कारण नहीं है, उसका यह कथन असत्य है।

लेकिन, महोदय, अन्य सात प्रकार के सभी दर्दों का मूल कारण भी कर्म ही है, क्योंकि वे सभी कर्म से ही उत्पन्न होते हैं।

हे महाराज, यदि समस्त रोग कर्म से उत्पन्न होते, तो उन्हें एक-दूसरे से अलग करने वाले कोई विशिष्ट लक्षण न होते। जब वायु में गड़बड़ी होती है, तो यह दस में से किसी एक कारण से होती है—शीतलन, ऊष्मा, भूख, प्यास, अधिक भोजन, लंबे समय तक खड़े रहना, अधिक परिश्रम, तेज चलना, चिकित्सा उपचार, या कर्म के फल स्वरूप। इन दस में से नौ कारण न तो भूतपूर्व जन्म में और न ही भविष्य के जन्म में कार्य करते हैं, बल्कि वर्तमान जन्म में ही कार्य करते हैं। इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि समस्त पीड़ा कर्म के कारण होती है। हे महाराज, जब पित्त में गड़बड़ी होती है, तो यह तीन में से किसी एक कारण से होती है—शीतलन, ऊष्मा, या अनुचित भोजन से। जब कफ में गड़बड़ी होती है, तो यह शीत, ऊष्मा, या भोजन और पेय के कारण होती है। जब इन तीनों दोषों में से कोई भी असंतुलित या मिश्रित होता है, तो यह अपनी विशेष, विशिष्ट पीड़ा उत्पन्न करता है। फिर तापमान में बदलाव, विषमताओं से बचने और बाहरी कारकों से उत्पन्न होने वाले विशेष कष्ट होते हैं। और फिर कर्म का फल देने वाला कार्य और उस कार्य से उत्पन्न होने वाला कष्ट होता है। तो क्या?

कर्म के फल के रूप में उत्पन्न होने वाला कष्ट अन्य कारणों से उत्पन्न होने वाले कष्टों की तुलना में बहुत कम होता है। और अज्ञानी लोग यह कहकर अतिशयोक्ति करते हैं कि प्रत्येक कष्ट कर्म के फल के रूप में उत्पन्न होता है। बुद्ध की अंतर्दृष्टि के बिना कोई भी कर्म की क्रिया की सीमा निर्धारित नहीं कर सकता।

64. अब जब भगवान बुद्ध का पैर चट्टान के टुकड़े से छिल गया, तो उसके बाद जो पीड़ा हुई, वह मेरे द्वारा बताए गए आठ कारणों में से किसी अन्य कारण से नहीं, बल्कि केवल बाहरी कारण से हुई थी। हे राजा, देवदत्त ने लाखों जन्मों तक तथागत के प्रति घृणा रखी थी। अपनी घृणा के कारण ही उसने एक विशाल चट्टान को उठाया और उसे अपने सिर पर गिराने की आशा से धकेल दिया। परन्तु दो अन्य चट्टानें आपस में टकराईं और तथागत तक पहुँचने से पहले ही उसे रोक दिया; और उनके प्रभाव से चट्टान का एक टुकड़ा टूटकर भगवान बुद्ध के पैर पर गिरा और उससे लहूलुहान हो गया। अब यह पीड़ा भगवान बुद्ध को या तो उनके अपने कर्मों के फलस्वरूप या किसी अन्य के कर्मों के कारण हुई होगी। क्योंकि इन दो के अलावा किसी अन्य प्रकार की पीड़ा नहीं हो सकती। यह वैसा ही है जैसे कोई बीज अंकुरित नहीं होता—यह या तो मिट्टी की खराबी के कारण होता है, या बीज में किसी दोष के कारण। या यह वैसा ही है जैसे भोजन पचता नहीं—यह या तो पेट में किसी दोष के कारण होता है, या भोजन की गुणवत्ता में कमी के कारण।

65. यद्यपि भगवान बुद्ध ने कभी अपने कर्मों के फलस्वरूप पीड़ा सहन नहीं की, न ही उन्होंने किसी प्रकार की विषमता से मुक्ति पाई, फिर भी

उसे अन्य छह कारणों से भी पीड़ा सहनी पड़ी। और जिस पीड़ा को वह सहन कर सकता था, उससे उसका जीवन छीनना संभव नहीं था। हे राजा, हमारे इस शरीर में, जो चार तत्वों से बना है, सुखद और अप्रिय दोनों प्रकार की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। हे राजा, मान लीजिए कि मिट्टी का एक ढेला हवा में उछाला जाए और फिर जमीन पर गिर जाए। क्या यह उसके द्वारा पहले किए गए किसी कार्य का परिणाम होगा?

'नहीं, महोदय। इस विशाल पृथ्वी में ऐसी कोई कारण शक्ति नहीं है जिससे यह किसी अच्छे या बुरे कर्म के फल का अनुभव कर सके। कर्म से स्वतंत्र किसी वर्तमान कारण के कारण ही मिट्टी का ढेला पुनः पृथ्वी पर गिरेगा।'

'हे राजा, तथागत को विशाल पृथ्वी के समान समझा जाना चाहिए। जिस प्रकार मिट्टी का ढेला उस पर बिना किसी कर्म के गिरता है, उसी प्रकार तथागत के बिना ही चट्टान का वह टुकड़ा उसके पैर पर गिर पड़ा।'

66. 'हे राजा, मनुष्य फिर से धरती को जोतते और जोतते हैं। लेकिन क्या यह पहले किए गए किसी कार्य का परिणाम है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

ठीक उसी प्रकार उस तिनके के गिरने के साथ हुआ। और उसे जो पेचिश हुई, वह भी किसी पूर्व कर्म का परिणाम नहीं थी, बल्कि तीनों दोषों के मिलन से उत्पन्न हुई थी। और उसे जो भी शारीरिक रोग हुआ, उसका कारण कर्म नहीं, बल्कि ऊपर बताए गए छह कारणों में से कोई एक था। क्योंकि हे राजा, भगवान बुद्ध ने, जो सभी देवताओं से श्रेष्ठ हैं, संयुत्त निकाय नामक गौरवशाली ग्रंथ में ऐसा कहा है।

मोलिया शिवक के नाम पर गद्य सूत्र: "हे शिवक, संसार में पित्त दोष से कुछ प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं। और आपको निश्चित रूप से यह जानना चाहिए कि वे क्या हैं, क्योंकि संसार में यह सर्वविदित है। परन्तु हे शिवक, वे समन और ब्राह्मण जो यह मत रखते हैं और यह

मत घोषित करते हैं कि मनुष्य को जो भी सुख, दुख या उदासीन अनुभूति होती है, वह सदा किसी पूर्व कर्म के कारण होती है—वे निश्चितता से परे जाते हैं, वे ज्ञान से परे जाते हैं, और इस बात में मैं कहता हूँ कि वे गलत हैं। और इसी प्रकार वे कष्ट भी जो कफ दोष से, या वायु दोष से, या तीनों के मिश्रण से, या तापमान में परिवर्तन से, या विषमता से बचने से, या बाह्य क्रिया से, या कर्म के फल स्वरूप उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक स्थिति में आपको निश्चित रूप से यह जानना चाहिए कि वे क्या हैं, क्योंकि यह सर्वविदित है। परन्तु वे समन या ब्राह्मण जो... यह मत या विचार कि मनुष्य को जो भी सुख, दुख या उदासीनता का अनुभव होता है, वह हमेशा किसी पूर्व कर्म के कारण होता है—वे निश्चितता से परे हैं, वे सामान्य ज्ञान से परे हैं। और इसी में मैं कहता हूँ कि वे गलत हैं। अतः, हे राजा, सभी दुख कर्म का परिणाम नहीं होते। और आपको यह तथ्य स्वीकार करना चाहिए कि जब भगवान बुद्ध बने, तो उन्होंने अपने भीतर से सभी बुराइयों को जलाकर नष्ट कर दिया था।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! ऐसा ही है; और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध के निष्पाप होने को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[ध्यान के लाभों पर।]

67. 'आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं कि तथागत को जो भी कार्य करना होता है, वह सब उन्होंने ज्ञान वृक्ष के चरणों में बैठकर ही पूरा कर लिया था। तब उन्हें कुछ भी करना बाकी नहीं था, न ही जो उन्होंने पहले ही कर लिया था उसमें कुछ जोड़ना था। लेकिन फिर यह भी कहा जाता है कि इसके तुरंत बाद वे तीन महीने तक समाधि-दर्शन में लीन रहे। यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा असत्य होना चाहिए। और यदि दूसरा सही है, तो पहला असत्य होना चाहिए। जिसने अपना कार्य पूरा कर लिया है, उसे किसी चिंतन की आवश्यकता नहीं है। चिंतन तो उस व्यक्ति को करना चाहिए जिसका कार्य अभी शेष है। दवा की आवश्यकता बीमार व्यक्ति को होती है, स्वस्थ व्यक्ति को नहीं; भोजन की आवश्यकता भूखे व्यक्ति को होती है, भोजन की आवश्यकता उस व्यक्ति को नहीं जिसकी भूख मिट चुकी हो। यह भी एक दोधारी दुविधा है, और आपको इसे हल करना होगा!'

68. 'हे राजा, दोनों कथन सत्य हैं।'

इसमें अनेक गुण हैं। सभी तथागतों ने ध्यान के माध्यम से बुद्धत्व प्राप्त किया और इसके अच्छे गुणों को याद करते हुए इसका अभ्यास किया। उन्होंने ऐसा उसी प्रकार किया जैसे कोई व्यक्ति जिसे राजा से उच्च पद प्राप्त हुआ हो, उस पद के लाभों और उससे प्राप्त समृद्धि को याद करते हुए निरंतर उस राजा की सेवा में रहता है—ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति जो किसी गंभीर बीमारी से पीड़ित और पीड़ाग्रस्त हो, दवा के प्रयोग से स्वस्थ हो जाने पर, उसी दवा का बार-बार प्रयोग करता है, उसके गुणों को याद करते हुए।

69. हे राजा, तथागतों ने ध्यान के इन अट्ठाईस गुणों का ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं गुणों के लिए वे ध्यान में समर्पित हो गए। वे गुण कौन-कौन से हैं? ध्यान करने वाले की रक्षा करता है, उसे दीर्घायु प्रदान करता है, उसे शक्ति से परिपूर्ण करता है, उसके दोषों को दूर करता है, उसकी बदनामी को दूर करके उसे यश प्रदान करता है, उसके असंतोष को नष्ट करके उसे संतोष से भर देता है, उसे सभी भय से मुक्त करके उसे आत्मविश्वास से भर देता है, उसके आलस्य को दूर करके उसे उत्साह से भर देता है, कामवासना, द्वेष और सुस्ती को दूर करता है, अहंकार का अंत करता है, सभी संदेहों को दूर करता है, उसके हृदय को शांत करता है, उसके मन को कोमल बनाता है, उसे प्रसन्न करता है, उसे गंभीर बनाता है, उसे बहुत लाभ दिलाता है, उसे आदर के योग्य बनाता है, उसे आनंद से भर देता है, उसे सभी मिश्रित वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति दिखाता है, पुनर्जन्म का अंत करता है, और उसे त्याग के सभी लाभ प्राप्त कराता है। हे राजा, ये तथागतों द्वारा ध्यान में लीन किए जाने वाले अट्ठाईस गुण हैं। परन्तु ऐसा इसलिए है क्योंकि

हे राजा, तथागत सिद्धि के आनंद, निर्वाण की शांत अवस्था के सुख की इतनी लालसा रखते हैं कि वे अपने मन को अपने लक्ष्य पर स्थिर रखते हुए ध्यान में लीन हो जाते हैं।

70. हे महाराज, तथागत ध्यान में चार कारणों से संलग्न होते हैं। वे चार कारण क्या हैं? हे महाराज, वे विश्राम करना चाहते हैं; ध्यान के अनेक लाभ हैं, जिनमें कोई दोष नहीं है; यह सभी श्रेष्ठ कार्यों का मार्ग है; और सभी बुद्धों ने इसकी प्रशंसा, स्तुति और महिमा की है। इन्हीं कारणों से तथागत ध्यान में संलग्न होते हैं। अतः, हे महाराज, वे ध्यान में इसलिए संलग्न नहीं होते कि उन्हें कुछ करना शेष है या जो उन्होंने पहले ही प्राप्त कर लिया है उसमें कुछ जोड़ना है, बल्कि इसलिए कि उन्होंने ध्यान के विविध लाभों को जान लिया है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[ध्यान को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [तीन महीने की सीमा।]

71. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "तथागत आनंद ने संतत्व के चारों मार्गों का गहन चिंतन, अभ्यास, विकास, संचय और सर्वथा सिद्धि प्राप्त की है, और उनमें इतनी महारत हासिल की है कि वे उनका उपयोग मानसिक उन्नति के साधन के रूप में और ज्ञानवर्धन के आधार के रूप में कर सकते हैं—और इसलिए, आनंद,

यदि वह चाहे तो एक कल्प तक, या कल्प के उस भाग तक जीवित रह सकता है जो अभी समाप्त होना बाकी है।" और फिर उन्होंने कहा: "इस समय से तीन महीने बाद तथागत की मृत्यु हो जाएगी।" यदि इनमें से पहला कथन सत्य होता, तो तीन महीने की सीमा असत्य होती। यदि दूसरा सत्य होता, तो पहला असत्य होता। तथागत बिना किसी कारण के अभिमान नहीं करते, क्योंकि भगवान बुद्ध भ्रामक शब्द नहीं बोलते, बल्कि सत्य बोलते हैं और ईमानदारी से बोलते हैं। यह भी एक दोधारी दुविधा है, गहन, सूक्ष्म, व्याख्या करने में कठिन। अब यह आपके समक्ष है। इस कुकर्म के जाल को चीर-फाड़ कर एक तरफ रख दें, शत्रु के तर्कों को चकनाचूर कर दें!

72. 'हे महाराज, ये दोनों कथन भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए थे। परन्तु उस संदर्भ में कल्प का अर्थ मनुष्य का जीवनकाल है। और हे महाराज, जब उन्होंने ये कहा, तो वे अपनी शक्ति का गुणगान नहीं कर रहे थे, परन्तु संतत्व की शक्ति का गुणगान कर रहे थे। यह ऐसा था मानो किसी राजा के पास एक अत्यंत प्रचंड अश्व हो, जो हवा की तरह दौड़ सकता हो। और उसकी गति की शक्ति का गुणगान करने के लिए राजा अपने सभी दरबारियों, नगरवासियों, सैनिकों, योद्धाओं, ब्राह्मणों, कुलीनों और अधिकारियों की उपस्थिति में कहें: "यदि वह चाहे तो मेरा यह श्रेष्ठ अश्व एक पल में पृथ्वी को पार करके सागर की सीमा तक जा सकता है और वापस आ सकता है!"

[पैराग्राफ जारी है] यद्यपि उन्होंने दरबार में घोड़े की गति का परीक्षण करने का प्रयास नहीं किया, फिर भी उसमें वह गति थी, और वह वास्तव में एक पल में पृथ्वी को पार करके समुद्र की सीमा तक जा सकता था। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, भगवान बुद्ध ने संतत्व की शक्ति की प्रशंसा करते हुए, देवताओं और मनुष्यों के बीच, और त्रिगुण और छहगुण अंतर्दृष्टि वाले पुरुषों—शुद्ध और निर्मल अरहतों—के बीच बैठे हुए कहा: "तथागत, आनंद ने संतत्व की चारों शक्तियों का चिंतन, अभ्यास, विकास, संचय और पराक्रमण किया है, और उन पर इस प्रकार महारत हासिल की है कि वे उनका उपयोग मानसिक उन्नति के साधन के रूप में, ज्ञानवर्धन के आधार के रूप में कर सकते हैं। इसलिए, हे आनंद, यदि वे चाहें, तो एक कल्प, या कल्प के उस भाग तक जीवित रह सकते हैं जो अभी समाप्त होना बाकी है।" और हे राजा, तथागत में वह शक्ति थी कि वे उस समय तक जीवित रह सकते थे, फिर भी उन्होंने उस सभा के बीच उस शक्ति का प्रदर्शन नहीं किया। हे राजा, भगवान सभी भावी जीवन की परिस्थितियों के संबंध में इच्छा से मुक्त हैं और उन्होंने उन सभी की निंदा की है। क्योंकि हे राजा, भगवान ने कहा है: "हे भिक्षुओं, जैसे मल की थोड़ी सी मात्रा भी दुर्गंधयुक्त होती है, वैसे ही मुझे भावी जीवन की सबसे छोटी अवस्था में भी कोई सुंदरता नहीं दिखती, यहाँ तक कि क्षणभंगुर अवस्था में भी नहीं।" अब हे राजा, जो भावी जीवन की सभी प्रकार और परिस्थितियों को इस प्रकार देखते हैं, वे क्या कहेंगे?

क्या गोबर ने भी, केवल अपनी इद्धि शक्ति के कारण, भविष्य के जीवन के लिए तीव्र इच्छा धारण की है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर उसने इद्धि की शक्ति को महिमामंडित करने के लिए ही ऐसा घमंड भरा कथन किया होगा।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! ऐसा ही है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[तीन महीने की अवधि को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

पहला अध्याय यहीं समाप्त होता है।
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान - मेंडका पन्हा अध्याय 2

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-10-||----->>>> अगला

1. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भिक्षुओं, मैं अंतर्दृष्टि से ही धर्म का उपदेश देता हूँ, बिना अंतर्दृष्टि के नहीं।" दूसरी ओर, विनय के नियमों के विषय में उन्होंने कहा: "मेरे जाने के बाद, हे आनंद, यदि संघ चाहे तो सभी छोटे-छोटे नियमों को निरस्त कर दे।" तो क्या ये छोटे-छोटे नियम गलत थे, या अज्ञानता में और बिना उचित कारण के स्थापित किए गए थे, कि भगवान बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बाद इन्हें निरस्त करने की अनुमति दी? यदि पहला कथन सत्य होता, तो दूसरा असत्य होता। यदि दूसरा कथन वास्तव में कहा गया था, तो पहला असत्य था। यह भी एक दोधारी समस्या है, सूक्ष्म, पेचीदा, गहन, गंभीर और व्याख्या करने में कठिन। अब यह आपके समक्ष प्रस्तुत है, और आपको इसका हल निकालना है।

2. 'हे राजा, दोनों ही मामलों में भगवान ने वही कहा है जो आपने कहा है। लेकिन दूसरे मामले में उन्होंने भिक्षुओं की परीक्षा लेने के लिए ऐसा कहा था, यह जानने के लिए कि यदि उन्हें अनुमति दी जाए, तो क्या वे उनकी मृत्यु के बाद छोटे-मोटे नियमों को रद्द कर देंगे या उनका पालन करते रहेंगे। ऐसा लगता है जैसे...

राजाओं के राजा ने अपने पुत्रों से कहा: "मेरे बच्चों, यह महान देश चारों ओर से समुद्र तक फैला हुआ है। हमारे पास जो सेना है, उससे इसे संभाले रखना मुश्किल है। इसलिए मेरे जाने के बाद, मेरे बच्चों, बेहतर होगा कि तुम सीमावर्ती क्षेत्रों को छोड़ दो।" अब, हे राजा, क्या राजकुमार अपने पिता की मृत्यु पर उन बाहरी क्षेत्रों, उन प्रांतों को छोड़ देंगे जो पहले से ही उनके अधिकार में हैं?

'जी नहीं, बिल्कुल नहीं। राजा लालची होते हैं। सत्ता की लालसा में राजकुमार अपने कब्जे वाले क्षेत्र से दोगुने या तिगुने बड़े क्षेत्र पर कब्जा कर सकते हैं, लेकिन वे अपने कब्जे वाले क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ेंगे।'

'हे राजा, तथागत ने भिक्षुओं की परीक्षा लेने के लिए कहा था: "मेरे जाने के बाद, हे आनंद, यदि संघ चाहे तो सभी छोटे-मोटे नियमों को समाप्त कर सकता है।" परन्तु हे राजा, बुद्ध के पुत्र धर्म के प्रति आसक्ति और दुःख से मुक्ति की लालसा में ढाई सौ नियमों का पालन तो कर सकते हैं, परन्तु सामान्यतः निर्धारित किसी भी नियम का त्याग नहीं करते।'

3. 'हे पूज्य नागसेन, जब भगवान बुद्ध ने "छोटे और गौण उपदेशों" का उल्लेख किया, तो यह प्रजा भ्रमित हो सकती है, संदेह में पड़ सकती है, विमर्श का विषय पा सकती है और इस दुविधा में पड़ सकती है कि कौन से उपदेश छोटे हैं और कौन से गौण।'

"हे राजा, आचरण में छोटी-छोटी गलतियाँ छोटी आज्ञाएँ हैं, और वाणी में छोटी-छोटी गलतियाँ गौण आज्ञाएँ हैं; अतः ये दोनों मिलकर 'छोटी और गौण आज्ञाएँ' बनाती हैं।"

हे राजा, प्राचीन काल के प्रमुख बुजुर्ग भी इस विषय पर संशय में थे, और शास्त्रों के पाठ को निर्धारित करने के लिए आयोजित परिषद में वे इस मुद्दे पर एकमत नहीं थे। और परमेश्वर ने इस समस्या के उत्पन्न होने की भविष्यवाणी कर दी थी।

'फिर नागसेन, विजेताओं का यह अंधकारमय कथन, जो इतने लंबे समय से छिपा हुआ था, आज दुनिया के सामने उजागर हो गया है और सभी के लिए स्पष्ट हो गया है।'

[नियमों को निरस्त करने से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।] [गूढ़ शिक्षा।]

4. हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध ने कहा: "सत्य के विषय में, आनंद, तथागत गुरुओं में ऐसा कोई स्वभाव नहीं है कि वे किसी बात को छुपा कर रखें।" परन्तु दूसरी ओर उन्होंने मालंक्य स्त्री के पुत्र के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। नागसेन, यह समस्या दो छोरों में से एक पर टिकी होगी, क्योंकि उन्होंने या तो अज्ञानता के कारण, या कुछ छुपाने की इच्छा से उत्तर देने से परहेज किया होगा। यदि पहला कथन सत्य है, तो यह अज्ञानता के कारण ही हुआ होगा।

यदि वह जानता था, और फिर भी उसने जवाब नहीं दिया, तो पहला कथन असत्य होना चाहिए। यह भी एक जटिल समस्या है। अब यह आपके सामने है, और आपको इसे हल करना है।'

5. हे राजा, भगवान बुद्ध ने आनंद से वह पहला कथन कहा, और उन्होंने मालुंक्य-पुत्त के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। परन्तु यह न तो अज्ञानता के कारण था, न ही कुछ छिपाने के लिए। किसी समस्या को समझाने के चार तरीके होते हैं। और वे चार कौन से हैं? एक वह

समस्या है जिसका सीधा और अंतिम उत्तर दिया जा सकता है। एक वह समस्या है जिसका उत्तर विस्तार से जाकर दिया जा सकता है। एक वह समस्या है जिसका उत्तर किसी और से पूछकर दिया जा सकता है। और एक वह समस्या है जिसे एक तरफ रखा जा सकता है।

और हे राजा, वह कौन सी समस्या है जिसका सीधा और अंतिम समाधान दिया जा सकता है? यह कुछ इस प्रकार है—"क्या रूप क्षणभंगुर है?" "क्या संवेदना क्षणभंगुर है?" "क्या विचार क्षणभंगुर है?" "क्या रचनाएँ क्षणभंगुर हैं?" "क्या चेतना क्षणभंगुर है?"

और वह कौन सी समस्या है जिसका उत्तर विस्तार से जाकर दिया जा सकता है? यह कुछ इस प्रकार है—"क्या रूप इस प्रकार क्षणभंगुर है?" इत्यादि।

और वह कौन सी समस्या है जिसका उत्तर किसी दूसरे से पूछकर दिया जा सकता है? यह कुछ इस प्रकार है—"तो फिर क्या? क्या आँख सभी चीजों को देख सकती है?"

और वह कौन सी समस्या है जिसे एक तरफ रखा जा सकता है? यह कुछ इस प्रकार है—"क्या ब्रह्मांड शाश्वत है?" "क्या यह शाश्वत नहीं है?" "क्या इसका कोई अंत है?" "क्या इसका कोई अंत नहीं है?" "क्या यह अनंत और अनंत दोनों है?" "क्या यह न तो अनंत है और न ही अनंत?" "क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं?"

क्या आत्मा शरीर से भिन्न है? क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं? क्या वे मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते? क्या वे मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते? क्या वे मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते?

'अब, यह एक ऐसा प्रश्न था जिसे एक तरफ रख देना चाहिए था, और इसी प्रश्न का उत्तर भगवान बुद्ध ने मालुंक्य-पुत्र को नहीं दिया। और ऐसे प्रश्न को एक तरफ क्यों रख देना चाहिए? क्योंकि इसका उत्तर देने का कोई कारण या उद्देश्य नहीं है। इसीलिए इसे एक तरफ रख देना चाहिए। क्योंकि भगवान बुद्ध बिना कारण और बिना उद्देश्य के अपनी वाणी नहीं उठाते।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! ऐसा ही है, और मैं इसे आपकी बात मानकर स्वीकार करता हूँ?'

[कुछ बातें छुपाने की दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [मृत्यु।]

6. हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध ने यह भी कहा था: "सभी मनुष्य दंड से कांपते हैं, सभी मृत्यु से भयभीत होते हैं।" लेकिन फिर उन्होंने कहा: "अरहत सभी भय से परे हो गए हैं।" तो फिर, नागसेन, अरहत दंड के भय से कैसे कांपते हैं? या क्या नरक में रहने वाले प्राणी, जब उन्हें जलाया, उबाला, झुलसाया और यातना दी जा रही होती है, उस मृत्यु से भयभीत होते हैं जो उन्हें उस भयानक दुख के जलते हुए गड्ढे से मुक्ति दिलाएगी? यदि भगवान बुद्ध, नागसेन,

अगर सचमुच अरहत ने कहा है कि सभी मनुष्य दंड से कांपते हैं और सभी मृत्यु से भयभीत होते हैं, तो यह कथन कि अरहत भय से परे हो गए हैं, असत्य है। लेकिन अगर यह अंतिम कथन सचमुच उनका है, तो दूसरा कथन असत्य होगा। यह दोधारी समस्या अब आपके समक्ष प्रस्तुत है, और आपको इसे हल करना है।

7. हे राजा, जब भगवान बुद्ध ने कहा था, "सभी मनुष्य दंड से कांपते हैं, सभी मृत्यु से भयभीत होते हैं," तो उन्होंने अरहतों के विषय में यह नहीं कहा था। अरहत इस कथन का अपवाद हैं, क्योंकि अरहत से भय का सर्वथा मिट गया है। उन्होंने उन प्राणियों की बात की थी जिनमें अभी भी बुराई विद्यमान है, जो अभी भी आत्म-मोह में डूबे हुए हैं, जो अभी भी सुख-दुख से ऊपर उठते और नीचे गिरते हैं। हे राजा, अरहत के लिए सभी अवस्थाओं में पुनर्जन्म का अंत हो गया है, भविष्य के चारों प्रकार नष्ट हो गए हैं, सभी पुनर्जन्म समाप्त हो गए हैं, जीवन रूपी भवन की छतें टूट गई हैं और पूरा भवन ध्वस्त हो गया है, सभी अशुद्धियाँ जड़विहीन हो गई हैं, अच्छाई और बुराई का अंत हो गया है, अज्ञान नष्ट हो गया है, चेतना का अब कोई बीज नहीं है (जिससे उसका नवीनीकरण हो सके), सभी पाप जलकर भस्म हो गए हैं और सभी सांसारिक अवस्थाओं पर विजय प्राप्त हो गई है। इसलिए अरहत किसी भी भय से विचलित नहीं होते।

8. 'मान लीजिए, हे राजा, एक राजा के चार मुख्य मंत्री हों, जो निष्ठावान, प्रसिद्ध और विश्वसनीय हों, तथा उच्च पदों पर आसीन हों। और किसी आपात स्थिति में राजा अपने राज्य के सभी लोगों को एक आदेश जारी करे, जिसमें वह कहे: "सभी लोग अब कर अदा करें, और आप, मेरे चारों अधिकारियों के रूप में, इस आपात स्थिति में जो आवश्यक हो, वह करें।" अब मुझे बताइए, हे राजा, क्या कर के भय से उत्पन्न होने वाला डर उन मंत्रियों के हृदयों में भी उत्पन्न होगा?'

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं होगा।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'उन्हें राजा द्वारा उच्च पद पर नियुक्त किया गया है। कर उन पर लागू नहीं होता, वे कर से परे हैं। राजा ने जब यह आदेश दिया था, "सभी कर अदा करें," तब उन्होंने विश्राम करने वालों का ही जिक्र किया था।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार यह कथन भी है कि सभी मनुष्य दंड से कांपते हैं, सभी मृत्यु से भयभीत होते हैं। इसी प्रकार अरहत सभी भयों से मुक्त हो जाते हैं।'

9. 'परन्तु, नागसेन, "सभी" शब्द समावेशी है, इसके प्रयोग में किसी को भी छोड़ा नहीं जाता। इस बात को सिद्ध करने के लिए मुझे एक और कारण दीजिए।'

हे राजा, मान लीजिए कि किसी गाँव में गाँव का मुखिया उद्घोषक को आदेश दे, "उठो, उद्घोषक, सभी ग्रामीणों को मेरे सामने जल्दी से इकट्ठा करो।" और वह उस आदेश का पालन करते हुए गाँव के बीच में खड़ा हो और तीन बार पुकारे, "सभी ग्रामीण तुरंत स्वामी के समक्ष एकत्रित हों!" और वे जल्दी से एकत्रित हों और स्वामी को यह सूचना दें, "हे महाराज, सभी ग्रामीण एकत्रित हो गए हैं। अब आप जो चाहें करें।" अब जब स्वामी, हे राजा, इस प्रकार सभी गाँवों के मुखियाओं को बुला रहा हो...

वह सभी ग्रामीणों को आदेश देता है, लेकिन आदेश का पालन करने के लिए वे लोग एकत्रित नहीं होते; बल्कि गृहों के मुखिया एकत्रित होते हैं। और स्वामी इससे संतुष्ट होता है, क्योंकि वह जानता है कि उसके ग्रामीणों की संख्या इतनी ही है। बहुत से अन्य लोग नहीं आते—स्त्रियाँ और पुरुष, दासियाँ और दासियाँ, श्रमिक, नौकर, किसान, बीमार लोग, बैल, भैंस, भेड़ और बकरियाँ, और कुत्ते—परन्तु वे सब गिनती में नहीं आते। गृहों के मुखियाओं के संदर्भ में ही यह आदेश दिया गया था, "सभी एकत्रित हों।" हे राजा, यह अरहतों के कारण नहीं है कि सभी मृत्यु से भयभीत होते हैं। अरहत उस कथन में शामिल नहीं है, क्योंकि अरहत वह है जिसमें भय उत्पन्न करने का कोई कारण नहीं रह गया है।

10. 'हे राजा, एक ऐसा भाव है जिसका अर्थ समावेशी नहीं है, और एक ऐसा भाव है जिसका अर्थ समावेशी है; एक ऐसा भाव है जिसका अर्थ समावेशी नहीं है, और एक ऐसा भाव है जिसका अर्थ समावेशी है। और प्रत्येक मामले में, अर्थ को तदनुसार स्वीकार किया जाना चाहिए। और अर्थ को जानने के पाँच तरीके हैं - संबंध द्वारा, रुचि द्वारा, शिक्षकों की परंपरा द्वारा, अर्थ द्वारा, और तर्कों की प्रचुरता द्वारा। और यहाँ "संबंध" का अर्थ सूत्र में निहित अर्थ है, "रुचि" का अर्थ है कि यह अन्य सूत्रों के अनुरूप है, "शिक्षकों की परंपरा" का अर्थ है उनका मत, "अर्थ" का अर्थ है उनका विचार, और "तर्कों की प्रचुरता" का अर्थ है इन चारों का संयोजन।'

11. 'बहुत खूब, नागसेन! मैं आपकी बात मान लेता हूँ। अरहत इस मामले में अपवाद हैं, बाकी सभी प्राणी भय से भरे हुए हैं।' लेकिन नरक में पड़े वे प्राणी, जिनके बारे में मैंने बात की, जो पीड़ादायक, तीव्र और भयंकर कष्ट सह रहे हैं, जिनके शरीर और अंगों पर जलन हो रही है, जिनके मुख विलाप, दया की गुहार, रोने-धोने और विलाप से भरे हैं, जो असहनीय पीड़ा से व्याकुल हैं, जिन्हें न कोई शरण मिलती है, न कोई सुरक्षा, न कोई सहायता, जो असीम रूप से पीड़ित हैं, जो सबसे बुरी और निम्नतम परिस्थितियों में भी निश्चित रूप से और अधिक पीड़ा के लिए नियत हैं, जो गर्म, तीव्र, भयंकर और क्रूर लपटों से जल रहे हैं, जो भय और आतंक से उत्पन्न शक्तिशाली चीखें और कराहें निकाल रहे हैं, जो छहों दिशाओं से उनके चारों ओर लिपटी हुई ज्वालाओं की मालाओं से घिरे हुए हैं, और हर तरफ सौ मील तक आग की गति से चमक रही हैं - क्या वे बेचारे जलते हुए अभागे मृत्यु से डर सकते हैं?

'हाँ वे कर सकते हैं।'

लेकिन, आदरणीय नागसेन, क्या नरक निश्चित पीड़ा का स्थान नहीं है? और यदि ऐसा है, तो उसमें रहने वाले प्राणी मृत्यु से क्यों भयभीत होते हैं, जो उन्हें उस निश्चित पीड़ा से मुक्ति दिलाएगी? क्या! क्या वे नरक के शौकीन हैं?

'नहीं, बिलकुल नहीं। उन्हें यह पसंद नहीं है। वे इससे मुक्ति पाने के लिए तरसते हैं। वे मृत्यु की शक्ति से भयभीत हैं।'

'अब, नागसेना, मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा है कि जो लोग मुक्ति चाहते हैं, उन्हें पुनर्जन्म से डरना चाहिए।'

[पैराग्राफ जारी है] हे नागसेना, वे निश्चित रूप से उस स्थिति की संभावना पर प्रसन्न होंगे जिसकी वे कामना करते हैं। मुझे कुछ और कारण बताकर आश्वस्त कीजिए।

12. 'हे महाराज, मृत्यु एक ऐसी अवस्था है जिससे सत्य को न जानने वाले भयभीत होते हैं। इस प्रजा में मृत्यु को लेकर चिंता और भय व्याप्त है। जो कोई भी काले सर्प, हाथी, शेर, बाघ, तेंदुआ, भालू, लकड़बग्घा, जंगली भैंस, गायल, आग, पानी, कांटों, नुकीली चीज़ों या तीरों से भयभीत होता है, वास्तव में वह मृत्यु से ही भयभीत होता है और इसीलिए उनसे डरता है। हे महाराज, यही मृत्यु के मूल स्वरूप की महिमा है। और पाप से मुक्त न होने वाले सभी प्राणी इसकी महिमा से भयभीत और कांपते हैं। इसी अर्थ में, नरक में रहने वाले प्राणी भी, जो इससे मुक्ति पाने की लालसा रखते हैं, मृत्यु से भयभीत होते हैं।'

13. 'हे राजा, मान लीजिए किसी व्यक्ति के शरीर पर मवाद से भरा फोड़ा हो जाए, और वह उस बीमारी से पीड़ित होकर, उससे छुटकारा पाने के लिए, किसी चिकित्सक और सर्जन को बुलाए। सर्जन बुलावा स्वीकार करके, उसकी बीमारी को दूर करने के लिए कोई उपाय करे—जैसे कि कोई नुकीला लैंसेट तैयार करवाए, या दागने के लिए आग में तपी हुई लकड़ियाँ तैयार करवाए, या किसी पत्थर पर पीसी हुई कोई चीज तैयार करवाकर नमक के लेप में मिलाए। अब क्या रोगी नुकीले लैंसेट के चुभने, या दागने वाली लकड़ियों के जलने, या जलन पैदा करने वाले लेप के लगने से डरने लगेगा?'

'हां, वह करेगा।'

लेकिन यदि बीमार व्यक्ति, जो अपनी बीमारी से मुक्ति चाहता है, दर्द के भय से भयभीत हो सकता है, तो ठीक उसी प्रकार नरक में फंसे प्राणी, यद्यपि वे उससे मुक्ति पाने की लालसा रखते हैं, मृत्यु के भय से भयभीत हो सकते हैं।

14. 'और मान लीजिए, हे राजा, एक व्यक्ति जिसने राजगद्दी के विरुद्ध अपराध किया हो, जब उसे जंजीरों में बांधकर कालकोठरी में डाल दिया जाए, तो वह रिहाई की कामना करे। और राजा उसे रिहा करना चाहे, तो उसे बुलवाए। अब क्या वह व्यक्ति, जिसने ऐसा अपराध किया हो और जानता हो, राजा से मिलने से भयभीत नहीं होगा?'

'जी श्रीमान।'

लेकिन अगर ऐसा है, तो नरक में फंसे प्राणी भी, भले ही वे इससे मुक्ति पाने की लालसा रखते हों, फिर भी मृत्यु से भयभीत हो सकते हैं।

'मुझे कोई दूसरा उदाहरण दीजिए जिससे मैं (इस स्पष्ट विसंगति को) सुलझा सकूं।'

'मान लीजिए, हे राजा, एक व्यक्ति को विषैले साँप ने काट लिया है और वह डर के मारे गिर पड़े, तड़पने लगे और इधर-उधर लुढ़कने लगे। फिर कोई दूसरा व्यक्ति किसी शक्तिशाली मंत्र का जाप करके उस विषैले साँप को पास आने और विष चूसने के लिए विवश कर दे। अब जब साँप से ग्रस्त व्यक्ति उस विषैले साँप को अपनी ओर आते हुए देखे, भले ही वह उसका इलाज करने के उद्देश्य से आ रहा हो, तो क्या वह फिर भी उससे भयभीत नहीं होगा?'

'जी श्रीमान।'

'खैर, नरक में फंसे प्राणियों के साथ भी ऐसा ही होता है।'

[पैराग्राफ जारी है] मृत्यु एक ऐसी चीज है जिससे सभी प्राणी घृणा करते हैं। इसलिए वे इससे भयभीत रहते हैं, भले ही वे नरक से मुक्ति पाना चाहते हों।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ मृत्यु के भय से संबंधित दुविधा समाप्त होती है।] [पिरिट।]

15. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा:

न आकाश में, न सागर के मध्य में, न ही सबसे एकांत पर्वतीय दर्रे में, न ही पूरे विश्व में वह स्थान है जहाँ खड़े होकर कोई मृत्यु के जाल से बच सकता है।

लेकिन दूसरी ओर, भगवान बुद्ध द्वारा पीरित सेवा का प्रचार किया गया था - अर्थात् रत्न सूत्र, खंड-परित्ता, मोरा-परित्ता, धगग्ग-परित्ता, अतनातिया-परित्ता और अंगुली-माला-परित्ता। हे नागसेन, यदि कोई व्यक्ति न तो स्वर्ग जाकर, न ही समुद्र के बीच जाकर, और न ही ऊंचे महलों के शिखरों पर जाकर मृत्यु के जाल से बच सकता है,

अगर यह अनुष्ठान पहाड़ों की गुफाओं, कंदराओं, ढलानों, दरारों या छेदों में भी नहीं किया जाता, तो पिरित अनुष्ठान व्यर्थ है। लेकिन अगर इससे मृत्यु से बचने का कोई रास्ता है, तो मेरे द्वारा उद्धृत श्लोक में दिया गया कथन असत्य है। यह भी एक जटिल समस्या है, गाँठ से भी अधिक पेचीदा। अब यह आपके सामने है, और आपको इसे हल करना होगा।'

16. हे राजा, भगवान बुद्ध ने वह श्लोक कहा है जिसका आपने उल्लेख किया है, और उन्होंने पिरित को मान्यता दी है। परन्तु यह केवल उन लोगों के लिए है जिनका जीवन अभी शेष है, जो पूर्ण आयु के हैं, और कर्म के दोषों से स्वयं को रोकते हैं। और जिसका नियत जीवनकाल समाप्त हो चुका है, उसके जीवन को बढ़ाने के लिए कोई अनुष्ठान या कृत्रिम साधन नहीं है। हे राजा, ठीक उसी प्रकार जैसे एक सूखे और मृत लट्ठे के साथ, जो निष्फल और रसहीन है, जिसमें से सारा जीवन निकल चुका है, जिसका नियत जीवनकाल समाप्त हो चुका है, — आप उस पर हजारों घड़े पानी डाल दें, परन्तु वह फिर कभी हरा नहीं होगा, न ही उसमें अंकुर निकलेंगे, न ही पत्ते उगेंगे। ठीक उसी प्रकार कोई अनुष्ठान या कृत्रिम साधन, कोई औषधि और कोई पिरित नहीं है, जो जिसका नियत जीवनकाल समाप्त हो चुका है, उसके जीवन को बढ़ा सके। हे राजा, ऐसे व्यक्ति के लिए संसार की सारी औषधियाँ व्यर्थ हैं, परन्तु पिरित उन लोगों के लिए रक्षक और सहायक हैं जिनका जीवन अभी शेष है, जो जीवन से परिपूर्ण हैं और कर्म के बुरे प्रभावों से स्वयं को रोकते हैं। और इसी उद्देश्य से पिरित को नियुक्त किया गया था।

[पैराग्राफ जारी है] हे भगवान, हे राजा, जिस प्रकार एक किसान पके और मुरझाए हुए अनाज को पानी से बचाकर उसकी रक्षा करता है, और जब वह छोटा और बादल के समान गहरा रंग का होता है, तब उसे पानी देकर बढ़ाता है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, पिरित अनुष्ठान को उस व्यक्ति के मामले में छोड़ देना चाहिए और उपेक्षित कर देना चाहिए जिसने अपना निर्धारित जीवनकाल पूरा कर लिया है, लेकिन जिनके पास अभी भी जीवन शेष है और जो शक्ति से परिपूर्ण हैं, उनके लिए पिरित औषधि को दोहराया जा सकता है, और वे इसके उपयोग से लाभान्वित होंगे।

17. 'परन्तु, नागसेन, यदि वह व्यक्ति जीवित रहेगा जिसका जीवन अभी शेष है, और वह व्यक्ति जिसकी कोई आयु शेष नहीं है, मर जाएगा, तो औषधि और पिरित दोनों ही निरर्थक हैं।'

'हे राजा, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा है जिसमें दवा से कोई बीमारी ठीक हो गई हो?'

'हां, कई सौ बार।'

'तो, हे राजा, पिरित और चिकित्सा की अक्षमता के संबंध में आपका कथन अवश्य ही गलत होगा।'

'मैंने देखा है, नागसेना, कि चिकित्सक दवाइयाँ काढ़े या बाहरी अनुप्रयोग के माध्यम से देते हैं, और इस प्रकार रोग शांत हो जाता है।'

और जब, हे राजा, पिरित का जाप करने वालों की आवाज़ सुनाई देती है, तो जीभ सूख सकती है, हृदय की धड़कन धीमी हो सकती है, और गला बैठ सकता है, परन्तु उस जाप से सभी रोग दूर हो जाते हैं, सभी विपत्तियाँ टल जाती हैं। फिर, हे राजा, क्या आपने कभी किसी ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसे साँप ने काटा हो और उसका विष किसी मंत्र (जिस साँप ने काटा हो) द्वारा अवशोषित हो गया हो या किसी विषनाशक से नष्ट हो गया हो या घाव के ऊपर या नीचे कोई लोशन लगाया गया हो?

'जी हां, यह आज भी दुनिया भर में एक आम प्रथा है।'

तो फिर आपने जो कहा कि पिरित और दवा दोनों ही बेकार हैं, वह गलत है। और जब किसी व्यक्ति पर पिरित का पाठ किया जाता है, तो काटने के लिए तैयार सांप उसे नहीं काटता, बल्कि अपने जबड़े बंद कर लेता है—लुटेरे उसे मारने के लिए जो लाठी उठाते हैं, वह

कभी वार नहीं करती; वे उसे गिरा देते हैं और उसके साथ नरमी से पेश आते हैं—उसकी ओर दौड़ता हुआ क्रोधित हाथी अचानक रुक जाता है—उसकी ओर बढ़ती हुई जलती हुई आग बुझ जाती है—उसने जो घातक जहर खाया है, वह बेअसर हो जाता है और भोजन बन जाता है—उसे मारने आए हत्यारे उसके सेवकों के समान हो जाते हैं—और जिस जाल में वह फंसा है, वह उसे पकड़ नहीं पाता।

18. 'हे राजा, क्या आपने उस शिकारी के बारे में कभी नहीं सुना, जो सात सौ वर्षों तक उस मोर पर जाल नहीं फेंक पाया जिसने पिरित को पकड़ लिया था, लेकिन जिस दिन उसने ऐसा करने में चूक की, उसी दिन उसे पकड़ लिया?'

'हां, मैंने इसके बारे में सुना है। इसकी प्रसिद्धि पूरी दुनिया में फैल चुकी है।'

'तो फिर पिरित और औषधि दोनों के एक समान बेकार होने के बारे में आपका कहना गलत होगा। और क्या आपने कभी उस दानव के बारे में नहीं सुना जिसने अपनी पत्नी की रक्षा के लिए...'

उसने उसे एक डिब्बे में बंद कर दिया और उसे निगलकर अपने पेट में इधर-उधर ले जाने लगा। फिर एक विद्याधर उसके मुंह में घुस गया और उसकी पत्नी के साथ खेल खेलने लगा। जब दानव को इसका पता चला, तो उसने डिब्बा उगल दिया और उसे खोल दिया, और जैसे ही उसने ऐसा किया, विद्याधर भाग निकला।

'हां, मैंने यह सुना है। इसकी प्रसिद्धि भी पूरी दुनिया में फैल चुकी है।'

'क्या विद्याधर पिरित की शक्ति से बंदी बनने से नहीं बच गए थे?'

'हां, ऐसा ही था।'

'तो फिर पिरित में जरूर शक्ति होगी। और क्या तुमने उस दूसरे विद्याधर के बारे में सुना है जो बनारस के राजा के हरम में घुस गया, और मुख्य रानी के साथ व्यभिचार किया, पकड़ा गया, फिर अदृश्य हो गया और भाग गया?'

'हां, मैंने वह कहानी सुनी थी।'

'अच्छा, क्या वह भी पिरित की शक्ति से बंदी बनने से नहीं बच निकला था?'

'जी श्रीमान।'

'तो फिर, हे राजा, पिरित में अवश्य ही शक्ति होगी।'

19. 'आदरणीय नागसेना, क्या पिरित सबका रक्षक है?'

'कुछ लोगों को, दूसरों को नहीं।'

'तो क्या यह हमेशा उपयोगी नहीं होता?'

'क्या भोजन सभी लोगों को जीवित रखता है?'

'केवल कुछ, बाकी नहीं।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'क्योंकि कुछ लोग उसी भोजन का अधिक सेवन करके हैजा से मर जाते हैं।'

'तो क्या यह सभी मनुष्यों को जीवित नहीं रखता?'

'दो कारण हैं जिनसे यह जीवन को नष्ट कर देता है - इसका अत्यधिक सेवन और पाचन की कमजोरी। और यहां तक कि जीवनदायी भोजन भी बुरी नज़र से विषैला हो सकता है।'

हे राजा, पिरित भी कुछ प्राणियों की रक्षा करता है और कुछ की नहीं। इसके विफल होने के तीन कारण हैं—कर्म, पाप और अविश्वास। जो पिरित प्राणियों की रक्षा करता है, वही प्राणी अपने कर्मों से अपनी रक्षा शक्ति खो देता है। हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे एक माता प्रेम से अपने गर्भ में आए पुत्र का पालन-पोषण करती है और उसे बड़े ध्यान से जन्म देती है। जन्म के बाद वह उसे गंदगी, दाग-धब्बों और बलगम से साफ रखती है, उसे उत्तम और कीमती इत्र लगाती है, और जब दूसरे उसे गाली देते हैं या मारते हैं, तो वह उन्हें पकड़कर उत्तेजित होकर स्वामी के सामने घसीटती है। परन्तु जब उसका पुत्र शरारती होता है या देर से आता है, तो वह उसे अपने घुटने पर या हाथों से लाठी या डंडे से मारती है। अब, ऐसा होने पर क्या वह खुद पकड़ी जाएगी और स्वामी के सामने पेश होगी?

'नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'क्योंकि गलती लड़के की थी।'

'ठीक उसी प्रकार, हे राजा, पिरित जो प्राणियों का रक्षक है, फिर भी, उनके अपने दोष के कारण, उनके विरुद्ध हो जाएगा।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! समस्या का समाधान हो गया है, जंगल साफ हो गया है, अंधेरा उजाला में बदल गया है, विधर्म का जाल खुल गया है - और यह सब आपके द्वारा हुआ है, हे विद्यालयों के सर्वश्रेष्ठ नेता!'

[पिरित के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [मारा, दुष्ट आत्मा।]

20. 'आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं: "तथागत को संन्यासी के लिए आवश्यक वस्तुएँ निरंतर प्राप्त होती थीं - वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएँ।" और फिर वे कहते हैं: "जब तथागत पंच साल वृक्षों के ब्राह्मण गाँव में गए, तो उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ और उन्हें अपना कुंड पहले की तरह साफ करके लौटना पड़ा।" यदि पहला कथन सत्य है तो दूसरा असत्य है, और यदि दूसरा कथन सत्य है तो पहला असत्य है। यह भी एक दोधारी समस्या है, एक जटिल पहेली जिसे सुलझाना कठिन है। अब यह आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसे हल करना आपका कार्य है।'

21. 'दोनों कथन सत्य हैं, लेकिन जब उसे उस दिन कुछ नहीं मिला, तो वह दुष्ट मारा का काम था।'

तो फिर, नागसेन, ऐसा कैसे हुआ कि भगवान बुद्ध द्वारा अनगिनत युगों में संचित पुण्य उस दिन समाप्त हो गया? ऐसा कैसे हुआ कि मारा, जो अभी-अभी उत्पन्न हुआ था, उस पुण्य की शक्ति और प्रभाव पर विजय प्राप्त कर सका? उस स्थिति में, नागसेन, दोष दो में से किसी एक पर ही पड़ेगा।

दो ही तरीके हैं—या तो पुण्य से अधिक शक्तिशाली होना चाहिए, या मारा की शक्ति बुद्ध की शक्ति से अधिक होनी चाहिए। पेड़ की जड़ उसके शीर्ष से भारी होनी चाहिए, या पापी पुण्य सृजित करने वाले से अधिक बलवान होना चाहिए।

22. 'महाराज, यह आपके दोनों विकल्पों में से किसी एक को भी साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस मामले में एक कारण निश्चित रूप से वांछनीय है।'

हे राजा, मान लीजिए कि एक व्यक्ति राजाओं के राजा के लिए एक उपहार लेकर आता है—शहद या मधुकोश या इसी तरह की कोई वस्तु। और राजा का द्वारपाल उससे कहता है, "यह राजा के पास आने का सही समय नहीं है। इसलिए, हे मेरे मित्र, अपना उपहार जितनी जल्दी हो सके ले जाओ और राजा द्वारा जुर्माना लगाए जाने से पहले वापस चले जाओ।" तब वह व्यक्ति भयभीत होकर अपना उपहार उठाता है और बड़ी जल्दी से लौट जाता है। अब क्या राजाओं का राजा, केवल इस तथ्य के कारण कि वह व्यक्ति अपना उपहार गलत समय पर लाया, द्वारपाल से कम शक्तिशाली हो जाएगा, या उसे फिर कभी कोई उपहार नहीं मिलेगा?

'नहीं, महोदय। द्वारपाल ने अपने चिड़चिड़े स्वभाव के कारण उस उपहार के दाता को वापस भेज दिया, और किसी अन्य युक्ति से एक लाख गुना अधिक मूल्यवान उपहार लाया जा सकता था।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, अपने स्वभाव की ईर्ष्या के कारण ही दुष्ट मारा ने पंच साल वृक्षों के पास ब्राह्मणों और गृहस्थों को अपने वश में कर लिया था। और लाखों अन्य देवता बुद्ध को स्वर्ग से शक्ति प्रदान करने वाला अमृत अर्पित करने के लिए आए और हाथ जोड़कर उनका आदर करने लगे, यह सोचते हुए कि इस प्रकार वे उन्हें शक्ति प्रदान करेंगे।'

23. 'ऐसा हो सकता है, नागसेना। धन्य

[पैराग्राफ जारी है] संसार के श्रेष्ठ संन्यासी के लिए चारों आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करना आसान था, और देवताओं और मनुष्यों के अनुरोध पर उन्होंने सभी आवश्यक वस्तुओं का आनंद लिया। फिर भी, भगवान बुद्ध को भोजन की आपूर्ति रोकने का मारा का इरादा अब तक पूरा हो चुका था। महोदय, यहीं मेरा संदेह दूर नहीं हुआ है। मैं अब भी इस बारे में उलझन और दुविधा में हूँ। मेरा मन स्पष्ट नहीं है कि तथागत, अरहत, सर्वोच्च बुद्ध, देवताओं और मनुष्यों के संसार में श्रेष्ठ, जिनके पास पुण्य का इतना गौरवशाली खजाना था, अद्वितीय, बेजोड़ और अतुलनीय, मारा जैसा नीच, तुच्छ, तुच्छ, पापी और दुष्ट प्राणी उनके लिए दान के मार्ग में बाधा कैसे डाल सकता है।

24. हे राजा, चार प्रकार की बाधाएँ होती हैं—एक बाधा किसी विशेष व्यक्ति के लिए अभिप्रेत दान में, दूसरी किसी विशेष व्यक्ति के लिए अलग रखे गए दान में, तीसरी तैयार दान में, और चौथी दान के उपभोग में। पहली बाधा तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु के वास्तविक दान में बाधा डालता है जिसे दान के लिए तैयार किया गया हो, लेकिन किसी विशेष दानग्राही को ध्यान में रखकर या देखे बिना—उदाहरण के लिए, यह कहकर बाधा उत्पन्न करना: "इसे किसी और को देने का क्या लाभ?" दूसरी बाधा तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति किसी निर्दिष्ट व्यक्ति को दिए जाने वाले भोजन के वास्तविक दान में बाधा डालता है। तीसरी बाधा तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति ऐसे दान में बाधा डालता है जो तैयार तो हो चुका हो, लेकिन अभी तक स्वीकार नहीं किया गया हो। चौथी बाधा तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति पहले से दिए गए दान (और इस प्रकार दानग्राही की संपत्ति) के उपभोग में बाधा डालता है।

25. 'अब जब दुष्ट मारा ने पर अधिकार कर लिया,

[पैराग्राफ जारी है] पंच साल वृक्षों पर रहने वाले ब्राह्मणों और गृहस्थों के लिए, उस समय भोजन न तो भगवान बुद्ध की संपत्ति था, न उनके लिए तैयार किया गया था, और न ही उनके लिए विशेष रूप से तैयार करने का इरादा था। [157] बाधा किसी ऐसे व्यक्ति के रास्ते में डाली गई थी जो अभी आने वाला था, जो अभी तक नहीं आया था, और जिसके लिए कोई दान नहीं था। यह केवल भगवान बुद्ध के विरुद्ध नहीं था। बल्कि उस दिन जो भी लोग गाँव से बाहर गए थे और गाँव आ रहे थे, उन्हें भिक्षा नहीं मिली। हे राजा, मैं मनुष्यों और देवताओं के संसार में किसी को नहीं जानता, न मारों को, न ब्रह्माओं को, न ब्राह्मणों को, न संन्यासियों को, जो भगवान बुद्ध के लिए अभिप्रेत, तैयार या पहले से दी गई भिक्षा के रास्ते में कोई बाधा डाल सके। और यदि कोई ईर्ष्या के कारण उस समय कोई बाधा उत्पन्न करे, तो उसका सिर सौ या हजार टुकड़ों में फट जाएगा।

26. हे महाराज, तथागतों से जुड़ी चार ऐसी बातें हैं जिन्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। वे चार बातें क्या हैं? भगवान बुद्ध के लिए अभिप्रेत और सृजित दान, उनके चारों ओर फैले एक फादम लंबे प्रभामंडल, उनके सर्वज्ञ ज्ञान का भंडार और उनका प्राण। हे महाराज, ये सभी बातें सार में एक हैं—वे दोषरहित, अचल, अन्य प्राणियों द्वारा अजेय और अन्य परिस्थितियों से अप्रभावित हैं। और जब मार ने पंच साल वृक्षों पर ब्राह्मणों और गृहस्थों को अपने वश में किया, तो वह घात लगाकर, दृष्टिहीन अवस्था में था। हे महाराज, यह ऐसा था जैसे लुटेरे...

सीमा के उस पार दुर्गम इलाकों में छिपकर, वे राजमार्गों पर घात लगाए बैठे थे। लेकिन अगर राजा की नज़र उन पर पड़ गई, तो क्या आपको लगता है कि वे लुटेरे सुरक्षित रह पाएंगे?

'नहीं, महोदय, वह उन्हें कुल्हाड़ी से सौ या हजार टुकड़ों में कटवा सकता है।'

"खैर, बात कुछ ऐसी ही थी, छुपकर मारा ने उन्हें अपने वश में कर रखा था। यह ठीक वैसे ही था जैसे कोई विवाहित स्त्री घात लगाकर, छुपकर अपने प्रेमी से मिलने जाती है। लेकिन हे राजा, यदि वह अपने पति की उपस्थिति में अपनी साजिशें रचे, तो क्या आपको लगता है कि वह सुरक्षित रहेगी?"

'नहीं, महोदय, वह उसे मार सकता है, घायल कर सकता है, उसे जंजीरों में बांध सकता है या उसे गुलाम बना सकता है।'

'खैर। ऐसा ही था, छुपकर, मारा ने उन्हें अपने वश में कर रखा था। लेकिन हे राजा, यदि उसने भगवान बुद्ध के लिए अभिप्रेत, तैयार या उनके पास मौजूद किसी भी दान के मामले में कोई बाधा उत्पन्न की होती, तो उसका सिर सौ या हजार टुकड़ों में फट जाता।'

'यह सच है, नागसेन। दुष्ट मार ने लुटेरों की तरह काम किया, वह पंच साल वृक्षों के ब्राह्मणों और गृहस्थों पर घात लगाकर बैठा रहा। लेकिन यदि वही दुष्ट मार भगवान बुद्ध के लिए अभिप्रेत या तैयार किए गए किसी भी दान में हस्तक्षेप करता, या उनके उसे ग्रहण करने में बाधा डालता, तो उसका सिर सौ या हजार टुकड़ों में बंट जाता, या उसका शरीर भूसे की तरह बिखर जाता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

यहां मारा द्वारा भिक्षावृत्ति में हस्तक्षेप करने की दुविधा समाप्त होती है।

[अचेतन अपराध।]

27. 'आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं: "जो कोई अनजाने में किसी जीव का प्राण छीन लेता है, वह गंभीर पाप का भागी होता है।" परन्तु दूसरी ओर भगवान बुद्ध ने विनय में लिखा है: "अज्ञान में कर्म करने वाले को कोई अपराध नहीं होता।" यदि पहला कथन सत्य है, तो दूसरा असत्य होना चाहिए; और यदि दूसरा सत्य है, तो पहला असत्य होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है, जिस पर महारत हासिल करना कठिन है, जिस पर विजय पाना कठिन है। अब यह आपके समक्ष प्रस्तुत है, और आपको इसे हल करना है।'

28. हे महाराज, आपने जिन दोनों अंशों का उल्लेख किया है, वे दोनों ही बुद्ध द्वारा कहे गए हैं। परन्तु दोनों के अर्थ में अंतर है। और वह अंतर क्या है? एक प्रकार का अपराध मन की सहभागिता के बिना किया जाता है, और दूसरा प्रकार का अपराध मन की सहभागिता से किया जाता है। यह पहले वाले के संबंध में था।

दो बातें जो भगवान ने कही हैं: "'अज्ञानता में कार्य करने वाले को कोई अपराध नहीं होता।'"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[अज्ञानता से होने वाले पापों के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [बुद्ध और उनके अनुयायी।]

29. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा था: "आनंद, तथागत यह नहीं मानते कि उन्हें ही भिक्षु समुदाय का नेतृत्व करना चाहिए, या यह कि संघ उन पर निर्भर है।" परन्तु दूसरी ओर, भगवान बुद्ध ने मेत्तेय के गुणों और स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा: "वह हजारों सदस्यों वाले भिक्षु समुदाय के नेता होंगे, जैसे मैं अब सैकड़ों सदस्यों वाले भिक्षु समुदाय का नेता हूँ।" यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत है। यदि दूसरा कथन सही है, तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी अब आपके समक्ष एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना है।

30. 'हे महाराज, आपने दोनों अंशों का सही उद्धरण दिया है। लेकिन आपने जो दुविधा प्रस्तुत की है, उसमें एक अंश का अर्थ व्यापक है, जबकि दूसरे का नहीं। हे महाराज, तथागत अनुयायियों की खोज नहीं करते, बल्कि अनुयायी उनकी खोज करते हैं।'

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, यह केवल एक आम धारणा है कि "यह मैं हूँ" या "यह मेरा है", यह कोई दिव्य सत्य नहीं है। तथागत ने आसक्ति को त्याग दिया है; उन्होंने मोह को त्याग दिया है; वे "यह मेरा है" के भ्रम से मुक्त हैं; वे केवल दूसरों की सहायता करने के लिए जीते हैं। हे राजा, जिस प्रकार पृथ्वी संसार के प्राणियों का सहारा और आश्रय है, और वे उस पर निर्भर हैं, परन्तु विशाल पृथ्वी को उनके लिए "ये मेरे हैं" की लालसा नहीं है—ठीक उसी प्रकार तथागत सभी प्राणियों का सहारा और आश्रय हैं, परन्तु उन्हें उनके लिए "ये मेरे

हैं" की लालसा नहीं है। और हे राजा, जिस प्रकार एक विशाल वर्षा बादल अपनी वर्षा बरसाता है, घास और वृक्षों, पशुओं और मनुष्यों को पोषण देता है, और उनकी वंश परंपरा को बनाए रखता है, और ये सभी प्राणी अपनी आजीविका के लिए उसकी वर्षा पर निर्भर रहते हैं, परन्तु बादल को इस विचार से कोई लालसा नहीं होती कि "ये मेरे हैं"—ठीक उसी प्रकार तथागत सभी प्राणियों को अच्छे गुणों का ज्ञान देते हैं और उन्हें अच्छाई में बनाए रखते हैं, और सभी प्राणियों का जीवन उनमें निहित है, परन्तु तथागत को इस विचार से कोई लालसा नहीं होती कि "ये मेरे हैं।" और ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्होंने आत्म-सम्मान का त्याग कर दिया है।

बहुत बढ़िया, नागसेना! आपने अनेक उदाहरणों से समस्या का अच्छा समाधान कर दिया है। जंगल खुल गया है, अंधेरा छंट गया है।

प्रकाश में आने से विरोधियों के तर्क ध्वस्त हो गए हैं, विजेता के पुत्रों में अंतर्दृष्टि जागृत हो गई है।

[यहाँ बुद्ध और उनके अनुयायियों को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] [विभाजन।]

31. 'हे आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं: "तथागत एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके अनुयायी कभी विखंडित नहीं हो सकते।" और फिर वे कहते हैं: "देवदत्त ने एक ही झटके में पाँच सौ भाइयों को बहकाया।" यदि पहला कथन सत्य है तो दूसरा असत्य है, और यदि दूसरा सही है तो पहला गलत है। यह भी एक दोधारी समस्या है, गहन, सुलझाने में कठिन, गाँठ से भी अधिक पेचीदा। इसके द्वारा ये लोग ढके हुए, अवरुद्ध, अवरुद्ध, घिरे हुए और घिरे हुए हैं। इसमें विरोधियों के तर्कों के विरुद्ध अपनी कुशलता प्रकट कीजिए।'

32. 'हे राजा, दोनों कथन सही हैं। परन्तु दूसरा कथन दरार पैदा करने वाले की शक्ति के कारण है। जहाँ दरार पैदा करने वाला होता है, वहाँ माँ अपने बेटे से अलग हो जाती है और बेटा माँ से अलग हो जाता है, या पिता अपने बेटे से और बेटा अपने पिता से, या भाई बहन से और बहन भाई से, या मित्र मित्र से अलग हो जाता है। हर तरह की लकड़ियों से बना जहाज़ लहरों के प्रचंड बल से टूट जाता है, और रस से लदे और फलते-फूलते पेड़ हवा के प्रचंड बल से उखड़ जाते हैं, और उत्तमतम सोना भी टुकड़ों में बँट जाता है।

कांस्य। लेकिन बुद्धिमानों का यह इरादा नहीं है, बुद्धों की यह इच्छा नहीं है, विद्वानों की यह कामना नहीं है कि तथागत का अनुसरण भंग हो। और यह बात एक विशेष अर्थ में कही जाती है कि ऐसा संभव नहीं है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, यह एक अनसुनी बात है कि तथागत के किसी भी कार्य, किसी भी अप्रिय शब्द, किसी भी गलत कर्म, किसी भी अन्याय से उनका अनुसरण भंग हो सकता है, चाहे उनका आचरण कहीं भी और किसी भी प्रकार का हो। इस अर्थ में उनका अनुसरण अभेद्य है। और आप स्वयं, क्या आप बुद्ध के नौ वरणों में ऐसा कोई उदाहरण जानते हैं जिसमें किसी बोधिसत्व द्वारा किए गए किसी कार्य से तथागत का अनुसरण भंग हुआ हो?

'नहीं, महाराज। ऐसी बात न तो दुनिया में कभी देखी गई है और न ही सुनी गई है। नागसेना, आपकी बात बहुत अच्छी है और मैं इसे स्वीकार करता हूँ।'

[विभाजन को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

यहां दूसरा अध्याय समाप्त होता है।
तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान - मेंडका पन्हा अध्याय 3

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-11-||----->>>> अगला

1. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे वासेत्थ, धम्म ही 'संसार में सर्वश्रेष्ठ' है, चाहे वह वर्तमान में दिखाई दे या भविष्य में। लेकिन (आपके अनुयायियों के अनुसार) वह धर्मनिष्ठ गृहस्थ जिसने श्रेष्ठ मार्ग में प्रवेश किया है, जिसके लिए किसी भी दुःखदायी स्थान में पुनर्जन्म की संभावना समाप्त हो गई है, जिसने अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली है और जिसे सिद्धांत का ज्ञान है, उसे भी संघ के किसी भी सदस्य को, चाहे वह नौसिखिया हो या न हो, आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए और अपनी सीट से उठना चाहिए। अब यदि धम्म सर्वश्रेष्ठ है तो यह आचार नियम गलत है, लेकिन यदि यह सही है तो पहला कथन गलत होगा।"

[पैराग्राफ जारी है] यह भी एक दोतरफा समस्या है। अब यह आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना है।'

2. भगवान बुद्ध ने वही कहा है जो आपने उद्धृत किया है, और आपने आचरण के नियम का सही वर्णन किया है। लेकिन उस नियम का एक कारण है, और वह यह है। ये बीस व्यक्तिगत गुण हैं, जो एक समना के समनात्व का निर्माण करते हैं, और ये दो बाहरी लक्षण हैं, जिनके कारण समना अभिवादन, आदर और श्रद्धा के योग्य होता है। और वे क्या हैं? आत्म-संयम का सर्वोत्तम रूप, आत्म-नियंत्रण का उच्चतम स्तर, सही आचरण, शांत स्वभाव, (अपने कर्मों और शब्दों पर) नियंत्रण, (अपनी इंद्रियों पर) वशीकरण, धीरज, सहानुभूति।

एकांतवास का अभ्यास, एकांतवास से प्रेम, ध्यान, विनम्रता और कुकर्म के भय से मुक्ति, उत्साह, लगन, उपदेशों का पालन, शास्त्रों का पाठ, धम्म और विनय के ज्ञाताओं से प्रश्न पूछना, शीलों और अन्य नैतिक नियमों में आनंद लेना, सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति से मुक्त होना, उपदेशों का पालन करना—पीला वस्त्र धारण करना और मुंडा होना। इन सभी बातों का अभ्यास करते हुए संघ का सदस्य जीवन व्यतीत करता है। इन सभी में से किसी में भी अपूर्ण न रहकर, सभी में परिपूर्ण, सभी में सिद्ध और सभी गुणों से युक्त होकर वह अर्हतत्व की अवस्था की ओर अग्रसर होता है, उस अवस्था की ओर जिसे सीखने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; वह सभी लोकों में सर्वोच्च लोक की ओर अग्रसर होता है। अत: क्योंकि वह उसे योग्य पुरुषों (अरहतों) की संगति में देखता है, इसलिए उत्तम मार्ग पर चल पड़ा हुआ गृहस्थ उसके लिए यह उचित समझता है कि वह भी उसका अनुसरण करे।

भिक्षु के प्रति श्रद्धा और आदर प्रदर्शित करना, भले ही वह अभी तक परिवर्तित न हुआ हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह भिक्षु को उन लोगों की संगति में देखता है जिनमें सभी बुराइयाँ नष्ट हो चुकी हैं, क्योंकि वह स्वयं ऐसी संगति में नहीं है, इसलिए परिवर्तित गृहस्थ व्यक्ति अपवर्तित भिक्षु के प्रति श्रद्धा और आदर प्रदर्शित करना उचित समझता है। क्योंकि वह जानता है कि वह सर्वोच्च भिक्षु समुदाय में शामिल हो गया है, और वह स्वयं उस अवस्था तक नहीं पहुंचा है, इसलिए परिवर्तित गृहस्थ अपवर्तित भिक्षु के प्रति आदर और सम्मान दिखाना उचित समझता है—क्योंकि वह जानता है कि अपवर्तित भिक्षु पतिमोक्खा का पाठ सुनता है, जबकि वह स्वयं नहीं सुन सकता—क्योंकि वह जानता है कि अपवर्तित भिक्षु पुरुषों को संघ में शामिल करता है, और इस प्रकार विजेता के उपदेशों का विस्तार करता है, जो वह स्वयं करने में असमर्थ है—क्योंकि वह जानता है कि अपवर्तित भिक्षु असंख्य उपदेशों का पालन करता है, जिनका वह स्वयं पालन नहीं कर सकता—क्योंकि वह जानता है कि वह समनत्व के बाहरी चिन्ह धारण करता है, और बुद्ध के उद्देश्य का पालन करता है, जबकि वह स्वयं उससे बहुत दूर चला गया है—क्योंकि वह जानता है कि यद्यपि उसने अपने बाल और दाढ़ी त्याग दी है, और वह अभिषेक रहित है और कोई आभूषण नहीं पहनता है, फिर भी वह धर्म के सुगंध से अभिमंत्रित है, जबकि वह स्वयं आभूषणों और उत्तम वस्त्रों का शौकीन है—इसलिए परिवर्तित गृहस्थ भिक्षु ऐसा करना उचित समझता है। श्रद्धा व्यक्त करना और गैर-धर्मांतरित भिक्षु के प्रति आदर दिखाना।

3. और इसके अलावा, हे राजा, ऐसा इसलिए है क्योंकि वह जानता है कि भिक्षु में न केवल वे सभी बीस व्यक्तिगत गुण पाए जाते हैं जो एक समन बनाते हैं, बल्कि वे दो बाह्य लक्षण भी उसमें मौजूद होते हैं।

और दूसरों को भी उनमें प्रशिक्षित करता है, जिससे धर्मांतरित गृहस्थ, यह जानकर कि उस परंपरा में, उस धर्म के पालन में उसका कोई हिस्सा नहीं है, धर्मांतरित भिक्षु के प्रति आदर और सम्मान दिखाना उचित समझता है। हे राजा, जिस प्रकार एक राजकुमार अपने परिवार के पुरोहित ब्राह्मण के चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त करता है और क्षत्रिय के कर्तव्यों का पालन करता है, कुछ समय बाद जब उसका राज्याभिषेक होता है, तो वह अपने गुरु को अपना गुरु और परिवार की परंपराओं का वाहक मानकर आदर और सम्मान करता है, उसी प्रकार धर्मांतरित भिक्षु के लिए भी धर्मांतरित भिक्षु के प्रति आदर और सम्मान करना उचित है।

4. और हे महाराज, आप इस तथ्य से भिक्षुओं की महानता और अद्वितीय महिमा जान लें—कि यदि कोई गृहस्थ, धर्म का शिष्य, जिसने उत्तम मार्ग का अनुसरण किया है, अरहतत्व की अनुभूति प्राप्त कर ले, तो उसके साथ दो में से एक ही परिणाम होगा, और कोई दूसरा नहीं—या तो वह उसी दिन प्राण त्याग देगा, या भिक्षु का पद ग्रहण कर लेगा। क्योंकि हे महाराज, त्याग की वह अवस्था अटल, गौरवशाली और सर्वोच्च है—मेरा तात्पर्य संघ का सदस्य होने की अवस्था से है!

'आदरणीय नागसेना, आपकी शक्तिशाली और महान बुद्धि ने इस सूक्ष्म समस्या का पूर्णतया समाधान कर दिया है। आपके समान बुद्धिमान हुए बिना कोई और इसे इस प्रकार हल नहीं कर सकता था।'

[धर्म की प्रधानता को लेकर यह समस्या यहीं समाप्त होती है]

[उपदेश देने के नुकसान।]

5. 'आदरणीय नागसेना, आप भिक्षु कहते हैं कि तथागत सभी प्राणियों को हानि से बचाते हैं और उनका भला करते हैं। और फिर आप कहते हैं कि जब वे जलती हुई अग्नि के उपमा पर आधारित प्रवचन दे रहे थे, तब लगभग साठ भिक्षुओं के मुख से गर्म रक्त निकला। उस प्रवचन से उन्होंने उन भिक्षुओं को हानि पहुँचाई, भला नहीं। अतः यदि पहला कथन सत्य है, तो दूसरा असत्य है; और यदि दूसरा सत्य है, तो पहला असत्य है। यह भी आपके समक्ष एक दोधारी समस्या है, जिसका हल आपको निकालना है।'

6. 'दोनों बातें सत्य हैं। उनके साथ जो कुछ हुआ वह तथागत की गलती नहीं थी, बल्कि उनकी अपनी गलती थी।'

लेकिन, नागसेन, यदि तथागत ने वह प्रवचन न दिया होता, तो क्या वे गर्म खून उगल देते?

नहीं। जब उन्होंने उसकी कही बात को गलत समझा, तब उनके भीतर एक तीव्र क्रोध भड़क उठा और उनके मुंह से गर्म खून निकल आया।

'तो फिर ऐसा अवश्य हुआ होगा, नागसेन, तथागत के कार्य से; तथागत ही उनके विनाश का मुख्य कारण रहे होंगे। मान लीजिए, नागसेन, एक सर्प दीमक के टीले में घुस गया हो, और मिट्टी की आवश्यकता से ग्रस्त कोई व्यक्ति उस दीमक के टीले को तोड़कर उसमें से मिट्टी निकाल ले। और उसके ऐसा करने से दीमक के टीले का प्रवेश द्वार बंद हो गया।'

अगर दरवाज़ा बंद हो जाता, तो साँप हवा न मिलने से मर जाता। क्या उस आदमी के इस कृत्य से साँप नहीं मर जाता?

'जी हां, हे राजा।'

'ठीक इसी प्रकार, नागसेन, तथागत ही उनके विनाश का प्रमुख कारण थे।'

7. हे राजा, जब तथागत प्रवचन देते थे, तो वे न तो चापलूसी से करते थे और न ही द्वेष से। वे दोनों से मुक्त होकर ही बोलते थे। जिन्होंने इसे सही ढंग से ग्रहण किया, वे ज्ञानी हो गए, परन्तु जिन्होंने इसे गलत ढंग से ग्रहण किया, वे गिर पड़े। हे राजा, जैसे कोई व्यक्ति आम के पेड़, जामुन के पेड़ या मेमने के पेड़ को हिलाता है, तो उस पर लगे वे फल जो रस से भरे होते हैं और पेड़ से मजबूती से जुड़े होते हैं, अविचलित रहते हैं, परन्तु वे फल जिनकी डंठल सड़ी हुई होती है और जो ढीले ढंग से जुड़े होते हैं, जमीन पर गिर जाते हैं— ठीक वैसे ही उनका उपदेश था। हे राजा, यह वैसा ही था जैसे कोई किसान गेहूँ की फसल उगाने के लिए खेत जोतता है, लेकिन उस जुताई से घास के सैकड़ों-हजारों तिनके नष्ट हो जाते हैं—या यह वैसा ही था जैसे लोग मिठास के लिए गन्ने को चक्की में पीसते हैं, और ऐसा करने से चक्की के मुँह में जाने वाले छोटे जीव भी कुचल जाते हैं—ठीक वैसे ही तथागत ने तैयार मन वालों को ज्ञान प्रदान करते हुए, चापलूसी और द्वेष रहित होकर धम्म का उपदेश दिया। और जिन्होंने इसे सही ढंग से ग्रहण किया, वे ज्ञानी हो गए, परन्तु जिन्होंने इसे गलत ढंग से ग्रहण किया, वे पतित हो गए।

8. तो क्या वे भिक्षु, नागसेन, उसी प्रवचन के कारण नहीं गिरे थे?

'तो फिर, एक बढ़ई लकड़ी के एक टुकड़े को बिना कुछ किए, बस उसे एक तरफ रखकर, उसे सीधा और उपयोग के योग्य कैसे बना सकता है?'

'नहीं, महोदय। अगर वह इसे सीधा और उपयोग के लिए तैयार रखना चाहता है, तो उसे इसमें से मोड़ हटाने होंगे।'

हे राजा, तथागत केवल अपने शिष्यों की देखरेख करके उन लोगों की आँखें नहीं खोल सकते थे जो देखने के लिए तैयार थे। परन्तु उन्होंने वचन को गलत ढंग से ग्रहण करने वालों को हटाकर उन लोगों को बचाया जो उद्धार पाने के लिए तैयार थे। और हे राजा, दुष्टों का पतन उनके अपने कर्मों के कारण हुआ; जैसे केले का वृक्ष, बांस या खच्चर अपने ही बच्चे के कारण नष्ट हो जाते हैं। और हे राजा, जैसे अपने कर्मों के कारण लुटेरे अपनी आँखें निकलवाने, सूली पर चढ़ाने या फांसी पर चढ़ने के लिए मजबूर होते हैं, वैसे ही दुष्ट अपने कर्मों के कारण नष्ट हो गए और विजेता के उपदेशों से विमुख हो गए।

9. 'और इस प्रकार उन साठ भिक्षुओं का पतन न तो तथागत के कारण हुआ और न ही किसी अन्य के कारण, बल्कि केवल उनके अपने कर्मों के कारण। मान लीजिए, हे राजा, एक व्यक्ति सभी लोगों को अमृत देता है, और वे उसे खाकर स्वस्थ, दीर्घायु और सभी शारीरिक रोगों से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन एक व्यक्ति, उसे खाने पर, अपने खराब पाचन के कारण...'

मर जाए। तो क्या, हे राजा, अमृत दान करने वाला व्यक्ति इसमें किसी अपराध का दोषी होगा?

'नहीं, महोदय।'

हे महाराज, तथागत भी दस हजार लोकों में मनुष्यों और देवताओं को अमृत का उपहार देते हैं; और जो ऐसा करने में सक्षम होते हैं, वे उनके नियमों के अमृत से ज्ञानी हो जाते हैं, जबकि जो सक्षम नहीं होते, वे नष्ट हो जाते हैं और गिर जाते हैं। हे महाराज, भोजन सभी प्राणियों के जीवन को सुरक्षित रखता है। परन्तु कुछ लोग जो इसे खाते हैं, हैजा से मर जाते हैं। क्या भूखों को भोजन कराने वाला व्यक्ति इसमें किसी अपराध का दोषी है?

'नहीं, महोदय।'

'हे राजा, तथागत भी इसी प्रकार दस हजार लोकों में विराजमान मनुष्यों और देवताओं को अपना अमृत प्रदान करते हैं; और जो ऐसा करने में सक्षम होते हैं, वे उनके विधान के अमृत से ज्ञानी हो जाते हैं, जबकि जो सक्षम नहीं होते, वे नष्ट हो जाते हैं और पतन की ओर अग्रसर होते हैं।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[उपदेश देने से होने वाले नुकसान को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।] [तथागत के रहस्य।]

11. [यह दुविधा एक 'महान पुरुष' (महापुरुष) के तीस शारीरिक लक्षणों में से एक से संबंधित है, जो माना जाता है कि प्रत्येक तथागत में होता है, लेकिन चूंकि यह उन मामलों से संबंधित है जिन पर इस शताब्दी में आमतौर पर चर्चा नहीं की जाती है, इसलिए इसे मूल रूप में पढ़ना सबसे अच्छा है।] [मूर्ख व्यक्ति।]

15. 'आदरणीय नागसेना, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा: "

[पैराग्राफ जारी है] हे भाइयों, तथागत वाणी में परिपूर्ण हैं। तथागत की वाणी में ऐसा कोई दोष नहीं है जिसके बारे में उन्हें यह ध्यान रखना पड़े कि किसी और को इसका पता न चले। दूसरी ओर, तथागत ने कालन्द सुदिन्ना के अपराध के अवसर पर प्रथम पारगिका का प्रचार करते हुए, उन्हें कठोर शब्दों में संबोधित किया और उन्हें निकम्मा कहा। और वह वृहत्तर, ऐसा कहे जाने पर, अपने गुरु के भय से भयभीत और पश्चाताप से व्याकुल होकर, उत्तम मार्ग को समझने में असमर्थ रहा। अब यदि पहला कथन सही है, तो यह आरोप कि तथागत ने कालन्द सुदिन्ना को निकम्मा कहा, असत्य होना चाहिए। परन्तु यदि यह सत्य है, तो पहला कथन असत्य होना चाहिए। यह भी अब आपके समक्ष प्रस्तुत एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना है।

16. 'हे महाराज, सारिपुत्त ने जो कहा वह सत्य है। और उस अवसर पर भगवान बुद्ध ने सुदिन्ना को निकम्मा कहा था। परन्तु यह उनकी अभद्रता के कारण नहीं था, बल्कि केवल उनके आचरण की वास्तविक प्रकृति को इस प्रकार इंगित करना था जिससे उन्हें कोई हानि न हो। और यहाँ जो तात्पर्य है वह यह है कि...'

[पैराग्राफ जारी है] "वास्तविक प्रकृति की ओर इशारा करते हुए।" हे राजा, यदि कोई व्यक्ति इस जन्म में चारों सत्यों की अनुभूति प्राप्त नहीं करता, तो उसका मनुष्यत्व (मनुष्य के रूप में जन्म लेना) व्यर्थ है, परन्तु यदि वह भिन्न कर्म करता है तो वह भिन्न हो जाएगा। इसीलिए उसे निष्फल कहा जाता है। और इस प्रकार भगवान बुद्ध ने कलंद सुदिन्ना को सत्य के शब्दों से संबोधित किया, न कि तथ्यों से भिन्न शब्दों से।

17. 'परन्तु, नागसेन, यद्यपि कोई व्यक्ति दूसरे को अपशब्द कहते समय सत्य बोलता है, तब भी हमें उस पर मामूली जुर्माना लगाना चाहिए। क्योंकि वह अपराध का दोषी है, यद्यपि उसने किसी वास्तविक कारण से अपशब्द कहे हों, फिर भी उसने ऐसे शब्दों का प्रयोग करके उसे अपशब्द कहे हों जिनसे शांति भंग हो सकती है।'

'हे राजा, क्या आपने कभी सुना है कि कोई जनता किसी अपराधी के सामने सिर झुकाती हो, या सम्मान में अपनी सीटों से उठती हो, या उसे आदर दिखाती हो, या उसके लिए (आमतौर पर अधिकारियों को दिए जाने वाले) उपहार लाती हो?'

नहीं, यदि किसी व्यक्ति ने किसी भी प्रकार का अपराध किया हो, और यदि वह वास्तव में निंदा और दंड का पात्र हो, तो वे उसका सिर कलम करना या उसे यातना देना अधिक पसंद करेंगे।

या तो उसे जमानत पर बांध दें, या उसे मौत के घाट उतार दें, या उसकी संपत्ति से वंचित कर दें।

'तो क्या हे राजा, भगवान ने न्यायपूर्वक कार्य किया या नहीं?'

'हे श्रीमान, न्यायपूर्वक और अत्यंत उचित तरीके से। और हे नागसेन, जब मनुष्य और देवता जगत को इसके बारे में पता चलेगा, तो उनका अंतरात्मा संवेदनशील हो जाएगा, वे पाप में पड़ने से डरेंगे, इसे देखकर भयभीत हो जाएंगे, और उससे भी अधिक भयभीत हो जाएंगे जब वे स्वयं पापियों के साथ संगति करेंगे या पाप करेंगे।'

18. 'हे राजा, क्या कोई चिकित्सक ऐसे मामले में औषधि के रूप में सुखद चीजें देगा, जब शरीर के सभी रस प्रभावित हों, और पूरा शरीर अव्यवस्थित और रोगग्रस्त हो?'

'नहीं। बीमारी को खत्म करने की इच्छा से वह तीखी और दर्दनाक दवाएं देता था।'

हे राजा, इसी प्रकार तथागत पाप के सभी रोगों को दूर करने के लिए उपदेश देते हैं। तथागत के कठोर वचन भी मनुष्यों को कोमल और दयालु बना देते हैं। हे राजा, जिस प्रकार गर्म पानी किसी भी कोमल वस्तु को नरम और दयालु बना देता है, उसी प्रकार तथागत के कठोर वचन भी लाभप्रद और करुणामय होते हैं, जैसे एक पिता अपने बच्चों के लिए कहता है। हे राजा, जिस प्रकार दुर्गंधयुक्त काढ़े का सेवन और हानिकारक औषधियों का सेवन मनुष्यों के शरीर की दुर्बलताओं को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार तथागत के कठोर वचन भी लाभप्रद और करुणामय होते हैं।

हे राजा, जिस प्रकार रुई का गोला मनुष्य पर गिरने से कोई खरोंच नहीं आती, उसी प्रकार तथागत के शब्द, चाहे कितने भी कठोर हों, कोई हानि नहीं पहुंचाते।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! आपने कई उपमाओं का प्रयोग करके इस समस्या को स्पष्ट कर दिया है।' यह बिल्कुल सही है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[बुद्ध द्वारा सुदिन्ना को कहे गए कठोर शब्दों को लेकर दुविधा का अंत।] [वृक्ष बोल रहा है।]

19. 'आदरणीय नागसेना, तथागत ने कहा:

"ब्रह्मन! तुम एक निर्जीव वस्तु से, जो तुम्हें सुन नहीं सकती, यह क्यों पूछते हो कि वह आज कैसी है? सक्रिय, बुद्धिमान और जीवन से परिपूर्ण, तुम इस निर्जीव वस्तु - इस जंगली पलाश वृक्ष - से कैसे बात कर सकते हो?"

और दूसरी ओर उन्होंने कहा:

और तब एस्पेन वृक्ष ने उत्तर दिया: 'मैं, भारद्वाज, भी बोल सकता हूँ। मेरी बात सुनो।'

'अब, नागसेन, यदि वृक्ष एक अचेतन वस्तु है, तो यह कहना गलत होगा कि एस्पेन वृक्ष ने भारद्वाज से बात की थी। लेकिन यदि यह सच है, तो यह कहना गलत होगा कि वृक्ष अचेतन होता है। यह भी अब आपके सामने एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना होगा।'

20. गुरु ने कहा, हे नागसेन, कि वृक्ष अचेतन होता है। और सर्प वृक्ष ने भारद्वाज से संवाद किया। परन्तु हे राजा, यह अंतिम कथन सामान्य भाषा में किया गया है। क्योंकि यद्यपि वृक्ष अचेतन होने के कारण बोल नहीं सकता, फिर भी "वृक्ष" शब्द का प्रयोग किया गया है।

जैसे कि उसमें निवास करने वाली अप्सरा का नामकरण होता है, और इसी अर्थ में "वृक्ष बोलता है" एक सुप्रसिद्ध मुहावरा है। हे राजा, जैसे अनाज से लदी गाड़ी को अनाज की गाड़ी कहते हैं। परन्तु वह अनाज की नहीं, लकड़ी की बनी होती है, फिर भी उसमें अनाज भरा होने के कारण लोग उसे "अनाज की गाड़ी" कहते हैं। या हे राजा, जैसे जब कोई व्यक्ति खट्टा दूध मथ रहा होता है तो आम कहावत है कि वह मक्खन मथ रहा है। परन्तु वह मक्खन नहीं, बल्कि दूध मथ रहा होता है। या हे राजा, जैसे जब कोई व्यक्ति कोई ऐसी वस्तु बना रहा होता है जो अस्तित्व में नहीं है, तो आम कहावत है कि वह ऐसी वस्तु बना रहा है जो अभी तक अस्तित्व में नहीं है, परन्तु लोग काम पूरा होने से पहले ही उसे पूर्ण मान लेते हैं। तथागत भी धम्म की व्याख्या करते समय आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बोलने वाले पेड़ को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] [बुद्ध की अंतिम बीमारी।]

21. 'आदरणीय नागसेना, पाठ करने वाले बुजुर्गों ने कहा:

"जब उन्होंने कुंडा का भिक्षा ग्रहण किया, तांबे के कारीगर का, - ऐसा मैंने सुना है, - बुद्ध को वह भयानक बीमारी, वह तीव्र पीड़ा हुई जो मृत्यु तक ले जाती है।"

[पैराग्राफ जारी है] और उसके बाद भगवान बुद्ध ने कहा: "हे आनंद, ये दोनों भोजन की भेंटें, जो समान हैं, समान फल देती हैं और समान परिणाम देती हैं, अन्य सभी भेंटों से कहीं अधिक फलदायी और अधिक परिणामदायी हैं।" अब यदि भगवान बुद्ध नागसेन को कुंडा का भिक्षा ग्रहण करने के बाद तीव्र रोग हो गया और उन्हें इतना तीव्र दर्द हुआ कि उनकी मृत्यु हो गई, तो वह दूसरा कथन गलत होना चाहिए। लेकिन यदि वह सही है तो पहला कथन गलत होना चाहिए। हे नागसेन, वह भिक्षा कैसे फलदायी हो सकती है जब वह विष में परिवर्तित हो गई, रोग उत्पन्न किया, उनके जीवन का अंत कर दिया, उनकी जान ले ली? विरोधियों के खंडन के लिए मुझे इसकी व्याख्या कीजिए। लोग इस बात को लेकर असमंजस में हैं, उनका मानना है कि पेचिश उनके लालच में आकर अधिक खाने के कारण हुई होगी।

22.1 हे राजा, भगवान ने कहा कि दो प्रकार के दान समान, समान फलदायी और समान परिणाम वाले होते हैं, और एक अन्य दान से कहीं अधिक फलदायी और कहीं अधिक परिणामदायी होता है। एक वह दान है जिसे ग्रहण करने पर तथागत को परम बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त होता है, और दूसरा वह दान है जिसे ग्रहण करने पर उनका पूर्ण संहार हो जाता है और कुछ भी शेष नहीं रहता। क्योंकि वह दान पुण्य और लाभ से परिपूर्ण है। हे राजा, देवताओं ने यह सोचकर हर्षोल्लास किया, "यह तथागत का अंतिम भोजन होगा," और उस कोमल आत्मा को पोषण की दिव्य शक्ति प्रदान की।

सूअर का मांस। और वह स्वयं अच्छी स्थिति में था, हल्का, स्वादिष्ट, स्वाद से भरपूर और पाचन के लिए अच्छा। यह इस वजह से नहीं था कि भगवान बुद्ध को कोई बीमारी हुई, बल्कि उनके शरीर की अत्यधिक कमजोरी और उनके जीवन के उस समय के कारण जो उन्होंने जी-जान से जी लिया था, यह बीमारी उत्पन्न हुई और बिगड़ती चली गई - ठीक वैसे ही जैसे, हे राजा, जब कोई साधारण आग जल रही हो, यदि उसमें नया ईंधन डाला जाए, तो वह और भी अधिक जल उठेगी - या जैसे जब कोई नदी सामान्य रूप से बह रही हो, यदि उसमें नया ईंधन डाला जाए

भारी बारिश होने पर यह एक प्रचंड नदी बन जाएगी जिसमें पानी का तेज बहाव होगा—या जैसे शरीर अपने सामान्य आकार में होता है, अधिक भोजन करने से वह पहले से अधिक चौड़ा हो जाता है। इसलिए, हे राजा, यह परोसे गए भोजन की गलती नहीं थी, और आप इसके लिए किसी प्रकार की हानि नहीं ठहरा सकते।

23. 'परन्तु, आदरणीय नागसेन, वे दो खाद्य दान इतने विशेष रूप से पुण्यकारी क्यों हैं?'

'क्योंकि उनसे प्राप्त होने वाली उच्चतर स्थितियों के कारण।'

'नागसेना, आप किन परिस्थितियों की बात कर रहे हैं?'

'नौ क्रमिक अवस्थाओं की प्राप्ति के बारे में, जिनसे पहले एक क्रम में और फिर विपरीत क्रम में गुजरा गया।'

'क्या ऐसा नहीं था, नागसेन, कि तथागत ने दो दिनों में ही सर्वोच्च अवस्था प्राप्त की थी?'

'जी हां, हे राजा।'

'हे नागसेना, यह अत्यंत अद्‌भुत और विचित्र बात है कि हमारे भगवान बुद्ध को दिए गए सभी महान और गौरवशाली उपहारों में से एक भी इन दो दानों के बराबर नहीं है। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि यहाँ तक कि जब वे

नौ क्रमिक अवस्थाएँ गौरवशाली हैं, ठीक वैसे ही वे वरदान भी, जो अपनी महिमा के कारण अन्य सभी वरदानों से कहीं अधिक फलदायी और लाभदायक हैं। बहुत अच्छा, नागसेन! यह सच है, और मैं इसे आपकी बात मानकर स्वीकार करता हूँ।

[यहाँ बुद्ध की अंतिम बीमारी से संबंधित दुविधा समाप्त होती है।] [अवशेषों की आराधना।]

24. आदरणीय नागसेना, तथागत ने कहा: "आनंद, तथागत के अवशेषों का आदर करके स्वयं को बाधा न पहुँचाओ।" और दूसरी ओर उन्होंने कहा:

"उस व्यक्ति के अवशेष का सम्मान करो जो सम्मान के योग्य है, ऐसा करने से तुम इस दुनिया से स्वर्ग जाओगे।"

'अब यदि पहला आदेश सही था तो दूसरा गलत होना चाहिए, और यदि दूसरा सही है तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

25. 'आपने जिन दोनों अंशों का उल्लेख किया है, वे भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए थे। लेकिन यह सभी मनुष्यों के लिए नहीं, बल्कि विजेता के पुत्रों के लिए कहा गया था: "हे आनंद, तथागत के अवशेषों का आदर करके स्वयं को बाधित न करो।" आदर करना विजेता के पुत्रों का कार्य नहीं है, बल्कि सभी के सच्चे स्वरूप को समझना है।

जटिल विषयों का अध्ययन, चिंतन का अभ्यास, सतिपथाना के नियमों के अनुसार मनन, सभी चिंतन विषयों के वास्तविक सार को समझना, बुराई से संघर्ष करना और स्वयं के (आध्यात्मिक) कल्याण के प्रति समर्पण। ये वे कार्य हैं जो विजेता के पुत्रों को करने चाहिए, और देवताओं या मनुष्यों में से किसी पर भी आदर करने का दायित्व छोड़ देना चाहिए।

26. हे राजा, यह ठीक उसी प्रकार है जैसे पृथ्वी के राजकुमारों का काम हाथियों, घोड़ों, रथों, धनुषों, तलवारों, दस्तावेजों और संपत्ति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना, क्षत्रिय वंशों की परंपराओं को आगे बढ़ाना, स्वयं युद्ध करना और दूसरों को युद्ध में नेतृत्व करना है, जबकि अन्य साधारण वेस्स और सुद्दा लोगों का काम पशुपालन, व्यापार और पशुओं की देखभाल करना है। या जैसे ब्राह्मणों और उनके पुत्रों का काम ऋग्वेद, यगुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शुभ चिह्नों (शरीर पर) का ज्ञान, कथाएँ, पुराण, शब्दकोश, छंदशास्त्र, ध्वनिशास्त्र और श्लोकों का ज्ञान प्राप्त करना है। व्याकरण, व्युत्पत्ति, ज्योतिष, शकुनों और स्वप्नों और संकेतों की व्याख्या, छह वेदांगों का अध्ययन, सूर्य और चंद्रमा के ग्रहणों का अध्ययन, धूमकेतुओं की गति, देवताओं की गर्जना, ग्रहों के मिलन, उल्कापिंडों के गिरने, भूकंपों, अग्नि प्रलय और आकाश और पृथ्वी पर संकेतों से निकाले जाने वाले पूर्वानुमानों का अध्ययन, अंकगणित का अध्ययन, तर्कशास्त्र का अध्ययन।

कुत्तों, हिरणों, चूहों, तरल पदार्थों के मिश्रणों और पक्षियों की आवाज़ों और चीखों से शकुनों का अर्थ निकालना तथागतों का काम है, जबकि पशुपालन, व्यापार और पशुओं की देखभाल साधारण वेस्स और सुद्दाओं का काम है। हे राजा, तथागत का यही अर्थ था कि "जो काम तुम्हारा नहीं है, उसमें अपना समय और ध्यान लगाओ, बल्कि जो काम तुम्हारा है, उसमें लगाओ।" तथागत ने कहा था, "हे आनंद, तथागत के अवशेषों का आदर करके स्वयं को बाधित मत करो।" और हे राजा, यदि उन्होंने ऐसा न कहा होता, तो भिक्षु उनका कुंड और वस्त्र लेकर उनके द्वारा बुद्ध को श्रद्धा अर्पित करने में लग जाते!

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ अवशेषों के प्रति श्रद्धा को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] [चट्टान का टुकड़ा।]

27. आदरणीय नागसेना, आप भिक्षु कहते हैं कि: "जब भगवान बुद्ध चले, तो पृथ्वी ने, अपनी अचेतन अवस्था में ही, अपने गहरे स्थानों को भर दिया और अपने ऊबड़-खाबड़ स्थानों को समतल कर दिया।" और दूसरी ओर आप कहते हैं कि एक टुकड़े से

पत्थर का टुकड़ा उसके पैर को छूकर निकल गया। जब वह टुकड़ा उसके पैर पर गिर रहा था, तो वह हट क्यों नहीं गया? यदि यह सच है कि अचेतन पृथ्वी अपने गहरे स्थानों को उसके लिए भरा हुआ और ढलानों को समतल बना देती है, तो यह कहना असत्य होगा कि पत्थर के टुकड़े से उसके पैर में चोट लगी। लेकिन यदि बाद वाला कथन सत्य है, तो पहला असत्य होगा। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना है।

28. 'हे महाराज, दोनों कथन सत्य हैं। परन्तु वह चट्टान का टुकड़ा स्वतः नहीं गिरा, वह देवदत्त के कर्म से गिराया गया था। हे महाराज, देवदत्त लाखों जन्मों से भगवान बुद्ध से द्वेष रखता था। इसी द्वेष के कारण उसने एक विशाल चट्टान को उठाया और उसे इस आशा से धकेल दिया कि वह बुद्ध के सिर पर गिरेगी। परन्तु दो अन्य चट्टानें आपस में टकराईं और तथागत तक पहुँचने से पहले ही उसे रोक लिया, और उनके प्रभाव से एक टुकड़ा टूटकर इस प्रकार गिरा कि वह भगवान बुद्ध के चरणों में जा लगा।'

29. 'परन्तु, नागसेन, जिस प्रकार दो चट्टानों ने उस विशाल पिंड को रोका, उसी प्रकार वह टुकड़ा भी रोका जा सकता था।'

लेकिन हे राजा, यदि कोई चीज रोक दी जाए तो वह बच सकती है, फिसल सकती है या खो सकती है—जैसे पानी उंगलियों से फिसल जाता है जब उसे हाथ में लिया जाता है—या दूध, या छाछ, या शहद, या घी, या तेल, या मछली का करी।

या ग्रेवी—या जैसे बारीक, सूक्ष्म, छोटे-छोटे, धूल भरे रेत के कण उंगलियों से फिसल जाते हैं, अगर आप मुट्ठी बंद कर लें—या जैसे चावल कभी-कभी उंगलियों में लेने के बाद मुंह में डालते समय फिसल जाते हैं।

30. 'ठीक है, ऐसा ही सही, नागसेन। मैं मानता हूँ कि चट्टान को रोका गया था। लेकिन उस टुकड़े को कम से कम बुद्ध के प्रति उतना ही सम्मान दिखाना चाहिए था जितना पृथ्वी ने दिखाया।'

हे राजा, बारह प्रकार के व्यक्ति होते हैं जो किसी का लिहाज़ नहीं करते—वासना में डूबा हुआ व्यक्ति, द्वेष में क्रोधित व्यक्ति, मूर्खता में सुस्त व्यक्ति, अभिमान में घमंडी व्यक्ति, विवेकहीन दुष्ट व्यक्ति, आज्ञाकारिता की कमी में हठी व्यक्ति, तुच्छ व्यक्ति, घमंड में बातूनी व्यक्ति, क्रूरता में दुष्ट व्यक्ति, दुख में दुखी व्यक्ति, लोभ से ग्रस्त जुआरी और लाभ की खोज में व्यस्त व्यक्ति। परन्तु वह टुकड़ा, जैसे चट्टानों के टकराने से टूटकर गिरा था, संयोगवश ऐसी दिशा में गिरा कि वह भगवान बुद्ध के चरणों से जा टकराया—ठीक वैसे ही जैसे रेत के महीन, सूक्ष्म और छोटे कण हवा के बल से उड़कर संयोगवश किसी भी दिशा में बिखर जाते हैं। हे राजा, यदि वह किरच उस चट्टान से अलग न हुई होती जिसका वह हिस्सा थी, तो वह भी उनके आपस में टकराने से रुक जाती। परन्तु, जैसा कि वह थी, न तो वह पृथ्वी पर टिकी थी, न ही हवा में स्थिर रही, बल्कि जहाँ कहीं भी गिरी।

संयोगवश ही वह वस्तु भगवान बुद्ध के चरणों से टकराई—ठीक वैसे ही जैसे बवंडर में फंसकर सूखे पत्ते गिर जाते हैं। और उसके इस प्रकार उनके चरणों से टकराने का वास्तविक कारण उस कृतघ्न, दुष्ट देवदत्त का दुखद कर्म था।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध के पैर को छूकर निकल गई किरच का क्या अर्थ है, यह दुविधा समाप्त होती है।] [समाण।]

31. पूज्य नागसेन, भगवान ने कहा: "आसवों के विनाश से मनुष्य समना बन जाता है।" परन्तु दूसरी ओर उन्होंने कहा:

"जिस व्यक्ति में ये चारों गुण होते हैं, उसे ही संसार समना के नाम से जानता है।"

और उस अंश में जिन चार गुणों का उल्लेख किया गया है, वे हैं - धीरज, भोजन में संयम, त्याग और आसक्तियों से मुक्त होना (जो कामवासना, द्वेष और सुस्ती से उत्पन्न होती हैं)। अब ये चारों गुण उन लोगों में भी समान रूप से पाए जाते हैं जो अभी भी अपूर्ण हैं, जिनमें

[पैराग्राफ जारी है] आसव अभी तक पूरी तरह से नष्ट नहीं हुए हैं। इसलिए यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत है, और यदि दूसरा सही है तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

32. 'हे महाराज, ये दोनों कथन भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए हैं। परन्तु दूसरा कथन अमुक-अमुक पुरुषों के गुणों के बारे में है; पहला कथन व्यापक है—कि जिनमें आसव नष्ट हो जाते हैं, वे सभी समना हैं। और इसके अतिरिक्त, जो लोग बुराई के दमन से परिपूर्ण हो जाते हैं, यदि आप उन्हें क्रमानुसार एक-एक करके लें, तो वह समना जिसमें आसव नष्ट हो जाते हैं, सर्वोत्कृष्ट माना जाता है—हे महाराज, जैसे जल या भूमि पर उगने वाले सभी फूलों में चमेली सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है, अन्य सभी प्रकार के फूल मात्र फूल हैं, और यदि उन्हें क्रमानुसार लें, तो चमेली सर्वोत्कृष्ट ही है जिसे लोग सबसे अधिक चाहते और पसंद करते हैं। या हे महाराज, जैसे सभी प्रकार के अनाजों में चावल सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, अन्य सभी प्रकार के अनाज, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, [183] भोजन और शरीर के पोषण के लिए उपयोगी हैं, परन्तु यदि आप उन्हें क्रमानुसार लें, तो चावल सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ समना किसे कहते हैं, इस दुविधा का अंत होता है।]

[बुद्ध का उल्लास।]

33. आदरणीय नागसेन, भगवान ने कहा: "हे भिक्षुओं, यदि कोई मेरी, या हमारे धर्म (धम्म) की, या संघ की प्रशंसा करे, तो तुम प्रसन्नता, आनंद या उल्लास में मत लिप्त हो जाओ।" वहीं दूसरी ओर, सेला ब्राह्मण द्वारा दी गई प्रशंसा से तथागत इतने प्रसन्न, प्रसन्न और प्रफुल्लित हुए कि उन्होंने अपनी अच्छाई को और भी अधिक बढ़ाते हुए कहा:

"मैं राजा हूँ, सेला, धर्म का सर्वोच्च राजा। मैं धर्म के मार्ग पर राजसी रथ का पहिया चलाता हूँ—वह पहिया जिसे कोई वापस नहीं मोड़ सकता!"

अब यदि पहला उद्धृत अंश सही है तो दूसरा गलत होना चाहिए, लेकिन यदि वह सही है तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

34. 'हे महाराज, आपके दोनों उद्धरण सही हैं। लेकिन पहला अंश भगवान बुद्ध ने सत्य, सटीकता, वास्तविकता और तथ्य के अनुरूप बताने के इरादे से कहा था, और

धम्म की वास्तविक प्रकृति, सार और विशिष्ट विशेषताओं के बारे में उन्होंने ज्ञान का वर्णन किया। और दूसरा कथन उन्होंने लाभ या प्रसिद्धि के लिए, न ही गुटबाजी के लिए, और न ही लोगों को अपना अनुयायी बनाने की लालसा में कहा था। बल्कि दया और प्रेम से, और दूसरों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए, यह जानते हुए कि इससे तीन सौ युवा ब्राह्मण सत्य के ज्ञान को प्राप्त करेंगे, उन्होंने कहा: "मैं राजा हूँ, सेला, धर्म का सर्वोच्च राजा।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ मन के उल्लास से संबंधित समस्या समाप्त होती है।] [दया और दंड।]

35. पूज्य नागसेना, भगवान ने कहा:

किसी को भी हानि न पहुँचाते हुए, प्रेम और दया से परिपूर्ण होकर संसार में निवास करो।

और दूसरी ओर उन्होंने कहा: "जो दंड का पात्र हो उसे दंड दो, जो कृपा के योग्य हो उस पर कृपा करो।" अब दंड, नागसेन, का अर्थ है हाथ या पैर काटना, कोड़े मारना, बंधनों में डालना, यातना देना, मृत्युदंड देना, पद में अवमूल्यन करना।

[पैराग्राफ जारी है] अतः ऐसा कथन भगवान बुद्ध के योग्य नहीं है, और उन्हें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए था। क्योंकि यदि पहला आदेश सही है तो यह गलत होना चाहिए, और यदि यह सही है तो किसी को भी हानि न पहुँचाने का आदेश, बल्कि संसार में प्रेम और दया से परिपूर्ण रहने का आदेश गलत होना चाहिए। यह भी अब आपके समक्ष एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना है।'

36. हे महान राजा, भगवान बुद्ध ने वे दोनों आदेश दिए हैं जिनका आपने उल्लेख किया है। पहला आदेश, किसी को हानि न पहुँचाना, बल्कि संसार में प्रेम और दया से परिपूर्ण जीवन जीना—यह सभी बुद्धों द्वारा स्वीकृत सिद्धांत है। और वह श्लोक एक आज्ञा है, धम्म का विस्तार है, क्योंकि धम्म की विशेषता यह है कि वह किसी का हित नहीं बिगाड़ता। और यह कथन भी इससे पूर्णतः मेल खाता है। परन्तु दूसरे आदेश का, जिसका आपने उल्लेख किया है, वह शब्दों का विशेष प्रयोग है [जिसे आपने गलत समझा है। उनका वास्तविक अर्थ है: "जिसे वश में करना चाहिए उसे वश में करो, प्रयास करो, संवर्धन करो, जो प्रयास, संवर्धन और स्वीकृति के योग्य है उसका पक्ष लो"]। हे महान राजा, अहंकारी हृदय को वश में करना है और दीन हृदय को संवर्धित करना है—दुष्ट हृदय को वश में करना है और भले हृदय को संवर्धित करना है—विचारों की लापरवाही को वश में करना है। वश में रहो, और विचारों की सटीकता विकसित करो—जो गलत विचारों में लिप्त है उसे वश में करो, और जिसने सही विचारों को प्राप्त कर लिया है उसे विकसित करो—जो कुलीन नहीं है उसे वश में करो, और जो कुलीन है उसे...

सुसंस्कृत होना चाहिए—लुटेरे को वश में करना चाहिए, और ईमानदार भाई को सुसंस्कृत होना चाहिए।'

37. 'ऐसा ही हो, नागसेन। लेकिन अब, अपने उस आखिरी शब्द में, आपने स्वयं को मेरे वश में कर लिया है, आप उस अर्थ को समझ गए हैं जिसमें मैंने अपना प्रश्न पूछा था। क्योंकि, आदरणीय नागसेन, जो व्यक्ति लुटेरे को वश में करने का प्रयास करता है, वह उसे कैसे वश में कर सकता है?'

'इस प्रकार, हे महान राजा—यदि वह फटकार का पात्र हो तो उसे फटकार दी जाए, यदि जुर्माने का पात्र हो तो उस पर जुर्माना लगाया जाए, यदि निर्वासन का पात्र हो तो उसे निर्वासित किया जाए, यदि मृत्यु का पात्र हो तो उसे मृत्युदंड दिया जाए।'

'तो क्या, नागसेन, लुटेरों को मृत्युदंड देना तथागतों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का हिस्सा है?'

'बिल्कुल नहीं, हे राजा।'

'तो फिर तथागतों ने यह नियम क्यों बनाया है कि लुटेरे को बेहतर शिक्षा दी जानी चाहिए?'

'हे महाराज, जिसे भी मृत्युदंड दिया जाता है, वह तथागतों द्वारा व्यक्त मत के कारण मृत्युदंड भोगता नहीं है। वह अपने कर्मों के फल भोगता है। परन्तु यद्यपि बुद्धों द्वारा धम्म का उपदेश दिया गया है, तो हे महाराज, क्या यह संभव है कि कोई ऐसा व्यक्ति जिसने कोई अपराध न किया हो और निर्दोष भाव से सड़कों पर चल रहा हो, किसी बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा पकड़कर मृत्युदंड दे दिया जाए?'

'हरगिज नहीं।'

'लेकिन क्यों?'

'क्योंकि वह निर्दोष है।'

'हे महाराज, इसी प्रकार, चूंकि चोर को तथागत के वचन से नहीं, बल्कि उसके अपने कर्मों से मृत्युदंड दिया जाता है, तो इस कारण गुरु पर कोई दोष कैसे लगाया जा सकता है?'

'ऐसा नहीं हो सकता, महोदय।'

'तो आप देख सकते हैं कि तथागतों की शिक्षा एक धार्मिक शिक्षा है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ दया और दंड से संबंधित समस्या समाप्त होती है।] [वरिष्ठों की बर्खास्तगी।]

38. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा:

मैं न तो क्रोधित होता हूँ और न ही रूठता रखता हूँ।

लेकिन दूसरी ओर तथागत ने वरिष्ठ सारिपुत्त और मोग्गलाना को, साथ ही उनके शिष्यों के समूह में शामिल भाइयों को भी विदा कर दिया।

[पैराग्राफ जारी है] नागसेन, अब बताओ, तथागत ने शिष्यों को क्रोध में विदा किया था या प्रसन्नता में? कृपया मुझे समझाओ कि ऐसा कैसे हुआ। नागसेन, यदि उन्होंने क्रोध में विदा किया, तो तथागत ने अपने भीतर क्रोध की प्रवृत्ति को पूरी तरह से वश में नहीं किया था। लेकिन यदि यह प्रसन्नता में था, तो उन्होंने अज्ञानता में और बिना उचित कारण के ऐसा किया। यह भी अब तुम्हारे सामने एक दोधारी समस्या है, और तुम्हें इसका हल निकालना होगा।

39. हे राजा, भगवान ने कहा:

मैं न तो क्रोधित होता हूँ और न ही रूठा।

और उसने अपने शिष्यों समेत बुजुर्गों को विदा कर दिया। परन्तु यह क्रोध में नहीं था। हे राजा, मान लो कि कोई मनुष्य किसी जड़, खूंटी, पत्थर, मिट्टी के बर्तन के टुकड़े या ऊबड़-खाबड़ ज़मीन से ठोकर खाकर गिर पड़े। क्या यह होगा कि धरती उससे क्रोधित होकर उसे गिरा दे?

'जी नहीं, बिल्कुल नहीं, महोदय। विशाल पृथ्वी किसी मनुष्य के प्रति न तो क्रोध महसूस करती है और न ही प्रसन्नता। यह पूरी तरह से

द्वेष से मुक्त होने के कारण, न तो उसे किसी की चापलूसी करने की आवश्यकता होती है। यह उसकी स्वयं की लापरवाही के कारण ही हुआ होगा कि वह व्यक्ति ठोकर खाकर गिर गया।

'हे महाराज, तथागत भी किसी मनुष्य के प्रति न तो क्रोधित होते हैं और न ही अभिमानी। तथागत और अरहत-बुद्ध, दोनों ही किसी से द्वेष नहीं रखते और न ही किसी की चापलूसी करने की इच्छा रखते हैं। और उन शिष्यों को उनके कर्मों के फलस्वरूप ही विदा किया गया था। इसी प्रकार सागर किसी शव को अपने साथ नहीं रखता। यदि उसमें कोई मृत शरीर हो, तो वह उसे तुरंत ऊपर फेंक देता है और किनारे पर सूखा छोड़ देता है। परन्तु क्या वह क्रोधित होकर उसे ऊपर फेंकता है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय। विशाल सागर न तो किसी के प्रति क्रोधित होता है और न ही किसी से प्रसन्न होता है। यह किसी को प्रसन्न करने की जरा भी इच्छा नहीं रखता और किसी को हानि पहुंचाने की इच्छा से पूरी तरह मुक्त है।'

'हे महाराज, तथागत भी किसी मनुष्य के प्रति क्रोध नहीं रखते और न ही किसी मनुष्य पर विश्वास करते हैं। तथागत, अरहत-बुद्ध, किसी मनुष्य की सद्‌भावना प्राप्त करने या उसे हानि पहुँचाने की इच्छा से पूर्णतः मुक्त हैं। और उन्हीं के कर्मों के कारण उन शिष्यों को विदा किया गया था। हे महाराज, जिस प्रकार कोई मनुष्य ठोकर खाकर गिर जाता है, उसी प्रकार विजेता के उत्तम उपदेश में ठोकर खाने वाला विदा हो जाता है। जिस प्रकार सागर में शव तैरता है, उसी प्रकार विजेता के उत्तम उपदेश में ठोकर खाने वाला विदा हो जाता है। तथागत ने जब उन शिष्यों को विदा किया, तो यह उनके हित में था, और उनके

लाभ, सुख और शुद्धि के लिए, और ताकि इस प्रकार वे जन्म, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु से मुक्त हो सकें।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ पर वरिष्ठों की बर्खास्तगी से संबंधित समस्या समाप्त होती है।]

तीसरा अध्याय यहीं समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VI: दुविधाओं का समाधान - मेंडका पन्हा अध्याय 4

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

1. आदरणीय नागसेन, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भिक्षुओं, यह मेरे शिष्यों में से इद्धि शक्ति से संपन्न प्रमुख हैं, मेरा तात्पर्य मोग्गलाना से है।" परन्तु दूसरी ओर, कुछ लोग कहते हैं कि उनकी मृत्यु गदाओं से पीट-पीटकर हुई, जिससे उनकी खोपड़ी टूट गई, हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं और उनका सारा मांस और नसें कुचलकर चूर-चूर हो गईं। अब, नागसेन, यदि महान मोग्गलाना ने वास्तव में इद्धि की जादुई शक्ति में सर्वोच्चता प्राप्त कर ली थी, तो यह सत्य नहीं हो सकता कि उनकी मृत्यु गदाओं से पीट-पीटकर हुई। परन्तु यदि उनकी मृत्यु इस प्रकार हुई, तो यह कहना कि वे इद्धि शक्ति से संपन्न प्रमुख थे, गलत है। जो व्यक्ति अपनी इद्धि शक्ति से अपनी ही हत्या को नहीं रोक सका, वह फिर भी देवताओं और मनुष्यों के संसार का सहारा बनने योग्य कैसे हो सकता है? यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

2. हे राजा, भगवान बुद्ध ने घोषणा की कि मोग्गलाना शिष्यों में शक्ति में श्रेष्ठ थे।

इद्धि का। और फिर भी उसे लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला गया। लेकिन ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उस समय वह कर्म की और भी बड़ी शक्ति से ग्रसित था।

3. 'परन्तु, आदरणीय नागसेन, क्या इद्धि शक्ति रखने वाले व्यक्ति से संबंधित ये दोनों बातें—अर्थात उसकी शक्ति का विस्तार और उसके कर्मों का फल—दोनों ही अकल्पनीय नहीं हैं? और क्या अकल्पनीय को अकल्पनीय द्वारा रोका नहीं जा सकता? हे प्रभु, जिस प्रकार फल चाहने वाले बेल को बेल से या आम को आम से गिरा देते हैं, उसी प्रकार क्या अकल्पनीय को भी अकल्पनीय द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाना चाहिए?'

'हे महाराज, कल्पना से परे की चीजों में भी, एक चीज दूसरी से अधिक शक्तिशाली होती है। हे महाराज, जिस प्रकार संसार के राजा एक समान स्वभाव के होते हैं, फिर भी उनमें से एक ऐसा होता है जो बाकियों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने अधीन कर लेता है—ठीक उसी प्रकार, कल्पना से परे की चीजों में कर्म का फल सबसे अधिक शक्तिशाली होता है। कर्म का यही प्रभाव होता है जो सब पर विजय प्राप्त कर लेता है और उन्हें अपने अधीन कर लेता है; और जिस मनुष्य पर कर्म अपना अंतिम परिणाम दे रहा होता है, उस पर कोई अन्य प्रभाव व्यर्थ हो जाता है। हे महाराज, यह वैसा ही है जैसे किसी व्यक्ति ने कानून का उल्लंघन किया हो।'

[पैराग्राफ जारी है] न तो उसकी माँ, न उसके पिता, न उसकी बहनें, न उसका भाई, न उसके मित्र, न उसके घनिष्ठ सहयोगी तब उसकी रक्षा कर सकते हैं। वह राजा के अधीन हो गया है, जो उसके संबंध में अपना आदेश जारी करेगा। और ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने गलत कार्य किया है। यही कर्म का प्रभाव है जो अन्य सभी प्रभावों पर विजय प्राप्त कर लेता है और उन्हें अपने वश में कर लेता है, और कोई अन्य प्रभाव उस व्यक्ति के लिए उपयोगी नहीं हो सकता जिस पर कर्म अपना अपरिहार्य अंत कर रहा है। यह ऐसा है जैसे जब पृथ्वी पर जंगल में आग लग जाती है, तो पानी के हजार घड़े भी उसे बुझाने में सक्षम नहीं होते, बल्कि आग सब पर हावी हो जाती है और उसे अपने वश में कर लेती है। और ऐसा क्यों है? क्योंकि उसकी गर्मी बहुत तीव्र होती है। यही कर्म का प्रभाव है जो अन्य सभी प्रभावों पर विजय प्राप्त कर लेता है और उन्हें अपने वश में कर लेता है; और कोई अन्य प्रभाव उस व्यक्ति के लिए उपयोगी नहीं हो सकता जिस पर कर्म अपना अपरिहार्य अंत कर रहा है। इसीलिए आदरणीय, महान राजा, महान मोग्गलाना, जब कर्म के प्रभाव में आकर गदाओं से पीट-पीटकर मारे जा रहे थे, तब भी वे अपनी इद्धि शक्ति का उपयोग करने में असमर्थ थे।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[मोग्गलाना की हत्या से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[गुप्त सिद्धांत पर।]

4. आदरणीय नागसेन, भगवान बुद्ध ने कहा है: "तथागत द्वारा प्रतिपादित धम्म और विनय (सिद्धांत और विधि) तभी प्रकाशमान होते हैं जब वे प्रकट होते हैं, न कि जब वे छिपे होते हैं।" परन्तु दूसरी ओर, पातिमोक्खा का पाठ और संपूर्ण विनय पिटक गुप्त रखे गए हैं। इसलिए, नागसेन, यदि आप (संघ के सदस्य) न्यायसंगत और उचित कार्य करें और विजेता बुद्ध की शिक्षाओं में आस्था रखें, तो विनय एक खुले विषय के रूप में प्रकाशमान होगा। और ऐसा क्यों होगा? क्योंकि उसमें निहित सभी शिक्षाएँ, अनुशासन, आत्म-संयम, नैतिक और सदाचारी आचरण संबंधी नियम, अपने सार में सत्य और धर्म से परिपूर्ण हैं और हृदय की मुक्ति की ओर ले जाते हैं। लेकिन यदि भगवान बुद्ध ने सचमुच कहा है कि तथागत द्वारा प्रतिपादित धम्म और विनय गुप्त रखने पर नहीं बल्कि प्रदर्शित करने पर ही प्रकाशमान होते हैं, तो यह कहना कि पातिमोक्खा का पाठ और संपूर्ण विनय गुप्त रखा जाना चाहिए, गलत होगा। और यदि यह सही है, तो भगवान बुद्ध का कथन गलत होगा। यह भी अब आपके समक्ष एक दोधारी समस्या है, और आपको इसका हल निकालना होगा।

5. हे महाराज, भगवान बुद्ध ने कहा है कि तथागत द्वारा प्रतिपादित धम्म और विनय

प्रदर्शित करने पर ही प्रकाशमान होते हैं, गुप्त रखने पर नहीं। वहीं दूसरी ओर, पातिमोक्खा का पाठ और संपूर्ण विनय पिटक गुप्त रखे जाते हैं। परन्तु यह बात सभी मनुष्यों पर लागू नहीं होती। इन्हें एक निश्चित सीमा तक ही गुप्त रखा जाता है। और पातिमोक्खा का पाठ उस निश्चित सीमा तक तीन कारणों से गुप्त रखा जाता है—पहला, क्योंकि यह पूर्व तथागतों की परंपरा है; दूसरा, सत्य (धम्म) के प्रति आदर के कारण; और तीसरा, संघ के सदस्य के पद के प्रति आदर के कारण।

6. 'और जहाँ तक पहले का सवाल है, हे महाराज, पूर्ववर्ती तथागतों की यह सर्वमान्य प्रथा थी कि पातिमोक्खा का पाठ केवल संघ के सदस्यों के बीच ही हो, अन्य सभी को छोड़कर। हे महाराज, जिस प्रकार क्षत्रिय गुप्त सूत्र (कुलीनों के) केवल कुलीनों के बीच ही संप्रेषित होते हैं, और यह या वह सत्य विश्व के कुलीनों के बीच सामान्य परंपरा है और अन्य सभी से गुप्त रखा जाता है— उसी प्रकार पूर्ववर्ती तथागतों की यह सर्वमान्य प्रथा थी कि पातिमोक्खा का पाठ केवल संघ के सदस्यों के बीच ही हो।

केवल संघ के सदस्यों के समक्ष ही इसका पाठ किया जाना चाहिए, और इसे अन्य सभी से गुप्त रखा जाना चाहिए। और फिर, हे राजा, जिस प्रकार संसार में अनेक वर्ग हैं, जैसे पहलवान, कलाबाज, बाजीगर, अभिनेता, बैले नर्तक और सूर्य-चंद्रमा, भाग्य की देवी और अन्य देवताओं के रहस्यमय संप्रदाय के अनुयायी। और इन सभी संप्रदायों के रहस्य संप्रदाय के भीतर ही हस्तांतरित किए जाते हैं, और अन्य सभी से गुप्त रखे जाते हैं। ठीक उसी प्रकार, सभी तथागतों की यह सार्वभौमिक प्रथा है कि पातिमोक्खा का पाठ केवल संघ के सदस्यों के समक्ष ही किया जाना चाहिए, और इसे अन्य सभी से गुप्त रखा जाना चाहिए। यही कारण है कि पूर्व तथागतों की परंपरा के अनुसार पातिमोक्खा का पाठ उस सीमा तक गुप्त रखा जाता है।

7. और यह कैसे संभव है कि धम्म के प्रति श्रद्धा के कारण पातिमोक्खा को उस हद तक गुप्त रखा जाता है? हे महाराज, धम्म आदरणीय और महत्वपूर्ण है। जिसने इसमें निपुणता प्राप्त कर ली है, वह दूसरे को इस प्रकार उपदेश दे सकता है: "इस सत्य से परिपूर्ण, इस उत्कृष्ट धम्म को उन लोगों के हाथों में न पड़ने दें जो इससे अनभिज्ञ हैं, जहाँ इसका तिरस्कार और अपमान किया जाएगा, इसे शर्मनाक माना जाएगा, इसका मजाक उड़ाया जाएगा और इसमें दोष निकाले जाएंगे। न ही इसे दुष्टों के हाथों में पड़ने दें जो इसके साथ हर तरह से वैसा ही बुरा व्यवहार करेंगे जैसा वे करते हैं।" हे महाराज, इसी प्रकार पातिमोक्खा का पाठ उस हद तक किया जाता है।

इसका विस्तार धम्म के प्रति श्रद्धावश गुप्त रखा गया है। क्योंकि यदि ऐसा न किया जाए, तो यह उत्तम, सबसे कीमती और सबसे दुर्लभ लाल चंदन की लकड़ी के समान होगा, जिसे सवारा (कंडालों के उस शहर) में लाए जाने पर तिरस्कृत और अपमानित किया जाता है, उसके साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता है, उसे खेल का मैदान बना दिया जाता है और उसमें कमियां निकाली जाती हैं।

8. और यह कैसे संभव है कि भिक्षु संघ के सदस्य की गरिमा के प्रति आदर के कारण पातिमोक्खा को उस हद तक गुप्त रखा जाता है? हे महान राजा, भिक्षु की स्थिति ऐसी महिमा में है जिसकी गणना वजन, माप या मूल्य से नहीं की जा सकती। कोई भी इसका मूल्य नहीं लगा सकता, इसे तौल नहीं सकता, इसे माप नहीं सकता। और पातिमोक्खा का पाठ केवल भिक्षुओं के समक्ष ही किया जाता है, ताकि उस पद पर आसीन कोई भी व्यक्ति सांसारिक लोगों के स्तर तक न गिर जाए। हे राजा, जिस प्रकार वस्त्र, कालीन, हाथी, घोड़े, रथ, सोना, चांदी, रत्न, मोती, स्त्री या उत्तम मादक पेय जैसी कोई भी वस्तु अमूल्य हो, वह सब राजाओं की संपत्ति है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, प्रशिक्षण, भगवान बुद्ध की परंपराओं, विद्या, आचरण और धर्म एवं आत्मसंयम जैसे गुणों में जो कुछ भी सबसे अमूल्य है—वह सब भिक्षु संघ की संपत्ति है। इसीलिए पातिमोक्खा का पाठ उस हद तक गुप्त रखा जाता है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[विनय को गुप्त रखने से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।] [झूठ के दो प्रकार।]

9. 'आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है कि जानबूझकर झूठ बोलना सबसे बड़ा अपराध है (जिसमें संघ से निष्कासन शामिल है)।

[पैराग्राफ जारी है] और फिर उन्होंने कहा: "जानबूझकर झूठ बोलने से भिक्षु एक छोटा अपराध करता है, एक ऐसा अपराध जिसकी स्वीकारोक्ति संघ के किसी अन्य सदस्य के समक्ष की जानी चाहिए।" अब, पूज्य नागसेना, इसमें क्या अंतर है, क्या कारण है कि एक झूठ बोलने से भिक्षु संघ से निष्कासित कर दिया जाता है, और दूसरे झूठ बोलने से वह केवल एक ऐसे अपराध का दोषी होता है जिसका प्रायश्चित किया जा सकता है। यदि पहला निर्णय सही है, तो दूसरा गलत होना चाहिए; लेकिन यदि दूसरा सही है, तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी अब आपके समक्ष रखी गई एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना है।'

10. 'हे महाराज, आपके दोनों कथन सही हैं। परन्तु झूठ बोलना विषयवस्तु के अनुसार हल्का या गंभीर अपराध हो सकता है। क्योंकि हे महाराज, आप क्या सोचते हैं? मान लीजिए कोई व्यक्ति दूसरे को अपने हाथ से थप्पड़ मारे, तो आप उसे क्या दंड देंगे?'

'यदि दूसरा पक्ष इस मामले को नजरअंदाज करने से इनकार करता है, तो हमें भी उसके हमलावर को क्षमा नहीं करना चाहिए, बल्कि उस पर एक या दो पैसे का जुर्माना लगाना चाहिए।'

लेकिन दूसरी ओर, मान लीजिए कि यह आप होते

यदि उसने स्वयं को ही प्रहार किया होता, तो फिर उसकी सजा क्या होती?'

'हमें उसके हाथ और पैर काटकर उसे जिंदा ही उसकी खाल उतार देने की सजा देनी चाहिए, और हमें उसके घर का सारा सामान जब्त कर लेना चाहिए, और उसके परिवार के सभी लोगों को दोनों तरफ से सातवीं पीढ़ी तक मौत के घाट उतार देना चाहिए।'

'पर, हे महाराज, इसमें क्या भेद है? ऐसा क्यों है कि हाथ के एक थप्पड़ के लिए एक पैसे का मामूली जुर्माना है, जबकि आपको दिए गए एक थप्पड़ के लिए इतना भयानक दंड दिया जाता है?'

'जिस व्यक्ति पर हमला हुआ, उसमें अंतर होने के कारण।'

'अच्छा! ठीक इसी तरह, हे महाराज, झूठ बोलना परिस्थितियों के अनुसार हल्का या गंभीर अपराध होता है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[झूठ बोलने में अपराध की गंभीरता से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।] [बोडिसैट का विचार।]

11. आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने आवश्यक शर्तों पर अपने प्रवचन में कहा है: "बहुत पहले ही प्रत्येक बोदिसात के लिए उसके माता-पिता का निर्धारण हो चुका है, और उसे अपने बोदि वृक्ष के लिए किस प्रकार का वृक्ष चुनना है, यह भी निर्धारित हो चुका है।"

[पैराग्राफ जारी है] भिक्षु जो उनके दो प्रमुख शिष्य होंगे, और वह बालक जो उनका पुत्र होगा, और संघ का वह सदस्य जो उनका विशेष सेवक होगा।" लेकिन दूसरी ओर उन्होंने कहा: "जब बोधिसात तुषिता स्वर्ग में देवता की अवस्था में होते हैं, तब वे आठ महान जांच करते हैं - वे समय (कि क्या वह सही समय आ गया है जब उन्हें मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेना चाहिए), और महाद्वीप (जिसमें उनका जन्म होना है), और देश (जहां उनका पुनर्जन्म होना है), और परिवार (जिससे वे संबंधित होंगे), और माता (जो उन्हें जन्म देंगी), और अवधि (जिस दौरान वे गर्भ में रहेंगे), और महीना (जिसमें उनका जन्मदिन आएगा), और उनका त्याग (कब होगा) की जांच करते हैं।" अब, नागसेन, ज्ञान के परिपक्व होने से पहले समझ नहीं होती, परन्तु जब वह अपने चरम पर पहुँच जाता है तो किसी विषय पर विचार करने की प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि सर्वज्ञ मन की दृष्टि से कुछ भी परे नहीं है। तो फिर बोधिसात को समय की खोज क्यों करनी चाहिए, यह सोचते हुए कि "मैं किस क्षण जन्म लूँगा?" और इसी कारण उसे परिवार की खोज क्यों करनी चाहिए, यह सोचते हुए?

[पैराग्राफ जारी है] "मैं किस परिवार में जन्म लूँगा?" और यदि, नागसेना, यह पहले से ही तय है कि बोदिसात के माता-पिता कौन होंगे, तो यह कहना गलत होगा कि उसने "परिवार की जाँच की"। लेकिन यदि यह सच है, तो दूसरा कथन भी गलत होगा। यह भी अब आपके सामने एक दोधारी समस्या है, और आपको इसे हल करना होगा।'

12. हे महाराज, यह तो तय था कि बोदिसात के माता-पिता कौन होंगे, और उन्होंने इस बात की जाँच भी की कि उनका जन्म किस कुल में होगा। परन्तु उन्होंने यह कैसे किया? उन्होंने इस बात पर विचार किया कि उनके माता-पिता कुलीन हों या ब्राह्मण। हे महाराज, भविष्य के घटित होने से पहले आठ बातों की जाँच कर लेनी चाहिए। हे राजा, एक व्यापारी को सामान खरीदने से पहले उसकी जांच करनी चाहिए—एक हाथी को अपनी सूंड से उस रास्ते को आजमाना चाहिए जिस पर वह अभी तक नहीं चला हो—एक गाड़ीवान को उस नदी को आजमाना चाहिए जिसे उसने अभी तक पार नहीं किया हो—एक नाविक को उस किनारे का परीक्षण करना चाहिए जहां वह अभी तक नहीं पहुंचा हो, और इस प्रकार जहाज का मार्गदर्शन करना चाहिए—एक चिकित्सक को अपने रोगी के जीवन की अवधि का पता लगाना चाहिए, इससे पहले कि वह उसका इलाज करे—एक यात्री को बांस के पुल पर चढ़ने से पहले उसकी स्थिरता की जांच करनी चाहिए—एक भिक्षु को यह पता लगाना चाहिए कि सूर्य अस्त होने में कितना समय बचा है, इससे पहले कि वह अपना भोजन शुरू करे—और बोधिसत्वों को जन्म लेने से पहले इस प्रश्न की जांच करनी चाहिए कि क्या उनके लिए किसी कुलीन परिवार में जन्म लेना उचित होगा या किसी ब्राह्मण परिवार में।

[पैराग्राफ जारी है] ये आठ ऐसे अवसर हैं जिन पर कार्रवाई से पहले जांच होनी चाहिए।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[बोडिसैट के विचार से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।] [आत्महत्या पर।]

13. 'आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भिक्षुओं, किसी भाई को आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। जो कोई ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।" और दूसरी ओर आप (संघ के सदस्य) कहते हैं: "भगवान बुद्ध शिष्यों को जिस भी विषय पर संबोधित करते थे, वे हमेशा विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से उन्हें जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के नाश का उपदेश देते थे। और जो कोई जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु पर विजय प्राप्त करता था, उसे वे सर्वोच्च सम्मान देते थे।" अब यदि भगवान बुद्ध ने आत्महत्या का निषेध किया है, तो आपका यह कथन गलत होना चाहिए, लेकिन यदि नहीं, तो आत्महत्या का निषेध गलत होना चाहिए। यह भी अब आपके समक्ष एक दोधारी समस्या है, और आपको इसका हल निकालना होगा।'

14. 'हे महाराज, जिस नियम का आप उल्लेख कर रहे हैं, वह भगवान बुद्ध द्वारा निर्धारित किया गया था, और फिर भी हमारा वह कथन सत्य है जिसका आप जिक्र कर रहे हैं। और इसका एक कारण है,

जिस कारण से भगवान ने (जीवन के विनाश को) मना किया, और साथ ही (दूसरे अर्थ में) हमें इसके लिए प्रेरित भी किया।

'नागसेना, इसका कारण क्या हो सकता है?'

'हे राजा, सदाचार में परिपूर्ण, भला मनुष्य मनुष्यों के लिए औषधि के समान है, क्योंकि वह बुराई के विष का प्रतिकार है; वह मनुष्यों के लिए जल के समान है, क्योंकि वह बुरे स्वभाव की धूल और अशुद्धियों को दूर करता है; वह मनुष्यों के लिए रत्न-जगत के समान है, क्योंकि वह उन्हें धर्म के सभी गुणों से परिपूर्ण करता है; वह मनुष्यों के लिए नाव के समान है, क्योंकि वह उन्हें कामवासना, अहंकार, भ्रम और अज्ञान की चार उफनती धाराओं के पार ले जाता है; वह मनुष्यों के लिए कारवां स्वामी के समान है, क्योंकि वह उन्हें पुनर्जन्मों के रेतीले रेगिस्तान से पार ले जाता है; वह मनुष्यों के लिए शक्तिशाली वर्षा बादल के समान है, क्योंकि वह उनके हृदयों को संतोष से भर देता है; वह मनुष्यों के लिए शिक्षक के समान है, क्योंकि वह उन्हें सभी अच्छाइयों में प्रशिक्षित करता है; वह मनुष्यों के लिए अच्छे मार्गदर्शक के समान है, क्योंकि वह उन्हें शांति का मार्ग दिखाता है।' हे राजा, भगवान बुद्ध ने समस्त प्राणियों पर अपनी दया दिखाते हुए यह आदेश दिया, "हे भिक्षुओं, किसी भाई को आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। जो भी ऐसा करेगा, उसके साथ विधि के अनुसार व्यवहार किया जाएगा।" इसी कारण भगवान बुद्ध ने (आत्महत्या) को निषिद्ध किया। और कहा गया, हे राजा,

वाक्पटु कुमार कस्सपा ने जब रागन्या पायासी को परलोक का वर्णन करते हुए कहा था, "जब तक सदाचारी जीवन जीने वाले और सुंदर चरित्र वाले समन और ब्राह्मण विद्यमान रहेंगे - चाहे वह समय कितना भी लंबा क्यों न हो - वे तब तक जनसमूह के लाभ और सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के भले, लाभ और समृद्धि के लिए आचरण करते रहेंगे!"

15. हे भगवान बुद्ध ने हमें (जीवन समाप्त करने के लिए) क्यों प्रेरित किया? हे राजा, जन्म पीड़ादायक है, और वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु भी। दुःख पीड़ादायक है, और विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा भी। अप्रिय संगति पीड़ादायक है, और सुखद संगति से वियोग भी। माता की मृत्यु पीड़ादायक है, या पिता की, या भाई की, या बहन की, या पुत्र की, या पत्नी की, या किसी भी रिश्तेदार की। परिवार का विघटन पीड़ादायक है, और रोग का कष्ट, धन की हानि, सद्‌गुणों में गिरावट और अंतर्दृष्टि की हानि भी।

[पैराग्राफ जारी है] अत्याचारियों, लुटेरों, शत्रुओं, अकाल, आग, बाढ़, ज्वार-भाटे, भूकंप, मगरमच्छों या घड़ियालों से उत्पन्न भय पीड़ादायक होता है। स्वयं पर या दूसरों पर लगने वाले संभावित दोष का भय, दंड का भय, दुर्भाग्य का भय पीड़ादायक होता है। साथियों की सभाओं में शर्मिंदगी से उत्पन्न भय पीड़ादायक होता है, आजीविका के साधनों को लेकर चिंता पीड़ादायक होती है, मृत्यु का पूर्वाभास पीड़ादायक होता है। अपराधियों को दी जाने वाली सजाएँ पीड़ादायक होती हैं, जैसे कोड़ों से कोड़े मारना, डंडों से कोड़े मारना, हाथ काटना, पैर काटना, हाथ और पैर काटना, कान काटना, नाक काटना, कान और नाक काटना। देशद्रोहियों को दी जाने वाली यातनाएँ अत्यंत पीड़ादायक होती हैं—जैसे कि खिचड़ी में खिचड़ी डालना (अर्थात, सिर में खिचड़ी डालना जिसके ऊपर से खोपड़ी की हड्डी निकाल दी गई हो)—या शंख का मुकुट पहनाना (अर्थात, खोपड़ी को कंकड़ से तब तक रगड़ना जब तक वह पॉलिश किए हुए शंख की तरह चिकनी न हो जाए)—या राहु का मुख (अर्थात, मुंह को लोहे की कीलों से खुला रखना, उसमें तेल डालना और उसमें बाती जलाना)—या अग्नि माला या हाथ की मशाल (अर्थात, जीवित मशाल बनाना, पूरे शरीर को या केवल बाहों को तेल लगे कपड़ों में लपेटकर आग लगाना)—या साँप की पट्टियाँ (अर्थात, गर्दन से कूल्हों तक पट्टियाँ उतारना, जिससे त्वचा पैरों के चारों ओर पट्टियों में गिर जाए)—या छाल की पोशाक (अर्थात, गर्दन से नीचे तक जीवित ही खाल उतारना, और प्रत्येक पट्टी को

त्वचा को उतारते ही बालों से बांध दिया जाता है, ताकि ये पट्टियाँ चारों ओर एक घूंघट का रूप ले लें) - या चित्तीदार मृग (अर्थात, घुटनों और कोहनियों को एक साथ बांधकर लोहे की एक प्लेट पर बिठाया जाता है जिसके नीचे आग जलाई जाती है) - या मांस के हुक (अर्थात, लोहे के हुकों की एक पंक्ति पर लटकाया जाता है) - या पैसे (अर्थात, पूरे शरीर से पैसे के आकार के मांस के टुकड़े काटे जाते हैं) - या खारे पानी की दरारें (अर्थात, चाकू या नुकीली चीजों से पूरे शरीर पर कट लगाए जाते हैं, और फिर घावों पर नमक और कास्टिक तरल पदार्थ डाले जाते हैं) - या छड़ घुमाना (अर्थात, कान की जड़ से गुजरने वाली लोहे की छड़ से जमीन पर गाड़ दिया जाता है, और फिर पैर से गोल-गोल घसीटा जाता है) - या पुआल की सीट (अर्थात, डंडों से इतनी बुरी तरह पीटा जाता है कि

हड्डियाँ टूट जाती हैं और शरीर भूसे के ढेर जैसा हो जाता है)—या खौलते तेल से लेप किया जाता है, या कुत्तों द्वारा खाया जाता है, या जीवित सूली पर चढ़ाया जाता है, या सिर कलम कर दिया जाता है। हे राजा, जन्म-पुनर्जन्म के चक्र में फँसे प्राणी को ऐसे-ऐसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। हे राजा, जिस प्रकार हिमालय पर्वत पर बरसा जल गंगा में चट्टानों, कंकड़ों, भंवरों, जलप्रपातों और वृक्षों के ठूंठों और शाखाओं को पार करते हुए बहता है, जो उसके मार्ग में बाधा डालते हैं, ठीक उसी प्रकार जन्म-पुनर्जन्म के चक्र में फँसे प्रत्येक प्राणी को ऐसे-ऐसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। इसलिए, पुनर्जन्म का निरंतर चक्र पीड़ा से भरा है, और जब यह चक्र समाप्त होता है तो आनंद मिलता है। और उस अंत के लाभ, उस चक्र में निहित विपत्ति की ओर इशारा करते हुए, हे महान राजा, भगवान बुद्ध ने हमें जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से परे जाकर, उस पुनर्जन्मों के चक्र के अंतिम लक्ष्य को जानने के लिए प्रेरित किया। हे राजा, यही वह भाव है जिसने भगवान बुद्ध को हमें (जीवन का अंत करने के लिए) प्रेरित करने के लिए प्रेरित किया।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! मैंने जो पहेली रखी थी, वह अच्छी तरह से सुलझ गई है, आपने जो कारण बताए हैं, वे भी अच्छी तरह से स्पष्ट हैं। ऐसा ही है, और मैं इसे आपकी बात मानकर स्वीकार करता हूँ।'

[आत्महत्या से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[एक स्नेही स्वभाव।]

16. [1981 'आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है: "हे भाइयों, प्रेम की भावना से उत्पन्न हृदय की मुक्ति की ऊंचाइयों तक पहुँचने, इसे अभ्यास करने, आदत बनाने, अपने भीतर विस्तार करने, उन्नति के साधन के रूप में उपयोग करने और आचरण के आधार के रूप में अपनाने, इसका अनुसरण करने, इसे संचित करने और इस प्रकार ऊपर उठने से ग्यारह लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। और ये ग्यारह क्या हैं? जो ऐसा करता है वह शांति से सोता है और शांति से जागता है। वह कोई पापी स्वप्न नहीं देखता। वह मनुष्यों और अन्य प्राणियों का प्रिय हो जाता है। देवता उसकी रक्षा करते हैं। न तो आग, न विष, न तलवार उसे कोई हानि पहुँचाती है। वह शीघ्र ही शांत हो जाता

है। उसका चेहरा शांत होता है। वह मृत्यु का सामना निर्भीक होकर करता है, और यदि वह (अरहतत्व की) सर्वोच्च स्थिति तक नहीं पहुँचता है, तो वह ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म के लिए निश्चित है।" लेकिन दूसरी ओर आप (सदस्यों)

(सम्विम) कहते हैं कि "राजकुमार साम, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भाव का अभ्यास करते हुए, जब वे (इसी कारण) हिरणों के झुंड के पीछे जंगल में भटक रहे थे, तो राजा पिलियाक्खा द्वारा चलाए गए विषैले बाण से उन्हें चोट लगी और वे वहीं बेहोश होकर गिर पड़े।" अब, पूज्य नागसेन, यदि भगवान बुद्ध के वचनों से उद्धृत अंश सही है, तो आपका यह कथन गलत होना चाहिए। लेकिन यदि राजकुमार साम की कहानी सही है, तो यह सत्य नहीं हो सकता कि जो सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भाव का अभ्यास करता है, उसे न तो अग्नि, न विष और न ही तलवार हानि पहुँचा सकती है। यह भी एक दोधारी समस्या है, इतनी सूक्ष्म, इतनी जटिल, इतनी नाजुक और इतनी गहरी कि इसे सुलझाने का विचार भी सबसे सूक्ष्म मन वाले मनुष्य के शरीर पर पसीना ला सकता है। यह समस्या अब आपके समक्ष है। इस जटिल गुत्थी को सुलझाइए। इस मामले पर प्रकाश डालें ताकि भविष्य में उठने वाले विजेता के उन पुत्रों की इच्छा पूरी हो सके।

हे राजा, जैसा आपने उद्धृत किया है, भगवान बुद्ध ने कहा: प्रेम साधना में लीन राजकुमार समा, जब वन में भटक रहे थे और हिरणों का झुंड उनका पीछा कर रहा था, तभी राजा पिलियाक्खा द्वारा चलाए गए विषैले बाण से घायल हो गए और वहीं बेहोश होकर गिर पड़े। लेकिन इसका एक कारण है। और वह कारण क्या है? बस यही कि वे सद्गुण (जैसा कि आपने उद्धृत अंश में कहा है)

प्रेम का अभ्यस्त होना (जैसे प्रेम का अभ्यास करना) ऐसे गुण हैं जो प्रेम करने वाले के व्यक्तित्व से नहीं जुड़े होते, बल्कि उसके हृदय में जागृत प्रेम की वास्तविक उपस्थिति से जुड़े होते हैं। और जब राजकुमार साम जल-घड़ा उलट रहे थे, उसी क्षण वे प्रेम की वास्तविक भावना से विमुख हो गए। हे राजा, जिस क्षण किसी व्यक्ति को प्रेम का अहसास हो जाता है, उस क्षण न तो आग, न विष, न तलवार उसे हानि पहुँचा सकती है। यदि कोई उसे हानि पहुँचाने के इरादे से आए भी, तो वे उसे देख भी नहीं पाएँगे, न ही उन्हें उसे चोट पहुँचाने का अवसर मिलेगा। परन्तु हे राजा, ये गुण व्यक्ति में अंतर्निहित नहीं होते, बल्कि उसके हृदय में जागृत प्रेम की वास्तविक उपस्थिति में निहित होते हैं।

'मान लीजिए, हे राजा, कि कोई व्यक्ति अलौकिक शक्ति से युक्त एक लुप्त हो जाने वाली जड़ को अपने हाथ में ले ले; और जब तक वह जड़ उसके हाथ में रहे, कोई भी सामान्य व्यक्ति उसे देख न सके। तब वह गुण उस व्यक्ति में नहीं होगा। बल्कि वह गुण जड़ में ही निहित होगा कि सामान्य मनुष्यों की दृष्टि रेखा के समक्ष स्थित वस्तु भी अदृश्य हो जाए। हे राजा, ठीक यही गुण उस प्रेम की अनुभूति में निहित है जिसे मनुष्य अपने हृदय में जागृत करता है।'

या फिर यह उस व्यक्ति के मामले जैसा है जो एक सुगठित, मजबूत गुफा में प्रवेश कर चुका है। बारिश का कोई भी तूफान, चाहे वह कितना भी तेज क्यों न हो, उसे गीला नहीं कर पाएगा। लेकिन यह किसी अंतर्निहित गुण के कारण नहीं होगा।

उस मनुष्य में। गुफा का यह एक अंतर्निहित गुण होगा कि इतनी तेज बारिश भी उस मनुष्य को भिगो नहीं सकी। और ठीक यही गुण उस प्रेम की अनुभूति में निहित है जिसे मनुष्य ने अपने हृदय में जागृत किया है।

'यह कितना अद्भुत है, नागसेन, और कितना विचित्र है कि प्रेम की अनुभूति सभी बुरी मानसिक अवस्थाओं को दूर करने की शक्ति रखती है।'

'जी हां! प्रेम का अभ्यास अच्छे और बुरे दोनों ही प्राणियों में सभी सद्गुणी मानसिक अवस्थाओं को उत्पन्न करता है। चेतन अस्तित्व के बंधन में बंधे सभी प्राणियों के लिए प्रेम का यह अभ्यास अत्यंत लाभकारी है, और इसलिए इसका लगन से अभ्यास करना चाहिए।'

[प्रेम की शक्ति से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।] [देवदत्त।]

17. 'आदरणीय नागसेना, क्या अच्छे कर्म करने वाले और बुरे कर्म करने वाले दोनों को एक ही परिणाम भुगतना पड़ता है, या दोनों मामलों में कोई अंतर है?'

'हे राजा, अच्छे और बुरे में अंतर है। अच्छे कर्मों का फल सुखद होता है और वे सग्ग की ओर ले जाते हैं, जबकि बुरे कर्मों का फल दुखद होता है और वे निरय की ओर ले जाते हैं।'

लेकिन, आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं कि देवदत्त पूरी तरह से दुष्ट और दुष्ट स्वभाव से परिपूर्ण था, और बोधिसात पूरी तरह से शुद्ध और शुद्ध स्वभाव से परिपूर्ण था। फिर भी, देवदत्त अपने-अपने जन्मों में न केवल बोधिसात के समतुल्य था, बल्कि कभी-कभी प्रतिष्ठा और अनुयायियों की संख्या दोनों में उससे श्रेष्ठ भी था।

18. 'इस प्रकार, नागसेन, जब देवदत्त बनारस नगर में राजा ब्रह्मदत्त के पुरोहित (कुलीन ब्राह्मण, राजसी पुरोहित) बने, तब बोधिसात एक दुष्ट कंदाल (अछूत) था जिसे एक मंत्र कंठस्थ था। और अपने मंत्र को बार-बार दोहराने से वह असमय आम उगा लेता था।'

यह एक ऐसा मामला है जिसमें बोदिसात जन्म से देवदत्त से हीन था, प्रतिष्ठा में भी उससे हीन था।

19. 'और फिर, जब देवदत्त राजा बना, पृथ्वी का एक शक्तिशाली सम्राट, जो सभी इंद्रिय सुखों का आनंद लेता था, तब बोधिसात एक हाथी था, जिसे राजा के उपयोग के लिए सभी प्रकार के आभूषणों से सजाया गया था। और राजा, उसकी सुंदर और मनमोहक चाल-ढाल देखकर क्रोधित हो गया और हाथी को मरवाने की आशा में हाथी प्रशिक्षक से कहा: "प्रशिक्षक, इस हाथी को ठीक से प्रशिक्षित नहीं किया गया है, इसे 'आकाश पर चलना' नामक करतब दिखाओ।" उस स्थिति में भी बोधिसात देवदत्त से हीन था, - वह केवल एक मूर्ख जानवर था।'

20. और फिर, जब देवदत्त अनाज फटककर जीविका कमाने वाला व्यक्ति बन गया, तब

बोधिसात एक बंदर था जिसे "विशाल पृथ्वी" कहा जाता था। यहाँ फिर से हमें पशु और मनुष्य के बीच का अंतर दिखाई देता है, और बोधिसात जन्म से देवदत्त से हीन था।

21. 'और फिर, जब देवदत्त पुरुष बने, जिनका नाम सोनुत्तरा था, जो एक नेसादा (आदिवासियों की एक बहिष्कृत जनजाति, जो शिकार करके जीवन यापन करती थी) थे, और हाथी के समान बलवान और शारीरिक रूप से शक्तिशाली थे, तब बोधिसात "छह दांत वाले" नाम से हाथियों के राजा थे। और उस जन्म में, शिकारी ने हाथी का वध किया। उस स्थिति में भी देवदत्त श्रेष्ठ थे।'

22. 'और फिर, जब देवदत्त मनुष्य बन गया, जंगलों में भटकने लगा, बेघर हो गया, तब बोधिसात एक पक्षी था, एक तीतर जो वैदिक मंत्रों का ज्ञाता था। और उस जन्म में भी लकड़हारे ने उस पक्षी को मार डाला। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त जन्म से श्रेष्ठ था।'

23. 'और फिर, जब देवदत्त बनारस का राजा बना, जिसका नाम कलाबु था, तब बोधिसात एक तपस्वी था जो पशुओं के प्रति दया का उपदेश देता था। और राजा (जो खेल-कूद का शौकीन था), तपस्वी से क्रोधित होकर, उसके हाथ-पैर बांस की कोंपलों की तरह कटवा दिए। उस जन्म में भी, देवदत्त

वह जन्म और प्रतिष्ठा दोनों ही दृष्टि से पुरुषों में श्रेष्ठ था।

24. 'और फिर, जब देवदत्त मनुष्य बना, एक लकड़हारा, तब बोधिसत् नंदीय वानर राजा था। और उस जन्म में भी मनुष्य ने वानर को, उसकी माता को और उसके छोटे भाई को मार डाला। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही जन्म से श्रेष्ठ था।'

25. 'और फिर, जब देवदत्त पुरुष बन गए, एक नग्न तपस्वी, जिनका नाम करम्भिया था, तब बोधिसात एक नागराज थे जिन्हें "पीला" कहा जाता था। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही जन्म से श्रेष्ठ थे।'

26. 'और फिर, जब देवदत्त पुरुष बन गया, लंबे उलझे बालों वाला एक धूर्त तपस्वी, तब बोधिसात एक प्रसिद्ध सूअर था, जिसका नाम "बढ़ई" था। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही जन्म से श्रेष्ठ था।'

27. 'और फिर, जब देवदत्त केत वंश में सुर परिकारा नामक राजा बना, जिसके पास मनुष्यों के सिर से ऊपर हवा में यात्रा करने की शक्ति थी, तब बोधिसात एक ब्राह्मण था।

जिसका नाम कपिला था। इसलिए उस स्थिति में भी देवदत्त ही जन्म और प्रतिष्ठा में श्रेष्ठ थे।

28. 'और फिर, जब देवदत्त साम नाम से पुरुष बने, तब बोधिसात हिरणों में रुरु नाम से राजा बने। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही जन्म से श्रेष्ठ थे।'

29. 'और फिर, जब देवदत्त पुरुष बन गया, जंगल में भटकने वाला एक शिकारी, तब बोधिसात एक नर हाथी था, और उस शिकारी ने सात बार हाथी के दांत तोड़कर निकाल लिए। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही अपने जन्म के वर्ग के अनुसार श्रेष्ठ था।'

30. 'और फिर, जब देवदत्त विश्व को जीतने की चाह रखने वाले सियार के समान बन गया और उसने भारत के सभी देशों के राजाओं को अपने अधीन कर लिया, तब बोधिसत् विदुर नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति थे। अतः उस स्थिति में भी देवदत्त ही यश में श्रेष्ठ थे।'

31. 'और फिर, जब देवदत्त बने

जिस हाथी ने चीनी तीतर के बच्चे को मार डाला, बोदिसात भी एक हाथी था, जो अपने झुंड का सरदार था। तो उस मामले में वे दोनों बराबर थे।'

32. 'और फिर, जब देवदत्त अधर्मी नाम का यक्ष बन गया, तब बोधिसात भी धर्मी नाम का यक्ष बन गया। अतः उस स्थिति में भी वे दोनों समान थे।'

33. 'और फिर, जब देवदत्त नाविक बना, पाँच सौ परिवारों का मुखिया, तब बोदिसात भी नाविक बना, पाँच सौ परिवारों का मुखिया। अतः उस स्थिति में भी वे दोनों समान थे।'

34. 'और फिर, जब देवदत्त पांच सौ रथों का सरदार बनकर रथों का मुखिया बना, तब बोदिसात भी पांच सौ रथों का सरदार बनकर रथों का मुखिया बन गया। अतः उस स्थिति में भी वे दोनों समान थे।'

35. 'और फिर, जब देवदत्त हिरणों का राजा बना, जिसका नाम साखा था, तब बोधिसात हिरणों का राजा बना, जिसका नाम निग्रोध था। अतः उस स्थिति में भी वे दोनों समान थे।'

36. 'और फिर, जब देवदत्त साखा नाम से सेनापति बना, तब बोदिसात ने

निग्रोधा नाम का एक राजा था। इसलिए उस स्थिति में भी वे दोनों बराबर थे।

37. 'और फिर, जब देवदत्त ब्राह्मण बन गया, जिसका नाम खंडाहाल था, तब बोधिसात राजकुमार था, जिसका नाम कंद था। अतः उस स्थिति में खंडाहाल श्रेष्ठ था।'

38. 'और फिर, जब देवदत्त राजा बना, जिसका नाम ब्रह्मदत्त था, तब बोधिसात उसका पुत्र था, जिसे महा पद्मा राजकुमार कहा जाता था। उस समय राजा ने अपने पुत्र को सात बार उस चट्टान से नीचे फेंक दिया, जहाँ से डाकुओं को फेंका जाता था। और यद्यपि पिता अपने पुत्रों से श्रेष्ठ होते हैं, उस स्थिति में भी देवदत्त ही श्रेष्ठ था।'

39. 'और फिर, जब देवदत्त महा पटापा नाम से राजा बना, तब उसका पुत्र धम्मपाल बोधिसात था; और उस राजा ने अपने पुत्र के हाथ-पैर और सिर कटवा दिए। अतः उस मामले में भी देवदत्त श्रेष्ठ था।'

40. 'और अब फिर, इस जीवन में, वे शाक्य वंश में थे, और बोधिसात बुद्ध बन गए, सर्वज्ञानी, जगत के नेता, और देवदत्त ने संसार छोड़कर देवताओं के भी श्रेष्ठ, उनके द्वारा स्थापित संघ में शामिल हो गए, और इद्धि की शक्तियों को प्राप्त करके, स्वयं बुद्ध बनने की लालसा से भर गए। अब, हे परम पूज्य नागसेन! क्या मैंने जो कुछ कहा है वह सत्य, न्यायसंगत और सटीक नहीं है?'

41. 'हे महान राजा, आपने अब जो भी अनेक बातें प्रतिपादित की हैं, वे सब सत्य हैं, अन्यथा नहीं।'

'तो, नागसेन, यदि काला और सफेद एक ही प्रकार के न हों, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्छाई और बुराई का फल बराबर होता है।'

नहीं, ऐसा नहीं है, महाराज! अच्छाई और बुराई का परिणाम एक जैसा नहीं होता। देवदत्त का सबने विरोध किया। बोधिसात के प्रति कोई शत्रुता नहीं रखता था। और देवदत्त की बोधिसात के प्रति जो शत्रुता थी, वह प्रत्येक जन्म में परिपक्व होकर फलदायी हुई। और इसी प्रकार, जब देवदत्त विश्व के स्वामी बन गए, तो उन्होंने गरीबों की रक्षा की, लोगों के लिए पुल, न्यायलय और विश्रामगृह बनवाए, और अपनी इच्छा अनुसार सामंतों, ब्राह्मणों, गरीबों, जरूरतमंदों और यात्रियों को दान दिया। इसी आचरण के फलस्वरूप वे जन्म-जन्मांतर तक इतनी समृद्धि के भोगते रहे। हे महाराज, भला किसके बारे में यह कहा जा सकता है कि वह उदारता, संयम, आत्म-नियंत्रण और उपसथ के पालन के बिना समृद्धि प्राप्त कर सकता है?

और जब, हे राजा, आप कहते हैं कि देवदत्त और बोधिसात जन्म-जन्मांतर तक एक-दूसरे के साथ यात्रा करते थे, तो उनका यह मिलन केवल सौ, हज़ार या एक लाख जन्मों के अंत में ही नहीं हुआ, बल्कि वास्तव में अनंत काल तक निरंतर और बार-बार होता रहा। क्योंकि आपको इस मामले को भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए तुलनात्मक अध्ययन के प्रकाश में देखना चाहिए।

अंधा कछुआ और मनुष्य का जन्म। और ऐसा मिलन केवल देवदत्त के साथ ही नहीं हुआ था। हे राजा, सारिपुत्त भी हजारों जन्मों से बोधिसात के पिता, दादा, चाचा, भाई, पुत्र, भतीजा या मित्र थे; और बोधिसात भी सारिपुत्त के पिता, दादा, चाचा, भाई, पुत्र, भतीजा या मित्र थे।

'हे राजा, वास्तव में सभी प्राणी, जो विभिन्न रूपों में जन्म-मृत्यु के चक्र में बहते हैं, उसमें घूमते हुए सुखद और अप्रिय साथियों से मिलते हैं—ठीक वैसे ही जैसे पानी धारा में घूमते हुए शुद्ध और अशुद्ध पदार्थों से, सुंदर और बदसूरत से मिलता है।'

और जब, हे राजा, देवदत्त, जो स्वयं देवता थे, ने अधर्म किया और दूसरों को भी अधर्म के मार्ग पर अग्रसर किया, तो उन्हें अनंत काल तक नरक में जलाया गया। परन्तु बोधिसात, जो स्वयं देवता थे, ने धर्मी थे और दूसरों को भी धर्मी मार्ग पर अग्रसर किया, उन्होंने भी अनंत काल तक स्वर्ग के समस्त आनंद में निवास किया। और इसी जीवन में, देवदत्त, जिन्होंने बुद्ध के विरुद्ध दंड का षड्यंत्र रचा और संघ में फूट डाली, तथागत पृथ्वी में समा गए।

सर्वज्ञान प्राप्त कर, बुद्धत्व की अंतर्दृष्टि प्राप्त की, और पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाली हर चीज के विनाश से पूर्णतः मुक्त हो गए।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ देवदत्त की पूर्व जन्मों में बोधिसात से श्रेष्ठता को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[महिलाओं की चालाकियाँ।]

42. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है:

अवसर, गोपनीयता और सही प्रेमी के साथ, सभी महिलाएं गलत राह पर चली जाती हैं—हाँ, दूसरों को निराश करती हैं, यहाँ तक कि एक अपंग के साथ भी।

लेकिन दूसरी ओर यह भी कहा जाता है: "महोषधा की पत्नी अमरा, जब अपने पति के यात्रा पर जाने के दौरान गाँव में अकेली रह गई, तो वह एकांत में रही और अपने पति को एक पुरुष के अपने स्वामी के समान मानते हुए, उसने हजार सिक्कों के प्रलोभन में भी कोई कुकर्म करने से इनकार कर दिया।" अब यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत होना चाहिए; और यदि दूसरा सही है, तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना है।

43. हे महाराज, जैसा आपने उद्धृत किया है, महोषधा की पत्नी अमरा के आचरण के विषय में ऐसा कहा जाता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह उन हजार सिक्कों को प्राप्त करने पर सही पुरुष के साथ अनुचित व्यवहार करती? या यदि उसे अवसर, गोपनीयता की निश्चितता और एक उपयुक्त वर मिलता, तो क्या वह ऐसा नहीं करती? अब, इस मामले पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि अमरा इनमें से किसी भी बात को लेकर निश्चित नहीं थी।

इन सब बातों के कारण, इस दुनिया में निंदा के भय से और परलोक में नरक की पीड़ाओं के भय से, उसे यह अवसर अनुपयुक्त लगा। और क्योंकि वह जानती थी कि कुकर्म का फल कितना कड़वा होता है, और क्योंकि वह अपने प्रियजन को खोना नहीं चाहती थी, और क्योंकि वह अपने पति का बहुत सम्मान करती थी, और क्योंकि वह अच्छाई का आदर करती थी और जीवन की नीचता से घृणा करती थी, और क्योंकि वह अपने पारंपरिक जीवन शैली को तोड़ना नहीं चाहती थी—इन सभी कारणों से उसे यह अवसर अनुपयुक्त लगा।

और, इसके अलावा, उसने गलत काम करने से इनकार कर दिया क्योंकि विचार करने पर उसे यकीन नहीं था कि वह इस बात को दुनिया से छिपा पाएगी। क्योंकि भले ही वह इसे मनुष्यों से छिपा सकती थी, फिर भी वह इसे आत्माओं से नहीं छिपा सकती थी—भले ही वह इसे आत्माओं से छिपा सकती थी, फिर भी वह इसे उन संन्यासियों से नहीं छिपा सकती थी जो दूसरों के विचारों को जान सकते हैं—भले ही वह इसे उनसे छिपा सकती थी, फिर भी वह इसे उन देवताओं से नहीं छिपा सकती थी जो मनुष्यों के हृदयों को पढ़ सकते हैं—भले ही वह इसे देवताओं से छिपा सकती थी, फिर भी वह स्वयं अपने पाप के ज्ञान से बच नहीं सकती थी—भले ही वह स्वयं इससे अनजान रहती, फिर भी वह इसे (परिणामस्वरूप होने वाले नियम) अधर्म से नहीं छिपा सकती थी। ऐसे थे

कई कारण थे जिनकी वजह से उसने गलत काम करने से परहेज किया क्योंकि वह गोपनीयता को लेकर आश्वस्त नहीं थी।

और, इसके अलावा, उसने गलत काम करने से इनकार कर दिया क्योंकि विचार करने पर उसे कोई सही वर नहीं मिला। हे राजा, ज्ञानी महोसाधा अट्ठाईस गुणों से संपन्न था। और वे अट्ठाईस गुण कौन से हैं? हे राजा, वह वीर और नम्र था, और गलत काम करने से लज्जित होता था; उसके कई अनुयायी और मित्र थे; वह क्षमाशील था; वह जीवन में ईमानदार था; वह सत्यवादी था; वह वचन, कर्म और हृदय से शुद्ध था; वह द्वेष से मुक्त था; वह अहंकारी नहीं था; उसमें ईर्ष्या नहीं थी; वह ऊर्जा से भरपूर था; वह सभी अच्छी चीजों के लिए प्रयासरत रहता था; वह सभी लोगों में लोकप्रिय था; वह उदार था; वह मित्रवत था; वह स्वभाव से विनम्र था; वह छल-कपट से मुक्त था; वह कपट से मुक्त था; वह अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण था; उसकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी; उसे बहुत ज्ञान था; वह अपने आश्रितों के कल्याण की कामना करता था; उसकी प्रशंसा सभी लोगों के मुख में थी; उसका धन विशाल था और उसकी प्रसिद्धि भी महान थी। हे महाराज, ये अट्ठाईस गुण थे जिनसे ज्ञानी महोषधा संपन्न थीं। और क्योंकि उन्हें उनके समान कोई वर नहीं मिला, इसलिए उन्होंने कोई अपराध नहीं किया।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ महिलाओं की दुष्टता को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] [अरहतों की निर्भीकता पर।]

44. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा: "अरहतों ने सभी भय और कंपकंपी त्याग दी है।" परन्तु दूसरी ओर, जब रागगृह नगर में उन्होंने नर वध करने वाले हाथी धनपालक को भगवान बुद्ध पर टूट पड़ते देखा...

[पैराग्राफ जारी है] एक, सभी पाँच सौ अरहतों ने विजेता को त्याग दिया और भाग गए, केवल एक को छोड़कर, आनंद महापुरुष। अब, नागसेन, यह कैसे हुआ? क्या वे अरहत भय से भागे—या वे भगवान को नष्ट होने देने के लिए स्वेच्छा से भागे, और यह सोचकर भागे कि "(हमारा आचरण) उनके स्वयं के कार्यों से स्पष्ट हो जाएगा," या वे तथागत द्वारा प्रदर्शित विशाल और अद्वितीय शक्ति को देखने की आशा से भागे? यदि, नागसेन, तो क्या हुआ?

[पैराग्राफ जारी है] धन्य अल्लाह ने कहा, यदि अरहतों के भयहीन होने की बात सत्य है, तो यह कहानी असत्य होनी चाहिए। परन्तु यदि कहानी सत्य है, तो यह कथन कि अरहतों ने भय और कंपकंपी को त्याग दिया है, असत्य होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

45. हे राजा, भगवान बुद्ध ने कहा है कि अरहतों ने सभी भय और भय का त्याग कर दिया है, और जैसा कि आप कहते हैं, जब उस दिन रागगृह में हाथी धनपालक तथागत पर टूट पड़ा, तो आनंद को छोड़कर पाँच सौ अरहत भाग गए। परन्तु यह न तो भय के कारण था, न ही भगवान बुद्ध के नाश होने की इच्छा से। क्योंकि जिस कारण से अरहतों में भय या भय उत्पन्न होता था, वह उनमें नष्ट हो गया है, और इसलिए वे भय और भय से मुक्त हैं। हे राजा, क्या विशाल पृथ्वी लोगों द्वारा उसमें खुदाई करने, उसे तोड़ने, या विशाल महासागरों और पर्वतों का भार वहन करने से भयभीत होती है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'क्योंकि इस विशाल पृथ्वी में ऐसा कोई कारण नहीं है जो भय या कंपन उत्पन्न कर सके।'

'बिल्कुल, हे राजा। और अरहतों में भी ऐसा कोई कारण नहीं है। और क्या कोई पर्वत शिखर टूटकर बिखरने, गिर जाने या आग से जलने से डरेगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'इसमें भय या कंपकंपी का कोई कारण मौजूद नहीं है।'

और हे राजा, अरहतों के साथ भी ठीक ऐसा ही है। यदि समस्त संसार में विभिन्न बाह्य रूपों वाले सभी प्राणी एक समान हों।

यदि समस्त ब्रह्मांड मिलकर एक अरहत पर आक्रमण करे ताकि उसे भयभीत कर सके, तब भी उसके हृदय में कोई परिवर्तन न आए। और क्यों? क्योंकि उसमें भय का कोई कारण या परिस्थिति नहीं है। बल्कि, हे राजा, उन अरहतों के मन में ये विचार उठे थे: “आज जब श्रेष्ठ पुरुष, विजेताओं में वीर, प्रसिद्ध नगर में प्रवेश कर चुके हैं, तो धनपालक हाथी सड़कों पर दौड़ पड़ेगा। परन्तु निश्चय ही उनका विशेष सेवक, जो देवों के भी पराक्रमी हैं, उनका साथ नहीं छोड़ेगा। परन्तु यदि हम यहाँ से न हटें, तो न आनंद की कृपा प्रकट होगी और न ही हाथी तथागत के पास आएगा। इसलिए हमें यहाँ से हट जाना चाहिए। इस प्रकार जनसमूह बुराई के बंधनों से मुक्त हो जाएगा और आनंद की कृपा प्रकट होगी।” जब अरहतों को इस बात का एहसास हुआ कि ऐसा करने से उन्हें ये लाभ प्राप्त होंगे, तभी वे चारों ओर पीछे हट गए।

'अच्छा, नागसेना, क्या तुमने पहेली सुलझा ली? बात यही है। अरहत न तो डरे और न ही कांपे। बल्कि उन्होंने जो लाभ पहले से देख लिए थे, उनके कारण वे चारों ओर से पीछे हट गए।'

[अरहतों की घबराहट से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[सर्वज्ञ को अपना विचार बदलने के लिए प्रेरित करने पर।]

46. 'आदरणीय नागसेन, आपके लोग कहते हैं कि तथागत सर्वज्ञ हैं। और दूसरी ओर वे कहते हैं: "जब सारिपुत्त और मोग्गलाना की अध्यक्षता में संघ के सदस्यों के समूह को भगवान बुद्ध ने विदा कर दिया, तब कातुमा और ब्रह्मा सबनीपति के शाक्यों ने बीज और बछड़े के दृष्टांतों के माध्यम से बुद्ध को अपने वश में कर लिया, उनकी क्षमा प्राप्त की और उन्हें सही दृष्टि से समझाया।" अब यह कैसे हुआ, नागसेन? क्या वे दो दृष्टांत उन्हें ज्ञात नहीं थे कि वे उन्हें प्रसन्न कर लें, अपने पक्ष में कर लें और मामले को एक नए दृष्टिकोण से देखें? लेकिन यदि वे उन्हें पहले से नहीं जानते थे, तो, नागसेन, वे सर्वज्ञ नहीं थे। यदि वे उन्हें जानते थे, तो उन्होंने उन भाइयों को परखने के लिए उनके साथ कठोर और हिंसक व्यवहार किया होगा; और इसी में उसकी निर्दयता प्रकट होती है। यह भी एक दोधारी समस्या है जो अब आपके सामने रखी गई है, और आपको इसे हल करना होगा।'

47. हे राजा, तथागत सर्वज्ञानी थे, फिर भी उन दृष्टांतों से प्रसन्न होकर वे अपने भेजे हुए भाइयों को क्षमादान दे दिया।

दूर चले गए, और उन्होंने मामले को उस प्रकाश में देखा (जिस प्रकाश में उनके लिए मध्यस्थ उन्हें दिखाना चाहते थे)। हे महाराज, तथागत शास्त्रों के स्वामी हैं। तथागत द्वारा स्वयं दिए गए दृष्टांतों के द्वारा ही उन्होंने तथागत को प्रसन्न किया, उन्हें अपने वश में किया, और इस प्रकार प्रसन्न होने पर उन्होंने (उनकी बातों पर) अपनी स्वीकृति व्यक्त की। हे महाराज, यह वैसा ही था जैसे कोई पत्नी अपने पति को उसकी ही वस्तुओं के द्वारा प्रसन्न करती है, और पति उस पर अपनी स्वीकृति व्यक्त करता है। या फिर, हे राजा, यह वैसा ही था जैसे राजसी नाई राजा के सिर पर सोने की कंघी लगाकर उन्हें प्रसन्न करता है और राजा इस पर अपनी स्वीकृति देते हैं। या फिर, हे राजा, यह वैसा ही था जैसे कोई शिष्य अपने गुरु को उनके द्वारा स्वयं घर से लाए गए दान के भोजन से प्रसन्न करता है और गुरु इस पर अपनी स्वीकृति देते हैं।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ सर्वज्ञानी बुद्ध को मध्यस्थता द्वारा वश में करने की समस्या का अंत होता है।]

यहां चौथा अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक IV। दुविधाओं का समाधान - अध्याय 5

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----॥-13-॥----->>>> अगला

1. पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा: संसार के साथ मित्रता में चिंता उत्पन्न होती है, गृहस्थ जीवन में व्याकुलता की धूल उगती है, गृहस्थी और मित्रता के बंधनों से मुक्त अवस्था, यही संन्यासी का लक्ष्य है।

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने कहा:

अत: बुद्धिमान व्यक्ति को अपने कल्याण का ध्यान रखते हुए, सुखद निवास स्थान बनवाने चाहिए और वहाँ विद्वानों को ठहराना चाहिए।

हे पूज्य नागसेन, यदि इन दोनों कथनों में से पहला वास्तव में तथागत द्वारा कहा गया था, तो दूसरा कथन गलत होगा। लेकिन यदि तथागत ने वास्तव में कहा था: "सुखद निवास स्थान बनवाओ," तो पहला कथन गलत होगा। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसे आपको हल करना है।

2. हे महाराज, आपने जिन दोनों अंशों का उद्धरण दिया है, वे तथागत द्वारा कहे गए हैं। पहला अंश चीजों के स्वरूप के बारे में एक व्यापक कथन है, एक ऐसा कथन जिसमें किसी भी प्रकार की व्याख्या या स्पष्टीकरण की गुंजाइश नहीं है, जो एक संन्यासी के लिए उचित, उपयुक्त और न्यायसंगत हो, और एक संन्यासी को किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए, किस मार्ग पर चलना चाहिए और किस प्रकार का अभ्यास करना चाहिए, इसके बारे में है। क्योंकि हे महाराज, जैसे जंगल में भटकता हुआ हिरण जहाँ चाहे सो जाता है, उसका कोई घर नहीं होता और न ही कोई ठिकाना।

निवास स्थान, इसलिए संन्यासी को भी यही राय रखनी चाहिए कि

संसार की मित्रता में चिंता का जन्म होता है, गृहस्थ जीवन में भटकाव की धूल उड़ती है।

3. परन्तु जब भगवान बुद्ध ने कहा:

"सुखद आवास बनवाओ, और वहां विद्वानों को ठहराओ।"

यह बात केवल दो बातों के संदर्भ में कही गई थी। और वे दो बातें क्या हैं? सभी बुद्धों ने निवास स्थान (विहार) के दान की प्रशंसा और अनुमोदन किया है, उसे सम्मान दिया है और उसकी बहुत प्रशंसा की है। और जो लोग ऐसा दान करते हैं, वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। यह निवास स्थान के दान का पहला लाभ है। और फिर, यदि एक साझा निवास स्थान (विहार) हो, तो संघ की बहनों के लिए मिलने का एक निश्चित स्थान होगा, और जो लोग (संघ के भाइयों से) मिलना चाहते हैं, उनके लिए ऐसा करना आसान होगा। जबकि यदि संघ के सदस्यों के लिए कोई घर न हो, तो उनसे मिलना कठिन होगा। यह निवास स्थान (विहार) के दान का दूसरा लाभ है। भगवान बुद्ध ने केवल इन्हीं दो बातों के संदर्भ में यह कहा था:

"सुखद आवास बनवाओ, और वहां विद्वानों को ठहराओ।"

और इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि बुद्ध के पुत्रों को गृहस्थ जीवन की लालसा रखनी चाहिए।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निवास स्थानों को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[बयालीसवीं दुविधा। भोजन में संयम।]

4. पूज्य नागसेना, भगवान ने कहा:

"भीख मांगते समय (पालन किए जाने वाले नियमों के प्रति) लापरवाही न बरतें। पेट से संबंधित मामलों में संयम बरतें।"

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने कहा:

अब कई दिन ऐसे भी थे, हे उदयिन, जब मैंने इस कटोरे को लबालब भरकर इसमें से खाया, और उससे भी अधिक खाया।

'यदि पहला नियम सत्य है, तो दूसरा कथन असत्य होना चाहिए। लेकिन यदि कथन सत्य है, तो पहले उद्धृत नियम गलत होना चाहिए।'

.

यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके सामने रखी गई है, जिसे आपको हल करना होगा।'

5. 'हे महाराज, आपने जिन दोनों अंशों का उद्धरण दिया है, वे दोनों ही भगवान बुद्ध द्वारा कहे गए हैं। परन्तु पहला अंश चीजों के स्वरूप के बारे में एक कथन है, एक व्यापक कथन है, एक ऐसा कथन जिसमें किसी भी प्रकार की व्याख्या या स्पष्टीकरण की गुंजाइश नहीं है, एक ऐसा कथन जो सत्य, वास्तविक और तथ्यों के अनुरूप है, और जिसे गलत साबित नहीं किया जा सकता, एक घोषणा जो पैगंबरों, ऋषियों, शिक्षकों, अरहतों और स्वयं ज्ञानी बुद्धों (पक्केका-बुद्धों) द्वारा की गई है, एक घोषणा जो विजेताओं और सर्वज्ञानी लोगों द्वारा की गई है, और एक घोषणा जो तथागत, अरहत, स्वयं परमेश्वर बुद्ध द्वारा भी की गई है। हे राजा, जिस व्यक्ति में पेट के प्रति संयम नहीं है, वह जीवित प्राणियों का नाश करेगा, जो उसे नहीं दिया गया है उस पर अधिकार करेगा, व्यभिचारी होगा, झूठ बोलेगा, मादक पेय पिएगा, अपने माता-पिता की हत्या करेगा, अरहत का वध करेगा, संघ में फूट डालेगा, और यहाँ तक कि जानबूझकर तथागत को भी चोट पहुँचाएगा। हे राजा, क्या यह वही नहीं था, जब देवदत्त ने अपने पेट पर संयम न रखते हुए संघ को भंग किया और अपने लिए एक कल्प तक रहने वाला कर्म संचित किया? हे राजा, इसी बात और इसी प्रकार की अन्य अनेक बातों को याद करने पर भगवान बुद्ध ने कहा:

नियमों का पालन करने में लापरवाही न बरतें।

जब खड़े होकर (भोजन मांगने के लिए) खड़े हों, तो पेट से संबंधित मामलों में संयम बरतें।

6. 'और जो व्यक्ति पेट पर संयम रखता है, उसे चारों सत्यों की स्पष्ट समझ प्राप्त होती है, वह त्याग के जीवन के चारों फलों को जान पाता है, और चारों विवेक, आठ उपलब्धियों और छह प्रकार के उच्च ज्ञान पर महारत हासिल कर लेता है, और संन्यासी के जीवन के सभी पहलुओं को पूरा करता है। हे राजा, क्या तोते के बच्चे ने अपने पेट पर संयम रखकर तैंतीस महान देवताओं के स्वर्ग को भी हिला नहीं दिया और देवताओं के राजा सक्का को अपनी सेवा में नहीं बुलाया? हे राजा, इसी बात और इसी प्रकार की कई अन्य बातों को याद करके भगवान बुद्ध ने कहा:

"भीख मांगते समय (पालन किए जाने वाले नियमों के प्रति) लापरवाही न बरतें। पेट से संबंधित मामलों में संयम बरतें।"

7. परन्तु जब हे राजा, भगवान बुद्ध ने कहा: "हे उदयि, अनेक दिन ऐसे थे जब मैंने इस कटोरे को लबालब भरकर खाया, और उससे भी अधिक खाया," तो यह बात स्वयं स्वतंत्र तथागत ने अपने विषय में कही थी, जिसने अपना कार्य पूर्ण कर लिया था, जिसने अपने सभी कर्तव्य पूरे कर लिए थे, जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया था, जिसने हर बाधा को पार कर लिया था।

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, जिस प्रकार किसी बीमार व्यक्ति को उल्टी कराने वाली दवा, दस्त या कुदाल दी गई हो, उसे टॉनिक देना उचित है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति बुराई से भरा हुआ है और जिसने चार सत्यों को नहीं जाना है, उसे भोजन के मामले में संयम बरतना चाहिए। लेकिन हे राजा, जिस प्रकार उत्तम जल से बने और प्राकृतिक शुद्धता वाले हीरे को चमकाने, रगड़ने और शुद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, तथागत के प्रति, उस व्यक्ति के प्रति जिसने बुद्ध के दायरे में आने वाली सभी बातों में पूर्णता प्राप्त कर ली है, उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[खाने-पीने में संयम बरतने की दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[तैंतालीसवीं दुविधा: बुद्ध पर बक्कुला की श्रेष्ठता।]

8. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा:

"हे बंधुओं, मैं एक ब्राह्मण हूँ, आत्म-त्यागी, सदा निर्मल हाथों वाला; यह शरीर जो मैं धारण करता हूँ, मेरा अंतिम शरीर है; मैं परम चिकित्सक और औषधदाता हूँ।"

लेकिन दूसरी ओर भगवान ने कहा:

"हे भाइयों, मेरे शिष्यों में शारीरिक स्वास्थ्य के मामले में सबसे श्रेष्ठ बक्कुला है।"

अब यह सर्वविदित है कि भगवान बुद्ध के शरीर में कई बार रोग उत्पन्न हुए। अतः यदि तथागत नागसेन सर्वोच्च थे, तो बक्कुला के शारीरिक स्वास्थ्य के बारे में उनका कथन गलत होना चाहिए। परन्तु यदि बक्कुला नामक वृहत्तर वास्तव में स्वस्थ लोगों में श्रेष्ठ थे, तो वह कथन जिसे मैंने पहले उद्धृत किया था, अवश्य ही गलत होगा।

गलत। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके सामने रखी गई है, जिसे आपको हल करना होगा।'

9. हे महाराज, आपने जो दोनों उद्धरण दिए हैं, वे सही हैं। परन्तु भगवान बुद्ध ने बक्कुला के विषय में जो कहा, वह उन शिष्यों के बारे में था जिन्होंने पवित्र वचनों को कंठस्थ कर लिया था, उनका अध्ययन किया था और परंपरा को आगे बढ़ाया था, जिनमें (प्रत्येक में किसी न किसी बिंदु पर) वे गुण थे जो स्वयं भगवान बुद्ध में पाए जाने वाले गुणों के अतिरिक्त थे। क्योंकि हे महाराज बुद्ध के कुछ शिष्य ऐसे थे जो "चलते-फिरते ध्यान करने वाले" थे, जो सारा दिन और रात ध्यान में इधर-उधर घूमते रहते थे। परन्तु भगवान बुद्ध दिन-रात ध्यान में बिताने के आदी थे, न केवल चलते-फिरते बल्कि बैठते और लेटते भी थे। अतः हे महाराज, ऐसे शिष्य जो "चलते-फिरते ध्यान करने वाले" थे, इस मामले में उनसे श्रेष्ठ थे। और हे महाराज बुद्ध के कुछ शिष्य ऐसे भी थे जो "एक ही बार में भोजन करने वाले" थे, जो अपने जीवन को बचाने के लिए भी दिन में एक से अधिक बार भोजन नहीं करते थे। परन्तु

[पैराग्राफ जारी है] भगवान बुद्ध को दूसरी या तीसरी बार भोजन करने की आदत थी। इसलिए, हे राजा, जो शिष्य एक ही बार में भोजन करते थे, वे इस मामले में उनसे श्रेष्ठ थे। इसी प्रकार, हे राजा, शिष्यों के बारे में अनेक बातें कही गई हैं। परन्तु हे राजा, भगवान बुद्ध सत्यनिष्ठा, ध्यान की शक्ति, ज्ञान, मोक्ष, मोक्ष के ज्ञान से उत्पन्न अंतर्दृष्टि और बुद्ध के सभी गुणों में उन सभी से श्रेष्ठ थे। हे राजा, इसी संदर्भ में उन्होंने कहा:

"हे बंधुओं, मैं एक ब्राह्मण हूँ, जो आत्म-त्यागी हूँ, सदा निर्मल हाथों वाला हूँ; यह शरीर जो मैं धारण करता हूँ, मेरा अंतिम शरीर है; मैं परम चिकित्सक और औषधदाता हूँ।"

10. 'हे महाराज, कोई व्यक्ति भले ही अच्छे कुल का हो, कोई धनी हो, कोई ज्ञानवान हो, कोई सुशिक्षित हो, कोई वीर हो, कोई कुशल हो; परन्तु इन सब से बढ़कर राजा ही सर्वोच्च माना जाता है। हे महाराज, इसी प्रकार भगवान बुद्ध सर्वोच्च, सबसे आदरणीय और समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। और पूज्य बक्कुला का शरीर स्वस्थ था, वह उनके पिछले जन्म की एक मनोकामना के कारण था। क्योंकि, हे

महाराज, जब भगवान अनोमा-दस्सी को पेट में गैस की बीमारी हुई, और फिर जब भगवान विपस्सी और उनके अड़सठ हजार शिष्यों को रक्त की लालिमा की बीमारी हुई, तब भी उन्होंने...'

उस समय एक तपस्वी होने के नाते, उन्होंने विभिन्न औषधियों से उस बीमारी का इलाज किया था और (इस प्रकार) इस जीवन में शरीर की ऐसी तंदुरुस्ती प्राप्त की थी कि उनके बारे में कहा जाता था:

"हे भाइयों, मेरे शिष्यों में शारीरिक स्वास्थ्य के मामले में सबसे श्रेष्ठ बक्कुला है।"

11. 'परन्तु हे राजा, चाहे वह रोगग्रस्त हो या न हो; चाहे उसने नियम-कानूनों का पालन किया हो या न किया हो, वह व्यक्ति...'

विशेष व्रतों में से, भगवान बुद्ध के समान कोई नहीं है। हे राजा, यह बात देवताओं के देव, भगवान बुद्ध ने अपने उत्कृष्ट सम्युत्त निकाय में कही है।

"हे भाइयों, चाहे कोई भी प्राणी हो, चाहे वह बिना पैरों वाला हो, दो पैरों वाला हो या चार पैरों वाला हो, चाहे शरीर वाला हो या बिना शरीर वाला हो, चाहे चेतन हो या अचेतन हो या न चेतन हो—तथागत को ही सबका प्रधान, अरहत, परम बुद्ध माना जाता है।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[बक्कुला की बुद्ध से श्रेष्ठता का मुद्दा यहीं समाप्त होता है।]

[तैंतालीसवीं दुविधा: बुद्ध की शिक्षाओं की मौलिकता।]

12. 'हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है:

"हे बंधुओं, तथागत, अरहत, परम बुद्ध, एक अज्ञात मार्ग के खोजकर्ता हैं।"

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने कहा:

"अब मुझे वह प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन पथ दिखाई दिया, जिस पर पूर्वज बुद्ध चले थे।"

'यदि, नागसेन, तथागत ने किसी अनदेखे मार्ग की खोज की है, तो यह कहना गलत होगा कि वह एक प्राचीन मार्ग था, एक ऐसा प्राचीन पथ जिस पर पूर्व बुद्ध चले थे। लेकिन यदि वह मार्ग वास्तव में एक प्राचीन मार्ग था, तो यह कहना गलत होगा कि वह अज्ञात था। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसे आपको हल करना है।'

13. 'हे महाराज, आपके दोनों कथन सही हैं। और दोनों कथन भी सत्य हैं। हे महाराज, जब पिछले तथागत लुप्त हो गए, तब कोई गुरु न होने के कारण उनका मार्ग भी लुप्त हो गया। और वह मार्ग—यद्यपि तब टूट चुका था, खंडित हो चुका था, खंडहर हो चुका था, बंद हो चुका था, अब पार करने योग्य नहीं था, दृष्टि से ओझल हो चुका था—तथागत ने, एक

उसे इसका पूर्ण ज्ञान था, उसने अपनी बुद्धि की दृष्टि से इसे देखा, (और जाना) कि यह वही मार्ग है जिस पर पूर्वज बुद्ध चले थे। इसीलिए उसने कहा:

"हे भाइयों, अब मुझे प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन पथ दिखाई दिया जिस पर पूर्वज बुद्ध चले थे।"

और यह एक ऐसा मार्ग था—क्योंकि पिछले तथागतों के लुप्त हो जाने के कारण कोई गुरु शेष नहीं था—जो उस समय टूट चुका था, खंडित हो गया था, खंडहर बन चुका था, बंद हो गया था और दृष्टि से ओझल हो गया था, जिसे तथागत ने अब पुनः सुगम बना दिया। और इसीलिए उन्होंने कहा:

"हे बंधुओं, तथागत, अरहत, परम बुद्ध, एक अज्ञात मार्ग के खोजकर्ता हैं।"

14. 'मान लीजिए, हे राजा, कि एक संप्रभु अधिपति के लुप्त हो जाने पर, संप्रभुता का रहस्यमय रत्न पर्वत शिखर की एक दरार में छिपा हुआ था, और जब कोई दूसरा संप्रभु अधिपति अपने सर्वोच्च पद पर आसीन हुआ, तो वह रत्न उसे प्रकट हुआ। तब, हे राजा, क्या आप कहेंगे कि वह रत्न उसी ने उत्पन्न किया था?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय! रत्न अपनी मूल अवस्था में ही होता। लेकिन मानो उसके माध्यम से उसे नया जन्म मिला हो।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, भगवान बुद्ध ने इसे अपनी आँखों से देखकर इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।'

उनकी बुद्धि ने पुनर्जीवित होकर, उस उत्कृष्ट अष्टांगिक मार्ग को उसके मूल स्वरूप में पुनः सुगम बना दिया, जिस पर पूर्व तथागत चलते थे—यद्यपि जब कोई गुरु नहीं बचा था, तो वह मार्ग खंडित हो गया था, बिखर गया था, खंडहर बन गया था, बंद हो गया था और दृष्टि से ओझल हो गया था। और इसीलिए उन्होंने कहा:

"हे बंधुओं, तथागत, अरहत, परम बुद्ध, एक अज्ञात मार्ग के खोजकर्ता हैं।"

15. हे राजा, यह ऐसा ही है जैसे कोई माता अपने गर्भ से पहले से ही गर्भ में पल रहे बच्चे को जन्म देती है, और तब कहा जाता है कि माता ने बच्चे को जन्म दिया है। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, तथागत ने अपनी बुद्धि से इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, उस मार्ग को पुनर्जीवित किया और पुनः सुगम बनाया जो पहले से ही मौजूद था, यद्यपि तब टूटा-फूटा, खंडित, खंडहर हो चुका था, अवरुद्ध हो गया था और दृष्टि से ओझल हो गया था।

यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी खोई हुई वस्तु को ढूंढ निकालता है और लोग कहते हैं, "उसने इसे पुनर्जीवित कर दिया है।" और यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति जंगल साफ करके जमीन का एक टुकड़ा मुक्त करता है और लोग कहते हैं, "यह उसकी जमीन है।" लेकिन वह जमीन उसने नहीं बनाई है। क्योंकि उसने उस जमीन को उपयोग में लाया है, इसलिए उसे उस जमीन का स्वामी कहा जाता है। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, तथागत ने अपनी बुद्धि की दृष्टि से उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, पहले से मौजूद, टूटे-फूटे मार्ग को पुनर्जीवित किया और उसे फिर से चलने योग्य बना दिया।

दूर चला गया, खंडहर में तब्दील हो गया, चारों ओर से घिर गया, अब पार करना असंभव हो गया, और नज़रों से ओझल हो गया। और इसीलिए उसने कहा:

"हे बंधुओं, तथागत, अरहत, परम बुद्ध, अज्ञात मार्ग के खोजकर्ता हैं।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निर्वाण के मार्ग को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[पैंतालीसवीं दुविधा। बुद्ध की दयालुता।]

16. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा:

"पूर्व जन्मों में भी जब मैं मनुष्य था, तब से ही मैंने जीवित प्राणियों को हानि न पहुँचाने की आदत ग्रहण कर ली थी।"

लेकिन दूसरी ओर यह भी कहा जाता है:

जब वे लोमसा कस्सपा, ऋषि थे, तब उन्होंने सैकड़ों जीवित प्राणियों की हत्या करवाई और महान यज्ञ, 'विजयी पेय' अर्पित किया।

'अब, नागसेन, यदि बुद्ध का यह कथन सत्य है कि उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में मनुष्य के रूप में किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाई, तो यह कहना कि उन्होंने लोमसा कस्सपा के रूप में सैकड़ों जीवों का वध किया, असत्य है। परन्तु यदि उन्होंने ऐसा किया भी हो, तो यह

कहना कि उन्होंने किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाई, असत्य है। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसका हल आपको निकालना है।'

17. हे राजा, भगवान ने कहा कि पूर्व जन्मों में, जब वे मनुष्य थे, तब उन्होंने जीवों को हानि न पहुँचाने का नियम अपना लिया था। और ऋषि लोमसा कस्सपा ने सैकड़ों जीवों का वध किया और विजय-जयकार नामक महान यज्ञ किया। परन्तु यह उन्होंने कामवासना में व्याकुल होकर किया था, न कि सचेत अवस्था में।

'हे नागसेन, आठ प्रकार के मनुष्य हैं जो प्राणियों की हत्या करते हैं - कामवासना से ग्रस्त मनुष्य, क्रोध से क्रूर मनुष्य, मूर्खता से मंदबुद्धि मनुष्य, अभिमान से अभिमानी मनुष्य, लोभ से लालची मनुष्य, जीविका के लिए जरूरतमंद मनुष्य, मजाक में मूर्ख मनुष्य और दंड के रूप में राजा। हे नागसेन, ये आठ प्रकार के मनुष्य हैं जो प्राणियों की हत्या करते हैं। आदरणीय नागसेन, बोधिसात ने ऐसा करते समय अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्य किया होगा।'

नहीं, हे राजा, बोदिसात ने जो किया वह उसके स्वभाव के अनुरूप नहीं था। यदि बोदिसात ने स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर महान बलिदान अर्पित किया होता, तो वह यह श्लोक न कहता।

"सारा संसार, सागर से घिरा हुआ, और उसे घेरने वाले सभी समुद्र और पहाड़, मैं शर्म के साथ-साथ पाना नहीं चाहूँगा।"

"हे राजा, यद्यपि बोधिसात ने ऐसा कहा था, फिर भी राजकुमारी कंदवती (चंद्र-चेहरे वाली) को देखते ही वह अपना आपा खो बैठा और प्रेम में व्याकुल हो गया। और इसी प्रकार अपने आपा खोकर, भ्रमित और व्याकुल होकर, अपने विचारों को अस्त-व्यस्त, बिखेरते और भटकते हुए, उसने महान यज्ञ, 'विजय का पेय' अर्पित किया—और वध किए गए पशुओं की गर्दन से रक्त का प्रचंड प्रवाह हुआ!"

'हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे कोई पागल, जब होश खो बैठता है, तो धधकती भट्टी में कदम रख देता है, क्रोधित विषैले सांप को पकड़ लेता है, एक उग्र हाथी के पास चला जाता है, उस विशाल जल में छलांग लगा देता है जिसका दूर का किनारा उसे दिखाई नहीं देता, गंदे तालाबों और कीचड़ भरे स्थानों को रौंदता हुआ आगे बढ़ता है, कंटीली झाड़ियों में घुस जाता है, चट्टानों से नीचे गिर जाता है, गंदगी खाकर अपना पेट भरता है, नग्न होकर सड़कों पर घूमता है और अन्य कई अनुचित कार्य करता है—ठीक वैसे ही, हे राजा, राजकुमारी कंदवती को देखते ही बोधिसात अपना आपा खो बैठा, और तभी उसने वैसा ही किया जैसा मैंने कहा है।'

18. हे राजा, किसी पागल व्यक्ति द्वारा किया गया बुरा कार्य इस संसार में भी गंभीर अपराध नहीं माना जाता, न ही भविष्य में ऐसा माना जाता है।

भविष्य में मिलने वाले फल के प्रति सम्मान रखते हुए, हे राजा, मान लीजिए कि एक पागल व्यक्ति ने मृत्युदंड योग्य अपराध किया है, तो आप उसे क्या दंड देंगे?

'पागल व्यक्ति को क्या सजा दी जानी चाहिए? हमें उसे पीटकर छोड़ देने का आदेश देना चाहिए। यही उसके लिए एकमात्र सजा होगी।'

तो फिर, हे राजा, पागल व्यक्ति के अपराध के अनुसार कोई दंड नहीं होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि पागल व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य पाप नहीं है, बल्कि क्षमायोग्य है। और ठीक यही बात ऋषि लोमसा कस्सपा के विषय में भी है, जो राजकुमारी कंदवती को देखते ही अपना होश खो बैठे और प्रेम में व्याकुल हो गए। इसी प्रकार होश खो बैठे, भ्रमित और व्याकुल होकर, उन्होंने अपने विचारों को अस्त-व्यस्त, बिखरे हुए और भटकते हुए महान यज्ञ, "विजय ऋतु" का अर्पण किया - और वध किए गए पशुओं की गर्दन से रक्त का प्रचंड प्रवाह हुआ! परन्तु जब वे अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आए और अपनी चेतना पुनः प्राप्त कर ली, तब उन्होंने संसार का त्याग कर दिया और अंतर्दृष्टि की पाँच शक्तियों को पुनः प्राप्त कर ब्रह्मा लोक में पुनर्जन्म के प्रति आश्वस्त हो गए।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[लोमासा कस्सपा को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[छियालीसवीं दुविधा। बुद्ध का उपहास।]

19. 'हे पूज्य नागसेना, छह दांतों वाले भगवान, हाथी के राजा ने कहा था,

जब उसने उसे मारने का प्रयास किया और अपनी सूंड से उस तक पहुँच गया, तो उसने पीले रंग का वस्त्र देखा, जो एक संन्यासी का प्रतीक था। तब, दर्द से तड़पते हुए भी, उसके हृदय में यह विचार आया, 'जो अरहतों के वस्त्र धारण करता है, वह अच्छे लोगों द्वारा अछूता और पवित्र माना जाएगा।'

लेकिन दूसरी ओर यह भी कहा जाता है:

"जब वह युवा ब्राह्मण गोतिपाला था, तब उसने भगवान कस्सपा, अरहत, सर्वोच्च बुद्ध को घृणित और कटु शब्दों से अपमानित और अपशब्द कहे, उन्हें मुंडा हुआ और निकम्मा भिक्षु कहा।"

'अब यदि नागसेन, बोधिसात, पशु रूप में भी पीले वस्त्र का आदर करते थे, [222] तो यह कथन कि गोतिपाल, एक ब्राह्मण के रूप में, उन्होंने उस समय भगवान का अपमान और अभिशाप किया, असत्य है। परन्तु यदि ब्राह्मण के रूप में उन्होंने भगवान का अपमान और अभिशाप किया, तो यह कथन कि जब वे छह दांतों वाले हाथी राजा थे, तब उन्होंने पीले वस्त्र का आदर किया, असत्य है। यदि बोधिसात पशु रूप में भी, भीषण, क्रूर और कड़वी पीड़ा सहते हुए भी, पीले वस्त्र का आदर करते थे, तब उन्होंने पीले वस्त्र का आदर किया।

उस शिकारी ने जो वस्त्र धारण किया था, यह कैसे संभव हुआ कि जब वह वयस्क हुआ, विवेकशील हुआ, अपने संपूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण हुआ, तब भी उसने कासपा बुद्ध, अरहत, सर्वोच्च बुद्ध, दस शक्तियों से संपन्न, जगत के स्वामी, परम पूज्य, जिनके चारों ओर एक फार्क तक प्रकाश फैला हुआ था, और जो उत्कृष्ट, बहुमूल्य और कोमल बनारस के पीले वस्त्रों से सुशोभित थे, को देखकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम नहीं किया? यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसका आपको हल निकालना है।

20. हे महाराज, आपने जिस श्लोक का उद्धरण दिया है, वह भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया था। और भगवान कस्सपा, अरहत, परम बुद्ध, को युवा ब्राह्मण गोतिपाल ने घृणित और कटु शब्दों से अपमानित किया, उन्हें मुंडा हुआ और निकम्मा भिक्षु कहा। लेकिन यह उसके जन्म और पारिवारिक परिवेश के कारण था। क्योंकि हे महाराज, गोतिपाल अविश्वासी, आस्थाहीन परिवार से था। उसके माता-पिता, बहनें और भाई, दासियाँ और पुरुष, नौकर और आश्रित, सभी ब्रह्मा के उपासक और आदरणीय थे; और यह मानकर कि ब्राह्मण ही मनुष्यों में सर्वोच्च और सबसे सम्मानीय हैं, वे उन लोगों को अपमानित और घृणा करते थे जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया था। उनकी बातें सुनकर ही गोतिपाला को जब कुम्हार घटिकारा ने गुरु से मिलने के लिए आमंत्रित किया, तो उसने उत्तर दिया: "उस निकम्मे, उस गंजे भिक्षु से मिलने से तुम्हें क्या लाभ होगा?"

21. 'हे राजा, जिस प्रकार अमृत भी विष में मिलकर खट्टा हो जाता है, जिस प्रकार शीतल जल भी अग्नि के संपर्क में आने पर गर्म हो जाता है, ठीक उसी प्रकार यह घटना घटी।'

यह सच है कि युवा ब्राह्मण गोतिपाल, जो अविश्वासी, आस्थाहीन लोगों के परिवार में पैदा हुआ और पला-बढ़ा था, उसने तथागत का अपने ही रिवाज के अनुसार अपमान और निंदा की। हे राजा, जिस प्रकार प्रचंड और प्रचंड अग्नि, अपनी चरम महिमा पर भी, यदि जल के संपर्क में आए, तो ठंडी पड़ जाती है, उसकी चमक और महिमा नष्ट हो जाती है, और वह सड़े हुए, मुरझाए फलों के समान राख में बदल जाती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, गोतिपाल, जो पुण्य और आस्था से परिपूर्ण था, अपने ज्ञान की महिमा से परिपूर्ण था, फिर भी अविश्वासी, आस्थाहीन लोगों के परिवार में पुनर्जन्म लेकर, मानो अंधा हो गया और तथागत का अपमान और निंदा करने लगा। परन्तु जब वह उनके पास गया और बुद्धों के गुणों को जान लिया, तब वह उनका सेवक बन गया; संसार का त्याग करके और विजेता की पद्धति के अंतर्गत संघ में प्रवेश करके, उन्होंने अंतर्दृष्टि की पंचगुणी शक्ति और परमानंद ध्यान की अष्टगुणी शक्ति प्राप्त की, और ब्रह्मा स्वर्ग में पुनर्जन्म के प्रति आश्वस्त हो गए।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[गोतिपाल को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[सैंतालीसवीं दुविधा। बुद्ध की बेबसी।]

22. 'आदरणीय नागसेना, यह भी भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है:

"कुम्हार घटिकारा का निवास स्थान तीन महीने तक पूरी तरह से खुला रहा और उस पर एक बूंद भी बारिश नहीं हुई।"

लेकिन दूसरी ओर यह भी कहा जाता है:

"तथागत कस्सपा की कुटिया पर वर्षा हुई।"

'हे पूज्य नागसेन, यह कैसे हुआ कि एक तथागत की कुटिया, जिनके पुण्य के बीज इतने व्यापक रूप से फैले हुए थे, भीग गई? कोई सोचेगा कि तथागत के पास इसे रोकने की शक्ति होनी चाहिए। यदि, नागसेन, घटिकार कुम्हार की कुटिया, खुले आकाश में होने के बावजूद सूखी रहती थी, तो यह सत्य नहीं हो सकता कि एक तथागत की कुटिया भीग गई। लेकिन यदि वह भीग गई, तो यह असत्य है कि कुम्हार की कुटिया सूखी रहती थी। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिसे आपको हल करना है।'

23. 'हे महाराज, आपने जो दोनों कथन दिए हैं, वे सही हैं। कुम्हार घटिकारा एक नेक, सुंदर चरित्र वाला, पुण्यमय व्यक्ति था, जो अपने बूढ़े और अंधे माता-पिता का भरण-पोषण करता था। और जब वह अनुपस्थित था, तो लोगों ने बिना उसकी अनुमति लिए ही उसके घर की छत को उठाकर तथागत की कुटिया की छत में लगा दिया। फिर, अपनी छत के इस प्रकार हटाए जाने से अविचलित और अविचलित होकर, वह तथागत की कुटिया से और भी अधिक प्रसन्न हुआ।

एक अगाध और असीम आनंद से, जो अतुलनीय है, उनके हृदय में यह विचार उमड़ पड़ा: "विश्व के स्वामी, भगवान मुझ पर पूर्ण विश्वास रखें।" और इस प्रकार उन्होंने पुण्य अर्जित किया जिसका अच्छा फल उन्हें इसी जीवन में प्राप्त हुआ।

24. हे राजा, तथागत उस क्षणिक असुविधा (बारिश की) से विचलित नहीं हुए। हे राजा, जिस प्रकार पर्वतों के राजा शिनरु असंख्य तूफानों के प्रकोप से न तो हिलते हैं और न ही विचलित होते हैं—जिस प्रकार विशाल सागर, जो बड़े जल का घर है, असंख्य बड़ी नदियों के प्रवाह से न तो भरता है और न ही विचलित होता है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, तथागत क्षणिक असुविधा से विचलित नहीं होते।

तथागत की कुटिया पर वर्षा होना जनमानस के हित में हुआ। हे राजा, दो परिस्थितियाँ तथागतों को स्वयं अपनी किसी भी आवश्यकता की पूर्ति करने से रोकती हैं। वे दो परिस्थितियाँ क्या हैं? मनुष्य और देवता, बुद्ध को दान के योग्य गुरु मानकर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करके, पुनर्जन्म के कष्टों से मुक्त हो जाते हैं। और ऐसा न हो कि दूसरे लोग यह कहकर दोषारोपण करें कि "वे चमत्कार करके अपनी जीविका कमाते हैं।" हे राजा, यदि सक्का या स्वयं ब्रह्मा भी उस कुटिया को सूखा रखते, तो भी वह कार्य दोषपूर्ण, अनुचित और निंदनीय होता।

तब लोग शायद कहेंगे: "ये बुद्ध प्रतिमाएँ

उनकी चतुराई से दुनिया मूर्ख बन जाती है और वे उस पर प्रभुत्व जमा लेते हैं। इसीलिए ऐसा कार्य न करना ही बेहतर होता। हे राजा, तथागत किसी लाभ की कामना नहीं करते; और यही कारण है कि वे कुछ नहीं मांगते, इसलिए उन्हें निर्दोष माना जाता है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ।'

[कुम्हार घटिकारा के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[अड़तालीसवीं दुविधा: गौतम ने ब्राह्मण होने का दावा क्यों किया?]

[225] 25. 'आदरणीय नागसेना, यह भी भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया था:

"हे भाइयों, मैं एक ब्राह्मण हूँ, जो आत्म-बलिदान के लिए समर्पित हूँ।"

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने घोषणा की:

"मैं एक राजा हूँ, सेला।"

'हे नागसेन, यदि भगवान बुद्ध ब्राह्मण थे, तो राजा होने का दावा करते समय उन्होंने झूठ बोला होगा। लेकिन यदि वे राजा थे, तो ब्राह्मण होने का दावा करते समय उन्होंने झूठ बोला होगा। वे या तो क्षत्रिय रहे होंगे या ब्राह्मण। क्योंकि एक ही जन्म में वे दो जातियों के नहीं हो सकते थे। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके सामने रखी गई है, जिसे आपको हल करना है।'

26. 'हे महाराज, आपने जो दोनों उद्धरण दिए हैं, वे सही हैं। लेकिन तथागत के ब्राह्मण और राजा दोनों होने का अच्छा कारण है।'

'नागसेना, इसका कारण क्या हो सकता है?'

क्योंकि तथागत में सभी अगुण, जो पुण्य उत्पन्न नहीं करते, दमित, त्यागे, दूर किए, मिटाए, जड़ से उखाड़े, नष्ट किए, समाप्त किए, चले गए और मिट गए हैं, इसीलिए तथागत को ब्रह्म कहा जाता है। हे राजा, ब्रह्म का अर्थ है वह जो संकोच, उलझन और संदेह से परे हो गया हो। तथागत ने ये सब किया है, इसीलिए उन्हें ब्रह्म कहा जाता है। हे राजा, ब्रह्म का अर्थ है वह जो हर प्रकार और श्रेणी के स्वभाव से मुक्त हो गया हो, जो पूरी तरह से बुराई और कलंक से मुक्त हो, जो स्वयं पर निर्भर हो, और तथागत इन सभी गुणों से परिपूर्ण हैं, इसीलिए उन्हें ब्रह्म कहा जाता है। हे राजा, ब्रह्म का अर्थ है वह जो अपने भीतर श्रेष्ठ और सर्वोच्च गुणों का विकास करता हो।

हृदय की अवस्थाएँ। तथागत ऐसा करते हैं, इसीलिए उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। हे राजा, ब्राह्मण का अर्थ है वह जो पवित्र ग्रंथों के अध्ययन और अध्यापन, दान ग्रहण करने, इंद्रियों को वश में करने, आचरण में आत्म-संयम और कर्तव्य पालन से संबंधित प्राचीन शिक्षाओं की परंपरा को आगे बढ़ाता है। तथागत इन सभी विषयों के संबंध में विजेताओं द्वारा निर्धारित प्राचीन नियमों की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, इसीलिए उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। हे राजा, ब्राह्मण का अर्थ है वह जो परमानंद ध्यान के सर्वोच्च आनंद का अनुभव करता है। तथागत ऐसा करते हैं, इसीलिए उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। हे राजा, ब्राह्मण का अर्थ है वह जो सभी रूपों में जन्म-जन्म के चक्र और चक्र को जानता है। तथागत यह जानते हैं, इसीलिए उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। हे महाराज, भगवान बुद्ध को "ब्रह्मन" नाम न तो उनकी माता ने दिया, न उनके पिता ने, न उनके भाई ने, न उनकी बहन ने, न उनके मित्रों ने, न उनके रिश्तेदारों ने, न किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक गुरुओं ने, यहाँ तक कि देवताओं ने भी नहीं। यह नाम बुद्धों, यानी भगवान बुद्धों की मुक्ति के कारण है। जिस क्षण उन्होंने ज्ञान वृक्ष के नीचे दुष्टों की सेनाओं को पराजित किया, अपने भीतर सभी निर्गुण गुणों को त्याग दिया और सर्वज्ञ ज्ञान को प्राप्त किया, उसी क्षण से उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ।

[पैराग्राफ जारी है] एक बार, इस अंतर्दृष्टि की प्राप्ति से, उनमें इस ज्ञान के प्रकट होने से, उन्हें यह सही नाम दिया गया—"ब्रह्मन" नाम। और यही कारण है कि तथागत को ब्रह्म कहा जाता है।

27. 'तो फिर तथागत को राजा क्यों कहा जाता है?'

हे राजा, राजा का अर्थ है वह जो संसार पर शासन करता है और उसका मार्गदर्शन करता है, और भगवान दस हजार संसारों पर धर्मपूर्वक शासन करते हैं, वे समस्त संसार का मार्गदर्शन करते हैं, जिसमें मनुष्य और देवता, दुष्ट आत्माएँ और भली आत्माएँ, और उनके शिक्षक, चाहे वे सामंत हों या ब्राह्मण, सभी शामिल हैं। यही कारण है कि तथागत को राजा कहा जाता है। हे राजा, राजा का अर्थ है वह जो समस्त साधारण मनुष्यों से श्रेष्ठ है, जो अपने अनुयायियों को प्रसन्न करता है और विरोधियों को शोक में डुबो देता है; जो शुद्ध और निष्कलंक सफेद रंग की संप्रभुता की छतरी को, दृढ़ लकड़ी के हैंडल और सैकड़ों पसलियों के साथ, ऊँचा उठाता है - जो उसकी महान प्रसिद्धि और महिमा का प्रतीक है। और हे राजा, भगवान दुष्टों की सेना, जो झूठे सिद्धांतों में लिप्त हैं, को शोक में डुबो देते हैं; देवताओं और मनुष्यों में से जो सही सिद्धांतों के प्रति समर्पित हैं, उनके हृदयों को आनंद से भर देते हैं। वह दस हजार विश्व प्रणालियों के ऊपर अपनी संप्रभुता की छत्रछाया को उठाता है, जो मुक्ति की सफेदी में शुद्ध और निष्कलंक है।

सर्वोच्च ज्ञान से निर्मित सैकड़ों पसलियों से युक्त, धीरज के कारण दृढ़ और मजबूत हैंडल से युक्त, यह उनकी महान प्रसिद्धि और महिमा का प्रतीक है। यही कारण है कि तथागत को राजा कहा जाता है। राजा वह होता है जिसे उनके पास आने वाले असंख्य लोग सम्मान के योग्य मानते हैं। और हे राजा, भगवान बुद्ध को उनके पास आने वाले असंख्य प्राणी, चाहे देवता हों या मनुष्य, सम्मान के योग्य मानते हैं। यही कारण है कि तथागत को राजा कहा जाता है। राजा वह होता है जो किसी परिश्रमी सेवक से प्रसन्न होकर, अपनी इच्छा अनुसार, उस अधिकारी द्वारा चुने गए किसी भी बहुमूल्य उपहार से उसका हृदय प्रसन्न करता है। और हे राजा, भगवान बुद्ध किसी ऐसे व्यक्ति से प्रसन्न होकर, जिसने वचन, कर्म या विचार में परिश्रम किया हो, उसे एक विशेष उपहार के रूप में, सभी दुखों से परम

मुक्ति प्रदान करके उसका ह्रदय प्रसन्न करते हैं, जो सभी भौतिक उपहारों से कहीं अधिक है। इसी कारण तथागत को राजा कहा जाता है। राजा वह होता है जो अपराध करने वाले व्यक्ति को दंडित करता है, जुर्माना लगाता है या मृत्युदंड देता है।

राजसी आदेशों का पालन किया जाता है। इसलिए, हे राजा, जो व्यक्ति निर्लज्जता या असंतोष के कारण भगवान बुद्ध के आदेश का उल्लंघन करता है, जैसा कि उनके संप्रदाय के नियमों में निर्धारित है, वह तिरस्कृत, अपमानित और निंदा का पात्र होकर विजेता के धर्म से निष्कासित कर दिया जाता है। यही कारण है कि तथागत को राजा कहा जाता है। राजा वह होता है जो प्राचीन काल के धर्मात्मा राजाओं द्वारा निर्धारित निर्देशों के अनुसार नियमों और विनियमों की घोषणा करता है, और इस प्रकार धर्मपरायणता से अपना शासन चलाता है, जिससे वह लोगों का प्रिय और प्रिय बन जाता है, संसार में वांछित हो जाता है, और अपनी धर्मपरायणता के बल पर देश में अपने वंश को लंबे समय तक स्थापित करता है। हे राजा, भगवान तथागत प्राचीन काल के बुद्धों द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार बारी-बारी से नियमों और विधियों का प्रचार करते हुए, धर्मपरायण होकर संसार के गुरु बन गए हैं। वे भी देवताओं और मनुष्यों के प्रिय हैं, उनके द्वारा वांछित हैं, और अपने धर्मपरायणता के बल पर उन्होंने अपने धर्म को इस धरती पर दीर्घकालिक रूप से कायम रखा है। यही कारण है कि तथागत को राजा कहा जाता है।

'इस प्रकार, हे राजा, तथागत के ब्रह्म और राजा दोनों होने के इतने कारण हैं कि सबसे योग्य भाई भी युगों में उन सभी को गिन नहीं सकते। तो फिर मुझे और विस्तार से क्यों बताना चाहिए? मैंने जो कहा है उसे संक्षेप में ही स्वीकार करें।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध के दो जातियों से संबंधित होने की दुविधा समाप्त होती है।]

[उनतालीसवीं दुविधा। बुद्ध को भेंट।]

28. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा है:

पवित्र भजनों में जिन उपहारों का गुणगान किया जाता है, वे उपहार मुझे नहीं लेने चाहिए। सत्य को जानने वाले सभी लोग यही अभ्यास करते हैं। सभी बुद्धों ने वेतन के लिए भजन गाने से इनकार कर दिया; सत्य के प्रसार के दौरान, हर युग में उनका यही आचरण रहा।

लेकिन दूसरी ओर, भगवान बुद्ध सत्य का उपदेश देते या उसके विषय में बात करते समय तथाकथित "प्रारंभिक प्रवचन" से प्रारंभ करने की आदत रखते थे, जिसमें दान को प्रथम स्थान और भलाई को द्वितीय स्थान दिया जाता था। इसलिए जब देवताओं और मनुष्यों ने समस्त जगत के स्वामी, भगवान बुद्ध का यह प्रवचन सुना, तो उन्होंने दान तैयार करके दिया, और शिष्यों ने इस प्रकार प्राप्त दान को ग्रहण किया। अब, नागसेन, यदि यह सत्य है कि भगवान बुद्ध ने पवित्र मंत्रों के जाप से अर्जित कोई दान स्वीकार नहीं किया, तो भगवान बुद्ध द्वारा दान को इस प्रकार स्थान देना गलत था।

इसे प्रमुखता दी जानी चाहिए। लेकिन यदि उन्होंने दान देने पर इतना जोर देकर सही किया, तो यह सच नहीं है कि उन्होंने पवित्र वचनों के उच्चारण से अर्जित कोई दान स्वीकार नहीं किया। और ऐसा क्यों? क्योंकि यदि कोई दान के योग्य व्यक्ति आम लोगों को दान देने के अच्छे परिणामों के बारे में बताए, तो वे उस प्रवचन को सुनकर और उससे प्रसन्न होकर बार-बार दान देंगे। और फिर, जो कोई भी उस दान का आनंद लेता है, वह वास्तव में पवित्र वचनों के उच्चारण से अर्जित वस्तु का आनंद ले रहा होता है। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके सामने रखी गई है, जिसे आपको हल करना है।

29. हे महाराज, आपने जिस श्लोक का उल्लेख किया है, वह भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया था। फिर भी वे अपने प्रवचन में दान को सर्वप्रथम रखते थे। परन्तु यह समस्त तथागतों की प्रथा है—प्रथम दान पर प्रवचन देकर श्रोताओं के ह्रदयों को दान की ओर प्रवृत्त करना, और फिर उन्हें धर्म की ओर प्रेरित करना। यह वैसा ही है जैसे हे महाराज, मनुष्य सर्वप्रथम छोटे बच्चों को खेलने के लिए खिलौने देते हैं—जैसे कि खिलौने वाले हल, छड़ी, खिलौने वाली पवनचक्की, पत्तों से बने नापने के बर्तन, खिलौने वाली गाड़ियाँ।

और धनुष-बाण—और फिर प्रत्येक को उसका अलग-अलग कार्य सौंप दें। या यह वैसा ही है जैसे कोई चिकित्सक पहले अपने रोगियों को चार-पाँच दिनों तक तेल पिलाता है ताकि वे मजबूत और कोमल हो जाएँ; और फिर बाद में दस्त करवाता है। हे राजा, हे दानवीर, धर्म के समर्थकों का ह्रदय इसी प्रकार कोमल, दयालु और प्रभावित होता है। इस प्रकार वे अपने दान रूपी नौका के सहारे, अपने दान रूपी मार्ग के सहारे पुनर्जन्म के सागर के दूसरे किनारे तक पहुँचते हैं। और (बुद्ध) इस (उपदेश विधि) से "संकेत" के दोषी नहीं हैं।

30. 'आदरणीय नागसेना, जब आप "संकेत" कहते हैं तो ये संकेत क्या होते हैं?'

हे महाराज, दो प्रकार के संकेत होते हैं—शारीरिक और मौखिक। एक शारीरिक संकेत गलत है और दूसरा नहीं; और एक मौखिक संकेत गलत है और दूसरा नहीं। कौन सा शारीरिक संकेत गलत है? मान लीजिए कि संघ का कोई सदस्य भिक्षा मांगने के लिए चक्कर लगाते समय, खड़े होने के लिए जगह चुनते समय, ऐसी जगह खड़ा हो जाए जहाँ जगह न हो, तो यह एक गलत शारीरिक संकेत है। संघ के सच्चे सदस्य इस प्रकार माँगे गए किसी भी भिक्षा को स्वीकार नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ जनों के धर्म में तिरस्कृत, अपमानित, अनादरित, निंदनीय, उपेक्षित और अपुष्ट माना जाता है; उसे

उन लोगों में से एक जिन्होंने अपनी आजीविका के साधनों के संबंध में प्रतिज्ञा तोड़ दी है। और फिर, हे राजा, मान लीजिए कि संघ का कोई सदस्य भिक्षा मांगने के लिए घूमते समय ऐसी जगह खड़ा हो जाए जहाँ जगह न हो, और मोर की तरह गर्दन फैलाकर लोगों को देखे, इस उम्मीद में कि "लोग मुझे इस तरह देखेंगे"—यह भी एक गलत शारीरिक संकेत है। सच्चे भाई इस प्रकार मांगी गई भिक्षा स्वीकार नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाले को सबसे पीछे माना जाता है। और फिर, हे राजा, मान लीजिए कि संघ का कोई सदस्य अपने जबड़े, भौं या उंगली से कोई संकेत करे—यह भी एक गलत शारीरिक संकेत है। सच्चे भाई इस प्रकार मांगी गई भिक्षा स्वीकार नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाले को भी उसी तरह माना जाता है।

31. और कौन सा शारीरिक संकेत गलत नहीं है? यदि कोई भाई भिक्षा मांगने के लिए निकलते समय संयमी, शांत और अपने कार्यों के प्रति सचेत हो; यदि वह जहाँ भी जाए, उचित स्थान पर खड़ा रहे; यदि वह वहाँ रुके जहाँ दान देने के इच्छुक लोग हों, और जहाँ वे दान देने के इच्छुक न हों, वहाँ से आगे बढ़ जाए; तो यह एक ऐसा शारीरिक संकेत है जो गलत नहीं है। इस प्रकार दान किए गए भिक्षा में संघ के सच्चे सदस्य भाग लेंगे; और इस प्रकार दान मांगने वाला व्यक्ति, श्रेष्ठ जनों के धर्म में प्रशंसित, उच्च कोटि का, सम्मानित और छल रहित आचरण और शुद्ध जीवन शैली वाले लोगों में गिना जाता है। क्योंकि समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा है:

"सच्चे बुद्धिमान भीख नहीं मांगते, क्योंकि अरहत भीख मांगने से घृणा करते हैं। भले लोग अपने दान के लिए खड़े रहते हैं, वे इसी प्रकार भीख मांगते हैं।"

32. 'कौन सी मौखिक सूचना गलत है? हे राजा, यदि कोई भाई संघ के सदस्य के लिए आवश्यक वस्तुओं—वस्त्र, कटोरे, बिस्तर और बीमारों के लिए दवा—की मांग करे, तो यह एक गलत मौखिक सूचना है। संघ के सच्चे सदस्य (आरिया) इस प्रकार मांगी गई वस्तुओं को स्वीकार नहीं करेंगे; और श्रेष्ठ जनों के धर्म में ऐसा करने वाले व्यक्ति को तिरस्कृत, अपमानित, अनादरित, निंदनीय, उपेक्षित और अशोभनीय माना जाता है—उसे ऐसा समझा जाता है जैसे उसने अपनी आजीविका के साधनों का उल्लंघन किया हो। और फिर, हे राजा, यदि कोई भाई दूसरों के सामने इस प्रकार कहे: "मुझे अमुक वस्तु की आवश्यकता है;" और उसके द्वारा यह बात सुनने के बाद उसे वह वस्तु मिल जाए—तो यह भी एक गलत मौखिक सूचना है। संघ के सच्चे सदस्य इस प्रकार प्राप्त वस्तु का उपयोग नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाला अंतिम माना जाता है। और फिर, हे राजा, यदि कोई भाई अपनी बातों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हुए अपने आस-पास के लोगों को यह समझाए कि "भिक्षुओं को इस प्रकार दान देना चाहिए,"

और यदि वे यह सुनकर अपने भंडार से उक्त वस्तु निकाल लें, तो यह भी एक गलत मौखिक संकेत है। संघ के सच्चे सदस्य इस प्रकार प्राप्त वस्तु का उपयोग नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाला अंतिम माना जाता है। क्योंकि जब हे राजा, सूर्य अस्त होने के बाद रात्रि में सारिपुत्त बीमार पड़ गए और मोग्गलाना ने उनसे पूछा कि कौन सी औषधि उनके लिए लाभकारी होगी, तो उन्होंने मौन भंग किया; और उस मौन भंग के माध्यम से औषधि प्राप्त की - तो क्या सारिपुत्त ने मन ही मन यह नहीं कहा, "यह औषधि मौन भंग के माध्यम से प्राप्त हुई है; मेरी आजीविका संबंधी नियमों का पालन न टूटे," और उस औषधि को त्याग कर उसका उपयोग न किया? अतः यह भी एक गलत मौखिक संकेत है। संघ के सच्चे सदस्य इस प्रकार प्राप्त वस्तु का उपयोग नहीं करेंगे, और ऐसा करने वाला अंतिम माना जाता है।

33. और वह मौखिक सूचना क्या है जो उचित है? हे राजा, मान लीजिए कि किसी भाई को जब आवश्यकता हो, तो वह अपने परिवार के सदस्यों या उन परिवारों को, जिन्होंने उसे वास का समय बिताने के लिए आमंत्रित किया था, यह सूचित करे कि उसे औषधियों की आवश्यकता है—यह एक ऐसी मौखिक सूचना है जो गलत नहीं है। संघ के सच्चे सदस्य इस प्रकार मांगी गई वस्तुओं को ग्रहण करेंगे; और ऐसा करने वाला व्यक्ति, श्रेष्ठ जनों के धर्म में, प्रशंसित, उच्च कोटि का, सम्मानित और शुद्ध जीवनयापन करने वालों में गिना जाता है।

तथागतों, अरहतों, परम बुद्धों द्वारा अनुमोदित। और हे राजा, तथागत ने काशी-भारद्वग ब्राह्मण से जो भिक्षा ली थी, जिसे तथागत ने अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि वह भिक्षा उन्हें एक जटिल पहेली से परखने के लिए प्रस्तुत की गई थी, ताकि उन्हें गुमराह किया जा सके, उनकी गलती का एहसास कराया जा सके और उन्हें अपनी गलती स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जा सके। इसीलिए तथागत ने वह भिक्षा अस्वीकार कर दी और उसे ग्रहण नहीं किया।

34. 'नागसेन, क्या तथागत जब भी भोजन करते थे, तब देवता स्वर्ग से जीवन का रस उनके कटोरे में डाल देते थे, या केवल उन दो व्यंजनों—नरम सूअर का मांस और दूध में उबली हुई चावल की दलिया—में ही वे रस डालते थे?'

'हे राजा, जब भी वह भोजन कर रहे होते थे, और भोजन के प्रत्येक निवाले को उठाते ही, ठीक उसी प्रकार जैसे राज रसोइया राजा के भोजन करते समय प्रत्येक निवाले पर चटनी डालता है। और इसी प्रकार वेरांगा में, जब तथागत सूखे जौ से बने केक खा रहे थे, तो देवताओं ने प्रत्येक केक को जीवन के रस से तर कर दिया, जैसे ही उन्होंने उसे रखा।

उनके पास। और इस प्रकार तथागत का शरीर पूर्णतः तरोताजा हो गया।

'हे नागसेन, यह उन देवताओं का सचमुच बड़ा सौभाग्य था कि वे तथागत के शरीर की देखभाल में सदा तत्पर रहते थे! बहुत अच्छा, नागसेन! यह सच है, और मैं इसे आपकी बात मानकर स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध की आजीविका के तरीके से संबंधित समस्या समाप्त होती है।]

[पचासवीं दुविधा। बुद्ध के बाद के संदेह पर।]

35. 'आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं:

"तथागत ने लाखों वर्षों के दौरान, युगों-युगों तक धीरे-धीरे, जनता के विशाल जनसमूह के उद्धार के लिए अपनी सर्वज्ञ बुद्धि को पूर्णता तक पहुँचाया।"

लेकिन दूसरी ओर (वे कहते हैं):

सर्वज्ञता प्राप्त करने के तुरंत बाद ही उनका

हृदय सत्य के प्रचार की ओर नहीं, बल्कि शांति से विश्राम करने की ओर झुका हुआ है।

इसलिए, नागसेन, जैसे कोई धनुर्धारी या धनुर्धारी का शिष्य, जिसने युद्ध के उद्देश्य से अनेक दिनों तक धनुर्विद्या का अभ्यास किया हो, महायुद्ध का दिन आने पर पीछे हट जाए—ठीक वैसे ही तथागत, जिन्होंने असंख्य युगों तक जनसमूह को मोक्ष दिलाने के उद्देश्य से सर्वज्ञता को धीरे-धीरे परिपक्व किया था, उस सर्वज्ञता के प्राप्त होने पर सत्य का प्रचार करने से पीछे हट गए।

नागसेन, क्या तथागत भय के कारण पीछे हट गए थे, या उपदेश देने में असमर्थता के कारण, या कमजोरी के कारण, या इसलिए कि उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त नहीं की थी? इसका कारण क्या था? कृपया मुझे कारण बताइए, ताकि मेरे संदेह दूर हो जाएं। क्योंकि यदि उन्होंने इतने लंबे समय तक लोगों के उद्धार के उद्देश्य से अपनी बुद्धि को परिपूर्ण किया था, तो सत्य की घोषणा करने में उनके संकोच का कथन गलत होना चाहिए। लेकिन यदि यह सत्य है, तो दूसरा कथन भी गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी तलवार जैसा प्रश्न है।

अब आपके सामने एक गंभीर समस्या रखी गई है, एक ऐसी गुत्थी जिसे सुलझाना मुश्किल है, और आपको इसे हल करना होगा।

36. हे राजा, आपने जिन दोनों अंशों का उल्लेख किया है, वे सही हैं। परन्तु उनका मन सत्य के प्रचार की ओर नहीं, बल्कि निष्क्रियता की ओर इसलिए झुका क्योंकि उन्होंने एक ओर तो देखा कि यह सिद्धांत कितना गहन और गूढ़ है, कितना समझना और आत्मसात करना कितना कठिन है, कितना सूक्ष्म है, कितना मर्मस्पर्शी है; और दूसरी ओर, मनुष्य अपनी वासनाओं की पूर्ति में कितने लीन हैं, व्यक्तिवाद की झूठी धारणाओं में कितने दृढ़ रूप से जकड़े हुए हैं। और इसलिए (वे) इस विचार से विचलित हुए: "मैं किसे सिखाऊँ? और मैं उसे कैसे सिखा सकता हूँ?"—उनका मन मनुष्यों में निहित भेदक क्षमताओं के विचार की ओर निर्देशित था।

हे राजा, जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक, जब किसी ऐसे रोगी के पास आता है जो अनेक रोगों से ग्रसित है, तो वह सोचता है: "इस व्यक्ति के रोग को ठीक करने के लिए क्या उपचार, क्या औषधि हो सकती है?" ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जब तथागत ने यह याद किया कि पाप से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के रोगों से मनुष्य कितने पीड़ित हैं, और यह सिद्धांत कितना गहन और गूढ़ है, कितना सूक्ष्म और कितना कठिन है, तब यह सोचकर कि "मैं किसे सिखाऊँ? और मैं उसे कैसे सिखाऊँ?" उनका मन उपदेश देने की बजाय निष्क्रियता की ओर अधिक झुक गया - उनका मन प्राणियों के भेदक गुणों की ओर उन्मुख था।

और हे राजा, एक राजा के रूप में, राजसी रक्त वाले, अभिषिक्त सम्राट के रूप में, जब वह अनेक बातों को याद करता है, तो वह न्यायसंगत है।

राजा पर निर्भर रहकर जीविका कमाने वाले लोग—पहरेदार और अंगरक्षक, दरबारी दल, व्यापारी, सैनिक और राज दूत, मंत्री और कुलीन लोग—यह सोचकर परेशान हो सकते हैं: "अब मैं इन सबको कैसे और किस तरह संतुष्ट कर पाऊँगा?" ठीक वैसे ही, जब तथागत को यह याद आया कि यह सिद्धांत कितना गहन और गूढ़ है, कितना सूक्ष्म और समझने में कितना कठिन है, और मनुष्य अपनी वासनाओं की पूर्ति में कितने लीन हैं, और व्यक्तिवाद की झूठी धारणाओं से कितने दृढ़ता से ग्रस्त हैं, तब यह सोचकर कि "मैं किसे उपदेश दूँ? और कैसे दूँ?" उनका मन उपदेश देने के बजाय निष्क्रियता की ओर झुक गया—उनका मन मनुष्यों में निहित अंतर्दृष्टि की ओर लगा हुआ था।

37. और यह भी सभी तथागतों का अंतर्निहित कर्तव्य है कि वे ब्रह्मा के अनुरोध पर ही धम्म का प्रचार करें। इसका कारण क्या है? उस समय के सभी मनुष्य, तपस्वी और भिक्षु, घुमंतू शिक्षक और ब्राह्मण, ब्रह्मा के उपासक और आदरशील थे, ब्रह्मा पर भरोसा रखते थे। इसलिए, इस विचार से कि "जब इतने शक्तिशाली और तेजस्वी, इतने प्रसिद्ध और विख्यात, इतने उच्च और महान व्यक्ति ने स्वयं को (धम्म की ओर) झुकाव दिखाया है, तो समस्त देवता और मनुष्य जगत भी इसकी ओर झुकाव दिखाएगा, इसे उचित समझेगा, इसमें विश्वास रखेगा"—हे राजा, इसी आधार पर तथागतों ने ब्रह्मा के अनुरोध पर धम्म का प्रचार किया। क्योंकि हे राजा, जिस प्रकार कोई स्वामी या राज्य मंत्री जिसका आदर करता है या जिसकी पूजा करता है, उसी प्रकार शेष मानव जाति भी उसका आदर करेगी।

इतने शक्तिशाली व्यक्तित्व को श्रद्धांजलि अर्पित करने के स्थान पर, उसी प्रकार, हे राजा, जब ब्रह्मा ने तथागतों को श्रद्धांजलि अर्पित की थी, तो समस्त देवी-देवता और मनुष्य जगत भी ऐसा ही करेंगे। क्योंकि हे राजा, संसार जिसकी पूजा की जाती है, उसकी पूजा करता है। इसीलिए ब्रह्मा समस्त तथागतों से इस सिद्धांत का प्रचार करने का अनुरोध करते हैं, और अनुरोध किए जाने पर वे इसका प्रचार करते हैं।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! आपने पहेली को बखूबी सुलझा दिया है, आपकी व्याख्या अत्यंत सराहनीय रही है। यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध के इस सिद्धांत को सार्वजनिक करने में संकोच के मुद्दे का अंत होता है।]

यहां पांचवां अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक IV। दुविधाओं का समाधान - अध्याय 6

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-14-||----->>>> अगला

1. आदरणीय नागसेना, यह भी भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है:

"मेरा कोई गुरु नहीं है, और मेरे समान कोई व्यक्ति अस्तित्व में नहीं है। देवताओं और मनुष्यों के पूरे संसार में मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं मिल सकता।"

लेकिन दूसरी ओर उन्होंने कहा:

"तो हे भाइयों, जब आलारा कालामा मेरे गुरु थे और मैं उनका शिष्य था, तब उन्होंने मुझे अपने समान स्थान दिया और मुझे अत्यंत सम्मान से नवाजा।"

'अब यदि इनमें से पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत होना चाहिए। लेकिन यदि दूसरा सही है, तो पहला गलत होना चाहिए। यह भी एक दोधारी समस्या है, जो अब आपके सामने रखी गई है, जिसे आपको हल करना है।'

2. 'हे महाराज, आपने जो दोनों उद्धरण दिए हैं, वे सही हैं। लेकिन जब उन्होंने आलारा कालामा को अपना गुरु बताया, तो यह इस तथ्य के संदर्भ में कहा गया था कि जब गौतम बोधिसत्व अवस्था में थे और उन्हें अंतर्दृष्टि और बुद्धत्व प्राप्त नहीं हुआ था, तब आलारा कालामा उनके गुरु थे; और हे महाराज, ऐसे पाँच गुरु थे जिनके मार्गदर्शन में बोधिसत्व ने विभिन्न स्थानों पर समय बिताया—वे गुरु थे जब गौतम बोधिसत्व अवस्था में थे और उन्हें अंतर्दृष्टि और बुद्धत्व प्राप्त नहीं हुआ था। और ये पाँच कौन थे?'

3. 'वे आठ ब्राह्मण जिन्होंने बोधिसत् के जन्म के तुरंत बाद उनके शरीर पर मौजूद चिह्नों पर ध्यान दिया - राम, धग, लक्खना, मंती, यञ्ञ, सुयामा, सुभोग और सुदत्त - जिन्होंने तब उनकी भावी महिमा का ज्ञान कराया और उन्हें सावधानीपूर्वक संरक्षित किए जाने योग्य बताया - ये उनके पहले गुरु थे।'

और फिर, हे राजा, उदिक्का देश के उच्च वंश के विशिष्ट ब्राह्मण सब्बामित्त, जो भाषाविद् और व्याकरणविद् थे, छह वेदांगों के ज्ञाता थे, जिन्हें बोधिसात के पिता राजा सुद्धोदन ने बुलवाया था, और एक स्वर्ण कलश से समर्पण का जल उंडेलकर बालक को उनके हवाले कर शिक्षा देने के लिए सौंप दिया था - यही उनके दूसरे शिक्षक थे।

और फिर, हे राजा, वह देवता जिसने बोधिसात के हृदय में हलचल उत्पन्न की, जिसके वाणी को सुनकर बोधिसात विचलित और चिंतित होकर उसी क्षण संसार से विमुख होकर विदा हो गए—यही उनके तीसरे गुरु थे।

और फिर, हे राजा, अलारा कलामा—वह उनके चौथे गुरु थे।

और फिर, हे राजा, राम के पुत्र उद्दक उनके पाँचवें गुरु थे।

हे राजा, ये पाँच गुरु हैं जो तथागत के बोधिसत्व काल में, अंतर्दृष्टि और बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले, उनके गुरु थे। परन्तु वे सांसारिक ज्ञान के गुरु थे। और इस पारलौकिक सिद्धांत में, सर्वज्ञों के ज्ञान में प्रवेश करने में—कि तथागत से बढ़कर कोई उन्हें सिखाने वाला नहीं है। तथागत अपने ज्ञान के लिए स्वयं-निर्भर हैं, उनका कोई गुरु नहीं है, और इसीलिए तथागत ने कहा है:

"मेरा कोई गुरु नहीं है, और मेरे समान कोई व्यक्ति अस्तित्व में नहीं है। देवताओं और मनुष्यों के पूरे संसार में मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं मिल सकता।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध के शिक्षकों को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[बावनवीं दुविधा। एक समय में केवल एक ही बुद्ध क्यों होने चाहिए?]

4. 'आदरणीय नागसेना, यह भी भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया था:

"यह एक असंभव घटना है, एक ऐसी घटना जिसका कोई कारण नहीं हो सकता, कि एक ही दुनिया में दो सर्वोच्च अरहत बुद्ध एक ही समय में प्रकट हों - ऐसा किसी भी तरह से संभव नहीं है।"

लेकिन, नागसेन, जब वे उपदेश देते हैं, तो सभी तथागत अंतर्दृष्टि के सैंतीस मूल तत्वों का उपदेश देते हैं; जब वे बात करते हैं, तो वे चार आर्य सत्यों की बात करते हैं; जब वे उपदेश देते हैं, तो वे तीन प्रशिक्षणों का उपदेश देते हैं; जब वे शिक्षा देते हैं, तो वे उत्साह के अभ्यास का उपदेश देते हैं। यदि, नागसेन, सभी तथागतों का उपदेश एक है, उनकी बातें एक ही हैं, उनका प्रशिक्षण एक ही है, और उनकी शिक्षा

एक ही है, तो फिर दो तथागत एक ही समय में क्यों नहीं प्रकट हो सकते? एक बुद्ध के प्रकट होने से ही यह संसार प्रकाश से भर गया है। यदि दूसरा बुद्ध प्रकट हो, तो दोनों की महिमा से संसार और भी अधिक प्रकाशित हो जाएगा। जब वे उपदेश देते हैं, तो दो तथागत सहजता से उपदेश देते हैं; जब वे उपदेश देते हैं, तो दो तथागत सहजता से उपदेश देते हैं। मुझे इसका कारण बताइए, ताकि मेरा संदेह दूर हो जाए।

5. हे राजा, यह संसार एक बुद्ध पर निर्भर है; अर्थात् यह केवल एक तथागत के गुणों को ही सहन कर सकता है। यदि दूसरा तथागत प्रकट हो जाए तो संसार उसे सहन नहीं कर पाएगा, वह कांप उठेगा, इधर-उधर झुक जाएगा, बिखर जाएगा, टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा, विलीन हो जाएगा, पूर्णतः नष्ट हो जाएगा। ठीक वैसे ही जैसे, हे राजा, एक नाव एक यात्री को पार ले जा सकती है। जब एक व्यक्ति सवार हो जाता है, तो नाव अच्छी तरह से सुसज्जित होकर उसका भार सहन कर सकती है। परन्तु यदि दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति के समान आयु, जाति, बल, कद, तंदुरुस्ती और शारीरिक बनावट वाला हो, और वह भी नाव पर सवार हो जाए—तो क्या हे राजा, वह नाव उन दोनों को ले जा पाएगी?

'बिल्कुल नहीं, महोदय! यह कांप उठेगा; यह इधर-उधर झुक जाएगा; यह टुकड़ों में टूट जाएगा, चकनाचूर हो जाएगा, घुल जाएगा और पूरी तरह नष्ट हो जाएगा; यह लहरों में डूब जाएगा।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, यदि दूसरा तथागत प्रकट हो जाए। या मान लीजिए, हे राजा, कि एक व्यक्ति ने अपनी इच्छा अनुसार भरपेट भोजन कर लिया हो, यहाँ तक कि उसका पेट गले तक भर गया हो, और वह—इस प्रकार तृप्त, आनंदित, प्रसन्न होकर, और अधिक के लिए कोई स्थान न बचा हो, ऊंघता हुआ और एक ऐसी छड़ी की तरह अकड़ा हुआ जिसे मोड़ा न जा सके—फिर से उतना ही भोजन कर ले जितना उसने पहले किया था—तो क्या ऐसा व्यक्ति, हे राजा, तब शांत रहेगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय! अगर वह एक बार भी खा ले तो उसकी मृत्यु हो जाएगी।'

'खैर, यह दुनिया दूसरे तथागत को सहन नहीं कर सकती, ठीक वैसे ही जैसे वह आदमी दूसरा भोजन सहन नहीं कर सकता।'

6. 'लेकिन यह कैसे संभव है, नागसेन? क्या पृथ्वी अच्छाई के अत्यधिक भार से कांप उठेगी?'

'मान लीजिए, हे राजा, दो गाड़ियाँ बहुमूल्य वस्तुओं से पूरी तरह भरी हुई हैं, और लोग एक गाड़ी से वस्तुएँ निकालकर दूसरी गाड़ी पर लादने लगें, तो क्या वह गाड़ी दोनों गाड़ियों का भार उठा पाएगी?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय! इसके पहियों का केंद्र फट जाएगा, तीलियाँ टूट जाएँगी, परिधि टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी और धुरी दो टुकड़ों में टूट जाएगी।'

लेकिन हे राजा, ऐसा कैसे हो सकता है? क्या सामान के अत्यधिक भार के कारण गाड़ी टूटकर बिखर जाएगी?

'हां, ऐसा होगा।'

7. 'अच्छा, हे राजा, ठीक इसी प्रकार पृथ्वी अत्यधिक सत्त्व के भार से कांप उठेगी। परन्तु यह तर्क बुद्धों की शक्ति को प्रकट करने के लिए दिया गया है। एक और उपयुक्त कारण सुनो कि दो बुद्ध एक ही समय में प्रकट क्यों नहीं हो सकते।'

समय। हे महाराज, यदि दो बुद्ध एक साथ प्रकट हों, तो उनके अनुयायियों में विवाद उत्पन्न हो जाएगा, और "आपके बुद्ध, हमारे बुद्ध" शब्दों पर वे दो गुटों में बँट जाएँगे—ठीक वैसे ही जैसे दो प्रतिद्वंद्वी शक्तिशाली राज्य मंत्रियों के अनुयायी बँट जाते हैं। हे महाराज, यही दूसरा कारण है कि दो बुद्ध एक ही समय में प्रकट नहीं हो सकते।

8. हे महाराज, एक और कारण सुनिए कि दो बुद्ध एक ही समय में प्रकट क्यों नहीं हो सकते। यदि ऐसा होता, तो यह कथन (शास्त्र का) असत्य हो जाता कि बुद्ध सर्वोपरि हैं, यह कथन असत्य हो जाता कि बुद्ध सर्वोपरि हैं, और यह कथन असत्य हो जाता कि बुद्ध सर्वोपरि हैं। अतः वे सभी कथन असत्य सिद्ध हो जाते जिनमें बुद्ध को सर्वोपरि, सर्वोपरि, सर्वोपरि, अद्वितीय, बेजोड़, अतुलनीय बताया गया है—वे सब असत्य सिद्ध हो जाते। इस कारण को भी सत्य मानिए कि दो बुद्ध एक साथ प्रकट क्यों नहीं हो सकते।

9. 'लेकिन इसके अलावा, हे राजा, यह बुद्धों, यानी भगवानों का एक स्वाभाविक गुण है कि संसार में केवल एक ही बुद्ध का जन्म होता है। और क्यों? सर्वज्ञ बुद्धों के गुणों की महानता के कारण। अन्य चीजों में भी, संसार में जो कुछ भी शक्तिशाली है, वह अद्वितीय है। हे राजा, विशाल पृथ्वी विशाल है और वह एक ही है। सागर विशाल है और वह एक ही है। पर्वतों के राजा सिनेरु विशाल हैं और वह एक ही हैं। आकाश विशाल है और वह एक ही है। सक्का (देवताओं के राजा) विशाल हैं और वह एक ही हैं। मारा (दुष्ट, मृत्यु) विशाल हैं और वह एक ही हैं। महाब्रह्मा विशाल हैं और वह एक ही हैं।'

[पैराग्राफ जारी है] तथागत, परम अरहत बुद्ध, महान हैं और वे संसार में अकेले हैं। जहाँ कहीं भी इनमें से कोई एक प्रकट होता है, वहाँ दूसरे के लिए कोई स्थान नहीं बचता। इसलिए, हे राजा, क्या यही कारण है कि संसार में एक समय में केवल एक ही तथागत, परम अरहत बुद्ध प्रकट हो सकते हैं?

नागसेन, आपने उपमाओं और तर्कों का प्रयोग करते हुए इस पहेली पर बहुत अच्छे से चर्चा की है। इसे सुनकर एक मूर्ख व्यक्ति भी संतुष्ट हो जाएगा; तो मुझ जैसे बुद्धिमान व्यक्ति का क्या ही भला होगा। बहुत बढ़िया, नागसेन! यह सच है, और मैं इसे आपकी बात मान लेता हूँ।

[यहाँ इस दुविधा का अंत होता है कि दुनिया में एक समय में केवल एक ही बुद्ध क्यों होना चाहिए।]

[तिरेपनवीं दुविधा। बुद्ध को उपहार देने के बजाय संघ को उपहार क्यों दिए जाने चाहिए?]

10. 'आदरणीय नागसेना, भगवान ने अपनी माता की बहन, गौतमी महा-पगपति से कहा, जब वह उन्हें बरसात के मौसम में उपयोग के लिए एक कपड़ा देने वाली थीं:

"हे गौतम, इसे संघ को दे दो। यदि तुम इसे संघ को भेंट करोगे, तो तुम संघ और मुझे दोनों को समान रूप से सम्मान अर्पित करोगे।"

'लेकिन नागसेना, क्या? क्या तथागत नहीं?'

यह कितना महत्व और वजन का है, और संघ के रत्नों से भी अधिक उपहार के योग्य है, यह कितनी अजीब बात है कि तथागत ने अपनी चाची को बरसाती मौसम के लिए एक लबादा भेंट करने से पहले, जिसे उन्होंने स्वयं संवारा, इस्त्री किया, पीटा, काटा और बुना था, कहा कि इसे संघ को दे दें! हे नागसेन, यदि तथागत वास्तव में संघ से ऊंचे, महान और श्रेष्ठ होते, तो वे जानते कि उन्हें दिया गया उपहार सबसे पुण्यकारी होगा, और इसलिए वे अपनी चाची को इसे संघ को देने के लिए नहीं कहते। लेकिन चूंकि तथागत, हे नागसेन, स्वयं को उपहारों के मार्ग में नहीं रखते, ऐसे उपहारों का कोई अवसर नहीं देते, इसलिए आप देख सकते हैं कि उन्होंने अपनी चाची से कहा कि वे उस लबादे को संघ को दे दें।

11. 'हे राजा, आपका कथन सही है, और भगवान बुद्ध ने अपनी चाची के उपहारों को इसी प्रकार निर्देशित किया था। परन्तु ऐसा इसलिए नहीं था कि स्वयं को दिया गया आदर व्यर्थ था, या इसलिए कि वे उपहार ग्रहण करने के अयोग्य थे, बल्कि दया और करुणा के कारण उन्होंने यह सोचकर कि "इस प्रकार मेरे जाने के बाद, आने वाले समय में संघ की उच्च प्रतिष्ठा होगी," संघ की वास्तविक श्रेष्ठता को बढ़ाते हुए कहा: "हे गौतमी, इसे संघ को दे दीजिए। यदि आप इसे संघ को भेंट करेंगे, तो आप संघ और मुझे समान रूप से सम्मान देंगे।" हे राजा, जिस प्रकार एक पिता अपने जीवित रहते हुए, मंत्रियों, सैनिकों और राज दूतों की सभा के बीच में अपने पिता की महिमा का बखान करता है,

संतरी, अंगरक्षक और दरबारी—जी हाँ, स्वयं राजा की उपस्थिति में—अपने पुत्र के उन गुणों का बखान करते हुए, जो वास्तव में उसमें विद्यमान हैं, यह सोचते हुए कि: "यदि वह यहाँ स्थापित हो जाए तो आने वाले समय में जनता द्वारा सम्मानित होगा;" इसी प्रकार दया और करुणा से प्रेरित होकर तथागत ने यह सोचते हुए कि: "इस प्रकार, मेरे जाने के बाद, आने वाले समय में संघ की उच्च प्रतिष्ठा होगी;" संघ की वास्तविक श्रेष्ठता का गुणगान करते हुए कहा: "हे गौतमी, इसे संघ को दे दो। यदि तुम इसे संघ को भेंट करोगी, तो तुम संघ और मुझे समान रूप से सम्मान अर्पित करोगी।"

12. 'हे राजा, मात्र वर्षा ऋतु के लिए एक लबादा भेंट करने मात्र से संघ तथागत से श्रेष्ठ या महान नहीं हो गया। हे राजा, क्या यह न्यायसंगत है कि जब माता-पिता अपने बच्चों को इत्र लगाते हैं, मालिश करते हैं, स्नान कराते हैं या शैम्पू करते हैं, तो क्या पुत्र मात्र उस सेवा से अपने माता-पिता से श्रेष्ठ या महान हो जाता है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय! माता-पिता अपने बच्चों के साथ जैसा चाहें वैसा व्यवहार करते हैं, चाहे बच्चों को पसंद हो या न हो। और इसीलिए वे उन्हें इत्र लगाते हैं, शैम्पू करते हैं या नहलाते हैं।'

और ठीक इसी प्रकार, हे राजा, उस दान के मात्र से संघ तथागत से बड़ा या श्रेष्ठ नहीं हो गया; और यद्यपि तथागत ने, संघ की इच्छा हो या न हो, अपनी चाची से कहा कि वह आवरण संघ को दे दे।

13. 'या मान लीजिए, हे राजा, कोई व्यक्ति राजा को भेंट लेकर आए, और राजा वह भेंट किसी और को दे दे—किसी सैनिक को या किसी और को।

क्या कोई दूत, चाहे वह सेनापति हो या पादरी, केवल इस तथ्य से राजा से बड़ा या श्रेष्ठ हो जाएगा कि उसे उपहार मिला है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय! वह व्यक्ति राजा से अपना वेतन प्राप्त करता है, राजा से ही अपनी आजीविका कमाता है; राजा ने ही उसे उस पद पर नियुक्त किया है और उसे यह उपहार दिया है।'

और हे राजा, ठीक इसी प्रकार, उस दान के मात्र से संघ तथागत से श्रेष्ठ या उच्चतर नहीं हो गया। संघ तो मानो तथागत का सेवक है और तथागत के द्वारा ही अपनी जीविका कमाता है। तथागत ने ही संघ को इस पद पर स्थापित किया और दान दिलवाया।

14. हे राजा, तथागत ने ऐसा सोचा: "यह संघ अपने स्वभाव से ही दान के योग्य है। इसलिए मैं यह वस्तु, चाहे वह मेरी ही संपत्ति हो, इसे भेंट कर दूंगा," और इस प्रकार उन्होंने वह आवरण संघ को दे दिया। क्योंकि हे राजा, तथागत स्वयं को दान देने को महत्व नहीं देते, बल्कि संसार में जो भी दान के योग्य हो, उसे दान देने को महत्व देते हैं। हे राजा, यह बात समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने, सबसे उत्तम मगधिमा निकाय [242] में, धम्म-दयाद नामक धार्मिक प्रवचन में कही है, जब वे अल्पता में संतोष प्राप्त करने की उपलब्धि का गुणगान कर रहे थे।

"वह मेरे भिक्षुओं में सबसे प्रथम, उपहारों और प्रशंसा के सबसे योग्य भिक्षु बनेंगे।"

15. और हे राजा, तीनों लोकों में ऐसा कोई नहीं है...

तथागत से अधिक उपहारों के योग्य, महान, उच्चतर या श्रेष्ठ कोई भी प्राणी नहीं है। तथागत ही महान, सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ थे। जैसा कि हे राजा, परम श्रेष्ठ संयुत्त निकाय में भगवान बुद्ध के समक्ष देवताओं और मनुष्यों की सभा के बीच खड़े होकर देवता मानवगामिका ने कहा है:

रागगृह पर्वतों में विपुल पर्वत सर्वमान्य है, हिमालय में श्वेत पर्वत सर्वमान्य है, ग्रहों में सूर्य सर्वमान्य है, सभी जल का सागर सर्वोपरि है, नक्षत्रों में चंद्रमा सर्वोपरि है - समस्त देवी-देवताओं के संसार में बुद्ध ही सर्वमान्य भगवान हैं!

और हे राजा, मानव देवता के वे श्लोक सुशोभित थे, न कि असत्य, सुस्वीकृत थे, न कि असत्य, और भगवान बुद्ध द्वारा अनुमोदित थे। और क्या धर्म के सेनापति सारिपुत्त ने यह नहीं कहा था:

"केवल एक ही स्वीकारोक्ति है, एक ही सच्चा विश्वास है, हाथों को जोड़कर की जाने वाली एक ही आराधना है - जो उस परमेश्वर को अर्पित की जाती है जो शैतान को परास्त करता है, और हमें हमारी मुसीबतों के सागर को पार करने में मदद करता है!"

और यह बात स्वयं भगवान ने कही है, जो सभी देवताओं के प्रधान हैं:

"हे बंधुओं, एक ऐसा प्राणी है जो असंख्य लोगों के कल्याण और भलाई के लिए, संसार पर दया करके, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, भलाई और कल्याण के लिए संसार में जन्म लेता है। और वह प्राणी कौन है? तथागत, परम अरहत बुद्ध।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ बुद्ध पर संघ की श्रेष्ठता को लेकर दुविधा समाप्त होती है।] ______________________________

[चौवनवीं दुविधा। क्या एक आम आदमी बने रहना अधिक लाभदायक है, या किसी धार्मिक संगठन में शामिल होना?]

16. हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध ने कहा:

हे भाइयों, मैं गृहस्थ और संन्यासी दोनों में सर्वोच्च उपलब्धि की महिमा करता हूं। हे भाइयों, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, जिसने सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त कर ली है, वह सर्वोपरि है।

वह इसमें निहित सभी कठिनाइयों को पार कर लेगा और अरहत पद की उत्कृष्ट स्थिति तक पहुंच जाएगा।

'अब, नागसेन, यदि कोई गृहस्थ, श्वेत वस्त्र धारण किए हुए, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए, पत्नी और बच्चों से घिरे घर में रहते हुए, बनारस के चंदन, मालाओं, इत्रों और मलहमों का निरंतर उपयोग करते हुए, सोना और चांदी ग्रहण करते हुए, रत्नों और सोने से जड़ी पगड़ी धारण करते हुए, परम सिद्धि प्राप्त कर अरहतत्व की उत्तम अवस्था को प्राप्त कर सकता है—और यदि कोई संन्यासी, मुंडा सिर और पीले वस्त्र धारण किए हुए, अन्य मनुष्यों के भिक्षा पर निर्भर रहते हुए, चार प्रकार के नैतिक नियमों का पूर्णतः पालन करते हुए, डेढ़ सौ उपदेशों का पालन करते हुए,

तेरह अतिरिक्त व्रतों का पालन करते हुए, उनमें से किसी एक को भी न छोड़ते हुए, यदि कोई व्यक्ति परम सिद्धि प्राप्त कर अरहतत्व की उत्तम अवस्था को प्राप्त कर सकता है, तो फिर, हे महोदय, गृहस्थ और संन्यासी में क्या अंतर है? आपकी तपस्या व्यर्थ है, आपका त्याग निरर्थक है, आपके उपदेशों का पालन व्यर्थ है, आपके अतिरिक्त व्रतों का लेना व्यर्थ है। यदि इस प्रकार सुख की अवस्था को आराम से प्राप्त किया जा सकता है, तो अपने ऊपर दुखों का ढेर लगाने का क्या लाभ है?

17. हे महाराज, आपने भगवान बुद्ध के जो वचन उद्धृत किए हैं, वे बिल्कुल सही हैं। और यह सत्य है कि सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाला ही श्रेष्ठ होता है। हे महाराज, यदि कोई संन्यासी, यह जानते हुए भी कि वह संन्यासी है, उपलब्धियों की उपेक्षा करे, तो वह त्याग के फलों से, अर्हतत्व से कितना दूर हो जाता है—यदि कोई गृहस्थ, जो संसार के वस्त्र धारण किए हुए है, ऐसा करे तो और भी अधिक! परन्तु हे महाराज, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, जो सर्वोच्च अंतर्दृष्टि, सर्वोच्च आचरण प्राप्त कर लेता है, वह भी अर्हतत्व की उत्तम स्थिति को प्राप्त कर लेगा।

18. फिर भी, हे राजा, संन्यासी ही त्याग के फल का स्वामी और स्वामी होता है। और हे राजा, संसार का त्याग लाभ से भरपूर है; इसके लाभ अनेक और अतुलनीय हैं; इसके लाभ की गणना कोई नहीं कर सकता। हे राजा, धन के मामले में, यह उतना ही न्यायसंगत है जितना कोई माप नहीं लगा सकता।

किसी मनोकामना पूरी करने वाले रत्न का मूल्य बताकर यह कहना कि "इस रत्न का मूल्य इतना है"—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, संसार का त्याग करना अत्यंत लाभदायी है; इसके लाभ असंख्य और अतुलनीय हैं; इसके लाभ की गणना कोई मनुष्य नहीं कर सकता—हे राजा, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई विशाल सागर की लहरों की संख्या गिनकर यह न कह सके कि "समुद्र में इतनी लहरें हैं!"

19. 'हे महाराज, संन्यासी को जो भी कार्य करना हो, वह बिना विलंब किए तुरंत पूरा कर लेता है। ऐसा क्यों है? हे महाराज, संन्यासी थोड़े में ही संतुष्ट रहता है, हृदय से प्रसन्न रहता है, संसार से विरक्त रहता है, समाज से अलग रहता है, लगन से कार्य करता है, निर्धन रहता है, आचरण में धर्मपरायण होता है, छल रहित होता है, कर्तव्य और ज्ञान में निपुण होता है—इसलिए जो भी कार्य उसे करना हो, वह बिना विलंब किए तुरंत पूरा कर लेता है—जैसे हे महाराज, आपका भाला इसलिए तीव्र गति से चलता है क्योंकि वह शुद्ध धातु का बना है, चिकना, चमकीला, सीधा और बेदाग है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ इस दुविधा का अंत होता है कि संन्यासी को आम आदमी पर कोई लाभ नहीं होता।]

[पचपनवीं दुविधा। तपस्या।]

20. 'आदरणीय नागसेन, जब बोधिसात तपस्या कर रहे थे, तब उनके समान परिश्रम, ऐसी शक्ति, बुराई के विरुद्ध ऐसा संघर्ष, दुष्टों की सेनाओं को परास्त करने की ऐसी क्षमता, भोजन में ऐसा संयम, जीवन की ऐसी तपस्या किसी और में नहीं देखी गई। परन्तु ऐसे संघर्ष में संतोष न पाकर उन्होंने यह विचार त्याग दिया और कहा:

"इस कठोर तपस्या से भी मैं उस विलक्षण क्षमता तक नहीं पहुँच पा रहा हूँ, जो मनुष्य की शक्ति से परे है और उचित एवं श्रेष्ठ ज्ञान की अंतर्दृष्टि से उत्पन्न होती है। क्या अब ज्ञान प्राप्त करने का कोई और मार्ग नहीं है?"

लेकिन फिर, जब उस मार्ग से ऊबकर उसने दूसरे मार्ग से सर्वज्ञता प्राप्त कर ली, तो उसने दूसरी ओर, अपने शिष्य को उस मार्ग पर (जिसे उसने छोड़ दिया था) फिर से इस प्रकार उपदेश और निर्देश दिया:

[245] "प्रयास करो, बलवान बनो, और बुद्धों द्वारा सिखाई गई आस्था के प्रति उत्साहपूर्वक समर्पित रहो। जैसे एक बलवान हाथी सरकंडों के घर को हिलाकर रख देता है, वैसे ही शैतान की सेनाओं को गिरा दो।"

'अब नागसेन, वह क्या कारण है कि तथागत ने अपने शिष्यों को उस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया और उनका नेतृत्व किया जिसे उन्होंने स्वयं त्याग दिया था, जिससे उन्हें घृणा थी?'

21. हे राजा, तब भी और अब भी, यही एकमात्र मार्ग है। और इसी मार्ग पर चलकर बोधिसात ने बुद्धत्व प्राप्त किया। हे राजा, यद्यपि बोधिसात ने परिश्रमपूर्वक भोजन कम कर दिया, यहाँ तक कि उसे पूरी तरह से त्याग दिया, और भोजन के इस त्याग से वे मानसिक रूप से दुर्बल हो गए, फिर भी जब उन्होंने धीरे-धीरे ठोस भोजन का सेवन फिर से शुरू किया, तो इसी मार्ग से शीघ्र ही उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया। और यही वह मार्ग है जिस पर चलकर सभी तथागत सर्वज्ञता की अंतर्दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। जिस प्रकार भोजन सभी प्राणियों का आधार है, जिस प्रकार भोजन पर निर्भरता से ही सभी प्राणी सुखी जीवन जीते हैं, ठीक उसी प्रकार यही मार्ग सभी तथागतों के लिए सर्वज्ञता की अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का मार्ग है। हे राजा, तथागत के तुरंत बुद्धत्व प्राप्त न कर पाने का दोष परिश्रम में, शक्ति में या बुराई के विरुद्ध किए गए युद्ध में नहीं था। लेकिन गलती भोजन के अनुपयोग में थी, और (मितव्ययिता का) मार्ग तो हमेशा उपयोग के लिए तैयार था।

22. 'हे राजा, मान लो कि कोई व्यक्ति बड़ी जल्दबाजी में किसी रास्ते पर चले और उस जल्दबाजी के कारण उसके शरीर के कुछ हिस्से फट जाएं।

यदि वह व्यक्ति लड़खड़ा जाए, या अपंग होकर जमीन पर गिर पड़े, हिलने-डुलने में असमर्थ हो जाए, तो क्या तब, हे राजा, इस विशाल पृथ्वी में कोई दोष होगा कि उस व्यक्ति के शरीर के किनारे लड़खड़ा गए?

'बिल्कुल नहीं, महोदय! विशाल पृथ्वी तो हमेशा तैयार रहती है। इसमें उसकी क्या गलती हो सकती है? गलती तो उस व्यक्ति के अपने उत्साह में थी जिसके कारण वह असफल हुआ।'

और हे महाराज, ठीक इसी प्रकार तथागत को तुरंत बुद्धत्व प्राप्त न होने का कारण परिश्रम, शक्ति या बुराई के विरुद्ध किए गए युद्ध में नहीं था। बल्कि दोष भोजन के अनुपयोग में था, और वह मार्ग तो सदा तैयार था—जैसे यदि कोई व्यक्ति वस्त्र पहने और उसे कभी न धोए, तो दोष जल में नहीं होगा, जो सदा उपयोग के लिए तैयार रहता है, बल्कि स्वयं व्यक्ति में होगा। इसीलिए तथागत ने अपने शिष्यों को उसी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया और उनका मार्गदर्शन किया। क्योंकि हे महाराज, वह मार्ग सदा तैयार है, सदा सही है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[मार्ग को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[छप्पनवीं दुविधा। पथभ्रष्ट लोग।]

23. 'आदरणीय नागसेना, तथागतों का यह सिद्धांत महान, सारगर्भित, अनमोल, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, अद्वितीय, शुद्ध और निर्मल, स्पष्ट और दोषरहित है। केवल शिष्य बने गृहस्थ को संघ में प्रवेश देना उचित नहीं है। उसे तब तक गृहस्थ के रूप में ही शिक्षा दी जानी चाहिए, जब तक वह प्रथम मार्ग का फल प्राप्त न कर ले, और उसके बाद ही उसे संघ में प्रवेश दिया जाना चाहिए। और ऐसा क्यों है? जब ये लोग, जो अभी भी दुष्ट हैं, इतने शुद्ध धर्म में प्रवेश पा लेते हैं, तो वे इसे त्याग देते हैं और फिर से निम्न अवस्था में लौट जाते हैं, और उनके इस पतन से जनता यह सोचने पर मजबूर हो जाती है: "यह समना गौतम का धर्म व्यर्थ ही है, जिसे इन लोगों ने त्याग दिया है।" यही मेरे इस कथन का कारण है।'

24. 'मान लीजिए, हे राजा, एक स्नानकुंड है, जो शुद्ध, स्वच्छ और ठंडे पानी से भरा है। और कोई व्यक्ति, जो गंदा, दाग-धब्बों और कीचड़ से सना हुआ है, वहाँ आता है, और बिना स्नान किए वापस लौट जाता है, पहले की तरह ही गंदा। अब इस मामले में लोग किसे दोष देंगे, उस गंदे व्यक्ति को, या स्नानकुंड को?'

'लोग उस गंदे आदमी को ही दोषी ठहराएंगे, महोदय।'

यह कहते हुए: "यह आदमी स्नानघर में आया और पहले की तरह ही गंदा होकर वापस चला गया। स्नानघर अपने आप उस आदमी को कैसे साफ कर सकता है जिसने स्नान करने की परवाह ही नहीं की? स्नानघर में क्या खराबी है?"

हे राजा, तथागत ने भी इसी प्रकार मुक्ति के उत्तम जल से भरा एक स्नानकुंड बनवाया है, जो उत्तम धर्म का स्नान है। जो भी सचेत और विवेकशील प्राणी पाप के दागों से दूषित हो, वह उसमें स्नान करके अपने समस्त पापों को धो सकता है। और यदि कोई उस उत्तम धर्म के स्नानकुंड में जाकर उसमें स्नान न करे, बल्कि पहले की तरह ही दूषित होकर लौट आए और फिर से निम्न अवस्था में चला जाए, तो लोग उसी पर दोष लगाएंगे और कहेंगे, "इस व्यक्ति ने विजयों के सिद्धांत के अनुसार धर्म में प्रवेश किया, और उसमें विश्राम न पाकर फिर से निम्न अवस्था में लौट आया। विजयों का धर्म स्वयं उस व्यक्ति को कैसे शुद्ध कर सकता है जो अपने जीवन को उसके अनुसार नहीं ढालता? इस प्रणाली में क्या दोष है?"

25. 'या मान लीजिए, हे राजा, कि एक गंभीर बीमारी से पीड़ित व्यक्ति किसी ऐसे चिकित्सक के पास जाए जो रोग निदान में कुशल हो और इलाज का कारगर और स्थायी तरीका जानता हो, और वह व्यक्ति इलाज न करवाए, बल्कि पहले की तरह बीमार होकर वापस चला जाए। अब ऐसे में लोग किसे दोषी ठहराएंगे, बीमार व्यक्ति को या चिकित्सक को?'

वे बीमार आदमी को दोषी ठहराते हुए कहते थे, महोदय:

[पैराग्राफ जारी है] "चिकित्सक स्वयं इस व्यक्ति का इलाज कैसे कर सकता है, जो स्वयं अपना इलाज नहीं होने देता? डॉक्टर की क्या गलती है?"

हे राजा, तथागत ने अपने धर्म रूपी प्याले में निर्वाण का अमृत रखा है, जो पाप के सभी रोगों को पूरी तरह से दूर कर देता है। उन्होंने सोचा, "जो भी सजग प्राणी पाप के रोग से पीड़ित हैं, वे इस अमृत को पिएं और अपने सभी रोगों को दूर करें।" और यदि कोई इस अमृत को पिए बिना, अपने भीतर पाप को लिए हुए, फिर से निम्न अवस्था में लौट जाए, तो लोग उसी पर दोष लगाएंगे और कहेंगे, "इस व्यक्ति ने विजय प्राप्त करने वालों के उपदेशों के अनुसार धर्म में प्रवेश किया, और उसमें विश्राम न पाकर फिर से निम्न अवस्था में लौट गया। विजय प्राप्त करने वालों का धर्म स्वयं उसे कैसे ठीक कर सकता है जो अपने जीवन को उसके अनुसार नहीं ढालता? इस प्रणाली में क्या दोष है?"

26. 'या मान लीजिए, हे राजा, कि एक भूखा व्यक्ति ऐसे स्थान पर उपस्थित हो जहाँ दान के रूप में भोजन का भरपूर वितरण हो रहा हो, और फिर बिना कुछ खाए भूखा ही वापस चला जाए। तब लोग किसे दोष देंगे, भूखे व्यक्ति को या धर्मपरायणता के उस भोज को?'

वे भूखे आदमी को दोष देते हुए कहते, "यह आदमी भूख से तड़प रहा था, फिर भी जब उसके लिए धार्मिक भोज का प्रबंध किया गया, तो उसने कुछ भी नहीं खाया और पहले की तरह ही भूखा लौट गया। भला वह भोजन, जिसका वह

क्या वह अपने आप ही अपने मुंह में नहीं डाल सकता? भोजन में क्या दोष है?

हे राजा, तथागत ने समस्त वस्तुओं की अनित्यता के ज्ञान के उत्तम, उत्तम, शुभ, कोमल और अमृतमय भोजन को अपने धर्म रूपी पात्र में इस विचार से रखा है: "जो भी सजग प्राणी अपने भीतर पाप की पीड़ा का अनुभव करते हैं, जिनके हृदय भोग-विलास से ग्रस्त हैं, वे इस भोजन का सेवन करके भविष्य में किसी भी रूप में, किसी भी लोक में जीवन की अपनी सभी इच्छाओं को शांत कर लें।" और यदि कोई इस भोजन का आनंद लिए बिना, भोग-विलास के वश में होकर, फिर से निम्न अवस्था में लौट जाए, तो लोग उसी पर दोष लगाएंगे और कहेंगे: "इस व्यक्ति ने विजयों के सिद्धांत के अनुसार धर्म में प्रवेश किया, और उसमें विश्राम न पाकर फिर से निम्न अवस्था में लौट गया। विजयों का धर्म स्वयं उसे कैसे शुद्ध कर सकता है जो अपने जीवन को उसके अनुसार नहीं ढालता? इस प्रणाली में क्या दोष है?"

27. 'हे राजा, यदि तथागत किसी गृहस्थ को श्रेष्ठ मार्ग के प्रथम चरण में प्रशिक्षित होने के बाद ही संघ में प्रवेश देते, तो संसार का त्याग वास्तव में बुरे गुणों को दूर करने, हृदय की शुद्धि करने में सहायक नहीं रह जाता—तब त्याग का कोई लाभ नहीं रह जाता। यह ऐसा ही होता जैसे कोई व्यक्ति स्नान करने के लिए तालाब खुदवाए।'

सैकड़ों (श्रमिकों) के श्रम से, एक स्नानघर बनाया जाए, और फिर यह सार्वजनिक घोषणा की जाए: "कोई भी गंदा व्यक्ति इस स्नानघर में न उतरे! केवल वही लोग इस स्नानघर में उतरें जिनकी धूल और गंदगी धुल गई हो, जो शुद्ध और निर्मल हों!" हे राजा, क्या इस प्रकार शुद्ध और निर्मल लोगों के लिए वह स्नानघर किसी काम का होगा?

'बिल्कुल नहीं, महोदय! स्नान करने से उन्हें जो लाभ चाहिए था, वह तो उन्हें कहीं और मिल ही जाता। फिर स्नान करने का उन्हें क्या फायदा होता?'

'हे राजा, यदि तथागत ने यह विधान किया होता कि केवल वे गृहस्थ ही संघ में प्रवेश करें जो श्रेष्ठ मार्ग के प्रथम चरण में प्रवेश कर चुके हों, तो उन्हें इसमें जो लाभ चाहिए वह पहले ही प्राप्त हो चुका होता। तब उनके लिए त्याग का क्या लाभ होता?'

28. 'या मान लीजिए, हे राजा, कि एक चिकित्सक, जो प्राचीन ऋषियों का सच्चा अनुयायी हो, जो प्राचीन परंपराओं और श्लोकों को (अपनी स्मृति में) रखता हो, एक व्यावहारिक व्यक्ति हो, निदान में कुशल हो, और एक प्रभावी और दीर्घकालिक उपचार प्रणाली का ज्ञाता हो, जिसने (औषधीय जड़ी-बूटियों से) एक ऐसी औषधि संकलित की हो जो हर रोग को ठीक कर सके, यह घोषणा करे: "हे महोदय, कोई भी बीमार व्यक्ति मेरे पास न आए!

स्वस्थ और बलवान लोग मुझसे मिलने आते हैं! तो फिर, हे राजा, क्या वे रोग-मुक्त, स्वस्थ और प्रसन्न पुरुष उस चिकित्सक से अपनी मनचाही चीज़ प्राप्त कर सकेंगे?

'बिल्कुल नहीं, महोदय! लोगों को चिकित्सक से जो चाहिए, वह उन्हें कहीं और से मिल ही जाता। चिकित्सक उनके किस काम का होगा?'

'हे राजा, यदि तथागत ने यह विधान किया होता कि केवल उन्हीं गृहस्थों को संघ में प्रवेश दिया जाए जो श्रेष्ठ मार्ग के प्रथम चरण में प्रवेश कर चुके हों, तो वे जिन लाभों की तलाश कर रहे हैं, वे उन्हें कहीं और प्राप्त हो चुके होते। तब उनके लिए त्याग का क्या लाभ होता?'

29. 'या मान लीजिए, हे राजा, कि किसी ने उबले हुए दूध-चावल के सैकड़ों व्यंजन तैयार करवाए हों, और अपने आस-पास के लोगों को यह घोषणा करवाई जाए: 'महोदय, कोई भी भूखा व्यक्ति इस दान भोज में न आए। वे लोग आएं जिन्होंने भरपेट भोजन किया हो, जो संतुष्ट हों, तरोताज़ा हों और तृप्त हों, जिन्होंने दावत का आनंद लिया हो और प्रसन्न हों।' अब, हे राजा, क्या इस प्रकार भरपेट भोजन करने वाले, संतुष्ट, तरोताज़ा, तृप्त, दावत का आनंद लेने वाले और प्रसन्न लोगों को इस भोज से कोई लाभ होगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय! वे दावत में जाकर जिस लाभ की तलाश कर रहे हैं, वह उन्हें कहीं और मिल चुका होता। दावत से उन्हें क्या फायदा होगा?'

'हे महाराज, तथागत ने ठीक इसी प्रकार यह विधान किया था कि'

केवल उन्हीं गृहस्थों को संघ में शामिल किया जाना चाहिए जो पहले ही श्रेष्ठ मार्ग के प्रथम चरण में प्रवेश कर चुके हों; अन्यथा वे जिन लाभों की तलाश कर रहे हैं, वे उन्हें कहीं और प्राप्त हो चुके होंगे। ऐसे में उनके लिए त्याग का क्या लाभ होगा?

30. परन्तु हे राजा, इसके बावजूद जो लोग निम्न अवस्था में लौटते हैं, वे इस प्रकार विजय प्राप्त करने वालों के धर्म में पाँच अत्यंत उत्तम गुणों को प्रकट करते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? वे दर्शाते हैं कि वह अवस्था कितनी गौरवशाली है (जिस अवस्था तक वे पहुँच चुके हैं जिन्होंने संघ में प्रवेश किया है), वह प्रत्येक दोष से कितनी शुद्ध है, पापियों के लिए उसमें (अच्छे लोगों के साथ) रहना कितना असंभव है, उसकी महिमा को प्राप्त करना कितना कठिन है, और उसमें कितने विवशों का पालन करना पड़ता है।

31. और वे उस राज्य की महान महिमा कैसे दर्शाते हैं? हे राजा, मान लीजिए कि कोई गरीब, नीच कुल का, साधारण, बुद्धिहीन व्यक्ति किसी महान और शक्तिशाली राज्य का स्वामी बन जाए, तो वह जल्द ही पराजित होकर पूरी तरह नष्ट हो जाएगा और उसकी महिमा छिन जाएगी। क्योंकि वह अपने सम्मान को बनाए रखने में असमर्थ होगा। और ऐसा क्यों? क्योंकि वह राज्य बहुत महान है। हे राजा, ठीक ऐसा ही है कि जो भी साधारण, गुणहीन और बुद्धिहीन हैं, जब वे विजेताओं के धर्म के अनुसार संसार का त्याग करते हैं, तो उस उत्तम त्याग को सहन न कर पाने के कारण, पराजित होकर, पतित होकर और अपनी महिमा खोकर वे निम्न अवस्था में लौट जाते हैं। क्योंकि वे

विजेताओं के सिद्धांत का पालन करो। और ऐसा क्यों? क्योंकि उस सिद्धांत से जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह अत्यंत उत्कृष्ट होती है। हे राजा, इसी प्रकार वे उस राज्य की महान महिमा का प्रदर्शन करते हैं।

32. और वे कैसे दिखाते हैं कि वह अवस्था हर दाग से शुद्ध है? हे राजा, जैसे कमल पर गिरने पर जल बह जाता है, बिखर जाता है, विलीन हो जाता है, उस पर नहीं टिकता। और ऐसा क्यों? क्योंकि कमल हर दाग से शुद्ध होता है। ठीक वैसे ही, हे राजा, जब कोई भी कपटी, छल करने वाला, कपटी, विश्वासघाती और अधर्मी मत रखने वाला विजय प्राप्त करने वालों के धर्म में प्रवेश कर जाता है, तो वे जल्द ही बिखर जाते हैं, फैल जाते हैं और उस शुद्ध, निर्मल, निर्मल, सर्वोच्च और उत्कृष्ट धर्म से गिर जाते हैं, और उसमें कोई स्थान न पाकर, उससे विमुख होकर निम्न अवस्था में लौट जाते हैं। और ऐसा क्यों? क्योंकि विजय प्राप्त करने वालों का धर्म हर दाग से शुद्ध है। इस प्रकार, हे राजा, वे उस अवस्था की हर दाग से शुद्धि को प्रकट करते हैं।

33. और वे कैसे दिखाते हैं कि पापी लोगों का भले लोगों के साथ उसमें रहना कितना असंभव है? हे राजा, न्याय करो, जैसे विशाल सागर अपने भीतर किसी मृत शरीर को रहने नहीं देता, बल्कि जो भी शव सागर में हो, उसे वह तुरंत किनारे पर लाकर सूखी भूमि पर फेंक देता है। और ऐसा क्यों? क्योंकि सागर

शक्तिशाली प्राणियों का निवास स्थान। हे राजा, ठीक इसी प्रकार, जब पापी, मूर्ख, उत्साहहीन, दुखी, अपवित्र और दुष्ट लोगों को विजेताओं के धर्म में प्रवेश दिया जाता है, तो वे जल्द ही उस धर्म को त्याग देते हैं और उसमें निवास न करते हुए—शक्तिशाली अरहतों के निवास स्थान, जो शुद्ध और महापापों से मुक्त हैं—निम्न अवस्था में लौट जाते हैं। और ऐसा क्यों? क्योंकि दुष्टों के लिए विजेताओं के धर्म में रहना असंभव है। इस प्रकार, हे राजा, वे यह दर्शाते हैं कि पापी लोगों के लिए अच्छे लोगों के साथ उसमें रहना असंभव है।

34. और वे कैसे दर्शाते हैं कि इस अवस्था को समझना कितना कठिन है? हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे अनाड़ी, अप्रशिक्षित, अज्ञानी और कौशलहीन धनुर्धारी बाल-फाड़ की बारीक कला दिखाने में असमर्थ होते हैं, बल्कि लक्ष्य से चूक जाते हैं और निशाने से बाहर तीर मारते हैं। और ऐसा क्यों? क्योंकि घोड़े के बाल बहुत बारीक और सूक्ष्म होते हैं। ठीक वैसे ही, हे राजा, जब कोई मूर्ख, बेवकूफ, मंदबुद्धि, सुस्त और मंदबुद्धि होता है।

जो लोग विजय प्राप्त करने वालों के सिद्धांत के अनुसार संसार का त्याग करते हैं, वे चार सत्यों के अत्यंत सूक्ष्म भेदों को समझने में असमर्थ होकर, उनसे भटककर, शीघ्र ही निम्नतम अवस्था में लौट जाते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि सत्यों की सूक्ष्मता और बारीकियों को समझना अत्यंत कठिन है। इस प्रकार वे सत्य की प्राप्ति की कठिनाई को दर्शाते हैं।

35. और वे कैसे दिखाते हैं कि इसमें कितने नियम-कानूनों का पालन करना है? हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति किसी ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ भयंकर युद्ध चल रहा हो, और जब वह शत्रु की सेनाओं से चारों ओर से घिरा हुआ पाता है और देखता है कि सशस्त्र सेनाएँ उस पर टूट पड़ रही हैं, तो वह पीछे हट जाता है, वापस मुड़ जाता है और भाग जाता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसे डर होता है कि इतने भयंकर युद्ध के बीच वह बच न पाए। ठीक वैसे ही, हे राजा, जब कोई भी दुष्ट, बेलगाम, निर्लज्ज, मूर्ख, द्वेषपूर्ण, चंचल, अस्थिर, नीच और बेवकूफ, विजेताओं की व्यवस्था के तहत संसार का त्याग करता है, तो वे अनेक उपदेशों का पालन करने में असमर्थ होकर

पीछे हट जाते हैं, वापस मुड़ जाते हैं और भाग जाते हैं, और इस प्रकार शीघ्र ही निम्न अवस्था में लौट जाते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि विजेताओं के धर्म में पालन किए जाने वाले नियमों का स्वरूप अनेक प्रकार का है। इस प्रकार, हे राजा, वे पालन किए जाने वाले प्रतिबंधों की विविधता को दर्शाते हैं।

36. हे राजा, जैसे उत्तम पुष्पवृंत, दोहरी चमेली पर कभी-कभी ऐसे फूल होते हैं जिन्हें कीड़ों ने छेद दिया हो और उनकी कोमल डंठलें कटकर टुकड़े-टुकड़े हो गई हों, और वे गिर जाते हों। परन्तु उनके गिरने से चमेली की झाड़ी अपमानित नहीं होती। क्योंकि जो फूल उस पर शेष रहते हैं, वे अपनी उत्तम सुगंध से हर दिशा में फैल जाते हैं। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो कोई भी विजय प्राप्त करने वालों की व्यवस्था के अधीन संसार का त्याग करके निम्न अवस्था में लौट आता है, वह चमेली के फूलों के समान, जिन्हें कीड़ों ने काट लिया हो और जिनका रंग और सुगंध छीन ली गई हो, अपने व्यवहार में मानो रंगहीन और विकासहीन हो जाता है। परन्तु उनके पतन से विजय प्राप्त करने वालों का धर्म लज्जित नहीं होता। क्योंकि जो पंथ के सदस्य धर्म में बने रहते हैं, वे अपने उत्तम आचरण की उत्तम सुगंध से देवताओं और मनुष्यों के संसार को भर देते हैं।

37. स्वस्थ और लाल रंग के धान के पौधों के बीच करुम्भक नामक एक प्रकार का धान का पौधा उग सकता है, जो कभी-कभी मुरझा जाता है। परन्तु उसके मुरझाने से लाल धान के पौधे अपमानित नहीं होते। क्योंकि जो पौधे बचे रहते हैं, वे राजाओं का भोजन बनते हैं। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो कोई भी विजय प्राप्त करने वालों की व्यवस्था के अधीन संसार का त्याग करके फिर से निम्न अवस्था में लौट आता है, वह लाल धान के पौधों के बीच करुम्भक पौधों की तरह न तो बढ़ पाता है, न ही विकास प्राप्त कर पाता है, और कभी-कभी निम्न अवस्था में भी लौट जाता है। परन्तु उनके इस पतन से विजय प्राप्त करने वालों का धर्म लज्जित नहीं होता।

जो भाई दृढ़ रहते हैं, वे अरहत पद के योग्य भी हो जाते हैं।

38. हे राजा, इच्छा पूरी करने वाले रत्न के एक तरफ खुरदरापन आ सकता है। परन्तु उस खुरदरेपन से रत्न की अपंगता नहीं होती। क्योंकि रत्न में जो पवित्रता बनी रहती है, वह लोगों को आनंद से भर देती है। और ठीक इसी प्रकार, हे राजा, जो कोई विजय प्राप्त करने वालों की व्यवस्था के अधीन संसार का त्याग करके फिर से निम्न अवस्था में लौट आता है, वह धर्म में पथभ्रष्ट और पतित हो सकता है। परन्तु उनके पतन से विजय प्राप्त करने वालों का धर्म लज्जित नहीं होता, क्योंकि जो भाई दृढ़ रहते हैं, वे देवताओं और मनुष्यों के हृदयों में आनंद का कारण बनते हैं।

39. हे महाराज, शुद्धतम लाल चंदन भी किसी न किसी भाग से सड़ कर गंधहीन हो सकता है। परन्तु इससे चंदन की लज्जा नहीं होती। क्योंकि जो भाग स्वच्छ और सुगंधित रहता है, वह अपनी सुगंध चारों ओर फैलाता है। ठीक इसी प्रकार, हे महाराज, जो कोई विजय प्राप्त करने वालों की व्यवस्था के अधीन संसार का त्याग करके फिर से निम्न अवस्था में लौट आता है, वह चंदन के सड़े हुए भाग के समान धर्म में तिरस्कृत हो सकता है। परन्तु उनके इस पतन से विजय प्राप्त करने वालों का धर्म लज्जित नहीं होता। क्योंकि जो भाई दृढ़ रहते हैं, वे अपने उत्तम आचरण की चंदन जैसी सुगंध से देवताओं और मनुष्यों के संसार को सुशोभित करते हैं।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! एक के बाद एक उपयुक्त उपमाओं और सही सादृश्यों से आपने अत्यंत उत्कृष्ट ढंग से बात स्पष्ट कर दी है।'

हमने विजेताओं की व्यवस्था की निर्दोषता को दर्शाया है और उसे दोषरहित साबित किया है। यहाँ तक कि जो लोग पथभ्रष्ट हो गए हैं, वे भी यह स्पष्ट करते हैं कि वह व्यवस्था कितनी उत्कृष्ट है।

(यहाँ उन लोगों के बारे में दुविधा समाप्त होती है जो पथभ्रष्ट हो गए हैं।)

[सत्तावनवीं दुविधा। अरहतों को अपने शरीर पर कोई नियंत्रण क्यों नहीं है?]

40. 'आदरणीय नागसेना, आपके (संगठन के सदस्यों) का कहना है:

"अरहत को केवल एक ही प्रकार का दर्द होता है, शारीरिक दर्द, मानसिक दर्द नहीं।"

'यह कैसे हो सकता है, नागसेन? अरहत अपने शरीर के माध्यम से अपने मन को चलाए रखते हैं। क्या अरहत का शरीर पर कोई प्रभुत्व, कोई अधिकार, कोई शक्ति नहीं है?'

'नहीं, उसने ऐसा नहीं किया है, हे राजा।'

'महोदय, यह उचित नहीं है कि जिस शरीर से वह अपने मन को चलाता है, उस पर उसका न तो प्रभुत्व हो, न ही अधिकार हो, न ही शक्ति हो। महोदय, एक पक्षी भी अपने घोंसले का स्वामी, मालिक और शासक होता है।'

41. हे राजा, शरीर में ये दस गुण अंतर्निहित हैं, जो मानो शरीर के साथ-साथ चलते हैं और जन्म-जन्म में उसके साथ रहते हैं। वे दस गुण क्या हैं? सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास।

मल त्याग की आवश्यकता, थकान और नींद आना, बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु। और इस मामले में अरहत का कोई प्रभुत्व नहीं है, कोई अधिकार नहीं है, कोई शक्ति नहीं है।

'आदरणीय नागसेना, इसका क्या कारण है कि अरहत के आदेशों का उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और न ही उस पर उसका कोई नियंत्रण है? मुझे इसका कारण बताइए।'

'हे राजा, न्यायप्रिय! जो भी प्राणी इस भूमि पर निर्भर हैं, वे सब इसी पर निर्भर होकर चलते-फिरते, निवास करते और अपना व्यवसाय करते हैं। परन्तु क्या उनके आदेशों में कोई शक्ति है, क्या उनका प्रभुत्व इस पर व्याप्त है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय!'

'हे राजा, अरहत ठीक इसी प्रकार अपने मन को शरीर के माध्यम से संचालित रखता है। फिर भी उसके आदेशों का इस पर कोई अधिकार या शक्ति नहीं है।'

42. 'आदरणीय नागसेना, ऐसा क्यों है कि साधारण मनुष्य शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की पीड़ा भोगता है?'

हे राजा, उसके अशिक्षित मन के कारण। हे राजा, जैसे भूख से कांपते हुए बैल को घास या लता की कमजोर, नाजुक और पतली रस्सी से बांध दिया जाता है। लेकिन अगर बैल उत्तेजित हो जाए तो वह रस्सी को घसीटते हुए भाग जाएगा। ठीक वैसे ही, हे राजा, जब अशिक्षित मन वाले व्यक्ति को पीड़ा आती है, तो उसका मन उत्तेजित हो जाता है, और उत्तेजित मन उसके शरीर को इधर-उधर झुकाता है और उसे जमीन पर घसीटता है, और वह अशिक्षित मन से कांपता है, रोता है और भयानक चीखें निकालता है।

आहें। इसीलिए, हे राजा, साधारण मनुष्य को शरीर और मन दोनों में पीड़ा सहनी पड़ती है।'

43. 'तो फिर, महोदय, अरहत को केवल एक ही प्रकार का दर्द क्यों होता है—अर्थात शारीरिक दर्द, मानसिक दर्द नहीं?'

'हे बादशाह, अरहत का मन प्रशिक्षित, सुशिक्षित, वश में किया हुआ, आज्ञाकारी और आज्ञाकारी होता है, और वह उनके वचन को सुनता है। जब वह पीड़ा से ग्रस्त होते हैं, तो वे सभी चीजों की अनित्यता के विचार को दृढ़ता से ग्रहण कर लेते हैं, अपने मन को मानो ध्यान के स्तंभ से बांध लेते हैं, और ध्यान के स्तंभ से बंधा हुआ उनका मन अविचलित, स्थिर और दृढ़ रहता है, भटकता नहीं है—यद्यपि उनका शरीर पीड़ा के कारण इधर-उधर झुकता और कराहता रहता है। इसीलिए अरहत केवल एक ही प्रकार की पीड़ा सहते हैं—शारीरिक पीड़ा, मानसिक नहीं।'

44. आदरणीय नागसेन, यह वास्तव में अत्यंत आश्चर्यजनक बात है कि जब शरीर कांप रहा हो तब भी मन विचलित न हो। मुझे इसका कारण बताइए।

'हे राजा, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष है, जिसका तना, शाखाएँ और पत्तियाँ बहुत बड़ी हैं। और जब हवा के बल से उसकी शाखाएँ हिलती हैं, तो क्या उसका तना भी हिलेगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय!'

'हे महाराज, अरहत का मन उस महान वृक्ष के तने के समान है।'

'नागसेना, यह बहुत ही अद्‌भुत और साथ ही बहुत ही विचित्र भी है!'

[पैराग्राफ जारी है] मैंने पहले कभी कानून का ऐसा दीपक नहीं देखा जो इतने लंबे समय तक इतनी चमक से जलता रहा हो।'

[यहाँ अरहत के अपने शरीर पर नियंत्रण को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[अठावनवीं दुविधा। आम आदमी का पाप।]

45. आदरणीय नागसेना, मान लीजिए कि एक गृहस्थ ने पारगिक अपराध किया हो और कुछ समय बाद संघ में प्रवेश कर ले। न तो उसे स्वयं इस बात का ज्ञान हो कि गृहस्थ रहते हुए उसने ऐसा अपराध किया था, और न ही किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे यह सूचित किया जाए कि "गृहस्थ रहते हुए आपने ऐसा अपराध किया था।" अब यदि वह अरहतत्त्व प्राप्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर दे, तो क्या वह सत्य को इस प्रकार समझ पाएगा कि श्रेष्ठ मार्ग पर चल सके?

'नहीं, हे राजा, वह ऐसा नहीं करेगा।'

'लेकिन क्यों नहीं, महोदय?'

'उसमें वह क्षमता, जो सत्य को समझने का कारण बन सकती थी, नष्ट हो चुकी है। इसलिए अब उसे सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता।'

46. 'आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं:

जो व्यक्ति (अपराध से) अवगत होता है, उसे

पश्चाताप। जब पश्चाताप उत्पन्न होता है तो हृदय में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। जिसका हृदय अवरुद्ध होता है, उसे सत्य की समझ नहीं होती।

'जो व्यक्ति अपने अपराध से अनभिज्ञ है, पश्चाताप नहीं करता, और शांत मन से रहता है, उसे यह बात क्यों समझ में नहीं आनी चाहिए? यह दुविधा दो परस्पर विरोधी कथनों को छूती है। इसका हल निकालने से पहले अच्छी तरह सोच लें।'

47. 'हे राजा, क्या चयनित बीज, अच्छी तरह से जोती गई, अच्छी तरह से सींची गई, उपजाऊ मिट्टी में सफलतापूर्वक बोए जाने पर, परिपक्व हो पाएंगे?'

'जी हां, महोदय!'

लेकिन क्या वही बीज चट्टान की मोटी परत की सतह पर उग पाएगा?

'बिल्कुल नहीं।'

'तो फिर वही बीज कीचड़ में क्यों उगता है, चट्टान पर क्यों नहीं?'

'क्योंकि चट्टान पर उसके विकास का कोई कारण नहीं होता। बिना कारण के बीज उग नहीं सकते।'

'हे राजा, ठीक उसी प्रकार, जिस कारण से उसे सत्य का ज्ञान (उसका धर्म परिवर्तन) हो सकता था, वह कारण उसमें जड़ से उखाड़ दिया गया है। बिना कारण के धर्म परिवर्तन नहीं हो सकता।'

48. '[मुझे एक और उपमा दीजिए, महोदय।']

'खैर, हे राजा, क्या लाठियाँ, मिट्टी के ढेले और डंडे काम आएंगे?'

और क्या क्लब हवा में भी उसी तरह विश्राम स्थान पाते हैं जैसे वे जमीन पर पाते हैं?'

'नहीं, महोदय।'

लेकिन वे पृथ्वी पर विश्राम करने क्यों आते हैं, जबकि वे हवा में खड़े नहीं हो सकते?

'उनकी स्थिरता का कोई ठोस कारण नहीं है, और बिना किसी कारण के वे टिक नहीं पाएंगे।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, उसके उस दोष के कारण ही उसके धर्म परिवर्तन का कारण समाप्त हो गया है। और बिना कारण के कोई धर्म परिवर्तन नहीं हो सकता। अब, हे राजा, क्या आग पानी में उसी प्रकार जलेगी जैसे वह भूमि पर जलती है?'

'नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'क्योंकि पानी में जलने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ मौजूद नहीं होतीं। और उनके बिना जलना संभव नहीं है।'

'हे राजा, ठीक उसी प्रकार उसके उस अपराध के कारण उसमें धर्म परिवर्तन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ नष्ट हो गई हैं। और जब वे परिस्थितियाँ नष्ट हो जाती हैं जो धर्म परिवर्तन को संभव बनाती हैं, तो धर्म परिवर्तन संभव ही नहीं है।'

49. 'आदरणीय नागसेना, इस मामले पर एक बार फिर विचार करें। मैं अभी भी इससे सहमत नहीं हूँ। मुझे किसी कारण से समझाएँ कि जो व्यक्ति अपने अपराध से अनभिज्ञ है और इसलिए पश्चाताप नहीं करता, उसके मामले में ऐसी बाधा कैसे उत्पन्न हो सकती है।'

'हे राजा, क्या हलाहल विष, यदि खाया जाए तो?'

जिस व्यक्ति को पता ही नहीं था कि उसने इसे खा लिया है, क्या उसकी जान ले ली जाए?

'जी श्रीमान।'

'हे राजा, क्या सत्य को समझने में उसी प्रकार बाधा उत्पन्न होती है, जिसने अनजाने में पाप किया हो? और क्या आग, हे राजा, उस व्यक्ति को जला देगी जो अनजाने में उसमें प्रवेश कर गया हो?'

'जी श्रीमान।'

'ठीक है, जैसा आपने बताया वैसा ही। या फिर क्या कोई विषैला सांप, अगर किसी आदमी को बिना उसकी जानकारी के काट ले, तो उसे मार डालेगा?'

'जी श्रीमान।'

''ठीक है, जैसा आपने बताया, वैसा ही है। क्या यह सच नहीं है कि कलिंग के राजा समना कोलञ्ञ, जब एक संप्रभु शासक के सात खजानों से घिरे हुए, अपने राजसी हाथी पर सवार होकर अपने रिश्तेदारों से मिलने गए, तो वे ज्ञान के वृक्ष को पार नहीं कर पाए, जबकि उन्हें यह पता भी नहीं था कि वह वृक्ष वहाँ स्थित है? ठीक इसी तरह, जो व्यक्ति कोई अपराध करता है, भले ही उसे इसका पता न हो, फिर भी वह सत्य के ज्ञान तक पहुँचने में असमर्थ होता है।''

'सचमुच, नागसेन, यही विजेता का वचन होना चाहिए। इसमें कोई दोष निकालना व्यर्थ होगा। और यही (तुम्हारी व्याख्या) इसका अर्थ होना चाहिए। मैं इसे तुम्हारे कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ आम आदमी के पाप की दुविधा समाप्त होती है।]

[उनसठवीं दुविधा। दोषी एकांतवासी।]

50. 'आदरणीय नागसेना, एक गृहस्थ जिसने पाप किया है और एक समन (संगठन का सदस्य) जिसने पाप किया है, उनमें क्या अंतर है? क्या दोनों का पुनर्जन्म एक ही स्थिति में होगा? क्या दोनों को एक ही दंड मिलेगा? या कोई अंतर है?'

'हे राजा, दस गुण ऐसे हैं जो दोषी समना में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो उसे दोषी गृहस्थ से अलग करते हैं। और इसके अलावा, समना दस तरीकों से उसे दिए जाने वाले उपहारों को शुद्ध करता है।'

51. और वे दस गुण कौन से हैं जो दोषी समना में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो उसे दोषी गृहस्थ से अलग करते हैं? हे महाराज, दोषी समना बुद्ध, धर्म, संघ और अपने सहपाठियों के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण होता है; वह पवित्र ग्रंथों के बारे में प्रश्न पूछने और उनका पाठ करने में तत्पर रहता है; वह पाप करने के बावजूद भी विद्या के प्रति समर्पित रहता है। फिर, हे महाराज, दोषी समना सभा में प्रवेश करते समय शालीन वस्त्र पहनकर प्रवेश करता है, वह निंदा के भय से शरीर और मन दोनों से स्वयं को सुरक्षित रखता है, उसका मन अरहतत्व प्राप्ति के लिए तत्पर रहता है, वह भिक्षुओं की संगति में रहता है। और हे महाराज, यदि वह पाप भी करता है तो वह विवेकपूर्ण जीवन जीता है। हे महाराज, जिस प्रकार एक विवाहित स्त्री गुप्त रूप से और एकांत में पाप करती है, उसी प्रकार दोषी समना अपने पाप में विवेकपूर्ण आचरण करता है। हे महाराज, ये दस गुण दोषी समना में पाए जाते हैं, जो उसे दोषी गृहस्थ से अलग करते हैं।

52. 'और वे दस तरीके कौन से हैं, इसके अलावा,

क्या वह अपने द्वारा दिए गए उपहार को इस प्रकार पवित्र करता है? वह इसे इस प्रकार पवित्र करता है कि वह अभेद्य कवच धारण करता है; कि वह प्राचीन ऋषियों द्वारा अपनाए जाने वाले त्याग के विशिष्ट चिह्न के अनुसार अपने बाल मुंडवाता है; कि वह भाइयों के समूह में शामिल है; कि उसने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ली है; कि वह (अरहत पद के बाद) परिश्रम के लिए उपयुक्त एकांत स्थान पर निवास करता है; कि वह विजेताओं की शिक्षाओं के खजाने की खोज करता है; कि वह सबसे उत्तम धर्म (धम्म) का प्रचार करता है; कि उसका अंतिम भाग्य सत्य के द्वीप में पुनर्जन्म लेना है; कि वह इस दृढ़ विश्वास से परिपूर्ण है कि बुद्ध सभी प्राणियों के श्रेष्ठ हैं; कि उसने उपोसथ दिवस का पालन करने का दायित्व अपने ऊपर लिया है। हे राजा, ये दस तरीके हैं जिनसे वह अपने द्वारा दिए गए उपहार को पवित्र करता है।

53. हे राजा, पूर्णतः पतित होने पर भी, एक पापी समना धर्म के समर्थकों के दान को पवित्र कर देता है—जैसे पानी, चाहे कितना भी गाढ़ा हो, कीचड़, गंदगी और दाग धो देता है—जैसे गर्म, यहाँ तक कि उबलता हुआ पानी भी भयंकर आग को बुझा देता है—जैसे भोजन, चाहे कितना भी बेस्वाद हो, भूख को शांत कर देता है। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के अधिपति ने उत्तम मगधिमा निकैया के "दान पर" अध्याय में यही कहा है:

जब भी कोई नेक व्यक्ति, विश्वासपूर्ण हृदय से, अपने कर्मों से अर्जित धन को अधर्मियों को भेंट करता है, इस विश्वास के साथ कि इस नेक कार्य का फल अवश्य मिलेगा, तो ऐसा दान देने वाले द्वारा पवित्र हो जाता है।

'हे नागसेन, अत्यंत अद्भुत और विचित्र! हमने आपसे एक साधारण सा प्रश्न पूछा था, और आपने तर्क और उपमाओं से उसका उत्तर देकर मानो श्रोता को निर्वाण के मधुर स्वाद से भर दिया। जैसे कोई रसोइया या उसका शागिर्द साधारण जायफल लेकर, उसमें विभिन्न सामग्रियाँ मिलाकर राजा के लिए व्यंजन तैयार करता है—वैसे ही, हे नागसेन, जब हमने आपसे एक साधारण सा प्रश्न पूछा, तो आपने तर्क और उपमाओं से उसका उत्तर देकर श्रोता को निर्वाण के मधुर स्वाद से भर दिया।'

[दोषी संन्यासी के संबंध में दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[साठवीं दुविधा। जल में आत्मा।]

54. 'हे आदरणीय नागसेन, जब यह जल अग्नि पर उबलता है तो अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करता है, फुफकारता और उबलता हुआ। तो क्या, नागसेन, यह जल सजीव है? क्या यह खेल-खेल में चिल्ला रहा है? या यह अपने ऊपर हो रही पीड़ा पर विलाप कर रहा है?'

'हे राजा, यह जीवित नहीं है; जल में कोई आत्मा या अस्तित्व नहीं है। यह आग की भीषण गर्मी के कारण ही आवाजें, फुफकार और सुलगने की आवाजें निकालता है।'

'हे पूज्य नागसेना, कुछ झूठे शिक्षक हैं जो इस आधार पर कि जल जीवित है, ठंडे पानी के उपयोग को अस्वीकार करते हैं, और जल को गर्म करके विभिन्न प्रकार के गुनगुने भोजन से अपना पेट भरते हैं।'

'ये लोग आप पर दोष लगाते हैं और आपकी निंदा करते हुए कहते हैं: "शाक्यपुत्रीय समना एक ही प्रकार के प्राणों को हानि पहुँचाते हैं।" उनकी इस निंदा और दोष को दूर करो, हटाओ, इससे छुटकारा पाओ।'

55. 'हे राजा, जल सजीव नहीं है। न ही उसमें कोई आत्मा है और न ही कोई अस्तित्व। और यह है...'

आग की भीषण गर्मी का ज़ोरदार झटका उसे ध्वनि उत्पन्न करने, फुफकारने और उबलने के लिए मजबूर करता है। यह ज़मीन में बने गड्ढों, तालाबों, झीलों, जलाशयों, दरारों और खाइयों, कुओं, निचले इलाकों और कमल-कुंडों में मौजूद पानी के समान है, जो गर्म हवाओं के ज़ोरदार प्रहार से इतना प्रभावित होता है कि सूख जाता है। परन्तु हे राजा, क्या उस स्थिति में पानी फुफकारते और उबलते हुए अनेक ध्वनियाँ उत्पन्न करता है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

लेकिन, अगर पानी जीवित होता, तो वह भी कुछ आवाज़ करता। इसलिए, हे राजा, जान लो कि पानी में न तो आत्मा है, न ही अस्तित्व; और पानी की तीव्र गर्मी के कारण ही वह आवाज़ उत्पन्न करता है।

56. 'और हे राजा, इसी बात का एक और कारण सुनो। हे राजा, यदि पानी में चावल के दाने डालकर उसे एक बर्तन में भरकर ढक दिया जाए, परन्तु चूल्हे के ऊपर न रखा जाए, तो क्या उसमें से ध्वनि निकलेगी?'

'नहीं, महोदय। यह शांत और अविचलित रहेगा।'

लेकिन अगर आप उसी पानी को, जैसा कि वह बर्तन में है, एक अंगीठी के ऊपर रख दें और फिर आग जला दें, तो क्या पानी शांत और स्थिर रहेगा?

'बिल्कुल नहीं, महोदय। यह हिलने लगेगा, व्याकुल हो जाएगा, अशांत हो जाएगा और पूरी तरह से हलचल मच जाएगी, इसमें लहरें उठेंगी, यह ऊपर-नीचे और हर दिशा में दौड़ेगा, यह लुढ़क जाएगा और उबल उठेगा, और इसके ऊपर झाग की एक माला बन जाएगी।'

'लेकिन ऐसा क्यों, हे राजा, जबकि जल अपनी सामान्य अवस्था में शांत और स्थिर रहता है?'

'आग की ऊष्मा के प्रबल आवेग के कारण ही पानी, जो आमतौर पर इतना शांत रहता है, कई तरह की आवाजें निकालता है, जैसे कि बुलबुले उठना और फुफकारना।'

'तो हे राजा, इस प्रकार जान लो कि जल में न तो आत्मा है, न ही अस्तित्व; और यह आग की तीव्र ऊष्मा ही है जिसके कारण यह ध्वनि उत्पन्न करता है।'

57. 'और हे राजा, इसी बात का एक और कारण सुनो। क्या हर घर में पानी ऐसे घड़ों में नहीं रखा जाता जिनके मुंह बंद हों?'

'जी श्रीमान।'

'अच्छा, क्या वह पानी हिलता है, क्या वह अशांत है, व्याकुल है, हलचल में है, क्या वह लहरों का रूप लेता है, क्या वह ऊपर-नीचे और हर दिशा में बहता है, क्या वह लुढ़कता है और पलटता है, क्या वह झाग से ढका हुआ है?'

'नहीं! वह पानी अपनी सामान्य अवस्था में है। वह स्थिर और शांत रहता है।'

'लेकिन क्या आपने कभी सुना है कि यह सब विशाल महासागर के पानी के बारे में भी सच है? और यह कि उफान मारते हुए यह एक जोरदार गर्जना के साथ तट से टकराता है?'

'हां, मैंने इसके बारे में सुना भी है और खुद भी देखा है—कि कैसे विशाल महासागर का पानी सौ-दो सौ क्यूबिट ऊंचा आकाश की ओर उठता है।'

लेकिन ऐसा क्यों होता है कि जहां पानी अपनी सामान्य अवस्था में स्थिर और गतिहीन रहता है, वहीं महासागर का पानी गतिमान होने के साथ-साथ गर्जना भी करता है?

'यह उस प्रचंड शक्ति के कारण है

हवा चलने लगती है, लेकिन घड़ों में रखा पानी न तो हिलता है और न ही कोई आवाज करता है, क्योंकि उसे कोई हिलाता नहीं है।

'ठीक इसी तरह, उबलते पानी से निकलने वाली आवाजें भी आग की अत्यधिक गर्मी का ही परिणाम होती हैं।'

58. 'क्या लोग ढोल के सूखे हुए मुँह को सूखे गाय के चमड़े से नहीं ढकते?'

'हाँ वे करते हैं।'

'हे राजा, क्या ढोल में कोई आत्मा या प्राणी होता है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर ढोल से आवाज कैसे निकलती है?'

'किसी स्त्री या पुरुष के कार्य या प्रयास से।'

"जिस प्रकार ढोल बजता है, उसी प्रकार आग की गर्मी के प्रभाव से पानी भी ध्वनि उत्पन्न करता है। और इसी कारण हे राजा, आपको यह भी जान लेना चाहिए कि जल में न तो आत्मा है, न ही अस्तित्व; और यह आग की गर्मी ही है जिसके कारण जल ध्वनि उत्पन्न करता है।"

59. 'और हे राजा, मुझे भी आपसे कुछ और पूछना है—इस प्रकार इस पहेली का पूरी तरह से समाधान हो जाएगा। यह कैसे है? क्या यह हर प्रकार के बर्तन के लिए सच है कि उसमें गर्म किया गया पानी आवाज करता है, या केवल कुछ प्रकार के बर्तनों के लिए?'

'सभी के नहीं, महोदय। केवल कुछ के।'

लेकिन फिर, हे राजा, आपने स्वयं ही अपना रुख त्याग दिया है। आप मेरे पक्ष में आ गए हैं - कि जल में न तो आत्मा है, न ही कोई अस्तित्व। क्योंकि यदि यह किसी भी चीज़ में शोर करता है तो ही ऐसा होगा।

अगर किसी बर्तन को गर्म किया जाए तो क्या यह कहना सही होगा कि उसमें आत्मा है? पानी दो प्रकार का नहीं हो सकता—एक वह जो बोलता है, जो जीवित है, और दूसरा वह जो नहीं बोलता और निर्जीव है। यदि सारा पानी जीवित होता, तो वह पानी जिसे विशाल हाथी, जब वे प्रजनन के लिए तैयार होते हैं, अपनी सूंड में भरकर अपने विशाल शरीर पर उंडेलते हैं, या अपने मुँह में भरकर सीधे अपने पेट में ले जाते हैं—वह पानी भी, जब उनके दाँतों के बीच कुचला जाता, तो ध्वनि उत्पन्न करता। और विशाल जहाज, सौ हाथ लंबे, भारी माल

से लदे, सैकड़ों सामान के पैकेटों से भरे, जब समुद्र पर चलते हैं—तो उनके द्वारा कुचला गया पानी भी ध्वनि उत्पन्न करता। और विशाल मछलियाँ, सैकड़ों मील लंबे शरीर वाले विशालकाय जीव, क्योंकि वे विशाल महासागर में, उसकी गहराई में डूबे रहते हैं, इसलिए उसमें रहते हुए, लगातार अपने मुँह में महासागर का पानी भरते और उगलते रहते होंगे—और वह पानी भी, जब उनके गलफड़ों के बीच या उनके पेट में कुचला जाता, तो ध्वनि उत्पन्न करता। लेकिन चूंकि इतनी शक्तिशाली चीजों के पीसने और कुचलने से पीड़ित होने पर भी जल कोई ध्वनि नहीं उत्पन्न करता, इसलिए, हे राजा, आप यह मान सकते हैं कि जल में न तो आत्मा है और न ही अस्तित्व।

बहुत खूब, नागसेना! तुमने बड़ी समझदारी से पहेली सुलझाई है। नागसेना, ठीक वैसे ही जैसे किसी कुशल, निपुण और प्रशिक्षित सुनार के हाथों में आया कोई अनमोल रत्न, किसी दुर्लभ मोती की तरह, उचित सराहना, सम्मान और प्रशंसा पाता है।

मोतियों के व्यापारी के हाथों में, कपड़े के व्यापारी के हाथों में बुने हुए बढ़िया कपड़े का टुकड़ा, या इत्र बनाने वाले के हाथों में लाल चंदन—ठीक उसी तरह, आपके सामने रखी गई इस पहेली को उचित विवेक के साथ हल किया गया है।

[जल-जीवन से संबंधित दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

यहां छठा अध्याय समाप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक IV। दुविधाओं का समाधान - अध्याय 7

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----॥-15-॥----->>>> अगला

1. पूज्य नागसेना, भगवान ने कहा:

"हे भाइयों, उस चीज़ में समर्पित होकर जियो और आनंद लो जिसमें कोई पापंका (मन की वे अवस्थाएँ नहीं जो मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में विलंब या बाधा डालती हैं) न हों।"

'वह क्या है जिसमें पापांका नहीं होते?'

'हे राजा, रूपांतरण के फल में पापंका नहीं होते; उस मार्ग की अवस्था का फल जिसमें वे लोग रहते हैं जिनका केवल एक बार पुनर्जन्म होगा, या सभी का पुनर्जन्म नहीं होगा; अरहतत्व के फल में पापंका नहीं होते।'

लेकिन अगर ऐसा है, नागसेना, तो फिर भाई लोग प्रवचनों, गद्य-पद्य की मिश्रित रचनाओं, व्याख्याओं, कविताओं, भावों के उद्गारों, "इस प्रकार उन्होंने कहा" से शुरू होने वाले अंशों, जन्म-कथाओं, आश्चर्य की कहानियों और विस्तृत ग्रंथों के पाठ और उन पर प्रश्न पूछने में क्यों रुचि रखते हैं? वे नए भवनों, संघ को दिए जाने वाले उपहारों और भेंटों के बारे में क्यों परेशान होते हैं?

2. हे महाराज, जो लोग ये सब कार्य करते हैं, वे पापंकाओं से मुक्ति (अर्थात अरहतत्व) प्राप्त करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। क्योंकि हे महाराज, भाइयों में से जो स्वभाव से शुद्ध हैं, जिनके हृदय पर पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्मों का प्रभाव पड़ा है, वे क्षण भर में पापंकाओं से मुक्त होकर अरहत बन सकते हैं, परन्तु जिनके मन बुराई से अंधकारमय हैं, वे केवल इन्हीं उपायों से अरहत बन सकते हैं।

3. हे राजा, न्यायोचित, जैसे एक व्यक्ति खेत में बीज बोकर उसे उगा लेता है और बिना किसी प्राचीर या बाड़ के अपनी शक्ति से फसल काट लेता है, जबकि दूसरा व्यक्ति बीज उगाने के बाद जंगल में जाकर लकड़ियाँ और डालियाँ काटकर बाड़ बनाता है और तभी फसल काट पाता है। ठीक उसी प्रकार, जो स्वभाव से शुद्ध हैं, जिनके हृदय पर पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्मों का प्रभाव है, वे पल भर में अरहत बन सकते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो बिना बाड़ के फसल काट लेता है। परन्तु वे लोग, जिनका मन उनके द्वारा किए गए बुरे कर्मों से अंधकारमय हो गया है, केवल ऐसे साधनों से ही अरहत बन सकते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो बाड़ बनाकर ही अपनी फसल काट सकता है।

4. 'या फिर, हे राजा, जैसे किसी ऊँचे आम के पेड़ की चोटी पर फलों का गुच्छा हो। तब

जिसके पास इद्धि की शक्ति होती है, वह उन फलों को प्राप्त कर सकता है, परन्तु जिसके पास यह शक्ति नहीं होती, उसे पहले लकड़ियाँ और लताएँ काटकर सीढ़ी बनानी पड़ती है, और उसके सहारे पेड़ पर चढ़कर फल प्राप्त करना पड़ता है। इसी प्रकार, जो स्वभाव से शुद्ध होते हैं और जिनके हृदय पर पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्मों का प्रभाव होता है, वे पल भर में अर्हतत्व प्राप्त कर लेते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो इद्धि की शक्ति से फल प्राप्त करता है। परन्तु दूसरी ओर, जिनके मन उनके द्वारा किए गए बुरे कर्मों से अंधकारमय हो जाते हैं, वे केवल इन्हीं साधनों से अर्हत बन सकते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो अपनी बनाई सीढ़ी के सहारे ही फल प्राप्त करता है।

5. हे राजा, न्यायोचित उदाहरण दीजिए, जैसे एक चतुर व्यापारी अपने स्वामी के पास जाकर अपना काम निपटा लेता है, वहीं दूसरा धनी व्यक्ति अपने धन का उपयोग करके दूसरों को अपनी सेवा में लगाता है और उनकी सहायता से अपना काम पूरा करवाता है—और वह काम के लिए ही दूसरों की सहायता लेता है। इसी प्रकार, जो स्वभाव से शुद्ध हैं, जिनके हृदय पर पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्मों का प्रभाव है, वे क्षण भर में छह दिव्य गुणों की प्राप्ति कर सकते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो अपना काम स्वयं करता है। वहीं, जिन भाइयों का मन अपने किए गए बुरे कर्मों से अंधकारमय हो गया है, वे केवल ऐसे साधनों से ही त्याग के लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जैसे वह व्यक्ति जो दूसरों की सहायता से अपना काम पूरा करता है।

6. 'हे राजा, पाठ करना अत्यंत लाभकारी है, प्रश्न पूछना, भवन निर्माण कार्य की देखरेख करना, दान-पुण्य का प्रबंध करना भी अत्यंत लाभकारी है—ये सभी कार्य भाइयों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले आध्यात्मिक उद्देश्यों में से किसी न किसी की पूर्ति के लिए किए जाते हैं। हे राजा, जिस प्रकार कोई मंत्री, सैनिक, दूत, संतरी, अंगरक्षक या सेवक विशेष रूप से राजा के लिए उपयोगी होता है, परन्तु जब राजा को कोई कार्य सौंपा जाता है तो वे सब उसकी सहायता करते हैं—ठीक उसी प्रकार ये सभी वस्तुएँ उन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं। हे राजा, जब सभी मनुष्य स्वभाव से शुद्ध हो जाएँगे, तब शिक्षक के लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। परन्तु जब तक शिष्यत्व की आवश्यकता रहेगी, तब तक हे राजा, स्वयं सारिपुत्त जैसे व्यक्ति (यद्यपि वे असंख्य युगों तक पुण्य में विलीन रहने के कारण ज्ञान के शिखर पर पहुँच चुके थे) भी शिष्यत्व के बिना अरहतत्व प्राप्त नहीं कर सकेंगे।' इसलिए, हे राजा, शास्त्रों को सुनना, उनका पाठ करना और उनसे संबंधित प्रश्न पूछना उपयोगी है। और इसीलिए जो लोग शास्त्रों के प्रति आसक्त हैं, उनके लिए भी यह उपयोगी है।

ये वस्तुएँ, इनमें निहित बाधाओं से मुक्त होकर, अरहतत्व प्राप्त करती हैं।

'ठीक है, नागसेना, आपने मुझे यह पहेली अच्छी तरह समझा दी है। यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[बाधाओं को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[बासठवीं दुविधा। ऋषि अरहत।]

7. 'आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं:

"जो कोई भी गृहस्थ रहते हुए अरहत पद प्राप्त कर लेता है, उसके लिए दो ही स्थितियाँ संभव हैं, और कोई दूसरी नहीं—या तो वह उसी दिन संघ में प्रवेश कर जाता है, या उसका निधन हो जाता है, क्योंकि उस दिन के बाद वह जीवित नहीं रह सकता।"

'अब, हे नागसेन, यदि वह उस दिन कोई शिक्षक या गुरु, या कुंड और वस्त्रों का समूह प्राप्त न कर सके, तो क्या वह, एक अरहत होने के नाते, स्वयं को प्रवेश देगा, या वह उस दिन जीवित रहेगा, या क्या कोई अन्य अरहत इद्धि की शक्ति से अचानक प्रकट होकर उसे प्रवेश देगा, या क्या वह मर जाएगा?'

'हे राजा, वह स्वयं को प्रवेश नहीं दे सकता, क्योंकि वह एक अरहत है। क्योंकि जो कोई भी स्वयं को प्रवेश देता है...'

यह संप्रदाय चोरी का दोषी है। और वह उस दिन से आगे नहीं टिक सकता था। चाहे कोई दूसरा अरहत आए या न आए, उसी दिन उसका अंत हो जाएगा।

'तो, नागसेन, चाहे चाहे जिस भी तरीके से अरहतत्व की पवित्र स्थिति प्राप्त की जाए, वह भी उससे नष्ट हो जाती है, क्योंकि उसमें जीवन का विनाश निहित है।'

8. 'हे महाराज, गृहस्थ अवस्था ही दोषपूर्ण है। उस दोषपूर्ण अवस्था में, और उस अवस्था की कमजोरी के कारण, जो गृहस्थ अवस्था में ही अरहत पद प्राप्त कर लेता है, उसे या तो उसी दिन संघ में प्रवेश करना होगा या मर जाना होगा। हे महाराज, यह अरहत पद का दोष नहीं है। दोष गृहस्थ अवस्था का है, क्योंकि वह पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं है।'

'हे राजा, जिस प्रकार भोजन, जो सभी प्राणियों के विकास और जीवन की रक्षा करता है, अपच के कारण उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है जिसका पेट उसे सहन नहीं कर पाता, जिसकी आंतरिक अग्नि कम और दुर्बल होती है—ठीक उसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ उस स्थिति में रहते हुए अरहतत्व प्राप्त कर लेता है जब वह इसके लिए अनुपयुक्त है, तो उस स्थिति की कमजोरी के कारण उसे उसी दिन या तो संघ में प्रवेश करना होगा या मर जाना होगा।'

या फिर, हे राजा, जैसे किसी छोटी सी घास पर भारी चट्टान रखे जाने पर वह अपनी कमजोरी के कारण टूटकर बिखर जाती है—ठीक वैसे ही जब कोई गृहस्थ अरहत पद प्राप्त कर लेता है, तो उस स्थिति में अरहत पद को संभालने में असमर्थ होने के कारण उसे उसी दिन या तो संघ में प्रवेश करना होगा या मर जाना होगा।

या फिर, हे राजा, एक गरीब, कमजोर, निम्न कुल और कम क्षमता वाले व्यक्ति के रूप में, यदि वह अधिकार प्राप्त कर ले तो

एक महान और शक्तिशाली राज्य भी उसकी गरिमा को बनाए रखने में असमर्थ होगा—ठीक उसी प्रकार यदि कोई गृहस्थ अरहत पद प्राप्त कर ले, तो वह उस स्थिति में उसकी गरिमा को बनाए रखने में असमर्थ होगा। [266] और यही कारण है कि उसे उसी दिन या तो संघ में प्रवेश करना होगा या मृत्यु को प्राप्त होना होगा।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[आम अरहत के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[दुविधा 3 तिरसठवां. अरहतों की गलतियाँ।]

9. 'आदरणीय नागसेना, क्या कोई अरहत विचारहीन हो सकता है?'

'हे राजा, अरहतों ने लापरवाही को अपने से दूर रखा है। वे कभी भी अनभिज्ञ नहीं होते।'

लेकिन क्या कोई अरहत किसी अपराध का दोषी हो सकता है?

'जी हां, हे राजा।'

'किस संदर्भ में?'

'अपनी कोठरी के निर्माण में, या (दूसरे लिंग के साथ) अपने यौन संबंध में, या (दोपहर के भोजन के लिए) गलत समय को सही समय समझने में'

समय, या जब उसे (भोजन के लिए) आमंत्रित किया गया हो और वह निमंत्रण भूल गया हो, या बचे हुए भोजन को "बचा हुआ" समझकर खा रहा हो जबकि वह बचा हुआ भोजन न हो।

लेकिन, आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं:

"अपराध करने वाले दो कारणों में से किसी एक के कारण ऐसा करते हैं, या तो लापरवाही से या अज्ञानता से।"

'क्या अरहत इस बात से लापरवाह है कि वह अपराध करता है?'

'नहीं, हे राजा।'

'यदि अरहत अपराध करता है, और फिर भी लापरवाह नहीं है, तो वह निश्चित रूप से विचारहीनता में सक्षम होगा।'

'वह अविवेकी होने में सक्षम नहीं है, फिर भी अरहत अपराधों के दोषी हो सकते हैं।'

'तो मुझे एक कारण बताकर समझाओ। इसका कारण क्या है?'

10. 'हे राजा, दो प्रकार के पाप होते हैं—एक वे जो सामान्य नैतिक नियम का उल्लंघन करते हैं, और दूसरे वे जो नियमों (व्यवस्था) का उल्लंघन करते हैं। और सामान्य नैतिक नियम का उल्लंघन क्या है? दस प्रकार के बुरे कर्म (हत्या, चोरी,

व्यभिचार, झूठ, निंदा, कठोर भाषा, व्यर्थ की बातें, लोभ, द्वेष और झूठी शिक्षा। ये बातें नैतिक नियमों के विरुद्ध हैं। और नियमों का उल्लंघन क्या है? वे सभी बातें जो संसार में समन धर्म के अनुयायियों के लिए अनुचित और अनुपयुक्त मानी जाती हैं, परन्तु सामान्य लोगों के लिए गलत नहीं हैं—वे बातें जिनके विषय में भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों के लिए नियम बनाए थे, और उन्हें जीवन भर उनका उल्लंघन नहीं करना था। हे राजा, सूर्यास्त के बाद भोजन करना संसार में रहने वालों के लिए गलत नहीं है, परन्तु विजय प्राप्त करने वालों के धर्म (पंथ) में रहने वालों के लिए गलत है। वृक्षों और झाड़ियों को हानि पहुँचाना संसार की दृष्टि में कोई अपराध नहीं है, परन्तु धर्म में गलत है। जल में क्रीड़ा करना सामान्य व्यक्ति के लिए कोई अपराध नहीं है, परन्तु धर्म में गलत है। और इसी प्रकार की अनेक अन्य बातें, हे राजा, संसार में सही हैं, परन्तु विजय प्राप्त करने वालों के धर्म में गलत हैं। नियमों के उल्लंघन से मेरा यही तात्पर्य है। अब अरहत (जिनमें महादुष्टियाँ नष्ट हो जाती हैं) नैतिक नियमों के विरुद्ध पाप करने में असमर्थ हैं, परन्तु वे अनजाने में संघ के नियमों का उल्लंघन कर सकते हैं। प्रत्येक अरहत के लिए सब कुछ जानना संभव नहीं है, न ही यह उनकी शक्ति में है। वे किसी स्त्री या पुरुष के व्यक्तिगत या पारिवारिक नाम से अनभिज्ञ हो सकते हैं। वे पृथ्वी पर किसी मार्ग से अनभिज्ञ हो सकते हैं। परन्तु प्रत्येक अरहत मोक्ष के विषय में ज्ञात होगा, और पारलौकिक ज्ञान के छह गुणों से संपन्न अरहत उनके दायरे में आने वाले ज्ञान को जानेंगे, और हे राजा, सर्वज्ञ तथागत सर्वज्ञानी होंगे।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ अरहतों की गलतियों को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[चौंसठवीं दुविधा। वह क्या है, लेकिन दुनिया में नहीं है।]

11. 'आदरणीय नागसेना, संसार में बुद्ध, पक्केका-बुद्ध, तथागतों के शिष्य, संप्रभु अधिपति, एक देश के राजा, देवता और मनुष्य देखे जा सकते हैं;—हमें धनी और गरीब, सुखी और दुखी, सभी मिलते हैं;—हमें ऐसे पुरुष मिलते हैं जो स्त्री बन गए हैं, और ऐसी स्त्रीयाँ जो पुरुष बन गई हैं—अच्छे कर्म और बुरे कर्म, और ऐसे प्राणी जो अपने सद्गुण या अवगुण के फल भोग रहे हैं;—हमें अंडों से, जल में, तलछट में, या मात्र आभास से जीवन में उत्पन्न होने वाले प्राणी मिलते हैं; बिना पैरों वाले जीव, दो पैरों वाले और चार पैरों वाले जीव, और अनेक पैरों वाले जीव;--हमें यक्ष, राक्षस, कुम्भंड, असुर, दानव, गंधर्व, पेट, पिशाच, किन्नर, महोरग, नाग, सुपन्न, और जादूगर और तांत्रिक मिलते हैं;--हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, ऊंट, गधे, बकरी, भेड़, हिरण, सूअर, शेर, बाघ, तेंदुए, भालू, भेड़िये, लकड़बग्घे, कुत्ते, सियार, और अनेक प्रकार के पक्षी हैं;--सोना, चांदी, मोती, और

हीरा, चौक, चट्टान, मूंगा, माणिक, मसारा पत्थर, कैट्स-आई, क्रिस्टल, क्वाट्र्ज, लौह अयस्क, तांबा, पीतल और कांसा; अलसी, रेशम, कपास, भांग और ऊन; चावल, धान, जौ, बाजरा, कुद्रूस, सेम, गेहूं, तिलहन और वेच; जड़ों, रस, गूदे, छाल, पत्तियों, फूलों, फलों और अन्य सभी प्रकार की चीजों से बने इत्र; घास, लताएँ, झाड़ियाँ, पेड़, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, जंगल, नदियाँ, पहाड़, समुद्र, मछलियाँ और कछुए - सब कुछ संसार में है। महोदय, मुझे बताइए, फिर ऐसा क्या है जो संसार में नहीं है?

12. 'हे राजा, तीन ऐसी चीजें हैं जो आपको संसार में नहीं मिलेंगी। और वे तीन चीजें क्या हैं? वह जो चाहे चेतन हो या अचेतन, क्षय और मृत्यु के अधीन नहीं है—वह आपको नहीं मिलेगी। किसी भी चीज (जैविक या अजैविक) का वह गुण जो क्षणभंगुर नहीं है—वह आपको नहीं मिलेगा। और उच्चतम अर्थ में, अस्तित्व से युक्त होने जैसी कोई चीज नहीं है।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ दुनिया में क्या नहीं है, इस पहेली का अंत होता है।]

[पैंसठवीं दुविधा। बिना कारण की बातें।]

13. 'आदरणीय नागसेना, संसार में ऐसे प्राणी पाए जाते हैं जो कर्म के फलस्वरूप अस्तित्व में आए हैं, कुछ कारण के परिणाम स्वरूप हैं, और कुछ ऋतुओं के द्वारा उत्पन्न हुए हैं। मुझे बताइए—क्या ऐसा कोई प्राणी है जो इन तीनों श्रेणियों में से किसी एक के अंतर्गत न आता हो?'

'हे महाराज, ऐसी दो चीजें हैं। और वे दो क्या हैं? हे महाराज, आकाश और निर्वाण।'

'हे नागसेन, विजेताओं के वचन को विकृत मत करो, और बिना जाने किसी प्रश्न का उत्तर मत दो!'

'हे राजा, मैंने ऐसा क्या कहा है कि आप मुझसे इस प्रकार बात कर रहे हैं?'

आदरणीय नागसेना, आपने अंतरिक्ष के संबंध में जो कहा वह बिल्कुल सही है। लेकिन इसके सैकड़ों कारण हैं।

क्या भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताया था? और फिर भी आप कहते हैं कि निर्वाण किसी कारण का परिणाम नहीं है!

'हे राजा, निःसंदेह भगवान बुद्ध ने हमें निर्वाण प्राप्ति के मार्ग पर चलने के सैकड़ों कारण बताए। लेकिन उन्होंने कभी भी उस कारण का उल्लेख नहीं किया जिससे निर्वाण उत्पन्न हो सके।'

14. 'अब, नागसेन, हम इस विषय में अंधकार से और भी गहरे अंधकार में, जंगल से घने जंगल में, झाड़ी से और भी गहरी झाड़ी में प्रवेश कर चुके हैं—क्योंकि आप कहते हैं कि निर्वाण की प्राप्ति का कारण तो है, पर वह कारण नहीं जिससे निर्वाण उत्पन्न हो सके। नागसेन, यदि निर्वाण की प्राप्ति का कोई कारण है, तो हमें निर्वाण की उत्पत्ति का कारण भी अवश्य खोजना चाहिए।' नागसेन, जिस प्रकार पुत्र का पिता होता है, उसी प्रकार यह मानना उचित है कि उस पिता का भी पिता रहा होगा—या शिष्य का गुरु होता है, उसी प्रकार यह मानना उचित है कि उस गुरु का भी गुरु रहा होगा—या पौधा बीज से उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार यह मानना उचित है कि बीज भी बीज से ही उत्पन्न हुआ होगा—ठीक उसी प्रकार, नागसेन, यदि निर्वाण की प्राप्ति का कोई कारण है, तो उसकी उत्पत्ति का भी कोई कारण अवश्य होगा—जैसे यदि हम किसी वृक्ष या लता का शीर्ष भाग देखें, तो हम यह निष्कर्ष निकालेंगे कि उसका मध्य भाग और जड़ भी है।

'हे राजा, निर्वाण अउत्पादक है, और इसके उद्‌भव का कोई कारण नहीं बताया गया है।'

'अब बताओ, नागसेना, मुझे इसका कारण बताओ। तर्क से मुझे समझाओ, ताकि मैं जान सकूँ कि कैसे।'

यह इस प्रकार है कि यद्यपि निर्वाण की प्राप्ति का एक कारण अवश्य है, परन्तु निर्वाण की प्राप्ति का कोई कारण अवश्य नहीं है।

15. 'तो, हे महाराज, ध्यान से सुनिए, और मैं आपको इसका कारण बताता हूँ। क्या कोई मनुष्य, हे महाराज, अपनी साधारण शक्ति से यहाँ से पर्वतों के राजा हिमालय तक जा सकता है?'

'जी हां, महोदय, वह कर सकता है।'

लेकिन क्या कोई मनुष्य अपनी साधारण शक्ति से हिमालय पर्वतमाला को यहाँ ला सकता है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

तो फिर, क्या निर्वाण की प्राप्ति का कारण तो बताया जा सकता है, पर उसकी उत्पत्ति का कारण नहीं। और हे राजा, क्या कोई मनुष्य अपनी साधारण शक्ति से विशाल सागर को पार करके उसके दूसरे किनारे तक जा सकता है?

'जी हां, महोदय, वह कर सकता है।'

लेकिन क्या कोई मनुष्य अपनी साधारण शक्ति से समुद्र के उस पार के किनारे को यहाँ ला सकता है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'अच्छा! तो बात यह है कि निर्वाण की प्राप्ति का कारण तो बताया जा सकता है, लेकिन उसकी उत्पत्ति का कारण नहीं बताया जा सकता। और क्यों नहीं? क्योंकि निर्वाण किसी भी गुण से मिलकर नहीं बना है।'

16. 'क्या, महोदय! क्या यह जुड़ा हुआ नहीं है?'

नहीं, हे महाराज। यह अविभाज्य है, किसी भी चीज से बना नहीं है। हे महाराज, निर्वाण के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह उत्पन्न हुआ है, या उत्पन्न नहीं हुआ है, या उत्पन्न किया जा सकता है, कि यह भूतकाल है, भविष्यकाल है या वर्तमान काल है, कि यह आंख, कान, नाक, जीभ या स्पर्श इंद्रिय द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

लेकिन अगर ऐसा है, नागसेना, तो आप सिर्फ दिखावा कर रहे हैं।

हमें यह बताएं कि निर्वाण एक ऐसी अवस्था है जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। निर्वाण जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।

'हे महाराज, निर्वाण विद्यमान है। और यह मन द्वारा प्रत्यक्ष है। अपने शुद्ध, परिष्कृत और निर्मल हृदय से, बाधाओं से मुक्त, नीच इच्छाओं से मुक्त, वह शिष्य जिसने पूर्ण रूप से निर्वाण प्राप्त कर लिया है, निर्वाण को देख सकता है।'

17. 'तो फिर, महोदय, निर्वाण क्या है? मेरा तात्पर्य ऐसे निर्वाण से है जिसे उपमाओं द्वारा समझाया जा सके। मुझे तर्क से समझाइए कि इसके अस्तित्व को उपमाओं द्वारा किस हद तक समझाया जा सकता है।'

'हे राजा, क्या हवा जैसी कोई चीज होती है?'

'हाँ बिल्कुल।'

'हे राजा, मैं आपसे विनती करता हूँ, मुझे वह दिखाइए—चाहे उसके रंग से, या उसके आकार से, चाहे वह पतला हो या मोटा, या छोटा हो या लंबा!'

लेकिन हे नागसेन, हवा को उस तरह से इंगित नहीं किया जा सकता। यह ऐसी प्रकृति की नहीं है कि इसे हाथ में लिया जा सके या निचोड़ा जा सके। लेकिन यह फिर भी विद्यमान है।

'अगर तुम मुझे हवा नहीं दिखा सकते, तो ऐसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।'

लेकिन मुझे पता है, नागसेना। वह हवा

मुझे पूरा यकीन है कि वह मौजूद है, हालांकि मैं इसे आपको दिखा नहीं सकता।

'अच्छा! हे राजा, निर्वाण भी ठीक इसी प्रकार विद्यमान है, यद्यपि इसे आपको रंग या रूप में नहीं दिखाया जा सकता।'

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निर्वाण को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[छियासठवीं दुविधा। उत्पादन के तरीके।]

18. 'आदरणीय नागसेन, इस संदर्भ में जिन्हें "कर्म-जनित", "कारण-जनित" और "ऋतु-जनित" कहा जाता है, वे कौन हैं? और वह क्या है जो इनमें से कोई नहीं है?'

हे राजा, सभी सचेत प्राणी कर्म से उत्पन्न होते हैं (कर्म के फलस्वरूप अस्तित्व में आते हैं)। अग्नि और बीजों से उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुएँ कारण से उत्पन्न होती हैं (पूर्व-प्रसिद्ध भौतिक कारण का परिणाम)। पृथ्वी, पहाड़, जल और वायु—ये सभी ऋतुओं से उत्पन्न होते हैं (इनका अस्तित्व मौसम से संबंधित कारणों पर निर्भर करता है)। आकाश और निर्वाण कर्म और कारण दोनों से स्वतंत्र रूप से विद्यमान हैं।

और ऋतुओं के अनुसार। हे राजा, निर्वाण के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह कर्म से उत्पन्न है, कारण से उत्पन्न है या ऋतुओं से उत्पन्न है; कि यह हो चुका है, नहीं हुआ है या उत्पन्न किया जा सकता है, कि यह भूतकाल है, भविष्यकाल है या वर्तमान काल है, कि यह आँख, नाक, कान, जीभ या स्पर्श इंद्रिय से प्रत्यक्ष है। परन्तु हे राजा, यह मन से प्रत्यक्ष है। अपने शुद्ध, परिष्कृत और निर्मल हृदय से, जो बाधाओं से मुक्त है, नीच इच्छाओं से मुक्त है, वह शिष्य जो पूर्णतः निर्वाण प्राप्त कर चुका है, निर्वाण को देख सकता है।

'हे पूज्य नागसेना, इस रमणीय पहेली का भली-भांति विश्लेषण किया गया है, संदेह दूर किए गए हैं और निश्चितता प्राप्त की गई है। हे विद्यालयों के सर्वोत्कृष्ट नेता, आपसे परामर्श लेते ही मेरी उलझन का समाधान हो गया!'

[उत्पादन के तरीकों को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[सठवीं दुविधा। मृत राक्षस।]

19. 'आदरणीय नागसेन, क्या संसार में यक्खा (राक्षस) जैसी कोई वस्तु होती है?'

'जी हां, हे राजा।'

क्या वे कभी उस स्थिति से बाहर निकल पाते हैं (अस्तित्व के उस चरण से बाहर आ पाते हैं)?

'हाँ वे करते हैं।'

लेकिन अगर ऐसा है, तो उन मृत यक्खों के अवशेष कभी क्यों नहीं मिलते, और न ही उनके शवों की कोई गंध आती है?

'हे महाराज, उनके अवशेष मिले हैं और उनके मृत शरीरों से दुर्गंध आ रही है। दुष्ट यक्षों के अवशेष निम्न रूप में देखे जा सकते हैं।'

कीड़े, भृंग, चींटियाँ, पतंगे, साँप, बिच्छू, कनखजूरे, पक्षी और जंगली जानवर।

'हे नागसेन, तुम्हारे जैसे बुद्धिमान के सिवा और कौन इस पहेली को सुलझा सकता था!'

[मृत राक्षसों के बारे में दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[अड़ियलपन की अड़सठवीं समस्या। नियमों को लागू करने की विधि।]

20. आदरणीय नागसेन, बीते समय में चिकित्सकों के जो गुरु थे—नारद, धम्मंतरी, अंगीरस, कपिल, कंदराग्गिसाम, अतुल और पुब्बा कक्कायन—ये सभी गुरु रोग की उत्पत्ति, उसके कारण, प्रकृति, प्रगति, उपचार, इलाज और प्रबंधन को भली-भांति और बिना किसी चूक के स्वयं जानते हुए—इनमें से प्रत्येक ने समय का सदुपयोग करते हुए, यह बताते हुए कि अमुक शरीर में अमुक रोग उत्पन्न होगा, अपना-अपना ग्रंथ एक साथ रचा। अब इनमें से किसी ने भी

तथागत सर्वज्ञ थे। तो फिर, सर्वज्ञ तथागत, जो बुद्ध के ज्ञान से भविष्य में होने वाली घटनाओं को भलीभांति जानते थे और पहले से ही यह निर्धारित कर चुके थे कि अमुक अवसर पर अमुक नियम की आवश्यकता होगी, उन्होंने संपूर्ण नियम संहिता एक साथ क्यों नहीं

बनाई? इसके बजाय, उन्होंने समय-समय पर, जब भी कोई कुकर्म का कलंक चारों ओर फैल चुका था, जब बुराई व्यापक रूप से फैल चुकी थी और बढ़ गई थी, जब लोग आक्रोश से भरे हुए थे, तब उन्होंने अपने शिष्यों को नियम संहिता क्यों बताई?

21. हे राजा, तथागत भली-भांति जानते थे कि समय आने पर उन सभी डेढ़ सौ नियमों को उन लोगों को बताना पड़ेगा। परन्तु तथागत ने ऐसा सोचा: "यदि मैं एक साथ ही सभी डेढ़ सौ नियम बता दूँ तो लोग भयभीत हो जाएँगे, और जो संघ में प्रवेश करना चाहते हैं वे यह कहकर पीछे हट जाएँगे, 'यहाँ कितना कुछ पालन करना है! समना गौतम की पद्धति के अनुसार धर्म में प्रवेश करना कितना कठिन है' — वे मेरे वचनों पर विश्वास नहीं करेंगे, और विश्वास की कमी के कारण वे दु:खमय जन्मों के लिए उत्तरदायी होंगे। अतः जब भी अवसर आएगा, धार्मिक प्रवचन द्वारा उसका उदाहरण देते हुए, जब बुराई स्पष्ट हो जाएगी, मैं प्रत्येक नियम बताऊँगा।"

नागसेन, बुद्धों में एक अद्भुत बात है, और तथागत की सर्वज्ञता का इतना महान होना अत्यंत आश्चर्यजनक है। यह बिल्कुल सच है।

आदरणीय नागसेन। तथागत इस बात को भली-भांति समझते थे कि इतनी सारी बातों का पालन करने की बात सुनकर लोग इतने भयभीत हो जाते कि उनमें से एक भी व्यक्ति विजयकर्ताओं की पद्धति के अनुसार धर्म का पालन नहीं करता। यह सत्य है, और मैं इसे आपकी बात से स्वीकार करता हूँ।

[नियमों को निर्धारित करने की विधि को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[दुविधा: उनसठवीं। सूर्य की ऊष्मा]

22. 'आदरणीय नागसेना, क्या यह सूर्य हमेशा प्रचंड रूप से जलता है, या ऐसे भी समय होते हैं जब यह कम ताप के साथ चमकता है?'

'हे राजा, यह हमेशा भयंकर रूप से जलता है, कभी धीरे से नहीं।'

लेकिन अगर ऐसा है, तो ऐसा कैसे होता है कि सूर्य की गर्मी कभी तीव्र होती है और कभी नहीं?

23. हे महाराज, सूर्य में चार प्रकार की गड़बड़ियाँ होती हैं, और इनमें से किसी एक के कारण उसकी ऊष्मा कम हो जाती है। वे चार क्या हैं? हे महाराज, बादल, कोहरा, और...

धुंआ और ग्रहण—ये चार प्रकार की गड़बड़ियां हैं जो सूर्य में घटित होती हैं, और जब सूर्य इनमें से किसी एक से प्रभावित होता है तभी उसकी ऊष्मा कम हो जाती है।

'हे नागसेन, यह अत्यंत अद्भुत और विचित्र है कि महिमा में इतना महान सूर्य भी विक्षिप्त हो सकता है—अन्य तुच्छ प्राणियों की तुलना में यह कितना अधिक विक्षिप्त होगा। आपके जैसे बुद्धिमान के सिवा कोई और इसकी व्याख्या नहीं कर सकता था!'

[सूर्य की ऊष्मा को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[सत्तरवीं दुविधा। ऋतुएँ।]

24. 'आदरणीय नागसेना, ऐसा क्यों है कि सूर्य की गर्मी गर्मियों की तुलना में सर्दियों में अधिक तीव्र होती है?'

हे राजा, ग्रीष्म ऋतु में धूल उड़कर बादलों में समा जाती है, हवाओं से परागकण आकाश में उठ खड़े होते हैं, बादल आसमान में बढ़ जाते हैं और आंधी ज़ोरों से चलती है। ये सब मिलकर सूर्य की किरणों को रोक देते हैं, जिससे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गर्मी कम हो जाती है। परन्तु हे राजा, शीत ऋतु में धरती शांत रहती है और ऊपर वर्षा होती रहती है।

जब सब कुछ शांत होता है, तो धूल शांत हो जाती है, परागकण हवा में धीरे-धीरे विचरण करते हैं, आकाश बादलों से मुक्त होता है, और हवाएँ बहुत धीमी गति से बहती हैं। इन सभी के निष्क्रिय हो जाने से सूर्य की किरणें स्पष्ट हो जाती हैं, और हर अवरोध से मुक्त होकर सूर्य की ऊष्मा प्रज्वलित और तीव्र हो जाती है। हे राजा, यही कारण है कि सूर्य की ऊष्मा ग्रीष्म ऋतु की तुलना में शीत ऋतु में अधिक तीव्र होती है।

'इसलिए जब सूर्य अपने चारों ओर मौजूद बाधाओं से मुक्त हो जाता है, तभी वह प्रचंड रूप से चमकता है, जो वह बारिश आदि की उपस्थिति में नहीं कर सकता।'

['बहुत अच्छा, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।']

[यहाँ ऋतुओं की दुविधा समाप्त होती है।]

सातवां अध्याय यहीं समाप्त होता है।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक IV। दुविधाओं का समाधान - अध्याय 8

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-16-||----->>>> अगला

1. 'आदरणीय नागसेना, क्या सभी बोधिसात अपनी पत्नियों और बच्चों को त्याग देते हैं, या ऐसा करने वाला केवल राजा वेसंतारा ही था?'

'वे सभी ऐसा करते हैं, केवल वेसंतारा ही नहीं।'

'तो क्या वे फिर अपनी सहमति से उन्हें दे देते हैं?'

'हे राजा, पत्नी तो सहमत थी। परन्तु बच्चे अपनी कम उम्र के कारण विलाप कर रहे थे। यदि वे पूरी तरह समझ गए होते, तो वे भी सहमत हो जाते।'

नागसेन, बोधिसात ने जो किया वह बड़ा कठोर था, क्योंकि उसने अपने इकलौते, प्रिय बच्चों को ब्राह्मण की गुलामी में सौंप दिया। और दूसरा कार्य तो उससे भी अधिक कठोर था, क्योंकि उसने अपने इकलौते, प्रिय बच्चों को, जो छोटे और कोमल थे, जंगल की रस्सी से बांध दिया, और फिर जब उसने ब्राह्मण को उन्हें घसीटते देखा, तो उनके हाथ

लता से घायल होने के बावजूद, वह उस दृश्य को देख सका। और यह तीसरा कार्य तो और भी कठिन था, कि जब उसका बेटा अपने प्रयासों से बंधन खोलकर उसके पास वापस भागा, तो उसने उसे फिर से जंगल की रस्सी से बांध दिया और उसे फिर से सौंप दिया। और यह चौथा कार्य तो और भी कठिन था, कि जब बच्चे रोते हुए चिल्लाए, "प्यारे पिता, यह राक्षस हमें खाने के लिए ले जा रहा है!" तो उसे उन्हें यह कहकर शांत करना चाहिए था, "डरो मत।" और यह पाँचवाँ कार्य तो और भी कठिन था, कि जब राजकुमार गाली रोते हुए उसके चरणों में गिर पड़ा और उससे विनती करते हुए कहा, "कृपा करके शांत हो जाइए, प्यारे पिता, केवल कन्हागिना (मेरी छोटी बहन) को रख लीजिए। मैं राक्षस के साथ चला जाऊँगा। उसे मुझे खाने दीजिए!" - तब भी वह नहीं माना। और यह छठा कार्य तो और भी कठिन था, कि जब बालक गाली विलाप करते हुए बोला, "क्या आपका हृदय पत्थर का है, पिता, कि आप हमें इस दयनीय स्थिति में राक्षस द्वारा घने और भयावह जंगल में ले जाते हुए देख रहे हैं और हमें वापस नहीं बुला रहे?" - तब भी उन्हें हम पर कोई दया नहीं आई। और यह सातवां कार्य तो और भी कठिन था, कि जब उनके बच्चों को इस प्रकार अज्ञात भयावहता की ओर ले जाया गया, जब तक कि वे धीरे-धीरे अपनी दुखद नियति की ओर, उनकी आँखों से ओझल नहीं हो गए - तब भी उनका हृदय नहीं टूटा, पूरी तरह से नहीं टूटा! जो व्यक्ति पुण्य कमाना चाहता है, उसे दूसरों को दुख पहुँचाने से क्या लेना-देना है! क्या उसे स्वयं को बलिदान नहीं कर देना चाहिए?'

2. 'ऐसा इसलिए है क्योंकि हे राजा, उसने जो किया वह इतना गंभीर था।

यह बात समझ से परे है कि बोधिसात की प्रसिद्धि दस हजार लोकों में देवताओं और मनुष्यों के बीच फैल गई थी—कि देवता स्वर्ग में उनका आदर करते हैं; टाइटन अपने लोक में, गरुड़ अपने निवास स्थानों में, नाग अपने नाग लोक में और यक्ष जहाँ वे निवास करते हैं—कि युगों-युगों से उनकी इस महिमा का गुणगान परंपरा के माध्यम से होता आया है—यहाँ तक कि आज यह हमारी इस सभा तक भी पहुँच गया है, जहाँ हम सब बैठे-बैठे उस दान की निंदा और निंदा कर रहे हैं, और इस बात पर बहस कर रहे हैं कि वह दान उचित था या अनुचित! परन्तु हे राजा, यह उच्च्य प्रशंसा बुद्धिमान, बुद्धिमान, सक्षम और सूक्ष्म बुद्धि वाले बोधिसात के दस महान गुणों को प्रकट

करती है। और वे दस गुण क्या हैं? लोभ से मुक्ति, सांसारिक लक्ष्यों से आसक्ति न रखना, आत्म-बलिदान, त्याग, निम्नतम अवस्था में कभी वापस न लौटना, समान कोमलता और महानता, बोधगम्यता, दुर्लभता और बुद्धत्व की अद्वितीयता। इन्हीं सभी पहलुओं में उस दान की प्रसिद्धि बोदिसातों के महान गुणों को प्रकट करती है।

3. 'हे पूज्य नागसेन, क्या? जो व्यक्ति इस प्रकार दान देता है जिससे दूसरों को दुःख होता है—क्या उसका वह दान सुखदायी फल देता है, क्या वह आनंदमय पुनर्जन्म की ओर ले जाता है?'

'जी हां, हे राजा। इसके विपरीत क्या कहा जा सकता है?'

'हे नागसेना, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, मुझे इसका कारण बताइए।'

'मान लीजिए, हे राजा, कोई गुणी समना या ब्राह्मण हो, जो उच्च चरित्र का हो, और वह...'

मान लीजिए कोई व्यक्ति लकवाग्रस्त, अपंग या किसी अन्य बीमारी से पीड़ित है, और पुण्य की इच्छा रखने वाला कोई व्यक्ति उसे रथ में बिठाकर उसके इच्छित स्थान पर ले जाए। क्या इससे उस व्यक्ति को सुख प्राप्त होगा? क्या यह कार्य आनंदमय पुनर्जन्म की ओर ले जाएगा?

'जी हाँ, महोदय। इसके विपरीत क्या कहा जा सकता है? इससे मनुष्य को प्रशिक्षित हाथी, सवारी का घोड़ा या बैलगाड़ी, भूमि पर वाहन और जल पर जलयान, स्वर्ग में देवताओं का वाहन और पृथ्वी पर मनुष्यों द्वारा उपयोग किया जाने वाला वाहन प्राप्त होगा; जन्म-जन्मांतर तक उसे वह सब प्राप्त होता रहेगा जो प्रत्येक जन्म के लिए उपयुक्त और उचित होगा; उसे उचित आनंद प्राप्त होंगे; वह आनंद की विभिन्न अवस्थाओं में प्रवेश करेगा; और उस कर्म के फलस्वरूप इद्धि के वाहन पर सवार होकर वह अपने प्रतीक्षित लक्ष्य, निर्वाण नगर तक पहुँच जाएगा।'

लेकिन फिर, हे राजा, जो उपहार दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए दिया जाता है, वह सुख का फल देता है, आनंद की अवस्थाओं में पुनर्जन्म की ओर ले जाता है, क्योंकि वह व्यक्ति बैलगाड़ी को पीड़ा देकर ऐसा आनंद प्राप्त करता है।

4. हे राजा, इसी बात का एक और कारण सुनो। मान लो कि कोई राजा अपनी प्रजा से उचित कर वसूले और फिर आदेश द्वारा उसके बदले कोई उपहार दे, तो क्या हे राजा, उस कर से उस राजा को कोई सुख प्राप्त होगा? क्या वह उपहार आनंदमय पुनर्जन्म की ओर ले जाएगा?

'निश्चित रूप से, महोदय। इसमें क्या आपत्ति हो सकती है? इस कारण से सम्राट को एक लाख गुना लाभ प्राप्त होगा, वह राजाओं का राजा, देवताओं का स्वामी, ब्रह्मा देवताओं का स्वामी, समनों का प्रमुख, ब्राह्मणों का नेता या अरहतों में श्रेष्ठ बन सकता है।'

'तो, हे राजा, जो दान दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए दिया जाता है, वह सुख का फल देता है, आनंदमय पुनर्जन्म की ओर ले जाता है—क्योंकि वह राजा अपने लोगों पर कर लगाकर जो धन अर्जित करता है, उसे दान के रूप में देकर अत्यधिक प्रसिद्धि और गौरव प्राप्त करता है।'

5. "परन्तु, आदरणीय नागसेन, राजा वेसंतारा द्वारा दिया गया दान अत्यधिक था; क्योंकि उसने अपनी पत्नी को दूसरे पुरुष को दे दिया, और अपने इकलौते बच्चों को एक ब्राह्मण को दासी बना दिया। और संसार में बुद्धिमान लोग अत्यधिक दान को निंदा और दोषारोपण के योग्य मानते हैं।" हे नागसेन, ठीक वैसे ही जैसे अधिक भार के कारण गाड़ी का धुरा टूट जाता है, या जहाज डूब जाता है, जैसे अधिक खाने वाले को भोजन से परेशानी होती है, या अत्यधिक वर्षा से फसलें बर्बाद हो जाती हैं, या अत्यधिक उदारता के कारण दिवालियापन हो जाता है, या अत्यधिक गर्मी से बुखार आ जाता है, या अत्यधिक कामवासना से मनुष्य पागल हो जाता है, या अत्यधिक क्रोध के कारण अपराध का दोषी हो जाता है, या अत्यधिक मूर्खता के कारण पाप में पड़ जाता है, या अत्यधिक लालच के कारण लुटेरों के चंगुल में फंस जाता है, या अनावश्यक भय के कारण बर्बाद हो जाता है, या जैसे अत्यधिक प्रवाह के कारण नदी उफान पर आ जाती है, या अत्यधिक हवा के कारण बिजली गिर जाती है, या अत्यधिक गर्म आग पर दलिया उबल कर बाहर गिर जाता है, या भटकने वाला मनुष्य...

बहुत अधिक दान करने से जीवन लंबा नहीं होता—ठीक वैसे ही, नागसेन, संसार में बुद्धिमान लोग अत्यधिक दान को निंदा और दोष के योग्य मानते हैं। और राजा वेसंतारा का दान अत्यधिक था, इसलिए उससे कोई अच्छा परिणाम अपेक्षित नहीं था।

6. 'हे राजा, अत्यधिक दान देना संसार के बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, सराहा और स्वीकृत किया जाता है; और जो लोग अपनी इच्छा अनुसार कुछ भी दान कर देते हैं, वे संसार में अत्यंत उदार दाताओं के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं।' हे राजा, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति किसी ऐसी जंगली जड़ को पकड़ लेता है जो अपने असाधारण गुणों के कारण दिव्य होती है, उस क्षण वह अपने आस-पास खड़े लोगों के लिए भी अदृश्य हो जाता है—ठीक उसी प्रकार जैसे कोई औषधीय जड़ी बूटी अपनी असाधारण शक्ति से दर्द को पूरी तरह से दूर कर देती है और रोग का अंत कर देती है—ठीक उसी प्रकार जैसे आग अपनी अत्यधिक गर्मी से जलाती है और पानी अपनी अत्यधिक ठंड से उस आग को बुझा देता है—ठीक उसी प्रकार जैसे अपनी अत्यधिक पवित्रता के कारण कमल पानी या कीचड़ से अछूता रहता है—ठीक उसी प्रकार जैसे कोई (जादुई) रत्न अपने अंतर्निहित असाधारण गुण के कारण हर इच्छा की पूर्ति करता है—ठीक उसी प्रकार जैसे बिजली अपनी अद्भुत तीव्र गति से हीरे, मोती और क्रिस्टल को भी चीर देती है—ठीक उसी प्रकार जैसे पृथ्वी अपने विशाल आकार के कारण मनुष्यों, साँपों, जंगली जानवरों, पक्षियों और जल को धारण कर सकती है।

चट्टानें, पहाड़ियाँ और पेड़—जैसे सागर अपनी विशालता के कारण कभी पूर्ण रूप से भरा नहीं जा सकता—जैसे सिंह अपने भारी भार के कारण अचल रहता है, और अंतरिक्ष अपने विशाल विस्तार के कारण अनंत है, और सूर्य अपनी अपार महिमा से अंधकार को दूर करता है—जैसे सिंह अपने वंश की महानता के कारण भयमुक्त रहता है—जैसे पहलवान अपनी शक्ति के बल पर आसानी से अपने शत्रु को उठा लेता है—जैसे राजा अपने न्याय की श्रेष्ठता के कारण सर्वोपरि हो जाता है, और भिक्षु अपने धर्मपरायणता के कारण नागों, यक्षों, मनुष्यों और मारों के लिए आदर का पात्र बन जाता है—जैसे बुद्ध अपनी सर्वोच्चता की श्रेष्ठता के कारण अद्वितीय होते हैं—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, अत्यधिक उदारता की संसार में ज्ञानियों द्वारा प्रशंसा, सराहना और स्वीकृति की जाती है; और जो लोग किसी भी वस्तु को दान के रूप में देते हैं, जैसे ही उन्हें वह विचार आता है, वे संसार में महान उदारता के रूप में ख्याति प्राप्त करते हैं। और हे राजा, अपने अपार दान के कारण राजा वेसंतारा की प्रशंसा हुई, उनका गुणगान हुआ, उन्हें ऊंचा स्थान मिला, उनकी महिमा हुई और वे दस हजार विश्व प्रणालियों में प्रसिद्ध हुए, और उसी अपार दान के कारण राजा वेसंतारा आज हमारे समय में बुद्ध, देवताओं और मनुष्यों के प्रमुख बन गए हैं।

7. 'और अब, हे राजा, मुझे बताइए—क्या संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिसे उपहार के रूप में देने से रोक दिया जाए, और न दिया जाए, जबकि उपहार के योग्य कोई व्यक्ति, जिसे देना हमारा कर्तव्य है, मौजूद हो?'

नागसेन, संसार में दस प्रकार के उपहार हैं जिन्हें सामान्यतः दान के रूप में देना अनुचित माना जाता है। वे दस क्या हैं? नागसेन, मादक पेय, ऊंचे स्थानों पर आयोजित उत्सव, स्त्रियां, भैंसें, मोहक चित्र, शस्त्र, विष, जंजीरें, मुर्गे, सूअर और गलत बाट-माप। नागसेन, ये सभी संसार में दान के रूप में अनुचित माने जाते हैं, और ऐसे उपहार देने वाले दुःखपूर्ण जन्मों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

'मैंने आपसे यह नहीं पूछा, हे महाराज, कि किस प्रकार के उपहार अस्वीकार्य हैं। बल्कि, हे महाराज, मैंने यह पूछा: "क्या संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिसे रोककर रखना चाहिए, और उपहार के रूप में नहीं देना चाहिए, यदि कोई उपहार के योग्य व्यक्ति उपस्थित हो?"'

नहीं, महोदय। जब उनके हृदयों में आस्था जागृत होती है, तो कुछ लोग दान के योग्य लोगों को भोजन देते हैं, कुछ वस्त्र देते हैं, कुछ बिस्तर देते हैं, कुछ आवास देते हैं, कुछ चटाई या वस्त्र देते हैं, कुछ दासी या दासियाँ देते हैं, कुछ खेत या परिसर देते हैं, और कुछ दो पैरों वाले या चार पैरों वाले प्राणी देते हैं।

कुछ लोग सौ, हजार या एक लाख रुपये देते हैं, कुछ लोग अपना राज्य ही दे देते हैं, और कुछ लोग तो अपनी जान तक दे देते हैं।

लेकिन फिर, हे राजा, यदि कुछ लोग अपना प्राण तक दे देते हैं, तो आप दानदाताओं के राजा वेसंतारा पर, अपने पुत्र और पत्नी के पुण्य दान के लिए, इतनी क्रूरता से आक्रमण क्यों करते हैं? क्या संसार में कोई सामान्य प्रथा, कोई स्वीकृत रिवाज नहीं है, जिसके अनुसार ऋणग्रस्त या आजीविका खो चुके पिता के लिए अपने पुत्र को गिरवी रखना या बेचना जायज़ है?

'हां, ऐसा ही है।'

"तो इसी के अनुरूप, हे राजा, सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त न कर पाने के कारण व्यसंतारा ने उस आध्यात्मिक खजाने के लिए अपनी पत्नी और बच्चों को गिरवी रखकर बेच दिया। इस प्रकार उसने वही दान दिया जो अन्य लोगों ने दिया था, उसने वही किया जो अन्य लोगों ने किया था। तो फिर, हे राजा, आप दानदाताओं के राजा पर इतना कठोर प्रहार क्यों कर रहे हैं?"

8. 'आदरणीय नागसेना, मैं उन्हें दान देने के लिए दोषी नहीं ठहराता, बल्कि इसलिए दोषी ठहराता हूँ कि उन्होंने भिखारी के साथ वस्तु विनिमय नहीं किया, बल्कि अपनी पत्नी और बच्चों के बजाय स्वयं को ही दान कर दिया।'

'हे राजा, अगर कोई अपनी पत्नी और बच्चों को मांगे तो खुद को दे देना तो पापी का काम होगा। क्योंकि जो भी चीज मांगी जाए, वही देनी चाहिए। और यही भले लोगों का आचरण है। मान लीजिए, हे राजा, कोई व्यक्ति पानी मांगे, तो क्या भोजन लाने वाला कोई व्यक्ति उसकी इच्छा पूरी करेगा?'

'नहीं, महोदय। जिस व्यक्ति को वह चीज़ देनी चाहिए थी जिसे उसने पहले लाने के लिए कहा था, वह वही करता जो वह चाहता था।'

हे राजा, जब ब्राह्मण ने वेसंतारा राजा से उनकी पत्नी और संतानें माँगीं, तो उन्होंने अपनी पत्नी और संतानें दे दीं। हे राजा, यदि ब्राह्मण ने वेसंतारा का शरीर माँगा होता, तो वेसंतारा अपने शरीर को नहीं बचाते, न तो काँपते और न ही (स्वार्थ से) दूषित होते, बल्कि अपना शरीर त्याग देते। हे राजा, यदि कोई वेसंतारा राजा के पास आकर उनसे यह कहता, "मेरे दास बन जाइए," तो वे अपना शरीर त्याग देते और ऐसा करने में उन्हें कोई पीड़ा नहीं होती।

9. हे राजा, राजा वेसंतारा का जीवन एक अच्छी बात थी जिसे बहुतों ने आपस में बाँटा—जैसे पका हुआ मांस बहुतों में बाँटा जाता है, या जैसे फलों से लदे पेड़ को बहुत से भेड़-बकरियाँ आपस में बाँट लेती हैं।

पक्षियों। और ऐसा क्यों? क्योंकि उसने मन ही मन कहा था: "इस प्रकार कर्म करके मैं बुद्धत्व प्राप्त कर सकूँ।" हे राजा, जिस प्रकार धन की खोज में भटकता हुआ एक जरूरतमंद व्यक्ति बकरियों के रास्तों और डंडों से भरे जंगलों से होकर गुजरता है, और समुद्र और भूमि पर व्यापार करता है, वह अपने कर्म, वचन और विचार धन प्राप्ति में लगाता है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, दानदाताओं के राजा वेस्संतारा ने, जो बुद्धत्व के खजाने, सर्वज्ञ ज्ञान की प्राप्ति के लिए तरस रहे थे, भीख मांगने वाले किसी भी व्यक्ति को अपनी संपत्ति और अनाज, अपनी दासियाँ और दास, अपने सवारी के जानवर और रथ, अपनी सारी संपत्ति, अपनी पत्नी और बच्चे और स्वयं को अर्पित कर दिया, और इस प्रकार परम ज्ञान की खोज की। हे राजा, जिस प्रकार एक अधिकारी मुहर और उसके संरक्षण के पद के लिए उत्सुक होकर अपने घर की हर चीज - संपत्ति, अनाज, सोना और चांदी, सब कुछ - त्याग कर मुहर प्राप्त करने का प्रयास करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, दानदाताओं के राजा वेसंतारा ने अपने घर के अंदर और बाहर सब कुछ दान करके, यहां तक कि दूसरों के लिए अपना प्राण भी देकर, परम ज्ञान की खोज की।

10. और हे राजा, दानदाताओं के राजा वेसंतारा ने ऐसा सोचा: "उसे ठीक वही देकर, जो वह मांगता है, मैं उसकी सेवा कर पाऊंगा।"

ब्राह्मण को: और इसलिए उसने उसे अपनी पत्नी और बच्चों को दे दिया। हे राजा, उसने उन्हें नापसंदगी के कारण नहीं दिया, न ही इसलिए कि वह उन्हें और देखना नहीं चाहता था, न ही इसलिए कि वह उन्हें बोझ समझता था या सोचता था कि वह अब उनका भरण-पोषण नहीं कर सकता, न ही इसलिए कि उसे जो अप्रिय था उससे छुटकारा पाने की इच्छा से वह नाराज था—बल्कि इसलिए कि सर्वज्ञता का रत्न उसे प्रिय था, सर्वज्ञों की अंतर्दृष्टि के लिए, उसने वह गौरवशाली उपहार दिया—अतुलनीय, भव्य, अतुलनीय—जो उसे प्रिय था, अत्यंत प्रिय था, अपने जीवन के समान प्रिय था, अपने बच्चों और अपनी पत्नी को! क्योंकि हे राजा, भगवान बुद्ध ने, देवताओं के देव, करिया पिटक में कहा है:

"'यह मेरे प्यारे बच्चों के प्रति घृणा के कारण नहीं था, यह मेरी रानी, मद्दी, दिलों को वश में करने वाली, के प्रति घृणा के कारण नहीं था - ऐसा नहीं था कि मैंने उनसे कम प्यार किया - बल्कि बुद्धत्व के प्रति अधिक प्रेम के कारण, मैंने उन सभी का त्याग किया।"

हे राजा, उस समय वेसंतारा ने अपनी पत्नी और बच्चों को त्यागने के बाद, पत्तों की कुटिया में प्रवेश किया और वहाँ बैठ गया। उनके प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण वह गहरे शोक में डूब गया, उसका हृदय प्रचंड हो गया, और गर्म साँसें इतनी अधिक निकलने लगीं कि नाक से भी बाहर नहीं निकल पा रही थीं, और उसकी आँखों से खून की बूँदों जैसे आँसू बहने लगे। हे राजा, इसी शोक में वेसंतारा ने ब्राह्मण को अपनी पत्नी और बच्चों को इस विचार से दिया कि उसका दान का नियम भंग न हो। हे राजा, इसके दो कारण थे। वे दो

कारण क्या थे? एक तो यह कि उसका दान का नियम भंग न हो; दूसरा यह कि ऐसा करने से उसके बच्चे, जो उसके साथ केवल जंगली जड़ों और फलों पर जीवन यापन करते-करते दुखी थे, अंततः अपने नए स्वामी द्वारा मुक्त हो जाएँगे। क्योंकि वेसंतारा जानता था, हे राजा, "कोई भी मेरे बच्चों को गुलाम बनाकर नहीं रख सकता। उनके दादा बच्चों को छुड़ा लेंगे, और इस प्रकार वे मेरे पास वापस आ जाएँगे।" ये दो कारण हैं जिनकी वजह से उसने अपने बच्चों को ब्राह्मण को सौंप दिया।

12. 'और हे राजा, वेसंतारा को यह भी पता था:

"यह ब्राह्मण बूढ़ा, जर्जर, उम्रदराज, दुर्बल और टूटा हुआ है, छड़ी के सहारे चलता है, उसके जीवन का अंत निकट है, उसका पुण्य नगण्य है, वह मेरे बच्चों की देखभाल करने में सक्षम नहीं होगा।"

दास।" हे राजा, क्या कोई मनुष्य अपनी साधारण शक्ति से चंद्रमा और सूर्य को पकड़ सकेगा?

वे कितने ही शक्तिशाली और बलिष्ठ क्यों न हों, उन्हें टोकरी या डिब्बे में रखकर, उनकी रोशनी से वंचित करके, प्लेटों की तरह इस्तेमाल करना?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'हे राजा, कोई भी वेसंतारा के बच्चों को, जो संसार के लिए महिमा में चंद्रमा और सूर्य के समान थे, अपने दासों के रूप में नहीं रख सकता था।'

13. हे राजा, इसी बात का एक और कारण सुनो। हे सर्वोपरि अधिपति के राजा, वह अद्भुत रत्न, जो चमकीला और सुंदर है, जिसके आठ पहलू इतनी खूबसूरती से तराशे गए हैं, जिसकी मोटाई चार हाथ है और जिसकी परिधि बैलगाड़ी के पहिये के केंद्र के बराबर है, उसे कोई भी व्यक्ति कपड़े में लपेटकर टोकरी में रखकर कैंची की धार तेज करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता। और न ही, हे राजा, कोई भी उसे अपने दासों, वेसंतारा के बच्चों की तरह, विश्व के महिमावान स्वामी के रत्नों के समान उपयोग में रख सकता है।

14. और हे राजा, एक और कारण सुनो। जैसे हाथी राजा उपोसथ, जो सौम्य और सुंदर था, आठ हाथ ऊँचा और नौ हाथ लंबा, जिसके शरीर पर तीन स्थानों पर मद के लक्षण थे, पूर्णतः सफेद, सात गुना दृढ़, उसे कोई भी कभी नहीं पा सकता था।

उन्हें तश्तरी या सूप से ढक कर नहीं रखा जा सकता था, उन्हें कभी भी बछड़े की तरह गौशाला में नहीं रखा जा सकता था, न ही उनका उपयोग बछड़े की तरह किया जा सकता था; ठीक उसी तरह, वेसंतारा के बच्चों को, जो संसार में हाथी राजा उपोसथ के समान थे, कोई भी अपने दास के रूप में उपयोग में नहीं रख सकता था।

15. 'और हे राजा, एक और कारण सुनो। हे राजा, जैसे विशाल सागर लंबाई और चौड़ाई में विशाल और गहरा है, जिसकी गहराई मापी नहीं जा सकती, जिसे पार करना कठिन है, जिसे नापना या ढकना असंभव है, और कोई भी उसे घेरकर एक नौका के रूप में उपयोग नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार कोई भी वेसंतारा के बच्चों को, जो संसार में विशाल सागर के समान सम्मानित हैं, अपने दासों के समान उपयोग में नहीं रख सकता।

16. हे राजा, एक और कारण सुनो। जिस प्रकार हिमालय, पर्वतों का राजा, पाँच मील ऊँचा और तीन हज़ार मील परिधि वाला, अपनी अड़तालीस हज़ार चोटियों की श्रृंखलाओं के साथ, पाँच सौ नदियों का स्रोत, असंख्य शक्तिशाली प्राणियों का निवास स्थान, अनेक सुगंधों का उत्पादक, सैकड़ों जादुई औषधियों से समृद्ध, पृथ्वी के केंद्र में बादल की तरह ऊपर उठता हुआ दिखाई देता है; हे राजा, उसके समान कोई भी अपने दासों के रूप में वेस्संतारा के बच्चों को, विश्व में हिमालय, पर्वतों के राजा के समान सम्मानित नहीं रख सकता।

और हे राजा, एक और कारण सुनो। ठीक वैसे ही जैसे एक

पर्वत की चोटी पर जलती विशाल अग्नि रात के अंधेरे और अंधकार में भी दूर से दिखाई देती थी, राजा वेसंतारा मनुष्यों में इतने प्रसिद्ध थे कि कोई भी उनके पुत्रों को अपने दास के रूप में नहीं रख सकता था—क्योंकि जैसे हिमालय पर्वतों में नाग वृक्षों के फूल खिलने के समय, जब वसंत ऋतु की कोमल हवाएँ चलती हैं, तो फूलों की सुगंध दस या बारह मील तक फैल जाती है, वैसे ही राजा वेसंतारा की प्रसिद्धि दूर-दूर तक गूंजती थी, और उनके धर्म की मधुर सुगंध हजारों मील तक, यहाँ तक कि अकनित (सर्वोच्च) देवताओं के निवास

स्थानों तक पहुँचती थी, रास्ते में देवताओं और असुरों, गरुड़ों और गंधर्वों, यक्षों और राक्षसों, महोरगों और किन्नरों, और देवताओं के सम्राट इंद्र के निवास स्थानों से होकर गुजरती थी! इसलिए कोई भी अपने बच्चों को गुलाम बनाकर नहीं रख सकता था।

17. "हे राजा, युवा राजकुमार गाली को उसके पिता वेस्सन्तारा ने इन शब्दों में उपदेश दिया: 'हे बालक, जब तेरे दादा ब्राह्मण को धन देकर तुझे छुड़ाएँ, तो तुझे एक हजार औंस सोने में वापस खरीद लेना, और जब तेरी बहन कन्हागिना को छुड़ाएँ, तो उसे सौ दासियों, सौ दासियों, सौ हाथियों, सौ घोड़ों, सौ गायों, सौ भैंसों और सौ औंस सोने में वापस खरीद लेना। और हे बालक, यदि तेरे दादा आज्ञा से या बलपूर्वक, बिना कुछ दिए, तुझे ब्राह्मण के हाथों से छुड़ा लें, तो अपने दादा की बात न मानना, बल्कि ब्राह्मण के अधीन रहना।' ऐसा उपदेश देकर उन्होंने उसे विदा किया। और युवा गाली ने ऐसा ही किया, और जब उसके दादा ने उससे पूछा, तो उसने कहा:

"महोदय, मेरे पिता ने मुझे इस आदमी को सौंप दिया, जिसकी कीमत एक हजार औंस के बराबर थी; सौ हाथियों के बराबर, उन्होंने कन्हागिना नाम की लड़की को सौंप दिया।"

'हे नागसेन, यह पहेली तो भली-भांति सुलझ गई है, विधर्म का जाल भली-भांति टूट गया है, विरोधियों के तर्क पर विजय प्राप्त कर तुम्हारा अपना सिद्धांत सिद्ध हो गया है, और शास्त्रों के अक्षरशः पालन का कार्य भली-भांति संपन्न हुआ है।'

आपने इसके सार को इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[यहाँ वेसंतारा द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों को उपहार में देने की दुविधा समाप्त होती है।]

[बहत्तरवीं दुविधा। प्रायश्चित।]

18. 'आदरणीय नागसेना, क्या सभी बोदिसात तपस्या की अवधि से गुजरे थे, या केवल गौतम?'

'हे महाराज, सभी ने नहीं, लेकिन गौतम ने किया।'

'आदरणीय नागसेना, यदि ऐसा है तो बोदिसात और बोदिसात में भेद करना उचित नहीं है।'

'हे महाराज, चार ऐसे विषय हैं जिनमें इतना अंतर है। वे चार विषय क्या हैं? एक तो उनके जन्मस्थान (परिवार) में अंतर है, दूसरा बुद्धों के उत्तराधिकार के प्रारंभ से बीते काल में उनके स्थान में अंतर है, और तीसरा यह है कि...

उनके व्यक्तिगत जीवनकाल की लंबाई में अंतर है, उनके व्यक्तिगत आकार में अंतर है। हे राजा, इन चार पहलुओं में बोधिसात और बोधिसात में अंतर है। लेकिन किसी भी बुद्ध में कोई अंतर नहीं है, जो शारीरिक सौंदर्य, चरित्र की अच्छाई, ध्यान और तर्क शक्ति, मोक्ष, मोक्ष के ज्ञान से उत्पन्न अंतर्दृष्टि आदि में समान हैं।

विश्वास के चार आधार, तथागत की दस शक्तियों में, छह प्रकार की विशेष शक्तियों में

ज्ञान, बुद्ध के चौदह प्रकार के ज्ञान में, बुद्ध के अठारह गुणों में—संक्षेप में, बुद्ध के सभी गुणों में। क्योंकि सभी बुद्ध, बुद्ध के सभी गुणों में बिल्कुल एक समान हैं।

लेकिन अगर, नागसेना, ऐसा है तो क्या कारण है कि केवल गौतम बोधिसात ने ही तपस्या की?

'हे राजा, गौतम बोधिसात अपरिपक्व अवस्था में संसार से विदा हुए थे। और जब वे अपने उस अपरिपक्व ज्ञान को परिपक्वता की ओर ले जा रहे थे, तभी उन्होंने तपस्या की।'

19. 'तो फिर, नागसेन, वह अपरिपक्व ज्ञान और बुद्धि के साथ क्यों निकला? उसने पहले अपने ज्ञान को परिपक्व क्यों नहीं किया, और फिर परिपक्व ज्ञान के साथ संसार का त्याग क्यों नहीं किया?'

'हे राजा, जब बोदिसात ने अपने हरम की स्त्रियों को अव्यवस्थित अवस्था में देखा, तब वह घृणा से भर गया।'

और इस प्रकार उसके मन में घृणा और असंतोष उत्पन्न हो गया। जब उसने देखा कि उसका हृदय असंतोष से भरा हुआ है, तो मृत्यु के सेवकों में से एक देवता (मारा) ने सोचा: "अब उसके हृदय के असंतोष को दूर करने का समय आ गया है," और आकाश में खड़े होकर उसने ये शब्द कहे: "हे आदरणीय! हे सौभाग्यशाली! व्याकुल मत हो। आज से सातवें दिन तुम्हें चक्र का दिव्य खजाना, उसके हजार तीलियों, उसके पहिये और उसके केंद्र सहित, पूर्ण और परिपूर्ण रूप में प्रकट होगा; और अन्य खजाने, जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं और जो आकाश में यात्रा करते हैं, वे स्वयं तुम्हारे पास आ जाएँगे; और तुम्हारे मुख के आदेश चारों महान महाद्वीपों और दो हजार आश्रित द्वीपों पर शासन करेंगे; और तुम्हारे एक हजार से अधिक पुत्र होंगे, जो शत्रु की सेनाओं को कुचलने में सक्षम शक्तिशाली वीर होंगे; और उन पुत्रों से घिरे हुए तुम, सात खजानों के स्वामी, संसार पर शासन करोगे!" लेकिन जैसे मानो दिनभर गर्म होकर चमकती हुई लोहे की छड़ उसके कान में घुस गई हो, वैसे ही 'हे राजा' शब्द बोदिसात के कान में प्रवेश कर गए। और उस देवता के उच्चारण से उसके पहले से ही मौजूद स्वाभाविक कष्ट में एक और भावना, चिंता और भय जुड़ गया। जैसे एक भयंकर भट्टी में नया ईंधन डालने पर वह और भी भयंकर रूप से जलने लगती है—जैसे स्वभाव से नम और पहले से ही उस पर उगी वनस्पति और घास से टपकते पानी के कारण दलदली धरती, भारी बारिश होने पर और भी कीचड़युक्त हो जाती है—वैसे ही उसके पहले से ही मौजूद कष्ट में एक और भावना जुड़ गई...

उस देवता के उच्चारण से एक और भावना, चिंता और भय उत्पन्न हो गया।

20. 'परन्तु मुझे बताओ, नागसेन, यदि सातवें दिन बोधिसात को दिव्य चक्र-खजाना प्रकट हो जाता, तो क्या वह चक्र के प्रकट होने पर अपने उद्देश्य से विमुख हो जाता?'

हे राजा, सातवें दिन बोधिसात को कोई चक्र-खजाना प्रकट नहीं हुआ। क्योंकि यह उस देवता का झूठ था, जो उसने बोधिसात को प्रलोभित करने के उद्देश्य से बोला था। और यदि वह प्रकट भी होता, तो भी बोधिसात उससे मुँह नहीं मोड़ता। और क्यों नहीं? क्योंकि हे राजा, बोधिसात ने सभी चीजों की अनित्यता, व्यक्ति के रूप में अस्तित्व में निहित दुख, और पाँच स्कंधों से बने किसी भी प्राणी में आत्मा के अभाव के तथ्यों को दृढ़ता से समझ लिया था, और इस प्रकार उसने (कामवासना, विधर्म, बाह्य कर्मों पर निर्भरता, या शाश्वत आत्मा के होने के भ्रम से उत्पन्न होने वाली व्यक्तिवादिता से आसक्ति का) नाश कर लिया था। हे राजा, जो जल अनत्तत झील से गंगा नदी में, गंगा नदी से सागर में, और सागर से समुद्र के छिद्रों में बहता है...

पृथ्वी के नीचे के क्षेत्रों में—क्या वह जल, एक बार उस छिद्र में प्रवेश करने के बाद, वापस मुड़कर विशाल सागर में, और विशाल सागर से गंगा नदी में, और गंगा नदी से अनट्टता झील में बह जाएगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'इसी प्रकार, हे राजा, बोधिसात ने अपने अंतिम जन्म के लिए ही अनंत युगों तक पुण्य अर्जित किया था। अब वे अपने अंतिम जन्म तक पहुँच चुके थे, बुद्धों का ज्ञान उनमें परिपक्व हो चुका था, छह वर्षों में वे सर्वज्ञ बुद्ध बन जाएँगे, संसार के सर्वोच्च प्राणी। तो क्या बोधिसात, चक्र-राक्षस के लिए, वापस लौटेंगे?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

नहीं! हे राजा, चाहे विशाल पृथ्वी अपने सभी शिखरों और पर्वत श्रृंखलाओं सहित पीछे मुड़ जाए, तब भी बोधिसात बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले नहीं मुड़ेंगे। चाहे गंगा का जल धारा के विपरीत दिशा में बहने लगे, तब भी बोधिसात बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले नहीं मुड़ेंगे। चाहे विशाल सागर अपने असीम जल के साथ गाय के पदचिह्न के जल की तरह सूख जाए, तब भी बोधिसात बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले नहीं मुड़ेंगे। यहाँ तक कि पर्वतों के राजा सिनेरु भी,

चाहे बोधिसत् सौ या हज़ार टुकड़ों में बिखर जाए, फिर भी बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले वह पीछे नहीं हटेंगे। चाहे सूर्य, चंद्रमा और सभी तारे मिट्टी के ढेले की तरह ज़मीन पर गिर पड़ें, फिर भी बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले वह पीछे नहीं हटेंगे। चाहे आकाश का विस्तार चटाई की तरह लिपट जाए, फिर भी बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले वह पीछे नहीं हटेंगे! और क्यों नहीं? क्योंकि उन्होंने हर बंधन को तोड़ दिया था।

21. 'आदरणीय नागसेना, संसार में कितने बंधन हैं?'

'हे महाराज, संसार में ये दस बंधन हैं, जिनके द्वारा मनुष्य न तो संसार का त्याग करता है और न ही उसमें लौटता है। और वे दस क्या हैं? हे महाराज, माता, पिता, पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार, मित्र, धन, सुखी आय, संप्रभुता और इंद्रियों के पाँच सुख, ये दस बंधन संसार में सामान्य हैं, जिनके द्वारा मनुष्य न तो संसार का त्याग करता है और न ही उसमें लौटता है। और हे महाराज, बोदिसात ने इन सभी बंधनों को तोड़ दिया था। इसलिए, हे महाराज, वह लौट नहीं सका।'

22. 'हे पूज्य नागसेन, यदि बोधिसात ने, देवता के वचनों से हृदय में असंतोष उत्पन्न होने पर, यद्यपि उनका (चार सत्यों का) ज्ञान अभी अपूर्ण था और बुद्ध के रूप में उनकी अंतर्दृष्टि परिपक्व नहीं थी, फिर भी संसार का त्याग कर दिया, तो उनके लिए तपस्या का क्या लाभ था? क्या उन्हें अपने ज्ञान की परिपक्वता की प्रतीक्षा करते हुए सभी (उपयुक्त) खाद्य पदार्थों का आनंद लेते हुए जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए था?'

हे राजा, संसार में दस प्रकार के ऐसे व्यक्ति हैं जो तिरस्कृत और घृणास्पद हैं।

शर्मनाक समझे जाने वाले, तिरस्कृत, निंदनीय माने जाने वाले, अपमानित और अलोकप्रिय। और वे दस कौन हैं? हे राजा, एक अविवाहित स्त्री, एक दुर्बल प्राणी, एक मित्र या रिश्तेदार विहीन स्त्री, एक पेटू स्त्री, एक बदनाम परिवार में रहने वाली स्त्री, पापियों की मित्र, वह जिसका धन नष्ट हो चुका है, वह चरित्रहीन, वह निर्धन, और वह निर्धन। ये दस संसार में तिरस्कृत और अपमानित हैं, शर्मनाक समझे जाने वाले, तिरस्कृत, निंदनीय माने जाने वाले, अपमानित और अलोकप्रिय। हे महाराज, इन्हीं परिस्थितियों को याद करते हुए बोधिसात के मन में यह विचार आया: "देवताओं और मनुष्यों के बीच मैं बेरोजगार या निर्धन होने के कारण कलंकित न होऊं! कर्म में निपुण, कर्म के कारण आदरणीय, कर्म से उत्पन्न सर्वोच्चता प्राप्त, कर्म पर आधारित आचरण वाला, कर्म को जीवन के हर पहलू में उतारने वाला, कर्म में निवास करने वाला, निरंतर लगन से तपस्या करूं।" हे महाराज, इसी भावना से बोधिसात ने अपने ज्ञान को परिपक्वता की ओर ले जाते हुए तपस्या का अभ्यास शुरू किया।

23. आदरणीय नागसेन, बोधिसात, जब तपस्या कर रहे थे, तब उन्होंने मन ही मन कहा:

लेकिन इस कठोर तपस्या से मैं उस विशिष्ट अंतर्दृष्टि को प्राप्त नहीं कर पाऊंगा जो उचित और श्रेष्ठ ज्ञान से उत्पन्न होती है—वह अंतर्दृष्टि जो साधारण मनुष्यों की क्षमता से परे है। क्या बुद्धत्व की प्राप्ति का कोई और मार्ग नहीं है?

'क्या उस समय बोडिसैट अपने रास्ते को लेकर असमंजस में था?'

हे महाराज, पच्चीस गुण हैं जो मन की दुर्बलता के कारण हैं, जिनके कारण मन आसवों (महान बुराइयों - कामवासना, अहंकार, भ्रम और अज्ञान) के नाश में सफलतापूर्वक संलग्न नहीं हो सकता। और वे पच्चीस गुण क्या हैं? हे महाराज, क्रोध, शत्रुता, पाखंड, अहंकार, ईर्ष्या, लोभ और छल।

और कपट, और हठधर्मिता, और कुटिलता, और अभिमान, और घमंड, और (जन्म, स्वास्थ्य या धन के बारे में) उच्च विचारों का नशा, और (भलाई में) लापरवाही, और बौद्धिक निष्क्रियता या शारीरिक आलस्य, और उनींदापन, और निष्क्रियता, और पापियों से मित्रता, और रूप, और ध्वनियाँ, और गंध, और स्वाद, और स्पर्श की संवेदनाएँ, और भूख, और प्यास, और असंतोष। ये सब हैं

हे महाराज, पच्चीस गुण हैं जो मन की दुर्बलता के कारण हैं, जिनके कारण मन आसवों के नाश में सफलतापूर्वक संलग्न नहीं हो पाता। (और इनमें से) हे महाराज, भूख और प्यास ने ही बोधिसात के शरीर को जकड़ लिया था। और इस प्रकार, मानो "ग्रस्त" होने के कारण, उनका मन आसवों के नाश में ठीक से संलग्न नहीं हो पा रहा था। अब, हे महाराज, बोधिसात ने असंख्य युगों से अपने सभी जन्मों में चार आर्य सत्यों की अनुभूति का अनुसरण किया था। तो क्या यह संभव है कि उनके अंतिम जन्म में, जिस जन्म में उन्हें यह अनुभूति प्राप्त होनी थी, उनके मन में मार्ग को लेकर कोई भ्रम हो? फिर भी, हे महाराज, बोधिसात के मन में यह विचार आया: "क्या अब बुद्ध के ज्ञान तक पहुँचने का कोई और मार्ग नहीं है?" और इससे पहले ही, हे राजा, जब वह केवल एक महीने का था, जब उसके पिता शाक्य खेत जोत रहे थे, तब बोधिसात को गंबू वृक्ष की छाया में शीतलता के लिए उसके पवित्र पलंग में लिटाया गया, और वह पालथी मारकर बैठ गया, और वासनाओं को त्यागकर, हृदय की सभी बुरी अवस्थाओं से मुक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया और उसी अवस्था में बना रहा—एकांतवास से उत्पन्न आनंद और शांति की अवस्था, चिंतन से परिपूर्ण, अन्वेषण से परिपूर्ण, और फिर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गया।

'बहुत खूब, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपकी बात मानकर स्वीकार करता हूँ। बोधिसात ने अपने ज्ञान को परिपक्वता तक पहुँचाने के दौरान ही तपस्या की थी।'

[बोदिसात द्वारा किए गए प्रायश्चित को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[तिहत्तरवीं दुविधा। बुराई से सद्गुण अधिक शक्तिशाली।]

24. 'आदरणीय नागसेन, सद्गुण या दुर्गुण में से कौन अधिक शक्तिशाली है?'

'हे राजा, सद्गुण।'

नागसेना, यह एक ऐसी कहावत है जिस पर मैं विश्वास नहीं कर सकता—कि पुण्य दुर्गुण से अधिक शक्तिशाली है। क्योंकि इस संसार में ऐसे लोग देखे जा सकते हैं जो जीवित प्राणियों का नाश करते हैं, जो बिना माँगे ही सब कुछ ले लेते हैं, जो अपनी वासनाओं में लिप्त होकर बुराई के मार्ग पर चलते हैं, जो झूठ बोलते हैं, जो पूरे गाँवों में गिरोह बनाकर लूटपाट करते हैं, जो लुटेरे, ठग और जालसाज हैं, और इन सभी को उनके अपराध के अनुसार उनके हाथ, या पैर, या हाथ और पैर, या कान काट दिए जाते हैं।

उनकी नाक, या उनके कान और नाक, या दलिया का पात्र, या शंख का मुकुट, या राहु का मुख, या अग्नि की माला, या हाथ की मशाल, या सांप की पट्टियाँ, या छाल का वस्त्र, या चित्तीदार मृग, या मांस के हुक, या सिक्के के कट, या खारे पानी की चीरें, या छड़ का मोड़, या पुआल का आसन, या उन्हें उबलते तेल से अभिषेक किया जाता है, या कुत्तों द्वारा खाया जाता है, या जीवित सूली पर चढ़ाया जाता है, या तलवार से उनका सिर काट दिया जाता है। उनमें से कुछ एक रात पाप करते हैं और उसी रात अपने पाप का फल भोगते हैं, कुछ रात में पाप करके अगले दिन फल भोगते हैं, कुछ एक दिन पाप करके उसी दिन फल भोगते हैं, कुछ दिन में पाप करके उसी रात फल भोगते हैं, कुछ दो या तीन दिन बीत जाने पर फल भोगते हैं। परन्तु सभी इस वर्तमान दृश्य संसार में अपने अधर्म का फल भोगते हैं। और क्या कोई ऐसा है, नागसेना, जिसने एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस, सौ या हज़ार (संगठन के सदस्यों) के लिए सभी प्रकार के भोजन सहित व्यवस्था करके इस वर्तमान दृश्य संसार में धन, प्रसिद्धि या सुख का आनंद प्राप्त किया हो? (क्या कोई ऐसा है) जिसने धार्मिक जीवन या उपोसथ के पालन से इस जीवन में भी आनंद प्राप्त किया हो?'

25. 'हे राजा, चार ऐसे पुरुष हैं जिन्होंने दान देकर, धर्मपरायणता का अभ्यास करके और उपोसथा की पूजा करके अपने पार्थिव शरीर में ही तिदासपुरा (देवताओं के नगर) में यश प्राप्त किया।'

'और वे कौन थे, महोदय?'

'मंधाता राजा, निमी राजा, साधीना राजा और गुट्टिला संगीतकार।'

'आदरणीय नागसेना, यह घटना हजारों जन्म पहले घटी थी और हम दोनों की समझ से परे है। यदि संभव हो तो, उस काल (संसार के) के कुछ उदाहरण दीजिए जो अब बीत रहा है और जिसमें भगवान बुद्ध जीवित रहे हैं।'

हे राजा, इस समय, दास पुन्नक ने सारिपुत्त को भोजन कराया, जिससे वह उसी दिन कोषाध्यक्ष (सेठी) बन गया और अब वह पुन्नक सेठी के नाम से जाना जाता है। गोपाल की माता, रानी, जिसने (गरीब किसान परिवार की पुत्री होते हुए) अपने बाल आठ पैसे में बेचकर महा कक्कायन और उनके सात साथियों को भोजन कराया, उसी दिन राजा उदेना की प्रधान रानी बन गई। विश्वासी स्त्री सुप्पिया ने एक बीमार भिक्षु के लिए शोरबा बनाने के लिए अपनी जांघ से मांस काटा, और अगले ही दिन घाव भर गया और वह ठीक हो गया, उस पर नई त्वचा उग आई। मल्लिका, रानी जिसने (जब वह एक गरीब फूलवाली थी) पिछली रात का दलिया (जो उसने अपने भोजन के लिए रखा था) भगवान बुद्ध को दिया, उसी दिन कोसल के राजा की प्रधान रानी बन गई। सुमाना, माला बनाने वाली, जब उसने

भगवान बुद्ध को आठ गुच्छे चमेली के फूल भेंट करने वाले सभी लोग उसी दिन अपार समृद्धि प्राप्त कर गए। ब्राह्मण एका-सातक, जिन्होंने भगवान बुद्ध को अपना एकमात्र वस्त्र भेंट किया था, उसी दिन सब्तथक (महामंत्री) का पद प्राप्त कर लिया। हे राजा, इन सभी ने अपने जीवनकाल में ही धन और यश का आनंद प्राप्त किया।

'तो फिर, नागसेना, अपनी तमाम खोज और पूछताछ के बावजूद आपको केवल छह मामले ही मिले?'

'यही सत्य है, हे राजा।'

26. 'तो फिर, नागसेन, पुण्य नहीं, बल्कि पाप अधिक शक्तिशाली है। क्योंकि एक ही दिन में मैंने दस पुरुषों को अपने अपराधों का प्रायश्चित करते हुए जीवित सूली पर चढ़ते देखा है, और तीस, चालीस, पचास, सौ और हज़ार को भी। और फिर, नंदा के राजपरिवार की सेवा में भद्दसाला नामक एक सैनिक था, जिसने राजा कंदगुत्त के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। अब उस युद्ध में, नागसेन, अस्सी शव नृत्य हुए। क्योंकि कहते हैं कि जब एक बड़ा सिर कलम करने का नरसंहार होता है (जिसका अर्थ है दस हज़ार हाथियों, एक लाख घोड़ों, पाँच हज़ार रथ चालकों और सौ कोटि पैदल सैनिकों का वध), तब सिर कटे शव उठते हैं और युद्ध के मैदान में उन्माद में नाचते हैं। और सभी पुरुष

इस प्रकार मारे गए लोग अपने बुरे कर्मों के फल के कारण विनाश को प्राप्त हुए। इसलिए, नागसेन, मैं कहता हूँ कि बुराई, अच्छाई से अधिक शक्तिशाली है। और क्या तुमने सुना है, नागसेन, कि इस समस्त युग में (गौतम बुद्ध के समय से) कोसल राजा का दान अद्वितीय रहा है?

'जी हां, मैंने ऐसा ही सुना है, हे राजा।'

लेकिन क्या नागसेन ने अपने अतुलनीय दान के कारण इस वर्तमान जीवन में धन, यश या सुख प्राप्त किया?

'नहीं, हे राजा, उसने ऐसा नहीं किया।'

'तो फिर, नागसेन, क्या सच में बुराई अच्छाई से अधिक शक्तिशाली है?'

27. हे राजा, बुराई अपनी नीचता के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। परन्तु पुण्य अपनी महानता के कारण लंबे समय तक नहीं मरता। इसे एक दृष्टांत के द्वारा और भी स्पष्ट किया जा सकता है। हे राजा, जैसे पश्चिम देश में कुमुद-भंडिका नामक अनाज, जो जल्दी पक जाता है और एक महीने में ही काटा जा सकता है, उसे मसालु (एक महीने में प्राप्त) कहा जाता है, परन्तु चावल छह या पाँच महीने में ही पूर्ण रूप से पकते हैं। तो फिर कुमुद-भंडिका और चावल में क्या अंतर है?

'एक पौधा तो तुच्छ है, हे राजा, दूसरा भव्य। ये चावल राजाओं के योग्य हैं, राजा के लिए उपयुक्त हैं।'

एक भोजन राजा की मेज पर परोसा जाता है; दूसरा भोजन नौकरों और गुलामों का होता है।

'ठीक इसी प्रकार, हे राजा, बुराई अपनी नीचता के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। परन्तु सद्‌गुण अपनी महानता के कारण लंबे समय तक नष्ट नहीं होता।'

28. 'परन्तु, नागसेन, संसार में सबसे शक्तिशाली वही वस्तुएँ मानी जाती हैं जिनका अंत सबसे शीघ्र होता है। अतः बुराई ही अधिक शक्तिशाली है, सद्‌गुण नहीं।' नागसेन, ठीक वैसे ही जैसे भयंकर युद्ध में प्रवेश करने पर जो बलवान योद्धा सबसे शीघ्र अपने शत्रुओं के सिर अपनी बगल में दबाकर उन्हें घसीटते हुए अपने स्वामी के पास बंदी बनाकर लाता है, वही संसार में सबसे योग्य योद्धा माना जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जो सर्जन सबसे शीघ्र तीर निकालकर रोग का उपचार करता है, उसे सबसे चतुर माना जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जो लेखाकार सबसे तेजी से गणना करके परिणाम प्रस्तुत करता है, उसे सबसे चतुर माना जाता है। ठीक वैसे ही जैसे जो पहलवान अपने प्रतिद्वंद्वी को सबसे शीघ्र उठाकर पीठ के बल गिरा देता है, उसे सबसे योग्य योद्धा माना जाता है। नागसेन, ठीक वैसे ही इन दो चीजों - सद्‌गुण और दुर्गुण - में से जो सबसे शीघ्र अपने अंत की ओर अग्रसर होती है, वही संसार में अधिक शक्तिशाली होती है।

'हे राजा, इन दोनों के कर्म आने वाले जन्मों में प्रकट होंगे; परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य पाप अपने अपराध के कारण इसी जन्म में प्रकट हो जाएंगे। क्षत्रिय शासकों को...'

हे राजा, प्राचीन काल में यह फरमान जारी किया गया था: "जो कोई किसी की जान लेता है, उस पर जुर्माना लगाया जाएगा, और जो कोई बिना माँगी वस्तु अपने पास रखता है, और जो कोई व्यभिचार करता है, और जो कोई झूठ बोलता है, और जो कोई डाकू है, और जो कोई लुटेरा है, और जो कोई ठगी और छल करता है, ऐसे लोगों पर जुर्माना लगाया जाएगा, या उन्हें पीटा जाएगा, या उनके अंग काट दिए जाएँगे, या उन्हें मार डाला जाएगा।" और इसके अनुसरण में वे बार-बार जाँच करते थे, और फिर तदनुसार कोई न कोई दंड देते थे।

लेकिन हे राजा, क्या कभी किसी ने ऐसा फरमान जारी किया है: "जो कोई दान देता है, या सदाचारी जीवन जीता है, या उपोसथा का पालन करता है, उसे धन या सम्मान दिया जाएगा?" और क्या वे लगातार जाँच करते हैं, और तदनुसार धन या सम्मान प्रदान करते हैं, जैसे वे किसी चोर को कोड़े मारते हैं या उसे बंधन में बाँध देते हैं?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

"अगर वे ऐसा करते तो इस जीवन में भी सद्गुण प्रकट हो जाते। परन्तु वे न तो दानदाताओं के विषय में कोई पूछताछ करते हैं, न ही उन्हें धन-दौलत और सम्मान प्रदान करते हैं, इसलिए सद्गुण अभी प्रकट नहीं होता। और यही कारण है, हे राजा, कि इस जीवन में पाप प्रकट हो जाता है, जबकि दानदाता को आने वाले जन्मों में और भी अधिक मिलता है। अतः कर्मों के विनाश के बावजूद, सद्गुण ही दोनों में कहीं अधिक शक्तिशाली है।"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! केवल आप जैसे बुद्धिमान व्यक्ति ही इस पहेली को इतनी कुशलता से हल कर सकते थे।'

[पैराग्राफ जारी है] मेरे द्वारा सांसारिक अर्थों में रखी गई समस्या को आप पारलौकिक अर्थों में स्पष्ट कर लें।'

[यहाँ सद्गुण और दुर्गुण को लेकर दुविधा समाप्त होती है।]

[चौहत्तरवीं दुविधा। मृतकों को दी जाने वाली भेंट।]

29. 'हे आदरणीय नागसेन, ये दानदाता जब अपनी भेंट देते हैं, तो वे विशेष रूप से अपने दिवंगत पूर्व (रिश्तेदारों) को समर्पित करते हुए कहते हैं: "यह दान अमुक व्यक्ति को लाभ पहुंचाए।" तो क्या उन्हें (मृतकों को) इससे कोई लाभ मिलता है?'

'हे राजा, कुछ लोग ऐसा करते हैं, और कुछ नहीं करते।'

तो फिर वे कौन हैं जो करते हैं और कौन नहीं करते?

'हे राजा, जो नरक में पुनर्जन्म लेते हैं, वे नहीं लेते; न ही स्वर्ग में पुनर्जन्म लेने वाले; न ही पशु रूप में पुनर्जन्म लेने वाले। और प्रेतों के रूप में पुनर्जन्म लेने वालों में से तीन प्रकार के प्रेत नहीं लेते - वन्तसिका (जो उल्टी खाते हैं), खुप्पिपासिनो (जो भूख और प्यास से मरते हैं), निग्घाम-तन्हिका (जो प्यास से मर जाते हैं)। परन्तु परदत्तुपगीविनो (जो दूसरों के दान पर जीते हैं) लाभ प्राप्त करते हैं, और जो उन्हें याद करते हैं वे भी लाभ प्राप्त करते हैं।'

'तो, नागसेन, दानदाताओं द्वारा दी गई भेंटें व्यर्थ हो गई हैं, और निष्फल हैं, क्योंकि वे

जिनके लाभ के लिए ये दिए गए हैं, उन्हें इनसे कोई लाभ नहीं मिलना चाहिए।

'नहीं, हे राजा। वे व्यर्थ नहीं जाते, न ही निष्फल होते हैं। देने वाले स्वयं उनसे लाभ प्राप्त करते हैं।'

'तो मुझे एक उपमा के माध्यम से इस बात का यकीन दिलाइए।'

'मान लीजिए, हे राजा, कि लोग मछली, मांस, मादक पेय, चावल और केक तैयार करके अपने किसी रिश्तेदार के घर जाएँ। यदि उनके रिश्तेदार उनका उपहार स्वीकार न करें, तो क्या वह उपहार व्यर्थ या निष्फल होगा?'

नहीं, महोदय, यह इसके मालिकों को जाएगा।'

'अच्छा, तो फिर देने वाले ही लाभ उठा लें। या फिर, हे राजा, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति किसी भीतरी कक्ष में प्रवेश करे और उसके सामने कोई निकास द्वार न हो, तो वह बाहर कैसे निकलेगा?'

'जिस तरह से वह अंदर आया।'

'ठीक है, ताकि दान देने वालों को ही लाभ मिले।'

30. 'इसे जाने दो, नागसेन। यह सच है, और मैं इसे तुम्हारी बात मानकर स्वीकार करता हूँ। हम तुम्हारे तर्क पर विवाद नहीं करेंगे। लेकिन, आदरणीय नागसेन, यदि ऐसे दाताओं द्वारा दी गई भेंटें कुछ दिवंगत आत्माओं को लाभ पहुँचाती हैं, और वे दान का फल प्राप्त करते हैं, तो यदि कोई व्यक्ति जो जीवित प्राणियों का संहार करता है, रक्त पीता है और निर्दयी हृदय का है, हत्या या कोई अन्य भयानक कृत्य करने के बाद, उसे दिवंगत आत्मा को समर्पित करते हुए कहे: "मेरे इस कर्म का फल दिवंगत आत्मा को प्राप्त हो"—तो क्या वह फल उन्हें हस्तांतरित हो जाएगा?'

'नहीं, हे राजा।'

लेकिन इसका कारण क्या है, क्या वजह है कि उनके अच्छे कर्मों का फल उन्हें मिलता है, बुरे कर्मों का नहीं?

'हे महाराज, यह वास्तव में ऐसा प्रश्न नहीं है जो आपको पूछना चाहिए। हे महाराज, मुझसे कोई मूर्खतापूर्ण प्रश्न मत पूछिए, इस उम्मीद में कि मुझे उत्तर मिल जाएगा। आप मुझसे अगला प्रश्न यह पूछेंगे कि अंतरिक्ष असीम क्यों है, गंगा ऊपर की ओर क्यों नहीं बहती, मनुष्य और पक्षी दो पैरों पर क्यों चलते हैं और जानवर चार पैरों पर क्यों चलते हैं!'

'नागसेना, मैं यह प्रश्न आपको परेशान करने के लिए नहीं पूछ रहा हूँ, बल्कि एक शंका दूर करने के लिए पूछ रहा हूँ। दुनिया में बहुत से लोग हैं जो बाएं हाथ से लिखते हैं या जिनकी आंखें भेंगी हैं। मैंने यह प्रश्न आपसे यह सोचकर पूछा है: "इन दुर्भाग्यशाली लोगों को भी अपने जीवन को बेहतर बनाने का मौका क्यों नहीं मिलना चाहिए?"'

'हे राजा, किसी बुरे कर्म का बोझ उस व्यक्ति के साथ साझा नहीं किया जा सकता जिसने उसे न किया हो और न ही उसमें सहमति दी हो। लोग जलसेतु के द्वारा लंबी दूरी तक पानी पहुंचाते हैं। लेकिन क्या वे उसी तरह ठोस चट्टान के एक विशाल पर्वत को हटा सकते हैं?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'अच्छा, ठीक इसी तरह अच्छे कर्म को साझा किया जा सकता है, लेकिन बुरे कर्म को नहीं। और तेल से दीपक जलाया जा सकता है, लेकिन क्या उसी तरह, हे राजा, उसे पानी से जलाया जा सकता है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

तो क्या यह सच है कि एक अच्छा काम तो साझा किया जा सकता है, लेकिन एक बुरा काम नहीं? किसान अपनी फसलों को पकाने के लिए जलाशय से पानी लेते हैं, लेकिन क्या वे इसी उद्देश्य से, हे राजा, समुद्र से पानी ले सकते हैं?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'तो फिर वही बात है कि भले ही अच्छे कर्म को साझा किया जा सकता है, लेकिन बुरे कर्म को नहीं।'

31. 'परन्तु, आदरणीय नागसेन, ऐसा क्यों है? मुझे इसका कारण बताकर समझाइए। मैं अंधा या अज्ञानी नहीं हूँ। सुनकर समझ जाऊँगा।'

'हे राजा, बुराई एक तुच्छ वस्तु है, पुण्य महान और भव्य है। अपनी तुच्छता के कारण बुराई केवल कर्म करने वाले को ही प्रभावित करती है, परन्तु पुण्य अपनी भव्यता के कारण देवताओं और मनुष्यों के समस्त जगत में व्याप्त हो जाता है।'

'मुझे इसे एक रूपक के माध्यम से समझाओ।'

'हे राजा, यदि पानी की एक छोटी सी बूंद जमीन पर गिरे, तो क्या वह दस या बारह मील तक बह जाएगी?'

'बिल्कुल नहीं। इसका असर केवल उसी जगह पर होगा जहां यह गिरेगा।'

'आखिर ऐसा क्यों?'

'क्योंकि यह बहुत छोटा है।'

'ठीक इसी प्रकार, हे राजा, पाप सूक्ष्म होता है। और अपने छोटेपन के कारण यह केवल करने वाले को ही प्रभावित करता है, और इसे साझा करना संभव नहीं है। लेकिन यदि एक विशाल वर्षा बादल पृथ्वी की सतह को तृप्त करने वाली वर्षा बरसाए, तो क्या वह जल चारों ओर फैलेगा?'

'जी हां, महोदय। वह आंधी जमीन में बने गड्ढों, तालाबों, नालों, दरारों, खाइयों, झीलों, जलाशयों, कुओं और कमल-कुंडों को भर देगी और पानी दस या बारह मील तक फैल जाएगा।'

'पर ऐसा क्यों, हे राजा?'

'तूफान की भयावहता के कारण।'

'हे राजा, इसी प्रकार सद्‌गुण महान है। और इसकी प्रचुरता के कारण यह देवताओं और मनुष्यों दोनों के बीच साझा किया जा सकता है।'

'आदरणीय नागसेना, ऐसा क्यों है कि बुराई इतनी सीमित है, और अच्छाई इतनी व्यापक है?'

हे राजा, जो कोई इस संसार में दान करता है, धर्म का पालन करता है और उपोसथा का पालन करता है, वह प्रसन्न, परम प्रसन्न, आनंदित और प्रसन्न होकर विश्वास और परमानंद की मधुर भावना से भर जाता है, और उसके हृदय में परमानंद का शासन होने से उसकी अच्छाई लगातार बढ़ती जाती है। हे राजा, जैसे एक गहरे, स्वच्छ जल के कुंड में एक ओर से जल का स्रोत बहता है, और दूसरी ओर से बह जाता है; जैसे ही जल बह जाता है, वह फिर से आ जाता है, और उसमें कोई कमी नहीं होती—हे राजा, उसी प्रकार उसकी अच्छाई लगातार बढ़ती जाती है। हे राजा, यदि कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक भी अपने द्वारा किए गए किसी भी अच्छे कार्य का पुण्य दूसरों को देता रहे, तो भी उसकी अच्छाई बढ़ती ही जाती है।

उसने जो किया था, उतना ही वह दान करता गया, उसकी अच्छाई बढ़ती गई, और वह फिर भी इसे जिसे चाहे उसके साथ साझा करने में सक्षम रहा। हे राजा, यही कारण है कि सद्‌गुण दोनों में इतना श्रेष्ठ है।

32. हे राजा, जब कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो वह पश्चाताप से भर जाता है, और पश्चाताप से ग्रस्त व्यक्ति का हृदय (अपने किए गए बुरे कर्मों के विचार से) विमुख नहीं हो पाता; वह उस पर विवश होकर, उस पर ही अटक जाता है, उसे शांति नहीं मिलती; दुखी, जलता हुआ, आशाहीन होकर वह क्षीण हो जाता है, और अवसाद से कोई राहत न पाकर, मानो वह अपने दुख से ग्रस्त हो जाता है! हे राजा, जैसे पानी की एक बूँद, अपने विशाल रेतीले किनारों के साथ, अपने टेढ़े-मेढ़े और अस्थिर मार्ग पर लहरों की तरह उठते-गिरते सूखे नदी तल पर गिरने पर, आयतन में वृद्धि नहीं करती, बल्कि उसी स्थान पर समा जाती है जहाँ वह गिरी थी, ठीक वैसे ही, हे राजा, मनुष्य, जब कोई गलत काम करता है, तो पश्चाताप से ग्रस्त हो जाता है, और पश्चाताप से ग्रस्त व्यक्ति का हृदय अपने किए गए बुरे कर्मों के विचार से विमुख नहीं हो पाता; वह उस पर विवश होकर, उस पर ही अटक जाता है, उसे शांति नहीं मिलती; दुखी, पीड़ा से भरा, आशाहीन, वह धीरे-धीरे कमजोर होता जा रहा है, और अपने अवसाद से कोई मुक्ति न पाकर, वह उसी स्थिति में है जैसा कि...

वे अपने दुख में डूब गए थे। हे राजा, यही कारण है कि पाप इतना नीच होता है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[इसी के साथ सद्‌गुण और दुर्गुण का मुद्दा समाप्त होता है।]

[पचहत्तरवीं दुविधा। सपने।]

33. 'हे आदरणीय नागसेना, इस संसार में पुरुष और स्त्रियाँ सुखद और अशुभ, पहले देखी हुई और न देखी हुई, पहले किए हुए और न किए हुए, शांत और भयानक, निकट और दूर की बातों के सपने देखते हैं, अनेक आकृतियों और असंख्य रंगों से भरे हुए। यह क्या है जिसे मनुष्य स्वप्न कहते हैं, और इसे कौन देखता है?'

'हे राजा, यह मन के मार्ग में आने वाला एक सुझाव है, जिसे स्वप्न कहा जाता है। और छह प्रकार के लोग स्वप्न देखते हैं—वह व्यक्ति जो वात दोष वाला हो, या पित्त दोष वाला हो, या कफ दोष वाला हो, वह व्यक्ति जो किसी देवता के प्रभाव से स्वप्न देखता है, वह व्यक्ति जो अपनी आदतों के प्रभाव से स्वप्न देखता है, और वह व्यक्ति जो भविष्यवाणियों के रूप में स्वप्न देखता है।'

हे राजा, इनमें से केवल अंतिम प्रकार का स्वप्न ही सत्य है; बाकी सभी स्वप्न झूठे हैं।

34. 'आदरणीय नागसेना, जब कोई व्यक्ति ऐसा सपना देखता है जो भविष्यसूचक होता है, तो वह कैसे होता है? क्या उसका स्वयं का मन शगुन खोजने के लिए प्रेरित होता है, या क्या भविष्यसूचक स्वतः ही उसके मन के मार्ग में आ जाता है, या क्या कोई और आकर उसे इसके बारे में बताता है?'

'उसका मन स्वयं शगुन की खोज नहीं करता, न ही कोई और आकर उसे इसके बारे में बताता है। भविष्यवाणी स्वतः ही उसके मन में आ जाती है। यह एक दर्पण के समान है, जो प्रतिबिंब की खोज में कहीं नहीं जाता; न ही कोई और आकर दर्पण पर प्रतिबिंब डालता है। परन्तु प्रतिबिंबित वस्तु दर्पण की परावर्तक शक्ति के क्षेत्र में कहीं से आती है।'

35. 'आदरणीय नागसेना, क्या स्वप्न देखने वाला वही मन यह भी जानता है: "इसका फलस्वरूप, शुभ या अशुभ परिणाम होगा?"'

'नहीं, ऐसा नहीं है, हे राजा। शगुन घटित होने के बाद वह दूसरों को बताता है, और फिर वे उसका अर्थ समझाते हैं।'

'अब आओ, नागसेना, मुझे इसे समझाने के लिए एक उपमा दो।'

'हे राजा, यह उन निशानों, फुंसियों और त्वचा पर होने वाले दानों के समान है जो मनुष्य के शरीर पर उसके लाभ या हानि, उसकी प्रसिद्धि या बदनामी, उसकी प्रशंसा या निंदा, उसके सुख या दुख के लिए उत्पन्न होते हैं।

उस स्थिति में मुहांसे इसलिए निकलते हैं क्योंकि उन्हें पता होता है: "ऐसा और ऐसा ही कुछ होने वाला है?"

"बिल्कुल नहीं, महोदय। लेकिन फुंसी जिस स्थान पर निकली हैं, उसके आधार पर ज्योतिषी अपना अवलोकन करते हुए निर्णय देते हैं और कहते हैं: ऐसा-ऐसा परिणाम होगा।"

"ठीक उसी प्रकार, हे राजा, स्वप्न देखने वाला मन ही यह नहीं जान पाता कि 'ऐसा-ऐसा परिणाम होगा, चाहे वह स्पष्ट हो या भयानक।' बल्कि शगुन घटित होने के बाद वह दूसरों को बताता है, और फिर वे उसका अर्थ समझाते हैं।"

36. 'आदरणीय नागसेना, जब कोई व्यक्ति सपना देखता है, तो क्या वह जाग रहा होता है या सो रहा होता है?'

हे राजा, न तो यह, न ही वह। परन्तु जब उसकी नींद हल्की हो जाती है और वह पूरी तरह से होश में नहीं होता, उसी अंतराल में स्वप्न देखे जाते हैं। हे राजा, जब मनुष्य गहरी नींद में होता है, तो उसका मन अपने घर लौट आता है (भवंग में फिर से प्रवेश कर जाता है), और इस प्रकार बंद मन क्रिया नहीं करता, और क्रिया में बाधित मन भले और बुरे का ज्ञान नहीं रखता, और जो नहीं जानता उसे स्वप्न नहीं आते। मन के सक्रिय होने पर ही स्वप्न देखे जाते हैं। हे राजा, जैसे अंधकार और उदासी में, जहाँ प्रकाश नहीं होता, वहाँ सबसे चमकीले दर्पण पर भी छाया नहीं पड़ती, वैसे ही जब मनुष्य गहरी नींद में होता है तो उसका मन अपने भीतर लौट आता है, और

एकांत में डूबा मन कर्म नहीं करता, निष्क्रिय मन भले-बुरे का ज्ञान नहीं कर पाता, और जो ज्ञान से वंचित रहता है, वह स्वप्न भी नहीं देखता। क्योंकि मन के सक्रिय होने पर ही स्वप्न देखे जाते हैं। हे राजा, शरीर को दर्पण के समान, अंधकार को नींद के समान, और मन को प्रकाश के समान देखना चाहिए। या फिर, हे राजा, जैसे कोहरे में ढके सूर्य की महिमा अदृश्य हो जाती है, उसकी किरणें, यद्यपि विद्यमान होती हैं, भेद नहीं पातीं, और जब उसकी किरणें क्रियाशील नहीं होतीं तो प्रकाश नहीं होता, वैसे ही गहरी नींद में मनुष्य का मन अपने आप में लीन हो जाता है, और एकांत में डूबा मन कर्म नहीं करता, निष्क्रिय मन भले-बुरे का ज्ञान नहीं कर पाता, और जो ज्ञान से

वंचित रहता है, वह स्वप्न भी नहीं देखता। क्योंकि मन के सक्रिय होने पर ही स्वप्न देखे जाते हैं। हे राजा, शरीर को सूर्य के समान, कोहरे के आवरण को नींद के समान, और किरणों को मन के समान देखना चाहिए।

37. हे महाराज, दो स्थितियों में शरीर के रहते हुए भी मन निष्क्रिय रहता है—जब कोई व्यक्ति गहरी नींद में होता है और उसका मन एकाग्र हो जाता है, और जब वह समाधि में चला जाता है। हे महाराज, जागृत व्यक्ति का मन उत्तेजित, खुला, स्पष्ट और निर्मल होता है, और ऐसे मन वाले व्यक्ति को कोई भविष्यवाणी नहीं सूझती। हे महाराज, जिस प्रकार गुप्त रहने वाले लोग खुले, स्पष्टवादी, निस्वार्थ और निडर व्यक्ति से दूर रहते हैं—ठीक उसी प्रकार ईश्वरीय इच्छा जागृत व्यक्ति को प्रकट नहीं होती, और इसलिए जागृत व्यक्ति को कोई स्वप्न नहीं दिखाई देता। या फिर, हे महाराज, जिस प्रकार ज्ञान की ओर ले जाने वाले गुण उस भाई में नहीं पाए जाते जिसका जीवनयापन और आचरण कुटिल है, जो पापियों का मित्र है, दुष्ट है, अभिमानी है और निर्धन है।

उत्साह के कारण ही, ठीक उसी प्रकार ईश्वरीय उद्देश्य जागृत व्यक्ति के समक्ष प्रकट नहीं होता, और इसलिए जागृत व्यक्ति कोई स्वप्न नहीं देखता।

38. 'आदरणीय नागसेना, क्या नींद का कोई आरंभ, मध्य और अंत होता है?'

'जी हां, हे राजा, है।'

तो फिर शुरुआत कौन सी है, मध्य कौन सा है और अंत कौन सा है?

हे राजा, शरीर में होने वाला दमन और असमर्थता का भाव, कमजोरी, सुस्ती, जड़ता—यही नींद की शुरुआत है। वह हल्की "बंदर की नींद" जिसमें मनुष्य अपने बिखरे हुए विचारों पर नियंत्रण रखता है—वह नींद का मध्य चरण है। जब मन अंतर्मन में लीन हो जाता है—वही नींद का अंत है। और हे राजा, मध्य अवस्था में, "बंदर की नींद" में ही सपने देखे जाते हैं। हे राजा, जिस प्रकार एक संयमित, एकाग्र, दृढ़ विश्वास वाला, अविचलित ज्ञान वाला व्यक्ति जब शोरगुल से दूर घने जंगलों में जाकर किसी सूक्ष्म विषय पर चिंतन करता है, तो वह वहाँ शांत और स्थिर होकर उसका अर्थ समझ लेता है—ठीक उसी प्रकार एक सचेत व्यक्ति, जो नींद में नहीं डूबा है, बल्कि "बंदर की नींद" में ऊंघ रहा है, सपना देखता है। हे राजा, जिस प्रकार शोरगुल को आप भय और एकांत जंगल को "बंदर की नींद" समझते हैं, उसी प्रकार आपको भी समझना चाहिए। और जिस प्रकार वह व्यक्ति जो कलह की ध्वनि से बचता है, नींद से दूर रहता है, मध्य अवस्था में बना रहता है, उस सूक्ष्म विषय के अर्थ को समझ लेता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति शांत और सतर्क रहता है, नींद में नहीं डूबता, बल्कि "बंदर की नींद" में ऊंघता रहता है, वह स्वप्न देखता है।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[सपनों को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[सत्तरवीं दुविधा। असमय मृत्यु।]

39. 'हे आदरणीय नागसेन, जब प्राणी मरते हैं, तो क्या वे सभी समय की पूर्णता में मरते हैं, या कुछ समय से पहले मर जाते हैं?'

'हे राजा, नियत समय पर मृत्यु भी होती है और असमय मृत्यु भी।'

तो फिर वे कौन हैं जिनकी मृत्यु नियत समय पर हुई है, और वे कौन हैं जिनकी मृत्यु असमय हुई है?

'हे राजा, क्या आपने कभी आम के पेड़ों, गंबू के पेड़ों या अन्य फल देने वाले पेड़ों के मामले में गौर किया है कि उनके फल पकने पर भी गिरते हैं और कच्चे होने पर भी?'

'हाँ मेरे पास है।'

'अच्छा, वे गिरे हुए फल, क्या वे सभी नियत समय पर गिरते हैं, या कुछ समय से पहले गिर जाते हैं?'

नागसेन, जो फल पकने और परिपक्व होने पर गिरते हैं, वे समय पर गिरते हैं। लेकिन बाकी फलों में से कुछ कीड़ों द्वारा छेद किए जाने के कारण गिर जाते हैं, कुछ किसी चीज से टकराकर गिर जाते हैं।

लंबी लकड़ियाँ, कुछ हवा से गिर जाती हैं, कुछ सड़ जाती हैं—और ये सभी समय से पहले ही गिर जाती हैं।

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, जो पुरुष वृद्धावस्था के फल से मरते हैं, वे अपने समय की पूर्णता में मरते हैं। परन्तु शेषों में से कुछ कर्मों के भयानक फल से मरते हैं, कुछ अत्यधिक यात्राओं से, कुछ अत्यधिक कर्मों से।'

40. 'हे आदरणीय नागसेन, कर्म, यात्रा, गतिविधि या वृद्धावस्था के कारण मरने वाले सभी लोग अपने नियत समय पर ही मरते हैं; यहाँ तक कि गर्भ में मरने वाला भी, उसका नियत समय ही होता है, इसलिए वह भी नियत समय पर ही मरता है; और जन्म कक्ष में मरने वाला, एक महीने का होने पर मरने वाला, या सौ वर्ष तक की किसी भी आयु में मरने वाला, उसका भी नियत समय होता है, और वह नियत समय पर ही मरता है। अतः, नागसेन, समय से पहले मृत्यु जैसी कोई बात नहीं होती। क्योंकि जो भी मरता है, वह नियत समय पर ही मरता है।'

हे राजा, सात प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जो अपनी नियत आयु शेष रहते हुए भी समय से पहले मर जाते हैं। वे सात कौन से हैं? हे राजा, भूखा व्यक्ति, जिसे भोजन नहीं मिलता, जिसके आंतरिक अंग नष्ट हो जाते हैं; प्यासा व्यक्ति, जिसे पानी नहीं मिलता, जिसका हृदय सूख जाता है; और साँप के काटने से घायल व्यक्ति, जो विष की प्रचंड शक्ति से ग्रस्त होकर ठीक नहीं हो पाता; और वह व्यक्ति जिसने विष ग्रहण किया है, और जब उसके सभी अंग निष्क्रिय हो जाते हैं।

जलने से पीड़ित व्यक्ति को दवा नहीं मिल पाती—और आग में गिरे व्यक्ति को आग बुझाने का कोई साधन नहीं मिलता—और पानी में गिरे व्यक्ति को खड़े होने के लिए कोई स्थिर ज़मीन नहीं मिलती—और भाले से घायल व्यक्ति को बीमारी में कोई चिकित्सक नहीं मिलता—ये सातों, अपने नियत समय का कुछ भाग शेष रहते हुए, समय से पहले ही मर जाते हैं। और इस प्रकार (इन सभी सात मामलों में) मैं घोषणा करता हूँ कि ये सभी एक ही प्रकृति के हैं। हे राजा, मनुष्यों की मृत्यु आठ प्रकार से होती है—वाष्प दोष की अधिकता से, या पित्त दोष की अधिकता से, या कफ दोष की अधिकता से, इन तीनों के प्रतिकूल संयोजन से, तापमान में भिन्नता से, सुरक्षा में असमानता से, (चिकित्सा) उपचार से, और कर्म के फल से। और हे राजा, इनमें से केवल कर्म के फल से होने वाली मृत्यु ही समय पर होने वाली मृत्यु है, शेष सभी समय से पहले होने वाली मृत्यु हैं। क्योंकि ऐसा कहा गया है:

"भूख, प्यास, जहर और काटने से, जलने, डूबने या मारे जाने से, मनुष्य समय से पहले मर जाते हैं; तीनों द्रव्यों और तीनों के संयोजन से, गर्मी से, असमानताओं से, और इन सभी सात कारणों से मनुष्य समय से पहले मर जाते हैं।"

41. 'परन्तु हे राजा, कुछ ऐसे मनुष्य भी होते हैं जो पिछले जन्म में किए गए किसी बुरे कर्म के फलस्वरूप मर जाते हैं। और उनमें से

हे राजा, जिसने भी दूसरों को भूखा रखकर मृत्युदंड दिया है, वह स्वयं लाखों वर्षों तक भूख से पीड़ित, कमजोर, दुर्बल, हृदयहीन, सूखा हुआ, क्षीण, प्रचंड और भीतर से प्रज्वलित रहेगा, वह भी यौवन, पुरुष या वृद्धावस्था में भूख से ही मरेगा। और वह मृत्यु उसके लिए नियत समय पर होगी। जिसने भी दूसरों को प्यास से मृत्युदंड दिया है, वह स्वयं लाखों वर्षों तक प्यास से क्षीण, दुबला-पतला और दयनीय हो जाएगा, वह भी यौवन, पुरुष या वृद्धावस्था में प्यास से ही मरेगा। और वह मृत्यु उसके लिए नियत समय पर होगी। जिसने भी दूसरों को सांपों के कटवाकर मृत्युदंड दिया है, वह भी लाखों वर्षों तक जन्म-जन्मांतर में भटकता रहेगा, जिसमें उसे लगातार अजगरों और काले सांपों द्वारा काटा जाता रहेगा, और वह भी यौवन, पुरुष या वृद्धावस्था में सांप के काटने से मरेगा। और वह मृत्यु उसके लिए नियत समय पर होगी। जिसने भी दूसरों को विष से मृत्युदंड दिया है, वह लाखों वर्षों तक जलते अंगों और क्षत-विक्षत शरीर के साथ, और एक शव की दुर्गंध छोड़ते हुए, स्वयं भी, चाहे युवक हो, पुरुष हो या वृद्ध, विष से मर जाएगा। और यही उसके लिए नियत समय पर मृत्यु होगी। जिसने भी दूसरों को अग्नि से मृत्युदंड दिया है, वह एक नरक से दूसरे नरक में, जलते हुए कोयले के ढेर से दूसरे नरक में भटकता रहेगा।

दूसरा, जिसके अंग जलकर और यातना से त्रस्त होकर लाखों वर्षों तक कष्ट भोगते रहे, वह स्वयं भी, चाहे युवा हो, पुरुष हो या वृद्ध, जलकर मर जाएगा। और नियत समय पर यही उसकी मृत्यु होगी। जिसने भी दूसरों को डुबोकर मारा है, वह स्वयं भी लाखों वर्षों तक अपंग, क्षत-विक्षत, टूटा हुआ, अंगों से कमजोर और हृदय से चिंतित होकर कष्ट भोगता रहा है, वह स्वयं भी, चाहे युवा हो, पुरुष हो या वृद्ध, डूबकर मर जाएगा। और नियत समय पर यही उसकी मृत्यु होगी। जिसने भी दूसरों को तलवार से मारा है, वह स्वयं भी लाखों वर्षों तक (पशु के रूप में बार-बार जन्म लेकर) कटने, घावों, चोटों और खरोंचों से पीड़ित रहा है, या (मनुष्य के रूप में जन्म लेकर) हथियारों

से लगातार नष्ट होता रहा है, वह स्वयं भी, चाहे युवा हो, पुरुष हो या वृद्ध, तलवार से मर जाएगा। और नियत समय पर यही उसकी मृत्यु होगी।

42. 'आदरणीय नागसेना, जिस असमय मृत्यु की आप बात कर रहे हैं—अब मुझे उसका कारण बताइए।'

हे राजा, जिस प्रकार एक विशाल और शक्तिशाली अग्नि पर सूखी घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ढेर कर दी जाती हैं, वह भी जब जलकर भस्म हो जाती है, तो ईंधन के समाप्त होने से बुझ जाती है। फिर भी ऐसी अग्नि के बारे में कहा जाता है कि वह समय आने पर बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के बुझ गई। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, वह मनुष्य जो हजारों दिन जीने के बाद, वृद्ध और दुर्बल होकर अंत में मर जाता है...

बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के, वृद्धावस्था में मृत्यु को पूर्ण समय पर प्राप्त हुआ माना जाता है। परन्तु हे राजा, यदि कोई प्रचंड अग्नि हो जिस पर सूखी घास, टहनियाँ, डालियाँ और पत्तियाँ ढेर कर दी गई हों, और यदि कोई विशाल बादल उस पर वर्षा करे और ईंधन के पूरी तरह जलने से पहले ही वह अग्नि बुझ जाए, तो क्या हे राजा, यह कहा जा सकता है कि वह प्रचंड अग्नि पूर्ण समय पर बुझी?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन दूसरी आग अपनी प्रकृति में पहली आग से किस प्रकार भिन्न होगी?

'महोदय, दूसरा वाला, जो बारिश के प्रकोप से प्रभावित हुआ था—उसमें लगी आग समय से पहले ही बुझ गई होती।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

43. 'या फिर, हे राजा, यह एक शक्तिशाली तूफानी बादल के समान है जो आकाश में उठकर वर्षा करता है और घाटियों और मैदानों को भर देता है। उस बादल से हुई वर्षा को बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के कहा जाएगा। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति दीर्घ जीवन जीने के बाद अंत में वृद्धावस्था में बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के वृद्धावस्था से मर जाता है, उसे कहा जाता है कि

समय की पूर्णता में मृत्यु को प्राप्त हुआ। परन्तु हे राजा, यदि कोई विशाल तूफानी बादल आकाश में उठे और जैसे ही वह उठे, एक प्रचंड हवा से छंट जाए, तो क्या यह कहा जा सकता है, हे राजा, कि वह बादल उचित समय पर नष्ट हो गया?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन दूसरे बादल की प्रकृति पहले बादल से किस प्रकार भिन्न होगी?

'महोदय, दूसरा वाला, जो बवंडर के प्रकोप से प्रभावित हुआ था, समय से पहले ही नष्ट हो गया होता।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

44. हे राजा, इसे एक शक्तिशाली और घातक साँप के समान समझें, जो क्रोधित होकर किसी मनुष्य को काट ले और वह विष बिना किसी रुकावट या दुर्घटना के उसे मृत्यु दे दे। ऐसा कहा जाता है कि वह विष बिना किसी रुकावट या दुर्घटना के अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो मनुष्य दीर्घ जीवन जीने के बाद अंत में वृद्धावस्था में, बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के, वृद्धावस्था से मर जाता है, ऐसा कहा जाता है कि वह बिना किसी बाधा के अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँच गया, और समय की पूर्णता में उसकी मृत्यु हुई। परन्तु यदि कोई सपेरा किसी मनुष्य को, जो किसी विष से पीड़ित हो, कोई औषधि दे दे, तो

क्या यह कहा जा सकता है कि यदि काटने से जहर निकल गया, तो समय की पूर्णता में जहर निकल गया?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन हे राजा, दूसरे विष की प्रकृति पहले विष से किस प्रकार भिन्न होगी?

'महोदय, दूसरा वाला, जिस पर दवा के प्रयोग का असर हुआ था, उसे अपना अंतिम परिणाम प्राप्त होने से पहले ही हटा दिया गया होता।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

45. 'हे राजा, इसे एक धनुर्धर द्वारा छोड़े गए तीर के समान समझें। यदि वह तीर अपने स्वाभाविक मार्ग के अंत तक पहुँच जाए, तो यह कहा जाएगा कि वह बिना किसी रुकावट के अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति दीर्घायु होकर वृद्धावस्था में बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के मर जाता है, उसे भी समय की पूर्णता में, बिना किसी बाधा के मृत्यु प्राप्त हुई कहा जाता है। परन्तु यदि धनुर्धर द्वारा तीर छोड़े जाने के समय कोई उसे पकड़ ले, तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह तीर अपने मार्ग के अंत तक पहुँच गया है?'

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन हे राजा, दूसरा तीर अपनी प्रकृति में पहले तीर से किस प्रकार भिन्न होगा?

'महोदय, बीच में हुई उस कार्रवाई से दूसरे तीर का मार्ग रुक गया।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

46. हे राजा, इसे पीतल के बर्तन के समान समझें, जिस पर कोई व्यक्ति प्रहार करे। प्रहार करने से ध्वनि उत्पन्न हो और वह ध्वनि अपने निर्धारित पथ पर अंत तक पहुँच जाए। तब यह कहा जा सकता है कि ध्वनि बिना किसी रुकावट के अपने लक्ष्य तक पहुँच गई। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति दीर्घायु होकर वृद्धावस्था में बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना के मर जाता है, उसे भी बिना किसी रुकावट के, समय की पूर्णता में मृत्यु प्राप्त हुई कहा जा सकता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति पीतल के बर्तन पर प्रहार करे और उससे ध्वनि उत्पन्न हो, परन्तु ध्वनि के पहुँचने से पहले ही कोई उसे स्पर्श कर दे और ध्वनि बंद हो जाए, तो क्या तब यह कहा जा सकता है कि ध्वनि अपने निर्धारित पथ पर अंत तक पहुँच गई है?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन हे राजा, दूसरी ध्वनि अपनी प्रकृति में पहली ध्वनि से किस प्रकार भिन्न होगी?

'महोदय, बीच में हुए स्पर्श के कारण वह ध्वनि दब गई।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

47. हे राजा, इसे उस अनाज के बीज के समान समझें जो खेत में अच्छी तरह अंकुरित हुआ, और भरपूर वर्षा के कारण दूर-दूर तक अनेक बीजों से लदा हुआ, और फसल के पकने तक सुरक्षित रहा; उस अनाज को बिना किसी रुकावट के अपने उचित समय तक पहुँचा हुआ कहा जा सकता है। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति दीर्घायु होकर अंत में वृद्धावस्था में बिना किसी विपत्ति या दुर्घटना

के मर जाता है, उसे बिना किसी रुकावट के अपने उचित समय पर मृत्यु प्राप्त हुई कहा जा सकता है। परन्तु यदि वह अनाज खेत में अच्छी तरह अंकुरित होने के बाद पानी से वंचित होकर मर जाए, तो क्या उसे अपने उचित समय तक पहुँचा हुआ कहा जा सकता है?

'नहीं, महोदय, ऐसा नहीं हो सकता।'

लेकिन हे राजा, दूसरी फसल अपनी प्रकृति में पहली फसल से किस प्रकार भिन्न होगी?

'बीच में पड़ी भीषण गर्मी के कारण वह फसल नष्ट हो गई, महोदय।'

'हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में कमी, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार से होने वाली क्षति। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु होती है।'

48. 'क्या तुमने कभी सुना है, हे राजा, कि कोई नई फसल पककर पकने के बाद उसमें कीड़े पड़ गए और उसे जड़ तक नष्ट कर दिया?'

'हम दोनों ने ऐसी बात सुनी है, महोदय, और इसे देखा भी है।'

'हे राजा, क्या वह फसल समय पर नष्ट हुई थी या असमय?'

'मौसम ठीक नहीं है, महोदय। अगर कीड़ों ने फसल को नष्ट न किया होता तो वह कटाई के समय तक बच जाती।'

'तो फिर क्या हुआ, हे राजा! किसी आपदा के आने पर फसल नष्ट हो जाती है, लेकिन यदि उसे कोई नुकसान न हो, तो वह कटाई तक बची रहती है?'

'जी हां, महोदय।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार, जो कोई भी समय से पहले मरता है, वह किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—वात दोष की अधिकता से, या पित्त दोष से, या कफ दोष से, या इन तीनों के संयोजन से, या शरीर में होने वाले बदलावों से।'

तापमान, या सुरक्षा में असमानता, या दुर्व्यवहार, या भूख, या प्यास, या आग, या पानी, या तलवार। हे राजा, यही कारण है कि समय से पहले मृत्यु हो जाती है।

49. 'हे राजा, क्या तुमने कभी ऐसी फसल के बारे में सुना है जो उगी हो और अनाज के दानों के भार से झुक गई हो, बालियाँ ठीक से बन चुकी हों, तभी उस पर तथाकथित करक वर्षा (ओलावृष्टि) हुई और वह नष्ट हो गई?'

'हम दोनों ने ऐसी बात सुनी है, महोदय, और इसे देखा भी है।'

'अच्छा, हे राजा! क्या आप कहेंगे कि फसल समय पर नष्ट हुई या असमय?'

'मौसम ठीक नहीं है, महोदय। अगर ओलावृष्टि न हुई होती तो फसल कटाई के समय तक बनी रहती।'

'तो फिर क्या हुआ, हे राजा! किसी आपदा के आने पर फसल नष्ट हो जाती है, लेकिन यदि उसे कोई नुकसान न हो, तो वह कटाई तक बची रहती है?'

'जी हां, महोदय।'

हे राजा, जो भी व्यक्ति समय से पहले मरता है, वह किसी न किसी बीमारी के प्रकोप के कारण मरता है—जैसे कि गैस की अधिकता, पित्त की अधिकता, कफ की अधिकता, इन तीनों का संयोजन, तापमान में उतार-चढ़ाव, उचित देखभाल में असमानता, उपचार, भूख, प्यास, आग, पानी या तलवार के कारण। हे राजा,

राजा, यही वह कारण है जिसकी वजह से समय से पहले मृत्यु जैसी स्थिति उत्पन्न होती है।'

50. 'अत्यंत अद्भुत, नागसेन, अत्यंत विचित्र! आपने तर्क और उपमाओं के माध्यम से बहुत अच्छे से समझाया है कि लोग समय से पहले कैसे मर जाते हैं। आपने यह स्पष्ट और प्रत्यक्ष कर दिया है कि असमय मृत्यु जैसी कोई चीज होती है। नागसेन, एक नासमझ व्यक्ति भी, एक मंदबुद्धि व्यक्ति भी, आपकी किसी भी उपमा से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता था कि असमय मृत्यु होती है; तो एक सक्षम व्यक्ति कितना अधिक! महोदय, आपकी पहली उपमा से ही मैं आश्वस्त हो गया था कि ऐसी मृत्यु होती है, लेकिन फिर भी, और अधिक स्पष्टीकरण सुनने की इच्छा से, मैंने हार नहीं मानी।'

[अकाल मृत्यु से संबंधित दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[सत्तरवीं दुविधा। कब्र पर आश्चर्य।]

51. 'आदरणीय नागसेना, क्या उन सभी अरहतों (जो पूरी तरह से गुजर चुके हैं) की केतिया (राख पर बने टीले) में कोई आश्चर्य है?'

'हे राजा, कुछ लोगों के बारे में, लेकिन दूसरों के बारे में नहीं।'

लेकिन महोदय, इनमें से किस बात में यह बात लागू होती है और किस बात में नहीं?

हे राजा, तीन प्रकार के लोगों के दृढ़ संकल्प के कारण ही किसी पूर्णतः मुक्त हो चुके मृत व्यक्ति के केतिया पर्व पर चमत्कार घटित होते हैं। वे तीन कौन हैं? हे राजा, सर्वप्रथम, एक अरहत, जीवित रहते हुए, देवताओं और मनुष्यों पर दया करते हुए यह संकल्प कर सकता है: "मेरे केतिया पर्व पर अमुक-अमुक चमत्कार घटित हों।" तब उसके संकल्प के कारण वहाँ चमत्कार घटित होते हैं। इस प्रकार, पूर्णतः मुक्त हो चुके व्यक्ति के केतिया पर्व पर एक अरहत के संकल्प के कारण चमत्कार घटित होते हैं।

और फिर, हे राजा, मनुष्य पर दया करके देवता पूर्णतः मुक्त हुए व्यक्ति के केतिया पर्व पर चमत्कार प्रकट करते हैं, यह सोचते हुए: "इस चमत्कार से पृथ्वी पर सच्चा धर्म सदा स्थापित रहे, और मनुष्य, विश्वास करते हुए, कृपा में वृद्धि करे!" इस प्रकार पूर्णतः मुक्त हुए व्यक्ति के केतिया पर्व पर देवता के संकल्प से चमत्कार घटित होते हैं।

और फिर, हे राजा, कोई स्त्री या कोई विश्वासशील, सक्षम, बुद्धिमान, ज्ञानवान और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण पुरुष जानबूझकर इत्र, या माला, या वस्त्र लेकर केतिया पर रख सकता है, और यह संकल्प कर सकता है: "ऐसा चमत्कार हो!" इस प्रकार पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की केतिया पर मनुष्यों के संकल्प से चमत्कार घटित होते हैं।

52. हे महाराज, ये तीन प्रकार के लोग हैं जिनके दृढ़ संकल्प से मृत अरहतों के केतियाओं में चमत्कार होते हैं। और हे महाराज, यदि इनमें से किसी एक में भी ऐसा दृढ़ संकल्प न हो, तो

क्या उस व्यक्ति के केतिया होने पर आश्चर्य नहीं है जिसके आसव नष्ट हो गए हों, जिसने छह प्रकार की अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली हो, जो स्वयं पर स्वामी हो? और यदि ऐसा कोई आश्चर्य नहीं है, तो हे राजा, हमें उस पवित्र आचरण को याद करना चाहिए जो हमने देखा है, और विश्वास के साथ यह निष्कर्ष निकालना चाहिए: "निश्चित रूप से, बुद्धों का यह बालक पूर्णतः मुक्त हो गया है!"

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[कब्र पर आश्चर्य करने की दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[अठहत्तरवीं दुविधा: धर्मांतरण और आचरण।]

53. 'आदरणीय नागसेना, जो लोग अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करते हैं—क्या वे सभी सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं, या उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो ऐसा नहीं कर पाते?'

'हे राजा, कुछ लोग ऐसा करते हैं, और कुछ नहीं करते।'

'तो फिर कौन से करते हैं, महोदय, और कौन से नहीं करते?'

हे राजा, जो पशु रूप में जन्म लेता है, वह चाहे अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करे, फिर भी सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर पाएगा, न ही वह जो जन्म लेता है।

न तो प्रेत जगत का कोई व्यक्ति, न ही गलत विचार रखने वाला, न ही कपटी व्यक्ति, न ही अपनी माता, पिता या अरहत की हत्या करने वाला, न ही संघ में फूट डालने वाला, न ही बुद्ध का रक्त बहाने वाला, न ही गुप्त रूप से संघ से जुड़ने वाला, न ही विकृत व्यक्ति, न ही संघ की किसी बहन का अपमान करने वाला, न ही तेरह गंभीर अपराधों में से किसी एक का दोषी होने के बावजूद पुनर्वासित न हुआ व्यक्ति, न ही नपुंसक, न ही उभयलिंगी—और सात वर्ष से कम आयु का कोई भी मनुष्य बालक, चाहे वह अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करे, सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। हे राजा, इन सोलह व्यक्तियों को सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती, चाहे वे अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करें।

54. आदरणीय नागसेना, आपने जिन पंद्रह का सबसे पहले विरोध किया है, उनमें अंतर्दृष्टि की संभावना हो भी सकती है और नहीं भी। लेकिन सात वर्ष से कम आयु का शिशु, भले ही वह अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करे, अंतर्दृष्टि क्यों न प्राप्त कर सकता है? इसमें अभी भी एक अनसुलझा प्रश्न है। क्या यह स्वीकार नहीं किया जाता कि बच्चे में न तो वासना होती है, न द्वेष, न सुस्ती, न अहंकार, न विधर्म, न असंतोष, न कामुक विचार? पाप से अछूता होने के कारण, जिसे हम शिशु कहते हैं, वह अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के योग्य और तैयार होता है।

अरहत पद प्राप्त करने वाला भी—वह तो चार सत्यों को एक नजर में ही भेदने में कितना अधिक सक्षम होगा!'

हे महाराज, मेरे इस कथन का कारण यह है कि शिशु, चाहे वह अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करे, अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। हे महाराज, यदि सात वर्ष से कम आयु का शिशु, वासना जगाने वाली बातों के प्रति आसक्ति महसूस कर सके, अधर्म की ओर ले जाने वाले कार्यों में भटक सके, गुमराह करने वाली बातों में मूर्ख बन सके, मोह उत्पन्न करने वाली बातों के प्रति पागल हो सके, विधर्म को समझ सके, संतोष और असंतोष में भेद कर सके, सद्‌गुण और दुर्गुण का विचार कर सके, तो शायद उसे अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है। परन्तु हे महाराज, सात वर्ष से कम आयु के शिशु का मन शक्तिहीन, दुर्बल, तुच्छ, छोटा, अस्पष्ट और मंदबुद्धि होता है, जबकि निर्वाण का मूल सिद्धांत पारलौकिक, महत्वपूर्ण, गहन, व्यापक और विस्तृत है। इसलिए, हे महाराज, शिशु, अपने अपूर्ण मन के कारण, इतने महान विचार को ग्रहण करने में असमर्थ होता है। हे राजा, यह सिनेरू पर्वत के समान है, जो भारी-भरकम, विशाल और शक्तिशाली है—क्या कोई मनुष्य अपनी साधारण शक्ति, सामर्थ्य और ऊर्जा से उस पर्वत को जड़ से उखाड़ सकता है?

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं?'

'मनुष्य की कमजोरी के कारण, और पर्वत के राजा सिनेरू की शक्ति के कारण।'

'हे राजा, शिशु के मन का निर्वाण से ठीक यही संबंध है।'

55. 'और फिर, हे राजा, यह विशाल पृथ्वी के समान है, लंबी और चौड़ी, विस्तार और फैलाव में विशाल, विशाल और शक्तिशाली - क्या अब पानी की एक छोटी सी बूंद उस विशाल पृथ्वी को गीला करके कीचड़ में बदल सकती है?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं, हे राजा?'

'पानी की बूंद के सूक्ष्म आकार के कारण, और पृथ्वी की विशालता के कारण।'

'हे राजा, शिशु के मन का निर्वाण से यही संबंध है।'

56. 'या फिर, हे राजा, मान लीजिए कि एक कमजोर और शक्तिहीन, छोटी, नन्ही, सीमित और मंद अग्नि हो - क्या इतनी तुच्छ अग्नि से अंधकार को दूर करना और देवताओं और मनुष्यों के पूरे संसार में प्रकाश प्रकट करना संभव होगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं, हे राजा?'

'आग की मंदता के कारण, और संसार की महानता के कारण।'

'हे महाराज, सात वर्ष से कम आयु के बच्चे का मन शक्तिहीन, कमजोर, सीमित, महत्वहीन, अस्पष्ट और मंदबुद्धि होता है; वह अज्ञान के घने अंधकार से ढका रहता है। इसलिए, उसके लिए ज्ञान के प्रकाश से जगमगाना कठिन होता है। और यही कारण है, हे महाराज, कि सात वर्ष से कम आयु के शिशु को, भले ही वह सही आचरण करे, सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती।'

57. 'हे राजा, मान लीजिए कि एक सालक है, जो शरीर से बहुत छोटा और रोगग्रस्त है, और वह एक हाथी राजा को अपने मांद की ओर आते हुए देखता है, जिसमें तीन स्थानों पर मद के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, जिसकी लंबाई नौ क्यूबिट, चौड़ाई तीन क्यूबिट, परिधि दस क्यूबिट और ऊंचाई सात क्यूबिट है, तो क्या वह हाथी उसे निगलने के इरादे से अपनी ओर खींचने लगता है - हे राजा, क्या वह सालक ऐसा कर पाएगा?'

'बिल्कुल नहीं, महोदय।'

'लेकिन क्यों नहीं, हे राजा?'

'शालक के शरीर की सूक्ष्मता और हाथी राजा के विशाल आकार के कारण।'

'हे राजा, ठीक इसी प्रकार सात वर्ष से कम आयु के बच्चे का मन शक्तिहीन, दुर्बल, सीमित, तुच्छ, अस्पष्ट और सुस्त होता है। निर्वाण का अमृतमय सार महान और दिव्य है। ऐसे शक्तिहीन, दुर्बल, सीमित, तुच्छ, अस्पष्ट और सुस्त मन से वह निर्वाण के महान और दिव्य सार को ग्रहण नहीं कर सकता।'

और यही कारण है, हे राजा, कि सात वर्ष से कम आयु के शिशु को, भले ही वह अपने आचरण को सही ढंग से व्यवस्थित करे, सत्य की अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[धर्मांतरण और आचरण को लेकर दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[उनहत्तरवीं दुविधा। निर्वाण का दर्द।]

58. 'आदरणीय नागसेन, यह कैसा है? क्या निर्वाण पूर्णतः आनंद है, या उसमें कुछ पीड़ा भी है?'

'हे राजा, निर्वाण पूर्णतः आनंद है। इसमें किसी प्रकार का दुख समाहित नहीं है।'

''हे महोदय, यह एक ऐसी बात है जिस पर हम विश्वास नहीं कर सकते—कि निर्वाण ही पूर्ण आनंद है। इस विषय पर, नागसेन, हमारा मानना है कि निर्वाण में पीड़ा भी शामिल होती है। और इस मत को अपनाने का एक कारण है। वह कारण क्या है? नागसेन, जो निर्वाण

की खोज करते हैं, वे शरीर और मन दोनों से परिश्रम और लगन का अभ्यास करते हैं, खड़े होने, चलने, बैठने, लेटने और खाने में संयम बरतते हैं, नींद का दमन करते हैं, इंद्रियों को वश में रखते हैं, धन-संग्रह, प्रिय सगे-संबंधियों और मित्रों का त्याग करते हैं।" लेकिन संसार में जो भी आनंदित और प्रसन्न रहते हैं, वे पाँचों इंद्रिय सुखों में मग्न रहते हैं और उनमें लीन रहते हैं—वे अपनी आँखों को अनेक प्रकार के सुखदायक दृश्यों से प्रसन्न करते हैं, जो उन्हें उस समय सबसे अच्छे लगते हैं—वे अपने कानों को अनेक प्रकार के आनंदमय उत्सव और गीतों की ध्वनियों से प्रसन्न करते हैं, जो उन्हें उस समय सबसे अच्छे लगते हैं—वे अपनी सूंघने की इंद्रिय को अनेक प्रकार की फूलों, फलों, पत्तियों, छाल, जड़ों और रस की सुगंधों से प्रसन्न करते हैं, जो उन्हें उस समय सबसे अच्छी लगती हैं—वे अपनी जीभ को अनेक प्रकार के सुखदायक स्वादों से प्रसन्न करते हैं, जो उन्हें उस समय सबसे अच्छे लगते हैं—वे अपनी स्पर्श इंद्रिय को अनेक प्रकार के सुखदायक संवेदनाओं से प्रसन्न करते हैं, जो उन्हें उस समय सबसे अच्छी लगती हैं—वे अपने मन को अनेक प्रकार की शुद्ध और सूक्ष्म धारणाओं से प्रसन्न करते हैं। अशुद्ध, अच्छे और बुरे, जैसे भी उन्हें सबसे ज्यादा पसंद हों। दूसरी ओर, आप उन्हें रोकते और नष्ट करते हैं।

ये आपके नेत्र, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के विकास को बाधित और अवरुद्ध करते हैं। इसलिए आपका शरीर और मन दोनों ही पीड़ित हैं, और शरीर के पीड़ित होने से आपको शारीरिक कष्ट और पीड़ा होती है, और मन के पीड़ित होने से आपको मानसिक कष्ट और पीड़ा होती है। क्या तपस्वी मार्गंदिया ने भी भगवान बुद्ध की आलोचना करते हुए नहीं कहा था, "समान गौतम वृद्धि का नाश करने वाले हैं?"

59. 'हे महाराज, निर्वाण में कोई पीड़ा नहीं है। यह शुद्ध आनंद है। हे महाराज, जब आप कहते हैं कि निर्वाण पीड़ादायक है, तो जिसे आप "पीड़ादायक" कहते हैं, वह निर्वाण नहीं है। यह निर्वाण की प्राप्ति की प्रारंभिक अवस्था है, यह निर्वाण की खोज की प्रक्रिया है। निर्वाण स्वयं शुद्ध और सरल आनंद है, इसमें कोई पीड़ा नहीं है। और मैं आपको इसका स्पष्टीकरण दूंगा। हे महाराज, क्या राजाओं द्वारा भोगे जाने वाले संप्रभुता के आनंद जैसी कोई वस्तु है?'

'बिल्कुल।'

'और क्या उस आनंद में कोई पीड़ा भी मिश्रित नहीं होती, हे राजा?'

'नहीं, महोदय।'

लेकिन फिर, हे राजा, ऐसा क्यों होता है कि जब उनके सीमावर्ती प्रांतों में विद्रोह भड़क उठता है, तो राजा उन प्रांतों के निवासियों को फिर से अपने अधीन करने के उद्देश्य से, अपने मंत्रियों और सरदारों के साथ, अपने घरों को छोड़कर चले जाते हैं?

सैनिक और उनके अंगरक्षक, समतल और ऊबड़-खाबड़ जमीन पर मार्च करते हुए, मच्छरों, मक्खियों और गर्म हवाओं से परेशान होकर, भयंकर लड़ाइयों में संलग्न होते हैं, और मृत्यु की आशंका से पीड़ित होते हैं?

'हे आदरणीय नागसेन, यह संप्रभुता का आनंद नहीं है। यह तो उस आनंद की प्राप्ति की प्रारंभिक अवस्था मात्र है। जब वे इस प्रकार कष्ट सहते हुए संप्रभुता की खोज कर लेते हैं, तभी उन्हें उसका आनंद प्राप्त होता है। और इस प्रकार, हे नागसेन, वह आनंद स्वयं कष्ट से रहित है, क्योंकि संप्रभुता का आनंद एक बात है और कष्ट दूसरी।'

हे महाराज, निर्वाण भी उसी प्रकार पूर्ण आनंद है, उसमें कोई पीड़ा नहीं होती। जो निर्वाण की खोज में लगे रहते हैं, वे अपने मन और शरीर को कष्ट देते हैं, खड़े होने, चलने, बैठने, लेटने और भोजन करने में संयम बरतते हैं, अपनी नींद को दबाते हैं, अपनी इंद्रियों को वश में रखते हैं, यहाँ तक कि अपने शरीर और प्राण का भी त्याग कर देते हैं। परन्तु जब वे इस प्रकार पीड़ा सहते हुए निर्वाण की खोज करते हैं, तभी वे उस निर्वाण का आनंद लेते हैं जो शुद्ध आनंद है—जैसे राजा अपने शत्रुओं को परास्त करने के बाद संप्रभुता का आनंद लेते हैं। हे महाराज, निर्वाण पूर्ण आनंद है, उसमें कोई पीड़ा नहीं होती। क्योंकि निर्वाण एक है और पीड़ा दूसरी।

60. 'हे राजा, इसी बात की एक और व्याख्या सुनो। हे राजा, क्या ज्ञान का ऐसा आनंद भी होता है जो उन शिक्षकों को प्राप्त होता है जिन्होंने यह पाठ्यक्रम पूरा किया है?'

'जी हां, महोदय, है।'

'तो क्या ज्ञान का वह आनंद पीड़ा से मिश्रित है?'

'नहीं।'

तो फिर, हे राजा, उनके कष्टों से क्या लाभ है?

क्या वे अपने शिक्षकों के सामने झुककर और खड़े होकर, पानी भरकर, कोठरी की सफाई करके, दांत साफ करने वाली छड़ियों और धोने के पानी को तैयार रखकर, बचे हुए टुकड़ों पर जीवन यापन करके, शैम्पू करने, स्नान करने और पैर धोने में सेवा करके, अपनी इच्छा का दमन करके और दूसरों की इच्छा के अनुसार कार्य करके, असुविधा में सोकर और अरुचिकर भोजन खाकर स्वयं को संयमित करते हैं?

'नागसेन, वह ज्ञान का आनंद नहीं है, बल्कि ज्ञान प्राप्ति की प्रारंभिक अवस्था है। गुरु जब कष्ट सहते हुए ज्ञान की खोज करते हैं, तभी उन्हें ज्ञान का आनंद प्राप्त होता है। इस प्रकार, नागसेन, ज्ञान का आनंद कष्ट से रहित होता है। क्योंकि ज्ञान का आनंद एक चीज है और कष्ट दूसरी।'

हे महाराज, निर्वाण भी इसी प्रकार पूर्णतः आनंद है, उसमें किसी प्रकार का दुख नहीं है। जो निर्वाण की खोज में लगे रहते हैं, वे अपने मन और शरीर को कष्ट देते हैं, खड़े होने, चलने, बैठने, लेटने और भोजन करने में संयम बरतते हैं, अपनी नींद को दबाते हैं, अपनी इंद्रियों को वश में रखते हैं, यहाँ तक कि अपने शरीर और प्राण का भी त्याग कर देते हैं। परन्तु इस प्रकार कष्ट सहते हुए निर्वाण की खोज करने के बाद ही वे उस निर्वाण का आनंद लेते हैं जो शुद्ध आनंद है—जैसे गुरु ज्ञान के आनंद का अनुभव करते हैं। हे महाराज, निर्वाण पूर्णतः आनंद है, उसमें किसी प्रकार का दुख नहीं है। क्योंकि निर्वाण एक है और दुख दूसरा।

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निर्वाण की पीड़ा से संबंधित दुविधा यहीं समाप्त होती है।]

[अस्सीवीं दुविधा। निर्वाण का बाह्य स्वरूप।]

61. 'आदरणीय नागसेन, यह निर्वाण जिसके बारे में आप हमेशा बात करते रहते हैं—क्या आप रूपक, व्याख्या, तर्क या दलील के माध्यम से इसके स्वरूप, आकृति, अवधि या माप को स्पष्ट कर सकते हैं?'

'हे राजा, निर्वाण के समान कुछ भी नहीं है। न तो किसी रूपक, न ही व्याख्या, न ही तर्क, न ही दलील से इसके स्वरूप, न ही आकृति, न ही अवधि, न ही माप को स्पष्ट किया जा सकता है।'

'नागसेन, मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि निर्वाण, जो वास्तव में एक विद्यमान अवस्था है, उसका रूप, आकार, अवधि या माप किसी भी तरह से समझाना इतना असंभव है! मुझे इसका कुछ स्पष्टीकरण दीजिए।'

62. 'बहुत अच्छा, हे राजा, मैं ऐसा ही करूँगा। हे राजा, क्या विशाल सागर जैसी कोई वस्तु है?'

'हां, महासागर मौजूद है।'

'मान लीजिए कि कोई आपसे पूछे, "महाराज, समुद्र में कितना पानी है और उसमें कितने जीव निवास करते हैं?" यह प्रश्न पूछे जाने पर आप उसे क्या उत्तर देंगे?'

ऐसे प्रश्न का उत्तर मैं इस प्रकार दूंगा: "मेरे प्रिय मित्र! यह एक ऐसा प्रश्न है जो आप मुझसे नहीं पूछ सकते। किसी को भी ऐसा प्रश्न नहीं पूछना चाहिए।

यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे अनसुना ही रहना चाहिए। भौतिकविदों ने कभी भी समुद्र का उस तरह से अध्ययन नहीं किया है। और न ही कोई वहां के पानी को माप सकता है, न ही उसमें रहने वाले जीवों की गिनती कर सकता है। इसलिए, महोदय, मुझे उत्तर देना चाहिए।

63. 'पर हे राजा, आप समुद्र के विषय में ऐसा उत्तर क्यों दे रहे हैं, जबकि वास्तव में वह एक विद्यमान स्थिति है? क्या आपको गिनकर उसे यह नहीं बताना चाहिए था, "समुद्र में इतना पानी है और उसमें इतने जीव निवास करते हैं?"'

'यह असंभव होगा, महोदय। यह प्रश्न किसी की शक्ति से परे है।'

हे महाराज, जिस प्रकार समुद्र के जल की मात्रा या उसमें रहने वाले जीवों की संख्या बताना असंभव है, यद्यपि समुद्र का अस्तित्व है, उसी प्रकार आपके द्वारा सुझाए गए किसी भी तरीके से निर्वाण के स्वरूप, आकृति, अवधि या माप को बताना असंभव है, यद्यपि यह एक ऐसी अवस्था है जिसका अस्तित्व है। और हे महाराज, यदि कोई जादुई शक्तियों वाला, मन पर स्वामी, समुद्र के जल और जीवों की गिनती कर भी ले, तो भी वह निर्वाण के स्वरूप, आकृति, अवधि या माप को नहीं बता सकता।

64. 'और हे राजा, इसी बात की एक और व्याख्या सुनो। हे राजा, क्या देवताओं में से कुछ ऐसे हैं जिन्हें "निराकार" कहा जाता है?'

'जी हां, महोदय। मैंने सुना है कि ऐसे लोग होते हैं।'

'हे राजा, क्या आप रूपक, व्याख्या, तर्क या दलील के माध्यम से इन देवताओं, यानी "निराकार" देवताओं के रूप, आकृति, अवधि या आकार को स्पष्ट कर सकते हैं?'

'नहीं, मैं नहीं कर सकता।'

'तो फिर, हे राजा, कोई नहीं है।'

'हे महोदय, निराकार सत्ताएँ वास्तव में विद्यमान हैं; फिर भी आपके द्वारा सुझाए गए किसी भी तरीके से न तो उनके रूप या आकृति, न ही उनकी अवधि और न ही उनके आकार की व्याख्या करना असंभव है।'

'हे राजा, जिस प्रकार निराकार देवताओं के रूप, आकार, अवधि या आकार को बताना असंभव है, यद्यपि वे अंततः विद्यमान प्राणी हैं, उसी प्रकार आपके द्वारा सुझाए गए किसी भी तरीके से निर्वाण के रूप, आकार, अवधि या माप की व्याख्या करना असंभव है, यद्यपि अंततः यह एक ऐसी अवस्था है जो विद्यमान है।'

65. 'आदरणीय नागसेन, मैं मानता हूँ कि निर्वाण शुद्ध आनंद है, फिर भी उपमा या व्याख्या, तर्क या वाद-विवाद से, न तो इसका रूप और न ही इसकी अवधि और न ही इसका आकार स्पष्ट किया जा सकता है। लेकिन क्या निर्वाण का कोई ऐसा गुण नहीं है जो अन्य गुणों में भी अंतर्निहित हो?

क्या यह ऐसी चीज है जिसे रूपक के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है?

'यद्यपि इसके स्वरूप के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे इस प्रकार समझाया जा सके, हे राजा, इसके गुणों के बारे में कुछ ऐसा अवश्य है जिसे समझाया जा सकता है।'

'हे शुभ शब्द, नागसेन! जल्दी बोलिए, ताकि मुझे निर्वाण के गुणों में से कम से कम एक बिंदु का स्पष्टीकरण मिल सके। मेरे हृदय की बेचैनी को शांत कीजिए। अपने शब्दों की शीतलता और मधुरता से इसे शांत कीजिए!'

'हे राजा, निर्वाण में कमल का एक गुण अंतर्निहित है, जल के दो गुण, औषधि के तीन गुण, सागर के चार गुण, भोजन के पाँच गुण, आकाश के दस गुण, इच्छा पूरी करने वाले रत्न के तीन गुण, लाल चंदन के तीन गुण, घी के झाग के तीन गुण और पर्वत शिखर के पाँच गुण अंतर्निहित हैं।'

66. 'आदरणीय नागसेना, कमल का वह गुण जिसके बारे में आपने कहा था कि वह निर्वाण में अंतर्निहित है, वह कौन सा गुण है?'

'हे महाराज, जैसे कमल जल से अछूता रहता है, वैसे ही निर्वाण किसी भी बुरी प्रवृत्ति से अछूता रहता है। यही कमल का गुण है जो निर्वाण में अंतर्निहित है।'

67. 'आदरणीय नागसेन, आपने जिन जल के दो गुणों को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जैसे जल शीतलता प्रदान करके ऊष्मा को शांत करता है, वैसे ही निर्वाण शीतलता प्रदान करता है और सभी बुरे भावों से उत्पन्न ज्वर को शांत करता है। यह निर्वाण में निहित जल का पहला गुण है। और फिर, हे महाराज, जैसे जल मनुष्यों और पशुओं की प्यास बुझाता है जब वे थके हुए और चिंतित होते हैं, पीने के लिए तरसते हैं और प्यास से पीड़ित होते हैं, वैसे ही निर्वाण कामवासना, भविष्य के जीवन की लालसा और सांसारिक समृद्धि की लालसा की प्यास बुझाता है। यह निर्वाण में निहित जल का दूसरा गुण है।'

68. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिन तीन औषधीय गुणों को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार औषधि विष से पीड़ित प्राणियों का आश्रय होती है, उसी प्रकार निर्वाण बुरे स्वभावों के विष से पीड़ित प्राणियों का आश्रय होता है। यह निर्वाण में निहित औषधि का पहला गुण है। और फिर, हे महाराज, जिस प्रकार औषधि रोगों का अंत करती है, उसी प्रकार निर्वाण दुःखों का अंत करता है। यह निर्वाण में निहित औषधि का दूसरा गुण है। और फिर, हे महाराज, जिस प्रकार औषधि अमृत है, उसी प्रकार निर्वाण भी अमृत है। यह निर्वाण में निहित औषधि का तीसरा गुण है।'

69. 'आदरणीय नागसेन, आपने जिन चार गुणों को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन-कौन से हैं?'

हे महाराज, जैसे सागर शवों से रहित है, वैसे ही निर्वाण भी सभी बुरे स्वभावों के शवों से रहित है। हे महाराज, यह निर्वाण में निहित सागर का पहला गुण है। और हे महाराज, जैसे सागर विशाल और असीम है, फिर भी उसमें गिरने वाली सभी नदियों से भर नहीं पाता; वैसे ही निर्वाण विशाल और असीम है, और उसमें प्रवेश करने वाले सभी प्राणियों से भर नहीं पाता। यह निर्वाण में निहित सागर का दूसरा गुण है। और हे महाराज, जैसे सागर शक्तिशाली प्राणियों का निवास स्थान है, वैसे ही निर्वाण महान पुरुषों—अरहतों—का निवास स्थान है, जिनमें महाबुराइयाँ और सभी दोष नष्ट हो चुके हैं, जो शक्ति से परिपूर्ण हैं और स्वयं के स्वामी हैं। यह निर्वाण में निहित सागर का तीसरा गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे सागर अपनी लहरों की असंख्य, विविध और सुंदर फूलों से खिल उठता है, वैसे ही निर्वाण भी असंख्य और सुंदर फूलों से खिल उठता है।

पवित्रता, ज्ञान और मुक्ति के विविध और उत्तम फूल। यही निर्वाण में निहित सागर का चौथा गुण है।

70. 'आदरणीय नागसेन, आपने जिन पांच गुणों वाले भोजन को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार भोजन समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है, उसी प्रकार निर्वाण, जब प्राप्त हो जाता है, जीवन का आधार है, क्योंकि यह वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत करता है। यह निर्वाण में निहित भोजन का पहला गुण है। और फिर, हे महाराज, जिस प्रकार भोजन समस्त प्राणियों की शक्ति बढ़ाता है, उसी प्रकार निर्वाण, जब प्राप्त हो जाता है, समस्त प्राणियों की इद्धि शक्ति को बढ़ाता है। यह निर्वाण में निहित भोजन का दूसरा गुण है। और फिर, हे महाराज, जिस प्रकार भोजन समस्त प्राणियों के सौंदर्य का स्रोत है, उसी प्रकार निर्वाण, जब प्राप्त हो जाता है, समस्त प्राणियों के लिए पवित्रता के सौंदर्य का स्रोत है। यह निर्वाण में निहित भोजन का तीसरा गुण है। और फिर, हे महाराज, जिस प्रकार भोजन समस्त प्राणियों के दुखों का अंत करता है, उसी प्रकार निर्वाण, जब प्राप्त हो जाता है, समस्त प्राणियों के सभी बुरे स्वभावों से उत्पन्न दुखों का अंत करता है। यह निर्वाण में निहित भोजन का चौथा गुण है। और फिर, हे राजा, जिस प्रकार भोजन सभी प्राणियों में भूख की कमजोरी को दूर करता है, उसी प्रकार निर्वाण की प्राप्ति होने पर वह सभी प्राणियों में भूख और हर प्रकार के दर्द से उत्पन्न कमजोरी को दूर करता है। यह निर्वाण में निहित भोजन का पाँचवाँ गुण है।

71. 'आदरणीय नागसेन, आपने जिन दस गुणों को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन-कौन से हैं?'

'हे राजा, जिस प्रकार अंतरिक्ष न तो जन्म लेता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न मिटता है और न पुनर्जन्म लेता है (उसी प्रकार)

क्योंकि निर्वाण असंपीड्य है, चोरों द्वारा चुराया नहीं जा सकता, किसी चीज पर टिका नहीं है, वह वह क्षेत्र है जिसमें पक्षी उड़ते हैं, वह निर्मल है और अनंत है; इसलिए, हे राजा, निर्वाण न तो जन्म लेता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न नष्ट होता है, उसका कोई पुनर्जन्म नहीं होता (कोई भविष्य का जीवन नहीं होता), वह अजेय है, चोर उसे चुरा नहीं सकते, वह किसी चीज से जुड़ा नहीं है, वह वह क्षेत्र है जिसमें अरहत विचरण करते हैं, कोई चीज उसे अवरुद्ध नहीं कर सकती और वह अनंत है। ये निर्वाण में निहित अंतरिक्ष के दस गुण हैं।

72. 'आदरणीय नागसेन, आपने कहा था कि निर्वाण में इच्छा पूर्ति करने वाले रत्न के वे तीन गुण अंतर्निहित होते हैं, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, जैसे मनोकामना रत्न सभी मनोकामनाओं को तृप्त करता है, वैसे ही निर्वाण भी करता है। यह निर्वाण में निहित मनोकामना रत्न का पहला गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे मनोकामना रत्न आनंद का स्रोत होता है, वैसे ही निर्वाण भी होता है। यह निर्वाण में निहित मनोकामना रत्न का दूसरा गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे मनोकामना रत्न तेज से परिपूर्ण होता है, वैसे ही निर्वाण भी तेज से परिपूर्ण होता है। यह निर्वाण में निहित मनोकामना रत्न का तीसरा गुण है।'

73. 'आदरणीय नागसेन, लाल चंदन की वे तीन खूबियाँ जिनके बारे में आपने कहा था कि वे निर्वाण में अंतर्निहित हैं, वे कौन सी हैं?'

'हे महाराज, जैसे लाल चंदन दुर्लभ है, वैसे ही निर्वाण प्राप्त करना कठिन है। निर्वाण में निहित लाल चंदन का यह पहला गुण है। और हे महाराज, जैसे लाल चंदन अपनी सुगंध में अद्वितीय है, वैसे ही निर्वाण अद्वितीय है। निर्वाण में निहित लाल चंदन का यह दूसरा गुण है। और हे महाराज, जैसे सभी अच्छे लोग लाल चंदन की प्रशंसा करते हैं, वैसे ही सभी श्रेष्ठ लोग निर्वाण की प्रशंसा करते हैं। निर्वाण में निहित लाल चंदन का यह तीसरा गुण है।'

74. 'आदरणीय नागसेन, घी की मलाई के वे तीन गुण जिनके बारे में आपने कहा था कि वे निर्वाण में अंतर्निहित हैं, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जैसे घी रंग में सुंदर होता है, वैसे ही निर्वाण धर्म में सुंदर होता है। यह निर्वाण में निहित घी का पहला गुण है। और हे महाराज, जैसे घी में मनभावन सुगंध होती है, वैसे ही निर्वाण में धर्म की मनभावन सुगंध होती है। यह निर्वाण में निहित घी का दूसरा गुण है। और हे महाराज, जैसे घी का स्वाद मनभावन होता है, वैसे ही निर्वाण का स्वाद मनभावन होता है। यह निर्वाण में निहित घी का तीसरा गुण है।'

75. 'आदरणीय नागसेन, आपने जिन पर्वत शिखर के पाँच गुणों को निर्वाण में अंतर्निहित बताया है, वे कौन से हैं?'

जैसे पर्वत शिखर बहुत ऊँचा होता है, वैसे ही निर्वाण भी बहुत ऊँचा होता है। यह निर्वाण में निहित पर्वत शिखर का पहला गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे पर्वत शिखर अचल होता है, वैसे ही निर्वाण भी अचल होता है। यह निर्वाण में निहित पर्वत शिखर का दूसरा गुण है। और फिर, हे राजा,

जैसे पर्वत की चोटी तक पहुंचना असंभव है, वैसे ही निर्वाण सभी बुरी प्रवृत्तियों से अछूता है। यह निर्वाण में निहित पर्वत की चोटी का तीसरा गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे पर्वत की चोटी वह स्थान है जहाँ कोई वनस्पति नहीं उग सकती, वैसे ही निर्वाण वह अवस्था है जिसमें कोई बुरी प्रवृत्ति नहीं पनप सकती। यह निर्वाण में निहित पर्वत की चोटी का चौथा गुण है। और फिर, हे राजा, जैसे पर्वत की चोटी प्रसन्नता और द्वेष दोनों से मुक्त होती है, वैसे ही निर्वाण भी मुक्त होता है। यह निर्वाण में निहित पर्वत की चोटी का पाँचवाँ गुण है।

[323] 'बहुत अच्छा, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निर्वाण के स्वरूप से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[इकतीसवीं दुविधा। निर्वाण का समय।]

76. 'आदरणीय नागसेना, आपके लोग कहते हैं:

"निर्वाण न तो अतीत है, न भविष्य है, न वर्तमान है, न उत्पन्न है, न अउत्पन्न है, और न ही उत्पन्न होने योग्य है।"

'तो फिर, नागसेन, क्या वह व्यक्ति जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करके निर्वाण प्राप्त करता है, किसी पूर्वनिर्मित वस्तु को प्राप्त करता है, या वह पहले स्वयं उसे उत्पन्न करता है और फिर उसे प्राप्त करता है?'

'हे राजा, न तो यह, न ही वह। फिर भी, हे राजा, निर्वाण (निब्बान-धातु) का वह सिद्धांत, जिसे वह अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करके प्राप्त करता है—वह विद्यमान है।'

'हे आदरणीय नागसेन, इस पहेली को और अंधकारमय बनाकर हल न कीजिए! इसे स्पष्ट और सरल कीजिए। दृढ़ संकल्प और अथक प्रयास से, जो कुछ आपको सिखाया गया है, वह सब इसमें उड़ेल दीजिए। यह वह मुद्दा है जिस पर यह जनता भ्रमित है, उलझन में डूबी है, संदेह में खोई है। इस दोषपूर्ण अनिश्चितता को दूर कीजिए; यह तीर की तरह चुभती है!'

77. हे राजा, निर्वाण का वह सिद्धांत विद्यमान है, जो इतना शांत, इतना आनंदमय और इतना कोमल है। और वह व्यक्ति जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, विजेताओं की शिक्षाओं के अनुसार सभी चीजों (संस्कारों) के विचार को ग्रहण करते हुए, अपनी बुद्धि से उसे प्राप्त करता है—ठीक वैसे ही जैसे एक शिष्य अपने ज्ञान से, अपने गुरु के निर्देशानुसार, किसी कला का उस्ताद बन जाता है।

और यदि आप पूछें: "निर्वाण को कैसे जाना जा सकता है?" तो यह दुख और खतरे से मुक्ति, विश्वास, शांति, स्थिरता, आनंद, खुशी, कोमलता, पवित्रता और ताजगी से प्राप्त होता है।

78. 'हे राजा, न्याय करो, जैसे कोई व्यक्ति धधकती भट्टी में सूखी लकड़ियों के कई गट्ठों से जलाया जा रहा हो, और जब वह अपने आप को उससे मुक्त कर ले

हिंसक प्रयास करके, किसी ठंडी जगह पर पहुँचकर, जो व्यक्ति अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह परम आनंद का अनुभव करेगा—ठीक उसी प्रकार, जो कोई अपने जीवन को सही दिशा देता है, वह अपने सजग चिंतन से निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त करेगा, जिसमें काम, द्वेष और भ्रम की तीन अग्नियाँ भस्म हो जाती हैं। हे राजा, इस तीन अग्नियों को भट्टी के समान समझो; अपने जीवन को सही दिशा देने वाले व्यक्ति को अग्नि में गिरे हुए व्यक्ति के समान समझो; निर्वाण को ठंडी जगह के समान समझो।

79. हे राजा, फिर, जैसे कोई व्यक्ति साँपों, कुत्तों, मनुष्यों, मल-मूत्र और कचरे से भरे गड्ढे में गिर जाता है, और जब वह शवों के बालों में उलझकर किसी ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ कोई शव नहीं होता, तो उसे परम आनंद प्राप्त होता है—ठीक उसी प्रकार जो कोई अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह अपने चिंतन से निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त करेगा, जहाँ से सभी बुरे स्वभावों के शव हटा दिए गए हैं। हे राजा, आपको इंद्रियों के चारों सुखों को शव के समान समझना चाहिए; शवों के बीच गिरे हुए व्यक्ति को सही ढंग से जीवन जीने वाले व्यक्ति के समान समझना चाहिए; शवों से मुक्त स्थान को निर्वाण के समान समझना चाहिए।

80. हे राजा, जैसे कोई व्यक्ति (जो हाथों में तलवार लिए शत्रुओं के बीच गिर पड़ा हो), भय और आतंक से कांपता हुआ, व्याकुल और विचलित मन से, जब वह बलपूर्वक उनसे मुक्त होकर किसी मजबूत शरणस्थल, किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाता है, तो परम आनंद का अनुभव करता है—ठीक उसी प्रकार जो कोई भी अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह अपने सावधानीपूर्वक चिंतन से निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त कर लेगा।

जिसमें भय और आतंक दूर हो गए हैं। हे राजा, जिस प्रकार जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के कारण बार-बार उत्पन्न होने वाली चिंता को भय के समान समझो, उसी प्रकार अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करने वाले भयभीत व्यक्ति को, निर्वाण के समान शरणस्थान समझो।

81. हे राजा, फिर उसी प्रकार, जैसे कोई व्यक्ति कीचड़, गंदगी और कीचड़ से लथपथ स्थान पर गिरकर, बड़े प्रयास से कीचड़ से मुक्त होकर स्वच्छ और निर्मल स्थान पर पहुँच जाता है, तो उसे परम आनंद प्राप्त होता है। ठीक उसी प्रकार, जो भी व्यक्ति अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह अपने चिंतन से निर्वाण के परम आनंद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ से उसके बुरे स्वभाव के दाग और कीचड़ दूर हो जाते हैं। हे राजा, आय, मान-सम्मान और प्रशंसा को कीचड़ के समान ही महत्व दें, जैसे कीचड़ में गिरे हुए व्यक्ति को, वैसे ही निर्वाण को, जैसे स्वच्छ और निर्मल स्थान को।

82. और यदि तुम फिर पूछो, "जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह निर्वाण कैसे प्राप्त करता है?" (मैं उत्तर दूंगा), हे राजा, जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह सभी चीजों के विकास के सत्य को समझ लेता है, और ऐसा करते समय वह उसमें जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु को देखता है। परन्तु वह उसमें सुख या आनंद नहीं देखता, वह उसमें, चाहे आरंभ में हो, मध्य

में हो या अंत में, कुछ भी ऐसा नहीं देखता जिसे (स्थायी संतुष्टि के रूप में) प्राप्त किया जा सके। हे राजा, यदि मनुष्य लोहे का एक पिंड हो तो वह ऐसा ही है।

दिनभर गर्म रहने के बावजूद, यदि सब कुछ धधक रहा होता, झुलस रहा होता और लाल-गर्म होता, तो भी उस पर, चाहे एक छोर पर हो, मध्य में हो या दूसरे छोर पर, कोई ऐसा स्थान नहीं मिलता जिसे पकड़ा जा सके—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह चीजों के विकास के सत्य को समझ लेता है, और ऐसा करने में वह उसमें जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु को देखता है। परन्तु वह उसमें न तो सुख देखता है, न ही आनंद, वह उसमें, चाहे आरंभ में हो, मध्य में हो या अंत में, कुछ भी ऐसा नहीं देखता जिसे (स्थायी संतुष्टि के रूप में) पकड़ा जा सके।

83. 'जब उसे कोई स्थायी संतोष नहीं मिलता, तो उसके मन में असंतोष उत्पन्न होता है, और उसके शरीर में बुखार छा जाता है, और बिना किसी आश्रय या सुरक्षा के, वह निराश होकर बार-बार जन्म लेने से ऊब जाता है। जैसे कोई व्यक्ति जलती हुई भयंकर भट्टी में गिर जाए, और उसे कोई आश्रय या बचने का रास्ता न दिखे, तो वह निराश होकर आग से ऊब जाएगा—ठीक वैसे ही, हे राजा, जब उसे कोई स्थायी संतोष नहीं मिलता, तो उसके मन में असंतोष उत्पन्न होता है, और उसके शरीर में बुखार छा जाता है, और बिना किसी आश्रय या सुरक्षा के, वह निराश होकर बार-बार जन्म लेने से ऊब जाता है।'

84. 'और जो इस प्रकार अनुभव करता है उसके मन में

क्षणभंगुर जीवन की असुरक्षा (अनगिनत जन्मों से फिर से शुरुआत करने की) से यह विचार उत्पन्न होता है: "यह अंतहीन जन्म-जन्म का चक्र जल रहा है, धधक रहा है! यह पीड़ा और निराशा से भरा है! काश कोई ऐसी अवस्था प्राप्त कर पाता जिसमें जन्म-जन्म का चक्र न हो, तो शांति होगी, वह मधुर होगी - इन सभी अवस्थाओं का अंत, इन सभी दोषों (काम, बुराई और कर्म) से मुक्ति, लालसाओं का अंत, वासना का अभाव, शांति, निर्वाण!" और इसी के साथ उसका मन उस अवस्था की ओर अग्रसर होता है जिसमें जन्म-जन्म का चक्र नहीं होता, और तब उसे शांति प्राप्त होती है, तब वह इस विचार से प्रफुल्लित और आनंदित होता है: "अंततः मुझे शरण मिल गई!" हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति किसी परदेस में भटककर रास्ता खो देता है, और जब उसे जंगल से मुक्त एक ऐसा रास्ता दिखाई देता है जो उसे घर ले जाएगा, तो वह संतुष्ट मन से उस पर आगे बढ़ता है, यह सोचकर आनंदित होता है: "आखिरकार मुझे रास्ता मिल गया!" ठीक उसी प्रकार, जो व्यक्ति क्षणभंगुर जन्मों की अनिश्चितता को महसूस करता है, उसके मन में यह विचार उठता है: "यह अंतहीन जन्म-जन्म का चक्र आग की लपटों में घिरा है, जल रहा है, धधक रहा है! यह पीड़ा और निराशा से भरा है! काश कोई ऐसी अवस्था प्राप्त कर पाता जिसमें जन्म-जन्म का चक्र ही न हो, तो शांति होगी, वह मधुर होगी - इन सभी अवस्थाओं का अंत, इन सभी दोषों का निवारण, इच्छाओं का अंत, कामवासना का अभाव, शांति, निर्वाण!" और इसी के साथ उसका मन उस अवस्था की ओर अग्रसर हो उठता है जिसमें जन्म-जन्म का चक्र नहीं होता।

और तब उसे शांति मिलती है, तब वह इस विचार से प्रफुल्लित और आनंदित होता है: "अंततः मुझे शरण मिल ही गई!" और वह उस मार्ग पर पूरी शक्ति से प्रयास करता है, उसकी खोज करता है, उसमें पूर्णतः अभ्यस्त हो जाता है, इसी उद्देश्य से वह अपने आत्म-नियंत्रण को दृढ़ करता है, इसी उद्देश्य से वह प्रयास में दृढ़ रहता है, इसी उद्देश्य से वह (सभी लोकों के सभी प्राणियों के प्रति) प्रेम में अडिग रहता है, और बार-बार उसी ओर अपना मन लगाता रहता है, जब तक कि क्षणभंगुरता से बहुत दूर जाकर वह वास्तविक सत्य, (अरहत्व का) सर्वोच्च फल प्राप्त नहीं कर लेता। और जब वह उसे प्राप्त कर लेता है, हे राजा, तो अपने जीवन को सही दिशा देने वाले व्यक्ति ने (सामने से) निर्वाण को प्राप्त कर लिया है!

'बहुत बढ़िया, नागसेना! यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।'

[निर्वाण के समय को लेकर समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[बयासीवीं दुविधा। निर्वाण का स्थान।]

85. 'आदरणीय नागसेन, क्या पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर दिशा में, ऊपर, नीचे या क्षितिज पर कोई ऐसा स्थान है जहाँ निर्वाण संचित होता है?'

'हे राजा, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे या क्षितिज पर कहीं भी निर्वाण नहीं है।'

लेकिन यदि ऐसा है, नागसेन, तो निर्वाण का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, और जो इसे प्राप्त करते हैं, उनका अहसास व्यर्थ है। और मैं आपको इसका स्पष्टीकरण देता हूँ। जैसे पृथ्वी पर खेत हैं जिनमें फसलें उगाई जा सकती हैं, फूल हैं जिनसे सुगंध आती है, झाड़ियाँ हैं जिन पर फूल उगते हैं, पेड़ हैं जिन पर फल पकते हैं, खदानें हैं जिनसे रत्न निकाले जा सकते हैं, ताकि जो कोई भी इन चीजों की इच्छा रखता है वह वहाँ जाकर उसे प्राप्त कर सकता है—ठीक वैसे ही, नागसेन, यदि निर्वाण का अस्तित्व है तो यह अपेक्षित है कि कोई ऐसा स्थान हो जहाँ यह उत्पन्न होता हो। लेकिन चूंकि ऐसा कोई स्थान नहीं है, इसलिए मैं घोषणा करता हूँ कि निर्वाण का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता, और जो इसे प्राप्त करते हैं, उनका अहसास व्यर्थ है।

86. 'हे राजा, निर्वाण का कोई स्थान नहीं है।'

स्थित होते हुए भी निर्वाण विद्यमान है, और जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह सजगतापूर्वक ध्यान लगाकर निर्वाण को प्राप्त कर लेगा। जैसे अग्नि विद्यमान है, फिर भी ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ अग्नि (स्वयं) संग्रहित हो। परन्तु यदि कोई मनुष्य दो लकड़ियों को आपस में रगड़े तो अग्नि उत्पन्न होती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, निर्वाण विद्यमान है, यद्यपि ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ वह संग्रहित हो। और जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह सजगतापूर्वक ध्यान लगाकर निर्वाण को प्राप्त कर लेगा।

87. हे राजा, जैसे राजाओं के राजा के सात खजाने होते हैं—चक्र का खजाना, हाथी का खजाना, घोड़े का खजाना, रत्न का खजाना, स्त्री का खजाना, वित्त मंत्री का खजाना और सलाहकार का खजाना। लेकिन इन खजानों को रखने के लिए कोई जगह नहीं है। जब कोई राजा सही आचरण करता है, तो ये खजाने उसे अपने आप प्रकट हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, हे राजा, निर्वाण विद्यमान है, यद्यपि इसे रखने के लिए कोई जगह नहीं है। और जो अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, वह सजगतापूर्वक ध्यान लगाकर निर्वाण को प्राप्त कर लेगा।

88. 'आदरणीय नागसेन, मान लीजिए कि निर्वाण का कोई स्थान संचित नहीं है। परन्तु क्या कोई ऐसा स्थान है जहाँ मनुष्य खड़ा होकर अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करके निर्वाण को प्राप्त कर सके?'

'जी हां, हे राजा, ऐसा स्थान है।'

'तो फिर, नागसेना, वह स्थान कौन सा है?'

'हे राजा, सद्‌गुण ही स्थान है। क्योंकि यदि सद्‌गुण में दृढ़ और सजग हो—चाहे सिथियनों की भूमि में हो या यूनानियों की, चाहे चीन में हो या

[पैराग्राफ जारी है] चाहे वह अलेक्जेंड्रिया में हो या निकुम्बा में, चाहे बनारस में हो या कोसल में, चाहे कश्मीर में हो या गांधार में, चाहे पर्वत की चोटी पर हो या सर्वोच्च स्वर्ग में—वह कहीं भी हो, जो व्यक्ति अपने जीवन को सही ढंग से व्यवस्थित करता है, उसे निर्वाण प्राप्त होगा। हे राजा, जिस प्रकार वह व्यक्ति जिसकी आँखें हर जगह होती हैं—चाहे वह स्किथियनों के देश में हो या यूनानियों के देश में, चीन में हो या तातार प्रदेश में, अलेक्जेंड्रिया, निकुम्बा, बनारस या कोसल में, कश्मीर में हो या गांधार में, पर्वत की चोटी पर हो या सर्वोच्च स्वर्ग में—स्वर्ग के विस्तार को देख सकता है और अपने सामने क्षितिज को निहार सकता है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो व्यक्ति अपने आचरण को सही ढंग से व्यवस्थित करता है और एकाग्र रहता है—चाहे वह स्किथियनों के देश में हो या यूनानियों के देश में, चाहे चीन में हो या तातार प्रदेश में, चाहे अलेक्जेंड्रिया, बनारस, कोसल या निकुम्बा में, चाहे कश्मीर में हो या गांधार में, चाहे पर्वत की चोटी पर हो या सर्वोच्च स्वर्ग में—वह जहाँ कहीं भी हो, निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है।

'बहुत खूब, नागसेन! आपने मुझे निर्वाण और उसकी प्राप्ति का उपदेश दिया है, आपने सद्‌गुणों के लाभों को बताया है, आपने सर्वोच्च उपलब्धि को समझाया है, आपने सत्य का ध्वज बुलंद किया है, आपने सत्य की दृष्टि स्थापित की है, आपने यह दिखाया है कि उच्च उद्देश्यों वाले लोगों द्वारा अपनाए गए सही साधन न तो

न तो बंजर और न ही निष्फल। यह सच है, और मैं इसे आपके कहे अनुसार स्वीकार करता हूँ।

[निर्वाण के स्थान से संबंधित समस्या यहीं समाप्त होती है।]

[यहाँ आठवाँ अध्याय समाप्त होता है।]

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-17-||----->>>> अगला

1. अब राजा मिलिंद नागसेन के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठकर वे जानने, सुनने और याद करने की तीव्र इच्छा से, ज्ञान के प्रकाश को प्रज्वलित करने और अपने अज्ञान को चकनाचूर करने की लालसा से प्रेरित होकर, अपने भीतर साहस और उत्साह जगाया और संयम और चिंतन से परिपूर्ण होकर नागसेन से इस प्रकार बोले:

2. 'आदरणीय नागसेना, मुझे बताइए, क्या आपने कभी बुद्ध को देखा है?'

'नहीं, हे राजा।'

'तो क्या आपके शिक्षकों ने कभी बुद्ध को देखा है?'

'नहीं, महाराज।'

'तो हे पूज्य नागसेन, आप कहते हैं कि आपने कभी बुद्ध को नहीं देखा, और न ही आपके गुरुओं ने बुद्ध को देखा है। इसलिए, नागसेन, बुद्ध का अस्तित्व ही नहीं था। इस स्थिति में, बुद्ध के अस्तित्व का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।'

लेकिन क्या वे प्राचीन क्षत्रिय वास्तव में मौजूद थे, जिन्होंने राजाओं के उस वंश की स्थापना की जिससे आप आते हैं?

'बिल्कुल, महोदय। इसमें भला कोई संदेह कैसे हो सकता है?'

'अच्छा, हे राजा। क्या आपने उन्हें कभी देखा है?'

'नहीं, महोदय।'

और जिन्होंने आपको शिक्षा दी—परिवार के पादरी, कर्मचारी, कानून बनाने वाले और राज्य के मंत्री—क्या उन्होंने कभी उन प्राचीन क्षत्रियों को देखा है?

'नहीं, महोदय।'

'यदि आपने न तो उन्हें देखा है, न ही अपने शिक्षकों को, तो वे कहाँ हैं? उस स्थिति में, उन प्राचीन क्षत्रियों का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है!'

3. 'परन्तु, नागसेन, उनके द्वारा प्रयुक्त राजसी प्रतीक चिन्ह आज भी देखे जा सकते हैं—राजकीय सफेद धूपदानी, मुकुट, चप्पलें, याक की पूंछ वाला पंखा, राजकीय तलवार और अमूल्य सिंहासन—और इनसे हम जान और विश्वास कर सकते हैं कि प्राचीन काल में क्षत्रिय रहते थे।'

हे महाराज, इसी प्रकार हम उस भगवान को जान सकते हैं और उन पर विश्वास कर सकते हैं। क्योंकि हमारे ज्ञान और विश्वास का एक कारण है कि वह भगवान थे। और वह कारण क्या है? उस भगवान द्वारा, ज्ञान और अंतर्दृष्टि के स्वामी, अरहत, परम बुद्ध द्वारा प्रयुक्त राजचिह्न अभी भी देखे जा सकते हैं - स्वयं को तैयार और सचेत रखने के चार साधन, चार प्रकार का महा संघर्ष, इद्धि के चार चरण,

नैतिक इंद्रियों के पांच अंग, पांच नैतिक शक्तियां, अरहतों के ज्ञान के सात रूप और आर्य अष्टांगिक मार्ग - और इनके द्वारा संपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

देवताओं और मनुष्यों का संसार यह जानता और मानता है कि भगवान बुद्ध एक समय अस्तित्व में थे। इसी कारण, इसी आधार पर, इसी तर्क से, इसी निष्कर्ष से यह ज्ञात हो सकता है कि भगवान बुद्ध जीवित थे।

वह व्यक्ति, जो स्वयं उस आनंदमय अवस्था में मुक्त हो गया है, जिसमें उपाधियाँ समाप्त हो चुकी हैं—कामना, पाप और कर्म—और जिसने दुखों के सागर से असंख्य लोगों को सुरक्षित किनारे तक पहुँचाया है—केवल अनुमान से ही यह जाना जा सकता है कि वह, श्रेष्ठ पुरुष, एक समय अस्तित्व में था।

4. 'आदरणीय नागसेना, मुझे एक उदाहरण दीजिए।'

हे राजा, जिस प्रकार एक नगर निर्माता नगर निर्माण करते समय सबसे पहले एक सुंदर, समतल भूमि का चयन करता है, जिसमें कोई दोष न हो, कोई पहाड़ियाँ या खाइयाँ न हों, ऊबड़-खाबड़ और पथरीली भूमि न हो, और आक्रमण का कोई खतरा न हो। फिर, जब वह उस भूमि पर बचे हुए किसी भी ऊबड़-खाबड़ स्थान को समतल कर लेता है, तो वह सभी ठूंठों और खूंटियों को पूरी तरह से हटा देता है, और वहाँ एक सुंदर और सुव्यवस्थित नगर का निर्माण शुरू करता है, जिसे उपयुक्त भागों में विभाजित किया गया हो, जिसके चारों ओर खाइयाँ और प्राचीरें बनाई गई हों, मजबूत द्वार, पहरेदार मीनारें और बुर्ज हों, चौड़े चौक और खुले स्थान हों, चौराहे हों (जहाँ दो सड़कें मिलती हैं) और चौराहे हों (जहाँ चार सड़कें मिलती हैं)।

सड़कें मिलती हैं), साफ-सुथरी और समतल ऊंची सड़कों के साथ, खुली दुकानों (बाजारों) की नियमित कतारों के साथ, पार्कों, उद्यानों, झीलों, कमल-तालाबों और कुओं से सुसज्जित, कई प्रकार के देवी-देवताओं के मंदिरों से सुशोभित, हर दोष से मुक्त। और फिर जब शहर अपनी पूरी शान में खड़ा होता, तो वह किसी दूसरे देश चला जाता। और समय के साथ वह शहर शक्तिशाली और समृद्ध हो जाता, खाद्य भंडारों से भरा, शांतिपूर्ण, गौरवशाली, सुखी, संकट और विपत्ति से मुक्त, सभी प्रकार और स्थितियों के लोगों का मिलन स्थल। फिर कुलीन और ब्राह्मण, व्यापारी और कामगार; हाथियों, घोड़ों और रथों पर सवार सैनिक; पैदल सेना, धनुर्धर और तलवारबाज; ध्वजवाहक, अधिकारी और शिविर-अनुयायी; उच्च कुल के योद्धा जिन्हें युद्ध में आनंद आता है, युद्ध के चैंपियन, हाथियों के समान शक्तिशाली पुरुष, नायक, चमड़े के कवच में लड़ने वाले पुरुष, बड़े घरानों में गुलामों से जन्मे या शाही सेना के सैनिकों से जन्मे समर्पित योद्धा; पेशेवर पहलवानों की टुकड़ियाँ;

रसोइये और करी बनाने वाले, नाई और स्नान कराने वाले, लोहार और फूलवाले, सोने, चांदी, सीसा, टिन, तांबा, पीतल और लोहे का काम करने वाले और जौहरी; संदेशवाहक; कुम्हार, नमक इकट्ठा करने वाले, चमड़ा बनाने वाले, गाड़ी बनाने वाले, हाथी दांत पर नक्काशी करने वाले, रस्सी बनाने वाले, कंघी बनाने वाले, सूती धागा कातने वाले, टोकरी बनाने वाले, धनुष बनाने वाले, धनुष की डोरी बनाने वाले, तीर बनाने वाले, चित्रकार, रंग बनाने वाले, रंगसाज, बुनकर, दर्जी, सोने का परख करने वाले, कपड़े के व्यापारी, इत्र विक्रेता, घास काटने वाले, लकड़ी काटने वाले, किराए के नौकर, जंगल में फूल, फल और जड़ें इकट्ठा करके जीवन यापन करने वाले लोग, उबले हुए चावल बेचने वाले, केक बेचने वाले, मछली विक्रेता, कसाई, शराब विक्रेता, नाटककार, नर्तक, कलाबाज, जादूगर, पेशेवर कवि, पहलवान।

[पैराग्राफ जारी है] (मुक्केबाज), शव जलाने वाले, सड़े हुए फूलों से तराशने वाले, जंगली लोग, जंगल के जंगली आदमी, वेश्याएं, स्विंगर और जम्पर, और गुंडों की गुलाम लड़कियां—कई देशों के लोग, सिथिया, बैक्ट्रिया, चीन और विलाता के लोग; उगेनी, भारुकक्खा, बनारस, कोसल और सीमावर्ती क्षेत्रों के लोग; मगध, साकेत, सूरत और पश्चिम के लोग; कोटुंबरा और मदुरा से, अलेक्जेंड्रिया, कश्मीर और गांधार से—ये सभी वहां आकर बसने लगे और नए शहर को व्यवस्थित, दोषरहित, परिपूर्ण और सुखद पाकर यह जान गए: "जिस वास्तुकार ने इस शहर का निर्माण किया है, वह वास्तव में कुशल रहा होगा!"

5. हे राजा, ठीक उसी प्रकार, वह परम पूज्य, अद्वितीय, अतुलनीय, अतुलनीय, वजन या गणना से परे प्रशंसनीय, अनंत गुणों से परिपूर्ण, सद्गुण और पूर्णता से भरपूर, ज्ञान, महिमा, उत्साह और शक्ति में असीम, जिसने सभी पूर्णताओं के शिखर को प्राप्त किया...

बुद्धों में से एक, जिसने मारा और उसकी समस्त सेना को पराजित किया, उसने विधर्म के जाल को चीरते हुए, अज्ञान को त्यागकर, ज्ञान का उदय करते हुए, सत्य की मशाल को बुलंद करते हुए, स्वयं बुद्धत्व की ओर अग्रसर हुआ, और इस प्रकार, युद्ध में अजेय और अपराजेय रहते हुए, इस धर्म नगर का निर्माण किया। और हे राजा, भगवान बुद्ध के धर्म नगर की प्राचीर धर्म है, खाई पाप के भय से भरी

है, द्वार के ऊपर ज्ञान है, उसके ऊपर पहरेदार के लिए उत्साह है, आधार पर स्तंभों के लिए आस्था है, द्वार के पहरेदार के लिए जागरूकता है, ऊपर की छत के लिए ज्ञान है, बाजार के लिए सुत्तन्त हैं, चौराहों के लिए अभिधम्म है, न्याय कक्ष के लिए विनय (धार्मिक विधि) है, और मुख्य सड़क के लिए निरंतर आत्मसंयम है। और हे राजा, उस गली में ये बाज़ार खुले हैं—फूलों का बाज़ार, फलों का बाज़ार, औषधियों का बाज़ार, औषधियों का बाज़ार, अमृत का बाज़ार, कीमती पत्थरों का बाज़ार और हर प्रकार के व्यापार का बाज़ार।

6. 'परन्तु, आदरणीय नागसेना, भगवान बुद्ध का पुष्प बाजार क्या है?'

हे महाराज, ध्यान के कुछ विषय हैं, जिनका ज्ञान और अंतर्दृष्टि के स्वामी, परम बुद्ध, अरहत ने उल्लेख किया है। वे ये हैं: अनित्यता का विचार, किसी भी स्थायी सिद्धांत (किसी भी वस्तु या प्राणी में किसी आत्मा का) का अभाव, शरीर से जुड़ी अशुद्धता और खतरे का विचार, बुरी प्रवृत्तियों से मुक्ति का विचार, वासना से मुक्ति का विचार, शांति का विचार, और शरीर से असंतोष का विचार।

संसार की वस्तुएँ, सभी परिस्थितियों की क्षणभंगुर प्रकृति का विचार, समाधि की अवस्था का विचार, शव के क्षय की विभिन्न अवस्थाओं का विचार, मृत्युदंड स्थल की सभी भयावहताओं का विचार, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम का विचार, सभी प्राणियों के प्रति दया का विचार, सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति का विचार, जीवन की सभी बदलती परिस्थितियों में समभाव का विचार, मृत्यु का विचार और शरीर का विचार। हे राजा, ये वे विषय हैं जिन पर भगवान बुद्ध ने ध्यान करने का निर्देश दिया है। और इनमें से जो कोई भी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति पाने की इच्छा से किसी एक को अपने ध्यान का विषय बनाता है, उस ध्यान से वह वासना, द्वेष, सुस्ती, अहंकार और गलत विचारों से मुक्त हो जाता है; इससे वह संसार सागर को पार कर लेता है, भोग-विलास की बाढ़ को रोक देता है, अपने आप को तीन प्रकार के दोषों से शुद्ध कर लेता है और अपने भीतर के सभी दोषों को नष्ट कर देता है। और इस प्रकार, उस गौरवशाली नगर में प्रवेश करके, जो निर्मल, निर्मल, पवित्र और श्वेत, शाश्वत और अमर है, जहाँ सब कुछ सुरक्षा, शांति और आनंद से परिपूर्ण है—निर्वाण के नगर में—वह अपने मन को अरहत्त्व में मुक्त करता है! और हे राजा, यही वह है जिसे "भगवान बुद्ध का पुष्प बाजार" कहा जाता है।

"कर्म को कीमत मानकर साथ ले जाओ, और उस बाजार में जाओ, वहाँ से अपने विचारों के लिए एक वस्तु खरीदो, खुद को मुक्त करो। मुक्त हो जाओ!"

7. 'और हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध का इत्र बाजार क्या है?'

हे राजा, कुछ विशेष प्रकार के सद्गुण हैं जिनका उल्लेख भगवान बुद्ध ने किया है, और उस धर्म की सुगंध से अभिषिक्त होकर भगवान बुद्ध के बच्चे, अच्छाई की सुगंध से समस्त संसार को, हर दिशा में, हवा की दिशा में और हवा के विपरीत, भर देते हैं, और बार-बार उसमें व्याप्त होते रहते हैं। वे कौन से प्रकार हैं? शरण लेने का सद्गुण।

वह सद्गुण जो पंचगुणी, अष्टगुणी और दशगुणी है, और आत्मसंयम का सद्गुण जो पातिमोक्खा के पाँच पाठों में सारणीबद्ध है। और हे राजा, यही वह है जिसे "भगवान बुद्ध का इत्र बाजार" कहा जाता है। क्योंकि हे राजा, सभी देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"किसी भी फूल की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जा सकती, न चंदन की, न कस्तूरी की, न चमेली की: परन्तु अच्छे व्यक्ति की मीठी सुगंध हवा के विपरीत जाती है, और अच्छा व्यक्ति अपने जीवन की मिठास को हर तरफ फैलाता है।"

लाल चंदन, कस्तूरी, कमल और चमेली— इन सब की सुगंध श्रेष्ठ है। कस्तूरी और चंदन की मीठी सुगंध प्रचुर मात्रा में है— इससे भी अधिक प्रबल, अच्छाई की सुगंध स्वर्ग तक पहुँचती है!

8. 'और हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध का फल बाजार क्या है?'

हे महाराज, भगवान बुद्ध ने कुछ विशेष फलों का उल्लेख किया है। वे ये हैं:--उत्कृष्ट मार्ग के प्रथम चरण का फल (परिवर्तन)।

दूसरे चरण, तीसरे चरण और चौथे (अरहतत्व) चरण का फल है शून्यता की प्राप्ति का फल—तीन लक्षणों (अपरिवर्तित जीवन, कामवासना, द्वेष और सुस्ती) के निवारण की प्राप्ति का फल—और उस अवस्था की प्राप्ति का सत्य जिसमें कोई नीच आकांक्षाएँ नहीं रहतीं। और जो कोई भी इनमें से किसी एक की इच्छा करता है, वह अपने कर्मों को कीमत के रूप में देता है और अपनी इच्छित फल—या तो धर्म परिवर्तन या कोई अन्य फल—प्राप्त करता है।

9. हे राजा, जिस प्रकार कोई व्यक्ति जिसके पास साल भर फल देने वाला आम का पेड़ होता है, वह खरीदारों के आने तक फल नहीं तोड़ता। परन्तु जब खरीदार आ जाता है और फल उत्पादक कीमत ले लेता है, तब वह कहता है: "आओ, मेरे भले, यह पेड़ सदा फल देता रहता है (इसलिए इसमें हर अवस्था में फल लगते हैं), इसमें से अपनी पसंद का फल ले लो, चाहे वह कच्चा हो, सड़ा हुआ हो, रेशेदार हो, खट्टा हो या पका हुआ हो।" और खरीदार दी गई कीमत पर अपनी पसंद का फल ले लेता है—यदि कच्चा फल हो तो वह उसे लेता है, यदि सड़ा हुआ हो तो उसे, यदि रेशेदार हो तो उसे, यदि खट्टा हो तो उसे, यदि पका हुआ हो तो पका हुआ फल ले लेता है। ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जो कोई भी अन्य फलों में से किसी एक को चाहता है, वह अपने कर्मों को कीमत के रूप में देकर अपनी इच्छा का फल खरीद लेता है।

या तो धर्म परिवर्तन या कोई और। और हे राजा, इसी को "भगवान का फलों का बाज़ार" कहा जाता है।

"मनुष्य अपने कर्मों को मूल्य के रूप में देते हैं, और अमृत का फल खरीदते हैं; और सुख और शांति उन्हीं की होती है, जिन्होंने अमृत का फल खरीदा है।"

10. 'और हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध का औषधि बाज़ार क्या है?'

हे महाराज, कुछ औषधियाँ भगवान बुद्ध द्वारा प्रकट की गई हैं; वे औषधियाँ जिनसे भगवान बुद्ध समस्त देवताओं और मनुष्यों को बुरी प्रवृत्तियों के विष से मुक्त करते हैं। और ये औषधियाँ क्या हैं? भगवान बुद्ध द्वारा प्रकट किए गए चार आर्य सत्य, अर्थात् दुःख का सत्य, दुःख के कारण का सत्य, दुःख के निवारण का सत्य और दुःख के निवारण के मार्ग का सत्य। और जो कोई भी परम ज्ञान (अरहतत्व का ज्ञान) की कामना करते हुए इन चार सत्यों का उपदेश सुनता है, वह पुनर्जन्म से, वृद्धावस्था से, मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। और हे महाराज, यही वह है जिसे "भगवान बुद्ध का औषधियों का बाज़ार" कहा जाता है।

"संसार की तमाम औषधियों में, भयंकर विष के विषनाशकों में से, कोई भी उस मधुर सिद्धांत के बराबर नहीं है। इसे पियो, हे भाइयों। पियो और जियो!"

11. 'और हे पूज्य नागसेना, भगवान बुद्ध का औषधि बाज़ार क्या है?'

हे महाराज, भगवान बुद्ध ने कुछ औषधियाँ बताई हैं, जिनसे वे समस्त विश्व के देवताओं और मनुष्यों का उपचार करते हैं। वे औषधियाँ ये हैं:-- "स्वयं को सजग और सचेत रखने के चार साधन, चार प्रकार का महासंघर्ष, इद्धि प्राप्ति के चार चरण, पाँच इंद्रियाँ, पाँच नैतिक शक्तियाँ, अरहतों के ज्ञान के सात रूप और अष्टांगिक मार्ग।" इन औषधियों से भगवान बुद्ध मनुष्यों को गलत विचारों से, नीच आकांक्षाओं से, निंदा करने से, बुरे कर्मों से, बुरे जीवनयापन के तरीकों से, गलत प्रयासों से, बुरे विचारों से और भ्रामक ध्यान से मुक्त करते हैं। और वह वासनाओं, द्वेष, सुस्ती, संदेह, आत्म-धर्म, देह की आलस्य, मन की जड़ता, निर्लज्जता, हृदय की कठोरता और समस्त बुराई को दूर भगाने के लिए औषधियाँ देता है। और हे राजा, यही वह है जिसे "भगवान बुद्ध का औषधि बाज़ार" कहा जाता है।

संसार में पाई जाने वाली तमाम औषधियों में से, जो संख्या में अनेक और गुणों में भिन्न-भिन्न हैं, सत्य की इस औषधि के समान कोई नहीं। हे भाइयों, इसे पियो। पियो और पीते रहो, जीवन पाओ!

सत्य की उस औषधि को पीने से तुम वृद्धावस्था और मृत्यु से परे हो जाओगे, और बुराई, वासना और कर्म जड़ से उखड़ जाएंगे—विचारशील और दृष्टिहीन होकर तुम शांति में रहोगे!

12. 'और हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध का अमृत बाजार क्या है?'

हे राजा, भगवान बुद्ध ने एक अमृत का ज्ञान कराया है, वह अमृत जिससे वे समस्त देवताओं और मनुष्यों पर छिड़काव करते हैं—जैसे मनुष्य राज्याभिषेक के दिन राजा का अभिषेक करते हैं—और जब मनुष्य और देवता उस अमृत से सींचे जाते हैं, तो वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त हो जाते हैं। और वह अमृत क्या है? वह ध्यान जो भौतिक वस्तुओं की वास्तविक परिस्थितियों पर सक्रिय ध्यान देने से उत्पन्न होता है और उन्हें सही मायने में समझने की ओर ले जाता है। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने यह कहा है:

"हे भाइयों, वे ही अमृत का भोग करते हैं जो भौतिक वस्तुओं पर सक्रिय ध्यान केंद्रित करके भोजन प्राप्त करते हैं।" हे राजा, इसी को "भगवान का अमृत बाजार" कहा जाता है।

उन्होंने मनुष्य जाति को रोगों से पीड़ित देखा, उन्होंने अपना अमृत का भंडार निःशुल्क खोल दिया; हे भाइयों, जाओ, इसके लिए अपना कर्म अर्पित करो, और उस अमृतमय भोजन को खरीदो और उसका सेवन करो।

13. 'और हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध का रत्न बाजार क्या है?'

हे महाराज, कुछ विशेष रत्नों का ज्ञान भगवान बुद्ध ने दिलाया है, और इन रत्नों से सुशोभित भगवान बुद्ध की संतानें तेजस्वी होकर समस्त देवी-देवताओं और मनुष्यों के संसार को प्रकाशित करती हैं, उसे ऊंचाइयों और गहराइयों में, क्षितिज से क्षितिज तक, एक उज्ज्वल प्रकाश से जगमगाती हैं। वे रत्न ये हैं—सही आचरण का रत्न, ध्यान का रत्न, ज्ञान का रत्न, मुक्ति का रत्न, मुक्ति की निश्चितता से उत्पन्न अंतर्दृष्टि का रत्न, विवेक का रत्न, और अरहतों के सात प्रकार के ज्ञान का रत्न।

14. हे राजा, भगवान बुद्ध का सही आचरण का रत्न क्या है? वह सही आचरण जो पातिमोक्खा के नियमों के अनुसार आत्म-संयम से प्रेरित है, वह सही आचरण जो...

शरीर और मन पर संयम, शुद्ध आजीविका से प्राप्त उचित आचरण, संन्यासी के चार आवश्यक तत्वों के संबंध में उचित आचरण, लघु, मध्यम और दीर्घ प्रवचनों में वर्णित उचित आचरण, मार्ग पर चलने वालों का उचित आचरण, और उन लोगों का उचित आचरण जिन्होंने इसके विभिन्न फल प्राप्त किए हैं (रूपांतरण से शुरू होकर अरहत्त्व तक)। और हे राजा, संसार के सभी प्राणी, देवता और मनुष्य, मार (दुष्ट आत्माएं), ब्रह्मा (सर्वोच्च देवता), समन और ब्राह्मण, सभी उस व्यक्ति के लिए तरसते और अभिलाषी हैं जो उचित आचरण रूपी इस रत्न को अपने आभूषण के रूप में धारण करता है। और हे राजा, जो भिक्षु इसे धारण करता है, वह चारों ओर, ऊपर-नीचे और अगल-बगल, अपनी महिमा से चमक उठता है, मानो वह अनंत आकाश से लेकर उच्चतम स्वर्ग तक पाए जाने वाले सभी रत्नों से कहीं अधिक तेजस्वी हो, उन सभी से श्रेष्ठ और उन्हें मात देता हो। हे राजा, यही हैं धर्मपरायणता के रत्न, जो भगवान बुद्ध के रत्नों के बाज़ार में बिक्री के लिए रखे गए हैं। और इसी को "भगवान बुद्ध का धर्म का रत्न" कहा जाता है।

"उस बाज़ार में ऐसे ही गुण बिकते हैं, जो उस प्रबुद्ध, धन्य व्यक्ति की दुकान है; हे कुरूप, कर्म का फल भुगतो! इन चमकदार बुद्ध रत्नों को खरीदो और धारण करो!"

15. हे राजा, भगवान बुद्ध का ध्यान का रत्न क्या है? वह ध्यान जो विशिष्ट अवधारणाओं और उनके बारे में अन्वेषण से युक्त है; वह ध्यान जो केवल चिंतन से युक्त है, जिसमें विशिष्ट अवधारणाएँ विलीन हो जाती हैं; वह ध्यान जो विशिष्ट अवधारणाओं और उन पर चिंतन दोनों के समाप्त होने के बाद भी जारी रहता है; वह ध्यान जो (वासनाओं, बुरी प्रवृत्तियों और कर्मों से) रहित है; वह ध्यान जिसमें (अपरिवर्तित जीवन के) तीन लक्षण (वासना, द्वेष और सुस्ती) अनुपस्थित हैं; वह ध्यान जिसमें कोई नीच आकांक्षाएँ शेष नहीं रहतीं। और जब कोई भिक्षु, हे राजा, समाधि के इस रत्न को धारण कर लेता है, तो काम, क्रोध, क्रूरता और वे सभी बुरे विचार जो अहंकार, आत्म-धर्म, गलत विचारों से लगाव और संदेह जैसी बुरी प्रवृत्तियों से उत्पन्न होते हैं—ये सभी ध्यान के संपर्क में आने पर उससे बह जाते हैं, बिखर जाते हैं और दूर हो जाते हैं; वे उसके साथ नहीं रहते, उससे चिपकते नहीं। हे राजा, ठीक वैसे ही जैसे कमल के पत्ते पर पानी गिरने पर वह बह जाता है, बिखर जाता है और फैल जाता है।

दूर नहीं होता, इस पर नहीं ठहरता, इससे चिपकता नहीं—इसलिए जब कोई भिक्षु ध्यान के इस रत्न को धारण कर लेता है, तो काम, क्रोध, क्रूरता और वे सभी बुरे विचार जो अहंकार, आत्म-धर्म, गलत विचारों में हठ और संदेह जैसी बुरी प्रवृत्तियों से उत्पन्न होते हैं—ये सभी ध्यान के संपर्क में आते ही बह जाते हैं, बिखर जाते हैं और दूर हो जाते हैं, उसके साथ नहीं ठहरते, उससे चिपकते नहीं। और क्यों नहीं? क्योंकि ध्यान की आदत अत्यंत पवित्र है। हे राजा, इसे ही "भगवान बुद्ध का ध्यान का रत्न" कहा जाता है, और ऐसे ही ध्यान के रत्न भगवान बुद्ध के रत्नों के बाजार में बिक्री के लिए रखे जाते हैं।

"इस रत्नजड़ित मुकुट से घिरे माथे के नीचे बुरे विचार कभी नहीं आ सकते। यह उलझे और भटकते विचारों को दूर भगाता है। इसे अपना बनाइए, खरीदिए, मुकुट पहनिए!"

16. हे महाराज, बुद्ध का ज्ञान का रत्न क्या है? वह ज्ञान जिससे श्रेष्ठ जनों का शिष्य भली-भांति जान लेता है कि सद्गुण क्या है और क्या नहीं; निंदनीय क्या है और क्या नहीं; किस बात को आदत बनानी चाहिए और किस बात को नहीं; नीच क्या है और श्रेष्ठ क्या है;

अंधकार क्या है और प्रकाश क्या है, और अंधकार और प्रकाश दोनों क्या हैं;—वह ज्ञान जिससे वह वास्तव में जान लेता है कि दुःख क्या है, दुःख का कारण क्या है, दुःख का निवारण क्या है, और दुःख की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है। हे महाराज, इसी को "राजकुमार का ज्ञान का रत्न" कहा जाता है।

जिसके पास ज्ञान का रत्नजड़ित मुकुट है, वह अधिक समय तक इस सांसारिक रूप में नहीं रहेगा। वह शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लेगा और पुनर्जन्म में किसी भी लोक में आनंद नहीं लेगा!

17. हे महाराज, भगवान बुद्ध का मोक्ष का रत्न क्या है? अरहतत्व को मोक्ष का रत्न कहा जाता है, और अरहतत्व प्राप्त भिक्षु को मोक्ष के रत्न से सुशोभित कहा जाता है। और हे महाराज, जिस प्रकार एक मनुष्य मोतियों, हीरों, सोने और मूंगे की मालाओं से सुशोभित होता है; जिसके अंगों पर अकालु, लोबान, तालिस और लाल चंदन लगा होता है; जो लौह-लकड़ी के फूलों, रोटलरिया के फूलों, साल के वृक्ष के फूलों, सालाला, चंपक, पीले चमेली और अतिमुत्तक के फूलों की माला से सुशोभित होता है,

तुरही के फूल, कमल, सफेद और अरबी चमेली—जैसे इन सभी अलंकरणों, सुगंधों और आभूषणों से सुसज्जित होकर वह अन्य सभी पुरुषों को अपनी चमक और वैभव से अभिभूत कर देता है—ठीक वैसे ही, हे महाराज, जो अरहतत्व प्राप्त कर चुका है, जिसमें महापाप (कामवासना, अभिमान, भ्रम और अज्ञान) जड़ से उखड़ चुके हैं, जिसने हृदय मुक्ति का मुकुट धारण कर लिया है, वह निम्नतम स्तर के भिक्षुओं से लेकर स्वयं मुक्त भिक्षुओं तक सभी को अपनी चमक और वैभव से अभिभूत कर देता है। और ऐसा क्यों है? क्योंकि, हे महाराज, एक मुकुट है जो सभी मुकुटों में श्रेष्ठ है, और वह है हृदय मुक्ति का मुकुट! और हे महाराज, इसी को "भगवान बुद्ध का मुक्ति का रत्न" कहा जाता है।

"घर में रहने वाले सभी लोग अपने प्रभु की ओर देखते हैं जब वह रत्नों का मुकुट धारण करते हैं—देवताओं और मनुष्यों का विशाल संसार स्वतंत्रता के मुकुटधारी की ओर देखता है!"

18. 'हे राजा, मुक्ति के आश्वासन के बाद प्राप्त होने वाली अंतर्दृष्टि का वह अनमोल रत्न क्या है जो भगवान बुद्ध ने बताया है? वह ज्ञान जो अतीत की घटनाओं पर चिंतन करने से उत्पन्न होता है—वह ज्ञान जो

जो शिष्य उत्तम मार्ग पर चल रहा है, वह समय-समय पर निर्वाण तक पहुँचने वाले मार्ग और उसके फलों की समीक्षा करता है, और इस बात से अवगत होता है कि उसने किन बुरी प्रवृत्तियों से छुटकारा पा लिया है और किन बुरी प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करना शेष है—इसी को "मुक्ति के ज्ञान के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला आश्वासन" कहा जाता है।

"वह ज्ञान जिससे महानजन अपने द्वारा पार किए गए चरणों और अभी तक अछूते मार्ग को जानते हैं; हे विजेता के पुत्रों, उस रत्न - 'आश्वासन' - को स्वयं प्राप्त करने का प्रयास करो!"

19. हे महाराज, भगवान बुद्ध का विवेक का रत्न क्या है? इंद्रियों का विवेक, पवित्र ग्रंथों के भाव में अंतर्निहित गहरे सत्यों का विवेक, भाषाविज्ञान संबंधी विशिष्टताओं का विवेक और सही एवं सहज व्याख्या का विवेक। और हे महाराज, जो भिक्षु इन चार विवेक के रत्नों से सुशोभित है, वह चाहे किसी भी संगति में प्रवेश करे, चाहे वह कुलीनों की हो, ब्राह्मणों की हो, व्यापारियों की हो या कामगारों की, वह आत्मविश्वास से उसमें प्रवेश करता है, न तो विचलित होता है और न ही संकोच करता है; निडर और भयभीत हुए बिना, वह सभा में प्रवेश करता है। हे महाराज, वह ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई योद्धा, युद्ध में वीर, अपने संपूर्ण शस्त्र-संरचित होने पर होता है।

युद्ध में, भिक्षु निडर होकर, इस आत्मविश्वासपूर्ण विचार के साथ युद्ध में उतरता है: "यदि शत्रु दूर रहे तो मैं उसे अपने बाणों से मार गिराऊँगा, यदि वह वहाँ से मेरी ओर आए तो मैं उसे अपने भालों से मार गिराऊँगा, यदि वह और निकट आए तो मैं उसे अपने बरछी से भेद दूँगा, यदि वह बिल्कुल पास आ जाए तो मैं उसे अपनी कृपाण से दो टुकड़ों में काट दूँगा, यदि वह निकट आ जाए तो मैं उसे अपने खंजर से आर-पार भेद दूँगा" - हे राजा, ठीक इसी प्रकार भिक्षु, जब वह विवेक के चार गुना रत्न को धारण करता है, तो किसी भी सभा में निडर होकर, इस आत्मविश्वासपूर्ण विचार के साथ प्रवेश करता है: "यदि कोई मुझसे इंद्रियों के विवेक पर आधारित कोई पहेली पूछे, तो मैं उसे इंद्रियों की तुलना इंद्रियों से, व्याख्या की व्याख्या से, तर्क की तुलना तर्क से, तर्क की तुलना तर्क से करके समझा सकूँगा - और इस प्रकार मैं उसके संदेहों को दूर करूँगा।"

यदि कोई मुझसे गहन सत्यों के भेद से संबंधित कोई पहेली पूछे, तो मैं सत्य की सत्य से तुलना करके, और अरहतत्व के विभिन्न पहलुओं और अवस्थाओं की आपस में तुलना करके उसका उत्तर दे सकूँ, और इस प्रकार उसके संदेहों को भी दूर कर सकूँ, और उसके भ्रम को

दूर करके, उसे समस्या के अपने स्पष्टीकरण से प्रसन्न कर सकूँ। यदि कोई मुझसे भाषाविज्ञान संबंधी विशिष्टताओं के भेद से संबंधित कोई पहेली पूछे, तो मैं व्युत्पत्ति की व्युत्पत्ति से, शब्द की शब्द से, कण की कण से, अक्षर की अक्षर से, एक अक्षर के दूसरे अक्षर के संपर्क (संधि) से रूपांतरण से, व्यंजन की व्यंजन से, स्वर की स्वर से, उच्चारण (स्वर) की उच्चारण से, मात्रा की मात्रा से, नियम की नियम से, और मुहावरे की मुहावरे से तुलना करके उसका उत्तर दे सकूँ; और इस प्रकार उसके संदेहों को भी दूर कर सकूँ, और उसके भ्रम को दूर करके, उसे समस्या के अपने स्पष्टीकरण से प्रसन्न कर सकूँ। यदि कोई मुझसे व्याख्याओं के भेद से संबंधित कोई पहेली पूछे, तो मैं रूपक की तुलना रूपक से, विशेषता की तुलना विशेषता से और भाव की तुलना भाव से करके उसे समझा सकूँगा—और इस प्रकार मैं उसके संदेहों को भी दूर कर सकूँगा, और उसकी उलझन को सुलझाकर उसे अपनी व्याख्या से प्रसन्न कर दूँगा।

समस्या खड़ी हो गई। और हे राजा, यही वह है जिसे "भगवान बुद्ध का विवेक का रत्न" कहा जाता है।

पहले विवेक का रत्न खरीदो, फिर उसे अपने ज्ञान और कौशल से तराशो; इस प्रकार, समस्त चिंता और भय से मुक्त होकर, तुम पृथ्वी और आकाश दोनों को प्रकाशित करोगे!

20. हे महाराज, अरहतों के सात प्रकार के ज्ञान में भगवान बुद्ध का रत्न क्या है? यह है आत्म-संयम, धर्म-व्यवस्था का अध्ययन, उत्साह, आनंद, शांति, ध्यान और समभाव। हे महाराज, जो भिक्षु इस उच्चतर ज्ञान के सात प्रकार के रत्न से सुशोभित होता है, वह देवताओं और मनुष्यों के समस्त जगत पर प्रकाश फैलाता है, उसे प्रकाशित करता है और अंधकार को दूर करके प्रकाश उत्पन्न करता है। हे महाराज, इसी को "भगवान बुद्ध का सात प्रकार का ज्ञान" कहा जाता है।

"देवता और मनुष्य श्रद्धापूर्वक उसके सामने खड़े हो जाते हैं जो इस ज्ञान-मुकुट को धारण करता है। इसलिए अपने अच्छे कर्म दिखाओ, यही कीमत है, और इस ज्ञान-मुकुट को खरीदो और धारण करो!"

21. 'और हे पूज्य नागसेन, भगवान बुद्ध द्वारा स्थापित सभी प्रकार के सामानों का वह बाज़ार क्या है?'

'भगवान का हर तरह के सामान का बाज़ार'

हे राजा, व्यापार बुद्ध के नौ गुना वचन हैं; उनके शरीर के अवशेष, उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुएँ; उन पर निर्मित पवित्र टीले (केतियानी, दागबास); और उनके संघ का रत्न। और उस बाज़ार में भगवान बुद्ध ने (भविष्य में) उच्च वंश, धन, दीर्घायु, स्वास्थ्य, सौंदर्य, ज्ञान, सांसारिक यश, स्वर्गीय यश और निर्वाण की प्राप्ति को प्रदर्शित किया है। और इनमें से जो भी किसी एक की इच्छा रखते हैं, वे कर्म का भुगतान करके अपनी इच्छित महिमा प्राप्त करते हैं। कुछ लोग इसके बदले में सही आचरण का व्रत लेते हैं, कुछ उपोसथ दिवस का पालन करते हैं, और इसी प्रकार सबसे छोटे कर्म-मूल्य से लेकर सबसे छोटे तक विभिन्न महिमाएँ प्राप्त करते हैं। हे महाराज, जैसे किसी व्यापारी की दुकान में तेल, बीज, मटर और दालें थोड़ी मात्रा में चावल, मटर या दाल के बदले में ली जा सकती हैं या फिर आवश्यकतानुसार घटते क्रम में थोड़ी कीमत पर खरीदी जा सकती हैं—ठीक वैसे ही, हे महाराज के समस्त वस्तुओं के बाज़ार में, आवश्यकतानुसार कर्म के बदले लाभ प्राप्त किए जाते हैं। और हे महाराज, इसी को "सर्वांगीण वस्तुओं का बाज़ार" कहा जाता है।

"दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, सौंदर्य, स्वर्ग में पुनर्जन्म, उच्च जन्म, निर्वाण—ये सब बिक्री के लिए उपलब्ध हैं—छोटे-बड़े कर्मों के बदले खरीदे जा सकते हैं—महान विजेता के विश्वप्रसिद्ध बाज़ार में। आओ, हे भाइयों, अपनी आस्था को मूल्य के रूप में प्रदर्शित करो, और अपनी पसंद की वस्तुएँ खरीदो और उनका आनंद लो!"

22. 'और हे राजा, भगवान बुद्ध के धर्म नगर में निवास करने वाले निवासी ऐसे हैं: सूत्रंतों के स्वामी, विनय के स्वामी और अभिधम्म के स्वामी; धर्म के प्रचारक; गातक पाठ करने वाले, दीघ पाठ करने वाले, मगधिमा पाठ करने वाले, संयुत्त पाठ करने वाले, अंगुत्तरा पाठ करने वाले और खुद्दक निकाय पाठ करने वाले; सही आचरण वाले, ध्यान में निपुण, ज्ञान से परिपूर्ण, अरहतों के सात प्रकार के ज्ञान के चिंतन में आनंद लेने वाले, अंतर्दृष्टि वाले; ध्यान के लिए जंगलों में जाने वाले, वृक्षों की जड़ों में बैठने वाले, खुले में रहने वाले, भूसे के ढेर पर सोने वाले, श्मशान के पास रहने वाले या सोने के लिए लेटने वाले नहीं; उत्तम मार्ग में प्रवेश कर चुके, उसके चार फलों में से एक या अधिक प्राप्त कर चुके, अभी भी सीखने वाले (अभी तक अरहतत्व प्राप्त नहीं किया है, लेकिन उसके निकट हैं), फलों का आनंद लेने वाले, अर्थात् सोतापन्न, सकदागामिन या अनागामिन। या अरहत;--त्रिविध बुद्धि वाले पुरुष, छह प्रकार की पारलौकिक बुद्धि वाले पुरुष, इद्धि की शक्ति वाले पुरुष, ज्ञान में पूर्णता प्राप्त कर चुके पुरुष,

निरंतर आत्मसंयम बनाए रखने में, महान संघर्ष में, इद्धि के चरणों में, अपनी नैतिक इंद्रियों में, सात प्रकार के ज्ञान में, उत्तम मार्ग में, ध्यान में, विमोक्ष में, और उस उदात्त और शांत आनंद की प्राप्ति में निपुण जो रूप से स्वतंत्र है या रूपहीन है—हाँ! बांसों और सरकंडों से भरे जंगल की तरह, धर्म का वह नगर ऐसे अरहतों से हमेशा भरा और आबाद रहा है! क्योंकि ऐसा कहा जाता है:

(1) "वे लोग जो वासना, द्वेष और सुस्ती से रहित हैं, जिनमें महान बुराइयाँ (वासना, अभिमान, भ्रम और अज्ञान) नहीं हैं, जिनमें न तो तीव्र प्यास है और न ही लालची इच्छाएँ हैं,—ये वे लोग हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(2) "जिन पुरुषों का घर जंगल है, जिन्होंने अतिरिक्त प्रतिज्ञाएँ ली हैं, जो आनंद से परिपूर्ण हैं, जो खुरदुरे वस्त्र पहने हुए हैं, जो एकांत में आनंदित हैं, वीर—ये वे हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(3) "जो लोग बैठकर सोते हैं, या किसी भी सोने की जगह पर सोते हैं, या अपना समय खड़े होकर या ध्यान में इधर-उधर चलते हुए बिताते हैं, जो लोग अपने आप को त्यागे हुए वस्त्रों से ढक लेते हैं—ये सभी लोग धर्म नगर में निवास करते हैं।"

(4) "तीन वस्त्रों का पूरा सेट पहने हुए, शांत, चौथे वस्त्र के लिए एक चमड़ा, जो प्रतिदिन केवल एक ही भोजन करने में आनंदित होते हैं, वे बुद्धिमान हैं—ये वे हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(5) "जो गंभीर और विवेकशील हैं, जो थोड़े में ही अपना पेट भरते हैं और लालच नहीं जानते, जो भीख मिले या न मिले, संतुष्ट रहते हैं—ये वे लोग हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(6) "ध्यानमग्न, ध्यानमग्न, शांत मन वाले वीर, और निर्वाण की ओर दृढ़ रहने वाले—ये वे हैं जो धर्म नगर में निवास करते हैं।"

(7) "मार्ग पर चलने वाले और उसके फलों में खड़े रहने वाले लोग, जिन्होंने उसके कुछ फल प्राप्त कर लिए हैं, लेकिन अंतिम के बारे में अभी भी सीख रहे हैं, जिनकी आशा अंतिम लक्ष्य की ओर निर्देशित है—ये वे लोग हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(8) "जो धारा में प्रवेश कर चुके हैं, और जो दागों से मुक्त होकर पृथ्वी पर एक बार फिर से जन्म लेंगे, जो कभी वापस नहीं लौटेंगे, और अरहत—ये वे हैं जो धर्म के नगर में निवास करते हैं।"

(9) "अविचलित आत्म-संयम प्राप्त करने के साधनों में निपुण, और सात प्रकार के ज्ञान पर चिंतन में आनंदित, अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण, और अपने हृदय में धर्म के वचन धारण करने वाले—ये वे लोग हैं जो धर्म नगर में निवास करते हैं।"

(10) "इद्धि के चरणों में निपुण, और समाधि के ध्यान में आनंदित, जो महा संघर्ष के प्रति समर्पित हैं—वे ही धर्म नगर में निवास करते हैं।"

(11) "अभिज्ञों के छह प्रकार के ज्ञान में परिपूर्ण, अपने उचित उत्तराधिकार से प्राप्त क्षेत्र में आनंदित, वायु में उड़ने की शक्ति रखने वाले—ये वे हैं जो धर्म नगर में निवास करते हैं।"

(12) "वे जिनकी निगाहें झुकी हुई हैं, और जो संयमित स्वर में बोलते हैं, जिनके इंद्रियों के द्वार सुरक्षित हैं, जो

जो आत्मसंयमी हैं, जो सर्वोच्च धम्म के अनुसार सुशिक्षित हैं—वे ही धर्म नगर में निवास करते हैं।

(13) "तीन प्रकार की बुद्धि वाले और छह प्रकार की बुद्धि वाले, इद्धि में परिपूर्ण और ज्ञान में परिपूर्ण हो चुके लोग—ये वे लोग हैं जो धर्म नगर में निवास करते हैं।"

23. और हे राजा, जो भिक्षु अपने हृदय में असीम उत्कृष्ट ज्ञान के वचन धारण करते हैं, जो बंधनों से मुक्त हैं, जिनकी अच्छाई, यश, शक्ति और महिमा का कोई माप नहीं कर सकता, जो (अपने गुरु का अनुकरण करते हुए) धर्म के राज्य के राजचक्र को निरंतर चलाते हैं, जिन्होंने ज्ञान में पूर्णता प्राप्त कर ली है—ऐसे भिक्षुओं को, हे राजा, "भगवान बुद्ध के धर्म नगर में धर्म के सेनापति" कहा जाता है।

और हे महाराज, जो भिक्षु इद्धि की शक्ति से परिपूर्ण हैं, जिन्होंने विवेक का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो आत्मविश्वास से भरे हैं, जो वायु में विचरण करते हैं, जिनका विरोध करना कठिन है, जिन्हें हराना कठिन है, जो बिना सहारे के चल सकते हैं, जो विशाल पृथ्वी और उस पर टिके जल को हिला सकते हैं, जो सूर्य और चंद्रमा को स्पर्श कर सकते हैं, जो स्वयं को रूपांतरित करने और दृढ़ संकल्प और उच्च आकांक्षाएं बनाने में कुशल हैं, जो इद्धि में परिपूर्ण हैं—ऐसे भिक्षुओं को, हे महाराज, "भगवान के धर्म नगर के राजसी पुजारी" कहा जाता है।

और इसके अतिरिक्त, हे राजा, उन भिक्षुओं में से जिन्होंने अतिरिक्त प्रतिज्ञाएँ ली हैं,

जो कम इच्छा रखते हैं और संतुष्ट रहते हैं, जो भिक्षा मांगने के नियमों के किसी भी उल्लंघन से घृणा करते हैं, और एक कुटिया से दूसरी कुटिया में सीधे भिक्षा मांगते हैं, जैसे एक मधुमक्खी एक फूल को सूंघती है, और फिर जंगल के एकांत में चले जाते हैं, जो अपने शरीर और जीवन के प्रति उदासीन हैं, जिन्होंने अरहतत्व प्राप्त कर लिया है, जो अतिरिक्त व्रतों के पालन के गुणों को सर्वोच्च महत्व देते हैं—ऐसे भिक्षुओं को, हे राजा, "भगवान के धर्म नगर के न्यायाधीश" कहा जाता है।

और हे महाराज, जो भिक्षु शुद्ध और निष्कलंक हैं, जिनमें कोई बुराई शेष नहीं है, जो प्राणियों के पतन और उत्थान के ज्ञान में निपुण हैं और जिन्होंने स्वयं को दिव्य दृष्टि में सिद्ध कर लिया है—हे महाराज, ऐसे भिक्षुओं को "भगवान के धर्म नगर में प्रकाशदाता" कहा जाता है।

और इसके अतिरिक्त, हे राजा, उन भिक्षुओं में से जो परंपराओं के ज्ञाता हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही बातों को आगे बढ़ाते हैं, जो प्रवचनों, विधि शास्त्रों और विषय-सूची का पुनरावलोकन करते हैं, जो अक्षरों को करणी और स्वरों में सटीक रूप से निर्धारित करने में कुशल हैं,

चाहे वह हल्का हो या भारी, चाहे लंबा हो या छोटा, जो नौ प्रकार के वचन को कंठस्थ जानते हों—हे राजा, ऐसे भिक्षुओं को "भगवान के धर्म नगर में शांति अधिकारी" कहा जाता है।

और हे महाराज, जो भिक्षु विनय (संप्रदाय के नियम, विधि-विधान) में पारंगत हैं, विनय में ज्ञानी हैं, अपराधों के स्रोत का पता लगाने में निपुण हैं, यह निर्णय लेने में निपुण हैं कि कोई कार्य अपराध है या नहीं, अपराध गंभीर है या मामूली, उसका प्रायश्चित किया जा सकता है या नहीं, अपराध के उत्पन्न होने, स्वीकार करने, क्षमा करने या कबूल करने के संबंध में; अपराधी के निलंबन, बहाली या बचाव के संबंध में, जो विनय में पूर्ण स्वामी हैं—हे महाराज, ऐसे भिक्षुओं को "भगवान के धर्म नगर में रूप-दक्ष" कहा जाता है।

और इसके अतिरिक्त, हे राजा, उन भिक्षुओं में से जो अपने माथे पर उस महान मुक्ति की कमल माला धारण करते हैं, जिन्होंने उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है।

सभी अवस्थाओं में सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और सबसे उत्कृष्ट, जो असंख्य लोगों द्वारा प्रिय और प्रशंसित हैं—ऐसे भिक्षुओं को, हे राजा, "भगवान के धर्म नगर में फूल बेचने वाले" कहा जाता है।

और हे महाराज, वे भिक्षु जिन्होंने चारों सत्यों को भलीभांति जान लिया है और उन्हें अपनी आँखों से देख लिया है, जो शिक्षा में ज्ञानी हैं, जिन्होंने समनत्व के चारों फलों के बारे में संदेह से परे होकर, उन फलों को प्राप्त करके उन अन्य लोगों के साथ साझा करते हैं जिन्होंने मार्ग में प्रवेश किया है—ऐसे भिक्षुओं को, हे महाराज, "धर्म नगर में फल विक्रेता" कहा जाता है।

और हे महाराज, जो भिक्षु उत्तम आचरण की उस उत्कृष्ट सुगंध से अभिषेकित होकर अनेक सद्गुणों से संपन्न होते हैं और पाप एवं बुरे स्वभाव की दुर्गंध को दूर करने में सक्षम होते हैं, उन्हें हे महाराज, "भगवान के धर्म नगर में सुगंध विक्रेता" कहा जाता है।

और हे राजा, उन भिक्षुओं में से जो धम्म में आनंदित होते हैं, जिनकी बातचीत सुखद होती है, जो धर्म और विनय की उच्चतर सूक्ष्मताओं में अत्यधिक आनंद पाते हैं, जो या तो वन में, या वृक्षों की तलहटी में, या एकांत में ध्यान लगाते हैं।

हे राजा, धर्म के मीठे रस का पान करने वाले भिक्षु, जो अपने शरीर, वाणी और मन से धर्म के मीठे रस में डूबे हुए, धर्म की व्याख्या करने में, विभिन्न सिद्धांतों में छिपे गहरे सत्यों की खोज करने में और उन्हें पहचानने में श्रेष्ठ हैं, वे जहाँ कहीं भी और जब भी अल्प इच्छा, संतोष, एकांत, विश्राम, उत्साहपूर्ण परिश्रम, सही आचरण, ध्यान, ज्ञान, मुक्ति, मुक्ति के आश्वासन से उत्पन्न अंतर्दृष्टि का प्रवचन होता

है, वहाँ जाकर उस प्रवचन की मीठी सुगंध का पान करते हैं। हे राजा, ऐसे भिक्षुओं को "भगवान के धर्म नगर में प्यासे और मदहोश" कहा जाता है।

और हे महाराज, जो भिक्षु रात के पहले पहर से लेकर आखिरी पहर तक जागते रहने के अभ्यस्त हैं, जो दिन-रात बैठकर, खड़े होकर या इधर-उधर चलकर ध्यान करते हैं, जो चिंतन के अभ्यस्त होकर बुरी प्रवृत्तियों को दबाकर अपनी उन्नति के लिए समर्पित हैं—हे महाराज, ऐसे भिक्षुओं को "भगवान के धर्म नगर के पहरेदार" कहा जाता है।

और इसके अलावा, हे राजा, जो भिक्षु आत्मा और अक्षर दोनों में, उसके तर्कों और व्याख्याओं में, उसके कारणों और उदाहरणों में, बुद्ध के नौ गुना वचन का उपदेश देते हैं, दोहराते हैं, उच्चारण करते हैं और सारांशित करते हैं, उन्हें हे राजा, "भगवान के धर्म नगर में वकील (धर्म के व्यापारी)" कहा जाता है।

और इसके अलावा, हे राजा, जो भिक्षु धर्म के खजाने, परंपराओं, ग्रंथों और उनके ज्ञान में समृद्ध और धनी हैं, जो उनके संकेतों, स्वरों और व्यंजनों को उनके सभी विवरणों में समझते हैं, और अपने ज्ञान से सभी दिशाओं में व्याप्त हैं—ऐसे भिक्षुओं को, हे राजा, "भगवान के धर्म नगर में धर्म के धनी" कहा जाता है।

और इसके अतिरिक्त, हे महाराज, जो भिक्षु उच्चतर शिक्षा को प्राप्त कर चुके हैं, जो व्याख्या और अभ्यास किए जाने वाले ध्यान के विषयों के विभाजन को समझते हैं, जो प्रशिक्षण के सभी सूक्ष्म बिंदुओं में परिपूर्ण हैं—ऐसे भिक्षुओं को, हे महाराज, "धर्म नगर में धर्म के विशिष्ट गुरु" कहा जाता है।

24. हे राजा, इस प्रकार सुनियोजित, सुसज्जित, रसदयुक्त, स्थापित, सुरक्षित और शत्रुओं से अभेद्य, भगवान बुद्ध का धर्म नगर है। और इस व्याख्या, इस तर्क और इस कारण से, आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भगवान बुद्ध का अस्तित्व एक समय था।

(I) "जैसे जब लोग किसी सुंदर, सुनियोजित शहर को देखते हैं, तो वे अनुमान से जान जाते हैं कि उसका संस्थापक कितना महान था; वैसे ही जब वे हमारे प्रभु के 'धर्म के शहर' को देखते हैं, तो वे अनुमान से जान जाते हैं कि वह एक समय अस्तित्व में था।"

(2) "जैसे मनुष्य, इसकी लहरों को देखकर, अनुमान से, विश्व को समाहित करने वाले सागर की विशालता और शक्ति का अंदाजा लगा सकते हैं; वैसे ही वे बुद्ध का भी अंदाजा लगा सकते हैं जब वे उन लहरों को देखें जो उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के संसार में उत्पन्न कीं—वह जो युद्ध में अजेय रहे, सभी दुखों को दूर करते हैं, जिन्होंने अपने हृदय से लालसा की भयानक शक्ति को जड़ से उखाड़ फेंका, और अपने अनुयायियों को पुनर्जन्म के भंवर से मुक्त किया— 'जिस प्रकार शुभ धर्म की लहरें फैलती और उमड़ती हैं, उसी प्रकार हमारे प्रभु, बुद्ध, महान और शक्तिशाली होंगे।'

(3) "जैसे मनुष्य, हिमालय की विशाल चोटियों को देखकर, अनुमान से उसकी अद्भुत ऊँचाई का अंदाजा लगा सकते हैं; वैसे ही जब वे बुद्ध के धर्म पर्वत को देखते हैं—जो दृढ़ है, तीव्र वासना के तूफानी झटकों से अविचलित है, शांति और सुकून की अद्भुत ऊँचाइयों पर विराजमान है, जहाँ कामवासना, बुराई और कर्म साँस नहीं ले सकते—तो वे यह निष्कर्ष निकालते हैं: 'इस पर्वत की ऊँचाई के समान ही उस महान वीर की शक्ति है जिसके वचन पर यह पर्वत टिका है।'"

(4) "जैसे मनुष्य, हाथी राजा के पदचिह्न देखकर अनुमान लगा सकते हैं: 'उसका आकार कितना विशाल होगा!' उसी प्रकार जब वे मनुष्य रूपी हाथी, बुद्ध, ज्ञानी व्यक्ति के पदचिह्न को उस मार्ग पर देखते हैं जिस पर मनुष्य चले हैं, तो वे अनुमान से जान जाते हैं: 'बुद्ध कितने गौरवशाली थे!'"

(5) जैसे जब वे सभी जीवित प्राणियों को भय से दुबके हुए देखते हैं, तो वे जान जाते हैं: यह पशुओं के राजा की गर्जना है जो उन्हें डराती है।' इसी प्रकार, जब वे अन्य शिक्षकों को भय से कांपते और भागते हुए देखते हैं, तो वे जान जाते हैं: यह सत्य के राजा ने उदात्त शब्द कहे हैं!'

(6) धरती को मुस्कुराते हुए, अच्छी तरह से सींची हुई, हरी-भरी घास से लदी देखकर, लोग कहते हैं: 'एक बड़ी और सुखद बारिश हुई है।' इसलिए जब वे इस भीड़ को आनंदित, शांत और धन्य देखते हैं, तो वे अनुमान लगा सकते हैं: 'कितनी मधुर बारिश थी जिसने उनके दिलों को शांत कर दिया!'

(7) विशाल पृथ्वी को भीगा हुआ, दलदली, कीचड़ से भरा देखकर मनुष्य कहते हैं: 'जल का विशाल सैलाब उमड़ पड़ा है।' इसलिए, जब वे इस विशाल समूह को देखते हैं, जो कभी पाप के कीचड़ से व्याकुल था, धर्म की धारा में बहकर, अच्छे नियम के विशाल सागर में, कुछ यहाँ, कुछ वहाँ, सभी, देवता और मनुष्य समान रूप से, अमृतमय लहरों में डूबे हुए, तो वे निष्कर्ष निकाल सकते हैं और कह सकते हैं: 'धर्म कितना महान है!'

(8) "जैसे यात्रा करते समय मनुष्य जब चारों ओर फैली एक मधुर सुगंध को महसूस करते हैं और प्रसन्न होते हैं, तो वे तुरंत अनुमान लगाते हैं, 'निश्चित रूप से, विशाल वन वृक्षों में फूल खिल रहे हैं!' उसी प्रकार, पृथ्वी और आकाश में व्याप्त धर्म की इस मधुर सुगंध को महसूस करते हुए, वे अनुमान लगा सकते हैं: 'एक समय में, असीम महान बुद्ध अवश्य ही जीवित रहे होंगे!'"

25. हे महाराज, बुद्ध की महानता को सौ या हज़ार उदाहरणों, कारणों, तर्कों और उपमाओं से प्रकट करना संभव होगा। हे महाराज, जिस प्रकार एक कुशल मालाकार अपने गुरु के निर्देशों का पालन करते हुए और अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा का प्रयोग करते हुए, सभी प्रकार के फूलों के एक ढेर से अनेक प्रकार के सुंदर गुलदस्ते बनाता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, वह बुद्ध मानो अनंत, असीम, सद्गुणों से भरे फूलों का ढेर हैं। और मैं, एक मालाकार, मानो...

विजेता के गिरजाघर में, उन फूलों को एक साथ पिरोकर—अपने प्राचीन गुरुओं के मार्ग का अनुसरण करते हुए और मुझमें विद्यमान ज्ञान की शक्ति का उपयोग करते हुए—असंख्य उपमाओं के माध्यम से बुद्ध की शक्ति को प्रकट किया जा सकता है। परन्तु दूसरी ओर, आपको उन्हें सुनने की इच्छा प्रकट करनी होगी।'

'नागसेन, ऐसे उदाहरणों से निष्कर्ष निकालकर किसी अन्य व्यक्ति के लिए बुद्ध की शक्ति को सिद्ध करना कठिन होगा। हे पूज्य नागसेन, इस समस्या की आपकी इतनी परिपूर्ण और विविध व्याख्या से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ।'

अनुमान लगाने की समस्या यहीं समाप्त होती है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VI: धुतंगस

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-18-||----->>>> अगला

1. राजा ने वन में भिक्षुओं को देखा, जो अकेले और मनुष्यों से दूर, कठिन व्रतों का पालन कर रहे थे। फिर उन्होंने गृहस्थों को भी देखा, जो अपने घरों में, आर्य मार्ग के मीठे फल भोग रहे थे। इन दोनों को देखकर उनके मन में गहरा संदेह उत्पन्न हुआ। 'यदि गृहस्थ भी सत्य को जान लें, तो व्रत रखना व्यर्थ होगा। आइए! मैं उस श्रेष्ठ गुरु से प्रार्थना करता हूँ, जो बुद्ध के वचनों के त्रिगुण में पारंगत हैं और शत्रु के तर्कों को पराजित करने में कुशल हैं। वे ही मेरे संदेहों का समाधान कर सकेंगे!'

2. अब राजा मिलिंद नागसेन के पास गए और उनके सामने प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने नागसेन से कहा, "हे आदरणीय नागसेन, क्या कोई ऐसा गृहस्थ है जो घर में रहकर, इंद्रियों के सुखों का आनंद लेते हुए, पत्नी और बच्चों से घिरे घर में रहता हो, बनारस की चंदन, माला, इत्र और मलहम का उपयोग करता हो, सोना-चांदी ग्रहण करता हो, हीरे, मोती और सोने से जड़ा हुआ कढ़ाईदार मुकुट धारण करता हो—क्या ऐसा कोई है जिसने निर्वाण, परम शांति और निर्वाण को प्रत्यक्ष रूप से देखा हो?"

'हे राजा, केवल सौ ही नहीं, न दो और न ही'

तीन, पाँच, छह सौ, केवल एक हजार, एक लाख, दस करोड़, दस करोड़, यहाँ तक कि एक अरब आम लोगों ने भी निर्वाण प्राप्त नहीं किया है—बीस, तीस, सौ या एक हजार लोगों की तो बात ही छोड़िए जिन्होंने (चार सत्यों की) स्पष्ट समझ प्राप्त कर ली है।

मैं आपके सामने किस प्रकार का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करूं जिससे यह सिद्ध हो कि मुझे यह बात पता है?

'क्या तुम खुद मुझे बताओगे?'

3. 'तो, हे महाराज, मैं इसे समझाता हूँ। बुद्ध के नौ गुना वचन में जीवन की पवित्रता, मार्ग की प्राप्ति और व्रतों के अधीन उत्तम जीवन शैली के विभाजन से संबंधित सभी अंश इस संदर्भ में प्रस्तुत किए जाएँगे। हे महाराज, जिस प्रकार किसी देश के निचले और ऊँचे स्थानों, समतल और ऊबड़-खाबड़, सूखी और गीली भूमि सहित सभी क्षेत्रों में वर्षा का जल बहकर विशाल सागर में मिल जाता है; उसी प्रकार ये सभी अंश यहाँ आकर आपस में जुड़ेंगे। और मेरे अनुभव और ज्ञान से प्राप्त तर्कों का स्पष्टीकरण भी दिया जाएगा। इस प्रकार इस विषय का गहन विश्लेषण किया जाएगा, इसकी सुंदरता को उजागर किया जाएगा, इसका सार निकाला जाएगा और इसे पूर्णतः समझाया जाएगा।

विश्राम करना। हे राजा, यह वैसा ही होगा जैसे कोई कुशल लेखक, अनुरोध पर अपनी लेखन क्षमता का प्रदर्शन करते हुए, अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर लिखित संकेतों की व्याख्या करता है, और इस प्रकार उसका लेखन पूर्ण, परिपूर्ण और दोषरहित हो जाता है। उसी प्रकार मैं भी अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर तर्कों का स्पष्टीकरण दूंगा; और इस प्रकार इस विषय का गहन विश्लेषण होगा, इसकी सुंदरता उजागर होगी, यह समाप्त होगा, और इसका समापन होगा।

4. हे राजा, सावत्थी नगर में, भगवान बुद्ध के लगभग पचास करोड़ शिष्य, भक्त पुरुष और भक्त स्त्रियाँ, मार्ग पर चल रहे थे, और उनमें से तीन लाख सत्तावन हजार तीसरे मार्ग के फल में स्थापित हो गए। और वे सभी गृहस्थ थे, संघ के सदस्य नहीं थे। और वहाँ भी, गंडम्बा वृक्ष के चरणों में, जब दोहरा चमत्कार हुआ, तो दो करोड़ जीव (चार सत्यों के) ज्ञान की प्राप्ति हुई। और फिर राहुलवाद प्रवचन, महा मंगल प्रवचन, समाकित्त व्याख्या और...

[पैराग्राफ जारी है] पराभव प्रवचन, पुरभेद प्रवचन, कलह-विवाद प्रवचन, कुल-व्यूह प्रवचन, महा-व्यूह प्रवचन, तुवतक प्रवचन और सारिपुत्त प्रवचन से असंख्य दिव्य प्राणियों ने (चार सत्यों का) ज्ञान प्राप्त किया। रागगृह नगर में साढ़े तीन लाख श्रद्धालु गृहस्थ पुरुष और महिलाएं, भगवान बुद्ध के शिष्य, मार्ग पर चल रहे थे। और फिर धनपाल नामक विशाल हाथी को वश में करने के समय नौ सौ मिलियन जीव, और फिर पाषाणिका केतिया में पारायन प्रवचन के अवसर पर सभा में एक सौ चालीस मिलियन जीव, और फिर इंद्राशाला गुफा में आठ सौ मिलियन देवता, और फिर बनारस के इसिपताना हिरण पार्क में धम्म के प्रथम उपदेश के समय एक सौ अस्सी मिलियन ब्रह्मा देवता और असंख्य अन्य, और फिर तैंतीस के स्वर्ग में पांडु कंबला चट्टान पर अभिधम्म के उपदेश के समय आठ सौ मिलियन देवता, और देवताओं के लोक से संकस्सा नगर के द्वार पर अवतरण के समय, संसार में प्रकट होने के चमत्कार के समय।

तीन सौ मिलियन विश्वासी पुरुषों और देवताओं ने (चार सत्यों का) ज्ञान प्राप्त किया। फिर कपिल-वत्थु में शाक्यों के बीच, निग्रोध आराम में बुद्धवंश के उपदेश से, और फिर महा समय सूत्र के उपदेश से, अनगिनत देवताओं ने धम्म का ज्ञान प्राप्त किया। और फिर सुमना (मालाकार), गरहादिन्ना, आनंद (धनी), गंबुका (नग्न तपस्वी), मंदूका (देवता), मत्तकुंडली (देवी), सुलासा (वेश्या), सिरिमा (वेश्या), बुनकर की पुत्री, सुभद्दा, साकेत ब्राह्मण के दाह संस्कार, सूनापरंतों, सक्का द्वारा पूछे गए प्रश्न, तिरोकुड्डा सूत्र और रत्न सूत्र के अवसर पर आयोजित सभाओं में, प्रत्येक अवसर पर चौरासी हजार लोगों ने धम्म का ज्ञान प्राप्त किया। हे राजा, जब तक भगवान बुद्ध संसार में रहे, तीनों महाभागों में जहाँ कहीं भी रहे...

(भारत में) या सोलह प्रमुख देशों में जहाँ वह रहे, वहाँ सामान्यतः दो, तीन, चार, पाँच सौ, एक हजार, या एक लाख, देवता और मनुष्य, सभी ने निर्वाण, परम शांति और आनंद का प्रत्यक्ष अनुभव किया। और हे राजा, वे सभी देवता गृहस्थ थे। उन्होंने संघ में प्रवेश नहीं किया था। अतः हे राजा, इन और अन्य अरबों देवताओं ने—यहाँ तक कि गृहस्थ रहते हुए, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए—शांति, परम शांति और निर्वाण की स्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव किया।

5. हे पूज्य नागसेन, यदि गृहस्थ जीवन में रहकर इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले गृहस्थ निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं, तो इन अतिरिक्त व्रतों का क्या उद्देश्य है? ऐसा होने पर तो व्रत तो उपद्रव का कारण ही होंगे। क्योंकि, नागसेन, यदि रोग बिना दवा के ठीक हो जाते, तो उल्टी कराने वाली दवाओं, दस्त की दवाओं और अन्य ऐसी ही औषधियों से शरीर को कमजोर करने का क्या लाभ होता? यदि शत्रुओं को केवल मुक्कों से ही वश में किया जा सकता, तो तलवारों, भालों, बरछियों, धनुषों, क्रॉसबो, गदाओं और गदाओं की क्या आवश्यकता होती? यदि वृक्षों पर उनकी गांठों, टेढ़े-मेढ़े और खोखले स्थानों, उन पर उगने वाली कांटेदार शाखाओं और लताओं की सहायता से चढ़कर ही पहुंचा जा सकता, तो लंबी और मजबूत सीढ़ियों की खोज में जाने की क्या आवश्यकता होती? यदि नंगी जमीन पर सोने से निर्वाण प्राप्त हो जाता, तो

जब शरीर को आराम मिल रहा हो, तो मुलायम और आरामदायक बिस्तरों की तलाश क्यों करनी चाहिए?—यदि कोई अकेले ही दुर्गम और खतरों से भरे रेगिस्तान को पार कर सकता है, तो उसे हथियारों से लैस भव्य काफिले का इंतजार क्यों करना चाहिए?—यदि कोई

व्यक्ति अपने बल पर बहती नदी को पार कर सकता है, तो उसे मजबूत बांधों या नावों की क्या आवश्यकता है?—यदि वह अपनी संपत्ति से अपने लिए भोजन और आवास की व्यवस्था कर सकता है, तो उसे दूसरों की सेवा करने, मीठी बातों से उनकी चापलूसी करने और इधर-उधर भागने की क्या जरूरत है?—जब उसे प्राकृतिक स्रोत से पानी मिल सकता है, तो उसे कुएँ, तालाब और कृत्रिम पोखर क्यों खोदने चाहिए? और ठीक इसी प्रकार, हे पूज्य नागसेन, यदि गृहस्थ जीवन में रहकर और इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए भी मनुष्य अपने भीतर शांति, परम सुख, निर्वाण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है, तो इन व्रतों को लेने की क्या आवश्यकता है?

6. हे राजा, व्रतों में ये अट्ठाईस अच्छे गुण निहित हैं, सद्‌गुण वास्तव में उनमें अंतर्निहित हैं; और इन्हीं के कारण सभी बुद्धों ने समान रूप से इनकी कामना की है और इन्हें प्रिय माना है। और वे अट्ठाईस क्या हैं? हे राजा, व्रतों का पालन करना बुराई रहित जीवन शैली का संकेत देता है, इसका फल आनंदमय शांति है, यह निंदा से बचाता है, यह दूसरों को कोई हानि नहीं पहुँचाता, यह खतरे से मुक्त है, यह दूसरों पर कोई कष्ट नहीं लाता, यह निश्चित रूप से अच्छाई में वृद्धि लाता है, यह क्षीण नहीं होता, यह भ्रम नहीं पैदा करता, यह स्वयं में एक सुरक्षा है, यह इच्छाओं की संतुष्टि और सभी प्राणियों के वशीकरण का कार्य करता है, यह आत्म-संयम के लिए अच्छा है।

यह उचित है, (जो व्रतों का पालन करता है) वह आत्मनिर्भर होता है, मुक्त होता है; व्रतों का पालन कामवासना, द्वेष और सुस्ती का नाश करता है; यह अहंकार को दूर करता है, बुरे विचारों को काटता है, संदेह को दूर करता है, आलस्य को दबाता है और असंतोष को मिटाता है; यह धीरज है, इसका पुण्य अतुलनीय है, इसका गुण असीम है, और यह वह मार्ग है जो हर दुःख के अंत की ओर ले जाता है। हे राजा, ये व्रतों में निहित अट्ठाईस अच्छे गुण हैं; और इन्हीं के कारण सभी बुद्धों ने समान रूप से इनकी कामना की है और इन्हें प्रिय माना है।

7. हे राजा, जो कोई भी प्रतिज्ञाओं का पूर्णतया पालन करता है, वह अठारह गुणों से परिपूर्ण हो जाता है। ये अठारह गुण क्या हैं? उनका आचरण शुद्ध होता है, उनका मार्ग सिद्ध होता है, वे कर्म और वचन में सजग होते हैं, उनका व्यवहार और मन पूर्णतया शुद्ध होता है, उनका उत्साह कभी कम नहीं होता, उनके सभी भय दूर हो जाते हैं, उनकी वैयक्तिकता के सभी भ्रम (स्थायित्व और स्तर के संबंध में) दूर हो जाते हैं, क्रोध का अंत हो जाता है और उनके हृदय में (सभी प्राणियों के प्रति) प्रेम उत्पन्न हो जाता है, वे भोजन ग्रहण करते समय भोजन के संबंध में तीन उचित दृष्टिकोणों से भोजन करते हैं, वे सम्मानित होते हैं।

सभी मनुष्य संयमी होते हैं, वे सतर्क रहते हैं, उन्हें घर की आवश्यकता नहीं होती; जहाँ भी कोई सुखद स्थान होता है, वे वहीं निवास करते हैं; वे बुराई करने से घृणा करते हैं; वे एकांत में आनंदित होते हैं; वे सदा गंभीर रहते हैं। हे राजा, ये वे अच्छे गुण हैं जिनसे व्रतों का पालन करने वाले पूर्णतः संपन्न होते हैं।

8. हे राजा, ये दस व्यक्ति प्रतिज्ञाओं में निहित लाभों के योग्य हैं—विश्वास से परिपूर्ण, गलत कार्य करने से लज्जित, साहसी, कपट रहित, आत्मसंयमी, अस्थिर न होने वाला, सीखने का इच्छुक, कठिन कार्य करने में प्रसन्न, आसानी से नाराज न होने वाला, प्रेममय हृदय वाला। हे राजा, ये दस व्यक्ति प्रतिज्ञाओं में निहित लाभों के योग्य हैं।

9. हे राजा, वे सभी जो गृहस्थी में रहकर इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए शांति, परम सुख, निर्वाण की अवस्था को अपने भीतर प्राप्त करते हैं—उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में तेरह व्रतों का पालन करके प्रशिक्षण पूर्ण किया था, नींव रखी थी और उनके द्वारा अपने आचरण और चाल को शुद्ध किया था; और अब भी, गृहस्थी में रहकर इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए, वे शांति, परम सुख, निर्वाण की अवस्था को अपने भीतर प्राप्त करते हैं। हे राजा, न्यायप्रिय, जैसे एक कुशल धनुर्धर नियमित क्रम में प्रशिक्षण मैदान में अपने शिष्यों को विभिन्न प्रकार के धनुष, धनुष को पकड़ने का तरीका, उसे दृढ़ता से थामे रखने का तरीका, उंगलियों को मोड़ने का तरीका, पैरों को जमाने का तरीका, बाण को उठाने का तरीका और उसे निशाने पर रखने का तरीका सिखाता है।

डोरी को पकड़ना, उसे वापस खींचना, उसे नियंत्रित करना, लक्ष्य पर निशाना लगाना और इस प्रकार भूसे के बने व्यक्ति, खानका पौधे से बने लक्ष्य, घास, भूसे, मिट्टी के ढेर या ढालों को भेदना—और उसके बाद, उन्हें राजा की सेवा में लगाकर, वह उच्च नस्ल के घोड़ों, रथों, हाथियों, घोड़ों, धन, अनाज, लाल सोने, दासियों, दासों, पत्नियों और भूमि का पुरस्कार प्राप्त करता है। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, वे सभी जो गृहस्थ रहते हुए इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं, अपने भीतर शांति, परम सुख, निर्वाण की स्थिति को प्राप्त करते हैं—उन्होंने पिछले जन्मों में तेरह व्रतों के अभ्यास में अपना प्रशिक्षण पूर्ण किया था, नींव रखी थी, उनके माध्यम से अपने आचरण और चाल को शुद्ध किया था; और अब भी, गृहस्थ रहते हुए इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए, वे अपने भीतर शांति, परम सुख, निर्वाण की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

10. हे राजा, व्रतों का पूर्वपालन किए बिना एक ही जन्म में अरहतत्व की प्राप्ति नहीं होती। केवल अत्यंत उत्साह और धर्म के पूर्ण समर्पणपूर्ण अभ्यास से तथा एक उपयुक्त गुरु की सहायता से ही अरहतत्व की प्राप्ति होती है। हे राजा, न्यायसंगत, जैसे एक चिकित्सक या शल्यचिकित्सक पहले शुल्क देकर या सेवा करके अपने लिए एक गुरु प्राप्त करता है, और फिर

वह स्वयं को लैंसेट पकड़ने, उससे काटने, निशान लगाने या छेद करने, तीर निकालने, घावों को साफ करने, उन्हें सुखाने, मलहम लगाने, उल्टी कराने वाली दवाएँ, दस्त लाने वाली दवाएँ और तेलयुक्त एनीमा देने का पूर्ण प्रशिक्षण देता है, और जब वह इस प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है, अपनी शिक्षा पूरी कर लेता है, और स्वयं को कुशल बना लेता है, तभी वह बीमारों के पास जाकर उनका इलाज करता है। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, वे सभी जो गृहस्थ रहते हुए इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं, अपने भीतर शांति, परम सुख, निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करते हैं—उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में तेरह व्रतों के पालन में अपना प्रशिक्षण पूर्ण किया था, नींव रखी थी, और उनके माध्यम से अपने आचरण और चाल को शुद्ध किया था; और अब भी, गृहस्थ रहते हुए, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए, वे अपने भीतर शांति, परम सुख, निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करते हैं।

11. 'जो लोग व्रतों के पालन से प्राप्त होने वाले गुणों से शुद्ध नहीं होते, उन्हें सत्य का ज्ञान नहीं होता। जैसे जल के बिना बीज नहीं उगता, वैसे ही व्रतों के पालन से शुद्ध न होने वालों को सत्य का ज्ञान नहीं होता। जैसे पुण्य कर्म न करने वालों को आनंदमय पुनर्जन्म नहीं मिलता, वैसे ही व्रतों के पालन से शुद्ध न होने वालों को सत्य का ज्ञान नहीं होता।'

12. हे राजा, प्रतिज्ञाओं का पालन करने से उत्पन्न होने वाला चरित्र विशाल पृथ्वी के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों के लिए आधार बनता है। हे राजा, यह जल के समान है, जो सभी वस्तुओं के दाग धो देता है।

जो शुद्ध होना चाहते हैं, उनके भीतर की बुराई को यह अग्नि के समान जलाकर राख कर देता है। हे राजा, यह वायु के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों के भीतर की बुराई की धूल को उड़ा ले जाता है। हे राजा, यह औषधि के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों के भीतर बुराई के रोग को शांत करता है। हे राजा, यह अमृत के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों के भीतर बुराई के विष का विषनाशक है। हे राजा, यह उपजाऊ भूमि के समान है, जिस पर शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों के लिए त्याग के सभी गुणों की फसल उगाई जाती है। हे राजा, यह मनोकामना पूरी करने वाले रत्न के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों को उनकी सभी उच्च उपलब्धियों को प्रदान करता है। हे राजा, यह नौका के समान है, जो शुद्ध होने की इच्छा रखने वालों को पुनर्जन्म के विशाल सागर के पार ले जाती है। हे राजा, यह एक शरणस्थल के समान है, जहाँ पवित्रता की इच्छा रखने वाले वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से सुरक्षित रह सकते हैं। हे राजा, यह एक माता के समान है, जो पाप के दुःखों से पीड़ित पवित्रता की इच्छा रखने वालों को सांत्वना देती है। हे राजा, यह एक पिता के समान है, जो पवित्रता की इच्छा रखने वालों में संसार त्यागने वालों के सभी अच्छे गुणों को उत्पन्न करता है और उन्हें बढ़ाता है। हे राजा, यह एक मित्र के समान है, जो संसार त्यागने वालों के अच्छे गुणों की खोज में पवित्रता की इच्छा रखने वालों को निराश नहीं करता। हे राजा, यह कमल के फूल के समान है, जो बुराई के दाग से कभी कलंकित नहीं होता। यह कीमती इत्र (केसर, चमेली, तुर्की और यूनानी धूप) के समान है।

हे राजा, क्या यह पवित्रता चाहने वालों के लिए बुराई की दुर्गंध को दूर करने के लिए है? हे राजा, क्या यह एक ऊंचे पर्वत श्रृंखला के समान है, क्या यह पवित्रता चाहने वालों को इस संसार में मनुष्य के अधीन रहने वाली आठ अवस्थाओं (लाभ और हानि, यश और अपमान, प्रशंसा और निंदा, सुख और दुःख) की हवाओं के प्रकोप से बचाने के लिए है? हे राजा, क्या यह स्वर्ग के समान है, क्या यह सभी बाधाओं से मुक्त है, क्या यह विशालता और व्यापकता प्रदान करता है, क्या यह पवित्रता चाहने वालों को प्रदान करता है? हे राजा, क्या यह एक धारा के समान है, क्या यह पवित्रता चाहने वालों के लिए सभी बुराइयों के दाग को धो डालने के लिए है? हे राजा, क्या यह पुनर्जन्म के रेगिस्तान से, कामवासनाओं और पापों के जंगल से, क्या यह पवित्रता चाहने वालों को सुरक्षित बाहर निकालने के लिए एक मार्गदर्शक के समान है। हे राजा, यह एक शक्तिशाली कारवां के समान है, जो शुद्धि की इच्छा रखने वालों को निर्वाण के उस परम पवित्र नगर में सुरक्षित रूप से ले जाता है, जो शांत और निर्मल है, जहाँ भय का कोई स्थान नहीं है। हे राजा, यह एक उत्तम रूप से पॉलिश किए हुए बेदाग दर्पण के समान है, जो शुद्धि की इच्छा रखने वालों को सभी प्राणियों के मूल तत्वों का सच्चा स्वरूप दिखाता है। हे राजा, यह एक ढाल के समान है, जो शुद्धि की इच्छा रखने वालों को बुरी प्रवृत्तियों के गदाओं, बाणों और तलवारों से बचाता है। हे राजा, यह एक धूपदानी के समान है, जो शुद्धि की इच्छा रखने वालों को त्रिगुण अग्नि की झुलसा देने वाली गर्मी से बचाता है।

हे राजा, चंद्रमा ही वह है जिसकी पवित्रता की कामना करने वाले लोग प्रबल इच्छा रखते हैं। हे राजा, यह सूर्य के समान है जो पवित्रता की कामना करने वालों के अज्ञान के अंधकार को दूर करता है। हे राजा, यह सागर के समान है जो पवित्रता की कामना करने वालों में संसार का त्याग करने वालों के गुणों के अनमोल खजाने को उत्पन्न करता है, और ऐसा इसकी विशालता, इसकी असीमता और अनगिनत होने के कारण भी है।

13. हे राजा, यह उन लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी है जो शुद्ध होना चाहते हैं; यह सभी दुःख और विलाप को दूर करता है, असंतोष का इलाज है; यह भय, अहंकार और मन की उदासीनता का अंत करता है; बुराई, दुःख, पीड़ा, वासना, द्वेष, सुस्ती, अहंकार, विधर्म और सभी गलत प्रवृत्तियों का अंत करता है; यह अपने साथ सम्मान, लाभ और आनंद लाता है; यह उन्हें सहजता, प्रेम और मन की शांति से भर देता है; यह दोषरहित है; इसका फल सुख है; यह असीम और अनगिनत अच्छाई का खजाना है, सभी चीजों से अधिक मूल्यवान और बहुमूल्य है।

14. हे राजा, जिस प्रकार मनुष्य पोषण के लिए भोजन, स्वास्थ्य के लिए औषधि, सहायता के लिए मित्र, जलमार्ग पार करने के लिए नाव, सुगंध के लिए इत्र, सुरक्षा के लिए शरणस्थल, सहारे के लिए पृथ्वी, शिक्षा के लिए शिक्षक, सम्मान के लिए राजा और अपनी हर इच्छा की पूर्ति के लिए रत्न की खोज करते हैं—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, अरहत संसार के त्याग के सभी लाभों की प्राप्ति के लिए व्रतों के पालन के गुणों की खोज करते हैं।

15. और जो पानी बीजों के विकास के लिए है, जो आग जलाने के लिए है, जो भोजन शक्ति प्रदान करने के लिए है, जो लता चीजों को बांधने के लिए है, जो तलवार काटने के लिए है, जो पानी प्यास बुझाने के लिए है, जो खजाना आत्मविश्वास देने के लिए है, जो नाव दूर के किनारे तक जाने के लिए है, जो दवा रोग दूर करने के लिए है, जो रथ आराम से यात्रा करने के लिए है, जो शरणस्थल भय को शांत करने के लिए है, जो राजा रक्षा के लिए है, जो ढाल लाठी और डंडों, गदाओं, तीरों और बाणों के वार से बचाव के लिए है, जो शिक्षक शिक्षा के लिए है, जो माँ पालन-पोषण के लिए है, जो दर्पण देखने के लिए है, जो रत्न आभूषण के लिए है, जो पोशाक पहनने के लिए है, जो सीढ़ी चढ़ने के लिए है, जो तराजू तुलना करने के लिए है, जो ताबीज दोहराने के लिए है, जो हथियार तिरस्कार से बचाव के लिए है, जो दीपक अंधकार को दूर करने के लिए है, जो हवा बुखार को शांत करने के लिए है, जो कला का ज्ञान है... व्यापार की सफलता, जीवन की रक्षा के लिए औषधियाँ, रत्नों के उत्पादन के लिए खान, आभूषण के लिए रत्न, अपराध रोकने के लिए आदेश, प्रभुत्व के लिए संप्रभुता—हे राजा, ये सब प्रतिज्ञाओं के पालन से प्राप्त होने वाले गुण हैं, जो त्याग के बीज की अच्छी वृद्धि, बुराई के दागों को जलाने, इद्धि की शक्ति प्रदान करने, आत्म-संयम और मन की उपस्थिति में स्वयं को बांधने, संदेह और अविश्वास को पूरी तरह से दूर करने, लालसा की प्यास बुझाने, सत्य की अनुभूति में विश्वास दिलाने, चार प्रकार की धाराओं (इंद्रिय, व्यभिचार, भ्रम और अज्ञान) के पार जाने, बुरी प्रवृत्तियों के रोग को शांत करने, निर्वाण के आनंद की प्राप्ति, जन्म, वृद्धावस्था, क्षय और मृत्यु, शोक, पीड़ा, विलाप, दुःख और निराशा से उत्पन्न भय को शांत करने के लिए आवश्यक हैं। त्याग के लाभों से सुरक्षित रहने के लिए, असंतोष और बुरे विचारों को दूर करने के लिए, संसार का त्याग करने वालों के जीवन में निहित सभी अच्छाइयों का उपदेश देने के लिए, उसमें पोषण प्रदान करने के लिए, मनुष्यों को शांति और अंतर्दृष्टि, और उसके मार्ग और फलों तथा निर्वाण के बारे में समझाने के लिए, मनुष्यों को संसार की प्रशंसा और सम्मान में उच्च स्थान प्राप्त एक अनमोल आभूषण प्रदान करने के लिए, सभी बुरी अवस्थाओं के द्वार बंद करने के लिए, त्याग के पर्वत शिखरों तक पहुंचने के लिए, दूसरों में कुटिल, धूर्त और बुरे इरादों को पहचानने के लिए, उन गुणों का उचित पाठ करने के लिए जिनका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिनका नहीं, सभी बुरी प्रवृत्तियों को अपने शत्रु के रूप में दूर करने के लिए, अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए, त्रिगुण अग्नि की झुलसन से उत्पन्न बुखार को शांत करने के लिए, शांति की स्थिति की प्राप्ति के लिए - जो इतनी कोमल और इतनी सूक्ष्म है - एक संन्यासी के जीवन के गुणों की रक्षा के लिए।सात प्रकार के ज्ञान के बहुमूल्य रत्नों - आत्म-संयम, सत्य की खोज, ऊर्जा, आनंद, शांत चिंतन और शांति - के उत्पादन के लिए, संन्यासियों के अलंकरण के लिए, शांति से प्राप्त होने वाले उस निर्दोष, गूढ़, कोमल आनंद के विरुद्ध किसी भी प्रकार के उल्लंघन की रोकथाम के लिए, संन्यासियों और अरहतों द्वारा धारण किए जाने वाले सभी गुणों पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए। इस प्रकार, हे राजा, व्रतों का पालन करना इन सभी गुणों की प्राप्ति के समान है। और इसका लाभ, हे राजा, न तो तौला जा सकता है, न मापा जा सकता है; इसका कोई सानी नहीं, कोई प्रतिद्वंदी नहीं, कोई श्रेष्ठ नहीं; यह महान और गौरवशाली है, व्यापक और प्रचुर है, गहरा और विस्तृत है, और विशाल और व्यापक है, महत्व और शक्ति से परिपूर्ण है।

16. 'और हे राजा, जिसके हृदय में बुरी इच्छाएँ हों, जो पाखंडी हो, लालची हो, पेटू हो, भौतिक लाभ या सांसारिक यश और यश की चाह रखता हो, (अरहतत्व के बाह्य लक्षणों के लिए) अयोग्य हो, सिद्धियाँ प्राप्त न कर पाया हो, जिसका आचरण (संगठन की सदस्यता के साथ) असंगत हो, उसके लिए अनुपयुक्त हो, उसके लिए अनुपयुक्त हो—ऐसा कोई भी व्यक्ति व्रत ग्रहण करे, तो उसे दोहरा दंड मिलेगा, और वह अपने भीतर के गुणों से वंचित हो जाएगा। क्योंकि इस लोक में उसे अपमान, तिरस्कार, निंदा, उपहास, निलंबन, बहिष्कार और निष्कासन का सामना करना पड़ेगा; और अगले जन्म में उसे सौ मील गहरे महान अवीकी नरक में यातना सहनी पड़ेगी, जो माला की तरह गर्म और झुलसा देने वाली, भयंकर और अग्निमय लपटों से ढका हुआ है; उसमें वह असंख्य वर्षों तक ऊपर-नीचे और अगल-बगल उठता-गिरता रहेगा, मानो उबलते समुद्र में उछाला गया कोई झागदार बुलबुला इधर-उधर फेंका जा रहा हो। और जब वहाँ से मुक्त होगा, तब एक शक्तिशाली प्रेत (भूत) के रूप में, भिक्षु के बाहरी रूप में, परन्तु दुबले-पतले, खुरदुरे और काले शरीर और अंगों के साथ, सूजे हुए, फूले हुए और छेदों से भरे सिर के साथ, भूखा-प्यासा, रंग और रूप में विचित्र और भयानक, उसके कान फटे

हुए, आँखें निरंतर झपकती हुई, उसके अंग कष्टदायक घावों से भरे हुए, उसका पूरा शरीर कीड़ों का शिकार, उसका पेट हवा में धधकती भट्टी की तरह झुलसता हुआ और गर्म, फिर भी उसका मुँह सुई से भी छोटा, जिससे उसकी प्यास कभी बुझती नहीं, शरण लेने के लिए कोई जगह नहीं, मदद करने के लिए कोई रक्षक नहीं, कराहता-बिलखता और दया की भीख माँगता हुआ, वह पृथ्वी पर विलाप करता भटकता रहेगा!

17. 'हे राजा, न्यायसंगत! जो कोई भी राजगद्दी के लिए अयोग्य हो, उचित रूप से राजगद्दी प्राप्त किए बिना, राजगद्दी के लिए अनुपयुक्त हो, उसके योग्य न हो, उसके लिए अनुपयुक्त हो, नीच कुल का हो और वंश में नीच हो, यदि उसे राजा का अभिषेक प्राप्त हो, तो उसे अंग-भंग सहना पड़ेगा; उसके हाथ या पैर काट दिए जाएँगे, या उसके कान या नाक काट दिए जाएँगे, या उसे यातनाएँ दी जाएँगी; उसे दलिया के पात्र, शंख के मुकुट, राहु के मुख, अग्नि माला, हाथ की मशाल, साँप की पट्टियों, छाल के वस्त्र, चित्तीदार मृग, मांस के हुक, सिक्कों, खारे पानी की दरारों, छड़ घुमाने, या पुआल की गद्दी पर बिठाया जाएगा; या उसे उबलते तेल से अभिषेक किया जाएगा, या कुत्तों द्वारा खाया जाएगा, या जीवित सूली पर चढ़ाया जाएगा; या उसे उसका सिर कलम कर दिया जाएगा, या उसे अनेक प्रकार के दंड दिए जाएँगे। और क्यों? क्योंकि वह इसके लिए अयोग्य था, इसे विधिवत प्राप्त किए बिना, इसके लिए अनुपयुक्त, इसके योग्य नहीं, इसके लिए अनुपयुक्त, नीच कुल का और नीच वंश का होने के बावजूद, उसने संप्रभुता के सिंहासन पर आसीन होकर अपनी सीमा का उल्लंघन किया। ठीक इसी प्रकार, हे राजा, जिसके हृदय में बुरी इच्छाएँ हों, जो पाखंडी हो, लालची हो, अपने पेट का गुलाम हो, भौतिक लाभ या सांसारिक यश और यश की चाह रखता हो, (अरहतत्व के बाहरी लक्षणों के लिए) अयोग्य हो, योग्यताओं को प्राप्त न कर पाया हो, जिसका आचरण (आरहतत्व की सदस्यता के साथ) असंगत हो, इसके योग्य न हो, इसके लिए अनुपयुक्त हो—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करे, उसे दोहरा दंड भुगतना पड़ेगा, और अपने भीतर के गुणों को खोना पड़ेगा। इस संसार में उसे अपमान, तिरस्कार, निंदा, उपहास, निलंबन, बहिष्कार और निष्कासन का सामना करना पड़ेगा; उसे बहिष्कृत, अस्वीकृत और बर्खास्त कर दिया जाएगा; और अगले जन्म में उसे सौ मील गहरे और गर्म, झुलसा देने वाली, भयंकर और प्रचंड लपटों से ढके हुए विशाल अविकी नरक में यातना सहनी पड़ेगी; उसमें वह लाखों वर्षों तक ऊपर-नीचे और अगल-बगल उठता-गिरता रहेगा, मानो उबलते समुद्र में उछाला गया कोई झागदार बुलबुला हो। और, जब वह वहाँ से मुक्त हो जाता है, तो एक शक्तिशाली प्रेत (भूत) के रूप में, एक भिक्षु के बाहरी रूप में, लेकिन दुबले-पतले, खुरदुरे और काले शरीर और अंगों के साथ, सूजे हुए, फूले हुए और छेदों से भरे सिर के साथ, भूखा-प्यासा, रंग और रूप में विचित्र और भयानक, उसके सारे रथ फटे हुए, और उसकी आँखें लगातार झपकती रहती हैं, उसके अंग कष्टदायक घावों का ढेर होते हैं, उसका पूरा शरीर कीड़ों का शिकार होता है, उसका पेट हवा में धधकती भट्टी की तरह झुलसता और गर्म होता है, फिर भी उसका मुँह सुई से बड़ा नहीं होता जिससे उसकी प्यास कभी बुझती नहीं, भागने के लिए कोई शरण स्थान नहीं, उसकी सहायता करने के लिए कोई रक्षक नहीं, कराहता-बिलखता और दया की भीख मांगता हुआ, वह पृथ्वी पर विलाप करता भटकता रहेगा!

18. 'परन्तु हे राजा, जो भी योग्य हो, जिसने योग्यताएँ प्राप्त कर ली हों, जिसका आचरण संघ की सदस्यता के अनुरूप हो, जो इसके योग्य हो, इसके लिए उपयुक्त हो, जो कम इच्छा रखता हो और संतुष्ट हो, एकांतप्रिय हो, समाज से प्रेम न करता हो, उत्साह में सजग हो, दृढ़ निश्चयी हो, छल-कपट रहित हो, छल रहित हो, अपने पेट का गुलाम न हो, न भौतिक लाभ की चाह रखता हो, न सांसारिक यश या महिमा का, आस्था से परिपूर्ण हो, जिसने विश्वास (धर्मशास्त्र में, न कि सांसारिक उद्देश्यों से) के कारण संघ में प्रवेश किया हो, और वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति की तीव्र इच्छा रखता हो—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो धर्म को कायम रखने के उद्देश्य से प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करे, वह दुगुना सम्मान का पात्र है। क्योंकि वह देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रिय हैं, उनसे प्रेम किया जाता है और उनकी कामना की जाती है; वे उतने ही प्रिय हैं जितने स्नान किए और अभिषेक किए हुए व्यक्ति के लिए दुर्लभ चमेली के फूल, भूखे के लिए मीठा भोजन, प्यासे के लिए ठंडा, स्वच्छ और सुगंधित पानी, विष से पीड़ित व्यक्ति के लिए औषधि, जल्दबाजी में यात्रा करने वाले यात्री के लिए उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचा गया कीमती रथ, लाभ के लालची के लिए मनोकामना पूरी करने वाला रत्न, सिंहासन की महत्वाकांक्षा रखने वाले के लिए संप्रभुता की शुद्ध सफेद छतरी, और पवित्रता के साधक के लिए अरहतत्व के फलों की धन्य प्राप्ति। जो व्यक्ति चार गंभीर ध्यान, चार प्रकार के महा संघर्ष, संतत्व के चार मार्ग, पांच नैतिक इंद्रियों, पांच नैतिक शक्तियों, ज्ञान के सात रूपों और आर्य अष्टांगिक मार्ग पर पूर्ण महारत हासिल कर लेता है, उसके हृदय में शांति और अंतर्दृष्टि का राज होता है, अध्ययन के माध्यम से प्राप्ति उसके लिए सहज हो जाती है, और संन्यासी के जीवन के चार फल, चार प्रकार के विवेक, त्रिविध ज्ञान, छह प्रकार का उच्चतर ज्ञान, संक्षेप में, संन्यासियों का संपूर्ण धर्म उसका अपना हो जाता है; वह एक अभिषिक्त राजा होता है, और उस पर मुक्ति का शुद्ध श्वेत सूर्यछाया पड़ता है!

19. 'हे राजा, जिस प्रकार देश के सभी नागरिक और ग्रामीण, सैनिक और चपरासी (राजकीय दूत), शाही वंश में जन्मे और दोनों ओर से उच्च वंश वाले क्षत्रिय राजा की सेवा में तत्त्वम से रहते हैं, जब उनका क्षत्रिय राज्याभिषेक समारोहों के साथ किया जाता है; राजसी दल के अड़तीस दल, नर्तक, कलाबाज और ज्योतिषी,

और दूत, समन, ब्राह्मण और हर संप्रदाय के अनुयायी उसके दरबार में आते-जाते रहते हैं, और वह हर बंदरगाह, खान, शहर और सीमा शुल्क का स्वामी बन जाता है—हर विदेशी और अपराधी के भाग्य के बारे में निर्देश देता है—ठीक वैसे ही, हे राजा, जो भी योग्य है,

जिसने योग्यता प्राप्त कर ली है, जिसका आचरण संघ की सदस्यता के अनुरूप है, जो इसके योग्य है, इसके लिए उपयुक्त है, जो कम इच्छा रखता है और संतुष्ट है, एकांतप्रिय है, समाज से प्रेम नहीं करता है, उत्साह में तत्पर है, दृढ़ हृदय का है, छल रहित है, कपट रहित है, अपने पेट का गुलाम नहीं है, न तो भौतिक लाभ चाहता है और न ही सांसारिक प्रसिद्धि या यश, आस्था से परिपूर्ण है, जिसने विश्वास (धर्म में, न कि सांसारिक उद्देश्यों से) के कारण संघ में प्रवेश किया है, और वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति की तीव्र इच्छा रखता है—ऐसा कोई भी व्यक्ति जो धर्म को बनाए रखने के विचार से प्रतिज्ञा लेता है, वह दुगुना सम्मान का पात्र है। क्योंकि वह देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रिय हैं, उनसे प्रेम किया जाता है और उनकी कामना की जाती है; वे उतने ही प्रिय हैं जितने स्नान किए और अभिषेक किए हुए व्यक्ति के लिए दुर्लभ चमेली के फूल, भूखे के लिए मीठा भोजन, प्यासे के लिए ठंडा, स्वच्छ और सुगंधित पानी, विष से पीड़ित व्यक्ति के लिए औषधि, जल्दबाजी में यात्रा करने वाले यात्री के लिए उत्तम नस्ल के घोड़ों द्वारा खींचा गया कीमती रथ, लाभ के लालची के लिए मनोकामना पूरी करने वाला रत्न, सिंहासन की महत्वाकांक्षा रखने वाले के लिए संप्रभुता की शुद्ध सफेद छतरी, और पवित्रता के साधक के लिए अरहतत्व के फलों की धन्य प्राप्ति। जो व्यक्ति चार गंभीर ध्यान, चार प्रकार के महा संघर्ष, संतत्व के चार मार्ग, नैतिक इंद्रियों के पांच अंग, पांच नैतिक शक्तियां, ज्ञान के सात रूप और आर्य अष्टांगिक मार्ग पर पूर्ण महारत हासिल कर लेता है, उसके हृदय में शांति और अंतर्दृष्टि का राज होता है, अध्ययन के माध्यम से प्राप्ति उसके लिए सहज हो जाती है, और संन्यासी के जीवन के चार फल, चार प्रकार के विवेक, त्रिविध ज्ञान, छह प्रकार का उच्चतर ज्ञान, संक्षेप में, संन्यासियों का संपूर्ण धर्म उसका अपना हो जाता है; वह एक अभिषिक्त राजा होता है, और उस पर मुक्ति का शुद्ध श्वेत सूर्यछाया पड़ता है!

20. 'हे राजा, ये तेरह व्रत हैं जिनके द्वारा मनुष्य निर्वाण के विशाल जल में स्नान करके, लहरों में क्रीड़ा करते हुए धर्म के अनेक सुखों में लिप्त हो जाएगा; वह दिव्य परमानंद के आठ गुणों में लिप्त हो जाएगा; उसे इद्धि की शक्तियाँ प्राप्त होंगी; दूर से आने वाली मानवीय और दिव्य ध्वनियाँ उसके कानों को सुनाई देंगी; वह दूसरों के विचारों को जान सकेगा,

वह अपने पिछले जन्मों को याद कर सकेगा, और दूसरों के जन्म-दर-जन्म उत्थान और पतन को देख सकेगा, और वह जीवन के वास्तविक स्वरूप और उत्पत्ति को समझ सकेगा, वह दुख, कामवासना, व्यभिचार, भ्रम और अज्ञानता जैसे जीवन के कलंकों से मुक्ति पाने के साधन को समझ सकेगा!

और ये तेरह व्रत क्या हैं? कूड़े के ढेर से लिए गए टुकड़ों से बने वस्त्र पहनना—तीन वस्त्र पहनना, और केवल तीन वस्त्र—भीख मांगकर भोजन प्राप्त करना—घर-घर जाकर भीख मांगना—दिन में केवल एक बार, एक ही बार में भोजन करना—केवल एक ही बर्तन में भोजन करना—नियमों से अधिक भोजन न करना—जंगल में रहना—पेड़ की जड़ में रहना—खुले में रहना—कब्रिस्तान में या उसके पास रहना—एक बार सोने के लिए बिछाई गई चटाई या पलंग को न बदलना—और बैठकर सोना। हे राजा, जिसने पिछले जन्मों में इन तेरह व्रतों को अपनाया, अभ्यास किया, पालन किया, ध्यान रखा, अपने आचरण को इनके अनुसार ढाला और पूरा किया, वही संन्यासी जीवन के सभी फल प्राप्त करता है, और शांति और आनंद की समस्त अनुभूति उसका अपना हो जाती है।

21. हे राजा, जिस प्रकार कोई जहाज मालिक किसी बंदरगाह शहर में लगातार भाड़ा वसूल कर धनवान हो जाता है और खुले समुद्र में यात्रा करके वंगा, तकोला, चीन, सोवीरा, सूरत, अलेक्जेंड्रिया, कोरोमंडल तट, सुदूर भारत या किसी अन्य स्थान पर जा सकता है जहाँ जहाज एकत्रित होते हैं—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जिसने पूर्व जन्मों में इन तेरह व्रतों का पालन किया है, अभ्यास किया है, अनुसरण किया है, ध्यानपूर्वक अपने आचरण को इनके अनुसार ढाला है और पूर्ण किया है, वह संन्यासी के जीवन के सभी फल प्राप्त करता है और शांति एवं आनंद की समस्त अनुभूति उसका अपना हो जाती है।

22. और हे राजा, न्यायपूर्वक, जैसे किसान पहले मिट्टी की खामियों—खरपतवार, कांटे और पत्थर—को दूर करता है, फिर जुताई और बुवाई करता है।

सिंचाई करने, बाड़ लगाने, रखवाली करने, फसल काटने और पीसने से बहुत सारा आटा प्राप्त होगा, और इसी प्रकार जो भी गरीब और जरूरतमंद हैं, भीख मांगने और दुख में डूबे हुए हैं, उनका स्वामी बन जाएगा—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जिसने पिछले जन्मों में इन तेरह व्रतों को अपनाया, अभ्यास किया, पालन किया, उनका पालन किया, उनके अनुसार अपना आचरण बनाया और उन्हें पूरा किया, वही संन्यासी के जीवन के सभी लाभ प्राप्त करता है, और शांति और आनंद की समस्त अनुभूति उसका अपना हो जाती है।

23. और फिर, हे राजा, जिस प्रकार एक अभिषिक्त सम्राट अपराधियों के साथ व्यवहार करने में स्वामी होता है, एक स्वतंत्र शासक और स्वामी होता है, और जो चाहे वह करता है, और समस्त पृथ्वी उसके अधीन होती है—ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जिसने पूर्व जन्मों में इन प्रतिज्ञाओं को ग्रहण किया, अभ्यास किया और पूरा किया है, वह विजय प्राप्त करने वालों के धर्म में स्वामी, शासक और स्वामी है, और समनाओं के सभी गुण उसके हैं।

24. 'और क्या उपसेन, जो वंगंत वंश के पुत्रों में सबसे बड़े थे, व्रतों के सभी शुद्धिकरण गुणों का पूर्ण अभ्यास करने के कारण, सावत्थी में निवास करने वाले संघ के सदस्यों द्वारा किए गए समझौते की अवहेलना करने और अपने साथी भाइयों के साथ मनुष्यों को जीतने वाले बुद्ध से मिलने, फिर एकांत में एकांतवास करने और उनके समक्ष प्रणाम करने के बाद आदरपूर्वक अपना मल त्याग करने में सक्षम नहीं थे? और जब भगवान बुद्ध ने देखा कि उनका दल कितना सुशिक्षित है, तो प्रसन्न, प्रसन्न और हृदय से उत्साहित होकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन किया और अपनी मधुर, निर्मल आवाज में कहा:

"उपसेना, आपके पास सेवा कर रहे इन भाइयों का व्यवहार अत्यंत सुखद है। आपने अपने अनुयायियों को इस प्रकार प्रशिक्षित कैसे किया है?"

और जब सर्वज्ञ बुद्ध, जो सभी देवताओं के स्वामी हैं, ने उनसे यह प्रश्न किया, तो उन्होंने भगवान बुद्ध को उनके अच्छे स्वभाव का वास्तविक कारण बताते हुए कहा: "हे प्रभु, जो कोई भी मेरे पास संघ में प्रवेश पाने या मेरा शिष्य बनने के लिए आए, मैं उससे कहता हूँ: 'हे प्रभु, मैं वनों में रहने वाला, भिक्षा माँगकर भोजन प्राप्त करने वाला और केवल चिथड़ों से बना यह वस्त्र धारण करने वाला व्यक्ति हूँ। यदि आप भी ऐसे ही हों, तो मैं आपको संघ में प्रवेश देकर अपना शिष्य बना सकता हूँ।' फिर, यदि वह प्रसन्नतापूर्वक सहमत हो जाए और स्वयं को दीन बनाए, तो मैं उसे संघ में और अपने शिष्यों के समूह में प्रवेश देता हूँ। परन्तु यदि वह ऐसा न करे, तो मैं उसे न तो संघ में और न ही अपने शिष्यों के समूह में प्रवेश देता हूँ। इस प्रकार, हे प्रभु, मैं उन्हें प्रशिक्षित करता हूँ।" और इस प्रकार, हे राजा, जो प्रतिज्ञा लेता है, वह विजय प्राप्त करने वालों के धर्म में स्वामी, शासक और प्रभु बन जाता है। और शांति और आनंद की वह सारी अनुभूति उसकी अपनी हो जाती है।

25. हे राजा, जिस प्रकार एक तेजस्वी, शुद्ध और उच्च वंश का कमल का फूल चमकदार, कोमल, आकर्षक, सुगंधित, प्रशंसित, जल या कीचड़ से अछूता, नन्हे पंखुड़ियों, तंतुओं और फलियों से सुशोभित, अनेक मधुमक्खियों का आश्रय स्थल और निर्मल ठंडे जलधारा की संतान होता है—ठीक उसी प्रकार वह शिष्य जो पूर्व जन्मों में इन तेरह व्रतों का पालन करता है, अभ्यास करता है, अनुसरण करता है, अपने आचरण को इनके अनुरूप बनाता है और तीस गुणों से परिपूर्ण होता है। और वे तीस गुण क्या हैं? उनका हृदय स्नेहपूर्ण, कोमल और सौम्य प्रेम से भरा है; बुराई उनके भीतर से नष्ट, नाश और निष्कासित हो चुकी है; अहंकार और आत्म-धर्म का अंत हो चुका है; उनका विश्वास स्थिर, दृढ़, स्थापित और अविचल है; वे हृदय की शांति का आनंद लेते हैं; ध्यान की परमानंदमय अवस्था की अत्यंत प्रशंसित और वांछनीय शांति और आनंद को पूर्णतः अनुभव करते हैं; वे जीवन की धार्मिकता की उत्कृष्ट और अद्वितीय मीठी सुगंध का उत्सर्जन करते हैं; वे देवताओं और मनुष्यों दोनों के निकट और प्रिय हैं; स्वयं अरहतों द्वारा श्रेष्ठ माने जाने वाले, देवता और मनुष्य उनका सम्मान करने में प्रसन्न होते हैं; प्रबुद्ध, बुद्धिमान और विद्वान उन्हें स्वीकार करते हैं, उनका आदर करते हैं, उनकी सराहना करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं; वे इस लोक या परलोक के प्रेम से अछूते हैं; वे छोटे से छोटे अपराध में भी खतरे को देख लेते हैं; वे सर्वश्रेष्ठ धन से संपन्न हैं—वह धन जो मार्ग का फल है, वह धन जो सर्वोच्च उपलब्धियों की खोज करने वालों का है—वे सर्वश्रेष्ठ के भागीदार हैं। एक संन्यासी के लिए चार आवश्यक तत्व जो माँगने से प्राप्त किए जा सकते हैं, वे उसे प्राप्त कर लेते हैं। वह घर रहित रहता है, गहन ध्यान पर आधारित सर्वोत्तम तपस्या में लीन रहता है। उसने बुराई के पूरे जाल को खोल दिया है, उसने पुनर्जन्म की संभावना को पाँचों भविष्य की अवस्थाओं में और इस जीवन में उच्चतर जीवन के पाँचों अवरोधों (काम, द्वेष, आलस्य, अहंकार और संशय) को तोड़कर पूरी तरह नष्ट कर दिया है। वह अपने चरित्र में अटल और आचरण में उत्कृष्ट है, संन्यासी के लिए आवश्यक चार तत्वों के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं करता। वह पुनर्जन्मों से मुक्त हो चुका है, वह सभी उलझनों से परे जा चुका है, उसका मन पूर्ण मुक्ति पर केंद्रित है, उसने सत्य को देख लिया है, उसने सभी भय से सुरक्षित और स्थिर शरणस्थल प्राप्त कर लिया है। सात बुरी प्रवृत्तियाँ (काम, द्वेष, विधर्म, संशय, अहंकार, भविष्य के जीवन की इच्छा और अज्ञान) उसमें जड़ से उखड़ गई हैं, और वह महान मोक्ष के अंत तक पहुँच चुका है। हे राजा, ये तीस गुण उन्हें सुशोभित करते हैं: बुराइयों (कामवासना, अहंकार, भ्रम और अज्ञान) से मुक्त; ध्यान की परमानंदमयी अवस्थाओं की शांति और आनंद से परिपूर्ण; एक संन्यासी में निहित सभी गुणों से युक्त।

26. हे राजा, क्या सारिपुत्त, जो वरिष्ठ हैं, समस्त दस हजार विश्व प्रणालियों में श्रेष्ठ पुरुष नहीं थे, केवल जगत के गुरु को छोड़कर? और जिन्होंने अनंत युगों तक पुण्य अर्जित किया, और ब्राह्मण परिवार में पुनर्जन्म लिया, इंद्रियों के सभी सुखों का त्याग किया, और असीम धन को त्यागकर विजेता के उपदेशों के अनुसार संघ में प्रवेश किया, और इन तेरह व्रतों द्वारा अपने कर्मों, वचनों और विचारों को संयमित करके, इस जीवन में इतने उच्च गुणों वाले हो गए कि वे गुरु के बाद गौतम बुद्ध के धर्म में धर्म के राज्य के राज-रथ को चलाने वाले पहले व्यक्ति थे। इसलिए, हे राजा, यह बात समस्त देवताओं के स्वामी, गौतम बुद्ध ने उस उत्कृष्ट ग्रंथ, अंगुत्तरा निकाय में कही है।

"हे भाइयों, मैं अपने उत्तराधिकारी के रूप में किसी अन्य व्यक्ति को नहीं जानता जो धर्म के राज्य के गौरवशाली रथ के पहिये को सारिपुत्त के समान इतनी कुशलता से घुमाता हो। हे भाइयों, सारिपुत्त ही उस पहिये को सर्वोत्कृष्ट रूप से घुमाता है।"

'हे नागसेन, आप अत्यंत उत्कृष्ट हैं! बुद्ध के संपूर्ण नौ गुना वचन, सर्वोच्च आचरण, संसार में प्राप्त होने वाली सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियाँ—ये सभी व्रतों के पालन से उत्पन्न होने वाले सद्गुणों में समाहित हैं।'

नौवां अध्याय यहीं समाप्त होता है।

पहेलियों को सुलझाने का सिलसिला यहीं समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 1

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-19-||----->>>> अगला

1. गधा।

2. 'आदरणीय नागसेन, कर्कश आवाज वाले गधे का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे राजा, जैसे गधा जहाँ कहीं भी लेटता है—चाहे धूल के ढेर पर, या खुले मैदान में जहाँ चार या तीन सड़कें मिलती हैं, या गाँव के प्रवेश द्वार पर, या भूसे के ढेर पर—वह कहीं भी लंबे समय तक विश्राम नहीं करता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी जहाँ कहीं भी विश्राम के लिए अपनी चटाई बिछाता है—चाहे घास पर, या पत्तों पर, या काँटों के बिस्तर पर, या नंगी ज़मीन पर—उसे कहीं भी आलस्य नहीं करना चाहिए। यही गधे का एकमात्र गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, यह बात समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कही है।

हे मेरे शिष्यों, हे भाइयों, भूसे के तकियों पर सोकर, अपने आप को कठोर संघर्ष में गंभीर और उत्साही बनाए रखो।

और हे राजा, यह बात धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने भी कही थी:

"यदि ध्यानमग्न अवस्था में बैठे हुए उस व्यक्ति पर घुटनों तक पानी न गिरे तो आराम की चाह रखने वाले अरहत पदस्थ व्यक्ति को क्या फर्क पड़ता है!"

2. मुर्गा।

3. 'आदरणीय नागसेना, मुर्गे के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे क्या हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार मुर्गा सुबह जल्दी अपने घोंसले में जाता है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी सुबह जल्दी दागब के चारों ओर की खुली जगह की सफाई करनी चाहिए, दिनभर के उपयोग के लिए पीने का पानी तैयार करके, वस्त्र धारण करके और स्नान करके उसे प्रणाम करना चाहिए।

दागबा के समक्ष आदरपूर्वक झुकें, फिर वरिष्ठ भिक्षुओं से मिलें, और लौटकर उचित समय पर एकांत कक्ष में प्रवेश करें। हे राजा, यह मुर्गे के उन गुणों में से पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

4. हे राजा, जिस प्रकार मुर्गा सुबह जल्दी उठता है, उसी प्रकार हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सुबह जल्दी उठकर दागब के चारों ओर की खुली जगह की सफाई करनी चाहिए, दिनभर के उपयोग के लिए पीने का पानी तैयार करना चाहिए, वस्त्र धारण करना चाहिए, प्रतिदिन दागब को प्रणाम करना चाहिए और एकांत कक्ष में प्रवेश करना चाहिए। हे राजा, यह मुर्गे के उन गुणों में से दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

5. हे राजा, जिस प्रकार मुर्गा लगातार धरती खोदकर खाने के लिए कुछ भी पाता है, उसे चुनता रहता है; उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रमपूर्वक, किसी भी प्रकार का भोजन ग्रहण करते समय निरंतर आत्म-परीक्षण और सावधानी बरतनी चाहिए, और अपने आप को याद दिलाना चाहिए: "मैं इसे सुख, उत्तेजना, शरीर की सुंदरता या रूप की भव्यता की खोज में नहीं, बल्कि केवल अपने शरीर के संरक्षण के लिए, जीवित रहने के लिए, भूख की पीड़ा को शांत करने के लिए और उच्चतर जीवन के अभ्यास में सहायता के लिए ग्रहण कर रहा हूँ। इस प्रकार मैं अपने सभी पूर्व दुःखों का अंत करूँगा और भविष्य में दुःख उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं बनने दूँगा; इस प्रकार मैं दोषमुक्त रहूँगा और शांति से निवास करूँगा।" हे राजा, यह मुर्गे के गुणों में से तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"जैसे रेगिस्तान में बच्चे का मांस, या पहिये पर ग्रीस मलना, केवल खुद को जीवित रखने के लिए, वह कमजोर महसूस होने पर भोजन करता है।"

6. हे राजा, जैसे मुर्गा, आँखों के बावजूद, रात में अंधा हो जाता है; वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो परिश्रम में तत्पर है, यद्यपि वह अंधा नहीं है, फिर भी एक अंधे के समान होना चाहिए। चाहे वह वनों में हो या भिक्षा मांगने के लिए प्रतिदिन की सैर पर, उसे रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध या स्पर्श के सभी सुखों के प्रति अंधा और बहरा और गूंगा होना चाहिए; उसे उन्हें अपने चिंतन का विषय नहीं बनाना चाहिए; उन पर कोई विशेष, विस्तृत ध्यान नहीं देना चाहिए। हे राजा, यह मुर्गे के उन गुणों में से चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, महा कक्कायन ने कहा है:

"जिसकी आंखें हैं वह अंधे के समान हो जाए, जो सुनता है वह बहरे के समान हो जाए, जो बोल सकता है वह गूंगे के समान हो जाए, बलवान पुरुष दुर्बल के समान हो जाए। जैसे ही कोई नई वस्तु उसकी दृष्टि में आए, वह निर्वाण की शांति के मधुर पलंग पर लेटकर विश्राम करे।"

7. हे राजा, जैसे मुर्गा मिट्टी, डंडों, लाठियों और गदाओं से सताए जाने पर भी अपना घर नहीं छोड़ता; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, चाहे वह वस्त्र बनाने में लगा हो, भवन निर्माण में, अपने दैनिक कर्तव्यों में, अध्यापन में, या शिक्षा प्राप्त करने में, कभी भी अपनी एकाग्रता नहीं छोड़नी चाहिए। क्योंकि, हे राजा, उसकी एकाग्रता ही उसका घर है। हे राजा, यह मुर्गे के उन गुणों में से पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। [368] और हे राजा, यह बात समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कही है:

और हे भिक्षुओं, भिक्षु का आश्रयस्थल कौन सा है, वह क्षेत्र जो उसका अधिकार है?—वही है, सचेत और चिंतनशील होने के चार गुण।

और हे महाराज, यह बात धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने भी कही है:

हाथी अच्छे और बुरे भोजन में भेद करता है, वह जानता है कि उसे किससे पोषण मिलता है, और सोते समय भी वह अपनी सूंड की रक्षा करता है — इसलिए प्रत्येक बुद्ध का पुत्र, उत्साह से भरा हुआ, विजेता के वचन का उल्लंघन न करे, और न ही उसकी आत्म-संयम, जो कि सर्वश्रेष्ठ उपहार है, को ठेस पहुंचाए।

3. गिलहरी।

8. 'आदरणीय नागसेना, गिलहरी का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

'हे महाराज, जिस प्रकार गिलहरी शत्रु के आक्रमण से बचने के लिए अपनी पूंछ को जमीन पर तब तक पटकती है जब तक वह फूल न जाए, और फिर उसी पूंछ को लाठी बनाकर शत्रु को भगा देती है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, जब उसका शत्रु, पाप, उस पर आक्रमण करे, तो अपने संयम रूपी लाठी को तब तक पटकना चाहिए जब तक वह फूल न जाए, और फिर उसी संयम रूपी लाठी से सभी बुरी प्रवृत्तियों को दूर भगा देना चाहिए। हे महाराज, गिलहरी का यही एक गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, वरिष्ठ कुल्ला पंथक ने कहा है:

जब पाप, जो संन्यासी जीवन से प्राप्त लाभों के विनाशक हैं, हम पर आ पड़ते हैं, तो उन्हें दृढ़ आत्मसंयम से बार-बार नष्ट कर देना चाहिए, मानो वे एक गदा हों।

4. पैंथर (मादा)

9. 'आदरणीय नागसेना, तेंदुआ मादा का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे राजा, जिस प्रकार मादा तेंदुआ एक ही बार गर्भ धारण करती है और बार-बार नर के पास नहीं जाती; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो परिश्रम में तल्लीन हो, यह देखकर कि भविष्य के गर्भाधान और जन्मों में गर्भधारण की अवधि और प्रत्येक अवस्था से पतन, विघटन, मृत्यु और विनाश निहित हैं, और जन्म-मृत्यु के भयावह कष्टों और बुरे जन्मों को देखकर, दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि वह भविष्य में कभी भी कोई जीवन ग्रहण नहीं करेगा। हे राजा, यही मादा तेंदुआ का वह गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने धनीय ग्वाले के सूत्र निपात में कहा है:

"जैसे कोई बलवान बैल अपने बंधन तोड़कर निकल जाता है, या कोई हाथी जंगल में अपना रास्ता बना लेता है, वैसे ही मैं अब कभी गर्भ में प्रवेश नहीं करूँगा—और अब, हे ईश्वर, यदि यही आपकी इच्छा हो, तो वर्षा कीजिए!"

5. पैंथर (नर)।

10. 'आदरणीय नागसेना, पैंथर के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार एक तेंदुआ जंगली स्थानों में, घनी घास या झाड़ियों के पीछे या चट्टानों के बीच घात लगाकर हिरण का शिकार करता है; उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को वनों में, वृक्षों की छाया में, पर्वतों की ऊँचाइयों पर, गुफाओं और कंदराओं में, श्मशान घाटों में, जंगलों में, खुले आकाश के नीचे, पुआल के बिस्तरों पर, शांत, शोर-रहित स्थानों में, तेज हवाओं से मुक्त और मनुष्यों के निवास से दूर एकांत स्थानों में शरण लेनी चाहिए। क्योंकि हे राजा, परिश्रमी भिक्षु जो ऐसे एकांत स्थानों में समय बिताते हैं, वे शीघ्र ही छह प्रकार की दिव्य अंतर्दृष्टि के स्वामी बन जाते हैं। हे राजा, यह तेंदुआ के उन गुणों में से पहला गुण है जो उनमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, शास्त्रों का संकलन करने वाले वृहदों ने कहा है:

"जैसे तेंदुआ घात लगाकर हिरण को पकड़ लेता है, वैसे ही बुद्ध के पुत्र अंतर्दृष्टि और लगन से सुसज्जित होकर एकांतवास में जाकर सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त करते हैं।"

11. हे राजा, जैसे तेंदुआ चाहे जिस भी जानवर को मारे, यदि वह बाईं ओर गिरा हो तो उसे कभी नहीं खाता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी बांस, ताड़ के पत्ते, फूल, फल, स्नान, चूना, दाँत साफ करने वाली लकड़ी या धोने के पानी के उपहारों से प्राप्त किसी भी भोजन का सेवन नहीं करना चाहिए; न ही चापलूसी से, न ही आम लोगों को मीठी-मीठी बातें करके लुभाने से।

शब्दों (शाब्दिक रूप से मटमैली बातों) द्वारा, सत्य को दबाकर और असत्य का सुझाव देकर, या उनके बच्चों को दुलार कर, या घर-घर जाकर संदेश लेकर, या उनका इलाज करके, या मध्यस्थ बनकर, या व्यापारिक या धार्मिक मामलों में संदेशवाहक बनकर, या भिक्षा में प्राप्त वस्तुओं का उनसे आदान-प्रदान करके, या रिश्वत के रूप में उन्हें वही वस्त्र या भोजन वापस देकर जो उन्हें पहले दिया गया था, या उन्हें शुभ स्थानों, शुभ दिनों, या शुभ चिह्नों (उनके बच्चों के जन्म के समय उनके शरीर पर) के संकेत देकर, या जीविका प्राप्त करने के उन अन्य गलत तरीकों में से किसी का भी उपयोग करके जिनकी बुद्ध ने निंदा की है—उसे इस प्रकार प्राप्त कोई भी भोजन नहीं खाना चाहिए, क्योंकि तेंदुआ अपने बाईं ओर गिरे हुए शिकार को नहीं खाता। यह तेंदुआ के उन गुणों में से दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के सेनापति, सारिपुत्त ने कहा है:

"यह इतना स्वादिष्ट भोजन वाणी द्वारा दिए गए संकेत के माध्यम से प्राप्त किया गया है। यदि मैं इसे ग्रहण कर लूँ, तो मेरी आजीविका पर कलंक लग जाएगा।"

अब भले ही मैं भयंकर भूख से पीड़ित हूँ, मेरा पेट उफान पर है, मुझे कुछ करने को तैयार है, फिर भी मैं अपने जीवन के नियम को कभी नहीं तोडूंगा, चाहे मुझे अपनी जान ही क्यों न कुर्बान करनी पड़े।

6. कछुआ।

12. 'आदरणीय नागसेन, कछुए के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे क्या हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार कछुआ, जो जल में रहने वाला जीव है, जल में ही रहता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी समस्त संसार में असीम, अपार, अपार दया और प्रेम से परिपूर्ण होकर सभी सजीव प्राणियों के प्रति प्रेम रखना चाहिए। हे राजा, यही कछुए का पहला गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

13. हे राजा, जैसे कछुआ जब पानी पर तैरते हुए अपना सिर ऊपर उठाता है और किसी को देखता है, तो उसी क्षण डूब जाता है और गहराई में गोता लगा लेता है, ताकि वह उसे फिर से न देख सके; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से प्रयास कर रहा हो, जब उस पर बुरी प्रवृत्तियाँ हावी हों, तो ध्यान के जल में डूब जाए, उसकी गहराई में गोता लगा ले, ताकि वे बुरी प्रवृत्तियाँ उसे फिर से न देख सकें। हे राजा, यही है...

कछुए के जिन गुणों में से दूसरा गुण उसमें होना चाहिए।

14. हे राजा, जिस प्रकार कछुआ पानी से बाहर निकलकर धूप सेंकता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जब वह ध्यान से जागृत होता है (अपना मन एकाग्र करता है)—चाहे वह बैठा हो, लेटा हो, खड़ा हो या इधर-उधर चल रहा हो—बुरे स्वभावों के विरुद्ध महा संघर्ष में अपना मन मग्न करना चाहिए। हे राजा, यह कछुए के उन गुणों में से तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

15. हे राजा, जिस प्रकार कछुआ जमीन में गड्ढा खोदकर अकेला रहता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सांसारिक लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करके, एकांत में, वनों, जंगलों, पहाड़ियों, गुफाओं और कंदराओं में एकांतवास करना चाहिए। हे राजा, यह कछुए का चौथा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, उपसेन ने वंगंत वंश के पुत्रों के विषय में कहा था:

"एकांत और शांत स्थान, हिरणों और जंगली जानवरों के ठिकाने, भिक्षु को अपने निवास स्थान के रूप में तलाशने चाहिए, एकांत के मधुर आनंद के लिए।"

16. 'और फिर, हे राजा, जैसे कछुआ अपने चक्कर लगाते समय किसी को भी देखता है, तो तुरंत अपना सिर और सारे अंग अपने खोल में समेट लेता है और उन्हें वहाँ छिपाकर चुपचाप खड़ा रहता है ताकि वह सुरक्षित रहे; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, जहाँ कहीं भी कोई रूप, ध्वनि, गंध या स्वाद दिखाई दे,

या जब भावनाएँ उस पर हावी हो जाएँ, तो वह अपनी छहों इंद्रियों के द्वार पर आत्म-संयम का द्वार बंद कर ले, अपने मन को आत्म-नियंत्रण से ढक ले, और अपने समनत्व को बचाने के लिए निरंतर सचेतन और विचारशील बना रहे। हे राजा, यह कछुए के पाँच गुणों में से पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने सर्वश्रेष्ठ संयुत्त निकाय में, कछुए के दृष्टांत के सूत्र में कहा है:

"जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है, वैसे ही भिक्षु अपने मन के विचारों को दफना दे, स्वयं स्वतंत्र होकर, किसी को हानि न पहुंचाते हुए, स्वयं को मुक्त कर ले, किसी की बुराई न करे।"

7. बांस।

17. 'आदरणीय नागसेना, बांस का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार बांस हवा के झोंके की दिशा में झुक जाता है, उसी प्रकार वह अपने आप मुड़ जाता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से परिश्रम करते हुए, गुरु बुद्ध के वचन, नौ प्रकार की शिक्षाओं का पालन करते हुए, और सभी विधिक और निष्पाप बातों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए, समनत्व के गुणों की खोज करनी चाहिए। हे महाराज, यही वह गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, राहुल ने कहा है:

"बुद्ध के नौ गुना वचनों का सदा पालन करते हुए और सभी विधिवत, निष्पाप कर्मों में दृढ़ रहते हुए, मैं बुरे जन्मों के चक्र से मुक्त हो गया हूँ।"

8. धनुष।

18. 'आदरणीय नागसेना, धनुष का वह गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार एक सुगठित और संतुलित धनुष दोनों सिरों से समान रूप से झुकता है और किसी खंभे की तरह अकड़कर नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने सभी भाइयों—चाहे वे बड़ों के हों, कनिष्ठों के हों, मध्यम पद के हों या अपने समान पद के हों—के अनुरूप सहजता से झुकना चाहिए और उन्हें विमुख नहीं करना चाहिए। हे महाराज, धनुष का यही गुण उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के अधिपति भगवान बुद्ध ने विदुर पुन्नक गातक में यही कहा है:

बुद्धिमान व्यक्ति धनुष के समान झुके, सरकंडे के समान कोमल हो, और विपरीत स्वभाव का न हो। वह राजाओं के घर में निवास करेगा।

9. कौआ।

19. 'आदरणीय नागसेन, कौवे के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, जिस प्रकार कौआ आशंका और संशय से भरा हुआ, सदा चौकस और सतर्क रहता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहते हुए आशंका और संशय से भरा हुआ, सदा चौकस और सतर्क रहना चाहिए।'

पूर्ण आत्मसंयम में, अपनी इंद्रियों को नियंत्रण में रखते हुए। हे राजा, कौवे के गुणों में से यह पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

20. हे राजा, जैसे कौआ जो भी भोजन देखता है, उसे अपने साथियों के साथ बाँटकर खा लेता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, अपने सद्गुणी सहधर्मियों के साथ, बिना किसी भेदभाव या मात्रा का ध्यान रखे, अपने सभी वैध दान, यहाँ तक कि अपने भिक्षापात्र में रखी सामग्री भी, बाँटने में कभी संकोच नहीं करना चाहिए। हे राजा, यह कौए के उन गुणों में से दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, धर्म के प्रमुख, सारिपुत्त ने कहा है:

"जो कुछ भी वे मुझे दें, मैं संयमी जीवन जीते हुए, वह सब कुछ, जैसा आता है, मैं सबके साथ बाँट लेता हूँ, और फिर मैं स्वयं अपना भोजन ग्रहण करता हूँ।"

10. बंदर।

21. 'आदरणीय नागसेन, बंदर के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार बंदर अपना निवास स्थान बनाने से पहले किसी विशाल वृक्ष जैसे एकांत स्थान पर, शाखाओं से घिरे सुरक्षित आश्रय स्थल में शरण लेता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने गुरु के रूप में विनम्र, सौम्य, धर्मात्मा, सुंदर चरित्र वाला, परंपरा और शास्त्रों का ज्ञाता, प्रिय, आदरणीय और योग्य व्यक्ति का चयन करना चाहिए।

आदरशील, लाभप्रद बातें कहने वाला, नम्र, उपदेश देने, निर्देश देने और शिक्षा देने में कुशल, उत्साह जगाने, प्रेरित करने और प्रसन्न करने में सक्षम—ऐसा मित्र ही राजा को शिक्षक के रूप में चुनना चाहिए। हे राजा, यह बंदर के उन गुणों में से पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

22. हे राजा, जिस प्रकार बंदर इधर-उधर घूमता है, खड़ा होता है और बैठता है, सदा वृक्षों पर, और यदि सोता है तो रात वृक्षों पर ही बिताता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तल्लीन होकर वन में खड़े होकर इधर-उधर घूमना चाहिए, चिंतन करना चाहिए, लेटना चाहिए और सोना चाहिए, और वहाँ आत्म-संयम का अनुभव करना चाहिए। हे राजा, यह बंदर के गुणों में से दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, वन में ही भिक्षु का तेज दिखाई देता है। सुदूर वनों में निवास करना सभी बुद्धों द्वारा उत्कृष्ट माना गया है।

यहां पहला अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 2

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-20-||----->>>> अगला

11. लौकी।

1. 'आदरणीय नागसेना, लौकी का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार लौकी अपनी लताओं से किसी अन्य पौधे—चाहे वह घास हो, काँटा हो या लता—पर चढ़कर उसे पूरी तरह ढक लेती है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु, जो अर्हतत्व प्राप्त करने की इच्छा रखता है, उसे अपने मन को उन विचारों पर चढ़कर ऊपर उठना चाहिए जो उसके समक्ष प्रस्तुत होते हैं (कम्मत्थाना ध्यान के विषय के रूप में)। हे महाराज, लौकी का यही एक गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, धर्म के प्रमुख, सारिपुत्त ने कहा है:

जैसे लौकी अपनी लताओं के सहारे घास, कांटेदार झाड़ी या फैली हुई लता पर चढ़ती है, वैसे ही अर्हत पद पर आसीन बुद्ध के पुत्र विचारों से ऊपर चढ़कर पूर्णता और शांति की ओर अग्रसर होते हैं।

12. कमल।

2. 'आदरणीय नागसेना, कमल के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार कमल जल में जन्म लेता है और जल में ही बढ़ता है, फिर भी जल से अछूता रहता है (क्योंकि जल उस पर नहीं चिपकता); ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने द्वारा प्राप्त समर्थन, शिष्यों के समूह, यश, सम्मान, आदर या सुख-सुविधाओं की प्रचुरता से अछूता रहना चाहिए। हे महाराज, यही कमल का पहला गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।

3. हे राजा, जिस प्रकार कमल जल से बहुत ऊपर उठा रहता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सांसारिक वस्तुओं से बहुत ऊपर रहना चाहिए। हे राजा, यह कमल के गुणों में से दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

4. हे महाराज, जैसे कमल हल्की सी हवा से भी कांप उठता है; ठीक वैसे ही, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहते हुए, छोटी से छोटी बुराई के प्रति भी आत्मसंयम रखना चाहिए, क्योंकि वह छोटी से छोटी गलती में भी छिपे खतरे को पहचानता है। हे महाराज, यह कमल के गुणों में से तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखकर, वह स्वयं पर उपदेशों का भार लेता है और उनका अभ्यास करता है।"

13. बीज।

5. 'आदरणीय नागसेना, बीज के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार बीज, चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, यदि अच्छी मिट्टी में बोया जाए और ईश्वर अनुकूल वर्षा करे तो भरपूर फल देता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से परिश्रम करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिए कि उसके जीवन की धार्मिकता से उसे समनत्व के भरपूर फल प्राप्त हों। हे महाराज, यही बीज का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

6. हे राजा, जैसे अच्छी तरह से साफ की गई मिट्टी में बोया गया बीज शीघ्र ही परिपक्व हो जाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, जब मन एकांत में अच्छी तरह से नियंत्रित और शुद्ध हो जाए, तो परिश्रमी भिक्षु द्वारा आत्म-संयम के उत्तम क्षेत्र में डाला जाए तो वह शीघ्र ही परिपक्व हो जाएगा। हे राजा, यह बीज का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, वरिष्ठ अनुरुद्ध ने कहा है:

"यदि बीज को अच्छी तरह से साफ किए गए खेत में बोया जाए, तो उसका भरपूर फल बोने वाले को प्रसन्न करेगा। उसी प्रकार एकांत में शुद्ध हुआ संन्यासी का हृदय, आत्म-संयम के क्षेत्र में शीघ्र ही परिपक्व हो जाता है।" 14. साल का पेड़।

7. 'आदरणीय नागसेना, साल के पेड़ का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार साल का वृक्ष सौ हाथ या उससे अधिक गहराई तक जमीन में उगता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को एकांतवास में रहकर समनत्व के चार फल, चार विवेक, छह प्रकार की दिव्य अंतर्दृष्टि और संन्यासी के सभी गुणों को सिद्ध करना चाहिए। हे महाराज, यही वह गुण है जो साल के वृक्ष में होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, राहुल ने कहा है:

"साल का पेड़ धरती के ऊपर उगता है, और सौ हाथ गहराई तक नीचे की ओर शाखाएँ निकालता है। जैसे समय की पूर्णता में, और अपनी चरम वृद्धि पर, वह पेड़ एक दिन में सौ हाथ ऊँचा हो जाता है, ठीक वैसे ही, हे बुद्ध, मैं भी साल के पेड़ की तरह, एकांत में, आंतरिक अच्छाई में वृद्धि करता हूँ।" 15. जहाज।

8. 'आदरणीय नागसेना, जहाज के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, जिस प्रकार एक जहाज विभिन्न प्रकार की लकड़ियों के संयोजन से अनेक लोगों को पार कराता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से प्रयास करते हुए, अच्छे आचरण, धर्म, सद्गुण और कर्तव्य पालन से उत्पन्न अनेक गुणों के संयोजन से स्वर्ग या पृथ्वी पर, समस्त संसार को पार कर लेना चाहिए।'

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, यह एक जहाज के उन गुणों में से पहला गुण है जो उसके पास होना चाहिए।

9. हे राजा, जिस प्रकार एक जहाज अनेक गरजती लहरों और दूरगामी भंवरों का सामना कर सकता है; उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को अनेक बुरी प्रवृत्तियों की लहरों और अनेक प्रकार के दोषों—जैसे कि अपने परिवार से बाहर के लोगों में आदर और तिरस्कार, समर्थन और सम्मान, प्रशंसा और महिमा, भेंट और सम्मान, निंदा और प्रशंसा—का सामना करने में सक्षम होना चाहिए। हे राजा, यह उस जहाज का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

10. हे राजा, जिस प्रकार एक जहाज विशाल सागर पर यात्रा करता है, जो असीम और अनंत है, जिसका कोई किनारा नहीं है, जो अपनी गहराई में अविचलित है, गर्जना करता है, और सभी प्रकार की मछलियों, राक्षसों और अजगरों से भरा हुआ है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो प्रयास में गंभीर है, अपने मन को चारों सत्यों के त्रिगुण, उनके बारह रूपों में प्रवेश करने के लिए यात्रा करानी चाहिए। हे राजा, यह उस जहाज का तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, सभी देवताओं के प्रधान भगवान ने, सबसे उत्कृष्ट संयुत्त निकाय में, सत्यों पर संयुत्त में कहा है:

"हे भिक्षुओं, जब भी आप विचार कर रहे हों, तो यह सोचें: 'दुःख ऐसा है,' - 'दुःख का कारण ऐसा है,' - 'दुःख का अंत ऐसा है,' - 'दुःख के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग ऐसा है।'"

16. एंकर।

11. 'आदरणीय नागसेना, लंगर के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार लंगर विशाल सागर में भी, लहरों के निरंतर बदलते प्रवाह से अशांत जल में भी, जहाज को स्थिर रखता है और उसे किसी भी दिशा में बहने नहीं देता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, कर्म, द्वेष और सुस्ती की लहरों के भयंकर संघर्ष में, अपने मन को स्थिर रखना चाहिए और उसे किसी भी दिशा में विचलित नहीं होने देना चाहिए। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो उसे लंगर के रूप में धारण करना चाहिए।'

12. हे राजा, जिस प्रकार लंगर तैरता नहीं, बल्कि डूब जाता है और सौ हाथ गहरे पानी में भी जहाज को थामे रखता है, उसे स्थिर कर देता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो परिश्रम में तत्पर है, जब उसे सहारा, यश, सम्मान, आदर, भेंट और प्रशंसा प्राप्त हो, तो उसे सहारे या यश के शिखर पर नहीं चढ़ना चाहिए, बल्कि अपना मन केवल अपने शरीर को जीवित रखने के विचार पर स्थिर रखना चाहिए। हे राजा, यह लंगर का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"जैसे लंगर तैरता नहीं, बल्कि लहरों के नीचे डूब जाता है, वैसे ही प्रशंसा या उपहारों से ऊपर उठने के बजाय विनम्र रहो।"

17. मस्तूल।

13. 'आदरणीय नागसेना, मस्तूल का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार मस्तूल रस्सियों, रस्सियों और पालों को धारण करता है, ठीक उसी प्रकार परिश्रमी भिक्षु को भी सदा सचेत और आत्मसंयमित रहना चाहिए—चाहे वह बाहर जा रहा हो या वापस आ रहा हो, आगे देख रहा हो या चारों ओर, चाहे वह अपना हाथ फैला रहा हो या पीछे मोड़ रहा हो, चाहे वह वस्त्र पहन रहा हो या पान का पात्र लिए हो, चाहे वह खा रहा हो, पी रहा हो, निगल रहा हो या चख रहा हो, चाहे वह शौच कर रहा हो, चल रहा हो, खड़ा हो या बैठा हो, चाहे सो रहा हो या जाग रहा हो, चाहे बोल रहा हो या चुप हो, उसे कभी भी अपना सचेतन और आत्मसंयम नहीं खोना चाहिए। हे महाराज, यही वह गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"मेरे भाइयों, भिक्षु को सचेत और संयमी रहना चाहिए। यही मेरा तुम्हें निर्देश है।" 18. पायलट।

14. 'आदरणीय नागसेना, पायलट के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, जैसे नाविक दिन-रात न्याय करता है, वैसे ही न्याय करो, साथ'

निरंतर और अटूट उत्साह और प्रयास से ही कोई व्यक्ति अपने जहाज को चलाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो प्रयास में तत्पर रहता है, अपने मन को नियंत्रित करते समय दिन-रात निरंतर तत्परता और लगन से सावधानीपूर्वक विचार करता है। हे राजा, यही वह गुण है जो नाविक में होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने धम्मपद (शास्त्रों का संग्रह) में यही कहा है:

उत्साह से परिपूर्ण रहो, अपने विचारों पर ध्यान रखो; अंतहीन जन्मों के दलदल से खुद को ऊपर उठाओ, जैसे शक्तिशाली हाथी कीचड़ की गहराई में धंस जाता है।

15. हे राजा, जिस प्रकार नाविक समुद्र में सब कुछ जानता है, चाहे अच्छा हो या बुरा; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी अच्छे और बुरे में, अपराध और अहस्तक्षेप में, नीच और श्रेष्ठ में, अंधकार और प्रकाश में अंतर अवश्य जानना चाहिए। हे राजा, यह नाविक का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

16. हे महाराज, जिस प्रकार नाविक पतवार पर मुहर लगाता है ताकि कोई उसे छू न सके; उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने हृदय पर संयम की मुहर लगानी चाहिए, ताकि उसमें कोई बुरा या गलत विचार न उत्पन्न हो। यह नाविक का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, ऐसा कहा गया है कि

हे परम पूज्य, समस्त देवताओं के स्वामी, सर्वोत्कृष्ट संयुत्त निकाय में विराजमान:

"हे भिक्षुओं, बुरे या गलत विचार मत रखो, जैसे कामवासना, द्वेष या भ्रम के विचार।" 19. नाविक

17. 'आदरणीय नागसेना, नाविक का वह एक गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

'हे राजा, जिस प्रकार जहाज पर सवार नाविक यह सोचता है: "मैं एक वेतनभोगी हूँ और इस जहाज पर अपनी मजदूरी के लिए काम कर रहा हूँ। इसी जहाज के माध्यम से मुझे भोजन और वस्त्र मिलते हैं। मुझे आलसी नहीं होना चाहिए, बल्कि उत्साहपूर्वक जहाज चलाना चाहिए;" ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, यह सोचना चाहिए: "चार तत्वों से बने अपने इस शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, मैं निरंतर और निरंतर आत्म-संयमित होकर सचेत और चिंतनशील रहूँगा, और शांत और स्थिर होकर जन्म-वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, विलाप, शोक, पीड़ा और निराशा से मुक्त होने का प्रयास करूँगा।" हे राजा, यही वह गुण है जो एक नाविक में होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के प्रमुख, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"शरीर क्या है, इसे समझो, इसे बार-बार महसूस करो, शरीर की प्रकृति को देखकर दुःख का अंत करो।"

20. समुद्र।

18. 'आदरणीय नागसेना, समुद्र के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार सागर किसी शव से संपर्क नहीं रखता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी बुराई के दागों से दूर रहना चाहिए—कामवासना, द्वेष, सुस्ती, अहंकार, भ्रम, अपने दोषों को छुपाना और अपने गुणों का दावा करना, ईर्ष्या, लोभ, छल, कपट, कपट, कपट, दुष्टता और पापमय जीवन। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो उसे अपनाना चाहिए।'

19. हे राजा, जिस प्रकार सागर अपने भीतर सभी प्रकार के रत्नों का भंडार रखता है—मोती, हीरा, खट्टी आँख, शंख, क्वार्ट्ज, मूंगा और क्रिस्टल—पर्याप्त रत्न रखता है, परन्तु उन्हें छुपाए रखता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो निरंतर प्रयास करता है, भले ही उसने चरित्र के विभिन्न रत्नों—मार्ग और फल—को प्राप्त कर लिया हो,

इन सब का, और चारों घानों का, आठों विमोक्षों का, समाधि का, पाँचों प्राप्तियों (सम्मोहन और अंतर्दृष्टि के रूपों) का, और पारलौकिक ज्ञान के छह रूपों का – इन्हें छिपा कर रखें, और इन्हें प्रकाश में न लाएँ। हे राजा, यही समुद्र का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

20. हे राजा, जिस प्रकार समुद्र शक्तिशाली प्राणियों के साथ संगति करता है; उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को ऐसे साथी शिष्य के साथ संगति करनी चाहिए जो कम इच्छा रखता हो और संतुष्ट हो, जिसकी वाणी शुद्ध हो, जिसका आचरण बुराई के निवारण की ओर उन्मुख हो, जो धर्मपरायण हो, विनम्र, सौम्य, गरिमामय, आदरणीय, लाभप्रद वचन बोलने वाला, नम्र, जो अपने साथी की गलतियों को इंगित करे और गलत करने पर उसे फटकार लगाए, उपदेश, शिक्षा और मार्गदर्शन में कुशल हो, जो प्रेरित करने, प्रोत्साहित करने और प्रसन्न करने में सक्षम हो—ऐसे व्यक्ति को मित्र बनाकर, धर्मपरायणता से निवास करना चाहिए। हे राजा, यह समुद्र का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

21. और फिर, हे राजा, जैसे सागर गंगा, यमुना, अकीरावती, सरभू, माही और अन्य लाखों नदियों द्वारा लाए गए ताजे पानी और आकाश की वर्षा से भरा रहता है, फिर भी

समुद्र कभी अपने किनारों से बाहर नहीं बहता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, जीविका, यश, प्रशंसा, अभिवादन, आदर या सम्मान के लिए कभी भी जानबूझकर नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए—यहाँ तक कि अपने जीवन के लिए भी नहीं। हे राजा, यह समुद्र के उन गुणों में से चौथा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"हे राजा, जिस प्रकार विशाल सागर स्थिर रहता है और कभी अपने किनारों से बाहर नहीं निकलता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, मेरे शिष्यों को भी मेरे द्वारा उनके लिए निर्धारित नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए—यहाँ तक कि अपने जीवन को बचाने के लिए भी नहीं।"

22. हे राजा, जिस प्रकार गंगा, यमुना, अकीरावती, सरभू और माही जैसी सभी नदियों के बहने से भी और आकाश से बरसने वाली वर्षा से भी समुद्र नहीं भरता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, समुद्र को भी नहीं भरना चाहिए।

परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से परिश्रम करता है, उपदेश ग्रहण करने, प्रश्न पूछने और उत्तर देने, वचन सुनने, उसे याद करने और उसका विश्लेषण करने, अभिधम्म और विनय सुनने, सूत्रों के गहन उपदेशों को समझने, रूपों का विश्लेषण करने, सही रचना, संयोजन और व्याकरणिक संरचना के नियमों को सीखने और विजेता के नौ प्रकार के उपदेशों को सुनने से कभी संतुष्ट नहीं होता। हे राजा, यही वह पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने सुतसोमा गातक में कहा है:

“जैसे आग घास और लकड़ियों को जलाकर कभी तृप्त नहीं होती, जैसे विशाल सागर सभी धाराओं के जल से भर नहीं जाता— वैसे ही हे राजाओं के राजा, ये बुद्धिमान विद्यार्थी सत्य के वचनों को सुनते हुए कभी तृप्त नहीं होते।”

यहां दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 3

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----॥-21-॥----->>>> अगला

21. पृथ्वी।

1. 'आदरणीय नागसेना, पृथ्वी के वे पाँच गुण जिन्हें आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार पृथ्वी पर चाहे वांछनीय वस्तुएँ बिखेरी जाएँ या न बिखेरी जाएँ—चाहे कपूर, अगर, चमेली, चंदन और केसर, या पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, लार, बलगम, जोड़ों को चिकनाई देने वाला द्रव, मूत्र और मल—वह एक समान ही रहती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी स्थिर रहना चाहिए, चाहे उसे समर्थन मिले या उपेक्षा, प्रसिद्धि मिले या अपमान, निंदा मिले या प्रशंसा, सुख मिले या दुःख। हे राजा, यही पृथ्वी का पहला गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

2. हे राजा, जैसे पृथ्वी को कोई आभूषण या माला नहीं पहनाई जाती, बल्कि वह अपनी ही सुगंध से सराबोर रहती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी कोई आभूषण नहीं धारण करना चाहिए, बल्कि अपने जीवन के धार्मिकता की मधुर सुगंध से परिपूर्ण रहना चाहिए। हे राजा, पृथ्वी का यह दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

3. हे राजा, जैसे पृथ्वी ठोस है, उसमें कोई छेद या अंतराल नहीं है, वह घनी, सघन है और चारों ओर फैली हुई है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, अटूट धार्मिक जीवन से संपन्न होना चाहिए, जिसमें कोई अंतराल न हो।

या उसमें मोटी, घनी और चारों ओर फैली हुई दरारें हों। हे राजा, पृथ्वी का यह तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

4. हे राजा, जिस प्रकार पृथ्वी कभी नहीं थकती, चाहे वह गांवों, कस्बों, शहरों, देशों, वृक्षों, पहाड़ियों, नदियों, तालाबों, झीलों, वन्य जीवों, पक्षियों, मनुष्यों और असंख्य महिलाओं का भार वहन करे; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी निरंतर प्रयास करते हुए उपदेश, उपदेश, शिक्षा, उत्साहवर्धन, प्रेरणा और प्रसन्नता प्रदान करने में और धर्म की व्याख्या करने में कभी नहीं थकना चाहिए। हे राजा, पृथ्वी का यह चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

5. हे राजा, जिस प्रकार पृथ्वी चापलूसी और द्वेष दोनों से मुक्त है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से प्रयास करता है, पृथ्वी के समान ही मन से किसी की चापलूसी और किसी से द्वेष नहीं रखना चाहिए। यह पृथ्वी का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, भक्त कन्या कुल्ला सुभद्दा ने अपने संप्रदाय के संन्यासियों की प्रशंसा करते हुए कहा था:

यदि कोई क्रोधित होकर कुल्हाड़ी से अपना एक हाथ काट ले, और दूसरा प्रसन्न होकर दूसरे पर मीठी सुगंध छिड़के, तो भी वे एक-दूसरे से द्वेष नहीं रखेंगे और न ही प्रेम करेंगे। उनके हृदय पृथ्वी के समान हैं, मेरे संन्यासी अविचलित हैं।' 22. जल।

6. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिन पांच गुणों के जल का सेवन करने को कहा है, वे कौन-कौन से हैं?'

'हे राजा, जिस प्रकार जल स्थिर रहता है (तालाबों, कुओं आदि में), हिलता नहीं, अपनी सामान्य अवस्था में अविचलित रहता है और स्वभाव से शुद्ध होता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो पाखंड, शिकायत, अभाव और सभी प्रकार के अनुचित प्रभावों से दूर रहकर परिश्रम करता है, स्थिर, अविचलित, अविचलित और स्वभाव से शुद्ध होना चाहिए। हे राजा, यही जल का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

7. हे राजा, जैसे जल सदा स्फूर्तिदायक होता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तल्लीन होकर सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होना चाहिए, सभी का कल्याण चाहना चाहिए और सभी पर कृपा करनी चाहिए। हे राजा, यह जल का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

8. और फिर, हे राजा, जैसे जल गंदे को साफ कर देता है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम करना चाहिए।

हे राजा, प्रयास में तत्पर रहो, चाहे गाँव में हो या जंगल में, अपने शिक्षकों, स्वामियों या गुरु समान माने जाने वालों से किसी भी प्रकार का विवाद न करो, किसी भी प्रकार का अपराध न करो। यह जल का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

9. हे राजा, जिस प्रकार जल सभी मनुष्यों के लिए वांछनीय है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो परिश्रम में तत्पर, अल्प इच्छा रखने वाला, संतुष्ट, एकांतवास में रहने वाला, समस्त जगत के लिए सदा प्रेरणास्रोत होना चाहिए। हे राजा, यह जल का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

10. हे राजा, जैसे जल किसी मनुष्य को हानि नहीं पहुँचाता; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को कर्म, वचन या विचार से कभी कोई ऐसा कुकर्म नहीं करना चाहिए जिससे दूसरों में कलह, झगड़ा, विवाद, शून्यता की भावना, क्रोध या असंतोष उत्पन्न हो। हे राजा, यह जल का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कान्हा गातक में कहा है:

"हे सक्का, समस्त प्राणियों के स्वामी, यदि आप मुझे एक वरदान प्रदान करें, तो हे सक्का, मेरे कारण किसी को भी, मन या शरीर से, किसी भी समय या स्थान पर हानि न हो। हे सक्का, मैं यही वरदान श्रेष्ठ वरदान के रूप में चाहता हूँ।"

23. आग।

11. 'आदरणीय नागसेन, अग्नि के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार अग्नि घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को जला देती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, ज्ञान की अग्नि में उन सभी बुरी प्रवृत्तियों को जला देना चाहिए जो विचार के विषयों पर पनपती हैं, चाहे वे व्यक्तिपरक हों या वस्तुनिष्ठ, चाहे वांछनीय हों या प्रतिकूल। हे राजा, यही अग्नि का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

12. हे राजा, जिस प्रकार अग्नि में दया और करुणा नहीं होती; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी किसी भी बुरी प्रवृत्ति पर दया और करुणा नहीं दिखानी चाहिए। हे राजा, यही अग्नि का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

13. हे राजा, जिस प्रकार अग्नि शीतलता को नष्ट करती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को अपने हृदय में उत्साह की प्रज्वलित अग्नि प्रज्वलित करके उसमें निहित सभी बुरी प्रवृत्तियों को नष्ट कर देना चाहिए। हे राजा, यह अग्नि का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

14. हे राजा, जैसे अग्नि किसी की कृपा न चाहकर, किसी से द्वेष न रखते हुए, सभी के लिए ऊष्मा उत्पन्न करती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो परिश्रम में तत्पर है, अग्नि के समान मन से निवास करना चाहिए, किसी की चापलूसी न करना चाहिए, किसी से द्वेष न रखना चाहिए। हे राजा, यही अग्नि का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

15. हे राजा, जिस प्रकार अग्नि अंधकार को दूर करके प्रकाश उत्पन्न करती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी अंधकार को दूर करना चाहिए।

अज्ञान के अंधकार को दूर करो और ज्ञान के प्रकाश को प्रकट करो। यह अग्नि का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल को उपदेश देते हुए कहा था:

"हे राहुल, अग्नि के समान ध्यान का अभ्यास करो। इससे तुम्हारे भीतर न तो कोई अकारण प्रवृत्ति उत्पन्न होगी और न ही उत्पन्न हुई प्रवृत्तियाँ तुम्हारे हृदय पर हावी होंगी।" 24. वायु।

16. 'आदरणीय नागसेन, वायु के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार पुष्पन के मौसम में हवा वनों और उपवनों में व्याप्त होती है, उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को ध्यान के उन उपवनों में आनंदित होना चाहिए जो मुक्ति के मधुर फूलों से खिले हों। हे राजा, यही हवा का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

17. 'और फिर, हे राजा, जैसे हवा पृथ्वी पर उगने वाले सभी वृक्षों को हिला देती है, उन्हें झुका देती है।

ठीक इसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से प्रयास करता है, वनों के बीच जाकर, समस्त विद्यमान वस्तुओं (समग्र घटनाओं, संखारों) के वास्तविक स्वरूप का अध्ययन करके, सभी बुरी प्रवृत्तियों को परास्त करना चाहिए। हे राजा, यही वायु का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

18. हे राजा, जिस प्रकार वायु आकाश में विचरण करती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर होकर अपने मन को दिव्य तत्वों में विचरण करने का अभ्यस्त करना चाहिए। यह वायु का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

19. हे राजा, जिस प्रकार वायु सुगंध को अपने साथ ले जाती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को अपने धार्मिक जीवन की सुगंधित खुशबू को सदा अपने साथ रखना चाहिए। हे राजा, यह वायु का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

20. हे राजा, जैसे वायु का कोई घर नहीं होता, रहने के लिए कोई ठिकाना नहीं होता; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो परिश्रम में तल्लीन हो, सदा निर्धन रहना चाहिए, समाज से विमुख नहीं होना चाहिए, मन से मुक्त रहना चाहिए। हे राजा, यह वायु का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने सूत्र निपात में कहा है:

संसार की मित्रता में चिंता जन्म लेती है, गृहस्थ जीवन में व्याकुलता की धूल घनी जमी रहती है; घर और मित्रता के बंधनों से मुक्त अवस्था—यही, और केवल यही, संन्यासी का लक्ष्य है।

25. द रॉक।

21. 'आदरणीय नागसेना, चट्टान के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार चट्टान स्थिर, अविचल और अचल होती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो परिश्रम में तल्लीन हो, कभी भी आकर्षक वस्तुओं—रूप, ध्वनि, सुगंध, स्वाद या स्पर्श—से विचलित नहीं होना चाहिए, न ही आदर या तिरस्कार से, न ही समर्थन या उपेक्षा से, न ही श्रद्धा या अभाव से, न सम्मान या अपमान से, न ही प्रशंसा या निंदा से, न ही उसे उन चीजों से आहत होना चाहिए जो आहत करती हैं, न ही उसे भ्रम की स्थिति में विचलित होना चाहिए, न ही उसे कांपना चाहिए और न ही थरथराना चाहिए, बल्कि चट्टान के समान उसे स्थिर रहना चाहिए। हे राजा, यही वह पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने कहा है:

"मजबूत चट्टान हवा से नहीं हिलती, ठीक वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति न तो डगमगाता है और न ही विचलित होता है।"

चाहे प्रशंसा हो या निंदा।
22. हे राजा, जैसे चट्टान दृढ़ और बाहरी चीजों से रहित होती है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी दृढ़ और स्वतंत्र होना चाहिए, किसी के साथ संगति नहीं रखनी चाहिए। हे राजा, यह चट्टान का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

जो व्यक्ति गृहस्थों या तपस्वियों के साथ मेलजोल नहीं रखता, बल्कि अकेला घूमता है, बिना घर के और कम इच्छाओं से ग्रस्त रहता है, वही व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है।

23. हे राजा, जैसे चट्टान पर कोई बीज जड़ नहीं पकड़ता; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने मन में कभी भी बुरी प्रवृत्तियों को जड़ पकड़ने नहीं देना चाहिए। हे राजा, यही चट्टान का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, सुभूति ने कहा है:

जब मेरे हृदय में कामुक विचार उठते हैं, तो मैं अकेले में आत्मनिरीक्षण करके उन्हें दबा देता हूँ। हे वासना से उत्तेजित, जो आपत्तिजनक बातों से आपत्ति करते हो, और अजीबोगरीब घटनाओं को देखकर व्याकुल हो जाते हो, तो एकांत वनों से दूर चले जाओ। क्योंकि वे शुद्ध, संयमी और पाप के दागों से मुक्त मनुष्यों का निवास स्थान हैं। उस पवित्र स्थान को अपवित्र मत करो। वनों को छोड़ दो।

24. 'और फिर, जैसे चट्टान ऊपर उठती है, वैसे ही परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से प्रयास करता है, ज्ञान के माध्यम से ऊपर उठना चाहिए। यह चट्टान का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान ने कहा है:

जब ज्ञानी व्यक्ति लगन से अहंकार को दूर भगा देता है, तो वह ज्ञान की ऊँची चोटियों पर चढ़ता है, और चिंताओं से मुक्त होकर, व्यर्थ संसार और चिंताओं से ग्रस्त भीड़ को देखता है— मानो कोई पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर मैदान में परिश्रम कर रहे अपने साथी मनुष्यों को देख रहा हो।

25. 'और फिर, हे राजा, जिस प्रकार चट्टान नहीं हो सकती

न ऊपर उठना चाहिए, न नीचे झुकना चाहिए; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम कर रहा हो, न ऊपर उठना चाहिए और न नीचे झुकना चाहिए। हे राजा, यही उस चट्टान का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, यह बात धर्मपरायण महिला कुल्ला सुभद्दा ने अपने संप्रदाय के संन्यासियों की प्रशंसा करते हुए कही थी:

"संसार लाभ से ऊपर उठता है, हानि से नीचे गिरता है। मेरे समना लाभ और हानि में एक समान रहते हैं।"

26. स्थान.

26. 'आदरणीय नागसेना, अंतरिक्ष के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार अंतरिक्ष को सर्वत्र पकड़ना असंभव है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को कहीं भी बुरी प्रवृत्तियों का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। हे महाराज, यही अंतरिक्ष का वह पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

27. हे राजा, जिस प्रकार आकाश ऋषियों, तपस्वियों, देवताओं और पक्षियों के झुंडों का परिचित आश्रय स्थल है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास कर रहा हो, यह जानते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति (संस्कार) अनित्य है, दुःख से ग्रसित है और उसमें कोई स्थायी सिद्धांत (आत्मा) नहीं है, अपने मन को सभी चीजों पर सहजता से विचरण करने देना चाहिए। हे राजा, यह आकाश का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

28. हे राजा, जिस प्रकार अंतरिक्ष भय उत्पन्न करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी किसी भी प्रकार के जन्म के प्रति सजग होकर अपने मन में पुनर्जन्म का भय उत्पन्न करने का प्रशिक्षण देना चाहिए। उसमें सुख की तलाश नहीं करनी चाहिए। हे राजा, यही अंतरिक्ष का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

29. हे राजा, जिस प्रकार अंतरिक्ष अनंत, असीम और अथाह है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु का धर्म, जो परिश्रम में तत्पर है, असीम होना चाहिए और उसका ज्ञान भी असीम होना चाहिए। हे राजा, यही अंतरिक्ष का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

30. हे राजा, जिस प्रकार आकाश किसी चीज से जुड़ा नहीं रहता, किसी चीज से चिपकता नहीं, किसी चीज पर टिका नहीं रहता, किसी चीज से रुकता नहीं; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, अपने परिवार, शिष्य, अपने समर्थन, निवास स्थान, धार्मिक जीवन में आने वाली किसी भी बाधा, किसी भी आवश्यकता या किसी भी प्रकार की बुरी प्रवृत्ति पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, न ही उनसे चिपकना चाहिए, न ही उन पर टिका रहना चाहिए और न ही उनसे बाधित होना चाहिए। हे राजा, यह आकाश का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल को उपदेश देते हुए कहा था:

"हे राहुल, जिस प्रकार आकाश किसी वस्तु पर टिका नहीं होता, उसी प्रकार तुम आकाश के समान ध्यान का अभ्यास करो। इससे न तो सुखद और न ही अप्रिय संवेदनाएँ, चाहे वे अलग-अलग उत्पन्न हों, तुम्हारे हृदय पर हावी होंगी।"

27. चंद्रमा।

31. 'आदरणीय नागसेन, चंद्रमा के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में उदय होने पर चंद्रमा निरंतर बढ़ता जाता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी सजग आचरण, धर्म, सद्गुण, कर्तव्य पालन, शास्त्रों के ज्ञान और अध्ययन, एकांतवास, आत्मसंयम, इंद्रियों पर नियंत्रण, संयम और जागरण में निरंतर वृद्धि करनी चाहिए। हे महाराज, यही चंद्रमा का पहला गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।

32. 'और फिर, हे राजा, जैसे चंद्रमा एक शक्तिशाली स्वामी है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो प्रयास में गंभीर है, अपनी इच्छा पर एक शक्तिशाली स्वामी होना चाहिए।

चाहे कोई कुआँ हो, या कोई पर्वत की खाई हो, या बाढ़ में डूबी नदी हो, शरीर और मन दोनों से समान रूप से लज्जित हो जाएँगे; हे भाइयों, तुम भी आम लोगों से मिलने जाते समय चंद्रमा के समान रहो। अपने बाहरी व्यवहार और आंतरिक भावना में एकरूपता बनाए रखते हुए, हमेशा ऐसे रहो जैसे कोई अजनबी पहली बार आम लोगों के सामने आता है। 28. सूर्य।

36. 'आदरणीय नागसेन, सूर्य के वे सात गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार सूर्य जल को वाष्पित कर देता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने भीतर की सभी बुरी प्रवृत्तियों को बिना किसी अपवाद के नष्ट कर देना चाहिए। हे महाराज, यही सूर्य का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

37. हे राजा, जिस प्रकार सूर्य अंधकार को दूर करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर होकर कामवासना, क्रोध, सुस्ती, अहंकार, विधर्म, बुराई और समस्त अधर्म के अंधकार को दूर करना चाहिए। हे राजा, सूर्य का यह दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

38. 'और फिर, हे राजा, जैसे सूर्य सदा गतिमान रहता है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सदा चिंतनशील रहना चाहिए। यह,

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, सूर्य का तीसरा गुण उसमें होना चाहिए।

39. हे राजा, जैसे सूर्य के चारों ओर किरणों का प्रभामंडल होता है, वैसे ही हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी ध्यान का प्रभामंडल धारण करना चाहिए। हे राजा, यह सूर्य का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

40. हे राजा, जिस प्रकार सूर्य निरंतर असंख्य लोगों को ऊष्मा प्रदान करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सजग आचरण, धर्म, सद्गुण, कर्तव्यपालन, घान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति (दिव्य ध्यान या परमानंद की विभिन्न अवस्थाएँ), पाँच नैतिक शक्तियों, सात प्रकार के ज्ञान, सचेतन और आत्मसंयम के चार गुणों, बुराई के विरुद्ध चार प्रकार के संघर्ष और संतत्व के चार मार्गों के अनुसरण से समस्त देवी-देवताओं और मनुष्यों के जगत को आनंदित करना चाहिए। हे राजा, यही सूर्य का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए।

41. हे राजा, जिस प्रकार सूर्य, राहु (ग्रहण के राक्षस) के भय से भयभीत होता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, यह देखकर कि प्राणी दुखद जन्म-मृत्यु के दुराचार में फँसे हुए हैं, पूर्व जन्मों के कर्मों के दुखद परिणामों, नरक के दंडों या बुरी प्रवृत्तियों के जाल में फंसे हुए हैं, अपने मन में गहरी चिंता और भय उत्पन्न करना चाहिए। हे राजा, यही सूर्य का छठा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

42. हे राजा, जिस प्रकार सूर्य भले और बुरे दोनों को प्रकट करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सच्चे मन से अच्छे और बुरे दोनों को प्रकट करना चाहिए।

नैतिक शक्तियाँ, ज्ञान के प्रकार, सचेत और आत्मसंयमित रहने के तरीके, बुराई के विरुद्ध संघर्ष, संतत्व के मार्ग और सभी सांसारिक और आध्यात्मिक गुण। हे राजा, सूर्य का यह सातवाँ गुण है जो उनमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, वंगीसा ने कहा है:

"जैसे उगता हुआ सूरज सभी जीवित प्राणियों को शुद्ध और अशुद्ध, अच्छे और बुरे दोनों रूपों को स्पष्ट करता है, वैसे ही भिक्षु को उगते हुए सूर्य के समान, शास्त्रों को सदा अपने मन में धारण करके, अज्ञान में अंधे मनुष्यों को आनंद के बहुआयामी आर्य मार्ग को प्रकट करना चाहिए।" 29. सक्का।

43. 'आदरणीय नागसेन, सक्का (देवताओं के राजा) के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उन्हें धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, जिस प्रकार सक्का पूर्ण आनंद का अनुभव करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी एकांतवास के पूर्ण आनंद में मग्न रहना चाहिए। हे राजा, यही सक्का का पहला गुण होना चाहिए।'

44. हे राजा, जैसे सक्का अपने देवताओं को अपने आस-पास देखकर उन्हें प्रसन्न करता है और उन्हें आनंदित करता है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से प्रयास करते हुए अपने मन को एकाग्र, सजग और स्थिर रखना चाहिए, अपने भीतर आनंद उत्पन्न करना चाहिए, स्वयं को प्रेरित करना चाहिए, प्रयास करना चाहिए और उत्साह से परिपूर्ण होना चाहिए। हे राजा, यही सक्का का दूसरा गुण होना चाहिए।

45. हे राजा, जिस प्रकार सक्का कभी असंतुष्ट नहीं होता, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तल्लीन होकर एकांतवास से असंतुष्ट नहीं होना चाहिए। हे राजा, यही सक्का का तीसरा गुण होना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, वरिष्ठ सुभूति ने कहा है:

"हे महान वीर, मैंने संसार का त्याग कर दिया है, आपके द्वारा सिखाए गए सिद्धांत के अनुसार, मैं यह स्वीकार नहीं करूँगा कि मेरे हृदय में वासना या लालसा का कोई विचार उत्पन्न हुआ हो।" 30. संप्रभु अधिपति।

46. 'आदरणीय नागसेन, आपके अनुसार अधिपति के वे चार गुण कौन से हैं जिन्हें उसे धारण करना चाहिए?'

'हे राजा, जिस प्रकार परम स्वामी लोकप्रियता के चार तत्वों (उदारता, सौम्यता, न्याय और निष्पक्षता) द्वारा जनता का स्नेह प्राप्त करता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से प्रयास करता है, संघ के भाइयों और शासकों तथा सभी लिंगों के गृहस्थों का स्नेह प्राप्त करे, उन्हें प्रसन्न करे और उनके हृदयों को आनंदित करे। हे राजा, यही परम स्वामी का गुण होना चाहिए।'

47. हे राजा, जिस प्रकार परम स्वामी अपने राज्य में लुटेरों के गिरोहों को पनपने नहीं देता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहते हुए अपने भीतर कामुक, क्रोधित या क्रूर विचार उत्पन्न नहीं होने देने चाहिए। हे राजा, यही परम स्वामी का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने कहा है:

"जो व्यक्ति बुरे विचारों के दमन में आनंद लेता है, और सदा आत्मसंयमित रहता है, संसार जिन चीजों को सुंदर समझता है, उनकी अपवित्रता पर चिंतन करता है, वह शैतान के बंधनों को तोड़ देगा - बल्कि उन्हें दो टुकड़ों में काट देगा।"

48. हे राजा, जिस प्रकार परम स्वामी समस्त संसार में, यहाँ तक कि सागर की सीमा तक, भले-बुरे का परीक्षण करते हैं, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी प्रतिदिन अपने कर्मों, वचनों और विचारों का आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और मन ही मन यह कहना चाहिए: "मैं इन तीनों दिशाओं में कैसे निर्दोश होकर दिन व्यतीत करूँ?" हे राजा, यही परम स्वामी का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के परम स्वामी बुद्ध ने अपने उत्तम एकुत्तर निकाय में कहा है:

"सन्यासी को निरंतर सावधानी से प्रतिदिन स्वयं का आत्मनिरीक्षण करना चाहिए— 'दिन और रातें तेजी से बीतते जा रहे हैं, तो उन्होंने मुझे कैसे पाया? और कैसे छोड़ा?'"

49. हे राजा, जिस प्रकार परम स्वामी को भीतर और बाहर दोनों ओर से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, आत्मसंयम को अपने द्वारपाल के रूप में धारण करना चाहिए, ताकि वह सभी प्रकार की बुराई, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, से सुरक्षित रहे। हे राजा, यह परम स्वामी का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने कहा है:

"हे भाइयों, आत्मसंयम को अपना द्वारपाल बनाकर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य बुराई को त्यागकर अच्छाई में संलग्न होता है, अपराध की बातों को त्यागकर निष्कलंकता में संलग्न होता है, और जीवन की पवित्रता में स्वयं को बनाए रखता है।"

तीसरा अध्याय यहीं समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 4

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----II-22-II----->>>> अगला

31. सफेद चींटी।

1. 'आदरणीय नागसेना, दीमक का वह गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार दीमक अपना काम तभी शुरू करती है जब वह अपने ऊपर छत बना लेती है और खुद को ढक लेती है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी भिक्षा मांगने के अपने सफर में अपने मन को धर्म और संयम से छत की तरह ढक लेना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से, हे महाराज, वह सभी भय से मुक्त हो जाएगा। हे महाराज, दीमक का यही गुण उनमें होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, उपसेना वांगंतपुत्त ने कहा है:

"जो भक्त अपने मन को धर्म और आत्म-संयम की छत्रछाया में रखता है, संसार से अछूता रहता है, और हर भय से मुक्त हो जाता है।"
32. बिल्ली।

2. 'आदरणीय नागसेना, बिल्ली में वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, जिस प्रकार बिल्ली गुफाओं, बिलों और बहुमंजिला इमारतों के अंदरूनी हिस्सों में चूहों की तलाश में ही जाती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, आपको भी ऐसा ही करना चाहिए।

परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से प्रयास करता है, चाहे वह गाँव जाए, जंगल जाए, वृक्षों की तलहटी में जाए या किसी खाली घर में जाए, उसे निरंतर और सदा अपने भोजन, अर्थात् आत्म-संयम की खोज में तत्पर रहना चाहिए। यही वह पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

3. हे राजा, जिस प्रकार बिल्ली अपने शिकार का पीछा करते समय हमेशा घात लगाकर बैठती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, अस्तित्व से आसक्ति के कारण उत्पन्न होने वाले व्यक्तित्व के पाँच विशिष्ट लक्षणों के उद्गम और अंत के प्रति सचेत रहना चाहिए, और मन ही मन सोचना चाहिए: "ऐसा है रूप, ऐसा है उसका उद्गम, ऐसा है उसका अंत। ऐसी है संवेदना, ऐसा है उसका उद्गम, ऐसा है उसका अंत। ऐसे हैं विचार, ऐसा है उनका उद्गम, ऐसा है उनका अंत। ऐसी हैं मानसिक क्षमताएँ (संस्कार), ऐसा है उनका उद्गम, ऐसा है उनका अंत। ऐसी है आत्मचेतना, ऐसा है उसका उद्गम, ऐसा है उसका अंत।" हे राजा, यही बिल्ली का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"भविष्य के राज्यों में दूर-दूर तक पुनर्जन्म की तलाश मत करो। प्रार्थना करो, स्वर्ग से तुम्हें क्या लाभ हो सकता है! अभी, इस वर्तमान संसार में, और जिस अवस्था में तुम स्वयं को पाते हो, विजेता बनो!" 33. चूहा।

4. 'आदरणीय नागसेना, चूहे का वह एक गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार चूहा इधर-उधर भटकते हुए भोजन की तलाश में रहता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी निरंतर चिंतन करते हुए इधर-उधर भटकते रहना चाहिए। यही गुण उसमें चूहे का होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, उपसेना वांगंतपुत्र ने कहा है:

"सदा सतर्क और शांत, अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति, ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट मानते हुए, स्वयं को सभी इच्छाओं और चिंताओं से मुक्त रखता है।" 34. बिच्छू।

5. 'आदरणीय नागसेना, बिच्छू का वह गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

'हे महाराज, जिस प्रकार बिच्छू अपनी पूंछ को हथियार बनाकर चलते समय अपनी पूंछ को सीधा रखता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने ज्ञान को हथियार बनाकर रखना चाहिए।'

और वह अपने हथियार, ज्ञान को सदा धारण किए रखे। हे राजा, यही बिच्छू का गुण होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, उपसेना वांगंत-पुत्र, वरिष्ठ ने कहा है:

"ज्ञान की तलवार खींचे हुए, अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति युद्ध में हमेशा अजेय रहेगा, हर डर से मुक्त हो जाएगा।" 35. नेवला।

6. 'आदरणीय नागसेना, नेवले का वह गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार नेवला साँप पर हमला करते समय अपने शरीर पर विषनाशक लेप लगा लेता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को क्रोध और घृणा से भरे संसार में, जहाँ कलह, संघर्ष, विवाद और शत्रुता व्याप्त है, जाते समय अपने मन को प्रेम के विषनाशक से युक्त रखना चाहिए। हे महाराज, यही वह गुण है जो नेवले में होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, धर्म के प्रमुख, सारिपुत्त ने कहा है:

"इसलिए अपने सगे-संबंधियों के प्रति प्रेम भाव रखना चाहिए, और अजनबियों के प्रति भी, और समस्त संसार प्रेममय हृदय से परिपूर्ण होना चाहिए—यही समस्त बुद्धों का सिद्धांत है।" 36. बूढ़ा नर सियार।

7. 'आदरणीय नागसेना, आप कहते हैं कि बूढ़े नर सियार को जिन दो गुणों को अपनाना चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार बूढ़ा सियार किसी भी प्रकार का भोजन पाकर अरुचि नहीं करता, बल्कि आवश्यकतानुसार खाता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने जीवन को जीवित रखने के एकमात्र उद्देश्य से प्राप्त भोजन को बिना अरुचि के ग्रहण करना चाहिए। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो बूढ़े सियार में होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, महा कस्सपा ने कहा है:

अपने घर से निकलकर, मैं भिक्षा मांगने के लिए गांव की गली में गया। वहां मैंने एक कुष्ठ रोगी को भोजन करते देखा, और जैसा उचित था, मैंने भी उसके पास खड़े होकर उससे कुछ दान मांगा। उस कुष्ठ रोगी का हाथ भी कुष्ठ रोग से ग्रसित था, उसने मेरे कटोरे में चावल का एक गोला रखा—उसके पास देने के लिए बस यही था—और जैसे ही उसने उसे रखा, उसकी एक उंगली दर्दनाक तरीके से टूटकर गिर गई। दीवार के पीछे बैठकर मैंने वह चावल का गोला खाया, और न तो खाते समय, न ही बाद में, मेरे मन में कोई घृणा का विचार आया।

8. हे महाराज, जिस प्रकार बूढ़ा सियार भोजन मिलने पर उसकी जाँच-परख नहीं करता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तल्लीन रहकर यह नहीं देखना चाहिए कि दिया गया भोजन कड़वा है या मीठा, स्वादिष्ट है या बेस्वाद – उसे जैसा है वैसा ही खाकर संतुष्ट हो जाना चाहिए। हे महाराज, यही बूढ़े सियार का दूसरा गुण है।

उसे ऐसा करना चाहिए था। क्योंकि हे राजा, उपसेना वांगंत-पुत्र, बड़े ने कहा था:

कड़वे भोजन का भी उसे आनंद लेना चाहिए, मीठे स्वाद की लालसा नहीं करनी चाहिए। स्वाद की लालसा से विचलित मन कभी भी उच्च ध्यान की परमानंद अवस्था का अनुभव नहीं कर सकता। जो व्यक्ति दी गई किसी भी चीज़ से संतुष्ट है—केवल उसी में समनत्व पूर्ण होता है। 37. हिरण।

9. 'आदरणीय नागसेन, हिरण के वे तीन गुण जिन्हें आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार हिरण दिन में वन में विचरण करता है और रात खुले आकाश में बिताता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी दिन वन में और रात खुले आकाश में बितानी चाहिए। हे महाराज, यही हिरण का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने लोमहा मसन परियाय नामक व्याख्या में यही कहा है।

"और मैं, सारिपुत्त, जब रातें ठंडी और सर्द होती थीं, अष्टक पर्वों के समय, जब बर्फ गिरती थी, तब मैं रात खुले आसमान के नीचे और दिन जंगलों में बिताता था। और गर्मी के आखिरी महीने में भी मैं दिन खुले आसमान के नीचे और रात जंगलों में बिताता था।"

10. हे महाराज, जिस प्रकार हिरण भाला या बाण के आने पर उससे बच निकलता है और अपने शरीर को उसके मार्ग में नहीं आने देता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, जब बुरी प्रवृत्तियाँ उस पर हावी हों, तो उनसे बचकर निकल जाना चाहिए और अपने मन को उनके मार्ग में नहीं लगाना चाहिए। हे महाराज, यह हिरण का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

11. हे राजा, जिस प्रकार हिरण मनुष्यों को देखकर इधर-उधर भाग जाता है ताकि वे उसे देख न सकें; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, जब वह झगड़ालू, कलह-झगड़े में लिप्त, दुष्ट और निष्क्रिय, समाजप्रेमी मनुष्यों को देखता है, तो उसे इधर-उधर भाग जाना चाहिए ताकि न तो वे उसे देख सकें और न ही वह उन्हें। हे राजा, यह हिरण का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"जिस व्यक्ति के हृदय में बुराई हो, जो निष्क्रिय हो, उत्साहहीन हो, दुष्ट जीवन जीता हो, पवित्र वचनों का बहुत कम ज्ञान रखता हो—वह व्यक्ति किसी भी समय या स्थान पर मेरा साथी न बने, न ही मेरे साथ रहे।"

38. बैल।

12. 'आदरणीय नागसेन, बैल के वे चार गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार बैल कभी अपना बाड़ा नहीं छोड़ता; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने शरीर का त्याग इस आधार पर नहीं करना चाहिए कि उसका स्वभाव ही अपघटन, क्षय, विघटन और नाश है। हे महाराज, यही बैल का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

13. हे राजा, जैसे बैल एक बार जुआ अपने ऊपर ले लेता है तो हर परिस्थिति में, चाहे दुख हो या पीड़ा, उस जुए को सहन करता है; ठीक वैसे ही, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, एक बार संन्यासी का जीवन अपना लेने के बाद, सुख-दुख में, अपने जीवन के अंत तक, अपनी अंतिम सांस तक, उस पर कायम रहना चाहिए। हे राजा, यह बैल का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

14. हे राजा, जिस प्रकार बैल कभी तृप्त न होने वाली इच्छा से जल पीता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से अपने गुरुओं और गुरुओं की शिक्षा को कभी तृप्त न होने वाली इच्छा, प्रेम और आनंद के साथ ग्रहण करना चाहिए। हे राजा, यही बैल का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

15. हे राजा, जिस प्रकार बैल किसी पर भी डाले गए जुए को समान रूप से सहन करता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से प्रयास कर रहा हो, नसीहतों और उपदेशों को सिर झुकाकर स्वीकार करना चाहिए।

बुजुर्गों, कनिष्ठ और मध्यम स्तर के भाइयों और विश्वासी आम लोगों के लिए समान रूप से। हे राजा, यह उस आदेश का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा था:

"एक नौसिखिया, सात साल का लड़का, आज ही हमारे समूह में शामिल हुआ है, वह भी मुझे सिखा सकता है, और मैं सिर झुकाकर उसकी सलाह सहर्ष स्वीकार करूँगा। बार-बार, जहाँ कहीं भी मैं उससे मिलूँ, मैं उस पर अपना प्रबल स्नेह और प्रेम बरसाऊँगा—यदि वह अच्छा हो—और शिक्षक का सम्मानित स्थान उसे सौंप दूँगा।" 39. सूअर।

16. 'आदरणीय नागसेन, सूअर के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार गर्म मौसम की उमस भरी गर्मी में सूअर पानी की शरण लेता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, जब उसका हृदय विचलित होकर क्रोध से व्याकुल होकर पतन के कगार पर हो, प्रेम ध्यान के शीतल, अमृतमय और मधुर जल की शरण लेनी चाहिए। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो सूअर में होना चाहिए।

17. और फिर, हे राजा, जैसे सूअर कीचड़ भरे पानी में जाकर अपनी थूथन से दलदल खोदकर उसमें अपने लिए एक कुंड बना लेता है और लेट जाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो परिश्रम में तत्पर है, अपने शरीर को मन में विलीन कर लेना चाहिए, और

ध्यानमग्न अवस्था में लेट जाओ। हे राजा, यह सूअर का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, पिंडोल भारद्वग ने कहा है:

"अकेले, बिना किसी के पास, अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति, इस शरीर की प्रकृति की खोज और खोज करते हुए, गहन चिंतन के मधुर बिस्तर पर विश्राम कर सकता है।" 40. हाथी।

18. 'हे पूज्य नागसेन, हाथी के वे पाँच गुण कौन से हैं जिन्हें उसे धारण करना चाहिए?'

'हे महाराज, जिस प्रकार हाथी चलते हुए धरती को रौंदता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से प्रयास करते हुए, शरीर के स्वभाव पर विजय प्राप्त करके समस्त बुराई का नाश करना चाहिए। हे महाराज, यही हाथी का पहला गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।'

19. हे राजा, जिस प्रकार हाथी देखते समय अपना पूरा शरीर घुमाता है, हमेशा सीधे सामने देखता है, इधर-उधर नहीं देखता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, देखते समय अपना पूरा शरीर घुमाना चाहिए, हमेशा सीधे सामने देखना चाहिए, इधर-उधर नहीं देखना चाहिए, ऊपर नहीं देखना चाहिए, अपने पैरों की ओर नहीं देखना चाहिए, बल्कि अपनी आँखें लगभग एक जुए की लंबाई के बराबर आगे स्थिर रखनी चाहिए। हे राजा, यह हाथी का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

20. और फिर, हे राजा, जैसे हाथी का कोई स्थायी ठिकाना नहीं होता, वैसे ही वह भोजन की तलाश में भी हमेशा एक ही स्थान पर नहीं जाता, उसका कोई निश्चित ठिकाना नहीं होता।

निवास; ठीक इसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी स्थायी विश्राम स्थल नहीं रखना चाहिए, बल्कि बिना घर के ही भिक्षा मांगने के लिए घूमना चाहिए। अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण, जहाँ कहीं भी उसे कोई सुखद, उपयुक्त और मनभावन स्थान दिखाई दे, चाहे वह कुटिया हो, वृक्ष की तलहटी हो, गुफा हो या पर्वत की ढलान हो, वहीं निवास करना चाहिए, स्थायी निवास नहीं बनाना चाहिए। हे राजा, हाथी का यह तीसरा गुण होना चाहिए।

21. हे राजा, जिस प्रकार हाथी जल में आनंदित होता है, निर्मल, शीतल जल से भरे, पीले, नीले, लाल और सफेद कमलों से लदे हुए सुंदर कमल-कुंडों में डुबकी लगाता है, और वहाँ उन खेलों में क्रीड़ा करता है जिनमें वह शक्तिशाली प्राणी प्रसन्न होता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रमपूर्वक आत्म-संयम के सुंदर सरोवर में डुबकी लगानी चाहिए, जो मुक्ति के फूलों से ढका हुआ है, और शुद्ध, निर्मल, निर्मल सत्य के मधुर जल से भरा हुआ है; वहाँ उसे ज्ञान द्वारा संखारों को त्यागकर दूर भगाना चाहिए, वहाँ उसे उस खेल में आनंदित होना चाहिए जो संन्यासी को प्रसन्न करता है। हे राजा, यह हाथी का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

22. हे महाराज, जिस प्रकार हाथी सावधानी से अपना पैर उठाता है और सावधानी से रखता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से अपना पैर उठाते समय सचेत और संयमित रहना चाहिए।

अपने पैरों को उठाते और रखते समय, चलते या लौटते समय, अपनी भुजा को फैलाते या समेटते समय—वह जहाँ कहीं भी हो, उसे सचेत और संयमित रहना चाहिए। हे राजा, यह हाथी का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने सर्वश्रेष्ठ संयुत्त निकाय में कहा है:

"कर्म में संयम ही अच्छा है।"
और बोलने में अच्छा संयम बरतना चाहिए।
मन में संयम रखना अच्छा है।
हर स्थिति में संयम बरतना अच्छा है।
कहा जाता है कि उसकी कड़ी सुरक्षा की जाती है।
जो पाप से लज्जित है, वह हर बात में आत्मसंयमित है।
यहां चौथा अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 5

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-23-||----->>>> अगला

41. शेर।

1. 'आदरणीय नागसेना, शेर के वे सात गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार सिंह निर्मल और शुद्ध पीले रंग का होता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी निर्मल, शांत और निर्मल मन का होना चाहिए, क्रोध और उदासी से मुक्त होना चाहिए। हे महाराज, यही सिंह का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

2. हे राजा, जिस प्रकार सिंह के चार पंजे होते हैं और वह तीव्र गति से चलता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से चारों मार्गों पर चलना चाहिए। हे राजा, यह सिंह का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

3. हे राजा, जिस प्रकार सिंह के शरीर पर सुंदर, मनमोहक कारा वस्त्र होता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सुंदर, मनमोहक धर्म वस्त्र धारण करना चाहिए। हे राजा, यह सिंह का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

4. हे राजा, जैसे सिंह अपने प्राण त्यागने पर भी किसी के सामने नहीं झुकता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो निरंतर प्रयास करता है, भले ही उसे संन्यासी की सभी आवश्यक वस्तुएँ—भोजन, वस्त्र, आवास और बीमारों के लिए औषधि—प्राप्त न हों, फिर भी कभी किसी के सामने न झुके।

किसी भी व्यक्ति के लिए। यह शेर का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

5. हे राजा, जिस प्रकार सिंह नियमित रूप से भोजन करता है, जहाँ कहीं भी उसका शिकार गिरता है, वह वहीं से अपनी आवश्यकता के अनुसार भोजन ग्रहण करता है और मांस के सर्वोत्तम टुकड़ों की खोज नहीं करता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी नियमित रूप से प्रत्येक कुटिया में भिक्षा माँगते हुए, बेहतर भोजन की तलाश में किसी भी घर को छोड़े बिना, भोजन के मामले में चुन-चुनकर भोजन नहीं करना चाहिए; जहाँ कहीं भी उसे चावल का एक निवाला मिले, उसे वहीं से खा लेना चाहिए, सर्वोत्तम टुकड़ों की खोज नहीं करनी चाहिए। हे राजा, यह सिंह का पाँचवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए।

6. हे राजा, जिस प्रकार सिंह अपने भोजन को संचित नहीं करता और एक बार शिकार खा लेने के बाद दोबारा उसके पास नहीं लौटता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहते हुए भोजन संचित नहीं करना चाहिए। यह सिंह का छठा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

7. हे राजा, जैसे शेर को भोजन न मिलने पर भी वह भयभीत नहीं होता, और यदि भोजन मिल भी जाए तो वह बिना लालसा, बिना कमजोरी, बिना क्षीण हुए खाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा,

हे परिश्रमी भिक्षु, जो परिश्रम में तत्पर हो, भोजन न मिलने पर भी भयभीत न हो; और यदि भोजन मिल जाए तो उसे लालसा, व्याकुलता, क्षीणता के खतरे से सचेत रहते हुए, भोजन के उचित परिणाम (पवित्रता की प्राप्ति के लिए जीवन निर्वाह) का पूर्ण ज्ञान रखते हुए, बिना लालसा, क्षीणता या दुर्बलता के खाए। हे राजा, यही सिंह का सातवाँ गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के अधिपति भगवान बुद्ध ने परम उत्तम संयुत्त निकाय में महा कस्सपा की स्तुति करते हुए कहा है:

"हे भिक्षुओं, यह कस्सपा जो भी भोजन प्राप्त करता है, उसी से संतुष्ट रहता है; वह जो भी भोजन प्राप्त होता है, उससे संतुष्ट रहने के गुण को बढ़ाता है; वह भिक्षा के लिए किसी भी अनुचित या अशोभनीय कार्य का दोषी नहीं होता; यदि उसे भिक्षा न भी मिले, तो भी वह भयभीत नहीं होता; और यदि भिक्षा मिलती भी है, तो वह उसे लालसा, दुर्बलता, भय से परे, खतरे से अवगत रहते हुए, भोजन ग्रहण करने के सही उद्देश्य का पूर्ण ज्ञान रखते हुए ग्रहण करता है।" 42. काक्रवाका पक्षी।

8. 'आदरणीय नागसेन, काकरावक पक्षी के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार काक्रावाक पक्षी अपने जीवन के अंत तक भी अपने साथी का त्याग नहीं करता, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी कभी भी, यहाँ तक कि अपने जीवन के अंत तक भी, अपने साथी का त्याग नहीं करना चाहिए।

अपने जीवन के अंत तक, चिंतन की आदत को त्याग दो। हे राजा, यही वह पहला गुण है जो काकरावक पक्षी में होना चाहिए।

9. हे महाराज, जिस प्रकार काकरवाक पक्षी सेवाला और पनाका (जलीय पौधे) खाकर तृप्ति प्राप्त करता है और संतुष्ट रहता है, उसकी शक्ति और सुंदरता में कोई कमी नहीं आती; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी जो परिश्रम में तत्पर रहता है, जो कुछ भी प्राप्त करे, उसमें तृप्ति प्राप्त करनी चाहिए। और यदि वह ऐसा तृप्ति प्राप्त करता है, हे महाराज, तो उसकी ध्यान शक्ति, ज्ञान, मोक्ष, मोक्ष की चेतना से उत्पन्न अंतर्दृष्टि और किसी भी प्रकार की अच्छाई में कोई कमी नहीं आती। हे महाराज, यही काकरवाक पक्षी का दूसरा गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।

10. हे महाराज, जिस प्रकार काकरवाक पक्षी किसी भी सजीव प्राणी को हानि नहीं पहुँचाता, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो परिश्रम में तत्पर है, गदा और तलवार त्यागकर, नम्रता और करुणा से परिपूर्ण होकर, सभी सजीव प्राणियों के प्रति दयालु और करुणामय होना चाहिए। हे महाराज, यही काकरवाक पक्षी का तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने काकरवाक गातक में कहा है:

"जो व्यक्ति हत्या नहीं करता, विनाश नहीं करता, अत्याचार नहीं करता, और दूसरों को उनका हक छीनने के लिए मजबूर नहीं करता, वह सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालुता दिखाता है— किसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध उसकी शांति भंग नहीं करता।" 43. पेनहिक पक्षी।

11. 'आदरणीय नागसेना, पेनाहिका पक्षी के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार पेनाहिका चिड़िया अपने साथी से ईर्ष्या के कारण अपने बच्चों का पालन-पोषण करने से इनकार कर देती है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी किसी भी बुरी प्रवृत्ति से सावधान रहना चाहिए।'

जो भावनाएँ उसके भीतर उत्पन्न होती हैं, उन्हें अपने सचेतन मन से आत्म-संयम के उत्तम छिद्र में रखकर, उसके मन के द्वार पर निवास करना चाहिए, और शरीर से संबंधित सभी मामलों में आत्म-नियंत्रण का निरंतर अभ्यास करना चाहिए। हे राजा, यही पेनाहिका पक्षी का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

12. हे राजा, जिस प्रकार पेनाहिका पक्षी दिन भर भोजन की खोज में जंगल में भटकता है, परन्तु रात्रि में अपने झुंड में शरण लेता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो दस बंधनों से मुक्ति पाने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए एकांतवास में रहा हो और उसे वहाँ संतोष न मिला हो, उसे निंदा के खतरे से बचने के लिए संघ में शरण लेनी चाहिए और संघ की शरण में रहना चाहिए। हे राजा, यही पेनाहिका पक्षी का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह कहा था:

"मनुष्यों के निवास से दूर एकांतवास की तलाश करो, वहाँ पाप के बंधनों से मुक्त होकर रहो; परन्तु जो एकांत में शांति न पाए, वह संघ के साथ निवास करे, हृदय से सतर्क, सचेत और आत्मसंयमित होकर।"

44. घरेलू कबूतर।

13. 'आदरणीय नागसेना, कबूतर का वह एक गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे राजा, जिस प्रकार घर का कबूतर मनुष्यों के घरों में रहते हुए उनकी किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होता, बल्कि तटस्थ रहता है और केवल पक्षियों से संबंधित वस्तुओं पर ही ध्यान देता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, जब वह दूसरों के घरों में जाता है, तो उसे न तो स्त्री से, न पुरुष से, न पलंग से, न कुर्सी से, न वस्त्र से, न आभूषण से, न उपयोग या आनंद की वस्तुओं से, न ही वहाँ उपलब्ध विभिन्न प्रकार के भोजन से, बल्कि सदा तटस्थ रहना चाहिए और केवल उन्हीं विचारों में लीन रहना चाहिए जो संन्यासी को शोभा देते हैं। हे राजा, यही घर के कबूतर का गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कुल्लानाद गातक में कहा है:

"भोजन या पेय के लिए लोगों के घरों में बार-बार जाते समय, भोजन और पेय दोनों में संयम बरतें, और सुंदरता के रूप को अपने विचारों को आकर्षित न करने दें।" 45. उल्लू।

14. 'आदरणीय नागसेना, उल्लू के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार उल्लू कौवों से शत्रुता होने पर रात में कौवों के झुंड के पास जाकर उनमें से कई को मार डालता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहना चाहिए।

अज्ञान से शत्रुता रखते हुए, एकांत में बैठकर उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। हे राजा, उल्लू का यही पहला गुण होना चाहिए।

15. हे महाराज, जैसे उल्लू एकांतप्रिय पक्षी है; ठीक वैसे ही, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तल्लीन होकर एकांत में रहना चाहिए और एकांत का आनंद लेना चाहिए। हे महाराज, यही उल्लू का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने अपने उत्कृष्ट संयुत्त निकाय में कहा है:

"मेरे भाइयों, भिक्षु एकांतवास में लीन हो जाएं, एकांतवास में आनंद लें, ताकि वे यह जान सकें कि वास्तव में दुःख क्या है, दुःख का कारण क्या है, दुःख का निवारण क्या है और दुःख के निवारण का मार्ग क्या है।" 46. भारतीय सारस

16. 'आदरणीय नागसेना, भारतीय सारस का वह गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे महाराज, जिस प्रकार भारतीय सारस अपनी पुकार से दूसरों को उनके साथ होने वाले सौभाग्य या विपत्ति के बारे में सूचित करता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने धम्म उपदेशों द्वारा यह बताना चाहिए कि नरक कितना भयानक है और निर्वाण कितना आनंदमय है। हे महाराज, यही भारतीय सारस का गुण है जो उनमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, पिंडोल भारद्वाज ने कहा है:

"दो बातें हैं जो सच्चे संन्यासी को हमेशा दूसरों को स्पष्ट करनी चाहिए - नरक कितना भयानक, कितना डरावना है; निर्वाण का आनंद कितना महान और कितना गहरा है।" 47. द बैट.

17. 'आदरणीय नागसेना, चमगादड़ के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार चमगादड़ भले ही मनुष्यों के घरों में प्रवेश कर उड़ता है, फिर भी शीघ्र ही निकल जाता है, वहाँ ठहरता नहीं; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश करने और नियमित रूप से अपने चक्कर लगाने के बाद, प्राप्त भिक्षा लेकर शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहिए और वहाँ ठहरना नहीं चाहिए। हे महाराज, यही चमगादड़ का पहला गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।'

18. हे राजा, जिस प्रकार चमगादड़ दूसरों के घरों में जाकर उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी, जो लगन से परिश्रम करता है, गृहस्थों के घरों में जाकर उन्हें निरंतर अनुरोधों, अपनी इच्छाओं को बताने, अनुचित व्यवहार, बकबक करने या उनकी समृद्धि या विपत्ति के प्रति उदासीन रहने से कभी भी परेशान नहीं करना चाहिए; उसे कभी भी उन्हें उनके मुख्य व्यवसाय से विचलित नहीं करना चाहिए, बल्कि सभी कार्यों में उनकी सफलता की कामना करनी चाहिए। हे राजा, यह चमगादड़ का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने लक्खना सूत्र में कहा है:

"ओह! दूसरों को कभी कोई हानि या कमी क्यों नहीं उठानी पड़ती, चाहे उनके विश्वास में हो, या धार्मिकता में, या वचन के ज्ञान में, या समझ में, या आत्म-बलिदान में, या धर्म में, या सभी अच्छी चीजों में, या उनके धन भंडार में, या अनाज में, या जमीनों में, या मकानों में, या उनके बेटों में, या पत्नियों में, या उनके भेड़-बकरियों में, या उनके मित्रों में, और रिश्तेदारों में, और बल में, सौंदर्य में, और आनंद में" - वह इस प्रकार सोचता है - दूसरों के लाभ और सफलता की लालसा में!"

48. जोंक।

19. 'आदरणीय नागसेना, जोंक का वह गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

'हे महाराज, जिस प्रकार जोंक जहाँ कहीं भी लग जाए, वहीं चिपक जाती है और खून पीती है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास कर रहा हो, ध्यान के लिए जिस भी विषय पर अपना मन लगाए, उस विषय को उसके रंग, आकार, स्थिति, विस्तार, सीमाओं, प्रकृति और विशिष्ट चिह्नों सहित दृढ़ता से अपने समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए, और मुक्ति के अमृत का आनंद लेना चाहिए। हे महाराज, यही जोंक का गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, अनुरुद्ध ने कहा है:

"शुद्ध हृदय से, दृढ़ ध्यान में, स्वतंत्रता के कभी न खत्म होने वाले पेय का भरपूर आनंद लें।"

49. सर्प।

20. 'आदरणीय नागसेन, आप कहते हैं कि सर्प के वे तीन गुण कौन से हैं जिन्हें उसे धारण करना चाहिए?'

हे महाराज, जिस प्रकार सर्प अपने पेट के बल आगे बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने ज्ञान के बल पर प्रगति करनी चाहिए। हे महाराज, ज्ञान के बल पर प्रगति करने वाले संन्यासी का हृदय (चार सत्यों का) निरंतर अवलोकन करता रहता है; वह संन्यासी के गुणों के विपरीत गुणों को त्याग देता है और उनके अनुरूप गुणों को अपने भीतर विकसित करता है। हे महाराज, यही सर्प का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

21. हे राजा, जिस प्रकार सर्प गति करते समय मादक पदार्थों से दूर रहता है, उसी प्रकार हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम से दूर रहकर अपने मार्ग पर चलना चाहिए। हे राजा, सर्प का यह दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

22. हे राजा, जिस प्रकार सर्प मनुष्यों को देखकर चिंतित और व्याकुल हो जाता है और बचने का मार्ग खोजता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से परिश्रम कर रहा हो, जब अपने मन में गलत विचार या असंतोष उत्पन्न होते हुए पाता है, तो वह चिंतित और व्याकुल हो जाता है और बचने का मार्ग खोजते हुए अपने आप से कहता है: "आज का दिन मैंने लापरवाही में व्यतीत किया है और इसे मैं कभी वापस नहीं पा सकूंगा।" हे राजा, यही भिक्षु का तीसरा गुण है।

उसे सर्प रखना चाहिए। क्योंकि हे राजा, भल्लातीय गातक में वर्णित दो परी पक्षियों का यही कथन है:

"'शिकारी, हमने घर से दूर, अपनी इच्छा के विरुद्ध, केवल एक ही रात बिताई है, और पूरी रात एक-दूसरे के बारे में सोचते रहे हैं, फिर भी हम उसी एक रात का विलाप करते हैं, और शोक मनाते हैं; क्योंकि वह कभी वापस नहीं आ सकती!'"

50. चट्टानी सांप।

23. 'आदरणीय नागसेना, चट्टानी सर्प का वह एक गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे राजा, जिस प्रकार शिला-सम्मोहक सर्प, चाहे उसका शरीर कितना भी लंबा क्यों न हो, अनेक दिनों तक भूखे पेट रहता है, और भोजन न मिलने पर भी किसी प्रकार जीवित रहता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो निरंतर प्रयास करता है, भिक्षा मांगने पर निर्भर रहता है, दूसरों द्वारा दिए गए दान पर आश्रित रहता है, भेंटों की प्रतीक्षा करता है, स्वयं कुछ भी ग्रहण नहीं करता, और तृप्ति पाने में कठिनाई का सामना करता है, फिर भी यदि वह सर्वोच्च पुण्य की खोज करे, तो भले ही उसे चार-पाँच निवाले भी न मिलें, वह जल से अपनी भूख मिटा ले। हे राजा, शिला-सम्मोहक सर्प का यही गुण उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के महापुरुष और गुरु सारिपुत्त ने कहा है:

चाहे वह सूखा भोजन खाए या गीला भोजन,
उसे तृप्ति तक कभी न खाने दो।
अच्छा संन्यासी एकांत में आगे बढ़ता है।
और वह अपने भोजन में संयम बरतता है।
अगर उसे सिर्फ चार या पांच निवाले ही मिलें,
उसे पानी पीने दो। उस आदमी को क्या फर्क पड़ता है?
मन को अरहत पद पर स्थिर रखते हुए, शांति के लिए!
यहां पांचवां अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 6

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-24-||----->>>> अगला

51. सड़क मकड़ी।

1. 'आदरणीय नागसेना, सड़क मकड़ी में वह कौन सा गुण होना चाहिए, जैसा कि आप कहते हैं, वह कौन सा गुण है?'

हे महाराज, जिस प्रकार सड़क पर मकड़ी अपना जाला बुनती है और उसमें जो कुछ भी फंसता है, चाहे वह कीड़ा हो, मक्खी हो या भृंग, उसे पकड़कर खा जाती है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने छह इंद्रियों के द्वारों पर आत्म-संयम का जाला फैलाना चाहिए और यदि उसमें कोई भी बुरी मक्खी फंस जाए, तो उसे पकड़ लेना चाहिए। हे महाराज, यही वह गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए। क्योंकि, हे महाराज, अनुरुद्ध ने कहा है:

"उसे अपने हृदय को उसके छह द्वारों पर बंद कर लेना चाहिए, आत्म-संयम से, जो सबसे अच्छा और प्रमुख उपहार है, यदि कोई बुरे विचार भीतर आ जाएँ, तो उन्हें अंतर्दृष्टि की तलवार से मार डालना चाहिए।" 52. स्तनपान करता बच्चा।

2. 'आदरणीय नागसेना, आप कहते हैं कि शिशु को स्तनपान करते समय जो गुण धारण करना चाहिए, वह कौन सा है?'

'हे राजा, न्याय करो, जैसे बच्चा स्तनपान करते समय अपने लाभ के लिए ही तरसता है, और यदि उसे दूध की कमी होती है, तो वह उसके लिए रोता है;

हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी यही गुण अपना हित साधने के लिए तत्पर रहना चाहिए, और हर कार्य में—शिक्षण में, प्रश्न पूछने और उत्तर देने में, जीवन आचरण में, एकांतवास में, गुरुओं के साथ संगति में, और भले लोगों से मित्रता बढ़ाने में—उसे सत्य के ज्ञान से

युक्त रहना चाहिए। हे महाराज, यही गुण उस बालक में होना चाहिए जो माँ की गोद में होता है। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने दीघ निकाय के महामृत्यु सूत्र में कहा है:

"मैं तुमसे विनती करता हूँ, आनंद, अपने हित में उत्साहपूर्वक प्रयास करो। अपने भले के लिए खुद को समर्पित करो। गंभीर रहो, पूरी तरह से उत्साहित रहो, अपने भले के लिए तल्लीन रहो!" 53. स्थलीय कछुआ

3. 'आदरणीय नागसेना, स्थलीय कछुए का वह एक गुण जिसे आप कहते हैं कि उसे अपनाना चाहिए, वह कौन सा है?'

हे राजा, जिस प्रकार स्थलीय कछुआ जल से भयभीत होकर उससे दूर स्थानों पर रहता है और जल से बचने की इस आदत के कारण उसका जीवनकाल निरंतर बना रहता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को परिश्रम की कमी में निहित खतरे को देखकर परिश्रम के लाभों को ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि उस अनुभूति से ही...

लापरवाही में खतरे से बचने पर भी, उनका समनत्व क्षीण नहीं होता, बल्कि वे निर्वाण की ओर अग्रसर होते हैं। हे राजा, यही वह गुण है जो स्थलीय कछुए में होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान ने धम्मपद में कहा है:

"वह भिक्षु जो गंभीरता से आनंद लेता है, जो उदासीनता के खतरे को देखता है, वह अपनी उच्च स्थिति से नहीं गिरेगा, बल्कि निर्वाण की उपस्थिति में निवास करेगा।" 54. पर्वत की ऊँचाई।

4. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिस पर्वत की ऊँचाई के पाँच गुणों की बात कही है, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार पर्वत की ऊँचाई दुष्टों के लिए छुपने का स्थान होती है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी दूसरों के अपराधों और दोषों को गुप्त रखना चाहिए और उन्हें प्रकट नहीं करना चाहिए। हे महाराज, यह पर्वत की ऊँचाई के गुणों में से पहला गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।'

5. हे राजा, जिस प्रकार पर्वत की ऊँचाई पर बहुत से लोग नहीं होते; उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी कामवासना, क्रोध, मूर्खता, अहंकार, गलत विचारों के जाल और सभी बुरी प्रवृत्तियों से मुक्त होना चाहिए। हे राजा,

पर्वत की ऊँचाई का दूसरा गुण जो उसमें होना चाहिए, वह यही है।

6. हे राजा, जिस प्रकार पर्वत की चोटी एक एकांत स्थान होती है, जहाँ मनुष्यों की भीड़ नहीं होती; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से परिश्रम करता है, एकांत में रहना चाहिए और बुरे, अशोभनीय गुणों से, उन गुणों से मुक्त रहना चाहिए जो श्रेष्ठ नहीं हैं। हे राजा, पर्वत की चोटी का यह तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

7. हे राजा, जिस प्रकार पर्वत की चोटी निर्मल और पवित्र होती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सजग और शुद्ध, सुखी और आत्म-धर्म से रहित होना चाहिए। हे राजा, यह पर्वत की चोटी का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

8. हे राजा, जिस प्रकार पर्वत की ऊँचाई श्रेष्ठ पुरुषों का आश्रय स्थल होती है, उसी प्रकार हे राजा, परिश्रमी और लगनशील भिक्षु को भी श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा चाहा जाना चाहिए। हे राजा, पर्वत की ऊँचाई का यह पाँचवाँ गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के अधिपति भगवान बुद्ध ने अपने उत्कृष्ट संयुत्त निकाय में कहा है:

"एकान्त पुरुषों के साथ, उन महान पुरुषों के साथ, जिनका मन अरहतत्व की ओर पूर्णतः लीन है, जो सहजता से चिंतन की ऊँचाइयों तक पहुँच जाते हैं, जो उत्साह में दृढ़ और पवित्र ग्रंथों में पारंगत हैं—उसे ऐसे पुरुषों की शरण लेनी चाहिए, ऐसे पुरुषों के साथ संवाद स्थापित करना चाहिए।"

55. वृक्ष।

9. 'आदरणीय नागसेना, आपने कहा है कि उसे वृक्ष के जिन तीन गुणों को ग्रहण करना चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार वृक्ष फल और फूल देता है, ठीक उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी मोक्ष के फूल और समनत्व के फल देने चाहिए। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

10. हे राजा, जिस प्रकार वृक्ष अपने पास आने वाले और उसके नीचे ठहरने वाले लोगों पर अपनी छाया डालता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर होकर अपने पास आने वाले और अपने निकट रहने वाले लोगों की शारीरिक और धार्मिक दोनों आवश्यकताओं का सहर्ष ध्यान रखना चाहिए। हे राजा, वृक्ष का यही दूसरा गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।

11. 'हे राजा, जिस प्रकार वृक्ष अपनी छाया में किसी प्रकार का भेद नहीं करता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सभी मनुष्यों में भेद नहीं करना चाहिए, बल्कि उन लोगों के प्रति समान प्रेम रखना चाहिए जो उसे लूटते हैं, हानि पहुँचाते हैं या उससे शत्रुता रखते हैं, और उन लोगों के प्रति भी जो उसके समान हैं। हे राजा, वृक्ष का यह तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"देवदत्त, जिसने उनकी हत्या करने का प्रयास किया; अंगुलिमाला, लुटेरों का सरदार; उनकी जान लेने के लिए छोड़ा गया हाथी; और राहुल, जो उनका इकलौता पुत्र था— ऋषि इन सभी के प्रति समान भाव रखते हैं।"

56. बारिश।

12. 'आदरणीय नागसेना, वर्षा के वे पाँच गुण जो आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार वर्षा धूल को बहा ले जाती है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने भीतर उत्पन्न होने वाले किसी भी बुरे स्वभाव की धूल और गंदगी को बहा ले जाना चाहिए। हे महाराज, यही वर्षा का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

13. हे राजा, जिस प्रकार वर्षा धरती की गर्मी को शांत करती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को अपने प्रेम भाव से देवताओं और मनुष्यों के समस्त जगत को प्रसन्न करना चाहिए। हे राजा, यह वर्षा का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

14. हे राजा, जिस प्रकार वर्षा से सभी प्रकार की वनस्पति उगती है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को सभी प्राणियों में आस्था का संचार करना चाहिए और उस आस्था के बीज को तीन सिद्धियों तक विकसित करना चाहिए - न केवल स्वर्ग या पृथ्वी पर गौरवशाली पुनर्जन्म की निम्न सिद्धियाँ, बल्कि सर्वोच्च पुण्य, अरहत्त्व का आनंद भी। हे राजा, यह वर्षा का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

15. हे राजा, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में उठने वाला वर्षा-बादल पृथ्वी पर उगने वाली घास, वृक्षों, लताओं, झाड़ियों, औषधीय जड़ी-बूटियों और वनों के राजाओं को सुरक्षा प्रदान करता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहना चाहिए।

चिंतनशीलता की आदत विकसित करके, उसके चिंतनशीलता के बल पर उसकी समनात्व की स्थिति को संरक्षण प्रदान करो, क्योंकि सभी अच्छे गुणों की जड़ चिंतनशीलता में ही निहित है। हे राजा, यह वर्षा का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

16. हे राजा, जैसे वर्षा जब मूसलाधार होती है तो नदियाँ, जलाशय, कृत्रिम झीलें, गुफाएँ, खड्ड, तालाब, गड्ढे और कुएँ जल से भर जाते हैं; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, धर्म की वर्षा करनी चाहिए—परंपरागत ग्रंथों के अनुसार—और इस प्रकार उन लोगों के मन को तृप्त करना चाहिए जो शिक्षा के लिए तरस रहे हैं। हे राजा, यह वर्षा का पाँचवाँ गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"जब महान ऋषि दूर से किसी व्यक्ति को देखते हैं, चाहे वह सौ या हजार मील दूर हो, ज्ञान प्राप्ति के लिए परिपक्व, तो वे तुरंत जाते हैं और उसे धीरे से सत्य के मार्ग पर ले जाते हैं।" 57. हीरा।

17. 'आदरणीय नागसेना, हीरे के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार हीरा पूर्णतया शुद्ध होता है, ठीक उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने जीविका के साधनों में पूर्णतया शुद्ध होना चाहिए। हे महाराज, यही हीरे का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

18. 'और फिर, हे राजा, जैसे हीरा नहीं हो सकता

किसी भी अन्य पदार्थ के साथ मिश्रित नहीं होना चाहिए; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को दुष्ट पुरुषों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए। हे महाराज, यही हीरे का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

19. हे राजा, जिस प्रकार हीरे को सबसे कीमती रत्नों के साथ जड़ा जाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से परिश्रम करता है, उच्चतर गुणों वाले लोगों के साथ, आर्य मार्ग के प्रथम, द्वितीय या तृतीय चरण में प्रवेश कर चुके पुरुषों के साथ, अरहतों, संन्यासियों, त्रिविध ज्ञान या षष्ठम अंतर्दृष्टि के रत्नों के साथ संगति करनी चाहिए। हे राजा, यही हीरे का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, समस्त देवताओं के अधिपति भगवान बुद्ध ने सुत्त निपात में कहा है:

"शुद्धों का सत्त्व शुद्धों से हो, सदा स्मरण में दृढ़ रहो; सामंजस्यपूर्ण ढंग से रहते हुए, इस प्रकार तुम दुःखों का अंत करोगे।" 58. शिकारी।

20. 'आदरणीय नागसेन, शिकारी के वे चार गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार शिकारी अथक होता है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी अथक होना चाहिए। हे महाराज, यही शिकारी का पहला गुण होना चाहिए।'

21. हे राजा, जिस प्रकार शिकारी हिरण पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी अपने प्रयास में तत्पर रहना चाहिए।

जिस वस्तु पर उसका ध्यान केंद्रित है, उसी पर उसका ध्यान लगा रहता है। हे राजा, शिकारी का यह दूसरा गुण होना चाहिए।

22. हे राजा, जिस प्रकार शिकारी अपने काम के लिए सही समय जानता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहते हुए विश्राम के लिए सही समय जानना चाहिए और मन ही मन कहना चाहिए: "अब विश्राम का सही समय है। अब विश्राम से बाहर आने का सही समय है।" हे राजा, यही शिकारी का तीसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

23. हे राजा, जिस प्रकार शिकारी हिरण को देखकर इस विचार से प्रसन्न होता है: "मैं इसे पाऊंगा!" ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से परिश्रम करता है, ध्यान के विषय को देखकर प्रसन्न होता है और इस विचार से प्रसन्न होता है: "इससे मैं उस विशिष्ट विचार को प्राप्त कर लूंगा जिसकी मैं खोज कर रहा हूं।" हे राजा, यह शिकारी का चौथा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, महापुरुष मोघराग ने कहा है:

"वह संन्यासी, जिसका मन निर्वाण पर केंद्रित है, जिसने अपने विचारों को निर्देशित करने के लिए एक लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, उसे इस आशा से अत्यधिक आनंदित होना चाहिए: 'इसी से मैं अपना परम लक्ष्य प्राप्त करूँगा।'" 59. मछुआरा।

24. 'आदरणीय नागसेना, मछुआरे के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे अपनाने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार मछुआरा मछली को अपने कांटे से खींचता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने ज्ञान से, और वह भी पूर्णतः, समनत्व के फल प्राप्त करने चाहिए। हे महाराज, यही वह प्रथम गुण है जो एक मछुआरे में होना चाहिए।'

25. हे महाराज, जिस प्रकार मछुआरा थोड़े से त्याग से बड़ा लाभ प्राप्त करता है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को सांसारिक वस्तुओं के तुच्छ प्रलोभनों का त्याग करना चाहिए; तब वह त्याग से ही समनत्व के महान फल प्राप्त करेगा। हे महाराज, यह मछुआरे का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, राहुल ने कहा है:

संसार के प्रलोभनों का त्याग करके वह कामवासना, क्रोध और पाप से रहित अवस्था प्राप्त करेगा— सजीव जीवन की उन अवस्थाओं से मुक्त होगा— और मुक्त हो जाएगा, मनुष्यों की लालसाओं से मुक्त हो जाएगा, और श्रेष्ठ मार्ग के चरणों के फल और अंतर्दृष्टि के छह गुण उसके होंगे।

60. बढ़ई।

26. 'आदरणीय नागसेन, बढ़ई को वे कौन से दो गुण अपनाने चाहिए?'

'हे महाराज, जिस प्रकार बढ़ई काली रस्सी (जो उसके मार्गदर्शन के लिए उसके चारों ओर लिपटी होती है) की रेखा के साथ लकड़ी काटता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी लगन से, धर्म को आधार बनाकर और विश्वास के हाथ में ज्ञान की आरी धारण करके, विजेताओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार अपने बुरे स्वभावों को काट डालना चाहिए। हे महाराज, यही वह पहला गुण है जो एक बढ़ई में होना चाहिए।'

27. हे राजा, जिस प्रकार बढ़ई लकड़ी के कोमल भागों को त्यागकर कठोर भागों का उपयोग करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी परिश्रम में तत्पर रहकर, व्यर्थ के सिद्धांतों के विवेचना मार्ग को त्यागकर, जैसे कि—शाश्वत जीवन का सिद्धांत—खाओ-पियो, क्योंकि कल मरना है—आत्मा और शरीर एक हैं—आत्मा एक है, शरीर दूसरी—सभी शिक्षाएँ एक समान हैं—इन सिद्धांतों का त्याग करना चाहिए।

उत्कृष्ट—कि जो नहीं किया जाता उसका कोई लाभ नहीं—कि मनुष्य के कर्मों का कोई महत्व नहीं—कि जीवन की पवित्रता मायने नहीं रखती—कि प्राणियों के विनाश पर नौ नए प्रकार के प्राणी प्रकट होते हैं—कि अस्तित्व के मूल तत्व शाश्वत हैं—कि जो कर्म करता है उसे उसका फल भोगना पड़ता है—कि एक कर्म करता है और दूसरा उस कर्म का फल भोगता है—और कर्म के ऐसे ही अन्य सिद्धांत या कर्मों के फल के बारे में गलत विचार—मैं कहता हूँ, इन सभी सिद्धांतों, विधर्म की ओर ले जाने वाले मार्गों को त्यागकर, उसे उन मूल तत्वों की वास्तविक प्रकृति को सीखना चाहिए जिनसे प्रत्येक व्यक्तित्व अपने अल्पकालिक अस्तित्व के लिए बना होता है, और इस प्रकार उस अवस्था की ओर अग्रसर होना चाहिए जो वासनाओं, द्वेष और सुस्ती से रहित है, जिसमें व्यक्तित्व की उत्तेजनाएँ अब ज्ञात नहीं होतीं, और जिसे इसलिए परम शून्य कहा जाता है।

हे महाराज, यह बढ़ई का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी, भगवान बुद्ध ने सूत्र निपात में कहा है:

गंदगी से छुटकारा पाओ! अपने आस-पास का कूड़ा-कचरा अलग कर दो!
बेकार की चीजों को अलग कर दो, जो लोग पकड़े हुए हैं
जो सच्चे समना नहीं हैं!
बुरे विचार रखने वालों से छुटकारा पाओ।
जो जीवन के बुरे तरीकों का अनुसरण करते हैं!
अपने आप को विचारशील और पवित्र रखें, उन रिसॉर्ट के साथ।
उन्हीं लोगों के साथ रहो, जो स्वयं शुद्ध हैं!
यहां छठा अध्याय समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> मिलिंदपन्हा >> पुस्तक VII: उपमाएँ - ओपम्मकथा पन्हा अध्याय 7

अनुवादक: टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स

पिछला <<<<-----||-25-||समाप्त

61. पानी का बर्तन।

1. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिस जलपात्र के गुण के बारे में कहा है कि उसे ग्रहण करना चाहिए, वह कौन सा गुण है?'

हे महाराज, जिस प्रकार भरा हुआ घड़ा शांत रहता है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी, चाहे वह समनत्व की शिखर अवस्था पर पहुँच गया हो और समस्त परंपराओं, विद्याओं और व्याख्याओं का ज्ञाता हो, शांत रहना चाहिए, उस पर अभिमान नहीं करना चाहिए, अहंकार नहीं दिखाना चाहिए, बल्कि अभिमान और आत्म-धर्म का त्याग करके, सरल, वाचाल और दूसरों की निंदा न करने वाला होना चाहिए। हे महाराज, यही घड़े का गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने सूत्र निपात में कहा है:

"जो भरा हुआ नहीं है, वही आवाज़ करता है; जो भरा हुआ है, वह शांत और स्थिर है; मूर्ख खाली पानी के घड़े के समान है, बुद्धिमान गहरे, साफ और भरे हुए तालाब के समान है।" 62. काला लोहा।

2. 'आदरणीय नागसेना, काले लोहे के वे दो गुण जो आप कहते हैं कि उसे ग्रहण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

'हे राजा, न्यायपूर्ण, काले लोहे के समान, तब भी जब

पीटा हुआ भार वहन करता है; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु का मन, जो लगन से परिश्रम करता है, अपने चिंतनशील स्वभाव के कारण भारी भार वहन करने में सक्षम होना चाहिए। हे महाराज, यही वह प्रथम गुण है जो उसमें होना चाहिए।

3. हे राजा, जिस प्रकार काला लोहा एक बार भीगने के बाद पानी नहीं उगलता; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से परिश्रम करता है, भगवान बुद्ध की महानता, उनके उपदेशों की पूर्णता, संघ की श्रेष्ठता में एक बार स्थापित विश्वास को कभी नहीं छोड़ना चाहिए—रूपों, संवेदनाओं, विचारों, गुणों या चेतना के रूपों की अनित्यता के ज्ञान को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। हे राजा, यही वह दूसरा गुण है जो काले लोहे में होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, सभी देवताओं के स्वामी भगवान बुद्ध ने कहा है:

"वह व्यक्ति जो अंतर्दृष्टि से शुद्ध हो गया हो, श्रेष्ठों के सिद्धांत में प्रशिक्षित हो, भेदों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता हो, उसे कांपने की क्या आवश्यकता है? वह केवल आंशिक रूप से ही नहीं, बल्कि पूर्ण रूप से अरहतत्व की स्पष्ट ऊंचाइयों को प्राप्त करेगा।" 63. द सनशेड।

4. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिस धूप से बचाव के लिए जिन तीन गुणों की बात कही है, वे कौन से हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार सूर्य की छाया सिर पर रहती है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को सभी बुरे स्वभावों से ऊपर होना चाहिए। हे महाराज, यही सूर्य की छाया का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

5. हे महाराज, जिस प्रकार धूप से बचने के लिए छाता एक डंडे से सिर पर टिकाया जाता है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, चिंतन को अपना सहारा बनाना चाहिए। हे महाराज, यही धूप से बचने के लिए छाते का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

6. हे राजा, जिस प्रकार धूप से बचाव के लिए छाता हवा, गर्मी और बारिश के तूफानों से बचाता है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को, जो लगन से प्रयास करता है, अनेक सामनों और ब्राह्मणों के विभिन्न और भिन्न-भिन्न मतों की व्यर्थ हवाओं से, काम, द्वेष और सुस्ती की त्रिगुण अग्नि की गर्मी से और बुरे स्वभाव की वर्षा से बचाव करना चाहिए। हे राजा, यही वह तीसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि, हे राजा, धर्म के सेनापति, वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"जैसे एक विशाल, दृढ़ छतरी दूर तक फैली होती है, जिसमें एक छोर से दूसरे छोर तक कोई छेद नहीं होता, जो जलती हुई गर्मी और देवताओं की प्रचंड वर्षा को रोकती है; उसी प्रकार बुद्ध का पुत्र, जो पूर्णतः पवित्र है, धर्म की वीर छतरी धारण किए हुए, बुरी प्रवृत्तियों की वर्षा और तीनों प्रकार की अग्नि की भयानक गर्मी को रोकता है।"

64. धान का खेत।

7. 'आदरणीय नागसेना, धान के खेत के वे तीन गुण जो आप कहते हैं कि उसमें होने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार धान के खेतों में सिंचाई के लिए नहरें होती हैं, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को धर्मात्मा व्यक्ति के लिए अनिवार्य विभिन्न कर्तव्यों की सूची से सुसज्जित किया जाना चाहिए—वे नहरें जो बुद्ध के उपदेशों के धान के खेतों तक जल पहुंचाती हैं। हे महाराज, यह धान के खेत के उन गुणों में से पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

8. हे राजा, जिस प्रकार धान के खेत में तटबंध बनाए जाते हैं जिससे पानी रुका रहता है और फसल पकती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी धार्मिक जीवन और पाप से लज्जा के तटबंधों से युक्त होना चाहिए, जिससे वह अपने समनत्व को बनाए रखे और उसके फल प्राप्त करे। हे राजा, यह धान के खेत का दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

9. हे राजा, जिस प्रकार धान का खेत उपजाऊ होता है और किसान के हृदय को आनंद से भर देता है, जिससे यदि बीज थोड़ा हो तो फसल अधिक होती है और यदि बीज अधिक हो तो फसल और भी अधिक होती है; ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु, जो लगन से प्रयास करता है, बहुत अच्छे फल उत्पन्न करे और उसका समर्थन करने वालों के हृदयों को प्रसन्न करे, जिससे जहाँ थोड़ा दिया जाता है वहाँ परिणाम अधिक होता है और जहाँ अधिक दिया जाता है वहाँ परिणाम और भी अधिक होता है।

[पैराग्राफ जारी है] हे राजा, यह धान के खेत का तीसरा गुण है जो आपके पास होना चाहिए। क्योंकि हे राजा, उपाली, जो वरिष्ठ हैं और जिन्होंने संघ के नियमों को अपने सिर पर धारण किया है, ने कहा है:

"धान के खेत की तरह फलदायी बनो, हाँ, सभी अच्छे कामों में समृद्ध बनो! क्योंकि वही सबसे अच्छा खेत है जो बोने वाले को सबसे अच्छी फसल देता है।" 65. चिकित्सा।

10. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिन दो गुणों की औषधि लेने की बात कही है, वे कौन-कौन सी हैं?'

'हे महाराज, जिस प्रकार औषधि में कीटाणु उत्पन्न नहीं होते, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु के मन में किसी प्रकार की बुरी प्रवृत्ति उत्पन्न न होने दें। हे महाराज, यह औषधि का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।'

11. हे महाराज, जिस प्रकार औषधि किसी भी विष का प्रतिकार करती है, चाहे वह काटने, संपर्क, खाने या पीने से हुआ हो; ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को अपने भीतर कामवासना, द्वेष, सुस्ती, अहंकार और गलत धारणाओं के विष का प्रतिकार करना चाहिए। हे महाराज, यह औषधि का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, समस्त देवताओं के अधिपति भगवान बुद्ध ने कहा है:

"वह परिश्रमी संन्यासी जो वस्तुओं के मूल तत्वों की प्रकृति और सच्चे अर्थ को जानने की लालसा रखता है, वह मानो सभी बुरे विचारों के नाश का प्रतिकार बन जाता है।"

66. भोजन।

12. 'आदरणीय नागसेना, आपने जिन तीन गुणों के भोजन का उल्लेख किया है, वे कौन से हैं?'

हे महाराज, जिस प्रकार भोजन सभी प्राणियों का आधार है, ठीक उसी प्रकार, हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी एक ऐसे साधन के समान होना चाहिए, जिसके द्वारा सभी प्राणी श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का द्वार खोल सकें। हे महाराज, यह भोजन का पहला गुण है जो भिक्षु में होना चाहिए।

13. हे राजा, जिस प्रकार भोजन से लोगों की शक्ति बढ़ती है, उसी प्रकार हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी सद्‌गुणों में वृद्धि करनी चाहिए। हे राजा, यह भोजन का दूसरा गुण है जो उसे धारण करना चाहिए।

14. हे महाराज, जिस प्रकार भोजन सभी प्राणियों की इच्छा होती है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु समस्त जगत की इच्छा के पात्र होने चाहिए। हे महाराज, यह उनके लिए भोजन के गुणों में तीसरा गुण है। क्योंकि हे महाराज, महा मोग्गलाना ने कहा है:

"आत्मसंयम, प्रशिक्षण और धार्मिकता द्वारा, कर्तव्य पालन द्वारा और उपलब्धियों द्वारा, परिश्रमी संन्यासी को स्वयं को संसार के सभी मनुष्यों के लिए एक वांछनीय वस्तु बना लेना चाहिए।" 67. धनुर्धर।

15. 'आदरणीय नागसेन, धनुर्धारी के वे चार गुण जो आप कहते हैं कि उसे धारण करने चाहिए, वे कौन से हैं?'

हे राजा, न्यायप्रिय, जैसे धनुर्धर तीर चलाते समय न्यायप्रिय होता है।

अपने तीरों को उठाते हुए, वह अपने दोनों पैरों को जमीन पर मजबूती से जमाता है, घुटनों को सीधा रखता है, तरकश को कमर के संकरे हिस्से पर लटकाता है, पूरे शरीर को स्थिर रखता है, दोनों हाथों को धनुष पर तीर के जोड़ बिंदु पर मजबूती से रखता है, मुट्ठियाँ बंद करता है, उंगलियों के बीच कोई जगह नहीं छोड़ता, गर्दन को आगे बढ़ाता है, मुंह और एक आंख बंद कर लेता है, और इस विचार से प्रसन्न होकर निशाना साधता है: "मैं इसे मार गिराऊंगा।" हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी इसी प्रकार परिश्रम में तत्पर रहते हुए, धर्म के आधार पर अपने उत्साह के चरणों को दृढ़तापूर्वक स्थापित करना चाहिए, अपने हृदय की दया और कोमलता को बरकरार रखना चाहिए, इंद्रियों को वश में करने पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए, आत्मसंयम और कर्तव्य पालन द्वारा स्वयं को स्थिर रखना चाहिए, उत्तेजना और कमजोरी की भावना को दबा देना चाहिए, निरंतर चिंतन द्वारा अपने मन में कोई भी खालीपन न रहने देना चाहिए, उत्साह से आगे बढ़ना चाहिए, छह द्वारों (पाँच इंद्रियों और मन के) को बंद कर लेना चाहिए, और इस विचार में आनंदित होकर सचेत और चिंतनशील रहना चाहिए: "मैं अपने ज्ञान के भाले से अपने सभी बुरे स्वभावों का नाश करूँगा।" हे राजा, यह धनुर्धर का पहला गुण है जो उसमें होना चाहिए।

16. और फिर, हे राजा, जैसे धनुर्धर टेढ़े-मेढ़े और मुड़े हुए हिस्सों को सीधा करने के लिए भाला रखता है, वैसे ही

हे महाराज, जिस प्रकार तीर टेढ़े-मेढ़े होते हैं, ठीक उसी प्रकार परिश्रमी भिक्षु को भी, जब तक वह शरीर में है, अपने साथ सजग और विचारशील होने का गुण धारण करना चाहिए, जिससे वह अपने टेढ़े-मेढ़े, असंबद्ध और चंचल विचारों को सीधा कर सके। हे महाराज, धनुर्धर का यह दूसरा गुण है जो उसमें होना चाहिए।

17. हे राजा, जिस प्रकार धनुर्धर लक्ष्य पर अभ्यास करता है, ठीक उसी प्रकार, हे राजा, परिश्रमी भिक्षु को भी शरीर में रहते हुए लगन से अभ्यास करना चाहिए। और हे राजा, उसे कैसे अभ्यास करना चाहिए? उसे समस्त वस्तुओं की अनित्यता, वैयक्तिकता में निहित दुःख, किसी भी वस्तु या प्राणी में किसी भी स्थायी सिद्धांत (आत्मा) के अभाव, वैयक्तिकता की आवश्यक अवस्थाओं के फलस्वरूप होने वाले शरीर के रोगों, फोड़ों, पीड़ाओं, कष्टों और विपत्तियों, दूसरों पर उसकी निर्भरता और उसके निश्चित विघटन, उन विपत्तियों, खतरों, भयों और दुर्भाग्य के विचारों में अभ्यास करना चाहिए जिनके वह अधीन है, जीवन की बदलती परिस्थितियों में उसकी अस्थिरता, विघटन की उसकी संभावना, उसकी दृढ़ता की कमी, उसके सच्चे शरणस्थल न होने, सुरक्षा की गुफा न होने, सुरक्षा का घर न होने, विश्वास का उचित पात्र न होने के विचार में अभ्यास करना चाहिए। इसके व्यर्थता, शून्यता, खतरे और सारहीनता के बारे में; इसके कष्टों का स्रोत होने और इसके अधीन होने के बारे में

दंडों से परिपूर्ण और अशुद्धता से भरा, यह असंगत परिस्थितियों और गुणों का एक मिश्रित रूप है; यह बुराई और शैतान दोनों का भोजन है; इसमें पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु, दुःख, विलाप और निराशा अंतर्निहित हैं; और इसमें लालसा और भ्रम का भ्रष्टाचार हमेशा बना रहता है। हे राजा, धनुर्धारी के तीन गुण हैं जो उसमें होने चाहिए।

18. हे महाराज, जिस प्रकार धनुर्धर सुबह-शाम अभ्यास करता है, उसी प्रकार हे महाराज, परिश्रमी भिक्षु को भी सुबह-शाम ध्यान करना चाहिए। क्योंकि हे महाराज, धर्म के महापुरुष और वरिष्ठ सारिपुत्त ने कहा है:

"सच्चा धनुर्धर सुबह से शाम तक अभ्यास करता है, अपनी कला का निरंतर ध्यान रखने से ही उसे अपने कौशल का फल और प्रतिफल मिलता है। इसी प्रकार बुद्ध के पुत्र भी अपनी कला का अभ्यास करते हैं। वे इस शरीर में जीवन की परिस्थितियों को कभी भी ध्यान में न रखकर ही उन समृद्ध फलों को प्राप्त करते हैं जिन्हें अरहत प्रिय मानते हैं।"

यहां पांचवीं पहेली, धनुर्धर की पहेली समाप्त होती है।

मिलिंद के दो सौ बासठ प्रश्न यहीं समाप्त होते हैं, जैसा कि पुस्तक के छह भागों में, बाईस अध्यायों में वर्णित है। अब वे प्रश्न जो वर्णित नहीं हैं, वे हैं-

दो. उन सभी को मिलाकर, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं और जो नहीं चले आ रहे हैं, उनकी संख्या तीन सौ चार से अधिक है, और इन सभी को 'मिलिंद के प्रश्न' के रूप में गिना जाता है।

19. राजा और नागसेन के बीच पहेलियों के आदान-प्रदान और उनके हल के समापन पर, चौरासी हजार मील तक फैली यह विशाल पृथ्वी अपने समुद्र तट तक छह बार कांपी, बिजली कड़की, देवताओं ने स्वर्ग से फूलों की वर्षा की, स्वयं महा ब्रह्मा ने अपनी प्रशंसा व्यक्त की, और गहरे समुद्र में तूफान की गर्जना जैसी भीषण गर्जना हुई। उस चमत्कार को देखकर राजा के पांच सौ उच्च मंत्रियों, सागल नगर के सभी निवासियों और राजा के महल की स्त्रियों ने महान गुरु नागसेन के समक्ष सिर झुकाया, अपने हाथ माथे पर रखे और वहां से चले गए।

20. परन्तु राजा मिलिंदा का हृदय आनंद से भर उठा और उनका सारा अहंकार धराशायी हो गया। जब उन्हें बुद्ध धर्म का गुण ज्ञात हुआ, तो उन्होंने तीन रत्नों के प्रति अपना सारा संदेह त्याग दिया, वे विधर्म के जंगल में भटकते नहीं रहे, उन्होंने सारी हठधर्मिता का त्याग कर दिया; और उच्चतर ज्ञान से अत्यंत प्रसन्न हुए।

वृहत्तर के गुणों और संन्यासी के योग्य उत्तम आचरण से प्रभावित होकर, नागसेना आत्मविश्वास से भर उठे, उनकी सारी इच्छाएँ समाप्त हो गईं और उनका सारा अहंकार और आत्म-धर्मीपन उनके हृदय से निकल गया; और जैसे किसी नाग के दाँत काट दिए गए हों, वैसे ही उन्होंने कहा: 'हे परम श्रेष्ठ, हे परम श्रेष्ठ, पूज्य नागसेना! आपने उन पहेलियों को स्पष्ट कर दिया है जिन्हें बुद्ध ही सुलझा सकते हैं। बुद्ध के सभी अनुयायियों में, समस्याओं के समाधान में आपके समान कोई नहीं है, सिवाय स्वयं वृहत्तर सारिपुत्त, जो धर्म के सेनापति हैं। हे पूज्य नागसेना, मेरी गलतियों के लिए मुझे क्षमा करें। हे पूज्य नागसेना, आज से जीवन भर मुझे धर्म का अनुयायी, सच्चा धर्मांतरित स्वीकार करें!'

21. इसके बाद राजा और उसके वीर पुरुष नागसेन का आदर करते रहे। राजा ने मिलिंद विहार नामक एक विहार बनवाया और उसे नागसेन को सौंप दिया। राजा ने नागसेन और उनके साथ-साथ सभी अरहत भिक्षुओं की सेवा की, जिनमें नागसेन प्रमुख थे, और भिक्षु जीवन की चारों आवश्यक वस्तुओं का पालन किया। बाद में, नागसेन के ज्ञान से प्रसन्न होकर, उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया और गृहस्थ जीवन त्यागकर निर्धन हो गए, अंतर्दृष्टि में महान बन गए और स्वयं अरहत पद प्राप्त कर लिया! इसीलिए कहा जाता है:

'बुद्धि का महिमामंडन समस्त संसार में होता है।'
और आस्था की दृढ़ता के लिए उपदेश देना।
जब वे बुद्धिमत्ता से संदेह को दूर कर देते हैं
बुद्धिमान लोग उस शांत अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
वह व्यक्ति जिसमें ज्ञान दृढ़ता से विद्यमान है,
और सचेत आत्म-नियंत्रण कभी विफल नहीं होता।
वह उन लोगों में सर्वश्रेष्ठ है जिन्हें उपहार प्राप्त होते हैं।
वह व्यक्ति जिसे विशेष सम्मान दिया जाता है।
इसलिए योग्य पुरुषों को उचित ध्यान में रखते हुए
अपने कल्याण के लिए, बुद्धिमानों का सम्मान करें,--
पवित्र चिता के समान सम्मान के योग्य
जिसके विशाल गुंबद के नीचे महान मृतकों की हड्डियाँ दबी हुई हैं।
मिलिंदा और नागसेना की पहेलियों और उनके हलों की यह पुस्तक यहीं समाप्त होती है।

धम्मसंगानी

पाली संस्करण : नीचे दिए गए प्रत्येक अनुभाग की शुरुआत में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

अंतर्वस्तु

1धम्मसंगाणी
1.1पुस्तक को स्कैन करें
1.2पाठ्य संस्करण
1.2.1अध्याय
1.2.2पुस्तक I - विचारधारा की उत्पत्ति (चित्तुपादक)
1.2.2.1भाग 1 - खुद की अच्छी अवस्थाएँ
1.2.2.2भाग II - निजी की निजी बातें
1.2.2.3भाग III - वास्तविक की अनिश्चित अवस्थाएँ
1.2.3पुस्तक II - रूप (रूपा)
1.2.4पुस्तक III - 'उन्मूलन' नामित भाग (निखेपा सं. निक्षेपा)
1.2.4.1भाग I
1.2.4.2भाग II
1.2.5पुस्तक IV - अट्ठकथा
2अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
3मूल पाली संस्करण

धम्मसंगानी
(धर्मों/घटनाओं की सूची)

धम्मसंगानी अभिधम्म की पहली पुस्तक है। धम्मसंगनी की शुरुआत मतिका (पाली में "मैट्रिक्स") से होती है, जो धम्मों के वर्गीकरणों की एक सूची है, जिसका अनुवाद प्रकृति, विचार, घटनाएँ, अवस्थाएँ, प्रतिरूप आदि के रूप में किया जाता है। अभिधम्म पद्धति के अनुसार 22 त्रिगुणीय वर्गीकरण हैं, उसके बाद 100 द्विगुणीय वर्गीकरण और सूत्र (प्रवचन) पद्धति के अनुसार 42 वर्गीकरण हैं। पुस्तक का मुख्य भाग चार भागों में विभाजित है।

पहला भाग मन की अवस्थाओं से संबंधित है, जिसमें उनमें मौजूद कारकों को सूचीबद्ध और परिभाषित किया गया है। दूसरा भाग भौतिक घटनाओं से संबंधित है, जिसमें उन्हें संख्यात्मक रूप से, इकाई, द्वि आदि के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

तीसरा भाग पहले दो भागों की सामग्री को मतिका में दिए गए वर्गीकरणों की व्याख्या करने के लिए लागू करता है।

चौथा भाग भी ऐसा ही करता है, लेकिन एक अलग और कभी-कभी अधिक विस्तृत तरीके से, और सूत्र (प्रवचन) पद्धति के द्विगुणीय वर्गीकरणों को छोड़ देता है।

स्कैन की गई पुस्तक
स्कैन की गई पुस्तक का लिंक

पाठ संस्करण
नोट: जैसा है वैसा ही उपलब्ध कराया गया है; प्रूफरीड नहीं किया गया है।

अध्याय
घटना का मैट्रिक्स (पाली): पाली-अंग्रेजी मटिका और पाली-देवनागरी मटिका

पुस्तक I - विचारों की उत्पत्ति (चित्तुपादक)
चित्तुपादक पर पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

भाग 1 - चेतना की अच्छी अवस्थाएँ
अध्याय I - इंद्रिय जगत से संबंधित विचार के आठ मुख्य प्रकार
अध्याय II - रूपी जगत के संबंध में अच्छाई
अध्याय III - निराकार जगत के संबंध में अच्छाई
अध्याय IV - तीनों लोकों के संबंध में अच्छाई की प्रभावशीलता के स्तर
अध्याय V - उच्च आदर्श पर केंद्रित विचार
भाग II - चेतना की बुरी अवस्थाएँ
अध्याय VI - बारह बुरे विचार
भाग III - चेतना की अनिश्चित अवस्थाएँ
अध्याय I - प्रभाव या परिणाम पर
अध्याय II - क्रियात्मक विचार

पुस्तक II - रूप (रूपा)
रूपा पर पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

परिचयात्मक
अध्याय I - एकल अवधारणाओं के अंतर्गत रूप की व्याख्या
अध्याय II - द्वैत गुणों के माध्यम से रूप की श्रेणी का विचार
अध्याय III - त्रिविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ
अध्याय IV - चौविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ
अध्याय V - पंचविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय VI - छतुविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय VII - सप्तविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय VIII - अष्टविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय IX - नब्बेविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय X - दृष्टविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
अध्याय XI - ग्यारहविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी

पुस्तक III - 'उन्मूलन' नामक प्रभाग (निक्खेपा सं. निक्षेपा)
निक्खेपा पर पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

भाग I
अध्याय I - त्रिक समूह
अध्याय II - कारण समूह
अध्याय III - लघु मध्यवर्ती युग्म समूह अध्याय IV - मादक समूह
अध्याय V - बंधन समूह अध्याय

VI -
संबंध समूह अध्याय VII - बाढ़ समूह अध्याय VIII - बंधन समूह
अध्याय IX - बाधाओं समूह अध्याय X - संक्रमण समूह अध्याय XI - महान मध्यवर्ती युग्म समूह अध्याय XII - हड़पने समूह अध्याय XIII - विकृतियों समूह अध्याय XIV - पूरक युग्म समूह

भाग II
सुट्टंता शब्दों के जोड़े
परिशिष्ट I
परिशिष्ट II
संक्षिप्ताक्षर

पुस्तक IV - अट्ठकथा
अट्ठकथा: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग1-अध्याय 1
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
  - भाग 1 - चेतना की उत्तम अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु

1अध्याय I - इंद्रिय जगत से संबंधित विचार के आठ मुख्य प्रकार
1.1कामावकारा अत्था महाचित्तनी
1.1.1प्रकार I.
1.1.2प्रकार II.
1.1.3प्रकार III.
1.1.4प्रकार IV.
1.1.5प्रकार V.
1.1.6प्रकार VI.
1.1.7प्रकार VII.
1.1.8प्रकार VIII.
1.2- फुटनोट:

अध्याय I - इंद्रिय जगत से संबंधित विचार के आठ मुख्य प्रकार

कामावकारा अत्था महाचित्तनी

[1]

प्रकार I.

[1] कौन से राज्य अच्छे हैं?[2]

जब इंद्रिय जगत[3] के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो आनंद से युक्त हो और ज्ञान[4] से जुड़ा हो, और जिसका विषय दृष्टि[5], ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श[6], मानसिक अवस्था[7], या कुछ और[8] हो, तो

(i) संपर्क (§ 2),

(ii) भावना (§ 3),

(iii) बोध (§4),

(iv) संकल्प (§ 5),

(v) विचार (§ 6),

(vi) अनुप्रयोग (§ 7),

(vii) निरंतर चिंतन (§8),

(viii) उत्साह (§ 9),

(ix) सहजता (§ 10),

(x) आत्म-संयम (§11),

(xi) विश्वास की क्षमता (§ 12),

(xii) ऊर्जा की क्षमता (§ 13),

(xiii) जागरूकता की क्षमता (§ 14),

(xiv) एकाग्रता की क्षमता (§ 15),

(xv) अंतर्दृष्टि की क्षमता (§ 16),

(xvi) विचार की क्षमता (§ 17),

(xvii) प्रसन्नता की क्षमता (§ 18),

(xviii) जीवन की क्षमता (§ 19);

(xix) सही विचार (§ 20),

(xx) सही इरादा (§21),

(xxi) सही प्रयास (§ 22),

(xxii) सही जागरूकता (§ 23),

(xxiii) सही एकाग्रता (§ 24);

(xxiv) विश्वास की शक्ति (§ 25),

(xxv) ऊर्जा की शक्ति (§ 26),

(xxvi) जागरूकता की शक्ति (§ 27),

(xxvii) एकाग्रता की शक्ति (§ 28),

(xxviii) अंतर्दृष्टि की शक्ति (§ 29),

(xxix) कर्तव्यनिष्ठा की शक्ति (§ 30),

(xxx) निंदा के भय की शक्ति (§ 31);

(xxxi) लोभ का अभाव (§ 32),

(xxxii) घृणा का अभाव (§ 33),

(xxxiii) सुस्ती का अभाव (§ 34);

(xxxiv) लोभ का अभाव (§ 35),

(xxxv) द्वेष का अभाव (§ 36),

(xxxvi) सही विचार (§ 37);

(xxxvii) कर्तव्यनिष्ठा (§ 38),
(xxxviii) निंदा का भय (§ 39);
(xxxix, xl) मन की शांति और मानसिक कारक (§§ 40, 41),
(xli, xlii) मन की हल्कापन और मानसिक कारक (§§ 42, 43),
(xliii, xliv) मन की लचीलापन और मानसिक कारक (§§ 44, 45),
(xlv, xlvi) मन की सुगमता और मानसिक कारक (§§ 46, 47),
(xlvii, xlviii) मन की उपयुक्तता और मानसिक कारक (§§ 48, 49),
(xlix, l) मन की प्रत्यक्षता और मानसिक कारक (§§ 50, 51);
(li) सचेतनता (§ 52),
(lii) बुद्धि (§53),
(liii) शांति (§ 54),
(liv) अंतर्ज्ञान (§ 55),
(lv) समझ (§ 56),
(lvi) संतुलन (§ 57)।
अब ये — या उस अवसर पर मौजूद अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ[10] — ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अच्छी हैं।
[2] उस अवसर पर संपर्क (फासो) क्या है?
उस अवसर पर जो संपर्क स्पर्श करने वाला होता है, संपर्क में आना, संपर्क में आने की अवस्था—यही वह संपर्क है जो उस समय होता है।
[3] उस अवसर पर वेदना (भावना) क्या है?
मानसिक सुख, मानसिक सहजता, जो उस अवसर पर प्रतिनिधि बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है;[13] विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद, सहज अनुभूति;[14] विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद, सहज अनुभूति — यही वह अनुभूति है जो तब होती है।
[4] उस अवसर पर धारणा (सन्ना) क्या है?
वह अनुभूति, वह अनुभूति, वह अनुभूति प्राप्त करने की अवस्था जो उस अवसर पर प्रतिनिधिक बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है - यही वह अनुभूति है जो उस समय विद्यमान होती है।
[5] उस अवसर पर संकल्प (चेतना) क्या है?
प्रतिनिधिक बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होने वाली इच्छाशक्ति, उद्देश्य और सार्थकता ही वह इच्छाशक्ति है जो तब विद्यमान होती है।
[6] उस अवसर पर क्या सोचा जाता है (चित्तम)?
उस अवसर पर जो विचार, मन, हृदय, वह जो स्पष्ट है, मन के क्षेत्र के रूप में विचार, मन की क्षमता, बुद्धि, बुद्धि का स्कंध, प्रतिनिधि बुद्धि का उपयुक्त तत्व - वही विचार उस समय विद्यमान होता है।
[7] उस अवसर पर मन का अनुप्रयोग (विटाक्को) क्या है?
भेदभाव, अनुप्रयोग, जो उस अवसर पर निपटान है,[18] निर्धारण, ध्यान केंद्रित करना,[19] मन का अधिरोपण,[20] सही निपटान—यह वह अनुप्रयोग है जो तब होता है।
[8] उस अवसर पर निरंतर विचार (विकारो) क्या है?
प्रक्रिया, निरंतर प्रक्रिया (विकारो), प्रगति और पहुँच [मन की] जो उस अवसर पर विचार का [निरंतर] समायोजन और ध्यान केंद्रित करना है[22] — यही निरंतर विचार है जो तब होता है।
[9] उस अवसर पर उत्साह (पिति) क्या है?
उस अवसर पर जो उत्साह होता है, वह आनंद, उल्लास, हर्ष और उल्लास, प्रसन्नता[24], उमंग, मन की उमंग[25] होता है — यही उत्साह तब होता है।
[10] उस अवसर पर सुख (आराम) क्या है?

उस अवसर पर जो मानसिक सुख, जो मानसिक शांति होती है, वह विचारों के संपर्क से उत्पन्न होने वाला सुखद, आरामदायक अनुभव होता है—यही वह शांति है जो उस समय मौजूद होती है।

[11] उस अवसर पर आत्म-संयम (cittass' ekaggata) क्या है?

उस समय मौजूद स्थिरता, दृढ़ता, विचारों की तल्लीनता और स्थिरता, जो कि विचलित न होने, संतुलन, अविचलित मानसिक प्रक्रिया, शांति, एकाग्रता की क्षमता और शक्ति, सही एकाग्रता का रूप है—यही वह आत्म-संयम है जो उस समय मौजूद होता है।

[12] उस अवसर पर विश्वास की शक्ति (सद्धिंद्रियम) क्या है?

उस अवसर पर जो विश्वास, जो भरोसा करने, जो विश्वास व्यक्त करने, जो आश्वासन की भावना है, जो आस्था है, एक क्षमता और एक शक्ति के रूप में आस्था है - वही आस्था उस समय विद्यमान होती है।

[13] उस अवसर पर ऊर्जा (वीरियिंद्रियम) की शक्ति क्या है?

उस अवसर पर मौजूद ऊर्जा की मानसिक शुरुआत[35], प्रयास और आगे बढ़ने का प्रयास, परिश्रम और कोशिश, उत्साह और जोश, शक्ति और दृढ़ता, अविचल प्रयास की स्थिति, निरंतर इच्छा की स्थिति, अविचल सहनशीलता की स्थिति, बोझ की ठोस पकड़, ऊर्जा, क्षमता और शक्ति के रूप में ऊर्जा, सही प्रयास - यही वह ऊर्जा है जो उस समय मौजूद होती है।

[14] उस अवसर पर सतिन्द्रियम (सतिन्द्रियम) की क्षमता क्या है?

उस अवसर पर जो जागरूकता स्मरण करना, याद दिलाना है; वह जागरूकता[37] जो याद रखना, ध्यान में रखना है, सतहीपन[38] और विस्मृति का विपरीत; एक क्षमता के रूप में जागरूकता, एक शक्ति के रूप में जागरूकता, सही जागरूकता - यही जागरूकता की वह क्षमता है जो तब होती है।

[15] उस अवसर पर एकाग्रता की शक्ति (समाधिन्द्रियम) क्या है?

'स्वयं-संयम' के लिए उत्तर दें, धारा 11.

[16] उस अवसर पर पन्ना/अंतर्दृष्टि (पन्ना-इन्द्रियम) की क्षमता क्या है?

उस अवसर पर जो ज्ञान/अंतर्दृष्टि (पन्ना-इन्द्रियम) की क्षमता होती है, वह है अंतर्दृष्टि/ज्ञान, प्रत्यक्ष समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज,[41] विवेक, भेदभाव, विभेदन, विद्वता, प्रवीणता, सूक्ष्मता, आलोचना, चिंतन, विश्लेषण, व्यापकता[42], बुद्धिमत्ता[43], नेतृत्व[44], अंतर्दृष्टि, बुद्धि, प्रोत्साहन[45]; पन्ना संकाय के रूप में (पणिन्द्रियं), पन्ना शक्ति के रूप में (पन्नबलः), पन्ना तलवार के रूप में [46] (पन्नसत्थः), पन्ना ऊंचाई के रूप में [47] (पन्नपसादो), पन्ना प्रकाश के रूप में [48] (पन्ना-आलोको), पन्ना रूप में महिमा[49](पन्ना-ओभासो), पन्ना के रूप में (चमकदार) वैभव[50](पन्ना-पज्जोतो), पन्ना के रूप में (चमकदार) कीमती पत्थर(पन्ना-रतनं); नीरसता का अभाव, सत्य की खोज[51], सही दृष्टिकोण - यही पन्ना क्षमता (पन्ना-इंद्रियम्) है जो तब मौजूद है।

[17] उस अवसर पर विचार करने की क्षमता (प्रतिनिधि कल्पना, मनिन्द्रियम) क्या है?

"विचार" (चित्तम) के लिए उत्तर दें, धारा 6.

[18] उस अवसर पर आनंद की शक्ति (सोमनसिंद्रियम) क्या है?

सुखम (आसानी) के लिए उत्तर दें, धारा 10।

[19] उस अवसर पर जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रियम) क्या है?

इन निराकार अवस्थाओं की निरंतरता, उनका अस्तित्व, उनका निरंतर चलते रहना, उनकी प्रगति, निरंतरता, संरक्षण, जीवन, एक संकाय के रूप में जीवन[52] — यही जीवन शक्ति का संकाय है जो तब मौजूद है।[53]

[20] उस अवसर पर सही विचार (सममिदित्थी) क्या हैं?

"बुद्धि की क्षमता" के लिए उत्तर दें, धारा 16.

[21] उस अवसर पर सही इरादा (सममासंकप्पो) क्या है?

"गर्भाधान" के लिए उत्तर दें, धारा 7.

[22] उस अवसर पर उचित प्रयास (सम्मवयामो) क्या है?

एन्सिवर "ऊर्जा की क्षमता" के लिए, § 13.

[23] उस अवसर पर क्या उचित है - सजगता (सम्मसति)?

धारा 14 के अनुसार "सजगता की क्षमता" के लिए उत्तर दें।

[24] उस अवसर पर सही एकाग्रता (सम्मासमाधि) क्या है?

"स्वयं-संयम" के लिए उत्तर दें, धारा 11.

[25] उस अवसर पर विश्वास (सद्धबलम) की शक्ति क्या है?

"विश्वास की क्षमता" के लिए उत्तर दें, धारा 12.

[26] उस अवसर पर ऊर्जा (विरियाबलम) की शक्ति क्या है?

"ऊर्जा संकाय" के लिए उत्तर दें, धारा 13.

[27] उस अवसर पर सतीबलम (सतीबलम) की शक्ति क्या है?

धारा 14 के अनुसार "सजगता की क्षमता" के लिए उत्तर दें।

[28] उस अवसर पर एकाग्रता की शक्ति (समाधिबलम्) क्या है?

"स्वयं-संयम" के लिए उत्तर दें, धारा 11.

[29] उस अवसर पर ज्ञान (पन्नबलम) की शक्ति क्या है?

"ज्ञान की क्षमता" के लिए उत्तर दें, धारा 16.अर्थात उस अवसर पर मौजूद ज्ञान/अंतर्दृष्टि (पन्ना-बलम) की शक्ति अंतर्दृष्टि/ज्ञान, प्रत्यक्ष समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज,[41] विवेक, भेदभाव, विभेदन, विद्वता, प्रवीणता, सूक्ष्मता, आलोचना, चिंतन, विश्लेषण, व्यापकता[42], बुद्धिमत्ता[43], नेतृत्व[44], अंतर्दृष्टि, बुद्धि, प्रोत्साहन[45] है; पन्ना एक संकाय के रूप में (पञ्ञिन्द्रियं), पन्ना एक शक्ति के रूप में (पञ्ञाबलं), पन्ना एक तलवार के रूप में[46](पञ्ञासत्थं), पन्ना एक ऊँचाई के रूप में[47](पञ्ञापासादो), पन्ना एक प्रकाश के रूप में[48](पञ्ञा-आलोको), पन्ना एक महिमा के रूप में[49](पञ्ञा-ओभासो), पन्ना एक वैभव के रूप में[50](पञ्ञा-पज्जोतो), पन्ना एक कीमती पत्थर के रूप में (पञ्ञा-रतनं); सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज[51], सही विचार - यही ज्ञान/अंतर्दृष्टि (पञ्ञा-बलम्) की शक्ति है जो तब होती है।

[30] उस अवसर पर विवेक (हिरिबलम) की शक्ति क्या है?

विवेकपूर्ण संशय[57] की भावना जो उस अवसर पर होती है जब संशय महसूस किया जाना चाहिए, बुरे और दुष्ट अवस्थाओं को प्राप्त करने पर विवेकपूर्ण संशय - यही विवेक की शक्ति है जो तब होती है।

[31] उस अवसर पर निंदा के भय (ओत्तप्पबलम) की शक्ति क्या है?

अपराधबोध की भावना,[58] जो उस अवसर पर होती है, जहाँ अपराधबोध महसूस किया जाना चाहिए, बुरे और दुष्ट अवस्थाओं को प्राप्त करने पर अपराधबोध की भावना - यही दोष का भय है जो तब होता है।

[32] उस अवसर पर कामवासना (अलोभो) की अनुपस्थिति क्या है?

उस अवसर पर जो वासना, कामुकता, और मोह का अभाव होता है, वह मोह, और मोह की अनुपस्थिति, वह वासना की अनुपस्थिति जो अच्छाई की जड़ है[59] — यही वह वासना की अनुपस्थिति है जो तब होती है।

[33] उस अवसर पर घृणा (अदोसो) की अनुपस्थिति क्या है?

घृणा की अनुपस्थिति, घृणा[60], घृणा की अनुपस्थिति, जो उस अवसर पर होती है, द्वेष की अनुपस्थिति, द्वेष[61], घृणा की अनुपस्थिति जो अच्छाई की जड़ है - यही घृणा की अनुपस्थिति है जो तब होती है।

[34] उस अवसर पर सुस्ती (अमोहो) की अनुपस्थिति क्या है?

"बुद्धि की क्षमता" के लिए उत्तर दें, § 16.[62]

[35] उस अवसर पर लोभ का अभाव (अनभिज्जा) क्या है?

"वासना की अनुपस्थिति" के लिए उत्तर दें, § 32.[63]

[36] उस अवसर पर द्वेष (अव्यपादो) की अनुपस्थिति क्या है?

"घृणा की अनुपस्थिति" के लिए उत्तर दें, धारा 33।

[37] उस अवसर पर सही विचार (सममिदित्थी) क्या हैं?

"बुद्धि की क्षमता" के लिए उत्तर दें, धारा 16.

[38] उस अवसर पर कर्तव्यनिष्ठा (हिरी) क्या है?

"विवेकशीलता की शक्ति" के लिए उत्तर दें, धारा 30।

[39] उस अवसर पर निंदा का भय (ओत्तप्पम) क्या है?

"दोषारोपण के भय की शक्ति" के लिए उत्तर दें, धारा 31।

[40] उस अवसर पर इंद्रियों का विश्राम (कयपसद्धि) क्या है?

उस अवसर पर जो शांति[67], जो संयम होता है, जो शांति, जो स्थिरता, जो स्कंधों की शांति, बोध और संश्लेषण की शांति होती है—वह इंद्रिय की शांति है जो तब होती है।

[41] उस अवसर पर विचार की शांति (चित्तपसद्धि) क्या है?

उस अवसर पर जो शांति, जो संयम होता है, जो सुकून देने वाला, जो मन को शांत करने वाला, बुद्धि के स्कंध की जो शांति होती है—वही उस समय मौजूद विचार की शांति होती है।

[42] उस अवसर पर भावना (कयालहुता) का उत्प्लावन[68] क्या है?

उस अवसर पर जो उत्साह होता है, परिवर्तनशील सतर्कता[69], भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंधों में सुस्ती[70] और जड़ता की अनुपस्थिति—यह इंद्रिय का उत्साह है जो तब होता है।

[43] उस अवसर पर विचार की उमंग (चित्तलहुता) क्या है?

बुद्धि के स्कंध में उत्प्लावन आदि (जैसा कि § 42 में है) — यह विचार का उत्प्लावन है जो तब होता है।

[44] उस अवसर पर इंद्रिय की प्लास्टिसिटी (कयामुदुत) क्या है?

उस अवसर पर जो लचीलापन होता है, जो कोमलता, सहजता, कठोरता का अभाव, भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंधों में जो दृढ़ता होती है—यही इंद्रियों का वह लचीलापन है जो उस समय मौजूद होता है।

[45] उस अवसर पर विचार की लचीलापन (चित्तमुदुता) क्या है?

बुद्धि के स्कंध में जो लचीलापन आदि (जैसा कि § 44 में है) होता है, वह विचार का लचीलापन है जो तब होता है।

[46] उस अवसर पर इंद्रिय (कयाकममन्नत) की सुगमता[72] क्या है?

उस अवसर पर जो सहजता, जो सुगमता, जो कोमलता, जो भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंधों में होती है—वही उस समय की इंद्रियों की सहजता है।

[47] उस अवसर पर विचार की सुगमता (चित्तकम्मन्नत) क्या है?

बुद्धि के स्कंध की सुगमता, आदि (जैसा कि § 46 में है) - यही विचार की सुगमता है जो तब होती है।

[48] उस अवसर पर समझ (कयापगुन्नत) की उपयुक्तता[73] क्या है?

उस अवसर पर जो उपयुक्तता होती है, जो योग्यता होती है, जो स्कंधों की क्रियाशीलता, बोध और संश्लेषण की जो कुशल अवस्था होती है—वही उस समय इंद्रियों की उपयुक्तता होती है।

[49] उस अवसर पर विचार की उपयुक्तता (चित्तपगुन्नत) क्या है?

बुद्धि के स्कंध की उपयुक्तता, आदि (जैसा कि § 48 में है) - यही विचार की उपयुक्तता है जो तब होती है।

[50] उस अवसर पर विवेक (कयुज्जुकता) की सत्यता[74] क्या है?

उस अवसर पर जो सीधापन होता है, भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंधों की जो शुद्धता होती है, बिना किसी विचलन, मोड़ या टेढ़ेपन के, वही उस समय मौजूद इंद्रिय की प्रत्यक्षता होती है।

[51] उस अवसर पर विचार की सत्यता (चित्तुज्जुकता) क्या है?

बुद्धि के स्कंध की सत्यता, आदि (जैसा कि § 50 में है) — यही विचार की सत्यता है जो तब होती है।

[52] उस अवसर पर सती (सती) क्या है?

धारा 14 के अनुसार "सजगता की क्षमता" के लिए उत्तर दें।

[53] उस अवसर पर बुद्धि (संपजन्नम) क्या है?

"बुद्धि" के लिए उत्तर दें, धारा 16.

[54] उस अवसर पर क्या शांत (समथो) है?

"स्वयं-संयम" के लिए उत्तर दें, धारा 11.

[55] उस अवसर पर अंतर्दृष्टि (विपश्यना) क्या है?

"बुद्धि" के लिए उत्तर दें, धारा 16.

[56] उस अवसर पर क्या ग्रास्प (पगहो) है?

"ऊर्जा संकाय" के लिए उत्तर दें, धारा 13.

[57] उस अवसर पर संतुलन (अविक्खेपो) क्या है?

"स्वयं-संयम" के लिए उत्तर दें, धारा 11.

ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[यहां शब्दों का परिसीमन समाप्त होता है (पद-भजनी-यम)।]
[पाठ के लिए प्रथम भाग का समापन।]
[प्रथम प्रकार के विचार (संगहवरम या कोत्थासवरम) के घटकों का सारांश।]
[58] अब, उस अवसर पर
स्कंध चार हैं,
क्षेत्र (आयतननि) दो हैं,
तत्व (धातुयो) दो हैं,
पोषक तत्व (आहार) तीन हैं,
शक्तियाँ (इन्द्रियानि) आठ हैं,
ध्यान पाँच प्रकार का है,
पथ पाँच प्रकार का है,
शक्तियाँ (बलनि) सात हैं,
कारण (हेतु) तीन हैं;
संपर्क,
भावना,
बोध,
सोच,
विचार,
प्रत्येक एकल [कारक] हैं;
स्कंधों के:
भावना,
बोध,
संश्लेषण,
बुद्धि,
प्रत्येक एकल [कारक] हैं;
विचार-मंथन का क्षेत्र (मनायतनम्),
विचार-मंथन की क्षमता,
प्रतिनिधिक बौद्धिक क्षमता का तत्व (मनोविन्ननधातु),
किसी (प्रतिनिधि) राज्य का क्षेत्र,
किसी (प्रतिनिधि) राज्य का तत्व
ये सभी एकल [कारक] हैं। ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारण-प्रेरित अवस्थाएँ - ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[59] उस अवसर पर चार स्कंध क्या हैं?
भावना, बोध, संश्लेषण और बौद्धिक क्षमता के स्कंध।
[60] (i.) उस अवसर पर भावना का स्कंध क्या है?
उस अवसर पर जो मानसिक सुख, जो मानसिक सहजता होती है[79], विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखदायक, सहज अनुभूति, विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद, सहज अनुभूति — यही उस समय मौजूद भावना का स्कंध है (§§ 3, 10, 18)।
[61] (ii.) उस अवसर पर बोध का स्कंध क्या है?
वह धारणा, बोध करना, बोध करने की अवस्था, जो उस अवसर पर होती है — यही उस समय की धारणा का स्कंध है (§ 4)।
[62] (iii.) उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
संपर्क करना,
सोच,

गर्भाधान,
विवेचनात्मक विचार,
आनंद,
आत्म-संयम,
आस्था की क्षमता,
ऊर्जा संकाय,
ध्यान की क्षमता,
एकाग्रता संकाय,
ज्ञान की क्षमता,
जीवन शक्ति की क्षमता,
सही विचार,
सही इरादा,
सही प्रयास,
सही जागरूकता,
सही एकाग्रता,
आस्था की शक्ति,
ऊर्जा की शक्ति,
ध्यान की शक्ति,
एकाग्रता की शक्ति,
ज्ञान की शक्ति,
विवेक की शक्ति,
निंदा के भय की शक्ति,
कामुकता का अभाव,
नफरत का अभाव,
सुस्ती का अभाव।
लोभ का अभाव,
दुर्भावना का अभाव,
सही विचार,
कर्त्तव्य निष्ठां,
दोषारोपण का भय,
इंद्रियों की शांति,
विचारों की शांति,
इंद्रियों की उमंग,
विचारों की उमंग,
इंद्रियों की लचीलापन
विचारों की लचीलता,
इंद्रियों की सुगमता,
विचार की सुगमता,
समझ की उपयुक्तता,
विचार की उपयुक्तता,
विवेक की सत्यता, ।
विचारों की सत्यता,

सचेतनता,
बुद्धिमत्ता,
शांत,
अंतर्दृष्टि,
पकड़,
संतुलन।
ये, या उस अवसर पर मौजूद अन्य सभी निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों को छोड़कर—ये संश्लेषण के स्कंध हैं।
[63] (iv.) उस अवसर पर बुद्धि का स्कंध क्या है?
उस अवसर पर जो विचार, मन, हृदय, वह जो स्पष्ट है, मन के क्षेत्र के रूप में विचार, मन की क्षमता के रूप में विचार, बुद्धि का स्कंध, प्रतिनिधि बुद्धि का उपयुक्त तत्व — यही उस समय विद्यमान बुद्धि का स्कंध है (§ 6)। उस अवसर पर ये चार स्कंध हैं।
[64] उस अवसर पर दो गोले क्या हैं?

विचार-मंथन का क्षेत्र, (मानसिक) अवस्थाओं का क्षेत्र।
[65] उस अवसर पर »विचार-निर्माण का क्षेत्र (मनायतनम्) क्या है?
'विचार' के लिए धारा 6 और 'बौद्धिकरण के स्कंध' के लिए धारा 63 के अनुसार उत्तर दें।
[66] उस अवसर पर (मानसिक) अवस्थाओं (धम्मयातनम्) का क्षेत्र क्या है?
भावना, बोध, संश्लेषण के स्कंध— उस अवसर पर यह (मानसिक) अवस्थाओं का क्षेत्र होता है।
उस अवसर पर ये दो गोले हैं।
[67] उस अवसर पर वे दो तत्व क्या हैं?
प्रतिनिधिक बौद्धिकता का तत्व, (मानसिक) अवस्थाओं का तत्व।
[68] उस अवसर पर प्रतिनिधिक बौद्धिकता (मनोविन्ननाधातु) का तत्व क्या है?
"विचार" के लिए उत्तर, धारा 6; तुलना करें धारा 63, 65.
[69] उस अवसर पर (मानसिक) अवस्थाओं (धम्मधातु) का तत्व क्या है?
भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंध उस अवसर पर (मानसिक) अवस्थाओं के तत्व होते हैं।
उस अवसर पर ये दो तत्व होते हैं।
[70] उस अवसर पर तीन पोषक तत्व क्या हैं?[81]
संपर्क का पोषण, प्रतिनिधि चिंतन का पोषण, बौद्धिक क्षमता का पोषण।
[71] उस अवसर पर संपर्क का पोषण (फस्साहारो) क्या है?
धारा 2 में "संपर्क" के लिए दिए गए उत्तर के अनुसार उत्तर दें।
[72] उस अवसर पर प्रतिनिधि चिंतन (मनोसानसेतनहारो) का पोषण क्या है?
उस अवसर पर जो चिंतन, मनन और विचार-विमर्श होता है, वही उस समय का प्रतिनिधि चिंतन है।
[73] उस अवसर पर बुद्धि का पोषण (विन्नानहारो) क्या है?
"बौद्धिक स्कंध" के लिए उत्तर दें, धारा 63।
उस समय ये तीन पोषक तत्व होते हैं।
[74] उस अवसर पर आठ संकाय क्या हैं?
आस्था, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता, ज्ञान, विचार, खुशी और जीवंतता जैसी क्षमताएं।
[75-82] उस अवसर पर विश्वास की क्षमता क्या है... जीवंतता?
अनुच्छेद 12-19 में दिए गए अनुसार उत्तर दें।
उस समय ये आठ संकाय थे।
[83] उस अवसर पर पंचांगिकम झानम क्या है?
गर्भाधान, विवेचनात्मक विचार, आनंद, सहजता, आत्मसंयम।

[84-88] उस अवसर पर अवधारणा क्या है... आत्म-संयम?
उत्तर क्रमशः अनुच्छेद 7-11 के अनुसार हैं।
उस अवसर पर यही पंच प्रकार का ध्यान है।
[89] उस अवसर पर पंचमार्ग (पंचांगिको मग्गो) क्या है?
आठ दृष्टिकोण, सही इरादा, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।
[90-94] उस अवसर पर सही विचार क्या हैं... क्या... सही एकाग्रता है?
उत्तर क्रमशः अनुच्छेद 20-24 के अनुसार हैं।
उस अवसर पर यही पंचमार्ग है।
[95] उस अवसर पर सात शक्तियाँ क्या हैं?
आस्था, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता, ज्ञान, कर्तव्यनिष्ठा और निंदा के भय की शक्ति।
[96-102] उस अवसर पर विश्वास की शक्ति क्या है... निंदा का भय?
उत्तर क्रमशः अनुच्छेद 25-31 के अनुसार हैं।
उस अवसर पर ये सात शक्तियाँ थीं।
[103] उस अवसर पर तीन कारण (तयोहेतु) क्या हैं?
वासना, घृणा और सुस्ती का अभाव।
[104-106] उस अवसर पर कामवासना की अनुपस्थिति क्या है... सुस्ती?
उत्तर क्रमशः धारा 32-34 के अनुसार हैं।
उस अवसर पर ये तीन कारण होते हैं।
[107] उस अवसर पर संपर्क क्या है... [108] भावना...
[109] बोध...
[110] चिंतन... [111]
विचार... [112
] भावना का स्कंध...
[113] बोध का स्कंध... [114]
संश्लेषण का स्कंध... [115]
बौद्धिक स्कंध...
[116] विचार का क्षेत्र ...
[117] विचार की क्षमता... [118
] वैचारिक बौद्धिक तत्व...
[119] (मानसिक) अवस्थाओं का क्षेत्र...
[120] (मानसिक) अवस्थाओं का तत्व, एक एकल कारक के रूप में माना जाता है?
उत्तर क्रमशः धारा 2-6, 60-63, 65, 65, 65, 66, 66 के अनुसार हैं।
ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[यहाँ समाप्त होता है] [अच्छे विचारों के प्रथम मुख्य प्रकार के घटकों का] सारांश।
["शून्यता" खंड (सुन्नतवरो)].[82]
[121]
अब, उस समय अवस्थाएँ (विचार के विभेदनीय घटक), स्कंध, शक्तियाँ,
क्षेत्र, कारण,
तत्व, संपर्क,
पोषक तत्व, भावना,
क्षमताएँ, बोध, ध्यान
, चिंतन,

मार्ग, विचार आदि मौजूद होते हैं।
भावना का स्कंध,
बोध का स्कंध,
संश्लेषण का स्कंध,
बुद्धि का स्कंध,
विचार का क्षेत्र,
विचार करने की क्षमता,
प्रतिनिधिक बोध का तत्व,
मानसिक अवस्थाओं का क्षेत्र,
मानसिक अवस्थाओं का तत्व। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ—ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[122] उस अवसर पर राज्य क्या हैं?
भावना, बोध, संश्लेषण और बौद्धिक क्षमता के स्कंध।
[123] उस अवसर पर स्कंध क्या हैं?
धारा 59 में उल्लिखित एन्सिवर।
[124-145] इसके बाद घटक प्रजातियों की सूची में "क्षेत्र", "तत्व" आदि के संबंध में इसी प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। उत्तर पिछले 'सारांश' में दिए गए समान प्रश्नों के उत्तरों के समान हैं, अर्थात् §§ 64, 67, 70, 74, 83, 89, 95, 103, और 107-120 में।
[यहाँ समाप्त होता है] "शून्यता" खंड।
[यहाँ समाप्त होता है] अच्छे विचारों का पहला मुख्य प्रकार।

प्रकार II.
[146] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब किसी सचेत प्रेरणा[83] से इंद्रिय जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, ऐसा विचार जो आनंद से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ा हो, और जिसका विषय दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, [मानसिक] अवस्था, या कुछ और हो, तो संपर्क, भावना आदि[84] उत्पन्न होती है। [यहाँ अनुच्छेद 1-145 में वर्णित और प्रथम विचार का निर्माण करने वाली 'अवस्थाओं' की सूची दी गई है] — ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये अवस्थाएँ अच्छी होती हैं। . . .
[यहाँ समाप्त होता है] दूसरा विचार.[85]

प्रकार III.
[147] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब इंद्रियों से संबंधित ब्रह्मांड के बारे में कोई अच्छा विचार आनंद से भरपूर होकर, ज्ञान से अलग होकर, किसी दृश्य, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मानसिक अवस्था या किसी अन्य चीज को विषय बनाकर उत्पन्न होता है, तब
संपर्क करना, गर्भाधान,
अनुभूति, विवेचनात्मक विचार,
धारणा, आनंद,
सोच, आसानी,
सोचा, आत्मसंयम;
संकाय के...
आस्था, एकाग्रता,
ऊर्जा, विचार-मंथन,
सचेतनता, ख़ुशी,

जीवन शक्ति;

सही इरादा[86], सही जागरूकता,

सही प्रयास, सही एकाग्रता,

इसकी शक्ति

आस्था, एकाग्रता,

ऊर्जा, कर्त्तव्य निष्ठां,

सचेतनता, निंदा का भय;

कामुकता का अभाव,

नफरत का अभाव,

लोभ का अभाव,

दुर्भावना का अभाव;

कर्त्तव्य निष्ठां,

दोषारोपण का भय;

शांति, उपयोगयोग्यता,

उत्प्लावन बल, फिटनेस,

प्लास्टिसिटी, सत्यता,

इंद्रियों और विचारों दोनों के संदर्भ में;

सचेतनता, पकड़,

शांत, संतुलन।

ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।

[सारांश, देखें धारा 58 इत्यादि]

[147a] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,

क्षेत्र दो हैं,

तत्व दो हैं,

पोषक तत्व तीन हैं,

क्षमताएँ सात हैं[87],

ध्यान पंचगुणी है,

पथ चौगुणी है,

शक्तियाँ छह हैं[88],

कारण दो हैं[89], .

संपर्क, आदि।

[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

[148] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?

संस्कार-स्कंध की विषयवस्तु प्रथम प्रकार के विचार, § 62[90] के समान ही है, जिसमें निम्नलिखित शब्द हटा दिए गए हैं: "ज्ञान की क्षमता",

"सही दृष्टिकोण",

"ज्ञान की शक्ति",

"सुस्ती का अभाव",

"बुद्धि",

"अंतर्दृष्टि"। इन्हें "ज्ञान से विरक्त" गुण के साथ असंगत होने के कारण हटा दिया गया है।

ये, या कोई अन्य निराकार, आदि।

[यहाँ समाप्त होता है] तीसरे प्रकार का विचार।[91]

प्रकार IV.

[149] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब किसी सचेत प्रेरणा से इंद्रिय जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, ऐसा विचार जो आनंद से युक्त हो, ज्ञान से असंबद्ध हो, और जिसका विषय दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, [मानसिक] अवस्था, या कुछ भी हो, तब संपर्क आदि होता है। [धारा 147 के अनुसार जारी रखें] - ये, या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ हों - ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। . . .[92]

यहां चौथा विचार समाप्त होता है।

प्रकार V.

[150] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब इंद्रिय जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो निस्वार्थता[93] से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ा हो, और जिसका विषय दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, [मानसिक] अवस्था, या कुछ भी हो, तब संपर्क आदि होता है। [धारा 1 के अनुसार जारी रखें, लेकिन "आनंद" और "खुशी" के स्थान पर "समभाव" (उपेक्खा) और "खुशी की क्षमता" के स्थान पर "निस्वार्थता की क्षमता" का प्रयोग करें]।[94]

[151] उस अवसर पर संपर्क क्या है?

उत्तर m § 2 के रूप में दें।

[152] उस अवसर पर भावना क्या है?

वह मानसिक स्थिति जो न तो सुखद है और न ही अप्रिय, जो उस अवसर पर प्रतिनिधिक बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है; विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली संवेदना जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक; विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक — यही वह अनुभूति है जो उस समय मौजूद होती है।

[धारा 4-8 के अनुसार जारी रखें।]

[153] उस अवसर पर निस्वार्थता क्या है?[95]

पिछले उत्तर के समान ही उत्तर दें, जिसमें "प्रतिनिधि बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न" वाक्यांश को हटा दें।

[धारा 11-17 के अनुसार जारी रखें।]

[154] उस अवसर पर निःसंकोचता की क्षमता क्या है?

पिछले उत्तर के अनुसार उत्तर दें। धारा 19-57 के अनुसार आगे बढ़ें।

[सारांश।]

[154क] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,

क्षेत्र दो हैं,

तत्व दो हैं,

पोषक तत्व तीन हैं,

क्षमताएँ आठ हैं,

ध्यान चार गुना है[96],

पथ पंच गुना है,

शक्तियाँ सात हैं,

कारण तीन हैं,

संपर्क,

आदि, आदि। [cf. § 58]

मानसिक अवस्थाओं का क्षेत्र एक ही कारक है,

मानसिक अवस्थाओं का तत्व एक ही कारक है। ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ—ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।

[धारा 59-61 के अनुसार जारी रखें।]
[155] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
धारा 62 के अनुसार उत्तर दें, "आनंद" को छोड़कर।[97]
[प्रथम प्रकार के विचार के सारांश और "शून्यता" अनुभाग के अनुसार जारी रखें।]
[यहाँ पाँचवें प्रकार का विचार समाप्त होता है।]

प्रकार VI.
[156] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब इंद्रिय-संबंधी जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो निस्वार्थ भाव से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ा हो, सचेतन प्रेरणा से प्रेरित हो, और जिसका विषय कोई दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मानसिक अवस्था आदि हो, तब संपर्क आदि होता है।

[पांचवें प्रकार के विचार के अनुसार जारी रखें।]
यहां छठे प्रकार का विचार समाप्त होता है।

प्रकार VII.
[157] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब इंद्रियों से संबंधित इस जगत के बारे में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो निस्वार्थ भाव से, ज्ञान से विरक्त होकर, और जिसका विषय कोई दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मानसिक अवस्था आदि हो, तब संपर्क आदि होता है।
[तीसरे प्रकार के विचार के अनुसार जारी रखें, "आनंद" और "सुविधा" के स्थान पर "निराकारता" और "खुशी" के स्थान पर "निराकारता की क्षमता" तथा "पंचगुणी ध्यान" के स्थान पर "चतुर्गुणी" का प्रयोग करें।] [98]
[सारांश।]
[157a] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,
इत्यादि।
[तीसरे प्रकार के चिंतन के अनुसार जारी रखें, "पंचगुणा ध्यान" के स्थान पर "चतुर्गुणा" शब्द का प्रयोग करें।]

[158] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
इस स्कंध की विषयवस्तु तीसरे प्रकार के विचार (देखें § 148) के समान है, जिसमें "आनंद" को हटा दिया गया है।
[पहले प्रकार के विचार के अनुसार जारी रखें।]
यहां सातवें प्रकार का विचार समाप्त होता है।

प्रकार VIII.
[159] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब इंद्रिय-संबंधी जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो निस्वार्थ भाव से, ज्ञान से विरक्त होकर, सचेतन प्रेरणा से प्रेरित होकर, और जिसका विषय कोई दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मानसिक अवस्था आदि हो, तब संपर्क आदि होता है।
[सातवें प्रकार के विचार के अनुसार जारी रखें।]

[यहाँ समाप्त होता है] विचार का आठवाँ प्रकार।
[संवेदी जगत के संबंध में विचार के आठ मुख्य प्रकारों पर अध्याय I का अंत।]
(यहाँ पाठ का दूसरा भाग समाप्त होता है।)

- फुटनोट:

1. इस शीर्षक और अन्य सभी शीर्षकों को कोष्ठक में रखकर यह दर्शाया गया है कि इन्हें पाठ में उनके वर्तमान स्थान से स्थानांतरित कर दिया गया है। पाठ में प्रत्येक शीर्षक अपने अनुभाग के अंत में है।

2. प्रस्तावना देखें।

3. वही।

4. नाना-संपयुत्तनी। साईं के अनुसार, एक अच्छे विचार को तीन आधारों पर इस प्रकार विभेदित किया जाना चाहिए:
इससे उत्पन्न होने वाले कर्मों से,
इसमें शामिल क्षमताओं की परिपक्वता से,
और मानसिक और नैतिक दुर्बलता की दूरी से जो यह निहित है (असल. 76)।
सम्पायुत्तम् — शाब्दिक अर्थ, आमंत्रित — का वर्णन कथावत्थु में, जिसका उल्लेख साई. (पृष्ठ 42) ने किया है, निम्नलिखित संबंधों (एक अवस्था और दूसरी अवस्था के बीच) को समाहित करने के रूप में किया गया है: सहवर्ती (सहगत),
जन्मजात (सहजता),
निकटवर्ती (सर्नसत्थ),
एक सामान्य उत्पत्ति (एकुप्पदा),
एक सामान्य समाप्ति (एकनिरोध),
एक सामान्य आधार या स्वरूप (एकवत्थुक),
ध्यान का एक सामान्य विषय (एकराममन)। इस कृति में, इस शब्द का अनुवाद आगे "जुड़ा हुआ" के रूप में किया गया है, उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 1007 आदि में। पूर्ववर्ती विशेषण वाक्यांश, सोमनस्स-सहगतम्, जिसका मैंने अनुवाद "सुख से युक्त" किया है, को साई. ने वस्तुतः यहाँ सोमनस्स-संपायुत्तम् के समतुल्य घोषित किया है, क्योंकि इसकी व्याख्या इसके पूर्ण अर्थ में की जानी है।
इसके पाँच भेदक अर्थों में से, यहाँ "जुड़ा हुआ" (समसत्तम) अर्थ चुना गया है। और "जुड़ा हुआ" के चार भेदक भावार्थों में से, यहाँ "संबंधी" अर्थ चुना गया है। अतः "साथ में" का अर्थ यहाँ "संबंधी" है।
और इसके अलावा, चूंकि सहवर्तीता दो भौतिक घटनाओं के बीच या एक भौतिक और एक अभौतिक घटना के बीच नहीं है, इसलिए यह उस निरंतर और व्यापक प्रकार की है - जो सामान्य उत्पत्ति से परे बनी रहती है - जिसे "सहयोगी" शब्द के अंतर्गत वर्णित किया गया है।
अब तक तो मैंने जटिल बुद्धघोष ग्रंथ का अध्ययन किया है। लेकिन मुझे अभी तक मानसिक अवस्थाओं के बीच संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले नियमों का विश्लेषण करने का कोई प्रयास नहीं मिला है, जैसा कि हमें सबसे पहले अरस्तू के ग्रंथों में देखने को मिलता है।
"खुशी" के बारे में, धारा 10, 18 देखें।

5. रूपराममनम, सद्दराममनम, आदि, अर्थात्, वर्तमान अनुभूति के रूप में या अतीत या भविष्य से संबंधित प्रतिनिधि छवि के रूप में; ह्यूम की भाषा में, एक छाप या एक विचार के रूप में; अधिक व्यापक जर्मन शब्द में, वोर्स्टेलुंग (असल. 71)। प्रस्तावना देखें।

6. शाब्दिक रूप से, एक ऐसी वस्तु जो मूर्त हो - पाली भाषा का मानक शब्द।

7. धम्मरम्मनम् - प्रतिनिधित्वात्मक कल्पना या विचार का "विषय" (म नो, चित्तम्, अस्ल., 71), ठीक वैसे ही जैसे देखी गई वस्तु दृष्टि का विषय होती है। बुद्धघोष इस मत को खारिज करते हैं कि धम्मरम्मनम् इंद्रियों की सीमा से बाहर है, और मि. i. 295 का हवाला देते हैं, जहाँ सारिपुत्त कहते हैं कि जहाँ प्रत्येक इंद्रिय का अपना विशिष्ट क्षेत्र होता है, वहीं मनो का दायरा इन सभी पाँच क्षेत्रों के अंतर्गत आता है।

जिस क्षण कोई वस्तु "आँख के द्वार" या अन्य इंद्रिय के द्वार में प्रवेश करती है, उसी क्षण वह विचार-मंथन करने वाली शक्ति के द्वार में भी प्रवेश करती है, जिससे चेतना या व्यक्ति का अस्तित्व कंपन करने लगता है (भवंगचलनस्स पच्चयो होति), ठीक उसी प्रकार जैसे उतरता हुआ पक्षी उसी क्षण शाखा से टकराता है और छाया बनाता है {वही, 72)। — जैसा कि हम कह सकते हैं, प्रस्तुतात्मक संज्ञान हमेशा प्रतिनिधि संज्ञान के साथ होता है।
फिर, इंद्रिय-प्रभाव के कारण उत्पन्न होने वाली इस गड़बड़ी से उत्पन्न मानसिक उतार-चढ़ाव के दौरान, महाचित्तनी नामक आठ मनोविकारों में से एक उभर सकता है। "लेकिन शुद्ध प्रतिनिधिक अनुभूति (शुद्ध-मनोद्वरे) में, इंद्रिय उत्तेजना की कोई प्रक्रिया नहीं होती", जैसा कि हम अतीत के इंद्रिय-अनुभवों को याद करते समय करते हैं।
प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया को विस्तार से समझाया गया है, और यह प्राचीन मनोविज्ञान पर एक रोचक निबंध को पूरा करता है। देखने, सुनने और सूंघने के मामले में, अतीत की सुखद संवेदनाओं को विश्राम की बाद की अवस्था में पुन: जीवंत होने के रूप में वर्णित किया गया है। स्वाद और स्पर्श के मामले में, वर्तमान अप्रिय संवेदनाएं अतीत के किसी विपरीत अनुभव का संकेत देती हैं। लेकिन टिप्पणीकार यहां "विपरीतता द्वारा जुड़ाव" में रुचि नहीं रखता है।

8. शाब्दिक रूप से, "या जो भी [विचार का विषय] है"। कुछ हद तक अस्पष्ट टिप्पणी का सार यह है कि, जबकि वर्तमान या अतीत की संवेदनाओं के अलावा वस्तुओं का कोई नया वर्ग नहीं समझा जाना है, कोई क्रमवाचक या संख्यात्मक क्रम नहीं है जिसमें ये "विचार के लिए सामग्री बन जाते हैं।

9. बुद्धघोष के अनुसार, क्रमांकित 34-6 अवस्थाओं को क्रमशः क्रमांकित 31-3 अवस्थाओं के समतुल्य माना जाता है, परन्तु एक अन्य परिप्रेक्ष्य में। पूर्व क्रम में 'सद्‌गुण के त्रिगुणी मूल' का वर्णन है; बाद वाले में 'कर्म के मार्ग' का संदर्भ समझा जाता है (असल. 129)।

10. शास्त्र के अनुसार, इस मनोविकृति में नौ अन्य अवस्थाओं का भी उल्लेख किया गया है, जैसे कि इच्छा (या संकल्प, या इच्छाशक्ति, चंदो),
संकल्प (अधिमोक्खो),
ध्यान (मानसिकरो),
समभाव (तत्रमज झटता),
करुणा (करुणा),
सहानुभूति (मुदिता),
कर्म, वाणी और आजीविका में बुरे आचरण से परहेज
। पाठ में इस और इसी प्रकार के पूरक खंडों के आरंभिक शब्दों को एक तकनीकी शब्द - ये-वापनक, "जो भी" [अवस्थाएँ] - में ढाला गया है, जो ऐसे समूहों को दर्शाता है।
इसके बाद, धर्मग्रंथ नौ तत्वों को परिभाषित करता है: इच्छा, जिसे नैतिक रूप से अवांछनीय इच्छा (धारा 1097 आदि) से अलग करने के लिए रूढ़िवादी इच्छा (धम्मचंदो) के रूप में वर्गीकृत किया गया है, कार्य करने की इच्छा है, विचार में वस्तु को पकड़ने के लिए मन का हाथ बढ़ाना है। संकल्प दृढ़ता, दृढ़ निश्चय, स्तंभ के समान अविचलित रहना है।
ध्यान मन की गति, दिशा और वस्तु के प्रति समर्पण है। समभाव—शाब्दिक अर्थ, मध्य अवस्था—वह अवस्था है जिसमें मन बिना किसी दोष या अधिकता के, बिना किसी पक्षपात के, समान रूप से प्रवाहित होता है। दया और सहानुभूति का वर्णन अनुच्छेद 258 और उसके बाद के अनुच्छेदों में किया गया है। अंतिम तीन अनुच्छेद अष्टांगिक मार्ग के उन तीन कारकों को दर्शाते हैं जिनका वर्णन विचार के विश्लेषण में नहीं मिलता (असल. 132, 133)।
यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस पूरक श्रेणी में सभी विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ पूरी तरह से, या कम से कम मुख्य रूप से, स्वैच्छिक या भावनात्मक होती हैं।

11. स्पर्श या संपर्क को बहुत व्यापक अर्थ में समझना चाहिए, जो तीन स्थितियों का परिणाम है: एक स्पर्श करने वाला संवेदी अंग, संवेदी अंग से बाह्य रूप से परिकल्पित एक स्पर्श करने वाली शक्ति, और प्रभाव या टक्कर। मिल. 60 में मेढ़ों और झांझों की उपमाएँ

साइ में उद्धृत हैं। आँख और उसका विषय सामान्य उदाहरण हैं, लेकिन प्रतिनिधि कल्पना (मनो या चित्तम) और उसका विषय संपर्क के माध्यम से आगे बढ़ने वाले के रूप में शामिल हैं, केवल बिना प्रभाव (संगठनम) के।
हर मामले में वास्तविक कारण संबंध - जैसा कि मैं समझता हूँ, मेरे लिए अस्पष्ट रूप से व्यक्त की गई टिप्पणी (असल. 109) - मानसिक है, भले ही हम एक बाहरी एजेंसी की बात करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे जब लाख गर्मी से पिघलता है तो हम गर्म कोयले को कारण बताते हैं, हालांकि गर्मी लाख के अपने ऊतक में होती है।
"संपर्क" को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि यह विचार की शुरुआत का प्रतीक है, और सभी संबद्ध अवस्थाओं का अनिवार्य तत्व है, जो उन्हें उसी प्रकार प्रभावित करता है जैसे एक बहुमंजिला घर की छत अन्य सभी सामग्रियों के संयोजन को सहारा देती है (iUd, 107)।

12. वेदना एक बहुत व्यापक अर्थ वाला शब्द है, जिसका अर्थ है संपर्क या प्रभाव के कारण शारीरिक या मानसिक संवेदनशीलता या प्रतिक्रिया। संवेदना शब्द इसका उतना सटीक अनुवाद नहीं है जितना कि भावना, क्योंकि यद्यपि वेदना को अक्सर इंद्रिय-क्रिया में "संपर्क से उत्पन्न" के रूप में वर्णित किया जाता है, इसे सामान्यतः तीन प्रकारों से मिलकर बना माना जाता है।
आनंद (खुशी),
दर्द (बीमारी),
और तटस्थ भावना
— एक सुखवादी पहलू जिसके लिए 'भावना' शब्द ही पर्याप्त है। इसके अलावा, यह प्रतिनिधि भावना को भी समाहित करता है।
वेदना का यह सामान्य मानसिक पहलू, जो शरीर में होने वाली संवेदनाओं (जैसे दांत दर्द) से भिन्न है, संभवतः उत्तर में प्रयुक्त शब्द "मानसिक" (चेतसिकम्) द्वारा बल दिया गया है। साई. बताते हैं कि इस अभिव्यक्ति (= चित्तनिस्सितत्तम्) से "शारीरिक सुख समाप्त हो जाता है" (असल. 139)।
यह उदाहरण वेदना के व्यापक दायरे को एक रसोइए के उपमा से भी स्पष्ट करता है, जो अपने स्वामी के लिए अनेक व्यंजन तैयार करने के बाद प्रत्येक व्यंजन का बारीकी से स्वाद लेकर परखता है, और स्वामी अपनी पसंद का व्यंजन ग्रहण करता है। रसोइया विचार-प्रणाली में निहित सभी संबंधित अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है, जिनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट तरीके से कार्य करती है। वेदना, जो स्वामी है, समग्र रूप से वस्तु के सार (स्वाद) का आनंद लेती है।

13.तज्ज-मनोविफिनाधातु। तज्ज ए को अनुच्चविक्फ़ी, सरूपा द्वारा व्याख्यायित किया गया है। सी एफ ए. मैं. 207; एस. iv. 215; एम. मैं. 190, 191 ; मिल. 53. मिश्रित पद के शेष भाग पर, § 6 देखें। और उत्तर में सुखवादी अभिव्यक्तियों पर, § 10 देखें।

14. चेतो-सम्फसजम . . . वेदयितम। बाद वाला शब्द (अनुभव) अधिक शाब्दिक रूप से वह है जिसे महसूस किया जाता है, दास एम्फुंडने। इन शब्दों के लिए चेतो और चित्तम का प्रयोग चक्र में एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है (देखें § 6)। "संपर्क" विचार या वस्तु और विचार, या विचार उत्पन्न करने वाली शक्ति के बीच का संपर्क है, जिसे इंद्रिय-अंग और इंद्रिय-वस्तु के बीच के प्रभाव के समान माना जाता है। इस संपर्क या प्रस्तुति के परिणामस्वरूप, चेतना में भावनात्मक अभिलाषा उत्पन्न होती है।

15. पिटकों में सन्ना शब्द के अर्थ में जिस तरह से अनियमितता दिखाई देती है, उससे इसका कोई एक उपयुक्त अंग्रेज़ी अनुवाद देना कठिन हो जाता है। महावेदल्ल सूत्र (एम. i. 293) और अन्यत्र (सी/. मिल. 61) में इसे बौद्धिक या संज्ञानात्मक प्रक्रिया के अपेक्षाकृत सरल रूप में समझाया गया है, जिसमें संवेदनाओं का बोध, पहचान और आत्मसात करना शामिल है—उदाहरण के लिए, रंगों का, जैसे "नीला", आदि—इस प्रक्रिया को आधुनिक अंग्रेज़ी मनोविज्ञान में इंद्रिय-बोध कहा जाता है, सिवाय इसके कि यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि बौद्ध मनोविज्ञान में, अंग्रेज़ी मनोविज्ञान की तरह, बोध केवल इंद्रिय उत्तेजना के अवसर पर ही होता है।
दरअसल, हमारे अनुच्छेद 4 में उत्तर केवल प्रतिनिधि गतिविधि की ओर ही संकेत करता है। हालाँकि, महापरिनिब्बान सूत्र (देखें ए. श्लोक 105) में सन्ना, अनित्यता, सारहीनता आदि जैसी कई अत्यंत जटिल अवधारणाओं की बौद्धिक अनुभूति को दर्शाता है। पोत्थपाद सूत्र (डी. आई. 180-187) में, जिस सन्ना की चर्चा की गई है, वह स्पष्ट रूप से चेतना है, चाहे वह समाधि की अचेतना के विपरीत हो, या ननम की कच्ची सामग्री के रूप में हो, या आत्मा या अहंकार से अलग मानी जाए। अंत में, अधिक प्रचलित अर्थ में इस शब्द का प्रयोग (विशेष रूप से जातक कथाओं और टीकाकारों की उपमाओं में) चिह्न, चिन्ह या प्रतीक के लिए किया जाता है।

यहां, यदि हम साइ. (असल. 110) का अनुसरण करें, तो sail ii a का अर्थ केवल वह इंद्रिय-बोध है जो इंद्रिय-अनुभूतियों को पहचानता है, उनका भेद करता है और उन्हें श्रेणी-संदर्भ देता है (उपस्थित-विषय)। इसकी प्रक्रिया की तुलना बढ़ई द्वारा प्रत्येक लकड़ी पर बनाए गए चिह्न से उसकी पहचान करने, कोषाध्यक्ष द्वारा प्रत्येक आभूषण पर लगे टिकट से उसकी पहचान करने और जंगली जानवर द्वारा बिजूका में मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तु को पहचानने से की जा सकती है।

साईना का सार चिह्न के माध्यम से पहचान करना बताया गया है। चिह्न और अंकन की इस धारणा में विचार की वह निरंतरता निहित है जो इस शब्द के विभिन्न उपयोगों के लिए सिद्ध की जा सकती है। चेतना का मूल अर्थ है भेद करने की क्षमता—अर्थात चिह्न लगाना। चिह्न लगाना ही बोध करना है। और "अनित्यता", "अशुद्धता" आदि के विचार या अवधारणाएँ, अत्यंत "प्रतिनिधित्वात्मक" प्रकृति के होते हुए भी, अंकन के अनेक कार्य थे। सन्ना, चित्तम (प्रस्तावना देखें) और "विचार" दोनों का प्रतिनिधित्व करता है, और उस क्षमता के किसी भी कार्य या उत्पाद का भी। और यह किसी भी ऐसे कार्य के परिणाम को भी दर्शाने के लिए वस्तुनिष्ठ हो जाता है—अर्थात चिह्न या संकेत के अर्थ में।

मेरा मानना है कि जब इसे स्कंध या क्षमता के अधिक विशिष्ट अर्थ में व्यक्त किया जाता है, तो इसे सुरक्षित रूप से "बोध" या "चिह्नित करना" के रूप में अनुवादित किया जा सकता है, और इसका अर्थ इंद्रिय विषयों से संबंधित संज्ञान की अपेक्षाकृत "सतही", "क्षणिक" (असल. 110, 111) प्रक्रिया हो सकता है। विशुद्धि मार्ग के अध्याय 14 में - एक अंश जिसे स्वर्गीय हेनरी सी. वॉरेन ने मेरे लिए प्रतिलिपि करने की कृपा की - सन्ना को इसी प्रकार, और केवल इसी प्रकार, वीण-नाम और पन्ना से अलग किया गया है। बाद वाले शब्द (जैसा कि हम कह सकते हैं) अपेक्षाकृत उच्चतर और उससे भी उच्चतर शक्ति पर संज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि वे जिन अवधारणाओं के बारे में प्रयोग किए जाते हैं उनकी गहराई और जटिलता अधिक होती है (देखें §§6, 16)।

16. धम्म संगानी की व्याख्या में इससे अधिक कठिन समस्या कोई नहीं है कि इसके संकलकों और बाद में इसके टीकाकार ने किस आधार पर चेतना और चित्तम जैसे व्युत्पत्तिगत रूप से समान शब्दों के परस्पर स्वतंत्र विवरण प्रस्तुत करना उचित समझा। मेरे विचार में एकमात्र समानता ब्रिटिश दर्शन में लंबे समय तक चले आ रहे "तर्क" और "कारण" के बीच के भेद में निहित है—अर्थात निगमनात्मक अनुमान और बुद्धि, या बौद्धिक क्रिया के बीच का भेद।

ये दोनों शब्द प्रचलित रूप में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, निदान-कथा (जाति. i. 74) में बुद्ध का मारा को उत्तर देखें: 'यहाँ मेरा कोई चेतन (या बुद्धिमान) साक्षी नहीं है... इस पृथ्वी को, चाहे वह अचेतन ही क्यों न हो, साक्षी होने दो... सचेतानो कोचि सक्खी, इत्यादि... अयम अचेतनपि... पथावि सक्खलति।' फिर, अध्या. i., पृष्ठ 224 में, इसका अर्थ सरल और तकनीकी रूप से काफी सरल प्रतीत होता है: "उनके विचार (चेतना) और आशाएँ (शाब्दिक रूप से, सोचना और आशा करना) निम्नतर चीजों पर टिकी हैं।" इसलिए मैंने प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। यह 'सोच' और 'विचार' जैसे इतने अविभेदित शब्दों के प्रयोग को उचित नहीं ठहराता; फिर भी, आधा दर्जन विकल्पों को आजमाने के बाद, विभिन्न कारणों से मैं इन पर लौट आया हूँ। ये शब्द बौद्ध धर्म के इन दो शब्दों के बीच घनिष्ठ संबंध को अस्पष्ट करने के बजाय उसे दर्शाते हैं; ये रूप और विस्तार दोनों में समान रूप से लोकप्रिय और अस्पष्ट हैं; 'चेतना' का अर्थ चिंतन के मनोवैज्ञानिक विवरण से बहुत मिलता-जुलता है; 'चित्तम' के साथ 'विचार' शब्द से कम अनुपयुक्त कोई शब्द नहीं है, सिवाय 'हृदय' के, जिसके बारे में प्रस्तावना में चर्चा की गई है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बुद्धघोष इन दोनों का तुलनात्मक विश्लेषण नहीं करते, जैसा कि वे वितक्क-विचार और पीति-सुखम के मामले में करते हैं। चेतना के अंतर्गत वे सशक्त उपमाओं का प्रयोग करते हुए इसे सक्रियता और परिश्रम की प्रक्रिया तथा समन्वयकारी एवं व्यवस्थात्मक कार्य के रूप में वर्णित करते हैं। वे इसकी तुलना एक ऊर्जावान किसान से करते हैं, जो अपने पचपन मजदूरों (विचार-समूह के पचपन सह-घटकों) को फसल काटने के लिए इधर-उधर दौड़ाता है; एक बढ़ई के वरिष्ठ प्रशिक्षु से, जो स्वयं काम करता है और दूसरों के कार्यों की देखरेख करता है; एक योद्धा दल के नेता से, जो लड़ता और उकसाता है। नागसेना (मिल. 61) की परिभाषा इन धारणाओं में केवल तैयारी (अभिसंखरणम्) शब्द जोड़ती है, दूसरा विशेषण मात्र एक संज्ञात्मक रूप है (जैसे कि हम कहें "विचार करना")।

इस प्रकार, जहाँ तक "चिंतन" का तात्पर्य प्रतिनिधिक, समन्वयकारी बौद्धिक चिंतन से है, यह चेतना के साथ मेल खाता है। सामान्य धारणाओं के माध्यम से बौद्धिक चिंतन के अपने संकीर्ण, तकनीकी अर्थ में, यह मेल नहीं खाता (प्रस्तावना देखें)। किसी भी तरह, इसे चिंतन कहना पर्याप्त रूप से अनिश्चित है, और यह इसे अन्यत्र "चिंतन", "मनन", "विचार" आदि शब्दों द्वारा व्यक्त करने से नहीं रोकता है। लेकिन यह समस्या अभी भी अनसुलझी है कि यह सारिन, चिट तर्न और विन्नानम जैसे शब्दों से कैसे संबंधित है। स्कंध के संबंध में, इसे चित्त के साथ नहीं, बल्कि संखार-स्कंध के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, धारा 62।

मेरे परिचय में चित्तम और उसके वर्णन के संदर्भों पर चर्चा की गई है।

17. विताको और विकारो ऐसे दो शब्द हैं जिन्हें अंग्रेजी के किसी एक शब्द से जोड़ना कठिन है। संभव है कि अकादमिक शिक्षा में इन्हें आम बोलचाल और विशुद्ध नैतिक उपयोग की तुलना में अधिक गहन और विशिष्ट अर्थ दिया गया हो। देखें, एम. आई., सुत्त 19 और 20, जहाँ विताको को विचारों, धारणाओं या सोच से उचित रूप से व्यक्त किया जा सकता है। दूसरी ओर, अस्लि. 114, 115 में (देखें मिल. 62, 63), चित्त और एक दूसरे से इन दोनों के संबंध को बहुत सारे रूपकों के साथ समझाया गया है, हालाँकि मनोवैज्ञानिक समझ का अभाव है। विताको एक विचार श्रृंखला की शुरुआत में होने वाली विशिष्ट मानसिक प्रक्रिया है, स्वैच्छिक ध्यान की जानबूझकर की गई गति। जैसे एक राजा अपने महल में अपने प्रिय या रिश्तेदार का सहारा लेकर चढ़ता है, वैसे ही विचार अपनी अवधारणात्मक क्रिया (विताको; अस्लि. 114) पर निर्भर करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।
अन्य लाक्षणिक गुण हैं किसी वस्तु पर प्रभाव डालना, उसे चारों ओर से घेरना (पर्याहनम्), और फिर उसे निकट लाना। अतः, वितको का अनुवाद अक्सर "तर्क" के रूप में किया जाता है, और इस प्रकार मैंने "अवधारणा" शब्द का चयन किया है। इसके द्वारा मैं मन की इस ग्रहणशील, रचनात्मक और विस्तारशील क्रिया, कल्पना की इस प्रारंभिक पहुँच को उजागर करना चाहता था, जिसका बौद्ध विद्वतापूर्ण विश्लेषण में विस्तार से वर्णन किया गया है; परन्तु मैं पूर्वी परंपरा में सामान्य धारणाओं के माध्यम से अवधारणा को बौद्धिक क्रिया के रूप में अपने तार्किक या मनोवैज्ञानिक अर्थ से जोड़ना नहीं चाहता था। फिर भी, जिस प्रकार अवधारणा का प्रयोग "तर्क" या "तर्क-वितर्क" को समाहित करने के लिए किया जा सकता है, उसी प्रकार उत्तर में वितको को तक्को द्वारा वर्णित किया गया है, जो तर्कसंगत प्रक्रिया, तर्क या बुद्धि के लिए प्रयुक्त शब्द है (देखें डी. आई. 12, 21)। साई. पूछता है, "कोई किस बारे में तर्क करता है (तककेसी)? किसी बर्तन के बारे में, किसी गाड़ी के बारे में, किसी भी चीज़ की दूरी के बारे में?" खैर, विटाको का तर्क अधिक सशक्त है।'

18. "प्रवृत्ति", "सही इरादे" पर, धारा 21 देखें।

19. अप्पना व्यप्पना, बाद वाला पूर्व का गहन रूप है (असल. 142, 143)। "योगवचार की नियमावली" (पृष्ठ 11 और आगे) में अप्पना नियमित ध्यान के अभ्यास के दौरान वांछित अवधारणा के उदय को दर्शाता है। बुद्धघोष इसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं: — एकग्गम चित्तम अरम्मने अप्पेन्ति।

20.सीतासो अभिनिरोपन = अरम्मने चित्तम्। . . पतितथापेटी (उक्त)

21. विकारो, विटाको की तुलना में, स्वैच्छिक विचार-निरंतरता की गति और निरंतरता को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था, जो चिंतन के विषय से जूझने की पहल से भिन्न है। टिप्पणीकारों द्वारा इसमें संपूर्ण को समझने की तुलना में विस्तृत रूप से जांच करने का अर्थ भी देखा जाता है (असल. 114)। यह एक तरह से कूटना (अनुमज्जनम) है, साथ ही एक जुड़ाव भी है। विटाको से इसके संबंध को दर्शाने के लिए रूपकों की संख्या बढ़ाई गई है।
यह उसी प्रकार है जैसे ढोल या घंटी की गूंज; जैसे पक्षी के पंखों का प्रारंभिक उड़ान के बाद समतल होना; जैसे कमल पर बैठने के बाद मधुमक्खी की भिनभिनाहट; जैसे गंदे कटोरे को पकड़ने पर उसकी सफाई; जैसे कुम्हार का हाथ, जिसमें मिट्टी को चाक पर पकड़ने वाले हाथ को विताको के रूप में दर्शाया गया है, इत्यादि। "जांच" निरंतर गतिविधि को अच्छी तरह से व्यक्त करता है; "विश्लेषण" विस्तार से चिंतन को; "विवेचनात्मक विचार" आधुनिक और पश्चिमी निहितार्थों को शामिल किए बिना दोनों के कुछ अर्थों को स्पष्ट करता है।

22. जैसे धनुष और बाण को समायोजित करना। "फोकस करना" अनुपेक्खमानो है।

23. सुखम से भिन्न पीति को स्पष्ट रूप से भावना के स्कंध से बाहर रखा गया है, इसे अपरिहार्य सुखवादी घटक माना जाता है और इसे संस्कार स्कंध के मिश्रित मनोविकारों के रूप में संदर्भित किया जाता है। यह केवल भावना से भिन्न, संवेग को दर्शाता है; अर्थात्, पीति एक जटिल मानसिक घटना है, जिसका अर्थ है "केंद्रीय मनो-शारीरिक उत्पत्ति" और व्यापक रूप से फैला हुआ "दैहिक प्रतिध्वनि" (सली, 'मानव मन', ii. 56)।

यह वर्तमान विचार से उत्पन्न होता है और संपूर्ण अस्तित्व में व्याप्त हो जाता है। बुद्धघोष के समय तक इसे पाँच प्रकारों में विभाजित किया गया था: आनंद का रोमांच, जिससे शरीर में सिहरन दौड़ जाती है; बिजली की तरह आनंद की चमक; समुद्र तट पर लहरों की तरह आनंद की बाढ़; परमानंद या उन्माद, जिसमें व्यक्ति हवा में तैर सकता है; और अत्यधिक व्याप्त आनंद (आस्ल. 115, 116)। चौथे प्रकार (उब्बेग-पिति) के उदाहरण दिए गए हैं, जिसका प्रेरक विचार 'बुद्धरम्मनम्' है (विशुद्धि मार्ग, अध्याय 4; "योगवचार की नियमावली", 7 भी देखें)। इसी शब्द (उब्बेगो) का प्रयोग अपराधबोध के कारण होने वाली पीड़ा या कंपकंपी का वर्णन करने के लिए किया जाता है। नीचे देखें, § 31 n.

24. विट्टी, जिसका शाब्दिक अर्थ, जैसा कि साइ. बताते हैं, समृद्धि, धन है, और यहाँ इसका प्रयोग आनंद के स्रोत से उत्पन्न अवस्था के रूप में किया गया है। 'आनंदित व्यक्ति को अपने आनंद से सुख प्राप्त होता है, जैसे धनी व्यक्ति को अपनी धन-संपत्ति से सुख प्राप्त होता है।' (असल. 143)

25. अत्तमनता चित्तस्स। बुद्धघोष, जो इस शब्द की सही व्युत्पत्ति से अनभिज्ञ थे, हमेशा की तरह अनुमान लगाने के लिए तैयार थे: अत्तनो मनता, यानी स्वयं की मानसिकता, न कि किसी दूसरे की, व्यक्तिपरक अनुभव। यदि मैं दुखी या प्रसन्न हूँ, तो यह विशेष रूप से मेरी भावना है (वही)। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह ध्यान देने योग्य है कि वे इस घनिष्ठ, व्यक्तिपरक संदर्भ को तीव्र भावना की अवस्था में खोजने के लिए तैयार हैं। "भावना एक उत्कृष्ट व्यक्तिपरक अनुभव है... हमारी भावनाएँ... पूरी तरह से हमारी अपनी हैं।" (सुली, 'मानव मन', ii. 2; जी.सी. रॉबर्टसन, 'मनोविज्ञान के तत्व', 185-188)।

26. पीति और सुखम के बीच अंतर बताने के लिए, बुद्धघोष एक यात्री का सुंदर चित्रण करते हैं, जो रेगिस्तान की यात्रा से थककर एक उपवन में स्थित तालाब के बारे में सुनकर प्रसन्न होता है और उसे देखकर आनंदित होता है। तालाब का पानी पीकर, स्नान करके और उसकी छाया में विश्राम करके वह शांति से भर जाता है। यह सत्य है कि सुखम केवल निष्क्रियता नहीं है; यह सकारात्मक, सुखद अनुभूति है और इसके साथ सक्रिय भावनाएँ भी जुड़ी हो सकती हैं; इसका सार विस्तार या वृद्धि (उपब्रहन्नम) है।
लेकिन जिस प्रकार दुःखम का अर्थ पीड़ा से अधिक अस्वस्थता या कष्ट है, उसी प्रकार सुखम का अर्थ स्वस्थ और सुखी अवस्था है। और जिस प्रकार "आनंद" हमारी इच्छा की प्राप्ति (संभावित रूप से या वास्तव में) की संतुष्टि है, उसी प्रकार 'सुख' हमारी प्राप्ति के स्वाद (फ्रेंच, स्वाद) का आनंद है (असल. 117)। आगे अनुच्छेद 60 देखें। "मानसिक सुखम" (चेतसिकम सुखम) शायद अधिक सही रूप से सोमनस्सम है, जिसका अनुवाद (अनुच्छेद 1, आदि) 'खुशी' के रूप में किया गया है, सुखम को कभी-कभी केवल शारीरिक (कायिकम) के रूप में ही भेद किया जाता है। देखें शमूएल श्लोक 209।

27. "चित" एकग्गता, मन की एक शिखर वाली अवस्था, एकाग्रता (समाधि) का एक नाम है, ऐसा शास्त्र कहता है (पृष्ठ 118)। और तदनुसार, जबकि धारा 15 के अंतर्गत समाधि का कोई और वर्णन नहीं दिया गया है, यहाँ चित्त' एकग्गता पर समाधि को दर्शाने के लिए मिल. 38 में प्रयुक्त रूपकों को लागू किया गया है, अर्थात् तम्बू के आकार की झोपड़ी का मध्य भाग और अपनी सेना का नेतृत्व करने वाला सरदार।
आगे इसमें कहा गया है कि इस समाधि, जिसे आत्म-एकाग्रता कहा जाता है, की विशेषता भटकाव और ध्यान भटकने का अभाव है; इसका सार इसके साथ उत्पन्न होने वाली मन की अवस्थाओं का आपस में बंध जाना है, जैसे पानी साबुन के झाग को बांधता है; और इसके सहवर्ती गुण शांति या ज्ञान हैं—क्योंकि कहा गया है, "जो शांत है वह समझता है, वह चीजों को वैसे ही देखता है जैसे वे वास्तव में हैं"—और सहजता। विचार की स्थिरता की तुलना हवा रहित स्थान में जलती हुई दीपक की लौ की स्थिरता से की गई है।' 'योगावचार की नियमावली', पृष्ठ 26 देखें।

28.
ये तीनों समरूप शब्द चित्तस्स थिति संथिति अवत्थिति पाठ में हैं। साई. (पृष्ठ 143) के अनुसार, थिति द्वारा दर्शाई गई वस्तु में या उस पर अडिग खड़े रहने (अरम्मने) की स्थिति को सम उपसर्ग द्वारा संशोधित किया गया है, जिसका अर्थ है वस्तु में संबंधित अवस्थाओं को एक साथ गूंथना (संपिन्देत्व), और अवा उपसर्ग द्वारा वस्तु में लीन होना। बौद्ध धर्म में अंतिम रूपक को चार अच्छी और तीन बुरी अवस्थाओं

पर लागू माना जाता है - विश्वास, सजगता, एकाग्रता (= आत्म-संयम) और ज्ञान; लालसा, अटकलबाजी और अज्ञान, लेकिन सबसे अधिक आत्म-संयम पर।

29. अविसहरो, अविक्खेपो [v. § 57)। व्याकुलता और संतुलन की हानि 'उत्तेजना और उलझन' की उपस्थिति के कारण होती है (§§ 425, 429; असल. 144)।

30. समाथो। तीन प्रजातियों में विभेदित: मानसिक शांति (यहाँ प्रयुक्त); कानूनी शांति, या समझौता; सभी संस्कारों में शांति, जिससे, साइ. (144) के अनुसार, निर्वाण की शांति का तात्पर्य है।

31. "संकाय" के बारे में, प्रस्तावना देखें।
विश्वास को उन्हीं शब्दों और लगभग उन्हीं उपमाओं के माध्यम से परिभाषित और चित्रित किया गया है जिनका प्रयोग मिल., पृष्ठ 34-60 में किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मन की एक ऐसी अवस्था है जहाँ भ्रम का अभाव आकांक्षा और ऊर्जा को मुक्त करता है। इसे बुद्ध और उनकी पद्धति में विश्वास के रूप में वर्णित किया गया है। हालाँकि, यहाँ किसी अंतिम लक्ष्य पर विस्तार से चर्चा नहीं की गई है, जैसा कि सेंट पॉल ने "उच्च उद्देश्य की पहचान के लिए पुरस्कार" आदि के बारे में बात करते हुए किया था, जिसकी ओर उन्होंने प्रबल विश्वास के साथ अग्रसर किया था।
बल्कि, यहाँ उस आत्मविश्वास पर ज़ोर दिया गया है जो अपने तरीकों और प्रयासों की सार्थकता के प्रति दृढ़ विश्वास से उत्पन्न होता है, जो एक प्रकार से विश्वास का ही एक पहलू है। नदी की उपमा में, साइ. ट्रेंकनर के मिलिंडा संस्करण से इस हद तक भिन्न है कि लोग मगरमच्छों और अन्य राक्षसों के डर से नदी पार करने से डरते हैं, जब तक कि नायक अपनी तलवार लेकर नदी में कूद नहीं जाता। मिलिंडा के अनुवाद (1.56) में 'विश्वास' पर टिप्पणी देखें।

32.अर्थात, बुद्ध, सिद्धांत और संघ में। बुद्धघोष केवल व्युत्पत्ति को नैतिकता से जोड़ने में रुचि रखते हैं, और विश्वास की मनोवृत्ति में आत्मविश्वास (ओ-कप्पना) के "नीचे की ओर गिरने" की तुलना "सचेतनता" में "डूबने", "एकाग्रता" में "स्थिर स्थिति" और "ज्ञान" की "गहन" पैठ से करते हैं (असल. 144, 145)।

33. साइ. इस और इसके बाद के यौगिकों के वर्णन में यौगिक के प्रथम पद, अर्थात् "विश्वास" की पुनरावृत्ति की एक वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। पूर्व के अनुसार, यह अभिदम्मा की विधि है कि यौगिक के विशेषण भाग को अलग से प्रस्तुत किया जाए जिस पर संज्ञा भाग निर्भर करता है: विश्वास-क्षमता = विश्वास (की क्षमता)।
बाद वाले मत के अनुसार, आस्था और आस्था-क्षमता, इन दो अमूर्त अवधारणाओं के बीच समानता को उजागर किया गया है। यह टिप्पणी करता है कि स्त्री और नारीत्व के गुण का मामला अलग है। (यह मूर्त और अमूर्त के बीच अंतर को खोजने का एक प्रयास हो सकता है।)

34. बुद्धघोष द्वारा विरियम को इससे जोड़ा गया है
(क) वीरा, गतिशील प्रभावशीलता जो "हीरो" (वीरो) प्रजाति का सार है,
(ख) इरिया, कंपनशील गति। वह इसे दो धारणाओं द्वारा परिभाषित करता है: "सहारा देना" और "पकड़ना", या "आगे की ओर खींचना" (पग्गाहो), और फिर "प्रयास करना" (उस्साहनम)। ओ. मिल. 36; सुम. विल. 63.
और वे मिलिंदा में मिलने वाली उपमाओं का ही प्रयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की तरह वे भी सचेत प्रयास के दो रूपों - प्रतिरोध और मुक्त ऊर्जा - की व्याख्या करना चाहते थे। लेकिन वे इस तथ्य पर भी बल देते हैं कि यहाँ जिस ऊर्जा की बात हो रही है वह मानसिक है, शारीरिक नहीं (पृष्ठ 120 और आगे, 145)।

35. आरंभो (c/. अर अम मन अम), प्रत्यक्ष क्रिया, निष्क्रियता से भिन्न, अतः क्रिया की शुरुआत, को साइ. द्वारा छह अलग-अलग निहितार्थों के रूप में विभेदित किया गया है, इस आधार पर कि इसमें कर्म, किए गए दोष, वध या चोट, या क्रिया (किरिया), या ऊर्जा का संदर्भ है।

मैं यह दावा नहीं करता कि निम्नलिखित चार शब्द युग्म पाठ में दिए गए शब्दों से बिल्कुल मेल खाते हैं। ये मात्र अनुमानित हैं। 'प्रयास' शब्द 'वायमो' है, जो आर्य अष्टांगिक मार्ग में 'ऊर्जा' का प्रतीक है। 'अडिग' प्रयास (असिथिला-परक्कमाता) उस व्यक्ति का मनोभाव है जिसने बौद्ध धर्म की विशिष्ट प्रतिज्ञा ली है: चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ सूखकर मुरझा जाएँ, या मैं अपनी ऊर्जा तब तक रोके रखूँ, जब तक मैं वह सब कुछ प्राप्त न कर लूँ जो मानवीय शक्ति, ऊर्जा और प्रयास से प्राप्त किया जा सकता है! (एम. आई. 480)। वह इच्छा जो बनी रहती है—शाब्दिक रूप से, जिसे दबाया नहीं जाता—वह है जो अच्छे कर्म करने के अवसर पर महसूस होती है।

36. बुद्धघोष की सती प्रथा पर टिप्पणी, जिसमें उन्होंने मिल. 37, 38 के विवरण का बारीकी से अनुसरण किया है और उसे विस्तृत किया है, यह दर्शाती है कि चेतना के उस पहलू की पारंपरिक अवधारणा में विवेक या नैतिक भावना के पश्चिमी आधुनिक सिद्धांत के साथ बहुत कुछ समानता थी। सती को एक आंतरिक मार्गदर्शक के रूप में दर्शाया गया है, जो अच्छे और बुरे में भेद करता है और चुनाव को प्रेरित करता है। हार्डी ने तो इसे "विवेक" के रूप में भी प्रस्तुत किया, लेकिन इससे पूर्वी और पश्चिमी चिंतन के बीच के रोचक अंतरों को नजरअंदाज कर दिया गया है।
पूर्वोक्त ग्रंथ सती के विषय पर काफी स्पष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह प्रतिनिधि कार्यप्रणाली की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को (केवल स्मृति और निर्णय के बीच अंतर किए बिना) लेता है और उसे नैतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। हिरी, §30 के अंतर्गत भी देखें; और "मिलिंदा के प्रश्न", 38, n. 2 में वर्णित धारणा को भी देखें।

37. उत्तर (सी/. § 12) में सती का तीन बार उल्लेख के. से सहमत है, लेकिन पुग्गला पनाटी (पृष्ठ 25) से नहीं। इस पर सी.वाई. द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है।

38. अपिलापनाता। अत्थसालिनी इस शब्द से उत्पन्न समस्या का समाधान (मिलिंदा (एसबीई), खंड 1, पृष्ठ 58, नोट 2 देखें) इसे पिलावती, यानी तैरना, से व्युत्पन्न करके करती है और व्याख्या करती है: — "पानी पर कद्दू और बर्तनों की तरह सतह पर न तैरना", सती विचार के विषय में प्रवेश करना और उसमें गहराई तक उतरना। तुलना करें § 11, नोट 2; § 12, नोट 2, जिसमें इस शब्द का पुनः प्रयोग किया गया है। सकारात्मक रूप m/m, §1349 में मिलता है। PPhas(a)vilapanata (21,25)। (Asl. 147; तुलना करें 405।) यदि मैंने मूल के नकारात्मक रूप को सामने लाना पसंद न किया होता, तो मैं इस शब्द का अनुवाद "गहनता" के रूप में करता।

39. बुद्धघोष की व्युत्पत्ति - "अरम्माने चित्तम सम्मा अधियाति, थपेति ति" - निःसंदेह गलत है, सम-अ-धा अधिक सटीक विश्लेषण है; फिर भी, वह निरंतर मानसिक प्रयास के उद्देश्य से ध्यान के स्वैच्छिक और जानबूझकर समायोजन को सामने लाते हैं जो समाधि (असल. 122) द्वारा निहित है।

40. 'पा फिन अ' शब्द को उसके यूरोपीय समकक्ष से सटीक रूप से जोड़ना बौद्ध दर्शन की सबसे कठिन चुनौतियों में से एक है। मैंने इसके लिए तर्क, बुद्धि, अंतर्दृष्टि, विज्ञान, समझ और ज्ञान जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। दर्शन साहित्य में इन सभी का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्त किया जाने वाला भाव प्रचलित और अस्पष्ट है, मनोवैज्ञानिक और सटीक है, या पारलौकिक और - कृपया ध्यान दें - सटीक अस्पष्टता वाला है। और इनमें से प्रत्येक किसी न किसी रूप में 'पा फिन अ' का प्रतिनिधित्व कर सकता है।
चुनाव में मुख्य कठिनाई यह निर्धारित करने में थी कि बौद्धों के लिए पन्ना का अर्थ मानसिक क्रिया है, या किसी विशेष मानसिक क्रिया के समग्र परिणाम से, या दोनों से। जब सुत्त पिटक में पाणिया के सभी संदर्भों का संकलन हो जाएगा, तब अंतिम अनुवाद संभव हो सकेगा। यहां दो उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। मि.ई. 292 में, जिसे पा फिन (पाईनवा) प्राप्त होता है, उसे इसके फलस्वरूप पीड़ा या अस्वस्थता (चार आर्य सत्य) की प्रकृति को समझने (पाजनति) की क्षमता प्राप्त होती है। दी.ई. 124 में गौतम पूछते हैं: यह पन्ना क्या है? और स्वयं इसका सार कुछ बौद्धिक उपलब्धियों के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जैसे कि ध्यान, अनित्यता की प्रकृति की अंतर्दृष्टि, स्वयं की मानसिक छवि, इद्धि की शक्ति, दैवीय श्रवण शक्ति, अन्य मनों की अंतर्दृष्टि, अपने पूर्व जन्मों की अंतर्दृष्टि, दैवीय नेत्र और सभी दूषित प्रवृत्तियों का निवारण।
बुद्धघोष (विज़. एम., अध्याय 14) भी पन्ना को सन्ना और विन्नाना से अलग करते हैं। वे इसे न केवल इन इंद्रियों द्वारा बोधित की जा सकने वाली चीजों, अर्थात् इंद्रिय-विषयों और तीन लक्षणों (अनित्यता, पीड़ा और सारहीनता) को समझने के लिए पर्याप्त बताते हैं,

बल्कि पथ को भी समझने के लिए पर्याप्त मानते हैं। उनके अनुसार, इसे "उच्चतर स्तर की बुद्धि" कहा जा सकता है। और गौतम के उत्तर में, इन सभी उपलब्धियों का वर्णन बौद्धिक 'प्रक्रिया' के रूप में किया गया है।
फिर भी, यह स्पष्ट है कि यह शब्द किसी विशेष स्तर की जटिलता वाली मानसिक प्रक्रिया को नहीं दर्शाता था, बल्कि यह उन मानसिक प्रक्रियाओं को भी दर्शाता था जो सभी बौद्ध साधकों के लिए वस्तुनिष्ठ रूप से मान्य अवधारणाओं की एक निश्चित प्रणाली के अनुसार विकसित की जाती थीं। इसलिए, मेरा मानना है कि तर्क, बुद्धि और समझ जैसे शब्दों को अस्वीकार करना और ज्ञान, विज्ञान, विद्या या दर्शन जैसे शब्दों को चुनना बेहतर है। इन्हें केवल इसी संदर्भ में समझा जाना चाहिए कि ये किसी व्यक्ति की बुद्धि द्वारा आत्मसात और लागू किए गए ज्ञान के समूह को दर्शाते हैं। नान आम (परिचय) और विज्जा (धारा 1296) के अंतर्गत आगे देखें।

41.le, "चार सत्यों" के सिद्धांत (असली. 147)। तुलना करें मिल. 83.

42. पृथ्वी की चौड़ाई और विस्तार के समान बुद्धि (असली. 147, 148)।

43.मेधा. साइ. इस शब्द की विशिष्ट बुद्धिमत्ता को बुराई को "मारने" या फिर "समझने और सहन करने" में निहित बताते हैं (148)।

44.परिणयिका.

45. शाब्दिक अर्थ में, एक उकसाने वाला यंत्र।

46. "बुराइयों के वध के लिए" (असली. 148; तुलना करें जाट. iv. 174)।

47."किसी उदात्त चीज़ के अर्थ में" (वही; तुलना करें Dhp. v. 28 = Mil. 387).

48.एंग. ii. 139.

49.वही।

50.वही।

51. "उदासीनता" के विपरीत दोहराया गया (असल. 148)।

52. पाठ में, idam से पहले hoti का प्रयोग संभवतः एक त्रुटि है।

53. यह उत्तर वाक्य के प्रारंभ में तस्मीम समाये ('उस अवसर पर') के लोप के कारण अपवाद है। देखें §§ 82, 295, 441। इसके लोप का कारण संभवतः यह है कि जीवन की उपस्थिति में, जिसके द्वारा धर्मों का समूह जल द्वारा कमलों के समान, या अपनी माँ द्वारा शिशु के समान पोषित होता है (असली. 124), दिए गए समूह के नैतिक गुण (अच्छा, बुरा या अनिश्चित) पर कुछ भी निर्भर नहीं करता है।

54. दिठ्ठी शब्द की चर्चा के लिए, § 1003 देखें। पथ के इन पाँच कारकों पर प्रस्तावना देखें।

55.संकप्पोइस को विशेष रूप से चेतसो अभिनिरोपण अभिव्यक्ति से पहचाना जाता है, जिसका अर्थ है मन का अनुप्रयोग, ध्यान का स्वभाव या समायोजन, जिस पर हृदय लगा होता है, अतः आकांक्षा, इरादा, उद्देश्य, योजना।

56. बुद्धघोष द्वारा विश्लेषित हिरी और ओत्तप्पम नैतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु प्रस्तुत करते हैं। इन्हें एक साथ लेने पर हमें अंतरात्मा की आधुनिक अवधारणा का भावनात्मक और क्रियात्मक पहलू प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे सती इसका बौद्धिक पहलू दर्शाती है। पहला शब्द "लज्जा" के समान है, जबकि दूसरा "दुराचार के कारण होने वाली पीड़ा" के समान है। हिरी का स्रोत भीतर है; ओत्तप्पम का उद्गम बाहर से होता है। हिरी स्वायत्त (अत्तधिपति) है; ओत्तप्पम परतंत्र है, जो समाज से प्रभावित (लोकधिपति) है। पहला लज्जा पर आधारित है; दूसरा भय पर। पहले में निरंतरता होती है; दूसरे में त्रुटि के खतरे और भयावहता की समझ होती है। हिरी के चार व्यक्तिगत स्रोत हैं, अर्थात्, जन्म, आयु, योग्यता और शिक्षा के अनुसार जो उचित है, उसका विचार। इस प्रकार, हिरी से ग्रसित व्यक्ति सोचेगा, "केवल नीच लोग (मछुआरे आदि), बच्चे, गरीब, अंधे और अज्ञानी ही ऐसा काम करेंगे", और वह ऐसा करने से बचता है। ओत्तप्पम का बाह्य स्रोत यह विचार है कि "विश्वासी लोग तुम्हें दोषी ठहराएंगे", और इसलिए व्यक्ति ऐसा करने से बचता है। यदि किसी व्यक्ति में हिरी है, तो जैसा कि बुद्ध ने कहा है, वह स्वयं अपना सर्वश्रेष्ठ गुरु है। ओत्तप्पम के प्रति संवेदनशील व्यक्ति के लिए, धर्म के गुरु ही सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक होते हैं (असल. 126)।
एक पूरक अनुच्छेद (पृष्ठ 127) में "चिह्नों" (संगति आदि) की व्याख्या इस प्रकार की गई है: हिरी में व्यक्ति अपने जन्म, अपने शिक्षक, अपनी संपत्ति और अपने सहपाठियों के महत्व पर विचार करता है। ओट्टाप्पर्न में व्यक्ति आत्म-निंदा, दूसरों के दोषारोपण, दंड और परलोक में प्रतिशोध के भय से ग्रस्त होता है।

57.हिरियती, जिगुच्चति द्वारा व्याख्यायित (असल. 149; डी. आई. 174; एम. आई. 78)।

58.ओट्टापति, उबेगो द्वारा व्याख्या (असल. 124)।

59.अर्थात्, मूलभूत अवस्था, अच्छाई का कारण। "लोभ" और "मोह" के लिए, धारा 35, 1059 देखें। अलोभो और इसके दो सहसंबद्ध गुण, अच्छाई के त्रिगुणी "मूल", अंग्रेजी नकारात्मक शब्दों में अपनी सारी शक्ति खो देते हैं, लेकिन एक बौद्ध के लिए निस्संदेह उतना ही प्रभावशाली, उतना ही सकारात्मक महत्व रखते हैं जितना कि नकारात्मक 'अमरता' ईसाई के लिए रखती है। उदाहरण के लिए, अलोभो में सक्रिय परोपकारिता शामिल है; अदोसो में सक्रिय सहानुभूति; अमोहो में संस्कृतिपूर्ण जीवन (धारा 34, संज्ञा देखें)। मुझे इन्हें व्यक्त करने के लिए कोई उपयुक्त सकारात्मक शब्द नहीं पता।
प्रथम की "विशेषता" लोभ या आसक्ति का अभाव है, जैसे कमल के पत्ते से पानी की एक बूंद बह जाती है। इसका सार स्वतंत्रता है, जैसे मुक्त भिक्षु की स्वतंत्रता (असल. 127)।

60.के. में अदुसना, अदुसितत्तम् लिखा है। ऐसा करने का "लक्षण" अशिष्टता और क्रोध का अभाव बताया गया है (देखें § 1060); इसका सार झुंझलाहट और क्रोध का दमन है; इसका तात्कालिक परिणाम पूर्णिमा के चंद्रमा की तरह सुंदरता है (असल. 127)।

61. "क्रोधित होने पर महसूस होने वाले दर्द का विपरीत" (असल. 150)।

62. बुद्धघोष बौद्ध धर्म के मूलभूत त्रिगुणों की श्रेष्ठताओं पर विस्तार से चर्चा करते हैं। उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:
अलोभो (1) में स्वास्थ्य शामिल है,
अडोसो (2) युवावस्था (बुढ़ापे से नफरत जल्दी होती है),
अमोहो (3) लंबी उम्र (विवेक के माध्यम से)।
(1) उदारता के माध्यम से भौतिक भलाई की ओर प्रवृत्त होता है (तुलना करें "जो बहुतायत से बोता है", आदि);
(2) प्रेम द्वारा जीते और धारण किए गए मित्रों की प्राप्ति;
(3) आत्म-विकास।
(1) देवलोक में जीवन की ओर ले जाता है,
(2) ब्रह्मलोक में जीवन की ओर ले जाता है,
(3) अरहतत्व की ओर ले जाता है।
(1) अनित्यता में अंतर्दृष्टि देता है, और इसके विपरीत,

(2) और
(3) अन्य दो चिह्नों ("दर्द" और "गैर-सारता", क्रमशः) में अंतर्दृष्टि देता है।

63. अभिज्झा और लोभो पर्यायवाची हैं। धारा 1059 और 1136 देखें, जहाँ अभिज्झा लोभो के स्थान पर प्रयोग किया गया है।

64. (असली. 129) को दूसरों के शारीरिक या मानसिक कल्याण, इस या अन्य लोकों में उनके लाभों, या उनकी अच्छी प्रतिष्ठा को नष्ट करने की किसी भी इच्छा से रहित प्राणी के रूप में वर्णित किया गया है।

65.तुलना करें § 1 (xxxvi), फुटनोट।

66. कायो के अर्थ के बारे में जानने के लिए प्रस्तावना देखें।

67. पसद्धि को दर्द से मुक्त अवस्था के रूप में वर्णित किया गया है—जहाँ दर्द शांत और दबा हुआ होता है; जहाँ कंपन या बेचैनी की जगह शीतलता आ जाती है—जो कि क्लेशों, विशेषकर उत्तेजना (§ 1229) की अवस्थाओं के विपरीत है। तुलना करें डी. i. 73; एम. i. 37.

68. शाब्दिक रूप से, हल्कापन, जिसे भारीपन, सुस्ती और दृढ़ता तथा अचेतना के विपरीत वर्णित किया गया है (§ 1185)।

69."जल्दी बदलने की क्षमता" (असल. 150). तुलना करें चाइल्डर्स डिक्शनरी, एसवी परिवत्ती.

70.अदंधनाता पढ़ें। के. अदंधनाता पढ़ता है, लेकिन धारा 43 और धारा 639 में अदंधनाता है।

71. कठोरता और प्रतिरोध, या विरोध का दमन; राय और अहंकार के किलेसा से संबंधित रवैये के विपरीत रवैया।

72. कम्मन्नाता, शाब्दिक रूप से कार्ययोग्य, या सेवायोग्यता - अच्छे कार्य के लिए (असली. 151), जिसके द्वारा कोई "विचार की वस्तुओं का निर्माण करने में सफल होता है" (वही. 130)।

73. बीमारी और अविश्वास का विपरीत (वही, 131)।

74. कुटिलता, छल (शायद) और चालाकी (असल. 131) के विपरीत के रूप में परिभाषित किया गया है।

75. या बोध; किसी भी चीज़ को उसकी उपयोगिता, उसकी उपयुक्तता, उसके दायरे के अनुसार जानना और उसे स्पष्ट रूप से जानना। लगभग "बुद्धि" के समतुल्य नाम दिया गया, साइप्रस इसे सचेतनता की विशेषताओं को भी प्रदान करता है (वही), सती-संपजानो की बार-बार आने वाली दोहरी योग्यता देखें - जैसे, एम. आई. 274.

76. "उत्तेजना या घबराहट का विपरीत" (असल. वही)। शाब्दिक रूप से, "डगमगाहट का अभाव" (या झिझक या अस्थिरता)।

77. ऊपर देखें, पृष्ठ 5.

78. "अच्छे विचारों" (चित्तंगणी) की आठ योजनाओं में से पहली योजना के घटक धर्मों का अब वर्ग और संख्या के संदर्भ में पूर्वाभ्यास किया जाता है। इसका उद्देश्य संभवतः विद्यार्थी को संबंधित मनोविकृति का संक्षिप्त विवरण देना या स्मृति प्रदान करना था। इस प्रकार, यदि विचार के घटक कारकों को वर्गीकृत समूहों (रसत्थेन या खंडत्थेन) के रूप में देखा जाए, तो वे सभी चार शीर्षों के अंतर्गत आते हैं।

वे सभी जो भावना, बोध या बुद्धि के स्कंधों से संबंधित नहीं हैं, संस्कार-स्कंध के अंतर्गत आते हैं। संयोग या संयोजन (आयतनम्) के दृष्टिकोण से देखने पर, वे सभी दो शीर्षों के अंतर्गत आते हैं, जो क्रमशः चौथे, पहले, दूसरे और तीसरे स्कंधों के अनुरूप हैं। घटनाओं, गैर-संभाव्य (सभावत्तन्, सुइलियत्तन्, निसत्तत्तन्) के दृष्टिकोण से देखने पर, वे सभी दो शीर्षों के अंतर्गत आते हैं, जो पूर्ववर्ती दो शीर्षों के अनुरूप हैं। फिर हम आंशिक पहलुओं पर आते हैं।

79. इस और अगले उत्तर दोनों में अनुच्छेद 3 और 4 में प्रयुक्त वाक्यांश "प्रतिनिधि बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न" का लोप, साइ. के. में ध्यान नहीं दिया गया है। के. ने इस ओर एक फुटनोट में ध्यान दिलाया है, इस अंश में नहीं, बल्कि अनुच्छेद 108-110 में। यह लोप संभवतः आकस्मिक है।

80. प्रस्तावना देखें,

81. इन तीन निराकार पोषक तत्वों या खाद्य पदार्थों का, चौथे या साकार खाद्य पदार्थ के साथ, सुत्त पिटक में वर्णन किया गया है: एम. i. 261; एस. ii. 11. इसमें इनका वर्गीकरण चतुक्क निपाता के अंतर्गत नहीं किया गया है; परन्तु दशक निपाता (ए. v. 136) में दस प्रकार के आहारों का उल्लेख है, जिनका इन चारों से कोई संबंध नहीं है। उदाहरण के लिए, "उचित कर्म ही स्वास्थ्य का आहार है"।
बुद्धघोष, व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए, इन्हें परिस्थितियाँ नहीं बल्कि पूरक आकस्मिक "संयोजक" (अ-हार) कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक जीवित व्यक्ति को देखते हुए, संपर्क का उल्लेख करें, तो भावना प्राप्त होती है; चिंतन का उल्लेख करें, तो तीन "विकास" (इंद्रियों आदि के ब्रह्मांड में) प्राप्त होते हैं; बुद्धि का उल्लेख करें, तो अवधारणा और नाम-और-रूप प्राप्त होते हैं (असल. 153)।

82. "शून्यता" शब्द के महत्व पर, प्रस्तावना देखें; सी/. § 344. विद्यार्थी के अध्ययन पाठ्यक्रम में इस खंड का महत्व केवल इस बात में निहित प्रतीत होता है: कि विचार-समूह को जिन मानसिक गतिविधियों में समाहित किया जा सकता है, उनमें से प्रत्येक प्रकार के विशिष्ट घटकों की प्रकृति और संख्या से ध्यान हटाकर, इस सिद्धांत पर जोर दिया जाता है कि यह विचार-समूह ऐसे घटनात्मक कारकों का एक समूह या संयोजन है, और इससे अधिक कुछ नहीं।
"चेतना की अवस्थाएँ होती हैं" (धम्म होन्ती); अर्थात् (असल. 155), "कोई स्थायी सत्ता या आत्मा नहीं है जो अवस्थाओं को प्राप्त करती है"।
"अवस्थाओं को प्रत्यक्ष रूप से समझा जाना चाहिए। इनके अलावा कोई अन्य सत्ता, अस्तित्व, व्यक्ति या इकाई नहीं है।"

83. ससंखारेना। बुद्धघोष द्वारा इस शब्द की व्याख्या संक्षिप्त और स्पष्ट है। स = सह-, संखारो = यौगिक, यहाँ इसका प्रयोग स्रोत, प्रेरणा, साधन या कारण के साथ सहवर्ती के अर्थ में किया गया है (उस्साहो, पयोगो, उपायो, पच्चयो-गहनम्)। उदाहरण के लिए, विहार के आस-पास रहने वाला भिक्षु, जब कर्तव्य उसे स्तूप के चारों ओर चबूतरे की सफाई करने, बड़ों की सेवा करने या धम्म सुनने के लिए बुलाता है, तो वह मार्ग को बहुत कठिन पाता है और सेवा से जी चुराता है।
न जाने की अनुचितता के बारे में दूसरी सोच उसे जाने के लिए प्रेरित करती है। ये सोच या तो उसकी अपनी अंतरात्मा (attano va payogena) से प्रेरित होती है, या किसी दूसरे व्यक्ति के आग्रह से, जो न जाने के नुकसान और जाने के लाभ को बताते हुए कहता है, "आओ, जाओ!" और "अच्छा विचार", यानी जाने का संकल्प, 'किसी कारण को पकड़ने के माध्यम से, एक साथ उत्पन्न होने वाले मकसद के रूप में' कहा जाता है। असल. 156.
यह व्याख्या विजयसिंह मुडलियार द्वारा चाइल्डर्स को दी गई ससंखारिको की व्याख्या से भिन्न नहीं है। मेरा मानना है कि वे इतने कट्टर बौद्ध नहीं थे कि उनका अर्थ यह हो कि असंखारिकम चित्तम एक स्वतःस्फूर्त, अर्थात् अकारण विचार है। उनका तात्पर्य केवल यह था कि विचार का विषय उसे उसके मानसिक पूर्ववर्ती के प्रति सचेत हुए बिना, पच्चय-गहनम के बिना अनुभव करता है। दूसरी ओर, चित्तम ससंखारेना में, विचार अपनी मानसिक स्थितियों के साथ चेतना में प्रकट होता है। अभिधम्मत्थ-संघ में इसी संदर्भ में प्रयुक्त शब्द असंखारिकम और ससंखारिकम हैं। जेपीटीएस, 1884, पृष्ठ 1 आदि। तुलना करें: वॉरेन, "बौद्ध धर्म अनुवादों में", 490।

84. पाठ (§ 146) में, "...पे ..." द्वारा इंगित छोड़े गए पुनरावृत्तियों पर § 147 का संदर्भ दिया गया है। अधिक सही संदर्भ § 1 का होना चाहिए। दूसरा प्रकार-विचार (सारांश और 'शून्यता' खंड सहित) सभी दृष्टियों से पहले प्रकार (Asl. 156) के समान है, केवल "चेतन

प्रेरणा द्वारा प्रेरित" के अतिरिक्त निहितार्थ को छोड़कर। इसी अपवाद के साथ चौथा, छठा और आठवां प्रकार-विचार क्रमशः तीसरे, पांचवें और सातवें प्रकार-विचार के समान हैं। अतः पाठ के § 159 में संदर्भ § 157 का होना चाहिए था।

85.के. को दुतियम चित्तम पढ़ा जाता है, और इसी तरह आठों के लिए।

86. सम्मदित्ति शब्द को यहाँ पाठ में छोड़ देना चाहिए था, ठीक वैसे ही जैसे अव्यापादो और हिरी के बीच इसके दूसरे उल्लेख के स्थान पर इसे सही ढंग से छोड़ दिया गया है। तीसरे प्रकार के विचार से इसका अभाव "ज्ञान से विरक्त" वाक्यांश में निहित है, ठीक वैसे ही जैसे "बुद्धि", "अंतर्दृष्टि" आदि में है। तुलना करें, के. 147ए में पथ को केवल चार प्रकार का बताया गया है।

87. "बुद्धि" शब्द का उल्लेख न होना।

88.पिछली टिप्पणी देखें।

89. "उदासीनता की अनुपस्थिति" शब्द को हटा दिया गया है।

90. पाठ में पाठक को बिना किसी संकोच के अनुच्छेद 62 का संदर्भ दिया गया है, जिससे वह विरोधाभासों में फंस जाता है। के. ने स्कंध की विषयवस्तु को पूरी तरह से सूचीबद्ध किया है, उन सभी कारकों को छोड़ दिया है जो ज्ञान से विरक्त विचार के साथ असंगत हैं। मैंने केवल इन बहिष्कृत कारकों का उल्लेख करना ही पर्याप्त समझा है।

91. धारा 147 के बाद पाठ में गलती से रखा गया।

92. इसलिए के. पाठ में न केवल पुनरावृत्तियों को, बल्कि अनिवार्य रूप से विशिष्ट कारक ससंख क्षेत्र को भी छोड़ दिया गया है, जिससे "चौथे विचार" का सम्मिलन पूरी तरह से समझ से परे हो जाता है।
बुद्धघोष ने इस प्रकार के विचार का एक अलग उदाहरण दिया है, जो पूर्ववर्ती चित्तर्न ससंखारेना से इसकी समानता और भिन्नता के अनुरूप है, अर्थात्: इसमें मन की सुखद अवस्था तो शामिल होती है, लेकिन कोई गहरी समझ या विवेक नहीं। ऐसा ही विचार छोटे बच्चों का होता है, जो अपने माता-पिता द्वारा चैत्य में सिर झुकाकर पूजा करने के लिए कहे जाने पर स्वेच्छा से ऐसा करते हैं, यद्यपि वे ऐसा बिना किसी विवेकपूर्ण विश्वास के करते हैं। असल. 156.

93. उपेक्षा। "यह विचार के विषय के संबंध में निष्पक्षता (शाब्दिक रूप से, मध्यता) है, और इसमें एक विवेकपूर्ण ज्ञान निहित है" (असल. 157)। ध्यान की साधना में इसके महत्व की तुलना करें, धारा 165। पहले प्रकार के विचार से उत्पन्न होने वाले ध्यान में, जो "आनंद" और "सुकून" के साथ होता है, इसे "आत्म-संयम" से प्रतिस्थापित किया जाता है। धारा 83 देखें।

94. यहाँ, फिर से, पाठ में लगभग पूरे उत्तर का लोप, और धारा 156 का संदर्भ, जहाँ छठे विचार को इस पाँचवें विचार से, ससंखारेण गुण द्वारा अलग किया गया है, मूल में अपनाए गए वर्गीकरण को पूरी तरह से अस्पष्ट कर देता है।

95. "आनंद" और "सुकून" के स्थान पर प्रतिस्थापित, धारा 9, 10.

96. संभवतः इसमें "अवधारणा", "विवेचनात्मक विचार", "निस्वार्थता" ("आनंद" और "सुकून" से ऊपर) और "आत्म-संयम" शामिल हैं। देखें अनुच्छेद 83। पिटकों में यह अंतिम मनोवृत्ति आमतौर पर ध्यान की चरम अवस्था (या अन्य) के रूप में नहीं मिलती है (देखें अनुच्छेद 160 आदि)। हालांकि, अभिधम्मत्थ-संघ में यह इसी रूप में और "निस्वार्थता" के साथ-साथ पाई जाती है। जेपीटीएस, 1884, पृष्ठ 3।

97.के. स्कंध को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है, जिसमें "आनंद" को छोड़ दिया गया है, क्योंकि आनंद और उपेक्षा परस्पर अनन्य हैं।

98.नानिन्द्रियम् पाठ में मनिन्द्रियम् होना चाहिए।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग1-अध्याय 2
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
 - भाग 1 - चेतना की उत्तम अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु
1अध्याय II - रूप के ब्रह्मांड के संबंध में अच्छाई
1.1रूपावकारा कुसलम
1.1.1विधि I: आठ कृत्रिम विधियाँ (अत्थकसिनम)।
1.1.2विधि II: निपुणता के स्टेशन (अभिभयतननि)। [43]
1.1.3विधि III: तीन प्रथम मुक्ति (तिनी विमोक्खनी)। [53]
1.1.4विधि IV: उदात्त निवासों के चार ध्यान (चत्तरी ब्रह्मविहारझनानी)।[56]
1.1.5विधि V: असुभ-झानम (असुभ-झानम)।
1.2- फुटनोट:
अध्याय II - रूप के ब्रह्मांड के संबंध में अच्छाई
रूपावकारा कुसलम
[पृष्ठ 43] ध्यान को प्रेरित करने की विधियाँ,
विधि I: आठ कृत्रिम विधियाँ (अत्थकसिनम)।
1. द अर्थ आर्टिफ़िस (पथविकसिनम)।
(क) झदना (चतुक्कनायो) की चतुर्विध प्रणाली।
[160] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्गों को प्राप्त करने के लिए[1][2] इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर[3] उस मार्ग का अनुसरण करता है, और इस प्रकार पृथ्वी-दर्शन द्वारा[4] प्रथम ध्यान (प्रथम समाधि) में प्रवेश करता है[5] और उसमें विलीन रहता है[5], जिसमें अवधारणा कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक[6] होते हैं, जो एकांत[7] से उत्पन्न होता है, और आनंद[8] और सहजता से परिपूर्ण होता है—तब संपर्क, भावना... पकड़, संतुलन, जो उसमें उत्पन्न होते हैं, या उस अवसर पर जो भी अन्य[9] निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ होती हैं—ये अवस्थाएँ अच्छी होती हैं।
[पृष्ठ 45] इंद्रिय-संबंधी ब्रह्मांड से संबंधित विचार के पहले प्रकार की तरह जारी रखें, जिसमें सारांश और "शून्यता" विभाजन शामिल हैं।[10]
[161] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, कल्पना और विचार-विमर्श के कार्य को दबाकर, उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, द्वितीय ध्यान (द्वितीय समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो स्वयं विकसित[11], एकाग्रता से उत्पन्न, आनंद और सहजता से परिपूर्ण है, उसमें, कल्पना और विचार-विमर्श के कार्य से मुक्त होकर, मन [पृष्ठ 46] शांत और निश्चित[12] हो जाता है, उच्च[13] पर निवास करता है - तब संपर्क, भावना, बोध, चिंतन, विचार, आनंद, सहजता, आत्म-संयम, विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता, ज्ञान, विचार, प्रसन्नता और जीवन शक्ति की क्षमताएं, सही दृष्टिकोण[14], सही प्रयास, . . [15] पकड़, संतुलन जो उत्पन्न होता है - ये, या जो भी अन्य निराकार, कारण से प्रेरित अवस्थाएँ उस अवसर पर होती हैं - ये अवस्थाएँ अच्छी होती हैं।

[पृष्ठ 47] [सारांश।]

[161क] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं, क्षेत्र दो हैं, तत्व दो हैं, पोषक तत्व तीन हैं, क्षमताएँ आठ हैं, ध्यान तीन गुना है[16], पथ चार गुना है[17], शक्तियाँ सात हैं, कारण तीन हैं, संपर्क को एक कारक के रूप में गिना जाता है, इत्यादि।

[धारा 58 आदि के अनुसार जारी रखें।]

[162] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?

संपर्क आनंद
सोच आत्म collectedness
संकायों के
आस्था एकाग्रता
ऊर्जा बुद्धि
सचेतन जीवर्नबल
सही विचार
सही प्रयास
आदि आदि

[धारा 62 आदि के अनुसार जारी रखें।] [18]

[पृष्ठ 48] [163] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, उस मार्ग का अभ्यास करता है, और आगे, आनंद के लिए सभी जुनून के कम होने के माध्यम से[19], स्वयं को निष्पक्ष[20] रखता है, जबकि, सचेत और आत्म-संयमित[21], वह अपनी इंद्रिय-चेतना[22] में उस सहजता का अनुभव करता है जिसकी घोषणा नोबल[23] करते हैं:

जो निष्पक्ष और सतर्क रहता है, वह निश्चिंत रहता है।

— और इस प्रकार, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है — तब संपर्क, भावना, बोध, चिंतन, विचार, सहजता, आत्म-संयम, विश्वास, ऊर्जा, सचेतनता[24], एकाग्रता, ज्ञान, विचार, सुख और जीवंतता, सही दृष्टिकोण, सही प्रयास[25] आदि की क्षमताएँ... बोध, संतुलन जो उत्पन्न होता है[26] — ये, या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ होती हैं — ये अवस्थाएँ अच्छी होती हैं।

[पृष्ठ 49] [सारांश।]

[163a] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं, क्षेत्र दो हैं, तत्व दो हैं, पोषक तत्व तीन हैं, क्षमताएँ आठ हैं, ध्यान दो गुना है[27], पथ चार गुना है[28], शक्तियाँ सात हैं, कारण तीन हैं, संपर्क को एक कारक के रूप में गिना जाता है, इत्यादि।

[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

[164] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?

संपर्क करना,
सोच,
आत्मसंयम;
संकायों के
आस्था एकाग्रता
ऊर्जा बुद्धि
सचेतन जीवर्नबल
सही विचार सही प्रयास
आदि आदि

[धारा 62 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 50] [165] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और सुख और दुख को त्यागकर, अपने द्वारा अनुभव किए जाने वाले सुख और दुख[29] को दूर करके, वह पृथ्वी-दर्शन द्वारा चौथे ध्यान (चौथी समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो अनासक्ति[30] से उत्पन्न होने वाली पूर्ण पवित्रता की अवस्था है, जहाँ न सुख का अनुभव होता है और न ही कोई दुख—तब संपर्क, अनुभूति, बोध, चिंतन, विचार, अनासक्ति, आत्म-संयम, विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता, ज्ञान, विचार, अनासक्ति[पृष्ठ 51] और जीवन शक्ति, सही दृष्टिकोण, सही प्रयास आदि...
[धारा 163 के अनुसार जारी रखें।]
[सारांश।]
[165a] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं, क्षेत्र दो हैं, तत्व दो हैं, पोषक तत्व तीन हैं, क्षमताएँ आठ हैं, ध्यान दो गुना है[31], पथ चार गुना है, शक्तियाँ सात हैं, कारण तीन हैं, संपर्क को एक कारक के रूप में गिना जाता है, इत्यादि।
[धारा 58 आदि के अनुसार जारी रखें।]

[166] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
धारा 164.[32] के अनुसार उत्तर दें।
[यहाँ समाप्त होता है] ध्यान की चतुर्विध प्रणाली।

[पृष्ठ 52] (ख) ध्यान की पंचविध प्रणाली (पंचकनायो)।[33]
[167] प्रथम झान.

प्रश्न और उत्तर जैसा कि चौगुने पाठ्यक्रम में है, धारा 160।
[168] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और पृथ्वी को निहारते हुए द्वितीय ध्यान (द्वितीय समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें कल्पना का कोई कार्य नहीं होता, बल्कि केवल विवेचनात्मक विचार होते हैं—जो एकाग्रता से उत्पन्न होते हैं, और आनंद और सहजता से परिपूर्ण होते हैं—तब संपर्क, अनुभूति, बोध, चिंतन, विचार, विवेचनात्मक पूछताछ, आनंद, सहजता, आत्म-संयम आदि का अनुभव होता है।
[धारा 161 में द्वितीय ध्यान के लिए दिए गए निर्देशों का पालन करें।]
[सारांश।]
[168क] अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं, क्षेत्र दो हैं, तत्व दो हैं, पोषक तत्व तीन हैं, क्षमताएँ आठ हैं, [पृष्ठ 53] ध्यान चार गुना है, पथ चार गुना है, इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

[169] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
संपर्क, चिंतन, विवेचनात्मक विचार, आनंद, आदि...
[धारा 162 के अनुसार जारी रखें।]

[170-175] तीसरा, चौथा और पाँचवाँ ध्यान।

[ये चतुर्विध प्रणाली के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यानों के समान सूत्रबद्ध हैं, प्रश्न और उत्तर अनुच्छेद 161-166 में दिए गए हैं।]
[यहाँ समाप्त होता है] ध्यान की पंचविध प्रणाली।

(सी) प्रगति के चार तरीके (कटासो पति-पाद)।[34]

[पृष्ठ 54] [176] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार पृथ्वी-दर्शन द्वारा प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... प्रगति कष्टदायक और अंतर्ज्ञान सुस्त होने पर— तब संपर्क[35]... जो संतुलन उत्पन्न होता है— ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[177] [36] . . . [या] जब ... वह ... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें रहता है ... प्रगति कष्टदायक होती है, लेकिन अंतर्ज्ञान तीव्र होता है ...

[178]

... [या] जब ... वह ... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है ... प्रगति सुगम होती है, लेकिन अंतर्ज्ञान सुस्त होता है ...

[179] . . . [या] जब ... वह ... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है ... प्रगति आसान और अंतर्ज्ञान तीव्र होने पर - तब संपर्क, आदि ... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये ... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[पृष्ठ 55] [180] ये चार संयोजन चतुर्विध प्रणाली में दूसरे से चौथे ध्यान के मामले में और पंचविध प्रणाली में दूसरे से पाँचवें ध्यान के मामले में दोहराए जाते हैं।

प्रगति के चार तरीके यहीं समाप्त होते हैं।

(घ) विचार के चार विषय (कत्तरी अरम-मन अनी)।[37]

[181] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, प्रथम ध्यान (प्रथम समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें अवधारणा कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक होता है, जो एकांत से उत्पन्न होता है, और आनंद और सहजता से भरा होता है, लेकिन जो सीमित होता है, और विचार का एक सीमित उद्देश्य होता है - तब संपर्क[38] . . . जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये . . . अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[182] . . . [या] जब . . . प्रथम ध्यान[39] ... सीमित है, लेकिन विचार का एक उद्देश्य है जो अनंत विस्तार में सक्षम है . . .

[183] . . . [या] जब . . . प्रथम ध्यान ... अनंत विस्तार में सक्षम है, लेकिन विचार का एक सीमित उद्देश्य है . . .

[184] . . . [या] जब . . . प्रथम ध्यान ... अनंत विस्तार में सक्षम है, और विचार की एक वस्तु अनंत विस्तार में सक्षम है - तब संपर्क, आदि . . . जो संतुलन उत्पन्न होता है, ये . . . अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[पृष्ठ 56] [185] ये चार संयोजन चतुर्गुण प्रणाली पर दूसरे से चौथे झाना के मामले में और पंचगुण प्रणाली पर पहले से पाँचवें[40] झाना के मामले में दोहराए जाते हैं।

[यहाँ विचार के चार विषय समाप्त होते हैं]।

(ई) (= सी और डी) सोलह गुना संयोजन (सोलासक्खट्टुकम)।

[186] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, उस मार्ग का अनुसरण करता है, और इस प्रकार पृथ्वी को निहारते हुए प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है...

जहां प्रगति कष्टदायी होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, <

<< जो सीमित है, और जिसके विचार का दायरा भी सीमित है...

[187] . . . [या] जो सीमित है, लेकिन विचार का एक ऐसा विषय है जो अनंत विस्तार में सक्षम है . . . [188] . . . [या] जो अनंत विस्तार में सक्षम है, लेकिन विचार का एक सीमित विषय है ... [189] . . . [या] जो अनंत विस्तार में सक्षम है, और विचार का एक ऐसा विषय है जो अनंत विस्तार में सक्षम है

[190] . . . [या] जहाँ प्रगति कष्टदायक है, लेकिन अंतर्ज्ञान तेज़ है। <
<< जो सीमित है, और जिसके विचार का दायरा भी सीमित है...
[191] . . . [या] . . . इत्यादि। [धारा 191-193 के लिए धारा 187-189 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 57]
[194] . . . [या] जहाँ प्रगति आसान है, लेकिन अंतर्ज्ञान सुस्त है, <
<< जो सीमित है[41], और विचार का एक सीमित उद्देश्य है...
[195] . . . [या] . . . इत्यादि। [धारा 195-197 के लिए ऊपर दिए गए अनुसार जारी रखें।]

[198] . . . [या] जहाँ प्रगति आसान हो और अंतर्ज्ञान तीव्र हो, <
<< जो सीमित है, और जिसके विचार का दायरा भी सीमित है...
[199] [धारा 199-201 के लिए ऊपर दिए गए अनुसार जारी रखें।]

[202]
[ये सोलह संयोजन चतुर्विधिक प्रणाली में दूसरे से चौथे ध्यान के मामले में और पंचविधिक प्रणाली में पहले से पांचवें ध्यान के मामले में दोहराए जाते हैं।]
[यहाँ समाप्त होता है] सोलह गुना संयोजन।

2. शेष सात कलाकृतियाँ जिन्हें सोलह गुना संयोजन में भी विकसित किया जा सकता है (अत्थकसिनम सोलसक्खट्टुकम)।[42]
[पृष्ठ 58] [203] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, इंद्रिय सुखों और बुरे विचारों से विरक्त होकर, जल, अग्नि, वायु, नीले-काले, पीले, लाल, सफेद रंगों की युक्ति से प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, तब जो संपर्क आदि उत्पन्न होते हैं—ये सभी अवस्थाएँ शुभ होती हैं।
प्रेरण के लिए शेष सात युक्तियों के मामले में सोलह गुना संयोजन यहीं समाप्त होता है।
विधि II: निपुणता के स्टेशन (अभिभयतननि)। [43]
1. "सीमित के रूप में प्रपत्र" (रुपाणी परित्तानी)।
(क और ख) चौगुनी और पंचगुनी ध्यान।
[204] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए [पृष्ठ 59] उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अपने शारीरिक स्व के किसी भी भाग से बेखबर[44] होकर, बाह्य वस्तुओं को सीमित मानते हुए, "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ!"[45] के विचार से उन पर वशीकरण प्राप्त करता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान आदि में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब जो संपर्क आदि उत्पन्न होता है - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।
[205] [चार प्रकार की ध्यान पद्धति में दूसरे से चौथे ध्यान के मामले में और पंच प्रकार की ध्यान पद्धति में दूसरे से पाँचवें ध्यान के मामले में दोहराएँ।]
(ग) प्रगति के चार तरीके।
[206-210] प्रगति के चार संयोजनों को दर्दनाक या आसान के रूप में, और अंतर्ज्ञान को सुस्त या तेज के रूप में, जैसा कि §§ 176-180 में बताया गया है, "पृथ्वी-दर्शन" के स्थान पर महारत सूत्र को प्रतिस्थापित करें।

[पृष्ठ 60] (घ) विचार के दो विषय।

[211-213] दोहराएँ, "पृथ्वी-दर्शन" के स्थान पर मास्टरी-सूत्र f § 181 को प्रतिस्थापित करते हुए, जहाँ ध्यान "सीमित है, और विचार का एक सीमित उद्देश्य है", और § 183, जहाँ ध्यान "अनंत विस्तार में सक्षम है, लेकिन विचार का एक सीमित उद्देश्य है" ।[46]

(ई = सी और डी) अष्टांग संयोजन (अत्थाखट्टकम्) ।[47]

[214-221] सोलह गुना संयोजन के §§ 186, 188, 190, 192, 194, 196, 198, और 200 को उसी प्रतिस्थापन के साथ दोहराएँ।

[222] शेष प्रत्येक झान के मामले में इन आठ संयोजनों को दोहराएँ।

2. "रूप सीमित और सुंदर या बदसूरत के रूप में" (रुपानी परित्तनी सुवन्न अद उब्बन्नानी).[48]

[पृष्ठ 61] [(क) और (ख)]

[223] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अपने शरीर के किसी भी भाग से बेखबर होकर, बाह्य वस्तुओं को सीमित और सुंदर या कुरूप मानकर, "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ!" के विचार से उन पर वशीकरण प्राप्त कर लेता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान आदि में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब जो संपर्क आदि उत्पन्न होते हैं—ये... वे अवस्थाएँ शुभ होती हैं।

[224] शेष प्रत्येक ध्यान के मामले में इसे दोहराएँ,
आठ गुना संयोजन में विकसित करें।

3. "अनंत के रूप में रूप" (रुपाणी अप्पमननि).[49]

(क) और (ख)

[225] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अपने देहधारी अस्तित्व के किसी भी भाग से अनभिज्ञ होकर, बाह्य वस्तुओं को अनंत मानते हुए, "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ!" के विचारों से उन पर आधिपत्य प्राप्त कर लेता है, और इस प्रकार, इंद्रियजन्य इच्छाओं आदि से विरक्त हो जाता है।

[धारा 204 के अनुसार जारी रखें।]

[226] शेष प्रत्येक झान के मामले में दोहराएँ।

(ग) प्रगति के चार तरीके।

[227-231] धारा 206-210 को दोहराएँ, "सीमित" के स्थान पर "अनंत" प्रतिस्थापित करें।

[पृष्ठ 62] (घ) विचार के दो विषय।

[232-234] (सी) में समान प्रतिस्थापन के साथ, धारा 211-213 दोहराएँ।

(e = c और d) अष्टांग संयोजन।

[235-242] धारा 187, 189, और इसी प्रकार धारा 201 तक (सी) और (डी) में दिए गए प्रतिस्थापन के अनुसार विकसित करें।

[243] शेष प्रत्येक Jhdna के मामले में इन आठ संयोजनों को दोहराएँ।

4. "रूप उतने ही अनंत और उतने ही सुंदर या कुरूप" (रुपाणी अप्पमननि सुवन्ना दुब्बन्नानि)।
(क) और (ख)
[244] धारा 223 को दोहराएँ, 'सीमित' के स्थान पर 'अनंत' प्रतिस्थापित करें। [245] शेष प्रत्येक झाना के मामले में दोहराएँ।
आठ गुना संयोजन में विकसित करें।

5. "नीले-काले रंग के रूप में रूप", आदि (रूपानी निलानी)।[50]
[पृष्ठ 63] (क)
[246] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, उस मार्ग का विकास करता है, और अपने शारीरिक स्व के किसी भी भाग से अनभिज्ञ होकर, नीले-काले रंग की, दृश्य विस्तार में नीले-काले[51], चमक में नीले-काले बाहरी वस्तुओं को देखकर, "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ!" के विचार से उन पर अधिकार प्राप्त करता है, और इस प्रकार, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं आदि से दूर रहता है।
[धारा 204 के अनुसार जारी रखें।]

6-8. "पीले रंग के रूप में", आदि (रुपाणी पिटानी)।
[247] धारा 246 को दोहराएँ, "नीला-काला, रंग में नीला-काला", आदि के स्थान पर क्रमशः "पीला", "लाल" और "सफेद" [52] प्रतिस्थापित करें।
सोलह गुना संयोजन में निपुणता के इन स्तरों को विकसित करें।

विधि III: तीन प्रथम मुक्ति (तिनी विमोक्खनी)। [53]
1.
[248] जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अपने शारीरिक रूप [पृष्ठ 64] के प्रति सचेत होकर, शारीरिक रूपों को देखता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान आदि में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब जो संपर्क आदि उत्पन्न होता है, ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

2.
[249] जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अपने देह-स्वभाव से अनभिज्ञ होकर बाह्य देह रूपों को देखता है, और इस प्रकार, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं आदि से विरक्त रहता है।
[पिछले भाग की तरह जारी रखें।]

3.
[250] जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, उस मार्ग का विकास करता है, और "यह कितना सुंदर है!" [55] इस विचार के साथ, इंद्रिय सुख आदि से विरक्त रहता है।
[पृष्ठ 65] [पहले उद्धार की तरह जारी रखें।]
इन तीनों मुक्ति को सोलह गुना संयोजन में भी विकसित किया जा सकता है।

विधि IV: उदात्त निवासों के चार ध्यान (चत्तरी ब्रह्मविहारझनानी)।[56]
1. प्रेम (मेट्टा)।

(क) चौगुना ध्यान।

[251] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए [पृष्ठ 66] उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान (प्रथम समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें अवधारणा [पृष्ठ 67] कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक होता है, जो एकांत से उत्पन्न होता है, आनंद और सहजता से परिपूर्ण होता है, और प्रेम से युक्त होता है - तब संपर्क, आदि... [? धारा 1 के अनुसार जारी रखें]... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[252] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह स्वरूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, कल्पना और विवेचनात्मक विचारों को दबाकर उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार पृथ्वी-दर्शन के द्वारा द्वितीय ध्यान (द्वितीय समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो स्वयं विकसित, एकाग्रता से उत्पन्न, आनंद और सहजता से परिपूर्ण होता है; उसमें मुक्त होकर... मन शांत और स्थिर हो जाता है, उच्चतर अवस्था में लीन हो जाता है - और जो प्रेम से परिपूर्ण होता है - तब संपर्क आदि होता है।

[ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार जारी रखें,]

[253] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और आगे, आनंद के लिए सभी वासनाओं के कम होने के माध्यम से, स्वयं को निष्पक्ष रखता है, तब सचेत और आत्म-संयमित रहते हुए, वह अपनी इंद्रिय-चेतना में उस सहजता का अनुभव करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: "जो निष्पक्ष और सतर्क है वह सहजता से रहता है" - और इस प्रकार, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें रहता है, जो प्रेम से युक्त है[57] - तब, इत्यादि।

[ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार जारी रखें।]

(ख) पंच प्रकार का ध्यान।

[254-257] धारा 167, 168, 170, 172 में प्रश्न और उत्तर दोहराएँ, प्रत्येक उत्तर में, पूर्ववर्ती खंड की तरह, "और जो प्रेम के साथ है" जोड़ें।[58]

2. दया (करुणा)।

[258, 259] पिछले अनुभागों (क) और (ख) में प्रश्न और उत्तर दोहराएँ, लेकिन प्रत्येक मामले में प्रेम पर खंड के स्थान पर "और जो दया के साथ है" प्रतिस्थापित करें।

3. सहानुभूति (मुदिता)।

[260, 261] पिछले दो खंडों में प्रश्न और उत्तर दोहराएँ, लेकिन प्रत्येक मामले में दया पर खंड के स्थान पर "और जो सहानुभूति के साथ है" प्रतिस्थापित करें।

4. वैराग्य (उपेक्खा)।

[262] जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और सुख और दुख को त्यागकर, अपने द्वारा अनुभव किए जाने वाले सुख और दुख को दूर करके, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, उस परम पवित्र ध्यान की चौथी अवस्था (चौथी समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो अनासक्ति से उत्पन्न होती है, जहाँ न सुख का अनुभव होता है और न ही कोई दुख, और जो अनासक्ति के साथ होती है—तब संपर्क, आदि।

[धारा 165 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 69] परम निवासों के चार ध्यान सोलह संयोजनों में विकसित किए जा सकते हैं।

विधि V: असुभ-झानम (असुभ-झानम)।
[263] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें, आदि...
और जिसके साथ एक फूले हुए शव का विचार जुड़ा होता है[59] . . . [या] [264] एक बदरंग शव का ... [या] एक सड़ते हुए शव का ... [या] फटी त्वचा वाले शव का ... [या] कुतरे और क्षत-विक्षत शव का ... [या] टुकड़ों में कटे हुए शव का ... [या] विकृत और टुकड़ों में कटे हुए शव का ... [या] एक खूनी शव का ... [या] कीड़ों से ग्रस्त शव का ... [या] एक कंकाल का ...
फिर संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है — ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अच्छी हैं।[60]
[पृष्ठ 70] गंदी चीजों का ध्यान सोलह संयोजनों में विकसित किया जा सकता है।
[रूप के ब्रह्मांड के संबंध में अच्छाई पर यह अध्याय यहीं समाप्त होता है।]
- फुटनोट:
1. प्रस्तावना देखें।
2. चेतना की इन अवस्थाओं का विषय।
3. विविच्च एव कामेही, विविच्च अकुसलेही धम्मेही। शाब्दिक अर्थ है, "स्वयं को अलग करके, विद्यमान होकर, विमुख होकर" (अस्लिम 164)। अर्थात्—फिर से साइ. (वही) के अनुसार—इंद्रिय-इच्छाओं के विषयों से और स्वयं इच्छाओं से, क्रमशः (वत्थुकमा, किलेसकामा। चाइल्डर्स डिक्शनरी, एसवी कामो)। पहला वाक्यांश (विविच्च एव कामेही) इंद्रिय-प्रस्तुति के संपूर्ण मनोवैज्ञानिक क्षेत्र (कायो, या भावना, बोध और संस्कारों के तीन स्कंध) को समाहित करता है; दूसरा, धम्मेही, केवल विचार (चित्तम) के क्षेत्र को संदर्भित करता है।
यह ग्रंथ इस विचार का खंडन करता है कि दो वाक्यांशों में से केवल पहले में आने वाला ज़ोरदार शब्द 'एव' दूसरे को कम महत्वपूर्ण बनाता है, और इसके समर्थन में चूला-सिहानदा प्रवचन (एम. i. 63) के आरंभिक शब्दों का हवाला देता है।
4. पथविकासम्। कर्मस्थान विधियों में से पहली विधि, या बाह्य जगत के अस्थायी समाधि विस्मृति को प्राप्त करने के लिए अर्ध-सम्मोहनकारी युक्ति। सांचे के वृत्त की अनुभूति स्पष्ट छवि (निमित्तम्) उत्पन्न करती है, और उसके बाद ध्यान उत्पन्न होता है।
5. अर्थात्, यह मनोदशा को अनिश्चित काल तक बनाए रखता है। यह ग्रंथ विभंग का हवाला देते हुए कहता है कि विभंग ने इस शब्द की व्याख्या उन्हीं अभिव्यक्तियों, "चलते रहना", आदि से की है, जिनका प्रयोग ऊपर (§ 19) "जीवन शक्ति" का वर्णन करने के लिए किया गया है।
6. सवितक्कम् सविचरम्। ध्यान की नकारात्मक आवश्यक स्थितियों को छोड़कर, हम सकारात्मक विशेषताओं की ओर बढ़ते हैं (असल. 166)। ध्यान इन दोनों के माध्यम से विशेष रूप से प्रगति करता है, जैसे एक पेड़ अपने फूलों और फलों से प्रगति करता है। विभंग के अनुसार, वे व्यक्तिगत विद्यार्थी के दृढ़ संकल्पों (पुग्गलधित्थाना) को प्रकट करते हैं। (वही)
7. साइ. के अनुसार, एकांत शारीरिक से अधिक नैतिक है, और इसका अर्थ है "एकांत में जन्म" जिसे विद्यार्थी अपने हृदय से पाँच बाधाओं को दूर करके बनाता है (वही, नीचे, § 1152)। जैसा कि पेटक (? पेटकोपदेश) में कहा गया है, एकाग्रता कामुक इच्छा का विरोध करती है; आनंद द्वेष का विरोध करता है; गर्भाधान, या बुद्धि का उद्भव, जड़ता और सुस्ती का विरोध करता है; सहजता उत्तेजना और चिंता का विरोध करती है; विवेचनात्मक विचार उलझन या संदेह का विरोध करता है (असल. 165)। देखें I), i. 73, जहाँ बाधाओं का स्पष्ट रूप से ध्यान के संबंध में उल्लेख किया गया है; इसके अलावा, रीस डेविड्स की "बुद्ध के संवाद", I., पृष्ठ 84 में दिए गए नोट्स भी देखें।
8.अर्थात, पाँचवीं प्रजाति का आनंद, फराना-पीति (असल. 166), § 9; ऊपर उल्लिखित अंश, डी. i. 73 की तुलना भी करें। ऊपर देखें, इसलिए इमाम एव कायम . . . अभिसंदेति . . . परिप-फरति।
9.अर्थात, पाँचवीं प्रजाति का आनंद, फराना-पीति (असल. 166), § 9; ऊपर उल्लिखित अंश, डी. i. 73 की तुलना भी करें। ऊपर देखें, इसलिए इमाम एव कायम . . . अभिसंदेति . . . परिप-फरति।
10. इन्हें ऊपर बताए गए नौ में से पहले चार - इच्छा, आदि - कहा गया है, पृष्ठ 5, नोट 1 (असल. 168)।
11. अतः साइ. (वही)। अतः पाठ में पाठक को (147) के बजाय (1) का संदर्भ दिया जाना चाहिए था। के. लोप को केवल एक ... पे ... द्वारा इंगित करता है, जो मेरे अनुवाद में "या जो भी..." से पहले अल्पविराम के अनुरूप है, जिसके बाद "इमे धम्म कुसला" आता है।

हालाँकि, मेरा झुकाव इस ओर है कि विभिन्न धम्मों की प्रकृति के बारे में विस्तृत उपदेश, जैसा कि §§ 2-57 में मिलता है, को यहाँ या शेष ध्यानों में छोड़े गए अंश में शामिल नहीं समझा जाना चाहिए। के. शेष तीन ध्यानों में संबंधित बिंदु पर ऊपर उद्धृत . . . पे . . . को दोहराता नहीं है, जहाँ सारांश छोड़ा नहीं गया है, बल्कि दिया गया है। न ही यह . . . पे . . . देता है जो पाठ में §§ 163, 165 में तस्मीम खो पाना समाये से पहले है। इसी प्रकार यह "पंच-गुना ध्यान" के सूत्रों में संबंधित बिंदुओं पर पाठ में दिए गए . . . पे . . . को छोड़ देता है, § 168 इत्यादि।

12.अज्जत्तम, अर्थात्, साइ के अनुसार। (169), अत्तनो जतम्, अत्तसन्तने निब्बत्तर्न; विभंग के अनुसार, पच्चत्तम्। मुझे यह पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है कि केवल इस ध्यान में इस शब्द का विशेष महत्व क्या है, सिवाय इसके कि अब "पृथ्वी-दर्शन" जारी नहीं रहता - व्यक्ति चेतना के बाह्य निर्धारकों से अधिक विमुख हो जाता है, विशुद्ध रूप से व्यक्तिपरक परिस्थितियों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

13. संपसादनम्, शांत करने वाला, च्य. (वही) में सद्धा, आश्वासन या विश्वास (ऊपर, § 12) द्वारा व्याख्यायित। यह ध्यान के लिए ही एक शब्द है, जो संपूर्ण चिंतनशील अनुशासन के साथ मिश्रित है, जैसे बैंगनी रंग में भीगा हुआ कपड़ा "बैंगनी" होता है - टीकाकार की उपमा को हमारी मुहावरे में ढालने के लिए। अगला शब्द चेतसो, 'मन का', या तो इस शब्द के साथ, या इसके बाद वाले शब्द, एकोदिभवम् (वही) के साथ लिया जा सकता है।

14. पाठ में एकोदिभवम् पढ़ें। इस अभिव्यक्ति पर बुद्धघोष की टिप्पणियों में चाइल्डर्स में दिए गए थेरा सुभूति के उद्धरण का मूल अंश है। उनका सार यह है कि चेत (बुद्धि, मन, हृदय), वितक्को और विकरों से अभिभूत या बोझिल न होकर, अपनी ध्यानमग्न एकाग्रता, या समाधि में धीरे-धीरे सर्वोपरि (एको = सेत्थो या असहयो) हो जाता है, यह शब्द एकोदिभवम् (समाधि का एतम् अधिवचनम्) का पर्यायवाची है। प्रथम ध्यान की विवेचनात्मक बौद्धिकता, जो चेत को विचलित करती है, जैसे लहरें पानी को मर्मस्पर्श करती हैं, द्वितीय ध्यान में शांत हो जाती है। और यह उत्थान (टीकाकार जोर देते हैं) चेत का है, न कि किसी व्यक्ति विशेष का, न ही किसी सजीव आत्मा का (न सत्तस्स न जीवस्स)। मॉरिस की टिप्पणी देखें, जेपीटीएस, 1885, पृष्ठ। 32.

15. सम्मासंकप्पो यहाँ, अपने सामान्य स्थान क्रम के अनुसार, छोड़ दिया गया है। इसमें विटाक्को शामिल है; देखें § 7. 16. पाठ में § 157 का संदर्भ सही नहीं हो सकता। विषय ने अभी तक सुखदायक भावना को त्याग नहीं दिया है, और अनासक्ति की शांति प्राप्त नहीं की है; न ही उसकी मनःस्थिति ज्ञान से असंबद्ध है। विचार का प्रकार, इसके शेष घटकों के संबंध में, अभी भी पहला है, अर्थात् § 1 का।

17. (तुलना करें § 83. "अवधारणा" और "विवेचनात्मक विचार" अब हटा दिए गए हैं।

18. (तुलना करें § 89. "आठ इरादा", जिसमें "अवधारणा" शामिल है, अब हटा दिया गया है।मन अब इस जीवन से संबंधित प्रत्यक्ष गतिविधियों में व्यस्त नहीं है। पृष्ठ 46, नोट 3 देखें।

19. इसमें संभवतः "शून्यता" खंड भी शामिल है, जैसा कि प्रथम ध्यान के मामले में है।

20. पितिया च विराग, "जिसका अर्थ है आनंद के प्रति अरुचि या उसका अतिक्रमण"। च पूर्ववर्ती से वर्तमान ध्यान तक प्रगतिशील निरंतरता को इंगित करता है (असल. 171)।

21. उपेक्खको, या निःसंकोच। वह उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखता है जो पहुँच चुका है, साइ. (172) कहता है। जैसा कि हम कह सकते हैं:

"ई टेरा मैग्नम अल्टेरियस स्पेक्टारे लेबोरेम।"

बुद्धघोष यहाँ हार्डी, "मैन. बुद्धिज्म", 505 में सूचीबद्ध दस प्रकार के उपेक्खक पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

22. संपजानो। अपनी प्रक्रिया के प्रति बुद्धिमानी से जागरूक।

23. कायो, प्रस्तावना देखें; ऊपर, पृष्ठ 43, नोट 3।

24. नीचे देखें, § 1003, नोट। 6.

25. पाठ में छोड़ा गया है, लेकिन क. में नहीं। संदर्भ के अनुसार इसे शामिल करना आवश्यक है।

26. धारा 157, जिसका उल्लेख पाठ में पाठक के लिए किया गया है, स्पष्ट रूप से गलत है। धारा 1 अधिक सटीक होगी।

27. "सुविधा" और "आत्म-संयम" शेष हैं।

28. तुलना करें धारा 161 n. 2.

29. क. के अनुसार, "सुविधा" और "दुःख" कायिकम् हैं, या भावना आदि के तीन स्कंधों से संबंधित हैं - इंद्रिय-चेतना से संबंधित। "सुख" और "दुःख" (सोमन-अस्सर्न, डोमनसम्) बुद्धि या वैचारिक चेतना से संबंधित हैं। "सुख" इनमें से अंतिम है जिसे पार किया जाना है; अन्य को ध्यान की पिछली अवस्थाओं के दौरान निष्कासित कर दिया गया है (अस. 175, 176)।

लेकिन यहाँ इन चारों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है, मानो ये सभी केवल इस चौथे ध्यान में ही पार हो चुके हों, ताकि संपूर्ण उन्मूलन की विधि द्वारा उस तीसरी प्रकार की भावना की सूक्ष्म और मायावी प्रकृति को अधिक स्पष्ट रूप से दर्शाया जा सके जिसे "तटस्थ" (अदुक्खम-असुख) या "निस्वार्थ" (उपेक्खा) कहा जाता है - सुखवादी मात्रा का शून्य बिंदु या रेखा, जैसा कि हम कह सकते हैं। इसके बाद, साइ. झुंड के शेष पशुओं को हटाकर मवेशियों के मुखियाओं के चयन की उपमा देता है, जिसका उल्लेख हार्डी ने किया है {ibid., 177; ईस्ट मोनाकिज़्म, 270)।

30.उपेक्खा-सतिपरिशुद्धिम। विभंग के अनुसार, शुद्ध की गई चेतना, चेतना में मौजूद अन्य सभी तत्वों का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्हें समभाव के शांत माध्यम से स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है। इसके बाद दिन और रात के चंद्रमा की उपमा दी जाती है, जो हार्डी (उपरोक्त, 271) में भी दी गई है। उपेक्षा, ध्यान की अन्य अवस्थाओं में चेतना में अव्यक्त रहती है, लेकिन बौद्धिक और भावनात्मक अभ्यास की चमक से रंगहीन हो जाती है, जैसे दिन के समय अर्धचंद्र, आकाश में मौजूद होने के बावजूद, सूर्य की चमक से मंद हो जाता है (असल. 178)।

31.अर्थात्, "निराकारता" और "आत्म-संयम" (असल. 179)। अन्यथा, एकांगिकम ध्यानम की खोज की जाती।

32. मुद्रित पाठ में सतिंद्रियम शब्द नहीं है, यद्यपि संदर्भ के अनुसार इसकी स्पष्ट आवश्यकता है। के. इसे देते हैं।

33. पिटकों में आमतौर पर ध्यान का उल्लेख चार गुना क्रम में किया गया है। पंचगुण विभाजन वितको और विकारो के एक साथ नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से उन्मूलन द्वारा प्राप्त किया जाता है। साइ के अनुसार, बुद्ध के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, शिक्षक के लिए यह वैकल्पिक था कि वह अपने विवेक से, अपने शिष्यों की विशेष मानसिक स्थिति के अनुकूल ढलते हुए, या अपने प्रवचन के प्रभावी प्रवाह को ध्यान में रखते हुए, समाधि का उपयोग करे। पिटकों से एक अंश उद्धृत किया गया है—संभवतः एस. 4. 363 या ए. 1. 299, एन. 2 {तुलना करें के वी. 413; मिल. 337)—जहाँ समाधि को इस प्रकार विभेदित किया गया है।

विटाको और विकारो होने के कारण,
केवल बाद वाला होने पर,
दोनों में से कोई भी न होना।

34. यह देखा गया है कि ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करने से पहले, विद्यार्थी को विशिष्ट तरीकों से स्वयं को शुद्ध और अनुशासित करना पड़ता था— सांसारिक मामलों पर ध्यान न देना, तार्किक चिंतन को त्यागना, इत्यादि। आत्म-संयम और गहन चिंतन के प्रत्येक कार्य के बाद ध्यान की विशेष अवस्था उत्पन्न होती थी। इन प्रक्रियाओं में एक पूर्व और एक पश्चात अवस्था होती थी, जिसे कम से कम बाद के ग्रंथों में क्रमशः उपचारा और अप्पना कहा जाता है। इन दोनों को जोड़ने वाला प्रभावी संज्ञान पैना का अभ्यास था, जिसे ग्रंथ में अभिफिना ("अंतर्ज्ञान") के रूप में जाना जाता है, संभवतः वांछित अप्पना या अवधारणा को प्राप्त करने के लिए मन की सहज या अवचेतन खोज। अब, प्रारंभिक चिंतन आसान था या कठिन, और रचनात्मक सामान्यीकरण का प्रयास सुस्त था या जोरदार, यह क्रमशः विद्यार्थी के नैतिक स्वभाव और मानसिक क्षमता पर निर्भर करता था (असल. 182-184)।

ए. ii. 149-152 में दिए गए दोहरे स्पष्टीकरण को देखें, जहाँ दोनों व्याख्याओं में अंतर्ज्ञान की शीघ्रता या सुस्ती विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और बुद्धि की पाँच शक्तियों की तीक्ष्णता या शिथिलता पर निर्भर करती है। पहले स्पष्टीकरण में, आत्म-अवशोषण में सहजता या कठिनाई इस बात पर निर्भर करती है कि विद्यार्थी स्वभाव से भावुक, द्वेषपूर्ण, सुस्त है या इन तीनों का विपरीत है। दूसरे विवरण में, यदि विद्यार्थी ने अपनी चेतना को बुरी चीजों (नीचे देखें, § 263), संसार से घृणा, अनित्यता और मृत्यु की अनुशासनात्मक अवधारणाओं से भर दिया है, तो प्रगति कष्टदायक होती है; यदि वह केवल चार ध्यान का अभ्यास करता है, तो प्रगति आसान होती है।

अभिन्न के विभिन्न अर्थों पर (जो इस कृति में किसी अन्य संदर्भ में नहीं मिलते), "बुद्ध के संवाद", खंड 62 देखें। उपचारा और अप्पना पर, "योगवाचार की नियमावली", पृष्ठ 11 देखें। विशुद्धि मार्ग और विभंग के संपादन के समय हमें संभवतः पूरी प्रक्रिया के बारे में अधिक जानकारी मिलेगी।

35. तुलना करें § 1.

36. प्रत्येक खंड में एक ही प्रश्न को दोहराया हुआ समझा जाना चाहिए।

37. कहने का तात्पर्य यह है कि वे बोध या अवधारणाएँ जिन पर विद्यार्थी ध्यान केंद्रित करता है, यहाँ उन्हें गहन चिंतन की दुर्बल या उदात्त अवस्था उत्पन्न करने की क्षमता रखने वाले के रूप में वर्गीकृत किया गया है। बुद्धघोष पूर्व प्रकार की वस्तु को मात्र टोकरी या थाली के समान उथली बताते हैं (असल. 184)। नीचे भी देखें, §§ 1019-1024।

38. धारा 1 देखें।

39. निम्नलिखित संक्षिप्त अंशों में पाठ में प्रश्न और उत्तर क्रमशः धारा 181 में दिए गए उदाहरण के अनुरूप हैं और उसी प्रकार प्रारंभ होते हैं।
40. पाठ में, धारा 185 में, 'पथमम झिलनाम' के बाद '...पे...पंचम अम झानम' पढ़ें। ऐसा ही K. धारा 180 देखें। फिर, 'अविक्खेपो होती' के बाद '...पे...' जोड़ें।
41. पाठ में 'परित्तरम-मनम' से पहले 'परित्तम' जोड़ें।
42. ध्यान की उत्पत्ति के लिए पहला उपाय पृथ्वी-दर्शन था (ऊपर देखें)। सुत्त पिटक में - अर्थात, महा सकुलुदायि-सुत्त (एम. द्वितीय, पृष्ठ 14) में, और झाना यग्गा (ए. आई. 41) में - दस कसिनों की गणना की गई है, जो धम्मसंगनी में छोड़े गए हैं वे बुद्धि (वी इन एन ए) और अंतरिक्ष (आकासा) के कसिन हैं।
इस चूक और दो चूके हुए कसिनों की प्रकृति पर बुद्धघोष (असल. 186) ने टिप्पणी की है। वे पहले कसिन की चूक का कारण यह बताते हैं कि यह §§ 265-268 में दिए गए चार अरुप्पझनानि में से दूसरे के समान है, और दूसरे कसिन की चूक का कारण इसकी अस्पष्टता बताते हैं।
या तो यह "पीले" कसीना (सूर्यप्रकाशित स्थान) के समान है, या यह प्रथम अरुप्पझना (§ 265) के समान है। सीलोन परंपरा में भी दस कसीना हैं, लेकिन विन्नाना के स्थान पर आलोक (प्रकाश) को स्वीकार करती है। और इसमें भूत-कसीना के रूप में एक और अर्ध-कसीना शामिल है, या चारों तत्वों को सामूहिक रूप से लिया गया है, प्रत्येक पर अलग-अलग चर्चा के बाद। "योगवाचारा मैनुअल, 1896", पृष्ठ 48-52 देखें।
43. महा-परिनिब्बान-सूत्र (पृष्ठ 28, 29; एसबीई 11:49, 50 और ए. 4:305 देखें) में आठ "स्थल" या "निपुणता की स्थिति" दी गई हैं, लेकिन पहले चार के सूत्र हमारे पाठ से थोड़े भिन्न हैं। सीलोन इस विसंगति की ओर ध्यान आकर्षित करता है (असल. 189)। सुत्तंत में, चारों अवस्थाओं में देखी गई वस्तुओं के सौंदर्य संबंधी पहलू को ध्यान में रखा जाता है, जिनमें से दो में विशिष्ट अंतर यह है कि व्यक्ति अपने स्वयं के शारीरिक ढांचे के किसी भाग पर सचेत रूप से ध्यान केंद्रित करता है, जिसे ओरिपस्कन्ध कहा जाता है।
धम्मसंगनी में इस चेतना को सभी अवस्थाओं से बाहर रखा गया है। इसके समावेशन और अपवर्जन के माध्यम से शिक्षा देना "गुरु के प्रवचन में मात्र एक भावभंग" (देसन-विलास-मत्तम एव) कहलाता है। निम्नलिखित टिप्पणी देखें।
44.अज्जत्तम अरूपसनि (= ना रूपसनि)। यह अनुवाद बुद्धघोष की टिप्पणियों (असल. 188, 189, 191) के अनुसार है। शिष्य ने, या तो प्रयास करके असफल होने के कारण, या प्रयास न करने की इच्छा के कारण, अपने बालों या अन्य किसी भी चीज़ पर ध्यान केंद्रित करके ध्यान नहीं लगाया है। महा एहुलोवदा-सूत्र (एम. i. 62) देखें, जहाँ व्यक्ति के रूप-स्कंध को चार तत्वों, अज्जत्तिका पथविध-हतु, आदि के संदर्भ में पूरी तरह से समझाया गया है, जिसकी शुरुआत 'बाल' और अन्य से होती है। सीजे. § 248 एन.
45. प्रश्न में उल्लिखित बाह्य वस्तुओं का चिंतन कसीना प्रणाली (असली. 188) के आधार पर किया जाता है। और जिस प्रकार एक सुपाच्य व्यक्ति एक चम्मच चावल को झटपट खा लेता है, उसी प्रकार उदात्त सत्य का साधक वस्तु के महत्वहीन होने पर बाह्य बोध की प्रारंभिक क्रिया को शीघ्रता और सरलता से पार कर जाता है और वांछित अवधारणा (अप्पना) को प्रकट करता है।
बुद्धघोष के अनुसार, जिन निर्णयों द्वारा वे बौद्धिक निपुणता की चेतना को दर्ज करते हैं, उनका संदर्भ ज्ञानोदय के पूर्व अनुभव से है, और वे केवल एक पहचान, या तर्कशास्त्र के संदर्भ में, एक लघु आधार वाक्य की पहचान को इंगित करते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि निकायों पर सिंहली टीका में, उनकी व्याख्या नए प्रकाश की वर्तमान प्राप्ति, एक नई नैतिक उपलब्धि के रूप में की गई है, जो विचारक द्वारा बोधगम्य चेतना से परे जाने के बाद प्राप्त होती है (वही)।
46. यहाँ "विचार के विषय" कसिन हैं, जिन्हें अनिवार्य रूप से "सीमित" या महत्वहीन माना जाता है। इसलिए दो प्रकार हैं, चार नहीं; और इसलिए आठ, सोलह नहीं। अप्पमनैन शब्द केवल एक सापेक्ष अनंतता को दर्शाता है, पूर्ण अनंतता को नहीं, इसलिए प्राप्त ध्यान की गहराई, शुद्धिकरण प्रभावकारिता, या अन्य चीजों में केवल मात्रा का अंतर है। तदनुसार, उसी दृष्टांत का प्रयोग किया जाता है, लेकिन मात्रा में भिन्नता के साथ। पेटू, चावल की एक छोटी थाली से असंतुष्ट होकर, और अधिक की मांग करता है। इसलिए, पूर्ण आत्म-एकाग्रता का लक्ष्य रखने वाला साधक (अब नानुत्तरो, नानुत्तरिको नहीं), उस अनंत को अनंत कहने से इनकार करता है जो ऐसा प्रतीत होता है (वही)।
47. इसलिए के.
48. सुवन्न अर्न और दुब्बनम के सामान्य सौंदर्य संबंधी पदनामों को साई. में परिशुद्धा और उसके नकारात्मक द्वारा प्रतिलेखित किया गया है। जिस प्रकार दृश्य वस्तुओं की सीमित प्रकृति को वैचारिक प्रयासों के लिए एक प्रभावी विचार माना जाता था, और 'अनंत' की धारणा

सुस्ती के लिए सहायक थी, उसी प्रकार सुंदर और कुरूप को क्रमशः शत्रुतापूर्ण आचरण और वासना में लिप्त होने के लिए निर्धारित किया गया था। कहा जाता है कि इन सब की उपयुक्तता पर विशुद्धि मार्ग (असल. 189) के चरिया-निद्देश में चर्चा की गई है।

49. धारा 211-213 पर टिप्पणी देखें। क्रमानुसार, बुद्धघोष की वहाँ दी गई टिप्पणी पाठ के उस भाग पर लागू होती है। संदर्भ के अनुसार, यह यहाँ अधिक उपयुक्त हो सकती है, जहाँ बाह्य रूपों या कसीना-वस्तुओं को अब "अनंत" के रूप में देखा जा रहा है। हालाँकि, यह विचार दोनों अंशों पर लागू होता है।

50. यह सर्वविदित है कि नीलम द्वारा इंगित रंग की सीमा निर्धारित करना उतना ही कठिन है जितना कि शब्द के रंग-मूल्य का निर्धारण करना। बाद वाले शब्द की तरह, नीलम मूल रूप से रंगत की तुलना में चमक को अधिक संदर्भित करता होगा, जिसका अर्थ है गहरा चमकदार, काला या निग्रेसेंट। किसी भी तरह, मानव शरीर में इसके उदाहरण के रूप में मानव बाल या पित्त (पित्त द्रव) के संदर्भ में इस शब्द को "नीला" के रूप में प्रस्तुत करना तर्कसंगत नहीं है। अनुच्छेद 248 के नोट 2 देखें। जाट. iii. 138 में बालों के रंग या बाल धोने को नीलियम कहा गया है - शायद उसी तरह जैसे हम जूतों के लिए "कालापन" या "रसेट पॉलिश" की बात करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि निल एम नामक रंग, यदि सामान्य रंग नहीं तो कम से कम मानव बालों का वांछित रंग तो था ही।

यदि यह हमारे द्वारा एक विशिष्ट नीले रंग के रूप में समझा जाता, तो यह शब्द आकाश और समुद्र, या इंद्रधनुष की बैंगनी पट्टी पर लागू होता, जो कि, मेरा मानना है, कभी नहीं होता। संभवतः इन संदर्भों में हमारे अपने रंग-समानांतर आधुनिक विकास हैं। देखें हैवलॉक एलिस, समकालीन समीक्षा, खंड 99, पृष्ठ 727। मुझे बताया गया है कि आधुनिक हिंदू रंग-शब्द काफी हद तक फारसी मूल के हैं।

51. नीलानिदासनम, जो कि साइप्रस (190) के अनुसार, बिना किसी रुकावट के नीले रंग की एकसमान चादर को दर्शाता है। इस और अगले खंडों में रंग एक फूल, कपड़े के टुकड़े या किसी अन्य आधार में मौजूद हो सकते हैं।

52. शेष तीन अंग्रेजी रंग-नाम पिछले मामले की तरह ही पाली शब्दों से मिलते-जुलते हो सकते हैं। देखें एसबीई 11, loc, cit. सुत्त में अनुवादित रंगों के उदाहरण दिए गए हैं, और आश्चर्यजनक रूप से, "सफेद" को दूध या दूर हिमालय की बर्फ से नहीं, बल्कि सुबह के तारे से दर्शाया गया है।

53. अगले अध्याय, §§ 265-268 में आठ मुक्ति में से चार और दी गई हैं। केवल आठवीं मुक्ति इस कृति में नहीं दी गई है। महा परिनिर्वाण सुत्त, पृष्ठ 30; ए. iv. 306 देखें। साई. (190) के अनुसार, "मुक्ति" (विमोक्खम, या अधिमुच्चनम्) शब्द का प्रयोग "प्रतिकूल परिस्थितियों" और उनके मोहक आकर्षणों से मुक्त होने को दर्शाने के लिए किया जाता है, ताकि ध्यान उस पूर्ण वैराग्य और विश्वास के साथ बना रहे जो बच्चा अपने पिता की गोद में बैठा होता है, उसके छोटे अंग लटकते रहते हैं, उनकी पकड़ की आवश्यकता नहीं होती।

54. रूपी. साई. के अनुसार (190), यह अज्झत्तम रूपसन्नि के समतुल्य है—अर्थात्, "अपने शारीरिक स्व के किसी भी भाग के प्रति अचेतन" शब्द के विपरीत, जो कि महारत के पड़ावों, सुप्रा, § 204 इत्यादि में वर्णित मनोवृत्ति है। चयनित परिकमम "अपने बाल और शेष भाग" है। यदि नीला परिकमम की खोज की जाती है, तो ध्यान बालों, पित्त (पित्त तर्न) या आँख की पुतली पर केंद्रित किया जाता है। यदि प्रेरण पीले रंग के माध्यम से हो, तो वसा या त्वचा को लिया जा सकता है; यदि लाल हो, तो मांस, रक्त, या जीभ, या हाथों या पैरों की हथेलियाँ आदि; यदि सफेद हो, तो दांत, नाखून, या आँख का सफेद भाग। साथ ही "वह नीला या अन्य कसिन में ध्यान-दृष्टि से बाहरी शारीरिक रूपों को देखता है" (झनाचक्खुना पस्साति)।

गहन ध्यान के इस दोहरे प्रयास को कैसे अंजाम दिया गया, यह मैं पूरी तरह से नहीं समझ सकता, लेकिन बुद्धघोष एक से अधिक बार हमें अधिक विस्तृत विवरण के लिए यिशुद्धि मार्ग का संदर्भ देते हैं।

55. अर्थात्, जैसा कि साइ. (191) कहते हैं, यहाँ अवधारणा (अप्पन अ) की सचेत प्राप्ति का नहीं, बल्कि विशेष कसिना में रंग या चमक की पूर्णता या शुद्धता की चेतना का अभिप्राय है। (स्वाभाविक रूप से, सही पाठ सुभन ति होना चाहिए।) और बुद्धघोष इस दृश्यात्मक चेतना को नैतिक रूप से प्रतिकूल परिस्थितियों से मुक्ति की भावना को उसी प्रकार प्रज्वलित करने वाला बताते हैं, जैसे कि नैतिक सौंदर्य की वह अनुभूति जो निम्नलिखित खंडों के उदात्त निवासों में अनुभव की जा सकती है। यहाँ उद्धृत पति-संभिदा-मार्ग के अनुसार, जब प्रेम, दया आदि के हृदय से पूरे विश्व को व्याप्त करने पर, सभी जीवित प्राणियों से घृणा की भावना जड़ से उखड़ जाती है, तो विद्यार्थी विचार की महिमा से अभिभूत हो जाता है और अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करता है।

56. इन चार महान अभ्यासों पर, एहिस डेविड्स, एसबीई xi. 201, n. देखें; और, इनकी मुक्तिदायक प्रभावकारिता पर, एम. i. 38 देखें। बुद्धघोष अधिक विस्तृत व्याख्या के लिए पाठक को अपने विशुद्धि मार्ग की ओर पुनः निर्देशित करते हैं (अध्याय ix देखें, और हार्डी, 'पूर्वी मठवाद', पृष्ठ 243 आदि देखें)। ये चारों यहाँ केवल *शुद्धिका' सूत्रों के अंतर्गत दिए गए हैं—अर्थात् (क) और (ख) शीर्षकों के अंतर्गत। परन्तु (ग), या प्रगति के तरीके, साथ ही (घ) और (ङ), प्रत्येक मामले में अनुसरण करते हुए समझे जाते हैं (असल. 192)। इस

संदर्भ में विचार का विषय (अ राम-म नाम) 'सीमित' होगा यदि विद्यार्थी केवल सीमित संख्या में प्राणियों पर प्रेम आदि में लीन रहता है; 'अनंत' होगा यदि उसका हृदय विशाल संख्या में प्राणियों को समाहित करता है।

इस कृति में टीकाकार ने 'आवासों' के स्वरूप और उनके आपसी संबंधों पर काफी कुछ कहा है (पृष्ठ 193-195)। सर्वप्रथम, प्रत्येक निवास के लक्षण और उनकी विपत्ति (विपत्ति) का पूर्ण वर्णन किया गया है। आसक्ति (सिनहसंभवो) प्रेम की विपत्ति है, जिसका मूल तत्व परोपकारी आचरण आदि है। आँसू और इसी प्रकार की भावनाएँ करुणा की उतनी सच्ची अभिव्यक्ति नहीं हैं जितनी दूसरों के दुखों को सहना और उन्हें दूर करना। हँसी और इसी प्रकार की भावनाएँ सहानुभूति (मुदिता) की उतनी वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हैं जितनी दूसरों की उपलब्धियों की सराहना करना। और एक उदासीनता (उपेक्खा) की स्थिति भी है जो अज्ञान से उत्पन्न होती है, न कि मानव कर्म के उस ज्ञान से जो भावनाओं को शांत कर सकता है।

आगे वे चार असामाजिक मनोवृत्तियों का वर्णन करते हैं जिन्हें इन नैतिक अनुशासनों द्वारा जड़ से उखाड़ फेंकना है, क्रमानुसार — दुर्भावना (व्यापदो), क्रूरता (विहेष), घृणा (आरती) और वासना (रागो) — और बताते हैं कि प्रत्येक सद्गुण का एक दूसरा दुर्गुण भी होता है। वे इसे उसका निकट शत्रु कहते हैं, क्योंकि यह उसके नैतिक विपरीत की तुलना में कम प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है, बाद वाला एक ऐसे शत्रु के समान है जिसे जंगल और पहाड़ियों में दूर घात लगाकर बैठना पड़ता है। प्रेम और प्रतिशोधी आचरण एक साथ नहीं रह सकते। इस मामले में सफल होने के लिए, प्रेम को निर्भयतापूर्वक विकसित किया जाना चाहिए। लेकिन जहाँ प्रेम और उसके लक्ष्य में बहुत अधिक समानता होती है, वहाँ प्रेम को वासना से खतरा होता है। इस पक्ष में प्रेम की अच्छी तरह रक्षा की जानी चाहिए। फिर, करुणा का निकट शत्रु, क्रूरता से भी अधिक कपटी, आत्म-दया है जो उस चीज़ के लिए तड़पती है जो किसी के पास नहीं है या खो गई है — एक नीच, अपवित्र उदासी। और जो कुछ व्यक्ति के पास है, उसी में निहित सांसारिक सुख, या जो कुछ उसने खोया है, उसके प्रति विस्मृति के परिणामस्वरूप, दूसरों के सौभाग्य की सराहना को दबाने के लिए घात लगाए बैठा रहता है। अंत में, सांसारिक व्यक्ति की अविवेकी उदासीनता होती है, जिसने सीमाओं पर विजय प्राप्त नहीं की है और न ही कारण और परिणाम को समझा है, क्योंकि वह बाहरी चीजों से ऊपर उठने में असमर्थ है।

उनके शेष विचार चारों लोकों में आवश्यक नैतिक क्रम, उनकी साधना में विधि का पालन करने के महत्व और अंत में उनके तकनीकी नाम 'अप्पमन्ना' या 'अनंतता' पर केंद्रित हैं। इस संदर्भ में वे हार्डी (पृष्ठ 249) द्वारा दिए गए माता और उसके चार बच्चों के मार्मिक उदाहरण को दोहराते हैं। शिशु के विकास के लिए उसकी इच्छा को 'मेट्टा', बीमार बच्चे के स्वस्थ होने के लिए 'करुणा', युवक द्वारा प्रदर्शित गुणों के संरक्षण के लिए 'मुदिता' और अपने वयस्क पुत्र के जीवन में बाधा न डालने की उसकी चिंता को 'उपेक्खा' कहा गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि जब हार्डी, एक विदेशी की मुदिता की कमी के साथ, बौद्ध भिक्षु (पृष्ठ 250) की निंदा करते हैं कि वह एकजुटता के गुणों के बारे में तो सोचते हैं लेकिन उनका अभ्यास नहीं करते, तो वे पूरी तरह से भूल जाते हैं कि ये अभ्यास तो केवल दूसरों की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इच्छाशक्ति की तैयारी मात्र हैं, जिसके लिए संन्यासी का जीवन काफी हद तक समर्पित था, और जिसका महत्व पश्चिमी लोग, दान के भौतिक रूपों के प्रति अपने उत्साह में, आज भी उसके वास्तविक मूल्य पर नहीं समझते हैं। और बौद्ध धर्म बौद्धिक नियंत्रण के बिना अच्छे आवेगों को बेलगाम छोड़ने में विश्वास नहीं करता था।

57. प्रेम में अनिवार्य रूप से सुख निहित है (सोमनस्सम् = चेतसिकम् सुखम्, § 10, n.), इसलिए इसे चौथे - या (ख) के अंतर्गत, पाँचवें - ध्यान के माध्यम से विकसित नहीं किया जा सकता है।

58. पाँचवें ध्यान को छोड़ना। पिछला नोट देखें।

59. प्रथम ध्यान का सूत्र दस असुभों में से प्रत्येक के मामले में दोहराया जाता है, लेकिन केवल प्रथम असुभ के मामले में। क्योंकि, साइ. (पृष्ठ 199) के शब्दों में, 'जैसे तेज बहने वाली नदी में नाव को केवल पतवार की शक्ति से ही स्थिर किया जा सकता है, वैसे ही विचार की कमजोरी (दुब्बा-लत्ता) (इस मामले में) से मन को उसके अमूर्तता में केवल वैचारिक गतिविधि (वितक्को) की शक्ति से ही स्थिर किया जा सकता है।' और प्रथम ध्यान के बाद इस गतिविधि का त्याग कर दिया जाता है।

60. नैतिक अनुशासन के इस विशिष्ट रूप के अधिक विस्तृत विवरण के लिए, पाठक को फिर से विशुद्धि मार्ग (अध्याय 6) का संदर्भ दिया जाता है। हार्डी ("ईस्ट मोन"), जिन्होंने विशुद्धि मार्ग पर सिंहली टीका से बड़े पैमाने पर उद्धरण दिए हैं, का भी संदर्भ लिया जा सकता है (पृष्ठ 247 और आगे)। सतिपथाना सूत्र (डी. 22. वारेन, "बौद्ध धर्म अनुवाद में", पृष्ठ 353 और आगे देखें; और एमआई 58) में नौ असुभ ध्यान विधियों का वर्णन कुछ भिन्न शब्दों में किया गया है। एसवी (पृष्ठ 129-131) में, "मूल" ध्यान से शुरू होने वाले पांच असुभों को सजगता और अनासक्ति के संभोग के साथ निर्धारित किया गया है।

और वही पाँच विधियाँ अ. i. 42 (तुलना करें अ. iii. 323) के ध्यान वग्ग में दी गई हैं। यहाँ दी गई दस विधियों के बारे में साई. (पृष्ठ 197-199) में कहा गया है कि ये उन लोगों के लिए निर्धारित हैं जो शरीर की सुंदरता से भावुक रूप से प्रभावित होते हैं - आकृति, त्वचा,

गंध, दृढ़ता या निरंतरता, मोटापा, अंगों और छोरों, समरूपता, अलंकरण, शरीर के साथ स्वयं का एकात्मीकरण, या इसके अधिकार में संतुष्टि (?कये ममत्तम्; तुलना करें एसएन 951), और दाँत। इस प्रकार की मन-साधना के लिए मृत शरीर आवश्यक नहीं है, साई. उन थेरों के उदाहरण देता है जिन्होंने किसी व्यक्ति के दाँतों की एक झलक या किसी राजा को उसके हाथी पर देखकर आवश्यक ध्यान प्राप्त किया। आवश्यक प्रक्रिया किसी भी जीवित प्राणी की क्षणभंगुरता को स्पष्ट और साहसपूर्वक समझना था।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग1-अध्याय 3

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
 - भाग 1 - चेतना की उत्तम अवस्थाएँ
अध्याय III - निराकार ब्रह्मांड के संबंध में अच्छाई
अरुपावकारा कुसलम
[पृष्ठ 71] निराकार अस्तित्व से जुड़े चार ध्यान (चत्तरी अरुपज्जनानी)।[1]

1. असीम अंतरिक्ष का गोला (आकासनचयतनम्)।

[265] कौन से राज्य अच्छे हैं?

[पृष्ठ 72] जब वह निराकार स्वर्गों को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, रूप की सभी चेतना से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रिय प्रतिक्रिया की चेतना के लुप्त होने[2] से, अनेकता की किसी भी चेतना से ध्यान हटाकर[3], वह उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो असीम अंतरिक्ष के एक क्षेत्र की चेतना के साथ होता है — [पृष्ठ 73] यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए[4] सुख की सभी भावनाएँ त्याग दी जानी चाहिए, और दुख की सभी भावनाएँ त्याग दी जानी चाहिए, और सुख और दुख का वह मिट जाना चाहिए जो वह पहले महसूस करता था — (तल्लीन ध्यान) जो अनासक्ति से ओतप्रोत है, और जहाँ न सुख का अनुभव होता है और न ही कोई दुख, बल्कि केवल वह पूर्ण पवित्रता जो सचेतनता और अनासक्ति से आती है — तब संपर्क, आदि... [cf. § 165] जो संतुलन उत्पन्न होता है, ये... ये अच्छी स्थितियाँ हैं।

2. अनंत बुद्धि का क्षेत्र (विन्ननानकायतनम)।[5]

[266] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह निराकार स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए, उस मार्ग का अभ्यास करता है, और असीम अंतरिक्ष के क्षेत्र से पूरी तरह से परे जाकर, उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो अनंत बुद्धि के क्षेत्र की चेतना के साथ होता है - यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुख-सुविधाओं को त्याग देना चाहिए, आदि।

[पिछले भाग की तरह जारी रखें।]

3. शून्यता का क्षेत्र (अकिंचन्नयतनम)।

[267] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह निराकार स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और अनंत बुद्धि के क्षेत्र से पूर्णतः परे जाकर, उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो शून्यता के क्षेत्र की चेतना से युक्त होता है—अर्थात् चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुख-सुविधाओं का त्याग करना आवश्यक है, इत्यादि।

[धारा 265 के अनुसार जारी रखें।]

4. वह क्षेत्र जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध (नेवा-सन्ना-नासन्नायतनम्)।

[268] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह निराकार स्वर्गों को प्राप्त करने के लिए उसका मार्ग बनाता है, और शून्यता के क्षेत्र से पूरी तरह से परे जाकर, उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो एक ऐसे क्षेत्र की चेतना के साथ होता है जहाँ न तो बोध होता है और न ही अबोध [8] —यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुख-सुविधाओं को त्याग देना चाहिए, आदि।

[धारा 265 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 75] निराकार अस्तित्व से जुड़े चार ध्यान सोलह संयोजनों में विकसित किए जा सकते हैं।

- फुटनोट:
1. ये अक्सर निकायों में आठ विमोखों या मुक्ति के चौथे से सातवें क्रम में दिखाई देते हैं (देखें §§ 248- 250; महा पर. सूत्र, पृष्ठ 30; ए. iv. 306)। हालांकि विशुद्धि मार्ग (अध्याय iii) में इनका वर्णन है, बुद्धघोष केवल विभंग में दिए गए इनके विवरण से तुलना करते हैं। श्लोक iii. 237 में, और अक्सर मज्झिमा में, ये चार ध्यान के ठीक बाद बिना किसी सामूहिक उपाधि के आते हैं, न कि चौथे ध्यान के सहवर्ती के रूप में।

वहाँ भी, सूत्रों में वर्तमान कृति के सूत्रों से यह थोड़ा सा अंतर है कि अमूर्तता के प्रत्येक चरण की सचेत प्राप्ति को पहचान के एक संक्षिप्त प्रस्ताव द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे, ananto akaso ti . . . n'atthi kind ti (यह असीम अंतरिक्ष है! . . . कुछ भी नहीं है!)। साई. इसे एक विचित्र तर्क द्वारा समझाते हैं जो संयोगवश रुचिकर है (पृष्ठ 204)। बुद्ध की इच्छा थी कि वे, पिछली प्रक्रिया की तरह ही, इस प्रक्रिया में भी, विचार के चार विषयों [arammanani; ऊपर, (d) के अंतर्गत देखें] का अध्ययन करें। और इनमें से पहला यह है कि किसी का विषय "सीमित" है।

लेकिन यदि विद्यार्थी असीम अंतरिक्ष की अविभेदित चेतना प्राप्त कर लेता है और 'यह असीम है!' जैसे विस्मयादिबोधक विचार से इसके स्वरूप को जान लेता है, तो वह तार्किक रूप से इसे सीमित नहीं मान सकता। यदि मैं बुद्धघोष की सही व्याख्या करूँ, तो बौद्ध दर्शन में अक्सर पाए जाने वाले इन विस्मयादिबोधकों का एक रोचक अर्थ निकलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सचेतन मान्यता की क्रिया का संकेत देते हैं।

2. विद्यार्थी को रूप जगत में अपनी सारी रुचि और ध्यान हटा लेना चाहिए, और अपनी इंद्रियों पर पड़ने वाले बाह्य परिघटनाओं (जिनमें उसका स्वयं का रूप भी शामिल है) के बीच अंतर करना पूरी तरह से बंद कर देना चाहिए, जिससे संवेदनाएँ समाप्त हो जाएँ या एक समरूप, विस्तारित शून्यता की अनुभूति में विलीन हो जाएँ। संवेदी प्रतिक्रिया द्वारा व्यक्त पतिघो को दृष्टि-बोध, ध्वनि-बोध, गंध, स्वाद और स्पर्श-बोध के रूप में समझाया गया है।

"यहाँ विचार पाँच द्वारों के माध्यम से कायम नहीं रहता" (असल. 201, 202)। सबसे कठिन था ध्वनियों से सारा ध्यान हटाना। गौतम के गुरुओं में से एक, अलारा कलामा, जो कम से कम छठे विमोख (एम. आई. 164) तक इन तल्लीन अवस्थाओं में निपुण थे, को इस प्रकार तल्लीन होने की शक्ति प्राप्त थी कि वे अपने पास से गुजरने वाली सैकड़ों गाड़ियों को देख या सुन नहीं पाते थे (असल. 202)। पतिघो के मनो-शारीरिक उपयोग पर, रूप पर पुस्तक में इंद्रिय सिद्धांत देखें, नीचे, § 597 इत्यादि।

3. नानात्तसन्नानम् अमनसिकारा। बाद वाले शब्द के लिए, ऊपर पृष्ठ 5, नोट 1 देखें। ननात्तम् शब्द निकायों में दुर्लभ रूप से मिलता है; लेकिन एम. i. 3 देखें, जहाँ अवधारणाओं की एक श्रृंखला में, यह "एकता" के बाद और "समग्र" से पहले आता है (न्यूमैन ने विएलहाइट द्वारा अनुवाद किया है); साथ ही एस. iv. 113, 114 भी देखें, जहाँ इसे विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं, संबंधित विन्नना और परिणामी भावना के संदर्भ में समझाया गया है। बुद्धघोष द्वारा उद्धृत विभंग (पृष्ठ 202) में, इसे आठ प्रकार के अच्छे विचारों, बारह बुरे विचारों (नीचे, § 365), साथ ही इन विचारों के बाद लिए गए अच्छे और बुरे परिणामों के विचारों में प्रकृति की पारस्परिक विविधता या असमानता (ऐनमन्नाम असदिसा) के संज्ञान के रूप में समझाया गया है।

चित्तानी के स्थान पर सन्ना शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिससे संभवतः विविधता के बोध का अनुप्रयोग उन सभी "विचारों" के संवेदी आधार तक सीमित हो जाता है। फिर भी, संदर्भ यहाँ प्रयुक्त सानिया के एक निश्चित सामान्य, अमूर्त, "पुनः-प्रतिनिधित्वात्मक" अर्थ की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। इसे मनोधातु या मनोविन्फियानाधातु में लीन व्यक्ति की चेतना कहा जाता है—अर्थात, प्रतिनिधि या पुनःप्रतिनिधित्वात्मक संज्ञान में— विचारों में या उन विचारों के संज्ञान में। इस संदर्भ में विचारणीयता अनेक प्रकार की संवेदी घटनाओं के बारे में है, और इसकी अमूर्त प्रकृति निश्चित रूप से उनकी विविधता को इसी रूप में समझने में निहित है।

4. पाठ में चौथे ध्यान का सूत्र अपरिवर्तित रहता है (संदर्भ 165)। लेकिन यह स्थान और निस्वार्थता से संबंधित जटिल विशेषणों के बीच फंसा हुआ है। इसलिए भाषा की भद्दीपन से बचने के लिए कुछ संशोधन आवश्यक था।

5. सख्ती से viiinananancayatanam. आमतौर पर लोपा गया शब्दांश (rulhi-saddo) Cy में देखा जाता है। (205).

6.के., यहाँ और अगले दो उत्तरों में, निकायों में प्रचलित प्रयोग के अनुसार समतिक्कम्मा क्रिया का प्रयोग किया गया है (देखें, उदाहरण के लिए,!), एमपीएस, 30; एम. आई. 174, 209; एस. iii. 237, 238; ए. iv. 306)। बुद्धघोष स्पष्टतः समतिक्कम्मा (2^5) पढ़ते हैं, जैसा कि इन चार अरुपज्जनों में से केवल पहले में अपरिवर्तनीय स्थिति है।

7. एक ऐसे शब्द की व्याख्या, जिस पर बुद्धघोष के विस्तृत वर्णन को सुनना सुखद होता, केवल यही दी गई है, "उसके लिए चिंतन करने योग्य किसी भी विषय का कोई अंत नहीं है" (शाब्दिक रूप से, मननशील; मनसिकतब्बा-वसेना) (असल. 205)। अगले चरण (§ 267) पर भी कोई प्रकाश नहीं डाला गया है (पृष्ठ 206)।

8. बुद्धघोष इस मानसिक अवस्था को चेतन संश्लेषणों के सूक्ष्म अवशेष (संस्कारवसेसा-सुखुमा-भावम्) की कार्यप्रणाली के संवर्धन के रूप में समझाते हैं। जहाँ तक बोध (संभवतः पूर्णतः अंतर्मुखी) प्रभावी रूप से कार्य करने में असमर्थ हो जाता है (पतु-सानिया-किच्चम्), यह अवस्था अबोधात्मक होती है। जहाँ तक वे सूक्ष्म, सूक्ष्म चेतन प्रतिक्रियाएँ बनी रहती हैं, यह अवस्था "अबोधात्मक नहीं" होती है।

चेतना में शून्य बिंदु के चारों ओर होने वाले इस दोलन को हार्डी द्वारा उद्धृत उपमाओं (इस पुस्तक से नहीं) द्वारा दर्शाया गया है (ओजे. सिट., 264), अर्थात्, एक कटोरे में उतना ही तेल होना चाहिए जितना सफाई के लिए पर्याप्त हो, लेकिन उसे उंडेला न जाए; और एक छोटा तालाब, जो पैर गीले करने के लिए पर्याप्त हो, लेकिन स्नान के लिए बहुत उथला हो। तेल और पानी दोनों का अस्तित्व या अनुपस्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि उनके संबंध में क्या क्रिया की जा सकती है।

साइ. आगे कहते हैं कि यह सीमांत बिंदु न केवल सन्ना में, बल्कि भावना, विचार और संपर्क में भी पाया जाता है (208)। चेतना की "दहलीज" और उसके आसपास एकत्रित अति- और अवचेतन स्तरों का अध्ययन मनोभौतिकी के अन्वेषक के लिए काफी परिचित है।

जो बात हमारे लिए अपरिचित है, वह है नैतिक विकास के हित में चेतना की सीमा का दोहन। यदि लाइबनिज़ को अवसर मिला होता, तो वे शायद नवा-सन्ना-नसाईइनायतनम में अपने लघु बोध के सिद्धांत की प्रेरणा पा सकते थे।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग1-अध्याय 4

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
- भाग 1 - चेतना की उत्तम अवस्थाएँ

अध्याय IV - तीनों लोकों से संबंधित भलाई में प्रभावशीलता के स्तर

[पृष्ठ 76] 1. इंद्रियों के ब्रह्मांड (कामावकारकुसलम) के संबंध में अच्छा।

[269] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब इंद्रिय जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है, जो (I.) सुख से युक्त और ज्ञान से जुड़ा होता है — ऐसा विचार जो निम्न,
मध्यम
या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रभावकारिता का हो,[1] या जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा,
ऊर्जा
या [पृष्ठ 77] [कोई अन्य] विचार
या अन्वेषण हो;[2] या जिसमें प्रमुख प्रभाव निम्न,
मध्यम
या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रभावकारिता की इच्छा हो; या जिसमें प्रमुख प्रभाव निम्न,
मध्यम
या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रभावकारिता की ऊर्जा हो; या जिसमें प्रमुख प्रभाव निम्न,
मध्यम
या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रभावकारिता का [कोई अन्य] विचार हो; [पृष्ठ 78] या जिसमें प्रमुख प्रभाव निम्न,
मध्यम
या अतिशयोक्तिपूर्ण प्रभावकारिता का अन्वेषण हो,[3] तब जो संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है — ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[270] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब इंद्रिय जगत के विषय में कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है जो (II.) सुख से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ा हो और सचेत प्रेरणा से प्रेरित हो...

या (तीसरा) खुशी के साथ, और ज्ञान से असंबद्ध...

या (IV.) खुशी के साथ, ज्ञान से असंबद्ध, और एक सचेत मकसद से प्रेरित...

या (क्रिया) निस्वार्थता के साथ, और ज्ञान से जुड़ा हुआ...

या (VI.) निस्वार्थता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, और एक सचेत मकसद से प्रेरित...

या (सातवां) निस्वार्थता के साथ, और ज्ञान से असंबद्ध...

या (VIII.) निस्वार्थता से युक्त, ज्ञान से असंबद्ध और सचेत प्रेरणा से प्रेरित—

एक विचार जो निम्न स्तर का हो... या मध्यम स्तर का हो...
या अति उत्कृष्ट प्रभावकारिता का हो... [पृष्ठ 79] या वह प्रमुख प्रभाव जिसमें इच्छा,
या ऊर्जा,
या कोई अन्य विचार हो; या वह प्रमुख प्रभाव जिसमें निम्न,
मध्यम
या अति उत्कृष्ट प्रभावकारिता की इच्छा हो; या वह प्रमुख प्रभाव जिसमें निम्न,
मध्यम
या अति उत्कृष्ट प्रभावकारिता की ऊर्जा हो; या वह प्रमुख प्रभाव जिसमें निम्न,
मध्यम
या अति उत्कृष्ट प्रभावकारिता का कोई अन्य विचार हो; तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।[4]

2. रूप के ब्रह्मांड के संबंध में अच्छा।

[271] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, पृथ्वी को निहारते हुए प्रथम ध्यान (प्रथम समाधि) में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो निम्न,
मध्यम
या अति प्रभावी होता है; [पृष्ठ 80] या जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा,
ऊर्जा,
विचार
या अन्वेषण का होता है; या जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा... ऊर्जा... विचार...
निम्न,
मध्यम
या अति प्रभावी अन्वेषण का होता है—तब संपर्क... उत्पन्न होने वाला संतुलन—ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[272] अन्य ध्यानों के मामले में (क) और (ख) दोनों को दोहराएँ।

3. निराकार ब्रह्मांड के संबंध में अच्छा।

[273] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह निराकार स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, रूप की सभी चेतना से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की चेतना के लुप्त होने से, अनेक प्रकार की चेतना से ध्यान हटाकर, वह उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो असीम अंतरिक्ष के क्षेत्र की चेतना से युक्त होता है - यहाँ तक कि चौथे ध्यान में भी, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुख-सुविधाओं को त्याग देना आवश्यक है, आदि - (तल्लीन ध्यान) जहाँ न तो अस्वस्थता है और न ही सुख, बल्कि केवल वह पूर्ण पवित्रता है जो सचेतनता और अनासक्ति से आती है, और जो निम्न स्तर की...
मध्यम स्तर की...
या अति उत्कृष्ट प्रभावकारिता की... या जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा...
या ऊर्जा...
या एक विचार...
या अन्वेषण... [पृष्ठ 81] या जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा... ऊर्जा... एक विचार...
निम्न स्तर के अन्वेषण...
मध्यम...
अत्यंत प्रभावीता—फिर संपर्क...जो संतुलन उत्पन्न होता है—ये...अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[274-276] यहाँ तीन शेष "निराकार अस्तित्व से जुड़े ध्यान" दिए गए हैं, जिनमें से प्रत्येक को पूर्वोक्त उत्तर में सूचीबद्ध विशेषताओं द्वारा संशोधित किया गया है। तुलना करें §§ 266-268. [5]

- फुटनोट:
1. उपरोक्त सभी विचारों और अभ्यासों की प्रभावी शक्ति या कर्म, जो किसी न किसी ब्रह्मांड में व्यक्ति के अस्तित्व को अच्छे के लिए परिवर्तित करते हैं, व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए प्रभावशीलता के तीन स्तरों में विभेदित किए गए प्रतीत होते हैं। कम से कम इस विचित्र खंड (पृष्ठ 211, 212) पर टिप्पणी से मुझे यही समझ आता है: "हीन" (हीनम) का अर्थ संचय के संदर्भ में तुच्छ समझा जाना चाहिए।" बाद के ग्रंथों में "संचय" लगभग हमेशा कर्म से जुड़ा होता है। परिश्रम करने, विशेष रूप से खोदने, ढेर लगाने के अर्थ में, इसका उपयोग पुनर्जन्म के मार्ग में व्यक्ति की क्षमता का निर्माण करने वाले निरंतर संचयी पुण्य या पाप की लाक्षणिक धारणा को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। तुलना करें मिल. 109; नीचे भी, § 1059, n. 9, 'वह जो परिश्रम करती है' पर। पट्टाना इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल सकता है (एएसएल, वही)।

2. मेरे विचार से, कर्म के इस विशेष पहलू के साथ चार इद्धिपादों (एम. i. 103; ए. iii. 82; एसवी 264-266) के संबंध की व्याख्या भी आवश्यक है; क्योंकि ये किसी अन्य लोक में पुनर्जन्म की बजाय अर्हतत्व की ओर ले जाते हैं। शास्त्र केवल इतना कहता है कि जब कोई व्यक्ति संचय करते समय इच्छा या अन्य किसी भी चीज़ का त्याग करता है, तो उसे निम्न (प्रभावी) कहा जाता है; जब ये चारों अवस्थाएँ मध्यम या अति प्रभावी होती हैं, तो उन्हें तदनुसार कहा जाता है; और जब किसी ने इच्छा (चंदो), अर्थात् कर्म करने की इच्छा को अपना सर्वोपरि, प्रमुख और मार्गदर्शक बनाकर संचय किया है, तो प्रक्रिया को इच्छा के प्रबल प्रभाव में कहा जाता है। यही बात अन्य तीन के लिए भी लागू होती है।

यह खेदजनक है कि साई. में विमंसा (जांच) शब्द या इस चार पंक्तियों की श्रृंखला में इसकी उपयुक्तता पर चर्चा नहीं की गई है। वितक्को और विकार 0 के संबंध में इसके मनोवैज्ञानिक महत्व को जानना रोचक होता। इस श्रृंखला में दोहरी समरूपता का संकेत मिलता है: जैसे चंदो विरियार्न (क्रिया से क्रिया में परिवर्तित होने वाली कल्पना) से संबंधित है, वैसे ही चित्तम (विचार) विमंसा के विवेचनात्मक पुनर्प्रतिनिधित्वात्मक बौद्धिक चिंतन से संबंधित है। मैंने चित्तधिपटेय्यम का अनुवाद साई. (213) के अनुसार किसी अन्य विचार के प्रभाव से किया है, जहाँ इसे मूल "अच्छे विचार" से संबंधित विचार या अवस्था कहा गया है।

नीचे अधिपतेयों पर एक और संक्षिप्त टिप्पणी है, धारा 1034, खंड 2।

3. इस और आगे के उत्तरों में अपनाई गई सारणीबद्ध शैली का उद्देश्य न केवल प्रणाली का संक्षिप्त अवलोकन प्रदान करना है, बल्कि पाली में (... पे... द्वारा व्यक्त) प्रत्येक सारणीबद्ध पद से पहले और बाद में उत्तर के अपरिवर्तनीय ढांचे की पुनरावृत्ति के लोप को भी दर्शाना है। इस और अगले उत्तर में कोमन अंक अध्याय 1 में 'विचार के आठ मुख्य प्रकार' के मूल कथन को संदर्भित करते हैं। स्पष्टतः प्रत्येक विचार के अरम्मनम के संवेदी आधार को यहाँ दोहराने का इरादा नहीं है।

4. धम्म संगानी में प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार, जब एक वाक्य में अनेक विषयों को संयोजित किया जाता है, तो अंतिम विवरण केवल श्रृंखला के अंतिम विषय पर ही लागू होते हैं। इसलिए, विचार VIII के संदर्भ में "जांच" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, क्योंकि संभवतः यह "ज्ञान से असंबद्ध" है। इसी प्रकार, विचार III, IV और VII के संदर्भ में भी इसका प्रयोग नहीं किया जाता, लेकिन अन्य विचारों के संदर्भ में किया जाता।

5.§ 275 में पाठ अनजाने में मज्झिमम् को छोड़ देता है। . . पे. . . पैनिटम। . . पे. . . विमम् से पहले-साधिपतियम्।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग1-अध्याय 5
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
 - भाग 1 - चेतना की उत्तम अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु

1अध्याय V - उच्च आदर्श पर केंद्रित चिंतन
1.1लोकुत्तराम चित्तम
1.1.1II. दूसरा मार्ग।
1.1.2III. तीसरा मार्ग।
1.1.3IV. चौथा मार्ग।
1.2- फुटनोट:

अध्याय V - उच्च आदर्श पर केंद्रित चिंतन

लोकुत्तराम चित्तम

===[पृष्ठ 82] I. पहला पथ (पथमो मग्गो।) [1] बीस महान विधियाँ (विसति महानाय)।===

1. तल्लीन ध्यान (झानम)।

(i.) शुद्धिकरण में प्रगति के चार तरीके (सुद्धिकपतिपाद)।

[277] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म को समाप्त करने की दिशा में एक निरंतर प्रगति होती है[2] — और जब, ताकि वह [पृष्ठ 83] प्रथम अवस्था को प्राप्त कर सके, वह विचारों और मतों को त्याग देता है[3] और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें अवधारणा कार्य करती है और विवेचनात्मक विचार, जो एकांत से उत्पन्न होता है, आनंद और सहजता से भरा होता है, जिसमें प्रगति कठिन होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है — तब संपर्क,

भावना, बोध

,

चिंतन, विचार, अवधारणा, विवेचनात्मक विचार, आनंद, सहजता, आत्म-संयम , विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता , एकाग्रता , ज्ञान , विचार, सुख, जीवन शक्ति और "मैं अज्ञात को जान लूँगा"[4] विश्वास करने की क्षमता, सही विचार, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका[5], सही प्रयास, सही [पृष्ठ 84] सजगता, सही एकाग्रता;

आस्था, ऊर्जा,

जागरूकता,

एकाग्रता,

ज्ञान,

कर्तव्यनिष्ठा और

निंदा के भय जैसी शक्तियां ;

कामवासना,

घृणा,

सुस्ती,

लोभ और द्वेष का अभाव,

सही विचार,

विवेक,

निंदा का भय,

शांति, सहजता

,

लचीलापन,

कुशलता,

उपयुक्तता और इंद्रियों और विचारों में प्रत्यक्षता,

जागरूकता,

बुद्धिमत्ता,

शांति,

अंतर्दृष्टि,

समझ और संतुलन। अब ये—या उस समय उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ—ये अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[278-282] "संपर्क", "भावना", "धारणा", "सोच" और "विचार" का वर्णन §§ 2-6 में किया गया है।

[283] उस अवसर पर गर्भाधान क्या है?

तर्क, अवधारणा, जो उस अवसर पर स्वभाव, निर्धारण, ध्यान केंद्रित करना, मन का अनुप्रयोग, सही इरादा, "मार्ग-घटक", "मार्ग में निहित" [6] है - यह वह अवधारणा है जो तब है।

[284] "विवेचनात्मक विचार" का वर्णन § 8 में किया गया है।

[285] उस अवसर पर आनंद क्या है?

उस अवसर पर जो आनंद प्रसन्नता, उल्लास, उल्लास, आनंद, प्रसन्नता, प्रसन्नता, उत्साह, हृदय की उमंग है, वह आनंद जो महान जागरण [7] में एक कारक है - यही वह आनंद है जो तब होता है।

[पृष्ठ 85] [286] "आसानी" का वर्णन § 10 में किया गया है।

[287] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है?

स्थिरता, दृढ़ता, विचारों की तल्लीन स्थिरता जो उस अवसर पर विचलित न होने, संतुलन, अविचलित मानसिक प्रक्रिया, शांति, एकाग्रता की क्षमता और शक्ति, सही एकाग्रता, वह एकाग्रता जो महान जागृति का एक कारक है, एक "मार्ग-घटक", "मार्ग में निहित" - यही वह अवधारणा है जो तब मौजूद होती है।

[288] "विश्वास" का वर्णन धारा 12 में किया गया है।

[289] उस अवसर पर ऊर्जा की क्षमता क्या है?

उस अवसर पर जो मानसिक ऊर्जा का उद्भव होता है, वह प्रयास और निरंतर परिश्रम, वह परिश्रम और प्रयास, वह जोश और उत्साह, वह सामर्थ्य और धैर्य, वह अटूट प्रयास की अवस्था, वह निरंतर इच्छा की अवस्था, वह अविचल सहनशीलता की अवस्था, वह भार पर दृढ़ पकड़, वह ऊर्जा, वह ऊर्जा जो एक क्षमता और शक्ति के रूप में है, वह सही ऊर्जा, वह ऊर्जा जो महान जागृति का एक कारक है, मार्ग का एक घटक है, जो मार्ग में समाहित है - यही वह ऊर्जा है जो उस समय विद्यमान होती है।

[290] उस अवसर पर सचेतनता की क्षमता क्या है?

उस अवसर पर जो जागरूकता स्मरण कर रही है, उस जागरूकता को याद कर रही है[8] जो याद रख रही है, ध्यान में रख रही है, सतहीपन और विस्मृति के विपरीत; जागरूकता, एक क्षमता और एक शक्ति के रूप में जागरूकता, सही जागरूकता, वह जागरूकता जो महान जागृति में एक कारक है, एक पथ-घटक है, पथ में निहित है - यही वह जागरूकता है जो तब होती है।

[291] "एकाग्रता" को "स्वयं-संयम" के समान शब्दों में वर्णित किया गया है, § 287.

[पृष्ठ 86] [292] उस अवसर पर ज्ञान की क्षमता क्या है?

उस अवसर पर जो ज्ञान विद्यमान होता है, वह है समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज, विवेक, भेद, विद्वता, निपुणता, सूक्ष्मता, आलोचना, चिंतन, विश्लेषण, व्यापकता, बुद्धिमत्ता, मार्गदर्शन, अंतर्दृष्टि, बुद्धि, प्रोत्साहन, एक क्षमता और शक्ति के रूप में ज्ञान, एक तलवार के रूप में ज्ञान, एक ऊँचाई के रूप में ज्ञान, एक प्रकाश के रूप में ज्ञान, एक महिमा के रूप में ज्ञान, एक वैभव के रूप में ज्ञान, एक कीमती पत्थर के रूप में ज्ञान; सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, वह सत्य की खोज जो महान जागृति[9] में एक कारक है, एक पथ-घटक, पथ में निहित - यही वह ज्ञान है जो तब विद्यमान होता है।

[293-295] "विचार", "खुशी" और "जीवंतता" की क्षमताओं का वर्णन §§ 17-19 में किया गया है।

[296] उस अवसर पर विश्वास करने की क्षमता क्या है, "मैं अज्ञात को जान लूँगा" (अनन्नतन्नसमितिन्द्रियम)?[10]
वह ज्ञान जो उन सत्यों की प्राप्ति कराता है[11] जो अवास्तविक, अनबोधित, अप्राप्य, [पृष्ठ 87] अनदेखे, अज्ञात हैं—वह ज्ञान जो समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज आदि है।
[धारा 292 के अनुसार जारी रखें।]
[297] उस अवसर पर सही विचार क्या हैं? "बुद्धि" के लिए उत्तर दें, धारा 292।
[298] "आठ इरादे" को "अवधारणा" के समान शब्दों में वर्णित किया गया है, § 283.
[299] उस अवसर पर सही भाषण (सम्मा वका) क्या है?
उस अवसर पर त्याग करना, परहेज करना और बचना, और भाषण की चार त्रुटियों से घृणा करना[12], उन्हें न करना और न ही करना, कोई अपराध न करना, न ही उनके संबंध में अतिक्रमण करना और न ही उल्लंघन करना, उनके लिए मार्ग को नष्ट करना[13] - सही भाषण, एक मार्ग-घटक, मार्ग में निहित - यही सही भाषण है जो तब होता है।
[300] उस अवसर पर उचित कर्म (सम्मा कम्मंतो) क्या है?
उस अवसर पर आचरण की तीन त्रुटियों का त्याग करना, उनसे दूर रहना और उनसे विमुख होना[14], उन्हें न करना और न ही उन्हें पूरा करना, कोई अपराध न करना, न ही उनके संबंध में अतिक्रमण करना और न ही उल्लंघन करना, उनके लिए मार्ग को नष्ट करना - सही आचरण, मार्ग का एक घटक, मार्ग में निहित - यही सही आचरण है जो तब होता है।
[301] उस अवसर पर सही आजीविका (सम्मा अजीवो) क्या है?
उस अवसर पर त्याग करना, अनुचित आजीविका के तरीकों से परहेज करना, उनसे दूर रहना और उनसे विमुख होना, उन्हें [पृष्ठ 88] अप्राप्य और अधूरा छोड़ देना, उनके संबंध में कोई अपराध न करना, न ही अतिक्रमण करना और न ही उल्लंघन करना, उनके लिए मार्ग को नष्ट करना - सही आजीविका, मार्ग का एक घटक, मार्ग में निहित - यही सही आजीविका है जो तब मौजूद है।
[302-304] "आठ प्रयास", "सही जागरूकता", "सही एकाग्रता"[15], का वर्णन §§ 289-291 में किया गया है।
[305-311] "विश्वास", "ऊर्जा", "जागरूकता", "एकाग्रता" और "बुद्धि" की "शक्तियों" का वर्णन §§ 288-292 में किया गया है; "विवेकशीलता" और "दोष का भय" की शक्तियों का वर्णन §§ 30, 31 में किया गया है।
[312-319] "वासना का अभाव" और "घृणा का अभाव" का वर्णन धारा 32, 33 में किया गया है; "सुस्ती का अभाव" का वर्णन धारा 309 ("बुद्धि") में किया गया है; "लोभ का अभाव" और "द्वेष का अभाव" का वर्णन धारा 35, 36 में किया गया है; "ईमानदारी" और "निंदा का भय" का वर्णन धारा 38, 39 में किया गया है; "सही विचार" का वर्णन धारा 292 या 309 ("बुद्धि") में किया गया है।
[320] उस अवसर पर इंद्रियों की शांति क्या है?
उस अवसर पर जो शांति, जो संयम होता है, जो सुकून देता है, जो स्थिरता प्रदान करता है, जो भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंधों की शांति है, जो शांति महान जागरण का एक कारक है - यही उस समय की इंद्रिय शांति है।
[321] उस अवसर पर विचार की शांति क्या है?
उस अवसर पर जो शांति, जो संयम होता है, जो सुकून देने वाला होता है, जो बुद्धि के स्कंध की शांति होती है, जो शांति महान जागरण का एक कारक है - यही उस समय मौजूद विचार की शांति है।
[322-331] उस अवसर पर भावना और विचार दोनों को दर्शाने वाले शेष पाँच गुण: — "उछाल", "लचीलापन", आदि — का वर्णन §§ 42-51 में किया गया है।
[332-337] "सजगता", "बुद्धि", "शांति", "अंतर्दृष्टि", "समझ" और "संतुलन" का वर्णन क्रमशः §§ 290, 292 ("ज्ञान"), 291, 292, 289 ("ऊर्जा") और 291 में किया गया है।
[पृष्ठ 89] ये, या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ होती हैं — ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अच्छी हैं।
[सारांश।]
[337ए]

उस समय स्कंध चार थे,
गोले दो थे,
तत्व दो थे,
पोषक तत्व तीन थे,

इंद्रियां नौ थीं,
ध्यान पांच प्रकार का था,
मार्ग आठ प्रकार का था,
शक्तियां सात थीं और
कारण तीन थे।
संपर्क,
भावना,
बोध,
सोच,
विचार, <
<
< ये प्रत्येक एकल [कारक] हैं;

स्कंधों के
भावना,
बोध,
संश्लेषण,
बुद्धि, <
<
< ये प्रत्येक एकल [कारक] हैं;

विचार का क्षेत्र,
विचार करने की क्षमता,
प्रतिनिधि बौद्धिकता का तत्व,
एक [प्रतिनिधि] राज्य का क्षेत्र,
एक [प्रतिनिधि] राज्य का तत्व। <
<
< ये प्रत्येक एकल [कारक] हैं।

ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये सभी अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[पृष्ठ 90] [यहाँ सूचीबद्ध चार स्कंधों में से पहले दो से संबंधित प्रश्न और उत्तर धारा 59-61 के अनुसार ही दिए गए हैं।]
[338] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,
चिंतन, [16] अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
आनंद,
आत्म-संयम,
संकायों के
विश्वास,
एकाग्रता,
ऊर्जा,
ज्ञान,
सजगता,

जीवंतता,
यह विश्वास कि "मैं अज्ञात को जान लूंगा";
सही विचार,
सही आजीविका,
सही इरादा,
सही प्रयास,
सही वाणी,
सही जागरूकता,
सही कर्म,
सही एकाग्रता;
सात शक्तियाँ; [17]

कामवासना, घृणा और सुस्ती का अभाव ;
लोभ और द्वेष का अभाव,
निंदा का भय;
सही विचार;
कर्तव्यनिष्ठा,
शांति,
सहजता,
उत्साह,
फिटनेस,
लचीलापन,
इंद्रियों और विचारों की प्रत्यक्षता;
जागरूकता और बुद्धिमत्ता;
शांति और अंतर्दृष्टि;
पकड़ और संतुलन। [पृष्ठ 91] ये, या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ हों, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों को छोड़कर — ये संश्लेषण के स्कंध हैं।
[सारांश में शेष बिंदुओं से संबंधित प्रश्न आगे पूछे जाने की संभावना है।]
[340] कौन से राज्य अच्छे हैं? [18]
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है—और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब उस तक प्रगति कठिन होती है, परन्तु अंतर्ज्ञान तीव्र होता है...
[या] [341] . . . उसकी ओर प्रगति आसान है, लेकिन अंतर्ज्ञान सुस्त है . . .
[या] [342] . . . उसकी ओर प्रगति आसान और अंतर्ज्ञान तीव्र होने पर — तब संपर्क . . . जो संतुलन उत्पन्न होता है — ये . . . अच्छी अवस्थाएँ हैं।
[343] चार प्रकार की प्रणाली में दूसरे से चौथे ध्यान के मामले में और पंच प्रकार की प्रणाली में पहले से पाँचवें ध्यान के मामले में चार तरीकों को दोहराएँ।
[यहाँ शुद्धिकरण में प्रगति के तरीके समाप्त होते हैं]।
(ii.) शून्यता (सुन्नतम) पर खंड। [19]
(ए और बी)
[344] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्र ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म को समाप्त करने की दिशा में प्रगति होती है — और जब, प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए, वह विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय-सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें अवधारणा कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक होते हैं, जो एकांत से उत्पन्न होता है, आनंद और सहजता से भरा होता है, और जो शून्य होता है — तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है — ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[345] चतुर्विध प्रणाली पर द्वितीय से चतुर्थ ध्यान को और पंचविध प्रणाली पर प्रथम से पंचम ध्यान को दोहराएँ, प्रत्येक मामले में "और जो खाली है" वाक्यांश को जोड़कर।

[यहाँ समाप्त होता है] "शून्यता" खंड।

[पृष्ठ 93] (ग) प्रगति के तरीके, "शून्यता" को आधार मानते हुए (सुन्नत-मूलक-पतिपाद)।

[346] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान का अभ्यास करता है... और जब, प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए, वह... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... उस तक पहुँचने में कठिनाई और अंतर्ज्ञान की सुस्ती के कारण, विधि शून्यता की अवधारणा है - तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[347-349] उसी सूत्र को दोहराएँ, प्रगति के शेष तीन तरीकों (§§ 176-179) को क्रमिक रूप से प्रतिस्थापित करते हुए, प्रत्येक मामले में प्लीरासे "शून्यता की अवधारणा होने की विधि" को जोड़ते हुए।

[350] उसी सूत्र को दोहराएँ, क्रमशः चतुर्गुण प्रणाली और पंचगुण प्रणाली पर शेष झदनाओं को प्रतिस्थापित करते हुए, और प्रत्येक मामले में प्रगति के चार तरीकों को लागू करते हुए, "शून्यता" पर अतिरिक्त वाक्यांश के साथ।

(ii.) लक्ष्यहीन (अप्पनिहितम्)। [20]

(ए और बी)

[351] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान का अभ्यास करता है... और जब, प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो एकांत से उत्पन्न होता है, आनंद और सहजता से परिपूर्ण होता है, और जो लक्ष्यहीन होता है—तब जो संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है—ये... अवस्थाएँ अच्छी होती हैं।

[352] शेष तीन को प्रतिस्थापित करते हुए, और पाँचों झदनाओं को क्रमानुसार प्रतिस्थापित करते हुए, उसी फॉर्मिडा को दोहराएँ, प्रत्येक मामले में "और जो लक्ष्यहीन है" वाक्यांश को जोड़ते हुए।

[पृष्ठ 94] (ग) प्रगति के तरीके, उद्देश्यहीनता को आधार मानते हुए (अप्पनिहित-मूलक-पतिपाद)।

[353] जब वह उच्च आदर्श के ध्यान का अभ्यास करता है... और जब, ताकि वह इसके प्रथम चरण को प्राप्त कर सके, वह... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिसकी प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, विधि लक्ष्यहीनता की अवधारणा है - तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

[354-356] उसी सूत्र को दोहराएँ, प्रगति के शेष तीन तरीकों को क्रमिक रूप से प्रतिस्थापित करते हुए, प्रत्येक मामले में वाक्यांश "विधि लक्ष्यहीनता की अवधारणा है" को जोड़ते हुए।

[357] उसी सूत्र को दोहराएँ, शेष तीन और पाँच ध्यानों को क्रमानुसार प्रतिस्थापित करते हुए, और प्रत्येक मामले में प्रगति के चार तरीकों को लागू करते हुए, "लक्ष्यहीनता" पर अतिरिक्त वाक्यांश के साथ।

[2-20. शेष उन्नीस महान विधियाँ।]

[358] कौन से राज्य अच्छे हैं?

यहां उन्नीस अवधारणाएं दी गई हैं, जिनमें से प्रत्येक को पिछले 81 उत्तरों [§§ 277-357] में "उच्च आदर्श के ध्यान" के स्थान पर अरहतत्व के लिए मन को प्रशिक्षित करने के साधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं:
उच्च आदर्श का मार्ग।
उच्च आदर्श की ओर सचेतनता में प्रगति[21]
उच्च आदर्श की ओर आठ प्रयासों की प्रणाली[22]
उच्च आदर्श पर लागू रहस्यमय शक्तियों की श्रृंखला[23]।
उच्च आदर्श से संबंधित संकाय।
उच्च आदर्श से संबंधित शक्ति।
उच्च आदर्श की ओर महान जागरण।
[पृष्ठ 95] उच्च आदर्श का सत्य।
उच्च आदर्श की शांति[24]
उच्च आदर्श का सिद्धांत।
स्कंध का संबंध उच्च आदर्श से है।
उच्च आदर्श का क्षेत्र।
उच्च आदर्श का तत्व।
उच्च आदर्श का पोषण।
उच्च आदर्श से संपर्क।
उच्च आदर्श से जुड़ाव महसूस करना।
उच्च आदर्श से संबंधित धारणा।
उच्च आदर्श से संबंधित चिंतन।
उच्च आदर्श से संबंधित विचार।

[प्रगति के तरीकों (अधिपति) में प्रमुख प्रभाव।]
[359] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान का अभ्यास करता है... और जब, प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए, वह... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिस तक पहुँचने में कठिनाई होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, और जिसमें इच्छा, ऊर्जा, विचार या अन्वेषण का प्रभुत्व होता है, तब जो संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है—ये अवस्थाएँ अच्छी होती हैं।
[360] शेष तीन और पाँच ध्यान के मामले में इस सूत्र को दोहराएँ।
[361] शेष उन्नीस "महान विधियों" में से प्रत्येक के मामले में उपरोक्त [§§ 359, 360] को दोहराएँ।
[यहाँ समाप्त होता है] पहला मार्ग।

II. दूसरा मार्ग।
[362] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह उच्च आदर्श (समाधिपूर्ण ध्यान) के ध्यान का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ना और प्रगति करना संभव होता है, पुनर्जन्म का निवारण होता है — और जब, ताकि वह [पृष्ठ 96] द्वितीय अवस्था को प्राप्त कर सके, वह कामुक भावनाओं और द्वेष की शक्ति को कम कर देता है[25], और इस प्रकार, कामुक इच्छाओं से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है — तब संपर्क... ज्ञान की क्षमता का पूर्ण होना[26]... जो संतुलन उत्पन्न होता है — ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।
[यहाँ समाप्त होता है] दूसरा मार्ग।

III. तीसरा मार्ग।
[363] कौन से राज्य अच्छे हैं?

जब वह उच्च आदर्श (समाधिपूर्ण ध्यान) के ध्यान का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ना और प्रगति करना संभव होता है, पुनर्जन्म का निवारण होता है - और जब, तीसरे चरण को प्राप्त करने के लिए, वह सभी इंद्रिय-संबंधी भावनाओं और द्वेष[27] के अवशेषों को त्याग देता है, और इस प्रकार, [पृष्ठ 97] इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से विरक्त, बुरे विचारों से विरक्त, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है - तब संपर्क... ज्ञान की क्षमता पूर्ण हो जाती है... जो संतुलन उत्पन्न होता है - ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।
[यहाँ समाप्त होता है] तीसरा मार्ग।

IV. चौथा मार्ग।
[364] कौन से राज्य अच्छे हैं?
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह चौथे चरण को प्राप्त करने के लिए रूप के प्रति सभी जुनून, निराकार के प्रति सभी जुनून, सभी अहंकार, उत्तेजना और अज्ञान को पूर्णतः त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है - तब संपर्क... ज्ञान की क्षमता का पूर्ण होना... उत्पन्न होने वाला संतुलन - ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।
[364क] उस अवसर पर ज्ञान की शक्ति किस प्रकार परिपूर्ण होती है (अन्निन्द्रियम)?
वह ज्ञान जो उन सत्यों की अनुभूति कराता है जिन्हें पहले ही अनुभव किया जा चुका है, समझा जा चुका है, प्राप्त किया जा चुका है, पहचाना जा चुका है और जाना जा चुका है—वह ज्ञान जो समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज आदि है।
[धारा 292 के अनुसार जारी रखें।]
ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, अच्छी अवस्थाएँ हैं।
यहां चौथा मार्ग समाप्त होता है।

[यहाँ समाप्त होता है] उच्च आदर्श पर चिंतन।
- फुटनोट:
1. अर्थात्, अरहतत्व या निर्वाण की ओर ले जाने वाले जीवन पथ का पहला चरण। उत्तरों में, पथ के स्थान पर भूमि (चरण) शब्द का प्रयोग किया गया है। और "प्रथम भूमि" को साई. (पृष्ठ 214, 215) में संन्यास के प्रथम फल (या फल प्राप्ति) के समतुल्य घोषित किया गया है (यानी, द्वितीय सूत्र); दूसरे शब्दों में, सोतापत्ति या "रूपांतरण" के फल के समतुल्य, जैसा कि इसे कहा गया है।

2. वह विशेष प्रकार का ध्यान, जिसका अभ्यास, उद्भव और विकास बुद्धघोष द्वारा "एकचित्तक्खनिकम् अप्पना-ज्ञानम्" के रूप में वर्णित किया गया है - किसी विचार की क्षणिक चमक से प्रेरित अवधारणा पर तल्लीन ध्यान (देखें केवी, पृष्ठ 620, 458) - और स्वयं ग्रंथ द्वारा इसे निय्यानिकम् अपचयगमम् के रूप में वर्णित किया गया है। इन दोनों अंतिम शब्दों में से पहले पर इस प्रकार टिप्पणी की गई है:
"यह संसार से, पुनर्जन्म के चक्र से (नीचे की ओर) आगे बढ़ना है। या, इसके माध्यम से आगे बढ़ना है। जो व्यक्ति इससे परिपूर्ण है, 111 को समझकर आगे बढ़ता है, 111 के उद्गार को त्यागकर आगे बढ़ता है, 111 के निवारण को जानकर आगे बढ़ता है, (उस निवारण की ओर ले जाने वाले) मार्ग का अनुसरण करके आगे बढ़ता है।"
और दूसरा शब्द: यह उस पुनर्जन्म के संचय और गुणन के समान नहीं है जो तीनों लोकों से संबंधित गुणों द्वारा होता है। यह उस व्यक्ति के समान है जो अठारह हाथ ऊँचा किला खड़ा करने के बाद एक बड़ा हथौड़ा लेकर उसे गिराने और ध्वस्त करने का काम शुरू कर दे। क्योंकि ऐसा करने से भी तीनों लोकों के गुणों द्वारा संचित पुनर्जन्म की क्षमता नष्ट हो जाती है, क्योंकि इससे पुनर्जन्म के कारणों में कमी आ जाती है।

3. दित्थिगतानी, शाब्दिक अर्थ है विचारों का सहारा लेना। सभी परंपराएँ या अटकलें जिनका पालन या तो बिना सबूत के या अपर्याप्त सबूतों के आधार पर किया जाता है, जैसा कि "व्यक्तिवाद का सिद्धांत, उलझन और मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण" (असल. 214; इन्फ्रा, §§ 1002-1005) नामक अवस्थाओं में निहित है।

4. इटैलिक्स चेतना के उन घटकों को दर्शाते हैं जिनमें यह ध्यान धारा 160 में उल्लिखित ध्यान से भिन्न है, जिसके घटक प्रथम प्रकार के अच्छे विचार, धारा 1 के घटकों के समान हैं।

5. "अष्टांग मार्ग" के ये तीन कारक, जो आठ प्रकार के अच्छे विचारों में स्पष्ट रूप से शामिल नहीं थे, साइ. के अनुसार, "या जो भी अवस्थाएँ हों" में अप्रत्यक्ष रूप से शामिल थे। ऊपर देखें, पृष्ठ 5, नोट 1। यहाँ साइ. केवल यह टिप्पणी करता है कि, जबकि ये तीनों अब "पाली में शामिल" हैं क्योंकि अष्टांग मार्ग का लक्ष्य निर्वाण है, "दया" और "सहानुभूति" शामिल नहीं हैं क्योंकि उनका उद्देश्य सजीव प्राणी हैं, निर्वाण नहीं।

6. चूंकि यह मार्ग 'आठ गुना मार्ग' है, इसलिए "अवधारणा" (विटाक्को) को इसमें शामिल माना जाता है, क्योंकि यह लगभग "इच्छा" (संकप्पो) के समतुल्य है।

7. पीति-संबोध्झंगो। सात संबोध्झंगों का वर्णन अ. iv. 23; एस. v. 110, 111; और मिल. 340 में भी मिलता है, जहाँ इन्हें "अरहतों के सात गुना ज्ञान का रत्न" कहा गया है। संबोधि नामक अवस्था के लिए, पिहिस डेविड्स की "बुद्ध के संवाद", i., पृष्ठ 190-192 देखें। इसे साइ. (217) में इसकी सात घटक अवस्थाओं के सामंजस्य के रूप में वर्णित किया गया है, और इसे आसक्ति (लिनम) और उत्तेजना के संचय, इंद्रिय सुखों में लिप्तता और तृप्ति, और शून्यवाद और शाश्वतवाद की अटकलों की लत से बने हानिकारक मिश्रण के विपरीत बताया गया है (नीचे, § 1003)।
बुझहति क्रिया का इस प्रकार भावार्थ किया जा सकता है: वह बुराई की नींद से जागता है, या चार आर्य सत्यों को समझता है, या निर्वाण को प्राप्त करता है।

8. सती, जैसा कि धारा 14 में दोहराया गया है, मुद्रित पाठ से हटा दिया गया है। के. इसे दोहराता है।

9. धम्मविकायो के नाम से सत्य, सिद्धांत या धर्म की खोज करना।

10. बुद्धघोष (216) के अनुसार, उत्साहपूर्ण, अडिग विद्यार्थी में जो प्रेरणादायक आश्वासन की भावना जागृत होती है कि वह महान सत्यों के सिद्धांत को जान लेगा - वह अमृतमय मार्ग जो सांसारिक गतिविधियों और परिणामों के चक्र में अज्ञात है जहाँ लक्ष्य अमृतमय नहीं है - उसके लिए एक नई क्षमता या नैतिक सिद्धांत का उदय है।

11. तेसम धम्मनम्... सच्चिकिरियाय पैना, इत्यादि, जिसका शाब्दिक अर्थ है किसी बोध से प्राप्त ज्ञान (या समझ, इत्यादि)। इसका भावार्थ है "आँखों के ठीक सामने लाना" (असल. 218)। प्रथम मार्ग पर चलते हुए विद्यार्थी उन संक्षिप्त सूत्रों का पूर्ण अर्थ सीखता है जिन्हें चार आर्य सत्य कहा जाता है, जिनका बुद्ध ने अपने प्रथम आधिकारिक कथन में प्रतिपादन किया था। इससे पहले उसे इनका केवल अप्रत्यक्ष ज्ञान होता है; और जैसे कोई व्यक्ति अपने सामान्य परिवेश से बाहर किसी निवास स्थान पर आकर नए वस्त्र, वस्त्र और भोजन प्राप्त करता है, तो उसे नए अनुभवों का अहसास होता है, उसी प्रकार इन सत्यों को, जो अब तक उसे ज्ञात नहीं थे, "अज्ञात" कहा जाता है (असल. 218)।

12.अर्थात् झूठ बोलना, निंदा करना, अभद्र भाषा बोलना और निरर्थक बातें करना। देखें Cula Sila, eg, in D. i. 4.

13. सेतुघातो, अर्थात्, बुराई करने का कारण या स्थिति — अर्थात्, कामवासना, घृणा और सुस्ती (असल. 219)। यह रूपक अ. i. 220, 221, 261; ii. 145, 146 में मिलता है।

14.अर्थात्, हत्या (किसी भी जीवित प्राणी की), चोरी और व्यभिचार। डी.आई. 4.

15. समाधि, सम्बोज्झंगो से पहले, मुद्रित पाठ से हटा दिया गया है।

16. मुद्रित पाठ में 'चेतना' के स्थान पर 'वेदना' लिखा है, जो स्पष्ट रूप से गलत है।

17. इन्हें मूल रूप में धारा 277 में दिए गए अनुसार ही प्रस्तुत किया गया है।

18. पाठ में [339] के रूप में चिह्नित उत्तर केवल लोकुत्तरा-झानम की पुनरावृत्ति है, जैसे दुक्खपतिपदम दं-धभिफिनम, यानी [277] में दिए गए पहले "प्रगति के तरीके" की। इसलिए मैंने इसे छोड़ दिया है। इस संदर्भ में सी.वाई. के. द्वारा कोई पुनरावृत्ति नहीं देखी गई है।

19. साइ. (221) में इसे सुनफियात-वरो कहा जाता है, जिसमें उपखंड शुद्धिक-सुन्नत, या "शुद्धिकरण-सूत्र पर लागू शून्यता", यानी (ए और बी) चिह्नित समूह, और सुईनात-पतिपाद, या "शून्यता के संबंध में प्रगति के तरीके", यानी (सी) चिह्नित समूह शामिल हैं।
तकनीकी शब्द "शून्यता" के लिए, ऊपर दिए गए अनुच्छेद 121 और खिस डेविड्स की "योगवचार की नियमावली", पृष्ठ 27, 28 देखें। वहाँ चर्चा की गई तीन "पहेलियों" - "शून्य, लक्ष्यहीन और चिह्नहीन" - में से केवल पहली दो को ही यहाँ साधना के लिए निर्धारित किया गया है। बुद्धघोष इस विषय पर विस्तार से चर्चा करते हैं (आस्ल 221-225)। वे समझाते हैं कि ये तीनों शब्द आदर्श (लोकउत्तर-मग्गो) तक पहुँचने के मार्ग के अनेक नाम हैं, जिनमें से प्रत्येक अन्य दो की तुलना में इसके एक विशेष पहलू को अधिक स्पष्ट करता है, फिर भी तीनों अवधारणाओं के बिना कोई प्रगति नहीं की जा सकती।
सचेत आदर्श के रूप में इस मार्ग के उदय की विशेषता यह है कि संस्कारों में कोई स्थायी आत्मा नहीं होती और न ही सुखदायी तत्व मौजूद होते हैं। इस मार्ग का गुण या विशेषता पूरी तरह से कामवासना, घृणा और सुस्ती से मुक्ति है। इसका उद्देश्य भी निर्वाण है। लेकिन "शून्य" शब्द का मुख्य अर्थ पहले बताए गए तथ्य से संबंधित है - किसी भी वस्तु में किसी भी आधार या आत्मा का न होना।
"लक्ष्यहीन" मुख्य रूप से दुःख, यानी पीड़ा या बीमारी के स्वरूप की अंतर्दृष्टि पर लागू होता है। इस अंतर्दृष्टि के फलस्वरूप संस्कारों के प्रति सभी आकांक्षाएँ या लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं। इसके द्वारा ही आदर्श का मार्ग प्रकट होता है। तीसरा "रहस्य", "चिह्नहीन" - अर्थात्, वह मार्ग जो स्थायित्व, दुःख और आत्मा के तीन चिह्नों या झूठे सिद्धांतों से मुक्त माना जाता है - पर बाद में ध्यान दिया जाएगा (धारा 506, 511, आदि)।

20. जैसा कि ऊपर बताया गया है, साइ. {ihid.) इस और अगले खंड को शून्यता पर दो खंडों के साथ समन्वयित करता है, (ए और बी) को शुद्धिका-अप्पनिहित और अगले समूह को अप्पनिहित-पतिपाद कहता है।

21.सतीपट्टाना. एम. आई. 56.

22. सम्मप्पधना. नीचे देखें, धारा 1367.

23. इद्धिपदा. ऊपर देखें, धारा 273 इत्यादि।

24. समाथो. ऊपर देखें, धारा 54.

25. तुलना करें डी. i. 156 और एमपीएस 16, 17। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ और निम्नलिखित उत्तर में मोह (सुस्ती) में कमी का उल्लेख नहीं है। हालाँकि, नीचे, § 1134 देखें। अज्ञान (= सुस्ती) पर वास्तव में विजय केवल चौथे मार्ग में ही प्राप्त होती है। इस कमी का वर्णन (असल. 238) दो तरीकों से किया गया है: दुष्ट प्रवृत्तियाँ कभी-कभी उत्पन्न होती हैं और आदतन नहीं रहतीं, और जब वे उत्पन्न

होती हैं तो उनकी तीव्रता कम हो जाती है। वे नए कटे हुए खेत में घास की विरल पत्तियों की तरह हैं, और एक नाजुक झिल्ली या मक्खी के पंख की तरह हैं।

26. धारा 296 देखें। सोतिपत्ति, या प्रथम मार्ग के विद्यार्थी का विश्वास और आशा, अपने ज्ञान के स्तर (जिसे बौद्ध धर्मग्रंथ 'इयातमरियादम' कहते हैं, पृष्ठ 239) की सीमाओं से जूझते हुए, अब सकदागामी के रूप में उस गहन दार्शनिक अंतर्दृष्टि की प्राप्ति से पुरस्कृत होती है, जो 'अन्ना' या सर्वोत्कृष्ट ज्ञान कहे जाने वाले 'चार सत्यों' के पूर्ण निहितार्थों में अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, और बौद्ध ग्रंथों में केवल विकसित या विकासशील अरहतत्व पर ही लागू होती है। नीचे धारा 555 देखें।

27. इन्हें, जिन्हें ईसा मसीह ने द्वितीय मार्ग के संदर्भ में सामूहिक रूप से 'किलेसा' कहा है, अब 'सौनोजननी' के नाम से जाना जाता है। धारा 1229 और उसके बाद की धाराएँ तथा धारा 1113 और उसके बाद की धाराएँ देखें।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग2-अध्याय 6
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
  - भाग 2 - चेतना की बुरी अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु

1अध्याय VI - बारह बुरे विचार
1.1द्वादा अकुसलाचित्तनी
1.1.1मैं।
1.1.2II.
1.1.3III.
1.1.4IV.
1.1.5वी
1.1.6VI.
1.1.7सातवीं।
1.1.8आठवीं।
1.1.9IX.
1.1.10एक्स।
1.1.11XI.
1.1.12बारह.
1.2- फुटनोट:

अध्याय VI - बारह बुरे विचार
द्वादा अकुसलाचित्तनी
मैं।
[पृष्ठ 98] [365] कौन से राज्य बुरे हैं?[1]
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है, जो खुशी के साथ होता है, और विचारों और मतों से जुड़ा होता है,[2] और जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद,[3] स्पर्श, [मानसिक] अवस्था, या कुछ भी हो, तो संपर्क,
भावना,

बोध,
सोच,
विचार,
अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
आनंद, [पृष्ठ 99] सहजता,
आत्म-संयम होता है;[4]

ऊर्जा,
एकाग्रता,[5] विचार,
खुशी, जीवंतता की क्षमताएँ
;
गलत विचार,
गलत इरादा,
गलत प्रयास,
गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,
एकाग्रता,
कर्तव्यहीनता,
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
वासना, लोभ,
सुस्ती,[6] गलत विचार,
कर्तव्यहीनता,
दोष की अवहेलना,
[पृष्ठ 100] शांत,
पकड़,[7] संतुलन। अब, ये — या जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ उस अवसर पर होती हैं — ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो बुरी हैं।[8]
[366-370] उस अवसर पर संपर्क क्या है... भावना... बोध... सोच... विचार?
अनुच्छेद 2-6 में दिए गए अनुसार उत्तर दें।
[371] उस अवसर पर गर्भाधान क्या है?
धारा 7 के अनुसार उत्तर दें, 'सही इरादे' के स्थान पर 'गलत इरादे' (मिच्चासनकप्पो) का प्रयोग करें।
[372-374] उस अवसर पर विवेचनात्मक विचार क्या है... आनंद... आराम?
उत्तर क्रमशः अनुच्छेद 8-10 के अनुसार हैं।
[375] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है?
धारा 11 के अनुसार उत्तर दें, 'सही सांद्रता' के स्थान पर 'गलत सांद्रता' प्रतिस्थापित करें।
[376] उस अवसर पर ऊर्जा की क्षमता क्या है?
धारा 13 के अनुसार उत्तर दें, 'सही प्रयास' के स्थान पर 'गलत प्रयास' प्रतिस्थापित करें।
[377] उस अवसर पर एकाग्रता की क्षमता क्या है?
धारा 375 के अनुसार उत्तर दें।
[पृष्ठ 101] [378-380] उस अवसर पर विचार करने की क्षमता क्या है... खुशी... जीवंतता?
अनुच्छेद 17-19 में दिए गए अनुसार उत्तर दें।

[381] उस अवसर पर गलत विचार (मिच्चदित्थी) क्या हैं?[9]
उस अवसर पर जो विचार राय में चलना,
राय का जंगल,[10]
राय का वीरान इलाका,[11]
राय का कठपुतली शो,[12]
राय की हाथापाई,[13]
राय की बेड़ी,[14]
उसकी पकड़[15] और दृढ़ता[16], उसकी ओर
झुकाव,[17]
उससे संक्रमित होना,
एक बाई-पाथ,
एक गलत रास्ता,
गलत होना,
'फोर्डिंग प्लेस',[18]
पकड़ की अस्थिरता - ये वे गलत विचार हैं जो तब मौजूद होते हैं।
[पृष्ठ 102] [382-384] उस अवसर पर गलत इरादा... गलत प्रयास... गलत एकाग्रता क्या है?
उत्तर क्रमशः धारा 371, 376 और 375 के अनुसार होंगे।
[885, 386] उस अवसर पर ऊर्जा की शक्ति क्या है... एकाग्रता की शक्ति?
धारा 383 और 384 में उल्लिखित अनुसार सहायक।
[387] उस अवसर पर अविवेकीपन (अहिरिकबलम) की शक्ति क्या है?
जब विवेकपूर्ण संशय की भावना महसूस होनी चाहिए, उस समय उसका अभाव, बुरे और पापपूर्ण कार्यों को करने में विवेकपूर्ण संशय का अभाव—यही उस समय मौजूद निर्विवेकता की शक्ति है।
[388] उस अवसर पर निंदा की उपेक्षा (अनोत्तप्पबलम) की शक्ति क्या है?
उस अवसर पर अपराधबोध की भावना का अभाव जहाँ अपराधबोध महसूस किया जाना चाहिए, बुरे और दुष्ट अवस्थाओं को प्राप्त करने पर अपराधबोध की भावना का अभाव[19] — यही दोष की उपेक्षा की शक्ति है जो तब होती है।
[389] उस अवसर पर वासना क्या है?
उस समय जो कामवासना, वासना, कामुकता होती है, जो मोह, मोह की भावना और अवस्था होती है, जो लोभ, जो बुराई की जड़ है—वही कामवासना उस समय मौजूद होती है।
[390] उस अवसर पर नीरसता क्या है?
उस अवसर पर ज्ञान और दृष्टि का अभाव;
समन्वय, निर्णय, जागरूकता[20] और अंतर्दृष्टि का अभाव;
समझने, आत्मसात करने में असमर्थता;
तुलना करने, विचार करने, [पृष्ठ 103] और सिद्ध करने में असमर्थता;
मूर्खता, बचकानापन, बुद्धि का अभाव;
वह सुस्ती जो अस्पष्टता, भ्रम, अज्ञानता है, अज्ञानता का सैलाब[21], अज्ञानता का बंधन, अज्ञानता का पूर्वाग्रह, अज्ञानता का जुनून, अज्ञानता की बाधा;
वह सुस्ती जो बुराई की जड़ है।
— तब जो नीरसता छाई रहती है, वही सबसे बड़ी नीरसता होती है।
[391-397] उस अवसर पर लोभ क्या है... गलत विचार क्या हैं... असावधानी क्या है... दोष की उपेक्षा क्या है... शांति क्या है... पकड़ क्या है... संतुलन क्या है?
उत्तर क्रमशः धारा 389, 381, 387, 388, 375, 376 और फिर से 375 के अनुसार हैं।
या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ हों — ये सभी अवस्थाएँ बुरी हैं।

[सारांश।]

[397ए]

अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,

क्षेत्र दो हैं,

तत्व दो हैं,

पोषक तत्व तीन हैं,

क्षमताएँ पाँच हैं,

ध्यान पाँच गुना है,

पथ चार गुना है,

शक्तियाँ चार हैं,

कारण दो हैं,[22]

संपर्क, > प्रत्येक एकल [कारक] हैं;

इत्यादि। > इत्यादि।

[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 104] [398] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,

चिंतन,

अवधारणा,

विवेचनात्मक विचार,

आनंद,

आत्म-संयम;

ऊर्जा,

एकाग्रता और

जीवंतता जैसी क्षमताएं ;

गलत विचार,

गलत इरादा,

गलत प्रयास,

गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,

एकाग्रता,

कर्तव्यहीनता,

दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;

कामवासना, लोभ,

सुस्ती; गलत विचार;

कर्तव्यहीनता,

दोष की अवहेलना;

शांति,

पकड़,

संतुलन। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारण-प्रेरित अवस्थाएँ, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों से इतर, ये संश्लेषण के स्कंध हैं।

[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

II.
[399] कौन से राज्य fchat खराब हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो आनंद से युक्त होता है, विचारों और मतों से जुड़ा होता है, और एक सचेत मकसद से प्रेरित होता है,[23] और जिसका उद्देश्य एक दृश्य ... या कुछ और होता है, तो संपर्क होता है ... संतुलन ...
[प्रथम विचार, धारा 365 के अनुसार जारी रखें।]

III.
[400] कौन से राज्य बुरे हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो सुख के साथ होता है और विचारों और मतों से असंबद्ध होता है, और जिसका विषय कोई दृश्य, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, या कुछ और होता है, तो संपर्क आदि होता है।
[पहले बुरे विचार की तरह जारी रखें, लेकिन 'गलत विचार' नामक एकल, दो बार सूचीबद्ध आइटम को छोड़ दें।][24]
[सारांश।]
[400क] अब, उस समय स्कंध चार हैं,
गोले दो हैं, [पृष्ठ 106] तत्व दो हैं,
पोषक तत्व तीन हैं,
शक्तियाँ पाँच हैं,
ध्यान पाँच प्रकार का है,
मार्ग तीन प्रकार का है,
इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
[401] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
धारा 398 के अनुसार उत्तर दें, 'गलत विचारों' को छोड़ दें।

IV.
[402] कौन से राज्य खराब हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो आनंद से युक्त होता है, विचारों और मतों से असंबद्ध होता है, और एक सचेत मकसद से प्रेरित होता है, और जिसका उद्देश्य कोई दृश्य ... या कुछ और होता है, तब संपर्क ... संतुलन ... होता है।
[तीसरे विचार, § 400 के अनुसार जारी रखें।]
वी
[403] कौन से राज्य खराब हैं?

जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो अनासक्ति से युक्त होता है, और विचारों और मतों से जुड़ा होता है, और जिसका विषय कोई दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, [मानसिक] अवस्था, या कुछ और होता है, तब संपर्क, विचार,
भावना, अवधारणा,
बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, अनासक्ति,
आत्म-संयम होता है;

ऊर्जा, [पृष्ठ 107] एकाग्रता, विचार की क्षमताएँ
;
निस्वार्थता,
जीवंतता;
गलत विचार,
गलत इरादा,
गलत प्रयास,
गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,
एकाग्रता,
कर्तव्यहीनता,
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
वासना, लोभ,
सुस्ती; गलत विचार;
अचेतना,
दोषारोपण की अवहेलना,
संयम,
समझ,
संतुलन। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ—ये सभी बुरी अवस्थाएँ हैं।
[404-407] 'संपर्क', 'भावना', 'निस्वार्थता' और 'निस्वार्थता की क्षमता' पर प्रश्न और उत्तर, धारा 151-154 में दिए गए प्रश्नों के समान हैं।

[सारांश।]
[407ए]

अब, उस समय स्कंध चार हैं,
इत्यादि,
शक्तियाँ पाँच हैं,
ध्यान चार गुना है,[25] [पृष्ठ 108] मार्ग चार गुना है,
इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
[408] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
संपर्क, चिंतन, अवधारणा, विवेचनात्मक विचार, आत्म-संयम आदि।
[धारा 398 के अनुसार जारी रखें, 'निस्वार्थता' के साथ असंगत होने के कारण 'आनंद' शब्द को हटा दिया गया है।]

VI.
[409] कौन से राज्य बुरे हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो निस्वार्थता से युक्त होता है, विचारों और मतों से जुड़ा होता है, और एक सचेत मकसद से प्रेरित होता है, और जिसका उद्देश्य कोई दृश्य ... या कुछ और होता है, तो संपर्क आदि होता है।
[विचार V के अनुसार जारी रखें।]

सातवीं।
[410] कौन से राज्य बुरे हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो निस्वार्थता से युक्त होता है, विचारों और मतों से असंबद्ध होता है, और जिसका उद्देश्य कोई दृश्य ... या कुछ और होता है, तब संपर्क आदि होता है।
[विचार V के अनुसार जारी रखें, 'गलत विचारों' को हटा दें।]
[पृष्ठ 109] [सारांश।]
[410ए]

उस समय स्कंध चार होते हैं,
इंद्रियां
पांच होती हैं,
ध्यान चार प्रकार का होता है,
मार्ग तीन प्रकार का होता है,
इत्यादि।
[धारा 397क के अनुसार जारी रखें।]
[411] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
धारा 398 के अनुसार एन्सिवर, जिसमें 'खुशी' और 'गलत विचार' दोनों को हटा दिया गया है।

आठवीं।
[412] कौन से राज्य बुरे हैं?
एन्सिवर जैसा कि विचार VII में है, अतिरिक्त जैक्टर के साथ, जैसा कि विचार II, IV, VI में डाला गया है, 'एक सचेत मकसद से प्रेरित'।[26]

IX.
[413] कौन से राज्य बुरे हैं?

जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो उदासी से युक्त होता है और घृणा से जुड़ा होता है,[27] और जिसका उद्देश्य एक दृष्टि, एक ध्वनि, एक गंध, एक स्वाद, एक स्पर्श, एक मानसिक स्थिति, या कुछ भी हो, तो संपर्क,
भावना,
बोध, [पृष्ठ 110] सोच,
विचार,
अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
संकट,
आत्म-संयम होता है;

ऊर्जा,
एकाग्रता,
विचार-मंथन,
उदासी,

जीवंतता जैसी क्षमताएं ;
गलत इरादा,
गलत प्रयास,
गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,
एकाग्रता,
कर्तव्यहीनता,
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
घृणा,
सुस्ती;
द्वेष;
अचेतना,
दोषारोपण की अवहेलना,
शांति,
पकड़,
संतुलन। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणिक अवस्थाएँ - ये सभी बुरी अवस्थाएँ हैं।
[414] 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर, § 2.

[415] उस अवसर पर भावना क्या है?
मानसिक पीड़ा, मानसिक कष्ट (दुक्खम), जो उस अवसर पर प्रतिनिधि बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होता है; विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ादायक, कष्टदायक अनुभूति; [पृष्ठ 111] विचार के संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ादायक, कष्टदायक भावना — यही वह कष्ट है जो तब होता है।
[416, 417] उस अवसर पर दुःख (दुक्खम) क्या है... उदासी (डोमनसिंद्रियम) की क्षमता क्या है?
धारा 415 में 'भावना' के लिए दिए गए उत्तरों में 'प्रतिनिधि बौद्धिकता के उपयुक्त तत्व के साथ' को हटा दें।
[418] उस अवसर पर घृणा क्या है?
घृणा, नफरत, नफरत जो उस अवसर पर एक अव्यवस्थित स्वभाव है, परेशान होना,[28] विरोध, शत्रुता, अशिष्टता,[29] अचानकता,[30] हृदय की घृणा - यही वह घृणा है जो तब होती है।
[419] उस अवसर पर द्वेष क्या है?
'नफरत' के लिए दिए गए उत्तर की तरह ही उत्तर दें।
या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ हों — ये सभी अवस्थाएँ बुरी हैं।

[पृष्ठ 112] [सारांश।]

[419ए]

अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,
इत्यादि,
संकाय पाँच हैं,
ध्यान चार गुना है,
पथ तीन गुना है,
शक्तियाँ चार हैं,

कारण दो हैं,[31] इत्यादि।
[धारा 58-61 के अनुसार जारी रखें।]
[420] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,
चिंतन,
अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
आत्म-संयम;

ऊर्जा,
एकाग्रता और जीवंतता की क्षमताएं
;
गलत इरादा,
गलत प्रयास,
गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,
एकाग्रता,
कर्तव्यहीनता,
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
घृणा,
सुस्ती;
[पृष्ठ 113] दुर्भावना;
अचेतना,
दोषारोपण की उपेक्षा,
शांति,
पकड़,
संतुलन। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली अन्य कोई भी निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, जो भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों से इतर हों, संश्लेषण के स्कंध कहलाती हैं।

एक्स।
[421] कौन से राज्य बुरे हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो उदासी से युक्त हो, घृणा से जुड़ा हो, और किसी सचेत मकसद से प्रेरित हो, और जिसका उद्देश्य कोई दृश्य हो ... या कुछ और, तब संपर्क आदि होता है।
[विचार IX के अनुसार जारी रखें।]

XI.
[422] कौन से राज्य बुरे हैं?
जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो निस्वार्थता से युक्त होता है और उलझन से जुड़ा होता है, और जिसका विषय दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मानसिक अवस्था, या कुछ भी हो, तब संपर्क,
भावना, बोध,
चिंतन

,
विचार,
अवधारणा, [पृष्ठ 114] विवेचनात्मक विचार,
निस्वार्थता,
आत्म-संयम होता है;

ऊर्जा, निस्वार्थता,
विचारोत्तेजना, जीवंतता जैसी क्षमताएं ;
गलत इरादा,
गलत प्रयास;

ऊर्जा,
कर्तव्यहीनता और
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
असमंजस;
सुस्ती;
अचेतना,
दोष की अवहेलना,
लोभ। ये, या उस समय उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ—ये सभी बुरी अवस्थाएँ हैं।
[423] उस अवसर पर संपर्क क्या है?

सामान्य सूत्र।
[424] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है?

उस अवसर पर जो विचार कायम रहता है[32] — यही वह आत्म-संयम है जो तब होता है।
[पृष्ठ 115] [425] उस अवसर पर उलझन (विकिचिच्चा) क्या है?[33]
संदेह, हिचकिचाहट, शंका, जो उस [पृष्ठ 116] अवसर पर उलझन[34] व्याकुलता; विचलित होना, चौराहे पर खड़ा होना;[35] पतन,[36] समझ की अनिश्चितता; टालमटोल, हिचकिचाहट;[37] पूरी तरह से समझने में असमर्थता,[38] मन की कठोरता,[39] मानसिक पीड़ा[40] — यही वह उलझन है जो तब होती है। [पृष्ठ 117]
[सारांश।]
[425ए]

अब, उस समय स्कंध चार हैं,
इत्यादि,
शक्तियाँ चार हैं,
ध्यान चार गुना है,
पथ दो गुना है,
शक्तियाँ तीन हैं,
कारण एक है,[41] इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
[426] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,
चिंतन,

अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
आत्म-संयम;

ऊर्जा, स्फूर्ति जैसी क्षमताएं
;
[पृष्ठ 118] गलत इरादा,
गलत प्रयास;

ऊर्जा,
कर्तव्यहीनता और
दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;
उलझन,
सुस्ती;
अचेतनता,
दोष की उपेक्षा,
लालच.[42] या जो भी अन्य, आदि।
[धारा 420 के अनुसार जारी रखें।]

बारह.
[427] कौन से राज्य बुरे हैं?

जब कोई बुरा विचार उत्पन्न होता है जो अनासक्ति से युक्त होता है और उत्तेजना से जुड़ा होता है, और जिसका उद्देश्य एक दृश्य, एक ध्वनि, एक गंध, एक स्वाद, एक स्पर्श, एक मानसिक अवस्था, या कुछ भी हो सकता है, तब संपर्क,
भावना,
बोध,
चिंतन,
विचार,
अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
अनासक्ति ,
आत्म-संयम , ऊर्जा, एकाग्रता, विचार, अनासक्ति, [पृष्ठ 119] अनासक्ति, जीवंतता
की क्षमताएं होती हैं ;

गलत इरादा,
गलत प्रयास,
गलत एकाग्रता;

ऊर्जा, एकाग्रता,

कर्तव्यहीनता,

दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;

उत्तेजना;

सुस्ती;

अचेतना,

दोषारोपण की अवहेलना,

शांति, पकड़,

संतुलन। ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणिक अवस्थाएँ - ये सभी बुरी अवस्थाएँ हैं।

[428] 'संपर्क' पर सामान्य प्रश्न और उत्तर।

[429] उस अवसर पर उत्तेजना (उद्धच्चम) क्या है?

उस अवसर पर मन की उत्तेजना जो बेचैनी, हृदय की व्याकुलता, मन की उथल-पुथल होती है - यही वह उत्तेजना है जो तब होती है।[43]

[पृष्ठ 120] [429ए]

अब, उस समय

स्कंध चार हैं,

इत्यादि, शक्तियाँ पाँच हैं, [पृष्ठ 121] ध्यान चार प्रकार का है,

मार्ग तीन प्रकार का है,

शक्तियाँ चार हैं,

कारण एक है, इत्यादि।

[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 122] [430] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,

चिंतन,

अवधारणा,

विवेचनात्मक विचार,

आत्म-संयम;

ऊर्जा,

एकाग्रता और जीवंतता की क्षमताएं

;

गलत इरादा,

गलत प्रयास,

गलत एकाग्रता;

ऊर्जा,

एकाग्रता,

कर्तव्यहीनता,

दोषारोपण की अवहेलना जैसी शक्तियां ;

उत्तेजना;

सुस्ती;

अचेतना,

दोषारोपण की अवहेलना,

शांति,

समझ,
संतुलन।
या जो भी अन्य, इत्यादि।
[धारा 62 के अनुसार जारी रखें।]
यहां बारह बुरे विचार समाप्त होते हैं।

- फुटनोट:
1. इस संदर्भ में बारह विचारों के वे घटक जो स्वयं नैतिक रूप से तटस्थ हैं, उन्हें अच्छे विचारों के संदर्भ में दिए गए अर्थ में अपरिवर्तित समझा जाना चाहिए। बुरे विचारों के लिए इंद्रिय जगत के अलावा अस्तित्व का कोई अन्य क्षेत्र नहीं है, यह बात संपूर्ण रूप से समझी जानी चाहिए (असली. 247)।

2.दिट्ठिगता-संपयुत्तम। सी एफ पी.83, एन.1, §§ 381,1003 के साथ।

3. Rasarammanam va अनजाने में मुद्रित पाठ में छूट गया है।

4.अगला नोट देखें।

5. बौद्ध धर्म के उच्चतर जीवन के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है; फिर भी, यह श्रेष्ठता का आधार होने के बजाय, प्रभावी बुराई करने के लिए भी आवश्यक है। बुद्धघोष कहते हैं कि यदि मन विचलित न हो, तो हत्यारे का चाकू नहीं चूकता, चोरी असफल नहीं होती, और एक ही उद्देश्य (शाब्दिक रूप से, एक ही मन) से बुराई की जाती है (असल. 248)। हिब्रू मुहावरे की तुलना करें जिसका अर्थ है 'मन का अच्छे या बुरे कार्य के लिए दृढ़ होना' (उपदेशक. 82:11; भजन संहिता 98:8)।

6. घृणा (ऐसा करना) और द्वेष (व्यापादो) बुरे विचारों के कारकों में स्थान नहीं पाते (अच्छे विचारों में उनके विपरीत तत्वों के स्थान के अनुरूप, § 1), जब तक हम अंतिम चार प्रकार के बुरे विचारों तक नहीं पहुँच जाते। जबकि ये उदासी (डोमनस्सम्) से जुड़े होते हैं, पहले और बाद के तीन प्रकार के विचारों का विषय एक प्रसन्न पापी होता है। आनंद, सहजता और प्रसन्नता को घृणा के साथ असंगत माना गया है।

7. विपश्यना (अंतर्दृष्टि) को पाठ में त्रुटिपूर्वक शामिल किया गया है। बौद्धों के लिए नैतिक अंतर्दृष्टि अनैतिक विचारों के साथ उतनी ही असंगत थी जितनी सुकरात और प्लेटो के लिए। इसलिए 'बुद्धि' और 'सचेतना' के साथ-साथ 'विश्वास' को भी इसमें शामिल नहीं किया गया है। बौद्ध धर्म कहता है कि विधर्मी सिद्धांतों और मात्र मतों के अनुयायी अपने गुरुओं में केवल झूठी आस्था रख सकते हैं, केवल बुरे विचारों के प्रति सचेत रह सकते हैं और केवल छल और भ्रम का ही पालन कर सकते हैं। न ही उनमें इंद्रियों और विचारों की वह छह गुना दक्षता संभव है जो अच्छे विचारों के साथ जुड़ी होती है (धारा 4051)। असल. 249.

8. पाठ में 'कुसला' शब्द का प्रयोग एक त्रुटि है। इन सभी बुरे विचारों में दस अन्य अवस्थाएँ शामिल हैं: इच्छा, संकल्प, ध्यान, अहंकार, ईर्ष्या (इसा, या इच्छा, लालसा), नीचता, जड़ता, सुस्ती, उत्तेजना, चिंता (असल. 250)। ऊपर देखें, पृष्ठ 5, नोट 1।

9. मिच्छदित्थी को साई. (पृष्ठ 248) में अयथावदस्सनम् के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में न देखना। (दित्थी पर, § 1003, n. देखें।) ब्रह्मजाल सूत्र (डी. i.) में इस विकृत दृष्टि या निराधार अटकलों के 62 प्रकारों का विवेचन किया गया है, ये सभी अस्तित्व के सिद्धांत हैं, और टीकाकार द्वारा इनका उल्लेख किया गया है (पृष्ठ 252)। तुलना करें: एहिस डेविड्स, 'अमेरिकन लेक्चर्स', पृष्ठ 27 और आगे।

10. इससे बाहर निकलना मुश्किल होने के कारण, जैसे घास, जंगल या पहाड़ी जंगल से बाहर निकलना (AsL, ibid.)।

11. ऐसी राय रखने के खतरे और भयावहता के कारण, जैसे कि लुटेरों और साँपों से घिरे रेगिस्तान में पानी या भोजन की कमी हो (वही)।

12.बुद्धघोष ने इस शब्द को विसुकम से नहीं लिया है, बल्कि विसु-के अय इकम = विपरीत रूप से गठित - यानी, सम्मादिथि से लिया है।

13. अव्यवस्था और संघर्ष, कुछ विनाशवादी, कुछ शाश्वतवादी, आदि होने के कारण (असल. 253)।

14. धारा 1113 देखें।

15. किसी विचार वस्तु के प्रति आसक्ति, जैसे मगरमच्छ की पकड़ (असली. 253)।

16. Cy. के पाठ में patiggaho के स्थान पर patitthaho लिखा है। हालाँकि, K. में patiggaho लिखा है।

17.अर्थात, स्थायित्व आदि की भ्रामक राय की ओर। (असली. 253)।

18. तित्थयातनम्। इस रूपक का अंग्रेज़ी पर्यायवाची खोजना असंभव है, जिसका शाब्दिक अर्थ केवल खड़े होने की जगह है, लेकिन आमतौर पर, अपने पहले अर्थ में, यह एक उथले नदी तट या समुद्र तट से जुड़ा होता है, और अपने दूसरे अर्थ में, सांप्रदायिक सट्टा मान्यताओं और उनकी शिक्षाओं से जुड़ा होता है। स्वयं बुद्धघोष एक वैकल्पिक अर्थ देते हैं:
'जहां मूर्ख लोग अपने चक्रों (अर्थात संसार) के दौरान पार करते हैं';
संप्रदायवादियों का क्षेत्र या निवास (तित्तिया)। एम.आई. 483 में इस शब्द के प्रयोग की तुलना करें।
19.ना यहाँ मुद्रित पाठ से हट गया है।

20.संबोधो. देखें. धारा 285.

21.अज्ञानता को बाढ़ और बंधन के रूप में देखें, नीचे देखें, §§ 1151, 1151ए।
जबकि कामवासना का लक्षण (लक्खनम्) किसी वस्तु को कल्पना में पकड़ लेना है, वहीं सुस्ती का सार (रसो) उस वस्तु के वास्तविक स्वरूप को छुपा लेना है, जिसके परिणामस्वरूप उस पर दिया गया ध्यान सतही (अयोनिसो) होता है। असल. 249.

22.अर्थात्, 'वासना' और 'सुस्ती'।

23. साइ. एक युवक के मामले का उदाहरण देता है, जिसे किसी झूठे सिद्धांतवादी की बेटी का हाथ उसके अलग संप्रदाय का होने के कारण अस्वीकार कर दिया जाता है, तो वह अपने स्नेह से प्रेरित होकर लड़की के लोगों के चर्च में जाता है और उनके विचारों को अपनाता है, इस प्रकार अपना पुरस्कार प्राप्त करता है (असल. 255)।

24. पाठ में कोष्ठक में दिए गए सोमनसिंद्रियम को अवश्य शामिल किया जाना चाहिए। यह सोमनसिंद्रियम उन लोगों की मानसिकता का उदाहरण है जो सार्वजनिक खेल-कूद, नृत्य और ग्राम उत्सवों (नटसमज्जदिनी) जैसे 'सांसारिक सुखों' में लिप्त हैं। तुलना करें, 'बुद्ध के संवाद', अध्याय I, पृष्ठ 7, नोट 4।
साइ. (पृष्ठ 257) में दिए गए संक्षिप्त और अस्पष्ट शब्दों वाले दोहरे उदाहरण की व्याख्या करना कठिन है, जो इस प्रकार के विचार को दर्शाता है। इसमें तीसरे विचार के समान ही परिस्थितियाँ मानी गई हैं, साथ ही इसमें शरारत और अश्लील जिज्ञासा जैसे निम्न-स्तरीय आनंद भी शामिल हैं।

25.तुलना करें § 154ए.

26. साइ. इस या इससे पहले के तीन प्रकार के विचारों का कोई उदाहरण नहीं देता है।

27. पतिघो ने (§ 1060) ऐसा करने का वर्णन करने के लिए और फिर (§ 597 इत्यादि) इंद्रिय-उत्तेजना के संबंध में 'प्रतिक्रिया' के रूप में प्रयोग किया।

28.व्यापत्ति, व्यापज्जना। तुलना करें § 1060, n. 5. यहाँ टिप्पणी है पकातिभाव-विजहनत्थेन = सामान्य अवस्था को त्याग देना (असल. 258)। *जैसे दलिया खराब हो गया हो' (सुम., 1. 211)।

29. कैंडिक्कम। जेपीटीएस, 1891, पृष्ठ 17; पीपी ii. 1 (= ii. 11) देखें। एसएमपी. 297. मॉरिस का मानना है कि कैंडिट्टम सही वर्तनी है। मेरा मानना है कि लेक्टियो डिफिसिलियर के सही होने की संभावना अधिक है। चार अंशों में साइ. kk के साथ वर्तनी करता है। के. ने एक चूक के कारण वर्तमान अंश में कैंडिट्टम लिखा है, जबकि §§ 1060, 1314 में kk लिखा है।

30. असुरोपो. ईफर्स, साइ. (258) के अनुसार, क्रोध में एक आदमी के टूटे हुए उच्चारण के लिए।
यह थोड़ा अजीब है कि 'आत्म-संयम', 'शांति' और 'संतुलन' जैसे तत्व ऊपर वर्णित घृणा के साथ असंगत नहीं माने जाते। 'एकाग्रता' कम असंगत है, और यह याद रखना चाहिए कि तीनों अवस्थाओं का वर्णन एक ही शब्दों में किया गया है। इसलिए, यदि एक अवस्था स्थिर रहती है, तो दूसरी नहीं गिर सकती। लेकिन विचार X और XH के अंतर्गत देखें।

31.अर्थात, दोसो और मोहो।

32.बुद्धघोष इस अंश पर कहते हैं (असल. 259):
'चूंकि विचार के इस कमजोर रूप में केवल निरंतर बने रहने या दृढ़ रहने की क्षमता है (पवत्ति थितिमत्तकम)', इसलिए 'आत्म-संयम' की अन्य कोई भी विशेषता इस पर लागू नहीं होती है।
अतः यह स्पष्ट है कि पाठ में thiti के बाद '... pe ...' का प्रयोग त्रुटिपूर्ण है। और K. की तुलना करें। यह ध्यान देने योग्य है कि 'एकाग्रता', साथ ही 'शांति' और 'संतुलन' शब्द पूरी तरह से गायब हैं।

33. विकिचिच्चा को 'संदेह' के रूप में व्यक्त करना आकर्षक प्रतीत होता है। ऐसा करना गलत नहीं होगा। संदेह शब्द की व्युत्पत्ति में निहित दोहरी मानसिक स्थिति को इस शब्द के वर्णन हेतु चुने गए दो शब्दों में दर्शाया गया है। फिर भी, अनुच्छेद 1004 में वर्णित विकिचिच्चा के विषय वे हैं जिन पर नैतिक-धार्मिक अर्थ में 'संदेह' शब्द लागू किया जा सकता है। लेकिन कुछ ऐसे पहलू भी हैं जिनमें विकिचिच्चा के प्रति बौद्ध दृष्टिकोण पश्चिम में आमतौर पर समझे जाने वाले संदेह से मेल नहीं खाता।
संदेह, विश्वास, आत्मविश्वास या आस्था का विपरीत है। अब, उत्तर में इनके लगभग समानार्थी शब्द - सद्धा और पासादो - का उल्लेख नहीं किया गया है, हालांकि तुलना के उद्देश्य से किया जा सकता था। फिर भी, हालांकि यह अपने आप में प्रश्नगत दोनों शब्दों के मेल न खाने का पर्याप्त आधार नहीं है, इन शब्दों की व्युत्पत्ति बहुत भिन्न है।
विकिचिच्चा की संरचना में द्वैत, विभाजित मानसिक स्थिति का कोई अंश नहीं होता, जैसा कि 'संदेह' की संरचना में होता है।
सिकित, सिट (सोचना) का इच्छावाचक या बारंबारता रूप है; वी (उपसर्ग) गहन या विचलित चिंतन को दर्शाता है। इस प्रकार, भारतीय शब्द की व्युत्पत्ति स्थिर की बजाय गतिशील पर, अनिश्चितता के क्षणिक तनाव की बजाय बौद्धिक चिंतन पर बल देती है। जब यह शब्द पुनः आता है (§ 1004), तो बुद्धघोष इसे किच्चो से जोड़ते हैं - 'निर्णय लेने में असमर्थता के कारण उत्पन्न थकान' - जो मनोवैज्ञानिक रूप से 'संदेह' की तुलना में 'भ्रम' के अधिक निकट है।
यह बिल्कुल सच है कि व्युत्पत्ति के आधार पर, कंख शब्द हमारे 'संदेह' शब्द के समान नहीं है। कंख का अर्थ है इच्छा करना। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द विचिकिच में निहित बौद्धिक अवस्था के भावनात्मक और स्वैच्छिक पूरक को दर्शाता है, जो चिंताजनक चिंतन से उत्पन्न निश्चितता और निर्णय में पलायन करने की लालसा है।

हालाँकि, कंख नैतिक शब्दों की किसी महत्वपूर्ण श्रेणी में नहीं आता, जैसे कि विकिचिच्चा आता है; इसके अलावा, इसका द्वितीयक अर्थ—अर्थात्, विचाराधीन मामले या उससे संबंधित मन की स्थिति (देखें जाट. i. 165; एम. i. 147)—प्राथमिक अर्थ पर हावी हो गया प्रतीत होता है, जो अकंखति में बरकरार है (देखें अकंखेय्या सूत्र, एम. i. 33)। अतः, इसे 'संदेह' के रूप में आसानी से व्यक्त किया जा सकता है।

इसलिए, मैं यह दावा नहीं करता कि 'परप्लेक्सिटी' शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार vicikiccha का पर्यायवाची है, लेकिन मैं इसका प्रयोग करता हूँ।

बाद वाले को हमारे द्वारा प्रयुक्त 'संदेह' के निहितार्थों के साथ बहुत आसानी से आत्मसात करने से बचने के लिए, और
किसी भी आधार पर संशयवादी प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति के 'नश्वर शरीर' और विचारों के उलझाव पर जोर देना।

34. विमति, लगभग विकिचिच्चा के समानांतर है, क्योंकि यह तीव्र या व्याकुल मन-क्रिया को दर्शाता है।

35.द्वेलहकम, द्वेधपथो। यहाँ हमें अपने 'संदेह' में व्युत्पत्ति संबंधी विचार मिलता है। साइप्रस में, एक के लिए, 'इधर-उधर डगमगाना या हिलना' है; दूसरे के लिए, 'एक मार्ग के रूप में जो दो भागों में बँट जाता है, यह प्राप्ति में एक बाधा है' (259)।

36. संसयो - 'पतन' का व्युत्पत्तिगत पर्याय। साईं कहते हैं कि किसी व्यक्ति की अपनी अक्षमता के आगे झुक जाना, ऐसी समस्याओं को लगातार जारी रखने में असमर्थता, जैसे कि क्या यह स्थायी है या अस्थायी? (वही)।

37. असप्पना, परिस्प्पना। साई. के अनुसार, इनका अर्थ क्रमशः 'विचार के विषय को निर्णय लेने में असमर्थता के कारण त्याग देना' (या उससे नीचे उतर जाना - ओसक्कति; देखें ट्रेंकनर की 'मिसलेनी', पृष्ठ 60) और 'किसी विषय में गहराई से उतरने में असमर्थता के कारण चारों ओर फिसल जाना' (या इधर-उधर भाग जाना - सप्पति [देखें सर्प]) है। असल. 260.

38.अपरियोगहन, मोहो का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त। देखें § 390.

39. यदि बाद वाला पाठ 'थम्भितत्तम्, चम्भितत्तर्न' (अस्थिरता) के लिए 'च्य' शब्द का यह अनुवाद न करता कि 'इसका अर्थ सघनता (या कठोरता, थद्धो) की स्थिति है', तो मुझे इसे अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए था। क्योंकि जब दुविधा उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति अपने मन को कठोर (हठी, सघन, थद्धम्) बना लेता है।

के. थम्भितत्तम् भी पढ़ते हैं। यद्यपि दोनों शब्द अर्थ में विपरीत हैं, फिर भी ये दोनों 'स्तंभ' (सहारा देना) मूल से व्युत्पन्न हैं; और दोनों का प्रयोग गैसीय तत्व का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो अस्थिर होते हुए भी ठोसों को अलग रखता है। नीचे, अनुच्छेद 965 देखें। आगे टिप्पणी (एएसएल, वही) यह है कि, 'निश्चितता के संदर्भ में, मन में विचार को बनाए रखने में असमर्थता का तात्पर्य है'।

इस प्रकार, यद्यपि विचिकिच्चा में मस्तिष्क का सक्रिय रूप से उपयोग करना निहित है, यह प्रभावी चिंतन में प्रगति को बाधित करता है, और मोह की सघनता और अपरीयोगहना के समान मानसिक स्थिति उत्पन्न करता है।

मनोविलेखो. 'जब उलझन उत्पन्न होती है, तो विचार के विषय को पकड़ कर, यह मन को खरोंचती है, मानो' (वही)। जब इस शब्द का प्रयोग कुक्कुच्चम, या चिंता (§ 1160) का वर्णन करने के लिए किया जाता है, तो इसे साइ. में तांबे के बर्तन को एक सुई (अरग्गम) से खुरचने के उदाहरण से समझाया गया है। असल. 384.

40. पृष्ठ 117 पर टिप्पणी देखें।

41.अर्थात, मोहो.

42. 'संतुलन' के लोप पर, नीचे देखें, धारा 429, नोट।

43.Yam cittassa uddhaccarn avupasamo, cetaso vikkhepo, bhantattam cittassa — idam vuccati uddhaccarn. यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, चाहे uddhaccarn को कहीं और अहंकारपूर्ण मानसिकता को दर्शाने वाले शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

या नहीं (देखें एहिस डेविड्स, 'बौद्ध धर्म', पृष्ठ 109; वॉरेन, 'अनुवादों में बौद्ध धर्म', पृष्ठ 365; न्यूमैन, 'डाई ईडेन', आदि, 1., पासिम), इस संदर्भ में विशिष्ट अर्थ (Tattha katamam uddhaccarn) vupasamo का विलोम और vikkhepo के समतुल्य है।

ये दोनों ही ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं जिनके अर्थ के बारे में बहुत कम या कोई अनिश्चितता नहीं है। संस्कृत में औद्धात्य शब्द बाद के ग्रंथों में केवल दो बार पाया जाता है, जिनमें से एक बौद्ध ग्रंथ है (देखें बोथल और बोथ, एसवी), और वहाँ इसका अर्थ है संघर्ष, एक ऐसा शब्द जिसका प्रयोग हम कुछ उत्तेजित, प्रचंड मानसिक अवस्थाओं के लिए करते हैं। निवरणों में इस शब्द को कुक्कुच्चम (चिंता) के साथ जोड़ना (देखें §§ 1158-1160; और दूसरे संबंधित जोड़े, थ मामिद ध आम, §§ 1155-1157 में समान अर्थ की तुलना करें) इसे अहंकार या आत्म-धार्मिकता के निहितार्थों से काफी हद तक वंचित कर देता है। ('बुद्ध के संवाद', i. 82 में, पूर्व जोड़ी को 'उथल-पुथल और चिंता' के रूप में अनुवादित किया गया है।) बुद्धघोष बहुत कम सहायता प्रदान करते हैं; लेकिन वह उद्धच्चम् (एकराममने विप्पन्दति) को एक ही विचार विषय पर संघर्ष (एकराममने विप्पन्दति) और उलझन (विभिन्न विचार विषयों पर संघर्ष) के बीच अंतर करते हैं। बौद्ध स्पष्ट रूप से ऐसी मानसिक स्थिति का वर्णन करने के लिए शब्दों की तलाश कर रहे थे जो थिनामिद्धम् (स्थिरता और सुस्ती) से विपरीत हो। थिनामिद्धम् में अत्यधिक स्थिरता होती है - यह स्थिरता किसी सूक्ष्म रूप से संतुलित इंद्रियों और मूल्यों की नहीं, बल्कि एक जड़ द्रव्यमान की होती है। उद्धच्च-कुक्कुच्चम् (उद्धच्च-कुक्कुच्चम्) में संतुलन और समायोजन का अभाव होता है। किसी न किसी कारण से व्यक्ति उत्तेजित, व्याकुल और परेशान हो जाता है; अमेरिकी मुहावरे में, 'घबरा जाता है'।

जिसे मैंने 'उथल-पुथल' (भंट्टतम; अधिक शाब्दिक रूप से, डगमगाता, लुढ़कता, डगमगाता हुआ) प्रस्तुत किया है, बुद्धघोष उसे विभांति-भावो {सिक लेगे), भंतायन-भंतागोनादिनं विया (असल 260) कहते हैं।

उद्धच्चम का सटीक अर्थ चाहे जो भी हो, यह दिखाने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि यह प्रश्नगत बुरे विचार के अंतर्गत सूचीबद्ध कुछ अन्य घटकों के काफी हद तक विपरीत है—कम से कम, जब इन्हें उनके पूर्ण अर्थ में लिया जाता है। मैं लगभग समानार्थी समूह की बात कर रहा हूँ: 'आत्म-संयम', 'एकाग्रता', 'शांति' और 'संतुलन'। वास्तव में, अंतिम (अविक्खेपो) उस वाक्यांश का विरोधाभास है जो उद्धच्चम को चेतसो विक्खेपो के रूप में वर्णित करता है! पाठ में वास्तव में इसका उल्लेख नहीं है, लेकिन यह केवल अनजाने में हुआ है (देखें § 430)।

यह K. में दिया गया है, और Cy. स्पष्ट रूप से (पृष्ठ 260) कहता है कि अट्ठाईस घटक सूचीबद्ध हैं, जिनमें से चौदह को अन्य चौदह में से किसी एक के संदर्भ में वर्णित किया गया है। (यदि पाठक § 427 की तुलना §§ 2-57 में दिए गए संबंधित विवरणों से करेगा, तो वह इसे सही साबित कर देगा।) न ही इसमें समावेशन में किसी स्पष्ट विसंगति पर टिप्पणी करने या उसे स्पष्ट करने के लिए कोई शब्द है। केवल उद्दच्चम् और विचिचिच्च के संबंध पर एक संक्षिप्त चर्चा है, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। विचार 11. और 12., 1. से 9. की सममित प्रक्रिया से हटकर, विविध विषय माने जाते हैं, और विचार (अरम्मने पावत्तनक-चित्तनि) पर निरंतर ध्यान देने से संबंधित हैं। और जिस प्रकार, यदि एक गोलाकार रत्न और एक चतुर्भुजाकार रत्न को एक झुके हुए तल पर लुढ़काया जाए, तो पहले वाले की गति एकसमान होती है, जबकि दूसरे वाले की गति एक विराम अवस्था से दूसरी विराम अवस्था तक होती है, उसी प्रकार vicikiccha विचारों के निरंतर कार्य को दर्शाता है, जबकि uddhaccam एक समय में एक दिए गए आधार पर कार्य करता है।

इस प्रकार, जैसा कि प्रतीत होता है, 'उलझन' और 'उत्तेजना' के बीच काफी समानता को देखते हुए, यह मानना उचित है कि 'आत्म-संयम' और इसके पर्यायवाची शब्द बारहवें विचार में उसी दुर्बल रूप में मौजूद हैं, जिस दुर्बल रूप में वे, या कम से कम उनमें से पहला, ग्यारहवें विचार में मौजूद हैं (देखें § 424, n.)। इस प्रकार संकलक अपनी तर्कशक्ति को लेकर दुविधा में थे। या तो 'विक्खेपो' के प्रयोग को स्वीकार करने के लिए 'अविक्खेपो' को हटाना होगा - इस स्थिति में 'अविक्खेपो' के पर्यायवाची शब्द (समाधि, आदि) भी हटाने होंगे - या इसे और इसके पर्यायवाची शब्दों को अत्यंत संकुचित अर्थ में बनाए रखना होगा। संभवतः विषय को केवल किसी एक बिंदु पर उत्तेजित, लेकिन सामान्य रूप से शांत माना गया था।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग3-अध्याय 1

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण

- पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
  - भाग 3 - चेतना की अनिश्चित अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु
1अध्याय I - प्रभाव या परिणाम पर
1.1विपाको
1.1.1ए. अच्छे कर्म। [पृष्ठ 123]
1.1.2बी. बुरा कर्म.[44]
1.2- फुटनोट:
अध्याय I - प्रभाव या परिणाम पर
विपाको

ए. अच्छे कर्म। [पृष्ठ 123]
1. इंद्रिय-संबंधी ब्रह्मांड में।
(क) पांच प्रकार की अनुभूतियों को अच्छाई के परिणाम के रूप में माना जाता है (kusalavipakani pane av innanani).]
(मैं।)
[431] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब, अच्छे कर्म[1] के फलस्वरूप, इंद्रिय जगत के संबंध में संचित होने के कारण, दृश्य बोध उत्पन्न हुआ है, जो कि अनासक्ति[2] से युक्त है, और जिसका विषय कुछ देखा हुआ है, तब संपर्क, सोच, भावना,
विचार,
बोध, अनासक्ति,
आत्म-संयम होता है;

[पृष्ठ 124] विचार,
निस्वार्थता, जीवंतता की क्षमताएँ
। ये, या उस अवसर पर मौजूद अन्य [3] निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ - ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[432] ऊपर दिए गए अनुसार 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर, पासिम।
[433] उस अवसर पर भावना क्या है?
वह मानसिक स्थिति, जो न तो सुखद है और न ही अप्रिय, जो उस अवसर पर दृश्य अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है; वह संवेदना, जो विचार के संपर्क से उत्पन्न होती है, जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक; वह अनुभूति, जो विचार के संपर्क से उत्पन्न होती है, जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक — यही वह अनुभूति है जो उस समय मौजूद होती है।
[434] उस अवसर पर धारणा क्या है?
वह अनुभूति, वह अनुभव, वह अनुभव करने की अवस्था, जो उस अवसर पर दृश्य अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है - यही वह अनुभूति है जो उस समय मौजूद होती है।
[435] उस अवसर पर क्या सोच रहा है?
उस अवसर पर दृश्य अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होने वाला चिंतन, मनन और विचार-विमर्श ही वह चिंतन है जो उस समय मौजूद होता है।
[436] उस अवसर पर क्या सोचा जाता है?
उस अवसर पर जो विचार, मन, हृदय, जो स्पष्ट है, मन के क्षेत्र के रूप में विचार, विचार करने की क्षमता, बुद्धि, बुद्धि का स्कंध, दृश्य बोध का उपयुक्त तत्व - वही विचार उस समय विद्यमान होता है।
[437] उस अवसर पर निस्वार्थता क्या है?
धारा 436 के अनुसार 'भावना' के लिए उत्तर दें, वाक्यांश 'जो दृश्य अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होता है' को हटा दें।
[पृष्ठ 125] [438] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है?

उस अवसर पर जो विचार की निरंतरता[4] होती है—यही वह आत्म-संयम है जो तब होता है। [439] उस अवसर पर विचार की क्षमता क्या है?
'विचार' के लिए उत्तर दें, धारा 436।

[440] उस अवसर पर निःसंकोचता की क्षमता क्या है?
धारा 437 के अनुसार उत्तर दें।
[441] उस अवसर पर जीवन शक्ति की क्षमता क्या है?

धारा 19 के अनुसार उत्तर दें।
या उस अवसर पर मौजूद अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ - ये वे अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[सारांश।]
[441ए]

अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,
गोले दो हैं,
तत्व दो हैं,
पोषक तत्व तीन हैं,
क्षमताएँ तीन हैं,[5] संपर्क एक कारक के रूप में गिना जाता है,
इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें]
[पृष्ठ 126] विचार करने की क्षमता को एक कारक के रूप में गिना जाता है,
दृश्य अनुभूति के तत्व को एक कारक के रूप में गिना जाता है,
[मानसिक] अवस्थाओं के क्षेत्र को एक कारक के रूप में गिना जाता है,
इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
[442] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क,
चिंतन,
आत्म-संयम,
जीवन शक्ति, या उस अवसर पर मौजूद अन्य कोई भी निराकार, कारण-प्रेरित अवस्थाएँ, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों को छोड़कर - ये संश्लेषण के स्कंध हैं।

(द्वितीय क्रिया)
[443] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, इंद्रिय जगत से संबंध स्थापित होने के कारण, श्रवण बोध,
घ्राण बोध, या
स्वाद बोध उत्पन्न हो जाता है, जो अनासक्ति से युक्त होता है, और जिसका विषय क्रमशः ध्वनि,
गंध, या
स्वाद होता है ... या शरीर का बोध [पृष्ठ 127] उत्पन्न हो जाता है, जो सहजता से युक्त होता है, और जिसका विषय कुछ मूर्त होता है,[6]
तब संपर्क, चिंतन,
भावना,[7] विचार,
बोध, सहजता,

आत्म-संयम होता है;

विचार-मंथन,

सहजता और जीवंतता जैसी क्षमताएँ

। अब, ये या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।

[444] उपरोक्त अनुसार 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर, पूरे समय

[445] उस अवसर पर भावना क्या है?

शारीरिक सुख, शारीरिक आराम, जो उस अवसर पर शरीर के संज्ञान के उपयुक्त तत्व से उत्पन्न होता है; सुखद, आरामदायक संवेदना जो [पृष्ठ 128] शरीर के संपर्क से उत्पन्न होती है; सुखद, आरामदायक भावना जो शरीर के संपर्क से उत्पन्न होती है - यही वह भावना है जो तब होती है।

[446] उस अवसर पर धारणा क्या है?

वह अनुभूति, वह अनुभूति, वह अनुभूति प्राप्त करने की अवस्था, जो उस अवसर पर शरीर की अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है — यही वह अनुभूति है जो उस समय विद्यमान होती है।

[447] उस अवसर पर क्या सोच रहा है?

उस अवसर पर शरीर की अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होने वाला चिंतन, मनन और विचार-विमर्श ही वह चिंतन है जो उस समय मौजूद होता है।

[448] उस अवसर पर क्या सोचा जाता है?

उस अवसर पर जो विचार, मन, हृदय, वह जो स्पष्ट है; मन के क्षेत्र के रूप में विचार, विचार करने की क्षमता, बुद्धि, बुद्धि का स्कंध, शरीर के संज्ञान का उपयुक्त तत्व — वही विचार उस समय विद्यमान होता है।

[449] उस अवसर पर सहजता क्या है?

उस समय शरीर से मिलने वाला सुख, शरीर को मिलने वाली सहजता, जो शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद और आरामदायक अनुभूति होती है; शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद और आरामदायक भावना—यही वह सहजता है जो उस समय मौजूद होती है।

[450-453] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है[8] . . . विचार की क्षमता [9] . . . सहजता . . . जीवंतता?

धारा 438, 448, 449 और 441 के अनुसार उत्तर दें।

या उस अवसर पर मौजूद अन्य कोई भी निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ - ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[पृष्ठ 129] [सारांश।]

[453ए]

उस अवसर पर स्कंध चार होते हैं,

इत्यादि।

[धारा 441क के अनुसार जारी रखें, 'दृश्य अनुभूति के तत्व' के स्थान पर 'शरीर की अनुभूति का तत्व' प्रतिस्थापित करें।]

[454] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?

धारा 442 के अनुसार उत्तर दें।

(ख) अच्छे कर्मों का प्रभाव विचार में दिखना (कुसलाविपक मनोधातु)।

[455] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, इंद्रिय जगत से संबंध में संचित होने के कारण, निस्वार्थता के साथ, विचार का एक तत्व[10] उत्पन्न हुआ है, और जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, कुछ मूर्त, या कुछ भी नहीं है, तब संपर्क, विचार,

भावना, अवधारणा, [पृष्ठ 130] बोध, विवेचनात्मक विचार,

चिंतन, निस्वार्थता,

आत्म-संयम होता है;

विचार,
निस्वार्थता, जीवंतता की क्षमताएँ
। ये, या उस अवसर पर मौजूद अन्य [11] निराकार, कारण से प्रेरित अवस्थाएँ - ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[456] उपरोक्त 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर, पूरे क्रम में
[457] उस अवसर पर भावना क्या है?

वह मानसिक स्थिति, जो न तो सुखद है और न ही अप्रिय, जो उस अवसर पर विचार के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है; वह संवेदना, जो विचार के संपर्क से उत्पन्न होती है, जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक; वह अनुभूति, जो विचार के संपर्क से उत्पन्न होती है, जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक — यही वह अनुभूति है जो उस समय मौजूद होती है।
[458-460] उस अवसर पर बोध . . . सोच . . . विचार क्या है?
धारा 446-448 के अनुसार उत्तर, 'शरीर के संज्ञान के तत्व' के स्थान पर 'विचार के तत्व' को प्रतिस्थापित करते हुए।

[461] उस अवसर पर गर्भाधान क्या है?

तर्क, वह कल्पना जो उस अवसर पर स्वभाव, निर्धारण, ध्यान केंद्रित करना, मन का अनुप्रयोग है[12] — यही वह धारणा है जो तब होती है।
[462] उस अवसर पर विवेचनात्मक विचार क्या है?

वह प्रक्रिया, वह सतत कार्यविधि, वह प्रगति और पहुंच [मन की] जो उस अवसर पर विचार का निरंतर समायोजन और निर्देशन है — यही वह विवेचनात्मक विचार है जो उस समय मौजूद होता है।
[पृष्ठ 131] [463-467] उस अवसर पर निस्वार्थता क्या है... आत्मसंयम... विचार करने की क्षमता... निस्वार्थता... जीवंतता?
उत्तर क्रमशः एम §§ 437, 438, 460, 440,[13] 441 के रूप में हैं।
[सारांश।]
[467ए]

अब, उस अवसर पर स्कंध चार हैं,
क्षेत्र दो हैं,
तत्व दो हैं,
पोषक तत्व तीन हैं,
इंद्रियां तीन हैं,
संपर्क को एक कारक के रूप में गिना जाता है,
इत्यादि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
विचार उत्पन्न करने की क्षमता को एक कारक के रूप में गिना जाता है,
विचार का तत्व एक कारक के रूप में गिना जाता है,
इत्यादि।
[468] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, आत्म-संयम,
अवधारणा, जीवन शक्ति। या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारण-प्रेरित अवस्थाएँ हों, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों को छोड़कर—ये संश्लेषण के स्कंध हैं।

[पेज 132] (सी) अच्छा (कर्म) प्रतिनिधि बुद्धि में प्रभाव डाल रहा है (कुसल-विपाक मनोयिन्नाधातु)।
(i.) जब खुशी के साथ हो,
[469] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, इंद्रिय-संबंधी जगत के साथ संचित होने पर, प्रतिनिधिक ज्ञान का एक तत्व[14] उत्पन्न होता है, जो सुख के साथ होता है और जिसका उद्देश्य [पृष्ठ 133] एक दृष्टि, एक ध्वनि, एक गंध, एक स्वाद, कुछ मूर्त, विचार [इनमें से किसी का], या कुछ भी नहीं होता है, तब संपर्क, अवधारणा,
भावना, विवेचनात्मक विचार,
बोध, आनंद,
चिंतन, सहजता,
विचार, आत्म-संयम होता है;

विचार-मंथन,
खुशी, जीवंतता जैसी क्षमताएं
। ये, या इनके अलावा कोई अन्य क्षमताएं।
[धारा 455 के अनुसार जारी रखें।]
[470-482] इन तेरह घटक अवस्थाओं का वर्णन §§ 2-11 और 17-19 में किया गया है, सिवाय 'गर्भधारण' (vitakko) और 'स्वयं-संग्रह' (cittass' ekaggata) के, जिनका वर्णन §§ 461, 464 में प्रयुक्त प्रतिबंधित अर्थ के साथ किया गया है।
[सारांश।]
[482ए] धारा 467ए के समान, लेकिन 'प्रतिनिधि संज्ञान का तत्व' (मनोविननाधातु) को 'विचार के तत्व' के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।[15]
[483] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है? संपर्क, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, आनंद,
अवधारणा, आत्म-संयम;
जीवन शक्ति की क्षमता
। या उस अवसर पर जो भी निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ हों, भावना, [पृष्ठ 134] बोध और बुद्धि के स्कंधों को छोड़कर — ये संश्लेषण के स्कंध हैं।
(ii.) जब निस्वार्थता के साथ हो।
[484] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, इंद्रिय जगत के संबंध में संचित होने के कारण, प्रतिनिधि बोध[16] का एक तत्व उत्पन्न हुआ है, जो निस्वार्थता से युक्त है, और जिसका उद्देश्य दृष्टि आदि है (ऊपर देखें, § 469] . . . तब संपर्क, विचार,
भावना, अवधारणा,
बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, निस्वार्थता,
आत्म-संयम होता है;

विचार-मंथन,
निस्वार्थता, जीवंतता जैसी क्षमताएँ
। ये, या इनके अलावा कोई अन्य क्षमताएँ।
[धारा 469 के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 135] [485-496] इन तेरह अवस्थाओं का वर्णन पूर्ववर्ती खंड (i.) में दिए गए अनुसार ही किया गया है, सिवाय इसके कि धारा 152-154 में दिए गए 'भावना' और 'निस्वार्थता' पर प्रश्न और उत्तर धारा 471, 477 और 481 में दिए गए 'भावना', 'आनंद' और 'खुशी की क्षमता' पर प्रश्नों और उत्तरों के स्थान पर प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। 'सुविधा' को हटा दिया गया है।

[सारांश।]
[496ए] धारा 482ए में उल्लिखित शर्तों के समान शर्तें।
[497] संश्लेषण का स्कंध § 483 में बताए गए विषयवस्तु के समान है, लेकिन 'आनंद' के लोप के साथ।

(घ) आठ मुख्य प्रकार के परिणाम (अत्थ महाविपाक)।
[498] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, इंद्रिय जगत से संबंधित संचय के कारण, प्रतिनिधिक ज्ञान का एक तत्व उत्पन्न हो जाता है,
खुशी के साथ और ज्ञान से जुड़ा हुआ...
खुशी के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, और एक सचेत मकसद से प्रेरित...
खुशी से परिपूर्ण और ज्ञान से विरक्त...
आनंद से परिपूर्ण, ज्ञान से विरक्त, और एक सचेत प्रेरणा से प्रेरित...
उदासीनता के साथ और ज्ञान से जुड़ा हुआ...
निस्वार्थता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, और एक सचेत मकसद से प्रेरित...
उदासीनता और ज्ञान से अलगाव के साथ...
यदि यह निष्पक्षता के साथ हो, ज्ञान से अलग हो [पृष्ठ 136], और एक सचेत मकसद से प्रेरित हो, और इसका उद्देश्य एक दृष्टि, एक ध्वनि, एक गंध, एक स्वाद, कुछ मूर्त, या कुछ भी हो, तो संपर्क होता है[17] . . . संतुलन।
ये, या उस अवसर पर मौजूद कोई भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ — ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[498ए]
कामवासना का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है... घृणा का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है... सुस्ती का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है... ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।[18]

2. रूप के ब्रह्मांड में।
[499] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह रूप के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इंद्रिय सुख आदि से विरक्त होकर,[19] प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब संपर्क आदि होता है।[20] अब, ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं। लेकिन जब, इसी [पृष्ठ 137] अच्छे कर्मों के फलस्वरूप, रूप जगत से संबंध में संचित होने पर, वह इंद्रिय सुख आदि से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब संपर्क आदि होता है। और ये... अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[500] शेष ध्यानों के सूत्र को चतुर्गुण प्रणाली पर और पंचगुण प्रणाली पर सभी ध्यानों के सूत्र को प्रतिस्थापित करते हुए दोहराएँ।

3. निराकार के ब्रह्मांड में।
[501] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह निराकार के स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए उस मार्ग का अभ्यास करता है, और इस प्रकार, रूप की सभी चेतना से पूरी तरह परे जाकर, इंद्रिय प्रतिक्रिया की चेतना के लुप्त होने से, अनेक प्रकार की चेतना से ध्यान हटाकर, वह उस मन की अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है जो असीम अंतरिक्ष के क्षेत्र की चेतना से युक्त होती है - यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए

सभी सहजता की भावना को त्याग देना चाहिए, आदि। [धारा 265 के अनुसार जारी रखें] - तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है, ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।[21]
लेकिन जब, इसी अच्छे कर्म के फलस्वरूप, निराकार ब्रह्मांड के संबंध में संचित होने पर, वह रूप की सभी चेतना से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की चेतना के लुप्त होने से, अनेक प्रकार की चेतना से ध्यान हटाकर, उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है जो असीम अंतरिक्ष के क्षेत्र की चेतना से युक्त होता है - यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुख-सुविधाओं को त्याग देना आवश्यक है, आदि। [ऊपर जारी रखें] . . . तब [पृष्ठ 138] संपर्क[22] . . . जो संतुलन उत्पन्न होता है, ये . . . अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[502-504] यहाँ क्रमानुसार अन्य तीन 'निराकार अस्तित्व से जुड़े ध्यान' (§§ 266-268) आते हैं, अर्थात्, 'अनंत बुद्धि का क्षेत्र', 'शून्यता का क्षेत्र', और 'वह क्षेत्र जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध', जिनमें से प्रत्येक का 'परिणाम' चौथा ध्यान है, जैसा कि § 501 में बताए गए सूत्र में है।

4. उच्च आदर्श की खोज में (लोकोत्तरविपको)।
I. पहला मार्ग।
बीस महान विधियाँ।
1. एकाग्र ध्यान।
(i.) शुद्धिकरण में प्रगति के चार तरीके।
[505] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ने की प्रेरणा मिलती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... [धारा 277 के अनुसार जारी] क्योंकि उसमें प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है - तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।
लेकिन जब, इस अच्छे ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में विकसित होने के बाद[23], वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कष्टदायी होती है, अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, और जो शून्य होता है — तब संपर्क स्थापित होता है... ज्ञान की क्षमता पूर्ण हो जाती है[24]... संतुलन। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[506] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्र ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे पुनर्जन्म का निवारण होता है और निरंतर प्रगति होती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय सुखों और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... [धारा 277 के अनुसार जारी] क्योंकि उसमें प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है - तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।
लेकिन जब, इस अच्छे ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में विकसित होने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिसकी प्रगति कष्टदायक है, जिसमें अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो संकेतहीन है[25]...
[या] [507] (उपरोक्त सभी को दोहराते हुए)
जो लक्ष्यहीन है[26] — तब संपर्क होता है... ज्ञान की क्षमता पूर्ण हो जाती है... संतुलन। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[508] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
[पृष्ठ 140] जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्र ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म को समाप्त करने की दिशा में प्रगति होती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, अवधारणा और विवेचनात्मक विचार के कार्य को दबाकर, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है...

[या] ... तीसरे ध्यान में ... [या] ... चौथे ध्यान में ... [या] ... [पांच गुना ध्यान के लिए उसी इवै में जारी रखें] ... प्रगति जिसमें कष्ट हो और अंतर्ज्ञान सुस्त हो, तो यह अच्छा (कर्म) है। [27]

लेकिन जब, [इस या उस ध्यान के फलस्वरूप, जब संगत ध्यान प्राप्त होता है] ऐसी प्रगति होती है जिसमें पीड़ा होती है, ऐसी अंतर्ज्ञान शक्ति होती है जो सुस्त होती है, और जो शून्य,

संकेतहीन,

या लक्ष्यहीन होती है, तब संपर्क... जो संतुलन उत्पन्न होता है—ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[509] पिछले दो खंडों को दोहराएँ, प्रगति के शेष तीन तरीकों को क्रम से प्रतिस्थापित करते हुए: 'प्रगति जहाँ कष्टदायक है, लेकिन अंतर्ज्ञान तेज़ है', 'प्रगति जहाँ आसान है, लेकिन अंतर्ज्ञान सुस्त है', और 'प्रगति जहाँ आसान है, और अंतर्ज्ञान तेज़ है' (§§ 176-180)।

(ii.) शून्यता की धारणा शुद्धिकरण (शुद्धिका-सुन्नतम) पर लागू होती है।

[510] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म को समाप्त करने की दिशा में एक निरंतर प्रगति होती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो शून्य है—तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।

लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसका अभ्यास करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो कि शून्य है...

[या] [511] जो चिह्नहीन है ... [या] [512] जो लक्ष्यहीन है — तब संपर्क है ... संतुलन। और ये ... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[513] चार गुना प्रणाली पर शेष प्रत्येक Jhdna के मामले में और पंचगुण प्रणाली पर सभी J lianas के मामले में दोहराएँ,

(iii.) शून्यता (सुन्नत[28]-पतिपाद) की धारणा के संबंध में प्रगति के चार तरीके।

[पहला मोड।]

[514] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय सुखों और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जब प्रगति कष्टदायी होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, और जो शून्य होता है, तब संपर्क... संतुलन प्राप्त होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।

लेकिन जब, इस अच्छे ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, [पृष्ठ 142] बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिसकी ओर प्रगति कष्टदायक है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो शून्य है...

[या] [515] जो संकेतहीन है...

[या] [516] जो लक्ष्यहीन है, तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[517] चार गुना प्रणाली पर शेष प्रत्येक Jhdna के मामले में और पंचगुण प्रणाली पर सभी Jhdna के मामले में दोहराएँ।

[द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ विधाएँ।]

[518] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ने की दिशा में एक निरंतर प्रगति होती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है...

— वह प्रगति जिसमें कष्ट होता है, लेकिन अंतर्ज्ञान तीव्र होता है,
और जो खाली है...

— वह प्रगति जिसमें आसानी होती है, लेकिन अंतर्ज्ञान सुस्त होता है,
और जो खाली है...

— वह प्रगति जिसमें आसानी होती है और अंतर्ज्ञान तीव्र होता है,
और जो खाली है...

[तीनों मोड के मामले में शेष Jhdna को प्रतिस्थापित करते हुए दोहराएँ]

...तो ये अच्छे कर्म कहलाते हैं।

लेकिन जब, [तीनों गुणों में से किसी एक में इस या उस ध्यान के फलस्वरूप], वह क्रम से लिए गए किसी भी ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो तीनों गुणों में से किसी एक में हो और जो शून्य हो . . .

. . . [या] जो चिन्हहीन हो . . .

. . . [या] जो लक्ष्यहीन हो, [पृष्ठ 143] तब संपर्क . . . संतुलन स्थापित होता है। और ये . . . अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।

(iv.) लक्ष्यहीनता की धारणा शुद्धि (शुद्धिका-अप्पनिहितम्) पर लागू होती है।

[519] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय-सुखों और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो लक्ष्यहीन है, तब संपर्क और संतुलन स्थापित होता है। ये अवस्थाएँ उत्तम हैं।

लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो लक्ष्यहीन है...

[या] [520] जो संकेतहीन है...

[या] [521] जो शून्य है, तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[522] प्रत्येक q/ के मामले में, चतुर्विध प्रणाली के शेष ध्यानों और पंचविध प्रणाली के सभी ध्यानों के मामले में दोहराएँ।

(v.) उद्देश्यहीनता (अप्पनिहित-पतिपाद) की धारणा के संबंध में प्रगति के चार तरीके।

[523] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ने और पुनर्जन्म को समाप्त करने की दिशा में प्रगति होती है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिस तक प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो लक्ष्यहीन है, तब संपर्क... संतुलन प्राप्त होता है। अब ये... अच्छी अवस्थाएँ हैं।

लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिसकी ओर प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो लक्ष्यहीन है...

[या] [524] जो संकेतहीन है...

[या] [525] जो शून्य है, तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[526] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श (समाधिपूर्ण ध्यान) के ध्यान का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ना और प्रगति करना संभव होता है, पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, अवधारणा और विचार विवेचनात्मक क्रिया को दबा देता है,[29] वह द्वितीय ध्यान में, या [चतुर्गुण और पंचगुण प्रणाली पर शेष किसी भी ध्यान में] प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जिसकी प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो लक्ष्यहीन है, तब यह अच्छा (कर्म) कहलाता है।

लेकिन जब, [इस या उस ध्यान के परिणामस्वरूप, संगत ध्यान प्राप्त होता है]^ प्रगति जिसमें कठिनाई होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, और जो लक्ष्यहीन है, [या] जो संकेतहीन है,[30] [पृष्ठ 145] [या] जो खाली है,[31] तब संपर्क होता है... संतुलन। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[527] अब दूसरे, तीसरे और चौथे मोड को बारी-बारी से प्रतिस्थापित किया जाता है, जैसा कि § 518 में किया गया है।

2-20. शेष उन्नीस महान विधियाँ।

[528] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

यहां उन्नीस अवधारणाएं दी गई हैं, जिनमें से प्रत्येक को पूर्ववर्ती अभ्यासों (§§ 505-528) में 'उच्च आदर्श के ध्यान' के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है, और इस अनुच्छेद में वास्तव में जिन अभ्यासों के लिए इन्हें लागू किया गया है, वे §§ 505-509 में दिए गए 'शुद्धिकरण में प्रगति के तरीके' हैं। इन उन्नीस अवधारणाओं को § 358 में सूचीबद्ध किया गया है।

(vi.) इच्छा के प्रमुख प्रभाव के संबंध में शुद्धि में प्रगति के तरीके (चंदाधिपतेय्या-सुद्धिका-पतिपाद)।[32]

[529] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जब प्रगति कठिन होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, और जिसमें इच्छा का प्रभुत्व होता है—तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।

लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है। [पृष्ठ 146] — जो शून्य है...

[या] [530] जो संकेतहीन है[33]...

[या] [531] जो लक्ष्यहीन है, और जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा का है — तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[532] दोनों प्रणालियों पर शेष प्रत्येक Jhdna के मामले में दोहराएँ।

[533] प्रत्येक Jhdna पर लागू शेष तीन 'प्रगति के तरीके' के मामले में दोहराएँ।

(vii.) शुद्धि के लिए लागू शून्यता की धारणा, और प्रमुख प्रभाव के रूप में इच्छा के संबंध में लिया गया (चंदाधिपतेय्यम सुद्धिका-सुन्नतम)।[34]

[534] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय-सुखद इच्छाओं और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो शून्य है, और जिसमें अभिलाषा का प्रभुत्व है—तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।

लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जो कि शून्य है...

[या] [535] जो कि संकेतहीन है...

[या] [536] जो कि लक्ष्यहीन है, और जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा का है - तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[पृष्ठ 147] [537] दोनों प्रणालियों पर शेष प्रत्येक Jhdna के मामले में दोहराएँ।

(viii.)[35]
[538] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह उच्च आदर्श के ध्यान (एकाग्रचित्त ध्यान) का अभ्यास करता है, जिससे निरंतर प्रगति होती है और पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार इंद्रिय-सुखों और बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जब उस ध्यान की ओर प्रगति कठिन होती है और अंतर्ज्ञान सुस्त होता है, जो शून्य है, और जिसमें इच्छा का प्रभुत्व होता है—तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।
लेकिन जब, इस अच्छे ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसे विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, - जो शून्य है...
[या] [539] जो संकेतहीन है[36]...
[या] [540] जो लक्ष्यहीन है[37], और जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा का है - तब संपर्क... संतुलन होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[541] शेष प्रत्येक झाना के मामले में इसे दोहराएँ,
[542] शेष तीन 'प्रगति के तरीकों' में से प्रत्येक के मामले में इसे दोहराएँ, जो प्रत्येक ध्यान पर लागू होते हैं।

[पृष्ठ 148] (ix.)
[543-546] यह समूह समूह सात के समान है। [§§ 534-537], सिवाय इसके कि लक्ष्यहीन की अवधारणा खाली की अवधारणा का स्थान लेती है, और इसके विपरीत।

(एक्स।)
[547-551] यह समूह समूह viii के समान है। [§§ 538-542], सिवाय इसके कि लक्ष्यहीन की अवधारणा खाली की अवधारणा का स्थान लेती है, और इसके विपरीत।

2-20. शेष उन्नीस महान विधियाँ.[38]
[552] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह उच्च आदर्श के मार्ग का अभ्यास करता है, उच्च आदर्श की ओर सचेतनता में प्रगति करता है, उच्च आदर्श की ओर आठ प्रयासों की प्रणाली का पालन करता है, आदि [धारा 358 के अनुसार जारी रखें, 'उच्च आदर्श से संबंधित विचार'], जिससे आगे बढ़ना और प्रगति करना संभव होता है, पुनर्जन्म का निवारण होता है, और जब वह प्रथम अवस्था को प्राप्त करने के लिए विचारों और मतों को त्याग देता है, और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जिसमें प्रमुख प्रभाव इच्छा का है - तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... अवस्थाएँ अच्छी हैं।
लेकिन जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसका अभ्यास करने के बाद, व्यक्ति इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ प्रगति कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, जो शून्य,

या संकेतहीन,
या लक्ष्यहीन है, और जिसमें प्रमुख प्रभाव [पृष्ठ 149] इच्छा,
या ऊर्जा,
या विचार,
या अन्वेषण है, तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। और ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[यहाँ समाप्त होता है] प्रथम पथ में परिणाम।
द्वितीय.— चतुर्थ. शेष तीन मार्ग. तुलना करें. धारा 362-364क.
[553] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह उच्च आदर्श (समाधिपूर्ण ध्यान) के ध्यान का अभ्यास करता है, जिससे आगे बढ़ना और प्रगति करना संभव होता है, जिससे पुनर्जन्म का नाश होता है, और जब, ताकि वह द्वितीय अवस्था को प्राप्त कर सके, तो उसने कामुक भावनाओं और द्वेष की शक्ति को कम कर दिया है[39] . . .
या जब वह तृतीय अवस्था को प्राप्त कर ले, तब वह कामुक भावनाओं और द्वेष के सभी अवशेषों को त्याग दे...
[या] जब वह चौथे चरण को प्राप्त करने के लिए रूप के प्रति सभी जुनून, निराकार के प्रति सभी जुनून, सभी अहंकार, उत्तेजना और अज्ञान को पूरी तरह से त्याग देता है - और इस प्रकार, इंद्रिय सुखों से दूर, बुरे विचारों से दूर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें रहता है... प्रगति जहां कठिन है और अंतर्ज्ञान सुस्त है, तब संपर्क होता है... ज्ञान की क्षमता परिपूर्ण हो जाती है[40]... संतुलन।
अब ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अच्छी हैं।[41]
[पृष्ठ 150] परन्तु जब, इस उत्तम ध्यान के फलस्वरूप, उच्च आदर्श की खोज में इसका अभ्यास किया जाता है, और वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे विचारों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... जहाँ तक पहुँचना कठिन है, अंतर्ज्ञान सुस्त है, और जो शून्य है, तब संपर्क स्थापित होता है... उस व्यक्ति की क्षमता का संतुलन, जिसका ज्ञान पूर्ण हो चुका है। और ये... अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[554] ऊपर दिए गए अनुसार 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर।
[555] उस अवसर पर उस व्यक्ति की क्या क्षमता होती है जिसका ज्ञान पूर्ण हो गया हो (अन्नतविन्द्रियम)?[42]
पूर्ण ज्ञान, विज्ञान, उन लोगों के सिद्धांतों की समझ जिनका ज्ञान परिपूर्ण हो चुका है, उनकी खोज, शोध, सत्य की खोज; विवेक, भेदभाव, विभेद; विद्वत्ता, दक्षता, सूक्ष्मता; आलोचना, चिंतन, विश्लेषण; व्यापकता, दूरदर्शिता, मार्गदर्शन; अंतर्दृष्टि, बुद्धि, प्रेरणा; एक क्षमता और शक्ति के रूप में ज्ञान; एक तलवार के रूप में, एक ऊँचाई के रूप में, एक प्रकाश के रूप में, एक महिमा के रूप में, एक वैभव के रूप में, एक अनमोल रत्न के रूप में ज्ञान; सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की वह खोज जो महान जागरण का एक कारक है; मार्ग का एक घटक, जो मार्ग में निहित है — यह उस अवसर पर उस व्यक्ति की क्षमता है जिसका ज्ञान परिपूर्ण हो चुका है।
[पृष्ठ 151]
या[43] उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ हों, ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[यहाँ समाप्त होता है] उच्च आदर्श के साथ संबंध स्थापित करने का परिणाम।

बी. बुरा कर्म.[44]
(क) इंद्रिय-ज्ञान के पाँच तरीके।
[556] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब बुरे कर्मों के संचय के परिणामस्वरूप,
दृश्य बोध उत्पन्न होता है, जो अनासक्ति से युक्त होता है और जिसका विषय दृष्टि होता है...
श्रवण बोध उत्पन्न होता है, जो अनासक्ति से युक्त होता है और जिसका विषय ध्वनि होता है...
घ्राण बोध उत्पन्न होता है, जो अनासक्ति से युक्त होता है और जिसका विषय गंध होता है...
स्वाद बोध उत्पन्न होता है, जो अनासक्ति से युक्त होता है और जिसका विषय स्वाद होता है...
शरीर बोध उत्पन्न होता है, जो पीड़ा से युक्त होता है और जिसका विषय कुछ मूर्त होता है,
तब [पृष्ठ 152] संपर्क, चिंतन,
भावना, विचार,

बोध, पीड़ा,
आत्म-संयम होता है;

विचार,
संकट, जीवन शक्ति की क्षमताएँ
।[45] अब ये, या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ होती हैं - ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[557] ऊपर दिए गए अनुसार 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर।
[558] उस अवसर पर भावना क्या है?

शरीर का दर्द, शरीर की पीड़ा जो उस अवसर पर शरीर की अनुभूति के उपयुक्त तत्व के संपर्क से उत्पन्न होती है; शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ादायक, कष्टदायक अनुभूति; शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली पीड़ादायक, कष्टदायक भावना - यही वह भावना है जो उस समय मौजूद होती है।
[559] उस अवसर पर संकट क्या है?

शरीर का दर्द, शरीर की पीड़ा जो उस समय शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली दर्दनाक, कष्टदायक अनुभूति होती है; शरीर के संपर्क से उत्पन्न होने वाली दर्दनाक, कष्टदायक भावना - यही वह पीड़ा है जो उस समय मौजूद होती है।
[560] उस अवसर पर संकट की क्षमता क्या है?

धारा 559 के अनुसार उत्तर दें।
[पृष्ठ 153] या उस अवसर पर जो भी अन्य निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ हों, ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[सारांश।]
[560ए]

उस समय स्कंध चार होते हैं,
क्षेत्र दो होते हैं,
तत्व दो होते हैं,
पोषक तत्व तीन होते हैं,
इंद्रियां तीन होती हैं,
संपर्क
आदि।
[धारा 58 के अनुसार जारी रखें।]
विचार की क्षमता को एकल कारक के रूप में गिना जाता है,
शरीर की अनुभूति का तत्व[46] एकल कारक के रूप में गिना जाता है,
[मानसिक] अवस्थाओं का क्षेत्र एकल कारक के रूप में गिना जाता है,
इत्यादि।
[धारा 58-61 के अनुसार जारी रखें।]
[561] उस अवसर पर संश्लेषण का स्कंध क्या है?
संपर्क, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, आत्म-संयम;
गर्भाधान, जीवन शक्ति की क्षमता। या उस अवसर पर मौजूद अन्य सभी निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ, भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों से इतर, ये संश्लेषण के स्कंध हैं।
[धारा 63 आदि के अनुसार जारी रखें।]

[पृष्ठ 154] (ख) विचार का तत्व।

[562] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब बुरे कर्मों के फलस्वरूप, संचित होने के कारण, निस्वार्थता के साथ, किसी दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, किसी मूर्त वस्तु या किसी अन्य वस्तु को विषय बनाकर, विचार,
भावना, अवधारणा,
बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, निस्वार्थता और
आत्म-संयम उत्पन्न होता है;
विचारण क्षमता
,
निस्वार्थता,
जीवंतता। अब ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[सारांश।]
[562a] इसमें संश्लेषण के उपयुक्त स्कंध का वर्णन शामिल है [563], यह संबंधित सारांश, §§ 467a, 468 के समान है।

(ग) प्रतिनिधि बौद्धिकता का तत्व।
[564] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब बुरे कर्मों के फलस्वरूप, संचित होने के कारण, प्रतिनिधिक बौद्धिकता का एक तत्व उत्पन्न हो जाता है, जो निस्वार्थता से युक्त होता है, और जिसका उद्देश्य दृष्टि आदि,[47] या कुछ और होता है, तब संपर्क, विचार,
भावना, अवधारणा, [पृष्ठ 155] बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, आत्म-संयम होता है;
विचारण क्षमता
,
निस्वार्थता,
जीवंतता। अब ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[धारा 485-496 के अनुसार जारी रखें।]
[सारांश।]
[564ए, 565] इसमें संश्लेषण के उपयुक्त स्कंध का वर्णन शामिल है, जो §§ 496ए, 497 के समान है।
यहां बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली अनिश्चितताएं समाप्त होती हैं।
- फुटनोट:
1.कम्माम; वस्तुतः क्रिया, काम, कर्म।

2. इस और अगले दो खंडों (2 और 3) में उपेक्षा का प्रयोग स्पष्ट रूप से केवल एक मनोवैज्ञानिक शब्द के रूप में किया गया है, बिना नैतिक निहितार्थ के, और इसका अर्थ केवल तटस्थ भावना है।

3. इनमें से केवल एक ही होगा, अर्थात् ध्यान (असली. 262)।

4. पाठ में thiti के बाद . . . pe . . . को हटा दें, जैसा कि § 424 में है, और उसी कारण से (Asl. 262)।

5. साई. (262) के अनुसार, ध्यान और पथ को सारांश में शामिल नहीं किया गया है; और क्यों? ध्यान अपने चरम पर अवधारणा (वितक्को) रखता है, और पथ अपने चरम पर कारण (हेतु) रखता है। इसलिए, बिना किसी वैचारिक गतिविधि वाले विचार में ध्यान को शामिल करना या कारण रूप से प्रभावी न होने पर पथ को शामिल करना सुसंगत नहीं है।
यह टिप्पणी अनिश्चित अवस्थाओं की समस्या पर कुछ प्रकाश डालती है। वितको में मन अच्छे या बुरे लक्ष्य की ओर कार्य करता है; पथ में पहला कारक (सही दृष्टिकोण) 'सुस्ती की अनुपस्थिति' का पर्याय है, जो अच्छाई का कारण या मूल है (§ 1054)। अतः, न तो वितको और न ही आमो, ऐसी अनुभूति का संभावित घटक है जो अच्छे या बुरे कर्म उत्पन्न करने में असमर्थ है।

6. या 'स्पर्श' (vp 2, n. 2)। यह विचार कि किसी मूर्त वस्तु के संज्ञान का एक सकारात्मक सुखदायक सहवर्ती प्रभाव होता है— सुखद या, यदि कर्म बुरा हो (§ 556), तो अप्रिय—अन्य प्रकार के इंद्रिय-ज्ञान (दी गई परिस्थितियों में) से जुड़े तटस्थ भाव की तुलना में, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। और इससे उत्पन्न टिप्पणी भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। साइ. (263) बताते हैं कि स्पर्श, या देह संवेदनशीलता, वह एकमात्र इंद्रिय है जिसके माध्यम से व्यक्ति के भीतर और बाहर के चार तत्व प्रत्यक्ष संपर्क में आते हैं। अन्य संज्ञान गौण हैं, क्योंकि अन्य इंद्रियां व्युत्पन्न (ऊपर दा) हैं। वे चार निहाई पर रुई के गोलों की तरह हैं, जो हथौड़े के प्रभाव को कम कर देते हैं। स्पर्श में रुई को पीटा जाता है, और प्रतिक्रिया अधिक तीव्र होती है। इसकी तुलना नीचे दिए गए इंद्रिय सिद्धांत, §§ 596-632 से करें। फिर भी, आराम या परेशानी का अंतर इतना कम होता है कि अनुभूति 'अनिश्चित' बनी रहती है।
घटक अवस्थाएँ, संपर्क आदि केवल अंतिम उल्लिखित प्रकार की संज्ञान प्रक्रिया को संदर्भित करते हैं। अन्य चार प्रकारों के मामले में 'सहजता' के स्थान पर 'निस्वार्थता' का प्रयोग करना होगा।

7. वेदना मुद्रित ग्रंथों से लुप्त हो गई है।

8. धारा 450 में thiti के बाद पाठ में ... pe ... को हटा दें।

9. धारा 451 में 'विन्नानाधातु' से पहले 'कय' लगाइए। यह सत्य है कि 'मनिन्द्रियम' अवस्था केवल प्रतिनिधिक ज्ञान की अवस्था है, परन्तु दी गई परिस्थितियों में यह 'कय-विनिअनम्' से युक्त है। 'मनो द्वार' का विषय पाँचों इंद्रियों के सभी या कोई भी विषय हो सकते हैं।

10. एक बार फिर, सि. (263) प्रत्यय -धातु (तत्व) के महत्व को इंगित करता है, जिसका अर्थ है सत्ता का अभाव (निस्सात्त), वैचारिक क्षमता का 'शून्यता' या घटनात्मक चरित्र। तुलना करें, ऊपर, पृष्ठ 33, n. मनो की विशेषताओं को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तावना (बौद्धिकरण का सिद्धांत) देखें। यहाँ जिस संवेदी समुदाय के सिद्धांत का उल्लेख किया गया है, वह व्यावहारिक रूप से अरस्तू द्वारा 'डी सेंसु' में अपनाए गए सिद्धांत के समान है। 'इस प्रकार के विचार का आधार (या स्थल, वस्तु) एक स्थिर तत्व है, अर्थात् हृदय; "द्वारों" (या विचार-द्वार) की वस्तुएँ स्थिर नहीं हैं। जबकि वे एक के बाद एक आती हैं, यह वह स्थान (थानम्) है, जिसका कार्य उन्हें एकता में ग्रहण करना है' (एकसमपच्चनकिच्चम्)।
अनुभूति की प्रक्रिया मनोविनियानाधातु द्वारा पूरी की जाती है (नीचे देखें)।

11. इनमें (असली. 264) दो अन्य बातें, संकल्प और ध्यान शामिल हैं। तुलना करें, ऊपर, पृष्ठ 5, नोट 1।

12. चूंकि, साइ. (264) कहता है कि यह विचार (अपने प्रभाव में) न तो अच्छा है और न ही बुरा, इसलिए इरादा (संकप्पो), चाहे सही हो या गलत, इसके घटक विटाक्को के अर्थ में शामिल नहीं है। तुलना करें §§ 7 और 371, साथ ही पृष्ठ 125, नोट 2।

13. पाठ में दिए गए संदर्भ, जांच करने पर, अधिकतर भ्रामक सिद्ध होंगे।

14. मनोविन्ननाधातु के कार्य की चर्चा प्रस्तावना (बौद्धिकरण का सिद्धांत) में की गई है। यहाँ कहा गया है (असल. 264), कि 'सुख के साथ' होने पर यह दो प्रकार की परिस्थितियों में परिणत होता है: 'पाँच इंद्रियों के द्वार पर स्थित होकर, यह उस विचार (या बोध) के बारे में निर्णय (संतारण) लेने का कार्य करता है, जिसे अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई इंद्रिय-ज्ञान की समाप्ति पर विचार तत्व ने ग्रहण किया था।' पुनः: 'जब छह द्वारों (इंद्रियों और विचार) की क्रिया से अधिक प्रभावशाली विचार उत्पन्न होता है, तो इसे ही विचार (तद-आरम्मनम्) कहा जाता है, अर्थात् 'प्रेरणा का विषय' (जाव नम), और प्रतिनिधिक ज्ञान तत्व उस विषय पर स्थिर होने के लिए आकर्षित हो जाता है। इसी प्रकार, एक प्रचंड धारा को पार करते समय, उसका स्वाभाविक प्रवाह नीचे की ओर होने के बावजूद, वह धारा को क्षण भर के लिए मोड़ने में सक्षम होता है।' बुद्धि का सामान्य प्रवाह, एक प्रकार से, व्यक्तिगत जीवन की धारा के अनुदिश होता है (भवंगम् एव' ओतरति)। और यहाँ केवल बुद्धि के इसी सामान्य कार्य को ध्यान में रखा गया है।
किसी भी बहिर्गामी या क्रियात्मक आवेग से ठीक पहले की अनुभूति की अगली अवस्था, जैसा कि जावा नम शब्द से तात्पर्य प्रतीत होता है (देखें सुम. 194; अभ. एस. iii. 3) — मैं 'स्थापित करने' (या पूर्ण आत्मसातकरण, जैसा कि हम कह सकते हैं — वोत्थप्पनम्) की ओर संकेत कर रहा हूँ — का यहाँ स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। लेकिन यह संभवतः संतलरणदि वाक्यांश में निहित है, जिसका अर्थ है 'निर्णय लेना और शेष'। इस पर कुछ पृष्ठों आगे चर्चा की गई है (असल. 269, 272)।

15. पाठ में [58] का संदर्भ फिर से गलत है, क्योंकि न तो ज्ञान का पूर्वाभ्यास होना है और न ही पाठ का। देखें पृष्ठ 125, नोट 2, और असल. 264.

16. इस प्रकार का परिणामी ज्ञान पाँच प्रकार के अवसरों पर घटित होता है: (i) अशक्त संतान की उत्पत्ति, जैसे अंधा, बहरा, मंदबुद्धि या पागल, उभयलिंगी या नपुंसक; (ii) एक व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान (भवंगम); (iii) किसी विचार के संबंध में निर्णय (सन्तिरणम) लेते समय, जब वह वस्तु न तो सुख देती है और न ही दुख; (iv) जब उस विषय (तदारम्मनम) का उदय होता है (धारा 469, n देखें); (v) जब मृत्यु पुनर्जन्म का मार्ग प्रशस्त करती है (चुति)। यह देखा जा सकता है कि ये पाँचों क्रमशः पहले, दूसरे, दसवें, तेरहवें और चौदहवें अवसर हैं जिन पर विशुद्धि मार्ग (अध्याय 14; वॉरेन की 'विषय-सूची', जेपीटीएस, 1891-93, पृष्ठ 130 देखें) के अनुसार विन्नान घटित होते हैं। यह संभव है कि हमारे साइ. में व्याख्यात्मक सामग्री का अभाव, बुद्धघोष द्वारा पूर्व के ग्रंथ में किए गए पूर्ण विवेचन के कारण हो।

17. बौद्ध (शैक्षणिक) अनिश्चितता और यिपको के सिद्धांत के संबंध में वर्तमान ज्ञान के स्तर पर, यहाँ वर्णित परित्यक्त अवस्थाओं के लिए कोई विश्वसनीय संदर्भ प्रदान करना कठिन है। निम्नलिखित खंड (टिप्पणी देखें) यह संकेत देता प्रतीत होता है कि ऊपर वर्णित अनिश्चितताओं के प्रकारों में कम से कम तीन और अवस्थाएँ शामिल की जानी हैं, अर्थात् कामवासना, घृणा और सुस्ती का अभाव। लेकिन साइ. (पृष्ठ 265, 266) बिल्कुल स्पष्ट नहीं है, और यिपको के संबंध में तर्कशास्त्रीय विचारों पर एक लंबी और बेतरतीब चर्चा में उलझ जाता है।

18. यह अत्यधिक संक्षिप्त अनुच्छेद, जिसमें मैंने तीसरा 'मूल' जोड़ा है, जो पाठ में अनजाने में छूट गया था, लेकिन संदर्भ के अनुसार आवश्यक है (ऊपर देखें, §§ 32-34; के., असल. 267, 268), संभवतः यह दिखाने के लिए है कि किस प्रकार निद्देसा, या प्रत्येक आठ प्रकार के केसल्ट की कुछ घटक अवस्थाओं का वर्णनात्मक विवरण, प्रत्येक संबंधित आठ प्रकार के अच्छे विचारों (§§ 1-159) में दिए गए विवरण से भिन्न है।

19. धारा 160 देखें।

20. धारा 160 के अनुसार जारी रखें।

21. मुद्रित पाठ में . . . पे . . . यहाँ को हटा दिया जाना चाहिए, जैसा कि §§ 503, 504 में किया गया है। इसी प्रकार § 502 में भी हटा दें।

22. यह निर्धारित करने की कठिनाई पर कि यहाँ किन घटक धम्मों को समझा जाना चाहिए, धारा 498, नोट देखें।

23. 'कर्म' शब्द और उसका गुणधर्म, 'संग्रह करना' (उपाचितत्तम्), अब क्रमशः लोकुत्तरम झानम् और खेती या अभ्यास (भवितत्तम्) द्वारा प्रतिस्थापित हो गए हैं (असल. 289)।

24. ऊपर दिए गए अनुच्छेद 362 की तुलना करें। प्रथम मार्ग को छोड़ने से पहले, अनिश्चित अवस्थाओं के मामले में, इस क्षमता के विकास पर कोई टिप्पणी नहीं दी गई है। लेकिन इसका कारण संभवतः यह है कि आदर्श की खोज में, परिणाम एक उच्चतर मार्ग की प्राप्ति, या कम से कम प्रथम मार्ग की 'फल प्राप्ति' को दर्शाता है। अनुच्छेद 508 और 509 के संबंधित अनुच्छेदों में, मुद्रित पाठ में या के. में, इस क्षमता का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है; लेकिन संदर्भ से इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसे पढ़ा जाना चाहिए।

25. ऊपर देखें, पृष्ठ 91, नोट 2.

26. वही।

27. ऐसा प्रतीत होता है कि संकलकों ने यहाँ और कुछ बाद के उत्तरों में सामान्य तरीके के अलावा किसी अन्य तरीके से संक्षेपण का प्रयास किया है... यह, मेरा मानना है, एक बहुत ही दुर्लभ उदाहरण है।

28.Sic lege.

29.विविश्चसेवा कामेहि के लिए वितक्कविचारणं वुपासम का पाठ करें।

30.अप्पनिहितं ति विपाको के लिए बार-बार अनिमित्तं ति विपाको पढ़ें।

31. सुन्नतम् अनजाने में पाठ से छूट गया है।

32.के. में छोड़ा गया।

33.अप्पनिमित्तम के लिए मुद्रित पाठ अनिमित्तम में पढ़ें।

34. के. में छोड़ा गया।

35. इस समूह को कोई शीर्षक नहीं दिया गया है, लेकिन यह देखा जाएगा कि यह समूह 6 (पृष्ठ 145) की पुनरावृत्ति है, इस अतिरिक्त विशेषता के साथ कि कर्म का निर्माण करने वाला ध्यान शून्य है।

36. सुन्नतम के लिए अनिमित्तम् पढ़ें।

37. फासो से पहले लोकुट्टारो को छोड़ दें।

38. ऊपर देखें, पृष्ठ 145.

39. मुद्रित पाठ में यहाँ जो अंश आता है, उत्तर की पंक्ति 3 में, अर्थात्, vivicc'eva . . . down to phasso hoti, वह विकृत पाठ प्रतीत होता है, जो पिटक संकलन की संरचना और लोप दोनों की समरूपता में विसंगतियाँ प्रस्तुत करता है। के. इस वाक्यांश को छोड़ देता है।

40. यह शब्द (अन्निन्द्रियम होति) के. में छूट गया है। हालाँकि, यह द्वितीय मार्ग की प्राप्ति से संबंधित है (ऊपर देखें, पृष्ठ 96, नोट 2), और केवल ऐनतविन्द्रियम (§ 555) की बौद्धिक पराकाष्ठा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। इसलिए मुझे नहीं लगता कि यह गलत पाठ है।

41. यहां मुद्रित पाठ में अव्यकाता की जगह कुसला होना चाहिए।

42. मुझे अभी तक यह जानकारी नहीं है कि यह शब्द तीनों पिटकों में कहीं और मिलता है या नहीं। बुद्धघोष (अस्लिम 291) के अनुसार, यह 'अन्नतवी (यानी, ज्ञात चीजों का धारक) की विशिष्ट क्षमता' है, उस व्यक्ति की जिसने चार सत्यों के दर्शन में वह सब कुछ पूर्ण कर लिया है जो किया जाना था। और उत्तर में उल्लिखित 'सिद्धांतों' को संबद्ध या घटक सिद्धांतों के रूप में परिभाषित किया गया है, जिनके भीतर विषय ने निपुणता प्राप्त की है, या जिन पर उसने आंतरिक रूप से महारत हासिल की है (संपयुत्तधम्मनम्...थितानम् धम्मनम् अभंतरे)।
संभवतः, धम्मनम से तात्पर्य उन बौद्धिक अवस्थाओं से है जिन पर अनित्यतविन का प्रभुत्व और नियंत्रण होता है, जो उत्तर में समाहित हैं।

43.Avikkhepo hoti ... pe ... जैसा कि मुद्रित पाठ में शामिल है, K में छोड़ दिया गया है। हालाँकि, यह गलत नहीं है, क्योंकि घटक अवस्थाओं का वर्णन, 'संपर्क' से शुरू होकर 'संतुलन' पर समाप्त होता है, जो §§ 278-337 में दिए गए वर्णन के समान है, और केवल 'अज्ञात को जानने की क्षमता' के स्थान पर 'जिसका ज्ञान पूर्ण हो गया है उसकी क्षमता' के प्रतिस्थापन से भिन्न है, यहाँ पूर्ण रूप से दोहराया जाना चाहिए। हालाँकि, वर्तमान स्वरूप में यह थोड़ा भ्रामक है।

44. खंड बी और उसके तीन उपखंडों ए से सी के साथ, ऊपर वर्णित अच्छे कर्मों के समन्वित परिणामों की तुलना करें, धारा 431-468 और 484-497। बी के अंतर्गत सुखद परिणाम संभव नहीं हैं, क्योंकि इसके निर्धारक कारक बुरे हैं।

45. धारा 443 में अच्छे कर्म के संबंध में दिए गए उत्तर के आधार पर, मुद्रित पाठ में यहाँ संलग्न . . . पे . . . त्रुटिपूर्ण है। के. इसे छोड़ देता है।
यह सूची और इसके बाद के खंड (557-560) इंद्रिय-ज्ञान के अंतिम रूप, अर्थात् शरीर से संबंधित रूप पर लागू होते हैं। अन्य रूपों के मामले में, 'परेशानी' के स्थान पर 'निस्वार्थता' कुछ प्रश्नों के लिए अलग-अलग उत्तरों का कारण बनेगी।

46.मुद्रित पाठ में मनो-विन्नधातु के लिए काया-विन्नधातु पढ़ें।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक1-भाग3-अध्याय 2
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 1 - विचारों की उत्पत्ति
  - भाग 3 - चेतना की अनिश्चित अवस्थाएँ

अंतर्वस्तु

1अध्याय II - क्रिया-विचार
1.1ए. संवेदी ब्रह्मांड के संबंध में।[1]
1.2(ख) प्रतिनिधि बौद्धिक चिंतन के अवसर पर।
1.33.

1.4बी. रूप के ब्रह्मांड (रूपवचार-क्रिया) के संबंध में।
1.5ग. निराकार जगत (अरूपवचार-क्रिया) के संबंध में।
1.6- फुटनोट:
अध्याय II - क्रिया-विचार

ए. संवेदी ब्रह्मांड के संबंध में।[1]
(ए) विचार के अवसर पर (कामवचरा-किरिया)।
[566] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब क्रिया [पृष्ठ 157] नामक प्रकार का विचार तत्व उत्पन्न हो जाता है,[2] जो न तो अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, जो अनासक्ति से युक्त है, और जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, कुछ मूर्त, या कुछ भी नहीं है, तब संपर्क, विचार,
भावना, अवधारणा,
बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, अनासक्ति,
आत्म-संयम होता है;[3]
विचारण क्षमता

,
निस्वार्थता,
जीवंतता। अब ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य अवास्तविक, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[सारांश।]
[566ए]

अब, उस समय स्कंध चार हैं, [पृष्ठ 158] क्षेत्र दो हैं,
तत्व दो हैं,
पोषक तत्व तीन हैं,
क्षमताएँ तीन हैं,
संपर्क,
आदि।
[567] संश्लेषणों का स्कंध (साथ ही उपरोक्त सारांश का शेष भाग) अध्याय I में संबंधित अंशों के समान है, अर्थात्, §§ 467a, 468।

(ख) प्रतिनिधि बौद्धिक चिंतन के अवसर पर।
1.
[568] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब क्रिया नामक प्रकार की प्रतिनिधि बौद्धिकता का एक तत्व उत्पन्न होता है, जो न तो अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, जो सुख के साथ होता है,[4] [पृष्ठ 159] और जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, कुछ मूर्त, या कुछ भी नहीं है, तब संपर्क, अवधारणा,
भावना, विवेचनात्मक विचार, बोध,
आनंद,
चिंतन, सहजता,
विचार, आत्म-संयम होता है;

ऊर्जा, विचार,
एकाग्रता, खुशी, जीवंतता जैसी क्षमताएं

। अब ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएं, अनिश्चित अवस्थाएं हैं।
[569] ऊपर बताए अनुसार 'संपर्क' पर प्रश्न और उत्तर।
[570] उस अवसर पर आत्म-संयम क्या है?
स्थिरता, दृढ़ता, विचार की तल्लीन दृढ़ता जो उस अवसर पर व्याकुलता की अनुपस्थिति, संतुलन, अविचलित मानसिक प्रक्रिया, शांति, एकाग्रता की क्षमता और शक्ति है[5] — यही वह आत्म-संयम है जो तब होता है।
[571] उस अवसर पर ऊर्जा की क्षमता क्या है...
[572] एकाग्रता की?
धारा 13 और धारा 570 के अनुसार उत्तर दें।

[पृष्ठ 160] [सारांश।]
[572ए]

उस समय स्कंध चार होते हैं,
गोले दो होते हैं,
तत्व दो होते हैं,
पोषक तत्व तीन होते हैं,
इंद्रियां पांच होती हैं,
संपर्क
आदि।
[धारा 482ए के अनुसार जारी रखें।]
[573] उस अवसर पर सिन थीसिस का स्कंध क्या है? संपर्क,
चिंतन,
अवधारणा,
विवेचनात्मक विचार,
आनंद,
आत्मसंयम,

ऊर्जा,
एकाग्रता, जीवंतता जैसी क्षमताएँ
। या उस समय उत्पन्न होने वाली अन्य सभी निराकार, कारणवश प्रेरित अवस्थाएँ, जो भावना, बोध और बुद्धि के स्कंधों से इतर हों, वे संश्लेषण के स्कंध कहलाती हैं।
2.
[574] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब क्रिया नामक प्रकार की प्रतिनिधि बौद्धिकता का एक तत्व उत्पन्न होता है, जो न तो अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, जो अनासक्ति के साथ होता है [पृष्ठ 161],[6] और जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, कुछ मूर्त, या कुछ भी नहीं है, तब संपर्क,
विचार,
भावना, अवधारणा,
बोध, विवेचनात्मक विचार,
चिंतन, अनासक्ति,
आत्म-संयम होता है;

ऊर्जा, विचार,
एकाग्रता, निस्वार्थता, जीवंतता जैसी क्षमताएँ
। अब ये, या उस अवसर पर उत्पन्न होने वाली कोई भी अन्य निराकार, कारणवश उत्पन्न अवस्थाएँ, अनिश्चित अवस्थाएँ हैं।
[सारांश।]
[574a] 572a के समान।
[575] संश्लेषण का स्कंध § 573 में दिए गए स्कंध के समान है, लेकिन 'आनंद' को हटा दिया जाना चाहिए।

3.
[576] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?

जब क्रिया नामक प्रतिनिधि बौद्धिकता का एक तत्व उत्पन्न हो जाता है जो न तो अच्छा है, न बुरा है और न ही कर्म का परिणाम है —
[पृष्ठ 162]
[7]जो खुशी के साथ आता है और ज्ञान से जुड़ा होता है...
जो आनंद से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ा हो, और एक सचेत प्रेरणा से प्रेरित हो...
जो खुशी से भरा होता है और ज्ञान से असंबद्ध होता है...
जो आनंद से परिपूर्ण होता है, ज्ञान से असंबद्ध होता है और एक सचेत प्रेरणा से प्रेरित होता है...
जो निस्वार्थता से युक्त है और ज्ञान से जुड़ा हुआ है...
जो निस्वार्थता से युक्त होता है, ज्ञान से जुड़ा होता है और एक सचेत मकसद से प्रेरित होता है...
जो उदासीनता और ज्ञान से अलगाव के साथ आता है...
जो उदासीनता से युक्त है, ज्ञान से विरक्त है और एक सचेत मकसद से प्रेरित है।
और, जिसका उद्देश्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, कोई स्पर्शनीय वस्तु या कुछ और हो— तो वहाँ संपर्क... संतुलन है। अब ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[576ए]
वासना का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
घृणा का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
सुस्ती का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।[8]

बी. रूप के ब्रह्मांड (रूपवचार-क्रिया) के संबंध में।
[पृष्ठ 163] [577] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह रूप के ब्रह्मांड से जुड़ाव में तल्लीन ध्यान का अभ्यास करता है, और क्रिया नामक प्रकार का ध्यान करता है जो न तो अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, और जो वर्तमान परिस्थितियों में सहज जीवन से संबंधित है[9]— और इस प्रकार, इंद्रिय-सुख से दूर, बुरे विचारों से दूर, पृथ्वी-दर्शन द्वारा, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... तब संपर्क... संतुलन होता है। अब ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[578] चार गुना f पर शेष प्रत्येक झान और पंचगुण प्रणाली पर उन लोगों के मामले में दोहराएँ।

ग. निराकार जगत (अरूपवचार-क्रिया) के संबंध में।
[579] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
जब वह निराकार ब्रह्मांड से संबंधित तल्लीन ध्यान का अभ्यास करता है, जिसे क्रिया कहा जाता है, जो न तो अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, और वर्तमान परिस्थितियों में सुखमय जीवन से संबंधित है — और जब वह रूप की सभी चेतना से पूरी तरह परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की चेतना के लुप्त होने से, अनेकता की किसी भी चेतना से ध्यान हटाकर, उस तल्लीन ध्यान में प्रवेश करता है

और उसमें स्थिर रहता है जो असीम अंतरिक्ष के क्षेत्र की चेतना से युक्त है — यहाँ तक कि चौथा ध्यान, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी सुखमय भावों को त्याग देना आवश्यक है, आदि... तब संपर्क... संतुलन स्थापित होता है। अब ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।
[पृष्ठ 164] [580-582] यहाँ, उपरोक्त उत्तर के समान प्रारंभिक सूत्र के साथ, तीन शेष 'निराकार अस्तित्व से जुड़े ध्यान' दिए गए हैं। §§ 266-268 देखें।
[582ए]
वासना का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
घृणा का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
सुस्ती का वह अभाव जो अनिश्चितता की जड़ है...
ये... ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।[10]
[यहाँ समाप्त होता है] विचारों की उत्पत्ति पर चर्चा।
- फुटनोट:
1. मैंने शीर्षक के लिए 'क्रिया-चित्तम' शब्द अस्लि. 293 से लिया है। इसका बाद वाला रूप क्रिया-चित्तम है (देखें अभ. एस., पृष्ठ 2 आदि; बैस्टियन की 'बुद्धिस्टिशे साइकोलॉजी', अनहंग)। क्रिया पर चर्चा मेरी प्रस्तावना में की गई है। अस्लि. में इस शब्द के बारे में निम्नलिखित लिखा है: 'यहाँ क्रिया का अर्थ केवल करना (करण-मत्तम) है। सभी क्रिया-विचारों में वे विचार जिनमें जावणम की अवस्था प्राप्त हो जाती है, हवा में खिले फूलों के समान हैं, परन्तु वे विचार जिनमें यह अवस्था प्राप्त नहीं होती, ऐसे फूलों के समान हैं जिनका पेड़ काट दिया गया हो और जो फलहीन हों। परन्तु जब किसी क्रिया का निरंतर निष्पादन होता रहता है, तब वह शुद्ध और सरल "करना" होता है। अतः क्रिया शब्द का प्रयोग किया गया है।' बुद्धघोष (सुम. I, 195) के अनुसार, जावनाम किसी बोध क्रिया का प्रभावी परिणाम है, वह अवस्था जब बोध करने वाले व्यक्ति का मन या चरित्र किसी न किसी रूप में (नैतिक रूप से) परिवर्तित होता है। परन्तु क्रिया नामक अनिश्चित विचारों में अच्छे या बुरे का कोई व्यावहारिक परिणाम नहीं हो सकता, कोई कर्म मुक्त नहीं हो सकता। अतः बांझ फूलों की उपमा दी गई है।
आभ. एस. में इंद्रिय जगत से जुड़े तीन प्रकार के अकारण क्रिया-विचार भी दिए गए हैं - इंद्रिय अनुभवों पर चिंतन, विचारों पर चिंतन और हर्षितुप्पद-चित्त की उत्पत्ति (हसितुप्पद-चित्त)। ये ध. एस. में दिए गए तीन प्रकारों से काफी हद तक मेल खाते हैं, यदि निरूपित बौद्धिक चिंतन के दोनों तरीकों को उलट दिया जाए।

2. साइ. के अनुसार, क्रियात्मक विचार और परिणामजन्य विचार में केवल उनके उत्पन्न होने के तरीके (उपत्तित्थानम्) में अंतर होता है। उपत्तित्थानम् इंद्रिय-ज्ञान की क्रिया के तुरंत बाद उत्पन्न होता है। क्रियात्मक विचार तब उत्पन्न होता है जब संवेदना वास्तव में क्रियाशील होती है, जब शरीर वस्तु की ओर उन्मुख होता है (असल. 294)। पुनः (वही), यह विचार कि 'न अच्छा है न बुरा' का अर्थ है अच्छे या बुरे के उस कारण का अभाव जिसे एक या दूसरे का मूल कहा जाता है; इसका अर्थ है अच्छे या बुरे की उन स्थितियों का अभाव जिन्हें वस्तुओं को उनके कारणों के आधार पर विचार करना (योनिसो-मन सिकारा) या ऐसा विचार न करना कहा जाता है।
'कर्म का परिणाम भी नहीं' का अर्थ है सृजनात्मक कारण (जन कहेतु) का अभाव, जिसे अच्छा या बुरा (जैसा भी मामला हो) कहा जाता है। असल. 293. अंतिम वाक्य में हाशिये पर लिखा पाठ स्पष्ट रूप से सही है।

3. इसके न्यूनतम अर्थ के साथ, अर्थात्, जैसा कि § 438 और अन्यत्र (असल. 293) में है।

4. साइ. (पृष्ठ 294) इस प्रकार के विचार को मनुष्यों में सामान्य नहीं, बल्कि अरहतों की विशेषता बताता है। 'यह छह द्वारों में प्राप्त होता है', उदाहरण के लिए, जब एक अरहत किसी ऐसे स्थान (थान एम) को देखता है जो निर्धारित आध्यात्मिक साधनाओं में से एक के लिए अनुकूल हो, जिसे पदनानी [sic lege; cf नीचे, § 1366, (v.)] कहा जाता है, 'इस विचार से वह प्रसन्न होता है'। जब वह किसी बाजार में आता है, 'सौदेबाजी का शोर सुनता है, और सोचता है,
मैंने लाभ की इस सारी लालसा को त्याग दिया है।
इस विचार से उसे प्रसन्नता होती है। जब वह मंदिर में सुगंधित पदार्थ या फूल अर्पित करता है, तो इस विचार से उसे प्रसन्नता होती है।
जब वह अपने द्वारा प्राप्त भोजन का स्वाद चख रहा होता है और सोचता है,
"मैंने निश्चित रूप से अपने ऊपर लागू सिद्धांत का पालन किया है।"

इस विचार से वह प्रसन्न हो जाता है। जब वह शरीर से संबंधित छोटे-मोटे नियमों का पालन कर रहा होता है और सोचता है,
मैंने शरीर के द्वार से संबंधित नियमों का पालन किया है।
इस विचार से उन्हें प्रसन्नता होती है। पंचमुखी द्वार से संबंधित यह चिंतन इसी प्रकार का होता है। विचार के द्वार से संबंधित यह चिंतन भूतकाल और भविष्यकाल के संदर्भ में उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, जब बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की घटनाओं को याद करके मुस्कुराए थे, या जब उन्होंने भविष्य की भविष्यवाणी की थी।

5. यह उम्मीद की जा सकती थी कि 'ऊर्जा' के साथ-साथ इस 'शक्ति' को भी घटक अवस्थाओं की सूची में स्थान मिलेगा। साइ. (पृष्ठ 295) स्पष्ट करता है कि 'सांद्रता' और 'ऊर्जा' पूर्ण शक्ति में मौजूद नहीं हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सारांश में कोई 'शक्तियाँ' शामिल नहीं हैं।

6. यह विचार, पिछले विचार से भिन्न, जैसा कि शास्त्र (295) में कहा गया है, सभी बुद्धिमान (सचित्तक) प्राणियों में समान है; वास्तव में, ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो इसका अनुभव न करता हो। (यहाँ दिया गया पाठ स्पष्ट रूप से अधिक सही है।) यदि यह 'पाँच द्वारों' के संबंध में उत्पन्न होता है, तो यह स्थापना का कार्य है; यदि यह विचार के द्वार के संबंध में उत्पन्न होता है, तो यह चिंतन का कार्य है। इसके द्वारा ज्ञान के छह विशिष्ट मार्ग अपने-अपने विषयों को ग्रहण करते हैं।

7. लैटिन अंक इस कृति के पहले 159 खंडों में वर्णित विचार के आठ मुख्य प्रकारों को संदर्भित करते हैं। हालाँकि, इस संदर्भ में, वे अब 'अच्छे' के रूप में, अर्थात् अच्छे कर्म उत्पन्न करने वाले के रूप में प्रभावी नहीं रह गए हैं।

8. ऊपर देखें, धारा 498ए।

9. दित्था-धम्मसुख-विहारम्। इस व्यक्तिगत अस्तित्व में (इमास्मिम अतत्भवे), साइ. (296. इस शब्द पर, नीचे देखें, पृष्ठ 175, नोट 1) व्याख्या करता है। सुम. I., 121 में व्याख्या इस प्रकार है, 'अस्तित्व की वह अवस्था जो किसी को संयोगवश प्राप्त हो जाती है'। 'बुद्ध के संवाद', I. 50, नोट देखें। वहाँ जिस अंश पर टिप्पणी की गई है (DI 37) वह विधर्म है जो मानता है कि ध्यान निर्वाण का समतुल्य था।

10. के. में एक फुटनोट जोड़ा गया है, जो इस तथ्य में स्पष्ट विसंगति की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि यह अंश, जो अब तक अर्थ के ब्रह्मांड [§§ 498a, 576a] के अंतर्गत दिया गया था, यहाँ निराकार के ब्रह्मांड से जुड़ा हुआ है। इसमें आगे कहा गया है कि इसे उचित विचार-विमर्श के बाद ही स्वीकार किया जाना चाहिए।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पाली-अंग्रेजी संस्करण-अध्याय 2

धम्मसंगानी अध्याय 2

2. रूपकण्डं

उद्देसो

583. कटमे धम्म अभ्यक्ता? कुसलकुशालनं धम्मनां विपाका कामवचार रूपवचरा अरूपवचरा अपरियपन्ना वेदानाक्खन्धो सन्नाक्खान्धो संखरक्खान्धो विनाणक्खण्डो, ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाका, सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अभ्यक्ता।

मातिका

एककं

584. तत्थ क्तमं सब्बं रूपं? चत्तरो च महाभूत, चतुन्नंच महाभूतानां उपादय रूपं - इदं वुच्चति सब्बं रूपं। सब्बं रूपं न हेतुं, अहेटुकं, हेतुविप्पयुत्तं, सप्पक्कयं, सङ्खतं, रूपं [रुपियं (सि.)], लोकियं, सासवं, संयोगियं, गंथनीयं, ओघनियं, योगाणियं, निवारनीयं, परमार्थं, उपादानियं, संकिलेशिकं, अभ्यक्तं, अनारामणं, एसिटासिकं, चित्तविप्पयुत्तं, नेवविपाकनविपाकधम्मधम्मं, असंकिलिट्ठसंकिलेशिकं, न सवितक्कसविचारं, न अवित्क्कविचारमत्तं, अवित्क्काविचारम्, न पतिसहगतं, न सुखसहगतं, न उपेक्खसहगतं, नेव दस्सानेन न भवनाय पहतब्बम, नेव दस्सानेन न भवनाय पहतबहेतुकं, नेव अचयागामी न अपाचयागामी, नेवसेक्खानासेक्खं, परित्तम, कामवचरण, न रूपवचरण, न अरूपवचरण, परियपन्नं, नो अपरियपन्नं, अनियातम, अनियनिकं, उपप्पन्नं, चाहि विन्ननेहि विनियेंयं, अनिच्चं, जराभिभूतं।

एवं एकविधेन रूपसंगहो।

एककं.

दुकं

Duvidhena rūpasaṅgaho –

अट्ठि रूपं उपदा, अत्थि रूपं नो उपादा।

अट्ठि रूपं उपादीनं, अत्थि रूपं अनुपदीनं।

अत्थि रूपं उपादीनुपादनीयम्, अत्थि रूपं अनुपादिनुपादनीयम्।

अट्ठि रूपं अनिदस्सानं, अत्थि रूपं अनिदस्सानं।

अट्ठि रूपं सप्पतिघं, अत्थि रूपं अप्पतिघं।

अत्थि रूपं इंद्रियं, अत्थि रूपं न इंद्रियं।

अत्थि रूपं महाभूतं, अत्थि रूपं न महाभूतं।

अट्ठि रूपं विण्णति, अत्थि रूपं न विण्णति।

अत्थि रूपं चित्तसमुत्थानं, अत्थि रूपं न चित्तसमुत्थानं।

अट्ठि रूपं चित्तसाहभु, अत्थि रूपं न चित्तसाहभु।

अट्ठि रूपं चित्तनुपरिवति, अट्ठि रूपं न चित्तनुपरिवति।

अट्ठि रूपं अज्जत्तिकं, अत्थि रूपं बहिरं।

अट्ठि रूपं ओदारिकां, अत्थि रूपं सुखुमं।

अट्ठि रूपं दूरे, अत्थि रूपं संतिके।

अट्ठि रूपं चक्खुसमफसस्सा वत्थु, अत्थि रूपं चक्खुसमफसस्सा न वत्थु। अट्ठि रूपं चक्खुसंफसज्जाय वेदनाय...पे... संन्याय...पे... चेतान्या...पे... चक्कुविनान्नास्स वत्थु, अत्थि रूपं चक्कुविनासा न वत्थु।

अट्ठि रूपं सोतसंफस्सस्सा...पे... घनसंफस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा वत्थु, अत्थि रूपं कायसमफस्सस्सा न वत्थु। अट्ठि रूपं कायसंफसज्जाय वेदनाय...पे... संन्याय...पे...चेतनाय...पे... कायविनानास्स वत्थु, अत्थि रूपं कायविनानास्स न वत्थु।

अत्थि रूपं चक्खुसंफस्सास्सा अरम्मणं, अत्थि रूपं चक्खुसमफस्सास्सा नरम्मणं। अट्ठि रूपं चक्खुसंफसज्जाय वेदनाय...पे... संन्याय...पे... चेतान्या...पे... चक्कुविनानास्सा अरम्मणं, अत्थि रूपं चक्कुविनास्सा नरामणं।

अट्ठि रूपं सोतसम्फस्सस्सा...पे... घनसंफस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा अरम्मणं, अत्थि रूपं कायसमफस्सस्सा नाराम्मणं। अट्ठि रूपं कायसंफसज्जाय वेदनाय...पे... संन्याय...पे...चेतनाय...पे... कायवीनानास्सा अरम्मणं, अत्थि रूपं कायावीनास्सा नारामणं।

अट्ठि रूपं चक्खायतनं, अत्थि रूपं न चक्खायतनं। अट्ठि रूपं सोतायतानां...पे... घनायतनं...पे... जीवायतनं...पे... काययतानां, अत्थि रूपं न काययतानां।

अत्थि रूपं रूपायतनं, अत्थि रूपं न रूपायतनं। अट्ठि रूपं सद्दायतनं...पे... गंधायतनं...पे... रसायतनं...पे... फोङ्ठहब्बायतनं, अत्थि रूपं न फोङ्गहब्यतानं।

अट्ठि रूपं चक्खुधातु, अत्थि रूपं न चक्कुधातु। अट्ठि रूपं सोतधातु...पे... घनधातु...पे... जीवधातु...पे... कायधातु, अट्ठि रूपं न कायधातु।

अत्थि रूपं रूपधातु, अत्थि रूपं न रूपधातु। अट्ठि रूपं सद्दधातु...पे... गंधधातु...पे... रसधातु...पे... फोङ्ठबधातु, अत्थि रूपं न फोङ्गधातु।

अट्ठि रूपं चक्कुंद्रियं, अत्थि रूपं न चक्कुंद्रियं। अट्ठि रूपं सोतिन्द्रियं...पे... घनिन्द्रियं...पे... जिव्हिन्द्रियं...पे... कायिन्द्रियम्, अत्थि रूपं न कायिन्द्रियम्।

अट्ठि रूपं इत्थिन्द्रियं, अत्थि रूपं न इत्थिन्द्रियं।

अट्ठि रूपं पुरिसिन्द्रियं, अत्थि रूपं न पुरिसिन्द्रियम्।

अत्थि रूपं जीवितिन्द्रियं, अत्थि रूपं न जीवितिन्द्रियम्।

अट्ठि रूपं कायविन्ति, अत्थि रूपं न कायविन्ति।

अत्थि रूपं वचिविन्नति, अत्थि रूपं न वचिविन्नति।

अत्थि रूपं आकाशधातु, अत्थि रूपं न आकाशधातु।

अत्थि रूपं आपोधातु, अत्थि रूपं न आपोधातु।

अत्थि रूपं रूपस्स लहुता, अत्थि रूपं रूपस्स न लहुता।

अत्थि रूपं रूपस्स मुदुता, अत्थि रूपं रूपस्स न मुदुता।

अत्थि रूपं रूपस्स कम्मन्नता, अत्थि रूपं रूपस्स न कम्मन्नता।

अत्थि रूपं रूपस्स उपाचयो, अत्थि रूपं रूपस न उपाचयो।

अत्थि रूपं रूपस्स संतति, अत्थि रूपं रूपस्स न संतति।

अत्थि रूपं रूपस्स जरता, अत्थि रूपं रूपस्स न जरता।

अत्थि रूपं रूपस्स अनिच्चता, अत्थि रूपं रूपस्स न अनिच्चता।

अत्थि रूपं कबाड़ीकारो आहारो, अत्थि रूपं न कबाड़ीकारो आहारो।

एवं दुविधेन रूपसंगहो।

दुकम्.

टिकां

Tividhena rūpasaṅgaho –

585. यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं उपदा। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि उपादा, अत्थि नो उपादा।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं उपादीनां। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि उपादीनं, अत्थि अनुपदीनां।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं उपादिन्नुपदनीयम्। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि उपादिन्नुपदानियं, अत्थि अनुपदिनुपदानियं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अनिदासनं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि सनिदासनं, अत्थि अनिदस्सणं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं सप्पतिघं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं इंद्रियं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि इंद्रियं, अत्थि न इंद्रियं।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं न महाभूतं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न विन्नति। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि विण्णति, अत्थि न विण्णति।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न चित्तसमुत्थानं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि चित्तसमुत्थानं, अत्थि न चित्तसमुत्थानं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न चित्तसाहभु। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि चित्तसाहभु, अत्थि न चित्तसाहभु।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न चित्तनुपरिवति। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि चित्तनुपरिवति, अत्थि न चित्तनुपरिवति।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं ओदारिकां। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि ओसारिकां, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं संतिके। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके।

यं तं रूपं बहिरं, तं चक्खुसमफसस्सा न वत्थु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अट्ठि चक्खुसमफसस्सा वत्थु, अत्थि चक्खुसमफसस्सा न वत्थु।

यं तं रूपं बहिरं, तं चक्खुसमफस्सजाय वेदनाय...पे... संन्या...पे... चेतानाय...पे... चक्खुविनानास्सा न वत्थु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि चक्कुविनांस वत्थु, अत्थि चक्कुविनांस वत्थु।

यं तं रूपं बहिरं, तं सोतसंफस्सस्सा...पे... घनसंफस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा न वत्थु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि कायसमफस्सस्सा वत्थु, अत्थि कायसमफस्सस्सा न वत्थु। यं तं रूपं बहिरं, तं कायासंफसजया वेदनाय...पे... संन्याय...पे... चेतनाय...पे... कायविनानास्सा न वत्थु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि कायविनानास्स वत्थु, अत्थि कायविनानास्स न वत्थु।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं चक्खुसमफसस्सा नरम्मणं। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि चक्खुसमफसस्सा अरम्मणं, अत्थि चक्खुसमफस्स्स्स नरम्मणं। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं चक्खुसमफस्सजाय वेदनाय...पे... संन्या...पे... चेतनाय...पे... चक्खुविनानास्सा नरम्मनं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि चक्कुविनांस्स अराम्मनं, अत्थि चक्कुविनांस्स नारम्मणं।

Yaṃ taṃ rūpaṃ ajjhattikaṃ, taṃ sotasamphassassa...pe... ghānasamphassassa...pe... jivhāsamphassassa...pe... kāyasamphassassa nārammaṇaṃ. Yaṃ taṃ rūpaṃ bāhiraṃ, taṃ atthi kāyasamphassassa ārammaṇaṃ, atthi kāyasamphassassa nārammaṇaṃ. यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं कायासंफसजया वेदनाय...पे... संन्याय...पे... चेतनाय...पे... कायवीनांस्स नरम्मणं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि कायविनानास्स अरम्मणं, अत्थि कायविनानास्स नरम्मणं।

यं तं रूपं बहिरं, तं न चक्खायतनं। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि चक्खायतनं, अत्थि न चक्खायतनं। यम तं रूपं बहिरं, तं न सोतायतानां...पे... न घनायतनं...पे... न जीवायतनं...पे... न कायायतानां। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि कायायतनं, अत्थि न काययतानां।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं न रूपायतनं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपायतनं, अत्थि न रूपायतनं। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न सददायतनं...पे... न गंधायतनं...पे... न रसायतनं...पे... न फोथ्भायतनं। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि फोङ्क्षबयतनं, अत्थि न फोङ्क्षबबायतनं।

यं तं रूपं बहिरं, तं न चक्खुधातु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि चक्कुधातु, अत्थि न चक्कुधातु। यं तं रूपं बहिरं, तं न सोतधातु...पे... न घनधातु...पे... न जीवधातु...पे... न कायधातु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि कायधातु, अत्थि न कायधातु।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न रूपधातु। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपधातु, अत्थि न रूपधातु। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न सद्दधातु...पे... न गंधधातु...पे... न रसधातु...पे... न फ़ोत्हब्बधातु। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि फोङ्भधातु, अत्थि न फोङ्क्षबधातु।

यं तं रूपं बहिरं, तं न चक्कुंद्रियं। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अट्ठि चक्कुंद्रियं, अत्थि न चक्कुंद्रियं। यम तं रूपं बहिरं, तं न सोतिन्द्रियं...पे... न घनिन्द्रियं...पे... न जिव्हिन्द्रियं...पे... न कायिन्द्रियम्। यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं अत्थि कायिन्द्रियम्, अत्थि न कायिन्द्रियम्।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न इत्थिन्द्रियं। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि इत्थिन्द्रियं, अत्थि न इत्थिन्द्रियं।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न पुरिसिन्द्रियं। यम तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि पुरिसिन्द्रियं, अत्थि न पुरिसिन्द्रियम्।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं न जीवितिन्द्रियम्। यम तं रूपं बहिरं, तं अत्थि जीवितिन्द्रियं, अत्थि न जीवितिन्द्रियम्।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न कायविनति। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि कायविन्ति, अत्थि न कायविनति।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं न वचिविन्नति। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि वचिविन्नति, अत्थि न वचिविन्नति।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं न आकाशधातु। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि आकाशधातु, अत्थि न आकाशधातु।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं न आपोधातु। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि आपोधातु, अत्थि न आपोधातु।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न लहुता। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स लहुता, अत्थि रूपस्स न लहुता।

यं तं रूपं अज्जत्तिकं, तं रूपस न मुदुता। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स मुदुता, अत्थि रूपस्स न मुदुता।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न कामनाता। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स कम्मन्नता, अत्थि रूपस्स न कम्मन्नता।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न उपचयो। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स उपाचयो, अत्थि रूपस न उपाचयो।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न संतति। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स संतति, अत्थि रूपस्स न संतति।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न जराता। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स जरता, अत्थि रूपस्स न जरता।

यं तं रूपं अज्झट्टिकं, तं रूपस न अनिच्चता। यं तं रूपं बहिरं, तं अत्थि रूपस्स अनिच्चता, अत्थि रूपस्स न अनिच्चता।

यं तं रूपं अज्जत्तिकां, तं न कबाड़ीकारो आहारो। यं तं रूपं बहिरं, तं अट्ठि कबाड़ीकारो आहारो, अत्थि न कबाड़ीकारो आहारो।

एवं तिविधेन रूपसंगहो।

Tikaṃ.

चतुक्कं

कैटुबिधेन रूपसंगहो —

586. यं तं रूपं उपदा, तं अट्ठि उपादीनं, अत्थि अनुपदीनां। यं तं रूपं नो उपादा, तं अट्ठि उपादीनं, अत्थि अनुपदीनां।

यं तं रूपं उपदा, तं अट्ठि उपादिनुपदानियं, अत्थि अनुपदिनुपदानियं। यं तं रूपं नो उपादा, तं अट्ठि उपादिनुपदानियं, अत्थि अनुपदिनुपदानियं।

यं तं रूपं उपदा, तं अत्थि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं। यं तं रूपं नो उपदा, तं अत्थि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं।

यं तं रूपं उपदा, तं अत्थि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं। यम तं रूपं नो उपदा, तं अत्थि ओदारिकं, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं उपदा, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके। यम तं रूपं नो उपदा, तं अट्ठि दूरे, अत्थि संतिके।

यं तं रूपं उपादीनं, तं अत्थि सनिदासनं, अत्थि अनिदस्सणं। यं तं रूपं अनुपदीनं, तं अत्थि सनिदासनं, अत्थि अनिदस्सणं।

यं तं रूपं उपादिन्नं, तं अत्थि सप्पतिघं अत्थि अप्पतिघं। यं तं रूपं अनुपादिणं, तं अत्थि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं।

यं तं रूपं उपादीनं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं। यं तं रूपं अनुपदीनं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं।

यं तं रूपं उपादीनं, तं अत्थि ओसारिकां, अत्थि सुखुमं। यं तं रूपं अनुपदीनं, तं अत्थि ओसारिकां, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं उपादीनं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके। यं तं रूपं अनुपदीनं, तं अट्ठि दूरे, अट्ठि संतिके।

यं तं रूपं उपादिन्नुपदानियं, तं अत्थि सनिदासनं, अत्थि अनिदस्सणं। यं तं रूपं अनुपादीनुपदानियं, तं अत्थि सनिदासनं, अत्थि अनिदस्सणं।

यं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं, तं अत्थि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं। यं तं रूपं अनुपादीनुपादनीयं, तं अट्ठि सप्पतिघं, अत्थि अप्पतिघं।

यं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं, तं अट्ठि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं। यं तं रूपं अनुपादीनुपादनीयं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं।

यं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं, तं अट्ठि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं। यं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं, तं अत्थि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके। यं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके।

यं तं रूपं सप्पतिघं, तं अत्थि इंद्रियं, अत्थि न इंद्रियं। यं तं रूपं अप्पतिघं, तं अत्थि इंद्रियं, अत्थि न इंद्रियं।

यं तं रूपं सप्पतिघं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं। यं तं रूपं अप्पतिघं, तं अत्थि महाभूतं, अत्थि न महाभूतं।

यम तं रूपं इंद्रियं, तं अत्थि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं। यं तं रूपं न इंद्रियं, तं अत्थि ओसारिकां, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं इंद्रियं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके। यं तं रूपं न इंद्रियं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके।

यं तं रूपं महाभूतं, तं अत्थि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं। यं तं रूपं न महाभूतं, तं अत्थि ओदारिकां, अत्थि सुखुमं।

यं तं रूपं महाभूतं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके। यं तं रूपं न महाभूतं, तं अत्थि दूरे, अत्थि संतिके।

दीठं सुतं मुतं विनातां रूपं।

एवं कैटुबिधेन रूपसंगहो।

चतुक्कम.

पंचकं

पंचविधेन रूपसंगहो –

587. पथविधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वयोधातु, यञ्च रूपं उपदा।

एवं पंचविधेन रूपसंगहो।

पंचकम्.

चक्कं

छब्बिधेन रूपसंगहो -

588. चक्खुविन्येयं रूपं, सोतविंय्यं रूपं, घनविंय्यं रूपं, जिव्हाविन्यं रूपं, कायविन्यंयं रूपं, मनोविन्यायं रूपं।

एवं चब्बिधेन रूपसंगहो।

चक्कं.

सत्तकं

सत्तविधेन रूपसंगहो -

589. चक्खुविन्येयं रूपं, सोतविंय्यं रूपं, घनविंय्यं रूपं, जीवविंयं रूपं, कायविन्यंयं रूपं, मनोधातुविन्यनेयं रूपं, मनोविनाधातुविन्येयं रूपं।

एवं सत्तविधेन रूपसंगहो।

सत्तकम्.

अट्ठकं

अट्ठविधेन रूपसंगहो –

590. चक्खुविन्येयं रूपं, सोतविंय्यं रूपं, घनविंय्यं रूपं, जिव्हाविन्यं रूपं, कायविन्यंयं रूपं, अट्ठि सुखसंफस्सां, अत्थि दुक्खसम्फस्सां, मनोधातुविन्येयं रूपं, मनोविनानाधातुविंय्यं रूपं।

एवं अट्ठविधेन रूपसंगहो।

अट्ठकम्.

नवकं

नवविधेन रूपसंगहो –

591. चक्खुन्द्रियं, सोतिन्द्रियं, घनिन्द्रियं, जिव्हिन्द्रियं कायिन्द्रियं, इत्थिन्द्रियं, पुरीसिन्द्रियं, जीवितिन्द्रियं, यञ्च रूपं न इन्द्रियं।

एवं नवविधेन रूपसंगहो।

नवकम्.

दशकं

दशविधेन रूपसंगहो –

592. चक्खुन्द्रियं, सोतिन्द्रियं, घनिन्द्रियं, जिव्हिन्द्रियं कायिन्द्रियं, इत्थिन्द्रियं, पुरिसिन्द्रियं, जीवितिन्द्रियं, न इन्द्रियं रूपं अत्थि सप्पतिघं, अत्ति अप्पतिघं.

एवं दशविधेन रूपसंगहो।

दशकं.

एकादसकं

एकादशविधेन रूपसंगहो –

593. चक्खायतनं, सोतायतनं, घनायतनं, जीवायतनं, कायायतनं, रूपायतनं, सददायतनं, गन्धायतनं, रसायतनं, फोट्टहब्बायतनं, यञ्च रूपं अनिदासनअप्पतिघं [अनिदासनं अप्पाघं (सि. स्या.)] धम्मायतनपरियपन्नं।

एवं एकादशविधेन रूपसंगहो।

Ekādasakaṃ.

Mātikā.

रूपविभट्टी

Ekakaniddeso

594. सब्बं रूपं न हेतुमेव, अहेटुकमेव, हेतुविप्पयुत्तमेव, सप्पाकायमेव, संखतमेव, रूपमेव, लोकियामेव, सासवमेव, संयोगनीयमेव, गांठनीयमेव, ओघनियामेव, योगानियामेव, निवरनियामेव, परमथमेव, उपदानीयमेव, सांकिलेसिकमेव, अभ्यकतमेव, अनारमणमेव, एसिटासिकामेव, चित्तविप्पयुत्तमेव, नेवविपाकनविपाकधम्मधम्ममेव, असंकिलिट्ठहाससंकिलेसिकमेव, न सविताक्कसविचरामेव, न अवितककविचारमत्तमेव, अवितककविचारमेव, न पितिसाहगतमेव, न सुखसहगतमेव, न उपेक्खसहगतमेव, नेव दस्सानेन न भवनाय पहतब्बमेव, नेव दस्सानेन न भवनाय पहतबहेटुकमेव, नेव अचयागामी न अपाकायागममेव, नेवासेक्खानासेक्खमेव, परित्तमेव, कामवाकरमेव, न रूपवाकरमेव, न अरूपवाकरमेव, परियापन्नामेव, नो अपरियापन्नामेव, अनियातमेव, अनियानिकमेव, उप्पन्नं चहि विन्ननेहि विन्नेय्यामेव, अनिच्चमेव, जराभिभूतमेव।

एवं एकविधेन रूपसंगहो।

Ekakaniddeso.

Dukaniddeso

उपादाभाजनीयं

595. कटमं तं रूपं उपदा? चक्खायतनं, सोतायतनं, घनायतनं, जीवायतनं, कायायतनं, रूपायतनं, सददायतनं, गंधायतनं, रसायतनं, इत्थिन्द्रियं, पुरिसिन्द्रियं, जीवितिन्द्रियं, कायविनति, वसीविनति, आकाशधातु, रूपस्सा लहुता, रूपस्सा मुदुता, रूपस्सा कम्मनता, रूपस्सा उपाकायो, रूपस्सा संतति, रूपस्सा जराता, रूपस्सा अनिक्काटा, kabaḷīkāro āhāro.

596. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु [चक्खु (सि. स्या.)] कटुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासनो सप्पतिघो, येन चक्खुना अनिदासानेना सप्पतिघेना रूपं सनिदासनं सप्पतिघं पासि वा पासति वा पासिस्सति वा पासे वा, चक्खुं पेटं चक्खायतनं पेटं चक्कुधातु पेसा चक्कुंद्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं नेट्टं पेटं नयनं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामोपेसो — इदं तं रूपं चक्खायतनं।

597. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यम्ही चक्खुम्ही अनिदासनमहि सप्पतिघमहि रूपं सनिदासनं सप्पतिघं पतिहनि वा पतिहन्याति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनि वा, चक्खुं पेटं चक्खायतनं पेटं चक्कुधातु पेसा चक्कुन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडरं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं नेत्तं पेटं नयनं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्खायतनं.

598. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं चक्खु अनिदासनं सप्पपतिघं रूपमहि सानिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्याति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनि वा, चक्खुं पेटं चक्खायतनं पेटं चक्कुधातु पेसा चक्कुन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडरं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं नेत्तं पेटं नयनं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्खायतनं.

599. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पातिघो, यं चक्खुं निस्साय रूपं अरब्भा चक्खुसमफस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा...पे... यं चक्खुं निस्साय रूपं अरब्भा चक्खुसमफस्सजा वेदना...पे... संना...पे... केतना...पे... चक्खुविनाणं उप्पज्जि वा उपज्जति व उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा...पे... यम चक्खुं निस्साय रूपरमणो चक्खुसमफसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यम चक्खुं निस्साय रूपरमण

चक्खुसमफस्सजा वेदाना...पे...सन्ना...पे...चेतना...पे...चक्कुविनाणं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उपज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, चक्खुं पेटं चक्खायतनं पेटं चक्कुधातु पेसा चक्कुंद्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडरं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं नेट्टं पेटं नयनं पेटं ओरिमं तिरं पेटं सुननो गमो पेसो - इदं तं रूपं चक्खायतनं।

600. कटमं तं रूपं सोतायतनं? यं सोतं कैटुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, येना सोतेन अनिदासानेन सप्पतिघेन सद्दां अनिदासनं सप्पतिघं सुनि वा सुनाति वा सुनिस्सति वा सुने वा, सोतं पेटं सोतायतानां पेटं सोतधातु पेसा सोतिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडरं पेटं खेत्टम् पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं सोतायतानां।

601. कटमं तं रूपं सोतायतनं? यं सोतं चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यमहि सोतमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि सद्दो अनिदासणो सप्पतिघो पतिहनि वा पतिहानिस्ति वा पतिहान्निस्से वा, सोतं पेटं सोतायतानां पेटं सोतधातु पेसा सोतिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं सोतायतनं।

602. कटमं तं रूपं सोतायतनं? यं सोतं कैटुन्नं महाभूतानं उपादया पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं सोतं अनिदासनं सप्पतिघं सद्दामहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनी वा, सोतं पेटं सोतायतनं पेटं सोतधातु पेसा सोतिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तिरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं सोतायतनं।

603. कटमं तं रूपं सोतायतनं? यं सोतं कैटुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं सोतं निस्साय सद्दां अरबभा सोतसाम्फसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा...पे... यं सोतं निस्साय सद्दं अरबभा सोतासम्पसजा वेदना...पे... सन्ना...पे... केतना...पे... सोताविनानां उप्पज्जि वा उपप्पज्जति वा उपज्जिसति और ऊपर वा...पे... यम सोतं निस्साय सद्दारम्मणो सोतसंफस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यम सोतं निस्साय सद्दारम्मणो सोतसम्फास्सो उप्पज्जि...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... सोतविनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा, सोतं पेटं सोतायतानां पेटं सोतधातु पेसा सोतिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो — इदं तं रूपं सोतायतनं।

604. कटमं तं रूपं घनायतनं? यं घनं चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, येन घनेन अनिदासानेन सप्पतिघेन गंधं अनिदासनं सप्पतिघं घयि वा घयति वा घयिस्सति वा घये वा, घनं पेटं घनायतनं पेटं घनधातु पेसा घनिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं घनायतनं।

605. कटमं तं रूपं घनायतनं? यं घनं चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यमहि घनमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि गन्धो अनिदासणो सप्पतिघो पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनि वा, घनं पेटं घनायतनं पेटं घनधातु पेसा घनिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं घनायतनं।

606. कटमं तं रूपं घनायतनं? यं घनं चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदास्सणो सप्पतिघो, यं घनं अनिदासणं सप्पतिघं गन्धमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहणिणे वा, घनं पेटं घनायतनं पेटं घनधातु पेसा घनिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामोपेसो — इदं तं रूपं घनायतनं।

607. कटमं तं रूपं घनायतनं? यं घनं चतुन्नं महाभूतानं उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं घनं निस्साय गंधं अरब्भ घनसंफस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं घनं निस्साय गंधं अरब घनसंफस्साज वेदना...पे...सन्ना...पे...चेतना...पे... घनविनाणां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उपज्जिस्सति वा उपप्पज्जे वा...पे... यम घनं निस्साय

गंधारम्मणो घनसंफास्सो उपज्जि वा उपज्जति वा उपज्जिस्सति वा उपप्पज्जे वा...पे... यां घनं निस्सय गंधरमण घनसम्पसज वेदना...पे... सन्ना...पे...चेतना...पे... घनविनाण उप्पज्जि वा उपज्जति वा उपज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, घनं पेटं घनायतनं पेटं घनधातु पेसा घनिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गमो पेसो - इदं तं रूपं घनायतनं।

608. कटमं तं रूपं जीवायतनं? या जिव्हा चतुन्नं महाभूतानां उपादाय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदास्सणो सप्पतिघो, या जिव्हा जिव्हा अनिदासनाय सप्पतिघाय रसं अनिदासनम् सप्पतिघं सयी वा सयति वा सयिसति वा सये वा, जिव्हा पेसा जिव्हायतनं पेटं जिव्हाधातु पेसा जिव्हिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गमो पेसो - इदं तं रूपं जीवायतनं।

609. कटमं तं रूपं जीवायतनं? या जिव्हा चतुन्नं महाभूतानां उपादाय पसादो अत्ताभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, या जिव्हा जिव्हाय अनिदासनाय सप्पतिघाय रसो अनिदासणो सप्पतिघो पतिहनि वा पतिहन्याति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनि वा, जिव्हा पेसा जीवायतनं पेटं जीवधातु पेसा जिव्हिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं जिव्हायतनं।

610. कटमं तं रूपं जीवायतनं? या जिव्हा चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासनो सप्पतिघो, या जिव्हा अनिदासना सप्पतिघा रसमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्याति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनि वा, जिव्हा पेसा जीवायतनं पेटं जीवधातु पेसा जिव्हिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं जिव्हायतनं।

611. कटमं तं रूपं जीवायतनं? या जिव्हा चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं जिव्हाहं निस्साय रसं अरब्भ जिव्हासाम्फसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उपज्जिस्सति वा उपप्पज्जे वा...पे... यं जिव्हाण् निस्साय रसं अरब्भा जिव्हासंफसज वेदना...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... जिव्हाविनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जि सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं जीवं निस्साय रसारम्मणो जीवसम्फसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जि सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं जीवहं निस्साय रसारमण जीवसंफसज वेदाना...पे...संन्या...पे...चेतना...पे...जीवविनाणं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, जिव्हा पेसा जीवायतनं पेटं जीवधातु पेसा जिव्हिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं जीवायतनं।

612. कटमं तं रूपं काययतानां? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पातिघो, येना कायेना अनिदासानेना सप्पतिघेन फोथब्बां अनिदासंससप्पतिघां फुसि वा फुसति वा फुसिसति वा फुसे वा, कायो पेसो कायायतनं पेटं कायधातु पेसा कायिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडरं पेटं खेतम् पेटाम वत्थुं पेटं ओरिमं तिरं पेटं सुन्नो गामो पेसो - इदं तं रूपं काययतानां।

613. कटमं तं रूपं काययतानां? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यमहि कायमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि फोङ्क्षहब्बो अनिदासणो सप्पतिघो पतिहनि वा पतिहानति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनी वा, कायो पेसो कायायतनं पेटं कायधातु पेसा कयिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं कायायतनं।

614. कटमं तं रूपं काययतानां? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यो कायो अनिदासणो सप्पतिघो फोथ्बमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहानति वा पतिहनिस्साति वा पतिहनी वा, कायो पेसो कायायतनं पेटं कायधातु पेसा कयिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पांडारं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं कायायतनं।

615. कटमं तं रूपं काययतानां? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो अत्तभावपरियपन्नो अनिदासणो सप्पतिघो, यं कायं निस्साय फोथब्बं अरबभा कायसम्फसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं कायं निस्साय फोथथब्बं अरब्भा कायसमफस्सजा वेदाना...पे...सन्या...पे...चेतना...पे... कायवीनाणं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं कायं निस्साय फोथ्हब्बारामणो कायसम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जि सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं कायं निस्सया फोथब्बरम्मना कायसमफस्सजा वेदना...पे...सन्ना...पे...चेतना...पे...कायवीनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, कायो पेसो कायायतनं पेटं कायधातु पेसा कायिन्द्रियं पेटं लोको पेसो द्वार पेसा समुद्दो पेसो पंडरं पेटं खेतं पेटं वत्थुं पेटं ओरिमं तीरं पेटं सुन्नो गमो पेसो - इदं तं रूपं काययतानां।

616. कटमं तं रूपं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा शनिदासनं सप्पतिघं निलं पीतकं लोहितकं ओदतं कषाकं मंजिठकम् [मंजेठकम् (सि. स्या.)] हरि हरिवाणं अंबंकुरवं दीघं रस्सं अनुं थुलं वट्टं परिमंडलम् कैटुरांसं [कैटुरसां (सि. का.)] छंदसां अठहंसां सोसासां निन्नं थालं छाया अतापो आलोको अंधकारो अब्भा महिका धूमो रजो कैंडामंडलस्स वनिनिभा सूर्यमंडलस्स [सूर्यमंडलस्स (सि. स्या.)] वंडनिभा तारकरूपणं वनिनिभा अदासमंदलस्सा वननिभा मनिसंखमुत्तवेसूरियस्सा वननिभा जतरूपराजतस्सा वननिभा, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादाय वननिभा सनिदासनं सप्पतिघं, यं रूपं सनिदासनं सप्पतिघं चक्खुना अनिदासानेन सप्पतिघेन पासि वा पासति वा पासिस्सति वा पासे वा, रूपं पेटाम रूपायतनं पेटं रूपधातु पेसा - इदं तं रूपं रूपायतनं।

617. कटमं तं रूपं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा शनिदासनं सप्पतिघं निलं पीतकं लोहितकं ओदतं कषाकं मंजिथकं हरि हरिवाणं अंबंकुरवनं दीघं रसं अनुं थूलं वंतं परिमंडलं चतुरांसं छंदसां अथाहंसां सोसासां निन्नं थलं छाया अतापो आलोको अंधकारो अब्भा महिका धूमो रजो कैंडामंडलस्सा वननिभा सूर्यमंडलस्स वनिनिभा तारकरुपानं वनिनिभा अदासमंडलस्स वनिनिभा मनिसंखमुत्तवेसूरियस्सा वनिनिभा जातरूपराजतस्सा वननिभा, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा सनिदासनं सप्पतिघं, यमहि रूपमहि सनिदासनमहि सप्पतिघंहि चक्खुं अनिदस्सणं सप्पतिघं पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहन्नय वा, रूपं पेटं रुपायतनं पेटं रूपधातु पेसा — इदं तं रूपं रूपायतनं.

618. कटमं तं रूपं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा शनिदासनं सप्पतिघं निलं पीतकं लोहितकं ओदतं कषाकं मंजिथकं हरि हरिवाणं अंबंकुरवनं दीघं रसं अनुं थूलं वंतं परिमंडलं चतुरांसं छंदसां अथाहंसां सोसासां निन्नं थलं छाया अतापो आलोको अंधकारो अब्भा महिका धूमो रजो कैंडामंडलस्सा वननिभा सूर्यमंडलस्स वनिनिभा तारकरुपानं वनिनिभा अदासमंडलस्स वनिनिभा मनिसंखमुत्तवेसूरियस्सा वनिनिभा जातरूपराजतस्सा वननिभा, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा सनिदासनं सप्पतिघं, यं रूपं सनिदासनं सप्पतिघं चक्खुम्ही अनिदासनमहि सप्पतिघंहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहन्नने वा, रूपं पेटं रुपायतनं पेटं रूपधातु पेसा - इदं तं रूपं रूपायतनं।

619. कटमं तं रूपं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा शनिदासनं सप्पतिघं निलं पीतकं लोहितकं ओदतं कषाकं मंजिथकं हरि हरिवाणं अंबंकुरवनं दीघं रसं अनुं थूलं वंतं परिमंडलं चतुरांसं छंदसां अथाहंसां सोसासां निन्नं थलं छाया अतापो आलोको अंधकारो अब्भा महिका धूमो रजो कैंडामंडलस्सा वननिभा सूर्यमंडलस्स वनिनिभा तारकरुपानं वनिनिभा अदासमंडलस्स वनिनिभा मनिसंखमुत्तवेसूरियस्सा वनिनिभा जातरूपराजतस्सा वननिभा, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा सनिदासनं सप्पतिघं, यं रूपं अरब्भा चक्खुं निस्साय चक्खुसंफस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा...पे... यं रूपं अरब चक्खुं निस्साय चक्खुसमफस्सजा वेदाना...पे... सान्या...पे... सीताना...पे... चक्कुविनाणं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं रूपरामणो चक्खुं निस्साय चक्खुसम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा...पे... यं रूपरम्मण चक्खुं निस्साय चक्खुसमफस्सजा वेदना...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... चक्खुविनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा, रूपं पेटं रूपायतनं पेटं रूपधातु पेसा - इदं तं रूपं रूपायतनं।

620. कटमं तं रूपं सद्दायतनम्? यो सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादाय अनिदास्सनो सप्पातिघो भेरीसद्दो मुदिङ्गसाद्दो संखसद्दो पणवसाददो गीतासद्दो वदितसाद्दो सम्मासद्दो पणिसद्दो सत्तनं निग्गोससाददो धतूनं सन्निघटसद्दो वात्ससद्दो उदकसद्दो मनुस्ससद्दो अमानुस्सासद्दो, यो वा

पणन्नोपि अत्थि सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पतिघो, यं सद्दाम अनिदासनं सप्पतिघं सोतेन अनिदासनेन सप्पतिघेन सुनि वा सुनति वा सुनिसति वा सुने वा, सद्दो पेसो सद्दायतनं पेटं सद्दधातु पेसा - इदं तं रूपं सद्दायतनम्.

621. कटमं तं रूपं सद्दायतनम्? यो सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादाय अनिदास्सनो सप्पातिघो भेरीसद्दो मुदिङ्गसाद्दो संखसद्दो पणवसाददो गीतासद्दो वदितसाद्दो सम्मासद्दो पणिसद्दो सत्तनं निग्गोससाददो धतूनं सन्निघटसद्दो वतसद्दो उदकासद्दो मनुस्ससद्दो अमानुस्सासद्दो, यो वा पणन्नोपि अत्थि सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पतिघो, यम्हि सद्दामहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि सोतं अनिदासनं सप्पतिघं पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निसति वा पतिहन्नने वा, सद्दो पेसो सददायतनं पेटं सद्धातु पेसा - इदं तां रूपं सद्दायतनम्।

622. कटमं तं रूपं सद्दायतनम्? यो सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादाय अनिदास्सनो सप्पातिघो भेरीसद्दो मुदिङ्गसाद्दो संखसद्दो पणवसाददो गीतासद्दो वदितसाद्दो सम्मासद्दो पणिसद्दो सत्तनं निग्गोससाददो धतूनं सन्निघटसद्दो वात्ससद्दो उदकसद्दो मनुस्ससद्दो अमानुस्सासद्दो, यो वा पणन्नोपि अत्थि सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पातिघो, यो सद्दो अनिदासनो सप्पतिघो सोतमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहनी वा, सद्दो पेसो सददायतनं पेटं सदधातु पेसा - इदं तं रूपं सद्दायतनम्.

623. कटमं तं रूपं सद्दायतनम्? यो सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादाय अनिदास्सनो सप्पातिघो भेरीसद्दो मुदिङ्गसाद्दो संखसद्दो पणवसाददो गीतासद्दो वदितसाद्दो सम्मासद्दो पणिसद्दो सत्तनं निग्गोससाददो धतूनं सन्निघटसद्दो वात्ससद्दो उदकसद्दो मनुस्ससद्दो अमानुस्सासद्दो, यो वा पणन्नोपि अत्थि सद्दो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पतिघो, यं सद्दां अरब्भा सोताम् निस्साय सोतासम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं सद्दां अरब सोतं निस्साय सोतासम्फास्ज्ा वेदाना...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... सोतविनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं सद्दारामणो सोतं निस्साया सोतसाम्फसो उप्पज्जि वा उपज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं सद्दारम्मना सोतं निस्साय सोतसंफसज वेदाना...पे...सन्या...पे...चेतना...पे...सोतविन्नानं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, सद्दो पेसो सद्दायतनं पेटं सद्धातु पेसा — इदं तं रूपं सददायतनम्।

624. कटमं तं रूपं गंधायतनं? यो गन्धो चतुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पतिघो मूलगन्धो सारगन्धो तचागन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलागन्धो अमाकगन्धो विसगन्धो सुगन्धो दुग्गन्धो, यो वा पणन्नोपि अट्ठि गंधो चतुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासणो सप्पतिघो, यं गंधं अनिदासनं सप्पतिघं घनेना अनिदासानेन सप्पतिघेन घायि वा घयति वा घयिस्सति व घाये वा, गंधो पेसो गंधायतनं पेटं गंधधातु पेसा - इदं तं रूपं गंधायतनं।

625. कटमं तं रूपं गंधायतनं? यो गन्धो चतुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पातिघो मूलगन्धो सारगन्धो तचागन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलागन्धो अमाकगन्धो विसगन्धो सुगन्धो दुग्गन्धो, यो वा पणन्नोपि अट्ठि गन्धो चतुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासणो सप्पतिघो, यमहि गंधमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि घनं अनिदासनं सप्पतिघं पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतीहन्ने वा, गंधो पेसो गंधायतनं पेटं गंधधातु पेसा - इदं तं रूपं गंधायतनं।

626. कटमं तं रूपं गंधायतनं? यो गन्धो चतुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पातिघो मूलगन्धो सारगन्धो तचागन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलागन्धो अमाकगन्धो विसगन्धो सुगन्धो दुग्गन्धो, यो वा पणन्नोपि अट्ठि गन्धो चतुन्नं महाभूतानं उपादया अनिदासणो सप्पतिघो, यो गंधो अनिदासणो सप्पतिघो घनमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहन्ने वा, गंधो पेसो गंधायतनं पेटं गंधधातु पेसा - इदं तं रूपं गंधायतनं।

627. कटमं तं रूपं गंधायतनं? यो गन्धो चतुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पातिघो मूलगन्धो सारगन्धो तचागन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलागन्धो अमाकगन्धो विसगन्धो सुगन्धो दुग्गन्धो, यो वा पणन्नोपि अट्ठि गन्धो चतुन्नं महाभूतानं उपादया अनिदास्सणो सप्पतिघो, यं गन्धं अरब घनं निस्साय घनसम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... हाँ गंधं अरब घनं निस्साय घनसंफसज वेदना...पे...सन्ना...पे...चेतना...पे... घनविनाणं उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं गंधरामणो घनं निस्साय घनसंफस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं गंधारम्मणो घनं निस्साय

घनसंफस्सजा वेदाना...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... घनविनिनां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा, गंधो पेसो गंधायतनं पेटं गंधधातु पेसा - इदं तं रूपं गंधायतनं।

628. कटमं तं रूपं रसायतनं? यो रसो कैटुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पतिघो मूलरासो खंडरासो तकरासो पत्तरसो पुप्फरसो फलारसो अम्बिलं मधुरं तित्तकं कटुकं लोनिकां खरिकां लाम्बिलं [लपिलकं (सि.)] कसावो सादु असादु, यो वा पणन्नोपि अत्थि रसो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासणो सप्पतिघो, यं रसं अनिदासनं सप्पतिघं। जिव्हाया अनिदासनाय सप्पतिघाय सयी वा सयति वा सयिसति वा सये वा, रसो पेसो रसायतन पेटं रसधातु पेसा - इदं तं रूपं रसायतनं।

629. कटमं तं रूपं रसायतनं? यो रसो कैटुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पतिघो मूलरासो खंडरासो तकरासो पत्तरसो पुप्फरसो फलारसो अम्बिलं मधुरं तित्तकं कटुकं लोनिकां खरिकां लाम्बिलम् कसावो सादु असादु, यो वा पणन्नोपि अत्थि रसो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पतिघो, यमहि रसमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि जिव्हा अनिदासना सप्पतिघा पातिहाणि वा पतिहानिसति वा पतिहान्निसति वा पतिहान्नि वा, रसो पेसो रसायतनं पेटं रसधातु पेसा - इदं तं रूपं रसायतनम्।

630. कटमं तं रूपं रसायतनं? यो रसो कैटुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पतिघो मूलरासो खंडरासो तकरासो पत्तरसो पुप्फरसो फलारसो अम्बिलं मधुरं तित्तकं कटुकं लोनिकां खरिकां लाम्बिलं कसावो सादु असादु, यो वा पणन्नोपि अत्थि रसो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासनो सप्पतिघो, यो रसो अनिदासनो सप्पतिघो जीवहाय अनिदासनाय सप्पतिघाय पातिहाणि वा पतिहानिसति वा पतिहान्निसति वा पतिहान्नि वा, रसो पेसो रसायतनं पेटं रसधातु पेसा - इदं तं रूपं रसायतनम्।

631. कटमं तं रूपं रसायतनं? यो रसो कैटुन्नं महाभूतानां उपादय अनिदासनो सप्पतिघो मूलरासो खंडरासो तकरासो पत्तरसो पुप्फरसो फलारसो अम्बिलं मधुरं तित्तकं कटुकं लोनिकां खरिकां लाम्बिलं कसावो सादु असादु, यो वा पणन्नोपि अत्थि रसो कटुन्नं महाभूतानां उपादया अनिदासणो सप्पतिघो, यं रसं अरब्भ जीवहं निस्साया जिव्हासम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उपप्पज्जे वा...पे... यं रसं अरब्भ जीवहं निस्साया जिव्हासंफसज वेदना...पे...संन्या...पे...चेतना...पे...जीवविणनां उपज्जि वा उपज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं रसारम्मणो जीवहं निस्साया जिव्हासम्फस्सो उप्पज्जि वा उपज्जति वा उपज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं रसारम्मणो जिव्हाम् निस्सय जीवसंफसज वेदाना...पे...संन्या...पे...चेतना...पे...जीवह्विनानां उप्पज्जि वा उपज्जति वा उपज्जिस्ति वा उपप्पज्जे वा, रसो पेसो रसायतनं पेटं रसधातु पेसा - इदं तं रूपं रसायतनं।

632. कटमं तं रूपं इत्थिन्द्रियं? यं इत्थिया इत्थिलिंगं इत्थिनिमितं इत्थिकुट्टं इत्थाकप्पो इत्थट्टं इत्थिभावो [इत्थिटं इत्थिभावो (स्या.)] - इदं तं रूपं इत्थिन्द्रियम्।

633. कटमं तं रूपं पुरिसिन्द्रियम्? यं पुरिसस्सा पुरिसालिङ्गं पुरिसनिमित्तं पुरिसकुट्टं पुरिसाकप्पो पुरिसत्तं पुरिसभावो — इदं तं रूपं पुरिसिन्द्रियम्।

634. कटमं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्? यो तेसं रूपिणं धम्मनां आयु ऋतु यापना यापना इरियाना वत्तना पालना जीवितं जीवितं - इदं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्।

635. कटमं तं रूपं कायविनति? या कुसलचित्तसा और अकुशलचित्तसा और अब्यक्कमन्तस्सा और अभिक्कमन्तस्सा और पतिक्कमन्तस्सा और अलोकान्तस्सा और विलोकान्तस्सा और सामिनजेन्तास्सा और पसारेन्तास्सा और कायास्सा थम्भाना संथम्भना संथम्भितत्तं विन्निति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं कायविन्नति।

636. कटमं तं रूपं वचिविन्नति? या कुसलचित्तस वा अकुसलचित्तस वा अभ्यकचित्तस वा वाचा गिरा बयप्पथो उदीरणं घोषो घोषकम्मं वाचा वचिभेदो - अयं वुकाति वाचा। या तय वाक्या विन्नित्तति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं वचिविन्नति।

637. कटमं तं रूपं आकाशधातु? यो आकाशो आकाशगतं अघं अघगतं विवरो विवरगतं असम्फुटथं बिल्लीहि महाभूति - इदं तं रूपं आकाशधातु।

638. कटमं तं रूपं रूपस्स लहुता? या रूपस्सा लहुता लहुपरिणमाता अदन्धनता अवित्थानता - इदं तं रूपं रूपस्स लहुता।

639. कटमं तं रूपं रूपस्स मुदुता? या रूपस्सा मुदुता मदवता अक्क्खहाता अकाथिनाता - इदं तं रूपं रूपस्सा मुदुता।

640. कटमं तं रूपं रूपस्स काम्मनता? या रुपस्सा कम्मन्नता कम्मन्नट्टं कम्मन्नभावो — इदं तं रूपं रुपस्सा कम्मन्नता।

641. कटमं तं रूपं रूपस उपाचयो? यो आयतानां अकायो, सो रूपस्सा उपाकायो - इदं तं रूपं रूपसा उपाकायो।

642. कटमं तं रूपं रूपस्स संतति? यो रूपस्सा उपाचयो, सा रूपस्सा संतति - इदं तं रूपं रूपस्सा संतति।

643. कटमं तं रूपं रूपस्स जरता? या रुपस्सा जरा जीरणता खंडिच्चं पलिच्चं वलित्तचता अयुनो सहानि इन्द्रियानं परिपाको — इदं तं रूपं रुपस्सा जराता।

644. कटमं तं रूपं रूपस अनिच्चता? यो रूपस्सा खायो वायो भेदो परिभेदो अनिच्चता अन्तर्धानम् — इदं तं रूपं रूपा अनिच्चता।

645. कटमं तं रूपं कबाड़ीकारो आहारो? ओदानो कुम्मासो सत्तु मच्छो मानसं खिरं दधि सप्पी नवनीतं तेलं मधु फणितं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं यमहि यमहि जनपद तेसं तेसं◌ं सत्तनं मुखासियां दन्तविखंडनं गलज्जोहरनीयं कुच्चिविट्ठंभनं, याया ओजय सत्ता यापेंती — इदं तं रूपं कबाडिकारो आहारो।

इदं तं रूपं उपदा.

उपादाभाजनीयं.

रूपाकाण्डे पथमभानवरो।

646. कटमं तं रूपं नो उपदा? फ़ोत्हब्बायतनं, आपोधातु।

647. कटमं तं रूपं फोङ्ठबबायतनं? पथविधातु तेजोधातु वयोधातु कक्खाँ मुदुकम् संखं फरुसं सुखसम्फस्सं दुक्खसम्फस्सं गरूकं लहुकं, यं फोथब्बं अनिदासनं। सप्पतिघं कायेन अनिदासनेन सप्पतिघेन फुसी वा फुसति वा फुसिसति वा फुसे वा फोथब्बो पेसो फोटोथब्बायतनं पेटं फोटोहब्बधातु पेसा - इदं तं रूपम् phoṭṭhabbāyatanaṃ.

648. कटमं तं रूपं फोऽथबबायतनं? पथविधातु तेजोधातु वयोधातु कक्खाडं मुदुकं संखं फरुसं सुखसंफसां दुक्खसंफस्सां गरूकं लहुकं, यम्हि फोथ्बमहि अनिदासनमहि सप्पतिघमहि कायो अनिदासनो सप्पतिघो पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहनीने वा, फोथब्बो पेसो फोटोहब्बायतानां पेटं फोटोहब्बधातु पेसा - इदं तं रूपं फोतहब्बायतनं।

649. कटमं तं रूपं फोऽथबबायतनं? पथविधातु तेजोधातु वयोधातु कक्खनं मुदुकम् सङहं फरुसं सुखसमफसां दुक्खसमफसां गरूकम लहुकम्, यो फोतहब्बो अनिदासणो सप्पतिघो कायमहि अनिदासनमहि सप्पटिघमहि पतिहनि वा पतिहन्नति वा पतिहन्निस्सति वा पतिहन्नने वा, फोठहब्बो पेसो फोटोहब्बायतनं पेटं फ़ोत्हब्बधातु पेसा - इदं तं रूपं फ़ोऽथब्बायतनं।

650. कटमं तं रूपं फ़ोऽथब्बायतनं? पथविधातु तेजोधातु वयोधातु कक्खाँ मुदुकम् संखं फरुसं सुखसम्फसां दुक्खसमफसां गरूकम लहुकम्, यं फोथ्बबं अरब्भ कायं निस्साया कायासंफसो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा...पे... यं फोथब्बम अरबभा कायाम् निस्साया कायासम्फासजा वेदना...पे... सान्या...पे... सीताना...पे... कायविनानां उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जि वा उप्पज्जि वा...पे... यं फोथब्बरम्माणो कायं निस्साय कायसम्फस्सो उप्पज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्ति वा उप्पज्जे वा...पे... यं फोथ्हब्बरम्मण कायं निस्साय कायासम्पसजा वेदना...पे... सन्ना...पे... चेतना...पे... कायावीनानां उप्पज्जि वा उपज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा उप्पज्जे वा, फोऽथब्बो पेसो फोऽथबबायतनं पेटं फोऽथबधातु पेसा - इदं तं रूपं फोऽथबबायतनं।

651. कटमं तं रूपं आपोधातु? यं आपो आपोगतं सिनेहो सिनेहगतं बंधनट्टं रूपस्स - इदं तं रूपं आपोधातु।

इदं तं रूपं नो उपदा।

652. कटमं तं रूपं उपदीनां? चक्खायतनं सोतायतनं घनायतनं जिव्हायतनं काययतानां इत्थिन्द्रियं पुरीसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यम वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोटहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपं उपादिण्णम्.

653. कटमं तं रूपं अनुपदीनां? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोटोथब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपम् anupādiṇṇaṃ.

654. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयम्? चक्खायतनं...पे... कायायतनं इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोतहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपं उपादिन्नुपदानियं।

655. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयम्? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता, रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपम् अनुपादीनुपदनीयम्।

656. कटमं तं रूपं सनिदासनं? रूपायतनं - इदं तं रूपं सनिदासनं।

657. कटमं तं रूपं अनिदासनं? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो — इदं तं रूपं अनिदासनं।

658. कटमं तं रूपं सप्पतिघं? चक्खायतनं सोतायतनं घनायतनं जीवायतनं कायायतनं रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोट्टहब्बायतनं — इदं तं रूपं सप्पतिघं।

659. कटमं तं रूपं अप्पतिघं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं अप्पतिघं।

660. कटमं तं रूपं इंद्रियं? चक्कुन्द्रियं सोतिन्द्रियं घनिन्द्रियं जिव्हिन्द्रियं कायिन्द्रियं इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियम् — इदं तं रूपं इन्द्रियं।

661. कटमं तं रूपं न इन्द्रियं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न इंद्रियम्।

662. कटमं तं रूपं महाभूतम्? फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं महाभूतम्।

663. कटमं तं रूपं न महाभूतं? चक्खायतनं...पे...कबदिकारो आहारो – इदं तं रूपं न महाभूतम्।

664. कटमं तं रूपं विन्नति? कायविन्नति वचिविन्नति - इदं तं रूपं विन्नति।

665. कटमं तं रूपं न विन्नति? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं न विन्नति।

666. कटमं तं रूपं चित्तसमुत्थानं? कायविननत्ती वचिविननति यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चित्तजं चित्तहेटुकं चित्तसमुत्थानं रूपायतनं सद्दायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोटहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कामना रूपसा उपाकायो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं cittasamuṭṭhānaṃ.

667. कटमं तं रूपं न चित्तसमुत्थानां? चक्खायतनं...पे... कायायतनं इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं रूपस्सा जराता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न चित्तजं न चित्तहेतुकं न चित्तसमुत्थानं रूपायतनं सददायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं आकाशाधातु आपोधातु रूपस्स लहुता रूपस्स मुदुता रूपस्स कम्मन्नाता रूपस्सा उपाचयो रूपस्स संतति कबाधिकारो आहारो – इदं तं रूपं न चित्तसमुत्थानं।

668. कटमं तं रूपं चित्तसाहभु? कायविनन्नति वाचिविनट्टति - इदं तं रूपं चित्तसाहभु।

669. कटमं तं रूपं न चित्तसाहभु? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो – इदं तं रूपं न चित्तसहभु।

670. कटमं तं रूपं चित्तनुपरिवति? कायविन्नति वचिविन्नति – इदं तं रूपं चित्तनुपरिवति।

671. कटमं तं रूपं न चित्तनुपरिवति? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न चित्तनुपरिवति।

672. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकम्।

673. कटमं तं रूपं बहिरं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं।

674. कटमं तं रूपं ओदारिकं? चक्खायतनं... पे... फोथ्ब्बायतनं – इदं तं रूपं ओदारिकां।

675. कटमं तं रूपं सुखुमं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं सुखुमं।

676. कटमं तं रूपं दूरे? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं दूरे।

677. कटमं तं रूपं संतिके? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं - इदं तं रूपं संतिके।

678. कटमं तं रूपं चक्खुसमफस्सा वत्थु? चक्खायतनं - इदं तं रूपं चक्खुसमफस्सा वत्थु।

679. कटमं तं रूपं चक्खुसमफस्सा न वत्थु? सोतायतानां...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं चक्खुसमफस्सास न वत्थु।

680. कतामं तं रूपं चक्खुसमफसज्जाय वेदनाय...पे...सन्या...पे...चेतनाय...पे...चक्कुविनानास्सा वत्थु? चक्खायतनं - इदं तं रूपं चक्कुविनांस वत्थु।

681. कटमं तं रूपं चक्खुविनांस्स न वत्थु? सोतायतानां...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं चक्खुविनानास्सा न वत्थु।

682. कतमं तं रूपं सोतसंफस्सस्सा...पे... घनसम्फस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा वत्थु? काययतानां - इदं तं रूपं कायसमफस्स्स वत्थु।

683. कटमं तं रूपं कायसमफसस्सा न वत्थु? चक्खायतनं...पे...कबदिकारो आहारो - इदं तं रूपं कायसमफस्सस्सा न वत्थु।

684. कतमं तं रूपं कायससम्फसज्जाय वेदनाय...पे...संन्याय...पे...चेतनाय...पे...कायवीनानास्सा वत्थु? काययतानां - इदं तं रूपं कायवीनांस वत्थु।

685. कटमं तं रूपं कायवीनांसस न वत्थु? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं कायवीनानास्सा न वत्थु।

686. कटमं तं रूपं चक्खुसमफसस्सा अरामणं? रूपायतनं - इदं तं रूपं चक्खुसमफसस्सा अराम्मनं।

687. कटमं तं रूपं चक्खुसमफस्सास न अरम्मणं? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं चक्खुसमफसस्सा न अरम्मणं।

688. कतमं तं रूपं चक्खुसमफसज्जाय वेदनाय...पे...संन्या...पे...चेतनाय...पे...चक्कुविनानास्सा अराम्मनम्? रूपायतनं - इदं तं रूपं चक्कुविनानास्सा अराम्मनं।

689. कटमं तं रूपं चक्खुविनांस्स न अरम्मणं? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपं चक्कुविनानास्सा न अरम्मणं।

690. कटमं तं रूपं सोतसंफस्सास्स...पे... घनसम्फस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमंफस्सस्सा अरम्मणं? फ़ोत्हब्बायतनं - इदं तं रूपं कायसमफस्सस्सा अराम्मनं।

691. कटमं तं रूपं कायसमफसस्सा न अराम्मनं? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं कायसमफसस्सा न अरम्मणं।

692. कतमं तं रूपं कायससम्फसज्जाय वेदनाय...पे...संन्याय...पे...चेतनाय...पे...कायवीनानास्सा अरम्मानम्? फ़ोथब्बायतनं — इदं तं रूपं कायवीनांस अराम्मनं।

693. कटमं तं रूपं कायवीनांसस न अरम्मणं? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं कायविनानास्सा न अरम्मणं।

694. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसंददो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्खायतनं।

695. कतमं तं रूपं न चक्खायतनं? सोतायतानां...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं न चक्खायतनं।

696. कतमं तं रूपं सोतायतनं...पे... घनायतनं...पे... जीवायतनं...पे... कायायतनं? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसाद...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं काययतानां।

697. कटमं तं रूपं न काययतानां? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न काययतानां।

698. कटमं तं रूपं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा...पे... रूपधातु पेसा - इदं तं रूपं रूपायतनं।

699. कटमं तं रूपं न रूपायतनं? चक्खायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं न रूपायतनं।

700. कतमं तं रूपं सददायतनं...पे... गंधायतनं ...पे... रसायतनं...पे... फोथ्हब्बायतनं? पथविधातु...पे... फोङ्क्षबधातु पेसा - इदं तं रूपं फोङ्क्षबबायतनं।

701. कटमं तं रूपं न फोथबबायतनं ? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं न फोथ्बबायतनं।

702. कटमं तं रूपं चक्कुधातु? चक्खायतनं - इदं तं रूपं चक्कुधातु।

703. कटमं तं रूपं न चक्खुधातु? सोतायतानां...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं न चक्खुधातु।

704. कटमं तं रूपं सोतधातु...पे...घनधातु...पे...जीवधातु...पे...कायधातु? काययतानां - इदं तं रूपं कायधातु।

705. कटमं तं रूपं न कायधातु? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न कायधातु।

706. कटमं तं रूपं रूपधातु? रूपायतनं - इदं तं रूपं रूपधातु।

707. कटमं तं रूपं न रूपधातु? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं न रूपधातु।

708. कतमं तं रूपं सद्दधातु...पे...गन्धधातु...पे... रसधातु...पे...फोऽथबधातु? फ़ोऽथबबयतानां - इदं तं रूपं फ़ोऽथबधातु।

709. कटमं तं रूपं न फोथ्बधातु? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं न फोथ्बधातु।

710. कटमं तं रूपं चक्कुन्द्रियं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्कुंद्रियम्।

711. कटमं तं रूपं न चक्कुन्द्रियं? सोतायतानां...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं न चक्खुंद्रियम्।

712. कटमं तं रूपं सोतिन्द्रियं...पे... घनिन्द्रियं...पे... जीवहिन्द्रियां...पे... कायिन्द्रियम्? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसंददो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं कायिन्द्रियम्।

713. कटमं तं रूपं न कायिन्द्रियम्? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न कायिन्द्रियम्।

714. कटमं तं रूपं इत्थिन्द्रियं? यं इत्थिया इत्थिलिंगं इत्थिनिमितं इत्थिकुट्टं इत्थाकप्पो इत्थट्टं इत्थिभावो - इदं तं रूपं इत्थिन्द्रियम्।

715. कटमं तं रूपं न इत्थिन्द्रियं? चक्खायतनं...पे...कबदिकारो आहारो – इदं तं रूपं न इत्थिन्द्रियम्।

716. कटमं तं रूपं पुरिसिन्द्रियम्? यं पुरिसस्सा पुरिसालिङ्गं पुरिसनिमित्तं पुरिसकुट्टं पुरिसाकप्पो पुरिसत्तं पुरिसभावो – इदं तं रूपं पुरिसिन्द्रियम्।

717. कटमं तं रूपं न पुरिसिन्द्रियम्? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न पुरिसिन्द्रियम्।

718. कटमं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्? यो तेसं रूपिणं धम्मनां आयु ऋतु यापना यापना इरियाना वत्तना पालना जीवितं जीवितं - इदं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्।

719. कटमं तं रूपं न जीवितिन्द्रियम्? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न जीवितिन्द्रियम्।

720. कटमं तं रूपं कायविनति? या कुसलचित्तसा और अकुशलचित्तसा और अब्यक्कमन्तस्सा और अभिक्कमन्तस्सा और पतिक्कमन्तस्सा और अलोकान्तस्सा और विलोकान्तस्सा और सामिनजेन्तास्सा और पसारेन्तास्सा और कायास्सा थम्भाना संथम्भना संथम्भितत्तं विन्नित्ति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं कायविन्नति।

721. कटमं तं रूपं न कायविन्ति? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न कायविनति।

722. कटमं तं रूपं वचिविन्नति? या कुसलचित्तस वा अकुसलचित्तस वा अभ्याकतचित्तस वा वाचा गिरा बयप्पथो उदीरणं घोषो घोषकम्मं वाचा वचिभेदो, अयं वुकाति वाचा। या तय वाक्या विन्नित्तति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं वचिविन्नति।

723. कटमं तं रूपं न वचिविन्नति? चक्खायतनं...पे...कबडिकारो आहारो - इदं तं रूपं न वचिविन्यति।

724. कटमं तं रूपं आकाशधातु? यो आकाशो आकाशगतं अघं अघगतं विवरो विवरगतं असम्फुटथं बिल्लीहि महाभूति - इदं तं रूपं आकाशधातु।

725. कटमं तं रूपं न आकाशधातु? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न आकाशधातु।

726. कटमं तं रूपं आपोधातु? यं आपो आपोगतं सिनेहो सिनेहगतं बंधनट्टं रूपस्स - इदं तं रूपं आपोधातु।

727. कटमं तं रूपं न आपोधातु? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न आपोधातु।

728. कटमं तं रूपं रूपस्स लहुता? या रूपस्सा लहुता लहुपरिणमाता अदन्धनता अवित्थानता - इदं तं रूपं रूपस्स लहुता ।

729. कटमं तं रूपं रूपस्स न लहुता? चक्खायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं रूपस्स न लहुता।

730. कटमं तं रूपं रूपस्स मुदुता? या रूपस्सा मुदुता मदवता अक्क्खहाता अकाथिनाता - इदं तं रूपं रूपस्सा मुदुता।

731. कटमं तं रूपं रूपस्स न मुदुता? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं रूपस्स न मुदुता।

732. कटमं तं रूपं रूपस्स काम्मनता? या रुपस्सा कम्मन्नता कम्मन्नट्टं कम्मन्नभावो — इदं तं रूपं रुपस्सा कम्मन्नता।

733. कटमं तं रूपं रूपस्स न कम्मनता? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं रूपस्स न कम्मनता।

734. कतमं तं रूपं रूपस उपचयो? यो आयतानां अकायो, सो रूपस्सा उपाकायो - इदं तं रूपं रूपसा उपाकायो।

735. कतमं तं रूपं रूपस न उपचयो? चक्खायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं रूपस न उपचयो।

736. कटमं तं रूपं रूपस्स संतति? यो रूपस्सा उपाचयो, सा रूपस्सा संतति - इदं तं रूपं रूपस्सा संतति।

737. कतमं तं रूपं रूपस्स न संतति? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं रूपस्स न संतति।

738. कटमं तं रूपं रूपस्स जरता? या रुपस्सा जरा जीरणता खंडिच्चं पलिच्चं वलित्तचता अयुनो सहानि इन्द्रियानं परिपाको — इदं तं रूपं रुपस्सा जराता।

739. कटमं तं रूपं रूपस न जरता? चक्खायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं रूपस्स न जरता।

740. कटमं तं रूपं रूपस अनिच्चता? यो रूपस्सा खायो वायो भेदो परिभेदो अनिच्चता अन्तर्धानम् — इदं तं रूपं रूपा अनिच्चता।

741. कटमं तं रूपं रूपस्स न अनिच्चता? चक्खायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं रूपस्स न अनिच्चता।

742. कटमं तं रूपं कबाड़ीकारो आहारो? ओदानो कुम्मासो सत्तु मच्छो मानसं खिरं दधि सप्पी नवनीतं तेलं मधु फणितं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं यमहि यमहि जनपद तेसं तेसंं सत्तनं मुखासियां दन्तविखंडनं गलज्जोहरनीयं कुच्चिविठ्ठंभनं, याया ओजय सत्ता यापेंती — इदं तं रूपं कबाडिकारो आहारो।

743. कटमं तं रूपं न कबाड़ीकारो आहारो? चक्खायतनं...पे... रूपस्सा अनिच्चता - इदं तं रूपं न कबाड़ीकारो आहारो।

एवं दुविधेन रूपसंगहो।

Dukaniddeso.

टिकानिद्देसो

744. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं उपदा? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं उपदा।

745. कटमं तं रूपं बहिरं उपदा? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं उपदा।

746. कटमं तं रूपं बहिरं नो उपदा? फोथ्बबायतनं आपोधातु — इदं तं रूपं बहिरं नो उपदा।

747. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं उपदीनां? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं उपादीनं।

748. कटमं तं रूपं बहिरं उपदीनां? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्स कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोथ्बबायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं उपादीनम्।

749. कटमं तं रूपं बहिरं अनुपदीनां? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोटोथब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपम् बहिरं अनुपदिनाम्।

750. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं उपादिन्नुपदनीयम्। चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं उपादिन्नुपदनीयम्।

751. कटमं तं रूपं बहिरं उपादिन्नुपदनीयम्? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्स कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोथ्बबायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबीकारो आहारो – इदं तं रूपं बहिरं उपादिनुपादनीयम्।

752. कटमं तं रूपं बहिरं अनुपादिन्नुपदनीयम् ? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोटोथब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो – इदं तं रूपम् बहिरं अनुपादिन्नुपदनीयम्।

753. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं अनिदासनं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं अनिदासनं।

754. कटमं तं रूपं बहिरं सनिदासनं? रूपायतनं - इदं तं रूपं बहिरं सनिदासनं।

755. कटमं तं रूपं बहिरं अनिदासनं? सद्दायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं अनिदासनं।

756. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं सप्पतिघं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं सप्पतिघं।

757. कटमं तं रूपं बहिरं सप्पतिघं? रूपायतनं...पे... फोथ्बबायतनं - इदं तं रूपं बहिरं सप्पतिघं।

758. कटमं तं रूपं बहिरं अप्पतिघं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं अप्पतिघं।

759. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं इन्द्रियं? चक्कुंद्रियं...पे... कायिन्द्रियम् - इदं तं रूपं अज्जत्तिकं इंद्रियं।

760. कटमं तं रूपं बहिरं इंद्रियं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियम् - इदं तं रूपं बहिरं इन्द्रियं।

761. कटमं तं रूपं बहिरं न इन्द्रियं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न इंद्रियम्।

762. कटमं तं रूपं अजज्जत्तिकं न महाभूतम्? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न महाभूतं।

763. कटमं तं रूपं बहिरं महाभूतम्? फोथ्बबायतनं आपोधातु – इदं तं रूपं बहिरं महाभूतम्।

764. कटमं तं रूपं बहिरं न महाभूतं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न महाभूतम्।

765. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न विन्नति? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न विन्नति?

766. कटमं तं रूपं बहिरं विन्नति? कायविन्नति वचिविन्नति - इदं तं रूपं बहिरं विन्नति।

767. कटमं तं रूपं बहिरं न विन्नति? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न विननति।

768. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चित्तसमुत्थानं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न चित्तसमुत्थानं।

769. कटमं तं रूपं बहिरं चित्तसमुत्थानं? कायावीनाति वाचिविननाति, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चित्तजं चित्तहेटुकं चित्तसमुत्थानां रूपायतनं सद्दायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोटहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कामना रूपसा उपाकायो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं चित्तसमुत्थानां।

770. कटमं तं रूपं बहिरं न चित्तसमुत्थानां? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं रूपस्सा जराता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न चित्तजं न चित्तहेतुकं न चित्तसमुत्थानं रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोटहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कामनानता रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चित्तसमुत्थानं।

771. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चित्तसाहभु? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न चित्तसाहभु।

772. कटमं तं रूपं बहिरं चित्तसाहभु? कायविन्नति वचिविन्नति - इदं तं रूपं बहिरं चित्तसाहभु।

773. कटमं तं रूपं बहिरं न चित्तसाहभु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चित्तसहभू?

774. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चित्तनुपरिवति? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न चित्तनुपरिवति।

775. कटमं तं रूपं बहिरं चित्तनुपरिवति? कायविन्नति वचिविन्नति — इदं तं रूपं बहिरं चित्तनुपरिवति।

776. कटमं तं रूपं बहिरं न चित्तनुपरिवति? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चित्तनुपरिवति।

777. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं ओदारिकां? चक्खायतनं...पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं ओदारिकां।

778. कटमं तं रूपं बहिरं ओदारिकां? रूपायतनं...पे... फोथबबायतनं - इदं तं रूपं बहिरं ओदारिकाम्।

779. कटमं तं रूपं बहिरं सुखुमं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं सुखुमं।

780. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं संतिके? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं संतिके।

781. कटमं तं रूपं बहिरं दूरे? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं दूरे।

782. कटमं तं रूपं बहिरं संतिके? रूपायतनं...पे... फोटहब्बायतनं - इदं तं रूपं बहिरं संतिके।

783. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफसस्सा न वत्थु? रूपायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफस्सास न वत्थु।

784. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफस्सा वत्थु? चक्खायतनं - इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफस्सा वत्थु।

785. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफसस्सा न वत्थु? सोतायतानां...पे... कायायतानां - इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफस्सा न वत्थु।

786. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफसज्जाय वेदनाय...पे... संन्या...पे... चेतान्या...पे... चक्खुविनानास्सा न वत्थु? रूपायतनं...पे...कबडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं चक्खुविनानास्सा न वत्थु।

787. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुविनांस वत्थु? चक्खायतनं - इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुविनांस वत्थु।

788. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुविनांस्स न वत्थु? सोतायतानां...पे... कायायतानां - इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुविनानास्सा न वत्थु?

789. कतमं तं रूपं बहिरं सोतसंफस्सस्सा...पे... घनसंफस्सस्सा...पे... जीवसम्फस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा न वत्थु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं कायसमफसस्सा न वत्थु।

790. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफसस्सा वत्थु? काययतानां — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफस्स्स वत्थु।

791. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफस्स्स न वत्थु? चक्खायतनं... पे... जिव्हायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफसस्सा न वत्थु।

792. कतमं तं रूपं बहिरं कायससम्फसज्जाय वेदनाय...पे... संन्या...पे... चेतना...पे... कायाविनानास्सा न वत्थु? रूपायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं कायवीनानास्सा न वत्थु।

793. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायवीनांस वत्थु? काययतानां - इदं तं रूपं अज्झट्टिकं कायवीनांस वत्थु।

794. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायवीनांसस न वत्थु? चक्खायतनं... पे... जिव्हायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं कायवीनांस न वत्थु।

795. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफस्सास न अरम्मणं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुसमफसस्सा न अरम्मणं।

796. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफसस्सा अराम्मनं? रूपायतनं — इदं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफसस्सा अराम्मनं।

797. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफसस्सा न अरम्मणं? सद्दायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं चक्खुसमफस्सास न अरम्मणं।

798. कतमं तं रूपं अज्झत्तिकां चक्खुसमफस्सजाय वेदनाय...पे... संन्या...पे... चेतना...पे... चक्खुविनानास्सा न अरम्मणं? चक्खायतनं... पे... कायायतनम् — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खुविनानास्सा न अरम्मणं।

799. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुविनाणस्स अरम्मणं? रूपायतनं — इदं तं रूपं बहिरं चक्खुविनाणस्स अराम्मनं।

800. कटमं तं रूपं बहिरं चक्खुविनांसस न अरम्मणं? सद्दायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं चक्खुविनानास्सा न अरम्मणं।

801. कतमं तं रूपं अज्झट्टिकं सोतसंफस्सस्सा...पे... घनसंफस्सस्सा...पे... जिव्हासमफस्सस्सा...पे... कायसमफस्सस्सा न अरम्मणं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफस्स्स न अराम्मनं।

802. कटमं तं रूपं बहिरं कायसमफसस्सा अराम्मनं? फ़ोत्तब्बायतनं — इदं तं रूपं बहिरं कायसमफस्सस्सा अरम्मणं।

803. कटमं तं रूपं बहिरं कायसमफस्स्स न अराम्मनं? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं बहिरं कायसमफसस्सा न अरम्मणं।

804. कतमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायसमफसज्जाय वेदनाय...पे...संन्याय...पे...चेतनाय...पे...कायविनानास्सा न अरम्मणं? चक्खायतनं...पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं कायवीनांस न अराम्मनं।

805. कटमं तं रूपं बहिरं कायवीनांस अराम्मनं? फ़ोथब्बायतनं – इदं तं रूपं बहिरं कायवीनांस अरामणं।

806. कटमं तं रूपं बहिरं कायवीनांसस न अरम्मणं? रूपायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं कायवीनानास्सा न अरम्मणं।

807. कटमं तं रूपं बहिरं न चक्खायतनं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चक्खायतनं।

808. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं अज्जट्टिकं चक्खायतनं।

809. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चक्खायतनं? सोतायतनं...पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न चक्खायतनं।

810. कतमं तं रूपं बहिरं न सोतायतानां...पे... न घनायतनं...पे... न जीवायतनं...पे... न कायायतानां? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न कायायतनं।

811. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं काययतानां? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं अज्जत्तिकां कायायतनं।

812. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं न काययतानां? चक्खायतनं... पे... जीवायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न कायायतनं।

813. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं न रूपायतनं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न रूपायतनं।

814. कटमं तं रूपं बहिरं रूपायतनं? यं रूपं चतुन्नं महाभूतानां उपादय वननिभा...पे... रूपधातु पेसा - इदं तं रूपं बहिरं रूपायतनं।

815. कटमं तं रूपं बहिरं न रूपायतनं? सद्दायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं बहिरं न रूपायतनं।

816. कतमं तं रूपं अज्झट्टिकं न सददायतनं...पे... न गंधायतनं...पे... न रसायतनं...पे... न फोथ्बबायतनं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न फोथ्बबायतनं।

817. कटमं तं रूपं बहिरं फ़ोऽथब्बायतनं? पथविधातु...पे... फोङ्क्षबधातु पेसा - इदं तं रूपं बहिरं फोङ्क्षबबायतनं।

818. कटमं तं रूपं बहिरं न फोथबबायतनं? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं बहिरं न फोतहब्बायतनं।

819. कटमं तं रूपं बहिरं न चक्खुधातु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चक्खुधातु।

820. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्कुधातु? चक्खायतनं – इदं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्कुधातु।

821. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चक्खुधातु? सोतायतानां...पे... कायायतानां - इदं तं रूपं अजज्जट्टिकं न चक्कुधातु।

822. कटमं तं रूपं बहिरं न सोतधातु...पे...न घनधातु...पे...न जीवधातु...पे...न कायधातु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न कायधातु।

823. कटमं तं रूपं अज्झत्तिकं कायधातु? कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झत्तिकं कायधातु।

824. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न कायधातु? चक्खायतनं... पे... जीवायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न कायधातु।

825. कटमं तं रूपं अज्झत्तिकं न रूपधातु? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अजज्जत्तिकं न रूपधातु।

826. कटमं तं रूपं बहिरं रूपधातु? रूपायतनं - इदं तं रूपं बहिरं रूपधातु।

827. कटमं तं रूपं बहिरं न रूपधातु? सद्दायतनं...पे... कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न रूपधातु।

828. कतमं तं रूपं अज्झट्टिकं न सद्दधातु...पे...न गंधधातु...पे...न रसधातु...पे...न फोड्गधातु? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अजज्जत्तिकं न फोथ्बधातु।

829. कटमं तं रूपं बहिरं फ़ोऽथबधातु? फ़ोऽथबबयतानां - इदं तं रूपं बहिरं फ़ोऽथबधातु।

830. कटमं तं रूपं बहिरं न फोतहबधातु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न फोथ्बधातु।

831. कटमं तं रूपं बहिरं न चक्खुन्द्रियं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न चक्खुंद्रियम्।

832. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं चक्कुंद्रियं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं अज्जट्टिकं चक्कुंद्रियम्।

833. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न चक्खुंद्रियं? सोतायतानां...पे... कायायतानां - इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न चक्कुंद्रियम्।

834. कटमं तं रूपं बहिरं न सोतिन्द्रियं...पे... न घनिन्द्रियं...पे... न जीविन्द्रियं...पे... न कायिन्द्रियम्? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न कायिन्द्रियम्।

835. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं कायिन्द्रियम्? यो कायो चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं अज्जत्तिकां कायिन्द्रियम्।

836. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न कायिन्द्रियम्? चक्खायतनं... पे... जिव्हायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न कायिन्द्रियम्।

837. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न इत्थिन्द्रियम्? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न इत्थिन्द्रियम्।

838. कटमं तं रूपं बहिरं इत्थिन्द्रियम्? यं इत्थिया इत्थिलिंगं इत्थिनिमितं इत्थिकुट्टं इत्थाकप्पो इत्थट्टं इत्थिभावो - इदं तं रूपं बहिरं इत्थिन्द्रियम्।

839. कटमं तं रूपं बहिरं न इत्थिन्द्रियं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न इत्थिन्द्रियम्।

840. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न पुरिसिन्द्रियम्? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न पुरिसिन्द्रियम्।

841. कटमं तं रूपं बहिरं पुरिसिन्द्रियम्? यं पुरिसस्सा पुरिसालिङ्गं पुरिसनिमित्तं पुरिसकुट्टं पुरिसाकप्पो पुरिसत्तं पुरिसभावो — इदं तं रूपं बहिरं पुरिसिन्द्रियम्।

842. कटमं तं रूपं बहिरं न पुरिसिन्द्रियम्? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न पुरिसिन्द्रियम्।

843. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न जीवितिन्द्रियम्? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न जीवितिन्द्रियम्।

844. कटमं तं रूपं बहिरं जीवितिन्द्रियम्? यो तेसं रूपिणं धम्मनां आयु ऋतु यापना यापना इरियाना वत्तना पालना जीवितं जीवितंड्रियम् — इदं तं रूपं बहिरं जीवितंद्रियम्।

845. कटमं तं रूपं बहिरं न जीवितिन्द्रियम्? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न जीवितिन्द्रियम्।

846. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न कायविनति? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न कायविनति।

847. कटमं तं रूपं बहिरं कायविनति? या कुसलचित्तसा और अकुशलचित्तसा और अब्यक्कमन्तस्सा और अभिक्कमन्तस्सा और पतिक्कमन्तस्सा और अलोकान्तस्सा और विलोकान्तस्सा और सामिनजेन्तास्सा और पसारेन्तास्सा और कायास्सा थम्भाना संथम्भना संथम्भितत्तं विन्नित्ति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं बहिरं कायविनति।

848. कटमं तं रूपं बहिरं न कायविनति? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं न कायविनति।

849. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न वचिविन्नति? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न वचिविन्यति।

850. कटमं तं रूपं बहिरं वचिविन्नति? या कुसलचित्तस वा अकुसलचित्तस वा अभ्याकतचित्तस वा वाचा गिरा बयप्पथो उदिराणां धोसो घोसकम्मं वाचा वचिभेदो, अयं वुकाति वाचा। या तय वाचाय विन्नित्तति विन्नपना विन्नपित्तम् - इदं तं रूपं बहिरं वाचिविन्नति।

851. कटमं तं रूपं बहिरं न वचिविन्नति? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न वचिविन्यति।

852. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं न आकाशधातु? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न आकाशधातु।

853. कटमं तं रूपं बहिरं आकाशधातु? यो आकाशो आकाशगतं अघं अघगतं विवरो विवरगतं असम्फुटथं बिल्लीहि महाभूति - इदं तं रूपं बहिरं आकाशधातु।

854. कटमं तं रूपं बहिरं न आकाशधातु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न आकाशधातु।

855. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं न आपोधातु? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकं न आपोधातु।

856. कटमं तं रूपं बहिरं आपोधातु? यं आपो आपोगतं सिनेहो सिनेहगतं बंधनट्टं रूपस्सा - इदं तं रूपं बहिरं आपोधातु।

857. कटमं तं रूपं बहिरं न आपोधातु? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं न आपोधातु।

858. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस्सा न लहुता? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस्सा न लहुता।

859. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स लहुता? या रूपस्सा लहुता लहुपरिणमाता अदन्धनता अवित्थानता - इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स लहुता।

860. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न लहुता? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स न लहुता।

861. कटमं तं रूपं अज्जत्तिकं रूपस न मुदुता? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकां रूपस्स न मुदुता।

862. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स मुदुता? या रूपस्सा मुदुता मदवता अक्क्खहाता अकथिनाता - इदं तं रूपं बहिरं रूपस्सा मुदुता।

863. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न मुदुता? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स न मुदुता।

864. कटमं तं रूपं अज्झत्तिकं रूपस्सा न कम्मनता? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झत्तिकं रूपस्सा न कम्मनता।

865. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स कम्मनता? या रूपस्सा कम्मन्नता कम्मन्नत्तं कम्मन्नभावो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्सा कम्मन्नता।

866. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न कम्मनता? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्सा न कम्मनता।

867. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस न उपचयो? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकां रूपस न उपचयो।

868. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस उपचयो? यो आयतानां अकायो, सो रूपस्सा उपाकायो - इदं तं रूपं बहिरं रूपासा उपाकायो।

869. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न उपचयो? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स न उपचयो।

870. कटमं तं रूपं अज्झत्तिकां रूपस्स न संतति? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्जत्तिकां रूपस्सा न संतति।

871. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स संतति? यो रूपस्सा उपाचयो, सा रूपस्सा संतति - इदं तं रूपं बहिरं रूपस्सा संतति।

872. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न संतति? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स न संतति।

873. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस न जरता? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस्सा न जरता।

874. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स जरता? या रुपस्सा जरा जीराणाता खंडिच्चं पलिच्चं वलित्तचता अयुनो सहानि इन्द्रियानं परिपाको — इदं तं रूपं बहिरं रुपस्सा जराता।

875. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस न जरता? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो — इदं तं रूपं बहिरं रूपस्स न जराता।

876. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस्सा न अनिच्चता? चक्खायतनं... पे... कायायतनं — इदं तं रूपं अज्झट्टिकं रूपस्सा न अनिच्चता।

877. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स अनिच्चता? यो रूपस्सा खायो वायो भेदो परिभेदो अनिच्चता अन्तर्धानम् - इदं तं रूपं बहिरं रूपा अनिच्चता।

878. कटमं तं रूपं बहिरं रूपस्स न अनिच्चता? रूपायतनं...पे... कबाड़ीकारो आहारो – इदं तं रूपं बहिरं रूपस्सा न अनिच्चता।

879. कटमं तं रूपं अज्झट्टिकं न कबाड़ीकारो आहारो? चक्खायतनं... पे... कायायतनं – इदं तं रूपं अज्जत्तिकां न कबाडिकारो आहारो।

880. कटमं तं रूपं बहिरं कबीकारो आहारो? ओदानो कुम्मासो सत्तु मच्छो मानसं खिरं दधि सप्पी नवनीतं तेलं मधु फणितं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं यमहि यमहि जनपद तेसं तेसंं सत्तनं मुखासियां दंतविखंडनं गलज्जोहरनीयं कुच्चिविट्ठंभनं यया ओजय सत्ता यापेंती – इदं तं रूपं बहिरं कबाडिकारो आहारो।

881. कटमं तं रूपं बहिरं न कबाड़ीकारो आहारो? रूपायतनं...पे... रूपस्सा अनिच्चता - इदं तं रूपं बहिरं न कबाधिकारो आहारो।

एवं तिविधेन रूपसंगहो।

Tikaniddeso.

चतुक्कं

882. कटमं तं रूपं उपादा उपादीनां? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पनन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादा उपादीनम्।

883. कटमं तं रूपं उपदा अनुपदीनां? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपदा अनुपादिनाम्।

884. कटमं तं रूपं नो उपादा उपादीनां? कम्मास्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपादा उपादिनं।

885. कटमं तं रूपं नो उपदा अनुपदीनां? न कम्मास्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपादा अनुपदीनां।

886. कटमं तं रूपं उपादा उपादिन्नुपदनीयम्? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पनन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादा उपादिनुपदनीयम्।

887. कटमं तं रूपं उपदा अनुपादिन्नुपदनीयम्? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपदा अनुपादीनुपदनीयम्।

888. कटमं तं रूपं नो उपादा उपादिनुपदानियं? कम्मास्सा कटत्ता फोङ्ठबबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपादा उपादिनुपदनीयम्।

889. कटमं तं रूपं नो उपादा अनुपादीनुपदनीयम्? न कम्मास्सा कटत्ता फोङ्क्षबयतानां आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपादा अनुपादिन्नुपदनीयम्।

890. कटमं तं रूपं उपदा सप्पतिघं? चक्खायतनं... पे... रसायतनं – इदं तं रूपं उपाद सप्पतिघं।

891. कटमं तं रूपं उपदा अप्पतिघं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं उपाद अप्पतिघं।

892. कटमं तं रूपं नो उपदा सप्पतिघं? फ़ोथब्बायतनं - इदं तं रूपं नो उपदा सप्पतिघं।

893. कटमं तं रूपं नो उपदा अप्पतिघं? आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपदा अप्पतिघं।

894. कटमं तं रूपं उपदा ओदारिकां? चक्खायतनं... पे... रसायतनं - इदं तं रूपं उपाद ओसारिकाम्।

895. कतमं तं रूपं उपदा सुखं इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं उपदा सुखुम्।

896. कटमं तं रूपं नो उपदा ओदारिकां? फोथबबायतनं - इदं तं रूपं नो उपदा ओदारिकां।

897. कटमं तं रूपं नो उपदा सुखुमं? आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपदा सुखुमं।

898. कटमं तं रूपं उपदा दूरे? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं उपदा दूरे।

899. कटमं तं रूपं उपदा संतिके? चक्खायतनं... पे... रसायतनं – इदं तं रूपं उपदा संतिके।

900. कटमं तं रूपं नो उपदा दूरे? आपोधातु - इदं तं रूपं नो उपदा दूरे।

901. कटमं तं रूपं नो उपदा संतिके? फ़ोत्हब्बायतनं – इदं तं रूपं नो उपदा संतिके।

902. कटमं तं रूपं उपादीनं सनिदासनं? कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं - इदं तं रूपं उपादीनं सनिदासनं।

903. कटमं तं रूपं उपादीनं अनिदासनं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं, इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पनन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त गंधायतनं रसायतनं फोतहब्बयतानां आकाशधातु आपोधातु रूपासा उपाचयो रूपासा संतति कबाडिकारो आहारो – इदं तं रूपं उपादीनं अनिदस्सानं।

904. कटमं तं रूपं अनुपदीनं सनिदासनं? न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं – इदं तं रूपं अनुपदीनं सनिदासनं।

905. कटमं तं रूपं अनुपादिनां अनिदासनं? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मनता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त गन्धायतनं रसायतनं फोथ्बबायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो – इदं तं रूपं अनुपादिनाम् anidassanaṃ.

906. कटमं तं रूपं उपादीनं सप्पतिघं? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपदीनं सप्पतिघं।

907. कटमं तं रूपं उपादीनं अप्पतिघं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादीनं अप्पतिघं।

908. कटमं तं रूपं अनुपदीनं सप्पतिघं? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपदीनं सप्पतिघं।

909. कटमं तं रूपं अनुपादिणं अप्पतिघं? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं अनुपदीनं अप्पतिघं।

910. कटमं तं रूपं उपादीनं महाभूतम्? कम्मास्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं उपादीनं महाभूतम्।

911. कटमं तं रूपं उपादीनं न महाभूतं? चक्खायतनं...पे... कायायतनं इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं उपादीनं न महाभूतम्।

912. कटमं तं रूपं अनुपदीनं महाभूतम्? न कम्मस्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं अनुपदीनं महाभूतम्।

913. कटमं तं रूपं अनुपादिनां न महाभूतम्? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं अनुपदीनं न महाभूतम्.

914. कटमं तं रूपं उपादीनं ओदारिकां? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपदीनं ओदारिकां।

915. कटमं तं रूपं उपादीनं सुखुमं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादीनं सुखुमं।

916. कटमं तं रूपं अनुपदीनं ओदारिकां? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपदिनाम् ओदारिकाम्।

917. कटमं तं रूपं अनुपदीनं सुखुमं? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं अनुपदीनं सुखुमं।

918. कटमं तं रूपं उपादीनं दूरे? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादीनं दूरे।

919. कटमं तं रूपं उपदीनां संतिके? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपदीनं संतिके।

920. कटमं तं रूपं अनुपदीनं दूरे? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं अनुपदीनं दूरे।

921. कटमं तं रूपं अनुपदीनं संतिके? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपदीनं संतिके।

922. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं सनिदासनं? कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं — इदं तं रूपं उपादिनुपदनीयं सनिदासनं।

923. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं अनिदासनं? चक्खायतनं... पे... कायायतनं, इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पनन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त गंधायतनं रसायतनं फोतहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपासा उपाचयो रूपासा संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं अनिदस्सानं।

924. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं सनिदासनं? न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं - इदं तं रूपं अनुपादिनुपदनीयं सनिदासनं।

925. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं अनिदासनं? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त गन्धायतनं रसायतनं फोथ्बबायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाडिकारो आहारो — इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं अनिदासनम्।

926. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं सप्पतिघं? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं सप्पतिघं।

927. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं अप्पतिघं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं अप्पतिघं।

928. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं सप्पतिघं? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं सप्पतिघं।

929. कटमं तं रूपं अनुपादिन्नुपदनीयं अप्पतिघं? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं अनुपादिन्नुपदानियं अप्पतिघं।

930. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं महाभूतम्? कम्मास्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु — इदं तं रूपं उपादिननुपदानियं महाभूतम्।

931. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं न महाभूतम्? चक्खायतनं...पे... कायायतनं इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्त रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं न महाभूतम्।

932. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं महाभूतम्? न कम्मस्सा कटत्ता फोथ्बबायतनं आपोधातु - इदं तं रूपं अनुपादिन्नुपदनीयं महाभूतम्।

933. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपादनीयं न महाभूतम्? सद्दायतनं कायविननत्ती वाचिविनति रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रूपस्सा कम्मन्नाता रूपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कत्तत्त रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं आकाशधातु रूपस उपाचयो रूपस संतति कबाधिकारो आहारो — इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं न महाभूतं.

934. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं ओदारिकाम्? चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं ओदारिकाम्।

935. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं सुखुमं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं सुखुमं।

936. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं ओदारिकाम्? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं ओसारिकाम्।

937. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपादनीयं सुखुमं? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपस्स उपाचयो रूपस्स संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं अनुपादिन्नुपादनीयं सुखुमं।

938. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपदनीयं दूरे? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मस्सा कटत्ता आकाशधातु आपोधातु रूपस्सा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाडिकारो आहारो - इदं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं दूरे।

939. कटमं तं रूपं उपादिन्नुपादनीयं संतिके चक्खायतनं...पे... कायायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोत्हब्बायतनं - इदं तं रूपं उपादिनुपदानियं संतिके।

940. कटमं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं दूरे? कायविननत्ती वाचिविनत्ती रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता रुपस्सा कम्मन्नाता रुपस्सा जरता रूपस्सा अनिच्चता, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता आकाशधातु अपोधातु रूपासा उपाचयो रूपासा संतति कबाधिकारो आहारो - इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं दूरे।

941. कटमं तं रूपं अनुपादिन्नुपादनीयं संतिके? सद्दायतनं, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं न कम्मास्सा कटत्ता रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं - इदं तं रूपं अनुपादीनुपदनीयं संतिके।

942. कटमं तं रूपं सप्पतिघं इंद्रियं? चक्कुंद्रियं...पे... कायिन्द्रियम् - इदं तं रूपं सप्पतिघं इन्द्रियं।

943. कटमं तं रूपं सप्पतिघं न इन्द्रियं? रूपायतनं...पे... फोथ्बबायतनं - इदं तं रूपं सप्पतिघं न इंद्रियम्।

944. कटमं तं रूपं अप्पतिघं इंद्रियं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियम् - इदं तं रूपं अप्पतिघं इन्द्रियं।

945. कटमं तं रूपं अप्पतिघं न इन्द्रियं? कायविननत्ती वचिविननति...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं अप्पतिघं न इंद्रियम्।

946. कटमं तं रूपं सप्पतिघं महाभूतम्? फ़ोथब्बायतनं - इदं तं रूपं सप्पतिघं महाभूतं।

947. कटमं तं रूपं सप्पतिघं न महाभूतं? चक्खायतनं... पे... रसायतनं - इदं तं रूपं सप्पतिघं न महाभूतं।

948. कटमं तं रूपं अप्पतिघं महाभूतम्? आपोधातु — इदं तं रूपं अप्पतिघं महाभूतम्।

949. कटमं तं रूपं अप्पतिघं न महाभूतं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं अप्पतिघं न महाभूतं।

950. कटमं तं रूपं इंद्रियं ओदारिकां? चक्कुन्द्रियं...पे... कायिन्द्रियम् - इदं तं रूपं इन्द्रियं ओदारिकाम्।

951. कटमं तं रूपं इंद्रियं सुखुमं? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियम् — इदं तं रूपं इन्द्रियं सुखुमं।

952. कटमं तं रूपं न इंद्रियं ओदारिकां? रूपायतनं...पे... फोथबबायतनं - इदं तं रूपं न इन्द्रियं ओदारिकाम्।

953. कटमं तं रूपं न इंद्रियं सुखुमं? कायविननत्ती वचिविननति...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न इन्द्रियं सुखुमं।

954. कटमं तं रूपं इंद्रियं दूरे? इत्थिन्द्रियं पुरिसिन्द्रियं जीवितिन्द्रियम् - इदं तं रूपं इन्द्रियं दूरे।

955. कटमं तं रूपं इंद्रियं संतिके? चक्कुन्द्रियं...पे... कायिन्द्रियम् - इदं तं रूपं इंद्रियं संतिके।

956. कटमं तं रूपं न इंद्रियं दूरे? कायविननत्ती वचिविननति...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न इन्द्रियं दूरे।

957. कटमं तं रूपं न इंद्रियं संतिके? रूपायतनं...पे... फोथ्बबायतनं - इदं तं रूपं न इंद्रियं संतिके।

958. कटमं तं रूपं महाभूतं ओदारिकाम्? फ़ोत्हब्बायतनं — इदं तं रूपं महाभूतं ओदारिकाम्।

959. कटमं तं रूपं महाभूतं सुखुमं? आपोधातु - इदं तं रूपं महाभूतं सुखम्।

960. कटमं तं रूपं न महाभूतं ओदारिकाम्? चक्खायतनं... पे... रसायतनं — इदं तं रूपं न महाभूतं ओदारिकां।

961. कटमं तं रूपं न महाभूतं सुखं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं न महाभूतं सुखुमं।

962. कटमं तं रूपं महाभूतं दूरे? आपोधातु - इदं तं रूपं महाभूतं दूरे।

963. कटमं तं रूपं महाभूतं संतिके? फ़ोत्हब्बायतनं - इदं तं रूपं महाभूतं संतिके।

964. कटमं तं रूपं न महाभूतं दूरे? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं न महाभूतं दूरे।

965. कटमं तं रूपं न महाभूतं संतिके? चक्खायतनं... पे... रसायतनं — इदं तं रूपं न महाभूतं संतिके।

966. रूपायतनं दीठं, सददायतनं सुतं, गंधायतनं रसायतनं फोङ्क्षबबायतनं मुतं, सब्बं रूपं मनसा विनातां। रूपम्.

एवं कैटुबिधेन रूपसंगहो।

चतुक्कम.

पंचकं

967. कटमं तं रूपं पथविधातु? यं कक्खनं खड़गतं [खरिगतं (का.)] कक्खहट्टं कक्खहाभावो अज्झट्टं वा बहिद्धा वा उपादीनं वा अनुपदीनं वा — इदं तं रूपं पथविधातु।

968. कटमं तं रूपं आपोधातु? यं आपो अपोगतं सिनेहो सिनेहगतं बंधनट्टं रूपा अज्जट्टं वा बहिद्धा वा उपादीनं वा अनुपादिनां वा - इदं तं रूपं आपोधातु.

969. कटमं तं रूपं तेजोधातु? यं तेजो तेजोगतं उस्मा उस्मागतं उसुमं उसुमगतं अज्झट्टं वा बहिद्धा वा उपादीनं वा अनुपादिनां वा - इदं तं रूपं तेजोधातु.

970. कटमं तं रूपं वयोधातु? यं वायो वयोगातं थंभितत्तं रूपस्सा अज्जट्टं वा बहिद्ध वा उपादीनं वा अनुपादिनां वा - इदं तं रूपं वयोधातु।

971. कटमं तं रूपं उपदा? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं उपदा।

एवं पंचविधेन रूपसंगहो।

पंचकम्.

चक्कं

972. रूपायतनं चक्खुविन्येयं रूपं, सददायतनं सोतविंय्यं रूपं, गंधायतनं घनविन्यंयं रूपं, रसायतनं। जिव्हाविन्येयं रूपं, फोथब्बयतनं कायविन्येयं रूपं, सब्बां रूपं मनोविंय्यं रूपं।

एवं चब्बिधेन रूपसंगहो।

चक्कं.

सत्तकं

973. रूपायतनं चक्खुविन्येयं रूपं, सद्दायतनं सोतविंय्यं रूपं, गंधायतनं घनविन्यंयं रूपं, रसायतनं। जिवहविनयं रूपं, फोऽथ्व्ब्य्यतनं काय्ािाॎ्ण्ण्ऽयं रूपं, रूपायतनं सद्दायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोऽथ्भबायतनं मनोधातुविनिन्यायम् रूपं, सब्बं रूपं मनोविनाधातुविन्येयं रूपं।

एवं सत्तविधेन रूपसंगहो।

सत्तकम्.

अट्ठकं

974. रूपायतनं चक्खुविन्येयं रूपं, सद्दायतनं सोतविंय्यं रूपं, गंधायतनं घनविन्यंयं रूपं, रसायतनं। जिव्हाविनयं रूपं, मनापियो फोतथब्बो सुखासमफासो कायविन्येयं रूपं, अमानपियो फोतहब्बो दुक्खासम्फसो कायविनिनेयं रूपं, रूपायतनं सद्दायतनम् गंधायतनं रसायतनं फोटहब्बायतनं मनोधातुविन्येयं रूपं, सब्बं रूपं मनोविनाधातुविंय्यं रूपं।

एवं अट्ठविधेन रूपसंगहो।

अट्ठकम्.

नवकं

975. कटमं तं रूपं चक्कुंद्रियं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्कुंद्रियं।

976. कटमं तं रूपं सोतिन्द्रियम्...पे... घनिन्द्रियम्...पे...जीविन्द्रियम्...पे... कायिन्द्रियम्...पे... इत्थिन्द्रियम्...पे... पुरिसिन्द्रियम्...पे... जीवितिन्द्रियम्? यो तेसं रूपिणं धम्मनां आयु ऋतु यापना यापना इरियाना वत्तना पालना जीवितं जीवितं - इदं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्।

977. कटमं तं रूपं न इन्द्रियं? रूपायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इदं तं रूपं न इंद्रियम्।

एवं नवविधेन रूपसंगहो।

नवकम्.

दशकं

978. कटमं तं रूपं चक्कुंद्रियं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसादो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्कुंद्रियम्।

979. कटमं तं रूपं सोतिन्द्रियम्...पे... घनिन्द्रियम्...पे...जीविन्द्रियम्...पे... कायिन्द्रियम्...पे... इत्थिन्द्रियम्...पे... पुरिसिन्द्रियम्...पे... जीवितिन्द्रियम्? यो तेसं रूपिणं धम्मनां आयु ऋतु यापना यापना इरियाना वत्तना पालना जीवितं जीवितं - इदं तं रूपं जीवितिन्द्रियम्।

980. कटमं तं रूपं न इंद्रियं सप्पतिघं? रूपायतनं...पे... फोथ्बबायतनं - इदं तं रूपं न इंद्रियं सप्पतिघं।

981. कटमं तं रूपं न इंद्रियं अप्पतिघं? कायविननत्ती...पे... कबादिकारो आहारो — इदं तं रूपं न इन्द्रियं अप्पतिघं।

एवं दशविधेन रूपसंगहो।

दशकं.

एकादसकं

982. कटमं तं रूपं चक्खायतनं? यं चक्खु चतुन्नं महाभूतानां उपादय पसंददो...पे... सुननो गामो पेसो - इदं तं रूपं चक्खायतनं।

983. कतमं तं रूपं सोतायतनं...पे... घनायतनं...पे... जीवायतनं...पे... कायायतनं...पे... रूपायतनं...पे... सददायतनं...पे... गंधायतनं...पे... रसायतनं...पे... फोथ्हब्बायतनं? पथविधातु...पे... फोङ्क्षबधातु पेसा - इदं तं रूपं फोङ्क्षबबायतनं।

984. कतमं तं रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं? इत्थिन्द्रियं...पे... कबाड़ीकारो आहारो - इदं तं रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं।

एवं एकादशविधेन रूपसंगहो।

Ekādasakaṃ.

Aṭṭhamabhāṇavāro.

रूपविभट्टी.

रूपकण्डं निहितं।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-परिचयात्मक

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 2 - प्रपत्र

परिचयात्मक
 [पृष्ठ 165] [583] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?[1]

इंद्रिय जगत में, रूप जगत में, निराकार जगत में या उस जीवन में जो अविभाजित है,[2] और भावना, बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंधों से जुड़े अच्छे और बुरे अवस्थाओं के परिणाम[3] साथ ही क्रिया के रूप में जानी जाने वाली वे अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं, न ही कर्म का परिणाम हैं; इसके अलावा सभी रूप हैं;[पृष्ठ 166] और [अंत में] अविभाजित तत्व[4] — ये ऐसी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं।

[684] इस संदर्भ में 'सभी रूप' (सब्बम रूपम) क्या है?

चार महान घटनाएँ[5] और वह रूप जो चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न होता है—इसे ही 'सभी रूप' कहा जाता है।[6]

[584-594] यहाँ रूप के निम्नलिखित विश्लेषण की मतिका, या विषय-सूची दी गई है, जिसे मात्रात्मक श्रेणियों के अंतर्गत माना गया है — जो बौद्ध धर्म की सामान्य पद्धति है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूप पर सर्वप्रथम अनेक एकल, असंबंधित गुणों के अंतर्गत विचार किया जाता है, फिर द्विभाजित गुणों के अंतर्गत, और फिर [पृष्ठ 167] उन गुणों के अंतर्गत जो एकल रूप से लेने पर समावेशन, विपरीत के अंतर्गत समावेशन, या दोनों से अपवर्जन देते हैं; या जो युग्मों में लेने पर तीन संयोजन प्रदान करते हैं। तब हमें गुणों के युग्मों का संयोजन प्राप्त होता है, जिससे चार संयोजन प्राप्त होते हैं। इसके बाद, रूप पर अधिक आगमनात्मक वर्गीकरणों के अंतर्गत विचार किया जाता है, जैसे कि चार तत्व और पाँचवाँ, उनके व्युत्पन्न, इत्यादि, जैसा कि नीचे दिया गया है।

- फुटनोट:
1. विपाको और किरिया की जांच से नैतिक रूप से अनिर्धारित का विषय पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है।

इसमें दो अन्य प्रजातियाँ शामिल हैं: 1. रूप (या बाह्य घटनाएँ)
2. और निर्वाण (अविभाजित तत्व)।

(असल. 296.)

अतः, वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक घटना के रूप में 'रूप' की निम्नलिखित जाँच, 'विचार' की उत्पत्ति की पूर्वोक्त जाँच से जोड़ने वाले प्रश्न द्वारा प्रेरित होती है, जिसे अरूपिनो धम्म, या निराकार (अशरीरी) चेतना की अवस्थाओं के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

2. अपरियापन्न। यह शब्द, जिसका प्रयोग अक्सर पुस्तक III में किया जाता है, और जिसका उद्देश्य सर्वोच्च की खोज को सभी निम्न उद्देश्यों से अलग करना है, नीचे (§ 992) बताया गया है।

3. मैं यहाँ और अन्यत्र भी अक्सर K के विराम चिह्नों का अनुसरण करता हूँ। हालाँकि, बाद में इसी उत्तर में, K. असंगत है, क्योंकि उसने स्कंधों की सूची से पहले एक कोलन और उसके बाद एक अल्पविराम लगाया है। धारा 983 देखें। संभवतः इनमें से कोई एक गलती है।

4. असंखता च धातु। यह शब्द, जिसे बुद्धघोष और मूल अट्ठकथा (धार्मिक शास्त्र के मुद्रित पाठ में § 1,376 देखें) निर्वाण के साथ जोड़ते हैं, तीसरे खंड में इसके विपरीत 'सर्वरूप' (vp 168, n. 3) के संदर्भ में अक्सर आता है। मुझे नहीं पता कि नैतिक आदर्श की यह, एक प्रकार से, ब्रह्मांडीय अवधारणा पिटकों के पुराने ग्रंथों में मिलती है या नहीं, या वास्तव में टीकाकारों ने भौतिक शब्द को उसके इच्छित अर्थ से अधिक महत्व दिया है - एक ऐसा अर्थ जो शायद बौद्ध धर्म के 'विद्वत्तापूर्ण' युग से उत्पन्न हुआ है। उदाहरण के लिए, इस ग्रंथ के §§ 1016-1018 में, 'अरहतत्व के सर्वोच्च फल' के विपरीत बताए जाने के ठीक बाद, अविभाजित तत्व को निर्वाण के साथ जोड़ना संकलकों को एक गंभीर असंगति में डाल देता है।

मुझे अभी तक प्रथम दो पिटकों में ऐसा कोई अंश नहीं मिला है जो इस पहचान को स्थापित करता हो। मिलिंद-पन्हो में, जो पिटकों और टीकाओं के मध्य के युग की पारंपरिक शिक्षा देता है, हम निर्वाण को एकमात्र असंखतम के रूप में विकसित होते देख सकते हैं। पृष्ठ 268 और आगे देखें। केवी 317-30 की भी तुलना करें।

5. महाभूतानी, अर्थात् चार तत्व, शाब्दिक रूप से, वे वस्तुएँ जो अस्तित्व में आ चुकी हैं, die grossen Gewordenen, τα γυγνοπενα — तत्वों या στοιχεια की तुलना में कहीं अधिक वैज्ञानिक शब्द। आगे नीचे, §§ 597, 647 इत्यादि देखें।

6. रूपम शब्द के विभिन्न निहितार्थ, जैसे वस्तुनिष्ठ घटनाएँ, ठोस या मिश्रित, दृष्टि की वस्तु, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं के बिना भौतिक अस्तित्व, आदि, मेरी प्रस्तावना (ii) में चर्चा की गई है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 1

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय I - एकल अवधारणाओं के अंतर्गत रूप की व्याख्या
Ekakaniddeso
[पृष्ठ 168] [595]

सभी रूप वह है जो न तो कारण है,
न ही कारण का सहवर्ती है,
कारण से असंबद्ध है,[1] सशर्त है,[2] यौगिक है,[3] रूप से संपन्न है,[4] सांसारिक है,[5] सह-नशा करने वाला है,[6]

[पृष्ठ 169] अनुकूल:
बेड़ियाँ,[7] बंधन,
बाढ़,
बंधन,
बाधाएँ;

संक्रमित,[8] पकड़ के लिए अनुकूल,[9]
भ्रष्टाचार से संबंधित,[10] अनिश्चित,
विचार रहित,[11] न भावना, न बोध, न संश्लेषण,[12] विचार से असंबद्ध,
न नैतिक परिणाम, न नैतिक परिणाम उत्पन्न करने वाला,[13] अविकृत होते हुए भी भ्रष्टाचार से संबंधित,[14] वह नहीं 'जहाँ अवधारणा कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक होता है',[15] वह नहीं 'जिसमें अवधारणा का कोई कार्य नहीं होता, बल्कि केवल विवेचनात्मक विचार होता है',
'अवधारणा और विवेचनात्मक विचार के कार्य' से रहित,[पृष्ठ 170] 'आनंद से युक्त' नहीं,
'सुविधा से युक्त'
नहीं, 'निस्वार्थता से युक्त' नहीं,[16] ऐसी कोई चीज नहीं जिससे अंतर्दृष्टि या साधना द्वारा छुटकारा पाया जा सके,
वह नहीं जिसका कारण अंतर्दृष्टि या साधना द्वारा दूर किया जा सके,
पुनर्जन्म से जुड़े संचय की ओर न तो प्रवृत्त और न ही उससे दूर,
न तो विद्यार्थीत्व से संबंधित और न ही उससे परे छात्रत्व,
सीमित,[17] इंद्रियों के ब्रह्मांड से संबंधित,
रूप के ब्रह्मांड से संबंधित नहीं,[18] न ही निराकार के ब्रह्मांड से,
समाहित,
असमाहित नहीं,[19] अपरिहार्य प्रतिशोध को निहित करने वाली कोई चीज नहीं,[20] (नैतिक) मार्गदर्शन के लिए अनुपयोगी,
छह ज्ञान विधियों द्वारा स्पष्ट होने पर बोधगम्य,[पृष्ठ 171] क्षणभंगुर,[21]
क्षय के अधीन। एकल गुणों के माध्यम से विचार किए गए रूप की श्रेणी ऐसी है।[22]

- फुटनोट:
1. ना हेतुम एवा। टीकाकार द्वारा 'कारण' के अर्थों के विश्लेषण के लिए, धारा 1053 के अंतर्गत देखें। यहाँ विशेष अर्थ यह है कि 'रूप' स्वयं किसी नैतिक या अनैतिक परिणाम का आधार या 'मूल' या मानसिक सहयोगी नहीं है। असल. 303. निम्नलिखित दो शब्दों पर धारा 1074, 1076 के अंतर्गत चर्चा की गई है।

2. सप्पक्कायम. देखें. § 1083.

3. संखतम। यह गुण पूर्ववर्ती गुण में निहित है। धारा 1085 देखें। ऊपर पृष्ठ 166, नोट 1 भी देखें।

4. यूपियम, या रूपम एव। विषयसूची (§ 584) में पहला शब्द दिया गया है; के. ने यहाँ दूसरा शब्द दिया है। मुद्रित पाठ के इस खंड से या तो एक शब्द या दूसरा शब्द हटा दिया गया है। सी.वाई. ने दूसरा शब्द दिया है — यूपम एव ति रूपिनो धम्म, आदि। असल. 304.

5. लोकीयम्; लोकुत्तरम् का प्रतिलोम. सी एफ § 1093.

6.ससवम. धारा 1096 आदि देखें।

7. सन्नोजनियम, इत्यादि। इस और इसके बाद के चार शब्दों पर बेड़ियों और अन्य नैतिक उपमाओं के संदर्भ में अलग-अलग चर्चा की गई है। धारा 1113 और उसके बाद के अनुच्छेद देखें।

8.परमत्थम. धारा 1174 देखें: इत्यादि.

9.उपादानीयम्। § 990 और § 1213 आदि देखें।

10.संकिलेसिकम. धारा 993 और धारा 1229 आदि देखें।

11.अनारमणम, विचार या मानसिक वस्तु, निस्संदेह, अरूप-धम्मो से संबंधित है।

12. एसिटासिकम. धारा 1022 देखें.

13. धारा 989 देखें।

14. धारा 994 देखें।

15. ना सवितक्क-सविचरम्। यह और इसके बाद के दो तकनीकी शब्द ध्यान की मानसिक साधना से 'रूप' को अलग करते हैं, भले ही ध्यान का अभ्यास इंद्रियजन्य अस्तित्व से 'रूप के ब्रह्मांड' में प्रवेश करने के लिए किया जाता हो। देखें §§ 160, 168, 161 और 996-998।

16. धारा 999-1001 देखें। ये सभी मानसिक अवस्थाएँ हैं, जो अन्य चार स्कंधों की विशेषताएँ हैं, न कि रिर्पक खंडो की। इसी प्रकार, निम्नलिखित चार सैद्धांतिक अभिव्यक्तियाँ केवल मानसिक और नैतिक श्रेणियों पर ही लागू होती हैं। धारा 1007-1118 देखें।

17. परित्तम. धारा 1019 देखें.

18.Read na ryupavacaram.

19. पृष्ठ 165, नोट 2 देखें।

20. यह और अगला शब्द विचार की नैतिक, अमूर्त श्रेणियों से संबंधित हैं। धारा 1028-1030 और 1291 देखें; साथ ही 1288, 1289 और 277 भी देखें।

21.अर्थात्, टीकाकार टिप्पणी करते हैं, जब यह (चेतना में) मौजूद होता है। 'क्योंकि, सख्ती से कहें तो, दृश्य और अन्य इंद्रिय बोध के संदर्भ में, वे (न ही तानि पढ़ें) भूतकाल और भविष्य का संज्ञान नहीं करते; यह प्रतिनिधि बोध (मनोविनफियानम्) का कार्य है' (असली. 304)।

22. साई. ने उपरोक्त प्रत्येक गुण पर कोई विधिकवाद न होने का कारण यह बताया है कि अगली श्रेणी की तरह कोई सहसंबंधित विलोम शब्द नहीं है, जिससे प्रत्येक पद को अलग किया जा सके (असल. 303)। पुस्तक I में वर्णित प्रक्रिया को देखते हुए, यह शायद ही पर्याप्त है। हालाँकि, जैसा कि उपरोक्त टिप्पणियों से स्पष्ट हो गया होगा, प्रत्येक पद की आगे जाँच की गई है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 2
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय II - दोहरे गुणों के माध्यम से विचारित रूप की श्रेणी
सकारात्मक और नकारात्मक (दुविधेना रूपसंगाहो)

[पृष्ठ 172] ['वहाँ एक रूप है जो व्युत्पन्न है'] [1]
[596] वह कौन सा रूप है जो व्युत्पन्न होता है?

दृष्टि, गंध,
श्रवण, स्वाद, शारीरिक संवेदनशीलता का क्षेत्र[2]

; [3]

दृश्य, गंध, ध्वनि और स्वाद का क्षेत्र
;

स्त्रीत्व, पुरुषत्व और
जीवंतता की क्षमताएं ;
[पृष्ठ 173] संकेत:
कार्य द्वारा,
वाणी द्वारा; स्थान का तत्व;
उत्प्लावन, >
प्लास्टिसिटी, >
सुगमता, >
एकीकरण, > रूप का
रखरखाव, >
क्षय, >
अनित्यता, >
ठोस पोषण। [597] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है (चक्खयातनम्)?
आँख,[4] यानी सचेत अंग,[5] जो [पृष्ठ 174] महान घटनाओं से उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं की प्रकृति का हिस्सा है,[6] अदृश्य और प्रतिक्रियाशील[7]
— जिस आँख से, अदृश्य और [पृष्ठ 175] प्रतिक्रियाशील, कोई[8] देख चुका है, देखता है, देखेगा, या देख सकता है वह रूप जो दृश्यमान और प्रभावकारी है — यह जो दृष्टि है,
दृष्टि का क्षेत्र,
दृष्टि का तत्व,
दृष्टि की क्षमता, यह जो है: 'एक दुनिया',[9] 'एक द्वार',
'एक महासागर',
'प्रकाशमान',
'एक मैदान',
'एक [पृष्ठ 176] आधार',
'एक मार्गदर्शक',
'मार्गदर्शन',
'आगे का किनारा',
एक 'खाली गाँव' — यह वह रूप है जो दृष्टि के क्षेत्र का निर्माण करता है।
[598] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है?
आँख, अर्थात् सचेत अंग, जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न हुआ है, आत्मा के स्वरूप का एक भाग है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, और जिस पर आँख, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील, दृश्य और प्रभाव डालने वाले रूप का प्रभाव डालती है, प्रभाव डाल चुकी है,[10] प्रभाव डालती है, प्रभाव डालेगी, या डाल सकती है।
— यह जो दृष्टि है,
दृष्टि का क्षेत्र,
दृष्टि का घटक तत्व,
आदि। [धारा 597 के अनुसार जारी रखें]।
[599] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है?

आँख, अर्थात् सचेत अंग, जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न हुआ है, आत्मा के स्वरूप का एक भाग है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, और यह आँख, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील, दृश्य और प्रतिक्रियाशील रूप पर प्रभाव डालती है, डालती है, डालेगी या डाल सकती है।[11]

— यह जो दृष्टि है,

दृष्टि का क्षेत्र,

आदि। [धारा 597 के अनुसार जारी रखें]।

[600] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है?

आँख, यानी सचेत अंग, चार महान घटनाओं से उत्पन्न, आत्मा की प्रकृति का हिस्सा, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील, (i.) इस पर निर्भर करते हुए कि किस आँख से, किसी दृश्य रूप के परिणामस्वरूप,[12] दृश्य संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है;[13] . . . [पृष्ठ 177] (ii.) और इस पर निर्भर करते हुए कि किस आँख से, किसी दृश्य रूप के परिणामस्वरूप, (उस दृश्य संपर्क से उत्पन्न) एक भावना . . . [या iii.] एक धारणा . . . [या iv.] सोच ... [या v.] एक दृश्य संज्ञान [14] . . . [इसके अलावा, vi.] इस पर निर्भर करते हुए[15] कि कौन सी आँख, और एक दृश्य रूप को अपने विषय के रूप में रखते हुए, दृश्य संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है, (vii.) और इस पर निर्भर करते हुए कि कौन सी आँख, और एक दृश्य रूप को अपने विषय के रूप में रखते हुए, उस दृश्य संपर्क से उत्पन्न एक भावना... [या viii.] एक धारणा... [पृष्ठ 178] [या ix.] सोच... [या x.] दृश्य संज्ञान - यह जो दृष्टि है, दृष्टि का क्षेत्र, आदि।

[धारा 597 के अनुसार जारी रखें].[16] [601-604] वह रूप क्या है जो श्रवण क्षेत्र है?

कान, यानी संवेदी अंग,[17] जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न हुआ है, आत्मा की प्रकृति का हिस्सा है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, —

वह कौन सा कान है, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, जिसके द्वारा किसी ने अदृश्य और आघात पहुँचाने वाली ध्वनि सुनी है, सुनता है, सुनेगा या सुन सकता है;

जिस कान पर अदृश्य और प्रतिक्रियाशील ध्वनि, अदृश्य और भेदक ध्वनि, भेद चुकी है, भेद रही है, भेदेगी या भेद सकती है;

वह कान, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील ध्वनि पर प्रभाव डालता है, डालता है, डालेगा या डाल सकता है;

यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस कान के माध्यम से, किसी ध्वनि के परिणामस्वरूप, कोई ध्वनि उत्पन्न हुई है, उत्पन्न होती है, उत्पन्न होगी या उत्पन्न हो सकती है:

श्रवण संपर्क; . . . और, इस बात पर निर्भर करते हुए कि किस कान से, [पृष्ठ 179] ध्वनि के परिणामस्वरूप, उस श्रवण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .

[या] एक बोध . .

[या] विचार . . .

[या] श्रवण बोध; — [आगे] इस बात पर निर्भर करते हुए कि किस कान से, और ध्वनि को अपने विषय के रूप में रखते हुए, श्रवण संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न हुआ है, होगा या हो सकता है, और, इस बात पर निर्भर करते हुए कि किस कान से, और ध्वनि को अपने विषय के रूप में रखते हुए, उस श्रवण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .

[या] एक बोध . . .

[या] विचार . . .

[या] श्रवण बोध; — यह जो श्रवण है,

श्रवण क्षेत्र,

श्रवण का घटक तत्व,

श्रवण क्षमता, यह जो 'एक दुनिया',

'एक द्वार',

'एक महासागर',

'प्रकाशमान',

'एक क्षेत्र', '

एक आधार',[18] 'आगे का किनारा',

'एक खाली गाँव' — यह वह रूप है जो श्रवण क्षेत्र है।

[605-608] वह कौन सा रूप है जो गंध का क्षेत्र है?

नाक, यानी सचेत अंग, [19] जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न हुआ है, स्वयं की प्रकृति का हिस्सा है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, — वह कौन सी अदृश्य और प्रतिक्रियाशील नाक है जिसके द्वारा व्यक्ति ने अदृश्य और अप्रत्यक्ष गंध को सूंघा है, सूंघ रहा है, सूंघेगा या सूंघ सकता है;

जिस पर नाक, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील, गंध जो अदृश्य और आक्रामक है, ने प्रभाव डाला है, प्रभाव डालती है, प्रभाव डालेगी या डाल सकती है;

[पृष्ठ 180] वह नाक, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, उस गंध पर प्रभाव डालती है, डालती रही है, डालेगी या डाल सकती है जो अदृश्य और प्रभाव डालने वाली है; —

इस बात पर निर्भर करते हुए कि कौन सी नाक है, किसी गंध के परिणामस्वरूप... इस बात पर निर्भर करते हुए कि कौन सी नाक है, और किसी गंध को अपना विषय बनाकर, उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या उत्पन्न हो सकता है:

गंधीय संपर्क,

और, इस बात पर निर्भर करते हुए कि कौन सी नाक है, किसी गंध के परिणामस्वरूप... इस बात पर निर्भर करते हुए कि कौन सी नाक है, और गंध को अपना विषय मानते हुए, उस घ्राण संपर्क से एक भावना...

[या] एक बोध...

[या] विचार...

[या] घ्राण बोध उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, उत्पन्न होगा या उत्पन्न हो सकता है; — यही गंध है, यह क्षेत्र, यह घटक तत्व, यह क्षमता, यह 'एक दुनिया' है, आदि।

[धारा 604 के अनुसार जारी रखें]।

[609-612] वह कौन सा रूप है जो स्वाद का क्षेत्र है?

जीभ, अर्थात् सचेत अंग,[20] जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न हुई है, आत्मा के स्वरूप का एक भाग है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील; वह कौन सी अदृश्य और प्रतिक्रियाशील जीभ है जिसके द्वारा व्यक्ति ने अदृश्य और प्रत्यक्ष स्वादों का स्वाद चखा है, चखता है, चखेगा या चख सकता है;

जिसके विरुद्ध अदृश्य और प्रतिक्रियाशील जीभ, अदृश्य और प्रभाव डालने वाले स्वाद, प्रभाव डाल चुके हैं, प्रभाव डालते हैं, प्रभाव डालेंगे या डाल सकते हैं;

वह जीभ, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, ने उन अदृश्य और प्रतिक्रियाशील स्वादों पर प्रभाव डाला है, [पृष्ठ 181] प्रभाव डालती है, डालेगी या डाल सकती है; —

जीभ के प्रकार के आधार पर, एक स्वाद के परिणामस्वरूप... जीभ के प्रकार के आधार पर, और एक स्वाद को विषय बनाकर, उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा, या उत्पन्न हो सकता है:

स्वाद संपर्क, और जीभ के प्रकार के आधार पर, किसी स्वाद के परिणामस्वरूप... जीभ के प्रकार के आधार पर, और किसी स्वाद को विषय बनाकर, उस स्वाद संपर्क से एक भावना

... [या] एक बोध...

[या] विचार...

[या] स्वाद संबंधी अनुभूति उत्पन्न हुई है, उत्पन्न होती है, उत्पन्न होगी या हो सकती है; — यह वह है

स्वाद,

क्षेत्र,

घटक तत्व,

स्वाद की क्षमता,

यह जो 'एक दुनिया' है,

इत्यादि। [धारा 604 के अनुसार जारी रखें]।

[613-616] वह कौन सा रूप है जो शरीर [-संवेदनशीलता] का क्षेत्र है?

शरीर, अर्थात् सचेतन अंग,[21] चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न [पृष्ठ 182], आत्मा के स्वरूप का एक भाग है, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील; —
वह शारीरिक संवेदनशीलता, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, जिसके द्वारा व्यक्ति उस अदृश्य और प्रत्यक्ष स्पर्शनीय वस्तु को स्पर्श कर चुका है, स्पर्श करता है, करेगा या कर सकता है;
जिसके विरुद्ध अदृश्य और प्रतिक्रियाशील देह-संवेदना, और अदृश्य और प्रभाव डालने वाली मूर्त वस्तु, प्रभाव डाल चुकी है, प्रभाव डाल रही है, प्रभाव डालेगी या डाल सकती है;
वह शारीरिक संवेदनशीलता, जो अदृश्य और प्रतिक्रियाशील है, उस अदृश्य और प्रतिक्रियाशील मूर्त चीज पर प्रभाव डालती है, डालती रही है, डालेगी या डाल सकती है;
शरीर की किस संवेदनशीलता के आधार पर, किसी मूर्त वस्तु के फलस्वरूप... शरीर की किस संवेदनशीलता के आधार पर, और किसी मूर्त वस्तु को अपने विषय के रूप में रखते हुए, उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा, या उत्पन्न हो सकता है:
स्पर्श संपर्क,[22]
और शरीर की संवेदनशीलता के आधार पर, किसी मूर्त चीज़ के परिणामस्वरूप... शरीर की संवेदनशीलता के आधार पर, और किसी मूर्त चीज़ को अपने विषय के रूप में रखते हुए, उस स्पर्श संपर्क से उत्पन्न हुई है, उत्पन्न होती है, होगी, या उत्पन्न हो सकती है, एक भावना...
[या] एक धारणा...
[या] सोच...
[या] स्पर्श संबंधी अनुभूति; — [23] यह जो शरीर संवेदनशीलता है,
क्षेत्र,
घटक तत्व,
शरीर संवेदनशीलता की क्षमता, यह जो 'एक दुनिया' है,
आदि। [धारा 604 के अनुसार जारी रखें]।
[पृष्ठ 183] [617] वह कौन सा रूप है जो [दृश्य] रूप का क्षेत्र है?
वह रूप जो महान सिद्धांतों से व्युत्पन्न होकर रंग के रूप में प्रकट होता है और प्रभाव उत्पन्न करता है[24] — नीला,[25] पीला,
लाल,[26] सफेद,
काला,[27] गहरा लाल,[28] कांस्य,[29] हरा,[30] आम की कली के रंग का;[31] लंबा,
छोटा,[32] बड़ा,
छोटा,
गोलाकार,
अंडाकार,
वर्गाकार,
षट्भुजाकार,
अष्टभुजाकार,
हेक्काइदेकाभुजाकार; नीचा,
ऊँचा,
छायादार,
चमकीला,
हल्का,
मंद,
सुस्त,
पाला पड़ा हुआ,[33] धुएँदार,
धूल भरा;

रंग में [पृष्ठ 184] चंद्रमा की डिस्क,[34] सूर्य,
तारे,
एक दर्पण,[35] एक रत्न,
एक शंख,
एक मोती,
एक बिल्ली की आँख,[36]
सोना[37] या चांदी;[38] या कोई अन्य रूप जो चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न है, दृश्यमान और प्रभाव उत्पन्न करने वाला है - वह रूप, दृश्यमान और प्रभाव उत्पन्न करने वाला, जिसे किसी ने अदृश्य और प्रतिक्रियाशील आंख से देखा है, देखता है, देखेगा या देख सकता है।
— जो दृश्य रूप है, जो दृश्य रूप का क्षेत्र है,
दृश्य रूप का घटक तत्व है — यही वह रूप है जो दृश्य रूप का क्षेत्र है।
[618] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूप का क्षेत्र है?
वह रूप जो महान घटनाओं से व्युत्पन्न होकर रंग के रूप में दृश्यमान होता है और प्रभाव उत्पन्न करता है...[39] जिस दृश्यमान और प्रभाव उत्पन्न करने वाले रूप पर, अदृश्य और प्रभाव डालने वाली आँख ने प्रभाव डाला है, डालती है, डालेगी या डाल सकती है।
— यह जो दृश्य रूप है,
इत्यादि। [धारा 617 के अनुसार जारी रखें]।
[619] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूप का क्षेत्र है?
[पृष्ठ 185] वह रूप जो महान घटनाओं से व्युत्पन्न होकर रंग के रूप में दृश्यमान होता है और प्रभाव उत्पन्न करता है — वह दृश्यमान और प्रभाव उत्पन्न करने वाला रूप अदृश्य और प्रतिक्रियाशील आँख पर प्रभाव डालता है, डालता है, डालेगा या डाल सकता है।
— यह जो दृश्य रूप है,
इत्यादि। [धारा 617 के अनुसार जारी रखें]।
[620] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूप का क्षेत्र है?
वह रूप जो चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न होकर दृश्यमान है और प्रभाव उत्पन्न करता है—जिस रूप के परिणामस्वरूप, और आँख पर निर्भर करते हुए, दृश्य संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है...जिस रूप के परिणामस्वरूप और आँख पर निर्भर करते हुए, उस दृश्य संपर्क से उत्पन्न होकर, एक भावना...
[या] एक बोध... [या
] विचार...
[या] दृश्य संज्ञान... [आगे] उस दृश्यमान रूप को अपने विषय के रूप में रखते हुए,[40] और आँख पर निर्भर करते हुए, दृश्य संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है, [पृष्ठ 186] और, उस दृश्यमान रूप को अपने विषय के रूप में रखते हुए, और आँख पर निर्भर करते हुए, एक भावना...
[या] एक बोध...
[या] विचार...
[या] दृश्य संज्ञान... उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है... यह जो दृश्यमान रूप है,
गोला,
दृश्य रूप का घटक तत्व — यही वह रूप है जो दृश्य रूप का गोला है।
[621] वह कौन सा रूप है जो ध्वनि का गोला है?
वह ध्वनि जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होती है, अदृश्य होती है और प्रभाव उत्पन्न करती है, जैसे कि
ढोल की ध्वनि,
तबला की ध्वनि,
शंख की ध्वनि,
टॉमटॉम की ध्वनि,
गायन की ध्वनि,
संगीत की ध्वनि;[41]

टकराव की आवाज़ें,[42] मैनुअल आवाज़ें,[43]
लोगों का शोर,[44]

पदार्थों के टकराव की ध्वनि ,[45] हवा की,[46] पानी की,[47]
मानव और अन्य मानव जैसी ध्वनियाँ, या कोई अन्य ध्वनि[48] जो भी हो, महान घटनाओं से उत्पन्न होती है, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली — ऐसी ध्वनि, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, जैसे कान द्वारा, अदृश्य और प्रतिक्रिया करने वाली, जिसे किसी ने सुना है, सुनता है, सुनेगा, या सुन सकता है...
[622] . . . और जिस ध्वनि पर, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाला, कान, अदृश्य और प्रतिक्रिया करने वाला, टकराया है, टकराता है, टकराएगा, या टकरा सकता है . . .
[623] . . . जो ध्वनि, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, [पृष्ठ 187] अदृश्य और प्रतिक्रियाशील कान पर प्रभाव डालती है, डालती है, डालेगी या डाल सकती है . . .
[624] . . . जिसके परिणामस्वरूप ध्वनि और कान पर निर्भर, श्रवण संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है . . . . और[49] . . . उस श्रवण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .
[या] एक बोध . . .
[या] सोच . . .
[या] श्रवण संज्ञान . . . . . . [आगे] ध्वनि को अपने विषय के रूप में रखते हुए और कान पर निर्भर, श्रवण संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है, . . . और . . . उस श्रवण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .
[या] एक बोध . . .
[या] सोच . . .
[या] श्रवण संज्ञान; यह जो ध्वनि है, ध्वनि का क्षेत्र और घटक तत्व - यह वह रूप है जो ध्वनि का क्षेत्र है।
[625] वह कौन सा रूप है जो गंध का क्षेत्र है?
वह गंध जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होती है, अदृश्य होती है और प्रभाव उत्पन्न करती है, जैसे जड़ों,
रस,
छाल,
पत्तियों,
फूलों,
फलों की गंध;
कृमि जैसी गंध,
सड़ी हुई गंध,
सुखद और अप्रिय गंध,[50] या [पृष्ठ 188] अन्य कोई भी गंध जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होती है, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली; ऐसी गंध, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, जिसे किसी ने सूंघा है, सूंघता है, सूंघेगा, या सूंघ सकता है, जो अदृश्य और प्रभाव डालने वाली है...
[626] . . . जिस गंध पर, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, नाक, अदृश्य और टकराने वाली, टकराई है, टकराती है, टकराएगी या टकरा सकती है . . .
[627] . . . ऐसी गंध, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, जो नाक पर टकराई है, टकराती है, टकराएगी या टकरा सकती है, अदृश्य और प्रतिक्रिया करने वाली . . .
[628] . . . जिसके परिणामस्वरूप गंध और नाक पर निर्भर करते हुए, घ्राण संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है . . . और[51] . . . उस घ्राण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .
[या] एक धारणा . . .
[या] सोच . . .
[या] घ्राण संज्ञान . . . . . . [आगे] गंध को अपनी वस्तु के रूप में रखते हुए और नाक पर निर्भर करते हुए, घ्राण संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है, . . . और . . . उस घ्राण संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .

[या] एक धारणा . . .

[या] सोच . . .

[या] घ्राण संज्ञान; [पृष्ठ 189] यह जो गंध है, गंध का क्षेत्र और घटक तत्व — यह वह रूप है जो गंधों का क्षेत्र है।

[629] वह कौन सा रूप है जो स्वाद का क्षेत्र है?

वह स्वाद जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है, अदृश्य होता है और प्रभाव उत्पन्न करता है, जैसे जड़ों,

तनों,

छाल,

पत्तियों,

फूलों,

फलों का स्वाद।

खट्टा,

मीठा,[52] कड़वा,[53] तीखा,[54]

नमकीन,[55] क्षारीय,[56] तीखा,[57] कसैला,[58] अच्छा और मतली लाने वाला स्वाद,[59] या अन्य कोई भी स्वाद जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाला - ऐसे स्वाद, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाले, जैसे जीभ के साथ, अदृश्य और प्रतिक्रिया करने वाला, किसी ने चखा है, चखता है, चखेगा, या चख सकता है...

[630] . . . जिसके विरुद्ध स्वाद, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाला, जीभ, अदृश्य और प्रहार करने वाली, प्रहार कर चुकी है, प्रहार करती है, करेगी या कर सकती है . . .

[631] ... एक स्वाद जो अदृश्य है और प्रभाव पैदा करता है, जीभ पर प्रभाव डालता है, डालता है, डालेगा या डाल सकता है, अदृश्य है और प्रतिक्रिया करता है...

[632] . . . जिसके परिणामस्वरूप स्वाद और जीभ पर निर्भर करते हुए, स्वाद संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है . . . [पृष्ठ 190] . . . और[60] . . . उस स्वाद संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .

[या] एक बोध . . .

[या] सोच . . .

[या] स्वाद संबंधी ज्ञान, [आगे] स्वाद को अपने विषय के रूप में रखते हुए और जीभ पर निर्भर करते हुए, स्वाद संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है, . . . और . . . उस स्वाद संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .

[या] एक बोध . . .

[या] सोच ...

[या] स्वाद संबंधी ज्ञान; यही स्वाद है, स्वाद का क्षेत्र और घटक तत्व - यही वह रूप है जो स्वाद का क्षेत्र है।[61]

[633] वह कौन सा रूप है जो स्त्रीत्व (इत्थिंद्रियम) है?

जो स्त्रीत्व से संबंधित है, दिखने में स्त्रीत्व से, विशेषताओं में स्त्रीत्व से, व्यवसाय में स्त्रीत्व से, आचरण में स्त्रीत्व से, स्थिति और अस्तित्व में स्त्रीत्व से — यही वह रूप है जो स्त्रीत्व का निर्माण करता है।[62]

[पृष्ठ 191] [634] वह कौन सा रूप है जो पुरुषत्व (पुरिसिंद्रियम) है?

जो पुरुष का है, दिखने में मर्दाना, विशेषताओं में मर्दाना, व्यवसाय में, आचरण में, स्थिति और अस्तित्व में मर्दाना - यही वह रूप है जो मर्दानगी का निर्माण करता है।[63]

[पृष्ठ 192] [635] वह कौन सा रूप है जो जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रियम) है?

इन शारीरिक अवस्थाओं की निरंतरता, उनका अस्तित्व, उनका निरंतर चलना, उनका निरंतर चलते रहना, उनकी प्रगति, निरंतरता, संरक्षण, जीवन, एक क्षमता के रूप में जीवन - यही वह रूप है जो जीवन शक्ति है।[64]

[636] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संकेत (कयाविन्नत्ति) है?

वह तनाव, वह तल्लीनता, शरीर को तनावग्रस्त करने की वह अवस्था[65], किसी विचार के जवाब में, चाहे वह अच्छा हो, बुरा हो या अनिश्चित हो, आगे बढ़ने वाले, पीछे हटने वाले, टकटकी लगाने वाले, चारों ओर देखने वाले, हाथ पीछे खींचने वाले या उसे आगे बढ़ाने वाले व्यक्ति की ओर से - संकेत, ज्ञात करना, ज्ञात किए जाने की अवस्था - यही वह रूप है जो शारीरिक संकेत का निर्माण करता है।[66]

[पृष्ठ 193] [637] वह कौन सा रूप है जो भाषा द्वारा संकेत है (vacivinnatti)?
वह भाषण, आवाज, उच्चारण, उच्चारण, शोर, शोर मचाना, स्पष्ट भाषण के रूप में भाषा, जो किसी विचार को व्यक्त करती है चाहे वह अच्छा हो, बुरा हो या अनिश्चित हो - इसे भाषा कहते हैं।
और वह संकेत, वह ज्ञात करना, भाषा द्वारा ज्ञात किए जाने की स्थिति — यही वह रूप है जो भाषा द्वारा संकेत का गठन करता है।[67]
[638] वह कौन सा रूप है जो आकाश-धातु का तत्व है?
जो अंतरिक्ष है और अंतरिक्ष से संबंधित है, आकाश है और [पृष्ठ 194] आकाश से संबंधित है,[68] निर्वात है और निर्वात से संबंधित है, और चार महान घटनाओं के संपर्क में नहीं है'[69] - यही वह रूप है जो अंतरिक्ष का तत्व है।
[639] वह कौन सा रूप है जो रूप की हल्कापन (रूपासा लहुता) है?[70]
रूप की वह हल्कापन जो उसकी आसानी से बदलने की क्षमता है, उसकी सुस्ती और जड़ता से मुक्ति है - यही वह रूप है जो रूप का हल्कापन है।
[640] वह कौन सा रूप है जो रूप की प्लास्टिसिटी है?
[पृष्ठ 195] रूप की वह प्लास्टिसिटी जो उसकी कोमलता, चिकनाई, गैर-कठोरता है — यही वह रूप है जो रूप की प्लास्टिसिटी है।
[641] वह कौन सा रूप है जो रूप की सुगमता है?
रूप की वह सुगमता जो इसकी सेवायोग्यता है, इसकी कार्ययोग्य स्थिति है - यही वह रूप है जो रूप की सुगमता है।[71]
[642] वह कौन सा रूप है जो रूप का एकीकरण (उपाकायो) है?
जो रूप का संचय है, वह रूप का एकीकरण है[72] — यह वह रूप है जो रूप का एकीकरण है।
[643] वह कौन सा रूप है जो रूप का अस्तित्व है (रूपस्सा संतति)?
जो रूप का एकीकरण है, वही रूप का सार है। — यही वह रूप है जो रूप का सार है।
[644] वह कौन सा रूप है जो रूप का क्षय है (रूपास्सा जराता)?
रूप का वह क्षय जो बुढ़ापा, जीर्णता, सफेदी, झुर्रियाँ, दिनों की लंबाई में कमी, क्षमताओं की अतिपरिपक्वता है - यही वह रूप है जो रूप का क्षय है।[73]
[पृष्ठ 196] [645] वह कौन सा रूप है जो रूप की अनित्यता है (रूपस्सा अनिक्काता)?
विनाश, रोग, टूटना, रूप का विघटन, वह अनित्यता जो पतन है — यही वह रूप है जो रूप की अनित्यता है।[74]
[646] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक (ठोस) पोषण (कबालिंकरो अहारो) है?[75]
उबले हुए चावल, खट्टी दलिया, आटा, मछली, मांस, दूध, दही, मक्खन, पनीर, तिला-तेल, गन्ने का सिरप, या जो कुछ भी[76] किसी भी क्षेत्र में है जिसे जीवित प्राणी खा सकते हैं, चबा सकते हैं, निगल सकते हैं, उस रस में पचा सकते हैं[77] जिससे जीवित [पृष्ठ 197] प्राणी जीवित रहते हैं - यही वह रूप है जो शारीरिक पोषण है।
यह सब व्युत्पन्न रूप है।
व्युत्पन्नों पर अनुभाग का अंत। प्रारूप संबंधी प्रभाग में उद्धरण हेतु पहला भाग।
['ऐसा कोई रूप नहीं है जो व्युत्पन्न न हो' (कोई उपद नहीं)]।
[647] वह कौन सा रूप है जो व्युत्पन्न नहीं है?[78]
मूर्त का क्षेत्र, तरल तत्व—यह वह रूप है जो व्युत्पन्न नहीं है।
[648] वह कौन सा रूप है जो मूर्त (फोत्थब्बयातनम्) का गोला है? पार्थिव (ठोस) तत्व,
दीप्तिमान (ऊष्मायवी) तत्व,
गैसीय (वायुमंडलीय) तत्व; [79]
कठोर और [पृष्ठ 198] नरम;
चिकना और खुरदरा;
सुखद (आरामदायक) संपर्क,
कष्टदायक संपर्क;
भारी और हल्का[80] — ऐसा मूर्त, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाला,[81] जैसा कि [पृष्ठ 199] शरीर-संवेदनशीलता के साथ, अदृश्य और प्रतिक्रिया करते हुए, किसी ने छुआ है, छूता है, छूएगा, या छू सकता है...

[649] . . . जिसके विरुद्ध मूर्त, अदृश्य, और प्रभाव उत्पन्न करने वाली, शरीर की संवेदनशीलता, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील, टकराई है, टकराती है, टकराएगी, या टकरा सकती है . . .
[650] . . . ऐसा मूर्त, अदृश्य और प्रभाव उत्पन्न करने वाला, जो शरीर-संवेदनशीलता के विरुद्ध टकराया है, टकराता है, टकराएगा या टकरा सकता है, अदृश्य और प्रतिक्रिया करने वाला . . .
[पृष्ठ 200] [651] . . . जिसके परिणामस्वरूप, मूर्त और शरीर-संवेदनशीलता पर निर्भर, शारीरिक संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है . . . और . . . उस शारीरिक संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .
[या] एक धारणा . . .
[या] सोच . . .
[या] शरीर का संज्ञान . . . [आगे,] एक मूर्त वस्तु को अपने विषय के रूप में रखते हुए और शरीर (-संवेदनशीलता) पर निर्भर, शारीरिक संपर्क उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न होता है, होगा या हो सकता है . . . और . . . उस शारीरिक संपर्क से उत्पन्न, एक भावना . . .
[या] एक धारणा . . .
[या] सोच . . .
[या] शरीर का संज्ञान; यह जो मूर्त है, मूर्त का क्षेत्र और तत्व है - यह वह रूप है जो मूर्त का क्षेत्र है।[82]
[652] वह कौन सा रूप है जो द्रव (जलीय) तत्व (अपोधातु) है?
जो तरल है और तरल से संबंधित है, जो [पृष्ठ 201] चिपचिपा[83] है और चिपचिपा से संबंधित है, रूप की एकजुटता[84] — यही वह रूप है जो तरल तत्व है।
यह सब वह रूप है जो व्युत्पन्न नहीं है।
[653] वह कौन सा रूप है[85] जो पकड़ (उपादिन्नम) का मुद्दा है?[86] [पृष्ठ 202]
दृष्टि,
श्रवण,
गंध,
स्वाद,
देह-संवेदनशीलता,
स्त्रीत्व,
पुरुषत्व,
जीवन शक्ति, या कर्म के फलस्वरूप विद्यमान कोई भी रूप, चाहे वह
दृश्य रूपों,
गंधों,
स्वादों,
या स्पर्शनीय के क्षेत्र में हो; अंतरिक्ष का तत्व,
द्रव तत्व,
एकीकरण या रूप का अस्तित्व,[87]
या शारीरिक पोषण—यही वह रूप है जो ग्रहणशीलता का मुद्दा है।
[654] वह कौन सा रूप है जो पकड़ का मुद्दा नहीं है?
ध्वनि का क्षेत्र, शारीरिक और स्वरीय संकेत, हल्कापन, रूप की लचीलापन और सुगमता, रूप का क्षय और अनित्यता, या कोई भी अन्य रूप जो कर्म के फलस्वरूप अस्तित्व में नहीं है, चाहे वह दृश्य रूपों, गंधों, स्वादों या स्पर्शनीयता के क्षेत्र में हो; अंतरिक्ष का तत्व हो या तरलता का; रूप का एकीकरण या अस्तित्व, या शारीरिक पोषण — यही वह रूप है जो पकड़ का परिणाम नहीं है।
[655] वह कौन सा रूप है जो पकड़ का कारण भी है और पकड़ के लिए अनुकूल भी है (उपादिन 'उपादानियम)?
पाँचों इंद्रियों,
स्त्रीत्व, पुरुषत्व और प्राण शक्ति के क्षेत्र, या कर्मों के फलस्वरूप विद्यमान कोई भी अन्य रूप, चाहे वह दृश्य रूपों, गंधों, स्वादों या स्पर्शनीय
रूप में हो। [पृष्ठ 203]

अंतरिक्ष या तरलता के तत्वों में,
एकीकरण में,
या रूप का अस्तित्व
या शारीरिक पोषण में निहित अस्तित्व—यह वह रूप है जो पकड़ का परिणाम भी है और पकड़ के लिए अनुकूल भी है।
[656] वह कौन सा रूप है जो पकड़ का विषय नहीं है, बल्कि पकड़ के लिए अनुकूल है (अनुपदिन्न उपादनीयम्)?[88]
ध्वनि,
शारीरिक और स्वर संकेत, रूप
की हल्कापन,
लचीलापन,
सुगमता,
क्षय और अनित्यता का क्षेत्र, या कोई भी अन्य रूप जो कर्म के कारण नहीं है, चाहे वह
दृश्य रूपों के क्षेत्र में हो,[89] गंध,
स्वाद,
स्पर्शनीय,
अंतरिक्ष या तरलता के तत्व में,
एकीकरण में,
या रूप का अस्तित्व,
या शारीरिक पोषण में - यह वह रूप है जो पकड़ का परिणाम नहीं है बल्कि पकड़ के लिए अनुकूल है।
[657] वह कौन सा रूप है जो दिखाई देता है?
दृश्य रूपों का क्षेत्र—यह वह रूप है जो दिखाई देता है।
[658] वह कौन सा रूप है जो अदृश्य है?
दृष्टि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण - यह वह रूप है जो अदृश्य है।[90]

[पृष्ठ 204] [659] वह कौन सा रूप है जो प्रतिक्रिया करता है और प्रभाव डालता है[91] (सप्पतिघम)? दृष्टि,
श्रवण,
गंध,
स्वाद,
देह-संवेदना के क्षेत्र ;

दृश्य रूपों,
ध्वनियों,
गंधों,
स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं के क्षेत्र
—यह वह रूप है जो प्रतिक्रिया करता है और प्रभाव डालता है।
[660] वह कौन सा रूप है जो प्रतिक्रिया नहीं करता या टकराता नहीं है?
नारीत्व...और शारीरिक पोषण
— यह वह रूप है जो प्रतिक्रिया नहीं करता या प्रभाव नहीं डालता।
[661] वह कौन सा रूप है जो संकाय (इन्द्रियम) है?
दृष्टि,
श्रवण,

गंध,
स्वाद,
देह-संवेदनशीलता,
स्त्रीत्व,
पुरुषत्व,
जीवन शक्ति की संकाय (या व्यक्तिगत क्षमताएँ)[92] - यही वह रूप है जो संकाय है।
[662] वह कौन सा रूप है जो संकाय नहीं है?
दृश्य रूप के क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण — यह वह रूप है जो संकाय नहीं है।[93]
[पृष्ठ 205] [663] वह कौन सा रूप है जो महान घटना (महाभूतम्) है?
मूर्त का क्षेत्र और तरलता का तत्व—यही वह रूप है जो महान घटना है।
[664] वह कौन सा रूप है जो महान घटना नहीं है?
दृष्टि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण - यह वह रूप है जो महान घटना नहीं है।[94]
[665] वह कौन सा रूप है जो संकेत (विन्नट्टी) है?
शारीरिक और मुखर संकेत [95] — यह वह रूप है जो संकेत है।
[666] वह कौन सा रूप है जो संकेत नहीं है?
दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो संकेत नहीं है।
[667] वह कौन सा रूप है जो विचार से उत्पन्न होता है (चित्त-समुत्थानम्)? [96]

[पृष्ठ 206] शारीरिक और मौखिक संकेत, या विचार से उत्पन्न होने वाला, विचार के कारण उत्पन्न होने वाला कोई भी अन्य रूप, उसका स्रोत विचार में ही है, चाहे वह दृश्य रूपों,
ध्वनियों,
गंधों,
स्वादों या स्पर्शनीय वस्तुओं के क्षेत्र में हो ।
स्थानिक
या तरल तत्व में,
रूप की हल्कापन,
लचीलापन,
सुगमता,
एकीकरण या अस्तित्व में, या शारीरिक पोषण में—यही वह रूप है जो विचार से उत्पन्न होता है।

[668] वह कौन सा रूप है जो विचार से उत्पन्न नहीं होता? पाँचों इंद्रियों,
स्त्रीत्व,
पुरुषत्व और जीवन शक्ति का क्षेत्र ।
रूप का क्षय और क्षणभंगुरता, या कोई भी अन्य रूप जो विचार से उत्पन्न नहीं होता, विचार के कारण नहीं बनता, जिसका स्रोत विचार में नहीं होता, चाहे वह
दृश्य रूपों,
ध्वनियों,
गंधों,
स्वादों
या स्पर्शनीय वस्तुओं के क्षेत्र में हो,

स्थानिक या तरल तत्व में,
हल्केपन,
लचीलेपन
और सुगमता में,
रूप का एकीकरण या अस्तित्व,
या शारीरिक पोषण में निहित रूप—यह वह रूप है जो विचार से उत्पन्न नहीं होता।
[669] वह कौन सा रूप है जो विचार के साथ अस्तित्व में आता है (चित्त-सह-भू)?
[670] वह कौन सा रूप है जो विचार के साथ अस्तित्व में नहीं आता?
उत्तर वही होंगे जो पिछले रिश्तेदारों के जोड़े में दिए गए हैं।
[671] वह कौन सा रूप है जो विचार के बाद आता है (चित्त अनुपरिवत्ति)?
[672] वह कौन सा रूप है जो विचार के अनुरूप नहीं है?
उत्तर वही होंगे जो पिछले रिश्तेदारों के जोड़े में दिए गए हैं।
[पृष्ठ 207] [673] वह कौन सा रूप है जो आत्मा (अज्जत्तिकम्) से संबंधित है?[97]
पांचों इंद्रियों के क्षेत्र—यही वह रूप है जो आत्मा से संबंधित है।
[674] वह कौन सा रूप है जो (स्वयं से) बाह्य है?
पांच प्रकार की इंद्रिय-वस्तुओं का क्षेत्र . . .[98] और शारीरिक पोषण — यह वह रूप है जो (स्वयं से) बाह्य है।
[675] वह कौन सा रूप है जो स्थूल (ओलारिकम) है?
पांचों इंद्रियों और पांचों प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र—यही वह स्थूल रूप है।
[676] वह कौन सा रूप है जो सूक्ष्म (सुखुमम) है?
[पृष्ठ 208] नारीत्व . . . और शारीरिक पोषण — यही वह रूप है जो सूक्ष्म है।[99]
[677] वह कौन सा रूप है जो दूरस्थ (दौरान) है?
नारीत्व...और शारीरिक पोषण—यही वह रूप है जो दूरस्थ है।
[678] वह कौन सा रूप है जो निकट है (संतिके)?
पांचों इंद्रियों और पांचों प्रकार की इंद्रिय-वस्तुओं के क्षेत्र—यही वह रूप है जो निकट है।[100]

[पृष्ठ 209] [आधार (वत्थु).][101]
[679] वह कौन सा रूप है जो दृश्य संपर्क का आधार है (चक्खुसम्फसस्सा वत्थु)?
दृष्टि का दायरा—यह वह रूप है जो दृश्य संपर्क का आधार है।
[680] वह कौन सा रूप है जो दृश्य संपर्क का आधार नहीं है?
श्रवण क्षेत्र . . .[102] और शारीरिक पोषण — यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।
[पृष्ठ 210] [681] वह कौन सा रूप है जो भावना का आधार है...
धारणा का...
सोच का...
दृश्य अनुभूति का जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न होती है?
दृष्टि का क्षेत्र — यह वह रूप है जो दृश्य अनुभूति[103] का आधार है जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न होती है।
[682] वह कौन सा रूप है जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न दृश्य अनुभूति का आधार नहीं है?
श्रवण क्षेत्र... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न दृश्य अनुभूति का आधार नहीं है।
[683] वह कौन सा रूप है जो आधार है?
श्रवण . . .
घ्राण . . .
स्वाद . . .[104]

शारीरिक संपर्क? . . .[105] शारीरिक संवेदनशीलता का क्षेत्र — यह वह रूप है जो . . . शारीरिक संपर्क का आधार है।
[684] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संपर्क का आधार नहीं है?
[पृष्ठ 211] दृष्टि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण - यह वह रूप है जो... शारीरिक संपर्क का आधार नहीं है।
[685] वह कौन सा रूप है जो आधार है?
वह अनुभूति...
वह बोध...
वह सोच...
वह... शरीर का वह ज्ञान जो... शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है?
शरीर की संवेदनशीलता का क्षेत्र... यही वह रूप है जो शरीर के उस ज्ञान का आधार है जो शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है।
[686] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संपर्क से उत्पन्न शरीर की अनुभूति का आधार नहीं है?
दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो शरीर से उत्पन्न ज्ञान आदि का आधार नहीं है।

[मानसिक वस्तु या विचार (अरम्मनम)।]
[687] वह कौन सा रूप है जो दृश्य संपर्क में वस्तु है?
दृश्य रूपों का क्षेत्र — यह वह रूप है जो दृश्य संपर्क में आने वाली वस्तु है।
[688] वह कौन सा रूप है जो दृश्य संपर्क में वस्तु नहीं है?
दृष्टि का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण[106] — यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।
[689] वह कौन सा रूप है जो वस्तु है?
वह अनुभूति...
वह बोध...
वह सोच...
वह दृश्य अनुभूति जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न होती है?
[पृष्ठ 212] दृश्य रूपों का क्षेत्र — यह वह रूप है जो वस्तु है... दृश्य अनुभूति में जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न होती है।
[690] वह कौन सा रूप है जो [107] दृश्य संपर्क से उत्पन्न दृश्य अनुभूति में वस्तु नहीं है?
दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो वस्तु नहीं है, इत्यादि।
[691] वह कौन सा रूप है जो वस्तु है?
श्रवण...
गंध...
स्वाद...
शारीरिक संपर्क? . . . का क्षेत्र — यह वह रूप है जो . . . शारीरिक संपर्क में वस्तु है।
[692] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संपर्क में वस्तु नहीं है?
दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो शारीरिक संपर्क में आने वाली वस्तु नहीं है।
[693] वह कौन सा रूप है जो वस्तु है?
वह अनुभूति...
वह बोध...
वह सोच...
वह... शरीर का वह ज्ञान जो... शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है?
मूर्त का क्षेत्र—यह वह रूप है जो शरीर के संज्ञान में वस्तु है जो शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है।
[पृष्ठ 213] [694] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संपर्क से उत्पन्न शरीर की अनुभूति में वस्तु नहीं है?
दृष्टि का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण[108] — यह वह रूप है जो वस्तु नहीं है, इत्यादि।

[इंद्रियों का क्षेत्र (आयतनम्) ।]

[695] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है?

आँख, यानी, वह सचेत अंग जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह जो 'एक खाली गाँव' है - यह वह रूप है जो दृष्टि का क्षेत्र है ।[109]

[696] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि के दायरे में नहीं आता?

श्रवण क्षेत्र...और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो दृष्टि क्षेत्र नहीं है।

[697] वह कौन सा रूप है जो श्रवण... गंध... स्वाद... शारीरिक संवेदनशीलता का क्षेत्र है?

शरीर, यानी वह सजीव अंग जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह 'एक खाली गाँव' है - यह वह रूप है जो... शरीर-संवेदनशीलता का क्षेत्र है।

[698] वह कौन सा रूप है जो . . . शारीरिक संवेदनशीलता के क्षेत्र में नहीं आता?

[पृष्ठ 214] दृष्टि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।

[699] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूपों का क्षेत्र है?

वह रूप जो चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न होकर रंग के रूप में प्रकट होता है... यह... जो दृश्य रूप का घटक तत्व है - यही वह रूप है जो दृश्य रूपों का क्षेत्र है।

[700] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूपों के क्षेत्र में नहीं आता?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो अस्तित्व में नहीं है, इत्यादि।

[701] वह कौन सा रूप है जो गोले का है?

ध्वनि,

गंध,

स्वाद,

स्पर्शनीय? मिट्टी (ठोस) तत्व... यह वह है... स्पर्शनीय का तत्व - यह वह रूप है जो स्पर्शनीय का क्षेत्र है ।[110]

[702] वह कौन सा रूप है जो . . . मूर्त के क्षेत्र में नहीं आता?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो अस्तित्व में नहीं है, इत्यादि।

[तत्व (धातु).]

[703] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का तत्व है?

दृष्टि का क्षेत्र—यह वह रूप है जो दृष्टि का तत्व है।

[पृष्ठ 216] [704] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि का तत्व नहीं है?

श्रवण क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण[111] — यह वह रूप है जो दृष्टि का तत्व नहीं है।

[705] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूप का तत्व है?

दृश्य रूप का क्षेत्र—यह वह रूप है जो दृश्य रूप का तत्व है।

[706] वह कौन सा रूप है जो दृश्य रूप का तत्व नहीं है?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो अस्तित्व में नहीं है, इत्यादि।

[707] वह कौन सा रूप है जो ध्वनि का तत्व है... गंध का... स्वाद का... स्पर्शनीय का?

. . .[112] मूर्त का क्षेत्र — यह वह रूप है जो . . . मूर्त का तत्व है।

[708] वह कौन सा रूप है जो . . . मूर्त का तत्व नहीं है?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो... मूर्त का तत्व नहीं है।

[संकाय (इन्द्रियम).]

[709] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि की क्षमता है?
आँख, यानी, वह सचेत अंग जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह जो 'एक खाली गाँव'[113] है - यह वह रूप है जो दृष्टि की क्षमता है।
[710] वह कौन सा रूप है जो दृष्टि की क्षमता नहीं है?
[पृष्ठ 216] श्रवण क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण[114] — यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।
[711] वह कौन सा रूप है जो श्रवण . . . गंध . . . स्वाद . . . . देह-संवेदना की क्षमता है?
शरीर . . .[115], यानी, सचेत सिद्धांत, जो चार महान घटनाओं से प्राप्त होता है . . . यह जो 'एक खाली गाँव' है - यह वह रूप है जो . . . शरीर-संवेदनशीलता की क्षमता है।
[712] वह कौन सा रूप है जो . . . शारीरिक संवेदनशीलता की क्षमता नहीं है?
दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो अस्तित्व में नहीं है, इत्यादि।
[713] वह कौन सा रूप है जो स्त्रीत्व है (शाब्दिक रूप से, स्त्री क्षमता या संभाव्यता)?[116]
जो स्त्रीत्व से संबंधित है, जो दिखने में, विशेषताओं में, व्यवसाय में और व्यवहार में स्त्रीत्व से भरपूर है, जो स्थिति और अस्तित्व में स्त्रीत्व से भरपूर है - यही वह रूप है जो स्त्रीत्व है।
[713ए] वह कौन सा रूप है जो स्त्रीत्व नहीं है?
दृष्टि का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण — यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।[117]
[714] वह कौन सा रूप है जो पुरुषत्व है?
जो पुरुष से संबंधित है, जो दिखने में, विशेषताओं में, व्यवसाय में और व्यवहार में पुरुषोचित है, जो स्थिति और अस्तित्व में पुरुषोचित है - यही वह रूप है जो पुरुषोचितता है।
[715] वह कौन सा रूप है जो पुरुषत्व नहीं है?
धारा 713ए.[118] के अनुसार उत्तर दें।
[पृष्ठ 217] [716] वह कौन सा रूप है जो (जीवन शक्ति की) क्षमता है?
इन शारीरिक अवस्थाओं की निरंतरता, उनका अस्तित्व, उनका निरंतर चलना, उनका निरंतर जारी रहना, उनकी प्रगति, निरंतरता, संरक्षण, जीवन, एक क्षमता के रूप में जीवन - यही वह रूप है जो जीवन शक्ति (की क्षमता) है।
[717] वह कौन सा रूप है जो जीवन शक्ति (की क्षमता) नहीं है?
धारा 713ए के अनुसार उत्तर दें।

[सूचना (vinnatti).]
[718] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संकेत है?

धारा 636 के अनुसार उत्तर दें।
[719] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक संकेत नहीं है?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यही वह रूप है जो शारीरिक संकेत है।
[720] वह कौन सा रूप है जो मौखिक संकेत है?

धारा 637 के अनुसार उत्तर दें।
[721] वह कौन सा रूप है जो मौखिक संकेत नहीं है?

दृष्टि का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण — यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।[119]

[अंतरिक्ष और तरल पदार्थ।][120]

[722] वह कौन सा रूप है जो अंतरिक्ष का तत्व है?

जो अंतरिक्ष है और अंतरिक्ष से संबंधित है, जो आकाश है और आकाश से संबंधित है, जो निर्वात है और निर्वात से संबंधित है, और जो चार महान घटनाओं के संपर्क में नहीं है - यही वह रूप है जो अंतरिक्ष का तत्व है।

[पृष्ठ 218] [723] वह कौन सा रूप है जो अंतरिक्ष का तत्व नहीं है?

धारा 721 के अनुसार उत्तर दें।

[724] वह कौन सा रूप है जो तरलता का तत्व है?

जो तरल है और तरल से संबंधित है, जो चिपचिपा है और चिपचिपे से संबंधित है; रूप की एकजुटता — यही वह रूप है जो तरलता का तत्व है।

[725] वह कौन सा रूप है जो तरलता का तत्व नहीं है?

उत्तर m § 721 के अनुसार दें।

[रूप के तरीके।]

[726] वह कौन सा रूप है जो रूप की हल्कापन है?

रूप की वह हल्कापन जो उसकी आसानी से बदलने की क्षमता है, उसकी सुस्ती और जड़ता से मुक्ति है - यही वह रूप है जो रूप का हल्कापन है।

[727] वह कौन सा रूप है जो रूप की हल्कापन नहीं है?

दृष्टि का दायरा... और शारीरिक पोषण—यह वह रूप है जो रूप की हल्कापन नहीं है।

[728-731]

रूप की अन्य दो विधाओं 'प्लास्टिसिटी' और 'विल्डिनेस' से संबंधित प्रश्नों का उत्तर §§ 640, 641 में दिए गए विवरणों द्वारा दिया गया है। संबंधित विरोधाभासी शब्दों का वर्णन § 727 के समान शब्दों में किया गया है, अर्थात्: § 596 के अनुसार, पृष्ठ 216, नोट 5 पर दर्शाए गए लोप और सम्मिलन के साथ।

[रूप का विकास।]

[732] वह कौन सा रूप है जो रूप का एकीकरण है?

जो रूप का संचय है, वही रूप का एकीकरण है—यही वह रूप है जो विद्यमान है, इत्यादि।

[733] वह कौन सा रूप है जो रूप का एकीकरण नहीं है?

[पृष्ठ 219] दृष्टि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण —यह वह रूप है जो नहीं है, इत्यादि।

[734-737]

रूप की 'अस्तित्व', 'क्षय' और 'अस्थिरता' तथा उनके विरोधाभासों पर पूछे गए प्रश्नों का उत्तर 'रूप के तरीके' समूह में पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप दिया गया है, तीन सकारात्मक पहलुओं का वर्णन §§ 642-645 में किया गया है।

[पोषण।]

[740] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक पोषण है?

इसका उत्तर धारा 646 में दिया गया है।

[741] वह कौन सा रूप है जो शारीरिक पोषण नहीं है?

दृष्टि का दायरा... और रूप की अस्थिरता—यही वह रूप है जो शारीरिक पोषण नहीं है।

ये द्वैत पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ हैं।
जोड़ियों की व्याख्या का अंत।
- फुटनोट:

1. यह और इसके बाद के इटैलिक में लिखे शीर्षक विषय-सूची, § 585, इत्यादि से उद्धृत किए गए हैं — atthi rupam upada, और फिर से, atthi rupam no upada। अपादान क्रिया हमारे मुहावरे 'qua derived' — रूप व्युत्पन्न के रूप में — से मिलती जुलती है। § 584 और § 597, इत्यादि में क्रियापद up ad ay a का प्रयोग किया गया है। निर्भर करना, मुक्त नहीं होना, इसका भावार्थ है (Asl. BOO, 305)। 'ग्राउंडेड इन' एक अनुमानित अनुवाद था, जिसका शाब्दिक अर्थ 'पकड़ लेना' है।

2. आयतनम। इस शब्द का अर्थ (मेरी प्रस्तावना देखें) सरलतः 'क्षेत्र', स्थान, सीमा, गेबिएट है।

3. शाब्दिक अर्थ: शरीर। उपनिषदों में 'त्वचा' शब्द का प्रयोग किया गया है। हमारे आधुनिक शब्द 'त्वचा संवेदनशीलता' से तुलना करें, जो 'स्पर्श' का विस्तारित रूप है, यानी 'स्पर्शी इंद्रिय'। संबंधित वस्तुनिष्ठ 'स्पष्ट क्षेत्र' को व्युत्पन्न वस्तुओं में वर्गीकृत किया गया है। अनुच्छेद 647 देखें।

4. चक्खु, जिसका अर्थ है दृष्टि, देखने की क्षमता और आँख। हालाँकि, इस संदर्भ में 'आँख' को देखने की क्षमता या दृश्य इंद्रिय के रूप में समझा जाना चाहिए, न कि किसी शारीरिक अंग या 'मांस-चक्खु' के रूप में। शास्त्र में आँख का वर्णन इस प्रकार है: सर्वप्रथम संपूर्ण जीव (ससंभर-चक्खु)। एक गुहा में स्थित मांस का गोला, जो नीचे सॉकेट-हड्डी और ऊपर भौंह की हड्डी से, किनारों पर आँख के कोणों से, भीतर मस्तिष्क से और बाहर पलकों से घिरा होता है।
इसमें चौदह घटक हैं:
चार तत्व,
उन पर निर्भर छह गुण, अर्थात् रंग, गंध, स्वाद, जीवन का रस, रूप (संथानम) और संयोजन (संभवो);
जीवन शक्ति,
प्रकृति,
शरीर संवेदनशीलता (कयप्पसाडो)
और दृश्य संवेदी अंग।
अंतिम चार का मूल कर्म में निहित है।
जब 'संसार' किसी स्पष्ट रूप से फैली हुई श्वेत वस्तु को देखकर आँख को महसूस करता है, तो वह केवल आँख के आधार (या स्थान - वस्तु) को ही महसूस करता है। और यह मांस का गोला, जो तंत्रिका तंतुओं द्वारा मस्तिष्क से जुड़ा है, श्वेत, काला और लाल है, और इसमें ठोस, द्रव, प्रकाशमान और गैसीय पदार्थ समाहित हैं। यह रसों की अधिकता के कारण श्वेत, पित्त की अधिकता के कारण काला, रक्त की अधिकता के कारण लाल, ठोस की अधिकता के कारण कठोर, द्रव की अधिकता के कारण द्रवयुक्त, प्रकाशमान की अधिकता के कारण प्रज्वलित और गैसीय की अधिकता के कारण कंपकंपीशील है। परन्तु वह संवेदी अंग (पास अदो) जो वहाँ स्थित है, अंतर्निहित है, और चार महान सिद्धांतों से उत्पन्न है - यही दृश्य इंद्रिय (पासदचक्खु) है।
संयुक्त आँख के काले वृत्त के मध्य और सामने स्थित, उसके चारों ओर सफेद वृत्त (ध्यान दें कि परितारिका या तो स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती है या स्वयं ही 'काला वृत्त' है) और दृष्टि के वृत्त में, उस क्षेत्र में जहाँ आस-पास के शरीरों के आकार दिखाई देने लगते हैं (यहाँ पाठ में कुछ चूक प्रतीत होती है), यह सात नेत्र झिल्लियों में इस प्रकार व्याप्त है जैसे छिड़का हुआ तेल सात रुई की बत्तियों में व्याप्त हो जाता है। और इस प्रकार यह चार तत्वों की सहायता से, पोषण करते हुए, बांधते हुए, परिपक्व होते हुए, गतिमान (समुदिरण) - एक शिशु राजकुमार और उसकी चार दाइयों की तरह, जो उसे खिलाती, नहलाती, कपड़े पहनाती और पंखा झुलाती हैं - शारीरिक (उतु) और मानसिक दोनों प्रकार के पोषण से पोषित, जीवन की (सामान्य) अवधि द्वारा संरक्षित, रंग, गंध, स्वाद आदि से युक्त, आकार में एक जूँ के सिर के बराबर - विधिवत रूप से दृश्य ज्ञान के केंद्र का द्वार स्थापित करता है।
जैसा कि धर्मगुरु (सारिपुत्त) ने कहा है: जिस दृष्टि से वह रूपों को देखता है,

वह छोटी और नाजुक होती है, मानो जूं के सिर के समान हो। मूल पाठ में इस अनुच्छेद की विस्तृत संरचना टीकाकार की शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'ज्ञान' के बाद 'आदि' शब्द का क्या अर्थ है, यह मुझे स्पष्ट नहीं है। लेकिन यह अभिव्यक्ति प्रत्येक इंद्रिय के वर्णन में आती है। हार्डी की पुस्तक 'मैन ऑफ बुद्धिज्म', पृष्ठ 419 में दिए गए वर्णन को देखें।

5. पसादो। साई. आगे कहते हैं कि इस शब्द का चयन करके, बुद्ध ने दूसरी (भौतिक) आंख को अस्वीकार कर दिया। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, पिछली टिप्पणी में उद्धृत अब तक अज्ञात श्लोक ही एकमात्र प्रारंभिक उदाहरण हैं जहाँ पसादो शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है स्पष्टता, चमक, शांति, विश्वास, और यह शब्द ग्रहणशील और प्रतिक्रियाशील इंद्रिय-क्रिया को दर्शाता है। यह समझना आसान नहीं है कि बौद्धों ने इस संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग कैसे किया। इसका प्रयोग अन्य सभी इंद्रियों के लिए समान रूप से किया जाता है, इसलिए इंद्रिय संबंधी अर्थ का दृष्टि की विशिष्ट प्रकृति से कोई संबंध नहीं था (जब तक कि इसे अन्य सभी संवेदनाओं का प्रतीक न बना दिया गया हो)। कारणवाचक रूप से लेने पर इसका अर्थ संभवतः या तो वह हो सकता है जो स्पष्ट करता है - एक प्रकटकर्ता, मानो {cf. बोथल और कोथ - प्रसादन}, या वह जो संतुष्ट करता है {बेरुहिगेन}, दोनों अर्थ 'उत्पाद' या 'आधार' के बजाय मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया पर जोर देते हैं।

6.अत्तभाव-परियपन्नो। 'यहाँ शरीर और पाँच स्कंधों को आत्मा का स्वरूप कहा गया है, मूर्ख लोगों की उस प्रथा के अनुसार जो कहते हैं, "यह मैं ही हूँ"
(असल. 308).
इस प्रकार, 'अत्तभावो' का प्रयोग महान गुरु द्वारा जीववादी शब्दावली के प्रति एक रियायत थी।

7. 'अर्थात, प्रभाव और प्रतिक्रिया आंख में ही स्थापित हो जाते हैं'
(वही)।

8. ayam satto द्वारा पुनर्कथन किया गया, कोई भी दिया गया व्यक्ति (ibid.).

9. यह और इसके बाद की उपमाएँ सुत्त पिटक में इंद्रियों पर लागू किए गए रूपकों के उद्धरण हैं। उदाहरण के लिए, 'खाली गाँव' की उपमा श्लोक 4, 174 में मिलती है।
- सुन्नो गमो ति खो, भिक्खवे, चन्नम अज्झत्तिकाणं [? आयतनं] अधिवचनम्।
'द्वार' शब्द का प्रयोग, जो टीकाओं के युग में इंद्रिय-अंग के लिए नियमित शब्द था, मेरा मानना है कि सुत्त पिटक में शायद ही कभी किया जाता है, और वह भी केवल एक काव्यात्मक अलंकार के रूप में, तकनीकी शब्द के रूप में नहीं।
Cf., उदाहरण के लिए, indriyesuguttadvaro (डी आई., 63, 250)।
बुद्धघोष ने विभिन्न उपमाओं का सरल शब्दों में पुनर्कथन किया है।
क्षय और क्षीणता के कारण 'संसार';
'द्वार', प्रथागत उपयोग के कारण;
'महासागर', अपनी अतृप्तता के कारण;
'प्रकाशमान', अपनी शुद्धता के कारण;
संपर्क आदि के उत्पन्न होने (विकास) के कारण 'क्षेत्र';
'आधार', अपने निश्चित स्थान के कारण;
'मार्गदर्शन', 'मार्गदर्शन', क्योंकि यह आत्म-प्रकृति को दर्शाने में अग्रणी भूमिका निभाता है, जिसमें सहमति और मतभेद दोनों दिखाई देते हैं;
'यहाँ का किनारा', क्योंकि यह 'इस जीवन के शरीर' (या व्यक्तित्व, सक्कयम) में समाहित है;
'खाली गाँव', क्योंकि यह कई लोगों के लिए सामान्य है, क्योंकि यहाँ कोई मुखिया नहीं है (अर्थात, अहंकार या आत्मा। 'कई' का अर्थ है व्यक्ति को घटकों के समूह के रूप में माना जाना चाहिए।)

यह देखा जा सकता है कि 'मार्गदर्शन' और 'मार्गदर्शन' को छोड़कर, सभी उपमाओं का प्रयोग शेष सभी अर्थों के लिए समान रूप से किया गया है। साईं पिटकों में दी गई इन दो उपमाओं की व्याख्या के अनुसार, इन्हें प्रत्येक अर्थ के लिए ही प्रयोग किया जाना चाहिए था। हालांकि, पिटकों में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों के लिए बुद्धघोष जिम्मेदार नहीं हैं। फिर भी, यह थोड़ा निराशाजनक है कि वे इस चूक का स्पष्टीकरण देने का कोई प्रयास नहीं करते, जबकि इसका मनोवैज्ञानिक औचित्य अवश्य है।

10. इस उत्तर में, सी.वाई. (पृष्ठ 309) के अनुसार, अनैच्छिक दृश्य संवेदना का वर्णन किया गया है, जैसे कि जब बिजली किसी ऐसे व्यक्ति की दृष्टि में चमकती है जो उसे नहीं देख रहा होता है।

11. यहाँ (असली. 309) स्वैच्छिक इंद्रिय-छाप का वर्णन किया गया है - उस प्रक्रिया का वर्णन किया गया है जब कोई व्यक्ति 'अपनी इच्छा से किसी वस्तु को देखने की कोशिश करते हुए अपनी दृष्टि को केंद्रित करता है'।

12.चक्कम निस्साय, रूपम अरबभा।

13. यहां पाठ में ... pe ... होना चाहिए, जैसा कि अन्य चार अर्थों के लिए संबंधित अनुच्छेद में है। नोट 4 देखें। K में भी यह अनजाने में छूट गया है।

14. यहां चक्खुविनफियानानी, चेतना के चौथे प्रकार (चेतना) या विचार को प्रतिस्थापित करता है, जो पुस्तक I, अध्याय i में दिए गए आठ प्रकार के विचारों के संदर्भ में 'संपर्क' द्वारा उत्पन्न होने वाली चेतना की श्रृंखला में सर्वत्र वर्णित है। चिंतन (चेतना) विचारों की एक ऐसी श्रृंखला को दर्शाता है जो संवेदना द्वारा उत्पन्न होती है और जिसका दृश्य वस्तु से कोई विशेष संबंध नहीं होता। दूसरी ओर, दृश्य संज्ञान देखी गई वस्तु को विशेष रूप से ध्यान में रखता है। या संभवतः इन दोनों को लगभग प्रक्रिया और उत्पाद के अनुरूप माना जा सकता है। दोनों शब्दों के बारे में ऊपर कही गई बातों की तुलना करें, पृष्ठ 8, नोट 1।

15. के द्वारा § § 604, 608, 612, 616 में संबंधित अंशों और बुद्धघोष की टिप्पणियों को देखते हुए, मुझे लगता है कि निम्नलिखित अंश को गलती से पाठ में चक्खुम पेटम शब्दों से पहले छोड़ दिया गया है: - ... पे ... यम चक्खुम निस्साया रूपरम्मानो चक्खुसम्फसो उप्पाज्जि वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिसति वा उप्पज्जे वा, यम चक्खुम निस्साय रूपरम्मना चक्खुसमफस्सज वेदना...पे...सन्ना...पे...चेतना...पे...चक्कुविन्नानं उप्पज्जि वा उपप्पज्जति वा उप्पज्जि वा उप्पज्जे वा।
धारा 620 भी देखें।

16. साइ. (310) के अनुसार, इस उत्तर को पूरी तरह से दोहराने पर दस अलग-अलग उत्तर प्रकट होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की शुरुआत इस वाक्यांश से होती है: 'अर्थात आँख', इत्यादि, 'स्वयं, अदृश्य और प्रतिक्रियाशील'। इन्हें संक्षेप में और सामान्यीकृत रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है: (i.) इंद्रिय-अंग और इंद्रिय-उत्तेजनाओं द्वारा वातानुकूलित इंद्रिय-अनुभूति या संपर्क।
(ii.) परिणामी भावना।
(iii.-v.) परिणामी बौद्धिक अवस्थाएँ।
(vi.) इंद्रिय-अंग और इंद्रिय-विषय के विचार द्वारा वातानुकूलित इंद्रिय-अनुभूति या संपर्क। (vii.-x.) (ii.-v.)
में वर्णित परिणामी अवस्थाएँ । (i.) और (vi.) नामक प्रक्रियाओं के बीच सटीक अंतर क्या था, यह अभी तक निश्चित रूप से निर्धारित करना आसान नहीं है।

17. यह, कान के समग्र अंग के भीतर स्थित है, और बारीक लाल बालों से अच्छी तरह से सुसज्जित है, और इसका आकार एक छोटी उंगली के आकार (अंगुली-वेथानाका) जैसा है। (असल. 310.) तुलना करें हार्डी, लोक. सीआई7.

18. 'मार्गदर्शक' आदि के लोप पर, पृष्ठ 175, नोट 4 देखें।

19. यह 'संपूर्ण नासिका अंग की गुहा के भीतर स्थित है, जो देखने में बकरी के खुर जैसा दिखता है'। (असल. 310)। तुलना करें हार्डी, लोक. सिट. संभवतः खुर की कल्पना नीचे से की गई है।

20. यह 'संपूर्ण स्वाद तंत्र के मध्य भाग के ऊपर स्थित है, देखने में कमल के पत्ते के ऊपरी भाग जैसा'। (असल., वही) तुलना करें हार्डी, उद्धृत स्थान। ऐसा प्रतीत होता है कि तालु को स्वाद तंत्र में शामिल नहीं किया गया था।

21. कायो का क्षेत्र— टिप्पणी इस प्रकार है (AsL 311)— पूरे शरीर पर इस प्रकार फैला हुआ है जैसे तेल सूती कपड़े में समा जाता है। अपेक्षाकृत अविभेदित अंग के इस गुण को छोड़कर, यह इंद्रिय अन्य इंद्रियों के साथ समन्वित है। इस आपत्ति के उत्तर में कि यदि संवेदी सतह वास्तव में इतनी व्यापक हो कि वह भ्रमित अनुभूतियाँ उत्पन्न करे, यह प्रतिवाद किया जाता है कि यदि वह इतनी व्यापक न हो, तो स्पर्श अनुभूतियों को पर्याप्त रूप से विभेदित नहीं किया जा सकता। वास्तव में, शरीर-इंद्रिय सर्वव्यापी भी है और सर्वव्यापी नहीं भी। सर्वव्यापी इस हद तक नहीं कि वह देखी या चखी गई वस्तुओं में भी मौजूद हो।

हम संवेदनाओं को रेत के कणों की तरह अलग-अलग करके उनका विश्लेषण नहीं कर सकते, इसीलिए कहा जाता है कि गुण वस्तु में समाहित हो जाते हैं। फिर भी, प्रत्येक इंद्रिय अपने विशिष्ट संदेश देती है।
पश्चिमी मनोविज्ञान के संदर्भ में मैंने जो कुछ संक्षेप में प्रस्तुत किया है, उसका सार मुझे यही प्रतीत होता है। यह टीका, बेशक, इंद्रियों के सिद्धांत के अन्य पहलुओं की तरह ही, प्रारंभिक और अनिश्चित है; फिर भी यह नहीं भूलना चाहिए कि लगभग पचास वर्ष पहले ही अर्न्स्ट वेबर की पुस्तक 'डेर टास्टसिन अंड दास गेमिंगेफिल' प्रकाशित हुई थी, जिसमें त्वचा के विभिन्न क्षेत्रों की स्पष्ट या अस्पष्ट स्पर्श संवेदनाओं को व्यक्त करने की क्षमता की तुलना के सकारात्मक परिणाम प्रस्तुत किए गए थे।

22. शाब्दिक अर्थ, शारीरिक संपर्क।

23. शाब्दिक रूप से, शरीर का संज्ञान, जैसा कि धारा 443 अनुक्रम में वर्णित है।

24. सप्पतिघम, यहाँ इसका अर्थ है प्रतिक्रिया और प्रभाव उत्पन्न करना (जनकम)। असल. 317.

25. उम्मापुप्पम, या अलसी के फूल की तुलना में। ऊपर अनुच्छेद 246 के अंतर्गत नीलम पर मेरी टिप्पणी देखें। यहाँ इस शब्द को एक नीले फूल द्वारा दर्शाया गया है, जिसे हम स्वयं नीले रंग के एक प्रकार के रूप में उद्धृत कर सकते हैं। फिर भी यहाँ भी शब्द की व्यापकता और अनिश्चितता व्यक्त होती है। क्योंकि हेमचंद्र के हवाले से बोथल और इओथ के अनुसार, उमा का प्रयोग रात के लिए किया जाता है।

26. जैसे कि क्रमशः प्टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम और पेंटापेट्रो फोएनिसिया के फूल (वही)। मैं इन्हें चाइल्डर्स के संदर्भ में दे रहा हूँ।

27. जैसे भोर का तारा और कोयला (वही)।

28. विटेक्स नेगिउइडो और कनाविरा वृक्षों की लाल कलियों की तरह (वही)।

29. हरि, पाठ में छोड़ा गया है, लेकिन के. और सी. में दिया गया है (वही)।

जबकि, 'हरित्तचहेमवन्नम कामम सुमुक्खपकम' श्लोक में हरि को स्वर्णिम (सुवन्नम) कहा गया है, क्योंकि इसे अन्यत्र गढ़े हुए सोने (जतरूपम) के साथ लिया गया है, इसलिए यहाँ इसका अर्थ काला (समम) है।
(वही)।
सी एफ जाट. वी. 216, सामा ति सुवन्ना-सामा।

30. हरी घास का रंग (वही)।

31.के. और साइ. ने अंबंकुरवन्नम पढ़ा।

32. मेरी प्रस्तावना देखें, जिसमें 'लंबा' और 'छोटा' को केवल अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टि के विषय के रूप में दर्शाया गया है। 'उपरोक्त सात दृश्य किसी आधार (वत्थु) के संदर्भ के बिना प्रस्तुत किए गए हैं; निम्नलिखित सामान्य उपयोग के अनुसार हैं।'
(वही)।

33. इसका अर्थ है बादल छाए हुए और हिम हूँ — जो क्रमशः पाला, हिमपात या ओस हो सकता है। चूंकि संकेत केवल चमक-विपरीतता की ओर है, इसलिए संभवतः पाले की चमक का तात्पर्य है।

34. निम्नलिखित शब्द, जैसा कि साइ. (वही) कहता है, चमक की विभिन्नताओं को दर्शाते हैं। इसके बाद थोड़ी अनावश्यक खगोल विज्ञान की जानकारी दी गई है। चंद्रमा का गोला, अर्थात् चंद्रदेव का निवास, 49 योजन का है, सोने का बना है और उस पर चांदी की छत है। सूर्य का गोला 50 योजन का है, सोने का बना है और उस पर क्रिस्टल की छत है। नक्षत्र, विभिन्न देवताओं के निवास, 7, 8 या 10 योजन के हैं और सात रत्नों से बने हैं। नीचे चंद्रमा और ऊपर सूर्य के बीच 1 योजन की दूरी है। नक्षत्रों को अपनी कक्षा में दो वर्ष लगते हैं। वे और सूर्य तेजी से चलते हैं, चंद्रमा धीरे चलता है। कभी चंद्रमा आगे चलता है, कभी पीछे।

35. कांसे का (असली. 318)।

36. यह रत्न नहीं है; यह बांस के रंग का है (वही)।

37. 'मास्टर का रंग'
(वही)।

38. कहपानों के अंतर्गत, अर्थात् चांदी के सिक्के के अंतर्गत, तांबे, लकड़ी और लाख के मसाका शामिल किए जाएंगे (वही)। विन. iii. 238 से उद्धृत।

39. इस और अगले दो उत्तरों में, के. के अनुसार, धारा 617 में दी गई विशिष्ट रूपों की सूची का प्रत्येक बार पूर्ण रूप से अभ्यास किया जाना है।

40. मुद्रित पाठ में, रूपराममनम के स्थान पर रूपराममनन और दो पंक्तियों के बाद रूपराममनन पढ़ें। इसी प्रकार अन्य अर्थों के लिए, अनुच्छेद 624 आदि देखें। मैं के. में दिए गए पाठ का अनुसरण करता हूँ, इस शब्द को सक्खुसम्फसजो के साथ-साथ वेदना, सन्ना आदि के साथ विशेषण बनाता हूँ। अनुच्छेद 600 (जिस अंश को मैंने पाठ में पुनः शामिल किया है), अनुच्छेद 604 आदि में दिए गए समान अंशों की तुलना करें।
मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे यह समझ नहीं आता कि चक्खुम निस्साया को स्थानांतरित करने से क्या लाभ होता है, जिससे के. के पाठ के अनुसार यह विशेषण और संज्ञा के बीच में आ जाता है, इन इंद्रिय-कर्म उत्तरों में समरूपता से परे, जहाँ हर जगह कर्म को प्राथमिकता

दी जाती है। लेकिन इससे के. का पाठ अमान्य नहीं हो जाता। अरम मा नम मानसिक प्रक्रिया का एक शब्द है, न कि केवल इंद्रिय-कार्य का, जैसा कि रूपम: चक्खु के संबंध से संकेत मिलता है।

41.अर्थात्, वीणा और अन्य तार वाले वाद्ययंत्रों की ध्वनि (असली. 319)।

42. उदाहरण के लिए, घंटों और कैस्टनेटों का (वही)।

43.अर्थात्, ताली बजाने का (वही)।

44.अर्थात्, भीड़ में जब शब्द और अक्षर अविभेदनीय हो गए हों (वही)।

45.अर्थात, पेड़ों के आपस में रगड़ने से, या ब्लॉकों के टकराने से (वही)। विन. टेक्स्ट्स, iii. 213, n.

46.अर्थात्, हवा के रूप में हवा (वही)।

47.अर्थात्, पीटे हुए या बहते पानी का (वही)।

48.अर्थात् सरकंडे फाड़ना, कपड़ा फाड़ना इत्यादि (वही)।

49. धारा 620 में दृश्य रूपों के लिए जारी रखें।

50. बुद्धघोष कहते हैं, सुगंधो, दुगंधो - ये, अर्थात् वांछित गंध और अवांछित गंध, सभी गंधों को समाहित कर लेते हैं। वे यही बात अच्छे और बुरे स्वादों (सादु, असदु, अनुच्छेद 629) के लिए भी कहते हैं। अनुच्छेद 648 में, स्पर्शनीय वस्तुओं में सुखद स्पर्श और कष्टदायक स्पर्श का उल्लेख मिलता है। लेकिन टीकाकार स्पर्शों में सुखवादी मूल्यों के लिए वैसा व्यापक दावा नहीं करते जैसा कि गंधों और स्वादों में करते हैं। जैसा कि हमने देखा है, पाठ में दृष्टि या स्पर्श के संबंध में भी सुखवादी अर्थ नहीं दिया गया है।
यह रोचक है क्योंकि यह बौद्ध मनोविज्ञान को, उसकी तीव्र लेकिन प्रारंभिक अंतर्ज्ञान शक्ति के साथ, हमारे आधुनिक मनोविज्ञान के संपर्क में लाता है। हम कहते हैं कि किसी विशेष इंद्रिय द्वारा बाह्य जगत के बारे में हमारा ज्ञान जितना अधिक बढ़ता है, वह इंद्रिय तटस्थ भावना से उतनी ही अधिक जुड़ जाती है। और यह दृष्टि, स्पर्श और श्रवण ही हैं जो हमें अधिकांश ज्ञान प्रदान करते हैं।
अरस्तू केवल गंध की इंद्रिय के संदर्भ में टिप्पणी करते हैं कि हम किसी भी गंध को बिना किसी सुखद या दुखद अनुभूति से जोड़े भेद नहीं पाते, जो मनुष्य में इस इंद्रिय की अपूर्णता को दर्शाता है। अपूर्ण, अर्थात्, भेद करने की सूक्ष्मता में, क्योंकि स्पर्श इस संदर्भ में सबसे परिपूर्ण इंद्रिय है (डी. एन. II. 9)।

51. धारा 624, टिप्पणी देखें।

52. छाछ (तक्कम्बिलम) को विशिष्ट खट्टे स्वाद के रूप में बताया गया है, जबकि गाय के दूध से बना घी (गोसाप्पी) मीठे स्वाद का एक प्रकार है। लेकिन, श्रीमान कहते हैं, कसैले पदार्थ (कसवम) में मीठा मिलाकर रख देने से उसकी सारी मिठास नष्ट हो जाती है, और यही बात कच्ची चीनी और क्षारीय पदार्थों के साथ भी होती है। हालांकि, घी को रख देने से उसका रंग और गंध तो चली जाती है, लेकिन उसका स्वाद नहीं बदलता। इसलिए यह परम मीठा (एकान्त-मधुरम) है (असल. 320)।

53. उदाहरण के लिए, निम्ब-वृक्ष का फल (वही)।

54.उदाहरण के लिए, अदरक और काली मिर्च (वही)।

55. उदाहरण के लिए, समुद्री नमक (वही)।

56. उदाहरण के लिए, बैंगन (वटिंगनाकातिरम) या हरे ताड़ के अंकुर (नारियल गोभी) (वही)।

57. उदाहरण के लिए, जैसे बेर, या फेरोनिया एलिफेंटम, आदि (वही)।

58. उदाहरण के लिए, पीला हरितकम (मायरोबलन)। इस सभी वनस्पति संबंधी ज्ञान के लिए मैं पहले की तरह ही चाइल्डर्स डिक्शनरी का ऋणी हूँ।

59.सदु असादु. देखें § 625, एन. 1.

60. धारा 624, एन देखें।

61. मूर्त क्षेत्र के लिए, नीचे देखें, धारा 648.

62. शाब्दिक रूप से, स्त्री की क्षमता, उसकी संभाव्यता। 'रूप' के अंतर्गत, जिसे साइ. (321) यहाँ लिंगम (= संथानम, तुलना करें मिल. 133, 134) का अर्थ मानता है, वह उन शारीरिक अनुपातों को इंगित करता है जिनमें स्त्री, सामान्यतः, पुरुष से भिन्न होती है - छोटे हाथ, पैर और चेहरा, ऊपरी धड़ कम चौड़ा, निचला धड़ चौड़ा। विशेषताएँ (निमित्तम) वे हैं जिनसे स्त्री की पहचान होती है (संजनम), बाहरी शारीरिक चिह्नों (जैसे दाढ़ी न होना, न ही दांत, जिनमें कुछ जानवरों के दांत शामिल होते प्रतीत होते हैं) और पहनावे के तरीके।
'व्यवसाय' (कुट्टम = क्रिया) के अंतर्गत लड़कियों के विशिष्ट मनोरंजन का संकेत मिलता है - टोकरियों, मूसल [और ओखली], और गुड़ियों (? शाब्दिक रूप से, छोटी बेटियाँ, धितालिकाया क्लंति) के साथ खेलना, और मत्तिकवाकम से धागा कातना, चाहे वह कुछ भी हो।
'व्यवहार' के अंतर्गत, महिलाओं के चलने, खड़े होने, बैठने, लेटने और खाने में 'विस्तार की कमी' (एक विसदम) का उल्लेख किया गया है; ये सभी क्रियाएँ महिलाएं अधिक नज़ाकत से और कम आत्मविश्वास के साथ करती हैं। यदि कोई पुरुष इस प्रकार व्यवहार करता है, तो उसके बारे में कहा जाता है, 'वह स्त्री की तरह चलता है!'
स्त्री की 'स्थिति और अस्तित्व', जो उसके मूल स्वभाव का निर्माण करते हैं, 'कर्म से उत्पन्न होते हैं और गर्भाधान से ही अपना स्रोत प्राप्त करते हैं'।
अन्य स्त्रीत्व संबंधी लक्षण जीवन के दौरान उसकी 'संभाव्यता' से विकसित होते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे बीज से वृक्ष अपने सभी अंगों सहित समय के साथ विकसित होता है। यह 'इंद्रियम्' आँखों से नहीं, बल्कि मन से (मनो) देखा जा सकता है। यह एक अमूर्त अवधारणा है। और यह एक लिंग के लिए वैसा नहीं है जैसा दृष्टि आदि दूसरे लिंग के लिए होता है।

63. स्त्री को दिया जाने वाला उच्च स्थान एक ऐसा कथन है जो बौद्ध धर्म (और भारतीय धर्म) की विशिष्ट विशेषता है, ठीक वैसे ही जैसे 'चंद्रमा और सूर्य' कहना। निःसंदेह, इन दोनों का स्रोत मानव जाति के इतिहास या प्रागैतिहासिक काल में बहुत गहराई में निहित है। टीकाकार पुरुष विशेषताओं का वर्णन करते हुए इनके विपरीत अर्थों का उल्लेख करते हैं, यहाँ तक कि 'वीरतापूर्ण और युद्धप्रिय स्वभाव' का भी, जिसे यदि कोई स्त्री अपनाती है तो उसे 'पुरुष की तरह व्यवहार करने वाली' कहा जाता है।
ऐसा कहा जाता है कि लड़के अपने विशिष्ट खेलों में व्यस्त रहते हैं, जिनमें वे गाड़ी और हल चलाते हैं, और गड्ढों के चारों ओर रेत के टीले बनाते हैं और उन्हें जलाशय कहते हैं।
फिर वे कहते हैं कि ये यौन भेद आदिम युगों में जीवन के दौरान विकसित हुए हैं; तब से, गर्भाधान के माध्यम से और उनमें से कुछ के व्यक्तिगत जीवन में, ये परस्पर परिवर्तित होते रहते हैं। इसके बाद वे उभयलिंगीता के उन मामलों का उल्लेख करते हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे संप्रदाय के सदस्यों में पाए गए हैं।

जैसा कि हम उम्मीद कर सकते हैं, वह अपने लिंग के प्रति सजग भी है और कर्म के सिद्धांत को इस पर अनोखे ढंग से लागू करता है। 'दोनों में से, पुरुष के लिंग-चिह्न श्रेष्ठ (उत्तमम्) हैं, जबकि स्त्री के निम्न (हीनम्) ।' अतः, पुरुष के लिंग-चिह्न अत्यंत बुरे कर्मों से नष्ट हो जाते हैं, जबकि स्त्री के लिंग-चिह्न सामान्य अच्छे कर्मों से स्थापित होते हैं। दूसरी ओर, स्त्री के लिंग-चिह्न सामान्य बुरे कर्मों से नष्ट हो जाते हैं, जबकि पुरुष के लिंग-चिह्न अत्यंत अच्छे कर्मों से स्थापित होते हैं। 'इस प्रकार, दोनों बुरे कर्मों से नष्ट होते हैं और अच्छे कर्मों से प्राप्त होते हैं।'

इस प्रकार, हमारे टीकाकार प्लेटो की स्थिति के अधिक करीब हैं, बजाय एक विशिष्ट धार्मिक ब्रह्मचारी की स्थिति के, और उनका मानना है कि स्त्री बुराई करने में अधिक शक्तिशाली नहीं है, बल्कि अच्छाई या बुराई दोनों को समेटने में कमजोर है।

64. 'जो कुछ कहना था, वह निराकार (रूपहीन) अवस्थाओं से संबंधित जीवन शक्ति के संदर्भ में पहले ही कहा जा चुका है।'
(प्रश्न 323. धारा 19 देखें)।

65.कयो को =सरिराम कहा जाता है; संभवतः इसे 'शरीर संवेदनशीलता' या स्पर्श इंद्रिय (असल. 324) के लिए प्रयुक्त कायो से अलग करने के लिए, या फिर सामान्य रूप से इंद्रिय-अनुभव से (पृष्ठ 43, नोट 3)।

66. टीकाकार ने कायविनफिअत्ती का विश्लेषण कुछ बिखरे हुए अंदाज़ में किया है। उनके विचारों का सार, जैसा कि मैं समझता हूँ, निम्नलिखित है: शारीरिक क्रिया द्वारा किए गए किसी भी संचार में (जिसमें पशुओं से मनुष्यों और इसके विपरीत संचार शामिल हैं) जो बात प्रकट होती है, वह उस समय व्यक्ति की स्थिति (भावो), उसका स्व (सयम) और उसका उद्देश्य (अधिप्पयो) होता है; दूसरे शब्दों में, कैसे, कौन या क्या और किसलिए। और यह शारीरिक प्रवाह (विप्पंदनेन) द्वारा होता है।

इसके बाद वह उन विचारों के प्रकारों को वर्गीकृत करता है जो 'संकेत उत्पन्न करने' की प्रवृत्ति रखते हैं, अन्य किसी में यह प्रवृत्ति नहीं होती है।

वे हैं -

इंद्रिय जगत से संबंधित आठ अच्छे विचार (§§ 1-159), और अंतर्ज्ञान से संबंधित विचार (अभिनिल चित्तम)।

बारह बुरे विचार (§§ 365-430)।

आठ महान क्रिया-विचार, दो सीमित क्रिया-विचार, और एक क्रिया-विचार जो रूप के ब्रह्मांड से संबंधित है और जिसने अंतर्ज्ञान प्राप्त कर लिया है, ये सभी मिलकर ग्यारह अनिश्चित विचार बनाते हैं।

अंत में वे हमें अपने 'द्वारों' (द्वारकथा) के सिद्धांत की ओर निर्देशित करते हैं। मेरी प्रस्तावना देखें। (असल. 323-4)

67. वैसीविन्नाट्टी को शारीरिक संकेत के समान ही शब्दशः वर्णित किया गया है, जिसमें 'शारीरिक प्रवाह' के स्थान पर 'स्वर शोर' का प्रयोग किया गया है। 'शोर करना' को विभिन्न तरीकों से शोर करने के रूप में समझा जाना चाहिए। 'स्पष्ट वाणी' (शाब्दिक रूप से, खंडित वाणी) केवल कर्कश ध्वनि (भंगो) नहीं है, बल्कि यह संचार के लिए उपयोग की जाने वाली विभाजित स्वर अभिव्यक्ति है (असल. 325)।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि क्या विचारों का संचार या पंजीकरण भाषा का ऐतिहासिक रूप से पूर्व कार्य है, इस समस्या के संबंध में, बुद्धघोष, अपने भेद करने की क्षमता के बावजूद, यहां भाषा द्वारा संकेत देने को भाषण के कार्यों में से केवल एक के रूप में संदर्भित नहीं करते हैं।

इससे भी अधिक विचित्र बात यह है, और भाषा के इस विशिष्ट पहलू से अधिक प्रासंगिक होने के कारण, कि वह जाति के पंजीकृत विचारों के मौखिक संचार को ध्यान में नहीं रखता है।

68. बुद्धघोष की व्युत्पत्ति (असल. 325) अकासो शब्द को 'बिना जोते' से व्युत्पन्न करती है - वह जिसे जोता, काटा या तोड़ा नहीं जा सकता - जो होमर के ατρνγετος αιθηρ ατρνγετη θαλασσα और यूरिपिड्स के ακαρπιστα πεδια (असल. 326) की याद दिलाता है। 'आकाश' को वह प्रहार करने - अघम, अ-घटतनियम - से जोड़ता है, जो प्रहार करने योग्य नहीं है।

अकासो, वे आगे कहते हैं, वह है जो रूपों को सीमांकित करता है, उन्हें घेरता है और उन्हें प्रकट करता है। इसके माध्यम से, इस प्रकार सीमित रूपों में, हमें ये धारणाएँ प्राप्त होती हैं - इसलिए ऊपर, इसलिए नीचे, इसलिए आर-पार।

69. असम्फुत्तम चतुहि महाभूतेहि। यद्यपि इस ग्रंथ में आकाश को चार तत्वों से अलग माना गया है और पिटकों में इसे सामान्यतः पाँचवें तत्व के रूप में नहीं गिना जाता, फिर भी महा इल्हुलवाद सूत्र (एम. i. 423) में, जब गौतम अपने पुत्र को मानव शरीर की संरचना में तत्वों के वितरण के बारे में बता रहे होते हैं, तो वे आकाशधातु को अन्य चार धातुओं के साथ इस प्रकार जोड़ते हैं मानो वह पाँचवें तत्व के समान हो। पुराने उपनिषदों में इसे सामान्यतः चार तत्वों के साथ ही रखा गया है, यद्यपि एक पूर्ण सूची में नहीं।
तैत्तिरीय उपसंहार में, यह आत्मा से उत्पन्न होने वाले एकमात्र प्रत्यक्ष व्युत्पन्न के रूप में प्रकट होता है; वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पौधे आदि, जिनमें से पहला आकाश से उत्पन्न होता है, शेष सभी एक दूसरे से क्रमानुसार उत्पन्न होते हैं।
असम्फुत्तम शब्द को निज्जतकम (या निस्सातम) के रूप में व्यक्त किया गया है, और इसका अर्थ यह हो सकता है कि अंतरिक्ष चारों तत्वों के साथ उस तरह से मिश्रित नहीं होता जिस तरह वे एक दूसरे के साथ मिश्रित होते हैं।
पाली भाषा में 'से संबंधित' को -गतम कहते हैं।

70. ऊपर दिए गए अनुच्छेद 42-47 की तुलना इस और निम्नलिखित दो उत्तरों से करें। पदार्थ की प्लास्टिसिटी के उदाहरण के रूप में बेहद अच्छी तरह से तैयार की गई खाल दी गई है (असली. 326)।

71. सोना जो शुद्ध (सुधंत, अच्छी तरह से फूंका हुआ) है, उसे आमतौर पर 'सुचारू' सामग्री के रूप में दिया गया है (वही)।

72.बुद्धघोष स्पष्ट रूप से यहाँ (यो के लिए) so rupassa upacayo पढ़ते हैं, और अगले खंड में sa rupassa (या के लिए) (असली. 827)। यह केवल §§ 732, 733 में पाठ द्वारा अपनाया गया है। के. so और sa पढ़ते हैं।
यह और अगला भाग वस्तुओं के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया को सूत्रबद्ध करते हैं। एकीकरण को (असल. 327) विभिन्न क्षेत्रों के संचयी प्रभाव (आयतननम अचयो) के रूप में समझाया गया है, क्योंकि वे बार-बार पुनरुत्पादित होते हैं। इस शब्द का अर्थ है विकास की पूर्णता। अचयो या निब्बत्ति, उपचयो या वद्धि के समान है, जैसे नदी के किनारे जलाशय में पानी का उमड़ना, पानी के छलकने के समान है, जबकि सन्तति या पावत्ति (निर्वाह या निरंतरता) पानी के अतिप्रवाह और बहने के समान है।
ये सभी जन्म और विकास (जातिरूपास्सा) की घटना की अभिव्यक्तियाँ हैं।

73. यह एक प्रचलित सूत्र है, और यह एम. i. 49; एस. ii. 2, और 42 में मिलता है। साइ. (असल. 328) बताते हैं कि 'क्षयता' आदि तीन पद समय बीतने के साथ होने वाली घटनाओं को दर्शाते हैं; अंतिम दो पद उनसे निकाले जाने वाले निष्कर्ष को दर्शाते हैं। जिस प्रकार बाढ़ या जंगल की आग का पता उसके मार्ग में उगने वाली घास और पेड़ों की स्थिति से लगाया जा सकता है, उसी प्रकार हम अपने दांतों, बालों और त्वचा की स्थिति से अपने जीवन और क्षमताओं के बारे में अनुमान लगा सकते हैं।

74. यह और पिछला खंड चीजों के क्षय और लुप्त होने का सूत्रबद्ध वर्णन करते हैं। टीकाकार ने जन्म-विकास, क्षय और मृत्यु की तुलना मानव जाति के तीन शत्रुओं से की है, जिनमें से पहला उसे गड्ढे में गिरा देता है, दूसरा उसे नीचे फेंक देता है और तीसरा उसका सिर काट देता है (असली. 329)।

75. शाब्दिक रूप से, निवाला भोजन बना। इसे तीन अमूर्त पोषक तत्वों से अलग करने के लिए 'शारीरिक' (या ठोस) शब्द पर्याप्त है। पृष्ठ 30 देखें।

76. इनके नीचे जड़ें और फल आते हैं। असल. 330.

77. इस खंड पर, जहाँ 'रूप' को विकास आदि को बनाए रखने के पहलू से देखा जाता है, टीकाकार एक संक्षिप्त व्याख्या देते हैं जिसमें शारीरिक सत्य की झलक हास्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गई है। वे कहते हैं (असल. 330-332), कि यहाँ भोजन को सर्वप्रथम उसके मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि ओजा में उसका विकसित सार है। जहाँ पहला जोखिम को दूर करता है, वहीं दूसरा संरक्षक है।

और खतरा यह है कि जब भोजन नहीं मिलता, तो कर्मों से उत्पन्न आंतरिक ऊष्मा पेट की दीवारों को जकड़ लेती है, जिससे व्यक्ति 'मुझे भूख लगी है; मुझे कुछ खाने को दो!' कहकर चिल्लाता है और बाहरी भोजन मिलने पर ही अपनी आंतों को मुक्त करता है। इस आंतरिक ऊष्मा की तुलना एक छाया-राक्षस से की जाती है, जो मनुष्य की छाया में प्रवेश करके भूख लगने पर उसके सिर को काटता है, जिससे वह चिल्ला उठता है।
जब दूसरे लोग मदद के लिए आते हैं, तो राक्षस अपना चंगुल छोड़कर उन पर हमला करता है।
कुद्रुष अनाज जैसे मोटे खाद्य पदार्थों के मामले में, ओज को कमजोर और थोड़े समय के लिए ही पोषण देने वाला कहा जाता है, जबकि घी आदि का सेवन करने से व्यक्ति को पूरे दिन किसी अन्य भोजन की आवश्यकता नहीं होती है। फिर जीवों को उनके भोजन की गुणवत्ता के बढ़ते क्रम में वर्गीकृत किया जाता है, जिसकी शुरुआत मगरमच्छों से होती है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे कंकड़ निगलते हैं, फिर मोर, लकड़बग्घे और हाथी आते हैं, उसके बाद अन्य पक्षी, फिर सीमावर्ती निवासी, नगरवासी, राजा और अंत में यम और परनिमित्तवासवत्ती देवता आते हैं, जो अत्यंत उत्तम भोजन का आनंद लेते हैं।

78. 'जिस प्रकार व्युत्पन्न रूप को केवल इसी प्रकार से व्युत्पन्न किया जाता है, किसी अन्य तरीके से नहीं, उसी प्रकार, यह कहना कि यह व्युत्पन्न नहीं है, यह कहने के समतुल्य है कि यह व्युत्पन्न नहीं हो सकता।'
असल. 333.
संभवतः यहाँ प्रयुक्त नकारात्मक रूप (उपदा नहीं) इस पहलू की अपेक्षाकृत अनैतिक प्रकृति का एक तकनीकी चिह्न है। दूसरी ओर, उपदा का प्रयोग दार्शनिक अर्थ में किया जाता है।
तुलना करें डी. i. 17 के साथ एम. i. 148 — अनुपदा विमुत्तो और अनुपदा परिनिब्बानत्तम।

नीचे दिए गए अनुच्छेद 1210 और 1213 भी देखें।

79. प्रस्तुत कार्य के सामान्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुरूप, जो वस्तुएँ अन्य वस्तुओं से व्युत्पन्न नहीं होतीं (जिनका अन्य वस्तुओं में कोई आधार या समर्थन नहीं होता), उन्हें इंद्रिय-बोध के पहलू के अंतर्गत माना जाता है। वे मूर्त या अमूर्त हो सकती हैं। ऊपर प्रयुक्त सामूहिक शब्द, अर्थात् महान घटनाएँ या प्राणी (महाभूतनी, § 584 इत्यादि) के स्थान पर अब तत्व (धातु) शब्द का प्रयोग किया गया है। ये दोनों शब्द अ. i. 222 में एक साथ आते हैं।
बाद वाले शब्द का प्रयोग चार तत्वों के महान या अद्भुत व्युत्पन्नों को दर्शाने के लिए किया जा सकता है, जो भौतिक या नैतिक रूप से महान हों, जैसे कि (विन. 2. 240) जब सागर और उसके 'महान जीव' धम्म और उन अद्भुत घटनाओं, यानी उन मनुष्यों का उदाहरण देते हैं जो इसके माध्यम से निर्वाण की खोज कर रहे हैं या उसे प्राप्त कर चुके हैं। दूसरी ओर, धातु, जैसा कि साइ. ने निरंतर 'सजगता' के साथ एक बार फिर इंगित किया है, आधार या आत्मा की अनुपस्थिति को दर्शाता है। असल. 332.
चारों तत्वों के आवश्यक लक्षणों के बारे में, नीचे दिए गए अनुच्छेद 962-965 देखें, साथ ही निम्नलिखित टिप्पणी भी देखें।

80. इन चार युग्मों में से पहले दो और अंतिम युग्म पृथ्वी तत्व के अनेक पहलू या रूप हैं (अस्लि. 332), और इन्हें क्रमशः कठोर और गैर-कठोर, चिकना और खुरदरा (आरी जैसा), भारी और हल्का के रूप में वर्णित किया गया है। ये प्रतिरोध के रूपों, अर्थात् सक्रिय स्पर्श, या मांसपेशियों की संवेदनशीलता के गुणांक के साथ त्वचा की संवेदनशीलता के हमारे आधुनिक दृष्टिकोण से लगभग पूरी तरह मेल खाते हैं। बौद्ध दृष्टिकोण में, जैसा कि हाल के मनोविज्ञान को छोड़कर बाकी सभी में कमी रही है, मांसपेशियों के कारक की उपस्थिति की समझ का अभाव है; दूसरी ओर, यह तार्किक रूप से अधिक समरूप है क्योंकि यह 'हल्कापन' को वहाँ प्रस्तुत करता है जहाँ डॉ. बैन, उदाहरण के लिए, 'दबाव' को प्रस्तुत करते हैं - जो एक और सकारात्मक तत्व है।
सुखद स्पर्श को ऐसी वस्तु के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसकी इच्छा सुखद अनुभूति के कारण होती है; इसके विपरीत, कष्टदायक स्पर्श होता है। तीनों तत्व इनमें से किसी एक प्रकार के स्पर्श के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं: ठोसता के संदर्भ में, पैरों की मालिश करते समय कोमल हथेलियों वाले सेवक द्वारा किया गया सुखद स्पर्श अनुभव होता है, और कठोर हाथों से मालिश करने पर इसका विपरीत अनुभव होता है। ऊष्मा तत्व से, हमें सर्दियों में गर्म तवे का सुख मिल सकता है, या गर्मियों में इसका विपरीत अनुभव हो सकता है।
वायु तत्व से हमें गर्मियों में पंखा चलाने का सुख मिल सकता है, या सर्दियों में इसकी असुविधा हो सकती है। असल. 332, 333.

81. साइ. यहाँ इंद्रिय बोध में ध्यान देने योग्य एक बिंदु पर चर्चा करता है जो चेतना और अवचेतना के संबंध में आधुनिक यूरोपीय सिद्धांतों को रेखांकित करने के कारण दिलचस्प है (असल. 333)। इंद्रिय की एक ठोस वस्तु में, स्पर्शनीयता के तीनों रूप, अर्थात् तीनों तत्व (ठोस, गर्म, हवादार), सभी मौजूद हो सकते हैं।
क्या वे सभी एक ही झटके में चेतना के क्षेत्र (अपाथम) में आ जाते हैं?
हाँ, आ जाते हैं।
इस प्रकार आने पर, क्या वे देहबोध पर प्रभाव डालते हैं?
हाँ, डालते हैं।
जब इस प्रकार उन्हें (मानसिक) वस्तु बना दिया जाता है, तो क्या शरीर का ज्ञान एक ही झटके में उत्पन्न हो जाता है?
नहीं।
क्यों?
इस प्रकार: मानसिक वस्तुएँ या तो जानबूझकर संवेदन द्वारा या अंतर्प्रवेश द्वारा निर्मित होती हैं। (बाद वाला शब्द - ussado - अधिक शाब्दिक रूप से निष्कासन या प्रमुखता है, लेकिन दोनों शब्द यह दर्शाते हैं कि स्वैच्छिक ध्यान के विपरीत अनैच्छिक ध्यान का तात्पर्य है।)
अब जब कोई जानबूझकर दबाव के माध्यम से उबले हुए चावल के गोले की कठोरता या कोमलता का परीक्षण कर रहा होता है, तो गर्मी और वाष्प मौजूद होते हैं, लेकिन ध्यान ठोस पदार्थ पर ही केंद्रित होता है।
यदि गर्म पानी को हाथ से परखा जाए, तो भले ही उसमें ठोस और वाष्प (पदार्थ) मौजूद हों, ध्यान ऊष्मा पर ही केंद्रित होता है। इसी प्रकार, यदि गर्म मौसम में खिड़की पर शरीर पर ठंडी हवा चलने दी जाए, तो ठोस और ऊष्मा दोनों मौजूद होते हैं, लेकिन ध्यान वायु तत्व पर ही जाता है।
या फिर अनैच्छिक अनुभवों को लें: यदि आप ठोकर खाते हैं, या अपना सिर किसी पेड़ से टकराते हैं, या किसी कंकड़ को चबाते हैं, तो गर्मी और हवा मौजूद होती है, लेकिन घुसपैठ करने वाली वस्तु ठोस पदार्थ होती है।
इसी प्रकार, गर्म सतह पर चलने या तूफान से बहरे हो जाने के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। तीनों तत्व एक ही क्षण में एक समान रूप से अनुभव नहीं किए जाते। शरीर-चेतना की विस्तारित सतह के संदर्भ में, शरीर का ज्ञान केवल उसी स्थान पर उत्पन्न होता है जहाँ चेतना की सतह पर प्रभाव पड़ता है, उदाहरण के लिए, जब कंधे के घाव को कलम से धोया जाता है (या पट्टी बांधी जाती है; देखें विन. ii. 115 और अनुवाद), तो कंधे की काया-पासादो पर प्रभाव पड़ता है, या वह तीव्र हो जाती है, और वहीं ज्ञान उत्पन्न होता है।
और जहाँ अतीत की छाप सबसे प्रबल होती है, वहीं सबसे पहले संज्ञान उत्पन्न होता है।

82.बुद्धघोष सामान्यतः इंद्रियों के संदर्भ में, संवेदनाओं के एक समूह या 'विचार के विषय' से दूसरे समूह में संक्रमण का मनोवैज्ञानिक विवरण देते हैं, जो अब 'ध्यान की गति' का वर्णन करने के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों से बहुत अलग नहीं है (असल. 334)।
हम एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर बढ़ते हैं।
जानबूझकर झुकाव से, या
अत्यधिक प्रभावशालीता की अनुभूति से (ajjhasayato va visayadhimattato va).
उदाहरण के लिए,
किसी तीर्थस्थल को प्रणाम करने से, एक श्रद्धालु मूर्ति को श्रद्धांजलि अर्पित करने और उस पर की गई नक्काशी और चित्रों का चिंतन करने के लिए प्रवेश करने का इरादा बनाता है।
किसी विशाल पर्वतमाला का चिंतन करते समय, एक व्यक्ति संगीत की ध्वनि से प्रभावित होता है, और फिर पास लाए गए फूलों और अगरबत्ती की सुगंध से भी प्रभावित होता है।
83. शाब्दिक अर्थ है तेल (स्नेहो)। आकाशधातु के वर्णन से तुलना करें, धारा 638।

84. यह अनेक तत्वों से निर्मित किसी वस्तु में नम या द्रव तत्व का पहलू है। अपो-धातु का एक आवश्यक 'लक्षण' है 'पग्घरनम्', यानी प्रवाह। धारा 963 देखें। परन्तु 'रूप की संसंजनशीलता का अर्थ है किसी ठोस पदार्थ की वह संसंजन अवस्था जिसमें ठोस की अधिकता

हो' (असल. 335)। क्योंकि द्रव तत्व के संसंजन बल से ही लोहे के पिंड या अन्य वस्तुएँ कठोर बनती हैं। इसी प्रकार पत्थरों, पहाड़ों, ताड़ के पेड़ों, हाथीदांतों, सींगों आदि के मामले में भी।
इसलिए बुद्धघोष तत्वों के परस्पर संबंधित क्षेत्रों और उनके एक-दूसरे के निकट होने की स्थिति पर चर्चा करते हैं, जैसे कि चिपचिपी चीजें, उदाहरण के लिए, जमा हुआ तरल या उबलता पानी। हालांकि, दूषित पांडुलिपियों के कारण विवेचन के कुछ भाग समझना कठिन है। उनका निष्कर्ष यह है कि यद्यपि तत्व एक घटना के रूप में अपनी स्थिति में भिन्न हो सकते हैं, लेकिन उनका मूल स्वरूप कभी नहीं बदलता, चाहे वह कितना भी अप्रत्यक्ष क्यों न हो।
और वह एक अभी तक असंपादित सूत्र (अत्थानापरिकप्पा सूत्र) का हवाला देते हैं, लेकिन जिसे ए. आई. 222 में दोहराया गया है, कि चार तत्वों के लिए अपने मूल चरित्र को बदलना आसान है, निर्वाण के साधक (महान छात्र) के लिए अपनी उच्च स्थिति को बदलना आसान है (असल. 336)।

85. यहाँ सहसंबंधित पदों के शेष जोड़े दिए गए हैं, जो द्वैत पहलू के अंतर्गत रूप की श्रेणियों का निर्माण करते हैं।

86. शाब्दिक रूप से, 'जिसे पकड़ लिया गया है' या 'पकड़ लिया गया है'। इस और संबंधित शब्दों पर 'पकड़ने पर समूह', § 1213 आदि के अंतर्गत चर्चा की गई है। यह निराशाजनक है कि 'पकड़ ली गई' वस्तुओं की सूची में दो वस्तुओं को छोड़कर, या कर्म के प्रभाव से अस्तित्व में आई वस्तुओं (दोनों वाक्यांश लगभग समानार्थक हैं), साइ. किसी भी वस्तु के समावेश पर चर्चा नहीं करता है।
उदाहरण के लिए, कोई यह सुनना पसंद करता कि सभी इंद्रिय-विषयों में से, केवल ध्वनि ही 'पकड़ने का विषय क्यों नहीं है' (देखें कर्म के परिणाम के रूप में ध्वनि से संबंधित विधर्म, केवी 466), और क्यों अंतरिक्ष और तरलता के तत्व पकड़ का विषय हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं, या उनका इससे किसी भी तरह से क्या लेना-देना है।)
ऊपर उल्लिखित दो बिंदुओं के संबंध में, साइ. (337) पूछता है, 'यह कैसे है कि "क्षय और अनित्यता" को कर्म के प्रदर्शन के कारण क्या है और क्या नहीं है, इसके संबंध में वर्गीकृत किया गया है?'
इन्हें उस श्रेणी में रखा गया है जो समझने का मुद्दा नहीं है।
जो कुछ कर्म के अलावा अन्य परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ है, उसे "कर्म के निष्पादन के कारण नहीं..." के अंतर्गत शामिल किया जाता है।
और चूंकि ये दोनों रूप न तो कर्म से उत्पन्न होते हैं, न ही कर्म के अतिरिक्त किसी अन्य रूप-उत्पादक परिस्थिति से, इसलिए इन्हें कर्म के संदर्भ में वर्गीकृत नहीं किया जाता है। इन्हें कैसे प्राप्त किया जाता है, यह बाद में स्पष्ट हो जाएगा।'

87.रूपसंतति के लिए, रूपसंतति पढ़ें।

88. इस द्वंद्व यौगिक के पहले भाग में लगा निषेधात्मक शब्द उत्तरार्ध पर लागू नहीं होता। सभी रूप उपदानीय हैं - देखें § 595 और तुलना करें ध. एस. § 1538। अतः, जैसा कि हमें प्राप्त होता है, सकारात्मक उत्तर प्राप्त करना, यदि उपदानीय को नकारात्मक माना जाए, तो विरोधाभास के नियम का स्पष्ट उल्लंघन होगा। वितरित नकारात्मक को अनुपदिन्नुपदानीय द्वारा दिया गया है, जैसा कि § 992 में है।

89. मैंने सद्दयातनम् को हटा दिया है और अगली पंक्ति में अपोधातु को जोड़ा है, जैसा कि § 654 के अनुरूप है। सी/. §§ 747, 750, और के.

90. धारा 658 में दिया गया उत्तर अपने संक्षिप्त अंश के साथ बार-बार आता है, लेकिन उस पूर्व उत्तर को इंगित करना आसान नहीं है जिसका यह संक्षिप्त रूप है। क्योंकि धारा 653 और 655 में 'दृश्य रूप' शामिल है, जो कि 'बेतुका' है। और इनमें 'ध्वनि' शामिल नहीं है, जो अदृश्य है। मेरा सुझाव है कि धारा 596 का संदर्भ दिया गया है, जिसका अर्थ है कि 'दृश्य रूप का क्षेत्र' को छोड़ देना चाहिए। धारा 596 के अन्य सभी पद, यदि उन्हें विशुद्ध रूप से अमूर्त संवेदनशीलता या संवेदना, या अमूर्त विचारों के रूप में समझा जाए, तो दृष्टि से अपंग हैं।

कबालिनकारो अहारो में भी, केवल वस्तु, या पोषण की अवधारणा का मूर्त रूप ही दिखाई देता है। इसी प्रकार, यद्यपि शारीरिक हाव-भाव दिखाई देते हैं, फिर भी दिया गया 'संकेत' अनुमान का विषय है, एक मानसिक रचना है।

91. दोनों शब्दों को धारा 597 आदि में दिए गए अर्थ के विस्तृत सिद्धांत में लागू किया गया है।

92. इन संक्षिप्त उत्तरों के लिए अनुच्छेद 596 को मानक मानते हुए, हम यह मान सकते हैं कि ये दोनों अनुच्छेद (अनुच्छेद 659 और 660) उस उत्तर को आपस में विभाजित करते हैं। प्रभाव और प्रतिक्रिया, जैसा कि यहाँ समझा जाता है, पूरी तरह से संवेदना के क्षेत्र से संबंधित हैं। इस कृति में अन्यत्र 'पतिघो' शब्द का भावनात्मक और नैतिक महत्व है, और इसका अर्थ है घृणा, अरुचि। अनुच्छेद 1060 देखें।

धारा 93.§ 596 को भी इंद्रियम् अनुभागों द्वारा अलग-अलग रूप से विभाजित किया गया प्रतीत होता है। जो इंद्रियम् नहीं है, जिसमें ह्वै^इ^ नहीं है, वह पाँच प्रकार की इंद्रिय-वस्तुएँ, संकेत, स्थान, रूप के तीन गुण और अमूर्त विचार में निरूपित रूप के विकसित होते पुनर्जन्म का क्रम है।

94. रिश्तेदारों की यह जोड़ी विपरीत रूप से लिए गए विशेषताओं की पहली जोड़ी के साथ मेल खाती है: अव्युत्पन्न और व्युत्पन्न रूप (पृष्ठ 172-97)।

95. ऊपर देखें, धारा 636, 637. दूसरे रिश्तेदार के बारे में संक्षिप्त उत्तर संभवतः धारा 596 में दी गई पूरी सूची होगी, सूचना के दो तरीकों को छोड़कर।

96. नीचे देखें, धारा 1195, 1196, और ऊपर, धारा 636, टिप्पणी।
यहां, पिछले दस प्रश्नों पर मौन रहने के बाद, साइ. अपनी दृष्टांत कथा को पुनः आरंभ करता है (पृष्ठ 337), हालांकि, इन अस्पष्ट भेदों पर अधिक प्रकाश नहीं डालता। यह और अगले दो प्रश्न-उत्तर युग्म किसी प्रकार के रूप को एक बुद्धिमान कर्ता के साथ संबंध में लाते हैं। और इसका सबसे शुद्ध उदाहरण वे घटनाक्रम हैं जो तब सामने आते हैं जब कर्ता स्वयं को अभिव्यक्त कर रहा होता है।
इसमें कहा गया है कि अभिव्यक्ति या संकेत स्वयं विचार से उत्पन्न नहीं होता, परन्तु फिर भी यह कहा जाता है कि इसका स्रोत विचार है क्योंकि वे घटनाएँ (हावभाव और वाणी) जिन पर संकेत निर्भर करता है, विचार से प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित होती हैं, ठीक वैसे ही जैसे हम कहते हैं कि वृद्धावस्था और मृत्यु अनित्यता हैं (क्योंकि वे इस विचार की विषयवस्तु का हिस्सा हैं)। जहाँ विचार है, वहाँ विचार की अभिव्यक्ति भी है।
लेकिन धारा 669 में वर्णित सहवर्तीता को विचार, भावना और अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के बीच उत्पन्न होने वाली सहवर्तीता के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। संभवतः वह धारा 1 में उल्लिखित मानसिक जटिलता और इसी प्रकार की अन्य जटिलताओं का उल्लेख कर रहे हैं।

97. नीचे देखें, धारा 1044, 1045। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है (पृष्ठ 59, नोट जे.), कि 'अज्जत्तम', 'अज्जत्तिकम्' हमारे आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्द 'व्यक्तिपरक' या व्यक्ति के सचेत अनुभव से संबंधित किसी भी चीज़ के साथ पूरी तरह से मेल नहीं खाता है। इसका तात्पर्य किसी भी व्यक्तिगत जीव, भौतिक या मानसिक, से संबंधित किसी भी चीज़ से है।
इसलिए, यहाँ 'स्वयं' शब्द को संकीर्ण आध्यात्मिक या यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि ठोस व्यक्ति या अत्तभवो के समतुल्य समझा जाना चाहिए (ऊपर देखें, पृष्ठ 175, नोट 1)।
इसका प्रयोग उन सभी घटकों के अर्थ में किया जाता है जिनमें प्रोफेसर डब्ल्यू. जेम्स ने आत्मा को विभाजित किया है, सिवाय अंतिम घटक के, अर्थात् भौतिक आत्मा (शरीर, वस्त्र, परिवार, घर, संपत्ति: बौद्ध केवल पहले घटक को ही स्वीकार करेंगे, मुझे लगता है),
सामाजिक आत्मा (दूसरों से मान्यता),
और आध्यात्मिक आत्मा (मानसिक क्षमताएं या प्रवृत्तियां)।
('मनोविज्ञान के सिद्धांत', 1892, खंड 292-296)

केवल चौथे घटक, 'शुद्ध अहंकार' को ही बौद्ध धर्म द्वारा अस्वीकार किया गया था, जैसा कि बाईस शताब्दियों बाद ह्यूम द्वारा भी किया गया था। हालाँकि, अनुच्छेद 161 और 1207 में स्पष्ट रूप से अधिक 'व्यक्तिपरक' उपयोग की तुलना करें।
मुझे बहिराम या बहिद्ध पर (अपेक्षाकृत) आधुनिक समकक्ष 'उद्देश्य' थोपने में समान अनिच्छा महसूस हुई है (देखें § 1045)।

98. इसे पूरी तरह से पढ़ने पर, यह धारा 596 के उत्तरार्ध से मेल खाना चाहिए, जो 'दृश्यमान रूप के क्षेत्र' से शुरू होता है।

99. साइ., ओलरिकम को थुलम से जोड़कर व्याख्या करते हुए बताते हैं कि इसका संबंध इंद्रिय-विषयों के भौतिक स्वरूप और इंद्रियजन्य प्रभाव से है, जबकि सुखुमम इसके विपरीत अर्थ रखता है। मेरी धारणा के अनुसार (पृष्ठ 203, नोट 3), बाद वाले वर्ग के अंतर्गत कामुकता और जीवन शक्ति, संकेत, स्थान, रूप के गुण और भोजन में पोषक तत्व की इंद्रियां आती हैं। इस द्वंद्व के प्रयास की शक्ति आधुनिक पश्चिमी मानसिकता के लिए विचित्र और अस्पष्ट है।
यह अभिधम्म के संकलन की तिथि से भी पहले की परंपरा का संकेत देता है, जो उपनिषदों के प्रारंभिक काल जितनी पुरानी है - एक ऐसे समय का जब भौतिक और अभौतिक, विस्तारित और अविस्तारित के बीच कोई निश्चित विरोधाभास नहीं था।
हमने देखा है कि इंद्रियाँ, यद्यपि 'अदृश्य' हैं, फिर भी उन्हें 'रूप' के प्रकारों के रूप में माना गया है - बल्कि, बाद के उपनिषदों ने उनके आकार और आकृति की परंपरा को संरक्षित रखा है। और मेरा मानना है कि जिस प्रकार प्राचीन उपनिषदों में आत्मा एक धुंधली, अगोचर, लेकिन 'भौतिक शरीर का भौतिक प्रतिरूप' थी, और जिस प्रकार 'जब कोई प्रारंभिक यूनानी दार्शनिक 6v की बात करता है, तो उसका अर्थ अस्तित्व नहीं, बल्कि शरीर होता है' (बर्नेट, 'प्रारंभिक यूनानी दर्शन', 27), उसी प्रकार इन दो उत्तरों में विभाजित सूची में सभी वस्तुएँ भौतिक 'रूप' हैं, चाहे वे प्रत्यक्ष, प्रभावशाली और सर्वव्यापी हों या अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म और रहस्यमय हों।

100.Cy. के अनुसार, 'ड्यूर' उस चीज़ को संदर्भित करता है जिसे समझना या भेदना कठिन होने के कारण इंद्रियजन्य प्रभाव से नहीं पहचाना जा सकता, चाहे वह शाब्दिक रूप से दूर हो या पास। इसके विपरीत, 'सैंट टिक' उन चीजों को संदर्भित करता है जो इंद्रियों के लिए स्पष्ट होती हैं, भले ही वे दूर हों। प्रत्येक विभाजन की विषयवस्तु पिछले विभाजन की विषयवस्तु से मेल खाती है, और हम देखते हैं कि जहाँ इंद्रिय-बोध का क्षेत्र अपेक्षाकृत स्पष्ट और स्थूल विषय है, वहीं यौन सार, जीवन शक्ति आदि, यहाँ तक कि भोजन में मौजूद पोषक तत्व भी उतने ही अस्पष्ट, अव्यक्त या अपेक्षाकृत दुर्गम पाए जाते हैं, जितने कि वे सूक्ष्म या सूक्ष्म थे। Asl. 337.

101. अनुच्छेद 653 से अनुच्छेद 961 तक टीकाकार मौन धारण कर लेते हैं और पाठक को यह कहकर विदा करते हैं कि 'गोले' आदि की व्याख्या (अनुच्छेद 695-741) में विवेचन विधि ऊपर की तुलना में अधिक विस्तृत है, और यह भी कि त्रिक की श्रेणी (अनुच्छेद 742 आदि) को समझना आसान है। पाठक को इस भाग का सार अधिक आसानी से समझने में सहायता करने के लिए, मैंने कुछ शीर्षक जोड़े हैं ताकि यह इंगित किया जा सके कि 'रूप' पर विचार करने के दृष्टिकोण में कब परिवर्तन होता है।
इस प्रकार, हमने ज्ञान प्राप्ति की व्यक्तिपरक प्रक्रिया में आधार (वत्थु) के पहलू के अंतर्गत रूप पर विचार किया है, जिसमें बोधित वस्तु आदि शामिल हैं।
सभी उत्तरों में, जहाँ भी कमियाँ पाई जाती हैं, अन्यथा निर्दिष्ट न होने पर, सूत्र धारा 596 का उत्तर प्रतीत होता है, जिसमें एक या अधिक पद हटा दिए गए हैं, और प्रत्येक विशिष्ट द्विविभाजन प्रक्रिया द्वारा आवश्यक अर्थ के अनुसार 'मूर्त के क्षेत्र' का कभी-कभी सम्मिलन किया गया है।

102. मानक उत्तर, धारा 596 का संदर्भ लेने पर यह स्पष्ट होगा कि वर्तमान उत्तर में नकारात्मक शब्दों में 'दृश्य रूप' या दृष्टि की वस्तुएँ शामिल हैं। यहाँ, वस्तु का अर्थ है आसन, मूर्त रूप या जिसे हम भौतिक आधार कह सकते हैं। हालाँकि, जब इंद्रिय-उत्तेजना की प्रक्रिया की अंततः कल्पना की गई, तो प्रभावी परिणाम इंद्रिय-अंग (और हृदय) में घटित हुआ माना गया। इंद्रिय-वस्तु को संपर्क का अरम्मनम परिभाषित किया गया। धारा 687 देखें।

103. पाठ के अंग्रेज़ी या सियामी संस्करण में, रूपम और चक्खुविन्नानस्सा के बीच कोई अंतराल नहीं दिखता है, लेकिन संदर्भ से स्पष्ट है कि उत्तर प्रश्न में उल्लिखित चारों मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित है। हमेशा की तरह, केवल अंतिम शब्द का ही स्पष्ट उत्तर दिया गया है। अनुच्छेद 682 और 686 में भी चारों प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

104. जिव्हा संफससस्सा मुद्रित पाठ से हट गया है।

105. यहाँ, बेशक, श्रवण, गंध और स्वाद के क्षेत्रों को समझें, और निम्नलिखित तीन रिक्त स्थानों में संपर्क के संबंधित रूपों को समझें। अगले दो उत्तरों में भी इसी प्रकार आगे बढ़ें।

106.अर्थात्, धारा 596 की तरह, केवल 'दृश्य रूपों का क्षेत्र' को छोड़कर, और संभवतः 'मूर्त का क्षेत्र' सम्मिलित करना।

107. मुद्रित पाठ में नकारात्मक कण अवश्य दिया जाना चाहिए।
इस और अगले वाक्यों में मौजूद कमियों को पिछले वाक्यों में मौजूद कमियों के अनुरूप ही भरना होगा। अतः, इस प्रश्न में, पिछले प्रश्न में उल्लिखित तीन अन्य मानसिक प्रक्रियाओं को समझना होगा; उत्तर धारा 596 के उत्तर के समान ही होगा, जिसमें केवल 'दृश्य रूपों का क्षेत्र' को छोड़कर 'स्पष्ट रूपों का क्षेत्र' शामिल होगा। और इसी प्रकार आगे भी।

108.अर्थात, धारा 596 को दोहराएँ (जिसमें 'मूर्त का क्षेत्र' प्रवेश नहीं करता है)।

109. यहां दिए गए उत्तर और धारा 697 में संक्षेपित चार प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट रूप से उन उत्तरों के रूप में हैं जो इंद्रिय-प्रतिक्रिया के वर्तमान सिद्धांत (धारा 597-616) की व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार, वस्तुनिष्ठ रूप से लिए गए इंद्रिय संबंधी प्रश्नों (धारा 699, 701) के उत्तरों के लिए धारा 617-632, 648-651 देखें।
चारों उत्तरों में विरोधाभासों का वर्णन धारा 596 की पुनरावृत्ति द्वारा किया गया प्रतीत होता है, जिसमें प्रत्येक मामले में संबंधित सकारात्मक शब्द पर प्रश्न में उल्लिखित विशिष्ट मद का लोप किया गया है, और संभवतः 'मूर्तता के क्षेत्र' को शामिल किया गया है।

110. मुद्रित पाठ में 'रूपम फोट्टाब्बयातनम्' पढ़ें। उत्तर निश्चित रूप से चार अलग-अलग उत्तरों में से अंतिम है, पहले तीन उत्तर समझे जा चुके हैं।

111.यहाँ धारा 596 में दिए गए उत्तर को पहले पद को छोड़कर, 'मूर्तता का क्षेत्र' डालकर प्रदान करें।

112. यहाँ, बेशक, अन्य तीन इंद्रियों के क्षेत्रों को शामिल करें।

113. पूर्ण सूत्र के लिए, धारा 597 देखें।

114.अर्थात, धारा 596 के अनुसार उत्तर दें, पहले आइटम को छोड़कर, और 'मूर्तता का क्षेत्र' डालें।

115. धारा 601, 605, 609, 613 देखें।

116. धारा 633-635 देखें।

117.[713ए] मुद्रित पाठ में अनजाने में छूट गया है।

118.§§ 713ए, 715, और 717 संभवतः § 596 के समान हैं, प्रत्येक प्रश्न द्वारा बहिष्कृत शब्द के क्रमिक लोप के साथ, और हमेशा 'मूर्त के क्षेत्र' के सम्मिलन के साथ।

119. पुनः, इन दो नकारात्मक श्रेणियों में, धारा 596 का पालन संभवतः संबंधित लोपों और सम्मिलनों के साथ किया जाता है। पृष्ठ 209, टिप्पणी 1 देखें।

120. धारा 638, 652 से तुलना करें।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 3

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय III - त्रिविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ
त्रिक की व्याख्या
[1]

[पृष्ठ 220] [742-744] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत[2] और व्युत्पन्न?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और व्युत्पन्न?

दृश्य रूप का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण.[3]

(iii.) बाह्य और व्युत्पन्न नहीं?

मूर्त और तरल तत्व का क्षेत्र।

[745-747] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और हड़पने का मुद्दा?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

[पृष्ठ 221] (ii.) बाह्य और लोभ का मुद्दा? स्त्रीत्व,
पुरुषत्व,
जीवन शक्ति, या कर्मों के फलस्वरूप विद्यमान कोई अन्य रूप,

चाहे वह दृश्य रूप, गंध,

स्वाद
या स्पर्शनीय रूप के क्षेत्र में हो ,

स्थानिक या द्रव तत्व में,
रूप के एकीकरण या अस्तित्व में,
या शारीरिक पोषण में।[4] (iii.) बाह्य और पकड़ का मुद्दा नहीं? ध्वनि का क्षेत्र,
शारीरिक और मुखर संकेत, रूप
की हल्कापन,
लचीलापन,
सुगमता,
क्षय
और अनित्यता, या कोई अन्य रूप जो मौजूद है जो कर्म के कारण नहीं है,

चाहे वह दृश्य रूप के क्षेत्र में हो,[5] गंध,
स्वाद,
या स्पर्शनीय,

स्थानिक या तरल तत्व
आदि में। [द्वितीय भाग के अनुसार जारी रखें।]

[748-750] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है और इसमें लोभ का मुद्दा भी शामिल है तथा लोभ के लिए अनुकूल भी है? (ii.) क्या यह बाह्य है और इसमें लोभ का मुद्दा भी शामिल है तथा लोभ के लिए अनुकूल भी है? (iii.) क्या यह बाह्य है और इसमें लोभ का मुद्दा नहीं है, परन्तु लोभ के लिए अनुकूल है?

उत्तर, क्रम में लिए गए, जेवेसेडिंग त्रिक के समान हैं।[6]

[751-753] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और अदृश्य?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और दृश्यमान?

दृश्य रूप का क्षेत्र।

(iii.) बाह्य और अदृश्य?

ध्वनि का क्षेत्र... और शारीरिक पोषण[7]

[पृष्ठ 221] [754-756] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और प्रतिक्रियात्मक (प्रभावित करना)?[8]

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और आक्षेपकारी?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

(iii.) बाह्य और गैर-प्रभावित?[9]

सेक्स[10] . . . और शारीरिक पोषण.

[757-759] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और एक संकाय?

इंद्रियों की पाँच शक्तियाँ।

(ii.) बाह्य और एक संकाय?

कामुकता और स्फूर्ति।

(iii.) बाह्य और संकाय नहीं?

दृश्य रूप का क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण.[11]

[760-762] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत घटना है और महान घटनाओं में से एक नहीं है?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और महान घटनाओं से संबंधित?

मूर्त और तरल तत्व का क्षेत्र।[12]

(iii.) बाह्य घटना है, न कि महान घटनाओं में से एक?

[अन्य चार प्रकार की इंद्रिय-वस्तुओं][13] के क्षेत्र . . . और शारीरिक पोषण।

[763-765] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत, सूचना नहीं?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और सूचना?

शारीरिक और मौखिक संकेत.[14]

[पृष्ठ 223] (iii.) बाह्य और सूचना नहीं?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[766-768] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और विचार से उत्पन्न?[15]

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाहरी और विचार से उत्पन्न? शारीरिक और मौखिक संकेत, या कोई अन्य रूप जो विचार से उत्पन्न होता है, विचार के कारण होता है, आदि। [धारा 667 के अनुसार जारी रखें]।

(iii.) बाह्य और विचार से उत्पन्न नहीं? सेक्स और जीवन शक्ति,
रूप का क्षय और अनित्यता, या कोई अन्य रूप जो मौजूद है जो विचार से उत्पन्न नहीं होता,
विचार के कारण नहीं होता, आदि। [धारा 668 के अनुसार जारी रखें]।

[769-771] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है और किसी विचार के साथ अस्तित्व में नहीं आता है?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य है और विचार के साथ ही अस्तित्व में आता है?

शारीरिक और मौखिक संकेत।

(iii.) बाह्य है और अस्तित्व में नहीं आता, इत्यादि?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[772-774] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और किसी विचार के बाद का नहीं? (ii.) बाहरी और किसी विचार के बाद का? (iii.) बाहरी और किसी विचार के बाद का?

उत्तर, क्रमानुसार लेने पर, पिछले तीन प्रश्नों के उत्तरों के समान हैं।

[775-777] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और सकल?[16]

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

[पृष्ठ 224] (ii.) बाह्य और स्थूल?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

(iii.) बाह्य और सूक्ष्म?

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

[778-780] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और निकट?[17]

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और दूरस्थ?

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

(iii.) बाह्य और निकट?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

[781-783] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) बाह्य और दृश्य संपर्क का आधार नहीं?[18]

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और दृश्य संपर्क का आधार?

दृष्टि का दायरा।

(iii.) व्यक्तिगत, न कि दृश्य संपर्क का आधार?

अन्य चार इंद्रियों का क्षेत्र।

[784-786] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह बाहरी है और भावना का आधार नहीं है

...

धारणा का...

सोच का... दृश्य संपर्क से उत्पन्न

दृश्य अनुभूति का

? (ii.) क्या यह व्यक्तिगत है और भावना का आधार है[19]... दृश्य संपर्क से उत्पन्न दृश्य अनुभूति का? (iii.) क्या यह व्यक्तिगत है और भावना का आधार नहीं है... दृश्य संपर्क से उत्पन्न दृश्य अनुभूति का?

उत्तर पिछले तीन प्रश्नों के समान हैं।

[पृष्ठ 225] [787-789] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) बाह्य तथा श्रवण...

घ्राण...

स्वाद...

शारीरिक संपर्क का आधार नहीं ?

पांच प्रकार की इंद्रिय वस्तुओं के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और . . . शारीरिक संपर्क का आधार?

अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र क्रमशः।

(iii.) व्यक्तिगत और शारीरिक संपर्क का आधार नहीं?

दृष्टि, श्रवण, गंध और स्वाद का क्षेत्र।

[790-792] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह बाह्य है और शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होने

वाली भावना,
बोध,
चिंतन और
शरीर के ज्ञान
का आधार नहीं है? (ii.) क्या यह व्यक्तिगत है और शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होने वाले शरीर के ज्ञान का आधार है? (iii.) क्या यह व्यक्तिगत है और शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होने वाले शरीर के ज्ञान का आधार नहीं है?

पिछले तीन प्रश्नों के समान उत्तर, क्रमानुसार।

[793-795] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है, न कि दृश्य संपर्क के अवसर पर बोधित वस्तु?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाहरी और दृश्य संपर्क के अवसर पर बोधित वस्तु?

दृश्य रूप का क्षेत्र।

(iii.) क्या यह बाहरी वस्तु है, न कि वह वस्तु जिसे दृश्य संपर्क के अवसर पर समझा गया हो?

अन्य चार प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[पृष्ठ 226] [796-798] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है और उस भावना,
बोध,
चिंतन,
दृश्य अनुभूति का विषय नहीं है
जो दृश्य संपर्क से उत्पन्न होती है? (ii.) क्या यह बाह्य है और दृश्य अनुभूति का विषय है? (iii.) क्या यह बाह्य है और दृश्य अनुभूति का विषय नहीं है?

पिछले तीन प्रश्नों के समान उत्तर, क्रमानुसार।

[799-801] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है, न कि श्रवण...
घ्राण...
स्वाद...
शारीरिक संपर्क के अवसर पर अनुभव की गई वस्तु ?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और वह वस्तु जो शारीरिक संपर्क के अवसर पर बोधित होती है?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

(iii.) बाह्य वस्तु, न कि शारीरिक संपर्क के अवसर पर बोधित वस्तु?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[802-804] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और वस्तु नहीं

वह अनुभूति...
वह बोध...
वह सोच...
वह... शरीर का वह ज्ञान
जो... शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

[पृष्ठ 227] (ii.) बाह्य और शरीर के संज्ञान का विषय जो शारीरिक संपर्क से उत्पन्न होता है?

मूर्त चीजों का क्षेत्र...

(iii.) बाह्य और शरीर आदि के संज्ञान का विषय नहीं।

अन्य चार प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[805-807] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) बाह्य और दृष्टि क्षेत्र से बाहर?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और दृष्टि का दायरा?

आँख, यानी वह सचेत अंग जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह जो 'एक खाली गाँव' है - यह, आदि।[20]

(iii.) व्यक्तिगत है, दृष्टि क्षेत्र से बाहर?

अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र।

[808-810] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह बाह्य क्षेत्र है और श्रवण, गंध, स्वाद या शारीरिक संवेदनशीलता के दायरे से बाहर है?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और . . . शारीरिक संवेदनशीलता का क्षेत्र?

शरीर, यानी सचेत अंग, जो महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह जो 'एक खाली गाँव' है - यह, इत्यादि।

(iii.) व्यक्तिगत और शारीरिक संवेदनशीलता के दायरे से बाहर?

अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र।

[811-813] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत और दृश्य रूप के दायरे से बाहर?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

[पृष्ठ 228] (ii.) बाह्य और दृश्य रूप का क्षेत्र?

वह रूप जो चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न होकर रंग के रूप में दिखाई देता है... यह जो दृश्य रूप का तत्व है - यह, आदि।[21]

(iii.) बाह्य और दृश्य रूप के दायरे से बाहर?

अन्य चार प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[814-816] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है और ध्वनि, गंध, स्वाद या स्पर्शनीयता के क्षेत्र से संबंधित नहीं है?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और क्षेत्र... मूर्त का?

मिट्टी (ठोस) तत्व, आदि... यह वह है जो मूर्त का घटक तत्व है - यह, आदि.[22]

(iii.) बाह्य और . . , मूर्त के दायरे से बाहर? अन्य चार प्रकार की इंद्रिय-वस्तुओं के दायरे . . . और शारीरिक पोषण।

[817-819] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) बाह्य तत्व, दृष्टि का तत्व नहीं?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और दृष्टि का तत्व?

दृष्टि का दायरा।

(iii.) व्यक्तिगत तत्व, न कि दृष्टि का तत्व?

अन्य चार इंद्रियां।

[820-822] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह बाह्य तत्व है, न कि श्रवण, गंध, स्वाद या शारीरिक संवेदनशीलता का तत्व?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और . . . शारीरिक संवेदनशीलता का तत्व?

शरीर की संवेदनशीलता का क्षेत्र...

[पृष्ठ 229] (iii.) व्यक्तिगत और . . , शरीर-संवेदनशीलता का तत्व नहीं? अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र।

[823-825] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत, न कि दृश्य रूप का तत्व?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और दृश्य रूप का तत्व?

दृश्य रूपों का क्षेत्र।

(iii.) बाह्य तत्व, दृश्य रूप का तत्व नहीं?

अन्य चार प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[826-828] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है, न कि ध्वनि, गंध, स्वाद या स्पर्शनीय तत्व?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और . . , मूर्त तत्व?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

(iii.) बाह्य और . . . मूर्त का तत्व नहीं?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[829-831] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) बाह्य, न कि दृष्टि का भ्रम?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्यक्तिगत और दृष्टि की कल्पना?

दृष्टि का दायरा।

(iii.) क्या यह व्यक्तिगत है, दृष्टि क्षमता नहीं?

अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र।

[832-834] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह बाह्य है, न कि श्रवण, गंध, स्वाद या शारीरिक संवेदनशीलता?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[पृष्ठ 230] (ii.) व्यक्तिगत और . . . शारीरिक संवेदनशीलता की क्षमता?

शरीर, यानी वह सचेत अंग जो चार महान घटनाओं से उत्पन्न होता है... यह जो 'एक खाली गाँव' है - यह, इत्यादि।

(iii.) व्यक्तिगत, न कि... शारीरिक संवेदनशीलता की क्षमता?

अन्य चार इंद्रियों के क्षेत्र।

[835-837] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है, न कि नारीत्व की संभाव्यता?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र

(ii.) बाह्यता और स्त्रीत्व?

जो स्त्री से संबंधित हो, दिखने में स्त्री जैसी हो, इत्यादि।

[धारा 633 के अनुसार जारी रखें] .

(iii.) बाहरी गुण, न कि स्त्रीत्व?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[838-840] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह व्यक्तिगत है, न कि पुरुषत्व की संभाव्यता? इत्यादि।

इस त्रिक में प्रश्न और उत्तर ठीक उसी प्रकार के हैं जैसे पूर्वोक्त में हैं, धारा 634 (ii) का उत्तर है।

[841-843]

यह त्रिक 'जीवन शक्ति' पर है, और 'नारीत्व' पर भी बिल्कुल अनुरूप है, धारा 635 को (ii.) में प्रतिस्थापित किया गया है।

[844-846] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्यक्तिगत सूचना, न कि शारीरिक सूचना?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र।

(ii.) बाह्य और शारीरिक संकेत?

वह तनाव, आशय, शरीर की तनावपूर्ण अवस्था, आदि। [धारा 636 के अनुसार जारी रखें]।

(iii.) बाह्य संकेत, न कि शारीरिक संकेत?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।

[पृष्ठ 231] [847-849]

यह त्रिक 'स्वर संकेत' पर है, और उपरोक्त के समान, धारा 637 को दूसरे प्रश्न के उत्तर के रूप में उद्धृत किया गया है।

[850-876]

यहां दस त्रिक दिए गए हैं जो निम्नलिखित दस गुणों की उपस्थिति या अनुपस्थिति, यानी व्यक्तिगत या बाह्य सूचना, पर आधारित हैं — जो कि पेयर्स (§§ 722-741) के अनुसार श्रेणियों के अंत में दिए गए गुणों के समान हैं: स्थान का तत्व, रूप का एकीकरण,
तरलता का तत्व, रूप
का अस्तित्व, रूप का हल्कापन, रूप का क्षय
, रूप की प्लास्टिसिटी,
रूप की अनित्यता, रूप की सुगमता और शारीरिक पोषण। इन प्रत्येक त्रिक में प्रश्न और उत्तर 'शारीरिक संकेत' (§§ 844-846) पर दिए गए अंतिम त्रिक के समान हैं, केवल भिन्न तत्व पूछे गए रूप का विशिष्ट प्रकार और प्रत्येक त्रिक के दूसरे उत्तर में उसकी परिभाषा है।

इस प्रकार प्रश्नों की संरचना इस प्रकार है:

(i.) व्यक्तिगत और नहीं . . .
(ii.) बाहरी और . . .
(iii.) बाहरी और नहीं . . .[23]

ये त्रिविध पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ हैं।

त्रिक की व्याख्या का अंत।

- फुटनोट:

1. स्वयं या गैर-स्वयं के रूप के साथ-साथ किसी अन्य गुण की उपस्थिति या अनुपस्थिति के संयोजन में लिए गए रूप के इस लंबे विश्लेषण को पढ़ने की नीरसता को कम करने के लिए, मैंने त्रिक को समूहित करने का एक तरीका आजमाया है। मैंने उस स्थिर विशेषता, अंतिम कथन, जिसे साइ. (पृष्ठ 55) में अप्पना कहा गया है, के प्रत्येक उत्तर को भी संक्षिप्त किया है। पिछले उत्तर देखें।

2. अजझत्तिकम्। 'व्यक्तिगत' शब्द शायद अधिक सटीक रूप से 'पुग्गलिकम्' से मेल खाता है, लेकिन यह 'स्वयं का' या 'स्वयं से संबंधित' की तुलना में कम जटिल है, जबकि साथ ही यह एक गलत अनुवाद भी नहीं है। पृष्ठ 207, नोट 1 देखें।

3. यह संभवतः अभी भी धारा 596 को संदर्भित करता है, जिसे इन दोनों पहले उत्तरों द्वारा 'मूर्त क्षेत्र' के समावेश के बिना ही पूर्ण माना जा सकता है, जो (iii.) के अंतर्गत आता है। पिछला अध्याय देखें।

4.तुलना करें धारा 653, 654.

5. मुद्रित पाठ में यहाँ दोहराया गया सद्दयातनम, के. में छोड़ दिया गया है।

6.750 में कटट्टा से पहले कम्मासा पढ़ें।

7. धारा 596 से पहले की तरह भरें।

8. पृष्ठ 175, नोट 2 और पृष्ठ 183, नोट 1 देखें।

9. सपतिघम के स्थान पर अप्पतिघम पढ़ें।

10. यह शब्द दोनों लिंगों के इंद्रियों के लिए एक सुविधाजनक संक्षिप्त रूप में प्रयोग किया जाता है। देखें धारा 596।

11. धारा 596 से पहले की तरह आपूर्ति करें।

12. धारा 647 आदि देखें।

13.वास्तव में 'दृश्य रूप का...' नोट 1 देखें।

14. धारा 636, 637 देखें।

15. धारा 667 आदि देखें।

16. धारा 675 आदि देखें।

17. धारा 677 आदि देखें।

18. धारा 679 आदि देखें।

19. 'आधार' पर इस और निम्नलिखित वाक्यों में कमियों के संबंध में, देखें § 681 इत्यादि और टिप्पणियाँ।

20. इसके लिए और निम्नलिखित त्रिकों में इसी प्रकार के उत्तरों के लिए § 597 इत्यादि देखें।

21. धारा 617 देखें।

22. धारा 648 देखें।

23. मुद्रित पाठ में कई चूक हैं, जो त्रिक की समरूपता को भंग करती हैं, जैसे: आकाशधातु पर प्रश्न एवं उत्तर (iii) (धारा 851 के बाद); रूपास्सा उपाचयो पर प्रश्न एवं उत्तर (iii) (धारा 865 के बाद); रूपास्सा संतति पर प्रश्न एवं उत्तर (i) (धारा 865 के बाद)। यदि इन्हें विधिवत रूप से शामिल किया जाता, तो इस अध्याय के अंत में प्रश्नों (और उत्तरों) की संख्या 876 के बजाय 879 हो जाती। यदि त्रिक को इसी प्रकार समूहीकृत किया गया होता, तो ये चूक संभव नहीं होतीं।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 4

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय IV - चार पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ
 [पृष्ठ 232] [1]

[व्युत्पत्ति — कर्म का परिणाम।]

[877-880] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्युत्पन्न और ग्रहण करने का मुद्दा?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र; कामुकता और जीवन शक्ति की क्षमताएं, या कर्म के फलस्वरूप विद्यमान कोई भी अन्य रूप, चाहे वह दृश्य रूपों के क्षेत्र में हो,[2] गंध, या स्वाद, अंतरिक्ष का तत्व, रूप का एकीकरण या अस्तित्व, या शारीरिक पोषण,

[पृष्ठ 231] (ii.) व्युत्पन्न है, न कि समझने का मुद्दा?

ध्वनियों का क्षेत्र, शारीरिक और मुखर संकेत, रूप की हल्कापन, प्लास्टिसिटी और सुगमता, या कोई भी अन्य रूप जो मौजूद है जो कर्म के कारण नहीं है [पृष्ठ 233] निर्मित, चाहे वह दृश्य रूपों, गंधों या स्वादों के क्षेत्रों में हो, अंतरिक्ष का तत्व हो, रूप का एकीकरण या निर्वाह हो, या शारीरिक पोषण हो।

(iii.) व्युत्पन्न नहीं और समझने का मुद्दा?

कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ यह रूप, जो मूर्त और द्रव तत्वों के क्षेत्र में आता है।

(iv.) अव्युत्पन्न और बोध का मुद्दा नहीं?

यह रूप कर्मों के फलस्वरूप नहीं है, जो मूर्त और तरल तत्व के क्षेत्र में आता है।

[व्युत्पत्ति — कर्म का उत्पादन।]

[881-884] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्युत्पन्न और दोनों ही लालच का परिणाम और उसके अनुकूल? (ii.) व्युत्पन्न और लालच का परिणाम नहीं बल्कि उसके अनुकूल?[3] (iii.) अव्युत्पन्न और दोनों ही लालच का परिणाम और उसके अनुकूल? (iv.) अव्युत्पन्न और लालच का परिणाम नहीं बल्कि उसके अनुकूल?[4]

चारों उत्तर क्रमशः पिछले समूह के उत्तरों के समान हैं।

[व्युत्पत्ति — प्रभाव।]

[885-888] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्युत्पन्न और प्रभावकारी?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र, और दृश्य रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के क्षेत्र।

(ii.) व्युत्पन्न और गैर-प्रभावित?

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

(iii.) व्युत्पन्न और प्रभावकारी?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

(iv.) अव्युत्पन्न और गैर-प्रभावित?

तरल तत्व।

[पृष्ठ 234] [व्युत्पत्ति — बल्क।]

[889-892] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्युत्पन्न और स्थूल? (ii.) व्युत्पन्न और सूक्ष्म? (iii.) अव्युत्पन्न और स्थूल? (iv.) व्युत्पन्न और सूक्ष्म?

उत्तर क्रमशः पूर्ववर्ती समूह के उत्तरों के समान हैं।

[व्युत्पत्ति — निकटता।]

[893-896] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) व्युत्पन्न और दूरस्थ?

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

(ii.) व्युत्पन्न और निकट?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र, और दृश्य रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के क्षेत्र।

(iii.) अव्युत्पन्न और दूरस्थ?

तरल तत्व।

(iv.) अव्युत्पन्न और निकट?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

[कर्म का कार्य — दृश्यता।]

[897-900] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) समझने और देखने का मुद्दा?

कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला दृश्य रूप।

(ii.) ग्रहणशीलता और अदृश्यता का मुद्दा? पाँचों इंद्रियों के क्षेत्र;
कामुकता और जीवन शक्ति, या कर्मों के फलस्वरूप विद्यमान कोई अन्य रूप।

चाहे वह गंध, स्वाद, या स्पर्शनीयता के क्षेत्र में हो,
स्थान या तरलता के तत्व हों,
रूप का एकीकरण या निर्वाह हो, या शारीरिक पोषण हो। (iii.) क्या यह समझने[5] और दृश्यता का मुद्दा नहीं है?

दृश्य स्वरूप का वह क्षेत्र जो कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होता।

[पृष्ठ 235] (iv.) क्या यह पकड़ और अदृश्यता का मुद्दा नहीं है? ध्वनि का क्षेत्र,
शारीरिक और मुखर संकेत, रूप की
हल्कापन,
लचीलापन, सुगमता, रूप का क्षय, या अनित्यता, या कोई अन्य रूप जो कर्म के कारण नहीं है,

चाहे वह गंध के क्षेत्र में हो, या स्वाद के क्षेत्र में, या स्पर्शनीयता के क्षेत्र में,
स्थान के तत्वों में हो, या तरलता के क्षेत्र में,
रूप के एकीकरण या अस्तित्व में हो,
या शारीरिक पोषण में हो।

[कर्म का प्रभाव।]

[901-904] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) हड़पने और अतिक्रमण करने का मुद्दा?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र, या कर्म के फलस्वरूप दृश्य रूप, गंध, स्वाद या स्पर्शनीय रूप में विद्यमान अन्य कोई भी रूप। (ii) ग्रहणशीलता और अनावेगशीलता का मुद्दा?

कामुकता या जीवन शक्ति, या कर्म के माध्यम से उत्पन्न कोई भी अन्य रूप जो अंतरिक्ष या तरलता के तत्वों में,
रूप के एकीकरण या अस्तित्व में,
या शारीरिक पोषण में निर्मित होता है। (iii.) क्या यह पकड़ और अतिक्रमण का मुद्दा नहीं है?

ध्वनि का क्षेत्र, या कोई भी अन्य रूप जो अन्य चार प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्रों में कर्म के कारण नहीं बनता है।

(iv.) क्या यह पकड़ और अप्रभावितता का मुद्दा नहीं है? शारीरिक और मौखिक संकेत, रूप
की हल्कापन,
लचीलापन,
सुगमता,

क्षय, या क्षणभंगुरता, या कोई अन्य रूप जो मौजूद है जो अंतरिक्ष या तरलता के तत्वों में, रूप के एकीकरण या अस्तित्व में, या शारीरिक पोषण में
कर्म के कारण नहीं है ।

[कर्म का कार्य — महान घटना।]

[905-908] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) समझने और महान घटना का मुद्दा?

कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली मूर्त और तरल अवस्था का क्षेत्र।

[पृष्ठ 236] (ii.) क्या यह महान घटना नहीं बल्कि अभिलाषा का मुद्दा है? पाँचों इंद्रियों,
कामुकता,
जीवन शक्ति, या कर्म के फलस्वरूप विद्यमान अन्य कोई भी रूप, अंतरिक्ष के तत्व में,
रूप के एकीकरण या अस्तित्व में,
या शारीरिक पोषण में विद्यमान हैं। (iii.) क्या यह अभिलाषा का मुद्दा नहीं बल्कि महान घटना है?

मूर्त और तरल तत्वों का वह क्षेत्र जो कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होता।

(iv.) क्या यह न तो ग्रहणशीलता का मुद्दा है और न ही कोई महान घटना? ध्वनि का क्षेत्र,
शारीरिक और स्वरीय संकेत, रूप
की हल्कापन,
लचीलापन,
सुगमता,
क्षय
और अनित्यता, या कोई भी अन्य रूप जो कर्म के फलस्वरूप अस्तित्व में नहीं है,

चाहे वह दृश्य रूप, गंध या स्वाद के क्षेत्र में हो,
अंतरिक्ष के तत्व में हो,
रूप के एकीकरण या अस्तित्व में हो,
या शारीरिक पोषण में हो।

[कर्म का कार्य — थोक।]

[909-912] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) स्थूल और स्थूल का मुद्दा? (ii.) स्थूल और सूक्ष्म का मुद्दा? (iii.) स्थूल और स्थूल का मुद्दा नहीं? (iv.) स्थूल और सूक्ष्म का मुद्दा नहीं?[6]

उत्तर क्रमशः अगले पूर्ववर्ती समूह में दिए गए चार उत्तरों से एक को छोड़कर समान हैं (§§ 901-904)।

[कर्म का कार्य — निकटता।]

[913-916] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) क्या यह निकटता और दूरी का मुद्दा है? (ii.) क्या यह निकटता और निकटता का मुद्दा है? (iii.) क्या यह निकटता और दूरी का मुद्दा नहीं है? (iv.) क्या यह निकटता और निकटता का मुद्दा नहीं है?

पिछले समूह (अर्थात, धारा 901-904) में दिए गए उत्तरों के समान उत्तर, लेकिन पहले और दूसरे उत्तरों का क्रम उलट दिया गया है, साथ ही तीसरे और चौथे उत्तरों का क्रम भी उलट दिया गया है।

[पृष्ठ 237] [917-936]

अगले चार-चार के पाँच समूहों में, रूप को
(क) 'पकड़ने का मुद्दा और पकड़ के लिए अनुकूल' और या तो
'दृश्यमान',[7] 'प्रभावित करने वाला', 'एक महान घटना', 'स्थूल' या 'दूरस्थ', या इन पाँचों के विपरीतार्थक शब्दों के क्रमानुसार संयोजन के रूप में माना जाता है; (ख) 'पकड़ने का मुद्दा नहीं, बल्कि पकड़ के लिए अनुकूल' और ऊपर उल्लिखित पाँचों गुणधर्म और उनके विपरीतार्थक शब्द क्रमानुसार।
इस प्रकार प्रश्न पिछले पाँच समूहों (§§ 897-916) के प्रश्नों के समान हैं, और उत्तर भी समान हैं।

[प्रभाव — संकाय।]

[937-940] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) प्रभाव और संकाय?

पांचों इंद्रियों की क्षमताएँ।

(ii.) प्रभाव डालने वाला, न कि संकाय?

इंद्रिय-विषयों के पाँच प्रकार।

(iii.) गैर-प्रभावित और सुविधा?

कामुकता और स्फूर्ति।

(iv.) अप्रभावित और संकाय नहीं?

शारीरिक और मौखिक संकेत... और शारीरिक पोषण।

[प्रभाव — महान घटना।]

[941-944] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) प्रभाव और एक महान घटना? मूर्त का क्षेत्र।

(ii.) प्रभाव डालने वाला और कोई बड़ी घटना नहीं? दृश्य रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के क्षेत्र।

(iii.) गैर-टकराव और एक महान घटना? द्रव तत्व।

(iv.) अप्रभावित और कोई बड़ी घटना नहीं? सेक्स... और शारीरिक पोषण।

[पृष्ठ 238] [संभाव्यता (संभाव्यता) — थोक।]

[945-948] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) संकाय और सकल?

पांचों इंद्रियों की क्षमताएँ।

(ii.) संकाय और सूक्ष्म?

कामुकता और स्फूर्ति।

(iii.) गैर संकाय और सकल?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

(iv.) सरलता और सूक्ष्मता?

सूचना...और शारीरिक पोषण।

[संभाव्यता (संभाव्यता) — निकटता।]

[949-952] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) फैसिड्टी और रिमोट?

कामुकता और स्फूर्ति।

(ii.) संकाय और निकट?

पांचों इंद्रियों की क्षमताएँ।

(iii.) गैर-फैक्टी और दूरस्थ?

सूचना...और शारीरिक पोषण।

(iv.) गैर संकाय और निकट?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

[महान घटना — बल्क।]

[953-956] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) एक महान घटना और स्थूल?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

(ii.) एक महान घटना और सूक्ष्म?

तरल तत्व।

(iii.) कोई बड़ी घटना नहीं और स्थूल?

पांचों इंद्रियों और दृश्य रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के क्षेत्र।

(iv.) कोई बड़ी घटना नहीं, बल्कि सूक्ष्म घटना?

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

[पृष्ठ 239] [महान घटना — निकटता।]

[957-960] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) एक महान घटना और दूरस्थ?

तरल तत्व।

(ii.) एक महान घटना और निकट?

मूर्त वस्तुओं का क्षेत्र।

(iii.) कोई बड़ी घटना नहीं और दूरस्थ?

कामुकता और स्फूर्ति।

(iv.) कोई बड़ी घटना नहीं और निकट?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र और दृश्य रूप, ध्वनि, गंध और स्वाद के क्षेत्र।

[रूप जैसा देखा, सुना, कल्पना किया और समझा गया है।]

[961]

(i.) दृश्य रूप का क्षेत्र देखा गया रूप है, (ii.) ध्वनि का क्षेत्र सुना गया रूप है, (iii.) गंध, स्वाद और स्पर्शनीय का क्षेत्र कल्पित रूप है,[8] [पृष्ठ 240] (iv.) सभी रूप मन द्वारा ज्ञात रूप हैं।[9]

ये चार पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणियाँ हैं।

चार-चार के समूहों का अंत।

- फुटनोट:
1. इस विभाजन में तार्किक विधि काफी परिचित है, अर्थात् (जहाँ बड़े अक्षर सकारात्मक और छोटे अक्षर नकारात्मक पदों को दर्शाते हैं), AB, Ab, aB, ab। संयुक्त युग्म में पहला पद, अपने नकारात्मक के साथ, एक सापेक्ष स्थिरांक है, जिसमें केवल छह ही हैं, अर्थात्, व्युत्पन्न रूप की अवधारणा, कर्म के उत्पाद के रूप में, कर्म को उत्पन्न करने वाले के रूप में (शाब्दिक रूप से, कर्म-संबंधी या कर्म-युक्त), इंद्रियों को प्रभावित करने वाले के रूप में, एक क्षमता के रूप में, और तत्वों में से एक के रूप में (अर्थात, व्युत्पन्न का विपरीत, सकारात्मक रूप से परिकल्पित)।

इन छह में से अंतिम पांच को अपेक्षाकृत परिवर्तनशील शब्द के रूप में उपयोग किया जाता है, जिसमें तीन अन्य को जोड़ा जाता है: स्थूलता या कोमलता, दूरी और दृश्यता के संबंध में रूप की अवधारणा।

2. ध्वनि और कर्म के बारे में, पृष्ठ 201, नोट 4 देखें।

3. धारा 656, नोट 1 देखें।

4. उत्तर में kammassa से पहले na पढ़ें।

5. मुद्रित पाठ में अनुपदिन्नम पढ़ें।

6. इस प्रश्न के उत्तर में मुद्रित पाठ में अपोधातु शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। देखें धारा 892 और 880।

7. पहले प्रश्न के उत्तर में, धारा 917 में, कम्मास्सा से पहले ना पढ़ें।

8. मुतम। मेरा मानना है कि इस समूह के पहले तीन सदस्य एक पुरानी परंपरा के अवशेष हैं, जो उस युग से संबंधित हैं जब पांचों इंद्रियों को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा समन्वित नहीं किया गया था, जैसा कि पहले के बौद्ध संप्रदाय द्वारा किया गया था, और जब मनो और उसका कार्य, जिसे यहां (आंशिक रूप से) इस पुराने भूतकालिक कृदंत द्वारा व्यक्त किया गया है, अधिक अस्पष्ट रूप से समझा जाता था।

उदाहरण के लिए, प्रश्न उपनिषद में, जो अभिधम्म से पुराना हो भी सकता है और नहीं भी, या तो पाँचों इंद्रियों को ऊपर बताए अनुसार मनुष्य के अंतर्गत आँख और कान के रूप में वर्गीकृत किया गया है, या केवल अंतिम दो को ही जीवन के दिव्य तत्वों के समान माना गया है। यदि यह तर्क दिया जाए कि पूर्व व्याख्या तर्कसंगत नहीं है, तो यह याद रखना चाहिए कि कहीं अधिक पुराने बृहदारण्यक उपनिषद (i., 5, 3) में कहा गया है कि मनुष्य द्वारा, जैसे हम पीछे से स्पर्श किए जाने पर जानते हैं।

ऐसा लगता है मानो परंपरा यह कहने का प्रयास कर रही हो कि दृष्टि या श्रवण की सहायता के बिना, गंध, स्वाद और स्पर्श के लिए, बाह्य कारण या संभावित मूर्त मानसिक अनुभूति को समझने के लिए दृष्टि या श्रवण की तुलना में अनुमान, मानसिक निर्माण और कल्पना के अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। बुद्धघोष, जो यहाँ अपने दृष्टांत (असल. 338) को पुनः प्रस्तुत करते हैं, mutam का अर्थ munitva janitabbatthena और phusitva pi nanuppattikaranato से लगाते हैं।

9.मनसा विन्नतम अर्थात मनोविन्नानेन जनितब्बम। वही.
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 5

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय V - पंचस्तरीय दृष्टिकोण के अंतर्गत रूप की श्रेणी
पंचविधेना रूपासंगहो
[पृष्ठ 241] [962-966] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) पृथ्वी-तत्व (पथवि-धातु)?[1]

जो कठोर,
खुरदरा,
कठोरता,
दृढ़ता है, चाहे वह स्वयं का हो,[2] या बाह्य,
या पकड़ का परिणाम हो,[3] या पकड़ का परिणाम न हो। [पृष्ठ 242] (ii.) द्रव-तत्व (अपोधातु)?

जो तरल है, तरल से संबंधित है,
चिपचिपा है, जो चिपचिपा है उससे संबंधित है,
रूप की एकजुटता, चाहे वह स्वयं की हो,
या बाह्य हो,
या पकड़ का मुद्दा
हो या न हो, पकड़ का मुद्दा हो।[4] (iii.) ज्वाला-तत्व (तेजोधातु)?[5]

जो ज्वाला है, ज्वाला से संबंधित है,
ऊष्मा है, ऊष्मा से संबंधित है,
गर्म है, जो गर्म है उससे संबंधित है, चाहे वह स्वयं का हो,
या इत्यादि, [जैसा कि पहले में है जारी रखें]।

(iv.) वायु-तत्व (वयोधातु)?

जो हवा है, वह हवा से संबंधित है [उतार-चढ़ाव], रूप का
मुद्रास्फीति,[6]
चाहे वह स्वयं का हो,
या, आदि। [पृष्ठ 243] (क्रिया) व्युत्पन्न?[7]

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र... और ठोस पोषण।

इस प्रकार, पांच पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी है।

पांच सदस्यों के समूह का अंत।

- फुटनोट:

1. पृथ्वी तत्व का आवश्यक लक्षण (लक्खनम्) 'कठोरता' (कक्खलट्टम्, एएसएल, 332) बताया गया है। संभवतः बौद्धों के लिए इसका अर्थ वही रहा होगा जो हम 'ठोस' से समझते हैं, क्योंकि इसका तात्पर्य घनत्व से है, न कि तरल या गैसीय अवस्था से, और कठोरता के स्थान पर ठोसता शब्द का प्रयोग करना आकर्षक रहा होगा। लेकिन पहला शब्द अस्पष्ट है, क्योंकि इसका अर्थ समतल सतह का विपरीत हो सकता है, और कक्खलट्टम् को इस अर्थ में विवश नहीं किया जा सकता। फिर, दूसरे शब्द का विपरीत न तो तरल है और न ही समतल, बल्कि नरम या लचीला है। इसके अलावा, मिल. 67 में बजरी या पत्थर के वर्णन में इसके प्रयोग की तुलना करें, जहाँ हमें निश्चित रूप से 'कठोर' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। पथविधातु के अन्य लक्षण आधार स्थापित करना (पतित्तनम्) और स्वीकार करना (संपच्चनम्) बताए गए हैं, बाद वाले शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है।

2. अज्हट्टम. धारा 673, टिप्पणी, और धारा 742, टिप्पणी देखें।

3. टीका के पृष्ठ 338 पर, जहाँ उपादिन्नम को न कम्मसमुत्थनम एव कहा गया है, वहाँ ऋणात्मक कण किसी त्रुटि के कारण आ गया होगा, क्योंकि उपादिन्नम मूलतः कर्म के कारण होता है। देखें ध. एस., §§ 653,* 654; एएसएल, पृष्ठ 46, 337 (§ 664), आदि। बुद्धघोष कहते हैं कि सामान्यतः यहाँ शरीर की अस्थि संरचना (स्वयं का सबसे ठोस भाग, शरीरत्तकम) का उल्लेख है। क्योंकि यह उपादिन्नम हो भी सकता है और नहीं भी, जब इसे ग्रहण की गई, पकड़ी गई या संक्रमित की गई वस्तु के रूप में दर्शाया जाता है, तो यह पूरी तरह से ग्रहण का परिणाम होता है।

4. धारा 652, टिप्पणी देखें। अपोधातु के आवश्यक लक्षण प्रवाह (पग्घरनम), विस्तार या फैलाव (ब्रुहनम, सीजे. पृ. 12, टिप्पणी 3, मिल. 317) और संघ (संगहो, अस्ल., वही) बताए गए हैं। अंतिम शब्द संभवतः उस बात को व्यक्त करने का प्रयास हो सकता है जिसे हम मोटे तौर पर 'पानी हमेशा अपना स्तर स्वयं खोज लेता है' कहते हैं। आंतरिक या व्यक्तिगत अपो पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, सीरम, आँसू आदि के रूप में वितरित होता है। एम. आई. 42.

5. बौद्ध ग्रंथों में कभी भी अग्गी या अग्नि का उल्लेख नहीं है। इसके आवश्यक गुण (असल., वही) ऊष्मा, पकना, परिपक्व होना (परिपचनम) और कोमल होना बताए गए हैं। ऊष्मा के कारण ही भोजन और पेय पदार्थ पचते हैं। एम,, लोक. सिट.

6. पाठ में यहाँ चंबित्तत्तम् और थम्भितत्तम् दोनों का उल्लेख है, जिनका अर्थ है उतार-चढ़ाव (कंपन) और मुद्रास्फीति। हालाँकि, अत्थसालिनी में कहीं भी पहले शब्द का प्रयोग वायु के लिए नहीं किया गया है; बाद वाले शब्द को, जिसमें 'वि-' का प्रयोग अधिक प्रभावी है, वायु का विशिष्ट चिह्न बताया गया है, इस तत्व की अन्य विशेषताएँ हैं आगे की ओर गति (समुदिरणम्) और नीचे की ओर बल (अभिनिहारम् - sic lege, Cfl D. i.*76; M. i. 119; Asl. 332)। बुद्धघोष चंबित्तत्तम् पर मौन रहते हैं, लेकिन थम्भितत्तम् की व्याख्या करते हैं। यद्यपि यह निश्चित रूप से निर्णायक नहीं है, फिर भी तरलता के वर्णन में समानांतर शब्द बंधनत्तम् रूपासा (सामंजस्य) के लिए केवल एक ही शब्द थम्भितत्तम् रूपासा ही उपयुक्त प्रतीत होता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि के. चंबित्तत्तम् को छोड़ देते हैं। इन सभी आधारों पर, मुझे इस शब्द के मूल समावेश पर संदेह करने की प्रवृत्ति होगी। वायो की विशेषता को दर्शाने के लिए चुना गया उदाहरण कमल और नरकट के आवरण या तनों का है जो 'हवा से भरे' होते हैं, या पवन (वातपुन्नानी) से भरे होते हैं।

7. व्युत्पन्न (अप ए दा) (i.) से (iv.) का विलोम है। धारा 647, 648 देखें।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 6

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय VI - छह पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 244] [967]

(i.) दृश्य रूपों का क्षेत्र दृष्टि द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप है, (ii.) ध्वनियों का क्षेत्र श्रवण द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप है, (iii.) गंधों का क्षेत्र सूंघने द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप है, (iv.) स्वादों का क्षेत्र स्वाद द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप है, (v.) स्पर्शनीय रूपों का क्षेत्र देह-संवेदना द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप है। (vi.) सभी रूप मन द्वारा अनुभव किए जाने योग्य रूप हैं।

इस प्रकार, छह पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी है।

छह सदस्यों के समूह का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 7

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय VII - सात पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 245] [968]

(i.) दृश्य रूप का क्षेत्र वह रूप है जिसे दृष्टि द्वारा जाना जा सकता है, (ii.) ध्वनि का क्षेत्र वह रूप है जिसे श्रवण द्वारा जाना जा सकता है, (iii.) गंध का क्षेत्र वह रूप है जिसे सूंघने द्वारा जाना जा सकता है, (iv.) स्वाद का क्षेत्र वह रूप है जिसे स्वाद द्वारा जाना जा सकता है, (v.) स्पर्शनीय का क्षेत्र वह रूप है जिसे शरीर की संवेदनाओं द्वारा जाना जा सकता है।

[969]

(vi.) दृश्य रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्शनीय रूप के क्षेत्र विचारणीय तत्व द्वारा बोधगम्य रूप हैं। (vii.) समस्त रूप प्रतिनिधिक बोधगम्य रूप हैं।

इस प्रकार सात पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी है।

ग्रुप ऑफ सेवन का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 8

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय VIII - आठ पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 246] [970]

(i.) दृश्य रूप का क्षेत्र वह रूप है जिसे आँख से जाना जा सकता है। (ii.) ध्वनि का क्षेत्र वह रूप है जिसे कान से जाना जा सकता है। (iii.) गंध का क्षेत्र वह रूप है जिसे नाक से जाना जा सकता है। (iv.) स्वाद का क्षेत्र वह रूप है जिसे जीभ से जाना जा सकता है। (v.) स्पर्श द्वारा प्राप्त होने वाला सुखद स्पर्श वह रूप है जिसे शरीर द्वारा जाना जा सकता है। (vi.) स्पर्श द्वारा प्राप्त होने वाला अप्रिय स्पर्श वह रूप है जिसे शरीर द्वारा जाना जा सकता है। (vii.) पाँच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र वे रूप हैं जिन्हें विचार द्वारा जाना जा सकता है। (viii.) सभी रूप वे रूप हैं जिन्हें प्रतिनिधिक बोध द्वारा समझा जा सकता है।

इस प्रकार, आठ पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी है।

ग्रुप ऑफ एट का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 9

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय IX - नौ गुना पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 247] [971-973] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) दृष्टि की क्षमता? (ii.) श्रवण की क्षमता? (iii.) गंध की क्षमता? (iv.) स्वाद की क्षमता? (v.) शारीरिक संवेदनशीलता की क्षमता? (vi.) नारीत्व की संभाव्यता? (vii.) पुरुषत्व की संभाव्यता? (viii.) जीवन शक्ति की संभाव्यता?

आठ उत्तर वे हैं जो आठ संकायों या संभाव्यताओं के मूल विवरणों में दिए गए हैं (§§ 597, 601, 605, 609, 613, 633-535)।

(ix.) वह कौन सा रूप है जो फैकल्टी नहीं है? पाँच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र . . .[1] और शारीरिक पोषण।

नौ पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी ऐसी ही होती है।

ग्रुप ऑफ नाइन का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 10

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय X - दस गुना पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 248] [974, 975]

पहले आठ प्रश्न और उत्तर पिछले समूह के पहले आठ प्रश्नों और उत्तरों के समान हैं।

[976, 977] वह कौन सा रूप है जो है

(ix.) संकाय नहीं बल्कि प्रभाव डालने वाला?

पांच प्रकार के इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र।

(x.) नॉटफैसिड्टी और नॉन इम्पिंगिंग?

सूचना . . .[1] और शारीरिक पोषण.

इस प्रकार दस पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी है।

दस सदस्यों के समूह का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक 2-अध्याय 11

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 2 - प्रपत्र

अध्याय XI - ग्यारह गुना पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी
[पृष्ठ 249] [978, 979] वह कौन सा रूप है जो है

(i.) दृष्टि का क्षेत्र? (ii.) श्रवण का क्षेत्र? (iii.) गंध का क्षेत्र? (iv.) स्वाद का क्षेत्र? (v.) शारीरिक संवेदनशीलता का क्षेत्र? (vi.) दृश्य रूप का क्षेत्र? (vii.) ध्वनि का क्षेत्र? (viii.) गंध का क्षेत्र? (ix.) स्वादों का क्षेत्र? (x.) स्पर्शनीय का क्षेत्र?

उत्तर क्रमशः धारा 597, 601, 605, 609, 613, 617, 621, 625, 629, 649 के अनुसार हैं।

[980]

(xi.) वह कौन सा रूप है जो अदृश्य, अप्रभावित और [मानसिक] अवस्थाओं के क्षेत्र में समाहित है?[1]

यौन संबंध...और शारीरिक पोषण।

ग्यारह पहलुओं के अंतर्गत रूप की श्रेणी ऐसी ही होती है।

ग्यारह सदस्यों के समूह का अंत।

प्रपत्र के विभाजन का अंत।

पाठ के लिए आठवें भाग का अंत।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पाली-अंग्रेजी संस्करण-अध्याय 3

धम्मसंगनी अध्याय 3

3. निक्खेपकण्डं

टिकानिकखेपं

985. कटमे धम्म कुसल? तिनि कुसलमूलानि – अलोभो, अदोसो, अमोहो; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म कुसल।

986. कतमे धम्म अकुसाला? तिनि अकुशलमुलानि – लोभो, दोसो, मोहो; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म अकुशला।

987. कटमे धम्म अभ्यक्ता? कुसलकुशलानं धम्मनां विपाक कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्खन्धो, संनाक्खन्धो, संखारक्खन्धो, विनान्नक्खन्धो; ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाक; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अभ्यक्ता।

988. कतमे धम्म सुखाय वेदनाय संपयुत्ता? सुखाभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अपरियापन्ने, सुखं वेदानां थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खन्धो, शंखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म सुखाय वेदनाय संपयुत्ता।

989. कतमे धम्म दुक्खाय वेदनाय संपयुत्ता? दुक्खभूमियं कामवकेरे, दुक्खं वेदानां थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो – इमे धम्म दुक्खाय वेदनाय संपयुत्ता।

990. कतमे धम्म अदुक्खमसुखाय वेदनाय संपयुत्ता? अदुक्खमासुखभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अरूपावकेरे, अपरियापन्ने, अदुक्खमासुखं वेदानां थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खन्धो, शंखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो – इमे धम्म अदुक्खमसुखाय वेदनाय संपयुत्ता।

991. कटमे धम्म विपाका? कुसलकुशलानं धम्मनां विपाक कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म विपाका।

992. कतमे धम्म विपाकधम्मधम्म? कुसलकुशल धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो - इमे धम्म विपाकधम्मधम्म।

993. कतमे धम्म नेवविपाकनविपकधम्मधम्म? ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाक, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नेवविपाकनविपकधम्मधम्म।

994. कतमे धम्म उपादिन्नुपादनीय? सासव कुसलकुशलानं धम्मनं विपाक कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; यञ्च रूपं कम्मास्सा कटत्ता - इमे धम्म उपादिनुपदनीय।

995. कतमे धम्म अनुपादिनुपादनीय? सासव कुसलकुशल धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाक; यञ्च रूपं न कम्मास्सा कटत्ता - इमे धम्म अनुपादिनुपदनीय।

996. कतमे धम्म अनुपादिन्नुपादनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलानि च, असन्खता च धातु - इमे धम्म अनुपदीननुपदनीय।

997. कतमे धम्म सांकिलिट्ठसंकिलेसिका? तिनि अकुशलमुलानि — लोभो, दोसो, मोहो; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म संकिलिट्ठसंकिलेसिका।

998. कतमे धम्म असांकिलीठसंकिलेसिका? सासाव कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपक्खन्धो, वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विणनक्खन्धो - इमे धम्म असंकिलित्थसंकिलेशिका।

999. कतमे धम्म असांकिलित्थासन्किलेसिका? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म असांकिलीथसासंकिलेसिका।

1000. कतमे धम्म सवितक्कसविचार:? सवित्तक्कसविचराभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अपरियापन्न, वितक्कविचारे थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो - इमे धम्म सवितक्कसविचार।

1001. कतमे धम्म अवितक्कविचारमत्ता? अवितक्कविचारमत्तभूमियं रूपावकेरे, अपरियापन्न, विचारं थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो - इमे धम्म अवित्तक्कविचारमत्ता।

1002. कतमे धम्म अवित्तक्काविचार? अवित्तक्काविचारभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अरूपावकेरे, अपरियापन्ने; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अवित्तक्काविचार।

1003. कतमे धम्म पितिसाहगता? पितिभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अपरियापन्न, पितिम थापेत्वा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो - इमे धम्म पितिसाहगता।

1004. कतमे धम्म सुखसहगाता? सुखाभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अपरियापन्ने, सुखं थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म सुखसहगता।

1005. कतमे धम्म उपेक्खसहगता? उपेक्खभूमियं कामवकेरे, रूपावकेरे, अरूपावकेरे, अपरियापन्न, उपेक्खं थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म उपेक्खसहगता।

1006. कतमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा? तिनि संयोगनि - सक्कयादिति, विचिकीच्चा, सिलब्बतपरमसो।

1007. तत्थ कतामा सक्कयादिति? इधा अस्सुत्वा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावि अरियाधम्मस्सा अकोविदो अरियाधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानां अदस्सावि सप्पुरिसाधम्मस्सा अकोविदो सप्पुरिसाधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवंतम् वा अत्तनं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मि वा अत्तनं। वेदानां अट्टतो समनुपस्सति, वेदनावंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा वेदानां, वेदनाय वा अत्तनं। सन्न्यां अत्ततो समनुपस्सति, सन्नावंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा सन्न्यां, सान्याय वा अत्तानाम्। संखरे अत्ततो समनुपस्सति, संखरावन्तं वा अत्तनं, अत्तनि वा संखरे, संखरेसु वा अत्तनं। विनाणं अट्टतो समनुपस्सति, विनाणवंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा विनानां, विनानास्मिं वा अत्तनं। या एवरुपा दितिथि दितिथिगतं दितिथिगहनम् दितिथिकांतारो दितिविशुकायिकाम् [दिथिविसुकायितम् (सि.)] दितिविविप्फंडितम् दितिथिसांयोजनं गाहो पतिग्गाहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्छट्टं तिथथायतनं विपरियासग्गहो — अयं वुकाति सक्कयदिति।

1008. तथा कतमा विचिकीच्चा? सत्थरि कंखति विकिसिच्छति, धम्मे कंखति विकिसिच्छति, संघे कंखति विकिसिच्छति, सिक्खाय कंखाति विचिकिचति, पुब्बंते कंखति विचिकिचति, अपरंते कंखति विकिसिच्छति, पब्बंतापरंते कंखति विचिकिचति, इदप्पक्कयता पतिच्चासमुप्पन्नेसु धम्मेसु कंखति विकिकिचति। या एवरुपा कंखा कंखायणा कंखायितट्टं विमति विकिसिच्चा द्वेधाकं द्वेधापथो संसयो अनेकंसग्गाहो असप्पना परिस्पना अपरियोगहाना थंभितत्तम् चित्तस्स मनोविलेखो - अयं वुक्काति विकिसिच्चा।

1009. तत्थ कतमो सिलब्बतपरमसो? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं 'सिलेन शुद्धि, वतेन शुद्धि, सिलब्बतेन शुद्धि' या एवरूपा दिदिथिगतं दितिघहनं दितिकांतरो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतिग्गहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तित्थायतनं विपरियासग्गहो — अयं वुकाति sīlabbataparāmāso.

1010. इमानी तिनि संयोगनि; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मं वाचिकम्मं मनोकम्मम् - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा।

1011. कटमे धम्म भवनाय पहतब्बा? अवसेसो लोभो, दोसो, मोहो; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म भवनाय पहतब्बा।

1012. कतमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतब्बा? कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो ; सब्बनचा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतब्बा।

1013. कतमे धम्म दस्सानेन पहतबहेतुका? तिनि संयोगनि - सक्कयादिति, विचिकीच्चा, सिलब्बतपरमसो।

1014. तत्थ कतामा सक्कयादिति...पे... अयं वुच्चति सक्कयादितिथि।

1015. तत्थ कतमा विसिकिच्चा...पे... अयं वुक्कति विसिकिच्चा।

1016. तत्थ कतमो सिलब्बतपरमासो...पे... अयं वुकाति सिलब्बतपरमासो।

1017. इमानि तिनि संयोगनि; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बहेतुका। तिनि संयोगनि - सक्कयादिथि, विचिच्चा, सिलब्बतपरमसो - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा। तदेकठो लोभो, दोसो, मोहो — इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बहेतु। तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बहेतुका।

1018. कतमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका? अवसेसो लोभो, दोसो, मोहो – इमे धम्म भवनाय पहतबहेतु। तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म भवनाय पहतब्बहेतुका।

1019. कतमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतबहेतुका? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामावचरा रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्खन्धो, संनाक्खन्धो, संखारक्खन्धो, विनान्नक्खन्धो; सब्बनचा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतबहेतुका।

1020. कतमे धम्म अचयागमिनो? सासव कुसलकुशल धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्खन्धो...पे... विनाणक्खन्धो - इमे धम्म अचायागामिनो।

1021. कतमे धम्म अपाकायगामिनो? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना - इमे धम्म अपाकायगामिनो।

1022. कतमे धम्म नेवा अचायागामी न अपाकायागामिनो? कुसलकुशलानं धम्मनां विपाक कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाक; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नेव अचयागामी न अपाकयागामिनो।

1023. कतमे धम्म सेक्खा? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना, हेथिमानी च तिनि समानाफलनि - इमे धम्म सेक्खा।

1024. कतमे धम्म असेक्खा? उपरिथिमं [उपरीमं (स्या.)] अरहट्टफलं - इमे धम्म असेक्खा।

1025. कटमे धम्म नेवासेक्खानासेक्खा? ते धम्मे थपेत्वा, अवसेसा कुशलाकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नेवासेक्खानासेक्खा।

1026. कतमे धम्म परित्ता? सब्बेव कामवचरा कुसलकुशलब्यकाता धम्म; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म परित्ता।

1027. कटमे धम्म महग्गता? रूपावचारा, अरूपावचारा, कुसलब्यकाता धम्म; वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म महग्गता।

1028. कटमे धम्म अप्पमना? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अप्पमाना।

1029. कटमे धम्म परित्तरम्मना? परिते धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म परित्तरम्मना।

1030. कटमे धम्म महग्गतरम्मना? महग्गते धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म महग्गतरम्मना।

1031. कटमे धम्म अप्पमानारमन्ना? अप्पमने धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म अप्पमानरामनना।

1032. कतमे धम्म हिना? तिनि अकुशलमुलानि – लोभो, दोसो, मोहो; तदेकत्था च किलेसा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म हीना।

1033. कतमे धम्म मज्झिमा? सासाव कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, रूपकखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म मज्झिमा।

1034. कतमे धम्म पनिता? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म पनिता।

1035. कतमे धम्म मिच्चत्तनीयता? पञ्च कम्मानि अनंतारिकानि, या च मिच्छदिथिनियता - इमे धम्म मिच्छत्तनियाता।

1036. कतमे धम्म सम्मत्नियता? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना - इमे धम्म सम्मत्तनीयता।

1037. कतमे धम्म अनियता? ते धम्मे थपेत्वा, अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अनियता।

1038. कतमे धम्म मग्गरम्मना? अरियामग्गं अरब्भा ये उप्पजंति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म मग्गरमण।

1039. कतमे धम्म मग्गहेतुका? अरियामग्गसामंगिस्सा मग्गंगनि थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म मग्गहेतुका। अरियामग्गासांगिसा सम्मादिथि मग्गो सेवा हेतु च, सम्मादिथिं थपेत्वा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्ननाक्खण्डहो - इमे धम्म मग्गहेतुका। अरियामग्गासमंगिसा अलोभो, अदोसो, अमोहो — इमे धम्म मग्गहेतु। तंसम्पायुत्तो वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म मग्गहेतुका।

1040. कतमे धम्म मग्गाधिपतिनो? अरियामग्गं अधिपतिं करित्वा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म मग्गाधिपतिनो। अरियामग्गसामन्गिस्सा विमानसाधिपतेयं मग्गं भावयंतस्सा विमानसं थपेत्वा; तंसम्पायुत्तो वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म मग्गाधिपतिनो।

1041. कतमे धम्म उप्पन्ना? ये धम्म जाता भूत संजाता निब्बट्टा अभिनिब्बट्टा पतुभूता उप्पन्ना समुप्पन्ना उत्थिता समुत्थिता उप्पन्ना उप्पन्नसेन संघहिता, रूपं [रूपा (बहुसु)], वेदाना, सन्ना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म उप्पन्ना।

1042. कतमे धम्म अनुप्पन्ना? ये धम्म अजात अभूत असंजता अनिब्बत्ता अनभिनिब्बत्ता अपातुभूता अनुप्पन्ना असामुप्पन्ना अनुथिता असामुथिता अनुप्पन्ना अनुप्पन्नासेना संघहिता, रूपं, वेदना, संना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म अनुप्पन्ना।

1043. कतमे धम्म उप्पादिनो? कुसलकुशलानं धम्मनां अविपक्कविपाकनं विपाका कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; यञ्च रूपं कम्मास्सा कटत्ता उप्पज्जिसति — इमे धम्म उप्पादिनो।

1044. कतमे धम्म अतिता? ये धम्म अतिता निरुद्ध विगत विपरिणता अथंगता अबभट्टंगता उप्पज्जित्वा विगता अतीता अतितानसेना संघहिता, रूपं, वेदाना, सन्ना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म अतिता।

1045. कतमे धम्म अनागता? ये धम्म अजात अभूत असंजता अनिब्बत्ता अनाभिनिब्बत्ता अपातुभूता अनुप्पन्ना असामुप्पन्ना अनुथिता असामुथिता अनागत अनागतसेन संगहिता, रूपं, वेदना, संना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म अनागता।

1046. कतमे धम्म पच्चुप्पन्ना? ये धम्म जाता भूत संजाता निब्बट्टा अभिनिब्बट्टा पतुभूता उप्पन्ना समुप्पन्ना उत्थिता समुत्थिता पच्चुप्पन्ना पच्चुप्पन्नसेना संघहिता, रूपं, वेदना, संना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म पच्चुप्पन्ना।

1047. कतमे धम्म अतितरम्मना? अतिते धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसिटासिका धम्म - इमे धम्म अतितरम्मना।

1048. कतमे धम्म अनागतारम्मना? अनागते धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म अनागतारम्मना।

1049. कटमे धम्म पच्चुप्पन्नारम्मना? पक्कुप्पन्ने धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म पच्चुप्पन्नरमण्णा।

1050. कतमे धम्म अज्झट्टा? ये धम्म तेसं तेसं सत्तानं अज्झट्टं पच्चट्टं नियतं पतिपुग्गलिका उपादिन्ना, रूपं, वेदाना, संना, संखरा, विनाना - इमे धम्म अज्झट्टा।

1051. कतमे धम्म बहिद्धा? ये धम्म तेसं तेसं परसत्तनं परपुग्गलानं अज्झट्टं पच्चट्टं नियतं पतिपुग्गलिका उपादिन्ना, रूपं, वेदाना, सन्ना, संखारा, विनाणं - इमे धम्म बहिद्धा।

1052. कतमे धम्म अज्झत्तबहिद्धा? तदुभयं — इमे धम्म अज्झत्तबहिद्धा।

1053. कटमे धम्म अज्झत्तरम्मना? अजज्जते धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म अजज्जतरम्मना।

1054. कतमे धम्म बहिद्धारम्मना? बहिद्ध धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म बहिद्धारम्मना।

1055. कतमे धम्म अजज्जत्तबहिद्धारम्मना? अज्झट्टबहिद्ध धम्मे अरब्भा ये उप्पज्जन्ति चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म अजज्जट्टबहिद्धारम्मना।

1056. कतमे धम्म सन्निदस्सानसप्पतिघा? रूपायतनं - इमे धम्म सानिदासंससप्पतिघा।

1057. कतमे धम्म अनिदस्सानसप्पतिघा? चक्खायतनं, सोतायतनं, घनायतनं, जीवायतनं, कायायतनं, सद्दायतनं, गंधायतनं, रसायतनं, फोथ्हब्बायतनं - इमे धम्म अनिदासनसाप्पतिघा।

1058. कतमे धम्म अनिदासनप्पतिघा? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो; यञ्च रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं; असंखता च धातु - इमे धम्म अनिदासनप्पातिघा।

Tikaṃ.

दुकनिकखेपं

हेतुगोच्चकं

1059. कतमे धम्म हेतु? तयो कुसलहेतु, तयो अकुशलहेतु, तयो अभ्याकहेतु, नव कामवचराहेतु च रूपवचराहेतु, च अरूपवचराहेतु, च अपरियापन्नाहेतु।

1060. तथा कतामे तैयो कुशलहेतु? अलोभो, अदोसो, अमोहो।

1061. तत्थ कतमो अलोभो? यो अलोभो अलुभना अलुभितट्टं असरगो असराज्जना असरज्जितत्तं अनाभिज्ज अलोभो कुसलमूलं - अयं वुच्चति अलोभो।

1062. तत्थ काटामो अदोसो? यो अदोसो अदुस्साना अदुस्सीत्तं मेत्ति मेट्टयाना मेत्तयितत्तं अनुदा अनुदायान अनुदायितत्तं हितेसिता अनुकम्पा अब्यपादो अब्यपज्जो अदोसो कुसलमूलम् - अयं वुक्काति अदोसो।

1063. Tattha katamo amoho? दुक्खे नाणं, दुक्खसमुदाय नाणं, दुक्खनिरोधे नाणं, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपदाय नाणं, पुब्बंते नाणं, अपरंते नानणं, पुब्बनतापरंते नानणं, इदप्पाचयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु सानणं, या एवरूप पणना पजानन विकयो पविकयो धम्मविकयो सल्लक्खाना उपलक्खना पक्कुपलक्खाना पण्डिकचं कोसलं नेपुन्नं वेभब्या चिंता उपपरिक्खा भूरि मेधा परिणायिका विपश्यना सम्पजान्नं पटोदो पणिन पणिनिन्द्रियम् पन्नबलं पन्नसत्थं पन्नपसाददो पणनालोको पणनाओभासो पणनपज्जतो पणनरत्नं अमोहो धम्मविकयो सम्मदिति - अयं वुक्कति अमोहो.

Ime tayo kusalaheū.

1064. तत्थ कतामे तैयो अक्सलहेतु? लोभो, दोसो, मोहो।

1065. Tattha katamo lobho? यो रागो सारागो अनुनायो अनुरोधो नंदी नंदीरागो [नंदीरागो (सि.)] चित्तस्स सारागो इच्छा मुच्चा अज्जहोसानं गेधो पालीगेधो सांगो पांको एजा माया जनिका संजननि सिब्बिनी [सिब्बानी (सि.)] जालिनि सरिता विसात्तिका सुत्तं विसाता अयुहिनि [अयुहनि (सि. स्या.)] दुतिया पाणिधि भवनेति वनं वनाथो संथावो सिनेहो अपेक्खा पतिबंधु के तौर पर असीसाना असीसितत्तम् [आसिसन असीसितत्तम (सि. स्या.)] रूपासा सद्दासा गंधासा रसासा फोथब्बासा लाभासा धनासा पुत्तसा जीवितसा जप्पा पजप्पा अभिजप्पा जप्पा जप्पा जप्पना जप्पीत्तं लोलुप्पं लोलुप्पयाना लोलुप्पयितट्टं पुच्चानजिकाता [पुञ्चिकता (स्या.) पुच्चिकता (सी.)] साधुकमायता अधम्मरागो विस्मालोभो निकांति निष्कामना पत्तन पिहना संपतन कामतंहा भवतंहा विभावतंहा रूपतंह अरूपतंहा निरोधतंहा रूपतंहा सद्दतंहा गंधतंहा रसतंहा फोथब्बतंहा धम्मतंहा ओघो योगो गांठो उपादानं अवरणं निवारणं चादानं बंधनं उपक्किलसो अनुसयो परियुत्थानं लता वेविचं दुक्खमूलं दुक्खनिदानं दुक्खप्पभावो मरापासो मरबसिसं माराविसयो तन्हानादि तन्हाजलं तन्हागद्दुलं तन्हासमुद्दो अभिज्ज लोभो अकुसलमूलं - अयं वुच्चति लोभो।

1066. तत्थ कतमो दोसो? अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, अनात्थम् मे कैरातिति अघातो जयति, अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, पियास्सा मे मनपास्सा अनात्थम् अचरी...पे... अनात्थम् चरति...पे... अनात्थम् कैरिसतिति अघाटो जयति, अप्पियास्सा मे अमानपासा अत्थं अचरी...पे... अत्थं कैरति...पे... अत्थं कैरिसतिति अघाटो जयति, अट्ठाने वा पण अघाटो जयति। यो इवरूपो सीतास्स अघाटो पतिघातो पतिघं पतिविरोधो कोपो पाकोपो संपककोपो दोसो पदोसो संपदोसो सीतास्स बयापत्ति मनोपदोसो कोधो कुज्जहना कुज्जितट्टं दोसो दुस्साना दुस्सीत्तं बयापत्ति ब्यापजना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पतिविरोधो चंडिक्कं असुरोपो अनत्तमनाता चित्तस्स - अयं वुक्काति दोसो।

1067. तत्थ कतमो मोहो? दुक्खे अण्णां, दुक्खसमुदाय अण्णां, दुक्खनिरोधे अण्णां, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपादया अण्णां, पुब्बंते अण्णाण्, अपरंते अण्णाणं, पुब्बनतापरंते अण्णाणं, इदप्पक्कयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु अण्णाणं, यम इवरूपं अण्णाणं अडस्सणं अनाभिसमायो अनुबोधो असम्बोधो अप्पतिवेधो असंगहना अपरियोगहना असमापेक्खना अपाचक्कवेखना अपाक्कक्खकम्मं दुम्मेजझां बल्यां असंपजान्नं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जघो अविज्जयोगो अविज्जानुसयो अविज्जापरियुत्थानं अविज्जलंगी मोहो अकुशलमूलं - अयं वुकाति मोहो।

Ime tayo akusalahetū.

1068. तत्थ कतामे तैयो अभ्यकथेतु? कुसलानां वा धम्मनां विपाकाटो किरियाब्यकतेसु वा धम्मेसु अलोभो अदोसो अमोहो - इमे तयो अभ्याकथेतु।

1069. तत्थ कतमे नव कामवचराहेतु? तयो कुशलहेतु, तयो अकुशलहेतु, तयो अभ्याकहेतु - इमे नव कामवचराहेतु।

1070. तत्थ कतमे च रूपावचराहेतु? तयो कुसलहेतु, तयो अभ्यकहेतु - इमे च रूपावचराहेतु।

1071. तत्थ कतामे च अरूपावचराहेतु? तयो कुसलहेतु, तयो अभ्याकहेतु - इमे च अरूपावचराहेतु।

1072. तत्थ कतामे च अपरियापन्नहेतु? तयो कुशलहेतु, तयो अभ्याकहेतु - इमे च अपरियापन्नाहेतु।

1073. तथा कतामे तैयो कुशलहेतु? अलोभो, अदोसो, अमोहो।

1074. तत्थ कतमो अलोभो? यो अलोभो अलुभना अलुभितट्टं असरगो असराज्जना असरञ्जितत्तं अनाभिज्ज अलोभो कुसलमूलं - अयं वुच्चति अलोभो।

1075. तत्थ काटामो अदोसो? यो अदोसो अदुस्साना अदुस्सीत्तं...पे... अब्यपादो अब्यपज्जो अदोसो कुसलमूलं - अयं वुक्काति अदोसो।

1076. Tattha katamo amoho ? दुक्खे नाणं, दुक्खसमुदाय नाणं, दुक्खनिरोधे नाणं, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपदाय नाणं, पुब्बंते नाणं, अपरंते नानणं, पुब्बनतापरंते नानणं, इदप्पाचयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु सानणं, या एवरूप पणना पजानन विकयो पविकयो धम्मविकयो सल्लक्खाना उपलक्खना पक्कुपलक्खाना पण्डिकचं कोसलं नेपुन्नं वेभब्या चिंता उपपरिक्खा भूरि मेधा परिणायिका विपश्यना सम्पजान्नं पटोदो पणिन पणिनिन्द्रियम् पन्नबलं पन्नसत्थं पन्नपसाददो पणनालोको पणनाओभासो पणनपजजोतो पणनरत्नं अमोहो धम्मविकायो सम्मदिथि धम्मविकयसंबोझाङ्गो मग्गंगं मग्गपरियापन्नं - अयं वुच्चति अमोहो।

Ime tayo kusalaheū.

1077. तत्थ कतामे तैयो अभ्यकथेतु? कुसलानां धम्मनां विपाकतो अलोभो अदोसो अमोहो - इमे तयो अभ्यकथेतु। इमे च अपरियापन्नहेतु - इमे धम्महेतु।

1078. कतमे धम्म न हेतु? ते धम्मे थपेत्वा, अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म न हेतु।

1079. कतमे धम्म सहेतुका? तेहि धम्मेहि ये धम्म सहेतुका वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म सहेतुका।

1080. कतमे धम्म अहेतुका? तेहि धम्मेहि ये धम्म अहेतुका वेदनाक्खन्धो...पे... विनाणक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अहेतुका।

1081. कतमे धम्म हेतुसम्पायुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो — इमे धम्म हेतुसंपयुत्ता।

1082. कतमे धम्म हेतुविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म हेतुविप्पयुत्ता।

1083. कतमे धम्म हेतु सेवा सहेतुका च? लोभो मोहेना हेतु सेवा सहेतुको सीए, मोहो लोभेना हेतु सेवा सहेतुको सीए, दोसो मोहेना हेतु सेवा सहेतुको सीए, मोहो दोसेना हेतु सेवा सहेतुको सीए; अलोभो अदोसो अमोहो, ते अण्णामन्नं हेतु सेवा सहेतुका च - इमे धम्म हेतु सेवा सहेतुका च।

1084. कतमे धम्म सहेतुका सेवा न च हेतु? तेहि धम्मेहि ये धम्म सहेतुका ते धम्मे थपेत्वा, वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म सहेतुका सेवा न च हेतु।

1085. कतमे धम्म हेतु सेवा हेतुसम्पायुत्त च? लोभो मोहेना हेतु सेवा हेतुसंपायुत्तो सीए, मोहो लोभेना हेतु सेवा हेतुसंपायुत्तो सीए, दोसो मोहेना हेतु सेवा हेतुसंपायुत्तो सीए, मोहो दोसेना हेतु सेवा हेतुसंपायुत्तो सीए; अलोभो अदोसो अमोहो, ते अण्णामन्नं हेतु सेवा हेतुसंपयुत्त च - इमे धम्म हेतु सेवा हेतुसंपयुत्त च।

1086. कतमे धम्म हेतुसम्पायुत्त सेवा न च हेतु? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता ते धम्मे थपेत्वा, वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म हेतुसम्पायुत्त सेवा न च हेतु।

1087. कतमे धम्म न हेतु सहेतुका? तेहि धम्मेहि ये धम्म न हेतु सहेतुका वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म न हेतु सहेतुका।

1088. कतमे धम्म न हेतु अहेतुका? तेहि धम्मेहि ये धम्म न हेतु अहेतुका वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म न हेतु अहेतुका।

Cūḷantaradukaṃ

1089. कटमे धम्म सप्पक्कया? पंचकखंड - रूपकखंडो, वेदानाकखंडो, संनाक्खखंडो, शंखरक्खंधो, विन्नन्नकखंडो - इमे धम्म सप्पक्कया।

1090. कतमे धम्म अप्पाकाया? असन्खता धातु - इमे धम्म अप्पाकाया।

1091. कतमे धम्म संखता? येव ते धम्म सप्पक्कया, तेव ते धम्म संखता।

1092. कतमे धम्म असन्खता? यो एव सो धम्मो अप्पाकायो, सो एव सो धम्मो असंखतो।

1093. कतमे धम्म सन्निदासना? रूपायतनं - इमे धम्म सन्निदासना।

1094. कतमे धम्म अनिदासना? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं, वेदानाक्खखंडो...पे... विन्ननक्खखंडो, यञ्च रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं, असंखता च धातु - इमे धम्म अनिदासना।

1095. कटमे धम्म सप्पतिघा? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं - इमे धम्म सप्पतिघा।

1096. कतमे धम्म अप्पतिघा? वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, यञ्च रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं, असन्खता च धातु - इमे धम्म अप्पतिघा।

1097. कतमे धम्म रूपिनो? चत्तारो च महाभूत चतुन्नच महाभूतानां उपादय रूपं - इमे धम्म रूपिनो।

1098. कतमे धम्म अरुपिनो? वेदनाक्खन्धो...पे... विनाणक्खन्धो, असन्खता च धातु - इमे धम्म अरुपिनो।

1099. कतमे धम्म लोकिया? सासव कुसलकुशलाब्यक्त धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, रूपकखंडो...पे... विनाणकखंडहो - इमे धम्म लोकिया।

1100. कटमे धम्म लोकुत्तारा? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म लोकुत्तरा।

1101. कतमे धम्म केनचि विन्नेया, केनचि न विन्नेय्य? ये ते धम्म चक्खुविन्येय, न ते धम्म सोतविन्यय; ये वा पना ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येय। ये ते धम्म चक्कुविन्येया, न ते धम्म घनविनीय्या; ये वा पना ते धम्म घनविनीया, न ते धम्म चक्कुविनीया। ये ते धम्म चक्खुविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया; ये वा पना ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येया। ये ते धम्म चक्कुविन्येया, न ते धम्म कायविन्येय; ये वा पना ते धम्म कायविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येया। ये ते धम्म सोतविनीय्या, न ते धम्म घनविनीय्या; ये वा पना ते धम्म घनविनीया, न ते धम्म सोताविनीया। ये ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया; ये वा पना ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म सोताविन्येया। ये ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म कायविन्येय; ये वा पना ते धम्म कायविन्येया न ते धम्म सोतविन्येया। ये ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येय; ये वा पना ते धम्म चक्कुविन्येया, न ते धम्म सोतविन्येया। ये ते धम्म घनविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येय; ये वा पना ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म घनविनिय्या। ये ते धम्म घनविनीय्या, न ते धम्म कायाविनीया; ये वा पना ते धम्म कायविनीया, न ते धम्म घनविनीया। ये ते धम्म घनविनीय्या, न ते धम्म चक्खुविनीया; ये वा पना ते धम्म चक्कुविन्येया, न ते धम्म घनविनीय्या। ये ते धम्म घनविनीय्या, न ते धम्म सोताविनीया; ये वा पना ते धम्म सोतविनीया, न ते धम्म घनविनीया। ये ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म कायविन्येया; ये वा पना ते धम्म कायविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया। ये ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येया; ये वा पना ते धम्म चक्खुविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया। ये ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म सोताविन्येया; ये वा पना ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया। ये ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म घनविनिय्या; ये वा पना ते धम्म घनविनीया, न ते धम्म जीवविनीया। ये ते धम्म कायविन्येया, न ते धम्म चक्खुविन्येय; ये वा पना ते धम्म चक्कुविन्येया, न ते धम्म कायविन्येया। ये ते धम्म कायाविन्येया, न ते धम्म सोताविन्येया; ये वा पना ते धम्म सोतविन्येया, न ते धम्म कायविन्येया। ये ते धम्म कायाविन्येया, न ते धम्म घनविन्येया; ये वा पना ते धम्म घनविनीया, न ते धम्म कायविनीया। ये ते धम्म कायाविन्येया, न ते धम्म जिव्हाविन्येया; ये वा पना ते धम्म जिव्हाविन्येया, न ते धम्म कायविन्येया। इमे धम्म केनचि विन्निय्या केनचि न विन्निय्या।

आसवगोच्चकं

1102. कतमे धम्म आसव? कत्तारो आसव - कामसावो, भावसावो, दिट्ठासावो, अविज्जासावो।

1103. तत्थ कतमो कामसवो? यो कामेसु कामच्छंदो कामरागो कामानंदी कामतन्हा कामसिनेहो कामपरिषाहो काममुच्च कामज्जोसानं — अयं वुकाति कामसावो।

1104. तत्थ कतमो भावसवो? यो भावेसु भवचंदो [भवच्चंदो (सि. स्या.)] भावरागो भवनंदी भवतंहा भावसिनेहो भवपरिषाहो भवमुच्च भावज्जोसानं - अयं वुकाति भावासावो।

1105. तत्थ कतमो दिट्ठसवो? सस्सतो लोकोति वा, अस्ससतो लोकोति वा, अन्तव लोकोति वा, अनन्ता लोकोति वा, तं जीवं तं सरिरन्ति वा, अन्नं जीवं अन्नं सरिरन्ति वा, होति तथागतो परम् मरणाति वा, न होति तथागतो परं मरणाति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणाति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणाति वा; या इवरूपा दितिथि गतं दितिथिगहनं दितिथिकांतारो दितिविशुकायिकां दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गहो पतिग्गाहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्छट्टं तिट्ठायतनं विपरियासग्गाहो — अयं वुच्चति दिट्ठसावो। सब्बापि मिच्छदिथि दिट्ठसवो।

1106. तत्थ कतमो अविज्जासवो? दुक्खे अणनाणं, दुक्खसमुदये अण्णां, दुक्खनिरोधे अण्णां, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपदाय अण्णां, पुब्बंते अण्णां, अपरंते अण्णाणं, पुब्बनतापरंते अण्णाणं, इदप्पक्कयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु अण्णां यं इवरूपं अण्णाणं अडस्सणं अनाभिसमायो अनुबोधो असम्बोधो अप्पतिवेधो असंगहना अपरियोगहना असमापेक्खना अपाचक्कवेखना अपाक्कक्खकम्मं दुम्मेजझां बल्यां असंपजान्नं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जघो अविज्जयोगो अविज्जानुसयो अविज्जापरियुत्थानं अविज्जलंगी मोहो अकुसलमूलं — अयं वुच्चति अविज्जासावो।

Ime dhammā āsavā.

1107. कतमे धम्म नो आसव? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना वेदानाक्कखंडो...पे...विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं असन्खता च धातु - इमे धम्म नो आसव।

1108. कतमे धम्म सासव? कुसलकुशलाब्यक्त धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म सासव।

1109. कतमे धम्म अनासव? अपरियापन्ना मग्गा च मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अनासव।

1110. कतमे धम्म आसवसंपयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म आसवसंपयुत्त।

1111. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त।

1112. कतमे धम्म आसव सेवा सासव च? तेयेव आसव आसव सेवा च.

1113. कतमे धम्म सासव सेवा नो च आसव? तेहि धम्मेहि ये धम्म सासावा, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा सासावा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामावचरा, रूपावचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म ससाव सेवा नो च आसव।

1114. कतमे धम्म आसव सेवा आसवसंपयुत्त च? कामसावो अविज्जासवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च, अविज्जासावो कामासवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च, भावसावो अविज्जासवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च, अविज्जासावो भावसवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च, दिट्ठसवो अविज्जासवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च, अविज्जासवो दितहासवेण आसवो सेवा आसवसंपयुत्तो च - इमे धम्म आसव सेवा āsavasampayuttā ca.

1115. कतमे धम्म आसवसंपयुत्त सेवा नो च आसव? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म आसवसंपयुत्त सेवा नो च आसव।

1116. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त ससाव? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता सासाव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, रूपकखंडो...पे... विनाणनकखंडो - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त सासव.

1117. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त अनासव? अपरियापन्ना मग्ग च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त अनासव।

निक्खेपकाण्डे पथमभानवरो।

संयोजनगोच्चकं

1118. कतमे धम्म समन्वय? दश संयोजनानि - कामरागसंयोजनां, पतिघसंयोजनं, मनसंयोजनं, दितिहिसंयोजनं, विकिकीचासंयोजनं, सिल्बतपरमसयोजनं, भावरागसंयोजनं, इस्सासंयोजनं, मच्छरियासंयोजनं, अविज्जासंयोजनं।

1119. तत्थ कतमं कामरागसंयोजनं? यो कामेसु कामच्छन्दो कामरागो कामनंदी कामतन्हा कामसिनेहो कामपरिषाहो काममुच्च कामज्जोसानं – इदं वुकाति कामरागसंयोजनम्।

1120. तत्थ कतमं पतिघसयोजनं? अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, अनात्थम् मे कैरातिति अघातो जयति, अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, पियास्सा मे मनपास्सा अनात्थम् अचरी...पे... अनात्थम् चरति...पे... अनात्थम् कैरिसतिति अघाटो जयति, अप्पियास्सा मे अमानपासा अत्थं अचरी...पे... अत्थं कैरति...पे... अत्थं कैरिसतिति अघाटो जयति, अट्ठाने वा पण अघाटो जयति। यो इवरूपो सीतास्स अघाटो पतिघातो पतिघं पतिविरोधो कोपो पाकोपो संपककोपो दोसो पदोसो संपदोसो सीतास्स बयापत्ति मनोपदोसो कोधो कुज्जहना कुज्जितट्टं दोसो दुस्साना दुस्सीत्तं बयापत्ति ब्यापजना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पतिविरोधो चंडिक्कं असुरोपो अनत्तमनाता चित्तस्स - इदं वुक्कति पतिघसयोजनं।

1121. तत्थ कतमं मनसंयोजनं? सेयोहमस्मिति मानो, सदिसोहमस्मिति मानो, हिनोहमस्मिति मानो। यो इवारूपो मनो मन्नणा मन्नित्तं उन्नति उन्नमो [उणति उणमो (स्या.)] धजो संपग्गहो केतुकाम्यता चित्तस्स - इदं वुक्कति मनसंयोजनं।

1122. तत्थ कतमं दितिथिसंयोजनं? सस्सतो लोकोति वा, अस्स्सतो लोकोति वा, अन्तव लोकोति वा, अनन्ता लोकोति वा, तं जीवं तं सरिरन्ति वा, अन्नं जीवं अन्नं सरिरन्ति वा, होति तथागतो परम् मरणाति वा, न होति तथागतो परं मरणाति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणाति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणाति वा; या इवरूपा दितिथि गतं दितिथिगहनं दितिथिकांतारो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गहो पतिग्गाहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तिथथायतनं विपरियासग्गहो — इदं वुक्कति दितिथिसंयोजनम्। हपेत्वा सिलब्बतपरमसासंयोजनं सब्बापि मिच्छदिथि दितिथिसंयोजनं।

1123. तत्थ कतमं विकिसिच्चासयोजनं? सत्थरि कंखति विकिसिच्छति, धम्मे कंखति विकिसिच्छति, संघे कंखति विकिसिच्छति, सिक्खाय कंखाति विचिकिचति, पुब्बंते कंखति विचिकिचति, अपरंते कंखति विकिसिच्छति, पब्बंतापरंते कांखति विकिसिच्छति, इदप्पाच्चयता पतिच्चासमुप्पन्नेसु धम्मेसु कांखाति विकिसिच्छतिः या एवरुपा कंखा कंखायणां कंखायितत्तं विमति विकिसिच्चा द्वेधाकं द्वेधापथो संसयो अनेकंसग्गाहो असप्पना परिस्पन्ना अपरियोगहाना थंभितट्टं चित्तस्स मनोविलेखो - इदं वुक्कति विकिसिचासंयोजनम्।

1124. तत्थ कतमं सिलब्बतपरमससंयोजनं? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं सिलेना शुद्धि वतेन शुद्धि सिलब्बतेन शुद्धि; या इवरूपा दितिथि गतं दितिथिगहनं दितिथिकांतारो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गहो पतित्थाहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चत्तं तिट्ठायतनं विपरियासग्गहो — इदं वुक्कति सिलब्बतपरमसासंयोजनं।

1125. तत्थ कतमं भावरागसंयोजनं? यो भावेसु भवचंदो भवरगो भवनंदी भवतनहा भवसिनेहो भवपरिषाहो भवमुच्च भवज्जोसानं - इदं वुच्चति भवरागसंयोजनम्।

1126. तत्थ कतमम् इस्सासंयोजनम्? या परलाभसक्करगरुकरमनानवंदनपूजनासु इस्सा इस्सयाना इस्सयितत्तं उसुयणा उसुयितत्तं [उसुया उस्सुयाना उस्सुयितट्टं (का.)] - इदं वुक्काति इस्सासंयोजनम्.

1127. तत्थ क्तमं मच्छर्यसंयोजनं? पञ्च मच्छरियम् - अवासमच्चरियम्, कुलमच्चरियम्, लाभमच्चरियम्, वनमच्चरियम्, धम्ममच्चरियम्। यं इवरूपं मच्छेरं मच्छरायणं मच्छरायितत्तं वेविचं कादरियां कटुकान्कुकाता अग्गहितट्टं चित्तस्स - इदं वुक्काति मच्छरियसंयोजनं।

1128. तत्थ कतमं अविज्जासंयोजनं? दुक्खे अण्णां, दुक्खसमुदाय अण्णां, दुक्खनिरोधे अण्णां, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपादया अण्णां, पुब्बंते अण्णाण्, अपरंते अण्णाणं, पुब्बनतापरंते अण्णाणं, इदप्पक्कयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु अण्णां यं इवरूपं अण्णाणं अडस्सणं अनाभिसमायो अनुबोधो असम्बोधो अप्पतिवेधो असंगहना अपरियोगहना असमापेक्खना अपाचक्कवेखना अपाक्कक्खकम्मं दुम्मेजझां बल्यां असंपजान्नं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जघो अविज्जयोगो अविज्जानुसयो अविज्जापरियुत्थानं अविज्जलंगी मोहो अकुशलमूलम् — इदं वुच्चति अविज्जासंयोजनम्।

Ime dhammā saṃyojanā.

1129. कतमे धम्म नो संयोग? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो संयोग।

1130. कतमे धम्म समन्वय? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म संयोजनिया।

1131. कतमे धम्म असंयोजनिया? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म असंयोजनिया।

1132. कतमे धम्म संयोगसंपयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो — इमे धम्म संयोजनसंपयुत्त।

1133. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्त।

1134. कतमे धम्म समन्वय सेवा च? तनेव संयोगानि समन्वया सेवा च।

1135. कतमे धम्म समन्वय्य सेवा नो च समन्वय? तेहि धम्मेहि ये धम्म संयोगिया, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा सासव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामावचरा, रूपावचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म समन्वय सेवा नो च समन्वय।

1136. कतमे धम्म समन्वय सेवा च? कामरागासंयोजनं अविज्जासंयोजनेन संयोगाञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनाम् कामरागासंयोजनेना संयुक्ताञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, पतिघसंयोजनं अविज्जासंयोजनेन संयोगाञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनं अविज्जासंयोजनेन संयुक्ताञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, मनसंयोजनम् avijjāsaṃyojanena saṃyojanañceva saṃyojanasampayuttañca, avijjāsaṃyojanaṃ mānasaṃyojanena saṃyojanañceva saṃyojanasampayuttañca, ditthisaṃyojanaṃ avijjāsaṃyojanena saṃyojanañceva saṃyojanasampayuttañca, avijjāsaṃyojanaṃ ditthisaṃyojanena saṃyojanañceva saṃyojanasampayuttañca, vicikicchāsaṃyojanaṃ avijjāsaṃyojanena संयोजनाञ्चेव संयोजनासंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनं विकिसिछासंयोजनेन संयोजनाञ्चेव संयुक्तासंपयुत्तञ्च, सिलब्बतापरमसासंयोजनाँ अविज्जासंयोजनेन संयोगाञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनं सिलब्बतपरमसासंयोजनेन संयुक्ताञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च, भवरागसंयोजनं अविज्जासंयोजनेण संयोजनाञ्चेव संयोजनासंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनाँ भावरागासंयोजनेन संयोजनाञ्चेव संयुक्तासंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनाम् इस्सासंयोजनेना संयुक्ताञ्चेवा, मैकचरियासंयोजनाम् अविज्जासंयोजनेना संयुक्ताञ्चेवा संयमसंपयुत्तञ्च, अविज्जासंयोजनं मैक्चार्यसंयोजनेन संयोगाञ्चेव संयुक्तसंपयुत्तञ्च - इमे धम्म समन्वय सेवा संयोगसंपयुत्त च।

1137. कतमे धम्म संयोगसंपयुत्त सेवा नो च संयोग? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म संयोगसंपयुत्त सेवा नो च संयोगना।

1138. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्ता समन्वय? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता ससाव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्ता संयोगनिया।

1139. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्त अससंयोगनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्त असंयोजनीय।

गंथागोच्चकं

1140. कतमे धम्म गंथा? कत्तारो गंथा - अभिज्झा कायगंथो, ब्यापादो कयागंथो, सिलब्बतपरमसो कायगंथो, इदं सच्चभिनिवेशो कायगंथो।

1141. तत्थ कतमो अभिज्झा कायगन्थो? यो रागो सारागो अनुनयो अनुरोधो नंदी नंदीरागो चित्तस्स सारागो इच्छा मुच्चा अज्झोसनं गेधो पालिगेधो सांगो पंको एजा माया जनिका संजननि सिब्बिनी जालिनी सरिता विसत्तिका सुत्तं विसाता अयुहिनि दुतिया पाणिधि भवनेति वनं वनथो संथावो सिनेहो अपेक्खा पतिबंधु असा असिसाना असिसितत्तम रूपसा सद्दासा गन्धसा रसासा फोथब्बासा लाभासा धनासा पुत्तसा जीवितसा जप्पा पजप्पा अभिजप्पा जप्पा जप्पाना जप्पितट्टं लोलुप्पं लोलुप्पयाना लोलुप्पयितट्टं पुच्चानजिकाता साधुकाम्यता अधम्मरागो विसामलभो निकांति निष्कामना पत्तन पिहाना संपतन कामतंहा भवतंह विभवतंह रूपतण्हा रूपतंह अरूपतंहा निरोधतंहा रूपतंहा सद्दतन्हा गंधतंहा रसतंहा फोतहब्बतंहा धम्मतंहा ओघो योगो गांठो उपादानं अवरणं निवारणं चादानं बंधनं उपक्किलसो अनुसयो परियुत्थानं लता वेविच्चं दुक्खमूलं दुक्खनिदानं दुक्खप्पभावो मरापासो मरबसिसं मराविसयो तंहनादि तंहजालं तंहागद्दुलं तन्हासमुद्दो अभिज्झा लोभो अकुशलमूलं - अयं वुच्चति अभिज्झा कायगन्थो।

1142. तत्थ कतमो ब्यापादो कायगन्थो? अनत्थम् मे अचरी ति अघातो जयति, अनत्थम् मे कैरातिति अघातो जयति, अनत्थम् मे अचरति अघातो जयति, पियास्सा मे मनपास्स अनत्थम् अचरी...पे... अनत्थम् कैरति...पे... अनात्थम् कैरिसतिति अघाटो जयति, अप्पियास्सा मे अमानपासा अत्थं अचरी...पे... अत्थं कैरति...पे... अत्थं कैरिसतिति अघाटो जयति, अट्ठाने वा पण अघाटो जयति। यो इवरूपो सीतास्स अघाटो पतिघातो पतिघं पतिविरोधो कोपो पाकोपो संपककोपो दोसो पदोसो संपदोसो सीतास्स बयापत्ति मनोपदोसो कोधो कुज्जहना कुज्जितट्टं दोसो दुस्साना दुस्सीत्तं बयापत्ति ब्यापजना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पतिविरोधो चंडिक्कं असुरोपो अनत्तमनाता चित्तस्स - अयं वुक्कति ब्यापादो कायगंथो।

1143. तत्थ कतमो सिलब्बतपरमसो कायगन्थो? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं सिलेण शुद्धि, वतेन शुद्धि, सिलब्बतेन शुद्धिः या एवरूपा दिदिथिगतं दितिघहनं दितिकांतरो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतितहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तित्थायतनं विपरियासग्गहो – अयं वुक्काति सिलब्बतपरमसो कायगन्थो।

1144. तत्थ कतमो इदंससच्चाभिनिवेशो कायगन्थो? सस्सातो लोको, इदामेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; अस्ससतो लोको, इदामेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; अंतवा लोको, इदामेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; अनंतवा लोको, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; तं जीवं तं शरीरं, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; अन्नं जीवं अन्नं शरीरं, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमन्नन्ति वा; नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदामेव सच्चं मोघमन्नन्ति वाः या एवरुपा दितिदिथिगतं दितिघहनं दितिकांतरो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतितहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तित्थायतनं विपरियासग्गहो – अयं वुकाति इदंससच्चाभिनिवेशो कायगन्थो। हपेत्वा सिलब्बतपरमसं कायगंथं सब्बापि मिच्छदिथि इदंससच्चभिनिवेशो कायगंथो।

Ime dhammā ganthā.

1145. कतमे धम्म नो गंथा? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बन्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो गंथा।

1146. कतमे धम्म गंथनिया? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म गंठनिया।

1147. कटमे धम्म अगन्थनिया? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अगन्थानिया।

1148. कतमे धम्म गन्थासम्पायुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो — इमे धम्म गंथसम्पायुत्ता।

1149. कतमे धम्म गन्थविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं असन्खता च धातु - इमे धम्म गन्थाविप्पयुत्ता।

1150. कतमे धम्म गंथा सेवा गंथानिया च? तेव गंथा गंथा सेवा गंथानिया च।

1151. कतमे धम्म गंथानिया सेवा नो च गंथा? तेहि धम्मेहि ये धम्म गंथनिया, ते धम्मे थापेत्वा अवसेसा सासव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामावचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म गंठनिया सेवा नो च गंथा।

1152. कतमे धम्म गंथा सेवा गंथासंपयुत्त च? सिलब्बतपरमसो कायगंठो अभिज्झाकायगन्थेन गंथो सेवा गंथासम्पायुत्तो च, अभिज्झाकायगंथो सिलबटपरमसेना कायगंथेना गंथो सेवा गंथासम्पायुत्तो च, इदंससच्चाभिनिवेशो कायगंठो अभिज्झाकायगंठेन गंथो सेवा गंथासंपयुत्तो च, अभिज्झाकायगंथो इदंससच्चाभिनिवेशेण कायगंथेन गंथो सेवा गंथासम्पायुत्तो च - इमे धम्म गंथा सेवा गंथासम्पायुत्तो च।

1153. कतमे धम्म गन्थासम्पायुत्त सेवा नो च गन्था? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म गंथसम्पयुत्त सेवा नो च गंथा।

1154. कतमे धम्म गंठविप्पयुत्त गंथनिया? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता ससाव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म गंथाविप्पयुत्ता गंथनिया।

1155. कतमे धम्म गन्थविप्पयुत्त अगन्थनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म गंथविप्पयुत्त अगन्थनिया।

ओघगोच्चका

1156. कतमे धम्म ओघा? कट्टारो ओघा...पे... इमे धम्म ओघविप्पयुत्ता ओघानिया।

योगगोच्चकं

1157. कतमे धम्म योग? कत्तारो योग...पे... इमे धम्म योगविप्पयुत्त योगानिया।

नीवरणगोच्चकं

1158. कटमे धम्म निवारण? च निवारणाण् [निवारणाणि (स्या.)] - कामच्छंदनिवराणं, ब्यापदानीवराणं, थिनमिद्धनिवराणं, उद्धचक्ककुक्कुक्कनिवराणं, विचिकीच्चानिवरणम्, अविज्जानिवरणम्।

1159. तत्थ कतमं कामच्छंदनिवरणम्? यो कामेसु कामच्छन्दो कामरागो कामनंदी कामतन्हा कामसिनेहो कामपरिषाहो काममुच्च कामज्जोसानं — इदं वुकाति कामच्छंदनिवरनम्।

1160. तत्थ कतमं ब्यापदानिवरणं? अनत्थम् मे अचरति अघातो जयति, अनत्थम् मे चरतिति अघातो जयति; अनत्थं मे कैरिससति अघाटो जयति; पियास्सा मे मनापासा अत्थं अकारी...पे...अनाथं कैराति...पे...अनत्थं कैरिसति अघाटो जयति, अप्पियास्सा मे

अमानपासा अत्थं अकारी...पे...अत्थं कैराति...पे...अत्थं कैरिसाति अघाटो जयति, अट्ठाने वा पण अघातो जयति। यो इवरूपो सीतास्स अघाटो पतिघातो पतिघं पतिविरोधो कोपो पाकोपो संपककोपो दोसो पदोसो संपदोसो सीतास्स बयापत्ति मनोपदोसो कोधो कुज्जहना कुज्जितट्टं दोसो दुस्साना दुस्सीत्तं बयापत्ति ब्यापजना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पतिविरोधो चंडिक्कं असुरोपो अनत्तमनाता चित्तस्स — इदं वुक्कति ब्यापदानीवरनम्।

1161. तत्थ कतमं पतलीमिद्धनिवरनं? अट्ठि थिनं, अत्थि मिद्धं।

1162. तत्थ कतमं थिनं? या चित्तस्स अकलता अकम्मन्नता ओलियाना सल्लियाना लीनां लियाना लियायितट्टं थिनं थियाना थियितट्टं चित्तस्स — इदं वुक्कति थिनं।

1163. तत्थ कतमं मिद्धं? या कायस्सा अकलता अकम्मन्नता ओनाहो परियोनाहो अंतोसामोरोधो मिद्धं सोप्पं पचालयिका सोप्पं सुपना सुपित्तं - इदं वुकाति मिद्धं। इति इदान्च थिनं, इदञ्च मिद्धम् — इदं वुकाति थिनमिद्धनिवरनम्।

1164. तत्थ कतमं उद्धाच्चक्कुक्कनिवरणम्? अट्ठि उद्धक्कं, अत्थि कुक्कुक्कं।

1165. तत्थ कतमं उद्धाचं? यं चित्तस्स उद्धक्कं अवुपासमो चेतासो विक्खेपो भंट्टट्टं चित्तस्स - इदं वुक्कति उद्धक्कं।

1166. तत्थ कतमं कुक्कुक्कं? अकाप्पिये कप्पियासंनिता, कप्पिये अकाप्पियासंनिता, अवज्जे वज्जसंनिता, वज्जे अवज्जसंनिता। यं इवरूपं कुक्कुक्कं कुक्कुच्चायन कुक्कुच्चयितत्तं चेतासो विप्पतिसारो मनोविलेखो - इदं वुक्काति कुक्कुक्कं। इति इदान्च उधक्कं, इदञ्च कुक्कुक्कं - इदं वुकाति उद्च्चक्कुक्कनिवरणम्।

1167. तत्थ कतमं विकिसिच्छनिवरणम्? सत्थरि कंखति विकिसिच्छति, धम्मे कंखति विकिसिच्छति, संघे कंखति विकिसिच्छति, सिक्खाय कंखाति विचिकिचति, पुब्बंते कंखति विचिकिचति, अपरंते कंखति विकिसिच्छति, पब्बंतापरंते कंखति विचिकिचति, इदप्पक्कयता पतिच्चासमुप्पन्नेसु धम्मेसु कंखति विकिकिचति। या एवरुपा कंखा कंखायणा कंखायितट्टं विमति विकिसिच्चा द्वेधाकं द्वेधापथो संसयो अनेकंसग्गाहो असप्पना परिस्पना अपरियोगहाना थंभितत्तम् चित्तस्स मनोविलेखो — इदं वुक्कति विचिकिचनिवरनम्।

1168. तत्थ कतमं अविज्जानिवरणम्? दुक्खे अण्णां, दुक्खसमुदाय अण्णां, दुक्खनिरोधे अण्णां, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपादया अण्णां, पुब्बंते अण्णाण्, अपरंते अण्णाणं, पुब्बनतापरंते अण्णाणं, इदप्पक्कयता पटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु अण्णां यं इवरूपं अण्णाणं अडस्सणं अनाभिसमायो अनुबोधो असम्बोधो अप्पतिवेधो असंगहना अपरियोगहना असमापेक्खना अपाचक्कवेखना अपाक्कक्खकम्मं दुम्मेजझां बल्यां असंपजान्नं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जघो अविज्जयोगो अविज्जानुसयो अविज्जापरियुत्थानं अविज्जलंगी मोहो अकुशलमूलम् — इदं वुच्चति अविज्जानिवरणम्।

Ime dhammā nīvaraṇā.

1169. कटमे धम्म नो निवारण? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो निवारण।

1170. कटमे धम्म निवारनीय? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म निवारनिया।

1171. कतमे धम्म अनिवरनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अनिवरनिया।

1172. कतमे धम्म निवारणसंपयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म निवारणसंपयुत्त।

1173. कटमे धम्म निवारणविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्त।

1174. कतमे धम्म निवारण सेवा च? तनेव निवारणानि निवारणा सीव निवारणिया च।

1175. कतमे धम्म निवारणिय सेवा नो च निवारण? तेहि धम्मेहि ये धम्म निवारणिया, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा ससाव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म निवारनिया सेवा नो च निवारण।

1176. कतमे धम्म निवारण सेवा च? कामच्छंदनिवरणं अविज्जानिवरणे निवरणन्सेव निवरणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणं कामच्छंदनिवरणे निवरणन्सेव निवारणसंपयुत्तञ्च, ब्यापदानिवरणं अविज्जनिवरणे निवरणन्सेव निवारणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणं ब्यापदानिवरनेन निवारणन्सेवा निवारणसंपयुत्तञ्च, थिन्नमिद्धनिवरं अविज्जनिवरणेन निवारणसेवा निवारणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणं थिनिमिद्धनिवरणेन निवारणान्सेव निवारणसंपयुत्तञ्च, उद्धाच्चनिवरणं अविज्जानिवरणेन निवारणंसेवा निवारणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणम् उद्धाच्चनिवरणेण निवरणन्सेव निवारणसंपयुत्तन्च, कुक्कुक्कनिवरनम् अविज्जानिवरणे निवारणसेव निवारणसंपयुत्तनचा, अविज्जानिवरनं कुक्कुक्कनिवरनेन निवारणान्सेव निवारणसंपयुत्तञ्च, विकिच्चानिवरं अविज्जनिवरणेन निवरणन्सेव निवरणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणम् विचिकिच्चनिवरनेण निवारणांसेव निवारणसंपयुत्तञ्च, कामच्छंदनिवरं उद्धाच्चनिवरणेण निवारणाञ्चेव निवारणसंपयुत्तञ्च, कामच्छंदनिवरणं उद्धाच्चनिवरणं कामच्छंदनिवरणेण निवरणन्सेव निवरणसंपयुत्तञ्च, बयापादनिवरं उधक्कनिवरणेण निवरणाञ्चेव निवरणसंपयुत्तञ्च, उद्धाच्चनिवरणं ब्यापदानिवरणेन निवारणसेव निवारणसंपयुत्तन्च, उधचक्कनिवरं उधच्चकनिवरणेन निवारणसमेव निवारणसंपयुत्तनच, उधचक्कनिवरं थिनमिद्धनिवरनेन निवारणसेव निवारणसंपयुत्तन्च, कुक्कुक्कनिवरं उधचक्कनिवरणेण निवारणससेवा निवारणसंपयुत्तञ्च, उधचक्कनिवरं कुक्कुक्कनिवरनेन निवारणान्सेव निवारणसंपयुत्तञ्च, विकिचच्चाणिवरणं उद्धक्कनिवरणेन निवारणंसेवा निवारणसंपयुत्तञ्च, उद्च्चच्चाणीवरणम् विकिसिच्चानिवरणेण निवरणाञ्चेव निवरणसंपयुत्तञ्च, अविज्जानिवरणं उद्धाच्चानिवरणेण निवरणाञ्चेव निवरणसंपयुत्तञ्च, उद्धाच्चनिवरणं अविज्जानिवरणेन निवारणांसेव निवारणसंपयुत्तन्च - इमे धम्म निवारण सेवा च।

1177. कतमे धम्म निवारणसंपयुत्त सेवा नो च निवारण? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्त, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म निवारणसंपयुत्त सेवा नो च निवारण।

1178. कटमे धम्म निवारणविप्पयुत्त निवारणिया? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता सासव कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्ता निवारणिया।

1179. कटमे धम्म निवारणविप्पयुत्त अनिवरनिया? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलानि च, असंखता च धातु - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्त अनिवरनिया।

परमासगोच्चकं

1180. कतमे धम्म परमसा? दितिथिपरमसो.

1181. तत्थ कतमो दितिथिपरमसो? सस्सतो लोकोति वा, अस्स्सतो लोकोति वा, अन्तव लोकोति वा, अनन्ता लोकोति वा, तं जीवं तं सरिरन्ति वा, अन्नं जीवं अन्नं सरिरन्ति वा, होति तथागतो परम् मरणाति वा, न होति तथागतो परं मरणाति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणाति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणाति वाः या इवरूपा दिथि दिथिगतं दितिघहनं दितिकांतारो दितिविशुकायिकां

दितिथिविप्फंडितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतितहो अभिनिवेसो परमासो कुम्मग्गो मिच्चापथो मिच्चत्तं तित्थायतनं विपरियासग्गहो – अयं वुकाति दितिथिपरमासो। सब्बापि मिच्छादिथि दितिथिपरमसो।

Ime dhammā parāmāsā.

1182. कतमे धम्म नो परमसा? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो परमासा।

1183. कटमे धम्म परमार्थ? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म परमार्थ।

1184. कटमे धम्म अप्रमठ? अपरियापन्ना मग्ग च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अप्रमठ।

1185. कतमे धम्म परमासम्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म परमसंपयुत्त।

1186. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म परमसविप्पयुत्त।

1187. कतमे धम्म परमसा सेवा परमार्थ च? स्वेवे परमसो परमसो सेवा परमार्थो च।

1188. कतमे धम्म परमार्थ सेवा नो च परमसा? तेहि धम्मेहि ये धम्म परमार्थ, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा ससाव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म परमार्थ सेवा नो च परमसा।

1189. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त परमार्थ? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता ससाव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म परमसविप्पयुत्त परमार्थ।

1190. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त अप्रमठ? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म परमसाविप्पयुत्त अप्रमठ।

महंतरादुकां

1191. कतमे धम्म सरम्मना? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो – इमे धम्म सरम्मना।

1192. कटमे धम्म अनारम्मना? सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अनारम्मना।

1193. कटमे धम्म चित्त? चक्खुविनाणं, सोतविनानां, घनविनानां, जीवविनानां, कायविनानां, मनोधातु, मनोविनानाधातु - इमे धम्म चित्त।

1194. कटमे धम्म नो चित्त? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो चित्त।

1195. कटमे धम्म चेतसिका? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चेतसिका।

1196. कटमे धम्म एसिटासिका? चित्तञ्च, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म एसिटासिका।

1197. कतमे धम्म चित्तसंपयुत्त? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो - इमे धम्म चित्तसम्पायुत्त।

1198. कतमे धम्म चित्तविप्पयुत्त? सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म चित्तविप्पयुत्त। चित्तं न वट्टब्बं – चित्तेन संपयुत्तन्तिपि, चित्तेन विप्पयुत्तन्तिपि।

1199. कतमे धम्म चित्तसंशथ? वेदानाक्खन्धो, संनाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशत्था।

1200. कतमे धम्म चित्तविसंशथा? सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म चित्तविसंशथ। चित्तं न वट्टब्बं – चित्तेन संसंतहन्तिपि, चित्तेन विसंसंशांत्तिपि।

1201. Katame dhammā cittasamuṭṭhānā? Vedanākkhandho, saññākkhandho, saṅkhārakkhandho; kāyaviññatti vacīviññatti; यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चित्तजं चित्तहेतुकं चित्तसमुत्थानं रूपायतनं सददायतनं गंधायतनं रसायतनं फोथ्हब्बायतनं आकाशधातु अपोधातु रूपस्सा लहुता रूपस्सा मुदुता कामनानाता रूपसा उपाचयो रूपस्सा संतति कबाधिकारो आहारो – इमे धम्म चित्तसमुत्थाना।

1202. कटमे धम्म नो चित्तसमुत्थाना? चित्तञ्च, अवसेसंञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो चित्तसमुत्थाना।

1203. कतमे धम्म चित्तसहभूनो? वेदनाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, कायाविन्ति, वाचिविनत्ती - इमे धम्म चित्तसाहाभुनो।

1204. कतमे धम्म नो चित्तसहभूनो? चित्तञ्च, अवसेसंञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो चित्तसहभूनो।

1205. Katame dhammā cittānuparivattino? Vedanākkhandho, saññākkhandho, saṅkhārakkhandho, kāyaviññatti, vacīviññatti – ime dhammā cittānuparivattino.

1206. कतमे धम्म नो चित्तनुपरिवत्तिनो? चित्तांक, अवसेसंच रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो चित्तनुपरिवत्तिनो।

1207. कतमे धम्म चित्तसंशमुत्थाना? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशठसमुत्थाना।

1208. कतमे धम्म नो चित्तसंशमुत्थाना? चित्तञ्च, सब्बाङ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो चित्तसंस्थासमुत्थाना।

1209. कतमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थानसहभूनो? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थानसाहाभुनो।

1210. कतमे धम्म नो चित्तसंशसमुत्थानसाहाभुनो? चित्तञ्च, सब्बाङ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो चित्तसंशमुत्थानसाहाभुनो।

1211. कतमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थाननुपरिवत्तिनो? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो - इमे धम्म चित्तसंशस्तसमुथ्थाननुपरिवत्तिनो।

1212. कतमे धम्म नो चित्तासंसथसमुत्थाननुपरिवत्तिनो? चित्तांक, सब्बाङ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो चित्तसंशमुथंहनुपरिवत्तिनो।

1213. कटमे धम्म अज्जत्तिका? चक्खायतनं...पे... मनायतनं - इमे धम्म अज्जत्तिका।

1214. कटमे धम्म बहिरा? रूपायतनं...पे...धम्मायतनं - इमे धम्म बहिरा।

1215. कटमे धम्म उपादा? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इमे धम्म उपादा।

1216. कतमे धम्म नो उपदा? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विनान्नक्खन्धो, चत्तारो च महाभूत, असन्खता च धातु - इमे धम्म नो उपदा।

1217. कटमे धम्म उपादिन्ना? सासव कुसलकुशलानं धम्मनां विपाक कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; यञ्च रूपं कम्मास्सा कटत्ता — इमे धम्म उपादिन्ना।

1218. कटमे धम्म अनुपदिना? सासव कुसलकुशल धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; ये च धम्म किरिया नेव कुसल नकुशला न च कम्मविपाक, यञ्च रूपं न कम्मस्सा कटत्ता, अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अनुपादिना.

उपादानगोच्चकं

1219. कटमे धम्म उपादान? कत्तारि उपदाननि - कामुपादनं, दितहुपादनं, सिल्लब्बतुपादनं, अत्तवदुपादनं [कामुपादनं दितहुपादानं सिल्लब्बतुपदानं अत्तवदुपादानं (सि.)]।

1220. तत्थ कतमं कमुपादनम्? यो कामेसु कामच्छंदो कामरागो कामानंदी कामतन्हा कामसिनेहो कामपरिषाहो काममुच्च कामज्जोसानं - इदं वुकाति कामुपादनं।

1221. तत्थ कतमं दीथुपादानं? नत्थि दिनं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतां, नत्थि सुक्तदुक्कतनं कम्मनं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि पारो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपापतिका, नत्थि लोके समानाब्राह्मण सम्मग्गता [समग्गता (का.)] सम्मापतिपन्ना, ये इमाञ्च लोकं पराञ्च लोकं सयानं अभिन्न सच्चिकत्व पवेदेंति - या एवरुपा दितिथि दिथिगतं दितिथिगाहनं दितिकांतारो दितिथिविसुकायिकं दिदिथिविपफंडितं दितिथिसंयोजना गहो पतितहो अभिनिवेसो परमासो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तित्थायतनं विपरियासग्गहो - इदं वुक्कति दित्हुपदानां। हपेत्वा सिल्लब्बतुपदानञ्च अत्तवदुपादनच सब्बापि मिच्छदिथि दितिथुपादनम्।

1222. तत्थ कतमं सिल्लब्बतुपदानं? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं सिलेन शुद्धि, वतेन शुद्धि, सिलब्बतेन शुद्धि - या एवरूपा दिदिथिगतं दितिघहनं दितिकांतरो दितिविशुकायिकं दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतितहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तित्थायतनं विपरियासग्गहो — इदम वुकाति सिलाब्बतुपदानं।

1223. तत्थ कतमम् अत्तवदुपादनम्? इधा अस्सुत्वा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावि अरियाधम्मस्सा अकोविदो अरियाधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानां अदस्सावि सप्पुरिसाधम्मस्सा अकोविदो सप्पुरिसाधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवंतम् वा अत्तनं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मि वा अत्तनं। वेदानां...पे... सन्नं...पे... संखरे...पे... विनाणं अत्ततो समनुपस्सति, विनाणवंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा विनानास्मि। वा अत्तनं. या इवरूपा दितिथि दितिथिगतं दितिथिगहनं दितिथिकांतारो दितिविशुकायिकां दितिथिविप्पंदितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतित्थाहो अभिनिवेशो परमसो कुम्मग्गो मिच्छपथो मिच्चट्टं तिट्ठायतनं विपरियासग्गहो — इदं वुक्कति अत्तवदुपादनम्।

Ime dhammā upādānā.

1224. कटमे धम्म नो उपादान? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो उपदान।

1225. कतमे धम्म उपदानिया? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म उपदानिया।

1226. कतमे धम्म अनुपदनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अनुपादनीय।

1227. कतमे धम्म उपादानसंपयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म उपादानसंपयुत्त।

1228. कतमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता।

1229. कतमे धम्म उपादान सेवा उपादानिय च? तनेव उपादाननि उपादान सीव उपादानिय च।

1230. कतमे धम्म उपादानिय सेवा नो च उपादान? तेहि धम्मेहि ये धम्म उपादानिया, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा सासव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म उपादानिय सेवा नो च उपादान।

1231. कतमे धम्म उपादान सेवा उपादानसंपयुत्त च? दिट्ठुपादानं कामुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च, कामुपादानं दिष्ठुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च, सिल्लब्बतुपादानं कामुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च, कामुपादानं सिल्लब्बतुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च, अत्तवदुपदानाम् कामुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च, कामुपादानं अत्तवादुपादानेन उपादानञ्चेव उपादानसंपयुत्तञ्च - इमे धम्म उपादान सीवा उपादानसंपयुत्त च.

1232. कतमे धम्म उपादानसंपयुत्त सेवा नो च उपादान? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्त, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म उपादानसंपयुत्त सेवा नो च उपादान।

1233. कतमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता उपदानिया? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता सासाव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता उपदानिया।

1234. कतमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता अनुपादनीय? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता अनुपादनीय।

निक्खेपकंडे दुतियाभानवरो।

किलेसगोच्चकम्

1235. कतमे धम्म किलेसा? दासा किलेसवत्थुनि - लोभो, दोसो, मोहो, मानो, दितिथि, विचिकच्चा, थिनं, उद्धाक्कं, अहिरिकां, अनोट्टप्पां।

1236. Tattha katamo lobho? यो रागो सारागो अनुनयो अनुरोधो नंदी नंदीरागो चित्तस्स सारागो इच्छा मुच्चा अज्झोसनं गेधो पालिगेधो सांगो पंको एजा माया जनिका संजननि सिब्बिनी जालिनी सरिता विसत्तिका सुत्तं विसाता अयुहिनि दुतिया पाणिधि भवनेति वनं

वनथो संथावो सिनेहो अपेक्खा पतिबंधु असा असिसाना असिसितत्तम रूपसा सद्दासा गन्धसा रसासा फोथब्बासा लाभासा धनासा पुत्तसा जीवितसा जप्पा पजप्पा अभिजप्पा जप्पा जप्पाना जप्पितट्टं लोलुप्पं लोलुप्पयाना लोलुप्पयितट्टं पुच्चानजिकाता साधुकाम्यता अधम्मरागो विसामलभो निकांति निष्कामना पत्तन पिहाना संपतन कामतंहा भवतंह विभवतंह रूपतण्हा रूपतंह अरूपतंहा निरोधतंहा रूपतंहा सद्दतन्हा गंधतंहा रसतंहा फोतहब्बतंहा धम्मतंहा ओघो योगो गांठो उपादानं अवरणं निवारणं चादानं बंधनं उपक्किलसो अनुसयो परियुत्थानं लता वेविच्चं दुक्खमूलं दुक्खनिदानं दुक्खप्पभावो मरापासो मरबसिसं माराविसयो तंहनादि तंहजालं तंहागद्दुलं तन्हासमुद्दो अभिज्झा लोभो अकुसलमूलं - अयं वुच्चति लोभो।

1237. तत्थ काटामो दोसो? अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, अनात्थम् मे कैरातिति अघातो जयति, अनात्थम् मे अचरति अघातो जयति, पियास्सा मे मनपास्सा अनात्थम् अचरी...पे... अनात्थम् चरति...पे... अनात्थम् कैरिसतिति अघाटो जयति, अप्पियास्सा मे अमानपासा अत्थं अचरी...पे... अत्थं कैरति...पे... अत्थं कैरिसतिति अघाटो जयति, अट्ठाने वा पण अघाटो जयति। यो इवरूपो सीतास्स अघाटो पतिघातो पतिघं पतिविरोधो कोपो पाकोपो संपककोपो दोसो पदोसो संपदोसो सीतास्स बयापत्ति मनोपदोसो कोधो कुज्जहना कुज्जितट्टं दोसो दुस्साना दुस्सीत्तं बयापत्ति ब्यापजना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पतिविरोधो चंडिक्कं असुरोपो अनत्तमनाता चित्तस्स - अयं वुक्काति दोसो।

1238. तत्थ कतमो मोहो? दुक्खे अण्णां, दुक्खसमुदाय अण्णां, दुक्खनिरोधे अण्णां, दुक्खनिरोधगामिनीया पतिपादया अण्णां, पुब्बंते अण्णाण्, अपरंते अनानां, पुब्बनतापरंते अनानां, इदप्पक्कयता पाटिकसमुप्पन्नेसु धम्मेसु अनानां। यं एवरूपं अण्णाणं अदस्सणं अनाभिसमायो अननुबोधो असम्बोधो अप्पतिवेधो असंगहना अपरियोगहना असमपेक्खणा अपाचकेवेक्खना अपाक्कक्खकम्मं दुम्मेज्झाम् बाल्यं असंपजान्नं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जघो अविज्जयोगो अविज्जनुसयो अविज्जापरियुतहनं अविज्जलंगी मोहो अकुसलमूलं - अयं वुकाति मोहो।

1239. तत्थ कतमो मानो? सेयोहमस्मिति मानो, सदिसोहमस्मिति मानो, हिनोहमस्मिति मानो; यो इवरूपो मनो मन्नना मन्नित्तं उन्नति उन्नमो धजो संपग्गहो केतुकाम्यता चित्तस्स - अयं वुकाति मानो।

1240. तत्थ कतम दिति? सस्सतो लोकोति वा, अस्स्सतो लोकोति वा, अन्तव लोकोति वा, अनन्ता लोकोति वा, तं जीवं तं सरिरन्ति वा, अन्नं जीवं अन्नं सरिरन्ति वा, होति तथागतो परम् मरणाति वा, न होति तथागतो परं मरणाति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणाति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणाति वाः या इवरूपा दिथि दिथिगतं दितिघहनं दितिकांतारो दितिविशुकायिकां दितिथिविप्फंडितं दितिथिसंयोजनं गाहो पतितहो अभिनिवेसो परमासो कुम्मग्गो मिच्चापथो मिच्चत्तं तित्थायतनं विपरियासग्गहो — अयं वुकाति दितिथि। सब्बापि मिच्छदिति दितिथि।

1241. तथा कतमा विचिकीच्चा? सत्थरि कांखति विचिकिचति, धम्मे कांखति विचिकिचति, संघे कांखति विकिसिच्छति, संघे कांखति विचिकिचति, पुब्बंते कांखति विचिकिचति, पुब्बंते कांखति विचिकिचति, अपरंते कांखति विकिसिच्छति, पुब्बंतापरंते कांखति विकिसिच्चति, इदप्पक्कयता पतिच्चासमुप्पन्नेसु धम्मेसु कांखति विकिसिच्छतिः या एवरूपा कंखा कंखायणा कंखायितत्तं विमति विकिसिच्चा द्वेधाकं द्वेधापथो संशयो, अनेकंसग्गाहो असप्पना परिस्पन्ना अपरियोगहाना थंभितट्टं चित्तस्स मनोविलेखो - अयं वुक्काति विकिसिच्चा।

1242. तत्थ कतमं थिनं? या चित्तस्स अकलता अकम्मन्नता ओलियाना सल्लियाना लीनां लियाना लियायितट्टं थिनं थियाना थियितट्टं चित्तस्स — इदं वुक्कति थिनं।

1243. तत्थ कतमं उद्धाचं? यं चित्तस्स उद्धक्कं अवुपासमो चेतासो विक्खेपो भंट्टट्टं चित्तस्स - इदं वुक्कति उद्धक्कं।

1244. तत्थ कतमं अहिरिकं? यं न हिरियति हिरियितब्बेन, न हिरियति पापकाणं अकुशलनं धम्मनं समापत्तिया - इदं वुच्चति अहिरिकाम्।

1245. तत्थ कतमं अनोत्प्पं? यं न ओट्टप्पति ओट्टप्पितब्बेन, न ओट्टप्पति पापकनं अकुशलनं धम्मणं समापत्तिया - इदं वुक्कति अनोत्प्पट्टम्।

Ime dhammā kilesā.

1246. कतमे धम्म नो किलेसा? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म नो किलेसा।

1247. कतमे धम्म संकिलेशिका? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म संकिलेशिका।

1248. कतमे धम्म असंकिलेसिका? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असन्खता च धातु - इमे धम्म असन्किलेसिका।

1249. कटमे धम्म संकिलित्था? तिनि अकुशलमुलानि – लोभो, दोसो, मोहो; तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्ननक्खन्धो, तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म सांकिलिट्ठा.

1250. कटमे धम्म असंकिलिट्ठा? कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म असंकिलिट्ठा।

1251. कतमे धम्म किलेसासम्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता वेदनाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो – इमे धम्म किलेसासंपयुत्ता।

1252. कतमे धम्म किलेसविप्पयुत्त? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता वेदनाक्खन्धो...पे...विन्यान्नक्खन्धो; सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त।

1253. कतमे धम्म किलेसा सेवा संकिलेशिका च? तेव किलेसा किलेसा सेवा संकिलेशिका च।

1254. कतमे धम्म संकिलेशिका सेवा नो च किलेसा? तेहि धम्मेहि ये धम्म संकिलेशिका, ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा सासव कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामावचरा, रूपावचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म संकिलेशिका सेवा नो च किलेसा।

1255. कतमे धम्म किलेसा सेवा संकिलिथ च? तेव किलेसा किलेसा सेवा संकिलिथा च।

1256. कतमे धम्म संकिलित्थ सेवा नो च किलेसा? तेहि धम्मेहि ये धम्म संकिलिट्ठा, ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विणनक्कखंडो - इमे धम्म संकिलिट्ठा सेवा नो च किलेसा।

1257. कतमे धम्म किलेसा सेवा किलेसासम्पयुत्त च? लोभो मोहेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, मोहो लोभेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, दोसो मोहेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, मोहो दोसेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, मानो मोहेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, मोहो मानेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए सीए, दितिथि मोहन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त सीए, मोहो दितिथिया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, विकिसिच्चा मोहन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त सीए, मोहो विकिकीचाया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, थिनं मोहेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मोहो थिनेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, उधक्कं मोहेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मोहो उधचसेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अहिरिकां

मोहेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मोहो अहिरिकेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, एनोट्टप्पां मोहेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, मोहो अनोत्ताप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तो सीए, लोभो उद्धासेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, उधक्कम लोभेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, दोसो उद्धासेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तो सीए, उधक्कम डोसेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मोहो उधचकैं किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तो सीए, उधचकैं मोहेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मनो उधचकैं किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, उद्धक्कं मानेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, दितिथि उद्धास्सेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त च, उधक्कम दिठिया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्च, विसिकिचचा उद्धाचसेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन च, उधक्कं विकिसिचाया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, थिनम उधचसेन किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, उधक्कम थिनेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अहिरिकाम उधचसेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, उधचक्कम अहिरिकेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, अनोत्पम उधचसेन किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, उधक्कम एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, लोभो अहिरिकेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अहिरिकां लोभेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, ऐसा करो अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, अहिरिकां दोसेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, मोहो अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तो सीए, अहिरिकां मोहेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, मानो अहिरिकां किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, अहिरिकाम् मानेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, दितिथि अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त च, अहिरिकम् दिठिया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्च, विसिकिच अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त च, अहिरिकाम् विकिसिचाय किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, थिनम अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, अहिरिकाम थिनेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, उधक्कम अहिरिकेन किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, अहिरिकाम उधचसेन किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, एनोट्टप्पन अहिरिकेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अहिरिकाम् एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, लोभो एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, एनोट्टप्पन लोभेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, दोसो एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुट्टो सीए, एनोट्टप्पम डोसेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का,मोहो अनोत्तप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अनोत्तप्पन मोहेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, मानो अनोत्तप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तो सीए, अनोत्तप्पम मानेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, दिदिथि अनोत्तप्पेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त च, अनोत्पम दिथिय किल्सो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, विकिसिच्चा अनोत्तप्पेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्त च, अनोत्पम विसिकिचया किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्का, थिनं अनोत्तप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, एनोट्टप्पन थिनेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, उधक्कम एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, एनोट्टप्पां उधच्चेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, अहिरिकां एनोट्टप्पेना किलेसो सेवा किलेससम्पायुत्तन्का, एनोट्टप्पां अहिरिकेना किलेसो सेवा किलेसासम्पायुत्तन्च - इमे धम्म किलेसा सेवा किलेसासम्पायुत्त च।

1258. कतमे धम्म किलेसासम्पयुत्त सेवा नो च किलेसा? तेहि धम्मेहि ये धम्म संपयुत्ता ते धम्मे थपेत्वा वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो - इमे धम्म किलेसासम्पयुत्त सेवा नो च किलेसा।

1259. कतमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त संकिलेशिका? तेहि धम्मेहि ये धम्म विप्पयुत्ता सासव कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त संकिलेशिका।

1260. कतमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त असंकिलेशिका? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म किलेसविप्पयुत्त असंकिलेसिका।

पिट्ठिदुकम्

1261. कतमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा? तिनि संयोगनि - सक्कयादिति, विचिकीच्चा, सिलब्बतपरमसो।

1262. तत्थ कतामा सक्कयादिति? इधा अस्सुत्वा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावि अरियाधम्मस्सा अकोविदो अरियाधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानां अदस्सावि सप्पुरिसाधम्मस्सा अकोविदो सप्पुरिसाधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवंतम् वा अत्तनं, अत्तनि वा

रूपं, रूपस्मि वा अत्तनं। वेदानां...पे... सन्नं...पे... संखरे...पे... विनाणं अत्ततो समनुपस्सति, विनाणवंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा विनाणं, विनानास्मिम् वा अत्तनं. या इवरूप दिति दितिथिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुक्कति सक्कयादिति।

1263. तथा कतमा विचिकीच्चा? सत्थरि कांखति विचिकीच्चति...पे... थंभितट्टं चित्तस्स मनोविलेखो - अयं वुच्चति विचिकीच्चा।

1264. तत्थ कतमो सिलब्बतपरमसो? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं सिलेना शुद्धि वतेन शुद्धि सिलाब्बतेन शुद्धि - या एवरूपा दिदिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुकाति सिलब्बतपरमसो। इमानि तिनि संयोगनि, तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विनाणकखंडहो, तंसमुत्थानां कायकम्मं वाचिकम्माम् मनोकम्मम् - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा।

1265. कतमे धम्म न दस्सानेन पहतब्बा? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म न दस्सानेन पहतब्बा।

1266. कटमे धम्म भवनाय पहतब्बा? अवसेसो लोभो दोसो मोहो, तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, तंसमुत्थानं कायकम्मं, वचिकम्मं मनोकम्मं - इमे धम्म भवनाय पहतब्बा.

1267. कटमे धम्म न भवनाय पहतब्बा? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्ककखंडो...पे... विनाणक्ककखंडो; सब्बन्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म न भवनाय पहतब्बा।

1268. कटमे धम्म दस्सानेन पहतबहेतुका? तिनि संयोगनि - सक्कयादिति, विचिकीच्चा, सिलब्बतपरमसो।

1269. तत्थ कतामा सक्कयादिति? इधा अस्सुत्वा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावि अरियाधम्मस्सा अकोविदो अरियाधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानां अदस्सावि सप्पुरिसाधम्मस्सा अकोविदो सप्पुरिसाधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवंतम् वा अत्तनं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मि वा अत्तनं। वेदानां...पे... सन्नं...पे... संखरे...पे... विनाणं अत्ततो समनुपस्सति, विनाणवंतं वा अत्तनं, अत्तानि वा विनाणं, विनानास्मिम् वा अत्तनं. या इवरूप दिति दितिथिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुक्कति सक्कयादिति।

1270. तथा कतमा विचिकीच्चा? सत्थरि कांखति विचिकीच्चति...पे... थंभितट्टं चित्तस्स मनोविलेखो - अयं वुच्चति विचिकीच्चा।

1271. तत्थ कतमो सिलब्बतपरमसो? इतो बहिद्ध समानब्राह्मणं सिलेना शुद्धि वतेन शुद्धि सिलाब्बतेन शुद्धि - या एवरूपा दिदिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुकाति सिलब्बतपरमसो। इमानि तिनि संयोगनि, तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विनाणकखंडो, तंसमुत्थानं कयाकम्मं, वसीकम्मं, मनोकम्मम् - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बहेतुका। तिनि संयोगनि - सक्कयादिथि, विचिच्चा, सिलब्बतपरमसो - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा। तदेकठो लोभो दोसो मोहो — इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बहेतु। तदेकत्था च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म दस्सानेना पहतबहेतुका.

1272. कतमे धम्म न दस्सानेन पहतबहेतुका? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्ककखंडो...पे... विनाणक्ककखंडो; सब्बनचा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म न दस्सानेन पहतब्बहेतुका।

1273. कटमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका? अवसेसो लोभो दोसो मोहो - इमे धम्म भवनाय पहतबहेतु। तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका.

1274. कटमे धम्म न भवनाय पहतबहेतुका? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्ककखंडो...पे... विनाणक्ककखंडो; सब्बनचा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म न भवनाय पहतबहेतुका।

1275. कटमे धम्म सवितक्का? सवितक्कभूमियं कामावके रूपावकेर अपरियापन्न, वितक्कम थपेत्वा, तंसम्पायुत्तो वेदानाक्खन्धो...पे... विनाणक्कखंडो - इमे धम्म सवितक्क।

1276. कटमे धम्म अवित्क्का? अवितक्कभूमियं कामवकेरे रूपावकेरे अरूपावकेरे अपरियापन्न; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; विटक्को च, सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अवित्क्का।

1277. Katame dhammā savicārā? Savicārabhūmiyaṃ kāmāvacare rūpāvacare apariyāpanne, vicāraṃ ṭhapetvā, taṃsampayutto vedanākkhandho, saññākkhandho, saṅkhārakkhandho, viññāṇakkhandho — ime dhammā savicārā.

1278. कटमे धम्म विचार? अविचारभूमियं कामवकेरे रूपावकेरे अरूपावकेरे अप्रियाने; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; विचारो च, सब्बाञ्च रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म विचार।

1279. कटमे धम्म सप्पितिका? सप्पितिकाभूमियं कामावके रूपावकेर अपरियापन्ने, पीतिं थापेत्वा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विनन्नाकखण्डो - इमे धम्म सप्पितिका।

1280. कटमे धम्म अप्पितिका? अप्पितिकाभूमियं कामवकेरे रूपावकेरे अरूपावकेरे अपरियापन्न; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; पिटि च, सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म अप्पितिका।

1281. कतमे धम्म पितिसाहगता? पीतिभूमियं कामावके रूपावकेर अपरियापन्न, पीतिं थपेत्वा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विनन्नाक्खन्धो - इमे धम्म पितिसाहगता।

1282. कतमे धम्म न पितिसाहगता? न पितृभूमियं कामवकेरे रूपावकेरे अरूपावकेरे अप्रियाने; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; पिटि च, सब्बान्चा रूपं, असंखता च धातु - इमे धम्म न पतिसहगाता।

1283. कतमे धम्म सुखसहगाता? सुखाभूमियं कामावके रूपावकेर अपरियापन्ने, सुखं थपेत्वा, तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खान्धो, संखरक्खान्धो, विनानाक्खण्डो - इमे धम्म सुखसहागता।

1284. कतमे धम्म न सुखसहगाता? न सुखभूमियं कामवकेरे रूपावकेरे अरूपावकेरे अप्रियाने; वेदानाक्कखंडो...पे... विनाणक्कखंडो; सुखञ्च, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म न सुखसहगता।

1285. कतमे धम्म उपेक्खसहगता? उपेक्खभूमियं कामावकेरे रूपावकेरे अरुपावकेरे अपरियापन्न, उपेक्खं थपेत्वा, तंसम्पायुत्तो सन्नाक्खान्धो, संखराक्खाण्डो, विनानाक्खण्डो - इमे धम्म उपेक्खसहागता.

1286. कतमे धम्म न उपेक्खसहगता? न उपेक्खभूमियं कामावकेरे रूपावकेरे अपरियापन्ने, वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, उपेक्खा च, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म न उपेक्खसहागता.

1287. कटमे धम्म कामवचरा? हेठहतो अविसिनिरयं परियंतं करित्वा, उपरितो परनिम्मितावसवत्ति देवे [परनिम्मितवसवत्तिदे (सि. का.)] अंतो करित्वा, यं एतस्मिं अंतरे एत्थावकार एत्थ परियपन्ना खंडधातु आयताना, रूपं वेदाना संखरा विनाशं — इमे धम्म कामवचरा।

1288. कतमे धम्म न कामवचरा? रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न कामवचरा।

1289. कटमे धम्म रूपवचरा? हेठहतो ब्रह्मलोकं परियंतं करित्वा, उपरितो अकनिट्ठे देवे [अकनिट्ठदेवे (सि. का.)] अंतो करित्वा, यं एतस्मिं अंतरे एत्थावकारा एत्था परियपन्न समापन्नस्सा वा उपप्पन्नस्सा वा दिट्ठधम्मसुखविहारस्सा [दितिथधम्मसुखविहारस्सा (का.)] और चित्तसिटासिका धम्म - इमे धम्म रूपावकारा।

1290. कटमे धम्म न रूपवचरा? कामवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न रूपवचरा।

1291. कटमे धम्म अरूपवकारा? हेठहतो आकाशान्चायतनुपगे देवे परियंतं करित्वा, उपरितो नेवासंन्यानासंन्यातनुपगे देवे अंतो करित्वा, यं एतस्मिं अंतरे एत्थावकार एत्थ परियपन्ना समपन्नस्सा वा उपप्पन्नस्सा वा दिट्ठधम्मसुखविहारिस्स वा चित्तसेटसिका धम्म - इमे धम्म अरुपवकारा।

1292. कतमे धम्म न अरूपवचरा? कामवचरा, रूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न अरूपवचरा।

1293. कतमे धम्म परियापन्ना? सासव कुसलकुशलाब्यक्त धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, रूपकखंडो...पे... विनाणकखंडहो - इमे धम्म परियपन्ना।

1294. कतमे धम्म अपरियापन्ना? मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अपरियपन्ना।

1295. कतमे धम्म नियमिका? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना - इमे धम्म निय्यनिका।

1296. कतमे धम्म अनियानिका? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म अनियिका।

1297. कतमे धम्म नियता? पञ्च कम्मानि अनंतारिकानि, या च मिच्छादिति नियता, कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना - इमे धम्म नियता।

1298. कतमे धम्म अनियाता? ते धम्मे थपेत्वा अवसेसा कुसलकुशालाब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म अनियता।

1299. कटमे धम्म सौत्तरा? सासव कुसलकुशलब्यकाता धम्म कामवकार, रूपवचरा, अरूपवचरा; रूपकखंडो...पे...विनाणकखंडहो - इमे धम्म सौत्तरा।

1300. कतमे धम्म अनुत्तारा? अपरियापन्ना मग्गा च, मग्गफलनि च, असंखता च धातु - इमे धम्म अनुत्तारा।

1301. कटमे धम्म शरणा? तिनि अकुशलमुलानि लोभो, दोसो, मोहो; तदेकंठ च किलेसा, तंसम्पायुत्तो वेदनाक्खन्धो...पे... विन्ननक्खन्धो, तंसमुत्थानं कायकम्मम, वाचिकम्मम, मनोकम्मम - इमे धम्म सरणा।

1302. कटमे धम्म अरणा? कुसलब्यकाता धम्म कामवचरा, रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना; वेदानाक्खन्धो...पे... विन्नन्नक्खन्धो, सब्बाञ्च रूपं, असन्खता च धातु - इमे धम्म अरणा।

अभिधम्मदुकम्.

सुत्तंतिकदुकनिकखेपं

1303. कतमे धम्म विज्जाभागिनो? विजयाय संपयुत्तका धम्म - इमे धम्म विज्जाभागिनो।

1304. कतमे धम्म अविज्जाभागिनो? अविज्जाय संपयुत्तका धम्म - इमे धम्म अविज्जाभागिनो।

1305. कतमे धम्म विज्जुपमा? हेथिमेसु तिसु अरियामग्गेसु पन्ना - इमे धम्म विज्जुपमा।

1306. कतमे धम्म वाजीरूपमा? उपरिथिमे अरहतमग्गे पन्ना - इमे धम्म वाजीरूपमा।

1307. कतमे धम्म बाला? अहिरिकांच अनोत्तप्पनचा - इमे धम्म बाला। सब्बेपि अकुसाला धम्म बला।

1308. कटमे धम्म पंडिता? हिरि च ओट्टप्पनचा - इमे धम्म पंडिता। सब्बेपि कुशला धम्म पंडिता।

1309. कटमे धम्म कान्हा? अहिरिकांच अनोत्तप्पनचा - इमे धम्म कान्हा। सब्बेपि अकुसाला धम्म कान्हा।

1310. कटमे धम्म सुक्का? हिरि च ओट्टप्पनचा - इमे धम्म सुक्का? सब्बेपि कुसल धम्म सुक्खा।

1311. कटमे धम्म तपनिया? कायदुच्चरिताम्, वासिदुच्चरिताम्, मनोदुच्चरिताम् – इमे धम्म तपनिया। सब्बेपि अकुसाला धम्म तपनिया।

1312. कटमे धम्म अतपनीय? कायासुचरितम्, वसीसुचरितम्, मनोसुचरितम् - इमे धम्म अतापनीय। सब्बेपि कुसल धम्म अतपनीय।

1313. कटमे धम्म अधिवचन? या तेसं तेसं धम्मनं संख समाना पन्नत्ती वोहारो नामं नमकमं नामधेय्यं निरुति ब्याञ्जनं अभिलापो - इमे धम्म अधिवचन। सब्बेव धम्म अधिवचनपथ।

1314. कतमे धम्म निरुति? या तेसं तेसं धम्मनं संखा समान्ना पन्नत्ती वोहारो नामं नमकमं नामधेय्यं निरुति ब्याञ्जनं अभिलापो – इमे धम्म निरुति। सब्बेव धम्म निरुत्तिपथा।

1315. कटमे धम्म पन्नति? या तेसं तेसं धम्मनं संखा समान्ना पन्नत्ती वोहारो नामं नमकमं नामधेय्यं निरुति ब्याञ्जनं अभिलापो - इमे धम्म पन्नति। सब्बेव धम्म पन्नतिपथ।

1316. तत्थ कतमं नामं? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, विन्नन्नक्खन्धो, असन्खता च धातु – इदं वुच्चति नामं।

1317. तत्थ कतमं रूपं? चत्तरो च महाभूत, चतुन्नच महाभूतानां उपादय रूपम् - इदं वुच्चति रूपम्।

1318. तथा कतमा अविज्जा? यं अन्नणं अडस्सणं...पे... अविज्जालंगी मोहो अकुसलमूलं - अयं वुकाति अविज्जा।

1319. तत्थ कतमा भवतन्हा? यो भावेसु भवचंदो...पे... भावज्जोसानं - अयं वुच्चति भवतंहा।

1320. तत्थ कतम भवदिथि? भविष्यसति अत्ता च लोको चति, या एवरुपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुच्चति भवादिति।

1321. तत्थ कतम विभावदिथि? न भविष्यसति अत्ता च लोको चति, या एवरूपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं बुच्चति विभवादिति।

1322. तत्थ कतामा सस्सतादिथि? सस्सतो अत्ता च लोको चति, या एवरुपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं बुच्चति सस्सतादिति।

1323. तत्थ कतामा उच्छेददिति? उच्छिज्जिसति अत्ता च लोको चति, या एवरूपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुकाति उच्छेदिदिथि।

1324. तत्थ कतमा अन्तव दिति? अंतवा अत्ता च लोको चति, या एवरुपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुच्चति अंतवा दितिथि।

1325. तत्थ कतमा अनन्तवा दितिथि? अनंतवा अत्ता च लोको चति, या एवरुपा दितिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं बुच्चति अनंतवा दितिथि।

1326. तत्थ कतामा पुब्बन्तानुदिति? पुब्बनं अरब्भा य उप्पज्जति दितिथि दितिथिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं वुच्चति पुब्बंतनुदिति।

1327. तत्थ कतम अपरान्तानुदिति? अपरान्तं अरब्भ य उप्पज्जति दिदिथि दितिगतं...पे... विपरियासग्गहो - अयं बुच्चति अपरान्तानुदिति।

1328. तत्थ कतमं अहिरिकं? यं न हिरियति हिरियितब्बेन, न हिरियति पापकाणं अकुशलनं धम्मनं समापत्तिया - इदं वुच्चति अहिरिकाम्।

1329. तत्थ कतमं अनोत्प्पं? यं न ओट्टप्पति ओट्टप्पितब्बेन, न ओट्टप्पति पापकनं अकुशलनं धम्मणं समापत्तिया - इदं वुक्कति अनोत्प्पट्टम्।

1330. तथा कतामा हिरि? यं हिरियति हिरियितब्बेन, हिरियति पापकाणं अकुशलनं धम्मनं समापत्तिया - अयं वुकाति हिरी।

1331. तत्थ कटमं ओट्टप्पं? यं ओट्टप्पति ओट्टप्पितब्बेण, ओट्टप्पति पापकानं अकुशलनं धम्मणं समापत्तिया — इदं वुक्कति ओट्टप्पाम्।

1332. तत्थ कतमा दोवाकसता? सहधम्मिके वुक्कामाने दोवाकासायं दोवाकासियाम् दोवाकासटा विप्पतिकुलग्गाहिता विपक्कनिकासाता अनादारियं अनादारता अग्रवता अप्पिस्सवता - अयं बुक्काति दोवाकासाता।

1333. तथा कतमा पापमित्तता? ये ते पुग्गला अस्सद्धा दुस्सिला अप्पसुता मच्छरिनो दुप्पन्न, या तेसां सेवना निसेवना संसेवना भजना संभाजना भट्टि संभति तंसम्पावंकटा - अयं वुक्कति पापमित्तता।

1334. तथा कतमा सोवकसता? सहधम्मिके वुक्कामाने सोवकास्सयं सोवकैसियां सोवकासटा अप्पतिकुलग्गाहिता अविपक्कनिकासता सगारवता सदारियं सदारता सप्पतिस्सावता - अयं वुक्काति सोवाकसता।

1335. तत्थ कतमा कल्याणमित्ता? ये ते पुग्गला सद्धा सिलवंतो बहुसुता चागवंतो पन्नवंतो, या तेसां सेवना निसेवाना संसेवना भजना संभाजना भट्टी संभति तंसमपवंकटा - अयं वुकाति कल्याणमित्तता।

1336. तथा कतमा अपत्तिकुसलता? पणकापि अपत्तिक्खंडा अपत्तियो, सत्तपि अपत्तिक्खंडा अपत्तियो। या तसं अपत्तिनं अपत्तिकुसलता पञ्जाना...पे... अमोहो धम्मविकैयो सम्मादिति - अयं वुच्चति अपत्तिकुसलता।

1337. तथा कतमा अपत्तिवुथनाकुसलता? या ताहि अपत्तिहि वुथनाकुसलता पन्निना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकायो सम्मदिथि - अयं वुच्चति अपत्तिवुथनाकुसलता।

1338. तथा कतमा समापत्तिकुसलता? अत्थि सवितक्कसविचार समापत्ति, अत्थि अवित्क्कविचारमत्ता समापत्ति, अत्थि अवित्क्कविचार समापत्ति। या तसं समापत्तिनं समापत्तिकुसलता पणिना पजानना...पे... अमोहो धम्मविकैयो सम्मादिथि - अयं वुच्चति समापत्तिकुसलता।

1339. तत्थ कतम समापत्तिवुथनाकुसलता? या ताहि समापत्तिहि वुथनाकुसलता पन्निना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकायो सम्मदिथि - अयं वुच्चति समापत्तिवुथनाकुसलता।

1340. तथा कतमा धातुकुशलता? अथारस धातुयो चक्कुधातु रूपधातु चक्खुविनाधातु, सोतधातु सदधातु सोतविनानाधातु, घनधातु गंधधातु घनविनाधातु, जिव्हाधातु रसधातु जिव्हाविनाधातु, कायधातु फोथ्बधातु कायविनाधातु, मनोधातु धम्मधातु मनोविनानाधातु। या तसं धातुं धातुं धातु पजानन...पे... अमोहो धम्मविकैयो सम्मादिति - अयं वुच्चति धातुकुसलता।

1341. तत्थ कतमा मानसिकारकुसलाता? या तसं धातुं मानसिकाराकुसलता पन्नना पजानन...पे... अमोहो धम्मविकयो सम्मदिथि - अयं वुच्चति मनसिकराकुशलता।

1342. तथा कतामा आयतनकुशलता? द्वादशायतनानि - चक्खायतनं, रूपायतनं, सोतायतनं, सद्दायतनं, घनायतनं, गन्धायतनं, जीवायतनं, रसायतनं, कायायतनं, फोथ्बबायतनं, मनायतनं, धम्मायतनं। या तेसं आयतनं आयतनकुशलता पन्ना पजानन...पे... अमोहो धम्मविचयो सम्मदिथि - अयं वुक्कति आयतनकुशलता।

1343. तत्थ कतमा पतिच्चसमुप्पदकुशलता? अविज्जापच्चाय संखरा, संखरापच्चय विनाणं, विन्यानपच्चया नामरूपप, नामरूपपच्चय संख्यातनं, साशायतनपच्चय फासो, फस्सापच्चया वेदाना, वेदानापच्चया तन्हा, तन्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भावो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणम् सोकापरिदेवदुक्खदोमनसुपासयसा संभवंती; एवेमेतस्सा केवलास्सा दुक्खक्खनधास्सा समुदयो होतिति। या तत्थ पन्ना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकायो सम्मदिथि - अयं वुच्चति पतिच्चासमुप्पादकुशलता।

1344. तथा कतमा थनकुसलता? ये ये धम्म येसं येसं धम्मनं हेतु पकाया उपपादाय [उपादाय (सि. का.)] तं तं थनन्ति, या तत्थ पणना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकायो सम्मादिथि - अयं वुक्कति थनाकुसलता।

1345. तत्थ कतमा आठानकुशलता? ये ये धम्म येसं येसं धम्मनं न हेतु न पकाया उपपादया तं तं अठहनन्ति, या तत्थ पणना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकायो सम्मादिथि - अयं वुक्कति अट्ठानकुसलता।

1346. तत्थ कतमो अज्जावो? या अज्जवता अजिम्हता अवंक्ता अकुटिलता - अयं वुच्चति अजजवो।

1347. तत्थ कतमो मद्दवो? या मुदुता मद्दवता अक्क्खहता अकाथिनाता निकचित्त - अयं वुच्चति मद्दवो।

1348. तथा कतमा खांति? या खांति खमनता अधिवासनता अचंडिक्कं अनसुरोपो अत्तमनता चित्तस्स - अयं वुकाति खांति।

1349. तत्थ कतमं सोरक्कं? यो कायिको अवितिक्कमो, वाचासिको अवितिक्कमो, कायिकावाकसिको अवितिक्कमो - इदं वुक्काति सोरक्कम। सब्बोपि सिलासनवरो सोराक्कं।

1350. तत्थ कतमम् सखाल्यम्? या सा वाचा अंडका कक्कासा परकटुका परभिसज्जनी कोधासामंता असामाधिसंवत्निका, तथरूपिं वाचं पहाया या सा वाचा नेडा कनसुखा पेमानिया हदयंगमा पोरि बहुजनकांता बहुजनमानापा तथारुपिं वाचं भासिता होति; या तत्थ सञ्हावाचटा सखिलवाचटा अफरुसावाचटा - इदं वुक्कति सखाल्यम्।

1351. तत्थ कतमो पतिसंथारो? द्वे पतिसंथारा - अमिसपतिसंथारो च धम्मपतिसंथारो च। इधेकाको पतिसंथारेणो होति अमिसाप्तिसंथारेण वा धम्मपतिसंथारेण वा - अयं वुक्काति पतिसंथारो।

1352. तत्थ कतामा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता? इधेक्कको चक्खुना रूपं दिस्व निमित्तग्गहि होति अनुब्यञ्जनग्गहि। यत्वधिकरणमेनं चक्कुंद्रियं असवुतं विहारं अभिज्झादोमनसा पापका अकुशला धम्म अनवस्सवेयुं, तस्स संवराय न पतिपज्जति, न रक्खति चक्कुंद्रियं, चक्खुन्द्रिये न संवरं आपज्जति। सोतेन सददां सुत्वा...पे... घनेन गंधं घयित्वा...पे... जिव्हाय रसं सैयित्वा...पे... कायेन फोथब्बम फुसित्वा...पे... मनसा धम्मं विन्याया निमित्तग्गाहि होति अनुब्यञ्जनगाहि। यत्वाधिकारमेनं मनिन्द्रियं असवुतं विहारं अभिज्झादोमनसा पापका अकुशल धम्म अनवस्सवेयुं, तस्स सावराय न पतिपज्जति, न रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये न संवरं आपज्जति. या इमेसं चन्नं इन्द्रियानं अगुत्ती अगोपना अनारक्खो असनवारो - अयं वुक्कति इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता।

1353. तथा कतमा भोजने अमत्तन्नुता? इधेकाक्को अप्पतिसंखा अयोनिसो आहारम् आहारेति दवाया मदाय मन्दनाय विभूषणाय। या तत्थ असंतुथिता अमत्तन्नुता अप्पतिसंखा भोजने - अयं वुकाति भोजने अमत्तन्नुता।

1354. तत्थ कतमा इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता? इधेक्कको चक्खुना रूपं दिस्व न निमित्तग्गहि होति न अनुब्यंजनग्गहि। यत्वधिकरणमेनं चक्कुंद्रियं असवुतं विहारं अभिज्झादोमनसा पापका अकुशला धम्म अनवस्सवेयुं, तस्स संवराय पतिपज्जति, रक्खति चक्कुंद्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सददां सुतवा...पे... घनेन गंधं घयित्वा...पे... जिव्हाय रसं सैयित्वा...पे... कायेन फोथब्बम फुसित्वा...पे... मनसा धम्मं विन्याय न निमित्तग्गाहि होति नानुब्यञ्जनगाहि। यत्वाधिकारमेनं मनिन्द्रियं असवुतं विहारं अभिज्झादोमानस्सा पापाका अकुशल धम्म अनवस्सवेयुं, तस्स सावराय पतिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति. या इमेसं चन्नं इन्द्रियानं गुत्ती गोपना अरक्खो संवरो - अयं वुक्कति इन्द्रियेसु गुट्टाद्वारता।

1355. तथा कतमा भोजने मत्तन्नुता? इधेकाको पतिसंखा योनिसो अहारं अहारेति - नेव दवया न मदाय न मन्दनाय न विभुसनाय यावदेव इमास्सा कायास्सा हितिया यापनाय विहिंसुपरतिया ब्रह्मचर्यानुग्गहाय, इति पुराणाञ्च वेदानां पतिहंखामि, नवाञ्च वेदानां न उपपादेस्सामि, यत्र च मे भविष्यसति अनवज्जता च फासुविहारो बिल्ली. या तत्थ संतुथिता मत्तन्नुता पतिसंखा भोजने - अयं वुकाति भोजने मत्तन्नुता।

1356. तत्थ कतमं मुठ्ठसच्चं? या असति अननुस्सति अप्पिस्सति असति असारणाता अधारनता पिलापनाता सम्मुसनता - इदं वुक्कति मुत्थसक्कं।

1357. तत्थ कतमं असंपजान्नं? यं अन्नानं अडस्सानं...पे... अविज्जलंगी मोहो अकुसलमूलं - इदं वुक्कति असंपजान्नं।

1358. तथा कतम सति? या सति अनुस्सति पतिसति सति शरणता धारणाता अपिलपनता असम्मुसनता सति सतिन्द्रियं सतिबलं सम्मासति - अयं वुच्चति सति।

1359. तत्थ कतमं संपजान्नं? या पन्ना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकयो सम्मदिति - इदं वुक्कति संपजान्नं।

1360. तत्थ कतमं पतिसंखानबलं? या पन्नना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकयो सम्मदिथि - इदं वुक्कति पतिसंखानबलं।

1361. तत्थ कतमं भावनाबलं? या कुसलानां धम्मनां असेवना भावना बहुलिकम्म - इदं वुच्चति भावनाबलं। सत्तपि बोज्झांगा भावनाबलं।

1362. तत्थ कतमो समथो? या चित्तस्स तिथि...पे... सम्मासमधि - अयं वुच्चति समथो।

1363. तथा कतमा विपश्यना? या पन्नना पजाना...पे... अमोहो धम्मविकयो सम्मदिथि - अयं वुच्चति विपश्यना।

1364. तत्थ कतमं समथनिमित्तं? या चित्तस्स तिथि...पे... सम्मासमधि - इदं वुच्चति समथनिमित्तम्।

1365. तत्थ कतमं पग्गहनिमित्तम्? यो चेतासिको वीर्यारम्भो...पे... सम्मावायमो - इदं वुच्चति पग्गानिमित्तम्।

1366. तत्थ कतमो पगगाहो? यो चेतासिको वीर्यारंभो...पे...सम्मावायमो - अयं वुच्चति पग्गाहो।

1367. तत्थ कतमो अविक्खेपो? या चित्तस्स तिथि...पे... सम्मासमधि - अयं वुच्चति अविक्खेपो।

1368. तथा कतमा सिलविपत्ति? यो कायिको विटिककमो, वाचासिको विटिककमो, कायिकावाकसिको विटिककमो — अयं वुक्काति सिलाविपत्ति। सब्बमपि दुस्सिल्यं सिलविपत्ति।

1369. तत्थ कतमा दितिथिविपत्ति? नत्थि दिनं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतां, नत्थि सुक्तदुक्कतनं कम्मनं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि पारो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपापतिका, नत्थि लोके समानाब्राह्मण सम्मग्गता सम्मपतिपन्न ये इमाञ्च लोकं पराञ्च लोकं सयं अभिना सच्चिकत्व पवेदेंतिः या इवरूपा दिति दिथिगतं...पे... विपरियासग्गहो — अयं वुच्चति दितिथिविपत्ति। सब्बापि मिच्छादिथि दिथिविपत्ति।

1370. तथा कतमा सिलसम्पदा? यो कायिको अवितिक्कमो, वाचासिको अवितिक्कमो, कायिकावाकसिको अवितिक्कमो — अयं वुच्चति सिलसम्पदा। सब्बोपि सिलासनवरो सिलसम्पदा।

1371. तत्थ कतमा दितिथिसंपदा? अत्थि दिनं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतां, अत्थि सुक्तदुक्कतनं कम्मणं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपतिका, अत्थि लोके समानाब्राह्मण सम्मग्गता सम्मापतिपन्ना ये इमाञ्च लोकं पराञ्च लोकं सयानं अभिन्न सच्चिकत्व पवेदेंतिः या इवरूपा पञ्जाना...पे... अमोहो धम्मविकैयो सम्मादिथि - अयं वुच्चति दितिथिसंपदा। सब्बापि सम्मदिथि दितिथिसंपदा।

1372. तथा कतमा सिलविशुद्धि? यो कायिको अवितिक्कमो, वाचासिको अवितिक्कमो, कायिकावाकसिको अवितिक्कमो — अयं वुच्चति सिलाविशुद्धि। सब्बोपि सिलासनवरो सिलविशुद्धि।

1373. तत्थ कतम दितिविशुद्धि? कम्मास्साकाटानां सैकानुलोमिकानां मग्गासमंगिस्सा नानाणं फलसामंगिस्सा नानाणं।

1374.दितिथिविशुद्धिको पनाति - या पणना पजाना...पे... अमोहो धम्मविशुद्धिको सम्मादिति।

1375.यथादिथिस्सा च पधानन्ति - यो चेतासिको वीर्यारम्भो...पे... सम्मावायमो।

1376.संवेगोति - जातिभयं जराभयं ब्याधिभयं मरणभयं। संवेजनीयं [संवेजनीयं (सि.)] थाहनन्ति - जाति जरा ब्याधि मरणं।

1377.संविग्गस्सा च योनिसो पधानन्ति - इधा भिक्खु अनुप्पन्नं पापकाणं अकुशलनं धम्मणं अनुप्पदाय चंदं जनेति वयमति वीर्यं आरभति चित्तं पग्गनहाति पदहति, उप्पन्नानं पापकाणं अकुशलनं धम्मणं पहानय चंदं जनेति वयमति वीर्ययं आरभति चित्तं पग्गनहति पदहति, अनुप्पन्ननं कुसलानां धम्मनं उपपादाय चंदं जनेति वयमति वीर्यं अरभति चित्तं पग्गनहति पदहति, उप्पन्नं कुसलानां धम्मनां धम्मनं तीथिया असम्मोसया भय्योभवाय वेपुलाय भवनाय पारिपुरिया चंदं जनेति वयमति वीर्यं आरभति चित्तं पग्गनहाति पदहति।

1378.असंतुट्ठहिता च कुसालेसु धम्मेसुति - या कुसलानां धम्मनां भवनाय असंतुष्टहस्स भय्योकाम्यता।

1379.अप्पटिवनिता च पधानस्मिन्ति - या कुसलानां धम्मनां भवनाय सक्कक्ककिरीयता सताच्चकिरियता अथिताकिरियता एनोलिनावुत्तिता अनिकखिटचांदता अनिखित्तधुरता असेवना भावना बहुलिकम्माम्।

1380.विज्जति - तिस्सो विज्जा - पुब्बेनिवासनुस्सति नानणं विज्जा, सत्तनं कटुपपते नानणं विज्जा, आसवनं खाये नानणं विज्जा।

1381.विमुत्ति - द्वे विमुत्तियो - चित्तस्स [चित्तस्स च (सि. स्या.)] अधिमुत्ति, निब्बाणञ्च।

1382.खाये नानन्ति - मग्गासमन्गिस्सा नानणं।

1383.अनूप्पदे नाणन्ति - फलसामंगिस्सा नाणनम्।

निक्खेपकाण्डं निहितं ।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 1
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
- भाग 1

अध्याय I - तीन जुड़वा बच्चों का समूह
टिकम
[पृष्ठ 250] [1]
[981] कौन से राज्य अच्छे हैं?
अच्छे (कर्म) के तीन मूल,[2] अर्थात्, कामवासना का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव; [पृष्ठ 251] भावना, बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध जब वे उन तीन मूलों से जुड़े होते हैं; जो भी क्रिया, शारीरिक, वाचिक और मानसिक,[3] उन तीन मूलों से उत्पन्न होती है।
[982] कौन से राज्य बुरे हैं?
बुरे (कर्म) के तीन मूल, अर्थात् कामवासना, घृणा, सुस्ती; उनसे जुड़े भ्रष्टाचार;[4] भावना, बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध जब ये उनसे जुड़े होते हैं; जो भी क्रिया, शारीरिक, वाचिक और मानसिक, उनसे उत्पन्न होती है।
[983] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अनिश्चित हैं?
इंद्रिय, रूप, या निराकार जगत में, या [अविभाजित जीवन] में प्रभावी होने वाली अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम;[5] भावना, बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध,[6] इसके अलावा, क्रिया-विचार के रूप में जानी जाने वाली अवस्थाएँ,[7] जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं, न ही कर्म के परिणाम हैं; अंत में, सभी रूप और अविभाजित तत्व।[8]

[984] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो सहजता की भावना से जुड़ी हैं?

बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध[9] (स्वयं [पृष्ठ 252] भावना को छोड़कर) सहजता प्रदान करने वाली मिट्टी में [चेतना के उत्पन्न होने से] जुड़ी अवस्थाएँ हैं,[10] चाहे वह इंद्रिय या रूप के संसार से संबंधित हो, या उस जीवन से जो अविभाजित है।

[985] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कष्टदायक भावना से जुड़ी हैं?

बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध (स्वयं भावना को छोड़कर) वे अवस्थाएँ हैं जो इंद्रिय-संबंधी जगत से संबंधित कष्टमय भूमि में उत्पन्न होने वाली चेतना से जुड़ी होती हैं।

[986] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो ऐसी भावना से जुड़ी हैं जो न तो दर्दनाक है और न ही सुखद?

बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध (स्वयं भावना को छोड़कर) तटस्थ भूमि में उत्पन्न होने वाली चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ हैं, चाहे वह इंद्रिय, रूप, या निराकार जगत से संबंधित हो, या उस जीवन से जो अविभाजित है।

[987] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो परिणाम हैं?

अच्छे और बुरे राज्यों के परिणाम जो इंद्रिय, रूप और निराकार के जगत में और उस जीवन में जो अविभाजित है; [दूसरे शब्दों में] चार स्कंध।[11]

[पृष्ठ 253] [988] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनमें परिणामी अवस्थाएँ शामिल हैं?[12]

इंद्रिय, सजीव और निराकार जगत से संबंधित अच्छी और बुरी अवस्थाएँ, या वह जीवन जो अविभाजित है; [दूसरे शब्दों में] चार स्कंध।

[989] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो न तो परिणाम हैं और न ही उनमें परिणामी अवस्थाओं को शामिल करने का गुण है?

वे अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं, और न ही कर्मों का परिणाम हैं; वे सभी एक अविभाजित तत्व का निर्माण करती हैं।

[990] वे कौन से राज्य हैं जो हड़पने का मुद्दा भी हैं और इसके लिए अनुकूल भी हैं?[13]

सह-नशा[14] इंद्रिय, रूप या निराकार के जगत में प्रभावी होने वाली अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; इसके अलावा, ऐसा रूप जो कर्म के कारण होता है।

[991] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो लोभ का मुद्दा नहीं हैं, बल्कि लोभ के लिए अनुकूल हैं?

इंद्रियों, रूपों और निराकारों के जगत में प्रभावी होने वाली अच्छी और बुरी सह-नशे की अवस्थाएँ; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; इसके अलावा, क्रियाविचार के रूप में जानी जाने वाली वे अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म का परिणाम हैं; साथ ही ऐसा रूप जो कर्म के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है।

[992] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो न तो हड़पने का मुद्दा हैं और न ही इसके अनुकूल हैं?

[पृष्ठ 254] वे पथ जो असंलग्न हैं,[15] और पथों के फल,[16] और असंयोजित तत्व।

[993] वे कौन से राज्य हैं जो भ्रष्ट और हानिकारक हैं?[17]

बुरे कर्मों के तीन मूल कारण, अर्थात् कामवासना, घृणा और सुस्ती; उनसे जुड़े हुए विकार; उनसे जुड़े हुए चार स्कंध; और उनसे उत्पन्न होने वाली सभी क्रियाएँ, चाहे शारीरिक हों, वाचिक हों या मानसिक।

[994] वे कौन से राज्य हैं जो भ्रष्ट नहीं बल्कि हानिकारक हैं?

अच्छी और अनिश्चित सह-नशा अवस्थाएँ जो इंद्रिय, रूप और निराकार के जगत में प्रभावी होती हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच[18] स्कंध।

[पृष्ठ 255] [995] वे कौन से राज्य हैं जो न तो भ्रष्ट हैं और न ही हानिकारक?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल और अमिश्रित तत्व।

[996] वे कौन से राज्य हैं 'जिनमें अवधारणा काम करती है और विचार विवेचनात्मक होता है'?[19]

चार स्कंध (अवधारणा और विवेचनात्मक विचार को छोड़कर)[20] जो जुड़े हुए हैं[21] [चेतना के साथ उत्पन्न] ऐसी मिट्टी में जो अवधारणा और विवेचनात्मक विचार के कार्य के लिए अनुकूल हो, चाहे वह इंद्रिय जगत से संबंधित हो या रूप जगत से, या उस जीवन से जो असंलग्न है।

[997] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं 'जिनमें अवधारणा का कोई कार्य नहीं होता है, बल्कि केवल विचार विवेचनात्मक होता है'?[22]

वे चार स्कंध (विवेचनात्मक विचार को छोड़कर) जो चेतना के उदय से जुड़े होते हैं, ऐसी भूमि में जो अवधारणा के नहीं, बल्कि केवल विवेचनात्मक विचार के कार्य के लिए अनुकूल हो, चाहे वह रूप के जगत से संबंधित हो या उस जीवन से जो अविभाजित है।

[998] वे कौन से राज्य हैं जो 'अवधारणा और विचार विवेचनात्मक के कार्य से रहित' हैं?[23]

वे चारों स्कंध जो अवधारणा और तार्किक विचार से रहित भूमि में उत्पन्न होने वाली चेतना से जुड़े हैं, चाहे वह इंद्रियों, रूपों, निराकारों के जगत से संबंधित हो या उस जीवन से जो अविभाजित है; वे सभी रूप और अविभाजित तत्व हैं।

[पृष्ठ 256] [999] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो आनंद के साथ होती हैं?
आनंद उत्पन्न करने वाली मिट्टी में उत्पन्न होने वाली चेतना से जुड़े चार स्कंध (आनंद को छोड़कर), चाहे वह इंद्रियों या रूप के जगत से संबंधित हो या उस जीवन से जो अविभाज्य है।
[1000] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो सहजता के साथ आती हैं?
[24] बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध (सुविधा को छोड़कर) जो सहजता प्रदान करने वाली मिट्टी में [उत्पन्न होने वाली चेतना के साथ] जुड़े होते हैं, चाहे वह इंद्रिय या रूप के जगत से संबंधित हो, या उस जीवन से जो अविभाजित है।
[1001] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो निःसंकोचता के साथ होती हैं?
बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध (निरासत को छोड़कर) जो निरासत के अनुकूल भूमि में उत्पन्न होने वाली चेतना से जुड़े होते हैं, चाहे वह रूपमय जगत से संबंधित हो या निराकार से, या उस जीवन से जो अविभाजित है।
[1002] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है?[25]
[पृष्ठ 257] तीन बेड़ियाँ,[26] अर्थात्, व्यक्तित्व का सिद्धांत, उलझन और मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण।
इस संदर्भ में
[1003] 'व्यक्तिवाद का सिद्धांत' क्या है?[27]
[पृष्ठ 258] जब इस संसार में[28] अज्ञानी,[29] औसत[30] मनुष्य जो श्रेष्ठ पुरुषों को नहीं देखता,[31]
जो समझता नहीं, और न ही [पृष्ठ 259] श्रेष्ठ पुरुषों के सिद्धांत के अनुसार प्रशिक्षित है[32],
जो अच्छे पुरुषों को नहीं देखता, [33] जो समझता नहीं, और न ही अच्छे पुरुषों के सिद्धांत के अनुसार प्रशिक्षित है, वह मानता है
(1) स्वयं को शारीरिक रूप में, या
(2) शारीरिक रूप धारण किए हुए, या
(3) शारीरिक रूप को स्वयं में विद्यमान मानता है, या
(4) स्वयं को शारीरिक रूप में विद्यमान मानता है[34] या
(5) स्वयं को भावना के रूप में, या
(6) भावना धारण किए हुए मानता है, या
(7) भावना को स्वयं में विद्यमान मानता है, या
(8) स्वयं को भावना में विद्यमान मानता है; या
(9) स्वयं को बोध के रूप में, या
(10) बोध धारण किए हुए मानता है, या
(11) बोध को स्वयं में विद्यमान मानता है, या
(12) स्वयं को बोध में विद्यमान मानता है; या
(13) स्वयं को संश्लेषण के रूप में, या
(14) संश्लेषण धारण किए हुए मानता है, या
(15) संश्लेषण को स्वयं में विद्यमान मानता है, या
(16) स्वयं को संश्लेषण में विद्यमान मानता है; या
(17) स्वयं को बुद्धि के रूप में, या
(18) बुद्धि धारण किए हुए मानता है, या
(19) बुद्धि को स्वयं में विद्यमान मानता है, या
(20) स्वयं को बुद्धि में विद्यमान मानता है
— फिर इस तरह की राय,
राय में चलना,
राय का जंगल, राय का वीरान इलाका, [पृष्ठ 260] राय का कठपुतली शो, राय की हाथापाई,
राय की बेड़ी,
इसकी पकड़ और दृढ़ता,
इसकी ओर झुकाव,

इससे संक्रमित होना,
यह टेढ़ा रास्ता, गलत राह, गलत होना,
यह 'पार करने की जगह',
पकड़ की यह अस्थिरता
इसे व्यक्तित्व का सिद्धांत कहा जाता है।
[1004] 'भ्रम' क्या है?
संदेह करना, असमंजस में पड़ना,
(1) गुरु के बारे में संदेह करना, उलझन में पड़ना,
(2) सिद्धांत के बारे में संदेह करना, उलझन में पड़ना,
(3) आदेश के बारे में,
(4) अनुशासन के बारे में,
(5) अतीत, भविष्य, अतीत और भविष्य दोनों के बारे में,
(6) क्या कारण-निर्धारित अवस्थाओं का कोई निश्चित कारण है[35]
— यह इसी प्रकार का संदेह है,
संदेह की यह प्रक्रिया है,
यह दुविधा है, उलझन है, व्याकुलता है, ध्यान भटकना है, चौराहे पर खड़े होना है;
पतन है, समझ की अनिश्चितता है;
टालमटोल है, संकोच है,
पूरी तरह से समझने में असमर्थता है,
मन की कठोरता है, मानसिक पीड़ा है।
इसे उलझन कहा जाता है।[36]
[1005] मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण क्या है?
हमारे सिद्धांत से बाहर संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा माना जाने वाला सिद्धांत,[37] कि शुद्धि नैतिक आचरण के नियमों से प्राप्त होती है,
कि शुद्धि अनुष्ठानों से प्राप्त होती है,
कि शुद्धि नैतिक आचरण के नियमों और अनुष्ठानों से प्राप्त होती है[38]
— इस तरह की राय, [पृष्ठ 261] मात्र राय में चलना,
राय का यह जंगल, राय
का यह वीरान इलाका,
राय का यह कठपुतली शो,
राय की खींचतान,
राय की बेड़ी,
इसकी पकड़ और दृढ़ता, इसकी
ओर झुकाव,
इससे संक्रमित होना,
यह टेढ़ा रास्ता, गलत राह, गलत होना,
यह 'पार करने का स्थान',
पकड़ की यह अस्थिरता
इसे मात्र नियम और रीति-रिवाजों का संक्रामक प्रभाव कहा जाता है।
[1006]
ये तीन बंधन, और उनसे जुड़े भ्रष्टाचार,[39] और उनसे जुड़े चार स्कंध, साथ ही उनसे उत्पन्न होने वाली क्रिया, शारीरिक, वाचिक और मानसिक — ये वे अवस्थाएँ हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है।
[1007] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिन्हें संस्कृति द्वारा दूर किया जाना है?[40]

[पृष्ठ 262] जो भी काम, घृणा और सुस्ती शेष रह जाती है, और उनसे जुड़े हुए सभी दोष; उनसे जुड़े हुए चारों स्कंध; उनसे उत्पन्न होने वाली कोई भी क्रिया, शारीरिक, वाचिक या मानसिक।

[1008] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिन्हें न तो अंतर्दृष्टि से और न ही संस्कृति से दूर किया जा सकता है?

अच्छी और अनिश्चित अवस्थाएँ जो इंद्रिय, रूप या निराकार के जगत से संबंधित हैं, या उस जीवन से जो अविभाजित है; चार स्कंध; इसके अलावा सभी रूप और अविभाजित तत्व।[41]

[1009] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है?[42]

तीन बंधन, अर्थात्, व्यक्तित्व का सिद्धांत, उलझन, मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण।

इस संदर्भ में

[1010] 'व्यक्तिवाद का सिद्धांत' क्या है? . . .

[धारा 1003-1005 के अनुसार जारी रखें].[43]

[पृष्ठ 263] [1010ए]

ये तीनों बंधन, उनसे जुड़े हुए विकार, उनसे संबंधित चारों स्कंध, साथ ही उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएं—ये वे अवस्थाएं हैं जिनके कारणों को अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जा सकता है।

[1010बी][44]

तीन बेड़ियाँ: —

व्यक्तित्व का सिद्धांत,

उलझन,

महज नियमों और रीति-रिवाजों का संक्रमण

ये वे अवस्थाएँ हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है।

इनसे जुड़े कामवासना, घृणा और सुस्ती वे कारण हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना चाहिए। और इनसे जुड़े विकार, इनसे संबंधित चार स्कंध और इनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएं वे अवस्थाएं हैं जिनके कारण अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किए जाने चाहिए।

[1011] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को संस्कृति द्वारा दूर किया जाना है?

कामवासना, घृणा और सुस्ती जो भी शेष रह जाए, ये वे कारण हैं[45] जिन्हें संस्कृति द्वारा दूर किया जाना है। और उनसे जुड़े विकार, उनसे संबंधित चार स्कंध और उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएँ—ये वे अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को संस्कृति द्वारा दूर किया जाना है।

[1012] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को न तो अंतर्दृष्टि से और न ही साधना से दूर किया जा सकता है?

उपर्युक्त अवस्थाओं को छोड़कर, अन्य सभी अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो इंद्रिय, रूप और निराकार जगत से संबंधित हैं, और उस जीवन से संबंधित हैं जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; इसके अलावा, सभी रूप और अविभाजित तत्व।

[पृष्ठ 264] [1013] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो [पुनर्जन्म] के संचय का कारण बनती हैं?[46]

इंद्रियों, सजीव और निराकार जगत से संबंधित अच्छे और बुरे सह-नशे की अवस्थाएँ; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

[1014] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो पुनर्जन्म को रद्द कर देती हैं?

वे चार मार्ग जो असंलग्न हैं।

[1015] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो न तो पुनर्जन्म के संचय का कारण बनती हैं और न ही पुनर्जन्म को समाप्त करती हैं?

इंद्रियों, सजीव या निराकार जगतों में, या उस अविभाजित जीवन में, अच्छे और बुरे भावों के परिणाम; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; वे भाव, जिन्हें क्रिया-विचार के रूप में जाना जाता है, जो न तो अच्छे हैं, न बुरे, और न ही कर्म का परिणाम हैं; ये सभी सजीव और अविभाजित तत्व हैं।

[1015] वे कौन से राज्य हैं जो छात्रवृत्ति से संबंधित हैं?[47]

वे चार मार्ग जो असंलग्न हैं और संन्यासी के जीवन के तीन निम्नतम फल हैं।

[1016] वे कौन से राज्य हैं जो छात्रवृत्ति से संबंधित नहीं हैं?

सबसे ऊपर का फल[48] — वह फल जो अरहतशिप है।

[पृष्ठ 265] [1017] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो छात्रवृत्ति से संबंधित नहीं हैं और न ही संबंधित हैं?

उपर्युक्त अवस्थाओं को छोड़कर, अन्य सभी अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो इंद्रिय, रूप और निराकार जगत से संबंधित हैं; सभी रूप और अविभाजित तत्व भी।

[1018] वे कौन से राज्य हैं जो सीमित हैं?[49]

सभी अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो इंद्रियों के ब्रह्मांड से संबंधित हैं; दूसरे शब्दों में, जीव स्कंध।

[1019] वे कौन से राज्य हैं जिनका दायरा व्यापक है?[50]

अच्छे, बुरे और अनिश्चित अवस्थाएँ, जो रूप और निराकार जगत से संबंधित हैं; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

[1021] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो अनंत हैं?[51]

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1022] वे कौन-कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनमें विचार की सीमित वस्तुएँ होती हैं?

वे भावनात्मक, अवधारणात्मक और संश्लेषित अवस्थाएँ, साथ ही साथ इंद्रिय-छापों पर लागू बुद्धि की अवस्थाएँ,[52] जो सीमित मामलों के संबंध में उत्पन्न होती हैं।

[पृष्ठ 266] [1023] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिन्होंने विचार की वस्तुओं को विस्तारित किया है[53]

वे भावनात्मक, अवधारणात्मक और संश्लेषणात्मक अवस्थाएँ, साथ ही वे बौद्धिक अवस्थाएँ जो व्यापक दायरे के मामलों के संबंध में उत्पन्न होती हैं, और साथ ही इंद्रिय-अनुभूतियों पर लागू होती हैं।

[1024] वे कौन-कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनमें विचार की अनंत वस्तुएँ होती हैं?

वे भावनात्मक, बोधात्मक और संश्लेषणात्मक अवस्थाएँ, साथ ही वे बौद्धिक अवस्थाएँ जो इंद्रिय-अनुभूतियों पर लागू होती हैं, जो असीम महत्व के मामलों के संबंध में उत्पन्न होती हैं।

[1025] आधार अवस्थाएँ कौन सी हैं?

बुरे कर्मों के तीन मूल - काम, घृणा, सुस्ती - उनसे जुड़े भ्रष्टाचार; उनसे संबंधित चार स्कंध; उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएं।

[1026] मध्यम मूल्य वाले राज्य कौन से हैं?

सह-नशे की अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, इंद्रियों, सजीव और निराकार जगतों से संबंधित हैं; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

[1027] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो परिपूर्ण हैं?[54]

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1028] वे कौन से राज्य हैं जिनकी गलतियों के परिणाम निश्चित हैं?[55]

[पृष्ठ 267] पाँच कार्य जिनके तत्काल परिणाम होते हैं, और वे गलत विचार जो अपने परिणामों में निश्चित होते हैं।[56]

[पृष्ठ 268] [1029] वे कौन से राज्य हैं जिनकी धार्मिकता उसके परिणामों के संबंध में निश्चित है?[57]

वे चार मार्ग जो असंलग्न हैं।

[1030] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनमें निश्चित परिणाम नहीं होते?

उपर्युक्त अवस्थाओं को छोड़कर, अन्य सभी अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो इंद्रिय, रूप और निराकार जगत से संबंधित हैं, या उस जीवन से संबंधित हैं जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; इसके अलावा, सभी रूप और अविभाजित तत्व।

[1031] वे कौन से राज्य हैं जिनका विचार पथ पर केंद्रित है?[58]

वे भावनात्मक, बोधात्मक और संश्लेषणात्मक अवस्थाएँ, साथ ही वे बौद्धिक अवस्थाएँ जो इंद्रिय-अनुभूतियों पर लागू होती हैं, जो आर्य मार्ग के संबंध में उत्पन्न होती हैं।

[1032] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो पथ पर कारणवश निर्भर हैं?[59]

[पृष्ठ 269] [सबसे पहले] चार स्कंध जब मार्ग के चरणों से जुड़े होते हैं जैसा कि मार्ग से परिचित व्यक्ति द्वारा अनुभव किया जाता है[60] (चरणों को छोड़कर)।

[द्वितीय (1033)] चार स्कंध जब सही विचारों से जुड़े होते हैं - ये मार्ग और कारण दोनों हैं - उस व्यक्ति के जो मार्ग से परिचित है (सही विचार अपवाद हैं)।

[तीसरा] चारों स्कंध, जब कामवासना, घृणा और सुस्ती से मुक्ति की उन अवस्थाओं से जुड़े होते हैं जो मार्ग के ज्ञाता में विशिष्ट होती हैं। अब, ये [अंतिम नाम वाली] अवस्थाएँ 'मार्ग-कारण' हैं;[61] पूर्व (स्कंध) वे अवस्थाएँ हैं जो मार्ग पर कारणवश निर्भर हैं।

[1034] वे कौन से कारण हैं जो पथ-शासित हैं?[62]

[सर्वोत्तम] वे भावनात्मक, बोधात्मक और संश्लेषित अवस्थाएँ, साथ ही इंद्रिय-अनुभूतियों पर लागू बुद्धि की अवस्थाएँ, जो उत्पन्न होने पर आर्य मार्ग को अपना नियंत्रक बनाती हैं।
[द्वितीय] चार स्कंध, जब उस मार्ग से परिचित व्यक्ति द्वारा किए गए अन्वेषण से जुड़े होते हैं, और जो एक ऐसा मार्ग विकसित कर रहा है जिसमें अन्वेषण प्रमुख कारक है।[63]
[1035] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो 'उत्पन्न हुई हैं'?[64]
वे अवस्थाएँ जो जन्म ले चुकी हैं,
बन चुकी हैं,
प्राप्त की जा चुकी हैं,
निर्मित की जा चुकी हैं, पुनर्निर्मित की जा चुकी हैं,[65]
प्रकट की जा चुकी हैं,
जो कुछ उत्पन्न हुआ है, जो
हुआ है
,
जो घटित हुआ है, जो अप्रत्याशित रूप से
हुआ है, जिसके कारण उत्पन्न हुआ है,
उन सभी को उत्पन्न हुई चीजों में एक साथ वर्गीकृत किया जाता है, अर्थात् रूप, भावना, बोध, संश्लेषण, बुद्धि।
[1036] वे कौन-कौन सी अवस्थाएँ हैं जो 'उत्पन्न नहीं हुई हैं'?
वे अवस्थाएँ जो अजन्मी हैं,
न तो उत्पन्न हुई हैं,
न ही प्राप्त हुई हैं,
न ही सृजित हुई हैं,
न ही पुनः सृजित हुई हैं,
और न ही प्रकट हुई हैं;
जो न तो उत्पन्न हुए हैं, न ही घटित हुए हैं;
न ही घटित हुए हैं,
न ही अचानक घटित हुए हैं;
वे चीजें जो उत्पन्न नहीं हुई हैं,
जिन्हें उन चीजों में वर्गीकृत किया गया है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं, अर्थात् रूप, भावनाएँ, धारणाएँ, संश्लेषण, बुद्धि।
[1037] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो अवश्य उत्पन्न होंगी?[66]
[पृष्ठ 271] उन अच्छे और बुरे राज्यों के परिणाम जो इंद्रिय, रूप और निराकार के जगत से संबंधित हैं, या उस जीवन से जो अविभाजित है, जिसके परिणाम अभी तक परिपक्व नहीं हुए हैं , [67] अर्थात्, चार स्कंध और कर्म के कारण उत्पन्न हुआ वह रूप जो उत्पन्न होगा।
[1038] कौन-कौन सी अवस्थाएँ अतीत में हैं?
वे राज्य जो अतीत में हैं, विलुप्त हो चुके हैं, घुल चुके हैं,[68] बदल चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं, मिटा दिए गए हैं; अतीत में हैं और अतीत की चीजों में वर्गीकृत हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।
[1039] भविष्य की कौन-सी अवस्थाएँ हैं?
वे अवस्थाएँ जो अजन्मी हैं,
जो न तो उत्पन्न हुई हैं,
न प्राप्त हुई हैं,
न सृजित हुई हैं,
न पुनः सृजित हुई हैं,
और न ही प्रकट हुई हैं;
जो न तो उत्पन्न हुए हैं,

न घटित हुए हैं,
न ही घटित हुए हैं,
न ही अचानक घटित हुए हैं;
जो अभी तक नहीं पहुंचे हैं,
और उन्हें उन चीजों में गिना जाता है जो अभी तक नहीं पहुंची हैं।
[1040] वे कौन सी चीजें हैं जो उपस्थित हैं?
वे अवस्थाएँ जो जन्म ले चुकी हैं,
बन चुकी हैं,
प्राप्त कर ली गई हैं,
निर्मित की गई हैं, पुनर्निर्मित की गई हैं,[69] प्रकट की गई हैं;
जो उत्पन्न हुए हैं,
घटित हुए हैं,
अचानक घटित हुए हैं,
उत्पन्न होने का कारण बने हैं;
जो इसके विरुद्ध उत्पन्न हुए हैं[70] और उन चीजों में वर्गीकृत हैं जो इस प्रकार उत्पन्न हुई हैं।
[1041-1048] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनका चिंतन का विषय भूतकाल... भविष्यकाल... वर्तमानकाल है?
[पृष्ठ 272] वे भावनात्मक, अवधारणात्मक और संश्लेषित अवस्थाएँ, साथ ही साथ बुद्धि की वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-छापों पर लागू होती हैं, जो अतीत . . . भविष्य . . . वर्तमान अवस्थाओं के संबंध में उत्पन्न होती हैं।[71]
[1044] वे कौन से राज्य हैं जो व्यक्तिगत हैं?[72]
वे अवस्थाएँ जो इस या उस प्राणी के लिए स्वयं की, स्वयं-संदर्भित, स्वयं की,[73] व्यक्तिगत, पकड़ का परिणाम हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।
[1045] कौन-कौन सी अवस्थाएँ बाह्य हैं?
वे अवस्थाएँ जो, इस या उस अन्य प्राणी के लिए,[74] अन्य व्यक्तियों के लिए, स्वयं की, स्वयं-संदर्भित, उनकी अपनी, व्यक्तिगत, पकड़ का परिणाम[75] दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध हैं।
[1046] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो व्यक्तिगत-बाह्य हैं?
ऐसी अवस्थाएँ जो [व्यक्तिगत और बाह्य] दोनों हैं।[76]
[1047-1049] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनमें स्वयं के बारे में विचार का विषय होता है... उस चीज़ के बारे में जो [पृष्ठ 273] स्वयं से बाह्य है... उस चीज़ के बारे में जो 'व्यक्तिगत-बाह्य' है?
वे भावनात्मक, अवधारणात्मक, संश्लेषित अवस्थाएँ, साथ ही साथ बुद्धि की वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-छापों पर लागू होती हैं,[77] जो स्वयं की अवस्थाओं के संबंध में उत्पन्न होती हैं... अवस्थाएँ जो बाह्य हैं... अवस्थाएँ जो व्यक्तिगत-बाह्य हैं।
[1050] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो दृश्यमान और प्रभाव डालने वाली दोनों हैं?[78]
दृश्य रूप का क्षेत्र।
[1051] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो अदृश्य हैं, लेकिन प्रभाव डालती हैं?
इंद्रियों के क्षेत्र और ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्शनीयता के क्षेत्र।
[1052] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अदृश्य और अप्रभावित दोनों हैं?
चार स्कंध; इसके अलावा वह रूप, जो अदृश्य और अप्रभावित होते हुए भी [मानसिक] अवस्थाओं के क्षेत्र में समाहित है;[79] साथ ही अविभाजित तत्व।
ट्रिपलेट्स का अंत।
- फुटनोट:
1. या अस्वीकृति। साई. (344, 345) के अनुसार, नैतिक चेतना की अवस्थाओं को जिन विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया था (धम्म-विभागो), उन्हें अब एक ऐसी विधि से प्रस्तुत किया जाना है जो अपनी अधिक संक्षिप्तता में, पुस्तक I के अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत विवरण (वित्थर-देशनम्) की अस्वीकृति या खंडन है। उदाहरण के लिए, 'कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति पहचान सकता है' कि प्रश्न [984] के

उत्तर को जिन संक्षिप्त शब्दों में व्यक्त किया गया है, उनमें अन्य प्रश्नों के साथ-साथ प्रश्न [1] का उत्तर भी निहित है। दूसरी ओर, निम्नलिखित अट्ठकथा (मुद्रित पाठ में § 1368 से अंत तक) की तुलना में, यह विधि कम संक्षिप्त और अधिक विस्तृत है।

2. 'मूल' से तात्पर्य 'कारण, स्थिति, घटित करना, उत्पन्न करना, उत्पत्ति करना, पैदा करना' है। और 'चूंकि मूल से अलग कोई अच्छाई नहीं होती', इसलिए इसमें सभी अच्छाई शामिल है। असलम 344।

3. मनोकम्मम, मुद्रित पाठ में अनजाने में छूट गया। देखें, धारा 982 और आगे।

4. तद-एकत्थ च किलेसा। एकत्थम को (असल. 345) एक ही विचार में एक सामान्य उत्पत्ति के कारण, या एक ही व्यक्ति में एक सामान्य अपवर्जन, अर्थात् यहाँ, भ्रष्ट या दोषपूर्ण अवस्थाओं के अपवर्जन के कारण, स्थित के रूप में परिभाषित किया गया है। किलेसा पर, § 1229 और उसके बाद के अनुच्छेद देखें।

5.अपरियापन्ना. नीचे देखें, § 992, § 583 भी।

6. इस विभाजन में बार-बार दोहराव से बचने के लिए, इन चार स्कंधों को आगे से 'चार स्कंध' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

7.धम्म किरिया. सी एफ § 566 वगैरह.

8.मुद्रित पाठ में संखता को असंखत होना चाहिए।

9. इस स्थिति में भावना का स्कंध प्रमुख कारक है, और इसे केवल एक सहयोगी या चेतना में गौण घटक के रूप में नहीं गिना जाता है। (पाठ में संपयुत्तो से पहले तर्न शब्द जोड़ा जाना चाहिए।)

10. सुखा-भूमियम। मैंने यहाँ भूमि के शाब्दिक अर्थ का ही प्रयोग किया है, 'अवस्था' (जैसा कि अनुच्छेद 277 आदि में है) या 'स्रोत' जैसे शब्दों के प्रयोग के बजाय, क्योंकि साइप्रस के विद्वानों (पृष्ठ 346) ने एक उदाहरण दिया है: - जिस प्रकार 'यह गन्ना-भूमि है' या 'चावल-भूमि है' कहकर हमारा तात्पर्य उन स्थानों से है जहाँ ये फसलें खूब होती हैं, उसी प्रकार सुखा-भूमि आदि से हमारा तात्पर्य एक विचार (या मन की अवस्था, चित्तम) से है, जो सुख (या आनंद) के उदय का स्थान (या अवसर, थानम) है।

11.के. में चार या अधिक स्कंधों की सूची से पहले हमेशा एक कोलन लगाया जाता है, जो इन त्रिकों में सामान्य प्रक्रिया का हिस्सा है। साई. में ऐसा कुछ स्पष्ट नहीं है जो कोष्ठक 'दूसरे शब्दों में' द्वारा दिए गए मेरे इस व्याख्या को उचित ठहराए, जिससे उत्तरों की कुछ अस्पष्ट संरचना स्पष्ट होती है। लेकिन इसकी टिप्पणियों से मुझे यह समझ आता है कि इन संक्षिप्त उत्तरों में, स्कंध-सूची उत्तर के पिछले आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें यह किसी अन्य पहलू, अर्थात् रसत्थेना, या चेतना में समूहों के रूप में प्रकट होती है। वास्तव में, पुस्तक I में इसी विधि का विस्तार से पालन किया गया है, लेकिन यहाँ केवल संक्षेप में: पहले धं म के संदर्भ में उत्तर, फिर सारांश, जो मुख्य रूप से, कम से कम, स्कंध के संदर्भ में है। उदाहरण के लिए, §§ 431-441, 441a, 442 देखें। साथ ही अस. 152 भी देखें।

12. विपाकधम्म-धम्म, विपाक-सभाव-धम्म द्वारा व्याख्या (असल 42), एक परिणाम प्रकृति, या परिणाम की गुणवत्ता वाले राज्य। ऊपर देखें, पृ. 164.

13. धारा 653 आदि देखें।

14. ससावा. धारा 1096 आदि देखें।

15. पृष्ठ 165, टिप्पणी 2 देखें। जब अपरियापन्न शब्द धम्म पर लागू होता है और नैतिक-मनोवैज्ञानिक अर्थ में प्रयोग किया जाता है, तो यहाँ इसे मार्ग, फल और अमिश्रित तत्व के रूप में वर्णित किया गया है। अनुच्छेद 1287 देखें। इसका सकारात्मक सहसंबंध, आस्ल 50 में, 'अस्तित्व के त्रिविध चक्र में समाहित' (अर्थात इंद्रिय, रूप आदि के जगत) के रूप में वर्णित है। मुझे नहीं पता कि इस उच्च अर्थ वाला अपरियापन्न पुराने पिटकों में से किसी में मिलता है या नहीं। लेकिन यह केवाई 507 में मिलता है, जहाँ यह मानना विधर्म घोषित किया गया है कि कोई भी मात्र काल्पनिक मत अविभाजित का है, और जहाँ बाद की अवधारणा की विषयवस्तु हमारे नियमावली की तुलना में अधिक विस्तार से बताई गई है।

16. मगगफलानी के बाद च पढ़िए। टीकाकार यहाँ वर्णित अरहत की स्थिति को सभी प्रकार के 'आकर्षण' से मुक्त बताते हुए इस प्रकार पुष्टि करते हैं: यद्यपि अरहत के स्कंध (अस्थायी अस्तित्व) उन लोगों के लिए आकर्षण का कारण बन सकते हैं जो कहते हैं, "हे हमारे माता के भाई, थेरा! हे हमारे पिता के भाई, थेरा!" फिर भी मार्ग, फल और निर्वाण से कोई आकर्षण, कोई संक्रमण नहीं होता। क्योंकि जिस प्रकार दिनभर गर्म किए गए लोहे के गोले पर मच्छर नहीं बैठते, उसी प्रकार ये वस्तुएँ अपनी अत्यधिक महिमा से भी लालसा, अहंकार या गलत मत के आकर्षण को आकर्षित नहीं करतीं।

17. या भ्रष्ट करना। धारा 1229 (टिप्पणी) आदि देखें।

18. भौतिक रूप के स्कंध से प्रारंभ करते हुए।

19. धारा 160 देखें। प्रथम ध्यान के सूत्र का भाग। निराकार जगत, ब्रह्मांड या स्वर्ग को छोड़ दिया गया है, क्योंकि यह एक ऐसी 'भूमि' है जहाँ ये मानसिक प्रक्रियाएँ विकसित नहीं हो सकतीं। धारा 265-268 देखें।

20. अन्यथा वे संश्लेषण के स्कंध के अंतर्गत आएंगे। देखें § 62, और पृष्ठ 251, नोट 7।

21. संपायुट्टो से पहले टार्न पढ़ें।

22. धारा 168 देखें—यह वाक्यांश 'पंचमुखी ध्यान प्रणाली' से लिया गया है।

23. धारा 162 आदि देखें।

24. 'आनंद' को भावना के एक तरीके के रूप में नहीं, बल्कि एक 'संश्लेषण' के रूप में गिना जाता है (देखें पृष्ठ 11, टिप्पणी 4); हालाँकि, 'सुविधा' और 'निराशा' भावना के तीन तरीकों में से दो होने के कारण, यह स्कंध केवल एक संबद्ध अवस्था नहीं रह जाती है।

25. दस्सानम्, शाब्दिक अर्थ, देखना या दृष्टि। 'अंतर्दृष्टि' द्वारा क्या दूर किया जा सकता है और क्या नहीं, इस बात को ध्यान में रखते हुए, यह याद रखना आवश्यक है कि यहाँ इस शब्द का प्रयोग बौद्ध नैतिकता के तकनीकी अर्थ में किया गया है, और इसका अर्थ है मानसिक जागृति या बौद्धिक रूपांतरण, जिसके द्वारा व्यक्ति सोतापत्ति बन जाता है और प्रथम मार्ग में प्रवेश करता है - और इससे अधिक कुछ नहीं। असल. 356, 357; 43.

यह यहाँ वर्णित तीन बंधनों को तोड़ने का साधन था, जिन्हें बाद में उल्लिखित दस बंधनों की सूची में चौथे, पाँचवें और छठे स्थान पर रखा गया है (§§ 1113, 1123, टिप्पणी)। यह मन और हृदय के लिए एक निश्चित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था, जहाँ से निर्वाण की प्रतिज्ञा भूमि का दर्शन हुआ और अनित्यता के तथ्य को पहली बार समझा गया (इस पर और नाना-दस्सनम पर मानक अंश देखें, डी. i. 76), साथ ही सारवादी सिद्धांतों की निरर्थकता और नियमों और कर्मों पर आधारित धर्म की शक्तिहीनता को भी समझा गया।
व्यापक दृष्टिकोण के साथ नई विधियों में विश्वास उत्पन्न हुआ। दस्सनम जीवन और मन की ब्रह्मांडीय प्रक्रियाओं को दूर करने में असमर्थ थे: घटनाओं का संयोजन, कर्म का विकास, अलौकिक का अनंत रहस्य (देखें § 1008 और टिप्पणी)।

इस अंतर्दृष्टि को प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों के लिए, रोचक किमसुका सूत्र, खंड 4, 191 देखें। बुद्धघोष कहते हैं कि प्राप्त किए जाने वाले उच्चतर दृष्टिकोणों की तुलना में इसे दृष्टिहीनता कहा जा सकता है। क्योंकि जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी राजा के पास किसी कार्य के लिए जा रहा हो, यदि वह राजा को दूर से अपने हाथी पर जाते हुए देखे, तो पूछे जाने पर वह कहेगा कि उसने उसे नहीं देखा, क्योंकि उसने अपना कार्य पूरा नहीं किया है, उसी प्रकार धर्मांतरित व्यक्ति, यद्यपि उसने निर्वाण की पहली झलक प्राप्त कर ली हो, फिर भी बुराई को दूर करने के कार्यों में व्यस्त होने के कारण दृष्टिहीन कहलाता है। उसका ज्ञान मार्ग के चिंतन में निहित है।

26. बेड़ियों के बारे में, धारा 1113 आदि देखें।

27. सक्कया-दित्थी, जो बौद्ध दृष्टिकोण से सभी भ्रमों में सबसे खतरनाक भ्रमों में से एक है, को साइ. (पृष्ठ 348) द्वारा कायो से जोड़ा गया है, जो पांच स्कंधों का घटनात्मक मिश्रण है, और या तो सत से, (आध्यात्मिक) अस्तित्व के अर्थ में, या से आम से, यानी स्वयं से। तुलना करें एसएन, श्लोक 950, 951; धम्मदिन्ना, श्लोक 367। बाद वाला स्पष्टीकरण - स्वकया - संभवतः सही है (देखें ई. मुलर, 'पाली व्याकरण', पृष्ठ 19)। 'व्यक्तित्व' तब इस स्कंध-जटिलता का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे अब हम 'शरीर और आत्मा' (या मन) के रूप में बात करेंगे। धम्मदिन्ना ने एम.आई. में इस शब्द और सिद्धांत दोनों पर चर्चा की है। 299 इत्यादि, (जे.आर.ए.एस., 1894, पृष्ठ 324 में लेखक का एक लेख देखें।) चौथा उपदान, या 'आत्मा के सिद्धांत की खोज', को समान शब्दों में वर्णित किया गया है। § 1217 देखें।

दित्थी, जिसे यहाँ 'सिद्धांत' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और जिसे समान रूप से 'अनुमान' या 'विचार' के रूप में भी अनुवादित किया जा सकता है—ये चारों शब्द देखने या देखी गई चीजों की धारणा में एक समान व्युत्पत्ति आधार रखते हैं—उत्तर में इसे 'राय' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यह 'मनुष्यों के बीच प्रचलित धारणाओं के समूह' के लिए अधिक उपयुक्त है, जो पुथुज्जनो के मामले में संगठित ज्ञान की सेवा करता है। गौतम संभवतः डोका के प्लेटोनिक वर्णन को 'ज्ञान से अधिक धुंधला, अज्ञान से अधिक प्रकाशमान' के रूप में स्वीकार करते।

'विधर्म' या 'भ्रम' के रूप में अनुवाद करने का नुकसान यह है कि सही दिठ्ठी के मामले में अन्य शब्दों का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है, जैसा कि एमपीएस, भ. I में दिठ्ठी आर्य निय्यानिका के रूप में वर्णित है। नीचे, § 1366 देखें।

28. इधा, एक शब्द है, जैसा कि साइप्रस कहता है, या तो स्थान निर्धारण के लिए, या निर्देश देने में उदाहरण के लिए; यहाँ इसका प्रयोग पूर्व अर्थ में किया गया है, और इसका अर्थ है संसार में घटित होना। असल. 348.

29. अस्सुतव, शाब्दिक अर्थ: वह व्यक्ति जिसने सुना नहीं है, अर्थात् जिसे सिखाया नहीं गया है, जो स्कंधों, तत्वों, क्षेत्रों, स्थितियों, घटकों, ध्यान आदि विषयों में अन्वेषण, पूछताछ और ज्ञान की कमी के कारण उचित परंपरा और उपलब्धि से वंचित है। वही।

30. पुथुज्जनो, सामान्य सांसारिक व्यक्ति। साइ. में ऐसे श्लोक उद्धृत किए गए हैं जो व्लियोम्मे सेन्सुएल मोयेन को अंधा या सौम्य के रूप में भेद करते हैं; यहाँ पहले वाले का तात्पर्य है।

एक अन्य उद्धरण में (जो अभी तक अप्रमाणित है) उन्हें व्यक्तिवाद के सिद्धांत द्वारा संचालित विभिन्न सामान्य दुर्गुणों में लिप्त बताया गया है।

विभिन्न साधारण उपदेशकों के होठों पर यह बात अटकी हुई थी, जो हर प्रकार के पुनर्जन्म में लीन थे;
जीवन को विभिन्न सामान्य जटिलताओं से और भी जटिल बना देना;
विभिन्न प्रकार की अभद्र धाराओं द्वारा बह जाना;
विभिन्न प्रकार के निम्न स्तर के संतोष या चिड़चिड़ेपन के स्रोतों से शांत या उत्तेजित होना;
इंद्रियों के पांच निम्न सुखों में डूबा हुआ, लालची, उलझा हुआ, मोहित, संलग्न, जकड़ा हुआ, मजबूती से जकड़ा हुआ और बाधित;
ढका हुआ, मफल्ड, में लिपटा हुआ, बंद और लबादा और पांच निम्न बाधाओं द्वारा ढका हुआ (§ 1152 एट सीक);
अतीत में अनगिनत निम्न चरित्र और आचरण वाले लोगों के बीच समाहित हो गया, जो उच्च सिद्धांतों के विरोधी थे;
या फिर, अंततः, उन कुलीन लोगों से अलग और विशिष्ट व्यक्ति के रूप में जो सद्गुण और ज्ञान में लीन रहते हैं।

31. अरियानामदसवि, बुद्धों, पच्चेक-बुद्धों और बुद्धों के शिष्यों, या केवल बुद्धों का उल्लेख करते हुए। बुद्धघोष विस्तार से बताते हैं कि पवित्र व्यक्तियों को देख पाने में असमर्थता केवल दृष्टिगत कमी नहीं है, बल्कि अंतर्दृष्टि या बुद्धिमान निष्कर्ष की कमी है। सच्चे श्रेष्ठ व्यक्ति, शारीरिक या 'दिव्य' दृष्टि से देखे जाने पर भी, वास्तव में दिखाई नहीं देते। उनका स्वरूप (वान नो) तो समझ में आ जाता है, लेकिन उनके श्रेष्ठ स्वभाव का क्षेत्र नहीं, ठीक वैसे ही जैसे कुत्ते और सियार आदि उन्हें देखकर भी नहीं पहचान पाते। यहां तक कि एक थेरा का निजी सेवक भी अपने स्वामी में नायक को नहीं पहचान पाता, क्योंकि अंतर्दृष्टि और समझ के बिना संतों द्वारा प्राप्त दृष्टिकोण या सच्चे श्रेष्ठता की अवस्थाओं को समझना इतना कठिन है। 'हे वक्कली, यह तुच्छ शरीर जो तुम देखते हो, तुम्हारे लिए क्या है? जो धर्म को देखता है, वही मेल को देखता है।' एस. 3., पृष्ठ। 120; असल. 350.

32. अविनितो. साइ. उदाहरणों सहित आत्म-संयम और त्याग के अनुशासन (विनय) के पाँच तरीकों की गणना करता है। ये चाइल्डर्स, एसवी विनयो में दिए गए हैं।

33. सप्पुरिसा, जिसका अर्थ है पच्चेक-बुद्ध और बुद्धों के शिष्य। (असल. 349) 34. प्रत्येक स्कंध के संबंध में इन चार 'दृष्टिकोणों' पर, जो एक कल्पनीय केंद्रीय सत्ता या अत्ता से संबंधित हैं, मेरी प्रस्तावना में चर्चा की गई है। साई. (पृष्ठ 354) के अनुसार, ये सभी मार्ग में बाधाएँ हैं, यद्यपि स्वर्ग में नहीं (मग्गवरना न सग्गवरना), और प्रथम मार्ग पर प्रगति के दौरान इन पर विजय प्राप्त की जाती है।

35.इडा-पक्कायाता.

36. धारा 425 देखें। संदेह के विशिष्ट रूपों पर इस प्रकार टिप्पणी की गई है (असल. 354, 355):
शिक्षक के शरीर पर बुद्ध के 32 प्रमुख या 80 लघु शारीरिक लक्षण हैं या नहीं, या भूतकाल, भविष्य और वर्तमान के संबंध में आवश्यक सर्वज्ञता है या नहीं;
इस बात पर कि क्या ये मार्ग और उनके फल वास्तव में परम अमृतमय निर्वाण की ओर ले जाने के लिए पर्याप्त हैं;
क्या इस संप्रदाय के अनुयायी वास्तव में मोक्ष के मार्ग के विभिन्न चरणों में हैं, या उन्होंने अब तक सही ढंग से अपना मार्ग तय किया है;
प्रशिक्षण कितना उपयोगी है, इस बारे में;
क्या स्कंधों, धातुओं और आयतनों के माध्यम से विकास की प्रक्रिया अतीत में कायम रही है, या भविष्य में कायम रहेगी;
क्या कारण-कार्य का बारह-स्तरीय चक्र मौजूद है, जो अभी और यहीं प्रभावी हो रहा है या बिल्कुल भी प्रभावी हो रहा है।
37.Ito bahiddha.

38. मैंने पाठ और के. दोनों से थोड़ा भिन्न पाठ अपनाने का साहस किया है। अर्थ इसकी मांग करता प्रतीत होता है और के. इसे इंगित करता है। बाद वाले में लिखा है: S i 1 ena ti gosiladina, vatena ti govatadina va (sic lege), sllabbatena ti tadubhayena, suddhi ti kilesasuddhi paramattha-suddhibhutam va nibbanam eva. लेकिन यदि पाठ में suddhivatena लिखा हो तो vatena ti उद्धृत करना के. के तरीकों के अनुरूप नहीं होगा। (असल. 355)
गोशील और गोवतम् शब्दों के संदर्भ में यह स्पष्ट नहीं है कि गोवत्तिका कहलाने वालों की 'मवेशी नैतिकता' आदि में किस प्रकार की प्रथाएँ और जीवन शैली का पालन किया जाता था, या कुक्कुरवत्तिकाओं की 'कुत्ते जैसी (? सनकी) प्रथाओं' में किस प्रकार की प्रथाओं का पालन किया जाता था। दोनों का उल्लेख एम. आई. 387 में मिलता है। (देखें ख. पी. सी. सी., पृष्ठ 26)।
यह देखा जाएगा कि शुद्धि को एक ओर तो केवल किलेशों के त्याग (देखें § 1229) के रूप में, और दूसरी ओर पूर्ण पवित्रता या निर्वाण के रूप में विभेदित किया जाता है।
सिलब्बटापरमासो पर, राइस डेविड्स के 'अमेरिकन लेक्चर्स', 146 देखें।

39. इन्हें मुख्यतः अटकलबाजी और उलझन (जिन्हें 'बंधन' नहीं, बल्कि विपत्ति या बुराई माना जाता है) कहा जाता है, और इनके अलावा, कामवासना, घृणा, सुस्ती, अभिमान, जड़ता, उत्तेजना, असावधानी, दोष की उपेक्षा।

40. या अभ्यास: भावना, शिष्य के आत्म-प्रशिक्षण में व्यवस्थित प्रयास का सामूहिक नाम है, जो 'अंतर्दृष्टि' प्राप्त करने के बाद 'सिद्धांत के सिद्धांतों' को छोड़ देता है ताकि वह 'पूर्णता की ओर बढ़ सके' (इब्रानियों 6:1) - दूसरे शब्दों में, अरहतत्व के तीन उच्चतर मार्गों पर यात्रा कर सके।
'भावना की शक्तियों' पर, ए. आई. 52 देखें।
ए.आई.43 में, भावना को पूर्ण करने के लिए 'एक आवश्यक चीज' कायगत-सति, शरीर या शारीरिक क्रिया से संबंधित बातों में जागरूकता बताई गई है।

41. अतः केवल अकुशल धम्म, यानी 'बुरी अवस्थाओं' को ही अंतर्दृष्टि और साधना से दूर किया जा सकता है। यहाँ तक कि ये दोनों परस्पर स्वतंत्र रूप से भी कारगर नहीं हो सकते, क्योंकि देखें अनुच्छेद 1258, 1260। शेष कर्म संचित होते रहते हैं। अच्छे और अनिर्धारित, पदार्थ के गुण और सरल तत्व: ये किसी भी व्यक्ति के लिए तब तक समाप्त नहीं हो सकते जब तक कि, बुद्धघोष के अनुसार, उसका अभिसंखार-विन्नानम् (असल. 357) - उसकी सृजनशील, संचय करने वाली बुद्धि, स्वयं अरहत के रूप में उसके जीवन के अंत के साथ समाप्त न हो जाए। देखें केवद्ध सूत्र पर सारांश, डी. i. 223; 'बुद्ध के संवाद', i. 272 इत्यादि।

42.Pahatabba-hetuka, 'अर्थात, उनका कारण (hetu etesam) अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है'। असल. 43.
43.
यहां पाठ में स्पष्ट रूप से त्रुटि है। मैं के. में दिए गए कथन का अनुसरण करता हूँ, अर्थात्:
तथा कतमा सक्कयदिट्ठि? . . . पे. . . अयं वुक्कति सक्कयदिट्ठि
- और इसी तरह।

44. यह पैराग्राफ, जिसमें मैं फिर से के. का अनुसरण करता हूँ, पाठ में बिल्कुल भी शामिल नहीं है। फिर भी, बुद्धघोष इस पर टिप्पणी करते हैं (पृष्ठ 357)।

45. यहाँ भी मैं के. का अनुसरण करते हुए हेतुका के स्थान पर पहतब्बा-हेतु पढ़ता हूँ। बुद्धघोष ने पूर्व पाठ (पृष्ठ 358) उद्धृत किया है, जो उत्तेजना के साथ सुस्ती को दूर करने को संदर्भित करता है।

46. अपाचयागामिनो। इसके विपरीत, पृष्ठ 82, टिप्पणी 2 देखें। बाद वाला निर्वाण प्राप्त करने के समतुल्य है। दोनों प्रक्रियाओं की तुलना दीवार के निर्माण और विध्वंस से की जाती है। असल. 44.

47. असेक्खा, यानी (असल. 44), प्रशिक्षण के तीन या सात पाठ्यक्रमों में उत्पन्न होना (चाइल्डर्स, एसवी देखें)। असेक्खा का तात्पर्य है कि विद्यार्थी या प्रशिक्षु ने अपने अध्ययन और प्रशिक्षण को पूर्ण कर लिया है और वह एक सिद्ध पुरुष, एक अरहत बन गया है। पीपी, पृष्ठ 14 देखें। 'सन्यासी के जीवन के फल' शब्द के लिए समाईनाफल सूत्र, डी. i. 47 देखें।

48. उपरित्थिमम, पीपी i. 42 आदि में प्रयुक्त एक शब्द है, जहाँ इसे 'बेड़ियों' पर लागू किया जाता है जिन्हें अंत में उतारा जाता है। नीचे देखें, § 1113, और पृष्ठ 303। पृष्ठ 166, नोट 1 भी देखें।

49. परित्तम, जिसे बौद्धिक और नैतिक, साथ ही भौतिक महत्वहीनता से युक्त समझा जाता है—फ्रांसीसी शब्द का यही अर्थ है। उदाहरण के लिए गोबर के ढेर का चित्रण किया गया है! इसका मूल गुण अप्पानुभवत है, अर्थात् सामान्यतः कम महत्व या प्रभाव वाला। परित्तम को ही संपूर्ण इंद्रिय-अनुभव के क्षेत्र के समतुल्य माना जाता है। अस्लि. 44.

50. महाग्गता, अर्थात् 'बुराई का प्रतिरोध करने की क्षमता, अच्छे परिणामों की प्रचुरता, व्यापक विस्तार' या इच्छाशक्ति, ऊर्जा, विचार या ज्ञान के उच्च स्तर की प्राप्ति के संबंध में। वही।

51. अप्पमना, या बिना माप के। असल. 45.

52. चित्तचेतसिका धम्म के लिए यह एक लंबा और जटिल पर्यायवाची है, लेकिन अनुच्छेद 1187-1190 का संदर्भ यह स्पष्ट करता है कि इस शब्द का यही सार है। और पश्चिमी मनोविज्ञान ने मुझे इससे अधिक संक्षिप्त पर्यायवाची शब्द नहीं सुझाया है। हालाँकि, अनुच्छेद 1282 और 1284 देखें। 'भावनात्मक' को इसके अधिक सीमित अर्थ में लिया जाना चाहिए, जैसे कि यह केवल भावना या सुखवादी चेतना का विशेषण है।

53. धारा 1021 देखें।

54.जांच के इस त्रिक के तीन विषय - धम्म हीना, मज्झिमा, पा निता - को (असली. 45) लामक (घटिया गुणवत्ता का, तुलना करें, विन. ii. 76), इस और तीसरे गुण के बीच में, और अलौकिक या आदर्श (लोकउत्तरा) के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

55. मिच्छत्तनीयता, जैसा कि साइ. (वही) में समझाया गया है: 'दुष्टता' वह गलत प्रवृत्ति है जो सुख की चाह में हानिकारक चीजों में लाभ देखती है और इस विकृति में बनी रहती है। 'परिणामों में स्थिर' (शाब्दिक रूप से, 'नीचे तक पहुँचने वाला') का अर्थ है स्कंधों के विघटन (अर्थात मृत्यु के बाद) पर तुरंत परिणाम देना। तुलना करें एमपीएस 17: अस्मि... नियतो - मैं (अपने भविष्य के बारे में) स्थिर या निश्चित हूँ; केवी 609-612 और पीपी 13 भी देखें: कटामो च पुग्गलो नियतो? इस प्रश्न का उत्तर व्यावहारिक रूप से इन खंडों में दिए गए उत्तरों के समान है। यह वे व्यक्ति (पुग्गल अ) हैं जो निर्णायक रूप से अच्छे और बुरे हैं जिन्हें अनंतारक (तत्काल अच्छे या बुरे भाग्य को प्राप्त करने वाले) कहा जाता है, न कि 'कर्मों' या 'मार्गों' को, जैसा कि ध. एस. में है।
शास्त्र के अनुसार, ये पाँच कृत्य 'मातृहत्या आदि' को संदर्भित करते हैं, मानो यहाँ अभिथानों का उल्लेख किया गया हो, जबकि सामान्यतः इस नाम के अंतर्गत वर्गीकृत पाँच कृत्य हत्या, चोरी, अपवित्रता, झूठ बोलना और असंयम हैं। देखें अनुच्छेद 1290, 1291। बुद्ध को घायल करने या लोहितुप्पादो से संबंधित अंश, यिन. 2:193, की तुलना करें, जिसे अनंतारिका-कम्मम कहा जाता है। मेरा मानना है कि मिल., पृष्ठ 25 में, वाक्यांश 'कोपाफिकनंतरियकम्मम करोति' का अर्थ, जैसा कि अनुवादक ने अनुमान लगाया है, पहले निर्दिष्ट पाँच अपराधों का सारांश नहीं है, बल्कि यह पाँच अन्य अपराधों का संकेत है, जिनमें से मातृहत्या एक और लोहितुप्पादो दूसरा है। अब केवल यह पता लगाना बाकी है कि क्या अन्य तीन, छह अभिथानों में से किसी अन्य तीन के साथ मेल खाते हैं या नहीं।
इनके परिणामों की तात्कालिकता के संबंध में, जबकि कुल्लवग्ग में देवदत्त की घटना से यह स्पष्ट है कि इन अत्याचारों का कुछ दंड इसी जीवन में भुगतना पड़ता है, बुद्धघोष के अनुसार, इसका प्रभाव वर्तमान जीवन की समाप्ति के तुरंत बाद अनुभव होता है। साईं आगे कहते हैं: इन कृत्यों के मामले में, किसी अन्य आचरण के लिए इनमें से किसी एक के कर्म को टालना असंभव है, ताकि इसके परिणामों के अहसास के लिए जगह बन सके। न ही कर्ता ऐसा कर सकता है यदि वह शिनेरु पर्वत के समान विशाल स्वर्ण स्तूप का निर्माण करे, या रत्नों से जड़ा हुआ और विश्व-गोलाकार विहार बनाए, या उसे भिक्षुओं और उनके बुद्ध से भर दे और उन्हें जीवन भर चारों आवश्यक तत्वों में रखे। असल. 358.

56. जो गलत विचार नियत भी हैं, उनका वर्णन साई. में इस प्रकार किया गया है: अहेतुका वाद (डी. आई. 53; एम. आई. 407), कर्म की प्रभावकारिता को नकारने वाले (अकिरिया वाद (डी. आई. 52; एम. आई. 404, 405) और शून्यवाद (नत्थिका वाद, या उच्छेदा वाद, डी. आई. 55; एम. आई. 401-403)। इनके लिए प्रार्थना करना भी व्यर्थ है; शाब्दिक अर्थ यह है कि सौ या हजार बुद्ध भी इन्हें ज्ञान प्रदान नहीं कर सकेंगे। वही।

57.पढ़ना सम्मत्त-नीयता होना चाहिए। सी एफ असल. 45; के.; केवी 609.

58. "मार्ग" का अर्थ है निर्वाण की खोज, या किलेसाओं के विनाश में प्रगति। (असली. 45)

59. 'मग्गहेतुका, अर्थात् उन (अवस्थाओं) का कारण, उन्हें नियंत्रित करने के अर्थ में, अष्टांगिक मार्ग है।'
असल. 45.

बाद में (पृष्ठ 359) साई. इस त्रिविध का आशय इस प्रकार बताता है: 'पहले सूत्र में स्कंधों के कारणिक संबंध का वर्णन किया गया है, जो मार्ग से कारण के रूप में, स्थिति के अर्थ में जुड़ा हुआ है। दूसरे में, मार्ग के अन्य भागों का अष्टम दृष्टियों के साथ कारणिक संबंध का वर्णन किया गया है, जो मार्ग का घटक हैं और कारण माने जाते हैं (अम ओहो; देखें §§ 16, 34, 1054); और तीसरे में, सही दृष्टियों का मार्ग में सक्रिय कारणों के साथ कारणिक संबंध का वर्णन किया गया है।' फिर भी पाठ में तीनों सूत्रों में चार स्कंधों के कारणिक संबंध का वर्णन किया गया है। क्या इससे पाठ के भिन्न-भिन्न संस्करणों का संकेत मिलता है?

60.अरियामग्गासमंगीसा मग्गंगनी।

61. मुद्रित पाठ में, मो हो के बाद इमे धम्म मग्गा-हेतु पढ़ें। तुलना करें साइ. 45; के.; ऊपर भी, § 1011।

62. मगद्धिपातिनो, अर्थात् मार्ग, उन (राज्यों) को अपने नियंत्रण में रखते हुए, उनका पालन-पोषण करता है और उनका शासक है। असल. 45. बाद में (पृष्ठ 359) हमें पूरक टिप्पणियाँ मिलती हैं जो दर्शाती हैं कि इस संदर्भ में शासक (या संप्रभु) और शासित का संबंध, मसीह और उस विश्वासी के बीच के संबंध के समान है जो 'हर विचार को मसीह की आज्ञाकारिता के अधीन कर देता है' (2 कुरिन्थियों 10:5)।
ये सभी विचार या 'अवस्थाएँ' भक्ति के एकमात्र महान लक्ष्य—मार्ग, फल, निर्वाण—के सामने तुच्छ (पर इत ता) हैं। यहाँ तक कि मार्ग पर दूसरों की प्रगति का चिंतन करना, या तथागत को दोहरा चमत्कार करते देखना भी विद्यार्थी के लिए उतना मूल्यवान नहीं है जितना कि स्वयं मार्ग के अर्थ को समझना और उसका अहसास करना।

63. इस वाक्य की संरचना अस्पष्ट है। विमंसाधिपतेय्यम स्पष्ट रूप से कर्ता कारक में है। हालाँकि, साई. (पृष्ठ 359) उद्धरण देते समय कर्ता कारक का प्रयोग करता है, जिससे पाठ और भी अस्पष्ट हो जाता है।
वैसे भी, यह आगे बताता है कि यह शब्द पथ और अधिपटेय्यम के बीच संयुक्त 'सर्वोच्चता' को दर्शाता है जो केवल तभी संभव है (cf. § 269) जब बाद वाला या तो 'जांच' हो या 'ऊर्जा' हो।
जब बाद वाला 'इच्छा' या 'विचार' होता है, तब मार्ग का प्रभुत्व अधिपतेय्यम के अधीन हो जाता है। परन्तु जब विद्यार्थी पहले वाले में से किसी एक को अपना मार्गदर्शक बनाता है, तब वह और मार्ग दोनों मिलकर उसके मार्गदर्शक बन जाते हैं।

64. उप्पन्ना, अर्थात्, जो अस्तित्व में आने के क्षण से और जब तक उनका विशिष्ट अस्तित्व रहा है, तब तक अस्तित्व में रहे हैं और कायम रहे हैं। असल. 45.

65.निब्बत्त, अभिनिब्बत्त पढ़ें।

66. उप्पडिनो, अर्थात्, 'निश्चित रूप से उत्पन्न होगा, इस तथ्य से कि उनका प्रभावी कारण आंशिक रूप से पूरा हो चुका है'
(असल. 45).
बाद में (पृष्ठ 360, 361) इन परिणामी अवस्थाओं के संभावित घटित होने का कारण उनकी स्थायी परिस्थितियों (धुवपच्चयत्थेन) को बताया गया है, जो 100,000 युगों के अंतराल में भी अपने प्रभाव उत्पन्न करने में विफल नहीं हो सकतीं। भावी बुद्ध, मेत्तेय का मार्ग (शाब्दिक अर्थ: पथ) अनुप्पन्नो है, परन्तु उनका (या किसी का भी) फल उपपदिनो धम्म से संबंधित है।

67. अविपक्कविपकानम। के. में डाला गया है, लेकिन, जैसा कि उस संस्करण में कहा गया है, बर्मी या यूरोपीय पाठ में नहीं डाला गया है।

68.मुद्रित पाठ में निरुद्धंगता लिखा है; साइ., निरुद्ध विगत; के., निरुद्ध परिणता (विपरिणता नहीं)।

69.अभिनिब्बत्ता मुद्रित पाठ में छूट गया है। तुलना करें § 1035; साथ ही के.

70. पक्कुप्पन्ना, प्रश्न में 'वर्तमान' द्वारा प्रस्तुत शब्द। हमारे 'स्पष्ट', 'उद्देश्यपूर्ण', 'वस्तु' से तुलना करें, इसके सबसे सामान्य मनोवैज्ञानिक अर्थ में, मानसिक 'अवस्थाओं' के विषय के लिए उपस्थित किसी चीज के रूप में।

71.तुलना करें § 1022.

72. अज्झत्त और बहिद्ध के संबंध में, धारा 742 और 743 देखें। साई. अज्झत्तम के अर्थ में चार प्रकार के अंतर करता है, अर्थात् गोचराज्झत्तम, नियाकज्झत्तम, अज्झत्तज्झत्तम और विषयज्झत्तम, जिनमें से दो अर्थ चाइल्डर्स द्वारा उद्धृत तीन अर्थों में से दो के समान हैं। यहाँ प्रयुक्त विशिष्ट अर्थ दूसरा अर्थ है।

73. niyata के स्थान पर niyaka पढ़ें।

74. 'अर्थात, स्वयं को छोड़कर सभी प्राणी।'

असल. 361.

75. मुद्रित पाठ में उपदिन्ना शब्द का उल्लेख नहीं है।

76. तद उभयम इसका संक्षिप्त उत्तर है। खेद की बात है कि बुद्धघोष की दहम मा की इस प्रजाति पर दृष्टांतों की प्रचुरता लागू नहीं की गई। संयोगवश यह ज्ञात होता है कि वे स्वयं और अन्य आत्माओं के संदर्भ में बारी-बारी से प्रयोग करते हैं।
जबकि पहले और तीसरे प्रश्न में धम्म को या तो 'सीमित' या 'विस्तारित' कहा गया है (देखें §§ 1019-1021), और दूसरे में 'अनंत' कहा गया है, जो अवस्थाएँ 'अनंत' हैं, उनके बारे में कहा जाता है कि वे 'उस चीज को अपना विषय नहीं बनाती हैं जो अब बाह्य से संबंधित है, अब आत्मा से संबंधित है'।
(असल. 361, 362.)

77.तुलना करें § 1022 इत्यादि।

78. धारा 597 और उसके बाद की धाराएँ, धारा 657 और उसके बाद की धाराएँ देखें।

79. धारा 980 देखें।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 2
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अंतर्वस्तु

1अध्याय II - कारण समूह
1.1हेतु-गोच्चकम

1.1.1मैं।
1.2- फुटनोट:
अध्याय II - कारण समूह
हेतु-गोच्चकम
[1]
मैं।
[पृष्ठ 274] [1053] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण हैं?
अच्छे कर्म के तीन कारण।
[पृष्ठ 275] बुरे (कर्म) के तीन कारण।
अनिश्चितता के तीन कारण।
इंद्रिय जगत में सक्रिय नौ कारण।
रूप जगत में सक्रिय छह कारण।
निराकार जगत में सक्रिय छह कारण।
वे छह कारण जो उस जीवन में सक्रिय हैं जो असंलग्न है।

(ए) इस संदर्भ में,

[1054] अच्छे कर्म के तीन कारण कौन से हैं?
वासना, घृणा और सुस्ती का अभाव।
इस संदर्भ में,
[1055] कामवासना का अभाव क्या है?
कामवासना, वासना, कामुकता का अभाव मोह, उन्माद, जुनून का अभाव है;
लोभ का अभाव, कामवासना का अभाव जो अच्छे (कर्म) की जड़ है।[2]
[1056] नफरत की अनुपस्थिति क्या है?
घृणा, नफरत, नफरत का अभाव;
प्रेम,[3] प्रेमपूर्ण, प्रेमपूर्ण स्वभाव; [4] कोमल देखभाल, सहनशीलता, विचारशीलता; [5] [पृष्ठ 276] सामान्य भलाई की तलाश,[6] करुणा;
द्वेष, दुर्भावना का अभाव;
घृणा का वह अभाव जो अच्छाई (कर्म) की जड़ है।[7]
[1057] सुस्ती का अभाव क्या है?
बीमारी के बारे में, बीमारी के उत्पन्न होने के बारे में, बीमारी के समाप्त होने के बारे में और बीमारी के समाप्त होने के मार्ग के बारे में ज्ञान;
पहली बातों के बारे में, दूसरी बातों के बारे में और दोनों के बारे में एक साथ ज्ञान;
कारण-निर्धारित अवस्थाओं के कारण-निर्दिष्ट होने के बारे में ज्ञान।
यहां तक कि वह ज्ञान भी जो समझ, खोज, शोध, सत्य की खोज आदि से संबंधित है।
[धारा 34 के अनुसार जारी रखें]।
ये तीन अच्छे कर्मों के कारण हैं।

(ख) इस संबंध में,
[1058] बुरे (कर्म) के तीन कारण कौन से हैं?
वासना, घृणा, सुस्ती।
इस संदर्भ में,

[1059] कामवासना क्या है?
जो भी वासना (रागो),
मोह (सरगो),[8] चापलूसी (अनुनयो),[9] आज्ञापालन (अनुरोधो),[10] [पृष्ठ 277] आनंद लेना (नंदी),[11] भावुक आनंद लेना (नंदी-रागो),[11] मन का मोह (चित्तस सरगो),[12] लालसा (इच्छा),
तड़प (मुच्छा),
भक्षण (अज्जोसनम),[13] लोभ (गेधो),
सर्वभक्षी लोभ (पालिगेधो),
चिपके रहना (सांगो),
एक दलदल (पंको),[14] प्रलोभन (एजा),[15] छल (माया),[16] जननी (जानिका),[17] [पृष्ठ 278] संतानोत्पत्ति (संजना),
दर्जी (सिब्बानी),[18] जाल में फंसाने वाली (जालिनी),[19] नदी है। (सरिता),[20] विषैली (विसत्तिका),[21] धागा (सुत्तम),[22] प्रसार (विसता),[23] परिश्रम करने वाली (आयुहनी),[24] संगिनी (दुतिया),[25] लालसा (पानिधि), [पृष्ठ 279] नवजीवन की ओर ले जाने वाली (भवनेत्ति),[26] वन (वनम),
झाड़ियाँ (वनथो),[27]
घनिष्ठता (संथावो),[28]
स्नेही प्रेम (सिनेहो),
स्नेह (अपेक्खा),[29]
संबंध (पतिबंधु),[30]
लालसा (आसा),
चाहत (असिम्शन),
लोभ (असिम्सिटट्टम),
दृश्य रूपों की लालसा (रूपा, आदि),
ध्वनियों की लालसा,
गंधों की लालसा,
स्वादों की लालसा,
स्पर्शनीय वस्तुओं की लालसा,
प्राप्ति की लालसा,
धन की लालसा,
संतान की लालसा,
जीवन की लालसा,
बड़बड़ाना (जप्पा),[31] [पृष्ठ 280] बड़बड़ाना,
बुदबुदाना,
बुदबुदाना,
बड़बड़ाना,
आत्म-भोग (लोलुप्पम),[32]
आत्म-भोग,
असंयम,
बेचैनी (पुंचिकता),[33]
सुखद की लालसा (साधु काम्यता),[34]
व्यभिचारी वासना (अधम्मारगो),[35]
अराजक कामवासना (विसमलोभो),
भूख (निकन्ति),
भूख (निकमान),

विनती (पट्टाना),
ईर्ष्या (पिहाना),
याचना (संपट्टाना),[36]
कामुक भोग की प्यास (कामतन्हा),
अस्तित्व की प्यास (भवतन्हा),
गैर-अस्तित्व की प्यास (विभवतन्हा),[37]
रूप की प्यास,[38]
निराकारता की प्यास,
विनाश की प्यास,
दृश्य रूपों की प्यास,[39] [पृष्ठ 281] ध्वनियों की प्यास,
गंधों की प्यास,
प्यास स्वाद के लिए,
मूर्त के लिए प्यास,
मानसिक स्थिति के लिए प्यास (धम्मतनहा),
एक बाढ़ (ओघो),
एक योक (योगो),
ट्रैमेल्स (गंथो),
लगाव (उपदानम),
रुकावट (आवरणम),
बाधा (निवारणम),
जालसाजी (चदानम), [40]
बंधन (बंधनम), [41]
भ्रष्टता (उपक्किलसो),
लड़खड़ाना (अनुसयो), [42]
व्याप्त (परयुत्थानम),[43]
लता (लता),[44]
लोभ (वेविचम),[45]
दर्द की जड़,
दर्द का स्रोत (दुक्खनिदानम), [पृष्ठ 282] दर्द का उत्पादन (दुक्खप्पभवो),
मार का जाल (मरपासो),
मार का मछली पकड़ने का कांटा (मरबलिसम),
मार का क्षेत्र (मरविसायो),
प्यास,
आनंद की प्यास (नंदितन्हा),
प्यास का मछली पकड़ने का जाल (जलमतन्हा)[46],
प्यास की लगाम (गद्दुलतन्हा),[47]
सागर (समुद्दो),[48]
लोभ (अभिज्जा),[49]
वह कामवासना जो बुराई की जड़ है - यही कामवासना कहलाती है।
[1060] घृणा क्या है?
जब ये सोचकर झुंझलाहट उत्पन्न होती है: उसने मुझे हानि पहुँचाई है, पहुँचा रहा है, पहुँचाएगा;
उसने मेरे किसी प्रिय और अनमोल व्यक्ति को हानि पहुँचाई है, पहुँचा रहा है, पहुँचाएगा;

उसने किसी ऐसे व्यक्ति को लाभ पहुँचाया है, पहुँचा रहा है, पहुँचाएगा जिसे मैं नापसंद करता हूँ और जिसका मैं विरोध करता हूँ;
या जब झुंझलाहट निराधार रूप से उत्पन्न होती है[50]: — मन की ऐसी सभी व्यथा,[51] आक्रोश, घृणा, शत्रुता;[52]
चिड़चिड़ापन, चिड़चिड़ापन, [पृष्ठ 283] रोष;[53]
घृणा, अरुचि, तिरस्कार;[54]
मानसिक विकार,[55] घृणा;[56]
क्रोध, रोष, चिड़चिड़ापन;
घृणा, नफरत, घृणा;
अव्यवस्था, परेशान होना, विक्षिप्तता;
विरोध, शत्रुता;[57]
अशिष्टता, अचानकता, हृदय की घृणा — इसे ही घृणा कहा जाता है।
[1061] सुस्ती क्या है? बीमारी के बारे में ज्ञान का अभाव,
बीमारी के उदय के बारे में ज्ञान का अभाव,
बीमारी के निवारण के बारे में ज्ञान का अभाव,
बीमारी के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के बारे में ज्ञान का अभाव;
पूर्वोक्त बातों के बारे में ज्ञान का अभाव, पश्चात् बातों के बारे में ज्ञान
का अभाव और दोनों के बारे में एक साथ ज्ञान का अभाव; कारण-निर्धारित अवस्थाओं के कारण-निर्दिष्ट होने के बारे में ज्ञान का अभाव — यहाँ तक कि उस प्रकार का ज्ञान का अभाव जो अंतर्दृष्टि,
समझ,
जागरूकता
, ज्ञान,
भेदन , बोध, विश्लेषण, तुलना, चिंतन और तीक्ष्ण बुद्धि का अभाव है;

अशुद्धता,
बचकानापन,
अज्ञानता,
मूर्खता की सुस्ती,
मंदबुद्धि, अज्ञानता
की बाढ़, अज्ञानता का
जुआ,
अज्ञानता की निर्भरता,
अज्ञानता से ग्रस्त होना,
अज्ञानता की बाधा,
बुराई की जड़ सुस्ती - इसे सुस्ती कहा जाता है।[58]
ये तीन कारण हैं जिनसे बुरे कर्म होते हैं।

(सी) इस संबंध में,

[1062] अनिश्चितता के तीन कारण कौन से हैं?
कामवासना, घृणा और सुस्ती का अभाव अच्छे राज्यों के परिणाम स्वरूप या क्रिया-विचारों के रूप में ज्ञात अनिश्चित अवस्थाओं के रूप में घटित होता है।[59]
[1063] इंद्रिय जगत में कार्यरत नौ कारण कौन से हैं (कामवचरहेतु)?
अच्छे कर्म के तीन कारण, बुरे कर्म के तीन कारण और अनिश्चित अवस्थाओं के तीन कारण—ये नौ कारण हैं।
[1064] रूप के ब्रह्मांड में सक्रिय छह कारण कौन से हैं?
अच्छे कर्म के तीन कारण, अनिश्चित अवस्थाओं के तीन कारण—ये छह हैं।
[1065] निराकार ब्रह्मांड में कार्यरत छह कारण कौन से हैं?
अच्छे कर्म के तीन कारण, अनिश्चित अवस्थाओं के तीन कारण—ये छह हैं।
[1066] अनशामिल में कौन से छह कारण सक्रिय हैं?
अच्छे कर्म के तीन कारण, अनिश्चित अवस्थाओं के तीन कारण—ये छह हैं।
इस संदर्भ में,
[1067] अच्छे कर्म के तीन कारण कौन से हैं?
वासना, घृणा और सुस्ती का अभाव।
इस संदर्भ में,
[1068-1070] कामवासना की अनुपस्थिति क्या है... घृणा की अनुपस्थिति क्या है... सुस्ती की अनुपस्थिति क्या है?
धारा 1055-1057 के अनुसार उत्तर, लेकिन धारा 1056 में 'घृणा' से 'दुर्भावना की अनुपस्थिति' को छोड़कर, विशेष रूप से।[60]
ये अच्छे कर्म के तीन कारण हैं।

(घ) इस संदर्भ में,
[पृष्ठ 285] [1071] अनिश्चितता की तीन वजहें कौन-सी हैं?
अच्छी अवस्थाओं के फलस्वरूप कामवासना, घृणा और सुस्ती का अभाव होना—ये तीन बातें हैं।
ये वे छह कारण हैं जो असंलग्न अवस्था में सक्रिय हैं। ये वे अवस्थाएँ हैं जो कारण हैं।
[1072] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण नहीं हैं?
प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वह इंद्रियों के जगत से संबंधित हो, रूप से संबंधित हो, निराकार से संबंधित हो, या उस जीवन से संबंधित हो जो अविभाजित है, सिवाय ऊपर बताई गई अवस्थाओं के; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप और अविभाजित तत्व भी।
[1073] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनमें कारण सहवर्ती होते हैं?[61]
[पृष्ठ 286] वे अवस्थाएँ, अर्थात् चार स्कंध, जिनके सहवर्ती कारण ऊपर सूचीबद्ध अवस्थाएँ हैं।[62]
[1074J वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनमें सहवर्ती कारण नहीं होते?
वे अवस्थाएँ, अर्थात् चारों स्कंध, सभी अविभाजित तत्व हैं, जिनके सहवर्ती कारण ऊपर वर्णित अवस्थाएँ नहीं हैं।
[1075] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो किसी कारण से जुड़ी हैं?[63]
वे राज्य, अर्थात् चार स्कंध, जो ऊपर उल्लिखित राज्यों से संबंधित हैं।
[1076] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो किसी कारण से जुड़ी नहीं हैं?
वे अवस्थाएँ, अर्थात् चारों स्कंध, सभी अमिश्रित तत्व भी बनाती हैं, जो ऊपर उल्लिखित अवस्थाओं से संबंधित नहीं हैं।
[1077] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण भी हैं और जिनके सहवर्ती कारण भी हैं?
सुस्ती के साथ वासना दोनों है। वासना के साथ सुस्ती दोनों है। सुस्ती के साथ नफरत दोनों है। नफरत के साथ सुस्ती दोनों है।[64]
कामवासना का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव—ये भी, एक दूसरे के साथ मिलकर, कारण हैं और इनके सहवर्ती कारण भी हैं।
[पृष्ठ 287] [1078] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके सहवर्ती कारण होते हैं, लेकिन वे स्वयं कारण नहीं हैं?

वे अवस्थाएँ, अर्थात् चार स्कंध, जिनके सहवर्ती कारण वे अवस्थाएँ हैं [जिन्हें ऊपर कारणों के रूप में गिनाया गया है], उनमें से बाद वाली अवस्थाओं को छोड़कर।
[1079] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण भी हैं और कारण से जुड़ी भी हैं?
[1080] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो किसी कारण से जुड़ी होती हैं, लेकिन कारण नहीं होतीं?
उत्तर उपरोक्त जोड़ी के समान हैं।[65]
[1081] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण नहीं हैं, बल्कि उनका एक कारण सहवर्ती है?[66]
वे अवस्थाएँ, अर्थात् चार स्कंध, जो ऊपर वर्णित अवस्थाओं के कारण नहीं हैं, परन्तु जिनमें से कोई एक अवस्था सहवर्ती होती है।
[1082] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो कारण नहीं हैं और जिनके सहवर्ती कारण नहीं हैं?
ये अवस्थाएँ, अर्थात् चारों स्कंध, सभी एक अविभाजित तत्व का निर्माण करती हैं, जो न तो ऊपर वर्णित अवस्थाओं के कारण हैं और न ही उनमें से किसी को अपना सहवर्ती मानती हैं।
- फुटनोट:
1. इस कथन (§ 595) के संबंध में कि रूप 'वह है जो कारण नहीं है", साइ. अरस्तू की तरह ही कारण के चार प्रकारों में अंतर करता है। हालाँकि, यह समानता संख्या से आगे नहीं बढ़ती। हेतु या तो
कारण के रूप में कारण (हेतु-हेतु);
कारण को शर्त के रूप में, या आवश्यक पूर्ववर्ती 'साधन' (paccayahetu) के रूप में;
अंतिम या सर्वोच्च के रूप में कारण (उत्तम-हेतु); और
कारण एक सामान्य विशेषता के रूप में (s adhar a nail etu). Asl. 303.
इन भेदों को निम्नलिखित तरीके से लागू किया जाता है:
(ए)

धारा 1053 में दिए गए त्रिगुण कारण की त्रिमूर्ति। यहाँ शब्द को हमेशा 'मूल' द्वारा प्रतिरूपित किया जाता है, मूल, इसके विपरीत, सामान्य रूप से उत्पादक एजेंट (धारा 981 के नोट में सूची देखें) और, निश्चित रूप से, विशेष रूप से नैतिक एजेंसी के लिए है।
(बी)

'मैंने घोषित किया है, भिक्षु, कि चार महान घटनाएँ रूप-स्कंध के कारण और परिस्थितियाँ हैं।'
जब सिद्धा भौतिक होती है, तो इसे अरस्तू के दूसरे औपचारिक सिद्धांत η υλη και το υποκειμενον के अनुरूप कहा जा सकता है। संभवतः सिद्धा इसी अवधारणा का सामान्यीकरण था जिसमें प्रभाव के लिए आवश्यक अमूर्त साधन भी शामिल थे। हालाँकि, कोलब्रुक ('जीवन और निबंध', ii. 419) ने कहा कि बौद्ध हेतु को निकटवर्ती कारण और प्रत्यय (सिद्धा) को समवर्ती अवसर के रूप में भेद करते हैं।
(सी)
'जब अच्छे कर्मों का फल मिलता है, तो वही अंततः या सर्वोच्च रूप से वांछित वस्तु होती है' - और बुरे कर्मों के मामले में इसका ठीक विपरीत होता है। यह संभवतः अरस्तू के अंतिम कारण (το ου ενεκα) के लगभग समान है।
(डी)

'जिस प्रकार पृथ्वी और जल (ठोस और द्रव) तत्वों का सार ही मीठे या बेस्वाद होने की स्थिति निर्धारित करता है, उसी प्रकार अज्ञान ही संस्कारों का सामान्य आधार तत्व है। हमारे वर्तमान संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग इसके मूल अर्थ में किया गया है।'

2. धारा 32 देखें। पाली शब्द दोनों उत्तरों में समान हैं। निम्नलिखित उत्तर में, शब्द धारा 33 से काफी भिन्न हैं।

3. मुद्रित पाठ में met tarn है; Cy. और K. में metti पढ़ा जाता है।

4. 'प्रेम से ग्रस्त और प्रेम के माध्यम से आसक्ति से मुक्त व्यक्ति की मानसिक स्थिति।'

(असल. 362.).
पृष्ठ 66 पर दिए गए नोट को देखें।

5. अनुद्दा, अनुद्दयाना, अनुद्दयितत्तम्। साई. ने रक्खति के रूप में इसका प्रतिलेखन किया है, जो इन शब्दों में निहित संदर्भ को दर्शाता है, जिन्हें आमतौर पर 'दया' या 'करुणा' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जो परोपकार और दानशीलता के सुरक्षात्मक और रक्षा करने वाले पहलू को दर्शाते हैं। सी. 7i. 3, 13; एस. 2., पृष्ठ 218 में इसके प्रयोग की तुलना करें, जहाँ इसका उपयोग कमजोर भाइयों के हित में सहनशीलता के उस दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए किया गया है, जिसकी अनुशंसा सेंट पॉल ने इओमान और कोरिंथियन अनुयायियों को की थी।

6.हितेसिता. देखें सी. 9. 5, 7.

7. बुद्धघोष निष्कर्ष निकालते हैं कि इन सभी शब्दों (अर्थात 'प्रेम' से 'करुणा' तक) के द्वारा प्रेम की उन्नति (एक चक्र ऊपर) और उसकी उत्पत्ति (अप्पना) का वर्णन किया गया है। संभवतः इन तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते समय उनके मन में ध्यान की प्रक्रिया रही होगी, जिसमें ध्यान की उत्पत्ति कराई जाती है। देखें खिस डेविड्स, 'योगवचार की नियमावली', पृष्ठ 11।

8.'मजबूत रागो का अर्थ'. असल. 362,

9. यह मिल. 44 में पतिघो या घृणा के विपरीत है; तुलना करें 122 और 322. टिप्पणी (असल. 362) - विसयेसु सत्तनम अनुनयनतो - यह संकेत दे सकती है कि चापलूसी दूसरों की कामुक इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए की जाती है।

10. यह विरोध, पतिविरोध के विपरीत है। धारा 1060 देखें। साइ. (वही) कामेटी द्वारा व्याख्या करता है। तुलना करें एस. आई. इल; केवाई 485।

11. इसे किसी वस्तु के लिए बार-बार उत्पन्न होने वाली उस प्यास के रूप में समझाया गया है, जिसका एक बार घटित होना नंदी नामक अवस्था का निर्माण करता है। असल. 363.

12. इसे पहले से नामित 'मोह' को योग्य बनाने के रूप में समझाया गया है, जिसमें किसी व्यक्तिगत इकाई के बजाय एक मानसिक अवस्था या मनोविकृति के संदर्भ पर जोर दिया गया है। वही।

13. 'अर्थात, निगलकर पकड़ना, पूरी तरह से समाप्त कर देना।'
असल. 363, 370.
यह शब्द संभवतः 'सा' से बना है, जिसका अर्थ है बांधना (या प्राप्त करना), और आमतौर पर, इसके संदर्भ में, इसका अर्थ लगाव होता है। देखें एम. आई. 109, 498; मिल. 74. हालांकि, टीका के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि 'अ 9' मूल से व्युत्पन्न एक समरूप शब्द है, जिसका अर्थ है खाना, जो ध्य और क्ष से व्युत्पन्न 'झयाति' के समानांतर विकास के समान है। देखें एहिस डेविड्स, 'बुद्ध के संवाद', आई. 33, टिप्पणी 2.
ए. i. 66, 67 में दिया गया अंश ही एकमात्र ऐसा अंश है जो मुझे वर्तमान में ज्ञात है जहाँ यह शब्द, आसक्ति और लालच दोनों के संदर्भों के साथ समन्वय में आता है, और इसे दोनों अर्थों में समान रूप से अच्छी तरह से प्रस्तुत किया जा सकता है।

14. ओएसएलडीएनार्न द्वारा पुनर्कथन. एएसएल. 363.

15. अकाक्ल्धनम द्वारा पुनर्कथन किया गया, जिसका प्रयोग डीएचपी. सीवाई. (पृष्ठ 412) में खजाने और परिवार के प्रेम की चुंबकीय शक्ति को दर्शाने के लिए किया गया है। वही।

16. वैनकैनम द्वारा पुनर्कथन किया गया। वही।

17. क्योंकि कामवासना प्राणियों को जीवन चक्र पर पुनर्जन्म दिलाती है। अतः निम्नलिखित विशेषण इस प्रकार है:
तन्हा जनेति पुरिसम, चित्तं अस विधावति।

18. साइ. बताते हैं कि लोब हो पुनर्जन्म के माध्यम से प्राणियों को दुःख से जोड़ता है, ठीक उसी तरह जैसे एक दर्जी कपड़े के एक टुकड़े को दूसरे से जोड़ता है। वही।

19. वह = तन्हा, जिसके फैलाव से इंद्रियों का विविध जाल एक जाल के समान हो जाता है। वही।
यस्सा जलिनी विसात्तिका
तन्हा न'अत्थि कुहिंसी नेतावे।
एस.आई. 107; = डीएचपी., वर्. 180.

20. टीकाकार के अनुसार, लोभो की तीव्र धारा से, या फिर उसकी चिपचिपी दृढ़ता से:
सरितानि सिनेहितानि च
सोमनस्सनि भवन्ति जंतुनो।
डीएचपी., संस्करण 341.

21. ऊपर दिए गए नोट 2 को देखें।

22. क्योंकि यह विनाश और दुर्भाग्य को एक रस्सी पर पिरोए हुए घड़ों की तरह आपस में जोड़ देता है। असलम 364.

23. 'इंद्रियजन्य वस्तुओं पर फैलने के अर्थ में।'
वही।

24. 'अर्थात, वह प्राणियों को इस या उस अवस्था के लिए परिश्रम करने के लिए प्रेरित करती है (आयुहापेति)।'
वही। आयुहाती पर, जेपीटीएस, 1885, पृष्ठ 58, 59; 1886, पृष्ठ 155, 156; मिल. 108, 214 देखें।

25. लोभो (या तन्हा) की तुलना एक प्रिय दूसरे रूप, या पत्नी, या यात्रा साथी से की जाती है।
यह विचार सूत्र निपाता के श्लोक 740 में मिलता है, जिसका उल्लेख साइप्रस ने किया है।
तंहदुतियो पुरिसो दीघर्न अद्धनं संसारं
इत्थभवन्नथभावं संसारं नटिवत्तति ति।

26.Cy.: भवानत्ति = अस्तित्व की डोर। क्योंकि इसी के द्वारा प्राणियों को, जैसे गायों को उनके गले में बंधी डोर से, जहाँ भी उनकी आवश्यकता होती है, ले जाया जाता है।

27. उष्णकटिबंधीय वनों की घनी और दुर्गम प्रकृति अक्सर लोभो या तन्हा के खतरों को दर्शाती है। देखें ध., पृष्ठ 283, साइ. में उद्धृत। वही।

28. 'घनिष्ठता दो प्रकार की होती है: या तो यह शारीरिक (अर्थात्, तन्हा) होती है या मैत्रीपूर्ण। यहाँ पूर्व प्रकार का अभिप्राय है।'

असल. 365.

29.'अलयाकरनवासेना अपेक्खति ति अपेक्खा।'
वही।
इस शब्द पर साइ. में उद्धरण महासुदस्सना सुत्त, 229 से है, जिसके साथ तुलना करें एस. iii. 144.

30. 'जीवित प्राणियों के निरंतर निकट होने के कारण तन्हा के समान कोई संबंध (या जुड़ाव) नहीं है।'
असल. 365.

31. निम्नलिखित चारों शब्द जप्पा के ही भिन्न रूप हैं। 'जब भी किसी लालची व्यक्ति को कुछ दिया जाता है, तो वह बुदबुदाता है, "यह मेरा है, यह मेरा है!, यह मुझे फलां व्यक्ति ने दिया है!"
असल. 365.
के. अभिजप्पना के बाद जप दोहराता है। सी एफ सी. iv. 14, 26: सकन्नजप्पकम।

32.जाट. i. 340; iv. 306 देखें। बुद्धघोष इसे लुम्पति से व्युत्पन्न करते हैं। व्हिटनी की 'बूट्स' आदि देखें, जहाँ यह लुप के गहन रूप में प्रकट होता है, लेकिन अर्थ में लुभ से संबंधित है।

33. साई. के अनुसार, तन्हा से उत्पन्न उत्तेजना या घबराहट की तुलना यहाँ 'कुत्तों द्वारा कुछ खोजते समय अपनी पूंछ हिलाने' (सुनाखा पढ़ें) से की गई है। वही।

34. सी.वाई. और के. साधु पढ़ते हैं।

35.माँ के लिए, माँ की बहन आदि के लिए। अस्ल. 366.

36.यानि पत्तन तेज हो गया. वही.

37.अर्थात्, विनाश की स्थिति के लिए। वही।

38.अर्थात, शुद्ध (सुद्धे) रूप की अवस्था के लिए। वही।

39. 'ध्वनियों की प्यास' से पहले, के. ने दूसरी बार रूपतन्हा शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ जिस रूपनी की लालसा व्यक्त की गई है, वह संभवतः 'दृश्य' या 'दृष्टि की अनुभूतियाँ' हैं, जो पूर्व रूपतन्हा के अंतर्गत वर्णित अलौकिक अवस्था से भिन्न हैं और निराकार अवस्था के बाद आती हैं। दूसरी ओर, सी. केवल 'विनाश की प्यास' और 'ध्वनियों की प्यास' के बीच 'दित्तिरागो' शब्द का उल्लेख करते हैं, जिसका अर्थ है चिंतन की लालसा।

40.सो असल. और के. सी. सुत्त निप. i. 5, 7.

41.अर्थात्, 'संसार के चक्र पर'। वही।

42. 'शक्ति की हानि के माध्यम से'। वही।

43.अर्थात्, हृदय कामवासना से ग्रस्त हो जाता है, जैसे सड़क लुटेरों के वश में हो जाती है। वही।

44.. . . लता उब्भिज्ज तित्तति. धप्प. 340. साई में उद्धृत. लोभ या वासना अपने शिकार का गला घोंट देती है, जैसे लता पेड़ का गला घोंट देती है.

45.सुट्टा निप देखें। 1033. हालाँकि, बुद्धघोसा ने इस शब्द को 'बहुमुखी चाहत', विएलहाबेरेई के रूप में परिभाषित किया है; 'विविधनि वत्थुनि इच्छाति'। मैंने छुपा दिया।
असल में, पृष्ठ 375 पर, उनका एक अलग स्पष्टीकरण है। तुलना करें एसएन ii., sv veviccha.

46. नदी पर जाल की तरह फैला हुआ। असल. 367.

47.तुलना करें जे. एट. ii. 246; iii. 204. टैन हा अपने शिकार को इस तरह घसीटता है जैसे कुत्ते पट्टे से खींचे जाते हैं (असल. 367)।

48. कामवासना की प्यास बुझाना कठिन है। वही। तुलना करें, ऊपर, पृष्ठ 175, टिप्पणी 4।

49. धारा 391 देखें।

50.'अत्थाने वा पण अघाटो ति अकरणे कोपो।
उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति इसलिए परेशान होता है क्योंकि बहुत अधिक बारिश होती है, या बारिश नहीं होती है, या क्योंकि सूरज बहुत तेज होता है, या बहुत कम गर्म होता है, या क्योंकि हवा बहुत तेज या बहुत कम चलती है, या क्योंकि वह बोधि वृक्ष के पत्तों को साफ नहीं कर सकता है, या क्योंकि हवा के कारण वह अपना वस्त्र नहीं पहन सकता है, या क्योंकि वह किसी पेड़ के ठूंठ पर गिर गया है।
असल. 367.

51. सिट्टास्सा अघतो। अघतो का अनुवाद ऊपर झुंझलाहट के रूप में किया गया है। अगले दो शब्द पतिघतो और पतिघम हैं। बाद वाला शब्द इंद्रिय-गतिविधि में क्रिया और प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है। § 597 et seq.

52.पतिविरोधो. सी एफ मिल. 203, 402.

53.Kopo, pakopo, sampakopo.

54.Padoso, sampadoso.

55. चित्तस्स व्यापत्ति; इसका अर्थ है मन का पूर्ण उलटफेर या प्रलय। जाट 4:107 में व्यापत्ति का प्रयोग जहाज के डूबने के लिए किया गया है। ऊपर दिए गए अनुच्छेद 418 देखें।

56. मनोपदोसो. तुलना करें जाट. iv. 29; एम. i. 377, जहाँ इसका अर्थ स्पष्ट रूप से अभिशाप या निंदा है - 'घृणा' का मूल अर्थ।

57. धारा 418 देखें।

58. असलम 368 के अनुसार, यह 'विभंग की टीका में विस्तार से बताया गया है'।

59.किरियव्यकतेसु धम्मेसु। ऊपर देखें, § 566 वगैरह। साइ. यहाँ सन्नाटा है.

60. Ado so अनजाने में पाठ में छूट गया है।

61. सहेतुका। इस शब्द पर बौद्ध धर्मग्रंथ (पृष्ठ 47) में लिखा है: संप अयोगतो पवत्तेन सह हेतुना ति सहेतुका, और इसके विपरीत: अहेतुकाथ तथ'एव पवत्तो न'अत्थी एतेसम हेतु ति। इसका अनुवाद इस प्रकार हो सकता है: 'सहेतुका का अर्थ है, किसी कारण के साथ निरंतरता में मिलन' और 'अहेतुका का अर्थ है, उनके लिए किसी कारण की निरंतरता नहीं है'। बौद्ध धर्मग्रंथ में किसी दी गई अवस्था के साथ किसी कारण के निरंतर बने रहने पर इतना जोर दिया गया है कि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मध्यकालीन विवाद, जिसे सूत्र 'सेसंटे काउसा सेसैट एट इफेक्टस' के नाम से जाना जाता है, बौद्ध विद्वानों के लिए अपरिचित नहीं था।
क्या हम यहाँ कुछ ऐसी अवस्थाओं का वर्गीकरण कर रहे हैं, जिनके फलस्वरूप बने रहने के लिए कारण का निरंतर बने रहना आवश्यक है? यदि ऐसा है, तो बौद्ध आधुनिक तर्कशास्त्री (जे.एस. मिल) से सहमत होंगे (देखें अनुच्छेद 1075, नोट) कि कुछ मामलों में ही, 'किसी फलस्वरूप बने रहने के लिए फलस्वरूप उत्पन्न करने वाली अवस्था का निरंतर बने रहना आवश्यक है'। हालाँकि, यह समानता अत्यंत संदिग्ध है।
पाली भाषा में तो यह भी अस्पष्ट है कि क्या सहवर्ती कारण ही विचाराधीन राज्य का कारण है; वास्तव में, कभी-कभी ऐसा स्पष्ट रूप से नहीं होता है।
उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 1077 में 'सुस्ती' हेतु-धम्मो है, परन्तु इसलिए यह कामवासना और घृणा जैसी सहवर्ती अवस्थाओं का कारण नहीं है। संकलक हमेशा की तरह इस विषय के तर्क से अधिक मनोविज्ञान में रुचि रखते थे और मानसिक जुड़ाव के कारकों की जाँच कर रहे थे।

62. तेही धम्मेही, अर्थात् अच्छे या बुरे प्रभावों के छह कारणों में से किसी एक के साथ। असल. 368.

63. हेतु-संपयुत्त। संपयुत्त शब्द के अर्थ के लिए पृष्ठ 1, नोट 4 देखें। यह विपरीतार्थक शब्दों का युग्म पिछले युग्म से अर्थ में भिन्न नहीं बताया गया है (अत्थतो नानत्तम् नत्थि), और सूत्रों को केवल श्रोताओं की विभिन्न प्रवृत्तियों (अज झसयवासेना) के अनुकूल बनाने के उद्देश्य से विभेदित किया गया है। असल. 48. हालाँकि, अर्थ की यह समानता केवल हेतु के क्षेत्र में ही लागू होती प्रतीत होती है।
अगले गोच्चकम में, आसवविप्पयुत्त का गुण ससव के गुण के साथ संगत होने की अनुमति है, § 1111, और इसी प्रकार बाद के गोच्चकों के लिए भी।

64. जब सुस्ती के साथ उलझन और उत्तेजना (उद्धच्चम) हो, तो उसे कारण कहा जाता है, परन्तु उसका सहवर्ती कारण नहीं होता। असल. 368.

65.तुलना करें § 1075, एन. 2.

66. पूरक प्रश्न, सी.वाई. कहते हैं, ना-हेतु अवस्थाओं से संबंधित। असल. 47.
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 3

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अध्याय III - युग्मों का संक्षिप्त मध्यवर्ती समूह
कुलंतराडुकम

[पृष्ठ 288] [1083] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो सशर्त हैं?[1]

पांच स्कंध, अर्थात् रूप, भावना, बोध, संश्लेषण और बुद्धि के स्कंध।

[1084] कौन-कौन सी अवस्थाएँ बिना शर्त हैं?

'और अमिश्रित तत्व'.[2]

[1085] कौन सी अवस्थाएँ यौगिक हैं?[3]

वे अवस्थाएँ जो सशर्त हैं।

[1086] कौन-कौन सी अवस्थाएँ अविभाजित हैं?

वह अवस्था जो बिना शर्त हो।

[1087] वे कौन से राज्य हैं जिनमें दृश्यता है?

[दृश्यमान] रूपों का क्षेत्र।

[1088] वे कौन से राज्य हैं जिनमें दृश्यता नहीं है?

इंद्रियों और इंद्रिय-विषयों के क्षेत्र; चार स्कंध; वह रूप भी जो न तो दृश्यमान है और न ही प्रभाव डालने वाला है, [मानसिक] अवस्थाओं के अंतर्गत समाहित है;[4] और अविभाजित तत्व।

[पृष्ठ 289] [1089] वे कौन से राज्य हैं जो प्रभावित करते हैं?[5]

इंद्रियों के क्षेत्र और इंद्रिय-विषय।

[1090] वे कौन से राज्य हैं जो गैर-प्रभावित हैं?

चारों स्कंध; वह रूप भी जो न तो दृश्यमान है और न ही प्रभाव डालने वाला, [मानसिक] अवस्थाओं के अंतर्गत आता है; साथ ही अविभाजित तत्व भी।

[1091] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनका [भौतिक] रूप है?[6]

चार महान सिद्धांत और साथ ही चार महान घटनाओं से व्युत्पन्न रूप।[7]

[1092] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जिनका कोई भौतिक रूप नहीं है?

चारों स्कंध और अमिश्रित तत्व।

[1093] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो सांसारिक हैं?[8]

सह-नशा [9] अवस्थाएँ, अच्छा, बुरा और अनिश्चित, इंद्रियों, रूप या निराकार की दुनिया से संबंधित, अर्थात् पाँच स्कंध।

[1094] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो अलौकिक हैं?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1095] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो एक तरह से बोधगम्य हैं, और दूसरी तरह से बोधगम्य नहीं हैं?

जो अवस्थाएँ दृष्टि से पहचानी जा सकती हैं, वे श्रवण से नहीं पहचानी जा सकतीं; इसके विपरीत, जो अवस्थाएँ श्रवण से पहचानी जा सकती हैं, वे दृष्टि से नहीं पहचानी जा सकतीं।

जो अवस्थाएँ दृष्टि से पहचानी जा सकती हैं, वे गंध से, स्वाद से, या शारीरिक संवेदना से नहीं पहचानी जा सकतीं, और इसके विपरीत भी।

[पृष्ठ 290] वे अवस्थाएँ जो श्रवण द्वारा पहचानी जा सकती हैं, वे गंध द्वारा ... स्वाद द्वारा ... शारीरिक संवेदनशीलता द्वारा ... दृष्टि द्वारा नहीं पहचानी जा सकतीं, और इसके विपरीत भी।

इसलिए उन अवस्थाओं के लिए जो गंध, स्वाद और शरीर संवेदनशीलता द्वारा पहचानी जा सकती हैं।[10]

- फुटनोट:
1.सप्पाकाया, = अत्तानो निप्पादाकेना, सह पकायेना। असल. 47.

2.किसी ने अपेक्षा की होगी कि पाठन इसके बजाय असंखत् वा धातु होगा। . . सीए धातु, पाठ और के दोनों में दिया गया है। असंखत्-धातुं संध्या है।

3. संखता को 'परिस्थितियों द्वारा निर्मित, एकत्रित' के रूप में परिभाषित किया गया है। असल. 47.

4. धारा 1052 देखें।

5.सप्ततिघा. सी एफ § 597, आदि।

6. यूपिनो, अर्थात्, उनका ऐसा रूप है जो स्वयं में विवेचनात्मक चेतना से रहित है (अविनिभोगवासेना)। एएसएल, पृ. 47, तुलना करें पृ. 56; मिल. 63; एम. आई. 293।

7.तुलना करें धारा 597.

8. लोकिया = अस्तित्व के चक्र से बंधा हुआ, उसका एक हिस्सा, जो अपने विलीन होने और बिखरने (लुज्जना पलुज्जना) के कारण लोको कहलाता है। संसार से परे जाना, उसमें एक गैर-अनुरूप विशेषता होना - उसमें होते हुए भी उसका हिस्सा न होना - लोकुत्तरो कहलाता है। असल. 47, 48.

9. धारा 1103 देखें।

10. साई. इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि ऐसा कोई दोहा क्यों नहीं है जो यह बताए कि कौन सी अवस्थाएँ प्रतिनिधिक ज्ञान या विचार (मनोविन्नानम्) द्वारा बोधगम्य हैं या नहीं? इसका उत्तर है, "ऐसा भेद पूरी तरह से मान्य है, 'अस्तित्वहीन नहीं है', लेकिन इसे स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है, क्योंकि निर्धारण या निर्णय (ववत्थानम्) का अभाव है। 'उदाहरण के लिए, जब हम यह निर्णय लेते हैं कि फलाँ-फलाँ चीजें दृश्य बुद्धि द्वारा बोधगम्य नहीं हैं, तो ऐसा कुछ नहीं होता।' देखें अस्ल. 369, तुलना करें मिल. 87, जहाँ इस बौद्धिक प्रक्रिया को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है। बुद्धघोष का तर्क मुझे कम स्पष्ट लगता है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 4

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
- भाग 1

अध्याय IV - मादक पदार्थों का समूह
आसव-गोच्चकम
[पृष्ठ 291] [1096] कौन-कौन सी अवस्थाएँ मादक पदार्थ हैं?[1]

चार मादक पदार्थ,
अर्थात्,
कामुकता का मादक पदार्थ, [पृष्ठ 292] नवजीवन का मादक पदार्थ,
सट्टा राय का मादक पदार्थ,
अज्ञान का मादक पदार्थ।

इस संदर्भ में

[1097] कामुकता का नशा क्या है?

वह कामुक इच्छा,[2]
कामुक जुनून,
कामुक आनंद, [पृष्ठ 293] कामुक लालसा,
कामुक स्नेह,
कामुक प्यास,
कामुक बुखार,
कामुक तंद्रा,
कामुक लोभ,
जो इंद्रियों के सुखों से उत्तेजित होता है[3]

इसे कामुकता का नशा कहा जाता है।

[1098] नए जीवन का नशा क्या है?

पुनर्जन्म के संबंध में जो इच्छा,
अस्तित्व में आने की तीव्र इच्छा,
अस्तित्व में आने का आनंद, अस्तित्व में आने की लालसा,
अस्तित्व में आने का प्रेम, अस्तित्व में आने की
तीव्र इच्छा,
तड़प,
भूख महसूस होती है।

— इसे नवजीवन का नशा कहा जाता है।[4]

[1099] सट्टा राय का नशा क्या है?[5]

यह मानना कि दुनिया शाश्वत है,
या यह शाश्वत नहीं है,[6] अनंत या सीमित;[7]

कि सजीव आत्मा शरीर है,
या सजीव आत्मा शरीर से भिन्न वस्तु है;[8]

या फिर जिसने सत्य पर विजय प्राप्त की है[9] वह मृत्यु के बाद विद्यमान रहता है,
या मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहता,
या मृत्यु के बाद विद्यमान और विद्यमान दोनों रहता है,
या मृत्यु के बाद विद्यमान न तो रहता है और न ही विद्यमान रहता है — इस प्रकार की राय,
राय में चलना, राय का
जंगल, राय का वीरान इलाका, राय का कठपुतली शो, राय की हाथापाई , राय की बेड़ी, उसकी पकड़ और दृढ़ता, उसकी ओर झुकाव, उससे संक्रमित होना, यह बाई-पाथ, गलत रास्ता, गलत होना, यह 'फोर्डिंग प्लेस', पकड़ की यह अस्थिरता[10]

इसे अटकलबाजी से उपजी राय का नशा कहा जाता है। इसके अलावा, अटकलों के नशे में सभी झूठे सिद्धांत शामिल होते हैं।

[1100] अज्ञान का नशा क्या है?[11]

धारा 1061 में 'सुस्ती' के लिए दिए गए अनुसार उत्तर दें।

ये वे अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थ हैं।

[1102][12] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थ नहीं हैं?

प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित,[14] जो पूर्वोक्त (नशीले पदार्थों) में शामिल नहीं है, चाहे वह इंद्रियों, रूपों या निराकारों के जगत से संबंधित हो, या उस जीवन से जो अशाब्दिक है, अर्थात् चार स्कंध; सभी रूप भी, और अमिश्रित तत्व।

[1103] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो सह-नशीले पदार्थ हैं?[15]

[पृष्ठ 295] अच्छी, बुरी और अनिश्चित अवस्थाएँ, चाहे वे इंद्रियों, रूपों या निराकारों के जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1104] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो सह-नशीले पदार्थ नहीं हैं?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1105] वे कौन से राज्य हैं जो 'नशीले पदार्थों से जुड़े' हैं?

वे राज्य जो उन [नशीले] राज्यों से जुड़े हैं,[16] अर्थात्, चार स्कंध।

[1106] वे कौन से राज्य हैं जो 'नशीले पदार्थों से विच्छेदित' हैं?

वे अवस्थाएँ जो उन [नशीले] अवस्थाओं से असंबद्ध हैं, अर्थात् चारों स्कंध; वे सभी भी अमिश्रित तत्व का निर्माण करती हैं।

[1107] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थ और सह-मादक पदार्थ दोनों हैं?

स्वयं मादक पदार्थ।[17]

[1108] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो सह-नशीले पदार्थ हैं, लेकिन नशीले पदार्थ नहीं हैं?

वे अवस्थाएँ जिनमें उपरोक्त अवस्थाएँ (§ 1096) सहवर्ती अवस्थाएँ हैं; अर्थात्, मादक पदार्थों को छोड़कर, सभी अवस्थाएँ, चाहे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों, जो सह-मादक हैं, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[पृष्ठ 296] [1109] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थ भी हैं और मादक पदार्थों से संबंधित भी हैं?

कामुकता का नशा, अज्ञानता के नशे के साथ-साथ, और इसके विपरीत। नवजीवन का नशा, अज्ञानता के नशे के साथ-साथ, और इसके विपरीत। काल्पनिक मत का नशा, अज्ञानता के नशे के साथ-साथ, और इसके विपरीत।

[1110] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं मादक पदार्थ नहीं हैं?

वे राज्य जो पूर्वोक्त राज्यों से संबद्ध हैं (§ 1096) - बाद वाले स्वयं को छोड़कर - अर्थात्, चार स्कंध।

[1111] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थों से असंबद्ध हैं लेकिन सह-मादक पदार्थ हैं?

वे अवस्थाएँ जो ऊपर नामित अवस्थाओं (§ 1096) से असंबद्ध हैं, परन्तु जो अच्छी, बुरी या अनिश्चित हैं, उन्हें सहवर्ती के रूप में धारण करती हैं, चाहे वे इंद्रिय जगत, रूप जगत या निराकार जगत से संबंधित हों, अर्थात् पाँच स्कंध।

[1112] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो मादक पदार्थों से असंबद्ध हैं और सह-मादक पदार्थ नहीं हैं?

वे पथ जो असंलग्न हैं और पथों के फल और असंयोजित तत्व.[3]

- फुटनोट:
1. 'नशा' शब्द 'आसवो' का एक पर्यायवाची मात्र है, क्योंकि इसका कोई उपयुक्त अंग्रेज़ी पर्याय उपलब्ध नहीं है (देखें खिस डेविड्स, 'बुद्ध के संवाद', खंड i., पृष्ठ 92, नोट 3)। यहाँ इसका चयन बुद्धघोष की टिप्पणी के आधार पर किया गया है। यह टिप्पणी इस प्रकार है: 'आसव का अर्थ है वे आगे बढ़ते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे बहते हैं (लेगे सवन्ति), इंद्रियों और मन में घूमते हैं। या, मानसिक अवस्थाओं के संदर्भ में, वे चुने हुए लोगों तक, और स्थान के संदर्भ में, वे अस्तित्व के उच्चतम स्तरों तक बहते हैं - मेरा अर्थ है, उनकी सीमा अवस्थाओं और स्थान दोनों को समाहित करती है, इस समाहितता को 'अ' उपसर्ग द्वारा दर्शाया गया है।'

इसके अलावा, आसव मादक पेय पदार्थों (आसव) के समान होते हैं, जैसे कि शराब आदि, जिन्हें लंबे समय तक रखा जा सकता है। क्योंकि संसार में, लंबे समय तक रखे गए मादक पेय पदार्थों को आसव कहा जाता है। और यदि इन मादक पेय पदार्थों को इतने लंबे समय तक रखने के कारण आसव कहा जाता है, तो ये अवस्थाएँ भी इस नाम के योग्य हैं।

क्योंकि ऐसा कहा जाता है:

"हे भाइयों, अज्ञान का वह चरम बिंदु, जिसके समक्ष अज्ञान का अस्तित्व ही नहीं रहा है, प्रकट नहीं होता।"
[अज्ञान के आसव का जिक्र करते हुए]

असल. 48.

इस अंश से हमें यह समझ आता है कि बुद्धघोष के लिए, 'आसवो' शब्द, चाहे इसके अन्य अर्थ कुछ भी रहे हों, मुख्य रूप से दो धारणाओं का प्रतीक था, और ये थीं किसी संभावित और अत्यंत शक्तिशाली प्रभाव का फैलाव और उसकी वृद्धि की अवधि। पहला रूपक—प्रवाहित होना, ऊपर से बहना और उसके ऊपर से बहना—संवेदना के संरक्षित मार्गों के मानक वर्णन में एक संबंधित क्रिया के साथ आता है—अनवस(स)वेय्युम {जैसे, डी. आई. 70)।

बाद की धारणा सुभूति की इस शब्द पर शुरुआती टिप्पणी में दिखाई देती है ('अभिधानप्पदीपिका-सुचि', sv असवो): मन-पुरीसमददयो येनति - जिससे अभिमान और मानवीय पागलपन [या आसक्ति] आती है।

इस शब्द में निस्संदेह कुछ ऐसा भी निहित था जो बहते समय दूषित, भ्रष्ट और लहूलुहान कर देता था। लेकिन यह भी उस शब्द के शारीरिक और नैतिक महत्व का हिस्सा है जिसे मैंने अनुवाद में चुना है।

बाद में (पृष्ठ 369) साई. बौद्ध धर्म की प्रचलित पद्धति के अनुसार मादक पदार्थों को संख्यात्मक श्रेणियों में वर्गीकृत करता है। इस प्रकार, वे एक हैं, या अविभेदित हैं, क्योंकि वे शराब की तरह लंबे समय तक संचित रहते हैं। विनय में उनका दो प्रकार से वर्णन किया गया है: - वे मादक पदार्थ जिन्हें इस जीवन में दबाना है और वे जिन्हें भविष्य के जन्मों में त्यागना है (देखें V. iii. 21; V., पृष्ठ 143, 223)। सुत्तंत में, उदाहरण के लिए, सलायतन-सुत्त में, उन्हें तीन शीर्षों के अंतर्गत विभेदित किया गया है, दित्तसव को छोड़ दिया गया है। (जिस सुत्त का उल्लेख किया गया है, उसका अभी संपादन नहीं हुआ है, लेकिन VM i. 55; S. iv. 256; A. i. 167; iii. 414; और cf. D. i. 84)।

दीघा निकाय के महा-परिनिर्वाण-सूत्र में, हालांकि, चारों आसवों का उल्लेख है (पृष्ठ 38, 40)। अतः तीन संभावित निष्कर्ष निकलते हैं: या तो बुद्धघोष से एक बार गलती हुई है, या अंतिम सूत्र के संस्करण में सुधार की आवश्यकता है, या यह एक बाद का ग्रंथ है, जो संभवतः अभिधम्म के समकालीन है। 'प्रवेश' (ए. iii. 410-417) पर लिखे गए अंश में, इन्हें पाँच विभिन्न प्रकार के पुनर्जन्मों की ओर ले जाने वाले कारक के रूप में माना गया है। 'चक्क निपाता के अहुनेय-सूत्र' (अर्थात उस निपाता का क्रमांक 18ii, ए. iii. 387) में, इन्हें दूर करने के छह तरीकों के अंतर्गत माना गया है। सब्बसव-प्रवचन (एम. i., पृष्ठ 7-11) में सात तरीके दिए गए हैं।

2.'कामचन्दो ति कामसंखतो चंदो न कट्टुकम्यतचन्दो न धम्मचन्दो'. असल. 370. इंद्रिय-संबंधी इच्छा और नैतिक रूप से तटस्थ, केवल इच्छाशक्ति की अवस्था के बीच सावधानीपूर्वक किया गया यह अंतर, साथ ही आदर्श की चाहत, जनवरी 1898 में जेकेएएस में मेरे द्वारा प्रस्तुत तर्क को पुष्ट करता है, जिसकी पुनर्चर्चा मेरी प्रस्तावना में की गई है।

3.पंचकामागुनिको रागो कामसावो नामा (असल. 369)।

शास्त्र में कहा गया है कि सर्वोच्च देवताओं के महलों या स्वर्ग के मनोकामना वृक्षों की लालसा करना या सौंदर्यपरक विलासिता (आभरणम) की चाहत को कामुकता के नशे के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी इच्छाएँ कामुकता से कहीं अधिक गंभीर हैं। बल्कि ये लोभ के बंधन (धारा 1136) और कामवासना के कारण (धारा 1059) के अंतर्गत आती हैं। असल. 371, 377.

4. शाब्दिक रूप से, बनने का। 'जिसे भावसवो कहा जाता है, वह पुनर्जन्म की आशा है, शाश्वतवादी चिंतन से जुड़ा जुनून (उत्तर के बाद देखें और § 1003, n. 2), ध्यान की अवस्था की लालसा (यानी, रूप और निराकार के स्तरों में पुनर्जन्म की तीव्र इच्छा)।'

असल. 369.

5.दित्थसावो, 'यानि, बासठ सिद्धांत'। इह्दि, देखें डी. आई., ब्रह्मजला सुत्त।

6.अर्थात, यह मानना कि यह पंच-स्कंधित मामला स्थायी, स्थिर, शाश्वत है - जो शाश्वतवादी सिद्धांत है; या यह कि यह नष्ट हो जाता है, नाश हो जाता है - जो पूर्ण विघटन का सिद्धांत है। असल. 370, 371. तुलना करें §§ 1003, n. 3; 1315-16.

7. इन दोनों सिद्धांतों को साई. द्वारा पूर्ववर्ती खंड में वर्णित सिद्धांतों में से किसी एक के साथ संगत घोषित किया गया है। और यह भी कहा गया है कि ये सिद्धांत किसी एक या दूसरे सिद्धांत के अनुयायी द्वारा अभ्यास किए जाने वाले ध्यान की प्रकृति द्वारा निर्धारित होते हैं। असल. 371. देखें §§ 1317-18.

8.अर्थात्, शरीर के विघटन पर जीवन (या सजीव आत्मा) का विनाश होता है या नहीं। वही।

9. तथागतो — साइप्रस में, सत्तो तथागतो नाम। अतः स्पष्ट है कि यह केवल बुद्ध का ही संदर्भ नहीं है। देखें कोबर्ट चाल्मर्स, 'तथागत', जेईएएस, जनवरी, 1898, पृष्ठ 113-115। ऐसे व्यक्ति के भविष्य के अस्तित्व के बारे में चार अटकलों को क्रमशः शाश्वतवादी, विनाशवादी, अर्ध-शाश्वतवादी और अमरविक्खेपिका नाम दिया गया है। वही, देखें डी. आई. 3, §§ 58, 41, 59, 35।

10. धारा 381 के अंतर्गत देखें।

11.पाठ में दुक्खुदाय अन्नम् के बाद दुक्खनिरोधे अन्नम् प्रदान करें।

12.'§ 1101' स्पष्ट रूप से एक त्रुटिपूर्ण प्रक्षेप है। § 1104 देखें, जहाँ यह पुनः और अपने सही स्थान पर प्रकट होता है।

13.पाठ में कुसलकुसलव्यकत् पढ़ें।

14. ससवा, अर्थात्, 'आसवों के साथ आगे बढ़ते हुए', और जिन्होंने 'अत्तनम अरम्मनम कत्वा' - 'आत्मा को अपना लक्ष्य बनाया है'। असल. 48.

15. इस प्रकार के उत्तर, जो इन 'समूहों' में अक्सर पाए जाते हैं, देखने में भले ही प्रश्न की मात्र पुनरावृत्ति प्रतीत हों, लेकिन तार्किक भाषा में ये विश्लेषणात्मक या व्याख्यात्मक प्रस्ताव हैं। वर्तमान शब्द आसव-संपयुत्त का अर्थ या इसमें ये चार प्रकार समाहित हैं: कामसव-संपयुत्त, भावसव-संपयुत्त इत्यादि।

16. जब परस्पर संबद्ध हों। निम्नलिखित उत्तरों की जोड़ी देखें।

17. निष्कर्ष में, साइ. घोषणा करता है (पृष्ठ 372) कि सट्टा राय का नशा पहले (सोतपत्ति) मार्ग से प्रगति के दौरान दूर किया जाता है, कामुकता का नशा तीसरे (नाग अमी) मार्ग में और नवगठित अस्तित्व और अज्ञान का नशा चौथे (अरहत्त) मार्ग में दूर किया जाता है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 5

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
   - भाग 1

अध्याय V - बेड़ियों का समूह
सन्नोजना-गोच्चकम
[पृष्ठ 297] [1113] कौन से राज्य बेड़ियाँ हैं?

दस बंधन, अर्थात्, कामुकता का बंधन,
घृणा का बंधन,
अहंकार का बंधन,
काल्पनिक मत का बंधन,
उलझन का बंधन,
मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण,
नवजीवन की लालसा,
ईर्ष्या,
नीचता,
अज्ञानता।[1] [पृष्ठ 298] इस संदर्भ में,

[1114] कामुक वासना का बंधन क्या है? वह कामुक इच्छा,
कामुक जुनून,
कामुक आनंद,
कामुक लालसा,
कामुक लगाव, कामुक उन्माद, कामुक
सुस्ती , कामुक लोभ, जो इंद्रियों के सुखों से उत्तेजित होता है।

— इसे कामुकता का बंधन कहा जाता है।[2]

[1115] प्रतिकर्षण का बंधन क्या है?[3]

'घृणा' के लिए उत्तर दें, धारा 1060।

[1116] अहंकार का बंधन क्या है?[4] [पृष्ठ 299] 'मैं श्रेष्ठ व्यक्ति हूँ' के विचार से अहंकार;
'मैं उनके समान अच्छा हूँ' के विचार से अहंकार;
'मैं नीच हूँ' के विचार से अहंकार - इस प्रकार के सभी अहंकार,
अतिशयता,
अभिमान,
ऊँचाई,
घमंड,
झंडा फहराना,
अनुमान,
आत्म-प्रचार के लिए हृदय की इच्छा - इसे अहंकार कहा जाता है।

[1117] सट्टा राय का बंधन क्या है?

धारा 1099 के अनुसार 'अनुमानित राय के मादक पदार्थ' के लिए उत्तर दें, इस पूरक के साथ:

और, 'महज नियम और अनुष्ठान के संक्रमण के बंधन' को छोड़कर, सभी गलत विचार सट्टा राय के बंधन में शामिल हैं।

[1118] उलझन का बंधन क्या है?

'भ्रम' के लिए उत्तर दें, धारा 1004।

[1119] मात्र नियम और अनुष्ठान के संक्रमण का बंधन क्या है?

एन्सिवर के अनुसार 'संक्रमण' आदि के लिए, § 1005.

[1120] नए जीवन की चाहत का बंधन क्या है?

'पुनर्जन्मित अस्तित्व के मादक पदार्थ' के लिए उत्तर दें, धारा 1098।

[1121] ईर्ष्या का बंधन (इस्सन्नोजनम्) क्या है? ईर्ष्या,
ईर्ष्या करना,
ईर्ष्या - दूसरों को मिलने वाले
उपहारों,
आतिथ्य,
आदर,
स्नेह,
श्रद्धा और पूजा के प्रति ईर्ष्या की अभिव्यक्ति और मनोदशा[5] - इसे ईर्ष्या का बंधन कहा जाता है।

[1122] कंजूसी का बंधन (मच्चरिसन्नोजनम्) क्या है? पाँच प्रकार की कंजूसी,

अर्थात्,
निवास,
परिवार,
उपहार,
प्रतिष्ठा,
सिद्धांत[6] के संबंध में कंजूसी — इस प्रकार की [पृष्ठ 300] कंजूसी,
ईर्ष्या,
नीच भावना,
लोभ और नीचता,[7]
कंजूसी और उदारता की कमी[8] — इसे कंजूसी का बंधन कहा जाता है।

[पृष्ठ 301] [1123] अज्ञान का बंधन क्या है?

अज्ञानता के मादक पदार्थ के लिए उत्तर दें, धारा 1100।

ये वे अवस्थाएँ हैं जो बंधन हैं।

[1124] वे कौन-कौन सी अवस्थाएँ हैं जो बेड़ियाँ नहीं हैं?

प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो पूर्वोक्त [दस] अवस्थाओं में शामिल नहीं है, चाहे वह इंद्रियों के जगत से संबंधित हो, या रूप से, या निराकार से, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी, और अविभाजित तत्व।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1125] (ए) बेड़ियों के लिए अनुकूल?[9]

सह-नशे की अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो इंद्रियों, रूप या निराकार के जगत से संबंधित हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1126] (ख) बेड़ियों के लिए प्रतिकूल?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं और उन मार्गों के फल हैं, तथा अमिश्रित तत्व हैं।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1127] (क) बेड़ियों से संबंधित?
[1128] (ख) बेड़ियों से असंबद्ध?

धारा 1105, 1106 के तहत 'नशीले पदार्थों' से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों के समान उत्तर।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1129] (क) बेड़ियाँ और बेड़ियों के लिए अनुकूल दोनों?

[पृष्ठ 302] बेड़ियाँ स्वयं दोनों हैं

[1130] (ख) बेड़ियों के लिए अनुकूल लेकिन स्वयं बेड़ियाँ नहीं।

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त [दस] अवस्थाओं के अनुकूल हैं; अर्थात्, बंधनों को छोड़कर, सभी सह-नशाग्रस्त अवस्थाएँ, चाहे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों, चाहे वे इंद्रिय जगत, सजीव जगत या निराकार जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1131] (क) बेड़ियाँ और बेड़ियों से संबंधित दोनों?

कामुकता का बंधन, अज्ञान के बंधन के साथ मिलकर, और इसके विपरीत, दोनों का ही रूप है। इसी प्रकार, शेष आठ बंधनों में से कोई भी बंधन, अज्ञान के बंधन के साथ मिलकर, और इसके विपरीत, दोनों का ही रूप है।

[1132] (ख) बेड़ियों से जुड़ा हुआ है लेकिन बेड़ी नहीं है?

उपर्युक्त दस राज्यों से संबद्ध राज्य, बंधनों को छोड़कर; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1133] (क) बेड़ियों से असंबद्ध होते हुए भी उनके प्रति अनुकूल?

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त [दस] अवस्थाओं से विमुख हैं, अर्थात् अच्छी, बुरी और अनिर्धारित अवस्थाएँ जो सह-नशाजनक हैं, चाहे वे इंद्रियों के जगत से संबंधित हों, या रूप के जगत से, या निराकार के जगत से; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1134] (ख) बेड़ियों से असंबद्ध और उनके लिए अनुकूल नहीं?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं और मार्गों के फल; सभी भी एक अविभाजित तत्व बनाते हैं। [10]

[पृष्ठ 303] (अरहत्ता) मार्ग,
सट्टा राय, उलझन और मात्र नियम और अनुष्ठान के संक्रमण के बंधन, प्रथम (सोतपत्ति) मार्ग में,
चौथे मार्ग में नवीकृत अस्तित्व के जुनून का बंधन,
प्रथम मार्ग में ईर्ष्या और नीचता के बंधन,
चौथे मार्ग में अज्ञान का बंधन।

अतः बुद्धघोष के अनुसार, दूसरा मार्ग बंधनों को तोड़ने की प्रक्रिया में एक अंतरिम अवधि प्रतीत होता है।

निम्नलिखित तालिकाएँ दर्शाती हैं कि Dh. S. और इसके Cy. किस हद तक Childers, sv samyojanam (cf. D. i. 156) में उद्धृत अधिकारियों से सहमत हैं:

ध. एस, और असल. चाइल्डर्स।

दिट्ठि

विकिसिच्चा

सिलबबता-परमासो

प्रथम पथ द्वारा हटाया गया। सक्कया-दिट्ठि

विकिसिच्चा

सिलबबता-परमासो

इस्सा

मच्चरियाम दूसरे और तीसरे मार्ग द्वारा हटा दिया गया। kamarago

patigho

kamarago

patigho तीसरे मार्ग द्वारा हटाया गया।

mano

bhavarago

avijja

चौथे मार्ग द्वारा हटाया गया रूपरागो

अरूपरागो

मनो

उद्धाक्कम

अविज्जा

- फुटनोट:

1. सन्नोजननी का अर्थ है 'वे चीजें जो बांधती हैं, जो उस व्यक्ति को पुनर्जन्म के चक्र में जकड़ती हैं जिसके लिए वे मौजूद हैं'।

असल. 48.

यह सूची सुत्तों में अक्सर मिलने वाले और चाइल्डर्स में सूचीबद्ध प्रसिद्ध दासा सानिओजनानी से कुछ मामलों में भिन्न है।

एहिस डेविड्स, 'अमेरिकन लेक्चर्स', 141 और उसके बाद देखें।

इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि बुद्धघोष को उस पुरानी श्रेणी का ज्ञान था, क्योंकि उन्होंने पहली तीन श्रेणियों को क्रम से 'ऐसी अवस्थाएँ जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना चाहिए' के रूप में नामित किया था।

धारा 1002 इत्यादि।

हालाँकि, वे इन दोनों सूचियों पर कोई टिप्पणी नहीं करते। एम. आई. 360-363 में मन की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया गया है और उन्हें क्रमशः बंधन और बाधा के रूप में नामित किया गया है, लेकिन वे इन दोनों शीर्षकों द्वारा आमतौर पर समझी जाने वाली श्रेणियों से बिल्कुल भिन्न हैं। तुलना करें एम. आई. 432; ए. ii. 238; डिव. एस. 533, 553।

2. धारा 1097 से तुलना करें। एकमात्र विसंगति धारा 1114 में 'इंद्रियजन्य प्यास' (कमापिपासो) का लोप है, जो पीटीएस पाठ और के. दोनों में है।

3. पतिघ-सन्नोजनाम, सीएफ। §§ 413-421.

4. मन-साईइनोजनम् — या अभिमान।

हालांकि अन्य किसी भी दृष्टि से ऐसा नहीं है, लेकिन शब्द की व्युत्पत्ति अधिक सटीक है।

'लोली' hin 0 है। (तुलना करें §§ 269, इत्यादि, 1025.

'उदात्तता और अहंकार' उन्नति, उन्नमो हैं।

'झंडा फहराना' बस 'धजो' है, यह रूपक किसी व्यक्ति या उसकी संपत्ति पर झंडा फहराने से व्यक्त होने वाले दिखावे को दर्शाता है, लेकिन यह हमारे 'तुरही की गूंज' वाले रूपक से बेहतर मेल खाता है।

'अजम्पशन' को संपग्गहो कहते हैं। साइप्रस (पृष्ठ 372) में आगे उक्खिपनत्थेना चित्तम संपग्गनहति ति लिखा है, जिसका अर्थ है मन को उछालना (अहंकार करना)। चाइल्डर्स द्वारा उद्धृत सिसम उक्खिपित्वा और अहंकार आदि के लिए हिब्रू अलंकारों की तुलना करें - सिर, सींग, एड़ी या स्वयं को ऊँचा उठाना; साथ ही पग्गहो, धारा 56 भी देखें।

'स्वयं का प्रचार करने की हृदय की इच्छा' है केतुकम्यता चित्तस्स। पाठ में प्रयुक्त विराम चिह्नों को बदलकर ही मैं इस वाक्य का अर्थ समझ सकता हूँ।

इस प्रकार: केतु वुक्काति बहुसु धजेसु अक्गुगतधाजो। मनो पि पुनप्पुना उप्पज्जमानो अपारपरे उपादया एकुग्गात्थेना केतुम वियाति केतु। केतुम इच्छाति ति केतुकाम्यतस्सा भावो केतुकाम्यता। स पना चित्तस्स, न अत्तानो, तेन वुट्टम: - केतुकाम्यता चित्तस्स ति। 'कई झंडों के ऊपर फहराए गए झंडे को केतु (चिह्न, या मानक) कहा जाता है; सीएफ कामायण i. 19, 16, बोथल द्वारा उद्धृत। और दोनों)। केतु से अभिप्राय उस दंभ से है जो बार-बार उठने पर ऊंचे स्थान पर स्थापित किसी चीज के अर्थ में एक संकेत की तरह होता है। केतु-इच्छा की स्थिति, यानी आत्म- की इच्छा, केतुकाम्यता है।

लेकिन इसका तात्पर्य मन की अवस्था से है, न कि किसी स्व-सत्ता से, इसलिए यह वाक्यांश 'स्व-प्रचार के लिए मन [या हृदय] की इच्छा' है।

5. दूसरे शब्दों में, पड़ोसी की सफलता पर असंतोष और बड़बड़ाहट, और दुर्भाग्य आने पर आत्मसंतुष्टि (शाडेनफ्रायड)। असल. 373. तुलना करें. पीपी, पृष्ठ 19.

6. बुद्धघोष उदारता की कमी के वास्तविक उदाहरणों को इसकी कमी से अलग करने में काफी मेहनत करते हैं। उदाहरण के लिए, यह मच्छरिया है जब कोई भिक्षु, आवास का उपयोग करते हुए, दूसरे को उसमें हिस्सा देने से मना करता है, या जब वह अपने संरक्षकों और

रिश्तेदारों के साथ दूसरे के मेलजोल से, या अपनी भक्ति के बदले आम लोगों से उपहार लेने से, या शारीरिक या नैतिक आकर्षण के लिए ख्याति प्राप्त करने से, या सिद्धांत के शाब्दिक या भाव में निपुणता प्राप्त करने से मना करता है।

दूसरी ओर, झगड़ालू व्यक्तियों आदि के अपने आवास पर आने की निंदा करना, शांति भंग करने वालों को अपने सामाजिक दायरे में शामिल करना, या गुणी लोगों के बजाय स्वार्थी और कंजूस भाइयों को उपहार देना अनुचित नहीं है। न ही किसी जिज्ञासु को शिक्षा देने से इनकार करना हर मामले में अनुदारता है। संयम बरतना सिद्धांत या जिज्ञासु के प्रति सम्मान के कारण हो सकता है।

बाद वाला व्यक्ति दी गई शिक्षा को विकृत कर सकता है, या शिक्षा उसे परेशान कर सकती है। फिर भी, यदि प्रश्नकर्ता 'कमजोर भाई' नहीं है, बल्कि 'हमारे उद्देश्य' के प्रति शत्रुतापूर्ण साबित होने की संभावना रखता है, तो शिक्षा को रोके रखना सैद्धांतिक अनुदारता का कार्य है (amhakam samayam bhinditum samattho)।

इसके बाद पौराणिक कथाओं से संबंधित एक अनुच्छेद आता है जिसमें उन लोगों के अप्रिय पुनर्जन्मों का वर्णन है जो इन पांच प्रकार की नीचता में से किसी एक के संबंध में गलती करते हैं। असल. 374, 375.

7. वेविचम कदरियाम। इन शब्दों को (असल. 375, 376) क्रमशः नीचता की कोमल (मुदु) और कठोर (थद्धा) किस्मों के रूप में वर्णित किया गया है (चाइल्डर्स, एसवी थद्धो देखें)। हम इन्हें नकारात्मक और सकारात्मक रूप से असामाजिक कह सकते हैं।

क्योंकि पहला वाला वह भाव है जो अपने सभी लाभों पर फैलते हुए कहता है, 'यह मेरा है, किसी और का नहीं!'

(धारा 1059)।

बाद वाला (अनारियो) तो दूसरों को दान देने से भी रोकता था।

8. कटुकन्चुकता अगगाहितत्तम चित्तस्स। पहले शब्द के उच्चारण को लेकर संदेह है। के. ने इसे कटकन्चुकता और बुद्धघोष ने कटुकन्चुकता लिखा है। इस शब्द पर मॉरिस, जेपीटीएस, 1887, पृष्ठ 161 में चर्चा की गई है। बुद्धघोष की टिप्पणी इस प्रकार है (असल. 376): 'कटुकन्चुको का अर्थ है कि किसी भिखारी को देखकर, अपने कंजूस स्वभाव के कारण, हृदय संकुचित या झुक जाता है (अंचति—? √अन्ह, या अंक) और सिकुड़ जाता है।' फिर, एक वैकल्पिक व्याख्या देते हुए, वे अपनी विशिष्ट व्युत्पत्ति का सहारा लेते हैं, कटुकन्चुकता को कटच्चुगाहो—चम्मच से मदद—से व्युत्पन्न करते हैं। जब आपका चावल का बर्तन पूरी तरह भरा हो, तो आप केवल चम्मच के सिरे से थोड़ी-बहुत मदद ही ले सकते हैं। और जैसे कंजूस का दिल सिकुड़ता है, वैसे ही उसका शरीर भी 'अपने आप पर वापस झुक जाता है, अपने आप पर वापस फेंक दिया जाता है, उसे शांति नहीं मिलती' (वह मिल से उद्धृत करता है, पृष्ठ 297)।

इसी प्रकार, aggahitattam cittassa का अर्थ है हृदय को रोके रखना, या उसे पीछे रखना, दूसरों को दान और सेवा के माध्यम से उसके विस्तार को रोकना।

9. सन्नोजनीय। इसलिए पाठ और के. साई. सन्नोजन्य पढ़ता है। लेकिन गंथनीय, ओघनीय, योगनीय, अस्ल. 49 देखें। साई. इस शब्द की व्याख्या करता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है बंधन-जैसा, कि यह बंधनों को विकसित करके उन्हें लाभ पहुँचाता है, एक बार जब उनकी शुरुआत हो जाती है। अस्ल. 48।

10. बंधनों के विषय को छोड़ते हुए, साइ. (पृष्ठ 376, 377) घोषणा करता है कि तीसरे (अन अ गार्नी) मार्ग पर प्रगति के दौरान कामुकता और घृणा के बंधन टूट जाते हैं, जबकि चौथे मार्ग में अहंकार का बंधन टूट जाता है। चौथे मार्ग के कार्य पर, ध. एस., § 364 की तुलना करें, जो दाईं ओर की तालिका से सहमत है। डॉ. ओल्डेनबर्ग की 'बुद्ध' के पहले संस्करण (पृष्ठ 452) में इस संबंध में विसंगतियों की ओर ध्यान दिलाया गया था।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 6

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अध्याय VI - संबंधों का समूह
गंथा-गोच्चकम
[1]

[पृष्ठ 304] [1135] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो बंधन हैं? चार बंधन,
अर्थात्,
लोभ का शारीरिक बंधन,
द्वेष का शारीरिक बंधन,
मात्र नियम और अनुष्ठान के संक्रमण का शारीरिक बंधन, और
हठधर्मिता की प्रवृत्ति का शारीरिक बंधन। इस संदर्भ में,

[1136] लोभ का शारीरिक बंधन क्या है (अबिज्जा कायगन्थो)?

'वासना' के लिए उत्तर दें, § 1059.[2]

[1137] दुर्भावना का शारीरिक बंधन क्या है (व्यापादो कायगन्थो)?

'घृणा' के लिए उत्तर दें, धारा 1060।

[1138] मात्र नियम और अनुष्ठान के संक्रमण का शारीरिक बंधन क्या है?

धारा 1005 और धारा 1119 के अनुसार तथाकथित बंधन के लिए उत्तर दें।

[पृष्ठ 305] [1139] हठधर्मिता की प्रवृत्ति का शारीरिक बंधन क्या है?[3] "संसार शाश्वत है" - यह सत्य है, बाकी सब असत्य है!
"संसार शाश्वत नहीं है" - यह सत्य है, बाकी सब असत्य है!
"संसार परिमित है... अनंत है" - यह सत्य है, बाकी सब असत्य है!
"जीवित आत्मा शरीर है... शरीर से भिन्न है" - यह सत्य है, बाकी सब असत्य है!

"जिसने सत्य को प्राप्त किया है वह मृत्यु के बाद विद्यमान रहता है... मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहता... मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहता है और नहीं भी रहता... मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहता है और न ही नहीं रहता" - यह सत्य है, बाकी सब असत्य है!' — इस तरह की राय,
राय के इस जाल में फँसना,
राय का यह जंगल,
राय का यह वीरान इलाका,
राय का कठपुतली शो,
राय
की यह खींचतान, राय की यह बेड़ी,
इसकी पकड़ और दृढ़ता,
इसकी ओर झुकाव,
इससे संक्रमित होना,
यह टेढ़ा रास्ता,
गलत राह
,
यह 'पार करने की जगह',
पकड़ की यह अस्थिरता

इसे हठधर्मिता की प्रवृत्ति का शारीरिक बंधन कहा जाता है।

और, केवल नियम और अनुष्ठान के संक्रमण के शारीरिक बंधन को छोड़कर, सभी गलत विचार हठधर्मिता की प्रवृत्ति के शारीरिक बंधन के अंतर्गत आते हैं।

ये वे राज्य हैं जिनके बीच टाई है।

[1140] वे कौन से राज्य हैं जो टाई नहीं हैं?

प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो पूर्वोक्त [चार] अवस्थाओं में शामिल नहीं है, चाहे वह इंद्रियों के जगत से संबंधित हो या रूप के जगत से, या निराकार से, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी, और अविभाजित तत्व।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1141] (ए) बंधे होने की प्रवृत्ति?[4]

इंद्रियों, रूप और निराकार जगत से संबंधित अच्छी, बुरी और अनिश्चित अवस्थाएँ, जो सह-विषाक्त हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[पृष्ठ 306] [1142] (ख) बंधने की प्रवृत्ति नहीं रखते?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं और उन मार्गों के फल हैं, तथा अमिश्रित तत्व हैं।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1143] (क) संबंधों से संबंधित?

उपर्युक्त चार राज्यों से संबंधित राज्य; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

[1144] (ख) संबंधों से विच्छेदित?

वे अवस्थाएँ जो उन [चार उपर्युक्त] अवस्थाओं से असंबद्ध हैं; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी भी एक अमिश्रित तत्व बनाते हैं।[5]

वे कौन से राज्य हैं जो

[1145] (क) क्या वे स्वयं ही बंधन हैं और बंधने की प्रवृत्ति रखते हैं?

ये संबंध स्वयं दोनों ही हैं।

[1146] (ख) बंधने की प्रवृत्ति रखते हैं, लेकिन बंधन नहीं हैं?

वे अवस्थाएँ जो उन [चारों उपर्युक्त] अवस्थाओं से बंधी होने की प्रवृत्ति रखती हैं, अर्थात् प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो बाद वाली अवस्थाओं में शामिल नहीं है, चाहे वह इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हो; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1147] (क) स्वयं संबंध, और संबंधों से जुड़े हुए?

मात्र नियम और अनुष्ठान के संक्रमण का शारीरिक बंधन, लोभ के शारीरिक बंधन के साथ, और इसके विपरीत, दोनों है। हठधर्मिता की प्रवृत्ति का शारीरिक बंधन, लोभ के शारीरिक बंधन के साथ, और इसके विपरीत, दोनों है।[6]

[1148] (ख) संबंधों से संबंधित है लेकिन संबंध नहीं है?

[पृष्ठ 307] वे राज्य जो उपर्युक्त चार राज्यों (टाई) से संबद्ध हैं, स्वयं बाद वाले को छोड़कर; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1149] (क) क्या वे संबंधों से अलग हैं, लेकिन बंधने की प्रवृत्ति रखते हैं?

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त अवस्थाओं से असंबद्ध हैं, अर्थात् इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित अच्छी, बुरी और अनिश्चित अवस्थाएँ, जो सह-विषाक्त हैं; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1150] (ग) क्या वे संबंधों से अलग हैं और उनसे जुड़ने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं और उन मार्गों के फल हैं, तथा अमिश्रित तत्व हैं।

- फुटनोट:
1. गंथो को उस रूप में परिभाषित किया गया है जो किसी व्यक्ति को पुनर्जन्म के चक्र में बांधता है। और कायगंथो (शरीर-बंधन) शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह बंधन शरीर के माध्यम से होता है—अर्थात् गर्भाधान और पुनर्जन्म में प्राप्त होता है। अस्लि. 49, 377. गंथाओं की गणना इस उत्तर में श्लोक 4, 59 में की गई है, और उस खंड में अक्सर इनका सामूहिक रूप से, कभी-कभी गंधों के रूप में उल्लेख किया गया है। अ. (ii, 24) में मुझे केवल सामान्य संकेत 'सब्बा-गंथा-पामोकानो' मिलता है।

2. पृष्ठ 293, नोट 1 भी देखें।

3. इस प्रकार की आध्यात्मिक बाधा पर एकमात्र टिप्पणी यह है कि यह उन लोगों का दृष्टिकोण है जिन्होंने सर्वज्ञ के सिद्धांतों को अस्वीकार कर दिया है। असल. 377.

4.गंठनिया. अरम्मनकारणवसेन गन्थेहि गन्थितब्बा ति गन्थनिया। असल. 49.

5.सब्बन च रूपम असन्खता च धातु को पाठ में छोड़ दिया गया है, लेकिन यह समान अंशों (§§ 1124, 1167) में होता है और के में दिया गया है।

6. मुझे यह समझ में नहीं आता कि इन संयोजनों से दुर्भावना (व्यापादो) का बंधन क्यों हटा दिया गया है, न तो पाठ में और न ही के. बुद्धघोष ने इस पर कोई टिप्पणी की है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 7
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अध्याय VII - बाढ़ों का समूह
ओघा-गोच्चकम
[पृष्ठ 308] [1151] बाढ़ से प्रभावित राज्य कौन-कौन से हैं?

... [बेड़ियों के समूह की तरह जारी रखें।][1]
- फुटनोट:
1. इस अध्याय और अगले अध्याय में दिए गए समूह को पाठ और के. दोनों में ही पूर्णतः पढ़ा हुआ माना जाना चाहिए। विषयसूची से यह स्पष्ट है कि इसमें भी वही विधि अपनाई गई है जो बंधन और बेड़ियों के समूहों में अपनाई गई है। एस. वी., पृष्ठ 59 में बाढ़ या बंधन के अंतर्गत शामिल 'अवस्थाओं' की संख्या और प्रकार देखे जा सकते हैं, और दोनों समूहों की विषयवस्तु चारों आसवों के समान है।
ये हैं
कामवासना की बाढ़ या बंधन,

नवीकृत अस्तित्व (भाव),
अनुमानित राय (दित्थी) और
अज्ञान (अविज्जा)।
अत्थसालिनी केवल इतना ही कहती हैं कि बाढ़ को यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह जिसके लिए विद्यमान होती है उसे संसार में डुबो देती है, जबकि बंधन, बंधनों की तरह, उसे चक्र में जकड़ लेते हैं (पृष्ठ 49)। साथ ही, यह भी कि विशेषण, योगनिया और योगनिया, जो गंथनिया के समान हैं, क्रमशः बाढ़ में समा जाने वाली और बंधनों में जकड़ जाने वाली वस्तु को दर्शाते हैं।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 8

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
- भाग 1

अध्याय VIII - बंधनों का समूह
योग-गोच्चकम
[पृष्ठ 309] [1151ए] कौन से राज्य बांड हैं?

... [जंजीरों के समूह की तरह जारी रखें]।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 9

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
- भाग 1

अध्याय IX - बाधाओं का समूह
निवारण-गोच्चकम
[पृष्ठ 310] [1152] कौन सी अवस्थाएँ बाधाएँ हैं? छह बाधाएँ,
अर्थात्,
कामुक इच्छा की बाधा,
द्वेष की बाधा,
सुस्ती और आलस्य की बाधा,
उत्तेजना और चिंता की बाधा,
उलझन की बाधा,
अज्ञान की बाधा।[1] इस संदर्भ में

[1153] कामुक इच्छा की बाधा क्या है?

'इंद्रिय सुख के मादक पदार्थ' के लिए उत्तर दें, धारा 1097.[2]

[1154] दुर्भावना की बाधा क्या है?

धारा 1137 के अनुसार 'दुर्भावना का बंधन' के लिए उत्तर दें।

[1155] जड़ता और सुस्ती की बाधा क्या है?

सबसे पहले, स्थिरता और सुस्ती के बीच अंतर करें।[3]

[पृष्ठ 311] इस संदर्भ में,

[1156] दृढ़ता क्या है? वह जो अरुचि है,[4] बुद्धि की अविवेकी[5];
चिपकना और सामंजस्य स्थापित करना;
चिपके रहना, जकड़ना, चिपचिपाहट;
दृढ़ता, अर्थात् बुद्धि की कठोरता, दृढ़ता[6] — इसे दृढ़ता कहा जाता है।

[1157] सुस्ती क्या है?[7] वह जो इंद्रियों की अरुचि और बेकाबूपन है, एक आवरण, आवरण,[8] भीतर अवरोध[9];
सुस्ती जो [पृष्ठ 312] नींद, उनींदापन है;
नींद,[10] ऊँघना, तंद्रा — इसे सुस्ती कहा जाता है।

अब यह दृढ़ता है और यह सुस्ती है जिसे 'दृढ़ता और सुस्ती की बाधा' कहा जाता है।[11]

[1159] उत्तेजना और चिंता की बाधा क्या है?

सबसे पहले 'उत्साह' और 'चिंता' के बीच अंतर स्पष्ट करें।

इस संदर्भ में,

[1160] उत्तेजना क्या है?[12] मन की वह उत्तेजना जो बेचैनी, हृदय की व्याकुलता, मन की उथल-पुथल है—इसे उत्तेजना कहते हैं।
[1161] चिंता क्या है?[13]

[पृष्ठ 313] किसी गैरकानूनी चीज़ में वैध की चेतना;
वैध चीज़ में गैरकानूनी की चेतना;
नैतिक चीज़ में अनैतिक की चेतना;
अनैतिक चीज़ में नैतिक की चेतना[14] — इस प्रकार की सभी चिंता,
बेचैनी,
अति सावधानी,
अंतरात्मा का पश्चाताप,
मानसिक बलिदान[15]

— इसी को चिंता कहते हैं।

अब यही उत्साह है और यही चिंता है, जिसे 'उत्साह और चिंता की बाधा' कहा जाता है।

[1162] अज्ञानता की बाधा क्या है?

'सुस्ती' के लिए उत्तर दें, धारा 1061।

[1163] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जो बाधाएँ नहीं हैं?

प्रत्येक अवस्था, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, जो पूर्वोक्त [छह] अवस्थाओं में शामिल नहीं है, चाहे वह इंद्रियों, रूप, या निराकार के जगत से संबंधित हो, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी, और अविभाजित तत्व।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1164] (ए) बाधाओं के लिए अनुकूल?[16]

[पृष्ठ 314] सह-नशा अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे इंद्रियों, रूपों या निराकारों के जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1165] (ख) बाधाओं के लिए प्रतिकूल?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं और उन मार्गों के फल हैं, तथा अमिश्रित तत्व हैं।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1166] (क) बाधाओं से संबंधित?
[1167] (ख) बाधाओं से असंबद्ध?

मादक पदार्थों के संबंध में संबंधित प्रश्नों के उत्तरों के समान, धारा 1105, 1106।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1168] (क) बाधाएँ स्वयं और बाधाओं के लिए अनुकूल कारक?

ये बाधाएँ स्वयं दोनों ही हैं।

[1169] (ख) बाधाओं के लिए अनुकूल, लेकिन स्वयं बाधाएँ नहीं?

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त बाधाओं के लिए अनुकूल हैं; अर्थात्, बाधाओं को छोड़कर, सभी सह-विषाक्त अवस्थाएँ, चाहे वे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों, चाहे वे इंद्रिय जगत से संबंधित हों, सजीव जगत से संबंधित हों या निराकार जगत से; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1170] (क) क्या वे स्वयं बाधाएँ हैं और बाधाओं से जुड़े हैं?

निम्नलिखित जोड़े स्वयं भी बाधाएँ हैं और बाधाओं से संबंधित भी हैं:

अज्ञानता के साथ कामुक इच्छा, और इसके विपरीत।
अज्ञानता के साथ दुर्भावना, और इसके विपरीत।

स्थिरता और सुस्ती,
उत्तेजना,
चिंता,
उलझन, अज्ञानता के साथ क्रमिक रूप से, और इसके विपरीत भी।
[पृष्ठ 315] कामुक इच्छा,
द्वेष,
जड़ता और सुस्ती,
उत्तेजना,
उत्तेजना,
उलझन अज्ञानता के साथ क्रमिक रूप से, और इसके विपरीत भी।

[1171] (ख) बाधाओं से संबंधित हैं, परन्तु स्वयं बाधाएँ नहीं हैं?

वे राज्य जो उपर्युक्त छह राज्यों से संबद्ध हैं, उनमें से वे स्वयं अपवाद हैं; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

वे कौन से राज्य हैं जो

[1172] (क) बाधाओं से असंबद्ध, परन्तु उनके लिए अनुकूल?

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त [छह] अवस्थाओं से असंबद्ध हैं, अर्थात् सह-नशे वाली अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वे इंद्रिय, रूप या निराकार के जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1173] (ख) बाधाओं से असंबद्ध और उनके लिए प्रतिकूल?

वे मार्ग जो अशाब्दिक हैं, और मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।[17]

- फुटनोट:
1. सुत्त पिटक में, अवरोधों को पाँच श्रेणियों में रखा गया है, जिनमें अज्ञान (अविज्जा) को शामिल नहीं किया गया है। द्वैत पिटक के विवरण के लिए देखें: 1:71-74, और देखें: द्वैत पिटक 246; मृ. पिटक 60, 144, 181, 269, 294, आदि; अ. 3:63; शृंखला: 60, 94-98। बुद्धघोष ने इस विसंगति पर ध्यान नहीं दिया है। § 1112, आदि भी देखें। अवरोधों को ऐसी अवस्थाओं के रूप में समझा जाना चाहिए जो विचार को दबाती, घेरती या अवरुद्ध करती हैं। निवरणीय अवस्थाओं को उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जो सानिओजनीय अवस्थाएँ हैं। अस्लि. 49.

2. 'इंद्रियजन्य प्यास' को फिर से छोड़ दिया गया है, जैसा कि संबंधित बेड़ी, § 1114 के विवरण में है।

3. यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ एक ओर ग्रंथ थिनम (स्थिरता) को चित्त-जटिलता की एक रोगग्रस्त अवस्था और मिद्धम को कायो की एक रोगग्रस्त अवस्था कहता है, वहीं बुद्धघोष ने दीघा निकाय पर अपने प्रवचन (सुम. 211) में थिनम को चित्त-गेलाइनाम (मन की बीमारी या विकार) और मिद्धम को चेतसिकगेलानाम कहा है। हालाँकि, धम्म संगानी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखने पर यह स्पष्ट असंगति दूर हो जाती है।

बुद्धघोष हमें याद दिलाते हैं कि कायो से तात्पर्य 'तीन स्कंधों' से है, जिनमें भावना, बोध और संश्लेषण शामिल हैं, अर्थात् वे तीन स्कंध जिनके माध्यम से हमें वस्तुनिष्ठ रूप से बोधित शारीरिक अवस्थाओं का व्यक्तिपरक अनुभव होता है। और चेतसिको इस अर्थ में लिए गए कायो का संगत विशेषण है (§ 1022)।

अतः दृढ़ता विन्नाना-स्कंध तक ही सीमित है, जो कि (लगभग) प्रतिनिधि बौद्धिकता है, जबकि सुस्ती मन की उसकी प्रतिनिधि और भावनात्मक पक्ष पर एक संगत विकार है।

4.अकल्याता, गिलनाभवो के समतुल्य, अस. 377, जहाँ महा विभंग, i. 62 उद्धृत है।

5. धारा 47 देखें।

6. '(निष्क्रिय) मन को किसी भी अपेक्षित मनोवृत्ति या व्यवहार में बनाए नहीं रखा जा सकता। यह पेड़ से लटके हुए चमगादड़ की तरह, या डंडी से चिपके गुड़ की तरह, या फैलाने के लिए बहुत सख्त मक्खन के टुकड़े की तरह निष्क्रिय होता है।'

(असल., वही)।

'संलग्न' (लिनम) का भावार्थ 'अविप्परिकतया पतिकुतितम' है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, बिना विस्तार के पीछे की ओर मुड़ा हुआ, जहाँ टीकाकार द्वारा परिकल्पित यह धारणा कंजूसी या कंजूसी के समान है। देखें § 1122, n. 2.

7. मिद्धम, जो साइप्रस में मेधाती (√मेड, 'मोटा होना') से लिया गया है; हमारे 'सुस्ती' में एक समान धारणा है, cf. τέρπειν, तृप्त होना, और √टार्प।

8. ओनाहो, परियोनाहो। मिल. 300; डी. i. 246 देखें। बाद वाले ग्रंथ में, 'अ' संक्षिप्त है। साइ. (असल. 378) में उपमा 'इंद्रियों (कयो) को बादल की तरह आकाश में घेर लेना' है। सुम. i. 135 में, इन दोनों शब्दों में से दूसरे का प्रयोग ढोल को 'ढकने' के लिए किया गया है।

9. अंतो-समोरोध। धर्मग्रंथ समझाता है कि जिस प्रकार मनुष्य किसी घिरे हुए शहर से बाहर नहीं निकल सकते, उसी प्रकार आलस्य से अवरुद्ध धम्म भी विस्तार या प्रसार द्वारा बाहर नहीं निकल सकता।

10. सोप्पम की इस पुनरावृत्ति पर कोई टिप्पणी नहीं है।

11. टीकाकार इस बाधा पर अपनी सामान्य टिप्पणियों में यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि खिनसावो, या अरहत के लिए, आवधिक सुस्ती या विश्राम से बुरे कर्म उत्पन्न नहीं होते। उदाहरण के लिए, बुद्ध ने कुछ ऋतुओं में भोजन के बाद झपकी लेने की अनुमति दी थी (देखें एम. i. 249), क्योंकि यह स्वयं मन को भ्रमित नहीं करता। यद्यपि, अप्रशिक्षित व्यक्ति के लिए यह बाधा इतनी प्रबल है कि अरहत मार्ग प्राप्त करने तक इसका प्रभाव समाप्त नहीं होता। अरहत अपने दुर्बल शरीर (शाब्दिक रूप से, अपने नाखून-कायो) को विश्राम देना चाहता है, परन्तु उसके लिए यह उतना ही निरर्थक कार्य है जितना रात में पत्तों और फूलों को समेटना। सुस्ती पर विजय पाने के लिए देखें ए. iv. 86।

12. धारा 429 देखें।

13. अपने मूल अर्थ में कुक्कुच्चम का अर्थ है बेचैनी, हाथों और पैरों की खराब हरकत। जाट. i. 119; ii. 142; और सुम. i. 1, 2 देखें। अतः इसका अर्थ है मानसिक बेचैनी, संशय की चिंता (शाब्दिक अर्थ, 'किसी के जूते में चुभने वाला छोटा नुकीला पत्थर'। स्केट का अंग्रेजी शब्दकोश देखें), अति संवेदनशील, अति संशयी अंतरात्मा। विनय में दिए गए संघ के नियमों के पालन के संबंध में कुक्कुच्चम के अक्सर देखे जाने वाले मामलों में — 'तस्स कुक्कुच्चम अहोसी' — या कुक्कुच्चयन्तो — संबंधित व्यक्ति पर कोई दोष नहीं लगता। कानून के अक्षरशः पालन के प्रति कमजोर अंतरात्मा की चिंता में कमजोरी थी; दूसरी ओर, गुरु के आदेशों के प्रति निष्ठा थी।

महान सारिपुत्त भी ऐसी शंकाओं से परे नहीं थे, जब विश्रामगृह में बीमार पड़ने पर उन्होंने 31वें पचित्ति नियम (विन. 4. 70) के अनुसार भोजन करने से इनकार कर दिया था। लेकिन बुद्धघोष इसे प्रशंसनीय शंका का उदाहरण मानते हैं, जिसे 'विनयकुक्कुच्चम्' के रूप में उस तीव्र पीड़ा (अनुतपो) से भिन्न माना जाना चाहिए जो किसी पाप के बोध से उत्पन्न होती है, एक ऐसी भावना जो अरहत के लिए संभव नहीं है। असल. 384. नीचे देखें, धारा 1304।

14. यहाँ वैध (कप्पियम) और अवैध शब्दों का तात्पर्य केवल पंथ के नियमित नियमों से है, जैसे भोजन के प्रकार, भोजन का समय आदि। नैतिक और अनैतिक (अवज्जम आदि) शब्दों से सद्‍गुण और दुर्गुण के कर्मों का तात्पर्य है। असल. 383.

15. पृष्ठ 117, नोट 7 देखें।

16.निवारणीय, सन्नोजनीय के समान समझा जाए। असल. 49.

17. प्रथम मार्ग में चिंता और उलझन का त्याग किया जाता है; तृतीय मार्ग में कामुक इच्छा और द्वेष का; चतुर्थ मार्ग में जड़ता, सुस्ती और अज्ञान का। असल. 384. (पांच) बाधाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति की अंतर्दृष्टि को, अ. i. 272 में, मनोसोच्यम कहा गया है।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 10

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण

- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अध्याय X - संक्रामक रोगों पर समूह
परमास-गोच्चाकम
[1]

[पृष्ठ 316] [1174] कौन-कौन सी अवस्थाएँ संक्रामक हैं?

अटकलबाजीपूर्ण राय का संक्रमण।

इस संदर्भ में,

[1175] 'सट्टा राय का संक्रमण' क्या है?

'अनुमानित राय के मादक पदार्थ' के बारे में उत्तर दें।

अर्थात्: 'यह मानना कि दुनिया शाश्वत है, या यह कि यह शाश्वत नहीं है', आदि (धारा 1099)।

[1176] वे कौन-से राज्य हैं जो संक्रामक नहीं हैं?

उत्तर दें जैसा कि 'राज्यों के मामले में जो बाधा नहीं हैं' (§ 1163)।[2]

[1177, 1178] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) संक्रमित? (ख) असंक्रमित?

बाधाओं से संबंधित संबंधित उत्तरों के अनुसार उत्तर (धारा 1164, 1165)।

[पृष्ठ 317] [1179, 1180] वे कौन से राज्य हैं जो

(a) क्या यह संक्रमण से संबंधित है? (b) क्या यह संक्रमण से असंबंधित है?

बाधाओं से संबंधित संबंधित उत्तरों के अनुसार उत्तर (धारा 1166, 1167)।

[1181, 1182] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) क्या वे स्वयं संक्रामक और संक्रमित हैं?

यह संक्रमण स्वयं ही दोनों है।

(ख) संक्रमित लेकिन संक्रामक नहीं?

वे अवस्थाएँ जो उपर्युक्त अवस्थाओं से संक्रमित हैं; अर्थात्, बाद वाली अवस्था को छोड़कर, सभी सह-विषाक्त अवस्थाएँ, चाहे वे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों, चाहे वे इंद्रिय जगत से संबंधित हों, सजीव जगत से संबंधित हों या निराकार जगत से; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

[1183, 1184] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) संक्रमण से असंबद्ध होते हुए भी संक्रमित? (ख) संक्रमण से असंबद्ध और असंक्रमित?

बाधाओं पर संबंधित अनुभागों (§§ 1172, 1173) में दिए गए उत्तरों के अनुसार।

- फुटनोट:
1. साइ. (पृष्ठ 49) के अनुसार, जो व्यक्ति धम्म के प्रति सही दृष्टिकोण से भटक जाता है, अर्थात्, जो उनकी अनित्यता आदि में विश्वास खो देता है, वह स्वयं को सट्टा विचारों के संक्रामक स्पर्श के लिए खुला छोड़ देता है।

2. समरूपता के लिए एक प्रकार के संक्रमण को हमेशा बहुवचन कहा जाता है, जैसे कि उपर्युक्त अवस्थाएँ (ते धम्म थपेत्व)। असल. 385.
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 11

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
   - भाग 1

अध्याय XI - युग्मों का महान मध्यवर्ती समुच्चय
महानताराडुकम
[1]

[पृष्ठ 318] [1185, 1186] वे कौन से राज्य हैं जिनमें

(क) विचार का एक सहवर्ती वस्तु?[2]

चारों स्कंध।

(ख) विचार का कोई सहवर्ती विषय नहीं?

सभी रूप,[3] और अमिश्रित तत्व।

[1187, 1188] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) बुद्धि का?[4]

इंद्रिय-अनुभूतियों पर लागू संज्ञान; विचारणीय तत्व और वैचारिक संज्ञान का तत्व।

(ख) बुद्धि का नहीं?

भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंध; ये सभी एक अविभाजित तत्व का रूप हैं।

[1189, 1190] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) इंद्रियों के जीवन में शामिल?[5]

[पृष्ठ 319] भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंध।

(ख) इंद्रियों के जीवन में शामिल नहीं?

बुद्धि और सभी रूप एवं अविभाजित तत्व।

[1191, 1192] वे कौन से राज्य हैं जो

(a) विचार से संबंधित?

भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंध।

(ख) विचार से विरक्त?

सभी रूप और अविभाजित तत्व। (विचार को स्वयं से संबद्ध या असंबद्ध के रूप में वर्णित नहीं किया जाना चाहिए।)[6]

[1193, 1194] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) विचार से जुड़ा हुआ?[7] (ख) विचार से अलग?

धारा 1191 और 1192 के अनुसार उत्तर दें, (विचार को स्वयं से जुड़ा हुआ या स्वयं से अलग नहीं बताया जाना चाहिए।)

[1195, 1196] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) विचार से उत्पन्न?[8]

भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंध; शारीरिक और स्वर संकेत; या कोई भी अन्य रूप जो विचार से उत्पन्न होता है, विचार के कारण होता है, विचार से उत्पन्न होता है, चाहे वह दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद के क्षेत्र में हो,[9] या मूर्त, अंतरिक्ष या तरलता के तत्व, रूप की हल्कापन, प्लास्टिसिटी या सुगमता, रूप का एकीकरण या निर्वाह, या शारीरिक पोषण।[पृष्ठ 320]

(ख) विचार से उत्पन्न नहीं हुआ?

विचार; साथ ही अन्य सभी प्रकार के रूप और अविभाजित तत्व।

[1197, 1198] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) विचार के साथ अस्तित्व में आना?[10]

भावना, बोध और संश्लेषण के स्कंध; शारीरिक और मौखिक संकेत।

(ख) क्या वे विचार के साथ अस्तित्व में नहीं आते?

विचार; साथ ही अन्य सभी प्रकार के रूप,[11] और अविभाजित तत्व।

[1199, 1200] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) विचार के अनुरूप?[12] (ख) विचार के अनुरूप नहीं?

उपरोक्त दोनों उत्तरों के समान ही उत्तर दें।

[1201, 1202] वे कौन से राज्य हैं जो

(ए) विचार से उत्पन्न एआईआईडी के साथ संयुक्त?[13]

भाव, बोध और संश्लेषण के स्कंध।

(ख) विचार से जुड़ा हुआ और उससे उत्पन्न नहीं है?[14]

स्वयं विचार; समस्त रूप और अविभाजित तत्व भी।

[पृष्ठ 321] [1203, 1204] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) क्या वे विचार से जुड़े हुए और उससे उत्पन्न होते हैं, और जो एक साथ अस्तित्व में आते हैं? (ख) क्या वे ऐसे नहीं हैं जो विचार से जुड़े हुए और उससे उत्पन्न होते हैं और जो विचार के साथ अस्तित्व में आते हैं?[15]

उत्तर वही हैं जो उपरोक्त दोनों उत्तरों में दिए गए हैं।

[1205, 1206] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) क्या यह विचार से जुड़ा हुआ है, उससे उत्पन्न हुआ है और उसके बाद उत्पन्न हुआ है? (ख) क्या यह विचार से जुड़ा हुआ नहीं है, उससे उत्पन्न नहीं हुआ है और उसके बाद उत्पन्न नहीं हुआ है?

उत्तर उपरोक्त दोनों उत्तरों के समान ही होंगे।

[1207, 1208] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) स्वयं का?

पांचों इंद्रियों और चिंतन के क्षेत्र।

(ख) बाह्य?

इंद्रियों और विचारों की पाँच वस्तुओं के क्षेत्र।[16]

[1209, 1210] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) व्युत्पन्न?

पांचों इंद्रियों के क्षेत्र... और शारीरिक पोषण।[17]

(ख) व्युत्पन्न नहीं है?

चार स्कंध, चार महान घटनाएँ और अविभाज्य तत्व।

[1211-1212] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) पकड़ने का मुद्दा?[18]

सह-नशे का प्रभाव अच्छी और बुरी दोनों अवस्थाओं पर पड़ता है, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, चारों स्कंध और कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले रूप पर।

[पृष्ठ 322] (ख) क्या यह समझने का मुद्दा नहीं है?

सह-नशे का प्रभाव, चाहे वह इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हो, अच्छी और बुरी अवस्थाओं का मिश्रण है; दूसरे शब्दों में, चारों स्कंध; साथ ही ऐसे क्रिया-विचार जो न तो अच्छे हैं, न बुरे और न ही कर्म के फल हैं; इसके अतिरिक्त, वे मार्ग जो अविभाजित हैं और मार्गों के फल हैं, और अमिश्रित तत्व हैं।

- फुटनोट:
1. इस पुस्तक के अध्याय III देखें। इस अध्याय में दिए गए उत्तरों पर CY कोई टिप्पणी नहीं करेगा।

2. सरम्मना.

3. पृष्ठ 169 देखें: 'विचार से रहित'। केवी 404 देखें।

4. चित्त। धारा 1022 देखें। 'अनुप्रयुक्त संज्ञान', आदि मूल शब्द चक्खुविन्नानम और शेष में है। जब निम्नलिखित युग्मों में 'अर्थ' शब्द का प्रयोग नहीं होता, तो मैंने लगभग समानार्थी शब्द 'विचार' का प्रयोग किया है।

5. सेतासिका. धारा 1022 देखें.

6. बौद्ध तर्कशास्त्र में यह परिष्करण सामान्यतः थापेत्व द्वारा शासित संक्षिप्त कोष्ठकों द्वारा व्यक्त किया जाता है, सिवाय इसके। उदाहरण के लिए, धारा 984 आदि देखें।

7. चित्त-संस्था। 'अर्थात, विचार के साथ निरंतरता, तत्काल निकटता की स्थिति में।'

असल. 49.

इसके विपरीत -विसंस्था = 'विचार के साथ निरंतरता, तत्काल निकटता की स्थिति में नहीं, यद्यपि उसके साथ एकता में आगे बढ़ रहा है'।

वही।

8.चित्त-समुत्थाना। सीएफ § 667.

9. पाठ में रसायतनम शब्द अनजाने में छूट गया है।

10.चित्त-सहभुनो.

11.अर्थात, सूचना देने के दो तरीकों को छोड़कर, जिन्हें 'रूप' माना जाता है। धारा 596 देखें।

12.Cittanuparivattina.

13. चित्त-संसत्थ-समुत्थाना। साई. इसे और निम्नलिखित दो युग्मों में पदों को द्वंद्व यौगिक के रूप में पढ़ता है।

14. पाठ में नकारात्मक शब्द का वितरण नहीं किया गया है, और 'अवस्थाओं' को योग्य बनाने वाले विशेषणों के समूह को संयुक्त रूप से लिया जाना चाहिए। यह उत्तर से सिद्ध होता है। देखें धारा 1196, 1198, साथ ही पृष्ठ 204, नोट 1।

सह-भूनो को सहा भवन्ति के रूप में जाना जाता है, भूत नहीं। असल. 49.

15. नोट 5, पृष्ठ 320 देखें।

16. सीएफ § 596.

17.धम्मयातनम.

18. एम.आई. 190 देखें।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 12
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 1

अध्याय XII - समझने पर समूह
उपादान-गोच्चकम
[पृष्ठ 323] [1213] वे कौन से राज्य हैं जिनमें पकड़ का गुण है?[1]
[पृष्ठ 324] चार आसक्तियाँ: —
इंद्रियों को पकड़ने के बाद,
अनुमानित राय के बाद लालच,
मात्र नियमों और रीति-रिवाजों के पीछे भागने की प्रवृत्ति,
आत्मा के सिद्धांत को पाने की लालसा।
इस संदर्भ में,
[1214] इंद्रियों के पीछे भागना क्या है? वह कामुक इच्छा,
कामुक जुनून,
कामुक आनंद,
कामुक लालसा,
कामुक विच्छेदन,
कामुक बुखार,

कामुक तल्लीनता,
कामुक लोभ, जो इंद्रियों के सुखों से उत्तेजित होता है।[2]
[1215] काल्पनिक मत के पीछे भागना क्या है? 'दान, बलिदान या भेंट जैसी कोई चीज नहीं है;[3]
अच्छे या बुरे कर्मों का न तो कोई फल है और न ही कोई परिणाम;
यह लोक या परलोक जैसी कोई चीज नहीं है;[4] माता-पिता जैसी कोई चीज नहीं है, न ही उनके बिना जन्म लेने वाले प्राणी;[5]
संसार में कोई संन्यासी या ब्राह्मण नहीं हैं जो सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गए हों, जिन्होंने शिखर प्राप्त कर लिया हो, जिन्होंने स्वयं ही इस लोक और परलोक दोनों को समझकर और अनुभव करके दूसरों को भी बताया हो'[6] — इस प्रकार की सारी अटकलें,
मतों में भटकना,
मतों का जंगल,
मतों का कठपुतली शो,
मतों की लड़ाई,
मतों का बंधन,
इसकी पकड़ और दृढ़ता,
इसकी ओर झुकाव,
इससे संक्रमित होना,
यह टापों वाला रास्ता,
गलत मार्ग,
गलतता,
यह 'पार करने का स्थान',
पकड़ की यह अस्थिरता[7]
— इसे ही अटकलबाजी पर आधारित राय के पीछे भागने की प्रवृत्ति कहा जाता है।
और मात्र नियम और अनुष्ठान तथा आत्मा-सिद्धांत के प्रति आसक्ति को छोड़कर, सभी गलत विचार काल्पनिक मत के प्रति आसक्ति में शामिल हैं।
[1216] मात्र नियम और अनुष्ठान के पीछे भागना क्या है?
'केवल नियम और अनुष्ठान के संक्रमण' के लिए उत्तर दें, धारा 1005.[8]
[1217] आत्मा के बाद पकड़ क्या है सिद्धांत?
एंसिवर 'व्यक्तित्व के सिद्धांत' के लिए, § 1003.
[1218] वे कौन-से राज्य हैं जिनमें पकड़ का गुण नहीं है?
अन्य सभी अवस्थाएँ, चाहे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों (उपरोक्त को छोड़कर), चाहे वे इंद्रियों के जगत से संबंधित हों, या रूप के जगत से, या निराकार से, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप और अविभाजित तत्व भी।
[1219] कौन-कौन सी अवस्थाएँ हैं जो पकड़ के लिए अनुकूल हैं?
सह-नशा अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित [पृष्ठ 326] चाहे वे इंद्रिय, रूप या निराकार की दुनिया से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।
[1220] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो ग्रास्पिंग के लिए अनुकूल नहीं हैं?
वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल; और अमिश्रित तत्व।
[1221-1224] वे कौन से राज्य हैं जो

(a) क्या यह लालसा से संबंधित है? (b) क्या यह लालसा से असंबद्ध है? (c) क्या यह लालसा से संबंधित है और लालसा के लिए सहायक भी है? (d) क्या यह लालसा के लिए सहायक है लेकिन लालसा नहीं है?
अन्य समूहों में संबंधित प्रश्नों के लिए दिए गए उत्तरों के बिल्कुल समान उत्तर, जैसे कि §§ 1125, 1141, 1164।
[1225-1228] वे कौन से राज्य हैं जो
(a) क्या यह पकड़ना और पकड़ना दोनों से संबंधित है?

अटकलों के बाद की समझ, इंद्रियों के बाद की समझ के साथ मिलकर, दोनों ही है, और इसके विपरीत भी।

इसी प्रकार, अन्य सभी टिवो ग्रैस्पिंग क्रियाएं उस बाद की भावना के साथ संयोजन में होती हैं, और इसके विपरीत भी।

(ख) क्या यह आसक्ति से संबंधित है, लेकिन आसक्ति नहीं है? (ग) क्या यह आसक्ति से असंबद्ध है, फिर भी इसके लिए अनुकूल है? (घ) क्या यह आसक्ति से असंबद्ध है, लेकिन इसके लिए अनुकूल नहीं है?

ऊपर निर्दिष्ट समूहों में उत्तरदाता, §§ 1125, 1141, 1164 इत्यादि[9]

- फुटनोट:

1. उपादान। बौद्ध नैतिकता में यह मूलभूत धारणा साइ. (पृष्ठ 450 और 385) में है, जिसे 'वे हिंसक रूप से लेते हैं, अर्थात् वे मजबूत पकड़ से पकड़ लेते हैं' (भूसम आदियन्ति... दलहगहम गन्हन्ति) शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है, उपसर्ग उप को अन्य शब्दों जैसे उपायसो और उपक्कुत्थो की तरह वर्धक अर्थ दिया गया है।

इससे पता चलता है कि, जहाँ तक बुद्धघोष द्वारा दिए गए पारंपरिक अर्थ की बात है, उनके समय के बौद्ध धर्म में यह शब्द 'आसक्ति' (जैसे, वॉरेन, 'बौद्ध धर्म अनुवाद में', पृष्ठ 189 आदि) या 'चिपकने' (हार्डी, 'मैनुअल', 394) की स्थिर अवस्था के बजाय 'पकड़ने' की गतिशील शक्ति को दर्शाता था। न ही उनकी टिप्पणी 'हैंग' या 'लेबेनस्ट्रीब' जैसे अनुवादों का समर्थन करती है (न्यूमैन, 'डाई ईडेन गोटामो बुद्धोस', पृष्ठ 104, 470)।

दूसरी ओर, फाउसबोल की 'सीजर' (एसएन इन एसबीई, एक्स., पृ. 138) और ओल्डेनबर्ग की 'एर्ग्रेफेन' ('बुद्ध', तीसरा संस्करण, 269) बुद्धघोष से सहमत हैं।

उपदानीयो शब्द का उपादन आम (समी. §§ 655, 881, 1219) से संबंध श्लोक 4:89 में सबसे स्पष्ट रूप से बताया गया है; वहाँ विशेष इंद्रियों को उपदानीय धम्म और उससे जुड़ी कामुक इच्छा को उपदान म कहा गया है। श्लोक 4:258 भी देखें। बुद्धघोष उपदानीय म पर कोई टिप्पणी नहीं करते हैं जब, जैसा कि § 1219 में है, इसे धम्म पर लागू किया जाता है; लेकिन जब यह रूपम...उपदानीयम (ध. श्लोक, §§ 655, 881) का प्रश्न होता है, तो वे इसे 'ऐसी अवस्थाएँ जो आसक्ति से बंधी होने के कारण आसक्ति के लिए अनुकूल (हित अ, शाब्दिक रूप से, अच्छी) होती हैं; दूसरे शब्दों में, ऐसी घटनाएँ जो आसक्ति के मानसिक विषयों की स्थितियाँ हैं' के रूप में परिभाषित करते हैं।

(उपादानस्सा अरम्मना-पक्काय-भूटानि)।

असल. 42.

इसी संदर्भ में, बुद्धघोष ने रूपम उपादिनम (ध. एस., § 653) को उन अवस्थाओं के रूप में परिभाषित किया है जो कर्मों के फल के रूप में प्राप्त, धारण की गई या ग्रहण की गई (गहित) हैं - जो लालसा के गुण वाले कर्मों द्वारा संचित की गई हैं। वही। किसी भी टीका में उपादानम की व्याख्या ईंधन के अर्थ में, अर्थात् पुनर्जन्म के आधार के रूप में नहीं की गई है; चारों उपादानों का सरल अर्थ है इंद्रियों (कामम उपादियाति), अटकलों आदि को पकड़ना।

2. धारा 1114 और धारा 1097 देखें; साथ ही धारा 1153 भी देखें।

3. साइ. इन निषेधों की व्याख्या केवल इस प्रकार करता है कि तीनों में से किसी में भी कोई प्रभावकारिता या फल नहीं है। असल. 385.

4. यहाँ निहित किसी भी गहन तत्वमीमांसा को अनदेखा करते हुए, साइ. इन निषेधों की व्याख्या इस प्रकार करता है कि ये निषेध किसी अन्य लोक के निवासी द्वारा इस लोक के संबंध में, या यहाँ नीचे स्थित किसी निवासी द्वारा किसी अन्य लोक के संबंध में रखे गए हैं। वही।

5. इस प्रकार जन्म लेने वाले प्राणियों के बारे में, साइ. आगे कहता है, वह मानता है कि कोई भी नहीं है; और न ही किसी के पूर्व जीवन का उसके बाद के वंश पर कोई प्रभाव होता है।

6. बुद्धघोष ने प्रचलित चिंतन के विशिष्ट रूपों के रूप में 'आत्मा (स्वयं) और संसार दोनों शाश्वत हैं' का उल्लेख किया है। इन्हें वे 'पुरिमदित्तिम उत्तरदित्तिम' कहते हैं, जो कि चाहे 'पूर्ववर्ती और पश्चातवर्ती विधर्म' हों, या 'पूर्वी और उत्तरी मत', या दोनों, समान रूप से

रोचक हैं। हालाँकि, ग्रंथ में अजित केसकंबली द्वारा प्रतिपादित विचारों को एक विशिष्ट प्रचलित चिंतन के रूप में चुना गया है। देखें डी. आई. 55 और एम. आई. 402।

7. सीएफ § 381.

8. ऊपर उल्लिखित 'मवेशी नैतिकता और प्रथाएँ' (§ 1005, n. 3) का उदाहरण Cy. Ibid. में फिर से दिया गया है।

9. प्रथम मार्ग प्रथम को छोड़कर सभी प्रकार के मोह का निवारण करता है, जिसका उन्मूलन तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि चारों मार्गों को पार न कर लिया जाए। अस्लि. 386. इसकी तुलना §§ 1173 n., 1134 n., और 1112 n. से करें, जहाँ हर मामले में 'इंद्रिय', 'इंद्रिय-भाव' और 'इंद्रिय-इच्छा' को तीसरे या अनागामी मार्ग में पराजित होते हुए बताया गया है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग1-अध्याय 13

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
- पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
- भाग 1

अध्याय XIII - भ्रष्टाचार पर समूह
किलेसा-गोच्चकम
[पृष्ठ 327] [1229] वे कौन से राज्य हैं जिनमें भ्रष्टाचार का गुण है?[1]

[पृष्ठ 328] भ्रष्टाचार के दस आधार, अर्थात्: कामवासना, उलझन,
घृणा, जड़ता,
सुस्ती, उत्तेजना,
अहंकार, असावधानी,
काल्पनिक राय, दोष की उपेक्षा। [1230-1237] इस संदर्भ में,

वासना क्या है?
. . . घृणा?
. . . सुस्ती?
. . . अहंकार?
. . . सट्टा राय?
. . . उलझन?
. . . जड़ता?
. . . उत्तेजना?[2]

उत्तर m §§ 1059-1061, 1116-1118, 1156, 1159 के अनुसार हैं।

[1238] असावधानी क्या है?

जब विवेकपूर्ण संशय होना चाहिए, तब विवेकपूर्ण संशय की कोई भावना नहीं; बुरे और दुष्ट अवस्थाओं को प्राप्त करने में विवेकपूर्ण संशय की कमी।[3]

[1239] दोष की उपेक्षा क्या है?

जहां अपराधबोध होना चाहिए वहां अपराधबोध का अभाव, बुरे और पापपूर्ण अवस्थाओं को प्राप्त करने पर अपराधबोध का अभाव।

ये वे राज्य हैं जिनमें भ्रष्टाचार व्याप्त है।

[1240] वे कौन से राज्य हैं जिनमें भ्रष्टाचार का गुण नहीं है?

अन्य सभी अवस्थाएँ (अर्थात, उपर्युक्त दस को छोड़कर सभी), अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चारों स्कंध, सभी रूप और अविभाजित तत्व हैं।

[1241, 1242] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) हानिकारक?

[पृष्ठ 329] सह-नशा अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार की दुनिया से संबंधित हों;[4] दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

(ख) हानिरहित?

वे मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1243, 1243a] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) भ्रष्ट?

बुरे कर्मों के तीन मूल, अर्थात् कामवासना, घृणा और सुस्ती, साथ ही उनसे जुड़े भ्रष्टाचार, उनसे संबंधित चार स्कंध और उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएं।

(ख) भ्रष्ट नहीं?

अच्छे और अनिश्चित अवस्थाएँ, चाहे वे इंद्रिय, रूप, या निराकार के जगत से संबंधित हों, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी, और अविभाजित तत्व।[5]

[1244-1247] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) भ्रष्टाचार से संबंधित?

(ख) भ्रष्टाचार से असंबंधित?

(ग) क्या दोनों भ्रष्ट और हानिकारक हैं?
(घ) क्या वे स्वयं भ्रष्ट नहीं हैं?

उत्तर, 'ग्रास्पिंग्स', §§ 1221-1224 में संबंधित युग्मों के अनुसार।

[1248, 1249] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) भ्रष्टाचार और भ्रष्ट दोनों?

स्वयं भ्रष्टाचार।

(ख) भ्रष्ट लेकिन स्वयं नहीं। भ्रष्टाचार?

वे राज्य जो उन दस राज्यों के कारण भ्रष्ट हो जाते हैं, वे दस राज्य स्वयं अपवाद स्वरूप हैं; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध।

[पृष्ठ 330] [1250-1253] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों प्रकार के भ्रष्टाचार? कामवासना,
घृणा,
अहंकार,
अटकलबाजी
,
उलझन,
जड़ता,
उत्तेजना,
असावधानी
और दोष की अवहेलना, ये सभी सुस्ती के साथ अलग-अलग रूप से और सुस्ती इनमें से प्रत्येक के साथ मिलकर।

कामुकता, उत्तेजना के साथ, और इसके विपरीत, और इसी तरह शेष आठ आधारों के लिए।
कामुकता, असावधानी के साथ, और इसके विपरीत, और इसी तरह शेष आठ के लिए।
कामुकता, दोष की उपेक्षा के साथ, और इसके विपरीत, और इसी तरह शेष आठ के लिए।[6]

(ख) भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं?[7] (ग) बुराइयों से असंबद्ध हैं लेकिन हानिकारक हैं?
(घ) बुराइयों से असंबद्ध और हानिरहित हैं?

इन तीन प्रश्नों के उत्तर पूर्व समूहों के समान ही हैं। §§ 1226-1228, 1171-1173, आदि देखें।[8]

- फुटनोट:

1. 'किलेसा' शब्द पर बौद्ध धर्मग्रंथ मौन हैं। यह सत्य है कि यह शब्द बौद्ध अनुयायी के लिए उतना ही निकट है जितना ईसाई के लिए 'पाप'। हालांकि, सामान्यतः बुद्धघोष सुकरात के विचारों पर चलते हुए परिचित शब्दों को बिना जांचे स्वीकार नहीं करते। इस मामले में उन्होंने अपना ध्यान व्युत्पन्न शब्दों तक ही सीमित रखा है।

वैसे, संयोगवश— 'अच्छा' के अर्थ पर चर्चा करते हुए (ऊपर, § 1; अस्लायथ 62)—वह आध्यात्मिक स्वास्थ्य को क्लेश रोग की अनुपस्थिति में निहित मानते हैं, जिससे यह पता चलता है कि क्लेश बुराई या नैतिक अच्छाई की अनुपस्थिति के समानार्थक था। व्युत्पन्न शब्दों में से केवल संकिलित्था को ही अशुद्धता या गंदगी का भाव व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया गया है (चाइल्डर्स, एसवी संकिलेसो देखें), खराब मक्खन को इसी नाम से पुकारा गया है (अस्लायथ 319)।

अन्यत्र इसका अर्थ 'संकिलेसो से युक्त' बताया गया है, जबकि संकिलेसा (ऊपर, §§ 993-995; अस्लि. 42) को बोथ्ल और रोथ (क्वालन, बेलास्टिगेन) में संक्लेका के वर्णन के साथ निकटता से मेल खाते हुए परिभाषित किया गया है: 'इसका अर्थ है कष्ट देना, पीड़ा देना', जबकि संबंधित विशेषण को 'लगातार स्वयं को अपने विचारों का विषय बनाकर संकिलेसा के योग्य होना... यह शब्द उन चीजों के लिए एक पर्याय है जो संकिलेसा की स्थितियाँ (या वस्तुएँ) हैं' के रूप में वर्णित किया गया है। हालाँकि, मेरा मानना है कि आधुनिक बौद्धों के लिए शब्दों का यह समूह लगभग भ्रष्टाचार या अपवित्रता का प्रतिनिधित्व करता है; और न ही मैं कोई ऐसा अंग्रेज़ी शब्द चुन पाया हूँ जो इन्हें इनके मूल अर्थ, अर्थात् 'पीड़ा' (नैतिक अस्वस्थता के कारण) के अनुरूप व्यक्त कर सके।

'आधार' या वत्थुनी ऐसी अवस्थाएँ हैं जिन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि उनमें विकृतियाँ (वसन्ति) तात्कालिक अवस्थाओं (अनंतरा-पच्चया) के रूप में निवास करती हैं। असल. 386.

2. उत्तर में, पाठ में vupasamo की जगह avupasamo होना चाहिए।

3. धारा 387, 388 देखें।

4. अपरियापन्ना को, बेशक, मुद्रित पाठ से हटा दिया जाना चाहिए।

5. यह खंड मुद्रित पाठ में, जाहिरा तौर पर अनजाने में, छूट गया है। मतिका देखें।

6. यह बहुत स्पष्ट नहीं है, और न ही साइ. द्वारा कोई स्पष्टीकरण दिया गया है, कि इस संदर्भ में दो कारकों के स्थिरांक के रूप में भ्रष्टाचार के केवल तीसरे, आठवें, नौवें और दसवें आधारों को ही क्यों चुना गया है।

7.उत्तर में तेहि धम्मेही के बाद ये धम्म आपूर्ति करें।

8. प्रथम मार्ग में अटकलबाजी और भ्रम पर विजय प्राप्त होती है, तृतीय मार्ग घृणा का निवारण करता है, परन्तु शेष सात मार्गों पर विजय प्राप्त करने के लिए चतुर्थ मार्ग आवश्यक है। असल. 387.

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
 - भाग 1

अध्याय XIV - युग्मों का संपूरक समुच्चय
पित्थिडुकम
[पृष्ठ 331] [1254] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जाना है?

तीन बंधन, अर्थात्: व्यक्तिवाद का सिद्धांत, उलझन और मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण।

[1255-1257]

धारा 1003-1006 के समान।

[1258] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर नहीं किया जा सकता?

उपर्युक्त तीन अवस्थाओं को छोड़कर, सभी अवस्थाएँ, चाहे वे अच्छी हों, बुरी हों या अनिश्चित हों, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप और अविभाजित तत्व भी।

[1259, 1260] वे कौन से राज्य हैं जो

(a) to he put aivay hy farming?

शेष सभी कामवासना, घृणा और सुस्ती, साथ ही उनसे जुड़े हुए भ्रष्टाचार, उनसे संबंधित चारों स्कंध और उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएं।

(ख) खेती द्वारा हटाया नहीं जाना चाहिए?

उन राज्यों के लिए उत्तर दें जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर नहीं किया जाना है [§ 1258]।

[1261] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को अंतर्दृष्टि द्वारा दूर किया जा सकता है?

तीन बंधन, अर्थात्: व्यक्तित्व का सिद्धांत, उलझन और मात्र नियम और अनुष्ठान का संक्रमण।

[पृष्ठ 332] [1262-1264]

धारा 1003-1006 के समान।

[1265] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को अंतर्दृष्टि से दूर नहीं किया जा सकता?

उन 'अवस्थाओं के लिए उत्तर दें जिन्हें अंतर्दृष्टि द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है', धारा 1258।

[1266, 1267] वे कौन सी अवस्थाएँ हैं जिनके कारण हैं

(क) क्या इसे खेती द्वारा दूर किया जा सकता है?

शेष सभी कामवासना, घृणा और सुस्ती: ये वे कारण हैं जिन्हें साधना द्वारा दूर किया जाना है।[1] और उनसे जुड़े विकार, उनसे संबंधित चार स्कंध और उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएँ, वे अवस्थाएँ हैं जिनके कारणों को साधना द्वारा दूर किया जाना है।

(ख) खेती द्वारा हटाया नहीं जाना चाहिए?

एन्सिवर, 'उन राज्यों के लिए जिन्हें खेती द्वारा दूर नहीं किया जाना है', धारा 1260।

[1268-1271] वे कौन से राज्य हैं?

(क) 'जिसमें गर्भाधान कार्य करता है'?

जब चार स्कंध गर्भाधान से जुड़े होते हैं (बाद वाला शामिल नहीं है), [जो उत्पन्न होता है] ऐसी मिट्टी में जिसमें गर्भाधान कार्य करता है, या तो इंद्रिय या रूप के जगत में, या उस जीवन में जो अशाब्दिक है।[2]

(ख) 'गर्भधारण की प्रक्रिया से रहित'?

जब चारों स्कंध ऐसी भूमि में उत्पन्न होते हैं जो कल्पना से रहित हो, चाहे वह इंद्रियों, रूप या निराकार के जगत में हो, या उस जीवन में जो अविभाज्य है; तो स्वयं कल्पना भी, और समस्त रूप और अविभाजित तत्व भी।

[पृष्ठ 333] (ग) 'जिसमें विचार विवेचनात्मक कार्य करता है'? (घ) 'विवेचनात्मक विचार के कार्य से रहित'?

उत्तर ('अवधारणा' के स्थान पर 'विवेचनात्मक विचार' प्रतिस्थापित करते हुए) क्रमशः धारा 1268, 1269 के अनुसार।

[1272-1277] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) आनंदित?[3] (ख) आनंदित नहीं?

(ग) आनंद के साथ? (घ) आनंद के बिना?

(e) सहजता के साथ? (f) सहजता के बिना?

प्रत्येक प्रश्न युग्म के उत्तर धारा 1268, 1269 में दिए गए उत्तरों के समान हैं, जहाँ 'गर्भधारण' के स्थान पर 'आनंद' या 'सुकून' को उचित क्रम में प्रतिस्थापित किया गया है।

[1278, 1279] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) क्या यह निष्पक्षता के साथ होता है?

बोध, संश्लेषण और बुद्धि के तीन स्कंध,[4] जब निस्वार्थता से जुड़े होते हैं (बाद वाला शामिल नहीं है), [जो उत्पन्न होता है] इसके अनुकूल भूमि में, या तो इंद्रिय, रूप या निराकार के संसार में, या उस जीवन में जो अशाब्दिक है।

(ख) क्या यह निष्पक्षता से रहित है?

चारों स्कंध [जब उत्पन्न होते हैं] ऐसी मिट्टी में जो अनासक्ति के लिए अनुपयुक्त हो, चाहे इंद्रिय जगत में हो या रूप जगत में,[5] या उस जीवन में जो अनासक्त है; अनासक्ति स्वयं भी, और समस्त रूप और अविभाजित तत्व।

[पृष्ठ 334] [1281-1287] वे कौन से राज्य हैं जो

(ए) इंद्रियों के ब्रह्मांड से संबंधित (होना)?[6]

नीचे दुख की लहरहीन गहराई से लेकर ऊपर परिनिमित्तवासवत्ती देवताओं के स्वर्ग तक—तो वहाँ जो कुछ भी है, और उसमें समाहित है, चाहे वह स्कंध हो, तत्व हो या क्षेत्र[7]—रूप, भावना, बोध, संश्लेषण, बुद्धि: ये वे अवस्थाएँ हैं जो इंद्रिय जगत से संबंधित हैं।

(ख) इंद्रियों के ब्रह्मांड से संबंधित नहीं हैं?

रूप का ब्रह्मांड, निराकार का ब्रह्मांड और वह जीवन जो समाहित नहीं है।

(ग) रूप के ब्रह्मांड से संबंधित (जुड़ा हुआ)?

ब्रह्मलोक से लेकर ऊपर अकनित्थ देवताओं के स्वर्ग तक, सब कुछ समाहित करते हुए, जो भी अवस्थाएँ, चाहे वे इंद्रियों की हों या बुद्धि की, उनमें समाहित हैं, चाहे वे किसी ऐसे व्यक्ति की अवस्थाएँ हों जिसने [संभावित अच्छाई वाला ध्यान] प्राप्त कर लिया हो, या जिसमें [परिणामी ध्यान] उत्पन्न हुआ हो, या वर्तमान परिस्थितियों में सुखी रूप से रहने वाले व्यक्ति की अवस्थाएँ हों।[8]

(घ) क्या वे रूप के ब्रह्मांड से संबंधित नहीं हैं?

इंद्रियों का ब्रह्मांड, निराकार का ब्रह्मांड और वह जीवन जो समाहित नहीं है।

(ई) निराकार के ब्रह्मांड से संबंधित (संबंध रखना)?

'अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र'[9] के देवताओं के बीच प्रवेश द्वार को निचली सीमा मानकर, ऊपर 'उस क्षेत्र के देवताओं के बीच प्रवेश द्वार [पृष्ठ 335] तक जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध—तो इंद्रिय और बुद्धि दोनों की जो भी अवस्थाएँ उसमें समाहित हैं और उसमें शामिल हैं, चाहे वे [संभावित अच्छाई वाले ध्यान] को प्राप्त करने वाले की अवस्थाएँ हों, या जिसमें [परिणामी ध्यान] उत्पन्न हुआ हो, या वर्तमान परिस्थितियों में सुखी रूप से रहने वाले की अवस्थाएँ हों: ये अवस्थाएँ निराकार के ब्रह्मांड से संबंधित हैं।

(f) निराकार के ब्रह्मांड से संबंधित नहीं हैं?

इंद्रियों का ब्रह्मांड,[10] रूप का ब्रह्मांड, और वह जीवन जो असंलग्न है।

(g) क्या वे शामिल हैं?

सह-नशे की अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

(h) क्या वे असंलग्न श्रेणी से संबंधित हैं?

मार्ग, मार्गों के फल और अविभाजित तत्व।

[1288, 1289] वे कौन से राज्य हैं जिनके द्वारा

(ए) क्या कोई जा रहा है?[11]

वे चार मार्ग जो असंलग्न हैं।

(ख) क्या वहां से जाने का कोई रास्ता नहीं है?

सभी अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, उन चार को छोड़कर, चाहे वे इंद्रिय, रूप या [पृष्ठ 336] निराकार के जगत से संबंधित हों, या उस हृफ़ से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी, और अविभाजित तत्व।

[1290, 1291] वे कौन से राज्य हैं जो

(ए) उनके परिणामों में बर्खास्त?[12]

वे पाँच कर्म जिनके तत्काल परिणाम होते हैं, और वे गलत विचार जिनके परिणाम निश्चित होते हैं; साथ ही वे चार मार्ग जो असंलग्न हैं।

(ख) जिनके परिणाम निश्चित नहीं हैं?

धारा 1289 के अनुसार उत्तर दें।

[1292, 1293] वे कौन से राज्य हैं जिनमें

(ए) कुछ परे?[13]

सह-नशे की अवस्थाएँ, अच्छी, बुरी और अनिश्चित, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों; दूसरे शब्दों में, पाँच स्कंध।

(ख) कोई 'परे' नहीं?

वे चार मार्ग जो अविभाजित हैं, और उन मार्गों के फल, और अमिश्रित तत्व।

[1294, 1295] वे कौन से राज्य हैं जो

(क) युद्ध के साथ?[14]

[पृष्ठ 337] बुरे (कर्म) के तीन मूल: काम, घृणा और सुस्ती - और उनसे जुड़े भ्रष्टाचार; उनसे जुड़े चार स्कंध; उनसे उत्पन्न होने वाली क्रिया, शारीरिक, वाचिक और मानसिक।

(ख) युद्ध के साथ समवर्ती नहीं?

अच्छे, बुरे और अनिश्चित अवस्थाएँ, चाहे वे इंद्रियों, रूप या निराकार जगत से संबंधित हों, या उस जीवन से जो अविभाजित है; दूसरे शब्दों में, चार स्कंध; सभी रूप भी हैं, और अमिश्रित तत्व हैं।

- फुटनोट:
1. पाठ में, pahatabba-hetuka (प्रथम घटना) के स्थान पर pahatabba-hetu पढ़ें।

2. इस और निम्नलिखित युग्मों की तुलना धारा 996-998 और पृष्ठ 252, नोट 1 से करें। परिशिष्ट I, पृष्ठ 362, 363 भी देखें। पाठ में, arupavacare को हटा दिया जाना चाहिए, और pariyapanne के स्थान पर apariyapanne प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

3. सप्पितिका। यह शब्द सुखम, ए. आई. 81 को योग्य बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ पीति-सहगत (§ 1274) से कितना भिन्न है, यह मैं नहीं कह सकता।

सकारात्मक शब्दों के उत्तरों में, मुद्रित पाठ से arupavacare शब्द को हटा दिया जाना चाहिए। देखें, धारा 265 इत्यादि।

4. उपेक्षा (निरासत) वेदना या भावना का एक रूप है, और इसलिए इसे स्वयं से संबद्ध नहीं कहा जाता है।

5. मुद्रित पाठ में arupavacare शब्द को हटा दें।

6.कामवाचार. अवतारों की चर्चा मेरे परिचय (vi) में की गई है।

7.खंड-धातु-आयतन (cf K.)। मैं इसे धम्म को योग्य बनाने वाला एक विशेषणात्मक द्वंद्व यौगिक मानता हूँ, लेकिन इसके बाद के पाँच पद, स्कंध, धम्म के समरूप हैं।

8.अंतिम तीन परिधियों द्वारा प्रस्तुत तीन शब्द समपन्नस्सा, उप्पन्नस्सा और दित्थधम्मसुखविहारिसा हैं। साइ. (पृ. 888) उन्हें कुसल-झानम, विपाका-झानम और किरिया-झानम के संदर्भ में समझाते हैं। इस विषय पर आगे मेरे परिचय (viii) में चर्चा की गई है।

9. पृष्ठ 71-75 देखें।

10. यह अनजाने में मुद्रित पाठ में छूट गया है।

11. निय्यानिका। धारा 277 और उसके बाद के अनुच्छेदों में इस शब्द का अनुवाद 'जिसके द्वारा आगे बढ़ना और प्रगति करना' के रूप में किया गया है, जबकि साई. इसे कुछ अस्पष्ट रूप से परिभाषित करते हैं, और संदर्भ, उस संदर्भ में और इस संदर्भ में भी, यह दर्शाता है कि अभिव्यक्ति आदर्श की प्राप्ति की अपेक्षा उसकी खोज को अधिक दर्शाती है। यहाँ साई. संक्षिप्त और अधिक स्पष्ट है (असल. 50)।

इस शब्द का अर्थ है, 'वे पुनर्जन्म के चक्र को तोड़कर निर्वाण को अपना लक्ष्य बनाकर जन्म-मृत्यु के उस चक्र से मुक्त हो जाते हैं।' इसके विपरीत श्रेणी में आने वाली शुभ अवस्थाएँ वे स्थिर अवस्थाएँ हैं जो आध्यात्मिक प्रगति में पथों के फल कहलाती हैं।

12. धारा 1028-1030 देखें।

13. स-उत्तर = स्वयं (या आत्मा) को त्यागने में सक्षम। अस. 50. यह शब्द चित्तम पर लागू होता है, डी. आई. 80 में। अन-उत्तर धम्म में यह पारगमन सिद्ध हो चुका है।

14. सरना, 'उन भावनाओं आदि का पर्यायवाची, जिनसे व्याकुल होकर प्राणी अनेक तरीकों से विलाप और दुःख का शिकार होते हैं'
. . . '= झगड़ों के साथ' (सह राणेहि)।

असल. 50.

'कामवासना से जुड़ी सुस्ती कामवासना के साथ सह-युद्ध (सरानो) करती है, या घृणा से जुड़ी सुस्ती घृणा के साथ सह-युद्ध करती है।'

असल. 388.

किसी को 'शारीरिक अभिलाषाएँ जो आत्मा के विरुद्ध युद्ध करती हैं' और των ηδοντων των στρατενομενων εν τοις μελεσιν υμων के ईसाई समानांतर की याद दिलाती है, हालाँकि इस मामले में हमले में सहवर्ती पर जोर नहीं दिया गया है।

थेरिगाथा सुभा में पासा पलट जाता है - 'एक अच्छा युद्ध' - उसकी प्रगति के लिए शत्रुतापूर्ण कामुक इच्छाओं के खिलाफ लड़कर (श्लोक 358, 360)।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पुस्तक3-भाग2
अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण
 - पुस्तक 3 - 'उन्मूलन' नामक विभाजन
  - भाग 2

भाग II - सुत्तंत पदों के युग्म
सुत्तंतिका-दुकाम
[1]
[1296, 1297] वे कौन से राज्य हैं जो
(क) ज्ञान का भाग लेना?[2]
वे अवस्थाएँ जो ज्ञान की सहयोगी हैं।
(ख) अज्ञानता में भाग लेना?[3]
वे अवस्थाएँ जो अज्ञानता की सहयोगी हैं।
[1298, 1299] वे कौन से राज्य हैं जिनमें

(क) बिजली की समानता?[4]
[पृष्ठ 339] तीन निम्नतम नोबल पथों का विज्ञान[5]।
(ख) वज्रपात की आकृति?
सर्वोच्च मार्ग का विज्ञान, अरहतत्व का मार्ग।
[1300, 1301] वे कौन से राज्य हैं जो
(क) मूर्ख?[6]
कर्तव्यहीनता और दोष की अवहेलना। इसके अलावा, सभी बुरी स्थितियाँ मूर्खतापूर्ण होती हैं।
(ख) विवेकपूर्ण?
विवेक और निंदा का भय। इसके अलावा, सभी अच्छे राज्य विवेकशील होते हैं।
[1302, 1303] वे कौन से राज्य हैं जो
(ए) अंधेरा?[7]
कर्तव्यहीनता और दोष की अवहेलना। इसके अलावा, सभी बुरी अवस्थाएँ अंधकारमय होती हैं।
(बी) चमकीला?
कर्तव्यनिष्ठा और निंदा का भय। इसके अलावा, सभी अच्छे राज्य उज्ज्वल होते हैं।
[पृष्ठ 340] [1304, 1305] वे कौन से राज्य हैं जो
(क) पश्चाताप को बढ़ावा देना?[8]
कर्म, वचन और विचार में दुराचार। इसके अलावा, सभी बुरी अवस्थाएँ पश्चाताप को जन्म देती हैं।
(ख) पश्चाताप को बढ़ावा नहीं देते?
कर्म, वचन और विचार में अच्छा आचरण। इसके अलावा, कोई भी अच्छी अवस्था पश्चाताप को जन्म नहीं देती।
[1306] कौन से राज्य समानार्थी हैं?[9]
[पृष्ठ 341] जो एक गणना है, जो एक पदनाम है, एक अभिव्यक्ति है, एक प्रचलित शब्द है, एक नाम है, एक संप्रदाय है, एक नाम का निर्धारण है, एक व्याख्या है, इस या उस स्थिति पर प्रवचन का एक विशिष्ट चिह्न है।
[1306ए] सभी राज्य समानार्थी नामकरण की प्रक्रियाएँ हैं।
[1307] वे कौन से राज्य हैं जो व्याख्यात्मक हैं?
धारा 1306 के अनुसार उत्तर दें।
[1307ए] सभी अवस्थाएँ व्याख्या की प्रक्रियाएँ हैं।

[1308] वे कौन-सी अवस्थाएँ हैं जो अभिव्यक्तियाँ हैं?
धारा 1306 के अनुसार उत्तर दें।
[1308ए] सभी अवस्थाएँ अभिव्यक्ति की प्रक्रियाएँ हैं।
इस संदर्भ में,
[1309] नाम क्या है?[10]
[पृष्ठ 342] चार स्कंध और अमिश्रित तत्व।
[1310] रूप क्या है?
चार महान घटनाएँ और उनसे व्युत्पन्न रूप।[11]
[1311] अज्ञान क्या है?
एन्सिवर 'सुस्ती' के लिए, § 390 ('उस अवसर पर' को छोड़कर)।[12]
[1312] नए अस्तित्व की लालसा क्या है?
'पुनर्जन्म के जुनून की बेड़ी' के लिए उत्तर दें, धारा 1120।
[1313] पुनर्जीवित अस्तित्व के बारे में सट्टा राय क्या है?
ऐसे सिद्धांत जिनमें कहा गया है कि आत्मा और संसार दोनों का पुनर्जन्म होगा, आदि।
[1314] अस्तित्व के नवीनीकरण न होने के बारे में सट्टा राय क्या है?
ऐसे सिद्धांत जिनमें कहा गया है कि आत्मा और संसार दोनों का पुनर्जन्म नहीं होगा, आदि।
[पृष्ठ 343] [1315] शाश्वतवाद के नाम से जानी जाने वाली अटकलों का प्रकार क्या है?
आत्मा और संसार दोनों शाश्वत हैं, इत्यादि।
[1316] विनाश के नाम से जानी जाने वाली अटकलों का प्रकार क्या है?
आत्मा और संसार दोनों का नाश हो जाएगा, इत्यादि।
[1317] परिमित सिद्धांत के नाम से जानी जाने वाली अटकलों का प्रकार क्या है... [1318] अनंत सिद्धांत?
आत्मा और संसार दोनों ही परिमित हैं... अनंत हैं, इत्यादि।
[1319] उत्पत्ति के सिद्धांत के रूप में जानी जाने वाली अटकलों का प्रकार क्या है... [1320] परलोक का सिद्धांत?
परम अतीत से संबंधित सिद्धांत... भविष्य से संबंधित सिद्धांत।
इस तरह की राय,
राय के जाल में चलना,
राय का जंगल,
राय का विकराल मैदान,
राय की कठपुतली,
राय की खींचतान,
राय की बेड़ी,
इसकी पकड़ और दृढ़ता,
इसकी ओर झुकाव,
इससे संक्रमित होना,
यह टेढ़ा रास्ता,
गलत राह,
गलत होना,
यह 'पार करने की जगह',
पकड़ की यह अस्थिरता
— इसे ही नवगठित अस्तित्व और बाकी के बारे में सट्टा राय कहा जाता है।[13]
[1321] असावधानी क्या है? . . . [1322] दोष की उपेक्षा?
भ्रष्टाचार के नौवें और दसवें आधारों के लिए उत्तर, धारा 1238, 1239।

[पृष्ठ 344] [1323] कर्तव्यनिष्ठा क्या है?
जब विवेकपूर्ण संशय होना चाहिए तब विवेकपूर्ण संशय का अनुभव करना, बुरे और पापपूर्ण अवस्थाओं को प्राप्त करने पर विवेकपूर्ण संशय का अनुभव करना।
[1324] निंदा का भय क्या है?
अपराधबोध की भावना जहाँ अपराधबोध महसूस किया जाना चाहिए, बुरे और दुष्ट अवस्थाओं को प्राप्त करने पर अपराधबोध की भावना।[14]
[1825] अवज्ञा क्या है?[15]
जब कानून के अनुसार कुछ कहा गया हो तो चिड़चिड़ा, विद्रोही, अवज्ञाकारी होना, विरोधाभास, आलोचना, सम्मान, विचार, श्रद्धा, आदर की कमी।[16]
[1326] बुराई से दोस्ती क्या है?
अविश्वासी, अनैतिक, अशिक्षित, नीच स्वभाव वाले[18] और बुद्धिहीन[19] व्यक्तियों का अनुसरण करना, उनकी संगति में बार-बार जाना और उनसे जुड़ना[17], उनका सहारा लेना और उनके साथ मेलजोल रखना[पृष्ठ 345], उनके प्रति समर्पित होना, उनके बारे में उत्साही होना[20] और उनसे उलझ जाना[21]
[1327] सौम्यता क्या है?
जब कानून के अनुसार बात कही गई हो, तो विनम्र, आज्ञाकारी[22] होना, विरोध और आलोचना से बचना; सम्मान और विचार[23] दिखाना, आदर और सम्मान।
[1328] अच्छाई के साथ मित्रता क्या है?
विश्वासियों, गुणी, सुशिक्षित, उदार और बुद्धिमान व्यक्तियों का अनुसरण करना, उनकी संगति में रहना और उनके साथ मेलजोल रखना; उनके पास जाना और उनके साथ रहना, उनके प्रति समर्पित रहना, उनके प्रति उत्साही रहना और उनके साथ घुलमिल जाना।
[1329-1332] कौशल क्या है?
(क) अपराध? (ख) अपराधों से मुक्ति?
(ग) उपलब्धियाँ? (घ) उपलब्धियों से उबरना?
वह कौशल जो विज्ञान, समझ, खोज, अनुसंधान आदि है,[24] जब इसे लागू किया जाता है
[पृष्ठ 346] (क) अपराध जिन्हें पाँच समूहों के अपराध
और सात समूहों के अपराध कहा जाता है;[25] (ख) उन अपराधों के [प्रभावों से] बहाली;[26]
(ग) प्राप्ति का एक मामला[27] जहाँ 'अवधारणा कार्य करती है और विचार विवेचनात्मक होता है',
प्राप्ति का एक मामला 'जिसमें अवधारणा का कोई कार्य नहीं होता, बल्कि केवल विचार विवेचनात्मक होता है',
प्राप्ति का एक मामला 'अवधारणा और विचार विवेचनात्मक के कार्य से रहित';
(घ) उन उपलब्धियों से पुनर्प्राप्ति।[28]
[पृष्ठ 347] [1333] तत्वों में प्रवीणता क्या है?[29]
वह दक्षता जो विज्ञान,
समझ,
खोज,
अनुसंधान
आदि है, जब अठारह तत्वों पर लागू होती है, अर्थात्: दृष्टि, दृश्य वस्तु और दृश्य अनुभूति,
श्रवण, ध्वनि और श्रवण अनुभूति,
गंध, गंध और घ्राण अनुभूति,
स्वाद, स्वादिष्ट वस्तु और स्वाद अनुभूति,
देह संवेदनशीलता, मूर्त और स्पर्श अनुभूति,
मन, मानसिक वस्तु और प्रतिनिधि अनुभूति। [1334] ध्यान में दक्षता क्या है?[30]
ध्यान लगाने की वह निपुणता, जो विज्ञान, समझ आदि है, जब उन तत्वों पर लागू की जाती है।
[1335] क्षेत्रों में कौशल क्या है?[31]

वह कौशल जो विज्ञान, समझ आदि है, जब बारह क्षेत्रों पर लागू किया जाता है, अर्थात्, दृष्टि और दृश्य रूप, श्रवण और ध्वनि, गंध और गंधयुक्त वस्तु, स्वाद और स्वादयुक्त वस्तु, शरीर संवेदनशीलता और स्पर्शनीय, मन और मानसिक वस्तु।[32]

[पृष्ठ 348] [1336] 'कंडीशन्ड जेनेसिस' में कौशल क्या है?

विज्ञान, समझ आदि, जब इस सूत्र पर लागू होते हैं: 'संश्लेषण अज्ञान के कारण होते हैं;
ज्ञान संश्लेषण के कारण होता है;
नाम और रूप ज्ञान के कारण होते हैं;
छह गुना क्षेत्र नाम और रूप के कारण होते हैं;
संपर्क छह प्रकार के क्षेत्रों के कारण होता है,
संपर्क के कारण भावना,
भावना के कारण लालसा, लालसा के
कारण आसक्ति, आसक्ति के
कारण पुनर्जन्म, पुनर्जन्म
के कारण जन्म,
वृद्धावस्था और मृत्यु, शोक, विलाप, पीड़ा, उदासी और निराशा जन्म के कारण होते हैं।

इस पूरे दुष्ट समूह का विद्रोह ऐसा ही है।[33] [1337, 1338] पुष्टि करने में कौशल क्या है ... [कारण संयोजन] को नकारने में?

विज्ञान, समझ, आदि, जब किसी दिए गए परिस्थिति में यह पता लगाने के लिए लागू किया जाता है कि कुछ अवस्थाएँ . . . नहीं हैं, कुछ अन्य अवस्थाओं का कारण और स्थितियाँ हैं।[34]

[1339] सीधा क्या है?

बिना झुकाव, मरोड़ या टेढ़ेपन के सीधा खड़ा होना।

[1340] नरम क्या है?

जो लचीलापन, कोमलता, सहजता, कोमलता, हृदय की विनम्रता है।[35]

[पृष्ठ 349] [1341] धैर्य क्या है?

वह धैर्य जो सहनशीलता, आज्ञाकारिता, अशिष्टता और अचानकता की अनुपस्थिति, हृदय की संतुष्टि है।[36]

[1342] संयम क्या है?

जो कर्म, वचन और कर्म तथा वचन दोनों में अतिरेक की अनुपस्थिति है।[37]

इसके अलावा, सभी नैतिक आत्म-संयम ही संयम है।

[1343] मैत्री क्या है?[38]

जब ऐसी सभी बातें जो अभद्र,[39] अप्रिय,
कर्कश,
दूसरों के लिए कठोर,
दूसरों के लिए अपमानजनक ,
क्रोध की सीमा पर,
एकाग्रता के लिए अनुकूल नहीं हैं,
उन्हें दूर कर दिया जाता है, और जब ऐसी सभी बातें जो हानिरहित,[40]
कानों को सुखद,[41] स्नेहपूर्ण,
हृदय को छूने वाली,
शिष्ट,[42]
मधुर और आम लोगों को स्वीकार्य हैं — जब इस प्रकार की भाषा बोली जाती है — परिष्कृत, मैत्रीपूर्ण और सौम्य भाषा — इसे ही मित्रता कहा जाता है।

[1344] शिष्टाचार क्या है?

शिष्टाचार के दो रूप: शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति आतिथ्य सत्कार और सिद्धांत के मामलों में विचारशीलता। जब कोई शिष्टाचार दिखाता है तो वह इन दो रूपों में से किसी एक में होता है।[43]

[1345] क्या है जब इंद्रियों का द्वार असुरक्षित है?[44]

[पृष्ठ 351] जब कोई व्यक्ति[45] किसी वस्तु को आँख से देखता है[46], तो वह उसके सामान्य स्वरूप या उसके विवरणों में मोहित हो जाता है।[47] वह उन भावनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करता जो उसके भीतर दुष्ट, लोभी, उदास और नकारात्मक भावनाओं को जन्म दे सकती हैं, यदि वह दृष्टि के संबंध में अनियंत्रित रहे। वह अपनी दृष्टि शक्ति पर नियंत्रण नहीं रखता और न ही उस पर महारत हासिल करता है।

और इसी प्रकार जब वह कान से कोई ध्वनि सुनता है... नाक से कोई गंध सूंघता है... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है... शरीर से किसी स्पर्शनीय वस्तु को महसूस करता है... मन से किसी मानसिक वस्तु को पहचानता है, तो वह उसके सामान्य स्वरूप और उसके विवरणों से मोहित हो जाता है।

वह उन चीजों को रोकने का प्रयास नहीं करता जो दुष्ट, लालची और निराश जैसी भावनाओं को जन्म दे सकती हैं, यदि वह मानसिक क्षमता के मामले में अनियंत्रित रहे।

वह मानसिक क्षमता पर न तो निगरानी रखता है और न ही उस पर महारत हासिल करता है।

इन छह क्षमताओं का इस प्रकार [पृष्ठ 352] असुरक्षित, उपेक्षित, निगरानी रहित, अनियंत्रित होना ही क्षमताओं के द्वार को असुरक्षित रखना कहलाता है।

[1346] आहार में अतिरेक क्या है?[48]

जब कोई व्यक्ति लापरवाही और विवेक के बिना खेल,[50] कामुक अतिरेक, व्यक्तिगत आकर्षण और अलंकरण के प्रयोजनों के लिए भोजन[49] लेता है, तो उसकी अतृप्ति, असंयम और विवेक की कमी को आहार में असंयम कहा जाता है।

[1347] संकायों के द्वारों की सुरक्षा का क्या अर्थ है?

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी आंखों से देखता है तो वह उसकी सामान्य दिखावट या उसके विवरण से मोहित नहीं होता है।

वह अपने आप को उन चीजों को नियंत्रित करने के लिए दृढ़ संकल्पित करता है जो दुष्ट, लालची, उदास जैसी भावनाओं को उस पर हावी होने का कारण बन सकती हैं, यदि वह दृष्टि के संबंध में अनियंत्रित रूप से रहता है।

वह अपनी इस दृष्टि शक्ति पर नियंत्रण रखता है और उस पर महारत हासिल करता है। इसी प्रकार, जब वह कानों से कोई ध्वनि सुनता है... नाक से कोई गंध सूंघता है... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करता है... मन से किसी विचार को पहचानता है, तो वह उसके सामान्य स्वरूप और बारीकियों में मोहित नहीं होता।

वह अपने आप को उन चीजों को नियंत्रित करने के लिए दृढ़ संकल्पित करता है जो दुष्ट, लालची, उदास जैसी भावनाओं को उस पर हावी होने का कारण बन सकती हैं, यदि वह मानसिक क्षमता के संबंध में अनियंत्रित रहता है।

वह मानसिक क्षमता पर नजर रखता है और उस पर महारत हासिल करता है।

इन छह क्षमताओं की इस प्रकार रक्षा करना, देखभाल करना, निगरानी रखना, [पृष्ठ 353] नियंत्रित करना, इसे ही क्षमताओं के द्वारों की रक्षा करना कहा जाता है।

[1348] आहार में संयम क्या है?

जब कोई व्यक्ति विचार और विवेक के साथ भोजन ग्रहण करता है, खेल, अतिरेक, व्यक्तिगत आकर्षण और मोहक गुणों के लिए नहीं, बल्कि शरीर के भरण-पोषण और संरक्षण के लिए, भूख की पीड़ा को शांत करने के लिए, और उच्चतर जीवन के अभ्यास में सहायता के लिए, और यह सोचते हुए कि 'मैं अपनी भावनाओं को वश में करूँगा और कोई नई भावना उत्पन्न नहीं होने दूँगा, और मेरा भरण-पोषण, निर्दोषता और आराम सुनिश्चित होगा' - आहार में यह संतोष, संयम और विवेक ही आहार में संयम कहलाता है।

[1349] विस्मृति क्या है?[54] [पृष्ठ 354] असावधानी,

स्मृति का लोप,

स्मरण न होना, याद न रखना,

सतहीपन , विस्मृति। [1350] बुद्धि का अभाव क्या है?

'अज्ञानता' या 'मंदबुद्धि' के लिए धारा 1311 आदि के अनुसार उत्तर दें।

[1351] माइंडफुलनेस क्या है?
धारा 14 के अनुसार उत्तर दें, 'उस अवसर पर' को हटा दें।[55]
[1352] बुद्धि क्या है?
'बुद्धि' या 'विज्ञान' के लिए उत्तर दें, धारा 16. और धारा 53 देखें।
[1353] गणना की शक्ति क्या है?[56]
'बुद्धि' के लिए उत्तर दें, धारा 16.
[1354] खेती की शक्ति क्या है?
जो अच्छे राज्यों की खोज, संवर्धन और वृद्धि का माध्यम है।
इसके अलावा, महान जागृति[57] में सात कारक साधना की शक्ति हैं।
[1355] संयम क्या है?
'शांत' के लिए उत्तर दें, §§ 11, 54.[58]
[1356] अंतर्दृष्टि क्या है?
'अंतर्दृष्टि' और 'बुद्धि' के लिए उत्तर दें, धारा 55, 16.
[पृष्ठ 355] [1357] 'संयम का चिह्न' क्या है?[59]
'शांत' के लिए उत्तर दें, धारा 1357.
[1358] 'पकड़ का निशान' क्या है?
'पकड़' और 'ऊर्जा' के लिए उत्तर दें, धारा 56, 13.
[1359] पकड़ क्या है?
'पकड़ के निशान' के लिए उत्तर दें, धारा 1358।
[1360] संतुलन क्या है?
धारा 57 के अनुसार 'संतुलन' के लिए उत्तर दें।
[1361] नैतिक विफलता क्या है?[60]
कर्मों में अति, शब्दों में अति, और दोनों में अति। इसके अलावा, सभी अनैतिकता नैतिक विफलता है।
[1362] सैद्धांतिक भ्रांति क्या है?[61] 'दान, बलिदान या भेंट जैसी कोई चीज नहीं है; अच्छे या बुरे कर्मों का न तो कोई फल है और न ही कोई परिणाम;
इस लोक या परलोक जैसी कोई चीज नहीं है;
माता-पिता या उनके बिना जन्म लेने वाले प्राणियों जैसी कोई चीज नहीं है;
संसार में ऐसे कोई संन्यासी या ब्राह्मण नहीं हैं जो सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुके हों, जिन्होंने शिखर प्राप्त कर लिया हो, जिन्होंने स्वयं ही इस लोक और परलोक दोनों को समझकर और अनुभव करके दूसरों को भी बताया हो'— इस प्रकार की सभी अटकलें... यही सैद्धांतिक भ्रांति कहलाती हैं। इसके अलावा, सभी गलत विचार सैद्धांतिक भ्रांतियाँ हैं।
[1363] नैतिक प्रगति क्या है?
कर्म, वचन और कर्म तथा वचन दोनों में अतिरेक का अभाव।[62]
[1364] सैद्धांतिक प्रगति क्या है? 'दान, बलिदान और भेंट जैसी चीज़ें होती हैं;
... अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम;
... यह [पृष्ठ 356] लोक और अगला लोक;
माता, पिता और उनके बिना जन्म लेने वाले प्राणी;
... संन्यासी और ब्राह्मण जो उच्चतम स्तर पर पहुँच चुके हैं, जिन्होंने शिखर प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने स्वयं ही इस लोक और दूसरे लोक दोनों को समझकर और अनुभव करके दूसरों को भी बताया है' - इस प्रकार का सारा विज्ञान,
समझ
आदि [63] ... इसे ही सैद्धांतिक प्रगति कहा जाता है। इसके अलावा, सभी सही विचार सैद्धांतिक प्रगति हैं।
[1365] नैतिकता में पवित्रता क्या है?
कर्म, वचन और कर्म एवं वचन दोनों में अतिरेक का अभाव।[64]

[1366] सिद्धांत में शुद्धता क्या है?
कर्म की विशिष्ट प्रकृति का ज्ञान;[65] सत्यों का उनके उचित क्रम में ज्ञान; मार्ग धारण करने वाले का ज्ञान; मार्ग के फल को धारण करने वाले का ज्ञान।
(i.)[66] वाक्यांश 'अब सिद्धांत की शुद्धता' उस विज्ञान के बराबर है, समझ . . . सही सिद्धांत (विचार) [ऊपर वर्णित, § 16]।
(ii) वाक्यांश 'और जैसे कि कुछ विचारों को धारण करने वाले का संघर्ष',[67] में 'संघर्ष' का अर्थ ऊर्जा आदि की शुरुआत है [ऊपर वर्णित, § 13]।
[पृष्ठ 358] (iii.) 'आंदोलन' वाक्यांश जन्म के भय, वृद्धावस्था के भय, बीमारी के भय, मृत्यु के भय को दर्शाता है।
(iv.) 'आंदोलन का अवसर' वाक्यांश का अर्थ है जन्म, वृद्धावस्था, बीमारी, मृत्यु।
(v.) 'और जो उत्तेजित है उसका गंभीर संघर्ष' वाक्यांश [चार अष्ट संघर्षों] को संदर्भित करता है:
— जब कोई भिक्षु यह इच्छा उत्पन्न करता है (क) कि जो बुरी और दुष्ट अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं वे उत्पन्न न हों,
(ख) कि जो बुरी और दुष्ट अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं उन्हें दूर किया जाए,
(ग) कि जो अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं वे उत्पन्न हों,
(घ) कि जो अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे स्थिर रहें, भ्रमित न हों, उनका बार-बार अभ्यास किया जाए, उन्हें प्रचुर मात्रा में बनाया जाए, उनका विकास किया जाए और उन्हें परिपूर्ण किया जाए — तब वह प्रयास करता है, ऊर्जा लगाता है, विचार में आगे बढ़ता है और संघर्ष करता है।[68]
(vi.) वाक्यांश 'और अच्छे राज्यों में असंतोष' का अर्थ है अच्छे राज्यों की खेती से असंतुष्ट व्यक्ति में उच्च उपलब्धि की लालसा।[69]
(vii.) वाक्यांश 'और संघर्ष में पीछे न हटना' का अर्थ है संपूर्ण, निरंतर और अविचल प्रदर्शन, ठहराव की अनुपस्थिति, अडिग इच्छाशक्ति, अडिग सहनशीलता,[70] परिश्रमी खोज, अभ्यास और पुनरावृत्ति जो अच्छे राज्यों की खेती के साथ होती है।
[पृष्ठ 359] (viii.) 'ज्ञान' वाक्यांश का अर्थ तीन प्रकार का ज्ञान है, अर्थात् (क) अपने पूर्व जन्मों का स्मरण,
(ख) प्राणियों के पुनर्जन्म और पुनरागमन का ज्ञान,
(ग) मादक पदार्थों का अंत करने वाला ज्ञान। (ix.) 'मुक्ति' वाक्यांश का अर्थ दो प्रकार की मुक्ति है, अर्थात् (क) विचार का वैराग्य,[71] और
(ख) निर्वाण।[72] (x.) 'अंत करने का ज्ञान' वाक्यांश का अर्थ उस ज्ञान से है जो मार्ग धारण करने वाले के पास होता है।
(xi.) 'उत्पत्ति में ज्ञान' वाक्यांश का अर्थ है वह ज्ञान जो उसके पास है जो मार्ग का फल धारण करता है।
'एलिमिनेशन' नामक डिवीजन का अंत।
- फुटनोट:
1. इस शीर्षक पर प्रस्तावना में चर्चा की गई है।

2.विज्जभगिनो, यानी, "वे (धम्म) ज्ञान के साथ जुड़कर (भजन्ति) ज्ञान का हिस्सा बनते हैं, वे ज्ञान के भागों या विभाजनों के रूप में वर्संतुर (वत्तन्ति) करते हैं"
(असल. 50).
बौद्ध विज्या के आठ तरीकों में से, अर्थात्: अंतर्दृष्टि से उत्पन्न ज्ञान (विपस्सनानाम्), 'मानसिक छवि' की क्षमता (इद्धि), और अंतर्ज्ञान के छह रूप (अभिन्न) - यहाँ केवल पहले का उल्लेख किया गया है (cf D. i., p. 76 et seq., and Childers, s.vv.).
पाठक को याद होगा कि विज्जा शब्द बौद्ध नैतिकता द्वारा ब्राह्मणवादी सिद्धांत से लिया गया है। देखें अभिव्यक्ति तिस्सो विज्जा, पृष्ठ 358। यह लगभग हमारे 'ज्ञान' के समतुल्य है।
अंगुत्तरा (iii. 334) में छह राज्यों को विज जा-भागीय कहा गया है।

3. चारों सत्यों के संबंध में अज्ञानता। असल. 51.

4. इस और निम्नलिखित उपमा पर विस्तार से चर्चा की गई है (असल. 388), जैसा कि नीचे दिया गया है: चरण
यात्री अंधकार में अपनी यात्रा शुरू करता है।
वह रास्ता भटक जाता है।

बिजली चमकती है और रोशनी बिखेर देती है।
सड़क फिर से समतल हो गई है।
अतः 'महान' शिष्य को यह प्राप्त होता है:
प्रथम (द्वितीय या तृतीय) पथों के लिए अंतर्दृष्टि निर्माण की शुरुआत;
अंधकार द्वारा सत्य का विनाश;
इस मार्ग की महिमा प्रकट होती है;
चारों सत्य स्पष्ट कर दिए गए हैं।
लेकिन अरहतत्व की विजय की शक्ति के वज्रपात में हमें यह उपमा मिलती है:
एक सर्वव्यापी शक्ति,
इसके आने का रहस्य।
ईजनरेशन के संदर्भ में हवा के बारे में देखें, जॉन iii. 8.

5. पन्ना, जिसे अन्यत्र 'ज्ञान' के रूप में अनुवादित किया गया है। § 17 देखें और n. 3 की तुलना करें।
यहां 'विज्ञान' को उसके आधुनिक अर्थ में संगठित ज्ञान और उस ज्ञान को प्राप्त करने और स्थापित करने के लिए जांच और सत्यापन की संगठित विधियों के रूप में नहीं, बल्कि प्लेटो और अरस्तू के अर्थ में ἐπιστήμη, या राय के बौद्धिक विपरीतार्थक शब्द के रूप में समझा जाना चाहिए।

6. बाला, जिसका विपरीत पंडित है, जो पैना में भाग लेता है। धारा 16 देखें, जहाँ संज्ञा रूप, पाण्डिसे आम, को 'विद्वत्ता' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और (असल. 147) इसे पाण्डितस्स भावो के रूप में व्याख्यायित किया गया है, जो एक विवेकशील व्यक्ति की अवस्था है, वह व्यक्ति जिसमें विवेक और समझ है, वह व्यक्ति जिसने 'अच्छा मार्ग चुना है', जो 'औसत कामुक व्यक्ति' या मूर्ख युवक के विपरीत है।
उत्तरों के लिए धारा 30, 31 देखें।

7. नैतिक महत्व के संदर्भ में प्रयुक्त कान्हा और सुक्का के बारे में, देखें एम. आई., 389; डीएचपी., संस्करण 87; मिल. 200. (तुलना करें 'राजा मिलिंदा के प्रश्न', आई. 284, नोट 2.)

8. तपनिया। जबकि हम 'पश्चाताप' में 'अनैतिकता के अयनबाइट' को उजागर करते हैं, बौद्ध शब्द उस गर्मी की लहर को संदर्भित करता है जब किए गए बुरे काम का एहसास होता है।

9.यह और निम्नलिखित दो प्रश्नों के विषय क्रमशः अधिवचन, निरुति और पन्नति हैं।
तीनों को (असली. 51) 'अर्थ में अभिसरण' (अत्थतो निन्नकरण) कहा जाता है, हालाँकि उनका रूप विविध है।
'भाग्य बढ़ाने वाला धन बढ़ाने वाला होता है' इस वाक्यांश में दोनों शब्द परस्पर परिभाषित हैं। यही अधिवचनम है।
'वे रचना करते हैं (या संयोजन करते हैं, अभिसंखारोंति), भाइयों, और इसलिए "संश्लेषण" हैं' इस वाक्यांश में कारण के साथ-साथ तथ्य का भी कथन है, जैसे प्रवचन (अभिलाप) में होता है। . . .
वाक्यांश 'मन की तर्कसंगतता, अवधारणा, स्वभाव' (ऊपर देखें, § 7) में, कुछ इस तरह या उस तरह से निर्धारित किया जाता है; और यह पन्नाट्टी है।
उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिवचन द्वारा शब्दों की सरल समतुल्यता स्थापित की जानी है। अनुवाद करते समय 'है' या 'हैं' को केवल '=' के रूप में समझा जाना चाहिए, न कि किसी व्यापक अर्थ में समावेशन के रूप में। यह शब्द चीनी शास्त्र में हर जगह आता है, और इन फुटनोट्स में इसे आमतौर पर 'के समतुल्य' के रूप में अनुवादित किया गया है। जाट शास्त्र i. 117; दिव. 491 में एक अच्छा उदाहरण देखें।
दूसरा उदाहरण और टिप्पणी स्पष्टीकरण से हमारा तात्पर्य स्पष्ट करते हैं। लेकिन संदर्भ के अभाव में उद्धृत तीसरे अंश से पाफिनाटी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना आसान नहीं है।

तीनों प्रश्नों के सामान्य उत्तर पर आते हुए, साइ. उन चीजों के उदाहरण देता है जिन्हें वर्गीकृत (संख), नामित (समन्ना), व्यक्त और प्रचलित (वोहारो) किया जाता है, जैसे कि 'मैं', 'दूसरा', 'एक आदमी', 'पशु', 'टिसो', 'एक बिस्तर', 'एक घर', आदि।
नाम प्रदान करने के आधारों के दृष्टिकोण से नाम चार प्रकार का होता है, अर्थात्:
किसी विशेष अवसर पर आम सहमति से दिया गया (समनफिया-नामम), उदाहरण के लिए, प्रथम राजा महासम्मतो के अवसर पर;
किसी व्यक्तिगत गुण (गुण-नामम) के कारण दिया गया, उदाहरण के लिए, विनय शास्त्र में पारंगत होना;
किसी निजी इच्छा या शौक के कारण दिया गया नाम (कित्तिमानामम), जैसे किसी शिशु का नामकरण;
नहीं दिया गया; आदिम उत्पत्ति का; मूलतः आकस्मिक (ओपपटिकनमणि), जैसे, 'चंद्रमा', 'पृथ्वी', आदि।
धारा 1309, एन. में आगे देखें।
नामकरण आदि की प्रक्रियाएँ — अधिवचनपथ, आदि।
टीकाकार का निष्कर्ष है कि ऐसा कोई प्राणी या यौगिक नहीं है जिसका कोई न कोई नामकरण न हो। रेगिस्तान और पहाड़ी इलाकों के पेड़ों का भी नाम ग्रामीण लोग रख देते हैं। और यदि वे किसी एक प्रजाति का नाम न जानने की बात स्वीकार करते हैं, तो उसे 'नामहीन' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, हमारे OS innominatum, या Pic Sans-nom, आदि देखें।
'विशिष्ट चिह्न' व्यंजनम् है।

10. यहाँ, साई. नाम-प्रकारों के अपने पूर्वोक्त वर्गीकरण का उपयोग यह दर्शाने के लिए करता है कि नाम को रूप से अलग करते समय किस श्रेणी में रखा जाए। नाम को, अर्थात्, ओपतिका-नाम के रूप में समझा जाना चाहिए, यानी इसके सभी घटकों को इसी प्रकार समझा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, भावना जब उत्पन्न होती है, तो उसका नामकरण उन आधारों पर नहीं किया जाता जिन पर किसी नए व्यक्ति या 'कृत्रिम प्रकार' - मेज आदि - का नामकरण किया जा सकता है। 'इसका नाम यह कहकर नहीं रखा जाना चाहिए, "तुम्हें भावना कहा जाए!" नाम इसके साथ ही उत्पन्न हुआ है।'
(पृष्ठ 392)।
यहां 'अमिश्रित तत्व' से फिर से निर्वाण की बात की गई है। वही। ऊपर देखें, पृष्ठ 166, नोट 1।

11. धारा 584 देखें। प्रश्न का अधिक संक्षिप्त रूप: tattha katamaip ... अब अंत तक बना रहेगा। अब तक इसका प्रयोग केवल छात्र से किसी दिए गए उत्तर के विवरण, जैसे कि पिछले उत्तर के भाग के रूप में 'नाम', पर प्रश्न पूछने के लिए किया जाता था। अतः tattha का अनुवाद 'इस संदर्भ में' किया गया है (चाहे इस शब्द का अन्यत्र कोई भी अर्थ हो)। हालांकि, यह स्पष्ट नहीं है कि इन अंतिम सत्तावन प्रश्नों में tattha का क्या अर्थ है, क्योंकि इनमें से अधिकांश विषय नियमावली के पूर्ववर्ती भाग में नहीं आए हैं।

12. प्रश्नों की यह जोड़ी 'यह दिखाने के लिए शामिल की गई है' कि निम्नलिखित जोड़ियों में विचारों का समूह 'पुनर्जन्म के चक्र की जड़ से एक उत्थान है'।
असल. 392.

13. यह दित्थी सूत्र (देखें §§ 381, 1099) भी उपरोक्त सभी काल्पनिक मतों के उत्तरों के साथ संलग्न है। इनमें से पहले दो (भाव और विभाव) को साई. (पृष्ठ 392) में क्रमशः अगले दो से जोड़ा गया है (देखें § 1099)। सभी आठों का विवरण और विवेचना ब्रह्मजाल सूत्र, डी. i. 13-40 में दी गई है। साई. स्वयं अंतिम दो सिद्धांतों के संदर्भ में इस सूत्र का उल्लेख करता है।
यह भी देखें 'बुद्ध के संवाद', i. 26, n. 3.

14. धारा 80, 31 देखें।

15.डोवाकासाटा। 'चिड़चिड़ा' के लिए सी. (पृष्ठ 398) और के. डोवाकासायम पढ़ते हैं।

16. उत्तर में पहले तीन पद मूल रूप से एक ही अमूर्त संज्ञा के अलग-अलग रूप हैं, जैसे: dovacassayam, dovacassiyam, dovacassata.

चौथे शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'विपरीत पक्ष लेना'।
पांचवां शब्द शाब्दिक रूप से 'विरोध में संतुष्टि' है।
इसका कारण दूसरों को स्वयं से पहले रखने की आदत का अभाव बताया गया है। असल. 393.
इस शब्द को अंत में यह कहकर खारिज कर दिया गया है कि यदि इसे इसी प्रकार जारी रखा जाए, तो इसमें चारों स्कंध, विशेषकर संश्लेषण का स्कंध शामिल हो जाता है। यही बात निम्नलिखित प्रश्नों में दिए गए जटिल सामान्यीकरणों पर भी लागू होती है। ये केवल एक स्कंध से संबंधित अपेक्षाकृत सरल अवस्थाएँ नहीं हैं। (यहाँ भी इस विषय में संपादन की त्रुटि अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है।)

17.सेवना, निसेवना, समसेवना। साई. के अनुसार, उपसर्ग केवल वर्धक के रूप में कार्य करते हैं।

18. मैकरिनो; पाँच प्रकार की नीचता का आदी। असल. 394. देखें § 1122, n.

19. दुप्पन्ना.

20. भजन, संभजन, भट्टि, संभट्टी; इन सभी का मूल अर्थ 'भाग का होना', 'से संबंधित होना' है। लेकिन पहले दो का अर्थ उपसंकमन से बदल दिया गया है। भक्ति के अर्थ में भट्टि शब्द का प्रयोग, मेरे विचार से, निकायों में नहीं मिलता। संभवतः इस अर्थ में इसका सबसे पुराना प्रयोग जाट उपनिषद के श्लोक 340 में मिलता है—जहाँ साइको उपनिषद में इसके समतुल्य 'सिनेहो' दिया गया है—और श्वेत उपनिषद के श्लोक 6:23 में भी।

21. टार्न संपवनकटा (जैसा कि के. और सी.वाई. कहते हैं), अर्थात् उलझाव; शाब्दिक अर्थ है, उनके साथ जुड़ा हुआ — उन व्यक्तियों के साथ, विचार और कर्म दोनों में। असल. 394.

22.Sovacassayamn (sic lege), sovacassiyam, sovacassata.

23.अदारियम, अदराता; पाठ में छोड़ा गया है, लेकिन के. में जोड़ा गया है। देखें § 1325.

24. यहाँ और आगे के अनुभागों में जिस अंश को छोड़ा गया है, वह निस्संदेह वह अंश है जिसमें विज्ञान (पन्ना) का वर्णन किया गया है, §16 और आगे भी। 'कौशल' या 'निपुणता' (कुसलता) के लिए प्रस्तावना viii देखें, 'अच्छा' के लिए।

25.अर्थात्, अपात्तियों के समूह को पराजिका, संघदिशेष, पचित्तिया, पतिदेसानिया और दुक्कटा अपराध कहा जाता है, और वह समूह जिसमें इनके अतिरिक्त थुलच्चया और दुभसित अपराध शामिल हैं। असल. 394; तुलना करें. विन. वी. 91. वैज्ञानिक प्रक्रिया का वर्णन साई. में -परिच्छेद-जनना-पन्न के रूप में किया गया है।

26. अपात्ति-वत्थाना, या अपराध से मुक्ति। बुद्धघोष इस संदर्भ में इस शब्द की व्याख्या नहीं करते, परन्तु अपने धर्मग्रंथ में, जो लगभग समान शब्दों में विन. iii. 112 और iv. 225 में मिलता है (यह धर्मग्रंथ मिनायेफ, पैट. 69 में भी मिलता है), वे वत्थाना का प्रयोग संघ के सदस्य द्वारा किए गए अपराध के प्रायश्चित और मुक्ति की तीनों विधियों (परिवास, मनत्ता, आभना) को समाहित करने वाले एक सामान्य शब्द के रूप में करते हैं। तुलना करें चाइल्डर्स, एसवी, संघदिसेसो; विन. v. 118. नीचे भी देखें, § 1332।

27. समापत्तियाँ, या आत्म-एकाग्रता की विभिन्न अवस्थाएँ, जिनमें यहाँ वर्णित ध्यान और समाधि के अन्य रूप शामिल हैं, बौद्ध धर्म से पूर्व की हैं और बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और संस्कृति में प्रयुक्त हैं। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ इन्हें केवल आठ के रूप में संदर्भित नहीं किया गया है (देखें चाइल्डर्स, एसवी) (वैसे, अंगुत्तरा के अट्ठक-निपात में भी इनका उल्लेख नहीं है)। यह भी स्पष्ट नहीं है कि उत्तर में उद्धृत तीन समापत्तियाँ पंचमुखी ध्यान की पहली तीन अवस्थाओं से पूर्णतः मेल खाती हैं।

यदि ऐसा है, और यदि हम यह मान लें कि इस शब्द में उन तीन चरणों से अधिक चरण शामिल हैं, तो सुभूति द्वारा चार विमोखों को शामिल करने के अनुसार, इससे हमें नौ समापत्तियाँ प्राप्त होंगी। फिर, एम. आई. 301 में, पाँचवें विमोख - अंतिम - को समापत्ति कहा गया है, जिससे इनकी संख्या दस हो जाती है। तुलना करें एम. आई. 398-400।

28. किसी न किसी प्रकार की समाधि से उभरने (शाब्दिक रूप से, वुत्थाना से उठने; देखें ऊपर, § 1330) की क्षमता को, साइ. द्वारा, उस समय के पूर्वनिर्धारण के रूप में निर्दिष्ट किया गया है जब विषय स्वयं को जागृत करना चाहता था, और इच्छा के इस कार्य को पूरा करना - एक समय जिसे खगोलीय पिंडों की गतियों के संदर्भ में बताया गया है।
'जब चंद्रमा, सूर्य और नक्षत्र अमुक स्थान पर पहुंच जाएंगे, तब मैं जागूंगा।'
वुत्थाना के इस प्रयोग पर, एम. आई. 302; ए. iii. 311; एस. iii. 270 देखें। यहाँ निर्दिष्ट ध्यान के तरीकों पर, ऊपर, § 160 आदि देखें। प्राप्ति (समापत्ति) में कौशल को स्वयं अप्पना या केंद्रीय अवधारणा (ध्यान में) के साथ-साथ परिक्कम्मा या प्रारंभिक बातों के विवेक को प्रभावित करने के विज्ञान के रूप में समझाया गया है।

29.धातुयो। इस मामले में कौशल में अधिग्रहण, ध्यान, श्रवण और स्मरण (निर्देश पूरी तरह से मौखिक होता है) और भेदभाव शामिल हैं। असल. 395.

30.सीप. 5, एन. 1.

31. धारा 597 आदि देखें।

32. योग्यता के अंतिम तीन प्रकारों में सभी के लिए समान छह कारकों को अलग किया गया है:
अधिग्रहण,
ध्यान,
श्रवण,
तुलना (शाब्दिक रूप से, मापन),
प्रवेश,
चिंतन।
इनमें से पाँचवें को छोड़कर बाकी सभी सांसारिक चिंतन विषयों पर आधारित हैं; अंतर्मन अलौकिक विषयों से संबंधित है; ध्यान और तुलना दोनों प्रकार के चिंतन के मिश्रण पर आधारित हो सकते हैं। अस्लायथ 395. (इस अंश से यह या कोई भी अर्थ निकालने के लिए, संपादित साइ. में कुछ संशोधन आवश्यक हो गया है।)

33. इस प्रसिद्ध सूत्र पर साइ. केवल इतना ही टिप्पणी करता है कि
'यह पटिच्चसमुप्पदा पर विभंग में प्रकट होगा।'
असल. 395.

34. कौशल की यह प्रजाति (थानाकुसलता, अत्थानाकुसलता) बुद्ध की दस शक्तियों में से एक थी। देखें एम. आई. 69. साइ. (पृष्ठ 395) विशिष्ट प्रक्रियाओं से प्राप्त विशिष्ट परिणामों की एक श्रृंखला के रूप में इंद्रिय-ज्ञान को उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत करता है; साथ ही वनस्पति जगत में कारण और प्रभाव को भी।

35. इस और पिछले प्रश्न में प्रयुक्त शब्द 'अज्जवो' और 'मद्दवो' क्रमशः 'उज(ज)ुकता' और 'मुदुतता' के पर्यायवाची हैं (धारा 50, 51, 44, 45)। अंतिम शब्द को 'अभिमान का अभाव' के रूप में व्यक्त किया गया है। (असल. 395)।

36. धैर्य (खन्ती) दस परमिता में से एक है। जाट. i., पृ. 22, 23. ए. iii. 254, 255 भी देखें। अंतिम तीन पर्यायवाची 'घृणा' के अंतिम तीन पर्यायवाची के विपरीत हैं। ऊपर देखें, §§ 418, 1060. ए. iii. 248 में, अज्जावो, जावा नो, मद्दवो, खन्ती और सोरच्चम को एक शुद्ध नस्ल के घोड़े का धम्म बताया गया है।

37. संयम (सोरच्चम) को 'दुराचार से दूर रहना' के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है कर्म में तीन प्रकार के, वाणी में चार प्रकार के और आजीविका में चार प्रकार के अपराधों से बचना। खिस डेविड्स, 'मैनुअल ऑफ बुद्धिज्म', पृष्ठ 142 देखें। मन के तीन अपराधों का उल्लेख नहीं किया गया है, इसलिए सोरच्चम स्पष्ट रूप से केवल व्यक्ति की आत्म-अभिव्यक्ति पर लागू होता है। असल. 396.

38. सखल्यम, सम्मोदक और मुदु द्वारा व्याख्या की गई। वही। अभिवादन पर शिष्टाचार के आदान-प्रदान के लिए सामान्य सूत्र देखें, जैसे, एम.आई. 16.

39.अंडका। यह और इसके बाद के शब्द एम.आई. 286 में मिलते हैं। मॉरिस के नोट्स, जेपीटीएस, 1884, 1886, 1889 देखें। बुद्धघोष की टिप्पणी केर्न की इस परिकल्पना की आवश्यकता को समाप्त कर देती है कि जब यह शब्द वाणी के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है, तो इसे कंदका पढ़ा जाना चाहिए, या मॉरिस की इस परिकल्पना की कि इसे चंदका पढ़ा जाना चाहिए। वे कहते हैं (असल. 396): जैसे किसी दोषपूर्ण (सदोस) वृक्ष में उभार (अंडकानी; उभार, मस्से) निकलते हैं, वैसे ही दोषपूर्णता के कारण, घमंड और उद्दंडता भरे शब्दों से उभार (अंडका) उत्पन्न होते हैं।
एम.आई. 286 में 'अप्रिय' (असाता) को छोड़ दिया गया है।
'ग्रेटिंग' = कक्कासा = (असल. इहिद.) पुतिका।
कुछ हद तक बनावटी अलंकार में कर्कश या खुरदरी वाणी की तुलना सड़े हुए पेड़ के चूर्ण-चूर्ण ऊतक के प्रवेश से कान में होने वाली अप्रिय अनुभूति से की गई है (इसलिए टार्न, कन्ना नहीं!)। 'अपमानजनक', आदि (परभिसज्जनी); मानो कांटों की एक छिपी हुई शाखा अंगों को घायल कर रही हो और मार्ग अवरुद्ध कर रही हो। इहिद।

40.Innocuous = nela = niddoa. Asl. 397.

41.अर्थात्, विभिन्न प्रकार की मिठास से।

42. पोरी, यानी शहरी बोलचाल, या तो इसलिए कि इसमें अच्छे विचार होते हैं (गुण अ), या इसलिए कि इसका प्रयोग सुसंस्कृत लोग करते हैं, या यह शहरी बोलचाल के कारण होता है। क्योंकि शहरवासी उचित शब्दों का प्रयोग करते हैं, पिता को पिता और भाई को भाई कहते हैं।

43. पतिसंथारो, अमीसेना और धम्मेना दोनों, पर बुद्धघोष (असल. 397-399) ने विस्तार से चर्चा की है। वे हमेशा की तरह इस शब्द की व्युत्पत्ति—फैलाव या प्रसार—को लेते हैं और इसे दया और उदारता के माध्यम से दाता और प्राप्तकर्ता के बीच की दूरी को पाटने या समाप्त करने के रूप में दर्शाते हैं। दोनों को संघ का सदस्य माना जाता है, और वर्णित कई आतिथ्यपूर्ण और विनम्र सेवाएँ विन. 2:210, 211 में मिलती हैं। मिल. 409 भी देखें।

44.अगुत्तद्वराता। यह और धारा 1347 में विपरीत दृष्टिकोण बौद्ध सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण सूत्र का गठन करते हैं, और डी.आई. 70, एम.आई. 180, 269, आदि में पाए जाते हैं। इसे केवी 426, 464 में भी उद्धृत किया गया है।

45.के. मुद्रित पाठ में दिए गए पुग्गलो को छोड़ देता है। बाद वाला इसे संबंधित उत्तर, § 1347 में छोड़ देता है।

46. यह एक ऐसा अंश है जो स्वाभाविक रूप से टीकाकार से मनोवैज्ञानिक योग्यता की मांग करता है (असली. 399, 400)।

यहां "आंख" शब्द संपूर्ण क्रियाशील कारण (करण-वसेन) को दर्शाता है, अर्थात् उस दृश्य बोध को जो सामान्यतः स्वीकृत रूप-दर्शन क्षमता है। जैसा कि प्राचीन विद्वानों ने कहा है:
आँख रूप नहीं देखती, क्योंकि वह बुद्धि (चित्तम) के स्वभाव की नहीं है; बुद्धि, आँख के स्वभाव की न होने के कारण, रूप नहीं देखती (यहाँ 'चित्तम' गलत तरीके से विराम चिह्नित किया गया है)।
हम इंद्रियों से युक्त मन से 'द्वार-वस्तु' पर प्रभाव डालते हुए देखते हैं (द्वाराममन संघट्टनेन पसादवत्थुकेना चित्तेना पस्साति), अर्थात् समग्र जीव या तंत्र से, जैसे हम कहते हैं, "वह धनुष से तीर चलाता है"।

47. निमित्तगाही और अनुव्यंजनगाही के विषय में, डी. i. 70 में 'बुद्ध के संवाद', i. 80 में इस विशेष अंश से संबंधित टिप्पणियाँ देखें। पूर्व शब्द को अत्थसालिनी में उस व्यक्ति के कार्य के रूप में परिभाषित किया गया है जो आकर्षक आदि को देखकर या जो विशिष्ट रूप से स्त्री या पुरुष है, उसे तीव्र इच्छा से प्राप्त करने का प्रयास करता है।

48.भोजन अमात्तनफिउता = बिना सोचे-समझे निरंतर लिप्त रहना... जिसमें माप या सीमा का उल्लंघन हो। असल. 402.

49.अहरम 'खाद्य और पेय दोनों'. असल. 401.

50. दावया, इत्यादि। यानी, वह नृत्य कर सकता है या कलाबाजी कर सकता है, इत्यादि। या राजाओं और दरबारियों की तरह जो अपने 'जीवन के अभिमान' और मर्दानगी को बढ़ाने के लिए भोजन करते हैं, इत्यादि। असल. 402, 403.

51.विहिमसुपरातिया। विहिंसा = अभुत्ता-पक्काय उपपज्जनक-खुदा। असल. 403.

52.ब्रह्मचर्यानुगहया।

53. संयमी जीवन का यह सूत्र (जैसा कि ट्रेंकनर इसे 'पाली मिसक', 74 कहते हैं) एम. i. 355; एस. iv. 104, 176, आदि; और मिल. 367 में मिलता है। असल में टिप्पणियाँ प्रश्नगत वेदना की अधिक विशिष्ट और कम उदात्त व्याख्या प्रकट करती हैं, जो अंतिम नामित अंश के अनुवादक (रीस डेविड्स, 'राजा मिलिंदा के प्रश्न', ii. 231) द्वारा ली गई व्याख्या से भिन्न है।
पूर्व मत के अनुसार, पुराणई च वेदनम् का अर्थ है भोजन न करने के कारण होने वाली भूख, और नवई च वेदनम् का अर्थ है अत्यधिक भोजन करना या पर्याप्त भोजन करना। (आध्यात्मिक 403, 404)। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, भूख की लालसा से मुक्त व्यक्ति की आदर्श स्थिति, तृप्ति या भरपेट भोजन करने की सकारात्मक अनुभूति नहीं, बल्कि भूख न लगना और प्यास न लगना जैसी अपेक्षाकृत नकारात्मक अनुभूति होगी। 'आराम' (भोजनसंतोष) के अंतर्गत, जो लोग इसे प्राप्त करने में असफल रहते हैं, उन्हें पाँच प्रचलित उपनामों से बड़े उत्साह से वर्णित किया गया है - 'रुको, जैकेट!', 'घूमने वाला' (क्योंकि खाने के बाद उठने में असमर्थ), आदि। संयमी प्रक्रिया को भी अन्य श्रेणियों में विस्तार से वर्णित किया गया है। (आध्यात्मिक 404)।

54. इस उत्तर (मुत्थासच्चम का वर्णन करते हुए) में कुछ संशोधन की आवश्यकता है। अनुस्सति को असति होना चाहिए, और अपिलापनाता और अ-सम्मुस्सनाता में निषेधात्मक 'अ' को हटा देना चाहिए। के. (यहाँ केवल) पामुस्सनाता पढ़ता है - जबकि साइ. ऐसा नहीं करता - और अप्पतिस्सति के बाद असति को दोहराता है। अनुच्छेद 14 और फुटनोट देखें।

55.के. असम्मुस्सनाटा, अप्पामुस्सनाटा के लिए पढ़ता है। पिछली टिप्पणी देखें।

56. पतिसंखनाबलम्। यह वर्तमान ग्रंथ में वर्णित 'शक्तियों' के किसी भी समूह में शामिल नहीं है (देखें धारा 1, आदि), और न ही यह पन्नाबलानी (धारा 29) का हिस्सा है। हालांकि, यह ए. iv. 223 में दी गई आठ भिन्न प्रकार की शक्तियों में शामिल है, जो विद्वान या बहुसुतो की विशिष्ट बलम् के रूप में मानी जाती है। विन. i. 213 में पतिसंख के प्रयोग की तुलना करें। वर्तमान संदर्भ में, यह सहसंबंधी शब्द के रूप में दस्सानम् (अंतर्दृष्टि) का स्थान ले चुका प्रतीत होता है; ऊपर देखें, धारा 1002-1012, 1254-1267।

57. धारा 285, 287 आदि देखें।

58. इस और निम्नलिखित संदर्भों में 'उस अवसर पर' वाक्यांश को हटा दिया जाना चाहिए।

59.समथ-निमित्तम्। तम अकरम गहेत्वा पुना पवत्तेततब्बस्सा समथस्सा निमित्त-वसेन द्वारा समझाया गया। असल. 53.

60.सिलवीपट्टी. सीएफ §§ 1363, 1342.

61. दित्थिविपट्टी. देखें § 1215.

62.सिला-संपदा. सीएफ § 1342.

63. धारा 16 के अनुसार जारी रखें।

64. धारा 1363 देखें। सैद्धांतिक रूप से पवित्रता सैद्धांतिक प्रगति के सापेक्ष पूर्णता को इंगित करती प्रतीत होती है, जबकि नैतिक मामलों में ऐसा भेद स्पष्ट रूप से लागू नहीं होता है। साई. इस भेदहीनता को केवल यह कहकर स्पष्ट करते हैं कि धारा 1363 में पतिमोक्खा के संयम के 'शील' का उल्लेख है, जबकि धारा 1365 में विशुद्धि-शील की बात की गई है।

65.के. में यहाँ kammassakatam iianam लिखा है— एक विचित्र वाक्यांश। बुद्धघोष, अपनी व्याख्या के अनुसार, kamma-ssakata-nanam (Asl. 406, 407) या -ssakata- या -ssakata m fianam (Asl. 406) पढ़ते हैं। इस sakata या sakatarn का संगत विशेषण नागसेना द्वारा सुत्त पिटक से उद्धृत अंश में मिलता है (Mil. i. 45; cf. Khys Davids' trans., i. 101, n. 1; asl. 66 भी देखें), अर्थात् kammassaka (satta); यानी, अनुवादक के अनुसार, 'प्रत्येक का अपना कर्म'।
चूंकि यह अंश मज्झिमा एन. के अभी तक अप्रकाशित 135वें सुत्त में आता है, इसलिए पापंचा सुदानी में इस पर अत्थसालिनी की तुलना में अधिक स्पष्ट टिप्पणी मिलने की संभावना है।
दूसरे का अर्थ यह है: [इस वाक्यांश का अर्थ है] यह जानने का विज्ञान कि यह कर्म (या क्रिया) सकम है, वह कर्म सकम नहीं है। इस संदर्भ में, सभी बुरे कर्म, चाहे वे स्वयं द्वारा किए गए हों या किसी अन्य द्वारा, सकम नहीं हैं।
ऐसा क्यों? क्योंकि यह उपयोगिता को नष्ट करके अनुपयोगिता उत्पन्न करता है। परन्तु अच्छे कर्म, जिनका विपरीत प्रभाव होता है, उन्हें सकम कहा जाता है। जैसे कोई धनवान व्यक्ति यात्रा के दौरान विभिन्न शहरों में, जहाँ उत्सव चल रहे हों, रुककर अपनी इच्छा अनुसार दान करने का निश्चय करके उन उत्सवों में भाग लेता है और सुरक्षित रूप से जंगल से निकल आता है, ठीक उसी प्रकार कर्म के सकम के ज्ञान में निपुण प्राणी, जब वे पुनर्जन्म के योग्य कर्म संचित कर लेते हैं, तो सुरक्षित और सहजता से असंख्य संख्या में भी अरहतत्व प्राप्त कर लेते हैं।
अब यदि यहाँ 'सकम' का अर्थ, जैसा कि आमतौर पर होता है, 'स्वयं का' है, तो भी यह इस कथन की कोई व्याख्या नहीं है कि किसी के बुरे कर्म स्वयं के नहीं होते। और यह दृष्टांत इस कथन को कैसे सिद्ध करता है?

66. उपरोक्त प्रश्न और उत्तर के साथ 'धम्म संगानी' की विधि का समापन होता है। इसके बाद ग्यारह विविध वाक्यांश या शब्द आते हैं, जो विधि के किसी भी भाग का विषय नहीं हैं, और यहाँ एक टीका के रूप में दिए गए हैं। इनमें से प्रत्येक को या तो विधि में दिए गए उत्तरों से संदर्भित किया गया है, या संक्षेप में समझाया गया है, और संभवतः ये सभी बौद्ध नैतिकता की तकनीकों के रूप में सुत्त पिटक से लिए गए हैं।
संभवतः ये दोनों मिलकर एक ही वाक्य बनाते हैं, जो ज्ञान और मुक्ति के स्वरूप का स्पष्ट और संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करता है। बुद्धघोष ने इस प्राचीन टीका के अंश पर कोई विशेष जानकारी नहीं दी है, लेकिन विभंग की टीका में 'आंदोलन' विषय के विभाजन की व्याख्या करने का वादा किया है।

67. यथा दित्तिस्सा च पदानम्। संभवत: यथादित्तिस्सा पढ़ा जाना चाहिए; हालांकि, के. ने दोनों शब्दों को अलग कर दिया है। सी.वाई. ने केवल इतना कहा है कि इसमें जो ऊर्जा लगाई गई है वह बुद्धिमान या वैज्ञानिक है, और इसे सांसारिक या उच्चतर चीजों में लगाया जा सकता है।

68. ए. ii. 15, 16, 74 देखें। यह देखा जाएगा कि ए. ii. के पृष्ठ 15 पर सम्मपधानानी के रूप में वर्णित इच्छा-संस्कृति के चार तरीके (और ध. एस. में उद्धृत) पृष्ठ 74 पर क्रमशः आत्म-संयम, उच्चारण, संवर्धन (या विकास) और संरक्षण के लिए संघर्ष कहलाते हैं। फिर भी पृष्ठ 16 पर इन चारों शब्दों को अलग-अलग अर्थ दिए गए हैं।

69. यह और अगला वाक्यांश (vii.) अ. i. 50 में लगातार आते हैं। धर्मनिष्ठ व्यक्ति में संघ को छोटे दान देने से लेकर बड़े दान देने तक, और अंत में स्वयं संघ में प्रवेश करने और अरहत पद प्राप्त करने तक, उदात्त असंतोष की प्रगति का संक्षेप में वर्णन किया गया है, असल. 407. अंतिम उपलब्धि विजेता को परम संतुष्ट की उपाधि प्रदान करती है।

70.तुलना करें § 13.

71.चित्तस्सा च अधिमुत्ती = विमुत्ती (मुक्ति)। डी. मैं. 174.

72. मेरा मानना है कि मूल मैनुअल में यह एकमात्र ऐसा अंश है जहाँ यह शब्द मिलता है। यह इस तथ्य के संदर्भ में रोचक है कि यह मूल टीका के परिशिष्ट में मिलता है, और यह भी कि पाठ में आगे आने वाले पुराने सारांश में यह शब्द बार-बार आता है। परिशिष्ट I देखें।
टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> परिशिष्ट 1

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण,
परिशिष्ट 1

परिशिष्ट I
[पृष्ठ 360] पुस्तक III का सार या संक्षिप्त व्याख्या (§§ 981-1295), जिसका शीर्षक है व्याख्या का विभाजन या स्पष्टीकरण (अत्थुद्धारो)।

धम्मसंगनी के मूल पाठ के तुरंत बाद लगभग 230 प्रश्नों और उत्तरों का एक परिशिष्ट दिया गया है। प्रश्न हूबहू 'उन्मूलन' भाग, यानी तृतीय खंड के प्रश्नों के समान क्रम में हैं, लेकिन इनमें नैतिक कारकों या दोषों की विभिन्न सूचियों, जैसे कि कारण (हेतु) की विविधता, या 'नशीले पदार्थों' आदि के विवरण पर कोई प्रतिवाद नहीं है। उत्तर अधिकतर तृतीय खंड के उत्तरों की तुलना में अधिक संक्षिप्त हैं और उनकी भाषा भी लगभग भिन्न है, जिनमें कई ऐसे शब्द शामिल हैं जो बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल के बाद तकनीकी उपयोग में आए।

स्वयं नियमावली में इस परिशिष्ट को कोई विशिष्ट शीर्षक नहीं दिया गया है। संभवतः अंतिम घोषणा 'धम्मसंगनिप्पकरणी समत्ता' का तात्पर्य इससे नहीं, बल्कि संपूर्ण ग्रंथ से है। हालाँकि, 'अत्थसालिनी' (पृष्ठ 409 और आगे) में इस खंड को पाठ नहीं, बल्कि टीका माना गया है और इसे अत्थकथाकांडम या व्याख्यात्मक भाग कहा गया है; और एक पूर्व के अंश में इसे अत्थुद्धरो (आस्ल 6) युक्त चौथा विभत्ती कहा गया है। परंपरा के अनुसार, यह सारिपुत्त का कार्य है और उन्होंने इसे 'निक्खेप-कांडम' (तीसरा खंड, अर्थात् लगभग संपूर्ण नियमावली) की विषयवस्तु को उस शिष्य के लिए स्पष्ट करने के उद्देश्य से संकलित किया था जो अन्यथा इसे समझ नहीं पाता था।

ऐसा होने पर, और उत्तरों से कोई नई जानकारी न मिलने पर

[पृष्ठ 361] चर्चा किए गए विषयों के संदर्भ में, मैंने इनका अनुवाद करना उचित नहीं समझा। साथ ही, यह उचित लगा कि शब्दावली में मौजूद विशिष्ट, भले ही व्यक्तिगत न हों, अंतरों को स्पष्ट कर लिया जाए, ताकि पाठक बौद्ध धर्म की शब्दावली या अवधारणाओं के इतिहास के लिए उपयोगी किसी भी बात से वंचित न रह जाए। मैंने कुछ उत्तरों का अनुवाद भी दिया है, जहाँ लगभग समान कथन प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त शब्दों में अंतर ही स्वयं मैनुअल की भाषा को समझने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

पाली भाषा में प्रयुक्त शब्दों के संदर्भ में, जब तीनों रूपों, या सभी पुनर्जन्मों के लोकों, साथ ही साथ उस उच्चतर संतत्वपूर्ण आकांक्षा के जीवन का सामूहिक रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता होती है, जिसका पुनर्जन्म से कोई संबंध नहीं है, तो इन चारों को अब अलग-अलग रूप से इसके या उसके अवक्रम और अविभाजित के रूप में नहीं बोला जाता है, बल्कि इन्हें बस 'चार भूमि' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

फिर से, 'निर्वाण' (निब्बानम) शब्द हमेशा 'अमिश्रित तत्व' शब्द के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। परिशिष्ट II देखें।

'रूप' 'सभी रूप' की जगह लेता है (देखें § 983 पासिम), और 'सन्यासी के जीवन के फल' शब्द 'मार्गों के फल' की जगह लेता है। (देखें § 992 पासिम[1]) बाद वाला परिवर्तन स्वयं नियमावली में केवल एक बार आता है, अर्थात् § 1016.[2]

अब पुस्तक प्रथम में वर्णित अच्छे और बुरे विचारों के उन 'प्रकारों' का बार-बार उल्लेख किया गया है। इन्हें चित्तणी नहीं, बल्कि चित्तुप्पदा, या विचार की उत्पत्ति कहा गया है, यह शब्द मैनुअल में केवल एक बार शीर्षक के रूप में आया है। (ऊपर देखें, पृष्ठ 164)

तीसरे खंड में बार-बार उल्लेख किए गए स्कंधों का यहाँ कभी जिक्र नहीं किया गया है।

'सह-विषाक्त पदार्थ' (सासावो) शब्द का प्रयोग अब विषाक्त पदार्थ समूह के विश्लेषण को छोड़कर कहीं और नहीं किया जाता है।

एब्लेटिव का बहुत बार उपयोग -टू (जब

[पृष्ठ 362] नियमावली में संज्ञावाचक विशेषण का प्रयोग — उदाहरण के लिए, कामवकारम कुसलम् के स्थान पर कामवकार-कुसलतो — बाद की मुहावरेदार शैली को दर्शाता है। मेरा मानना है कि नियमावली स्वयं इस अपादान कारक का प्रयोग केवल दो बार करती है, अर्थात् §§ 1062, 1071 में: विपकतो = परिणाम के रूप में, या परिणाम के माध्यम से।

नियमावली में 'किरिया' शब्द का प्रयोग बहुत कम होता था, लेकिन अब इसका प्रयोग अत्यंत बार किया जाता है।

अब इन तीन प्रश्नों पर विचार करते हुए

(क) अच्छी,
(ख) बुरी, और
(ग) अनिश्चित अवस्थाएँ

जिसके साथ पुस्तक III (धारा 981-983, और इस मामले में स्वयं नियमावली) शुरू होती है, हम क्रमानुसार निम्नलिखित संक्षिप्त उत्तर पढ़ते हैं:

(क) चारों स्तरों में अच्छा (भूममिषु)।

(ख) बुरे विचार की बारह उत्पत्ति। (
ग) चारों स्तरों में परिणाम;
तीन स्तरों में पूर्ण अनिश्चितताएँ[3];[4]
रूप और निर्वाण भी।

अब, बारह प्रकार की बुरी अवस्थाओं के विश्लेषण (पुस्तक I, भाग I, अध्याय II) को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि ये संपूर्ण प्रश्न को समाहित करती हैं, क्योंकि इसमें केवल एक ही 'स्तर' - इंद्रियजन्य अस्तित्व - शामिल है। दूसरी ओर, अच्छे और अनिश्चित धर्मों में चारों स्तर शामिल होते हैं, और इनका उत्तर केवल आठ प्रकार के अच्छे विचारों (अध्याय I) के संदर्भ में नहीं दिया जा सकता, न ही विचार उत्पत्ति के संदर्भ में।

प्रश्नों की अगली त्रयी (पुस्तक III, §§ 984-986) का उत्तर ऐसी भाषा में दिया गया है जो पूरे काम में केवल एक अन्य अंश (§ 1268 इत्यादि) में मिलती है, और जो इतनी अस्पष्ट है कि किसी भी समकक्ष अनुवाद का स्वागत है।

'सुखद भाव से जुड़ी अवस्थाएँ':— 'इंद्रिय जगत में सुख से ग्रस्त चार प्रकार के विचार, जो अच्छे कर्मों से संबंधित हैं।
चार प्रकार के विचार, जो बुरे कर्मों से संबंधित हैं।
छह प्रकार के विचार, जो इंद्रिय जगत में अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं, साथ ही पाँच प्रकार के विचार, जो पूर्ण हो चुके हैं।[5]
रूप
के स्वर्ग से संबंधित त्रिगुण और चौगुण [6] ध्यान, चाहे वह अच्छे कर्म के रूप में उत्पन्न हो, अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न हो या पूर्ण अवस्था के रूप में।
उच्च आदर्श से संबंधित त्रिगुण और चौगुण ध्यान, चाहे वह अच्छे कर्मों के रूप में उत्पन्न हो या फलस्वरूप।
इससे उत्पन्न सुखद भाव को इसमें शामिल नहीं किया जाता है।' 'दुखद भाव से जुड़ी अवस्थाएँ':— 'उदासी से ग्रस्त दो प्रकार के विचार। शरीर का ज्ञान, जो पीड़ा से ग्रस्त होता है। इससे उत्पन्न पीड़ा भाव को इसमें शामिल नहीं किया जाता है।' 'तटस्थ भाव से संबंधित अवस्थाएँ':— 'इंद्रिय जगत में अच्छे (कर्म) से संबंधित, निस्वार्थ भाव से युक्त विचार की चार उत्पत्तियाँ।
छह, जो बुरे (कर्म) से संबंधित हैं।
दस, जो इंद्रिय जगत में अच्छे (कर्म) के परिणामों से संबंधित हैं।[7]
छह, जो बुरे (कर्म) के परिणामों से संबंधित हैं।[8]
छह, जो पूर्ण विचार से संबंधित हैं।[9]
चौथा ध्यान, जो रूप के स्वर्ग से संबंधित है, चाहे वह अच्छे (कर्म), परिणाम (अच्छे कर्म) या पूर्ण अवस्था के रूप में उत्पन्न हो।
निराकार अस्तित्व से संबंधित चार ध्यान,[10] चाहे वे अच्छे (कर्म), परिणाम (अच्छे कर्म) या पूर्ण अवस्था के रूप में उत्पन्न हों।
उच्च आदर्श से संबंधित चौथा ध्यान, चाहे वह अच्छे (कर्म) या परिणाम (अच्छे कर्म) के रूप में उत्पन्न हो।
इसके साथ उत्पन्न होने वाली तटस्थ भावना को इसमें शामिल नहीं किया जाता है।'

'यह कहना उचित नहीं है कि ये तीन प्रकार की भावनाएँ [पृष्ठ 364] स्वयं से, या रूप से, या निर्वाण से जुड़ी हुई हैं।'

धारा 1007-1012 के प्रश्नों के उत्तर (धारा 1009 के प्रश्न को छोड़कर) वहां दिए गए उत्तरों की तुलना में अधिक सटीक हैं:

'अंतर्दृष्टि द्वारा दूर की जा सकने वाली अवस्थाएँ':— 'विचारों और मतों से जुड़ी विचार की चार उत्पत्तियाँ, उलझन से युक्त विचार की उत्पत्ति।' 'संस्कृति द्वारा दूर की जा सकने वाली अवस्थाएँ [1007]':— 'उत्तेजना से युक्त विचार की उत्पत्ति।'

'विचारों की वे उत्पत्तियाँ जो कामवासना से ग्रस्त हैं, लेकिन विचारों और मतों से असंबद्ध हैं, और वे दो उत्पत्तियाँ जो उदासी से ग्रस्त हैं:

— ये अवस्थाएँ अंतर्दृष्टि या संस्कृति द्वारा दूर की जा सकती हैं। 'वे अवस्थाएँ जो न तो अंतर्दृष्टि से और न ही संस्कृति से दूर की जा सकती हैं': — 'चारों स्तरों में अच्छा; चारों स्तरों में परिणाम; तीनों स्तरों में पूर्ण अनिश्चितताएँ; रूप और निर्वाण।' जिन अवस्थाओं के कारणों को अंतर्दृष्टि, संस्कृति या दोनों में से किसी से भी दूर किया जा सकता है, उनका वर्णन एक ही शब्दों में किया गया है। हालाँकि, मोह (सुस्ती) का नाम अस्पष्ट रूप से ऐसी अवस्था के रूप में लिया गया है जिसके कारण को दोनों में से किसी से भी दूर नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न 1022-1024 के उत्तर वहां प्रयुक्त शब्दों से बिल्कुल भिन्न शब्दों में दिए गए हैं: —

(क) 'सीमित विचार विषयों वाली अवस्थाएँ': - 'इंद्रियजन्य अस्तित्व का सभी परिणाम; वह विचार जो पूर्ण क्रिया है; वह प्रतिनिधिक संज्ञान जो पूर्ण क्रिया है लेकिन कारणों से मुक्त नहीं है,[11] और सुख के साथ है'। (ख) 'व्यापक दायरे के विचार विषयों वाली अवस्थाएँ': - 'अनंत बुद्धि का क्षेत्र; वह क्षेत्र जहाँ [पृष्ठ 365] न तो बोध है और न ही अबोध'।

(तुलना कीजिए धारा 267, 268) (ग) 'अनंत विचार विषयों वाले राज्य:' —

'चार मार्ग जो अविभाज्य हैं, और संन्यासी के जीवन के चार फल।' 'ज्ञान से विमुख और इंद्रिय जगत में अच्छे (कर्म) से संबंधित विचार की चार उत्पत्ति, और ज्ञान से विमुख,
पूर्ण कर्मों से संबंधित विचार की चार उत्पत्ति, और सभी बुरे (कर्म) कर्म।'

— ये अवस्थाएँ (a) या (b) हो सकती हैं, लेकिन (c) नहीं, और इन्हें (a) और (b) दोनों नहीं कहा जा सकता है।

'[पुनः,] ज्ञान से संबंधित और इंद्रिय जगत में अच्छे (कर्म) से संबंधित विचार की चार उत्पत्तियाँ,
ज्ञान से संबंधित पूर्ण विचारों की चार उत्पत्तियाँ,
रूप जगत से संबंधित चौथा ध्यान, चाहे वह अच्छे (कर्म) के रूप में उत्पन्न हो या पूर्ण विचार के रूप में,
और पूर्ण तथा कारणों से मुक्त तथा अनासक्ति से युक्त प्रतिनिधि ज्ञान:

— ये अवस्थाएँ (a), या (b), या (c) हो सकती हैं, लेकिन इन्हें (a) और (b) और (c) कहना उचित नहीं है।

अंत में, रूप के स्वर्गों से संबंधित त्रिगुण और चौगुण ध्यान, चाहे वह अच्छे कर्म के रूप में उत्पन्न हो, परिणाम के रूप में हो, या पूर्ण विचार के रूप में हो,
चौथे ध्यान के परिणाम हों,
और निराकार अस्तित्व से जुड़े पहले दो ध्यान हों, अर्थात् अनंत अंतरिक्ष और अनंत शून्यता के क्षेत्र।

— इन अवस्थाओं को (क) और (ख) तथा (ग) कहना उचित नहीं है। रूप और निर्वाण विचार के विषय से रहित हैं।

एक और समूह का उल्लेख करना उचित होगा जो पूछे गए विषय के संदर्भ में नहीं, बल्कि अन्य संदर्भों में उत्तर देता है। यह दो त्रिक हैं जो अनुच्छेद 1044-1049 से संबंधित हैं। अट्ठकथा में निम्नलिखित लिखा है: 'वे अवस्थाएँ जो...'

(क) व्यक्तिगत (या व्यक्तिपरक),

(ख) बाह्य,
(ग) व्यक्तिगत बाह्य।

'रूप को छोड़कर, जो [पृष्ठ 366] इंद्रियों से बंधा नहीं है,[12] सभी अवस्थाएँ व्यक्तिपरक या बाह्य या व्यक्तिपरक-बाह्य हो सकती हैं। जो रूप इंद्रियों से बंधा नहीं है, और निर्वाण दोनों बाह्य हैं।' 'जिन अवस्थाओं में

(क) विचार का एक व्यक्तिपरक विषय,
(ख) विचार का एक बाह्य विषय,
(ग) विचार का एक व्यक्तिपरक-बाह्य विषय: —

'(ए)
असीम बौद्धिकता का क्षेत्र और वह क्षेत्र जहाँ न तो अनुभूति है और न ही अअनुभूति।
(बी)
रूप के स्वर्गों से संबंधित त्रिविध और चौविध ध्यान, चाहे वह अच्छे कर्म के रूप में उत्पन्न हो, अच्छे कर्मों के परिणाम स्वरूप हो, या पूर्ण विचार के रूप में हो, वह भी चौथे ध्यान, अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र, अविभाज्य चार मार्गों और संन्यासी के जीवन के चार फलों का परिणाम है:
— इन अवस्थाओं में विचार का एक बाह्य विषय होता है।
'इंद्रिय जगत से संबंधित रूप, अवस्था, अच्छे, बुरे और अनिश्चित को छोड़कर, और रूप के स्वर्ग से संबंधित चौथे ध्यान को छोड़कर, चाहे वह अच्छे (कर्म) के रूप में उत्पन्न हो या पूर्ण विचार के रूप में:
— ये सभी या तो (a), (h), या (c) हो सकते हैं।
लेकिन यह कहना उचित नहीं है कि शून्यता का क्षेत्र तीनों ही है।
'रूप और निर्वाण विचार के विषय नहीं हैं।'
यहां एक अतिरिक्त रुचि का बिंदु है। दूसरे और चौथे अरुप्पज्जना को विशुद्ध आत्मनिरीक्षण के अभ्यास के रूप में परिकल्पित किया गया है, और इसमें किसी भी प्रकार के विश्व-संबंधी विचार या वृहद ब्रह्मांडीय बोध का कोई निहितार्थ नहीं है, और न ही 'भावुक आत्मा' के अन्य लोकों में लीन होने का कोई संकेत है।

- फुटनोट:
1. संभवतः पांडुलिपियों में हुई त्रुटि के कारण, मुद्रित पाठ में, धारा 1597 में, समन्नाफलानी के स्थान पर झनाबलानी लिखा है। तुलना करें. के.

2. ऊपर त्रुटिवश [1015] के रूप में मुद्रित हुआ।

3. किरियव्यक्तम्। परिचय देखें viii.

4.अर्थात्, अर्थ को छोड़कर (पुस्तक 1, भाग III, अध्याय 2 देखें)।

5.के. में लिखा है kamavacara kusalassa vipakato ca kiriyato ca panca. लेकिन §§ 469 और 568 के संदर्भ से पता चलता है कि विश्लेषण क्रमशः छह और पांच देता है।

6. उच्चतम ध्यान को छोड़कर, क्योंकि यह 'सुखद अनुभूति' के साथ असंगत है।

7. कामवकार-कुसलस्सा पढ़ें।

8. धारा 556 में चार, धारा 562 में एक, धारा 564 में एक।

9. धारा 566 में पाँच, धारा 574 में एक।

10.आर्टिपवकारा के स्थान पर अरुप्पा पढ़ें। V. 71 et seq.

11.किरिया-हेतुका मनोविन्नानधातु।

12.मानिंद्रियम के लिए पढ़ें, अनिन्द्रिय-बद्धरुपई च. एक चूक के कारण यह वाक्य और अगला वाक्य पाठ में इस प्रकार मुद्रित हैं मानो वे पिछले त्रयी का हिस्सा हों।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> परिशिष्ट 2

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं की गणना,
परिशिष्ट 2

परिशिष्ट II
[पृष्ठ 367] उस पर जो धम्मसंगनी में असंबद्ध तत्व (संखत् धातु) के बारे में भविष्यवाणी की गई है।

अविभाज्य तत्व को नैतिक रूप से अनिर्धारित (अव्यकटम्) की चौथी और अंतिम श्रेणी में रखा गया है—दूसरे शब्दों में, वह आचरण या मन की अवस्था जो अच्छे या बुरे कर्म उत्पन्न नहीं करती। लेकिन इन चारों में से केवल इसी पर अलग से और व्यवस्थित रूप से चर्चा नहीं की जाती, जैसा कि अन्य तीन—परिणाम, क्रिया और रूप—के मामले में होता है।

तृतीय खंड में, जिसे व्यावहारिक नैतिकता कहा जा सकता है, निम्नलिखित कथन संयोगवश सामने आते हैं। जहाँ मूल पाठ के पूरक के रूप में जोड़ी गई अट्ठकथा में असंखता धातु के स्थान पर निर्वाण (निब्बानम्) शब्द का प्रयोग किया गया है, वहीं धम्म संगानी में 'अमिश्रित तत्व' शब्द को मार्ग के 'सर्वोच्च फल', अरहत्तफलम् के साथ नहीं जोड़ा गया है, जो निर्वाण अवस्था का एक पहलू है (देखें श्लोक 4, 251, 252)। अतः इस विषय पर और अधिक शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

इसी सुविधा के लिए, निम्नलिखित परिणाम पृष्ठ 168-171 पर दिए गए प्रपत्र संबंधी तालिका के लगभग समानांतर संलग्न किए गए हैं। देखें टिप्पणी, पृष्ठ 166।

अमिश्रित तत्व है

दुविधा में पड़ा हुआ [983]
न तो परिणाम और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाला। [989]
न तो पकड़ने का मुद्दा[1] और न ही इसके अनुकूल[2] [992]
न तो भ्रष्ट और न ही हानिकारक [995]
[पृष्ठ 368] 'अवधारणा और विचार विवेचनात्मक प्रक्रिया के कार्य से रहित' [998][3]
न तो अंतर्दृष्टि से और न ही संस्कृति से इसे दूर किया जा सकता है [1008]
ऐसी चीज जिसके कारणों को न तो अंतर्दृष्टि से और न ही संस्कृति से दूर किया जा सकता है [1012][4]
जो न तो पुनर्जन्म के संचय का कारण बनता है और न ही उसे नष्ट करता है। [1015]
न तो विद्यार्थीत्व से संबंधित है और न ही उससे संबंधित है [1017][5]
अनंत [1021]
अचूक [1027]
वह जो निश्चित परिणामों को जन्म नहीं देता [1030][6]
अदृश्य और अप्रभावित [1052][7]
कारण नहीं [1072]
बिना कारणों के सहवर्ती के रूप में [1074][8]
किसी कारण से संबद्ध नहीं [1076]
भौतिक रूप के बिना [1092]
अलौकिक [1094]
यह मादक पदार्थ नहीं है। [1102]
सह-नशा करने वाला पदार्थ नहीं [1104]
नशीले पदार्थों से संबंध समाप्त [1106][9]
बेड़ी नहीं [1124]
बेड़ियों के लिए प्रतिकूल [1126]
बेड़ियों से अलग [1128][10]
टाई नहीं [1141]
वह नहीं जो बंधने की प्रवृत्ति रखता हो [1142]
संबंधों से विच्छेदित [1144][11]
[पृष्ठ 369] कोई बाधा नहीं [1163]
बाधाओं से असंबद्ध और उनके लिए प्रतिकूल [1173]
यह कोई संक्रामक रोग नहीं है। [1176]
संक्रमण से अप्रभावित और असंक्रमित [1184]
विचार की सहवर्ती वस्तु के बिना [1186]
बुद्धि का नहीं [1188]
इंद्रियों के जीवन में शामिल नहीं [1190]
विचार से अलग [1192]
विचार से विरक्त [1194]
विचार से उत्पन्न नहीं हुआ [1196]

यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो विचार के साथ अस्तित्व में आती हो। [1198]
विचार के अनुरूप नहीं [1200]
व्युत्पन्न नहीं [1210]
समझने की विशेषता के बिना [1218]
ग्रास्पिंग से असंबद्ध, और इसका पक्ष न लेना [1228]
भ्रष्टाचार के गुण के बिना [1240]
हानिरहित [1242]
भ्रष्ट नहीं[243ए]
भ्रष्टाचार से अलग और हानिरहित [1210]
आनंदित नहीं [1273]
खुशी के बिना [1275]
सहजता के बिना [1277]
निष्पक्षता के बिना [1279]
शामिल नहीं [1287]
जिससे कोई छुटकारा नहीं मिल सकता [1289]
कोई ऐसी चीज जिसका कोई परे न हो[1293]
युद्ध के साथ समवर्ती नहीं [1295]

साइ में. धातु कथा निब्बानम (निर्वाण) पर हमेशा असंखतो खंडो का स्थान लिया जाता है।

समाप्त।

- फुटनोट:
1. [1212] में भी दिया गया है।

2. [1220] में भी दिया गया है।

3. [1269], [1271] में भी दिया गया है।

4. [1258] आदि में भी दिया गया है।

5. मुद्रित पाठ में [1018].

6. [1291] में दोहराया गया।

7. [1088] और [1090] में दोहराया गया

8.[1082] [1072] और [1074] को जोड़ता है

9.[1112] [1104] और [1106] को दोहराता है

10.[1134] [1126] और [1128] को दोहराता है

11.[1150] [1142] और [1144] को दोहराता है

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगानि >> संक्षिप्ताक्षर

अनुवादक: सीएएफ राइस डेविड्स

धम्मसंगनी - आंतरिक घटनाओं का विवरण

विवरण

लघुरूप

1. बौद्ध धर्मग्रंथ

उ. - अंगुत्तर-निकाय।

सी. — कुलावग्गा.

डी. — दीघा-निकाय.

धम्मपद।

ध. के.— धातु-कथा.

धम्म-संगनी.

जाट. — जातक.

के. - पाठ का स्याम देश (कम्बोडियन) संस्करण।

के. वी.— कथा वत्थु.

एम. — मज्झिमा-निकया.

एमपीएस- महा-परिनिब्बान सुत्त (बच्चे)।

पीपी— पुग्गला-पन्नट्टी।

एस. — सम्युत्त-निकाय.

एसएन — सुत्त-निपाता।

विन. — विनय.

2. अन्य पुस्तकें।

अभ. एस - अभिधम्मत्थ-संगहा।

Asl. — AtthasfilinT.

दिव. — दिव्यावदना.

जेपीटीएस— पाली टेक्स्ट सोसायटी की पत्रिका।

जेआरएएस — जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी।

एमबी वी.— महा बोधि वंश.
महा.— महा वंश.
मिल. — मिलिंडा पान्हो.
एसबीई— पूर्व के पवित्र ग्रंथ।
सुम. — सुमंगला-विलासिनी.
विसुद्धि मग्गा

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पाली-अंग्रेजी संस्करण-अध्याय 4

धम्मसंगनी अध्याय 4

4. अष्टकथाकांड

टिकात्थुद्धारो

1384. कटमे धम्म कुसल? कैटुसु भूमिसु कुसलम् - इमे धम्म कुसल।

1385. कटमे धम्म अकुशला? द्वादश अकुसलचित्तुप्पादा - इमे धम्म अकुशला।

1386. कटमे धम्म अभ्यक्ता? कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतं, रूपान्च, निब्बाणच - इमे धम्म अभ्यक्ता।

1387. कतमे धम्म सुखाय वेदनाय संपयुत्ता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो कामवाकरकुसलसा विपाकातो च किरियतो च पञ्च, रूपावकरतिकाकातुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरटिकचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं सुखं वेदानां थपेत्वा - इमे धम्म सुखाय वेदनाय संपयुत्ता।

1388. कटमे धम्म दुक्खाय वेदनाय संपयुत्ता? द्वे दोमानस्सासहागतचित्तुप्पादा, दुक्खसहगतं कायवीनाणं, एत्थुप्पन्नं दुक्खं वेदानां थपेत्वा - इमे धम्म दुक्खाय वेदनाय संपयुत्ता।

1389. कतमे धम्म अदुक्खमसुखाय वेदनाय संपयुत्ता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खसहगतचित्तुप्पादा, अकुसलतो च, कामवाकरकुसलस्स विपाकतो दास, अकुसलस्स विपकातो च, किरियतो च, रूपावचरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, कत्तारो अरूपावकार कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं अदुक्खमसुखं वेदानां थपेत्वा — इमे धम्म अदुक्खमासुखाय वेदनाय संपयुत्ता। तिस्सो च वेदना, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म न वत्तब्बा सुखाय वेदनाय संपायुत्ततिपि, दुक्खाय वेदनाय संपायुत्ततिपि, या वेदनाय संपायुत्ततिपि।

1390. कटमे धम्म विपाका? कैटुसु भूमिसु विपाको - इमे धम्म विपाका।

1391. कतमे धम्म विपाकधम्मधम्म? कैटुसु भूमिसु कुसलं अकुसलं - इमे धम्म विपाकधम्मधम्म।

1392. कतमे धम्म नेवविपाकनविपकधम्मधम्म? तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नेवविपाकनविपाकधम्मधम्म।

1393. कतमे धम्म उपादिन्नुपादनीय? तिसु भूमिसु विपाको, यञ्च रूपं कम्मस्सा कटत्ता - इमे धम्म उपादिनुपादनीय।

1394. कतमे धम्म अनुपादिनुपादनीय? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, यञ्च रूपं न कम्मास्सा कटत्ता - इमे धम्म अनुपादिनुपादनीय।

1395. कतमे धम्म अनुपादिन्नुपादनीय? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, चत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनुपदीन्नुपादनीय।

1396. कतमे धम्म संकिलित्थसंकिलेसिका? द्वादशाकुसलचित्तुपाद - इमे धम्म सांकिलिट्ठसान्किलेसिका।

1397. कतमे धम्म असांकिलीठसंकिलेसिका? तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बनचा रूपं - इमे धम्म असांकिलीथसांकिलेसिका।

1398. कतमे धम्म असांकिलित्थासन्किलेसिका? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म असांकिलीथसासंकिलेसिका।

1399. कटमे धम्म सवितक्कसविचरा? कामवचरण कुसलं, अकुसलं, कामवचरणं कुसलस विपाकतो एकादसा चित्तुप्पदा, अकुसलस्सा विपकातो दवे, किरियतो एकादश, रूपवचरण पथमं झाणं कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरं पठहमं झाणं कुसलतो च विपाकतो च, एत्थुप्पन्ने विटककविकारे थापेत्वा - इमे धम्म सवितक्कसविचरा।

1400. कतमे धम्म अवितक्कविचारमत्ता? रूपावकरापानकाणये दुतियां झाणं कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, लोकुत्तारापंचकनाये दुतियां झानां कुसलतो च विपाकातो च, एत्थुप्पन्नं विचारं थपेत्वा, विटक्को च - इमे धम्म अवितक्कविचारमत्ता।

1401. कतमे धम्म अवित्तक्काविचार? द्वेपञ्चविन्नानि, रूपावचराटिकतिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च लोकुत्तराटिकतिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च पंचकाणये दुतिये झाने [दुतियाज्झाने (सि.)], उप्पन्नो च विचारो रूपानचा निब्बानचा - इमे धम्म अवित्क्काविचार। वितक्कसहजातो विचारो न वत्तब्बो सवितक्कसविचारोतिपि, अवित्तक्कविचारमत्तोतिपि, अवित्क्काविचारोतिपि।

1402. कतमे धम्म पितिसाहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो, कामवाकरकुसलसा विपाकातो पञ्च, किरियतो पञ्च, रूपावकरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं पितिम थपेत्वा - इमे धम्म पितिसाहगता।

1403. कतमे धम्म सुखसहागता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो, कामवाकरकुसलसा विपाकातो च, किरियतो पञ्च, रूपावकरतिकाकातुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरटिकचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं सुखं थपेत्वा - इमे धम्म सुखसहगता।

1404. कतमे धम्म उपेक्खसहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खसहगतचित्तुप्पादा, अकुसलतो च, कामवाकरकुसलस्स विपाकतो दास, अकुसलस्स विपकातो च, किरियतो च, रूपावचरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, लोकुत्तरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं उपेक्खं थपेत्वा - इमे धम्म उपेक्खसहगता। पिति न पितिसाहगता, सुखसहगता, न उपेक्खसहगता। सुखं न सुखसहगतं, सिया पितिसाहगतं, न उपेक्खसहगतं, सिया न वत्तबं पितिससहगतं। द्वे दोमनससहागतचित्तुप्पादा, दुक्खसहगतकायविनाणं, या च वेदना उपेक्खा, रूपाञ्च निब्बाणचा - इमे धम्म न वट्टब्बा पितिसाहगततिपि, सुखसहगततिपि, उपेक्खसहागतातिपि।

1405. कतमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा? कत्तारो दिथिगतसम्पायुत्तचित्तुप्पदा, विकिसिचासहगातो चित्तुप्पदो — इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा।

1406. कटमे धम्म भवनाय पहतब्बा? उद्धच्चसहागतो चित्तुप्पदो — इमे धम्म भवनाय पहतब्बा। कट्टारो दिथिगतविप्पयुत्त लोभासहागतचित्तुप्पादा, द्वे दोमनससहागतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया दस्सानेन पहतब्बा सिया भवनया पहतब्बा।

1407. कतमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतब्बा? कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतब्बा।

1408. कतमे धम्म दस्सानेन पहतबहेतुका? कत्तारो दिथिगतसम्पयुत्तचित्तुप्पदा, विसिकिचसाहगातो चित्तुप्पदो, एत्थुप्पन्नं मोहं थपेत्वा - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बाहेतुका।

1409. कटमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका? उद्धच्चसहागतो चित्तुप्पदो, एत्थुप्पन्नं मोहं थपेत्वा - इमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका। कट्टारो दिथिगतविप्पयुत्त लोभासहागतचित्तुप्पादा, द्वे डोमनस्सासाहागतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया दस्सानेन पहतबहेतुका, सिया भवनाय पहतबहेतुका।

1410. कतमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतबहेतुका? विकिसिचासहगतो मोहो, उद्धाचसहागतो मोहो, कटुसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बानांच - इमे धम्म नेवा दस्सानेन न भवनाय पहतबहेतुका।

1411. कतमे धम्म अचयागमिनो? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं — इमे धम्म अचायगामिनो।

1412. कतमे धम्म अपाकायगामिनो? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना - इमे धम्म अपाकायगामिनो।

1413. कतमे धम्म नेवाचयागामिनापकायागामिनो? कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म नेवाचयागामिनापकायागामिनो।

1414. कटमे धम्म सेक्खा? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना, हेथिमानी च तिनि समानाफलनि - इमे धम्म सेक्खा।

1415. कतमे धम्म असेक्खा? उपरिथिमं अरहट्टफलं - इमे धम्म असेक्खा।

1416. कटमे धम्म नेवासेक्खानासेक्खा? तिसु भूमिसु कुसलम्, अकुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नेवासेक्खानासेक्खा।

1417. कटमे धम्म परित्ता? कामवचरकुसलं, अकुशलं, सब्बो कामवचरस विपको, कामवचरकिरियाब्यकटं, सब्बाञ्च रूपं - इमे धम्म परित्ता।

1418. कटमे धम्म महग्गता? रूपावचार, अरूपवचार, कुसलब्यकाता - इमे धम्म महग्गता।

1419. कटमे धम्म अप्पमना? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अप्पमना।

1420. कतमे धम्म परित्तरम्मना? सब्बो कामवाचरस्स विपाको, किरियामनोधातु, किरियाहेटुकमानोविनानाधातु सोमनस्सासहगता - इमे धम्म परित्तरम्मना।

1421. कतमे धम्म महग्गतरम्मना? विनानाञ्चायतनं, नेवसन्ननासन्यातनम् - इमे धम्म महाग्गतरम्मना।

1422. कतमे धम्म अप्पमानारमन्ना? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, चत्तारि च समान्नफलनि - इमे धम्म अप्पमनारमण। कामवाकरकुसलतो कत्तरो णाणविप्पयुत्तचित्तुप्पदा, किरियतो कत्तरो णाणविप्पयुत्तचित्तुप्पदा, सब्बम अकुशलम् – इमे धम्म सिया परित्तरम्मना, सिया महग्गतरम्मना, न अप्पमानारम्मना, सिया न वट्टब्बा परित्तरम्मनातिपि, महाग्गतरम्मनातिपि। कामवाचरकुसलतो कत्तारो णाणसंपयुत्तचित्तुप्पदा, किरियतो कत्तारो णाणसंपयुत्तचित्तुपाद, रूपावचरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च किरियतो च, किरियाहेटुकमानोविनाधातु उपेक्खसहगता - इमे धम्म सिया परित्तरम्मना, सिया महाग्गतरम्मना, सिया अप्पमानारमन्ना, सिया न वट्टब्बा परित्तरम्मनातिपि, महग्गतरम्मनातिपि, अप्पमानारम्मनातिपि। रूपावकारतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, चतुत्थस्सा झाणस्सा विपाको, आकाशाणञ्चायतनं, आकिंचनायतनं - इमे धम्म न वट्टब्बा परित्तरम्मनातिपि, महग्गतरम्मनातिपि, अप्पमानरामनातिपि। रूपाञ्च निब्बानाञ्च अनारामण्णा।

1423. कतमे धम्म हीना? द्वादश अकुशलचित्तुप्पादा - इमे धम्म हीना।

1424. कतमे धम्म मज्झिमा? तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म मज्झिमा।

1425. कटमे धम्म पनीता? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म पनिता।

1426. कतमे धम्म मिच्चत्तनियता? कत्तारो दिथिगतसम्पायुत्तचित्तुप्पदा, द्वे दोमनससाहगतचित्तुप्पदा - इमे धम्म सिया मिच्चत्तनियता, सिया अनियता।

1427. कतमे धम्म सम्मत्नियता? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना - इमे धम्म सम्मत्तनीयता।

1428. कतमे धम्म अनियता? कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पदा, विकिकचासहगतो सिट्टुप्पादो, उद्धाचसहागातो सिट्टुप्पादो, तिसु भूमिसु कुसलं, कात्सु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपान्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनियता।

1429. कटमे धम्म मग्गरम्मना? कामवाकरकुसलतो कत्तारो णाणासंपयुत्तचित्तुप्पदा, किरियतो कत्तारो णाणासंपयुत्तचित्तुपाद - इमे धम्म सिया मग्गरम्मना, न मग्गहेतुका; सिया मग्गाधिपतिनो, सिया न वट्टब्बा मग्गरमणतिपि, मग्गाधिपतिनोतिपि। कट्टारो अरियामग्गा न मग्गरम्मना, मग्गहेतुका; सिया मग्गाधिपतिनो, सिया न वट्टब्बा मग्गाधिपतिनोति। रूपावचरचतुत्थं झाणं कुसलतो च किरियतो च, किरियाहेटुकमानोविनाधातु उपेक्खसहगता - इमे धम्म सिया मग्गरम्मना; न मग्गहेतुका, न मग्गाधिपतिनो; सिया न वत्तब्बा मग्गरमणति। कामवाकरकुसलतो कत्तरो णाणविप्पयुत्तचित्तुप्पदा, सब्बां अकुशलं, सब्बो कामवाचरस विपाको, किरियतो च चित्तुप्पादा, रूपावकारतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकातो च किरियतो च, चतुत्थस्सा झनस्सा विपाको, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, कत्तारि च समाननफलनि - इमे धम्म न वत्तब्बा मग्गरम्मनातिपि, मग्गहेतुकातिपि, मग्गाधिपतिनोटिपि. रूपाञ्च निब्बानाञ्च अनारामण्णा।

1430. कतमे धम्म उप्पन्ना? कैटुसु भूमिसु विपाको, यञ्च रूपं कम्मस्सा कटत्ता - इमे धम्म सिया उप्पन्ना, सिया उप्पादिनो; न वट्टब्बा अनुप्पन्नति. कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, यांचा रूपं न कम्मास्सा कटत्ता - इमे धम्म सिया उप्पन्ना, सिया अनुप्पन्ना, न वट्टब्बा उप्पादिनोति. निब्बाणं न वत्तब्बं उप्पन्नन्तिपि, अनुप्पन्नन्तिपि, उप्पदिनोतिपि।

1431. निब्बाणं थपेत्वा सब्बे धम्म सिया अतिता, सिया अनागत, सिया पच्चुप्पन्ना। निब्बाणं न वत्तब्बं अतितन्तिपि, अनागतन्तिपि, पच्चुप्पन्नन्तिपि।

1432. कटमे धम्म अतितरम्मना? विनानाञ्चायतनं, नेवसन्ननासन्यातनम् - इमे धम्म अतितरम्मना।

1433. नियोग अनागतारम्मना नत्थि।

1434. कटमे धम्म पच्चुप्पन्नारम्मना? द्वेपञ्चविन्नानि, तिस्सो च मनोधातुयो – इमे धम्म पच्चुप्पन्नारम्मना। कामवाकरकुसलस्सा विपाकातो दास चित्तुप्पादा, अकुसलस्सा विपाकातो मनोविनाधातु उपेक्खसहगता, किरियाहेटुकमानोविनानाधातु सोमनस्सासाहागता - इमे धम्म सिया अतितरम्मना, सिया अनागतारम्मना, सिया पच्चुप्पन्नारम्मना। कामवाचरकुसलम, अकुसलम, किरियतो नवा चित्तुप्पदा, रूपावचरम चतुत्थं झनानं कुसलतो च किरियतो च - इमे धम्म सिया अतितरम्मना, सिया अनागतारम्मना, सिया पच्चुप्पन्नरमन्ना; सिया न वत्तब्बा अतितरम्मनातिपि, अनागतारम्मनातिपि, पच्चुप्पन्नरम्मनातिपि। रूपावकारतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, चतुत्थस्सा झानास्सा विपाको, आकाशानचायतनं, अकिंचनायतनं, कत्तारो मग्गा अपिरियपन्ना, चत्तारि च समानाफलनि – इमे धम्म न वत्तब्बा अतितरम्मनातिपि, अनागतारम्मनातिपि, पच्चुप्पन्नरमणतिपि। रूपाञ्च निब्बानाञ्च अनारामण्णा।

1435. अनिन्द्रियबधरूपाञ्च निब्बाणञ्च थापेत्वा, सब्बे धम्म सिया अज्जहट्टा, सिया बहिद्धा, सिया अजज्जत्तबहिद्धा। अनिन्द्रियबधरूपाञ्च निर्वाणञ्च बहिद्धा।

1436. कटमे धम्म अज्झत्तरम्मना? विनानाञ्चायतनं, नेवसन्ननासन्यातनम् - इमे धम्म अज्झत्तारम्मना।

1437. कतमे धम्म बहिद्धारम्मना? रूपावकारतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकातो च किरियतो च, चतुत्थस्सा झाणस्सा विपाको, आकाशानचायतनं, कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना चत्तारी च समानाफलनि - इमे धम्म बहिद्धारम्मना. रूपं थपेतवा, सब्बेव कामवचरा कुसलकुशलाब्यकाता धम्म, रूपवचरं चतुत्थं झनानं कुसलतो च किरियतो च - इमे धम्म सिया अज्जहत्तरम्मना, सिया बहिद्धारम्मना, सिया अजज्जट्टबहिद्धारम्मना। अकिंचनन्यातनं न वत्तब्बं अज्झत्तारम्मनन्तिपि, बहिद्धारम्मन्तिपि, अज्झत्तबहिद्धारम्मन्तिपि। रूपाञ्च निब्बानाञ्च अनारामण्णा।

1438. कतमे धम्म सन्निदस्सानसप्पतिघा? रूपायतनं - इमे धम्म सानिदासंससप्पतिघा।

1439. कतमे धम्म अनिदस्सानसप्पतिघा? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं - इमे धम्म अनिदस्सानसप्पातिघा।

1440. कतमे धम्म अनिदासनप्पतिघा? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, यञ्च रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं, निब्बाणंच - इमे धम्म अनिदासनप्पातिघा।

Tikaṃ.

दुकात्थुद्धारो

हेतुगोच्चकं

1441. कतमे धम्म हेतु? तयो कुसलहेतु, तयो अकुशलहेतु, तयो अभ्याकहेतु। अलोभो कुसलहेतु, अदोसो कुसलहेतु, कैटुसु भूमिसु कुसालेसु उप्पज्जन्ति। अमोहो कुसलहेतु, कामवाचरकुसलतो चत्तारो णाणविप्पयुत्ते चित्तुप्पदे थपेत्वा, कातुसु भूमिसु कुसालेसु उप्पज्जति।

लोभो अथासु लोभसहागतेसु चित्तुप्पादेसु उपज्जति। दोसो दविसु दोमनस्सासाहागतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति। मोहो सब्बाकुसलेसु उपज्जति।

अलोभो विपाकहेतु अदोसो विपाकहेतु, कामवाचरस्स विपाकतो अहेतुके चित्तुप्पदे थपेत्वा, कैट्ठसु भूमिसु विपाकेसु उप्पज्जन्ति। अमोहो विपकाहेतु, कामवाचरस्स विपकातो अहेतुके चित्तुप्पदे ठप्पेतवा, कत्तारो णाणविप्पयुत्ते चित्तुप्पदे ठपेत्वा, बिल्लीसु भूमिसु विपाकेसु उपज्जति।

अलोभो किरियाहेतु अदोसो किरियाहेतु, कामवाकरकिरियातो अहेतुके चित्तुप्पदे थपेत्वा, तिसु भूमिसु किरियेसु उपप्पजंति। अमोहो किरियहेतु, कामवचरकिरियतो अहेतुके चित्तुप्पादे थापेतवा, कत्तारो णाणविप्पयुत्ते चित्तुप्पदे थापेतवा, तिसु भूमिसु किरियेसु उप्पज्जति - इमे धम्म हेतु।

1442. कतमे धम्म न हेतु? तपेत्वा हेतु, कैटुसु भूमिसु कुसलम्, अकुसलम्, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपान्च, निब्बानांच - इमे धम्म न हेतु.

1443. कतमे धम्म सहेतुका? विकिसिचासहगतं उद्धच्चसहागतं मोहं थापेत्वा अवसेसं अकुसलं, कटुसु भूमिसु कुसलं, कामवाचरस विपाकातो अहेतुके चित्तुप्पादे तपेतवा कटुसु भूमिसु विपाको, कामवचरकिरीयतो अहेतुके चित्तुप्पदे थपेत्वा तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम् — इमे धम्म सहेतुका।

1444. कतमे धम्म अहेतुका? विकिसिचासहागातो मोहो, उद्धाचसहागातो मोहो, द्वेपञ्चविन्नानि, तिस्सो च मनोधातुयो, पञ्च च अहेतुकामानोविनानाधातुयो, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म अहेतुका।

1445. कतमे धम्म हेतुसम्पायुत्त? विकिसिचासहगतं उद्धच्चसहागतं मोहं थापेत्वा अवसेसं अकुसलं, कटुसु भूमिसु कुसलं, कामवाचरस विपाकातो अहेतुके चित्तुप्पादे तपेतवा कटुसु भूमिसु विपाको, कामवचरकिरीयतो अहेतुके चित्तुप्पदे थपेत्वा तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम् — इमे धम्म हेतुसम्पायुत्ता।

1446. कतमे धम्म हेतुविप्पयुत्त? विकिसिचासहागातो मोहो, उद्धच्चासहागातो मोहो, द्वेपञ्चविनानि तिस्सो च मनोधातुयो पञ्च च अहेतुकामानोविनाणाधातुयो, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म हेतुविप्पयुत्त।

1447. कतमे धम्म हेतु सेवा सहेतुका च? यत्था द्वे तयो हेतु एकतो उपज्जन्ति — इमे धम्म हेतु सेवा सहेतुका च।

1448. कतमे धम्म सहेतुका सेवा न च हेतु? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कामवाचरस्स विपाकातो अहेतुके सिट्टुप्पादे थपेतवा कैटुसु भूमिसु विपाको, कामवाकरकिरियातो अहेतुके सिट्टुप्पाडे थपेत्वा तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, एत्थुप्पन्ने हेतु थपेत्वा - इमे धम्म सहेतुका सेवा न च हेतु। अहेतुका धम्म न वत्तब्बा - हेतु सेवा सहेतुका चातिपि, सहेतुका सेवा न च हेतुतिपि।

1449. कतमे धम्म हेतु सेवा हेतुसम्पायुत्त च? यत्था द्वे तयो हेतु एकतो उपज्जन्ति — इमे धम्म हेतु सेवा हेतुसम्पायुत्त च।

1450. कतमे धम्म हेतुसम्पायुत्त सेवा न च हेतु? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कामवाचरस्स विपाकातो अहेतुके सिट्टुप्पादे थपेतवा कैटुसु भूमिसु विपाको, कामवाकरकिरियातो अहेतुके सिट्टुप्पाडे थपेत्वा तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, एत्थुप्पन्ने हेतु थपेत्वा - इमे धम्म हेतुसम्पायुत्त सेवा न च हेतु। हेतुविप्पयुत्त धम्म न वट्टब्बा — हेतुसेवा हेतुसम्पायुत्त चातिपि, हेतुसम्पायुत्त सेवा न च हेतुतिपि।

1451. कतमे धम्म न हेतु सहेतुका? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कामवाचरस्स विपाकातो अहेतुके सिट्ठुप्पादे थपेतवा कैटुसु भूमिसु विपाको, कामवाकरकिरियातो अहेतुके सिट्ठुप्पाडे थपेत्वा तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, एत्थुप्पन्ने हेतु थपेत्वा - इमे धम्म न हेतु सहेतुका।

1452. कतमे धम्म न हेतु अहेतुका? द्वेपञ्चविन्नानि, तिस्सो च मनोधातुयो, पञ्च च अहेटुकमानोविनानाधातुयो, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म न हेतु अहेतुका। हेतु धम्म न वत्तब्बा - न हेतु सहेतुकातिपि, न हेतु अहेतुकातिपि।

Cūḷantaradukaṃ

1453. कटमे धम्म सप्पक्कया? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म सप्पक्कया।

1454. कतमे धम्म अप्पाकाया? निब्बाणं - इमे धम्म अप्पाकाया।

1455. कटमे धम्म संखता? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म संखता।

1456. कतमे धम्म असन्खता? निब्बाणं - इमे धम्म असंखता।

1457. कतमे धम्म सन्निदासना? रूपायतनं - इमे धम्म सन्निदासना।

1458. कतमे धम्म अनिदासना? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं, कैटुसु भूमिसु कुसलम्, अकुसलाम्, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्याकटं, यंका रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनिदासना।

1459. कतमे धम्म सप्पतिघा? चक्खायतनं...पे... फोटहब्बायतनं - इमे धम्म सप्पतिघा।

1460. कतमे धम्म अप्पतिघा? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, यञ्च रूपं अनिदासनं अप्पतिघं धम्मायतनपरियपन्नं, निब्बाणंच - इमे धम्म अप्पतिघा।

1461. कतमे धम्म रूपिनो? चत्तरो च महाभूत, चतुन्नंच महाभूतानां उपादय रूपं - इमे धम्म रूपिनो।

1462. कतमे धम्म अरुपिनो? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, निब्बानच - इमे धम्म अरुपिनो।

1463. कतमे धम्म लोकिया? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म लोकिया।

1464. कटमे धम्म लोकुत्तारा? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म लोकुत्तारा। सब्बे [सब्बेवा (स्या.)] धम्म केनचि विन्नेया, केनसी न विन्नेय्या।

आसवगोच्चकं

1465. कतमे धम्म आसव? कत्तारो आसव - कामसावो, भावसावो, दिट्ठासावो, अविज्जासावो। कामसावो अट्ठासु लोभसहगतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति भावासावो कट्ठसु दितिथिगतविप्पयुत्तलोभसहगातेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति दिट्ठासावो बिल्लीसु दिथिगतसम्पायुत्तेसु चित्तुप्पादेसु उप्पज्जति। अविज्जासवो सब्बाकुसलेसु उपज्जति - इमे धम्म आसव।

1466. कतमे धम्म नो आसव? हपेत्वा असवे अवसेसं अकुसलं, कट्ठसु भूमिसु कुसलम, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतं, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो आसव.

1467. कतमे धम्म सासव? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म सासव।

1468. कतमे धम्म अनासव? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनासव।

1469. कतमे धम्म आसवसंपयुत्त? द्वे दोमनसस्साहगतचित्तुप्पादा एत्थुप्पन्नं मोहं थपेत्वा, विकिसिचासहगतं उद्धच्चसहागतं मोहं थपेत्वा, अवसेसं अकुशलम् - इमे धम्म आसवसंपयुत्त।

1470. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त? द्वीसु दोमानससाहगतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पन्नो मोहो, विचिकिचसाहगातो मोहो, उद्धच्चसहागातो मोहो, कट्ठसु भूमिसु कुसलं, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त।

1471. कतमे धम्म आसव सेवा सासव च? तेव आसव आसव सेवा ससाव च।

1472. कतमे धम्म सासव सेवा नो च आसव? तपेत्वा आसवे, अवसेसं अकुसलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म सासव सेवा नो च आसव। अनासव धम्म न वत्तब्बा - आसव सेवा ससाव चतिपि, ससव सेवा नो च आसवतिपि।

1473. कतमे धम्म आसव सेवा आसवसंपयुत्त च? यत्थ द्वे तैयो आसव एकतो उपज्जन्ति - इमे धम्म आसव सेवा आसवसंपयुत्त च।

1474. कतमे धम्म आसवसंपयुत्त सेवा नो च आसव? हपेत्वा आसवे, अवसेसं अक्सलम् - इमे धम्म आसवसंपयुत्त सेवा नो च आसव। आसवविप्पयुत्त धम्म न वत्तब्बा - आसव सेवा आसवसंपयुत्त चतिपि, आसवसंपयुत्त सेवा नो च आसवतिपि।

1475. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त ससाव? द्वीसु दोमानससहागतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पन्नो मोहो, विचिकिचसाहगातो मोहो, उद्धच्चसहागातो मोहो, तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, सब्बनचा रूपं - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त ससाव।

1476. कतमे धम्म आसवविप्पयुत्त अनासव? कट्टारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म आसवविप्पयुत्त अनासव। आसवसंपयुत्त धम्म न वत्तब्बा - आसवविप्पयुत्त ससावतिपि, आसवविप्पयुत्त अनासवतिपि।

संयोजनगोच्चकं

1477. कतमे धम्म समन्वय? दश संयोजनानि - कामरागसंयोजनं, पतिघसंयोजनं, मनसंयोजनं, दितिहिसंयोजनं, विकिकीचासंयोजनं, सिल्बतपरमसयोजनं, भावरागसंयोजनं, इस्सासंयोजनं, मच्छरियासंयोजनं, अविज्जासंयोजनं। Kāmarāgasaṃyojanaṃ aṭṭhasu lobhasahagatesu cittuppādesu uppajjati. Paṭighasaṃyojanaṃ dvīsu domanassasahagatesu cittuppādesu uppajjati. Mānasaṃyojanaṃ catūsu diṭṭhigatavippayuttalobhasahagatesu cittuppādesu uppajjati. Diṭṭhisaṃyojanaṃ catūsu diṭṭhigatasampayuttesu cittuppādesu uppajjati. Vicikicchāsaṃyojanaṃ vicikicchāsahagatesu cittuppādesu uppajjati.

सिलब्बतपरमसासंयोजनं कट्ठसु दिथिगतसम्पायुत्तेसु चित्तुप्पदेसु उपज्जति। भावरागासंयोजनं कैट्ठसु दितथिगतविप्पयुत्तलोभसहगतेसु चित्तुप्पदेसु उपज्जति। इस्सासंयोजनाञ्च मैक्चारियासंयोजनाञ्च दविसु डोमनस्सासाहगतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जन्ति। अविज्जासंयोजनं सब्बाकुसलेसु उप्पज्जति — इमे धम्म समन्वय।

1478. कतमे धम्म नो संयोग। हपेत्वा संयोगेन अवसेसं अकुसलम्, कट्ठसु भूमिसु कुसलम, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो संयोग.

1479. कतमे धम्म समन्वय? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म समन्वय।

1480. कतमे धम्म असंयोजनिया? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म असंयोजनिया।

1481. कतमे धम्म संयोगसंपयुत्त? उद्धच्चसहागतं मोहं थपेत्वा अवसेसं अकुशलं - इमे धम्म संयोगसंपयुत्त।

1482. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्त? उद्धाचसहागतो मोहो, कट्ठसु भूमिसु कुसलं, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्त।

1483. कतमे धम्म समन्वय सेवा च? तनेव संयोगानि समन्वया सेवा च।

1484. कतमे धम्म समन्वय्य सेवा नो च समन्वय? तपेत्वा संयोगेन अवसेसं अकुसलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म समन्वय सेवा नो च समन्वय। असंयोजनीय धम्म न वत्तब्बा - समन्वय सेवा, समन्वय चातिपि, समन्वय सेवा नो च संयोगातिपि।

1485. कतमे धम्म समन्वय सेवा च? यत्थ द्वे तिनि संयोगनि एकतो उपज्जन्ति - इमे धम्म समन्वय सेवा, समन्वयसंपयुत्त च।

1486. कतमे धम्म संयोगसंपयुत्त सेवा नो च संयोग? हपेत्वा संयोगेन, अवसेसं अकुशलम् — इमे धम्म समन्वयसंपयुत्त सेवा नो च संयोगना। संयोगविप्पयुत्त धम्म न वत्तब्बा — समन्वय सेवा, समन्वयसंपयुत्त चतिपि, संयोगसंपयुत्त सेवा नो च संयोगातिपि।

1487. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्ता समन्वय? उद्धाचसहागतो मोहो, तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बनचा रूपं - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्त संयोगिया.

1488. कतमे धम्म संयोगविप्पयुत्त अससंयोगनीय? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म संयोगविप्पयुत्त असंयोजनिया। संयोगसंपयुत्त धम्म न वत्तब्बा — संयोगविप्पयुत्त संयोगिअतिपि, संयोगविप्पयुत्त असंयोजानियातिपि।

गंथागोच्चकं

1489. कटमे धम्म गंथा? कत्तारो गंथा - अभिज्झाकायगंथो, बयापदो कायगंथो, सिलब्बतपरमसो कायगंथो, इदंससच्चाभिनिवेशो कायगंथो। अभिज्झाकायगन्थो अट्ठसु लोभसहगातेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति। बयापादो कायगन्थो दविसु डोमनस्सासाहागतेसु चित्तुप्पदेसु उपज्जति। सिलब्बतपरमसो कायगन्थो च इदंससच्चभिनिवेशो कायगन्थो च कैट्ठसु दिथिगतसाम्पयुत्तेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जन्ति - इमे धम्म गन्था।

1490. कतमे धम्म नो गंथा? तपेत्वा गान्थे, अवसेसं अकुसलं, कटुसु भूमिसु कुसलम, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणचा - इमे धम्म नो गंथा.

1491. कटमे धम्म गंथनिया? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म गंथनिया।

1492. कटमे धम्म अगन्थनिया? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म अगंथनिया।

1493. कतमे धम्म गन्थासम्पायुत्त? कट्टारो दिथिगतसम्पायुत्तचित्तुप्पादा, कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पादा, एत्थुप्पन्नं लोभं थापेतवा, द्वे दोमनस्सासाहागतचित्तुप्पदा, एत्थुप्पन्नं पतिघं थपेत्वा - इमे धम्म गंथसंपयुत्त।

1494. कतमे धम्म गन्थविप्पयुत्त? कैटुसु दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतेसु सिट्टुप्पादेसु उप्पन्नो लोभो, दविसु डोमनस्साहागातेसु सिट्टुप्पादेसु उप्पन्नं पतिघं, विकिकचासहगातो सिट्टुप्पदो, उद्धच्चसहागातो सिट्टुप्पडो, कैटुसु भूमिसु कुसलं, कटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बानांच - इमे धम्म गंथविप्पयुत्त।

1495. कतमे धम्म गंथा सेवा गंथानिया च? तेव गंथा गंथा सेवा गंथानिया च।

1496. कतमे धम्म गंथानिया सेवा नो च गंथा? तपेत्वा गान्थे अवसेसं अकुशलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म गंथानिया सेवा नो च गंथा। अगन्थानिया धम्म न वत्तब्बा - गंथा सेवा गंथानिया चतिपि, गंथानिया सेवा नो च गंथातिपि।

1497. कतमे धम्म गंथा सेवा गंथासंपयुत्त च? यत्थ दिति च लोभो च एकतो उपज्जन्ति - इमे धम्म गंथा सेवा गंथासम्पयुत्त च।

1498. कतमे धम्म गंथासम्पायुत्त सेवा नो च गंथा? अट्ठा लोभासहागतचित्तुप्पादा द्वे दोमानसस्साहागतचित्तुप्पादा, एत्थुप्पन्ने गान्थे थपेतवा - इमे धम्म गंथसम्पायुत्त सेवा नो च गन्था। गंथाविप्पयुत्त धम्म न वट्टब्बा - गंथा सेवा गंथासंपयुत्त चतिपि, गंथासम्पायुत्त सेवा नो च गंथातिपि।

1499. कतमे धम्म गन्थाविप्पयुत्त गन्थानिया? कैटुसु दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पन्नो लोभो, द्विसु डोमनस्साहागातेसु चित्तुप्पादेसु उप्पन्नं पतिघं, विकिकिचासहगातो चित्तुप्पदो, उद्धच्चासहागातो चित्तुप्पदो, तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बान्चा रूपं - इमे धम्म गंठविप्पयुत्ता गंथनिया।

1500. कतमे धम्म गन्थविप्पयुत्त अगन्थनिया? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म गंथाविप्पयुत्ता अगंथनिया। गंथासंपयुत्त धम्म न वट्टब्बा - गंथाविप्पयुत्त गंथानियातिपि, गंथाविप्पयुत्त अगंथनियातिपि।

ओघगोच्चका

1501. कतमे धम्म ओघा...पे...।

योगगोच्चकं

1502. कतमे धम्म योग...पे...।

नीवरणगोच्चकं

1503. कटमे धम्म निवारण? च निवारण - कामच्छंदनिवरणम्, ब्यापदानिवरणम्, पतलीमिद्धनिवरणम्, उद्धच्चक्कुक्कुच्चनिवरणम्, विकिसिच्चानिवरणम्, अविज्जानिवरणम् । कामच्छंदनिवरं अठहसु लोभसहगतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति, ब्यापदानिवरणं दविसु डोमनस्सासहागतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति, थिनमिद्धनिवरं ससंखारीकेसु अकुसालेसु उप्पज्जति, उद्धच्चानिवरणं उद्धच्चासाहागतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति, कुक्कुच्चनिवराणं दविसु डोमनस्सासाहागतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति, विकिकिचानिवरणं विचिकीछासाहागतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पज्जति, अविज्जानिवरणं सब्बाकुसलेसु उपज्जति - इमे धम्म निवारण।

1504. कटमे धम्म नो निवारण? तपेत्वा निवारणे अवसेसं अकुसलाम्, कटुसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणचा - इमे धम्म नो निवारण.

1505. कटमे धम्म निवारनीय? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म निवारण।

1506. कतमे धम्म अनिवरनिया? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणच - इमे धम्म अनिवरनिया।

1507. कतमे धम्म निवारणसंपयुत्त? द्वादश अकुशलचित्तुप्पादा - इमे धम्म निवारणसंपयुत्त।

1508. कतमे धम्म निवारणविप्पयुत्त? कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्त।

1509. कतमे धम्म निवारण सेवा च? तनेव निवारणानि निवारणा सीव निवारणिया च।

1510. कतमे धम्म निवारणिया सेवा नो च निवारण? तपेत्वा निवारने, अवसेसं अकुसलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म निवारनीय सेवा नो च निवारण। अनिवारणिय धम्म न वत्तब्बा - निवारण सेवा निवारणिया चतिपि, निवारणिय सेवा नो च निवारणतिपि।

1511. कतमे धम्म निवारण सेवा च? यत्थ द्वे तिनि निवारणानि एकतो उपज्जन्ति - इमे धम्म निवारण सेवा निवारणसंपयुत्त च।

1512. कतमे धम्म निवारणसंपयुत्त सेवा नो च निवारण? तपेत्वा निवारणे, अवसेसं अकुशलम् - इमे धम्म निवारणसंपयुत्त सेवा नो च निवारण। निवारणविप्पयुत्त धम्म न वट्टब्बा - निवारण सेवा निवारणसंपयुत्त चतिपि, निवारणसंपयुत्त सेवा नो च निवारणतिपि।

1513. कटमे धम्म निवारणविप्पयुत्त निवारणिया? तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बाञ्च रूपं - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्त निवारणिया।

1514. कटमे धम्म निवारणविप्पयुत्त अनिवरनिया? कट्टारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म निवारणविप्पयुत्त अनिवरनिया। निवारणसंपयुत्त धम्म न वत्तब्बा - निवारणविप्पयुत्त निवारणियातिपि, निवारणविप्पयुत्त अनिवराणियातिपि।

परमासगोच्चकं

1515. कतमे धम्म परमसा? दितिथिपरमसो कटुसु दितिथिगतसाम्पयुत्तेसु चित्तुप्पादेसु उप्पज्जति – इमे धम्म परमासा।

1516. कतमे धम्म नो परमसा? तपेत्वा परमसं अवसेसं अकुशलम्, कटुसु भूमिसु कुसलम, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणचा — इमे धम्म नो परमसा।

1517. कतमे धम्म परमार्थ? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म परमार्थ।

1518. कटमे धम्म अप्रमठ? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, चत्तारि च समानाफलनि निब्बानांच - इमे धम्म अप्रमठ।

1519. कतमे धम्म परमासम्पयुत्त? कत्तारो दिथिगतसम्पयुत्तचित्तुप्पदा, एत्थुप्पन्नं परमासं थपेत्वा - इमे धम्म परमासंसपयुत्त।

1520. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त? कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पदा, द्वे दोमानस्सहगतचित्तुप्पादा, विकिकिचसाहगातो सिट्ठुप्पादो, उद्धच्चसहागातो सिट्ठुप्पादो, बिल्लीसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म परमसाविप्पयुत्त। परमासो न वत्तब्बो — परमासाम्पयुत्तोतिपि, परमासाविप्पयुत्तोतिपि।

1521. कतमे धम्म परमसा सेवा परमार्थ च? तो एव परमसो परमसो सेवा परमार्थो च।

1522. कतमे धम्म परमार्थ सेवा नो च परमसा? तपेत्वा परमसं अवसेसं अकुसलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म परमार्थ सेवा नो च परमसा। अप्रमठ धम्म न वत्तब्बा - परमसा सेवा परमथ चतिपि, परमथ सेवा नो च परमसतिपि।

1523. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त परमार्थ? कट्टारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पादा, दवे दोमानस्सासहागतचित्तुप्पादा, विकिसिचासहगातो चित्तुप्पादो, उद्धच्चसहागातो चित्तुप्पादो, तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बान्चा रूपं - इमे धम्म परमसाविप्पयुत्ता परमार्थ।

1524. कतमे धम्म परमसविप्पयुत्त अप्रमठ? कत्तारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म परमसाविप्पयुत्त अप्रमठ। परमासा च परमासासंपयुत्त च धम्म न वत्तब्बा - परमसाविप्पयुत्त परमथ्थातिपि, परमसविप्पयुत्ता अप्रमठतिपि।

महंतरादुकां

1525. कटमे धम्म सरम्मना? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुशलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम् - इमे धम्म सरम्मना।

1526. कतमे धम्म अनारम्मना? रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म अनारम्मना।

1527. कटमे धम्म चित्त? चक्खुविनाणं, सोतविनानां, घनविनानां, जीवविनानां, कायविनानां, मनोधातु, मनोविनानाधातु - इमे धम्म चित्त।

1528. कटमे धम्म नो चित्त? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, रूपञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्त।

1529. कटमे धम्म चेतसिका? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो — इमे धम्म चेतसिका।

1530. कतमे धम्म एसिटासिका? चित्तञ्च, रूपञ्च, निब्बाञ्च - इमे धम्म एसिटासिका।

1531. कतमे धम्म चित्तसंपयुत्त? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो - इमे धम्म चित्तसम्पायुत्त।

1532. कतमे धम्म चित्तविप्पयुत्त? रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म चित्तविप्पयुत्त। चित्तं न वट्टब्बं – चित्तेन संपयुत्तन्तिपि, चित्तेन विप्पयुत्तन्तिपि।

1533. कतमे धम्म चित्तसंशथ? वेदानाक्खन्धो, संनाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशत्था।

1534. कतमे धम्म चित्तविसंशथा? रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म चित्तविसंसंथा। चित्तं न वट्टब्बं – चित्तेन संसंतहन्तिपि, चित्तेन विसंसंशांत्तिपि।

1535. Katame dhammā cittasamuṭṭhānā? वेदनाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, कायवीन्नत्ती, वाचिविनत्ती, यं वा पणन्नमपि अत्थि रूपं चित्तजं चित्तहेतुकं चित्तसमुत्थानं - रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोतहब्बायतनं आकाशधातु आपोधातु रूपस्स लहुता रूपस्स मुदुता रूपस्स काम्मनता रूपस उपाचयो रूपस्सा संतति कबाड़ीकारो अहारो - इमे धम्म चित्तसमुत्थाना।

1536. कटमे धम्म नो चित्तसमुत्थाना? चित्तञ्च, अवसेसन रुपं, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तसमुत्थाना।

1537. कतमे धम्म चित्तसहभूनो? वेदनाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो, कायाविन्ति, वाचिविनत्ती - इमे धम्म चित्तसाहाभुनो।

1538. कतमे धम्म नो चित्तसहभूनो? चित्तञ्च, अवसेसन रुपं, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तसहभूनो।

1539. Katame dhammā cittānuparivattino? Vedanākkhandho, saññākkhandho, saṅkhārakkhandho, kāyaviññatti, vacīviññatti – ime dhammā cittānuparivattino.

1540. कतमे धम्म नो चित्तनुपरिवत्तिनो? चित्तांक, अवसेसंच रूपं, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तनुपरिवत्तिनो।

1541. कटमे धम्म चित्तसंशमुत्थाना? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशठसमुत्थाना।

1542. कतमे धम्म नो चित्तासंसठसमुत्थाना? चित्तञ्च, रूपञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तसंस्थसमुत्थाना।

1543. कतमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थानसाहाभुनो? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो – इमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थानसाहाभुनो।

1544. कतमे धम्म नो चित्तसंशसमुत्थानसाहाभुनो? चित्तञ्च, रूपञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तसंशमुत्थानसाहाभुनो।

1545. कतमे धम्म चित्तसंशस्तसमुत्थाननुपरिवत्तिनो? वेदानाक्खन्धो, सन्नाक्खन्धो, संखरक्खन्धो - इमे धम्म चित्तसंशस्तसमुथ्थाननुपरिवत्तिनो।

1546. कतमे धम्म नो चित्तसंशसमुत्थाननुपरिवत्तिनो? चित्तञ्च, रूपञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो चित्तसंस्थसमुत्थाननुपरिवत्तिनो।

1547. कटमे धम्म अज्जत्तिका? चक्खायतनं...पे... मनायतनं - इमे धम्म अज्जत्तिका।

1548. कटमे धम्म बहिरा? रूपायतनं...पे...धम्मायतनं - इमे धम्म बहिरा।

1549. कटमे धम्म उपादा? चक्खायतनं...पे...कबदीकारो आहारो - इमे धम्म उपादा।

1550. कतमे धम्म नो उपदा? कैटुसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, कत्तारो च महाभूत, निब्बाणंच - इमे धम्म नो उपदा।

1551. कटमे धम्म उपादिन्ना? तिसु भूमिसु विपाको, यञ्च रूपं कम्मस्सा कटत्ता - इमे धम्म उपादिन्ना।

1552. कटमे धम्म अनुपदिना? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, यांचा रूपं न कम्मस्सा कटत्ता, कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारी च समान्नफलनि, निब्बानच - इमे धम्म अनुपादिना।

उपादानगोच्चकं

1553. कटमे धम्म उपादान? चत्तारि उपदाननि - कामुपादानां, दित्थुपादानां, सिलब्बतुपादानां, अत्तवदुपादानां। कामुपादानं अट्ठसु लोभसहगातेसु चित्तुप्पदेसु उपज्जति। दिट्ठुपादान्च सिल्लब्बतुपदानञ्च अत्तवदुपादान्च कटुसु दिथिगतसम्पायुत्तेसु चित्तुप्पदेसु उपज्जन्ति - इमे धम्म उपादन।

1554. कटमे धम्म नो उपादान? तपेत्वा उपादाने अवसेसं अकुसलम्, कटुसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म नो उपादान.

1555. कतमे धम्म उपदानिया? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म उपादनिया।

1556. कतमे धम्म अनुपदनीय? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, चत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनुपादनीय।

1557. कतमे धम्म उपादानसंपयुत्त? कत्तारो दितिगतसम्पायुत्तलोभासहागतचित्तुप्पदा, कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहगतचित्तुप्पदा, एत्थुप्पन्नं लोभं थापेत्वा - इमे धम्म उपादानसंपयुत्त।

1558. कटमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता? कैटुसु दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पन्नो लोभो, द्वे दोमानस्सहागतचिट्ठुप्पदा, विकिकिचसाहागतो चित्तुप्पादो, उद्धच्चासहागातो चित्तुप्पादो, कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बाणच - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता।

1559. कतमे धम्म उपादान सेवा उपादानिय च? तनेव उपादाननि उपादान सीव उपादानिय च।

1560. कतमे धम्म उपादानिय सेवा नो च उपादान? तपेत्वा उपादाने अवसेसं अकुसलम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, सब्बांका रूपं - इमे धम्म उपादानिय सेवा नो च उपादान। अनुपादनीय धम्म न वत्तब्बा - उपादान सेवा उपदानिय चतिपि, उपदानिय सेवा नो च उपदानतिपि।

1561. कतमे धम्म उपादान सेवा उपादानसंपयुत्त च? यत्थ दिति च लोभो च एकतो उपज्जन्ति - इमे धम्म उपादान सेवा उपादानसंपयुत्त च।

1562. कतमे धम्म उपादानसंपयुत्त सेवा नो च उपादान? अट्ठ लोभसहगतचित्तुप्पादा, एत्थुप्पन्ने उपादाने थपेत्वा - इमे धम्म उपादानसंपयुत्त सेवा नो च उपादान। उपादानविप्पयुत्त धम्म न वत्तब्बा - उपादान सेवा उपादानसंपयुत्त चतिपि, उपादानसंपयुत्त सेवा नो च उपादानतिपि।

1563. कतमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता उपदानिया? कैटुसु दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतेसु सिट्टुप्पादेसु उप्पन्नो लोभो, द्वे दोमनस्सहागतचिट्टुप्पादो, विकिकिचसाहागोटो सिट्टुप्पडो, उध्च्चासहागातो सिट्टुप्पडो, तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बान्चा रूपं - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता उपदानिया।

1564. कतमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता अनुपादनीय? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, चत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म उपादानविप्पयुत्ता अनुपादनीय। उपादानसंपयुत्त धम्म न वत्तब्बा - उपादानविप्पयुत्ता उपादानियातिपि, उपादानविप्पयुत्ता अनुपादनियातिपि।

किलेसगोच्चकम्

1565. कतमे धम्म किलेसा? दासा किलेसवत्थुनि - लोभो, दोसो, मोहो, मानो, दितिथि, विकिसिच्चा, थिनं, उद्धाक्कं, अहिरिकां, अनोत्प्पम। लोभो अथासु लोभसहागतेसु चित्तुप्पादेसु उपज्जति। दोसो दविसु दोमनस्सासाहागतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति। मोहो सब्बाकुसलेसु उपज्जति। मनो कैटुसु दितिथिगतविप्पयुत्तलोभसहगतेसु चित्तुप्पदेसु उप्पज्जति। दितिथि कैटुसु दितिथिगतसम्पायुत्तेसु चित्तुप्पादेसु उप्पज्जति। विसिकिच्चा विकिकिच्चासहगतेसु चित्तुप्पादेसु उप्पज्जति। थिनं ससंखारीकेसु अकुसालेसु उप्पज्जति। उद्धाच्चान्च अहिरिकाञ्च एनोत्तप्पञ्च सब्बकुसलेसु उप्पज्जन्ति - इमे धम्म किलेसा।

1566. कतमे धम्म नो किलेसा? हपेत्वा किलेसे अवसेसं अकुशलं, कटुसु भूमिसु कुसलम, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बाणच - इमे धम्म कोई किलेसा नहीं.

1567. कतमे धम्म संकिलेशिका? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं सब्बनचा रूपं - इमे धम्म संकिलेशिका।

1568. कतमे धम्म असंकिलेसिका? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म असन्किलेसिका।

1569. कतमे धम्म संकिलित्था? द्वादश अकुशलचित्तुपाद - इमे धम्म संकिलिथः।

1570. कतमे धम्म असंकिलित्था? कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म असंकिलिथा।

1571. कतमे धम्म किलेसासम्पयुत्त? द्वादश अकुशलचित्तुप्पादा - इमे धम्म किलेसासम्पयुत्त।

1572. कतमे धम्म किलेसविप्पयुत्त? कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त।

1573. कतमे धम्म किलेसा सेवा संकिलेशिका च? तेव किलेसा किलेसा सेवा संकिलेशिका च।

1574. कतमे धम्म संकिलेशिका सेवा नो च किलेसा? थपेत्वा किलेसे अवसेसं अकुसलाम्, तिसु भूमिसु कुसलम्, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म संकिलेशिका सेवा नो च किलेसा। असंकिलेशिका धम्म न वत्तब्बा - किलेसा सेवा संकिलेशिका चातिपि, संकिलेशिका सेवा नो च किलेसातिपि।

1575. कटमे धम्म किलेसा सेवा संकिलिथ च? तेव किलेसा किलेसा सेवा संकिलिथा च।

1576. कतमे धम्म संकिलित्थ सेवा नो च किलेसा? हपेत्वा किलेसे अवसेसं अकुसलम् — इमे धम्म संकिलिट्ठ सेवा नो च किलेसा। असंकिलिट्ठा धम्म न वट्टब्बा - किलेसा सेवा संकिलिथा चातिपि, संकिलिट्ठा सेवा नो च किलेसातिपि।

1577. कतमे धम्म किलेसा सेवा किलेसासम्पयुत्त च? यत्था द्वे तैयो किलेसा एकतो उपज्जन्ति — इमे धम्म किलेसा सेवा किलेसासम्पयुत्त च।

1578. कतमे धम्म किलेसासम्पयुत्त सेवा नो च किलेसा? हपेत्वा किलेसे अवसेसं अक्सलम् - इमे धम्म किलेसासम्पयुत्त सेवा नो च किलेसा। किलेसाविप्पयुत्त धम्म न वट्टब्बा - किलेसा सेवा किलेससाम्पयुत्ता चातिपि, किलेससाम्पयुत्ता सेवा नो च किलेसातिपि।

1579. कतमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त संकिलेशिका? तिसु भूमिसु कुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, सब्बनचा रूपं - इमे धम्म किलेसविप्पयुत्त संकिलेशिका।

1580. कतमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त असंकिलेशिका? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणंच - इमे धम्म किलेसाविप्पयुत्त असान्किलेसिका। किलेसासम्पयुत्त धम्म न वत्तब्बा - किलेसाविप्पयुत्त संकिलेसिकतिपि, किलेससाविप्पयुत्त असन्किलेसिकतिपि।

पिट्ठिदुकम्

1581. कतमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा? कत्तारो दिथिगतसम्पायुत्तचित्तुप्पदा, विकिसिचासहगातो चित्तुप्पदो — इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बा। कट्टारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पादा, दवे दोमनस्सासाहागतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया दस्सानेन पहतब्बा, सिया न दस्सानेन पहतब्बा।

1582. कतमे धम्म न दस्सानेन पहतब्बा? उद्धाचसहागातो सित्तुप्पाडो, कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बानच - इमे धम्म न दस्सानेना पहतब्बा.

1583. कटमे धम्म भवनाय पहतब्बा? उद्धच्चसहागतो चित्तुप्पदो — इमे धम्म भवनाय पहतब्बा। कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पदा, द्वे दोमनस्सासहागतचित्तुप्पदा - इमे धम्म सिया भवनाय पहतब्बा, सिया न भवनाय पहतब्बा।

1584. कटमे धम्म न भवनाय पहतब्बा? कत्तरो दितिगतसम्पयुत्तचित्तुप्पादा, विचिकिचसाहगतो सित्तुप्पदो, कटुसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म न भवनाय पहतब्बा।

1585. कटमे धम्म दस्सानेन पहतबहेतुका? कत्तारो दिथिगतसम्पयुत्तचित्तुप्पदा, विसिकिचसाहगातो चित्तुप्पदो, एत्थुप्पन्नं मोहं थपेत्वा - इमे धम्म दस्सानेन पहतब्बाहेतुका। कत्तारो दितिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पादा, द्वे डोमनस्सासाहागतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया दासानेन पहतब्बाहेतुका, सिया न दासानेन पहतब्बाहेतुका।

1586. कतमे धम्म न दस्सानेन पहतबहेतुका? विकिसिछासहागतो मोहो, उद्धाचसहागतो चित्तुप्पदो, कटुसु भूमिसु कुसलम्, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटम्, रूपाञ्च, निब्बाणचा - इमे धम्म न दस्सानेन पहतबहेतुका।

1587. कटमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका? उद्धच्चसहागतो चित्तुप्पदो, एत्थुप्पन्नं मोहं थपेत्वा - इमे धम्म भवनाय पहतबहेतुका। कत्तारो दितिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पादा, द्वे डोमनस्सासाहागतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया भवनाय पहतबहेतुका, सिया न भवनाय

पहतबहेतुका।

1588. कटमे धम्म न भवनाय पहतबहेतुका? कत्तारो दितिगतसम्पायुत्तचित्तुपाद, विसिकिचसाहगतो सिट्ठुप्पदो, उद्धाचसहागतो मोहो, कट्ठसु भूमिसु कुसलं, बिल्लीसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म न भवनाय पहतबहेतुका।

1589. कतमे धम्म सवितक्का? कामवाकरकुसलम, अकुसलम, कामवाकरकुसलसा विपाकटो एकादश चित्तुप्पदा, अकुसलसा विपाकतो दवे, किरियतो एकादश, रूपावचरम पथमं झाणं कुसलतो च विपकातो च किरियतो च लोकुत्तरं पथमं झाणं कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं विटककं थपेत्वा - इमे धम्म सवितक्क।

1590. कटमे धम्म अवित्क्का? द्वेपञ्चविन्नानि, रूपावकरतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, कत्तारो अरूपवचरा कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरतिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकतो च, विटक्को च, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म अवित्क्का।

1591. कटमे धम्म सविचारारा? कामवाकरकुसलम, अकुसलम, कामवाकरकुसलसा विपाकतो एकादश चित्तुप्पादा, अकुसलस्सा विपाकतो द्वे किरियतो एकादश, रूपावकरएककादुकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरेकाकाडुकज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं विचारं थपेत्वा - इमे धम्म सविचाररा।

1592. कटमे धम्म विचार? द्वेपञ्चविन्नानि, रूपावचराटिकितिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरीयतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तराटिकटिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च, विकारो च, रूपाञ्च, निब्बानाञ्च - इमे धम्म विचारा।

1593. कटमे धम्म सप्पितिका? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो, कामवाकरकुसलसा विपाकातो पञ्च, किरियतो पञ्च, रूपावकरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं पितिम थपेत्वा - इमे धम्म सप्पितिका।

1594. कटमे धम्म अप्पितिका? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो अट्ठ, कामवाकरकुसलसा विपाकतो एकादश, अकुसलस्सा विपाकतो सत्त, किरियतो च, रूपावकरदुकादुकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, लोकुत्तरदुकदुकज्झाना कुसलतो च विपकातो च पित च, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अप्पितिका।

1595. कतमे धम्म पितिसाहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो, कामवाकरकुसलसा विपाकातो पञ्च, किरियतो पञ्च, रूपावकरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, लोकुत्तरदुकटिकज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं पितिम थपेत्वा - इमे धम्म पितिसाहगता।

1596. कतमे धम्म न पितिसाहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो अट्ठ, कामवाकरकुसलसा विपाकतो एकादश, अकुसलस्सा विपाकतो सत्त, किरियतो च, रूपावकरदुकादुकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, लोकुत्तरदुकदुकज्झाना कुसलतो च विपकातो च, पित च, रूपानच, निब्बानच - इमे धम्म न पितिसाहगता।

1597. कतमे धम्म सुखसहागता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो कत्तारो, कामवाकरकुसलसा विपाकातो च, किरियतो पञ्च, रूपावकरतिकाकातुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च लोकुत्तरटिकचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं सुखं थपेत्वा - इमे धम्म सुखसहगता।

1598. कतमे धम्म न सुखसहगाता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खसहगतचित्तुप्पादा, अकुसलतो अट्ठा, कामवाकरकुसलस्स विपाकतो दास, अकुसलस्स विपकतो सत्त, किरियतो च, रूपावकरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च लोकुत्तरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च, सुखञ्च, रूपञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म न सुखासहागता।

1599. कतमे धम्म उपेक्खसहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो उपेक्खसहगतचित्तुप्पादा, अकुसलतो च, कामवाकरकुसलस्स विपाकतो दास, अकुसलस्स विपकातो च, किरियतो च, रूपावकरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो। च किरियतो च, कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपकातो च किरियतो च, लोकुत्तरं चतुत्थं झाणं कुसलतो च विपकातो च, एत्थुप्पन्नं उपेक्खं थापेत्वा - इमे धम्म उपेक्खसहगता।

1600. कतमे धम्म न उपेक्खसहगता? कामवाकरकुसलतो कत्तारो सोमनस्सासहागतचित्तुप्पादा, अकुसलतो च, कामवाकरकुसलसा विपाकातो च, अकुसलस्सा विपाकातो एको, किरियतो पञ्च, रूपावकरतिकाकातुक्कज्झाना कुसलतो च विपाकातो च किरियतो च, लोकुत्तारिकाचतुक्कज्झाना कुसलतो च विपकातो च, उपेक्खा च, रूपाञ्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म न उपेक्खासहागता।

1601. कटमे धम्म कामवचरा? कामवचरकुसलं, अकुशलं, सब्बो कामवचरस विपको, कामवचरकिरियाब्यकटं, सब्बाञ्च रूपं - इमे धम्म कामवचरा।

1602. कतमे धम्म न कामवचरा? रूपवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न कामवचरा।

1603. कटमे धम्म रूपवचरा? रूपावकारचतुक्कपञ्चकज्झाना कुसलतो च विपाकतो च किरियतो च - इमे धम्म रूपवचरा।

1604. कतमे धम्म न रूपवचरा? कामवचरा, अरूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न रूपवचरा।

1605. कटमे धम्म अरूपवकारा? कत्तारो अरुप्पा कुसलतो च विपाकतो च किरीयतो च - इमे धम्म अरूपवचरा।

1606. कतमे धम्म न अरूपवचरा? कामवचरा, रूपवचरा, अपरियापन्ना - इमे धम्म न अरूपवचरा।

1607. कतमे धम्म परियापन्ना? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बनचा रूपं - इमे धम्म परियपन्ना।

1608. कतमे धम्म अपरियापन्ना? कट्टारो मग्गा अपरियपन्ना, कत्तारि च समानाफलनि, निब्बानांच - इमे धम्म अपरियपन्ना।

1609. कतमे धम्म नियमिका? कट्टारो मग्गा अपरियापन्ना - इमे धम्म निय्यनिका।

1610. कतमे धम्म अनियानिका? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, कटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपान्च, निब्बानांच - इमे धम्म अनियानिक।

1611. कतमे धम्म नियता? कत्तारो दिथिगतसम्पायुत्तचित्तुप्पदा, दवे दोमनससाहगतचित्तुप्पादा - इमे धम्म सिया नियता सिया अनियाता। कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना - इमे धम्म नियता।

1612. कतमे धम्म अनियता? कत्तारो दिथिगतविप्पयुत्तलोभासहागतचित्तुप्पदा, विकिकचासहगतो सिट्टुप्पादो, उद्धाचसहागातो सिट्टुप्पादो, तिसु भूमिसु कुसलं, कात्सु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकतम्, रूपान्च, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनियता।

1613. कटमे धम्म सौत्तरा? तिसु भूमिसु कुसलं, अकुसलं, तिसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, सब्बांका रूपं - इमे धम्म सौत्तरा।

1614. कतमे धम्म अनुत्तारा? कत्तारो मग्गा अपरियापन्ना, चत्तारि च समानाफलनि, निब्बाणञ्च - इमे धम्म अनुत्तरा।

1615. कतमे धम्म शरणा? द्वादश अकुशलचित्तुप्पादा - इमे धम्म शरणा।

1616. कतमे धम्म अरणा? कैटुसु भूमिसु कुसलं, कैटुसु भूमिसु विपाको, तिसु भूमिसु किरियाब्यकटं, रूपाञ्च, निब्बानांच - इमे धम्म अरणा।

Atthuddhāro niṭṭhito.

धम्मसंगणिपकारणं निहितं।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धम्मसंगनि >> पाली-देवनागरी संस्करण-अध्याय 4

धम्मसंगनी अध्याय 4

विभंगा

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग

पाली संस्करण : नीचे दिए गए प्रत्येक अध्याय में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

अंतर्वस्तु
1विभंगा
1.11. विभाग पाठ
1.22. विभंगा स्कैंड संस्करण
1.33. अंग्रेजी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
1.44. मूल पाली संस्करण
विभंगा
(विश्लेषण की पुस्तक)

विभंग अभिधम्म का दूसरा ग्रंथ है। विभंग ध्यान में अनुभव किए गए व्यक्तिगत घटकों का विश्लेषण करके स्वयं का विभेदक विश्लेषण है। विभंग को बुद्ध की सभी शिक्षाओं का मूल माना जा सकता है।

एक सामान्य अध्याय तीन भागों में विभाजित होता है:
सूत्र विधि: इसमें अक्सर सूत्र पिटक के उद्धरण शामिल होते हैं।

अभिधम्म विधि: पर्यायवाची शब्दों की विभिन्न सूचियाँ, संख्यात्मक वर्गीकरण

प्रश्न विधि: धम्मसंगनी की मटिका (मैट्रिक्स) लागू करता है

---

1. विभाग पाठ
ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं, पाठक इन्हें ठीक कर सकते हैं।
अध्याय 1 - स्कंधों का विश्लेषण (खंड-विभांगो)
अध्याय 2 - आधारों/द्वारों का विश्लेषण (आयतन-विभांगो)
अध्याय 3 - तत्वों का विश्लेषण (धातु-विभांगो)
अध्याय 4 - सत्य का विश्लेषण (सच्च-विभांगो)
अध्याय 5 - इंद्रियों/इंद्रियों का विश्लेषण (इंद्रिय-विभांगो)
अध्याय 6 - जीवन चक्र/आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण (पतीच्छासमुप्पदा-विभांगो)
अध्याय 7 - ध्यान विधि का विश्लेषण (सतिपट्टाना-विभांगो)
अध्याय 8 - उचित प्रयास/प्रयास का विश्लेषण (समप्पद्धना-विभांगो)
अध्याय 9 - रहस्यवादी उपलब्धियों के आधार का विश्लेषण (इद्धिपाद-विभांगो)
अध्याय 10 - ज्ञानोदय कारकों का विश्लेषण (बोज्झंग-विभांगो)
अध्याय 11 - पथ का विश्लेषण घटक (मग्गंगा-विभंगो)
अध्याय 12 - ट्रान्स स्टेट्स का विश्लेषण (झाना-विभंगो)

अध्याय 13 - असीमित का विश्लेषण (अप्पमन्ना-विभंगो)
अध्याय 14 - प्रशिक्षण नियमों का विश्लेषण (सिक्खपाद-विभंगो)
अध्याय 15 - विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण (पतिसंभिदा-विभंगो)
अध्याय 16 - ज्ञान का विश्लेषण (नाना-विभंगो)
अध्याय 17 - छोटी वस्तुओं का विश्लेषण (खुद्दाकवत्थु-विभंगो)
अध्याय 18 - धम्म के हृदय का विश्लेषण (धम्म-हदय-विभंगो)

---

2. विभंगा स्कैन्ड संस्करण

अध्याय 1 - स्कंधों का विश्लेषण (खंड-विभांगो)
अध्याय 2 - आधारों/द्वारों का विश्लेषण (आयतन-विभांगो)
अध्याय 3 - तत्वों का विश्लेषण (धातु-विभांगो)
अध्याय 4 - सत्य का विश्लेषण (सच्च-विभांगो)
अध्याय 5 - इंद्रियों/इंद्रियों का विश्लेषण (इंद्रिय-विभांगो)
अध्याय 6 - जीवन चक्र/आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण (पतीच्छासमुप्पदा-विभांगो)
अध्याय 7 - ध्यान विधि का विश्लेषण (सतिपट्टाना-विभांगो)
अध्याय 8 - उचित प्रयास/प्रयास का विश्लेषण (समप्पद्धना-विभांगो)
अध्याय 9 - रहस्यवादी सिद्धि के आधार का विश्लेषण (इद्धिपाद-विभांगो)
अध्याय 10 - ज्ञानोदय कारकों का विश्लेषण (बोज्झंग-विभांगो)
अध्याय 11 - पथ का विश्लेषण घटक (मग्गंगा-विभंगो)
अध्याय 12 - ट्रान्स स्टेट्स का विश्लेषण (झाना-विभंगो)
अध्याय 13 - असीमित का विश्लेषण (अप्पमन्ना-विभंगो)
अध्याय 14 - प्रशिक्षण नियमों का विश्लेषण (सिक्खपाद-विभंगो)
अध्याय 15 - विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण (पतिसंभिदा-विभंगो)
अध्याय 16 - ज्ञान का विश्लेषण (नाना-विभंगो)
अध्याय 17 - छोटी वस्तुओं का विश्लेषण (खुद्दाकवत्थु-विभंगो)
अध्याय 18 - धम्म के हृदय का विश्लेषण (धम्म-हदय-विभंगो)

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 1 पाठ- समुच्चय (खंड)
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
विभंग-अध्याय 1-साइड बाय साइड संस्करण (रोमन-पाली)
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अभिधम्मपिटक

विभंगा - विश्लेषण की पुस्तक

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स

अंतर्वस्तु

11. समुच्चय का विश्लेषण (संस्कृत: स्कन्ध)
1.11. प्रवचनों के विश्लेषण के अनुसार
1.1.11.सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग
1.1.22. भावनाओं का समूह
1.1.33. धारणाओं का समग्र योग
1.1.44. मानसिक सहशिक्षा का समूह
1.1.55. खुद का ग्रुप
1.22. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
1.2.11.सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग
1.2.22. भावनाओं का समूह
1.2.33. धारणाओं का समग्र योग
1.2.44. मानसिक सहशिक्षा का समूह
1.2.55. खुद का ग्रुप
1.33. पूछताछ
1.3.11. त्रिक
1.3.22.हे

1. समुच्चय का विश्लेषण (संस्कृत: स्कन्ध)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

1. पाँच समुच्चय हैं: भौतिक गुणों का समुच्चय, भावनाओं का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय, चेतना का समुच्चय।

1. सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग

2. उसमें भौतिक गुणों का कुल योग क्या है? भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल के, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूरस्थ या निकट, इन सभी को सामूहिक रूप से संक्षेप में लेते हुए, इसे भौतिक गुणों का कुल योग कहा जाता है।

3. उसमें भूतकाल का भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो बीत चुका है, समाप्त हो गया है, घुल गया है, बदल गया है, समाप्त हो गया है, गायब हो गया है, या जो उत्पन्न होकर घुल गया है, बीत चुका है और वर्गीकृत किया गया है।

2

अतीत की वस्तुओं में, अर्थात् चार प्रमुख आवश्यक तत्व और उनसे उत्पन्न भौतिक गुण। इसे अतीत का भौतिक गुण कहा जाता है।

इसमें भविष्य का भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो न तो जन्म लेता है, न बनता है, न उत्पन्न होता है, न अस्तित्वहीन है, न पूर्णतः अस्तित्वहीन है, न प्रकट होता है, न उदय हुआ है, न पूर्णतः उदय हुआ है, न उठा है, न पूर्णतः उदय हुआ है, जो भविष्य में है और भविष्य की चीजों में शुमार है, अर्थात् चार महान आवश्यक तत्व और उनसे व्युत्पन्न भौतिक गुण। इसे भविष्य का भौतिक गुण कहते हैं।

उसमें वर्तमान भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो जन्म लेता है, उत्पन्न होता है, विद्यमान होता है, पूर्णतः विद्यमान होता है, प्रकट होता है, उत्पन्न होता है, पूर्णतः उत्पन्न होता है, उत्पन्न होता है, पूर्णतः उत्पन्न होता है, जो विद्यमान है और विद्यमान वस्तुओं में वर्गीकृत है, [2] (अर्थात्) चार महान आवश्यक तत्व और चार महान आवश्यक तत्वों से व्युत्पन्न भौतिक गुण। इसे वर्तमान भौतिक गुण कहा जाता है।

4. इसमें आंतरिक भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो किसी प्राणी के लिए व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, स्वयं का, निजी होता है और जिसे (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, (अर्थात्) चार महा तत्व और उनसे व्युत्पन्न भौतिक गुण। इसे आंतरिक भौतिक गुण कहा जाता है।

इसमें बाह्य भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो किसी अन्य प्राणी के लिए, किसी अन्य व्यक्ति के लिए, व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, स्वयं का, वैयक्तिक होता है और जिसे ग्रहण किया जा सकता है, अर्थात् चार महान आवश्यक तत्व और उनसे व्युत्पन्न भौतिक गुण। इसे बाह्य भौतिक गुण कहा जाता है।
5. इसमें स्थूल भौतिक गुणवत्ता क्या है? प्रत्यक्ष आधार, :P: मूर्त आधार। इसे ही स्थूल भौतिक गुणवत्ता कहते हैं।
P = अनुच्छेद 154 देखें।
इसमें सूक्ष्म भौतिक गुण क्या है? नारीत्व की नियंत्रक शक्ति, :P: भोजन का पोषक तत्व। इसे ही सूक्ष्म भौतिक गुण कहते हैं।
P = Dhs. पैरा 595 देखें। ^
6. उसमें निम्न भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो किसी प्राणी के लिए तुच्छ या तिरस्कृत हो।

3

बेकार, उपहासपूर्ण, अनादरित, निम्न, निम्न समझा जाने वाला, अवांछनीय, अनाकर्षक, अप्रिय, (अर्थात) दृश्य, श्रव्य, गंधयुक्त, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय। इसे निम्न भौतिक गुणवत्ता कहा जाता है।
इसमें श्रेष्ठ भौतिक गुण क्या है? वह भौतिक गुण जो किसी प्राणी के लिए तुच्छ, तिरस्कृत, व्यर्थ, उपहास का पात्र न हो, बल्कि आदरणीय, श्रेष्ठ, श्रेष्ठ समझा जाने वाला, वांछनीय, आकर्षक, सुखद हो, अर्थात् दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादिष्ट और स्पर्शनीय हो। इसे ही श्रेष्ठ भौतिक गुण कहते हैं। निम्न और श्रेष्ठ भौतिक गुणों को समझने के लिए, इस भौतिक गुण की तुलना दूसरे से करनी चाहिए।
7. उसमें दूरस्थ भौतिक गुण क्या है? स्त्रीत्व की नियंत्रक क्षमता, : P : भोजन का पोषक तत्व या कोई अन्य भौतिक गुण जो निकट नहीं, पास नहीं, दूर है, समीप नहीं है। इसे दूरस्थ भौतिक गुण कहा जाता है। [3]
पी = डीएचएस पैराग्राफ 595 देखें।
इसमें निकटवर्ती भौतिक गुणवत्ता क्या है? आँख का आधार,
P: मूर्त आधार या कोई अन्य भौतिक गुण जो निकट हो,
निकट, दूर नहीं, समीपस्थ। इसे समीपस्थ पदार्थ गुण कहते हैं। दूरस्थ और समीपस्थ पदार्थ गुणों को समझने के लिए, इस पदार्थ गुण की तुलना दूसरे पदार्थ गुण से करनी चाहिए।
P = अनुच्छेद 154 देखें।

2. भावनाओं का समूह
8. इसमें भावों का समूह क्या है? भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, इन सभी भावों को सामूहिक रूप से संक्षेप में लें तो, यही भावों का समूह कहलाता है।
9. इसमें भूतकाल की भावना क्या है? वह भावना जो बीत चुकी है, समाप्त हो गई है, घुल गई है, बदल गई है, थम गई है, गायब हो गई है, या जो उत्पन्न होकर घुल गई है, बीत चुकी है और अतीत की चीजों में गिनी जाती है, (अर्थात) सुखद भावना, दुखदायी भावना, न दुखदायी न सुखद भावना। इसे भूतकाल की भावना कहते हैं।
उसमें भविष्य की भावना क्या है? वह भावना जो न तो जन्म लेती है, न बनती है, न उत्पन्न होती है, अस्तित्वहीन है, पूर्णतः अस्तित्वहीन है।

4

स्पष्ट, न उठा हुआ, ठीक से न उठा हुआ, न ऊपर उठा हुआ, ठीक से ऊपर न उठा हुआ, जो भविष्य का है और भविष्य की चीजों में गिना जाता है, (अर्थात) सुखद भावना, दुखदायी भावना, न दुखदायी न सुखद भावना। इसे भविष्य की भावना कहते हैं।
इसमें वर्तमान भावना क्या है? वह भावना जो जन्म लेती है, उत्पन्न होती है, विद्यमान होती है, पूर्णतः विद्यमान होती है, प्रकट होती है, उत्पन्न होती है, पूर्णतः उत्पन्न होती है, ऊपर उठती है, पूर्णतः उत्पन्न होती है, जो वर्तमान में मौजूद होती है और वर्तमान में मौजूद चीजों में गिनी जाती है, अर्थात् सुखद भावना, दुखदायी भावना, न दुखदायी न सुखद भावना। इसे ही वर्तमान भावना कहते हैं।

10. इसमें आंतरिक भावना क्या है? वह भावना जो किसी प्राणी के लिए व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, स्वयं की, निजी होती है और जिसे (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, (अर्थात) सुखद भावना, दुखद भावना, न दुखद न सुखद भावना। इसे आंतरिक भावना कहते हैं।
इसमें बाह्य भावना क्या है? वह भावना जो किसी अन्य प्राणी के लिए, किसी अन्य व्यक्ति के लिए, व्यक्तिगत, स्व-संबंधित, स्वयं की, और अनुभव की जा सकती है, अर्थात् सुखद भावना, पीड़ादायक भावना, न पीड़ादायक न सुखद भावना। इसे बाह्य भावना कहते हैं।
11. इसमें स्थूल (और) सूक्ष्म भावना क्या है? बुरी भावना स्थूल है; अच्छी और न अच्छी न बुरी भावना सूक्ष्म है। अच्छी और बुरी भावना स्थूल है; न अच्छी न बुरी भावना सूक्ष्म है। [4] पीड़ादायक भावना स्थूल है; सुखदायक और न पीड़ादायक न सुखदायक भावना सूक्ष्म है। सुखदायक और पीड़ादायक भावना स्थूल है; न पीड़ादायक न सुखदायक भावना सूक्ष्म है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले की भावना स्थूल है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले की भावना सूक्ष्म है। जो भावना दोषों का विषय है वह स्थूल है; जो भावना दोषों का विषय नहीं है वह सूक्ष्म है। स्थूल और सूक्ष्म भावना को समझने के लिए एक भावना की तुलना दूसरी भावना से करनी चाहिए।
12. उसमें हीन (भी) श्रेष्ठ भावना क्या है? बुरी
भावना निम्न है; अच्छी और न बुरी भावना श्रेष्ठ है। अच्छी और बुरी भावना निम्न है; न बुरी भावना श्रेष्ठ है। पीड़ादायक भावना निम्न है; सुखद भावना और न पीड़ादायक भावना श्रेष्ठ है। सुखद और पीड़ादायक भावना निम्न है; न पीड़ादायक भावना श्रेष्ठ है।

5

श्रेष्ठ। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की अनुभूति निम्न होती है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की अनुभूति श्रेष्ठ होती है। जो अनुभूति विकारों का विषय है वह निम्न होती है; जो अनुभूति विकारों का विषय नहीं है वह श्रेष्ठ होती है। निम्न और श्रेष्ठ अनुभूति को समझने के लिए एक अनुभूति की तुलना दूसरी अनुभूति से करनी चाहिए।
13. इसमें दूरी का भाव क्या है? बुरा भाव अच्छे और न अच्छे न बुरे भावों से दूर है; अच्छा और न अच्छे न बुरे भाव बुरे भावों से दूर हैं; अच्छा भाव बुरे और न अच्छे न बुरे भावों से दूर है; बुरा और न अच्छे न बुरे भाव अच्छे भावों से दूर हैं; न अच्छे न बुरे भाव अच्छे और बुरे भावों से दूर हैं; अच्छा और बुरा भाव न अच्छे और बुरे भावों से दूर हैं। पीड़ादायक भाव सुखद और न पीड़ादायक भावों से दूर है; सुखद और न पीड़ादायक भाव पीड़ादायक भावों से दूर हैं; सुखद भाव पीड़ादायक और न पीड़ादायक भावों से दूर हैं; पीड़ादायक और न पीड़ादायक भाव सुखद भावों से दूर हैं; न पीड़ादायक और पीड़ादायक भाव सुखद और पीड़ादायक भावों से दूर हैं; सुखद और पीड़ादायक भाव न पीड़ादायक और पीड़ादायक भावों से दूर हैं। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने का बोध, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले बोध से भिन्न होता है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने का बोध, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले बोध से भिन्न होता है। जो बोध विकारों का विषय है, वह विकारों का विषय न होने वाले बोध से भिन्न होता है; जो बोध विकारों का विषय न हो, वह विकारों का विषय होने वाले बोध से भिन्न होता है। इसे ही दूरस्थ बोध कहते हैं।
इसमें निकटवर्ती भावना क्या है? बुरी भावना बुरी भावना के निकट है; अच्छी भावना अच्छी भावना के निकट है; न अच्छी न बुरी भावना न अच्छी न बुरी भावना के निकट है। पीड़ादायक भावना पीड़ादायक भावना के निकट है; सुखद भावना सुखद भावना के निकट है; न पीड़ादायक न सुखद भावना न पीड़ादायक न सुखद भावना के निकट है। [5] उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की भावना उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की भावना के निकट है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की भावना उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की भावना के निकट है। यह भावना कि

6

जो भावना अशुद्धियों का कारण है, वह उस भावना के निकट होती है; जो भावना अशुद्धियों का कारण नहीं है, वह उस भावना के निकट होती है जो अशुद्धियों का कारण नहीं है। इसे निकटवर्ती भावना कहते हैं। दूरवर्ती और निकटवर्ती भावना को समझने के लिए, इस भावना की तुलना उस भावना से करनी चाहिए।

3. धारणाओं का समग्र योग

14. इसमें बोध का समूह क्या है? भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूरस्थ या निकट का, जो भी बोध हो; इन सबको सामूहिक रूप से संक्षेप में लें तो, यही बोध का समूह कहलाता है।

15. इसमें भूतकाल की अनुभूति क्या है? वह अनुभूति जो बीत चुकी है, समाप्त हो चुकी है, विलीन हो चुकी है, परिवर्तित हो चुकी है, समाप्त हो गई है, लुप्त हो गई है, या जो उत्पन्न होकर विलीन हो गई है, बीत चुकी है और अतीत की वस्तुओं में गिनी जाती है, (अर्थात) नेत्र संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, कान संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, नाक संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, जीभ संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, शरीर संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, मन संपर्क से उत्पन्न अनुभूति। इसे भूतकाल की अनुभूति कहते हैं।

तो भविष्य की अनुभूति क्या है? वह अनुभूति जो न तो उत्पन्न होती है, न पैदा होती है, न अस्तित्वहीन होती है, न पूर्णतः अस्तित्वहीन होती है, न प्रकट होती है, न उठी हुई होती है, न पूर्णतः उठी हुई होती है, न पूर्णतः उठी हुई होती है, जो भविष्य की होती है और भविष्य की चीजों में गिनी जाती है, अर्थात्, नेत्र संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, कान संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, नाक संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, जीभ संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, शरीर संपर्क से उत्पन्न अनुभूति, मन संपर्क से उत्पन्न अनुभूति। इसे ही भविष्य की अनुभूति कहते हैं।

इसमें वर्तमान बोध क्या है? वह बोध जो उत्पन्न होता है, बनता है, विद्यमान होता है, पूर्णतः विद्यमान होता है, प्रकट होता है, ऊपर उठता है, पूर्णतः ऊपर उठता है, जो वर्तमान में मौजूद होता है और वर्तमान वस्तुओं में शुमार होता है, अर्थात्, नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध, कान संपर्क से उत्पन्न बोध, नाक संपर्क से उत्पन्न बोध, जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध, शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध, मन संपर्क से उत्पन्न बोध। इसे वर्तमान बोध कहते हैं।

16. इसमें आंतरिक बोध क्या है? वह बोध जो किसी प्राणी के लिए व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, स्वयं का, निजी होता है और जिसे (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, अर्थात्, नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध, कान संपर्क से उत्पन्न बोध, नाक संपर्क से उत्पन्न बोध, जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध, शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध, मन संपर्क से उत्पन्न बोध। इसे आंतरिक बोध कहते हैं।

इसमें बाह्य बोध क्या है? वह बोध जो किसी अन्य प्राणी के लिए, अन्य व्यक्तियों के लिए, व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, स्वयं का, व्यक्तिगत होता है और जिसे ग्रहण किया जाता है, (अर्थात) नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध, कान संपर्क से उत्पन्न बोध, नाक संपर्क से उत्पन्न बोध, जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध, शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध, मन संपर्क से उत्पन्न बोध। इसे बाह्य बोध कहा जाता है। [6]

17. इसमें स्थूल (और) सूक्ष्म बोध क्या है? परस्पर संपर्क से उत्पन्न बोध स्थूल है; सादृश्य संपर्क* से उत्पन्न बोध सूक्ष्म है। बुरा बोध स्थूल है; अच्छा और न बुरा बोध सूक्ष्म है। अच्छा और बुरा बोध स्थूल है; न बुरा बोध सूक्ष्म है। पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा बोध स्थूल है; सुखद और न पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा बोध सूक्ष्म है। सुखद और पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा बोध स्थूल है; न पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा बोध सूक्ष्म है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति का बोध स्थूल है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति का बोध सूक्ष्म है। जो बोध दोषों का विषय है वह स्थूल है; जो बोध दोषों का विषय नहीं है वह सूक्ष्म है। स्थूल और सूक्ष्म बोध को एक बोध की दूसरे बोध से तुलना करके समझना चाहिए।

मन और मानसिक वस्तुएँ परस्पर परस्पर क्रिया नहीं करतीं, बल्कि सादृश्य द्वारा समझाई जाती हैं।

(आधिवचन) भौतिक अवस्थाओं का।

18. ई. उसमें निम्न (भी) श्रेष्ठ धारणा क्या है? बुरा

धारणा निम्न स्तर की होती है; अच्छी और न अच्छी न बुरी धारणा श्रेष्ठ होती है। अच्छी और बुरी धारणा निम्न स्तर की होती है; न अच्छी न बुरी धारणा श्रेष्ठ होती है। पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी धारणा निम्न स्तर की होती है; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद अनुभूति से जुड़ी धारणा श्रेष्ठ होती है। धारणा

सुख और दुख दोनों से संबंधित अनुभूति निम्न स्तर की होती है; दुख और सुख दोनों से रहित अनुभूति श्रेष्ठ स्तर की होती है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की अनुभूति निम्न स्तर की होती है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव

करने वाले व्यक्ति की अनुभूति श्रेष्ठ स्तर की होती है। जो अनुभूति दोषों से प्रभावित होती है वह निम्न स्तर की होती है; जो अनुभूति दोषों से प्रभावित नहीं होती वह श्रेष्ठ स्तर की होती है। निम्न और श्रेष्ठ अनुभूति को समझने के लिए एक अनुभूति की दूसरे अनुभूति से तुलना करनी चाहिए।

19. इसमें दूरदर्शी धारणा क्या है? बुरी धारणा अच्छी और न अच्छी न बुरी धारणाओं से दूर होती है; अच्छी और न अच्छी न बुरी धारणा बुरी धारणा से दूर होती है; अच्छी धारणा बुरी और न अच्छी न बुरी धारणाओं से दूर होती है; बुरी और न अच्छी न बुरी धारणा अच्छी धारणा से दूर होती है। न अच्छी न बुरी धारणा अच्छी और बुरी धारणाओं से दूर होती है; अच्छी और बुरी धारणा न अच्छी न बुरी धारणा से दूर होती है। पीड़ादायक भावना से जुड़ी धारणा सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी धारणाओं से दूर होती है; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी धारणा पीड़ादायक भावना से जुड़ी धारणा से दूर होती है; सुखद भावना से जुड़ी धारणा पीड़ादायक और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी धारणाओं से दूर होती है; पीड़ादायक और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी धारणा सुखद भावना से जुड़ी धारणा से दूर होती है; न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभूति से जुड़ी धारणा, सुखदायक और पीड़ादायक अनुभूतियों से जुड़ी धारणाओं से दूर होती है; सुखदायक और पीड़ादायक अनुभूतियों से जुड़ी धारणा, न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभूति से जुड़ी धारणा से दूर होती है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की धारणा, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की धारणा से दूर होती है; [7] उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की धारणा, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की धारणा से दूर होती है। जो धारणा दोषों का विषय है, वह उस धारणा से दूर होती है जो दोषों का विषय नहीं है; जो धारणा दोषों का विषय नहीं है, वह उस धारणा से दूर होती है जो दोषों का विषय है। इसे दूरदर्शी धारणा कहते हैं।

इसमें निकटवर्ती बोध क्या है? बुरा बोध क्या है?

बुरी धारणा के निकट; अच्छी धारणा अच्छी धारणा के निकट; न अच्छी न बुरी धारणा न अच्छी न बुरी धारणा के निकट; पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी धारणा पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी धारणा के निकट; सुखद अनुभूति से जुड़ी धारणा सुखद अनुभूति से जुड़ी धारणा के निकट; न पीड़ादायक न सुखद अनुभूति से जुड़ी धारणा पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी धारणा के निकट। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यंक्ति की धारणा उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यंक्ति की धारणा के निकट; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की धारणा उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की धारणा के निकट। जो धारणा दोषों का विषय है, वह दोषों का विषय है, वह दोषों का विषय नहीं है, वह दोषों का विषय नहीं है, यह धारणा निकट है। इसे निकटवर्ती धारणा कहते हैं। दूरवर्ती और निकटवर्ती धारणा को समझने के लिए इस धारणा की तुलना उस धारणा से करनी चाहिए।

4. मानसिक सहवर्तीताओं का समूह

20. उसमें मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग क्या है?

जो भी मानसिक सहवर्ती तत्व भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल के हों, आंतरिक या बाह्य हों, स्थूल या सूक्ष्म हों, निम्न या उच्चतर हों, दूर या निकट हों; इन सभी को सामूहिक रूप से और संक्षेप में एक साथ लेने पर, इसे मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कहा जाता है।

21. इसमें भूतकाल की मानसिक क्रियाएँ क्या हैं? वे मानसिक क्रियाएँ जो अतीत में घटित हो चुकी हैं, समाप्त हो चुकी हैं, विलीन हो चुकी हैं, परिवर्तित हो चुकी हैं, समाप्त हो चुकी हैं, लुप्त हो चुकी हैं, या जो उत्पन्न होकर विलीन हो चुकी हैं, बीत चुकी हैं और भूतकाल की वस्तुओं में वर्गीकृत की जाती हैं, (अर्थात) नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें भूतकाल की मानसिक क्रियाएँ कहा जाता है।

उसमें भविष्य के मानसिक सहवर्ती क्या हैं? वे मानसिक सहवर्ती जो न तो जन्म लेते हैं, न बनते हैं, न उत्पन्न होते हैं, न अस्तित्वहीन हैं, न पूर्णतः अस्तित्वहीन हैं, न स्पष्ट हैं, न उठे हैं, न पूर्णतः उठे हैं, न उठे हैं, न पूर्णतः उठे हैं, जो भविष्य के हैं और

भविष्य में घटित होने वाली चीजों में, जैसे कि नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति और मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, ये सभी भविष्यकालीन मानसिक क्रियाविधियाँ कहलाती हैं।

इसमें वर्तमान मानसिक सहवर्ती क्या हैं? वे मानसिक सहवर्ती जो जन्म लेते हैं, बनते हैं, उत्पन्न होते हैं, विद्यमान होते हैं, पूर्णतः विद्यमान होते हैं, प्रकट होते हैं, उठे हुए होते हैं, पूर्णतः उठे हुए होते हैं, [8] पूर्णतः उठे हुए होते हैं, जो उपस्थित होते हैं और उपस्थित वस्तुओं में वर्गीकृत किए जाते हैं, (अर्थात) नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें वर्तमान मानसिक सहवर्ती कहा जाता है।

22. इसमें आंतरिक मानसिक सहवर्ती क्या हैं? वे मानसिक सहवर्ती जो किसी प्राणी के लिए व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, स्वयं के, निजी होते हैं और जिन्हें (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, (अर्थात) नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें आंतरिक मानसिक सहवर्ती कहा जाता है।

इसमें बाह्य मानसिक सहवर्ती क्या हैं? वे मानसिक सहवर्ती जो किसी अन्य प्राणी, किसी अन्य व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, स्वयं से संबंधित और अनुभव किए जा सकते हैं, अर्थात्, नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें बाह्य मानसिक सहवर्ती कहा जाता है।

23. उसमें स्थूल (और) सूक्ष्म मानसिक सहवर्ती क्या हैं?

बुरी मानसिक भावनाएँ स्थूल होती हैं; अच्छी और न अच्छी न बुरी मानसिक भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं। अच्छी और बुरी मानसिक भावनाएँ स्थूल होती हैं; न अच्छी न बुरी मानसिक भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं। पीड़ादायक भावनाओं से जुड़ी मानसिक भावनाएँ स्थूल होती हैं; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी मानसिक भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं। सुखद और पीड़ादायक भावनाओं से जुड़ी मानसिक भावनाएँ स्थूल होती हैं; न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी मानसिक भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की मानसिक भावनाएँ स्थूल होती हैं;

11

उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती सूक्ष्म होते हैं। जो मानसिक सहवर्ती दोषों के विषय होते हैं वे स्थूल होते हैं; जो दोषों के विषय नहीं होते वे सूक्ष्म होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म मानसिक सहवर्ती को समझने के लिए इनकी तुलना अन्य मानसिक सहवर्ती से करनी चाहिए।

24. इसमें निम्न (और) श्रेष्ठ मानसिक सहवर्ती क्या हैं? बुरे मानसिक सहवर्ती निम्न हैं; अच्छे और न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती श्रेष्ठ हैं। अच्छे और बुरे दोनों मानसिक सहवर्ती निम्न हैं; न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती श्रेष्ठ हैं। पीड़ादायक भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती निम्न हैं; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती श्रेष्ठ हैं। सुखद और पीड़ादायक भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती निम्न हैं; न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती श्रेष्ठ हैं। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती निम्न हैं; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती श्रेष्ठ हैं। जो मानसिक सहवर्ती दोष के विषय हैं वे निम्न हैं; जो मानसिक सहवर्ती दोष के विषय नहीं हैं वे श्रेष्ठ हैं। निम्न और श्रेष्ठ मानसिक सहवर्ती को समझने के लिए इनकी तुलना अन्य मानसिक सहवर्ती से करनी चाहिए।

25. इसमें दूरस्थ मानसिक सहवर्ती क्या हैं? बुरे मानसिक सहवर्ती अच्छे और न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; अच्छे और न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती बुरे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; अच्छे मानसिक सहवर्ती बुरे और न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; बुरे और न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती अच्छे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; [9] न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती अच्छे और बुरे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; अच्छे और बुरे मानसिक सहवर्ती न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं। पीड़ादायक भावना से जुड़े मानसिक सहवर्ती सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती से

दूरस्थ होते हैं; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती पीड़ादायक भावना से जुड़े मानसिक सहवर्ती से दूरस्थ होते हैं; सुखद अनुभूति से जुड़े मानसिक लक्षण हैं

12

दर्द से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर, न दर्द से जुड़े और न ही सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्व; दर्द से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्व, न दर्द से जुड़े और न ही सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्व, सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं; दर्द से जुड़े और न ही सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्व, सुखद और दर्द से जुड़े दोनों भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं; सुखद और दर्द से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्व, दर्द से जुड़े और न ही सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती तत्व, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती तत्व, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं। जो मानसिक सहवर्ती तत्व दोषों के विषय हैं, वे उन मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं जो दोषों के विषय नहीं हैं। वे मानसिक सहवर्ती तत्व जो विकारों के विषय नहीं हैं, विकारों के विषय बनने वाले मानसिक सहवर्ती तत्वों से दूर होते हैं। इन्हें दूरस्थ मानसिक सहवर्ती तत्व कहा जाता है।

इसमें निकटवर्ती मानसिक सहवर्ती क्या हैं? बुरे मानसिक सहवर्ती बुरे मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं; अच्छे मानसिक सहवर्ती अच्छे मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं; न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती न अच्छे न बुरे मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं। पीड़ादायक भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती पीड़ादायक भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं; सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं; न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़े मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मानसिक सहवर्ती के निकट होते हैं। जो मानसिक सहवर्ती पदार्थ दोषों के विषय हैं, वे उन मानसिक सहवर्ती पदार्थों के निकट स्थित होते हैं जो दोषों के विषय हैं; जो मानसिक सहवर्ती पदार्थ दोषों के विषय नहीं हैं, वे उन मानसिक सहवर्ती पदार्थों के निकट स्थित होते हैं जो दोषों के विषय नहीं हैं। इन्हें कहा जाता है

13

निकटवर्ती मानसिक सहवर्ती। दूरस्थ और निकटवर्ती मानसिक सहवर्ती को इन मानसिक सहवर्ती की तुलना करके समझा जाना चाहिए।

5. चेतना का समूह

26. उसमें चेतना का समूह क्या है? भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट की जो भी चेतना हो; इन सबको सामूहिक रूप से संक्षेप में कहें तो, यही चेतना का समूह कहलाता है।

27. उसमें भूतकाल चेतना क्या है? [10] वह चेतना जो बीत चुकी है, समाप्त हो चुकी है, विलीन हो चुकी है, परिवर्तित हो चुकी है, समाप्त हो चुकी है, लुप्त हो चुकी है, या जो उत्पन्न होकर विलीन हो गई है, बीत चुकी है और भूतकाल की वस्तुओं में गिनी जाती है, (अर्थात) नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे भूतकाल चेतना कहते हैं।

तो भविष्य की चेतना क्या है? वह चेतना जो न तो जन्म लेती है, न उत्पन्न होती है, न अस्तित्वहीन है, पूर्णतः अस्तित्वहीन है, न प्रकट होती है, न उत्पन्न है, न पूर्णतः उत्पन्न है, न उत्पन्न है, न पूर्णतः उत्पन्न है, जो भविष्य में है और भविष्य की चीजों में गिनी जाती है, जैसे आँख की चेतना, कान की चेतना, नाक की चेतना, जीभ की चेतना, शरीर की चेतना, मन की चेतना। इसे भविष्य की चेतना कहते हैं।

इसमें वर्तमान चेतना क्या है? वह चेतना जो जन्म लेती है, उत्पन्न होती है, विद्यमान होती है, पूर्णतः विद्यमान होती है, प्रकट होती है, ऊपर उठती है, पूर्णतः ऊपर उठ चुकी होती है, जो वर्तमान में विद्यमान होती है और वर्तमान वस्तुओं में शुमार होती है, जैसे कि नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे वर्तमान चेतना कहते हैं।

2§. इसमें आंतरिक चेतना क्या है? वह चेतना जो किसी प्राणी के लिए व्यक्तिगत, स्वयं-संदर्भित, स्वयं की, निजी होती है और जिसे (लालसा और भ्रामक दृष्टि द्वारा) ग्रहण किया जाता है, (अर्थात) नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे आंतरिक चेतना कहते हैं।

14

इसमें बाह्य चेतना क्या है? वह चेतना जो किसी प्राणी या अन्य व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, स्वयं की, वैयक्तिक होती है और जिसे अनुभव किया जा सकता है, जैसे कि नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे बाह्य चेतना कहते हैं।
29. इसमें स्थूल (और) सूक्ष्म चेतना क्या है? बुरी चेतना स्थूल है; अच्छी और न बुरी चेतना सूक्ष्म है। अच्छी और बुरी चेतना स्थूल है; न बुरी चेतना सूक्ष्म है। पीड़ादायक संवेदनाओं से जुड़ी चेतना स्थूल है; सुखद और न पीड़ादायक संवेदनाओं से जुड़ी चेतना सूक्ष्म है। सुखद और पीड़ादायक संवेदनाओं से जुड़ी चेतना स्थूल है; न पीड़ादायक संवेदनाओं से जुड़ी चेतना सूक्ष्म है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले की चेतना स्थूल है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले की चेतना सूक्ष्म है। जो चेतना दोषों का विषय है वह स्थूल है; जो चेतना दोषों का विषय नहीं है वह सूक्ष्म है। स्थूल और सूक्ष्म चेतना को समझने के लिए एक चेतना की तुलना दूसरी चेतना से करनी चाहिए।
30. इसमें निम्न [11] (भी) श्रेष्ठ चेतना क्या है? बुरी चेतना निम्न है; अच्छी और न अच्छी न बुरी चेतना श्रेष्ठ है। अच्छी और बुरी चेतना निम्न है; न अच्छी न बुरी चेतना श्रेष्ठ है। पीड़ादायक भावनाओं से जुड़ी चेतना निम्न है; सुखद और न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी चेतना श्रेष्ठ है। सुखद और पीड़ादायक भावनाओं से जुड़ी चेतना निम्न है; न पीड़ादायक न सुखद भावनाओं से जुड़ी चेतना श्रेष्ठ है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले की चेतना निम्न है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले की चेतना श्रेष्ठ है। जो चेतना दोषों का विषय है वह निम्न है; जो चेतना दोषों का विषय नहीं है वह श्रेष्ठ है। निम्न और श्रेष्ठ चेतना को इस चेतना की तुलना उस चेतना से करके समझना चाहिए।
31. उसमें दूरस्थ चेतना क्या है? बुरी चेतना अच्छी चेतना से दूर है और न अच्छी न बुरी चेतना से भी दूर है;

15

अच्छी और न बुरी चेतना बुरी चेतना से दूर है; अच्छी चेतना बुरी और न बुरी चेतना से दूर है; बुरी और न बुरी चेतना अच्छी चेतना से दूर है; न बुरी चेतना अच्छी और बुरी चेतना से दूर है; अच्छी और बुरी चेतना न अच्छी और बुरी चेतना से दूर है। दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना सुखद और न दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना से दूर है; सुखद और न दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना से दूर है; सुखद भावनाओं से जुड़ी चेतना दर्दनाक और न दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना से दूर है; दर्दनाक और न दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना सुखद भावनाओं से जुड़ी चेतना से दूर है। न दर्दनाक और न सुखद भावनाओं से जुड़ी चेतना सुखद और दर्दनाक भावनाओं से जुड़ी चेतना से दूर है। सुख और दुख से जुड़ी चेतना, न दुखदायी और न सुखदायी चेतना से दूर होती है। उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की चेतना, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की चेतना से दूर होती है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की चेतना, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की चेतना से दूर होती है। जो चेतना दोषों से ग्रस्त होती है, वह उन चेतनाओं से दूर होती है जो दोषों से ग्रस्त नहीं होती; और जो चेतना दोषों से ग्रस्त नहीं होती, वह उन चेतनाओं से दूर होती है जो दोषों से ग्रस्त होती हैं। इसे ही दूर की चेतना कहते हैं।
इसमें निकटवर्ती चेतना क्या है? बुरी चेतना बुरी चेतना के निकट है; [12] अच्छी चेतना अच्छी चेतना के निकट है; न अच्छी न बुरी चेतना न अच्छी न बुरी चेतना के निकट है। पीड़ादायक भावना से जुड़ी चेतना पीड़ादायक भावना से जुड़ी चेतना के निकट है; सुखद भावना से जुड़ी चेतना सुखद भावना से जुड़ी चेतना के निकट है; न पीड़ादायक न सुखद भावना से जुड़ी चेतना न पीड़ादायक न सुखद भावना से जुड़ी चेतना के निकट है।

16

उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की चेतना, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव न करने वाले व्यक्ति की चेतना के निकट होती है; उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की चेतना, उच्च मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करने वाले व्यक्ति की चेतना के निकट होती है। जो चेतना विकारों से ग्रस्त है, वह विकारों से ग्रस्त चेतना के निकट होती है; जो चेतना विकारों से ग्रस्त नहीं है, वह विकारों से ग्रस्त चेतना के निकट होती है। इसे निकटवर्ती चेतना कहते हैं। दूर और निकटवर्ती चेतना को समझने के लिए, एक चेतना की तुलना दूसरी चेतना से करनी चाहिए।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
32. पाँच समूह हैं: भौतिक गुणों का समूह, भावनाओं का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह, चेतना का समूह।
1. सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग
33. उसमें भौतिक गुणों का कुल योग क्या है?
भौतिक गुणों का एकल विभाजन द्वारा समूह: सभी भौतिक गुण मूल नहीं हैं। मूल के साथ नहीं हैं। मूल से संबद्ध नहीं हैं। कारण से संबद्ध हैं। सशर्त हैं। भौतिक हैं। सांसारिक हैं। दोषों का विषय हैं। बंधनों का विषय हैं। बंधनों का विषय हैं। बाढ़ का विषय हैं। बंधनों का विषय हैं। बाधाओं का विषय हैं। विकृतियों का विषय हैं। आसक्ति का विषय हैं। भ्रष्टाचारों का विषय हैं। न अच्छे हैं न बुरे। इनका कोई विषय नहीं है। मानसिक सहवर्ती नहीं हैं। चेतना से संबद्ध नहीं हैं। न परिणाम उत्पन्न करते हैं न परिणाम उत्पन्न करते हैं। भ्रष्ट नहीं हैं, भ्रष्टाचारों का विषय हैं। 'प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ नहीं, निरंतर अनुप्रयोग के साथ' नहीं हैं। 'प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग' नहीं हैं। प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना हैं। उत्साह के साथ नहीं हैं। आनंद के साथ नहीं हैं।

17

उदासीनता। न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से इसका त्याग किया जा सकता है। इसका कोई मूल नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। यह न तो संचयी है और न ही विक्षेपी (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु का)। यह न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से। यह निम्न है। यह इच्छा के तल की विशेषता है। यह रूप के तल की विशेषता नहीं है। यह निराकार तल की विशेषता नहीं है। यह समाहित है (अर्थात सांसारिक है)। यह 'समाहित नहीं' है (अर्थात अलौकिक नहीं)। इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। यह मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखता। यह ऊपर उठा है। यह छह प्रकार की चेतनाओं द्वारा बोधगम्य है। यह स्थायी नहीं है। यह क्षय के अधीन है। इस प्रकार यह एकल विभाजन द्वारा भौतिक गुणों का समुच्चय है। [13]
भौतिक गुणों का द्विभाजन इस प्रकार है: कुछ भौतिक गुण व्युत्पन्न होते हैं; कुछ अव्युत्पन्न होते हैं। कुछ भौतिक गुण लालसा और भ्रामक दृष्टि से ग्रहण किए जाते हैं; कुछ भौतिक गुण ग्रहण नहीं किए जाते। कुछ भौतिक गुण ग्रहण किए जाते हैं और आसक्तियों का विषय होते हैं; कुछ भौतिक गुण ग्रहण नहीं किए जाते, फिर भी आसक्तियों का विषय होते हैं। कुछ भौतिक गुण दृश्य होते हैं; कुछ अदृश्य होते हैं। कुछ भौतिक गुण प्रभावकारी होते हैं; कुछ प्रभावकारी नहीं होते। कुछ भौतिक गुण नियंत्रणकारी होते हैं; कुछ नियंत्रणकारी नहीं होते। कुछ भौतिक गुण चार प्रमुख तत्वों में से एक होते हैं; कुछ चार प्रमुख तत्वों में से एक नहीं होते। कुछ भौतिक गुण अभिव्यंजक होते हैं; कुछ अभिव्यंजक नहीं होते। कुछ भौतिक गुण चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते। कुछ भौतिक गुण चेतना के साथ विद्यमान होते हैं; कुछ चेतना के साथ विद्यमान नहीं होते। कुछ भौतिक गुण चेतना के साथ होते हैं; कुछ भौतिक गुण चेतना के साथ नहीं होते। कुछ भौतिक गुण आंतरिक होते हैं; कुछ भौतिक गुण बाह्य होते हैं। कुछ भौतिक गुण स्थूल होते हैं; कुछ भौतिक गुण सूक्ष्म होते हैं। कुछ भौतिक गुण दूर होते हैं; कुछ भौतिक गुण निकट होते हैं। कुछ भौतिक गुण भोजन का पोषक तत्व होते हैं; कुछ भौतिक गुण भोजन का पोषक तत्व नहीं होते। इस प्रकार, भौतिक गुणों का द्विभाजन करके उन्हें समेटा जाता है।

18

[सामग्री की गुणवत्ता (Dhs.) संबंधी अनुभाग में किए गए विश्लेषण के अनुसार, यहाँ भी उसी प्रकार विश्लेषण किया जाना चाहिए]।
P = चूक के लिए Dhs., सामग्री गुणवत्ता अनुभाग देखें।

भौतिक गुणों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: आंतरिक गुण व्युत्पन्न होते हैं; बाह्य गुण व्युत्पन्न होते हैं; व्युत्पन्न नहीं होते। आंतरिक गुण ग्रहणशील होते हैं; बाह्य गुण ग्रहणशील होते हैं; ग्रहणशील नहीं होते। आंतरिक गुण ग्रहणशील होते हैं, वे आसक्तियों का विषय होते हैं; बाह्य गुण ग्रहणशील होते हैं, वे आसक्तियों का विषय होते हैं; ग्रहणशील नहीं होते, वे आसक्तियों का विषय होते हैं। आंतरिक गुण भोजन का पोषक तत्व नहीं होते; बाह्य गुण भोजन का पोषक तत्व होते हैं; भोजन का पोषक तत्व नहीं होते। इस प्रकार भौतिक गुणों का त्रिविध विभाजन है।

पी — चूक के लिए डीएचएस अनुभाग, सामग्री गुणवत्ता संबंधी अनुभाग देखें।

भौतिक गुणों का चार प्रकार से विभाजन इस प्रकार है: व्युत्पन्न भौतिक गुण बोधगम्य होते हैं; बोधगम्य नहीं होते; व्युत्पन्न न होने वाले भौतिक गुण बोधगम्य होते हैं; बोधगम्य नहीं होते। व्युत्पन्न भौतिक गुण बोधगम्य होते हैं, आसक्तियों का विषय होते हैं; बोधगम्य न होने वाले भौतिक गुण आसक्तियों का विषय होते हैं; व्युत्पन्न न होने वाले भौतिक गुण बोधगम्य होते हैं, आसक्तियों का विषय होते हैं; बोध न होने वाले भौतिक गुण आसक्तियों का विषय होते हैं। व्युत्पन्न भौतिक गुण आक्षेपकारी होते हैं; आक्षेपकारी नहीं होते: [14] व्युत्पन्न न होने वाले भौतिक गुण आक्षेपकारी होते हैं; आक्षेपकारी नहीं होते। व्युत्पन्न भौतिक गुण स्थूल होते हैं; सूक्ष्म होते हैं: व्युत्पन्न न होने वाले भौतिक गुण स्थूल होते हैं; सूक्ष्म होते हैं। व्युत्पन्न भौतिक गुण दूरस्थ होते हैं; निकटस्थ होते हैं: व्युत्पन्न न होने वाले भौतिक गुण दूरस्थ होते हैं; निकटस्थ होते हैं। :P: ऐसे भौतिक गुण होते हैं जो दृश्य, श्रव्य, बोधगम्य और ज्ञात होते हैं। इस प्रकार भौतिक गुणों का चार प्रकार से विभाजन किया गया है।

पी— चूक के लिए डीएचएस अनुभाग, सामग्री गुणवत्ता संबंधी अनुभाग देखें।

भौतिक गुणों का पंचांग विभाजन इस प्रकार है: विस्तार तत्व; संसंजन तत्व; ऊष्मा तत्व; गति तत्व; और इनसे व्युत्पन्न भौतिक गुण। इस प्रकार भौतिक गुणों का पंचांग विभाजन किया गया है।

19

भौतिक गुणों का छह भागों में विभाजन इस प्रकार है: आँखों से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; कानों से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; नाक से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; शरीर से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; मन से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण। इस प्रकार भौतिक गुणों का छह भागों में विभाजन किया गया है।

भौतिक गुणों का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: आँखों से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; कानों से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; नाक से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; जीभ से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; शरीर से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; मन से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण; मन-चेतना से अनुभव किए जाने वाले भौतिक गुण। इस प्रकार भौतिक गुणों का सात भागों में विभाजन किया गया है।

भौतिक गुणों का आठ भागों में विभाजन इस प्रकार है: आँखों से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; कानों से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; नाक से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण (सुखद और पीड़ादायक स्पर्श सहित); मन से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण; और चेतना से अनुभव किए जा सकने वाले भौतिक गुण। इस प्रकार भौतिक गुणों का आठ भागों में विभाजन किया गया है।

भौतिक गुणों का नौ भागों में विभाजन इस प्रकार है: आँख की क्रिया शक्ति; कान की क्रिया शक्ति; नाक की क्रिया शक्ति; जीभ की क्रिया शक्ति; शरीर की क्रिया शक्ति; स्त्रीत्व की क्रिया शक्ति; पुरुषत्व की क्रिया शक्ति; प्राण शक्ति की क्रिया शक्ति और वह भौतिक गुण जो क्रिया शक्ति नहीं है। इस प्रकार भौतिक गुणों का नौ भागों में विभाजन किया गया है।

भौतिक गुणों का दस गुना विभाजन इस प्रकार है: आँख की नियंत्रण शक्ति; कान की नियंत्रण शक्ति; नाक की नियंत्रण शक्ति; जीभ की नियंत्रण शक्ति; शरीर की नियंत्रण शक्ति; स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति; पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति; प्राण शक्ति; जो भौतिक गुण नियंत्रण शक्ति नहीं हैं, वे अप्रभावी होते हैं। इस प्रकार भौतिक गुणों का दस गुना विभाजन किया गया है।

ग्यारह भागों में विभाजित भौतिक गुणों का समूह: नेत्र आधार; कान आधार; नाक आधार; जीभ आधार; शरीर आधार; दृश्य आधार; श्रव्य आधार; गंध आधार; स्वाद आधार; स्पर्शनीय आधार और वह भौतिक गुण जो अदृश्य है, प्रभावहीन है।

20

वैचारिक आधार में शामिल। इस प्रकार ग्यारह गुना विभाजन द्वारा भौतिक गुणवत्ता का कुल योग प्राप्त होता है।
इसे सामग्री गुणवत्ता का कुल योग कहा जाता है [15]
2. भावनाओं का समूह
34. उसमें भावना का समुच्चय क्या है? एकल विभाजन द्वारा भावना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल के साथ होता है; मूल के साथ नहीं होता है।
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा।
भावों का समूह, चार भागों में विभाजित करके: इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)।
पांच भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह इस प्रकार है: सुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति; दुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति; मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति; मानसिक दुख की नियंत्रक शक्ति; और उदासीनता की नियंत्रक शक्ति। इस प्रकार पांच भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह इस प्रकार है।
भावों का कुल योग छह भागों में विभाजित है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव; कान संपर्क से उत्पन्न भाव; नाक संपर्क से उत्पन्न भाव; जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव; शरीर संपर्क से उत्पन्न भाव; मन संपर्क से उत्पन्न भाव। इस प्रकार भावों का कुल योग छह भागों में विभाजित है।
सात भागों में विभाजित करके भावों का सार इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव; कान संपर्क से उत्पन्न भाव; नाक संपर्क से उत्पन्न भाव; जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव; शरीर संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव। इस प्रकार भावों का सार सात भागों में विभाजित है।
आठ प्रकार से विभाजित करके भावों का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव; कान संपर्क से उत्पन्न भाव; नाक संपर्क से उत्पन्न भाव; जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव; सुखद और पीड़ादायक शारीरिक संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव। इस प्रकार आठ प्रकार से विभाजित भावों का सार प्रस्तुत किया जाता है।

21

नौ भागों में विभाजित करके भावनाओं का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना; कान संपर्क से उत्पन्न भावना; नाक संपर्क से उत्पन्न भावना; जीभ संपर्क से उत्पन्न भावना; शरीर संपर्क से उत्पन्न भावना; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न भावना; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न भावना - जो अच्छी है, जो बुरी है, जो न अच्छी है न बुरी। इस प्रकार नौ भागों में विभाजित करके भावनाओं का सार प्रस्तुत किया जाता है।
दस भागों में विभाजित करके भावों का समग्र रूप: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव; कान संपर्क से उत्पन्न भाव; नाक संपर्क से उत्पन्न भाव; जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव; सुखद और पीड़ादायक शारीरिक संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न भाव, जो अच्छा, बुरा और न अच्छा न बुरा है। इस प्रकार, दस भागों में विभाजित करके भावों का समग्र रूप है। [16]
35. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल शब्द के साथ होता है; मूल शब्द के साथ नहीं होता है।
तीन प्रकार से विभाजित भावों का समूह: परिणामी है; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी है और न ही परिणामी उत्पन्न करता है। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, आसक्तियों का विषय है; ग्रहण नहीं किया जाता है, आसक्तियों का विषय है; ग्रहण नहीं किया जाता है, आसक्तियों का विषय नहीं है। भ्रष्ट है, भ्रष्टताओं का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय नहीं है। प्रारंभिक अभ्यास के साथ है, निरंतर अभ्यास के साथ है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना है, केवल निरंतर अभ्यास के साथ है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना है, निरंतर अभ्यास के बिना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; प्रथम मार्ग या अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है। (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु का) संचयी है; विक्षेपी है। न तो संचयी है और न ही विक्षेपी। यह सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है; यह अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है; यह न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है। यह निम्न है; यह उदात्त है; यह अतुलनीय है। [17] इसका निम्न उद्देश्य है; इसका उदात्त उद्देश्य है; इसका अतुलनीय उद्देश्य है।

22

वस्तु। निम्न है; मध्यवर्ती है; श्रेष्ठ है। एक निश्चित (परिणामी समय) वाली झूठी (अवस्था) है; एक निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्था) है; इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। पथ इसका उद्देश्य है; पथ इसका कारण है; पथ इसका प्रमुख कारक है। उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। भूतकाल है; भविष्यकाल है; वर्तमानकाल है। भूतकाल की वस्तु है; भविष्यकाल की वस्तु है; वर्तमानकाल की वस्तु है। आंतरिक है; बाह्य है; आंतरिक और बाह्य दोनों है। आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का समुच्चय है।

P = अनुच्छेद 34 देखें।

36. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

भावना का समग्र विभाजन इस प्रकार है: मूल से संबद्ध; मूल से संबद्ध नहीं। मूल नहीं, मूल के साथ; मूल नहीं, मूल के साथ नहीं। सांसारिक; अलौकिक। एक मार्ग से बोधगम्य; दूसरे मार्ग से बोधगम्य नहीं। [18] दोषों का विषय; दोषों का विषय नहीं। दोषों से संबद्ध; दोषों से संबद्ध नहीं। दोषों से संबद्ध नहीं, दोषों का विषय; दोषों से संबद्ध नहीं, दोषों का विषय नहीं। बंधनों का विषय; बंधनों का विषय नहीं। बंधनों से संबद्ध; बंधनों से संबद्ध नहीं। बंधनों से संबद्ध नहीं, बंधनों का विषय; बंधनों से संबद्ध नहीं, बंधनों का विषय नहीं। बंधनों का विषय; संबंधों का विषय नहीं है। संबंधों से जुड़ा है; संबंधों से जुड़ा नहीं है। संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का विषय है; संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का विषय नहीं है। बाढ़ का विषय है; बाढ़ का विषय नहीं है। बाढ़ से जुड़ा है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है। बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का विषय है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है। बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है। बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा नहीं है। बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है। बाधाओं का विषय है; बाधाओं का विषय नहीं है। बाधाओं से जुड़ा है; बाधाओं से जुड़ा नहीं है। बाधाओं से जुड़ा नहीं है, बाधाओं का विषय है;

23

बाधाओं से संबद्ध नहीं है, बाधाओं का विषय नहीं है। विकृतियों का विषय है; विकृतियों का विषय नहीं है। विकृतियों से संबद्ध है; विकृतियों से संबद्ध नहीं है। विकृतियों से संबद्ध नहीं है, विकृतियों का विषय है; विकृतियों से संबद्ध नहीं है, विकृतियों का विषय नहीं है। बोधित है; बोधित नहीं है। आसक्ति का विषय है; आसक्ति का विषय नहीं है। आसक्ति से संबद्ध है; आसक्ति से संबद्ध नहीं है। आसक्ति से संबद्ध नहीं है, आसक्ति का विषय है; आसक्ति से संबद्ध नहीं है, आसक्ति का विषय नहीं है। भ्रष्टाचार का विषय है; भ्रष्टाचार का विषय नहीं है। भ्रष्ट है; भ्रष्ट नहीं है। भ्रष्टाचार से संबद्ध है; भ्रष्टाचार से संबद्ध नहीं है। भ्रष्टाचार से संबद्ध नहीं है, भ्रष्टाचार का विषय है; भ्रष्टाचारों से संबद्ध नहीं है, भ्रष्टाचारों का विषय नहीं है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; प्रथम मार्ग द्वारा नहीं त्यागा जाना है। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा नहीं त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागे जाने योग्य मूल है; प्रथम मार्ग द्वारा त्यागे जाने योग्य मूल नहीं है। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागे जाने योग्य मूल है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागे जाने योग्य मूल नहीं है। प्रारंभिक प्रयोग के साथ है; प्रारंभिक प्रयोग के बिना है। निरंतर प्रयोग के साथ है; निरंतर प्रयोग के बिना है। [19] उत्साह के साथ है; उत्साह के बिना है। उत्साह के साथ है; उत्साह के साथ नहीं है। इच्छा के तल की विशेषता है; इच्छा के तल की विशेषता नहीं है। रूप के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता नहीं है। निराकार तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता नहीं है। समाहित है (अर्थात सांसारिक है); समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। इसका (परिणामी समय) निश्चित है; इसका (परिणामी समय) निश्चित नहीं है। यह पार किया जा सकता है; यह पार नहीं किया जा सकता है। यह शोक का कारण है; यह शोक का कारण नहीं है।

तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।

P = अनुच्छेद 34 देखें।

37. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

24

दो भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
तीन भागों में विभाजित भावों का समूह: परिणामी होता है; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी होता है और न ही परिणामी उत्पन्न करता है। ग्रहण किया जाता है, और आसक्तियों का विषय होता है।
P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाह्य वस्तु है; इसमें आंतरिक वस्तुएँ दोनों हैं
और बाह्य वस्तु। :P 2 : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का समुच्चय होता है।
पी* = पैरा देखें। 35. पी 2 =पैरा देखें। 34.
(यहाँ खंड समाप्त होता है) दोहे पर आधारित [20]
38. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल के साथ होता है; मूल के साथ नहीं होता है।
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह कहा जा सकता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
39. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल से संबंधित है; मूल से संबंधित नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।
पी — पैराग्राफ 34 देखें।
40. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो प्रकार से विभाजित भावों का समूह: मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है। सांसारिक है; अलौकिक है। एक मार्ग से ज्ञात है; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं है। दोषों का विषय है; दोषों का विषय नहीं है। दोषों से संबद्ध है; दोषों से संबद्ध नहीं है। दोषों से संबद्ध नहीं है, दोषों का विषय है; नहीं है।

25

जो अशुद्धियों से जुड़ा है, वह अशुद्धियों का विषय नहीं है।
पी : शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
P = अनुच्छेद 36 देखें।
तीन गुना विभाजन द्वारा भावना का कुल योग: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा न बुरा। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का कुल योग है। [21]
पी — पैराग्राफ 34 देखें।
41. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल के साथ है; मूल के साथ नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित भावों का समूह: परिणामी है; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी है और न ही परिणामी उत्पन्न करता है। ग्रहण किया जा सकता है, आसक्तियों का विषय है; ग्रहण नहीं किया जा सकता, आसक्तियों का विषय है; ग्रहण नहीं किया जा सकता, आसक्तियों का विषय नहीं है। भ्रष्ट है, भ्रष्टताओं का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय नहीं है। प्रारंभिक अभ्यास के साथ है, निरंतर अभ्यास के साथ है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना है, केवल निरंतर अभ्यास के साथ है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना है, निरंतर अभ्यास के बिना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; प्रथम मार्ग या अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है। संचयी है; विक्षेपी है; न तो संचयी है और न ही विक्षेपी है। सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है; अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है। निम्न है; उदात्त है; अतुलनीय है। निम्न उद्देश्य रखता है; उदात्त उद्देश्य रखता है; अतुलनीय

उद्देश्य रखता है। निम्न है; मध्यवर्ती है; श्रेष्ठ है। एक निश्चित (परिणामी समय) वाली झूठी (अवस्था) है; एक निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्था) है; कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। पथ को अपना उद्देश्य मानता है; पथ को अपना कारण मानता है; पथ को अपना प्रमुख कारक मानता है। उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। भूतकाल है; भविष्यकाल है; वर्तमानकाल है। भूतकाल का उद्देश्य रखता है; भविष्यकाल का उद्देश्य रखता है; वर्तमानकाल का उद्देश्य रखता है। आंतरिक है; बाह्य है; आंतरिक और बाह्य दोनों है। आंतरिक उद्देश्य रखता है; बाह्य उद्देश्य रखता है;

26

आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का समुच्चय होता है।
पी — पैराग्राफ 34 देखें।

42. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
भावना का द्विभाजन: मूल से संबंधित; मूल से संबंधित नहीं। मूल नहीं, मूल के साथ; मूल नहीं, मूल के साथ नहीं। सांसारिक; अलौकिक। एक मार्ग से ज्ञात; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं। दोषों का विषय; दोषों का विषय नहीं। दोषों से संबंधित; दोषों से संबंधित नहीं। दोषों से संबंधित नहीं, दोषों का विषय; दोषों से संबंधित नहीं, दोषों का विषय नहीं। बंधनों का विषय; बंधनों का विषय नहीं। विलाप का कारण; विलाप का कारण नहीं।
पी — पैराग्राफ 36 देखें।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावना का सार इस प्रकार है: आंतरिक वस्तु; बाह्य वस्तु; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर भावना का सार इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) त्रिक पर आधारित
43. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग; संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल के साथ है; मूल के साथ नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

44. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: मूल से जुड़ा है; मूल से जुड़ा नहीं है। [22]

27

तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावना का कुल योग इस प्रकार है: परिणामी; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी है और न ही परिणामी उत्पन्न करता है। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर भावना का कुल योग इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
45. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावों का समूह इस प्रकार है: जो भाव ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो भाव ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो भाव ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। इसी प्रकार, दस प्रकार से विभाजित करने पर भावों का समूह इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
46. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

दो भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: सांसारिक; अलौकिक।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावना का सार यह है: भ्रष्ट है, भ्रष्टता का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टता का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टता का विषय नहीं है। इसी प्रकार, दस प्रकार से विभाजित करने पर भावना का सार यह है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
47. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: एक तरीके से पहचाना जा सकता है; दूसरे तरीके से नहीं पहचाना जा सकता है।
भावना का समग्र रूप से तीन भागों में विभाजन: प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना।
पी: इस प्रकार दस गुना विभाजन के माध्यम से भावनाओं का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
48. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
4*

28

दो प्रकार से विभाजित भावों का समूह; दोषों का विषय है; दोषों का विषय नहीं है। [23] तीन प्रकार से विभाजित भावों का समूह: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। : P : इस प्रकार दस प्रकार से विभाजित भावों का समूह है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

49. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग; संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: दोषों से जुड़ा हुआ है; दोषों से जुड़ा हुआ नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित भावों का सार: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; और प्रथम या पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं। : P : इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित भावों का सार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

50. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो प्रकार से विभाजित भावना का समूह: दोषों से संबद्ध नहीं है, दोषों का विषय है; दोषों से संबद्ध नहीं है, दोषों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावनाओं का कुल योग: संचयी होता है; विक्षेपी होता है; न तो संचयी होता है और न ही विक्षेपी होता है।
पी: इस प्रकार दस गुना विभाजन के माध्यम से भावनाओं का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

51. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: बेड़ियों का विषय है; बेड़ियों का विषय नहीं है।
तीन भागों में विभाजित भावना का समग्र रूप: सात अलौकिक अवस्थाओं का है; अंतिम अलौकिक अवस्था का है; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का है और न ही अंतिम अवस्था का।

कुल योगों का विश्लेषण 29
अलौकिक अवस्था। :P; इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का समुच्चय होता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

52. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दोहरे विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: बेड़ियों से जुड़ा है; बेड़ियों से जुड़ा नहीं है। [24]
तीन भागों में विभाजित करने पर भावों का कुल योग इस प्रकार है: निम्न; उदात्त; असीम। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करने पर भावों का कुल योग इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

53. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावों का सार इस प्रकार है: निम्न विषय, उच्च विषय और असीम विषय। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर भावों का सार इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

54. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: संबंधों का विषय है; संबंधों का विषय नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह इस प्रकार है: निम्न; मध्य; श्रेष्ठ। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह इस प्रकार है।
पी — पैराग्राफ 34 देखें।

S^. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समग्र रूप: संबंधों से जुड़ा हुआ; संबंधों से जुड़ा हुआ नहीं।
तीन भागों में विभाजित भावना का कुल योग: एक निश्चित (परिणामी समय के साथ) झूठी (अवस्था) है; एक निश्चित (परिणामी समय के साथ) सही (अवस्था) है।
30
(परिणामी समय); इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा भावना का कुल योग होता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

56. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का कुल योग: संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का विषय है; संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का विषय नहीं है। [25].
तीन भागों में विभाजित भावों का समूह: पथ को अपना लक्ष्य मानता है; पथ को अपना कारण मानता है; पथ को अपना प्रमुख कारक मानता है। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित भावों का समूह है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

57. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: क्या यह बाढ़ का विषय है; क्या यह बाढ़ का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर भावों का समूह: उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर भावों का समूह बनता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।

58. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: बाढ़ से संबंधित है; बाढ़ से संबंधित नहीं है।

तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: भूतकाल; भविष्यकाल; वर्तमानकाल। इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
59. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय है; बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है।

31

तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: भूतकाल का कर्म, भविष्यकाल का कर्म, वर्तमान काल का कर्म। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
60. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दोहरे विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है। [26].
तीन भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: आंतरिक; बाह्य; आंतरिक और बाह्य दोनों। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह कहा जा सकता है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
61. एकल विभाजन के माध्यम से भावना का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित भावना का समूह: बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर, भावना का सार इस प्रकार है: आंतरिक वस्तु; बाह्य वस्तु; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर भावना का सार इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 34 देखें।
(यहाँ पारस्परिक वृद्धि का खंड समाप्त होता है)
भावों का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; और इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। इस प्रकार भावों का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है।
सात प्रकार के विभाजन द्वारा भावों का समग्र रूप: परिणामी है; इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। इस प्रकार, सात प्रकार के विभाजन द्वारा भावों का समग्र रूप प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 35 देखें।

32

भावनाओं का चौबीस भागों में विभाजन: आँखों के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ अच्छी होती हैं; बुरी होती हैं; न अच्छी होती हैं न बुरी। कानों के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। नाक के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। मन के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ अच्छी होती हैं; बुरी होती हैं; न अच्छी होती हैं न बुरी। इस प्रकार, भावनाओं का चौबीस भागों में विभाजन किया गया है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
चौबीस गुना विभाजन के एक अन्य तरीके से भावना का कुल योग: [27]। आँख के संपर्क से उत्पन्न भावना का कुल योग परिणामी है; : P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाहरी वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाहरी दोनों वस्तुएँ हैं। कान के संपर्क से उत्पन्न भावना का कुल योग। :P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना का कुल योग।
पृष्ठ 2: जीभ के संपर्क से उत्पन्न संवेदनाओं का समूह। पृष्ठ 2:

शारीरिक संपर्क से उत्पन्न भावनाओं का समूह। :P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं का समूह परिणामी होता है; :P a : आंतरिक वस्तु होती है; बाह्य वस्तु होती है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना; :P 3 : मन के संपर्क से उत्पन्न भावना। इस प्रकार चौबीस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।

P^पैरा 35 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

P 3 = मध्यवर्ती इंद्रियां।

तीस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावनाओं का समूह इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। कान के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। नाक के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावनाएँ। मन के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं का समूह इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना; कान के संपर्क से उत्पन्न भावना; नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना; जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना; शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना; मन के संपर्क से उत्पन्न भावना। इस प्रकार तीस भागों में विभाजित करके भावनाओं का समूह बनता है।

P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

33

अनेक प्रकार से विभाजित भावों का समूह: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव अच्छे होते हैं; बुरे होते हैं; न अच्छे होते हैं न बुरे; इच्छा के तल के लक्षण होते हैं; रूप के तल के लक्षण होते हैं; निराकार तल के लक्षण होते हैं; इसमें शामिल नहीं होते (अर्थात् सांसारिक से परे होते हैं)। कान संपर्क से उत्पन्न भाव। नाक संपर्क से उत्पन्न भाव। जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव। शरीर संपर्क से उत्पन्न भाव। मन संपर्क से उत्पन्न भाव अच्छे होते हैं; बुरे होते हैं; न अच्छे होते हैं न बुरे; इच्छा के तल के लक्षण होते हैं; रूप के तल के लक्षण होते हैं; निराकार तल के लक्षण होते हैं; इसमें शामिल नहीं होते (अर्थात् सांसारिक से परे होते हैं)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न भाव; कान संपर्क से उत्पन्न भाव; नाक संपर्क से उत्पन्न भाव; जीभ संपर्क से उत्पन्न भाव; शरीर संपर्क से उत्पन्न भाव; मन संपर्क से उत्पन्न भाव। इस प्रकार अनेक प्रकार से विभाजित भावों का समूह है।

P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

अनेक प्रकार के विभाजन द्वारा भावनाओं का कुल योग: आंखों के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं का कुल योग परिणामी होता है;

P*: इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाह्य वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं

बाह्य वस्तु; इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान के संपर्क से उत्पन्न संवेदनाओं का समूह। :P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न संवेदनाओं का समूह। :P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न संवेदनाओं का समूह। :P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न संवेदनाओं का समूह।

पृष्ठ 2: मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली भावनाओं का कुल योग परिणामी होता है;

P*: [28] में आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक वस्तु दोनों हैं

बाह्य वस्तु; इच्छा के तल की विशेषता; रूप के तल की विशेषता; निराकार तल की विशेषता; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना; कान संपर्क से उत्पन्न भावना; नाक संपर्क से उत्पन्न भावना; जीभ संपर्क से उत्पन्न भावना; शरीर संपर्क से उत्पन्न भावना; मन संपर्क से उत्पन्न भावना। इस प्रकार अनेक विभाजनों द्वारा भावना का समूह बनता है।

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 35 देखें। पृष्ठ 2 — प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

इसे भावनाओं का समूह कहा जाता है।

34

3. धारणाओं का समग्र योग

62. उसमें बोध का समुच्चय क्या है? एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।

धारणा का समग्र विभाजन: मूल शब्द के साथ होता है; मूल शब्द के साथ नहीं होता है।
धारणा का समग्र रूप से तीन भागों में विभाजन: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा।
चार प्रकार के विभाजन द्वारा बोध का समग्र रूप: इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)।
पांच भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप इस प्रकार है: यह सुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह दुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह मानसिक दुख की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; और यह उदासीनता की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है। इस प्रकार, पांच भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप इस प्रकार है।
छह भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; कान संपर्क से उत्पन्न बोध; नाक संपर्क से उत्पन्न बोध; जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध; शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध; मन संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार, छह भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है।
सात भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; कान संपर्क से उत्पन्न बोध; नाक संपर्क से उत्पन्न बोध; जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध; शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार सात भागों में विभाजित बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है।
आठ भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; सुख और पीड़ा से ग्रस्त शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-चेतना-तत्व-संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार आठ भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

35

नौ भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-तत्व संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न बोध, जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार नौ भागों में विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।
दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; :पी: सुख के साथ शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बोध, दर्द के साथ शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न बोध; मन-चेतना-तत्व-संपर्क से उत्पन्न बोध जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग है। [29].
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।
63. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। : P : इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
64. एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप: परिणामी है; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी है और न ही परिणामी उत्पन्न करता है। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, आसक्तियों का विषय होता है; ग्रहण नहीं किया जाता है, आसक्तियों का विषय होता है; ग्रहण नहीं किया जाता है, आसक्तियों का विषय नहीं होता है। भ्रष्ट है, भ्रष्टताओं का विषय होता है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय होता है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टताओं का विषय नहीं होता है। प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है,

36

निरंतर अभ्यास से; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास से; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना। उत्साह से युक्त; आनंद से युक्त; उदासीनता से युक्त। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है। संचयी है (पुनर्जन्म और मृत्यु का निरंतर चक्र); विक्षेपी है; न तो संचयी है और न ही विक्षेपी। सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है; अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है। निम्न है; उदात्त है; अतुलनीय है। निम्न उद्देश्य है; उदात्त उद्देश्य है; अतुलनीय उद्देश्य है। निम्न है; मध्यवर्ती है; श्रेष्ठ है। एक निश्चित (परिणामी समय) के साथ एक झूठी (अवस्था) है; यह एक निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्था) है; इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। इसका लक्ष्य पथ है; इसका कारण पथ है; इसका प्रमुख कारक पथ है। यह उत्पन्न हुआ है; यह उत्पन्न नहीं हुआ है; यह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। यह भूतकाल है; यह भविष्यकाल है; यह वर्तमान काल है। इसका भूतकाल का लक्ष्य है; इसका भविष्यकाल का लक्ष्य है; इसका वर्तमान काल का लक्ष्य है। यह आंतरिक है; यह बाह्य है; यह आंतरिक और बाह्य दोनों है। इसका आंतरिक लक्ष्य है; इसका बाह्य लक्ष्य है; इसका आंतरिक और बाह्य दोनों लक्ष्य हैं। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय है।

P = अनुच्छेद 62 देखें।

65. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

दो भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप: मूल से संबंधित; मूल से संबंधित नहीं। मूल नहीं, मूल के साथ; मूल नहीं, मूल के साथ नहीं। सांसारिक; अलौकिक। एक मार्ग से बोधगम्य; दूसरे मार्ग से बोधगम्य नहीं। दोषों का विषय; दोषों का विषय नहीं। दोषों से संबंधित; दोषों से संबंधित नहीं। [30] दोषों से संबंधित नहीं, दोषों का विषय; दोषों से संबंधित नहीं, दोषों का विषय नहीं। बंधनों का विषय; बंधनों का विषय नहीं। बंधनों से संबंधित; बंधनों का विषय नहीं। बंधनों का विषय;

37

संबंधों का उद्देश्य। संबंधों से जुड़ा है, संबंधों से जुड़ा नहीं है। संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का उद्देश्य है; संबंधों से जुड़ा नहीं है, संबंधों का उद्देश्य नहीं है। बाढ़ का उद्देश्य है; बाढ़ का उद्देश्य नहीं है। बाढ़ से जुड़ा है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है। बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का उद्देश्य है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का उद्देश्य नहीं है। बंधनों का उद्देश्य है; बंधनों का उद्देश्य नहीं है। बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा नहीं है। बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का उद्देश्य है; बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का उद्देश्य नहीं है। बाधाओं का उद्देश्य है; बाधाओं का उद्देश्य नहीं है। बाधाओं से जुड़ा है; बाधाओं से जुड़ा नहीं है। बाधाओं से जुड़ा नहीं है, बाधाओं का उद्देश्य है; बाधाओं से संबद्ध नहीं है, बाधाओं का विषय नहीं है। विकृतियों का विषय है; विकृतियों का विषय नहीं है। विकृतियों से संबद्ध है; विकृतियों से संबद्ध नहीं है। विकृतियों से संबद्ध नहीं है, विकृतियों का विषय है; विकृतियों से संबद्ध नहीं है, विकृतियों का विषय नहीं है। बोधित है; बोधित नहीं है। आसक्ति का विषय है; आसक्ति का विषय नहीं है। आसक्ति से संबद्ध है; आसक्ति से संबद्ध नहीं है। आसक्ति से संबद्ध नहीं है, आसक्ति का विषय है; आसक्ति से संबद्ध नहीं है, आसक्ति का विषय नहीं है। भ्रष्टाचार का विषय है; भ्रष्टाचार का विषय नहीं है। भ्रष्ट है; भ्रष्ट नहीं है। भ्रष्टाचार से संबद्ध है; भ्रष्टाचार से संबद्ध नहीं है। भ्रष्टाचार से संबद्ध नहीं है, भ्रष्टाचार का विषय है; भ्रष्टाचार से संबद्ध नहीं है, भ्रष्टाचार का विषय नहीं है। क्या इसे पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; क्या इसे पहले मार्ग द्वारा नहीं त्यागा जाना है। क्या इसे बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; क्या इसे बाद के मार्गों द्वारा नहीं त्यागा जाना है। क्या इसका मूल पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; क्या इसका मूल पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाना नहीं है। क्या इसका मूल बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; क्या इसका मूल बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाना नहीं है। क्या यह प्रारंभिक प्रयास के साथ है; क्या यह प्रारंभिक प्रयास के बिना है। क्या यह निरंतर प्रयास के साथ है; क्या यह निरंतर प्रयास के बिना है। क्या इसमें उत्साह है; क्या इसमें उत्साह नहीं है। क्या यह उत्साह के साथ है; क्या इसमें उत्साह नहीं है। क्या यह आनंद के साथ है; क्या इसमें आनंद नहीं है। क्या यह उदासीनता के साथ है; क्या यह उदासीनता के साथ नहीं है।

38

उदासीनता के साथ। इच्छा के तल का लक्षण है; इच्छा के तल का लक्षण नहीं है। रूप के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण नहीं है। निराकार तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण नहीं है। समाहित है (अर्थात सांसारिक है); समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है) [31]। मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। निश्चित (परिणामी समय) का है; निश्चित (परिणामी समय) का नहीं है। पार किया जा सकता है; पार नहीं किया जा सकता है। विलाप का कारण है; विलाप का कारण नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

66. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जाता है: शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। परिणामी; : P 1 : आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं। :P 2 : इस प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप है।
पी 1 = पैरा देखें। 64. पी 2 = पैरा देखें। 62.
[जैसा कि अच्छे त्रिक (Dhs.) में समझाया गया है; वैसे ही सभी को भी करना चाहिए]
त्रिक के बारे में बताया जाए]।
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) दोहों पर आधारित
67. एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
तीन गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग है। [32]
P = अनुच्छेद 62 देखें।
39

68. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो भागों में किया जा सकता है: मूल से संबंधित; मूल से संबंधित नहीं। विलाप का कारण है; विलाप का कारण नहीं है।
P = अनुच्छेद 65 देखें।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का सार: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P दस भागों में विभाजित करके बोध का सार यही है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
69. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। परिणामी; rP 1: आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं। :P 2: इस प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप है।
पी^पैरा देखें. 64. पी 2=पैरा देखें। 62.

7. एकल विभाजन के माध्यम से धारणा का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल से जुड़ा है; मूल से जुड़ा नहीं है। :पी: विलाप के कारण के साथ है; विलाप के कारण के बिना है। [33]
P = अनुच्छेद 65 देखें।

तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप: rP 1 : इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाह्य वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं। : P 2 : इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप है।
P' = कुछ ग्रंथों में यह शामिल नहीं है :P: P 2 = पैराग्राफ 62 देखें।

(यह खंड यहीं समाप्त होता है) त्रिक पर आधारित

40

71. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का सार: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P दस भागों में विभाजित करके बोध का सार यही है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

72. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का कुल योग दो भागों में विभाजित किया गया है: मूल से संबंधित है; मूल से संबंधित नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग इस प्रकार है: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग इस प्रकार है।
पी — पैराग्राफ 62 देखें।

73. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन इस प्रकार है: मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है।
तीन गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: परिणामी है; परिणामी का उत्पादक है; न तो परिणामी है और न ही परिणामी का उत्पादक है। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग है। [34]
पी — पैराग्राफ 62 देखें।

74. एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र रूप से दो भागों में विभाजन: सांसारिक; अलौकिक।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का सार: जो बोध किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो बोध नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो बोध नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का सार प्रस्तुत किया जाता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

41

75. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित करके प्राप्त की गई धारणा का समग्र रूप: एक तरीके से बोधगम्य है; दूसरे तरीके से बोधगम्य नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का सार: भ्रष्ट है, तो भ्रष्टों का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, तो भ्रष्टों का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, तो भ्रष्टों का विषय नहीं है। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

76. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जाता है: यह विकारों का विषय है; यह विकारों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का समग्र रूप: प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना।
पी: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

77. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह दोषों से जुड़ा है; यह दोषों से जुड़ा नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग: उत्साह से युक्त; आनंद से युक्त; उदासीनता से युक्त। :P: इस प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग है। [35]
P = अनुच्छेद 62 देखें।

78. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह दोषों से संबंधित नहीं है, यह दोषों का विषय है; यह दोषों से संबंधित नहीं है, यह दोषों का विषय नहीं है।

42

तीन प्रकार से विभाजित करके प्राप्त बोध का सार: पहले मार्ग से त्यागा जाना है; बाद के मार्गों से त्यागा जाना है; न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से त्यागा जाना है। :P: दस प्रकार से विभाजित करके प्राप्त बोध का सार यही है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

79. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन इस प्रकार है: बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का सार: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; प्रथम मार्ग या अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं। :P:
इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग प्राप्त होता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
80. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: बंधनों से जुड़ा हुआ; बंधनों से जुड़ा हुआ नहीं।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का कुल योग: संचयी होता है; विक्षेपी होता है; न संचयी होता है और न ही विक्षेपी। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का कुल योग होता है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
81. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन इस प्रकार है: बेड़ियों से जुड़ा नहीं है, बेड़ियों का विषय है; बेड़ियों से जुड़ा नहीं है, बेड़ियों का विषय नहीं है। [36]
तीन प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का सार: सात अलौकिक अवस्थाओं का है; अंतिम अलौकिक अवस्था का है; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का है। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

43

82. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जाता है: यह संबंधों का विषय है; यह संबंधों का विषय नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके प्राप्त बोध का सार: निम्न है; उदात्त है; असीम है। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके प्राप्त बोध का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
83. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का कुल योग दोहरे विभाजन के माध्यम से: संबंधों से जुड़ा है; संबंधों से जुड़ा नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का सार: निम्न विषय; उच्च विषय; असीम विषय। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

84. एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: संबंधों से संबद्ध नहीं है, संबंधों का विषय है; संबंधों से संबद्ध नहीं है, संबंधों का विषय नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप इस प्रकार है: निम्न; मध्य; श्रेष्ठ। :P : इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
85. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन इस प्रकार है: क्या यह बाढ़ का विषय है; क्या यह बाढ़ का विषय नहीं है।
[37] त्रिगुण विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: एक निश्चित (परिणामी समय) के साथ एक झूठी (अवस्था) है; एक निश्चित (परिणामी समय) के साथ एक सही (अवस्था) है; कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। :P: इस प्रकार दसगुण विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

86. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

44

धारणा का कुल योग दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: बाढ़ से संबंधित है; बाढ़ से संबंधित नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके प्राप्त की गई अनुभूति का सार: पथ को अपना विषय मानता है; पथ को अपना कारण मानता है; पथ को अपना प्रमुख कारक मानता है। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके प्राप्त की गई अनुभूति का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।
87. एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय है; बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का सार: उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का सार है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

88. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
दोहरे विभाजन के माध्यम से बोध का कुल योग: बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है।

तीन भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग इस प्रकार है: भूतकाल; भविष्यकाल; वर्तमानकाल। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग इस प्रकार है।
पी — पैराग्राफ 62 देखें।

89. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का कुल योग दोहरे विभाजन के माध्यम से: संबंधों से जुड़ा है; संबंधों से जुड़ा नहीं है।
[38] त्रिविध विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: भूतकाल का कर्ता है; भविष्य का कर्ता है; वर्तमान का कर्ता है। :P: इस प्रकार दसविध विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

90. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।

45

धारणा का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय है; यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करके बोध का कुल योग: आंतरिक है; बाह्य है; आंतरिक और बाह्य दोनों है। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करके बोध का कुल योग है।
P = अनुच्छेद 62 देखें।

91. एकल विभाजन द्वारा बोध का कुल योग: संपर्क से जुड़ा है।
धारणा का समग्र विभाजन इस प्रकार है: यह बाधाओं का विषय है; यह बाधाओं का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का सार यह है: आंतरिक विषय; बाह्य विषय; आंतरिक और बाह्य दोनों विषय। :P: इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित करने पर प्राप्त बोध का सार यह है।
पी — पैराग्राफ 62 देखें।
(यहाँ पारस्परिक वृद्धि का खंड समाप्त होता है)

सात भागों में विभाजित करके बोध का सार यह है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। इस प्रकार सात भागों में विभाजित करके बोध का सार यह है।
सात गुना विभाजन के एक अन्य तरीके से बोध का कुल योग: सुखद भावना से जुड़ा है; पीड़ादायक भावना से जुड़ा है; न पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा है; इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। :P: इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाहरी वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाहरी दोनों वस्तुएँ हैं; इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। इस प्रकार सात गुना विभाजन द्वारा बोध का कुल योग है। [39]

P = अनुच्छेद 64 देखें।

46

चौबीस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। कान संपर्क से उत्पन्न बोध। नाक संपर्क से उत्पन्न बोध। जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध। शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध। मन संपर्क से उत्पन्न बोध अच्छा है; बुरा

है; न अच्छा है न बुरा। नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; कान संपर्क से उत्पन्न बोध; नाक संपर्क से उत्पन्न बोध; जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध; शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध; मन संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार चौबीस भागों में विभाजित करके बोध का कुल योग है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
चौबीस गुना विभाजन के एक अन्य तरीके से बोध का कुल योग: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध का कुल योग सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; :PX : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। यह कान के संपर्क से उत्पन्न होता है। :P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न होता है। :P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न होता है। :P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न होता है। :P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न बोध का कुल योग सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; :PX : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; :P 3 : मन के संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार चौबीस गुना विभाजन के माध्यम से बोध का कुल योग प्राप्त होता है।
P 1 = पैराग्राफ 64 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
P 3 = मध्यवर्ती इंद्रियां।
तीस भागों में विभाजित करके बोध का समग्र रूप: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध इच्छा तल की विशेषता है; रूप तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान संपर्क से उत्पन्न बोध: पृष्ठ 1: नाक संपर्क से उत्पन्न बोध।
P 1 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। :PX : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। :P 1 :
मन के संपर्क से उत्पन्न बोध का समूह इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; मन के संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार, तीस गुना विभाजन द्वारा बोध का समूह प्राप्त होता है।
पृष्ठ 1 ^ प्रत्येक को पहले उदाहरण के रूप में पूरा करें। पृष्ठ 2 = मध्यवर्ती इंद्रियां।
अनेक विभाजनों द्वारा बोध का समग्र रूप: नेत्र संपर्क के कारण उत्पन्न बोध का समग्र रूप अच्छा है; बुरा है;

47

न अच्छा न बुरा; इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। कान के संपर्क से उत्पन्न। : P 1 : नाक के संपर्क से उत्पन्न। cP 1 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। :PX : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। : P 1 : मन के संपर्क से उत्पन्न बोध का समूह अच्छा है; बुरा है; न अच्छा न बुरा है; [40] इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। आँख के संपर्क से उत्पन्न बोध; :P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार अनेक विभाजनों द्वारा बोध का समूह है।
P 1 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के रूप में पूरा करें। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रियां।
अनेक प्रकार के विभाजन द्वारा बोध का समग्र रूप: नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; :PX : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान के संपर्क से उत्पन्न। :P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न। :P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। :P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न बोध (सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है :PX :)* इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न बोध; कान संपर्क से उत्पन्न बोध; नाक संपर्क से उत्पन्न बोध; जीभ संपर्क से उत्पन्न बोध; शरीर संपर्क से उत्पन्न बोध; मन के संपर्क से उत्पन्न बोध। इस प्रकार अनेक विभाजनों द्वारा बोध का समग्र रूप प्राप्त होता है।
P 1 = पैराग्राफ 64 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
चाफ्थासंगायण पाठ में छोड़ा गया।
इसे धारणाओं का समग्र रूप कहा जाता है।
(»
4. मानसिक सहवर्तीताओं का समूह

92. उसमें मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय क्या है? एक प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।

48

मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल है; मूल नहीं है।
मानसिक सहवर्ती भावों का त्रिविध विभाजन: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह, चार भागों में विभाजित करके: इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)।
मानसिक सहवर्ती भावों का पंचांग विभाजन इस प्रकार है: यह सुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह दुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह मानसिक दुख की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह उदासीनता की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है। इस प्रकार, यह पंचांग विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती भावों का समुच्चय है।
मानसिक क्रियाओं का समुच्चय छह भागों में विभाजित है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार मानसिक क्रियाओं का समुच्चय छह भागों में विभाजित है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय विभाजन इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; [41] मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-चेतना-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय सात प्रकार से विभाजित है।
मानसिक क्रियाओं का अष्टांग विभाजन इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; सुख और पीड़ा से युक्त शारीरिक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-चेतना-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार मानसिक क्रियाओं का अष्टांग विभाजन है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का नौ गुना विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-चेतना-तत्व से उत्पन्न इच्छाशक्ति।

49

अच्छा, बुरा और न अच्छा न बुरा, ऐसा संपर्क। इस प्रकार मानसिक सहवर्ती भावों का समूह नौ भागों में विभाजित है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का दस गुना विभाजन इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; सुख और पीड़ा से ग्रस्त शारीरिक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन-चेतना-तत्व-संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति जो अच्छी, बुरी और न अच्छी न बुरी होती है। इस प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का दस गुना विभाजन किया गया है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।
93. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: मूल है; मूल नहीं है।
मानसिक सहवर्ती भावों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: सुखद भाव से जुड़ा हुआ; दुखदायी भाव से जुड़ा हुआ; न दुखदायी और न ही सुखद भाव से जुड़ा हुआ। परिणामी; परिणामी उत्पन्न करने वाला; न तो परिणामी और न ही परिणामी उत्पन्न करने वाला। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया हुआ, आसक्तियों का विषय; ग्रहण न किया हुआ, आसक्तियों का विषय; ग्रहण न किया हुआ, आसक्तियों का विषय नहीं। भ्रष्ट, भ्रष्टताओं का विषय; भ्रष्ट न किया हुआ, भ्रष्टताओं का विषय; भ्रष्ट न किया हुआ, भ्रष्टताओं का विषय नहीं। प्रारंभिक अभ्यास के साथ, निरंतर अभ्यास के साथ; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना। उत्साह के साथ; सुख के साथ; उदासीनता के साथ। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना आवश्यक है। इसका

कोई मूल नहीं है जिसे बाद के मार्ग त्याग दें; इसका कोई मूल नहीं है जिसे न तो पहले मार्ग द्वारा और न ही बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जा सके। यह संचयी है (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु का); यह विक्षेपी है; यह न तो संचयी है और न ही विक्षेपी है। यह सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है; यह अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है; यह सात अलौकिक अवस्थाओं में से कोई भी नहीं है।

50

न ही यह अंतिम अलौकिक अवस्था का है। यह निम्न है; यह उदात्त है; यह अमापनीय है। इसका निम्न उद्देश्य है; इसका उदात्त उद्देश्य है; इसका अमापनीय उद्देश्य है। यह निम्न है; यह मध्यवर्ती है; यह श्रेष्ठ है। यह एक निश्चित (परिणामी समय) वाली झूठी (अवस्था) है; यह एक निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्था) है; इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। इसका उद्देश्य पथ है; इसका कारण पथ है; इसका प्रमुख कारक पथ है। यह उत्पन्न हुआ है; यह उत्पन्न नहीं हुआ है; यह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। यह भूतकाल है; यह भविष्यकाल है; यह वर्तमानकाल है। इसका भूतकाल का उद्देश्य है; इसका भविष्यकाल का उद्देश्य है; इसका वर्तमानकाल का उद्देश्य है। यह आंतरिक है; यह बाह्य है; यह आंतरिक और बाह्य दोनों है। इसका आंतरिक उद्देश्य है; इसका बाह्य उद्देश्य है; इसका आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य हैं। इस प्रकार यह दस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
94. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का द्विभाजन इस प्रकार है: मूल तत्व के साथ है; मूल तत्व के साथ नहीं है। [42] मूल तत्व से संबद्ध है; मूल तत्व से संबद्ध नहीं है। क्या मूल तत्व भी मूल तत्व के साथ है; मूल तत्व के साथ है लेकिन मूल तत्व नहीं है। क्या मूल तत्व भी मूल तत्व से संबद्ध है; मूल तत्व से संबद्ध है लेकिन मूल तत्व नहीं है। मूल तत्व नहीं है, मूल तत्व के साथ है; मूल तत्व नहीं है, मूल तत्व के साथ नहीं है। सांसारिक है; अलौकिक है। एक मार्ग से बोधगम्य है; दूसरे मार्ग से बोधगम्य नहीं है। अपवित्रता है; अपवित्रता नहीं है। अपवित्रताओं का विषय है; अपवित्रताओं का विषय नहीं है। अपवित्रताओं से संबद्ध है; अपवित्रताओं से संबद्ध नहीं है। क्या अपवित्रता भी अपवित्रताओं का विषय है; अपवित्रताओं का विषय है लेकिन अपवित्रता नहीं है। क्या अपवित्रता भी अपवित्रताओं से संबद्ध है; अपवित्रताओं से संबद्ध है लेकिन अपवित्रता नहीं है। अपवित्रताओं से संबंधित नहीं है, अपवित्रताओं का विषय है; अपवित्रताओं से संबंधित नहीं है, अपवित्रताओं का विषय नहीं है। बंधन है; बंधन नहीं है। बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है। बंधनों से संबंधित है; बंधनों से संबंधित नहीं है। क्या बंधन भी बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय है लेकिन बंधन नहीं है। क्या बंधन भी बंधनों से संबंधित है; बंधनों से संबंधित है लेकिन बंधन नहीं है। बंधनों से संबंधित नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से संबंधित नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है।
क्या संबंध है; क्या संबंध नहीं है। क्या संबंधों का विषय है; क्या संबंधों का विषय नहीं है। क्या संबंधों से जुड़ा है; क्या संबंधों से जुड़ा नहीं है।

51

बंधन भी बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय है लेकिन बंधन नहीं है। क्या बंधन भी बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा है लेकिन बंधन नहीं है। [43] बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है। बाढ़ है; बाढ़ नहीं है। बाढ़ का विषय है; बाढ़ का विषय नहीं है। बाढ़ से जुड़ा है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है। क्या बाढ़ भी बाढ़ का विषय है; बाढ़ का विषय है लेकिन बाढ़ नहीं है। क्या बाढ़ भी बाढ़ से जुड़ी है; बाढ़ से जुड़ी है लेकिन बाढ़ नहीं है। बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का विषय है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है। बंधन है; बंधन नहीं है। बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है। बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा नहीं है। क्या बंधन भी बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय है, लेकिन स्वयं बंधन नहीं है। क्या बंधन भी बंधनों से संबद्ध है; बंधनों से संबद्ध है, लेकिन स्वयं बंधन नहीं है। बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है। बाधा है; बाधा नहीं है। बाधाओं का विषय है; बाधाओं का विषय नहीं है। बाधाओं से संबद्ध है; बाधाओं से संबद्ध नहीं है। क्या बाधा भी बाधाओं का विषय है; बाधाओं का विषय है, लेकिन स्वयं बाधा नहीं है। क्या बाधा भी बाधाओं से संबद्ध है; बाधाओं से संबद्ध है, लेकिन स्वयं बाधा नहीं है। बाधाओं से संबद्ध नहीं है, बाधाओं का विषय है; बाधाओं से संबद्ध नहीं है, बाधाओं का विषय नहीं है।

क्या यह विकृति है; क्या यह विकृति नहीं है। क्या यह विकृतियों का विषय है; क्या यह विकृतियों का विषय नहीं है। क्या यह विकृतियों से जुड़ा है; क्या यह विकृतियों से जुड़ा नहीं है। क्या विकृति भी विकृतियों का विषय है; क्या यह विकृतियों का विषय है लेकिन विकृति नहीं है। [44] विकृतियों से जुड़ा नहीं है, विकृतियों का विषय है; विकृतियों से जुड़ा नहीं है, विकृतियों का विषय नहीं है। पकड़ा गया है; पकड़ा नहीं गया है। क्या यह आसक्ति है; क्या यह आसक्ति नहीं है। क्या यह आसक्ति का विषय है; क्या यह आसक्ति का विषय नहीं है। क्या यह आसक्ति से जुड़ा है; क्या यह आसक्ति का विषय है लेकिन आसक्ति नहीं है। क्या आसक्ति भी आसक्ति से जुड़ी है; क्या यह आसक्ति से जुड़ी है लेकिन आसक्ति नहीं है। क्या यह आसक्ति से जुड़ा नहीं है, क्या यह आसक्ति का विषय है?
5 +

52
यह आसक्तियों से संबद्ध नहीं है, न ही यह आसक्तियों का विषय है।
क्या भ्रष्टाचार है; क्या भ्रष्टाचार नहीं है। क्या भ्रष्टाचारों का लक्ष्य है; क्या भ्रष्टाचारों का लक्ष्य नहीं है। क्या भ्रष्ट है; क्या भ्रष्ट नहीं है। क्या भ्रष्टाचारों से जुड़ा है; क्या भ्रष्टाचारों से जुड़ा नहीं है। क्या भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचारों का लक्ष्य है; क्या भ्रष्टाचारों का लक्ष्य है लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। क्या भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट है; क्या भ्रष्ट है लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। क्या भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचारों से जुड़ा है; क्या भ्रष्टाचारों से जुड़ा है लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। क्या भ्रष्टाचारों से जुड़ा नहीं है, भ्रष्टाचारों का लक्ष्य है; क्या भ्रष्टाचारों से जुड़ा नहीं है, भ्रष्टाचारों का लक्ष्य नहीं है। क्या पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; क्या पहले मार्ग द्वारा नहीं त्यागा जाना है। क्या बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; क्या बाद के मार्गों द्वारा नहीं त्यागा जाना है। क्या पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; क्या पहले मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है। क्या बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; क्या बाद के मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है।
प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ है; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना है। निरंतर अनुप्रयोग के साथ है; निरंतर अनुप्रयोग के बिना है। उत्साह के साथ है; उत्साह के बिना है। [45] उत्साह के साथ है; उत्साह के बिना है। आनंद के साथ है; आनंद के बिना है। उदासीनता के साथ है; उदासीनता के बिना है। इच्छा के तल की विशेषता है; इच्छा के तल की विशेषता नहीं है। रूप के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता नहीं है। निराकार तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता नहीं है। समाहित है (अर्थात सांसारिक है); समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। निश्चित (परिणामी समय) का है; निश्चित (परिणामी समय) का नहीं है। पार करने योग्य है; पार करने योग्य नहीं है। विलाप के कारण के साथ है; विलाप के कारण के बिना है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

95. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।

53

मानसिक सहवर्तीताओं का द्विभाजन: शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
तीन गुना विभाजन के माध्यम से मानसिक सहवर्ती का समूह: सुखद भावना से जुड़ा है; : पी 1 : आंतरिक वस्तु है; बाहरी वस्तु है; आंतरिक और बाहरी दोनों वस्तु है।
पृष्ठ 2: इस प्रकार दस के माध्यम से मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग है-
तह विभाजन।
पी' = पैरा देखें। 93. पी 2 = पैरा देखें। 92.
(यहाँ खंड समाप्त होता है) दोहे पर आधारित। [46]
96. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: मूल है; मूल नहीं है।

तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
97. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दो भागों में विभाजित किया गया है: शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
98. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दोहरे विभाजन के माध्यम से मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: मूल है; मूल नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: आंतरिक वस्तु वाला; बाह्य वस्तु वाला; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तु वाला। :P: दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह यही है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

54

99. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दो भागों में विभाजित किया गया है: शोक का कारण है; शोक का कारण नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित करने पर मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: आंतरिक वस्तु वाला; बाह्य वस्तु वाला; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तु वाला। :P: दस प्रकार से विभाजित करने पर मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
(यहाँ खंड समाप्त होता है) त्रिक पर आधारित। [47]
100. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: मूल है; मूल नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती भावों का समूह है।^
एन!
P = अनुच्छेद 92 देखें।
101. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दोहरे विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह मूल के साथ होता है; मूल के साथ नहीं होता है।
मानसिक सहवर्ती भावों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: सुखद भावना से जुड़ा हुआ; दुखद भावना से जुड़ा हुआ; न दुखद और न सुखद भावना से जुड़ा हुआ। : P : इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती भावों का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

102. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल से संबंधित है; मूल से संबंधित नहीं है।
तीन गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग: परिणामी; परिणामी उत्पन्न करता है; न तो परिणामी है और न ही

55

परिणाम उत्पन्न करने वाला। : पी : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय होता है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

103. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: क्या मूल तत्व के साथ मूल तत्व भी होता है; क्या मूल तत्व के साथ होता है लेकिन मूल तत्व नहीं होता है।
मानसिक सहवर्ती भावों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: जो ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती भावों का दसविध विभाजन इस प्रकार है। [48]
P = अनुच्छेद 92 देखें।

104. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: क्या मूल भी मूल से जुड़ा है; मूल से जुड़ा है लेकिन मूल नहीं है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: भ्रष्ट है तो भ्रष्ट तत्वों का विषय है; भ्रष्ट नहीं है तो भ्रष्ट तत्वों का विषय है; भ्रष्ट नहीं है तो भ्रष्ट तत्वों का विषय नहीं है। :P: इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का दसविध विभाजन है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

105. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

56

106. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: सांसारिक है; अलौकिक है।
मानसिक सहवर्ती भावों का त्रिगुण विभाजन इस प्रकार है: उत्साह के साथ; आनंद के साथ; उदासीनता के साथ। : P : इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती भावों का दसगुण विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
107. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: एक तरीके से बोधगम्य है; दूसरे तरीके से बोधगम्य नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: पहले मार्ग से त्यागा जाना है; बाद के मार्गों से त्यागा जाना है; न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से त्यागा जाना है। :P: इस प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है। [49]
P = अनुच्छेद 92 देखें।

108. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह; अपवित्रता है; अपवित्रता नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल तत्व; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल तत्व; प्रथम मार्ग या अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल तत्व नहीं। :P; इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

109. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।

मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: दोषों का विषय है; दोषों का विषय नहीं है।
तीन गुना विभाजन के माध्यम से मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग-

57

sion: संचयी है; विक्षेपी है; न संचयी है और न ही विक्षेपी। : P : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
110. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: दोषों से जुड़ा है; दोषों से जुड़ा नहीं है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: सात अलौकिक अवस्थाओं का समूह; अंतिम अलौकिक अवस्था का समूह; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का समूह और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का समूह। :P: इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
111. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: क्या अपवित्रता भी अपवित्रताओं का विषय है; क्या यह अपवित्रताओं का विषय है लेकिन अपवित्रता नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का कुल योग: निम्न है; उदात्त है; असीम है। :P: इसी प्रकार दस भागों में विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का कुल योग है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

112. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का दोहरे विभाजन के माध्यम से समूह: क्या अपवित्रता भी अपवित्रताओं से जुड़ी है; क्या यह अपवित्रताओं से जुड़ी है लेकिन स्वयं अपवित्रता नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: निम्न उद्देश्य रखता है; उदात्त उद्देश्य रखता है; असीम उद्देश्य रखता है। :P: इस प्रकार दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है। [50]
P = अनुच्छेद 92 देखें।
113. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।

58

मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के अनुसार: दोषों से संबद्ध नहीं है, दोषों का विषय है; दोषों से संबद्ध नहीं है, दोषों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: निम्न है; मध्य है; उच्च है। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

114. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: बंधन है; बंधन नहीं है।
तीन गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय: एक निश्चित (परिणामी समय) के साथ एक झूठी (अवस्था) है; एक निश्चित (परिणामी समय) के साथ एक सही (अवस्था) है; और इसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। : P : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

115. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: बेड़ियों का विषय है; बेड़ियों का विषय नहीं है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: पथ को अपने लक्ष्य के रूप में, पथ को अपने कारण के रूप में और पथ को अपने प्रमुख कारक के रूप में मानता है। :P: दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह यही है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

116. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का दोहरे विभाजन के आधार पर समूह: बेड़ियों से जुड़ा है; बेड़ियों से नहीं जुड़ा है।
तीन प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। :P: इस प्रकार दस प्रकार से विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह है। [51]

P = अनुच्छेद 92 देखें।

59

117. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: क्या बंधन भी बंधनों का विषय है; क्या बंधनों का विषय है लेकिन बंधन नहीं है।
तीन भागों में विभाजित करके मानसिक सहवर्ती तत्वों का कुल योग इस प्रकार है: भूतकाल है; भविष्यकाल है; वर्तमानकाल है। इसी प्रकार दस भागों में विभाजित करके मानसिक सहवर्ती तत्वों का कुल योग इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।
118. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का दोहरे विभाजन के माध्यम से समूह: क्या बंधन भी बंधनों से जुड़ा है; क्या यह बंधनों से जुड़ा है लेकिन बंधन नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: भूतकाल का कर्म है; भविष्यकाल का कर्म है; वर्तमान काल का कर्म है।
पी: इस प्रकार मानसिक सहवर्तीताओं का योग दस गुना होता है।
विभाजन।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

119. एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
मानसिक सहवर्तीताओं का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है।
मानसिक सहवर्ती तत्वों का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: आंतरिक; बाह्य; आंतरिक और बाह्य दोनों। :P: इसी प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 92 देखें।

120. «एकल विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: चेतना से जुड़ा है।
दो भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग: संबंध है; संबंध नहीं है।
तीन भागों में विभाजित मानसिक सहवर्तीताओं का समूह: आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं 5*

60

और बाह्य वस्तु। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समुच्चय प्राप्त होता है।

P = अनुच्छेद 92 देखें।

(यहाँ पारस्परिक वृद्धि का खंड समाप्त होता है।) [52]

मानसिक सहवर्ती तत्वों का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् अलौकिक है)। इस प्रकार मानसिक सहवर्ती तत्वों का सात भागों में विभाजन किया गया है।

सात प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: सुखद अनुभूति से जुड़ा है; पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा है; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा है; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। :P: आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। इस प्रकार सात प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है।

P = अनुच्छेद 93 देखें।

मानसिक सहवर्ती क्रियाओं का चौबीस गुना विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न मानसिक सहवर्ती क्रियाओं का योग अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। कान संपर्क से उत्पन्न। rP 1: नाक संपर्क से उत्पन्न। : P 1: जीभ संपर्क से उत्पन्न। :PX: शरीर संपर्क से उत्पन्न। : P 1: मन संपर्क से उत्पन्न मानसिक सहवर्ती क्रियाओं का योग अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; :P 2: मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार चौबीस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती क्रियाओं का योग है।

पृष्ठ 1 ^: पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें। पृष्ठ 2 — मध्यवर्ती अर्थ।

चौबीस गुना विभाजन के एक अन्य तरीके से मानसिक सहवर्ती का समुच्चय: नेत्र संपर्क के कारण होने वाले मानसिक सहवर्ती का समुच्चय सुखद भावना से जुड़ा होता है; :P 1 : आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं।

61

कान के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। :P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 ; मन के संपर्क से उत्पन्न मानसिक सहवर्तीताओं का समूह सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; : P 1 : आंतरिक वस्तु होती है; बाह्य वस्तु होती है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। आँख के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; कान के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; नाक के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; जीभ के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; शरीर के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार चौबीस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समूह है।

P* = पैराग्राफ 93 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

तीस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय: नेत्र संपर्क के कारण उत्पन्न मानसिक सहवर्तीताओं का समुच्चय इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान के संपर्क के कारण। : पृष्ठ 1 : नाक के संपर्क के कारण। : पृष्ठ 1 : [53] जीभ के संपर्क के कारण।

P 1 : शारीरिक संपर्क के कारण। : P 1 : मानसिक विचारों का समूह-

मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली सहक्रियाएँ इच्छा के तल की विशेषताएँ हैं; रूप के तल की विशेषताएँ हैं; निराकार तल की विशेषताएँ हैं; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; : पृष्ठ 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार तीस गुना विभाजन द्वारा मानसिक सहक्रियाओं का समुच्चय है।

P x = पहले उदाहरण के रूप में पूर्ण। P 2 = मध्यवर्ती अर्थ।

अनेक प्रकार से विभाजित मानसिक संवेदनाओं का समूह: नेत्र संपर्क से उत्पन्न मानसिक संवेदनाएँ अच्छी होती हैं; बुरी होती हैं; न अच्छी होती हैं न बुरी; इच्छा के तल की विशेषता होती हैं; रूप के तल की विशेषता होती हैं; निराकार तल की विशेषता होती हैं; इसमें शामिल नहीं होतीं (अर्थात् अलौकिक होती हैं)। — कान संपर्क से उत्पन्न। :P: नाक संपर्क से उत्पन्न।

पी : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। : पी : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। : पी :

मन के संपर्क से उत्पन्न मानसिक अभिक्रियाओं का समूह अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा है; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; कान संपर्क

से उत्पन्न इच्छाशक्ति; नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार अनेक विभाजनों द्वारा मानसिक अभिक्रियाओं का समूह बनता है।
P = पहले उदाहरण के अनुसार पूर्ण करें।

62

मानसिक सहवर्ती भावों का एक अन्य प्रकार से विविध विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न मानसिक सहवर्ती भावों का समूह सुखद भावना से जुड़ा होता है; पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; न पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है। : P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान के संपर्क से उत्पन्न। :P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न। ;P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न मानसिक सहवर्ती भावों का समूह सुखद भावना से जुड़ा होता है; rP 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति; मन संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इस प्रकार यह अनेक विभाजनों द्वारा मानसिक सहवर्ती क्रियाओं का समूह है।
कृपया पैराग्राफ 93 देखें। पृष्ठ 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
इसे मानसिक सहवर्तीताओं का समूह कहा जाता है।
5. चेतना का समूह
121. उसमें चेतना का समुच्चय क्या है? एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है। [54]
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा।
चेतना का समूह चार प्रकार से विभाजित है: यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)।
चेतना का पंच विभाजन इस प्रकार है: यह सुख (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह दर्द (शारीरिक) की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; यह...

63

यह मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है; और उदासीनता की नियंत्रक शक्ति से संबंधित है। इस प्रकार, चेतना का समूह पाँच भागों में विभाजित है।
चेतना का छह भागों में विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार चेतना का छह भागों में विभाजन किया गया है।
चेतना का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार चेतना का सात भागों में विभाजन होता है।
चेतना का अष्टांग विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; सुख और दुख से युक्त देह चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार चेतना का अष्टांग विभाजन होता है।
चेतना का नौ भागों में विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार चेतना का नौ भागों में विभाजन होता है।
चेतना का दस भागों में विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; सुख और दुख से युक्त देह चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार चेतना का दस भागों में विभाजन होता है।
P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

122. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
चेतना का समग्र विभाजन तीन प्रकार से किया गया है: 'I' सुखद भावनाओं से जुड़ा है; 'I' पीड़ादायक भावनाओं से जुड़ा है; 'I' न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावनाओं से जुड़ा है। [55]

64

परिणाम देने वाला; परिणाम उत्पन्न करने वाला; न तो परिणाम देने वाला और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाला। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किया जाता है, आसक्तियों का विषय होता है; ग्रहण नहीं किया जाता, आसक्तियों का विषय होता है; ग्रहण नहीं किया जाता, आसक्तियों का विषय नहीं होता। भ्रष्ट होता है, भ्रष्टताओं का विषय होता है; भ्रष्ट नहीं होता, भ्रष्टताओं का विषय होता है; भ्रष्ट नहीं होता, भ्रष्टताओं का विषय नहीं होता। प्रारंभिक अभ्यास के साथ होता है, निरंतर अभ्यास के साथ होता है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ होता है; प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना होता है। उत्साह के साथ होता है; आनंद के साथ होता है; उदासीनता के साथ होता है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; न तो प्रथम मार्ग द्वारा और न ही अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाना है। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल है; प्रथम मार्ग या अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं है। यह संचयी है (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र का); यह विक्षेपी है; यह न तो संचयी है और न ही विक्षेपी। यह सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है; यह अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है; यह न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक है। यह निम्न है; यह उदात्त है; यह अतुलनीय है। इसका निम्न उद्देश्य है; इसका उदात्त उद्देश्य है; इसका अतुलनीय उद्देश्य है। यह निम्न है; यह मध्यवर्ती है; यह श्रेष्ठ है। यह एक झूठी अवस्था है जिसका परिणाम समय निश्चित है; यह एक सही अवस्था है जिसका परिणाम समय निश्चित है; इसका कोई निश्चित परिणाम समय नहीं है। इसका उद्देश्य पथ है; इसका कारण पथ है; इसका प्रमुख कारक पथ है। यह उत्पन्न हुआ है; यह उत्पन्न नहीं हुआ है; यह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। यह भूतकाल है; यह भविष्यकाल है; यह वर्तमान काल है। इसका भूतकाल का उद्देश्य है; इसका भविष्यकाल का उद्देश्य है; इसका वर्तमान काल का उद्देश्य है। यह आंतरिक है; यह बाह्य है; यह आंतरिक और बाह्य दोनों है। इसका आंतरिक उद्देश्य है; इसका बाह्य उद्देश्य है; इसका आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य हैं। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय होता है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

123. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है: मूल से जुड़ा हुआ; मूल से जुड़ा हुआ नहीं। मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है। सांसारिक है; अलौकिक है। एक मार्ग से ज्ञात है; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं है। दोषों का विषय है; दोषों का विषय नहीं है। दोषों से जुड़ा हुआ है;

65

गंदगी से जुड़ा नहीं है। गंदगी से जुड़ा नहीं है, गंदगी की चीज़ है; गंदगी से जुड़ा नहीं है, गंदगी की चीज़ नहीं है। बेड़ियों की चीज़ है; बेड़ियों की चीज़ नहीं है। बेड़ियों से जुड़ा है; बेड़ियों से जुड़ा नहीं है। बेड़ियों से जुड़ा नहीं है, बेड़ियों की चीज़ है; बेड़ियों से जुड़ा नहीं है, बेड़ियों की चीज़ नहीं है।
बंधनों की चीज़ है; बंधनों की चीज़ नहीं है। बंधनों से जुड़ा है; बंधनों से जुड़ा नहीं है। बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों की चीज़ है; बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों की चीज़ नहीं है। बाढ़ की चीज़ है; बाढ़ की चीज़ नहीं है। बाढ़ से जुड़ा है; बाढ़ से जुड़ा नहीं है। बाढ़ से जुड़ा नहीं है, बाढ़ की चीज़ है; बाढ़ से सम्बन्धित नहीं है, बाढ़ की वस्तु नहीं है। बंधनों की वस्तु है; बंधनों की वस्तु नहीं है। बंधनों से सम्बन्धित है; बंधनों से सम्बन्धित नहीं है। बंधनों से सम्बन्धित नहीं है, बंधनों की वस्तु है; बंधनों से सम्बन्धित नहीं है, बंधनों की वस्तु नहीं है। बाधाओं की वस्तु है; [56] बाधाओं की वस्तु नहीं है। बाधाओं से सम्बन्धित है; बाधाओं से सम्बन्धित नहीं है। बाधाओं से सम्बन्धित नहीं है,

बाधाओं का उद्देश्य है; बाधाओं से सम्बन्धित नहीं है, बाधाओं का उद्देश्य नहीं है। विकृतियों की वस्तु है; विकृतियों की वस्तु नहीं है। विकृतियों से सम्बन्धित है; विकृतियों से सम्बन्धित नहीं है। विकृतियों से सम्बन्धित नहीं है, विकृतियों का उद्देश्य है; विकृतियों से सम्बन्धित नहीं है, विकृतियों का उद्देश्य नहीं है। समझा जाता है; समझा नहीं जाता है। अटैचमेंट का ऑब्जेक्ट है; अटैचमेंट का ऑब्जेक्ट नहीं है। अटैचमेंट से जुड़ा है; अटैचमेंट से जुड़ा नहीं है। अटैचमेंट से जुड़ा नहीं है, अटैचमेंट का ऑब्जेक्ट है; अटैचमेंट से जुड़ा नहीं है, अटैचमेंट का ऑब्जेक्ट नहीं है। करप्शन का ऑब्जेक्ट है; करप्शन का ऑब्जेक्ट नहीं है। करप्ट है; करप्ट नहीं है। करप्शन से जुड़ा है; करप्शन से जुड़ा नहीं है। करप्शन से जुड़ा नहीं है, करप्शन का ऑब्जेक्ट है; करप्शन से जुड़ा नहीं है, करप्शन का ऑब्जेक्ट नहीं है। पहले रास्ते से छोड़ा जाना है; पहले रास्ते से नहीं छोड़ा जाना है। बाद के रास्तों से छोड़ा जाना है; बाद के रास्तों से नहीं छोड़ा जाना है। पहले रास्ते से छोड़ने के लिए रूट है

66

पहला रास्ता; पहले रास्ते से छोड़ने के लिए कोई रूट नहीं है। बाद के रास्तों से छोड़ने के लिए रूट है; बाद के रास्तों से छोड़ने के लिए कोई रूट नहीं है। प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ है; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना है। निरंतर अनुप्रयोग के साथ है; निरंतर अनुप्रयोग के बिना है। उत्साह के साथ है; उत्साह के बिना है। उत्साह के साथ है; उत्साह के साथ नहीं है। आनंद के साथ है; आनंद के साथ नहीं है। उदासीनता के साथ है; उदासीनता के साथ नहीं है। इच्छा के तल की विशेषता है; इच्छा के तल की विशेषता नहीं है। रूप के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता नहीं है। निराकार तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता नहीं है। समाहित है (अर्थात सांसारिक है); समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। निश्चित (परिणामी समय) का है; निश्चित (परिणामी समय) का नहीं है। पार करने योग्य है; पार करने योग्य नहीं है। विलाप के कारण के साथ है; विलाप के कारण के बिना है। [57]

चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: अच्छा; बुरा; न अच्छा न बुरा। :P इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन इस प्रकार है।

P = अनुच्छेद 121 देखें।

124. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।

चेतना का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: शोक का कारण युक्त; शोक का कारण रहित।

चेतना का त्रिगुणित समूह: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। परिणामी;

P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाह्य वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं

बाह्य वस्तु। : पृष्ठ 2 : इस प्रकार चेतना का समुच्चय दस गुना विभाजन द्वारा होता है।

पी* = पैरा देखें। 122. पी 2 = पैरा देखें। 121.

(यह खंड यहीं समाप्त होता है) दोहों पर आधारित

125. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।

67

चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।

चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: अच्छा; बुरा; न अच्छा न बुरा। :P इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन इस प्रकार है।

P = अनुच्छेद 121 देखें।

126. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।

चेतना का द्विभाजन: मूल से संबंधित है; मूल से संबंधित नहीं है। विलाप के कारण से संबंधित है; विलाप के कारण से रहित है।

P = अनुच्छेद 123 देखें।

चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। : पी : इसी प्रकार चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है। [58]
P = अनुच्छेद 121 देखें।

127. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: सुखद भावना से संबंधित; दुखदायी भावना से संबंधित; न दुखदायी और न ही सुखद भावना से संबंधित। परिणामी;
P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु है; इसमें बाह्य वस्तु है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं
बाह्य वस्तु। : पृष्ठ 2 : इस प्रकार चेतना का समुच्चय दस गुना विभाजन द्वारा होता है।
पी^पैरा देखें. 122. पी 2 = पैरा देखें। 121.

128. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का द्विभाजन: मूल से संबद्ध है; मूल से संबद्ध नहीं है। विलाप के कारण से संबद्ध है; विलाप के कारण से मुक्त है।
P = अनुच्छेद 123 देखें।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: आंतरिक वस्तु; बाह्य वस्तु; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ।

68
बाह्य वस्तु। :P: इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय होता है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) त्रिक पर आधारित
129. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समूह: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह, दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।
चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। : पी : इसी प्रकार चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है। [59]
P = अनुच्छेद 121 देखें।

130. चेतना का एकल विभाजन द्वारा समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल से जुड़ा है; मूल से नहीं जुड़ा है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: सुखद अनुभूति से संबंधित; पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित। इसी प्रकार, चेतना का दसगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है।
P= पैराग्राफ 121 देखें।
131. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: मूल नहीं है, मूल के साथ है; मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: यह परिणामी है; यह परिणामी का उत्पादक है; यह न तो परिणामी है और न ही परिणामी का उत्पादक है। :P: इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
132. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समग्र रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: सांसारिक; अलौकिक।

69

चेतना का समूह तीन प्रकार से विभाजित है: जो ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। इसी प्रकार चेतना का समूह दस प्रकार से विभाजित है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

133. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समग्र रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: एक तरीके से बोधगम्य; दूसरे तरीके से बोधगम्य नहीं।
चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: भ्रष्ट है, भ्रष्टता का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टता का विषय है; भ्रष्ट नहीं है, भ्रष्टता का विषय नहीं है। इसी प्रकार चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
134. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित है: यह विकारों का विषय है; यह विकारों का विषय नहीं है।
चेतना का समग्र विभाजन तीन प्रकार से किया जा सकता है: प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना।
पी: इस प्रकार चेतना का कुल योग दस गुना है।
विभाजन।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

135. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समूह: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का दो भागों में विभाजन: दोषों से जुड़ा हुआ है; दोषों से नहीं जुड़ा हुआ है।
चेतना का त्रिगुणित विभाजन इस प्रकार है: उत्साह से युक्त; आनंद से युक्त; उदासीनता से युक्त। इसी प्रकार चेतना का दसगुणित विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

70

136. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो प्रकार से विभाजित है: यह दोषों से संबद्ध नहीं है, यह दोषों का विषय है; यह दोषों से संबद्ध नहीं है, यह दोषों का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाना है; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाना है; प्रथम मार्ग या पश्चात मार्गों द्वारा नहीं त्यागा जाना है। : पी: इस प्रकार चेतना का दसगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
137. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला मूल; और प्रथम या पश्चात मार्गों द्वारा त्यागा जाने वाला कोई मूल नहीं। :P: इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन है।
पी = पैरा 121 देखें।
138. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: बंधनों से जुड़ा हुआ; बंधनों से नहीं जुड़ा हुआ।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: संचयी है; विक्षेपी है; न संचयी है और न ही विक्षेपी है। इसी प्रकार चेतना का दसगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

139. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय है; यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है:

71

सात अलौकिक अवस्थाओं में से; अंतिम अलौकिक अवस्था में से; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से। : P : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
140. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: संबंधों का विषय है; संबंधों का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: निम्न; उदात्त; असीम। :P: इसी प्रकार चेतना का दसगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
141. चेतना का एकल विभाजन द्वारा समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह संबंधों से जुड़ा है; यह संबंधों से जुड़ा नहीं है।
चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: निम्न विषय, उच्च विषय और असीम विषय। इसी प्रकार, चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है। (पैरा 121 देखें)

142. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समूह: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समग्र विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है: यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय है; यह बंधनों से संबद्ध नहीं है, यह बंधनों का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है: निम्न; मध्य; श्रेष्ठ। इसी प्रकार, चेतना का दसगुणात्मक विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

143. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: बाढ़ का विषय है; बाढ़ का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिगुणात्मक विभाजन: एक निश्चित (परिणामी समय के साथ) झूठी (अवस्था है); एक सही (अवस्था के साथ) है।

72

निश्चित (परिणामी समय); कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। : पी : इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
144. चेतना का एकल विभाजन द्वारा समुच्चय; संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: यह बाढ़ से संबंधित है; यह बाढ़ से संबंधित नहीं है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: पथ इसका विषय है; पथ इसका कारण है; पथ इसका प्रमुख कारक है। : P : इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

145. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय है; बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है।

चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: उत्पन्न हुआ है; उत्पन्न नहीं हुआ है; उत्पन्न होना ही है। :P: इसी प्रकार चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
146. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के माध्यम से: बंधनों का विषय है; बंधनों का विषय नहीं है।
चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: भूतकाल; भविष्यकाल; वर्तमानकाल। इसी प्रकार, चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
147. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: यह बंधनों से जुड़ा है; यह बंधनों से नहीं जुड़ा है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: भूतकाल का कर्ता; भविष्यकाल का कर्ता; वर्तमानकाल का कर्ता। :P: इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन इस प्रकार है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।

73

148. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दोहरे विभाजन के अनुसार: बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय है; बंधनों से संबद्ध नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है।
चेतना का समूह तीन भागों में विभाजित है: आंतरिक; बाह्य; आंतरिक और बाह्य दोनों। इसी प्रकार चेतना का समूह दस भागों में विभाजित है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
149. एकल विभाजन द्वारा चेतना का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा है।
चेतना का समूह दो भागों में विभाजित है: यह बाधाओं का विषय है; यह बाधाओं का विषय नहीं है।
चेतना का त्रिविध विभाजन इस प्रकार है: आंतरिक विषय; बाह्य विषय; आंतरिक और बाह्य दोनों विषय। :P: इसी प्रकार चेतना का दसविध विभाजन है।
P = अनुच्छेद 121 देखें।
(यहाँ पारस्परिक वृद्धि का खंड समाप्त होता है) [60]
चेतना का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; और इसमें कुछ भी शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। इस प्रकार चेतना का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है।
चेतना का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है: सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ; पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा हुआ; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। :P: आंतरिक वस्तु है; बाह्य वस्तु है; आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह सांसारिक से परे है)। इस प्रकार चेतना का सात भागों में विभाजन इस प्रकार है।
P= पैराग्राफ 122 देखें।

74

चेतना का चौबीस भागों में विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा है। कान संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय। नाक संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय। जीभ संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय। शरीर संपर्क से उत्पन्न

चेतना का समुच्चय। मन संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा है। नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार चेतना का चौबीस भागों में विभाजन होता है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
चेतना का चौबीस गुना विभाजन इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न चेतना का समूह सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा होता है; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है। : P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। यह कान के संपर्क से उत्पन्न होता है। : P 2 : नाक के संपर्क से उत्पन्न होता है। : P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न होता है। : P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न होता है। : P 2 : मन के संपर्क से उत्पन्न चेतना का समूह rP 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं। नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार चौबीस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समूह बनता है।
P x = पैराग्राफ 122 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
चेतना का तीस गुना विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय इच्छा तल की विशेषता है; रूप तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान संपर्क से उत्पन्न। :P: नाक संपर्क से उत्पन्न।
P: जीभ के संपर्क से होता है। :P: शरीर के संपर्क से होता है। :P:
मन के संपर्क से उत्पन्न चेतना का समूह इच्छा के तल की विशेषता है; रूप के तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। [61] नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार तीस गुना विभाजन द्वारा चेतना का समूह है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

75

चेतना का अनेक भागों में विभाजन: नेत्र संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। कान संपर्क से उत्पन्न। :P 1 : नाक संपर्क से उत्पन्न। : P 1 : जीभ संपर्क से उत्पन्न। iP 1 : शरीर संपर्क से उत्पन्न। iP 1 : मन संपर्क से उत्पन्न चेतना का समुच्चय अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा; इच्छा के तल का लक्षण है; रूप के तल का लक्षण है; निराकार तल का लक्षण है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र चेतना;
पृष्ठ 2: मन चेतना। इस प्रकार यह चेतना का समूह है।
अनेक विभाजनों के माध्यम से।
P 1 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के रूप में पूरा करें। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रियां।
चेतना का एक अन्य विविध विभाजन इस प्रकार है: नेत्र संपर्क से उत्पन्न चेतना का समूह सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; : P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा तल की विशेषता है; यह रूप तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। यह कान के संपर्क से उत्पन्न होता है। : P 2 : यह नाक के संपर्क से उत्पन्न होता है।
P 2 : जीभ के संपर्क से उत्पन्न, :P 2 : शरीर के संपर्क से उत्पन्न। : P 2 :
मन के संपर्क से उत्पन्न चेतना का समूह सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; : P 1 : इसमें आंतरिक वस्तु होती है; इसमें बाह्य वस्तु होती है; इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)। नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार अनेक विभाजनों द्वारा चेतना का समूह बनता है।
P 1 = पैराग्राफ 122 देखें। P 2 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
इसे चेतना का समूह कहा जाता है।

(यह खंड यहीं समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

76

3. पूछताछ
150. पाँच समुच्चय इस प्रकार हैं: पदार्थ की गुणवत्ता का समुच्चय,
भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, चेतना का समूह।
151. पाँचों स्कंधों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कितने विलाप करने योग्य हैं; कितने विलाप न करने योग्य हैं? [62]
P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक
152. भौतिक गुणों का समूह न तो अच्छा है और न ही बुरा। चार समूह कभी अच्छे होते हैं, कभी बुरे होते हैं और कभी न अच्छे होते हैं। दो समूहों को न तो सुखद, न दुखदायी और न ही दुखदायी कहा जा सकता है। तीन समूह कभी सुखद, कभी दुखदायी और कभी दुखदायी होते हैं। भौतिक गुणों का समूह न तो परिणामदायी है और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाला। चार समूह कभी परिणामदायी होते हैं, कभी परिणाम उत्पन्न करने वाले होते हैं और कभी न तो परिणामदायी होते हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाले। भौतिक गुणों का समूह कभी लालसा और भ्रामक दृष्टि से वश में किया जाता है और आसक्तियों का विषय होता है; कभी वश में नहीं किया जाता, फिर भी आसक्तियों का विषय होता है। चार समूह कभी वश में किए जाते हैं और आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी वश में नहीं किए जाते, फिर भी आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी वश में नहीं किए जाते, फिर भी आसक्तियों का विषय होते हैं।
भौतिक गुणों का समूह निष्प्रभावी है, बल्कि विकारों का विषय है। चार समूह कभी-कभी विकृत होते हैं, विकारों के विषय होते हैं; कभी-कभी विकृत नहीं होते, विकारों के विषय होते हैं; कभी-कभी विकृत नहीं होते, विकारों के विषय नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह प्रारंभिक प्रयोग रहित है, निरंतर प्रयोग रहित है। तीन समूह कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के साथ होते हैं, निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग रहित होते हैं।

77

केवल निरंतर अनुप्रयोग; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है; कभी-कभी इसे न तो प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ, न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ, और न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ कहा जाना चाहिए। भौतिक गुणों के समूह को न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ कहा जाना चाहिए। भावनाओं का समूह कभी-कभी उत्साह के साथ होता है; आनंद के साथ नहीं होता; उदासीनता के साथ नहीं होता; कभी-कभी इसे उत्साह के साथ नहीं कहा जाना चाहिए। तीन समूह कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी-कभी इसे न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ कहा जाना चाहिए।
भौतिक गुणों का समूह न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सकता है। चार समूह कभी-कभी प्रथम मार्ग से त्यागे जाते हैं; कभी-कभी पश्चात मार्गों से त्यागे जाते हैं; कभी-कभी प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाते हैं। भौतिक गुणों के समूह का कोई मूल नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। चार समूहों के मूल कभी-कभी प्रथम मार्ग से त्यागे जाते हैं; कभी-कभी पश्चात मार्गों से त्यागे जाते हैं; कभी-कभी उनके मूल नहीं होते जिन्हें प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। भौतिक गुणों का समूह न तो संचयी है और न ही विक्षेपी (पुनर्जन्म और मृत्यु का निरंतर चक्र)। चार समूह कभी-कभी संचयी होते हैं; कभी-कभी विक्षेपी होते हैं; कभी-कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपी। भौतिक गुणों का समूह न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का। चार समूह कभी-कभी सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं; कभी-कभी ये सात अलौकिक अवस्थाओं में से किसी के भी नहीं होते, न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के। भौतिक गुणों का कुल योग निम्न होता है। चार समुच्चय कभी निम्न होते हैं; कभी उदात्त होते हैं; कभी

78

असीम हैं। भौतिक गुणों के समूह का कोई उद्देश्य नहीं है। चार समूहों के कभी निम्न उद्देश्य होते हैं; कभी उदात्त उद्देश्य होते हैं; कभी असीम उद्देश्य होते हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके निम्न उद्देश्य हैं; [63] उदात्त उद्देश्य हैं या असीम उद्देश्य हैं। भौतिक गुणों का समूह मध्यवर्ती है। चार समूह कभी निम्न होते हैं; कभी मध्यवर्ती होते हैं; कभी श्रेष्ठ होते हैं। भौतिक गुणों के समूह का कोई निश्चित (परिणाम समय) नहीं होता है। चार समूह कभी निश्चित (परिणाम समय) के साथ गलत (अवस्थाएँ) होते हैं; कभी निश्चित (परिणाम समय) के साथ सही (अवस्थाएँ) होते हैं; कभी-कभी उनका कोई निश्चित (परिणाम समय) नहीं होता है।
भौतिक गुणों के समूह का कोई लक्ष्य नहीं होता। चार समूहों का कभी-कभी पथ उनका लक्ष्य होता है; कभी-कभी पथ उनका कारण होता है; कभी-कभी पथ उनका प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि पथ उनका लक्ष्य है, पथ उनका कारण है या पथ उनका प्रमुख कारक है। (पाँच समूह) कभी उत्पन्न होते हैं; कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होना ही होता है। कभी भूतकाल होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल होते हैं। भौतिक गुणों के समूह का कोई लक्ष्य नहीं होता। चार समूहों के कभी-कभी भूतकाल के लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल के लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल के लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि उनके भूतकाल के लक्ष्य हैं, भविष्यकाल के लक्ष्य हैं या वर्तमानकाल के लक्ष्य हैं। (पाँच समूह) कभी-कभी आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाह्य होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। भौतिक गुणों के समूह का कोई लक्ष्य नहीं होता। चार समूहों के कभी-कभी आंतरिक लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी बाह्य लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि उनके आंतरिक लक्ष्य हैं, बाह्य लक्ष्य हैं या आंतरिक और बाह्य दोनों लक्ष्य हैं। चार समूह अदृश्य होते हैं, अप्रभावित होते हैं। भौतिक गुणों का समूह कभी-कभी दृश्यमान होता है, कभी-कभी प्रभावित होता है; कभी-कभी जो दिखाई नहीं देता, वह प्रभाव डालता है; कभी-कभी जो दिखाई नहीं देता, वह प्रभाव नहीं डालता।
2. दोहे
153. चार समूह मूल नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी मूल होता है, कभी नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह मूल के साथ नहीं होता। चार समूहों का समूह कभी मूल के साथ होता है, कभी नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह मूल के साथ नहीं होता।

79

मूल से संबद्ध। चार समूह कभी-कभी मूल से संबद्ध होते हैं; कभी-कभी मूल से संबद्ध नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ भी है या मूल के साथ है लेकिन मूल नहीं है। तीन समूहों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ भी है; (वे) कभी-कभी मूल के साथ होते हैं लेकिन मूल नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ होते हैं लेकिन मूल नहीं होते। मानसिक सहवर्ती समूहों का समूह कभी-कभी मूल के साथ भी होता है; कभी-कभी मूल के साथ होता है लेकिन मूल नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ भी है या मूल के साथ है लेकिन मूल नहीं है। भौतिक गुणों के समूह को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ भी है या मूल के साथ संबद्ध है लेकिन मूल नहीं है। तीन समूहों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ भी हैं; (वे) कभी-कभी मूल के साथ संबद्ध होते हैं लेकिन मूल नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह मूल के साथ संबद्ध हैं लेकिन मूल नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती समूहों का समूह कभी-कभी मूल के साथ भी होता है; कभी-कभी मूल के साथ संबद्ध होता है लेकिन मूल नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि जड़ है, जड़ से भी जुड़ी हुई है या जड़ से जुड़ी हुई है लेकिन जड़ नहीं है। भौतिक गुणों का समूह जड़ नहीं है, जड़ के साथ नहीं है। [64] तीन समूह कभी-कभी जड़ नहीं होते, जड़ के साथ होते हैं; कभी-कभी जड़ नहीं होते, जड़ के साथ नहीं होते। मानसिक सहवर्ती का समूह कभी-कभी जड़ नहीं होता, जड़ के साथ होता है; कभी-कभी जड़ नहीं होता, जड़ के साथ नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि जड़ नहीं है, जड़ के साथ है या जड़ नहीं है, जड़ के साथ नहीं है। (1)
(पांचों समुच्चय) कारण सहित हैं। सशर्त हैं।
चार समुच्चय अदृश्य हैं। भौतिक गुणों का समुच्चय कभी दृश्यमान होता है; कभी अदृश्य होता है। चार समुच्चय अप्रभावित हैं। भौतिक गुणों का समुच्चय कभी प्रभावित होता है; कभी प्रभावित नहीं होता। भौतिक गुणों का समुच्चय भौतिक है। चार समुच्चय भौतिक नहीं

हैं। भौतिक गुणों का समुच्चय सांसारिक है। चार समुच्चय कभी सांसारिक होते हैं; कभी अलौकिक होते हैं। (पाँच समुच्चय) एक तरीके से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे तरीके से ज्ञात नहीं किए जा सकते। (2)
चार समूह दोष नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी दोष होता है, कभी दोष नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह दोष का विषय है।

80
दोष। चार समूह कभी-कभी दोषों के विषय होते हैं; कभी-कभी दोषों के विषय नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह दोषों से संबंधित नहीं है। चार समूह कभी-कभी दोषों से संबंधित होते हैं; कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह दोषों का विषय तो है, लेकिन स्वयं दोष नहीं है। तीन समूहों को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; कभी-कभी वे दोषों के विषय होते हैं, लेकिन स्वयं दोष नहीं होते; कभी-कभी उन्हें दोषों का विषय तो कहा जाना चाहिए, लेकिन स्वयं दोष नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी दोष और दोषों का विषय होता है; कभी-कभी दोषों का विषय तो होता है, लेकिन स्वयं दोष नहीं होता; कभी-कभी उन्हें दोषों का विषय तो कहा जाना चाहिए, लेकिन स्वयं दोष नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को अशुद्धता से संबंधित या अशुद्धता से संबंधित लेकिन स्वयं अशुद्धता न कहना उचित नहीं है। तीन समूहों को अशुद्धता से संबंधित या अशुद्धता से संबंधित कहना उचित नहीं है; (वे) कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित होते हैं लेकिन अशुद्धता नहीं होते; कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित लेकिन स्वयं अशुद्धता न कहना उचित नहीं है। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित या अशुद्धता से संबंधित होता है; कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित लेकिन स्वयं अशुद्धता नहीं होता; कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित या अशुद्धता से संबंधित लेकिन स्वयं अशुद्धता न कहना उचित नहीं है। भौतिक गुणों का समूह अशुद्धता से संबंधित नहीं है, अशुद्धता का विषय है। चार समूह कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित नहीं होते, अशुद्धता के विषय होते हैं; कभी-कभी अशुद्धता से संबंधित नहीं होते, अशुद्धता के विषय नहीं होते। कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए कि वे अशुद्धियों से संबंधित नहीं हैं, अशुद्धियों के विषय हैं या अशुद्धियों से संबंधित नहीं हैं, अशुद्धियों के विषय नहीं हैं। (3)
चार समूह बंधन नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी बंधन होता है, कभी नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह बंधनों का विषय है। चार समूह कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह बंधनों का विषय नहीं है।

81

बंधनों से संबद्ध। चार समूह कभी-कभी बंधनों से संबद्ध होते हैं; कभी-कभी बंधनों से संबद्ध नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) बंधनों का विषय तो है, पर बंधन स्वयं नहीं है। तीन समूहों को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; [65] (वे) कभी-कभी बंधनों का विषय तो होते हैं, पर बंधन स्वयं नहीं होते; कभी-कभी उन्हें बंधनों का विषय तो कहा जाना चाहिए, पर बंधन स्वयं नहीं होते। मानसिक सहवर्ती समूहों का समूह कभी-कभी बंधन और बंधनों का विषय होता है; कभी-कभी बंधनों का विषय तो होता है, पर बंधन स्वयं नहीं होता; कभी-कभी उन्हें बंधन और बंधनों का विषय तो कहा जाना चाहिए, पर बंधन स्वयं नहीं होता। भौतिक गुणों के समूह को बंधन और बंधनों से संबद्ध तो कहा जाना चाहिए, पर पर बंधन स्वयं नहीं होता। तीन समूहों को कभी-कभी बंधनों से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी बंधनों से जुड़े होते हैं लेकिन बंधन नहीं होते; कभी-कभी उन्हें बंधनों से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन बंधन नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है; कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी उन्हें बंधनों से जुड़ा हुआ या बंधनों से जुड़ा हुआ लेकिन बंधन नहीं कहा जाना चाहिए। भौतिक गुणों का समूह बंधनों से जुड़ा नहीं होता, बंधनों का विषय होता है। चार समूह कभी-कभी बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय होते हैं; कभी-कभी बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय नहीं होते; कभी-कभी उन्हें बंधनों से जुड़ा नहीं होता, बंधनों के विषय होते हैं या बंधनों से जुड़ा नहीं होता, बंधनों का विषय नहीं होते कहा जाना चाहिए। (4)
चार समूह बंधन नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी बंधन होता है, कभी नहीं। भौतिक गुणों का समूह बंधनों का विषय होता है। चार समूह कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह बंधनों से संबद्ध नहीं होता। चार समूह कभी बंधनों से संबद्ध होते हैं, कभी नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को बंधन का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह बंधनों का विषय तो है, पर बंधन नहीं है। तीन समूहों को बंधन का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी बंधनों के विषय होते हैं, पर बंधन नहीं होते; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए।

82

संबंधों के विषय होते हुए भी वे स्वयं संबंध नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी संबंध होता है और संबंधों का विषय भी होता है; कभी-कभी संबंध का विषय होता है लेकिन संबंध नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह संबंध का विषय भी है या संबंध का विषय है लेकिन संबंध नहीं है। भौतिक गुणों के समूह को यह कहना उचित नहीं होगा कि यह संबंध से जुड़ा हुआ है या संबंध से जुड़ा हुआ है लेकिन संबंध नहीं है। तीन समूहों को यह कहना उचित नहीं होगा कि वे संबंध से जुड़े हुए भी हैं; (वे) कभी-कभी संबंध से जुड़े होते हैं लेकिन संबंध नहीं होते; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि वे संबंध से जुड़े हुए हैं लेकिन संबंध नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी संबंध होता है और संबंधों से जुड़ा हुआ भी होता है; कभी-कभी संबंध से जुड़ा होता है लेकिन संबंध नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह संबंध से जुड़ा हुआ है या संबंध से जुड़ा हुआ है लेकिन संबंध नहीं है। भौतिक गुणों का समूह संबंधों से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि संबंधों का विषय है। चार समूह कभी-कभी संबंधों से संबद्ध नहीं होते हैं, संबंधों के विषय होते हैं; कभी-कभी संबंधों से संबद्ध नहीं होते हैं, संबंधों के विषय नहीं होते हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे संबंधों से संबद्ध नहीं हैं, संबंधों के विषय हैं या संबंधों से संबद्ध नहीं हैं, संबंधों के विषय नहीं हैं। (5)
चार समूह बाढ़ नहीं हैं। :P: बंधन नहीं हैं। :P: [66] बाधाएँ नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती का समूह कभी बाधा होता है; कभी बाधा नहीं होता।
भौतिक गुणों का समूह बाधाओं का कारण है। चार समूह कभी-कभी बाधाओं का कारण होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह बाधाओं से संबंधित नहीं है। चार समूह कभी-कभी बाधाओं से संबंधित होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को बाधा और बाधाओं का कारण नहीं कहना चाहिए; यह बाधाओं का कारण तो है, लेकिन स्वयं बाधा नहीं है। तीन समूहों को बाधा और बाधाओं का कारण नहीं कहना चाहिए; वे कभी-कभी बाधाओं का कारण होते हैं, लेकिन स्वयं बाधा नहीं होते; कभी-कभी उन्हें बाधा और बाधाओं का कारण नहीं कहना चाहिए। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी बाधा और बाधाओं का कारण होता है; कभी-कभी बाधाओं का कारण तो होता है, लेकिन स्वयं बाधा नहीं होता। कभी-कभी इसे बाधा नहीं कहा जाना चाहिए, बाधाओं का उद्देश्य या बाधाओं का लक्ष्य बाधा नहीं है। भौतिक गुणों का कुल योग नहीं होना चाहिए।

83

यह कहा जा सकता है कि कोई अवरोध अन्य अवरोधों से भी जुड़ा हुआ है या अवरोधों से जुड़ा हुआ है लेकिन अवरोध नहीं है। तीन समूहों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कोई अवरोध अन्य अवरोधों से भी जुड़ा हुआ है; (वे) कभी-कभी अवरोधों से जुड़े होते हैं लेकिन अवरोध नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कोई अवरोधों से जुड़ा हुआ है लेकिन अवरोध नहीं है। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी अवरोध अन्य अवरोधों से भी जुड़ा हुआ होता है; कभी-कभी अवरोधों से जुड़ा होता है लेकिन अवरोध नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कोई अवरोध अन्य अवरोधों से भी जुड़ा हुआ है या अवरोधों से जुड़ा हुआ है लेकिन अवरोध नहीं है। भौतिक गुणों का समूह अवरोधों से जुड़ा नहीं होता, अवरोधों का विषय होता है। चार समूह कभी-कभी अवरोधों से जुड़े नहीं होते, अवरोधों के विषय होते हैं; कभी-कभी अवरोधों से जुड़े नहीं होते, अवरोधों के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बाधाओं से संबंधित नहीं हैं, बाधाओं के विषय हैं या बाधाओं से संबंधित नहीं हैं, बाधाओं के विषय नहीं हैं। (8)
P = बाधाओं के संबंध में पूर्ण।
चार समूह विकृतियाँ नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी विकृत होता है; कभी विकृत नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह विकृतियों का विषय है। चार समूह कभी विकृतियों के विषय होते हैं; कभी विकृतियों के विषय नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह विकृतियों से संबंधित नहीं है। तीन समूह कभी विकृतियों से संबंधित होते हैं; कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी विकृतियों से संबंधित होता है; कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होता; कभी विकृतियों से संबंधित है या नहीं, यह कहना उचित नहीं होगा। भौतिक गुणों के समूह को विकृतियों का विषय भी नहीं कहना चाहिए; यह विकृतियों का विषय तो है, लेकिन स्वयं विकृत नहीं है। तीन समूहों को विकृतियों का विषय भी नहीं कहना चाहिए; वे कभी विकृतियों के विषय होते हैं, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होते। कभी-कभी विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि वे विकृतियाँ नहीं होतीं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह

कभी-कभी विकृति भी होता है और विकृतियों का विषय भी; कभी-कभी विकृतियों का विषय होता है लेकिन विकृति नहीं; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए।

84

विकृति भी विकृतियों का विषय हो सकती है या विकृतियों का विषय हो सकती है, लेकिन वह विकृति नहीं है। भौतिक गुणों का समूह विकृतियों से जुड़ा नहीं है, विकृतियों का विषय है। चार समूह कभी-कभी विकृतियों से जुड़े नहीं होते, विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी विकृतियों से जुड़े नहीं होते, विकृतियों के विषय नहीं होते; [67] कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के विषय हैं या विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के विषय नहीं हैं। (9)
भौतिक गुणों के समूह का कोई कर्ता नहीं होता। चार समूहों के कर्ता होते हैं। चेतना का समूह चेतना है। चारों समूह चेतना नहीं हैं। तीन समूह मानसिक सहवर्ती हैं। दो समूह मानसिक सहवर्ती नहीं हैं। तीन समूह चेतना से जुड़े हैं। भौतिक गुणों का समूह चेतना से जुड़ा नहीं है। चेतना के समूह को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ कहना उचित नहीं है। तीन समूह चेतना से जुड़े हुए हैं। भौतिक गुणों का समूह चेतना से जुड़ा हुआ नहीं है। चेतना के समूह को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ कहना उचित नहीं है। तीन समूह चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। चेतना का समूह चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। भौतिक गुणों का समूह कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न होता है; कभी-कभी नहीं होता है। तीन समूह चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। चेतना का समूह चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं है। भौतिक गुणों का समूह कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी नहीं होता है। तीन समूह चेतना के साथ रहते हैं। चेतना का समूह चेतना के साथ नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह कभी-कभी चेतना के साथ होता है; कभी-कभी नहीं होता। तीन समूह चेतना से जुड़े होते हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। दो समूह चेतना से जुड़े नहीं होते, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते। तीन समूह चेतना से जुड़े होते हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होते हैं। दो समूह चेतना से जुड़े नहीं होते, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होते। तीन समूह चेतना से जुड़े होते हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ होते हैं। दो समूह चेतना से जुड़े नहीं होते, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते, चेतना के साथ नहीं होते। (10)

85

चेतना का समूह आंतरिक है। तीन समूह बाह्य हैं। भौतिक गुणों का समूह कभी आंतरिक होता है, कभी बाह्य। चार समूह व्युत्पन्न नहीं हैं। भौतिक गुणों का समूह कभी व्युत्पन्न होता है, कभी व्युत्पन्न नहीं होता। (पाँच समूह) कभी लालसा और भ्रामक दृष्टि से वश में हो जाते हैं, कभी वश में नहीं होते। चार समूह आसक्ति नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती समूह कभी आसक्ति होता है, कभी आसक्ति नहीं होता। भौतिक गुणों का समूह आसक्ति का विषय है। चार समूह कभी आसक्ति के विषय होते हैं, कभी आसक्ति के विषय नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह आसक्ति से संबद्ध नहीं है। चार समूह कभी आसक्ति से संबद्ध होते हैं, कभी आसक्ति से संबद्ध नहीं होते। भौतिक गुणों के समूह को यह नहीं कहना चाहिए कि आसक्ति और आसक्ति का विषय दोनों हैं; (यह) आसक्ति का विषय तो है, पर आसक्ति नहीं है। तीन समूहों को यह नहीं कहना चाहिए कि आसक्ति और आसक्ति का विषय दोनों हैं; (वे) कभी-कभी आसक्ति के विषय होते हैं लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होते; कभी-कभी उन्हें आसक्ति के विषय नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन वे स्वयं आसक्ति नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी आसक्ति भी होता है और आसक्ति का विषय भी; कभी-कभी आसक्ति का विषय होता है लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी उन्हें आसक्ति भी आसक्ति का विषय या आसक्ति का विषय लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं कहा जाना चाहिए। भौतिक गुणों के समूह को आसक्ति भी आसक्ति से संबंधित या [68] आसक्ति से संबंधित लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं कहा जाना चाहिए। तीन समूहों को आसक्ति भी आसक्ति से संबंधित नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी आसक्ति से संबंधित होते हैं लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होते; कभी-कभी उन्हें आसक्ति से संबंधित नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन वे स्वयं आसक्ति नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी आसक्ति भी होता है और स्वयं आसक्ति से संबंधित भी; कभी-कभी आसक्ति से संबंधित होता है लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी आसक्ति नहीं कहा जाना चाहिए, आसक्ति भी आसक्ति से जुड़ी होती है या आसक्ति से संबंधित होती है लेकिन वह स्वयं आसक्ति नहीं होती। भौतिक गुणों का समूह आसक्ति से जुड़ा नहीं होता, बल्कि आसक्ति का विषय होता है। चार समूह कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, बल्कि आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, बल्कि आसक्ति के विषय नहीं होते; कभी-कभी

86

यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे आसक्तियों से असंबद्ध हैं, आसक्तियों के विषय हैं या आसक्तियों से असंबद्ध हैं, आसक्तियों के विषय नहीं हैं। (11)

चार समूह विकृत नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी विकृत होता है, कभी नहीं। भौतिक गुणों का समूह विकृतियों का विषय होता है। चार समूह कभी विकृतियों के विषय होते हैं, कभी नहीं। भौतिक गुणों का समूह विकृत नहीं होता। चार समूह कभी विकृत होते हैं, कभी नहीं। भौतिक गुणों का समूह विकृतियों से संबंधित नहीं होता। चार समूह कभी विकृतियों से संबंधित होते हैं, कभी नहीं। भौतिक गुणों के समूह को विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह विकृतियों का विषय तो है, लेकिन स्वयं विकृत नहीं है। तीन समूहों को विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी विकृतियों के विषय होते हैं, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होते; कभी-कभी उन्हें विकृतियों का विषय तो नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होते। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी विकृतियों का विषय भी होता है; कभी-कभी यह भ्रष्टता का विषय होता है, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि भ्रष्टता, भ्रष्टता का विषय भी है या भ्रष्टता का विषय है, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं है। भौतिक गुणों के समूह को यह कहना उचित नहीं होगा कि भ्रष्टता भी भ्रष्ट है या भ्रष्ट है, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं है। तीन समूहों को यह कहना उचित नहीं होगा कि भ्रष्टता भी भ्रष्ट है; (वे) कभी-कभी भ्रष्ट होते हैं, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं होते; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि भ्रष्ट हैं, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं हैं। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी भ्रष्टता भी भ्रष्ट होता है; कभी-कभी भ्रष्ट होता है, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि भ्रष्टता भी भ्रष्ट है या भ्रष्ट है, पर स्वयं भ्रष्टता नहीं है।

भौतिक गुणों के समूह को भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ या भ्रष्टाचार से संबंधित लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार न होने वाला नहीं कहा जा सकता। तीन समूहों को भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता; (वे) कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े होते हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होते; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े होते हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होते, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होता।

87

भ्रष्टाचार; कभी-कभी भ्रष्टाचार नहीं कहा जाना चाहिए, भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ भी हो सकता है या भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ हो सकता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। भौतिक गुणवत्ता का समूह भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ नहीं है, भ्रष्टाचार का विषय है। चार समूह कभी-कभी [69] भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते हैं, भ्रष्टाचार के विषय होते हैं; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते हैं, भ्रष्टाचार के विषय नहीं होते हैं; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए, भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ नहीं है, भ्रष्टाचार के विषय हैं या भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ नहीं है, भ्रष्टाचार के विषय नहीं हैं। (12)

भौतिक गुणों का समूह प्रथम मार्ग से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। चार समूहों को कभी-कभी प्रथम मार्ग से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी प्रथम मार्ग से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। भौतिक गुणों का समूह बाद के मार्गों से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। चार समूहों को कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी बाद के मार्गों से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। भौतिक गुणों के समूह का कोई मूल नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से छोड़ा जा सके। चार समूहों के कभी-कभी मूल होते हैं जिन्हें प्रथम मार्ग से छोड़ा जा सके; कभी-कभी मूल नहीं होते जिन्हें प्रथम मार्ग से छोड़ा जा सके। भौतिक गुणों के समूह का कोई मूल नहीं है जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। चार समूहों के कभी-कभी मूल होते हैं जिन्हें बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके; कभी-कभी मूल नहीं होते जिन्हें बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। भौतिक गुणों का समूह प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना है। चार समूहों के साथ कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग नहीं होता है। भौतिक गुणों का समूह निरंतर अनुप्रयोग के बिना है। चार समूहों के साथ कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग होता है; कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग नहीं होता है। भौतिक गुणों का समूह उत्साहहीन है। चार समुच्चय कभी उत्साह से भरे होते हैं, कभी उत्साहहीन होते हैं। भौतिक गुणों का समुच्चय उत्साह से रहित होता है। चार समुच्चय कभी उत्साह से भरे होते हैं, कभी उत्साहहीन होते हैं। दो समुच्चय आनंद से रहित होते हैं। तीन समुच्चय कभी आनंद से भरे होते हैं, कभी आनंदहीन होते हैं। दो समुच्चय उदासीनता से रहित होते हैं। तीन समुच्चय कभी उदासीनता से भरे होते हैं, कभी उदासीनता रहित होते हैं।

भौतिक गुणों का समूह इच्छा के तल की विशेषता है। कभी-कभी चार समूह इच्छा के तल की विशेषता होते हैं।

इच्छा; कभी-कभी इच्छा के तल की विशेषताएँ नहीं होतीं। भौतिक गुणों का समूह रूप के तल की विशेषताएँ नहीं होता। चार समूह कभी-कभी रूप के तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी रूप के तल की विशेषताएँ नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह निराकार तल की विशेषताएँ नहीं होता। चार समूह कभी-कभी निराकार तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी निराकार तल की विशेषताएँ नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह समाहित है (अर्थात सांसारिक है)। चार समूह कभी-कभी समाहित होते हैं (अर्थात सांसारिक हैं); कभी-कभी समाहित नहीं होते (अर्थात अलौकिक हैं)। भौतिक गुणों का समूह मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखता। चार समूह कभी-कभी मुक्त होने की प्रवृत्ति रखते हैं; कभी-कभी मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखते। भौतिक गुणों के समूह का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। चार समूह कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) के होते हैं; कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) नहीं होते। भौतिक गुणों का समूह पार किया जा सकता है। चार समूह कभी-कभी पार किए जा सकते हैं; कभी-कभी पार नहीं किए जा सकते। भौतिक गुणों का समूह शोक का कारण नहीं है। चार समूह कभी-कभी शोक का कारण होते हैं; कभी-कभी शोक का कोई कारण नहीं होता। (13)
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) पूछताछ
कुल योगों का विश्लेषण समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 2 पाठ - आयतन/द्वार
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 2. आधारों (आयातना/द्वारों) का विश्लेषण

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

154. [70] बारह आधार हैं: आँख आधार, दृश्य आधार, कान आधार, श्रव्य आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्शनीय आधार, मन आधार, वैचारिक आधार।

आँख क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; दृश्य वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं। कान क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; श्रव्य वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं। नाक क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; सुगंधित वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं। जीभ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; स्वादयुक्त वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं। शरीर क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; स्पर्शनीय वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं। मन क्षणभंगुर, दुखमय, आत्माहीन, परिवर्तनशील वस्तु है; वैचारिक (वस्तुएँ) क्षणभंगुर, दुखदायी, आत्माहीन और परिवर्तनशील वस्तुएँ हैं।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

155. बारह आधार हैं: आँख आधार, कान आधार, नाक आधार, जीभ आधार, शरीर आधार, मन आधार, दृश्य आधार, श्रव्य आधार, गंध आधार, स्वाद आधार, स्पर्श आधार, वैचारिक आधार।

156. उसमें आँख का आधार क्या है? वह आँख जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर, शरीर में समाहित, अदृश्य, आक्षेपकारी, संवेदी सतह है; [71] जिसके माध्यम से अदृश्य आक्षेपकारी

आँख (एक) ने देखा, देखता है, देखेगा या देख सकता है; दृश्यमान, आक्षेपिक, दृश्यमान (वस्तु); यह आँख है; यह आँख का आधार है; यह आँख का तत्व है; यह आँख की नियंत्रक शक्ति है; यह एक दुनिया है; यह एक द्वार है; यह एक सागर है; यह प्रकाश है; यह एक क्षेत्र है; यह एक आधार है; यह एक मार्गदर्शक है; यह मार्गदर्शन है; यह निकटवर्ती तट है; यह एक खाली गाँव है। इसे आँख का आधार कहते हैं। (1)

157. इसमें कान का आधार क्या है? वह कान जो चार महान तत्वों से उत्पन्न होकर, शरीर में समाहित, अदृश्य, आक्षेपकारी, संवेदी सतह है; जिसके माध्यम से अदृश्य आक्षेपकारी कान (कोई) अदृश्य आक्षेपकारी श्रव्य (वस्तु) सुनता है, सुनता है, सुनेगा या सुन सकता है; यही कान है; यही कान का आधार है; यही कान का तत्व है; यही कान की नियंत्रक शक्ति है; यही एक संसार है; यही एक द्वार है; यही एक सागर है; यही प्रकाश है; यही एक क्षेत्र है; यही एक आधार है; यही निकटवर्ती तट है; यही एक खाली गाँव है। इसे ही कान का आधार कहते हैं। (2)

158. उसमें नाक का आधार क्या है? वह नाक जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होती है, एक संवेदनशील सतह है, शरीर में समाहित है, अदृश्य है, आक्षेपकारी है; जिसके माध्यम से अदृश्य आक्षेपकारी नाक (कोई) अदृश्य आक्षेपकारी गंधयुक्त (वस्तु) को सूंघता है, सूंघता है, सूंघेगा या सूंघ सकता है; यही नाक है; यही नाक का आधार है; यही नाक का तत्व है; यही नाक की नियंत्रक क्षमता है; यही एक संसार है; यही एक द्वार है; यही एक सागर है; यही प्रकाश है; यही एक क्षेत्र है; यही एक आधार है; यही निकटवर्ती तट है; यही एक खाली गाँव है। इसे नाक का आधार कहते हैं। (3)

159. इसमें जीभ का आधार क्या है? वह जीभ जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होती है, संवेदी सतह है, शरीर में समाहित है, अदृश्य है, प्रभावकारी है; जिसके माध्यम से अदृश्य प्रभावकारी जीभ (कोई) अदृश्य प्रभावकारी स्वादिष्ट (वस्तु) का स्वाद लेता है, लेता है, लेगा या ले सकता है; यही जीभ है; यही जीभ का आधार है; यही जीभ का तत्व है; यही जीभ की नियंत्रक शक्ति है; यही एक संसार है; यही एक द्वार है; यही एक सागर है; यही प्रकाश है; यही एक क्षेत्र है; यही एक आधार है; यही निकटवर्ती तट है; यही एक खाली गाँव है। इसे जीभ का आधार कहते हैं। (4)

160. इसमें शरीर का आधार क्या है? वह शरीर जो चार महान तत्वों से उत्पन्न होकर, संवेदी सतह है, शरीर में समाहित है, अदृश्य है, प्रभावकारी है; जिसके माध्यम से अदृश्य प्रभावकारी शरीर (कोई) किसी अदृश्य प्रभावकारी स्पर्शनीय वस्तु को स्पर्श करता है, स्पर्श करता है, स्पर्श करेगा या कर सकता है; यही शरीर है; यही शरीर का आधार है; यही शरीर का तत्व है।

91

मैं

यह शरीर की नियंत्रक शक्ति है; यह एक संसार है; यह एक द्वार है; यह एक सागर है; यह प्रकाश है; यह एक क्षेत्र है; यह एक आधार है; यह निकटवर्ती तट है; यह एक खाली गाँव है। इसे शरीर का आधार कहते हैं। (5)

161. उसमें मन का आधार क्या है? एकल विभाजन के अनुसार मन का आधार: संपर्क से जुड़ा है।

दो प्रकार से विभाजित करके मानसिक आधार: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।

मन को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा।

मन का आधार चार भागों में विभाजित है: यह इच्छा के तल की विशेषता है; यह रूप के तल की विशेषता है; यह निराकार तल की विशेषता है; यह इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् यह अलौकिक है)।

मन का आधार पाँच भागों में विभाजित है: यह सुख (शारीरिक) की नियंत्रक क्षमता से जुड़ा है; यह दर्द (शारीरिक) की नियंत्रक क्षमता से जुड़ा है; यह मानसिक सुख की नियंत्रक क्षमता से जुड़ा है; यह मानसिक दर्द की नियंत्रक क्षमता से जुड़ा है; यह उदासीनता की नियंत्रक क्षमता से जुड़ा है।

मन का आधार छह भागों में विभाजित है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन चेतना। इस प्रकार मन का आधार छह भागों में विभाजित है।

मन का आधार सात भागों में विभाजित है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार मन का आधार सात भागों में विभाजित है।

मन का आधार आठ भागों में विभाजित है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; सुख और दुख से ग्रस्त शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार मन का आधार आठ भागों में विभाजित है।

मन का आधार नौ भागों में विभाजित है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार मन का आधार नौ भागों में विभाजित है।

मन का आधार दस भागों में विभाजित है: नेत्र चेतना; कान चेतना; नाक चेतना; जीभ चेतना; शरीर

6 *

92

चेतना जो सुख से ग्रस्त है, जो दुख से ग्रस्त है; मन तत्व; मन-चेतना तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार मन दस गुना विभाजन द्वारा आधार है। [72]

एकल विभाजन के माध्यम से मन का आधार: संपर्क से जुड़ा हुआ है।

दो प्रकार से विभाजित करके मानसिक आधार: मूल तत्व के साथ होता है; मूल तत्व के साथ नहीं होता है।

तीन प्रकार से विभाजित मन का आधार: सुखद भावनाओं से जुड़ा होता है; दुखदायी भावनाओं से जुड़ा होता है; न दुखदायी और न ही सुखद भावनाओं से जुड़ा होता है। इस प्रकार मन का आधार अनेक प्रकार से विभाजित होता है। इसे मन का आधार कहते हैं। (6)

P = अनुच्छेद 122-149 देखें।

162. उसमें दृश्य आधार क्या है? वह दृश्य (वस्तु) जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर चमकदार, दृश्यमान, आक्षेपकारी, नीली, पीली, लाल, सफेद, काली, लालिमा लिए हरी, सुनहरी, आम की कली के रंग की, लंबी, छोटी, छोटी, बड़ी, वृत्ताकार, वर्गाकार, षट्भुजाकार, अष्टभुजाकार, सोलह कोनों वाली, नीची, ऊँची, छायादार, चमकीली, हल्की, गहरी, मंद, धुंधली, धुएँदार, धूल भरी, चंद्रमा की डिस्क की तरह चमकदार, सूर्य की डिस्क की तरह चमकदार, खगोलीय पिंडों की तरह चमकदार, दर्पण की डिस्क की तरह चमकदार, रत्न, शंख, मोती, खूंटी की आँख की तरह चमकदार, सोने और चांदी की तरह चमकदार हो; या कोई अन्य दृश्य (वस्तु) जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर चमकदार, दृश्यमान और आक्षेपकारी हो; वह दृश्य, आवर्ती, दृश्य (वस्तु) जिसे (किसी ने) अदृश्य आवर्ती दृष्टि से देखा है, देख रहा है, देखेगा या देख सकता है; यही दृश्य (वस्तु) है; यही दृश्य आधार है; यही दृश्य तत्व है। इसे दृश्य आधार कहते हैं। (7)

163. उसमें श्रव्य आधार क्या है? वह श्रव्य (वस्तु) जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, आक्षेपकारी, ढोल की ध्वनि, तबले की ध्वनि, शंख की ध्वनि, ढोल की ध्वनि, संगीत की ध्वनि, झांझ की ध्वनि, हाथ की ध्वनि, प्राणियों की ध्वनि, वस्तुओं के टकराव की ध्वनि, वायु की ध्वनि, जल की ध्वनि, मानव ध्वनि, अमानवीय ध्वनि हो; या कोई अन्य श्रव्य (वस्तु) जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, आक्षेपकारी हो; वह अदृश्य आक्षेपकारी श्रव्य (वस्तु) जिसे (किसी ने) अदृश्य आक्षेपकारी के माध्यम से सुना है, सुनता है, सुनेगा या सुन सकता है।

कान; यह श्रव्य (वस्तु) है; यह श्रव्य आधार है; यह श्रव्य तत्व है। इसे श्रव्य आधार कहा जाता है। (8)

164. इसमें सुगंधित आधार क्या है? वह सुगंधित वस्तु जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होती है, अदृश्य और प्रभावकारी होती है; जड़ों की गंध, रस की गंध, छाल की गंध, पत्तियों की गंध, फूलों की गंध, फलों की गंध, कच्चे पदार्थों की गंध, सड़ी हुई गंध, सुखद गंध, अप्रिय गंध; या कोई भी अन्य सुगंधित वस्तु जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होती है, अदृश्य और प्रभावकारी होती है; वह अदृश्य और प्रभावकारी सुगंधित वस्तु जिसे (कोई) अपनी अदृश्य प्रभावकारी नाक से सूंघता है, सूंघ रहा है, सूंघेगा या सूंघ सकता है; यही सुगंधित वस्तु है; यही सुगंधित आधार है; यही सुगंधित तत्व है। इसे सुगंधित आधार कहते हैं।

(9)

165. इसमें स्वाद का आधार क्या है? वह स्वाद जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, प्रभावकारी होता है, जड़ों का स्वाद, तनों का स्वाद, छाल का स्वाद, पत्तियों का स्वाद, फूलों का स्वाद, फलों का स्वाद, खट्टा, मीठा, कड़वा, तीखा, नमकीन, क्षारीय, मीठा-तीखा, तीखा, अच्छा, मतली लाने वाला होता है; या कोई अन्य स्वाद जो चार प्रमुख तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य और प्रभावकारी हो; वह अदृश्य प्रभावकारी स्वाद जिसका स्वाद (किसी ने) अदृश्य प्रभावकारी जीभ के माध्यम से चखा है, चखता है, चखेगा या चख सकता है; यही स्वाद है; यही स्वाद का आधार है; यही स्वाद तत्व है। इसे स्वाद का आधार कहते हैं। (10)

166. उसमें मूर्त आधार क्या है? विस्तार का तत्व, ऊष्मा का तत्व, गति का तत्व, कठोर, कोमल, चिकना, खुरदरा, सुखद स्पर्श, कष्टदायक स्पर्श, भारी, हल्का; वह अदृश्य आक्षेपित मूर्त वस्तु जिसे (किसी ने) छुआ है, छूता है, छूएगा या किसी अदृश्य आक्षेपित पिंड के माध्यम से छू सकता है; यही मूर्त वस्तु है; यही मूर्त आधार है; यही मूर्त तत्व है। इसे मूर्त आधार कहते हैं। (11)

167. उसमें वैचारिक आधार क्या है? भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती का समूह और वैचारिक आधार में समाहित वह अदृश्य अप्रभावित भौतिक गुण; अप्रतिबंधित तत्व।

उसमें भावनाओं का समूह क्या है? एकल विभाजन द्वारा भावनाओं का समूह: संपर्क से जुड़ा है।

94

विश्लेषण की पुस्तक

दो प्रकार से विभाजित भावों का समूह: मूल भाव से युक्त; मूल भाव से रहित। तीन प्रकार से विभाजित भावों का समूह: अच्छा; बुरा; न अच्छा न बुरा। इसी प्रकार दस प्रकार से विभाजित भावों का समूह है। इसी प्रकार अनेक प्रकार से विभाजित भावों का समूह है। इसे भावों का समूह कहते हैं। (1)

P = अनुच्छेद 34-61 सहित देखें।

इसमें बोध का सार क्या है? एकल विभाजन द्वारा बोध का सार: संपर्क से जुड़ा होता है। द्वि विभाजन द्वारा बोध का सार: मूल से जुड़ा होता है; मूल से नहीं जुड़ा होता है। त्रि विभाजन द्वारा बोध का सार: अच्छा होता है; बुरा होता है; न अच्छा न बुरा होता है। :PX : इस प्रकार दस विभाजन द्वारा बोध का सार है। :P 2 : इस प्रकार अनेक विभाजन द्वारा बोध का सार है। इसे बोध का सार कहते हैं। (2)

P^पैरा 62 देखें। P 2 = पैरा 63-91 सहित देखें।

उसमें मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग क्या है?

एक प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: चेतना से जुड़ा होता है। दो प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: मूल है; मूल नहीं है। तीन प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। (PX) इसी प्रकार दस प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है। (P2) इसी प्रकार अनेक प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है। इसे मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह कहा जाता है। (3)

पृष्ठ 1 — पैराग्राफ 92 देखें। पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 93-120 देखें।

इसमें वैचारिक आधार में समाहित अदृश्य अप्रभावित पदार्थ क्या है? स्त्रीत्व की नियंत्रक शक्ति, पुरुषत्व की नियंत्रक शक्ति; भोजन का पोषक तत्व। इसे ही वैचारिक आधार में समाहित अदृश्य अप्रभावित पदार्थ कहा जाता है। (4)

पी = डीएचएस पैराग्राफ 595 देखें।

उसमें अप्रतिबंधित तत्व क्या है? [73]

कामवासना का नाश; घृणा का नाश; सुस्ती का नाश। इसे अप्रतिबंधित तत्व कहा जाता है। (5)

इसे वैचारिक आधार कहा जाता है।

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

आधारों का विश्लेषण

95

3. पूछताछ

168. बारह आधार हैं: आँख आधार, दृश्य आधार, कान आधार, श्रव्य आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार।

169. बारह आधारों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P : कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कारण है; कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कोई कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

170. दस आधार न तो अच्छे हैं और न ही बुरे। दो आधार कभी अच्छे होते हैं; कभी बुरे; कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे। दस आधारों को न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न ही पीड़ादायक भावना से जुड़ा हुआ; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ। मन का आधार कभी सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है। वैचारिक आधार कभी सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी को न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न ही पीड़ादायक भावना से जुड़ा हुआ; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ। दस आधार न तो परिणाम हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाले। दो आधार कभी-कभी परिणाम होते हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करने वाले होते हैं; और कभी-कभी न तो परिणाम होते हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाले।

पांच आधार (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रसित होते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं। श्रव्य आधार ग्रसित नहीं होता, आसक्ति का विषय होता है। चार आधार कभी-कभी ग्रसित होते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रसित नहीं होते, आसक्ति के विषय होते हैं। दो आधार कभी-कभी ग्रसित होते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रसित नहीं होते, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रसित नहीं होते, आसक्ति के विषय नहीं होते। दस आधार अविघटित नहीं होते, विकृतियों के विषय होते हैं। दो आधार कभी-कभी विकृत होते हैं, विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी अविघटित नहीं होते, विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी अविघटित नहीं होते, विकृतियों के विषय नहीं होते। दस आधार

प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। मन का आधार कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। वैचारिक आधार कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह न तो प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ है, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ; न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ; और न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ। दस आधारों को न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ कहा जा सकता है। दो आधार कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; [74] कभी-कभी आनंद के साथ; कभी-कभी उदासीनता के साथ; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ।

दस आधारों को न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जाना चाहिए। दो आधारों को कभी-कभी प्रथम मार्ग से त्यागा जाना चाहिए; कभी-कभी पश्चात मार्गों से त्यागा जाना चाहिए; कभी-कभी उन्हें न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जाना चाहिए। दस आधारों की कोई जड़ नहीं होती जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। दो आधारों की कभी-कभी जड़ होती है जिसे प्रथम मार्ग से त्यागा जाना चाहिए; कभी-कभी जड़ होती है जिसे पश्चात मार्गों से त्यागा जाना चाहिए; कभी-कभी जड़ होती है जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से त्यागा नहीं जाना चाहिए। दस आधार न तो संचयी हैं और न ही विक्षेपी (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र के)। दो आधार कभी-कभी संचयी होते हैं; कभी-कभी विक्षेपी होते हैं; कभी-कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपी। दस आधार न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के। दो आधार कभी-कभी सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं; कभी-कभी ये सात अलौकिक अवस्थाओं में से किसी के भी नहीं होते, न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के। दस आधार निम्न हैं। दो आधार कभी निम्न होते हैं; कभी उदात्त होते हैं;

कभी अकल्पनीय होते हैं। दस आधारों का कोई लक्ष्य नहीं होता। दो आधारों के कभी निम्न लक्ष्य होते हैं; कभी उदात्त लक्ष्य होते हैं; कभी अकल्पनीय लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि उनके निम्न, उदात्त या अकल्पनीय लक्ष्य हैं। दस आधार हैं

मध्यवर्ती। दो आधार कभी निम्नतर होते हैं, कभी मध्यवर्ती; कभी श्रेष्ठ। दस आधारों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। दो आधार कभी निश्चित (परिणामी समय) के साथ असत्य (अवस्था) होते हैं; कभी निश्चित (परिणामी समय) के साथ सही (अवस्था) होते हैं; कभी उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता।

दस आधारों का कोई कर्म नहीं होता। दो आधारों का कभी-कभी पथ कर्म होता है; कभी-कभी पथ कारण होता है; कभी-कभी पथ प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि पथ उनका कर्म है, पथ उनका कारण है या पथ उनका प्रमुख कारक है। पाँच आधार कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं; यह नहीं कहा जा सकता कि वे उत्पन्न नहीं हुए हैं। श्रव्य आधार कभी-कभी उत्पन्न होता है; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होता; यह नहीं कहा जा सकता कि वह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। पाँच आधार कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी उत्पन्न होता है; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होता; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि वह उत्पन्न हुआ है, उत्पन्न नहीं हुआ है या उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। ग्यारह आधार कभी-कभी भूतकाल होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल होते हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी भूतकाल होता है; कभी-कभी भविष्यकाल होता है; कभी-कभी वर्तमानकाल होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि वह भूतकाल है, भविष्यकाल है या वर्तमानकाल है। दस आधारों का कोई कर्म नहीं होता। दो आधारों का कभी-कभी भूतकाल कर्म होता है; कभी-कभी भविष्यकाल कर्म होता है; कभी-कभी वर्तमानकाल कर्म होता है; कभी-कभी [75] को भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल के कर्मों से युक्त नहीं कहा जा सकता। (सभी आधार) कभी आंतरिक होते हैं; कभी बाह्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। दस आधारों का कोई कर्म नहीं होता। दो आधारों के कभी आंतरिक कर्म होते हैं; कभी बाह्य कर्म होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों कर्म होते हैं; कभी-कभी को आंतरिक, बाह्य या बाह्य और बाह्य दोनों कर्मों से युक्त नहीं कहा जा सकता। दृश्य आधार दृश्य होता है, और आक्षेपकारी होता है। नौ आधार अदृश्य होते हैं, और आक्षेपकारी होते हैं। दो आधार अदृश्य होते हैं, और आक्षेपकारी नहीं होते।

2. दोहे

1J1. ग्यारह आधार मूल नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी मूल होता है; कभी नहीं होता। दस आधारों के साथ मूल नहीं होते। दो आधारों के साथ कभी मूल होते हैं; कभी नहीं होते। दस आधारों का मूल से कोई संबंध नहीं होता। दो आधारों का मूल से कोई संबंध नहीं होता; कभी नहीं होते। दस आधारों को मूल नहीं कहा जाना चाहिए।

जड़ों से जुड़ा हुआ या जड़ों से जुड़ा हुआ लेकिन स्वयं जड़ नहीं। मन के आधार को जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी-कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन जड़ नहीं होता; कभी-कभी इसे जड़ से जुड़ा हुआ लेकिन स्वयं जड़ नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक आधार कभी-कभी जड़ होता है और जड़ से जुड़ा होता है; कभी-कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं जड़ नहीं होता; कभी-कभी इसे जड़ नहीं कहा जाना चाहिए या जड़ से जुड़ा हुआ लेकिन स्वयं जड़ नहीं होता। दस आधारों को जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; जड़ें जड़ों से जुड़ी होती हैं या जड़ों से जुड़ी होती हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं होतीं। मन के आधार को जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी-कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं जड़ नहीं होता; कभी-कभी इसे जड़ से जुड़ा हुआ लेकिन स्वयं जड़ नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक आधार कभी-कभी जड़ होता है और जड़ से जुड़ा होता है; कभी-कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं जड़ नहीं होता; कभी-कभी इसे जड़ नहीं कहा जाना चाहिए या जड़ों से जुड़ा हुआ लेकिन स्वयं जड़ नहीं होता। दस आधार जड़ नहीं हैं, जड़ों से जुड़े नहीं हैं। मन का आधार कभी-कभी जड़ नहीं होता, जड़ से जुड़ा होता है; कभी-कभी मूल नहीं होता, मूल के साथ नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी मूल नहीं होता, मूल के साथ होता है; कभी-कभी मूल नहीं होता, मूल के साथ नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि है, मूल नहीं है, मूल के साथ है या मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है। (1)

ग्यारह आधार कारण सहित हैं। वैचारिक आधार कभी कारण सहित होता है; कभी कारण रहित होता है। ग्यारह आधार सशक्त हैं। वैचारिक आधार कभी सशक्त होता है; कभी अशक्त होता है। दृश्य आधार दृश्य है। [76] ग्यारह आधार दृश्य नहीं हैं। दस आधार आक्षेपकारी हैं। दो आधार आक्षेपकारी नहीं हैं। दस आधार भौतिक हैं। मन का आधार भौतिक नहीं है। वैचारिक आधार कभी भौतिक होता है; कभी भौतिक नहीं होता। दस आधार सांसारिक हैं। दो आधार कभी सांसारिक होते हैं; कभी अलौकिक होते हैं। (सभी आधार) एक तरीके से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे तरीके से ज्ञात नहीं किए जा सकते। (2)

ग्यारह आधार दोष नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी दोष होता है, कभी दोष नहीं होता। दस आधार दोषों के विषय हैं। दो आधार कभी दोषों के विषय होते हैं, कभी दोष नहीं होते। दस आधार दोषों से संबंधित नहीं हैं। दो आधार कभी दोषों से संबंधित होते हैं, कभी दोष नहीं होते। दस आधारों को दोष और दोषों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे दोषों के विषय हैं।

लेकिन ये दोष नहीं हैं। मन के आधार को दोष नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी-कभी दोषों का कारण होता है लेकिन दोष नहीं होता; कभी-कभी इसे दोषों का कारण नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन दोष नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी दोष होता है और दोषों का कारण भी होता है; कभी-कभी दोषों का कारण होता है लेकिन दोष नहीं होता; कभी-कभी इसे दोषों का कारण नहीं कहा जाना चाहिए या दोषों का कारण होता है लेकिन दोष नहीं होता। दस आधारों को दोष नहीं कहा जाना चाहिए; यह दोषों से जुड़ा हुआ है लेकिन दोषों से संबंधित नहीं है। मन के आधार को दोष नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी-कभी दोषों से जुड़ा हुआ है लेकिन दोष नहीं होता; कभी-कभी इसे दोषों से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन दोष नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी अशुद्धता से भी जुड़ा होता है; कभी-कभी अशुद्धता से जुड़ा होता है लेकिन अशुद्धता नहीं होता; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह अशुद्धता है, अशुद्धता से भी जुड़ा होता है या अशुद्धता से जुड़ा होता है लेकिन अशुद्धता नहीं होता। दस आधार अशुद्धता से जुड़े नहीं होते, अशुद्धता के विषय होते हैं। दो आधार कभी-कभी अशुद्धता से जुड़े नहीं होते, अशुद्धता के विषय होते हैं; कभी-कभी अशुद्धता से जुड़े नहीं होते, अशुद्धता के विषय नहीं होते; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे अशुद्धता से जुड़े नहीं होते, अशुद्धता के विषय होते हैं या अशुद्धता से जुड़े नहीं होते, अशुद्धता के विषय नहीं होते। (3)

ग्यारह आधार बंधन नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी बंधन होता है, कभी बंधन नहीं होता। दस आधार बंधनों के विषय होते हैं। दो आधार कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी बंधनों के विषय नहीं होते। दस आधार बंधनों से संबंधित नहीं होते। दो आधार कभी बंधनों से संबंधित होते हैं, कभी बंधनों से संबंधित नहीं होते। दस आधारों को बंधन और बंधनों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बंधनों के विषय तो हैं, पर बंधन नहीं हैं। मन के आधार को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी बंधनों का विषय होता है, पर बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधनों का विषय और बंधन नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक आधार कभी बंधन और बंधनों का विषय होता है; कभी-कभी बंधनों का विषय होता है, पर बंधन नहीं होता। कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि बंधन भी बंधनों की वस्तु है या बंधनों की वस्तु है लेकिन बंधन नहीं है।

दस आधारों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधन हैं, बंधनों से जुड़े हुए हैं या बंधनों से जुड़े हुए हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। [77] मन के आधार को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधन है, बंधनों से जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधनों से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी बंधन होता है, बंधनों से जुड़ा हुआ होता है; कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधन है, बंधनों से जुड़ा हुआ है या बंधनों से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। दस आधार बंधनों से जुड़े नहीं हैं, बंधनों के विषय हैं। दो आधार कभी-कभी बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय होते हैं; कभी-कभी बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बेड़ियों से संबंधित नहीं हैं, बेड़ियों की वस्तुएँ हैं या बेड़ियों से संबंधित नहीं हैं, बेड़ियों की वस्तुएँ नहीं हैं। (4)

ग्यारह आधार बंधन नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी बंधन होता है, कभी बंधन नहीं होता। दस आधार बंधनों के विषय होते हैं। दो आधार कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी बंधनों के विषय नहीं होते। दस आधार बंधनों से संबद्ध नहीं होते। दो आधार कभी बंधनों से संबद्ध होते हैं, कभी बंधनों से संबद्ध नहीं होते। दस आधारों को बंधन और बंधनों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बंधनों के विषय तो हैं, लेकिन बंधन नहीं हैं। मन के आधार को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी बंधनों का विषय होता है, लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन बंधन नहीं होता। वैचारिक आधार कभी बंधन और बंधनों का विषय होता है, कभी-कभी बंधनों का विषय होता है, लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, या तो यह बंधन का विषय है, लेकिन बंधन नहीं है। दस आधारों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे संबंधों से जुड़े हुए हैं या संबंधों से जुड़े हुए हैं लेकिन स्वयं संबंध नहीं हैं। मन के आधार को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह संबंधों से जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी संबंधों से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं संबंध नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह संबंधों से जुड़ा हुआ है लेकिन स्वयं संबंध नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी संबंधों से जुड़ा होता है; कभी-कभी संबंधों से जुड़ा होता है लेकिन स्वयं संबंध नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह संबंधों से जुड़ा हुआ है या संबंधों से जुड़ा हुआ है लेकिन स्वयं संबंध नहीं है। दस आधार संबंधों से जुड़े नहीं होते, बल्कि संबंधों के विषय होते हैं। दो आधार कभी-कभी संबंधों से जुड़े नहीं होते, बल्कि संबंधों के विषय होते हैं; कभी-कभी संबंधों से जुड़े नहीं होते, बल्कि संबंधों के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे संबंधों से जुड़े नहीं हैं।

जो संबंध से जुड़े हैं, वे संबंधों के विषय हैं या संबंधों से जुड़े नहीं हैं, वे संबंधों के विषय नहीं हैं। (5)

ग्यारह आधार बाढ़ नहीं हैं। :P: बंधन नहीं हैं। :P: बाधाएँ नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी बाधा होता है; कभी बाधा नहीं होता। दस आधार बाधाओं के विषय हैं। दो आधार [78] कभी बाधाओं के विषय होते हैं; कभी बाधाओं के विषय नहीं होते। दस आधार बाधाओं से संबंधित नहीं हैं। दो आधार कभी बाधाओं से संबंधित होते हैं; कभी बाधाओं से संबंधित नहीं होते। दस आधारों को बाधाएँ और बाधाओं के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) बाधाओं के विषय हैं लेकिन बाधाएँ नहीं हैं। मन के आधार को बाधा और बाधाओं का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी बाधाओं का विषय होता है लेकिन बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधाएँ और बाधा नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक आधार कभी-कभी बाधा भी होता है और बाधाओं का कारण भी; कभी-कभी बाधाओं का कारण तो होता है लेकिन बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधा भी नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह बाधाओं का कारण भी होता है या बाधाओं का कारण तो होता है लेकिन बाधा नहीं होता। दस आधारों को बाधा भी नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह बाधाओं से जुड़ा हुआ भी हो सकता है या बाधाओं से जुड़ा हुआ तो होता है लेकिन बाधा नहीं होता। मन के आधार को बाधा भी नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह बाधाओं से जुड़ा हुआ भी होता है; कभी-कभी यह बाधाओं से जुड़ा हुआ तो होता है लेकिन बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधाओं से जुड़ा हुआ तो नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह बाधा नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी बाधा भी होता है और बाधाओं से जुड़ा हुआ भी; कभी-कभी यह बाधाओं से जुड़ा हुआ तो होता है लेकिन बाधा नहीं होता। कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कोई बाधा है, जो बाधाओं से भी जुड़ी है या बाधाओं से जुड़ी है लेकिन बाधा नहीं है। दस आधार बाधाओं से जुड़े नहीं हैं, बाधाओं के विषय हैं। दो आधार कभी-कभी बाधाओं से जुड़े नहीं होते, बाधाओं के विषय होते हैं; कभी-कभी बाधाओं से जुड़े नहीं होते, बाधाओं के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कोई बाधा नहीं है, बाधाओं के विषय हैं या बाधाओं से जुड़े नहीं हैं, बाधाओं के विषय नहीं हैं। (8)

P = बाधाओं के संबंध में पूर्ण।

ग्यारह आधार विकृतियाँ नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी विकृति होता है; कभी-कभी विकृति नहीं होता। दस आधार विकृतियों के विषय हैं। दो आधार कभी-कभी विकृतियों के विषय होते हैं;

कभी-कभी विकृतियों के विषय नहीं होते। दस आधार विकृतियों से संबंधित नहीं हैं। मन का आधार कभी-कभी विकृतियों से संबंधित होता है; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी विकृतियों से संबंधित होता है; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह विकृतियों से संबंधित है या नहीं। दस आधारों को विकृतियों का विषय नहीं कहना चाहिए; वे विकृतियों के विषय तो हैं, लेकिन स्वयं विकृत नहीं हैं। मन के आधार को विकृतियों का विषय नहीं कहना चाहिए; कभी-कभी यह विकृतियों का विषय होता है, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह विकृतियों का विषय होता है, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होता। वैचारिक आधार कभी-कभी विकृतियों का विषय होता है; कभी-कभी विकृतियों का विषय होता है, लेकिन स्वयं विकृत नहीं होता। कभी-कभी विकृति नहीं कहा जाना चाहिए, विकृति का उद्देश्य भी विकृति का उद्देश्य हो सकता है या विकृति का उद्देश्य नहीं है। दस आधार विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के उद्देश्य हैं। दो आधार कभी-कभी विकृतियों से जुड़े नहीं होते हैं, विकृतियों के उद्देश्य होते हैं; कभी-कभी विकृतियों से जुड़े नहीं होते हैं, विकृतियों के उद्देश्य नहीं होते हैं; कभी-कभी नहीं कहा जाना चाहिए, [79] विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के उद्देश्य हैं या विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के उद्देश्य नहीं हैं। (9)

दस आधारों का कोई वस्तु नहीं है। मन आधार का एक वस्तु है। वैचारिक आधार का कभी-कभी वस्तु होता है; कभी-कभी वस्तु नहीं होता। मन आधार चेतना है। ग्यारह आधार चेतना नहीं हैं। ग्यारह आधार मानसिक सहवर्ती नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी मानसिक सहवर्ती होता है; कभी-कभी मानसिक सहवर्ती नहीं होता। दस आधार चेतना से संबद्ध नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना से संबद्ध होता है; कभी-कभी चेतना से संबद्ध नहीं होता। मन आधार को चेतना से संबद्ध या असंबद्ध नहीं कहा जाना चाहिए। दस आधार चेतना से जुड़े नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता। मन आधार को चेतना से जुड़ा या असंबद्ध नहीं कहा जाना चाहिए। छह आधार चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते हैं। छह आधार कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते। ग्यारह आधार चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी नहीं होता।

आधारों का विश्लेषण

चेतना के साथ विद्यमान। ग्यारह आधार चेतना के साथ नहीं होते। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना के साथ होता है; कभी-कभी चेतना के साथ नहीं होता। ग्यारह आधार चेतना से जुड़े नहीं होते, न ही चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता। ग्यारह आधार चेतना से जुड़े नहीं होते, न ही चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, न ही चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होते हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता। ग्यारह आधार चेतना से जुड़े नहीं होते, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते, न ही चेतना के साथ होते हैं। वैचारिक आधार कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है, चेतना के साथ होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता, चेतना के साथ नहीं होता। (10)

छह आधार आंतरिक हैं। छह आधार बाह्य हैं। नौ आधार व्युत्पन्न हैं। दो आधार व्युत्पन्न नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी व्युत्पन्न होता है, कभी व्युत्पन्न नहीं होता। पाँच आधार (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किए जाते हैं। श्रव्य आधार ग्रहण नहीं किया जाता। छह आधार कभी ग्रहण किए जाते हैं, कभी ग्रहण नहीं किए जाते। ग्यारह आधार आसक्ति नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी आसक्ति होता है, कभी आसक्ति नहीं होता। दस आधार आसक्ति के विषय हैं। दो आधार कभी आसक्ति के विषय होते हैं, कभी आसक्ति नहीं होते। दस आधार आसक्ति से संबद्ध नहीं हैं। दो आधार कभी आसक्ति से संबद्ध होते हैं, कभी आसक्ति नहीं होते। दस आधारों को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे आसक्ति के विषय तो हैं, पर स्वयं आसक्ति नहीं हैं। मन के आधार को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वह कभी आसक्ति का विषय होता है, पर स्वयं आसक्ति नहीं है। कभी-कभी इसे आसक्तियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, परन्तु यह स्वयं आसक्ति नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी आसक्ति भी होता है और आसक्तियों का विषय भी; कभी-कभी यह आसक्ति का विषय होता है परन्तु आसक्ति नहीं; कभी-कभी इसे [80] आसक्ति भी नहीं कहा जाना चाहिए, या यह आसक्ति का विषय होता है परन्तु आसक्ति नहीं है। दस आधारों को यह नहीं कहा जाना चाहिए, कि वे आसक्तियाँ भी हैं और आसक्तियों से जुड़ी हैं या आसक्तियों से जुड़ी हैं परन्तु आसक्तियाँ नहीं हैं। मन आधार को यह नहीं कहा जाना चाहिए, कि वे आसक्तियाँ भी हैं और आसक्तियों से जुड़ी हैं; (यह) कभी-कभी

आसक्ति से जुड़ा हुआ है, लेकिन आसक्ति नहीं है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति से जुड़ा हुआ है, लेकिन आसक्ति नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी आसक्ति भी होता है और आसक्ति से जुड़ा हुआ भी होता है; कभी-कभी आसक्ति से जुड़ा होता है, लेकिन आसक्ति नहीं है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति भी आसक्ति से जुड़ी हुई है या आसक्ति से जुड़ी हुई है, लेकिन आसक्ति नहीं है। दस आधार आसक्ति से जुड़े नहीं हैं, बल्कि आसक्ति के विषय हैं। दो आधार कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, बल्कि आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, बल्कि आसक्ति के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति से जुड़े नहीं हैं, बल्कि आसक्ति के विषय हैं या आसक्ति से जुड़े नहीं हैं, बल्कि आसक्ति के विषय नहीं हैं। (11)

ग्यारह आधार भ्रष्टता नहीं हैं। वैचारिक आधार कभी भ्रष्टता होता है; कभी भ्रष्टता नहीं होता। दस आधार भ्रष्टता के विषय हैं। दो आधार कभी भ्रष्टता के विषय होते हैं; कभी भ्रष्टता नहीं होते। दस आधार भ्रष्ट नहीं हैं। दो आधार कभी भ्रष्ट होते हैं; कभी भ्रष्टता नहीं होते। दस आधार भ्रष्टता से संबंधित नहीं हैं। दो आधार कभी भ्रष्टता से संबंधित होते हैं; कभी भ्रष्टता नहीं होते। दस आधारों को भ्रष्टता और भ्रष्टता का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे भ्रष्टता के विषय तो हैं, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं हैं। मन के आधार को भ्रष्टता और भ्रष्टता का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी भ्रष्टता का विषय होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं है; कभी-कभी इसे भ्रष्टता का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं है। वैचारिक आधार कभी भ्रष्टता और भ्रष्टता का विषय होता है; कभी भ्रष्टता का विषय होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं है। कभी-कभी भ्रष्टाचार को भ्रष्टाचार का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, या भ्रष्टाचार का लक्ष्य तो भ्रष्टाचार नहीं है। दस आधारों को भ्रष्टाचार नहीं कहा जाना चाहिए, या भ्रष्टाचार भ्रष्ट नहीं है। मन के आधार को भ्रष्टाचार नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी-कभी भ्रष्ट होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है; कभी-कभी इसे भ्रष्ट नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी भ्रष्टाचार भी होता है; कभी-कभी भ्रष्ट होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है; कभी-कभी इसे भ्रष्टाचार नहीं कहा जाना चाहिए, या भ्रष्टाचार भ्रष्ट नहीं है।

दस आधार नहीं कहे जाने चाहिए, भ्रष्टाचार भी इससे जुड़ा हुआ है।

भ्रष्टाचार से जुड़े हुए हैं या भ्रष्टाचार से संबंधित हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं। मन का आधार भ्रष्टाचार नहीं कहा जाना चाहिए, यह भी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। वैचारिक आधार कभी-कभी भ्रष्टाचार होता है और भ्रष्टाचार से भी जुड़ा होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है या भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। दस आधार भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के विषय हैं। दो आधार कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते, भ्रष्टाचार के विषय होते हैं; [81] कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते, भ्रष्टाचार के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के विषय हैं या भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के विषय नहीं हैं। (12)

दस आधारों को पहले मार्ग से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दो आधारों को कभी-कभी पहले मार्ग से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी पहले मार्ग से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दस आधारों को बाद के मार्गों से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दो आधारों को कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी बाद के मार्गों से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दस आधारों की कोई जड़ नहीं होती जिसे पहले मार्ग से छोड़ा जा सके। दो आधारों की कभी-कभी जड़ होती है जिसे पहले मार्ग से छोड़ा जा सके; कभी-कभी जड़ नहीं होती जिसे पहले मार्ग से छोड़ा जा सके। दस आधारों की कोई जड़ नहीं होती जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। दो आधारों की कभी-कभी जड़ होती है जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके; कभी-कभी जड़ नहीं होती जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। दस आधारों का कोई प्रारंभिक अनुप्रयोग नहीं होता है। दो आधारों का कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग नहीं होता है। दस आधारों का कोई निरंतर अनुप्रयोग नहीं होता है। दो आधारों का कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग होता है; कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग नहीं होता है। दस आधारों में उत्साह नहीं होता है। दो आधारों में कभी-कभी उत्साह होता है; कभी-कभी उत्साह नहीं होता है। दस आधारों का कोई उत्साह नहीं होता है। दो आधार कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के साथ नहीं होते। दस आधार आनंद के साथ नहीं होते। दो आधार कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के साथ नहीं होते। दस आधार उदासीनता के साथ नहीं होते। दो आधार कभी-कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी-कभी उदासीनता के साथ नहीं होते।

106

विश्लेषण की पुस्तक

दस आधार इच्छा के तल की विशेषताएँ हैं। कभी-कभी दो आधार इच्छा के तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। दस आधार रूप के तल की विशेषताएँ नहीं हैं। कभी-कभी दो आधार रूप के तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। दस आधार निराकार तल की विशेषताएँ नहीं हैं। कभी-कभी दो आधार निराकार तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। दस आधार समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। कभी-कभी दो आधार समाहित होते हैं (अर्थात सांसारिक हैं); कभी-कभी समाहित नहीं होते (अर्थात अलौकिक हैं)। दस आधारों में मुक्ति की प्रवृत्ति नहीं होती। कभी-कभी दो आधारों में मुक्ति की प्रवृत्ति होती है; कभी-कभी नहीं होती। दस आधारों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। कभी-कभी दो आधारों का निश्चित (परिणामी समय) होता है; कभी-कभी नहीं होता। दस आधार पार किए जा सकते हैं। कभी-कभी दो आधार पार किए जा सकते हैं; कभी-कभी नहीं। दस आधार शोक का कारण नहीं हैं। दो आधार कभी-कभी शोक का कारण होते हैं; कभी-कभी शोक का कारण नहीं होते। (13)

(यह खंड यहीं समाप्त होता है) पूछताछ।

आधारों का विश्लेषण समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 3 पाठ - धातु
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा अनुवादित

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 3. तत्वों (धातुओं) का विश्लेषण

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

172. [82] छह तत्व हैं: विस्तार का तत्व (पथवी), सामंजस्य का तत्व (आपो), ऊष्मा का तत्व (तेजो), गति का तत्व (वायो), स्थान का तत्व (आकाश), चेतना का तत्व (विज्ञाना)।

173. इसमें विस्तार का तत्व क्या है? विस्तार का तत्व दो प्रकार का होता है: आंतरिक; बाह्य। इसमें विस्तार का आंतरिक तत्व क्या है? वह जो व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, कठोर, सख्त, कठोरता से युक्त, आंतरिक और लालसा एवं भ्रामक दृष्टि से ग्रहण किया हुआ हो। उदाहरण के लिए: सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डी, अस्थि मज्जा, गुर्दे; हृदय, यकृत, झिल्लीदार ऊतक, प्लीहा, फेफड़े; आंतें, मेसेंटरी, अपचित भोजन, मल; या जो कुछ भी व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, कठोर, सख्त, कठोरता से युक्त, आंतरिक और ग्रहण किया हुआ हो। इसे विस्तार का आंतरिक तत्व कहते हैं।

इसमें विस्तार का बाह्य तत्व क्या है? वह जो बाह्य, कठोर, सख्त, कठोर, बाह्य, अपठनीय है। उदाहरण के लिए; लोहा, तांबा, टिन, सीसा, चांदी, मोती, रत्न, कैट्स-आई, शंख, पत्थर, मूंगा, चांदी का सिक्का, सोना, माणिक, बहुरंगी कीमती पत्थर, घास, लकड़ी, बजरी, मिट्टी के बर्तन, मिट्टी, चट्टान, पहाड़; या जो कुछ भी बाह्य, कठोर, सख्त, सख्त, बाह्य, अपठनीय है। इसे विस्तार का बाह्य तत्व कहा जाता है। वह जो विस्तार का आंतरिक तत्व है और वह जो विस्तार का बाह्य तत्व है; इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में लें तो, इसे विस्तार का तत्व कहा जाता है। (1) [83]

174. इसमें संसंजन का तत्व क्या है? संसंजन का तत्व दो प्रकार का होता है: आंतरिक और बाह्य। इसमें आंतरिक संसंजन तत्व क्या है? वह जो व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, जलयुक्त, तरल, श्यान, चिपचिपा, पदार्थ का संसंजनशील, आंतरिक और ग्रहणशील हो। उदाहरण के लिए: पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, लसीका, लार, नाक का बलगम, शिरापरक द्रव, मूत्र; या जो कुछ भी व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, जलयुक्त, तरल, चिपचिपा, पदार्थ का संसंजनशील, आंतरिक और ग्रहणशील हो। इसे आंतरिक संसंजन तत्व कहते हैं।

इसमें बाह्य संसंजन तत्व क्या है? वह जो बाह्य है, जैसे जल, द्रव, श्यान, श्यान, पदार्थ का संसंजन, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए; जड़ों का रस, तनों का रस, छाल का रस, पत्तियों का रस, फूलों का रस, फलों का रस, दूध, नरम दही, घी, ताजा घी, तेल, शहद, गुड़, पृथ्वी या आकाश का जल; या जो कुछ भी बाह्य है, जल, द्रव, श्यान, श्यान, पदार्थ का संसंजन, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। इसे बाह्य संसंजन तत्व कहते हैं। वह जो आंतरिक संसंजन तत्व है और वह जो बाह्य संसंजन तत्व है; इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में लें तो, इसे संसंजन तत्व कहते हैं। (2)

175. इसमें ऊष्मा का तत्व क्या है? ऊष्मा का तत्व दो प्रकार का होता है: आंतरिक और बाह्य। इसमें आंतरिक ऊष्मा तत्व क्या है? वह जो व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, अग्नि, प्रज्वलित, ऊष्मा, गर्म, तापयुक्त, आंतरिक और ग्रहणशील हो। उदाहरण के लिए; वह जिससे ऊष्मा उत्पन्न होती है; वह जिससे क्षय होता है; वह जिससे जलकर राख हो जाता है; वह जिससे खाया, पिया, चबाया या चखा गया भोजन पूर्णतः पच जाता है; या जो कुछ भी व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, अग्नि, प्रज्वलित, ऊष्मा, गर्म, तापयुक्त, आंतरिक और ग्रहणशील हो। इसे आंतरिक ऊष्मा तत्व कहते हैं।

इसमें ऊष्मा का बाह्य तत्व क्या है? वह जो बाह्य है, अग्नि, प्रज्वलित, ऊष्मा, गर्म, उमसयुक्त, ऊष्मीय, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए; लकड़ी की आग, भूसे की आग, घास की आग, गोबर की आग, भूसी की आग, कूड़े की आग, बिजली की आग (अर्थात्, बिजली), अग्नि की ऊष्मा, सूर्य की ऊष्मा, लकड़ी के ढेर में उत्पन्न ऊष्मा, घास के ढेर में उत्पन्न ऊष्मा, धान के ढेर में उत्पन्न ऊष्मा, वस्तुओं के ढेर में उत्पन्न ऊष्मा; या जो कुछ भी बाह्य है, अग्नि, प्रज्वलित, ऊष्मा, गर्म, उमसयुक्त, ऊष्मीय, बाह्य, जिसे

समझा नहीं जा सकता। इसे ऊष्मा का बाह्य तत्व कहते हैं। [84] वह जो ऊष्मा का आंतरिक तत्व है और वह जो ऊष्मा का बाह्य तत्व है; इन दोनों को सामूहिक रूप से और संक्षेप में एक साथ लेने पर, इसे ऊष्मा का तत्व कहते हैं। (3)

176. इसमें गति का तत्व क्या है? गति का तत्व दो प्रकार का होता है: आंतरिक; बाह्य। इसमें गति का आंतरिक तत्व क्या है? वह जो व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, वायु, हवादार, पदार्थ का फैलाव, आंतरिक, ग्रहणशील है। उदाहरण के लिए; ऊपर उठने वाली वायु; नीचे उतरने वाली वायु; पेट की वायु; आंतों की वायु।

तत्वों का विश्लेषण

109

हवा; अंगों में प्रवाहित होने वाली हवा; छुरी जैसी हवा; रेज़र जैसी हवा; चीर देने वाली हवा; साँस लेना या साँस छोड़ना; या जो कुछ भी व्यक्तिगत, आत्म-संदर्भित, हवा, हवादार, पदार्थ का फैलाव, आंतरिक, बोधगम्य है। इसे गति का आंतरिक तत्व कहा जाता है।

इसमें गति का बाह्य तत्व क्या है? वह जो बाह्य है, वायु, वायुमय, पदार्थ का फैलाव, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए; पूर्वी हवाएँ; पश्चिमी हवाएँ; उत्तरी हवाएँ; दक्षिणी हवाएँ; धूल भरी हवाएँ; धूल रहित हवाएँ; ठंडी हवाएँ; गर्म हवाएँ; हल्की हवाएँ; तेज़ हवाएँ; काली हवाएँ (अर्थात, काले बादलों के साथ चलने वाली हवाएँ); ऊँचाई पर चलने वाली हवाएँ; पंखों से चलने वाली हवाएँ (अर्थात, पक्षियों के पंखों के कारण होने वाली वायु गति); सुपर्नन हवाएँ (अर्थात, पौराणिक गरूला पक्षी के कारण होने वाली वायु गति); वृत्ताकार ताड़ के पत्ते (पंखे) से निकलने वाली हवाएँ; पंखे से निकलने वाली हवा; या जो कुछ भी बाह्य है, वायु, वायुमय, पदार्थ का फैलाव, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। इसे गति का बाह्य तत्व कहते हैं। वह जो गति का आंतरिक तत्व है और वह जो गति का बाह्य तत्व है; इन दोनों को सामूहिक रूप से और संक्षेप में एक साथ लेने पर, इसे गति का तत्व कहते हैं। (4)

177. इसमें अंतरिक्ष का तत्व क्या है? अंतरिक्ष का तत्व दो प्रकार का होता है: यह आंतरिक होता है; यह बाह्य होता है। इसमें अंतरिक्ष का आंतरिक तत्व क्या है? वह जो व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, अंतरिक्ष, स्थानिक, शून्य, खालीपन, अंतराल, अंतर्विभाज्य, मांस या रक्त के संपर्क में नहीं है, आंतरिक, ग्रहणशील है। उदाहरण के लिए; श्रवण मार्ग, नासिका मार्ग, मुख द्वार; वह जिससे खाया, पिया, चबाया, चखा जाता है; वह जिसमें खाया, पिया, चबाया, चखा जाता है; वह जिससे खाया, पिया, चबाया, चखा जाता है; या जो कुछ भी व्यक्तिगत, स्व-संदर्भित, अंतरिक्ष, स्थानिक, शून्य, खालीपन, अंतर्विभाज्य, मांस या रक्त के संपर्क में नहीं है, आंतरिक, ग्रहणशील है। इसे अंतरिक्ष का आंतरिक तत्व कहा जाता है।

उसमें अंतरिक्ष का बाह्य तत्व क्या है? वह जो बाह्य है, अंतरिक्ष, स्थानिक, शून्य, शून्यता, अंतराल, [85] अंतरालीय, चार महान तत्वों के संपर्क में नहीं, बाह्य, जिसे समझा नहीं जा सकता। इसे अंतरिक्ष का बाह्य तत्व कहा जाता है। वह जो अंतरिक्ष का आंतरिक तत्व है और वह जो अंतरिक्ष का बाह्य तत्व है; (इन) को सामूहिक रूप से और संक्षेप में एक साथ लेने पर, इसे अंतरिक्ष का तत्व कहा जाता है। (5)

178. उसमें चेतना का तत्व क्या है? आँख - चेतना-तत्व, कान - चेतना-तत्व, नाक - चेतना-तत्व-

110

चेतना-तत्व, जीभ-चेतना-तत्व, शरीर-चेतना-तत्व, मन-चेतना-तत्व। इसे चेतना का तत्व कहा जाता है। (6)

ये छह तत्व हैं

179. अन्य छह तत्व हैं: सुख का तत्व (शारीरिक), पीड़ा का तत्व (शारीरिक), मानसिक सुख का तत्व, मानसिक पीड़ा का तत्व, उदासीनता का तत्व, अज्ञान का तत्व।

180. इसमें आनंद का तत्व क्या है? वह जो शारीरिक आराम है; शारीरिक सुख है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति है। इसे ही आनंद का तत्व कहा जाता है। (1)

इसमें दर्द का तत्व क्या है? वह जो शारीरिक बेचैनी है; शारीरिक दर्द है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभूति है। इसे दर्द का तत्व कहा जाता है। (2)

उसमें मानसिक सुख का तत्व क्या है? वह जो मानसिक सहजता है; मानसिक सुख; मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव; मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति। इसे मानसिक सुख का तत्व कहा जाता है। (3)

उसमें मानसिक पीड़ा का तत्व क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी है; मानसिक पीड़ा; मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव; मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना। इसे मानसिक पीड़ा का तत्व कहा जाता है। (4)

इसमें उदासीनता का तत्व क्या है? वह जो न तो मानसिक आराम है और न ही बेचैनी; न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई दर्दनाक और न ही सुखद अनुभूति; न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई दर्दनाक और न ही सुखद भावना। इसे उदासीनता का तत्व कहा जाता है। (5)

उसमें अज्ञान का तत्व क्या है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, समझ का अभाव है, जागरूकता का अभाव है, ज्ञान का अभाव है, अंतर्दृष्टि का अभाव है, बोध का अभाव है, जांच का अभाव है, विवेक का अभाव है, चिंतन का अभाव है, तीक्ष्ण बुद्धि का अभाव है, मूर्खता है, नासमझी है, जागरूकता का अभाव है, सुस्ती है, मंदता है, संवेदनहीनता है, अज्ञान है, अज्ञान का सैलाब है, अज्ञान का बंधन है।

गुप्त अज्ञान, [86] उभरता हुआ अज्ञान; अज्ञान की बाधा, सुस्ती की बुरी जड़। इसे अज्ञान का तत्व कहा जाता है। (6)

ये छह तत्व हैं

181. अन्य छह तत्व हैं: इच्छा का तत्व, दुर्भावना का तत्व, क्रूरता का तत्व, त्याग का तत्व, दुर्भावना की अनुपस्थिति का तत्व, क्रूरता की अनुपस्थिति का तत्व।

182. इसमें इच्छा का तत्व क्या है? मन की चिंतन, विचार, एकाग्रता, ध्यान, गलत विचार, जो इच्छा से जुड़े होते हैं। इसे इच्छा का तत्व कहते हैं। भीड़भाड़ वाले नरक को निचली सीमा मानकर, परानिम्मितवासवत्ती (तल) के देवताओं को ऊपरी सीमा मानकर, इस समावेशन में जो कुछ भी है, जो इसमें घटित होता है, जो इसमें समाहित है, समुच्चय, तत्व, आधार, भौतिक गुण, भावनाएँ, बोध, मानसिक सहवर्ती, चेतना। इसे इच्छा का तत्व कहते हैं। (1)

उसमें दुर्भावना का तत्व क्या है? मनन, चिंतन,

P : दुर्भावना से जुड़ा गलत विचार। इसे तत्व कहा जाता है।
दुर्भावना का। या, चेतना की पीड़ा के दस कारणों में से एक है: आक्रोश, घृणा, शत्रुता, चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, क्रोध, अरुचि, मानसिक विकार, नफरत, क्रोध, क्रोधित होना, क्रोधित अवस्था, घृणा, घृणास्पद होना, घृणास्पद अवस्था, अव्यवस्था, अव्यवस्थित होना, विरोध, शत्रुता, उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। इसे दुर्भावना का तत्व कहा जाता है। (2)

पी — ऊपर देखें।

इसमें क्रूरता का तत्व क्या है? क्रूरता से जुड़ी मानसिकता, सोच, गलत विचार। इसे क्रूरता का तत्व कहा जाता है। इसमें कोई व्यक्ति हाथ से, मिट्टी के ढेले से, लाठी से, तलवार से, रस्सी से या किसी अन्य वस्तु से दूसरों को चोट पहुँचाता है; जो इसी प्रकार का है, दूसरों को परेशान करना, चोट पहुँचाना, तंग करना, घायल करना, उकसाना, क्रोधित करना, मारना। इसे क्रूरता का तत्व कहा जाता है। (3)

पी — ऊपर देखें।

इसमें त्याग का तत्व क्या है? त्याग से जुड़ी मानसिक प्रक्रिया, चिंतन, सही विचार। यही है

इसे त्याग का तत्व कहा जाता है। सभी अच्छी अवस्थाएँ भी त्याग का तत्व हैं। (4)

P = ऊपर देखें।

उसमें दुर्भावना के अभाव का तत्व क्या है? दुर्भावना के अभाव से संबंधित चिंतन, विचार, सही विचार। इसे दुर्भावना के अभाव का तत्व कहा जाता है। प्राणियों में जो प्रेम है, प्रेमपूर्ण दया का कार्य है, प्रेमपूर्ण दया की अवस्था है, वह प्रेमपूर्ण दया है जो (दुर्भावना से) मानसिक रूप से मुक्त है। इसे दुर्भावना के अभाव का तत्व कहा जाता है। (5)

P = ऊपर देखें।

उसमें क्रूरता की अनुपस्थिति का तत्व क्या है? वह चिंतन, विचार, एकाग्रता, [87] ध्यान, मन का अनुप्रयोग, सही विचार, जो क्रूरता की अनुपस्थिति से जुड़ा है। इसे क्रूरता की अनुपस्थिति का तत्व कहा जाता है। प्राणियों में जो करुणा है, करुणा की अवस्था, करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता (क्रूरता से) है। इसे क्रूरता की अनुपस्थिति का तत्व कहा जाता है। (6)

ये छह तत्व हैं

इस प्रकार, इन तीन समूहों में से प्रत्येक में छह तत्व हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से और संक्षेप में लिया जाए तो अठारह तत्व होते हैं।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

183. अठारह तत्व हैं: आँख तत्व, दृश्य तत्व, आँख-चेतना-तत्व, कान तत्व, श्रव्य तत्व, कान-चेतना-तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना-तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना-तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, शरीर-चेतना-तत्व, मन तत्व, वैचारिक तत्व, मन-चेतना-तत्व।

1 84. उसमें नेत्र तत्व क्या है? वह नेत्र जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदी सतह है, :P: यह एक खाली गाँव है। इसे नेत्र तत्व कहते हैं। (1)

P = अनुच्छेद 156 देखें।

उसमें दृश्य तत्व क्या है? वह दृश्य (वस्तु) जो चार महान तत्वों से उत्पन्न होकर प्रकाशमान प्रतीत होती है; यही दृश्य तत्व है। इसे दृश्य तत्व कहा जाता है। (2)

पी — पैराग्राफ 162 देखें।

इसमें नेत्र-चेतना-तत्व क्या है? नेत्र और दृश्य (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय (अर्थात चेतना), प्रकाश (अर्थात चेतना), मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, नेत्र-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। इसे नेत्र-चेतना-तत्व कहा जाता है। (3)

उसमें कान तत्व क्या है? वह कान जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदनशील सतह है, :P: यह एक खाली गाँव है। इसे कान तत्व कहते हैं। (4)

पी — पैराग्राफ 157 देखें।

उसमें श्रव्य तत्व क्या है? वह श्रव्य (वस्तु) जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, आक्षेपकारी है, :P : यही श्रव्य तत्व है। इसे श्रव्य तत्व कहा जाता है। (5)

P = अनुच्छेद 163 देखें।

इसमें श्रवण-चेतना-तत्व क्या है? कान और श्रव्य (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, श्रवण-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। इसे श्रवण-चेतना-तत्व कहा जाता है। (6)

उसमें नाक तत्व क्या है? [88] वह नाक जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदनशील सतह है, :P: यह एक खाली गाँव है। इसे नाक तत्व कहा जाता है। (7)

P = अनुच्छेद 158 देखें।

उसमें सुगंधित तत्व क्या है? वह सुगंधित (वस्तु) जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, प्रभावकारी होती है, यही सुगंधित तत्व है। इसे सुगंधित तत्व कहा जाता है। (8)

P = अनुच्छेद 164 देखें।

उसमें नाक-चेतना-तत्व क्या है? नाक और गंधयुक्त (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक क्षमता, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और, निर्भर-

उपरोक्त के आधार पर, नाक-चेतना-तत्व। इसे नाक-चेतना-तत्व कहा जाता है। (9)

उसमें जीभ तत्व क्या है? वह जीभ जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदनशील सतह है, :P: यह एक खाली गाँव है। इसे जीभ तत्व कहते हैं। (10)

P = अनुच्छेद 159 देखें।

उसमें स्वाद तत्व क्या है? वह स्वाद तत्व जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर अदृश्य, प्रभावकारी होता है, यही स्वाद तत्व कहलाता है। (11)

P = अनुच्छेद 165 देखें।

इसमें जीभ-चेतना-तत्व क्या है? जीभ और स्वाद (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, जीभ-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। इसे जीभ-चेतना-तत्व कहा जाता है। (12)

उसमें शरीर तत्व क्या है? वह शरीर जो चार महान आवश्यक तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदी सतह है, :P: यह एक खाली गाँव है। इसे शरीर तत्व कहते हैं। (13)

P = अनुच्छेद 160 देखें।

उसमें मूर्त तत्व क्या है? विस्तार का तत्व।

पी: यह मूर्त तत्व है। इसे मूर्त तत्व कहा जाता है। (14)
P = अनुच्छेद 166 देखें।

उसमें शरीर-चेतना-तत्व क्या है? शरीर और मूर्त (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक क्षमता, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और, उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, शरीर-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। (15)

उसमें मन तत्व क्या है? उत्पन्न हुए नेत्र-चेतना तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, मन तत्व। कान-चेतना तत्व। नाक-चेतना तत्व। जीभ-चेतना तत्व। उत्पन्न हुए शरीर-चेतना तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार उत्पन्न होता है।

तत्वों का विश्लेषण

115

मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह; [89] और, उपरोक्त पर निर्भर, मन तत्व; साथ ही (प्रथम ध्यान के समय) सभी अवस्थाओं में चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और, उपरोक्त पर निर्भर, मन तत्व। इसे मन तत्व कहा जाता है। (16)

P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

इसमें वैचारिक तत्व क्या है? भावना का समूह, धारणा का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह और वैचारिक आधार में समाहित वह अदृश्य, अप्रभावित भौतिक गुण; अप्रतिबंधित तत्व।

इसमें भावनाओं का सार क्या है? एकल विभाजन द्वारा भावनाओं का सार: संपर्क से जुड़ा होता है। द्वि विभाजन द्वारा भावनाओं का सार: मूल के साथ होता है; मूल के साथ नहीं होता है। त्रि विभाजन द्वारा भावनाओं का सार: अच्छा होता है; बुरा होता है; न अच्छा न बुरा होता

है। पृष्ठ 1: दस विभाजन द्वारा भावनाओं का सार यही है। पृष्ठ 2: अनेक विभाजन द्वारा भावनाओं का सार यही है। इसे भावनाओं का सार कहते हैं। (1)

P^पैरा 34 देखें। P 2 = पैरा 35-61 सहित देखें।

इसमें बोध का समुच्चय क्या है? एकल विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: संपर्क से जुड़ा होता है। द्विभाजित विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: मूल के साथ होता है; मूल के साथ नहीं होता है। त्रिभाजित विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय: अच्छा होता है; बुरा होता है; न अच्छा न बुरा होता है। इस प्रकार, दसभाजित विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय है। इस प्रकार, अनेकभाजित विभाजन द्वारा बोध का समुच्चय है। इसे बोध का समुच्चय कहा जाता है। (2)

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 62 देखें। पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 63-91 देखें।

उसमें मानसिक सहवर्तीताओं का कुल योग क्या है?

एक प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: चेतना से जुड़ा हुआ है। दो प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: मूल है; मूल नहीं है। तीन प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह: अच्छा है; बुरा है; न अच्छा है न बुरा। :PX : इस प्रकार दस प्रकार के विभाजन द्वारा मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है। :P 2 : इस प्रकार समूह है

7 +

116

विश्लेषण की पुस्तक

मानसिक सहवर्तीताओं का अनेक प्रकार से विभाजन करके। इसे मानसिक सहवर्तीताओं का समूह कहा जाता है। (3)

P^पैरा 92 देखें। P 2 = पैरा 93-120 सहित देखें।

इसमें वैचारिक आधार में समाहित अदृश्य अप्रभावित पदार्थ क्या है? स्त्रीत्व की नियंत्रक क्षमता, :P: भोजन का पोषक तत्व। इसे ही वैचारिक आधार में समाहित अदृश्य अप्रभावित पदार्थ कहा जाता है। (4)

पी = डीएचएस पैराग्राफ 595 देखें।

इसमें अप्रतिबंधित तत्व क्या है? कामवासना का नाश, घृणा का नाश, सुस्ती का नाश। इसे ही अप्रतिबंधित तत्व कहते हैं। इसे ही वैचारिक तत्व कहते हैं।

(5) (17)

उसमें मन-चेतना-तत्व क्या है? उत्पन्न हुए नेत्र-चेतना-तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद मन तत्व उत्पन्न होता है; उत्पन्न हुए मन तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद [90] चेतना, मन, विचार, :PX : और, उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। कान-चेतना-तत्व। :P 2 : नाक-चेतना-तत्व। :P 2 : जीभ-चेतना-तत्व। :P 2 ; उत्पन्न हुए शरीर-चेतना-तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद मन तत्व उत्पन्न होता है; उत्पन्न हुए मन तत्व के समाप्त होने के तुरंत बाद चेतना, मन, विचार, .P 1 : और, उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। मन और वैचारिक (वस्तुओं) पर निर्भर करते हुए चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक क्षमता, चेतना, चेतना का समूह उत्पन्न होता है; और उपरोक्त पर निर्भर करते हुए, मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। इसे मन-चेतना-तत्व कहा जाता है। (18)

pi = अंतिम उदाहरण के रूप में पूरा करें। p 2 = पहले उदाहरण के रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

185. अठारह तत्व हैं: आँख तत्व, दृश्य तत्व, आँख-चेतना तत्व, कान तत्व, श्रव्य तत्व, कान-चेतना तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-

चेतना-तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना-तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, शरीर-चेतना-तत्व, मन तत्व, वैचारिक तत्व, मन-चेतना-तत्व।

186. अठारह तत्वों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण है; कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

187. सोलह तत्व न तो अच्छे हैं और न ही बुरे। दो तत्व कभी अच्छे होते हैं, कभी बुरे; कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे। दस तत्वों को न तो सुखद, न दुखदायी और न ही सुखदायी कहा जा सकता है। पाँच तत्व न तो दुखदायी और न ही सुखदायी होते हैं। देह-चेतना तत्व कभी सुखद और कभी दुखदायी होता है। मन-चेतना तत्व कभी सुखद, कभी दुखदायी और कभी दुखदायी होता है। देह-चेतना तत्व कभी सुखद, कभी दुखदायी और कभी दुखदायी होता है। वैचारिक तत्व कभी सुखद, कभी दुखदायी और कभी दुखदायी होता है। देह-चेतना तत्व कभी सुखद, कभी दुखदायी और कभी दुखदायी होता है।

दस तत्व न तो परिणाम हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करते हैं। [91] पाँच तत्व परिणाम हैं। मन तत्व कभी-कभी परिणाम होता है; कभी-कभी न तो परिणाम होता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। दो तत्व कभी-कभी परिणाम होते हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी-कभी न तो परिणाम होते हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करते हैं।

दस तत्व (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्ति के विषय हैं। श्रव्य तत्व ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्ति का विषय है। पाँच तत्व कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्ति के विषय हैं; कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्ति के विषय हैं। दो तत्व कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे भी आसक्ति के विषय हैं।

आसक्ति; कभी-कभी समझ में नहीं आती, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी समझ में नहीं आती, आसक्ति के विषय नहीं होते।

सोलह तत्व भ्रष्ट नहीं हैं, वे भ्रष्टता के विषय हैं। दो तत्व कभी भ्रष्ट होते हैं, भ्रष्टता के विषय होते हैं; कभी भ्रष्ट नहीं होते, भ्रष्टता के विषय होते हैं; कभी भ्रष्ट नहीं होते, भ्रष्टता के विषय नहीं होते। पंद्रह तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग से रहित हैं। मन तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग दोनों के साथ होता है। मन-चेतना तत्व कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग दोनों के साथ होता है; कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है। वैचारिक तत्व कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग दोनों के साथ होता है; कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह न तो प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ है, न निरंतर अनुप्रयोग के साथ है; न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ है; न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ है; और न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ है। दस तत्व न तो उत्साह, न ही आनंद और न ही उदासीनता के साथ होते हैं। पाँच तत्व उदासीनता के साथ होते हैं। शरीर-चेतना तत्व उत्साह से रहित होता है; कभी-कभी आनंद से युक्त होता है; उदासीनता से रहित होता है; कभी-कभी इसे आनंद से युक्त नहीं कहा जा सकता। दो तत्व कभी-कभी उत्साह से युक्त होते हैं; कभी-कभी आनंद से युक्त होते हैं; कभी-कभी उदासीनता से युक्त होते हैं; कभी-कभी इसे उत्साह, आनंद या उदासीनता से युक्त नहीं कहा जा सकता।

सोलह तत्व ऐसे हैं जिन्हें न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़ा जाना है। दो तत्व कभी-कभी पहले मार्ग से छोड़े जाने हैं; कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़े जाने हैं; कभी-कभी पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़े जाने हैं। सोलह तत्वों के कोई मूल नहीं हैं जिन्हें न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़ा जाना है। दो तत्वों के कभी-कभी मूल होते हैं जिन्हें पहले मार्ग से छोड़ा जाना है; कभी-कभी उनके मूल होते हैं जिन्हें बाद के मार्गों से छोड़ा जाना है; कभी-कभी उनके कोई मूल नहीं होते जिन्हें छोड़ा जाना है।

प्रथम मार्ग से या पश्चात के मार्गों से। सोलह तत्व न तो संचयी हैं और न ही विक्षेपी (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र में)। दो तत्व कभी संचयी होते हैं; कभी विक्षेपी होते हैं; कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपी। सोलह तत्व न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के। दो तत्व कभी सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं; कभी न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के।

सोलह तत्व निम्न हैं। दो तत्व कभी निम्न होते हैं; कभी उदात्त होते हैं; कभी अकल्पनीय होते हैं। [92] दस तत्वों का कोई उद्देश्य नहीं है। छह तत्वों के निम्न उद्देश्य हैं। दो तत्वों के कभी निम्न उद्देश्य होते हैं; कभी उदात्त उद्देश्य होते हैं; कभी अकल्पनीय उद्देश्य होते हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके निम्न, उदात्त या अकल्पनीय उद्देश्य हैं। सोलह तत्व मध्यवर्ती हैं। दो तत्व कभी निम्न होते हैं; कभी मध्यवर्ती होते हैं; कभी श्रेष्ठ होते हैं। सोलह तत्वों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। दो तत्व कभी निश्चित (परिणामी समय) के साथ असत्य (अवस्था) होते हैं; कभी निश्चित (परिणामी समय) के साथ सही (अवस्था) होते हैं; कभी निश्चित (परिणामी समय) के साथ उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता है।

दस तत्वों का कोई कर्म नहीं होता। छह तत्वों के लिए न तो पथ को कर्म, न ही कारण, और न ही प्रमुख कारक कहा जा सकता है। दो तत्वों के लिए कभी-कभी पथ कर्म होता है; कभी-कभी कारण होता है; कभी-कभी प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी पथ को कर्म, कारण या प्रमुख कारक नहीं कहा जा सकता। दस तत्व कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं; उन्हें उत्पन्न न होने के रूप में नहीं कहा जा सकता। श्रव्य तत्व कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; उन्हें उत्पन्न होने के लिए बाध्य नहीं कहा जा सकता। छह तत्व कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं। वैचारिक तत्व कभी-कभी उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं; कभी-कभी उन्हें उत्पन्न, उत्पन्न न होने या उत्पन्न होने के लिए बाध्य नहीं कहा जा सकता।

सत्रह तत्व कभी भूतकाल में होते हैं; कभी भविष्यकाल में; कभी वर्तमानकाल में। वैचारिक तत्व कभी भूतकाल में होते हैं; कभी भविष्यकाल में; कभी वर्तमानकाल में; कभी-कभी इन्हें न तो भूतकाल, न भविष्यकाल और न ही वर्तमानकाल कहा जा सकता है। दस तत्वों के कोई कर्म नहीं होते। छह तत्वों के वर्तमान कर्म होते हैं। दो तत्व...

समय के भूतकाल के कर्म होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल के कर्म होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल के कर्म होते हैं; कभी-कभी न तो भूतकाल के कर्म होते हैं, न भविष्यकाल के कर्म होते हैं और न ही वर्तमानकाल के कर्म होते हैं। (सभी तत्व) कभी-कभी आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाह्य होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं।

दस तत्वों का कोई वस्तु नहीं है। छह तत्वों के कभी आंतरिक वस्तु होते हैं; कभी बाह्य वस्तु होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तु होते हैं। दो तत्वों के कभी आंतरिक वस्तु होते हैं; कभी बाह्य वस्तु होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तु होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि उनके आंतरिक, बाह्य या दोनों वस्तु हैं। दृश्य तत्व दृश्यमान है, और वह आक्षेपकारी है। नौ तत्व अदृश्य हैं, और वह आक्षेपकारी हैं। आठ तत्व अदृश्य हैं, और वह आक्षेपकारी नहीं हैं।

2. दोहे

188. सत्रह तत्व मूल तत्व नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी मूल तत्व होता है; कभी मूल तत्व नहीं होता। सोलह तत्व मूल तत्वों के साथ नहीं होते। दो तत्व कभी मूल तत्वों के साथ होते हैं; कभी मूल तत्वों के साथ नहीं होते। सोलह तत्व मूल तत्वों से संबद्ध नहीं हैं। [93] दो तत्व कभी मूल तत्वों से संबद्ध होते हैं; कभी मूल तत्वों से संबद्ध नहीं होते। सोलह तत्वों को मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूल तत्वों के साथ भी होते हैं या मूल तत्वों के साथ होते हैं लेकिन मूल तत्व नहीं होते। मन-चेतना-तत्व को मूल

तत्व नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूल तत्वों के साथ भी होते हैं; (यह) कभी मूल तत्वों के साथ होता है लेकिन मूल तत्व नहीं होता; कभी-कभी इसे मूल तत्व के साथ भी होता है लेकिन मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक तत्व कभी मूल तत्व होता है और मूल तत्वों के साथ भी होता है; कभी-कभी मूल तत्वों के साथ होता है लेकिन मूल तत्व नहीं होता; कभी-कभी इसे मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए कि वे मूल तत्वों के साथ भी होते हैं या मूल तत्वों के साथ होते हैं लेकिन मूल तत्व नहीं होते। सोलह तत्वों को मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूल तत्वों के साथ भी होते हैं या मूल तत्वों के साथ संबद्ध होते हैं लेकिन मूल तत्व नहीं होते। मन-चेतना-तत्व को मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए, यह मूल तत्व से भी जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी मूल तत्व से जुड़ा होता है लेकिन मूल तत्व नहीं होता; कभी-कभी इसे मूल तत्व से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए, यह मूल तत्व नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी मूल तत्व भी होता है और मूल तत्व से भी जुड़ा होता है; कभी-कभी मूल तत्व से जुड़ा होता है लेकिन मूल तत्व नहीं होता; कभी-कभी इसे मूल तत्व नहीं कहा जाना चाहिए, यह मूल तत्व से भी जुड़ा हुआ है या मूल तत्व से जुड़ा हुआ है लेकिन मूल तत्व नहीं है। सोलह तत्व

न तो मूल तत्व हैं, न ही मूल तत्वों के साथ। मन-चेतना तत्व कभी मूल तत्व नहीं होता, कभी मूल तत्व के साथ होता है; कभी मूल तत्व नहीं होता, कभी मूल तत्व के साथ नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी मूल तत्व नहीं होता, कभी मूल तत्व के साथ होता है; कभी मूल तत्व नहीं होता, कभी मूल तत्व होता है!

मूल के साथ नहीं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, मूल नहीं है, मूल के साथ है या मूल नहीं है, मूल के साथ नहीं है। (1)

सत्रह तत्व कारण सहित हैं। वैचारिक तत्व कभी कारण सहित होता है; कभी कारण रहित होता है। सत्रह तत्व सशर्त हैं। वैचारिक तत्व कभी सशर्त होता है; कभी अनिच्छुक होता है। दृश्य तत्व दृश्य है। सत्रह तत्व दृश्य नहीं हैं। दस तत्व आकस्मिक हैं। आठ तत्व आकस्मिक नहीं हैं। दस तत्व भौतिक हैं। सात तत्व भौतिक नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी भौतिक होता है;

कभी-कभी यह भौतिक नहीं होता। सोलह तत्व सांसारिक हैं। दो तत्व कभी-कभी सांसारिक होते हैं; कभी-कभी अलौकिक होते हैं।

(सभी तत्व) एक तरीके से बोधगम्य हैं; दूसरे तरीके से बोधगम्य नहीं हैं। (2)

सत्रह तत्व अपवित्रता नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी अपवित्रता होते हैं; कभी अपवित्रता नहीं होते। सोलह तत्व अपवित्रताओं के विषय हैं। दो तत्व कभी अपवित्रताओं के विषय होते हैं; कभी अपवित्रताओं के विषय नहीं होते। सोलह तत्व अपवित्रताओं से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी अपवित्रता से संबद्ध होते हैं।

सोलह तत्व कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होते। सोलह तत्वों को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; [94] (वे) दोषों के विषय हैं लेकिन दोष नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी-कभी दोषों का विषय होता है लेकिन दोष नहीं होता; कभी-कभी...

उसे अपवित्रता का विषय नहीं कहा जा सकता, बल्कि वह स्वयं अपवित्रता नहीं है।

वैचारिक तत्व कभी-कभी अपवित्रता भी होता है और अपवित्रताओं का विषय भी; कभी-कभी अपवित्रताओं का विषय होता है लेकिन J नहीं होता।

अपवित्रता; कभी-कभी इसे अपवित्रता नहीं कहा जाना चाहिए, यह भी j

अशुद्धियों का विषय या अशुद्धियों का विषय, लेकिन वह अशुद्धि नहीं है।

सोलह तत्वों को दोष नहीं कहा जाना चाहिए, न ही उन्हें दोष कहा जाना चाहिए, न ही उन्हें दोष कहा जाना चाहिए। मन-चेतना तत्व को दोष नहीं कहा जाना चाहिए, न ही उन्हें दोष कहा जाना चाहिए;

कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़ा होता है, पर अशुद्धि नहीं होता; कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता, पर अशुद्धि नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी अशुद्धि भी होता है और अशुद्धियों से जुड़ा होता है; कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़ा होता है, पर अशुद्धि नहीं होता; कभी-कभी अशुद्धि भी अशुद्धियों से जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता, या अशुद्धियों से जुड़ा हुआ होता है, पर अशुद्धि नहीं होता। सोलह तत्व अशुद्धियों से जुड़े नहीं हैं, अशुद्धियों के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़े नहीं होते, अशुद्धियों के विषय होते हैं; कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़े नहीं होते, अशुद्धियों के विषय नहीं होते; कभी-कभी अशुद्धियों से जुड़े नहीं होते, अशुद्धियों के विषय होते हैं, या अशुद्धियों से जुड़े नहीं होते, अशुद्धियों के विषय नहीं होते। (3)

सत्रह तत्व बंधन नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी बंधन होता है, कभी बंधन नहीं होता। सोलह तत्व बंधनों के विषय हैं। दो तत्व कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी बंधनों के विषय नहीं होते। सोलह तत्व बंधनों से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी बंधनों से संबद्ध होते हैं, कभी बंधनों से संबद्ध नहीं होते। सोलह तत्वों को बंधन और बंधनों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बंधनों के विषय तो हैं, पर बंधन नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी बंधनों का विषय होता है, पर बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधनों का विषय और बंधन नहीं कहा जाना चाहिए। वैचारिक तत्व कभी बंधन और बंधनों का विषय होता है, कभी बंधनों का विषय होता है, पर बंधन नहीं होता। कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह बंधन है, बंधनों का भी विषय है या बंधनों का विषय है लेकिन बंधन नहीं है। सोलह तत्व यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह बंधन है, बंधनों से भी जुड़ा हुआ है या बंधनों से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। मन-चेतना-तत्व यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह बंधन है, बंधनों से भी जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह बंधनों से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। वैचारिक तत्व कभी-कभी बंधन होता है, बंधनों से भी जुड़ा होता है; कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह बंधन है, बंधनों से भी जुड़ा हुआ है या बंधनों से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। सोलह तत्व बंधनों से जुड़े नहीं हैं, बंधनों के विषय हैं, [95] दो तत्व कभी-कभी

बेड़ियों से संबद्ध नहीं हैं, बेड़ियों की वस्तुएँ हैं; कभी-कभी बेड़ियों से संबद्ध नहीं होते, बेड़ियों की वस्तुएँ नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि बेड़ियों से संबद्ध नहीं हैं, बेड़ियों की वस्तुएँ हैं या बेड़ियों से संबद्ध नहीं हैं, बेड़ियों की वस्तुएँ नहीं हैं। (4)

सत्रह तत्व बंधन नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी बंधन होता है, कभी बंधन नहीं होता। सोलह तत्व बंधनों के विषय हैं। दो तत्व कभी बंधनों के विषय होते हैं, कभी बंधनों के विषय नहीं होते। सोलह तत्व बंधनों से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी बंधनों से संबद्ध होते हैं, कभी बंधनों से संबद्ध नहीं होते। सोलह तत्वों को बंधन और बंधनों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बंधनों के विषय तो हैं, लेकिन बंधन नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी बंधनों का विषय होता है, लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन बंधन नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी बंधन और बंधनों का विषय होता है, कभी-कभी बंधनों का विषय होता है, लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे बंधन और बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, या तो बंधन और बंधनों का विषय है, लेकिन बंधन नहीं है। सोलह तत्वों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधन से जुड़े हुए हैं या बंधन से जुड़े हुए हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधन से जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी बंधन से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधन से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। वैचारिक तत्व कभी-कभी बंधन से जुड़ा होता है; कभी-कभी बंधन से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी इसे यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बंधन से जुड़ा हुआ है या बंधन से जुड़ा हुआ है लेकिन बंधन नहीं है। सोलह तत्व बंधन से जुड़े नहीं हैं, बंधन के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी बंधन से जुड़े नहीं होते, बंधन के विषय होते हैं; कभी-कभी बंधन से जुड़े नहीं होते, बंधन के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधन से जुड़े नहीं हैं, बंधन के विषय हैं या बंधन से जुड़े नहीं हैं, बंधन के विषय नहीं हैं। (5) सत्रह तत्व बाढ़ नहीं हैं। :P: बंधन नहीं हैं। :P: बाधाएँ नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी बाधा होता है; कभी बाधा नहीं होता। सोलह तत्व बाधाओं के विषय हैं। दो तत्व कभी बाधाओं के विषय होते हैं; कभी बाधाओं के विषय नहीं होते। सोलह तत्व बाधाओं से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी बाधाओं से संबद्ध होते हैं; कभी संबद्ध नहीं होते। 7 *

124

विश्लेषण की पुस्तक

सोलह तत्वों को बाधाएँ और बाधाओं के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बाधाओं के विषय तो हैं, पर स्वयं बाधाएँ नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को बाधा और बाधाओं का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी-कभी बाधाओं का विषय होता है, पर स्वयं बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधाओं का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, पर स्वयं बाधा नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी बाधा और बाधाओं का विषय होता है; कभी-कभी बाधाओं का विषय होता है, पर स्वयं बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधा और बाधाओं का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, या बाधाओं का विषय तो है, पर स्वयं बाधा नहीं है। सोलह तत्वों को बाधा और बाधाओं से संबद्ध नहीं कहा जाना चाहिए, या बाधाओं से संबद्ध तो है, पर स्वयं बाधा नहीं है। मन-चेतना-तत्व को बाधा नहीं कहा जाना चाहिए, यह बाधाओं से भी जुड़ा हुआ है; (यह) कभी-कभी बाधाओं से जुड़ा होता है लेकिन बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधाओं से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन बाधा नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी बाधा भी होता है और बाधाओं से भी जुड़ा होता है; कभी-कभी बाधाओं से जुड़ा होता है लेकिन बाधा नहीं होता; कभी-कभी इसे बाधाओं से जुड़ा हुआ नहीं कहा जाना चाहिए या बाधाओं से जुड़ा हुआ है लेकिन बाधा नहीं होता। सोलह तत्व बाधाओं से जुड़े नहीं हैं, बाधाओं के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी बाधाओं से जुड़े नहीं होते, बाधाओं के विषय होते हैं; कभी-कभी बाधाओं से जुड़े नहीं होते, बाधाओं के विषय नहीं होते। कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बाधाओं से संबंधित नहीं हैं, बाधाओं के विषय हैं या बाधाओं से संबंधित नहीं हैं, बाधाओं के विषय नहीं हैं। (8)

P = बाधाओं के संबंध में पूर्ण।

सत्रह तत्व विकृतियाँ नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी-कभी विकृति होता है; कभी-कभी विकृति नहीं होता। सोलह तत्व विकृतियों के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी विकृतियों के विषय नहीं होते। सोलह तत्व विकृतियों से संबंधित नहीं हैं। मन-चेतना तत्व कभी-कभी विकृतियों से संबंधित होता है; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी विकृतियों से संबंधित होता है; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होता; कभी-कभी इसे विकृतियों से संबंधित नहीं कहा जा सकता।

या विकृतियों से संबद्ध नहीं। सोलह तत्वों को विकृतियाँ और विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे विकृतियों का विषय तो हैं, पर स्वयं विकृतियाँ नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को विकृती और विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी-कभी विकृतियों का विषय होता है, पर स्वयं विकृती नहीं होता; कभी-कभी इसे विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, पर स्वयं विकृती नहीं होता। वैचारिक तत्व कभी-कभी विकृती और विकृतियों का विषय होता है; कभी-कभी विकृतियों का विषय होता है, पर स्वयं विकृती नहीं होता; कभी-कभी इसे विकृतियों का विषय या विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, पर स्वयं विकृती नहीं होता। सोलह तत्व विकृतियों से संबद्ध नहीं हैं, विकृतियों के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी विकृतियों से संबद्ध नहीं होते, पर विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी विकृतियों से संबद्ध नहीं होते, पर विकृतियों के विषय नहीं होते। कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के विषय हैं या विकृतियों से जुड़े नहीं हैं, विकृतियों के विषय नहीं हैं।

(9)

दस तत्वों का कोई वस्तु नहीं है। सात तत्वों का वस्तु है। वैचारिक तत्व का कभी वस्तु होता है, कभी नहीं होता। सात तत्व चेतना हैं। ग्यारह तत्व चेतना नहीं हैं। सत्रह तत्व मानसिक सहवर्ती नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी मानसिक सहवर्ती होता है, कभी नहीं होता। दस तत्व चेतना से संबद्ध नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी चेतना से संबद्ध होता है, कभी नहीं होता। सात तत्वों को चेतना से संबद्ध या असंबद्ध नहीं कहा जा सकता। दस तत्व चेतना से जुड़े हुए हैं। वैचारिक तत्व कभी चेतना से संबद्ध होता है, कभी नहीं होता। सात तत्वों को चेतना से संबद्ध या असंबद्ध नहीं कहा जा सकता।

बारह तत्व चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते। छह तत्व कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते। [96] सत्रह तत्व चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होते। वैचारिक तत्व कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता। सत्रह तत्व चेतना के साथ नहीं होते। वैचारिक तत्व कभी-कभी चेतना के साथ होता है;

कभी-कभी चेतना के साथ नहीं होता। सत्रह तत्व चेतना से जुड़े नहीं होते, न ही चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। वैचारिक तत्व कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता। सत्रह तत्व चेतना से जुड़े नहीं होते, न ही चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, न ही चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होते हैं। वैचारिक तत्व कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता। सत्रह तत्व चेतना से जुड़े नहीं होते, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होते, और न ही चेतना के साथ होते हैं। वैचारिक तत्व कभी-कभी चेतना से जुड़ा होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है, और चेतना के साथ होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता, और चेतना के साथ नहीं होता। बारह तत्व आंतरिक हैं। छह तत्व बाह्य हैं। (10)

नौ तत्व व्युत्पन्न हैं। आठ तत्व व्युत्पन्न नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी व्युत्पन्न होता है, कभी व्युत्पन्न नहीं होता। दस तत्व (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण किए जाते हैं। श्रव्य तत्व ग्रहण नहीं किया जाता। सात तत्व कभी ग्रहण किए जाते हैं, कभी ग्रहण नहीं किए जाते। सत्रह तत्व आसक्ति नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी आसक्ति होता है, कभी आसक्ति नहीं होता। सोलह तत्व आसक्ति के विषय हैं। दो तत्व कभी आसक्ति के विषय होते हैं, कभी आसक्ति नहीं होते। सोलह तत्व आसक्ति से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी आसक्ति से संबद्ध होते हैं, कभी आसक्ति नहीं होते। सोलह तत्वों को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे आसक्ति के विषय तो हैं, पर स्वयं आसक्ति नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी आसक्ति का विषय तो होता है, पर स्वयं आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी इसे आसक्ति का विषय तो नहीं कहा जाना चाहिए, पर स्वयं आसक्ति नहीं होती। वैचारिक तत्व कभी-कभी आसक्ति भी होता है और आसक्तियों का विषय भी; कभी-कभी आसक्तियों का विषय तो होता है लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह आसक्ति भी है और आसक्तियों का विषय भी है या स्वयं आसक्ति नहीं।

सोलह तत्वों को आसक्ति या आसक्ति से जुड़े हुए लेकिन स्वयं आसक्ति न होने वाले तत्व नहीं कहा जाना चाहिए। मन-चेतना तत्व को आसक्ति या आसक्ति से जुड़ा हुआ तत्व नहीं कहा जाना चाहिए;

तत्वों का विश्लेषण

127

कभी-कभी आसक्ति से जुड़ा होता है, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह आसक्ति से जुड़ा है, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं है। वैचारिक तत्व कभी-कभी आसक्ति भी होता है और आसक्ति से जुड़ा भी होता है; कभी-कभी आसक्ति से जुड़ा होता है, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह आसक्ति भी होता है और आसक्ति से जुड़ा होता है, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होता। सोलह तत्व आसक्ति से जुड़े नहीं हैं, बल्कि आसक्ति के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, लेकिन स्वयं आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी आसक्ति से जुड़े नहीं होते, लेकिन स्वयं आसक्ति के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह आसक्ति से जुड़ा नहीं है, बल्कि आसक्ति के विषय हैं या आसक्ति से जुड़े नहीं हैं, लेकिन स्वयं आसक्ति के विषय नहीं हैं। (11)

सत्रह तत्व भ्रष्टता नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी भ्रष्टता होता है; कभी भ्रष्टता नहीं होता। सोलह तत्व भ्रष्टता के विषय हैं। दो तत्व कभी भ्रष्टता के विषय होते हैं; कभी भ्रष्टता के विषय नहीं होते। सोलह तत्व भ्रष्ट नहीं हैं। दो तत्व कभी भ्रष्ट होते हैं; कभी भ्रष्ट नहीं होते। सोलह तत्व भ्रष्टता से संबद्ध नहीं हैं। दो तत्व कभी भ्रष्टता से संबद्ध होते हैं; कभी भ्रष्टता से संबद्ध नहीं होते। सोलह तत्वों को भ्रष्टता और भ्रष्टता के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे भ्रष्टता के विषय तो हैं, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं हैं। मन-चेतना तत्व को भ्रष्टता और भ्रष्टता का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; यह कभी भ्रष्टता का विषय होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं होता; कभी-कभी इसे भ्रष्टता का

विषय नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं है। वैचारिक तत्व कभी भ्रष्टता और भ्रष्टता का विषय होता है; कभी भ्रष्टता का विषय होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टता नहीं होता। कभी-कभी भ्रष्टाचार को भ्रष्टाचार का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि यह भ्रष्टाचार नहीं है।

सोलह तत्वों को भ्रष्ट नहीं कहा जाना चाहिए, भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट करता है या भ्रष्ट करता है लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं है। मन-चेतना तत्व को भ्रष्ट नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) कभी भ्रष्ट होता है लेकिन भ्रष्ट नहीं होता; कभी भ्रष्ट नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन भ्रष्ट नहीं होता। वैचारिक तत्व

कभी-कभी भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट होता है; कभी-कभी भ्रष्ट होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट है या भ्रष्ट है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। सोलह तत्वों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़े हैं या भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं। [97] मन-चेतना-तत्व को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा है; (यह) कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार से जुड़ा है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। वैचारिक तत्व कभी-कभी भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा है या भ्रष्टाचार से जुड़ा है लेकिन भ्रष्टाचार नहीं है। सोलह तत्व भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के विषय हैं। दो तत्व कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते हैं, भ्रष्टाचार के विषय होते हैं; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते हैं, भ्रष्टाचार के विषय नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के शिकार हैं या भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं, भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं। (12)

सोलह तत्व प्रथम पथ द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं। दो तत्व कभी-कभी प्रथम पथ द्वारा छोड़े जाने हैं; कभी-कभी प्रथम पथ द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं। सोलह तत्व बाद के पथों द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं। दो तत्व कभी-कभी बाद के पथों द्वारा छोड़े जाने हैं; कभी-कभी बाद के पथों द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं। सोलह तत्वों के ऐसे कोई मूल नहीं हैं जिन्हें प्रथम पथ द्वारा छोड़ा जाना है। दो तत्वों के ऐसे मूल हैं जिन्हें प्रथम पथ द्वारा छोड़ा जाना है; कभी-कभी पहले पथ द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं। सोलह तत्वों के ऐसे कोई मूल नहीं हैं जिन्हें बाद के पथों द्वारा छोड़ा जाना है। दो तत्वों के ऐसे मूल हैं जिन्हें बाद के पथों द्वारा छोड़ा जाना है; कभी-कभी बाद के पथों द्वारा नहीं छोड़े जाने हैं।

पंद्रह तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना हैं। मन तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ है। दो तत्व कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं। पंद्रह तत्व निरंतर अनुप्रयोग के बिना हैं। मन तत्व निरंतर अनुप्रयोग के साथ है। दो तत्व कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं;

कभी-कभी निरंतर प्रयास के बिना होते हैं। सोलह तत्व उत्साहहीन होते हैं। दो तत्व कभी-कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी-कभी उत्साहहीन होते हैं। सोलह तत्वों में उत्साह नहीं होता है। दो तत्व कभी-कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी-कभी उत्साह नहीं होता है। पंद्रह तत्वों में आनंद नहीं होता है। तीन तत्व कभी-कभी आनंद से भरे होते हैं; कभी-कभी आनंद नहीं होता है। ग्यारह तत्वों में उदासीनता नहीं होती है। पाँच तत्वों में उदासीनता होती है। दो तत्व कभी-कभी उदासीनता से भरे होते हैं; कभी-कभी उदासीनता नहीं होती है।

इच्छा के तल की विशेषताएँ सोलह तत्व हैं। दो तत्व कभी-कभी इच्छा के तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। सोलह तत्व रूप के तल की विशेषताएँ नहीं हैं। दो तत्व कभी-कभी रूप के तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। सोलह तत्व निराकार तल की विशेषताएँ नहीं हैं। दो तत्व कभी-कभी निराकार तल की विशेषताएँ होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। सोलह तत्व समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। दो तत्व कभी-कभी समाहित होते हैं (अर्थात सांसारिक हैं); कभी-कभी समाहित नहीं होते (अर्थात अलौकिक हैं)। सोलह तत्व मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखते। दो तत्व कभी-कभी मुक्त होने की प्रवृत्ति रखते हैं। सोलह तत्वों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। दो तत्व कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) के होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। सोलह तत्व पार किए जा सकते हैं। दो तत्व कभी-कभी पार किए जा सकते हैं; कभी-कभी पार नहीं किए जा सकते। [98] सोलह तत्व विलाप के कारण के बिना हैं। दो तत्व कभी-कभी विलाप के कारण के साथ होते हैं; कभी-कभी शोक का कोई कारण नहीं होता। (13)

(यह खंड यहीं समाप्त होता है) पूछताछ

तत्वों का विश्लेषण समाप्त हो गया है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 4 पाठ - सच्चा
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा अनुवादित

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अंतर्वस्तु

1सीएच.4 . सत्य का विश्लेषण (सच्चा सं. सत्य)
1.1i. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
1.1.11. दुख का सत्य
1.1.22. कारण की सच्चाई
1.1.33. समाप्ति का सत्य
1.1.44. मार्ग का सत्य
1.22. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
1.33. पूछताछ

सीएच.4 . सत्य का विश्लेषण (सच्चा सं. सत्य)

i. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

189. [99] चार आर्य सत्य हैं: दुख का आर्य सत्य; दुख के कारण का आर्य सत्य; दुख की समाप्ति का आर्य सत्य; दुख की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

1. दुख का सत्य

190. इसमें दुख का आर्य सत्य क्या है? जन्म दुख है; वृद्धावस्था दुख है; मृत्यु दुख है; शोक— विलाप— पीड़ा (शारीरिक)— मानसिक पीड़ा— निराशा दुख है; नापसंद के साथ संगति दुख है; पसंद के से वियोग दुख है; इच्छा की प्राप्ति न होना भी दुख है; संक्षेप में, आसक्तियों के पाँचों समूह दुख हैं।
191. उसमें जन्म क्या है? वह जो किसी विशेष प्राणी के लिए, किसी विशेष श्रेणी के प्राणियों में, जन्म, उत्पत्ति, प्रवेश, पूर्ण अस्तित्व, समुच्चय का प्रकट होना, आधारों का अधिग्रहण है। इसे ही जन्म कहते हैं।
192. इसमें वृद्धावस्था क्या है? किसी विशेष श्रेणी के प्राणी के लिए जो वृद्धावस्था, दुर्बलता, टूटे दांत, सफेद बाल, झुर्रीदार त्वचा, जीवन का क्षय, नियंत्रण करने की क्षमताओं का क्षय है, उसे वृद्धावस्था कहते हैं।
193. इसमें मृत्यु क्या है? किसी भी श्रेणी के प्राणी के लिए जो भी मृत्यु, देहांत, विघटन, लुप्त होना, मरना, जीवनकाल की समाप्ति, समुच्चय का विघटन, शरीर का त्याग, प्राण शक्ति के नियंत्रण का विनाश है, उसे ही मृत्यु कहते हैं।
194. उसमें दुःख क्या है? (वह जो) किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को या किसी अन्य दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को होता है

धन के कारण या बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को या (भ्रष्ट) नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को [100] या गलत दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को या किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति को या किसी न किसी पीड़ादायक चीज से पीड़ित व्यक्ति को दुःख, शोक, दुःख की अवस्था, आंतरिक दुःख, गहरा दुःख, मन की जलन, मानसिक पीड़ा, दुःख का तीर लगता है। इसे दुःख कहते हैं।
195. विलाप क्या है? (वह जो) किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति के लिए, या धन के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति के लिए, या बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति के लिए, या भ्रष्ट नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति के लिए, या गलत दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति के लिए, या किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति के लिए, या किसी न किसी पीड़ादायक बात से पीड़ित व्यक्ति के लिए, रोना, विलाप करना, रोने की क्रिया, विलाप की अवस्था, विलाप की अवस्था, (दुखद) बातें, निरर्थक बातें, रोना, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट की क्रिया, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट की अवस्था है। इसे विलाप कहते हैं।
196. इसमें दर्द क्या है? वह जो शारीरिक बेचैनी, शारीरिक पीड़ा, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभूति है। इसे दर्द कहते हैं।
197. इसमें मानसिक पीड़ा क्या है? वह मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं।
198. निराशा क्या है? (वह) जो किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या धन के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या भ्रष्ट नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या गलत दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति को, या किसी न किसी पीड़ादायक बात से पीड़ित व्यक्ति को, हताशा, निराशा की अवस्था, हताशा की अवस्था कहती है। इसे ही निराशा कहते हैं।
199. इसमें वह पीड़ा क्या है जो नापसंद के साथ संगति से उत्पन्न होती है? इसमें वह सब कुछ शामिल है जो अवांछनीय, अप्रिय या अप्रिय है।

वहाँ (वस्तुएँ) मौजूद हैं, जो दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त और स्पर्शनीय हैं; या वे जो कल्याणकारी, लाभदायी या सुखदायी नहीं हैं, या जो किसी को बंधनों से मुक्त नहीं करना चाहते; वह जो संगति (मिलने-जुलने से), संगति (प्राप्त करने से), मेलजोल, सहयोग करने से उत्पन्न होती है। नापसंदीदा लोगों के साथ संगति को ही कष्ट कहते हैं।

200. इसमें प्रियतम से वियोग का दुख क्या है? इसमें जो भी वांछनीय, सुखद, मनभावन वस्तुएँ हैं, चाहे वे दृश्य हों, श्रव्य हों, सुगंधित हों, स्वादयुक्त हों, स्पर्शनीय हों; या वे जो कल्याण चाहने वाले हों, लाभ चाहने वाले हों, आराम चाहने वाले हों या जो किसी को माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, सहकर्मी, रिश्तेदार या रक्त संबंधियों के बंधनों से मुक्त करना चाहते हों; वह जो (मिलन-जुलन से) परहेज करना, (प्राप्त करने से) परहेज करना, मेल-जोल न रखना, सहयोग न करना है। इसे प्रियतम से वियोग का दुख कहते हैं। [101]
201. इसमें 'इच्छा पूरी न होना भी दुख है' का क्या अर्थ है? जन्म के अधीन प्राणियों में ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है, "यदि हम जन्म के अधीन न होते तो अच्छा होता; जन्म हमारे लिए न आए"; यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होता। यही है, 'इच्छा पूरी न होना भी दुख है'।
वृद्धावस्था से ग्रस्त प्राणियों में। :P: बीमारी से ग्रस्त प्राणियों में।
पी: मृत्यु के अधीन प्राणियों में। :पी: शोक के अधीन प्राणियों में —
शोक, पीड़ा (शारीरिक) - मानसिक पीड़ा - निराशा, ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है, "काश हम शोक, शोक, पीड़ा (शारीरिक) - मानसिक पीड़ा - निराशा के अधीन न होते; काश शोक, शोक, पीड़ा (शारीरिक) - मानसिक पीड़ा - निराशा हम पर न आती"; यह इच्छा मात्र से प्राप्त नहीं होता। यह भी, इच्छा पूरी न होना, दुख है।
P = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

202. इसमें संक्षेप में क्या कहा गया है कि 'पाँच समूह (जिनके विषय के रूप में) आसक्ति दुख का कारण बनते हैं'? वे हैं: भौतिक गुणों का समूह (जिनके विषय के रूप में) आसक्ति, संवेदनाओं का समूह (जिनके विषय के रूप में) आसक्ति, बोध का समूह (जिनके विषय के रूप में) आसक्ति, मानसिक संवेदनाओं का समूह (जिनके विषय के रूप में) आसक्ति, चेतना का समूह (जिनके विषय के रूप में)

सत्य का विश्लेषण

133

आसक्ति के विषय। इन्हें संक्षेप में 'पापों के विषय के रूप में) दुख कहा जाता है।
इसे ही दुख का महान सत्य कहा जाता है।
2. कारण की सच्चाई
203. इसमें दुख के कारण का आर्य सत्य क्या है?
वह लालसा जो पुन: जन्म का कारण बनती है, उसमें तीव्र वासना होती है, वह इस और उस के लिए प्रबल लालसा होती है। उदाहरण के लिए; इंद्रिय सुख की लालसा, जन्म लेने की लालसा, जन्म न लेने की लालसा।
यही लालसा जब उत्पन्न होती है तो कहाँ से उत्पन्न होती है; और जब शांत होती है तो कहाँ शांत होती है? संसार में जो कुछ भी सुंदर या सुखद है, इसी लालसा से उत्पन्न होती है; और इसी से शांत होती है।
संसार में सुंदर, सुखद वस्तु क्या है? संसार में आँख सुंदर, सुखद वस्तु है; इसी में यह लालसा उत्पन्न होती है; इसी में यह स्थिर होती है। संसार में कान। :P: संसार में नाक। संसार में जीभ। संसार में शरीर। संसार में मन सुंदर, सुखद वस्तु है; इसी में यह लालसा उत्पन्न होती है; इसी में यह स्थिर होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
दृश्य जगत में (वस्तुएँ) सुंदर और सुखद हैं; यहीं पर यह लालसा उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है। श्रव्य जगत में (वस्तुएँ) हैं। :P: सुगंधित जगत में (वस्तुएँ) हैं। स्वादमय जगत में (वस्तुएँ) हैं। स्पर्शनीय जगत में (वस्तुएँ) हैं। [102] वैचारिक जगत में (वस्तुएँ) सुंदर और सुखद हैं; यहीं पर यह लालसा उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

संसार में नेत्र चेतना एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें ही यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें ही यह स्थिर होती है। संसार में कान चेतना। :P: संसार में नाक चेतना। संसार में जीभ चेतना। संसार में शरीर चेतना। संसार में मन चेतना एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें ही यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें ही यह स्थिर होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

134

विश्लेषण की पुस्तक

संसार में नेत्र संपर्क एक प्यारी, सुखद वस्तु है; यहीं पर यह लालसा उत्पन्न होती है; यहीं पर यह शांत होती है। संसार में कान का संपर्क। :P: संसार में नाक का संपर्क। संसार में जीभ का संपर्क। संसार में शरीर का संपर्क। संसार में मन का संपर्क एक प्यारी, सुखद वस्तु है; यहीं पर यह लालसा उत्पन्न होती है; यहीं पर यह शांत होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में, नेत्र संपर्क से उत्पन्न अनुभूति एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसी में यह लालसा उत्पन्न होती है; इसी में यह स्थिर होती है। संसार में, कान संपर्क से उत्पन्न अनुभूति; P: संसार में, नाक संपर्क से उत्पन्न अनुभूति; संसार में, जीभ संपर्क से उत्पन्न अनुभूति; संसार में, शरीर संपर्क से उत्पन्न अनुभूति। संसार में, मन संपर्क से उत्पन्न अनुभूति एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसी में यह लालसा उत्पन्न होती है; इसी में यह स्थिर होती है।
P — प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में दृश्य वस्तुओं का अनुभव एक सुंदर, सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होती है। संसार में श्रव्य वस्तुओं का अनुभव।
पी: दुनिया में गंधयुक्त (वस्तुओं) की धारणा। दुनिया में
स्वादमय (वस्तुओं) की अनुभूति। संसार में मूर्त (वस्तुओं) की अनुभूति। संसार में वैचारिक (वस्तुओं) की अनुभूति एक प्यारी, सुखद चीज है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में दृश्य वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होती है। संसार में श्रव्य वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति। :P: संसार में सुगंधित वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति। संसार में स्वादिष्ट वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति। संसार में स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति। संसार में वैचारिक वस्तुओं के प्रति इच्छाशक्ति एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में प्रत्यक्ष (वस्तुओं) की लालसा एक प्यारी, सुखद बात है; इसमें यह लालसा जब उत्पन्न होती है, तब उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होकर स्थिर हो जाती है। संसार में प्रत्यक्ष (वस्तुओं) की लालसा। :P:

सत्य का विश्लेषण

135

संसार सुगंधित वस्तुओं के लिए तरसता है। संसार स्वादमय वस्तुओं के लिए तरसता है। संसार स्पर्शनीय वस्तुओं के लिए तरसता है। संसार में वैचारिक वस्तुओं के लिए तरसना एक प्यारी, सुखद बात है; इसमें यह तरस उत्पन्न होने पर उत्पन्न होता है; इसमें यह स्थिर होने पर स्थिर हो जाता है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में दृश्य वस्तुओं के बारे में सोचना एक सुंदर, सुखद बात है; इसी में यह लालसा उत्पन्न होती है; इसी में यह स्थिर होती है। संसार में श्रव्य वस्तुओं के बारे में सोचना।

पी: दुनिया में गंधयुक्त (वस्तुओं) के बारे में सोचना। दुनिया में
स्वादिष्ट (वस्तुओं) का चिंतन। संसार में मूर्त (वस्तुओं) का चिंतन। संसार में वैचारिक (वस्तुओं) का चिंतन एक प्यारी बात है, सुखद बात है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है; इसमें यह स्थिर होती है। [103]
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में दृश्य वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है। संसार में श्रव्य वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है। संसार में सुगंधित वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है। संसार में स्वादयुक्त वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है। संसार में स्पर्शनीय वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है। संसार में वैचारिक वस्तुओं का अवलोकन करना एक सुंदर और सुखद अनुभव है; इसमें यह लालसा उत्पन्न होती है और शांत हो जाती है।
इसे ही दुख के कारणों का महान सत्य कहा जाता है।
3. समाप्ति का सत्य
204. उसमें दुख के निवारण का आर्य सत्य क्या है? वह जो उस लालसा का पूर्ण वैराग्यपूर्ण निवारण, त्याग, परित्याग, उससे मुक्ति और अनासक्ति है।
जब इस लालसा को त्याग दिया जाता है, तो इसे कहाँ त्यागना चाहिए; जब यह समाप्त हो जाती है, तो यह कहाँ समाप्त होती है? जो कुछ भी हो

136

विश्लेषण की पुस्तक

संसार एक सुंदर वस्तु है, एक सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब रुकना समाप्त हो जाता है।
संसार में सुंदर, सुखद वस्तु क्या है? संसार में आँख सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है। संसार में कान। :P: संसार में नाक। संसार में जीभ। संसार में शरीर। संसार में मन सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
दृश्य जगत में (वस्तु) एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है। श्रव्य जगत में (वस्तु)। :P : सुगंधित जगत में (वस्तु)। स्वादमय जगत में (वस्तु)। स्पर्शनीय जगत में (वस्तु)। वैचारिक जगत में (वस्तु) एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में नेत्र चेतना एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा का त्याग करना चाहिए; इसमें जब यह समाप्त हो जाती है, तब यह समाप्त हो जाती है। संसार में कान चेतना। :P: संसार में नाक चेतना। संसार में जीभ चेतना। संसार में शरीर चेतना। संसार में मन चेतना एक सुंदर, सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा का त्याग करना चाहिए; इसमें जब यह समाप्त हो जाती है, तब यह समाप्त हो जाती है।
P =: प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
संसार में नेत्र संपर्क एक प्यारी, सुखद वस्तु है; यहाँ इस लालसा को त्याग देना चाहिए; यहाँ जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है। संसार में कान का संपर्क। :P : संसार में नाक का संपर्क। संसार में जीभ का संपर्क। संसार में शरीर का संपर्क। संसार में मन का संपर्क एक प्यारी, सुखद वस्तु है; यहाँ इस लालसा को त्याग देना चाहिए; यहाँ जब यह रुक जाती है, तब यह रुक जाती है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
इस संसार में, आँखों के संपर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति एक प्यारी, सुखद अनुभूति है; यहाँ इस लालसा को त्याग देना चाहिए; यहाँ जब यह रुक जाती है, तो रुक जाती है। इस संसार में, कानों के संपर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति। :P: इस संसार में, नाक के संपर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति। इस संसार में, जीभ के संपर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति। इस संसार में,

सत्य का विश्लेषण

137

शारीरिक संपर्क। [104] दुनिया में मन के संपर्क से उत्पन्न भावना एक प्यारी चीज है, सुखद चीज है; इसमें इस लालसा को त्यागने पर त्याग देना चाहिए; इसमें जब रुकना बंद हो जाता है।
P = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
दुनिया में दृश्य वस्तुओं की अनुभूति। दुनिया में श्रव्य वस्तुओं की अनुभूति। दुनिया में सुगंधित वस्तुओं की अनुभूति। दुनिया में स्वादयुक्त वस्तुओं की अनुभूति। दुनिया में स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति। दुनिया में वैचारिक वस्तुओं की अनुभूति एक प्यारी, सुखद चीज है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह समाप्त हो जाती है।
दृश्य वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति होती है। श्रव्य वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति होती है। सुगंधित वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति होती है। स्वादिष्ट वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति होती है। स्पर्शनीय वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति होती है। वैचारिक वस्तुओं के संबंध में संसार में इच्छाशक्ति एक प्यारी वस्तु है, एक सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्यागने पर त्याग देना चाहिए; इसमें जब रुकना समाप्त हो जाता है।
संसार में प्रत्यक्ष वस्तुओं की लालसा, श्रव्य वस्तुओं की लालसा, सुगंधित वस्तुओं की लालसा, स्वादयुक्त वस्तुओं की लालसा, स्पर्शनीय वस्तुओं की लालसा और वैचारिक वस्तुओं की लालसा एक प्यारी, सुखद वस्तु है; इस लालसा को त्यागने पर ही इसका त्याग करना चाहिए; यह लालसा समाप्त हो जाती है।
संसार में दृश्य वस्तुओं के बारे में सोचना। संसार में श्रव्य वस्तुओं के बारे में सोचना। संसार में स्वादमय वस्तुओं के बारे में सोचना। संसार में स्पर्शनीय वस्तुओं के बारे में सोचना। संसार में वैचारिक वस्तुओं के बारे में सोचना एक प्यारी, सुखद बात है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब यह रुक जाती है तो रुक जाती है।
दृश्य वस्तुओं की विश्व परीक्षा में। श्रव्य वस्तुओं की विश्व परीक्षा में। सुगंधित वस्तुओं की विश्व परीक्षा में। स्वादयुक्त वस्तुओं की विश्व परीक्षा में। स्पर्शनीय वस्तुओं की विश्व परीक्षा में। वैचारिक वस्तुओं की विश्व परीक्षा में एक प्यारी वस्तु, एक सुखद वस्तु है; इसमें इस लालसा को त्याग देना चाहिए; इसमें जब रुकना समाप्त हो जाता है।
इसे दुखों के निवारण का आर्य सत्य कहा जाता है।

138

विश्लेषण की पुस्तक

4. मार्ग का सत्य
205. दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य क्या है? केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है। अर्थात्: सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।
इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण का ज्ञान, दुख निवारण के मार्ग का ज्ञान। यही सही दृष्टिकोण कहलाता है।
उसमें सही विचार क्या है? त्याग से जुड़ा विचार, द्वेष से रहित विचार, क्रूरता से रहित विचार। यही सही विचार कहलाता है। [105]
इसमें सही वाणी क्या है? झूठी वाणी से बचना, निंदात्मक वाणी से बचना, कठोर वाणी से बचना, निरर्थक वाणी से बचना। यही सही वाणी कहलाती है।
इसमें सही कर्म क्या है? प्राणियों की हत्या न करना, बिना माँगी वस्तुएँ न लेना, यौन दुराचार से बचना। यही सही कर्म कहलाता है।
इसमें सही आजीविका क्या है? इसमें एक नेक शिष्य, गलत आजीविका को त्यागकर, सही आजीविका से अपना जीवन यापन करता है। यही सही आजीविका कहलाती है।

इसमें उचित प्रयास क्या है? इसमें भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और अजन्मे बुरे भावों को उत्पन्न न होने देने का प्रयास करता है; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और उत्पन्न हुए बुरे भावों को त्यागने का प्रयास करता है; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और अजन्मे अच्छे भावों को उत्पन्न होने देने का प्रयास करता है; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और उत्पन्न हुए अच्छे भावों को स्थिर करने, उन्हें व्यवस्थित करने, उनमें वृद्धि करने, उन्हें परिपक्व बनाने, उनका विकास करने और उन्हें पूर्ण करने का प्रयास करता है। इसे ही उचित प्रयास कहते हैं।
इसमें सही सचेतनता क्या है? इसमें एक भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेतन होकर संसार (अर्थात शरीर) में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है। भावनाओं में। :P: चेतना में। :P: वैचारिक वस्तुओं (अर्थात धारणाओं और मानसिक सहवर्तीताओं के समूह) में वैचारिक वस्तुओं का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेतन होकर लोभ को दूर करता है।

संसार में (अर्थात वैचारिक वस्तुओं में) उदासी और मानसिक पीड़ा को समझना। इसे सही जागरूकता कहते हैं।
P = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
इसमें सही एकाग्रता क्या है? इसमें एक भिक्षु, इंद्रिय सुखों से विरक्त, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त प्रथम ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को त्यागकर वह आंतरिक परिष्कार और मन के उन्नत विकास के साथ, आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना, एकाग्रता से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; वह इच्छा रहित होकर समभाव, सचेत और जागरूक रहता है और शरीर (मानसिक समुच्चय) के माध्यम से आनंद का अनुभव करता है; इसे ही श्रेष्ठजन "समभाव, सचेत आनंद में रहने वाला" कहते हैं; वह तृतीय ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; सुख और दुख का त्याग करके, फिर मानसिक सुख और मानसिक दुख को समाप्त करके वह चतुर्थ ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है (जो) न तो दुख है और न ही सुख (बल्कि) समभाव से उत्पन्न सचेतनता की शुद्धता है। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। [106]
इसे दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य कहा जाता है।
(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
206. चार सत्य ये हैं: - दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग।
इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा। यही दुख का कारण कहलाता है।
इसमें दुख क्या है? शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीनों अच्छे मूल जो दोषों के विषय हैं, शेष अच्छी अवस्थाएँ जो दोषों के विषय हैं, अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।

इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास का त्याग। इसी को दुखों का निवारण कहते हैं।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश

करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान के प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय आठ घटक मार्ग हैं (अर्थात्), सही दृष्टिकोण, सही एकाग्रता।
पीजे = पैरा 205 देखें। पी 2 = मध्यवर्ती पथ घटक।
इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे ही सही दृष्टिकोण कहते हैं।
P = अनुच्छेद 525 देखें।
इसमें सही विचार क्या है? वह जो चिंतन है, जो सोच है, सही विचार, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही विचार कहते हैं।
P = अनुच्छेद 182 देखें।
इसमें सही वाणी क्या है? वह जो चार प्रकार के कुकर्मों से बचती है, उनसे दूर रहती है, उन्हें नहीं करती, उनसे परहेज करती है, उनसे दूर रहती है, उनमें निर्दोष होती है, उनकी सीमा का उल्लंघन नहीं करती, और उन कुकर्मों के मार्ग को नष्ट करती है: सही वाणी, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। यही सही वाणी कहलाती है।
उसमें सही कर्म क्या है? वह कर्म जो तीन गलत शारीरिक कर्मों से बचना, उनसे दूर रहना, उनसे परहेज करना, उनसे परहेज करना, उन्हें न करना, उनसे निर्दोष होना, उनकी सीमा पार न करना, उनके कारण को नष्ट करना है: [107] सही कर्म, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल। इसे सही कर्म कहते हैं।
तो सही आजीविका क्या है? वह जो गलत आजीविका से बचती है, उससे दूर रहती है, उससे परहेज करती है, उसे नहीं करती है, उससे निर्दोष रहती है, उसकी सीमा का उल्लंघन नहीं करती है, और गलत आजीविका के मार्ग को नष्ट कर देती है: सही आजीविका, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल। यही सही आजीविका कहलाती है।
इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही प्रयास कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।

सत्य का विश्लेषण

141

इसमें सही सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, सही सचेतनता है, सचेतनता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही सही सचेतनता कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।
इसमें सही एकाग्रता क्या है? चेतना की स्थिरता, दृढ़ता, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। इसे दुख के निवारण का मार्ग कहते हैं; (साथ ही) दुख के निवारण के मार्ग से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी।
P = अनुच्छेद 220 देखें।

207. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा और शेष विकृतियाँ। यही दुख का कारण कहलाता है।
इसमें दुख क्या है? शेष बुरी अवस्थाएँ, तीन अच्छे मूल तत्व जो दोषों के विषय हैं, शेष अच्छी अवस्थाएँ जो दोषों के विषय हैं, अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसी में दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास और शेष विकारों का त्याग करना। यही दुखों का निवारण कहलाता है।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?
यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय आठ घटक मार्ग होते हैं, अर्थात् सही

दृष्टिकोण, सही एकाग्रता। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है; [108] (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इसी मार्ग से संबंधित हैं जो दुखों के निवारण की ओर ले जाती हैं।
पी 1 = पैरा 205 देखें। पी 2 = मध्यवर्ती पथ घटक।
208. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा, शेष विकृतियाँ और शेष बुरी अवस्थाएँ। यही दुख का कारण कहलाता है।

142

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें दुख क्या है? तीन अच्छे मूल तत्व जो दोषों के विषय हैं, शेष अच्छी अवस्थाएँ जो दोषों के विषय हैं, अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? व्यथा और शेष विकारों तथा शेष बुरी अवस्थाओं का त्याग करना। यही दुखों का निवारण कहलाता है।
इसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने के लिए अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टि का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय आठ घटक मार्ग हैं, अर्थात् सही दृष्टि और सही एकाग्रता। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है; (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी दुखों के निवारण के मार्ग से संबंधित हैं।
पृष्ठ 1 — पैराग्राफ 205 देखें। पृष्ठ 2 = मध्यवर्ती पथ घटक।
209. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा, शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ और वे तीन अच्छे मूल जो विकृतियों के विषय हैं। यही दुख का कारण कहलाता है।
इसमें दुख क्या है? शेष अच्छे गुण जो दोषों के विषय हैं, अच्छे और बुरे गुणों के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास, शेष विकारों, शेष बुरी अवस्थाओं और उन तीन अच्छे मूलों का त्याग करना जो विकारों के कारक हैं। यही दुखों का निवारण कहलाता है।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?
यहाँ उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, ऋणात्मक श्लोक 1: उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय

सत्य का विश्लेषण

143

आठ मुख्य मार्ग हैं, (अर्थात्) सही दृष्टि, सही एकाग्रता। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है।
पी* = पैरा 205 देखें। पी 2 - मध्यवर्ती पथ घटक।
210. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा, शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीन अच्छे मूल जो विकृतियों के विषय हैं और शेष अच्छी अवस्थाएँ जो विकृतियों के विषय हैं। यही दुख का कारण कहलाता है।
उसमें दुख क्या है? अच्छे और बुरे भावों के परिणाम, जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्मों के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास, शेष विकारों, शेष बुरी अवस्थाओं, तीनों अच्छे मूलों (जो विकारों के विषय हैं) और शेष अच्छे अवस्थाओं (जो विकारों के विषय हैं) का त्याग करना ही दुखों का निवारण कहलाता है।

उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?
यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, rP 1: वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय आठ घटक मार्ग होते हैं, (अर्थात्) सही दृष्टिकोण, :P 2: सही एकाग्रता। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है; (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी दुखों के निवारण के मार्ग से संबंधित हैं। [110]
पी 1 = पैरा 205 देखें। पी 2 = मध्यवर्ती पथ घटक।

211. चार सत्य ये हैं: - दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग।
इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा। यही दुख का कारण कहलाता है।
उसमें दुख क्या है? शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीन अच्छे मूल जो दोषों के विषय हैं, शेष अच्छी अवस्थाएँ जो दोषों के विषय हैं, अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, और जो भी निष्क्रिय अवस्थाएँ हैं, वे न तो अच्छी हैं और न ही बुरी।

144 विश्लेषण की पुस्तक
न तो बुरी बातें, न ही कर्मों के परिणाम, और न ही सभी भौतिक गुण। इसे ही दुख कहते हैं।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास का त्याग। इसी को दुखों का निवारण कहते हैं।
इसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और कठिन अभ्यास तथा धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम अवस्था को प्राप्त करके उसमें निवास करता है; उस समय पाँच मुख्य मार्ग हैं, (अर्थात्) सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे ही सही दृष्टिकोण कहते हैं।
P = अनुच्छेद 525 देखें।
इसमें सही विचार क्या है? वह जो चिंतन है, जो सोच है, सही विचार, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही विचार कहते हैं।
P = अनुच्छेद 182 देखें।
इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही प्रयास कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।
इसमें सही सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, सही सचेतनता है, सचेतनता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही सही सचेतनता कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।
इसमें सही एकाग्रता क्या है? वह जो चेतना की स्थिरता है, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। इसे दुख के निवारण का मार्ग कहते हैं; (साथ ही) दुख के निवारण के मार्ग से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी। [Ill]
P = अनुच्छेद 220 देखें।

सत्य का विश्लेषण

145

212. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा, शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीन अच्छे मूल जो विकृतियों के विषय हैं और शेष अच्छी अवस्थाएँ जो विकृतियों के विषय हैं। यही दुख का कारण कहलाता है।

उसमें दुख क्या है? अच्छे और बुरे भावों के परिणाम, जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्मों के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास, शेष विकारों, शेष बुरी अवस्थाओं, तीनों अच्छे मूलों (जो विकारों के विषय हैं) और शेष अच्छे अवस्थाओं (जो विकारों के विषय हैं) का त्याग करना ही दुखों का निवारण कहलाता है।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?
जब कोई भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने के लिए अलौकिक ध्यान विकसित करता है, तब वह गलत दृष्टि का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है और उस ध्यान में स्थिर रहता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान का परिणाम है। उस समय पाँच मुख्य मार्ग हैं: सही दृष्टि, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है; और इसी मार्ग से संबंधित अन्य अवस्थाएँ भी दुखों के निवारण की ओर ले जाती हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
213. चार सत्य ये हैं: - दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग।
इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा। यही दुख का कारण कहलाता है।
इसमें दुख क्या है? शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीनों अच्छे मूल जो दोषों के विषय हैं, शेष अच्छी अवस्थाएँ जो दोषों के विषय हैं, अच्छी और बुरी अवस्थाओं के परिणाम जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्म के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास का त्याग। इसी को दुखों का निवारण कहते हैं।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?

146

विश्लेषण की पुस्तक

यहाँ उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान [112] विकसित करता है, जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके और इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचलितता होती है। इसे दुख के निवारण का मार्ग कहा जाता है।
पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

214. इसमें दुख का कारण क्या है? लालसा, शेष विकृतियाँ, शेष बुरी अवस्थाएँ, तीन अच्छे मूल जो विकृतियों के विषय हैं, और शेष अच्छी अवस्थाएँ जो विकृतियों के विषय हैं। यही दुख का कारण कहलाता है।
उसमें दुख क्या है? अच्छे और बुरे भावों के परिणाम, जो दोषों के विषय हैं, वे सभी निष्क्रिय अवस्थाएँ जो न तो अच्छी हैं, न बुरी हैं और न ही कर्मों के परिणाम हैं, और सभी भौतिक गुण। यही दुख कहलाता है।
इसमें दुखों का निवारण क्या है? भोग-विलास, शेष विकारों, शेष बुरी अवस्थाओं, तीनों अच्छे मूलों (जो विकारों के विषय हैं) और शेष अच्छे अवस्थाओं (जो विकारों के विषय हैं) का त्याग करना ही दुखों का निवारण कहलाता है।
उसमें दुखों के निवारण का मार्ग क्या है?
यहाँ उस समय जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क स्थापित होता है, अविचलितता बनी रहती है। इसे दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है।
पी 1 = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.
(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
3. पूछताछ

215. चार आर्य सत्य हैं: — दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, और दुख के समाधान का आर्य सत्य।

दुखों का निवारण, दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाला आर्य सत्य।
216. चार आर्य सत्यों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कारण है; कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कोई कारण नहीं है?
P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक
217. कारण का सत्य बुरा है। मार्ग का सत्य अच्छा है। निवारण का सत्य न अच्छा है न बुरा। दुख का सत्य कभी अच्छा होता है; कभी बुरा होता है; कभी न अच्छा होता है न बुरा। दो सत्य कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; [113] कभी दुखदायी न सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। निवारण के सत्य को न तो सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न दुखदायी अनुभूति से जुड़ा हुआ; न दुखदायी न सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ। दुख का सत्य कभी सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी दुखदायी अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी दुखदायी न सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी इसे न सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न दुखदायी अनुभूति से जुड़ा हुआ; न दुखदायी न सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ। दो सत्य परिणाम उत्पन्न करते हैं। निवारण का सत्य न तो परिणाम उत्पन्न करता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। दुख का सत्य कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करता है; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न होता है; कभी-कभी न तो परिणाम होता है और न ही परिणाम उत्पन्न होता है। कारण का सत्य (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधहीन होता है, आसक्तियों का विषय होता है। दो सत्य बोधहीन होते हैं, आसक्तियों के विषय नहीं होते। दुख का सत्य कभी-कभी बोधहीन होता है, आसक्तियों का विषय होता है; कभी-कभी बोधहीन होता है, आसक्तियों का विषय होता है।
कारण का सत्य भ्रष्ट है, वह भ्रष्टताओं का विषय है। दो सत्य भ्रष्ट नहीं हैं, वे भ्रष्टताओं के विषय नहीं हैं। दुख का सत्य कभी भ्रष्ट होता है, भ्रष्टताओं का विषय होता है; कभी भ्रष्ट नहीं होता, भ्रष्टताओं का विषय होता है। कारण का सत्य प्रारंभिक अभ्यास के साथ-साथ निरंतर अभ्यास से भी जुड़ा होता है। समाप्ति का सत्य प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना होता है। मार्ग का सत्य 8 +

कभी-कभी यह प्रारंभिक अभ्यास के साथ होता है, कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी-कभी यह प्रारंभिक अभ्यास के बिना होता है, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; कभी-कभी यह प्रारंभिक अभ्यास के बिना होता है, निरंतर अभ्यास के बिना। दुख का सत्य कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होता है, कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी-कभी यह प्रारंभिक अभ्यास के बिना होता है, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; कभी-कभी यह प्रारंभिक अभ्यास के बिना होता है, निरंतर अभ्यास के बिना; या कभी-कभी इसे न तो प्रारंभिक अभ्यास के साथ, न ही निरंतर अभ्यास के साथ, न ही प्रारंभिक अभ्यास के बिना, न ही निरंतर अभ्यास के साथ कहा जाना चाहिए। दो सत्य कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के साथ; कभी-कभी उदासीनता के साथ। समाप्ति के सत्य को न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ कहा जाना चाहिए। दुख का सत्य कभी-कभी उत्साह के साथ होता है; कभी-कभी आनंद के साथ; कभी-कभी उदासीनता के साथ; कभी-कभी इसे न तो उत्साह के साथ, न ही आनंद के साथ, और न ही उदासीनता के साथ कहा जाना चाहिए।
दो सत्य ऐसे हैं जिन्हें न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सकता है। कारण का सत्य कभी प्रथम मार्ग से त्यागा जा सकता है; कभी पश्चात मार्गों से। दुख का सत्य कभी प्रथम मार्ग से त्यागा जा सकता है; कभी पश्चात मार्गों से; कभी-कभी न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से। दो सत्यों का कोई मूल नहीं है जिसे न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। कारण का सत्य कभी मूल रखता है जिसे प्रथम मार्ग से त्यागा जा सकता है; कभी-कभी पश्चात मार्गों से। दुख का सत्य कभी मूल रखता है जिसे प्रथम मार्ग से त्यागा जा सकता है; कभी-कभी पश्चात मार्गों से; कभी-कभी न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से। कारण का सत्य संचयी है (पुनर्जन्म और मृत्यु का निरंतर चक्र)। मार्ग का सत्य विक्षेपी है। [114] समाप्ति का सत्य न तो संचयी है और

न ही विक्षेपी। दुःख का सत्य कभी संचयी होता है; कभी न तो संचयी होता है और न ही विक्षेपी। मार्ग का सत्य सात अलौकिक अवस्थाओं का है। तीन सत्य न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के।

सत्य का विश्लेषण

149

कारण का सत्य निम्न है। दो सत्य असीम हैं। दुख का सत्य कभी निम्न होता है, कभी उदात्त। निःसंतोष के सत्य का कोई उद्देश्य नहीं होता। मार्ग के सत्य का असीम उद्देश्य होता है। कारण के सत्य का कभी निम्न उद्देश्य होता है, कभी उदात्त उद्देश्य होता है; कभी असीम उद्देश्य नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसका कोई निम्न उद्देश्य है या उदात्त उद्देश्य। दुख के सत्य का कभी निम्न उद्देश्य होता है, कभी उदात्त उद्देश्य होता है; कभी असीम उद्देश्य होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसका कोई निम्न उद्देश्य है, उदात्त उद्देश्य है या असीम उद्देश्य है।
कारण का सत्य निम्न है। दो सत्य श्रेष्ठ हैं। दुख का सत्य कभी निम्न होता है, कभी मध्य होता है। समाप्ति के सत्य का कोई निश्चित (परिणाम समय) नहीं होता। मार्ग का सत्य एक सही (अवस्था) है जिसका निश्चित (परिणाम समय) होता है। दो सत्य कभी निश्चित (परिणाम समय) के साथ असत्य (अवस्था) होते हैं, कभी उनका कोई निश्चित (परिणाम समय) नहीं होता। समाप्ति के सत्य का कोई कर्ता नहीं होता। कारण के सत्य के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि मार्ग उसका कर्ता है, मार्ग उसका कारण है या मार्ग उसका प्रमुख कारक है। मार्ग के सत्य का मार्ग उसका कर्ता नहीं है; मार्ग उसका कारण है; कभी मार्ग उसका प्रमुख कारक है; कभी यह नहीं कहा जा सकता कि मार्ग उसका प्रमुख कारक है। दुख के सत्य का मार्ग कभी उसका कर्ता है; मार्ग उसका कारण नहीं है; कभी मार्ग उसका प्रमुख कारक है; कभी यह नहीं कहा जा सकता कि मार्ग उसका कर्ता है या मार्ग उसका प्रमुख कारक है। दो सत्य कभी उत्पन्न होते हैं, कभी उत्पन्न नहीं होते। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। समाप्ति के सत्य को न तो उत्पन्न हुआ, न उत्पन्न न हुआ, और न ही उत्पन्न होने के लिए बाध्य कहा जाना चाहिए। दुख का सत्य कभी उत्पन्न होता है, कभी उत्पन्न नहीं होता, और कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होता है। तीन सत्य कभी भूतकाल के होते हैं, कभी भविष्यकाल के होते हैं, और कभी वर्तमानकाल के होते हैं। समाप्ति के सत्य को न तो भूतकाल का, न भविष्यकाल का, और न ही वर्तमानकाल का कहा जाना चाहिए। समाप्ति के सत्य का कोई कर्ता नहीं होता। मार्ग के सत्य का न तो भूतकाल का, न भविष्यकाल का, और न ही वर्तमानकाल का कर्ता होता है। दो सत्यों का कभी भूतकाल का, कभी भविष्यकाल का, और कभी वर्तमानकाल का कर्ता होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि उनका न भूतकाल का, न भविष्यकाल का, और न ही वर्तमानकाल का कर्ता होता है। [115] समाप्ति का सत्य बाह्य होता है। तीन सत्य कभी आंतरिक होते हैं, कभी बाह्य होते हैं, और कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। समाप्ति के सत्य का कोई कर्ता नहीं होता। मार्ग के सत्य का बाह्य कर्ता होता है। कारण के सत्य का कभी आंतरिक कर्ता होता है;

150

विश्लेषण की पुस्तक

कभी-कभी इसका बाह्य उद्देश्य होता है; कभी-कभी इसका आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य होते हैं। दुःख के सत्य का कभी आंतरिक उद्देश्य होता है; कभी-कभी इसका बाह्य उद्देश्य होता है; कभी-कभी इसका आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसका कोई आंतरिक उद्देश्य है, बाह्य उद्देश्य है या दोनों। तीन सत्य अदृश्य हैं, अप्रभावित हैं। दुःख का सत्य कभी-कभी दृश्यमान होता है, अप्रभावित होता है; कभी-कभी अदृश्य होता है, अप्रभावित होता है।

2. दोहे
218. कारण का सत्य मूल है। निवारण का सत्य मूल नहीं है। दो सत्य कभी-कभी मूल होते हैं; कभी-कभी मूल नहीं होते। दो सत्यों के साथ मूल होते हैं। निवारण के सत्य के साथ मूल नहीं होता। दुख का सत्य कभी-कभी मूल के साथ होता है; कभी-कभी मूल के साथ नहीं होता। दो सत्यों का मूल से संबंध होता है। निवारण का सत्य मूल से संबंधित नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी मूल से संबंधित होता है;

कभी-कभी मूल से संबंधित नहीं होता। कारण का सत्य मूल है और इसके साथ मूल भी होता है। निवारण के सत्य को यह नहीं कहना चाहिए कि वह मूल है और इसके साथ मूल भी है या मूल के साथ है लेकिन मूल नहीं है। मार्ग का सत्य कभी-कभी मूल है और इसके साथ मूल भी होता है; कभी-कभी मूल के साथ मूल भी होता है लेकिन मूल नहीं होता। दुख का सत्य कभी-कभी मूल है और इसके साथ मूल भी होता है; कभी-कभी मूल के साथ मूल भी होता है लेकिन मूल नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहना चाहिए कि वह मूल है और इसके साथ मूल भी है या मूल के साथ है लेकिन मूल नहीं है। कारण का सत्य मूल है और इसके साथ मूल भी होता है। समाप्ति के सत्य को यह नहीं कहना चाहिए कि वह जड़ से भी जुड़ा हुआ है या जड़ से जुड़ा हुआ है लेकिन जड़ नहीं है। मार्ग का सत्य कभी जड़ से जुड़ा हुआ होता है; कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन जड़ नहीं होता। दुख का सत्य कभी जड़ से भी जुड़ा हुआ होता है; कभी जड़ से जुड़ा होता है लेकिन जड़ नहीं होता; कभी-कभी इसे यह नहीं कहना चाहिए कि वह जड़ से भी जुड़ा हुआ है या जड़ से जुड़ा हुआ है लेकिन जड़ नहीं है। समाप्ति का सत्य जड़ नहीं है, जड़ के साथ नहीं है। कारण के सत्य को यह नहीं कहना चाहिए कि वह जड़ नहीं है, जड़ के साथ है या जड़ नहीं है, जड़ के साथ नहीं है। मार्ग का सत्य कभी जड़ नहीं होता, जड़ के साथ होता है; कभी-कभी इसे यह नहीं कहना चाहिए कि वह जड़ नहीं है, जड़ के साथ है (या जड़ नहीं है, जड़ नहीं है)।

सत्य का विश्लेषण

151

(जड़ के साथ)* दुख का सत्य कभी जड़ नहीं होता, जड़ के साथ होता है; कभी जड़ नहीं होता, जड़ के साथ नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि जड़ नहीं है, जड़ के साथ है या जड़ नहीं है, जड़ के साथ नहीं है। (1) [116]
कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।
तीन सत्य कारण सहित हैं। निर्गमन का सत्य कारणहीन है। तीन सत्य सशर्त हैं। निर्गमन का सत्य सशर्त नहीं है। तीन सत्य अदृश्य हैं। दुख का सत्य कभी दृश्यमान होता है; कभी अदृश्य होता है। तीन सत्य अप्रभावित हैं। दुख का सत्य कभी प्रभावित होता है; कभी अप्रभावित होता है। तीन सत्य भौतिक नहीं हैं। दुख का सत्य कभी भौतिक होता है; कभी भौतिक नहीं होता। दो सत्य सांसारिक हैं। दो सत्य अलौकिक हैं। (सभी सत्य) एक मार्ग से ज्ञात होते हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं होते। (2)
कारण का सत्य अपवित्रता है। दो सत्य अपवित्रता नहीं हैं। दुख का सत्य कभी अपवित्रता होता है, कभी अपवित्रता नहीं होता। दो सत्य अपवित्रताओं के विषय हैं। दो सत्य अपवित्रताओं के विषय नहीं हैं। कारण का सत्य अपवित्रताओं से जुड़ा है। दो सत्य अपवित्रताओं से नहीं जुड़े हैं। दुख का सत्य कभी अपवित्रताओं से जुड़ा होता है, कभी अपवित्रताओं से नहीं जुड़ा होता। कारण का सत्य अपवित्रता भी है और अपवित्रताओं का विषय भी। दो सत्यों को अपवित्रता और अपवित्रताओं का विषय या अपवित्रताओं का विषय तो कहा नहीं जाना चाहिए। दुख का सत्य कभी अपवित्रता भी है और अपवित्रताओं का विषय भी; कभी अपवित्रताओं का विषय तो होता है, लेकिन अपवित्रता नहीं। कारण का सत्य अपवित्रता भी है और अपवित्रताओं से जुड़ा है। दो सत्यों को इस प्रकार नहीं कहा जाना चाहिए कि वे दोष से जुड़े हुए हैं या दोष से जुड़े हुए हैं लेकिन दोष नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी दोष से जुड़ा हुआ होता है; कभी-कभी दोष से जुड़ा होता है लेकिन दोष नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे दोष से जुड़े हुए हैं या दोष से जुड़े हुए हैं लेकिन दोष नहीं हैं। दो सत्य न तो दोष से जुड़े हैं और न ही दोष के विषय हैं। कारण के सत्य को इस प्रकार नहीं कहा जाना चाहिए कि वे दोष से जुड़े नहीं हैं, दोष के विषय हैं या दोष से जुड़े नहीं हैं, दोष के विषय नहीं हैं।

152

विश्लेषण की पुस्तक

अपवित्रताओं का। कष्ट का सत्य कभी-कभी अपवित्रताओं से जुड़ा नहीं होता, बल्कि अपवित्रताओं का विषय होता है; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए कि वह अपवित्रताओं से जुड़ा नहीं है, बल्कि अपवित्रताओं का विषय है (या अपवित्रताओं से जुड़ा नहीं है, अपवित्रताओं का विषय नहीं है)।* (3)
कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।

कारण का सत्य बंधन है। दो सत्य बंधन नहीं होते। दुख का सत्य कभी बंधन होता है, कभी बंधन नहीं होता। दो सत्य बंधनों के विषय होते हैं। दो सत्य बंधनों के विषय नहीं होते। कारण का सत्य बंधनों से जुड़ा होता है। दो सत्य बंधनों से नहीं जुड़े होते। दुख का सत्य कभी बंधनों से जुड़ा होता है, कभी बंधनों से नहीं जुड़ा होता। कारण का सत्य बंधन भी है और बंधनों का विषय भी। दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधन भी हैं और बंधनों के विषय भी, या बंधनों के विषय तो हैं लेकिन बंधन नहीं। दुख का सत्य कभी बंधन भी है और बंधनों का विषय भी, कभी बंधनों का विषय तो होता है लेकिन बंधन नहीं। कारण का सत्य बंधन भी है और बंधनों से जुड़ा हुआ भी। [117] दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधन भी हैं और बंधनों से जुड़े हुए भी, या बंधनों से जुड़े हुए तो हैं लेकिन बंधन नहीं। दुःख का सत्य कभी-कभी बंधन से जुड़ा होता है; कभी-कभी बंधन से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह बंधन से जुड़ा है या बंधन से जुड़ा है लेकिन बंधन नहीं है। दो सत्य बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय नहीं होते। कारण के सत्य के बारे में यह कहना उचित नहीं होगा कि यह बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय है या बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है। दुःख का सत्य कभी-कभी बंधनों से जुड़ा नहीं होता, बंधनों का विषय होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय है (या बंधनों से जुड़ा नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है)।* (4)
कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।
कारण का सत्य बंधन है। दो सत्य बंधन नहीं होते। दुख का सत्य कभी बंधन होता है, कभी नहीं। दो सत्य बंधनों के विषय होते हैं। दो सत्य बंधनों के विषय नहीं होते। दो सत्य बंधनों से जुड़े नहीं होते। दो सत्य कभी बंधनों से जुड़े होते हैं, कभी नहीं। कारण का सत्य बंधन भी है और बंधनों का विषय भी। दो सत्य नहीं होने चाहिए।

सत्य का विश्लेषण

153

कहा जाता है कि, बंधन भी बंधनों के विषय होते हैं या बंधनों के विषय होते हैं लेकिन बंधन नहीं होते। दुख का सत्य कभी-कभी बंधन भी बंधनों का विषय होता है; कभी-कभी बंधनों का विषय होता है लेकिन बंधन नहीं होता। कारण का सत्य भी बंधनों से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बंधन भी बंधनों से जुड़ा होता है (या बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता)।* दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बंधन भी बंधनों से जुड़े होते हैं या बंधनों से जुड़े होते हैं लेकिन बंधन नहीं होते। दुख का सत्य कभी-कभी बंधन भी बंधनों से जुड़ा होता है; कभी-कभी बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, बंधन भी बंधनों से जुड़ा होता है या बंधनों से जुड़ा होता है लेकिन बंधन नहीं होता। दो सत्य बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय नहीं होते। दो सत्य कभी-कभी बंधनों से जुड़े नहीं होते, बंधनों के विषय होते हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि, संबंधों से जुड़े नहीं हैं, संबंधों के विषय हैं (या संबंधों से जुड़े नहीं हैं, संबंधों के विषय नहीं हैं)।* (5)
कुछ ग्रंथों में कोष्ठक में दिए गए वाक्यांश शामिल नहीं होते हैं।
कारण का सत्य बाढ़ है। :P : बंधन है। :P : बाधा है। दो सत्य बाधा नहीं हैं। दुख का सत्य कभी बाधा होता है; कभी बाधा नहीं होता। दो सत्य बाधाओं के विषय हैं। दो सत्य बाधाओं के विषय नहीं हैं। कारण का सत्य बाधाओं से जुड़ा है। दो सत्य बाधाओं से नहीं जुड़े हैं। दुख का सत्य कभी बाधाओं से जुड़ा होता है; कभी बाधाओं से नहीं जुड़ा होता। [118] कारण का सत्य बाधा भी है और बाधाओं का विषय भी। दो सत्यों को बाधाएँ भी और बाधाओं के विषय भी या बाधाओं के विषय तो हैं लेकिन बाधा नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए। दुख का सत्य कभी बाधा भी है और बाधाओं का विषय भी; कभी बाधाओं का विषय तो है लेकिन बाधा नहीं है। कारण का सत्य अवरोधों से भी जुड़ा हुआ है। दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे अवरोधों से भी जुड़े हुए हैं या अवरोधों से जुड़े हुए हैं लेकिन अवरोध नहीं हैं। दुख का सत्य कभी अवरोधों से भी जुड़ा हुआ होता है; कभी अवरोधों से जुड़ा होता है लेकिन अवरोध नहीं होता; कभी अवरोधों से भी जुड़ा हुआ होता है या अवरोधों से जुड़ा होता है लेकिन अवरोध नहीं होता, ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए। दो सत्य अवरोधों से जुड़े नहीं होते, अवरोधों के विषय नहीं होते। कारण के सत्य को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह अवरोधों से जुड़ा नहीं है, अवरोधों का विषय है।

154

जो अवरोधों से जुड़ा हो या न जुड़ा हो, वह अवरोधों का विषय नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी अवरोधों से जुड़ा न होकर अवरोधों का विषय होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि अवरोधों से जुड़ा न होकर अवरोधों का विषय है (या अवरोधों से जुड़ा न होकर अवरोधों का विषय नहीं है)।* (8)

P = बाधाओं के संबंध में पूर्ण।

कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।

तीन सत्य विकृति नहीं हैं। दुख का सत्य कभी विकृति होता है, कभी विकृति नहीं होता। दो सत्य विकृतियों के विषय होते हैं। दो सत्य विकृतियों के विषय नहीं होते। दो सत्य विकृतियों से संबंधित नहीं होते। कारण का सत्य कभी विकृतियों से संबंधित होता है, कभी विकृति से संबंधित नहीं होता। दुख का सत्य कभी विकृतियों से संबंधित होता है, कभी विकृति से संबंधित नहीं होता; कभी विकृतियों से संबंधित या कभी नहीं कहा जा सकता। कारण के सत्य को विकृति और विकृतियों का विषय नहीं कहा जा सकता; यह विकृतियों का विषय तो है, पर विकृति नहीं है। दो सत्यों को विकृति और विकृतियों का विषय या विकृतियों का विषय तो नहीं कहा जा सकता, पर वे विकृतियाँ नहीं हैं। दुख का सत्य कभी विकृति और विकृतियों का विषय होता है, कभी विकृतियों का विषय तो होता है, पर विकृति नहीं है। दो सत्य विकृतियों से संबद्ध नहीं हैं, विकृतियों के विषय नहीं हैं। दो सत्य कभी-कभी विकृतियों से संबद्ध नहीं होते, विकृतियों के विषय होते हैं; कभी-कभी ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए कि वे विकृतियों से संबद्ध नहीं हैं, विकृतियों के विषय हैं (या विकृतियों से संबद्ध नहीं हैं, विकृतियों के विषय नहीं हैं)।* (9)

कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।

दो सत्यों के कर्म होते हैं। निःसंयम सत्य का कोई कर्म नहीं होता। दुख सत्य का कभी कर्म होता है, कभी नहीं होता। तीन सत्य चेतना नहीं हैं। दुख सत्य कभी चेतना होता है, कभी नहीं होता। दो सत्य मानसिक सहवर्ती हैं। निःसंयम सत्य मानसिक सहवर्ती नहीं है। दुख सत्य कभी मानसिक सहवर्ती होता है, कभी नहीं होता। दो सत्य [119] हैं

चेतना से संबद्ध। समाप्ति का सत्य चेतना से संबद्ध नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना से संबद्ध होता है; कभी-कभी चेतना से संबद्ध नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह चेतना से संबद्ध है या नहीं। दो सत्य चेतना से जुड़े होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना से संबद्ध नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना से संबद्ध होता है; कभी-कभी चेतना से संबद्ध नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह चेतना से संबद्ध है या नहीं। दो सत्य चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न होता है; कभी-कभी चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। दो सत्य चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता है। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता है। दो सत्य चेतना के साथ होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना के साथ नहीं होता है। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना के साथ होता है; कभी-कभी चेतना के साथ नहीं होता। दो सत्य चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना से जुड़ा हुआ नहीं है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता। दो सत्य चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। समाप्ति का सत्य चेतना से जुड़ा हुआ नहीं है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होता। दो सत्य चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ होते हैं। समाप्ति का सत्य चेतना से जुड़ा हुआ नहीं है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता और चेतना के साथ नहीं होता। दुख का सत्य कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ होता है, चेतना द्वारा उत्पन्न होता है और चेतना के साथ होता है; कभी-कभी चेतना से जुड़ा हुआ नहीं होता, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होता और चेतना के साथ नहीं होता। तीन सत्य बाह्य हैं। दुःख का सत्य कभी आंतरिक होता है, कभी बाह्य। (10)

तीन सत्य प्राप्त नहीं होते। दुख का सत्य कभी प्राप्त होता है, कभी नहीं। तीन सत्य (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधित नहीं होते। दुख का सत्य कभी बोधित होता है;
8 *

156

विश्लेषण की पुस्तक

कभी-कभी समझ में नहीं आता। कारण का सत्य आसक्ति है। दो सत्य आसक्ति नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी आसक्ति होता है; कभी-कभी आसक्ति नहीं होता। दो सत्य आसक्ति के विषय हैं। दो सत्य आसक्ति के विषय नहीं हैं। दो सत्य आसक्ति से संबद्ध नहीं हैं। दो सत्य कभी-कभी आसक्ति से संबद्ध होते हैं; कभी-कभी आसक्ति से संबद्ध नहीं होते। कारण का सत्य आसक्ति भी है और आसक्ति का विषय भी। दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे आसक्ति भी हैं और आसक्ति के विषय भी, या तो आसक्ति के विषय हैं लेकिन आसक्ति नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी आसक्ति भी है और आसक्ति का विषय भी; कभी-कभी आसक्ति का विषय होता है लेकिन आसक्ति नहीं होता। कारण का सत्य कभी-कभी आसक्ति भी है और आसक्ति से संबद्ध भी; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति भी आसक्तियों से जुड़ी होती है (या आसक्तियों से जुड़ी होती है लेकिन आसक्ति नहीं होती)।* दो सत्यों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति भी आसक्तियों से जुड़ी होती है या आसक्तियों से जुड़ी होती है लेकिन आसक्ति नहीं होती। दुख का सत्य कभी-कभी आसक्ति भी आसक्तियों से जुड़ा होता है; कभी-कभी आसक्तियों से जुड़ा होता है लेकिन आसक्ति नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्ति भी आसक्तियों से जुड़ी होती है या आसक्तियों से जुड़ी होती है लेकिन आसक्ति नहीं होती। दो सत्य आसक्तियों से जुड़े नहीं होते, आसक्तियों के विषय नहीं होते। दो सत्य कभी-कभी आसक्तियों से जुड़े नहीं होते, आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि आसक्तियों से जुड़े नहीं होते, आसक्तियों के विषय होते हैं (या आसक्तियों से जुड़े नहीं होते, आसक्तियों के विषय नहीं होते)।* (11)

कुछ ग्रंथों में कोष्ठक में दिए गए वाक्यांश शामिल नहीं होते हैं।

कारण का सत्य भ्रष्टाचार है। दो सत्य भ्रष्टाचार नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचार होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार नहीं होता। दो सत्य भ्रष्टाचार के विषय हैं। दो सत्य भ्रष्टाचार के विषय नहीं हैं। कारण का सत्य भ्रष्ट है। दो सत्य भ्रष्ट नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्ट होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार नहीं होता। कारण का सत्य भ्रष्टाचार से जुड़ा है। दो सत्य भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा नहीं होता। कारण का सत्य भ्रष्टाचार भी है और भ्रष्टाचार का विषय भी।

सत्य का विश्लेषण

157

दो सत्यों को एक ही नहीं कहा जाना चाहिए: या तो भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार का विषय है, या भ्रष्टाचार का विषय तो है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचार भी होता है, और भ्रष्टाचार का विषय भी; कभी-कभी भ्रष्टाचार का विषय तो होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होता। कारण का सत्य भी भ्रष्टाचार है, और भ्रष्ट है। दो सत्यों को एक ही नहीं कहा जाना चाहिए: या तो भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट है, या भ्रष्ट तो है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट होता है, कभी-कभी भ्रष्ट तो होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्ट है, या भ्रष्ट तो है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। कारण का सत्य भी भ्रष्टाचार है, और भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है। दो सत्यों को एक ही नहीं कहा जाना चाहिए: या तो भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है, या भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। दुख का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ होता है, कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ होता है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं होता; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार भी भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है, या भ्रष्टाचार से जुड़ा हुआ है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। दो सत्य भ्रष्टाचारों से संबद्ध नहीं हैं, भ्रष्टाचारों के विषय नहीं हैं। कारण के सत्य को भ्रष्टाचारों से संबद्ध न होने के कारण भ्रष्टाचारों का विषय या भ्रष्टाचारों से संबद्ध न होने के कारण भ्रष्टाचारों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए। पीड़ा का सत्य कभी-कभी भ्रष्टाचारों से

संबद्ध न होने के कारण भ्रष्टाचारों का विषय होता है; कभी-कभी भ्रष्टाचारों से संबद्ध न होने के कारण भ्रष्टाचारों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए (या भ्रष्टाचारों से संबद्ध न होने के कारण भ्रष्टाचारों का विषय नहीं होता)।* (12) [121]
कुछ ग्रंथों में यह कोष्ठक में दिया गया वाक्यांश शामिल नहीं होता है।
दो सत्यों को प्रथम मार्ग से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दो सत्यों को कभी-कभी प्रथम मार्ग से छोड़ना पड़ता है; कभी-कभी नहीं छोड़ा जाता। दो सत्यों को बाद के मार्गों से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। दो सत्यों को कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़ना पड़ता है; कभी-कभी नहीं छोड़ा जाता। दो सत्यों की कोई जड़ नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से छोड़ा जा सके। दो सत्यों की कभी-कभी जड़ होती है जिसे प्रथम मार्ग से छोड़ा जा सके; कभी-कभी नहीं होती है जिसे पहले मार्ग से छोड़ा जा सके। दो सत्यों की कोई जड़ नहीं है जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। दो सत्यों की कभी-कभी जड़ होती है जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके; कभी-कभी नहीं होती है जिसे बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके। सत्य का

158

विश्लेषण की पुस्तक

कारण के साथ प्रारंभिक अभ्यास होता है। समाप्ति का सत्य प्रारंभिक अभ्यास के बिना होता है। दो सत्य कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। कारण का सत्य निरंतर अभ्यास के साथ होता है। समाप्ति का सत्य निरंतर अभ्यास के बिना होता है। दो सत्य कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। समाप्ति का सत्य उत्साहहीन होता है। तीन सत्य कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साहहीन होते हैं। समाप्ति का सत्य उत्साहहीन होता है। तीन सत्य कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साहहीन होते हैं। समाप्ति का सत्य आनंदहीन होता है। तीन सत्य कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंदहीन होते हैं। समाप्ति का सत्य उदासीनता के साथ नहीं होता है। तीन सत्य कभी-कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी-कभी उदासीनता नहीं होती है।
कारण का सत्य इच्छा के तल का लक्षण है। दो सत्य इच्छा के तल के लक्षण नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी इच्छा के तल का लक्षण होता है; कभी-कभी नहीं होता। तीन सत्य रूप के तल के लक्षण नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी रूप के तल का लक्षण होता है; कभी-कभी नहीं होता। तीन सत्य निराकार तल के लक्षण नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी निराकार तल का लक्षण होता है; कभी-कभी नहीं होता। दो सत्य समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। दो सत्य समाहित नहीं हैं (अर्थात अलौकिक हैं)। मार्ग का सत्य मुक्ति की ओर प्रवृत्त होता है। तीन सत्य मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं होते। मार्ग का सत्य स्थिर (परिणामी समय) का होता है। समाप्ति का सत्य स्थिर (परिणामी समय) का नहीं होता। दो सत्य कभी-कभी स्थिर (परिणामी समय) के होते हैं; कभी-कभी स्थिर (परिणामी समय) के नहीं होते। दो सत्य पार किए जा सकते हैं। दो सत्य पार नहीं किए जा सकते। कारण की सच्चाई विलाप का कारण है। दो सत्य विलाप का कारण नहीं हैं। पीड़ा की सच्चाई कभी विलाप का कारण होती है; कभी विलाप का कारण नहीं होती। (13)
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) पूछताछ
सत्यों का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 5 पाठ - इंद्रिय
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा अनुवादित

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 5. नियंत्रण शक्तियों (इंद्रिय) का विश्लेषण

1. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

219. [122] बाईस नियंत्रण शक्तियाँ इस प्रकार हैं: आँख की नियंत्रण शक्ति, कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति, पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति, सुख (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, दर्द (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रण शक्ति, मानसिक दर्द की नियंत्रण शक्ति, उदासीनता की नियंत्रण शक्ति, विश्वास की नियंत्रण शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रण शक्ति, जागरूकता की नियंत्रण शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रण शक्ति, ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, 'मैं अज्ञात को जान रहा हूँ' की नियंत्रण शक्ति, और पूर्ण रूप से जानने वाले की नियंत्रण शक्ति। 3

1. इसके बाद इसे 'प्रारंभिक ज्ञानोदय' कहा जाएगा, अर्थात् धारा-प्राप्ति का मार्ग।
2 इसके बाद इसे 'मध्यवर्ती ज्ञानोदय' कहा जाएगा, अर्थात् धारा-प्राप्ति के फल से लेकर अरहंतत्व के मार्ग तक।
3. इसके बाद इसे 'अंतिम ज्ञानोदय' कहा जाएगा, अर्थात् अरहंतत्व का फल।

220. इसमें आँख की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह आँख जो चार महान तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदी सतह है, : P : यह एक खाली गाँव है। इसे आँख की नियंत्रक शक्ति कहते हैं। (1)

P = अनुच्छेद 156 देखें।

उसमें कान की नियंत्रक शक्ति क्या है? : पृष्ठ 1 : नाक की नियंत्रक शक्ति क्या है? : पृष्ठ 1 : जीभ की नियंत्रक शक्ति क्या है? : पृष्ठ 1 : शरीर की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह शरीर जो चार महान तत्वों से उत्पन्न होकर संवेदी सतह है, : पृष्ठ 2 : यह एक खाली गाँव है। इसे शरीर की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (5)

P* = उचित रूप से भरें। P 2 = पैराग्राफ 160 देखें।

उसमें मन की नियंत्रक शक्ति क्या है?

मन की एकल विभाजन विधि: संपर्क से संबंधित है। मन की नियंत्रक विधि: मूल तत्व से संबंधित है; मूल तत्व से संबंधित नहीं है। मन की त्रिविभाजन विधि: अच्छी है; बुरी है; न अच्छी है न बुरी है। मन की चौविभाजन विधि: इच्छा तल की विशेषता है; रूप तल की विशेषता है; निराकार तल की विशेषता है; इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् अलौकिक है)। मन की पंचविभाजन विधि: सुख (शारीरिक) की नियंत्रक विधि से संबंधित है; दुख (शारीरिक) की नियंत्रक विधि से संबंधित है; मानसिक सुख की नियंत्रक विधि से संबंधित है; मानसिक दुख की नियंत्रक विधि से संबंधित है; उदासीनता की नियंत्रक विधि से संबंधित है। मन की छह विभाजन विधि: नेत्र चेतना, मन चेतना। इस प्रकार मन की छह विभाजन विधि द्वारा नियंत्रित विधि है।

P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

मन की नियंत्रण क्षमता को सात भागों में विभाजित किया गया है: नेत्र चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार मन की नियंत्रण क्षमता को सात भागों में विभाजित किया गया है।

P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

मन की नियंत्रक शक्ति का आठ भागों में विभाजन इस प्रकार है: नेत्र चेतना; सुख और दुख से ग्रस्त देह चेतना; मन तत्व; मन-चेतना तत्व। इस प्रकार मन की नियंत्रक शक्ति का आठ भागों में विभाजन होता है।

P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

मन की नियंत्रण क्षमता को नौ भागों में विभाजित किया गया है: नेत्र चेतना; शरीर चेतना; मन तत्व; मन-चेतना-तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार मन की नियंत्रण क्षमता को नौ भागों में विभाजित किया गया है।

P = मध्यवर्ती इंद्रियां।

मन की नियंत्रक शक्ति को दस भागों में विभाजित किया गया है: नेत्र चेतना; : पृष्ठ 1 : सुख और दुख से युक्त देह चेतना; मन तत्व; मन-चेतना-तत्व जो अच्छा है, जो बुरा है, जो न अच्छा है न बुरा। इस प्रकार मन की नियंत्रक शक्ति का निर्धारण होता है।

161

दस गुना विभाजन। :P 2 : इस प्रकार मन की नियंत्रक क्षमता को अनेक भागों में विभाजित किया जाता है। इसे मन की नियंत्रक क्षमता कहा जाता है। (6)

पृष्ठ 1 = मध्यवर्ती अर्थ। पृष्ठ 2 = अनुच्छेद 122-149 देखें।

(7) स्त्रीत्व का नियंत्रक बल क्या है? स्त्री में जो स्त्री रूप, स्त्री लक्षण, स्त्री व्यवहार, स्त्री आचरण, स्त्रीत्व, स्त्रीत्व है। इसे स्त्रीत्व का नियंत्रक बल कहा जाता है। (7) पुरुषत्व का नियंत्रक बल क्या है? पुरुष में जो पुरुष रूप, पुरुष लक्षण, पुरुष व्यवहार, [123] पुरुष आचरण, पुरुषत्व, पुरुषत्व है। इसे पुरुषत्व का नियंत्रक बल कहा जाता है। (8) प्राणिक सिद्धांत का नियंत्रक बल क्या है? प्राणिक सिद्धांत का नियंत्रक बल दो भागों में विभाजित है: भौतिक प्राणिक सिद्धांत का नियंत्रक बल; अभौतिक प्राणिक सिद्धांत का नियंत्रक बल।

इसमें भौतिक प्राणिक शक्ति का नियंत्रक कौन है? इन भौतिक वस्तुओं में जो जीवन, स्थिरता, निरंतरता, पालन, प्रगति, निरंतरता, संरक्षण, प्राणिक शक्ति और प्राणिक शक्ति का नियंत्रक है, वही भौतिक प्राणिक शक्ति का नियंत्रक कहलाता है।

उसमें, अभौतिक प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति क्या है? इन अभौतिक अवस्थाओं में जो जीवन, स्थिरता, निरंतरता, पालन, प्रगति, निरंतरता, संरक्षण, प्राणिक सिद्धांत, प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति है, उसे अभौतिक प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। इसे प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (9)

इसमें आनंद का नियंत्रक कौन सा है? वह जो शारीरिक सहजता है; शारीरिक सुख; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति। इसे ही आनंद का नियंत्रक कहा जाता है। (10)

इसमें दर्द को नियंत्रित करने वाली शक्ति क्या है? वह जो शारीरिक बेचैनी है; शारीरिक दर्द है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव है; शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभूति है। इसे दर्द को नियंत्रित करने वाली शक्ति कहा जाता है। (11)

उसमें मानसिक सुख का नियंत्रक कौन सा है? वह जो मानसिक सहजता है; मानसिक सुख; मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव; मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति। इसे ही मानसिक सुख का नियंत्रक कहा जाता है। (12)

162

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें मानसिक पीड़ा को नियंत्रित करने वाली शक्ति क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी है; मानसिक पीड़ा; मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव; मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना। इसे मानसिक पीड़ा को नियंत्रित करने वाली शक्ति कहा जाता है। (13)

इसमें उदासीनता की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह जो न तो मानसिक सुख है और न ही बेचैनी; न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति; न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे उदासीनता की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (14)

उसमें विश्वास की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह जो विश्वास है, आत्मविश्वास होना, भरोसा, अंतर्निहित आस्था, विश्वास, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की सामर्थ्य। इसे ही विश्वास की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (15)

उसमें ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा, परिश्रम, प्रयास, आकांक्षा, मेहनत, उत्साह, दृढ़ता, शक्ति, स्थिरता, अटूट प्रयास, इच्छा का त्याग न करना, कार्य का त्याग न करना, कार्य पर दृढ़ पकड़, [124] ऊर्जा, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की शक्ति को जागृत करती है। इसे ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (16)

इसमें, ध्यान की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह जो ध्यान है, निरंतर ध्यान, स्मरण, सजगता, याद रखने की क्रिया, ध्यान में रखना, सतहीपन से परे होना, विस्मृति से दूर रहना, ध्यान, ध्यान की नियंत्रक शक्ति, ध्यान की सामर्थ्य, सही ध्यान। इसे ही ध्यान की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (17)

इसमें एकाग्रता को नियंत्रित करने वाली शक्ति क्या है? वह जो स्थिरता, दृढ़ता, चेतना की स्थिरता है; ध्यान न भटकना, अविचलित रहना, मानसिक अविचलितता, शांति, एकाग्रता को नियंत्रित करने वाली शक्ति, एकाग्रता की क्षमता, सही एकाग्रता। इसे ही एकाग्रता को नियंत्रित करने वाली शक्ति कहते हैं।
(18)
उसमें बुद्धि की नियंत्रक शक्ति क्या है? वह जो बुद्धि, समझ, : P : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे ही बुद्धि की नियंत्रक शक्ति कहा जाता है। (19)
P = अनुच्छेद 525 देखें।
इसमें प्रारंभिक ज्ञानोदय को नियंत्रित करने वाली शक्ति कौन सी है?
जो उन अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए आवश्यक है जो ज्ञात नहीं हैं, समझी नहीं जा सकती हैं, प्राप्त नहीं की जा सकती हैं, पहचानी नहीं जा सकती हैं, अनुभव नहीं की जा सकती हैं, वही ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज है।

सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान-कारक, पथ घटक, पथ में शामिल। इसे प्रारंभिक ज्ञान का नियंत्रक बल कहा जाता है। (20)
P = अनुच्छेद 525 देखें।
उसमें मध्यवर्ती ज्ञानोदय का नियंत्रक तत्व क्या है? वह तत्व जो ज्ञात, बोधित, प्राप्त, पहचाने और अनुभव किए गए उन अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे मध्यवर्ती ज्ञानोदय का नियंत्रक तत्व कहा जाता है। (21)
पी — पैराग्राफ 525 देखें।
इसमें अंतिम ज्ञानोदय को नियंत्रित करने वाली शक्ति कौन सी है?
जो पूर्णतः ज्ञात, बोधित, प्राप्त, विवेचित और साकार अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए आवश्यक है, वह है ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही अंतिम ज्ञानोदय का नियंत्रक तत्व कहा जाता है। (22)
P = अनुच्छेद 525 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
2. पूछताछ
221. बाईस नियंत्रण शक्तियाँ हैं: आँख की नियंत्रण शक्ति, कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति, पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रण शक्ति, सुख (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, पीड़ा (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रण शक्ति, मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति, उदासीनता की नियंत्रण शक्ति, आत्मविश्वास की नियंत्रण शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रण शक्ति, जागरूकता की नियंत्रण शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रण शक्ति, [125] ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, अंतिम ज्ञान की नियंत्रण शक्ति।
222. बाईस नियंत्रण शक्तियों में से कितनी शक्तियाँ अच्छी हैं?

कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? : P : कितने शोक करने योग्य हैं; कितने शोक करने योग्य नहीं हैं?
P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

223. दस नियंत्रण शक्तियाँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति बुरी है। प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रण शक्ति अच्छी है। चार नियंत्रण शक्तियाँ कभी अच्छी होती हैं; कभी-कभी न अच्छी होती हैं और न बुरी। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी अच्छी होती हैं; कभी बुरी होती हैं; कभी-कभी न अच्छी होती हैं और न बुरी।

बारह नियंत्रणकारी शक्तियों को न तो सुखद अनुभूति से, न ही पीड़ादायक अनुभूति से, और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित कहा जा सकता है। छह नियंत्रणकारी शक्तियां कभी-कभी सुखद अनुभूति से संबंधित होती हैं; कभी-कभी पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित होती हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियां कभी-कभी सुखद अनुभूति से संबंधित होती हैं; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित होती हैं; और कभी-कभी पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित होती हैं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रणकारी शक्ति कभी-कभी सुखद अनुभूति से संबंधित होती है; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से संबंधित होती है; कभी-कभी पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित होती है; कभी-कभी को न तो सुखद अनुभूति से, न पीड़ादायक अनुभूति से, और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से संबंधित कहा जा सकता है।

सात नियंत्रण शक्तियाँ न तो परिणाम उत्पन्न करती हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करती हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ परिणाम उत्पन्न करती हैं। दो नियंत्रण शक्तियाँ परिणाम उत्पन्न करती हैं। मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रण शक्ति कभी परिणाम उत्पन्न करती है; कभी परिणाम उत्पन्न करती है। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं; कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं; कभी-कभी न तो परिणाम उत्पन्न करती हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करती हैं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधित होती हैं, आसक्ति का विषय होती हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति बोधित नहीं होती, आसक्ति का विषय होती है। तीन नियंत्रण शक्तियाँ बोधित नहीं होतीं, आसक्ति का विषय नहीं होतीं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी बोधित होती हैं, आसक्ति का विषय होती हैं; कभी बोधित नहीं होतीं, आसक्ति का विषय होती हैं; कभी बोधित नहीं होतीं, आसक्ति का विषय नहीं होतीं।

नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण

165

नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्ट नहीं हैं, वे भ्रष्टताओं के अधीन हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति भ्रष्ट है, वह भ्रष्टताओं का अधीन है। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्ट नहीं हैं, वे भ्रष्टताओं के अधीन नहीं हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्ट नहीं होतीं, भ्रष्टताओं का अधीन होती हैं; कभी-कभी भ्रष्ट नहीं होतीं, भ्रष्टताओं का अधीन नहीं होतीं। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्ट होती हैं, भ्रष्टताओं का अधीन होती हैं; कभी-कभी भ्रष्ट नहीं होतीं, भ्रष्टताओं का अधीन होती हैं; कभी-कभी भ्रष्ट नहीं होतीं, भ्रष्टताओं का अधीन नहीं होतीं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ है। उदासीनता की नियंत्रणकारी शक्ति कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ होती है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होती है। ग्यारह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ होती हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होती हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होती हैं।

ग्यारह नियंत्रणकारी शक्तियों को न तो उत्साह से युक्त, न ही आनंद से युक्त और न ही उदासीनता से युक्त कहा जा सकता है। मानसिक आनंद की नियंत्रणकारी शक्ति कभी उत्साह से युक्त होती है; कभी आनंद से युक्त नहीं होती; कभी उदासीनता से युक्त नहीं होती; [126] कभी-कभी को उत्साह से युक्त नहीं कहा जा सकता। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी उत्साह से युक्त होती हैं; कभी आनंद से युक्त होती हैं; कभी उदासीनता से युक्त होती हैं। चार नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी उत्साह से युक्त होती हैं; कभी आनंद से युक्त होती हैं; कभी उदासीनता से युक्त होती हैं; कभी-कभी को न तो उत्साह से युक्त, न आनंद से युक्त और न ही उदासीनता से युक्त कहा जा सकता है।

पंद्रह नियंत्रक शक्तियों को न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए। मेप्टल दर्द की नियंत्रक शक्ति को कभी-कभी पहले मार्ग से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए। छह नियंत्रक शक्तियों को कभी-कभी पहले मार्ग

से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए; कभी-कभी उन्हें न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए। पंद्रह नियंत्रक शक्तियों का कोई मूल नहीं है जिसे छोड़ा जा सके।

166

विश्लेषण की पुस्तक

या तो पहले मार्ग से या बाद के मार्गों से। मानसिक पीड़ा को नियंत्रित करने वाली शक्ति कभी-कभी पहले मार्ग से त्याग दी जाती है; कभी-कभी बाद के मार्गों से त्याग दी जाती है। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी पहले मार्ग से त्याग दी जाती हैं; कभी-कभी बाद के मार्गों से त्याग दी जाती हैं; कभी-कभी न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से त्याग दी जाती हैं।

दस नियंत्रक शक्तियाँ न तो संचयी हैं और न ही विक्षेपी (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र की)। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति संचयी है। प्रारंभिक ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति विक्षेपी है। मध्यवर्ती ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति कभी-कभी विक्षेपी होती है; कभी-कभी न तो संचयी होती है और न ही विक्षेपी। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी संचयी होती हैं; कभी-कभी विक्षेपी होती हैं; कभी-कभी न तो संचयी होती हैं और न ही विक्षेपी। दस नियंत्रक शक्तियाँ न तो सात अलौकिक अवस्थाओं की हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था की। दो नियंत्रक शक्तियाँ सात अलौकिक अवस्थाओं की हैं। अंतिम ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति अंतिम अलौकिक अवस्था की है। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी सात अलौकिक अवस्थाओं की होती हैं; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था की होती हैं; कभी-कभी न तो सात अलौकिक अवस्थाओं की होती हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था की।

दस नियंत्रण शक्तियाँ निम्न स्तर की हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ असीम हैं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी निम्न स्तर की होती हैं; कभी उदात्त होती हैं; कभी असीम होती हैं। सात नियंत्रण शक्तियों का कोई लक्ष्य नहीं होता। दो नियंत्रण शक्तियों का निम्न स्तर का लक्ष्य होता है। तीन नियंत्रण शक्तियों का असीम स्तर का लक्ष्य होता है। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति का कभी निम्न स्तर का लक्ष्य होता है; कभी उदात्त लक्ष्य होता है; असीम लक्ष्य नहीं होता; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसका निम्न स्तर का या उदात्त लक्ष्य है। नौ नियंत्रण शक्तियों का कभी निम्न स्तर का लक्ष्य होता है; कभी उदात्त लक्ष्य होता है; कभी-कभी असीम लक्ष्य होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसका निम्न स्तर का, उदात्त लक्ष्य है या असीम लक्ष्य है।

नौ नियंत्रण शक्तियाँ मध्यवर्ती हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति निम्न स्तर की है। तीन नियंत्रण शक्तियाँ श्रेष्ठ हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ कभी मध्यवर्ती होती हैं, कभी श्रेष्ठ होती हैं। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी निम्न होती हैं, कभी मध्यवर्ती होती हैं, कभी श्रेष्ठ होती हैं। दस नियंत्रण शक्तियों का कोई निश्चित (परिणाम समय) नहीं है। प्रारंभिक ज्ञानोदय की नियंत्रण शक्ति एक निश्चित (परिणाम समय) वाली सही (अवस्था) है।

नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण

167

चार नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी सही (परिणामी समय वाली) अवस्थाएँ होती हैं; कभी-कभी उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति कभी-कभी गलत (परिणामी समय वाली) अवस्था होती है; [127] कभी-कभी उसका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी गलत (परिणामी समय वाली) अवस्थाएँ होती हैं; कभी-कभी सही (परिणामी समय वाली) अवस्थाएँ होती हैं; कभी-कभी उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। सात नियंत्रक शक्तियों का कोई लक्ष्य नहीं होता। चार नियंत्रक शक्तियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका लक्ष्य, कारण या प्रभावक कारक पथ है। प्रारंभिक ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति का लक्ष्य पथ नहीं होता; (कभी-कभी)* इसका कारण पथ होता है; कभी-कभी इसका प्रभावक कारक पथ होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि इसका कारण या प्रभावक कारक पथ है। मध्यवर्ती ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति का लक्ष्य पथ नहीं होता; कभी-कभी इसका कारण पथ होता है; कभी-कभी पथ प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि पथ इसका कारण है या प्रमुख कारक है। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी पथ को अपना लक्ष्य मानती हैं; कभी-

कभी पथ को अपना कारण मानती हैं; कभी-कभी पथ को अपना प्रमुख कारक मानती हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि पथ न तो लक्ष्य है, न ही कारण है और न ही प्रमुख कारक है।
कुछ ग्रंथों में ये कोष्ठक में दिए गए शब्द शामिल नहीं होते हैं।
दस नियंत्रण शक्तियाँ कभी जागृत होती हैं; कभी जागृत होना अनिवार्य होता है; इन्हें निष्क्रिय नहीं कहा जाना चाहिए। दो नियंत्रण शक्तियाँ कभी जागृत होती हैं; कभी जागृत नहीं होतीं; इन्हें जागृत होना अनिवार्य नहीं कहा जाना चाहिए। दस नियंत्रण शक्तियाँ कभी जागृत होती हैं; कभी जागृत नहीं होतीं; कभी जागृत होना अनिवार्य होता है। (सभी नियंत्रण शक्तियाँ) कभी भूतकाल होती हैं; कभी भविष्यकाल होती हैं; कभी वर्तमानकाल होती हैं। सात नियंत्रण शक्तियों का कोई कर्ता नहीं होता। दो नियंत्रण शक्तियों का वर्तमान कर्ता होता है। तीन नियंत्रण शक्तियों का भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान कर्ता नहीं कहा जाना चाहिए। दस नियंत्रण शक्तियों का कभी भूतकाल, कभी भविष्यकाल और कभी वर्तमान कर्ता होता है; कभी भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान कर्ता नहीं कहा जाना चाहिए। (सभी नियंत्रण शक्तियाँ) कभी आंतरिक होती हैं; कभी बाह्य होती हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होती हैं। सात नियंत्रण शक्तियों का कोई कर्ता नहीं होता। तीन नियंत्रण शक्तियों का बाह्य कर्ता होता है।

168

विश्लेषण की पुस्तक

चार नियंत्रणकारी शक्तियों के कभी आंतरिक लक्ष्य होते हैं; कभी बाह्य लक्ष्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों लक्ष्य होते हैं। आठ नियंत्रणकारी शक्तियों के कभी आंतरिक लक्ष्य होते हैं; कभी बाह्य लक्ष्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों लक्ष्य होते हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि उनके आंतरिक, बाह्य या दोनों लक्ष्य होते हैं। पाँच नियंत्रणकारी शक्तियाँ अदृश्य होती हैं, वे प्रभावकारी होती हैं। सत्रह नियंत्रणकारी शक्तियाँ अदृश्य होती हैं, वे प्रभावकारी नहीं होती हैं।

2. दोहे
224. चार नियंत्रक शक्तियाँ मूल हैं। अठारह नियंत्रक शक्तियाँ मूल नहीं हैं। सात नियंत्रक शक्तियाँ मूलों के साथ होती हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ मूलों के साथ नहीं होती हैं। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी मूलों के साथ होती हैं; कभी-कभी मूलों के साथ नहीं होती हैं। सात नियंत्रक शक्तियाँ मूलों से संबद्ध हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ मूलों से संबद्ध नहीं हैं। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी मूलों से संबद्ध होती हैं; कभी-कभी मूलों से संबद्ध नहीं होती हैं। चार नियंत्रक शक्तियाँ मूल भी हैं और मूलों के साथ भी होती हैं। नौ नियंत्रक शक्तियों को मूल भी नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूलों के साथ भी होती हैं या मूलों के साथ होती हैं लेकिन मूल नहीं हैं। तीन नियंत्रक शक्तियों को मूल भी नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूलों के साथ भी होती हैं; (वे) मूलों के साथ होती हैं लेकिन मूल नहीं हैं। छह नियंत्रक शक्तियों को मूल भी नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूलों के साथ भी होती हैं लेकिन मूल नहीं हैं; (वे) कभी-कभी मूलों के साथ होती हैं लेकिन मूल नहीं होती हैं; कभी-कभी उन्हें मूलों के साथ भी नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे मूलों के साथ होती हैं लेकिन मूल नहीं हैं।
चार नियंत्रक शक्तियाँ जड़ से भी जुड़ी होती हैं। [128] नौ नियंत्रक शक्तियों को जड़ से भी जुड़ी हुई या जड़ से जुड़ी हुई लेकिन स्वयं जड़ न होने वाली नहीं कहा जाना चाहिए। तीन नियंत्रक शक्तियों को जड़ से भी जुड़ी हुई नहीं कहा जाना चाहिए; वे जड़ से जुड़ी हुई तो हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं। छह नियंत्रक शक्तियों को जड़ से भी जुड़ी हुई नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी-कभी जड़ से जुड़ी होती हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं होती हैं; कभी-कभी उन्हें जड़ से जुड़ी हुई लेकिन स्वयं जड़ न होने वाली नहीं कहा जाना चाहिए।
नौ नियंत्रक शक्तियाँ मूल नहीं हैं, न ही मूलों के साथ होती हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ मूल नहीं हैं, लेकिन मूलों के साथ होती हैं।

नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण

169

मूलों द्वारा। चार नियंत्रक शक्तियों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे मूल नहीं हैं, मूलों के साथ हैं या मूल नहीं हैं, मूलों के साथ नहीं हैं। छह नियंत्रक शक्तियां कभी-कभी मूल नहीं होती हैं, मूलों के साथ होती हैं; कभी-कभी मूल नहीं होती हैं, मूलों के साथ नहीं होती हैं। (1)

(सभी नियंत्रक शक्तियाँ) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। पाँच नियंत्रक शक्तियाँ आकस्मिक हैं। सत्रह नियंत्रक शक्तियाँ आकस्मिक नहीं हैं। सात नियंत्रक शक्तियाँ भौतिक हैं। चौदह नियंत्रक शक्तियाँ भौतिक नहीं हैं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कभी भौतिक होती है; कभी भौतिक नहीं होती। दस नियंत्रक शक्तियाँ सांसारिक हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ अलौकिक हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी सांसारिक होती हैं; कभी अलौकिक होती हैं। (सभी नियंत्रक शक्तियाँ) एक मार्ग से ज्ञात की जा सकती हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं की जा सकतीं। (2)

(सभी नियंत्रणकारी शक्तियाँ) दोष नहीं हैं। दस नियंत्रणकारी शक्तियाँ दोषों के विषय हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ दोषों के विषय नहीं हैं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी दोषों के विषय होती हैं; कभी-कभी दोषों के विषय नहीं होतीं। पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियाँ दोषों से संबंधित नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति दोषों से संबंधित है। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी दोषों से संबंधित होती हैं; कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होतीं। दस नियंत्रणकारी शक्तियों को दोष और दोषों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे दोषों के विषय तो हैं लेकिन दोष नहीं हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियों को दोष और दोषों के विषय या दोषों के विषय तो हैं लेकिन दोष नहीं कहा जाना चाहिए। नौ नियंत्रणकारी शक्तियों को दोष और दोषों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी-कभी दोषों के विषय तो होती हैं लेकिन दोष नहीं हैं। कभी-कभी इन्हें अशुद्धियों की वस्तु नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि ये स्वयं अशुद्धियाँ नहीं होतीं।

पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियों को दोष नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे दोषों से भी संबंधित हैं या दोषों से संबंधित तो हैं लेकिन दोष नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति को दोषों से भी संबंधित दोष नहीं कहा जाना चाहिए; यह दोषों से संबंधित तो है लेकिन दोष नहीं है। छह नियंत्रणकारी शक्तियों को दोषों से भी संबंधित दोष नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी-कभी दोषों से संबंधित होती हैं लेकिन दोष नहीं होतीं; कभी-कभी नहीं कहा जाना चाहिए।

170

विश्लेषण की पुस्तक

कुछ इंद्रियों को दोषों से संबंधित कहा जाता है, लेकिन वे स्वयं दोष नहीं हैं। नौ नियंत्रण इंद्रियां दोषों से संबंधित नहीं हैं, बल्कि दोषों के विषय हैं। तीन नियंत्रण इंद्रियां दोषों से संबंधित नहीं हैं, और न ही दोषों के विषय हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण इंद्री को न तो दोषों से संबंधित नहीं कहा जा सकता, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों से संबंधित नहीं है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है। तीन नियंत्रण इंद्रियां कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होती हैं, और न ही दोषों का विषय होती हैं; कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होती हैं, और न ही दोषों का विषय होती हैं। छह नियंत्रण इंद्रियां कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होती हैं, और न ही दोषों का विषय होती हैं; कभी-कभी दोषों से संबंधित नहीं होती हैं, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों से संबंधित नहीं है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों से संबंधित नहीं है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों से संबंधित नहीं है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों से संबंधित नहीं है, और न ही यह कहा जा सकता है कि यह दोषों का विषय है। (3)

(सभी नियंत्रक शक्तियाँ) बंधन नहीं हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों के अधीन हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों के अधीन नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी बंधनों के अधीन होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। पंद्रह नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों से संबंधित नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति बंधनों से संबंधित है। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी [129] बंधनों से संबंधित होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। दस नियंत्रक शक्तियों को बंधन और बंधनों के अधीन नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) बंधनों के अधीन हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। तीन नियंत्रक शक्तियों को बंधन और बंधनों के अधीन नहीं कहा जाना चाहिए या बंधनों के अधीन हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियों को बंधन और बंधनों के अधीन नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी बंधनों के अधीन होती हैं लेकिन बंधन नहीं हैं; कभी-कभी इन्हें बेड़ियों की वस्तु नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि ये स्वयं बेड़ियाँ नहीं होती हैं।

पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियों को बंधन नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे बंधनों से जुड़ी हुई हैं, या बंधनों से जुड़ी हुई हैं लेकिन स्वयं बंधन नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति को बंधन नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वह बंधनों से जुड़ी हुई है, लेकिन स्वयं बंधन नहीं है। छह नियंत्रणकारी शक्तियों को बंधन नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे बंधनों से जुड़ी हुई हैं, लेकिन स्वयं बंधन नहीं हैं।

नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण

171

नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ बंधनों से संबद्ध नहीं हैं, बल्कि बंधनों के अधीन हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ बंधनों से संबद्ध नहीं हैं, बल्कि बंधनों के अधीन नहीं हैं।

मानसिक पीड़ा को नियंत्रित करने वाली क्षमता को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बेड़ियों से संबंधित नहीं है, बेड़ियों का विषय है या बेड़ियों से संबंधित नहीं है, बेड़ियों का विषय नहीं है। तीन नियंत्रण क्षमताएँ कभी-कभी बेड़ियों से संबंधित नहीं होती हैं, बेड़ियों का विषय होती हैं; कभी-कभी बेड़ियों से संबंधित नहीं होती हैं, बेड़ियों का विषय नहीं होती हैं। छह नियंत्रण क्षमताएँ कभी-कभी बेड़ियों से संबंधित नहीं होती हैं, बेड़ियों का विषय होती हैं; कभी-कभी बेड़ियों से संबंधित नहीं होती हैं, बेड़ियों का विषय नहीं होती हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह बेड़ियों से संबंधित नहीं है, बेड़ियों का विषय है या बेड़ियों से संबंधित नहीं है, बेड़ियों का विषय नहीं है। (4)

(सभी नियंत्रक शक्तियाँ) बंधन नहीं हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों के विषय हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों के विषय नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी बंधनों के विषय होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। पंद्रह नियंत्रक शक्तियाँ बंधनों से संबद्ध नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति बंधनों से संबद्ध है। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी बंधनों से संबद्ध होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। दस नियंत्रक शक्तियों को बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बंधनों का विषय तो हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। तीन नियंत्रक शक्तियों को बंधनों का विषय या बंधनों का विषय तो नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन बंधन नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियों को बंधनों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी-कभी बंधनों का विषय तो होती हैं लेकिन बंधन नहीं होती हैं; कभी-कभी उन्हें बंधनों का विषय तो नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन बंधन नहीं हैं।

पंद्रह नियंत्रक शक्तियों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भी बंधनों से जुड़ी हैं या बंधनों से जुड़ी हैं लेकिन बंधन नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह भी बंधनों से जुड़ी है; (यह) बंधनों से जुड़ी है लेकिन बंधन नहीं है। छह नियंत्रक शक्तियों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भी बंधनों से जुड़ी हैं; (वे) कभी-कभी बंधनों से जुड़ी होती हैं लेकिन बंधन नहीं होतीं; कभी-कभी को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बंधनों से जुड़ी हैं लेकिन बंधन नहीं हैं।

नौ नियंत्रक संकाय संबंधों से संबद्ध नहीं हैं, वे संबंधों के विषय हैं। तीन नियंत्रक संकाय [130] संबंधों से संबद्ध नहीं हैं, वे संबंधों के विषय नहीं हैं। नियंत्रक संकाय

172

विश्लेषण की पुस्तक

मानसिक पीड़ा के बारे में यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह संबंधों से संबंधित नहीं है, संबंधों का विषय है या संबंधों से संबंधित नहीं है, संबंधों का विषय नहीं है। तीन नियंत्रक क्षमताएँ कभी-कभी संबंधों से संबंधित नहीं होती हैं, संबंधों का विषय होती हैं; कभी-कभी संबंधों से संबंधित नहीं होती हैं, संबंधों का विषय नहीं होती हैं। छह नियंत्रक क्षमताएँ कभी-कभी संबंधों से संबंधित नहीं होती हैं, संबंधों का विषय होती हैं; कभी-कभी संबंधों से संबंधित नहीं होती हैं, संबंधों का विषय नहीं होती हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वह संबंधों से संबंधित नहीं है, संबंधों का विषय है या संबंधों से संबंधित नहीं है, संबंधों का विषय नहीं है। (5)

(सभी नियंत्रक शक्तियाँ) बाढ़ नहीं हैं। :P: बंधन नहीं हैं, :P: बाधाएँ नहीं हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ बाधाओं के विषय हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ बाधाओं के विषय नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी बाधाओं के विषय होती हैं; कभी-कभी बाधाओं के विषय नहीं होती हैं। पंद्रह नियंत्रक शक्तियाँ बाधाओं से संबंधित नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति बाधाओं से संबंधित है। छह नियंत्रक शक्तियाँ

कभी-कभी बाधाओं से संबंधित होती हैं; कभी-कभी बाधाओं से संबंधित नहीं होती हैं। दस नियंत्रक शक्तियों को बाधाएँ और बाधाओं के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे बाधाओं के विषय तो हैं लेकिन बाधाएँ नहीं हैं। तीन नियंत्रक शक्तियों को बाधाएँ और बाधाओं के विषय या बाधाओं के विषय तो नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन बाधाएँ नहीं हैं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियों को बाधाएँ और बाधाओं के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी बाधाओं के विषय होते हैं लेकिन बाधाएँ नहीं होते; कभी-कभी उन्हें बाधाओं के विषय नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन बाधाएँ नहीं होते।

पंद्रह नियंत्रक शक्तियों को बाधक नहीं कहा जाना चाहिए, न ही यह कहा जाना चाहिए कि वे बाधक हैं लेकिन स्वयं बाधक नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति को बाधक नहीं कहा जाना चाहिए; यह बाधक है लेकिन स्वयं बाधक नहीं है। छह नियंत्रक शक्तियों को बाधक नहीं कहा जाना चाहिए; वे कभी-कभी बाधक होती हैं लेकिन स्वयं बाधक नहीं होतीं; कभी-कभी उन्हें बाधक होना लेकिन स्वयं बाधक न होना नहीं कहा जाना चाहिए।

नौ नियंत्रक शक्तियाँ बाधाओं से असंबद्ध हैं, बल्कि बाधाओं की वस्तुएँ हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ बाधाओं से असंबद्ध हैं, और बाधाओं की वस्तुएँ नहीं हैं।

मानसिक पीड़ा को नियंत्रित करने वाली क्षमता को बाधाओं से असंबद्ध, बाधाओं का विषय या बाधाओं से असंबद्ध, बाधाओं का विषय नहीं कहा जाना चाहिए। तीन नियंत्रण क्षमताएँ कभी-कभी बाधाओं से असंबद्ध होती हैं, बाधाओं का विषय होती हैं; कभी-कभी बाधाओं से असंबद्ध होती हैं, बाधाओं का विषय नहीं होती हैं। छह नियंत्रण क्षमताएँ कभी-कभी बाधाओं से असंबद्ध होती हैं, बाधाओं का विषय होती हैं; कभी-कभी बाधाओं से असंबद्ध होती हैं, बाधाओं का विषय नहीं होती हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे बाधाओं से असंबद्ध हैं, बाधाओं का विषय हैं या बाधाओं से असंबद्ध, बाधाओं का विषय नहीं हैं। (8)

P = बाधाओं के संबंध में पूर्ण।

(सभी नियंत्रक शक्तियाँ) विकृतियाँ नहीं हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ विकृतियों के विषय हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ विकृतियों के विषय नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी विकृतियों के विषय होती हैं; कभी-कभी विकृतियों के विषय नहीं होतीं। सोलह नियंत्रक शक्तियाँ विकृतियों से संबंधित नहीं हैं। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी विकृतियों से संबंधित होती हैं; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होतीं। दस नियंत्रक शक्तियों को विकृतियाँ और विकृतियों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) विकृतियों के विषय हैं लेकिन विकृतियाँ नहीं हैं। तीन नियंत्रक शक्तियों को विकृतियाँ और विकृतियों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी विकृतियों के विषय होते हैं लेकिन विकृतियाँ नहीं हैं; कभी-कभी विकृतियों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि वे विकृतियाँ नहीं हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ विकृतियों से संबंधित नहीं हैं, बल्कि विकृतियों का विषय हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ विकृतियों से संबंधित नहीं हैं, बल्कि विकृतियों का विषय हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होती हैं, बल्कि विकृतियों का विषय होती हैं; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होती हैं, बल्कि विकृतियों का विषय नहीं होती हैं। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होती हैं, बल्कि विकृतियों का विषय होती हैं; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं होती हैं, बल्कि विकृतियों का विषय नहीं होती हैं; कभी-कभी विकृतियों से संबंधित नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि विकृतियों से संबंधित नहीं होती हैं।

विकृतियों से जुड़े हुए या विकृतियों से असंबद्ध व्यक्ति विकृतियों के विषय नहीं होते (9)

सात नियंत्रणकारी शक्तियों का कोई लक्ष्य नहीं है। चौदह नियंत्रणकारी शक्तियों का लक्ष्य है। प्राण सिद्धांत की नियंत्रणकारी शक्ति का कभी-कभी लक्ष्य होता है; कभी-कभी नहीं होता। इक्कीस नियंत्रणकारी शक्तियाँ चेतना नहीं हैं। मन की नियंत्रणकारी शक्ति चेतना है। तेरह नियंत्रणकारी शक्तियाँ मानसिक सहवर्ती हैं। आठ नियंत्रणकारी शक्तियाँ मानसिक सहवर्ती नहीं हैं। प्राण सिद्धांत की नियंत्रणकारी

शक्ति कभी-कभी मानसिक सहवर्ती होती है; कभी-कभी नहीं होती। तेरह नियंत्रणकारी शक्तियाँ चेतना से जुड़ी हैं। सात नियंत्रणकारी शक्तियाँ चेतना से नहीं जुड़ी हैं। प्राण सिद्धांत की नियंत्रणकारी शक्ति कभी-कभी चेतना से जुड़ी होती है; कभी-कभी नहीं होती। मन की नियंत्रणकारी शक्ति को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता।

तेरह नियंत्रण शक्तियाँ चेतना से जुड़ी होती हैं। सात नियंत्रण शक्तियाँ चेतना से नहीं जुड़ी होती हैं। प्राण तत्व की नियंत्रण शक्ति कभी चेतना से जुड़ी होती है, कभी नहीं। मन की नियंत्रण शक्ति को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ कहना उचित नहीं है। तेरह नियंत्रण शक्तियाँ चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं। आठ नियंत्रण शक्तियाँ चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती हैं। प्राण तत्व की नियंत्रण शक्ति कभी चेतना द्वारा उत्पन्न होती है, कभी नहीं।

तेरह नियंत्रण शक्तियाँ चेतना के साथ विद्यमान होती हैं। आठ नियंत्रण शक्तियाँ चेतना के साथ विद्यमान नहीं होतीं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रण शक्ति कभी-कभी चेतना के साथ विद्यमान होती है; कभी-कभी नहीं होती। तेरह नियंत्रण शक्तियाँ चेतना के साथ होती हैं। आठ नियंत्रण शक्तियाँ चेतना के साथ नहीं होतीं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रण शक्ति कभी-कभी चेतना के साथ होती है; कभी-कभी नहीं होती।

तेरह नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी हुई हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं। आठ नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी हुई नहीं हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती हैं। प्राण सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कभी-कभी चेतना से जुड़ी होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न होती है; कभी-कभी चेतना से जुड़ी नहीं होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है। तेरह नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी हुई हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं।

नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण

175

चेतना के साथ सह-अस्तित्व में। आठ नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी नहीं हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती हैं, और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होती हैं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कभी-कभी चेतना से जुड़ी होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न होती है, और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होती है; कभी-कभी चेतना से जुड़ी नहीं होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं होती है। तेरह नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी होती हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं, और चेतना के साथ होती हैं। आठ नियंत्रक शक्तियाँ चेतना से जुड़ी नहीं होती हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती हैं, और चेतना के साथ नहीं होती हैं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति कभी-कभी चेतना से जुड़ी होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न होती है, और चेतना के साथ होती है; कभी-कभी चेतना से जुड़ी नहीं होती है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, और चेतना के साथ नहीं होती है। छह नियंत्रक शक्तियाँ आंतरिक हैं। सोलह नियंत्रक शक्तियाँ बाह्य हैं। (10) [132]

सात नियंत्रण शक्तियाँ व्युत्पन्न होती हैं। चौदह नियंत्रण शक्तियाँ व्युत्पन्न नहीं होतीं। प्राणिक शक्ति की नियंत्रण शक्ति कभी व्युत्पन्न होती है, कभी व्युत्पन्न नहीं होती। नौ नियंत्रण शक्तियाँ (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधित होती हैं। चार नियंत्रण शक्तियाँ बोधित नहीं होतीं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी बोधित होती हैं, कभी बोधित नहीं होतीं। (सभी नियंत्रण शक्तियाँ) आसक्ति नहीं हैं। दस नियंत्रण शक्तियाँ आसक्ति के विषय हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ आसक्ति के विषय नहीं हैं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी आसक्ति के विषय होती हैं, कभी आसक्ति के विषय नहीं होतीं। सोलह नियंत्रण शक्तियाँ आसक्ति से संबद्ध नहीं हैं। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी आसक्ति से संबद्ध होती हैं, कभी आसक्ति से संबद्ध नहीं होतीं। दस नियंत्रण शक्तियों को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; वे आसक्ति का विषय तो हैं, पर आसक्ति नहीं हैं। तीन नियंत्रण शक्तियों को आसक्ति और आसक्ति का विषय नहीं कहा जाना चाहिए, या आसक्ति का विषय तो हैं, पर आसक्ति नहीं हैं। नौ इंद्रियों को आसक्ति और आसक्ति का विषय कहना उचित नहीं है; वे कभी-कभी आसक्ति का विषय होती हैं, परन्तु स्वयं आसक्ति नहीं होतीं। दस इंद्रियों को भी कभी-कभी आसक्ति का विषय कहना उचित नहीं है; कभी-कभी आसक्ति का विषय होना, परन्तु स्वयं आसक्ति न होना भी उचित नहीं है।

सोलह नियंत्रक शक्तियों को आसक्ति से संबंधित आसक्ति या आसक्ति से संबंधित लेकिन स्वयं आसक्ति न होने वाली आसक्ति नहीं कहा जाना चाहिए। छह नियंत्रक शक्तियों को आसक्ति से संबंधित आसक्ति नहीं कहा जाना चाहिए;

176

(वे) कभी-कभी आसक्ति से जुड़े होते हैं, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे आसक्ति से जुड़े होते हैं, लेकिन स्वयं आसक्ति नहीं होते। दस नियंत्रण शक्तियाँ आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, बल्कि आसक्ति के विषय होती हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, और न ही आसक्ति के विषय होती हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, और न ही आसक्ति के विषय होती हैं; कभी-कभी आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, और न ही आसक्ति के विषय होती हैं। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, और न ही आसक्ति के विषय होती हैं; कभी-कभी आसक्ति से जुड़ी नहीं होतीं, और न ही आसक्ति के विषय होती हैं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे आसक्ति से जुड़ी नहीं हैं, बल्कि आसक्ति के विषय हैं या कभी-कभी आसक्ति से जुड़ी नहीं हैं, और न ही आसक्ति के विषय हैं। (11)

(सभी नियंत्रणकारी शक्तियाँ) भ्रष्ट नहीं हैं। दस नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्टता की वस्तुएँ हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्टता की वस्तुएँ नहीं हैं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्टता की वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी भ्रष्टता की वस्तुएँ नहीं होती हैं। पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्ट नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति भ्रष्ट है। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्ट होती हैं; कभी-कभी भ्रष्ट नहीं होती हैं। पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियाँ भ्रष्टता से संबंधित नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति भ्रष्टता से संबंधित है। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्टता से संबंधित होती हैं; कभी-कभी भ्रष्टता से संबंधित नहीं होती हैं। दस नियंत्रणकारी शक्तियों को भ्रष्टता और भ्रष्टता की वस्तुएँ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) भ्रष्टता की वस्तुएँ हैं लेकिन भ्रष्टता नहीं हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियों को भ्रष्टता और भ्रष्टता की वस्तुएँ या भ्रष्टता की वस्तुएँ लेकिन भ्रष्टता नहीं कहा जाना चाहिए। नौ नियंत्रणकारी शक्तियों को भ्रष्टता और भ्रष्टता की वस्तुएँ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी भ्रष्टताओं के शिकार होते हैं लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं होते; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भ्रष्टताओं के शिकार हैं लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं हैं।

पंद्रह नियंत्रक शक्तियों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भी भ्रष्ट हैं या भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्ट नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि [133] वह भी भ्रष्ट है; (यह) भ्रष्ट है लेकिन भ्रष्ट नहीं है। छह नियंत्रक शक्तियों को यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भी भ्रष्ट हैं; (वे) कभी-कभी

भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं; कभी-कभी उन्हें भ्रष्ट नहीं कहा जाना चाहिए, भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं।

पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियों को भ्रष्टाचार से संबंधित या भ्रष्टाचार से संबंधित न कहना उचित नहीं है। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति को भ्रष्टाचार से संबंधित न कहना उचित नहीं है; यह भ्रष्टाचार से संबंधित तो है, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं है। छह नियंत्रणकारी शक्तियों को भ्रष्टाचार से संबंधित न कहना उचित नहीं है; वे कभी-कभी भ्रष्टाचार से संबंधित होती हैं, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं; कभी-कभी उन्हें भ्रष्टाचार से संबंधित न कहना उचित नहीं है। नौ नियंत्रणकारी शक्तियां भ्रष्टाचार से संबंधित नहीं हैं, बल्कि भ्रष्टाचार की वस्तु हैं। तीन नियंत्रणकारी शक्तियां भ्रष्टाचार से संबंधित नहीं हैं, बल्कि भ्रष्टाचार की वस्तु नहीं हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति को भ्रष्टाचार से संबंधित न होना, भ्रष्टाचार की वस्तु होना या भ्रष्टाचार से संबंधित न होना, भ्रष्टाचार की वस्तु न होना उचित नहीं है। तीन नियंत्रणकारी शक्तियां कभी-कभी भ्रष्टाचार से संबंधित नहीं होती हैं, बल्कि भ्रष्टाचार की वस्तु होती हैं। कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं होते, भ्रष्टाचार के शिकार नहीं होते। छह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ी नहीं होतीं, भ्रष्टाचार के शिकार होती हैं; कभी-कभी भ्रष्टाचार से जुड़ी नहीं होतीं, भ्रष्टाचार के शिकार नहीं होतीं; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे भ्रष्टाचार से जुड़ी नहीं हैं, भ्रष्टाचार के शिकार हैं या भ्रष्टाचार से जुड़ी नहीं हैं, भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं। (12)

प्रथम मार्ग द्वारा पंद्रह नियंत्रक शक्तियों का त्याग नहीं किया जाना चाहिए। सात नियंत्रक शक्तियों का कभी-कभी प्रथम मार्ग द्वारा त्याग किया जाना चाहिए; कभी-कभी प्रथम मार्ग द्वारा उनका त्याग नहीं किया जाना चाहिए। बाद के मार्गों द्वारा पंद्रह नियंत्रक शक्तियों का त्याग नहीं किया जाना चाहिए। बाद के मार्गों द्वारा सात नियंत्रक शक्तियों का कभी-कभी त्याग किया जाना चाहिए, कभी-कभी बाद के मार्गों द्वारा उनका त्याग नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम मार्ग द्वारा परित्यक्त किए जाने के लिए पंद्रह नियंत्रक शक्तियों का कोई मूल नहीं है। प्रथम मार्ग द्वारा परित्यक्त किए जाने के लिए सात नियंत्रक शक्तियों का कभी-कभी मूल होता है; कभी-कभी पहले मार्ग द्वारा

परित्यक्त किए जाने के लिए कोई मूल नहीं होता है। बाद के मार्गों द्वारा परित्यक्त किए जाने के लिए पंद्रह नियंत्रक शक्तियों का कोई मूल नहीं है। बाद के मार्गों द्वारा परित्यक्त किए जाने के लिए सात नियंत्रक शक्तियों का कभी-कभी मूल होता है; कभी-कभी बाद के मार्गों द्वारा परित्यक्त किए जाने के लिए कोई मूल नहीं होता है।

नौ नियंत्रण शक्तियाँ प्रारंभ में अनुप्रयुक्त नहीं होतीं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति प्रारंभ में अनुप्रयुक्त होती है। बारह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी प्रारंभ में अनुप्रयुक्त होती हैं; कभी-कभी प्रारंभ में अनुप्रयुक्त नहीं होतीं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ निरंतर अनुप्रयुक्त नहीं होतीं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति निरंतर अनुप्रयुक्त होती है। बारह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी निरंतर अनुप्रयुक्त होती हैं; कभी-कभी निरंतर अनुप्रयुक्त नहीं होतीं। ग्यारह नियंत्रण शक्तियाँ उत्साहहीन होती हैं। ग्यारह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी उत्साह से भरी होती हैं; कभी-कभी उत्साहहीन होती हैं। ग्यारह नियंत्रण शक्तियाँ उत्साह से रहित होती हैं। ग्यारह नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी उत्साह से भरी होती हैं; कभी-कभी उत्साह रहित होती हैं। बारह नियंत्रण शक्तियाँ आनंद से रहित होती हैं। दस नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी आनंद से भरी होती हैं; कभी-कभी आनंद रहित होती हैं। बारह नियंत्रण शक्तियाँ उदासीनता से रहित होती हैं। दस नियंत्रण शक्तियाँ कभी-कभी उदासीनता से भरी होती हैं; कभी-कभी उदासीनता रहित होती हैं।
इच्छा के तल की विशेषता दस नियंत्रक शक्तियाँ हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ इच्छा के तल की विशेषता नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी इच्छा के तल की विशेषता होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। तेरह नियंत्रक शक्तियाँ रूप के तल की विशेषता नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी रूप के तल की विशेषता होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। चौदह नियंत्रक शक्तियाँ निराकार तल की विशेषता नहीं हैं। आठ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी निराकार तल की विशेषता होती हैं; कभी-कभी नहीं होती हैं। दस नियंत्रक शक्तियाँ शामिल हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। तीन नियंत्रक शक्तियाँ शामिल नहीं हैं (अर्थात अलौकिक हैं)। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी शामिल होती हैं (अर्थात सांसारिक हैं); कभी-कभी शामिल नहीं होती हैं (अर्थात अलौकिक हैं)। [134] ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखती हैं। ज्ञानोदय की शुरुआत की नियंत्रक शक्ति मुक्त होने की प्रवृत्ति रखती है। दस नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी मुक्त होने की प्रवृत्ति रखती हैं; कभी-कभी नहीं रखती हैं। दस नियंत्रक शक्तियों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। प्रारंभिक ज्ञानोदय की नियंत्रक शक्ति का निश्चित (परिणामी समय) होता है। ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) की होती हैं; कभी-कभी उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। दस नियंत्रक शक्तियों को पार किया जा सकता है। तीन

नियंत्रणकारी शक्तियाँ अजेय हैं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी अजेय होती हैं; कभी-कभी अजेय होती हैं। पंद्रह नियंत्रणकारी शक्तियाँ शोक का कारण नहीं होतीं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति शोक का कारण होती है। छह नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी शोक का कारण होती हैं; कभी-कभी शोक का कारण नहीं होतीं। (13)
(यह खंड यहीं समाप्त होता है) पूछताछ
नियंत्रणकारी संकायों का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 6 - पतीच्चसमुप्पदा
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं

(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 6. आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण (पटिच्चसमुप्पदा)

(संस्कृत: प्रतीत्य-समुत्पाद)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

225. [135] अज्ञान के कारण कर्म उत्पन्न होते हैं; कर्मों के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छह आधार उत्पन्न होते हैं; छह आधारों के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म उत्पन्न होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था-मृत्यु-शोक-विलाप-पीड़ा (शारीरिक)-मानसिक पीड़ा-निराशा उत्पन्न होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत बनता है।

226. इसमें अज्ञान क्या है? दुख के ज्ञान का अभाव, दुख के कारण के ज्ञान का अभाव, दुख के निवारण के ज्ञान का अभाव, दुख के निवारण के मार्ग के ज्ञान का अभाव। यही अज्ञान कहलाता है।

इसमें 'अज्ञान के कारण कर्म उत्पन्न होते हैं' का क्या अर्थ है? अच्छे परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि, बुरे परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि, अविचल परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि, शारीरिक गतिविधि, मौखिक गतिविधि, मानसिक गतिविधि।

इसमें अच्छे परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि क्या है? इच्छा के तल की विशेषता, रूप के तल की विशेषता, दान से उत्पन्न, नैतिकता से उत्पन्न, ध्यान से उत्पन्न अच्छी इच्छाशक्ति। यही अच्छे परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि कहलाती है।

इसमें वह गतिविधि क्या है जो बुराई (परिणाम) उत्पन्न करती है? बुराई

इच्छा के तल की विशेषता वाली संकल्पना। इसे बुरे परिणाम उत्पन्न करने वाली गतिविधि कहा जाता है।

उसमें ऐसी कौन सी गतिविधि है जो अविचल (परिणामस्वरूप) उत्पन्न करती है?

निराकार तल की विशेषता अच्छी इच्छाशक्ति है। इसे अविचल (परिणाम) उत्पन्न करने वाली क्रिया कहा जाता है।

के

इसमें शारीरिक गतिविधि क्या है? शारीरिक इच्छाशक्ति शारीरिक गतिविधि है; मौखिक इच्छाशक्ति मौखिक गतिविधि है; मानसिक इच्छाशक्ति मानसिक गतिविधि है। इन्हें 'अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाली गतिविधियाँ' कहा जाता है। [136]

227. इसमें 'कर्मों के कारण चेतना उत्पन्न होती है' क्या है? आँख की चेतना, कान की चेतना, नाक की चेतना, जीभ की चेतना, शरीर की चेतना, मन की चेतना। इसे ही 'कर्मों के कारण चेतना उत्पन्न होती है' कहते हैं।

228. इसमें 'चेतना के कारण मन और पदार्थ की उत्पत्ति' क्या है? मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है? चार प्रमुख तत्व और उनसे उत्पन्न भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे 'चेतना के कारण मन और पदार्थ की उत्पत्ति' कहते हैं।

229. इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार उत्पन्न होते हैं' क्या है? आँख का आधार, कान का आधार, नाक का आधार, जीभ का आधार, शरीर का आधार, मन का आधार। इसे 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार उत्पन्न होते हैं' कहा जाता है।

230. इसमें 'छह आधारों के कारण संपर्क उत्पन्न होता है' क्या है? आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शरीर का संपर्क, मन का संपर्क। इसे 'छह आधारों के कारण संपर्क उत्पन्न होता है' कहा जाता है।

231. इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' क्या है? आँख के संपर्क से उत्पन्न भावना, कान के संपर्क से उत्पन्न भावना, नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना, जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना, शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना, मन के संपर्क से उत्पन्न भावना। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।

232. इसमें 'इच्छा उत्पन्न होने के कारण' क्या है? दृश्य वस्तुओं की लालसा, श्रव्य वस्तुओं की लालसा, सुगंधित वस्तुओं की लालसा, स्वादयुक्त वस्तुओं की लालसा, स्पर्शनीय वस्तुओं की लालसा, वैचारिक वस्तुओं की लालसा। इसे 'इच्छा उत्पन्न होने के कारण' कहा जाता है।

233. इसमें 'लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है' क्या है? इच्छा की आसक्ति, गलत दृष्टिकोण की आसक्ति,

182

विश्लेषण की पुस्तक

(गलत) आदतों और प्रथाओं से आसक्ति, आत्मा-सिद्धांत से आसक्ति। इसे 'लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होना' कहा जाता है।
234. उसमें आसक्ति के कारण क्या उत्पन्न होता है? [137] दो भागों में विभाजित है: कर्म-उत्पत्ति; परिणाम-उत्पत्ति। उसमें कर्म-उत्पत्ति क्या है? कर्म जो अच्छा (परिणाम) उत्पन्न करता है, कर्म जो बुरा (परिणाम) उत्पन्न करता है, कर्म जो अटल (परिणाम) उत्पन्न करता है। इसे कर्म-उत्पत्ति कहते हैं। और जो भी कर्म उत्पत्ति की ओर ले जाता है, वह कर्म-उत्पत्ति कहलाता है।
इसमें परिणामी-उत्पत्ति क्या है? इच्छा के तल पर उत्पन्न होना, रूप के तल पर उत्पन्न होना, निराकार तल पर उत्पन्न होना, प्रत्यक्ष-उत्पत्ति, अप्रत्यक्त-उत्पत्ति, न प्रत्यक्ष-उत्पत्ति और न अप्रत्यक्ष-उत्पत्ति, एकल समूह उत्पन्न होना, चार समूह उत्पन्न होना, पांच समूह उत्पन्न होना। इसे परिणामी-उत्पत्ति कहते हैं। इसे 'आसक्ति के कारण उत्पन्न होना' कहते हैं।
235. उसमें 'जन्म होने के कारण' क्या है?
किसी विशेष श्रेणी के किसी विशेष प्राणी के लिए जो जन्म, उत्पत्ति, प्रवेश, पूर्ण अस्तित्व, समुच्चय का प्रकट होना, आधारों का अधिग्रहण है, उसे ही 'जन्म' कहा जाता है।
236. उसमें 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
बुढ़ापा होता है; मृत्यु होती है। तो बुढ़ापा क्या है? किसी भी प्राणी के लिए, किसी भी श्रेणी में, बुढ़ापा, दुर्बलता, टूटे दांत, सफेद बाल, झुर्रीदार त्वचा, जीवन का क्षय, इंद्रियों का कमजोर होना, यही बुढ़ापा कहलाता है।
इसमें मृत्यु क्या है? किसी भी प्राणी के लिए, चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो, मृत्यु, विघटन, विलीन होना, मरना, जीवनकाल की समाप्ति, शरीर का विघटन, शरीर का त्याग, प्राण शक्ति का नाश होना। यही मृत्यु कहलाता है। इसी प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इसे 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु' कहा जाता है।
237. उसमें दुःख क्या है? (वह दुःख) जो किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या धन के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को होता है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

183

भ्रष्ट नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, गलत दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति को, किसी न किसी पीड़ा से पीड़ित व्यक्ति को, शोक, दुःख की अवस्था, आंतरिक शोक, गहरा शोक, मन की जलन, मानसिक पीड़ा, शोक का तीर लगता है। इसे ही शोक कहते हैं।
238. विलाप क्या है? (वह जो) किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या धन के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या [138] किसी बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या (भ्रष्ट) नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या गलत दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति को, या किसी न किसी पीड़ादायक बात से पीड़ित व्यक्ति को, रोना, विलाप करना, रोने की क्रिया, विलाप करने की क्रिया, रोने की अवस्था, विलाप की अवस्था, (दुखद) बातें, निरर्थक बातें, रोना, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट की क्रिया, दुःखपूर्ण बड़बड़ाहट की अवस्था है। इसे विलाप कहते हैं।
239. इसमें दर्द क्या है? वह जो शारीरिक बेचैनी, शारीरिक पीड़ा, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभूति है। इसे दर्द कहते हैं।
240. इसमें मानसिक पीड़ा क्या है? वह मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं।
241. इसमें निराशा क्या है? (वह) जो किसी रिश्तेदार के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या धन के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या बीमारी के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या भ्रष्ट नैतिकता के कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या गलत दृष्टिकोण के

कारण दुर्भाग्य से पीड़ित व्यक्ति को, या किसी न किसी दुर्भाग्य से ग्रस्त व्यक्ति को, या किसी न किसी पीड़ा से पीड़ित व्यक्ति को, हताशा, निराशा की अवस्था, हताशा की अवस्था में डाल देती है। इसे ही निराशा कहते हैं।
242. 'इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उदय हुआ है' का अर्थ है: इस प्रकार संयोजन, संयोजन, संयोजन,

इस संपूर्ण दुःख-पीड़ा का प्रकट होना। इसलिए इसे 'इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख-पीड़ा की उत्पत्ति' कहा जाता है।
(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
1. कारण चतुर्भुज
243. अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (1)
अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण आसक्ति होती है; [139] आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (2)
अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत बनता है। (3)
अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है;

वहाँ उत्पन्न होना ही जन्म है; जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है। (4)
(यहाँ समाप्त होता है) कारण चतुर्भुज
2. रूट टेट्राड
244. अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी कर्म-क्रिया उत्पन्न होती है; कर्म के कारण कर्म से उपजी चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से उपजी मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से उपजी छठी अवस्था उत्पन्न होती है; छठी अवस्था के कारण छठी अवस्था से उपजी संपर्क क्रिया उत्पन्न होती है; संपर्क क्रिया के कारण संपर्क क्रिया से उपजी भावना उत्पन्न होती है; भावना क्रिया से उपजी लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा से उपजी आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
(1) (5)

अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी कर्म-क्रिया उत्पन्न होती है; कर्म के कारण कर्म से उपजी चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से उपजी मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से उपजी संपर्क क्रिया उत्पन्न होती है; संपर्क क्रिया के कारण संपर्क क्रिया से उपजी भावना क्रिया उत्पन्न होती है; भावना क्रिया से उपजी लालसा क्रिया से उपजी आसक्ति क्रिया से उपजी आसक्ति क्रिया उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है। (2) (6)

अज्ञान के कारण अज्ञान में निहित कर्म होता है; कर्म के कारण कर्म में निहित चेतना होती है; चेतना के कारण चेतना में निहित मन और पदार्थ [140] होते हैं; मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क होता है; संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना होती है; भावना के कारण भावना में निहित लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा में निहित आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (3) (7)

अज्ञानता के कारण ही अज्ञानता पर आधारित गतिविधियाँ होती हैं;

186

विश्लेषण की पुस्तक

गतिविधि के कारण चेतना गतिविधि में निहित है; चेतना के कारण मन और पदार्थ चेतना में निहित हैं; मन और पदार्थ के कारण छह आधार मन और पदार्थ में निहित हैं; छठे आधार के कारण संपर्क छठे आधार में निहित है; संपर्क के कारण भावना संपर्क में निहित है; भावना के कारण लालसा भावना में निहित है; लालसा के कारण आसक्ति लालसा में निहित है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (4) (8)

(यहाँ समाप्त होता है) रूट टेट्राड

3. एसोसिएशन टेट्राड

245. अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण कर्म से संबंधित चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से संबंधित मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से संबंधित छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार से संबंधित संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क से संबंधित भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण भावना से संबंधित लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा से संबंधित आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख के समूह का उद्भव होता है। (1) (9) अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण कर्म से संबंधित चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से संबंधित मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से संबंधित संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क से संबंधित भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण भावना से संबंधित लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा से संबंधित आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्गम होता है। (2) (10)

अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना होती है; चेतना [141] के कारण मन और पदार्थ होते हैं, मन चेतना से जुड़ा होता है; मन और पदार्थ के कारण

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

187

छठा आधार मन और पदार्थ से जुड़ा है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत बनता है। (3) (11)

अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित कर्म होता है; कर्म के कारण कर्म से संबंधित चेतना होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं, चेतना से संबंधित मन होता है; मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं, छठा आधार मन से संबंधित होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार से संबंधित संपर्क होता है; संपर्क के कारण संपर्क से संबंधित भावना होती है; भावना के कारण भावना से संबंधित लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा से संबंधित आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (4) (12)

(यहाँ समाप्त होता है) एसोसिएशन टेट्राड

4. पारस्परिकता चतुष्कोण

246. अज्ञान के कारण कर्म होता है; कर्म के कारण अज्ञान होता है। कर्म के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण कर्म होता है। चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण चेतना होती है। मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण मन होता है। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है। संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संपर्क होता है। संवेदना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण संवेदना होती है। लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण लालसा होती है। आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख के समूह का उद्भव होता है। (1) (13)

अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है;

9 *

188

विश्लेषण की पुस्तक

चेतना के कारण ही गतिविधि होती है। चेतना के कारण ही मन होता है; मन के कारण ही चेतना होती है। मन के कारण ही संपर्क होता है; संपर्क के कारण ही मन होता है। संपर्क के कारण ही भावना होती है; भावना के कारण ही संपर्क होता है। भावना के कारण ही लालसा होती है; लालसा के कारण ही भावना होती है। लालसा के कारण ही आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण ही लालसा होती है। आसक्ति के कारण ही जन्म होता है; जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (2) (14) [142]

अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान होता है। गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण चेतना होती है। मन और पदार्थ के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण मन और पदार्थ होते हैं। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है। संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण संपर्क होता है। भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण भावना होती है। लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण लालसा होती है। आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है। (3) (15)

अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान होता है। गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण चेतना होती है। मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं; छठे आधार के कारण मन और पदार्थ होते हैं। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है। संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संपर्क होता है। संवेदना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण संवेदना होती है। लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण लालसा होती है। आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत बनता है। (4) (16)

(यहाँ समाप्त होता है) पारस्परिकता चतुष्कोण

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण
सारांश

189

247. कर्म के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; [143] : P : चेतना के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : मन के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : छठे आधार के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : संपर्क के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; : P : भावना के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : लालसा के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : आसक्ति के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है; :P : अज्ञान के कारण कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
P = अनुच्छेद 243-246 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) सारांश
[144]
5. कारण चतुर्भुज
248. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब गलत दृष्टि से प्रेरित, मानसिक सुख के साथ बुरी चेतना उत्पन्न होती है, जिसमें दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय, वैचारिक वस्तुएँ हों या जो भी वस्तु हो; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण तृष्णा होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस पूरे समूह का उद्भव होता है।
249. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
पी = पैरा 1 80 देखें।

190

विश्लेषण की पुस्तक

उसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञानता के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह है; और उपरोक्त पर निर्भर मन-
चेतना-तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
इसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?
भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसे ही 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।
इसमें 'मन के कारण छठा आधार होता है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह है; और उपरोक्त पर निर्भर मन-
चेतना-तत्व। इसे 'मन के कारण छठा आधार' कहा जाता है।
इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क है' कहा जाता है।

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक सहजता, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक भावना है। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है। [145]
इसमें 'इंद्रिय के कारण तृष्णा' क्या है? वह जो वासना, मोह, प्रलोभन, अभिमान, तीव्र वासना, चेतना का मोह है। इसे ही 'इंद्रिय के कारण तृष्णा' कहा जाता है।
इसमें 'लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, गलत दृष्टिकोण का जंगल, गलत दृष्टिकोण का विकराल रूप, गलत दृष्टिकोण का डगमगाना, गलत दृष्टिकोण का बंधन, पकड़, दृढ़ता, दृढ़ विश्वास, विकृति, बुरा मार्ग, झूठा रास्ता, असत्यता, विधर्म का आधार, उलटी पकड़। इसे ही 'लालसा के कारण आसक्ति' कहा जाता है।
इसमें 'आसक्ति के कारण ही ऐसा होता है' का क्या अर्थ है?
आसक्ति को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

191

बोध का समूह, मानसिक अभिव्यंजनों का समूह, चेतना का समूह। इसे 'आसक्ति के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है।
इसमें 'जन्म होने के कारण ही जन्म होता है' का क्या अर्थ है? वह जो किसी अवस्था के लिए जन्म, उत्पत्ति, अस्तित्व, पूर्ण अस्तित्व, प्रकट होना है। इसी को 'जन्म होने के कारण ही जन्म होता है' कहा जाता है।
तो फिर 'जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' का क्या अर्थ है? वृद्धावस्था होती है; मृत्यु होती है। तो फिर वृद्धावस्था क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए वृद्धावस्था, दुर्बलता, जीवन का क्षय है। इसे वृद्धावस्था कहते हैं। तो फिर मृत्यु क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए विनाश, क्षय, विखंडन, विघटन, अनित्यता, लुप्त होना है। इसे मृत्यु कहते हैं। यही वृद्धावस्था और मृत्यु है। इसी को 'जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' कहते हैं।
इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा के उत्पन्न होने का अर्थ है:
इस प्रकार यह संपूर्ण पीड़ा का संयोजन, संयोजन, संयोजन और प्रकटीकरण है। अतः इसे 'इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्‌भव होता है' कहा जाता है। (1)
250. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; [146] लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का समूह उत्पन्न होता है।
251. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसी को 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?

192

विश्लेषण की पुस्तक

भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसे ही 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।
'मन के कारण संपर्क होता है', इसमें मन क्या है? संपर्क को छोड़कर (यह) भावना का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही मन कहते हैं।
इसमें 'मन के कारण संपर्क होता है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'मन के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है। इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌गम होता है" कहा जाता है। (2)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
252. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
253. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
उसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। [147]
P = अनुच्छेद 184 देखें।
उसमें 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' क्या है? मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? नेत्र आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; कान आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; नाक आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; जीभ आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति;

शरीर का आधार; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना से उत्पन्न होने वाला कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' कहा जाता है।
'मन के कारण ही छठा आधार है'; मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह; बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'मन और पदार्थ के कारण छठा आधार' कहा जाता है।
पी — पैराग्राफ 184 देखें।
इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है।
पी: इसलिए इसे 'इस प्रकार इस संपूर्ण द्रव्यमान का उद्‌भव हुआ' कहा जाता है।
पीड़ा का। (3)
P = अनुच्छेद 249 देखें।

254. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छह आधार उत्पन्न होते हैं; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना

उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
255. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान कहते हैं।
p = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति होना, इच्छाशक्ति होने की अवस्था। इसे 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है [148]

इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार आदि है; और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
तो फिर 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। तो फिर मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक क्रियाओं का समूह। इसे मन कहते हैं। तो फिर पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की उत्पत्ति; कान के आधार की उत्पत्ति; नाक के आधार की उत्पत्ति; जीभ के आधार की उत्पत्ति; शरीर के आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना द्वारा निर्मित कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे ही 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' कहते हैं।
'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं; मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है? चार प्रमुख तत्व और वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं' का क्या अर्थ है? आँख का आधार, कान का आधार, नाक का आधार, जीभ का आधार, शरीर का आधार, मन का आधार। इसी को 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं' कहा जाता है।
इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है। (4)
p = पैराग्राफ 249 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) कारण चतुर्भुज
6. रूट टेट्राड
256. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान में निहित कर्म होते हैं; कर्म के कारण अज्ञान में निहित चेतना होती है।

चेतना के कारण चेतना में निहित मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन में निहित छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण भावना में निहित लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा में निहित आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
257. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।

इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान में निहित गतिविधि' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था है। इसे ही 'अज्ञान के कारण अज्ञान में निहित गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण गतिविधि में निहित चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है।
पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।
इसे 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है जो गतिविधि में निहित होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण चेतना में निहित मन' का क्या अर्थ है? भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसी को 'चेतना के कारण चेतना में निहित मन' कहा जाता है।
उसमें 'मन के कारण मन में निहित छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार है।
पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।
इसे 'मन के कारण मन में निहित छठा आधार' कहा जाता है।
पैरा 184 देखें।
इसमें 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क है' कहा जाता है।

इसमें वह क्या है जो संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली अनुभूति को दर्शाता है? मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाला सुखद अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद अनुभूति। इसे ही 'संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण भावना से उपजी लालसा' का क्या अर्थ है? वह जो वासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे ही 'भावना के कारण भावना से उपजी लालसा' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'लालसा के कारण लालसा में निहित आसक्ति' क्या है? वह जो गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, विधर्म का आधार है, उलटी पकड़ है। इसे ही 'लालसा के कारण लालसा में निहित आसक्ति' कहा जाता है। इसलिए इसे ही "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌गम होता है" कहा जाता है। (1) (5) [150]
P = अनुच्छेद 249 देखें।
258. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से उपजी चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से उपजी मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से उपजी संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क से उपजी भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण भावना से उपजी लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा से उपजी आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
259. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना है, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था है। इसी को 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है।

197

पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।
इसे 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण चेतना में निहित मन' का क्या अर्थ है? भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसी को 'चेतना के कारण चेतना में निहित मन' कहा जाता है।
'मन के कारण मन में निहित संपर्क होता है', इसमें मन क्या है? संपर्क को छोड़कर (यह) भावना का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही मन कहते हैं।
इसमें 'मन के कारण मन में निहित संपर्क' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'मन के कारण मन में निहित संपर्क' कहा जाता है। (2) (6)
पी सा देखें पैरा 249.
260. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से उपजी चेतना होती है; चेतना के कारण चेतना से उपजी मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ से उपजी छठी अवस्था होती है; छठी अवस्था के कारण छठी अवस्था से उपजी संपर्क होता है; संपर्क के कारण संपर्क से उपजी भावना होती है; भावना के कारण भावना से उपजी लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा से उपजी आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; [151] जन्म के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌भव होता है।
261. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
^ = पैराग्राफ 180 देखें।
इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना है, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था है। इसी को 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' कहा जाता है।

198

विश्लेषण की पुस्तक

उसमें 'गतिविधि के कारण गतिविधि में निहित चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है।
पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।
इसे 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है जो गतिविधि में निहित होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
तो फिर 'चेतना के कारण मन और चेतना में निहित पदार्थ' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। तो फिर मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। तो फिर पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की उत्पत्ति; कान के आधार की उत्पत्ति; नाक के आधार की उत्पत्ति; जीभ के आधार की उत्पत्ति; शरीर के आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न, चेतना के कारण उत्पन्न, चेतना द्वारा निर्मित कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। यही मन और पदार्थ है। इसे ही 'चेतना के कारण मन और चेतना में निहित पदार्थ' कहते हैं।
मन और पदार्थ के कारण छठा आधार है, जो मन और पदार्थ में निहित है*, मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना तत्व है। इसे 'मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छठा आधार' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।

उसमें 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क है*' क्या है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क है*' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है। (3) (7) [152]
P = अनुच्छेद 249 देखें।
262. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान में निहित कर्म होते हैं; कर्म के कारण अज्ञान में निहित चेतना होती है।

चेतना के कारण मन और चेतना में निहित पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छह आधार उत्पन्न होते हैं; छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण भावना में निहित लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण लालसा में निहित आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
263. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था। इसे ही 'अज्ञान के कारण अज्ञान से उपजी गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है।
पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।
इसे 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है जो गतिविधि में निहित होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
तो फिर 'चेतना के कारण मन और चेतना में निहित पदार्थ का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। तो फिर मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। तो फिर पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की उत्पत्ति; कान के आधार की उत्पत्ति; नाक के आधार की उत्पत्ति; जीभ के आधार की उत्पत्ति; शरीर के आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न, चेतना के कारण उत्पन्न, चेतना द्वारा निर्मित कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। यही मन और पदार्थ है। इसे ही 'चेतना के कारण मन और चेतना में निहित पदार्थ का अस्तित्व है' कहते हैं।
'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं, जो मन और पदार्थ में निहित हैं', मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे ही मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है?

चार प्रमुख तत्व और वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
उसमें 'मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छह आधार हैं' क्या है? [153] आँख आधार, कान आधार, नाक आधार, जीभ आधार, शरीर आधार, मन आधार। इसे 'मन और पदार्थ के कारण मन और पदार्थ में निहित छह आधार हैं' कहा जाता है।
इसमें 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क' कहा जाता है।

इसमें 'संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति है। इसे ही 'संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना' कहा जाता है।

इसमें 'भावना के कारण भावना से उपजी लालसा' का क्या अर्थ है? वह जो वासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे ही 'भावना के कारण भावना से उपजी लालसा' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 249 देखें।

इसमें 'लालसा के कारण लालसा से उपजी आसक्ति' क्या है? वह जो गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, विधर्म का आधार है, उलटी पकड़ है। इसे ही 'लालसा के कारण लालसा से उपजी आसक्ति' कहा जाता है। इसलिए इसे ही "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्गम होता है" कहा जाता है। (4) (8)

P = अनुच्छेद 249 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) रूट टेट्राड

7. एसोसिएशन टेट्राड

264. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना होती है; चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन होता है; मन के कारण मन से जुड़ा छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण...

छठे आधार से संपर्क; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण लालसा उत्पन्न होती है; लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।

265. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।

P = अनुच्छेद 180 देखें।

इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे ही 'अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित गतिविधि होती है' कहा जाता है।

इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे ही 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

इसमें 'चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन' का क्या अर्थ है? भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसी को 'चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन' कहा जाता है।

उसमें 'मन के कारण मन से जुड़ा छठा आधार क्या है?' [154] वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण मन से जुड़ा छठा आधार' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

यहां 'छठे स्वर के कारण छठे स्वर से जुड़ा संपर्क होता है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना, संपर्क की क्रिया, संपर्क की अवस्था। इसे ही 'छठे स्वर के कारण छठे स्वर से जुड़ा संपर्क होता है' कहा जाता है।

इसमें 'संपर्क के कारण संपर्क से जुड़ी भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद है।

मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति। इसे 'संपर्क के कारण उससे जुड़ी अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण भावना से जुड़ी लालसा' का क्या अर्थ है? वह जो वासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे ही 'भावना के कारण भावना से जुड़ी लालसा' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'इच्छा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? यह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, विधर्म का आधार है, उलटी पकड़ है। इसी को 'इच्छा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है' कहते हैं।
पी: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण द्रव्यमान का उदय हुआ" कहा जाता है।
पीड़ा का"। (1) (9)
P = अनुच्छेद 249 देखें।

266. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना होती है; चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन होता है; मन के कारण मन से जुड़ा संपर्क होता है; संपर्क के कारण संपर्क से जुड़ा भाव होता है; भाव के कारण भाव से जुड़ी लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा से जुड़ा आसक्ति होता है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत बनता है।
267. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान कहते हैं।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
उसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है' क्या है? [155] जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति होना, इच्छाशक्ति होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

203

तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन' का क्या अर्थ है? भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसी को 'चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन' कहा जाता है।
'मन के कारण मन से संपर्क जुड़ा होता है', इसमें मन क्या है? संपर्क को छोड़कर (यह) भावना का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही मन कहते हैं।
इसमें 'मन के कारण मन से जुड़ा संपर्क' क्या है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'मन के कारण मन से जुड़ा संपर्क' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌गम होता है" कहा जाता है। (2) (10)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
268. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं, चेतना से जुड़ा मन होता है; मन और पदार्थ के कारण मन से जुड़ा छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क होता है; संपर्क के कारण संपर्क से जुड़ा भाव होता है; भाव के कारण भाव से जुड़ी लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा से जुड़ा आसक्ति होता है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह की उत्पत्ति होती है।
269. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान कहते हैं।
P = अनुच्छेद 180 देखें।

उसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, अस्तित्व है।

स्वैच्छिक, स्वैच्छिक होने की अवस्था। इसे 'अज्ञानता के कारण अज्ञानता से जुड़ी गतिविधि' कहा जाता है। [156]
इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे ही 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है, मन चेतना से जुड़ा हुआ है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; कान के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; नाक के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; जीभ के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; शरीर के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना द्वारा निर्मित कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है, मन चेतना से जुड़ा हुआ है' कहा जाता है।
मन और पदार्थ के कारण मन से जुड़ा छठा आधार* है; मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण मन से जुड़ा छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'मन और पदार्थ के कारण मन से जुड़ा छठा आधार' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क होता है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना, संपर्क की क्रिया, संपर्क की अवस्था। इसे 'छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क होता है' कहा जाता है।
पी: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण द्रव्यमान का उदय हुआ" कहा जाता है।
पीड़ा का**. (3) (11)
पी — पैराग्राफ 249 देखें।

270. ... उस समय अज्ञान के कारण अज्ञान से जुड़ी गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं, चेतना से जुड़ा मन होता है; मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं, छठा आधार मन से जुड़ा होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क होता है; संपर्क [157] के कारण संपर्क से जुड़ी भावना होती है; भावना के कारण भावना से जुड़ी लालसा होती है; लालसा के कारण लालसा से जुड़ी आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख के समूह का उद्भव होता है।
271. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से जुड़ा होना है, इच्छाशक्ति की अवस्था है। इसी को 'अज्ञान के कारण अज्ञान से संबंधित गतिविधि होती है' कहा जाता है।

इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे ही 'गतिविधि के कारण चेतना का अस्तित्व' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
तो फिर 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है, मन चेतना से जुड़ा हुआ है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। तो फिर मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह; मानसिक क्रियाओं का समूह। इसे मन कहते हैं। तो फिर पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की उत्पत्ति; कान के आधार की उत्पत्ति; नाक के आधार की उत्पत्ति; जीभ के आधार की उत्पत्ति; शरीर के आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना द्वारा निर्मित कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। यही मन और पदार्थ है। इसे ही 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है, मन चेतना से जुड़ा हुआ है' कहते हैं।

206

विश्लेषण की पुस्तक

'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं, छठा आधार मन से जुड़ा है', मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है? चार महा तत्व और वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं, छठा आधार मन से संबंधित है' क्या है? आँख आधार, कान आधार, नाक आधार, जीभ आधार, शरीर आधार, मन आधार। इसे 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं, छठा आधार मन से संबंधित है' कहा जाता है। •
[158]
इसमें 'छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना, संपर्क की क्रिया, संपर्क की अवस्था। इसे 'छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है। (4) (12)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) एसोसिएशन टेट्राड

8. पारस्परिकता चतुष्कोण
272. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान होता है। गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण चेतना होती है। मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण मन होता है। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है। संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संपर्क होता है। संवेदना के कारण तृष्णा होती है; तृष्णा के कारण संवेदना होती है। तृष्णा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण तृष्णा होती है। आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

207

273. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान कहते हैं।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण गतिविधि' कहा जाता है।

इसमें 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' का क्या अर्थ है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसी को 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसी को 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना है, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था है। इसी को 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' कहा जाता है।
इसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?
भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसे ही 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।
उसमें 'मन के कारण ही चेतना है' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, :P: और उपरोक्त पर निर्भर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण ही चेतना है' कहा जाता है। [159]
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'मन के कारण छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'मन के कारण छठा आधार' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
उसमें 'छठे आधार के कारण मन भी है' का क्या अर्थ है? भावना का समूह, बोध का समूह, समूह-

208

विश्लेषण की पुस्तक

मानसिक सहवर्तीताओं का द्वार। इसे 'छठे आधार के कारण भी मन होता है' कहा जाता है।
इसमें 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है। इसमें 'संपर्क के कारण छठा आधार भी होता है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'संपर्क के कारण छठा आधार भी होता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण अनुभूति उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति है। इसी को 'संपर्क के कारण अनुभूति उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण भी संपर्क होता है*' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे ही 'भावना के कारण भी संपर्क होता है*' कहा जाता है।
इसमें 'इंद्रिय के कारण तृष्णा' क्या है? वह जो वासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे ही 'इंद्रिय के कारण तृष्णा' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
उसमें 'लालसा के कारण भी भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति है। इसे ही 'लालसा के कारण भी अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'लालसा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, :P: विधर्म का आधार, उलटी पकड़। इसे ही 'लालसा के कारण आसक्ति' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'आसक्ति के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो वासना है, यानी चेतना का मोह। इसे ही 'आसक्ति के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 249 देखें।
उसमें 'आसक्ति के कारण जो उत्पन्न होता है' का क्या अर्थ है?
आसक्ति को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है।

धारणाओं का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह, चेतना का समूह। इसे आसक्ति का भ्रम कहा जाता है, जहाँ विकास होता है।
इसमें 'जन्म होने के कारण ही जन्म होता है' का क्या अर्थ है? वह जो किसी अवस्था के लिए जन्म, उत्पत्ति, अस्तित्व, पूर्ण अस्तित्व, प्रकट होना है। इसे ही 'जन्म होने के कारण ही जन्म होता है' कहा जाता है।
इसमें 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु' का क्या अर्थ है? वृद्धावस्था है; मृत्यु है। इसमें वृद्धावस्था क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए वृद्धावस्था, दुर्बलता, जीवन का क्षय है। [160] इसे वृद्धावस्था कहते हैं। इसमें मृत्यु क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए विनाश, क्षय, टूटना, विघटन, अनित्यता, लुप्त होना है। इसे मृत्यु कहते हैं। यही वृद्धावस्था और मृत्यु है। इसे ही 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु' कहते हैं।
'इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव हुआ' का अर्थ है: इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का संयोजन, संयोजन, सहस्थापन और प्रकटीकरण हुआ है। अतः इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव हुआ" कहा जाता है। (1) (13)
274. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान होता है। गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण चेतना होती है। मन के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण मन होता है। संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संपर्क होता है। संवेदना के कारण तृष्णा होती है; तृष्णा के कारण संवेदना होती है। तृष्णा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण तृष्णा होती है। आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
275. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण गतिविधि' कहा जाता है।

इसमें 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' का क्या अर्थ है?
ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव: अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही 'कर्म के कारण भी अज्ञान' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
पी = पैरा 1 84 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना है, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था है। इसी को 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' कहा जाता है।
इसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?
भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। इसे ही 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।

उसमें 'मन के कारण चेतना भी है' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण चेतना भी है' कहा जाता है। [161]
P = अनुच्छेद 184 देखें।
'मन के कारण संपर्क होता है', इसमें मन क्या है? संपर्क को छोड़कर (यह) भावना का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही मन कहते हैं।
इसमें 'मन के कारण संपर्क' का क्या अर्थ है? वह जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसी को 'मन के कारण संपर्क' कहा जाता है।
इसमें 'संपर्क के कारण मन भी उत्पन्न होता है' का क्या अर्थ है? भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, चेतना का समूह। इसे ही 'संपर्क के कारण मन भी उत्पन्न होता है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है। (2) (14)
P = अनुच्छेद 249 देखें।

276. ... उस समय अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञानता भी होती है। गतिविधि के कारण...

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

211

चेतना; चेतना के कारण ही गतिविधि होती है। चेतना के कारण ही मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण ही चेतना होती है। मन और पदार्थ के कारण ही छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण ही मन और पदार्थ होते हैं। छठे आधार के कारण ही संपर्क होता है; संपर्क के कारण ही छठा आधार होता है। संपर्क के कारण ही भावना होती है; भावना के कारण ही संपर्क होता है। भावना के कारण ही लालसा होती है; लालसा के कारण ही भावना होती है। लालसा के कारण ही आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण ही लालसा होती है। आसक्ति के कारण ही सृजन होता है; सृजन के कारण ही जन्म होता है; जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
277. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
पी—पैरा 180 देखें।
उसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि 5' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है।
इसमें 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, :P: और, उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
पी — पैराग्राफ 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण भी गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे ही 'चेतना के कारण भी गतिविधि होती है' कहा जाता है।
उसमें 'चेतना के कारण मन और पदार्थ है' क्या है? मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें क्या है?
10 +

212

पदार्थ? [162] आँख के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; कान के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; नाक के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; जीभ के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; शरीर के आधार की प्रारंभिक उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न, चेतना के कारण उत्पन्न, चेतना से उत्पन्न होने वाला कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे 'चेतना के कारण मन और पदार्थ है' कहा जाता है।

'मन और पदार्थ के कारण ही चेतना होती है', मन होता है; पदार्थ होता है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह। यही मन कहलाता है। इसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। यही पदार्थ कहलाता है। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। यही मन और पदार्थ कहलाता है।

उसमें 'मन और पदार्थ के कारण चेतना भी होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार है।

पी: और, उपर्युक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व।

इसे 'मन और पदार्थ के कारण चेतना' भी कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

'मन और पदार्थ के कारण छठा आधार है', मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। यही मन कहलाता है। उसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। यही पदार्थ कहलाता है। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। यही मन और पदार्थ कहलाता है।

इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छठा आधार' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'मन और पदार्थ के कारण छठा आधार' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

उसमें 'छठे आधार के कारण मन और पदार्थ भी है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? नेत्र आधार का आरंभिक उद्भव; कान आधार का आरंभिक उद्भव; नाक आधार का आरंभिक उद्भव; जीभ आधार का आरंभिक उद्भव;

शरीर के आधार का उद्भव; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना द्वारा निर्मित होने वाला कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे 'छठे आधार के कारण भी मन और पदार्थ का अस्तित्व है' कहा जाता है।

उसमें 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?

जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क है' कहा जाता है।

उसमें 'संपर्क के कारण छठा आधार भी है' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार है, : पृष्ठ 1 : और, उपरोक्त पर निर्भर, मन-चेतना-तत्व। इसे 'संपर्क के कारण छठा आधार भी है' कहा जाता है। :पृष्ठ 2 : इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है। (3) (15) [163]

पी एल = पैरा देखें। 184. पी 2 = पैरा देखें। 249.

278. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण अज्ञान होता है। गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन और पदार्थ होते हैं; मन और पदार्थ के कारण चेतना होती है। मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं; छठे आधार के कारण मन और पदार्थ होते हैं। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है। संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संपर्क होता है। संवेदना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण संवेदना होती है। लालसा के कारण आसक्ति होती है; आसक्ति के कारण लालसा होती है। आसक्ति के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।

279. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
उसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था। इसे 'अज्ञानता के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'कर्म के कारण अज्ञान भी होता है' का क्या अर्थ है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, : P : अवरोध

अज्ञानता, जो सुस्ती की बुरी जड़ है। इसे 'गतिविधि के कारण भी अज्ञानता' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना है, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था है। इसी को 'चेतना के कारण ही गतिविधि होती है' कहा जाता है।
तो फिर 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। तो फिर मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक क्रियाओं का समूह। इसे मन कहते हैं। तो फिर पदार्थ क्या है? नेत्र के आधार की उत्पत्ति; कान के आधार की उत्पत्ति; नाक के आधार की उत्पत्ति; जीभ के आधार की उत्पत्ति; शरीर के आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न होने वाला, चेतना के कारण उत्पन्न होने वाला, चेतना से उत्पन्न होने वाला कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। यही मन और पदार्थ है। इसी को 'चेतना के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' कहते हैं।
'मन और पदार्थ के कारण ही चेतना है', मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं। [164]
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण चेतना भी होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'मन और पदार्थ के कारण चेतना भी होती है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
'मन और पदार्थ के कारण छह आधार हैं', मन है; पदार्थ है। उसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह। इसे मन कहते हैं। उसमें पदार्थ क्या है? चार महान आवश्यक तत्व और

वह भौतिक गुण जिस पर मन-चेतना-तत्व का प्रभाव निर्भर करता है। इसे पदार्थ कहते हैं। इसी प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे मन और पदार्थ कहते हैं।
इसमें 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं' का क्या अर्थ है? आँख का आधार, कान का आधार, नाक का आधार, जीभ का आधार, शरीर का आधार, मन का आधार। इसी को 'मन और पदार्थ के कारण छह आधार होते हैं' कहा जाता है।
इसमें 'छठे आधार के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है? मन है; पदार्थ है। इसमें मन क्या है? संवेदनाओं का समूह, बोधों का समूह, मानसिक क्रियाओं का समूह। इसे मन कहते हैं। इसमें पदार्थ क्या है? नेत्र आधार की उत्पत्ति; कान आधार की उत्पत्ति; नाक आधार की उत्पत्ति; जीभ आधार की उत्पत्ति; शरीर आधार की उत्पत्ति; या चेतना से उत्पन्न, चेतना द्वारा निर्मित, चेतना द्वारा उत्पन्न

कोई भी अन्य भौतिक गुण। इसे पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार यह मन और यह पदार्थ है। इसे ही 'छठे आधार के कारण मन और पदार्थ का अस्तित्व है' कहा जाता है।
इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क है' कहा जाता है।
इसमें 'संपर्क के कारण छठा आधार भी मौजूद है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'संपर्क के कारण छठा आधार भी मौजूद है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक भावना है। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्‌भव होता है" कहा जाता है। (4) (16)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) पारस्परिकता चतुष्कोण
9. बुरी अवस्थाओं का प्रदर्शन
280. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब गलत कार्यों से जुड़े मानसिक सुख के साथ बुरी चेतना उत्पन्न होती है।

216

विश्लेषण की पुस्तक

उत्तेजना सहित दृष्टि: पृष्ठ 1: मानसिक सुख से युक्त, गलत दृष्टि से असंबद्ध, [165] दृश्य वस्तु युक्त, पृष्ठ 2: मानसिक सुख से युक्त, गलत दृष्टि से असंबद्ध, उत्तेजना सहित, दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, सुगंधित वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित हो; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस 'संपूर्ण दुख समूह' का उद्‌भव होता है।
पैरा 248-279 देखें।
P 2 = निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
281. अज्ञान क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान कहते हैं।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
इसमें 'अज्ञानता के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे 'अज्ञान के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'लालसा के कारण निर्णय होता है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होने के कारण, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे 'इच्छा के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दु:ख का उद्‌भव होता है" कहा जाता है।
पी — अनुच्छेद 249-279 देखें, 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ।
282. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब बुरी चेतना उत्पन्न होती है, जो उदासीनता के साथ-साथ गलत दृष्टिकोण से जुड़ी होती है,

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

217

दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु, या किसी भी वस्तु से संबंधित वस्तु होने पर; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह की उत्पत्ति होती है।

283. [166] उसमें अज्ञान क्या है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, : पृष्ठ 1 : अज्ञान का अवरोध है, सुस्ती की बुरी जड़ है। इसे ही अज्ञान कहते हैं। :पृष्ठ 2 :
पी 1; =पैरा देखें. 180. पी 2 = पैरा देखें। 249.

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी; मानसिक संपर्क से उत्पन्न न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभव; मानसिक संपर्क से उत्पन्न न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इसी प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अंतर' के लिए उपयुक्त संशोधन शामिल हैं।

284. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी हुई, उकसावे से प्रेरित बुरी चेतना उत्पन्न होती है, :P 1 : उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी नहीं, दृश्य वस्तु वाली, :P 2 : उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी नहीं, उकसावे के साथ, दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु या किसी भी (वस्तु) से संबंधित; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण लालसा होती है; लालसा के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण बनना होता है; बनने के कारण...

218

विश्लेषण की पुस्तक

जन्म से ही बुढ़ापा और मृत्यु होती है। इसी प्रकार दुखों का यह संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है।
पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 248-279 सहित देखें, 'अंतर' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ।
P 2 = निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

285. इसमें अज्ञान क्या है? :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्गम होता है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अंतर' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन किए गए हैं।

286. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब बुरी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक पीड़ा, घृणा, उत्तेजना, दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु आदि से संबंधित होती है; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण घृणा होती है; घृणा के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।
P = निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

287. उसमें अज्ञान क्या है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, अज्ञान का अवरोध है, सुस्ती की बुरी जड़ है। इसे अज्ञान कहते हैं। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।
पी 1 = पैरा देखें। 180. पी 2 = पैरा देखें। 249.
उसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' क्या है? [167] वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण घृणा उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना को विचलित करता है, :P: उग्रता, अचानकता,

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

219

चेतना के आनंद का अभाव। इसे 'भावना के कारण अरुचि' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 182 देखें।
इसमें 'विकर्षण के कारण निर्णय होता है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होने के कारण, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे 'विकर्षण के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = 'मानसिक पीड़ा', 'घृणा' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ पैरा 249-279 देखें।
288. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब उदासीनता, संदेह और दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय, वैचारिक वस्तुओं से युक्त बुरी चेतना उत्पन्न होती है, या किसी भी वस्तु से संबंधित होती है; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण संदेह होता है; संदेह के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।
289. उसमें अज्ञान क्या है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, अज्ञान का अवरोध है, सुस्ती की बुरी जड़ है। इसे अज्ञान कहते हैं। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।
पी 1 = पैरा देखें। 180. पी 2 = पैरा देखें। 249.
मैं*
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो न तो मानसिक आराम है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभव, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे 'संपर्क के कारण भावना' कहा जाता है। [168]
10 *

220

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें 'संदेह की भावना के कारण' क्या है? उलझन, असमंजस, असमंजस की स्थिति, व्याकुलता, संदेह, दोलन, दोहरा मार्ग, उतार-चढ़ाव, पकड़ की अनिश्चितता, टालमटोल, संकोच, आगे न बढ़ना, चेतना की कठोरता, मानसिक त्याग। इसी को 'संदेह की भावना के कारण' कहा जाता है।

इसमें 'संदेह के कारण ही कुछ उत्पन्न होता है' का क्या अर्थ है?
संदेह को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'संदेह के कारण उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दु:ख का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = * in- अंतर * और 'संदेह' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ पैरा 249-279 देखें।
290. कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब उदासीनता, ध्यान भटकाव और दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय, वैचारिक वस्तुओं से युक्त बुरी चेतना उत्पन्न होती है, या किसी भी वस्तु से संबंधित होती है; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण ध्यान भटकता है; ध्यान भटकने के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।
291. उसमें अज्ञान क्या है? वह जो ज्ञान का अभाव है, दृष्टि का अभाव है, अज्ञान का अवरोध है, सुस्ती की बुरी जड़ है। इसे अज्ञान कहते हैं। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।
पी 1 = पैरा देखें। 180. पी 2 = पैरा देखें। 249.
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो मानसिक शांति या बेचैनी नहीं है, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाला कोई सुखदायक या सुखदायक अनुभव नहीं है, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई सुखदायक या सुखदायक अनुभूति नहीं है। इसे ही 'संपर्क के कारण अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'ध्यान भटकने की अनुभूति के कारण' का क्या अर्थ है?
जो चेतना को विचलित करता है, बेचैनी पैदा करता है, मानसिक तनाव उत्पन्न करता है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

221

चेतना में अस्थिरता और उथल-पुथल। इसे 'ध्यान भटकने की अनुभूति' कहा जाता है।
उसमें 'विचलित होने के कारण निर्णय होता है' क्या है? [169] जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होने के कारण, उस (चेतना) की निर्णय अवस्था। इसे 'विचलित होने के कारण निर्णय होता है' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अंतर', 'विचलित करना' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन शामिल हैं।
(यहाँ समाप्त होता है) बुरी अवस्थाओं का विवरण
10. अच्छे राज्यों का विवरण
292. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, ज्ञान से जुड़ी मानसिक सुख के साथ उत्पन्न होती है, जिसमें दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय, वैचारिक वस्तुएँ होती हैं या जो भी (वस्तु) से संबंधित होती है; उस समय अच्छे आधारों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस पूरे समूह की उत्पत्ति होती है।
293. इसमें अच्छे गुण क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव।
इसमें लोभ का अभाव क्या है? लोभ का अभाव, लालच की अनुपस्थिति, लोभहीनता की अवस्था, कामवासना का अभाव, कामवासना की अनुपस्थिति, कामवासना की अनुपस्थिति की अवस्था, लालच का अभाव, लोभ के अभाव का अच्छा मूल। इसे लोभ का अभाव कहते हैं।
उसमें घृणा का अभाव क्या है? वह जो अभाव है

घृणा, घृणा का अभाव, घृणा की अनुपस्थिति की अवस्था, दुर्भावना का अभाव, दुर्भावना की अनुपस्थिति की अवस्था, घृणा के अभाव का अच्छा मूल। इसे घृणा का अभाव कहते हैं।
उसमें सुस्ती का अभाव क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे सुस्ती का अभाव कहते हैं। इन्हें अच्छे मूल कहते हैं। [170]
P = अनुच्छेद 525 देखें।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था। इसे 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि' कहा जाता है।
उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
पी: चेतना के कारण मन होता है। पी: मन के कारण
छठा आधार है। :P: छठे आधार के कारण संपर्क होता है। :P: संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है। :P: इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'भावना के कारण आस्था' का क्या अर्थ है? वह जो आत्मविश्वास, विश्वास, भरोसा और अंतर्निहित आस्था है। इसी को 'भावना के कारण आस्था' कहा जाता है।
इसमें 'विश्वास के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे ही 'विश्वास के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
अस्तित्व के अपवाद के साथ, यह भावनाओं का समूह, बोध का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह और चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण अस्तित्व' कहा जाता है। अतः इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें', 'विश्वास 5' और 'निर्णय 5' के लिए उपयुक्त संशोधन शामिल हैं।
294. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से जुड़ी हुई, प्रेरणा से युक्त, दृश्य वस्तु के साथ उत्पन्न होती है, iP 1: मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से रहित, दृश्य वस्तु के साथ, :P 2: के साथ

ज्ञान या प्रेरणा से असंबद्ध, प्रत्यक्ष, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय, वैचारिक, या किसी भी (वस्तु) से संबंधित मानसिक सुख; उस समय अच्छे आधारों के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।
P*s=पैरा 292 और 293 देखें। P 2 — निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

295. इसमें अच्छे गुण क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव।

इसमें लोभ का अभाव क्या है? लोभ का अभाव, लालच की अनुपस्थिति, लोभहीनता की अवस्था, कामवासना का अभाव, कामवासना की अनुपस्थिति, कामवासना की अनुपस्थिति की अवस्था, लालच का अभाव, लोभ के अभाव का अच्छा मूल। यही लोभ का अभाव कहलाता है।
उसमें घृणा का अभाव क्या है? घृणा का अभाव, घृणा करने की प्रवृत्ति का अभाव, द्वेष का अभाव, द्वेष के अभाव की अवस्था, घृणा के अभाव का अच्छा मूल। इसे ही घृणा का अभाव कहते हैं। इन्हें अच्छे मूल कहते हैं।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे 'अच्छे मूल तत्वों के कारण सक्रियता' कहते हैं। :P: इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 293 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति है, उसे ही 'संपर्क के कारण अनुभूति' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे ही "इसी प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें', 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन किए गए हैं।

224

विश्लेषण की पुस्तक

296. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ी हुई, दृश्य वस्तु से युक्त, ज्ञान से युक्त, उत्तेजना से युक्त, दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, सुगंधित वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु से युक्त या किसी भी (वस्तु) से संबंधित अवस्था में उत्पन्न होती है; उस समय अच्छे आधारों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुख के इस पूरे समूह का उद्भव होता है।
P = निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।

297. इसमें अच्छी जड़ें क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव। इन्हें अच्छी जड़ें कहा जाता है।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे ही 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है।
P = पैरा 293 देखें,
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें', 'उदासीनता', 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन किए गए हैं।
298. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, उदासीनता के साथ उत्पन्न होती है, ज्ञान से असंबद्ध होती है, और दृश्य वस्तु होती है,
पी: उदासीनता के साथ, ज्ञान से असंबद्ध,
उकसावे के साथ, जिसमें दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु हो या जो भी (वस्तु) से संबंधित हो; उस समय अच्छे कारणों से^

गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है। [171]
P = निम्नलिखित उदाहरण के अनुसार पूरा करें।
299. इसमें अच्छे मूल तत्व क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव। इन्हें ही अच्छे मूल तत्व कहते हैं।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे ही 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें', 'उदासीनता', 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन किए गए हैं।
300. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी के प्रथम इहन में निवास करता है; उस समय अच्छे मूलों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख-समूह की उत्पत्ति होती है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
301. इसमें अच्छी जड़ें क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव। इन्हें अच्छी जड़ें कहा जाता है।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से प्रेरित होना, इच्छाशक्ति से प्रेरित होने की अवस्था। इसे ही 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है। :P : इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें', 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन किए गए हैं।

302. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर, सुख का त्याग करके, चौथे ध्यान में लीन हो जाता है और उस अवस्था का अनुभव करता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष; उस समय अच्छे मूल तत्वों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
303. इसमें अच्छी जड़ें क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव। इन्हें अच्छी जड़ें कहा जाता है।
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तिपूर्ण होना, इच्छाशक्तिपूर्ण होने की अवस्था। इसे ही 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' कहा जाता है। :P: इसे ही 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है*' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 293 देखें।

इसमें 'संपर्क के कारण अनुभूति उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति है। इसे ही 'संपर्क के कारण अनुभूति उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
पी: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण द्रव्यमान का उदय हुआ" कहा जाता है।
पीड़ा का।
पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, जिसमें 'अच्छी जड़ें*, *उदासीनता', 'विश्वास' और 'निर्णय* के लिए उपयुक्त संशोधन शामिल हैं।
यह और बर्मा, सीलोन और पीटीएस के कुछ अन्य ग्रंथ प्रतीत होते हैं
यहां गलती करना गलत होगा, क्योंकि अरूपा ध्यान में अनुभूति 'न तो कष्टदायक होती है और न ही सुखद'।
इसलिए इसे पैरा 297 के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए। थाईलैंड के कुछ ग्रंथों में यह बाद वाला पाठ दिया गया है।
304. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? उस समय जब (एक भिक्षु) निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, [173] :P: प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास है।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

227

धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त होता है; उस समय अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इन अवस्थाओं का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
305. इसमें अच्छे गुण क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव।
इसमें लोभ का अभाव क्या है? : घृणा का अभाव।
पृष्ठ 1: सुस्ती का अभाव? जो ज्ञान है, समझ है,
पृष्ठ 2: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य
अन्वेषण-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सुस्ती का अभाव कहते हैं। इन्हें ही अच्छे मूल कहते हैं।
पी^पैरा देखें. 293. पी 2 = पैरा देखें। 525.
इसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' कहते हैं। :P: इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 293 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति। इसी को 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
उसमें 'भावना के कारण विश्वास है' क्या है? वह जो आत्मविश्वास, विश्वास होना, भरोसा, अंतर्निहित विश्वास है। इसे 'भावना के कारण विश्वास है' कहा जाता है।
उसमें 'विश्वास के कारण निर्णय होता है' क्या है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे 'विश्वास के कारण निर्णय होता है' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह और चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण' कहा जाता है।

228 विश्लेषण की पुस्तक

'जन्म लेना'। :P: इसे कहते हैं 'जन्म के कारण ही बुढ़ापा और मृत्यु होती है'।

पी = पैराग्राफ 249-279 देखें, 'अच्छी जड़ें', 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ।

■ इन अवस्थाओं की उत्पत्ति का अर्थ है: — इन अवस्थाओं का संयोजन, संयोजन, सहस्थापन और प्रकटीकरण। अतः इसे "इन अवस्थाओं की उत्पत्ति" कहा जाता है।

(यहाँ समाप्त होता है) अच्छे राज्यों की व्याख्या

11. न तो अच्छी और न ही बुरी अवस्थाओं का स्पष्टीकरण

306. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उनका संचय करने के बाद, दृश्य वस्तु के साथ उदासीनता से युक्त परिणामी दृष्टि चेतना उत्पन्न होती है; उस समय कर्म के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन; मन के कारण छठा आधार है; छठे आधार के कारण संपर्क है; संपर्क के कारण भावना है; भावना के कारण विकास है; विकास के कारण जन्म है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।

307. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, नेत्र-चेतना-तत्व है। इसी को 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

उसमें 'चेतना के कारण मन है' क्या है? [174] भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती का समूह। इसे ही 'चेतना के कारण मन है' कहा जाता है।

इसमें 'मन के कारण छठा आधार होता है' का क्या अर्थ है?

जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, नेत्र-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण छठा आधार' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

229

इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?

जो संपर्क है, संपर्क करना है, संपर्क की क्रिया है, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क होता है' कहा जाता है।

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति है, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना है। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।

इसमें 'भावना के कारण उत्पत्ति होती है' का क्या अर्थ है? भावना को छोड़कर, यह बोध का समूह है, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही 'भावना के कारण उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। अतः इसे 'इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का उद्भव होता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 249 देखें।

308. ... उस समय गतिविधि के कारण गतिविधि में निहित चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना में निहित मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन में निहित छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार में निहित संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क में निहित भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।

309. ... उस समय गतिविधि के कारण गतिविधि से जुड़ी चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण चेतना से जुड़ा मन उत्पन्न होता है; मन के कारण मन से जुड़ा छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण छठे आधार से जुड़ा संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संपर्क से जुड़ा भाव उत्पन्न होता है; भाव के कारण निर्माण होता है; निर्माण के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।

310. ... उस समय गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण गतिविधि होती है। चेतना के कारण मन होता है; [175] मन के कारण चेतना होती है। मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण मन होता है। छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण छठा आधार होता है।

संपर्क से भावना उत्पन्न होती है; भावना से संपर्क होता है। भावना से विकास होता है; विकास से जन्म होता है; जन्म से वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
311. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, श्रवण विषय के साथ उदासीनता से युक्त कान चेतना उत्पन्न होती है; :P: गंध विषय के साथ उदासीनता से युक्त नाक चेतना उत्पन्न होती है; पी: उदासीनता के साथ-साथ जीभ की चेतना उत्पन्न होती है।
स्वादिष्ट वस्तु होने पर; :P: सुख के साथ देह चेतना उत्पन्न होती है, जिसमें मूर्त वस्तु होती है; उस समय गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।
312. इसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। : P : इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 307 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण अनुभूति' का क्या अर्थ है? शारीरिक सहजता, शारीरिक सुख, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति। इसी को 'संपर्क के कारण अनुभूति' कहते हैं।
इसमें 'भावना के कारण उत्पत्ति होती है' का क्या अर्थ है? भावना को छोड़कर (यह) बोध का समूह है, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही 'भावना के कारण उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दु:ख का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।
313. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, परिणामी मानसिक तत्व उत्पन्न होता है, तो उसके साथ एक और तत्व भी उत्पन्न होता है।

दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय वस्तु से संबंधित या किसी भी वस्तु से संबंधित उदासीनता के कारण; उस समय [176] गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।
314. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, rP 1 है: और उपरोक्त पर निर्भर, मन तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। :P 2: इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।
पी^पैरा देखें. 184. पी 2 = पैरा देखें। 307.

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति है, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना है। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।

इसमें 'भावना के कारण निर्णय लिया गया' का क्या अर्थ है?

जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक है, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे 'अनुभूति के कारण निर्णय' कहा जाता है।

इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?

निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।

tfP = 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।

315. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद दृश्य और श्रव्य वस्तु से युक्त मानसिक आनंद के साथ परिणामी मन-चेतना तत्व उत्पन्न होता है।

टी

232

विश्लेषण की पुस्तक

वस्तु, सुगंधित वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु, वैचारिक वस्तु या जो भी वस्तु हो; उस समय गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।

316. [177] उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति होना, इच्छाशक्ति होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं।

इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, rP 1 : और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। :P 2 : इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।

पी 1 = पैरा देखें। 184. पी 2 = पैरा देखें। 307.

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति। इसी को 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।

इसमें 'भावना के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना है, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे ही 'भावना के कारण निर्णय' कहा जाता है।

इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?

निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।

पी = 'निर्णय*' के लिए उपयुक्त संशोधन के साथ पैरा 249 और 308-310 देखें।

317. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, उदासीनता से युक्त मन-चेतना तत्व उत्पन्न होता है, जिसमें दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, सुगंधित वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु और वैचारिक वस्तुएँ होती हैं।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण 233

जब कोई वस्तु किसी विषय से संबंधित होती है, तो उस समय क्रिया के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के

कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।

318. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?

जो चेतना, मन, विचार आदि है, तथा उपरोक्त के आधार पर मन-चेतना-तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहा जाता है।

पी 1 = पैरा देखें। 184. पी 2 = पैरा देखें। 307. ! जे

इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति है, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना है। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।

इसमें 'भावना के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना है, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे ही 'भावना के कारण निर्णय' कहा जाता है।

इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?

निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह और चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही निर्णय' कहा जाता है।

'बनना'। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव हुआ" कहा जाता है।

पी = 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन के साथ अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।

319. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? उस समय जब अच्छे कर्म करने के बाद, अच्छे कर्मों का संचय करने के बाद, जो [इच्छा के तल पर परिणामी मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है, जो मानसिक सुख से युक्त होता है और ज्ञान से जुड़ा होता है।

मानसिक आनंद के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उत्तेजना से जुड़ा हुआ। rP 1: मानसिक आनंद के साथ, जुड़ा हुआ नहीं।

234

विश्लेषण की पुस्तक

ज्ञान के साथ, उकसावे के साथ। rP 1: उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। :P*: उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ। rP 1: उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ा हुआ। iP 1: उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ, दृश्य वस्तु के साथ, :P 2: वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है।

P* = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण।

P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

320. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। इसे 'संपर्क के कारण भावना' कहा जाता है।

पी एक्स = पैरा देखें। 184. पी 2 = पैरा देखें। 307.

उसमें 'भावना के कारण विश्वास है' क्या है? [178] जो विश्वास है, आत्मविश्वास होना, भरोसा, अंतर्निहित विश्वास। इसे 'भावना के कारण विश्वास है' कहा जाता है।

इसमें 'विश्वास के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे ही 'विश्वास के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
पी = 'विश्वास' और 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ पैरा 249 और 308-310 देखें।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

235

321. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग अपनाता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी लोक की प्रथम ध्यान अवस्था में लीन हो जाता है; उस समय ध्यान में स्थिरता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।
पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = डीएचएस। पैरा. 1.
उसने, रूप के तल पर प्रचलित उसी अच्छे कर्म को संपन्न करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर,
पी: परिणामी पृथ्वी उपकरण प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय
समय के कारण गतिविधि से चेतना उत्पन्न होती है; चेतना से मन उत्पन्न होता है; मन से छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार से संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क से भावना उत्पन्न होती है; भावना से विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास से निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय से विकास होता है; विकास से जन्म होता है; जन्म से वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्भव होता है। [179]
P = अनुच्छेद 184 देखें।
322. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग अपनाता है, तब वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर, सुख का त्याग कर, (आरपी 1) चौथे ध्यान में लीन हो जाता है और उसमें निवास करता है, उस अवस्था की अनुभूति के साथ जो न अनुभूति है और न अनुभूति; उस समय संपर्क होता है, (पीपी 2) अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।
पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.
निराकार तल के समान अच्छे कर्मों का संचय करके, वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था से पार होकर, सुख का त्याग करके, परिणामी चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो उस अवस्था की अनुभूति से युक्त होता है जो न तो अनुभूति है और न ही अअनुभूति; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।

236

विश्लेषण की पुस्तक

323. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब (एक भिक्षु) जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्त होकर, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।
पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

ऐसा करने के बाद, उसी अलौकिक अच्छे ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामस्वरूप प्राप्त प्रथम ध्यान में निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है;* उस समय गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; [180] निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इन अवस्थाओं का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
< खाली है * आमतौर पर यहां शामिल किया जाता है।
324. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी? जब बुरे कर्म करने और उनका संचय करने के बाद दृश्य वस्तु के प्रति उदासीनता से युक्त नेत्र चेतना उत्पन्न होती है; तब श्रव्य वस्तु के प्रति उदासीनता से युक्त कान चेतना उत्पन्न होती है; तब सुगंधित वस्तु के प्रति उदासीनता से युक्त नाक चेतना उत्पन्न होती है; तब स्वादयुक्त वस्तु के प्रति उदासीनता से युक्त जीभ चेतना उत्पन्न होती है; तब स्पर्शनीय वस्तु के प्रति पीड़ा से युक्त शरीर चेतना उत्पन्न होती है; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का समूह उत्पन्न होता है।
P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

325. इसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

237

उसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, rP 1 : और, उपरोक्त पर निर्भर, शरीर-चेतना-तत्व है। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है। :P 2 : इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क 5' कहा जाता है।
पी^पैरा देखें. 184. पी 2 = पैरा देखें। 307.
इसमें 'संपर्क के कारण अनुभूति' का क्या अर्थ है? वह जो शारीरिक बेचैनी, शारीरिक पीड़ा, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभूति है। इसे 'संपर्क के कारण अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण ही उत्पत्ति होती है' का क्या अर्थ है? भावना को छोड़कर (यह) बोध का समूह है, मानसिक सहवर्ती का समूह है, चेतना का समूह है। इसे ही 'भावना के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख समूह की उत्पत्ति होती है" कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।
326. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? [181] जब बुरे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, उदासीनता से युक्त परिणामी मन तत्व उत्पन्न होता है, जिसमें दृश्य, श्रव्य, सुगंधित, स्वादयुक्त, स्पर्शनीय वस्तुएँ होती हैं या जो भी वस्तु हो; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह की उत्पत्ति होती है।
327. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, rP 1 है: और उपरोक्त पर निर्भर, मन तत्व। इसे 'गतिविधि के कारण चेतना 5' कहा जाता है। :P 2: इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क 5' कहा जाता है।
पी^पैरा देखें. 184. पी 2 = पैरा देखें। 307.

उसमें 'संपर्क के कारण अनुभूति होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही पीड़ादायक और न ही पीड़ादायक।

मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न एक ऐसी अनुभूति जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखद। इसे 'संपर्क के कारण अनुभूति' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना है, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था है। इसे ही 'भावना के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्‌भव होता है" कहा जाता है।
पी = 'निर्णय*' के लिए उपयुक्त संशोधन के साथ अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।
328. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब बुरे कर्म करने और उनका संचय करने के बाद, उदासीनता से युक्त, प्रत्यक्ष विषय वाली, वैचारिक विषय वाली, या किसी भी (विषय) से संबंधित, परिणामी मन-चेतना तत्व उत्पन्न होता है; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह की उत्पत्ति होती है।
P = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

329. उसमें गतिविधि क्या है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्तियुक्त होना, इच्छाशक्तियुक्त होने की अवस्था। इसे गतिविधि कहते हैं। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है' कहा जाता है। इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌भव होता है" कहा जाता है। [182]
P* = पैराग्राफ 184 देखें।
पृष्ठ 2 = 'निर्णय' के लिए उपयुक्त संशोधन के साथ अनुच्छेद 249 और 308-310 देखें।

330. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब मन का कोई तत्व निष्क्रिय अवस्था में उत्पन्न होता है, तब वह न तो अच्छा होता है और न ही बुरा।

क्रिया का परिणाम, उदासीनता के साथ, दृश्य वस्तु युक्त, iP 1 : मूर्त वस्तु, :P 2 : मन-चेतना उत्पन्न होती है- वह तत्व जो निष्क्रिय है, न अच्छा है न बुरा, न ही क्रिया का परिणाम, मानसिक सुख के साथ, दृश्य वस्तु युक्त।
PX : वैचारिक वस्तु, :P 2 : मन-चेतना उत्पन्न होती है-
वह तत्व जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही किसी क्रिया का परिणाम है, उदासीनता से युक्त है, जिसका प्रत्यक्ष विषय है, rP 1; वैचारिक विषय है या जो भी (विषय) से संबंधित है; उस समय गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है;

भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌भव होता है।
P 1 = मध्यवर्ती इंद्रिय संबंधी वस्तुएँ। P 2 = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।
33 1. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? उस समय जब निष्क्रिय, न अच्छी, न बुरी और न ही किसी क्रिया का परिणाम, मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से जुड़ी हुई, :PX : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से संबंधित, उत्तेजना से युक्त, :PX : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से संबंधित नहीं, :PX : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से संबंधित नहीं, उत्तेजना से युक्त, •.P 1 : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से संबंधित, :PX : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से संबंधित, उत्तेजना से युक्त, :PX : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से संबंधित नहीं, उत्तेजना से युक्त, दृश्य वस्तु युक्त, :P 2 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; [183] विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्‌भव होता है।
P 1 ^ अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

332. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? उस समय जब (एक भिक्षु) उस रूप तल की विशेषता वाले ध्यान का विकास करता है जो

240

विश्लेषण की पुस्तक

निष्क्रिय, न अच्छा, न बुरा, न ही कर्म का परिणाम, (वर्तमान जीवन में) सुखमय जीवन का कारण, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृथ्वी के प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्‌भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।

333. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न बुरी? जब (एक भिक्षु) निराकार तल के उस ध्यान को विकसित करता है जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है और न ही कर्म का परिणाम है, (जो) वर्तमान जीवन में सुखद जीवन का कारण है, तब वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर, सुख का त्याग करके, चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, उस अवस्था की अनुभूति के साथ जो न तो अनुभूति है और न ही अअनुभूति; उस समय कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; [184] चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का उद्‌भव होता है।
पी — पैराग्राफ 205 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) न तो अच्छी और न ही बुरी अवस्थाओं का स्पष्टीकरण

12. अज्ञानता पर आधारित अच्छी अवस्थाओं का स्पष्टीकरण
334. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख से युक्त हो, ज्ञान से जुड़ी हो, और दृश्य वस्तु हो,
P : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय
अज्ञान के कारण समय में गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; क्योंकि

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

241

मन में छठा आधार है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है।
P = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।
335. इसमें 'अज्ञान के कारण कर्म' का क्या अर्थ है? वह जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे ही 'अज्ञान के कारण कर्म' कहते हैं। :P: इसे ही 'छठे आधार के कारण संपर्क' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह मानसिक शांति, मानसिक आनंद, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति। इसी को 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
इसमें 'भावना के कारण आस्था' का क्या अर्थ है? वह जो आत्मविश्वास, विश्वास, भरोसा और अंतर्निहित आस्था है। इसी को 'भावना के कारण आस्था' कहा जाता है।
इसमें 'विश्वास के कारण निर्णय' का क्या अर्थ है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे ही 'विश्वास के कारण निर्णय' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय को छोड़कर, यह भावनाओं का समूह है, बोध का समूह है, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण ही उत्पत्ति होती है' कहा जाता है। :P: इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 249 देखें।

336. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है; विश्वास के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का स्रोत उत्पन्न होता है। [185]

242

विश्लेषण की पुस्तक

337. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।

338. ... उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और पदार्थ उत्पन्न होते हैं; मन और पदार्थ के कारण छह आधार उत्पन्न होते हैं; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।

339. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान से संबंधित मानसिक सुख और प्रेरणा से युक्त होती है, :PX : जब मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से रहित अवस्था उत्पन्न होती है।
PX: मानसिक आनंद से युक्त, ज्ञान से संबंधित नहीं।
किनारे पर, उकसावे के साथ, :PX : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, :PX : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ, :PX : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं, :PX : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं, उकसावे के साथ, दृश्य वस्तु वाला।

पृष्ठ 2: वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; पर
उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि उत्पन्न होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह की उत्पत्ति होती है।

V 1 — अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

243

340. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब (एक भिक्षु) रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, [186] वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृथ्वी के प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय अज्ञान के कारण कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
341. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर, सुख का त्याग करके, चौथे ध्यान में लीन हो जाता है और उस अवस्था का अनुभव करता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष; उस समय अज्ञान के कारण कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
342. कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? उस समय जब (एक भिक्षु) विकसित होता है
अलौकिक ध्यान, जो मुक्ति की ओर अग्रसर होता है, निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को विदारक करता है; वह, गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय अज्ञान के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण विश्वास होता है;
निर्णय के कारण परिवर्तन होता है; परिवर्तन के कारण
एन +

244 विश्लेषण की पुस्तक
जन्म; जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इन अवस्थाओं का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) अज्ञानता पर आधारित अच्छे राज्यों का विवरण
13. अच्छे मूल वाले परिणामों का विवरण
343. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और संचित करने के बाद, दृश्य वस्तु के साथ-साथ उदासीनता से युक्त दृश्य चेतना उत्पन्न होती है; उस समय अच्छे कर्मों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण संवेदना होती है; संवेदना के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह की उत्पत्ति होती है।
344. उसमें 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे 'अच्छी जड़ों के कारण गतिविधि' कहा जाता है। इसलिए इसे "इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है" कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 307 देखें।

345. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, श्रवण विषय के साथ उदासीनता से युक्त परिणामी कान चेतना उत्पन्न होती है, iP 1 : गंध विषय के साथ उदासीनता से युक्त नाक चेतना उत्पन्न होती है,
पीएक्स: उदासीनता के साथ जीभ की चेतना उत्पन्न होती है।
स्वादमय वस्तु होने पर, iP 1: सुख के साथ देह चेतना उत्पन्न होती है, मूर्त वस्तु होने पर, :PX: उदासीनता के साथ मन तत्व उत्पन्न होता है, दृश्य वस्तु होने पर, :P 2: मूर्त वस्तु, rP 1: मानसिक सुख के साथ मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है, दृश्य वस्तु होने पर, :P 2: वैचारिक वस्तु, ;PX: उदासीनता के साथ मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है, दृश्य वस्तु होने पर, :P 2: वैचारिक

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

245

किसी वस्तु से संबंधित या उससे संबंधित किसी भी वस्तु से संबंधित; उस समय अच्छे आधारों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; [188] भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुख समूह का उद्भव होता है।
P 1 = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

346. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा के तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से जुड़ा हुआ, परिणामी मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। .P 1 : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से युक्त, उत्तेजना से युक्त, :PX : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से रहित, rP 1 : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से रहित, उत्तेजना से युक्त, rP 1 : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से युक्त, rP 1 : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से युक्त, उत्तेजना से युक्त, :PA : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से रहित, rP 1 : उदासीनता से युक्त, ज्ञान से रहित, उत्तेजना से युक्त, दृश्य वस्तु के साथ, :P 2 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय अच्छे मूलों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास

उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण विकास होता है; विकास के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।
P* = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

347. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी-आधारित प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय संपर्क होता है, अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 205 देखें।

पृष्ठ 2 = डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

246

विश्लेषण की पुस्तक

रूप तल के समान अच्छे कर्मों का संचय करके, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी से उत्पन्न प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय अच्छे कर्मों के कारण कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। [189] इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।

348. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग अपनाता है, तब वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर, सुख का त्याग कर, चौथे ध्यान में लीन हो जाता है और उसमें निवास करता है, उस अवस्था की अनुभूति के साथ जो न अनुभूति है और न अनुभूति; उस समय संपर्क होता है, अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।
पी ! = पैरा देखें. 205. पी 2=डीएचएस देखें। पैरा. 1.
निराकार तल के समान अच्छे कर्मों का संचय करके, वह पूर्णतः शून्यता की अवस्था से पार होकर, सुख का त्याग करके, परिणामी चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जहाँ उसे उस अवस्था का बोध होता है जो न तो बोध है और न ही अबोध; उस समय अच्छे मूलों के कारण कर्म उत्पन्न होता है; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का उद्भव होता है।
P = अनुच्छेद 205 देखें।

349. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं न बुरी? उस समय जब (एक भिक्षु) निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह, इन सब का त्याग करने के कारण

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

247

गलत दृष्टिकोण, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, :PX : पहले ध्यान में निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, :P 2 : अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं।
पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.
ऐसा करने के बाद, उसी उत्तम अलौकिक ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठोर अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान और शून्यता से उत्पन्न होता है; उस समय उत्तम जड़ों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार इन अवस्थाओं का उद्भव होता है। [190]
P = अनुच्छेद 205 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) अच्छे मूल वाले परिणामों का विवरण

14. खराब जड़ों वाले परिणामों का स्पष्टीकरण
350. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न बुरी? जब बुरे कर्म करने और उनका संचय करने से दृश्य वस्तु के प्रति उदासीनता से युक्त दृश्य चेतना उत्पन्न होती है; उस समय बुरे कर्मों के कारण कर्म उत्पन्न होते हैं; कर्म के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण संवेदना उत्पन्न होती है; संवेदना के कारण सृजन होता है; सृजन के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुखों के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।
351. उसमें 'खराब जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति की अवस्था। इसे *बुरी जड़ों के कारण गतिविधि कहा जाता है। :P: इसलिए इसे “इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्भव होता है” कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 307 देखें।

248

विश्लेषण की पुस्तक

352. कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी? जब बुरे कर्म करने या उनका संचय करने के बाद, श्रवण विषय को ध्यान में रखते हुए, उदासीनता के साथ कान की चेतना उत्पन्न होती है, rP 1 : गंधयुक्त विषय को ध्यान में रखते हुए, उदासीनता के साथ नाक की चेतना उत्पन्न होती है, :PX : स्वादयुक्त विषय को ध्यान में रखते हुए, उदासीनता के साथ जीभ की चेतना उत्पन्न होती है।
पीएक्स; पीड़ा के साथ शारीरिक चेतना उत्पन्न होती है,
मूर्त वस्तु, rP 1 : उदासीनता के साथ मन तत्व उत्पन्न होता है, जिसमें दृश्य वस्तु होती है, :P 2 : मूर्त वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय बुरे मूलों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना होती है; चेतना के कारण मन होता है; मन के कारण छठा आधार होता है; छठे आधार के कारण संपर्क होता है; संपर्क के कारण भावना होती है; भावना के कारण निर्णय होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुख के इस पूरे समूह का उद्भव होता है।
P x = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण। P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।
353. कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब बुरे कर्म करने और उन्हें संचित करने से, उदासीनता से युक्त, दृश्य वस्तु से युक्त, वैचारिक वस्तु से युक्त, परिणामी मन-चेतना तत्व उत्पन्न होता है; उस समय बुरे मूलों के कारण गतिविधि होती है; गतिविधि के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन उत्पन्न होता है; मन के कारण छठा आधार उत्पन्न होता है; छठे आधार के कारण संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है; भावना के कारण निर्णय उत्पन्न होता है; निर्णय के कारण जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। इस प्रकार दुख के इस संपूर्ण समूह का उद्भव होता है।
P 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

354. उसमें 'खराब जड़ों के कारण गतिविधि होती है' का क्या अर्थ है?
जो इच्छाशक्ति है, इच्छाशक्ति से युक्त होना, इच्छाशक्ति से युक्त होने की अवस्था। इसे 'बुरी जड़ों के कारण गतिविधि' कहा जाता है। इसमें 'गतिविधि के कारण चेतना' क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे ही 'गतिविधि के कारण चेतना' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

249

उसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?
भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह। इसे 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।
इसमें 'मन के कारण छठा आधार होता है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, :P : और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण छठा आधार 5' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क, संपर्क करना, संपर्क की क्रिया, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क 5' कहा जाता है।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभव, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
उसमें 'भावना के कारण निर्णय होता है' क्या है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे 'भावना के कारण निर्णय होता है' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय के अपवाद के साथ (यह) भावना का समूह है, धारणा का समूह है, मानसिक सहवर्ती का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण बनना' कहा जाता है।
उसमें 'जन्म होने के कारण' क्या है? वह जो इस या उस अवस्था के लिए जन्म, उत्पत्ति, अस्तित्व, पूर्ण अस्तित्व, प्रकट होना है। इसे 'जन्म होने के कारण' कहा जाता है।
इसमें 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' का क्या अर्थ है? वृद्धावस्था होती है; मृत्यु होती है। इसमें वृद्धावस्था क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए वृद्धावस्था, दुर्बलता, जीवन का क्षय है। इसे वृद्धावस्था कहते हैं। इसमें मृत्यु क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए विनाश, क्षय, टूटना, विघटन, अनित्यता, लुप्त होना है। इसे मृत्यु कहते हैं। इस प्रकार यह वृद्धावस्था और यह मृत्यु है। इसे 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' कहा जाता है।
'इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा का उद्गम हुआ' का अर्थ है:

आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण

249

उसमें 'चेतना के कारण मन का अस्तित्व है' का क्या अर्थ है?
भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्तीताओं का समूह। इसे 'चेतना के कारण मन' कहा जाता है।
इसमें 'मन के कारण छठा आधार होता है' का क्या अर्थ है?
जो चेतना, मन, विचार, :P : और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे 'मन के कारण छठा आधार 5' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।

इसमें 'छठे बेस की वजह से संपर्क होता है' का क्या अर्थ है?
जो संपर्क, संपर्क करना, संपर्क की क्रिया, संपर्क की अवस्था है। इसे 'छठे आधार के कारण संपर्क 5' कहा जाता है।
इसमें 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' का क्या अर्थ है? वह जो न तो मानसिक शांति है और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभव, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद भावना। इसे ही 'संपर्क के कारण भावना उत्पन्न होती है' कहा जाता है।
उसमें 'भावना के कारण निर्णय होता है' क्या है? वह जो चेतना का निर्णय है, निर्णायक होना, उस (चेतना) की निर्णय की अवस्था। इसे 'भावना के कारण निर्णय होता है' कहा जाता है।
इसमें 'निर्णय के कारण ऐसा हो रहा है' का क्या अर्थ है?
निर्णय के अपवाद के साथ (यह) भावना का समूह है, धारणा का समूह है, मानसिक सहवर्ती का समूह है, चेतना का समूह है। इसे 'निर्णय के कारण बनना' कहा जाता है।
उसमें 'जन्म होने के कारण' क्या है? वह जो इस या उस अवस्था के लिए जन्म, उत्पत्ति, अस्तित्व, पूर्ण अस्तित्व, प्रकट होना है। इसे 'जन्म होने के कारण' कहा जाता है।
इसमें 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' का क्या अर्थ है? वृद्धावस्था होती है; मृत्यु होती है। इसमें वृद्धावस्था क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए वृद्धावस्था, दुर्बलता, जीवन का क्षय है। इसे वृद्धावस्था कहते हैं। इसमें मृत्यु क्या है? वह जो किसी भी अवस्था के लिए विनाश, क्षय, टूटना, विघटन, अनित्यता, लुप्त होना है। इसे मृत्यु कहते हैं। इस प्रकार यह वृद्धावस्था और यह मृत्यु है। इसे 'जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु होती है' कहा जाता है।
'इस प्रकार इस संपूर्ण पीड़ा के समूह का उदय हुआ है 5 साधन:

250

विश्लेषण की पुस्तक

इस प्रकार यह संयोजन, संयोजन, सहस्थापन, पीड़ा के इस संपूर्ण समूह की उपस्थिति है। [192] इसलिए इसे "इस प्रकार पीड़ा के इस संपूर्ण समूह का उदय है" कहा जाता है।
(यहाँ समाप्त होता है) बुरी जड़ों वाले परिणामों का विवरण
(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
आश्रित उत्पत्ति का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 7 पाठ - सतीपत्थन
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 7. सतिपाठन (सतिपाठन) की आधारशिला का विश्लेषण
(संस्कृत: स्मृति-प्रस्थान; यहाँ सति/स्मृति का अर्थ ध्यान है)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

355. [193] ध्यान के चार आधार — इसमें एक भिक्षु शरीर में आंतरिक रूप से शरीर का चिंतन करता है; शरीर में बाह्य रूप से शरीर का चिंतन करता है; शरीर में आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से शरीर का चिंतन करता है, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और

मानसिक पीड़ा को दूर करता है। वह भावनाओं में आंतरिक रूप से भावना का चिंतन करता है; भावनाओं में बाह्य रूप से भावना का चिंतन करता है; भावनाओं में आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से भावना का चिंतन करता है, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है। वह चेतना में आंतरिक रूप से चेतना का चिंतन करता है; चेतना में बाह्य रूप से चेतना का चिंतन करता है; चेतना में आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से चेतना का चिंतन करता है, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है। वह मानसिक अवस्थाओं में आंतरिक रूप से मानसिक अवस्था का चिंतन करता है; बाह्य रूप से मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए; आंतरिक और बाह्य दोनों मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करते हुए।

1. शरीर पर चिंतन की व्याख्या

356. और एक भिक्षु शरीर के भीतर आंतरिक रूप से शरीर का चिंतन कैसे करता है? यहाँ एक भिक्षु शरीर के आंतरिक रूप से चिंतन करता है, पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा में लिपटे हुए, विभिन्न अशुद्धियों से भरे हुए, इस प्रकार, "इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डी, अस्थि मज्जा, गुर्दे; हृदय, यकृत, झिल्लीदार ऊतक, प्लीहा, फेफड़े; आंतें, मेसेंटरी, अपचित भोजन, मल; पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा; आंसू, लसीका, लार, नाक का बलगम है।"

11

252 विश्लेषण की पुस्तक

सिनोवियल द्रव, मूत्र"। वह उस वस्तु का पीछा करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, उसे अच्छी तरह से स्थिर करता है; पीछा करने, विकसित करने, दोहराने और उस वस्तु को अच्छी तरह से स्थिर करने के बाद, वह (अपनी) चेतना को बाह्य रूप से (दूसरों के) शरीर पर लागू करता है। [194]

और एक भिक्षु बाह्य रूप से शरीर में शरीर का चिंतन कैसे करता है? यहाँ एक भिक्षु बाह्य रूप से शरीर का चिंतन करता है, पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे, विभिन्न अशुद्धियों से भरे शरीर का, इस प्रकार, 4 'उस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डी, अस्थि मज्जा, गुर्दे; हृदय, यकृत, झिल्लीदार ऊतक, प्लीहा, फेफड़े; आंतें, मेसेंटरी, अपचित भोजन, मल; पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा; आंसू, लसीका, लार, नाक का बलगम, साइनोवियल द्रव, मूत्र'। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करता है; उस विषय का अच्छी तरह से अनुसरण करने, उसे विकसित करने, दोहराने और उस पर अच्छी तरह ध्यान केंद्रित करने के बाद, वह शरीर पर आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से अपनी चेतना लगाता है।

और एक भिक्षु शरीर में आंतरिक और बाह्य रूप से कैसे चिंतन करता है? यहाँ एक भिक्षु शरीर का आंतरिक और बाह्य रूप से चिंतन करता है, पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे, विभिन्न अशुद्धियों से परिपूर्ण, इस प्रकार, "इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा; मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दे; हृदय, यकृत, झिल्लीदार ऊतक, प्लीहा, फेफड़े; आंतें, मेसेंटरी, अपचित भोजन, मल; पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा; आँसू, लसीका, लार, नाक का बलगम, नस का द्रव, मूत्र"। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में आंतरिक और बाह्य रूप से चिंतन करता है, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है।

357. 'चिंतन करना 9 का अर्थ है: उसमें जो चिंतन किया जाता है-

चिंतन? जो ज्ञान, समझ, : P : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे चिंतन कहते हैं। इस चिंतन से वह परिपूर्ण, अच्छी तरह परिपूर्ण, प्राप्त, अच्छी तरह प्राप्त, संपन्न, संपन्न, सुसज्जित है। इसलिए इसे 'चिंतन' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

358. 'निवास करना' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करना, विद्यमान होना,

रक्षा करता है, चलता रहता है, बनाए रखता है, घूमता है, निवास करता है। इसलिए इसे 'निवास करना' कहा जाता है।

माइंडफुलनेस की नींव का विश्लेषण

253

359. 'उत्साही' का अर्थ है: उसमें उत्साह क्या है? वह जो है

मानसिक ऊर्जा का जागरण, सही प्रयास। इसे उत्साह कहते हैं। वह इस उत्साह से परिपूर्ण है, इसे प्राप्त कर चुका है, इसे अच्छी तरह से प्राप्त कर चुका है, इससे संपन्न है, इससे परिपूर्ण है। इसलिए इसे 'उत्साही' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

360. 'जागरूक' का अर्थ है: उसमें जागरूकता क्या है? वह जो

ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे जागरूकता कहते हैं। वह इस जागरूकता से परिपूर्ण है, अच्छी तरह से परिपूर्ण है, अच्छी तरह से प्राप्त है, संपन्न है, अच्छी तरह से संपन्न है, सुसज्जित है। इसलिए इसे 'जागरूक' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

361. 'सचेत* का अर्थ है: उसमें सचेतनता क्या है? कि

जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता। इसे ही सचेतनता कहते हैं। इस सचेतनता से वह परिपूर्ण है, इस सचेतनता से अच्छी तरह परिपूर्ण है, इस सचेतनता को प्राप्त कर चुका है, इस सचेतनता से परिपूर्ण है। अतः इसे 'सचेत' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

362. 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' का अर्थ है: संसार क्या है? यही शरीर संसार है।

पांचों आसक्तियाँ (जिनके विषय हैं) संसार हैं। इसे संसार कहते हैं। इसमें लोभ क्या है? वह जो कामवासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे लोभ कहते हैं। इसमें मानसिक पीड़ा क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं। इस प्रकार इस संसार में यह लोभ और यह मानसिक पीड़ा दूर हो जाती है, समाप्त हो जाती है, शांत हो जाती है, नियंत्रित हो जाती है, समाप्त हो जाती है, भस्म हो जाती है, पूरी तरह नष्ट हो जाती है, मुरझा जाती है, पूरी तरह समाप्त हो जाती है। अतः इसे 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 249 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) शरीर पर चिंतन की व्याख्या

254

विश्लेषण की पुस्तक

2. भावनाओं पर चिंतन की व्याख्या

363. और एक भिक्षु आंतरिक रूप से भावनाओं में चिंतन करते हुए कैसे रहता है? यहाँ एक भिक्षु सुखद अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे सुखद अनुभूति हो रही है”; पीड़ादायक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे पीड़ादायक अनुभूति हो रही है”; न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति हो रही है”। सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे सुखद सांसारिक अनुभूति हो रही है”; या, सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे सुखद सांसारिक अनुभूति हो रही है”। पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति हो रही है”; या, पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति हो रही है”। न पीड़ादायक और न ही सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे न पीड़ादायक और न ही सुखद सांसारिक अनुभूति हो रही है”; या, न पीड़ादायक और न ही सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “मुझे न पीड़ादायक और न ही सुखद सांसारिक अनुभूति हो रही है”। [196] वह उस वस्तु का पीछा करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, उसे अच्छी तरह से स्थिर करता है; पीछा करने, उसे विकसित करने, उसे दोहराने, उस वस्तु को अच्छी तरह से स्थिर करने के बाद, वह (अपनी) चेतना को बाहरी रूप से (दूसरों की) भावना पर लागू करता है।

और एक भिक्षु बाह्य रूप से भावनाओं में चिंतन करते हुए कैसे रहता है? यहाँ एक भिक्षु किसी दूसरे को सुखद अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “उसे सुखद अनुभूति हो रही है”; किसी दूसरे को दुखदायी अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, “उसे दुखदायी अनुभूति हो रही है”; किसी दूसरे को न दुखदायी और न ही सुखद अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है।

' ' उसे न तो कोई पीड़ादायक और न ही कोई सुखद अनुभूति होती है 5 ' । किसी दूसरे व्यक्ति को सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे सुखद सांसारिक अनुभूति होती है"; किसी दूसरे व्यक्ति को सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे सुखद सांसारिक अनुभूति होती है"। किसी दूसरे व्यक्ति को पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति होती है"; किसी दूसरे व्यक्ति को पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे पीड़ादायक सांसारिक अनुभूति होती है"। किसी दूसरे व्यक्ति को न तो

पीड़ादायक और न ही कोई सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे न तो पीड़ादायक और न ही कोई सुखद सांसारिक अनुभूति होती है"; किसी दूसरे व्यक्ति को न तो पीड़ादायक और न ही कोई सुखद सांसारिक अनुभूति का अनुभव करते हुए जानता है, तो कहता है, "उसे न तो पीड़ादायक और न ही कोई सुखद सांसारिक अनुभूति होती है"। वह उस वस्तु का अच्छी तरह से अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है और उसमें स्थिर करता है; उस वस्तु का पीछा करने, उसे विकसित करने, उसे दोहराने और उसे अच्छी तरह से समझने के बाद, वह आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की भावनाओं पर अपनी चेतना लगाता है।

माइंडफुलनेस की नींव का विश्लेषण

255

और एक भिक्षु किस प्रकार भावों में भावों का चिंतन करते हुए निवास करता है? इसमें भिक्षु सुखद भाव को जानता है, “सुखद भाव”; दुखदायी भाव को जानता है, “दुखदायी भाव”; न दुखदायी न सुखदायी भाव को जानता है, “न दुखदायी न सुखदायी भाव”। सुखद सांसारिक भाव को जानता है, “सुखदायी सांसारिक भाव”; वह सुखद सांसारिक अनुभूति को जानता है, “सुखद सांसारिक अनुभूति”। वह कष्टदायक सांसारिक अनुभूति को जानता है, “कष्टदायक सांसारिक अनुभूति”; वह कष्टदायक सांसारिक अनुभूति को जानता है, “कष्टदायक सांसारिक अनुभूति”। वह न कष्टदायक और न सुखदायक सांसारिक अनुभूति को जानता है, “न कष्टदायक और न सुखदायक सांसारिक अनुभूति”; वह न कष्टदायक और न सुखदायक सांसारिक अनुभूति को जानता है, “न कष्टदायक और न सुखदायक सांसारिक अनुभूति”। इस प्रकार एक भिक्षु आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की अनुभूतियों में चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत होकर, संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है।

364. 'विचार करना' का अर्थ है: :PX : 'निवास करना' का अर्थ है: :P 2 :

'उत्साही' का अर्थ है: :P 3 : 'जागरूक' का अर्थ है: :P 4 : [197] 'सचेत' का अर्थ है: :PS : 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' का अर्थ है: संसार क्या है? यही भावना संसार है, और आसक्तियों के पाँच समूह भी संसार हैं। इसे संसार कहते हैं। लोभ क्या है? वह जो कामवासना, आसक्ति, :P 6 : चेतना की आसक्ति है। इसे लोभ कहते हैं। मानसिक पीड़ा क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं। इस प्रकार इस संसार में यह लोभ और यह मानसिक पीड़ा दूर हो जाती है, समाप्त हो जाती है, शांत हो जाती है, स्थिर हो जाती है, अवरुद्ध हो जाती है, समाप्त हो जाती है, गायब हो जाती है, पूरी तरह नष्ट हो जाती है, मुरझा जाती है, पूरी तरह मुरझा जाती है, निरस्त हो जाती है। इसलिए इसे 'संसार से लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' कहा जाता है।

पी^पैरा देखें. 357. पी 2 = पैरा देखें। 358. पी 3 = पैरा देखें। 359

पी 4 = पैरा देखें। 360. पी 5 = पैरा देखें। 361. पी 6 = पैरा देखें। 249.

(यहाँ समाप्त होता है) भावना पर चिंतन की व्याख्या

256

3. चेतना पर चिंतन की व्याख्या

365. और एक भिक्षु आंतरिक रूप से चेतना में चेतना का चिंतन कैसे करता है? यहाँ एक भिक्षु कामवासना से ग्रस्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना कामवासना से ग्रस्त है”; या, कामवासना रहित चेतना को जानता है, “मेरी चेतना कामवासना रहित है”। घृणा से ग्रस्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना घृणा से ग्रस्त है”; या, घृणा रहित चेतना को जानता है, “मेरी चेतना घृणा रहित है”। सुस्ती से ग्रस्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना सुस्ती से ग्रस्त है”; या, सुस्ती रहित चेतना को जानता है, “मेरी चेतना सुस्ती रहित है”। संकुचित चेतना को जानता है, “मेरी चेतना संकुचित है”; या, बिखरी हुई चेतना को जानता है, “मेरी चेतना बिखरी हुई है”। उदात्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना उदात्त है”; या, उदात्त न होने वाली चेतना को जानता है, “मेरी चेतना उदात्त नहीं है”। श्रेष्ठ चेतना को जानता है, “मेरी चेतना श्रेष्ठ है”; या, अतुलनीय चेतना को जानता है, “मेरी चेतना अतुलनीय है”। वह एकाग्रता को जानता है, “मेरी चेतना एकाग्र है”; या, गैर-एकाग्र चेतना को जानता है, “मेरी चेतना एकाग्र नहीं है”। वह मुक्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना मुक्त है”; या, गैर-मुक्त चेतना को जानता है, “मेरी चेतना मुक्त नहीं है”। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करता है; उस विषय का अनुसरण करने, उसे विकसित करने, दोहराने और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करने के बाद, वह अपनी चेतना को दूसरों की चेतना पर बाह्य रूप से लागू करता है।

और एक भिक्षु बाहरी चेतना में चेतना का चिंतन कैसे करता है? यहाँ एक भिक्षु दूसरे की कामवासना से ग्रस्त चेतना को जानता है, “उसकी चेतना कामवासना से ग्रस्त है”; या, दूसरे की कामवासना रहित चेतना को जानता है, “उसकी चेतना कामवासना रहित है”। दूसरे की घृणा से ग्रस्त चेतना को जानता है, “उसकी चेतना घृणा से ग्रस्त है”; [198] या, दूसरे की घृणा रहित चेतना को जानता है, “उसकी चेतना घृणा रहित है”। दूसरे की सुस्ती से ग्रस्त चेतना को जानता है, “उसकी चेतना सुस्ती से ग्रस्त है”; या, दूसरे की सुस्ती रहित चेतना को जानता है, “उसकी चेतना सुस्ती रहित है”। जानता है

दूसरे की संकुचित चेतना को जानकर, “उसकी चेतना संकुचित है”; या, दूसरे की बिखरी हुई चेतना को जानकर, “उसकी चेतना बिखरी हुई है”। दूसरे की उदात्त चेतना को जानकर, “उसकी चेतना उदात्त है”; या, दूसरे की उदात्त न होने वाली चेतना को जानकर, “उसकी चेतना उदात्त नहीं है”। दूसरे की श्रेष्ठ चेतना को जानकर, “उसकी चेतना श्रेष्ठ है”; या, दूसरे की अतुलनीय चेतना को जानकर, “उसकी चेतना अतुलनीय है”। दूसरे की एकाग्र चेतना को जानकर, “उसकी चेतना एकाग्र है”; या, दूसरे की अनिर्गाग्र चेतना को जानकर, “उसकी चेतना एकाग्र नहीं है”। दूसरे की मुक्त चेतना को जानकर, “उसकी चेतना मुक्त है”; या, दूसरे की अमुक्त चेतना को जानकर, “उसकी चेतना मुक्त नहीं है”। वह उस वस्तु का अच्छी तरह से अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है और उसमें स्थिर करता है; उस वस्तु का पीछा करने, उसे विकसित करने, उसे दोहराने और उसे अच्छी तरह से समझने के बाद, वह आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से चेतना पर अपनी चेतना लागू करता है।

और एक भिक्षु आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से चेतना में चेतना का चिंतन करते हुए कैसे निवास करता है? यहाँ एक भिक्षु कामवासना से ग्रस्त चेतना को जानता है, "कामवासना से ग्रस्त चेतना"; या, कामवासना रहित चेतना को जानता है, "कामवासना रहित चेतना"।

घृणा से ग्रस्त चेतना को जानता है, "घृणा से ग्रस्त चेतना"; या, घृणा रहित चेतना को जानता है, "घृणा रहित चेतना"। सुस्ती से ग्रस्त चेतना को जानता है, "सुस्तता से ग्रस्त चेतना"; या, सुस्ती रहित चेतना को जानता है, "सुस्तता रहित चेतना"। संकुचित चेतना को जानता है, "संकुचित चेतना"; या, बिखरी हुई चेतना को जानता है, "बिखरी हुई चेतना"। उदात्त चेतना को जानता है, "उदात्त चेतना"; या, उदात्त न होने वाली चेतना को जानता है, "उदात्त चेतना"। श्रेष्ठ चेतना को जानता है, "श्रेष्ठ चेतना"; या, श्रेष्ठ न होने वाली चेतना को जानता है, "श्रेष्ठ चेतना"। एकाग्र चेतना को जानता है, "एकाग्र चेतना"; या, जो एकाग्र चेतना से रहित है, उसे "एकाग्र चेतना" कहा जाता है। जो मुक्त चेतना से रहित है, उसे "मुक्त चेतना" कहा जाता है; या, जो मुक्त चेतना से रहित है, उसे "मुक्त चेतना से रहित" कहा जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु आंतरिक और बाह्य दोनों रूपों में चेतना में चेतना का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत होकर संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है।

258

विश्लेषण की पुस्तक

366. 'विचार करना' का अर्थ है: : पृष्ठ 1 : 'निवास करना' का अर्थ है: : पृष्ठ 2 :

'उत्साही' का अर्थ है: :पृष्ठ 3 : 'जागरूक' का अर्थ है: :पृष्ठ 4 : 'सचेत'

अर्थ: पृष्ठ 5: 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' का अर्थ है: संसार क्या है? यही चेतना संसार है, और आसक्तियों के पाँच समूह भी संसार हैं। लोभ क्या है? [199] वह जो कामवासना, आसक्ति, पृष्ठ 6: चेतना की आसक्ति है। इसे लोभ कहते हैं। मानसिक पीड़ा क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं। इस प्रकार इस संसार में यह लोभ और यह मानसिक पीड़ा दूर हो जाती है, समाप्त हो जाती है, शांत हो जाती है, नियंत्रित हो जाती है, समाप्त हो जाती है, गायब हो जाती है, पूरी तरह नष्ट हो जाती है, मुरझा जाती है, पूरी तरह मुरझा जाती है, निरस्त हो जाती है। इसलिए इसे 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' कहते हैं।

पी* = पैरा देखें। 357. पी 2 = पैरा देखें। 358. पी 3 = पैरा देखें। 359.

पी 4 = पैरा देखें। 360. पी एस = पैरा देखें। 361. पी 6 = पैरा देखें। 249.

(यहाँ समाप्त होता है) चेतना पर चिंतन की व्याख्या

4. मानसिक अवस्थाओं पर चिंतन की व्याख्या

367. और भिक्षु मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए कैसे रहता है? इसमें भिक्षु इंद्रिय सुख की आंतरिक इच्छा के बारे में जानता है, “मुझमें इंद्रिय सुख की आंतरिक इच्छा है”; या, इंद्रिय सुख की आंतरिक इच्छा न होने के बारे में जानता है, “मुझमें इंद्रिय सुख की आंतरिक इच्छा नहीं है”। और वह यह भी जानता है कि कैसे अजन्मी इंद्रिय सुख की इच्छा उत्पन्न होती है; और कैसे उत्पन्न इंद्रिय सुख की इच्छा का त्याग होता है; और कैसे त्यागी हुई इंद्रिय सुख की इच्छा का भविष्य में कोई जन्म नहीं होता है। आंतरिक द्वेष के बारे में; आंतरिक आलस्य और सुस्ती के बारे में; आंतरिक विचलितता और पश्चाताप के बारे में।

पी: आंतरिक संदेह के बारे में जानता है, "मेरे भीतर आंतरिक संदेह है।"
संदेह"; या, आंतरिक संदेह न होने के बारे में जानता है, "मुझमें आंतरिक संदेह नहीं है"। और यह भी जानता है कि अजन्मे संदेह का उदय कैसे होता है; और यह भी कि उत्पन्न संदेह का उदय कैसे होता है।

त्याग करने का भी वह ज्ञान रखता है; और यह भी कि त्यागे हुए संदेह का भविष्य में कोई उद्भव नहीं होता।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

या तो वह आंतरिक सजगता-ज्ञान के तत्व के अस्तित्व को जानता है, "मुझमें आंतरिक सजगता-ज्ञान का तत्व मौजूद है"; या, आंतरिक सजगता-ज्ञान के तत्व के अस्तित्व न होने को जानता है, "मुझमें आंतरिक सजगता-ज्ञान का तत्व मौजूद नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि अजन्मी सजगता-ज्ञान का तत्व कैसे उत्पन्न होता है; और यह भी कि उत्पन्न सजगता-ज्ञान का तत्व विकास की पूर्णता कैसे प्राप्त करता है। आंतरिक सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक होने के कारण, आंतरिक ऊर्जा-ज्ञान-कारक होने के कारण, आंतरिक उत्साह-ज्ञान-कारक होने के कारण, आंतरिक शांति-ज्ञान-कारक होने के कारण, आंतरिक एकाग्रता-ज्ञान-कारक होने के कारण, आंतरिक समता-ज्ञान-कारक होने के कारण, "मुझमें आंतरिक समता-ज्ञान-कारक है"; या, वह जानता है कि उसमें आंतरिक समभाव-ज्ञान का तत्व नहीं है, "मुझमें आंतरिक समभाव-ज्ञान का तत्व नहीं है।" और वह यह भी जानता है कि अजन्मे समभाव-ज्ञान का तत्व कैसे उत्पन्न होता है; और यह भी कि उत्पन्न समभाव-ज्ञान का तत्व विकास की पूर्णता कैसे प्रदान करता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करता है; उस विषय का अनुसरण करने, उसे विकसित करने, दोहराने और उस पर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करने के बाद वह अपनी चेतना को बाह्य मानसिक अवस्थाओं पर लगाता है।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

और एक भिक्षु बाहरी मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्था का चिंतन कैसे करता है? इसमें भिक्षु दूसरे में इंद्रिय सुख की इच्छा के बारे में जानता है, "उसमें इंद्रिय सुख की इच्छा है"; या, दूसरे में इंद्रिय सुख की इच्छा न होने के बारे में जानता है, "उसमें इंद्रिय सुख की इच्छा नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि कैसे अजन्मी इंद्रिय सुख की इच्छा उत्पन्न होती है; और कैसे उत्पन्न इंद्रिय सुख की इच्छा का त्याग होता है; और कैसे त्यागी हुई इंद्रिय सुख की इच्छा का भविष्य में कोई उद्भव नहीं होता। दूसरे में दुर्भावना होने के बारे में; दूसरे में आलस्य और सुस्ती होने के बारे में; दूसरे में विचलित होने और पश्चाताप होने के बारे में।

पी: दूसरे के मन में संदेह होने के बारे में जानता है, "उसमें संदेह है"
उसे"; या, दूसरे में संदेह न होने के बारे में जानते हुए, "उसमें कोई संदेह नहीं है"। और यह भी जानते हैं कि अजन्मे संदेह का भी उद्भव कैसे होता है; और उत्पन्न संदेह का त्याग कैसे होता है; और त्यागे हुए संदेह का भविष्य में कोई उद्भव नहीं होता।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

या तो वह जानता है कि दूसरे में सजगता-ज्ञान का गुण है, "उसमें सजगता-ज्ञान का गुण है"; या, जानता है कि दूसरे में सजगता-ज्ञान का गुण नहीं है, "उसमें सजगता-ज्ञान का गुण नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि अजन्मी सजगता-ज्ञान का गुण कैसे उत्पन्न होता है; और यह भी कि उत्पन्न सजगता-ज्ञान का गुण कैसे पूर्ण होता है। वह यह भी जानता है कि दूसरे में सत्य अन्वेषण-ज्ञान का गुण है, और दूसरे में ऊर्जा-ज्ञान का गुण है।

पी: दूसरे में उत्साह-ज्ञान-कारक होने का, :पी: का
किसी दूसरे में शांति-ज्ञान का गुण होने पर, किसी दूसरे में एकाग्रता-ज्ञान का गुण होने पर, किसी दूसरे में समभाव-ज्ञान का गुण होने पर, वह जानता है, "उसमें समभाव-ज्ञान का गुण है"; या, किसी दूसरे में समभाव-ज्ञान का गुण न होने पर, [201] "उसमें समभाव-ज्ञान का गुण नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि अजन्मे समभाव-ज्ञान का गुण कैसे उत्पन्न होता है; और वह यह भी जानता है कि उत्पन्न समभाव-ज्ञान का गुण कैसे पूर्ण होता है। वह उस विषय का अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है, उसे अच्छी तरह से स्थिर करता है; उस विषय का अनुसरण करने, उसे विकसित करने, उसे दोहराने और उसे अच्छी तरह से स्थिर करने के बाद वह अपनी चेतना को आंतरिक और बाह्य दोनों मानसिक अवस्थाओं पर लगाता है।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

और भिक्षु आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए कैसे रहता है? यहाँ भिक्षु इंद्रिय सुख की इच्छा के बारे में जानता है, "इंद्रिय सुख की इच्छा है"; या, इंद्रिय सुख की इच्छा न होने के बारे में जानता है, "इंद्रिय सुख की इच्छा नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि अजन्मी इंद्रिय सुख की इच्छा कैसे उत्पन्न होती है; और उत्पन्न इंद्रिय सुख की इच्छा का त्याग कैसे होता है।

यह भी वह जानता है; और यह भी कि इंद्रिय सुख की इच्छा का त्याग भविष्य में नहीं होता। दुर्भावना, आलस्य, विचलितता और पश्चाताप के बारे में वह जानता है; संदेह के बारे में वह कहता है, "संदेह है"; या संदेह न होने के बारे में वह कहता है, "संदेह नहीं है"। और यह भी कि असंदेह का भी उद्भव होता है; और यह भी कि उत्पन्न संदेह का त्याग होता है; और यह भी कि त्यागे हुए संदेह का भविष्य में कोई उद्भव नहीं होता।

P — अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

या तो वह सचेतनता-ज्ञान के कारक के अस्तित्व को जानता है, "सचेतनता-ज्ञान का कारक मौजूद है"; या, सचेतनता-ज्ञान के कारक के अस्तित्व न होने को जानता है, "सचेतनता-ज्ञान का कारक नहीं है"। और वह यह भी जानता है कि कैसे अजन्मी सचेतनता-ज्ञान का कारक उत्पन्न होता है; और कैसे उत्पन्न सचेतनता-ज्ञान के कारक से विकास की पूर्णता होती है, यह भी वह जानता है। सत्य अन्वेषण-ज्ञान के कारक के अस्तित्व को, ऊर्जा-ज्ञान के कारक के अस्तित्व को, उत्साह-ज्ञान के कारक के अस्तित्व को, शांति-ज्ञान के कारक के अस्तित्व को।

पी: एकाग्रता-ज्ञान-कारक होने के बारे में, :पी:
समभाव-ज्ञान के अस्तित्व को जानते हुए, वह कहता है, “समभाव-ज्ञान मौजूद है”; या समभाव-ज्ञान के अभाव को जानते हुए, वह कहता है, “समभाव-ज्ञान नहीं है”। और वह यह भी जानता है कि अनात्म समभाव-ज्ञान का उद्भव कैसे होता है; और उद्भवित समभाव-ज्ञान का विकास कैसे पूर्ण होता है, यह भी वह जानता है। इस प्रकार एक भिक्षु आंतरिक और बाह्य दोनों मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए, सजग, जागरूक और सचेत रहता है; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है।

P=: अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

368. 'चिंतन 9 का अर्थ है: उसमें चिंतन क्या है? [202] जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे चिंतन कहते हैं। वह इस चिंतन से परिपूर्ण है, अच्छी तरह परिपूर्ण है।

262

विश्लेषण की पुस्तक

प्राप्त, अच्छी तरह से प्राप्त, संपन्न, संपन्न, सुसज्जित। इसलिए इसे 'चिंतन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

369. 'निवास करना' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करना, अस्तित्व में रहना, रक्षा करना, चलते रहना, बनाए रखना, घूमना, निवास करना। अतः इसे 'निवास करना' कहा जाता है।

370. 'उत्साही' का अर्थ है: उसमें उत्साह क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, :PX : सही प्रयास। इसे उत्साह कहते हैं। वह इस उत्साह से युक्त है, :P 2 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'उत्साही' कहा जाता है।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2=पैरा देखें। 368.

371. 'जागरूक' का अर्थ है: जागरूकता क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, :P 1 : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे जागरूकता कहते हैं। वह इस जागरूकता से युक्त है, :P 2 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'जागरूक' कहते हैं।

पी^पैरा देखें. 525. पी 2 = पैरा देखें। 368.

372. 'सचेत' का अर्थ है: उसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता। इसे सचेतनता कहते हैं। वह इस सचेतनता से युक्त है, सुसज्जित है। इसलिए इसे 'सचेत' कहा जाता है।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2 = पैरा देखें। 368.

373. 'संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' का अर्थ है: संसार क्या है? यही मानसिक अवस्थाएँ संसार हैं, और पाँचों तत्व (जिनके विषय हैं) भी संसार हैं। इसे संसार कहते हैं। लोभ क्या है? वह जो कामवासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति है। इसे लोभ कहते हैं। मानसिक पीड़ा क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं। इस प्रकार इस संसार में यह लोभ और यह मानसिक पीड़ा दूर हो जाती है, समाप्त हो जाती है, शांत हो जाती है, नियंत्रित हो जाती है, समाप्त हो जाती है, गायब हो जाती है, पूरी तरह नष्ट हो जाती है, मुरझा जाती है, पूरी तरह मुरझा जाती है, निरस्त हो जाती है।

माइंडफुलनेस की नींव का विश्लेषण

263

इसलिए इसे 'संसार से लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 249 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) मानसिक अवस्थाओं पर चिंतन की व्याख्या

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

374. ध्यान के चार आधार — इसमें भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हैं; भावनाओं में भावना का चिंतन करते हैं; चेतना में चेतना का चिंतन करते हैं; मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्था का चिंतन करते हैं।

[203]

375. भिक्षु शरीर में शरीर का ध्यान कैसे लगाता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और उस प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है—शरीर में शरीर का ध्यान लगाना। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान का तत्व, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से जुड़ी हैं।

पी — पैराग्राफ 205 देखें।

376. और एक भिक्षु किस प्रकार भावों में भावों का चिंतन करते हुए निवास करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अति-मौन ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है—भावों में भावों का चिंतन करना। उस समय जो कुछ भी होता है,

264

विश्लेषण की पुस्तक

समय ही सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, सही सचेतनता है, सचेतनता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही सचेतनता का आधार कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से जुड़ी हुई हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

377. और एक भिक्षु चेतना में चेतना का चिंतन कैसे करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और उस प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है—चेतना में चेतना का चिंतन। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधारों से संबंधित हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

378. भिक्षु मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए कैसे निवास करता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और उस प्रथम ध्यान में निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है—मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करना। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से जुड़ी हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

379. इसमें ध्यान का आधार क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण को त्यागने और प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए ध्यान लगाता है।

माइंडफुलनेस की नींव का विश्लेषण

265

यह अवस्था, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान की अवस्था में लीन हो जाती है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान का परिणाम है—विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करना। उस समय जो भी सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता,

सचेतनता-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से जुड़ी हुई हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

380. ध्यान के चार आधार — इसमें भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करता है; भावनाओं में भावना का चिंतन करता है; चेतना में चेतना का चिंतन करता है; मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्था का चिंतन करता है।

[204]

381. और एक भिक्षु शरीर में शरीर का ध्यान करते हुए कैसे निवास करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अलौकिक अच्छे ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान में निवास करता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और शून्य है - शरीर में शरीर का ध्यान करते हुए। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे ही ध्यान का आधार कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इसी आधार से जुड़ी होती हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

382. और एक भिक्षु किस प्रकार भावों में भावों का चिंतन करते हुए निवास करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर अति-मौन ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है।

प्रथम ध्यान वह है जिसमें कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान शामिल है; उस समय संपर्क होता है, :P 2 : अविचल की अवस्था होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। उसी अलौकिक अच्छे ध्यान को प्राप्त करने और विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, :P 1 : परिणामी प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान और शून्यता से युक्त है—भावों में भावों का चिंतन करते हुए। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से जुड़ी हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

383. और एक भिक्षु चेतना में चेतना का चिंतन करते हुए कैसे रहता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह, गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के

लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अलौकिक अच्छे ध्यान को विकसित करने के बाद, वह, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और निःसंतान है - चेतना में चेतना का चिंतन करते हुए। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक है, वह मार्ग में समाहित है। इसे माइंडफुलनेस की नींव कहा जाता है। (साथ ही) माइंडफुलनेस की नींव से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी। [205]

पी 1 - पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

384. और भिक्षु मानसिक अवस्थाओं में चिंतन करते हुए कैसे रहता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने और विकसित करने के बाद

उसी अलौकिक उत्तम ध्यान में, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, ऋणात्मक श्लोक 1: परिणामी प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान और शून्यता से उत्पन्न होता है—विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्था का चिंतन करते हुए। उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक होता है, वह मार्ग में समाहित होता है। इसे सचेतनता का आधार कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता के आधार से संबंधित होती हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

385. इसमें ध्यान का आधार क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्त होकर, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठोर अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान से युक्त प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है; अविचल की अवस्था होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अलौकिक अच्छे ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठोर अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान से युक्त है और शून्य है।* उस समय जो ध्यान, निरंतर ध्यान, सही ध्यान, ध्यान-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है, उसे ही ध्यान का आधार कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सचेतनता की नींव से जुड़ी हुई हैं।

पीए = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

^मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्था पर चिंतन करना आमतौर पर यहाँ शामिल होता है।

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

386. ध्यान के चार आधार — इसमें भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत रहते हैं; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करते हैं; भावों में भावों का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत रहते हैं; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करते हैं; चेतना में चेतना का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत रहते हैं; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करते हैं;

मानसिक अवस्थाओं में मानसिक स्थिति पर चिंतन करना, उत्साही, जागरूक, सचेत; संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करना। [206]

387. ध्यान के चार आधारों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कितने ऐसे हैं जिन पर पछतावा करने का कारण है; कितने ऐसे हैं जिन पर पछतावा करने का कोई कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

388. (सजगता के चार आधार) कभी अच्छे होते हैं; कभी न अच्छे होते हैं न बुरे। कभी सुखद भावों से जुड़े होते हैं; कभी दुखदायी न सुखद भावों से जुड़े होते हैं। कभी परिणाम होते हैं; कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधहीन होते हैं, आसक्तियों के विषय नहीं होते। न भ्रष्ट होते हैं, न भ्रष्टताओं के विषय होते हैं। कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं, कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना। कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी आनंद के साथ; कभी उदासीनता के साथ। न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य; न ही प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य कोई मूल हैं। कभी विक्षेपणशील होते हैं (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में बंधे हुए); कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपणशील। कभी सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं। अतुलनीय होते हैं। इनका उद्देश्य असीम है। ये श्रेष्ठ हैं। कभी-कभी ये निश्चित (परिणामी समय) के साथ सही (अवस्थाएँ) होती हैं; कभी-कभी इनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। इनका उद्देश्य पथ नहीं होता; कभी-कभी पथ इनका कारण होता है; कभी-कभी पथ इनका प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि पथ इनका कारण या प्रमुख कारक है। कभी-कभी ये उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी इनका उत्पन्न होना तय है। कभी-कभी ये भूतकाल होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल होते हैं। इनका न तो भूतकाल, न भविष्यकाल और न ही वर्तमानकाल का कोई उद्देश्य होता है। कभी-कभी ये आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाह्य होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। इनका बाह्य उद्देश्य होता है। ये अदृश्य होते हैं, इनका कोई प्रभाव नहीं होता।

2. दोहे

269

389. (सजगता के चार आधार) जड़ नहीं हैं। जड़ के साथ हैं। जड़ से जुड़े हैं। इन्हें जड़ के साथ होने वाली जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) जड़ के साथ हैं लेकिन जड़ नहीं हैं। इन्हें जड़ के साथ होने वाली जड़ नहीं कहा जाना चाहिए: (वे) जड़ से जुड़े हैं लेकिन जड़ नहीं हैं। जड़ नहीं हैं, जड़ के साथ हैं।

(सजगता के चार आधार) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। प्रभावहीन हैं। भौतिक नहीं हैं। अलौकिक हैं। एक मार्ग से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं किए जा सकते। दोष नहीं हैं। दोषों के विषय नहीं हैं। दोषों से संबद्ध नहीं हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि दोष भी दोषों के विषय हैं या दोषों के विषय हैं लेकिन दोष नहीं हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि दोष भी दोषों से संबद्ध हैं या दोषों से संबद्ध हैं लेकिन दोष नहीं हैं। दोषों से संबद्ध नहीं हैं, दोषों के विषय नहीं हैं। बंधन नहीं हैं।

पी: ये बंधन नहीं हैं। :पी: ये बाढ़ नहीं हैं। :पी: ये बंधन नहीं हैं। :पी: ये
बाधाएँ नहीं हैं। ; P: विकृतियाँ नहीं हैं। :P: इनके उद्देश्य होते हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से जुड़े हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं। ये चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना के साथ रहते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ रहते हैं। ये बाह्य हैं। ये व्युत्पन्न नहीं हैं। इन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता है। ये आसक्ति नहीं हैं। :P: ये विकृतियाँ नहीं हैं। :P: इन्हें प्रथम मार्ग द्वारा नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इन्हें अनुवर्ती मार्गों द्वारा नहीं छोड़ा जाना चाहिए। प्रथम मार्ग द्वारा छोड़े जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। अनुवर्ती मार्गों द्वारा छोड़े जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं।

P = इस पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के लिए पूर्ण।

(सजगता के चार आधार) कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; [207] कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के बिना होते हैं। कभी-कभी साथ में होते हैं

द्वितीय

270

विश्लेषण की पुस्तक

उदासीनता; कभी-कभी उदासीनता के साथ नहीं होती। इच्छा के तल की विशेषताएँ नहीं हैं। रूप के तल की विशेषताएँ नहीं हैं। निराकार तल की विशेषताएँ नहीं हैं। समाहित नहीं हैं (अर्थात् अलौकिक हैं)। कभी-कभी मुक्ति की प्रवृत्ति रखते हैं; कभी-कभी मुक्ति की प्रवृत्ति

नहीं रखते। कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) के होते हैं; कभी-कभी अनिश्चित (परिणामी समय) के होते हैं। अतुलनीय हैं। शोक का कोई कारण नहीं है।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

ध्यान की नींव का विश्लेषण

समाप्त
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 8 पाठ - सम्मप्पाधना
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 8. सही प्रयास (समप्पधान) का विश्लेषण

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

390. [208] चार सही प्रयास — इसमें भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं को स्थिर करने, उन्हें एक साथ लाने, उन्हें बढ़ाने, उन्हें परिपक्व करने, उन्हें विकसित करने और उन्हें पूर्ण करने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं।

391. भिक्षु इच्छा कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास कैसे करता है, ऊर्जा कैसे जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और अजन्मे बुरे भावों को उत्पन्न न होने देने के लिए कैसे प्रयास करता है? अजन्मे बुरे भाव क्या हैं? तीन बुरे मूल (अर्थात) लोभ, घृणा, सुस्ती और उनसे उत्पन्न होने वाले दोष; उनसे संबंधित भावों का समूह, बोध का समूह, मानसिक बोधों का समूह, चेतना का समूह; उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक क्रिया, वाणी और मानसिक क्रिया। इन्हें अजन्मे बुरे भाव कहा जाता है। इस प्रकार वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और इन अजन्मे बुरे भावों को उत्पन्न न होने देने के लिए प्रयास करता है।

392. 'इच्छा उत्पन्न करना' का अर्थ है: इसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी और धार्मिक इच्छा। इसे इच्छा कहते हैं। वह इस इच्छा को उत्पन्न करता है, अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे उत्पन्न करता है, इसे अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे अस्तित्व में लाता है, इसे पूर्ण रूप से अस्तित्व में लाता है। इसलिए इसे 'इच्छा उत्पन्न करना' कहते हैं।

393. 'प्रयास करता है' का अर्थ है: उसमें प्रयास क्या है? वह जो

मानसिक ऊर्जा का जागरण, सही प्रयास। [209] इसे प्रयास कहते हैं। इस प्रयास से वह संपन्न, अच्छी तरह संपन्न, प्राप्त, अच्छी तरह प्राप्त, संपन्न, संपन्न, सुसज्जित होता है। इसलिए इसे 'प्रयास करता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

394. 'ऊर्जा जागृत करना' का अर्थ है: इसमें ऊर्जा क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, यानी सही प्रयास। इसे ऊर्जा कहते हैं। वह इस ऊर्जा को जागृत करता है, अच्छी तरह जागृत करता है, आगे बढ़ाता है, विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'ऊर्जा जागृत करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

395. 'मन का प्रयोग करना' का अर्थ है: उसमें मन (चेतना) क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे मन कहते हैं। वह इस मन का प्रयोग करता है, अच्छी तरह से प्रयोग करता है, सहारा देता है, बार-बार सहारा देता है। इसलिए इसे 'मन का प्रयोग करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

396. 'प्रयास करता है' का अर्थ है: इसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, यानी सही प्रयास। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है। इसलिए इसे 'प्रयास करता है' कहते हैं।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

397. भिक्षु इच्छा कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास कैसे करता है, ऊर्जा कैसे जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाओं को त्यागने का प्रयास कैसे करता है? उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाएँ क्या हैं? तीन बुरे मूल (अर्थात,) लोभ, घृणा, सुस्ती और उनसे उत्पन्न होने वाले दोष; उनसे संबंधित भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक बोधों का समूह, चेतना का समूह; उनसे उत्पन्न होने वाली शारीरिक क्रिया, वाणी और मानसिक क्रिया। इन्हें उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाएँ कहा जाता है। इस प्रकार वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को लगाता है, और उत्पन्न हुई इन बुरी अवस्थाओं को त्यागने का प्रयास करता है।

398. 'इच्छा उत्पन्न करता है* का अर्थ है: उसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी धार्मिक इच्छा।

इसे इच्छा कहते हैं। यह इच्छा वह उत्पन्न करता है, अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, उठने का कारण बनता है, अच्छी तरह से उठने का कारण बनता है, अस्तित्व में आने का कारण बनता है, पूर्ण रूप से अस्तित्व में आने का कारण बनता है। इसलिए इसे 'इच्छा उत्पन्न करना' कहा जाता है।

399 'प्रयास करता है' का अर्थ है: उसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, : P 1 : सही प्रयास। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है, :P 2 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'प्रयास करता है' 5 कहा जाता है।

पी 1 = पैरा देखें। 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

400. 'ऊर्जा जगाना' का अर्थ है: उसमें ऊर्जा क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास। इसे ऊर्जा कहते हैं। वह इस ऊर्जा को जगाता है, अच्छी तरह जगाता है, आगे बढ़ाता है, विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'ऊर्जा जगाना' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

401. 'मन को बल देता है' का अर्थ है: उसमें मन क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, आदि है, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना-तत्व है। इसे मन कहते हैं। वह इस मन को बल देता है, अच्छी तरह बल देता है, सहारा देता है, बार-बार सहारा देता है। इसलिए इसे 'मन को बल देता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

402. 'प्रयास' का अर्थ है: उसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, : P 1 : सही प्रयास। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है, :P 2 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'प्रयास' कहते हैं।

पी 1 = पैरा देखें। 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

403. और भिक्षु कैसे इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और उन अच्छे भावों को उत्पन्न करने का प्रयास करता है जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं? [210] इसमें वे अच्छे भाव क्या हैं जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं? तीन अच्छे मूल (अर्थात) लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव; भावों का समूह, बोध का समूह, मानसिक व्यंजकों का समूह, उनसे संबंधित चेतना का समूह; उनसे उत्पन्न शारीरिक क्रिया, वाणी क्रिया, मानसिक क्रिया। इन्हें वे अच्छे भाव कहा जाता है जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं। इस प्रकार वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और इन अच्छे भावों को उत्पन्न करने का प्रयास करता है जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं।

274

विश्लेषण की पुस्तक

404. 'इच्छा उत्पन्न करता है* का अर्थ है: : पृष्ठ 1 : 'प्रयास करता है* का अर्थ है: : पृष्ठ 2 : 'ऊर्जा जगाता है* का अर्थ है: : पृष्ठ 3 : 'मन लगाता है* का अर्थ है: : पृष्ठ 4 : 'प्रयास करता है* का अर्थ है: इसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, : पृष्ठ 5 : सही प्रयास। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है, : पृष्ठ 6 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'प्रयास करता है' कहते हैं।

पी^पैरा देखें. 392. पी 2 = पैरा देखें। 393. पी 3 = पैरा देखें। 394.

पी 4 = पैरा देखें। 395. पी 5 = पैरा देखें। 220. पीजी = पैरा देखें। 357.

405. भिक्षु सत्कार कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को लगाता है, उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं की स्थिरता, संयोजन, वृद्धि, परिपक्वता, विकास और पूर्णता के लिए प्रयास करता है? उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाएँ क्या हैं? तीन अच्छे मूल तत्व (अर्थात्) लोभ का अभाव, घृणा का अभाव, सुस्ती का अभाव; भावों का समूह, बोधों का समूह, मानसिक बोधों का समूह, उनसे संबंधित चेतना का समूह; इनसे उत्पन्न शारीरिक क्रिया, वाणी क्रिया और मानसिक क्रिया। इन्हें उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाएँ कहा जाता है। इस प्रकार वह सत्कार उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को लगाता है, और उत्पन्न हुई इन अच्छी अवस्थाओं की स्थिरता, संयोजन, वृद्धि, परिपक्वता, विकास और पूर्णता के लिए प्रयास करता है।

406. 'स्थिरीकरण* का अर्थ है: जो स्थिरीकरण है वह सहस्थापन है; जो सहस्थापन है वह वृद्धि है; जो वृद्धि है वह परिपक्वता है; जो परिपक्वता है वह विकास है; जो विकास है वह पूर्णता है।

407. 'इच्छा उत्पन्न करना* का अर्थ है: :PX : 'प्रयास करना* का अर्थ है: :P 2 : 'ऊर्जा जगाना* का अर्थ है: :P 3 : 'मन लगाना* का अर्थ है: :P 4 : 'प्रयास करना* का अर्थ है: इसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, :P 5 : सही प्रयास। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है, :P 6 : सुसज्जित है। इसलिए इसे 'प्रयास करना' कहते हैं।

पी 1 = पैरा देखें। 392. पी 2 = पैरा देखें। 393. पी 3 = पैरा देखें। 394.

पी 4 = पैरा देखें। 395. पी 5 = पैरा देखें। 220. पी 6 = पैरा देखें। 357.

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण [211]

सही प्रयास का विश्लेषण 275

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

408. चार सही प्रयास — इसमें भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं को स्थिर करने, उन्हें एक साथ लाने, उन्हें बढ़ाने, उन्हें परिपक्व करने, उन्हें विकसित करने और उन्हें पूर्ण करने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं।

409. भिक्षु इच्छा कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास कैसे करता है, ऊर्जा कैसे जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और अजन्मे बुरे भावों के उत्पन्न न होने के लिए कैसे प्रयास करता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर

अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान के प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और अजन्मे बुरे भावों के उत्पन्न न होने के लिए कैसे प्रयास करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

410. 'इच्छा उत्पन्न करना' का अर्थ है: इसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी और धार्मिक इच्छा। इसे इच्छा कहते हैं। वह इस इच्छा को उत्पन्न करता है, अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे उत्पन्न करता है, इसे अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे अस्तित्व में लाता है, इसे पूर्ण रूप से अस्तित्व में लाता है। इसलिए इसे 'इच्छा उत्पन्न करना' कहते हैं।

411. 'प्रयास करना' का अर्थ है: इसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से संपन्न है, अच्छी तरह संपन्न है, प्राप्त है, अच्छी तरह प्राप्त है, संपन्न है, संपन्न है, सुसज्जित है। इसलिए इसे 'प्रयास करना' कहते हैं।

पी = पैरा 220 देखें। 12 +

276

विश्लेषण की पुस्तक

412. 'ऊर्जा जागृत करना' का अर्थ है: इसमें ऊर्जा क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। [212] इसे ऊर्जा कहते हैं। वह इस ऊर्जा को जागृत करता है, अच्छी तरह जागृत करता है, उसका अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'ऊर्जा जागृत करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

413. 'मन का प्रयोग करना' का अर्थ है: उसमें मन (चेतना) क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे मन कहते हैं। वह इस मन का प्रयोग करता है, अच्छी तरह से प्रयोग करता है, सहारा देता है, बार-बार सहारा देता है। इसलिए इसे 'मन का प्रयोग करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

414. 'प्रयास करना' का अर्थ है: इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही प्रयास कहते हैं। (साथ ही) सही प्रयास से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

415. भिक्षु इच्छा कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास कैसे करता है, ऊर्जा कैसे जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए कैसे प्रयास करता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को कैसे लगाता है, और उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए कैसे प्रयास करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

416. 'इच्छा उत्पन्न करता है' 9 का अर्थ है: : पृष्ठ 1 : 'प्रयास करता है' 9 का अर्थ है: : पृष्ठ 2 : 'ऊर्जा जगाता है' का अर्थ है: पृष्ठ 3 : 'मन लगाता है' का अर्थ है: पृष्ठ 4 : 'प्रयास करता है' का अर्थ है: इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, पृष्ठ 5 : सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग घटक, मार्ग में शामिल।

सही प्रयास का विश्लेषण

277

इसे सही प्रयास कहते हैं। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सही प्रयास से जुड़ी होती हैं।

पी आर = पैरा देखें। 410. पी 2 = पैरा देखें। 411. पी 3 = पैरा देखें। 412.

पी 4 = पैरा देखें। 413. पी 5 = पैरा देखें। 220.

417. और भिक्षु कैसे इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और उन उत्तम अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुई हैं? यहाँ उस समय जब भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करने के लिए, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, और उन उत्तम अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुई हैं। [213]

P = अनुच्छेद 205 देखें।

418. 'इच्छा उत्पन्न करना' का अर्थ है: rP 1 : 'प्रयास करना' का अर्थ है: :P 2 : 'ऊर्जा जगाना' का अर्थ है: :P 3 : 'मन लगाना' का अर्थ है: :P 4 : 'प्रयास करना' का अर्थ है: इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, :P 5 : सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही प्रयास कहते हैं। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सही प्रयास से संबंधित हैं।

पी^पैरा देखें. 410. पी 2 - पैरा देखें। 411. पी 3 = पैरा देखें। 412.

पी 4 = पैरा देखें। 413. पी एस = पैरा देखें। 220.

419. भिक्षु इच्छा कैसे उत्पन्न करता है, प्रयास कैसे करता है, ऊर्जा कैसे जगाता है, मन को कैसे लगाता है, स्थिरता, संयोजन, वृद्धि, परिपक्वता, विकास और उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं की पूर्णता के लिए कैसे प्रयास करता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को कैसे लगाता है, स्थिरता, संयोजन, वृद्धि, परिपक्वता, विकास और उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं की पूर्णता के लिए कैसे प्रयास करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

278

विश्लेषण की पुस्तक

420. 'स्थिरीकरण के लिए' का अर्थ है: जो स्थिरीकरण है वह सहस्थापन है; जो सहस्थापन है वह वृद्धि है; जो वृद्धि है वह परिपक्वता है; जो परिपक्वता है वह विकास है; जो विकास है वह पूर्णता है।

421. 'इच्छा उत्पन्न करना' का अर्थ है: उसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी और धार्मिक इच्छा। इसे इच्छा कहते हैं। वह इस इच्छा को उत्पन्न करता है, अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे उत्पन्न करता है, इसे अच्छी तरह से उत्पन्न करता है, इसे अस्तित्व में लाता है, इसे पूर्ण रूप से अस्तित्व में लाता है। इसलिए इसे 'इच्छा उत्पन्न करना' कहते हैं।

422. 'प्रयास करता है' का अर्थ है: इसमें प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे प्रयास कहते हैं। वह इस प्रयास से युक्त है, अतः इसे 'प्रयास करता है' कहते हैं।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

423. 'ऊर्जा जागृत करना* का अर्थ है: उसमें ऊर्जा क्या है?' वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ऊर्जा कहते हैं। वह इस ऊर्जा को जागृत करता है, अच्छी तरह जागृत करता है, [214] उसका अनुसरण करता है, उसे विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'ऊर्जा जागृत करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

424. 'मन का प्रयोग करना' का अर्थ है: इसमें मन क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे मन कहते हैं। वह इस मन का प्रयोग करता है, अच्छी तरह से प्रयोग करता है, सहारा देता है, बार-बार सहारा देता है। इसलिए इसे 'मन का प्रयोग करना' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

425. 'प्रयास करना' का अर्थ है: इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा का जागरण है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही प्रयास कहा जाता है। (साथ ही) सही प्रयास से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

सही प्रयास का विश्लेषण

279

426. इसमें सही प्रयास क्या है? इसमें उस समय जब भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने के लिए अतिमंदनेझान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर,

पीएक्स: प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कि कठिन अभ्यास है।
धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; जो उस समय मानसिक ऊर्जा का उद्दीपन होता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही प्रयास कहा जाता है। (साथ ही) सही प्रयास से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी।

पी एक्स = पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 220.

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

427. चार उचित प्रयास — इसमें भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उत्पन्न न हुई बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है; उत्पन्न हो चुकी बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए प्रयास करता है; उत्पन्न न हुई अच्छी अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करता है; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं को स्थिर करने, उन्हें व्यवस्थित करने, उनकी वृद्धि करने, उन्हें परिपक्व करने, उनका विकास करने और उन्हें पूर्ण करने के लिए प्रयास करता है।

P = पहले उदाहरण के अनुसार पूर्ण करें।

428. चार सही प्रयासों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? : कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण है; कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

429. (चार सही प्रयास) केवल अच्छे हैं। कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; कभी न दुखदायी और न सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। परिणाम उत्पन्न करते हैं। [215] (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण नहीं किए जाते, आसक्ति के विषय नहीं होते। न भ्रष्ट होते हैं, न भ्रष्टता के विषय होते हैं। कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं, कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं।

280

विश्लेषण की पुस्तक

केवल निरंतर अभ्यास ही आवश्यक है; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना भी होते हैं। कभी-कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी-कभी आनंद से भरे होते हैं; कभी-कभी उदासीनता से भरे होते हैं। इन्हें न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागा जा सकता है। इनकी कोई जड़ नहीं होती जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। ये विक्षेपी होते हैं (निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में)। ये सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं। ये असीम होते हैं। इनका लक्ष्य असीम होता है। ये श्रेष्ठ होते हैं। ये सही अवस्थाएँ होती हैं जिनका समय निश्चित होता है। इनका लक्ष्य पथ नहीं होता; इनका कारण पथ होता है; कभी-कभी पथ इनका प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी पथ इनका प्रमुख कारक नहीं होता। कभी-कभी ये उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; इन्हें उत्पन्न होने के लिए बाध्य नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी ये भूतकाल के होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल के होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल के होते हैं। इनका न तो भूतकाल का लक्ष्य होता है, न भविष्यकाल का और न ही वर्तमानकाल का। कभी-कभी ये आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाहरी होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाहरी दोनों होते हैं। इनका लक्ष्य बाहरी होता है। दिखाई नहीं देते, प्रभाव नहीं डालते।

2. दोहे

430. (चार सही प्रयास) जड़ नहीं हैं। जड़ के साथ नहीं हैं। जड़ से जुड़े हैं। इन्हें जड़ के साथ होने वाली जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) जड़ के साथ हैं लेकिन जड़ नहीं हैं। इन्हें जड़ के साथ होने वाली जड़ नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) जड़ के साथ हैं लेकिन जड़ नहीं हैं। जड़ नहीं हैं, जड़ के साथ हैं। कारण से जुड़े हैं। शर्त हैं।

अदृश्य हैं। प्रभावहीन हैं। भौतिक नहीं हैं। अलौकिक हैं। एक ही तरीके से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे तरीके से ज्ञात नहीं किए जा सकते। अशुद्धियाँ नहीं हैं। अशुद्धियों के विषय नहीं हैं।

ये अशुद्धियों से संबंधित नहीं हैं। इन्हें अशुद्धियाँ भी नहीं कहा जाना चाहिए, या अशुद्धियों की वस्तुएँ भी नहीं कहा जाना चाहिए, या अशुद्धियों की वस्तुएँ भी नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन ये अशुद्धियाँ नहीं हैं। इन्हें अशुद्धियाँ भी अशुद्धियों से संबंधित नहीं कहा जाना चाहिए, या अशुद्धियों से संबंधित नहीं कहा जाना चाहिए, लेकिन ये अशुद्धियाँ नहीं हैं। ये अशुद्धियों से संबंधित नहीं हैं, अशुद्धियों की वस्तुएँ नहीं हैं। ये बंधन नहीं हैं। ये बाढ़ नहीं हैं। ये बंधन नहीं हैं। ये बाधाएँ नहीं हैं। ये विकृतियाँ नहीं हैं। इनके विषय हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से संबंधित हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं। ये उत्पन्न होते हैं।

सही प्रयास का विश्लेषण

281

चेतना द्वारा उत्पन्न। चेतना के साथ सह-अस्तित्व में। चेतना के साथ रहते हैं। चेतना से जुड़े हुए, चेतना द्वारा उत्पन्न। चेतना से जुड़े हुए, चेतना द्वारा उत्पन्न, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में। चेतना से जुड़े हुए, चेतना द्वारा उत्पन्न, चेतना के साथ रहते हैं। बाह्य हैं। व्युत्पन्न नहीं हैं। बोध से परे हैं। आसक्ति नहीं हैं।

पी: ये भ्रष्टाचार नहीं हैं। :पी: इन्हें पहले ही त्यागा नहीं जाना चाहिए।
पथ। बाद के पथों द्वारा त्यागे नहीं जाने चाहिए। प्रथम पथ द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई जड़ नहीं है। बाद के पथों द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई जड़ नहीं है। कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के बिना होते हैं। कभी-कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी-कभी उदासीनता के बिना होते हैं। इच्छा के तल की विशेषता नहीं हैं। रूप के तल की विशेषता नहीं हैं। निराकार तल की विशेषता नहीं हैं। समाहित नहीं हैं (अर्थात् अलौकिक हैं)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त होते हैं। निश्चित (परिणामी समय) के होते हैं। पार नहीं किए जा सकते। शोक का कोई कारण नहीं है।

P = इस पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के लिए पूर्ण।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

सही प्रयास के विश्लेषण का समापन हो गया है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 9 पाठ - इधिपादा
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 9. सिद्धि के आधार का विश्लेषण (इद्धिपाद)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

431. [216] सिद्धि के चार आधार — इसमें एक भिक्षु 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

1. इच्छा को उपलब्धि का आधार बनाना

432. और एक भिक्षु 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यदि कोई भिक्षु इच्छा को प्रबल बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है; चेतना की एकाग्रता प्राप्त करता है, तो इसे 'इच्छा-एकाग्रता' कहा जाता है। वह इच्छा उत्पन्न

करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं को स्थिर करने, उन्हें एक साथ लाने, उन्हें बढ़ाने, उन्हें परिपक्व करने, उन्हें विकसित करने और उन्हें पूर्ण करने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं। इन्हें 'प्रयास-कार्य' कहा जाता है। अतः यह 'इच्छा-एकाग्रता' और यह 'प्रयास-कार्य', इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-कार्य' कहा जाता है।

433. उसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी, धार्मिक इच्छा। इसे ही इच्छा कहते हैं। [217]

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण

283

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता, दृढ़ता, चेतना की स्थिरता है; ध्यान न भटकना, अविचलित रहना, मानसिक अविचलितता, शांति, एकाग्रता की क्षमता, एकाग्रता की शक्ति, सही एकाग्रता। यही एकाग्रता कहलाती है।

इसमें 'प्रयास-कार्य' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा, परिश्रम, प्रयास, आकांक्षा, मेहनत, उत्साह, दृढ़ता, शक्ति, स्थिरता, अटूट प्रयास, इच्छा का त्याग न करना, कार्य का त्याग न करना, कार्य पर दृढ़ पकड़, ऊर्जा, ऊर्जा को नियंत्रित करने की क्षमता, ऊर्जा की शक्ति और सही प्रयास को जागृत करता है। इसे 'प्रयास-कार्य' कहा जाता है। इस प्रकार, वह इस इच्छा, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-कार्य' से परिपूर्ण है, अच्छी तरह परिपूर्ण है, प्राप्त है, अच्छी तरह प्राप्त है, संपन्न है, अच्छी तरह संपन्न है, सुसज्जित है। इसलिए इसे 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-कार्य' से परिपूर्ण कहा जाता है।

434. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्ध करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्ध करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'सिद्धि का आधार' से तात्पर्य है: उन सभी भावनाओं, सभी सभी बोधों, सभी मानसिक अभिक्रियाओं और सभी चेतनाओं का समूह, जिनमें उक्त प्रकार से सिद्धियाँ उत्पन्न हुई हैं।

'उपलब्धि का आधार विकसित करता है' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'उपलब्धि का आधार विकसित करता है' कहा जाता है।

2. ऊर्जा ही उपलब्धि का आधार है

435. एक भिक्षु सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है?

ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि से सुसज्जित 5 ? यदि कोई भिक्षु ऊर्जा को प्रबल बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है; चेतना की एकाग्रता प्राप्त करता है। इसे 'ऊर्जा-एकाग्रता' कहा जाता है। वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन को बल देता है, और बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है।

उत्पन्न नहीं हुए हैं; :P: उत्पन्न हुई बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए; :P: उत्पन्न न हुई अच्छी अवस्थाओं के उदय के लिए; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को सक्रिय करता है, स्थिरीकरण के लिए, संयोजन के लिए, वृद्धि के लिए प्रयास करता है।

12

284

विश्लेषण की पुस्तक

परिपक्वता, विकास के लिए, उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं की पूर्णता के लिए। इन्हें 'प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है। अतः यह 'ऊर्जा-एकाग्रता' और यह 'प्रयास-गतिविधि', इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है।

P = पहले उदाहरण के अनुसार पूर्ण करें।

436. उसमें ऊर्जा क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, : P : सही प्रयास। इसे ऊर्जा कहते हैं। [218]

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता, दृढ़ता, चेतना की स्थिरता है; ध्यान न भटकना, अविचलित रहना, मानसिक अविचलितता, शांति, एकाग्रता की क्षमता, एकाग्रता की शक्ति, सही एकाग्रता। यही एकाग्रता कहलाती है।

इसमें 'प्रयास-कार्य' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, यानी सही प्रयास। इसे 'प्रयास-कार्य' कहा जाता है। अतः वह इस ऊर्जा, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-कार्य' से युक्त है। इसलिए इसे 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-कार्य' से युक्त कहा जाता है।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2 - पैरा देखें। 357.

437. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्धि करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्धि करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'सिद्धि का आधार' का अर्थ है: उस व्यक्ति की भावनाओं का समूह, चेतना का समूह (जिसमें उक्त तरीके से सिद्धियाँ उत्पन्न हुई हैं)।

P = मध्यवर्ती समुच्चय।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

3. चेतना ही सिद्धि का आधार है

438. और एक भिक्षु 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यदि

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण

285

एक भिक्षु चेतना को सर्वोपरि बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है; उसे एकाग्रचित्तता प्राप्त होती है। इसे 'चेतना-एकाग्रचित्त' कहते हैं। वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा सजग करता है, मन को बल देता है, अजन्मे बुरे भावों को उत्पन्न न होने देने का प्रयास करता है; उत्पन्न हुए बुरे भावों को त्यागने का प्रयास करता है; अजन्मे अच्छे भावों को उत्पन्न करने का प्रयास करता है; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा सजग करता है, मन को बल देता है, उत्पन्न हुए अच्छे भावों को स्थिर करने, उन्हें व्यवस्थित करने, उन्हें बढ़ाने, उन्हें परिपक्व करने, उन्हें विकसित करने और उन्हें पूर्ण करने का प्रयास करता है। इन्हें 'प्रयास-गतिविधि' कहते हैं। अतः यह 'चेतना-एकाग्रचित्त' और यह 'प्रयास-गतिविधि', इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में 'चेतना-एकाग्रचित्तता, प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है।

P = पहले उदाहरण के अनुसार पूर्ण करें।

439. उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, आदि है, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, सही एकाग्रता है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-गतिविधि' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाती है, यानी सही प्रयास। इसे 'प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है। इस प्रकार वह इस चेतना, इस एकाग्रता और इस [219] 'प्रयास-गतिविधि' से युक्त है, यानी सुसज्जित है। इसलिए इसे "चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि" से सुसज्जित कहा जाता है।

पाई = पैरा देखें। 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

440. 'उपलब्धि* का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्ध करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्ध करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'सिद्धि का आधार' का अर्थ है: उस व्यक्ति की भावनाओं का समूह, चेतना का समूह (जिसमें उक्त तरीके से सिद्धियाँ उत्पन्न हुई हैं)।

P = मध्यवर्ती समुच्चय।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

4. उपलब्धि के आधार के रूप में तर्क

441. और एक भिक्षु 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यदि कोई भिक्षु तर्क को प्रबल बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है; चेतना की एकाग्रता प्राप्त करता है, तो इसे 'तर्क-एकाग्रता' कहा जाता है। वह इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन को बल देता है, उन बुरे भावों के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुए हैं; उन बुरे भावों के त्याग के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुके हैं।

P: उन अच्छे राज्यों के उदय के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं; उत्पन्न करता है
इच्छा करना, प्रयास करना, ऊर्जा जगाना, मन को सक्रिय करना, उत्पन्न हुई अच्छी अवस्थाओं को स्थिर करने, सामंजस्य स्थापित करने, बढ़ाने, परिपक्व करने, विकसित करने और पूर्ण करने के लिए प्रयास करना। इन्हें 'प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है। अतः यह 'तर्क-एकाग्रता' और यह 'प्रयास-गतिविधि', इन दोनों को सामूहिक रूप से संक्षेप में 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है।

P = पहले उदाहरण के अनुसार पूर्ण करें।

442. इसमें तर्क क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे ही तर्क कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, सही एकाग्रता है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-कार्य' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, यानी सही प्रयास। इसे 'प्रयास-कार्य' कहा जाता है। इस प्रकार वह इस तर्क, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-कार्य' से युक्त है। अतः इसे "तर्क-एकाग्रता, प्रयास-कार्य से युक्त" कहा जाता है।

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 22 देखें।

पृष्ठ 2 = पैरा 357 देखें।

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण

287

443. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था उपलब्धि है, पूर्ण उपलब्धि है, उपलब्धि प्राप्त करने की क्रिया है, पूरी तरह से उपलब्धि प्राप्त करने की क्रिया है, प्राप्त करना है, बार-बार प्राप्त करना है, अधिग्रहण करना है, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना है, संपर्क करना है, अहसास है, उपलब्धि है।

[220] 'उपलब्धि का आधार' का अर्थ है: भावना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती का समूह, चेतना का समूह, उस व्यक्ति का (जिसमें उपरोक्त तरीके से सिद्धियाँ हुई हैं)।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

444. सिद्धि के चार आधार — इसमें भिक्षु 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है; और 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

1. इच्छा को उपलब्धि का आधार बनाना

445. और भिक्षु 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-क्रिया' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यहाँ उस समय जब भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और धीरे-धीरे अर्जित कठिन अभ्यास और ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करके उसमें निवास करता है; उस समय वह 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-क्रिया' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

288

विश्लेषण की पुस्तक

446. उसमें इच्छा क्या है? जो इच्छा है, इच्छा करने की क्रिया है, करने की इच्छा है, अच्छी और धार्मिक इच्छा है। इसे ही इच्छा कहते हैं।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, सही एकाग्रता है, एकाग्रता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-कार्य' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे 'प्रयास-कार्य' कहा जाता है। इस प्रकार वह इस इच्छा, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-कार्य' से युक्त है। अतः इसे 'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-कार्य' से युक्त कहा जाता है।

पी एल = पैरा देखें। 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

447. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्धि करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्धि करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

[221] 'उपलब्धि का आधार' का अर्थ है: संपर्क,

पी: प्रयास, किसी व्यक्ति का अडिग रहना (जिसमें उपलब्धियाँ
उपरोक्त तरीके से अस्तित्व में आए हैं।

पी~डीएचएस पैराग्राफ 277 देखें।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

2. ऊर्जा ही उपलब्धि का आधार है

448. एक भिक्षु 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और धीरे-धीरे अर्जित कठिन अभ्यास और ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करके उसमें निवास करता है; उस समय वह 'ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण

449. उसमें ऊर्जा क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाती है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही ऊर्जा कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, सही एकाग्रता है, एकाग्रता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-गतिविधि' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करती है, यानी सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे 'प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है। अतः वह इस ऊर्जा, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-गतिविधि' से युक्त है। इसलिए इसे "ऊर्जा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि से युक्त" कहा जाता है।

पी^पैरा देखें. 220. पी 2 - पैरा देखें। 357.

450. 'उपलब्धि 9 का अर्थ है; इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्धि करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्धि करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'उपलब्धि का आधार' का अर्थ है: संपर्क, प्रयास, अविचलितता उस व्यक्ति की (जिसमें उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं) उपर्युक्त तरीके से।

पी = डीएचएस अनुच्छेद 277 देखें।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है, दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

3. चेतना ही सिद्धि का आधार है

451. और एक भिक्षु 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु [222] अलौकिक ध्यान विकसित करता है जो निरंतर पुनर्जन्म से मुक्ति और विमोचन की ओर प्रवृत्त होता है और

290

विश्लेषण की पुस्तक

मृत्यु; वह, गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय वह 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

452. उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

इसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, सही एकाग्रता है, एकाग्रता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-गतिविधि' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा का जागरण है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे 'प्रयास-गतिविधि' कहा जाता है। इस प्रकार वह इस चेतना, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-गतिविधि' से युक्त है। अतः इसे 'चेतना-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से युक्त कहा जाता है।

पी 1 = पैरा देखें। 220. पी 2 = पैरा देखें। 357.

453. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्ध करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्ध करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'उपलब्धि का आधार' का अर्थ है: संपर्क, प्रयास, अविचलितता उस व्यक्ति की (जिसमें उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं) उपर्युक्त तरीके से।

पी = डीएचएस अनुच्छेद 277 देखें।

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण 291

4. उपलब्धि के आधार के रूप में तर्क

454. एक भिक्षु 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-क्रिया' से युक्त सिद्धि का आधार कैसे विकसित करता है? यहाँ उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय वह 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-क्रिया' से युक्त सिद्धि का आधार विकसित करता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

455. इसमें तर्क क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे तर्क कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें एकाग्रता क्या है? वह जो स्थिरता है, चेतना की दृढ़ता है, : पी : सही एकाग्रता, [223] एकाग्रता-ज्ञान-कारक, पथ घटक, पथ में शामिल। इसे एकाग्रता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें 'प्रयास-कार्य' क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही 'प्रयास-कार्य' कहते हैं। अतः इस कारण, इस एकाग्रता और इस 'प्रयास-कार्य' से वह संपन्न, पूर्णतः संपन्न, सिद्ध, पूर्णतः सिद्ध, गुणों से परिपूर्ण होता है। अतः इसे "कारण-एकाग्रता, प्रयास-कार्य से परिपूर्ण" कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

456. 'उपलब्धि' का अर्थ है: इनमें से कौन सी अवस्था सिद्धि, पूर्ण सिद्धि, सिद्ध करने की क्रिया, पूर्ण रूप से सिद्ध करने की क्रिया, प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, अधिग्रहण करना, अच्छी तरह से अधिग्रहण करना, संपर्क करना, अहसास, उपलब्धि है।

'उपलब्धि का आधार' का अर्थ है: संपर्क, प्रयास, अविचलितता उस व्यक्ति की (जिसमें उपर्युक्त तरीके से उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं)।

पी = डीएचएस अनुच्छेद 277 देखें।

292

विश्लेषण की पुस्तक

'सफलता के आधार का विकास करना' का अर्थ है: वह इन अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है और दोहराता है। इसलिए इसे 'सफलता के आधार का विकास करना' कहा जाता है।

457. सिद्धि के चार आधार हैं: इच्छा सिद्धि का आधार, ऊर्जा सिद्धि का आधार, चेतना सिद्धि का आधार, तर्क सिद्धि का आधार।

458. उसमें इच्छा को सिद्धि का आधार क्या माना गया है?

इस समय जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय जो इच्छा, इच्छा की क्रिया, करने की इच्छा, अच्छी और धार्मिक इच्छा होती है। इसे सिद्धि का आधार इच्छा कहा जाता है। (इसी प्रकार) अन्य अवस्थाएँ भी सिद्धि का आधार इच्छा से जुड़ी होती हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

459. इसमें उपलब्धि के आधार के रूप में ऊर्जा क्या है?

यहाँ उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; जो उस समय मानसिक ऊर्जा का जागरण होता है; सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सिद्धि का आधार ऊर्जा कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सिद्धि के आधार ऊर्जा से जुड़ी होती हैं।

पी 1 = पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 220.

460. इसमें सिद्धि के आधार के रूप में चेतना क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु [224] अलौकिक ध्यान विकसित करता है जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह, गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, पहले चरण में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पहले ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और ज्ञान है।

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण 293

अर्जित; जो उस समय चेतना, मन, विचार हो।

पृष्ठ 2: और, उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-
तत्व। इसे सिद्धि के आधार के रूप में चेतना कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सिद्धि के आधार के रूप में चेतना से जुड़ी होती हैं।

पी 1 = पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 184.

461. उसमें सिद्धि के आधार के रूप में तर्क क्या है?

इस समय जब भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; जो उस समय बुद्धि, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे सिद्धि का आधार तर्क कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सिद्धि का आधार तर्क से जुड़ी हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = पैरा देखें। 525.

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

462. सिद्धि के चार आधार — इसमें एक भिक्षु

'इच्छा-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि 5; 'ऊर्जा-एकाग्रता' से सुसज्जित उपलब्धि का आधार विकसित करता है; : पी :

'चेतना-एकाग्रता'; :P: 'तर्क-एकाग्रता, प्रयास-गतिविधि' से सुसज्जित उपलब्धि का आधार विकसित करता है।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

463. सिद्धि के चार आधारों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? : P : कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कारण है; कितने ऐसे हैं जिन पर शोक करने का कोई कारण नहीं है?

P =* शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

464. (सफलता के चार आधार) केवल अच्छे हैं। कभी-कभी सुखद भावना से जुड़े होते हैं; कभी-कभी जुड़े होते हैं

294

विश्लेषण की पुस्तक

न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक भावों से युक्त। परिणाम उत्पन्न करने वाले। लालसा और भ्रामक दृष्टि से ग्रसित नहीं, आसक्ति के विषय नहीं। न तो भ्रष्ट, न ही भ्रष्टता के विषय। कभी प्रारंभिक परिश्रम के साथ, कभी निरंतर परिश्रम के साथ; कभी प्रारंभिक परिश्रम के बिना, केवल निरंतर परिश्रम के साथ; कभी प्रारंभिक परिश्रम के बिना, कभी निरंतर परिश्रम के बिना। कभी उत्साह के साथ; कभी सुख के साथ; कभी उदासीनता के साथ। प्रथम मार्ग या पश्चात मार्गों से त्यागे नहीं जा सकते। प्रथम मार्ग या पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य कोई मूल नहीं। निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्त। सात अलौकिक अवस्थाओं के। असीम। असीम उद्देश्य वाले। श्रेष्ठ। निश्चित (परिणामी समय) वाली सही अवस्थाएँ। मार्ग को अपना उद्देश्य नहीं; मार्ग को अपना कारण; मार्ग को अपना प्रमुख कारक नहीं। कभी उत्थानित होते हैं; कभी उत्थानित नहीं होते। इन्हें उत्पन्न होना बाध्य नहीं कहा जा सकता। कभी भूतकाल होते हैं; कभी भविष्यकाल होते हैं; कभी वर्तमानकाल होते हैं। इनका न तो भूतकाल का कर्म होता है, न भविष्यकाल का कर्म और न ही वर्तमानकाल का कर्म। कभी आंतरिक होते हैं; कभी बाह्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। बाह्य कर्म होते हैं। ये दृश्यमान नहीं होते, न ही इनका कोई प्रभाव होता है। [225]

2. दोहे

465. सिद्धि का आधार तर्क है, जो मूल है। सिद्धि के तीन आधार मूल नहीं हैं। (सिद्धि के चार आधार) मूलों के साथ होते हैं। मूलों से जुड़े होते हैं। सिद्धि का आधार तर्क है, जो मूल के साथ भी होता है। सिद्धि के तीन आधारों को मूलों के साथ भी होना नहीं कहना चाहिए; वे मूलों के साथ होते हैं, लेकिन मूल नहीं हैं। सिद्धि का आधार तर्क है, जो मूल के साथ भी जुड़ा होता है। सिद्धि के तीन आधारों को मूलों के साथ भी होना नहीं कहना चाहिए; वे मूलों से जुड़े होते हैं, लेकिन मूल नहीं हैं। सिद्धि के तीन आधार मूल नहीं हैं, वे मूलों के साथ होते हैं। सिद्धि का आधार तर्क को मूल नहीं, मूल के साथ होना या मूल नहीं, मूल के साथ नहीं होना नहीं कहना चाहिए। (सिद्धि के चार

आधार) कारण सहित होते हैं। बद्ध होते हैं। अदृश्य होते हैं। अप्रवर्तनीय नहीं होते। भौतिक नहीं होते। अलौकिक होते हैं। एक ही मार्ग से ज्ञात होते हैं;

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण 295

इन्हें किसी अन्य तरीके से भी पहचाना जा सकता है। ये दोष नहीं हैं। ये दोषों के विषय नहीं हैं। इनका दोषों से कोई संबंध नहीं है। इन्हें दोष भी नहीं कहा जाना चाहिए, या ये दोष के विषय तो हैं लेकिन दोष नहीं हैं। इन्हें दोष भी नहीं कहा जाना चाहिए, या ये दोषों से संबंधित तो हैं लेकिन दोष नहीं हैं। इनका दोषों से कोई संबंध नहीं है, ये दोषों के विषय भी नहीं हैं।

(सफलता के चार आधार) बंधन नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाढ़ नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाधाएँ नहीं हैं। विकृतियाँ नहीं हैं। इनके उद्देश्य हैं। सफलता के तीन आधार चेतना नहीं हैं। सफलता के आधार के रूप में चेतना, चेतना ही है। सफलता के तीन आधार मानसिक सहवर्ती हैं। सफलता के आधार के रूप में चेतना, मानसिक सहवर्ती नहीं है। सफलता के तीन आधार चेतना से जुड़े हैं। सफलता के आधार के रूप में चेतना को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। सफलता के तीन आधार चेतना से जुड़े हुए हैं। सफलता के आधार के रूप में चेतना को चेतना से जुड़ा हुआ या नहीं जुड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। सफलता के तीन आधार चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। सफलता के आधार के रूप में चेतना, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है। सफलता के तीन आधार चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। सिद्धि के आधार के रूप में चेतना, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं है। सिद्धि के तीन आधार चेतना के साथ होते हैं। सिद्धि के आधार के रूप में चेतना, चेतना के साथ नहीं होती। सिद्धि के तीन आधार चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। सिद्धि के आधार के रूप में चेतना, चेतना से जुड़ी हुई नहीं है, न ही चेतना द्वारा उत्पन्न होती है। सिद्धि के तीन आधार चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। सिद्धि के आधार के रूप में चेतना, चेतना से जुड़ी हुई नहीं है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में नहीं है। सिद्धि के तीन आधार चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, और चेतना के साथ होते हैं। सिद्धि के आधार के रूप में चेतना, चेतना से जुड़ी हुई नहीं है, चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, और चेतना के साथ नहीं होती है।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के समान पूर्ण।

296

विश्लेषण की पुस्तक

सिद्धि के तीन आधार बाह्य हैं। सिद्धि का आधार चेतना है, जो आंतरिक है। (सिद्धि के चार आधार) व्युत्पन्न नहीं हैं। इन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। ये आसक्ति नहीं हैं। ये विकृतियाँ नहीं हैं। इन्हें प्रथम मार्ग द्वारा नहीं छोड़ा जा सकता। इन्हें पश्चात मार्गों द्वारा नहीं छोड़ा जा सकता। प्रथम मार्ग द्वारा छोड़े जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। पश्चात मार्गों द्वारा छोड़े जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। [226] कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। कभी-कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी-कभी आनंद के बिना होते हैं। कभी-कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी-कभी उदासीनता के बिना होते हैं। इच्छा के तल की विशेषता नहीं हैं। रूप के तल की विशेषता नहीं हैं। निराकार तल की विशेषता नहीं हैं। समाहित नहीं हैं (अर्थात् अलौकिक हैं)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त होते हैं। स्थिर (परिणामी समय) के होते हैं। वे अतुलनीय हैं। उन पर शोक करने का कोई कारण नहीं है।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के समान पूर्ण।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

उपलब्धि के आधार का विश्लेषण है

समाप्त
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 10 पाठ - बोज्झांगा
विभंग-गोत्मा बुद्ध द्वारा बोली गई विश्लेषण की पुस्तक
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 10. ज्ञानोदय के कारकों का विश्लेषण (बोध्झंग, संस्कृत: बोध्यांग या बोधि-अंग)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

466. [277] सात ज्ञानोदय कारक हैं: सचेतनता- ज्ञानोदय-कारक, सत्य अन्वेषण- ज्ञानोदय-कारक, ऊर्जा- ज्ञानोदय-कारक, उत्साह- ज्ञानोदय-कारक, शांति- ज्ञानोदय-कारक, एकाग्रता- ज्ञानोदय-कारक, समभाव- ज्ञानोदय-कारक।

467. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

इसमें भिक्षु सचेत रहता है, उत्कृष्ट ध्यान-प्रवेश से परिपूर्ण होता है, वह निरंतर स्मरण करता है कि (मुक्ति के विषय में) क्या किया गया है और क्या कहा गया है। इसे ही ध्यान-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (1)

वह उपरोक्त तरीके से सचेत होकर, उसी बात की गहन खोज, छानबीन और तर्क-वितर्क करता है। इसे सत्य-जांच-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (2)

किसी विषय की गहन खोज, छानबीन और बुद्धिमत्तापूर्वक तर्क करने में उनकी ऊर्जा अथक और अटूट होती है। इसे ऊर्जा-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (3)

अत्यंत ऊर्जावान व्यक्ति में सांसारिक उत्साह से रहित उत्साह उत्पन्न होता है। इसे उत्साह-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (4)

उत्साही मन वाले व्यक्ति के लिए (मानसिक समूहों का) शरीर शांत हो जाता है, चेतना भी शांत हो जाती है। इसे शांति-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (5)

शांत शरीर (मानसिक समूहों) और मानसिक सुख वाले व्यक्ति के लिए, चेतना एकाग्र होती है। इसे एकाग्रता-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (6)

जिस व्यक्ति की चेतना उपरोक्त प्रकार से एकाग्र होती है, वह संतुलित रहता है। इसे समभाव-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (7)

468. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय कारक, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक,

ऊर्जा-ज्ञान-कारक, उत्साह-ज्ञान-कारक, शांति-ज्ञान-कारक, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, समभाव-ज्ञान-कारक। [228]

469. उसमें सचेतनता-ज्ञान-कारक क्या है? आंतरिक अवस्थाओं पर सचेतनता होती है; बाह्य अवस्थाओं पर सचेतनता होती है। जो आंतरिक अवस्थाओं पर सचेतनता है; वह सचेतनता-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो बाह्य अवस्थाओं पर सचेतनता है; वह सचेतनता-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (1)

उसमें सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक क्या है? आंतरिक अवस्थाओं का अन्वेषण है; बाह्य अवस्थाओं का अन्वेषण है। जो आंतरिक अवस्थाओं का अन्वेषण है; वह सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो बाह्य अवस्थाओं का अन्वेषण है; वह सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (2)

उसमें ऊर्जा-ज्ञान-कारक क्या है? शारीरिक ऊर्जा है; मानसिक ऊर्जा है। जो शारीरिक ऊर्जा है; वह ऊर्जा-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो मानसिक ऊर्जा है; वह ऊर्जा-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (3)

उसमें उत्साह-ज्ञान-कारक क्या है? उत्साह प्रारंभिक प्रयास और निरंतर प्रयास के साथ होता है; उत्साह प्रारंभिक प्रयास और निरंतर प्रयास के बिना भी होता है। जो उत्साह प्रारंभिक प्रयास और निरंतर प्रयास के साथ होता है; वह उत्साह-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी होता है। जो उत्साह प्रारंभिक प्रयास और निरंतर प्रयास के बिना होता है; वह उत्साह-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी होता है। (4)

उसमें शांति-ज्ञान का कारक क्या है? शरीर (मानसिक समूहों) की शांति है; चेतना की शांति है। जो शरीर की शांति है, वही शांति-ज्ञान का कारक पूर्ण ज्ञान, आत्मज्ञान और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो चेतना की शांति है...

शांति; वह शांति-ज्ञान का कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (5)

इसमें एकाग्रता-ज्ञान-कारक क्या है? एकाग्रता में प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास शामिल होता है; एकाग्रता में प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास नहीं होता है। जो एकाग्रता प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ होती है, वह एकाग्रता-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो एकाग्रता प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना होती है, वह एकाग्रता-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (6)

उसमें समभाव-ज्ञान-कारक क्या है? आंतरिक अवस्थाओं का समभाव है; बाह्य अवस्थाओं का समभाव है। जो आंतरिक अवस्थाओं का समभाव है; वह समभाव-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। जो बाह्य अवस्थाओं का समभाव है; वह समभाव-ज्ञान-कारक पूर्ण ज्ञान, ज्ञानोदय और पूर्ण मुक्ति के लिए भी है। (7) [229]

470. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय कारक, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-ज्ञानोदय कारक, उत्साह-ज्ञानोदय कारक, शांति-ज्ञानोदय कारक, एकाग्रता-ज्ञानोदय कारक, समभाव-ज्ञानोदय कारक।

471. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

इसमें एक भिक्षु वैराग्य पर आधारित, कामवासना के अभाव पर आधारित, और अंत में त्याग पर आधारित, सचेतनता-ज्ञानोदय कारक विकसित करता है। सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक विकसित करता है। :P: ऊर्जा विकसित करता है-

ज्ञानोदय कारक। : पी : उत्साह-ज्ञानोदय कारक विकसित करता है।

पी: शांति-ज्ञानोदय कारक विकसित करता है। :पी: विकसित करता है
एकाग्रता-ज्ञान-कारक: पी: वैराग्य पर निर्भर समभाव - ज्ञान-कारक विकसित करता है, जो कामवासना की अनुपस्थिति पर निर्भर है, जो समाप्ति पर निर्भर है, और अंततः त्याग में परिणत होता है।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

300

विश्लेषण की पुस्तक

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

472. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय कारक, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-ज्ञानोदय कारक, उत्साह-ज्ञानोदय कारक, शांति-ज्ञानोदय कारक, एकाग्रता-ज्ञानोदय कारक, समभाव-ज्ञानोदय कारक।

473. इसमें सात ज्ञानोदय कारक क्या हैं? इसमें उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, : पृष्ठ 1 : कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान के प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय सात ज्ञानोदय कारक होते हैं (अर्थात्), सचेतनता-ज्ञानोदय-कारक, : पृष्ठ 2 : समभाव-ज्ञानोदय-कारक।

पी 1 = पैरा 205 देखें। पी 2 = मध्यवर्ती ज्ञानोदय कारक।

474. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, सही सचेतनता है, सचेतनता-ज्ञान-कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे सचेतनता-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (1)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें सत्य की खोज-ज्ञानोदय-कारक क्या है?

जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे ही सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक कहा जाता है। (2)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें ऊर्जा-ज्ञान-कारक क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा का जागरण है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ऊर्जा-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (3)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

उसमें उत्साह-ज्ञान-कारक क्या है? वह जो उत्साह, प्रसन्नता, आनंद, उमंग, उल्लास, उल्लास और सुख है।

उत्साह, चेतना का आनंद, उत्साह-ज्ञान-कारक। इसे उत्साह-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (4) [230]

उसमें शांति-ज्ञान का कारक क्या है? वह जो संवेदनाओं के समूह, बोधों के समूह, मानसिक अभिक्रियाओं के समूह और चेतना के समूह में से शांति, निर्मलता, शांत अवस्था, निर्मलता की स्थिति, शांति-ज्ञान का कारक है। इसे ही शांति-ज्ञान का कारक कहा जाता है। (5)

उसमें एकाग्रता-ज्ञान-कारक क्या है? वह जो चेतना की स्थिरता है, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही एकाग्रता-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (6)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें समभाव-ज्ञान-तत्व क्या है? जो समभाव है, जिसमें समभाव है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है, समभाव-ज्ञान-तत्व है। इसे समभाव-ज्ञान-तत्व कहते हैं। इन्हें सात ज्ञान-तत्व कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सात ज्ञान-तत्वों से संबंधित हैं।

(7)

475. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय-कारक, :P: समभाव-ज्ञानोदय-कारक.

P = मध्यवर्ती ज्ञानोदय कारक।

476. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

यहाँ उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय जो सचेतनता, निरंतर सचेतनता है; सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल है। इसे सचेतनता-ज्ञान-कारक कहा जाता है। (इसी प्रकार) सचेतनता-ज्ञान-कारक से संबंधित शेष अवस्थाएँ। (इसी प्रकार) सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक से संबंधित शेष अवस्थाएँ। (इसी प्रकार) ऊर्जा-ज्ञान-कारक से संबंधित शेष अवस्थाएँ। (इसी प्रकार)

302

विश्लेषण की पुस्तक

(और) उत्साह-ज्ञान-कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। : पृष्ठ 3 : (साथ ही) शांति-ज्ञान-कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 3 : (साथ ही) एकाग्रता-ज्ञान-कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ।

पी एल = पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 220.

पृष्ठ 3 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें, लेकिन पैराग्राफ 474 के अनुसार उचित संशोधनों के साथ।

इसमें समता-ज्ञान का तत्व क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय जो समता, समता से परिपूर्ण, सर्वोच्च समता, चेतना के संतुलन की अवस्था, समता-ज्ञान का तत्व है। इसे समता-ज्ञान का तत्व कहा जाता है। (इसी प्रकार) समता-ज्ञान के तत्व से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। [231]

p = अनुच्छेद 205 देखें।

477. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय-कारक, : पी : समभाव-ज्ञानोदय-कारक.

P = मध्यवर्ती ज्ञानोदय कारक।

478. इसमें ज्ञानोदय के सात कारक क्या हैं? इसमें उस समय जब कोई भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठोर अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय जो संपर्क है, वह अविचलित है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठोर अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और शून्य है; उस समय ज्ञानोदय के सात कारक हैं (अर्थात्): सचेतनता-ज्ञानोदय कारक, समभाव-ज्ञानोदय कारक।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2=डीएचएस देखें। पैरा. 277.

पृष्ठ 3 — मध्यवर्ती ज्ञानोदय कारक।

ज्ञानोदय के कारकों का विश्लेषण

303

479. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, : पृष्ठ 1 : सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सचेतनता-ज्ञान-कारक कहा जाता है। : पृष्ठ 2 :

पृष्ठ 1 — पैराग्राफ 220 देखें।

P 2 = पांच अनुवर्ती ज्ञानोदय कारक, पैरा 474 देखें।

इसमें समभाव-ज्ञान-तत्व क्या है? जो समभाव है, जिसमें समभाव है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है, समभाव-ज्ञान-तत्व है। इसे समभाव-ज्ञान-तत्व कहते हैं। इन्हें सात ज्ञान-तत्व कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सात ज्ञान-तत्वों से संबंधित हैं।

480. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय-कारक, : पी : समभाव-ज्ञानोदय-कारक.

P = मध्यवर्ती ज्ञानोदय कारक।

481. उसमें सचेतनता-ज्ञानोदय कारक क्या है?

यहां उस समय जब एक भिक्षु निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान से युक्त प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है; अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने पर, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; जो उस समय सचेतनता, निरंतर सचेतनता होती है; सही सचेतनता, सचेतनता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित होता है। इसे सचेतनता-ज्ञानोदय कारक कहा जाता है, (साथ ही) सचेतनता-ज्ञानोदय कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 4 : (साथ ही) सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ [232]। :पृष्ठ 4 : (साथ ही) ऊर्जा-ज्ञानोदय कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 4 : (साथ ही) उत्साह-ज्ञानोदय कारक से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 4 : (साथ ही)

304

विश्लेषण की पुस्तक

शेष अवस्थाएँ जो शांति-ज्ञान कारक से जुड़ी हैं। : पृष्ठ 4 : (साथ ही) शेष अवस्थाएँ जो एकाग्रता-ज्ञान कारक से जुड़ी हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

पृष्ठ 3 = पैरा 220 देखें।

पृष्ठ 4 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें, लेकिन पैराग्राफ 474 के अनुसार उचित संशोधनों के साथ।

इसमें समभाव-ज्ञान का तत्व क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठोर अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचल की अवस्था होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने पर, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठोर अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और शून्य है; उस समय जो समभाव है,

समभाव से युक्त है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है, समभाव-ज्ञान का तत्व है। इसे समभाव-ज्ञान का तत्व कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ समभाव-ज्ञान-कारक से जुड़ी हुई हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

482. ज्ञानोदय के सात कारक हैं: सचेतनता-

ज्ञानोदय कारक, सत्य की खोज-ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-ज्ञानोदय कारक, उत्साह-ज्ञानोदय कारक, शांति-ज्ञानोदय कारक, एकाग्रता-ज्ञानोदय कारक, समभाव-ज्ञानोदय कारक।

483. ज्ञानोदय के सात कारकों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; और कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कैसे

ज्ञानोदय के कारकों का विश्लेषण 305

बहुतों के पास विलाप करने का कारण है; कितने ऐसे हैं जिनके पास विलाप करने का कोई कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

484. (सात ज्ञानोदय कारक) कभी अच्छे होते हैं; कभी न अच्छे न बुरे। उत्साह-ज्ञानोदय कारक सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है। छह ज्ञानोदय कारक कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; कभी दुखदायी न सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। (सात ज्ञानोदय कारक) कभी परिणाम होते हैं; कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधित नहीं होते, आसक्ति के विषय नहीं होते। न भ्रष्ट होते हैं, न भ्रष्टता के विषय होते हैं। कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं, कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना। उत्साह-ज्ञानोदय कारक उत्साह से नहीं जुड़ा होता; सुख से जुड़ा होता है; उदासीनता से नहीं जुड़ा होता। छह ज्ञानोदय कारक कभी उत्साह से जुड़े होते हैं; कभी सुख से जुड़े होते हैं; कभी उदासीनता से जुड़े होते हैं। (सात ज्ञानोदय कारक) न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने चाहिए; प्रथम पथ या पश्चात पथों द्वारा परित्याग किए जाने के लिए इनकी कोई जड़ नहीं होती। कभी-कभी ये विक्षेपी (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में) होते हैं; कभी-कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपी। कभी-कभी ये सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं। ये अतुलनीय होते हैं। इनका उद्देश्य अतुलनीय होता है। ये श्रेष्ठ होते हैं। [233] कभी-कभी ये सही (परिणामी समय वाली) अवस्थाएँ होते हैं; कभी-कभी इनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। इनका उद्देश्य पथ नहीं होता; कभी-कभी इनका कारण पथ होता है; कभी-कभी इनका प्रमुख कारक पथ होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि इनका कारण या प्रमुख कारक पथ है। कभी-कभी ये उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं। कभी-कभी ये भूतकाल के होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल के होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल के होते हैं। इन्हें न तो भूतकाल के, न

भविष्यकाल के और न ही वर्तमानकाल के उद्देश्य वाले कहा जा सकता है। कभी-कभी ये आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाह्य होते हैं; कभी-कभी

आंतरिक और बाह्य दोनों। बाह्य वस्तुएँ होती हैं। अदृश्य, अप्रभावित।

2. दोहे

485. सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक मूल है। छह ज्ञानकारक मूलों से जुड़े हैं। सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक मूल है और मूल से भी जुड़ा है; छह ज्ञानकारकों को मूल नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों से जुड़े हैं लेकिन मूल नहीं हैं। सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक मूल है और मूल से भी जुड़ा है। छह ज्ञानकारकों को मूल नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों से जुड़े हैं लेकिन मूल नहीं हैं। छह ज्ञानकारक मूल नहीं हैं, मूलों से जुड़े हैं। सत्य अन्वेषण-ज्ञान-कारक को मूल नहीं कहा जाना चाहिए, मूल से जुड़ा है या मूल नहीं है, मूल से नहीं जुड़ा है। (सात ज्ञानकारक) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। प्रभावहीन हैं। भौतिक नहीं हैं। अलौकिक हैं। एक मार्ग से ज्ञात हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं हैं। दोष नहीं हैं। दोषों के विषय नहीं हैं। दोषों से जुड़े नहीं हैं। ये नहीं कहा जाना चाहिए कि ये दोष, दोषों के विषय भी हैं या दोषों के विषय तो हैं लेकिन दोष नहीं हैं। ये दोष, दोषों से जुड़े हुए भी हैं या दोषों से जुड़े हुए हैं लेकिन दोष नहीं हैं। ये दोषों से जुड़े हुए नहीं हैं, दोषों के विषय भी नहीं हैं। ये बंधन नहीं हैं।

पी: ये बंधन नहीं हैं। :पी: ये बाढ़ नहीं हैं। :पी: ये बंधन नहीं हैं। :पी: ये
बाधाएँ नहीं हैं। :P: विकृतियाँ नहीं हैं। :P: इनके लक्ष्य होते हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से जुड़े हैं। ये चेतना से संबंधित हैं। ये चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना के साथ रहते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ रहते हैं। ये बाह्य हैं। ये व्युत्पन्न नहीं हैं। इन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। ये आसक्ति नहीं हैं।

पी: ये भ्रष्टाचार नहीं हैं। :पी: इन्हें त्यागा नहीं जाना चाहिए।
पहला मार्ग। बाद के मार्गों द्वारा इन्हें नहीं छोड़ा जाना चाहिए। पहले मार्ग द्वारा छोड़े जाने के लिए इनकी कोई जड़ नहीं है। बाद के मार्गों द्वारा छोड़े जाने के लिए इनकी कोई जड़ नहीं है। कभी-कभी इनके साथ होते हैं।

प्रारंभिक प्रयोग द्वारा; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के बिना। कभी-कभी निरंतर प्रयोग के साथ; कभी-कभी निरंतर प्रयोग के बिना।

पी — इस पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के संबंध में पूर्ण करें।

उत्साह-ज्ञान-कारक उत्साह रहित है। छह ज्ञान-कारक कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी उत्साह रहित होते हैं। उत्साह-ज्ञान-कारक उत्साह से रहित है। छह ज्ञान-कारक कभी उत्साह से युक्त होते हैं; कभी उत्साह रहित होते हैं। उत्साह-ज्ञान-कारक आनंद से युक्त है। [234] छह ज्ञान-कारक कभी आनंद से युक्त होते हैं; कभी आनंद रहित होते हैं। उत्साह-ज्ञान-कारक उदासीनता से रहित है। छह ज्ञान-कारक कभी उदासीनता से युक्त होते हैं; कभी उदासीनता रहित होते हैं।

(सात ज्ञानोदय कारक) इच्छा के तल के लक्षण नहीं हैं। रूप के तल के लक्षण नहीं हैं। निराकार तल के लक्षण नहीं हैं। इनमें शामिल नहीं हैं (अर्थात् ये अलौकिक हैं)। कभी-कभी ये मुक्ति की ओर प्रवृत्त होते हैं; कभी-कभी नहीं होते। कभी-कभी इनका (परिणामस्वरूप समय) निश्चित होता है; कभी-कभी इनका (परिणामस्वरूप समय) निश्चित नहीं होता। ये अप्राप्य हैं। शोक का कोई कारण नहीं हैं।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

ज्ञानोदय के कारकों का विश्लेषण

समाप्त
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 11 पाठ - मग्गंगा
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा अनुवादित

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 11. मार्ग घटकों का विश्लेषण (मग्गंगा संस्कृत: मार्ग-अंगा)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

486. [235] आर्य अष्टांगिक मार्ग। अर्थात्; सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

487. इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण का ज्ञान, दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान। यही सही दृष्टिकोण कहलाता है। (1)

इसमें सही विचार क्या है? त्याग से जुड़ा विचार, द्वेष से रहित विचार, क्रूरता से रहित विचार। यही सही विचार कहलाता है। (2)

उसमें सही वाणी क्या है? झूठी वाणी से बचना; निंदात्मक वाणी से बचना; कठोर वाणी से बचना; तुच्छ वाणी से बचना। यही सही वाणी कहलाती है। (3) उसमें सही कर्म क्या है? प्राणियों की हत्या से बचना; बिना दी हुई वस्तु न लेना; यौन दुराचार से बचना। यही सही कर्म कहलाती है। (4)

इसमें सही आजीविका क्या है? इसमें एक श्रेष्ठ शिष्य गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका से अपना जीवन यापन करता है। यही सही आजीविका कहलाती है। (5)

इसमें उचित प्रयास क्या है? इसमें भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन बुरी अवस्थाओं के त्याग के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न हो चुकी हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, उन अच्छी अवस्थाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करता है जो उत्पन्न नहीं हुई हैं; इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, ऊर्जा जगाता है, मन लगाता है, स्थिरता, संयोजन, वृद्धि और परिपक्वता के लिए प्रयास करता है।

पथ घटकों का विश्लेषण

309

विकास के लिए, उन अच्छे राज्यों की पूर्णता के लिए जो उत्पन्न हुए हैं। इसे सही प्रयास कहा जाता है। (6) [236]

इसमें सही ध्यान क्या है? इसमें भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत होकर संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करते हुए निवास करता है; भावनाओं में भावनाओं का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक और सचेत होकर लोभ को दूर करता है!

और संसार में मानसिक पीड़ा को दूर करता है; चेतना में चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक, सचेत रहते हुए, लोभ और संसार में मानसिक पीड़ा को दूर करता है; वैचारिक वस्तुओं में वैचारिक वस्तुओं का चिंतन करते हुए, उत्साही, जागरूक, सचेत रहते हुए, संसार में लोभ और मानसिक पीड़ा को दूर करता है। इसे सही जागरूकता कहते हैं। (7)

इसमें सही एकाग्रता क्या है? इसमें एक भिक्षु इंद्रिय सुखों से विरक्त, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त प्रथम ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को त्यागकर वह आंतरिक परिष्कार और मन के उन्नत विकास के साथ, आरंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना, एकाग्रता से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; उत्साह की इच्छा रखते हुए वह समभाव, सचेत और जागरूक रहता है और मानसिक अवस्थाओं के माध्यम से आनंद का अनुभव करता है; इसे ही श्रेष्ठजन "समभाव, सचेत आनंद में रहने वाला" कहते हैं; वह तृतीय ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; सुख और दुख का त्याग करके, फिर मानसिक सुख और मानसिक दुख को समाप्त करके वह चतुर्थ ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है (जो) न तो दुख है और न ही सुख (बल्कि) समभाव से उत्पन्न चेतना की शुद्धता है। इसे ही सही एकाग्रता कहते हैं। (8)

488. आर्य अष्टांगिक मार्ग। अर्थात्; सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

489 V) इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? इसमें भिक्षु वैराग्य पर आधारित, कामवासना से रहित, और अंत में त्याग पर आधारित सही दृष्टिकोण विकसित करता है। वह सही विचार विकसित करता है। सही वाणी विकसित करता है। सही कर्म विकसित करता है। सही आजीविका विकसित करता है। सही प्रयास विकसित करता है। सही जागरूकता विकसित करता है। सही एकाग्रता विकसित करता है।

वैराग्य पर निर्भर, कामवासना के अभाव पर निर्भर, समाप्ति पर निर्भर, अंततः परित्याग में परिणत।

P = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

490. अष्टांगिक मार्ग है: सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

491. उसमें अष्टांगिक मार्ग क्या है? उसमें उस समय जब भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, [237] पहले ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय अष्टांगिक मार्ग (अर्थात्) सही दृष्टिकोण, सही एकाग्रता है।

P^पैरा 205 देखें। P 2 = मध्यवर्ती पथ घटक।

492. उसमें सही दृष्टिकोण क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, : P : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे सही दृष्टिकोण कहते हैं। (1)

p = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें सही विचार क्या है? वह जो चिंतन, विचार, ध्यान, एकाग्रता, मन का अनुप्रयोग, सही विचार, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे सही विचार कहते हैं। (2)

इसमें सही वाणी क्या है? वह जो चार प्रकार के गलत कार्यों से बचती है, उनसे दूर रहती है, उनसे परहेज करती है, उनसे परहेज करती है, उन्हें नहीं करती है, उनसे निर्दोष होती है, उनकी सीमा का उल्लंघन नहीं करती है, और उन कार्यों के मार्ग को नष्ट करती है: सही वाणी, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही वाणी कहते हैं। (3)

इसमें सही कर्म क्या है? वह कर्म जो टालना, त्यागना है।

311

तीन गलत शारीरिक क्रियाओं से बचना, उनसे परहेज करना, उनसे दूर रहना, उन्हें न करना, उनसे मुक्त होना, उनकी सीमा का उल्लंघन न करना, उन गलत शारीरिक क्रियाओं के मार्ग को नष्ट करना: सही कर्म, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल। इसे सही कर्म कहते हैं। (4)

इसमें सही आजीविका क्या है? वह जो गलत आजीविका से बचना, उससे दूर रहना, उससे परहेज करना, उससे परहेज करना, उसे न करना, उससे निर्दोष होना, उसकी सीमा पार न करना, और गलत आजीविका के मार्ग को नष्ट करना है: सही आजीविका, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल। इसे सही आजीविका कहा जाता है। (5)

उसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही प्रयास कहते हैं। (6)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें सही जागरूकता क्या है? वह जागरूकता, निरंतर जागरूकता, सही जागरूकता, जागरूकता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही जागरूकता कहते हैं। (7)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें सही एकाग्रता क्या है? वह जो चेतना की स्थिरता है, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। इसे अष्टांग मार्ग कहते हैं। (और इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी अष्टांग मार्ग से संबंधित हैं। (8)

P = अनुच्छेद 220 देखें।

493. पंच घटक मार्ग है: — सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता। [238]

494. इसमें पंच तत्व मार्ग क्या है? इसमें उस समय जब कोई भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की प्रथम अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय पंच तत्व मार्ग (अर्थात्) सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता है।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

312

विश्लेषण की पुस्तक

495. इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान का कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित है। इसे सही दृष्टिकोण कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें सही विचार क्या है? वह जो चिंतन है, जो सोच है, : सही विचार, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही विचार कहते हैं।

P = अनुच्छेद 182 देखें।

इसमें सही प्रयास क्या है? वह जो मानसिक ऊर्जा को जागृत करता है, सही प्रयास, ऊर्जा-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे ही सही प्रयास कहते हैं।

पी — पैराग्राफ 220 देखें।

इसमें सही सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, सही सचेतनता है, सचेतनता-ज्ञान का कारक है, मार्ग का घटक है, मार्ग में समाहित है। इसे ही सही सचेतनता कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

इसमें सही एकाग्रता क्या है? वह जो चेतना की स्थिरता है, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। इसे पंच-घटक मार्ग कहते हैं। (साथ ही) पंच-घटक मार्ग से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

496. पंच घटक मार्ग है: — सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

497. इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर सुपरमुंडनेज्ञान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होता है,

पीएक्स; प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास है।
धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; जो उस समय बुद्धि, समझ हो, :P 2 : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञानोदय-कारक, मार्ग का घटक।

पथ घटकों का विश्लेषण

मार्ग में शामिल है। इसे सही दृष्टि कहते हैं। (साथ ही) सही दृष्टि से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :P 3 : (साथ ही) सही विचार से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। : P 3 : (साथ ही) सही प्रयास से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। : P 3 : (साथ ही) सही जागरूकता से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। [239]

पी 1 ^ पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 525.

पृष्ठ 3 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें, लेकिन पैराग्राफ 495 के अनुसार उचित संशोधनों के साथ।

इसमें सही एकाग्रता क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होता है।

पी 1: पहले ध्यान में, जो कठिन अभ्यास है, को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है।
धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; जो उस समय चेतना की स्थिरता है, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में समाहित। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी सही एकाग्रता से जुड़ी होती हैं।

पीजे = पैरा देखें। 205. पी 2 = पैरा देखें। 220.

498. आठ घटक पथ है: दायाँ दृश्य, :P: दायाँ सांद्रण।

P = मध्यवर्ती पथ के घटक।

499. इसमें अष्टांग मार्ग क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर, मुक्ति की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है, तब वह गलत दृष्टि का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है; उस समय वह सजगता है, अविचलितता की अवस्था में। ये अवस्थाएँ उत्तम हैं। ऐसा करने के बाद, उसी उत्तम अलौकिक ध्यान को विकसित करके, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है, जो सजगता है, सजगता है और निःसंकोच है; उस समय अष्टांग मार्ग प्राप्त होता है, अर्थात् सही दृष्टि, सही एकाग्रता। इसे अष्टांग मार्ग कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी अष्टांग मार्ग से संबंधित हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

P 3 = मध्यवर्ती पथ घटक।

314

विश्लेषण की पुस्तक

500. पंच घटक मार्ग है: — सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

501. इसमें पंच तत्व मार्ग क्या है? [240] इसमें जब कोई भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की प्रवृत्ति रखने वाले अलौकिक ध्यान का विकास करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठोर अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान के प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान का विकास करने पर, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठोर अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान और निःसंतान होता है; उस समय पंच तत्व मार्ग (अर्थात) सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता प्राप्त होती है। इसे पंच तत्व मार्ग कहा जाता है। (साथ ही) पंचघटक पथ से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा, 277.

502. पंच घटक मार्ग है: — सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

503. इसमें सही दृष्टिकोण क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठोर अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान से युक्त प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है; अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने पर, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; जो उस समय ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण, सत्य की खोज-ज्ञान-कारक, मार्ग का घटक और मार्ग में समाहित होता है। इसे सही दृष्टिकोण कहते हैं। (साथ ही) सही दृष्टिकोण से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 4 : (साथ ही) सही विचार से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। :पृष्ठ 4 : (साथ ही) शेष

पथ घटकों का विश्लेषण

315

सही प्रयास से जुड़ी अवस्थाएँ। : पृष्ठ 4 : (साथ ही) सही जागरूकता से जुड़ी शेष अवस्थाएँ।

पी 1 - पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

पृष्ठ 3 = पैराग्राफ 525 देखें।

पृष्ठ 4 = प्रत्येक को पहले उदाहरण के अनुसार पूरा करें, लेकिन पैराग्राफ 495 के अनुसार उचित संशोधनों के साथ।

इसमें सही एकाग्रता क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, :P 1 : पहले ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, :P 2 : [241] अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने के बाद,

वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, :PX : परिणामी पहले ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और शून्य है; जो उस समय स्थिरता, दृढ़ता, चेतना की दृढ़ता है; ध्यान न भटकना, अविचलित रहना, मानसिक स्थिरता, शांत रहना, एकाग्रता की क्षमता, एकाग्रता की शक्ति, सही एकाग्रता, एकाग्रता-ज्ञान कारक, मार्ग का घटक, मार्ग में शामिल। इसे सही एकाग्रता कहते हैं। (साथ ही) सही एकाग्रता से जुड़ी अन्य अवस्थाएँ भी।

पी एल = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

3. पूछताछ

504. आर्य अष्टांगिक मार्ग। अर्थात्; सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता।

505. आठ पथ घटकों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? : P : कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण है; कितने ऐसे हैं जिनके लिए शोक का कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

13*

बीमार

316

विश्लेषण की पुस्तक

1. त्रिक

506. (आठ मार्ग घटक) कभी अच्छे होते हैं; कभी न अच्छे होते हैं, न बुरे। सही विचार सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है। सात मार्ग घटक कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; कभी दुखदायी, न सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। (आठ मार्ग घटक) कभी फलदायी होते हैं; कभी फलदायी उत्पन्न करते हैं। (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्राह्य नहीं होते, आसक्ति के विषय नहीं होते। न भ्रष्ट होते हैं, न भ्रष्टता के विषय होते हैं। सही विचार आरंभिक परिश्रम के बिना, केवल निरंतर परिश्रम से होता है। सात मार्ग घटक कभी आरंभिक परिश्रम के साथ, कभी निरंतर परिश्रम के साथ होते हैं; कभी आरंभिक परिश्रम के बिना, केवल निरंतर परिश्रम से होते हैं; कभी आरंभिक परिश्रम के बिना, निरंतर परिश्रम के बिना होते हैं। सही विचार उत्साह से भरा होता है; आनंद से भरा होता है; उदासीनता से रहित होता है। सात मार्ग घटक कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी आनंद से भरे होते हैं; कभी उदासीनता से भरे होते हैं। (आठ मार्ग घटक) न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने चाहिए। प्रथम पथ या पश्चात पथों द्वारा परित्याग किए जाने के लिए इनकी कोई जड़ नहीं होती।

कभी-कभी ये विक्षेपी (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र में) होते हैं; कभी-कभी न तो संचयी होते हैं और न ही विक्षेपी। कभी-कभी ये सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के होते हैं। ये अतुलनीय होते हैं। इनका उद्देश्य अतुलनीय होता है। ये श्रेष्ठ होते हैं। कभी-कभी ये निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्थाएँ) होते हैं; कभी-कभी इनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। इनका उद्देश्य पथ नहीं होता; कभी-कभी इनका कारण पथ होता है; कभी-कभी इनका प्रमुख कारक पथ होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि इनका कारण या प्रमुख कारक पथ है। कभी-कभी ये उत्पन्न होते हैं; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी-कभी उत्पन्न होने के लिए बाध्य होते हैं। कभी-कभी ये भूतकाल के होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल के होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल के होते हैं। इनका न तो भूतकाल का उद्देश्य होता है, न भविष्यकाल का और न ही वर्तमानकाल का। कभी-कभी ये आंतरिक होते हैं; कभी-कभी बाह्य होते हैं; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। इनका उद्देश्य बाह्य होता है। ये अदृश्य होते हैं, इनका प्रभाव नहीं पड़ता। [242]

मैं

पथ घटकों का विश्लेषण

317

2. दोहे

507. सही दृष्टि मूल है। सात पथ घटक मूल नहीं हैं। (आठ पथ घटक) मूलों के साथ हैं। मूलों से संबद्ध हैं। सही दृष्टि मूल भी है और मूल से संबद्ध है। सात पथ घटकों को मूल भी नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों के साथ तो हैं लेकिन मूल नहीं हैं। सही दृष्टि मूल भी है और मूल से संबद्ध है। सात पथ घटकों को मूल भी नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों से संबद्ध तो हैं लेकिन मूल नहीं हैं। सात पथ घटक मूल नहीं हैं, मूलों के साथ हैं। सही दृष्टि को मूल नहीं कहा जाना चाहिए, मूल से संबद्ध है या मूल नहीं है, मूल से संबद्ध नहीं है।

(आठ पथ घटक) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। अप्रभावित हैं। भौतिक नहीं हैं। अलौकिक हैं। एक ही मार्ग से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं किए जा सकते।

(आठ पथ घटक) दोष नहीं हैं। दोषों के विषय नहीं हैं। दोषों से संबद्ध नहीं हैं। इन्हें दोष भी हैं और दोषों के विषय भी, या दोष के विषय होते हुए भी दोष नहीं कहा जाना चाहिए। इन्हें दोष भी हैं और दोषों से संबद्ध भी, या दोष से संबद्ध होते हुए भी दोष नहीं कहा जाना चाहिए। ये दोषों से संबद्ध नहीं हैं, दोषों के विषय भी नहीं हैं।

(आठ पथ घटक) बंधन नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाढ़ नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाधाएँ नहीं हैं। विकृतियाँ नहीं हैं। इनके विषय हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से जुड़े हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं। ये चेतना द्वारा उत्पन्न हैं। ये चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना के साथ चलते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं, चेतना के साथ चलते हैं। ये बाह्य हैं। ये व्युत्पन्न नहीं हैं। इन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के अनुसार पूर्ण।

(आठ पथ घटक) आसक्ति नहीं हैं। :P: विकृतियाँ नहीं हैं। :P: प्रथम पथ द्वारा त्यागे जाने योग्य नहीं हैं। अनुवर्ती पथों द्वारा त्यागे जाने योग्य नहीं हैं। प्रथम पथ द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। अनुवर्ती पथों द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं।

318

विश्लेषण की पुस्तक

अनुवर्ती मार्ग। सही विचार प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं। सही विचार निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के बिना होते हैं। सही विचार उत्साह से भरा होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। सही विचार उत्साह से भरा होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी उत्साह से भरे होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। सही विचार आनंद से भरा होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी आनंद से भरे होते हैं; कभी-कभी आनंद के बिना होते हैं। सही विचार उदासीनता से भरा नहीं होता है। सात मार्ग घटक कभी-कभी उदासीनता से भरे होते हैं; कभी-कभी उदासीनता के बिना होते हैं। [243] (आठ मार्ग घटक) इच्छा के तल की विशेषता नहीं हैं। रूप के तल की विशेषता नहीं हैं। निराकार तल की विशेषता नहीं हैं। शामिल नहीं हैं (अर्थात् अलौकिक हैं)। कभी-कभी मुक्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं; कभी-कभी मुक्त करने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं। कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) के होते हैं; कभी-कभी इनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। ये पार नहीं किए जा सकते। इन पर शोक करने का कोई कारण नहीं होता।

P = पहले के पैराग्राफ में वर्णित दोषों के समान पूर्ण।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

पथ घटकों का विश्लेषण समाप्त हो गया है।
तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 12 पाठ - झाना

विभंग - विश्लेषण की पुस्तक - गौतम बुद्ध द्वारा वाणी सहित।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
पाली से अनुवादित: यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अंतर्वस्तु
1सीएच.12. झाना का विश्लेषण (ट्रान्स/ज़ेन/ध्यान)
1.11. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
1.21. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
1.33. पूछताछ
सीएच.12. झाना का विश्लेषण (ट्रान्स/ज़ेन/ध्यान)

(बौद्ध धर्म में ध्यान का अर्थ समाधि अवस्था है)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण
508. [244] यहाँ भिक्षु मूलभूत उपदेशों द्वारा संयमित और नियंत्रित होकर निवास करता है, उचित आचरण और उपयुक्त भिक्षागृह से युक्त होकर, अपने छोटे से छोटे दोषों में भी खतरा देखकर, उपदेशों का पालन करते हुए वह स्वयं को उपदेशों में प्रशिक्षित करता है, इंद्रियों के नियंत्रण के द्वारों के प्रति सतर्क रहता है, भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान रखता है, रात्रि के पहले और अंतिम पहर में सतर्कता का अभ्यास करता है, गहन प्रयास और अंतर्मन के साथ ज्ञानोदय की अवस्थाओं के विकास का अभ्यास करता है; वह आने-जाने में सजग रहता है; आगे और पीछे देखने में वह सजग रहता है; झुकने और सीधा होने में वह सजग रहता है; बाहरी वस्त्र, भिक्षापात्र और अंतर्वस्त्र धारण करने में वह सजग रहता है; खाने, पीने, चबाने और चखने में वह सजग रहता है; प्रकृति की पुकारों का पालन करते हुए वह सजगता से कार्य करता है; चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, सोते हुए, जागते हुए, बोलते हुए, मौन रहते हुए, वह सजगता से कार्य करता है; वह किसी एकांत स्थान, जंगल, वृक्ष की तलहटी, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, कब्रिस्तान, दूरस्थ जंगल, सुनसान जगह, पुआल के ढेर (ऐसे स्थान) की ओर जाता है जहाँ शोर कम हो, हलचल कम हो, मनुष्यों के वातावरण से मुक्त हो, मनुष्यों से गुप्त हो, एकांत के लिए उपयुक्त हो; वह जंगल में जाकर, वृक्ष की तलहटी में जाकर या किसी निर्जन स्थान पर जाकर, पैरों को मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, ध्यान को अपने सामने केंद्रित करके बैठता है; वह संसार में किसी भी चीज के प्रति लोभ का त्याग करके लोभ से मुक्त चेतना के साथ निवास करता है; वह अपनी चेतना को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और घृणा का त्याग करके वह द्वेष रहित चेतना के साथ, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के प्रति करुणामय होकर निवास करता है। वह अपने मन से दुर्भावना को दूर करता है और
शाब्दिक अर्थ \/jhe = < जो किसी वस्तु के बारे में गहराई से सोचता है', और 'जो
जो जलाता है' (प्रतिकूल चीजें, अर्थात् बाधाएं)।
ध्यान ऐसी अवस्थाएं हैं जिनमें एकाग्रता पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाती है और जिनमें बाधाएं दूर हो जाती हैं।

320 विश्लेषण की पुस्तक
घृणा। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके वह आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर, उज्ज्वल बोध से युक्त, सचेत और जागरूक होकर निवास करता है; वह अपनी चेतना को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। व्याकुलता और पश्चाताप का त्याग करके वह आंतरिक रूप से शांत चेतना के साथ, बिना व्याकुलता के निवास करता है; वह अपनी चेतना को व्याकुलता और पश्चाताप से शुद्ध करता है। संदेह का त्याग करके, संदेह पर विजय प्राप्त करके, वह अच्छे भावों के बारे में अनिश्चितता से मुक्त होकर निवास करता है; वह अपनी चेतना को संदेह से शुद्ध करता है। इन पाँच बाधाओं (जो कि) मानसिक विकृतियाँ और बुद्धि का क्षय हैं, का त्याग करके, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरे भावों से विरक्त होकर, प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को छोड़कर वह आंतरिक परिष्कार, मन के उन्नत विकास के साथ, प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना, एकाग्रता से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ द्वितीय ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; वह, अभिलाषा रहित, समभाव, सचेत और जागरूक होकर, शरीर (मानसिक समुच्चयों के समूह) के माध्यम से सुख का अनुभव करता है; इसे श्रेष्ठजनों ने "समभाव, सचेत और सुखमय निवासी" बताया है; वह तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; सुख और दुख का त्याग करके, फिर मानसिक सुख और मानसिक दुख को समाप्त करके वह चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो न दुख है, न सुख, बल्कि समभाव से उत्पन्न चेतना की शुद्धता है; इंद्रिय बोधों को समाप्त करके, विभिन्न बोधों पर ध्यान न देकर, रूप बोधों को पूर्णतः पार कर, इस प्रकार "अंतरात्मा अनंत है" पर ध्यान केंद्रित करके वह अनंतता की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; अनंतता की अवस्था को पूर्णतः पार करके, इस प्रकार "चेतना अनंत है" पर ध्यान केंद्रित करके वह अनंतता की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। चेतना की अनंतता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेने के बाद, (एकाग्र होकर) इस प्रकार, "कुछ भी नहीं है", वह शून्यता की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेने के बाद वह न तो बोध और न ही अबोध की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है।
(यहाँ सारांश समाप्त होता है)

509. 'यहाँ* का अर्थ है: इस दृष्टिकोण का, इस क्षमता (समझने की) का, इस चुनाव का, इस मत (अर्थात्, जो दृष्टिकोण माना जाता है) का, इस सत्य का, इस अनुशासन का, इस सिद्धांत का, इस व्याख्या का,

गुरु की इस शिक्षा में यह सर्वोच्च अभ्यास निहित है। अतः इसे 'इसमें' कहा जाता है।

510. 'भिक्षु' का अर्थ है: पदनाम से भिक्षु; मान्यता से भिक्षु; भिक्षावृत्ति के कारण भिक्षु; भिक्षावृत्ति की आदत से भिक्षु; भिक्षा मांगने की अवस्था तक पहुँचने से भिक्षु; कटे हुए वस्त्र पहनने से भिक्षु; बुरी अवस्थाओं का नाश करने से भिक्षु; बुरी अवस्थाओं का नाश कर चुके भिक्षु; [246] सीमित रूप से विकारों का त्याग करने से भिक्षु; असीमित रूप से विकारों का त्याग करने से भिक्षु; सात अलौकिक अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में होने से भिक्षु; अंतिम अलौकिक अवस्था में होने से भिक्षु; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में होने से और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में होने से भिक्षु; उत्कृष्टता (प्राप्ति) से भिक्षु; अच्छाई से भिक्षु; उत्तम गुणों से भिक्खु; आवश्यक सिद्धांतों से भिक्खु; निर्दोष, तर्कसंगत कर्मों द्वारा संघ द्वारा दीक्षित भिक्खु, जिसमें घोषणा चौथे (बिंदु) के रूप में है।

511. 'मूल उपदेश' का अर्थ है: नैतिकता, आधार, आरंभ, नींव, निपुणता, संयम, सर्वोपरि, अच्छे गुणों की प्राप्ति के लिए प्रमुख। 'संयम' का अर्थ है: शारीरिक उल्लंघन न करना, मौखिक उल्लंघन न करना, शारीरिक और मौखिक दोनों प्रकार से उल्लंघन न करना। 'नियंत्रित' का अर्थ है: मूल उपदेशों द्वारा नियंत्रित होने पर व्यक्ति परिपूर्ण, सिद्ध, परिपूर्ण, गुणवान और सुसज्जित होता है। अतः इसे 'मूल उपदेशों द्वारा नियंत्रित और संयमित' कहा जाता है।

512. 'निवास करता है' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करता है, विद्यमान है,
रक्षा करता है, चलता रहता है, बनाए रखता है, घूमता है, निवास करता है। इसलिए इसे 'निवास करना' कहा जाता है।

513. 'उचित आचरण और उपयुक्त भिक्षा स्रोत से संपन्न' का अर्थ है: उचित आचरण है; अनुचित आचरण है।
इसमें अनुचित व्यवहार क्या है? शारीरिक उल्लंघन, मौखिक उल्लंघन, शारीरिक और मौखिक दोनों उल्लंघन। इसे अनुचित व्यवहार कहते हैं। साथ ही, सभी प्रकार की गलत नैतिकता अनुचित व्यवहार है। इसमें कोई व्यक्ति बांस देकर, पत्ते देकर, फूल देकर, फल देकर, साबुन का पाउडर देकर, दांत साफ करने वाली छड़ी देकर, या चापलूसी करके या अन्य तरीकों से जीविका कमाता है।

फली-सब्जी का सूप बनाना, बच्चों को गोद में लेकर घुमाना-फिराना, संदेशवाहक बनना या बुद्ध द्वारा अस्वीकृत कोई भी अन्य अनुचित आजीविका अपनाना अनुचित आचरण कहलाता है।

इसमें उचित आचरण क्या है? शारीरिक संयम, वाणी संयम, शारीरिक और वाणी दोनों का संयम। इसे उचित आचरण कहते हैं। साथ ही, सभी नैतिक संयम उचित आचरण है। इसमें एक व्यक्ति बांस न देकर, पत्ते न देकर, फूल न देकर, फल न देकर, साबुन का पाउडर न देकर, दांत साफ करने वाली छड़ी न देकर, दासता का व्यवहार न करके, दाना चुगली न करके, दुलार न करके, संदेशवाहक न बनकर और बुद्ध द्वारा अस्वीकृत किसी अन्य अनुचित आजीविका से जीविका नहीं चलाता है। इसे उचित आचरण कहते हैं।

514. 'भिक्षागृह' का अर्थ है: (उपयुक्त) भिक्षागृह है; अनुपयुक्त भिक्षागृह है।
इसमें अनुपयुक्त भिक्षावृत्ति क्या है? [247] इसमें कोई व्यक्ति भिक्षा के लिए वेश्याओं, विधवाओं, कुंवारी कन्याओं, हिजड़ों, भिक्षुणियों या सार्वजनिक स्थानों पर जाता है; वह राजाओं, राजाओं के मंत्रियों, विधर्मियों और उनके अनुयायियों के साथ अनुपयुक्त संबंध रखता है; साथ ही उन परिवारों के साथ भी रहता है जिन पर उसे भरोसा नहीं है, जो अप्रसन्न हैं, जो परोपकार के स्रोत नहीं हैं, जो निंदा और निंदा करते हैं, जो दुश्मन की बुराई करते हैं, जो विपत्ति और असुविधा चाहते हैं, जो भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष भक्तों और स्त्री भक्तों के बंधनों से सुरक्षा नहीं चाहते; वह ऐसे परिवारों पर निर्भर रहता है, उनके पास जाता है, अक्सर उनके साथ समय बिताता है। इसे अनुपयुक्त भिक्षावृत्ति कहा जाता है।

इसमें भिक्षा मांगने का उचित स्थान क्या है? इसमें एक व्यक्ति भिक्षा के लिए वेश्याओं का सहारा नहीं लेता, विधवाओं का सहारा नहीं लेता, कुंवारी कन्याओं का सहारा नहीं लेता, नपुंसकों का सहारा नहीं लेता, भिक्षुणियों का सहारा नहीं लेता, सार्वजनिक स्थानों पर भिक्षा

नहीं मांगता; वह राजाओं, राजाओं के मंत्रियों, विधर्मियों और विधर्मियों के अनुयायियों के साथ अनुचित संबंध नहीं रखता; परन्तु वे परिवार जो विश्वास से भरे हैं, प्रसन्न हैं, परोपकार के स्रोत हैं, जिनके घर पीले वस्त्रों से सुशोभित हैं, जिनके घरों में आने-जाने वाले भिक्षुओं की भीड़ रहती है, जो शुभचिंतक हैं, कल्याणकारी हैं, सुखदायी हैं, भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष भक्तों और स्त्री भक्तों के लिए बंधनों से मुक्ति की कामना करते हैं।

झाना का विश्लेषण

323

वह ऐसे परिवारों पर निर्भर रहता है, उनसे संपर्क करता है, उनके साथ अक्सर रहता है। इसे (उपयुक्त) भिक्षागृह कहा जाता है। इस प्रकार वह इस (उचित) व्यवहार और इस (उपयुक्त) भिक्षागृह से संपन्न है। इसलिए इसे 'उचित व्यवहार और भिक्षागृह से युक्त' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 357 देखें।

515. 'अपनी छोटी से छोटी गलतियों में भी खतरा देखना' का अर्थ है: छोटी से छोटी गलतियाँ क्या होती हैं? वे गलतियाँ जो तुच्छ, मामूली, हल्की होती हैं, जिन्हें हल्का कहा जाता है और जिनसे नियंत्रण, संयम, चेतना का उदय और ध्यान आकर्षित होना चाहिए। इन्हें छोटी से छोटी गलतियाँ कहा जाता है। इस प्रकार, इन छोटी से छोटी गलतियों में वह गलती देखता है, खतरा देखता है, जोखिम देखता है, और उससे बचने का रास्ता देखता है। इसलिए इसे 'अपनी छोटी से छोटी गलतियों में भी खतरा देखना' कहा जाता है। [248]

516. 'उपदेशों का पालन करते हुए वह स्वयं को उपदेशों में प्रशिक्षित करता है' का अर्थ है: उपदेश क्या हैं? चार प्रकार के उपदेश हैं: भिक्षुओं के लिए भिक्षु उपदेश; भिक्षुणियों के लिए भिक्षुणी उपदेश; पुरुष भक्तों के लिए पुरुष भक्त उपदेश; स्त्री भक्तों के लिए स्त्री भक्त उपदेश। इन्हें उपदेश कहा जाता है। इस प्रकार वह इन उपदेशों का पूर्णतः, बिना किसी अपवाद के, पूरी तरह से पालन करता है। अतः इसे 'उपदेशों का पालन करते हुए वह स्वयं को उपदेशों में प्रशिक्षित करता है' कहा जाता है।

517. 'नियंत्रण संकायों के द्वारों के संबंध में सतर्क'

इसका अर्थ है: नियंत्रण करने वाली शक्तियों के द्वारों की सुरक्षा की जाती है; द्वारों की सुरक्षा की नहीं जाती है।

इसमें 'संयमित इंद्रियों के द्वारों की रक्षा न करना' क्या है? इसमें एक व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखकर उसका सामान्य स्वरूप ग्रहण करता है, उसका विवरण ग्रहण करता है। चाहे जो भी कारण हो, यदि कोई व्यक्ति आँख की संयमित इंद्री को नियंत्रित किए बिना रहता है, तो लोभ और मानसिक पीड़ा, बुरे परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। वह उस पर संयम नहीं बरतता; वह आँख की संयमित इंद्री की रक्षा नहीं करता; वह आँख की संयमित इंद्री में संयम नहीं रखता। कान से श्रव्य वस्तु सुनना। नाक से सुगंधित वस्तु को सूंघना। जीभ से स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद लेना। शरीर से स्पर्शित वस्तु को छूना। मन से काल्पनिक वस्तु को जानना, उसका सामान्य स्वरूप ग्रहण करता है, उसका विवरण ग्रहण करता है।

324

विश्लेषण की पुस्तक

विस्तार से। चाहे किसी भी कारण से, यदि कोई व्यक्ति मन की नियंत्रण शक्ति को नियंत्रित किए बिना मनन कर रहा है, तो लोभ और मानसिक पीड़ा जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह इन पर संयम नहीं बरतता; वह मन की नियंत्रण शक्ति की रक्षा नहीं करता; वह मन की नियंत्रण शक्ति में संयम नहीं रखता। इन छह नियंत्रण शक्तियों में से जो भी शक्ति रक्षा नहीं कर रही है, जिसकी रक्षा नहीं की जा रही है, जो रक्षा नहीं कर रही है, जो संयम नहीं बरत रही है, उसे 'नियंत्रण शक्तियों के द्वारों की रक्षा न करना' कहा जाता है।

P — पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

इसमें 'संवेदनाओं के द्वारों की रक्षा करना' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखते हुए उसके सामान्य स्वरूप पर ध्यान नहीं देता, न ही उसके विवरण पर। चाहे किसी भी कारण से कोई व्यक्ति आँख की संवेदना को नियंत्रित किए बिना रहता हो, लोभ और मानसिक पीड़ा जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह इन पर संयम बरतता है; वह आँख की संवेदना की रक्षा करता है; वह

आँख की संवेदना में संयम का पालन करता है। कान से श्रव्य वस्तु सुनना: नाक से सुगंधित वस्तु को सूंघना: जीभ से स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद लेना: शरीर से स्पर्श करना: मन से काल्पनिक वस्तु को जानना उसके सामान्य स्वरूप पर ध्यान नहीं देता, न ही उसके विवरण पर। चाहे किसी भी कारण से, यदि कोई व्यक्ति मन की नियंत्रण शक्ति को नियंत्रित किए बिना जीवन व्यतीत कर रहा है, तो लोभ और मानसिक पीड़ा जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह इन पर संयम बरते; वह मन की नियंत्रण शक्ति की रक्षा करे; वह मन की नियंत्रण शक्ति में संयम का अभ्यास करे। इन छह नियंत्रण शक्तियों में से जो भी शक्ति रक्षा कर रही है, जिसकी रक्षा की जा रही है, जो रक्षा कर रही है, जो संयम बरत रही है, उसे [249] 'नियंत्रण शक्तियों के द्वारों की रक्षा' कहा जाता है। नियंत्रण शक्तियों के द्वारों की इस रक्षा से वह सुसज्जित है, अच्छी तरह से सुसज्जित है। इसलिए इसे 'नियंत्रण शक्तियों के द्वारों की रक्षा' कहा जाता है।
p! = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 357 देखें।
518. 'भोजन में सही मात्रा जानना' का अर्थ है: है,
भोजन में सही मात्रा का ज्ञान होना; भोजन में सही मात्रा का ज्ञान न होना भी एक समस्या है।
सही मात्रा।
इसमें 'भोजन में सही मात्रा का ज्ञान न होना' का क्या अर्थ है?
इसमें एक व्यक्ति बिना सोचे-समझे, अनुचित रूप से सुखदायक गतिविधियों, अभिमान, शारीरिक आकर्षण और सुडौल शरीर के लिए भोजन ग्रहण करता है।

झाना का विश्लेषण

325

उसमें जो असंतोष है, सही मात्रा का ज्ञान न होना, भोजन पर विचार न करना। इसे भोजन में सही मात्रा का ज्ञान न होना कहा जाता है। इसमें 'भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान' क्या है? इसमें एक व्यक्ति चिंतन करते हुए, उचित मात्रा में भोजन ग्रहण करता है, सुख-सुविधाओं के लिए नहीं, अभिमान के लिए नहीं, शारीरिक आकर्षण के लिए नहीं, उत्तम शरीर के लिए नहीं, बल्कि केवल उतना ही जितना शरीर को स्थिर और बनाए रखने के लिए, भूख की पीड़ा को शांत करने के लिए, और सर्वोच्च साधना को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हो; (यह सोचते हुए) कि मैं इस पुरानी अनुभूति (अर्थात् बेचैनी) को नष्ट कर देता हूँ; मैं कोई नई अनुभूति (अर्थात् तृप्ति) उत्पन्न नहीं करूँगा; और मुझे जीविका, दोषरहितता और सुखमय निवास प्राप्त होगा। इसमें जो संतुष्टि निहित है, वह भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान होना है, और भोजन पर चिंतन करना है। इसे 'भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान' कहा जाता है। भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान उसे प्राप्त होता है। इसलिए इसे 'भोजन में उचित मात्रा का ज्ञान' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 357 देखें।
519. और रात्रि के पहले और अंतिम पहर में भिक्षु किस प्रकार सजगता का अभ्यास करता है? इसमें भिक्षु दिन के समय बैठकर इधर-उधर टहलते हुए अपनी चेतना को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है; रात्रि के पहले पहर में बैठकर इधर-उधर टहलते हुए वह अपनी चेतना को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है; रात्रि के मध्य पहर में वह सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेटता है, एक पैर को दूसरे पर थोड़ा विस्थापित करके, उठने के विचार के प्रति सचेत, जागरूक और एकाग्र रहता है; रात्रि के अंतिम पहर में, उठने के बाद, बैठकर इधर-उधर टहलते हुए वह अपनी चेतना को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। इस प्रकार भिक्षु रात्रि के पहले और अंतिम पहर में सजगता का अभ्यास करता है।

520. 'तीव्र प्रयास' का अर्थ है: वह जो मानसिक ऊर्जा को जगाता है, : P : सही प्रयास।
P = अनुच्छेद 220 देखें।

521. 'प्रवेश' का अर्थ है: वह जो ज्ञान, समझ, : P : सुस्ती की अनुपस्थिति, सत्य की जांच, सही दृष्टिकोण।

पी — पैराग्राफ 525 देखें।

326

विश्लेषण की पुस्तक

522. 'ज्ञानोदय अवस्थाओं के विकास के अभ्यास का अभ्यास करना' का अर्थ है: इसमें ज्ञानोदय अवस्थाएँ क्या हैं? सात ज्ञानोदय कारक (अर्थात,) सचेतनता-ज्ञानोदय कारक, सत्य अन्वेषण-ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-ज्ञानोदय कारक, उत्साह-ज्ञानोदय कारक, शांति-ज्ञानोदय कारक, एकाग्रता-ज्ञानोदय कारक, [250] समभाव-ज्ञानोदय कारक। इन्हें ज्ञानोदय अवस्थाएँ कहा जाता है। इस प्रकार वह इन ज्ञानोदय अवस्थाओं का अनुसरण करता है, उन्हें विकसित करता है, दोहराता है। अतः इसे 'ज्ञानोदय अवस्थाओं के विकास के अभ्यास का अभ्यास करना' कहा जाता है।

523. और एक भिक्षु आने-जाने में किस प्रकार सजगता से कार्य करता है; आगे देखने और चारों ओर देखने में सजगता से कार्य करता है; झुकने और खिंचाव करने में सजगता से कार्य करता है; बाहरी वस्त्र, भिक्षापात्र और अंतर्वस्त्र धारण करने में सजगता से कार्य करता है; खाने, पीने, चबाने और चखने में सजगता से कार्य करता है; प्राकृतिक क्रिया करते समय सजगता से कार्य करता है; चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बोलने और चुप रहने में सजगता से कार्य करता है? इसमें एक भिक्षु सचेत और जागरूक होकर आता है; सचेत और जागरूक होकर जाता है; सचेत और जागरूक होकर आगे देखता है; सचेत और जागरूक होकर चारों ओर देखता है; सचेत और जागरूक होकर झुकता है; सचेत और जागरूक होकर खिंचाव करता है; सचेत होकर सजगता से कार्य करता है; बाहरी वस्त्र, भिक्षापात्र और अंतर्वस्त्र धारण करते समय सचेत और जागरूक होकर कार्य करता है; खाने-पीने, चबाने, स्वाद लेने में वह सजग रहता है; प्राकृतिक क्रिया करते समय वह सजग रहता है; चलने-फिरने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बोलने, चुप रहने में वह सजग रहता है।

524. इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता है, स्मरण है, सचेतनता है, याद रखने की क्रिया है, ध्यान में रखना है, सतहीपन से दूर रहना है, विस्मृति से दूर रहना है, सचेतनता है, सचेतनता को नियंत्रित करने की क्षमता है, सचेतनता की शक्ति है, सही सचेतनता है। इसे ही सचेतनता कहते हैं।

525. 'जागरूक' का अर्थ है: जागरूकता क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, अन्वेषण, शोध, सत्य की खोज, विवेक, भेदभाव, भेद, विद्वता, दक्षता, सूक्ष्मता, विश्लेषण, विचार, व्यापकता, बुद्धिमत्ता, मार्गदर्शन, अंतर्दृष्टि, जागरूकता, प्रेरणा, बुद्धि और नियंत्रण क्षमता है।

झाना का विश्लेषण

327

ज्ञान, ज्ञान की शक्ति, ज्ञान की तलवार, ज्ञान का मीनार, ज्ञान का प्रकाश, ज्ञान की चमक, ज्ञान का वैभव, ज्ञान का रत्न, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टि। इसे ही जागरूकता कहते हैं। इस प्रकार वह इस सजगता और इस जागरूकता से परिपूर्ण होता है। इस प्रकार एक भिक्षु सजग और सचेत होकर आगे बढ़ता है; सजग और सचेत होकर प्रस्थान करता है; सजग और सचेत होकर आगे देखता है; सजग और सचेत होकर चारों ओर देखता है; सजग और सचेत होकर झुकता है; सजग और सचेत होकर खिंचाव करता है; सजग होकर जागरूकता के साथ कार्य करता है; बाहरी वस्त्र, भिक्षापात्र और अंतर्वस्त्र धारण करते समय, वह सजग होकर जागरूकता के साथ कार्य करता है; खाने, पीने, चबाने, चखने में, सजग होकर जागरूकता के साथ कार्य करता है; प्राकृतिक क्रिया करते समय, सजग होकर जागरूकता के साथ कार्य करता है; चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, जागने, बोलने, चुप रहने में, वह जागरूकता के साथ कार्य करता है।

P = अनुच्छेद 357 देखें।

526. 'एकांत' का अर्थ है: यदि निवास स्थान निकट है और आम लोगों या भिक्षुओं से भरा नहीं है; तो वह एकांत है। यदि निवास स्थान दूर है और आम लोगों या भिक्षुओं से भरा नहीं है; तो वह एकांत है।

527. 'आवास' का अर्थ है: पलंग निवास है; कुर्सी भी निवास है; तकिया भी निवास है; विहार भी निवास है; पंचछत वाला (घर) भी निवास है; ढलान वाली छत वाला (घर) भी निवास है; पहरेदार मीनार भी निवास है; गोलाकार (घर) भी निवास है; कोठरी भी निवास है; गुफा भी निवास है; पेड़ की तलहटी भी निवास है; बांस का झुरमुट भी निवास है या जहाँ कहीं भी भिक्षु ध्यान करते हैं; यह सब निवास है।

528 'वह एकांत निवास की ओर बढ़ता है* का अर्थ है: वह इस एकांत निवास की ओर बढ़ता है, खुशी से बढ़ता है, इसका उपयोग करता है, इस पर निर्भर करता है, इसका अच्छा उपयोग करता है। इसलिए इसे 'वह एकांत निवास की ओर बढ़ता है' कहा जाता है।
529. 'वन* का अर्थ है: दहलीज से परे प्रस्थान करना; यह सब वन है।
530. 'पेड़ की जड़* का अर्थ है: पेड़ की जड़ केवल पेड़ की जड़ होती है; पहाड़ केवल पहाड़ होता है; घाटी केवल घाटी होती है; पहाड़ी गुफा केवल पहाड़ी गुफा होती है; कब्रिस्तान केवल कब्रिस्तान होता है; सुनसान जगह केवल सुनसान जगह होती है; भूसे का ढेर केवल भूसे का ढेर होता है।

328 विश्लेषण की पुस्तक
531. 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह दूर स्थित आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह घने जंगलों में स्थित आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह भयभीत करने वाले आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह भयानक आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह बाहरी आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह मनुष्यों के पड़ोस में स्थित न होने वाले आवासों का नाम है; 'दूरस्थ वन' का अर्थ है: यह असहनीय आवासों का नाम है।
532. 'कम शोर होना' का अर्थ है: यदि निवास स्थान निकट है और उसमें आम लोगों या भिक्षुओं की भीड़ नहीं है; तो उसमें कम शोर होता है। यदि निवास स्थान दूर है और उसमें आम लोगों या भिक्षुओं की भीड़ नहीं है; तो उसमें कम शोर होता है।
533. 'कम शोरगुल वाला' का अर्थ है: जिसमें कम शोर होता है, उसमें कम कोलाहल होता है। जिसमें कम कोलाहल होता है, [252] वह मनुष्यों के वातावरण से मुक्त होता है। जो मनुष्यों के वातावरण से मुक्त होता है, वह मनुष्यों से गुप्त होता है। जो मनुष्यों से गुप्त होता है, वह एकांत के लिए उपयुक्त होता है।
534. 'जंगल में गया है या पेड़ की तलहटी में गया है या किसी सुनसान जगह पर गया है' का अर्थ है: वह जंगल में गया है या वह पेड़ की तलहटी में गया है या वह किसी सुनसान जगह पर गया है।
535. 'पैरों को आड़ा मोड़कर बैठता है' का अर्थ है: वह पैरों को आड़ा मोड़कर बैठता है।
536. 'शरीर को सीधा रखना' का अर्थ है: शरीर सीधा, स्थिर और अच्छी तरह से स्थापित है।
537. 'सामने सचेतनता स्थापित करना' का अर्थ है: इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, स्मरण, सही सचेतनता। इसे सचेतनता कहते हैं। यह सचेतनता नाक की नोक पर या ऊपरी होंठ के मध्य में अच्छी तरह से स्थापित की जाती है। इसलिए इसे 'सामने सचेतनता स्थापित करना' कहते हैं।

P = पैरा 220 देखें,

जेएचडीएनए का विश्लेषण

329

538. 'संसार में लोभ का त्याग करना' का अर्थ है: लोभ क्या है? वह जो वासना, मोह, चेतना का मोह है। इसे लोभ कहते हैं।
पी — पैराग्राफ 249 देखें।
इसमें संसार क्या है? पाँचों आसक्तियाँ (जिनके विषय हैं) संसार हैं। इसे संसार कहते हैं। इस संसार में लोभ शांत हो जाता है, स्थिर हो जाता है, नियंत्रित हो जाता है, समाप्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है, पूर्णतः नष्ट हो जाता है, मुरझा जाता है, पूर्णतः समाप्त हो जाता है। अतः इसे 'संसार में लोभ का त्याग' कहते हैं।
539. 'लोभ से मुक्त चेतना' का अर्थ है: इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना लोभ से मुक्त है। इसलिए इसे 'लोभ से मुक्त चेतना' कहा जाता है।
पी — पैराग्राफ 184 देखें।
540. 'निवास करना' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करना, अस्तित्व में रहना, रक्षा करना, चलते रहना, बनाए रखना, घूमना, निवास करना। इसलिए इसे 'निवास करना' कहा जाता है।

541. 'उसकी चेतना को लोभ से शुद्ध करता है' का अर्थ है: लोभ क्या है? वह जो वासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति है। इसे लोभ कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व। इसे चेतना कहते हैं। वह इस चेतना को निर्मल करता है, शुद्ध करता है, साफ करता है, मुक्त करता है, इस लोभ से छुटकारा दिलाता है। इसलिए इसे 'उसकी चेतना को लोभ से शुद्ध करना' कहते हैं। [253]
P = अनुच्छेद 184 देखें।
542. 'दुर्भावना और घृणा का त्याग करना' का अर्थ है: दुर्भावना है; घृणा है।

मैं

330

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें दुर्भावना क्या है? चेतना की वह पीड़ा, आक्रोश, घृणा, शत्रुता, चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, क्रोध, अरुचि, मानसिक विकार, नफरत, क्रोध, क्रोधित होना, क्रोधित अवस्था, घृणा, घृणास्पद होना, घृणास्पद अवस्था, अव्यवस्था, अव्यवस्थित अवस्था, विरोध, शत्रुता, उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। इसे दुर्भावना कहते हैं।
इसमें घृणा क्या है? जो दुर्भावना है वही घृणा है; जो घृणा है वही दुर्भावना है; इस प्रकार यह दुर्भावना और यह घृणा शांत, स्थिर, नियंत्रित, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाई, पूर्णतः मुरझाई हुई, निरस्त हो जाती है। अतः इसे 'दुर्भावना और घृणा का त्याग' कहा जाता है।
543. 'द्वेष रहित चेतना होना' का अर्थ है: इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना द्वेष रहित है। इसलिए इसे 'द्वेष रहित चेतना होना' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
544. 'रहता है * का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 540 देखें।
545. 'उसके मन से दुर्भावना और घृणा को दूर करता है*
इसका अर्थ है: दुर्भावना है; घृणा है।
इसमें दुर्भावना क्या है? वह जो चेतना को परेशान करती है, यानी उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। इसे ही दुर्भावना कहते हैं।
P = अनुच्छेद 542 देखें।
उसमें घृणा क्या है? जो दुर्भावना है वही घृणा है; जो घृणा है वही दुर्भावना है।
इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व। इसे चेतना कहते हैं। वह इस चेतना को दुर्भावना और घृणा से मुक्त करता है, शुद्ध करता है, साफ करता है, छुटकारा दिलाता है, मुक्त करता है। इसलिए इसे 'अपनी चेतना को दुर्भावना और घृणा से शुद्ध करना' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 184 देखें।

झाना 331 का विश्लेषण
546. 'आलस्य और सुस्ती का त्याग करना' का अर्थ है: आलस्य है; सुस्ती है।
आलस्य क्या है? चेतना की अस्वस्थता, शिथिलता, उदासी, सुस्ती, आलस्य की अवस्था, आलस्य, आलस्यपूर्ण चेतना की अवस्था। इसे आलस्य कहते हैं।
उसमें आलस्य क्या है? [254] शरीर (मानसिक समूहों) की अस्वस्थता, बोझिलता, आवरण, घेर लेना, भीतर अवरोध पैदा करना, आलस्य, नींद, उनींदापन, नींद में होना, नींद की अवस्था। इसे आलस्य कहते हैं। इस प्रकार यह आलस्य और यह आलस्य शांत, स्थिर,

अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाया हुआ, पूर्णतः मुरझाया हुआ, निरस्त हो जाता है। अतः इसे 'आलस्य और आलस्य का त्याग' कहते हैं।
547. 'आलस्य और सुस्ती से मुक्त' का अर्थ है: उस आलस्य और सुस्ती को त्याग देना, छोड़ देना, मुक्त कर देना, त्याग देना, अस्वीकार कर देना, दोनों को त्याग देना और अस्वीकार कर देना। इसलिए इसे 'आलस्य और सुस्ती से मुक्त' कहा जाता है।
548. 'रहता है* का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 6 निवास कहा जाता है'.
P = अनुच्छेद 540 देखें।
549. 'स्पष्ट बोध होना' का अर्थ है: बोध क्या है? वह जो बोध है, अनुभव करना है, अनुभव करने की अवस्था है। इसे बोध कहते हैं। यह बोध स्पष्ट, निर्मल, अत्यंत शुद्ध और अत्यंत स्पष्ट होता है। अतः इसे 'स्पष्ट बोध होना' कहते हैं।
550. 'सचेत और जागरूक' का अर्थ है: इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता। इसे ही सचेतनता कहते हैं।
P = पैरा 220 देखें,
^यहाँ जागरूकता क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे जागरूकता कहते हैं। अतः वह इस सजगता और इस जागरूकता से परिपूर्ण है। अतः इसे 'सजग और जागरूक' कहा जाता है।

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 525 देखें।

पृष्ठ 2 — पैराग्राफ 357 देखें।

332

विश्लेषण की पुस्तक

551. 'वह अपनी चेतना को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है।'
मतलब: आलस्य है; सुस्ती है।
इसमें आलस्य क्या है? :P: इसे ही आलस्य कहते हैं।
P = अनुच्छेद 546 देखें।
इसमें सुस्ती क्या है? :P: इसे सुस्ती कहते हैं।
P = अनुच्छेद 546 देखें।
इसमें चेतना क्या है? :P: इसे चेतना कहते हैं। वह इस चेतना को निर्मल, शुद्ध, साफ करता है, इस आलस्य और सुस्ती से मुक्त करता है। इसलिए इसे 'वह अपनी चेतना को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
552. 'विचलित होने और पश्चाताप को त्यागना' का अर्थ है: विचलित होना; पश्चाताप होना। [255]
इसमें व्याकुलता क्या है? चेतना की व्याकुलता, बेचैनी, मानसिक अस्थिरता, चेतना की उथल-पुथल। इसे ही व्याकुलता कहते हैं।
इसमें पश्चाताप क्या है? जो उचित नहीं है उसमें उचित देखना, जो उचित है उसमें अनुचित देखना, जो निर्दोष है उसमें दोष देखना, जो दोषपूर्ण है उसमें दोष न देखना; जो समान है, पश्चाताप, पश्चाताप की अवस्था, पश्चाताप की स्थिति, मानसिक पश्चाताप, मानसिक त्याग। इसे पश्चाताप कहते हैं। इस प्रकार यह विकर्षण और यह पश्चाताप शांत, स्थिर, अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाया हुआ, पूर्णतः मुरझाया हुआ, निरस्त हो जाता है। इसलिए इसे 'विकर्षण और पश्चाताप का त्याग' कहते हैं।
553. 'बिना विचलित हुए' का अर्थ है: विचलित होने और पश्चाताप को त्याग देना, छोड़ देना, मुक्त कर देना, त्याग देना, अस्वीकार कर देना, और दोनों को त्याग देना। इसलिए इसे 'बिना विचलित हुए' कहा जाता है।
554. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है 5' कहा जाता है।
पी — पैराग्राफ 540 देखें।
'आंतरिक रूप से' का अर्थ है: वह जो व्यक्तिगत हो, स्वयं से संबंधित हो।*

इस श्लोक को इस पाठ में छोड़ दिया गया है, लेकिन यह सुधम्मवती 1912 में शामिल है।
बर्मी पाठ, और पीटीएस 1904 में रोमनकृत t*xt.

झाना का विश्लेषण

333

555. 'शांत चेतना' का अर्थ है: इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना आंतरिक रूप से शांत, स्थिर और संयमित होती है। इसलिए इसे 'आंतरिक रूप से शांत चेतना' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
556. 'वह अपने मन को व्याकुलता और पश्चाताप से शुद्ध करता है' का अर्थ है: व्याकुलता है; पश्चाताप है।
इसमें व्याकुलता क्या है? चेतना की व्याकुलता, बेचैनी, मानसिक अस्थिरता, चेतना की उथल-पुथल। इसे ही व्याकुलता कहते हैं।
इसमें पश्चाताप क्या है? :P: इसे पश्चाताप कहते हैं।
P = अनुच्छेद 552 देखें।
इसमें चेतना क्या है? :P: इसे चेतना कहते हैं। वह इस चेतना को साफ करता है, शुद्ध करता है, साफ करता है, मुक्त करता है, इस भटकाव और पश्चाताप से आज़ाद करता है। इसलिए इसे 'वह अपनी चेतना को भटकाव और पश्चाताप से साफ करता है' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
557. 'संदेह का त्याग' का अर्थ है: इसमें संदेह क्या है? वह जो उलझन, उलझन में होना, उलझन की अवस्था, व्याकुलता, संदेह, दोलन, दोहरा मार्ग, उतार-चढ़ाव, पकड़ की अनिश्चितता, टालमटोल, संकोच, तल्लीन न होना, चेतना की कठोरता, मानसिक बलिदान है। इसे संदेह कहते हैं। [256] यह संदेह शांत हो जाता है, स्थिर हो जाता है, अवरुद्ध हो जाता है, समाप्त हो जाता है, लुप्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है, पूर्णतः नष्ट हो जाता है, मुरझा जाता है, पूर्णतः मुरझा जाता है, निरस्त हो जाता है। अतः इसे 'संदेह का त्याग' कहते हैं।
558. 'संदेह पर विजय' का अर्थ है: यह संदेह दूर हो गया है, पार हो गया है, इससे बाहर निकल गया है, (वह) दूसरे किनारे पर चला गया है, दूसरे किनारे पर पहुँच गया है। इसलिए इसे 'संदेह पर विजय' कहा जाता है।
559. 'अच्छी अवस्थाओं के बारे में अनिश्चितता रहित' का अर्थ है: अच्छी अवस्थाओं के बारे में इस संदेह के संबंध में वह भ्रमित नहीं है, संदेह नहीं करता है, अनिश्चितता से मुक्त है, अनिश्चितता से दूर है, अनिश्चितता से मुक्त है। इसलिए इसे 'अच्छी अवस्थाओं के बारे में अनिश्चितता रहित' कहा जाता है।

334

विश्लेषण की पुस्तक

560. 'वह अपने मन को संदेह से मुक्त करता है' का अर्थ है: उसमें संदेह क्या है? वह जो उलझन है, उलझन में होना, उलझन की अवस्था, चेतना की कठोरता, मानसिक त्याग। इसे ही संदेह कहते हैं।
कुछ टेक्स्ट में :P: शामिल है।
उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। वह इस चेतना को संदेह से मुक्त करता है, शुद्ध करता है, साफ करता है, बचाता है, मुक्त करता है। इसलिए इसे 'वह अपनी चेतना को संदेह से मुक्त करता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 184 देखें।
561. 'इन पाँच बाधाओं का त्याग' का अर्थ है: ये पाँच बाधाएँ शांत, स्थिर, अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाई हुई, पूर्णतः मुरझाई हुई और निरस्त हो जाती हैं। अतः इसे 'इन पाँच बाधाओं का त्याग' कहा जाता है।
562. 'मानसिक विकृतियाँ' का अर्थ है: ये पाँच बाधाएँ चेतना की विकृतियाँ हैं।

563. 'ज्ञान का क्षय' का अर्थ है: इन पाँच बाधाओं के कारण जो ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है वह उत्पन्न नहीं होता, और जो ज्ञान उत्पन्न हो चुका है वह भी समाप्त हो जाता है। इसलिए इसे 'ज्ञान का क्षय' कहा जाता है।
564. 'इंद्रिय सुखों से विरक्त, बुरी अवस्थाओं से विरक्त 5
इसका अर्थ है: इसमें इंद्रिय सुख क्या हैं? इच्छा इंद्रिय सुख है, कामवासना इंद्रिय सुख है, कामवासनापूर्ण इच्छा इंद्रिय सुख है, विचार इंद्रिय सुख है, कामवासनापूर्ण विचार इंद्रिय सुख है। इन्हें ही इंद्रिय सुख कहा जाता है।
इसमें बुरी अवस्थाएँ क्या हैं? इंद्रिय सुख की इच्छा, द्वेष, आलस्य, सुस्ती, विचलित होना, पश्चाताप, संदेह। इन्हें बुरी अवस्थाएँ कहा जाता है। [257] इस प्रकार वह इन इंद्रिय सुखों और इन बुरी अवस्थाओं से विरक्त है। इसलिए इसे 'इंद्रिय सुखों से विरक्त, बुरी अवस्थाओं से विरक्त' कहा जाता है।

झाना का विश्लेषण

335

565. 'प्रारंभिक आवेदन के साथ, निरंतर आवेदन के साथ' का अर्थ है: प्रारंभिक आवेदन है; निरंतर आवेदन है।
इसमें प्रारंभिक अनुप्रयोग क्या है? वह जो मनन, चिंतन, विचार, एकाग्रता, ध्यान का अनुप्रयोग, सही विचार है। इसे ही प्रारंभिक अनुप्रयोग कहते हैं।
इसमें निरंतर अभ्यास क्या है? वह जो खोज, परीक्षण, निरंतर जांच, गहन छानबीन, चेतना द्वारा निरंतर जुड़ाव और निरीक्षण है। इसे निरंतर अभ्यास कहते हैं। इस प्रकार, वह इस प्रारंभिक अभ्यास और इस निरंतर अभ्यास से परिपूर्ण होता है। अतः इसे 'प्रारंभिक अभ्यास से युक्त, निरंतर अभ्यास से युक्त' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 357 देखें।
566. 'वैराग्य से उत्पन्न' का अर्थ है: प्रारंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, आनंद, चेतना की एकाग्रता; ये सभी इसी वैराग्य में उत्पन्न होते हैं, पैदा होते हैं, विद्यमान होते हैं, पूर्ण रूप से विद्यमान होते हैं, प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए इसे 'वैराग्य से उत्पन्न' कहा जाता है।
567. 'उत्साह और आनंद' का अर्थ है: उत्साह है; आनंद है।
उत्साह क्या है? उत्साह, खुशी, उमंग, उमंग, आनंद, प्रसन्नता, उल्लास, चेतना का सुख। यही उत्साह कहलाता है।
इसमें आनंद क्या है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति है। इसे आनंद कहते हैं। यह आनंद उत्साह के साथ होता है, उससे जुड़ा होता है, उससे संबंधित होता है। इसलिए इसे 'उत्साह और आनंद' कहते हैं।
568. 'प्रथम' का अर्थ है: क्रम में प्रथम; यह प्रथम है क्योंकि इसे प्रथम प्राप्त किया गया है।
569 v 'ज्ञान' का अर्थ है: प्रारंभिक अनुप्रयोग, निरंतर अनुप्रयोग, उत्साह, आनंद, चेतना की एकाग्रता।
570. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, हासिल करना, अच्छी तरह से प्राप्त करना, संपर्क करना, बोध करना, प्रथम ध्यान की उपलब्धि है।

336

विश्लेषण की पुस्तक

571. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 540 देखें।
572. 'प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग को बाधित करना'
इसका अर्थ है: प्रारंभिक अनुप्रयोग होता है; निरंतर अनुप्रयोग होता है।
इसमें प्रारंभिक अनुप्रयोग क्या है? वह जो मानसिक प्रक्रिया है, चिंतन है, सही विचार है। इसे ही प्रारंभिक अनुप्रयोग कहते हैं।
पी — पैराग्राफ 565 देखें।

इसमें सतत अभ्यास क्या है? [258] वह जो खोज, परीक्षण, निरंतर परीक्षण, गहन जांच, चेतना द्वारा निरंतर जुड़ाव और निरंतर निरीक्षण है। इसे सतत अभ्यास कहा जाता है। इस प्रकार यह प्रारंभिक अभ्यास और यह सतत अभ्यास शांत, स्थिर, अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाया हुआ, पूर्णतः मुरझाया हुआ, निरस्त हो जाता है। इसलिए इसे 'अवरोधक प्रारंभिक अभ्यास और सतत अभ्यास' कहा जाता है।

573. 'आंतरिक' का अर्थ है: जो व्यक्तिगत हो, स्वयं से संबंधित हो।

574. 'परिष्करण' का अर्थ है: वह जो विश्वास, आत्मविश्वास, भरोसा, अंतर्निहित आस्था है।

575. 'मन का उन्नत विकास' का अर्थ है: चेतना की स्थिरता, सही एकाग्रता।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

576. 'प्रारंभिक आवेदन के बिना, निरंतर आवेदन के बिना' का अर्थ है: प्रारंभिक आवेदन है; निरंतर आवेदन है।

इसमें प्रारंभिक अनुप्रयोग क्या है? वह जो मानसिक प्रक्रिया है, चिंतन है, सही विचार है। इसे ही प्रारंभिक अनुप्रयोग कहते हैं।

P = अनुच्छेद 565 देखें।

इसमें सतत अभ्यास क्या है? वह जो खोज है, निरंतर खोज है,* जांच है, निरंतर जांच है, बारीकी से जांच है, चेतना द्वारा निरंतर जुड़ाव और निरंतर निरीक्षण है। इसे सतत अभ्यास कहते हैं। इस प्रकार यह प्रारंभिक अभ्यास और यह सतत अभ्यास शांत, स्थिर, अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

झाना का विश्लेषण

337

मुरझाया हुआ, पूरी तरह मुरझाया हुआ, निरस्त। इसलिए इसे 'प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना' कहा जाता है।

कुछ संस्करणों में यह शब्द शामिल नहीं है।

577. 'एकाग्रता से उत्पन्न' का अर्थ है: परिष्कार, उत्साह और आनंद; ये सभी इस एकाग्रता में उत्पन्न होते हैं, पैदा होते हैं, विद्यमान होते हैं, पूर्ण रूप से विद्यमान होते हैं, प्रकट होते हैं। इसलिए इसे 'एकाग्रता से उत्पन्न' कहा जाता है।

578. 'उत्साह और आनंद' का अर्थ है: उत्साह है; आनंद है।

इसमें उत्साह क्या है? :P: इसे ही उत्साह कहते हैं।

पैराग्राफ 567 देखें।

इसमें आनंद क्या है? :P: इसे आनंद कहते हैं। यह आनंद इस उत्साह के साथ जुड़ा हुआ है, इससे सह-उत्पन्न होता है, इससे संबंधित है। इसलिए इसे 'उत्साह और आनंद' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 567 देखें।

579. 'द्वितीय' का अर्थ है: क्रम में द्वितीय; यह द्वितीय है क्योंकि इसे द्वितीय स्थान पर प्राप्त किया गया है।

580. 'झान' का अर्थ है: परिष्कार, उत्साह और आनंद, चेतना की एकाग्रता।

581. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्ति है, बार-बार प्राप्ति है, अधिग्रहण है, अच्छी तरह से प्राप्ति है, संपर्क है, बोध है, द्वितीय ध्यान की उपलब्धि है। [259]

582. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 540 देखें।

583^ 'इच्छाहीन उत्साह' का अर्थ है: उत्साह क्या है? जो उत्साह, प्रसन्नता, आनंद, उमंग, उल्लास, प्रसन्नता, उमंग, आनंद, उल्लास, चेतना का सुख है, उसे उत्साह कहते हैं। यह उत्साह शांत हो जाता है, स्थिर हो जाता है, अवरुद्ध हो जाता है, समाप्त हो जाता है, लुप्त हो जाता है, पूरी तरह नष्ट हो जाता है, मुरझा जाता है, पूरी तरह मुरझा जाता है, निरस्त हो जाता है। इसलिए इसे 'इच्छाहीन उत्साह' कहा जाता है।

338

विश्लेषण की पुस्तक

584. 'समभाविक' का अर्थ है: समभाव क्या है? जो समभाव है, जिसमें समभाव है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है। इसे समभाव कहते हैं। वह इस समभाव से युक्त है। अतः इसे 'समभाविक' कहते हैं।
P = अनुच्छेद 357 देखें।
585. 'निवास करता है' का अर्थ है: ;P: इसलिए इसे 'निवास करता है' कहा जाता है। P = पैरा 540 देखें।
586. 'सचेत और जागरूक' का अर्थ है: इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता। इसे ही सचेतनता कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।
उसमें जागरूकता क्या है? वह जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे जागरूकता कहते हैं। इस प्रकार वह इस सजगता और इस जागरूकता से परिपूर्ण है। अतः इसे 'सजग और जागरूक' कहा जाता है।
पी^पैरा देखें. 525. पी 2 = पैरा देखें। 357.
587. 'मानसिक समुच्चय के माध्यम से सुख का अनुभव करना' का अर्थ है: इसमें सुख क्या है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति है। इसे ही सुख कहते हैं।
इसमें (मानसिक समूहों का) शरीर क्या है? बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती तत्वों का समूह, चेतना का समूह। इसे (मानसिक समूहों का) शरीर कहते हैं। वह इस (मानसिक समूहों के) शरीर के माध्यम से आनंद का अनुभव करता है। इसलिए इसे 'मानसिक समूहों के शरीर के माध्यम से आनंद का अनुभव करना' कहते हैं।
588. 'यह जो श्रेष्ठ जन घोषित करते हैं' का अर्थ है: श्रेष्ठ जन किसे कहते हैं? बुद्ध और बुद्धों के शिष्य श्रेष्ठ जन कहलाते हैं; वे इसका प्रचार, उपदेश, परिभाषा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण, स्पष्टीकरण और व्याख्या करते हैं। अतः इसे 'यह जो श्रेष्ठ जन घोषित करते हैं' कहा जाता है।

झाना 339 का विश्लेषण
589. 'समभाविक, सजग आनंद में रहने वाला' का अर्थ है: उसमें समभाव क्या है? जो समभाव है, जिसमें समभाव है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है। इसे समभाव कहते हैं। [260]
तो इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, :P: सही सचेतनता। इसे ही सचेतनता कहते हैं।
P = अनुच्छेद 220 देखें।
उसमें सुख क्या है? वह जो मानसिक शांति, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभूति है। यही सुख कहलाता है। इस प्रकार समभाव, इस जागरूकता और इस सुख से परिपूर्ण होकर वह चारों अवस्थाओं में विद्यमान रहता है, रक्षा करता है, चलता रहता है, बनाए रखता है, घूमता है और निवास करता है। अतः इसे 'समभावयुक्त, जागरूक सुख में निवास करने वाला' कहा जाता है।
590. 'तीसरा' का अर्थ है: क्रम में तीसरा; यह तीसरा है क्योंकि इसे तीसरे स्थान पर प्राप्त किया गया है।
591. 'झान' का अर्थ है: समभाव, सजगता, जागरूकता, आनंद, चेतना की एकाग्रता।
592. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, हासिल करना, अच्छी तरह से प्राप्त करना, संपर्क करना, बोध करना, तीसरे ध्यान की उपलब्धि है।
593. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।
P = अनुच्छेद 540 देखें।
594. 'सुख का त्याग करके और दुख का त्याग करके' का अर्थ है: सुख है; दुख है।
इसमें सुख क्या है? वह जो शारीरिक आराम, शारीरिक सुख, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न सुखद अनुभूति है। इसे सुख कहते हैं। इसमें दुख क्या है? वह जो शारीरिक बेचैनी, शारीरिक पीड़ा है।

मुझे दर्द होता है, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैनी भरी पीड़ादायक अनुभूति होती है, शारीरिक संपर्क से उत्पन्न बेचैनी भरी पीड़ादायक भावना होती है। इसे दर्द कहते हैं। इस प्रकार यह सुख और यह दर्द शांत हो जाते हैं, स्थिर हो जाते हैं, अवरुद्ध हो जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, अच्छी तरह नष्ट हो जाते हैं, मुरझा जाते हैं, अच्छी तरह मुरझा जाते हैं, 14 +

निरस्त कर दिया गया। इसलिए इसे 'सुख और दुख का त्याग' कहा जाता है।

595. 'मानसिक सुख और मानसिक पीड़ा का सर्वप्रथम समापन'

इसका अर्थ है: मानसिक सुख भी होता है; मानसिक पीड़ा भी होती है।

इसमें मानसिक सुख क्या है? वह मानसिक शांति, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाला सुखद अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न होने वाली सुखद अनुभूति। इसे ही मानसिक सुख कहते हैं।

इसमें मानसिक पीड़ा क्या है? वह जो मानसिक बेचैनी, मानसिक पीड़ा, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना है। इसे मानसिक पीड़ा कहते हैं। इस प्रकार यह मानसिक सुख और यह मानसिक पीड़ा पहले [261] शांत, स्थिर, अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाया हुआ, पूर्णतः मुरझाया हुआ, निरस्त किया जाता है। इसलिए इसे 'पहले समाप्त होने वाला मानसिक सुख और मानसिक पीड़ा' कहा जाता है।

596. 'न दर्द न सुख' का अर्थ है: वह जो न मानसिक शांति प्रदान करता है और न बेचैनी, मानसिक संपर्क से उत्पन्न न दर्दपूर्ण और न सुखदायक अनुभव, मानसिक संपर्क से उत्पन्न न दर्दपूर्ण और न सुखदायक भावना। अतः इसे 'न दर्द न सुख' कहा जाता है।

597. 'समभाव से उत्पन्न मन की शुद्धता' का अर्थ है: उसमें समभाव क्या है? जो समभाव है, जिसमें समभाव है, सर्वोच्च समभाव है, चेतना का संतुलन है। इसे समभाव कहते हैं।

इसमें सचेतनता क्या है? वह जो सचेतनता है, निरंतर सचेतनता, सही सचेतनता। इसे ही सचेतनता कहते हैं। यह सचेतनता, समभाव के कारण, अबाधित, अत्यंत शुद्ध और स्पष्ट होती है। इसलिए इसे 'समभाव से उत्पन्न सचेतनता की शुद्धता' कहते हैं।

P = अनुच्छेद 220 देखें।

598. 'चौथा' का अर्थ है: क्रम में चौथा; यह चौथा है क्योंकि इसे चौथे स्थान पर प्राप्त किया गया है।

599. 'झान' का अर्थ है: समभाव, सजगता, चेतना की एकाग्रता।

600. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्ति है, बार-बार प्राप्ति है, अधिग्रहण है, अच्छी तरह से प्राप्ति है, संपर्क है, बोध है, चौथे ध्यान की उपलब्धि है।

601. 'रहना' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहना' कहा जाता है*

P =s पैराग्राफ 540 देखें।

602. 'रूप की अनुभूतियों से पूर्णतः मुक्त होना' का अर्थ है: इसमें रूप की अनुभूतियाँ क्या हैं? उस व्यक्ति की अनुभूति, अनुभूति की अवस्था, अनुभूति की स्थिति जिसने रूप के तल की विशेषता वाली अवस्था की प्राप्ति के सुख में निवास किया हो। इन्हें रूप की अनुभूतियाँ कहा जाता है। इन रूप की अनुभूतियों को उसने पार कर लिया है, उनसे परे चला गया है, उन्हें पार कर लिया है। अतः इसे 'रूप की अनुभूतियों से पूर्णतः मुक्त होना' कहा जाता है।

603. 'इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियों का समापन' का अर्थ है: इसमें इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियाँ क्या हैं? दृश्य (वस्तु) अनुभूति, श्रव्य (वस्तु) अनुभूति, स्पर्शनीय (वस्तु) अनुभूति। इन्हें इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियाँ कहा जाता है। ये इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियाँ शांत, स्थिर,

अवरुद्ध, समाप्त, लुप्त, नष्ट, पूर्णतः नष्ट, मुरझाई, पूर्णतः मुरझाई और निरस्त हो जाती हैं। अतः इसे 'इंद्रिय-प्रभाव की अनुभूतियों का समापन' कहा जाता है।

P = मध्यवर्ती इंद्रिय बोध।

604. 'धारणाओं की विविधता पर ध्यान न देना* का अर्थ है: इसमें धारणाओं की विविधता क्या है? वह धारणा, बोध, बोध की अवस्था जो उस व्यक्ति की है जिसने (ध्यान) प्राप्त नहीं किया है, परन्तु जिसमें मन तत्व और [262] मन-चेतना तत्व मौजूद हैं। इन्हें धारणाओं की विविधता कहा जाता है। वह इस धारणाओं की विविधता पर ध्यान नहीं देता। इसलिए इसे 'धारणाओं की विविधता पर ध्यान न देना' कहा जाता है।

605. 'अनंत अंतरिक्ष है' का अर्थ है: उसमें अंतरिक्ष क्या है? वह जो अंतरिक्ष है, स्थानिक है, शून्य है, खालीपन है, अंतराल है, जो चार महान मूल तत्वों के संपर्क में नहीं है। इसे अंतरिक्ष कहते हैं। इस अंतरिक्ष में वह चेतना को अनंत रूप से स्थापित, संस्थापित और विस्तारित करता है। इसलिए इसे 'अनंत अंतरिक्ष है' कहा जाता है।

342

विश्लेषण की पुस्तक

606. 'अंतरिक्ष की अनंतता की अवस्था' का अर्थ है: उस व्यक्ति की चेतना और मानसिक सहवर्ती अवस्थाएँ जिसने अनंतता की अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जो इस संसार में अनंतता की अवस्था के आनंद में निवास करता है।

607. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, हासिल करना, अच्छी तरह से प्राप्त करना, संपर्क करना, अहसास करना, अनंत अंतरिक्ष की स्थिति की उपलब्धि है।

608. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 540 देखें।

609. 'अंतरिक्ष की अनंतता की अवस्था को पूरी तरह से पार कर लेने के बाद'

इसका अर्थ है: उसने अनंत अंतरिक्ष की इस अवस्था को पार कर लिया है, उससे आगे बढ़ गया है, उसे पार कर लिया है। इसलिए इसे 'अनंत अंतरिक्ष की अवस्था को पूरी तरह से पार कर लेना' कहा जाता है।

6 1 0. 'अनंत चेतना है' का अर्थ है: वह उस चेतना पर ध्यान देता है और उसे अनंत रूप से विस्तारित करता है जिसने उसी स्थान को स्पर्श किया था। इसलिए इसे 'अनंत चेतना है' कहा जाता है।

• यहां चेतना को कर्म कारक में दिया गया है, न कि मूल पाठ की तरह कर्ता कारक में। विशुद्धिमग्ग, अनुच्छेद 282 देखें।

611. 'चेतना की अनंत अवस्था' का अर्थ है: उस व्यक्ति की चेतना और मानसिक सहवर्ती अवस्थाएँ जिसने अनंत चेतना की अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जो उस अवस्था से युक्त है, जो इस संसार में अनंत चेतना की अवस्था के आनंद में निवास करता है।

612. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्ति है, बार-बार प्राप्ति है, अधिग्रहण है, अच्छी तरह से अधिग्रहण है, संपर्क है, अहसास है, चेतना की अनंत अवस्था की उपलब्धि है।

613. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 540 देखें।

614. 'अनंत चेतना की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेना' का अर्थ है: वह अनंत चेतना की इस अवस्था को पार कर चुका है, उससे आगे बढ़ चुका है, उसे पार कर चुका है। अतः इसे 'अनंत चेतना की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेना' कहा जाता है।

झाना का विश्लेषण

343

615. 'कुछ भी नहीं है' का अर्थ है: वह जिस चेतना को विकसित (अर्थात् परिष्कृत) करता है, उसे समाप्त करता है, उसे लुप्त कर देता है, (अंततः) वह 'कुछ भी नहीं है' देखता है। इसलिए इसे 'कुछ भी नहीं है' कहा जाता है।

616. 'शून्यता की अवस्था' का अर्थ है: चेतना और मानसिक सहवर्ती अवस्थाएँ उस व्यक्ति की जो शून्यता की अवस्था को प्राप्त कर चुका है, जो शून्यता की अवस्था से युक्त है, जो इस संसार में शून्यता की अवस्था के आनंद में निवास करता है। [263]
617. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, हासिल करना, अच्छी तरह से प्राप्त करना, संपर्क करना, अहसास करना, शून्यता की अवस्था की उपलब्धि है।
618. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है*' कहा जाता है।
पी — पैराग्राफ 540 देखें।
619. 'शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेना' का अर्थ है: वह शून्यता की इस अवस्था को पार कर चुका है, उससे आगे बढ़ चुका है, उसे पार कर चुका है। अतः इसे 'शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेना' कहा जाता है।
न तो बोध और न ही अबोध का अर्थ है: वह जिस शून्यता की अवस्था को शांति के रूप में देखता है, उसी में वह अवशिष्ट मानसिक अवस्थाओं की प्राप्ति को विकसित (परिष्कृत) करता है। अतः इसे न तो बोध और न ही अबोध कहा जाता है।
620. 'न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति की अवस्था'
इसका अर्थ है: उस व्यक्ति की चेतना और मानसिक संबंधित अवस्थाएँ जिसने इस संसार में न तो प्रत्यक्ष और न ही अप्रत्यक्ष अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जो उस अवस्था से परिपूर्ण है, और जो इस संसार में उस अवस्था के सुख में निवास करता है।
621. 'प्राप्त करना' का अर्थ है: वह जो प्राप्त करना, बार-बार प्राप्त करना, हासिल करना, अच्छी तरह से प्राप्त करना, संपर्क करना, अहसास करना, उस अवस्था की उपलब्धि प्राप्त करना जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष।
622; 'निवास करता है' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करना, अस्तित्व में रहना, रक्षा करना, चलते रहना, बनाए रखना, घूमना, निवास करना। इसलिए इसे 'निवास करता है*' कहा जाता है।
(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

344

विश्लेषण की पुस्तक

1. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
1. आकार के तल की विशेषता वाले अच्छे राज्य
623. चार झन हैं: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।
624. इसमें प्रथम ध्यान क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी लोक में प्रथम ध्यान की अवस्था में निवास करता है; उस समय पाँच प्रकार के ध्यान होते हैं, अर्थात्, आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख और एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं। (1)
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें द्वितीय ध्यान क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तो वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, पृथ्वी-आधारित द्वितीय ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय तीन घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्) उत्साह, आनंद, चेतना की एकाग्रता। इसे द्वितीय ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी ध्यान से जुड़ी होती हैं। (2) [264]
पी — पैराग्राफ 205 देखें।
इसमें तीसरा ध्यान क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इच्छा रहित होकर पृथ्वी लोक में तीसरे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं, अर्थात् सुख और चेतना की एकाग्रता। इसे तीसरा ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं। (3)
P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें चौथा ध्यान क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके पृथ्वी लोक में चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्) समभाव और चेतना की एकाग्रता। इसे कहा जाता है

झाना 345 का विश्लेषण

चौथा ध्यान। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ जो ध्यान से संबंधित हैं। (4)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

(यहाँ झैनिक समाप्त होता है) टेट्राड

625. यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी पर प्रथम ध्यान की अवस्था में निवास करता है; उस समय पाँच प्रकार के ध्यान होते हैं, अर्थात्, आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख, चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं। (1)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रारंभिक परिश्रम के बिना, केवल निरंतर परिश्रम से, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ, पृथ्वी पर स्थित द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय चार घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं (अर्थात्), निरंतर परिश्रम, उत्साह, आनंद, चेतना की एकाग्रता। इसे द्वितीय ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं। (2)

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, पृथ्वी लोक में स्थित तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय तीन घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं, अर्थात् उत्साह, आनंद और चेतना की एकाग्रता। इसे तृतीय ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान अवस्था से संबंधित हैं। (3)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इच्छा रहित होकर पृथ्वी लोक में स्थित चौथे ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय दो प्रकार के ध्यान होते हैं, अर्थात् सुख और एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहते हैं। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इसी ध्यान से संबंधित हैं। (4)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके प्राप्त करता है:

346

विश्लेषण की पुस्तक

और पृथ्वी युक्त पाँचवें ध्यान में निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं (अर्थात,) समभाव, चेतना की एकाग्रता। इसे पाँचवाँ ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं। (5)

(यहाँ झानिक समाप्त होता है) पेंटाड

2. निराकार समतल की विशेषता वाली अच्छी अवस्थाएँ

626. जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर लेता है और चौथे ध्यान में लीन हो जाता है, जिसमें उसे ऐसी अवस्था का अनुभव होता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष; उस समय दो प्रकार के ध्यान होते हैं, अर्थात् समभाव और एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहा जाता है, (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इसी ध्यान से संबंधित हैं।

पी — पैराग्राफ 205 देखें।

3. अलौकिक अच्छी अवस्थाएँ

627. चार झन हैं: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।

628. इसमें प्रथम ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान से प्राप्त प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय पाँच घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख और चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें द्वितीय ध्यान क्या है? इसमें वह समय आता है जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और प्रारंभिक अवरोधों को रोकता है।

अभ्यास और निरंतर अभ्यास से द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त होती है और उसमें निवास किया जाता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान का परिणाम है; उस समय तीन घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं, अर्थात् उत्साह, आनंद और चेतना की एकाग्रता। इसे द्वितीय ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी ध्यान से संबंधित होती हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें तीसरा ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इच्छाहीन होकर, तीसरे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं, अर्थात्, सुख और चेतना की एकाग्रता। इसे तीसरा ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से जुड़ी होती हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें चौथा ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, सुख का त्याग करके प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है; वह कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान के चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं, अर्थात् समभाव और चेतना की एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से जुड़ी होती हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
(यहाँ झैनिक समाप्त होता है) टेट्राड

629. यहाँ उस समय जब एक भिक्षु पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, [266] इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, और उस प्रथम ध्यान में निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय पाँच घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख, चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
14*

जब कोई भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की दिशा में अग्रसर अलौकिक ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से मुक्त होकर, बिना प्रारंभिक परिश्रम के, केवल निरंतर अभ्यास से, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय चार घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं: निरंतर अभ्यास, उत्साह, आनंद और एकाग्रता। इसे द्वितीय ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान अवस्था से संबंधित हैं।

इस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है, जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण को त्यागने, प्रथम चरण में प्रवेश करने, प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकने के लिए, पी: तीसरे ध्यान में प्राप्त होता है और उसमें निवास करता है, जो कठोर अभ्यास है और

धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; उस समय ध्यान के तीन घटक होते हैं, अर्थात् उत्साह, आनंद और चेतना की एकाग्रता। इसे तीसरा ध्यान कहते हैं। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी ध्यान से जुड़ी होती हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की दिशा में अग्रसर अलौकिक ध्यान की अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, इच्छाहीन होकर प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है और चौथे ध्यान में स्थिर हो जाता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान का परिणाम है। उस समय दो प्रकार के ध्यान होते हैं: सुख और एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहते हैं। इसी प्रकार, शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।

पैरा 205 देखें।

जब कोई भिक्षु जन्म-मृत्यु के निरंतर चक्र से मुक्ति पाने की दिशा में अग्रगामी ध्यान विकसित करता है, तब वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, सुख का त्याग करके प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है और पाँचवें ध्यान में लीन हो जाता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान का परिणाम है। उस समय दो घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं: समता और एकाग्रता। इसे पाँचवाँ ध्यान कहा जाता है। इसी प्रकार, शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

(यहाँ झानिक समाप्त होता है) पेंटाड

झाना का विश्लेषण

349

4. परिणामी आकृति के समतल की विशेषताएँ

630. चार झन हैं: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।

631. इसमें प्रथम ध्यान क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूपलोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृथ्वी-संबंधी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। रूपलोक के समान अच्छे कर्मों को करने और संचित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृथ्वी-संबंधी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय पाँच घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), प्रारंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख, चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी ध्यान से संबंधित हैं।

पी 1 - पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

इसमें द्वितीय ध्यान क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तो वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोककर, पृथ्वी-आधारित द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, (P 2) अविचल अवस्था होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। शारीरिक लोक की विशेषता वाले उसी अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोककर, परिणामी द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। (P 3) तृतीय ध्यान अवस्था। (P 3) चतुर्थ ध्यान अवस्था। (P 3) प्रथम ध्यान अवस्था। (P 3) पृथ्वी-आधारित पंचम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान अवस्थाएँ होती हैं, अर्थात्, समता और चेतना की एकाग्रता। इसे पंचम ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।

पी 1 - पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.
पृष्ठ 3 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 631 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

5. परिणामी विशेषताएँ
आकारहीन समतल
632. यहाँ जब कोई भिक्षु निराकार लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था से पार होकर, ; पृ. 1 : प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है।

चौथे ध्यान में, उस अवस्था की अनुभूति होती है जो न तो अनुभूति है और न ही अनुभूति; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। निराकार तल के समान अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, वह सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर जाता है; परिणामस्वरूप चौथे ध्यान में निवास करता है, उस अवस्था की अनुभूति होती है जो न तो अनुभूति है और न ही अनुभूति; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं, अर्थात् समता और चेतना की एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहते हैं। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
पी* = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.
6. अलौकिक परिणाम
633. चार झन हैं: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।
634. इसमें प्रथम ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने की प्रवृत्ति वाला अलौकिक ध्यान विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, rP 1 : उस प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, [P 2 : [268] अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे अलौकिक ध्यान को विकसित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, : P 1 : परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और नि:संतान है; उस समय पाँच घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), प्रारंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख, चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
पी 1 ^: पैरा देखें। 205. पी 2 - ध्स देखें। पैरा. 277.
इसमें द्वितीय ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु अलौकिक ध्यान विकसित करता है जो निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को तोड़ते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर होता है; वह गलत दृष्टिकोण को त्यागकर, प्रथम चरण में प्रवेश करके, प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, द्वितीय ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचलितता होती है।

अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी उत्तम अलौकिक ध्यान को विकसित करने के बाद, वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, परिणामी द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है। :P 3: तृतीय ध्यान। :P 3: चतुर्थ ध्यान। :P 3: प्रथम ध्यान, :P 3: पंचम ध्यान में निवास करता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान और शून्यता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), समता और चेतना की एकाग्रता। इसे पंचम ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से जुड़ी होती हैं।
पी 1=: पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

पृष्ठ 3 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 634 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

7. आकार के तल और आकारहीन तल की विशेषता वाली निष्क्रिय अवस्थाएँ
635. चार झन हैं: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।
636. इसमें प्रथम ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब कोई भिक्षु रूप के तल के विशिष्ट ध्यान को विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (और) वर्तमान जीवन में सुखद जीवन का कारण है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर पृथ्वी पर स्थित प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय पाँच घटक ध्यान होते हैं (अर्थात्), प्रारंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, उत्साह, सुख, चेतना की एकाग्रता। इसे प्रथम ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
इसमें द्वितीय ध्यान क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु रूप के तल की विशेषता वाले ध्यान को विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (वर्तमान अस्तित्व में सुखद जीवन का कारण है), वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, : पृष्ठ 1 : द्वितीय ध्यान।
पृष्ठ 2: तीसरा ध्यान। पृष्ठ 2: चौथा ध्यान। पृष्ठ 2: पहला ध्यान। पृष्ठ 2: प्राप्त करता है
और पृथ्वी युक्त पाँचवें ध्यान में निवास करता है; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं (अर्थात,) समता, चेतना की एकाग्रता। इसे [269] पाँचवाँ ध्यान कहा जाता है। (साथ ही) शेष अवस्थाएँ भी ध्यान से जुड़ी होती हैं।
पृष्ठ 1 = = पैराग्राफ 205 देखें।
पृष्ठ 2 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 636 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

352

विश्लेषण की पुस्तक

637. जब कोई भिक्षु निराकार तल के विशिष्ट ध्यान को विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (और) वर्तमान जीवन में सुखद जीवन का कारण है, तब वह सुख का त्याग करके शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेता है और चौथे ध्यान में निवास करता है, जो उस अवस्था की अनुभूति से युक्त है जो न तो अनुभूति है और न ही अअनुभूति; उस समय दो घटक ध्यान होते हैं, अर्थात् समभाव और चेतना की एकाग्रता। इसे चौथा ध्यान कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इस ध्यान से संबंधित हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण
3. पूछताछ
638. चार ध्यान अवस्थाएँ — इसमें एक भिक्षु इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, आरंभिक परिश्रम और निरंतर परिश्रम के साथ, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। आरंभिक परिश्रम और निरंतर परिश्रम को त्यागकर, वह आंतरिक परिष्कार और मन के उन्नत विकास के साथ, आरंभिक परिश्रम और निरंतर परिश्रम के बिना, एकाग्रता से उत्पन्न उत्साह और आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। इच्छा रहित होकर वह समभाव, सचेत और जागरूक अवस्था में निवास करता है और मानसिक अवस्थाओं के माध्यम से आनंद का अनुभव करता है; इसे भगवान "समभाव, सचेत और आनंद में रहने वाला" कहते हैं; वह तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। : पी : सुख और दुख का त्याग करके, पहले मानसिक सुख और मानसिक दुख को समाप्त करके वह चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है (जो) न दुख है न सुख (बल्कि) समभाव से उत्पन्न मन की शुद्धता है।
P = ये c P, PTS रोमनकृत पाठ में नहीं दिखाए गए हैं।
639. चारों ध्यानों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? : P : कितने शोक का कारण रखते हैं; कितने शोक का कारण नहीं रखते?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

640. (चारों ध्यान) कभी अच्छे होते हैं; कभी न अच्छे होते हैं, न बुरे। तीन ध्यान सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं, सिवाय उस सुखद अनुभूति के जो स्वयं उनमें उत्पन्न होती है। चौथा ध्यान न कष्टदायक अनुभूति से जुड़ा होता है, सिवाय उस कष्टदायक अनुभूति के जो स्वयं उनमें उत्पन्न होती है। चारों ध्यान कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी न परिणाम उत्पन्न करते हैं और न परिणाम उत्पन्न करते हैं। कभी लालसा और भ्रामक दृष्टि से ग्रस्त होते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी ग्रस्त नहीं होते, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी ग्रस्त नहीं होते, आसक्ति के विषय नहीं होते। कभी अविभाज्य होते हैं, विकृतियों के विषय होते हैं; कभी अविभाज्य होते हैं, विकृतियों के विषय नहीं होते। [270] पहला ध्यान प्रारंभिक अभ्यास के साथ होता है, निरंतर अभ्यास के साथ होता है, सिवाय उस प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के जो स्वयं उनमें उत्पन्न होते हैं। तीन ध्यान प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं, निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। दो ध्यानों में उत्साह होता है, सिवाय उस उत्साह के जो स्वयं उनमें उत्पन्न होता है। तीन ध्यानों में आनंद होता है, सिवाय उस आनंद के जो स्वयं उनमें उत्पन्न होता है। चौथे ध्यान में समभाव होता है, सिवाय उस समभाव के जो स्वयं उसमें उत्पन्न होता है। (चार ध्यान) न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से छोड़े जाने चाहिए। इनकी कोई जड़ नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से छोड़ा जा सके। कभी ये संचयी (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र में) होते हैं; कभी विक्षेपी; कभी न तो संचयी और न ही विक्षेपी। कभी ये सात अलौकिक अवस्थाओं के होते हैं; कभी अंतिम अलौकिक अवस्था के; कभी न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के। कभी ये उदात्त होते हैं; कभी अगणनीय। तीन ध्यानों को निम्न या उदात्त विषय नहीं कहा जाना चाहिए; कभी-कभी इनका विषय अगणनीय होता है। कभी-कभी इसे असीम उद्देश्य वाला नहीं कहा जा सकता। चौथा ध्यान कभी निम्न उद्देश्य वाला होता है; कभी उच्च उद्देश्य वाला होता है; कभी असीम उद्देश्य वाला होता है; कभी-कभी इसे निम्न, उच्च या असीम उद्देश्य वाला नहीं कहा जा सकता। (चार ध्यान) कभी मध्यवर्ती होते हैं; कभी श्रेष्ठ होते हैं। कभी निश्चित (परिणामी समय) वाली सही (अवस्थाएँ) होती हैं; कभी निश्चित (परिणामी समय) नहीं होती हैं। तीन ध्यानों में ऐसा नहीं होता है।

पथ को कभी-कभी उनका कर्ता मानकर; कभी-कभी पथ को उनका कारण मानकर; कभी-कभी पथ को उनका प्रमुख कारक मानकर; कभी-कभी पथ को उनका कारण या उनका प्रमुख कारक न कहना उचित होगा। चौथे ध्यान में कभी-कभी पथ उसका कर्ता होता है; कभी-कभी पथ उसका कारण होता है; कभी-कभी पथ उसका प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी पथ को उसका कर्ता, पथ उसका कारण या पथ को उसका प्रमुख कारक न कहना उचित होगा। (चार ध्यान) कभी उत्पन्न होते हैं; कभी उत्पन्न नहीं होते; कभी उत्पन्न होने ही वाले होते हैं। कभी भूतकाल के होते हैं; कभी भविष्यकाल के होते हैं; कभी वर्तमानकाल के होते हैं। तीनों ध्यानों को भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कर्ता नहीं कहना उचित होगा। चौथे ध्यान में कभी भूतकाल का कर्ता होता है; कभी भविष्यकाल का कर्ता होता है; कभी वर्तमानकाल का कर्ता होता है; कभी-कभी भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कर्ता नहीं कहना उचित होगा। (चार ध्यान) कभी आंतरिक होते हैं; कभी बाह्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। तीनों ध्यान बाह्य कर्ता होते हैं। चौथे ध्यान में कभी आंतरिक कर्ता होता है; कभी बाह्य कर्ता होता है; कभी-कभी इसमें आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि इसमें न तो आंतरिक वस्तु है, न बाह्य वस्तु है, और न ही आंतरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं। (चार ध्यान) अदृश्य हैं, न ही प्रभावकारी हैं।

2. दोहे

641. (चार ध्यान) मूल नहीं हैं। मूलों के साथ हैं। मूलों से जुड़े हैं। इन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि ये भी मूलों के साथ हैं; (ये) मूलों के साथ हैं लेकिन मूल नहीं हैं। इन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि ये भी मूलों के साथ हैं; (ये) मूलों से जुड़े हैं लेकिन मूल नहीं हैं। ये मूल नहीं हैं, मूलों के साथ हैं।

(चार ध्यान) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। अप्रभावित हैं। भौतिक नहीं हैं। [271] कभी सांसारिक होते हैं; कभी अलौकिक होते हैं। एक मार्ग से ज्ञात होते हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं होते।

(चार ध्यान) दोष नहीं हैं। कभी-कभी दोषों के विषय होते हैं; कभी-कभी दोषों के विषय नहीं होते। दोषों से संबद्ध नहीं हैं। इन्हें दोष और दोषों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) कभी-कभी दोषों के विषय होते हैं लेकिन दोष नहीं होते; कभी-कभी इन्हें दोषों के विषय नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन दोष नहीं होते।

यह नहीं कहा जा सकता कि कुछ दोष अन्य दोषों से जुड़े हुए हैं या उनसे जुड़े हुए हैं लेकिन स्वयं दोष नहीं हैं। कभी-कभी वे दोषों से जुड़े नहीं होते, फिर भी दोष के विषय होते हैं; कभी-कभी वे दोषों से जुड़े नहीं होते, फिर भी दोष के विषय नहीं होते।

(चार ध्यान) बंधन नहीं हैं। :P; बंधन नहीं हैं। ;P; बाढ़ नहीं हैं।

पी : बंधन नहीं हैं। पी : बाधाएँ नहीं हैं। पी : विकृतियाँ नहीं हैं।

P : इनके पास वस्तुएँ होती हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं।

चेतना से जुड़े हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं। चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। चेतना के साथ रहते हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ रहते हैं। बाह्य हैं। व्युत्पन्न नहीं हैं। कभी-कभी ग्रहण किए जा सकते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जा सकते।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के अनुसार पूर्ण।

(चार ध्यान) आसक्ति नहीं हैं। :P: ये विकृतियाँ नहीं हैं।

पी: पहले रास्ते से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। छोड़ा नहीं जाना चाहिए-

बाद के मार्गों द्वारा किए गए। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागे जाने के लिए कोई मूल नहीं हैं। बाद के मार्गों द्वारा त्यागे जाने के लिए कोई मूल नहीं हैं। प्रथम ध्यान प्रारंभिक अभ्यास के साथ होता है, सिवाय उस प्रारंभिक अभ्यास के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। तीन ध्यान प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। प्रथम ध्यान निरंतर अभ्यास के साथ होता है, सिवाय उस निरंतर अभ्यास के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। तीन ध्यान निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। दो ध्यान उत्साह के साथ होते हैं, सिवाय उस उत्साह के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। दो ध्यान उत्साह रहित होते हैं। दो ध्यान उत्साह के साथ होते हैं, सिवाय उस उत्साह के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। दो ध्यान उत्साह के साथ नहीं होते हैं। तीन ध्यान आनंद के साथ होते हैं, सिवाय उस आनंद के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। चौथा ध्यान आनंद के साथ नहीं होता है। चौथा ध्यान समभाव के साथ होता है, सिवाय उस समभाव के जो स्वयं उसमें उत्पन्न हुआ है। तीन ध्यान समभाव के साथ नहीं होते हैं। (चार ध्यान) इच्छा के तल की विशेषता नहीं हैं। कभी-कभी ये रूप के तल की विशेषता होते हैं; कभी-कभी रूप के तल की विशेषता नहीं होते। तीन ध्यान निराकार तल की विशेषता नहीं हैं। चौथा ध्यान कभी-कभी निराकार तल की विशेषता होता है; कभी-कभी निराकार तल की विशेषता नहीं होता। (चार ध्यान) कभी-कभी सांसारिक में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते।

इनमें शामिल हैं (अर्थात् ये अलौकिक हैं)। कभी-कभी ये मुक्त होने की प्रवृत्ति रखते हैं; कभी-कभी मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखते। कभी-कभी इनका (परिणामस्वरूप समय) निश्चित होता है; कभी-कभी इनका (परिणामस्वरूप समय) निश्चित नहीं होता। कभी-कभी इन्हें पार किया जा सकता है; कभी-कभी इन्हें पार नहीं किया जा सकता। इनके लिए शोक का कोई कारण नहीं है।
P = पहले के पैराग्राफ में वर्णित दोषों के समान पूर्ण।
(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ
झाना का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 13 पाठ - अप्पमन्ना
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

सीएच.13. अपरिमेय का विश्लेषण (अप्पमन्ना सं. अप्रमण्य) (या अनंत)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

642. [272] चारों असीम — यहाँ एक भिक्षु प्रेममयी मन से एक दिशा में व्याप्त होकर निवास करता है। दूसरी दिशा में भी। तीसरी दिशा में भी। चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, स्वयं को सभी के साथ एकाग्र करके, वह प्रेममयी, व्यापक, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से समस्त (प्राणियों) के जगत को व्याप्त करता है। वह करुणामयी मन से एक दिशा में व्याप्त होकर निवास करता है। दूसरी दिशा में भी। तीसरी दिशा में भी। चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, स्वयं को सभी के साथ एकाग्र करके, वह करुणामयी, व्यापक, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से समस्त (प्राणियों) के जगत को व्याप्त करता है। वह सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त होकर निवास करता है। दूसरी दिशा में भी। तीसरी दिशा में भी। चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, सभी के साथ स्वयं को एकसमान करते हुए, वे सभी प्राणियों के संसार को सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण, व्यापक, उदात्त, असीमित, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से भरते हुए निवास करते हैं। वे समभाव से परिपूर्ण मन से एक दिशा को भरते हुए निवास करते हैं। दूसरी दिशा को भी, तीसरी दिशा को भी, चौथी दिशा को भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, सभी के साथ स्वयं को एकसमान करते हुए, वे सभी प्राणियों के संसार को समभाव से परिपूर्ण, व्यापक, उदात्त, असीमित, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से भरते हुए निवास करते हैं।

1. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेट्टा माइंड)

643. और एक भिक्षु प्रेममयी भाव से युक्त मन से कैसे निवास करता है, जो एक दिशा में व्याप्त होता है? जैसे (वह), देखकर, एक सुंदर, मनभावन व्यक्ति से प्रेम करता है; उसी प्रकार वह सभी प्राणियों को प्रेममयी भाव से व्याप्त करता है।

358 विश्लेषण की पुस्तक

इसमें प्रेममयी भावना क्या है? प्राणियों में जो प्रेम है, प्रेममयी भावना का कार्य, प्रेममयी भावना की अवस्था, और वह प्रेममयी भावना जो (द्वेष से) मानसिक मुक्ति है। इसे ही प्रेममयी भावना कहते हैं।

उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, हृदय, प्रकाश, मन, मन का आधार, मन की नियंत्रक शक्ति, चेतना, चेतना का समूह, [273] और, उपरोक्त पर निर्भर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहा जाता है। यह चेतना प्रेम-कृपा के साथ होती है, उससे सह-उत्पन्न होती है, उससे जुड़ी होती है, उससे संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'प्रेम-कृपा से ग्रस्त मन' कहा जाता है।

644. 'एक दिशा * का अर्थ है: पूर्वी दिशा या पश्चिमी दिशा या उत्तरी दिशा या दक्षिणी दिशा या ऊपर या नीचे या चारों ओर या मध्यवर्ती दिशा।

645. 'सफ्यूज़िंग* का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

646. 'निवास करता है* का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करता है, अस्तित्व में रहता है, रक्षा करता है, चलता रहता है, बनाए रखता है, घूमता है, निवास करता है। इसलिए इसे 'निवास करता है 3' कहा जाता है।

647. 'दूसरी दिशा* का अर्थ है: एक दिशा के समान दूसरी दिशा; तीसरी दिशा के समान; चौथी दिशा के समान; ऊपर के समान; नीचे के समान; चारों ओर के समान; और एक मध्यवर्ती दिशा के समान।

648. 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार* का अर्थ है: अनन्य रूप से, पूरी तरह से, बिना किसी शेष के, पूरी तरह से; यह एक सर्वव्यापी अभिव्यक्ति है 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार 3 ।

649. 'मन में प्रेम और करुणा का भाव* का अर्थ है: उसमें प्रेम क्या है? जो प्राणियों में प्रेम है, प्रेम का कार्य है, प्रेम की अवस्था है, प्रेम जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे ही प्रेम कहा जाता है।

उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार, आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना इसके साथ होती है, इसके साथ सह-उत्पन्न होती है, इसके साथ जुड़ी होती है।

असीमित का विश्लेषण

359

यह प्रेम और करुणा से जुड़ा हुआ है। इसलिए इसे 'प्रेम और करुणा से युक्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

650. 'विस्तृत' का अर्थ है: जो विस्तृत है वह उदात्त है; जो उदात्त है वह असीमित है; जो असीमित है वह द्वेष रहित है; जो द्वेष रहित है वह दुर्भावना रहित है।

651. 'सफ्यूजिंग' का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

652. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 646 देखें।

2. करुणा

653. और एक भिक्षु करुणा से परिपूर्ण मन से कैसे निवास करता है, जो एक दिशा में व्याप्त होता है? जैसे (वह), देखकर, किसी दुखी, दुष्ट व्यक्ति के प्रति करुणा रखता है; उसी प्रकार वह सभी प्राणियों को करुणा से भर देता है।

उसमें करुणा क्या है? प्राणियों में जो करुणा है, करुणामयी होना, करुणामयी अवस्था, करुणा जो (क्रूरता से) मानसिक मुक्ति है। यही करुणा कहलाती है।

उसमें चेतना क्या है? [274] वह जो चेतना, मन, विचार, आदि है, और उपरोक्त पर निर्भर मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना करुणा के साथ होती है, करुणा से जुड़ी होती है, करुणा से संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'करुणा से ग्रसित मन' कहा जाता है।

पी देखें पैरा 184.

654. 'एक दिशा' का अर्थ है: पूर्वी दिशा या पश्चिमी दिशा या उत्तरी दिशा या दक्षिणी दिशा या ऊपर या नीचे या चारों ओर या मध्यवर्ती दिशा।

655. 'सफ्यूज़िंग' का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

656. 'निवास करना' का अर्थ है: चारों मुद्राओं को धारण करना, अस्तित्व में रहना, रक्षा करना, निरंतर चलना, बनाए रखना, घूमना, निवास करना। अतः इसे 'निवास करना' कहा जाता है।

आर

360 विश्लेषण की पुस्तक

657. 'दूसरी दिशा भी' का अर्थ है: एक दिशा की तरह दूसरी दिशा; तीसरी दिशा की तरह; चौथी दिशा की तरह; ऊपर की ओर; नीचे की ओर; चारों ओर; और एक मध्यवर्ती दिशा में।

658. 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ एकसमान करते हुए, समस्त (प्राणियों) का संसार 9 का अर्थ है; अनन्य रूप से, पूर्णतः, बिना किसी शेष के, संपूर्ण रूप से; यह एक सर्वव्यापी अभिव्यक्ति है' सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ एकसमान करते हुए, समस्त (प्राणियों) का संसार

659. 'करुणा से युक्त मन' का अर्थ है: उसमें करुणा क्या है? प्राणियों में जो करुणा है, करुणामयी होना, करुणामयी अवस्था, वह करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं।

उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है; और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना करुणा से जुड़ी हुई है, उससे सह-उत्पन्न है, उससे संबद्ध है। इसलिए इसे 'करुणा से युक्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

660. 'विस्तृत' का अर्थ है: जो विस्तृत है वह उदात्त है; जो उदात्त है वह असीमित है; जो असीमित है वह द्वेष रहित है; जो द्वेष रहित है वह दुर्भावना रहित है।

661. 'सफ्यूजिंग' का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

662. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 656 देखें।

3. सहानुभूतिपूर्ण आनंद

663. और भिक्षु किस प्रकार सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण मन से एक ही दिशा में निवास करता है? जैसे वह किसी सुंदर, मनभावन व्यक्ति को देखकर सहानुभूतिपूर्ण आनंद का अनुभव करता है, उसी प्रकार वह सभी प्राणियों को सहानुभूतिपूर्ण आनंद से भर देता है।

उसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? प्राणियों में जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद जो मानसिक स्वतंत्रता (ईर्ष्या से मुक्ति) है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। [275]

इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना इस सहानुभूतिपूर्ण आनंद के साथ होती है, इसके साथ सह-उत्पन्न होती है, इससे जुड़ी होती है, इससे संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

664. 'एक दिशा' का अर्थ है: पूर्वी दिशा या पश्चिमी दिशा या उत्तरी दिशा या दक्षिणी दिशा या ऊपर या नीचे या चारों ओर या एक मध्यवर्ती दिशा।

665. 'सफ्यूजिंग' का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

666. 'रहता है' का अर्थ है: :P: इसलिए इसे 'रहता है*' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 656 देखें।

667. 'दूसरी दिशा भी' का अर्थ है: एक दिशा की तरह दूसरी दिशा; तीसरी दिशा; चौथी दिशा; ऊपर; नीचे; चारों ओर; और एक मध्यवर्ती दिशा।

668. 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार' का अर्थ है: अनन्य रूप से, पूर्णतः, बिना किसी शेष के, पूरी तरह से; यह एक सर्वव्यापी अभिव्यक्ति है 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार*।

669. 'सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त मन' का अर्थ है: उसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? जो प्राणियों में सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है।

j°y-

इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना इस सहानुभूतिपूर्ण आनंद के साथ होती है, इसके साथ सह-उत्पन्न होती है, इससे जुड़ी होती है, इससे संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'सहानुभूतिपूर्ण आनंद से ग्रस्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

362

विश्लेषण की पुस्तक

670. 'विस्तृत* का अर्थ है: जो विस्तृत है वह उदात्त है; जो उदात्त है वह असीमित है; जो असीमित है वह शत्रुता से रहित है; जो शत्रुता से रहित है वह दुर्भावना से रहित है।

671. 'सफ्यूज़िंग* का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

672. 'Dwells* का अर्थ है :P: इसलिए इसे 'dwells* कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 656 देखें।

4. समभाव

673. और एक भिक्षु समभाव से युक्त मन के साथ कैसे निवास करता है, जो एक ही दिशा में व्याप्त होता है? जैसे वह देखकर किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति समभाव रखता है जो न तो सुखद है और न ही अप्रिय; उसी प्रकार वह सभी प्राणियों को समभाव से व्याप्त करता है।

उसमें समभाव क्या है? [276] जो प्राणियों में समभाव है, समभाव का कार्य है, समभाव की अवस्था है, समभाव जो मानसिक स्वतंत्रता (विचलितता से) है। इसे समभाव कहते हैं।

उसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना समभाव के साथ होती है, उससे सह-उत्पन्न होती है, उससे जुड़ी होती है, उससे संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'समभाव से ग्रस्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

674. 'एक दिशा' का अर्थ है: पूर्वी दिशा या पश्चिमी दिशा या उत्तरी दिशा या दक्षिणी दिशा या ऊपर या नीचे या चारों ओर या मध्यवर्ती दिशा।

675. 'सफ्यूज़िंग* का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

676. 'रहता है * का अर्थ है : : पी : इसलिए इसे 'रहता है' कहा जाता है।

पी — पैराग्राफ 656 देखें।

677. 'दूसरी दिशा भी' का अर्थ है: एक दिशा की तरह दूसरी दिशा; तीसरी दिशा; चौथी दिशा; ऊपर; नीचे; चारों ओर; और एक मध्यवर्ती दिशा।

678. 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार* का अर्थ है: अनन्य रूप से, पूर्णतः, बिना किसी शेष के, पूरी तरह से; यह एक सर्वव्यापी अभिव्यक्ति है 'सर्वत्र, स्वयं को सभी के साथ पहचानते हुए, सभी (प्राणियों) का संसार*।

679. 'समभाव से युक्त मन' का अर्थ है: उसमें समभाव क्या है? जो प्राणियों में समभाव है, समभाव की क्रिया है, समभाव की अवस्था है, वह समभाव है जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे समभाव कहते हैं।

इसमें चेतना क्या है? वह जो चेतना, मन, विचार आदि है, और उपरोक्त के आधार पर, मन-चेतना-तत्व है। इसे चेतना कहते हैं। यह चेतना समभाव के साथ होती है, उससे सह-उत्पन्न होती है, उससे जुड़ी होती है, उससे संबद्ध होती है। इसलिए इसे 'समभाव से युक्त मन' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 184 देखें।

680. 'विस्तृत' का अर्थ है: जो विस्तृत है वह उदात्त है; जो उदात्त है वह असीमित है; जो असीमित है वह शत्रुता रहित है; जो शत्रुता रहित है वह दुर्भावना रहित है।

681. 'सफ्यूज़िंग' का अर्थ है: पूरी तरह से फैलाना, मुक्त करना।

682. 'रहता है' का अर्थ है: ;पी: इसलिए इसे 'रहता है 5' कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 656 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण।

2. अब्राहम के अनुसार विश्लेषण

683. चार असीम गुण हैं: प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद, समभाव।

684. उसमें प्रेम-कृपा क्या है? [277] उसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रेम-कृपा से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो कुछ भी है

1

364 विश्लेषण की पुस्तक

प्रेम, दयालुता का कार्य, दयालुता की अवस्था, वह दयालुता जो (द्वेष से) मानसिक मुक्ति है। इसे ही दयालुता कहते हैं। (साथ ही) अन्य अवस्थाएँ भी दयालुता से संबंधित हैं। (1)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें प्रेम-कृपा क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, प्रेम-कृपा से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो प्रेममय होता है, प्रेम-कृपा का कार्य होता है, प्रेम-कृपा की अवस्था होती है, वह प्रेम-कृपा मानसिक स्वतंत्रता होती है। इसे प्रेम-कृपा कहा जाता है। (इसी प्रकार) प्रेम-कृपा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी प्रेम-कृपा कहलाती हैं। (2)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें प्रेम-करुणा क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इच्छा रहित होकर, प्रेम-करुणा से युक्त तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो प्रेममय होता है, प्रेम-करुणा का कार्य होता है, प्रेम-करुणा की अवस्था होती है, वह प्रेम-करुणा मानसिक स्वतंत्रता होती है। इसे प्रेम-करुणा कहा जाता है। (इसी प्रकार) प्रेम-करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी प्रेम-करुणा कहलाती हैं। (3)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

685. यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रेममयी भाव से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो प्रेममयी होता है, प्रेममयी कर्म होता है, प्रेममयी अवस्था होती है, और जो मानसिक स्वतंत्रता है, उसे प्रेममयी भाव कहते हैं। (इसी प्रकार) प्रेममयी भाव से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी प्रेममयी भाव कहलाती हैं। (1) (4)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रारंभिक साधना के बिना ही, निरंतर साधना से, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ, प्रेममयी भाव से प्रेरित होकर, द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो प्रेममयी होता है, प्रेममयी कर्म होता है, प्रेममयी अवस्था होती है, प्रेममयी भाव ही मानसिक स्वतंत्रता है। इसे ही कहा जाता है।

असीमित का विश्लेषण

365

प्रेमपूर्ण दया। (साथ ही) प्रेमपूर्ण दया से जुड़ी शेष अवस्थाएँ। (2) (5)

यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, प्रेममयी तल्लीनता से युक्त तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो प्रेममयी होता है, प्रेममयी क्रिया होती है, प्रेममयी अवस्था होती है, और जो मानसिक स्वतंत्रता है, उसे प्रेममयी तल्लीनता कहते हैं। (इसी प्रकार) प्रेममयी तल्लीनता से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी प्रेममयी तल्लीनता कहलाती हैं। (3) (6)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

यहाँ जब कोई भिक्षु रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इच्छा रहित होकर, प्रेममयी भाव से युक्त चौथे ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय जो प्रेममयी होता है, प्रेममयी कर्म होता है, प्रेममयी अवस्था होती है, और जो मानसिक स्वतंत्रता है, उसे प्रेममयी भाव कहते हैं। (इसी प्रकार) प्रेममयी भाव से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी प्रेममयी भाव कहलाती हैं। (4) (7) [278]

P = अनुच्छेद 205 देखें।

686. इसमें करुणा क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, करुणा से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामयी होना है, करुणामयी अवस्था है, करुणा जो मानसिक मुक्ति (क्रूरता से) है। इसे करुणा कहते हैं। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। (1)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें करुणा क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, करुणा से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामय होना है, करुणामय अवस्था है, करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। (2)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

उसमें करुणा क्या है? उसमें, जब एक भिक्षु शारीरिक रूप में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह...

366

विश्लेषण की पुस्तक

इच्छा रहित, उत्साह से रहित, : पी : करुणा से युक्त तीसरे ध्यान में प्राप्त होता है और निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामयी अवस्था है, करुणामयी अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। (3)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

687. यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, करुणा से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामयी होना है, करुणामयी अवस्था है, करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। (1) (4)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रारंभिक प्रयास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास से, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ, करुणा से परिपूर्ण द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामयी होना है, करुणामयी अवस्था है, करुणा है जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं। (और इसी प्रकार) करुणा से संबंधित अन्य अवस्थाएँ भी करुणा कहलाती हैं।

(2)(5)

यहाँ जब कोई भिक्षु रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, करुणा से युक्त तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामय होना है, करुणामय अवस्था है, करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहा जाता है। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। (3) (6)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

जब कोई भिक्षु शारीरिक लोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इच्छा रहित होकर, करुणा से परिपूर्ण चौथे ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय जो करुणा है, करुणामयी होना है, करुणामयी अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे ही कहा जाता है।

IUimitables 367 का विश्लेषण

करुणा। (साथ ही) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ। (4) (7)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

688. इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद जो मानसिक मुक्ति (ईर्ष्या से मुक्ति) है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित हैं। (1)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तो वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित हैं। (2)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इच्छा रहित होकर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित हैं। (3)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

689. यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद होता है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की क्रिया होती है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था होती है, वह सहानुभूतिपूर्ण आनंद है जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित हैं। (1) (4)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

368

यहाँ जब कोई भिक्षु रूपलोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, बुरी अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रारंभिक परिश्रम के बिना, केवल निरंतर परिश्रम से, वैराग्य से उत्पन्न उत्साह और आनंद के साथ, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद होता है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद का कार्य होता है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था होती है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहलाती हैं। (2) (5)

यहाँ जब कोई भिक्षु रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तो वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोककर, तीसरे ध्यान में समभाविक आनंद के साथ निवास करता है; उस समय जो समभाविक आनंद होता है, समभाविक आनंद की क्रिया होती है, समभाविक आनंद की अवस्था होती है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे समभाविक आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी समभाविक आनंद से संबंधित हैं। (3) (6)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

यहाँ जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इच्छा रहित होकर, चौथे ध्यान में समभाविक आनंद के साथ निवास करता है; उस समय जो समभाविक आनंद होता है, समभाविक आनंद की क्रिया होती है, समभाविक आनंद की अवस्था होती है, वही मानसिक स्वतंत्रता है। इसे समभाविक आनंद कहते हैं। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी समभाविक आनंद से संबंधित हैं। (4) (7)

P = अनुच्छेद 205 देखें।

690. इसमें समभाव क्या है? इसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म के मार्ग का विकास करता है, तब वह सुख का त्याग करके चौथे ध्यान में समभाव से युक्त अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो समभाव है, समभाव की क्रिया है, समभाव की अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता (विचलितता से मुक्ति) है। इसे समभाव कहते हैं। (इसी प्रकार) समभाव से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

691. चार असीम गुण हैं: प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद, समभाव।

692. इसमें प्रेम और दया क्या है? इसमें उस समय जब एक

369

भिक्षु रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रेममयी भाव से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है।

पृष्ठ 2: स्थिरता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद,
रूपिक तल के समान अच्छे कर्मों का संचय करके, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रेममयी भाव से युक्त प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय जो प्रेममयी होता है, प्रेममयी कर्म होता है, प्रेममयी अवस्था होती है, और जो प्रेममयी भाव दुर्भावना से मुक्त होता है, उसे ही प्रेममयी भाव कहते हैं। (इसी प्रकार) प्रेममयी भाव से संबंधित अन्य अवस्थाएँ भी प्रेममयी भाव कहलाती हैं।

पीजे = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

इसमें प्रेम-कृपा क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तो वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, प्रेम-कृपा से युक्त द्वितीय [280] ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। रूप-तल के समान अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, परिणामी द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करता है। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करता है। प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करता है। द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करता है। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करता है। प्रेम-कृपा से युक्त चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; जो उस समय प्रेममय होता है, प्रेम-कृपा का कार्य होता है, प्रेम-कृपा की अवस्था होती है, प्रेम-कृपा वह मानसिक स्वतंत्रता होती है। इसे प्रेममय दया कहा जाता है। (साथ ही) प्रेममय दया से जुड़ी अन्य अवस्थाएँ भी इसी प्रकार हैं।

पी एल = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

पृष्ठ 3 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 692 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

693. उसमें करुणा क्या है? उसमें, जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, करुणा से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है।

पृष्ठ 2: स्थिरता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद,
रूप के तल के अनुरूप उसी अच्छे कर्म को संचित करके, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, करुणा से युक्त परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो करुणा है, करुणामय होकर, वह उस अवस्था में पहुँच जाता है।

370

करुणामय होना, वह करुणा जो (क्रूरता से) मानसिक मुक्ति है। इसे करुणा कहते हैं। (साथ ही) करुणा से जुड़ी अन्य अवस्थाएँ भी करुणा कहलाती हैं।

पी 1 - पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

इसमें करुणा क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप-तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तो वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, करुणा से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल अवस्था होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। रूप-तल के समान अच्छे कर्मों को करने और संचित करने के बाद, वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, परिणामी द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और करुणा से युक्त चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है; जो उस समय करुणा है, करुणामयी अवस्था है, करुणामयी अवस्था है, करुणा जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे करुणा कहते हैं। (इसी प्रकार) करुणा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं। [281]

पी 1 = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

पृष्ठ 3 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 693 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

694. इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूपलोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। रूपलोक के समान अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त परिणामी प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद का कर्म है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, वह सहानुभूतिपूर्ण आनंद है जो मानसिक मुक्ति (ईर्ष्या से) है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से संबंधित हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूप के तल पर पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, सहानुभूतिपूर्ण आनंद से युक्त द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, और अविचलितता होती है।

असीमित का विश्लेषण

371

अवस्थाएँ अच्छी हैं। उसी अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, जो रूप के तल की विशेषता है, वह प्रारंभिक और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, परिणामी द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है। फिर तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है। प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है। द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है। तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है। चौथे ध्यान में सहानुभूतिपूर्ण आनंद के साथ निवास करता है; उस समय जो सहानुभूतिपूर्ण आनंद है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद का कार्य है, सहानुभूतिपूर्ण आनंद की अवस्था है, वह सहानुभूतिपूर्ण आनंद है जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे सहानुभूतिपूर्ण आनंद कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी सहानुभूतिपूर्ण आनंद से जुड़ी हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

पृष्ठ 3 — प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 694 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

695. इसमें समभाव क्या है? इसमें जब कोई भिक्षु रूपलोक में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके समभाव से युक्त चौथे ध्यान में लीन होता है; उस समय समभाव होता है; उस समय स्थिरता होती है; ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। रूपलोक के समान अच्छे कर्म करने और संचित करने के बाद, वह सुख और दुख का त्याग करके समभाव से युक्त परिणामी चौथे ध्यान में लीन होता है; उस समय जो समभाव होता है, समभाव का कर्म होता है, समभाव की अवस्था होती है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे समभाव कहते हैं। (इसी प्रकार) समभाव से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

696. चार असीम गुण हैं: प्रेम, करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद, समभाव।

697. इसमें प्रेम-कृपा क्या है? इसमें उस समय जब कोई भिक्षु रूप के तल के विशिष्ट ध्यान को विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (जो) वर्तमान जीवन में सुखद जीवन का कारण है, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रेम-कृपा से युक्त प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; [282] उस समय जो प्रेमपूर्ण है, प्रेम-कृपा का कार्य है, प्रेम-कृपा की अवस्था है, प्रेम-कृपा जो (द्वेष से) मानसिक मुक्ति है। इसे प्रेम-कृपा कहा जाता है। (इसी प्रकार) प्रेम-कृपा से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

P = अनुच्छेद 205 देखें।

i5 +

इसमें प्रेम-कृपा क्या है? इसमें उस समय जब एक भिक्षु रूप के तल की विशेषता वाले ध्यान को विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (यह) वर्तमान अस्तित्व में सुखद जीवन का कारण है, वह प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास को रोकते हुए, द्वितीय ध्यान।

पृष्ठ 2: तीसरा ध्यान। पृष्ठ 2: पहला ध्यान। पृष्ठ 2: दूसरा ध्यान। पृष्ठ 2: तीसरा
ध्यान: पृष्ठ 2: प्रेममयी भाव से युक्त चौथे ध्यान में प्राप्त होकर निवास करता है; उस समय जो प्रेममयी हो, प्रेममयी भाव, प्रेममयी अवस्था, वह प्रेममयी भाव जो मानसिक स्वतंत्रता है। इसे प्रेममयी भाव कहते हैं। (साथ ही) प्रेममयी भाव से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी इसी प्रकार हैं।

पृष्ठ 1 = पैराग्राफ 205 देखें।

पृष्ठ 2 = प्रत्येक को प्रथम ध्यान, अनुच्छेद 697 के सामान्य रूप में पूरा करें, लेकिन उचित संशोधनों के साथ।

698. इसमें करुणा क्या है? इसमें सहानुभूतिपूर्ण आनंद क्या है? इसमें समभाव क्या है? जब कोई भिक्षु रूप के तल से संबंधित ध्यान विकसित करता है, जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (और यही) वर्तमान जीवन में सुखद जीवन का कारण है, तब वह सुख और दुख का त्याग करके, समभाव से युक्त चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय जो समभाव है, समभाव का कार्य है, समभाव की अवस्था है, वह मानसिक स्वतंत्रता है। इसे समभाव कहते हैं। (इसी प्रकार) समभाव से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

पृष्ठ 1 — अनुच्छेद 697 के समान, उचित संशोधनों के साथ।

पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 205 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

2. पूछताछ

699. चार असीम तत्व इस प्रकार हैं: यहाँ एक भिक्षु प्रेममयी मन से निवास करता है, एक दिशा में व्याप्त रहता है। दूसरी दिशा में भी। तीसरी दिशा में भी। चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, स्वयं को सभी के साथ एकाग्र करते हुए, वह प्रेममयी, विस्तृत, उदात्त, असीम मन से समस्त (प्राणियों) के संसार को व्याप्त करता है।

वह द्वेष और दुर्भावना से मुक्त हैं। वे करुणा से परिपूर्ण मन से निवास करते हैं, एक दिशा में व्याप्त रहते हैं। दूसरी दिशा में भी, तीसरी दिशा में भी, चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, सभी के साथ स्वयं को एकरूप करते हुए, वे करुणा से परिपूर्ण, व्यापक, उदात्त, असीमित, द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से समस्त प्राणियों के जगत को व्याप्त करते हुए निवास करते हैं। वे सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण मन से निवास करते हैं, एक दिशा में व्याप्त रहते हैं। दूसरी दिशा में भी, तीसरी दिशा में भी, चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, सभी के साथ स्वयं को एकरूप करते हुए, वे सहानुभूतिपूर्ण आनंद से परिपूर्ण, व्यापक, उदात्त, असीमित, द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से समस्त प्राणियों के जगत को व्याप्त करते हुए निवास करते हैं। वे समभाव से परिपूर्ण मन से निवास करते हैं, एक दिशा में व्याप्त रहते हैं। दूसरी दिशा में भी, तीसरी दिशा में भी, चौथी दिशा में भी। इस प्रकार, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह, स्वयं को सभी के साथ एकरूप करते हुए, वह समभाव से परिपूर्ण, व्यापक, उदात्त, असीमित, द्वेष रहित, दुर्भावना रहित मन से समस्त (प्राणियों) के संसार को व्याप्त करते हुए निवास करता है।

700. चार असीम तत्वों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? ;P: कितने विलाप करने योग्य हैं; कितने विलाप न करने योग्य हैं? [283]

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

701. (चार असीम) कभी अच्छे होते हैं; कभी न अच्छे होते हैं न बुरे। तीन असीम सुखद भावों से जुड़े होते हैं। समभाव न कष्टदायक होता है न सुखद। (चार असीम) कभी परिणाम होते हैं; कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी न परिणाम होते हैं और न परिणाम उत्पन्न करते हैं। कभी (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) बोधित होते हैं, आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी बोधित नहीं होते, आसक्तियों के विषय होते हैं। न तो भ्रष्ट होते हैं, न भ्रष्टियों के विषय होते हैं। तीन असीम कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं, कभी निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ; कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना। समभाव प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना होता है। तीन असीम कभी होते हैं

374

विश्लेषण की पुस्तक

उत्साह से परिपूर्ण; कभी-कभी आनंद से परिपूर्ण; समभाव से परिपूर्ण नहीं; कभी-कभी उत्साह से परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। समभाव समभाव से परिपूर्ण होता है। (चार असीम) न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से परित्याग किए जा सकते हैं। प्रथम मार्ग या पश्चात मार्गों से परित्याग किए जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। कभी-कभी संचयी (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र में) होते हैं; कभी-कभी न तो संचयी और न ही विक्षेपी। न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में। उदात्त हैं। निम्न, उदात्त या असीम वस्तुओं से परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। मध्यवर्ती हैं। कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। पथ को अपना लक्ष्य, पथ को अपना कारण या पथ को अपना प्रमुख कारक नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी उदय होते हैं; कभी-कभी उदय नहीं होते; कभी-कभी उदय होना अनिवार्य है। कभी-कभी भूतकाल होते हैं; कभी-कभी भविष्यकाल होते हैं; कभी-कभी वर्तमानकाल होते हैं। भूतकाल वस्तुओं से परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता; भविष्य की वस्तुएँ या वर्तमान वस्तुएँ। कभी आंतरिक होती हैं; कभी बाह्य होती हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होती हैं। बाह्य वस्तुएँ होती हैं। अदृश्य होती हैं, प्रभाव नहीं डालतीं।

2. दोहे

702. प्रेम और करुणा मूल है। तीन असीम तत्व मूल नहीं हैं। (चार असीम तत्व) मूलों के साथ होते हैं। मूलों से जुड़े होते हैं। प्रेम और करुणा मूल हैं और मूलों के साथ भी होते हैं। तीन असीम तत्वों को मूल नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों के साथ होते हैं लेकिन मूल नहीं हैं। प्रेम और करुणा मूल हैं और मूलों से भी जुड़े होते हैं। तीन असीम तत्वों को मूल नहीं कहा जाना चाहिए; वे मूलों से जुड़े होते हैं लेकिन मूल नहीं हैं। तीन असीम तत्व मूल नहीं हैं, लेकिन मूलों के साथ होते हैं। प्रेम और करुणा को मूल नहीं कहा जाना चाहिए, जो मूलों के साथ होता है या मूल नहीं है, जो मूलों के साथ नहीं होता है।

(चार असीम तत्व) कारण सहित हैं। बद्ध हैं। अदृश्य हैं। अप्रभावित हैं। भौतिक नहीं हैं। सांसारिक हैं। एक मार्ग से ज्ञात किए जा सकते हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं किए जा सकते। अशुद्धियाँ नहीं हैं। अशुद्धियों के विषय हैं। अशुद्धियों से संबद्ध नहीं हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि अशुद्धियाँ भी अशुद्धियों के विषय हैं; (वे) अशुद्धियों के विषय हैं।

असीमित का विश्लेषण

375

अशुद्धियाँ हैं, पर अशुद्धियाँ नहीं हैं। ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए, [284] अशुद्धियाँ भी अशुद्धियों से जुड़ी हैं या अशुद्धियों से जुड़ी हैं, पर अशुद्धियाँ नहीं हैं। अशुद्धियों से जुड़ी नहीं हैं, अशुद्धियों की वस्तुएँ हैं।

(चार असीम) बंधन नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाढ़ नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाधाएँ नहीं हैं। विकृतियाँ नहीं हैं। इनके विषय होते हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से जुड़े हैं। ये चेतना से मिश्रित हैं। ये चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना के साथ रहते हैं। ये चेतना से मिश्रित हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं। ये चेतना से मिश्रित हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं और चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना से मिश्रित हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न हैं और चेतना के साथ रहते हैं। ये बाह्य हैं। ये व्युत्पन्न नहीं हैं। कभी-कभी इन्हें समझा जा सकता है; कभी-कभी नहीं समझा जा सकता।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के अनुसार पूर्ण।

(चार असीम) आसक्ति नहीं हैं। :P: भ्रष्टता नहीं हैं। :P: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागे जाने योग्य नहीं हैं। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागे जाने योग्य नहीं हैं। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागे जाने योग्य कोई मूल नहीं हैं। तीन असीम कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना होते हैं। समभाव प्रारंभिक अभ्यास के बिना है। तीन असीम कभी-कभी निरंतर अभ्यास के साथ होते हैं; कभी-कभी निरंतर अभ्यास के बिना होते हैं। समभाव निरंतर अभ्यास के बिना है। तीन असीम कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होते हैं। समभाव उत्साह के बिना है। तीन असीम कभी-कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी-कभी उत्साह के साथ नहीं होते हैं। समभाव उत्साह के साथ नहीं है। तीन असीम आनंद के साथ होते हैं। समभाव आनंद के साथ नहीं है। समभाव समभाव के साथ है। तीन असीम तत्व समभाव के साथ नहीं होते। (चार असीम तत्व) इच्छा के तल के लक्षण नहीं हैं। वे रूप के तल के लक्षण हैं। वे निराकार तल के लक्षण नहीं हैं। वे समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। वे मुक्ति की प्रवृत्ति नहीं रखते। उनका कोई निश्चित (परिणामस्वरूप) समय नहीं है। वे पार किए जा सकते हैं। वे शोक का कारण नहीं हैं।

P = पहले के पैराग्राफ में वर्णित दोषों के समान पूर्ण।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

असीमितताओं का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 14 पाठ - सिक्खपाद
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा अनुवादित

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

सीएच.14. उपदेशों का विश्लेषण (सिक्खपाद सं. शैक्ष्यपाद या शिष्य-)

1. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

703. [285] पाँच नियम ये हैं: — प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने का नियम; जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज़ करने का नियम; यौन दुराचार से परहेज़ करने का नियम; झूठी वाणी से परहेज़ करने का नियम; मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज़ करने का नियम जो असावधानी पैदा करते हैं।

704. इसमें प्राणियों की हत्या से परहेज करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या से परहेज करने वाले व्यक्ति में, ज्ञान से युक्त मानसिक सुख के साथ, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है; उस समय जो प्राणियों की हत्या से बचना, उससे दूर रहना, उससे परहेज करना, उसे न करना, उससे निर्दोष होना, उसकी सीमा का उल्लंघन न करना और प्राणियों की हत्या के कारण को नष्ट करना है। इसे प्राणियों की हत्या से परहेज करने का उपदेश कहा जाता है। (इसी प्रकार) परहेज से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

उसमें प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या न करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, ज्ञान से युक्त मानसिक सुख के साथ उत्पन्न होती है; उस समय जो इच्छाशक्ति होती है, इच्छाशक्ति की अवस्था होती है, वही प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश कहलाता है। (और इसी प्रकार) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

उसमें प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या न करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल के अनुरूप उत्तम चेतना, ज्ञान से युक्त मानसिक सुख उत्पन्न होती है; उस समय जो सन्निकटन, प्रयास और अविचल होता है, वही प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश कहलाता है।

P = देखें Dhs. पैरा 1.

उपदेशों का विश्लेषण

377

उसमें वह कौन सा नियम है जो प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने का उपदेश है? उस समय जब प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, ज्ञान से जुड़े मानसिक सुख और प्रेरणा के साथ उत्पन्न होती है। :P: ज्ञान से रहित मानसिक सुख के साथ। :P: [286] ज्ञान से रहित मानसिक सुख और प्रेरणा के साथ। :P: ज्ञान से जुड़ी उदासीनता के साथ। :P: ज्ञान से जुड़ी उदासीनता के साथ। :P: ज्ञान से रहित उदासीनता के साथ। :P: ज्ञान से रहित उदासीनता के साथ; प्रेरणा के साथ; जो उस समय प्राणियों की हत्या से बचना, उससे दूर रहना, उससे परहेज़ करना, उससे परहेज़ करना, उसे न करना, उससे निर्दोष होना, उसकी सीमा का उल्लंघन न करना और प्राणियों की हत्या के कारण को नष्ट करना है। इसे प्राणियों की हत्या न करने का नियम कहा जाता है। (और इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इसी नियम से संबंधित हैं।

P = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

705. उसमें प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या न करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना, उदासीनता के साथ, ज्ञान या प्रेरणा से रहित अवस्था में उत्पन्न होती है; उस समय जो इच्छाशक्ति होती है, इच्छाशक्ति की अवस्था होती है, वही प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश कहलाता है। (इसी प्रकार) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

इसमें प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या न करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल के अनुरूप उत्तम चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान और उत्तेजना से रहित, उदासीनता से परिपूर्ण होती है; तब संपर्क, प्रयास और अविचलितता का भाव उत्पन्न होता है। इसी को प्राणियों की हत्या न करने का उपदेश कहते हैं।

P = देखें Dhs. पैरा 1.

706. उसमें वह नियम क्या है जो अनधिकृत वस्तु लेने से परहेज करने का है? : P : वह नियम जो यौन दुराचार से परहेज करने का है। :P : वह नियम जो परहेज करने का है

378 विश्लेषण की पुस्तक

झूठी बात। :P: क्या वह नियम जो मादक बियर, वाइन और स्पिरिट से परहेज करने को लापरवाही का कारण बताता है?

वह समय जब मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान से जुड़े मानसिक आनंद के साथ होती है; उस समय मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से बचना, परहेज करना, परहेज करना, न करना, न करना, निर्दोष होना, सीमा पार न करना, और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब, मदिरा और अचेतना के मार्ग को नष्ट करना ही वह नियम है जो अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब, मदिरा और अचेतना से परहेज करने का नियम है। (इसी प्रकार) परहेज से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी हैं।

पी = प्रत्येक नियम को अंतिम नियम के समान ही माना जाना चाहिए।

इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बीयर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने की सलाह देता है जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, [287] जो ज्ञान से जुड़े मानसिक आनंद के साथ होती है; उस समय जो इच्छाशक्ति होती है, इच्छाशक्ति होने की अवस्था होती है। इसे मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने का नियम कहा जाता है। (इसी प्रकार) शेष अवस्थाएँ भी इच्छाशक्ति से जुड़ी होती हैं।

इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बीयर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने की सलाह देता है जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान से जुड़े मानसिक आनंद के साथ होती है; उस समय जो संपर्क, प्रयास और अविचल होता है। इसे मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज का उपदेश कहा जाता है।

P = देखें Dhs. पैरा 1.

इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बीयर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने की सलाह देता है जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, शराब और अन्य मादक पेय पदार्थों से परहेज करने वाले व्यक्ति में, जो लापरवाही का कारण बनते हैं, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक आनंद, ज्ञान और उत्तेजना से जुड़ी होती है। :P: मानसिक सुख से युक्त

आनंद, ज्ञान से संबंधित नहीं। :P: मानसिक आनंद के साथ, ज्ञान से संबंधित नहीं, उकसावे के साथ।

पी: उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। :पी:
उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ। :P: उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ा हुआ। ;P: उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ; जो उस समय मादक बियर, शराब और स्पिरिट से बचने, परहेज करने, परहेज करने, न करने, न करने, निर्दोष होने, सीमा पार न करने, लापरवाही पैदा करने वाले मादक पेय पदार्थों के मार्ग को नष्ट करने से संबंधित है। इसे लापरवाही पैदा करने वाले मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का नियम कहा जाता है। (इसी प्रकार) परहेज से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी हैं।

P = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

707. इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का निर्देश देता है, जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल से संबंधित उत्तम चेतना उत्पन्न होती है, जो उदासीनता से युक्त होती है, ज्ञान या उत्तेजना से असंबद्ध होती है; उस समय जो इच्छाशक्ति होती है, इच्छाशक्ति की अवस्था होती है। इसे मादक बियर, मदिरा और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने का नियम कहा जाता है। (इसी प्रकार) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी इसी प्रकार हैं।

इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बीयर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने की सलाह देता है जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, शराब और अचेतना उत्पन्न करने वाली आत्माओं से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो उदासीनता के साथ होती है, ज्ञान से असंबद्ध होती है, उकसावे से असंबद्ध होती है; [288] जो उस समय संपर्क, प्रयास, अविचल होता है। इसे मादक बियर, शराब और अचेतना उत्पन्न करने वाली आत्माओं से परहेज करने का नियम कहा जाता है।

P = देखें Dhs. पैरा 1.

708. पाँच नियम ये हैं: — प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने का नियम; बिना दी गई वस्तु न लेने का नियम; यौन दुराचार से परहेज़ करने का नियम;

380

विश्लेषण की पुस्तक

वह नियम जो झूठी बातों से परहेज करने का है; वह नियम जो मादक बियर, शराब और ऐसी शराब से परहेज करने का है जो लापरवाही का कारण बनती है।

709. उसमें प्राणियों की हत्या से परहेज करने का उपदेश क्या है? जब प्राणियों की हत्या से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान से संबंधित मानसिक सुख के साथ उत्पन्न होती है, चाहे वह निम्न, मध्य या उच्चतर हो; इच्छा प्रधान हो; ऊर्जा प्रधान हो; चेतना प्रधान हो; तर्क प्रधान हो; इच्छा प्रधान हो; निम्न, मध्य या उच्चतर हो; ऊर्जा प्रधान हो; निम्न, मध्य या उच्चतर हो; चेतना प्रधान हो; निम्न, मध्य या उच्चतर हो; तर्क प्रधान हो; जो उस समय प्राणियों की हत्या से बचता है, उससे दूर रहता है, उससे परहेज करता है, उससे परहेज करता है, उसे नहीं करता है, उससे निर्दोष होता है, उसकी सीमा का उल्लंघन नहीं करता है, और प्राणियों की हत्या के कारण को नष्ट करता है। इसे प्राणियों की हत्या से परहेज करने का उपदेश कहा जाता है। (और इसी प्रकार) परहेज से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

उसमें प्राणियों की हत्या न करने का नियम क्या है? जब प्राणियों की हत्या न करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो ज्ञान से संबंधित मानसिक सुख के साथ होती है, निम्न, मध्य या उच्चतर; जिसमें इच्छा प्रधान होती है; जिसमें ऊर्जा प्रधान होती है; जिसमें चेतना प्रधान होती है; जिसमें तर्क प्रधान होता है; जिसमें इच्छा प्रधान होती है, निम्न, मध्य या उच्चतर; जिसमें ऊर्जा प्रधान होती है, निम्न, मध्य या उच्चतर; जिसमें चेतना प्रधान होती है, निम्न, मध्य या उच्चतर; जिसमें तर्क प्रधान होता है, निम्न, मध्य या उच्चतर; जो उस समय इच्छाशक्ति होती है, इच्छाशक्ति की अवस्था होती है। इसे प्राणियों की हत्या न करने का नियम कहा जाता है। (इसी प्रकार) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ भी हैं।

उसमें प्राणियों की हत्या से परहेज करने का नियम क्या है? [289] जब प्राणियों की हत्या से परहेज करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख से युक्त होती है, ज्ञान से जुड़ी होती है, निम्न, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; इच्छा प्रधान होती है; ऊर्जा प्रधान होती है; चेतना प्रधान होती है; तर्क शक्ति होती है।

उपदेशों का विश्लेषण

381

प्रमुख: इच्छाशक्ति का प्रभुत्व होना; निम्न, मध्यवर्ती या श्रेष्ठ ऊर्जा का प्रभुत्व होना; चेतना का प्रभुत्व होना; तर्कशक्ति का प्रभुत्व होना; उस समय जो संपर्क में हो, प्रयास, अविचल। इसे प्राणियों की हत्या न करने का नियम कहा जाता है।

P = देखें Dhs. पैरा 1.

उसमें वह कौन सा नियम है जो प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने का है? उस समय जब प्राणियों की हत्या से परहेज़ करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से जुड़ी हुई, उत्तेजना के साथ होती है। : P 1 : मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से नहीं। rP 1 : मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से नहीं, उत्तेजना के साथ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं, उत्तेजना के साथ, निम्न, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; इच्छा प्रधान; ऊर्जा प्रधान; चेतना प्रधान: इच्छा प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; ऊर्जा प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; चेतना प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; जो उस समय प्राणियों की हत्या से बच रहा हो, उससे विमुख हो रहा हो, उससे परहेज कर रहा हो, उससे दूर रह रहा हो, उसे न कर रहा हो, उससे निर्दोष हो, सीमा का उल्लंघन न कर रहा हो, प्राणियों की हत्या के मार्ग को नष्ट कर रहा हो। इसे प्राणियों की हत्या से परहेज का नियम कहा जाता है। (इसी प्रकार) परहेज से संबंधित शेष अवस्थाएँ हैं। : पृष्ठ 2 : (इसी प्रकार) संकल्प से संबंधित शेष अवस्थाएँ हैं। : पृष्ठ 3 : संपर्क, : पृष्ठ 4 : प्रयास, अविचल। इसे प्राणियों की हत्या से परहेज का नियम कहा जाता है।

P x = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और उपयुक्त समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन अंत में इच्छाशक्ति के साथ।

पृष्ठ 3 = यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन अंत में संपर्क आदि के साथ।

पृष्ठ 4 = डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

710. उसमें वह नियम क्या है जो अवांछित वस्तुएँ लेने से परहेज करने का है? : पृष्ठ 1 : वह नियम जो परहेज करने का है

382

विश्लेषण की पुस्तक

यौन दुराचार। : पृष्ठ 1 : वह नियम जो झूठे भाषण से परहेज करने से संबंधित है। पृष्ठ 1 वह नियम जो मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने से संबंधित है जो लापरवाही का कारण बनती हैं?

वह समय जब मादक बियर, शराब और अचेतना उत्पन्न करने वाली आत्माओं से परहेज करने वाले व्यक्ति में इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख के साथ होती है, जो निम्न, मध्यवर्ती (या) उच्चतर ज्ञान से जुड़ी होती है; जिसमें इच्छा प्रबल होती है; ऊर्जा प्रबल होती है; चेतना प्रबल होती है; तर्क प्रबल होता है: इच्छा प्रबल होती है, निम्नतर, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; [290] ऊर्जा प्रबल होती है, निम्नतर, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; चेतना प्रबल होती है, निम्नतर, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; तर्क प्रबल होता है, निम्नतर, मध्यवर्ती (या) उच्चतर; जो उस समय मादक बियर, शराब और अचेतना उत्पन्न करने वाली आत्माओं से बच रहा है, उनसे परहेज कर रहा है, उनसे दूर रह रहा है, उनसे परहेज कर रहा है, उनसे नहीं कर रहा है, उनसे नहीं कर रहा है, उनसे निर्दोष है, सीमा का उल्लंघन नहीं कर रहा है, और अचेतना उत्पन्न करने वाली आत्माओं के मार्ग को नष्ट कर रहा है। इसे अचेतना उत्पन्न करने वाली बियर, शराब और अचेतना से परहेज करने का नियम कहा जाता है। (साथ ही) परहेज से जुड़ी शेष अवस्थाएँ भी। :P 2 : (जैसा कि) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ। :P 3 : संपर्क, :P 4 : प्रयास, अविचल। इसे मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का नियम कहा जाता है जो लापरवाही का कारण बनते हैं।

P 1 = व्यक्तिगत उपदेशों के साथ अंतिम उपदेश के समान ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन अंत में इच्छाशक्ति के साथ।

पृष्ठ 3 — यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन अंत में संपर्क आदि के साथ।

पृष्ठ 4 — डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

711. इसमें वह कौन सा नियम है जो मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का निर्देश देता है जिससे लापरवाही होती है?

वह समय जब मादक बियर, शराब और अचेतना उत्पन्न करने वाली शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति में, इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक आनंद के साथ, ज्ञान से जुड़ी होती है, और उत्तेजना से प्रेरित होती है। : पृष्ठ 1 : मानसिक आनंद के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी। : पृष्ठ 1 : मानसिक आनंद के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी, उत्तेजना से जुड़ी।

पी 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। : पी 1 :
उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उकसावे से जुड़ा हुआ। : पृष्ठ 1 : उदासीनता के साथ, इससे जुड़ा हुआ नहीं

उपदेशों का विश्लेषण

383

ज्ञान। :P 2 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से असंबद्ध, उकसावे से, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; इच्छा प्रधान; ऊर्जा प्रधान; चेतना प्रधान: इच्छा प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; ऊर्जा प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; चेतना प्रधान, निम्न, मध्यवर्ती (या) श्रेष्ठ; जो उस समय मादक बियर, शराब और स्पिरिट से बचने, परहेज करने, परहेज करने, न करने, न करने, निर्दोष होने, सीमा पार न करने, लापरवाही पैदा करने वाले मार्ग को नष्ट करने का कार्य करता है। इसे मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का नियम कहा जाता है जो लापरवाही पैदा करते हैं। (इसी प्रकार) परहेज से संबंधित शेष अवस्थाएँ। :P 2 : (इसी प्रकार) इच्छाशक्ति से संबंधित शेष अवस्थाएँ। :P 3 : संपर्क, :P 4 : प्रयास, अविचल। इसे मादक बियर, शराब और स्पिरिट से परहेज करने का सिद्धांत कहा जाता है जो लापरवाही का कारण बनते हैं।

प्रत्येक भाग को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और उपयुक्त समापन भागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन इच्छाशक्ति के अंत के साथ।

पृष्ठ 3 = यह पूरा पैराग्राफ दोहराया गया है, लेकिन अंत में संपर्क आदि के साथ।

पृष्ठ 4 = डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

712. कौन सी अवस्थाएँ बोधगम्य होती हैं? उस समय जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख से युक्त होती है, ज्ञान से जुड़ी होती है, और जिसका दृश्य विषय होता है,

P 1 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; पर
उस समय संपर्क होता है, : पी 2 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ बोधगम्य हैं। [291]

P 1 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। P 2 — देखें Dhs. पैरा 1.

कौन सी अवस्थाएँ बोधगम्य होती हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख के साथ ज्ञान से जुड़ी होती है, और जिसमें प्रेरणा होती है। :PA : मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से जुड़ी नहीं।

पृष्ठ 1: मानसिक आनंद से युक्त, ज्ञान से संबंधित नहीं।
उकसावे के साथ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ। rP 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं, उकसावे के साथ,

आर

384 विश्लेषण की पुस्तक

दृश्य वस्तु, :P 2 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय संपर्क होता है, :P 3 : अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ बोधगम्य हैं।

पृष्ठ 1 = = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। पृष्ठ 3 = डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

713. कौन सी अवस्थाएँ उपदेशात्मक हैं? जब वह रूप के तल पर पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है: पृष्ठ 1: निराकार तल पर पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है। पृष्ठ 2: निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाली अलौकिक ध्यान अवस्था विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृष्ठ 3: कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान की पहली ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है, पृष्ठ 4: अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ उपदेशात्मक हैं।

पृष्ठ 1 = अनुच्छेद 624 के उपयुक्त अनुभाग देखें।

पृष्ठ 2 = अनुच्छेद 626 के उपयुक्त अनुभाग देखें।

पी 3 = पैरा देखें। 205. पी 4 = डीएचएस देखें। पैरा. 277.

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

2. पूछताछ

714. पाँच नियम ये हैं: प्राणियों की हत्या न करने का नियम; बिना माँगी वस्तु न लेने का नियम; यौन दुराचार से परहेज़ करने का नियम; झूठी वाणी से परहेज़ करने का नियम; और असावधानी पैदा करने वाले मादक पेय, शराब और स्पिरिट से परहेज़ करने का नियम।

715. पाँच उपदेशों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे? :P: कितने उपदेश शोक का कारण हैं; कितने उपदेश शोक का कारण नहीं हैं?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

716. (पाँच नियम) केवल अच्छे हैं। कभी-कभी सुखद भावना से जुड़े होते हैं; कभी-कभी न तो सुखद भावना से और न ही सुखद भावना से जुड़े होते हैं।

ये पीड़ादायक और सुखदायक दोनों प्रकार की भावनाएँ नहीं हैं। इनसे परिणाम उत्पन्न होते हैं। ये लालसा और भ्रामक दृष्टि से वश में नहीं होते, बल्कि आसक्ति के विषय होते हैं। ये अविनाशी होते हैं, फिर भी विकृतियों के विषय होते हैं। ये आरंभिक परिश्रम और निरंतर परिश्रम दोनों के साथ होते हैं। कभी उत्साह के साथ, कभी आनंद के साथ, और कभी उदासीनता के साथ होते हैं।

(पाँच उपदेश) न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य हैं। इनकी कोई जड़ नहीं है जिसे प्रथम मार्ग से या पश्चात मार्गों से त्यागा जा सके। [292] ये संचयी हैं (पुनर्जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र में पिरोए हुए)। ये सात अलौकिक अवस्थाओं में से नहीं हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में। ये निम्न हैं। इनके उद्देश्य निम्न हैं। ये मध्यवर्ती हैं। इनका कोई निश्चित (परिणामस्वरूप समय) नहीं है। इन्हें न तो पथ को अपना उद्देश्य, पथ को अपना कारण या पथ को अपना प्रमुख कारक कहना चाहिए। कभी उत्पन्न होते हैं; कभी उत्पन्न नहीं होते; इन्हें उत्पन्न होने के लिए बाध्य नहीं कहना चाहिए। कभी भूतकाल में होते हैं; कभी भविष्य में होते हैं; कभी वर्तमान में होते हैं। इनके उद्देश्य वर्तमान में होते हैं। कभी आंतरिक होते हैं; कभी बाह्य होते हैं; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होते हैं। इनके उद्देश्य बाह्य होते हैं। ये दृश्यमान नहीं हैं, इनका कोई प्रभाव नहीं है।

2. दोहे

717. (पाँच उपदेश) मूल नहीं हैं। मूलों के साथ हैं। मूलों से जुड़े हैं। इन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि ये भी मूलों के साथ हैं; (ये) मूलों के साथ हैं लेकिन मूल नहीं हैं। इन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि ये भी मूलों के साथ हैं; (ये) मूलों से जुड़े हैं लेकिन मूल नहीं हैं। ये मूल नहीं हैं, मूलों के साथ हैं। कारण से हैं। शर्त से जुड़े हैं। अदृश्य हैं। प्रभावहीन हैं। भौतिक नहीं हैं। सांसारिक हैं। एक मार्ग से ज्ञात हैं; दूसरे मार्ग से ज्ञात नहीं हैं।

(पांच नियम) दोष नहीं हैं। दोषों के विषय हैं। दोषों से संबंधित नहीं हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि दोष भी दोषों के विषय हैं; (वे) दोषों के विषय हैं लेकिन दोष नहीं हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि दोष भी दोषों से संबंधित हैं या दोषों से संबंधित हैं लेकिन दोष नहीं हैं। दोषों से संबंधित नहीं हैं, दोषों के विषय हैं। बंधन नहीं हैं। बंधन नहीं हैं। बाढ़ नहीं हैं। बंधन नहीं हैं।

P : बाधाएँ नहीं हैं। : P : विकृतियाँ नहीं हैं। : P : इनके उद्देश्य हैं।
ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये संबद्ध हैं।

386

विश्लेषण की पुस्तक

चेतना से जुड़े हुए हैं। चेतना से संबंधित हैं। चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। चेतना के साथ रहते हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ रहते हैं। बाह्य हैं। व्युत्पन्न नहीं हैं। बोध से परे हैं। आसक्ति नहीं हैं। विकृतियाँ नहीं हैं।

P = इस पैराग्राफ में वर्णित दोषों के लिए पूर्ण।

(पांच उपदेश) प्रथम मार्ग से नहीं छोड़े जाने चाहिए। पश्चात मार्गों से भी नहीं छोड़े जाने चाहिए। प्रथम मार्ग से छोड़े जाने योग्य कोई जड़ नहीं है। पश्चात मार्गों से छोड़े जाने योग्य कोई जड़ नहीं है। आरंभिक अभ्यास के साथ हैं। निरंतर अभ्यास के साथ हैं। कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी उत्साहहीन होते हैं। कभी उत्साह के साथ होते हैं; कभी उत्साहहीन होते हैं। कभी आनंद के साथ होते हैं; कभी आनंदहीन होते हैं। कभी उदासीनता के साथ होते हैं; कभी उदासीनता के साथ नहीं होते। इच्छा के तल के लक्षण हैं। रूप के तल के लक्षण नहीं हैं। निराकार तल के लक्षण नहीं हैं। समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं होते। कोई निश्चित (परिणामस्वरूप) समय नहीं है। पार किए जा सकते हैं। शोक का कोई कारण नहीं है।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

सिद्धांतों का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 15 पाठ - पतिसंभिदा
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 15. विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण (पतिसंभिदा)

1. प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

1. सारांश अनुभाग

718. [293] चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। परिणाम का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उत्पत्ति का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन (अर्थात, 1 और 2) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। यह सारांश खंड है।

2. सत्य अनुभाग

719. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ इस प्रकार हैं: विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि

परिणाम, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। पीड़ा का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; पीड़ा के कारण का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; पीड़ा के निवारण का ज्ञान []

परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि; पीड़ा के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इनकी वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

यह सत्य अनुभाग है।

3. कारण अनुभाग

720. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। कारण का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; कारण के प्रभाव का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान

388

विश्लेषण की पुस्तक

ये भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। यह कारण खंड है।

4. अवस्थाएँ (मन और पदार्थ) अनुभाग

721. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। वे अवस्थाएँ जो जन्म लेती हैं, बनती हैं, उत्पन्न होती हैं, विद्यमान होती हैं, पूर्णतः विद्यमान होती हैं, प्रत्यक्ष होती हैं; इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वे अवस्थाएँ जिनसे ये

अवस्थाएँ जन्म लेती हैं, बनती हैं, उत्पन्न होती हैं, विद्यमान होती हैं, पूर्णतः विद्यमान होती हैं, प्रत्यक्ष होती हैं; उन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इनकी वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। [294] यह अवस्थाओं का खंड है।

5. आश्रित उत्पत्ति अनुभाग

722. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ इस प्रकार हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वृद्धावस्था और मृत्यु के कारण का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वृद्धावस्था और मृत्यु के रुकने का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वृद्धावस्था और मृत्यु के रुकने की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इनकी वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

723. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। जन्म का ज्ञान। : P : बनने का ज्ञान। : P : आसक्ति का ज्ञान। : P : लालसा का ज्ञान। : P : भावना का ज्ञान। : P : संपर्क का ज्ञान। : P : छह आधारों का ज्ञान। : P : मन और पदार्थ का ज्ञान। : P : चेतना का ज्ञान। : P : कर्मों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; कर्मों के कारण का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; कर्मों के रुकने का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; कर्मों के रुकने की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है;

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

389

इनकी वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। यह आश्रित उत्पत्ति खंड है।

P = प्रत्येक गतिविधि को उसी प्रकार पूरा करें।

6. सिद्धांत अनुभाग

724. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

इसमें उत्पत्ति का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि क्या है? इसमें एक भिक्षु शिक्षा को जानता है; गद्य में प्रवचन; गद्य और पद्य में प्रवचन; व्याख्याएँ; श्लोक; आनंदमय उच्चारण के श्लोक; (उद्धरण जो इस प्रकार शुरू होते हैं) "इस प्रकार कहा गया था... जन्म कथाएँ; अद्वितीय घटनाओं से संबंधित कथन; विविध विषय। इसे उत्पत्ति का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कहा जाता है। वह इस प्रकार कही गई बात का अर्थ जानता है, "यह उस बात का अर्थ है जो कही गई है; यह उस बात का अर्थ है जो कही गई है"। इसे परिणाम का विश्लेषणात्मक

अंतर्दृष्टि कहा जाता है। इनकी वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। यह सिद्धांत खंड है।

(यहाँ समाप्त होता है) प्रवचनों के अनुसार विश्लेषण

2. अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

1. अच्छा अनुभाग

725. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख से युक्त होती है, ज्ञान से जुड़ी होती है, दृश्य वस्तु होती है, : P 1 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित होती है; [295] उस समय संपर्क होता है, :P 2 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है;

▪

आर

उस (पदनाम) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P 1 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। P 2 = Dhs. पैरा 1 देखें।

726. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख के साथ ज्ञान और प्रेरणा से जुड़ी होती है। : P 1 : मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी। :PX : मानसिक सुख के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी, प्रेरणा के साथ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ी। :P1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान और प्रेरणा से जुड़ी। rP 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से नहीं जुड़ी, प्रेरणा के साथ, दृश्य वस्तु के साथ, : P 2 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय संपर्क होता है, :P 3 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 — मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। पृष्ठ 3 = डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

727. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब वह रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, पृथ्वी के प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है; उस समय

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

391

संपर्क, :P 2 : अविचल है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। [296]

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

728. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब वह निराकार तल पर पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तब वह सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था से पार हो जाता है और चौथे ध्यान में लीन हो जाता है, जहाँ उसे उस अवस्था का बोध होता है जो न तो बोध है और न ही अबोध; उस समय सन्त्व होता है और अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन अवस्थाओं के परिणामों का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिससे इन अवस्थाओं को नाम दिया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिससे वह इन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", इन ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

729. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ अच्छी हैं? जब वह निरंतर जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाली अलौकिक ध्यान अवस्था विकसित करता है; वह गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, पहली अवस्था में प्रवेश करके, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, उस प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

392

विश्लेषण की पुस्तक

परिणाम की अंतर्दृष्टि; वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन राज्यों को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

2. खराब अनुभाग

730. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब बुरी चेतना उत्पन्न होती है, जो मानसिक सुख के साथ होती है, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी होती है, जिसका दृश्य विषय होता है, : P 1 : वैचारिक विषय या जो भी (विषय) से संबंधित होता है; उस समय संपर्क होता है, : P 2 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ बुरी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। [297]

P l = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। P 2 = Dhs. पैरा 365 देखें।

731. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ बुरी हैं? जब बुरी चेतना उत्पन्न होती है, मानसिक सुख के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी हुई, उकसावे के साथ। rP 1: मानसिक सुख के साथ, गलत दृष्टिकोण से नहीं। : P 1: मानसिक सुख के साथ, गलत दृष्टिकोण से नहीं, उकसावे के साथ। : P 1: उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी हुई। : P 1: उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से जुड़ी हुई, उकसावे के साथ। :P 1: उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से नहीं जुड़ी हुई। : P 1: उदासीनता के साथ, गलत दृष्टिकोण से नहीं जुड़ी हुई, उकसावे के साथ। :P !: मानसिक पीड़ा के साथ,

घृणा। : P 1 : मानसिक पीड़ा के साथ, घृणा से जुड़ा हुआ, उकसावे के साथ। :PX : उदासीनता के साथ, संदेह से जुड़ा हुआ। :P* : उदासीनता के साथ, व्याकुलता से जुड़ा हुआ, दृश्य वस्तु के साथ, :P 2 : वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित है; उस समय संपर्क होता है, :P 3 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ बुरी हैं। इन अवस्थाओं का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उन (अवस्थाओं) के परिणामों का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P x = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। पृष्ठ 3 = डीएचएस, अनुच्छेद 365 देखें।

3. परिणामी अनुभाग

732. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, दृष्टिगत दृष्टि उत्पन्न होती है, जिसमें उदासीनता और प्रत्यक्ष वस्तु होती है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; उदासीनता होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक शक्ति होती है; उदासीनता की नियंत्रक शक्ति होती है; प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति होती है; या उस समय उत्पन्न होने वाली अन्य कोई भी अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को परिभाषित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा व्यक्ति इन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

733. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा के तल पर अभिलाषाओं के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, परिणामस्वरूप कान की चेतना उत्पन्न होती है, [298] जो उदासीनता से युक्त होती है और श्रव्य वस्तु को धारण करती है; नाक की चेतना उत्पन्न होती है, जो उदासीनता से युक्त होती है और सुगंधित वस्तु को धारण करती है; जीभ की चेतना उत्पन्न होती है, जो उदासीनता से युक्त होती है और स्वादयुक्त वस्तु को धारण करती है; शरीर की चेतना उत्पन्न होती है, जो सुख से युक्त होती है और स्पर्शनीय वस्तु को धारण करती है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; सुख होता है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक शक्ति होती है; सुख की नियंत्रक शक्ति होती है; प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति होती है; या उस समय जो भी अन्य आश्रित रूप से उत्पन्न अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (पदनाम) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी — प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ, उचित संशोधनों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

734. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: :PX : ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा के तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, परिणामी मन तत्व उत्पन्न होता है, जो उदासीनता से युक्त होता है, जिसमें दृश्य वस्तु होती है, :P 2 : मूर्त वस्तु होती है या जो भी (वस्तु) से संबंधित होता है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक अनुप्रयोग होता है; निरंतर अनुप्रयोग होता है; उदासीनता होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक क्षमता होती है; उदासीनता की नियंत्रक क्षमता होती है; प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक क्षमता होती है; या उस समय जो भी अन्य आश्रित रूप से उत्पन्न गैर-भौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (पदनाम) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन्हें जानता है

इस प्रकार, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", इन ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी 1 = परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

पृष्ठ 2 — मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

735. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा के तल पर अभिलाषाओं के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, मानसिक आनंद से युक्त, दृश्य वस्तु, वैचारिक वस्तु या किसी भी (वस्तु) से संबंधित परिणामी मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक क्रिया होती है; निरंतर क्रिया होती है; उत्साह होता है; आनंद होता है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक शक्ति होती है; मानसिक आनंद की नियंत्रक शक्ति होती है; प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति होती है; या उस समय जो भी अन्य आश्रित रूप से उत्पन्न अभौतिक अवस्थाएँ हों; [299] ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को जानता है, इस प्रकार, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

736. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, परिणामस्वरूप मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है, जो उदासीनता से युक्त होता है, जिसका प्रत्यक्ष विषय होता है, वैचारिक विषय होता है या जो भी (विषय) से संबंधित होता है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक क्रिया होती है; निरंतर क्रिया होती है; उदासीनता होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक शक्ति होती है; उदासीनता की नियंत्रक शक्ति होती है; या उस समय जो भी अन्य आश्रित रूप से उत्पन्न अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ हैं

396

विश्लेषण की पुस्तक

न अच्छा न बुरा। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं" 5, (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P — मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

737. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब इच्छा तल के अनुरूप अच्छे कर्म करने और उन्हें संचित करने के बाद, ज्ञान से संबंधित मानसिक सुख के साथ परिणामी मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है। rP 1: ज्ञान से संबंधित मानसिक सुख के साथ, उत्तेजना सहित। : P 1: ज्ञान से असंबद्ध मानसिक सुख के साथ। :PX: ज्ञान से असंबद्ध मानसिक सुख के साथ, उत्तेजना सहित। : P 1: ज्ञान से संबंधित

उदासीनता के साथ। : P 1: ज्ञान से संबंधित उदासीनता के साथ, उत्तेजना सहित। :P*: ज्ञान से असंबद्ध उदासीनता के साथ। : P 1: ज्ञान से असंबद्ध उदासीनता के साथ, उत्तेजना सहित, दृश्य वस्तु के साथ। :P 2: वैचारिक वस्तु या किसी भी (वस्तु) से संबंधित; उस समय संपर्क होता है।

पृष्ठ 3: इसमें अविचलता है। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी।
इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं 55, (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

पृष्ठ 2 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ। पृष्ठ 3 — देखें धस. पैरा 1।

738. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं न बुरी? जिस समय वह रूप के तल में पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, वह, इससे विरक्त होकर

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

397

इंद्रिय सुखों से मुक्त होकर, वह पृथ्वी तत्व के प्रथम ध्यान में लीन होकर उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है; :P 2 : अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। उसी अच्छे कर्म को करने और संचित करने के बाद, जो रूप के तल की विशेषता है, वह इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, :P 1 : परिणामी पृथ्वी तत्व के प्रथम ध्यान में लीन होकर उसमें निवास करता है; उस समय संपर्क होता है; :P 2 : अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; [300] वह ज्ञान जिसके द्वारा वह इन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी^पैरा देखें. 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 1.

739. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी? जब वह निराकार तल पर पुनर्जन्म का मार्ग विकसित करता है, तो सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर लेता है, :P 1: वह चौथे ध्यान में प्राप्त होता है और उसमें निवास करता है, साथ ही उस अवस्था का बोध भी करता है जो न तो बोध है और न ही अबोध; उस समय संपर्क होता है, :P 2: अविचल होता है। ये अवस्थाएँ अच्छी

हैं। निराकार तल के समान अच्छे कर्मों को करने और संचित करने के बाद, वह सुख का त्याग करके पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार कर लेता है, :P 1: परिणामी चौथे ध्यान में प्राप्त होता है और उसमें निवास करता है, साथ ही उस अवस्था का बोध भी करता है जो न तो बोध है और न ही अबोध; उस समय संपर्क होता है, :P 2: अविचल होता है। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (पदनाम) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी^पैरा देखें. 205, पी 2 = डीएचएस देखें। पैरा. 1.

740. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन से राज्य न अच्छे हैं और न बुरे? उस समय जब वह

398

विश्लेषण की पुस्तक

वह आध्यात्मिक ध्यान विकसित करता है जो मुक्ति की ओर अग्रसर होता है, निरंतर पुनर्जन्म और मृत्यु के चक्र को विदारक करता है; वह, गलत दृष्टिकोण का त्याग करके, प्रथम अवस्था में प्रवेश करने के लिए, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है; उस समय संपर्क होता है, और अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ अच्छी हैं। ऐसा करने के बाद, उसी अच्छे आध्यात्मिक ध्यान को विकसित करने के बाद, वह, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, परिणामी प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, जो कठिन अभ्यास, धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है और निःसंकोच है; उस समय संपर्क होता है, और अविचलितता होती है। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (पदनाम) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

पी एक्स = पैरा देखें। 205. पी 2 = ध्स देखें। पैरा. 277.

741. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। [301]

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब बुरे कर्म करने और उनका संचय करने के बाद, दृष्टिहीनता के साथ दृश्य वस्तु को देखते हुए नेत्र चेतना उत्पन्न होती है; श्रवण वस्तु को देखते हुए उदासीन कान चेतना उत्पन्न होती है; गंधयुक्त वस्तु को देखते हुए उदासीन नाक चेतना उत्पन्न होती है; स्वादयुक्त वस्तु को देखते हुए उदासीन जीभ चेतना उत्पन्न होती है; स्पर्शनीय वस्तु को देखते हुए पीड़ादायक शरीर चेतना उत्पन्न होती है; उस समय संपर्क होता है; संवेदना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; पीड़ा होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन का नियंत्रक बल होता है; पीड़ा का नियंत्रक बल होता है; प्राण का नियंत्रक बल होता है; या उस समय उत्पन्न होने वाली अन्य कोई भी अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा उन राज्यों को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को जानता है।

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

399

अतः, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", इन ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P = प्रत्येक को इस पैराग्राफ के समान परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ, उचित संशोधनों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

742. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? जब बुरे कर्म करने और उनका संचय करने के बाद, परिणामस्वरूप मन का तत्व उत्पन्न होता है, जो उदासीनता से युक्त होता है, और जिसका दृश्य वस्तु होता है (PJ): मूर्त वस्तु; P2: मन-चेतना का तत्व उत्पन्न होता है, जो उदासीनता से युक्त होता है, और जिसका दृश्य वस्तु होता है (P1): वैचारिक वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित होता है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक क्रिया होती है; निरंतर क्रिया होती है; उदासीनता होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; मन की नियंत्रक शक्ति होती है; उदासीनता की नियंत्रक शक्ति होती है; प्राणिक शक्ति की नियंत्रक शक्ति होती है; या उस समय जो भी अन्य आश्रित रूप से उत्पन्न अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन राज्यों को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P x = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

P 2 = दोनों तत्वों को एक ही परिचयात्मक और समापन अनुभागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

4. निष्क्रिय अनुभाग

743. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं न बुरी? उस समय जब मन का वह तत्व उत्पन्न होता है जो निष्क्रिय होता है, न अच्छा, न बुरा, न ही किसी क्रिया का परिणाम, उदासीनता के साथ, [302] दृश्य वस्तु के साथ, :P: मूर्त वस्तु या जो भी (वस्तु) से संबंधित हो; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक अवस्था होती है।

400

विश्लेषण की पुस्तक

अनुप्रयोग; निरंतर अनुप्रयोग; उदासीनता; चेतना की एकाग्रता; मन की नियंत्रक शक्ति; उदासीनता की नियंत्रक शक्ति; प्राणिक शक्ति की नियंत्रक शक्ति; या उस समय उत्पन्न होने वाली अन्य कोई भी अभौतिक अवस्थाएँ। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाशास्त्र जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को परिभाषित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषाशास्त्रीय परिभाषा का ज्ञान भाषाशास्त्र की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह इन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

744. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं और न बुरी? उस समय जब निष्क्रिय, न अच्छी, न बुरी और न ही किसी क्रिया का परिणाम, मानसिक सुख से युक्त, दृश्य वस्तु वाली, iP 1: वैचारिक वस्तु, :P 2: निष्क्रिय, न अच्छी, न बुरी और न ही किसी क्रिया का परिणाम, उदासीनता से युक्त, दृश्य वस्तु वाली, :PX: वैचारिक वस्तु या किसी भी (वस्तु) से संबंधित अवस्था उत्पन्न होती है; उस समय संपर्क होता है; भावना होती है; बोध होता है; इच्छाशक्ति होती है; चेतना होती है; प्रारंभिक क्रिया होती है; निरंतर क्रिया होती है; उदासीनता होती है; चेतना की एकाग्रता होती है; ऊर्जा का नियंत्रक बल होता है; एकाग्रता का नियंत्रक बल होता है; मन का नियंत्रक बल होता है; उदासीनता का नियंत्रक बल होता है; प्राणिक सिद्धांत का नियंत्रक बल होता है; या उस समय उत्पन्न होने वाली कोई अन्य अभौतिक अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम का विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा इन अवस्थाओं को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह इन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

P 1 = मध्यवर्ती इंद्रिय वस्तुएँ।

P 2 = दोनों तत्वों को समान परिचयात्मक और समापन खंडों के साथ पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन मानसिक आनंद के लिए उपयुक्त संशोधनों के साथ।

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

401

745. तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

कौन सी अवस्थाएँ न अच्छी हैं न बुरी? जब मन-चेतना-तत्व उत्पन्न होता है जो निष्क्रिय होता है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही किसी क्रिया का परिणाम है, और मानसिक सुख से युक्त होता है, तथा ज्ञान से जुड़ा होता है। :PX : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से संबंधित, और उत्तेजना से युक्त। ; P 1 : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से रहित। : P 1 : मानसिक सुख से युक्त, ज्ञान से रहित, और उत्तेजना से युक्त।

पी 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ। : पी 1 :
उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ, उत्तेजना के साथ। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं। : P 1 : उदासीनता के साथ, ज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं, उत्तेजना के साथ। : P 1 : रूप तल के विशिष्ट ध्यान का विकास करता है। : P 1 : निराकार तल के विशिष्ट ध्यान का विकास करता है जो निष्क्रिय है, न अच्छा है, न बुरा है, न ही कर्म का परिणाम है, (वर्तमान अस्तित्व में) सुखद जीवन का कारण है, वह, सुख का त्याग करके, शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर चुका है, : P 2 : चौथे ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, उस अवस्था की अनुभूति के साथ जो न तो अनुभूति है और न ही अअनुभूति; उस समय संपर्क होता है, : P 3 : अविचल होता है। ये अवस्थाएँ न अच्छी हैं, न बुरी। इन अवस्थाओं का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; [303] वह भाषाविज्ञान जिसके द्वारा उन राज्यों को नामित किया जाता है; उस (नामकरण) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; वह ज्ञान जिसके द्वारा वह उन ज्ञानों को इस प्रकार जानता है, "ये ज्ञान इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं", (इन) ज्ञानों का ज्ञान ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है।

प्रत्येक भाग को उसके उपयुक्त परिचयात्मक और समापन भागों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। भाग 2 = पैराग्राफ 205 देखें। भाग 3 == डीएचएस पैराग्राफ 1 देखें।

746. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ चेतना के चार प्रकारों में उत्पन्न होती हैं, जो इच्छा के तल की विशेषता वाली अच्छी अवस्थाओं से प्राप्त ज्ञान से संबंधित हैं, और साथ ही निष्क्रिय अवस्थाओं से प्राप्त ज्ञान से संबंधित चेतना के चार प्रकारों में भी। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि भी इनमें और चारों मार्गों और चारों फलों में उत्पन्न होती है।

(यहाँ समाप्त होता है) अभिधम्म के अनुसार विश्लेषण

402

विश्लेषण की पुस्तक

3. पूछताछ

747. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं: परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि।

748. चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों में से कितनी अच्छी हैं; कितनी बुरी हैं; और कितनी न अच्छी हैं न बुरी? :P: कितनी ऐसी हैं जिन पर शोक करने का कारण है; और कितनी ऐसी हैं जिन पर शोक करने का कोई कारण नहीं है?

P = शेष उपयुक्त त्रिक और युग्मक।

1. त्रिक

749. (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कभी अच्छी होती हैं; कभी न अच्छी होती हैं, न बुरी। कभी सुखद अनुभूति से जुड़ी होती हैं; कभी पीड़ादायक, न सुखद अनुभूति से जुड़ी होती हैं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं; कभी न परिणाम उत्पन्न करती हैं, न परिणाम उत्पन्न करती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी परिणाम उत्पन्न करती है; कभी परिणाम उत्पन्न करती है; कभी न परिणाम उत्पन्न करती है, न परिणाम उत्पन्न करती है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) ग्रहण नहीं की जा सकतीं, वे आसक्ति का विषय होती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी ग्रहण नहीं की जा सकती, वह आसक्ति का विषय होती है; कभी ग्रहण नहीं की जा सकती, वह आसक्ति का विषय नहीं होती। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ न तो भ्रष्ट होती हैं, न ही भ्रष्टता का विषय होती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी भ्रष्ट नहीं होती, वह भ्रष्टता का विषय होती है; कभी भ्रष्ट नहीं होती, वह भ्रष्टता का विषय नहीं होती।

तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग के साथ आती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग के साथ आती है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ आती है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना आती है। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कभी-कभी उत्साह के साथ आती हैं; कभी-कभी आनंद के साथ आती हैं; कभी-कभी उदासीनता के साथ आती हैं। इन्हें न तो पहले मार्ग से और न ही बाद के मार्गों से छोड़ा जाना चाहिए। इनकी कोई जड़ नहीं है जिसे पहले मार्ग से या बाद के मार्गों से छोड़ा जा सके।

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

403

तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ कभी-कभी संचयी होती हैं (लगातार पुनर्जन्म और मृत्यु की); कभी-कभी न तो संचयी होती हैं और न ही विक्षेपी। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि [304] कभी-कभी संचयी होती है; कभी-कभी विक्षेपी होती है; कभी-कभी न तो संचयी होती है और न ही विक्षेपी।

तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ न तो सात अलौकिक अवस्थाओं की हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था की। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी सात अलौकिक अवस्थाओं की होती है; कभी-कभी अंतिम अलौकिक अवस्था की होती है; कभी-कभी न तो सात अलौकिक अवस्थाओं की होती है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था की। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ निम्न स्तर की हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी निम्न स्तर की होती है; कभी-कभी असीम होती है। भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का उद्देश्य निम्न होता है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का उद्देश्य कभी-कभी निम्न स्तर का होता है; कभी-कभी उदात्त होता है; कभी-कभी असीम होता है।

तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ मध्यवर्ती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी मध्यवर्ती होती है; कभी श्रेष्ठ होती है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी निश्चित

(परिणामी समय) के साथ सही (अवस्था) होती है; कभी निश्चित (परिणामी समय) नहीं होती। भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि पथ उसका उद्देश्य है, पथ उसका कारण है या पथ उसका प्रमुख कारक है। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का पथ उसका उद्देश्य नहीं है; कभी पथ उसका कारण है; कभी पथ उसका प्रमुख कारक है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि पथ उसका कारण है या पथ उसका प्रमुख कारक है। दो विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का पथ कभी-कभी उनका उद्देश्य होता है; पथ उनका कारण नहीं होता; कभी-कभी पथ उनका प्रमुख कारक होता है; कभी-कभी यह नहीं कहा जा सकता कि पथ उनका उद्देश्य है या पथ उनका प्रमुख कारक है।

तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ कभी उत्पन्न होती हैं; कभी उत्पन्न नहीं होतीं; इन्हें उत्पन्न होना अनिवार्य नहीं कहा जाना चाहिए। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी उत्पन्न होती है; कभी उत्पन्न नहीं होती; कभी उत्पन्न होना अनिवार्य है। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कभी भूतकाल होती हैं; कभी भविष्यकाल होती हैं; कभी वर्तमानकाल होती हैं। भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का वर्तमान कर्म होता है। दो विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का कभी भूतकाल कर्म होता है; कभी भविष्यकाल कर्म होता है; कभी वर्तमान कर्म होता है। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का कभी भूतकाल कर्म होता है; कभी भविष्यकाल कर्म होता है; कभी वर्तमान कर्म होता है; कभी-कभी इन्हें भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान कर्म होना अनिवार्य नहीं कहा जाना चाहिए। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कभी-कभी 16+

404

विश्लेषण की पुस्तक

आंतरिक; कभी-कभी बाह्य; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों। भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का बाह्य उद्देश्य होता है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का कभी-कभी आंतरिक उद्देश्य होता है; कभी-कभी बाह्य उद्देश्य होता है; कभी-कभी आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य होते हैं। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) दृश्यमान नहीं हैं, आक्षेपकारी नहीं हैं।

2. दोहे

750. (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) मूल हैं। मूलों के साथ हैं। मूलों से जुड़े हैं। क्या मूल भी मूलों के साथ हैं। क्या मूल भी मूलों से जुड़े हैं। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे मूल नहीं हैं, मूलों के साथ हैं या मूल नहीं हैं, मूलों के साथ नहीं हैं।

(चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कारण सहित होती हैं। परिस्थितिजन्य होती हैं। अदृश्य होती हैं। आकस्मिक होती हैं। भौतिक नहीं होतीं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ सांसारिक होती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी सांसारिक होती है; कभी अलौकिक होती है। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) एक तरीके से बोधगम्य होती हैं; दूसरे तरीके से बोधगम्य नहीं होतीं।

(चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) दोष नहीं हैं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ दोषों के विषय हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी दोष का विषय होती है; कभी-कभी दोष का विषय नहीं होती। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) दोषों से संबंधित नहीं हैं। [305] तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (वे) दोषों का विषय हैं लेकिन दोष नहीं हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि को दोष और दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए; (यह) दोषों का विषय है लेकिन दोष नहीं है; कभी-कभी इसे दोषों का विषय नहीं कहा जाना चाहिए लेकिन दोष नहीं है। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) दोषों से संबंधित नहीं कही जानी चाहिए या दोषों से संबंधित लेकिन दोष नहीं हैं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ अपवित्रताओं से संबंधित नहीं हैं, बल्कि

अपवित्रताओं का विषय हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी अपवित्रताओं से संबंधित नहीं होती, बल्कि अपवित्रताओं का विषय होती है; कभी-कभी अपवित्रताओं से संबंधित नहीं होती, बल्कि अपवित्रताओं का विषय नहीं होती।

(चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) बंधन नहीं हैं। : P : बंधन नहीं हैं।

पी: बाढ़ नहीं हैं। पी: बंधन नहीं हैं। पी: बाधाएँ नहीं हैं। पी:

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण

405

विकृतियाँ नहीं हैं। इनके उद्देश्य होते हैं। ये चेतना नहीं हैं। ये मानसिक सहवर्ती हैं। ये चेतना से संबद्ध हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं। ये चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना के साथ रहते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ सह-अस्तित्व में हैं। ये चेतना से जुड़े हुए हैं, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ रहते हैं। ये बाह्य हैं। ये व्युत्पन्न नहीं हैं। इन्हें समझा नहीं जा सकता।

P = पिछले पैराग्राफ में वर्णित अपवित्रताओं के अनुसार पूर्ण।

(चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) आसक्ति नहीं हैं। :P: विकृतियाँ नहीं हैं। :P: प्रथम मार्ग द्वारा त्यागी नहीं जानी चाहिए। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागी नहीं जानी चाहिए। प्रथम मार्ग द्वारा त्यागी जाने वाली कोई जड़ नहीं है। अनुवर्ती मार्गों द्वारा त्यागी जाने वाली कोई जड़ नहीं है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होती है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना होती है। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ निरंतर अनुप्रयोग के साथ होती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होती है; कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के बिना होती है। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) कभी उत्साह के साथ होती हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होती हैं; कभी-कभी उत्साह के साथ होती हैं; कभी-कभी उत्साह के बिना होती हैं। कभी-कभी आनंद के साथ होती हैं; कभी-कभी आनंद के बिना होती हैं। कभी-कभी उदासीनता के साथ होती हैं; कभी-कभी उदासीनता के बिना होती हैं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ इच्छा के तल की विशेषता हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी इच्छा के तल की विशेषता होती है; कभी-कभी यह इच्छा के तल की विशेषता नहीं होती। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) रूप के तल की विशेषता नहीं होतीं। निराकार तल की विशेषता नहीं होतीं। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ शामिल हैं (अर्थात सांसारिक हैं)। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी शामिल होती है (अर्थात सांसारिक होती है); कभी-कभी शामिल नहीं होती (अर्थात अलौकिक होती है)। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं होतीं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी मुक्ति की ओर प्रवृत्त होती है; कभी-कभी मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं होती। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं होता। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) की होती है; कभी-कभी निश्चित (परिणामी समय) की नहीं होती। तीन विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ पार की जा सकती हैं। परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि कभी-कभी

406

विश्लेषण की पुस्तक

कभी-कभी इसे पार किया जा सकता है; कभी-कभी इसे पार नहीं किया जा सकता। (चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ) शोक का कोई कारण नहीं हैं।

P = पहले के पैराग्राफ में वर्णित दोषों के समान पूर्ण।

(यहाँ समाप्त होता है) पूछताछ

विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि का विश्लेषण समाप्त हो गया है।
तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 16 पाठ - नाना सं. ज्ञान
विभंग-विश्लेषण की पुस्तक-गोतम बुद्ध द्वारा बोली गई
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थिटिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 16. ज्ञान का विश्लेषण (नाना संस्कृत ज्ञान)

1. एकल-पृष्ठ सारांश

751. [306] एकल विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार: पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतनाएँ मूल नहीं हैं; मूलों के साथ नहीं हैं; मूलों से संबद्ध नहीं हैं; कारण के साथ हैं; वातानुकूलित हैं; भौतिक नहीं हैं; सांसारिक हैं; दोषों की वस्तुएँ हैं; बंधनों की वस्तुएँ हैं; बाढ़ की वस्तुएँ हैं; बंधनों की वस्तुएँ हैं; बाधाओं की वस्तुएँ हैं; विकृतियों की वस्तुएँ हैं; आसक्ति की वस्तुएँ हैं; भ्रष्टाचार की वस्तुएँ हैं; न-अच्छी-न-बुरी हैं; वस्तुएँ हैं; मानसिक सहवर्ती नहीं हैं; परिणाम हैं; (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) पकड़ी जाती हैं, आसक्ति की वस्तुएँ हैं; भ्रष्ट नहीं हैं, भ्रष्टाचार की वस्तुएँ हैं; * प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ नहीं हैं, निरंतर अनुप्रयोग के साथ हैं 9; 'प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग' नहीं हैं; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना हैं; उत्साह के साथ नहीं हैं; न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य; न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात मार्गों से त्यागे जाने योग्य कोई जड़; न तो संचयी और न ही विक्षेपी (सतत पुनर्जन्म और मृत्यु के); [307] न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के; निम्न हैं; इच्छा के तल की विशेषता हैं; रूप के तल की विशेषता नहीं हैं; निराकार तल की विशेषता नहीं हैं; समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं); 'समाहित नहीं' हैं (अर्थात अलौकिक नहीं हैं); कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है; मुक्त करने की प्रवृत्ति नहीं रखते।

(इंद्रिय चेतना के पाँच प्रकार) इनके आधार उत्पन्न होते हैं; इनके विषय उत्पन्न होते हैं; इनके पूर्व-अस्तित्व वाले आधार होते हैं; इनके पूर्व-अस्तित्व वाले विषय होते हैं; इनके आंतरिक आधार होते हैं; इनके बाहरी विषय होते हैं; इनके अविघटित आधार होते हैं; इनके अविघटित विषय होते हैं; इनके विभिन्न आधार होते हैं; इनके विभिन्न विषय होते हैं; ये एक दूसरे के विषय का अनुभव नहीं करते; ये बिना ध्यान दिए उत्पन्न नहीं होते; ये बिना ध्यान दिए उत्पन्न नहीं होते; ये क्रमिक रूप से उत्पन्न नहीं होते, ये एक साथ उत्पन्न नहीं होते; ये एक दूसरे के तुरंत बाद उत्पन्न नहीं होते।

408

विश्लेषण की पुस्तक

पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना संज्ञानात्मक नहीं है; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति केवल वस्तु के प्रवेश (अर्थात, प्रवेश) के अलावा किसी भी अवस्था में भेद नहीं कर पाता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति किसी भी अवस्था में भेद नहीं कर पाता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति कोई भी मुद्रा नहीं बनाता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति कोई भी मुद्रा नहीं बनाता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति कोई भी शारीरिक क्रिया या मौखिक क्रिया स्थापित नहीं करता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति कोई भी शारीरिक क्रिया या मौखिक क्रिया स्थापित नहीं करता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति कोई भी अच्छी या बुरी अवस्था नहीं करता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति कोई भी अच्छी या बुरी अवस्था नहीं करता; [308] पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति एकाग्रता से प्राप्त नहीं होता, उत्पन्न नहीं होता; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति का नाश नहीं होता, वह उत्पन्न नहीं होता (अर्थात, उसका पुनर्जन्म नहीं होता); पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति न तो मरता है, न ही जन्म लेता है; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से न तो नींद आती है, न जागता है, न ही सपने आते हैं; पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति न तो सोता है, न जागता है, न ही सपने देखता है; ज्ञान के आधार की सच्ची प्रकृति की व्याख्या ही ज्ञान है। इस प्रकार एक प्रकार के विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार बनता है।

2. दो भागों में सारांश

752. ज्ञान का दो भागों में विभाजन: सांसारिक ज्ञान; अलौकिक ज्ञान। एक मार्ग से बोधगम्य ज्ञान; दूसरे मार्ग से बोधगम्य न होने वाला ज्ञान। दोषों से संबंधित ज्ञान; दोषों से असंबंधित ज्ञान। दोषों से असंबद्ध ज्ञान, दोषों का विषय है; दोषों से असंबद्ध ज्ञान, दोषों का विषय नहीं है। बंधनों से संबंधित ज्ञान; बंधनों से असंबद्ध ज्ञान। बंधनों से असंबद्ध ज्ञान, बंधनों का विषय है; बंधनों से असंबद्ध ज्ञान, बंधनों का विषय नहीं है। बंधनों से संबंधित ज्ञान; बंधनों से असंबद्ध ज्ञान।

ज्ञान का विश्लेषण

409

जो ज्ञान संबंधों से जुड़ा होता है, वही संबंधों का विषय होता है; जो ज्ञान संबंधों से जुड़ा नहीं होता, वह संबंधों का विषय नहीं होता।

वह ज्ञान जो बाढ़ का विषय है; वह ज्ञान जो बाढ़ का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय है; वह ज्ञान जो बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो बंधनों का विषय है; वह ज्ञान जो बंधनों का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो बंधनों से संबंधित नहीं है, बंधनों का विषय है; वह ज्ञान जो बंधनों से संबंधित नहीं है, बंधनों का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो बाधाओं का विषय है; वह ज्ञान जो बाधाओं का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो बाधाओं से संबंधित नहीं है, बाधाओं का विषय है; वह ज्ञान जो बाधाओं से संबंधित नहीं है, बाधाओं का विषय नहीं है। [309] वह ज्ञान जो विकृतियों का विषय है; वह ज्ञान जो विकृतियों का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो विकृतियों से संबंधित नहीं है, विकृतियों का विषय है; वह ज्ञान जो विकृतियों से जुड़ा नहीं है, विकृतियों का विषय नहीं होता। वह ज्ञान जो ग्रहण किया जा सकता है; वह ज्ञान जो ग्रहण नहीं किया जा सकता। वह ज्ञान जो आसक्ति का विषय है; वह ज्ञान जो आसक्ति

का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो आसक्ति से जुड़ा नहीं है, आसक्ति का विषय है; वह ज्ञान जो आसक्ति से जुड़ा नहीं है, आसक्ति का विषय नहीं है।

वह ज्ञान जो विकारों का विषय है; वह ज्ञान जो विकारों का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो विकारों से संबद्ध नहीं है, विकारों का विषय है; वह ज्ञान जो विकारों से संबद्ध नहीं है, विकारों का विषय नहीं है। वह ज्ञान जो प्रारंभिक अभ्यास से युक्त है; वह ज्ञान जो प्रारंभिक अभ्यास से रहित है। वह ज्ञान जो निरंतर अभ्यास से युक्त है; वह ज्ञान जो निरंतर अभ्यास से रहित है। वह ज्ञान जो उत्साह से युक्त है; वह ज्ञान जो उत्साह से रहित है। वह ज्ञान जो उत्साह से युक्त है; वह ज्ञान जो उत्साह से युक्त नहीं है। वह ज्ञान जो आनंद से युक्त है; वह ज्ञान जो आनंद से युक्त नहीं है। वह ज्ञान जो उदासीनता से युक्त है; वह ज्ञान जो उदासीनता से युक्त नहीं है। वह ज्ञान जो इच्छा के तल की विशेषता है; वह ज्ञान जो इच्छा के तल की विशेषता नहीं है। वह ज्ञान जो रूप के तल की विशेषता है; वह ज्ञान जो रूप के तल की विशेषता नहीं है। वह ज्ञान जो निराकार तल की विशेषता है; वह ज्ञान जो निराकार जगत की विशेषता नहीं है।

वह ज्ञान जो समाहित है (अर्थात सांसारिक है); वह ज्ञान जो समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है)। वह ज्ञान जो मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; वह ज्ञान जो मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। वह ज्ञान जिसका (परिणामी समय) निश्चित है; वह ज्ञान जिसका (परिणामी समय) निश्चित नहीं है। वह ज्ञान जो पार किया जा सकता है; वह ज्ञान जो पार नहीं किया जा सकता है। वह ज्ञान जो परिणाम का कारण है; वह ज्ञान जो कारण का परिणाम है। इस प्रकार दोहरे विभाजन के माध्यम से ज्ञान का आधार है। [310]

3. त्रिगुणात्मक सारांश

753. ज्ञान का त्रिविध विभाजन: चिंतन द्वारा प्राप्त ज्ञान; श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान; विकास द्वारा प्राप्त ज्ञान; दान द्वारा प्राप्त ज्ञान; नैतिकता द्वारा प्राप्त ज्ञान; विकास द्वारा प्राप्त ज्ञान; उच्चतर नैतिकता में निहित ज्ञान; उच्चतर चेतना में निहित ज्ञान; उच्चतर ज्ञान में निहित ज्ञान। (ज्ञान में) निपुणता से लाभ; (ज्ञान में) निपुणता से हानि; विधि की निपुणता। परिणाम उत्पन्न करने वाला ज्ञान; परिणाम उत्पन्न न करने वाला ज्ञान; परिणाम उत्पन्न न करने वाला ज्ञान। ग्रहण किया गया ज्ञान आसक्तियों का विषय है; ग्रहण न किया गया ज्ञान आसक्तियों का विषय है; ग्रहण न किया गया ज्ञान आसक्तियों का विषय नहीं है। प्रारंभिक अभ्यास से प्राप्त ज्ञान, निरंतर अभ्यास से प्राप्त ज्ञान; प्रारंभिक अभ्यास के बिना केवल निरंतर अभ्यास से प्राप्त ज्ञान; प्रारंभिक अभ्यास के बिना निरंतर अभ्यास के बिना ज्ञान।

उत्साह से युक्त ज्ञान; आनंद से युक्त ज्ञान; उदासीनता से युक्त ज्ञान। संचयी ज्ञान; विक्षेपी ज्ञान; न संचयी और न विक्षेपी ज्ञान। सात अलौकिक अवस्थाओं का ज्ञान; अंतिम अलौकिक अवस्था का ज्ञान; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का ज्ञान। निम्न स्तर का ज्ञान; उदात्त ज्ञान; असीम ज्ञान। निम्न विषय वाला ज्ञान; उदात्त विषय वाला ज्ञान; असीम विषय वाला ज्ञान। पथ को विषय मानकर चलने वाला ज्ञान; पथ को कारण मानकर चलने वाला ज्ञान; पथ को प्रमुख कारक मानकर चलने वाला ज्ञान। उत्पन्न ज्ञान; उत्पन्न न होने वाला ज्ञान; उत्पन्न होने के लिए बाध्य ज्ञान। भूतकाल का ज्ञान; भविष्यकाल का ज्ञान; वर्तमान काल का ज्ञान। [311] भूतकाल विषय वाला ज्ञान;

411

वह ज्ञान जिसका भविष्य काल निर्धारित है; वह ज्ञान जिसका वर्तमान काल निर्धारित है। वह ज्ञान जो आंतरिक है; वह ज्ञान जो बाह्य है; वह ज्ञान जो आंतरिक और बाह्य दोनों है। वह ज्ञान जिसका आंतरिक कर्म निर्धारित है; वह ज्ञान जिसका बाह्य कर्म निर्धारित है; वह ज्ञान जिसका आंतरिक और बाह्य दोनों कर्म निर्धारित हैं।

प्रारंभिक अभ्यास से प्राप्त ज्ञान, निरंतर अभ्यास से प्राप्त परिणामदायी ज्ञान; परिणाम उत्पन्न करने वाला ज्ञान; या न तो परिणाम उत्पन्न करने वाला ज्ञान। जो ज्ञान ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ज्ञान ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ज्ञान ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। उत्साह से प्राप्त ज्ञान; आनंद से प्राप्त ज्ञान; उदासीनता से प्राप्त ज्ञान। संचयी ज्ञान; विक्षेपी ज्ञान; न संचयी ज्ञान और न ही विक्षेपी ज्ञान। सात अलौकिक अवस्थाओं का ज्ञान; अंतिम अलौकिक अवस्था का ज्ञान; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का ज्ञान और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का ज्ञान। निम्न स्तर का ज्ञान; उदात्त स्तर का ज्ञान; असीम स्तर का ज्ञान। मार्ग को अपना विषय बनाना; मार्ग को अपना कारण बनाना; मार्ग को अपना प्रमुख कारक बनाना। उत्थान प्राप्त ज्ञान। जो उत्पन्न नहीं हुआ है; जो उत्पन्न होना ही है। [312] वह भूतकाल है; वह भविष्यकाल है; वह वर्तमानकाल है। उसका भूतकाल कर्म है; उसका भविष्यकाल कर्म है; उसका वर्तमान कर्म है। वह आंतरिक है; वह बाह्य है; वह आंतरिक और बाह्य दोनों है। उसका आंतरिक कर्म है; उसका बाह्य कर्म है; उसका आंतरिक और बाह्य दोनों कर्म हैं।

बिना आरंभिक अभ्यास के, केवल निरंतर अभ्यास से प्राप्त ज्ञान ही परिणामदायी होता है; जो परिणाम उत्पन्न करता है; जो न तो परिणाम उत्पन्न करता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। जो ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं होता। जो संचयी होता है; जो विक्षेपी होता है; जो न तो संचयी होता है और न ही विक्षेपी। जो सात अलौकिक अवस्थाओं का होता है; जो अंतिम अलौकिक अवस्था का होता है; जो न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का होता है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का। जो उदय हुआ है; जो उदय नहीं हुआ है; जो उदय होने के लिए बाध्य है। जो भूतकाल है; जो भविष्यकाल है; जो वर्तमान है। जो आंतरिक है; जो बाह्य है; जो आंतरिक और बाह्य दोनों है।

बिना आरंभिक अभ्यास के, बिना निरंतर अभ्यास के, जो ज्ञान परिणामित होता है; जो परिणाम उत्पन्न करता है; जो न तो परिणामित होता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। जो ज्ञान ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय होता है; जो ज्ञान ग्रहण नहीं किया जाता, वह भी आसक्तियों का विषय होता है; जो ज्ञान ग्रहण नहीं किया जाता, वह भी आसक्तियों का विषय नहीं होता।

412

विश्लेषण की पुस्तक

आर

उत्साह से युक्त; आनंद से युक्त; उदासीनता से युक्त। संचयी; विक्षेपी; न संचयी और न विक्षेपी। [313] सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक; अंतिम अलौकिक अवस्था में से एक; न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से एक और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में से

एक। निम्न विषय है; उदात्त विषय है; असीम विषय है। पथ को अपना विषय बनाना; पथ को अपना कारण बनाना; पथ को अपना प्रमुख कारक बनाना। उदय हुआ है; उदय नहीं हुआ है; उदय होना ही है। भूतकाल है; भविष्यकाल है; वर्तमान काल है। भूतकाल का विषय है; भविष्यकाल का विषय है; वर्तमान काल का विषय है। आंतरिक है; बाह्य है; आंतरिक और बाह्य दोनों है। आंतरिक विषय है; बाह्य विषय है; आंतरिक और बाह्य दोनों विषय हैं।

उत्साह से युक्त ज्ञान, परिणामी आनंद से युक्त ज्ञान; जो परिणाम उत्पन्न करता है; जो न तो परिणाम उत्पन्न करता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। जो ग्रहण किया जाता है, वह आसक्तियों का विषय है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय है; जो ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय नहीं है। जो प्रारंभिक अभ्यास से युक्त है, जो निरंतर अभ्यास से युक्त है; जो प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास से युक्त है; जो प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना है। जो संचयी है; जो विक्षेपी है; जो न तो संचयी है और न ही विक्षेपी है। जो सात अलौकिक अवस्थाओं का है; जो अंतिम अलौकिक अवस्था का है; जो न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का है। जो निम्न है; जो उदात्त है; जो अतुलनीय है। [314] जिसका निम्न विषय है; जिसका उदात्त विषय है; जिसका अतुलनीय विषय है। जिसका विषय पथ है; जिसका कारण पथ है; जिसमें पथ प्रमुख कारक है। जो उत्पन्न हुआ है; जो उत्पन्न नहीं हुआ है; जो उत्पन्न होना ही है। जो भूतकाल है; जो भविष्यकाल है; जो वर्तमान काल है। जिसका भूतकाल कर्म है; जिसका भविष्यकाल कर्म है; जिसका वर्तमान कर्म है। जो आंतरिक है; जो बाह्य है; जो आंतरिक और बाह्य दोनों है। जिसका आंतरिक कर्म है; जिसका बाह्य कर्म है; जिसका आंतरिक और बाह्य दोनों कर्म हैं।

वह ज्ञान जो उदासीनता से युक्त है, जो परिणाम उत्पन्न करता है; जो परिणाम उत्पन्न करता है; जो न तो परिणाम उत्पन्न करता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। जो ग्रहण किया जा सकता है, वह आसक्तियों का विषय है; जो ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह आसक्तियों का विषय है; जो ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह आसक्तियों का विषय नहीं है। जो संचयी है; जो विक्षेपी है; जो न तो संचयी है और न ही विक्षेपी है।

ज्ञान का विश्लेषण

413

सात अलौकिक अवस्थाओं में से; वह अंतिम अलौकिक अवस्था है; वह न तो सात अलौकिक अवस्थाओं में से है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था में। वह निम्न है; वह उदात्त है; वह असीम है। उसका निम्न उद्देश्य है; उसका उदात्त उद्देश्य है; उसका असीम उद्देश्य है। उसका मार्ग उद्देश्य है; उसका मार्ग कारण है; उसका मार्ग प्रमुख कारक है। [315] वह उत्पन्न हुआ है; वह उत्पन्न नहीं हुआ है; वह उत्पन्न होने के लिए बाध्य है। वह भूतकाल है; वह भविष्यकाल है; वह वर्तमान है। उसका भूतकाल उद्देश्य है; उसका भविष्यकाल उद्देश्य है; उसका वर्तमान उद्देश्य है। वह आंतरिक है; वह बाह्य है; वह आंतरिक और बाह्य दोनों है। उसका आंतरिक उद्देश्य है; उसका बाह्य उद्देश्य है; उसका आंतरिक और बाह्य दोनों उद्देश्य हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार है।

4. चार गुना सारांश

754. ज्ञान का आधार चार भागों में विभाजित है: यह ज्ञान कि कर्म स्वयं का अधिकार है; सत्य के अनुरूप ज्ञान; मार्ग का ज्ञान; फल का ज्ञान। दुख का ज्ञान; दुख के कारण का ज्ञान; दुख के निवारण का ज्ञान; दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान। इच्छा के तल का विशिष्ट ज्ञान; रूप के तल का विशिष्ट ज्ञान; निराकार तल का विशिष्ट ज्ञान; असंबद्ध ज्ञान (अर्थात् अलौकिक)। (अलौकिक) अवस्थाओं का ज्ञान; (उससे) प्राप्त होने वाला ज्ञान; भेदक ज्ञान; पारंपरिक ज्ञान। संचय के लिए ज्ञान है, फैलाव के लिए नहीं; फैलाव के लिए ज्ञान है, संचय के लिए नहीं; संचय और फैलाव दोनों के लिए ज्ञान है; ऐसा ज्ञान है जो न तो संचय के लिए है और न ही फैलाव के

लिए। घृणा के लिए ज्ञान है, बोध के लिए नहीं; [316] बोध के लिए ज्ञान है, घृणा के लिए नहीं; घृणा और ज्ञान प्राप्ति दोनों के लिए ज्ञान है; न तो घृणा के लिए ज्ञान है और न ही ज्ञान प्राप्ति के लिए। क्षय से संबंधित ज्ञान; स्थिरता से संबंधित ज्ञान; विशिष्टता से संबंधित ज्ञान; गहन ज्ञान।

चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ। चार अभ्यास। चार उद्देश्य। वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान; वृद्धावस्था और मृत्यु के कारण का ज्ञान; वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण का ज्ञान; वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान। जन्म का ज्ञान। :P: विकास का ज्ञान। :P: ज्ञान

414

विश्लेषण की पुस्तक

आसक्ति का ज्ञान। :P: लालसा का ज्ञान। :P: संवेदना का ज्ञान। :P: संपर्क का ज्ञान। :P: छह आधारों का ज्ञान। :P: मन और पदार्थ का ज्ञान। :P: चेतना का ज्ञान। :P: कर्मों का ज्ञान; कर्मों के कारण का ज्ञान; कर्मों के निवारण का ज्ञान; कर्मों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान। इस प्रकार ज्ञान का आधार चार भागों में विभाजित है।

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

5. पंचस्तरीय सारांश

755. ज्ञान का आधार पंचांगों में विभाजित है: सही एकाग्रता जिसमें पंचांग तत्व होते हैं; सही एकाग्रता जिसमें पंचांग ज्ञान होते हैं। इस प्रकार ज्ञान का आधार पंचांगों में विभाजित है।

6. छह गुना सारांश

756. छह प्रकार के विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार: छह उच्च ज्ञानों में ज्ञान। इस प्रकार छह प्रकार के विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार है। [317]

7. सात गुना सारांश

757. ज्ञान का आधार सात भागों में विभाजित: ज्ञान के सतहत्तर आधार। इस प्रकार ज्ञान का आधार सात भागों में विभाजित है।

8. आठ गुना सारांश

758. ज्ञान का आधार अष्टांग विभाजन द्वारा: चारों मार्गों और चारों फलों में ज्ञान। इस प्रकार अष्टांग विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार है।

9. नौ गुना सारांश

759. नौ भागों में विभाजित ज्ञान का आधार: उपलब्धियों में नौ क्रमिक निवासों में ज्ञान। इस प्रकार नौ भागों में विभाजित ज्ञान का आधार है।

ज्ञान का विश्लेषण

415

10. दस गुना सारांश

760. ज्ञान का आधार दस भागों में विभाजित है; तथागत की दस 'तथागत शक्तियाँ'; इन शक्तियों से युक्त तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; (शिक्षा के) सर्वोच्च चक्र को गतिमान करते हैं। ये दस शक्तियाँ क्या हैं? इसमें तथागत कारण को कारण के रूप में, कारण के अभाव को कारण के अभाव के रूप में समझते हैं; यह तथागत की एक 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गतिमान करते हैं। (1)

तथागत फिर से, कारण और मूल के रूप में, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान में किए गए कर्मों के परिणाम को यथावत समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत कारण और मूल के रूप में, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान में किए गए कर्मों के परिणाम को यथावत समझते हैं; यही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। (2)

तथागत फिर से, जैसा कि वह वास्तव में है, सभी (भाग्य) की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझते हैं; जिसके द्वारा तथागत जैसा कि वह वास्तव में है, सभी (भाग्य) की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझते हैं; यही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को घुमाते हैं। (3)

तथागत फिर से उस संसार को, जैसा वह वास्तव में है, अनेक तत्वों से युक्त, विभिन्न तत्वों से युक्त, भलीभांति समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत उस संसार को, जैसा वह वास्तव में है, अनेक तत्वों से युक्त, विभिन्न तत्वों से युक्त, भलीभांति समझते हैं; यही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गतिमान करते हैं। (4)

तथागत प्राणियों के विभिन्न स्वभावों को यथावत रूप में समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत प्राणियों के विभिन्न स्वभावों को यथावत रूप में समझते हैं; [318] यही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गतिमान करते हैं। (5)

तथागत फिर से दूसरों की नियंत्रण क्षमताओं में होने वाले सुधार और गिरावट को यथावत समझते हैं।

416

विश्लेषण की पुस्तक

अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की नियंत्रण शक्तियों में होने वाले सुधार और गिरावट को तथागत जिस प्रकार से समझते हैं, वह तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं, सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। (6)

तथागत फिर से, जैसा कि वास्तव में है, भ्रष्टाचार, शुद्धिकरण, ध्यान से उद्भव, मुक्ति, एकाग्रता और प्राप्ति को समझते हैं; जिसके द्वारा तथागत भ्रष्टाचार, शुद्धिकरण, ध्यान से उद्भव, मुक्ति, एकाग्रता और प्राप्ति को समझते हैं; यही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। (7)

तथागत फिर से पूर्व जन्म की स्मृति को यथावत रूप में समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत पूर्व जन्म की स्मृति को यथावत रूप में समझते हैं, वही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। (8)

तथागत प्राणियों के नश्वर जन्म और पुनर्जन्म को यथावत समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत प्राणियों के नश्वर जन्म और पुनर्जन्म को यथावत समझते हैं, वही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; और सर्वोच्च चक्र को गतिमान करते हैं। (9)

तथागत अशुद्धियों के नाश को यथावत रूप से समझते हैं; जिस शक्ति से तथागत अशुद्धियों के नाश को यथावत रूप से समझते हैं, वही तथागत की 'तथागत शक्ति' है। इसी शक्ति के कारण तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। ये तथागत की दस 'तथागत शक्तियाँ' हैं। इन्हीं शक्तियों से संपन्न होकर तथागत अग्रणी स्थान का दावा करते हैं; सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं; सर्वोच्च चक्र को गति प्रदान करते हैं। (10)

इस प्रकार दस गुना विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार बनता है।

(यहाँ सारांश समाप्त होता है)

[319]

ज्ञान का विश्लेषण

417

1. एकल-गुना प्रदर्शनी

761. पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतनाएँ हमेशा मूल नहीं होतीं; हमेशा मूलों के साथ नहीं होतीं; हमेशा मूलों से संबद्ध नहीं होतीं; हमेशा कारण से जुड़ी होती हैं; हमेशा वातानुकूलित होती हैं; हमेशा भौतिक नहीं होतीं; हमेशा सांसारिक होती हैं; हमेशा दोषों की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा बंधनों की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा बाढ़ की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा बंधनों की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा बाधाओं की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा विकृतियों की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा आसक्ति की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा भ्रष्टाचार की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा न तो अच्छी होती हैं और न ही बुरी; हमेशा वस्तुओं से युक्त होती हैं; हमेशा मानसिक सहवर्ती नहीं होतीं; हमेशा परिणाम होती हैं; हमेशा पकड़ी जाती हैं, आसक्ति की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा भ्रष्ट नहीं होतीं, भ्रष्टाचार की वस्तुएँ होती हैं; हमेशा 'प्रारंभिक प्रयोग के साथ नहीं होतीं, निरंतर प्रयोग के साथ होती हैं'; हमेशा 'प्रारंभिक प्रयोग के बिना, केवल निरंतर प्रयोग' नहीं होतीं; हमेशा 'प्रारंभिक प्रयोग के बिना, निरंतर प्रयोग के बिना' नहीं होतीं; हमेशा 'उत्साह के साथ नहीं होतीं'; वे न तो प्रथम मार्ग से और न ही पश्चात के मार्गों से परित्याग किए जा सकते हैं; वे न तो संचयी हैं और न ही विक्षेपणशील; वे न तो सात अलौकिक अवस्थाओं के हैं और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था के; वे निम्न हैं; वे इच्छा के तल के विशिष्ट हैं; वे रूप के तल के विशिष्ट नहीं हैं; वे निराकार तल के विशिष्ट नहीं हैं; वे समाहित हैं (अर्थात सांसारिक हैं); वे समाहित नहीं हैं (अर्थात अलौकिक नहीं हैं); उनका कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है; वे मुक्त होने की प्रवृत्ति नहीं रखते; उनका उद्‌भव मन चेतना द्वारा ज्ञात है; वे अनित्य हैं; वे वृद्धावस्था के अधीन हैं।

762. पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतना 'के आधार उत्पन्न हुए हैं, उसके विषय उत्पन्न हुए हैं' का अर्थ है: वे (प्रत्येक) एक उत्पन्न आधार पर, एक उत्पन्न विषय पर उत्पन्न होते हैं।

'पूर्व-मौजूद आधार हैं, पूर्व-मौजूद वस्तुएं हैं 5

इसका अर्थ है: वे (प्रत्येक) एक पूर्व-मौजूद आधार पर, एक पूर्व-मौजूद वस्तु पर उत्पन्न होते हैं।

'आंतरिक आधार हैं, बाह्य वस्तुएँ हैं' का अर्थ है: पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतना के आधार आंतरिक हैं, वस्तुएँ बाह्य हैं।

'अविघटित आधार हैं, अविघटित हैं'

418

विश्लेषण की पुस्तक

'वस्तुओं' का अर्थ है: वे (प्रत्येक) एक अविघटित आधार पर, एक अविघटित वस्तु पर उत्पन्न होती हैं।

'अलग-अलग आधार हैं, अलग-अलग लक्ष्य हैं' का अर्थ है: नेत्र चेतना का आधार और लक्ष्य (एक चीज) है; कान चेतना का आधार और लक्ष्य दूसरी चीज है; नाक चेतना का आधार और लक्ष्य दूसरी चीज है; जीभ चेतना का आधार और लक्ष्य दूसरी चीज है; शरीर चेतना का आधार और लक्ष्य तीसरी चीज है।

763. 'एक दूसरे के विषय का अनुभव न करना' का अर्थ है: कान चेतना, आँख चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; आँख चेतना भी कान चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। नाक चेतना, आँख चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; आँख चेतना भी नाक चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। जीभ चेतना, आँख चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; [320] आँख चेतना भी जीभ

चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। शरीर चेतना, आँख चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; आँख चेतना भी शरीर चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। कान चेतना का: P: नाक चेतना का: P: जीभ चेतना का: P: आँख चेतना, शरीर चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; शरीर चेतना भी आँख चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। कान चेतना, शरीर चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; शरीर चेतना भी कान चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। नाक चेतना, शरीर चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; शरीर चेतना भी नाक चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती। जीभ चेतना, शरीर चेतना के विषय का अनुभव नहीं करती; शरीर चेतना जीभ चेतना के विषय का भी अनुभव नहीं करती है।

P = प्रत्येक को अंतिम उदाहरण के समान सामान्य रूप में निपटाया जाना चाहिए।

764. 'बिना ध्यान दिए उत्पन्न नहीं होते' का अर्थ है: वे उसी व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं जिसे ध्यान होता है।

'बिना ध्यान दिए उत्पन्न नहीं होते' का अर्थ है: वे उसी में उत्पन्न होते हैं जो ध्यान देता है।

'लगातार उत्पन्न नहीं होते' का अर्थ है: वे क्रमानुसार उत्पन्न नहीं होते।

'एक साथ उत्पन्न नहीं होते' का अर्थ है: वे एक ही क्षण में उत्पन्न नहीं होते।

ज्ञान का विश्लेषण

419

765. 'एक दूसरे के तुरंत बाद उत्पन्न न हों'

इसका अर्थ है: नेत्र चेतना के उत्पन्न होते ही, कान चेतना उत्पन्न नहीं होती; कान चेतना के उत्पन्न होते ही, नेत्र चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। नेत्र चेतना के उत्पन्न होते ही, नाक चेतना उत्पन्न नहीं होती; नाक चेतना के उत्पन्न होते ही, नेत्र चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। नेत्र चेतना के उत्पन्न होते ही, जीभ चेतना उत्पन्न नहीं होती; जीभ चेतना के उत्पन्न होते ही, नेत्र चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। नेत्र चेतना के उत्पन्न होते ही, शरीर चेतना उत्पन्न नहीं होती; शरीर चेतना के उत्पन्न होते ही, नेत्र चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। कान चेतना के बारे में: P : नाक चेतना के बारे में: P : जीभ चेतना के बारे में: P : शरीर चेतना के उत्पन्न होते ही, नेत्र चेतना उत्पन्न नहीं होती; नेत्र चेतना के उत्पन्न होते ही, शरीर चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। शरीर चेतना के उत्पन्न होते ही, कान चेतना उत्पन्न नहीं होती; कान चेतना के उत्पन्न होते ही, शरीर चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। शरीर चेतना के उत्पन्न होने के तुरंत बाद, नाक चेतना उत्पन्न नहीं होती; नाक चेतना के उत्पन्न होने के तुरंत बाद, [321] शरीर चेतना भी उत्पन्न नहीं होती। शरीर चेतना के उत्पन्न होने के तुरंत बाद, जीभ चेतना उत्पन्न नहीं होती; जीभ चेतना के उत्पन्न होने के तुरंत बाद, शरीर चेतना भी उत्पन्न नहीं होती।

P = प्रत्येक को अंतिम उदाहरण के समान सामान्य रूप में निपटाया जाना चाहिए।

766. 'इंद्रिय चेतना के पाँच प्रकार संज्ञानात्मक नहीं हैं' का अर्थ है: इंद्रिय चेतना के पाँच प्रकारों के लिए (वस्तु की ओर) मुड़ना, संज्ञान, ध्यान या एकाग्रता नहीं होती है।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से कोई भी अवस्था भेद नहीं कर सकता' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से कोई भी अवस्था भेद नहीं कर सकता।

'केवल गिरने के अलावा' का अर्थ है: केवल गिरने के अलावा (अर्थात वस्तु का प्रवेश)।

'इंद्रिय चेतना के पाँच प्रकारों के तुरंत बाद भी कोई अवस्था भेद नहीं कर पाता' का अर्थ है: इंद्रिय चेतना के पाँच प्रकारों के तुरंत बाद भी मन के तत्व से भी कोई अवस्था भेद नहीं कर पाता।

420

विश्लेषण की पुस्तक

(7

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति कोई भी मुद्रा नहीं बनाता है' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति कोई भी मुद्रा नहीं बनाता है, चाहे वह चलना हो, खड़ा होना हो, बैठना हो या लेटना हो।

'पांचों प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की मुद्रा नहीं अपनाता है' का अर्थ है: पांचों प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद व्यक्ति किसी भी प्रकार की मुद्रा नहीं अपनाता है, चाहे वह चलना हो, खड़ा होना हो, बैठना हो या लेटना हो, यहां तक कि मन से भी नहीं।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना द्वारा कोई शारीरिक क्रिया या मौखिक क्रिया स्थापित नहीं होती' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना द्वारा कोई शारीरिक क्रिया या मौखिक क्रिया स्थापित नहीं होती।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति न तो शारीरिक क्रिया करता है, न ही मौखिक क्रिया करता है' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद व्यक्ति न तो शारीरिक क्रिया करता है, न ही मौखिक क्रिया करता है, यहां तक कि मन के तत्व से भी नहीं।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति किसी भी प्रकार की अच्छी या बुरी अवस्था का प्रदर्शन नहीं करता है' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति किसी भी प्रकार की अच्छी या बुरी अवस्था का प्रदर्शन नहीं करता है।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति कोई अच्छी या बुरी अवस्था नहीं कर पाता' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति मन के तत्व से भी कोई अच्छी या बुरी अवस्था नहीं कर पाता।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति न तो प्राप्त होता है और न ही उत्पन्न होता है' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति न तो प्राप्त होता है और न ही उत्पन्न होता है।

'यद्यपि पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी कोई प्राप्त नहीं करता, उत्पन्न नहीं होता' का अर्थ है: [322] पाँच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी कोई प्राप्त नहीं करता, उत्पन्न नहीं होता, मन तत्व द्वारा भी नहीं।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति का नाश नहीं होता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति का नाश नहीं होता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता (अर्थात, उसका पुनर्जन्म नहीं होता)।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति का नाश नहीं होता, उसका जन्म नहीं होता' का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति का नाश नहीं होता, उसका जन्म नहीं होता, यहां तक कि मन तत्व से भी नहीं।

'पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना से व्यक्ति को यह पता नहीं चलता कि वह क्या कर रहा है।'

ज्ञान का विश्लेषण

421

नींद, जागना नहीं, सपने नहीं देखना* का अर्थ है: पांच प्रकार की इंद्रिय चेतना के कारण व्यक्ति न सोता है, न जागता है, न सपने देखता है।

पांचों प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद भी व्यक्ति न सोता है, न जागता है, न सपने देखता है। इसका अर्थ है: पांचों प्रकार की इंद्रिय चेतना के तुरंत बाद मन से भी व्यक्ति न सोता है, न जागता है, न सपने देखता है। इस प्रकार ज्ञान के आधार की वास्तविक प्रकृति की व्याख्या ही ज्ञान है। इस प्रकार एक प्रकार के विभाजन द्वारा ही ज्ञान का आधार बनता है।

(यहाँ समाप्त होता है) एकल-गुना प्रदर्शनी

2. दोहरी व्याख्या

767. तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान सांसारिक ज्ञान है; चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान अलौकिक ज्ञान है। सभी ज्ञान एक ही मार्ग से बोधगम्य है; दूसरे मार्ग से बोधगम्य नहीं है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान विकारों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान विकारों का विषय नहीं होता है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान विकारों से असंबद्ध होता है, विकारों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान विकारों से असंबद्ध होता है, विकारों का विषय नहीं होता है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बंधनों से ग्रसित होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बंधनों से अग्रसित होता है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बंधनों से असंबद्ध होता है, तथा बंधनों से ग्रसित होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बंधनों से असंबद्ध होता है, तथा बंधनों से ग्रसित नहीं होता है।

तीनों स्तरों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में पाई जाने वाली बुद्धि बंधनों से बंधी होती है; चारों मार्गों और चारों फलों में पाई जाने वाली बुद्धि बंधनों से बंधी नहीं होती। तीनों स्तरों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में पाई जाने वाली बुद्धि बंधनों से बंधी नहीं होती, बल्कि बंधनों से बंधी होती है; चारों मार्गों और चारों फलों में पाई जाने वाली बुद्धि बंधनों से बंधी नहीं होती।

[

422 विश्लेषण की पुस्तक

ज्ञान वह है जो बंधनों से जुड़ा नहीं होता, जो बंधनों का विषय नहीं होता।

तीनों स्तरों में, अच्छे और न अच्छे न बुरे (अवस्थाओं) में पाई जाने वाली बुद्धि वह बुद्धि है जो बाढ़ का विषय है; चारों मार्गों और चारों फलों में पाई जाने वाली बुद्धि वह बुद्धि है जो बाढ़ का विषय नहीं है। [323] तीनों स्तरों में, अच्छे और न अच्छे न बुरे (अवस्थाओं) में पाई जाने वाली बुद्धि वह बुद्धि है जो बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय है; चारों मार्गों और चारों फलों में पाई जाने वाली बुद्धि वह बुद्धि है जो बाढ़ से संबंधित नहीं है, बाढ़ का विषय नहीं है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बंधनों से बंधा होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बंधनों से मुक्त होता है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बंधनों से मुक्त होता है और बंधनों से बंधा होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बंधनों से मुक्त होता है और बंधनों से बंधा नहीं होता है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बाधाओं का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बाधाओं का विषय नहीं होता है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान बाधाओं से असंबद्ध होता है, और बाधाओं का विषय भी होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान बाधाओं से असंबद्ध होता है, और बाधाओं का विषय भी नहीं होता है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान विकृतियों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान विकृतियों का विषय नहीं होता। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान विकृतियों से असंबद्ध होता है, बल्कि विकृतियों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान विकृतियों से असंबद्ध होता है, बल्कि विकृतियों का विषय नहीं होता।

तीनों स्तरों में परिणामी ज्ञान वह ज्ञान है जिसे लालसा और भ्रामक दृष्टि से ग्रहण किया जाता है; तीनों स्तरों में अच्छाई (अवस्थाओं) का ज्ञान है, तीनों स्तरों में न तो अच्छी और न ही बुरी (अवस्थाओं) का ज्ञान है, और चारों मार्गों और चारों फलों में वह ज्ञान है जिसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

तीनों स्तरों में अच्छाई और न अच्छाई-न अच्छाई-न अच्छाई में निहित ज्ञान है।

ज्ञान का विश्लेषण

423

बुरी अवस्थाओं में ज्ञान आसक्ति से ग्रस्त होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में ज्ञान आसक्ति से मुक्त होता है। तीनों लोकों में, अच्छी और न अच्छी न बुरी अवस्थाओं में ज्ञान आसक्ति से मुक्त होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में ज्ञान आसक्ति से मुक्त होता है; आसक्ति से मुक्त होता है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान, विकारों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान, विकारों का विषय नहीं होता है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान, विकारों से असंबद्ध होता है, विकारों का विषय होता है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान, विकारों से असंबद्ध होता है, विकारों का विषय नहीं होता है।

प्रारंभिक प्रयोग से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो प्रारंभिक प्रयोग के साथ होता है; प्रारंभिक प्रयोग से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो प्रारंभिक प्रयोग के बिना होता है। निरंतर प्रयोग से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो निरंतर प्रयोग के साथ होता है; निरंतर प्रयोग से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो निरंतर प्रयोग के बिना होता है। उत्साह से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उत्साह से भरा होता है; उत्साह से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उत्साह से रहित होता है। उत्साह से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उत्साह के साथ होता है; उत्साह से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उत्साह के साथ नहीं होता है। [324] आनंद से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो आनंद के साथ होता है; आनंद से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो आनंद के साथ नहीं होता है। उदासीनता से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उदासीनता के साथ होता है; उदासीनता से असंबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो उदासीनता के साथ नहीं होता है।

इच्छा तल की विशेषता वाले अच्छे और न अच्छे न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, इच्छा तल की विशेषता वाला ज्ञान है; रूप तल की विशेषता वाला ज्ञान, निराकार तल की विशेषता वाला ज्ञान, और जो ज्ञान इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् अलौकिक), वह ज्ञान इच्छा तल की विशेषता वाला ज्ञान नहीं है। रूप तल की विशेषता वाले अच्छे और न अच्छे न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, वह ज्ञान है जो...

424 विश्लेषण की पुस्तक

रूप के तल की विशेषता; इच्छा के तल की विशेषता वाली बुद्धि, निराकार तल की विशेषता वाली बुद्धि, और जो बुद्धि इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् अलौकिक), वह बुद्धि रूप के तल की विशेषता नहीं है। अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में पाई जाने वाली बुद्धि, जो निराकार तल की विशेषता है, वह बुद्धि भी निराकार तल की विशेषता है; इच्छा के तल की विशेषता वाली बुद्धि, रूप के तल की विशेषता वाली बुद्धि, और जो बुद्धि इसमें शामिल नहीं है (अर्थात् अलौकिक), वह बुद्धि निराकार तल की विशेषता नहीं है।

तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जो समाहित है (अर्थात सांसारिक है); चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जो समाहित नहीं है (अर्थात अलौकिक है)। चारों मार्गों में निहित ज्ञान मुक्ति की ओर प्रवृत्त है; तीनों लोकों में, अच्छे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, चारों लोकों में परिणामी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, तीनों लोकों में निष्क्रिय न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान मुक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं है। चारों मार्गों में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जिसका (परिणामी समय) निश्चित है; तीनों लोकों में, अच्छे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, चारों लोकों में परिणामी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, तीनों लोकों में निष्क्रिय न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान का कोई निश्चित (परिणामी समय) नहीं है। तीनों लोकों में, अच्छे और न बुरे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जिसे पार किया जा सकता है। चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान अतुलनीय ज्ञान है।

इसमें वह ज्ञान क्या है जो परिणाम का कारण है? चारों लोकों में, अच्छे (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान, उच्च ज्ञान उत्पन्न करने वाले, उच्च उपलब्धि उत्पन्न करने वाले अरहत्त की निष्क्रिय (न अच्छे न बुरे) अवस्था में प्राप्त ज्ञान, परिणाम का कारण है। चारों लोकों में, परिणाम (अवस्थाओं) में प्राप्त ज्ञान, उच्च ज्ञान प्राप्त करने वाले, उच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले अरहत्त की निष्क्रिय (न अच्छे न बुरे) अवस्था में प्राप्त ज्ञान, कारण का परिणाम है। इस प्रकार, ज्ञान का आधार दो भागों में विभाजित है।

(यहाँ समाप्त होता है) दोहरी (व्याख्या)

3. त्रिविध व्याख्या

768. उसमें 'चिंतन के माध्यम से प्राप्त ज्ञान' क्या है? (ज्ञान) वह ज्ञान जो रचनात्मकता द्वारा आविष्कृत कार्य क्षेत्रों में या

ज्ञान का विश्लेषण

425

शिल्प के क्षेत्र जो प्रतिभा से आविष्कृत हैं या विज्ञान की शाखाएँ जो प्रतिभा से आविष्कृत हैं या (यह ज्ञान कि) क्रिया स्वयं की संपत्ति है या (यह ज्ञान कि) सत्य के अनुरूप पदार्थ क्षणभंगुर है; भावना; :P; बोध; :P; मानसिक सहवर्ती; [325] : P : या चेतना क्षणभंगुर है; जो समान है, अनुरूप है, क्षमता (समझने की), दृष्टिकोण, चुनाव, राय, देखना, इन अवस्थाओं को समझने की क्षमता, दूसरों से सुने बिना प्राप्त की जाती है। इसे चिंतन के माध्यम से प्राप्त ज्ञान कहा जाता है।

P = अस्थाई है।

उसमें 'श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान' क्या है? (ज्ञान) वह ज्ञान जो रचनात्मकता द्वारा आविष्कृत कार्य के क्षेत्रों में, या रचनात्मकता द्वारा आविष्कृत शिल्प के क्षेत्रों में, या रचनात्मकता द्वारा आविष्कृत विज्ञान की शाखाओं में, या (यह ज्ञान कि) कर्म स्वयं की संपत्ति है, या (यह ज्ञान कि) सत्य के अनुरूप पदार्थ क्षणभंगुर है; भावना; बोध; मानसिक सहवर्ती;

पी: या चेतना क्षणभंगुर है; जो समान है, उसमें
अनुरूपता, वह क्षमता (समझने की), दृष्टिकोण, चुनाव, राय, देखना, इन अवस्थाओं को समझने की क्षमता, दूसरों से सुनकर प्राप्त होती है। इसे सुनने के माध्यम से प्राप्त ज्ञान कहा जाता है।

जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसका सारा ज्ञान विकास के माध्यम से प्राप्त ज्ञान ही होता है।

769. इसमें 'दान के माध्यम से ज्ञान' क्या है? दान के विषय में, दान की प्राप्ति से जो उत्पन्न होता है, वह ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे दान के माध्यम से ज्ञान कहा जाता है।

पी — पैराग्राफ 525 देखें।

इसमें 'नैतिकता के माध्यम से प्राप्त ज्ञान' क्या है? नैतिकता के संदर्भ में, नैतिकता की प्राप्ति से जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे ही नैतिकता के माध्यम से प्राप्त ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसका सारा ज्ञान विकास के माध्यम से प्राप्त ज्ञान ही होता है।

770. उसमें 'उच्चतर नैतिकता में निहित ज्ञान' क्या है? मूलभूत उपदेशों के संयम से बंधे व्यक्ति में जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ, और सुस्ती का अभाव है।

426 विश्लेषण की पुस्तक

सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे ही उच्च नैतिक मूल्यों में निहित ज्ञान कहते हैं।

पी — पैराग्राफ 525 देखें।

उसमें 'उच्च चेतना में निहित ज्ञान' क्या है?

जब व्यक्ति रूप और निराकार दोनों स्तरों की अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है, तो उसे ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण जैसी अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। इसे ही उच्चतर चेतना का ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें 'उच्चतर ज्ञान में निहित ज्ञान' क्या है?

चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान। इसे ही उच्चतर ज्ञान कहा जाता है।

771. इसमें 'ज्ञान में निपुणता' का क्या अर्थ है? जो इन अवस्थाओं पर ध्यान देता है, उसमें अविकसित बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं होतीं; और जो बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं, वे त्याग दी जाती हैं; इसके अतिरिक्त, जो इन अवस्थाओं पर ध्यान देता है, उसमें अविकसित अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं; और जो अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं, वे वृद्धि, परिपक्वता, विकास और पूर्णता के लिए विद्यमान रहती हैं; इसमें जो ज्ञान, समझ, : P : [326] सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है, उसे ही ज्ञान में निपुणता का अर्थ कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें 'ज्ञान की दक्षता का नुकसान' क्या है? इन अवस्थाओं पर ध्यान देने वाले व्यक्ति में, जो अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं वे उत्पन्न नहीं होतीं; और जो अच्छी अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे समाप्त हो जाती हैं; इसके अलावा, इन अवस्थाओं पर ध्यान देने वाले व्यक्ति में, जो बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं वे उत्पन्न होती हैं; और जो बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे वृद्धि और परिपक्वता के लिए बनी रहती हैं; इसमें जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है, उसे ही ज्ञान की दक्षता का नुकसान कहते हैं। उपरोक्त विधि में निहित सारा ज्ञान विधि की दक्षता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

772. चारों स्तरों में परिणामी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, परिणामी ज्ञान है; चारों स्तरों में अच्छे (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान, परिणामी उत्पन्न करने वाला ज्ञान है; तीनों स्तरों में...

में

निष्क्रिय, न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जो न तो परिणामी है और न ही परिणामी को उत्पन्न करता है।

773. तीनों स्तरों में परिणामी अवस्थाओं में प्राप्त ज्ञान वह ज्ञान है जिसे ग्रहण किया जा सकता है, और जो आसक्तियों का विषय है; तीनों स्तरों में अच्छी अवस्थाओं में प्राप्त ज्ञान, तीनों स्तरों में न अच्छी न बुरी अवस्थाओं में प्राप्त ज्ञान वह ज्ञान है जिसे ग्रहण नहीं किया जा सकता, और जो आसक्तियों का विषय है; चारों मार्गों और चारों फलों में प्राप्त ज्ञान वह ज्ञान है जिसे ग्रहण नहीं किया जा सकता, और जो आसक्तियों का विषय नहीं है।

774. प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग से संबंधित ज्ञान वह ज्ञान है जो प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग दोनों के साथ होता है; प्रारंभिक प्रयोग से असंबद्ध, निरंतर प्रयोग से असंबद्ध ज्ञान वह ज्ञान है जो प्रारंभिक प्रयोग के बिना, केवल निरंतर प्रयोग से प्राप्त होता है; प्रारंभिक प्रयोग या निरंतर प्रयोग से असंबद्ध ज्ञान वह ज्ञान है जो प्रारंभिक प्रयोग के बिना, निरंतर प्रयोग के बिना होता है।

775. उत्साह से जुड़ा ज्ञान उत्साह से युक्त ज्ञान है; आनंद से जुड़ा ज्ञान आनंद से युक्त ज्ञान है; उदासीनता से जुड़ा ज्ञान उदासीनता से युक्त ज्ञान है।

776. तीनों स्तरों में अच्छी (अवस्थाओं) में ज्ञान संचयी ज्ञान है; चारों मार्गों में ज्ञान विक्षेपी ज्ञान है; चारों स्तरों में परिणामी (अवस्थाओं) में ज्ञान, तीनों स्तरों में निष्क्रिय, न अच्छी-न बुरी (अवस्थाओं) में ज्ञान, न संचयी और न विक्षेपी ज्ञान है।

777. चारों मार्गों और तीन फलों में निहित ज्ञान सात अलौकिक अवस्थाओं का ज्ञान है; अरहंतत्व के फल में निहित सर्वोच्च ज्ञान अंतिम अलौकिक अवस्था का ज्ञान है।

_अवस्था; तीनों तलों में अच्छी (अवस्थाओं) में ज्ञान, तीनों तलों में परिणामी (अवस्थाओं) में ज्ञान, तीनों तलों में निष्क्रिय न तो अच्छी-न बुरी (अवस्थाओं) में ज्ञान वह ज्ञान है जो न तो सात अलौकिक अवस्थाओं का है और न ही अंतिम अलौकिक अवस्था का।

778. इच्छा के तल पर पाई जाने वाली अच्छी और न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान निम्न स्तर का ज्ञान है; रूप और निराकार तल पर पाई जाने वाली अच्छी और न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) में निहित ज्ञान उदात्त ज्ञान है; चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान असीम ज्ञान है।

779. उसमें 'निम्न विषयों वाली बुद्धि' क्या है? [327] निम्न अवस्थाओं के विषय में जो उत्पन्न होता है वह बुद्धि, समझ है।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
इसे निम्न उद्देश्य वाली बुद्धिमत्ता कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

780. इसमें 'उत्कृष्ट उद्देश्य वाली बुद्धि' क्या है? उत्कृष्ट अवस्थाओं के विषय में, जो उत्पन्न होती है वह बुद्धि, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे ही उत्कृष्ट उद्देश्य वाली बुद्धि कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

781. उसमें 'असीमित उद्देश्य वाली बुद्धि' क्या है?

असीम अवस्थाओं के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह है ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे असीम उद्देश्य वाला ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

782. उसमें 'मार्ग को अपना लक्ष्य बनाने वाली बुद्धि' क्या है?

श्रेष्ठ मार्ग के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे मार्ग को लक्ष्य मानकर प्राप्त होने वाला ज्ञान कहते हैं। चारों मार्गों में निहित ज्ञान वह ज्ञान है जिसका कारण मार्ग है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

783. इसमें 'मार्ग को प्रमुख कारक मानने वाली बुद्धि' क्या है? आर्य मार्ग को प्रमुख बनाकर जो उत्पन्न होता है, वह है बुद्धि, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे ही मार्ग को प्रमुख कारक मानने वाली बुद्धि कहते हैं।

पी = पैराग्राफ 525 देखें।

ज्ञान का विश्लेषण 429

784. चारों स्तरों में परिणामी अवस्थाओं में ज्ञान कभी-कभी उत्पन्न होता है; कभी-कभी उत्पन्न होना अनिवार्य होता है; इसे उत्पन्न न होना नहीं कहा जा सकता। चारों स्तरों में अच्छी अवस्थाओं में ज्ञान, तीन स्तरों में न तो अच्छी और न ही बुरी निष्क्रिय अवस्थाओं में ज्ञान कभी-कभी उत्पन्न होता है; कभी-कभी उत्पन्न नहीं होता; इसे उत्पन्न होना अनिवार्य नहीं कहा जा सकता।

785. सभी ज्ञान कभी अतीत का होता है; कभी भविष्य का होता है; कभी वर्तमान का होता है।

786. इसमें 'भूतकाल सूचक ज्ञान' क्या है? भूतकाल की अवस्थाओं के विषय में जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह है बुद्धि, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे भूतकाल सूचक ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

787. उसमें 'भविष्य की वस्तु से संबंधित ज्ञान' क्या है? भविष्य की अवस्थाओं के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ है।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
इसे भविष्य के लक्ष्य से संबंधित ज्ञान कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

788. उसमें 'वर्तमान उद्देश्य वाली बुद्धि' क्या है?

वर्तमान अवस्थाओं के संदर्भ में, जो उत्पन्न होता है वह है ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे ही वर्तमान विषयवस्तु वाला ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

789. सभी ज्ञान कभी आंतरिक होता है; कभी बाह्य होता है; कभी आंतरिक और बाह्य दोनों होता है।

790. उसमें 'आंतरिक विषय वाली बुद्धि' क्या है? आंतरिक अवस्थाओं के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह बुद्धि, समझ, : पी : [328] सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। इसे आंतरिक विषय वाली बुद्धि कहा जाता है।

, पी = पैरा 525 देखें।

791. उसमें 'बाह्य वस्तु वाली बुद्धि' क्या है?

430

विश्लेषण की पुस्तक

बाह्य अवस्थाओं के संदर्भ में, जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे बाह्य विषयवस्तु वाला ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

792. इसमें 'वह ज्ञान जो आंतरिक और बाह्य दोनों विषयों को समाहित करता है' क्या है? आंतरिक और बाह्य दोनों अवस्थाओं के संबंध में जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे ही वह ज्ञान कहा जाता है जो आंतरिक और बाह्य दोनों विषयों को समाहित करता है। इस प्रकार त्रिविध विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार बनता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) त्रिगुणात्मक (प्रस्तावना)

4. चौगुनी व्याख्या

793. इसमें 'यह ज्ञान कि कर्म स्वयं का अधिकार है' क्या है? "दान है; यज्ञ है; अर्पण है; कर्मों के फल और परिणाम हैं, चाहे वे सही हों या गलत; यह संसार है; परलोक है; माता है; पिता है; स्वाभाविक रूप से जन्म लेने वाले प्राणी हैं; संसार में संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो सर्वोच्च स्तर तक पहुँच चुके हैं, जो अच्छी तरह से अभ्यास किए हुए हैं; जिन्होंने स्वयं इस संसार और परलोक को पूर्णतः जान लिया है, अनुभव कर लिया है और दूसरों को भी यही ज्ञान देते हैं, जो कि समान है, ज्ञान है, समझ है, सुस्ती का अभाव है, सत्य की खोज है, सही दृष्टिकोण है। इसे ही यह ज्ञान कहते हैं कि कर्म स्वयं का अधिकार है। सत्य के अनुरूप ज्ञान को छोड़कर, सभी ज्ञान जो अच्छा है और दोषों का विषय है, वह यही ज्ञान है कि कर्म स्वयं का अधिकार है।"

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें 'सत्य के अनुरूप ज्ञान' क्या है?

"पदार्थ क्षणभंगुर है"; भावना; :P: बोध; :P: मानसिक सहवर्ती; : P: या "चेतना क्षणभंगुर है"; जो समरूप, अनुरूप, (समझने की) क्षमता, दृष्टि, चुनाव, मत, अवलोकन, इन अवस्थाओं को समझने की क्षमता रखता है। इसे सत्य के अनुरूप ज्ञान कहते हैं। चारों मार्गों में ज्ञान उस मार्ग का ज्ञान है। चारों फलों में ज्ञान उस फल का ज्ञान है। (1)

P = अस्थाई है।

ज्ञान का विश्लेषण

431

794. मार्ग का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति का ज्ञान, यही दुख का ज्ञान है; यही दुख के कारण का ज्ञान है; यही दुख के निवारण का ज्ञान है; यही दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान है।

उसमें 'दुख का ज्ञान' क्या है? दुख के विषय में जो उत्पन्न होता है वह है बुद्धि, समझ, rP 1 : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे दुख का ज्ञान कहते हैं। दुख के कारण के विषय में: :P 2 : दुख के निवारण के विषय में: :P 2 : दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के विषय में, [329] जो उत्पन्न होता है वह है बुद्धि, समझ, : P 1 : सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान कहते हैं। (2)

पीजे = पैरा 525 देखें। पी 2 = अंतिम उदाहरण के रूप में पूरा करें।

795. इच्छा के तल पर पाई जाने वाली अच्छी और न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) की बुद्धि इच्छा के तल की ही बुद्धि है; रूप के तल पर पाई जाने वाली अच्छी और न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) की बुद्धि रूप के तल की ही बुद्धि है; निराकार तल पर पाई जाने वाली अच्छी और न अच्छी न बुरी (अवस्थाओं) की बुद्धि निराकार तल की ही बुद्धि है; चारों मार्गों और चारों फलों में पाई जाने वाली बुद्धि उसमें समाहित नहीं है (अर्थात् वह सांसारिक से परे है)। (3)

796. उसमें '(अलौकिक) अवस्थाओं का ज्ञान' क्या है?

चारों मार्गों और चारों फलों में निहित ज्ञान (अलौकिक) अवस्थाओं का ज्ञान है। इस ज्ञात, देखी, प्राप्त, बोधित और भेदी अवस्था के माध्यम से, वह भूतकाल और भविष्यकाल पर निष्कर्ष निकालता है; वे संन्यासी और ब्राह्मण जिन्होंने भूतकाल में दुख को पूर्णतः जाना; दुख के कारण को पूर्णतः जाना; दुख के निवारण को पूर्णतः जाना; दुख के निवारण के मार्ग को पूर्णतः जाना; उन्होंने इस दुख को पूर्णतः जाना; दुख के इस कारण को पूर्णतः जाना; दुख के निवारण के मार्ग को पूर्णतः जाना; वे संन्यासी और ब्राह्मण जो भविष्य में दुख को पूर्णतः जानेंगे; दुख के कारण को पूर्णतः जानेंगे; दुख के निवारण के मार्ग को पूर्णतः जानेंगे; वे इस दुख को पूर्णतः जानेंगे; दुख के इस कारण को पूर्णतः जानेंगे; दुख के निवारण के मार्ग को पूर्णतः जानेंगे; वे इस मार्ग को पूर्णतः जानेंगे।

जिससे उन्हें दुखों का निवारण होगा, वे उसे पूर्णतः जान लेंगे। उसमें जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण निहित है। इसे ही उससे प्राप्त ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें 'व्यापक ज्ञान' क्या है? इसमें एक भिक्षु अपनी चेतना से अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को स्पष्ट रूप से जानता है; वह कामवासना से ग्रस्त चेतना को जानता है, "चेतना कामवासना से ग्रस्त है"; या, वह कामवासना रहित चेतना को जानता है, "चेतना कामवासना रहित है"; वह घृणा से ग्रस्त चेतना को जानता है, "चेतना घृणा से ग्रस्त है"; या, वह घृणा रहित चेतना को जानता है, "चेतना घृणा रहित है"; वह सुस्ती से ग्रस्त चेतना को जानता है, "चेतना सुस्ती से ग्रस्त है"; या, वह सुस्ती रहित चेतना को जानता है, "चेतना सुस्ती रहित है"; वह संकुचित चेतना को जानता है, "चेतना संकुचित है"; या, वह बिखरी हुई चेतना को जानता है, "चेतना बिखरी हुई है"; वह उदात्त चेतना को जानता है, "चेतना उदात्त है"; या, वह गैर-उदात्त चेतना को जानता है, "चेतना उदात्त नहीं है"; वह पारलौकिक चेतना को जानता है, "चेतना पारलौकिक है"; या, वह अतुलनीय चेतना को जानता है, "चेतना अतुलनीय है"; वह एकाग्र चेतना को जानता है, "चेतना एकाग्र है"; या, वह अनिच्छुक चेतना को जानता है, "चेतना एकाग्र नहीं है"; वह मुक्त चेतना को जानता है, "चेतना मुक्त है"; या, वह गैर-मुक्त चेतना को जानता है, "चेतना मुक्त नहीं है"। [330] उसमें जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है, उसे भेदक ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

(अलौकिक) अवस्थाओं के ज्ञान, उससे प्राप्त ज्ञान, मर्मस्पर्शी ज्ञान को छोड़कर, शेष ज्ञान पारंपरिक ज्ञान है, (4)

797. इसमें 'संचय के लिए ज्ञान, न कि फैलाव के लिए' क्या है? इच्छा के तल की विशेषता वाले अच्छे (अवस्थाओं) में ज्ञान संचय के लिए है, न कि फैलाव के लिए; चारों मार्गों में ज्ञान फैलाव के लिए है, न कि संचय के लिए; अच्छे (अवस्थाओं) में ज्ञान

(अवस्था) रूप के तल की विशेषताएँ और निराकार तल की विशेषताएँ संचय और फैलाव दोनों के लिए हैं; शेष ज्ञान न तो संचय के लिए है और न ही फैलाव के लिए। (5)

798. इसमें 'साक्षात्कार के लिए नहीं बल्कि विरक्ति के लिए ज्ञान' क्या है? वह ज्ञान जिससे व्यक्ति इंद्रिय सुखों के प्रति वासना से मुक्त हो जाता है, उच्च ज्ञान या सत्यों को प्राप्त नहीं कर पाता। इसे विरक्ति के लिए ज्ञान कहा जाता है, न कि ज्ञान प्राप्ति के लिए। वही व्यक्ति इंद्रिय सुखों के प्रति वासना से मुक्त होकर उच्च ज्ञान को तो प्राप्त कर लेता है, पर सत्यों को नहीं। इसे ज्ञान प्राप्ति के लिए ज्ञान कहा जाता है, न कि विरक्ति के लिए। चारों मार्गों में जो ज्ञान है, वह विरक्ति और ज्ञान प्राप्ति दोनों के लिए है। शेष ज्ञान न तो विरक्ति के लिए है और न ही ज्ञान प्राप्ति के लिए। (6)

799. उसमें 'बुद्धि का क्षय होना' क्या है?

इंद्रिय सुख से युक्त बोध और ध्यान, प्रथम ध्यान प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं; यह क्षय से संबंधित ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; प्रारंभिक क्रिया के बिना बोध और ध्यान, विशिष्टता से संबंधित ज्ञान है; कामवासना के अभाव से जुड़ी घृणा से युक्त बोध और ध्यान, भेद से संबंधित ज्ञान है। प्रारंभिक क्रिया के साथ बोध और ध्यान, द्वितीय ध्यान प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं; यह क्षय से संबंधित ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; (यह) स्थिरता से संबंधित ज्ञान है; द्वितीय ध्यान के प्रति उदासीनता से युक्त बोध और ध्यान, विशिष्टता से संबंधित ज्ञान है; कामवासना के अभाव से जुड़ी घृणा से युक्त बोध और ध्यान, भेद से संबंधित ज्ञान है। उत्साह और आनंद से युक्त बोध और ध्यान, तृतीय ध्यान प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं; यह क्षय से संबंधित ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; न दर्द न सुख से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह भेद से संबंधित ज्ञान है; [331] कामवासना के अभाव से जुड़ी घृणा से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह भेद से संबंधित ज्ञान है। समभाव से युक्त बोध और ध्यान, तृतीय ध्यान प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं।

चौथा ध्यान, (यह) क्षय से ग्रस्त ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है, (यह) स्थिरता से ग्रस्त ज्ञान है; अनंत अंतरिक्ष की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान उसे प्रेरित करते हैं, (यह) भेद से ग्रस्त ज्ञान है; कामवासना के अभाव से जुड़े विरक्ति से युक्त बोध और ध्यान उसे प्रेरित करते हैं, (यह) भेद से ग्रस्त ज्ञान है। पदार्थ की अवधारणा से युक्त बोध और ध्यान अनंत अंतरिक्ष की अवस्था प्राप्त करने वाले को प्रेरित करते हैं, (यह) क्षय से ग्रस्त ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; (यह) स्थिरता से ग्रस्त ज्ञान है; अनंत चेतना की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान उसे प्रेरित करते हैं, (यह) भेद से ग्रस्त ज्ञान है; कामवासना के अभाव से जुड़े विरक्ति से युक्त बोध और ध्यान उसे प्रेरित करते हैं, (यह) भेद से ग्रस्त ज्ञान है। अनंत अंतरिक्ष की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान, अनंत चेतना की अवस्था प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं; यह क्षय से संबंधित ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; यह स्थिरता से युक्त ज्ञान है; शून्यता की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह विशिष्टता से युक्त ज्ञान है; कामवासना के अभाव से संबंधित घृणा से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह भेदक ज्ञान है। अनंत चेतना की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान, शून्यता की अवस्था प्राप्त कर चुके व्यक्ति को प्रेरित करते हैं; यह क्षय से युक्त ज्ञान है; उस अवस्था के अनुरूप उसकी जागरूकता स्थिर रहती है; न बोध और न ही अबोध की अवस्था से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह विशिष्टता से युक्त ज्ञान है; कामवासना के अभाव से संबंधित घृणा से युक्त बोध और ध्यान, उसे प्रेरित करते हैं; यह भेदक ज्ञान है। (7)

800. इसमें 'चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ' क्या हैं? परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि। परिणाम का ज्ञान परिणाम की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; उत्पत्ति का ज्ञान उत्पत्ति की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है; इन (अर्थात, 1 और 2) की वास्तविक भाषावैज्ञानिक परिभाषा का ज्ञान भाषाविज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है;

ज्ञान का विश्लेषण 435

इन ज्ञानों का ज्ञान, ज्ञान की विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि है। ये चार विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियाँ हैं। (8)

801. उसमें 'चार अभ्यास' क्या हैं? कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; कठिन अभ्यास और शीघ्रता से अर्जित ज्ञान; आसान अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान; आसान अभ्यास और शीघ्रता से अर्जित ज्ञान।

इसमें वह ज्ञान क्या है जो कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान है? [332] जो कठिनाई और परिश्रम से एकाग्रता उत्पन्न करता है, और धीरे-धीरे उस स्थिति को भली-भांति जान लेता है, उसमें ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इसे ही कठिन अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

कठिन अभ्यास और शीघ्रता से प्राप्त होने वाला ज्ञान क्या है? जो व्यक्ति कठिनाई और परिश्रम से एकाग्रता उत्पन्न करता है और उस स्थिति को शीघ्रता से भली-भांति जान लेता है, वही ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है। इसे ही कठिन अभ्यास और शीघ्रता से प्राप्त होने वाला ज्ञान कहते हैं।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें वह ज्ञान क्या है जो सहज अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित होता है? जो व्यक्ति बिना किसी कठिनाई और परिश्रम के एकाग्रता उत्पन्न कर सके और उस स्थिति को धीरे-धीरे भली-भांति जान ले, उसमें ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। यही वह ज्ञान है जो सहज अभ्यास और धीरे-धीरे अर्जित होता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें वह ज्ञान क्या है जो सहज अभ्यास और शीघ्र प्राप्ति से प्राप्त हो जाता है? जो व्यक्ति बिना किसी कठिनाई और परिश्रम के एकाग्रता उत्पन्न कर सके और उस अवस्था को शीघ्र ही भली-भांति जान ले, उसमें ही ज्ञान और समझ उत्पन्न होती है।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
जिसे सहज अभ्यास और शीघ्रता से प्राप्त होने वाला ज्ञान कहा जाता है। ये चार अभ्यास हैं। (9)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

17 +

802. इसमें 'तू' के उद्देश्य क्या हैं? सीमित बुद्धि, सीमित उद्देश्य वाली; सीमित बुद्धि, असीमित उद्देश्य वाली; असीमित बुद्धि, सीमित उद्देश्य वाली; असीमित बुद्धि, असीमित उद्देश्य वाली।

इसमें सीमित उद्देश्य वाली सीमित बुद्धि का क्या अर्थ है?

एकाग्रता प्राप्त करने में कठिनाई होने पर भी, और विषय को थोड़ा ही विस्तृत करने पर, जो उत्पन्न होता है वह ज्ञान और समझ है।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
इसे सीमित बुद्धि कहा जाता है, जिसका उद्देश्य सीमित होता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

इसमें सीमित ज्ञान का क्या अर्थ है, जबकि उसका उद्देश्य असीमित है?

एकाग्रता प्राप्त करने और विषय को व्यापक बनाने में कठिनाई होने पर, जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है, वही असीमित उद्देश्य वाला सीमित ज्ञान कहलाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें असीमित ज्ञान क्या है, जिसका उद्देश्य सीमित है?

जो व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के एकाग्रता प्राप्त कर लेता है और विषय को थोड़ा ही विस्तृत करता है, उसमें ज्ञान और समझ का उद्भव होता है।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
इसे सीमित उद्देश्य वाली असीमित बुद्धि कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

उसमें असीम ज्ञान, असीम उद्देश्य वाला क्या है? जो व्यक्ति बिना कठिनाई के एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, और विषय को बहुत विस्तृत करता है, उसमें ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इसे ही असीम ज्ञान, असीम उद्देश्य वाला कहा जाता है। ये चार उद्देश्य हैं। (10)

P = पैराग्राफ 525 देखें

मार्ग का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति का ज्ञान, यही वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान है; यही वृद्धावस्था और मृत्यु के कारण का ज्ञान है; यही वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण का ज्ञान है, यही वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान है।

उसमें 'बुढ़ापे और मृत्यु का ज्ञान' क्या है? बुढ़ापे और मृत्यु के विषय में जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह है बुद्धि, समझ।

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
इसे वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान कहा जाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

ज्ञान का विश्लेषण

437

वृद्धावस्था और मृत्यु के कारण के विषय में: पृष्ठ 1: वृद्धावस्था और मृत्यु की समाप्ति के विषय में: पृष्ठ 1: वृद्धावस्था और मृत्यु की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह है ज्ञान, समझ, :पृष्ठ 2; सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे वृद्धावस्था और मृत्यु की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान कहा जाता है। (11)

P* = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें। P 2 = पैराग्राफ 525 देखें।

803. मार्ग का ज्ञान, यही जन्म का ज्ञान है। यही बनने का ज्ञान है। यही आसक्ति का ज्ञान है। यही लालसा का ज्ञान है। यही संवेदना का ज्ञान है। यही संपर्क का ज्ञान है। यही छह आधारों का ज्ञान है। यही मन और पदार्थ का ज्ञान है। यही चेतना का ज्ञान है। यही कर्मों का ज्ञान है; यही कर्मों के कारण का ज्ञान है; यही कर्मों के निवारण का ज्ञान है; यही कर्मों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान है। (10) (21)

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

उसमें 'कर्मकांडों का ज्ञान' क्या है? कर्मकांडों के विषय में जो ज्ञान, समझ, आशय का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है, वही कर्मकांडों का ज्ञान कहलाता है।

P = अनुच्छेद 525 देखें।

कर्मों के कारण के विषय में: कर्मों की समाप्ति के विषय में: कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग के विषय में, जो उत्पन्न होता है वह है ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। इसे कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार, चार भागों में विभाजित ज्ञान का आधार है।

P* = अंतिम उदाहरण के रूप में पूर्ण करें। P 2 = पैराग्राफ 525 देखें।

(यहाँ समाप्त होता है) चौगुना (व्याख्या)

[334]

5. पंचस्तरीय व्याख्या

\

804. उसमें 'सही एकाग्रता' क्या है जिसके पाँच घटक हैं? (सही एकाग्रता) उत्साह से भरपूर, आनंद से भरपूर, मन से भरपूर, प्रकाश से भरपूर, की विशेषता है

एफ

चिंतन। दो ध्यान अवस्थाओं में ज्ञान उत्साह से भरपूर होता है; तीन ध्यान अवस्थाओं में ज्ञान आनंद से भरपूर होता है; दूसरों की चेतना का ज्ञान मन को भर देता है; दिव्य दृष्टि प्रकाश से भर देती है; इस या उस एकाग्रता से उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के चिंतन का ज्ञान चिंतन का लक्षण है। इसे सही एकाग्रता कहते हैं जिसके पाँच घटक होते हैं।

इसमें 'पांच ज्ञानों से युक्त सही एकाग्रता' क्या है? "इस एकाग्रता में वर्तमान सुख है, भविष्य में भी सुखद परिणाम मिलेंगे", इस प्रकार यह ज्ञान अलग से उत्पन्न होता है; "यह एकाग्रता श्रेष्ठ और सांसारिक नहीं है", इस प्रकार यह ज्ञान अलग से उत्पन्न होता है; "यह एकाग्रता महान (अर्थात, निर्गुण) पुरुषों द्वारा अपनाई जाती है", इस प्रकार यह ज्ञान अलग से उत्पन्न होता है; "यह एकाग्रता शांत, श्रेष्ठ, शांति से प्राप्त, उच्चतर विकास से प्राप्त होती है, यह उकसाए गए दमन और अवरोध से प्राप्त नहीं होती", इस प्रकार यह ज्ञान अलग से उत्पन्न होता है; "मैं स्वयं सचेतन रूप से इस एकाग्रता को प्राप्त करता हूँ, सचेतन रूप से इससे निकलता हूँ", इस प्रकार यह ज्ञान अलग से उत्पन्न होता है। यही पांच ज्ञानों से युक्त सही एकाग्रता है। इस प्रकार पांच भागों में विभाजित ज्ञान का आधार है।

(यहाँ समाप्त होता है) पंचगुना (व्याख्या)

6. छह गुना व्याख्या

805. उसमें 'छह उच्च ज्ञानों में ज्ञान' क्या है?

विभिन्न अलौकिक शक्तियों का ज्ञान; कान तत्व की शुद्धता का ज्ञान; दूसरों की चेतना का ज्ञान; पूर्व जन्म की स्मृति का ज्ञान; प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म का ज्ञान; दोषों के नाश का ज्ञान। यही छह उच्च ज्ञानों में निहित ज्ञान है। इस प्रकार छह भागों में विभाजित ज्ञान का आधार बनता है।

7. सात गुना प्रदर्शनी

806. इसमें 'ज्ञान के सतहत्तर आधार' क्या हैं? यह ज्ञान कि जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; यह ज्ञान कि जन्म न होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; यह ज्ञान कि अतीत में भी जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती थी; यह ज्ञान कि जन्म न होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; यह ज्ञान कि भविष्य में भी, क्योंकि

ज्ञान का विश्लेषण

439

जन्म से ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; यह ज्ञान कि जन्म न होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; उन (ज्ञानों) का जो (ज्ञान) है, वह अवस्थाओं की स्थापना का ज्ञान है; वह यह ज्ञान भी है कि वे विनाश के अधीन हैं, क्षय के अधीन हैं, कामवासना के अभाव के अधीन हैं, और समाप्ति के अधीन हैं। यह ज्ञान कि होने के कारण ही जन्म होता है। [335] यह ज्ञान कि आसक्ति के कारण ही होना होता है। यह ज्ञान कि तृष्णा के कारण ही आसक्ति होती है। यह ज्ञान कि संवेदना के कारण ही तृष्णा होती है। यह ज्ञान कि संपर्क के कारण ही संवेदना होती है। यह ज्ञान कि छह आधारों के कारण ही संपर्क होता है। यह ज्ञान कि मन और पदार्थ के कारण ही छह आधार होते हैं। यह ज्ञान कि चेतना के कारण ही मन और पदार्थ होते हैं। यह ज्ञान कि कर्मों के कारण ही चेतना होती है। यह ज्ञान कि अज्ञान के कारण कर्म होते हैं; यह ज्ञान कि अज्ञान न होने पर कर्म नहीं होते; यह ज्ञान कि अतीत में भी अज्ञान के कारण कर्म होते हैं; यह ज्ञान कि अज्ञान न होने पर कर्म नहीं होते; यह ज्ञान कि भविष्य में भी अज्ञान के कारण कर्म होते हैं; यह ज्ञान कि अज्ञान न होने पर कर्म नहीं होते; इन सभी ज्ञानों का ज्ञान राज्यों की स्थापना का ज्ञान है; और यह भी ज्ञान है कि वे विनाश के अधीन हैं, क्षय के अधीन हैं, कामवासना के अधीन हैं, और अंत के अधीन हैं। ये ज्ञान के सतहत्तर आधार हैं। इस प्रकार ज्ञान का आधार सात भागों में विभाजित है।

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

8. अष्टांगिक व्याख्या

807. उसमें 'चार मार्गों और चार फलों में ज्ञान' क्या है? धारा प्रवेश के मार्ग में ज्ञान; धारा प्रवेश के फल में ज्ञान; एक बार लौटने के मार्ग में ज्ञान; एक बार लौटने के फल में ज्ञान; न लौटने के मार्ग में ज्ञान;

अप्रतिम ज्ञान; अरहंतत्व के मार्ग में ज्ञान; अरहंतत्व के फल में ज्ञान। यही चारों मार्गों और चारों फलों में ज्ञान है। इस प्रकार अष्टांग विभाजन द्वारा ज्ञान का आधार प्राप्त होता है।

440

विश्लेषण की पुस्तक

9. नौ गुना व्याख्या

808. इसमें 'नौ क्रमिक अवस्थाओं में प्राप्त ज्ञान' क्या है? प्रथम ध्यान की प्राप्ति में ज्ञान; द्वितीय ध्यान की प्राप्ति में ज्ञान; तृतीय ध्यान की प्राप्ति में ज्ञान; चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति में ज्ञान; अनंत अवस्था की प्राप्ति में ज्ञान; अनंत चेतना की प्राप्ति में ज्ञान; शून्यता की अवस्था की

प्राप्ति में ज्ञान; ऐसी अवस्था की प्राप्ति में ज्ञान जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष; बोध और संवेदना के अंत की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के चिंतन का ज्ञान। यही नौ क्रमिक अवस्थाओं में प्राप्त ज्ञान है। इस प्रकार नौ भागों में विभाजित ज्ञान का आधार है।

10. दस गुना व्याख्या

809. उसमें तथागत का ज्ञान, जो वास्तव में कारण के रूप में कारण और कारण के अभाव के रूप में कारण का ज्ञान है, क्या है?

यहाँ तथागत इस प्रकार समझते हैं, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि सही दृष्टि वाला व्यक्ति किसी भी बद्ध वस्तु को स्थायी माने, [336] ऐसा संभव नहीं है"; वे इस प्रकार समझते हैं, "परन्तु यह संभव है कि सांसारिक व्यक्ति किसी भी बद्ध वस्तु को स्थायी माने, ऐसा संभव है"। वे इस प्रकार समझते हैं, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि सही दृष्टि वाला व्यक्ति किसी भी बद्ध वस्तु को सुखद माने, ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि एक सांसारिक व्यक्ति किसी भी सावधिक वस्तु को सुखद समझे, ऐसा संभव है।" वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि सही दृष्टि वाला व्यक्ति किसी भी चीज को आत्मा समझे, ऐसा संभव नहीं है।" वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि एक सांसारिक व्यक्ति किसी भी चीज को आत्मा समझे, ऐसा संभव है।" वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि सही दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी माँ को जीवन से वंचित करे, ऐसा संभव नहीं है।" वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि एक सांसारिक व्यक्ति अपनी माँ को जीवन से वंचित करे, ऐसा संभव है।" वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि सही दृष्टि वाला व्यक्ति अपने पिता को जीवन से वंचित करे।"

किसी अरहंत को जीवन से वंचित कर देना चाहिए। दुष्ट चेतना से तथागत का रक्त बहा देना चाहिए। संघ को विभाजित कर देना चाहिए। किसी अन्य गुरु की घोषणा कर देनी चाहिए। आठवां अस्तित्व उत्पन्न कर देना चाहिए, ऐसा संभव नहीं है। वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि एक सांसारिक व्यक्ति आठवां अस्तित्व उत्पन्न कर दे, ऐसा संभव है।"

P = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि एक विश्व व्यवस्था में दो योग्य प्रबुद्ध व्यक्ति एक साथ उत्पन्न हों; ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह संभव है कि एक विश्व व्यवस्था में एक योग्य प्रबुद्ध व्यक्ति उत्पन्न हो; ऐसा संभव है"। वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि एक विश्व व्यवस्था में दो सार्वभौमिक सम्राट एक साथ उत्पन्न हों; ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह संभव है कि एक विश्व व्यवस्था में एक सार्वभौमिक सम्राट उत्पन्न हो; ऐसा संभव है"।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि कोई स्त्री योग्य प्रबुद्ध हो, ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह वास्तव में संभव है कि कोई पुरुष योग्य प्रबुद्ध हो, ऐसा संभव है"। वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि कोई स्त्री सर्वशक्तिमान हो, ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह वास्तव में संभव है कि कोई पुरुष सर्वशक्तिमान हो, ऐसा संभव है"। वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि कोई स्त्री सक्का, [337] मार, ब्रह्मा

बन जाए, ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह वास्तव में संभव है कि कोई पुरुष सक्का, मार, ब्रह्मा बन जाए, ऐसा संभव है"।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि गलत शारीरिक क्रिया का परिणाम वांछनीय, सुखद या आनंददायक हो; ऐसा संभव नहीं है।" वह इस प्रकार समझता है, "लेकिन यह वास्तव में संभव है कि गलत शारीरिक क्रिया का परिणाम वांछनीय, सुखद या आनंददायक न हो; ऐसा संभव है।" वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि गलत मौखिक क्रिया या गलत मानसिक क्रिया का परिणाम वांछनीय, सुखद या आनंददायक हो; ऐसा संभव नहीं है।" वह इस प्रकार समझता है, "लेकिन यह वास्तव में संभव है।"

442

विश्लेषण की पुस्तक

गलत शाब्दिक क्रिया का परिणाम। :P: गलत मानसिक क्रिया वांछनीय नहीं, सुखद नहीं, अप्रिय हो सकती है, ऐसा संभव है।

P = उचित रूप से पूरा करें।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि सही शारीरिक क्रिया का परिणाम अवांछनीय, अप्रिय, अप्रिय हो; ऐसा संभव ही नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह संभव है कि सही शारीरिक क्रिया का परिणाम वांछनीय, सुखद, अप्रिय हो; ऐसा संभव ही है"। वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि सही मानसिक क्रिया का परिणाम अवांछनीय, अप्रिय, अप्रिय हो; ऐसा संभव ही नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "परन्तु यह संभव है कि सही मानसिक क्रिया का परिणाम वांछनीय, सुखद, अप्रिय हो; ऐसा संभव ही है"।

P = उचित रूप से पूरा करें।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि गलत शारीरिक कर्म करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के बाद एक सुखी, स्वर्गलोक में जन्म ले"; वह इस प्रकार समझता है, "लेकिन यह वास्तव में संभव है कि गलत शारीरिक कर्म करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के बाद एक दयनीय, दुखी, विनाशकारी नरकलोक में जन्म ले, ऐसा संभव है।" वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है कि गलत वाणी कर्म करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के बाद एक सुखी, स्वर्गलोक में जन्म ले, ऐसा संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "लेकिन यह वास्तव में संभव है कि गलत वाणी कर्म करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के बाद एक दयनीय, दुखी, विनाशकारी नरकलोक में जन्म ले, ऐसा संभव है।"

P = आवश्यकतानुसार भरें।

वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि सही शारीरिक क्रिया करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, जब मृत्यु के बाद शरीर टूट जाता है, तो एक दुखद स्थिति में जन्म ले।"

नरक की दुखी, विनाशकारी अवस्था, ऐसी बात संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि सही शारीरिक क्रिया करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, जब मृत्यु के बाद शरीर का विघटन होता है, तो एक सुखी, [338] स्वर्गीय लोक में जन्म ले, ऐसी बात संभव है"। वह इस प्रकार समझता है, "यह संभव नहीं है, तर्कसंगत नहीं है, कि सही मौखिक क्रिया करने वाला व्यक्ति। : पृष्ठ 1 : कि सही मानसिक क्रिया करने वाला व्यक्ति, उस कारण से, जब मृत्यु के बाद शरीर का विघटन होता है, तो नरक की दुखद, दुखी, विनाशकारी अवस्था में जन्म ले, ऐसी बात संभव नहीं है"; वह इस प्रकार समझता है, "पर यह वास्तव में संभव है कि सही मौखिक क्रिया करने वाला व्यक्ति।

पीएक्स: सही मानसिक क्रिया करने वाले व्यक्ति को, इसी कारणवश,
इसी कारण, मृत्यु के बाद जब शरीर का विघटन होता है, तो सुखी, स्वर्गीय लोक में जन्म लेना संभव है। ये और वे अवस्थाएँ जो इन और उन (अन्य) अवस्थाओं के मूल और कारण हैं, वे कारण हैं; ये और वे अवस्थाएँ जो इन और उन (अन्य) अवस्थाओं के मूल और कारण नहीं हैं, वे कारणहीनता हैं; इस प्रकार, जो इसमें ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। यह तथागत का ज्ञान है, जैसा कि वास्तव में है, कारण के रूप में कारण, कारणहीनता के रूप में कारण। (1) पृष्ठ 1 = उचित रूप से पूर्ण करें। पृष्ठ 2 = अनुच्छेद 525 देखें।

810. इसमें तथागत का ज्ञान, जो वास्तव में कारण, मूल और भूतकाल, भविष्य और वर्तमान में किए गए कर्मों के परिणाम के रूप में है, क्या है? इसमें तथागत इस प्रकार समझते हैं: कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं जो सौभाग्यशाली पुनर्जन्म से रोके जाने पर भी फलदायी नहीं होते; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं जो सौभाग्यशाली शरीर से रोके जाने पर भी फलदायी नहीं होते; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं जो सौभाग्यशाली समय से रोके जाने पर भी फलदायी नहीं होते; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं जो सौभाग्यशाली प्रयास से रोके जाने पर भी फलदायी नहीं होते।

कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण पुनर्जन्म के कारण फलदायी होते हैं; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण शरीर के कारण फलदायी होते हैं; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण दान के कारण फलदायी होते हैं; कुछ बुरे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास के कारण फलदायी होते हैं।

कुछ अच्छे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण पुनर्जन्म के कारण पूर्ण नहीं हो पाते; कुछ अच्छे कर्म ऐसे होते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण शरीर के कारण पूर्ण नहीं हो पाते।

परिपक्व होना; कुछ अच्छे कार्य किए जाते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण समय के कारण परिपक्व नहीं हो पाते; कुछ अच्छे कार्य किए जाते हैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास के कारण परिपक्व नहीं हो पाते।

कुछ अच्छे कर्म किए जाते हैं, जो सौभाग्यशाली पुनर्जन्म के कारण फलदायी होते हैं; कुछ अच्छे कर्म किए जाते हैं, जो सौभाग्यशाली शरीर के कारण फलदायी होते हैं; [339] कुछ अच्छे कर्म किए जाते हैं, जो सौभाग्यशाली समय के कारण फलदायी होते हैं; कुछ अच्छे कर्म किए जाते हैं, जो सौभाग्यशाली प्रयास के कारण फलदायी होते हैं; उनमें जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही

दृष्टिकोण है। यह तथागत का ज्ञान है जैसा कि वास्तव में है, कारण के रूप में, भूतकाल, भविष्य और वर्तमान में किए गए कर्मों के परिणाम के मूल के रूप में। (2)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

811. इसमें तथागत का वह ज्ञान क्या है जो वास्तव में सभी (नियति) की ओर ले जाने वाले अभ्यास से संबंधित है? इसमें तथागत इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो नरक की ओर ले जाता है; वे इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो पशु लोक की ओर ले जाता है"; वे इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो प्रेत लोक की ओर ले जाता है"; वे इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो मनुष्य लोक की ओर ले जाता है"; वे इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो देव लोक की ओर ले जाता है"; वे इस प्रकार समझते हैं, "यह वह मार्ग है, यह वह अभ्यास है जो पूर्ण मुक्ति की ओर ले जाता है"; इसमें जो ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। यही तथागत का वह ज्ञान है जो वास्तव में सभी (नियति) की ओर ले जाने वाले अभ्यास से संबंधित है। (3)

पी — पैराग्राफ 525 देखें।

812. उसमें तथागत का वह ज्ञान क्या है जो वास्तव में अनेक तत्वों, विभिन्न तत्वों से युक्त संसार का है?

इसमें तथागत विभिन्न स्कंधों को समझते हैं; वे विभिन्न आधारों को समझते हैं; वे विभिन्न तत्वों को समझते हैं; वे अनेक तत्वों से युक्त विभिन्न जगतों को समझते हैं; अतः इसमें जो ज्ञान, समझ, मंदबुद्धि का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण निहित है। यही तथागत का उस जगत का वास्तविक ज्ञान है जिसमें अनेक तत्व और विभिन्न तत्व हैं। (4)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

ज्ञान का विश्लेषण

445

813. इसमें तथागत का ज्ञान, प्राणियों के विभिन्न स्वभावों के संदर्भ में, वास्तव में क्या है? इसमें तथागत इस प्रकार समझते हैं, "निम्न स्वभाव के प्राणी हैं; श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणी हैं। निम्न स्वभाव के प्राणी निम्न स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर रहते हैं, उनके पास जाते हैं और उनकी सेवा करते हैं। श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणी श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर रहते हैं, उनके पास जाते हैं और उनकी सेवा करते हैं।"

अतीत में भी, निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहते थे, उनके पास जाते थे और उनसे अक्सर मिलते-जुलते थे। इसी प्रकार, श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणी भी श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहते थे, उनके पास जाते थे और उनसे अक्सर मिलते-जुलते थे।

भविष्य में भी, निम्न स्वभाव के प्राणी निम्न स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर रहेंगे, उनके पास जाएंगे और उनसे बार-बार मिलेंगे। श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणी भी श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर रहेंगे, उनके पास जाएंगे और उनसे बार-बार मिलेंगे। [340] अतः उसमें जो

ज्ञान, समझ, मंदबुद्धि का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टिकोण है, वही तथागत का प्राणियों के विभिन्न स्वभावों का वास्तविक ज्ञान है। (5)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

814. इसमें तथागत का अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की नियंत्रण क्षमता में सुधार और गिरावट का वास्तविक ज्ञान क्या है? इसमें तथागत प्राणियों की प्रवृत्ति को समझते हैं; वे अंतर्निहित प्रवृत्ति को समझते हैं; वे विशिष्ट क्रिया को समझते हैं; वे स्वभाव को समझते हैं; वे कम धूल वाले, अधिक धूल वाले, तीव्र नियंत्रण क्षमता वाले, कमजोर नियंत्रण क्षमता वाले, अच्छे गुणों वाले, बुरे गुणों वाले, आसानी से सिखाए जाने वाले, कठिन सिखाए जाने वाले, योग्य या अयोग्य प्राणियों को समझते हैं।

815. और प्राणियों का झुकाव (विचारों का) क्या है? "संसार शाश्वत है" या "संसार शाश्वत नहीं है", "संसार सीमित है" या "संसार अनंत है", "प्राण और शरीर एक ही हैं" या "प्राण और शरीर भिन्न हैं", "मृत्यु के बाद प्राणी का अस्तित्व रहता है" या "मृत्यु के बाद प्राणी का अस्तित्व नहीं रहता", इस प्रकार, ऐसे प्राणी हैं जो अस्तित्ववादी दृष्टिकोणों पर निर्भर हैं, और जो अस्तित्वहीन दृष्टिकोणों पर निर्भर हैं। इन दोनों चरम सीमाओं का पालन न करके, अनुरूपता और सामंजस्य की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

विशिष्ट कारण-कार्य संबंध और आश्रित उत्पत्ति की अवस्थाओं में वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। यही प्राणियों की प्रवृत्ति है।

816. प्राणियों की गुप्त प्रवृत्ति क्या है? सात गुप्त प्रवृत्तियाँ हैं: इंद्रिय सुख की गुप्त प्रवृत्ति, घृणा की गुप्त प्रवृत्ति, अहंकार की गुप्त प्रवृत्ति, गलत दृष्टिकोण की गुप्त प्रवृत्ति, संदेह की गुप्त प्रवृत्ति, अस्तित्व की लालसा की गुप्त प्रवृत्ति और अज्ञान की गुप्त प्रवृत्ति। संसार में जो वस्तु सुंदर या सुखद है, उसके प्रति प्राणियों की लालसा की प्रवृत्ति गुप्त रहती है; संसार में जो वस्तु अप्रिय या अप्रिय है, उसके प्रति प्राणियों की घृणा की प्रवृत्ति गुप्त रहती है। अतः इन दोनों अवस्थाओं में यह समझना चाहिए कि अज्ञान निरंतर बना रहता है, और इसके साथ ही अहंकार, गलत दृष्टिकोण और संदेह भी बने रहते हैं। यही प्राणियों की गुप्त प्रवृत्ति है।

817. और प्राणियों की विशेषता क्या है? कर्म जो अच्छा (परिणाम) उत्पन्न करता है, कर्म जो बुरा (परिणाम) उत्पन्न करता है, कर्म जो अविचल (परिणाम) उत्पन्न करता है, निम्न स्तर का या उच्च स्तर का। यही प्राणियों की विशेषता है।

818. और प्राणियों का स्वभाव क्या है? निम्न स्वभाव के प्राणी होते हैं; श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणी होते हैं; निम्न स्वभाव के प्राणी निम्न स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर होते हैं, उनके पास आते हैं, और उनसे बार-बार संपर्क करते हैं। श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणी श्रेष्ठ स्वभाव के प्राणियों पर निर्भर होते हैं, उनके पास आते हैं, और उनसे बार-बार संपर्क करते हैं।

अतीत में भी, निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहते थे, उनके पास जाते थे और उनसे अक्सर मिलते-जुलते थे। इसी प्रकार, श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणी भी श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहते थे, उनके पास जाते थे और उनसे अक्सर मिलते-जुलते थे।

भविष्य में भी, निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहेंगे, उनके निकट आएंगे और उनसे बार-बार मिलेंगे। श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणी भी श्रेष्ठ स्वभाव वाले प्राणियों पर निर्भर रहेंगे, उनके निकट आएंगे और उनसे बार-बार मिलेंगे। प्राणियों का स्वभाव यही है।

819. वे कौन से प्राणी हैं जिनकी आँखों में बहुत धूल है?

दस प्रकार के भ्रष्टाचार के आधार हैं: लोभ, घृणा, सुस्ती, अहंकार, गलत दृष्टिकोण, संदेह, आलस्य, विचलित होना, लज्जा का अभाव, निंदा के भय का अभाव; जिन प्राणियों में ये दस प्रकार के भ्रष्टाचार पनपते हैं, विकसित होते हैं, बार-बार दोहराए जाते हैं और बढ़ते हैं, वे ही प्राणी हैं जिनकी आँखों में बहुत धूल जमी होती है।

820. वे कौन से प्राणी हैं जिनकी आँखों में कम धूल होती है? वे प्राणी जिनमें ये दस प्रकार के दोष न तो पनपते हैं, न विकसित होते हैं, न दोहराए जाते हैं, न ही बढ़ते हैं। ये वे प्राणी हैं जिनकी आँखों में कम धूल होती है।

821. वे कौन से प्राणी हैं जिनकी नियंत्रण क्षमता कमजोर होती है?

पांच नियंत्रण शक्तियाँ हैं: आत्मविश्वास की नियंत्रण शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रण शक्ति, जागरूकता की नियंत्रण शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रण शक्ति और ज्ञान की नियंत्रण शक्ति; जिन प्राणियों में इन पांचों नियंत्रण शक्तियों का अभ्यास नहीं किया जाता, उन्हें विकसित नहीं किया जाता, उन्हें दोहराया नहीं जाता या उनका विस्तार नहीं किया जाता, वे कमजोर नियंत्रण शक्तियों वाले प्राणी कहलाते हैं।

822. वे कौन से प्राणी हैं जिनके पास तीव्र नियंत्रण क्षमता है?

जिन प्राणियों में ये पाँचों नियंत्रण क्षमताएँ विकसित, बार-बार दोहराई और विस्तारित की जाती हैं, वे ही तीव्र नियंत्रण क्षमताओं वाले प्राणी कहलाते हैं।

823. वे कौन से प्राणी हैं जिनमें बुरे गुण होते हैं? वे प्राणी जिनमें बुरी प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनमें बुरी गुप्त प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनके कर्मों का स्वरूप बुरा होता है, जिनका स्वभाव बुरा होता है, जिनकी आँखों में बहुत धूल होती है, और जिनकी नियंत्रण क्षमता कमजोर होती है। ये ही बुरे गुणों वाले प्राणी हैं।

824. अच्छे गुणों वाले प्राणी कौन हैं? वे प्राणी जिनके स्वभाव में अच्छी प्रवृत्ति हो, अच्छे कर्म हों, अच्छी प्रवृत्ति हो, जिनकी आंखों में कम धूल हो और जिनकी नियंत्रण क्षमता तेज हो। यही अच्छे गुणों वाले प्राणी हैं।

825. वे कौन से प्राणी हैं जिन्हें सिखाना कठिन है? वे प्राणी जिनमें बुरे गुण होते हैं, वास्तव में वे ही प्राणी हैं जिन्हें सिखाना कठिन है। वे प्राणी जिनमें अच्छे गुण होते हैं, वास्तव में वे ही प्राणी हैं जिन्हें सिखाना आसान है।

826. वे कौन से प्राणी हैं जो योग्य नहीं हैं? वे प्राणी जो (बुरे) कर्मों के अवरोध से युक्त हैं, भ्रष्टाचार के अवरोध से युक्त हैं, बुरे परिणामों के अवरोध से युक्त हैं, जिनमें आत्मविश्वास नहीं है, (अच्छा करने की) इच्छा नहीं है, (पुनर्जन्म चेतना के साथ आने वाली) बुद्धि नहीं है, वे अच्छे अवस्थाओं की अपरिवर्तनीय सत्यता (अर्थात पथ चेतना) में प्रवेश करने के योग्य नहीं हैं। ये वे प्राणी हैं जो योग्य नहीं हैं। [342]

448

विश्लेषण की पुस्तक

827. वे कौन से प्राणी योग्य हैं? वे प्राणी जो (बुरे) कर्मों के अवरोध से रहित हैं, भ्रष्टाचार के अवरोध से रहित हैं, बुरे परिणामों के अवरोध से रहित हैं, जिनमें विश्वास है, (अच्छा करने की) इच्छा है, और (पुनर्जन्म चेतना के साथ) ज्ञान है, वे अच्छे अवस्थाओं की अपरिवर्तनीय सत्यता (अर्थात पथ चेतना) में प्रवेश करने के योग्य हैं। ये वे प्राणी हैं जो योग्य हैं; इस प्रकार, उनमें जो ज्ञान, समझ, सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। यह तथागत का अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की नियंत्रण क्षमता के सुधार और गिरावट का वास्तविक ज्ञान है। (6)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

828. इसमें तथागत का वह ज्ञान क्या है जो वास्तव में भ्रष्टाचार, शुद्धि, ध्यान से उद्भव, मुक्ति, एकाग्रता और प्राप्ति से संबंधित है? ध्यानी व्यक्ति से तात्पर्य चार प्रकार के ध्यानी व्यक्तियों से है: एक ध्यानी व्यक्ति ऐसा होता है जो वास्तव में प्राप्ति कर लेता है और फिर कहता है, "असफलता हुई है"; एक ध्यानी व्यक्ति ऐसा होता है जो वास्तव में असफल हो जाता है और फिर कहता है, "प्राप्ति हुई है"; एक ध्यानी व्यक्ति ऐसा होता है जो वास्तव में प्राप्ति कर लेता है और फिर कहता है, "प्राप्ति हुई है"; एक ध्यानी व्यक्ति ऐसा होता है जो वास्तव में असफल हो जाता है और फिर कहता है, "असफलता हुई है"। ये चार प्रकार के ध्यानी व्यक्ति हैं।

ध्यान के चार अन्य प्रकार हैं: एक प्रकार का ध्यानशील व्यक्ति धीरे-धीरे प्राप्ति करता है और शीघ्र ही प्रकट होता है; एक प्रकार का ध्यानशील व्यक्ति शीघ्र ही प्राप्ति करता है और धीरे-धीरे प्रकट होता है; एक प्रकार का ध्यानशील व्यक्ति धीरे-धीरे प्राप्ति करता है और धीरे-धीरे प्रकट होता है; एक प्रकार का ध्यानशील व्यक्ति शीघ्र ही प्राप्ति करता है और शीघ्र ही प्रकट होता है। ये ध्यानशील व्यक्तियों के चार प्रकार हैं।

ध्यान करने वाले व्यक्तियों के चार अन्य प्रकार इस प्रकार हैं: एक प्रकार का ध्यान करने वाला व्यक्ति एकाग्रता में निपुण होता है, परन्तु एकाग्रता बनाए रखने में निपुण नहीं होता; एक प्रकार का ध्यान करने वाला व्यक्ति एकाग्रता में निपुण होता है, परन्तु एकाग्रता बनाए रखने में निपुण नहीं होता; एक प्रकार का ध्यान करने वाला व्यक्ति एकाग्रता में निपुण और एकाग्रता बनाए रखने में निपुण होता है; एक प्रकार का ध्यान करने वाला व्यक्ति एकाग्रता में न तो निपुण होता है और न ही एकाग्रता बनाए रखने में निपुण होता है। ये चार प्रकार के ध्यान करने वाले व्यक्ति हैं।

ज्ञान का विश्लेषण 449

झन का अर्थ है चार झन: पहला झन, दूसरा झन, तीसरा झन, चौथा झन।

रिलीज का अर्थ है आठ प्रकार की रिलीज: भौतिक गुणों वाला व्यक्ति दृश्यमान (वस्तुओं) को देखता है। यह पहली रिलीज है।

अपने आंतरिक भौतिक गुणों को न समझते हुए, वह बाहरी दृश्यमान वस्तुओं को देखता है। यह दूसरी रिलीज़ है।

वह केवल सुंदर वस्तु (अर्थात् ध्यान की वस्तु) पर ही केंद्रित है। यह तीसरी मुक्ति है।

रूप संबंधी धारणाओं को पूर्णतः त्यागकर, इंद्रिय-प्रभाव की धारणाओं को समाप्त करते हुए, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, "अंतरिक्ष अनंत है" पर एकाग्र होकर, वह अनंत अंतरिक्ष की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। यह चौथा अंश है।

अनंत अंतरिक्ष की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेने के बाद, "चेतना अनंत है" का ध्यान केंद्रित करते हुए, वह अनंत चेतना की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। यही पाँचवीं मुक्ति है।

चेतना की अनंतता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेने के बाद, [343] (एकाग्र होकर) इस प्रकार, "कुछ भी नहीं है", वह शून्यता की अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है। यह छठी मुक्ति है।

शून्यता की अवस्था को पूर्णतः पार कर लेने के बाद, वह उस अवस्था को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। यही सातवीं मुक्ति है।

वह उस अवस्था को पूर्णतः पार कर लेता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष, और फिर वह उस अवस्था में निवास करता है जहाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों अवस्थाएँ होती हैं। यही आठवीं मुक्ति है।

सांद्रता से तीन प्रकार की सांद्रता का तात्पर्य है: प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ सांद्रता, निरंतर अनुप्रयोग के साथ सांद्रता; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना सांद्रता, केवल निरंतर अनुप्रयोग; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना सांद्रता, निरंतर अनुप्रयोग के बिना सांद्रता।

प्राप्ति का अर्थ है नौ क्रमिक उपलब्धियों में निवास करना: प्रथम ध्यान की प्राप्ति, द्वितीय ध्यान की प्राप्ति, तृतीय ध्यान की प्राप्ति, चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति, अनंत अंतरिक्ष की अवस्था की प्राप्ति, अनंत चेतना की अवस्था की प्राप्ति, शून्यता की अवस्था की प्राप्ति, ऐसी अवस्था की प्राप्ति जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष, और बोध एवं भावना की समाप्ति की प्राप्ति।

भ्रष्टाचार का अर्थ है पतन की अवस्था; परिष्कार का अर्थ है विशिष्टता की अवस्था; उद्भव का अर्थ है परिष्कार उद्भव है; इस और उस एकाग्रता से उद्भव भी उद्भव है; इस प्रकार जो कुछ उसमें निहित है, वह ज्ञान, समझ है, :P:

450

विश्लेषण की पुस्तक

सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। तथागत का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में है, भ्रष्टाचार, परिष्कार, उससे मुक्ति, ध्यान, मुक्ति, एकाग्रता और प्राप्ति का है। (7)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

829. इसमें तथागत का ज्ञान, जैसा कि वास्तव में पूर्व जन्मों की स्मृति से संबंधित है, क्या है? इसमें तथागत अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं। उदाहरण के लिए, एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, विकास के अनेक युग, पतन के अनेक युग, विकास और पतन दोनों के अनेक युग, इस प्रकार, "मैं ऐसे स्थान पर था, मेरा ऐसा नाम था, मेरा ऐसा कुल था, मेरा ऐसा रंग था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे ऐसा सुख-दुख का अनुभव हुआ, मेरा जीवन काल ऐसा समाप्त हुआ; मैं स्वयं वहाँ से होकर ऐसे स्थान पर पुनर्जीवित हुआ; वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मेरा ऐसा कुल था, मेरा ऐसा रंग था, मुझे ऐसा भोजन मिला, मुझे ऐसा सुख-दुख का अनुभव हुआ, मेरा जीवन काल ऐसा समाप्त हुआ; मैं स्वयं वहाँ से होकर यहाँ पुनर्जीवित हुआ"; इस प्रकार, सभी गुणों के साथ, सभी विवरणों के साथ, वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है; अत: इसमें जो ज्ञान, समझ, :P: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण है। यही तथागत का वास्तविक ज्ञान है, जो पूर्व जन्म की स्मृति से संबंधित है। (8)

पी = पैरा 525 देखें। [344]

830. इसमें तथागत का 'प्राणियों के नश्वर्य और पुनर्जन्म का वास्तविक ज्ञान' क्या है? इसमें तथागत मनुष्य की दृष्टि से परे, शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को नश्वर्य, आध्यात्मिक्य, निम्न, उच्च, उत्तम, अप्रिय, सुखी, दुखी देखते हैं; वे प्राणियों को उनके कर्मों के फल के अनुसार इस प्रकार समझते हैं, "यद्यपि ये योग्य प्राणी, जो गलत शारीरिक कर्मों, गलत वाणी और गलत मानसिक कर्मों से युक्त हैं, श्रेष्ठों का उपहास करते हैं, गलत दृष्टि से कर्म करते हैं, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर नरक की दुखद, दुखी और विनाशकारी अवस्था में उठते हैं; वहीं, वे योग्य प्राणी, जो सही शारीरिक कर्मों और सही वाणी कर्मों से युक्त हैं,

सही मानसिक कर्मों से युक्त, श्रेष्ठजनों का उपहास न करने वाले, सही दृष्टि रखने वाले, सही दृष्टि से कर्म करने वाले; वे मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर एक सुखी स्वर्गीय लोक में आरोहण करते हैं। 5' ; इस प्रकार मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ शुद्ध दिव्य दृष्टि से वे प्राणियों के देहान्तरण, आरोहण, निम्न, उच्च, उत्तम, अपरावृति, सुखी, दुःखी को देखते हैं; वे प्राणियों को उनके कर्मों के फल के अनुसार समझते हैं; इस प्रकार, उसमें जो ज्ञान, समझ, मंदता का अभाव, सत्य की खोज और सही दृष्टि निहित है। तथागत का प्राणियों के देहान्तरण और पुनर्जन्म का यही वास्तविक ज्ञान है। (9)

P = अनुच्छेद 525 देखें।

83 1. इसमें तथागत का 'अपराधों के नाश का वास्तविक ज्ञान' क्या है? इसमें तथागत स्वयं को पूर्णतः जानकर, वर्तमान जीवन में ही अपराधों के नाश द्वारा मन की स्वतंत्रता, उस बुद्धि की स्वतंत्रता को प्राप्त करते हैं और उसमें निवास करते हैं जो अपराधों का विषय नहीं है; अतः, इसमें जो बुद्धि, समझ है,

पी: सुस्ती का अभाव, सत्य की खोज, सही दृष्टिकोण। यही है
तथागत को विकारों के नाश के संबंध में जो ज्ञान है, वह यथार्थ है। (10)

पी — पैराग्राफ 525 देखें।

ज्ञान का विश्लेषण समाप्त हुआ।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 17 पाठ - खुद्दकवत्थु
विभंग-गौतम बुद्ध द्वारा बोली गई विश्लेषण की पुस्तक
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

सीएच.17. छोटी वस्तुओं का विश्लेषण (खुद्दाकवत्थु सं. क्षुद्र-)

I. एकल-पृष्ठ सारांश
832. [345] जन्म का अभिमान; कुल का अभिमान; स्वास्थ्य का अभिमान; यौवन का अभिमान; जीवन का अभिमान; लाभ का अभिमान; सम्मानित होने का अभिमान; आदरणीय होने का अभिमान; प्रमुखता का अभिमान; अनुयायियों का अभिमान; धन का अभिमान; दिखावे का अभिमान; विद्वता का अभिमान; बुद्धि का अभिमान; ज्ञानवान अधिकारी होने का अभिमान; नियमित भिक्षा संग्रहकर्ता होने का अभिमान; तिरस्कृत न होने का अभिमान; हावभाव का अभिमान; उपलब्धि का अभिमान; लोकप्रियता का अभिमान; नैतिक होने का अभिमान; ध्यान का अभिमान; निपुणता का अभिमान; लंबा होने का अभिमान; शारीरिक अनुपात का अभिमान; रूप का अभिमान; शारीरिक पूर्णता का अभिमान; अभिमान; लापरवाही; (मानसिक) कठोरता; प्रतिद्वंद्विता; सर्वोत्तम की कामना; सबसे अधिक की कामना; बुरी कामना; दिखावा; अनुमान; व्यक्तिगत घमंड; असभ्य जीवन; ऊब; उदासीनता; बेचैनी; भोजन के बाद की उनींदापन; मानसिक सुस्ती; छल; व्यंग्यात्मक बातें; संकेत देना; मानहानि; [346] लाभ से लाभ की तलाश; इस प्रकार का अहंकार, "मैं बेहतर हूँ"; इस प्रकार का अहंकार, "मैं बराबर हूँ"; इस प्रकार का अहंकार, "मैं हीन हूँ"; बेहतर व्यक्ति का अहंकार, "मैं बेहतर हूँ"; बेहतर व्यक्ति का अहंकार, "मैं बराबर हूँ"; बेहतर व्यक्ति का अहंकार, "मैं हीन हूँ"; बराबर व्यक्ति का अहंकार, "मैं बेहतर हूँ"; बराबर व्यक्ति का अहंकार, "मैं बराबर हूँ"; बराबर व्यक्ति का अहंकार, "मैं हीन हूँ"; हीन व्यक्ति का अहंकार, "मैं बेहतर हूँ"; हीन व्यक्ति का अहंकार, "मैं बराबर हूँ"; हीन व्यक्ति का अहंकार, "मैं हीन हूँ"; अहंकार; अत्यधिक अहंकार; अत्यधिक अहंकार; आत्म-अपमान का अहंकार; अति-आकलन का अहंकार; आत्म-अभिमान; झूठा अहंकार; रिश्तेदारों के बारे में सोचना; अपने जिले के बारे में सोचना; मरने से बचने और/या ईल के रेंगने के बारे में सोचना; दूसरों के प्रति सहानुभूति से संबंधित विचार; लाभ, सम्मान, प्रसिद्धि से संबंधित विचार; तिरस्कृत न होने से संबंधित विचार।
(यहाँ समाप्त होता है) एकल तह (सारांश)

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण
2. दो भागों में सारांश

453

833. क्रोध और द्वेष। कलंक लगाना और निंदा करना। ईर्ष्या और नीचता। छल और पाखंड। अज्ञानता और बनने की लालसा। बनने का दृष्टिकोण और न बनने का दृष्टिकोण। शाश्वतवादी दृष्टिकोण और विनाशवादी दृष्टिकोण। सीमित दृष्टिकोण और अनंत दृष्टिकोण। परम आरंभिक दृष्टिकोण और परम अंत दृष्टिकोण। लज्जा की भावना का अभाव और निंदा के भय का अभाव। अवज्ञा और बुरे मित्र होना। असत्यता और नम्रता का अभाव। अधीरता और अतिव्ययता। कोमलता का अभाव और आतिथ्यहीनता। [347] नियंत्रण करने वाली इंद्रियों के द्वारों की रक्षा न करना और भोजन में सही मात्रा का ज्ञान न होना। असावधानी और जागरूकता का अभाव। नैतिक विफलता और दोषपूर्ण दृष्टिकोण। आंतरिक बंधन और बाह्य बंधन।

(यहाँ समाप्त होता है) दो गुना (सारांश)

3. त्रिगुणात्मक सारांश

834. तीन बुरी जड़ें; तीन प्रकार की बुरी सोच; तीन प्रकार की बुरी धारणा; तीन बुरे तत्व; तीन प्रकार के गलत कर्म; तीन दोष; तीन बंधन; तीन प्रकार की लालसा; तीन प्रकार की लालसा; तीन प्रकार की खोज; तीन प्रकार का अहंकार; तीन प्रकार का भय; तीन प्रकार का अंधकार; विधर्म के तीन आधार; तीन प्रकार की बाधा; तीन प्रकार का कलंक; तीन प्रकार की अशुद्धता; तीन प्रकार की विसंगति; तीन प्रकार की विसंगति; तीन प्रकार की अग्नि; तीन प्रकार की तीक्ष्णता; तीन प्रकार की तीक्ष्णता।

संतुष्टि का दृष्टिकोण, आत्मिक दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण। नीरसता, परेशानी, गलत व्यवहार। अवज्ञा, बुरे मित्रों का होना, धारणाओं की विविधता। व्याकुलता, आलस्य, असावधानी। असंतोष, जागरूकता का अभाव, सबसे अधिक की इच्छा। लज्जा का अभाव, निंदा के भय का अभाव, असावधानी। उपेक्षा, अवज्ञा, बुरे मित्रों का होना। आत्मविश्वास का अभाव, विनती न जानना, आलस्य। व्याकुलता, संयम का अभाव, गलत नैतिकता। श्रेष्ठ व्यक्तियों के दर्शन की इच्छा का अभाव, सच्चे धर्मग्रंथ को सुनने की इच्छा का अभाव, निंदात्मक मन की स्थिति। असावधानी, जागरूकता का अभाव, मानसिक अस्थिरता। [348] अनुचित ध्यान, गलत मार्ग पर निर्भरता और मानसिक सुस्ती।

(यहाँ समाप्त होता है) त्रिगुणात्मक (सारांश)

454

विश्लेषण की पुस्तक

4. चार गुना सारांश

835. चार दोष; चार बंधन; चार बाढ़; चार बंधन; चार आसक्ति; लालसा की चार उत्पत्ति; गलत मार्ग के चार अभ्यास; चार उलटफेर; चार प्रकार की नीच वाणी; चार अन्य प्रकार की नीच वाणी; चार प्रकार के गलत कर्म; चार अन्य प्रकार के गलत कर्म; चार प्रकार के भय; चार अन्य प्रकार के भय; चार गलत विचार।

(यहाँ समाप्त होता है) चौगुना (सारांश)

5. पंचस्तरीय सारांश

836. निम्न (अस्तित्व) से संबंधित पाँच बंधन; उच्च (अस्तित्व) से संबंधित पाँच बंधन; पाँच प्रकार की नीचता; पाँच आसंजन; पाँच तीर; पाँच मानसिक काँटे; पाँच प्रकार के मानसिक बंधन; पाँच बाधाएँ; पाँच तात्कालिक परिणाम; पाँच गलत विचार; पाँच शत्रुतापूर्ण क्रियाएँ; पाँच दुर्भाग्य; अधीरता के पाँच नुकसान; पाँच भय; वर्तमान जीवन में निर्वाण के पाँच सिद्धांत। [349]

(यहाँ समाप्त होता है) पंचगुना (सारांश)

6. छह गुना सारांश

837. विवाद के छह मूल; छह प्रकार की कामुक इच्छा; छह आधार; छह प्रकार की लालसा; छह प्रकार का अनादर; छह प्रतिगामी अवस्थाएँ; छह अन्य प्रतिगामी अवस्थाएँ; छह प्रकार की मानसिक सुख से परीक्षा; छह प्रकार की मानसिक पीड़ा से परीक्षा; छह प्रकार की उदासीनता से परीक्षा; छह प्रकार का मानसिक सुख जो इंद्रिय सुख से जुड़ा है; छह प्रकार की मानसिक पीड़ा जो इंद्रिय पीड़ा से जुड़ी है; छह प्रकार की उदासीनता जो इंद्रिय सुख से जुड़ी है; छह गलत विचार।

(यहाँ समाप्त होता है) छह गुना (सारांश)

7. सात गुना सारांश

838. सात गुप्त प्रवृत्तियाँ; सात बंधन; सात विकास; सात दूषित अवस्थाएँ; सात गलत कर्म; सात (प्रकार के) अहंकार; सात गलत विचार।

(यहाँ समाप्त होता है) सात गुना (सारांश)

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

8. आठ गुना सारांश

455

839. भ्रष्टाचार के आठ आधार; आलस्य के आठ आधार; आठ सांसारिक परिस्थितियों में चेतना का विचलन; आठ प्रकार की नीच वाणी; आठ प्रकार का झूठ; मनुष्य के आठ दोष; अबोध होने के आठ सिद्धांत; न बोध और न ही अबोध होने के आठ सिद्धांत।
(यहाँ समाप्त होता है) अष्टांग (सारांश)
9. नौ गुना सारांश
840. व्यथित होने के नौ आधार; मनुष्य की नौ अशुद्धियाँ; नौ प्रकार का अहंकार; लालसा में निहित नौ अवस्थाएँ; नौ प्रकार की विक्षिप्तता; नौ प्रकार की कल्पना; नौ प्रकार की अस्थिरता; नौ प्रकार का जुनून; नौ मानसिक स्थितियाँ।
(यहाँ समाप्त होता है) नौ गुना (सारांश)
10. दस गुना सारांश
841. भ्रष्टाचार के दस आधार; उत्पीड़न के दस आधार; बुरे कर्मों के दस मार्ग; दस बंधन; दस प्रकार की असत्यता; दस आधारों वाला झूठा दृष्टिकोण; दस आधारों वाला चरमपंथी दृष्टिकोण।
(यहाँ समाप्त होता है) दस गुना (सारांश)
842. आंतरिक (समूहों) से संबंधित तृष्णा के अठारह उदाहरण; बाह्य (समूहों) से संबंधित तृष्णा के अठारह उदाहरण; इन सभी को संक्षेप में मिलाकर तृष्णा के छत्तीस उदाहरण हैं; इस प्रकार, तृष्णा के छत्तीस भूतकाल उदाहरण; तृष्णा के छत्तीस भविष्यकाल उदाहरण; तृष्णा के छत्तीस वर्तमान उदाहरण; इन सभी को संक्षेप में मिलाकर तृष्णा के एक सौ आठ उदाहरण हैं; साथ ही वे बासठ गलत विचार जिनका उल्लेख भगव ने ब्रह्मजाल व्याख्या में किया है। [350]
सारांश (समाप्त हो गया है)
1. एकल-गुना प्रदर्शनी
843. इसमें 'जन्म का अभिमान' क्या है? जन्म के आधार पर (इसमें) अभिमान, घमंड, घमंड की अवस्था, अहंकार, अहंकारी होना शामिल है।

456

विश्लेषण की पुस्तक

अहंकार, आत्मसम्मान, घमंड, झंडा लहराना, अभिमान, ध्वज के प्रति सचेत लालसा। इसे जन्म का अभिमान कहते हैं।
844. इसमें 'कुल का गौरव' क्या है? कुल पर निर्भर करता है। :P: स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। :P: युवावस्था पर निर्भर करता है। :P: जीवन पर निर्भर करता है। :P: लाभ पर निर्भर करता है। :P: सम्मानित होने पर निर्भर करता है। :P: आदरणीय होने पर निर्भर करता है। :P: प्रमुखता पर निर्भर करता है। :P: अनुयायियों के होने पर निर्भर करता है। :P: धन पर निर्भर करता है।
पी
दिखावट पर निर्भर करता है। :P: ज्ञान पर निर्भर करता है। :P:
बुद्धि पर निर्भर करता है। :P: एक जानकार अधिकारी होने पर निर्भर करता है। :P: (नियमित) भिक्षाग्राही होने पर निर्भर करता है।
पी: तिरस्कृत न होने पर निर्भर करता है। :पी: हावभाव पर निर्भर करता है।
पी: उपलब्धि पर निर्भर करता है। :पी: लोकप्रियता पर निर्भर करता है।
पी: नैतिक होने पर निर्भर करता है। :पी: ध्यान पर निर्भर करता है। :पी:
निपुणता पर निर्भर। : P : लंबाई पर निर्भर। : P : (शारीरिक) अनुपात पर निर्भर। : P : आकार पर निर्भर। : P : (शारीरिक) पूर्णता पर निर्भर। (इसमें) अभिमान, गर्व, अभिमान की अवस्था, साथ ही अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उदात्तता, घमंड, (झंडा लहराना), धारणा, ध्वज के लिए चेतना की इच्छा शामिल है। इसे (शारीरिक) पूर्णता का अभिमान कहा जाता है।
P — प्रत्येक को अंतिम उदाहरण के रूप में पूरा करें।
845. इसमें 'अभिमान' क्या है? वह जो अभिमान है, अभिमानी होना, अभिमानी अवस्था, घमंड, घमंडी होना, घमंडी अवस्था, अहंकार, हेकड़ी, झंडा लहराना, अनुमान लगाना, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा। इसे अभिमान कहते हैं।

846. इसमें 'लापरवाही' क्या है? गलत शारीरिक क्रिया, गलत मौखिक क्रिया, गलत मानसिक क्रिया, चेतना का पाँच इंद्रिय सुखों के वश में बार-बार हो जाना, सावधानीपूर्वक काम न करना, निरंतर काम न करना, रुक-रुक कर काम करना, स्थिर रहना, इच्छा का त्याग करना, कार्य को छोड़ देना, न तो प्रयास करना, न विकास करना, न पुनरावृति करना, न संकल्प लेना, न अभ्यास करना, अच्छे भावों के विकास में लापरवाही; जो इसके समान है, लापरवाही, लापरवाह होना, लापरवाह अवस्था। इसे लापरवाही कहते हैं।

1

मैं

847. इसमें '(मानसिक) कठोरता' क्या है? कठोरता, कठोरता की अवस्था, कठोरता, कठोरता, चेतना की अनम्यता, गैर-लचीलापन। इसे (मानसिक) कठोरता कहते हैं।

848. इसमें 'प्रतिस्पर्धा' क्या है? जो प्रतिस्पर्धा, प्रति-प्रतिस्पर्धा, प्रतिस्पर्धा का कार्य, प्रति-प्रतिस्पर्धा का कार्य, प्रति-प्रतिस्पर्धा की स्थिति है, उसे ही प्रतिस्पर्धा कहते हैं।

849. इसमें 'सर्वोत्तम की कामना' क्या है? वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों की सहायता के लिए दवा या पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों जैसी आवश्यकताओं से असंतुष्ट व्यक्ति की वह प्रबल इच्छा [351]; जो कामना, कामना करने की क्रिया, सर्वोत्तम की कामना, कामवासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति के समान है। इसे सर्वोत्तम की कामना कहते हैं।

850. इसमें 'सर्वोच्च इच्छा' क्या है? वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों की सहायता के लिए दवा या पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों जैसी आवश्यकताओं से असंतुष्ट व्यक्ति की वह प्रबल इच्छा; जो इच्छा, इच्छा करने की क्रिया, सर्वोच्च इच्छा, कामवासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति के समान है। इसे सर्वोच्च इच्छा कहते हैं।

851. इसमें 'बुरी इच्छा' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति, आत्मविश्वासहीन होकर, ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे आत्मविश्वासी समझें; गलत नैतिकता वाला होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे गुणी समझें; अज्ञानी होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे बहुत विद्वान समझें; संगति में प्रसन्न होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे एकांतप्रिय समझें; आलसी होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे ऊर्जावान समझें; लापरवाह होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे सजग समझें; एकाग्रताहीन होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे एकाग्र समझें; बुद्धिहीन होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे बुद्धिमान समझें; दोषों से मुक्त न होकर वह ऐसी इच्छा करता है कि लोग उसे दोषों से मुक्त समझें; जो भी इन सब के समान है, इच्छा, इच्छा करने की क्रिया, बुरी इच्छा, वासना, मोह, चेतना का मोह। इसे बुरी इच्छा कहते हैं।

852. इसमें 'दिखावा' क्या है? दिखावा, शिष्टता, चतुराई, चतुराई की अवस्था, ढोंग, ढोंग की अवस्था। इसे दिखावा कहते हैं।

853. इसमें 'अहंकार' क्या है? अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, आत्म-भोग, आत्म-भोग की अवस्था, आत्म-भोग की अवस्था, बेचैनी, बेहतर की चाह। इसे अहंकार कहते हैं।

854. इसमें 'व्यक्तिगत अभिमान' क्या है? वस्त्रों का अलंकरण, भिक्षापात्र का अलंकरण, निवास का अलंकरण; सजावट, सौंदर्यीकरण, अभिमान करना, संवारना, लोभ, लोभ की अवस्था, व्यक्तिगत अभिमान का कार्य, इस नश्वर शरीर और बाहरी आवश्यकताओं के प्रति व्यक्तिगत अभिमान। इसे ही व्यक्तिगत अभिमान कहते हैं।

855. इसमें 'अशिष्ट जीवन' क्या है? विरोध, नुक्ताचीनी, [352] उपेक्षा, अनादर, माता-पिता, बड़े-बुजुर्ग, भाई, शिक्षक, गुरु, बुद्ध, शिष्य या अन्य आदरणीय व्यक्तियों के प्रति अनादर। इसे अशिष्ट जीवन कहा जाता है।

856. इसमें 'उबाऊपन' क्या है? ऊब, ऊब होना, नाखुशी, असंतुष्टि, दूर के निवासों या कुछ उच्चतर सुख-स्थितियों का भय। इसे ऊब कहते हैं।

857. इसमें 'उदासीनता' क्या है? उदासीनता, उदासीन होना, मानसिक सुस्ती, आलस्य, निष्क्रिय होना, निष्क्रिय अवस्था। इसे उदासीनता कहते हैं।
858. इसमें 'बेचैनी' क्या है? वह जो फड़कना, बेचैनी, आगे झुकना, पीछे झुकना, शरीर को मरोड़ना, ऊपर की ओर खींचना, शरीर को हिलाना-डुलाना है। इसे बेचैनी कहते हैं।
859. इसमें 'भोजन के बाद की सुस्ती' क्या है? भोजन करने वाले व्यक्ति में भोजन के कारण चक्कर आना, थकान, बुखार, शारीरिक अस्वस्थता जैसी स्थिति को भोजन के बाद की सुस्ती कहते हैं।
860. इसमें 'मानसिक सुस्ती' क्या है? चेतना की अस्वस्थता, शिथिलता, उदासी, सुस्ती, सुस्त होना, सुस्त अवस्था, आलस्य, सुस्त होना, चेतना की सुस्त अवस्था। इसे ही मानसिक सुस्ती कहते हैं।

861. इसमें छल क्या है? जो लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि पर निर्भर रहता है, जिसकी बुरी इच्छाएँ होती हैं, जो इच्छाओं से व्याकुल रहता है: तथाकथित आवश्यकताओं का उपयोग करके, सांकेतिक बातें करके, हाव-भाव को सही ढंग से व्यवस्थित करके: वह भौंहें सिकोड़ता है, भौंहें सिकोड़ने की क्रिया करता है, छल करता है, छलपूर्ण होता है, छलपूर्ण अवस्था में होता है। इसे छल कहते हैं।
862. इसमें 'संकेतपूर्ण बातें' क्या हैं? लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि पर निर्भर रहने वाले, बुरी इच्छा रखने वाले, इच्छाओं से व्याकुल रहने वाले व्यक्ति के लिए: जो बातें दूसरों को लुभावनी, संकेतपूर्ण, मनोरंजक, प्रशंसात्मक, चापलूसीपूर्ण, अनुमानपूर्ण, बार-बार अनुमानपूर्ण, फुसलाने वाली, लगातार मीठी बातें, चापलूसी, खुशामद, दुलारपूर्ण व्यवहार प्रतीत होती हैं। इसे संकेतपूर्ण बातें कहा जाता है।
863. उसमें 'संकेत* क्या है? जो लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि पर निर्भर है, जिसकी बुरी इच्छाएँ हैं, [353] जो इच्छाओं से व्याकुल है: वह जो दूसरों के लिए एक संकेत है, अर्थपूर्ण है, संकेतपूर्ण बात है, संकेतपूर्ण क्रिया है, सांकेतिक बात है, घुमावदार बात है। इसे ही अर्थपूर्णता कहते हैं।
864. इसमें 'मानहानि' क्या है? जो व्यक्ति लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि पर निर्भर रहता है, जिसकी बुरी इच्छाएँ होती हैं, जो इच्छाओं से व्याकुल रहता है: उसके लिए दूसरों को गाली देना, अपशब्द कहना, निंदा करना, उपहास करना, बार-बार उपहास करना, उपहास करना, बार-बार उपहास करना, बदनामी करना, चुगली करना, पीठ पीछे बुराई करना। इसे मानहानि कहते हैं।
865. इसमें 'लाभ से लाभ की खोज' क्या है? जो लाभ, मान-सम्मान और यश पर निर्भर रहता है, जिसकी बुरी इच्छाएँ होती हैं, जो इच्छाओं से व्याकुल रहता है, वह यहाँ से प्राप्त भौतिक वस्तुओं को वहाँ लाता है; वहाँ से प्राप्त भौतिक वस्तुओं को वहाँ लाता है; जो भी इसी प्रकार है, भौतिक वस्तुओं की इच्छा करना, खोज करना, निरंतर खोज करना, इच्छा करना, खोज करना, निरंतर खोज करना। इसे लाभ से लाभ की खोज कहा जाता है।
0 _
866. इसमें "मैं बेहतर हूँ" वाली धारणा क्या है? इसमें एक
जन्म से, वंश से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प कौशल से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से कोई व्यक्ति अहंकार उत्पन्न करता है; जो समान हो,

अहंकार, अहंकारी होना, अहंकार की अवस्था, बड़प्पन, अभिमान, झंडा लहराना, धारणा, किसी ध्वज के लिए चेतना की लालसा। इसे ही अहंकार कहते हैं, "मैं श्रेष्ठ हूँ"।

867. इसमें “मैं समतुल्य हूँ” का अभिमान क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, वंश से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प कौशल से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से अभिमान उत्पन्न करता है; जो समानता हो, अभिमान, अभिमान, अभिमान की अवस्था, उच्चता, घमंड, ध्वजारोहण, अनुमान, ध्वज के प्रति चेतना की इच्छा। इसे ही “मैं समतुल्य हूँ” का अभिमान कहा जाता है।
868. इसमें “मैं हीन हूँ” का अहंकार क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, या कुल से, या अच्छे परिवार से, या सुंदर शरीर से, या संपत्ति से, या अध्ययन से, या कार्यक्षेत्र से, या शिल्प क्षेत्र से, या विज्ञान की शाखा से, या ज्ञान से, या बुद्धि से, या किसी अन्य कारण से आत्म-अनादर उत्पन्न करता है; जो आत्म-अनादर, आत्म-अनादरपूर्ण होना, आत्म-अनादरपूर्ण अवस्था, स्वयं का तिरस्कार करना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण होना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण अवस्था, आत्म-घृणा, आत्म-घृणा, आत्म-घृणा के समान है। इसे ही “मैं हीन हूँ” का अहंकार कहा जाता है। [354]
869. इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति का यह अहंकार, “मैं श्रेष्ठ हूँ”, क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से श्रेष्ठ है, वह स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है; वह इसी के आधार पर अहंकार उत्पन्न करता है; अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, घमंड, ध्वजारोहण, अभिमान, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा, इन सभी का समानार्थक शब्द है। श्रेष्ठ व्यक्ति के इस अहंकार को ही “मैं श्रेष्ठ हूँ” कहा जाता है।
870. इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति का यह अहंकार कि “मैं समतुल्य हूँ” क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प कौशल से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से श्रेष्ठ है, स्वयं को दूसरों के समतुल्य मानता है; वह इसी आधार पर कारण बनता है

अहंकार उत्पन्न होना; जो समान है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा फहराना, धारणा, ध्वज के लिए चेतना की इच्छा। जो व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ समझता है, उसके इस अहंकार को "मैं समान हूँ" कहा जाता है।
871. इसमें श्रेष्ठ व्यक्ति का यह अहंकार क्या है, “मैं हीन हूँ”? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से श्रेष्ठ है, वह स्वयं को दूसरों से हीन समझता है; वह इसी के आधार पर आत्म-अपमान उत्पन्न करता है; जो आत्म-अपमान, आत्म-अपमानजनक होना, आत्म-अपमानजनक अवस्था, स्वयं को कोसना, अत्यधिक कोसना, अत्यधिक कोसना, आत्म-तिरस्कार, आत्म-घृणा आदि के समान है। श्रेष्ठ व्यक्ति के इस अहंकार को “मैं हीन हूँ” कहा जाता है।
872. इसमें समतुल्य व्यक्ति के मन में "मैं श्रेष्ठ हूँ" का यह अहंकार क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से या अच्छे परिवार से समतुल्य है, या किसी अन्य कारण से स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है; वह इसी आधार पर अहंकार उत्पन्न करता है; जो समतुल्य है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकार की अवस्था, चेतना की एक ध्वज की इच्छा। समतुल्य व्यक्ति के इस अहंकार को "मैं श्रेष्ठ हूँ" कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
873. जो व्यक्ति समतुल्य है, उसमें "मैं समतुल्य हूँ" का यह अहंकार क्या है? यहाँ कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, या अच्छे परिवार से समतुल्य है, या किसी अन्य कारण से स्वयं को दूसरों के समतुल्य मानता है; वह इसी के आधार पर अहंकार उत्पन्न करता है; जो समान है, वह है अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, अहंकार, घमंड, झंडा फहराना, अभिमान, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा। समतुल्य व्यक्ति के इस अहंकार को "मैं समतुल्य हूँ" कहा जाता है।
पी — मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
874. इसमें, जो व्यक्ति समतुल्य है, उसमें "मैं हीन हूँ" जैसी धारणा का क्या अर्थ है? इसमें, कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, या किसी अन्य कारण से समतुल्य है, उसे स्थान दिया जाता है।

111

462

विश्लेषण की पुस्तक

स्वयं को दूसरों से हीन समझना; इसी के कारण वह आत्म-अपमान का भाव उत्पन्न करता है; आत्म-अपमान, आत्म-अपमानजनक होना, आत्म-अपमानजनक अवस्था, स्वयं को कोसना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण होना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण अवस्था, आत्म-घृणा, आत्म-घृणा, आत्म-तिरस्कार। समतुल्य व्यक्ति में इस भाव को "मैं हीन हूँ" का अहंकार कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
875. इसमें किसी हीन व्यक्ति का यह अहंकार, "मैं श्रेष्ठ हूँ", क्या कहलाता है? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से या अच्छे परिवार से हीन है, या किसी न किसी कारण से स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है; वह इसी के आधार पर अहंकार उत्पन्न करता है; जो समान है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा फहराना, धारणा, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा। हीन व्यक्ति के इस अहंकार को "मैं श्रेष्ठ हूँ" कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
876. इसमें किसी हीन व्यक्ति का यह अहंकार, "मैं समतुल्य हूँ", क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जो जन्म से, कुल से, या अच्छे परिवार से हीन है, या किसी न किसी कारण से स्वयं को दूसरों के समतुल्य समझता है; वह इसी के आधार पर अहंकार उत्पन्न करता है; जो समानता है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, अभिमान, [355] (झंडा फहराना), अनुमान, ध्वज के प्रति चेतना की इच्छा। हीन व्यक्ति के इस अहंकार को, "मैं समतुल्य हूँ", कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
877. इसमें, जो हीन है, उसमें "मैं हीन हूँ" का यह अहंकार क्या है? इसमें, जो व्यक्ति जन्म से, कुल से, या अच्छे परिवार से हीन है, या किसी अन्य कारण से स्वयं को दूसरों से हीन समझता है; वह इसी के आधार पर आत्म-अपमान उत्पन्न करता है; जो आत्म-अपमान, आत्म-अपमानजनक होना, आत्म-अपमानजनक अवस्था, स्वयं को कोसना, अत्यधिक कोसना, अत्यधिक कोसना, आत्म-तिरस्कार, आत्म-घृणा आदि के समान है। हीन व्यक्ति के इस अहंकार को "मैं हीन हूँ" कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

463

878. इसमें 'अभिमान' क्या है? अभिमान, अभिमानी होना, अभिमान की अवस्था, अहंकार, घमंड, झंडा फहराना, अनुमान लगाना, ध्वज के लिए चेतना की लालसा। इसे ही अभिमान कहते हैं।
879. इसमें 'अत्यधिक अहंकार' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, कुल से, परिवार से या किसी अन्य कारण से स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है; इसी प्रकार का अहंकार, अभिमान, अभिमान की अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा लहराना, अहंकार, ध्वज के प्रति अभिमान। इसे ही अत्यधिक अहंकार कहते हैं।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
880. इसमें 'अत्यधिक अहंकार' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, कुल से, परिवार से या किसी अन्य कारण से पहले स्वयं को दूसरों के बराबर समझता है, बाद में स्वयं को श्रेष्ठ समझता है; जो समान है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकार की अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा लहराना, अभिमान, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा। इसे अत्यधिक अहंकार कहा जाता है।
P = मध्यवर्ती शब्द, पैराग्राफ 866 देखें।
881. इसमें 'आत्म-अपमान' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प कौशल से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से आत्म-अपमान उत्पन्न करता है; जो भी

इससे मिलता-जुलता है, आत्म-अपमान, आत्म-अपमानजनक होना, आत्म-अपमानजनक अवस्था, स्वयं का तिरस्कार करना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण होना, अत्यधिक तिरस्कारपूर्ण अवस्था, आत्म-घृणा, आत्म-घृणा, आत्म-घृणा। इसे आत्म-अपमान कहा जाता है।

882. इसमें 'अतिशय अहंकार' क्या है? न पहुँचने में भी पहुँचने का आभास होता है; न करने में भी करने का आभास होता है; न प्राप्त करने में भी प्राप्त करने का आभास होता है; न अनुभव करने में भी अनुभव करने का आभास होता है; जो समान है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा फहराना, धारणा, ध्वज के लिए चेतना की इच्छा। इसे अतिशय अहंकार कहते हैं। [356]

883. इसमें 'आत्म-अभिमान' क्या है? अभिमान इस प्रकार है, मैं भौतिक गुण हूँ; इच्छा इस प्रकार है, मैं (भौतिक गुण) हूँ; अंतर्निहित प्रवृत्ति इस प्रकार है, मैं (भौतिक गुण) हूँ; भावना। :P: बोध।

पी: मानसिक सहवर्ती। :पी: इस प्रकार, मैं सचेत हूँ-

यह इच्छा; इस प्रकार, मैं (चेतना) हूँ; यह अंतर्निहित प्रवृत्ति; जो इसके समान है, अहंकार, अहंकारी होना, अहंकारी अवस्था, उच्चता, घमंड, झंडा फहराना, धारणा, चेतना की ध्वज के लिए लालसा। इसे आत्म-अभिमान कहते हैं।

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में पूर्ण।

884. इसमें 'झूठा अभिमान' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति बुरे कर्मों, बुरे शिल्प, बुरे विज्ञान, बुरी विद्या, बुरी बुद्धि, बुरे आचरण, बुरी आदतों, बुरे विचारों या किसी अन्य कारण से अभिमान उत्पन्न करता है; अभिमान, अभिमान, अभिमान की अवस्था, अहंकार, घमंड, झंडा फहराना, अनुमान लगाना, ध्वज के प्रति चेतना की लालसा, इन सभी को झूठा अभिमान कहते हैं।

885. इसमें 'रिश्तेदारों के बारे में सोचना' क्या है? रिश्तेदारों से संबंधित सांसारिक मामलों के बारे में सोचना, विचार करना, गलत विचार करना। इसे रिश्तेदारों के बारे में सोचना कहते हैं।

886. इसमें 'अपने जिले के बारे में सोचना' क्या है? अपने जिले से संबंधित सांसारिक मामलों से जुड़ी मानसिकता, सोच, गलत विचार। इसे अपने जिले के बारे में सोचना कहते हैं।

887. इसमें 'मृत्यु से बचने के बारे में सोचना और/या ईल मछली की तरह रेंगना' क्या है? चिंतन, विचार, कठोर अभ्यास से जुड़ा गलत विचार, गलत दृष्टिकोण से जुड़ा विचार, सांसारिक मामलों से संबंधित विचार। इसे ही मृत्यु से बचने के बारे में सोचना और/या ईल मछली की तरह रेंगना कहते हैं।

888. इसमें 'दूसरों के प्रति सहानुभूति से जुड़ा चिंतन' क्या है? इसमें एक व्यक्ति गृहस्थों के साथ रहता है, उनके साथ सुख-दुख में शामिल होता है, उनके सुख में प्रसन्न होता है, उनके दुख में दुखी होता है, जब कोई कार्य करना होता है तो वह स्वयं प्रयास करता है; इसमें जो चिंतन, विचार, सांसारिक विचारों से जुड़ा गलत विचार है, वही इसमें निहित है।

मायने रखता है। इसे दूसरों के प्रति सहानुभूति से जुड़ा चिंतन कहा जाता है।

889. इसमें 'लाभ, सम्मान और प्रसिद्धि से संबंधित विचार' क्या है? सांसारिक मामलों, लाभ, सम्मान और प्रसिद्धि से संबंधित गलत विचार, चिंतन, चिंतन। इसे लाभ, सम्मान और प्रसिद्धि से संबंधित विचार कहा जाता है।

890. इसमें 'अपमानित न होने से संबंधित विचार' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति जन्म से, कुल से, अच्छे परिवार से, सुंदर शरीर से, संपत्ति से, अध्ययन से, कार्यक्षेत्र से, शिल्प कौशल से, विज्ञान की शाखा से, ज्ञान से, बुद्धि से या किसी अन्य कारण से इस प्रकार सोचता है, “अन्य लोग [357] मुझे तिरस्कृत न करें”; इसमें जो भी मनोवृत्ति, विचार, सांसारिक मामलों से संबंधित गलत विचार है, उसे ही अपमानित न होने से संबंधित विचार कहा जाता है।

(यहाँ समाप्त होता है) एकल तह (प्रदर्शनी)

2. दोहरी व्याख्या

891. इसमें 'क्रोध' क्या है? क्रोध, क्रोधित होना, क्रोधित अवस्था, घृणा, नफरत करना, घृणा करने की अवस्था, अव्यवस्था, अव्यवस्था की अवस्था, विरोध, शत्रुता, उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। यही क्रोध कहलाता है।
इसमें 'द्वेष' क्या है? पहले क्रोध आता है, फिर द्वेष; जो कुछ भी समान है, द्वेष, द्वेषपूर्ण होना, द्वेषपूर्ण अवस्था, बनाए रखना, निरंतर बनाए रखना, निरंतरता, क्रमिक रूप से एक साथ बंधे रहना, क्रोध का सुदृढ़ होना। इसे द्वेष कहते हैं। (1)
892. इसमें 'स्निचिंग' क्या है? वह जो कलंकित करता है, कलंकित करता है, कलंकित करता है, अपमान करता है, अपमानजनक कार्य करता है। इसे कलंकित करना कहते हैं।
इसमें 'अपमानजनक' क्या है? वह जो अपमानजनक है, अपमानजनक होना, अपमानजनक होने की स्थिति, विवाद उत्पन्न करना, प्रतिस्पर्धा करना, हार न मानना। इसे अपमानजनक कहा जाता है। (2)
893. इसमें 'ईर्ष्या' क्या है? वह जो दूसरों के लाभ, सम्मान, आदर, अभिवादन, आदरपूर्ण भेंट आदि के लिए की जाती है।

ईर्ष्या, ईर्ष्यालु होना, ईर्ष्या की अवस्था, जलन, जलन की अवस्था। इसे ही ईर्ष्या कहते हैं।
इसमें 'कमी' क्या है? पाँच प्रकार की कमी: घर के प्रति कमी, परिवार के प्रति कमी, लाभ के प्रति कमी, प्रतिष्ठा के प्रति कमी, और धर्म के प्रति कमी। जो कमी, कमी होना, कमी की अवस्था, लोभ, नीचता, कंजूसी, संकीर्ण मानसिकता के समान है, उसे कमी कहते हैं। (3)
894. इसमें छल क्या है? इसमें कोई व्यक्ति शरीर से, वाणी से और मन से गलत कर्म करके, उस कर्म को छिपाने के लिए बुरी इच्छा उत्पन्न करता है; वह इस प्रकार सोचता है, "मुझे कोई न जाने"; [358] वह इस प्रकार सोचता है, "मुझे कोई न जाने"; वह इस प्रकार कहता है, "मुझे कोई न जाने"; वह शरीर से इस प्रकार प्रयास करता है, "मुझे कोई न जाने"; जो कुछ भी समान है, छल, कपट, छिपाव, छल, जालसाजी, बात को उलझाना, टालमटोल, छुपाना, गुप्त रखना, छिपाना, ढकना, स्पष्ट न करना, प्रकट न करना, अच्छी तरह छुपाना, कपट। इसे छल कहते हैं।
इसमें 'पाखंड' क्या है? इसमें एक व्यक्ति पाखंडी, धोखेबाज है; इसमें जो कुछ भी पाखंड है, पाखंडी होना, पाखंडी अवस्था, कठोरता, कठोरता, ढोंग, ढोंग। इसे पाखंड कहते हैं। (4)
895. इसमें 'अज्ञान' क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। यही अज्ञान कहलाता है।
P = अनुच्छेद 180 देखें।
उसमें 'बनने की लालसा' क्या है? जो बनने से संबंधित है, वह बनने की इच्छा, बनने की लालसा, बनने का जुनून, बनने की चाहत, बनने का प्रेम, बनने की तीव्र इच्छा, बनने की ललक, बनने से आसक्ति है। इसे बनने की लालसा कहते हैं। (5)
896. इसमें 'अनुरूप दृष्टिकोण' क्या है? "आत्मा और संसार, दोनों (पुनः) होंगे", अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P: उलटी पकड़। इसे ही अनुरूप दृष्टिकोण कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।

इसमें 'अनुचित दृष्टिकोण' क्या है? "आत्मा और संसार दोनों (पुनः) नहीं होंगे", अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P: उलटी पकड़। इसे अनुचित दृष्टिकोण कहते हैं। (6)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
897. इसमें 'शाश्वतवादी दृष्टिकोण' क्या है? "आत्मा और संसार दोनों ही शाश्वत हैं", अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, यानी उलटा दृष्टिकोण। इसे ही शाश्वतवादी दृष्टिकोण कहते हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'विनाशवादी दृष्टिकोण' क्या है? "आत्मा और संसार दोनों का अंत हो जाएगा", अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P: उलटा दृष्टिकोण। इसे ही विनाशवादी दृष्टिकोण कहते हैं। (7)
P = अनुच्छेद 249 देखें।

898. इसमें 'सीमित दृष्टिकोण' क्या है? “आत्मा और संसार दोनों ही सीमित हैं”, अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P: उलटी पकड़। इसे ही सीमित दृष्टिकोण कहते हैं। [359]
P = अनुच्छेद 249 देखें।
इसमें 'अनंत दृष्टि' क्या है? “आत्मा और संसार दोनों अनंत हैं”, अतः, जो समान है, वह गलत दृष्टि है, गलत दृष्टि का सहारा लेना है, :P: उलटी पकड़। इसे अनंत दृष्टि कहते हैं। (8)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
899. इसमें 'परम आरंभिक दृष्टिकोण' क्या है? प्राणियों के परम आरंभिक दृष्टिकोण के विषय में जो कुछ उत्पन्न होता है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, यानी उलटी पकड़। इसे परम आरंभिक दृष्टिकोण कहा जाता है।
P^=पैरा 249 देखें।
इसमें 'परम लक्ष्य दृष्टिकोण' क्या है? प्राणियों के परम लक्ष्य के संबंध में जो विचार उत्पन्न होता है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, यानी उलटी पकड़। इसे ही परम लक्ष्य दृष्टिकोण कहा जाता है। (9)
p = अनुच्छेद 249 देखें।
18+

द्वितीय

468

विश्लेषण की पुस्तक

900. इसमें 'लज्जा की भावना का अभाव' क्या है? वह स्थिति जिसमें लज्जा होनी चाहिए वहाँ लज्जा न होना, बुरे कर्मों को प्राप्त करने पर लज्जा न होना। इसे लज्जा की भावना का अभाव कहते हैं।
इसमें 'दोष के भय का अभाव' क्या है? वह स्थिति जहाँ दोष का भय होना चाहिए, वहाँ दोष का भय न होना, बुरे कर्मों की अवस्थाओं में दोष का भय न होना। इसे दोष के भय का अभाव कहते हैं। (10)
901. इसमें 'अवज्ञा' क्या है? शिक्षा के अनुसार बात किए जाने पर भी अवज्ञा का कार्य, अवज्ञा की स्थिति, अवज्ञा, विरोध, आलोचना, उपेक्षा, अनादर, अनादर, सम्मानहीनता। इसे अवज्ञा कहते हैं।
इसमें 'दुष्ट मित्र रखना' क्या है? कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो विश्वासहीन, कुटिल, अज्ञानी, नीच और बुद्धिहीन होते हैं। उन पर निर्भरता, उन पर प्रबल निर्भरता, उन पर पूर्ण निर्भरता, उनके निकट जाना, उनके प्रति समर्पण, उनके प्रति पूर्ण समर्पण, उनके साथ बंधुआपन। इसे ही दुष्ट मित्र रखना कहते हैं। (11)
902. इसमें 'सीधापन नहीं' क्या है? जो सीधापन नहीं है, सीधा न होना, टेढ़ापन, घुमावदारपन, कुटिलता। इसे सीधापन नहीं कहते।
उसमें 'गैर-कोमलता' क्या है? वह जो गैर-लचीलापन, अकोमलता, कठोरता, कठोरता, दृढ़ता, चेतना की अनम्यता (अर्थात्) गैर-लचीलापन है। इसे गैर-कोमलता कहा जाता है। (12) [360]
903. इसमें 'अधीरता' क्या है? अधीरता, धैर्य का अभाव, उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। यही अधीरता कहलाता है।
इसमें 'अति' क्या है? शारीरिक उल्लंघन, मौखिक उल्लंघन, शारीरिक और मौखिक दोनों उल्लंघन। इसे अति कहा जाता है। साथ ही सभी बुरे व्यवहार अति हैं। (13)
904. इसमें 'कोमलता का अभाव' क्या है? वह वाणी जो कर्कश, खुरदरी, दूसरों के प्रति कड़वी, दूसरों को चुभने वाली, क्रोध से भरी और एकाग्रता में बाधक हो; इसी प्रकार की वाणी। वह वाणी जो अपरिष्कृत हो, कोमल न हो, कठोर हो। इसे कोमलता का अभाव कहते हैं।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

469

इसमें 'अतिशयता' क्या है? दो प्रकार की आतिथ्य सत्कार: सांसारिक आतिथ्य सत्कार और सैद्धांतिक आतिथ्य सत्कार। इसमें कोई व्यक्ति सांसारिक आतिथ्य सत्कार या सैद्धांतिक आतिथ्य सत्कार के संबंध में आतिथ्य सत्कार नहीं करता है। इसे ही आतिथ्य सत्कार कहा जाता है। (14)

905. इसमें 'संवेदनाओं के द्वारों की रक्षा न करना' क्या है? इसमें एक व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखकर उसका सामान्य स्वरूप और विवरण देखता है। चाहे जो भी कारण हो, यदि कोई व्यक्ति आँख की संवेदी शक्ति को नियंत्रित किए बिना रहता है, तो लोभ और मानसिक पीड़ा जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह इस पर संयम नहीं बरतता; वह आँख की संवेदी शक्ति की रक्षा नहीं करता; वह आँख की संवेदी शक्ति पर नियंत्रण नहीं रखता। कान से श्रव्य वस्तु सुनना। नाक से सुगंधित वस्तु को सूंघना। जीभ से स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद लेना।

P: शरीर से किसी मूर्त वस्तु को छूना। :P: किसी बात को समझना।

मन में विचार करते समय, व्यक्ति सामान्य स्वरूप और बारीकियों को ग्रहण करता है। चाहे किसी भी कारण से, यदि व्यक्ति मन की नियंत्रण शक्ति को नियंत्रित किए बिना मन में विवश रहता है, तो लोभ, मानसिक पीड़ा और बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह इन पर संयम नहीं बरतता; वह मन की नियंत्रण शक्ति की रक्षा नहीं करता; वह मन की नियंत्रण शक्ति में संयम नहीं रखता। इन छह नियंत्रण शक्तियों में से जो भी शक्ति रक्षा नहीं करती, जिसकी रक्षा नहीं की जाती, जो रक्षा नहीं करती, जो संयम नहीं रखती, उसे ही नियंत्रण शक्तियों के द्वारों की रक्षा न करना कहा जाता है।

P = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

इसमें 'भोजन में सही मात्रा का ज्ञान न होना' का क्या अर्थ है?

इसमें एक व्यक्ति जो विचार नहीं करता, वह अनुचित रूप से भोग-विलास, अभिमान, शारीरिक आकर्षण और सुंदर शरीर के लिए भोजन ग्रहण करता है। इसमें असंतोष निहित है, क्योंकि वह सही मात्रा नहीं जानता, भोजन पर विचार नहीं करता। इसे 'भोजन में सही मात्रा न जानना' कहा जाता है। (15)

906. इसमें 'अनमनापन' क्या है? वह जो सचेतनता का अभाव है, निरंतर सचेतनता का अभाव है, स्मरण का अभाव है, सचेतनता का अभाव है, स्मरण की क्रिया का अभाव है, मन में रखने का अभाव है, सतहीपन है, विस्मरण है। इसे अनमनापन कहते हैं। [361]

उसमें 'जागरूकता का अभाव' क्या है? वह जो है

470

विश्लेषण की पुस्तक

ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही जागरूकता का अभाव कहते हैं। (16)

P = अनुच्छेद 180 देखें।

907. इसमें 'नैतिक विफलता' क्या है? शारीरिक उल्लंघन, शाब्दिक उल्लंघन, शारीरिक और शाब्दिक दोनों उल्लंघन। इसे नैतिक विफलता कहा जाता है। साथ ही, सभी गलत नैतिकता नैतिक विफलता है।

इसमें 'गलत दृष्टिकोण' क्या है? "दान नहीं है; त्याग नहीं है; (वे नहीं हैं) जो स्वयं इस संसार और परलोक को पूर्णतः जानकर, दूसरों को इसका ज्ञान कराते हैं"; जो इसके समान है, गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है; उलटी पकड़ है। इसे गलत दृष्टिकोण कहते हैं। सभी गलत दृष्टिकोण भी गलत दृष्टिकोण हैं। (17)

पी एल = पैरा देखें। 971. पी 2 = पैरा देखें। 249.

908. इसमें 'आंतरिक बंधन' क्या हैं? निम्न अस्तित्व से संबंधित पाँच बंधन आंतरिक बंधन हैं; उच्च अस्तित्व से संबंधित पाँच बंधन बाह्य बंधन हैं। (18)

(यहाँ समाप्त होता है) दोहरी (व्याख्या)

3. त्रिविध व्याख्या

909. उसमें 'तीन बुरी जड़ें' क्या हैं? लोभ, घृणा, सुस्ती।

इसमें लालच क्या है? जो भी वासना, मोह, प्रलोभन, आज्ञापालन, जुनून, तीव्र वासना, चेतना का मोह, इच्छा, लालसा, आसक्ति, लोभ, सर्वभक्षी लोभ, विच्छेद, खोखलापन, आकर्षण, छल, जननी, बंधनकारी जननी, व्याकुल स्त्री, फँसाने वाली स्त्री, नदी, विस्तार, (मछली

पकड़ने की) रेखा, फैलाव, आग्रह, साथी, लालसा, बनने का मार्गदर्शक, जंगल, वन, घनिष्ठता, स्नेह, (लोभी) विचारशीलता, रिश्तेदार, चाहत, चाहना, चाहत की अवस्था, दृश्य (वस्तुओं) की चाहत, श्रव्य (वस्तुओं) की चाहत, सुगंधित (वस्तुओं) की चाहत, स्वादिष्ट (वस्तुओं) की चाहत, स्पर्शनीय (वस्तुओं) की चाहत, लाभ की चाहत, धन की चाहत, पुत्रों की चाहत, जीवन की चाहत, बड़बड़ाना, अत्यधिक बड़बड़ाना, बड़बड़ाने की क्रिया, बड़बड़ाने की अवस्था, आत्म-भोग, स्वार्थी होना। भोगी, आत्म-भोग की अवस्था, बेचैनी, बेहतर की इच्छा, व्यभिचारी वासना, अराजक लालच, लालसा, [362] लालसा का कार्य,

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

471

विनती करना, पसंद करना, गिड़गिड़ाना, इंद्रिय सुख की लालसा, बनने की लालसा, न बनने की लालसा, रूप की लालसा, निराकार की लालसा, समाप्ति की लालसा, दृश्य (वस्तुओं) की लालसा,* श्रव्य (वस्तुओं) की लालसा, सुगंधित (वस्तुओं) की लालसा, स्वादयुक्त (वस्तुओं) की लालसा, स्पर्शनीय (वस्तुओं) की लालसा, वैचारिक (वस्तुओं) की लालसा, बाढ़, बंधन, आलंका, अवरोध, रुकावट, आवरण, बंधन, दुराचार, सुप्त प्रवृत्ति, अतिक्रमण, लता, लोभ, दुख का मूल, दुख का स्रोत, दुख का उद्‌गम, मारा का फंदा, मारा का कांटा, मारा का क्षेत्र, लालसा की नदी, लालसा का जाल, लालसा की लगाम, लालसा का सागर, लोभ की बुरी जड़। इसे लोभ कहते हैं।
पाठ में 'दृश्य (वस्तुओं) के लिए लालसा' वाक्यांश को छोड़ दिया गया है।
इसमें घृणा क्या है? "उसने मुझे हानि पहुँचाई है", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; "वह मुझे हानि पहुँचा रहा है", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; "वह मुझे हानि पहुँचाएगा", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; "उसने मेरे प्रिय और प्रिय व्यक्ति को हानि पहुँचाई है, वह हानि पहुँचा रहा है, वह हानि पहुँचाएगा", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; "उसने मेरे अप्रिय व्यक्ति के साथ भलाई की है, वह भलाई कर रहा है, वह भलाई करेगा", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; या अनुचित रूप से झुंझलाहट उत्पन्न होती है। जो कुछ भी इसके समान है, जैसे चेतना की झुंझलाहट, आक्रोश, घृणा, शत्रुता, चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, क्रोध, अरुचि, घृणा, मानसिक विकार, घृणा, क्रोध, क्रोधित होना, क्रोधित अवस्था, घृणा, घृणा, घृणा की अवस्था, अव्यवस्था, अव्यवस्थितता, विरोध, शत्रुता, उग्रता, अचानकता, चेतना के आनंद का अभाव। इसे घृणा कहते हैं।
P = उचित रूप से पूरा करें।
उसमें सुस्ती क्या है? दुख के ज्ञान का अभाव; दुख के कारण के ज्ञान का अभाव; दुख के निवारण के ज्ञान का अभाव; दुख के निवारण के मार्ग के ज्ञान का अभाव; प्राणियों की उत्पत्ति के अंतिम स्रोत के ज्ञान का अभाव; प्राणियों के अंतिम लक्ष्य के ज्ञान का अभाव; प्राणियों की उत्पत्ति और अंतिम लक्ष्य दोनों के ज्ञान का अभाव; विशिष्ट कारणता और आश्रित उत्पत्ति की अवस्थाओं के ज्ञान का अभाव; जो समान है, ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे सुस्ती कहते हैं। ये तीन बुरी जड़ें हैं। (1)
पी = पैरा 180 देखें।

472

विश्लेषण की पुस्तक

910. उसमें 'तीन प्रकार की बुरी सोच' क्या हैं? इच्छा से जुड़ी सोच, दुर्भावना से जुड़ी सोच, क्रूरता से जुड़ी सोच।
इसमें इच्छा से जुड़ा चिंतन क्या है? मनो-विचार, चिंतन, इच्छा से जुड़ा गलत विचार। इसे ही इच्छा से जुड़ा चिंतन कहते हैं। [363]
इसमें दुर्भावना से संबंधित विचार क्या है? दुर्भावना से जुड़े विचार, चिंतन, गलत सोच। इसे ही दुर्भावना से संबंधित विचार कहते हैं।
इसमें क्रूरता से संबंधित विचार क्या है? क्रूरता से जुड़े विचार, चिंतन, गलत विचार। इसे क्रूरता से संबंधित चिंतन कहा जाता है। ये तीन प्रकार के बुरे चिंतन हैं। (2)
911. इसमें बुरी धारणा के तीन प्रकार क्या हैं? इच्छा से जुड़ी धारणा, दुर्भावना से जुड़ी धारणा, क्रूरता से जुड़ी धारणा।

इसमें इच्छा से संबंधित बोध क्या है? बोध, बोध करने की क्रिया, बोध की वह अवस्था जो इच्छा से जुड़ी होती है। इसे ही इच्छा से संबंधित बोध कहते हैं।
इसमें दुर्भावना से संबंधित धारणा क्या है? धारणा, देखने की क्रिया, दुर्भावना से जुड़ी देखने की अवस्था। इसे दुर्भावना से संबंधित धारणा कहते हैं।
इसमें क्रूरता से संबंधित धारणा क्या है? धारणा, देखने की क्रिया, क्रूरता से जुड़ी देखने की अवस्था। इसे क्रूरता से संबंधित धारणा कहा जाता है। ये तीन प्रकार की बुरी धारणाएँ हैं। (3)
912. उसमें 'तीन बुरे तत्व' क्या हैं? इच्छा का तत्व, दुर्भावना का तत्व, क्रूरता का तत्व।
इसमें इच्छा का तत्व क्या है? इच्छा से संबंधित विचार इच्छा का तत्व है; दुर्भावना से संबंधित विचार दुर्भावना का तत्व है; क्रूरता से संबंधित विचार क्रूरता का तत्व है।
इसमें इच्छा से संबंधित चिंतन क्या है? मनोवृत्ति, चिंतन, इच्छा से जुड़े गलत विचार। इसे ही इच्छा से संबंधित चिंतन कहते हैं।
इसमें दुर्भावना से संबंधित विचार क्या है? दुर्भावना से जुड़े विचार, चिंतन, गलत सोच। इसे ही दुर्भावना से संबंधित विचार कहते हैं।

उसमें क्रूरता से संबंधित विचार क्या है? मानसिकता, सोच, क्रूरता से जुड़े गलत विचार। इसे क्रूरता से संबंधित सोच कहा जाता है। ये तीन बुरे तत्व हैं। (4)
913. उसमें तीन प्रकार के गलत कर्म क्या हैं? गलत शारीरिक कर्म, गलत मौखिक कर्म, गलत मानसिक कर्म।
इसमें गलत शारीरिक क्रिया क्या है? प्राणियों की हत्या करना, बिना अनुमति के कुछ लेना, यौन दुराचार। इसे गलत शारीरिक क्रिया कहा जाता है।
इसमें गलत वाक्पटुता क्या है? झूठी वाणी, निंदात्मक वाणी, कठोर वाणी, निरर्थक वाणी। इसे ही गलत वाक्पटुता कहते हैं।
उसमें गलत मानसिक क्रिया क्या है? [364] लोभ, दुर्भावना, गलत दृष्टिकोण। इसे गलत मानसिक क्रिया कहते हैं।
इसमें गलत शारीरिक क्रिया क्या है? बुरी शारीरिक क्रिया गलत शारीरिक क्रिया है; बुरी मौखिक क्रिया गलत मौखिक क्रिया है; बुरी मानसिक क्रिया गलत मानसिक क्रिया है।
इसमें बुरी शारीरिक क्रिया क्या है? बुरी शारीरिक इच्छाशक्ति बुरी शारीरिक क्रिया है; बुरी मौखिक इच्छाशक्ति बुरी मौखिक क्रिया है; बुरी मानसिक इच्छाशक्ति बुरी मानसिक क्रिया है। ये तीन प्रकार की गलत क्रियाएँ हैं। (5)
914. उसमें 'तीन दोष' क्या हैं? इच्छा का दोष, बनने का दोष, अज्ञान का दोष।
तो फिर, कामवासना की अशुद्धि क्या है? कामवासना से जुड़ी वह चीज़ जो इंद्रिय सुख की कामना, कामवासना की लालसा, कामवासना की चाहत, कामवासना के प्रति आसक्ति, कामवासना की तीव्र इच्छा, कामवासना की तीव्र लालसा और कामवासना से आसक्ति पैदा करती है, उसे कामवासना की अशुद्धि कहते हैं।
इसमें 'विकास का दोष' क्या है? वह जो विकास से जुड़ा हुआ है, यानी विकास की इच्छा, विकास से आसक्ति। इसे ही विकास का दोष कहते हैं।
P = अनुच्छेद 895 देखें।
आई पी
अज्ञान का दोष क्या है? दुख के ज्ञान का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे ही अज्ञान का दोष कहते हैं। ये तीन दोष हैं।
P = अनुच्छेद 909 देखें।

915. उसमें 'तीन बंधन' क्या हैं? व्यक्तिवाद का दृष्टिकोण, संदेह, आदतों और प्रथाओं का पालन।
इसमें व्यक्तिवाद का दृष्टिकोण क्या है? इसमें अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों को नहीं पहचानता, उनकी शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, उनकी शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; अच्छे पुरुषों को नहीं पहचानता, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; भौतिक गुणों को आत्मा मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों से युक्त मानता है; या भौतिक गुणों को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों में विद्यमान मानता है; :PX : बोध। : P1 : मानसिक सहवर्ती। : P1 : चेतना को आत्मा मानता है; या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है; या चेतना को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को चेतना में विद्यमान मानता है; जो समान है, गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, :P2 : उलटी पकड़। इसे व्यक्तिवाद का दृष्टिकोण कहते हैं।
P* = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 249 देखें।
इसमें संदेह क्या है? व्यक्ति भ्रमित होता है, गुरु पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, शिक्षा पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, व्यवस्था पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, उपदेशों पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, प्राणियों की उत्पत्ति पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, प्राणियों के अंत पर संदेह करता है; व्यक्ति भ्रमित होता है, प्राणियों की उत्पत्ति और अंत दोनों पर संदेह करता है; व्यक्ति विशिष्ट कारणता और आश्रितता से उत्पन्न अवस्थाओं पर संदेह करता है; जो कुछ भी समान है, वह भ्रम, भ्रमित होना, भ्रमित अवस्था, चेतना की कठोरता, मानसिक त्याग है। इसे ही संदेह कहते हैं।
इसमें आदतों और प्रथाओं का पालन करना क्या है? (इसमें विश्वास करना) आदत के माध्यम से शुद्धि, अभ्यास के माध्यम से शुद्धि, और इस (शिक्षा) से बाहर के संन्यासियों और ब्राह्मणों की आदत और अभ्यास दोनों के माध्यम से शुद्धि; जो समान है, गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, वियोजित पकड़। इसे आदतों और प्रथाओं का पालन करना कहते हैं। ये तीन बंधन हैं। (7)
P = अनुच्छेद 249 देखें।
916. उसमें 'तीन प्रकार की भोग-विलास' क्या हैं? इंद्रिय सुख की भोग-विलास, बनने की भोग-विलास, न बनने की भोग-विलास।
उसमें बनने की लालसा क्या है? वासना, मोह,

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

475

चेतना का मोह, जो साकार होने की दृष्टि के साथ जुड़ा होता है। इसे साकार होने की लालसा कहते हैं।
इसमें निराकारता की लालसा क्या है? कामवासना, मोह, चेतना का मोह जो विनाशवादी दृष्टिकोण से जुड़ा है। इसे निराकारता की लालसा कहते हैं। शेष लालसा इंद्रिय सुख की लालसा है।
इसमें इंद्रिय सुख की लालसा क्या है? कामवासना, आसक्ति, इच्छा से जुड़ी चेतना की आसक्ति। इसी को इंद्रिय सुख की लालसा कहते हैं।
( )* वासना, मोह, चेतना का मोह जो रूप और निराकार तत्वों से जुड़ा हो। इसे ही बनने की लालसा कहते हैं।
( ) # कुछ ग्रंथों में यह वाक्य शामिल है, “उसमें बनने की लालसा क्या है?”
( )* वासना, मोह, चेतना का मोह जो विनाशवादी दृष्टिकोण से प्रेरित है। इसे निराकार होने की लालसा कहते हैं। ये तीन प्रकार की लालसाएँ हैं। (8)
( )* कुछ ग्रंथों में यह भी शामिल है, “उसमें अव्यवहार की लालसा क्या है?”
917. उसमें 'अन्य तीन प्रकार की लालसा* क्या हैं? इंद्रिय सुख की लालसा, रूप की लालसा, निराकार की लालसा।
इसमें इंद्रिय सुख की लालसा क्या है? कामवासना, आसक्ति, इच्छा से जुड़ी चेतना की आसक्ति। इसी को इंद्रिय सुख की लालसा कहते हैं।
[366] उसमें रूप की लालसा क्या है? कामवासना, मोह, रूप तत्व से जुड़ी चेतना का मोह। इसे रूप की लालसा कहते हैं।

इसमें निराकार के लिए तड़प क्या है? कामवासना, आसक्ति, निराकार तत्व से जुड़ी चेतना की आसक्ति। इसे ही निराकार के लिए तड़प कहते हैं। ये तीन प्रकार की तड़प हैं। (9)
918. इसमें तीन अन्य प्रकार की भोग-विलास क्या हैं? रूप की भोग-विलास, निराकार की भोग-विलास, और समाप्ति की भोग-विलास।
इसमें रूप की लालसा क्या है? वासना, मोह, रूप तत्व से जुड़ी चेतना का मोह। इसी को रूप की लालसा कहते हैं।
इसमें निराकार के प्रति लालसा क्या है? वासना, मोह, निराकार तत्व से जुड़ी चेतना का मोह। इसी को निराकार के प्रति लालसा कहते हैं।
1 8*

आर

उसमें समाप्ति की लालसा क्या है? चेतना की वासना, आसक्ति और मोह, जो विनाशवादी दृष्टिकोण से प्रेरित है। इसे ही समाप्ति की लालसा कहते हैं। ये तीन प्रकार की लालसाएँ हैं। (10)
919. उसमें 'तीन प्रकार की खोज' क्या हैं? इंद्रिय सुख की खोज, विकास की खोज, परम साधना की खोज।
इसमें इंद्रिय सुख की खोज क्या है? वह जो इच्छा से जुड़ा हुआ है, यानी इंद्रिय सुख की लालसा, इंद्रिय सुख से आसक्ति। इसे ही इंद्रिय सुख की खोज कहते हैं।
P = अनुच्छेद 914 देखें।
उसमें विकास की खोज क्या है? वह जो विकास से जुड़ा हुआ है, यानी विकास की चाहत, :P: विकास से आसक्ति। इसे ही विकास की खोज कहते हैं।
P = अनुच्छेद 895 देखें।
इसमें सर्वोच्च साधना की खोज क्या है? “संसार शाश्वत है” या “संसार शाश्वत नहीं है” या, rP 1: “मृत्यु के बाद कोई प्राणी न तो विद्यमान रहता है और न ही विद्यमान रहता है”; जो समान है, गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P 2: उलटी पकड़ है। इसे ही सर्वोच्च साधना की खोज कहते हैं।
पी 1 = पैरा देखें। 815. पी 2 = पैरा देखें। 249.
इसमें इंद्रिय सुख की खोज क्या है? इंद्रिय सुख की लालसा और उससे जुड़ी बुरी शारीरिक, मौखिक और मानसिक क्रियाएँ। इसी को इंद्रिय सुख की खोज कहते हैं।
उसमें बनने की चाह क्या है? बनने की वासना और उससे उत्पन्न होने वाली बुरी शारीरिक क्रिया, मौखिक क्रिया और मानसिक क्रिया। इसे ही बनने की चाह कहा जाता है। [367]
इसमें सर्वोच्च साधना की खोज क्या है? अतिवादी दृष्टिकोण और उससे उत्पन्न होने वाली बुरी शारीरिक क्रिया, मौखिक क्रिया और मानसिक क्रिया। इसे ही सर्वोच्च साधना की खोज कहा जाता है। ये तीन प्रकार की खोज हैं। (11)
920. इसमें 'तीन प्रकार के अहंकार' क्या हैं? अहंकार इस प्रकार है, “मैं श्रेष्ठ हूँ”; अहंकार इस प्रकार है, “मैं बराबर हूँ”; अहंकार इस प्रकार है, “मैं हीन हूँ”। ये तीन प्रकार के अहंकार हैं। (12)
921. उसमें तीन प्रकार के भय क्या हैं? जन्म का भय, बुढ़ापे का भय, मृत्यु का भय।

तो जन्म का भय क्या है? डर, भयभीत होना, कांपना, कंपकंपी, जन्म से जुड़ा मानसिक आतंक। इसे ही जन्म का भय कहते हैं।
तो बुढ़ापे का डर क्या है? डर, भयभीत होना, कांपना, कंपकंपी, बुढ़ापे से जुड़ा मानसिक आतंक। इसे ही बुढ़ापे का डर कहते हैं।

इसमें मृत्यु का भय क्या है? डर, भयभीत होना, कांपना, सिसकना, मृत्यु पर आधारित मानसिक आतंक। इसे ही मृत्यु का भय कहते हैं। ये तीन प्रकार के भय हैं। (13)

922. इसमें 'तीन प्रकार के अंधकार' क्या हैं? अतीत के विषय में व्यक्ति उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्टता नहीं होती; या भविष्य के विषय में व्यक्ति उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्टता नहीं होती; या वर्तमान समय के विषय में व्यक्ति उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्टता नहीं होती। ये तीन प्रकार के अंधकार हैं।
(14)

923. इसमें 'विधर्म के तीन आधार' क्या हैं? इसमें कोई संन्यासी या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है, इस प्रकार विचार करता है, "मनुष्य को जो भी सुख, दुख या न दुख-सुख का अनुभव होता है, वह सब पिछले कर्मों के कारण है"; इसमें कोई संन्यासी या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है, इस प्रकार विचार करता है, "मनुष्य को जो भी सुख, दुख या न दुख-सुख का अनुभव होता है, वह सब एक सर्वोच्च देवता की रचना के कारण है"; इसमें कोई संन्यासी या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है, इस प्रकार विचार करता है, "मनुष्य को जो भी सुख, दुख या न दुख-सुख का अनुभव होता है, [368] वह सब बिना कारण, बिना तर्क के है"। ये विधर्म के तीन आधार हैं।
(15)

924. उसमें 'तीन प्रकार की बाधाएँ' क्या हैं? कामवासना की बाधा; घृणा की बाधा; सुस्ती की बाधा। ये तीन प्रकार की बाधाएँ हैं। (161)

उसमें 'तीन प्रकार के दोष' क्या हैं? कामवासना का दोष; घृणा का दोष; सुस्ती का दोष। ये तीन प्रकार के दोष हैं। (17)

[इसमें 'तीन प्रकार की अशुद्धता' क्या हैं? कामवासना की अशुद्धता; घृणा की अशुद्धता; सुस्ती की अशुद्धता। ये तीन प्रकार की अशुद्धता हैं। (18)]

उसमें 'तीन प्रकार की विसंगतियाँ' क्या हैं? कामवासना की विसंगति; घृणा की विसंगति; सुस्ती की विसंगति। ये तीन प्रकार की विसंगतियाँ हैं। (19)

478

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें 'अन्य तीन प्रकार की विसंगतियां' क्या हैं?

शारीरिक (क्रिया) में विसंगति; मौखिक (क्रिया) में विसंगति; मानसिक (क्रिया) में विसंगति। ये तीन प्रकार की विसंगतियाँ हैं। (20)

उसमें 'तीन प्रकार की अग्नि' क्या हैं? कामवासना की अग्नि; घृणा की अग्नि; सुस्ती की अग्नि। ये तीन प्रकार की अग्नि हैं। (21)

उसमें 'तीन प्रकार की कटुता' क्या हैं? कामवासना की कटुता; घृणा की कटुता; सुस्ती की कटुता। ये तीन प्रकार की कटुता हैं। (22)

इसमें अन्य तीन प्रकार की कटुता क्या हैं? शारीरिक क्रिया की कटुता; मौखिक क्रिया की कटुता; मानसिक क्रिया की कटुता। ये तीन प्रकार की कटुता हैं। (23)

925. इसमें 'सत्त्व संबंधी दृष्टिकोण' क्या है? इसमें एक संन्यासी या ब्राह्मण कहता है, "इंद्रिय सुखों में कोई दोष नहीं है"; वह इंद्रिय सुखों में लिप्त हो जाता है। इसे ही संतोष संबंधी दृष्टिकोण कहते हैं।

इसमें 'आत्मा का दृष्टिकोण' क्या है? इसमें अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों को नहीं पहचानता, उनकी शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, उनकी शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; अच्छे पुरुषों को नहीं पहचानता, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; भौतिक गुणों को आत्मा मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों से युक्त मानता है; या भौतिक गुणों को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों में विद्यमान मानता है; : पृष्ठ 1 : बोध। : पृष्ठ X : मानसिक सहवर्ती। : पृष्ठ 1 ; चेतना को आत्मा मानता है; या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है; या चेतना को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को चेतना में विद्यमान मानता है; जो समान है, गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, : पृष्ठ 2 : उलटी पकड़। इसे आत्मा का दृष्टिकोण कहते हैं। [369]

P 1 = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 249 देखें।

इसमें 'गलत दृष्टिकोण' क्या है? "दान-पुण्य नहीं है; त्याग नहीं है; (वे नहीं हैं) जो स्वयं इस संसार और परलोक को पूर्णतः जानकर, उसे (दूसरों को) ज्ञात कराते हैं"; जो इसके समान है, गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है; (वे) विपरीत पकड़ है। इसे

गलत दृष्टिकोण, शाश्वतवादी दृष्टिकोण, संतुष्टिवादी दृष्टिकोण, वैयक्तिक दृष्टिकोण, आत्मावादी दृष्टिकोण, विनाशवादी दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण कहा जाता है।

पैरा 971 देखें।

पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 249 देखें।

926. इसमें 'उबाऊपन' क्या है? उबाऊपन, उबाऊपन होना, नाखुश होना, असंतोष, दूर के निवासों या कुछ उच्चतर सुखमय अवस्थाओं का भय। इसे उबाऊपन कहते हैं।
इसमें 'परेशानी' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति हाथ से, मिट्टी के ढेले से, लाठी से, तलवार से, रस्सी से या किसी अन्य वस्तु से दूसरों को चोट पहुँचाता है; जो भी इसी प्रकार का हो, दूसरों को परेशान करना, चोट पहुँचाना, तंग करना, घायल करना, उकसाना, क्रोधित करना, मारना। इसे परेशानी कहा जाता है।
इसमें 'गलत व्यवहार' क्या है? गलत व्यवहार, शरीर द्वारा किया गया अधार्मिक व्यवहार; गलत व्यवहार, वाणी द्वारा किया गया अधार्मिक व्यवहार; गलत व्यवहार, मन द्वारा किया गया अधार्मिक व्यवहार। इसे गलत व्यवहार कहते हैं। (25)
927. इसमें 'अवज्ञा' क्या है? शिक्षा के अनुसार बात किए जाने पर अवज्ञा का कार्य, अवज्ञा की स्थिति, अवज्ञा, विरोध, नुक्ताचीनी, उपेक्षा, अनादर, अनादर का कार्य होता है। इसे अवज्ञा कहते हैं।
इसमें 'दुष्ट मित्र रखना' क्या है? इसमें ऐसे लोग शामिल हैं जो अविश्वासी, कुरीतिक, अज्ञानी, नीच और बुद्धिहीन होते हैं; उन पर निर्भरता, उन पर पूर्ण निर्भरता, उनके निकट जाना, उनके प्रति पूर्ण निष्ठा, उनके साथ उलझाव। इसे ही दुष्ट मित्र रखना कहते हैं।
इसमें 'धारणाओं की विविधता' क्या है? इच्छा से जुड़ी धारणा, दुर्भावना से जुड़ी धारणा, क्रूरता से जुड़ी धारणा। इसे ही धारणाओं की विविधता कहते हैं। सभी बुरी धारणाएँ धारणाओं की विविधता हैं। (26)
928. इसमें 'विचलित होना' क्या है? चेतना का विचलित होना, बेचैनी, मानसिक अस्थिरता, चेतना की उथल-पुथल। यही चेड विचलित होना है।
इसमें 'आलस्य' क्या है? गलत शारीरिक क्रिया, गलत मौखिक क्रिया, गलत मानसिक क्रिया [370] या चेतना का पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के वश में बार-बार हो जाना, या सावधानीपूर्वक काम न करना, निरंतर काम न करना, रुक-रुक कर काम करना, स्थिर रहना, इच्छा का त्याग करना, कार्य का त्याग करना, अनुनय न करना, विकास न करना, पुनरावृत्ति न करना, संकल्प न लेना, अभ्यास न करना, अच्छे भावों के विकास में लापरवाही बरतना। यही आलस्य कहलाता है।
इसमें 'लापरवाही' क्या है? गलत शारीरिक क्रिया या गलत

मौखिक क्रिया, गलत मानसिक क्रिया, चेतना का पाँच इंद्रिय सुखों के वश में बार-बार हो जाना, सावधानीपूर्वक काम न करना, निरंतर काम न करना, रुक-रुक कर काम करना, स्थिर रहना, इच्छा का त्याग करना, कार्य को छोड़ देना, अनुनय न करना, विकास न करना, पुनरावृत्ति न करना, संकल्प न लेना, अभ्यास न करना, अच्छे भावों के विकास में असावधानी बरतना; जो असावधानी, असावधान होना, असावधानी की अवस्था के समान है, उसे असावधानी कहते हैं। (27)

929. इसमें 'असंतोष' क्या है? वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों की सहायता के लिए दवा या पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों जैसी आवश्यकताओं से असंतुष्ट व्यक्ति की वह बड़ी इच्छा; जो समान हो, इच्छा, इच्छा करने की क्रिया, असंतोष, कामवासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति। इसे ही असंतोष कहते हैं।
तो फिर 'जागरूकता का अभाव' क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसी को जागरूकता का अभाव कहते हैं।
P= पैराग्राफ 180 देखें।
इसमें 'सर्वोच्च इच्छा' क्या है? वस्त्र, भिक्षा, आवास, बीमारों की सहायता के लिए दवा या पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों जैसी आवश्यकताओं से असंतुष्ट व्यक्ति की वह प्रबल इच्छा; जो इच्छा, इच्छा करने की क्रिया, सर्वोच्च इच्छा, कामवासना, आसक्ति, चेतना की आसक्ति के समान है। इसे सर्वोच्च इच्छा कहा जाता है। (28)
930. इसमें 'लज्जा की भावना का अभाव' क्या है? वह स्थिति जिसमें लज्जा होनी चाहिए वहाँ लज्जा न होना, बुरे कर्मों को प्राप्त करने पर लज्जा न होना। इसे लज्जा की भावना का अभाव कहते हैं।
इसमें 'दोष के भय का अभाव' क्या है? वह स्थिति जहाँ दोष का भय होना चाहिए, वहाँ दोष का भय न होना, बुरे कर्मों की अवस्थाओं में भी दोष का भय न होना। इसी को दोष के भय का अभाव कहते हैं।
उसमें 'असावधानी' क्या है? गलत शारीरिक क्रिया या गलत मौखिक क्रिया या गलत मानसिक क्रिया या चेतना का पांच इंद्रिय सुखों के वश में बार-बार झुक जाना, या सावधानीपूर्वक काम न करना, [371] निरंतर काम न करना, रुक-रुक कर काम करना, स्थिर रहना, इच्छा का त्याग करना।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

481

कार्य का त्याग, अनुनय न करना, विकास न करना, पुनरावृत्ति न करना, संकल्प न लेना, अभ्यास न करना, अच्छे गुणों के विकास में असावधानी; जो इसके समान है, असावधानी, असावधान होना, असावधानी की अवस्था। इसे असावधानी कहते हैं। (29)
931. इसमें 'अवहेलना' क्या है? वह जो उपेक्षा, अनादर, बेअदबी, अभद्रता, अशोभनीयता, अभद्रता की अवस्था, असभ्यता, आदर का अभाव है। इसे ही उपेक्षा कहते हैं।
इसमें 'अवज्ञा' क्या है? शिक्षा के अनुसार बात किए जाने पर भी अवज्ञा का कार्य, अवज्ञा की स्थिति, अवज्ञा, विरोधाभास, नुक्ताचीनी, अवहेलना, अनादर, बेअदबी, अनादर करना, यही अवज्ञा कहलाता है।
इसमें 'दुष्ट मित्र रखना' क्या है? ऐसे व्यक्ति होते हैं जो विश्वासहीन, कुरीतिक, अज्ञानी, नीच और बुद्धिहीन होते हैं; उन पर निर्भरता, उन पर प्रबल निर्भरता, उन पर पूर्ण निर्भरता, उनके निकट जाना, उनके प्रति समर्पण, उनके प्रति पूर्ण समर्पण, उनके साथ उलझाव। इसे ही दुष्ट मित्र रखना कहते हैं। (30)

932. इसमें 'अविश्वास' क्या है? इसमें एक व्यक्ति आत्मविश्वासहीन है, बुद्ध या शिक्षा या संघ में विश्वास नहीं रखता; जो इसके समान है, अविश्वास, आत्मविश्वासहीन होना, भरोसा न रखना, अधिक आस्था न रखना। इसे ही अविश्वास कहते हैं।
इसमें 'अनजान विनती' क्या है? पाँच प्रकार की नीचताएँ: घर के प्रति नीचता, परिवार के प्रति नीचता, लाभ के प्रति नीचता, प्रतिष्ठा के प्रति नीचता, धर्म के प्रति नीचता; और इसी प्रकार की नीचता, नीच होना, नीच अवस्था, लोभ, नीचता, कंजूसी, संकीर्ण मानसिकता। इसे ही अनजान विनती कहा जाता है।
इसमें 'आलस्य' क्या है? गलत शारीरिक क्रिया, गलत मौखिक क्रिया, गलत मानसिक क्रिया, या चेतना का पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के आगे बार-बार झुक जाना, या सावधानीपूर्वक काम न करना, निरंतर काम न करना, रुक-रुक कर काम करना, स्थिर रहना, [372] इच्छा का त्याग करना, कार्य का त्याग करना, पीछा न करना, विकास न करना, पुनरावृत्ति न करना-

में

अच्छे राज्यों के विकास में निष्क्रियता, संकल्प न लेना, अभ्यास न करना, लापरवाही बरतना। इसे आलस्य कहते हैं। (31)
933. इसमें 'विचलित होना' क्या है? चेतना का विचलित होना, बेचैनी, मानसिक अस्थिरता, चेतना की उथल-पुथल। इसे विचलित होना कहते हैं।
इसमें 'संयम का अभाव' क्या है? इसमें कोई व्यक्ति किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखकर उसका सामान्य स्वरूप और विवरण दोनों देखता है। चाहे किसी भी कारण से, यदि कोई व्यक्ति अपनी दृष्टि को नियंत्रित नहीं कर रहा है, तो लोभ और मानसिक पीड़ा जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वह अपनी दृष्टि को नियंत्रित नहीं करता; वह अपनी दृष्टि को सुरक्षित नहीं रखता; वह अपनी दृष्टि को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करता। कान से किसी ध्वनि को सुनना। नाक से किसी सुगंधित वस्तु को सूंघना। जीभ से किसी स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद लेना।
P: शरीर से किसी मूर्त वस्तु को छूना। :P: किसी बात को समझना।
मन में किसी वस्तु का जो आशय होता है, वह उसके सामान्य स्वरूप और बारीकियों को भी ग्रहण करता है। चाहे जो भी कारण हो, यदि व्यक्ति मन की नियंत्रण शक्ति को नियंत्रित किए बिना उसमें लीन रहता है, तो लोभ, मानसिक पीड़ा और बुरे मानसिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं। वह इन पर संयम नहीं बरतता; वह मन की नियंत्रण शक्ति की रक्षा नहीं करता; वह मन की नियंत्रण शक्ति पर नियंत्रण नहीं रखता। इसे ही संयम का अभाव कहते हैं।
P = पहले उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
उसमें 'गलत नैतिकता' क्या है? शारीरिक उल्लंघन, शाब्दिक उल्लंघन, शारीरिक और शाब्दिक दोनों उल्लंघन। इसे गलत नैतिकता कहा जाता है, (32)

934. इसमें 'महान पुरुषों को देखने की इच्छा का अभाव' क्या है? इसमें महान पुरुष कौन हैं? बुद्ध और बुद्धों के शिष्य महान पुरुष कहलाते हैं; इन महान पुरुषों को देखने की इच्छा का अभाव, इन्हें निहारने की इच्छा का अभाव, इनके निकट जाने की इच्छा का अभाव, इनके साथ मिलने की इच्छा का अभाव, यही महान पुरुषों को देखने की इच्छा का अभाव कहलाता है।
उसमें 'सच्चे सिद्धांत को सुनने की इच्छा का अभाव' क्या है? उसमें सच्चा सिद्धांत क्या है? ध्यान के चार आधार, चार सही प्रयास, सिद्धि के चार आधार, पाँच नियंत्रक शक्तियाँ, पाँच सामर्थ्य, सात

ज्ञान के कारक, आर्य अष्टांग मार्ग; इसे ही सच्चा सिद्धांत कहा जाता है। वह अवस्था जिसमें सुनने की इच्छा का अभाव हो, ध्यान से सुनने की इच्छा का अभाव हो, प्रचार करने की इच्छा का अभाव हो, और इस सच्चे सिद्धांत को बनाए रखने की इच्छा का अभाव हो। इसे ही सच्चे सिद्धांत को सुनने की इच्छा का अभाव कहा जाता है।
उसमें 'निंदापूर्ण मन की अवस्था' क्या है? [373] उसमें निंदा क्या है? वह जो निंदा है, बार-बार निंदा करना, निंदाशील होना, बार-बार निंदाशील होने की अवस्था, तिरस्कार, घृणा, गाली देना, दोष निकालना। इसे निंदाशील मन की अवस्था कहा जाता है। (33)
935. इसमें असावधानी क्या है? वह जो सजगता का अभाव है, निरंतर सजगता का अभाव है, स्मरण का अभाव है, सजगता का अभाव है, स्मरण की क्रिया का अभाव है, मन में रखने का अभाव है, सतहीपन है, विस्मरण है। इसे असावधानी कहते हैं।
इसमें 'जागरूकता का अभाव' क्या है? ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसी को जागरूकता का अभाव कहते हैं।
P = अनुच्छेद 180 देखें।

इसमें 'मानसिक अस्थिरता' क्या है? चेतना का विकर्षण, बेचैनी, मानसिक अस्थिरता, चेतना की उथल-पुथल। इसे ही मानसिक अस्थिरता कहते हैं। (34)
936. इसमें 'अनुचित ध्यान' क्या है? अनुचित ध्यान इस प्रकार है, "अस्थिरता में स्थायित्व है"; अनुचित ध्यान इस प्रकार है, "दुख में सुख है"; अनुचित ध्यान इस प्रकार है, "आत्मा के अभाव में आत्मा है"; अनुचित ध्यान इस प्रकार है, "सौंदर्य के अभाव में सौंदर्य है"; या, मन का भटकना, बार-बार भटकना, ज्ञान, ध्यान, सत्य के विपरीत बातों पर ध्यान देना। इसे अनुचित ध्यान कहते हैं।
इसमें 'गलत मार्ग पर निर्भरता' क्या है? इसमें गलत मार्ग क्या है? गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, गलत एकाग्रता; यही गलत मार्ग कहलाता है। जो निर्भरता है, प्रबल निर्भरता है, पूर्ण निर्भरता है, निकट आना है, घनिष्ठ रूप से निकट आना है, समर्पण है, पूर्ण

इस गलत रास्ते के प्रति निष्ठा, इस पर आसक्ति। इसे ही गलत रास्ते पर निर्भरता कहते हैं।
उसमें 'मानसिक सुस्ती' क्या है? चेतना की अस्वस्थता, बोझिलता, शिथिलता, ढीलापन, सुस्ती, सुस्त होना, सुस्त अवस्था, आलस्य, आलस्यपूर्ण होना, चेतना की आलस्यपूर्ण अवस्था। इसे ही मानसिक सुस्ती कहते हैं। (35)
(यहाँ समाप्त होता है) त्रिगुणात्मक (प्रस्तावना)
4. चौगुनी व्याख्या
937. उसमें 'चार दोष' क्या हैं? इच्छा का दोष, बनने का दोष, गलत दृष्टिकोण का दोष, अज्ञान का दोष।
उसमें इच्छा का दोष क्या है? [374] वह जो इच्छा से संबंधित है, इंद्रिय सुख की कामना, इंद्रिय सुख की वासना, इंद्रिय सुख की लालसा, इंद्रिय सुख के प्रति लगाव, इंद्रिय सुख की तीव्र इच्छा, इंद्रिय सुख की तीव्र लालसा, इंद्रिय सुख से आसक्ति। इसे ही इच्छा का दोष कहते हैं।
इसमें घटने का दोष क्या है? जो घटने के साथ-साथ घटने की इच्छा रखता है, यानी घटने से आसक्ति रखता है। इसे घटने का दोष कहते हैं।
P = अनुच्छेद 895 देखें।
गलत दृष्टिकोण का दोष क्या है? "संसार शाश्वत है" या "संसार शाश्वत नहीं है", "संसार सीमित है" या "संसार अनंत है", "प्राण और शरीर एक ही हैं" या "प्राण और शरीर भिन्न हैं", "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व होता है" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व नहीं होता" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व होता भी है और नहीं भी होता" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व न तो होता है और न ही नहीं होता"; जो भी समान है, वह गलत दृष्टिकोण है, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना है, :P: उल्टा विश्वास। इसे ही गलत दृष्टिकोण का दोष कहते हैं। साथ ही, सभी गलत विचार गलत दृष्टिकोण का दोष हैं।
P = अनुच्छेद 249 देखें।
अज्ञानता का दोष क्या है? दुख के ज्ञान का अभाव; दुख के कारण के ज्ञान का अभाव; दुख के निवारण के ज्ञान का अभाव;

दु:ख के निवारण के मार्ग का ज्ञान न होना; प्राणियों की उत्पत्ति का ज्ञान न होना; प्राणियों के अंत का ज्ञान न होना; प्राणियों की उत्पत्ति और अंत दोनों का ज्ञान न होना; विशिष्ट कारण और निर्भरता से उत्पन्न अवस्थाओं का ज्ञान न होना; जो समान है, ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव; अज्ञान का अवरोध, सुस्ती की बुरी जड़। इसे अज्ञान का दोष कहते हैं। ये चार दोष हैं। (1)
P = अनुच्छेद 180 देखें।

938. उसमें 'टूर टाइज़' क्या हैं? :P: 'टूर फ्लड्स'। :P: [375] 'टूर बॉन्ड्स'। :P: 'टूर अटैचमेंट्स'? इच्छा का आसंजन, गलत दृष्टिकोण का आसंजन, (गलत) आदतों और प्रथाओं का आसंजन, आत्मा सिद्धांत का आसंजन।

P = Dhs. पैरा 1140 इत्यादि देखें।

इसमें इच्छा का आसक्ति क्या है? वह जो इच्छा से जुड़ा हुआ है, यानी इंद्रिय सुख की लालसा, इंद्रिय सुख से आसक्ति। इसे ही इच्छा का आसक्ति कहते हैं।

पी — पैराग्राफ 914 देखें।

इसमें गलत दृष्टिकोण का आसक्ति क्या है? “दान-पुण्य नहीं है; त्याग नहीं है; (वे नहीं हैं) जो स्वयं इस संसार और परलोक को पूर्णतः जानकर, दूसरों को इसका ज्ञान कराते हैं”; जो इसके समान है, वह गलत दृष्टिकोण है; गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना; (उल्टा आलिंगन)। इसे गलत दृष्टिकोण की आसक्ति कहते हैं। (गलत) आदतों और प्रथाओं की आसक्ति और आत्म-सिद्धांत की आसक्ति को छोड़कर, सभी गलत दृष्टिकोण गलत दृष्टिकोण की आसक्ति है।

पी एल = पैरा देखें। 971. पी 2 = पैरा देखें। 249.

इसमें (गलत) आदतों और प्रथाओं का आसक्ति क्या है? (इस बात में विश्वास करना कि) आदत के नियम से शुद्धि, अभ्यास से शुद्धि, इस (शिक्षा) से बाहर के संन्यासियों और ब्राह्मणों की आदत और अभ्यास दोनों से शुद्धि; जो समान है, गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, :P: उलटी पकड़। इसे (गलत) आदतों और प्रथाओं की आसक्ति कहते हैं।

P = अनुच्छेद 249 देखें।

486

विश्लेषण की पुस्तक

इसमें आत्मा के आसक्ति सिद्धांत को क्या कहा गया है? इसमें अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों को नहीं पहचानता, उनकी शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, उनकी शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; अच्छे पुरुषों को नहीं पहचानता, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, अच्छे पुरुषों की शिक्षाओं में अनुशासित नहीं है; भौतिक गुणों को आत्मा मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों से युक्त मानता है; या भौतिक गुणों को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को भौतिक गुणों में विद्यमान मानता है; : पृष्ठ 1 : बोध। : पृष्ठ 1 : मानसिक सहवर्ती। : पृष्ठ 1 : चेतना को आत्मा मानता है; या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है; या चेतना को आत्मा में विद्यमान मानता है; या आत्मा को चेतना में विद्यमान मानता है; जो समान है, गलत दृष्टिकोण, गलत दृष्टिकोण का सहारा लेना, : पृष्ठ 2 : उलटी पकड़। इसे आत्मा के आसक्ति सिद्धांत कहा जाता है। ये चार आसक्तियाँ हैं। (5)

PJ = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

पृष्ठ 2 = पैराग्राफ 249 देखें।

939. उसमें 'इच्छा के चार उद्‌गम' क्या हैं? जब किसी भिक्षु में वस्त्र के कारण लालसा उत्पन्न होती है; जब किसी भिक्षु में भोजन के कारण लालसा उत्पन्न होती है; जब किसी भिक्षु में निवास के कारण लालसा उत्पन्न होती है; जब किसी भिक्षु में उत्तम और उससे भी उत्तम वस्तुओं के कारण लालसा उत्पन्न होती है। ये लालसा के चार उद्‌गम हैं। (6)

इसमें 'गलत मार्ग के चार अभ्यास' क्या हैं? एक पक्षपात का गलत मार्ग अपनाता है; एक घृणा का गलत मार्ग अपनाता है; एक सुस्ती का गलत मार्ग अपनाता है; एक भय का गलत मार्ग अपनाता है; जो समान है, गलत मार्ग, पक्षपात का अभ्यास, वर्गीकरण का अभ्यास, जल अभ्यास। ये गलत मार्ग के चार अभ्यास हैं। (7)

इसमें 'चार व्युत्क्रम' क्या हैं? व्युत्क्रमित धारणा, व्युत्क्रमित चेतना, व्युत्क्रमित दृष्टिकोण इस प्रकार है, "अस्थिरता में स्थायित्व है"; व्युत्क्रमित धारणा, व्युत्क्रमित चेतना, व्युत्क्रमित दृष्टिकोण इस प्रकार है, "दुख में सुख है"; व्युत्क्रमित धारणा, व्युत्क्रमित चेतना, व्युत्क्रमित दृष्टिकोण इस प्रकार है, "आत्मा के अभाव में आत्मा है"; व्युत्क्रमित धारणा, आविष्कृत चेतना, व्युत्क्रमित दृष्टिकोण इस प्रकार है, "सौंदर्य के अभाव में सौंदर्य है"। ये चार व्युत्क्रम हैं। (8)

उसमें 'चार प्रकार की नीच वाणी' क्या हैं? बिना देखे वह कहता है कि उसने देखा है; बिना सुने वह कहता है कि उसने सुना है; अन्यथा अनुभव न करते हुए वह कहता है कि उसने अन्यथा अनुभव किया है;

न जानते हुए भी वह कहता है कि वह जानता है। ये चार प्रकार के नीच भाषण हैं। (9)
उसमें 'अन्य चार प्रकार के अभद्र भाषण' क्या हैं?
देखकर भी वह कहता है कि उसने नहीं देखा; सुनकर भी वह कहता है कि उसने नहीं सुना; अन्यथा अनुभव करके भी वह कहता है कि उसने अन्यथा अनुभव नहीं किया; जानकर भी वह कहता है कि वह नहीं जानता। ये चार प्रकार के नीच वाणी हैं। (10)
उसमें 'चार प्रकार के गलत कर्म' क्या हैं? प्राणियों की हत्या करना, बिना माँगी वस्तु लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी। ये चार प्रकार के गलत कर्म हैं। (11)
उसमें 'अन्य चार प्रकार के गलत कर्म' क्या हैं? झूठा वाणी, निंदात्मक वाणी, कठोर वाणी, तुच्छ वाणी। ये चार प्रकार के गलत कर्म हैं। (12)
उसमें 'चार प्रकार के भय' क्या हैं? जन्म का भय, बुढ़ापे का भय, क्षय का भय, मृत्यु का भय। ये चार प्रकार के भय हैं। (13)
उसमें 'अन्य चार प्रकार के भय' क्या हैं? राजाओं का भय, चोरों का भय, आग का भय, पानी का भय। ये चार प्रकार के भय हैं। (14)
उसमें 'अन्य चार प्रकार के भय' क्या हैं? लहरों का भय, मगरमच्छों का भय, भंवरों का भय, भयंकर मछलियों का भय। ये चार प्रकार के भय हैं। (15)
इसमें 'अन्य चार प्रकार के भय' क्या हैं? आत्म-निंदा का भय, दूसरों द्वारा निंदा का भय, दंड का भय, दुखद अवस्थाओं का भय। ये चार प्रकार के भय हैं। (16)
इसमें 'चार गलत मत' क्या हैं? एक गलत मत सत्य के रूप में दृढ़ता से उभरता है, जैसे कि "सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं"; एक गलत मत सत्य के रूप में दृढ़ता से उभरता है, जैसे कि "सुख और दुख किसी अन्य (कारण) द्वारा उत्पन्न होते हैं"; एक गलत मत सत्य के रूप में दृढ़ता से उभरता है, जैसे कि "सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं और किसी अन्य (कारण) द्वारा भी उत्पन्न होते हैं"; एक गलत मत सत्य के रूप में दृढ़ता से उभरता है, जैसे कि "सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न नहीं होते, किसी अन्य (कारण) द्वारा भी उत्पन्न नहीं होते, बल्कि बिना कारण के उत्पन्न होते हैं"। ये चार गलत मत हैं। (17)
(यहाँ समाप्त होता है) चौगुना (व्याख्या)
5. पंचस्तरीय व्याख्या
940. इसमें 'निम्न (अस्तित्व) से संबंधित पाँच बंधन' क्या हैं? व्यक्तिवाद का दृष्टिकोण, संदेह, (गलत) आदतों का पालन।

और कर्मकांड, इंद्रिय सुख की इच्छा, द्वेष। ये पाँच बंधन निम्न (अस्तित्व) से संबंधित हैं। (1)
उसमें 'उच्च (अस्तित्व) से संबंधित पाँच बंधन' क्या हैं? रूप के प्रति आसक्ति, निराकार के प्रति आसक्ति, अहंकार, ध्यान भटकना, अज्ञान। ये पाँच बंधन उच्च (अस्तित्व) से संबंधित हैं। (2)
उसमें 'पाँच प्रकार की नीचता' क्या हैं? घर से संबंधित नीचता, परिवार से संबंधित नीचता, लाभ से संबंधित नीचता, प्रतिष्ठा से संबंधित नीचता, और धर्म से संबंधित नीचता। ये पाँच प्रकार की नीचता हैं। (3) उसमें 'पाँच आसक्ति' क्या हैं? कामवासना की आसक्ति, घृणा की आसक्ति, सुस्ती की आसक्ति, अहंकार की आसक्ति, और गलत दृष्टिकोण की आसक्ति। ये पाँच आसक्ति हैं। (4) उसमें 'पाँच तीर' क्या हैं? कामवासना का तीर, घृणा का तीर, सुस्ती का तीर, अहंकार का तीर, और गलत दृष्टिकोण का तीर। ये पाँच तीर हैं। (5)
941. इसमें 'पाँच मानसिक काँटे' क्या हैं? व्यक्ति गुरु के बारे में उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्ट नहीं होता; शिक्षा के बारे में उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्ट नहीं होता; संप्रदाय के बारे में उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्ट नहीं होता; उपदेशों के बारे में उलझन में रहता है, संदेह करता है, अनिश्चित रहता है, स्पष्ट नहीं होता; साथी शिष्यों को ठेस पहुँचाता है, अप्रसन्न करता है, मानसिक रूप से पीड़ा देता है, और उनके लिए काँटा बन जाता है। ये पाँच मानसिक काँटे हैं। (6)
उसमें 'पांच प्रकार के मानसिक बंधन' क्या हैं? मनुष्य कामवासना, इच्छा, प्रेम, प्यास, बुखार और इंद्रिय सुख की लालसा से मुक्त नहीं होता; वह शरीर के प्रति वासना से मुक्त नहीं होता; वह दूसरों के रूप के प्रति वासना से मुक्त नहीं होता। [378] पेट भरकर भोजन करने

के बाद मनुष्य बिस्तर के सुख, आलस्य और नींद के सुख में लिप्त रहता है। वह किसी देवत्व की प्रार्थना करते हुए धार्मिक जीवन का अभ्यास करता है, "इस आदत से, इस अभ्यास से, इस तपस्या से या इस धार्मिक जीवन से मैं (उच्च) देव या किसी अन्य प्रकार का देव बन जाऊं।" ये पांच प्रकार के मानसिक बंधन हैं। (7) उसमें 'पांच अवरोध' क्या हैं? इंद्रिय सुख की इच्छा का अवरोध, द्वेष का अवरोध, आलस्य और सुस्ती का अवरोध, विचलित होने और पश्चाताप का अवरोध, संदेह का अवरोध। ये पाँच बाधाएँ हैं। (8)
उसमें 'पांच तात्कालिक परिणाम' क्या हैं? माता का प्राण त्याग दिया जाता है, पिता का प्राण त्याग दिया जाता है, अरहंत का प्राण त्याग दिया जाता है, दुष्ट चेतना से रक्त बह निकलता है।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

489

तथागत का निष्कासन हुआ, संघ का विभाजन हुआ। ये पाँच तात्कालिक परिणामी क्रियाएँ हैं। (9)
इसमें 'पांच गलत मत' क्या हैं? कुछ लोग कहते हैं, "आत्मा में चेतना होती है और मृत्यु के बाद उसका नाश नहीं होता"; कुछ लोग कहते हैं, "आत्मा में चेतना नहीं होती और मृत्यु के बाद उसका नाश नहीं होता"; कुछ लोग कहते हैं, "आत्मा में न तो चेतना होती है और न ही नहीं होती और मृत्यु के बाद उसका नाश नहीं होता"; कुछ लोग (मृत्यु के बाद) विद्यमान प्राणी के विनाश, नाश और निरर्थकता का प्रचार करते हैं; कुछ लोग वर्तमान जीवन में ही निर्वाण की घोषणा करते हैं। ये पांच गलत मत हैं। (10)
942. उसमें 'पाँच शत्रुतापूर्ण कर्म' क्या हैं? प्राणियों की हत्या करना, बिना माँगी वस्तु लेना, यौन दुराचार, झूठी वाणी, मादक बियर, मदिरा और शराब का सेवन करना जिससे लापरवाही होती है। ये पाँच शत्रुतापूर्ण कर्म हैं। (11)
इसमें 'पांच विपत्तियाँ' क्या हैं? रिश्तेदारों के कारण विपत्ति, धन के कारण विपत्ति, बीमारी के कारण विपत्ति, (भ्रष्ट) नैतिकता के कारण विपत्ति, गलत दृष्टिकोण के कारण विपत्ति। ये पाँच विपत्तियाँ हैं। (12)
तो अधीरता के पाँच नुकसान क्या हैं? व्यक्ति अनेक लोगों का प्रिय नहीं होता, अनेक लोगों को प्रसन्न नहीं करता; अनेकों का शत्रु होता है और अनेक दोष रखता है; भ्रमित अवस्था में मरता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन [379] पर नरक की दयनीय, दुखी और विनाशकारी अवस्था में पुनर्जन्म लेता है। ये अधीरता के पाँच नुकसान हैं।
(13)
इसमें 'पांच भय' क्या हैं? जीविका का भय, अस्वीकृति का भय, सभाओं में संकोच का भय, मृत्यु का भय, और दुखद पुनर्जन्म का भय। ये पांच भय हैं। (14)
\
943. इसमें 'वर्तमान जीवन में निर्वाण के पाँच सिद्धांत' क्या हैं? इसमें एक संन्यासी या ब्राह्मण कहता है, "हे मित्र, क्योंकि यह आत्मा पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से प्रभावित होकर आनंदित होती है; अत:, हे मित्र, यह आत्मा वर्तमान जीवन में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त करती है"; इस प्रकार कुछ लोग वर्तमान जीवन में विद्यमान प्राणी के सर्वोच्च निर्वाण का वर्णन करते हैं।
दूसरे ने उस व्यक्ति से कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतना भी होने पर भी सर्वोच्च निर्वाण को प्राप्त नहीं करती।"

मैं

490 विश्लेषण की पुस्तक
वर्तमान अस्तित्व, ऐसा क्यों है? मित्र, इंद्रिय सुख वास्तव में क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं; उनमें विभिन्न अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, (साथ ही) दु:ख, विलाप, पीड़ा (शारीरिक), मानसिक पीड़ा, निराशा। क्योंकि, मित्र, यह आत्मा, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर,
पी: प्रथम ध्यान को प्राप्त करता है और उसमें निवास करता है, इसलिए, मित्र, यह आत्मा
"यद्यपि वर्तमान जीवन में ही सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त होता है"; इस प्रकार कुछ लोग वर्तमान जीवन में विद्यमान प्राणी के सर्वोच्च निर्वाण का वर्णन करते हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।

दूसरे ने उस व्यक्ति से कहा, “मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इस मात्र से भी वर्तमान जीवन में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाती, ऐसा क्यों है? इसमें जो आरंभिक साधना और निरंतर साधना है, वह इतनी स्थूल प्रतीत होती है। क्योंकि, मित्र, यह आत्मा आरंभिक साधना और निरंतर साधना को रोककर द्वितीय ध्यान में निवास करती है, अतः मित्र, यह आत्मा वास्तव में वर्तमान जीवन में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त करती है”; इस प्रकार कुछ लोग वर्तमान जीवन में विद्यमान प्राणी के सर्वोच्च निर्वाण का ज्ञान कराते हैं।
P = अनुच्छेद 205 देखें।
दूसरे ने उस व्यक्ति से कहा, “मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इस स्थिति में भी सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त नहीं करती, ऐसा क्यों है? इसमें मन की जो उमंग भरी उत्तेजना है, वह इस हद तक स्थूल प्रतीत होती है। क्योंकि, मित्र, यह आत्मा, इच्छा रहित होकर, तृतीय ध्यान में निवास करती है, अतः मित्र, यह आत्मा वास्तव में इस स्थिति में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त करती है”; इस प्रकार कुछ लोग वर्तमान जीवन में विद्यमान प्राणी के सर्वोच्च निर्वाण का ज्ञान कराते हैं।
पी — पैराग्राफ 205 देखें।
दूसरे ने उस (व्यक्ति) जेफचस से कहा, “मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इस मात्र से भी वर्तमान जीवन में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त नहीं करती, ऐसा क्यों है? इसमें जो सुखदायक उत्साह है, जिसे मानसिक रूप से जाना जाता है, वह इस हद तक स्थूल प्रतीत होता है। क्योंकि, मित्र, यह आत्मा सुख का त्याग करके चौथे ध्यान में प्राप्त होती है और उसमें निवास करती है, इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में वर्तमान जीवन में सर्वोच्च निर्वाण प्राप्त करती है”; इस प्रकार

कुछ लोग वर्तमान जीवन में विद्यमान प्राणी के सर्वोच्च निर्वाण का वर्णन करते हैं। वर्तमान जीवन में निर्वाण के ये पाँच सिद्धांत हैं। (आईएस)
P = अनुच्छेद 205 देखें।
(यहाँ समाप्त होता है) पंचगुना (व्याख्या)
6. छह गुना व्याख्या
944. उसमें 'विवाद के छह मूल' क्या हैं? क्रोध, निंदा, ईर्ष्या, पाखंड, बुरी इच्छा, हठ। ये विवाद के छह मूल हैं। (1)
इसमें 'छह प्रकार की कामुक इच्छा' क्या हैं? कामुक इच्छा की वे अवस्थाएँ जो इंद्रियों से जुड़ी हैं, जैसे: कामुक, आसक्ति, चेतना की आसक्ति जो सुखद दृश्य वस्तुओं के प्रति, सुखद श्रव्य वस्तुओं के प्रति, सुखद सुगंधित वस्तुओं के प्रति, सुखद स्वाद वाली वस्तुओं के प्रति, सुखद स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति, कामुक, आसक्ति, चेतना की आसक्ति जो सुखद वैचारिक वस्तुओं के प्रति है। ये छह प्रकार की कामुक इच्छाएँ हैं। (2)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
इसमें 'शत्रुता के छह आधार' क्या हैं? चेतना की पीड़ा, आक्रोश, शत्रुता, अचानकता, अप्रिय दृश्य वस्तुओं के प्रति चेतना के आनंद का अभाव; अप्रिय श्रव्य वस्तुओं के प्रति; अप्रिय गंध वाली वस्तुओं के प्रति; अप्रिय स्वाद वाली वस्तुओं के प्रति; अप्रिय स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति।
P: अंतरात्मा की पीड़ा, आक्रोश, शत्रुता, अचानकता,
अप्रिय वैचारिक (वस्तुओं) के प्रति चेतना के आनंद का अभाव। ये शत्रुता के छह आधार हैं। (3)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
तो यहाँ 'इच्छाओं के छह समूह' क्या हैं? दृश्य वस्तुओं की लालसा, श्रव्य वस्तुओं की लालसा, सुगंधित वस्तुओं की लालसा, स्वादयुक्त वस्तुओं की लालसा, स्पर्शनीय वस्तुओं की लालसा और वैचारिक वस्तुओं की लालसा। ये लालसाओं के छह समूह हैं।
(4) [381]

945 उसमें 'अनादर के छह प्रकार' क्या हैं? एक है शिक्षक के प्रति अनादर और सम्मानहीनता; एक है शिक्षा के प्रति अनादर और सम्मानहीनता; एक है...

संघ के प्रति अनादर और सम्मान के बिना; नियमों के प्रति अनादर और सम्मान के बिना; सावधानी के प्रति अनादर और सम्मान के बिना; आतिथ्य सत्कार के प्रति अनादर और सम्मान के बिना। ये छह प्रकार के अनादर हैं। (5)
इसमें 'छह प्रतिगामी अवस्थाएँ' क्या हैं? कर्म का आनंद लेना, बातचीत का आनंद लेना, नींद का आनंद लेना, संगति का आनंद लेना, मेलजोल का आनंद लेना, जुनून का आनंद लेना। ये छह प्रतिगामी अवस्थाएँ हैं, (6)
946. उसमें 'अन्य छह प्रतिगामी राज्य' क्या हैं?
कर्म का आनंद लेना, बातचीत का आनंद लेना, नींद का आनंद लेना, संगति का आनंद लेना, अवज्ञा करना, बुरे मित्र रखना। ये छह प्रतिगामी अवस्थाएँ हैं। (7)
इसमें 'मानसिक आनंद के साथ छह प्रकार की जांच' क्या हैं? किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखना, जो मानसिक आनंद का कारण है; किसी श्रव्य वस्तु को कान से सुनना; किसी सुगंधित वस्तु को नाक से सूंघना; किसी स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद जीभ से चखना; किसी मूर्त वस्तु को शरीर से स्पर्श करना; किसी वैचारिक वस्तु को मन से जानना, जो मानसिक आनंद का कारण है। ये छह प्रकार की मानसिक आनंद के साथ जांच हैं। (8)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
इसमें 'मानसिक पीड़ा के साथ जांच के छह प्रकार' क्या हैं? किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखकर व्यक्ति उस दृश्य वस्तु की जांच करता है जो मानसिक पीड़ा का कारण है; किसी श्रव्य वस्तु को कान से सुनकर; किसी सुगंधित वस्तु को नाक से सूंघकर; किसी स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद जीभ से चखकर; किसी मूर्त वस्तु को शरीर से स्पर्श करके; किसी वैचारिक वस्तु को मन से जानकर व्यक्ति उस वैचारिक वस्तु की जांच करता है जो मानसिक पीड़ा का कारण है। ये मानसिक पीड़ा के साथ जांच के छह प्रकार हैं। (9)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।
इसमें 'उदासीनता से जाँच करने के छह प्रकार' क्या हैं? किसी दृश्य वस्तु को आँख से देखना, उसकी जाँच करना जो उदासीनता का कारण है; किसी श्रव्य वस्तु को कान से सुनना; किसी सुगंधित वस्तु को नाक से सूंघना; किसी स्वादिष्ट वस्तु का स्वाद जीभ से चखना; किसी मूर्त वस्तु को शरीर से छूना; किसी वैचारिक वस्तु को जानना।

(वस्तु) मन से व्यक्ति वैचारिक (वस्तु) की जांच करता है जो उदासीनता का कारण है। उदासीनता से जांच करने के ये छह (प्रकार) हैं। (10)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

947. इसमें 'इंद्रियबोध से जुड़े छह प्रकार के मानसिक सुख' क्या हैं? मानसिक सहजता, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, सुखद दृश्य वस्तुओं के लिए इंद्रियबोध से जुड़े मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक भावना; सुखद श्रव्य वस्तुओं के लिए। :P: सुखद सुगंधित वस्तुओं के लिए। :P: सुखद स्वाद वाली वस्तुओं के लिए। :P: सुखद स्पर्शनीय वस्तुओं के लिए। :P: मानसिक सहजता, मानसिक सुख, मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक अनुभव, सुखद वैचारिक वस्तुओं के लिए इंद्रियबोध से जुड़े मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुखदायक भावना। ये इंद्रियबोध से जुड़े छह प्रकार के मानसिक सुख हैं। (11)
P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

इसमें 'इंद्रियबोध से जुड़े छह प्रकार के मानसिक दर्द' क्या हैं? अप्रिय दृश्य वस्तुओं के लिए मानसिक बेचैनी, मानसिक दर्द, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, इंद्रियबोध से जुड़े मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना; अप्रिय श्रव्य वस्तुओं के लिए। अप्रिय गंध वाली वस्तुओं के लिए। अप्रिय स्वाद वाली वस्तुओं के लिए। अप्रिय स्पर्शनीय वस्तुओं के लिए। अप्रिय वैचारिक वस्तुओं के लिए मानसिक बेचैनी, मानसिक दर्द, मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक अनुभव, इंद्रियबोध से जुड़े मानसिक संपर्क से उत्पन्न बेचैन पीड़ादायक भावना। ये इंद्रियबोध से जुड़े छह प्रकार के मानसिक दर्द हैं। (12)

}

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

इसमें इंद्रियों से जुड़ी उदासीनता के छह प्रकार क्या हैं? न तो मानसिक शांति और न ही बेचैनी, न ही मानसिक संपर्क से उत्पन्न कोई पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभव, न ही दृश्य वस्तुओं के लिए जो उदासीनता का कारण हैं; श्रव्य वस्तुओं के लिए जो उदासीनता का कारण हैं; गंधयुक्त वस्तुओं के लिए जो उदासीनता का कारण हैं; स्वादयुक्त वस्तुओं के लिए जो उदासीनता का कारण हैं; स्पर्शनीय वस्तुओं के लिए जो उदासीनता का कारण हैं। न ही मानसिक

मानसिक संपर्क से उत्पन्न सुख-दुख, न पीड़ादायक न सुखदायक अनुभव, संवेदी संवेदना से जुड़े मानसिक संपर्क से उत्पन्न संवेदना, जो उदासीनता के कारण हैं। ये छह प्रकार की उदासीनता हैं जो संवेदी संवेदना से जुड़ी हैं। (13)

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

948. इसमें 'छह गलत मत' क्या हैं? गलत मत उसके मन में दृढ़ता से सत्य के रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है, “मुझमें आत्मा है”; या गलत मत उसके मन में दृढ़ता से सत्य के रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है, “मुझमें आत्मा नहीं है”; या गलत मत उसके मन में दृढ़ता से सत्य के रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है, “मैं, आत्मा, आत्मा को पहचानता हूँ”; या गलत मत उसके मन में दृढ़ता से सत्य के रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है, “मैं, आत्माहीन, आत्मा को पहचानता हूँ”; या वास्तव में, गलत मत उसके मन में इस प्रकार उत्पन्न होता है, “मुझमें यह आत्मा बोलती और महसूस करती है; इस और उस (अस्तित्व) में यह लंबे समय तक अच्छे और बुरे कर्मों के फल का अनुभव करती है; यह (आत्मा) न तो जन्मी है और न कभी थी; यह (आत्मा) न तो जन्मी है और न कभी होगी; यह (आत्मा) स्थायी, टिकाऊ, शाश्वत है, परिवर्तन के अधीन नहीं है”; इस प्रकार गलत मत उसके मन में दृढ़ता से सत्य के रूप में उत्पन्न होता है। ये छह गलत मत हैं। (14) [383]

(यहाँ समाप्त होता है) छह गुना (व्याख्या)

7. सात गुना प्रदर्शनी

949. इसमें 'सात गुप्त प्रवृत्तियाँ' क्या हैं? इंद्रिय सुख की गुप्त प्रवृत्ति, घृणा की गुप्त प्रवृत्ति, अहंकार की गुप्त प्रवृत्ति, गलत दृष्टिकोण की गुप्त प्रवृत्ति, संदेह की गुप्त प्रवृत्ति, बनने की गुप्त प्रवृत्ति, अज्ञान की गुप्त प्रवृत्ति। ये सात गुप्त प्रवृत्तियाँ हैं। (1)

इसमें 'सात बंधन' क्या हैं? इंद्रिय सुख की लालसा का बंधन, घृणा का बंधन, अहंकार का बंधन, गलत दृष्टिकोण का बंधन, संदेह का बंधन, बनने की लालसा का बंधन, अज्ञान का बंधन। ये सात बंधन हैं। (2)

इसमें 'सात विकास' क्या हैं? इंद्रिय सुख की लालसा का विकास, घृणा का विकास, अहंकार का विकास, गलत दृष्टिकोण का विकास, संदेह का विकास, बनने की लालसा का विकास, अज्ञान का विकास। ये सात विकास हैं। (3)

950. इसमें 'सात दूषित अवस्थाएँ' क्या हैं? व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी होती है; व्यक्ति में लज्जा का अभाव होता है; व्यक्ति में निंदा का भय नहीं होता; व्यक्ति में ज्ञान की कमी होती है; व्यक्ति आलसी होता है; व्यक्ति लापरवाह होता है; व्यक्ति में बुद्धि का अभाव होता है। ये सात दूषित अवस्थाएँ हैं। (4)

इसमें 'सात कुकर्म' क्या हैं? प्राणियों की हत्या करना, बिना माँगी वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी बातें, निंदात्मक बातें, कठोर बातें, तुच्छ बातें। ये सात कुकर्म हैं। (5)

उसमें 'सात प्रकार के अहंकार*' क्या हैं? अहंकार, अत्यधिक अहंकार, असंतुलित अहंकार, आत्म-अपमान का अहंकार, अति-आकलन का अहंकार, आत्म-अभिमान, झूठा अहंकार। ये सात प्रकार के अहंकार हैं। (6)

951. इसमें 'सात गलत मत' क्या हैं? इसमें एक संन्यासी या ब्राह्मण कहता है, "क्योंकि, मित्र, इस आत्मा का स्वरूप है, यह चार महान तत्वों से जुड़ी है, माता-पिता के अंडाणु और वीर्य से उत्पन्न होती है, शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहती; इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है"; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, विखंडन और निराकार होने का वर्णन करते हैं। (7) (1)

दूसरे ने उस (व्यक्ति) से कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतनी सी बात से भी पूर्णतः नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो देवताओं से संबंधित है, जिसका रूप है, जो इच्छा के तल की विशेषता रखती है, जो पोषक तत्व (भोजन) ग्रहण करती है; [384] यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, वह आत्मा शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, नाश हो जाती है, मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहती; इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, नाश, निरर्थकता का वर्णन करते हैं।"

(7) (2)

दूसरे ने उस (व्यक्ति) से कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतनी भी पूर्णतः नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो देवताओं से संबंधित है, जिसका रूप है, जो मन से निर्मित है, जिसके सभी अंग बड़े और छोटे हैं, और जिसमें नियंत्रण शक्तियों की कोई कमी नहीं है; यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, वह आत्मा शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहती; इसलिए,

मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है"; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, संहार और निरर्थकता को प्रकट करते हैं। (7) (3)

दूसरे ने उस व्यक्ति से कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतनी सी बात से भी पूर्णतः नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो इंद्रियों के प्रभाव की अनुभूतियों को समाप्त करके, विभिन्न अनुभूतियों पर ध्यान न देकर, रूप की अनुभूतियों को पूर्णतः पार कर जाती है, और इस प्रकार 'अंतरिक्ष अनंत है' पर ध्यान केंद्रित करती है; यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, वह आत्मा शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहती; इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, नाश और निराकार होने का वर्णन करते हैं।"

(7) (4)

दूसरे ने उस (व्यक्ति) से इस प्रकार कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतनी भी पूर्णतः नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो अनंत अंतरिक्ष की अवस्था को पूर्णतः पार कर (एकाग्र होकर) इस प्रकार, 'अनंत चेतना है', चेतना की अनंत अवस्था को प्राप्त कर लेती है; यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, वह आत्मा शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, नाश हो जाती है,

मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहती; इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है 55; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, नाश, निरन्ण को प्रकट करते हैं। (7) (5)

दूसरे ने उस (व्यक्ति) से इस प्रकार कहा, "मित्र, यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह आत्मा इतनी भी पूर्णतः नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो चेतना की अनंतता की अवस्था को पूर्णतः पार कर, इस प्रकार (एकाग्र होकर), 'कुछ भी नहीं है', शून्यता की अवस्था तक पहुँच जाती है; यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; [385] यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, वह आत्मा शरीर के विखंडन पर नष्ट हो जाती है, नष्ट हो जाती है, मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहती; इसलिए, मित्र, यह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है 55; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, विखंडन, निरर्थकता को प्रकट करते हैं। (7) (6)

दूसरे ने उस (व्यक्ति) से कहा, "यह आत्मा वास्तव में विद्यमान है, तुम ऐसा कहते हो, मैं यह नहीं कहता कि यह विद्यमान नहीं है। वास्तव में, मित्र, यह

इतना होने पर भी आत्मा पूरी तरह नष्ट नहीं होती। वास्तव में, मित्र, एक और आत्मा है जो पूर्णतः शून्यता की अवस्था को पार करके उस अवस्था में पहुँच जाती है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष; यह तुम नहीं जानते, नहीं देखते; यह मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ; क्योंकि, मित्र, शरीर के विखंडन पर वह आत्मा नष्ट हो जाती है, नाश हो जाती है, मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता; अतः, मित्र, वह आत्मा वास्तव में पूर्णतः नष्ट हो जाती है"; इस प्रकार कुछ लोग विद्यमान प्राणी के विनाश, नाश और अस्तित्वहीनता का वर्णन करते हैं। ये सात गलत मत हैं। (7) (7)

(यहाँ समाप्त होता है) सात गुना (प्रस्तावना)

8. अष्टांगिक व्याख्या

952. इसमें 'भ्रष्टाचार के आठ आधार' क्या हैं? लोभ, घृणा, सुस्ती, अहंकार, गलत दृष्टिकोण, संदेह, आलस्य, विचलित होना। ये भ्रष्टाचार के आठ आधार हैं।

953. इसमें 'आलस्य के आठ आधार' क्या हैं? इसमें एक भिक्षु को कार्य करना होता है; उसका विचार इस प्रकार होता है, "मुझे कार्य करना तो होगा, परन्तु कार्य करते-करते मेरा शरीर थक जाएगा; अच्छा, मैं लेट जाता हूँ।" वह लेट जाता है, अप्राप्त को प्राप्त करने, अप्राप्त को जानने और असाहित को जानने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का पहला आधार है।

और फिर, भिक्षु काम करता है, उसका विचार कुछ इस प्रकार होता है, "मैंने काम तो किया, पर काम करते-करते मेरा शरीर थक गया; चलो, लेट जाता हूँ।" वह लेट जाता है, और जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उसे प्राप्त करने के लिए, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उसे प्राप्त करने के लिए, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, उसे जानने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का दूसरा आधार है।

और फिर, भिक्षु को एक यात्रा करनी है, [386] उसका (विचार) इस प्रकार है, "मुझे यात्रा करनी ही है, परन्तु यात्रा करते-करते मेरा शरीर थक जाएगा; अच्छा, मैं लेट जाता हूँ।" वह लेट जाता है, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का तीसरा आधार है।

और फिर, भिक्षु द्वारा एक यात्रा की जाती है, उसका (विचार) इस प्रकार होता है, "मैंने यात्रा तो की, लेकिन यात्रा करते समय

मेरा शरीर थक गया है; चलो लेट जाता हूँ। वह लेट जाता है, अप्राप्त को पाने, अप्राप्त को जानने, अप्राप्त को जानने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का चौथा आधार है।

और फिर, भिक्षा मांगने के लिए गांव या शहर में भटकने वाले भिक्षु को जब पर्याप्त या उचित मोटा या उत्तम भोजन नहीं मिलता, तो उसका विचार होता है, "सचमुच, मैं गांव या शहर में भटकते-भटकते पर्याप्त या उचित मोटा या उत्तम भोजन नहीं पा सका, मेरा शरीर

थक गया है, काम करने लायक नहीं; अच्छा, मैं लेट जाऊं।" वह लेट जाता है, अप्राप्य को प्राप्त करने, अप्राप्त को जानने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का पांचवा आधार है।

और फिर, जब कोई भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए गांव या शहर में घूमता है और उसे पर्याप्त मात्रा में मोटा या उत्तम भोजन मिल जाता है, तो उसका विचार होता है, "जी हां, मैंने भिक्षा मांगने के लिए गांव या शहर में घूमते हुए पर्याप्त मात्रा में मोटा या उत्तम भोजन प्राप्त किया, मेरा शरीर थक गया है, काम करने के लिए अनुपयुक्त हो गया है, जैसे भीगी हुई फली; अच्छा, मैं लेट जाता हूं।" वह लेट जाता है, अप्राप्य को प्राप्त करने, अप्राप्त को प्राप्त करने, असाध्य को जानने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता। यही आलस्य का छठा आधार है।

और फिर भिक्षु को कोई मामूली बीमारी हो जाती है, उसका विचार होता है, "मुझे यह मामूली बीमारी हो गई है, लेट जाना ही ठीक है; मैं लेट जाता हूँ।" वह लेट जाता है, अप्राप्य को प्राप्त करने, अप्राप्त को जानने और असाध्य को जानने के लिए ऊर्जा नहीं लगाता। यही आलस्य का सातवाँ आधार है।

और फिर, भिक्षु रोग से ठीक हो गया है, हाल ही में रोग से ठीक हुआ है, उसका (विचार) इस प्रकार है, "हाँ, मैं रोग से ठीक हो गया हूँ, हाल ही में रोग से ठीक हुआ हूँ, मेरा यह शरीर कमजोर है, काम के लिए अनुपयुक्त है; अच्छा, मैं लेट जाऊँगा"। वह लेट जाता है, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए ऊर्जा उत्पन्न नहीं करता; यह आलस्य का आठवाँ आधार है। ये आलस्य के आठ आधार हैं। [387]

954. किन आठ सांसारिक स्थितियों में चेतना का विचलन होता है? लाभ के प्रति आसक्ति, लाभ की कमी के प्रति शत्रुता, लोकप्रियता के प्रति आसक्ति, लोकप्रियता की कमी के प्रति शत्रुता, प्रशंसा के प्रति आसक्ति, निंदा के प्रति शत्रुता, सुख के प्रति आसक्ति, दुख के प्रति शत्रुता। इन्हीं आठ सांसारिक स्थितियों में चेतना का विचलन होता है।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

499

95 5 . इसमें 'आठ प्रकार के नीच वाणी' क्या हैं? न देखकर भी वह कहता है कि उसने देखा है; न सुनकर भी वह कहता है कि उसने सुना है; अन्यथा अनुभव न करके भी वह कहता है कि उसने अन्यथा अनुभव किया है; न जानकर भी वह कहता है कि वह जानता है; देखकर भी वह कहता है कि उसने नहीं देखा; सुनकर भी वह कहता है कि उसने नहीं सुना; अन्यथा अनुभव करके भी वह कहता है कि उसने अन्यथा अनुभव नहीं किया; जानकर भी वह कहता है कि वह नहीं जानता। ये आठ प्रकार के नीच वाणी हैं।

956. उसमें 'आठ प्रकार के असत्य' क्या हैं? गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान, गलत एकाग्रता। ये आठ प्रकार के असत्य हैं।

957, इसमें मनुष्य के आठ दोष क्या हैं? इसमें भिक्षु एक भिक्षु पर अपराध का आरोप लगाते हैं; भिक्षुओं द्वारा अपराध का आरोप लगाए जाने पर, वह भिक्षु अचेतन होकर इस प्रकार टालमटोल करता है, "मुझे याद नहीं है, मुझे याद नहीं है"। यह मनुष्य का पहला दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर दोषारोपण करते हैं; जब दूसरे भिक्षु उन पर दोषारोपण करते हैं तो वह भिक्षु दोषारोपण करने वाले को ही उत्तर देता है, "तुम्हारे जैसे मूर्ख और अयोग्य से बात करने का क्या लाभ? क्या तुम्हें लगता है कि तुम जैसे व्यक्ति को मुझसे बात करनी चाहिए?" यह मनुष्य का दूसरा दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर अपराध का आरोप लगाते हैं; जब भिक्षु उन पर अपराध का आरोप लगाते हैं, तो वह भिक्षु स्वयं आरोप लगाने वाले पर ही पलटवार करते हुए कहता है, "तुम भी इसी तरह के अपराध में पड़ गए हो, पहले तो प्रायश्चित करो।" यह मनुष्य का तीसरा दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर दोषारोपण करते हैं; दोषारोपण किए जाने पर वह भिक्षु किसी न किसी तरह से बात टाल देता है, विषय से भटक जाता है, क्रोध, घृणा और रूठता दिखाता है। यह मनुष्य का चौथा दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर अपराध का आरोप लगाते हैं; [388] भिक्षुओं द्वारा अपराध का आरोप लगाए जाने पर वह भिक्षु भिक्षुओं की सभा के बीच में निरर्थक हावभाव करते हुए बोलता है। यह मनुष्य का पाँचवाँ दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर अपराध का आरोप लगाते हैं; भिक्षुओं द्वारा अपराध का आरोप लगाए जाने पर वह भिक्षु इस प्रकार कहता है, "मैं न तो अपराध में पड़ा हूँ और न ही अपराध में नहीं पड़ा हूँ", और 19+ को नाराज़ करता है।

500 विश्लेषण की पुस्तक

भिक्षुओं का मौन रहकर एकत्र होना। यह मनुष्य का छठा दोष है।

और फिर भिक्षु एक भिक्षु पर दोषारोपण करते हैं; वह भिक्षु अन्य भिक्षुओं द्वारा दोषारोपित किए जाने पर, भिक्षुओं की सभा और दोषारोपण करने वाले की अवहेलना करते हुए, दोष का दोषी होते हुए भी, अपनी इच्छा से चला जाता है। यह मनुष्य का सातवाँ दोष है।

फिर भिक्षु एक भिक्षु पर दोषारोपण करते हैं; दोषारोपण किए जाने पर वह भिक्षु कहता है, "हे पूज्यवर, अब जब मैं प्रवचन छोड़कर सांसारिक जीवन में लौट रहा हूँ, तो आप मेरे बारे में इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं?" प्रवचन छोड़कर सांसारिक जीवन में लौटते हुए वह कहता है, "हे पूज्यवर, प्रसन्न हो जाइए।" यह मनुष्य का आठवाँ दोष है। ये मनुष्य के आठ दोष हैं।

958. उसमें 'अबोधन के आठ सिद्धांत' क्या हैं? आत्मा का रूप होता है, मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "अबोधन" कहते हैं; आत्मा का कोई रूप नहीं होता।

P : इसका रूप है और इसका रूप नहीं है। : P : इसका न तो रूप है और न ही कोई रूप नहीं है। : P :

आत्मा परिमित है, मृत्यु के बाद भी मृत नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "अबोध" कहते हैं; आत्मा अनंत है, मृत्यु के बाद भी मृत नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "अबोध" कहते हैं; [389] आत्मा परिमित और अनंत दोनों है, मृत्यु के बाद भी मृत नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "अबोध" कहते हैं; आत्मा न तो परिमित है और न ही अनंत, मृत्यु के बाद भी मृत नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "अबोध" कहते हैं। ये अबोध के आठ सिद्धांत हैं।

P = अंतिम उदाहरण के सामान्य रूप में प्रत्येक को पूरा करें।

959. उसमें 'न तो बोध और न ही अबोध होने के आठ सिद्धांत' क्या हैं? आत्मा का रूप है, मृत्यु के बाद उसका क्षय नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध होना" कहते हैं; आत्मा का कोई रूप नहीं है, मृत्यु के बाद उसका क्षय नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध होना" कहते हैं; आत्मा का रूप भी है और कोई रूप नहीं भी, मृत्यु के बाद उसका क्षय नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध होना" कहते हैं; आत्मा का न तो रूप है और न ही कोई रूप नहीं, मृत्यु के बाद उसका क्षय नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध होना" कहते हैं; आत्मा सीमित है, मृत्यु के बाद उसका क्षय नहीं होता, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध होना" कहते हैं;

मैं

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

501

आत्मा अनंत है, मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध" कहते हैं; आत्मा सीमित और अनंत दोनों है, मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध" कहते हैं; आत्मा न तो सीमित है और न ही अनंत, मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होती, इसलिए कुछ लोग इसे "न तो बोध और न ही अबोध" कहते हैं। ये न तो बोध और न ही अबोध होने के आठ सिद्धांत हैं।

(यहाँ समाप्त होता है) आठ गुना (व्याख्या)

9. नौ गुना व्याख्या

960. इसमें 'पीड़ा के नौ आधार' क्या हैं? "उसने मुझे हानि पहुँचाई है", इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; "वह मुझे हानि पहुँचा रहा है", इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; "वह मुझे हानि पहुँचाएगा", इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; "उसने मेरे प्रिय और प्यारे व्यक्ति को हानि पहुँचाई है, वह हानि पहुँचा रहा है।"

पी: वह नुकसान करेगा", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; "उसने अच्छा किया है"

"जो मुझे प्रिय नहीं है और पसंद भी नहीं है, वो अच्छा कर रहा है, वो अच्छा करेगा", इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है। ये झुंझलाहट के नौ आधार हैं।

P = उचित रूप से पूरा करें।

961. मनुष्य की नौ अशुद्धियाँ क्या हैं? क्रोध, निंदा, ईर्ष्या, नीचता, छल, पाखंड, झूठी वाणी, बुरी इच्छा, गलत विचार। ये मनुष्य की नौ अशुद्धियाँ हैं।
962. इसमें 'नौ गुना अहंकार' क्या है? जो श्रेष्ठ है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं श्रेष्ठ हूँ”; [390] जो श्रेष्ठ है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं बराबर हूँ”; जो श्रेष्ठ है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं हीन हूँ”; जो बराबर है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं श्रेष्ठ हूँ”; जो बराबर है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं बराबर हूँ”; जो बराबर है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं हीन हूँ”; जो हीन है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं श्रेष्ठ हूँ”; जो हीन है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं बराबर हूँ”; जो हीन है उसमें ऐसा अहंकार होता है, “मैं हीन हूँ”। यही नौ गुना अहंकार है।
963. इसमें 'लालसा पर आधारित नौ अवस्थाएँ' क्या हैं? लालसा पर निर्भर निरंतर खोज है; निरंतर खोज पर निर्भर लाभ है; लाभ पर निर्भर निर्णय है; निर्णय पर निर्भर कामुक इच्छा है; कामुक इच्छा पर निर्भर

502

विश्लेषण की पुस्तक

इच्छा से आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अधिकार की भावना उत्पन्न होती है; अधिकार की भावना के कारण नीचता उत्पन्न होती है; नीचता के कारण संशय उत्पन्न होता है; संशय के कारण लाठी उठाना, शस्त्र धारण करना, झगड़ा करना, विवाद करना, कलह करना, "तुम, तुम" कहकर पुकारना, निंदा करना, झूठी बातें बोलना और अनेक प्रकार की बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। ये नौ अवस्थाएँ लालसा में निहित हैं।
964. इसमें 'नौ प्रकार की विक्षोभ' क्या हैं? “मैं हूँ”, यह एक विक्षोभ है; “मैं हूँ”, यह एक विक्षोभ है; “मैं यह (व्यक्ति) हूँ”, यह एक विक्षोभ है; “मैं होऊँगा”, यह एक विक्षोभ है; “मेरा रूप होगा”, यह एक विक्षोभ है; “मेरा कोई रूप नहीं होगा”, यह एक विक्षोभ है; “मुझे बोध होगा”, यह एक विक्षोभ है; “मुझे बोध नहीं होगा”, यह एक विक्षोभ है; “मुझे न तो बोध होगा और न ही बोध”, यह एक विक्षोभ है। ये नौ प्रकार की विक्षोभ हैं।
965. इसमें 'नौ प्रकार की कल्पना, नौ प्रकार की अस्थिरता, नौ प्रकार के जुनून, नौ मानसिक अवस्थाएँ' क्या हैं? “मैं हूँ”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मैं हूँ”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मैं यह (व्यक्ति) हूँ”, यह एक मानसिक अवस्था है; [391] “मैं होऊँगा”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मेरा रूप होगा”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मेरा कोई रूप नहीं होगा”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मुझे बोध होगा”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मुझे अबोध होगा”, यह एक मानसिक अवस्था है; “मुझे न तो बोध होगा और न ही अबोध”, यह एक मानसिक अवस्था है। ये नौ मानसिक अवस्थाएँ हैं।
(यहाँ समाप्त होता है) नौ गुना (प्रस्तावना)
\
10. दस गुना व्याख्या
966. इसमें 'भ्रष्टाचार के दस आधार' क्या हैं? लोभ, घृणा, सुस्ती, अहंकार, गलत धारणा, संदेह, आलस्य, विचलित होना, लज्जा का अभाव, निंदा के भय का अभाव। ये भ्रष्टाचार के दस आधार हैं।
967. इसमें 'पीड़ा के दस आधार' क्या हैं? “उसने मुझे हानि पहुँचाई है”, इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; “वह मुझे हानि पहुँचा रहा है”, इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; “वह मुझे हानि पहुँचाएगा”, इस प्रकार पीड़ा उत्पन्न होती है; “उसने किया है”

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

503

“किसी प्रिय और प्रिय व्यक्ति को हानि पहुँचाना, वह हानि पहुँचा रहा है, वह हानि पहुँचाएगा”, इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; “उसने किसी ऐसे व्यक्ति के साथ भलाई की है जो मुझे प्रिय और प्रिय नहीं है, वह भलाई कर रहा है, वह भलाई करेगा”, इस प्रकार झुंझलाहट उत्पन्न होती है; या झुंझलाहट अनुचित रूप से उत्पन्न होती है। ये झुंझलाहट के दस आधार हैं।

P = उचित रूप से पूरा करें।
968. इसमें 'दस प्रकार के बुरे कर्म' क्या हैं? प्राणियों की हत्या करना, बिना माँगी वस्तुएँ लेना, यौन दुराचार, झूठी बातें, निंदात्मक बातें, कठोर बातें, तुच्छ बातें, लोभ, द्वेष, गलत मत। ये दस प्रकार के बुरे कर्म हैं।
969. इसमें 'दस बंधन' क्या हैं? इंद्रिय सुख की लालसा का बंधन, घृणा का बंधन, अहंकार का बंधन, गलत दृष्टिकोण का बंधन, संदेह का बंधन, आदतों और प्रथाओं के प्रति आसक्ति का बंधन, अभिमान का बंधन, ईर्ष्या का बंधन, नीचता का बंधन, अज्ञान का बंधन। ये दस बंधन हैं।
970. उसमें 'दस प्रकार की असत्यता' क्या हैं? गलत दृष्टिकोण, गलत विचार, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत जागरूकता, [392] गलत एकाग्रता, गलत ज्ञान, झूठी स्वतंत्रता। ये दस प्रकार की असत्यता हैं।
97 1. इसमें 'दस आधारों वाला भ्रामक मत' क्या है? "इसमें न तो भिक्षा है, न यज्ञ है, न भेंट है, न कर्मों का कोई फल या परिणाम है, न यह संसार है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न स्वतः उत्पन्न होने वाले प्राणी हैं, न संसार में ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो सर्वोच्च स्तर पर पहुँच चुके हों, जो सिद्ध साधक हों; जो स्वयं इस संसार और परलोक को पूर्णतः जानकर, उसका ज्ञान दूसरों को भी प्रदान करते हों।" यही दस आधारों वाला भ्रामक मत है।
972. इसमें 'दस आधारों वाला अतिवादी दृष्टिकोण' क्या है? "संसार शाश्वत है" या "संसार शाश्वत नहीं है", "संसार सीमित है" या "संसार अनंत है", "प्राण और शरीर एक ही हैं" या "प्राण और शरीर भिन्न हैं", "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व रहता है" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व नहीं रहता" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व भी होता है और नहीं भी" या "मृत्यु के बाद किसी प्राणी का अस्तित्व न तो होता है और न ही नहीं होता"। यही दस आधारों वाला अतिवादी दृष्टिकोण है।

(यहाँ समाप्त होता है) दस गुना (प्रस्तावना)

504 विश्लेषण की पुस्तक
लालसा की घटनाओं का विवरण

973. उसमें 'आंतरिक (समूहों) के संबंध में लालसा की अठारह घटनाएँ' क्या हैं? वहाँ है, "मैं हूँ"; वहाँ है, "मैं ऐसा हूँ"; वहाँ है, "मैं भी हूँ"; वहाँ है, "मैं अन्यथा हूँ"; वहाँ है, "मैं होऊँगा"; वहाँ है, "मैं ऐसा होऊँगा"; वहाँ है, "मैं भी होऊँगा"; वहाँ है, "मैं अन्यथा होऊँगा"; वहाँ है, "मैं शाश्वत हूँ"; वहाँ है, "मैं शाश्वत नहीं हूँ"; वहाँ है, "मैं हो सकता हूँ"; वहाँ है, "मैं ऐसा हो सकता हूँ"; वहाँ है, "मैं भी हो सकता हूँ"; वहाँ है, "मैं अन्यथा हो सकता हूँ"; वहाँ है, "काश मैं होऊँगा"; वहाँ है, "काश मैं ऐसा होऊँगा"; वहाँ है, "काश मैं भी होऊँगा"; वहाँ है, "काश मैं अन्यथा होऊँगा"। [393]
974. और "मैं हूँ" कैसे है? किसी भी अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में कोई भेद किए बिना, व्यक्ति को यह इच्छा होती है, "मैं हूँ"; व्यक्ति को यह अहंकार होता है, "मैं हूँ"; व्यक्ति को यह गलत धारणा होती है, "मैं हूँ"; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, "मैं ऐसा हूँ" या "मैं भी हूँ" या "मैं कुछ और हूँ"। (1)
और "मैं ऐसा हूँ" यह कैसे है? "मैं शासक हूँ" या "मैं ब्राह्मण हूँ" या "मैं व्यापारी हूँ" या "मैं कारीगर हूँ" या "मैं गृहस्थ हूँ" या "मैं तपस्वी हूँ" या "मैं देव हूँ" या "मैं मनुष्य हूँ" या "मेरा भौतिक रूप है" या "मेरा भौतिक रूप नहीं है" या "मेरी चेतना है" या "मेरी अचेतना है" या "मेरी न तो चेतना है और न ही अचेतना है", इस प्रकार "मैं ऐसा हूँ" है। (2)
और "मैं भी हूँ" कैसे आया? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, "जैसे वह शासक है, वैसे ही मैं भी शासक हूँ", या "जैसे वह ब्राह्मण है, वैसे ही मैं भी ब्राह्मण हूँ", या "जैसे वह व्यापारी है, वैसे ही मैं भी व्यापारी हूँ", या "जैसे वह कारीगर है, वैसे ही मैं भी कारीगर हूँ", या "जैसे वह गृहस्थ है, वैसे ही मैं भी गृहस्थ हूँ", या "जैसे वह तपस्वी है, वैसे ही मैं भी तपस्वी हूँ", या "जैसे वह देवता है, वैसे ही मैं भी देवता हूँ", या "जैसे वह मनुष्य है, वैसे ही मैं भी मनुष्य हूँ", या "जैसे उसका भौतिक रूप है, वैसे ही मेरा भी भौतिक रूप है", या "जैसे उसका कोई भौतिक रूप नहीं है, वैसे ही मेरा भी कोई भौतिक रूप नहीं है", या "जैसे उसकी चेतना है, वैसे ही मेरी भी चेतना है", या "जैसे उसकी अचेतना है, वैसे ही मेरी भी अचेतना है", या "जैसे उसकी न तो चेतना है और न ही अचेतना है", वैसे ही मेरी भी कोई चेतना नहीं है और न ही अचेतना है"। इस प्रकार, "मैं भी हूँ"। (3)
और "मैं अन्यथा हूँ" जैसी बात कैसे हुई? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना करना

(स्वयं से), “चूंकि वह शासक है, मैं उसी प्रकार शासक नहीं हूँ” या “चूंकि वह ब्राह्मण है, मैं उसी प्रकार ब्राह्मण नहीं हूँ” या “चूंकि वह व्यापारी है, मैं उसी प्रकार व्यापारी नहीं हूँ” या “चूंकि वह कारीगर है, मैं उसी प्रकार कारीगर नहीं हूँ” या “चूंकि वह गृहस्थ है, मैं उसी प्रकार गृहस्थ नहीं हूँ” या “चूंकि वह तपस्वी है, मैं उसी प्रकार तपस्वी नहीं हूँ” या “चूंकि वह देव है, मैं उसी प्रकार देव नहीं हूँ” या “चूंकि वह मनुष्य है, मैं उसी प्रकार मनुष्य नहीं हूँ” या [394] “चूंकि उसका भौतिक रूप है, मेरा भौतिक रूप नहीं है” या “चूंकि उसका 'कोई भौतिक रूप नहीं' है, मेरा 'कोई भौतिक रूप नहीं' है” या “चूंकि उसके पास बोध है, मेरे पास बोध नहीं है” या “चूंकि उसके पास अबोध है, मेरे पास अबोध नहीं है” “चूंकि उसके पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’, उसी प्रकार मेरे पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’ नहीं है।” अतः, “मैं भिन्न हूँ।” (4)
और "मैं बनूँगा" यह कैसे संभव है? किसी भी अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में कोई भेद किए बिना, व्यक्ति को यह इच्छा होती है, "मैं बनूँगा"; व्यक्ति को यह अहंकार होता है, "मैं बनूँगा"; व्यक्ति को यह गलत धारणा होती है, "मैं बनूँगा"; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, "मैं ऐसा बनूँगा" या "मैं भी बनूँगा" या "मैं कुछ और बनूँगा"। (5)
और यह कैसे हो सकता है, “मैं ऐसा होऊंगा”? “मैं शासक होऊंगा” या “मैं ब्राह्मण होऊंगा” या “मैं व्यापारी होऊंगा” या “मैं कारीगर होऊंगा” या “मैं गृहस्थ होऊंगा” या “मैं तपस्वी होऊंगा” या “मैं देव होऊंगा” या “मैं मनुष्य होऊंगा” या “मेरा भौतिक रूप होगा” या “मेरा भौतिक रूप नहीं होगा” या “मेरी चेतना होगी” या “मेरी अचेतना होगी” या “मेरी न तो चेतना होगी और न ही अचेतना होगी”। इस प्रकार यह है, “मैं अलग होऊंगा”। (6)
और फिर “मैं भी वही होऊंगा” कैसे आया? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक होगा, वैसे ही मैं भी शासक होऊंगा” या “जैसे वह ब्राह्मण होगा, वैसे ही मैं भी ब्राह्मण होऊंगा” या “जैसे उसमें ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’, वैसे ही मुझमें भी ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’”। इस प्रकार “मैं भी वही होऊंगा” का विचार आया। (7)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और फिर यह बात कैसे आती है, “मैं अलग होऊंगा”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक बनेगा, मैं उसी तरह शासक नहीं बनूंगा” या “जैसे वह ब्राह्मण बनेगा, मैं ब्राह्मण नहीं बनूंगा”

ब्राह्मण उसी प्रकार” या :P: “जैसे उसके पास ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’, वैसे ही मेरे पास भी ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’ उसी प्रकार नहीं होगा”। इस प्रकार, “मैं भिन्न होऊंगा”। (8)
P = मध्यवर्ती मदें, जैसा कि पहले बताया गया है।
और यह कैसे है, “मैं शाश्वत हूँ”? किसी भी अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में कोई भेद किए बिना, (यह है), “मैं स्थायी हूँ, मैं टिकाऊ हूँ, मैं शाश्वत हूँ, मैं परिवर्तन के अधीन नहीं हूँ”। इस प्रकार यह है, “मैं शाश्वत हूँ”। (9) [395]
और यह कैसे हो सकता है, “मैं शाश्वत नहीं हूँ”? किसी भी अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में कोई भेद किए बिना, यह है, “मैं नष्ट हो जाऊँगा, मैं नष्ट हो जाऊँगा, मेरा अस्तित्व नहीं रहेगा”। इस प्रकार यह है, “मैं शाश्वत नहीं हूँ”। (10)
और “मैं हो सकता हूँ” यह विचार कैसे आया? किसी भी अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में कोई भेद किए बिना, व्यक्ति के मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है, “मैं हो सकता हूँ”; व्यक्ति के मन में यह अहंकार उत्पन्न होता है, “मैं हो सकता हूँ”; व्यक्ति के मन में यह गलत धारणा उत्पन्न होती है, “मैं ऐसा हो सकता हूँ” या “मैं भी हो सकता हूँ” या “मैं कुछ और हो सकता हूँ”। (11)

और यह कैसे आया, “मैं ऐसा हो सकता हूँ”? “मैं शासक हो सकता हूँ” या “मैं ब्राह्मण हो सकता हूँ” या “मैं व्यापारी हो सकता हूँ” या “मैं कारीगर हो सकता हूँ” या “मैं गृहस्थ हो सकता हूँ” या “मैं तपस्वी हो सकता हूँ” या “मैं देवता हो सकता हूँ” या “मैं मनुष्य हो सकता हूँ” या “मेरा भौतिक रूप हो सकता है” या “मेरा भौतिक रूप नहीं हो सकता है” या “मेरी चेतना हो सकती है” या “मेरी अचेतना हो सकती है” या “मेरी न तो चेतना है और न ही अचेतना”। इस प्रकार, “मैं ऐसा हो सकता हूँ” आता है। (12) J
और यह कैसे आया, “मैं भी हो सकता हूँ”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक बन सकता है, वैसे ही मैं भी शासक बन सकता हूँ” या “जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, वैसे ही मैं भी ब्राह्मण बन सकता हूँ” या “जैसे उसके पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’, वैसे ही मेरे पास भी ‘न तो बोध है और न ही अबोध’”। इस प्रकार, “मैं भी हो सकता हूँ” का विचार आया। (13)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और फिर यह बात कैसे आई कि, “मैं अलग हो सकता हूँ”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना (स्वयं से) करते हुए, “यदि वह शासक हो, तो शायद मैं शासक न बनूँ।”

उसी प्रकार” या 4 'यदि वह ब्राह्मण हो, तो मैं उसी प्रकार ब्राह्मण न हो सकूँ' या : पी : “यदि उसके पास 'न तो बोध हो और न ही अबोध', तो मेरे पास उसी प्रकार 'न तो बोध हो और न ही अबोध' न हो”। इस प्रकार, “मैं भिन्न हो सकता हूँ”। (14)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और यह विचार कैसे आया, "काश मैं ऐसा होता"? किसी भी अवस्था (चाहे भौतिक गुण हो, भावना हो, बोध हो, मानसिक सहवर्ती हो या चेतना) के संबंध में कोई भेद किए बिना, व्यक्ति के मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है, "काश मैं ऐसा होता"; व्यक्ति के मन में यह अहंकार उत्पन्न होता है, "काश मैं ऐसा होता"; व्यक्ति के मन में यह गलत धारणा उत्पन्न होती है, "काश मैं ऐसा होता" या "काश मैं वह भी होता" या "काश मैं कुछ और होता"। (15)
और यह विचार कैसे आया, “काश मैं ऐसा होता”? “काश मैं शासक होता” या “काश मैं ब्राह्मण होता” या “काश मैं व्यापारी होता” या “काश मैं कारीगर होता” या “काश मैं गृहस्थ होता” या “काश मैं तपस्वी होता” [396] या “काश मैं देव होता” या “काश मैं मनुष्य होता” या “काश मेरा भौतिक रूप होता” या “काश मेरा कोई भौतिक रूप न होता” या “काश मुझे बोध होता” या “काश मुझे अबोध होता” या “काश मुझे न तो बोध होता और न ही अबोध”। इस प्रकार यह विचार आया, “काश मैं ऐसा होता”। (16)
और "काश मैं भी ऐसा हो सकूँ" यह विचार कैसे आया? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, "जैसे वह शासक बन सकता है, काश मैं भी शासक बन जाऊँ" या "जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, काश मैं भी ब्राह्मण बन जाऊँ" या "जैसे उसके पास 'न तो बोध है और न ही अबोध', काश मेरे पास भी 'न तो बोध है और न ही अबोध'"। इस प्रकार "काश मैं भी ऐसा हो सकूँ" का विचार आया। (17)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और "काश मैं कुछ और होता" जैसी बात कैसे आती है? तुलना करते हुए
किसी दूसरे व्यक्ति से (स्वयं से), “जैसे वह शासक बन सकता है, काश मैं उसी तरह शासक न बनूँ” या “जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, काश मैं उसी तरह ब्राह्मण न बनूँ” या :P: “जैसे उसके पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’, काश मेरे पास भी ‘न तो बोध है और न ही’”
19*

इसी प्रकार 'अबोधन'। इस प्रकार है, "काश मैं कुछ और होता"। (18)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
आंतरिक (समूहों) के संबंध में लालसा की ये अठारह घटनाएं हैं।

975. उसमें 'बाह्य (समूहों) के संबंध में लालसा की अठारह घटनाएँ' क्या हैं? वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं ऐसा हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं भी हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं अन्यथा हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं होऊँगा"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं ऐसा होऊँगा"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं भी होऊँगा"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं अन्यथा होऊँगा"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं शाश्वत हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं शाश्वत नहीं हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं हो सकता हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं ऐसा हो सकता हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं भी हो सकता हूँ"; वहाँ है, "इसके माध्यम से मैं अन्यथा हो सकता हूँ"; वहाँ है, "काश मैं होऊँ"; "इसके माध्यम से, काश मैं ऐसा हो सकूँ"; "इसके माध्यम से, काश मैं भी हो सकूँ"; "इसके माध्यम से, काश मैं कुछ और हो सकूँ"।

976. और यह कैसे है, "इसके माध्यम से मैं हूँ"? [397] किसी निश्चित अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में भेद करने पर, व्यक्ति को यह इच्छा होती है, "इसके माध्यम से मैं हूँ"; व्यक्ति को यह अहंकार होता है, "इसके माध्यम से मैं हूँ"; व्यक्ति को यह गलत धारणा होती है, "इसके माध्यम से मैं हूँ"; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, "इसके माध्यम से मैं ऐसा हूँ" या "इसके माध्यम से मैं भी हूँ" या "इसके माध्यम से मैं अन्यथा हूँ"। (1)

और यह कैसे संभव है, "इसके द्वारा मैं ऐसा हूँ"? "इसके द्वारा मैं शासक हूँ" या "इसके द्वारा मैं ब्राह्मण हूँ" या "इसके द्वारा मैं व्यापारी हूँ" या "इसके द्वारा मैं कारीगर हूँ" या "इसके द्वारा मैं गृहस्थ हूँ" या "इसके द्वारा मैं तपस्वी हूँ" या "इसके द्वारा मैं देवता हूँ" या "इसके द्वारा मैं मनुष्य हूँ" या "इसके द्वारा मेरा भौतिक रूप है" या "इसके द्वारा मेरा कोई भौतिक रूप नहीं है" या "इसके द्वारा मुझे बोध है" या "इसके द्वारा मुझे अबोध है" या "इसके द्वारा मेरे पास न तो है और न ही कुछ और है"?

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

509

न तो बोध और न ही अबोध। अतः यह है, "इसके माध्यम से मैं ऐसा हूँ।" (2)

और फिर यह कैसे आया, "इसके द्वारा मैं भी हूँ"? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, "जैसे वह शासक है, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी शासक हूँ" या "जैसे वह ब्राह्मण है, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी ब्राह्मण हूँ" या "जैसे उसके पास 'न तो बोध है और न ही अबोध', वैसे ही इसके द्वारा मेरे पास भी 'न तो बोध है और न ही अबोध'"। इस प्रकार यह आता है, "इसके द्वारा मैं भी हूँ"। (3)

P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।

और यह कैसे आया, "इसके द्वारा मैं भिन्न हूँ"? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, "चूँकि वह शासक है, इसके द्वारा मैं उसी प्रकार शासक नहीं हूँ" या "चूँकि वह ब्राह्मण है, इसके द्वारा मैं उसी प्रकार ब्राह्मण नहीं हूँ" या "चूँकि उसके पास 'न तो बोध है और न ही अबोध', इसके द्वारा मेरे पास 'न तो बोध है और न ही अबोध'"। इस प्रकार यह आया, "इसके द्वारा मैं भिन्न हूँ"। (4)

P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।

और यह विचार कैसे आया, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"? किसी विशेष अवस्था (चाहे वह भौतिक गुण हो, भावना हो, बोध हो, मानसिक सहवर्ती हो या चेतना) के संबंध में भेद करने पर, यह इच्छा उत्पन्न होती है, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"; यह अहंकार उत्पन्न होता है, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"; यह गलत धारणा उत्पन्न होती है, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा" या "इसके द्वारा मैं भी बनूँगा" या "इसके द्वारा मैं कुछ और बनूँगा"। (5)

और यह वाक्य कैसे आया, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"? "इसके द्वारा मैं शासक बनूँगा" या :P: [398] "इसके द्वारा मेरा कोई भौतिक रूप नहीं होगा" या "इसके द्वारा मुझे बोध होगा" या "इसके द्वारा मुझे अबोध होगा" या "इसके द्वारा मुझे 'न बोध होगा और न अबोध'"। इस प्रकार यह वाक्य आया, "इसके द्वारा मैं ऐसा बनूँगा"। (6)

P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।

और फिर यह वाक्य कैसे आया, "इसके द्वारा मैं भी ऐसा ही बनूँगा"? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, "जैसे वह शासक बनेगा, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी शासक बनूँगा" या "जैसे वह ब्राह्मण बनेगा, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी ब्राह्मण बनूँगा" या "जैसे उसमें 'न तो बोध होगा और न ही अबोध', वैसे ही इसके द्वारा मैं भी ऐसा ही बनूँगा"

510

उसे 'न तो बोध होगा और न ही अबोध'। अतः, “इसके द्वारा मैं भी अस्तित्व में आऊंगा”। (7)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और फिर यह वाक्य कैसे आया, “इसके द्वारा मैं भिन्न हो जाऊँगा”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक होगा, वैसे ही मैं इसके द्वारा शासक नहीं हो पाऊँगा” या “जैसे वह ब्राह्मण होगा, वैसे ही मैं इसके द्वारा ब्राह्मण नहीं हो पाऊँगा” या “जैसे उसमें ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’, वैसे ही मुझमें ‘न तो बोध होगा और न ही अबोध’”। इस प्रकार यह वाक्य आया, “इसके द्वारा मैं भिन्न हो जाऊँगा”। (8)
P — मध्यवर्ती आइटम पहले की तरह ही।
और यह कैसे है, “इसके द्वारा मैं शाश्वत हूँ”? किसी निश्चित अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में भेद करते हुए, (यह है), “इसके द्वारा मैं स्थायी हूँ, मैं टिकाऊ हूँ, मैं शाश्वत हूँ, मैं परिवर्तन के अधीन नहीं हूँ”। इस प्रकार यह है, “इसके द्वारा मैं शाश्वत हूँ”। (9)
और यह कैसे है, “इसके द्वारा मैं शाश्वत नहीं हूँ”? किसी विशेष अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में भेद करने पर, यह है, “इसके द्वारा मैं नष्ट हो जाऊँगा, मैं मिटा दिया जाऊँगा, मेरा अस्तित्व नहीं रहेगा”। इस प्रकार यह है, “इसके द्वारा मैं शाश्वत नहीं हूँ”। (io)
और यह कैसे संभव है, “इसके माध्यम से मैं हो सकता हूँ”? किसी निश्चित अवस्था (चाहे) भौतिक गुण, भावना, बोध, मानसिक सहवर्ती (या) चेतना के संबंध में भेद करने पर, यह इच्छा उत्पन्न होती है, “इसके माध्यम से मैं हो सकता हूँ”; यह अहंकार उत्पन्न होता है, “इसके माध्यम से मैं हो सकता हूँ”; यह गलत धारणा उत्पन्न होती है, “इसके माध्यम से मैं हो सकता हूँ”; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, “इसके माध्यम से मैं ऐसा हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से मैं भी हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से मैं अन्यथा हो सकता हूँ”। (11)
और यह वाक्य कैसे आया, “इसके द्वारा मैं ऐसा बन सकता हूँ”? “इसके द्वारा मैं शासक बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं ब्राह्मण बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं व्यापारी बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं कारीगर बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं गृहस्थ बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं तपस्वी बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं देवता बन सकता हूँ” या “इसके द्वारा मैं

■

“मनुष्य होना” या “इसके माध्यम से मेरा भौतिक रूप हो सकता है” या “इसके माध्यम से मेरा भौतिक रूप न हो सकता है” या “इसके माध्यम से [399] मुझे बोध हो सकता है” या “इसके माध्यम से मुझे अबोध हो सकता है” या “इसके माध्यम से मुझे 'न तो बोध और न ही अबोध' हो सकता है”। इस प्रकार, “इसके माध्यम से मैं ऐसा हो सकता हूँ”। (12)
और फिर यह वाक्य कैसे आया, “इसके द्वारा मैं भी बन सकता हूँ”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक बन सकता है, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी शासक बन सकता हूँ” या “जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, वैसे ही इसके द्वारा मैं भी ब्राह्मण बन सकता हूँ”?
पी: "क्योंकि उसके पास 'न तो बोध है और न ही अबोध', इसलिए
इसके माध्यम से मुझे भी 'न तो बोध हो सकता है और न ही अबोध'। इस प्रकार, "इसके माध्यम से मैं भी हो सकता हूँ"। (13)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।
और यह वाक्य कैसे आया, “इसके माध्यम से मैं भिन्न हो सकता हूँ”? किसी दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “यदि वह शासक हो, तो इसके माध्यम से मैं उसी प्रकार शासक न हो सकूँ” या “यदि वह ब्राह्मण हो, तो इसके माध्यम से मैं उसी प्रकार ब्राह्मण न हो सकूँ” या :P: “चूँकि उसके पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’, इसके माध्यम से मेरे पास भी उसी प्रकार ‘न तो बोध है और न ही अबोध’”। इस प्रकार यह वाक्य आया, “इसके माध्यम से मैं भिन्न हो सकता हूँ”। (14)
P = मध्यवर्ती मदें पहले की तरह ही।

और यह विचार कैसे आया, “काश मैं ऐसा हो जाऊँ”? किसी निश्चित अवस्था (चाहे वह भौतिक गुण हो, भावना हो, बोध हो, मानसिक सहवर्ती हो या चेतना) के संबंध में भेद करने पर, यह इच्छा उत्पन्न होती है, “काश मैं ऐसा हो जाऊँ”; यह अहंकार उत्पन्न होता है, “काश मैं ऐसा हो जाऊँ”; यह गलत धारणा उत्पन्न होती है, “काश मैं ऐसा हो जाऊँ”; जब ऐसा होता है तो ये आसक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, “काश मैं ऐसा हो जाऊँ” या “काश मैं भी हो जाऊँ” या “काश मैं कुछ और हो जाऊँ”। (15)
और फिर ये वाक्य कैसे आते हैं, “इसके द्वारा, काश मैं ऐसा बन जाऊँ”? “इसके द्वारा, काश मैं शासक बन जाऊँ” या “इसके द्वारा, काश मैं ब्राह्मण बन जाऊँ” या “इसके द्वारा, काश मैं व्यापारी बन जाऊँ” या “इसके द्वारा, काश मैं कारीगर बन जाऊँ” या “इसके द्वारा, काश मैं ऐसा बन जाऊँ”

512

विश्लेषण की पुस्तक
मैं गृहस्थ हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से, काश मैं तपस्वी हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से, काश मैं देव हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से, काश मैं मनुष्य हो सकता हूँ” या “इसके माध्यम से, काश मेरा भौतिक रूप हो सकता है” या “इसके माध्यम से, काश मेरा कोई भौतिक रूप न हो” या “इसके माध्यम से, काश मुझे बोध हो सकता है” या “इसके माध्यम से, काश मुझे अबोध हो सकता है” या “इसके माध्यम से, काश मुझे न तो बोध हो और न ही अबोध हो” 5 । इस प्रकार, “इसके माध्यम से, काश मैं ऐसा हो सकता हूँ” (16) है।
और यह वाक्य कैसे आया, “इसके द्वारा, काश मैं भी 55 वर्ष का हो जाऊँ?” दूसरे व्यक्ति की तुलना स्वयं से करते हुए, “जैसे वह शासक बन सकता है, वैसे ही इसके द्वारा, काश मैं भी शासक बन जाऊँ” या “जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, वैसे ही इसके द्वारा, काश मैं भी ब्राह्मण बन जाऊँ” या “जैसे उसके पास ‘न तो बोध है और न ही अबोध’, वैसे ही इसके द्वारा, काश मेरे पास भी ‘न तो बोध है और न ही अबोध’ ।” इस प्रकार यह वाक्य आया, “इसके द्वारा, काश मैं भी 55 वर्ष का हो जाऊँ।” (17)
P = मध्यवर्ती मदें, जैसा कि पहले बताया गया है।
और यह कैसे है, “इसके माध्यम से, काश मैं कुछ और होता 55? [400] किसी दूसरे व्यक्ति की (स्वयं से) तुलना करते हुए, “जैसे वह शासक बन सकता है, इसके माध्यम से, काश मैं उसी तरह शासक न बनूँ” या “जैसे वह ब्राह्मण बन सकता है, इसके माध्यम से, काश मैं उसी तरह ब्राह्मण न बनूँ 55 या :P: “जैसे उसके पास 'न तो बोध है और न ही अबोध 5, इसके माध्यम से, काश मेरे पास 'न तो बोध है और न ही अबोध 5 उसी तरह न हो 55। इस प्रकार यह है, “इसके माध्यम से, काश मैं कुछ और होता”। (18)
ये बाह्य (समूहों) के संबंध में लालसा की अठारह घटनाएं हैं।
इस प्रकार आंतरिक (समूहों) से संबंधित लालसा की ये अठारह घटनाएँ; बाह्य (समूहों) से संबंधित लालसा की ये अठारह घटनाएँ; इन सबको मिलाकर संक्षेप में लालसा की छत्तीस घटनाएँ होती हैं। इसी प्रकार अतीत में लालसा की छत्तीस घटनाएँ; भविष्य में लालसा की छत्तीस घटनाएँ; वर्तमान में लालसा की छत्तीस घटनाएँ; इन सबको मिलाकर संक्षेप में लालसा की एक सौ आठ घटनाएँ होती हैं।

छोटी वस्तुओं का विश्लेषण

513

977. उसमें वे 'बासठ गलत विचार' क्या हैं जिनका उल्लेख भगवान ने ब्रह्मजाल व्याख्या में किया है?
चार शाश्वतवादी सिद्धांत; चार आंशिक शाश्वतवादी सिद्धांत; चार परिमित और अनंत सिद्धांत; चार ईल-रेंगने वाले सिद्धांत; दो सिद्धांत (बिना कारण के घटित होने वाली घटनाओं के); सोलह सिद्धांत बोध होने के; आठ सिद्धांत अबोध होने के; आठ सिद्धांत 'न बोध न अबोध' होने के; सात सिद्धांत विनाशवादी; पाँच सिद्धांत वर्तमान अस्तित्व में निर्वाण होने के। ये बासठ गलत धारणाएँ हैं जिनका उल्लेख भगवान ने ब्रह्मजाल व्याख्या में किया है।
छोटी वस्तुओं का विश्लेषण समाप्त हो गया है।

18. शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

1. सभी (राज्यों) को शामिल करने वाला अनुभाग
978. [401] कितने समुच्चय; कितने आधार; कितने तत्व; कितने सत्य; कितनी नियंत्रण शक्तियाँ; कितने मूल; कितने पोषक तत्व; कितने (प्रकार के) संपर्क; कितने (प्रकार की) भावनाएँ; कितने (प्रकार की) धारणाएँ; कितने (प्रकार की) इच्छाशक्ति; कितने (प्रकार की) चेतना?
पांच समुच्चय; बारह आधार; अठारह तत्व; चार सत्य; बाईस नियंत्रक क्षमताएँ; नौ मूल; चार पोषक तत्व; सात प्रकार के संपर्क; सात प्रकार की भावनाएँ; सात प्रकार की बोधगम्यताएँ; सात प्रकार की इच्छाशक्ति; सात प्रकार की चेतना।
979. उसमें पाँच समुच्चय क्या हैं? भौतिक गुणों का समुच्चय, भावनाओं का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती भावों का समुच्चय, चेतना का समुच्चय। इन्हें पाँच समुच्चय कहा जाता है। (1)
980. इसमें बारह आधार क्या हैं? आँख का आधार, दृश्य आधार, कान का आधार, श्रव्य आधार, नाक का आधार, गंध का आधार, जीभ का आधार, स्वाद का आधार, शरीर का आधार, स्पर्श का आधार, मन का आधार, वैचारिक आधार। इन्हें बारह आधार कहा जाता है। (2)
981. उसमें अठारह तत्व क्या हैं? आँख तत्व, दृश्य तत्व, आँख-चेतना तत्व, कान तत्व, श्रव्य तत्व, कान-चेतना तत्व, [402] नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, शरीर-चेतना तत्व, मन तत्व, वैचारिक तत्व, मन-चेतना तत्व। इन्हें अठारह तत्व कहा जाता है। (3)

982. उसमें चार सत्य क्या हैं? दुख का सत्य।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> विभंग >> अध्याय 18 पाठ - धम्म-हदय
विभंग-गौतम बुद्ध द्वारा बोली गई विश्लेषण की पुस्तक
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
पाली से अनुवादित यू. थित्तिला, रंगून, बर्मा, 1969 द्वारा

ओसीआर संस्करण, प्रूफरीडिंग नहीं की गई है, इसमें त्रुटियां हैं
(पाठकों को दिए गए .pdf संस्करण की सहायता से पाठ को सही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है)

अध्याय 18 शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण
(धम्म-हदया संस्कृत -हृदय)

515
982. उसमें चार सत्य क्या हैं? दुख का सत्य, कारण का सत्य, निवारण का सत्य, मार्ग का सत्य। इन्हें चार सत्य कहा जाता है। (4)
983. उसमें बाईस नियंत्रक शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं?
आँख की नियंत्रण शक्ति, कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति, पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति, सुख (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, दर्द (शारीरिक) की नियंत्रण शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रण शक्ति, मानसिक दर्द की नियंत्रण शक्ति, उदासीनता की नियंत्रण शक्ति, आत्मविश्वास की नियंत्रण शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रण शक्ति, जागरूकता की नियंत्रण शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रण शक्ति, ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रण शक्ति, अंतिम ज्ञान की नियंत्रण शक्ति। इन्हें बाईस नियंत्रण शक्तियाँ कहा जाता है। (5)
984. उसमें नौ मूल क्या हैं? तीन अच्छे मूल; तीन बुरे मूल; तीन न अच्छे न बुरे मूल।
इसमें तीन अच्छे मूल क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। यही तीन अच्छे मूल हैं।
इनमें से तीन बुरी जड़ें क्या हैं? लोभ की बुरी जड़, घृणा की बुरी जड़ और सुस्ती की बुरी जड़। ये तीन बुरी जड़ें हैं।
इसमें वे तीन मूल शब्द कौन से हैं जो न अच्छे हैं न बुरे?
अच्छे गुणों की अवस्थाओं और न अच्छे न बुरे गुणों की निष्क्रिय अवस्थाओं के परिणामों में लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। ये तीन न अच्छे न बुरे मूल गुण हैं। इन्हें नौ मूल गुण कहा जाता है। (6)

985. उसमें चार पोषक तत्व क्या हैं? भोजन का पोषक तत्व, संपर्क का पोषक तत्व, [403] इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, चेतना का पोषक तत्व। इन्हें चार पोषक तत्व कहा जाता है। (7)
986. उसमें संपर्क के सात प्रकार क्या हैं? आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शरीर का संपर्क, मन तत्व का संपर्क, मन-चेतना-तत्व का संपर्क। इन्हें संपर्क के सात प्रकार कहा जाता है। (8)

987. इसमें सात प्रकार की भावनाएँ क्या हैं? आँख के संपर्क से उत्पन्न भावना, कान के संपर्क से उत्पन्न भावना, नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना, जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना, शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना, मन के तत्व के संपर्क से उत्पन्न भावना, मन-चेतना-तत्व के संपर्क से उत्पन्न भावना। इन्हें सात प्रकार की भावनाएँ कहा जाता है। (9)
988. इसमें सात प्रकार की धारणाएँ क्या हैं? आँख के संपर्क से उत्पन्न धारणा, कान के संपर्क से उत्पन्न धारणा, नाक के संपर्क से उत्पन्न धारणा, जीभ के संपर्क से उत्पन्न धारणा, शरीर के संपर्क से उत्पन्न धारणा, मन के तत्वों के संपर्क से उत्पन्न धारणा, मन-चेतना-तत्व के संपर्क से उत्पन्न धारणा। इन्हें सात प्रकार की धारणाएँ कहा जाता है। (10)
989. उसमें सात प्रकार की इच्छाशक्ति क्या हैं? नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन तत्व संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन-चेतना-तत्व संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें सात प्रकार की इच्छाशक्ति कहा जाता है। (11)
990. उसमें चेतना के सात (प्रकार) क्या हैं? आँख चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, [404] जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन तत्व, मन-चेतना-तत्व। इन्हें चेतना के सात (प्रकार) कहा जाता है। (12)
2. उत्पत्ति और गैर-उत्पत्ति से संबंधित अनुभाग
1. इच्छा के तल का तत्व
991. इच्छा के तत्व में कितने समुच्चय; कितने आधार; कितने तत्व; कितने सत्य; कितनी नियंत्रक शक्तियाँ; कितने मूल; कितने पोषक तत्व; कितने प्रकार के संपर्क; कितने प्रकार की भावनाएँ; कितने प्रकार की धारणाएँ; कितने प्रकार की इच्छाशक्ति; कितने प्रकार की चेतनाएँ होती हैं?
इच्छा के तत्व में पाँच समुच्चय, बारह आधार, अठारह तत्व, तीन सत्य और बाईस नियंत्रण शक्तियाँ होती हैं।

नौ जड़ें; चार पोषक तत्व; सात प्रकार के संपर्क; सात प्रकार की भावनाएँ; सात प्रकार की धारणाएँ; सात प्रकार की इच्छाशक्ति; सात प्रकार की चेतना।
992. इच्छा तत्व में पाँच समुच्चय क्या हैं? भौतिक गुण का समुच्चय, भावना का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती का समुच्चय, चेतना का समुच्चय। इन्हें ही इच्छा तत्व के पाँच समुच्चय कहा जाता है। (1)
इच्छा के तत्व में बारह आधार क्या हैं?
आँख का आधार, दृश्य आधार, कान का आधार, श्रव्य आधार, नाक का आधार, गंध का आधार, जीभ का आधार, स्वाद का आधार, शरीर का आधार, स्पर्शनीय आधार, मन का आधार, वैचारिक आधार। इन्हें इच्छा तत्व के बारह आधार कहा जाता है। (2)
इच्छा तत्व में अठारह तत्व कौन-कौन से हैं? आँख तत्व, दृश्य तत्व, आँख-चेतना तत्व, कान तत्व, श्रव्य तत्व, कान-चेतना तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, शरीर-चेतना तत्व, मन तत्व, वैचारिक तत्व, मन-चेतना तत्व। इन्हें ही इच्छा तत्व के अठारह तत्व कहा जाता है। (3)
इच्छा के तत्व में तीन सत्य क्या हैं? दुख का सत्य, कारण का सत्य, मार्ग का सत्य। इन्हें ही इच्छा के तत्व में तीन सत्य कहा जाता है। (4)
इसमें इच्छा तत्व में निहित बाईस नियंत्रक शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं? आँख की नियंत्रक शक्ति, कान की नियंत्रक शक्ति, आदि: अंतिम ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। इन्हें ही इच्छा तत्व में निहित बाईस नियंत्रक शक्तियाँ कहा जाता है। (5)
P = मध्यवर्ती नियंत्रण क्षमताएँ।

इच्छा तत्व में नौ मूल क्या हैं? तीन अच्छे मूल; तीन बुरे मूल; तीन न अच्छे न बुरे मूल। :P: इन्हें इच्छा तत्व के नौ मूल कहा जाता है। (6) [405]
P = अनुच्छेद 984 देखें।
इच्छा के तत्व में कौन-कौन से चार पोषक तत्व होते हैं?
भोजन का पोषक तत्व, संपर्क का पोषक तत्व, का पोषक तत्व

518

विश्लेषण की पुस्तक

इच्छाशक्ति, चेतना का पोषक तत्व। इन्हें इच्छा के तत्व में चार पोषक तत्व कहा जाता है। (7)
इच्छा तत्व में संपर्क के सात प्रकार क्या हैं? नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शारीरिक संपर्क, मन तत्व संपर्क, मन-चेतना-तत्व संपर्क। इन्हें इच्छा तत्व में संपर्क के सात प्रकार कहा जाता है। (8)
इच्छा तत्व में सात प्रकार की भावनाएँ क्या हैं? आँख के संपर्क से उत्पन्न भावना, कान के संपर्क से उत्पन्न भावना, नाक के संपर्क से उत्पन्न भावना, जीभ के संपर्क से उत्पन्न भावना, शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावना, मन तत्व के संपर्क से उत्पन्न भावना, मन-चेतना तत्व के संपर्क से उत्पन्न भावना। इन्हें इच्छा तत्व में सात प्रकार की भावनाएँ कहा जाता है। (9)
इच्छा तत्व में सात प्रकार की धारणाएँ क्या हैं? आँख के संपर्क से उत्पन्न धारणा, कान के संपर्क से उत्पन्न धारणा, नाक के संपर्क से उत्पन्न धारणा, जीभ के संपर्क से उत्पन्न धारणा, शरीर के संपर्क से उत्पन्न धारणा, मन तत्व के संपर्क से उत्पन्न धारणा, मन-चेतना तत्व के संपर्क से उत्पन्न धारणा। इन्हें इच्छा तत्व में सात प्रकार की धारणाएँ कहा जाता है। (10)
इच्छा तत्व में सात प्रकार की इच्छाशक्ति क्या हैं? नेत्र संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, कान संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, नाक संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, जीभ संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, शरीर संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन तत्व संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति, मन-चेतना तत्व संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति। इन्हें इच्छा तत्व में सात प्रकार की इच्छाशक्ति कहा जाता है। (11)
उसमें चेतना के सात प्रकार क्या हैं?
इच्छा के तत्व? आँख चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन तत्व, मन-चेतना-तत्व। इन्हें इच्छा के तत्व में सात प्रकार की चेतना कहा जाता है। (12)
2. आकार के (तल के) तत्व
993. रूप के तत्व में कितने समुच्चय; कितने आधार; कितने तत्व; कितने सत्य; कितनी नियंत्रक शक्तियाँ; :P: चेतना के कितने (प्रकार) हैं?

P = पैरा 991 देखें।

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

519

रूप के तत्व में पाँच समुच्चय; छह आधार; नौ तत्व; तीन सत्य; चौदह नियंत्रक क्षमताएँ; आठ मूल; तीन पोषक तत्व; चार प्रकार के संपर्क; चार प्रकार की भावनाएँ; चार प्रकार की धारणाएँ; चार प्रकार की इच्छाशक्ति; चार प्रकार की चेतना शामिल हैं।

994. रूप तत्व में पाँच समुच्चय क्या हैं? भौतिक गुण का समुच्चय, भावना का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती का समुच्चय, चेतना का समुच्चय। इन्हें रूप तत्व में पाँच समुच्चय कहा जाता है। (1)
रूप तत्व में छह आधार क्या हैं? आँख

आधार, दृश्य आधार, कान आधार, श्रव्य आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। इन्हें रूप तत्व के छह आधार कहा जाता है। (2) इसमें रूप तत्व के नौ तत्व क्या हैं? नेत्र तत्व, दृश्य तत्व, नेत्र-चेतना तत्व, कान तत्व, श्रव्य तत्व, कान-चेतना तत्व, मन तत्व, वैचारिक तत्व, मन-चेतना तत्व। इन्हें रूप तत्व के नौ तत्व कहा जाता है। (3)

रूप तत्व में तीन सत्य क्या हैं? दुख का सत्य, कारण का सत्य, मार्ग का सत्य। इन्हें रूप तत्व के तीन सत्य कहा जाता है। (4) रूप तत्व में चौदह नियंत्रक शक्तियाँ क्या हैं? आँख की नियंत्रक शक्ति, कान की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति, [406] मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, अंतिम ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। इन्हें रूप तत्व की चौदह नियंत्रक शक्तियाँ कहा जाता है। (5)

इसमें रूप तत्व के आठ मूल कौन से हैं?

तीन अच्छे मूल; दो बुरे मूल; तीन ऐसे मूल जो न अच्छे हैं न बुरे।

इसमें तीन अच्छे मूल क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। यही तीन अच्छे मूल हैं।

इसमें दो बुरी जड़ें कौन सी हैं? लोभ की बुरी जड़, सुस्ती की बुरी जड़। यही दो बुरी जड़ें हैं।

इसमें वे तीन मूल तत्व कौन से हैं जो न अच्छे हैं न बुरे? अच्छे अवस्थाओं के परिणामों में और निष्क्रिय न अच्छे न बुरे अवस्थाओं में लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। ये तीन मूल तत्व हैं जो न अच्छे हैं न बुरे। इन्हें रूप तत्व में आठ मूल तत्व कहा जाता है। (6)

उसमें रूप तत्व के तीन पोषक तत्व क्या हैं? संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, चेतना का पोषक तत्व। इन्हें रूप तत्व के तीन पोषक तत्व कहा जाता है। (7)

उसमें रूप तत्व में संपर्क के चार प्रकार क्या हैं? नेत्र संपर्क, कान संपर्क, मन तत्व संपर्क, मन-चेतना-तत्व संपर्क। इन्हें रूप तत्व में संपर्क के चार प्रकार कहा जाता है। (8)

उसमें चार प्रकार की भावनाएँ, चार प्रकार की धारणाएँ, चार प्रकार की इच्छाशक्ति और चार प्रकार की चेतनाएँ क्या हैं? आँख की चेतना, कान की चेतना, मन तत्व और मन-चेतना तत्व। इन्हें ही रूप तत्व में चार प्रकार की चेतनाएँ कहा जाता है। (12)

P = पैराग्राफ 987, 988, 989 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।

3. (रूपहीन तत्व का तल)

995. निराकार तत्व में कितने समूह हैं; :P: चेतना के कितने प्रकार हैं?

P = पैरा 991 देखें।

निराकार तत्व में चार समुच्चय; दो आधार; दो तत्व; तीन सत्य; ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ; आठ मूल; तीन पोषक तत्व; एक (प्रकार का) संपर्क; एक (प्रकार का) भाव; एक (प्रकार का) बोध; एक (प्रकार का) संकल्प; एक (प्रकार का) चेतना होती है। [407]

996. निराकार तत्व में वे चार समूह कौन से हैं? संवेदना का समूह, बोध का समूह, मानसिक सहवर्ती का समूह, चेतना का समूह। इन्हें निराकार तल में चार समूह कहा जाता है। (1)

उस निराकार तत्व में दो आधार क्या हैं?

मन का आधार, वैचारिक आधार। इन्हें निराकार तत्व में दो आधार कहा जाता है। (2)

उस निराकार तत्व में वे दो तत्व कौन से हैं?

मन-चेतना-तत्व, वैचारिक तत्व। इन्हें निराकार तत्व के दो तत्व कहा जाता है। (3)
उसमें निराकार तत्व में तीन सत्य क्या हैं? दुख का सत्य, कारण का सत्य, मार्ग का सत्य। इन्हें निराकार तत्व के तीन सत्य कहा जाता है। (4) उसमें निराकार तत्व में ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ क्या हैं? मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण की नियंत्रक शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, अंतिम ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। इन्हें निराकार तत्व की ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ कहा जाता है। (5)
उसमें निराकार तत्व के आठ मूल क्या हैं? तीन अच्छे मूल; दो बुरे मूल; तीन न अच्छे न बुरे मूल। : P : इन्हें निराकार तत्व के आठ मूल कहा जाता है। (6) P = पैरा 994 देखें।
उसमें निराकार तत्व के तीन पोषक तत्व क्या हैं? संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, चेतना का पोषक तत्व। इन्हें निराकार तत्व के तीन पोषक तत्व कहा जाता है। (7)
उसमें निराकार तत्व में एक (प्रकार का) संपर्क क्या है? मन-चेतना-तत्व संपर्क। इसे ही निराकार तत्व में एक (प्रकार का) संपर्क कहा जाता है। (8)
उसमें एक (प्रकार की) भावना, एक (प्रकार की) धारणा, एक (प्रकार की) इच्छाशक्ति, एक (प्रकार की) चेतना क्या है जो निराकार तत्व में विद्यमान है? मन-चेतना-तत्व। इसे ही निराकार तत्व में एक (प्रकार की) चेतना कहा जाता है। (12)
P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।
4. (राज्य) सांसारिक में शामिल नहीं हैं
997. '(राज्यों) में शामिल नहीं', कितने समुच्चय; :P: चेतना के कितने (प्रकार) हैं?
P = पैरा 991 देखें।

'(अवस्थाओं) में शामिल नहीं हैं* चार समुच्चय; दो आधार; दो तत्व; दो सत्य; बारह नियंत्रक क्षमताएँ; छह मूल; तीन पोषक तत्व; [408] एक (प्रकार का) संपर्क; एक (प्रकार की) भावना; एक (प्रकार की) धारणा; एक (प्रकार की) इच्छाशक्ति; एक (प्रकार की) चेतना।
998. उसमें (अवस्थाओं में) जो शामिल नहीं हैं* वे चार समुच्चय क्या हैं? भावना का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती का समुच्चय, चेतना का समुच्चय। ये (अवस्थाओं में) जो शामिल नहीं हैं* उन्हें चार समुच्चय कहा जाता है। (1) उसमें (अवस्थाओं में) जो शामिल नहीं हैं* वे दो आधार क्या हैं? मन का आधार, वैचारिक आधार। ये (अवस्थाओं में) जो शामिल नहीं हैं* उन्हें दो आधार कहा जाता है। (2)
उसमें '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं* दो तत्व क्या हैं? मन-चेतना-तत्व, वैचारिक तत्व। इन्हें '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' दो तत्व कहा जाता है। (3)
उसमें उन (अवस्थाओं) में, जिनमें शामिल नहीं हैं, दो सत्य क्या हैं? मार्ग का सत्य, निश्चिंतता का सत्य। इनमें से, जिनमें शामिल नहीं हैं, दो सत्य कहलाते हैं। (4)
उसमें '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' बारह नियंत्रक शक्तियाँ कौन सी हैं? मन की नियंत्रक शक्ति, प्राणिक शक्ति की नियंत्रक शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रक शक्ति, अंतिम ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। ये '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' बारह नियंत्रक शक्तियाँ कहलाती हैं। (5)
उसमें '(राज्यों) में शामिल नहीं* छह मूल कौन से हैं? तीन अच्छे मूल, तीन न अच्छे न बुरे मूल।
इसमें तीन अच्छे मूल क्या हैं? लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। यही तीन अच्छे मूल हैं।

उसमें वे तीन मूल तत्व कौन से हैं जो न अच्छे हैं न बुरे? अच्छे गुणों के फलस्वरूप लोभ का अभाव, घृणा का अभाव और सुस्ती का अभाव। ये तीन मूल तत्व हैं जो न अच्छे हैं न बुरे। इनमें से जो '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं हैं, उन्हें छह मूल तत्व कहा जाता है। (6) उसमें से जो '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं हैं, उनमें तीन पोषक तत्व कौन से हैं? संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व,

चेतना का पोषक तत्व। ये (अवस्थाएँ) जो शामिल नहीं हैं, उन्हें तीन पोषक तत्व कहा जाता है। (7)
उसमें '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' में एक (प्रकार का) संपर्क क्या है? मन-चेतना-तत्व संपर्क। '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' में इसे ही एक (प्रकार का) संपर्क कहा जाता है। (8)
उसमें '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' 9 में एक (प्रकार की) भावना क्या है, :P: एक (प्रकार की) धारणा क्या है, :P: एक (प्रकार की) इच्छाशक्ति क्या है, :P: एक (प्रकार की) चेतना क्या है? [409] मन- चेतना-तत्व। '(अवस्थाओं) में शामिल नहीं' में इसे एक (प्रकार की) चेतना कहा जाता है। (12)
P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।

3. शामिल और गैर-शामिल राज्यों से संबंधित अनुभाग
1. इच्छा के तल का तत्व
999. पाँच स्कंधों में से कितने इच्छा तत्व में शामिल हैं; कितने इच्छा तत्व में शामिल नहीं हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने इच्छा तत्व में शामिल हैं; कितने इच्छा तत्व में शामिल नहीं हैं?
पी — पैराग्राफ 991 देखें।
1000. भौतिक गुणों का समुच्चय इच्छा के तत्व में समाहित है। चार समुच्चय कभी-कभी इच्छा के तत्व में समाहित होते हैं; कभी-कभी नहीं होते।
इच्छा के तत्व में दस आधार शामिल हैं। कभी-कभी दो आधार इच्छा के तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते हैं।
इच्छा के तत्व में सोलह तत्व शामिल हैं। कभी-कभी दो तत्व इच्छा के तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी दो तत्व इच्छा के तत्व में शामिल नहीं होते हैं।
कारण का सत्य इच्छा के तत्व में समाहित है। दो सत्य इच्छा के तत्व में समाहित नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी इच्छा के तत्व में समाहित होता है; कभी-कभी नहीं होता।
इच्छा के तत्व में दस नियंत्रक शक्तियाँ शामिल हैं। तीन नियंत्रक शक्तियाँ इच्छा के तत्व में शामिल नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी इच्छा के तत्व में शामिल होती हैं।

इच्छा का तत्व; कभी-कभी इच्छा के तत्व में शामिल नहीं होते हैं।
इच्छा तत्व में तीन अशुभ मूल तत्व शामिल हैं। कभी-कभी छह मूल तत्व इच्छा तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते।
भोजन का पोषक तत्व इच्छा के तत्व में शामिल होता है। कभी-कभी तीन पोषक तत्व इच्छा के तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते।
इच्छा के तत्व में छह प्रकार के संपर्क शामिल हैं। मन-चेतना-तत्व का संपर्क कभी-कभी इच्छा के तत्व में शामिल होता है; कभी-कभी नहीं होता है।
इच्छा के तत्व में छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति और छह प्रकार की चेतना शामिल हैं। कभी-कभी मन-चेतना का तत्व इच्छा के तत्व में शामिल होता है, कभी-कभी नहीं होता।
P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।

2. आकार के (तल के) तत्व

1001. पाँच स्कंधों में से कितने रूप तत्व में समाहित हैं; कितने रूप तत्व में समाहित नहीं हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने रूप तत्व में समाहित हैं; कितने रूप तत्व में समाहित नहीं हैं?

P = पैरा 991 देखें।

1002. भौतिक गुणवत्ता का समुच्चय रूप के तत्व में शामिल नहीं है*। चार [410] समुच्चय कभी-कभी रूप के तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी रूप के तत्व में शामिल नहीं होते हैं।

दस आधार रूप तत्व में शामिल नहीं होते हैं। दो आधार कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते हैं।

रूप तत्व में सोलह तत्व शामिल नहीं हैं। दो तत्व कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी रूप तत्व में शामिल नहीं होते हैं।

तीन सत्य रूप के तत्व में शामिल नहीं हैं। सत्य

पीड़ा का तत्व कभी-कभी रूप के तत्व में शामिल होता है; कभी-कभी रूप के तत्व में शामिल नहीं होता है।

तेरह नियंत्रक शक्तियाँ रूप तत्व में शामिल नहीं हैं। नौ नियंत्रक शक्तियाँ कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होती हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होती हैं।

तीन अपवित्र मूलों को रूप तत्व में शामिल नहीं किया जाता है। छह मूलों को कभी-कभी रूप तत्व में शामिल किया जाता है; कभी-कभी नहीं किया जाता है।

भोजन का पोषक तत्व, रूप तत्व में शामिल नहीं होता है। तीन पोषक तत्व कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते हैं।

रूप तत्व में छह प्रकार के संपर्क शामिल नहीं हैं। मन-चेतना-तत्व संपर्क कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होता है; कभी-कभी नहीं होता है।

छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति और छह प्रकार की चेतना, ये सभी रूप तत्व में शामिल नहीं हैं। मन-चेतना तत्व कभी-कभी रूप तत्व में शामिल होता है, कभी-कभी नहीं होता।

P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।

इस संदर्भ में “शामिल” (परियपन्ना) का अर्थ केवल वे गुण हैं

जो संबंधित तल की विशिष्ट विशेषताएँ हैं, उनसे भिन्न जो उसमें उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यद्यपि (पैरा 994) भौतिक गुणों का समूह रूप तल में उत्पन्न होता है, फिर भी वे विशिष्ट मानसिक अवस्थाएँ ही उसकी विशिष्ट विशेषताएँ हैं जिनके द्वारा उस तल को परिभाषित किया जाता है। अतः भौतिक गुणों के समूह को (पैरा 1002) उसमें "शामिल" नहीं कहा जा सकता।

3. (रूपहीन तत्व का तल)

1003. पाँच स्कंधों में से कितने निराकार तत्व में समाहित हैं; कितने निराकार तत्व में समाहित नहीं हैं? :P: सात प्रकार की चेतनाओं में से कितनी निराकार तत्व में समाहित हैं; कितनी निराकार तत्व में समाहित नहीं हैं?

P = पैरा 991 देखें।

1004. भौतिक गुणों का समुच्चय निराकार तत्व में शामिल नहीं है। चार समुच्चय कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल नहीं होते।

निराकार तत्व में दस आधार शामिल नहीं होते हैं। कभी-कभी दो आधार निराकार तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते हैं।
सोलह तत्व निराकार तत्व में शामिल नहीं हैं। दो तत्व कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल नहीं होते हैं।
तीन सत्य निराकार तत्व में समाहित नहीं हैं। दुख का सत्य कभी-कभी निराकार तत्व में समाहित होता है; कभी-कभी नहीं होता।
चौदह नियंत्रक शक्तियाँ निराकार तत्व में शामिल नहीं हैं। आठ नियंत्रक शक्तियाँ [411] कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होती हैं; कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल नहीं होती हैं।
तीन असंपूर्ण मूलों को निराकार तत्व में शामिल नहीं किया जाता है। छह मूलों को कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल किया जाता है; कभी-कभी नहीं किया जाता है।
भोजन का पोषक तत्व निराकार तत्व में शामिल नहीं होता है। तीन पोषक तत्व कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते हैं।
छह प्रकार के संपर्क निराकार तत्व में शामिल नहीं हैं। मन-चेतना-तत्व का संपर्क कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होता है; कभी-कभी नहीं होता।
छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति और छह प्रकार की चेतना निराकार तत्व में शामिल नहीं हैं। मन-चेतना तत्व कभी-कभी निराकार तत्व में शामिल होता है; कभी-कभी नहीं होता।
P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें। J
4. (राज्यों) को सांसारिक जीवन में शामिल किया गया है और नहीं किया गया है।
1005. पाँच स्कंधों में से कितने शामिल हैं; कितने शामिल नहीं हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने शामिल हैं; कितने शामिल नहीं हैं?
P = पैरा 991 देखें।
1006. सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग शामिल है। चार योग कभी-कभी शामिल होते हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होते।

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

527

इसमें दस बेस शामिल हैं। कभी-कभी दो बेस शामिल होते हैं; कभी-कभी नहीं होते।
इसमें सोलह तत्व शामिल हैं। कभी-कभी दो तत्व शामिल होते हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होते।
दो सत्य शामिल हैं। दो सत्य शामिल नहीं हैं।
दस नियंत्रक संकाय शामिल हैं। तीन नियंत्रक संकाय शामिल नहीं हैं। नौ नियंत्रक संकाय कभी-कभी शामिल होते हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होते।
तीन गलत मूल शामिल हैं। कभी-कभी छह मूल शामिल होते हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होते।
भोजन के पोषक तत्व कारक को शामिल किया गया है। कभी-कभी तीन पोषक तत्व शामिल होते हैं; कभी-कभी शामिल नहीं होते हैं।
इसमें छह प्रकार के संपर्क शामिल हैं। मन-चेतना-तत्व संपर्क कभी-कभी शामिल होता है; कभी-कभी शामिल नहीं होता है।
इसमें छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति और छह प्रकार की चेतनाएँ शामिल हैं। मन-चेतना तत्व कभी शामिल होता है, कभी नहीं।
P = पैरा 992 के अनुसार उचित रूप से पूरा करें।

4. राज्यों को दर्शाने वाला अनुभाग
1. इच्छा के तल का तत्व
1007. इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में कितने समूह प्रकट होते हैं; :P: चेतना के कितने प्रकार प्रकट होते हैं?
P = पैरा 991 देखें।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में सभी प्राणियों में पाँचों तत्व प्रकट होते हैं। [412] कुछ में ग्यारह आधार प्रकट होते हैं; कुछ में दस आधार प्रकट होते हैं; कुछ में दस और आधार प्रकट होते हैं; कुछ में नौ आधार प्रकट होते हैं; कुछ में सात आधार प्रकट होते हैं; कुछ में ग्यारह तत्व प्रकट होते हैं; कुछ में दस तत्व प्रकट होते हैं; कुछ में दस और तत्व प्रकट होते हैं; कुछ में नौ तत्व प्रकट होते हैं; कुछ में सात तत्व प्रकट होते हैं। सभी प्राणियों में एक सत्य प्रकट होता है। कुछ में चौदह नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं; कुछ में तेरह नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं; कुछ में तेरह और नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में बारह नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में दस नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में नौ नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में नौ और नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में आठ नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में आठ और नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में सात नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में पाँच नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं; कुछ में चार नियंत्रण करने की क्षमताएँ स्पष्ट हैं। कुछ में तीन मूल स्पष्ट हैं; कुछ में दो मूल स्पष्ट हैं; कुछ में कोई मूल स्पष्ट नहीं है। सभी प्राणियों में चार पोषक तत्व स्पष्ट हैं। सभी प्राणियों में एक प्रकार का संपर्क स्पष्ट है। सभी प्राणियों में एक प्रकार की भावना; एक प्रकार की धारणा; एक प्रकार की इच्छाशक्ति; एक प्रकार की चेतना स्पष्ट है।
1008. गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, सभी (प्राणियों) में कौन से पाँच समुच्चय प्रकट होते हैं? भौतिक गुण का समुच्चय; चेतना का समुच्चय। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, ये पाँच समुच्चय सभी (प्राणियों) में प्रकट होते हैं। (1)
P = मध्यवर्ती समुच्चय।
1009. गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें ग्यारह आधार प्रकट होते हैं? इच्छा लोक के देवताओं में; विश्व चक्र में प्रथम मनुष्य में; स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; गर्भाधान के समय सभी आधारों वाले प्राणियों में ग्यारह आधार प्रकट होते हैं, (अर्थात्) नेत्र आधार, दृश्य आधार, कान आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये ग्यारह आधार प्रकट होते हैं।
गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें दस आधार प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे लोगों में गर्भाधान के समय दस आधार प्रकट होते हैं, (अर्थात्) दृश्य आधार, कान आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, [413] स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये दस आधार प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें अन्य दस आधार प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न भूतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से बहरे लोगों में गर्भाधान के समय दस आधार प्रकट होते हैं, (अर्थात्) नेत्र आधार, दृश्य आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये दस आधार प्रकट होते हैं।
गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में नौ आधार प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे और बहरे प्राणियों में गर्भाधान के समय नौ आधार प्रकट होते हैं, (अर्थात्) दृश्य आधार, नाक आधार, गंध आधार, जीभ आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये नौ आधार प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें सात आधार प्रकट होते हैं? गर्भ में पल रहे प्राणियों में, गर्भाधान के समय सात आधार प्रकट होते हैं, (अर्थात्) दृश्य आधार, गंध आधार, स्वाद आधार, शरीर आधार, स्पर्श आधार, मन आधार, वैचारिक आधार। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, ये सात आधार इन (प्राणियों) में प्रकट होते हैं। (2)

1010. गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में ग्यारह तत्व प्रकट होते हैं? इच्छा लोक के देवताओं में; विश्व चक्र में प्रथम स्थान पर रहने वाले मनुष्यों में; स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; गर्भाधान के समय सभी आधारों वाले प्राणियों में ग्यारह तत्व प्रकट होते हैं, (अर्थात्) नेत्र तत्व, दृश्य तत्व, कान तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, शरीर तत्व, स्पर्श तत्व, मन-चेतना तत्व, विचार तत्व। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये ग्यारह तत्व प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें दस तत्व प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न भूतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; [414] स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे लोगों में। गर्भाधान के समय दस तत्व प्रकट होते हैं, (अर्थात्) दृश्य तत्व, कान तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व।

तत्व, देह तत्व, मूर्त तत्व, मन-चेतना तत्व, वैचारिक तत्व। गर्भाधान के क्षण में, इच्छा तत्व में ये दस तत्व इन (प्राणियों) में प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें अन्य दस तत्व प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से बहरे लोगों में गर्भाधान के समय दस तत्व प्रकट होते हैं, (अर्थात) नेत्र तत्व, दृश्य तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, शरीर तत्व, स्पर्श तत्व, मन-चेतना तत्व, वैचारिक तत्व। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये दस तत्व प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें नौ तत्व प्रकट होते हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे और बहरे लोगों में गर्भाधान के समय नौ तत्व प्रकट होते हैं, (अर्थात्) दृश्य तत्व, नाक तत्व, गंध तत्व, जीभ तत्व, स्वाद तत्व, शरीर तत्व, स्पर्श तत्व, मन-चेतना तत्व और विचार तत्व। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, ये नौ तत्व इन (प्राणियों) में प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें सात तत्व प्रकट होते हैं? गर्भ में पल रहे प्राणियों में, गर्भाधान के समय सात तत्व प्रकट होते हैं, (अर्थात) दृश्य तत्व, गंध तत्व, स्वाद तत्व, शरीर तत्व, स्पर्शनीय तत्व, मन-चेतना तत्व, वैचारिक तत्व। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, ये सात तत्व इन (प्राणियों) में प्रकट होते हैं। (3)

1011. इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, सभी (प्राणियों) में कौन सा एकमात्र सत्य प्रकट होता है? दुख का सत्य। इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में यह एकमात्र सत्य सभी (प्राणियों) में प्रकट होता है। (4)

1012. इच्छा तत्व में गर्भाधान के समय, किनमें चौदह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? ज्ञान से संबंधित जड़ों से युक्त इच्छा तल के देवताओं में, गर्भाधान के समय चौदह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) आँख की नियंत्रक शक्ति, कान की नियंत्रक शक्ति, नाक की नियंत्रक शक्ति, जीभ की नियंत्रक शक्ति, [415]

शरीर को नियंत्रित करने वाली शक्ति, मन को नियंत्रित करने वाली शक्ति, स्त्रीत्व को नियंत्रित करने वाली शक्ति या पुरुषत्व को नियंत्रित करने वाली शक्ति, प्राण शक्ति को नियंत्रित करने वाली शक्ति, मानसिक सुख को नियंत्रित करने वाली शक्ति या उदासीनता को नियंत्रित करने वाली शक्ति, आत्मविश्वास को नियंत्रित करने वाली शक्ति, ऊर्जा को नियंत्रित करने वाली शक्ति, जागरूकता को

नियंत्रित करने वाली शक्ति, एकाग्रता को नियंत्रित करने वाली शक्ति, ज्ञान को नियंत्रित करने वाली शक्ति। गर्भाधान के क्षण में, इच्छा के तत्व में ये चौदह नियंत्रण शक्तियां इन (प्राणियों) में प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में तेरह नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं? ज्ञान से असंबद्ध जड़ों वाले इच्छा लोक के देवताओं में, गर्भाधान के समय तेरह नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) आँख की नियंत्रण शक्ति, कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व या पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति, मानसिक सुख या उदासीनता की नियंत्रण शक्ति, विश्वास शक्ति, ऊर्जा शक्ति, जागरूकता शक्ति और एकाग्रता शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये तेरह नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में तेरह अन्य नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? ज्ञान से संबंधित जड़ों से युक्त विश्व चक्र में प्रथम प्राणी मनुष्यों में, गर्भाधान के समय तेरह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) आँख की नियंत्रक शक्ति, कान की नियंत्रक शक्ति, नाक की नियंत्रक शक्ति, जीभ की नियंत्रक शक्ति, शरीर की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति या उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति और ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये तेरह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के क्षण में, इच्छा के तत्व में, किसमें बारह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? ज्ञान से असंबंधित जड़ों के साथ विश्व चक्र में प्रथम मनुष्य में, गर्भाधान के क्षण में बारह नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

20 +

532

विश्लेषण की पुस्तक

ये बारह शक्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होती हैं, जैसे आँख की शक्ति, कान की शक्ति, नाक की शक्ति, जीभ की शक्ति, शरीर की शक्ति, मन की शक्ति, प्राण शक्ति, मानसिक सुख की शक्ति, उदासीनता की शक्ति, विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति, जागरूकता की शक्ति और एकाग्रता की शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, ये बारह शक्तियाँ इन प्राणियों में प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? गर्भ में पल रहे प्राणियों में, ज्ञान से संबंधित जड़ों के साथ, गर्भाधान के समय दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) शरीर की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, स्त्रीत्व या पुरुषत्व की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति, मानसिक सुख या उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

[416] गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें नौ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? गर्भ में पल रहे उन प्राणियों में, जिनमें ज्ञान से असंबद्ध जड़ें होती हैं, गर्भाधान के समय नौ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) शरीर की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, स्त्रीत्व या पुरुषत्व की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति, मानसिक सुख या उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में ये नौ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें अन्य नौ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; गर्भाधान के समय सभी आधारों वाले प्राणियों में नौ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) आँख की नियंत्रण शक्ति, कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, और...

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

533

शरीर, मन की नियंत्रक शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रक शक्ति या पुरुषत्व की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के क्षण में, इच्छा के तत्व में ये नौ नियंत्रक शक्तियाँ इन (प्राणियों) में प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे प्राणियों में गर्भाधान के समय आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) कान की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति या पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति और उदासीनता शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किन प्राणियों में अन्य आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं? स्वतः उत्पन्न प्रेतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से बहरे प्राणियों में गर्भाधान के समय आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) आँख की नियंत्रण शक्ति, नाक की नियंत्रण शक्ति, जीभ की नियंत्रण शक्ति, शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रण शक्ति या पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रण शक्ति और उदासीनता शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये आठ नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें सात नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? स्वतः उत्पन्न भूतों में; स्वतः उत्पन्न असुरों में; स्वतः उत्पन्न पशुओं में; नरक में रहने वालों में; जन्म से अंधे और बहरे प्राणियों में गर्भाधान के समय सात नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) नाक की नियंत्रक शक्ति, [417] जीभ की नियंत्रक शक्ति, शरीर की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, स्त्रीत्व की नियंत्रक शक्ति या पुरुषत्व की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता शक्ति की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये सात नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के क्षण में, इच्छा के तत्व में, जिसमें

क्या पाँच नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं? गर्भ में गर्भित प्राणियों में, लिंगहीन प्राणियों को छोड़कर, पाँच नियंत्रण शक्तियाँ प्रकट होती हैं: शरीर की नियंत्रण शक्ति, मन की नियंत्रण शक्ति, स्त्रीत्व या पुरुषत्व की नियंत्रण शक्ति, प्राण शक्ति और उदासीनता शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में ये पाँच नियंत्रण शक्तियाँ इन प्राणियों में प्रकट होती हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें चार नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? गर्भ में पल रहे निराकार और लिंगहीन प्राणियों में, गर्भाधान के समय चार नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, (अर्थात्) शरीर की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति और उदासीनता शक्ति की नियंत्रक शक्ति। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन प्राणियों में ये चार नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं। (5)

1013. गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें तीन मूल प्रकट होते हैं? इच्छा लोक के देवताओं में; विश्व चक्र में प्रथम मनुष्य में; गर्भ में पल रहे उन प्राणियों में जिनमें ज्ञान से संबंधित मूल होते हैं, गर्भाधान के समय तीन मूल प्रकट होते हैं, (अर्थात्) लोभ के अभाव का परिणामी मूल, घृणा के अभाव का परिणामी मूल, और सुस्ती के अभाव का परिणामी मूल। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये तीन मूल प्रकट होते हैं।

गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, किनमें दो मूल प्रकट होते हैं? इच्छा के तल के देवताओं में; विश्व चक्र में प्रथम मनुष्य में; गर्भ में पल रहे उन प्राणियों में जिनमें ज्ञान से असंबद्ध मूल होते हैं, गर्भाधान के समय दो मूल प्रकट होते हैं, (अर्थात्) लोभ के अभाव का परिणामी मूल, घृणा के अभाव का परिणामी मूल। गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, इन (प्राणियों) में ये दो मूल प्रकट होते हैं। शेष प्राणियों में कोई मूल प्रकट नहीं होता। (6)

1014. गर्भाधान के समय, इच्छा तत्व में, सभी (प्राणियों) में कौन से चार पोषक तत्व प्रकट होते हैं? भोजन का पोषक तत्व, संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, और...

535

चेतना। गर्भाधान के क्षण में, इच्छा के तत्व में ये चार पोषक तत्व सभी (प्राणियों) में प्रकट होते हैं। (7)
इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, सभी (प्राणियों) में कौन सा एकल (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है? मन-चेतना-तत्व संपर्क। इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में यह एकल (प्रकार का) संपर्क सभी (प्राणियों) में प्रकट होता है। (8) इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, सभी (प्राणियों) में कौन सी एकल (प्रकार की) भावना, [418] एकल (प्रकार की) धारणा, एकल (प्रकार की) इच्छाशक्ति, एकल (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है? मन-चेतना-तत्व। इच्छा के तत्व में गर्भाधान के क्षण में यह एकल (प्रकार की) चेतना सभी (प्राणियों) में प्रकट होती है। (12)
2. आकार के (तल के) तत्व
1015. रूप के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कितने समुच्चय प्रकट होते हैं? : P : कितने (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है?
P = पैरा 991 देखें।
रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में, बोधहीन देव प्राणियों को छोड़कर, पाँच समुच्चय प्रकट होते हैं; पाँच आधार प्रकट होते हैं; पाँच तत्व प्रकट होते हैं; एक सत्य प्रकट होता है; दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं; तीन मूल प्रकट होते हैं; तीन पोषक तत्व प्रकट होते हैं; एक (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है; एक (प्रकार का) भाव प्रकट होता है; एक (प्रकार की) बोध शक्ति प्रकट होती है; एक (प्रकार की) इच्छाशक्ति प्रकट होती है; एक (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है।
1016. गर्भाधान के समय, रूप तत्व में कौन से पाँच समुच्चय प्रकट होते हैं? भौतिक गुण का समुच्चय, भावना का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती का समुच्चय, चेतना का समुच्चय। गर्भाधान के समय, रूप तल में ये पाँच समुच्चय प्रकट होते हैं।
(मैं)
रूप तत्व में गर्भाधान के समय, कौन से पाँच आधार प्रकट होते हैं? आँख का आधार, दृश्य आधार, कान का आधार, मन का आधार, वैचारिक आधार। रूप तत्व में गर्भाधान के समय ये पाँच आधार प्रकट होते हैं। (2)
रूप के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन से पाँच तत्व प्रकट होते हैं? आँख तत्व, दृश्य तत्व, कान तत्व, मन-चेतना तत्व, वैचारिक तत्व। 20 *

536 विश्लेषण की पुस्तक
रूप के तत्व में गर्भाधान के क्षण में ये पाँच तत्व स्पष्ट होते हैं। (3)
रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सा एकमात्र सत्य प्रकट होता है? दुख का सत्य। रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में यही एकमात्र सत्य प्रकट होता है। (4)
रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सी दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? आँख की नियंत्रक शक्ति, कान की नियंत्रक शक्ति, मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति, मानसिक सुख की नियंत्रक शक्ति या उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, [419] ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में ये दस नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं। (5)
रूप तत्व में गर्भाधान के समय, कौन से तीन मूल प्रकट होते हैं? लोभ के अभाव का परिणामी मूल, घृणा के अभाव का परिणामी मूल, और सुस्ती के अभाव का परिणामी मूल। रूप तत्व में गर्भाधान के समय ये तीनों मूल प्रकट होते हैं। (6)
रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन से तीन पोषक तत्व प्रकट होते हैं? संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, चेतना का पोषक तत्व। रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में ये तीनों पोषक तत्व प्रकट होते हैं। (7)
रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सा एकल (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है? मन-चेतना-तत्व संपर्क। रूप तत्व में गर्भाधान के क्षण में यह एकल (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है। (8)
रूप के तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सी एकल (प्रकार की) भावना, एकल (प्रकार की) धारणा, एकल (प्रकार की) इच्छाशक्ति, एकल (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है? (12)
3. बोधहीन प्राणी

1017. जब देव प्राणियों की गर्भाधान की अवस्था में, बोधहीन, कितने समूह प्रकट होते हैं; :P: कितनी (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है?

P = पैरा 991 देखें।

मैं

जब देवों की चेतना प्रकट होती है, तब एक तत्व प्रकट होता है, अर्थात् भौतिक गुणों का तत्व। दो आधार प्रकट होते हैं, अर्थात् दृश्य आधार और वैचारिक आधार। दो तत्व प्रकट होते हैं, अर्थात् दृश्य तत्व और वैचारिक तत्व। एक सत्य प्रकट होता है, अर्थात् दुख का सत्य। एक नियंत्रक शक्ति प्रकट होती है, अर्थात् भौतिक प्राणिक शक्ति। देवों को जड़हीन, पोषक तत्वों से रहित, स्पर्शहीन, संवेदनाहीन, बोधहीन, इच्छाशक्तिहीन और चेतनाहीन के रूप में देखा जाता है।

4. (निराकार तत्व का तल)

1018. निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कितने समूह प्रकट होते हैं; :P: चेतना के कितने प्रकार प्रकट होते हैं?

पी = पैरा 991 देखें।

निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में चार समुच्चय प्रकट होते हैं; दो आधार प्रकट होते हैं; दो तत्व प्रकट होते हैं; एक सत्य प्रकट होता है; आठ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं; तीन मूल प्रकट होते हैं; तीन पोषक तत्व प्रकट होते हैं; एक (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है; एक (प्रकार की) भावना, एक (प्रकार की) धारणा, [420] एक (प्रकार की) इच्छाशक्ति, एक (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है।

1019. निराकार तत्व में गर्भाधान के समय कौन से चार समुच्चय प्रकट होते हैं? संवेदना का समुच्चय, बोध का समुच्चय, मानसिक सहवर्ती समुच्चय, चेतना का समुच्चय। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये चार समुच्चय प्रकट होते हैं। (1)

निराकार तत्व में गर्भाधान के समय कौन से दो आधार प्रकट होते हैं? मन का आधार, विचार का आधार। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये दो आधार प्रकट होते हैं। (2)

निराकार तत्व में गर्भाधान के समय कौन से दो तत्व प्रकट होते हैं? मन-चेतना-तत्व, वैचारिक तत्व। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये दो तत्व प्रकट होते हैं। (3)

निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सा एकमात्र सत्य प्रकट होता है? दुख का सत्य। निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में यही एकमात्र सत्य प्रकट होता है। (4)

मैं

निराकार तत्व में गर्भाधान के समय, कौन सी आठ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं? मन की नियंत्रक शक्ति, प्राण शक्ति की नियंत्रक शक्ति, उदासीनता की नियंत्रक शक्ति, विश्वास की नियंत्रक शक्ति, ऊर्जा की नियंत्रक शक्ति, जागरूकता की नियंत्रक शक्ति, एकाग्रता की नियंत्रक शक्ति, ज्ञान की नियंत्रक शक्ति। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये आठ नियंत्रक शक्तियाँ प्रकट होती हैं। (5)

निराकार तत्व में गर्भाधान के समय कौन-से तीन मूल प्रकट होते हैं? लोभ के अभाव का परिणामी मूल, घृणा के अभाव का परिणामी मूल, और सुस्ती के अभाव का परिणामी मूल। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये तीनों मूल प्रकट होते हैं। (6)

निराकार तत्व में गर्भाधान के समय, कौन से तीन पोषक तत्व प्रकट होते हैं? संपर्क का पोषक तत्व, इच्छाशक्ति का पोषक तत्व, चेतना का पोषक तत्व। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय ये तीनों पोषक तत्व प्रकट होते हैं। (7) निराकार तत्व में गर्भाधान के समय, कौन सा एक (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है? मन-चेतना-तत्व संपर्क। निराकार तत्व में गर्भाधान के समय यह एक (प्रकार का) संपर्क प्रकट होता है। (8)

निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में, कौन सी एकल (प्रकार की) भावना, एकल (प्रकार की) धारणा, एकल (प्रकार की) इच्छाशक्ति, एकल (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है? मन-चेतना-तत्व। निराकार तत्व में गर्भाधान के क्षण में यह एकल (प्रकार की) चेतना प्रकट होती है। (12) [421]

5. अनुभाग जो तल J के दायरे को दर्शाता है

1020. इच्छा के तल की विशेषता वाली अवस्थाएँ; इच्छा के तल की विशेषता न होने वाली अवस्थाएँ। रूप के तल की विशेषता वाली अवस्थाएँ; रूप के तल की विशेषता न होने वाली अवस्थाएँ। निराकार तल की विशेषता वाली अवस्थाएँ; निराकार तल की विशेषता न होने वाली अवस्थाएँ। सांसारिक में शामिल अवस्थाएँ; सांसारिक में शामिल न होने वाली अवस्थाएँ।
इच्छा के तल की विशेषताएँ कौन सी हैं? भीड़भाड़ वाले नरक को निचली सीमा मानकर, परानिम्मितवासवत्ती (तल) के देवताओं को ऊपरी सीमा मानकर, इस समावेशन में जो कुछ भी है, जो इसमें घटित होता है, वह इसमें समाहित होता है।

समूह, तत्व, आधार, भौतिक गुण, भावनाएँ, बोध, मानसिक सहवर्ती, चेतना। ये अवस्थाएँ इच्छा के तल की विशेषताएँ हैं।
कौन सी अवस्थाएँ इच्छा के तल की विशेषताएँ नहीं हैं? (अवस्थाएँ) रूप के तल की विशेषताएँ, निराकार तल की विशेषताएँ, जो सांसारिक में शामिल नहीं हैं। ये अवस्थाएँ इच्छा के तल की विशेषताएँ नहीं हैं।
रूप-तल की विशेषताएँ कौन सी हैं? ब्रह्म-तल को निचली सीमा मानकर, अकनित्त (तल) के देवताओं को ऊपरी सीमा मानकर, इस समाहित में जो कुछ भी है, जो कुछ भी घटित होता है, जो कुछ भी इसमें समाहित है, तथा इस जीवन में सुख प्राप्त कर चुके, जन्म ले चुके या सुख में निवास कर रहे व्यक्ति की चेतना और मानसिक अवस्थाएँ, ये सभी रूप-तल की विशेषताएँ हैं।
कौन सी अवस्थाएँ रूप के तल की विशेषताएँ नहीं हैं? (अवस्थाएँ) इच्छा के तल की विशेषताएँ, निराकार तल की विशेषताएँ, सांसारिक में शामिल नहीं। ये अवस्थाएँ रूप के तल की विशेषताएँ नहीं हैं।
निराकार जगत की विशेषताएँ कौन सी हैं? अनंत अंतरिक्ष की अवस्था प्राप्त करने वाले देवताओं को निचली सीमा मानकर, न तो प्रत्यक्ष और न ही अप्रत्यक्ष अवस्था प्राप्त करने वाले देवताओं को ऊपरी सीमा मानकर, इस समाहित में जो कुछ भी है, जो कुछ भी घटित होता है, जो कुछ भी इसमें समाहित है, वह सब इसमें शामिल है, उस व्यक्ति की चेतना और मानसिक अवस्थाएँ जो इस अस्तित्व में सुख प्राप्त कर चुका है, जो इसमें जन्म ले चुका है या जो इसमें निवास कर रहा है। ये अवस्थाएँ निराकार जगत की विशेषताएँ हैं।
कौन सी अवस्थाएँ निराकार तल की विशेषताएँ नहीं हैं? (अवस्थाएँ) इच्छा तल की विशेषताएँ, रूप तल की विशेषताएँ, सांसारिक में शामिल नहीं हैं। ये अवस्थाएँ निराकार तल की विशेषताएँ नहीं हैं।
सांसारिक अवस्थाओं में कौन-कौन सी अवस्थाएँ शामिल हैं? अच्छी, बुरी और न अच्छी न बुरी अवस्थाएँ, जो विकारों के विषय हैं, जो इच्छा के तल की विशेषताएँ हैं, रूप के तल की विशेषताएँ हैं, निराकार के तल की विशेषताएँ हैं; भौतिक गुणों का समूह, भावनाओं का समूह, बोध का समूह, मानसिक अभिक्रियाओं का समूह, चेतना का समूह। ये सभी अवस्थाएँ सांसारिक अवस्थाओं में शामिल हैं।
कौन सी अवस्थाएँ (सांसारिक में) शामिल नहीं हैं? मार्ग, मार्गों के फल और अप्रतिबंधित तत्व। ये अवस्थाएँ (सांसारिक में) शामिल नहीं हैं। [422]

6. उत्पादक क्रिया और आयु सीमा से संबंधित अनुभाग
1. उत्पादक कार्रवाई
1021. देवों का अर्थ है तीन प्रकार के देव, (अर्थात) पारंपरिक देव, जन्म से देव, शुद्धि से देव।
परंपरागत रूप से देवों का अर्थ राजा, रानी (और उनके) बच्चे होते हैं।
जन्म से देव का अर्थ है, चतुमहाराजिका देवों से शुरू होकर, उनसे ऊपर के सभी देव।
शुद्धिकरण के संदर्भ में देवों का अर्थ है श्रेष्ठ जन।
दान देने, नैतिकता का पालन करने और (आठ घटकों) के नियमानुसार आचरण करने के बाद, प्राणी कहाँ जन्म लेते हैं? दान देने, नैतिकता का पालन करने और (आठ घटकों) के नियमानुसार आचरण करने के बाद, कुछ प्राणी धनवान शासकों की संगति में जन्म

लेते हैं; कुछ धनवान ब्राह्मणों की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ धनवान गृहस्थों की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ चतुमहाराजिक देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ तावतिंसा देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ यम देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ तुषिता देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ निम्मनारति देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं; कुछ परनिम्मितवासवत्ती देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं।

2. आयु सीमा

1022. मनुष्य की आयु सीमा क्या है? सौ वर्ष या उससे कम या अधिक। (1)

1023. चतुमहाराजिका देवताओं की आयु सीमा क्या है? पचास मनुष्य वर्ष चतुमहाराजिका देवताओं की एक रात और एक दिन के बराबर होते हैं; ऐसी एक रात में तीस रातें एक महीना होती हैं; ऐसे एक महीने में बारह महीने एक वर्ष होते हैं; ऐसे एक वर्ष में पाँच सौ देव वर्ष चतुमहाराजिका देवताओं की आयु सीमा होती है; मनुष्य गणना के अनुसार यह कितना होता है? 9,000,000 वर्ष। (2)

तावतिंसा देवों की आयु सीमा क्या है? जो सौ मनुष्य वर्ष के बराबर है, वह तावतिंसा देवों की एक रात और एक दिन के बराबर है; ऐसी एक रात में तीस रातें मिलकर एक महीना बनाती हैं; ऐसे एक महीने में बारह महीने मिलकर एक वर्ष बनाते हैं; ऐसे एक वर्ष में एक हजार देव वर्ष तावतिंसा देवों की आयु सीमा है; मनुष्य गणना के अनुसार यह कितना है? 36,000,000 वर्ष। (3)

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

541

यमदेवों की आयु सीमा क्या है? जो दो सौ मनुष्य वर्ष के बराबर है, वह यमदेवों की एक रात और एक दिन के बराबर है; [423] ऐसी एक रात में तीस रातें एक महीना होती हैं; ऐसे एक महीने में बारह महीने एक वर्ष होते हैं; ऐसे एक वर्ष में दो हजार देव वर्ष यमदेवों की आयु सीमा होती है; मनुष्य की गणना के अनुसार यह कितना है? 144,000,000 वर्ष। (4)

तुषिता देवों की आयु सीमा क्या है? जो चार सौ मनुष्य वर्ष के बराबर है, वह तुषिता देवों की एक रात और एक दिन के बराबर है; ऐसी एक रात में तीस रातें होती हैं, एक महीना होता है; ऐसे एक महीने में बारह महीने होते हैं, एक वर्ष में चार हजार देव वर्ष होते हैं; मनुष्य गणना के अनुसार यह कितना होता है? 576,000,000 वर्ष। (5)

निम्मनारती देवताओं की आयु सीमा क्या है? आठ सौ मनुष्य वर्ष निम्मनारती देवताओं की एक रात और एक दिन के बराबर होते हैं; ऐसी एक रात में तीस रातें एक महीना होती हैं; ऐसे एक महीने में बारह महीने एक वर्ष होते हैं; ऐसे एक वर्ष में आठ हजार देव वर्ष निम्मनारती देवताओं की आयु सीमा होती है; मनुष्य गणना के अनुसार यह कितना होता है? 2,304,000,000 वर्ष। (6)

परनिम्मितवासवत्ती देवताओं की आयु सीमा क्या है? सोलह सौ मनुष्य वर्ष परनिम्मितवासवत्ती देवताओं के लिए एक रात और एक दिन के बराबर होते हैं; ऐसी एक रात में तीस रातें एक महीना होती हैं; ऐसे एक महीने में बारह महीने एक वर्ष होते हैं; ऐसे एक वर्ष में सोलह हजार देव वर्ष परनिम्मितवासवत्ती देवताओं की आयु सीमा होती है; मनुष्य गणना के अनुसार यह कितना होता है? 9,216,000,000 वर्ष।

(7)

इच्छा के ये छह स्तर समृद्ध हैं
सभी इंद्रिय सुख,
सभी की कुल आयु कितनी है?
(ये देवता)?
इनमें से (देव) 1,200 कोटि (प्लस) 28 कोटि
(साथ ही) 50 लाख को दर्शाया गया है
कुल वर्षों की संख्या। [424]
(=12,285,000,000 वर्ष)।
(नोट: 1 कोटि = 10,000,000)।

10^4. प्रथम ध्यान को निम्न स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? प्रथम ध्यान को निम्न स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म ब्रह्मपरिषज्ज देवों की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? कल्प का एक तिहाई भाग। (8)

प्रथम ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद, जहाँ

क्या (प्राणी) जन्म लेते हैं? प्रथम ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद वे ब्रह्मपुरोहित देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं। उनकी आयु सीमा क्या है? आधा कल्प। (9)

प्रथम ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? प्रथम ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म महाब्रह्म देवों की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? (एक) कल्प। (10)

1025. निम्न स्तर तक द्वितीय ध्यान विकसित करने के बाद, (प्राणी) कहाँ जन्म लेते हैं? निम्न स्तर तक द्वितीय ध्यान विकसित करने के बाद वे परित्तभ देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं। उनकी आयु सीमा क्या है? दो कल्प। (11)

दूसरे ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? दूसरे ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म अप्पमनाभ देवों की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? चार कल्प। (12)

दूसरे ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? दूसरे ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म आभासर देवों की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? आठ कल्प। (13)

1026. तीसरे ध्यान को निम्न स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? तीसरे ध्यान को निम्न स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म परित्तसुभा देवों की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? सोलह कल्प। (14)

तीसरे ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? तीसरे ध्यान को मध्यवर्ती स्तर तक विकसित करने के बाद वे अप्पम-नासुभा देवों की संगति में जन्म लेते हैं। [425] उनकी आयु सीमा क्या है? बत्तीस कल्प।
(15) . मैं '

तीसरे ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, (प्राणियों का) जन्म कहाँ होता है? तीसरे ध्यान को श्रेष्ठ स्तर तक विकसित करने के बाद, उनका जन्म सुभकिन्हा देवताओं की संगति में होता है। उनकी आयु सीमा क्या है? चौंसठ कल्प। (16)

1027. चौथे ध्यान का विकास होने पर, विषयों की विविधता, ध्यान की विविधता, इच्छाओं की विविधता, उद्देश्यों की विविधता, निर्णयों की विविधता, आकांक्षाओं की विविधता और ज्ञान की विविधता के कारण, कुछ असन्नासत्त देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं, कुछ वेहप्पला देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं, कुछ...

कुछ लोग अविहा देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं, कुछ अताप्पा देवताओं की संगति में, कुछ सुदस्सा देवताओं की संगति में, कुछ सुदस्सी देवताओं की संगति में, कुछ अकनित्थ देवताओं की संगति में। कुछ लोग अनंत अंतरिक्ष की अवस्था तक पहुँचने वाले देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं, कुछ चेतना की अनंत अवस्था तक पहुँचने वाले देवताओं की संगति में, कुछ शून्यता की अवस्था तक पहुँचने वाले देवताओं की संगति में, और कुछ ऐसे देवताओं की संगति में जन्म लेते हैं जो न तो प्रत्यक्ष हैं और न ही अप्रत्यक्त।

असन्नासत्त और वेहप्पला देवों की आयु सीमा क्या है? पाँच सौ कल्प। (18)

अविहा देवों की आयु सीमा क्या है? एक हजार कल्प। (19) अतप्पा देवों की आयु सीमा क्या है? दो हजार कल्प। (20)

सुदस्सा देवों की आयु सीमा क्या है? चार हजार कल्प।
(21)

सुदस्सी देवों की आयु सीमा क्या है? आठ हजार कल्प।
(22)

अकनित्था देवों की आयु सीमा क्या है? सोलह हजार कल्प। (23)

1028. अनंत अंतरिक्ष की अवस्था प्राप्त करने वाले देवों की आयु सीमा क्या है? बीस हजार कल्प। (24)

अनंत चेतना की अवस्था प्राप्त करने वाले देवों की आयु सीमा क्या है? चालीस हजार कल्प। (25) [426] शून्यता की अवस्था प्राप्त करने वाले देवों की आयु सीमा क्या है? साठ हजार कल्प। (26)
जो देवता ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष, उनकी आयु सीमा क्या है? चौरासी हजार कल्प। (27)
1029. पुण्य की शक्ति से उत्पन्न (प्राणी)
इच्छा और रूप के स्तरों में अस्तित्व में जाओ,
(यद्यपि) उच्चतम अस्तित्व तक भी पहुँचना
वे फिर से एक अप्रिय जीवन में लौट आते हैं।
(यहाँ तक कि) इतने लंबे जीवन वाले प्राणी भी जीवन की थकान से मर जाते हैं।
कोई भी अस्तित्व स्थायी नहीं है।
महान ऋषि ने यही कहा था।
21 +

544 विश्लेषण की पुस्तक
अत: वास्तव में बुद्धिमान वे हैं जो विवेकशील, कुशल और बेहतरी के विचारक हैं।
वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति पाने के लिए सर्वोच्च मार्ग का विकास करें।
शुद्ध मार्ग विकसित करने के बाद
निर्वाण में विलीन होना, निर्वाण की ओर ले जाना,
सभी अशुद्धियों को समझना
वे दोषों से मुक्त होकर अंतिम मोक्ष प्राप्त करते हैं।

'पूरी तरह से ज्ञात होने वाला' खंड, इत्यादि।

1030. पाँच स्कंधों में से कितनों को पूर्णतः जानना है; कितनों को समझना है; कितनों का त्याग करना है; कितनों का विकास करना है; कितनों को अनुभव करना है; कितनों का न तो त्याग करना है, न ही विकास करना है, न ही अनुभव करना है? सात प्रकार की चेतनाओं में से कितनों को पूर्णतः जानना है; कितनों को समझना है; कितनों का त्याग करना है; कितनों का विकास करना है; कितनों को अनुभव करना है; कितनों का न तो त्याग करना है, न ही विकास करना है, न ही अनुभव करना है?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

1031. भौतिक गुणों के समूह को पूर्णतः जानना है, समझना है; उसे न त्यागना है, न विकसित करना है, न साकार करना है। चार समूहों को पूर्णतः जानना है, समझना है; कभी-कभी उन्हें त्यागना है; कभी-कभी उन्हें विकसित करना है; कभी-कभी उन्हें साकार करना है; कभी-कभी उन्हें न त्यागना है, न विकसित करना है, न साकार करना है। (1)
दस आधारों को पूर्णतः जानना है, समझना है; उन्हें न त्यागना है, न विकसित करना है, न साकार करना है। दो आधारों को पूर्णतः जानना है, समझना है; कभी-कभी उन्हें त्यागना है; कभी-कभी उन्हें विकसित करना है; कभी-कभी उन्हें साकार करना है; कभी-कभी उन्हें न त्यागना है, न विकसित करना है, न साकार करना है। (2)
सोलह तत्वों को पूर्णतः जानना है, उन्हें समझना है; उन्हें त्यागना नहीं है, उनका विकास नहीं करना है, उन्हें साकार नहीं करना है। दो तत्वों को पूर्णतः जानना है, उन्हें समझना है;

545

कभी-कभी इन्हें त्यागना पड़ता है; कभी-कभी इनका विकास करना पड़ता है; कभी-कभी इन्हें साकार करना पड़ता है; कभी-कभी इन्हें न तो त्यागना पड़ता है, न ही विकसित करना पड़ता है, न ही साकार करना पड़ता है। (3)
कारण का सत्य पूर्णतः जानना है, समझना है, त्याग देना है; विकसित नहीं करना है, अनुभव नहीं करना है। मार्ग का सत्य पूर्णतः जानना है, समझना है; त्याग नहीं देना है; विकसित करना है; [427] अनुभव नहीं करना है। समाप्ति का सत्य पूर्णतः जानना है, समझना है; त्याग नहीं देना है, विकसित नहीं करना है; अनुभव करना है। दुख का सत्य पूर्णतः जानना है, समझना है; कभी-कभी त्याग देना है; विकसित नहीं करना है, अनुभव नहीं करना है; कभी-कभी त्याग नहीं देना है। (4)
नौ नियंत्रणकारी शक्तियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उन्हें समझना चाहिए; उनका त्याग नहीं करना चाहिए, उन्हें विकसित नहीं करना चाहिए, उन्हें प्राप्त नहीं करना चाहिए। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसे समझना चाहिए, उसका त्याग करना चाहिए; उसे विकसित नहीं करना चाहिए, उसे प्राप्त नहीं करना चाहिए। प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रणकारी शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसे समझना चाहिए; उसका त्याग नहीं करना चाहिए; उसे विकसित करना चाहिए; उसे प्राप्त नहीं करना चाहिए। मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रणकारी शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसे समझना चाहिए; उसका त्याग नहीं करना चाहिए; कभी-कभी उसे विकसित करना चाहिए; कभी-कभी उसे प्राप्त करना चाहिए। अंतिम ज्ञान की नियंत्रणकारी शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसे समझना चाहिए; उसका त्याग नहीं करना चाहिए, उसे विकसित नहीं करना चाहिए; उसे प्राप्त करना चाहिए। तीन नियंत्रणकारी शक्तियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उन्हें समझना चाहिए; उनका त्याग नहीं करना चाहिए; कभी-कभी उन्हें विकसित करना चाहिए; कभी-कभी उन्हें प्राप्त करना चाहिए; कभी-कभी उन्हें विकसित नहीं करना चाहिए, उन्हें प्राप्त नहीं करना चाहिए। छह नियंत्रक शक्तियों को पूर्णतः जानना है, समझना है; कभी-कभी उन्हें त्यागना है; कभी-कभी उन्हें विकसित करना है; कभी-कभी उन्हें साकार करना है; कभी-कभी उन्हें न तो त्यागना है, न विकसित करना है, न साकार करना है। (5)
तीन बुरे मूलों को पूर्णतः जानना, समझना और त्याग देना चाहिए; उनका विकास नहीं करना चाहिए, उन्हें साकार नहीं करना चाहिए। तीन अच्छे मूलों को पूर्णतः जानना, समझना और त्याग नहीं देना चाहिए; कभी-कभी उनका विकास करना चाहिए; उन्हें साकार नहीं करना चाहिए; कभी-कभी उनका विकास नहीं करना चाहिए। तीन न अच्छे न बुरे मूलों को पूर्णतः जानना, समझना और त्याग नहीं देना चाहिए; उनका विकास नहीं करना चाहिए; कभी-कभी उन्हें साकार करना चाहिए; कभी-कभी उन्हें साकार नहीं करना चाहिए। (6)

546 विश्लेषण की पुस्तक
भोजन के पोषक तत्व को पूर्णतः जानना और समझना आवश्यक है; इसे न तो त्यागना चाहिए, न विकसित करना चाहिए, न साकार करना चाहिए। तीन पोषक तत्वों को पूर्णतः जानना और समझना आवश्यक है; कभी-कभी इन्हें त्यागना पड़ता है; कभी-कभी विकसित करना पड़ता है; कभी-कभी साकार करना पड़ता है; कभी-कभी इन्हें नहीं त्यागना चाहिए, न विकसित करना चाहिए, न साकार करना चाहिए। (7)
छह प्रकार के संपर्कों को पूर्णतः जानना और समझना है; इन्हें न त्यागना है, न विकसित करना है, न अनुभव करना है। मन-चेतना-तत्व संपर्क को पूर्णतः जानना और समझना है; कभी-कभी इसे त्यागना पड़ता है; कभी-कभी इसे विकसित करना पड़ता है; कभी-कभी अनुभव करना पड़ता है; कभी-कभी इसे न त्यागना है, न विकसित करना है, न अनुभव करना है। (8)
छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति, छह प्रकार की चेतना को पूर्णतः जानना है, समझना है; उन्हें त्यागना नहीं है, विकसित करना नहीं है, प्राप्त करना नहीं है। मन-चेतना-तत्व को पूर्णतः जानना है, समझना है; कभी-कभी उसे त्यागना है; कभी-कभी उसे विकसित करना है; कभी-कभी [428] प्राप्त करना है; कभी-कभी उसे त्यागना नहीं है, विकसित करना नहीं है, प्राप्त करना नहीं है। (12)
8. खंड (राज्यों से संबंधित) जिनके उद्देश्य हैं, जिनके उद्देश्य नहीं हैं
1032. पाँचों स्कंधों में से कितनों के विषय हैं; कितनों के विषय नहीं हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितनों के विषय हैं; कितनों के विषय नहीं हैं?
P = पैरा 991 देखें।
1033. भौतिक गुणों के कुल योग का कोई उद्देश्य नहीं है। चार
समुच्चय में वस्तुएँ होती हैं। (1) जे

दस आधारों का कोई वस्तु नहीं है। मन के आधार का एक वस्तु है। वैचारिक आधार का कभी-कभी एक वस्तु होती है; कभी-कभी कोई वस्तु नहीं होती। (2)
दस तत्वों का कोई कर्म नहीं है। सात तत्वों का कर्म है। वैचारिक तत्व का कभी कर्म होता है; कभी कर्म नहीं होता। (3)
दो सत्यों के कर्म होते हैं। समाप्ति के सत्य का कोई कर्म नहीं होता। दुख के सत्य का कभी कर्म होता है, कभी नहीं होता। (4)
सात नियंत्रक शक्तियों का कोई उद्देश्य नहीं है। चौदह नियंत्रक शक्तियों का उद्देश्य है। जीवन सिद्धांत की नियंत्रक शक्ति।

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

547

कभी-कभी इसका कोई कर्म होता है; कभी-कभी कोई कर्म नहीं होता। नौ मूलों के कर्म होते हैं। भोजन के पोषक तत्व का कोई कर्म नहीं होता। तीन पोषक तत्वों के कर्म होते हैं। सात प्रकार के संपर्क, सात प्रकार की भावनाएँ, सात प्रकार की धारणाएँ, सात प्रकार की इच्छाशक्ति, सात प्रकार की चेतना के कर्म होते हैं। (12)
1034. पाँचों स्कंधों में से कितनों में कर्म-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ हैं; कितनों में कर्म-ग्रहण न करने वाली वस्तुएँ हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितनों में कर्म-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ हैं; कितनों में कर्म-ग्रहण न करने वाली वस्तुएँ हैं?
P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

1035. भौतिक गुणों के समूह का कोई वस्तु नहीं होता। चार समूहों के कभी-कभी वस्तु-ग्रहण करने वाले वस्तु होते हैं; कभी-कभी वस्तु-ग्रहण न करने वाले वस्तु होते हैं। (1)
दस आधारों में कोई वस्तु नहीं होती। मन के आधार में कभी-कभी वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी वस्तु-रहित वस्तुएँ होती हैं। वैचारिक आधार में कभी-कभी वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी वस्तु-रहित वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी कोई वस्तु नहीं होती। (2)
दस तत्वों का कोई वस्तु नहीं है। छह तत्वों में वस्तुहीन वस्तुएँ हैं। मन-चेतना तत्व में कभी-कभी वस्तुहीन वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी वस्तुहीन वस्तुएँ होती हैं। वैचारिक तत्व में कभी-कभी वस्तुहीन वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी वस्तुहीन वस्तुएँ होती हैं; कभी-कभी कोई वस्तु नहीं होती। (3)
समाप्ति के सत्य का कोई उद्देश्य नहीं है। मार्ग के सत्य का एक उद्देश्यहीन उद्देश्य है। कारण के सत्य का कभी-कभी उद्देश्यपूर्ण उद्देश्य होता है; कभी-कभी उद्देश्यहीन उद्देश्य होता है। दुख के सत्य का कभी-कभी उद्देश्यपूर्ण उद्देश्य होता है; कभी-कभी उद्देश्यहीन उद्देश्य होता है; कभी-कभी कोई उद्देश्य नहीं होता। (4) [429] सात नियंत्रक शक्तियों का कोई उद्देश्य नहीं है। पाँच नियंत्रक शक्तियों का उद्देश्यहीन उद्देश्य है। नौ नियंत्रक शक्तियों का कभी-कभी उद्देश्यपूर्ण उद्देश्य होता है; कभी-कभी उद्देश्यहीन उद्देश्य होता है। प्राणिक शक्ति की नियंत्रक शक्ति का कभी-कभी उद्देश्यपूर्ण उद्देश्य होता है; कभी-कभी उद्देश्यहीन उद्देश्य होता है; कभी-कभी कोई उद्देश्य नहीं होता। (5)
नौ मूलों में कभी-कभी कर्म-ग्रहण करने वाले कर्म होते हैं; कभी-कभी कर्म-ग्रहण न करने वाले कर्म होते हैं। भोजन के पोषक तत्व का कोई कर्म नहीं होता। तीन पोषक तत्वों में कभी-कभी कर्म-ग्रहण करने वाले कर्म होते हैं; कभी-कभी कर्म-ग्रहण न करने वाले कर्म होते हैं। छह (प्रकार के) संपर्क

548 विश्लेषण की पुस्तक
इनमें गैर-वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ होती हैं। मन-चेतना-तत्व संपर्क में कभी-कभी वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तु होती है; कभी-कभी गैर-वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तु होती है। छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति, छह प्रकार की चेतना में गैर-वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तुएँ होती हैं। मन-चेतना-तत्व में कभी-कभी वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तु होती है; कभी-कभी गैर-वस्तु-ग्रहण करने वाली वस्तु होती है। (12)

9. अनुभाग जिसमें (राज्यों द्वारा) देखा, सुना आदि दर्शाया गया है।

1036. पाँचों स्कंधों में से कितने दृश्य हैं; कितने श्रवणित हैं; कितने अन्य इंद्रियों द्वारा अनुभव किए जाते हैं; कितने ज्ञात हैं? कितने दृश्य नहीं हैं, कितने श्रवणित नहीं हैं, कितने अन्य इंद्रियों द्वारा अनुभव किए जाते हैं और कितने ज्ञात नहीं हैं? सात प्रकार की चेतनाओं में से कितने दृश्य हैं; कितने श्रवणित हैं; कितने अन्य इंद्रियों द्वारा अनुभव किए जाते हैं; कितने ज्ञात हैं? कितने दृश्य नहीं हैं, कितने श्रवणित नहीं हैं, कितने अन्य इंद्रियों द्वारा अनुभव किए जाते हैं और कितने ज्ञात नहीं हैं?
P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।
1037. भौतिक गुणों का समूह कभी दिखाई देता है; कभी सुनाई देता है; कभी अन्य प्रकार से अनुभव किया जाता है; कभी जाना जाता है। कभी दिखाई नहीं देता, कभी सुनाई नहीं देता, कभी अन्य प्रकार से अनुभव नहीं किया जाता, तब जाना जाता है। चारों समूह दिखाई नहीं देते, सुनाई नहीं देते, कभी अन्य प्रकार से अनुभव नहीं किए जाते, तब भी जाने जाते हैं।
दृश्य आधार को देखा जा सकता है, सुना नहीं जा सकता, अन्यथा महसूस नहीं किया जा सकता, फिर भी उसका संज्ञान होता है। श्रव्य आधार को देखा नहीं जा सकता, सुना जा सकता है, अन्यथा महसूस नहीं किया जा सकता, फिर भी उसका संज्ञान होता है। गंध आधार, स्वाद आधार और स्पर्शनीय आधार को देखा नहीं जा सकता, सुना नहीं जा सकता, अन्यथा महसूस किया जा सकता है, फिर भी उनका संज्ञान होता है। सात आधारों को देखा नहीं जा सकता, सुना नहीं जा सकता, अन्यथा महसूस नहीं किया जा सकता, फिर भी उनका संज्ञान होता है।
दृश्य तत्व दिखाई देता है, सुनाई नहीं देता, किसी अन्य प्रकार से महसूस नहीं होता, फिर भी उसका संज्ञान होता है। श्रव्य तत्व दिखाई नहीं देता, सुनाई देता है, किसी अन्य प्रकार से महसूस नहीं होता, फिर भी उसका संज्ञान होता है। गंध, स्वाद और स्पर्शनीय तत्व दिखाई नहीं देते, सुनाई नहीं देते, किसी अन्य प्रकार से महसूस होते हैं, फिर भी उनका संज्ञान होता है। तेरह तत्व दिखाई नहीं देते, सुनाई नहीं देते, किसी अन्य प्रकार से महसूस नहीं होते, फिर भी उनका संज्ञान होता है।
तीन सत्य न तो दिखाई देते हैं, न सुनाई देते हैं, न ही किसी अन्य तरीके से अनुभव किए जाते हैं; केवल उनका बोध होता है। दुख का सत्य कभी दिखाई देता है; कभी सुनाई देता है; कभी किसी अन्य तरीके से अनुभव किया जाता है; कभी बोध किया जाता है;

कभी-कभी जो दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता, महसूस नहीं होता, उसे अन्यथा पहचाना जाता है।
बाईस नियंत्रण शक्तियाँ न दिखाई देती हैं, न सुनाई देती हैं, न ही किसी अन्य प्रकार से महसूस की जाती हैं, फिर भी वे ज्ञात होती हैं। नौ मूल तत्व न दिखाई देते हैं, न सुनाई देते हैं, न ही किसी अन्य प्रकार से महसूस किए जाते हैं, फिर भी वे ज्ञात होते हैं। चार पोषक तत्व न दिखाई देते हैं, न सुनाई देते हैं, न ही किसी अन्य प्रकार से महसूस किए जाते हैं, फिर भी वे ज्ञात होते हैं। [430] सात प्रकार के संपर्क न दिखाई देते हैं, न सुनाई देते हैं, न ही किसी अन्य प्रकार से महसूस किए जाते हैं, फिर भी वे ज्ञात होते हैं। सात प्रकार की भावनाएँ, सात प्रकार की धारणाएँ, सात प्रकार की इच्छाशक्ति, सात प्रकार की चेतनाएँ न दिखाई देती हैं, न सुनाई देती हैं, न ही किसी अन्य प्रकार से महसूस की जाती हैं, फिर भी वे ज्ञात होती हैं।

10. खंड जिसमें त्रिक आदि दिखाए गए हैं।
1. अच्छा त्रिक
1038. पाँचों स्कंधों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने अच्छे हैं; कितने बुरे हैं; कितने न अच्छे हैं न बुरे हैं?
P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।
भौतिक गुणों का समूह न तो अच्छा है और न ही बुरा। चार समूह कभी अच्छे होते हैं, कभी बुरे होते हैं, और कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे। दस आधार न तो अच्छे हैं और न बुरे। दो आधार कभी अच्छे होते हैं, कभी बुरे होते हैं, और कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे। सोलह तत्व न तो अच्छे हैं और न बुरे। दो तत्व कभी अच्छे होते हैं, कभी बुरे होते हैं, और कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे। कारण का सत्य बुरा है। मार्ग का सत्य अच्छा है। समाप्ति का सत्य न तो अच्छा है और न बुरे। दुख का सत्य कभी अच्छा होता है, कभी बुरा होता है, और कभी न अच्छे होते हैं और न बुरे।

दस नियंत्रण शक्तियाँ न तो अच्छी हैं और न ही बुरी। मानसिक पीड़ा की नियंत्रण शक्ति बुरी है। प्रारंभिक ज्ञान की नियंत्रण शक्ति अच्छी है। चार नियंत्रण शक्तियाँ कभी अच्छी होती हैं, कभी न अच्छी होती हैं और न बुरी। छह नियंत्रण शक्तियाँ कभी अच्छी होती हैं, कभी बुरी होती हैं और कभी न अच्छी होती हैं और न बुरी।

तीनों अच्छी जड़ें अच्छी होती हैं। तीनों खराब जड़ें खराब होती हैं। तीनों न अच्छी न बुरी जड़ें न अच्छी होती हैं। भोजन का पोषक तत्व न अच्छा होता है न बुरा। तीन पोषक तत्व

आर

कभी-कभी अच्छा होता है; कभी-कभी बुरा होता है; कभी-कभी न अच्छा न बुरा होता है। छह प्रकार के संपर्क न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे। मन-चेतना-तत्व का संपर्क कभी अच्छा होता है; कभी-कभी बुरा होता है; कभी-कभी न अच्छा न बुरा होता है। छह प्रकार की भावनाएँ, छह प्रकार की धारणाएँ, छह प्रकार की इच्छाशक्ति, छह प्रकार की चेतना न तो अच्छी होती हैं और न ही बुरी। मन-चेतना-तत्व कभी अच्छा होता है; कभी-कभी बुरा होता है; कभी-कभी न अच्छा न बुरा होता है।

2. भावनाओं की त्रिक

1039. पाँचों स्कंधों में से कितने सुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं; कितने दुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं; कितने न दुखदायक और न सुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने सुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं; कितने दुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं; कितने दुखदायक और न सुखदायक अनुभूति से जुड़े हैं?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

दो समूहों को न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न ही पीड़ादायक भावना से जुड़ा हुआ; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ। तीन समूह कभी-कभी सुखद भावना से जुड़े होते हैं; कभी-कभी पीड़ादायक भावना से जुड़े होते हैं; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़े होते हैं। (1) [431]

दस आधारों को न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न ही पीड़ादायक भावना से जुड़ा हुआ; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ। मन का आधार कभी-कभी सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; और कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है। वैचारिक आधार कभी-कभी सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; और कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी इसे न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न ही पीड़ादायक भावना से जुड़ा हुआ; और न ही पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ। (2)

दस तत्वों को न तो सुखद भावना से, न ही पीड़ादायक भावना से, और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है। पाँच तत्व न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़े हैं। शरीर-चेतना-

कभी-कभी यह तत्व सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है। कभी-कभी यह मन-चेतना-तत्व सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है। कभी-कभी यह सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह पीड़ादायक भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी यह न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा होता है; कभी-कभी इसे न तो सुखद भावना से जुड़ा हुआ, न पीड़ादायक और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है। (3)

दो सत्य कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। समाप्ति के सत्य को न तो सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा हुआ और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ। पीड़ा का सत्य कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा होता

है; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी इसे न तो सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा हुआ और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ। (4) बारह नियंत्रण शक्तियों को न तो सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है; न पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा हुआ और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ। छह नियंत्रण शक्तियां कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़ी होती हैं; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ी होती हैं। तीन नियंत्रण शक्तियां कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़ी होती हैं; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी होती हैं; [432] कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़े होते हैं। प्राणिक सिद्धांत की नियंत्रक क्षमता कभी-कभी सुखद भावना से जुड़ी होती है; कभी-कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ी होती है; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ी होती है; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह सुखद भावना से जुड़ी है; पीड़ादायक भावना से जुड़ी है या न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ी है। (5)

घृणा की बुरी जड़ पीड़ादायक भावना से जुड़ी होती है। सात जड़ें कभी-कभी सुखद भावना से जुड़ी होती हैं; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ी होती हैं। सुस्ती की बुरी जड़ कभी-कभी सुखद भावना से जुड़ी होती है; कभी-कभी पीड़ादायक भावना से जुड़ी होती है; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से जुड़ी होती है। (6)

21

552

विश्लेषण की पुस्तक

भोजन के पोषक तत्व को न तो सुखद अनुभूति से, न ही पीड़ादायक अनुभूति से, और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा हुआ कहा जाना चाहिए। तीन पोषक तत्व कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से जुड़े होते हैं; और कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। (7)

पांच प्रकार के संपर्क ऐसे हैं जो न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़े होते हैं। देह-चेतना-तत्व संपर्क कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा होता है। मन-चेतना-तत्व संपर्क कभी-कभी सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ा होता है; कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति से जुड़ा होता है। (8)

सात प्रकार की भावनाओं को न तो सुखद भावना से, न ही पीड़ादायक भावना से, और न ही न पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से संबंधित कहा जा सकता है। पाँच प्रकार की धारणाएँ, पाँच प्रकार की इच्छाशक्ति और पाँच प्रकार की चेतनाएँ न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से संबंधित हैं। देह-चेतना तत्व कभी-कभी सुखद भावना से, कभी-कभी पीड़ादायक भावना से संबंधित होता है। मन-चेतना तत्व कभी-कभी सुखद भावना से, कभी-कभी पीड़ादायक भावना से, और कभी-कभी न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना से संबंधित होता है। (12)

3. परिणामी त्रिक

1040. पाँचों स्कंधों में से कितने परिणाम हैं; कितने परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं; कितने न तो परिणाम हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं? :P: सात प्रकार की चेतनाओं में से कितने परिणाम हैं; कितने परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं; कितने न तो परिणाम हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

भौतिक गुणों का समुच्चय न तो परिणामी है और न ही परिणामी का उत्पादक है। चार समुच्चय कभी-कभी परिणामी होते हैं; कभी-कभी परिणामी के उत्पादक होते हैं; कभी-कभी न तो परिणामी होते हैं और न ही परिणामी के उत्पादक होते हैं। (1) [433]

दस आधार न तो परिणामी हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करते हैं। दो आधार कभी-कभी परिणामी होते हैं; कभी-कभी परिणामी उत्पन्न करते हैं; कभी-कभी न तो परिणामी होते हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करते हैं। (2)

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण

553

दस तत्व न तो परिणाम हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करते हैं। पाँच तत्व परिणाम हैं। मन तत्व कभी-कभी परिणाम होता है; कभी-कभी न तो परिणाम होता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। दो तत्व कभी-कभी परिणाम होते हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी-कभी न तो परिणाम होते हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करते हैं। (3)

दो सत्य परिणाम उत्पन्न करते हैं। निर्वाह का सत्य न तो परिणाम उत्पन्न करता है और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। दुख का सत्य कभी परिणाम उत्पन्न करता है; कभी परिणाम उत्पन्न करता है; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न नहीं करता और न ही परिणाम उत्पन्न करता है। (4)

सात नियंत्रण शक्तियाँ न तो परिणाम उत्पन्न करती हैं और न ही परिणाम उत्पन्न करती हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ परिणाम उत्पन्न करती हैं। दो नियंत्रण शक्तियाँ परिणाम उत्पन्न करती हैं। मध्यवर्ती ज्ञान की नियंत्रण शक्ति कभी परिणाम उत्पन्न करती है; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करती है। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न करती हैं। (5) छह मूल परिणाम उत्पन्न करते हैं। तीन न तो अच्छे और न ही बुरे मूल कभी परिणाम उत्पन्न करते हैं; कभी-कभी परिणाम उत्पन्न नहीं करते और न ही परिणाम उत्पन्न करते हैं। (6)

भोजन का पोषक तत्व न तो परिणामी है और न ही परिणामी का उत्पादक है। तीन पोषक तत्व कभी-कभी परिणामी होते हैं; कभी-कभी परिणामी का उत्पादक होते हैं; कभी-कभी न तो परिणामी होते हैं और न ही परिणामी का उत्पादक होते हैं। पाँच प्रकार के संपर्क परिणामी होते हैं। मन-तत्व-संपर्क कभी-कभी परिणामी होता है; कभी-कभी न तो परिणामी होता है और न ही परिणामी का उत्पादक होता है। मन-चेतना-तत्व-संपर्क कभी-कभी परिणामी होता है; कभी-कभी परिणामी का उत्पादक होता है; कभी-कभी न तो परिणामी होता है और न ही परिणामी का उत्पादक होता है। पाँच प्रकार की भावनाएँ, पाँच प्रकार की धारणाएँ, पाँच प्रकार की इच्छाशक्ति, पाँच प्रकार की चेतना परिणामी होती हैं। मन तत्व कभी-कभी परिणामी होता है; कभी-कभी न तो परिणामी होता है और न ही परिणामी का उत्पादक होता है। मन-चेतना-तत्व कभी-कभी परिणामी होता है; कभी-कभी परिणामी का उत्पादक होता है; कभी-कभी न तो परिणामी होता है और न ही परिणामी का उत्पादक होता है। (12)

4. ग्रास्पिंग ट्रिपलेट

1041. पाँचों स्कंधों में से कितने (लालसा और भ्रामक दृष्टि से) जकड़े हुए हैं, आसक्ति के विषय हैं; कितने जकड़े हुए नहीं हैं, आसक्ति के विषय हैं; कितने जकड़े हुए नहीं हैं?

वे आसक्ति के विषय नहीं हैं। :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने बोधगम्य हैं, जो आसक्ति के विषय हैं; कितने बोधगम्य नहीं हैं, जो आसक्ति के विषय हैं; कितने बोधगम्य नहीं हैं, जो आसक्ति के विषय नहीं हैं?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

भौतिक गुणों का समूह कभी-कभी ग्रहण किया जाता है, आसक्ति का विषय होता है; कभी-कभी ग्रहण नहीं किया जाता, आसक्ति का विषय होता है। चार समूह कभी-कभी ग्रहण किए जाते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जाते, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जाते, आसक्ति के विषय नहीं होते। (1) [434]

पाँच आधार ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं। श्रव्य आधार ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है। चार आधार कभी-कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय होते हैं। दो आधार कभी-कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी-कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय नहीं होते। (2)

दस तत्व ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं। श्रव्य तत्व ग्रहण नहीं किया जाता, वह आसक्तियों का विषय होता है। पाँच तत्व कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय होते हैं। दो तत्व कभी ग्रहण किए जाते हैं, वे आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय होते हैं; कभी ग्रहण नहीं किए जाते, वे भी आसक्तियों के विषय नहीं होते। (3)

कारण का सत्य जो समझ में नहीं आता, वह आसक्ति का विषय है। दो सत्य जो समझ में नहीं आते, वे आसक्ति के विषय नहीं हैं। दुख का सत्य कभी समझ में आता है, वह आसक्ति का विषय है; कभी समझ में नहीं आता, वह भी आसक्ति का विषय है। (4)
नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ बोधगम्य होती हैं, वे आसक्ति के विषय होती हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रणकारी शक्ति बोधगम्य नहीं होती, वह आसक्ति का विषय होती है। तीन नियंत्रणकारी शक्तियाँ बोधगम्य नहीं होतीं, वे आसक्ति के विषय नहीं होतीं। नौ नियंत्रणकारी शक्तियाँ कभी-कभी बोधगम्य होती हैं, वे आसक्ति के विषय होती हैं; कभी-कभी बोधगम्य नहीं होतीं, वे आसक्ति के विषय होती हैं; कभी-कभी बोधगम्य नहीं होतीं, वे आसक्ति के विषय नहीं होतीं। तीन बुरी जड़ें बोधगम्य नहीं होतीं, वे आसक्ति के विषय होती हैं। तीन अच्छी जड़ें कभी-कभी बोधगम्य नहीं होतीं, वे आसक्ति के विषय होती हैं।

कभी-कभी समझ में नहीं आते, आसक्ति के विषय नहीं होते। तीन न अच्छे न बुरे मूल कभी समझ में आते हैं, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी समझ में नहीं आते, आसक्ति के विषय होते हैं; कभी समझ में नहीं आते, आसक्ति के विषय नहीं होते। (5)
भोजन का पोषक तत्व कभी-कभी समझ में आता है, आसक्ति का विषय होता है; कभी-कभी समझ में नहीं आता, फिर भी आसक्ति का विषय होता है। तीन पोषक तत्व कभी-कभी समझ में आते हैं, आसक्ति का विषय होते हैं; कभी-कभी समझ में नहीं आते, फिर भी आसक्ति का विषय होते हैं; कभी-कभी समझ में नहीं आते, फिर भी आसक्ति का विषय नहीं होते। (6)
पांच प्रकार के संपर्क ग्रहण किए जाते हैं, जो आसक्ति के विषय होते हैं। मन-तत्व-संपर्क कभी ग्रहण किया जाता है, जो आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय होता है। मन-चेतना-तत्व-संपर्क कभी ग्रहण किया जाता है, जो आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय नहीं होता। पांच प्रकार की भावनाएँ, पांच प्रकार की धारणाएँ, पांच प्रकार की इच्छाशक्ति, पांच प्रकार की चेतना ग्रहण की जाती हैं, जो आसक्ति के विषय होते हैं। मन-तत्व कभी ग्रहण किया जाता है, जो आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय होता है। मन-चेतना-तत्व कभी ग्रहण किया जाता है, जो आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय होता है; कभी ग्रहण नहीं किया जाता, फिर भी आसक्ति का विषय नहीं होता। (12)
5. प्रारंभिक आवेदन त्रिक
1042. पाँच स्कंधों में से कितने आरंभिक अनुप्रयोग के साथ होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कितने आरंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कितने आरंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के बिना होते हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने आरंभिक अनुप्रयोग के साथ होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कितने आरंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के साथ होते हैं; कितने आरंभिक अनुप्रयोग के बिना होते हैं, कितने निरंतर अनुप्रयोग के बिना होते हैं?
पी — मध्यवर्ती मदों के लिए पैरा 991 देखें।
सामग्री की गुणवत्ता का कुल योग प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है। कभी-कभी तीन योग होते हैं।

प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। मानसिक सहवर्ती का समूह कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना; कभी-कभी यह नहीं कहा जाना चाहिए कि यह प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, निरंतर अनुप्रयोग के साथ; प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग या प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना है। (1)

दस आधार प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना हैं। मन का आधार कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है। वैचारिक आधार कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी-कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होता है; कभी-कभी इसे न तो प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ, न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही निरंतर अनुप्रयोग के साथ कहा जा सकता है। (2)
पंद्रह तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग और सतत अनुप्रयोग दोनों से रहित हैं। मन तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग और सतत अनुप्रयोग दोनों से युक्त है। मन-चेतना तत्व कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग और सतत अनुप्रयोग दोनों से युक्त होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल सतत अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, सतत अनुप्रयोग के बिना होता है। वैचारिक तत्व कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग और सतत अनुप्रयोग दोनों से युक्त होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल सतत अनुप्रयोग के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, सतत अनुप्रयोग के बिना होता है; कभी-कभी इसे न तो प्रारंभिक अनुप्रयोग और सतत अनुप्रयोग दोनों से युक्त, न ही प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, न ही सतत अनुप्रयोग के साथ युक्त कहा जा सकता है। (3)

कारण का सत्य प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास दोनों के साथ होता है। समाप्ति का सत्य प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना होता है। मार्ग का सत्य कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना होता है। दुख का सत्य कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, केवल निरंतर अभ्यास के साथ होता है; कभी-कभी प्रारंभिक अभ्यास के बिना, निरंतर अभ्यास के बिना होता है; कभी-कभी यह कहना उचित नहीं होगा कि यह न तो प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के साथ होता है; न ही प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना होता है; न ही प्रारंभिक अभ्यास और निरंतर अभ्यास के बिना होता है। (4)
नौ नियंत्रक शक्तियाँ आरंभिक और सतत अनुप्रयोग रहित होती हैं। मानसिक पीड़ा की नियंत्रक शक्ति आरंभिक और सतत अनुप्रयोग दोनों के साथ होती है। उदासीनता की नियंत्रक शक्ति कभी आरंभिक और सतत अनुप्रयोग के साथ होती है; कभी आरंभिक और सतत अनुप्रयोग रहित होती है। ग्यारह नियंत्रक शक्तियाँ कभी आरंभिक और सतत अनुप्रयोग के साथ होती हैं; कभी आरंभिक और सतत अनुप्रयोग रहित होती हैं; कभी आरंभिक और सतत अनुप्रयोग रहित होती हैं। (5)
तीन हानिकारक मूल तत्व प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं। छह मूल तत्व कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के बिना, केवल निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के बिना, निरंतर प्रयोग के बिना होते हैं। भोजन का पोषक तत्व प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के बिना होता है। तीन पोषक तत्व कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के बिना, केवल निरंतर प्रयोग के साथ होते हैं; कभी-कभी प्रारंभिक प्रयोग के बिना, निरंतर प्रयोग के बिना होते हैं। पाँच प्रकार के संपर्क प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के बिना होते हैं। मन-तत्व-संपर्क प्रारंभिक प्रयोग और निरंतर प्रयोग के साथ होता है। मन-चेतना-तत्व-संपर्क

कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। पाँच प्रकार की भावनाएँ, पाँच प्रकार की

धारणाएँ, पाँच प्रकार की इच्छाशक्ति, पाँच प्रकार की चेतनाएँ प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना होती हैं। मन तत्व प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, निरंतर अनुप्रयोग के साथ। मन-चेतना तत्व कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के साथ होता है, कभी निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, केवल निरंतर अनुप्रयोग के साथ; कभी-कभी प्रारंभिक अनुप्रयोग के बिना, निरंतर अनुप्रयोग के बिना। (12)

1. विषयगत दोहा

1043. पाँच स्कंधों में से कितने भौतिक हैं; कितने अभौतिक हैं? :P: सात प्रकार की चेतनाओं में से कितने भौतिक हैं; कितने अभौतिक हैं?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

भौतिक गुणों का समुच्चय भौतिक है। चार समुच्चय भौतिक नहीं हैं। [436] दस आधार भौतिक हैं। मन का आधार भौतिक नहीं है। वैचारिक आधार कभी भौतिक होता है, कभी नहीं। दस तत्व भौतिक हैं। सात तत्व भौतिक नहीं हैं। वैचारिक तत्व कभी भौतिक होता है, कभी नहीं। तीन सत्य भौतिक नहीं हैं। दुख का सत्य कभी भौतिक होता है, कभी नहीं। सात नियंत्रण शक्तियाँ भौतिक हैं। चौदह नियंत्रण शक्तियाँ भौतिक नहीं हैं। प्राणिक शक्ति कभी भौतिक होती है, कभी नहीं। नौ मूल तत्व भौतिक नहीं हैं। भोजन का पोषक तत्व भौतिक है। तीन पोषक तत्व भौतिक नहीं हैं। सात प्रकार के संपर्क भौतिक नहीं हैं। सात प्रकार की भावनाएँ, सात प्रकार की धारणाएँ, सात प्रकार की इच्छाशक्ति और सात प्रकार की चेतना भौतिक नहीं हैं।

2. साधारण दोहा

1044. पाँच स्कंधों में से कितने सांसारिक हैं; कितने अलौकिक हैं? बारह आधारों में से कितने सांसारिक हैं; कितने अलौकिक हैं? अठारह तत्वों में से कितने अलौकिक हैं?

सांसारिक सत्यों में से कितने सांसारिक हैं; कितने अलौकिक हैं? चार सत्यों में से कितने सांसारिक हैं; कितने अलौकिक हैं? :P: चेतना के सात प्रकारों में से कितने सांसारिक हैं; कितने अलौकिक हैं?

P = मध्यवर्ती मदें, पैराग्राफ 991 देखें।

भौतिक गुणों का समूह सांसारिक है। चार समूह कभी सांसारिक होते हैं, कभी अलौकिक। दस आधार सांसारिक हैं। दो आधार कभी सांसारिक होते हैं, कभी अलौकिक। सोलह तत्व सांसारिक हैं। दो तत्व कभी सांसारिक होते हैं, कभी अलौकिक। दो सत्य सांसारिक हैं, दो सत्य अलौकिक।

दस नियंत्रण शक्तियाँ सांसारिक हैं। तीन नियंत्रण शक्तियाँ अलौकिक हैं। नौ नियंत्रण शक्तियाँ कभी सांसारिक होती हैं, कभी अलौकिक। तीन बुरे मूल सांसारिक हैं। छह मूल कभी सांसारिक होते हैं, कभी अलौकिक। भोजन का पोषक तत्व सांसारिक है। तीन पोषक तत्व कभी सांसारिक होते हैं, कभी अलौकिक। छह प्रकार के संपर्क सांसारिक हैं। मन-चेतना-तत्व का संपर्क कभी सांसारिक होता है, कभी अलौकिक। छह प्रकार की भावनाएँ सांसारिक हैं। मन-चेतना-तत्व के संपर्क से उत्पन्न भावना कभी सांसारिक होती है, कभी अलौकिक। छह प्रकार की धारणाएँ सांसारिक हैं। मन-चेतना-तत्व के संपर्क से उत्पन्न धारणा कभी सांसारिक होती है, कभी अलौकिक। छह प्रकार की इच्छाशक्ति सांसारिक हैं। मन-चेतना-तत्व के संपर्क से उत्पन्न इच्छाशक्ति कभी सांसारिक होती है; कभी-कभी यह अलौकिक होता है। चेतना के छह प्रकार सांसारिक होते हैं। मन-चेतना-तत्व कभी-कभी सांसारिक होता है; कभी-कभी अलौकिक होता है।

विशेष ज्ञान, दो (अवस्थाएँ) जिनमें वस्तुएँ होती हैं;
देखा, अच्छा, महसूस किया; परिणामी और समझा (अवस्थाएँ);
प्रारंभिक आवेदन, सामग्री की गुणवत्ता, सामान्य।
इस प्रकार (यह विशेष से संबंधित अनुभाग का सारांश है)
ज्ञान, इत्यादि)।

शिक्षण के मूल तत्व का विश्लेषण समाप्त हुआ।

विश्लेषण की पुस्तक समाप्त हो गई है।

धातुकथा

पाली संस्करण : नीचे दिए गए प्रत्येक अध्याय में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

अंतर्वस्तु

- 1धतुकथा
  - 1.1धातुकथा : स्केन की पुस्तक
  - 1.2धातुकथा: अध्याय (यू नारद द्वारा अनुवाद)
  - 1.3अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
  - 1.4मूल पाली संस्करण

धतुकथा
(तत्वों के संदर्भ में चर्चा)

धातुकथा अभिधम्म की तीसरी पुस्तक है। यह पुस्तक अभिधम्म की पिछली दो पुस्तकों, धम्मसंगनी और विभंग के विचारों को समाहित करती है। यह प्रश्न-उत्तर के रूप में है, जिसे 14 अध्यायों में विभाजित किया गया है। इस प्रकार, पहला अध्याय प्रत्येक विषय के बारे में पूछता है, "यह कितने समुच्चयों, आधारों और तत्वों में समाहित है?" बाद के अध्याय अधिक जटिल प्रश्नों की ओर बढ़ते हैं, जैसे "कितने समुच्चयों आदि से धम्म अपने से जुड़े धम्मों से विभाजित होते हैं?"

ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध ने अभिधम्म का उपदेश तावतिंस स्वर्ग में दिया, जो देवों का निवास स्थान है। विभंग के बाद धातुकथा का प्रवचन हुआ। इसलिए, इसकी विषयवस्तु अभिधम्म पिटक का तीसरा खंड है। धातु (तत्व) को उस तत्व के रूप में परिभाषित किया गया है जो अपने स्वयं के स्वरूप को धारण करता है। इस प्रकार, ग्रंथ में सभी खोज की अवस्थाएँ, समुच्चयों से शुरू होकर विलाप पर आधारित दोहे तक, तत्वों के अंतर्गत आती हैं। इसका यह भी तात्पर्य है कि तत्व सजीव नहीं हैं और उनसे संबंधित नहीं हैं। धातुकथा (तत्वों पर प्रवचन) में उपरोक्त खोज की अवस्थाओं का वर्गीकरण, अवर्गीकृतीकरण, सहभागिता और वियोग का वर्णन तीन श्रेणियों - 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 तत्वों - के संदर्भ में किया गया है। यद्यपि इन तत्वों का वर्णन धम्मसंगनी और विभंग में किया गया है, लेकिन वहाँ इनका विस्तृत और विशिष्ट वर्णन नहीं है जैसा कि इस ग्रंथ में है।

धातुकथा : स्कैन की गई पुस्तक
स्कैन की गई पुस्तक का लिंक

धातुकथा: अध्याय (यू नारद द्वारा अनुवाद)
पाठ का उपचार
अध्याय 1: वर्गीकरण और अवर्गीकृत

1. समुच्चय
2. आधार
3. तत्व
4. सत्य
5. संकाय
6. आश्रित उत्पत्ति इत्यादि
7. ट्रिपलेट्स 22
8. दोहे 100

समुच्चय, आधार और तत्वों का वर्गीकरण चार्ट।
अध्याय I की विधि
अध्याय एक की विधि और चार्ट की व्याख्या
आंतरिक तालिकाएँ (अभ्भनतारा मटिका)

बाह्य सारणी (बहिरा मटिका)
अध्याय 2: वर्गीकृत और अवर्गीकृत
8 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय II की विधि
अध्याय II की विधि और चार्ट की व्याख्या
अध्याय 3: अवर्गीकृत और वर्गीकृत
12 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय III की विधि
अध्याय III की विधि और चार्ट की व्याख्या
अध्याय 4: वर्गीकृत और श्रेणीबद्ध
2 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय IV की विधि
अध्याय IV की विधि और चार्ट की व्याख्या
अध्याय 5: अवर्गीकृत और अवर्गीकृत
35 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय V की विधि
अध्याय V की विधि और चार्ट की व्याख्या
अध्याय 6: सहभागिता और वियोग
78 प्रश्न और उत्तर
1. समुच्चय
2. आधार
3. तत्व
4. सत्य इत्यादि
5. तिगुना बच्चे
6. दोहे
चार्ट; अध्याय VI की विधि
अध्याय VI की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 7: संबद्ध और पृथक
11 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय VII की विधि
अध्याय VII की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 8: विच्छेदित और संबद्ध
2 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय VIII और XIV की विधि
अध्याय VIII और XIV की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 9: संबद्ध और संबंधित
34 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय 9 और 12 की विधि
अध्याय 9 की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 10: वियोजित और वियोजित
56 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय X की विधि
अध्याय X की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 11: वर्गीकृत से संबद्ध और उससे पृथक

8 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय XI की विधि
अध्याय 11 की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 12: संबद्ध के संबंध में वर्गीकृत और अवर्गीकृत
31 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय XII की विधि
अध्याय XII की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 13: अवर्गीकृत से संबद्ध और पृथक
8 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय XIII की विधि
अध्याय XII की विधि और चार्ट की व्याख्या

अध्याय 14: विच्छेदित पदार्थों के संबंध में वर्गीकृत और अवर्गीकृत
63 प्रश्न और उत्तर
चार्ट: अध्याय XIV की विधि
अध्याय 14 की विधि और चार्ट की व्याख्या

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> पाठ पाली संस्करणों **का उपचार** : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादक: यू नारदा

पाठ का उपचार

1. विधियाँ

अध्याय

I. वर्गीकरण और अवर्गीकृत

II. वर्गीकृत और अवर्गीकृत

III. अवर्गीकृत और वर्गीकृत

IV. वर्गीकृत और वर्गीकृत

V. अवर्गीकृत और अवर्गीकृत

VI. जुड़ाव और अलगाव

VII. संबद्ध और पृथक

VIII. विच्छेदित और संबद्ध

IX. संबद्ध और संबद्ध

X. विघटित और विघटित

XI. वर्गीकृत से संबद्ध और उससे पृथक

XII. संबद्ध से संबंधित वर्गीकृत और अवर्गीकृत

XIII. अवर्गीकृत से संबद्ध और पृथक

XIV. विच्छेदित व्यक्तियों से संबंधित वर्गीकृत और अवर्गीकृत जानकारी

2. आंतरिक जांच की अवस्थाएँ

5 समुच्चय = 5

12 आधार = 12

18 तत्व = 18

4 सत्य = 4

22 संकाय = 22

आश्रित उत्पत्ति = 28

ध्यान के 4 अनुप्रयोग = 1

4 महान प्रयास = 1

मानसिक शक्ति प्राप्त करने के 4 मार्ग = 1

4 ध्यान अवस्थाएँ (झान) = 1

4 असीमित अवस्थाएँ = 1

5 संकाय = 1

5 खूबियाँ = 1

ज्ञानोदय के 7 कारक = 1

8 आर्य अष्टांगिक मार्ग = 1

संपर्क

अनुभूति

धारणा

इच्छाशक्ति

चेतना

फ़ैसला

ध्यान

= 7

कुल = 105

3. विधियों के सिद्धांत

1. समुच्चय, आधार और तीन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकरण

तत्व।

2. समुच्चय, आधारों की तीन श्रेणियों के अंतर्गत अवर्गीकरण

और तत्व।

3. चार मानसिक समूहों के साथ संबंध।

4. चारों मानसिक समूहों से वियोग।

4. विधियों की विशेषताएं

1. वर्गीकरण के अनुरूप होने की सामान्य विशेषता

और एसोसिएशन के सिद्धांत।

2. वर्गीकरण के अनुरूप न होने की सामान्य विशेषता

और एसोसिएशन के सिद्धांत।

5. बाह्य जांच के राज्य

धम्मसंगनी की विषयसूची के सभी 22 त्रिक और 100 दोहे।

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 1
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादित: यू नारद

अध्याय 1: वर्गीकरण और अवर्गीकृत

1. **समुच्चय**

द्वारा

6. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

पदार्थ समूह को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

इसे 1 समुच्चय, 11 आधारों और 11 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

7. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

भावना समूह को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

इसे 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

इसे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है? इसे 4 श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

8. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

धारणा समूह को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

समुच्चय को 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

9. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

मानसिक-निर्माण समूह को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

मानसिक-गठन समूह को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिसके अंतर्गत

1 आधार और 1 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

10. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

चेतना समूह को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

चेतना समूह को 1 समूह के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

और 7 तत्वों से कम।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

दो-दो करके

11. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

पदार्थ और भावना के समुच्चय में कितने तत्व शामिल हैं?

पदार्थ और भावना के समुच्चय को 2 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

12. . . . पदार्थ और बोध के समूह को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है

2 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 11 तत्वों से कम।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

13. . . . पदार्थ और मानसिक-निर्माण समूहों का वर्गीकरण किया गया है

2 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

14. पदार्थ और चेतना के समूह को 2 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम श्रेणियों के अंतर्गत; इन्हें किसी भी आधार पर वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

तीन-तीन करके

15. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

पदार्थ, भावना और बोध के समूह में कितने तत्व होते हैं?

वर्गीकृत? पदार्थ, भावना और बोध के समूह वर्गीकृत हैं

3 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

16. पदार्थ, भावना और मानसिक-निर्माण के समूहों का वर्गीकरण किया गया है।

3 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

17. पदार्थ, भावना और चेतना के समूह वर्गीकृत किए गए हैं।

3 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत; वे किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं हैं और

किसी भी तत्व के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं

चार-चार करके

18. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

पदार्थ, भावना, बोध और मानसिक तत्व कितने हैं?

गठन समूह वर्गीकृत? पदार्थ, भावना, बोध और

मानसिक-निर्माण समूहों को 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

11 आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

19. पदार्थ, भावना, बोध और चेतना के समूह हैं

इसे 4 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 कुल योग के अंतर्गत; वे किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं हैं और

किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं।

फाइव्स द्वारा

20. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

पदार्थ, भावना, बोध और मानसिक संरचना में कितने तत्व होते हैं?

और चेतना के समूह वर्गीकृत किए गए हैं? पदार्थ, भावना,

धारणा, मानसिक गठन और चेतना समूह हैं

इन्हें 5 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

21. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

इन 5 समूहों में कितने तत्व शामिल हैं?

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

2. आधार

द्वारा

22. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

आई बेस को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? आई बेस को वर्गीकृत किया गया है

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

23. कान का आधार; नाक का आधार; जीभ का आधार; शरीर का आधार; दृश्यमान

वस्तु आधारित; ध्वनि आधारित; गंध आधारित; स्वाद आधारित; स्पर्शनीय

ऑब्जेक्ट बेस को 1 एग्रीगेट के तहत, 1 बेस के तहत और इसके तहत वर्गीकृत किया गया है।

1 तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

24. माइंड बेस को 1 एग्रीगेट, 1 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

7 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

25. वर्गीकरण से निर्वाण को छोड़कर, संज्ञेय आधार

समुच्चयों को 4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है और

1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

1 कुल योग, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

दो-दो करके

26. आँख का आधार और कान का आधार एक समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किए गए हैं,

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

27. आँख और नाक के आधार; आँख और जीभ के आधार; आँख और शरीर

आधार; आँख और दृश्य वस्तु आधार; आँख और ध्वनि आधार; आँख

और गंध आधारित; दृष्टि और स्वाद आधारित; दृष्टि और मूर्त वस्तु

बेस को 1 एग्रीगेट के अंतर्गत, 2 बेस के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

2 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? 1. वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

28. आँख और मन के आधारों को 2 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

29. दृष्टि और बोधगम्य आधार, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व...

(और इसी तरह तीन-तीन, चार-चार आदि से लेकर बारह-बारह तक के मामलों में भी यही प्रक्रिया लागू होती है)

(बाद वाले का अंतिम उल्लेख किया गया है)

बारह द्वारा

30. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

बारह क्षारों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? बारह क्षार,

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

3. तत्व

द्वारा

31. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

आँख तत्व को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? आँख तत्व है

इसे 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

32. कान तत्व; नाक तत्व; जीभ तत्व; शरीर तत्व;

दृश्य वस्तु तत्व; ध्वनि तत्व; गंध तत्व; स्वाद

तत्व; मूर्त वस्तु तत्व; नेत्र चेतना तत्व;

कान चेतना तत्व; नाक चेतना तत्व; जीभ

चेतना तत्व; शरीर चेतना तत्व; मन तत्व;

मन चेतना तत्व को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

33. बोधगम्य तत्व, वर्गीकरण से निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों को 4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है और

1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

1 कुल योग, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

दो-दो करके

34. नेत्र तत्व और कान तत्व को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

35. आँख और नाक के तत्व; आँख और जीभ के तत्व; आँख और

शरीर के तत्व; आँख और दृश्य वस्तु के तत्व; आँख और ध्वनि

तत्व; आँख और गंध तत्व; आँख और स्वाद तत्व; आँख

और मूर्त वस्तु तत्वों को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है,

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

36. आँख और आँख चेतना के तत्वों को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

37. आँख और कान चेतना तत्व; आँख और नाक चेतना

तत्व; आँख और जीभ, चेतना के तत्व; आँख और

शरीर चेतना के तत्व; आँख और मन के तत्व; आँख और

मन चेतना के तत्वों को 2 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

38. आँख और बोधगम्य तत्व, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व. . . .

(और इसी तरह तीन-तीन के समूह, चार-चार के समूह आदि से लेकर अठारह के समूह तक के मामलों में भी यही क्रम चलता रहता है)

इनमें से केवल अंतिम का ही उल्लेख किया गया है।)

अठारह वर्ष की आयु तक

39. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

इन 18 तत्वों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? ये 18 तत्व...

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है

4. सत्य

द्वारा

40. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

दुख सत्य को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? दुख सत्य है

इन्हें 5 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

कोई भी समुच्चय, जो किसी भी आधार पर अवर्गीकृत न हो और अवर्गीकृत न हो

किसी भी तत्व के अंतर्गत।

41. उत्पत्ति सत्य; पथ सत्य को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिसके अंतर्गत

1 आधार और 1 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

42. समाप्ति सत्य को किसी भी समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता; यह

1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

5 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

दो-दो करके

43. दुख सत्य और उत्पत्ति सत्य को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

44. दुख सत्य और पथ सत्य को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? 1. वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

45. दुख का सत्य और समाप्ति का सत्य, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

तीन-तीन करके

46. दुख सत्य। उत्पत्ति सत्य और पथ सत्य को इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

47. दुख का सत्य, उत्पत्ति का सत्य और समाप्ति का सत्य, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

चार-चार करके

48. दुख का सत्य, उत्पत्ति का सत्य, मार्ग का सत्य और समाप्ति का सत्य।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

49. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

चार सत्यों को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? 1. चार सत्य।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

5. संकाय

द्वारा

50. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने आधारों के अंतर्गत

नेत्र वाहिनी को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? नेत्र वाहिनी को वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

51. कान की क्षमता; नाक की क्षमता; जीभ की क्षमता; शरीर की क्षमता;

महिला संकाय; पुरुष संकाय को 1 समुच्चय के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिसके अंतर्गत

1 आधार और 1 से कम तत्व।

इसे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है? 1. इसे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है?

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

52. मानसिक क्षमता को 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

7 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

53. जीवन शक्ति को 2 समूहों और 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

3 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

54. शारीरिक सुख का अनुभव करने की क्षमता; शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता; मानसिक आनंद

क्षमता; शोक क्षमता; उदासीनता क्षमता; आस्था क्षमता;

ऊर्जा क्षमता; ध्यान क्षमता; एकाग्रता क्षमता;

ज्ञान की क्षमता; वह क्षमता जिससे मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे पहले नहीं पता था;

उच्चतर बोध क्षमता; ज्ञानी व्यक्ति की क्षमता को वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

दो-दो करके

55. नेत्र और श्रवण शक्ति को एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

56. आँख और नाक की क्षमताएँ; आँख और जीभ की क्षमताएँ; आँख और

शरीर की इंद्रियाँ; आँख और स्त्री की इंद्रियाँ; आँख और पुरुष की इंद्रियाँ

इन्हें 1 समुच्चय, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

57. दृष्टि और मन की क्षमताओं को 2 समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

58. नेत्र शक्ति और जीवन शक्ति को 2 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

59. नेत्र एवं शारीरिक सुख इंद्रियाँ; नेत्र एवं शारीरिक पीड़ा

दृष्टि और मानसिक आनंद की दृष्टि; दृष्टि और शोक की दृष्टि;

आँख और उदासीनता की क्षमताएँ; आँख और आस्था की क्षमताएँ; आँख

और ऊर्जा संबंधी क्षमताएँ; आँख और ध्यान संबंधी क्षमताएँ; आँख और

एकाग्रता शक्तियाँ; दृष्टि और बुद्धि शक्तियाँ; आँख और

मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था; आँख और उच्चतर

बोध शक्तियाँ; आँख और ज्ञानी शक्तियाँ हैं

इसे 2 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व. . . .

(और इसी तरह तीन-तीन, चार-चार आदि के मामलों में, बाईस-दो तक)

(बाद वाले में से केवल अंतिम का ही उल्लेख किया गया है)

बाईस द्वारा

60. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

22 संकायों को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है? 22 संकाय

इन्हें 4 समुच्चयों, 7 आधारों और 13 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 5 से कम आधार और 5 से कम तत्व।

6. आश्रित उत्पत्ति इत्यादि

61. अज्ञानता को 1 समुच्चय, 1 आधार और

1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

62. अज्ञानता से प्रेरित। संरचनाओं को निम्न के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

63. निर्माण द्वारा वातानुकूलित। चेतना को इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

64. चेतना द्वारा नियंत्रित, मानसिक-भौतिकता को वर्गीकृत किया जाता है।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

65. भौतिकवादी मानसिकता से प्रभावित होकर, 6 आधारों को वर्गीकृत किया गया है।

2 से कम समुच्चय, 6 से कम आधार और 12 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 6 से कम आधार और 6 से कम तत्व।

66. 6 आधारों द्वारा नियंत्रित, संपर्क; संपर्क द्वारा नियंत्रित,

भावना; भावना से प्रेरित। लालसा; भावना से प्रेरित।

लालसा। आसक्ति; कर्म होना 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

67. पुनर्जन्म होना; इंद्रियजन्य होना; प्रत्यक्ष अनुभव होना;

पांच-समूह बनना 5 समूहों के अंतर्गत, 11 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

आधार और 17 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

किसी भी समुच्चय; इसे 1 आधार और 1 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व।

68. महीन पदार्थ के बनने को 5 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है, जिनके अंतर्गत

5 आधार और 8 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह अवर्गीकृत नहीं है।

किसी भी समुच्चय के अंतर्गत; इसे 7 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है और इसके अंतर्गत भी नहीं।

10 तत्व।

69. अमूर्त विकास; न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति

बनना; चार-समूह बनने को चार समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

1 समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

70. अगोचर विकास; एक-समूह विकास को वर्गीकृत किया गया है

1 समुच्चय के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

71. जन्म को 2 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है... उम्र बढ़ने को वर्गीकृत किया गया है

2 श्रेणियों के अंतर्गत... मृत्यु को 2 श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

1 आधार और 1 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

3 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

72. शोक; विलाप; पीड़ा; दुःख; निराशा; अनुप्रयोग

ध्यान का; महान प्रयास को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4* समूह, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

73. मानसिक शक्ति का मार्ग 2 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 2 से कम तत्व।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

3 समुच्चय, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

74. ध्यान या तल्लीनता को 1 आधार के अंतर्गत 2 समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

3 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

75. असीम; 5 क्षमताएँ; 5 शक्तियाँ; ज्ञानोदय के 7 कारक;

आर्य अष्टांगिक मार्ग; संपर्क; भावना; बोध; संकल्प; निर्णय;

ध्यान को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

इसे कितने के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है? इसे 4 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

11 से कम आधारों और 17 से कम तत्वों के समूह।

76. चेतना को 1 समुच्चय, 1 आधार और

7 तत्वों के अंतर्गत।

यह किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है? यह निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है।

4 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

7. ट्रिपलेट्स 22

77. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और

कितने तत्वों के अंतर्गत स्वस्थ अवस्थाएँ आती हैं; अस्वस्थ अवस्थाएँ

राज्यों का वर्गीकरण? स्वस्थ राज्य; अस्वस्थ राज्य हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

78. अनिर्धारित अवस्थाएँ, वर्गीकरण से निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

79. सुखद अनुभूति से संबंधित अवस्थाएँ; से संबंधित अवस्थाएँ

दर्दनाक भावनाओं को 3 समूहों और 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 15 से कम तत्व।

80. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक और न ही दर्द से जुड़ी भावनाओं से संबंधित हैं।

सुखद को 3 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

7 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

81. परिणामी अवस्थाओं को 2 आधारों के अंतर्गत 4 समुच्चयों में वर्गीकृत किया जाता है।

और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

82. राज्य जो परिणामी राज्यों का निर्माण करते हैं; भ्रष्ट और भ्रष्टाचार फैलाने वाले

राज्यों को 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

83. वे अवस्थाएँ जो न तो परिणामी हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करती हैं

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखने वाले राज्य हैं

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 13 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

इन्हें 5 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

84. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त होती हैं और अनुकूल होती हैं

चिपकने वाले को 5 समूहों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

17 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

85. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं बल्कि अनुकूल होती हैं

चिपकने वाले को 5 समूहों के अंतर्गत, 7 आधारों के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

8 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है

5 आधार और 10 से कम तत्व।

86. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और अनुकूल नहीं होतीं।

आसक्ति से; भ्रष्ट नहीं और भ्रष्ट करने वाले राज्यों को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

87. भ्रष्ट नहीं बल्कि भ्रष्टाचार फैलाने वाले राज्यों को 5 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

88. व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन वाले राज्यों को वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 15 से कम तत्व।

89. व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन के साथ राज्य;

परमानंद से जुड़ी अवस्थाओं को 4 समूहों में वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

90. व्यावहारिक और निरंतर चिंतन के बिना राज्य, अपवाद सहित

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को वर्गीकृत किया जाता है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

इन्हें किसी एक तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

91. आनंद से युक्त अवस्थाओं को 3 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 15 से कम तत्व।

92. उदासीनता से ग्रस्त अवस्थाओं को 3 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

दो आधारों से कम और सात तत्वों से कम के समुच्चय।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

93. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; उच्चतर मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य

3 मार्ग; प्रथम मार्ग द्वारा जड़ सहित समाप्त किए गए राज्य; राज्य

उच्चतर तीन मार्गों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्यों के साथ; अग्रणी राज्य

पुनर्जन्म और मृत्यु; निर्वाण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; संबंधित अवस्थाएँ

शिक्षार्थियों के लिए; अरहत्ता से संबंधित राज्य; उच्चतर राज्य हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

94. प्रथम मार्ग से और उच्चतर 3 मार्गों से भी राज्यों का उन्मूलन नहीं हुआ;

न तो प्रथम मार्ग से और न ही अन्य मार्गों से जड़ों सहित राज्यों का उन्मूलन हुआ है।

उच्चतर तीन मार्ग; ऐसी अवस्थाएँ जो न तो पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाती हैं और न ही

निर्वाण; ऐसी अवस्थाएँ जो न तो शिक्षार्थियों से संबंधित हैं और न ही अरहत्तों से।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

95. सीमित अवस्थाओं को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 18 वर्ष से कम आयु के तत्व

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

96. अतुलनीय अवस्थाएँ; उच्च अवस्थाएँ, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

97. सीमित उद्देश्यों वाले राज्यों को 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

98. उच्च उद्देश्यों वाले राज्य; अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य;

निम्न अवस्था वाले राज्य; गलत विचारों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य;

सही दृष्टिकोणों के कारण निश्चित नियति के साथ; पथ वस्तु वाले राज्य;

पथ द्वारा निर्धारित अवस्थाएँ; पथ द्वारा नियंत्रित अवस्थाएँ हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

99. मध्यम अवस्थाओं को 5 समूहों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

और 18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

100. निर्वाण को छोड़कर, अनिश्चित भाग्य वाले राज्य।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

101. उत्पन्न अवस्थाओं को 5 समूहों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

102. जिन अवस्थाओं का उदय नहीं हुआ है, उन्हें 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

7 आधार और 8 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 5 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और 10 से कम तत्व

103. उत्पन्न होने वाली अवस्थाओं को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

11 आधार और 17 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

104. भूतकाल की अवस्थाएँ; भविष्य की अवस्थाएँ; वर्तमान अवस्थाएँ; आंतरिक अवस्थाएँ;

आंतरिक और बाह्य अवस्थाओं को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

105. निर्वाण को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए बाह्य राज्य

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

106. भूतकाल कर्म वाले राज्य; भविष्यकाल कर्म वाले राज्य हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

107. वर्तमान कर्म वाले राज्य; आंतरिक कर्म वाले राज्य; राज्य

बाह्य वस्तु के साथ; आंतरिक और बाह्य वस्तु वाले राज्य हैं

इसे 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

108. दृश्य और प्रभावकारी दोनों अवस्थाओं को 1 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कुल योग, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

109. अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाओं को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

9 से कम आधार और 9 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 3 से कम आधार और 9 से कम तत्व।

110. ऐसे राज्य जो दिखाई नहीं देते और अतिक्रमण नहीं करते, जिनमें निब्बाना शामिल नहीं है।

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है

10 आधार और 10 से कम तत्व।

8. दोहे 100

I. जड़ समूह 6

111. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और जिनमें ये भी हैं

संबंधित मूल; वे राज्य जो मूल हैं और साथ ही संबंधित भी हैं

जड़ों को 1 समूह, 1 आधार और 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

1 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

112. वे अवस्थाएँ जो मूल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जिनकी कोई मूल नहीं है;

वे अवस्थाएँ जो मूलों से विरक्त हैं; वे अवस्थाएँ जो न तो मूल हैं और न ही मूल।

न तो जड़ें हैं और न ही संबंधित जड़ें हैं, निब्बाना को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

113. वे राज्य जिनके मूल संबद्ध हैं; वे राज्य जो संबद्ध हैं

जड़ों के साथ; वे राज्य जिनकी संबद्ध जड़ें हैं लेकिन वे नहीं हैं

मूल अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो मूल अवस्थाओं से संबंधित हैं लेकिन स्वयं मूल अवस्थाएँ नहीं हैं;

वे अवस्थाएँ जो मूल नहीं हैं लेकिन उनसे संबद्ध मूल हैं, उन्हें वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

II. लघु मध्यवर्ती दोहे 7

114. चार कारणों से उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ; चार कारणों से निर्धारित अवस्थाएँ हैं

इन्हें 5 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

115. वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं; वे अवस्थाएँ जो इनसे प्रभावित नहीं होतीं।

4 कारणों को किसी भी समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है; उन्हें वर्गीकृत किया गया है

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

5 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

116. दृश्यता वाले राज्यों को 1 समुच्चय के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार और 1 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व

117. दृश्यता के अभाव वाले राज्य, निब्बाना को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

11 आधार और 17 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

118. सीमावर्ती राज्यों को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

10 आधार और 10 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

119. राज्य बिना अतिक्रमण किए, निब्बाना को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

2 आधार और 8 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 10 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

आधार और 10 से कम तत्व।

120. भौतिक परिवर्तन वाली अवस्थाओं को 1 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कुल योग, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

121. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई भौतिक परिवर्तन नहीं होता, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों के वर्गीकरण के आधार पर, इन्हें 4 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

122. सांसारिक अवस्थाओं को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

123. वे अवस्थाएँ जो अलौकिक हैं, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

124. वे अवस्थाएँ जो किसी भी नेत्र-चेतना आदि द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं;

वे अवस्थाएँ जो नेत्र-चेतना आदि द्वारा ज्ञात नहीं हो सकतीं।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

III. कैंकर क्लस्टर 6

125. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो कलंक और दोनों हैं

कैंकर के कारक; वे अवस्थाएँ जो कैंकर और संबंधित दोनों हैं

कैंकर वाले को 1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

1 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

126. वे अवस्थाएँ जो दोष नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो वियोगित हैं

कैंकर से, निब्बाना को एग्रीगेट्स के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

18 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

127. वे राज्य जो रोगग्रस्त हैं; वे राज्य जो रोगग्रस्त हैं

कैंकर के बारे में, लेकिन कैंकर नहीं; वे अवस्थाएँ जो इससे अलग हैं

कैंकर, लेकिन कैंकर के विषय, 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किए जाते हैं।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

128. वे राज्य जो दोषों से मुक्त हैं; वे राज्य जो

कैंकर से अलग हो गए हैं और कैंकर के विषय नहीं हैं, अपवाद सहित

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

129. वे राज्य जो कैंकर से संबंधित हैं; वे राज्य जो

कैंकर से संबंधित लेकिन कैंकर न होने वाले को निम्न श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व

चतुर्थ से नौवां भाग: बंधन, बंधन, बाढ़, रोक और गलतफहमी कलस्टरों

130. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो...

गलतफहमियों और गलतफहमियों के कारणों दोनों का वर्गीकरण किया जाता है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

131. वे अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो हैं

गलतफहमियों से अलग होकर, निर्वाण को इससे बाहर रखते हुए

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

132. वे राज्य जो गलतफहमियों के शिकार हैं; वे राज्य जो

वे गलतफहमियों के विषय हैं, लेकिन वे स्वयं गलतफहमियां नहीं हैं;

ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियों से अलग हैं लेकिन वस्तुएँ हैं

गलतफहमियों को 5 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, 12 समूहों के अंतर्गत।

आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

133. वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं; राज्य

जो गलतफहमियों से अलग हैं और वस्तुएँ नहीं हैं

गलतफहमियों के कारण, निब्बाना को इस वर्गीकरण से बाहर रखा गया है।

समुच्चयों को 4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

134. वे राज्य जो गलतफहमियों से जुड़े हैं, वे हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

X. उच्चतर मध्यवर्ती दोहे 14

135. जिन अवस्थाओं में वस्तुएँ होती हैं, उन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

136. वे राज्य जिनका कोई उद्देश्य नहीं है, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 1 समुच्चय के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है,

11 आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

137. चेतना की अवस्थाओं को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 आधार से कम और 7 तत्वों से कम।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

138. वे अवस्थाएँ जो चेतना नहीं हैं, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

139. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ

इन्हें 3 समूहों, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? 1. वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

140. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक नहीं हैं, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, दो समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम श्रेणियों के अंतर्गत; इन्हें किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं किया गया है।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

141. चेतना से विरक्त अवस्थाएँ; ऐसी अवस्थाएँ जो

चेतना से जुड़े नहीं हैं, इसलिए निर्वाण इससे बाहर है।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 1 समुच्चय के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है,

11 आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 1 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

142. चेतना द्वारा उत्पन्न अवस्थाओं को वर्गीकृत किया जाता है

4 से कम समुच्चय, 6 से कम आधार और 6 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 6 से कम आधार और 12 से कम तत्व।

143. वे अवस्थाएँ जो चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होतीं;

जो चेतना के साथ उत्पन्न नहीं होते; ऐसी अवस्थाएँ जो

चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 2 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम श्रेणियों के अंतर्गत; इन्हें किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं किया गया है।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

144. चेतना के साथ उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो

चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाले समूहों को 4 वर्गों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

145. वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं और इससे उत्पन्न भी होती हैं

चेतना; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं

और चेतना के साथ उत्पन्न होते हैं; वे अवस्थाएँ जो संयुक्त हैं

चेतना के साथ, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

इन्हें 3 समूहों, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

146. वे अवस्थाएँ जो आपस में जुड़ी हुई नहीं हैं और न ही उत्पन्न हुई हैं

चेतना द्वारा; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी नहीं हैं, वे नहीं हैं

चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं, चेतना के साथ उत्पन्न नहीं होते; अवस्थाएँ

जो इससे जुड़े नहीं हैं, इससे उत्पन्न नहीं होते हैं और इससे उत्पन्न नहीं होते हैं।

चेतना के साथ क्रमिक रूप से, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 2 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम श्रेणियों के अंतर्गत; इन्हें किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं किया गया है।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

147. आंतरिक अवस्थाओं को 2 समूहों में वर्गीकृत किया गया है,

6 से कम आधार और 12 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

3 से कम समुच्चय, 6 से कम आधार और 6 से कम तत्व।

148. वे राज्य जो बाह्य हैं, जिनमें निर्वाण शामिल नहीं है।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 4 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

6 आधार और 6 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 6 से कम आधार और 12 से कम तत्व।

149. व्युत्पन्न राज्यों को 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है,

10 से कम आधार और 10 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व

150. वे अवस्थाएँ जो व्युत्पन्न नहीं हैं, जिनमें निर्वाण को छोड़कर अन्य अवस्थाएँ शामिल हैं।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

3 आधार और 9 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? 1. वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है

9 आधार और 9 से कम तत्व।

151. आसक्ति से प्राप्त होने वाली अवस्थाओं को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है।

5 समुच्चय, 11 आधारों से कम और 17 तत्वों से कम।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; उन्हें 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

152. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों के वर्गीकरण से, इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

7 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी समूह के अंतर्गत नहीं; इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है

5 आधार और 10 से कम तत्व।

XI. चिपके हुए समूह

XII. भ्रष्टाचार समूह 8

153. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचारी दोनों हैं; ऐसे राज्य जो दोनों हैं

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े मामलों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 से कम समुच्चय, 11 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

154. वे राज्य जो भ्रष्ट नहीं हैं; वे राज्य जो भ्रष्ट नहीं हैं

भ्रष्ट; भ्रष्टाचार से मुक्त राज्य, अपवाद स्वरूप

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

155. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार हैं; वे राज्य जो

भ्रष्टाचार के शिकार हैं, लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार से अलग होते हुए भी, वे स्वयं भ्रष्टाचार के शिकार होते हैं।

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

156. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जो

वे भ्रष्टाचार से अविभाजित हैं और भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

157. भ्रष्ट राज्य; वे राज्य जो इससे जुड़े हुए हैं

भ्रष्टाचार; ऐसे राज्य जो भ्रष्ट हैं लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं हैं;

वे राज्य जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं हैं

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

XIII. अंतिम दोहे 18

158. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; उच्चतर मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य

तीन मार्ग; प्रथम मार्ग द्वारा जड़ सहित सभी अवस्थाओं का उन्मूलन;

उच्चतर तीन पथों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्यों के साथ-साथ

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

159. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त नहीं किए गए राज्य; समाप्त नहीं किए गए राज्य

उच्चतर तीन मार्गों द्वारा; जड़ों सहित अवस्थाएँ नष्ट नहीं हुईं

प्रथम पथ द्वारा; उच्चतर द्वारा जड़ों सहित राज्यों का उन्मूलन नहीं किया गया

तीन मार्ग, जिनमें निर्वाण को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखा गया है,

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

160. व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 3 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 15 से कम तत्व।

161. व्यावहारिक चिंतन से रहित राज्य; निरंतर चिंतन से रहित राज्य

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 17 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

इन्हें किसी एक तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

162. परमानंद की अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो इसके साथ होती हैं

रैप्चर को 4 समूहों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

163. परमानंद रहित अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो साथ नहीं होतीं

परमानंद द्वारा; वे अवस्थाएँ जिनमें आनंद नहीं होता, अपवाद सहित

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को वर्गीकृत किया जाता है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

164. आनंद से युक्त अवस्थाओं को निम्न श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 15 से कम तत्व।

165. उदासीनता से ग्रस्त अवस्थाओं को वर्गीकृत किया जाता है

3 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 7 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 से कम समुच्चय, 10 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

166. वे अवस्थाएँ जिनमें उदासीनता नहीं होती, उन्हें छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 13 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

इन्हें 5 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

167. वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अस्तित्व के चक्र में शामिल; वे अवस्थाएँ जो परे हैं

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

168. वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित नहीं हैं; अवस्थाएँ

जो अस्तित्व के चक्र में शामिल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो

परे के साथ नहीं, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

169. वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अमूर्त तल से संबंधित; वे अवस्थाएँ जो इससे बाहर निकलती हैं

अस्तित्वों का चक्र; जिन राज्यों का भाग्य निश्चित था, वे इसके बाद हार मान गए।

मृत्यु या उनके स्वयं घटित होने के बाद; वे अवस्थाएँ जो कारण हैं

विलाप को 4 समूहों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 से कम कुल योग, 10 से कम आधार और 16 से कम तत्व।

170. कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और

कितने तत्वों के अंतर्गत वे राज्य आते हैं जो इस श्रेणी में नहीं आते?

भौतिक तल; वे अवस्थाएँ जो अभौतिक तल से संबंधित नहीं हैं;

वे अवस्थाएँ जो अस्तित्व के चक्र से बाहर नहीं निकलतीं; अवस्थाएँ

जिनका भाग्य ऊपर बताए अनुसार निश्चित नहीं है; वे राज्य जो कारण नहीं हैं

विलाप का वर्गीकरण?

वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित नहीं हैं... अवस्थाएँ

जो शोक का कारण नहीं हैं, निर्वाण को छोड़कर।

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी श्रेणी के अंतर्गत अवर्गीकृत नहीं है।

अध्याय एक की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: धातुकथा की सभी 371 जांच अवस्थाएँ।

जो या तो विशुद्ध भौतिकता, मानसिक कारक, चेतना और

निर्वाण या उनका संयोजन, इस विषयवस्तु का आधार बनता है।

अध्याय। जांच की प्रत्येक अवस्था को समुच्चय, आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और तत्व और शेष समुच्चय, आधार और तत्व बाहर

कुल 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 तत्वों में से निम्नलिखित हैं

जिसे वर्गीकृत नहीं किया गया है। 371 राज्यों में सभी 105 आंतरिक राज्य शामिल हैं।

आंतरिक तालिकाओं में सूचीबद्ध जांच की अवस्थाएँ और सभी 66 त्रिक

और 200 दोहे जो जांच की बाहरी अवस्थाओं को सूचीबद्ध करते हैं

बाह्य तालिकाएँ।

चार्ट: यह चार्ट 28 राज्यों का वर्गीकरण दर्शाता है।

पदार्थ समूह, 52 मानसिक कारक, निर्वाण और चेतना के 89 प्रकार

समुच्चय, आधार और तत्वों के अंतर्गत। 28 अवस्थाएँ

पदार्थ समूह को स्थूल पदार्थ 12 और सूक्ष्म पदार्थ में विभाजित किया गया है।

16 क्योंकि पूर्व वाला 10 स्थूल आधारों के अंतर्गत आता है (आँख का आधार, कान का आधार—

मूर्त वस्तु आधार) और 10 स्थूल तत्वों के अंतर्गत (आँख तत्व, कान

तत्व— मूर्त वस्तु तत्व) और बाद वाला इसके अंतर्गत आता है

बोधगम्य आधार और बोधगम्य तत्व के अंतर्गत। सूक्ष्म पदार्थ 16,

मानसिक कारक 52 और निर्वाण संज्ञेय आधार के अंतर्गत आते हैं और

संज्ञेय तत्व के अंतर्गत।

चार्ट से यह देखा जा सकता है कि:—

(1) संवेदनशील आँख को पदार्थ समूह के अंतर्गत, आँख के आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है

और आंखों के नीचे का तत्व (चार्ट के उसी कॉलम में नीचे की ओर पढ़ें);

(2) लोभ, जो मानसिक निर्माण की 50 अवस्थाओं में से एक है,

इसे मानसिक गठन समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

संज्ञेय आधार और उसके अंतर्गत संज्ञेय तत्व;

(3) घृणा से उपजी चेतना, जो शेष 76 प्रकारों में से एक है

चेतना को चेतना समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

मन के आधार के अंतर्गत और मन-चेतना तत्व के अंतर्गत।

इस चार्ट का पूर्ण ज्ञान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

क्योंकि समुच्चय, आधार और तत्वों का वर्गीकरण

उसमें दर्शाया गया तरीका, उसमें दी गई सभी विधियों का आधार बनता है।

इस धातु-कथा (धातु-कथा) के 14 अध्याय।

जब तक कि उन प्रकार के समुच्चयों, आधारों और तत्वों को जिनके अंतर्गत

जांच की प्रत्येक अवस्था को वर्गीकृत किया जाता है, उनकी संख्या ज्ञात होती है, जैसे

पाठ में दी गई जानकारी का पता नहीं लगाया जा सकता है। और वर्गीकरण करने में सक्षम होने के लिए

इस प्रकार जांच की प्रत्येक अवस्था, उसके विश्लेषणात्मक घटकों के अंतर्गत

पदार्थ, मानसिक कारक, चेतना और निर्वाण के शीर्ष

यह जानना आवश्यक है। यह जानकारी धम्मसंगनी में मिल सकती है, लेकिन

त्वरित संदर्भ के लिए इसे आंतरिक और बाह्य सारणियों में दिया गया है।

जो आगे दिए गए हैं। निम्नलिखित उदाहरण यह दिखाने के लिए दिए गए हैं कि

चार्ट की सहायता से, उसमें दी गई जानकारी का अनुप्रयोग।

जांच के राज्यों के वर्गीकरण के लिए तालिकाएँ

और समुच्चय, आधार और तत्वों की संख्या।

आंतरिक तालिकाएँ (अभ्भनतारा मटिका)

(नोट: A: समुच्चय; B: आधार; E: तत्व)

नोट @ : पदार्थ समूह को 1 समूह, 11 आधारों और 11 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कुल मिलाकर 5 समुच्चय, 12 आधार और 18 तत्व हैं। अतः, पदार्थ

शेष 4 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों के अंतर्गत समुच्चय को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

यह नियम अन्य सभी मामलों पर लागू होगा।

नोट *: पाली पाठ के अनुसार निर्वाण को एक समूह के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

पंचखंड (पांच समुच्चय)

1. पदार्थ का समूह (रूपक्खन्धो) = पदार्थ की 28 अवस्थाएँ (A1, B11, E11)

2. भावना का समग्र योग (वेदनक्खन्धो) = भावना का मानसिक कारक (A1, B1, E1)

3. धारणा समुच्चय (सन्नखंडो) = धारणा मानसिक कारक (A1, B1, E1)

4. मानसिक गठन समुच्चय (संखरक्खन्धो) = 50

शेष मानसिक कारक (A1, B1, E1)

5. चेतना का समूह (विन्नानक्खन्धो) = 89 चेतनाएँ

समुच्चय मुक्त (खंड विमुत्तो) = निब्बान (इस प्रकार निब्बान)।

(A1, B1, E7) को एक समूह के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है

बारह आधार (द्वादश आयतनानि)

1. नेत्र आधार (चक्खयातनम्) = संवेदनशील आँख (A1, B1, E1)

2. कान का आधार (सोतयातनम) = संवेदनशील कान (A1, B1, E1)

3. नाक का आधार (घनायतनम्) = संवेदनशील नाक (ए1, बी1, ई1)

4. जीभ का आधार (जीव्हयातनम) = संवेदनशील जीभ (A1, B1, E1)

5. शरीर का आधार (काययतनम्) = संवेदनशील शरीर (A1, B1, E1)

6. दृश्य वस्तु आधार (रूपायतनम्) = दृश्य वस्तु (A1, B1, E1)

7. ध्वनि आधार (सद्दयातनम्) = ध्वनि या श्रव्य वस्तु (A1, B1, E1)

8. गंध आधार (गंडबायतनम) = गंध या घ्राण वस्तु (A1, B1, E1)

9. स्वाद आधार (रसायतनम्) = स्वाद या स्वाद वस्तु (A1, B1, E1)

10. मूर्त वस्तु आधार (फोत्थब्बायतनम) = मूर्त वस्तु

(पृथ्वी, ऊष्मा, हवा) (A1, B1, E1)

11. मन का आधार (मनायतनम्) = 89 चेतना (A1, B1, E7)

12. संज्ञेय आधार (धम्मयतनम्) - 52 मानसिक कारक, 16

सूक्ष्म पदार्थ (अर्थात जल, स्त्रीत्व, पुरुषत्व, हृदय का आधार)

शारीरिक जीवन, पोषण, पृथक स्थान, शारीरिक अंतरंगता,

मौखिक संकेत, पदार्थ का उत्प्लावन, पदार्थ की प्लास्टिसिटी,

पदार्थ की सुगमता, वृद्धि, निरंतरता, क्षय, अनित्यता) और

निब्बाना (A4, B1, E1)

अठारह तत्व (अत्तारस धातुयो)

1. नेत्र तत्व (चक्खु धातु) = संवेदनशील आँख (A1 , B1, E1)

2. कान तत्व (सोता धातु) = संवेदनशील कान (ए1, बी1, ई1)

3. नासिका तत्व (घन धातु) = संवेदनशील नाक (A1 , B1, E1)

4. जिह्वा तत्व (जीव धातु) = संवेदनशील जिह्वा (A1, B1, E1)

5. शरीर तत्त्व (काय धातु) = संवेदनशील शरीर (A1 , B1, E1)

6. दृश्यमान वस्तु तत्व (रूप धातु) = दृश्यमान वस्तु (A1, B1, E1)

7. ध्वनि तत्व (सद्दा धातु) = ध्वनि (ए1, बी1, ई1)

8. गंध तत्व (गंध धातु) = गंध (ए1, बी1, ई1)

9. स्वाद तत्व (रस धातु) = स्वाद (ए1, बी1, ई1)

10. मूर्त वस्तु तत्व (फोत्थब्बा धातु) = मूर्त वस्तु (A1, B1, E1)

11. नेत्र चेतना तत्व (चक्खुविन्नना धातु) = नेत्र चेतना 2 (A1, B1, E1)

12. कान चेतना तत्त्व (सोताविन्नन धातु) = कान विपक्ष। 2 (ए1, बी1, ई1)

13. नाक चेतना तत्व (घनविन्नना धातु) = नाक चेतना 2 (ए1, बी1, ई1)

14. जिह्वा चेतन तत्त्व (जीवविहान धातु) = जिह्वा

कंस. 2 (ए1, बी1, ई1)

15. देह चेतना तत्व (कायविन्न धातु) = देह चेतना 2 (A1, B1, E1)

16. मन तत्व (मनो धातु) = 5-द्वार ; प्राप्तकर्ता 2 (ए1, बी1, ई1)

17. मन चेतना तत्त्व (मनोविन्ना धातु)=शेष-

चेतना 76 (A1, B1, E1)

18. बोधगम्य तत्व (धम्म धातु) = 52 मानसिक कारक, 16 सूक्ष्म कारक

पदार्थ और निर्वाण (A4, B1, E1)

चार सत्य (Cattari saccani)

1. दुखदायी सत्य (दुक्कबा सच्चम) = सांसारिक चेतना 81,

लालच रहित मानसिक कारक 52 लालच को छोड़कर (अर्थात 52 - 1 = 51),

मामला 28 (A5, B12, E18)

2. उत्पत्ति सत्य (समुदय सच्चम) = लालच मानसिक कारक (ए1, बी1, ई1)

3. निरोध सत्य (निरोध सच्चम) = निब्बाना (_ , B1, E1)

4. पथ सत्य (मैग्गा सैकम) = 4 पथों पर मौजूद 8 पथ कारक

चेतना, अर्थात्: सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही

सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही

ध्यान। सही एकाग्रता (A1, B1, E1)

बाईस संकाय (बविसातिन्द्रियानी)

1. नेत्र संबंधी क्षमता (चक्खुंद्रियम) = संवेदनशील नेत्र (A1, B1, E1)

2. श्रवण शक्ति (सोतिन्द्रियम) = संवेदनशील कान (A1, B1, E1)

3. नाक की क्षमता (घनिन्द्रियम) = संवेदनशील नाक (A1, B1, E1)

4. जीभ की क्षमता (जीविहिन्द्रियम) = संवेदनशील जीभ (A1, B1, E1)

5. शारीरिक क्षमता (कयिन्द्रियम) = संवेदी शरीर (A1, B1, E1)

6. महिला संकाय (इत्तिंद्रियम) = नारीत्व (ए1, बी1, ई1)

7. पुरुष संकाय (पुरिसिंद्रियम) = पुरुषत्व (A1, B1, E1)

8. जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रियम) = भौतिक और *मानसिक जीवन (A2, B1, E1)

9. मन की क्षमता (मनिन्द्रियम) = 89 चेतना (A1, B1, E7)

10. शारीरिक सुख की अनुभूति (सुखिंद्रियम) = मानसिक अनुभूति कारक

शारीरिक सुख चेतना में उपस्थित (A1, B1, E1)

11. शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता (दुक्खिंद्रियम) = मानसिक कारक

शारीरिक दर्द की चेतना में उपस्थित (A1, B1, E1)

12. मानसिक आनंद की क्षमता (सोमनसिंद्रियम) = मानसिक अनुभूति कारक

62 मानसिक आनंद चेतना (A1, B1, E1) पर मौजूद

13. शोक की क्षमता (डोमनसिंद्रियम) = मानसिक भावना कारक

दो घृणा-आधारित चेतनाओं (A1, B1, E1) में मौजूद

14. उदासीनता की क्षमता (उपेक्खिंद्रियम) = भावना संबंधी मानसिक कारक

55 वर्ष की आयु में उदासीनता चेतना (A1, B1, E1) मौजूद है

* मनोवैज्ञानिक जीवन, जीवन शक्ति का मानसिक कारक, मानसिक के अंतर्गत आता है।

गठन समुच्चय

15. आस्था की क्षमता (सद्धिंद्रियम) = मौजूद आस्था का मानसिक कारक

59 वर्ष की आयु में सुंदर चेतना (A1, B1, E1)

16. ऊर्जा संकाय (वीरियिंद्रियम) = मौजूद ऊर्जा मानसिक कारक

89 चेतना पर 2 x 5 चेतना 10 को छोड़कर, मन

तत्व 3, जांच चेतना 3 (अर्थात 89 - 16 = 73) (A1, B1, E1)

17. सतिन्द्रियम (सतिन्द्रियम) = सतिन्द्रिय मानसिक कारक

59 सुंदर चेतना (A1, B1, E1) पर उपस्थित

18. एकाग्रता क्षमता (समाधिन्द्रियम) = एकाग्रचित्तता

संदेह को छोड़कर चेतना के 89वें स्तर पर मौजूद मानसिक कारक

चेतना 1, 2 x 5 चेतना 10, मन तत्व 3,

जांच चेतना 3 (अर्थात 89 - 17 = 72) (A1, B1, E1)

19. ज्ञान की क्षमता (पन्निंद्रियम) = ज्ञान संबंधी मानसिक कारक

39 सांसारिक त्रिमूल चेतना (A1, B1, E1) पर उपस्थित

20. मैं वह सब जान लूँगा जो मैं नहीं जानता (अनन्नतनसमित इंद्रियम)

= जीत की राह में मौजूद बुद्धिमत्तापूर्ण मानसिक कारक

पथ (अर्थात पहला पथ) (A1, B1, E1)

21. उच्चतर बोध क्षमता (अन्निन्द्रियम) = मानसिक ज्ञान

यह कारक तीन उच्च पथों और तीन निम्न फल प्राप्ति (A1, B1, E1) में मौजूद है।

22. ज्ञान रखने वाला (अन्नतविन्द्रियम) = बुद्धि

अरहट्टा फल प्राप्ति में मौजूद मानसिक कारक (A1, B1, E1)

आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुप्पदा)
कारक 12, प्रकार 17 (अंग 12, भेद 17)

1. अज्ञान (अविज्जा) = भ्रम की मानसिक स्थिति

12 अस्वस्थ चेतना (A1, B1, E1)

2. अज्ञान से प्रेरित रचनाएँ (अविज्जपच्चय संखार) = संकल्प

12 वर्ष की आयु में मौजूद मानसिक कारक अस्वस्थ चेतना

और 17 सांसारिक स्वस्थ चेतना (A1, B1, E1)

3. चेतना, निर्माण द्वारा ही वातानुकूलित होती है (संस्कारपच्चयविन्नानम्)

= 89 चेतना (A1, B1, E7)

4. चेतना द्वारा वातानुकूलित मानसिकता-भौतिकता

(विन्नाना पकाया नाम-रूपम) = मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (ए4, बी11, ई11)

5. मानसिक-भौतिकता से बद्ध 6 आधार हैं (नाम-रूप पच्चया)।

सलयातनम्) = 89 चेतना और 5 संवेदनशील अंग (A2, B6, E12)

6. 6 आधारों द्वारा वातानुकूलित संपर्क है (सलायतन-पाकाया फासो)

= चेतना के 89वें स्तर पर मौजूद मानसिक कारक से संपर्क करें (A1, B1, E1)

7. स्पर्श से प्रेरित भावना (फस्सा-पच्चया वेदना)

= चेतना के 89वें स्तर पर मौजूद मानसिक कारक की अनुभूति (A1, B1, E1)

8. भावना से प्रेरित लालसा है (वेदना-पकाया तन्हा)

= लालच से उत्पन्न चेतना के 8 स्तरों (A1, B1, E1) पर लालच का मानसिक कारक मौजूद है।

9. तृष्णा से बंधा हुआ चिपकना है (तन्हा-पकाया उपादनम्)

= लालच से उत्पन्न चेतना में 8वें स्तर पर लालच का मानसिक कारक मौजूद होता है।

और चेतना के चौथे स्तर पर मौजूद गलत-दृष्टिकोण मानसिक कारक

गलत दृष्टिकोण से संबंधित (A1, B1, E1)

10. कम्म भावो = इच्छा मानसिक कारक

12 अस्वास्थ्यकर और 17 सांसारिक स्वास्थ्यकर पर उपस्थित

चेतना (A1, B1, E1)

पुनर्जन्म बनना 9 (उपपत्ति भाव 9)

पुनर्जन्म बनना (उपपत्ति भावो) = सांसारिक परिणाम 32,

मानसिक कारक 35, कर्म-उत्पादित पदार्थ 20 (A5, B11, E17)

(ए) कामुक बनना (काम भावो) = कामुक परिणाम 23,

मानसिक कारक 38, जिनमें 3 संयम और दो असीमितताएँ शामिल नहीं हैं।

(अर्थात 38 - 5 = 33), कर्म-निर्मित पदार्थ 20 (ए5 बी11 ई17)

(ख) सूक्ष्म पदार्थ का बनना (बुपा भावो) = सूक्ष्म पदार्थ का परिणामी

5, नेत्र चेतना 2, कान चेतना 2, ग्रहण चेतना 2,

जांच चेतना 3, मानसिक कारक 35,

कर्म से उत्पन्न पदार्थ 20, स्त्रीत्व और पुरुषत्व को छोड़कर,

नाक, जीभ और शरीर (अर्थात 20 - 5 = 15) (A5 B5 E8)

(सी) अभौतिक बनना (अरूप भावो) = अभौतिक परिणाम 4,

मानसिक कारक 30 (A4 B2 E2)

(डी) प्रत्यक्ष बनना (सन्ना भावो) = सांसारिक परिणाम 32

परिणाम 1 में न तो धारणा और न ही गैर-धारणा को शामिल किया गया है

(अर्थात 32 - 1 = 31), मानसिक कारक 35, कर्म-उत्पादित

मामला 20 (A5 B11 E17)

(ई) गैर-अनुभूत बनना (असन्ना भावो) = नौ गुना जीवन शक्ति

समूह विषय (A1 B2 E2)

(f) न तो बोध और न ही अबोध होना (नेवासन्नाना)

सन्ना भावो = न तो बोध और न ही अबोध

परिणामी 1, मानसिक कारक 30 (A4 B2 E2)

(छ) एक-समुच्चय बनना (एकवोकर भावो) = समान

अगोचर विकास (A1 B2 E2)

(ज) चार समुच्चय बनना (कैटुवोकर भावो) = समान

अमूर्त बनना (A4 B2 E2)

(i) पांच-समुच्चय बनना (पंचवोकर भावो) = कामुक

परिणामी 23, सूक्ष्म-सामग्री परिणामी 5, मानसिक कारक 35,

कर्म-उत्पादित पदार्थ 20 (A5 B11 E17)

11. जन्म (जाति) = उत्पन्न पदार्थ की उत्पत्ति ही जन्म है।

पदार्थ, चार मानसिक समूहों का उदय ही जन्म है

मानसिकता (A2 B1 E1)

12. वृद्धावस्था (जरा) = उत्पन्न पदार्थ की वृद्धावस्था ही वृद्धावस्था है।

पदार्थ के संदर्भ में, चार मानसिक समूहों की वृद्धता ही वृद्धावस्था है।

मानसिकता (A2 B1 E1)

(12) मृत्यु (मरनम) = उत्पन्न पदार्थ की समाप्ति है

पदार्थ की मृत्यु, चार मानसिक समुच्चयों का क्षय ही है।

मानसिकता की मृत्यु (A2 B1 E1)

दुःख (सोको) = घृणा से प्रेरित दो स्थितियों में मौजूद दुखद भावना

चेतना (A1 B1 E1)

विलाप (पारिदेवो) = श्रव्य वस्तु जो उत्पन्न हुई हो

विकृत मानसिकता (A1 B1 E1)

दु:ख (दुक्खम) = शरीर-चेतना में उपस्थित होने की अनुभूति

पीड़ा से संबंधित (A1 B1 E1)

शोक (डोमनसम) = घृणा से प्रेरित दो स्थानों पर मौजूद शोकपूर्ण भावना

चेतना (A1 B1 E1)

„निराशा (उपायसो) = घृणा से ग्रस्त दो मानसिक कारकों में मौजूद घृणा

चेतना (A1 B1 E1)

ध्यान और अन्य के अनुप्रयोग 9 (सतिपट्टनादि 9)

ध्यान के 4 अनुप्रयोग (चट्टारो सतिपथाना) = ध्यान

8 अलौकिक चेतना (A1 B1 E1) पर मौजूद मानसिक कारक

चार महान प्रयास (चट्टारो सम्मप्पधना) = ऊर्जा और मानसिक ऊर्जा

8 अलौकिक चेतना (A1 B1 E1) पर मौजूद कारक

मानसिक शक्ति प्राप्त करने के चार मार्ग (Cattaro iddhipada) = इरादा,

ऊर्जा, चेतना और ज्ञान जैसे मानसिक कारक मौजूद हैं

8 अलौकिक चेतना (A2 B2 E2)

4 ट्रान्स या झाना (कैटरी झानानी) = अनुप्रयुक्त-विचार,

निरंतर चिंतन, परमानंद, आनंद और मन की एकाग्रता (A2 B1 E1)

चार असीमित अवस्थाएँ (Cattasso appamannayo) = मानसिक कारक

प्रेम, करुणा और सहानुभूति जो मौजूद हैं

प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ सूक्ष्म-सामग्री ध्यान और उदासीनता

पांचवें ध्यान (A1 B1 E1) में मौजूद मानसिक कारक

पंचिन्द्रियानी (पांच इंद्रियां) = आस्था, ऊर्जा, जागरूकता,

एकाग्रता और ज्ञान जैसे मानसिक कारक 8 अलौकिक स्तरों पर मौजूद होते हैं।

चेतना (A1 B1 E1)

पंचबलानी के पाँच गुण = आस्था, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता, एकत्व

तीक्ष्णता और बुद्धिमत्ता, ये मानसिक कारक 8 अलौकिक स्तरों पर मौजूद हैं।

चेतना (A1 B1 E1)

ज्ञानोदय के 7 कारक (सत्त बोज्झंग) = सचेतनता,

बुद्धि, ऊर्जा, परमानंद, शांति (मानसिक कारकों और

चेतना), एकाग्रता और समभाव जैसे मानसिक कारक

8 अलौकिक चेतना (A1 B1 E1) पर मौजूद

महान आठ गुना पथ (एरियो अथांगिको मग्गो) = बुद्धि,

व्यावहारिक विचार, तीन संयम, ऊर्जा, जागरूकता और

एकाग्रता संबंधी मानसिक कारक 4 पथ-चेतना (A1 B1 E1) पर मौजूद हैं

समूह 7 से संपर्क करें

1. संपर्क (फासो) = 89 पर मौजूद संपर्क मानसिक कारक

चेतना (A1 B1 E1)

2. भावना (वेदना) - 89वें स्थान पर मौजूद मानसिक कारक की भावना

चेतना (A1 B1 E1)

3. धारणा (सन्ना) = 89 पर मौजूद मानसिक कारक की धारणा

चेतना (A1 B1 E1)

4. संकल्प (चेतना/चेतना) = 'संकल्पना मानसिक कारक जो 89 पर मौजूद है'

चेतना (A1 B1 E1)

5. चेतना (चित्तम) = 89 चेतना 1 1 7

6. निर्णय (अधिमोक्खो) — निर्णय लेने में मौजूद मानसिक कारक

89 चेतना, 2 x 5 चेतना को छोड़कर 10 और

संदेह चेतना के साथ था (अर्थात 89 - 11 = 78) (A1 B1 E1)

7. ध्यान (मानसिकरो) = 89 पर मौजूद ध्यान मानसिक कारक

चेतना (A1 B1 E1)

बाह्य सारणी (बहिरा मटिका)

I. त्रिक 22 (टीका 22)

1. (i) स्वस्थ अवस्थाएँ (कुसला धम्म) = 'स्वस्थ'

चेतना 21, मानसिक कारक 38 (A4 B2 E2)

(ii) अकुशल अवस्थाएँ (अकुशल धम्म) = अस्वास्थ्यकर

चेतना 12, मानसिक कारक 27 (A4 B2 E2)

(iii) अनिर्धारित अवस्थाएँ (अब्यकता धम्म) = परिणामी

चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक

कारक 38, पदार्थ 20 और निर्वाण (A5 B12 E18)

2. (i) सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ (सुखाय वेदनायसम्पयुत्त)।

धम्म) = आनंद से युक्त चेतना 63,

मानसिक कारक 52, भावना, घृणा को छोड़कर,

ईर्ष्या, कंजूसी, चिंता और संदेह (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E3)

(ii) दर्दनाक अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ (दुक्खया वेदनायसम्पयुत्त)।

धम्म) = चेतना जिसके साथ

दर्द 3, मानसिक कारक 27 (भावना, परमानंद, लालच को छोड़कर)

गलत दृष्टिकोण, अहंकार और संदेह (अर्थात 27 - 6 = 21) (A3 B2 E3)

(iii) ऐसी अवस्थाएँ जो ऐसी भावना से जुड़ी होती हैं जो न तो दर्दनाक होती हैं और न ही

सुखद (अदुक्खमासुखाय वेदनाय संपयुत्त

धम्म = उदासीनता से युक्त चेतना

55, मानसिक कारक 52, भावना, परमानंद, घृणा को छोड़कर,

ईर्ष्या, चिंता और कंजूसी (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E7)

3. (i) परिणामी अवस्थाएँ (विपाक धम्म) = परिणामी चेतना

36, मानसिक कारक 38 (A4 B2 E8)

(ii) परिणामी राज्य बनाने वाले राज्य (विपाक धम्म धम्म)

= अस्वस्थ चेतना 12, स्वस्थ चेतना

21, मानसिक कारक 52 (A4 B2 E2)

(iii) वे अवस्थाएँ जो न तो परिणामी हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करती हैं

अवस्थाएँ (नेवविपाक नविपाक धम्म धम्म) = निष्क्रिय

चेतना 20, मानसिक कारक 35, पदार्थ 28,

निब्बाना (A*5 B12 E13)

4. (i) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त होती हैं और अनुकूल होती हैं

आसक्ति (उपादिननुपादनिया धम्म) = सांसारिक परिणाम

चेतना 32, मानसिक कारक 35, कर्म-उत्पादित

मामला 20 (A5 B11 E17)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं बल्कि अनुकूल होती हैं

आसक्ति (अनुपदिननुपादनिया धम्म) = अस्वास्थ्यकर

चेतना 12, सांसारिक स्वस्थ चेतना

17, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक कारक 52, मन द्वारा निर्मित

पदार्थ 17, तापमान से उत्पन्न पदार्थ 15,

पोषक तत्वों से उत्पादित पदार्थ 14 (A5 B7 E8)

(iii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और अनुकूल नहीं होतीं

चिपकना (अनुपदिन्न अनुपदानिय धम्म) = सुप्रमुंडेन

चेतना 8, मानसिक कारक 36, निर्वाण (A*4 B2 E2)

5. (i) भ्रष्ट और भ्रष्ट करने वाले राज्य (Samkilittha samkilesika)

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12, मानसिक

कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) भ्रष्ट नहीं बल्कि भ्रष्ट करने वाले राज्य (Asamkilittha samkilesika)

धम्म) = सांसारिक, संपूर्ण चेतना 17, सांसारिक

परिणामी 32, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक

कारक 38, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(iii) न तो भ्रष्ट और न ही भ्रष्ट करने वाले राज्य (असमकिलित्था)

समकिलेसिका धम्म) = अलौकिक चेतना 8,

मानसिक कारक 36, निर्वाण (A*4 B2 E2)

6. (i) व्यावहारिक और सतत चिंतन वाले राज्य (सवित्तक्का)

(सविचारा धम्म) = व्यावहारिक विचार से युक्त चेतना

और निरंतर विचार 55, मानसिक कारक 52

व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार को छोड़कर (अर्थात

52 - 2 = 50) (A4 B2 E3)

(ii) व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन वाले राज्य

(अवितक्क विकारमत्त धम्म) = दूसरा झाना

चेतना 11, मानसिक कारक 38 (अनुप्रयुक्त विचार को छोड़कर)
और निरंतर चिंतन (अर्थात 38 - 2 = 36), 55 अनुप्रयुक्त चिंतन

55 वर्ष की आयु में मौजूद मानसिक कारक, व्यावहारिक और निरंतर विचार

चेतना (A4 B2 E2)

(iii) व्यावहारिक और निरंतर चिंतन से रहित राज्य

(अविताक्का अविचारा धम्म) = 55 चेतना के बिना

व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार के बिना, मानसिक

व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार को छोड़कर कारक 38
(अर्थात 38 - 2 = 36), 11 निरंतर-विचार मानसिक

द्वितीय ध्यान की 11वीं चेतना में उपस्थित कारक,

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E17)

7. (i) परमानंद से युक्त अवस्थाएँ (पितिसहागत धम्म)

परमानंद से युक्त चेतना 51, मानसिक

परमानंद, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी को छोड़कर कारक 52
चिंता और संदेह (अर्थात 52 - 6 = 46) (A4 B2 E2)

(ii) आनंद के साथ स्थितियाँ (सुखासहागत धम्म)

- आनंद से युक्त चेतना 63, मानसिक

भाव, परमानंद, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी को छोड़कर कारक 52
चिंता और संदेह (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E3)

(iii) उदासीनता के साथ राज्य (उपेक्खसहागता)।

धम्म = उदासीनता से युक्त चेतना

55, मानसिक कारक 52, भावना, परमानंद, घृणा को छोड़कर,
ईर्ष्या, चिंता और कंजूसी (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E7)

8. (i) प्रथम पथ द्वारा नष्ट किए गए राज्य (दस्सानेना पहतब्बा)

धम्म) - लोभ में निहित चेतना *8, चेतना

घृणा में निहित 2, संदेह चेतना 1, मानसिक

कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) उच्चतर तीन मार्गों द्वारा समाप्त किए गए राज्य (भवनय पहतब्बा)
धम्म = गलत दृष्टिकोण से अलग हुई चेतना

4. घृणा में निहित चेतना 2. बेचैनी चेतना

1, मानसिक कारक 27 गलत दृष्टिकोण को छोड़कर और

संदेह (अर्थात 27 - 2 = 25) (ए4 बी2 ई2)

(iii) वे राज्य जो न तो प्रथम मार्ग से और न ही उच्चतर मार्ग से समाप्त हुए 3

पथ (नेवदस्सनेना न भवनया पहतब्बा धम्म)

= संपूर्ण चेतना 21, परिणामी चेतना

36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक कारक 38, पदार्थ

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

9. (i) प्रथम पथ (दस्सानेना) द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्यों सहित

pahatabba hetuka dhamma) = चेतना

लोभ में निहित 8, घृणा में निहित चेतना 2, संदेह

चेतना 1, मानसिक कारक 27 भ्रम को छोड़कर

संदेह चेतना में उपस्थित (A4 B2 E2)

(ii) उच्चतर 3 मार्गों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्य

(भवनया पहतब्बा हेतुका धम्म) = चेतना

गलत दृष्टिकोण 4 से अलग, चेतना जड़ जमा चुकी है

घृणा 2, बेचैनी चेतना 1, मानसिक कारक 27

गलत धारणा, संदेह और केवल मौजूद भ्रम को छोड़कर

बेचैनी चेतना (अर्थात 27 - 2 = 25) (A4 B2 E2)

(iii) प्रथम पथ द्वारा न तो जड़ सहित राज्य नष्ट किए गए

न ही उच्चतर 3 पथों द्वारा (नेवादासनेन न भवनाय

pahatabba hetuka dhamma) = संपूर्ण चेतना

21, परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना

20, मानसिक कारक 38, भ्रम की उपस्थिति, भ्रम के 2 मूल कारण,

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

10. (i) पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ (अचयगामिनो धम्म)

= अस्वस्थ चेतना 12, सांसारिक स्वस्थ

चेतना 17, मानसिक कारक 52 (A4 B2 E2)

(ii) निब्बाना (अपाकायगामिनो धम्म) की ओर ले जाने वाले राज्य

= पथ चेतना 4, मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(iii) ऐसी अवस्थाएँ जो न तो पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाती हैं और न ही निर्वाण की ओर।

(नेवाकायागमिनापाकायागामिनो धम्म) = परिणामी

चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक

कारक 38, पदार्थ 28, निर्वाण (A*5 B12 E18)

11. (i) शिक्षार्थियों से संबंधित अवस्थाएँ (सेक्खा धम्म) = 8

अरहत्त फल प्राप्ति को छोड़कर अलौकिक चेतना,

मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(ii) अरहट्टा (असेक्खा धम्म) से संबंधित राज्य

= अरहत्ता फल प्राप्ति चेतना 1, मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(iii) वे राज्य जो न तो शिक्षार्थियों से संबंधित हैं और न ही अरहट्टा से।

(नेवासेक्खा-ना-सेक्खा धम्म) = सांसारिक चेतना

81, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

12. (i) परित्त धम्म (सीमित अवस्थाएँ) = संवेदी चेतना

54, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) उच्चतर अवस्थाएँ (महाग्गत धम्म) = उच्चतर चेतना

27, मानसिक कारक 35 (A4 B2 E2)

(iii) अतुलनीय अवस्थाएँ (अप्पमना धम्म) == सुपरमुंडेन

चेतना 8, मानसिक कारक 36 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

13. (i) सीमित उद्देश्यों वाले राज्य (परितरम्मन धम्म)

= संवेदी चेतना 54, अलौकिक शक्तियां 2,

मानसिक कारक 52 (A4 B2 E8)

(ii) उच्च उद्देश्यों वाले राज्य (महाग्गतरम्मन धम्म)

= अस्वस्थ चेतना 12, मन द्वार चेतावनी

1. महान स्वस्थ चेतना 8. महान निष्क्रिय चेतना

8, चेतना की अनंतता 3, न ही बोध

न ही अबोध चेतना 3, न ही अलौकिक शक्तियां 2,

मानसिक कारक 52, संयम को छोड़कर 3, असीमित 2

(अर्थात 52 - 5 = 47) (A4 B2 E2)

(iii) अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य (अप्पमपरम्मना)

धम्म) = मन-द्वार सजगता चेतना 1, महान

ज्ञान से संबंधित स्वस्थ चेतना 4,

ज्ञान से जुड़ी महान निष्क्रिय चेतना 4,

असाधारण शक्तियां 2, अलौकिक चेतना

8, मानसिक कारक 38 असीमित को छोड़कर 2 (अर्थात

38 - 2 = 36) (A4 B2 E2)

14. (i) निम्न अवस्थाएँ (हीन धम्म) = अस्वस्थ चेतना

12, मानसिक कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) मध्यम अवस्था (मज्झिमा धम्म) = सांसारिक संपूर्ण

चेतना 17, सांसारिक परिणामी चेतना 32,

निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक कारक 38, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(iii) उच्चतर अवस्थाएँ (पानित धम्म) = अलौकिक चेतना

8, मानसिक कारक 36, निर्वाण (A*4 B2 E2)

15. (i) गलत विचारों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य (मिच्छत्तनियत)

धम्म = गलत दृष्टिकोण का सातवाँ आवेग

संबद्ध चेतना 4, घृणा की सातवीं प्रेरणा 2

चेतना, मानसिक कारक 27 अभिमान को छोड़कर और

संदेह (अर्थात 27 - 2 = 25) (ए4 बी2 ई2)

(ii) सही दृष्टिकोणों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य (समत्तनियाता)

धम्म) = पथ चेतना 4, मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(iii) बिना नियत नियति वाले राज्य (अनियत धम्म) = 12 अहितकर

उपरोक्त (i) में उल्लिखित 7वें आवेगों को छोड़कर चेतना,

सांसारिक स्वस्थ चेतना 17, परिणामी

चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक

कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

16. (i) पथ विषय वाली अवस्थाएँ (मग्गराममन धम्म) = मन का द्वार

चेतावनी चेतना 1, महान स्वस्थ चेतना

ज्ञान 4 से संबंधित, महान निष्क्रिय

ज्ञान से संबंधित चेतना 4, अलौकिक

शक्तियां 2, मानसिक कारक 38, संयम को छोड़कर 3,

और असीमित 2 (अर्थात 38 - 5 = 33) (A4 B2 E2)

(ii) पथ द्वारा वातानुकूलित राज्य (मग्गहेतुका धम्म)

= पथ चेतना 4, मानसिक कारक 38 को छोड़कर

2 अपरिमेय (अर्थात 38 - 2 = 36) (ए4 बी2 ई2)

(iii) मार्ग द्वारा संचालित राज्य (मग्गधिपतिनो धम्म)

ज्ञान से जुड़ी महान, स्वस्थ चेतना

4. महान निष्क्रिय चेतना से जुड़ी हुई

ज्ञान 4, पथ चेतना 4, मानसिक कारक 38 को छोड़कर

अपरिमेय 2 (अर्थात 38 - 2 = 36) (ए4 बी2 ई2)

17. (i) उत्पन्न अवस्थाएँ (उपन्ना धम्म) = वर्तमान चेतना

89, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) राज्य उत्पन्न नहीं हुआ (अनुप्पन्न धम्म) = भविष्य अहितकर

चेतना 12, स्वस्थ चेतना 21, निष्क्रिय

चेतना 20, मानसिक कारक 52, मन द्वारा निर्मित

पदार्थ 17, तापमान से उत्पन्न पदार्थ 15,

पोषक तत्वों से उत्पादित पदार्थ 14 (A5 B7 E8)

(iii) उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ (उप्पडिनो धम्म) = भविष्य

परिणामी चेतना 36, मानसिक कारक 38, कर्म उत्पन्न

मामला 20 (A5 B11 E17)

18. (i) भूतकाल अवस्थाएँ (अतीत धम्म) = भूतकाल चेतना 89,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) भविष्य की अवस्थाएँ (अनगत धम्म) = भविष्य की चेतना89

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(iii) वर्तमान अवस्थाएँ (पच्चुप्पन्न धम्म) = वर्तमान चेतना 89,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

19. (i) भूतकाल के कर्मों से युक्त अवस्थाएँ (अतितरम्मन धम्म) — मन का द्वार

जागरूकता 1, संवेदी आवेग 29,

चेतना का पंजीकरण 11, अलौकिक शक्तियां 2,

चेतना की अनंतता 3, न तो धारणा और न ही

गैर-बोध चेतना 3, मानसिक कारक 52 को छोड़कर
संयम 3, और असीमित *2* (अर्थात 52 - 5 = 47) (A4 B2 E2)

(ii) भविष्य की वस्तु वाले राज्य (अनागतरम्मन धम्म)

= मन-द्वार जागरूकता चेतना 1, संवेदी आवेग

29, चेतना का पंजीकरण 11, अलौकिक शक्तियाँ

2, मानसिक कारक 52 असीमितता को छोड़कर 2 (अर्थात 52 — 2

= 50 (A4 B2 E2)

(iii) वर्तमान उद्देश्य वाले राज्य (पच्चुप्पन्नारम्मन धम्म)

= 2 X 5 चेतना 10, मन तत्व 3, मन-द्वार

जागरूकता 1, संवेदी आवेग 29,

चेतना का पंजीकरण 11, अलौकिक शक्तियां 2, मानसिक

52 के गुणनखंड, असीमित 2 को छोड़कर (अर्थात 52 - 2 = 50) (A4 B2 E8)

20. (i) आंतरिक अवस्थाएँ (अज्जत्त धम्म) = चेतना 89,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) बाह्य अवस्थाएँ (बहिद्ध धम्म) = चेतना 89,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

(iii) आंतरिक और बाह्य अवस्थाएँ (अज्जत्त बहिद्ध धम्म)

= चेतना 89, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

21. (i) आंतरिक उद्देश्य वाले राज्य (अज्जत्तरम्मन धम्म)

= संवेदी चेतना 54, अलौकिक शक्तियां 2,

चेतना की अनंतता 3, न तो बोध और न ही अबोध

चेतना 3, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

ईर्ष्या और असीमित 2 (अर्थात 52 - 3 = 49) (A4 B2 E8)

(ii) बाह्य वस्तु से युक्त अवस्थाएँ (बहिद्धरम्मन धम्म)

= संवेदी चेतना 54, अलौकिक शक्तियां 2,

सूक्ष्म-भौतिक चेतना 15, 2 को छोड़कर, अलौकिक

शक्तियां, अंतरिक्ष की अनंतता 3, अलौकिक चेतना 8,

मानसिक कारक 52 कंजूसी को छोड़कर (अर्थात 52 - 1 = 51) (A4 B2 E8)

(iii) आंतरिक और बाह्य उद्देश्य वाले राज्य (अज्जत्ता बहिद्धरम्मन)

धम्म) = संवेदी चेतना 54,

अलौकिक शक्तियां 2, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

कंजूसी, ईर्ष्या और असीमित 2 (अर्थात 52 - 4 = 48) (A4 B2 E8)

22. (i) दृश्य और प्रभाव डालने वाली दोनों अवस्थाएँ (सनिदसना सप्पतिघा)

धम्म) = दृश्य वस्तु (A1 B1 E1)

(ii) अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाएँ (अनिदस्सनप्पतिघा)

धम्म) = स्थूल पदार्थ 12 दृश्य वस्तुओं को छोड़कर

(अर्थात 12 - 1 = 11) (A1 B9 E9)

(iii) ऐसी स्थितियाँ जो दिखाई नहीं देतीं और प्रभावित नहीं करतीं (अनिदासन-अप्पतिघा)।

धम्म) = चेतना 89, मानसिक कारक 52,

सूक्ष्म पदार्थ 16 और निर्वाण (A*5 B2 E8)

II. दोहे 100 (दुका 100)

I. रूट क्लस्टर 6 (हेतु गोचक्कम 6)

1. (i) मूल अवस्थाएँ (हेतु धम्म) = मूल की 6 अवस्थाएँ

अर्थात्: लोभ, घृणा, भ्रम, लोभहीनता, घृणाहीनता

भ्रम रहित (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो मूल नहीं हैं (नहेतु धम्म) = चेतना

89, मानसिक कारक 52 (6 मूलों को छोड़कर), पदार्थ 28,

निब्बाना (A*5 B12 E18)

2. (i) वे राज्य जिनमें सहबद्ध मूल (सहेतुका धम्म) होते हैं

= चेतना जिसमें संबद्ध मूल 71, मानसिक

दो भ्रम-आधारित कारकों में से भ्रम को छोड़कर 52 कारक

चेतना (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जिनका कोई मूल नहीं है (अहेतुक धम्म) = चेतना

बिना जड़ों के 18, मानसिक कारक 13 को छोड़कर

इरादा, भ्रम, भ्रम-आधारित चेतना में मौजूद 2

मामला 28, निर्वाण (A*5 B12 E18)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो मूलों से संबंधित हैं (हेतु सम्पायुत्त)

धम्म) = उपरोक्त 2 (i) के समान (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो मूलों से विरक्त हैं (हेतु विप्पयुत्त)

धम्म) = उपरोक्त 2 (ii) के समान (A*5 B12 E18)

4. (i) वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और जिनके साथ संबद्ध मूल भी हैं

(हेतु सेवा स-हेतुका च धम्म) = 6 जड़ों को छोड़कर

दो भ्रामक चेतनाओं (A1 B1 E1) में भ्रम मौजूद है

(ii) वे अवस्थाएँ जिनके संबद्ध मूल हैं लेकिन वे स्वयं मूल नहीं हैं (साहेतुका)

सेवा न च हेतु धम्म) = चेतना जो

संबंधित मूल 71, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

6 मूल (A4 B2 E2)

5. (i) वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और मूलों से संबद्ध भी हैं (हेतु)

सेवा हेतु संपायुत्त धम्म) = उपरोक्त 4 (i) के समान (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो मूलों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं मूल नहीं हैं

(हेतु संपायुत्त सेवा न च हेतु धम्म) ;= समान

4 (ii) उपरोक्त (A4 B2 E2)

6. (i) वे अवस्थाएँ जो मूल नहीं हैं, परन्तु उनसे संबंधित मूल हैं (नाहेतु)

सहेतुका धम्म) = उपरोक्त 4 (ii) के समान (ए4 बी2 ई2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो न तो मूल हैं और न ही उनसे संबंधित मूल हैं

(Nahetu ahetuka dhamma) = उपरोक्त 2 (ii) के समान (A*5 B12 E18)

द्वितीय. लघु मध्यवर्ती दोहे 7 (कुलनतारा डुकम 7)

1. (i) चार कारणों से उत्पन्न अवस्थाएँ (सप्पच्चया धम्म) = चेतना

89, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं (अप्पच्चया धम्म)

= निब्बाना (ए_ बी1 ई1)

2. (i) चार कारणों से बद्ध अवस्थाएँ (संखत धम्म) = समान

जैसा कि 1 (i) ऊपर (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से बाध्य नहीं हैं (असंखत धम्म)

= उपरोक्त 1 (ii) के समान (A_ B1 E1)

3. (i) दृश्यता वाली अवस्थाएँ (सा-निदासन धम्म) = दृश्य

वस्तु (A1 B1 E1)

(ii) दृश्यताहीन अवस्थाएँ (अ-निदासन धम्म) = चेतना

89, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 को छोड़कर

दृश्य वस्तु (अर्थात 28 - 1 = 27), और निर्वाण (A*5 B11 E17)

4. (i) प्रभाव डालने वाले (सप्पतिघा धम्म) राज्य = स्थूल

मामला 12 (A1 B10 E10)

(ii) बिना किसी बाधा के अवस्थाएँ; (अप्पतिघा धम्म) = चेतना

89, मानसिक कारक 52, सूक्ष्म पदार्थ 16 और

निब्बाना (ए*5 बी2 ई8)

5. (i) वे अवस्थाएँ जिनमें भौतिक परिवर्तन होता है (रूपिनो धम्म)

= विषय 28 (A1 B11 E11)

(ii) वे अवस्थाएँ जिनमें कोई भौतिक परिवर्तन नहीं होता (अरुपिनो धम्म)

= चेतना 89, मानसिक कारक 52 और निर्वाण (A*4 B2 E8)

6. (i) सांसारिक अवस्थाएँ (लोकीय धम्म) = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52 और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो सुपरमुंडेन (लोकुत्तरा धम्म) हैं

= अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक 36 और

निब्बाना (ए* 4 बी2 ई2)

7. (i) वे अवस्थाएँ जो किसी एक नेत्र-चेतना आदि द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं।

(केनासिविन्नेय्या धम्म) = चेतना 89, मानसिक

कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो किसी भी प्रत्यक्ष चेतना द्वारा ज्ञात न हों,

आदि (केनासि न विन्नेया धम्म) = चेतना 89,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

तृतीय. नासूर समूह 6 (असवा गोचक्कम 6)

1. (i) वे अवस्थाएँ जो दोष हैं (आसव धम्म) = लोभ,

गलत धारणा और भ्रम (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो दोष नहीं हैं। (कोई आसव धम्म नहीं) = चेतना

89, मानसिक कारक 52, 3 अवस्थाओं को छोड़कर

कैंकर (अर्थात 52 - 3 = 49), पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

2. (i) वे राज्य जो विकारों (ससव धम्म) के शिकार हैं

= सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) ऐसे राज्य जो नासूर नहीं हैं (ए-नासाव धम्म)

= अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक 36 और

निब्बाना (ए*4 बी2 ई2)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो कैंकर (आसवासम्पायुत्त) से संबंधित हैं

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12, मानसिक

कारक 27, मतिभ्रम को छोड़कर, 2 घृणा-आधारित

चेतना और 2 भ्रम-आधारित चेतना (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो रोगों से मुक्त हैं (आसव विपयुत्त)

धम्म) = संपूर्ण चेतना 21, परिणामी 36,

निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38, भ्रम मौजूद 2

घृणा से उपजी चेतना और भ्रम से उपजी चेतना,

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

4. (i) वे राज्य जो दोष उत्पन्न करने वाले और दोष उत्पन्न करने वाले दोनों हैं

(असव सेवा ससाव च धम्म) = नासूर की 3 अवस्थाएँ

अर्थात्: लोभ, गलत धारणा और भ्रम (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो दोष के शिकार हैं लेकिन दोष नहीं हैं (ससावा)

सेवा नो च आसव धम्म) = सांसारिक चेतना 81,

मानसिक कारक 52, कैंकर की 3 अवस्थाओं को छोड़कर (अर्थात

52 - 3 = 49) और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

5. (i) ऐसी अवस्थाएँ जो रोगग्रस्त हों और रोगग्रस्त अवस्थाओं से संबंधित हों

(आसव सेवा असव संपयुत्त च धम्म) = 3 नासूर

अर्थात्: लोभ, गलत धारणा और भ्रम जो मौजूद हैं

8 लालच से उपजी चेतना (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो कैंकर से संबंधित हैं लेकिन स्वयं कैंकर नहीं हैं

(असव संपयुत्त सेवा नो च आसव धम्म) = अहितकर

चेतना 12, मानसिक कारक 27 को छोड़कर

3 कैंकर (अर्थात 27 - 3 = 24) (A4 B2 E2)

6. (i) वे अवस्थाएँ जो दोषों से विरक्त हैं, परन्तु जिनके विषय हैं

नासूर (असव विप्पयुत्त ससाव धम्म) = सांसारिक

स्वस्थ चेतना 17, सांसारिक परिणाम 32,

निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38, भ्रम मौजूद 2

घृणा से उपजी और भ्रम से उपजी चेतना और

मामला 28 (A6 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो दोषों से विरक्त हैं और वस्तुएँ नहीं हैं

नासूरों का (असव विप्पयुत्त अनासव धम्म) = सुप्रामुंडेन

चेतना 8, मानसिक कारक 36 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

IV. बंधन समूह 6 (संयोजन गोच्छकम 6)

1. (i) वे अवस्थाएँ जो बंधन हैं (संयोजन धम्म) = 8 अवस्थाएँ

उन बंधनों के बारे में जो इस प्रकार हैं: लोभ, घृणा, अहंकार, गलत दृष्टिकोण।

संदेह, ईर्ष्या, कंजूसी और भ्रम (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो बंधन नहीं हैं (कोई संयोजन धम्म नहीं)

= चेतना 89, मानसिक कारक 52, 8 बंधनों को छोड़कर

(अर्थात 52 - 8 = 44), विषय 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

2. (i) वे राज्य जो बंधनों के अधीन हैं (संयोजनीय धम्म)

= सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो बंधनों के अधीन नहीं हैं (अ-समयोजनीय)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो बंधनों से जुड़ी हैं (संयोजन सम्पायुत्त)

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12,

मानसिक कारक 27, बेचैनी में मौजूद भ्रम को छोड़कर-

साथ-साथ चेतना (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो बंधनों से मुक्त हैं (संयोजन)

विपयुत्त धम्म) = संपूर्ण चेतना 21,

परिणामी 36, निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38, भ्रम

बेचैनी से ग्रस्त चेतना में उपस्थित, पदार्थ

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

4. (i) वे अवस्थाएँ जो बंधन भी हैं और बंधनों की वस्तुएँ भी (संयोजन)

सेवा समन्वय च धम्म) = बंधनों की 8 अवस्थाएँ (ए1 बी1 ई1)

(ii) वे राज्य जो बंधनों के अधीन हैं, परन्तु स्वयं बंधन नहीं हैं

(संयोजनीय सेवा नो च समन्वय धम्म) = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52, 8 अवस्थाओं को छोड़कर

बेड़ियाँ (अर्थात 52 - 8 = 44) और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

5. (i) वे अवस्थाएँ जो बंधन भी हैं और बंधनों से संबद्ध भी हैं

(संयोजन सेवा समन्वय संपायुत्त च धम्म)

= बेचैनी की अवस्था में मौजूद भ्रम को छोड़कर बंधनों की 8 अवस्थाएँ-

साथ-साथ चेतना (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो बंधनों से जुड़े हैं लेकिन स्वयं बंधन नहीं हैं

(संयोजन संपायुत्त सेवा नो च समन्वय धम्म)

- अस्वस्थ चेतना 12, मानसिक कारक 27

बंधनों की 8 अवस्थाओं को छोड़कर (अर्थात 27 - 8 = 19) (A4 B2 E2)

6. (i) वे राज्य जो बंधनों से मुक्त हैं, परन्तु जिनके वे विषय हैं

बेड़ियाँ (संयोजना विप्पयुत्त समयोजनीय धम्म)

= सांसारिक स्वस्थ चेतना 17, सांसारिक

परिणामी 32, निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38, भ्रम

बेचैनी से ग्रस्त चेतना में उपस्थित और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो बंधनों से मुक्त हैं और वस्तुएँ नहीं हैं

बंधनों का (Samyojana vippayutta a-samyojaniya dhamma)

— अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक 36 और

निब्बाना (ए*4 बी2 ई2)

वी. टाई क्लस्टर्स 6 (गंथा गोचक्कम 6)

1. (i) वे अवस्थाएँ जो बंधन (गांठ एवं धम्म) हैं = बंधन की 3 अवस्थाएँ

अर्थात्: लोभ, घृणा और गलत दृष्टिकोण (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो बंधन नहीं हैं (कोई गंथा धम्म नहीं) — चेतना

89, मानसिक कारक 52, संबंधों की 3 अवस्थाओं को छोड़कर (अर्थात

52 — 3 = 49), मैटर 28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

2. (i) वे राज्य जो बंधों (गंथनीय धम्म) के विषय हैं

= सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो संबंधों की वस्तु नहीं हैं (ए-गंथानिया धम्म)

= अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक 36

और निर्वाण *4 2 2

3. (i) वे राज्य जो संबंधों से जुड़े हैं (गंथा सम्पायुत्ता)

धम्म) = लोभ से उपजी चेतना 8, घृणा से उपजी

चेतना 2, मानसिक कारक 27, लालच को छोड़कर मौजूद

चेतना 4 वर्ष की आयु में गलत दृष्टिकोण और घृणा से अलग हो जाती है।

घृणा से उपजी चेतना और संदेह (अर्थात) पर उपस्थित

27 - 2 = 25) (A4 B2 E2)

(ii) वे राज्य जो बंधनों से विरक्त हैं (गंथ विपयुत्त)

धम्म) = भ्रम पर आधारित चेतना 2, स्वस्थ

चेतना 21, परिणामी 36, निष्क्रिय 20, मानसिक

कारक 52, लालच, गलत धारणा, अहंकार, घृणा को छोड़कर,

ईर्ष्या, कंजूसी, चिंता, आलस्य, सुस्ती (अर्थात 52 - 9 = 43)

चौथी चेतना में मौजूद लालच गलत दृष्टिकोण से अलग हो जाता है।

घृणा, घृणा से उपजी चेतना और पदार्थ में मौजूद है।

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

4. (i) वे राज्य जो संबंध और संबंधों के विषय दोनों हैं (गंथा सेवा)

गंथनिया च धम्म) = संबंधों की 3 अवस्थाएँ (ए1 बी1 ई1)

(ii) वे राज्य जो संबंधों के विषय तो हैं, लेकिन स्वयं संबंध नहीं हैं (गंथनिया)

सेवा नो च गंथा धम्म) = सांसारिक चेतना 81,

मानसिक कारक 52, टाई की 3 स्थितियों को छोड़कर (अर्थात 52 - 3)

= 49) और मामला 28 (A5 B12 E18)

5. (i) वे राज्य जो संबंधों से जुड़े हुए हैं और उनसे संबद्ध भी हैं (गांथा

सेवा गंथा संपयुत्त च धम्म) - संबंधों की 2 अवस्थाएँ

अर्थात्: 4 चेतना में मौजूद लालच और गलत दृष्टिकोण

गलत दृष्टिकोण से संबंधित (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो संबंधों से जुड़े हैं लेकिन स्वयं संबंध नहीं हैं

(गंथा संपयुत्त सेवा नो च गंथा धम्म) = लालच से युक्त

चेतना 8, घृणा से उपजी चेतना 2,

मानसिक कारक 27, संबंधों और संदेह की 3 अवस्थाओं को छोड़कर

(अर्थात 27 - 4 = 23) (A4 B2 E2)

6. (i) वे राज्य जो संबंधों से विरक्त हैं, परन्तु संबंधों के विषय हैं

(गंथा विप्पयुत्त गंथानिया धम्म) = भ्रम-जड़ित

चेतना 2, सांसारिक स्वस्थ चेतना

17, सांसारिक परिणाम 32, निष्क्रिय 20, मानसिक

कारक 52, लालच, गलत धारणा, अहंकार, घृणा को छोड़कर,

ईर्ष्या, कंजूसी, चिंता, आलस्य और सुस्ती (अर्थात 52 - 9 = 43)

चौथी चेतना में मौजूद लालच गलत दृष्टिकोण से अलग हो जाता है।

घृणा 2 घृणा-आधारित चेतना में मौजूद है और

मामला 28 (A6 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो संबंधों से विरक्त हैं और जिनके विषय नहीं हैं

संबंध (गंथा विप्पयुत्त ए-गंथानिया धम्म) = सुप्रमुंडेन

चेतना 8, मानसिक कारक 36 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

VI. बाढ़ समूह 6 (ओघा गोचक्कम 6)

(कैंकर क्लस्टर के समान)

वी II.* बंध समूह 6 (योग गोच्छकम 6)

(कैंकर क्लस्टर के समान)

वी II . हिंड्रेंस क्लस्टर 6 (निवारण गोचक्कम 6)

1. (i) वे अवस्थाएँ जो बाधक हैं (निवारण धम्म) = 8 अवस्थाएँ

बाधाओं में शामिल हैं: लोभ, घृणा, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी।

चिंता, संदेह और भ्रम (A1 B1 E1)

(ii) राज्य जो बाधा नहीं हैं (कोई निवारण धम्म नहीं)

चेतना 89, मानसिक कारक 52 (8 अवस्थाओं को छोड़कर)

बाधाओं (अर्थात 52 - 8 = 44), पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

2. (i) वे अवस्थाएँ जो अवरोध उत्पन्न करती हैं (निवारणीय धम्म)

= सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो बाधाओं के विषय नहीं हैं (अ-निवरनिया)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो अवरोधों (निवारण) से जुड़ी हैं

संपयुत्त धम्म) — अस्वस्थ चेतना 12,

मानसिक कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो बाधाओं से मुक्त हैं (निवारण)

विपयुत्त धम्म) = संपूर्ण चेतना 21,

परिणामी 36, निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38, पदार्थ 28,

निब्बाना (A*5 B12 E18)

4. (i) वे राज्य जो बाधाएँ भी हैं और बाधाओं के विषय भी हैं

(निवारण सेवा निवारनीय च धम्म) = 8 अवस्थाएँ

बाधाएँ (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो बाधाओं के विषय हैं लेकिन स्वयं बाधा नहीं हैं

(निवारणीय सेवा नो च निवारण धम्म) = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52, 8 अवस्थाओं को छोड़कर

बाधाएँ (अर्थात 52 - 8 = 44) और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

5. (i) वे राज्य जो बाधक भी हैं और उनसे जुड़े भी हैं

बाधाएँ (निवारण सेवा निवारण संपायुत्त च।)

धम्म) = अवरोधों की 8 अवस्थाएँ (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो बाधाओं से जुड़े हैं लेकिन नहीं हैं

बाधाएँ (निवारण संपयुत्त सेवा नो च निवारण

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12, मानसिक

बाधाओं की 8 अवस्थाओं को छोड़कर कारक 27 (अर्थात 27 - 8)

= 19) (A4 B2 E2)

6. (i) वे अवस्थाएँ जो बाधाओं से विरक्त हैं परन्तु वस्तुएँ हैं

बाधाओं का निवारण (निवारण विप्पयुत्त निवारनीय धम्म)

= सांसारिक स्वस्थ चेतना 17, सांसारिक

परिणामी 32, निष्क्रिय 20, मानसिक कारक 38 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो बाधाओं से मुक्त हैं और नहीं हैं

बाधाओं की वस्तुएँ (निवारण विप्पयुत्त नो निवारनिया)।

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

IX. गलतफहमियों के समूह 5 (परमसा गोच्छकम 5)

1. (i) वे अवस्थाएँ जो भ्रम (परमसा धम्म) हैं

= गलत धारणा की स्थिति जो गलत दृष्टिकोण है (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ नहीं हैं (कोई परमासा नहीं)

धम्म) = चेतना 89, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

गलत दृष्टिकोण (अर्थात 52 - 1 = 51), मामला 28 और

निर्वाण *5 12 18

2. (i) वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय हैं (परमत्थ)

धम्म) = सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52

और मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं (अ-परमत्था)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो गलतफहमियों से जुड़ी हैं (परमसा)

संपयुत्त धम्म) = चेतना 4 साथ

गलत दृष्टिकोण के साथ, मानसिक कारक 27 को छोड़कर

गलत धारणा, अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी, चिंता और

संदेह (अर्थात् 2 7 - 7 = 20) (ए4 बी2 ई2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो गलतफहमियों से मुक्त हैं (परमसा)

विपयुत्त धम्म) = चेतना 4 विच्छेदित

गलत दृष्टिकोण, घृणा से उपजी चेतना 2, भ्रम से उपजी

चेतना 2, स्वस्थ चेतना 21,

परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20,

गलत दृष्टिकोण को छोड़कर मानसिक कारक 52 (अर्थात 52 - 1 = 51),

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

4. (i) वे राज्य जो गलतफहमियों के भी स्रोत हैं और गलतफहमियों का शिकार भी हैं

(परमसा सेवा परमथ च धम्म)

= गलत धारणा की स्थिति जो गलत दृष्टिकोण है 1 1 1

(ii) वे राज्य जो गलतफहमियों के शिकार हैं लेकिन वास्तव में नहीं हैं

गलतफहमियां (परमत्था सेवा नो सीए परमासा

धम्म) = सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52

गलत दृष्टिकोण (अर्थात 52 - 1 = 51) और विषय 28 (A5 B12 E18) को छोड़कर

5. (i) वे राज्य जो गलतफहमियों से अलग हो चुके हैं, लेकिन

गलतफहमी की वस्तुएँ (परमसा विप्पयुत्त परमत्था)।

धम्म) = चेतना 4 से अलग

गलत दृष्टिकोण, घृणा से उपजी चेतना 2, भ्रम से उपजी

चेतना 2, सांसारिक स्वस्थ चेतना 17,

सांसारिक परिणामी चेतना 32, निष्क्रिय चेतना

20, मानसिक कारक 52 गलत दृष्टिकोण को छोड़कर

(अर्थात 52 —1 = 51) और मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो गलतफहमियों से मुक्त हैं और

गलतफहमियों के विषय नहीं (परमसा विपयुत्त)

(परमत्थ धम्म) = अलौकिक चेतना

8, मानसिक कारक 36 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

X. महामध्यवर्ती दोहे 14 (महंतरा दुकम 14)

1. (i) वे अवस्थाएँ जिनमें वस्तुएँ होती हैं (सारम्मन धम्म) = चेतना

89 और मानसिक कारक 52 (A4 B2 E8)

(ii) ऐसे राज्य जिनके पास कोई वस्तु नहीं है (अनारम्मन धम्म)

= मैटर 28 और निर्वाण (A*1 B11 E11)

2. (i) चेतना की अवस्थाएँ (चित्त धम्म) = चेतना

89 (A1 B1 E7)

(ii) वे अवस्थाएँ जो चेतना नहीं हैं (चित्त धम्म नहीं)

= मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*4 B11 E11)

3. (i) वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं (चेतसिका धम्म)

= मानसिक कारक 52 (A3 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक नहीं हैं (अ-चेतसिका धम्म)

= चेतना 89, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*2 B12 E18)

4. (i) चेतना से संबंधित अवस्थाएँ (चित्त-संपयुत्त)

धम्म) = मानसिक कारक 52 (A3 B1 E1)

(ii) चेतना से विरक्त अवस्थाएँ (चित्त-विप्पयुत्त)

धम्म) = पदार्थ 28 और निब्बान (ए*1 बी11 ई11)

5. (i) चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ (चित्त-संस्था)

धम्म) = उपरोक्त 4 (i) के समान (A3 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी नहीं हैं

(चित्तविसंसत्थ धम्म) = उपरोक्त 4 (ii) के समान (A*1 B11 E11)

6. (i) चेतना द्वारा उत्पन्न अवस्थाएँ (चित्त-समुत्थाना)

धम्म) = मानसिक कारक 52 और मन द्वारा निर्मित

मामला 17 (A4 B6 E6)

(ii) वे अवस्थाएँ जो चेतना द्वारा उत्पन्न नहीं होतीं (नो-चित्त-समुत्थाना)

धम्म) = चेतना 89, कर्म उत्पन्न

पदार्थ 20, तापमान से उत्पन्न पदार्थ 15,

पोषक तत्व-उत्पादित पदार्थ 14 और निर्वाण (A*2 B12 E18)

7. (i) चेतना के साथ उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ (चित्त-सहभुनो)

धम्म) = मानसिक कारक 52, और संकेत 2 (A4 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो चेतना के साथ उत्पन्न नहीं होतीं (नो-चित्त-

सहभुनो धम्म) = चेतना 89, पदार्थ 28

2 संकेतों (अर्थात 28 - 2 = 26) और निर्वाण (A*2 B12 E18) को छोड़कर

8. (i) चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ (चित्तनुपरिवत्तिनो)

धम्म) = उपरोक्त 7 (i) के समान (A4 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न नहीं होतीं

(No-citta-nuparivattino dhamma) = उपरोक्त 7 (ii) के समान। (A*2 B12 E18)

9. (i) वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं और इससे उत्पन्न भी होती हैं

चेतना (चित्त-संसत्था-समुत्थाना धम्म)

= उपरोक्त 3 (i) के समान (A3 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो इससे जुड़े हुए नहीं हैं और इससे उत्पन्न नहीं हुए हैं

चेतना (No-citta-samsattba samutthana dhamma)

- उपरोक्त 3 (ii) के समान (A*2 B12 E18)

10. (i) वे राज्य जो किसी अन्य राज्य से जुड़े हुए हैं, उससे उत्पन्न होते हैं और उससे उत्पन्न होते हैं

चेतना के साथ (चित्त-संसत्था समुत्थाना)

सहभुनो धम्म) = ऊपर 9 (i) के समान (A3 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो संयुक्त नहीं हैं, वे उत्पन्न नहीं होते हैं

और चेतना के साथ उत्पन्न नहीं होते (नो-चित्त-संसत्था-

समुत्थान-सहभूनो धम्म) - ऊपर 9 (ii) के समान (ए*2 बी12 18)

11. (i) वे राज्य जो जुड़े हुए हैं, जिनसे उत्पन्न होते हैं और जिनसे उत्पन्न होते हैं

चेतना के साथ क्रमिक रूप से (चित्त-संसत्था-समुत्थाना-)

नुपरिवत्तिनो धम्म) = ऊपर 9 (i) के समान (ए3 बी1 ई1)

(ii) वे राज्य जो संयुक्त नहीं हैं, वे उत्पन्न नहीं होते हैं

और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न नहीं होते (नो-चित्तसमसत्था-

samutthana-nuparivattino dhamma) = उपरोक्त 9 (ii) के समान (A*2 B12 C18)

12. (i) आंतरिक अवस्थाएँ (अज्जत्तिक धम्म) = चेतना

89, संवेदनशील मामला 5 (A2 B6 E12)

(ii) बाह्य अवस्थाएँ (बहिर धम्म) = मानसिक

कारक 52, पदार्थ 28, 5 संवेदनशील पदार्थ को छोड़कर (अर्थात

28 - 5 = 23) और निब्बान (ए*4 बी6 ई 6)

13. (i) व्युत्पन्न अवस्थाएँ (उपद धम्म) = व्युत्पन्न

मामला 24 (A1 B10 E10)

(ii) वे अवस्थाएँ जो व्युत्पन्न नहीं हैं (नो-उपद धम्म) = चेतना

89, मानसिक कारक 52, महान प्राथमिक पदार्थ 4 और निर्वाण (A*5 B3 E9)

14. (i) आसक्ति से प्राप्त होने वाली अवस्थाएँ (उपादिन्न धम्म)

= सांसारिक परिणामी चेतना 32, मानसिक कारक 35

और कर्म-उत्पादित पदार्थ 20 (A5 B11 E17)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं (अनुपदिन्ना)

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12, स्वस्थ

चेतना 21, निष्क्रिय चेतना 20, फल प्राप्ति

चेतना 4, मानसिक कारक 52, मन द्वारा निर्मित पदार्थ

17, तापमान से उत्पन्न पदार्थ 15, पोषक तत्व से उत्पन्न

मामला 14 और निर्वाण (A*5 B7 E8)

XI. चिपकने वाले समूह 6 (उपादान गोचक्कम 6)

1. (i) आसक्ति की अवस्थाएँ (उपदान धम्म) = आसक्ति

राज्यों का नाम इस प्रकार है: लालच और गलत दृष्टिकोण (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से रहित हैं (नो-उपदान धम्म)

= चेतना 89, मानसिक कारक 52 (2 को छोड़कर)

आसक्ति अवस्थाएँ (अर्थात 52 - 2 = 50), पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

2. (i) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति का विषय हैं (उपदानीय धम्म)

- सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52 और

मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति का विषय नहीं हैं (अनुपदानिया)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

3. (i) आसक्ति से संबंधित अवस्थाएँ (उपदान-संपयुत्त)

धम्म) = लोभ से उपजी चेतना 8, मानसिक

4 चेतना स्तर पर मौजूद लालच को छोड़कर कारक 27।

गलत दृष्टिकोण, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी से विरक्त।

चिंता और संदेह (अर्थात 27 - 5 = 22) (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से मुक्त हैं (उपदान-विप्पयुत्त)

धम्म) = घृणा से उपजी चेतना 2, भ्रम से उपजी

चेतना 2, स्वस्थ चेतना 21,

परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20,

मानसिक कारक 52, लालच, गलत धारणा और अहंकार को छोड़कर

(अर्थात 52 - 3 = 49), 4 चेतना पर मौजूद लालच अलग हो गया

गलत दृष्टिकोण से, मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

4. (i) वे अवस्थाएँ जो आसक्तिकारी भी हैं और आसक्ति की वस्तुएँ भी हैं

(उपादान सेवा उपदानिय च धम्म) = चिपकने वाली अवस्था

अर्थात्: लोभ और गलत दृष्टिकोण (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो आसक्ति के विषय हैं, परन्तु स्वयं आसक्ति नहीं हैं

(उपदानिय सेवा नो च उपादान धम्म) = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52, 2 अवस्थाओं को छोड़कर

आसक्ति (अर्थात 52 - 2 = 50) और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

5. (i) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से ग्रस्त हैं और आसक्ति से संबद्ध हैं

(उपादान सेवा उपादान संपायुत्त च धम्म) = 2

4 चेतना स्तर पर मौजूद आसक्ति की अवस्थाएँ साथ-साथ चलती हैं

गलत दृष्टिकोण के साथ (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से संबंधित हैं, परन्तु स्वयं आसक्ति नहीं हैं

(उपादान संपायुत्त सेवा नो च उपादान धम्म)

= लोभ से उपजी चेतना 8, मानसिक कारक 22 को छोड़कर

आसक्ति की दो अवस्थाएँ (अर्थात 22 - 2 = 20) (A4 B2 E2)

6. (i) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से विरक्त हैं, परन्तु जिनके विषय हैं

चिपकना (उपादान-विप्पयुत्त उपदानिय धम्म)

= घृणा से उपजी चेतना 2, भ्रम से उपजी चेतना

2, सांसारिक स्वस्थ चेतना 17,

सांसारिक परिणामी चेतना 32, निष्क्रिय चेतना

20, मानसिक कारक 52 (लालच और गलत दृष्टिकोण को छोड़कर)

और अहंकार (अर्थात 52 - 3 = 49), लालच जो 4 पर मौजूद है

गलत दृष्टिकोण और पदार्थ से अलग हुई चेतना 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से मुक्त हैं और नहीं हैं

चिपकने वाली वस्तुएँ (उपादान-विप्पयुत्त अनुपदानिया)।

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक

36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

XII. भ्रष्टाचार समूह 8 (किलेसा गोच्चकम 8)

1. (i) भ्रष्ट राज्य (किलेसा धम्म) = दस राज्य

भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं: लोभ, घृणा, भ्रम, अहंकार।

गलत धारणा, संदेह, आलस्य, बेचैनी, निर्लज्जता और

निडरता (A1 B1 E1)

(ii) वे अवस्थाएँ जो भ्रष्टता नहीं हैं (नो-किलेसा धम्म)

= चेतना 89, मानसिक कारक 52 (10 को छोड़कर)

भ्रष्टाचार की अवस्थाएँ (अर्थात 52 - 10 = 42), पदार्थ 28 और

निब्बाना (A*5 B12 E18)

2. (i) वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार हैं (समकिलेसिका)

धम्म) = सांसारिक चेतना 81, मानसिक कारक 52

और मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं (अ-सैहकिलेसिका)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक

36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

3. (i) भ्रष्ट राज्य (समकिलित्थ धम्म) = अस्वास्थ्यकर

चेतना 12, मानसिक कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्ट नहीं हैं (अ-समकिलित्थ धम्म)

= संपूर्ण चेतना 21, परिणामी चेतना

36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक कारक 38, पदार्थ

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

4. (i) भ्रष्टाचार से जुड़े राज्य (किलेसा-संपयुत्ता)

धम्म) = उपरोक्त 3 (i) के समान (A4 B2 E2)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्टाचार से मुक्त हैं (किलेसा-विप्पयुत्ता)

धम्म) = उपरोक्त 3 (ii) के समान (A*5 B12 E18)

5. (i) वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी हैं

(किलेसा सेवा समकिलेसिका च धम्म) = 10 अवस्थाएँ

भ्रष्टाचार (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार हैं लेकिन स्वयं भ्रष्ट नहीं हैं

(समकिलेसिका सेवा नो कै किलेसा धम्म) = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52, 10 को छोड़कर

भ्रष्टाचार की अवस्थाएँ (अर्थात 52 - 10 = 42), मामला 28 (A5 B12 E18)

6. (i) वे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचारी दोनों हैं (Kilesa ceva

samkilittha ca dhamma) = दस प्रकार के भ्रष्टाचार (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं (समकिलित्था)

(ceva no ca kilesa dhamma) = अस्वस्थ चेतना

12, मानसिक कारक 27, 10 अवस्थाओं को छोड़कर

भ्रष्टाचार (अर्थात 27 - 10 = 17) (A4 B2 E2)

7. (i) वे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित हैं और इससे जुड़े हुए हैं

भ्रष्टाचार (किलेसा सेवा किलेसा-संपायुत्त च धम्म)

= उपरोक्त 6 (i) के समान (A1 B1 E1)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार से ग्रसित नहीं हैं

भ्रष्टाचार (किलेसा-सम्पायुत्त सेवा नो सीए किलेसा

धम्म) = उपरोक्त 6 (ii) के समान (A4 B2 E2)

8. (i) वे राज्य जो भ्रष्टाचार से मुक्त हैं, परन्तु उसके शिकार हैं

भ्रष्टाचारों का (Kilesa-vippayutta samkilesika dhamma)

= सांसारिक स्वस्थ चेतना 17, सांसारिक परिणामी

चेतना 32, निष्क्रिय चेतना 20,

मानसिक कारक 38 और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो भ्रष्टाचार से मुक्त हैं और नहीं हैं

भ्रष्टाचार के विषय (Kilesa-vippayutta a-samkilesika)

धम्म) = अलौकिक चेतना 8, मानसिक

कारक 36 और निब्बाना (A*4 B2 E2)

XIII. अंतिम दोहे 18 (पिट्ठी दुकम 18)

1. (i) प्रथम पथ द्वारा नष्ट किए गए राज्य (दस्सानेना-पहताब्बा)

धम्म) = लोभ से उपजी चेतना 8, घृणा से उपजी

चेतना 2, संदेह चेतना 1 और मानसिक

कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) प्रथम पथ द्वारा उन राज्यों का उन्मूलन नहीं किया गया (ना-दस्सानेना-पहतब्बा)।

धम्म) = 4 चेतना जो गलत दृष्टिकोण से अलग हो गई है

और 2 घृणा से उपजी चेतना जो आगे नहीं ले जाती

निम्न तल, बेचैनी चेतना 1, स्वस्थ चेतना

21, परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय

चेतना 20, मानसिक कारक 52 (गलत दृष्टिकोण को छोड़कर)

संदेह (अर्थात 52 - 2 = 50), मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

2. (i) तीन उच्चतर मार्गों द्वारा समाप्त की गई अवस्थाएँ (भवनय-पहतब्बा)

धम्म) = 4 चेतना जो इससे अलग है

गलत दृष्टिकोण, घृणा से उपजी चेतना 2, बेचैनी

चेतना 1, मानसिक कारक 27 गलत दृष्टिकोण को छोड़कर

और संदेह (अर्थात 27 - 2 = 25) (A4 B2 E2)

(ii) उच्चतर तीन मार्गों (ना-भवनय-) द्वारा समाप्त न होने वाली अवस्थाएँ

pahatabba dhamma) = 4 चेतना विच्छेदित

गलत दृष्टिकोण और घृणा से उपजी चेतना से जो

निम्न स्तरों की ओर ले जाता है, 4 चेतना के साथ

गलत दृष्टिकोण, संदेह चेतना 1, स्वस्थ चेतना

21, परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना

20, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

3. (i) प्रथम पथ (दस्सानेना-) द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्यों सहित

pahatabba hetuka dhamma) = लोभ से उपजी चेतना

8. घृणा से उपजी चेतना 2. संदेह की चेतना

1. मानसिक कारक 27, भ्रम को छोड़कर, मौजूद हैं

संदेह चेतना पर (A4 B2 E2)

(ii) प्रथम पथ द्वारा न मिटाए गए मूलों सहित राज्य (नदासनेना-

pahatabba hetuka dhamma) = 4 चेतना

गलत दृष्टिकोण और घृणा से उपजी चेतना से विरक्त

जो निम्न स्तरों की ओर नहीं ले जाते, बेचैनी

चेतना 1, संपूर्ण चेतना 21, परिणामी

चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक

गलत धारणा और संदेह को छोड़कर कारक 52 (अर्थात 52— 2 = 50),

संदेह चेतना, पदार्थ में मौजूद भ्रम

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

4. (i) उच्चतर तीन मार्गों द्वारा जड़ सहित राज्य

(भवनया-पहतब्बा हेतुका धम्म) के समान

त्रिक 9 (ii) (A4 B2 E2)

(ii) उच्चतर तीन द्वारा समाप्त न की गई जड़ों सहित राज्य

पथ (ना-भावनया-पहतब्बा हेतुका धम्म) 4

चेतना गलत दृष्टिकोण और घृणा से अलग हो गई

चेतना जो निम्न स्तर की ओर नहीं ले जाती

विमान, 4 चेतना गलत दृष्टिकोण के साथ,

संदेह चेतना 1, स्वस्थ चेतना 21,

परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20,

मानसिक कारक 52, बेचैनी चेतना में मौजूद भ्रम,

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

5. (i) व्यावहारिक विचार वाली अवस्थाएँ (सविताक्क धम्म) = चेतना

व्यावहारिक विचार के साथ उपस्थित 55, मानसिक

अनुप्रयुक्त विचार को छोड़कर कारक 52 (अर्थात 52 - 1 = 51) (A4 B2 E3)

(ii) अनुप्रयुक्त विचार रहित अवस्थाएँ (अ-वितक्क धम्म) = चेतना

बिना व्यावहारिक विचार के 66, मानसिक कारक 38

व्यावहारिक विचार को छोड़कर (अर्थात 38 - 1 = 37), 55 व्यावहारिक विचार

अनुप्रयुक्त विचार चेतना में उपस्थित 55,

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E17)

6. (i) निरंतर चिंतन की अवस्थाएँ (सा-विचार धम्म) = चेतना

निरंतर विचार के साथ उपस्थित 66, मानसिक

कारक 52 निरंतर विचार को छोड़कर (अर्थात 52-1 = 51) (A4 B2 E3)

(ii) निरंतर चिंतन के बिना अवस्थाएँ (अविचार धम्म)

= निरंतर विचार के बिना चेतना 55, मानसिक

कारक 38, व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार को छोड़कर

(अर्थात 38 - 2 = 36), 66 निरंतर विचार उपस्थित हैं

निरंतर विचार चेतना 66, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E17) पर

7. (i) परमानंद की अवस्थाएँ (सप्पितिका धम्म) = चेतना

परमानंद 51 के साथ उपस्थित, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

उत्साह, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी, चिंता और संदेह (अर्थात्

52 - 6 = 46) (A4 B2 E2)

(ii) आनंद रहित अवस्थाएँ (अप्तिका धम्म) = चेतना

परमानंद के बिना 70, मानसिक कारक 52 को छोड़कर

परमानंद, परमानंद में उपस्थित 51 परमानंद चेतना के साथ

51, मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

8. (i) वे अवस्थाएँ जो परमानंद (पिति-सहगत) से युक्त होती हैं

धम्म) = उपरोक्त 7 (i) के समान (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जिनमें परमानंद नहीं होता (ना-पिति-सहगत)

धम्म) = उपरोक्त 7 (ii) के समान (A*5 B12 E18)

9. (i) *सुख-सहगत वाली अवस्थाएँ

धम्म) = आनंद से युक्त चेतना 63,

मानसिक कारक 52, भावना, घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी को छोड़कर,

चिंता और संदेह (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E3)

(ii) वे अवस्थाएँ जिनमें आनंद नहीं होता (नासुख सहगता)

धम्म) = चेतना जिसके साथ

दर्द 3, उदासीनता के साथ चेतना 55,

मानसिक कारक 52, परमानंद और सुखद अनुभूति को छोड़कर

आनंद के साथ उपस्थित चेतना 63, पदार्थ

28 और निब्बाना (A*5 B12 E18)

10. (i) उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ (उपेक्खासहागता)

धम्म = उदासीनता से युक्त चेतना

55, मानसिक कारक 52 भावना, परमानंद को छोड़कर,

घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी और चिंता (अर्थात 52 - 6 = 46) (A3 B2 E7)

(ii) वे अवस्थाएँ जो उदासीनता (ना-उपेक्खा-) से युक्त नहीं हैं

सहगत धम्म) = चेतना साथ में

आनंद द्वारा 63, चेतना दर्द के साथ

3. मानसिक कारक 52 संदेह को छोड़कर, 55 उदासीनता की भावना

55 वर्ष की आयु में चेतना के साथ उदासीनता भी मौजूद रहती है।

मामला 28 और निर्वाण (A*5 B12 E13)

11. (i) वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित हैं (कामवाचरा)

धम्म) = संवेदी चेतना 54, मानसिक कारक 52

और मामला 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित नहीं हैं (ना-कामवचरा)

धम्म) = उच्च चेतना 27, अलौकिक

चेतना 8, मानसिक कारक 38 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

12. (i) वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल (रूपवचारा) से संबंधित हैं

धम्म) = सूक्ष्म-भौतिक चेतना 15, मानसिक

कारक 35 (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल (ना-रूपवचरा) से संबंधित नहीं हैं

धम्म) = संवेदी चेतना 54, अमूर्त

चेतना 12, अलौकिक चेतना 8,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

13. (i) वे अवस्थाएँ जो अमूर्त तल (अरूपवचर) से संबंधित हैं

धम्म) = अमूर्त चेतना 12, मानसिक कारक 30 (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो अमूर्त तल से संबंधित नहीं हैं (ना-अरूपावचारा)

धम्म) = संवेदी चेतना 54, सूक्ष्म पदार्थ

चेतना 15, अलौकिक चेतना 8,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

14. (i) वे अवस्थाएँ जो अस्तित्व के चक्र में शामिल हैं

(परियपन्ना धम्म) = सांसारिक चेतना 81, मानसिक

कारक 52 और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे राज्य जो अस्तित्व के चक्र में शामिल नहीं हैं

(ए-परियपन्ना धम्म) = अतिमुंडन चेतना 8,

मानसिक कारक 36 और निर्वाण (A*4 B2 E2)

15. (i) वे अवस्थाएँ जो अस्तित्व के चक्र से निकलती हैं (निय्यानिका)

धम्म) = 4 पथ चेतना, मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो अस्तित्व के चक्र से बाहर नहीं निकलतीं

(अ-नीयनिका धम्म) - सांसारिक चेतना 81,

फल प्राप्ति चेतना 4, मानसिक कारक 52, पदार्थ 28

और निर्वाण (A*5 B12 E18)

16. (i) वे राज्य जिनका भाग्य निश्चित है, मृत्यु के बाद या उसके बाद त्याग दिए गए

उनकी अपनी घटना (नियत धम्म) = 7वाँ आवेग

गलत दृष्टिकोण से जुड़ी चेतना का 4, 7वां आवेग

घृणा से उपजी चेतना 2, मानसिक कारक 27 को छोड़कर

अहंकार, संदेह (अर्थात 27 - 2 = 25), 4 पथ चेतना,

मानसिक कारक 36 (A4 B2 E2)

(ii) वे राज्य जिन्होंने उपरोक्त अनुसार नियति निर्धारित नहीं की है (अ-नियाता)

धम्म) = अस्वस्थ चेतना 12 को छोड़कर

गलत दृष्टिकोण से जुड़ी चेतना से उत्पन्न 7वीं प्रेरणा 4

और घृणा से उपजी चेतना 2, सांसारिक स्वस्थ 17,

परिणामी चेतना 36, निष्क्रिय चेतना 20,

मानसिक कारक 52, पदार्थ 28 और निर्वाण (A*5 B12 E18)

17. (i) वे अवस्थाएँ जो (सा-उत्तर धम्म) से परे हैं = सांसारिक

चेतना 81, मानसिक कारक 52 और पदार्थ 28 (A5 B12 E18)

(ii) वे अवस्थाएँ जो अनुत्तरा धम्म से परे नहीं हैं

= अलौकिक चेतना 8, मानसिक कारक 36 और

निब्बाना (ए*4 बी2 ई2)

18. (i) वे अवस्थाएँ जो शोक का कारण हैं (सा-रण धम्म)

= अस्वस्थ चेतना 12, मानसिक कारक 27 (A4 B2 E2)

(ii) वे अवस्थाएँ जो शोक का कारण नहीं हैं (अरण धम्म)

= संपूर्ण चेतना 21, परिणामी चेतना

36, निष्क्रिय चेतना 20, मानसिक कारक 38, पदार्थ

अनुवादित: यू नारद

अध्याय 2: वर्गीकृत और अवर्गीकृत

8 प्रश्न और उत्तर

171. नेत्र आधार को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है... मूर्त वस्तु

आधार को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; नेत्र तत्व को इसके साथ वर्गीकृत किया गया है

इन अवस्थाओं... मूर्त वस्तु तत्व को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया जाता है।

समान समूह के अंतर्गत, लेकिन समान आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं।

और उसी तत्व के अंतर्गत। कितने समुच्चयों के अंतर्गत,

उन अवस्थाओं में कितने आधार और कितने तत्व शामिल हैं?

वर्गीकृत? इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है, जिंदर 4 एग्रीगेट्स, अंडर 2 बेसेस

और 8 तत्वों के अंतर्गत (20).

172. नेत्र चेतना तत्व को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है;

कान चेतना तत्व; नाक चेतना तत्व; जीभ

चेतना तत्व; शरीर चेतना तत्व; मन तत्व;

मन की चेतना को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है।

समान समुच्चय और समान आधार के अंतर्गत, लेकिन वर्गीकृत नहीं

एक ही तत्व के अंतर्गत... उन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

11 आधारों के नीचे और 12 तत्वों के नीचे (7).

173. नेत्र संबंधी क्षमता को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; कान संबंधी क्षमता;

नाक की क्रिया; जीभ की क्रिया; शरीर की क्रिया; स्त्री की क्रिया;

पुरुष शिक्षकों को इन्हीं राज्यों के साथ समान श्रेणी में रखा गया है।

लेकिन इन्हें एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन्हें 4 समुच्चयों के अंतर्गत नहीं, बल्कि 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 8 तत्वों के अंतर्गत (7).

174. अगोचर विकास को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; एक

कुल योग को इन्हीं अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

कुल योग, झोपड़ी को एक ही आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

एक ही तत्व. . . . उन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

3 आधार और 9 से कम तत्व (2).

175. विलाप को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; दोनों अवस्थाएँ

दृश्य और प्रभाव डालने वाली स्थितियों को इन्हीं राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कुल योग, लेकिन एक ही आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं।

एक ही तत्व. . . . इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

2 आधारों के अंतर्गत और 8 तत्वों के अंतर्गत (2).

176. अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाओं को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है।

समान समूह के अंतर्गत, लेकिन समान आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं।

और उसी तत्व के अंतर्गत. . . . उन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है

4 समुच्चय, 10 आधारों से कम और 16 तत्वों से कम (1)।

177. दृश्यता वाले राज्यों को निम्नलिखित राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समान कुल योग, लेकिन समान आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं।

एक ही तत्व के अंतर्गत... उन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

2 आधारों के अंतर्गत और 8 तत्वों के अंतर्गत (1).

178. सीमावर्ती राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत किया गया है; राज्य

जो व्युत्पन्न होते हैं, उन्हें इन्हीं राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

कुल योग, लेकिन एक ही आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं।

समान तत्व। कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत?

और वे राज्य कितने तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं?

इन्हें 4 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

तत्व (2).

स्मृति सहायक

दस आधार, सत्रह तत्व।

सात क्षमताएं, अगोचर विकास, एक-समग्र विकास।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का विलाप

अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली, दृश्यता, प्रभाव डालने वाली, व्युत्पन्न अवस्थाओं के साथ।

अध्याय II की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: इस अध्याय में 42 राज्यों का विषयवस्तु शामिल है।

इनमें से 35, जिनमें से प्रत्येक पदार्थ समूह का केवल एक भाग है,

पदार्थ के अन्य भागों के साथ वर्गीकृत किया जाना (जिसे इस रूप में जाना जाता है)

पाठ में "ये अवस्थाएँ") एक ही समुच्चय (पदार्थ) के अंतर्गत

(कुल योग) लेकिन एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत नहीं।

शेष 7, जिनमें से प्रत्येक चेतना समूह का एक हिस्सा है,

इसे चेतना समूह के अन्य भागों के साथ वर्गीकृत किया जा सकता है

(पाठ में इन्हें "ये राज्य" के रूप में जाना जाता है) एक ही समूह के अंतर्गत

(चेतना का समूह) और एक ही आधार (मन का आधार) के अंतर्गत, लेकिन

एक ही तत्व के अंतर्गत नहीं। जांच की शेष सभी अवस्थाएँ

पाठ के कुछ अंशों को बाहर रखा गया है क्योंकि वे संपूर्ण भाग का निर्माण करते हैं।

भौतिकता और मानसिकता के आधार पर इन्हें वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

इस तरह। 42 राज्यों में से 37 आंतरिक और

5 बाह्य तालिकाओं के लिए जो जांच की सभी अवस्थाओं को दर्शाती हैं

मूलपाठ।

प्रश्न और उत्तर: 42 राज्यों को 8 सेटों में विभाजित करके समझाया गया है।

नीचे दिखाए गए अनुसार प्रश्न और उत्तर, राज्यों को समूहित किया गया है

जहां भी उत्तर समान हों, उन्हें एक ही सेट में एक साथ रखें।

समुच्चय, आधार और तत्वों की संख्याओं के लिए :-

1. 10 आधारों और 10 तत्वों का एक समूह, अर्थात् 12 स्थूल भौतिक पदार्थ

राज्य (171).

2. चेतना के 7 तत्वों का एक समूह (172)।

3. 7 संकायों का एक समूह (173)।

4. 2 बनने का एक समूह (174).

5. दो का एक समूह, अर्थात्: विलाप; दृश्य और दोनों अवस्थाएँ

प्रभाव डालना (175).

6. अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाएँ (176).

7. दृश्यता वाले राज्य (177).

8. राज्यों में प्रभाव और बाढ़ जो व्युत्पन्न हैं (178)।

"ये राज्य"; वे राज्य जिन्हें "ये राज्य" के रूप में दर्शाया गया है

पाठ में दी गई जानकारी चार्ट से प्राप्त की जा सकती है। निर्धारण के नियम

प्रश्न और उत्तर के प्रत्येक सेट के लिए "ये स्थितियाँ" दी गई हैं

नीचे :-

1. जब बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं में से कोई एक अवस्था जांच का विषय हो,

पदार्थ की शेष 27 भौतिक अवस्थाओं को सामूहिक रूप से लिया जाता है

“ये अवस्थाएँ” । उदाहरण के लिए, जब आँख के आधार की बात आती है,

शेष 27 भौतिक अवस्थाओं को “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। केवल

तो क्या नेत्र आधार को शेष 27 शारीरिक अंगों के साथ वर्गीकृत किया जा सकता है?

इन सभी भौतिक अवस्थाओं के समान समूह के अंतर्गत आने वाली अवस्थाएँ

पदार्थ समूह के अंतर्गत। लेकिन उन्हें इसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

आँख के आधार के समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत आता है।

आँख के आधार और आँख के नीचे के हिस्से जबकि शेष 27 शारीरिक

राज्य अन्य आधारों और अन्य तत्वों के अंतर्गत आते हैं।

मूर्त वस्तु आधार और मूर्त वस्तु तत्व के मामले, जिनमें से प्रत्येक

जिसमें तीन प्राथमिक भौतिक अवस्थाएँ शामिल हैं: पृथ्वी, ऊष्मा और वायु।

पदार्थ की शेष 25 भौतिक अवस्थाओं को सामूहिक रूप से लिया जाता है

“ये राज्य”।

2. जब चेतना के 7 तत्वों में से कोई एक, जैसे कि आँख,

चेतना तत्व, जांच की अवस्था है, शेष

चेतना के 6 तत्वों को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है। तभी

क्या नेत्र चेतना तत्व को शेष तत्वों के साथ वर्गीकृत किया जा सकता है?

एक ही समूह के अंतर्गत और उसके अधीन चेतना के 6 तत्व

इन सभी चेतना तत्वों का आधार एक ही है।

चेतना के समूह और मन के आधार के अंतर्गत। लेकिन वे नहीं हो सकते।

नेत्र चेतना तत्व के समान तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत

यह दृष्टि चेतना तत्व के अंतर्गत आता है जबकि शेष भाग

चेतना के 6 तत्व अन्य तत्वों के अंतर्गत आते हैं।

3. नेत्र, नाक आदि की क्षमता के साथ, जो नेत्र के समान ही होती हैं।

आधार, नाक का आधार, इत्यादि, पदार्थ की शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ

कुल योग को “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। लेकिन महिलाओं के मामलों में

पुरुष संकाय और पुरुष संकाय, जो सूक्ष्म शारीरिक अवस्थाएँ हैं,

बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं को “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। तभी

इनमें से प्रत्येक क्षमता को बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

ये सभी भौतिक अवस्थाएँ एक ही समूह के अंतर्गत आती हैं।

पदार्थ समूह। लेकिन इन्हें एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

आधार और स्त्री एवं पुरुष क्षमताओं के समान तत्व के अंतर्गत

संज्ञेय आधार और संज्ञेय तत्व के अंतर्गत आते हैं जबकि

बारह स्थूल भौतिक अवस्थाएँ स्थूल आधारों और स्थूल अवस्थाओं के अंतर्गत आती हैं।

तत्व।

4. अगोचर विकास और एक-समूह विकास के साथ

जो समान हैं और जिनमें दृश्य वस्तु आधार और बोधगम्य शामिल हैं

आधार, 11 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ (दृश्यमान वस्तु को छोड़कर)

बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है। तभी

क्या इनमें से प्रत्येक परिवर्तन को 11 स्थूल शारीरिक परिवर्तनों के साथ वर्गीकृत किया जा सकता है?

इन सभी भौतिक अवस्थाओं के समान समूह के अंतर्गत आने वाली अवस्थाएँ

पदार्थ समूह के अंतर्गत। लेकिन उन्हें इसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत ही वे परिवर्तन आते हैं।

दृश्य वस्तु आधार और बोधगम्य आधार और दृश्य वस्तु के अंतर्गत

तत्व और बोधगम्य तत्व जबकि 11 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ

अन्य आधारों और अन्य तत्वों के अंतर्गत आना।

5. विलाप, जो विकृत मन से उत्पन्न एक श्रव्य वस्तु है,

ध्वनि आधार के समान है। अतः शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ

पदार्थ समूह को “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। दृश्य और अदृश्य दोनों अवस्थाएँ।

और प्रभाव डालना केवल दृश्य वस्तु है जो दृश्य के समान है।

वस्तु आधार। अतः पदार्थ की शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ एकत्रित होती हैं।

इन्हें “ये राज्य” के रूप में लिया जाता है।

6. अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाओं में 11 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ शामिल हैं।

दृश्य वस्तु को बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं से बाहर रखा गया है। अतः

दृश्य वस्तु और 16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाओं को "ये" माना जाता है।

अवस्थाएँ। ये सभी भौतिक अवस्थाएँ पदार्थ समूह के अंतर्गत आती हैं।

इन्हें एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। लेकिन इन्हें नहीं किया जा सकता।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है

अदृश्य लेकिन प्रभाव डालने वाली अवस्थाएँ 9 स्थूल आधारों के अंतर्गत आती हैं और

9 स्थूल तत्वों के अंतर्गत जबकि दृश्य वस्तु और 16 सूक्ष्म तत्व

भौतिक अवस्थाएँ दृश्य वस्तु आधार और बोधगम्य आधार के अंतर्गत आती हैं।

और दृश्य वस्तु तत्व और बोधगम्य तत्व के अंतर्गत।

7. दृश्यता वाली अवस्थाएँ दृश्य वस्तु हैं जो कि समान है

दृश्य वस्तु आधार। अतः शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ ली जाती हैं।

“ये राज्य” के रूप में।

8. आक्षेपण वाली अवस्थाएँ 12 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ हैं। अतः

16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाओं को “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। चूंकि ये सभी अवस्थाएँ

भौतिक अवस्थाएँ पदार्थ समूह के अंतर्गत आती हैं, इन्हें वर्गीकृत किया जा सकता है।

एक ही समूह के अंतर्गत। लेकिन उन्हें इसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत, जैसे कि आपतित अवस्थाएँ।

सकल आधारों और सकल तत्वों के अंतर्गत आते हैं जबकि 16

सूक्ष्म भौतिक अवस्थाएँ बोधगम्य आधार के अंतर्गत आती हैं और इसके अंतर्गत आती हैं।

संज्ञेय तत्व।

व्युत्पन्न अवस्थाएँ पदार्थ की 24 भौतिक अवस्थाएँ हैं।

कुल योग। अतः तीन प्राथमिक भौतिक अवस्थाएँ (जल को छोड़कर)

इन्हें “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। क्योंकि ये सभी भौतिक अवस्थाएँ आती हैं

पदार्थ समूह के अंतर्गत, उन्हें एक ही श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है।

कुल योग। लेकिन उन्हें एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है और

जिन अवस्थाओं का व्युत्पन्न रूप बनता है, वे भी उसी तत्व के अंतर्गत आती हैं।

अन्य सकल आधारों और अन्य सकल तत्वों के अंतर्गत जबकि 3

प्राथमिक भौतिक अवस्थाएँ मूर्त वस्तु आधार के अंतर्गत आती हैं और इसके अंतर्गत आती हैं

मूर्त वस्तु तत्व।

“वे राज्य” : “वे राज्य” उन राज्यों के समान हैं जो

इन्हें "ये राज्य" के रूप में लिया गया था।

अवर्गीकृत: वे समुच्चय, आधार और तत्व जिनके अंतर्गत

"ये राज्य" के रूप में लिए गए प्रत्येक राज्य को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है

जांच के राज्यों के वर्गीकरण से पता चला है

सारणियाँ। शेष वे समुच्चय, आधार और तत्व हैं।

जिसके अंतर्गत "वे राज्य" (जो "ये राज्य" के समान हैं)

वर्गीकृत नहीं हैं। उदाहरण के लिए, 27 भौतिक अवस्थाओं को इस प्रकार लिया गया है।

प्रश्न और उत्तर के पहले सेट में "इन राज्यों" को वर्गीकृत किया गया है

1 समुच्चय (पदार्थ समुच्चय) के अंतर्गत, 10 आधारों (9 स्थूल आधारों) के अंतर्गत

और संज्ञेय आधार) और 10 तत्वों के अंतर्गत (9 स्थूल तत्व)

और बोधगम्य तत्व)। इसलिए "वे अवस्थाएँ", वही 27

भौतिक अवस्थाओं को शेष 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

(भावना, बोध, मानसिक संरचना और चेतना के समूह),

शेष 2 आधारों (आँख आधार और मन आधार) के अंतर्गत और उसके अंतर्गत

शेष 8 तत्व (नेत्र तत्व और 7 चेतना तत्व)।

यही बात अन्य सभी राज्यों पर भी समान रूप से लागू होनी चाहिए।

प्रश्न और उत्तर।

चार्ट को कैसे पढ़ें: आंख के आधार को उदाहरण के तौर पर लें।

आँख के आधार को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है (शेष 27 भौतिक

पदार्थ की अवस्थाओं का समूह) उसी समूह (पदार्थ) के अंतर्गत

कुल योग), लेकिन एक ही आधार (नेत्र आधार) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है और

एक ही तत्व (नेत्र तत्व) के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन अवस्थाओं में कितने तत्व हैं (शेष 27 भौतिक

पदार्थ की अवस्थाओं का समूह) वर्गीकृत नहीं है? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत (भावना, बोध, मानसिक गठन और

चेतना समूह), 2 आधारों के अंतर्गत (आँख आधार और मन आधार)

और 8 तत्वों के अंतर्गत (नेत्र तत्व और 7 चेतना तत्व)।

इसके बाद नाक का आधार आता है, जिसका पाठ में उल्लेख नहीं किया गया है।

आधार को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है (शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ)

पदार्थ समूह का) उसी समूह के अंतर्गत (पदार्थ समूह)

लेकिन एक ही आधार (नाक का आधार) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है और इसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है

समान तत्व (नाक तत्व)।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन अवस्थाओं में कितने तत्व हैं (शेष 27 भौतिक

पदार्थ की अवस्थाओं का समूह) वर्गीकृत नहीं है? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत (भावना, बोध, मानसिक गठन और

चेतना समूह), 2 आधारों के अंतर्गत (नाक आधार और मन आधार)

और 8 तत्वों के अंतर्गत (नाक तत्व और चेतना के 7 तत्व)।

अन्य स्थूल आधारों और स्थूल तत्वों पर विचार किया जाना है।

इसी प्रकार अलग-अलग। मूर्त वस्तु के मामले में,

जिसमें पृथ्वी, ऊष्मा और वायु शामिल हैं, शेष 25 भौतिक तत्व

पदार्थ की अवस्थाओं के समूह को "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया जाता है।

"उन राज्यों" (या "इन राज्यों") के प्रकार: जाँच करने पर

"उन राज्यों" के स्तंभों में यह पाया गया है कि 8 प्रकार हैं।

उन राज्यों की संख्या। जांच के दायरे में आने वाले राज्यों की संख्या जो

समान प्रकार के उत्तर प्रश्नों के साथ कोष्ठकों में दिखाए गए हैं।

बाद वाले को एक ही प्रकार के लिए एक साथ समूहीकृत किया गया है।

"वे राज्य"	**प्रश्न संख्याएँ**	**राज्यों की संख्या**
(1) शेष 27 भौतिक अवस्थाएँ।	171(18),173 (5), 175(2), 177(1)	26
(2) शेष 25 भौतिक अवस्थाएँ	171 (2)	2
(3) शेष 6 चेतना तत्व।	172 (7)	7
(4) 12 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ।	173 (2)	2
(5) 11 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ।	174 (2)	2
(6) दृश्य वस्तु + 16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाएँ	176(1)	1
(7) 16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाएँ।	178(1)	1
(8) पृथ्वी, ऊष्मा, हवा	178(1)	1
		कुल 42

पहले तीन प्रकारों के मामले में, आंकड़े समान हैं लेकिन नहीं

उदाहरण के लिए, यदि आँख के आधार की बात करें, तो 28 भौतिक अवस्थाएँ होती हैं।

आँख के आधार को छोड़कर, यानी 27, को "उन अवस्थाओं" के रूप में लिया जाता है। नाक के साथ

आधार, 28 जिसमें नाक का आधार, यानी 27 शामिल नहीं है, लिया जाता है।

उत्तरों के प्रकार: चार्ट के नीचे दी गई तालिका दर्शाती है कि

पाँच प्रकार के उत्तर हैं। "उन" के साथ भी वही उत्तर दिया गया है।

राज्यों की संख्याएँ जो तालिका के समान कॉलम में हैं।

जांच की वे अवस्थाएँ जो एक ही प्रकार का परिणाम देती हैं, कोष्ठकों में दर्शाई गई हैं।

प्रश्नों के साथ-साथ, बाद वाले को एक साथ समूहीकृत किया गया है

प्रत्येक प्रकार का।

जवाब	**प्रश्न संख्याएँ**	**राज्यों की संख्या**
(1) 4, 2, 8	178 (20), 173 (7), 175(2) 177(1)	30
(2) 4, 11, 12	172 (7)	7
(3) 4, 3,9	174 (2)	2
(4) 4, 10, 16	176 (1)	1
(5)4,11,17	178 (2)	2
		कुल 42

यद्यपि समुच्चय, आधार और तत्वों की संख्याएँ

प्रत्येक उत्तर में समान होने के बावजूद, प्रकार हमेशा एक जैसे नहीं होते जैसा कि दिखाया गया है।

तालिका के नीचे। यह जानकारी पाठ में नहीं दी गई है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 3

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 3: अवर्गीकृत और वर्गीकृत

12 **प्रश्न और उत्तर**

179. भावना समूह को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है;

बोध समूह; मानसिक निर्माण समूह; मूल सत्य; पथ

सत्य को इन अवस्थाओं के साथ एक ही समूह में वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

लेकिन इन्हें एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? वे, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (5).

180. . . . समाप्ति सत्य को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

वही कुल योग, लेकिन उसी आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत वर्गीकृत।

वही तत्व. . . . इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व (1) के अंतर्गत।

181. . . . जीवन शक्ति को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

समान कुल योग, लेकिन समान आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत वर्गीकृत।

वही तत्व. . . . उन्होंने, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखा

समुच्चयों को 2 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है और

1 तत्व (1) के अंतर्गत।

182. महिला संकाय को इन राज्यों में वर्गीकृत नहीं किया गया है; पुरुष

शारीरिक सुख का अनुभव करने की क्षमता; शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता; मानसिक क्षमता

आनंद की क्षमता; शोक की क्षमता; उदासीनता की क्षमता; आस्था की क्षमता;

ऊर्जा क्षमता; ध्यान क्षमता; एकाग्रता क्षमता;

ज्ञान की क्षमता; मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था; उच्चतर

बोध शक्ति; ज्ञानी की शक्ति; अज्ञान;

अज्ञानता से प्रेरित, संरचनाएँ; 6 आधारों से प्रेरित।

संपर्क; संपर्क से प्रभावित, भावना; भावना से प्रभावित।

लालसा; लालसा से प्रेरित, आसक्ति; कर्म का होना

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है, लेकिन

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत... वे,

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

3 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (22)।

183. जन्म; वृद्धावस्था; मृत्यु; ध्यान को इनके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही समूह के अंतर्गत आने वाले राज्य, लेकिन एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत।

और उसी तत्व के अंतर्गत. . . . वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 2 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार और 1 तत्व के नीचे (4).

184. दुःख; पीड़ा; शोक; निराशा; ध्यान का अनुप्रयोग;

महान प्रयास; असीमित; 5 क्षमताएं; 5 खूबियां;

ज्ञानोदय के 7 कारक; आर्य अष्टांगिक मार्ग; संपर्क;

भावना; बोध; इच्छाशक्ति; निर्णय; ध्यान; अवस्थाएँ

जो मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और उनसे संबद्ध भी हैं

मूल; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और मूलों से भी जुड़ी हैं, वे नहीं हैं

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, लेकिन वर्गीकृत किया गया है

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत, वे, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (20)।

185. वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं; वे अवस्थाएँ जो इनसे प्रभावित नहीं होतीं।

इन राज्यों के साथ 4 कारणों को एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

लेकिन इन्हें एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

... इन्हें 4 समूहों, 1 आधार और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 तत्व (2).

186. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो दोनों प्रकार से कलंक हैं

और दोष के कारक; वे अवस्थाएँ जो दोष भी हैं और उनसे संबंधित भी हैं

कैंकर से संक्रमित व्यक्तियों को इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

कुल योग, लेकिन एक ही आधार और एक ही के अंतर्गत वर्गीकृत

तत्व. . . . उन्होंने निर्वाण को वर्गीकरण से बाहर रखा है

समुच्चयों को 3 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

1 तत्व (3).

187. बेड़ियाँ... बंधन... बाढ़... बंधन... बाधाएँ...

ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो दोनों ही गलतफहमियाँ हैं

और गलतफहमियों की वस्तुओं को वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही समूह के अंतर्गत रखा गया है, लेकिन इन्हें वर्गीकृत किया गया है

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत... वे, अपवाद स्वरूप

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (17)।

188. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी हुई हैं और उसी से उत्पन्न होती हैं;

वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं और इससे उत्पन्न होती हैं

चेतना के साथ; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं,

चेतना द्वारा उत्पन्न और उसके साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाले नहीं हैं

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, लेकिन वर्गीकृत किया गया है

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत, वे, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (6).

189. वे अवस्थाएँ जो चेतना के साथ उत्पन्न होती हैं; वे अवस्थाएँ जो

चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाली चीजों को इनके साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही समूह के अंतर्गत आने वाले राज्य, लेकिन एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत।

और उसी तत्व के अंतर्गत... उन्हें किसी भी श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समुच्चय; उन्हें 1 आधार और 1 तत्व (2) के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

190. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ. . . . भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन राज्यों को एक ही समूह के अंतर्गत रखा गया है, लेकिन इन्हें वर्गीकृत किया गया है

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? वे, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (7).

स्मृति सहायक

तीन समूह, उसी प्रकार सत्य, सोलह इंद्रियां।

चौदह आश्रित उत्पत्ति, अगली चौदह।

दस समूहों से संबंधित तीस प्रकार।

लघु दोहे से दो प्रकार, मध्यवर्ती दोहे से आठ प्रकार

दोहे।

अध्याय III की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: संज्ञेय आधार के अंतर्गत आने वाले 90 राज्य, अर्थात्

सूक्ष्म पदार्थ, भावना, बोध, मानसिक निर्माण और निर्वाण।

इस अध्याय का विषय ये राज्य हैं जो

इन्हें एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

लेकिन समान कुल योग के अंतर्गत नहीं। शेष सभी राज्यों के

पाठों को इसमें शामिल नहीं किया गया है क्योंकि उनमें स्थूल पदार्थ और चेतना शामिल हैं।

पहला वाला विभिन्न आधारों और विभिन्न तत्वों के अंतर्गत आता है।

जबकि बाद वाला विभिन्न तत्वों के अंतर्गत आता है। इनमें से

90 राज्यों में से 50 आंतरिक और 40 बाह्य राज्यों से संबंधित हैं।

जाँच करना।

प्रश्न और उत्तर: प्रश्नों के 12 सेट हैं।

उत्तर, क्रमांक 179-190

"ये राज्य": "इन राज्यों" को निर्धारित करने के नियम इस प्रकार हैं:

निम्नलिखित नुसार :-

1. जब जांच का विषय 5 राज्यों में से किसी एक राज्य से संबंधित हो,

अर्थात्; सूक्ष्म पदार्थ, भावना, बोध, मानसिक संरचना और

निर्वाण, जो संज्ञेय आधार के अंतर्गत आता है, शेष 4 राज्य
इन्हें "ये राज्य" माना जाता है **। चूंकि ये 5 राज्य इसके अंतर्गत आते हैं**

विभिन्न समूहों को एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

लेकिन वे संज्ञेय आधार और संज्ञेय के अंतर्गत आते हैं

तत्व और इसलिए, उन्हें एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

और उसी तत्व के अंतर्गत। उदाहरण के लिए, जब समग्र भावना महसूस होती है।

जब इन चार शेष अवस्थाओं, सूक्ष्म पदार्थ और बोध पर चर्चा हो जाती है,

मानसिक निर्माण और निर्वाण को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है।

भावना समुच्चय, भावना समुच्चय के अंतर्गत आता है और शेष भाग

चार राज्य अलग-अलग समूहों के अंतर्गत आते हैं, इसलिए उन्हें शामिल नहीं किया जा सकता।

एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत। लेकिन सामूहिक भावना आती है।

संज्ञेय आधार के अंतर्गत और संज्ञेय तत्व के अंतर्गत, और ऐसा ही अन्य मामलों में भी होता है।

शेष 4 राज्य। इस प्रकार इन्हें एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

और उसी तत्व के अंतर्गत।

वह मामला जहां, क्रमांक 179 में भावना समूह की तरह, शेष

“ये राज्य” के रूप में 4 राज्यों को लिया गया है, यह नियम क्रमांक 180 और 182 पर भी लागू होता है।

184, 185, 186, 187 और 190 में जांच के 77 राज्यों पर चर्चा की गई है।

इस मामले में। क्रमांक 180 और 185 में, जहाँ निब्बाना राज्य है

जांच के दौरान, यह याद रखना चाहिए कि निर्वाण को इससे बाहर रखा गया है।

समुच्चयों का वर्गीकरण।

2. जब जांच का विषय 5 राज्यों में से 2 राज्यों से संबंधित हो

संज्ञेय आधार के अंतर्गत, शेष 3 राज्यों को "ये" माना जाता है।

राज्यों के मामले में भी यही स्थिति है। क्रमांक 181 और 183 में 5 राज्यों के मामले में भी यही स्थिति है।

पूछताछ का निपटारा किया जाता है।

क्रमांक 181 में जीवन शक्ति में भौतिक और मानसिक दोनों शक्तियाँ शामिल हैं।

जीवन में, पहला सूक्ष्म पदार्थ के अंतर्गत आता है और दूसरा इसके अंतर्गत।

मानसिक गठन। तो शेष 3 अवस्थाएँ, भावना, बोध और

निर्वाण को “ये अवस्थाएँ” के रूप में लिया जाता है।

क्रमांक 183 में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु भौतिकता और दोनों को संदर्भित करते हैं।

वह मानसिकता जिसमें पूर्व सूक्ष्म पदार्थ के अंतर्गत आता है और

बाद में मानसिक गठन के अंतर्गत, इसलिए "ये अवस्थाएँ" समान हैं।

जैसा कि ऊपर जीवन-क्षमता के बारे में बताया गया है।

क्रमांक 183 में वर्णित ध्यान में व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार शामिल हैं।

परमानंद, आनंद और एकाग्रता। आनंद एक अनुभूति है और मन की एकाग्रता।

बाकी सब मानसिक रचनाएँ हैं। अतः शेष 3 अवस्थाएँ सूक्ष्म पदार्थ हैं,

बोध और निर्वाण को "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया जाता है।

3. जब जांच का विषय उन 5 राज्यों में से 3 राज्यों से संबंधित हो, जिनके अंतर्गत

संज्ञेय आधार के आधार पर, शेष 2 अवस्थाओं को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है।

मामला संख्या 188 का है, जिसमें जांच के 6 राज्यों पर विचार किया गया है।

साथ। ये सभी मानसिक कारक हैं, अर्थात् भावना, धारणा और

मानसिक गठन। तो शेष 2 अवस्थाएँ, सूक्ष्म पदार्थ और

निर्वाण को “ये अवस्थाएँ” के रूप में लिया जाता है।

4. जब जांच का विषय उन 5 राज्यों में से 4 राज्यों से संबंधित हो जिनके अंतर्गत

बोधगम्य आधार के बाद, शेष अवस्था को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है।

मामला संख्या 189 का है, जिसमें जांच के दो चरणों पर विचार किया जा रहा है।

साथ में। प्रत्येक में 52 मानसिक कारक और 2 संकेत होते हैं,

पूर्व में भावना, धारणा और मानसिक गठन के अंतर्गत आना और

बाद वाला सूक्ष्म पदार्थ के अंतर्गत आता है। अतः एकमात्र शेष अवस्था निर्वाण है।

इसे इन राज्यों के रूप में लिया जाता है।

“वे राज्य”: “वे राज्य” उन राज्यों के समान हैं

जिन्हें “इन राज्यों” के लिए लिया गया था। यह चिह्न द्वारा दर्शाया गया है।

स्तंभ में समानता।

वर्गीकृत: “उन राज्यों” में शामिल कुल योग इस प्रकार हो सकते हैं:

संबंधित “इन राज्यों” में दिए गए लोगों से पढ़ें

समुच्चय, आधार और तत्वों के अंतर्गत वर्गीकरण का उद्देश्य।

जहां कहीं भी निब्बाना को “उन राज्यों” में शामिल किया गया है, उसे बाहर रखा गया है।

कुल वर्गीकरण के अंतर्गत। वर्गीकरण के संबंध में

आधारों और तत्वों के अंतर्गत, यह हमेशा एक ही होता है, अर्थात्: बोधगम्य

आधार और बोधगम्य तत्व। क्रमांक 189 के मामले में, शून्य

वर्गीकृत समुच्चय तालिका से पता चलता है कि निब्बाना को इससे बाहर रखा गया है।

वर्गीकरण। यह अवर्गीकृत में भी इसी प्रकार दिखाया गया है।

क्रमांक 180 और 185 वाले एग्रीगेट कॉलम में, जांच की स्थिति इस प्रकार है:

निर्वाण।

चार्ट को कैसे पढ़ें: भावना समूह को एक उदाहरण के रूप में लें।

भावना समूह को इन अवस्थाओं (सूक्ष्म) के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है

पदार्थ, बोध, मानसिक निर्माण और निर्वाण) एक ही

सामूहिक (भावनात्मक सामूहिक) लेकिन एक ही आधार के अंतर्गत वर्गीकृत

(संज्ञेय आधार) और उसी तत्व के अंतर्गत (संज्ञेय तत्व)।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

वे कितने तत्व हैं जो अवस्थाएँ हैं (सूक्ष्म पदार्थ, बोध,

मानसिक गठन और निर्वाण को वर्गीकृत किया गया है? निर्वाण को छोड़कर, इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

समुच्चयों के वर्गीकरण के आधार पर, इन्हें 3 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

(पदार्थ, बोध और मानसिक निर्माण समूह), 1 आधार के अंतर्गत

(पहचानने योग्य आधार) और 1 तत्व के अंतर्गत (पहचानने योग्य तत्व)।

“उन राज्यों” (या “इन राज्यों”) के प्रकार: जांच करने पर

“उन राज्यों” के स्तंभों में यह पाया गया है कि

“उन राज्यों” के 9 प्रकार। जांच के राज्यों की संख्या।

जो एक ही प्रकार के परिणाम देते हैं, उन्हें कोष्ठकों में दर्शाया गया है।

प्रश्न। यह जानकारी "इन राज्यों" वाले कॉलम में मिल सकती है।

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 179 (1), 182 (6), 184 (4)	11
2. 179 (1), 184 (1)	2
3. 179 (3), 182 (14), 184 (15), 186 (3), 187 (17), 190 (7)	59
4. 180 (1), 185 (2)	3
5. 181 (1), 183 (3)	4
6. 182 (2)	2
7. 183(1)	1
8. 188 (6)	6
9. 189(2)	2
	कुल 90

उत्तरों के प्रकार: चार्ट के नीचे दी गई वर्गीकृत तालिका दर्शाती है

कि पाँच प्रकार के उत्तर होते हैं। एक ही उत्तर एक द्वारा दिया जाता है।

उन राज्यों की संख्या “जांच के दायरे में आने वाले राज्यों की संख्या”

जिनसे एक ही प्रकार की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, उसे चार्ट से पढ़ा जा सकता है।

जवाब	**प्रश्न संख्याएँ**	**राज्यों की संख्या**
(1) 3, 1, 1	179 (5), 182 (22), 184 (20), 186 (3), 187 (17), 190 (7)	74
(2) 4, 1, 1	180 (1), 185 (2)	3
(3) 2, 1, 1	181 (1), 183 (4)	5
(4) 1, 1, 1	188 (6)	6
(5) 0, 1, 1	189 (2)	2
		कुल 90

उन समुच्चयों, आधारों और तत्वों के प्रकार जो इनके अनुरूप हैं

इन संख्याओं को संबंधित स्तंभ से ज्ञात किया जा सकता है।

"ये राज्य"। ये "उन राज्यों" के समान हैं।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 4: वर्गीकृत और वर्गीकृत

2 प्रश्न और उत्तर

191. उत्पत्ति सत्य को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; पथ सत्य है

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत। उन अवस्थाओं को वर्गीकृत किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व (2) के अंतर्गत।

192. महिला संकाय को इन राज्यों में वर्गीकृत किया गया है; पुरुष संकाय;

शारीरिक सुख का अनुभव करने की क्षमता; शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता; मानसिक आनंद का अनुभव करने की क्षमता;

दुःख की क्षमता; उदासीनता की क्षमता; आस्था की क्षमता; ऊर्जा

संकाय; ध्यान संकाय; एकाग्रता संकाय; ज्ञान

संकाय; मैं वह जानूंगा जो मैं नहीं जानता था; उच्चतर बोध

संकाय; वह-जो-पात्रता-जानता-है (15).

अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त, संरचनाएँ; ग्रस्त

6 आधारों द्वारा। संपर्क; भावना से प्रेरित। लालसा; प्रेरित

लालसा से। आसक्ति; कर्म से उत्पन्न; शोक; विलाप;

पीड़ा; शोक; निराशा (11).

ध्यान का अनुप्रयोग; महान प्रयास; असीमित;

5 शक्तियाँ; 5 सामर्थ्य; ज्ञानोदय के 7 कारक; आर्य अष्टांगिक विधि

पथ; संपर्क; इच्छाशक्ति; निर्णय; ध्यान (11).

वे राज्य जो मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और जिनमें ये भी शामिल हैं

संबंधित मूल; वे राज्य जो मूल हैं और साथ ही संबंधित भी हैं

जड़ें; ऐसी अवस्थाएँ जो नासूर हैं... बेड़ियाँ हैं... बंधन हैं... बाढ़ हैं...

बंधन... बाधाएँ... गलतफहमियाँ... आसक्ति... अवस्थाएँ

जो भ्रष्टाचार हैं; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार और

भ्रष्टाचार के शिकार; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार और

भ्रष्ट; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित हैं और इससे जुड़े हुए हैं

भ्रष्टाचार को इन राज्यों के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत। वे अवस्थाएँ हैं

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत (30)।

स्मृति सहायक

दो सत्य, पंद्रह क्षमताएँ, ग्यारह आश्रित उत्पत्तियाँ।

अगले ग्यारह, तीस प्रकार जो समूहों से संबंधित हैं।

अध्याय IV की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: 69 अवस्थाएँ जो मानसिक संरचना के भाग हैं

कुल योग, 5 संवेदी इंद्रियां, सूक्ष्म पदार्थ और 3 प्रकार की श्रव्य ध्वनियाँ

वस्तुएँ इस अध्याय का विषयवस्तु बनाती हैं। इनमें से प्रत्येक को

अन्य राज्यों के साथ समान श्रेणी में वर्गीकृत (इनमें से पहला)

चार्ट में राज्यों को दर्शाने वाले समान कुल योग के अंतर्गत, समान

आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत। और क्योंकि वे इससे संबंधित हैं।

समान समुच्चय, समान आधार और समान तत्व, अवस्थाएँ

तुलना के अंतर्गत, क्या उन्हें एक ही तरह से विनिमेय और वर्गीकृत किया जा सकता है?

जैसा कि ऊपर बताया गया है। 69 राज्यों में से 39 आंतरिक राज्य हैं और 30 अन्य राज्यों से संबंधित हैं।

जांच के बाह्य राज्य।

“ये राज्य”: “इन राज्यों” को निर्धारित करने के नियम इस प्रकार हैं:

निम्नलिखित नुसार :-

1. जब मानसिक संरचना की 50 अवस्थाओं में से कोई एक अवस्था एकत्रित होती है

जांच का विषय राज्य है, शेष 49 राज्य, जो भी इसमें शामिल हैं

समान योगफल के तहत, समान आधार के तहत और समान के तहत

तत्व को पहले "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया जाता है। अदला-बदली करने पर,

जांच की स्थिति को दूसरी "इन स्थितियों" के रूप में लिया जाता है।

उदाहरण के लिए, जब उत्पत्ति की सच्चाई पर विचार किया जाता है, तो शेष 49 राज्य

मानसिक गठन समूह के पहले "ये" के रूप में लिए जाते हैं

राज्यों”। उत्पत्ति सत्य और इसके अंतर्गत आने वाले 49 राज्य दोनों।

मानसिक गठन समग्र, बोधगम्य आधार के अंतर्गत और उसके अंतर्गत

संज्ञेय तत्व को एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत। अदला-बदली करने पर,

इन 49 राज्यों को उत्पत्ति सत्य, जांच की स्थिति आदि के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

जिसे उसी समूह के अंतर्गत दूसरे "ये राज्य" के रूप में लिया जाता है।

पहले मामले के समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

यह दूसरे "ये राज्य" कॉलम में दिखाया गया है।

चार्ट।

सत्य पथ के मामले में, केवल अलौकिक अष्टांगिक पथ ही एकमात्र मार्गदर्शक है।

यह 4 पथ चेतना से जुड़ा है। चूंकि सांसारिक

संपूर्ण चेतना और अन्य से संबंधित अष्टांग मार्ग है

यदि शामिल नहीं किया गया है, तो मानसिक गठन की 50 अवस्थाओं का कुल योग लिया जाता है।

"इन राज्यों" के रूप में।

उन अवस्थाओं के मामलों में जो मूल हैं, इत्यादि, 6 मूल इस प्रकार हैं:

बहिष्कृत और मानसिक गठन की 44 अवस्थाओं के समूह को लिया जाता है

“ये राज्य”।

2. जब सूक्ष्म पदार्थ की 16 अवस्थाओं में से एक, जैसे कि स्त्री शक्ति, प्रकट होती है।

जांच की स्थिति यह है कि शेष 15 भी इसके अंतर्गत आते हैं।

पदार्थ समुच्चय, संज्ञेय आधार के अंतर्गत और संज्ञेय के अंतर्गत

इन तत्वों को पहले “ये अवस्थाएँ” के रूप में लिया जाता है। फिर इन्हें आपस में बदलने पर,

जांच की स्थिति को दूसरे “ये स्थितियाँ” के रूप में लिया जाता है। यह भी

यह पुरुष शिक्षकों पर लागू होता है।

3. जब पाँच इंद्रियों में से कोई एक, जैसे शारीरिक सुख, प्रकट होती है।

संकाय जांच की अवस्था है, शेष 4 संकाय, जो भी

भावना समूह के अंतर्गत आना, बोधगम्य आधार के अंतर्गत आना और इसके अंतर्गत आना

बोधगम्य तत्व को प्रथम "ये अवस्थाएँ" माना जाता है। फिर आगे

अदला-बदली करने पर, जांच की स्थिति को दूसरे "इन" के रूप में लिया जाता है।

राज्यों ”।

4. जब विलाप जैसी तीन प्रकार की श्रव्य वस्तुओं में से कोई एक हो

जांच की स्थिति यह है, शेष 2, जो इसके अंतर्गत भी आते हैं

पदार्थ समूह, ध्वनि आधार और ध्वनि तत्व को लिया जाता है

पहले “ये अवस्थाएँ”। फिर अदला-बदली करने पर, जाँच की अवस्था।

इसे दूसरे “ये राज्य” के रूप में लिया जाता है।

“वे राज्य”: पहले और दूसरे “वे राज्य” हैं

पहले और दूसरे स्थान पर लिए गए राज्यों के समान ही "ये राज्य"

क्रमशः। यह चार्ट से देखा जा सकता है।

चार्ट को कैसे पढ़ें: उत्पत्ति सत्य को एक उदाहरण के रूप में लें।

उत्पत्ति सत्य को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है (शेष 49 अवस्थाएँ)

मानसिक गठन समूह) उसी समूह के अंतर्गत (मानसिक

गठन समुच्चय), एक ही आधार (पहचानने योग्य आधार) के अंतर्गत और

एक ही तत्व (संज्ञानात्मक तत्व) के अंतर्गत। वे अवस्थाएँ (

मानसिक गठन की शेष 49 अवस्थाओं को वर्गीकृत किया गया है।

इन अवस्थाओं (उत्पत्ति सत्य) के साथ समान समूह (मानसिक) के अंतर्गत

गठन समुच्चय), एक ही आधार (पहचानने योग्य आधार) के अंतर्गत और

एक ही तत्व (संज्ञानात्मक तत्व) के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन अवस्थाओं (मूल सत्य) को कितने तत्वों में वर्गीकृत किया गया है?

इन्हें 1 समूह (मानसिक गठन समूह) के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार (पहचानने योग्य आधार) और 1 तत्व (पहचानने योग्य तत्व) के अंतर्गत।

पहले "ये" और "वे" राज्यों के प्रकार: एक ही

विभिन्न प्रकारों को एक साथ समूहीकृत किया गया है और कोष्ठकों में उल्लेख किया गया है।

प्रश्नों की संख्या:—

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
191 (उत्पत्ति सत्य 1), 192 (विश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, अज्ञान, संपर्क, लालसा, आसक्ति, निराशा, संपर्क, इच्छाशक्ति, निर्णय, ध्यान + 30 समूह)	43
191 (मार्ग सत्य), 192 (एकाग्रता, ज्ञान, मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था। उच्चतर बोध क्षमता, ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता। गठन, कर्म का बनना। आर्य अष्टांगिक मार्ग में ध्यान का अनुप्रयोग	15
192 महिला संकाय, पुरुष संकाय	2
192 शारीरिक सुख की क्षमता . . . उदासीनता की क्षमता (5), दुःख, पीड़ा, शोक	8
192 विलाप	1
	कुल 69

उत्तरों के प्रकार: उत्तर समान हैं

उनकी संख्या के अनुसार नहीं, बल्कि समुच्चय, आधार और तत्वों के प्रकारों के अनुसार।

वे जिन चीजों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे वर्गीकृत कॉलम में पाई जा सकती हैं

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 5

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 5: अवर्गीकृत और अवर्गीकृत

35 प्रश्न और उत्तर

193. पदार्थ समूह को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान समुच्चय, समान आधार के अंतर्गत और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों में कितने तत्व वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय, 1 आधार और 7 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत (1)।

194. भावना समूह को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है;

धारणा समूह; मानसिक गठन समूह को वर्गीकृत नहीं किया गया है

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (3).

195. चेतना समूह; मन का आधार; नेत्र चेतना

तत्व. . . . मन तत्व; मन चेतना तत्व; मन

संकाय को इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

4 एग्रीगेट्स के तहत, 11 बेस के तहत और 11 के तहत वर्गीकृत

तत्व (10).

196. आँख का आधार इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं है। . . . मूर्त

ऑब्जेक्ट बेस; आई एलिमेंट; ... टैंजिबल ऑब्जेक्ट एलिमेंट नहीं है

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया

तत्व (20).

197. संज्ञेय आधार; संज्ञेय तत्व; महिला संकाय;

पुरुष संकाय; आजीवन संकाय को इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

समान योग, समान आधार के अंतर्गत और समान के अंतर्गत

तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग, 1 आधार और 7 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है

तत्व (5).

198. उत्पत्ति सत्य; पथ सत्य; समाप्ति सत्य का वर्गीकरण नहीं किया गया है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (3).

199. नेत्र संबंधी क्षमता... शरीर संबंधी क्षमता को इन अवस्थाओं में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान योगफल के तहत, समान आधार के तहत और समान के तहत

तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत (5)।

200. शारीरिक सुख का अनुभव; शारीरिक पीड़ा का अनुभव; मानसिक आनंद

क्षमता; शोक क्षमता; उदासीनता क्षमता; आस्था क्षमता;

ऊर्जा क्षमता; ध्यान क्षमता; एकाग्रता क्षमता;

ज्ञान की क्षमता; वह क्षमता जिससे मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे पहले नहीं पता था;

उच्चतर बोध क्षमता; ज्ञानी की क्षमता; अज्ञान;

अज्ञानता से प्रेरित। निर्माण को इनके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जाता।

एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और एक ही आधार के अंतर्गत राज्य

समान तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व (15).

201. गठन द्वारा वातानुकूलित। चेतना को वर्गीकृत नहीं किया जाता है

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

4 एग्रीगेट्स के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 11 बेस के अंतर्गत और 11 के अंतर्गत

तत्व (1).

202. चेतना द्वारा नियंत्रित, मानसिक-भौतिकता नहीं है

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

1 समुच्चय, 1 आधार और 7 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत (1)।

203. मानसिकता-भौतिकता से वातानुकूलित, 6 आधारों का वर्गीकरण नहीं किया गया है।

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत, समान

आधार और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

3 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत (1)।

204. 6 आधारों द्वारा नियंत्रित, संपर्क; ओन्टएमटी द्वारा नियंत्रित,

भावना; भावना से प्रेरित, लालसा; लालसा से प्रेरित

आसक्ति; कम्मा अवस्था को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान योग, समान आधार के अंतर्गत और समान के अंतर्गत

तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (5).

205. अमूर्त विकास; न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति

विकास; चार-समूह विकास; मानसिक शक्ति का मार्ग

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

1 कुल योग, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत

तत्व (4).

206. अगोचर विकास; एक-समूह विकास; जन्म;

वृद्धावस्था; मृत्यु को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन्हें 1 समुच्चय, 1 आधार और 7 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

तत्व (5).

207. विलाप को इन अवस्थाओं के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

तत्व (1).

208. दुःख; पीड़ा; शोक; निराशा; ध्यान का अनुप्रयोग;

महान प्रयास; ध्यान; असीम; 5 शक्तियाँ; 5 सामर्थ्य;

ज्ञानोदय के 7 कारक; आर्य अष्टांगिक मार्ग; संपर्क;

भावना; बोध; इच्छाशक्ति; निर्णय; ध्यान

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (18).

209. चेतना को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान समुच्चय, समान आधार के अंतर्गत और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

4 एग्रीगेट्स के तहत, 11 बेस के तहत और 11 के तहत वर्गीकृत

तत्व (1).

त्रिक

210. स्वस्थ राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है;

अस्वस्थ अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; अवस्थाएँ

दर्दनाक अनुभूति से संबंधित; ऐसी अवस्थाएँ जो इस भावना से जुड़ी हैं कि

न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक; परिणामी अवस्थाएँ; उत्पन्न करने वाली अवस्थाएँ

परिणामी अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और न ही

आसक्ति के लिए अनुकूल; भ्रष्ट और भ्रष्ट करने वाले राज्य; भ्रष्ट नहीं

और भ्रष्ट राज्यों को नहीं; व्यावहारिक सोच वाले राज्य और

निरंतर चिंतन; व्यावहारिक चिंतन के बिना लेकिन व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य

निरंतर चिंतन; परमानंद से युक्त अवस्थाएँ; साथ में अवस्थाएँ

आनंद; उदासीनता से ग्रस्त अवस्थाएँ; द्वारा समाप्त की गई अवस्थाएँ

पहला मार्ग; उच्चतर 3 मार्गों द्वारा समाप्त किए गए राज्य; राज्य एक साथ

प्रथम पथ द्वारा जड़ से उखाड़े गए; जड़ों सहित राज्य

उच्चतर तीन मार्गों द्वारा उन्मूलन; पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ;

निर्वाण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; शिक्षार्थियों से संबंधित अवस्थाएँ;

अरहत्त से संबंधित राज्य; उच्च राज्य; अतुलनीय

राज्य; सीमित उद्देश्यों वाले राज्य; उच्च उद्देश्यों वाले राज्य;

अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य; निम्न राज्य; उच्च राज्य;

गलत विचारों के कारण नियति निर्धारित राज्य; नियति निर्धारित राज्य

सही दृष्टिकोण के कारण नियति; पथ वस्तुओं वाले राज्य;

पथ द्वारा निर्धारित अवस्थाएँ; पथ द्वारा नियंत्रित अवस्थाएँ; पथ से प्रभावित अवस्थाएँ

भूतकाल की वस्तुएँ; भविष्य की वस्तुओं वाली अवस्थाएँ; वर्तमान की वस्तुओं वाली अवस्थाएँ

वस्तुएँ; आंतरिक वस्तुओं वाले राज्य; बाह्य वस्तुओं वाले राज्य;

आंतरिक और बाह्य वस्तुओं वाले राज्यों को वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

1 कुल योग, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत

तत्व (41).

211. दृश्य और प्रभाव डालने वाली दोनों अवस्थाएँ; अदृश्य अवस्थाएँ लेकिन

अतिक्रमण करने वाले राज्यों को इन राज्यों के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत (2)।

दोहे

212. जो राज्य मूल हैं उन्हें इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया जाता है;

वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और जिनसे संबंधित मूल भी हैं; वे अवस्थाएँ जो

जड़ और जड़ों से जुड़े अन्य तत्व इनके साथ वर्गीकृत नहीं किए गए हैं।

एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और एक ही आधार के अंतर्गत राज्य

वही तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (3).

213. वे राज्य जिनमें संबद्ध मूल हैं; वे राज्य जो

जड़ों से संबद्ध; वे राज्य जिनमें संबद्ध जड़ें हैं लेकिन

मूल नहीं; वे अवस्थाएँ जो मूलों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं मूल नहीं हैं;

वे राज्य जो मूल इकाई नहीं हैं, लेकिन उनसे संबंधित मूल इकाइयाँ हैं, उन्हें वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 के अंतर्गत नहीं

तत्व (5).

214. वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं; वे अवस्थाएँ जो किसी शर्त से बंधी नहीं होतीं।

इन राज्यों के अंतर्गत 4 कारणों को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व (2).

215. दृश्यता वाले राज्य; अतिक्रमण करने वाले राज्यों को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया

तत्व (2).

216. भौतिक परिवर्तन वाली अवस्थाओं को इस श्रेणी में नहीं रखा जाता है।

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग, 1 आधार और 7 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है

तत्व (1).

217. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई भौतिक परिवर्तन नहीं होता; वे अवस्थाएँ जो

अलौकिक अवस्थाओं को इन अवस्थाओं के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 के अंतर्गत नहीं

तत्व (2).

218. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो दोनों प्रकार से कलंक हैं

और रोग के कारक; वे अवस्थाएँ जो रोग और उससे संबंधित दोनों हैं

कैंकर से संक्रमित व्यक्तियों को इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे नहीं हैं

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 बेस के अंतर्गत वर्गीकृत।

तत्व (3).

219. वे राज्य जो दोषग्रस्त नहीं हैं; वे राज्य जो

कैंकर से संबंधित; कैंकर से संबंधित राज्य

लेकिन वे रोग नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो रोगों से अलग हैं और

कैंकर के शिकार नहीं हैं, इन्हें इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान योग, समान आधार के अंतर्गत और समान के अंतर्गत

तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 के अंतर्गत नहीं

तत्व (4).

220. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो...

गलतफहमियां और गलतफहमियों के विषय दोनों ही एक जैसे नहीं होते।

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व (37).

221. वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं; राज्य

जो गलतफहमियों से जुड़े हैं; वे राज्य जो

गलतफहमियों से अलग हैं और इनके विषय नहीं हैं

गलतफहमियाँ; जिन राज्यों के उद्देश्य हैं, उन्हें वर्गीकृत नहीं किया जाता है

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 के अंतर्गत नहीं

तत्व (4).

222. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई वस्तु नहीं होती; वे अवस्थाएँ जो चेतना नहीं होतीं;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से विरक्त हैं; अवस्थाएँ

जो चेतना से जुड़े नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो

चेतना द्वारा उत्पन्न; चेतना के साथ उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होती हैं;

बाह्य अवस्थाओं का वर्गीकरण नहीं किया जाता है; व्युत्पन्न अवस्थाओं को भी वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

1 कुल योग, 1 आधार और 7 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं है

तत्व (9).

223. चेतना की अवस्थाओं को इनके साथ वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और एक ही आधार के अंतर्गत राज्य

वही तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

4 एग्रीगेट्स के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, 11 बेस के अंतर्गत और 11 के अंतर्गत

तत्व (1).

224. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और उनसे उत्पन्न भी होती हैं

चेतना; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं

और चेतना के साथ उत्पन्न होते हैं; वे अवस्थाएँ जो संयुक्त हैं

चेतना के साथ, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व (6).

225. आंतरिक राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

समान योगफल के तहत, समान आधार के तहत और समान के तहत

तत्व।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

3 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया

तत्व (1).

226. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है। . . . वे

2 एग्रीगेट, 11 बेस और 17 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

तत्व (11).

227. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जो

भ्रष्ट; भ्रष्टाचार से जुड़े राज्य; राज्य

जो भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार से जुड़े हुए हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं; ऐसे राज्य जो

वे भ्रष्टाचार से अविभाजित हैं और भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं;

प्रथम मार्ग द्वारा नष्ट किए गए राज्य; द्वारा नष्ट किए गए राज्य

उच्चतर 3 पथ; राज्यों के साथ-साथ जड़ों को भी जड़ से उखाड़ दिया गया

पहला मार्ग; राज्यों के साथ-साथ जड़ों को भी जड़ से उखाड़ दिया गया

उच्चतर 3 मार्ग; व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य;

निरंतर चिंतन; परमानंद की अवस्थाएँ; ऐसी अवस्थाएँ जो

परमानंद से युक्त; आनंद से युक्त अवस्थाएँ;

उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ; उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ

इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित; सूक्ष्म अवस्थाओं से संबंधित अवस्थाएँ

भौतिक तल; अभौतिक तल से संबंधित अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो अस्तित्व के चक्र में शामिल नहीं हैं;

जो अस्तित्व के चक्र से निकलते हैं; ऐसी अवस्थाएँ जिनमें

मृत्यु के बाद या स्वयं घटित होने के बाद निश्चित नियति का परिणाम मिलता है;

वे अवस्थाएँ जो परे नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो कारण हैं

विलाप को इन अवस्थाओं के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

उन राज्यों को इन राज्यों के साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों में कितने तत्व वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 कुल योग, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 से कम के अंतर्गत वर्गीकृत

तत्व (24).

स्मृति सहायक

(क) सभी समुच्चय, सभी आधार और तत्व, तीन सत्य,

सभी संकाय, तेईस आश्रित उत्पत्तियाँ,

अगले सोलह, तैंतालीस तिगुने बच्चे।

बहत्तर समूह, सात छोटे मध्यवर्ती दोहे।

अठारह जो बड़े मध्यवर्ती दोहों से संबंधित हैं, और फिर

अंतिम दोहे के अठारह प्रकार। ये (257) प्रकार की अवस्थाएँ हैं

व्याख्या की,

अध्याय V की व्यवस्था में बुद्ध द्वारा। शेष (114)

इनकी व्याख्या नहीं की गई है।

(ख) पदार्थ समूह, संज्ञेय आधार, संज्ञेय तत्व।

स्त्री और पुरुष की क्षमताएँ, जीवन शक्ति, मानसिकता-भौतिकता,

दो अवस्थाएँ - जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु - भौतिक अवस्थाएँ।

वस्तुहीन अवस्थाएँ, अचेतनता, चेतना से विरक्त अवस्थाएँ।

चेतना से जुड़ा हुआ नहीं, चेतना से उत्पन्न।

चेतना के साथ उत्पन्न होना, चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होना,

बाह्य, व्युत्पन्न अवस्थाएँ। इस प्रश्न की विधि और

उत्तर को ठीक से समझा जाना चाहिए।

अध्याय V की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: 257 राज्य जो 5 समूहों का हिस्सा हैं

या वे जो निर्वाण के प्रतीक हैं, इस विषयवस्तु का निर्माण करते हैं।

अध्याय। ये वे राज्य हैं जिन्हें अन्य राज्यों के साथ वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

चार्ट में पहले "ये राज्य" के रूप में जाने जाने वाले राज्यों के अंतर्गत

समान समुच्चय, समान आधार के अंतर्गत और समान तत्व के अंतर्गत।

फिर से अन्य राज्य (जिन्हें चार्ट में "वे राज्य" के रूप में जाना जाता है)

संभावित अवस्थाओं (जिन्हें द्वितीय अवस्था के रूप में जाना जाता है) के साथ वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है

चार्ट में "ये राज्य") समान कुल योग के अंतर्गत,

दूसरे अवर्गीकृत में, समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

वे अवस्थाएँ जिनमें सूक्ष्म पदार्थ और चेतना दोनों समाहित होते हैं

कुल योग को इस प्रकार से नहीं माना जा सकता है और इसलिए

बाहर रखा गया। 257 राज्यों में से 99 आंतरिक और 158 राज्य हैं।

जांच के बाह्य राज्यों से संबंधित हैं।

“ये राज्य” और “वे राज्य”: निर्धारण के नियम

“ये राज्य” और “वे राज्य” निम्नलिखित हैं:—

1. जब पदार्थ समूह जांच का विषय होता है, तो चेतना

कुल योग, जो एक ही कुल योग के अंतर्गत नहीं आता है, के अंतर्गत

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत, इसे प्रथम "ये" के रूप में लिया जाता है

अवस्थाएँ ” . पदार्थ का समूह, चेतना के समूह के विपरीत, आता है

1 समुच्चय (पदार्थ समुच्चय) के अंतर्गत, 11 आधारों (10 सकल) के अंतर्गत

आधार और संज्ञेय आधार) और 11 तत्वों के अंतर्गत (10 स्थूल तत्व)

और संज्ञेय तत्व)। अतः ये प्रथम अवर्गीकृत समुच्चय का निर्माण करते हैं,

आधार और तत्व। फिर चेतना का समूह (पहला)

“ये अवस्थाएँ”) पहले “वे अवस्थाएँ” बन जाती हैं और 28 भौतिक

पदार्थ की अवस्थाएँ, समूह, भावना, बोध, मानसिक संरचनाएँ

और निर्वाण, जो एक ही समूह के अंतर्गत नहीं आते,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत, दूसरे के रूप में लिया जाता है।

“ये राज्य” (और फिर दूसरा “वे राज्य” बन जाता है)।

बाद वाले को 1 समूह (चेतना) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जाता है

कुल योग), 1 आधार (मन का आधार) के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत

(चेतना के तत्व)। इसलिए वे दूसरे अवर्गीकृत का निर्माण करते हैं।

समुच्चय, आधार और तत्व

समुच्चय, आधारों के अंतर्गत वर्गीकरण और अवर्गीकृत

उपरोक्त राज्यों के तत्वों का विस्तृत विवरण इसमें दिया गया है।

पहला उदाहरण। अगले उदाहरणों में, इसका संक्षेप में उल्लेख किया जाएगा।

लेकिन विवरण चार्ट में दिए गए हैं। इन्हें भी पाया जा सकता है।

अध्याय I में दिए गए राज्यों के वर्गीकरण के संदर्भ में।

2. जब भावना, बोध, मानसिक संरचनाएँ या निर्वाण प्राप्त हो जाए

जब बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं और चेतना के समूह पर चर्चा की जाती है, तो

इन्हें प्रथम “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। (यदि 28 भौतिक अवस्थाओं में से

पदार्थ समूह को लिया जाता है, फिर उनमें से कुछ, अर्थात्

सूक्ष्म भौतिक अवस्थाएँ एक ही आधार के अंतर्गत और एक ही के अधीन आ जाएँगी

तत्व)। जब पहले "ये अवस्थाएँ" अब पहले के रूप में ली जाती हैं

इन अवस्थाओं पर बारी-बारी से चर्चा की जाती है: भावना, बोध, मानसिक अवस्थाएँ।

संरचनाएं और निर्वाण, जो एक ही श्रेणी में नहीं आते हैं

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित होने वाले तत्व हैं

इसे दूसरे के रूप में लिया जाता है "ये राज्य और बाद में दूसरा बन जाता है

"वे राज्य"।

3. जब चेतना के समूह की बात आती है, तो 28 भौतिक अवस्थाएँ होती हैं।

पदार्थ, भावना, बोध, मानसिक संरचनाओं आदि का समूह

निर्वाण को पहली "ये अवस्थाएँ" माना जाता है। फिर जब

बाद वाले राज्यों को पहले "उन राज्यों" के रूप में लेते हुए, इस पर विचार किया जाता है।

चेतना का समूह, जो एक ही श्रेणी में नहीं आता

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत कुल योग है

इसे दूसरे "ये राज्य" के रूप में लिया जाता है और बाद में यह दूसरा बन जाता है

"वे राज्य"।

4. जब नेत्र आधार जैसी स्थूल भौतिक अवस्था से निपटा जाता है, तो

चार मानसिक समुच्चय और निर्वाण को प्रथम "इन" के रूप में लिया जाता है

राज्यों"। फिर जब बाद वाले राज्यों को पहले "उन" के रूप में लिया जाता है।

"अवस्थाओं" पर बारी-बारी से चर्चा की जाती है, बारह स्थूल भौतिक अवस्थाओं को ध्यान में रखा जाता है।

पहले "ये राज्य" और बाद में दूसरे "वे राज्य" के रूप में प्रयोग किया गया।

जब स्त्री की शारीरिक क्षमता जैसी सूक्ष्म शारीरिक अवस्था की बात आती है,

चेतना के समूह को पहली "इन अवस्थाओं" के रूप में लिया जाता है जब

बाद वाले राज्य को पहले राज्य के रूप में लेते हुए, "उन राज्यों" पर चर्चा की गई है।

मोड़, पदार्थ की 28 भौतिक अवस्थाएँ, समुच्चय, भावना, बोध,

मानसिक संरचनाएँ और निर्वाण को दूसरे "इन" के रूप में लिया जाता है।

राज्य" और बाद में दूसरा "वे राज्य" बन जाता है। यह महिला

संकाय, पदार्थ के समुच्चय के समान ही होता है, लेकिन इसे दर्शाया नहीं जाता है।

चार्ट।

5. जब आधार (जो कि 5 भौतिक आधार हैं जैसे कि नेत्र आधार,

आदि, और मन का आधार) से निपटा जाता है, भावना, धारणा, मानसिक

संरचनाओं और निर्वाण को पहली "ये अवस्थाएँ" माना जाता है।

जब बाद वाले राज्यों को पहले "उन राज्यों" के रूप में लिया जाता है तो उनसे निपटा जाता है

इसके साथ ही, 12 स्थूल भौतिक अवस्थाएँ और चेतना का समूह बनता है।

इन्हें दूसरे "ये राज्य" के रूप में और बाद में दूसरे के रूप में लिया जाता है

"वे राज्य"।

6. जब अमूर्त विकास होता है, जिसमें चार मानसिक अवस्थाएँ शामिल होती हैं।

जब समुच्चय की बात आती है, तो 12 स्थूल भौतिक अवस्थाओं को आधार माना जाता है।

पहले "ये राज्य"। जब बाद वाले राज्यों को पहले के रूप में लिया जाता है

"उन अवस्थाओं" पर बारी-बारी से चर्चा की जाती है, 4 मानसिक समुच्चय और

निर्वाण को दूसरी "ये अवस्थाएँ" के रूप में और बाद में इसके रूप में लिया जाता है।

दूसरा "वे राज्य"।

बुनियादी नियम: किसी विशेष राज्य या राज्यों से निपटते समय,

अन्य सभी राज्य जिन्हें एक ही समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है,

आधार और तत्व को तुलनात्मक अवस्थाओं के रूप में लिया जाना चाहिए।

चार्ट को कैसे पढ़ें: पदार्थ का समग्र रूप केवल एक उदाहरण के रूप में लिया गया है।

पदार्थ समूह को इन अवस्थाओं (चेतना) के साथ वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

उसी समुच्चय (पदार्थ समुच्चय 1) के अंतर्गत समुच्चय

समान आधार (10 सकल आधार और संज्ञेय आधार, यानी 11) और इसके अंतर्गत

समान तत्व (10 स्थूल तत्व और संज्ञेय तत्व, अर्थात् 11)।

उन अवस्थाओं (चेतना समूह) को इनके साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है।

अवस्थाएँ (पदार्थ की 28 भौतिक अवस्थाएँ, समग्र, भावना, बोध,

मानसिक संरचनाओं और निर्वाण) को एक ही समूह के अंतर्गत रखा गया है।

(चेतना समूह 1), एक ही आधार (मन आधार 1) के अंतर्गत और उसके अंतर्गत

वही तत्व (चेतना तत्व 7)।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन अवस्थाओं में कितने तत्व होते हैं (पदार्थ की 28 भौतिक अवस्थाएँ)

(समुच्चय, भावना, धारणा, मानसिक संरचनाएं और निर्वाण) नहीं

वर्गीकृत? उन्हें 1 समूह (चेतना) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

कुल योग), 1 आधार (मन का आधार) के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत

(चेतना तत्व 7)।

उत्तरों के प्रकार: छह प्रकार के उत्तर हैं।

इस अध्याय में इतने सारे प्रश्न और उत्तर हैं कि सभी

इन्हें चार्ट में शामिल नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 193 (1), 197 (5), 202 (1), 206 (5), 216 (1). 222 (9)	22
2. 194 (3), 198 (3), 200 (15), 204 (5), 208 (18), 212 (3), 214 (2), 218 (3), 220 (17), 224 (5), 226 (7)	82
3. 195 (10), 201 (1), 209 (1), 223 (1)	13
4.196 (20),199 (5),207 (1),211 (2),215 (2)	30
5. 203 (1), 225 (1)	2
6. 205 (4), 210 (41), 213 (5), 217 (2), 219 (4), 220 (20), 221 (4), 226 (4), 227 (24)	108
	कुल 257

उन समुच्चयों, आधारों और तत्वों के प्रकार जो निम्नलिखित के अनुरूप हैं

संख्याएँ अंतिम अवर्गीकृत स्तंभ में पाई जाती हैं। इसलिए

दूसरे प्रकार के "वे राज्य" समुच्चय के समान ही हैं।

उत्तरों के आधार और तत्व।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय 6**

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 6: जुड़ाव और अलगाव

78 प्रश्न और उत्तर

1. समुच्चय

228. कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने आधारों के साथ

पदार्थ समूह कितने तत्वों से संबंधित है? किसी से नहीं।

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (1).

229. . . . भावना का समूह; धारणा का समूह; मानसिक गठन

एग्रीगेट 3 एग्रीगेट, 1 बेस और के साथ जुड़ा हुआ है।

7 तत्व; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

230. . . . चेतना समूह 3 समूहों से जुड़ा है;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

2. आधार

231. कितने के साथ . . . नेत्र आधार . . . मूर्त वस्तु आधार है?

किसी से संबंधित नहीं।

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (10).

232. मन का आधार 3 समूहों से जुड़ा है; आंशिक रूप से जुड़ा हुआ है

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

3. तत्व

233. आँख का तत्व कितने से . . . है . . . मूर्त वस्तु

क्या यह तत्व किसी से संबद्ध है?

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (10).

234. नेत्र चेतना तत्व... मन तत्व; मन चेतना

यह तत्व 3 समूहों से जुड़ा है; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (7).

4. सत्य इत्यादि

235. मूल सत्य; पथ सत्य 3 समुच्चयों से जुड़ा है,

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध,

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (2).

236. कितने के साथ... समाप्ति सत्य है; नेत्र शक्ति... शरीर

संकाय; महिला संकाय; पुरुष संकाय संबद्ध 1 किसी से नहीं।

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (8).

237. मानसिक क्षमता 3 समूहों से जुड़ी है; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

238. शारीरिक सुख का अनुभव; शारीरिक पीड़ा का अनुभव; मानसिक आनंद

संकाय; शोक संकाय 3 समूहों से जुड़ा है, जिसमें 1 आधार है।

और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और के साथ संबद्ध

1 तत्व।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (4).

239. उदासीनता क्षमता 3 समूहों से जुड़ी है, जिनमें शामिल हैं:

1 आधार और 6 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार से संबद्ध और

1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 11 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1)

240. आस्था शक्ति; ऊर्जा शक्ति; ध्यान शक्ति; एकाग्रता

ज्ञान की क्षमता; बुद्धि की क्षमता; मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था;

उच्चतर अनुभूति की क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त, मानसिक संरचनाएँ

ये 3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व से जुड़े होते हैं;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (10)।

241. संरचनाओं द्वारा वातानुकूलित। चेतना इससे जुड़ी है

3 समुच्चय; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

242. 6 आधारों द्वारा नियंत्रित। संपर्क 3 समूहों से जुड़ा है।

1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से संबंधित

1 समुच्चय, जिसमें 1 आधार और 1 तत्व है।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

243. संपर्क द्वारा नियंत्रित, भावना 3 समूहों से जुड़ी होती है,

1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से संबंधित

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

244. भावना से प्रेरित। लालसा; लालसा से प्रेरित।

आसक्ति; कर्म का बनना 3 समुच्चयों से जुड़ा है, जिनके साथ

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध,

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

245. महीन पदार्थ कितने पदार्थों के साथ जुड़ रहा है?

किसी के साथ नहीं।

यह कितनों से पृथक है? यह किसी से पृथक नहीं है।

किसी भी आधार से अविभाजित समुच्चय; यह इससे विभाजित है

3 तत्व (1).

246. कितने के साथ..., अमूर्त बन रहा है; न ही बोध

न ही अबोध का बनना; चार-समूह का बनना

किसी से संबंधित नहीं।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

247. कितने के साथ... अगोचर हो रहा है; एक

सामूहिक 'बनना'; विलाप किसी से संबंधित नहीं है।

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (3).

248. शोक; पीड़ा; दुःख तीन स्कंधों से संबंधित है।

एक आधार और एक तत्व के साथ; आंशिक रूप से एक आधार से संबद्ध

और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

249. निराशा; ध्यान का प्रयोग; बहुत प्रयास आवश्यक है

3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और के साथ संबद्ध

1 तत्व।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

250. मानसिक शक्ति का मार्ग 2 समुच्चयों से जुड़ा है;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

251. ज्ञान 2 समुच्चयों, 1 आधार और 1 आधार से जुड़ा हुआ है।

1 तत्व; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ

और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

252. असीमित; 5 क्षमताएँ; 5 शक्तियाँ; ज्ञानोदय के 7 कारक;

नोबल एटफोल्ड पाथ 3 समुच्चयों से जुड़ा है।

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध,

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (5).

253. संपर्क; इच्छाशक्ति; ध्यान 3 समूहों से संबंधित है,

1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से संबंधित

1 समुच्चय, जिसमें 1 आधार और 1 तत्व है।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (3).

254. भावना; बोध 3 समूहों से जुड़ा है, जिनके साथ

1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार से संबद्ध और

1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (2).

255. चेतना 3 समूहों से जुड़ी है; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

256. निर्णय 3 समुच्चयों, 1 आधार और इसके साथ जुड़ा हुआ है।

2 तत्व; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ और

1 तत्व के साथ।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समुच्चय से वियोजित होता है।

10 क्षारकों और 15 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

5. ट्रिपलेट्स

257. कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने आधारों के साथ

अच्छे और बुरे तत्वों में कितने तत्व होते हैं?

किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

258. सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ

दर्दनाक अनुभूति के साथ 1 समूह से जुड़े होते हैं; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 15 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

259. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक और न ही दर्द से जुड़ी भावनाओं से संबंधित हैं।

सुखद 1 समूह से जुड़े हैं; आंशिक रूप से जुड़े हुए हैं

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 11 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

260. परिणामी अवस्थाएँ कितनी . . . से संबद्ध हैं?

कोई नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

261. कितने राज्यों के साथ परिणामी राज्य उत्पन्न हो रहे हैं?

क्या भ्रष्ट और भ्रष्टाचार फैलाने वाले राज्य किसी से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

262. ऐसे कितने राज्य हैं जो न तो परिणामी हैं और न ही...?

न ही परिणामी अवस्थाओं का उत्पादन करना; ऐसी अवस्थाएँ जो प्राप्त नहीं होतीं

आसक्ति लेकिन आसक्ति से संबंधित अनुकूल? किसी के साथ नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

5 तत्वों (2) से अलग हो गया।

263. ऐसे कितने राज्य हैं जिनका अधिग्रहण नहीं किया गया है?

आसक्ति से प्रेरित और आसक्ति के अनुकूल नहीं; भ्रष्ट नहीं और नहीं

क्या भ्रष्ट राज्य इससे जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

264. व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन वाले राज्य हैं

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 15 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

265. व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद से युक्त अवस्थाएँ आंशिक रूप से 1 समुच्चय से जुड़ी होती हैं,

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

266. व्यावहारिक चिंतन के बिना कितने राज्य हैं?

और निरंतर चिंतन से संबंधित? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

1 तत्व (1) से अलग हो गया।

267. आनंद से युक्त अवस्थाएँ 1 समूह से जुड़ी होती हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 15 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

268. उदासीनता से ग्रस्त अवस्थाएँ निम्नलिखित से संबंधित हैं:

1 समुच्चय; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 11 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

269. प्रथम पथ द्वारा कितने राज्यों का उन्मूलन किया गया है?

उच्चतर 3 पाठ द्वारा नष्ट किए गए राज्य; जड़ों सहित राज्य

प्रथम पथ द्वारा उन्मूलन; राज्यों को जड़ों सहित उन्मूलन द्वारा

उच्चतर 3 मार्ग; पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; आगे बढ़ने वाली अवस्थाएँ

निर्वाण की ओर; शिक्षार्थियों से संबंधित अवस्थाएँ; संबंधित अवस्थाएँ

अरहत्ता से; उच्चतर राज्य किसी से संबंधित नहीं हैं?

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (9) से अलग हो गया।

270. कितने . . . अतुलनीय अवस्थाएँ हैं; उच्चतर

किन राज्यों का इससे संबंध है? किसी से नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

271. सीमित उद्देश्यों वाले राज्यों की संख्या कितनी है?

किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

272. कितने राज्यों के उच्च उद्देश्य हैं?

अतुलनीय वस्तुओं के साथ; निम्न अवस्थाएँ; निश्चित भाग्य वाली अवस्थाएँ

गलत विचारों के कारण; सही विचारों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य;

पथ ऑब्जेक्ट वाले स्टेट्स; पथ द्वारा निर्धारित स्टेट्स; स्टेट्स

क्या यह पथ किसी से संबंधित नहीं है?

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (8) से अलग हो गया।

273. राज्य कितने . . . से संबद्ध नहीं हैं?

किसी के साथ नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

5 तत्वों (1) से अलग किया गया।

274. भूतकाल की वस्तुओं वाले राज्यों की संख्या कितनी है?

क्या भविष्य में इससे संबंधित कोई वस्तु है? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

275. वर्तमान उद्देश्यों वाले राज्य कितने हैं?

आंतरिक वस्तुओं वाले राज्य; बाह्य वस्तुओं वाले राज्य; राज्य

क्या आंतरिक और बाह्य वस्तुएं संबद्ध हैं? कोई नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

276. कितने राज्यों के साथ... वे दृश्य और प्रभाव दोनों हैं;

अदृश्य अवस्थाएँ लेकिन संबद्ध 1 किसी के साथ नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 आधार और 7 तत्वों से बने 4 समुच्चय; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (2).

6. दोहे

277. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और साथ ही

संबद्ध मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और संबद्ध भी हैं

जड़ों के साथ 3 समूह जुड़े होते हैं, 1 आधार के साथ और

1 तत्व; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ और

1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से अलग हो गया।

278. ऐसे कितने राज्य हैं जिनके साथ संबद्धता है?

मूल; वे अवस्थाएँ जो मूलों से संबंधित हैं?

कोई नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

279. वे अवस्थाएँ जिनके सहबद्ध मूल हैं लेकिन वे स्वयं मूल नहीं हैं; अवस्थाएँ

जो जड़ों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं; वे राज्य जो

ये मूल नहीं हैं, लेकिन इनसे संबद्ध मूल आंशिक रूप से संबद्ध हैं।

1 समुच्चय के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से अलग हो गया।

280. कितने राज्यों का उद्भव 4 कारणों से नहीं हुआ है?

वे राज्य जो 4 कारणों से प्रभावित नहीं हैं; दृश्यता वाले राज्य; राज्य

प्रभाव डालने के साथ; वे अवस्थाएँ जिनमें भौतिक परिवर्तन होता है?

किसी के साथ नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (5) से अलग हो गया।

281. कितनी अवस्थाएँ अलौकिक हैं?

किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (1) से अलग किया गया।

282. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो दोनों प्रकार से कलंक हैं

और दोष के कारक; वे अवस्थाएँ जो दोष भी हैं और उनसे संबंधित भी हैं

कैंकर के साथ 3 समूह जुड़े होते हैं, जिनमें 1 आधार होता है और

1 तत्व; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ और

1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से अलग हो गया।

283. ऐसे कितने राज्य हैं जो वस्तु नहीं हैं?

कैंकर से संबंधित; वे अवस्थाएँ जो कैंकर से अलग हैं और नहीं हैं

कैंकर से संबंधित वस्तुएं? किसी से नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

284. वे राज्य कितने राज्यों से संबद्ध हैं?

क्या किसी से कोई घाव संबंधित है?

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

285. वे अवस्थाएँ जो कैंकर रोग से संबंधित हैं लेकिन स्वयं कैंकर रोग नहीं हैं

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और के साथ जुड़े हुए हैं

1 तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

286. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ* . . . ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो

दोनों ही गलतफहमियां और गलतफहमियों के विषय हैं।

3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (37) से अलग हो गया।

287. कितने राज्यों के साथ... वे राज्य हैं जो इसके विषय नहीं हैं

गलतफहमियां; वे राज्य जो गलतफहमियों से मुक्त हैं

और क्या ये गलतफहमियों से जुड़े विषय नहीं हैं?

कोई नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

288. वे राज्य जो गलतफहमियों से जुड़े हैं, वे हैं

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

289. ऐसे कितने राज्य हैं जिनके उद्देश्य हैं?

किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

290. ऐसे कितने राज्य हैं जिनके कोई उद्देश्य नहीं हैं?

वे अवस्थाएँ जो चेतना से विरक्त हैं; वे अवस्थाएँ जो

चेतना से जुड़ा हुआ नहीं; व्युत्पन्न अवस्थाएँ

किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

291. चेतना की अवस्थाएँ 3 समूहों से जुड़ी होती हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

292. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और उनसे उत्पन्न भी होती हैं

चेतना; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं

और चेतना के साथ उत्पन्न होते हैं; वे अवस्थाएँ जो संयुक्त हैं

चेतना के साथ, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

1 समुच्चय, 1 आधार और 7 तत्वों से संबंधित।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (6) से अलग हो गया।

293. ऐसे कितने राज्य हैं जिनका अधिग्रहण नहीं किया गया है?

किसी से भी जुड़ाव नहीं है?

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

5 तत्वों (1) से अलग किया गया।

294. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों ही आपस में जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (11) से अलग हो गया।

295. कितने राज्यों के साथ... वे राज्य हैं जो इसके विषय नहीं हैं

भ्रष्टाचार; वे राज्य जो भ्रष्टाचार से मुक्त हैं और

क्या ये भ्रष्टाचार से जुड़े नहीं हैं? किसी से भी नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

296. कितने राज्यों में भ्रष्टाचार व्याप्त है?

जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व से पृथक (2)

297. वे राज्य जो भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं;

जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

298. प्रथम द्वारा कितने राज्यों का उन्मूलन किया गया है?

पथ; उच्चतर 3 पथों द्वारा समाप्त किए गए राज्य; राज्य एक साथ

प्रथम पथ द्वारा जड़ से उखाड़े गए; जड़ों सहित राज्य

उच्चतर 3 पथों द्वारा उन्मूलन किया गया? किसी से संबंधित नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

299. व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और के साथ जुड़े हुए हैं

1 तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 15 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

300. व्यावहारिक चिंतन से रहित कितने राज्य हैं?

क्या ऐसी अवस्थाएँ हैं जिनमें निरंतर चिंतन का कोई संबंध नहीं है? किसी से भी नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

1 तत्व (2) से अलग हो गया।

301. परमानंद की अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो इसके साथ होती हैं

परमानंद आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और के साथ जुड़ा हुआ है

1 तत्व के साथ।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

302. आनंद से युक्त अवस्थाएँ संबंधित हैं

1 समुच्चय के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 के साथ संबद्ध

तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 15 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

303. उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ संबद्ध होती हैं

1 समुच्चय के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 के साथ संबद्ध

तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 11 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

304. ऐसे कितने राज्य हैं जो इनमें से किसी से संबंधित नहीं हैं?

इंद्रिय-संबंधी तल; वे अवस्थाएँ जो चक्र में शामिल नहीं हैं

अस्तित्व; ऐसी अवस्थाएँ जो परे से संबद्ध नहीं हैं?

कोई नहीं।

वे कितनों से वियोगित हैं? वे वियोगित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (3) से अलग हो गया।

305. कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने आधारों के साथ

सूक्ष्म पदार्थ से संबंधित अवस्थाओं में कितने तत्व होते हैं?

समतल; वे अवस्थाएँ जो अमूर्त समतल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अस्तित्व के चक्र से बाहर निकलें; वे अवस्थाएँ जो निश्चित हैं

मृत्यु के बाद या स्वयं घटित होने के बाद नियति ने त्याग दिया; राज्य

शोक के कौन-से कारण जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (5) से अलग हो गया।

स्मृति सहायक

बोधगम्य आधार, बोधगम्य तत्व, पीड़ादायक सत्य, जीवन शक्ति,

छह आधार, मानसिकता-भौतिकता, चार महान विकास,

जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, उन्नीस तिगुने बच्चे।

पचास समूह, आठ छोटे मध्यवर्ती दोहे।

पंद्रह बड़े मध्यवर्ती दोहे, और फिर अठारह अंतिम दोहे

दोहे।

इन 123 राज्यों को यहां शामिल नहीं किया गया है।

अध्याय VI की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: वे अवस्थाएँ जो (1) संबद्ध हैं, (2) पृथक हैं और

(3) संबद्ध और पृथक दोनों।

(1) सहभागिता: चारों मानसिक समूह परस्पर सहभागी हैं

(1 के साथ 3 ; 3 के साथ 1 ; 2 के साथ 2) क्योंकि (1) वे एक साथ उत्पन्न होते हैं,

(2) एक साथ समाप्त हो जाएं, (3) एक ही उद्देश्य हो और (4) एक ही आधार हो।

ये साहचर्य की चार विशेषताएं हैं।

(2) वियोजन: अवस्थाओं को वियोजनित तब कहा जाता है जब वे

सहभागिता की 4 विशेषताओं का अनुपालन नहीं करते हैं।

(क) हमेशा अलग-थलग: (1) भौतिकता और 4 मानसिक

समुच्चय, (2) निर्वाण और 4 मानसिक समुच्चय हमेशा

पृथक।

(1) मन द्वारा उत्पन्न भौतिकता जो प्रथम जीवन निरंतरता से

पुनर्जन्म-चेतना के बाद से लेकर मृत्यु-चेतना तक,

चार अमूर्त परिणामी चेतनाओं के अपवाद के रूप में,

2 x 5 इंद्रिय चेतना और अंतिम मृत्यु-चेतना

अरहत प्रत्येक चेतना के साथ ही उत्पन्न होता है। भौतिकता

कर्म से उत्पन्न कर्म भी मानसिक कर्म के साथ-साथ उत्पन्न होता है।

गर्भाधान के समय ये समूह बनते हैं। ये 17 विचारों तक बने रहते हैं।

क्षण या 51 चरण और फिर किसी के साथ एक साथ समाप्त हो जाते हैं

एक प्रकार की चेतना। मन द्वारा उत्पन्न दो संकेत भी।

चेतना के साथ ही उत्पन्न और समाप्त होते हैं। क्योंकि 4 मानसिक

जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, समुच्चय और भौतिकता एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ समाप्त होते हैं।

यह संदिग्ध है कि वे जुड़े हुए हैं या अलग-अलग हैं।

इस विषय पर सभी शंकाओं को दूर करने के लिए, बुद्ध ने यहाँ इसका विस्तार से वर्णन किया है।

और साथ ही पट्टाना की वियोजन अवस्था में भी।

बाद में संदर्भ यह है कि "भौतिकता मानसिकता से इस प्रकार संबंधित है"

वियोग की स्थिति। मानसिकता भौतिकता से इस प्रकार संबंधित है:

पृथक्करण की स्थिति

(2) निर्वाण को मानसिक अवस्था कहा जाता है क्योंकि यह व्यक्तिपरक चेतना है।

और मानसिक कारक इसे समझते हैं और इसकी ओर झुकाव रखते हैं।

वस्तु। चेतना और मानसिक कारक भी मानसिकता हैं। चूंकि

निर्वाण और चेतना, मानसिक कारकों के साथ मिलकर, दोनों ही

मानसिकता के लिहाज से, ऐसा प्रतीत होता है कि वे जुड़े हुए हैं। लेकिन बुद्ध

यहां यह स्पष्ट किया गया है कि वे असंबद्ध हैं, संबद्ध नहीं।

(ख) कभी-कभी वियोगित: 4 मानसिक समूहों के संबंध में,

यदि भावना और अन्य 3, धारणा और अन्य 3, मानसिक

गठन और अन्य 3, चेतना और अन्य 3 अनुपालन करते हैं

सहभागिता की 4 विशेषताओं के आधार पर, वे आपस में जुड़े हुए हैं।

अन्यथा वे अलग हो जाते हैं।

(ग) न तो संबद्ध और न ही पृथक: (1) भौतिकता और

निर्वाण, (2) भौतिकता और भौतिकता, (3) भावना और भावना,

(4) बोध और धारणा, (5) मानसिक गठन और मानसिक

गठन, (6) चेतना और चेतना, (7) संपर्क और

संपर्क, (8) इच्छाशक्ति और इच्छाशक्ति, आदि। ये जोड़े कभी अनुपालन नहीं करते।

सहभागिता की 4 विशेषताओं के साथ। इसलिए वे न तो हैं और न ही

न तो जुड़ा हुआ है और न ही अलग है। ठीक वैसे ही जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि कोई व्यक्ति है

स्वयं के समान या भिन्न होना, लेकिन केवल इतना ही कि कोई दूसरे के समान या भिन्न है।

इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि पृथ्वी किसी चीज से जुड़ी हुई है या उससे अलग है।

पृथ्वी से संबंधित या भावना से असंबंधित है।

इसलिए, वे न तो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और न ही अलग-अलग हैं।

अपवाद: जब यह कहा जाता है कि मानसिक गठन और मानसिक

गठन न तो संबद्ध हैं और न ही पृथक, इसका अर्थ है कि साथ

मानसिक निर्माण की 50 अवस्थाएँ, समूह, संपर्क और संपर्क,

इच्छाशक्ति और इच्छाशक्ति इत्यादि न तो संबद्ध हैं और न ही असंबद्ध।

लेकिन संपर्क और इच्छाशक्ति, संपर्क और ज्ञान और इस तरह के जोड़े

मानसिक निर्माण की विभिन्न अवस्थाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं।

इसी प्रकार, जब यह कहा जाता है कि चेतना और चेतना हैं

न तो संबद्ध और न ही पृथक, यही अर्थ है

समान जोड़ों के लिए नेत्र-चेतना और नेत्र-चेतना इत्यादि। लेकिन

नेत्र-चेतना और शेष 6 चेतनाएँ अलग-अलग हैं।

(घ) चार प्रकार के वियोजन:

(1) तलों द्वारा वियोजन: यह निम्नलिखित के बीच का अंतर है:

संवेदी, सूक्ष्म भौतिक, अभौतिक और अलौकिक तल।

(2) वर्गों द्वारा पृथक्करण: यह संपूर्ण और कुछ के बीच का अंतर है,

अस्वस्थ, परिणामी, निष्क्रिय, मूल-निर्धारित और

गैर-मूल-आधारित चेतना के वर्ग।

स्वस्थ और अस्वस्थ चेतना वर्ग में भिन्न होती है, और

इसलिए, उन्हें वर्गों द्वारा अलग किया हुआ कहा जाता है।

(3) समय के अनुसार वियोजन: यह इनके बीच का अंतर है

अतीत, भविष्य, वर्तमान। हालाँकि स्वस्थ चेतना

अतीत, भविष्य और वर्तमान एक समान हैं।

समय में भिन्नता होती है और इसलिए इन्हें पृथक कहा जाता है।

बार।

(4) निरंतरता द्वारा पृथक्करण (संतना); यही अंतर है

जो एक आत्मा में और दूसरी आत्मा में या आंतरिक रूप से उत्पन्न होता है, उसके बीच

बाह्य रूप से। यद्यपि जो स्वस्थ चेतना उत्पन्न होती है

स्वयं और दूसरे में एकरूपता है, उनमें निरंतरता का अंतर है।

और इसलिए, उन्हें निरंतरता द्वारा विच्छेदित कहा जाता है।

नोट: नेत्र चेतना तत्व का पृथक्करण

शेष 6 चेतना तत्व वियोजन के अंतर्गत आते हैं।

समय-समय पर।

जांच के दायरे में आने वाले राज्य: कुल 250 राज्य, जिनमें से 92 राज्य निम्नलिखित राज्यों के हैं:

आंतरिक और बाह्य जांच की 158 अवस्थाएँ विषय का निर्माण करती हैं।

इस अध्याय का विषय।

चार्ट

'इसमें 4 मुख्य कॉलम हैं, जिनमें से 2 एसोसिएशन के लिए हैं, यानी संबद्ध (कुल)'

और आंशिक रूप से संबद्ध तथा 2 पृथक्करण के लिए, अर्थात् पृथक

(पूर्ण) और आंशिक रूप से विघटित।

आंशिक सहसंबंध के संदर्भ में, जब भौतिकता विषय हो

जांच के संदर्भ में, इस कॉलम में कुछ भी डालने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इस मामले में

मानसिक स्थिति के संदर्भ में, इससे जुड़े सभी मानसिक कारकों को इसमें दर्शाया गया है।

स्तंभ।

आंशिक पृथक्करण के संबंध में, जब भौतिकता

जांच का विषय, विच्छेदित 52 मानसिक कारक हैं

इस कॉलम में इंगित किया गया है, लेकिन मानसिकता के मामले में, 16 सूक्ष्म

यहां भौतिक अवस्थाओं और निर्वाण, जो वियोजित हैं, का संकेत दिया गया है।

इस कॉलम में।

प्रश्न और उत्तर का प्रारूप

यह अध्याय I के समान है। यहाँ सीधे प्रश्न पूछे जाते हैं।

समुच्चय, आधार और तत्वों की संख्या के बारे में जो हैं

जांच की प्रत्येक अवस्था से संबद्ध और पृथक।

(1) सहभागिता: जब भौतिकता या निर्वाण की बात हो

जहां कोई संबद्ध अवस्थाएं नहीं हैं और उत्तर हमेशा यही होता है

“बिना किसी के”। जब भी यही उत्तर होता है, तो कोई आंशिक उत्तर नहीं होता।

संगठन।

पृथक्करण: लेकिन भौतिकता को मानसिकता से अलग किया जाता है क्योंकि

ऊपर बताए गए अनुसार उत्तर है “4 (मानसिक) समूहों से,

1 (मन) आधार और 7 (चेतना) तत्वों से। यह प्राप्त होता है।

चार मानसिक समूहों को समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत करके,

क्षार और तत्व। यह पूर्ण वियोजन है।

आंशिक वियोग: जब मानसिक स्थिति का केवल एक हिस्सा ही सक्रिय होता है।

संज्ञेय आधार और संज्ञेय तत्व के अंतर्गत विखंडित होते हैं।

इसे “आंशिक वियोजन” के नाम से जाना जाता है। इसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

उदाहरण से। सबसे पहले यह याद रखना चाहिए कि

16 सूक्ष्म शारीरिक अवस्थाएँ, 52 मानसिक कारक और निर्वाण हैं।

संज्ञेय आधार के अंतर्गत आने वाले राज्यों की कुल संख्या और इसके अंतर्गत आने वाले राज्यों की कुल संख्या

बोधगम्य तत्व। अब यह सिद्ध हो चुका है कि भौतिकता और

भौतिकता, भौतिकता और निर्वाण न तो आपस में जुड़े हुए हैं और न ही

पृथक हो गया। अतः, पदार्थ के समुच्चय (भौतिकता) के संबंध में

16 सूक्ष्म भौतिक तत्वों से जुड़ाव या अलगाव

बोधगम्य आधार और बोधगम्य की अवस्थाएँ (भौतिकता) और निर्वाण

इस तत्व पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इससे केवल 52 मानसिक तत्व ही शेष रह जाते हैं।

विचारणीय आधार और विचारणीय तत्व के कारक।

अब पदार्थ समूह को 52 मानसिक कारकों से अलग किया गया है।

क्योंकि वे मानसिकता हैं। लेकिन चूंकि बाद वाला केवल एक हिस्सा बनता है

बोधगम्य आधार और बोधगम्य तत्व, पदार्थ समुच्चय है

बोधगम्य आधार और बोधगम्य तत्व के एक भाग से पृथक।

अतः यहाँ उत्तर है “1 (संज्ञानात्मक) से आंशिक रूप से पृथक”

आधार और 1 (पहचानने योग्य) तत्व से"।

(2) भावना, बोध या मानसिक संरचना के साथ, जिनमें से प्रत्येक

उनकी मानसिकता परस्पर जुड़ी हुई है, यानी प्रत्येक एक दूसरे से संबंधित है।

शेष 3 (मानसिक) समूह, 1 (मन) आधार के साथ और

7 (चेतना) तत्व। इसके अलावा, चूंकि उनमें से प्रत्येक भी है

52 मानसिक कारकों (मानसिकता) से जुड़ा हुआ जो इसका हिस्सा हैं

संज्ञेय आधार और संज्ञेय तत्व के वे आंशिक रूप से हैं

1 (पहचानने योग्य) आधार और 1 (पहचानने योग्य) तत्व से संबद्ध।

हालांकि, जब भावनाओं की बात आती है, तो चूंकि भावनाएं जुड़ी नहीं होती हैं

भावना के साथ, इसे 52 मानसिक कारकों से बाहर रखा गया है और केवल

51 मानसिक कारक आंशिक रूप से संबंधित हैं। इसी प्रकार धारणा के साथ भी।

52 मानसिक कारकों से प्राप्त धारणा को इसमें शामिल नहीं किया गया है।

वियोग: मानसिकता और भौतिकता अलग हो जाती हैं। अतः

भावना, धारणा या मानसिक संरचना 1 (पदार्थ) से अलग है।

दस (स्थूल) आधारों और दस (स्थूल) तत्वों से बना कुल योग।

इनमें से प्रत्येक 16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाओं से भी पृथक है।

और निर्वाण जो बोधगम्य आधार और बोधगम्य का हिस्सा हैं

यह तत्व है और इसलिए 1 (पहचानने योग्य) से आंशिक रूप से अलग है।

आधार और 1 (पहचानने योग्य) तत्व से।

(3) सहभागिता: चेतना समूह के साथ, यह सहभागिता है

शेष 3 मानसिक समूहों के साथ। यह इससे संबद्ध नहीं है।

मन का आधार और चेतना के 7 तत्व, क्योंकि ये आते हैं

चेतना के अंतर्गत चेतना का संबंध चेतना से नहीं है।

लेकिन यह उन्हीं तीन मानसिक कारकों से भी जुड़ा हुआ है।

कारक समूह, अर्थात् 52 मानसिक कारक, बोधगम्य के अंतर्गत

आधार और बोधगम्य तत्व के अंतर्गत। इस प्रकार यह आंशिक रूप से संबद्ध है।

1 (पहचानने योग्य) आधार और 1 (पहचानने योग्य) तत्व के साथ।

वियोग: यह भावना समूह के समान ही वियोगित है क्योंकि

दोनों ही मानसिकता हैं।

(4) साहचर्य: नेत्र-चेतना के साथ, जो एक प्रकार का है

चेतना, इसे भी चेतना के समग्र रूप में ही समझा जाता है।

लेकिन यह केवल 7 प्राथमिक मानसिक कारकों से जुड़ा है और

इसलिए आंशिक रूप से बोधगम्य आधार से जुड़ा हुआ है और

संज्ञेय तत्व।

पृथक्करण: चूंकि यह मानसिकता है, इसलिए यह 1 (पदार्थ) से पृथक है।

कुल योग और 10 (स्थूल) आधारों से। जहाँ तक वियोजन का संबंध है

तत्व, क्योंकि नेत्र-चेतना न तो जुड़ी हुई है

न ही नेत्र-चेतना से अलग होकर, इसे इससे बाहर रखा गया है

वियोग में चेतना के 7 तत्व। यह इससे भी वियोगित है।

बोधगम्य तत्व, क्योंकि बाद वाला आंशिक पृथक्करण के अंतर्गत आता है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जब भी मानसिकता जांच का विषय हो।

इसमें 16 सूक्ष्म शारीरिक अवस्थाएँ और निर्वाण हमेशा शामिल होते हैं।

आंशिक रूप से विघटित अवस्थाएँ।

(5) साहचर्य: मूल सत्य मानसिक संरचना का एक हिस्सा है

कुल योग और इसलिए, यह शेष 3 से जुड़ा हुआ है।

(मानसिक) समूह, जिसमें 1 (मन) आधार और 1 (मन-चेतना) होती है।

तत्व और साथ ही मानसिक अवस्था की शेष 21 अवस्थाओं के साथ

गठन समुच्चय। बाद वाले मामले में यह आंशिक रूप से जुड़ा हुआ है।

मानसिक गठन समूह के साथ।

वियोग: मूल सत्य मन-चेतना से जुड़ा हुआ है।

इसलिए, इस तत्व को चेतना के 7वें भाग से बाहर रखा जाना चाहिए।

वियोजन में तत्व। यह बोधगम्य से भी वियोगित है।

तत्व, क्योंकि बाद वाला आंशिक वियोजन के अंतर्गत आता है। शेष

यह चार्ट से स्पष्ट है।

(6) शारीरिक सुख की अनुभूति एक संवेदना है और इसलिए इससे जुड़ी हुई है।

समुच्चय और आधारों के साथ उसी तरह जैसे भावना समुच्चय के साथ होता है।

लेकिन चूंकि यह शरीर की चेतना के साथ जुड़ा एक सुखद अहसास है,

यह केवल 1 (शारीरिक चेतना) तत्व से जुड़ा है।

आंशिक संबंध, यह 6 प्राथमिक मानसिक प्रक्रियाओं से जुड़ा हुआ है।

कारक, बहिष्कृत महसूस करना। वियोग में, शरीर-चेतना।

तत्व को अन्य तत्वों से बाहर रखा गया है। बाकी सब स्पष्ट है।

चार्ट।

(7) संबंध: उदासीनता क्षमता 55 प्रकारों से संबंधित है

उदासीनता की भावना के साथ चेतना का, न कि उसके साथ

इसलिए, शरीर की चेतना को बाहर रखा गया है। इसके अलावा, चूंकि

यह 46 मानसिक कारकों से जुड़ा है (अर्थात, भावना, परमानंद आदि को छोड़कर)।

घृणा, ईर्ष्या, कंजूसी और चिंता (ये 52 मानसिक कारकों में से हैं)

आंशिक रूप से संबद्ध।

वियोग: यहाँ शरीर की चेतना, जो संबद्ध नहीं है,

इसमें शामिल है। बाकी बातें चार्ट से स्पष्ट हैं।

(8) 6 आधारों द्वारा नियंत्रित। संपर्क मानसिक का एक हिस्सा है।

गठन समूह जो 89 प्रकारों से जुड़ा है

चेतना। इस प्रकार यह मानसिक संरचना समूह से संबंधित है।

आंशिक जुड़ाव में। अलगाव मानसिक अलगाव के समान है।

समुच्चय।

(9) उत्तम-भौतिक विकास में मानसिकता और दोनों शामिल हैं

भौतिकता और इसलिए कोई संबंध नहीं है। साथ ही कोई संबंध भी नहीं है।

समुच्चयों और क्षारों से वियोजन। लेकिन चूंकि नाक

चेतना, जीभ की चेतना और शरीर की चेतना हैं

इस विकास में, संबंधित भौतिकता और मानसिकता अनुपस्थित हैं।

इसके साथ ही वे चेतना के इन 3 तत्वों से अलग हो जाते हैं।

(10) अमूर्त विकास में 4 मानसिक समूह शामिल हैं

और इसलिए, कोई संबंध नहीं है। लेकिन यह इससे अलग है।

पदार्थ का समूह और स्थूल आधार। और चूंकि यह हो रहा है

मन-चेतना और बोधगम्य तत्वों के अंतर्गत आने वाली ये चीजें हैं:

तत्वों से पृथक्करण में अपवर्जित। आंशिक पृथक्करण

यह चार्ट से स्पष्ट है।

(11) एसोसिएशन: मानसिक शक्ति का मार्ग मानसिक गतिविधियों से मिलकर बनता है।

निर्माण और चेतना का समूह है, और इसलिए यह इससे जुड़ा हुआ है।

शेष मानसिक समूहों, अर्थात् भावना और धारणा के साथ

समूह। चूंकि इसमें चेतना शामिल है, इसलिए यह नहीं है।

आधार और तत्व से जुड़ा हुआ। और इरादे के कारण,

ऊर्जा और बुद्धि जैसे मानसिक कारक इसके घटक हैं।

इन्हें बाहर रखा गया है और इसलिए, यह शेष के साथ जुड़ा हुआ है।

आंशिक सहसंबंध में 33 मानसिक कारक।

पृथक्करण: चूंकि यह मानसिकता है, इसलिए यह भौतिकता से पृथक है।

और, मन-चेतना और बोधगम्य तत्वों को छोड़कर,

शेष 16 तत्व। यह 16 सूक्ष्म तत्वों से भी अलग है।

आंशिक वियोजन में भौतिक अवस्थाएँ और निर्वाण।

(12) ध्यान के साथ, 5 कारक भावना और मानसिक के अंतर्गत आते हैं

गठन समूह है और इसलिए, यह धारणा से जुड़ा हुआ है।

और चेतना, मन के आधार और मन-चेतना के साथ एकत्रित होती है।

तत्व। आंशिक जुड़ाव में यह इसके साथ भी जुड़ा हुआ है।

मानसिक-गठन का समग्र रूप और, 5 झानिक कारकों को छोड़कर,

शेष 33 मानसिक कारकों के साथ। आंशिक वियोग के लिए

यह चार्ट से स्पष्ट है।

(13) निर्णय, जो मानसिक गठन समूह के अंतर्गत आता है,

यह संदेह को छोड़कर 78 प्रकार की चेतना से संबंधित है।

चेतना और 2 x 5 इंद्रिय-चेतना। इसलिए यह है

शेष 3 मानसिक समूहों से जुड़ा हुआ, मन के आधार के साथ

और मन-तत्व और मन-चेतना तत्व के साथ, लेकिन नहीं

पांच इंद्रिय-चेतना तत्वों के साथ। और, चूंकि यह इसका एक हिस्सा है

मानसिक गठन समूह, आंशिक जुड़ाव में यह जुड़ा हुआ है

उस कुल योग के साथ और संदेह को छोड़कर 50 मानसिक कारकों के साथ

जिससे यह संबद्ध नहीं है। यह 15 से अलग है।

तत्व, अर्थात् 10 स्थूल तत्व और 5 इंद्रिय-चेतना

तत्व।

(14) संबंध: सुखद भावनाओं से जुड़े राज्यों में शामिल हैं

भावना समूह को छोड़कर शेष 3 मानसिक समूह

और इसलिए, वे भावना समूह से जुड़े होते हैं। चूंकि चेतना

यदि उन्हें शामिल किया जाता है, तो वे निश्चित रूप से इससे जुड़े नहीं हैं।

आधार और तत्व के साथ। आंशिक सहभागिता में, यह जुड़ा होता है।

63 प्रकार की सुखद भावनाओं के साथ।

वियोजन; वियोजनित तत्व वे हैं जो नहीं हैं

जांचधीन मानसिकता से संबंधित। यह किया जाएगा

स्पष्ट। सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाओं में निम्नलिखित 3 तत्व शामिल हैं:

शरीर चेतना, मन चेतना और बोधगम्य तत्व।

लेकिन संज्ञेय तत्व से केवल आंशिक अलगाव ही होता है, और

अतः, शरीर चेतना और मन चेतना को छोड़कर

जब तत्व अलग हो जाते हैं, तो वे शेष तत्वों से अलग हो जाते हैं।

(15) ऐसी अवस्थाओं के साथ जो न तो दर्दनाक और न ही

सुखद, ध्यान देने वाली एकमात्र बात यह है कि वे आंशिक रूप से

55 प्रकार की उदासीनता भावनाओं से संबंधित। जैसा कि इसमें कहा गया है

ऊपर बताए गए उदासीनता संकाय के मामले में, ये अवस्थाएँ अलग हो जाती हैं

शरीर की चेतना, लेकिन शेष 6 चेतनाओं से नहीं।

वे तत्व जिनसे वे जुड़े हुए हैं।

(16) परिणामी अवस्थाओं में 4 मानसिक समुच्चय शामिल होते हैं और,

इसलिए कोई संबंध नहीं है। वे केवल इससे अलग हैं।

भौतिकता।

(17) एसोसिएशन: ऐसी अवस्थाएँ जो न तो परिणामी हैं और न ही उत्पादक।

परिणामी अवस्थाओं में चारों मानसिक समूह और दोनों शामिल होते हैं।

भौतिकता का अभाव है, और इसलिए कोई संबंध नहीं है।

वियोजन: क्योंकि इन अवस्थाओं में भौतिकता समाहित है, इसलिए

कुल योग और आधार से कोई पृथक्करण नहीं होता है। लेकिन इसके साथ

तत्व से वियोजन के संबंध में, क्योंकि ये अवस्थाएँ

निष्क्रिय चेतना और भौतिकता से युक्त, वे हैं

केवल पांच इंद्रिय चेतना तत्वों से विरक्त। फिर से,

क्योंकि भौतिकता शामिल है, इसलिए आंशिक पृथक्करण संभव नहीं है।

(18) वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और अनुकूल नहीं होतीं

आसक्ति में चारों मानसिक समुच्चय और निर्वाण दोनों शामिल हैं।

और इसलिए, जैसा कि ऊपर बताया गया है, कोई संबंध नहीं है और न ही कोई

कुल योग और आधार से पृथक्करण। लेकिन इसके संबंध में

तत्व से वियोजन के कारण, क्योंकि ये अवस्थाएँ इसके अंतर्गत आती हैं।

विच्छेदन में मन-चेतना तत्व को बाहर रखा जाता है।

और वे शेष 6 चेतनाओं से अलग हो जाते हैं।

तत्व। और चूंकि निर्वाण शामिल है, इसलिए कोई आंशिक नहीं है।

पृथक्करण।

(19) संघ: व्यावहारिक विचार और निरंतर प्रगति वाले राज्य

विचार में चेतना के 55 प्रकार शामिल हैं जो इससे जुड़े हैं।

इन दो विचारों को छोड़कर, 50 मानसिक कारकों को भी शामिल किया जा सकता है।

ये चार मानसिक समूहों से संबंधित हैं, और इसलिए, यहाँ हो सकता है

कोई संबंध न हो। लेकिन व्यावहारिक विचार और निरंतरता के कारण

विचार, जो मानसिक निर्माण समूह का हिस्सा हैं, वे नहीं हैं

इन राज्यों में शामिल होने पर, बाद वाला उनसे जुड़ा होता है। इस प्रकार

मानसिक गठन समूह के साथ आंशिक संबंध है और

व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन के साथ।

वियोग: चेतना के पाँचों तत्व अलग नहीं हैं

व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन से संबंधित,

इसलिए, उन्हें वियोग में शामिल किया गया है। इसमें कोई अंतर नहीं है।

आंशिक वियोजन के संबंध में उपरोक्त बातें लागू होती हैं।

(20) व्यावहारिक विचार के बिना लेकिन निरंतर राज्यों के साथ

हालांकि बाद वाले को बाहर रखा गया है और इसलिए, जैसा कि ऊपर बताया गया है, वहाँ

यह मानसिक गठन समूह और इसके साथ आंशिक संबंध है

निरंतर विचार। विच्छेदन के संबंध में एकमात्र अंतर।

क्या यह मन-चेतना का वह तत्व है जो इनसे जुड़ा हुआ है?

राज्यों को इसमें शामिल नहीं किया गया है।

(21) व्यावहारिक और निरंतर चिंतन से रहित राज्य

चार मानसिक समुच्चयों, भौतिकता और निर्वाण में से, और इसलिए,

कोई संबंध नहीं है। साथ ही, इससे कोई अलगाव भी नहीं है।

कुल योग और आधार से, लेकिन केवल मन तत्व से जो है

इन अवस्थाओं से संबद्ध नहीं है। आंशिक पृथक्करण संभव नहीं है।

(22) वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं, उनमें 3 मानसिक कारक शामिल हैं

ये समूह हैं और इसलिए चेतना से जुड़े हुए हैं।

मन के आधार और चेतना के 7 तत्वों के साथ समग्र रूप से। चूंकि

सभी 52 मानसिक कारकों को शामिल किया गया है, कोई आंशिक संबंध नहीं है।

भौतिकता के समुच्चय, आधार और तत्व हैं

वियोग में शामिल। जैसा कि चार्ट में दिखाया गया है, 16 सूक्ष्म

आंशिक वियोजन में भौतिक अवस्थाएं और निर्वाण शामिल हैं।

नोट: ऊपर बताई गई विधि को सभी पर लागू किया जा सकता है।

इस अध्याय के शेष जांच विषय।

चार्ट को कैसे पढ़ें: भौतिक समुच्चय और भावना समुच्चय

ये उदाहरण के तौर पर लिए गए हैं।

(1) पदार्थ समूह; कितने समूहों के साथ, कितने

पदार्थ का समूह किन आधारों से और कितने तत्वों से जुड़ा होता है?

किसी के साथ नहीं।

यह कितने समूहों से वियोजित होता है? यह 4 समूहों से वियोजित होता है।

(भावना, बोध, मानसिक संरचना और चेतना)

1 आधार (मन का आधार) से और 7 तत्वों से मिलकर बना है (समूहों सहित)।

(चेतना के 7 तत्व); 1 आधार से आंशिक रूप से पृथक (52 मानसिक)

कारक) और 1 तत्व (52 मानसिक कारक) से।

(2) भावना समूह: कितने समूहों के साथ, कैसे

कई आधार और कितने तत्वों के साथ भावना का समग्र रूप बनता है

संबंधित? यह 3 समूहों (धारणा, मानसिक) से संबंधित है।

गठन और चेतना समूह) 1 आधार (मन आधार) के साथ

और 7 तत्वों के साथ (चेतना के 7 तत्व)।

यह कितने से वियोजित होता है? यह 1 समूह से वियोजित होता है।

(पदार्थ समुच्चय), 10 आधारों से (10 स्थूल आधारों से) और से

10 तत्व (10 स्थूल तत्व); 1 आधार से आंशिक रूप से वियोजित

(16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाएँ और निर्वाण) और 1 तत्व से (16

सूक्ष्म शारीरिक अवस्थाएँ और निर्वाण)।

उत्तरों के प्रकार: कुल 22 प्रकार के उत्तर हैं। चूंकि सभी

इस अध्याय में वर्णित 250 जांच के चरण शामिल नहीं किए जा सकते।

चार्ट में केवल उन्हीं विकल्पों को दिखाया गया है जिनका उत्तर भिन्न है।

जिन राज्यों में जांच के एक ही उत्तर आए हैं, उनकी संख्या इस प्रकार है:

प्रश्नों के साथ कोष्ठकों में दी गई जानकारी।

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 228 (1), 231 (10), 233 (10), 236 (8), 247 (3), 276 (2), 280 (5), 290 (4)	43
2. 229 (3), 243 (1), 254 (2)	6
3. 230 (1), 232 (1), 237 (1), 241 (1), 255 (1), 291 (1)	6
4. 234 (7)	7
5. 235 (2), 240 (10), 244 (3), 249 (3), 252 (5), 277 (3), 282 (3) 286 (17), 294 (7)	53
6. 238 (4), 248 (3)	7
7. 239 (1)	1
8. 242 (1), 253 (3)	4
9. 245 (1)	1
10. 246 (3), 257 (2), 261 (2), 269 (9), 272 (8), 274 (2), 278 (2) 284 (1), 286 (5), 294 (1), 296 (2), 298 (4), 305 (5)	46
11. 250 (1)	1
12. 251 (1)	1
13. 256 (1)	1
14. 258 (2), 267 (1), 302 (1)	4
15. 259 (1), 268 (1), 303 (1)	3
16. 260 (1), 271 (1), 275 (4), 289 (1)	7
17. 262 (2), 272 (1), 293 (1)	4
18. 263 (2), 270 (2), 281 (1), 283 (2), 286 (10), 287 (2), 295 (2) 296 (2), 304 (3)	26
19. 264 (1), 299 (2)	3
20. 265 (2), 279 (3), 285 (1), 286 (5), 288 (1), 294 (1), 297 (2) 301 (2)	17
21. 266 (1), 310 (2)	3
22. 292 (6)	6

	कुल 250

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 7
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 7: संबद्ध और पृथक

11 प्रश्न और उत्तर

306. भावना समूह इन अवस्थाओं से जुड़ा है; बोध

समूह; मानसिक संरचना समूह; चेतना

कुल योग; मन का आधार इन अवस्थाओं से जुड़ा है। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कितने से

उन अवस्थाओं में कितने तत्व विघटित होते हैं? वे हैं

4 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (5) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

307. नेत्र चेतना तत्व; . . . मन तत्व; मन चेतना

तत्व इन अवस्थाओं से जुड़ा है। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से अलग।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, किसी भी समूह से अलग नहीं हैं

कोई भी आधार; वे 1 तत्व (7) से अलग हो जाते हैं।

308. मन की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी है। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

वे 4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 1 से अलग हो जाते हैं।

7 तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (1) से आंशिक रूप से अलग।

309. उदासीनता की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है।

राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं होते; अलग नहीं होते

किसी भी आधार से; वे 5 तत्वों (1) से अलग हो जाते हैं।

310. निर्माण द्वारा वातानुकूलित। चेतना; द्वारा वातानुकूलित

6 आधार। संपर्क; संपर्क द्वारा वातानुकूलित। भावना; संपर्क;

भावना; बोध; इच्छाशक्ति; चेतना; ध्यान है

इन अवस्थाओं से जुड़े हुए। वे अवस्थाएँ इनसे अलग हैं।

इन राज्यों।

वे 4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 से अलग हो जाते हैं।

तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (9) से आंशिक रूप से अलग हो गए।

311. निर्णय इन राज्यों से संबंधित है। वे राज्य हैं

इन अवस्थाओं से अलग।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, पृथक नहीं हैं।

किसी भी आधार से; वे 1 तत्व (1) से अलग हो जाते हैं।

312. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक और न ही दर्द से जुड़ी भावनाओं से संबंधित हैं।

सुखद; उदासीनता से जुड़ी अवस्थाएँ इससे संबंधित हैं

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, पृथक नहीं हैं।

किसी भी आधार से; वे 5 तत्वों (2) से अलग हो जाते हैं।

313. व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन वाले राज्य हैं

इन अवस्थाओं से जुड़े हुए। वे अवस्थाएँ इनसे अलग हैं।

इन राज्यों।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, पृथक नहीं हैं।

किसी भी आधार से; वे 1 तत्व (1) से अलग हो जाते हैं।

314. चेतना की अवस्थाएँ; मानसिक अवस्थाएँ

कारक; चेतना से संबंधित अवस्थाएँ; अवस्थाएँ

जो चेतना से जुड़े हुए हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो दोनों हैं

चेतना से जुड़े और चेतना द्वारा उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ; ऐसी अवस्थाएँ जो

साथ में जुड़े हुए हैं, साथ में उत्पन्न होते हैं और साथ में पैदा होते हैं

चेतना; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं और

चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाले ये कारक इनसे जुड़े होते हैं।

वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे 4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 1 से अलग हो जाते हैं।

7 तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (7) से आंशिक रूप से अलग।

315. व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से जुड़ी हैं। वे अवस्थाएँ इनसे अलग हैं।

इन राज्यों।

वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, पृथक नहीं हैं।

किसी भी आधार से; वे 1 तत्व (2) से अलग हो जाते हैं।

316. उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ संबद्ध होती हैं

इन राज्यों के साथ। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कितने से

उन अवस्थाओं में कितने तत्व विघटित होते हैं? वे विघटित नहीं होते।

किसी भी समुच्चय से पृथक, किसी भी आधार से पृथक नहीं;

वे 5 तत्वों (1) से अलग हो जाते हैं।

स्मृति सहायक

चार समुच्चय, एक आधार।

सात तत्व, जिनमें से दो संकायों से हैं।

तीन आश्रित उत्पत्ति, और फिर संपर्क वाले पाँच राज्य

पांचवें के रूप में,

निर्णय, ध्यान, तीन जुड़वाँ बच्चे,

सात उच्च मध्यवर्ती दोहे, जिनमें से दो व्यावहारिक और निरंतर विचार हैं।

मन तत्व से संबंधित, तीन अवस्थाएँ इसके साथ होती हैं

उदासीनता की भावना

अध्याय VII की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: 37 अवस्थाएँ जो या तो शुद्ध चेतना हैं या

मानसिक कारक इस अध्याय का विषय है। यहाँ

जांच के दायरे से जुड़े राज्य और अन्य राज्य

उन अवस्थाओं पर विचार किया जाता है जो संबंधित अवस्थाओं से अलग होती हैं।

यह विधि केवल (1) भावना समूह और अन्य पर ही लागू की जा सकती है

जहां मानसिक कारक 7 चेतनाओं से जुड़े होते हैं

तत्व, (2) निर्णय और अन्य जहां मानसिक कारक हैं

मन तत्व और मन चेतना तत्व से संबंधित और

(3) वे अवस्थाएँ जो शुद्ध चेतना का समूह हैं। यह लागू नहीं होता।

(1) मूल सत्य, पथ सत्य और अन्य जो इससे संबंधित हैं

मन चेतना तत्व के एक भाग के साथ, (2) भौतिकता और (3)

निर्वाण। 37 राज्यों में से 24 आंतरिक राज्य हैं और 13 अन्य राज्यों से संबंधित हैं।

जांच के बाह्य राज्य।

“ये राज्य” और “वे राज्य”: निर्धारण के नियम

“ये राज्य” और “वे राज्य” निम्नलिखित हैं:—

1. जब चार मानसिक समूहों में से एक जांच की अवस्था हो

(जैसा कि क्रमांक 306 में है), शेष 3 मानसिक समुच्चयों को लिया जाता है

पहले “ये राज्य”। फिर जांच के दायरे में आने वाला कुल योग।

इन तीन संबंधित मानसिक समूहों ("ये अवस्थाएँ") के साथ,

ऊपर बताए गए 4 मानसिक समूह, पहले "उन अवस्थाओं" के रूप में लिए जाते हैं।

(यह चार्ट में “उन राज्यों” के कॉलम में दर्शाया गया है)

क्योंकि "राज्यों - इन राज्यों" के लिए यह प्रत्येक राज्य के साथ करना होगा।

जांच का। इसका कारण यह है कि "ये राज्य" और राज्य दोनों

जांच के पहलू भी उसी तरह से अलग हो जाते हैं— इस मामले में

भौतिकता और निर्वाण। इसके अलावा, यह दर्शाता है कि थोड़ा सा

राज्यों के बीच अंतर को पहले "ये राज्य" के रूप में लिया गया है।

और “वे अवस्थाएँ”)। फिर से, “वे अवस्थाएँ,” 4 मानसिक समूह,

भौतिकता और निर्वाण से विरक्त हैं जिन्हें लिया गया है

दूसरे "ये राज्य" के रूप में और बाद में, दूसरे "वे" के रूप में

राज्यों”। (यह दूसरे “ये राज्य” कॉलम में दिखाया गया है)

चार्ट में)। बाद में, भौतिकता और निर्वाण अलग-अलग हैं।

चार मानसिक समूहों से, मन के आधार से और सात चेतनाओं से

तत्व। वे 52 मानसिक कारकों से भी अलग हैं।

आंशिक पृथक्करण में संज्ञेय आधार और संज्ञेय तत्व।

2. नेत्र-चेतना तत्व (संख्या 307) के साथ, संबद्ध

राज्यों में, 7 प्राथमिक मानसिक कारकों को पहले "ये" के रूप में लिया जाता है।

राज्यों में “. नेत्र-चेतना तत्व के साथ-साथ 7 प्राथमिक तत्व भी शामिल हैं”।

मानसिक कारक (जिन्हें नेत्र-चेतना तत्व के रूप में भी जाना जाता है)

समूहीकरण, जो चेतना और उसके संक्षेप में दर्शाने का तरीका है

संबंधित मानसिक कारक), पहला "वे अवस्थाएँ", अलग हैं

चेतना के 6 तत्वों से मानसिक समूह, भौतिकता और

निर्वाण। वे सभी बाद की अवस्थाएँ जिन्हें दूसरी अवस्था माना जाता है, "ये

राज्यों को किसी भी समूह से अलग नहीं किया जाता है, अलग नहीं किया जाता है

किसी भी आधार से, लेकिन केवल नेत्र-चेतना तत्व से विरक्त।

3. निर्णय (संख्या 311) के साथ, संबद्ध राज्यों, 78 प्रकार के

चेतना और निर्णय को छोड़कर 50 मानसिक कारक

संदेह को पहली "ये अवस्थाएँ" माना जाता है। फिर निर्णय लिया जाता है।

इससे संबंधित अवस्थाओं के साथ, जो चेतना के 78 प्रकारों का निर्माण करती हैं।

और संदेह को छोड़कर 51 मानसिक कारक, जिन्हें पहले "उन अवस्थाओं" के रूप में वर्णित किया गया है।

बाद वाले 2 x 5 इंद्रिय चेतना तत्वों से अलग हैं,

मानसिक समूहीकरण, भौतिकता और निर्वाण पर संदेह करना, ये सभी

इन्हें दूसरे "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया गया है। बाद वाली अवस्थाएँ अविभाजित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अलग नहीं बल्कि अलग हो गया

केवल मन के तत्व से।

4. व्यावहारिक चिंतन और सतत चिंतन वाले राज्य (संख्या 313)

ये दो विचार इससे जुड़े हैं जिन्हें प्रथम माना जाता है।

"ये राज्य"। व्यावहारिक और निरंतर चिंतन वाले राज्य

इन दो विचारों के साथ मिलकर, कुल 55 प्रकार बनते हैं।

व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार के साथ चेतना का

52 मानसिक कारकों को पहले "उन अवस्थाओं" के रूप में लिया जाता है। बाद वाले

व्यावहारिक विचार और निरंतर विचार के बिना विच्छेदित होते हैं

मानसिक समूह, भौतिकता और निर्वाण, जिन्हें माना जाता है

दूसरा "ये अवस्थाएँ"। बाद वाली अवस्थाएँ किसी से भी अविभाजित नहीं हैं।

कुल योग, किसी भी आधार से अलग नहीं होता है, बल्कि केवल इससे अलग होता है

मन का तत्व।

5. उदासीनता की क्षमता (संख्या 309) के साथ, जो कि भावना है

चेतना के 55 प्रकारों से संबंधित,

उदासीनता, उपरोक्त मानसिक समूहों में से, उदासीन को छोड़कर

भावनाएँ वे संबंधित अवस्थाएँ हैं जिन्हें प्रथम "ये" के रूप में लिया जाता है।

अवस्थाएँ। उदासीनता की भावना के साथ-साथ उससे जुड़ी मानसिक स्थिति।

समूहों को पहले "उन अवस्थाओं" के रूप में लिया जाता है। वे अलग-अलग हैं।

शारीरिक सुख, शारीरिक पीड़ा, मानसिक आनंद और दुःख से लेकर मानसिक पीड़ा तक।

समूह, भौतिकता और निर्वाण जिन्हें द्वितीय माना जाता है

"ये अवस्थाएँ"। बाद वाली अवस्थाएँ किसी भी समूह से अविभाजित नहीं होती हैं।

किसी भी आधार से विरक्त नहीं, बल्कि नेत्र-चेतना से विरक्त।

कान की चेतना, नाक की चेतना, जीभ की चेतना

और मन के तत्व।

6. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक होती हैं और न ही दर्द रहित होती हैं।

सुखद (संख्या 312) मानसिक समूह हैं जिनके साथ

उदासीनता की भावना लेकिन बाद वाले को बाहर रखता है, जो कि संबंधित है

अवस्था। उदासीनता की भावना और उसके मानसिक समूह हैं

इन्हें प्रथम "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया गया है और ये इसमें अलग-अलग हैं।

ठीक उसी प्रकार जैसे ऊपर उदासीनता की भावना, अर्थात् शारीरिक सुख से,

शारीरिक पीड़ा, मानसिक सुख और दुःख, मानसिक समूह, भौतिकता

और निर्वाण जो 5 तत्वों से भी विरक्त हैं (

उदासीनता की क्षमता से एकमात्र अंतर उन अवस्थाओं में है जिन्हें माना जाता है

पहला "ये राज्य बाकी सब समान हैं)।

चार्ट को कैसे पढ़ें: भावनाओं का समग्र रूप केवल एक उदाहरण के रूप में लिया गया है।

इन अवस्थाओं (89 प्रकार की) के साथ समग्र भावना जुड़ी हुई है।

चेतना और 51 मानसिक कारक (भावना को छोड़कर)।

(भावना और उससे संबंधित उपरोक्त अवस्थाएँ, अर्थात् चेतना के 89 प्रकार)

और 52 मानसिक कारक) इन अवस्थाओं (भौतिकता) से अलग हैं

और निर्वाण)।

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कैसे

क्या अनेक तत्व उन अवस्थाओं (भौतिकता और निर्वाण) से वियोगित हैं?

वे 4 समूहों (मानसिक समूहों) से अलग हैं।

एक आधार (मन का आधार) और सात तत्वों (सात चेतना) से।

तत्व); 1 (संज्ञानात्मक) आधार से आंशिक रूप से अलग (52 मानसिक

कारक) और 1 (संज्ञानात्मक) तत्व (52 मानसिक कारक) से।

उत्तरों के प्रकार: तीन प्रकार के उत्तर हैं। वही

उत्तर उन राज्यों की संख्या द्वारा दिया जाता है।

जांच की वे अवस्थाएँ जो एक ही प्रकार का परिणाम देती हैं, उन्हें कोष्ठकों में दर्शाया गया है।

प्रश्नों के साथ-साथ।

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 306 (5), 308 (1), 310 (9), 314 (7)	22
2. 307 (7), 311 (1), 313 (1), 315 (2)	11
3. 309 (1), 312 (2), 316 (1)	4
	कुल 37

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 8
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 8: विच्छेदित और संबद्ध

2 प्रश्न और उत्तर

317. पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं से अलग हो जाता है। कैसे?

अनेक समुच्चय, कितने आधारों के साथ और कितने तत्वों के साथ

क्या वे राज्य संबद्ध हैं? किसी से नहीं (1)।

318. भावना समूह इन अवस्थाओं से अलग है;

बोध समूह; मानसिक निर्माण समूह; चेतना

कुल मिलाकर... वे राज्य जो शोक का कारण हैं; वे राज्य जो...

शोक के कारण इन अवस्थाओं से असंबद्ध नहीं हैं।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व वे अवस्थाएँ हैं जो किसी से भी जुड़ी नहीं हैं (323)।

स्मृति सहायक

बोधगम्य आधार, बोधगम्य तत्व, फिर जीवन शक्ति, मानसिक भौतिकता।

छह आधार, जन्म, उम्र बढ़ना, मृत्यु, दो तिगुने बच्चे। ये अवस्थाएँ नहीं हैं

शामिल है।

प्रथम लघु मध्यवर्ती युग्मों से सात अवस्थाएँ, दस समूह।

फिर चौदह बड़े-मध्यवर्ती दोहे, छह अंतिम दोहे।

इन्हें भी शामिल नहीं किया गया है। ये सभी सैंतालीस राज्य शामिल नहीं हैं।

इस नकारात्मक अध्याय में अध्याय 14 के साथ-साथ इसे भी शामिल किया गया है।

अध्याय VIII और XIV की विधियों और चार्टों की व्याख्या

विषयवस्तु: 324 अवस्थाएँ जो तलों द्वारा वियोजित हैं,

समय और निरंतरता के आधार पर, ये वर्ग इन विषयों का आधार बनते हैं।

दो अध्याय। यहाँ वे अवस्थाएँ हैं जो अवस्था से विच्छेदित हैं।

जांच के दायरे और उपरोक्त से जुड़े राज्यों के संबंध में।

विखंडित अवस्थाओं पर विचार किया जाता है। यह विधि केवल तभी लागू की जा सकती है।

उन अवस्थाओं की ओर जो शुद्ध भौतिकता, निर्वाण और मानसिक समुच्चय हैं

और उन अवस्थाओं के लिए जिनमें भौतिकता और मानसिकता दोनों शामिल हैं

लेकिन अलग-अलग हैं। 324 राज्यों में से 97 आंतरिक राज्यों से संबंधित हैं।

और 227 को बाहरी राज्यों की जांच के लिए भेजा गया।

अध्याय VIII में जांच की सभी अवस्थाओं का उल्लेख नहीं किया गया है।

जिसमें केवल 2 प्रश्न और उत्तर हैं। इसका कारण यह है कि सभी

वे दोनों एक ही नकारात्मक उत्तर देते हैं, यानी "बिना किसी के"। हालाँकि,

उनका उल्लेख अध्याय XIV में किया गया है, जिसका संदर्भ लिया जा सकता है।

इनमें से कुछ को यहाँ इसलिए शामिल किया गया है ताकि स्पष्ट रूप से दिखाया जा सके कि

जिन राज्यों को "ये राज्य" माना जाता है

वियोगित अवस्थाएँ: पीड़ा, सत्य और अलौकिक मानसिक अवस्थाएँ

समूहों को तलों द्वारा अलग किया जाता है। नौ महान विकास इस प्रकार हैं:

इन्हें बारी-बारी से "ये अवस्थाएँ" कहा जाता है क्योंकि ये भी असंबद्ध हैं।

विमानों द्वारा। लेकिन जैसा कि अध्याय VI में समझाया गया है, भौतिकता और

भौतिकता अलग नहीं होती, जब अनुभवजन्य विकास होता है

जांच की अवस्था, अगोचर विकास को नहीं माना जा सकता

"ये अवस्थाएँ"। इसी प्रकार पाँच-समूह बनने पर, एक-समूह प्राप्त होता है।

बनना को "ये अवस्थाएँ" के रूप में नहीं लिया जा सकता। हालाँकि, इसके साथ

शुद्ध मानसिकता, जैसे कि चार-समूह जैसी जांच की अवस्था।

बनना और न तो बोध और न ही अबोध बनना,

अबोधित विकास और एक-समूह विकास, जो कि हैं

शुद्ध भौतिकता को क्रमशः "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया जाता है।

“ये राज्य”: “इन राज्यों” को निर्धारित करने के नियम इस प्रकार हैं:

निम्नलिखित नुसार :-

1. जब भौतिकता या निर्वाण जांच की अवस्था हो, तब

अलग-अलग 4 मानसिक समूहों को "ये अवस्थाएँ" माना जाता है और

बाद में इन्हें “उन राज्यों” के रूप में जाना जाता है। चूंकि बाद वाले राज्यों से कोई संबद्ध राज्य नहीं हैं,

इसका उत्तर है "बिना किसी के"।

2. भावनाओं, समग्रता आदि जैसे मानसिक कारकों के साथ।

जो सभी प्रकार की चेतना और 89 प्रकारों से जुड़े हैं

चेतना जैसे चेतना का समूह, पृथक

अवस्थाओं, भौतिकता और निर्वाण को "ये अवस्थाएँ" के रूप में लिया जाता है।

3. उत्पत्ति, सत्य आदि जैसे मानसिक कारकों के साथ

सभी प्रकार की चेतना से जुड़े नहीं हैं और उनमें से एक के साथ

7 चेतना तत्व जैसे नेत्र-चेतना तत्व इत्यादि।

वियोगित मानसिकता, भौतिकता और निर्वाण के साथ

इन्हें “ये अवस्थाएँ” माना जाता है। (मूल सत्य, जो लालच और घृणा है)

या भ्रम को वर्ग के आधार पर अलग किया जाता है)।

4. पुनर्जन्म के साथ भौतिकता और मानसिकता दोनों का केंद्र बन जाता है।

यदि ये शामिल हैं, तो वियोगित मानसिक अवस्थाओं को "ये" माना जाता है।

राज्यों ”।

चार्ट को कैसे पढ़ें: पदार्थ का समुच्चय केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं (4 मानसिक समूहों) से अलग हो जाता है।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने के साथ

उन अवस्थाओं (4 मानसिक समुच्चयों) में कितने तत्व हैं?

किसी से संबंधित नहीं।

उत्तरों के प्रकार: सभी एक ही हैं, अर्थात् "बिना किसी के"।

अध्याय XIV

यहां वे अवस्थाएं हैं जो जांच की अवस्था से अलग हैं, जैसे कि

अध्याय VIII में वर्गीकृत और अवर्गीकृत श्रेणियों को शामिल किया गया है।

आधार और तत्व। तारांकन चिह्न दर्शाता है कि निर्वाण को वर्गीकृत नहीं किया गया है।

कुल योग के अंतर्गत।

चार्ट को कैसे पढ़ें; पदार्थ का कुल योग केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं (4 मानसिक समूहों) से अलग हो जाता है।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और

वे अवस्थाएँ (4 मानसिक समूह) कितने तत्वों के अंतर्गत आती हैं?

वर्गीकृत? इन्हें 4 समूहों (भावना, बोध,

मानसिक गठन और चेतना समूह), 2 आधारों के अंतर्गत

(संज्ञानात्मक आधार और मन आधार) और 8 तत्वों के अंतर्गत (संज्ञानात्मक

तत्व और 7 चेतना तत्व)।

वे (4 मानसिक समूह) कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं?

इन्हें 1 समुच्चय (पदार्थ समुच्चय) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

10 आधार (10 ग्रॉस आधार) और 10 से कम तत्व (10 ग्रॉस तत्व)।

उत्तरों के प्रकार: उत्तरों के 9 प्रकार हैं। संख्याएँ

समान उत्तर वाले जांच राज्यों की सूची नीचे दी गई है:-

प्रश्न संख्याएँ	राज्यों की संख्या
1. 456 (1), 458 (20), 462 (8), 470 (4), 478 (4), 487 (2), 491 (10) 469 (6), 500 (2), 510 (10), 503 (2), 505 (5), 507 (2) 509 (2), 516 (3)	81
2. 457 (6). 466 (3), 472 (6), 504 (8)	23
3. 459 (7), 473 (1), 481 (1), 512 (2)	11
4. 460 (1), 475 (1), 480 (1), 486 (5), 490 (2), 495 (3), 497 (1) 499 (4), 501 (20), 502 (4), 507 (4), 508 (5), 511 (4), 515 (3) 518 (5)	63
5. 461 (2), 463 (4), 465 (10), 467 (3), 471 (16), 474 (4), 477 (2) 482 (3), 485 (9), 489 (8), 492 (4), 494 (8), 498 (5), 501 (28), 507 (13), 510 (4), 513 (3), 517 (5)	131
6. 464 (1), 476 (2), 484 (1), 514 (1)	5
7. 468 (3), 479 (1), 483 (1), 506 (1)	6
8. 469 (1)	1
9. 488 (1), 493 (2)	3
	कुल 324

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 9: संबद्ध और संबंधित

34 प्रश्न और उत्तर

319. भावना समूह इन अवस्थाओं से जुड़ा है; बोध

कुल योग; मानसिक गठन का कुल योग इनसे जुड़ा हुआ है

राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

क्या कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? वे जुड़े हुए हैं

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से संबद्ध।

320. चेतना समूह; मन का आधार; नेत्र चेतना

तत्व... मन तत्व; मन चेतना तत्व इससे जुड़ा हुआ है।

इन राज्यों के साथ। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

वे 3 समूहों से जुड़े हैं; आंशिक रूप से जुड़े हुए हैं

1 आधार और 1 तत्व के साथ (9).

321. उत्पत्ति सत्य; पथ सत्य इन अवस्थाओं से जुड़ा है।

वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व (2) से जुड़ा हुआ।

322. मन की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी है। वे अवस्थाएँ

ये इन राज्यों से जुड़े हैं। ये 3 समूहों से जुड़े हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व (1) से संबद्ध।

323. शारीरिक सुख का अनुभव करने की क्षमता; शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता; मानसिक आनंद

शोक की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे इनसे जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चय, जिनमें 1 आधार और 1 तत्व होता है; आंशिक रूप से संबद्ध

1 आधार के साथ और 1 तत्व (4) के साथ।

324. उदासीनता की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे इनसे जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चय, 1 आधार और 6 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से संबद्ध

1 आधार और 1 तत्व (1) के साथ।

325. आस्था संकाय; ऊर्जा संकाय; ध्यान संकाय;

एकाग्रता शक्ति; ज्ञान शक्ति; मुझे पता चलेगा कि मैंने क्या किया

अज्ञानी क्षमता; उच्चतर बोध क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त। संरचनाएँ हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

अवस्थाएँ। वे 3 समुच्चयों, 1 आधार और के साथ जुड़े हुए हैं।

1 तत्व; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ और

1 तत्व (10) के साथ.

326. संरचनाओं द्वारा वातानुकूलित। चेतना इससे जुड़ी है

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों से संबद्ध; आंशिक रूप से 1 आधार से संबद्ध और

1 तत्व (1) के साथ।

327. 6 आधारों द्वारा नियंत्रित, संपर्क इनसे जुड़ा हुआ है

राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे हैं

3 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों से संबद्ध;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व (1).

328. संपर्क द्वारा नियंत्रित। इनसे भावना जुड़ी होती है।

राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे हैं

3 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों से संबद्ध;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व (1) से संबद्ध।

329. भावना से प्रेरित। लालसा; लालसा से प्रेरित।

आसक्ति; कर्म इन अवस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे इनसे जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चय, जिनमें 1 आधार और 1 तत्व होता है; आंशिक रूप से संबद्ध

1 समुच्चय के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व (3) के साथ।

330. शोक; पीड़ा; दुःख इन अवस्थाओं से संबंधित हैं।

वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से संबद्ध।

331. निराशा; ध्यान के अनुप्रयोग; महान प्रयास

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे राज्य इनसे जुड़े हुए हैं।

ये अवस्थाएँ 3 समुच्चयों से जुड़ी हैं, जिनमें 1 आधार है।

और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, साथ

1 आधार और 1 तत्व (3) के साथ।

332. मानसिक शक्ति का मार्ग इन अवस्थाओं से जुड़ा है।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे इनसे जुड़े हुए हैं।

2 समुच्चय; आंशिक रूप से 1 समुच्चय से संबद्ध, 1 आधार के साथ और

1 तत्व (1) के साथ।

333. झाना इन राज्यों से संबंधित है। वे राज्य हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे 2 समूहों से जुड़े हुए हैं,

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से संबंधित

1 समुच्चय, 1 आधार के साथ और 1 तत्व (1) के साथ।

334. असीमित; 5 क्षमताएँ; 5 शक्तियाँ; ज्ञानोदय के 7 कारक;

आर्य अष्टांगिक मार्ग इन अवस्थाओं से संबंधित है।

वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व (5) से जुड़ा हुआ।

335. संपर्क; इच्छाशक्ति; ध्यान इन अवस्थाओं से संबंधित है।

वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व (3) से जुड़ा हुआ।

336. भावना; इन अवस्थाओं से बोध जुड़ा हुआ है।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे इनसे जुड़े हुए हैं।

3 समुच्चय, 1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से संबद्ध

1 आधार और 1 तत्व (2) के साथ।

337. चेतना इन अवस्थाओं से जुड़ी है। वे अवस्थाएँ

इन राज्यों से जुड़े हैं। वे 3 समूहों से जुड़े हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व (1) से संबद्ध।

338. निर्णय इन अवस्थाओं से संबंधित है। वे अवस्थाएँ हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे 3 समूहों से जुड़े हुए हैं,

1 आधार और 2 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध।

1 आधार और 1 तत्व (1) के साथ।

त्रिक

339. सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ

दर्द भरी अनुभूति के साथ; ऐसी अवस्थाएँ जो ऐसी अनुभूति से जुड़ी होती हैं जो न तो दर्द भरी होती हैं और न ही दर्द भरी;

इन अवस्थाओं से न तो कोई पीड़ा जुड़ी है और न ही कोई सुख।

इन राज्यों से जुड़े हैं। वे 1 समूह से जुड़े हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व (3) से जुड़ा हुआ है।

340. व्यावहारिक और सतत चिंतन वाले राज्य;

व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन; राज्यों के साथ

परमानंद से जुड़ी अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से संबंधित हैं। वे अवस्थाएँ

इन राज्यों से जुड़े हैं। वे आंशिक रूप से इनसे जुड़े हैं।

1 समुच्चय, 1 आधार के साथ और 1 तत्व (3) के साथ।

341. आनंद से युक्त अवस्थाएँ; आनंद से युक्त अवस्थाएँ

उदासीनता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है। वे अवस्थाएँ हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे 1 समूह से जुड़े हुए हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व (2) से संबद्ध।

दोहे

342. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और साथ ही

संबद्ध मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और संबद्ध भी हैं

जिनकी जड़ें इन राज्यों से जुड़ी हैं। वे राज्य हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे 3 समूहों से जुड़े हुए हैं।

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध,

1 आधार के साथ और 1 तत्व (3) के साथ।

343. वे अवस्थाएँ जिनके सहबद्ध मूल हैं लेकिन वे स्वयं मूल नहीं हैं; अवस्थाएँ

जो जड़ों से जुड़े हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो

मूल अवस्थाएँ नहीं, बल्कि इन अवस्थाओं से संबंधित मूल अवस्थाएँ हैं।

वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व (3) से जुड़ा हुआ।

344. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो दोनों प्रकार से कलंक हैं

और दोष के कारक; वे अवस्थाएँ जो दोष भी हैं और उनसे संबंधित भी हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए रोग हैं। वे राज्य हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे 3 समूहों से जुड़े हुए हैं,

1 आधार और 1 तत्व के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध,

1 आधार के साथ और 1 तत्व (3) के साथ।

346. वे अवस्थाएँ जो कैंकर रोग से संबंधित हैं लेकिन स्वयं कैंकर रोग नहीं हैं

इन राज्यों से जुड़े हैं। वे राज्य इनसे जुड़े हैं।

इन राज्यों के साथ। वे आंशिक रूप से 1 समुच्चय से जुड़े हुए हैं,

1 आधार और 1 तत्व (1) के साथ।

346. बेड़ियाँ... बंधन... बाढ़... बंधन... बाधाएँ*...

ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो दोनों हैं

गलतफहमियां और गलतफहमियों के विषय इससे जुड़े होते हैं।

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

ये 3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व से जुड़े होते हैं।

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व (22).

347. वे राज्य जो गलतफहमियों से जुड़े हैं, वे हैं

इन राज्यों से जुड़े हुए। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

अवस्थाएँ। वे आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार से जुड़े हैं।

और 1 तत्व (1) के साथ।

348. चेतना की अवस्थाएँ इनसे जुड़ी होती हैं।

राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं। वे हैं

3 समूहों से संबद्ध; आंशिक रूप से 1 आधार से संबद्ध

और 1 तत्व (1) के साथ।

349. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी हुई हैं और चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं;

वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं, इससे उत्पन्न होती हैं और इससे उत्पन्न होती हैं

चेतना के साथ; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हुई हैं,

चेतना द्वारा उत्पन्न और उसके साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाले शब्द जुड़े हुए हैं।

इन राज्यों के साथ। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

वे 1 समुच्चय, 1 आधार और 7 से जुड़े हैं।

तत्व (6).

350. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों ही इससे संबंधित हैं।

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

ये 3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व से जुड़े होते हैं;

आंशिक रूप से 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 से संबद्ध

तत्व (8).

351. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं;

वे राज्य जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं

भ्रष्टाचार; व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद की अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो साथ-साथ होती हैं

परमानंद इन अवस्थाओं से जुड़ा है। वे अवस्थाएँ जुड़ी हुई हैं।

इन राज्यों के साथ। वे आंशिक रूप से 1 समुच्चय से जुड़े हुए हैं,

1 आधार के साथ और 1 तत्व (6) के साथ।

352. वे अवस्थाएँ जो आनंद से युक्त होती हैं; वे अवस्थाएँ जो

उदासीनता के साथ जुड़े भाव इन अवस्थाओं से संबंधित हैं।

राज्य इन राज्यों से जुड़े हुए हैं।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने के साथ

वे अवस्थाएँ कितने तत्वों से संबद्ध हैं? वे संबद्ध हैं।

1 समुच्चय के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 के साथ संबद्ध

तत्व (2).

स्मृति सहायक

चार मानसिक समुच्चय, केवल मन का आधार।

चेतना के सात तत्व, दो सत्य, चौदह इंद्रियां।

बारह आश्रित उत्पत्तियाँ, अगली सोलह।

आठ त्रिक, तैंतालीस समूह।

सात बड़े मध्यवर्ती दोहे, छह अंतिम दोहे।

इन राज्यों का उल्लेख नौवें अध्याय में किया गया है।

अध्याय 9 की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: 120 अवस्थाएँ, जिनमें से प्रत्येक मानसिक का एक भाग है।

ये दोनों अध्याय मिलकर इस विषयवस्तु का निर्माण करते हैं।

वे राज्य हैं जो संघ की 4 विशेषताओं का अनुपालन करते हैं।

अन्य, जो निर्वाण, शुद्ध भौतिकता या भौतिकता हैं

इसलिए, इसमें मानसिकता और निर्वाण दोनों शामिल नहीं हैं।

इन 120 राज्यों में से 56 आंतरिक और 64 बाह्य राज्यों के अंतर्गत आते हैं।

जांच की अवस्थाएँ।

"ये राज्य" और "वे राज्य": जैसा कि अध्याय VI में दिखाया गया था,

शेष मानसिक समूह जो अवस्था से जुड़े होते हैं

जांच के बिंदुओं को पहले "ये राज्य" के रूप में लिया जाता है। बाद वाले बिंदु फिर

पहले "उन राज्यों" के रूप में लिया गया। "उन राज्यों" का संबंध है।

जांच की उस स्थिति के साथ जिसे दूसरे "ये स्थितियाँ" के रूप में लिया गया है।

और बाद में, दूसरे "उन राज्यों" के रूप में। इन्हें इसमें दिखाया गया है।

चार्ट। दूसरे के साथ संबंध और आंशिक संबंध

“वे राज्य” अध्याय VI में वर्णित राज्यों के समान ही हैं।

चार्ट को कैसे पढ़ें: भावों का समग्र रूप केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

इन अवस्थाओं के साथ समग्र भावना जुड़ी हुई है (चेतना 89,

मानसिक कारक 52 भावना को छोड़कर = 51)। वे अवस्थाएँ (चेतना 89,

मानसिक कारक 52 (भावना को छोड़कर = 51) से जुड़े हैं

ये अवस्थाएँ (भावनाओं का समग्र रूप)।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं (भावनाओं के समूह) से जुड़े होते हैं?

(भावना समूह) 3 समूहों (शेष) से जुड़े हैं

3 मानसिक समुच्चय), 1 आधार (मन का आधार) और 7 तत्वों के साथ

(चेतना के 7 तत्व); आंशिक रूप से 1 (संज्ञानात्मक) से संबद्ध

आधार (भावना को छोड़कर 51 मानसिक कारक) और 1 (संज्ञानात्मक) के साथ

तत्व (भावना को छोड़कर 51 मानसिक कारक)।

उत्तरों के प्रकार: 12 प्रकार के उत्तर हैं। संख्याएँ

जिन राज्यों में जांच के समान उत्तर आए हैं, उनकी सूची नीचे दी गई है:

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 319 (3), 328 (1), 336 (2)	6
2. 320 (9), 322 (1), 326 (1), 337 (1), 348 (1)	13
3. 321 (2), 325 (10), 329 (3), 331 (3), 334 (5), 324 (3), 344 (3) 346 (17),350(7)	53
4. 323 (4), 330 (3)	7
5. 324 (1)	1
6. 327 (1), 335 (3)	4
7. 332 (1)	1
8. 333 (1)	1
9. 338 (1)	1
10. 339 (3), 340 (2), 352 (2)	7
11. 340 (3), 343 (3), 845 (1), 346 (5), 347 (1), 350 (1), 351 (6)	20
12. 349 (5)	6
	कुल 120

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 10: वियोजित और वियोजित

56 प्रश्न और उत्तर

353. पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं से अलग हो जाता है।

राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कैसे

कई तत्व ऐसी अवस्थाओं में विघटित होते हैं? वे विघटित होते हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

354. भावना समूह इन अवस्थाओं से अलग है; बोध

समूह; मानसिक गठन समूह; चेतना समूह;

मन का आधार इन अवस्थाओं से अलग है। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त। . . . वे विरक्त हैं

1 समुच्चय, 10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (5).

355. नेत्र आधार . . . मूर्त वस्तु आधार ; नेत्र तत्व . . . मूर्त

ऑब्जेक्ट तत्व इन अवस्थाओं से अलग है। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त। . . . वे विरक्त हैं

1 आधार और 7 तत्वों से बने 4 समुच्चय; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (20)।

356. नेत्र चेतना तत्व . . . मन चेतना तत्व;

मूल सत्य; पथ सत्य इन अवस्थाओं से विरक्त है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 समुच्चय, 10 क्षारकों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (9).

357. समाप्ति सत्य; दृष्टि . . . शरीर . . स्त्री

पुरुष संकाय; पुरुष संकाय इन अवस्थाओं से अलग है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 आधार और 7 तत्वों से बने 4 समुच्चय; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (8).

358. मन की क्षमता इन अवस्थाओं से अलग है। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से अलग हो जाते हैं। वे 1 समुच्चय से अलग हो जाते हैं।

10 क्षारकों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (1).

359. शारीरिक सुख का अनुभव; शारीरिक पीड़ा का अनुभव; मानसिक आनंद

शोक की अनुभूति इन अवस्थाओं से असंबद्ध होती है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

360. उदासीनता की क्षमता इन अवस्थाओं से अलग है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 11 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

361. आस्था शक्ति; ऊर्जा शक्ति; जागरूकता शक्ति; एकाग्रता

ज्ञान की क्षमता; बुद्धि की क्षमता; मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था;

उच्चतर अनुभूति की क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त। संरचनाएँ हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त। वे अवस्थाएँ विरक्त हैं

ये अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाती हैं।

और 16 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (10).

362. निर्माण द्वारा वातानुकूलित। चेतना; द्वारा वातानुकूलित

6 आधार। संपर्क; संपर्क द्वारा वातानुकूलित। भावना अलग हो जाती है।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे 1 समूह से, 10 आधारों से और 10 से अलग हो जाते हैं

तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (3) से आंशिक रूप से अलग हो गए।

363. भावना से प्रेरित। लालसा; लालसा से प्रेरित।

आसक्ति; कर्म इन अवस्थाओं से विरक्त है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 16 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (3) से अलग हो गया।

364. सूक्ष्म पदार्थ का बनना इन अवस्थाओं से अलग है।

वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे नहीं हैं

किसी भी समुच्चय से पृथक, किसी भी आधार से पृथक नहीं;

वे 3 तत्वों (1) से अलग हो जाते हैं।

365. अगोचर विकास; एक-समूह विकास;

विलाप इन अवस्थाओं से अलग है। वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे 4 समुच्चयों से अलग हो जाते हैं,

1 आधार और 7 तत्वों से; 1 आधार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (3) से।

366. अमूर्त विकास; न तो बोध और न ही

अबोधगम्य बनना; चार-समूह बनना; शोक;

पीड़ा; शोक; निराशा; ध्यान का अभ्यास; अथक प्रयास; सड़क

मानसिक शक्ति; ध्यान; असीम; 5 शक्तियाँ; 5 सामर्थ्य;

ज्ञानोदय के 7 कारक; आर्य अष्टांगिक मार्ग को अलग कर दिया गया है

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे 1 समूह से, 10 आधारों से और 16 आधारों से अलग हो जाते हैं।

तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (16) से आंशिक रूप से अलग हो गए।

367. संपर्क; भावना; बोध; इच्छाशक्ति; चेतना;

ध्यान इन अवस्थाओं से अलग है। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे एक समूह से अलग हो जाते हैं।

10 आधारों और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (6).

368. निर्णय इन अवस्थाओं से असंबद्ध है। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से अलग हो गए हैं। वे 1 समुच्चय से अलग हो गए हैं।

10 आधारों और 15 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व से (1).

त्रिक

369. स्वस्थ अवस्थाएँ; अस्वस्थ अवस्थाएँ इनसे अलग होती हैं

ये अवस्थाएँ। वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (2) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

370. सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ

दर्द की अनुभूति से जुड़े लोग इन अवस्थाओं से अलग हो जाते हैं। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से अलग हो जाते हैं। वे 1 समुच्चय से अलग हो जाते हैं।

10 क्षारकों और 15 तत्वों से बना; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (2).

371. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक और न ही दर्द से जुड़ी भावनाओं से संबंधित हैं।

सुखद अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे एक समूह से अलग हो जाते हैं।

10 आधारों और 11 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

मैं आधार और 1 तत्व (1) से।

372. परिणामी अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हो जाती हैं।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त हैं।

1 समुच्चय, 10 आधारों और 10 तत्वों से बना; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

373. परिणामी राज्यों को उत्पन्न करने वाले राज्य; भ्रष्ट और भ्रष्ट करने वाले

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे 1 समुच्चय से अलग हो जाते हैं, से

10 क्षार और 16 तत्वों से बना; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित

और 1 तत्व (2) से।

374. वे अवस्थाएँ जो न तो परिणामी हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करती हैं

अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से नहीं बल्कि अनुकूल परिस्थितियों से प्राप्त होती हैं।

आसक्ति इन अवस्थाओं से विरक्त है। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त। वे किसी से भी विरक्त नहीं हैं।

ऐसे समुच्चय जो किसी भी आधार से अविभाजित नहीं होते; वे वियोजित होते हैं।

5 तत्वों से (2).

375. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और अनुकूल नहीं होतीं।

आसक्ति से; भ्रष्ट नहीं और भ्रष्ट करने वाली अवस्थाएँ इससे विरक्त हैं

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

किसी भी समूह से अलग नहीं होते, किसी से अलग नहीं होते

आधार; वे 6 तत्वों (2) से अलग हो जाते हैं।

376. व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन वाले राज्य हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त। वे अवस्थाएँ विरक्त हैं

ये अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाती हैं।

और 15 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (1).

377. व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद से युक्त अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से भिन्न होती हैं।

वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से पृथक हैं। वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

378. व्यावहारिक और निरंतर चिंतन के बिना राज्य

इन अवस्थाओं से विरक्त। वे अवस्थाएँ विरक्त हैं

ये अवस्थाएँ। ये किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, न ही

किसी भी आधार से अलग हो गए; वे 1 तत्व (1) से अलग हो गए हैं।

379. आनंद से युक्त अवस्थाएँ इनसे विरक्त होती हैं।

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 15 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (1) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

380. उदासीनता से ग्रस्त अवस्थाएँ इनसे विमुख होती हैं।

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 11 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (1) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

381. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; उच्चतर मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य

3 मार्ग; प्रथम मार्ग द्वारा जड़ सहित राज्यों का उन्मूलन;

उच्चतर तीन पथों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्य; राज्य

पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; निर्वाण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ;

शिक्षार्थियों से संबंधित; अरहत्ता से संबंधित राज्य; उच्च

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे 1 समुच्चय से अलग हो जाते हैं, से

10 क्षार और 16 तत्वों से बना; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित

और 1 तत्व (9) से।

382. अतुलनीय अवस्थाएँ; उच्च अवस्थाएँ विरक्त होती हैं

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

किसी भी समूह से अलग नहीं होते, किसी से अलग नहीं होते

क्षार; वे 6 तत्वों से वियोजित होते हैं(2)

383. सीमित वस्तुओं वाले राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अलग हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व(1) से।

384. उच्च उद्देश्यों वाले राज्य; अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य;

निम्न अवस्था वाले राज्य; गलत विचारों के कारण नियति निर्धारित कर चुके राज्य;

सही दृष्टिकोणों के कारण निश्चित नियति के साथ; पथ वस्तुओं वाले राज्य;

पथ द्वारा निर्धारित राज्य; पथ द्वारा नियंत्रित राज्य

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

ये अवस्थाएँ। वे 1 समूह से अलग हो जाती हैं। 10 आधारों से।

और 16 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व(8).

385. जो अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं, वे इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विच्छेदित हैं। वे विच्छेदित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

5 तत्वों से अलग किया गया (1).

386. भूतकाल के कर्मों वाले राज्य; आंतरिक कर्मों वाले राज्य;

बाह्य वस्तुओं वाले राज्य; आंतरिक और बाह्य वस्तुओं वाले राज्य

वस्तुएँ इन अवस्थाओं से अलग हो जाती हैं। वे अवस्थाएँ अलग हो जाती हैं।

इन अवस्थाओं से। वे 1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो जाते हैं।

387. वर्तमान उद्देश्यों वाले राज्य; आंतरिक उद्देश्यों वाले राज्य;

बाह्य वस्तुओं वाले राज्य; आंतरिक और बाह्य वस्तुओं वाले राज्य

वस्तुएँ इन अवस्थाओं से अलग हो जाती हैं। वे अवस्थाएँ हैं

इन अवस्थाओं से अलग हो गए। वे 4 समुच्चयों से अलग हो गए हैं,

1 आधार और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्वों से (2).

दोहे

389. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जिनके सहबद्ध मूल हैं;

वे अवस्थाएँ जो मूलों से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो स्वयं मूल हैं

और साथ ही संबंधित मूल भी हैं; वे राज्य जिनके संबंधित मूल हैं

लेकिन मूल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और उनसे भी जुड़ी हुई हैं

मूल अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो मूल अवस्थाओं से संबंधित हैं लेकिन स्वयं मूल अवस्थाएँ नहीं हैं;

वे अवस्थाएँ जो मूल नहीं हैं, लेकिन उनसे संबद्ध मूल हैं, विच्छेदित होती हैं।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे 1 समूह से, 10 आधारों से और 16 आधारों से अलग हो जाते हैं।

तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (8) से आंशिक रूप से अलग हो गए।

390. वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं; वे अवस्थाएँ जो इनसे प्रभावित नहीं होतीं

4 कारण; दृश्यता वाले राज्य; प्रभाव वाले राज्य; राज्य

जिनमें भौतिक परिवर्तन होते हैं, वे इन अवस्थाओं से अलग हो जाते हैं।

वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से पृथक हैं। वे पृथक हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (5) से अलग हो गया।

301. जो अवस्थाएँ अलौकिक हैं, वे इनसे विरक्त हैं।

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे नहीं हैं

किसी भी समुच्चय से पृथक, किसी भी आधार से पृथक नहीं;

वे 6 तत्वों (1) से अलग हो जाते हैं।

392. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हैं

दोष; वे राज्य जो दोष भी हैं और दोषों के शिकार भी;

वे अवस्थाएँ जो रोगग्रस्त भी हैं और रोगों से संबंधित भी हैं;

जो घावों से जुड़े होते हैं लेकिन घाव नहीं होते, उन्हें अलग माना जाता है।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाते हैं और

16 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (5).

393. वे राज्य जो संक्षारण के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जो

कैंकर से अलग हो गए हैं और कैंकर के विषय नहीं हैं, वे अलग हो गए हैं

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

अवस्थाएँ। वे किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, पृथक नहीं हैं।

किसी भी आधार से; वे 6 तत्वों (2) से अलग हो जाते हैं।

394. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो हैं

गलतफहमियों से जुड़ा हुआ; ऐसी अवस्थाएँ जो दोनों ही गलतफहमियाँ हैं

और गलतफहमियों के विषय इनसे अलग हो जाते हैं

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (38) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

395. वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं; राज्य

जो गलतफहमियों से अलग हैं और वस्तुएँ नहीं हैं

गलतफहमियों का इन अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं है।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विच्छेदित हैं। वे विच्छेदित नहीं हैं।

किसी भी समुच्चय से, किसी भी आधार से अविभाजित; वे हैं

6 तत्वों (2) से अलग हो गया।

396. वे अवस्थाएँ जिनमें वस्तुएँ होती हैं; वे अवस्थाएँ जो चेतना होती हैं;

वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हैं

चेतना; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी हुई हैं और चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं;

वे राज्य जो इससे जुड़े हुए हैं, इससे उत्पन्न होते हैं और

चेतना के साथ उत्पन्न होती हैं; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी होती हैं,

चेतना से उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उभरते हैं, वे विच्छेदित होते हैं।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाते हैं और

10 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (8).

397. वे अवस्थाएँ जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता; वे अवस्थाएँ जो विच्छेदित होती हैं

चेतना से; वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी नहीं हैं;

व्युत्पन्न अवस्थाएँ इनसे विमुख होती हैं

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे

4 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (4) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

398. आसक्ति से प्राप्त न होने वाली अवस्थाएँ इससे विरक्त होती हैं

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

किसी भी समूह से अलग नहीं होते, किसी से अलग नहीं होते

आधार; वे 5 तत्वों (1) से अलग हो जाते हैं।

399. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

भ्रष्ट राज्य; भ्रष्टाचार से जुड़े राज्य;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार भी हैं।

और भ्रष्टाचार से जुड़े हुए; वे राज्य जो इससे जुड़े हुए हैं

भ्रष्टाचार से जुड़े हुए हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं, इनसे अलग हैं।

वे राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 16 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (15) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

400. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जो

वे भ्रष्टाचार से अविभाजित हैं और भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं।

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

ये अवस्थाएँ। ये किसी भी समूह से अलग नहीं हैं, न ही

किसी भी आधार से अलग हो गए; वे 6 तत्वों (2) से अलग हो गए हैं।

401. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; उच्चतर मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य

3 मार्ग; प्रथम मार्ग द्वारा जड़ सहित सभी अवस्थाओं का उन्मूलन;

उच्चतर तीन पथों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्य विच्छेदित हो जाते हैं।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाते हैं और

16 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (4).

402. व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य

ये अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

ये अवस्थाएँ। वे 1 समुच्चय से, 10 आधारों से अलग हो जाती हैं।

और 16 तत्वों से; 1 क्षार से आंशिक रूप से वियोजित और

1 तत्व (2).

403. व्यावहारिक विचार के बिना राज्य; निरंतर विचार के बिना राज्य-

विचार इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे किसी भी समूह से अलग नहीं होते हैं।

किसी भी आधार से अलग नहीं; वे अलग हो गए हैं

1 तत्व (2).

404. परमानंद की अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो इसके साथ होती हैं

परमानंद इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ अलग हैं।

इन अवस्थाओं से। वे एक समूह से अलग हो जाते हैं।

10 आधारों और 16 तत्वों से; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार और 1 तत्व (2) से।

405. आनंद से युक्त अवस्थाएँ इससे विरक्त होती हैं

ये राज्य। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

1 समूह से, 10 आधारों से और 15 आधारों से अलग हो जाते हैं

तत्व; 1 आधार और 1 तत्व (1) से आंशिक रूप से अलग।

406. उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ वियोगी होती हैं।

इन राज्यों से। वे राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे 1 समूह से, 10 आधारों से और 11 आधारों से अलग हो जाते हैं।

तत्व; 1 आधार से आंशिक रूप से अलग, और 1 तत्व (1) से।

407. वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित नहीं हैं;

जो अस्तित्व के चक्र में शामिल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो

इन अवस्थाओं से परे और इनसे अलग नहीं हैं। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे इनसे विरक्त नहीं हैं।

कोई भी समुच्चय, जो किसी भी आधार से अविभाजित न हो; वे हैं

6 तत्वों (3) से अलग हो गया।

408. वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अमूर्त तल से संबंधित; वे अवस्थाएँ जो इससे बाहर निकलती हैं

अस्तित्वों का चक्र; जिन राज्यों का भाग्य निश्चित था, वे इसके बाद हार मान गए।

मृत्यु या उनके स्वयं घटित होने के बाद; वे अवस्थाएँ जो कारण हैं

विलाप इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे अवस्थाएँ

इन अवस्थाओं से अलग

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कैसे

कई तत्व ऐसी अवस्थाओं में विघटित होते हैं? वे विघटित होते हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (5) से अलग हो गया।

स्मृति सहायक

अध्याय VI के समान।

अध्याय X की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: पदार्थ के समुच्चय जैसी 250 विखंडित अवस्थाएँ

और इसी प्रकार अध्याय VI में वर्णित विषय भी इसी विषयवस्तु का हिस्सा हैं।

इस अध्याय का।

“ये राज्य” और “वे राज्य”: वे राज्य जो हैं

जांच की स्थिति से अलग किए गए लोगों को पहले "ये" के रूप में लिया जाता है

राज्यों” और फिर पहले “उन राज्यों” के रूप में। फिर वे राज्य जो

पहले से अलग किए गए “उन राज्यों” को दूसरे के रूप में लिया जाता है

“ये अवस्थाएँ” और “वे अवस्थाएँ”। वियोजन और आंशिक

बाद की अवस्थाओं के समुच्चय, क्षार और तत्वों से वियोजन

फिर उन्हें ढूंढ लिया जाता है।

चार्ट को कैसे पढ़ें: पदार्थ का समुच्चय केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं (4 मानसिक समूहों) से अलग हो जाता है।

वे अवस्थाएँ (4 मानसिक समूह) इससे अलग हो जाती हैं

ये अवस्थाएँ (विषय 28, निर्वाण)।

कितने समुच्चयों से, कितने आधारों से और कैसे

कई तत्व वे अवस्थाएँ हैं (पदार्थ 28, निर्वाण) जो विघटित हो चुकी हैं?

वे 4 समूहों (4 मानसिक समूहों) से अलग हैं,

1 आधार (मन का आधार) और 7 तत्वों (चेतना के 7 तत्व) से।

नोट: इस अध्याय की व्याख्या में कहा गया है कि निर्वाण

सूक्ष्म पदार्थ के समान है (निब्बाणं पण सुखरूप-गतिका)।

मेवा)। कुछ लोगों ने इसका गलत अर्थ निकाला है कि इसका अर्थ है निर्वाण

यह सूक्ष्म पदार्थ जितना ही सूक्ष्म है। टिप्पणीकार का यह तात्पर्य नहीं था कि

इसे इसी रूप में लिया जाना चाहिए। वह यह बताना चाहता था कि

क्योंकि निर्वाण और 16 सूक्ष्म भौतिक अवस्थाओं दोनों को वर्गीकृत किया गया है

संज्ञेय आधार और संज्ञेय तत्व के अंतर्गत, वे इस मामले में समान हैं।

आदर करना।

उप-टीका में यह कहा गया है कि विशेषताओं

निर्वाण और सूक्ष्म पदार्थ को दर्शाया नहीं गया है, बल्कि यह दर्शाया गया है कि निर्वाण क्या है।

आंशिक पृथक्करण में लिया जा सकता है और इसलिए, वे समान हैं।

इस संबंध में।

उत्तरों के प्रकार: उत्तरों के 9 प्रकार हैं। संख्याएँ

जिन राज्यों के उत्तर समान हैं, उनकी सूची नीचे दी गई है:-

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 353 (1), 355 (20), 357 (8), 365 (3), 388 (2), 390 (5), 397 (4)	43
2. 354 (5), 358 (1), 362 (3), 367 (6), 372 (1), 383 (1), 387 (4) 396 (8)	29
3. 356 (9), 359 (4), 361 (10), 363 (3), 366 (16), 369 (2), 373 (2) 377 (2), 381 (9), 384 (8), 386 (2), 389 (8), 392 (5), 394 (28) 399(18),401(4),404(2),408(5)	132

4. 360 (1), 371 (1), 380 (1), 406 (1)	4
5. 364 (1)	1
6. 368 (1), 370 (2), 376 (1), 379 (1), 402 (2), 405 (1)	8
7. 374 (2), 385 (1), 398 (1)	4
8. 375 (2), 382 (2), 391 (1), 393 (2), 394 (10), 395 (2), 399 (2) 400 (2), 407 (3)	26
9. 378 (1), 403 (2)	3
	कुल 250

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 11
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 11: वर्गीकृत से संबद्ध और पृथक

8 प्रश्न और उत्तर

409. उत्पत्ति सत्य को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है; पथ सत्य है

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

क्या कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? वे जुड़े हुए हैं

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

410. महिला संकाय; पुरुष संकाय को इन राज्यों के अनुसार वर्गीकृत किया गया है

समान योगफल के तहत, समान आधार के तहत और समान के तहत

तत्व।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (2) से अलग हो गया।

411. शारीरिक सुख का अनुभव करने की क्षमता; शारीरिक पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता; मानसिक आनंद

शोक संबंधी क्षमता को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समान समुच्चय, समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत...

वे 3 समुच्चयों, 1 आधार और 7 से जुड़े हैं।

तत्व; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

412. उदासीनता की क्षमता को निम्नलिखित अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है:

समान समुच्चय, समान आधार के अंतर्गत और समान तत्व के अंतर्गत।

वे 3 समुच्चयों, 1 आधार और 2 के साथ जुड़े हुए हैं।

तत्व; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 15 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

413. दोषपूर्ण आस्था; ऊर्जा क्षमता; जागरूकता क्षमता; एकाग्रता

ज्ञान की क्षमता; बुद्धि की क्षमता; मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था;

उच्चतर अनुभूति की क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त, संरचनाएँ;

6 आधारों द्वारा नियंत्रित। संपर्क; भावना द्वारा नियंत्रित। लालसा;

लालसा से प्रेरित। आसक्ति; कर्म का विकास इसी प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और एक ही तत्व के अंतर्गत। वे 3 समूहों से जुड़े हैं,

1 आधार और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से 1 समूह से संबद्ध।

1 आधार और 1 तत्व के साथ।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से;

1 आधार और 1 तत्व (14) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

414. विलाप को इन्हीं अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे राज्य कितनों से अलग हुए हैं? वे हैं

4 समुच्चयों, 1 आधार और 7 तत्वों से पृथक;

1 आधार और 1 तत्व (1) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

415. शोक; पीड़ा; दुःख को निम्नलिखित अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समान योग, समान आधार के अंतर्गत और समान के अंतर्गत

तत्व।

वे 3 समुच्चयों, 1 आधार और के साथ जुड़े हुए हैं।

7 तत्व; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से;

1 आधार और 1 तत्व (3) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

416. निराशा; ध्यान का अनुप्रयोग; महान प्रयास; असीम;

5 क्षमताएँ; 5 शक्तियाँ; ज्ञानोदय के 7 कारक;

आर्य अष्टांगिक मार्ग; संपर्क; संकल्प; निर्णय; ध्यान;

वे राज्य जो मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और जिनमें ये भी शामिल हैं

संबंधित मूल; वे राज्य जो मूल हैं और साथ ही संबंधित भी हैं

जड़ें; वे अवस्थाएँ जो रोग हैं; वे अवस्थाएँ जो रोग हैं।

और दोष के कारक; वे अवस्थाएँ जो दोष भी हैं और उनसे संबंधित भी हैं

घावों से युक्त; ऐसी अवस्थाएँ जो बंधन हैं... ऐसी अवस्थाएँ जो बंधन हैं...

ऐसे राज्य जो बाढ़ हैं... ऐसे राज्य जो बंधन हैं... ऐसे राज्य जो

बाधाएँ हैं... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं... अवस्थाएँ

जो आसक्ति पैदा करते हैं... वे अवस्थाएँ जो भ्रष्ट हैं; वे अवस्थाएँ जो

ये दोनों ही भ्रष्टाचार हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्ट दोनों; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रस्त हैं

भ्रष्टाचार से जुड़े मामलों को इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत समान समुच्चय।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने के साथ

वे अवस्थाएँ कितने तत्वों से जुड़ी हैं? वे जुड़ी हुई हैं।

3 समुच्चयों के साथ, 1 आधार के साथ और 7 तत्वों के साथ; आंशिक रूप से

1 समुच्चय, 1 आधार और 1 तत्व से संबंधित।

वे अवस्थाएँ कितनी अवस्थाओं से पृथक हैं? वे पृथक हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से;

1 आधार और 1 तत्व (42) से आंशिक रूप से अलग हो गया।

स्मृति सहायक

अध्याय IV के समान।

अध्याय 11 की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: यहाँ भावना, मानसिक संरचना, समग्र, सूक्ष्म

पदार्थ और एक प्रकार की श्रव्य वस्तु, जिन्हें वर्गीकृत किया गया है

एक ही समूह के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत जांच की अवस्थाएँ

और अध्याय IV में दिए गए समान तत्व के अंतर्गत, अब इनका उपचार किया जाता है।

अध्याय VI में वर्णित सहभागिता और वियोग के अंतर्गत।

चार्ट को कैसे पढ़ें: मूल सत्य को उदाहरण के रूप में लिया गया है।

उत्पत्ति सत्य को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत किया गया है (शेष 49 अवस्थाओं के)।

मानसिक गठन समूह) उसी समूह के अंतर्गत (मानसिक

गठन समुच्चय), एक ही आधार (पहचानने योग्य आधार) के अंतर्गत और

एक ही तत्व (संज्ञानात्मक तत्व) के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व वे अवस्थाएँ हैं (मानसिक की शेष 49 अवस्थाएँ)

गठन समूह) संबंधित? वे 3 समूहों से संबंधित हैं

(शेष 3 मानसिक समुच्चय), 1 आधार (मन का आधार) के साथ

और 7 तत्वों (चेतना के 7 तत्व) के साथ; आंशिक रूप से संबद्ध

1 समुच्चय (मानसिक गठन समुच्चय) के साथ, 1 (संज्ञानात्मक) के साथ

आधार (उत्पत्ति सत्य, भावना और धारणा मानसिक कारक) और साथ

1 "(पहचानने योग्य) तत्व (मूल सत्य, भावना और मानसिक धारणा)

कारक)।

वे अवस्थाएँ कितनी हैं (मानसिक की शेष 49 अवस्थाएँ)

गठन समूह) वियोजित? वे 1 से वियोजित हैं

10 आधारों (10 स्थूल आधारों) से समुच्चय (पदार्थ का समुच्चय) और

अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 12: संबद्ध के संबंध में वर्गीकृत और अवर्गीकृत

31 प्रश्न और उत्तर

417. भावना समूह इन अवस्थाओं से जुड़ा है; बोध

कुल योग; मानसिक गठन का कुल योग इनसे जुड़ा हुआ है

राज्यों।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

3 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (3)।

418. चेतना समूह; मन का आधार; नेत्र चेतना

तत्व... मन तत्व; मन चेतना तत्व इससे जुड़ा हुआ है।

इन राज्यों के साथ. . . . इन्हें 3 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

1 आधार और 1 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (9)।

419. उत्पत्ति सत्य; पथ सत्य इन अवस्थाओं से जुड़ा है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (2)।

420. मन की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है। वे हैं

इसे 3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

421. शारीरिक सुख का अनुभव; शारीरिक पीड़ा का अनुभव; मानसिक आनंद

शोक की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है। वे हैं

इन्हें 3 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (4)।

422. उदासीनता की क्षमता इन अवस्थाओं से जुड़ी होती है। वे हैं

इसे 3 समुच्चयों, 2 आधारों और 7 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 11 तत्वों के अंतर्गत (1)।

423. आस्था शक्ति; ऊर्जा शक्ति; जागरूकता शक्ति; एकाग्रता

ज्ञान की क्षमता; बुद्धि की क्षमता; वह क्षमता जो मुझे वह सब कुछ जानने की क्षमता प्रदान करती है जो मुझे पहले नहीं पता था;

उच्चतर अनुभूति की क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से प्रेरित, संरचनाएँ हैं

इन राज्यों से संबद्ध। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (10)।

424. गठन द्वारा वातानुकूलित। चेतना इससे जुड़ी है

इन राज्यों को 3 समूहों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

425. 6 आधारों द्वारा नियंत्रित। संपर्क इनसे जुड़ा हुआ है।

राज्यों को 4 समूहों और 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

8 तत्वों से कम।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (1)।

426. संपर्क द्वारा नियंत्रित। भावना इनसे जुड़ी होती है।

राज्यों को 3 समूहों और 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

8 तत्वों से कम।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (1)।

427. भावना से प्रेरित। लालसा; लालसा से प्रेरित।

आसक्ति; कर्म भाव इन अवस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

428. शोक; पीड़ा; दुःख इन अवस्थाओं से संबंधित है।

इन्हें 3 समूहों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

429. निराशा; ध्यान का प्रयोग; बहुत प्रयास आवश्यक है

इन राज्यों से संबद्ध। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

430. मानसिक शक्ति का मार्ग इन अवस्थाओं से जुड़ा है।

इन्हें 3 समूहों, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

431. झाना इन राज्यों से संबंधित है। इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

3 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (1)।

432. असीमित; 5 क्षमताएँ; 5 सामर्थ्य; 7 कारक

ज्ञानोदय; आर्य अष्टांगिक मार्ग इन अवस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (5)।

433. संपर्क; इच्छा; ध्यान इन अवस्थाओं से जुड़ा है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

8 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (3)।

434. भावना; बोध इन अवस्थाओं से जुड़ा है। वे हैं

इन्हें 3 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (2)।

435. चेतना इन अवस्थाओं से जुड़ी है। वे हैं

इसे 3 समुच्चयों, 1 आधार और 1 तत्व के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? 1. वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

436. निर्णय इन राज्यों से संबंधित है। इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 15 तत्वों के अंतर्गत (1)।

त्रिक

437. सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ

दर्द भरी अनुभूति के साथ; ऐसी अवस्थाएँ जो ऐसी अनुभूति से जुड़ी होती हैं जो न तो दर्द भरी होती हैं और न ही दर्द भरी।

न तो दर्दनाक और न ही सुखद; व्यावहारिक विचार और निरंतरता के साथ अवस्थाएँ

विचार; व्यावहारिक विचार के बिना लेकिन निरंतर विचार से युक्त अवस्थाएँ;

परमानंद से युक्त अवस्थाएँ; साथ में स्थित अवस्थाएँ

आनंद; उदासीनता से जुड़ी अवस्थाएँ इससे संबंधित हैं

इन राज्यों को 1 समूह और 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (8)।

438. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और साथ ही

संबद्ध मूल हैं; वे राज्य जो मूल हैं और संबद्ध भी हैं

जड़ों वाले इन राज्यों से जुड़े होते हैं। इन्हें वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

439. वे अवस्थाएँ जिनके सहबद्ध मूल हैं लेकिन वे स्वयं मूल नहीं हैं; अवस्थाएँ

जो जड़ों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं; वे राज्य जो

ये मूल नहीं हैं, लेकिन इनसे संबंधित मूल हैं।

राज्यों को 1 समुच्चय, 1 आधार और 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (3)।

440. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो दोनों प्रकार से कलंक हैं

और दोष के कारक; वे अवस्थाएँ जो दोष भी हैं और उनसे संबंधित भी हैं

इन अवस्थाओं से जुड़े घावों के साथ-साथ कैंकर भी होते हैं। इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

441. वे अवस्थाएँ जो कैंकर रोग से संबंधित हैं लेकिन स्वयं कैंकर रोग नहीं हैं

इन राज्यों से संबंधित हैं। इन्हें 1 के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

एग्रीगेट, 1 बेस के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

442. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो

दोनों ही गलतफहमियां और गलतफहमियों के विषय हैं।

इन राज्यों से संबद्ध। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (22)।

443. गलतफहमियों से जुड़े राज्य संबंधित हैं

इन राज्यों के साथ। इन्हें 1 समूह के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

1 आधार और 1 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

444. चेतना की अवस्थाएँ इनसे जुड़ी होती हैं।

राज्यों को 3 समूहों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

2 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (1)।

445. वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो संबद्ध हैं

चेतना के साथ; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी हुई हैं और चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं;

वे राज्य जो जुड़े हुए हैं, उत्पन्न होते हैं

चेतना के साथ उत्पन्न होते हैं; वे अवस्थाएँ जो जुड़ी हुई हैं

चेतना के साथ, चेतना द्वारा उत्पन्न होते हैं और चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

इन राज्यों से संबद्ध। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 11 तत्वों के अंतर्गत (6)।

446. आसक्ति से ग्रस्त अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार से जुड़े दोनों ही आपस में जुड़े हुए हैं।

इन राज्यों के साथ। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (8).

447. वे राज्य जो भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार नहीं हैं;

जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं;

व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद से ग्रस्त राज्य; वे राज्य जो परमानंद से युक्त हैं;

ऐसी अवस्थाएँ जिनमें आनंद निहित होता है; ऐसी अवस्थाएँ जो

इन अवस्थाओं के साथ उदासीनता भी जुड़ी होती है।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 1 तत्व के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत और 17 तत्वों के अंतर्गत (8)।

स्मृति सहायक

अध्याय XII की विधि और चार्ट * की व्याख्या

यहां वे राज्य हैं जो जांच के राज्य से जुड़े हुए हैं, जैसे कि

अध्याय IX में वर्गीकृत और अवर्गीकृत श्रेणियों को शामिल किया गया है।

आधार और तत्व। तारांकन चिह्न संबंधित अवस्थाओं को दर्शाता है।

वर्गीकृत और अवर्गीकृत किए जाने वाले। केवल वर्गीकृत ही शामिल हैं।

चार्ट में दर्शाए गए और शेष समुच्चय, आधार और तत्व

वे हैं जिन्हें टीएम वर्गीकृत किया गया है।

चार्ट को कैसे पढ़ें: भावों का समग्र रूप केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

इन अवस्थाओं के साथ समग्र भावना जुड़ी हुई है (चेतना 89,

मानसिक कारक 52 (भावना को छोड़कर = 51)।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन अवस्थाओं में कितने तत्व हैं (चेतना 89, मानसिक)

कारक 52 (भावना को छोड़कर = 51) वर्गीकृत? वे (चेतना)

89, मानसिक कारक 52 (भावना को छोड़कर = 51) को वर्गीकृत किया गया है

3 समुच्चय (बोध, मानसिक निर्माण और चेतना)

समुच्चय), 2 आधारों के अंतर्गत (संज्ञानात्मक आधार और मानसिक आधार) और

8 तत्वों के अंतर्गत (संज्ञानात्मक तत्व और 7 चेतना तत्व)।

वे कितने के अंतर्गत हैं (चेतना 89, मानसिक कारक 52)

भावना को छोड़कर = 51) वर्गीकृत नहीं? उन्हें इसके अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है

2 समूह (पदार्थ समूह और भावना समूह), 10 से कम

आधार (10 स्थूल आधार) और 10 से कम तत्व (10 स्थूल तत्व)।

उत्तरों के प्रकार: उत्तरों के 9 प्रकार हैं। संख्याएँ

जिन राज्यों के उत्तर समान हैं, उन्हें नीचे दर्शाया गया है:-

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 417 (3), 426 (1), 434 (2)	6
2. 418 (9), 420 (1), 424 (1), 430 (1), 435 (1), 444 (1)	14
3. 419 (2), 423 (10), 427 (3), 429 (3), 432 (5), 438 (3), 440 (3 442 (17), 446 (7)	53
4. 421 (4), 428 (3), 431 (1)	8
5. 422 (1)	1
6. 425 (1), 433 (3)	4
7. 436 (1)	1
8. 437 (8), 439 (3), 441 (1), 442 (5), 443 (1), 446 (1), 447 (8)	27
9. 445 (6)	6
	कुल 120

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 13
पालि संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 13: अवर्गीकृत से संबद्ध और पृथक

8 प्रश्न और उत्तर

448. पदार्थ समूह को इन अवस्थाओं के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान समुच्चय, समान आधार के अंतर्गत और समान तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

क्या कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? वे जुड़े हुए हैं

3 समुच्चयों के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और के साथ संबद्ध

1 तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो गया।

449. संज्ञेय आधार को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है; संज्ञेय

तत्व; स्त्री शक्ति; पुरुष शक्ति; जीवन शक्ति; द्वारा निर्धारित

चेतना, मानसिक-भौतिकता; अगोचर

बनना; एक-समूह बनना; जन्म; वृद्धावस्था; मृत्यु है

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत... वे इससे जुड़े हुए हैं

3 समुच्चय; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (11) से अलग हो गया।

450. अमूर्त विकास; न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति

विकास; चार-समूह विकास; मानसिक शक्ति का मार्ग

इन राज्यों के साथ समान समूह के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है,

समान आधार और समान तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे इनसे विमुख हैं।

1 आधार और 7 तत्वों से बने 4 समुच्चय; आंशिक रूप से वियोजित

1 आधार से और 1 तत्व से (4).

त्रिक

451. स्वास्थ्यवर्धक अवस्थाएँ; अस्वस्थ अवस्थाएँ; संबंधित अवस्थाएँ

सुखद अनुभूति के साथ; पीड़ादायक अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; अवस्थाएँ

ऐसी भावना से जुड़ा हुआ जो न तो दर्दनाक है और न ही सुखद;

परिणामी अवस्थाएँ; परिणामी अवस्थाएँ उत्पन्न करने वाली अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो

ये आसक्ति से प्राप्त नहीं होते और आसक्ति के लिए अनुकूल भी नहीं होते; भ्रष्ट

और भ्रष्ट राज्यों का निर्माण; न तो भ्रष्ट और न ही भ्रष्ट राज्यों का निर्माण;

व्यावहारिक और निरंतर चिंतन वाले राज्य; व्यावहारिक और निरंतर चिंतन से रहित राज्य

व्यावहारिक चिंतन लेकिन निरंतर चिंतन के साथ; राज्यों के साथ

परमानंद से; आनंद से युक्त अवस्थाएँ; साथ में अवस्थाएँ

उदासीनता द्वारा; प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; समाप्त किए गए राज्य

उच्चतर 3 पथों द्वारा; प्रथम द्वारा जड़ सहित राज्यों का उन्मूलन किया गया

पथ; उच्चतर 3 पथों द्वारा जड़ सहित राज्यों का उन्मूलन;

पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; निर्वाण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ;

शिक्षार्थियों से संबंधित राज्य; अरहट्टा से संबंधित राज्य;

उच्च कोटि के राज्य; अतुलनीय राज्य; सीमित उद्देश्यों वाले राज्य;

उच्च उद्देश्यों वाले राज्य; अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य; निम्न

राज्य; उच्च राज्य; गलत कार्यों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य

विचार; सही विचारों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य; ऐसे राज्य जिनके

पथ ऑब्जेक्ट; पथ द्वारा निर्धारित अवस्थाएँ; पथ द्वारा नियंत्रित अवस्थाएँ

पथ द्वारा; भूतकाल कर्म वाले राज्य; भविष्यकाल कर्म वाले राज्य;

वर्तमान कर्म वाले राज्य; आंतरिक कर्म वाले राज्य; राज्य

बाह्य वस्तु सहित; आंतरिक और बाह्य वस्तु सहित अवस्थाएँ (41)

दोहे

वे राज्य जिनके मूल संबद्ध हैं; वे राज्य जो संबद्ध हैं

मूलों के साथ; वे राज्य जिनके संबद्ध मूल हैं लेकिन वे स्वयं मूल नहीं हैं;

वे अवस्थाएँ जो जड़ों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं;

जो मूल नहीं हैं लेकिन उनसे संबंधित मूल हैं, उन्हें वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (5) से अलग हो गया।

452. भौतिक परिवर्तन वाली अवस्थाओं को इस श्रेणी में नहीं रखा जाता है।

ये राज्य एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और

एक ही तत्व के अंतर्गत। वे 3 समूहों से जुड़े हैं;

आंशिक रूप से 1 आधार और 1 तत्व से संबद्ध।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (1) से अलग हो जाता है।

453. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई भौतिक परिवर्तन नहीं होता; वे अवस्थाएँ जो

अलौकिक; वे अवस्थाएँ जो विकारों से मुक्त हैं; अवस्थाएँ

जो छालों से संबंधित हैं; वे राज्य जो इससे संबंधित हैं

कैंकर हैं लेकिन कैंकर नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो इससे अलग हैं

कैंकर और कैंकर की वस्तुएँ नहीं हैं (6)।

वे राज्य जो बंधनों के अधीन नहीं हैं... वे राज्य जो बंधनों के अधीन नहीं हैं

संबंधों के विषय... वे राज्य जो बाढ़ के विषय नहीं हैं... राज्य

जो बंधनों के विषय नहीं हैं... राज्य जो विषय नहीं हैं

बाधाएँ . . . (20).

वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं; वे राज्य जो

गलतफहमियों से जुड़े हुए; ऐसी अवस्थाएँ जो विच्छेदित हैं

गलतफहमियों से मुक्त हैं और गलतफहमियों के शिकार नहीं हैं;

जिन राज्यों में वस्तुएं हैं, उन्हें इन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

समान योग, समान आधार के अंतर्गत और समान के अंतर्गत

तत्व।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (4) से अलग हो गया।

454. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई वस्तु नहीं होती; वे अवस्थाएँ जो चेतना नहीं होतीं;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से विरक्त हैं; अवस्थाएँ

जो चेतना से जुड़े नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो

चेतना द्वारा उत्पन्न; वे अवस्थाएँ जो साथ-साथ उत्पन्न होती हैं

चेतना; चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ;

बाह्य अवस्थाओं का वर्गीकरण नहीं किया जाता है; व्युत्पन्न अवस्थाओं को भी वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

इन राज्यों को एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत रखते हुए

और उसी तत्व के अंतर्गत।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

क्या कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? वे जुड़े हुए हैं

3 समुच्चयों के साथ; आंशिक रूप से 1 आधार और 1 के साथ संबद्ध

तत्व।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

1 समुच्चय से, 10 आधारों से और 10 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (9) से अलग हो जाता है।

455. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति का विषय नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो

आसक्ति से संबंधित; आसक्ति से संबंधित अवस्थाएँ

लेकिन आसक्ति से मुक्त; वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से विरक्त हैं

और आसक्ति के विषय नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो आसक्ति के विषय नहीं हैं

भ्रष्टाचार; वे राज्य जो भ्रष्ट नहीं हैं; वे राज्य जो भ्रष्ट हैं

भ्रष्टाचार से जुड़े हुए; ऐसे राज्य जो भ्रष्ट हैं लेकिन भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हैं

भ्रष्टाचार; वे राज्य जो भ्रष्टाचार से जुड़े हैं लेकिन

भ्रष्टाचार नहीं हैं; वे राज्य जो भ्रष्टाचार से मुक्त हैं।

और भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जिनका नाश हो चुका है।

प्रथम मार्ग द्वारा; वे अवस्थाएँ जिनका उन्मूलन उच्चतर तीन मार्गों द्वारा होता है;

प्रथम पथ द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्य; राज्य

उच्चतर 3 पथों द्वारा जड़े उखाड़ दिए जाने के साथ-साथ; राज्यों के साथ

व्यावहारिक चिंतन; निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद; परमानंद से युक्त अवस्थाएँ; ऐसी अवस्थाएँ जो

आनंद से युक्त; वे अवस्थाएँ जो आनंद से युक्त होती हैं

उदासीनता; वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित नहीं हैं;

वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अमूर्त तल से संबंधित; वे अवस्थाएँ जो इसमें शामिल नहीं हैं

अस्तित्वों का चक्र; वे अवस्थाएँ जो चक्र से निकलती हैं।

अस्तित्व; वे अवस्थाएँ जिनका नियति निश्चित थी, मृत्यु के बाद समाप्त हो गईं।

या उनके स्वयं घटित होने के बाद; ऐसी अवस्थाएँ जो परे के साथ नहीं हैं;

शोक का कारण बनने वाले राज्यों को इनमें वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही कुल योग के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत और एक ही आधार के अंतर्गत राज्य

वही तत्व।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं से जुड़े हैं? किसी से नहीं।

वे कितनों से विमुख हैं? वे विमुख हैं।

4 समुच्चयों से, 1 आधार से और 7 तत्वों से; आंशिक रूप से

1 आधार और 1 तत्व (28) से अलग हो गया।

स्मृति सहायक

अध्याय V (6) के समान।

अध्याय XIII की विधि और चार्ट की व्याख्या

विषयवस्तु: यहाँ उन राज्यों का उल्लेख है जिन्हें निम्न श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है।

एक ही समूह के अंतर्गत, एक ही आधार के अंतर्गत जांच की अवस्थाएँ

और अध्याय V में दिए गए समान तत्व के अंतर्गत, अब इनका उपचार किया जाता है।

अध्याय VI में वर्णित सहभागिता और वियोग के अंतर्गत। 130 में से

इस अध्याय में वर्णित राज्य, जिनमें से 16 राज्य निम्नलिखित श्रेणी में आते हैं,

आंतरिक और 114 बाहरी जांच के राज्यों के लिए।

चार्ट को कैसे पढ़ें: पदार्थ का समुच्चय केवल उदाहरण के तौर पर लिया गया है।

पदार्थ समूह को इन अवस्थाओं (चेतना) के साथ वर्गीकृत नहीं किया जाता है।

एक ही समुच्चय (पदार्थ समुच्चय) के अंतर्गत, के अंतर्गत

समान आधार (10 स्थूल आधार और संज्ञेय आधार) और इसके अंतर्गत

समान तत्व (10 स्थूल तत्व और संज्ञेय तत्व)।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कैसे

कई तत्व उन अवस्थाओं (चेतना समूह) से जुड़े होते हैं?

वे 3 समूहों (शेष 3 मानसिक समूहों) से जुड़े हैं;

आंशिक रूप से 1 (संज्ञानात्मक) आधार (52 मानसिक) से संबद्ध

कारक) और 1 (संज्ञानात्मक) तत्व (52 मानसिक कारक) के साथ।

वे (चेतना समूह) कितने से अलग हुए हैं?

वे एक समूह (पदार्थ समूह) से अलग हो जाते हैं,

10 आधार (10 स्थूल आधार) और 10 तत्वों (10 स्थूल तत्व) से;

1 (संज्ञानात्मक) आधार (सूक्ष्म पदार्थ 16 और) से आंशिक रूप से अलग

निर्वाण) और 1 (ज्ञात) तत्व (सूक्ष्म पदार्थ 16 और

निर्वाण)।

उत्तरों के प्रकार: उत्तर दो प्रकार के होते हैं। संख्या

समान उत्तर वाले जांच राज्यों की सूची नीचे दी गई है:-

प्रश्न संख्याएँ	**राज्यों की संख्या**
1. 448 (1), 449 (11), 462 (1), 454 (9)	22
2. 450 (4), 451 (46), 453 (30), 455 (28)	108
	कुल 130

नोट: अध्याय V में उल्लिखित 257 जांच राज्यों में से केवल 130 राज्यों का ही उल्लेख किया गया है।

यहां इन पर चर्चा की गई है। इनमें से बाईस पदार्थ समूह के समान हैं।

और 108 निराकार बनने के समान हैं। शेष 127 अवस्थाएँ

अध्याय V के कुछ उपाख्यान, जैसे भावना समूह आदि, को इसमें शामिल नहीं किया गया है क्योंकि

वे राज्य, जिन्हें उनके साथ एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया गया है

एक ही आधार और एक ही तत्व के अंतर्गत एकत्रित होने वाले तत्व हैं

संबद्ध नहीं।

इसका एक उदाहरण नीचे भावना समूह के साथ दिया गया है।

कुल योग को इन अवस्थाओं के साथ वर्गीकृत नहीं किया गया है (12 सकल पदार्थ,

चेतना समूह) एक ही समूह (भावना समूह) के अंतर्गत,

एक ही आधार (संज्ञेय आधार) के अंतर्गत और एक ही तत्व के अंतर्गत

(पहचानने योग्य तत्व)।

कितने समुच्चयों के साथ, कितने आधारों के साथ और कितने के साथ

उन अवस्थाओं में कितने तत्व होते हैं (12 स्थूल पदार्थ, चेतना)

क्या वे कुल मिलाकर संबंधित हैं? या, वे कितनों से अलग हैं?

ऐसे सवालों का जवाब नहीं दिया जा सकता।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> धातुकथा >> **अध्याय** 14
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण
अनुवादक: यू नारदा

अध्याय 14: विच्छेदित पदार्थों के संबंध में वर्गीकृत और अवर्गीकृत

63 प्रश्न और उत्तर

1. **समुच्चय इत्यादि**

456. पदार्थ का समूह इन अवस्थाओं से अलग हो जाता है।

कितने समुच्चय, कितने आधारों के अंतर्गत और कितने के अंतर्गत

क्या ये तत्व उन राज्यों के अंतर्गत वर्गीकृत हैं? इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों से कम और 8 तत्वों से कम।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (1)।

467. भावना समूह इन अवस्थाओं से अलग है;

बोध समूह; मानसिक निर्माण समूह; चेतना

समग्र; मन का आधार; मन की क्षमता इन अवस्थाओं से अलग है।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? वे, को छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

1 समुच्चय, 11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत (6)।

458. आँख का आधार... मूर्त वस्तु आधार; आँख का तत्व... मूर्त

ऑब्जेक्ट तत्व इन अवस्थाओं से अलग हो जाता है। इन्हें वर्गीकृत किया जाता है।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (20)।

459. नेत्र चेतना तत्व; कान चेतना तत्व;

नाक चेतना तत्व; जीभ चेतना तत्व; शरीर

चेतना तत्व; मन तत्व; मन चेतना तत्व

इन अवस्थाओं से विरक्त है। . . . वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

कितनों के अंतर्गत इन्हें वर्गीकृत नहीं किया गया है? इन्हें अवर्गीकृत नहीं किया गया है।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 1 तत्व (7) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

2. सत्य इत्यादि

460. पीड़ादायक सत्य इन अवस्थाओं से अलग है। . . . वे

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (1)।

461. उत्पत्ति सत्य; पथ सत्य इन अवस्थाओं से अलग है।

वे, निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (2) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

462. समाप्ति सत्य; नेत्र शक्ति... शरीर शक्ति; स्त्री

पुरुष संकाय; पुरुष संकाय इन अवस्थाओं से अलग है। वे हैं

इसे 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे नहीं हैं

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत (8)।

463. शारीरिक सुख का अनुभव; शारीरिक पीड़ा का अनुभव; मानसिक आनंद

शोक की अनुभूति इन अवस्थाओं से असंबद्ध होती है।

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्वों में वर्गीकृत।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (4) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

464. उदासीनता की क्षमता इन अवस्थाओं से अलग है। वे,

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 13 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 5 तत्वों (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

465. आस्था शक्ति; ऊर्जा शक्ति; जागरूकता शक्ति; एकाग्रता

ज्ञान की क्षमता; बुद्धि की क्षमता; मुझे वह सब पता चल जाएगा जो मुझे नहीं पता था;

उच्चतर अनुभूति की क्षमता; वह जिसने जान लिया है

क्षमता; अज्ञान; अज्ञान से ग्रस्त। संरचनाएँ हैं

इन अवस्थाओं से अलग होकर। उन्होंने निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (10) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

466. औपचारिक चेतना द्वारा वातानुकूलित; द्वारा वातानुकूलित

6 आधार, संपर्क; संपर्क द्वारा परिचालित, भावना अलग हो जाती है

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 1 समुच्चय के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है और

11 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत (3)।

467. भावना से प्रेरित। लालसा; लालसा से प्रेरित।

आसक्ति; कर्म इन अवस्थाओं से विरक्त है। वे,

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (3) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

468. पुनर्जन्म होना; प्रत्यक्ष अनुभव होना; पंचसमूह

बनना इन अवस्थाओं से अलग है। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 15 तत्वों के अंतर्गत (3)।

469. इंद्रियजन्य विकास इन अवस्थाओं से अलग है।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 5 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 13 तत्वों के अंतर्गत (1)।

470. सूक्ष्म-पदार्थ का बनना; अगोचर बनना; एक-समूह

बनना; विलाप इन अवस्थाओं से अलग है। वे हैं

इसे 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (4)।

471. अमूर्त विकास; न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति

बनना; चार-समूह बनना; शोक; पीड़ा;

दु:ख; निराशा; ध्यान का अभ्यास; अथक प्रयास; सड़क

मानसिक शक्ति; ध्यान; असीमित; 5 क्षमताएँ; 5 सामर्थ्य;

ज्ञानोदय के 7 कारक; आर्य अष्टांगिक मार्ग को अलग कर दिया गया है

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व के अंतर्गत गैर-वर्गीकृत नहीं है।

3. सात संपर्क समूह

472. संपर्क; भावना; बोध; इच्छाशक्ति; चेतना;

ध्यान इन अवस्थाओं से अलग है। निर्वाण को छोड़कर, वे सभी अवस्थाएँ इसमें शामिल नहीं हैं।

समुच्चयों के वर्गीकरण से, इन्हें 1 समुच्चय के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है,

11 से कम आधार और 11 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत (6)।

473. निर्णय इन राज्यों से अलग है। वे, अपवाद स्वरूप

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे किसी श्रेणी के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर अवर्गीकृत न किए गए कोई भी समूह;

उन्हें 1 तत्व (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

4. तिगुना बच्चे

474. स्वस्थ अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग होती हैं।

अस्वस्थ अवस्थाएँ; सुखद अनुभूति से जुड़ी अवस्थाएँ; अवस्थाएँ

दर्द की अनुभूति से जुड़े भाव इन अवस्थाओं से अलग होते हैं।

वे, निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समूहों, 12 आधारों और 18 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (4) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

475. अनिर्धारित अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग होती हैं।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (1)।

476. ऐसी अवस्थाएँ जो न तो दर्दनाक और न ही दर्द से जुड़ी भावनाओं से संबंधित हैं।

सुखद; परिणामी अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हो जाती हैं। वे,

निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए, वर्गीकृत किया गया है

5 से कम समुच्चय, 12 से कम आधार और 13 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 5 तत्वों (2) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

477. परिणामी राज्यों को उत्पन्न करने वाले राज्य; भ्रष्ट और भ्रष्ट करने वाले

राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों के वर्गीकरण के आधार पर, इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 आधारों से कम और 18 तत्वों से कम।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (2) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

478. वे अवस्थाएँ जो न तो परिणामी हैं और न ही परिणामी उत्पन्न करती हैं

अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं बल्कि अनुकूल होती हैं

आसक्ति; वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त नहीं होतीं और अनुकूल नहीं होतीं।

आसक्ति से; भ्रष्ट न होने और भ्रष्ट न करने वाली अवस्थाएँ अविभाजित हैं।

इन राज्यों से। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (4)।

479. वे अवस्थाएँ जो आसक्ति से प्राप्त होती हैं और अनुकूल होती हैं

आसक्ति इन अवस्थाओं से अलग होती है। इन्हें निम्न के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 15 तत्वों के अंतर्गत (1)।

480. भ्रष्ट नहीं बल्कि भ्रष्टाचार करने वाले राज्य इनसे अलग हैं।

राज्यों को 4 समूहों और 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (1)।

481. व्यावहारिक चिंतन और निरंतर चिंतन वाले राज्य हैं

इन अवस्थाओं से अलग होकर। उन्होंने निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 17 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 1 तत्व (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

482. व्यावहारिक चिंतन के बिना, लेकिन निरंतर चिंतन वाले राज्य;

परमानंद से भरी अवस्थाएँ; आनंद से भरी अवस्थाएँ

वे इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (3) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

483. व्यावहारिक और निरंतर चिंतन के बिना राज्य हैं

इन अवस्थाओं से अलग। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 आधारों के अंतर्गत और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 15 तत्वों के अंतर्गत (1)।

484. उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ इनसे विरक्त होती हैं।

राज्यों। वे, निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

13 तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 5 तत्वों (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

485. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य; उच्चतर मार्ग द्वारा समाप्त किए गए राज्य

3 मार्ग; प्रथम मार्ग द्वारा जड़ सहित सभी अवस्थाओं का उन्मूलन;

उच्चतर तीन पथों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्य; राज्य

पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ; निर्वाण की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ;

शिक्षार्थियों से संबंधित; अरहत्ता से संबंधित राज्य; उच्च

राज्य इन राज्यों से अलग हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों के वर्गीकरण के आधार पर, इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (9) के अंतर्गत गैर-वर्गीकृत नहीं।

486. राज्य न तो प्रथम मार्ग से और न ही उच्चतर मार्ग से समाप्त हुए।

पथ; राज्य, जड़ों के साथ, प्रथम पथ द्वारा न तो मिटाए गए।

न ही उच्चतर तीन मार्गों द्वारा; न ही पुनर्जन्म और मृत्यु की ओर ले जाने वाली अवस्थाएँ

निर्वाण की ओर; ऐसी अवस्थाएँ जो न तो शिक्षार्थियों से संबंधित हैं और न ही अरहत्तों से;

सीमित अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग होती हैं। इन्हें वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (5)।

487. अतुलनीय अवस्थाएँ; उच्च अवस्थाएँ विरक्त होती हैं

इन राज्यों को 4 समूहों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (2)।

488. सीमित वस्तुओं वाले राज्य इन राज्यों से अलग हैं।

वे, निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 12 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 6 तत्वों (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

489. उच्च उद्देश्यों वाले राज्य; अतुलनीय उद्देश्यों वाले राज्य;

निम्न अवस्था वाले राज्य; गलत विचारों के कारण निश्चित भाग्य वाले राज्य;

सही दृष्टिकोणों के कारण निश्चित नियति के साथ; पथ वस्तुओं वाले राज्य;

पथ द्वारा निर्धारित राज्य; पथ द्वारा नियंत्रित राज्य

वे इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (8) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

490. मध्यम अवस्थाएँ; जिन अवस्थाओं का कोई निश्चित भाग्य नहीं होता, वे विच्छेदित होती हैं।

इन राज्यों से। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिनके अंतर्गत

2 आधार और 2 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (2)।

491. उत्पन्न हुई अवस्थाएँ; उत्पन्न नहीं हुई अवस्थाएँ; उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ;

भूतकाल की अवस्थाएँ; भविष्य की अवस्थाएँ; वर्तमान अवस्थाएँ; आंतरिक अवस्थाएँ;

बाह्य अवस्थाएँ; दृश्य और प्रभावकारी दोनों अवस्थाएँ; अदृश्य अवस्थाएँ

लेकिन प्रभाव डालने वाले इन अवस्थाओं से अलग हैं। उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (10)।

492. भूतकाल कर्म वाले राज्य; भविष्यकाल कर्म वाले राज्य; राज्य

आंतरिक वस्तु के साथ; बाह्य वस्तु वाली अवस्थाएँ वियोजित होती हैं।

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार के अंतर्गत वर्गीकृत न होने वाले किसी भी समूह के अंतर्गत

और किसी भी तत्व (4) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

493. वर्तमान उद्देश्य वाले राज्य; आंतरिक और बाह्य उद्देश्य वाले राज्य

वस्तुएँ इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों के वर्गीकरण के आधार पर, इन्हें 5 समुच्चयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

12 से कम आधार और 12 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 6 तत्वों (2) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

5. दोहे

494. वे अवस्थाएँ जो मूल हैं; वे अवस्थाएँ जिनके सहबद्ध मूल हैं;

वे अवस्थाएँ जो मूलों से जुड़ी हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और

साथ ही संबद्ध मूल भी हैं; वे राज्य जिनके संबद्ध मूल हैं लेकिन

मूल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो मूल हैं और मूलों से संबद्ध भी हैं;

वे अवस्थाएँ जो जड़ों से संबंधित हैं लेकिन स्वयं जड़ नहीं हैं;

जो मूल नहीं हैं, लेकिन उनसे संबद्ध मूल हैं, उन्हें अलग कर दिया जाता है।

इन राज्यों में से, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए।

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (8) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

495. वे अवस्थाएँ जिनकी कोई जड़ नहीं है; वे अवस्थाएँ जो विच्छेदित हैं

मूलों से; वे अवस्थाएँ जो न तो मूल हैं और न ही उनसे संबद्ध हैं

मूल अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग होती हैं। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

496. वे अवस्थाएँ जो 4 कारणों से उत्पन्न नहीं होतीं; वे अवस्थाएँ जो किसी शर्त से बंधी नहीं होतीं।

4 कारणों से; दृश्यता वाले राज्य; प्रभाव वाले राज्य; राज्य

जिनमें भौतिक परिवर्तन होता है; वे अवस्थाएँ जो अलौकिक हैं

इन अवस्थाओं से अलग। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (6)।

497. सांसारिक अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से विरक्त होती हैं।

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और इसके अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

2 तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (1)।

498. वे अवस्थाएँ जो कलंक हैं; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हैं

दोष; वे राज्य जो दोष भी हैं और दोषों के शिकार भी;

वे अवस्थाएँ जो रोगग्रस्त भी हैं और रोगों से संबंधित भी हैं;

जो घावों से जुड़े होते हैं लेकिन घाव नहीं होते, उन्हें अलग माना जाता है।

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (5) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

499. वे राज्य जो संक्षारण के शिकार हैं; वे राज्य जो

कैंकर से अलग; वे अवस्थाएँ जो कैंकर की वस्तु हैं लेकिन

ये रोग नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो रोगों से अलग हैं लेकिन

कैंकर की वस्तुएं इन अवस्थाओं से अलग हो जाती हैं। वे

इन्हें 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 2 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (4)।

500. वे राज्य जो संक्षारण से मुक्त हैं; वे राज्य जो

कैंकर से अलग हो गए हैं और कैंकर के विषय नहीं हैं, अलग हो गए हैं।

इन राज्यों से। इन्हें 4 समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है,

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (2)।

501. वे राज्य जो बंधन हैं... वे राज्य जो बंधन हैं... राज्य

जो बाढ़ हैं... राज्य जो बंधन हैं... राज्य जो हैं

बाधाएँ... ऐसी अवस्थाएँ जो गलतफहमियाँ हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो

गलतफहमियों से जुड़े हैं; ऐसी अवस्थाएँ जो दोनों हैं

गलतफहमियों और गलतफहमियों के कारणों को अलग किया जाता है

इन राज्यों में से, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए।

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं (58)।

502. वे राज्य जो गलतफहमियों के शिकार हैं; वे राज्य जो

गलतफहमियों से अलग हैं; वे अवस्थाएँ जो वस्तुएँ हैं

गलतफहमियां हैं लेकिन गलतफहमियां नहीं हैं; ऐसी अवस्थाएं जो हैं

गलतफहमियों से अलग होते हुए भी वे स्वयं गलतफहमियों के शिकार होते हैं।

ये अवस्थाओं से अलग हैं। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (4)।

503. वे राज्य जो गलतफहमियों के विषय नहीं हैं; राज्य

जो गलतफहमियों से अलग हैं और वस्तुएँ नहीं हैं

गलतफहमियां इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे

इसे 4 समुच्चयों, 2 आधारों और 8 तत्वों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (2)।

504. वे अवस्थाएँ जिनमें वस्तुएँ होती हैं; वे अवस्थाएँ जो चेतना हैं;

वे अवस्थाएँ जो मानसिक कारक हैं; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी हैं

चेतना; चेतना से जुड़ी अवस्थाएँ;

वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी हुई हैं और चेतना द्वारा उत्पन्न होती हैं;

वे अवस्थाएँ जो एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, एक दूसरे से उत्पन्न होती हैं और एक साथ अस्तित्व में आती हैं

चेतना के साथ; वे अवस्थाएँ जो इससे जुड़ी होती हैं, उत्पन्न होती हैं।

चेतना के साथ क्रमिक रूप से उत्पन्न होने वाले और उससे अलग हो जाते हैं

इन राज्यों में से, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए।

समुच्चयों को 1 समुच्चय के अंतर्गत, 11 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है और

11 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 1 आधार के अंतर्गत और 7 तत्वों के अंतर्गत (8)।

505. वे अवस्थाएँ जिनमें कोई वस्तु नहीं होती; वे अवस्थाएँ जो विच्छेदित होती हैं

चेतना से; वे अवस्थाएँ जो चेतना से जुड़ी नहीं हैं;

व्युत्पन्न अवस्थाएँ; अर्जित न की गई अवस्थाएँ

आसक्ति के कारण वे इन अवस्थाओं से विमुख हो जाते हैं। उन्हें वर्गीकृत किया जाता है।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (5)।

506. आसक्ति से प्राप्त होने वाली अवस्थाएँ इससे विरक्त होती हैं

इन अवस्थाओं को 4 समूहों के अंतर्गत, 2 आधारों के अधीन वर्गीकृत किया गया है।

और 3 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 15 तत्वों के अंतर्गत (1)।

507. आसक्ति से भरी अवस्थाएँ... भ्रष्ट अवस्थाएँ;

भ्रष्ट राज्य; भ्रष्टाचार से जुड़े राज्य;

ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार से ग्रसित भी हैं और भ्रष्टाचार के शिकार भी;

ऐसे राज्य जो भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से ग्रसित दोनों हैं; ऐसे राज्य जो

भ्रष्ट होते हुए भी भ्रष्टाचार नहीं; ऐसे राज्य जो भ्रष्टाचार भी हैं।

और भ्रष्टाचार से जुड़े हुए; वे राज्य जो इससे जुड़े हुए हैं

भ्रष्टाचार से ग्रसित लेकिन भ्रष्टाचार न होने वाले लोग इन राज्यों से असंबद्ध हैं।

उन्होंने, निब्बाना को समुच्चय के वर्गीकरण से बाहर रखते हुए,

इन्हें 5 समुच्चयों, 12 आधारों और 18 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं (19)।

508. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार हैं; वे राज्य जो

भ्रष्ट नहीं; भ्रष्टाचार से मुक्त राज्य;

जो भ्रष्टाचार के विषय हैं, परन्तु स्वयं भ्रष्टाचार नहीं हैं; राज्य

जो भ्रष्टाचार से असंबद्ध हैं लेकिन स्वयं भ्रष्टाचार के शिकार हैं।

ये अवस्थाओं से अलग हैं। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (5)।

509. वे राज्य जो भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं; वे राज्य जो

वे भ्रष्टाचार से अविभाजित हैं और भ्रष्टाचार के शिकार नहीं हैं।

ये इन अवस्थाओं से अलग हैं। इन्हें 4 समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (2)।

510. प्रथम पथ द्वारा समाप्त किए गए राज्य; द्वारा समाप्त किए गए राज्य

उच्चतर 3 मार्ग; प्रथम द्वारा जड़ सहित राज्यों का उन्मूलन

पथ; उच्चतर 3 पथों द्वारा जड़ से उखाड़े गए राज्यों के साथ-साथ

इन अवस्थाओं से अलग होकर। उन्होंने निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण, 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है,

12 आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (4) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

511. प्रथम मार्ग द्वारा समाप्त नहीं किए गए राज्य; समाप्त नहीं किए गए राज्य

उच्चतर 3 पथों द्वारा; जड़ों सहित अवस्थाएँ जो नष्ट नहीं हुई हैं

पहला मार्ग; राज्यों के साथ-साथ जड़ें भी उच्चतर 3 द्वारा नष्ट नहीं की गई हैं

पथ इन अवस्थाओं से अलग होते हैं। इन्हें निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (4)।

512. व्यावहारिक चिंतन वाले राज्य; निरंतर चिंतन वाले राज्य

वे इन अवस्थाओं से विरक्त हैं। वे, निर्वाण को छोड़कर

समुच्चयों का वर्गीकरण 5 समुच्चयों के अंतर्गत किया जाता है।

12 से कम आधार और 17 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी आधार पर वर्गीकृत न किए गए किसी भी समूह के अंतर्गत;

उन्हें 1 तत्व (2) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

513. परमानंद की अवस्थाएँ; वे अवस्थाएँ जो इसके साथ होती हैं

परमानंद; आनंद से युक्त अवस्थाएँ वियोगित होती हैं।

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

18 वर्ष से कम आयु के तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (3) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

514. उदासीनता से युक्त अवस्थाएँ वियोजित होती हैं।

इन राज्यों से। वे, निब्बाना को वर्गीकरण से बाहर रखते हुए

समुच्चयों को 5 समुच्चयों के अंतर्गत, 12 आधारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है और

13 तत्वों से कम।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे नहीं हैं

किसी भी श्रेणी के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं, किसी भी श्रेणी के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं

आधार; उन्हें 6 तत्वों (1) के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है।

515. वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अस्तित्व के चक्र में शामिल हैं; वे अवस्थाएँ जो साथ हैं

इनसे परे की अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। इन्हें निम्न के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चय, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (3)।

516. वे अवस्थाएँ जो इंद्रिय-संबंधी तल से संबंधित नहीं हैं;

जो अस्तित्व के चक्र में शामिल नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो

इन अवस्थाओं से परे वाले अलग नहीं हैं। इन्हें वर्गीकृत किया गया है।

4 से कम समुच्चय, 2 से कम आधार और 8 से कम तत्व।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 10 तत्वों के अंतर्गत (3)।

517. वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित हैं; वे अवस्थाएँ जो

अमूर्त तल से संबंधित; वे अवस्थाएँ जो इससे बाहर निकलती हैं

अस्तित्वों का चक्र; जिन राज्यों का भाग्य निश्चित था, वे इसके बाद हार मान गए।

मृत्यु या उनके स्वयं घटित होने के बाद; वे अवस्थाएँ जो कारण हैं

विलाप की अवस्थाएँ इन अवस्थाओं से अलग हैं। वे, इन्हें छोड़कर

समुच्चय के वर्गीकरण से निब्बाना को निम्नलिखित के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

5 समुच्चय, 12 से कम आधार और 18 से कम तत्व।

वे कितनों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे अवर्गीकृत नहीं हैं।

किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत, किसी भी आधार पर अवर्गीकृत नहीं।

और किसी भी तत्व (5) के तहत गैर-वर्गीकृत नहीं।

518. वे अवस्थाएँ जो सूक्ष्म-पदार्थ तल से संबंधित नहीं हैं; अवस्थाएँ

जो अमूर्त तल से संबंधित नहीं हैं; वे अवस्थाएँ जो संबंधित हैं

अस्तित्व के चक्र से बाहर नहीं ले जाया गया; वे अवस्थाएँ जो नहीं हैं

ऊपर बताए अनुसार निश्चित नियति; वे अवस्थाएँ जो शोक का कारण नहीं हैं

इन अवस्थाओं से विरक्त हैं।

कितने समुच्चयों के अंतर्गत, कितने आधारों के अंतर्गत और किसके अंतर्गत

उन राज्यों को कितने तत्वों के रूप में वर्गीकृत किया गया है? उन्हें वर्गीकृत किया गया है।

4 समुच्चयों के अंतर्गत, 2 आधारों के अंतर्गत और 2 तत्वों के अंतर्गत।

वे किन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं हैं? वे वर्गीकृत नहीं हैं।

1 समुच्चय के अंतर्गत, 10 आधारों के अंतर्गत और 16 तत्वों के अंतर्गत (5)।

विच्छेदित लोगों से संबंधित वर्गीकृत और अवर्गीकृत 155

स्मृति सहायक

अध्याय VIII के समान।

पुग्गलपन्नति

पाली संस्करण : नीचे दिए गए प्रत्येक अध्याय में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

अंतर्वस्तु

- 1पुग्गलापन्नट्टी
  - 1.1स्कैन की गई पुस्तक
  - 1.2अध्याय
  - 1.3अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
  - 1.4मूल पाली संस्करण

पुग्गलापन्नट्टी
(व्यक्तियों का पदनाम) त्रिपिटक के
अभिधम्म पिटक का चौथा खंड
- बुद्ध की शिक्षाओं का संग्रह,

मूल रूप से गौतम बुद्ध द्वारा पाली भाषा में लगभग 550 ईसा पूर्व में बोला गया,
बिमला चरण विधि द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद से रूपांतरित।

परिचय

शीर्षक दो शब्दों से मिलकर बना है: 'पुग्गला' और 'पन्नत्ती'। 'पुग्गला' शब्द का अर्थ है एक व्यक्ति। बौद्ध धर्म में बारह प्रकार के बुद्धिमान प्राणी या पुग्गला हैं— जिनमें से चार सामान्य वर्ग (पुथुज्जन) और आठ विशिष्ट वर्ग (आर्य) हैं।

पन्नत्ती का अर्थ है 'धारणा', 'पदनाम' आदि। पुग्गला-पन्नत्ती टीका के अनुसार, पन्नत्ती का अर्थ है 'स्पष्टीकरण', 'उपदेश', 'संकेत देना', 'स्थापित करना', 'प्रदर्शित करना' और 'व्याख्या करना'। इसमें कहा गया है कि छह प्रकार की पन्नत्तियाँ होती हैं। ये अनेक (क) पदनाम, (ख) संकेत, (ग) व्याख्याएँ, (घ) पुष्टि और (ङ) निवेदन हैं। ये सभी पन्नत्ती के अर्थ हैं।

प्रारंभ में, लेखक 'पन्नति' या धारणा को समूह (खंड), लोकस (आयतन), तत्व (धातु), सत्य (सक्का), संकाय (इंद्रिय), और व्यक्ति (पुग्गल) में वर्गीकृत करता है। इन छह में से अंतिम इस कार्य का विषय-वस्तु है।

विषय के विवेचन में, लेखक सर्वप्रथम संपूर्ण कृति की विषयसूची देता है, और फिर अंगुत्तरा निकाय की पद्धति का अनुसरण करता है। अर्थात्, वह पहले एक पद के अंतर्गत समूहीकरण देता है, फिर दो पदों के अंतर्गत, और इसी प्रकार दस पदों के अंतर्गत समूहीकरण तक।

संक्षेप में, पुग्गला-पन्नति सांसारिक जीवन जीने वाले व्यक्तियों की अवस्थाओं के साथ-साथ उन लोगों की अवस्थाओं का भी उल्लेख करती है जो बुद्ध द्वारा सिखाए गए संयम, नैतिकता और ध्यान के मार्ग का अनुसरण करते हुए अंतिम निर्वाण तक उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं।

स्कैन की गई पुस्तक
स्कैन की गई पुस्तक का लिंक

अध्याय
पुस्तक में वर्णित सभी मानव प्रकारों की सूची:
अध्याय 1 - मानव प्रकारों का एक-एक करके विभाजन
अध्याय 2 - मानव प्रकारों का दो-दो करके विभाजन

अध्याय 3 - मानव प्रकारों का तीन-तीन करके विभाजन
अध्याय 4 - मानव प्रकारों का चार-चार करके विभाजन
अध्याय 5 - मानव प्रकारों का पाँच-पाँच करके विभाजन
अध्याय 6 - मानव प्रकारों का छह-छह करके विभाजन
अध्याय 7 - मानव प्रकारों का सात-सात करके विभाजन
अध्याय 8 - मानव प्रकारों का आठ-आठ करके विभाजन
अध्याय 9 - मानव प्रकारों का नौ-नौ करके विभाजन
अध्याय 10 - मानव प्रकारों का दस-दस करके विभाजन

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **मानव प्रकारों की सूची**
मूलत: गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय: पुस्तक में वर्णित सभी मानव प्रकारों की सूची

छह पदनाम—अर्थात्:
(1) समूहों की धारणा (खंड (पाली) / स्कंध (संस्कृत))।
[खंड - समूह, अनुभाग, समुच्चय]
(2) इंद्रियों और उनके विषयों (आयतनों) की धारणा।
[आयतन: प्रवेश द्वार/इंद्रिय अंग और सूचना संप्रेषण तंत्र]
(3) संज्ञान के तत्वों (धातु) की धारणा।
[धातु: बौद्ध आध्यात्मिक प्रणाली में धातु शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता है। सभी इंद्रियां, उनके संबंधित विषय और विभिन्न इंद्रिय-बोध इस शब्द में समाहित हैं। यहां इसका प्रयोग इंद्रिय-बोध या ज्ञान के अर्थ में किया गया है।]
(4) सत्य की धारणा (सच्चा/सत्य)।
[सच्चा: टीका के अनुसार, पहले दो सत्य, दु:खम् और दु:खसमुदयो, 'सांसारिक' (पुनर्जन्म के लोकों से संबंधित) हैं, और अन्य दो सत्य (निरोध और निरोधगामिनिपतिपाद) 'अलौकिक' (मार्गों से संबंधित) हैं।]
(5) इंद्रियों (इंद्रियों) की धारणा।
(6) मानव प्रकारों की धारणा (पुग्गला)।

1. समूहों (खंडों/स्कंधों) का वर्गीकरण किन तरीकों से किया जाता है?
जहां तक पांच समूहों का संबंध है—अर्थात्:
(ए) भौतिक रूप का समूह (रूप खंडा),
(ख) संवेदनाओं का समूह (वेदना खंड),
(सी) धारणा का समूह (सन्ना/संग्य खंड),
(डी) मिष्ठान्नों का समूह (संखारा/संस्कार खंडा),
[संस्कार: इसका अर्थ आदतें, प्रवृत्तियाँ, गुण हो सकता है जो व्यवहार और कर्म की ओर ले जाते हैं]
(ई) चेतना का समूह (विन्नान/विज्ञान खंड)।
इन तरीकों से समूहों का वर्गीकरण किया जाता है।
2. किन तरीकों से इंद्रियों और शरीर के अंगों का वर्गीकरण किया जाता है?
उनके विषय (आयतन)?
बारह इंद्रियों और उनके विषयों के संदर्भ में
संबंधित - अर्थात: (ए) आंख (चक्खु/चक्षु आयतन), (बी) दृश्य आकार (रूप आयतन), (सी) कान (सोटा/स्रोता आयतन), (डी) ध्वनि (सद्दा आयतन), (ई) नाक (घाना/घ्राण आयतन), (एफ) गंध (गंध आयतन), (जी) जीभ (जीव आयतन), (ज) स्वाद (रसा) आयतन), {i) शरीर (काया आयतन), (जे) मूर्त चीजें (फोतब्बा आयतन), (के) मन (मन आयतन), (एल) विचार (धम्म आयतन)।
इन तरीकों से इंद्रियों और उनके विषयों का निर्धारण होता है।

3. किन तरीकों से तत्वों का पदनाम किया जाता है?
संज्ञान (धातु) ?
जहां तक संज्ञान के अठारह तत्वों (धातु) का संबंध है—
अर्थात्; (ए) आंख (चक्खु/चक्षु धातु), (बी) दृश्य आकार (रूप धातु), (सी) दृश्य संज्ञान (चक्खु विन्नन धातु), (डी) कान (सोटा धातु), (ई) ध्वनि, (सद्दा धातु) (एफ) श्रवण संज्ञान (सोटा विन्नन धातु), {जी) नाक (घन धातु), (एच) गंध (गंध धातु), (आई) घ्राण अनुभूति (गंध विन्नन धातु), (जे) जीभ (जीव धातु), (के) स्वाद (रस धातु), (आई) स्वाद संज्ञान (जीव विन्नन धातु), (एम) स्पर्श का अंग (काया धातु), (एन) मूर्त चीजें (फोटब्बा धातु), (ओ) स्पर्श संज्ञान (काया विन्नन धातु), (पी) मन (मन धातु), (क्यू) विचार (धम्म धातु), (आर) मानसिक अनुभूति (मनो विन्नन धातु)।
इन तरीकों से संज्ञान के तत्वों का निर्धारण होता है ।

4. सत्यों (सच्चाओं/सत्यों) का निर्धारण किन तरीकों से किया जाता है?
जहां तक चार सत्यों का संबंध है—अर्थात्; (क) सत्य
दुख का (दुक्खा सच्च), (6) दुख की उत्पत्ति का सत्य (समुदय सच्च), (ग)
दुख की समाप्ति का सत्य (निरोध साका), (डी) अग्रणी मार्ग का सत्य
दुःखों की समाप्ति (मग्गा सक्का) की ओर।
इन्हीं तरीकों से सत्यों का निर्धारण होता है।

5. किन तरीकों से कार्यों/क्षमताओं (इंद्रियों) का पदनाम किया जाता है?
जहां तक बाईस कार्यों (या क्षमताओं) का संबंध है—अर्थात्;
(?) आँख की क्षमता/कार्य (चक्खु/चक्षु इंद्रिय),
(बी) कान की क्षमता/कार्य (सोटा इंद्रिय),
(ग) नाक की क्षमता/कार्य (घना/घ्राना इंद्रिय),
(घ) जीभ की क्षमता/कार्य (जीव इंद्रिय),
(ई) स्पर्श की क्षमता/कार्य (काया इंद्रिय),
(f) मन की क्षमता/कार्य (मन इंद्रिय),
(g) नारीत्व की क्षमता/कार्य (इत्थी/इस्तरी इंद्रिय)
(h) पुरुषत्व की क्षमता/कार्य (पुरुष इंद्रिय)
(i) जीवन की क्षमता/कार्य (जीवित इंद्रिय)
(j) आनंद की क्षमता/कार्य (सुख इंद्रिय)
(k) पीड़ा की क्षमता/कार्य (दुख इंद्रिय)
(I) प्रसन्नता का संकाय/कार्य (सोमनासा इंद्रिय)),
(एम) दुःख का संकाय/कार्य (डोमानासा इंद्रिया)),
(एन) तटस्थ भावना का संकाय/कार्य (उपेक्खा/उपेक्षा इंद्रिय)),
(o) आस्था की क्षमता/कार्य (सद्धा, श्रद्धा इंद्रिय)
(p) ऊर्जा की क्षमता/कार्य (वीर्य/वीर्य इंद्रिय)
(q) सती/स्मृति इंद्रिय (सती/स्मृति इंद्रिय) की क्षमता/कार्य।
(r) एकाग्रता की क्षमता/कार्य (समाधि इंद्रिय)
(ओं) अंतर्दृष्टि/प्रत्यक्ष समझ की क्षमता/कार्य (पन्ना/प्रज्ञा[प्रत्यक्ष ज्ञान] इंद्रिय)),
(t) अज्ञात को जानने की इच्छा की क्षमता/कार्य,
(u) ज्ञान/ समाधि की क्षमता/कार्य,
(v) अज्ञात को जानने की क्षमता/कार्य।
इन तरीकों से कार्यों (या क्षमताओं) का पदनाम होता है।

6. मानव प्रकारों का निर्धारण किन तरीकों से किया जाता है?

I.—मानव प्रकारों का एक-एक करके वर्गीकरण।

(1) जो ऋतु/समय पर मुक्त हो जाता है (समय विमुत्तो/विमुक्त)।
(2) जो समय से पहले/ रास्ते से बाहर मुक्त हो गया हो (असमय विमुत्तो/विमुक्त)।

(3) अस्थिर स्वभाव वाला (कुप्पा-धम्मो)।
[कुप्पा-धम्मो : इसका अर्थ है वह व्यक्ति जो अस्थिर है या मार्ग पर दृढ़ता से स्थापित नहीं है।]
(4) अविचलित स्वभाव वाला (अकुप्पा-धम्मो)।
[अकुप्पा-धम्मो: इसका अर्थ है वह व्यक्ति जो भटकता नहीं है।]
(5) गिरने योग्य (परिहाना-धम्मो)।
(6) जो विमुख होने की संभावना न रखता हो (अपरिहाना-धम्मो)।
(7) इच्छाशक्ति में सक्षम व्यक्ति (चेतनाभब्बो)।
(8) चौकसी में सक्षम (अनुरक्खनभाब्बो)।
(9) गृहस्थ [पाप में], मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहा (पुथुज्जनो/प्रुत्का-जना)।
(10) जो गोत्रभू (प्रबुद्ध आर्यों) के परिवार का हो जाता है।
[गोत्रभू: वह व्यक्ति जो निर्वाण के ध्यान से प्राप्त ज्ञान के माध्यम से सामान्य व्यक्तियों के परिवार, समूह या पदनाम को पार करके प्रबुद्ध/आर्यों के परिवार, कुल, मंडल या पदनाम तक पहुँच गया हो। गोत्रभू शब्द 'गोत्र' शब्द से आया है, जिसका अर्थ है 'वंश'] और 'भू' का अर्थ है 'से जन्मा हुआ'।
(11) भय से ऊपर/बिना (भयुपरतो)।
(12) जो भय से ऊपर/निःसंयत न हो (अभयुपरतो)।
(13) आने में सक्षम (भब्बगामानो)।
(14) जो पहुँचने में असमर्थ हो (अभब्बागमनो)।
(15) नियति (नियातो) वाला व्यक्ति।
(16) अनिश्चित भाग्य वाला (अनियतो)।
(17) पथ-प्राप्तकर्ता (पतिपन्नको)।
(18) फलीभूत स्थापित (फले-थितो)।
(19) समभाव/समभावी मन (समा-सिसि)।
(20) युग-अवरोधक (थिताकप्पी)।
(21) निर्वाचित/प्रबुद्ध (एरियो)।
(22) अनिर्दिष्ट/ अज्ञानी (अनारियो)।
(23) शिक्षार्थी (सेक्खो)।
(24) अब वह सीखने वाला/कुशल (असेक्खो) नहीं है।
(25) न तो शिक्षार्थी और न ही गैर-शिक्षार्थी (नेवा-सेक्खा-न?-सेक्खो)।
(26) वह व्यक्ति जो तीन प्रकार का ज्ञान (तेविज्जो) जानता हो
(पूर्व जन्मों का ज्ञान रखने वाला, दिव्य दृष्टि और सभी पापों का निवारण करने वाला/ प्रबुद्ध)।
(27) छह महाज्ञानों का स्वामी (चा-लभिन्नो)
(ऊपर 26 में उल्लिखित बिंदुओं के अलावा जादुई और अलौकिक तत्व भी शामिल हैं)
(28) पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम्मा सम बुद्ध)। [जैसे गौतम बुद्ध]
(29) स्वयं के लिए प्रबुद्ध (पच्छेक सम बुद्ध)।
(30) दोनों तरह से मुक्त (उभतोभागविमुत्तो)।
(31) अंतर्दृष्टि से मुक्ति (पन्नविमुत्तो/प्रज्ञा विमुक्त)।
(32) शारीरिक रूप से जागरूक (कायासक्खी/काया साक्षी)।
(33) जिसने दृष्टि प्राप्त कर ली है (दित्थिप्पत्तो)।
(34) विश्वास से मुक्ति (सद्धविमुत्तो/श्रद्धा विमुक्त)।
(35) धम्म के अनुरूप (धम्म-नुसारी)।
(36) विश्वास के अनुरूप (सद्ध-नुसारी)।
(37) जो सात बार से अधिक पुनर्जन्म नहीं लेता (सत्तक्खत्तुपरमो)।
(38) कुछ परिवारों के माध्यम से एक व्यक्ति का स्थानांतरण (कम सात गुना से अधिक)। (कोलांकोलो)
(39) एकल बीज/एकल पुनर्जन्म। (एकबीजी)
(40) एक बार जन्म लेने वाला/एक बार पुनर्जन्म लेने वाला फिर निर्वाण (सकदागामी)
(41) जो कभी जन्म नहीं लेता/ कभी पुनर्जन्म नहीं लेता, उसे निर्वाण प्राप्त होता है। (अनगामी)
(42) जो व्यक्ति आधी तिथि से पहले मरकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है

जिस उम्र में उसे ब्रह्म लोक में रहना चाहिए था
समाप्त हो जाता है। (Antara-parinibbayi)
(43) शब्द-कर्तव्य निर्वाण सिद्धिकर्ता। (उपहक्का-परिनिब्बायी)
(44) स्वत: निर्वाण प्राप्तकर्ता। (ए-संखारा-परिनिब्बी)
(45) परिश्रम के बाद राहगीर। (सा-सा?ख?रा-परिनिब्ब?य?)
(46) धारा-ऊपर की ओर जाने वाला अकनित्था यात्री (उद्धम-सोतो-अकानि??हा-ग?म?)।
(47) स्ट्रीम विजेता/प्राप्तकर्ता (सोतापना)
(48) धारा-प्राप्तकर्ता जो इसकी प्राप्ति में चलता/जीता है
फलने की अवस्था (सोतापट्टी-फला-सच्चिकिरिया-पतिपन्नो)।
(49) एक बार लौटने वाला (सकदागामी)
(50) एक बार लौटने वाला व्यक्ति जो इस अहसास में जी रहा है/चल रहा है
फलोत्पादन अवस्था (सकादगामी-फला-सच्चिकिरिया-पतिपन्नो)।
(51) कभी न लौटने वाला (अनगामी)
(52) कभी न लौटने वाला व्यक्ति जो अहसास में चलता/जीता है
फलने की अवस्था (अनागामी-फला-सच्चिकिरिया-पतिपन्नो)।
(53) जिसने अपने भीतर के सभी शत्रुओं/पापों को नष्ट कर दिया है और
बुद्ध की तरह पूर्णतः प्रबुद्ध हो गए (अरहत/अरहंत/अरिहंत)
[किसी भी लोक में पुनर्जन्म नहीं होगा]
(54) अरहंत जो अरहंतत्व में चल रहा है/रह रहा है (पूर्णतः प्रबुद्ध और जीवित)
(अरहट्टा-फला-सच्चिकिरिया-पतिपन्नो)।

II.— मानव प्रकारों का दो-दो समूहों में वर्गीकरण।

1. क्रोधित और प्रतिशोधी।
2. पाखंडी और धोखेबाज।
3. ईर्ष्यालु और लालची।
4. धूर्त और कपटी।
5. निर्लज्ज और धृष्ट।
6. अवज्ञाकारी और दुष्टों के सहयोगी।
7. एक जो इंद्रियों के प्रति लापरवाह है और दूसरा जो भोजन के मामले में अतिवादी है।
8. भूलने वाले और लापरवाह।
9. नैतिक कानून का उल्लंघन करने वाला और अन्याय का समर्थक
विचार।
10. एक आंतरिक बेड़ियों वाला और एक बाहरी बेड़ियों वाला
बेड़ियाँ।
11. क्रोधहीन और प्रतिशोधहीन।
12. जो सहज और दिखावा रहित हों।
13. ईर्ष्या न करने वाले और लालच न करने वाले।
14. जो धूर्त और छल-कपट से दूर हों।
15. ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ।
16. आज्ञाकारी और अच्छे लोगों का साथी।*
17. एक जो इंद्रियों के प्रति सजग है और दूसरा जो संयमी है।
भोजन के संदर्भ में।
18. जागृत और सचेत।
19. नैतिक नियम का पालन करने वाला और उसका समर्थक
सही विचार।
20. दो व्यक्ति जो इस दुनिया में दुर्लभ हैं।
21. दो व्यक्ति जिन्हें संतुष्ट करना कठिन है।
22. दो व्यक्ति जो आसानी से संतुष्ट हो जाते हैं।

23. दो व्यक्ति जिनकी पाप प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।
24. दो व्यक्ति जिनकी पाप प्रवृत्ति नहीं बढ़ती।
25. भ्रष्ट और परिष्कृत।
26. संतुष्ट और संतुष्टि देने वाला।

III. मानव प्रकारों का तीन-स्तरीय वर्गीकरण।
1. निराशा से भरा हुआ, आशावान, आकांक्षाओं से परे।
2. तीन पुरुष जो बीमार के समान हैं।
3. प्रत्यक्षदर्शी, वह व्यक्ति जिसने दृष्टि प्राप्त कर ली है, वह
जो आस्था के द्वारा मुक्त हो जाता है।
4. अपशब्द बोलने वाला, मीठी-मीठी बातें करने वाला, मीठी जुबान वाला।
5. कैंसर से ग्रस्त व्यक्ति, बिजली की तरह तेज दिमाग वाला व्यक्ति,
उग्र स्वभाव वाला व्यक्ति।
6. अंधे, एक आँख वाले, दो आँख वाले।
7. उलटी बुद्धि वाला व्यक्ति, संकुचित बुद्धि वाला व्यक्ति,
एक बहुमुखी बुद्धि का धनी व्यक्ति।
8. वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन नहीं है, साथ ही
पुनर्जन्म की अवस्थाओं के लिए; एक ऐसा व्यक्ति जो इंद्रियों के प्रति उदासीन हो।
सुख तो प्राप्त होते हैं, लेकिन पुनर्जन्म की अवस्थाओं के समान नहीं; एक व्यक्ति
दोनों के प्रति निष्पक्ष।
9. एक व्यक्ति पत्थर पर अंकित चिह्न के समान, दूसरा उसके समान।
धरती पर एक निशान, दूसरा पानी पर एक निशान।
10. तीन पुरुष जो भांग के कपड़े के समान हैं।
11. तीन पुरुष जो बनारस के कपड़े के समान हों।
12. बोधगम्य, जिसे समझना कठिन है, अबोधगम्य।
13. वह व्यक्ति सेवा के योग्य नहीं है, जिसकी भक्तिपूर्वक सेवा की जाए।
सेवा करने योग्य, पूजा के योग्य। एक ऐसा व्यक्ति जो सेवा के योग्य हो,
जिसकी भक्तिपूर्वक सेवा की जाए, जिसकी पूजा की जाए। एक ऐसा व्यक्ति जो इसके योग्य हो।
आदर और सम्मान के साथ सेवा की जानी चाहिए, पूरी निष्ठा से सेवा की जानी चाहिए।
पूजा के योग्य।
14. वह व्यक्ति जो तिरस्कृत होने योग्य है, किसी भी योग्य नहीं है
जिसकी सेवा की जाए, जिसके प्रति समर्पित रहा जाए, जिसकी पूजा की जाए। एक ऐसा व्यक्ति जो
उनके साथ उदासीनता का व्यवहार किया जाना चाहिए, वे सेवा के योग्य नहीं हैं।
जिसकी भक्तिपूर्वक सेवा की जाए, जिसकी पूजा की जाए। एक योग्य व्यक्ति
सेवा का, भक्ति का, पूजा का।
15. एक ऐसा व्यक्ति जो नैतिक नियमों का पालन तो करता है, लेकिन अपूर्ण रूप से
ध्यान और अंतर्दृष्टि के मार्ग का अभ्यास करता है। एक ऐसा व्यक्ति जो
नैतिक नियमों का पालन करता है, ध्यान के अभ्यास को पूरा करता है।
लेकिन अंतर्दृष्टि के मार्ग का अपूर्ण रूप से अभ्यास करता है। एक ऐसा व्यक्ति जो
नैतिक नियमों का पालन करता है, ध्यान के अभ्यास को पूरा करता है।
लेकिन वह पूरी तरह से अंतर्दृष्टि के मार्ग का अभ्यास करता है।
16. तीन शिक्षक।
17. और फिर से तीन शिक्षक।
10 मानव प्रकारों का पदनाम

IV. मानव प्रकारों का चार भागों में वर्गीकरण।
1. एक दुष्ट व्यक्ति, एक और भी बुरे प्रकार का दुष्ट व्यक्ति, एक अच्छा व्यक्ति
एक अच्छा आदमी, बेहतर किस्म का आदमी।

2. एक पापी व्यक्ति, उससे भी बुरे प्रकार का पापी व्यक्ति, अच्छा व्यक्ति
वह आदमी, बेहतर किस्म का अच्छा आदमी।
3. पाप प्रवृत्ति वाला व्यक्ति/बदतर किस्म का व्यक्ति
नेक स्वभाव वाला, श्रेष्ठ प्रकार का व्यक्ति।
4. निंदनीय, अत्यंत निंदनीय, एक
शायद ही दोषी ठहराया जा सकता है, निर्दोष।
5. एक जल्दी समझने वाला, एक मध्यम गति से समझने वाला,
धीमी समझ वाला, सतही पाठक।
6. एक व्यक्ति जो सही उत्तर तो देता है लेकिन तुरंत उत्तर नहीं देता, एक व्यक्ति
एक ऐसा व्यक्ति जो संकेत देता है लेकिन सही उत्तर नहीं देता, जबकि दूसरा व्यक्ति सही उत्तर देता है।
और त्वरित उत्तर, जो न तो सही है और न ही त्वरित।
जवाब।
7. मानदंड के चार शिक्षक।
8. चार व्यक्ति जो बादल के समान हों।
9. चार व्यक्ति जो एक चूहे के समान हों।
10. चार व्यक्ति जो आम के समान हैं।
11. चार व्यक्ति एक घड़े के समान।
12. चार व्यक्ति पानी के एक कुंड के समान।
13. चार व्यक्ति जो एक बैल के समान हों।
14. चार व्यक्ति जो सर्प के समान हैं।
15. एक व्यक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति की प्रशंसा में बिना किसी
जांच और छानबीन। एक व्यक्ति किसी की निंदा करते हुए बोल रहा है।
बिना पूछताछ और जांच-पड़ताल के योग्य व्यक्ति। एक व्यक्ति जो पाता है
किसी अप्रिय या अप्रिय चीज़ में आनंद लेने के बिना
जांच और छानबीन। एक व्यक्ति जो किसी के प्रति नापसंदी रखता है
बिना पूछताछ और जांच-पड़ताल के सुखद अनुभव।
16. एक व्यक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति की निंदा करते हुए
जांच और छानबीन। एक व्यक्ति प्रशंसा की प्रशंसा में बोल रहा है
जांच-पड़ताल के बाद योग्य व्यक्ति। एक ऐसा व्यक्ति जो शरण दे रहा है
जांच-पड़ताल के बाद किसी अप्रिय चीज के प्रति नापसंदगी।
एक व्यक्ति को जांच-पड़ताल के बाद किसी सुखद चीज में आनंद मिलता है और
जांच।
17. एक ऐसा व्यक्ति जो किसी अयोग्य व्यक्ति की निंदा करता है
सही समय पर सही और न्यायसंगत बात कहना लेकिन
प्रशंसनीय की प्रशंसा में नहीं बोलता (व्यक्त करते हुए)
सही समय पर सही और न्यायसंगत बात। एक ऐसा व्यक्ति जो
किसी प्रशंसनीय व्यक्ति की प्रशंसा में बोलते हुए, वह सही बात व्यक्त करता है।
और सही समय पर सही बात कहता है, लेकिन बोलता नहीं है
अयोग्य की निंदा करना, सही और न्यायसंगत बात कहना
सही समय पर सही बात। एक आदमी जो निंदा में बोलता है
एक जो प्रशंसा के अयोग्य है और प्रशंसा के योग्य की प्रशंसा में।
सही समय पर सही और न्यायसंगत बात कहना।
एक ऐसा व्यक्ति जो किसी अयोग्य व्यक्ति की निंदा नहीं करता
प्रशंसा करना या प्रशंसनीय की प्रशंसा में सही ढंग से व्यक्त करना
और सही समय पर सोचें।
18. जो अपने परिश्रम के फल पर जीवन यापन करता है (पर) नहीं
अपने (पूर्व) पुण्य कर्मों के फल पर। एक व्यक्ति जो जीवन यापन करता है
उनकी (पूर्व) योग्यता के फल पर, (पर) उनके फलों पर नहीं

परिश्रम।
एक व्यक्ति जो दोनों के फलों पर जीवन यापन करता है।
एक ऐसा व्यक्ति जो न तो किसी के फल पर निर्भर है और न ही किसी के फल पर।
19. जो अंधेरे में है और अंधेरे की ओर प्रवृत्त है।
जो अंधेरे में है लेकिन प्रकाश की ओर अग्रसर है।
जो प्रकाश में होते हुए भी अंधकार की ओर प्रवृत्त होता है।
जो प्रकाश में है और प्रकाश की ओर प्रवृत्त है।
20. अवसादग्रस्त और अप्रगतिशील, अवसादग्रस्त लेकिन
प्रगतिशील, समृद्ध लेकिन अप्रगतिशील,
समृद्ध होने के साथ-साथ प्रगतिशील भी।
21. वृक्ष के समान चार व्यक्ति।
22. जो बाहरी रूप पर विचार करता है और उसका सम्मान करता है।
जो दूसरों के शब्दों पर विचार करता है और उनका सम्मान करता है।
जो बाहरी सादगी पर विचार करता है और उसका सम्मान करता है।
वह व्यक्ति जो आदर्श का सम्मान करता है और उस पर विचार करता है।
23. वह व्यक्ति जो अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए नहीं।
दूसरों का। एक ऐसा व्यक्ति जो दूसरों के कल्याण के लिए प्रयासरत रहता है, लेकिन
अपने स्वार्थ के पीछे नहीं भागने वाला व्यक्ति। वह व्यक्ति जो अपने ही कल्याण के लिए प्रयासरत रहता है।
साथ ही दूसरों का भी। एक आदमी जो न तो अपने लिए प्रयास करता है
न तो स्वयं के कल्याण की और न ही दूसरों के कल्याण की।
24. वह व्यक्ति जो आत्म-यातना करता है और प्रथाओं में संलग्न रहता है
आत्म-यातना की प्रवृत्ति रखने वाला। एक ऐसा व्यक्ति जो दूसरों को सताता है।
और वह दूसरों को प्रताड़ित करने वाली गतिविधियों में संलग्न है।
वह व्यक्ति जिसमें इन दोनों प्रकारों के गुण समाहित हों।
वह व्यक्ति जिसमें इन दोनों में से किसी के भी लक्षण नहीं होते; ऐसा व्यक्ति
जो व्यक्ति न तो स्वयं को यातना देता है और न ही दूसरों को, वही जीवित रहता है।
एक उच्चतर जीवन जो इच्छाओं से मुक्त, शांत, संतुष्ट और सुखी हो।
अपने वर्तमान अस्तित्व में।
25. जुनून से भरा हुआ व्यक्ति।
घृणा से ग्रसित व्यक्ति।
भ्रम से ग्रस्त व्यक्ति
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वाभिमानी हो।
26. वह व्यक्ति जो मन की आंतरिक शांति प्राप्त कर लेता है, लेकिन
चीजों के बारे में अंतर्दृष्टि की उच्चतर बुद्धि नहीं। एक आदमी जो
चीजों के बारे में अंतर्दृष्टि की उच्चतर बुद्धि प्राप्त करता है लेकिन नहीं
मन की आंतरिक शांति।
वह व्यक्ति जो दोनों चीजें प्राप्त कर लेता है।
एक ऐसा व्यक्ति जो इनमें से कुछ भी हासिल नहीं कर पाता।
27. एक आदमी नदी के किनारे-किनारे जा रहा है।
एक आदमी जो धारा के विपरीत दिशा में जा रहा है।
एक व्यक्ति स्थिर अवस्था में है।
एक ब्राह्मण जो नदी पार करके चला गया है
दूसरे किनारे पर पहुँचकर वह फल-फूल रहा है।
28. वह व्यक्ति जो अपने थोड़े से ज्ञान के अनुसार कार्य नहीं करता।
एक ऐसा व्यक्ति जो अपने थोड़े-बहुत ज्ञान के आधार पर ही व्यवहार करता है।
एक ऐसा व्यक्ति जो अत्यंत विद्वान होते हुए भी अपने पद के अनुरूप व्यवहार नहीं करता।
उनकी विद्वत्ता।
एक ऐसा व्यक्ति जो बहुत विद्वान है और अपने ज्ञान के अनुरूप व्यवहार करता है।

29. दृढ़ नींव वाला एकांतवासी।
कमल के समान एकांतवासी।
एक सफेद कमल के समान एकांतवासी।
एक नाजुक एकांतप्रिय व्यक्ति।

V. मानव प्रकारों का पाँच भागों में वर्गीकरण
1. एक ऐसा व्यक्ति जो कार्य करता है और पश्चाताप करता है लेकिन उसे स्वीकार नहीं करता
मन की मुक्ति और स्वतंत्रता का अनुभव करें
उनकी वास्तविक स्थिति को समझने की अंतर्दृष्टि से, जिसमें पापी और अनैतिक
जो राज्य अस्तित्व में आ चुके हैं, वे पूरी तरह से अस्तित्वहीन भी हो सकते हैं।
एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म तो करता है लेकिन पश्चाताप नहीं करता और
मन की मुक्ति और मुक्ति का अनुभव न करना
उनकी वास्तविक स्थिति को समझने की अंतर्दृष्टि से, जिसमें पापी और
अनैतिक अवस्थाएँ जो अस्तित्व में आ चुकी हैं, वे पूरी तरह से
अंत होना।
एक ऐसा व्यक्ति जो कोई कार्य नहीं करता, परन्तु पश्चाताप करता है और कुछ नहीं करता।
मन की मुक्ति और स्वतंत्रता का अनुभव करें
उनकी वास्तविक स्थिति को समझने की अंतर्दृष्टि से, जिसमें पापी और अनैतिक
जो राज्य अस्तित्व में आ चुके हैं, वे पूरी तरह से अस्तित्वहीन भी हो सकते हैं।
एक ऐसा व्यक्ति जो न तो कोई कार्य करता है, न ही पश्चाताप करता है और न ही
मन की मुक्ति और स्वतंत्रता का अनुभव करें
उनकी वास्तविक स्थिति को समझने की अंतर्दृष्टि से, जिसमें पापी और अनैतिक
जो राज्य अस्तित्व में आ चुके हैं, वे पूरी तरह से अस्तित्वहीन भी हो सकते हैं।
(पांचवां व्यक्ति उपरोक्त चारों को निर्देश दे रहा था।)
2. जो देने के बाद तिरस्कार करता है।
जो साथ रहने के बाद घृणा करने लगता है।
एक ऐसा व्यक्ति जिसका मुंह पकड़ने वाला हो।
जो सुस्त और मूर्ख हो।
एक कम पसंद किया जाने वाला व्यक्ति।
3. पेशेवर योद्धा के समकक्ष पांच व्यक्ति।
4. पाँच व्यक्ति जो भिक्षा पर जीवन यापन करते हैं।
5. निर्धारित समय के बाद भी भोजन स्वीकार करने से इनकार करने वाले पांच व्यक्ति।
6. एक ही प्रकार की सीट का उपयोग करने वाले पांच व्यक्ति।
7. कूड़े के ढेर से इकट्ठा किए गए चिथड़े-चिथड़े पहने हुए पाँच व्यक्ति।
8. पाँच व्यक्ति तीन प्रकार के वस्त्र पहने हुए।
9. पाँच वनवासी।
10. पाँच लोग जो एक पेड़ के नीचे रहते हैं।
11. पाँच जो खुले आसमान के नीचे रहते हैं।
12. पाँचों हमेशा बैठे रहते हैं (अर्थात, कभी लेटटते नहीं)।
13. उपलब्ध सीटों में से किसी भी सीट का उपयोग करके पांच लोग।
14. पाँच जो कब्रिस्तानों में निवास करते हैं।
14 मानव प्रकारों का पदनाम

VI.—मानव प्रकारों का छह समूहों में वर्गीकरण।
1. वह व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है
वह उन सिद्धांतों को मानता है जो पहले कभी सुने नहीं गए थे, और सर्वज्ञता प्राप्त करता है।
साथ ही साथ उस पर पूर्ण नियंत्रण भी।
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है

पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों पर आधारित है, लेकिन सर्वज्ञता प्राप्त नहीं करता।
साथ ही साथ उस पर पूर्ण नियंत्रण भी।
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है
अनसुने सिद्धांतों के माध्यम से वह अपने जीवन में पीड़ा का अंत करता है।
वर्तमान परिस्थितियों में रहकर शिष्य की पूर्णता प्राप्त करता है।
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है
पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के माध्यम से, वह अपने क्षेत्र में पीड़ा का अंत करता है।
वर्तमान परिस्थितियों को दर्शाता है, लेकिन पूर्णता प्राप्त नहीं करता।
शिष्य।
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है
पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के माध्यम से, वह अपने क्षेत्र में पीड़ा का अंत करता है।
वर्तमान परिस्थितियों में, और गैर-वापसीकर्ता बन जाता है जिसके पास
इस दुनिया में वापस आने के लिए।
एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सत्य को समझता है
पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों पर आधारित, और एक बार फिर लौटने वाला बन जाता है
उसे इस दुनिया में वापस आना पड़ता है क्योंकि वह अंत नहीं करता।
अपनी वर्तमान परिस्थितियों में कष्ट भोगने के लिए।

VII. मानव प्रकारों का सात भागों में वर्गीकरण।
1. सात व्यक्तियों की तुलना उन लोगों से की जानी है जो डूबे हुए हैं
पानी।
जो एक बार डूब गया, वह डूब ही गया।
जो व्यक्ति सतह पर आने के बाद डूब जाता है।
जो व्यक्ति उद्भव के बाद स्थिर रहता है।
जो व्यक्ति उभरने के बाद चारों ओर देखता है।
जो सतह पर आने के बाद तैरकर ऊपर आता है।
जो उभरने के बाद दृढ़ स्थिति प्राप्त कर लेता है।
जो सच्चे ब्राह्मण के रूप में उद्भव के बाद पार करता है
और वह दूसरे किनारे पर जाकर खुद को स्थापित कर लेता है।
फलीभूत हो रहा है।
2. एक ऐसा व्यक्ति जो दोनों तरह से मुक्त हो।
अंतर्दृष्टि से मुक्त हुआ व्यक्ति।
एक प्रत्यक्षदर्शी।
जिसने दृश्यता प्राप्त कर ली है।
आस्था के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति।
जो सामान्य मानदंडों के अनुरूप हो।
विश्वास द्वारा अनुरूप होने वाला व्यक्ति

VIII. मानव प्रकारों का आठ भागों में वर्गीकरण।
1. पथ से जुड़े चार व्यक्ति और चार
फल प्राप्ति के साथ पहचान योग्य।

IX. मानव प्रकारों का नौ द्वारा वर्गीकरण।
1. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति।
स्वयं के लिए ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति।
एक ऐसा व्यक्ति जो दोनों ही तरह से स्वतंत्र हो।
अंतर्दृष्टि से मुक्त हुआ व्यक्ति।
एक प्रत्यक्षदर्शी।

जिसने दृश्यता प्राप्त कर ली है।
आस्था के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति।
जो सामान्य मानदंडों के अनुरूप हो।
जो आस्था के द्वारा अनुरूप हो।

X. मानव प्रकारों का दस-दस के समूहों में वर्गीकरण।
यहां पांच व्यक्ति पूर्णता प्राप्त कर रहे हैं और पांच अन्य लोग भी।
इसके बाद पूर्णता प्राप्त होगी।
इन तरीकों से मानव प्रकारों का वर्गीकरण किया जाता है।

मानव प्रकारों की सूची यहीं समाप्त होती है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय** 1
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय 1 - मानव प्रकारों का एक-एक करके विभाजन
1. कभी-कभी स्वतंत्र होने पर व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति आठ चरणों का अनुभव करता है।
समय-समय पर मुक्ति, और उसने उन्हें देखा है
अंतर्दृष्टि के माध्यम से, उसकी कुछ पापी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती हैं।
नष्ट हो गया। ऐसे व्यक्ति को कभी-कभी मुक्त कहा जाता है।

2. वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जिसे केवल कभी-कभी ही मुक्ति नहीं मिलती?
यहां व्यक्ति मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है।
हालांकि समय-समय पर नहीं, और उसने उन्हें देखा है
अंतर्दृष्टि के माध्यम से, उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं।
ऐसे व्यक्ति को केवल कभी-कभी ही नहीं, बल्कि कभी-कभी ही मुक्त कहा जाता है।
वास्तव में, सभी आर्य (कुलीन या निर्वाचित) व्यक्ति ऐसे ही होते हैं।
उच्चतर मुक्ति के मामलों में मुक्त।

3. चंचल स्वभाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति को (परमानंद की अवस्था की) उपलब्धियां प्राप्त होती हैं।
चाहे वह रूप के विचार के साथ हो या किसी विचार के साथ।
निराकारता, और वह निश्चित रूप से उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं कर पाता।
न तो बिना कठिनाई के, न ही बिना परिश्रम के, न ही उसे मिलता है
न तो वह उनमें प्रवेश करे और न ही उनसे उठे, जहाँ वह चाहे, जब चाहे।
और जब तक वह चाहे; यह संभावना है कि
उस पर हावी होने वाली आलस्य उसकी उन उपलब्धियों को बाधित कर सकती है।
ऐसे व्यक्ति को चंचल स्वभाव का कहा जाता है।

4. अविचलित स्वभाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति परमानंद की अवस्था प्राप्त करता है।
चाहे वह रूप के विचार के साथ हो या किसी विचार के साथ।
निराकार, और वह निश्चित रूप से उन्हें अपनी इच्छा अनुसार प्राप्त करता है, बिना किसी
वह कठिनाई या परिश्रम में पड़ता है और उनसे उबर भी जाता है।
जहां वह चाहे, जब वह चाहे और जब तक वह चाहे;

ऐसा कोई अवसर नहीं है और न ही कोई ऐसा अवसर है जो आलस्य को बढ़ावा दे।
उस पर हावी होने वाली कोई भी घटना उस व्यक्ति की उपलब्धियों को झकझोर सकती है।
ऐसे व्यक्ति को अविचलित स्वभाव का कहा जाता है। वास्तव में,
आर्य (कुलीन या निर्वाचित) सभी व्यक्ति अविचलित स्वभाव के होते हैं।
आर्यों की मुक्ति के मामलों में प्रकृति की भूमिका।

5. त्रुटिपूर्ण स्वभाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति को उपलब्धियां प्राप्त होती हैं चाहे वह किसी के साथ हो या उसके साथ।
रूप के विचार से या रूपहीनता के विचार से,
और वह निश्चित रूप से उन्हें अपनी इच्छा अनुसार प्राप्त नहीं करता, न ही बिना
न तो वह कठिनाई में पड़ता है, न ही बिना परिश्रम के, न ही वह किसी पद में प्रवेश करता है और न ही उससे बाहर निकलता है।
वह जहां चाहे, जब चाहे और जब तक चाहे, उनसे ऊपर उठ सकता है।
जैसा वह चाहता है; आलस्य आने की संभावना है।
उस पर इतना दबाव डालने से उसे अपनी उपलब्धियों को त्यागना पड़ सकता है।
किसी व्यक्ति को त्रुटिपूर्ण स्वभाव का कहा जाता है।

6. अचूक स्वभाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति को उपलब्धियां प्राप्त होती हैं चाहे वह किसी के साथ हो या उसके साथ।
रूप के विचार से या निराकारता के विचार से, और
वह निश्चित रूप से बिना किसी कठिनाई के अपनी इच्छानुसार उन्हें प्राप्त कर लेता है और
बिना परिश्रम के, वह उनमें प्रवेश करता है और उनसे उठता है जहाँ,
जब और जब तक वह चाहे; कोई आवश्यकता नहीं है और
आलस्य के कारण ऐसा कोई अवसर नहीं है।
उसे अपनी उपलब्धियों का त्याग करने के लिए कहना। ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है कि
अचूक स्वभाव के हों। वास्तव में सभी आर्य व्यक्ति
आर्यन मामलों में (कुलीन या निर्वाचित) लोग अचूक स्वभाव के होते हैं।
मुक्ति।

7. वसीयत करने में सक्षम व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति को उपलब्धियां प्राप्त होती हैं चाहे वह किसी के साथ हो या उसके साथ।
रूप के विचार से या निराकारता के विचार से, और
वह निश्चित रूप से उन्हें अपनी इच्छा अनुसार प्राप्त नहीं कर पाता, न ही बिना
न तो वह कठिनाई में पड़ता है, न ही बिना परिश्रम के, न ही वह किसी पद में प्रवेश करता है और न ही उससे बाहर निकलता है।
वह जहां चाहे, जब चाहे और जब तक चाहे, उनसे ऊपर उठ सकता है।
वह चाहता है; यदि वह (पीछे न हटने की) इच्छाशक्ति से इसका पालन करता है,
यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह उन उपलब्धियों से विमुख नहीं होता है।
इसलिए, वह उनसे दूर हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है
ऐसा व्यक्ति होना जो वसीयत बनाने में सक्षम हो।

8. सतर्कता में सक्षम व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति को उपलब्धियां प्राप्त होती हैं चाहे वह किसी के साथ हो या उसके साथ।
रूप के विचार से या निराकारता के विचार से, और
वह निश्चित रूप से उन्हें अपनी इच्छा अनुसार प्राप्त नहीं कर पाता, न ही बिना
वह न तो किसी कठिनाई में पड़ता है और न ही उससे बाहर निकल पाता है।
उन्हें जहाँ वह चाहे, जब चाहे और जब तक चाहे
इच्छाओं से विमुख नहीं होता; यदि वह सतर्क रहे तो उनसे विमुख नहीं होता।
उपलब्धियों से; यदि वह सतर्क नहीं रहता, तो वह उनसे भटक जाता है।
उन्हें। ऐसे व्यक्ति को सक्षम व्यक्ति कहा जाता है।
सतर्कता में।

9. किस प्रकार के व्यक्ति को औसत व्यक्ति कहा जाता है?
जिस व्यक्ति की तीनों बेड़ियाँ नहीं हटाई गई हैं
और कौन इन्हें दूर नहीं रख रहा है—ऐसा
उस व्यक्ति को औसत व्यक्ति कहा जाता है।

10. आर्या परिवार का सदस्य किस प्रकार का व्यक्ति बनता है?
जो व्यक्ति इन स्थितियों से संपन्न है, वह तुरंत
इसके बाद आर्यों (कुलीन या
ऐसा कहा जाता है कि निर्वाचित (चुने हुए) स्वभाव वाले व्यक्ति आर्य परिवार के सदस्य होते हैं।

11 और 12. किस प्रकार का व्यक्ति भय से विवश होता है?
सात प्रकार के शिक्षार्थी भय से विवश हैं और
वे साधारण व्यक्ति जो नियमों का पालन करते हैं: अरहंत
वे भय से विवश नहीं होते।

13. किस प्रकार का व्यक्ति प्रगति करने में असमर्थ होता है?
जो लोग कर्म के आवरण से ढके हुए हैं,
बुरी वासनाओं के आवरण से ढका हुआ, आवरण से ढका हुआ
इसके परिणामों के बारे में, जो आस्था से रहित हैं, जो कमी रखते हैं
इच्छा में, वे मूर्ख, बेवकूफ और साथ चलने में असमर्थ होते हैं।
जिन चीजों के संबंध में सही मार्ग के रूप में मान्यता प्राप्त है,
अच्छे हैं: इन व्यक्तियों को प्रगति करने में असमर्थ कहा जाता है।

14. किस प्रकार का व्यक्ति प्रगति करने में सक्षम होता है?
जो लोग कर्म के आवरण से ढके नहीं हैं,
बुरी वासनाओं के आवरण से ढका हुआ नहीं, ढका हुआ नहीं
परिणामों का पर्दा (उसके), जो विश्वास रखते हैं, जो
इच्छा रखते हैं, बुद्धिमान हैं, और जो सच है उस पर चलने में सक्षम हैं।
उन चीजों के संबंध में सच्चे मार्ग के रूप में मान्यता प्राप्त है जो
अच्छा: इन व्यक्तियों को प्रगति करने में सक्षम माना जाता है।

15 और 16. नियति निर्धारित व्यक्ति किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
पांच प्रकार के व्यक्ति (जो आगे चलकर घंटी बजाने वाले हैं) और वे
गलत विचार रखने वाले व्यक्ति दृढ़ निश्चयी होते हैं।
नियति। आठ प्रकार के कुलीन व्यक्ति वे हैं जिनके पास
निर्धारित भाग्य। शेष व्यक्तियों का भाग्य अनिश्चित है।
तकदीर।

17 और 18. पथ-यात्री किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
जिन चार व्यक्तियों के पास यह मार्ग है, वे पथ-यात्री हैं।
वे चारों व्यक्ति जो सिद्धि अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, स्थापित हो चुके हैं।
फल प्राप्ति में।

19. 'सममित मस्तिष्क वाला' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
जिस व्यक्ति के मामले में समाप्ति होते ही
पापी प्रवृत्तियों के फलस्वरूप जीवन का अंत हो जाता है।
जो व्यक्ति 'समचित्त' होता है, उसे ऐसा कहा जाता है।

20. वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जिसके लिए एक युग बीत जाता है?

क्या ऐसे व्यक्ति को फल प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए?
धारा-प्राप्तकर्ता का चरण, और क्या तब यह समय होना चाहिए?
विद्यमान युग की प्रज्वलन, युग को नहीं होना चाहिए
इस व्यक्ति को तब तक जलाया जाए जब तक कि वह वांछित स्थिति को प्राप्त न कर ले:
कहा जाता है कि यह व्यक्ति एक ऐसा व्यक्ति है जिसके लिए युगों का अस्तित्व बना रहता है।
वे सभी व्यक्ति जो (बुद्ध द्वारा बताए गए सत्य के मार्ग पर) चलन में हैं, ऐसे ही हैं।

21 22. आर्य किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
आर्यों के आठ प्रकार आर्य कहलाते हैं।
शेष व्यक्ति आर्य नहीं हैं।

23-25. एक शिक्षार्थी किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
वे चार व्यक्ति जो मार्ग के स्वामी हैं और वे तीन व्यक्ति
जिन्हें सिद्धि प्राप्त है वे विद्यार्थी हैं। अरहंत विद्यार्थी नहीं हैं।
शिक्षार्थी; शेष व्यक्ति न तो शिक्षार्थी हैं और न ही गैर-शिक्षार्थी।

26. त्रिविध विद्या का पारखी व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
तीन विज्जों (3 प्रत्यक्ष ज्ञान) वाला व्यक्ति 1. पिछले जन्म
2. दिव्य दृष्टि 3. पुनर्जन्म का कारण बनने वाले सभी पापों/कारकों का निवारण
अरहत पद वह व्यक्ति होता है जिसे त्रिविध ज्ञान प्राप्त होता है।

27. छह अलौकिक ज्ञान रखने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
इन गुणों से युक्त व्यक्ति छह अलौकिक ज्ञानों से संपन्न होता है।
(विचार और इच्छाशक्ति का असाधारण प्रयोग, अर्थात् अलौकिक क्षमताएं)
1. जादुई शक्तियां 2. दैवीय श्रवण शक्ति 3. दूसरों के विचारों का ज्ञाता 4. ज्ञान
पिछले पुनर्जन्म 5. दैवीय दृष्टि, अंतर्ज्ञान 6. विनाश का ज्ञान
पापी प्रवृत्तियों का)।

28. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम-बुद्ध) किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वयं इसे पूरी तरह समझता है
उन सिद्धांतों के संबंध में सत्य जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, और प्राप्त करता है
उसमें सर्वज्ञता के साथ-साथ परिणामों पर पूर्ण प्रभुत्व (ऊपर देखें) भी शामिल है।
इस प्रकार के व्यक्ति को पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है।

29. स्वयं के लिए प्रबुद्ध व्यक्ति (पच्चेक-बुद्ध) किस प्रकार का होता है?
यहां व्यक्ति स्वयं ही सत्यों को भलीभांति समझ लेता है।
पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के संबंध में, लेकिन न तो वह किसी भी स्तर तक पहुँचता है।
न तो सर्वज्ञता और न ही उसके परिणामों पर प्रभुत्व—इस प्रकार की
ऐसा व्यक्ति स्वयं के लिए प्रबुद्ध कहलाता है।

30. दोनों तरह से किस प्रकार का व्यक्ति स्वतंत्र होता है?
यहां एक व्यक्ति स्वयं आठ चरणों का अनुभव करता है।
मुक्ति के बारे में, और उन्हें अंतर्दृष्टि से देखने के बाद, उनका
पापी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार
ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति दोनों तरह से मुक्त हो गया है।

31. किस प्रकार का व्यक्ति अंतर्दृष्टि के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है?
यहां एक व्यक्ति जिसने आठ चरणों का अनुभव नहीं किया है
मुक्ति तो संभव है, लेकिन उन्हें अंतर्दृष्टि के माध्यम से समझना आवश्यक है।

उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो गई हैं। इस प्रकार का
ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति अंतर्दृष्टि से मुक्त हो जाता है।

32. 'प्रत्यक्षदर्शी' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां जब कोई व्यक्ति आठ अवस्थाओं का अनुभव करते हुए जीवन जीता है
मुक्ति और अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें देखने के बाद, कुछ
उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार
किसी व्यक्ति को 'प्रत्यक्षदर्शी' कहा जाता है।

33. दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति वास्तव में समझता है कि यह पीड़ा है, कि
यही दुख की उत्पत्ति है, यही दुख का अंत है।
पीड़ा, और यही वह मार्ग है जो पीड़ा के अंत की ओर ले जाता है।
दुःख। तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत हैं
उन्होंने इसे अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अभ्यास के माध्यम से भी अनुभव किया;
और अंतर्दृष्टि से उन्हें देखने के बाद, उसके कुछ पापी
ये प्रवृत्तियाँ पूरी तरह विलुप्त हो चुकी हैं। इस प्रकार के व्यक्ति के बारे में कहा जाता है
दूरदृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति बनना।

34. आस्था के द्वारा किस प्रकार का व्यक्ति मुक्ति पाता है?
यहां व्यक्ति वास्तव में समझता है कि यह पीड़ा है।
यही दुख का मूल है, यही उसका निवारण है।
दुखों से मुक्ति का मार्ग यही है।
दुःख के बारे में। तथागत (बुद्ध) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत।
वह अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अभ्यास के माध्यम से भी इन चीजों को समझता है।
और अंतर्दृष्टि से उन्हें देखने के बाद, उसके कुछ पापी
प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, हालाँकि एक ही तरीके से नहीं।
ठीक उसी तरह जैसे किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जिसने दृष्टि प्राप्त कर ली हो। इस प्रकार का
जिस व्यक्ति को आस्था के द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, उसे ही मुक्तिदाता कहा जाता है।

35. 'धम्म के अनुरूप चलने वाला' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
किसी व्यक्ति की अंतर्दृष्टि की क्षमता जो अहसास की प्रक्रिया में है
'स्ट्रीम-अटेनमेंट' की फल प्राप्ति का चरण एक बड़े स्तर तक विकसित होता है।
विस्तार से; वह अंतर्दृष्टि से युक्त आर्य मार्ग का अनुसरण करता है।
अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण—इस प्रकार के व्यक्ति को ऐसा कहा जाता है।
मानक के अनुरूप। ऐसा व्यक्ति जो अभ्यास करता है
किसी धारा-प्राप्तकर्ता की फल प्राप्ति अवस्था वह होती है जो निम्न के अनुरूप होती है:
सामान्य तौर पर, जबकि फल प्राप्ति में स्थापित वही व्यक्ति एक है
जिसने दृष्टि प्राप्त कर ली है।

36. 'विश्वास द्वारा अनुरूप होने वाला व्यक्ति' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
फल प्राप्ति की दिशा में अग्रसर व्यक्ति की विश्वास करने की क्षमता
धारा-प्राप्तकर्ता का चरण काफी हद तक विकसित हो जाता है।
यह मार्ग आस्था को साथ लेकर चलता है और उससे पहले के महान मार्ग का विकास करता है।
विश्वास के द्वारा—इस प्रकार के व्यक्ति को अनुरूपता प्राप्त करने वाला कहा जाता है।
विश्वास। ऐसा व्यक्ति जो सफलता की अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है।
धारा-प्राप्ति विश्वास द्वारा अनुरूप होना है; जबकि वही
जो व्यक्ति सिद्धि की अवस्था में स्थापित हो जाता है, वह आस्था के द्वारा मुक्त हो जाता है।

37. वह किस प्रकार का व्यक्ति है जो पुनर्जन्म लेता है (नहीं
सात बार से अधिक?
यहां एक व्यक्ति ने तीनों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।
बंधनों से मुक्त होकर, वह 'धारा की ऊँचाई तक पहुँचने वाला' बन जाता है; उसके गिरने की संभावना अब नहीं रह जाती।
एक दयनीय स्थिति में पहुँच गया, लेकिन सफलता के लिए नियत है और ज्ञान प्राप्त करता है।
उसका अंतिम लक्ष्य (या उद्देश्य); वह दौड़ता हुआ आगे बढ़ता रहा और
देवताओं और मनुष्यों के बीच सात बार पुनर्जन्म लेने से
दुखों का अंत। ऐसे व्यक्ति को ऐसा व्यक्ति नहीं कहा जाता है।
सात से अधिक बार पुनर्जन्म से गुजरना।

38. जो व्यक्ति एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
परिवार से (अच्छे) परिवार तक?
यहां एक व्यक्ति ने तीनों बेड़ियों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
वह धारा को प्राप्त करने वाला बन जाता है; उसके गिरने की संभावना अब कम हो जाती है।
दयनीय स्थिति में है, लेकिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी और ज्ञान प्राप्त हो चुका है।
उसका अंतिम लक्ष्य (या उद्देश्य); वह दौड़ता हुआ आगे बढ़ता रहा और पुनर्जन्म लेता रहा।
दो या तीन (अच्छे) परिवारों के माध्यम से इसका अंत होता है।
पीड़ा सहने वाले व्यक्ति को ही प्रवास करने वाला कहा जाता है।
एक परिवार से दूसरे परिवार तक।

39. 'एकल-बीजयुक्त' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति ने तीनों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।
बंधनों से मुक्त होकर, वह धारा की प्राप्ति करने वाला बन जाता है; वह अब और उत्तरदायी नहीं रहता।
दयनीय स्थिति में आ गया है, लेकिन सफलता के लिए नियत है और
ज्ञान प्राप्ति को अपना अंतिम लक्ष्य (या उद्देश्य) मानना; उसका वापस लौट आना
मानव अस्तित्व की अवस्था दुखों का अंत कर देती है।
ऐसे व्यक्ति को एकल-बीजधारी कहा जाता है।

40. 'एक बार लौटने वाला' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति ने तीनों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।
बंधनों ने भावनाओं, घृणा और भ्रम को कमजोर कर दिया है।
वह एक बार लौटने वाला बन जाता है; इस दुनिया में केवल एक बार वापस आता है।
वह दुखों का अंत करता है। ऐसे व्यक्ति को आध्यात्मिक गुरु कहा जाता है।
एक बार वापसी करने वाला।

41. 'वापसी न करने वाला' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बेड़ियों को पूरी तरह से तोड़ दिया है।
निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाला प्राणी, एक 'प्राणी' बन जाता है।
आभासमय पुनर्जन्म; उसी में अंतिम मुक्ति प्राप्त करना
राज्य के अनुसार, वह उस क्षेत्र से लौटने के लिए उत्तरदायी नहीं है।
किसी व्यक्ति को 'वापसी न करने वाला' कहा जाता है।

42. जो व्यक्ति मरकर निर्वाण प्राप्त करता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
जिस उम्र में उसे ब्रह्म लोक में रहना चाहिए था, उसकी आधी उम्र से पहले ही वह जीवित रह सकता था।
समाप्ति तिथि?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाला प्राणी, एक ऐसा प्राणी बन जाता है
आभासमय पुनर्जन्म; उसी में अंतिम मुक्ति प्राप्त करना
राज्य के अनुसार, वह उस क्षेत्र से लौटने के लिए उत्तरदायी नहीं है; वह या तो

उसके आगमन के तुरंत बाद, या मध्य तक पहुँचने से पहले
जीवन के इस कालखंड में, वह महान मार्ग प्रकट होता है जिस पर वह चलता है।
उच्चतर स्वभाव के बंधनों को तोड़ सकता है। ऐसा व्यक्ति
वह व्यक्ति जिसे आधी रात से पहले ही मृत्यु हो जाती है और निर्वाण प्राप्त हो जाता है, वही माना जाता है।
ब्रह्म लोक में उसे जिस उम्र तक जीवित रहना चाहिए था, वह समाप्त हो गई।

43. 'कार्यकाल कम करने वाले मृतक' किस प्रकार के व्यक्ति होते हैं?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाला, एक प्रेतवाधित प्राणी बन जाता है।
पुनर्जन्म, उसी अवस्था में अंतिम मुक्ति की प्राप्ति,
उस क्षेत्र से वापस लौटने की संभावना नहीं; वह उस क्षेत्र से बाहर निकल रहा है
अपने जीवन के मध्य में और मृत्यु की ओर अग्रसर।
वह महान मार्ग को प्रकट करता है ताकि वह उसे त्याग सके
उच्च प्रकृति के बंधनों से मुक्त। ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है...
'कार्यकाल कम करने वाले मृतक।'

44. किस प्रकार का व्यक्ति 'स्वचालित रूप से मृत' होता है?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाला, एक प्रेतवाधित प्राणी बन जाता है।
पुनर्जन्म, उसी में अंतिम मुक्ति प्राप्त करना
राज्य, उस क्षेत्र से लौटने के लिए उत्तरदायी नहीं; वह स्वतः
वह महान मार्ग को प्रकट करता है ताकि वह उसे त्याग सके
उच्च प्रकृति के बंधनों से मुक्त। ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है...
'स्वयं मृत।'

45. निर्वाण प्राप्त करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
कठिन परिश्रम?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाला प्राणी, एक ऐसे प्राणी में बदल जाता है
आभासमय पुनर्जन्म, स्वयं में अंतिम मुक्ति की प्राप्ति
उसी राज्य में, उस क्षेत्र से लौटने के लिए उत्तरदायी नहीं; वह एक
उनकी इच्छाशक्ति के अथक प्रयास से ही आर्य मार्ग का निर्माण होता है।
उच्चतर प्रकृति के बंधनों को दूर करने के दृष्टिकोण से।
कठिन परिश्रम के माध्यम से निर्वाण प्राप्त करने वाला व्यक्ति कहलाता है।
परिश्रम।

46. नदी के विपरीत दिशा में जाने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
अकनित्था क्षेत्र?
यहां एक व्यक्ति ने पांचों बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है,
निम्न क्षेत्र में पुनर्जन्म का कारण बनता है, एक प्रेतवाधित प्राणी बन जाता है
पुनर्जन्म, उसी अवस्था में अंतिम मुक्ति की प्राप्ति,
उस क्षेत्र से लौटने के लिए उत्तरदायी नहीं; क्योंकि उसकी मृत्यु हो चुकी है
अविहा (स्थिर देवता) से अताप्पा (शांत देवता) तक जाता है।
अताप्पा की मृत्यु के बाद सुदस्सा (सुंदर) के पास जाता है
देवता), सुदस्सा से मृत्यु के बाद सुदस्सी के पास जाते हैं (स्पष्ट
(दर्शन प्राप्त करने वाले देवता), सुदस्सी से मृत्यु के बाद अकनित्था जाते हैं
(सर्वोच्च देवताओं को), वह अकनित्था निवास में लाता है
वह उस नेक मार्ग पर चले ताकि वह बंधनों से मुक्त हो सके।
उच्चतर प्रकृति। ऐसे व्यक्ति को आगे बढ़ने वाला कहा जाता है।

अकनित्था क्षेत्र के ऊपरी हिस्से में।

47. 'स्ट्रीम-अटेनर' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
जिस व्यक्ति की तीनों बेड़ियाँ टूट चुकी हैं
जिसे दूर रखा गया है उसे 'स्ट्रीम-अटेनर' कहा जाता है।

48. 'धारा-प्राप्तकर्ता' की प्राप्ति के लिए प्रयासरत व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
फल प्राप्ति का चरण?
धारा-प्राप्तकर्ता जो जीवन यापन के क्षेत्र में निरंतर चलता/जीता है,
फलने की अवस्था (सोतापट्टी-फला-सच्चिकिरिया-पतिपन्नो)।
जो व्यक्ति तीनों बंधनों को तोड़ने के लिए काम करता है, वह है
एक व्यक्ति जो किसी कार्य की सफलता की अवस्था को साकार करने के लिए काम कर रहा है
'स्ट्रीम-अटेनर';

49. एक बार लौटने वाला (सकदागामी)?
जिस व्यक्ति का इंद्रिय सुखों और द्वेष से लगाव है
जिसे नष्ट कर दिया गया है उसे 'एक बार लौटने वाला' कहा जाता है।

50. 'एक बार लौटने वाले' की सफलता की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
वह व्यक्ति जो आसक्ति को नष्ट करने के लिए काम कर रहा है
इंद्रिय सुखों और द्वेष के लिए काम करने वाला एक व्यक्ति होता है
एक बार लौटकर आए व्यक्ति की सफलता की अवस्था का अहसास ;

51. कभी न लौटने वाला (अनागामी) ?
वह व्यक्ति जिसका इंद्रिय सुखों के प्रति लगाव हो
और दुर्भावना को पूरी तरह से दूर कर दिया गया है, ऐसा कहा जाता है।
'वापसी न करने वाला।'

52. 'अप्रतिदेय' फल प्राप्ति की अवस्था को साकार करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
एक व्यक्ति जो आसक्ति को दूर करने के लिए काम कर रहा है
इंद्रिय सुख और अवशिष्ट द्वेष एक ही हैं
'गैर-वापसीकर्ता' के फलस्वरूप प्राप्त करने की दिशा में कार्य करना।

53. अरहा?
वह व्यक्ति जिसका लगाव किसी रूप से होता है
और निराकार ने अभिमान, घमंड और अज्ञान को जन्म दिया है।
जिसे पूरी तरह से अलग कर दिया गया हो, उसे अरहंत कहा जाता है।
वह बुद्ध की तरह पूर्णतः प्रबुद्ध हो जाता है (अरहत/अरहंत/अरिहंत)।
और किसी भी लोक में कभी पुनर्जन्म नहीं लेंगे [बल्कि वे विलीन हो जाएंगे]
निर्वाण/निब्बान नामक शाश्वत, असीम आनंदमय अमरता की अवस्था।
यह बुद्ध द्वारा दिखाए गए मार्ग का अंतिम लक्ष्य है।

54. अरहंत प्राप्ति की अवस्था को साकार करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
एक व्यक्ति जो किसी भी प्रकार के लगाव को त्यागने के लिए काम कर रहा है
और निराकार, अभिमान, घमंड और अज्ञान की ओर ले जाता है।
बिना किसी अवशेष के वह व्यक्ति फल प्राप्ति के चरण की ओर काम कर रहा है।

अरहंत पद का।

मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण लॉ द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय II: मानव प्रकारों का दो भागों में विभाजन

1. किस प्रकार का व्यक्ति क्रोधित होता है? तो क्रोध क्या है?
जो क्रोध है, क्रोधित होना है, और क्रोधित होने की अवस्था है।
क्रोध, घृणा, नफरत करना, द्वेष, दुर्भावना, होने की क्रिया
दुर्भावना, द्वेष, शत्रुता, द्वेष, अशिष्टता, अचानकता
हृदय में द्वेष रखना—इसे क्रोध कहते हैं। जिसके मन में
इस क्रोध से छुटकारा न पाने वाले व्यक्ति को क्रोधी कहा जाता है।
किस प्रकार के व्यक्ति को प्रतिशोधी कहा जाता है? फिर क्या है?
प्रतिशोध?
पहले क्रोध आता है, उसके बाद प्रतिशोध।
जो कि प्रतिशोध है, बदला लेने का कार्य है और
प्रतिशोध की अवस्था, निर्धारण, स्थापना,
स्थिति को नियंत्रित करने और उसका पालन करने के मामले में, क्रोध की हिंसक क्रिया को कहा जाता है
प्रतिशोध। जिसका प्रतिशोध अभी तक नहीं निपटा है, उसके बारे में कहा जाता है
प्रतिशोध लेने के लिए।

2. निंदा करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो निंदा करना क्या है?
जो निंदा है, जो निंदा करता है, और जो
जो निंदा है। इसे बदनामी कहा जाता है। जिसमें
इस निंदा को दूर न करने वाले व्यक्ति को निंदाकार कहा जाता है।
झगड़ालू स्वभाव का व्यक्ति कैसा होता है? तो फिर झगड़ा क्या होता है?
जो झगड़ा है, जो झगड़ा कर रहा है, और जो
जो झगड़ालूपन है, झगड़े का तरीका है, मुद्दा है
विवाद, लड़ाई-झगड़ा, निरंतर संघर्ष—इसे झगड़ा कहते हैं। जिस व्यक्ति में इस प्रकार का झगड़ा बना रहता है, उसे झगड़ालू व्यक्ति कहा जाता है।

3. ईर्ष्यालु व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो ईर्ष्या क्या है?
ईर्ष्या, जलन, ईर्ष्या की भावना, दूसरों को प्राप्त होने वाले लाभ, मान-सम्मान, आदर, सम्मान, अभिवादन और पूजा के प्रति ईर्ष्या की अवस्था—यही ईर्ष्या कहलाती है। जिस व्यक्ति में यह ईर्ष्या बनी रहती है, वह ईर्ष्यालु कहलाता है।

लालची व्यक्ति किस प्रकार का होता है? लालच से क्या तात्पर्य है?

लोभ के पाँच रूप हैं - निवास, वंश, लाभ, सौंदर्य और पुण्य (धर्म) के संबंध में लोभ।
इस प्रकार का लोभ, लालच को मन में पालना, अत्यधिक लालसा, लालच, कठोर व्यवहार, मन का अनियंत्रित होना—यही लोभ कहलाता है। जिस व्यक्ति में यह लोभ बना रहता है, वह लोभी कहलाता है।

4. धूर्त व्यक्ति किस प्रकार का होता है? धूर्तता से क्या तात्पर्य है?

यहाँ व्यक्ति धूर्त और कपटी बन जाता है। जो भी धूर्तता, कपट, कपट, कुटिलता है, वही धूर्त कहलाता है। जिस व्यक्ति में यह कपटता बनी रहती है, उसे ही कपटी कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति कपटी होता है? उस स्थिति में कपट क्या है?

यहां कोई व्यक्ति शरीर, वचन और विचार से कुकर्म करता है, और उसे छिपाने के उद्देश्य से पापी इच्छा रखता है, ऐसा संकल्प करता है, कहता है और कार्य करता है: मुझे कोई न जाने। यह छल, कपट, छिपाव, छल, कपट, टालमटोल, छिपाव, पूर्णतः छिपाव, निरोध, पूर्णतः निरोध, अप्रकट करना, और विशेष रूप से छिपाना—यह पापी कार्य छल कहलाता है।

जिस व्यक्ति में यह छल नष्ट नहीं होता, उसे कपटी व्यक्ति कहा जाता है।

5. निर्लज्ज व्यक्ति किस प्रकार का होता है? निर्लज्जता क्या है?
जहां लज्जा होनी चाहिए वहां लज्जा न होना, पापी और अनैतिक गुणों को अपनाने पर लज्जा न होना—यह निर्लज्जता कहलाता है। जिस व्यक्ति में यह निर्लज्जता होती है, उसे निर्लज्ज कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति धृष्ट होता है? तो फिर धृष्टता क्या है?
जहां पश्चाताप करना चाहिए वहां पश्चाताप न करना, पापी और अनैतिक गुणों को अपनाने पर पश्चाताप न करना - इसे धृष्टता कहा जाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार की धृष्टता से ग्रसित होता है, उसे धृष्ट कहा जाता है।

6. अवज्ञाकारी व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो अवज्ञा क्या है?
आज्ञापालन के विषय में अवज्ञा, आज्ञापालन की कमी, आज्ञापालन का अभाव, शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाना, निरंतर विरोध करना, अनादर, बेअदबी, अनुशासनहीनता (अधीनता का उल्लंघन) को अवज्ञा कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति अवज्ञाकारी कहलाता है।

किस प्रकार के व्यक्ति को दुष्टों का साथी कहा जाता है? तो फिर दुष्टों के साथ संगति क्या है?
अविश्वासी, दुष्ट, अशिक्षित, लालची और मूर्ख लोगों की सेवा करना, उनका अनुसरण करना, उनकी सेवा करना, उनके प्रति श्रद्धा रखना, उनका सम्मान करना, उनकी आदर करना, उनकी पूजा करना और उनकी ओर झुकाव रखना दुष्टों की संगति कहलाता है। ऐसा पापपूर्ण संगति रखने वाला व्यक्ति दुष्टों का साथी कहलाता है।

7. किस प्रकार का व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वार' के प्रति लापरवाह होता है? तो फिर इंद्रियों के द्वार के प्रति लापरवाही क्या है?
यहां व्यक्ति किसी वस्तु को आंखों से देखता है और उसके रूप और सौंदर्य से मोहित हो जाता है। जबकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित रखता है, तो पापी और दुष्ट मानसिक अवस्थाएं—अर्थात लोभ और निराशा—उसमें उत्पन्न होंगी; वह न तो उसे नियंत्रित करने का प्रयास करता है, न ही दृष्टि की रक्षा करता है, और न ही दृष्टि शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त करता है। (इसी प्रकार) वह अपने कानों से ध्वनि सुनता है, नाक से गंध सूंघता है, जीभ से स्वाद लेता है, शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करता है, मन से किसी मानसिक अवस्था को जानता है और उसके रूप और सौंदर्य से मोहित हो जाता है; जबकि यदि वह मन को अनियंत्रित रखता है, तो पापी और दुष्ट मानसिक अवस्थाएं—अर्थात लोभ और निराशा—उसमें उत्पन्न होंगी; वह न तो उसे नियंत्रित करने का प्रयास करता है, न ही मन की रक्षा करता है, और न ही मन शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त करता है। जो इन छह इंद्रियों की रक्षा, नियंत्रण, संरक्षण और वशीकरण नहीं करता, उसे इंद्रियों के प्रति असावधानी कहा जाता है।
'इंद्रिय-द्वार।'

किस प्रकार का व्यक्ति भोजन के मामले में अतिवादी होता है? तो फिर भोजन में संयम क्या है?
यहां कोई व्यक्ति मनोरंजन, अभिमान, सजावट, तृप्ति, अतिभोग और भोजन के प्रति लापरवाही के कारण बिना सोचे-समझे और नासमझी से भोजन ग्रहण करता है, इसे भोजन के प्रति अतिभोग कहा जाता है। भोजन के प्रति इस अतिभोग वाले व्यक्ति को भोजन का असंयमी कहा जाता है।

8. भुलक्कड़ किस प्रकार का व्यक्ति होता है? तो फिर भुलक्कड़पन क्या है?
जो विस्मृति, स्मृति की कमी, स्मरण न कर पाना, याद न कर पाना, असावधानी, विस्मृति है, उसे ही विस्मृति कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति विस्मृति से ग्रसित कहलाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति असावधान होता है? तो फिर असावधानी क्या है?
ज्ञान का अभाव, दृष्टि का अभाव, समझ का अभाव, बोध का अभाव, पूर्ण ज्ञान का अभाव, अंतर्दृष्टि का अभाव, ज्ञान की कमी, गहराई में न उतरना, सर्वेक्षण न करना, चिंतन न करना, मंदबुद्धि, मूर्खता, बुद्धि का अभाव, भ्रम, मोह, भ्रम, अज्ञान, अज्ञान की बाढ़, अज्ञान का बंधन, अज्ञान की प्रवृत्ति, अज्ञान की वृद्धि, अज्ञान का अवरोध, और बुराई की जड़। ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार की असावधानी से ग्रसित है, उसे असावधान कहा जाता है।

9. नैतिक नियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो नैतिक नियमों का उल्लंघन क्या है?

शरीर से संबंधित, वाणी से संबंधित, और दोनों से संबंधित उल्लंघन नैतिक नियम का उल्लंघन कहलाता है। हर प्रकार की अनैतिकता नैतिक नियम का उल्लंघन है। ऐसा उल्लंघन करने वाला व्यक्ति नैतिक नियम का उल्लंघनकर्ता कहलाता है।

(खतरनाक) विचारों का समर्थन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो फिर (खतरनाक) विचारों का समर्थन करना क्या है? दान, यज्ञ और यज्ञ-आहुति में कोई पुण्य नहीं है, न ही अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल है। न तो वर्तमान संसार है और न ही भविष्य का संसार। न तो माता है और न ही पिता, न ही उनके बिना जन्म लेने वाले प्राणी हैं। इस संसार में न तो कोई संन्यासी है और न ही कोई ब्राह्मण जिसने मन की शांति प्राप्त कर ली हो और अपने सर्वोत्तम कर्म कर रहा हो, जिसने अपने प्रयासों से इस संसार और परलोक को जानकर दूसरों को ज्ञान प्रदान किया हो। इस प्रकार के विचार, मत का मार्ग, मत का जंगल, विधर्म की यह अव्यवस्था, मत का यह अस्थिर होना, मत का यह बंधन, यह पकड़ और जकड़न, इसके प्रति समर्पण, इसका आचरण, यह बुरा मार्ग, यह गलत मार्ग, यह झूठ, यह विपरीत लक्ष्य धारण करना—ये सभी खतरनाक विचार कहलाते हैं। हर प्रकार के गलत मत को खतरनाक विचार कहा जाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार के खतरनाक विचार से ग्रसित होता है, उसे खतरनाक विचारों का समर्थक कहा जाता है।

10. आंतरिक बंधनों से ग्रस्त व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
जिस व्यक्ति में उसे निम्न लोकों से बांधने वाले पांच बंधन अभी भी नहीं हटे हैं, उसे आंतरिक बंधनों वाला व्यक्ति कहा जाता है।
बाहरी बंधनों वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
जिस व्यक्ति में उसे उच्च लोकों से बांधने वाले पांच बंधन नहीं हटते, उसे बाह्य बंधनों वाला व्यक्ति कहा जाता है।

11. किस प्रकार का व्यक्ति क्रोध रहित होता है? तो फिर 'क्रोध' शब्द का क्या अर्थ है?
जो क्रोध है, क्रोधी होना आदि (II 1) मन का: इसे क्रोध कहा जाता है। जिस व्यक्ति में ऐसा क्रोध दूर हो गया हो, उसे क्रोध रहित व्यक्ति कहा जाता है।
प्रतिशोध न लेने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो फिर प्रतिशोध क्या है?
सबसे पहले क्रोध आदि आता है (II. 1)। क्रोध को प्रतिशोध कहा जाता है। जिस व्यक्ति में प्रतिशोध की भावना समाप्त हो जाती है, उसे प्रतिशोधहीन व्यक्ति कहा जाता है।

12. किस प्रकार का व्यक्ति निंदाकार नहीं होता? तो फिर 'निंदा' क्या है?
निंदा करना, निंदा का अभ्यास करना, निंदा करने वाले की अवस्था, पाखंड, पाखंड का कार्य—यह सब निंदा कहलाता है। जिस व्यक्ति में ऐसी निंदा की प्रवृत्ति नहीं होती, वह निंदा करने वाला नहीं कहलाता।
किस प्रकार का व्यक्ति झगड़ालू नहीं होता? तो फिर झगड़ा क्या होता है?
जो झगड़ा करता है... , इत्यादि (II. 1), झगड़ा। जिस व्यक्ति में इस प्रकार का झगड़ा दूर हो जाता है, उसे झगड़ालू नहीं कहा जाता।

13. किस प्रकार का व्यक्ति ईर्ष्या रहित होता है? तो फिर ईर्ष्या क्या है?
ईर्ष्या करना, ईर्ष्या की अवस्था, जलन करना, जलन का कार्य और दूसरों को मिलने वाले लाभ, सम्मान, आदर, श्रद्धा, अभिवादन और पूजा के प्रति जलन की अवस्था। जिस व्यक्ति में ऐसी ईर्ष्या नहीं होती, उसे ईर्ष्यारहित कहा जाता है।

निर्धन व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो फिर लोभ क्या है?

लोभ पाँच प्रकार का होता है: निवास, वंश, लाभ, सौंदर्य और योग्यता से संबंधित लोभ; इस प्रकार का लोभ, लोभ पालना, लालच, अत्यधिक लालसा, लालच, कठोर व्यवहार, मन का असंयम—यही लोभ कहलाता है। जिस व्यक्ति में ऐसा लोभ नहीं होता, वह लोभरहित कहलाता है।

14. जो व्यक्ति धूर्त नहीं होता, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है? तो फिर धूर्तता क्या है?
यहाँ व्यक्ति धूर्त और कपटी हो जाता है—वही धूर्तता, चालाकी, धूर्त होने की अवस्था, कठोरता, कठोरता, बनावटीपन, ढोंग। जिस व्यक्ति में ऐसी धूर्तता दूर हो जाती है, उसे धूर्त नहीं कहा जाता।

किस प्रकार का व्यक्ति धोखा नहीं देता? तो फिर धोखा क्या है?
यहां कोई व्यक्ति शरीर, वचन और विचार से कुकर्म करता है, और अपने पापी इरादों को छिपाने के उद्देश्य से यह इच्छा रखता है, संकल्प करता है, कहता है और कार्य करता है: मुझे कोई न जाने! यह छल, कपट, छिपाव, छल, कपट, टालमटोल, छिपाव, पूर्णतः छिपाव, निवरण, गुप्त रखना और विशेष रूप से दबाना—यह पापी कार्य छल कहलाता है। जिस व्यक्ति में यह छल दूर हो जाता है, वह छल रहित कहलाता है।

15. संशयवादी व्यक्ति किस प्रकार का होता है? संशय क्या है? जहाँ संशयवादी होना चाहिए, वहाँ संशयवादी होना, किसी पापपूर्ण और अनैतिक कार्य को करने में संशयवादी होना—इसे संशयवादी कहा जाता है।
संशयवादी होना। संशय से ग्रसित व्यक्ति, जैसे
इसे अत्यंत सावधानीपूर्ण बताया जाता है।

विवेकशील व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो विवेक का अर्थ क्या है?
जहां विवेक की आवश्यकता हो वहां विवेक का प्रयोग करना, पापपूर्ण और अनैतिक कार्य करने से बचना—यही विवेक कहलाता है। ऐसा विवेक रखने वाला व्यक्ति विवेकशील कहलाता है।

16. आज्ञाकारी व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो आज्ञाकारिता क्या है?
आज्ञापालन, आज्ञा मानने की आदत, शत्रुतापूर्ण रवैया न अपनाना, विरोध न करना, आदर करना, श्रद्धा और अधीनता—कर्तव्यों के पालन को आज्ञापालन कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति आज्ञाकारी कहलाता है।

अच्छे के साथ संगति करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो फिर अच्छे के साथ संगति क्या है?
निष्ठावान, गुणी, विद्वान, भक्तिमय और स्पष्टवादी लोगों की सेवा करना, उनका आदर करना, उन्हें श्रद्धापूर्वक मानना, उनसे प्रेम करना, उनके प्रति मित्रता रखना—इसे ही अच्छे लोगों के साथ संगति का अर्थ कहा जाता है। जो व्यक्ति अच्छे लोगों के साथ संगति रखता है, उसे अच्छे लोगों का साथी कहा जाता है।

17. किस प्रकार का व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वार' के प्रति सतर्क रहता है? तो फिर 'इंद्रियों के द्वार' की रक्षा कौन कर रहा है?
यहां एक व्यक्ति किसी वस्तु को आंखों से देखता है, लेकिन उसके रूप और सौंदर्य से मोहित नहीं होता। वहीं, यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो उसमें पापी और दुष्ट मानसिक अवस्थाएं—अर्थात लोभ और निराशा—उत्पन्न हो जाएंगी। इसलिए वह दृष्टि को नियंत्रित करने का प्रयास करता है, दृष्टि की रक्षा करता है और उस पर नियंत्रण रखता है; (इसी प्रकार) वह कानों से ध्वनि सुनता है और नाक से गंध सूंघता है।

वह अपनी जीभ से स्वाद लेता है, अपने शरीर से किसी बाहरी वस्तु को महसूस करता है, अपने मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, लेकिन उसके रूप और सौंदर्य से मोहित नहीं होता। वहीं, यदि वह मन की शक्ति को अनियंत्रित छोड़ दे, तो पापी और दुष्ट मानसिक अवस्थाएँ—अर्थात लोभ और निराशा—उसमें उत्पन्न होंगी। इसलिए वह मन की शक्ति को नियंत्रित करने का प्रयास करता है, उसकी रक्षा करता है और उस पर नियंत्रण रखता है। जो इन छह शक्तियों की रक्षा, नियंत्रण और संरक्षण करता है, उसे ही इंद्रियों की रक्षा कहा जाता है। जो व्यक्ति इंद्रियों के प्रति इस प्रकार सतर्क रहता है, उसे ही इंद्रियों के प्रति सजग कहा जाता है।
किस प्रकार का व्यक्ति भोजन के मामले में संयमी होता है? तो फिर भोजन में संयम का अर्थ क्या है?
यहां एक बुद्धिमान व्यक्ति भोजन को मनोरंजन, अभिमान, सजावट या अलंकरण के लिए नहीं, बल्कि शरीर के भरण-पोषण और भूख की पीड़ा को दूर करने के लिए आवश्यक सीमा तक ही ग्रहण करता है, जिससे पवित्र जीवन जीने में सहायता मिलती है: 'इस प्रकार मैं अपने अतीत के भावों का अंत करूँगा और नए भावों को जन्म नहीं दूँगा; इस प्रकार मुझे जीविका, पवित्रता और शांतिपूर्ण जीवन प्राप्त होगा'; भोजन के प्रति संतोष, संयम और विचारशीलता को ही भोजन में संयम कहा जाता है। ऐसा संयम रखने वाला व्यक्ति भोजन के प्रति संयमी कहलाता है।

18. किस प्रकार का व्यक्ति सजग होता है? तो फिर सचेतनता क्या है?
वह सजगता जो स्मरण है, जो याद रखने की क्षमता है, जो स्मरण, जो स्मृति को बनाए रखने की क्षमता है, जो विस्मृति न करने की क्षमता है, जो स्मृति विकार से मुक्त है, वह सजगता है जिसे सजगता कहते हैं, वह शक्ति है जिसे सजगता कहते हैं, और वह पूर्ण सजगता है—इसे ही सजगता कहा जाता है। ऐसा सजग व्यक्ति सचेत कहलाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति समझता है? समझना क्या है?
जो ज्ञान, समझ, विवेक, सत्य की खोज, अवलोकन, टिप्पणी, और विवेक, विद्वत्ता, विशेषज्ञता, निपुणता, श्रेष्ठ चिंतन, परीक्षा, तर्क, मार्गदर्शक बुद्धि, आत्मनिरीक्षण, जागरूकता, प्रेरणा, अंतर्दृष्टि, अंतर्दृष्टि की क्षमता, अंतर्दृष्टि की शक्ति, अंतर्दृष्टि का हथियार, अंतर्दृष्टि का महल, अंतर्दृष्टि का प्रकाश, अंतर्दृष्टि की चमक, अंतर्दृष्टि की भव्यता, अंतर्दृष्टि का रत्न, मोहभंग, सत्य की खोज, पूर्ण दृष्टि—यही जागरूकता कहलाती है। ऐसा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति समझता है।

19. नैतिक नियम का पालन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है? तो नैतिक नियम का पालन क्या है?

शरीर और वाणी दोनों के संबंध में उल्लंघन न करना, इसे नैतिक नियम का पालन कहा जाता है; नैतिक नियम के अंतर्गत सभी प्रतिबंध इसका पालन हैं। नैतिक नियम के इस पालन से युक्त कोई भी व्यक्ति नैतिक नियम का पालन करने वाला कहलाता है।2
सही दृष्टिकोण का समर्थक किस प्रकार का व्यक्ति है? सही दृष्टिकोण का समर्थन करना क्या है?
दान, यज्ञ और यज्ञ-आहुति में पुण्य है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल होता है। यह संसार है, परलोक भी है, माता-पिता हैं और वे प्राणी भी हैं जो इनके मिलन के बिना जन्म लेते हैं। इस संसार में सच्चे संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिन्होंने मन की शांति प्राप्त कर ली है और सर्वोत्तम कर्म कर रहे हैं, और जिन्होंने स्वयं इस संसार और परलोक का ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लिया है।
इसके बाद, दूसरों को ज्ञान और इस प्रकार के ज्ञान आदि से अवगत कराएं। (11, 18) ...
अज्ञान का अभाव, सत्य का विवेक, सही दृष्टि—यही सही विचारों का समर्थन करना कहलाता है। सभी सही विचार सही विचारों के अंतर्गत आते हैं।
जो व्यक्ति सही विचारों का समर्थन करने की इस क्षमता से संपन्न होता है, उसे सही विचारों का समर्थक कहा जाता है।

20. इस दुनिया में कौन से दो व्यक्ति दुर्लभ हैं?
जो पहले भलाई करता है1 और जो इसे पहचानता है: ये दोनों व्यक्ति इस दुनिया में दुर्लभ हैं।

21. किन दो व्यक्तियों को संतुष्ट करना कठिन है?
जो व्यक्ति अपना सब कुछ संचित करके रखता है और जो व्यक्ति अपना सब कुछ दान कर देता है - इन दोनों व्यक्तियों को संतुष्ट करना कठिन है।

22. वे कौन से दो व्यक्ति हैं जो आसानी से संतुष्ट हो जाते हैं?
जो व्यक्ति अपनी कमाई को संचित नहीं करता और जो व्यक्ति अपनी कमाई को दान नहीं करता—ये दोनों व्यक्ति आसानी से संतुष्ट हो जाते हैं।

23. किन दो व्यक्तियों के पाप (आसव) बढ़ते हैं?
जो व्यक्ति उस स्थान पर संदेह करता है जहाँ उसे नहीं करना चाहिए और जो व्यक्ति उस स्थान पर अविश्वास नहीं करता जहाँ उसे करना चाहिए—इन दोनों व्यक्तियों के पाप बढ़ते ही जाते हैं।

24. किन दो व्यक्तियों के पाप नहीं बढ़ते?
जो व्यक्ति उस स्थान पर संदेह नहीं करता जहाँ संदेह करना उचित नहीं है और जो व्यक्ति उस स्थान पर संदेह करता है जहाँ उसे संदेह करना चाहिए - इन दोनों व्यक्तियों के पाप नहीं बढ़ते।

25. कम झुकाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वयं नैतिक रूप से दुष्ट और स्वभाव से बुरा है, और वह किसी ऐसे व्यक्ति की सेवा करता है, उसका अनुसरण करता है और उसकी पूजा करता है जो दुष्ट और बुरे स्वभाव का है: इसे नीच प्रवृत्ति वाला व्यक्ति कहा जाता है।

26. अच्छे स्वभाव वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति जो नैतिक रूप से अच्छा और सदाचारी आदतों वाला हो, और उसी स्वभाव के किसी अन्य व्यक्ति की सेवा करता हो, उसका अनुसरण करता हो और उसका आदर करता हो, उसे अच्छे स्वभाव वाला व्यक्ति कहा जाता है ।

27. संतुष्ट व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
जो स्वयं के लिए और तथागत के शिष्यों के लिए, जो अरहंत हैं, ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, वे ही संतुष्ट होते हैं। पूर्णतः ज्ञानी व्यक्ति स्वयं भी संतुष्ट होता है और दूसरों को भी संतुष्ट करता है।

यहां दो के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय** 3

मूलत: गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय III: मानव प्रकारों का तीन भागों में विभाजन

1. किस प्रकार का व्यक्ति निराशावादी होता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो अनैतिक और दुष्ट स्वभाव का है, जो अशुद्ध आदतों से ग्रस्त है और जो गुप्त कर्म करता है, वह स्वयं को तपस्वी कहता है, जबकि वह वास्तव में तपस्वी नहीं है; व्यभिचारी होते हुए भी वह पवित्र जीवन जीने का दावा करता है; वह भीतर से भ्रष्ट है, वासनाओं से भरा है और उसमें अशुद्धता संचित है। जब वह सुनता है कि 'फलां नाम का एक भिक्षु पापी प्रवृत्तियों के नाश होने पर अंतर्दृष्टि और पापी प्रवृत्तियों से रहित उच्चतर ज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति करता है, जबकि उसने स्वयं इस जीवन में पापी प्रवृत्तियों को जान और अनुभव कर लिया है,' तो वह यह नहीं सोचता कि मैं भी पापी प्रवृत्तियों के नाश होने पर कब मोक्ष की प्राप्ति करूंगा? - ऐसे व्यक्ति को निराशावादी कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति आशावादी होता है?

यहां एक नैतिक और नेक स्वभाव वाले व्यक्ति को यह पता चलता है कि फलां भिक्षु पापी प्रवृत्तियों के नाश होने पर अंतर्दृष्टि और पापी प्रवृत्तियों से रहित विचार मुक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जबकि उसने स्वयं इस जीवन में उच्चतर ज्ञान के द्वारा इन प्रवृत्तियों को जान और अनुभव कर लिया होता है। तब वह सोचता है: मैं भी नाश होने पर कब ऐसा कर पाऊंगा?

वह किस प्रकार का व्यक्ति है जिसने आशा खो दी है?

यहां एक व्यक्ति, जिसने इस जीवन में उच्चतर ज्ञान के माध्यम से स्वयं अंतर्दृष्टि और विचार मुक्ति से प्राप्त मोक्ष को जान लिया है, जो कि बुरी प्रवृत्तियों से मुक्ति है, यह जानकर उसे पता चलता है कि फलां नाम का एक भिक्षु इस संसार में रहता है, जिसने स्वयं उच्चतर ज्ञान के माध्यम से अंतर्दृष्टि और विचार मुक्ति से प्राप्त मोक्ष को जान लिया है, जो कि बुरी प्रवृत्तियों से मुक्ति है। तब वह यह नहीं सोचता: मैं भी कब इस जीवन को जीऊंगा, इत्यादि? इसका कारण क्या है? क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने की वह आकांक्षा, जो उसके मन में तब थी जब वह अभी तक मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाया था, अब शांत हो गई है। ऐसे व्यक्ति को इच्छाहीन कहा जाता है।

2. वे तीन व्यक्ति कौन हैं जिनकी तुलना एक बीमार व्यक्ति से की जा सकती है?

बीमार व्यक्तियों के तीन प्रकार होते हैं। यहाँ एक ऐसा बीमार व्यक्ति है जो उचित आहार, अच्छी दवाइयाँ या कुशल नर्स मिलने के बावजूद भी अपनी बीमारी से ठीक नहीं हो पाता है।
यहां भी एक बीमार व्यक्ति है जो उचित आहार, अच्छी दवाएं या सक्षम नर्स मिले या न मिले, अपनी बीमारी से ठीक हो जाता है।
यहां भी एक बीमार व्यक्ति है जो उचित आहार, अच्छी दवाइयां या एक सक्षम नर्स मिलने पर अपनी बीमारी से ठीक हो जाता है, लेकिन इन चीजों के बिना यह संभव नहीं है।
अंतिम श्रेणी के रोगियों के लिए—अर्थात् वे लोग जो उचित आहार, अच्छी दवाइयाँ या एक योग्य नर्स मिलने पर किसी बीमारी से ठीक हो सकते हैं, लेकिन इनके बिना नहीं—भगवान ने उनके लिए (बीमारों के लिए उपयुक्त) आहार, (बीमारों के योग्य) दवा या (बीमारों के लिए उपयुक्त) एक योग्य नर्स निर्धारित की है।
इस श्रेणी के रोगियों के कारण अन्य रोगियों की देखभाल करना आवश्यक है।

इन तीन बीमार व्यक्तियों की तरह इस संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति निवास करते हैं। वे तीन कौन से हैं?

(1) यहाँ एक निश्चित व्यक्ति, चाहे वह देखे या न देखे
तथागत के उपदेशों और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों और अनुशासन को सुनने या न सुनने पर भी, वह अच्छे कार्यों में स्वीकृत नियम (नियम) का पालन नहीं करता है।

(2) यहाँ भी एक व्यक्ति, चाहे वह तथागत को अपनी आँखों से देखे या न देखे और चाहे वह तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन को सुने या न सुने, अच्छी बातों में स्वीकृत व्यवस्था में प्रवेश करता है ।

(3) यहाँ भी, कोई व्यक्ति केवल तभी, जब वह तथागत को देख सके और तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन को सुन सके, अच्छे नियमों में स्वीकृत व्यवस्था में प्रवेश करता है, अन्यथा नहीं।

अंतिम प्रकार के व्यक्ति के मामले में—अर्थात् वह व्यक्ति जो केवल तथागत के दर्शन करने और उनके द्वारा दिए गए उपदेश और अनुशासन को सुनने पर ही शुभ मार्ग का अनुसरण करता है, अन्यथा नहीं—भगवान बुद्ध ने उसके लिए धार्मिक प्रवचन निर्धारित किया है, और इसी व्यक्ति के कारण यह उपदेश दूसरों को दिया जाना चाहिए। ये तीन व्यक्ति इस संसार में बीमार व्यक्तियों के समान हैं।

3. प्रत्यक्षदर्शी किस प्रकार का व्यक्ति होता है?

यहां व्यक्ति स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है और अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें देखकर उसकी कुछ पापी प्रवृत्तियां पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को 'प्रत्यक्षदर्शी' कहा जाता है।

जिस व्यक्ति को दूरदृष्टि प्राप्त हो जाती है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?

यहां व्यक्ति को यह सत्य समझ आता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है; और अंतर्दृष्टि से उन्हें समझने के बाद, उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियां पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को ही ज्ञान प्राप्त करने वाला कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति आस्था के द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है?

यहां व्यक्ति वास्तव में समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है, और अंतर्दृष्टि से उन्हें समझने के बाद, उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं, यद्यपि उस व्यक्ति की तरह नहीं जिसने दृष्टि प्राप्त कर ली हो। ऐसे व्यक्ति को ही मुक्त कहा जाता है।

4. 'गाली-गलौज करने वाला' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक झूठा व्यक्ति किसी सभा में, किसी बैठक के बीच में, या अपने रिश्तेदारों के बीच में, या किसी मंडली में, या राजकुमार की परिषद में लाया जाता है और उससे गवाह के रूप में इस प्रकार पूछताछ की जाती है: "आओ, भले आदमी, हमें बताओ कि तुम इसके बारे में क्या जानते हो"; वह कहेगा, "मैं जानता हूँ" जबकि वह नहीं जानता, और जानते हुए भी कहेगा, "मैं नहीं जानता।" वह उन चीजों को देखने का दावा करेगा जो उसने कभी नहीं देखीं, और यह नहीं बताएगा कि उसने वास्तव में किन चीजों को देखा था; इस प्रकार, या तो अपने स्वार्थ के लिए, या दूसरों के स्वार्थ के लिए, या अपने किसी भी छोटे से लाभ के लिए, वह जानबूझकर झूठ बोलेगा। ऐसे व्यक्ति को 'झूठा' कहा जाता है।

'फूलों से बात करने वाला' किस तरह का व्यक्ति होता है?

यहां एक व्यक्ति झूठ का त्याग करके झूठ बोलने से परहेज करता है और जब उसे किसी सभा में, या किसी बैठक के बीच में, या अपने रिश्तेदारों के बीच में, या किसी मंडली में, या राजकुमार की परिषद में लाया जाता है, तो उससे गवाह के रूप में इस प्रकार पूछताछ की जाती है: "आओ, भले आदमी, हमें बताओ कि तुम इसके बारे में क्या जानते हो"; यदि वह नहीं जानता है, तो वह कहता है कि वह नहीं जानता है; यदि वह जानता है, तो वह स्वीकार करता है कि वह जानता है; यदि उसने नहीं देखा है, तो वह तुरंत कहता है कि उसने नहीं देखा है; लेकिन इसके विपरीत, यदि उसने देखा है, तो वह वही बताता है जो उसने देखा है। इस प्रकार, न तो अपने हित में, न दूसरों के हित में, और न ही अपने किसी भी लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलेगा। ऐसे व्यक्ति को 'फूल-वक्ता' कहा जाता है।

"'मधुर वाणी' किस प्रकार के व्यक्ति को कहते हैं?"

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो निर्दोष, कानों को मधुर लगने वाले, प्यारे, हृदय को लुभाने वाले, शिष्ट, अनेकों द्वारा प्रशंसित और अनेकों को आकर्षित करने वाले शब्द बोलता है। ऐसे व्यक्ति को 'मधुरवाक्पटु' कहा जाता है।

5. 'कैंसर के प्रति संवेदनशील' व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रोधित और निराशा से भरा हुआ है, उसे जब भी कोई छोटी सी बात कह देता है तो वह भड़क उठता है, चिढ़ जाता है और जिद्दी हो जाता है। वह अपने क्रोध, शत्रुता और संदेह की भावना को प्रकट करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे गैंग्रीन से ग्रस्त घाव को लकड़ी की छड़ी या पत्थर से कुरेदने पर उसमें से बहुत सारा मवाद निकलता है, ठीक उसी प्रकार एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रोधित और निराशा से भरा हुआ है, जरा सी बात पर भड़क उठता है, चिढ़ जाता है और अपना क्रोध, शत्रुता और संदेह की भावना को प्रकट करता है।

'तेज दिमाग' वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है ?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो वास्तव में समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। जैसे दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति रात के अंधेरे में बिजली की चमक से भी चीजों को देख सकता है, वैसे ही एक ऐसा व्यक्ति है जो वास्तव में समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है।

हीरे के प्रति आकर्षित होने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक व्यक्ति अपने पापी स्वभावों के नाश होने पर वर्तमान जीवन में ही मन और अंतर्दृष्टि की निष्पाप मुक्ति को जान और अनुभव कर लेता है। जिस प्रकार कोई भी वस्तु हीरे से भेदी नहीं जा सकती, चाहे वह कीमती हो या साधारण, उसी प्रकार एक व्यक्ति अपने पापी स्वभावों के नाश होने पर ऐसा जीवन व्यतीत करता है। ऐसे व्यक्ति को हीरा-मन वाला कहा जाता है।

6. अंधा व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक व्यक्ति के पास वह दृष्टि नहीं है जिससे वह उस धन को खोज सके और प्राप्त कर सके जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, या उसे बढ़ा सके; उसके पास वह अंतर्दृष्टि भी नहीं है जिससे वह अच्छे और बुरे, निंदनीय और निर्दोष, श्रेष्ठ और निम्न अवस्थाओं और अंधकार और प्रकाश के मिश्रण में भेद कर सके। ऐसे व्यक्ति को अंधा कहा जाता है।

'पर्बलाइन ब्लाइंड' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास ज्ञान की दृष्टि है जिससे वह उस धन को प्राप्त कर सकता है जो वह पहले प्राप्त नहीं कर सकता था और उसे बढ़ा भी सकता है, लेकिन उसके पास वह मानसिक दृष्टि नहीं है जिससे वह अच्छे और बुरे, निंदनीय और निर्दोष, श्रेष्ठ और निम्न अवस्थाओं में भेद कर सके और अंधकार और प्रकाश के मिश्रण को पहचान सके। ऐसे व्यक्ति को 'अंधा' कहा जाता है।

दो आंखों वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

इस व्यक्ति के पास वह दृष्टि होती है जो उसे उस धन को प्राप्त करने में सहायता करती है जिसे वह पहले प्राप्त नहीं कर सका था और उसे बढ़ाने में भी, साथ ही वह अंतर्दृष्टि भी होती है जो उसे अच्छे और बुरे, निंदनीय और निर्दोष, श्रेष्ठ और निम्न अवस्थाओं और अंधकार और प्रकाश के मिश्रण को जानने में सक्षम बनाती है। ऐसे व्यक्ति को द्विनेत्री कहा जाता है।

7. 'उलटी बुद्धि' वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक व्यक्ति भिक्षुओं से धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए एक मठ में जाता है। भिक्षु उसे उस सिद्धांत का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में लाभकारी है, और उसे पूर्णतः शुद्ध, अर्थपूर्ण, उपयुक्त शब्दों में व्यक्त और संपूर्ण पवित्र जीवन का वर्णन करते हैं। उस आसन पर बैठे हुए, वह प्रवचन के आरंभ में, उसके जारी रहने पर और उसके समाप्त होने पर ध्यान नहीं देता; ठीक उसी प्रकार, अपने आसन से उठने के बाद भी, वह प्रवचन पर न तो आरंभ में ध्यान देता है... इत्यादि।

जैसे किसी घड़े को उल्टा रखने पर उसमें डाला गया पानी इकट्ठा नहीं होता बल्कि बह जाता है, वैसे ही एक व्यक्ति भिक्षुओं के धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए मठ में जाता है... (पर) प्रवचन पर ध्यान नहीं देता। ऐसे व्यक्ति को 'विपरीत बुद्धि' वाला कहा जाता है।

'फोल्डेड इंटेलिजेंस' किस प्रकार के व्यक्ति को कहते हैं?

यहां एक व्यक्ति भिक्षुओं से धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए एक मठ में जाता है। भिक्षु उसे उस सिद्धांत का उपदेश देते हैं जो आरंभ में लाभकारी, मध्य में लाभकारी और अंत में लाभकारी होता है, और उसे पूर्णतः शुद्ध, अर्थपूर्ण, उपयुक्त शब्दों में व्यक्त और संपूर्ण पवित्र जीवन का वर्णन करते हैं। वह आसन पर बैठकर आरंभ, मध्य और अंत में प्रवचन को ध्यान से सुनता है, लेकिन आसन से उठने के बाद नहीं सुनता। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति अपने वस्त्र की तह में तिल, चावल, मोदक और बेर जैसी अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुएँ रखता है और आसन से उठते ही स्मृतिभ्रंश के कारण वे सब बिखर जाती हैं। इसी प्रकार एक व्यक्ति होता है। ऐसे व्यक्ति को 'खंडित बुद्धि' वाला कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति व्यापक बुद्धि वाला होता है?

यहां एक व्यक्ति किसी मठ में जाकर धार्मिक प्रवचन आदि सुनता है। वह वहीं बैठकर प्रवचन के आरंभ, मध्य और अंत तक, यहां तक कि आसन छोड़ने के बाद भी, ध्यानपूर्वक सुनता है। उदाहरण के लिए, जब किसी घड़े को सीधा रखा जाता है, तो उसमें डाला गया पानी स्थिर रहता है और बहता नहीं है। इसी प्रकार एक व्यक्ति धार्मिक प्रवचन आदि सुनने के लिए किसी मठ में जाता है। ऐसा व्यक्ति ही व्यापक बुद्धि वाला कहलाता है।

8. किस प्रकार का व्यक्ति इंद्रिय-इच्छाओं या पुनर्जन्मों के प्रति उदासीन नहीं होता?

धारा को प्राप्त करने वाला और एक बार जन्म लेने वाला - ये वे लोग हैं जो इंद्रिय-इच्छाओं या पुनर्जन्मों के प्रति उदासीन नहीं होते हैं।

ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो इंद्रिय-इच्छाओं के प्रति तो उदासीन रहता है, लेकिन पुनर्जन्मों के प्रति उदासीन नहीं रहता?

कभी न लौटने वाला व्यक्ति वह होता है जो उदासीन भी होता है और उदासीन नहीं भी।

किस प्रकार का व्यक्ति इंद्रिय-इच्छाओं और पुनर्जन्मों दोनों के प्रति उदासीन होता है?

अरहंत वह व्यक्ति होता है जो इस प्रकार उदासीन होता है।

9. किस प्रकार के व्यक्ति की तुलना पत्थर पर अंकित चिह्न से की जा सकती है?

यहां एक व्यक्ति बार-बार क्रोधित होता है और वह क्रोध लंबे समय तक बना रहता है।

लंबे समय तक, ठीक वैसे ही जैसे पत्थर पर उकेरा गया निशान इतना अमिट होता है कि उसे जल्दी मिटाया नहीं जा सकता।

हवा या पानी से, लेकिन यह लंबे समय तक रहता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति भी होता है, इत्यादि। ऐसा व्यक्ति पत्थर पर अंकित चिह्न के समान होता है।

किस प्रकार के व्यक्ति की तुलना पृथ्वी पर अंकित चिह्न से की जा सकती है?

यहां एक व्यक्ति बार-बार क्रोधित होता है, लेकिन यह क्रोध लंबे समय तक नहीं टिकता; उदाहरण के लिए, पृथ्वी पर बना कोई निशान हवा या पानी से जल्दी ही मिट जाता है और लंबे समय तक नहीं रहता; इसी प्रकार एक व्यक्ति है, इत्यादि। ऐसे व्यक्ति की तुलना पृथ्वी पर खींचे गए निशान से की जा सकती है।

किस प्रकार के व्यक्ति की तुलना पानी पर बने निशान से की जा सकती है?

यहां एक ऐसे व्यक्ति की बात हो रही है, जिसे कठोर, कठोर और अप्रिय तरीके से भी बात की जाए, तो भी वह अपनी बात को सुसंगत और स्पष्ट रखता है और दूसरों को भी प्रभावित करता है। जैसे पानी पर बना निशान जल्दी मिट जाता है और लंबे समय तक नहीं टिकता, वैसे ही एक व्यक्ति आदि। ऐसे ही व्यक्ति की तुलना पानी पर बने निशान से की जा सकती है।

10. तीन प्रकार के भांग के कपड़े के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं?

तीन प्रकार के बानग के कपड़े होते हैं: एक, हालांकि नया होता है, लेकिन उसका रंग फीका होता है, बनावट खुरदरी और सस्ता होता है। दूसरा, उसका रंग फीका होता है, छूने में खुरदुरा और सस्ता होता है। (तीसरा) फटा हुआ कपड़ा होता है, जिसका रंग फीका होता है, छूने में खुरदुरा और सस्ता होता है; वे इस फटे हुए बानग के कपड़े का उपयोग चावल उबालने के बर्तन को साफ करने के लिए करते हैं, या

इसे कूड़े के ढेर में फेंक देते हैं। ठीक इसी प्रकार भिक्षुओं में भी तीन प्रकार के लोग पाए जाते हैं, जिनकी तुलना इन बानग के कपड़ों से की जा सकती है। वे तीन कौन से हैं?

यदि कोई युवा बौद्ध भिक्षु अनैतिक और दुष्ट है, तो यह उसकी कृपाहीनता के कारण है। जैसे भांग का कपड़ा बदरंग होता है, वैसे ही यह व्यक्ति है। जो लोग उसकी सेवा करते हैं, उसका आदर करते हैं, उसकी पूजा करते हैं, वे उसके विचारों को अपना लेते हैं, जो अंततः उनके लिए हानिकारक और दीर्घकालिक कष्ट का कारण बनते हैं। यह उसकी कठोरता के कारण है। जैसे भांग का कपड़ा स्पर्श में खुरदरा होता है, वैसे ही यह व्यक्ति है। जिन लोगों से वह वस्त्र, भोजन, बिस्तर, आसन, चिकित्सा सामग्री और दवाइयाँ स्वीकार करता है, उन्हें उससे कोई बड़ा लाभ या फायदा नहीं होता - यह उस व्यक्ति के तुच्छ मूल्य के कारण है। जैसे भांग का कपड़ा तुच्छ मूल्य का होता है , वैसे ही यह व्यक्ति है। यदि कोई अधेड़ भिक्षु या वरिष्ठ भिक्षु अनैतिक और दुष्ट है, तो यह उसकी कृपाहीनता के कारण है । जैसे भांग का कपड़ा बदरंग होता है, वैसे ही यह व्यक्ति है। जो लोग उसकी सेवा करते हैं, उसका आदर करते हैं, उसकी पूजा करते हैं, उसके विचारों को अपना लेते हैं, उनके लिए यह हानिकारक और लंबे समय तक कष्ट का कारण बनता है। इसका कारण उसका कठोर स्वभाव है। जैसे भांग का कपड़ा छूने में खुरदुरा होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है। जो लोग ऐसे व्यक्ति से वस्त्र, भोजन, बिस्तर, आसन, चिकित्सा सामग्री और दवाइयाँ लेते हैं, उन्हें कोई बड़ा लाभ या फायदा नहीं होता । इसका कारण उस व्यक्ति का तुच्छ मूल्य है। जैसे वह कपड़ा तुच्छ होता है , वैसे ही यह व्यक्ति भी है। यदि ऐसा कोई अधेड़ या वृद्ध भिक्षु सभा में बोलता है, तो भिक्षु इस प्रकार कहते हैं, "तुम्हारे बोलने का क्या लाभ, तुम मूर्ख और अनुभवहीन हो, तुम बोलते भी क्यों हो?" वह क्रोधित और असंतुष्ट हो जाता है और ऐसे शब्द बोलता है कि भिक्षुओं की सभा उसे उसी प्रकार बाहर निकाल देती है जैसे भांग के कपड़े को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाता है। ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं जो भिक्षुओं के बीच रहते हैं और अपना जीवन व्यतीत करते हैं, जो भांग के कपड़े के एक टुकड़े के समान
हैं।

11. बनारस के कपड़े के समान तीन प्रकार के व्यक्ति कौन-कौन से हैं?

बनारस के कपड़े तीन प्रकार के होते हैं - एक बिल्कुल नया, सुंदर रंगों वाला, छूने में मुलायम और कीमती; दूसरा कपड़ा न तो नया होता है और न ही पुराना, लेकिन सुंदर रंगों वाला और छूने में मुलायम तथा बहुत कीमती; तीसरा कपड़ा घिसा-पिटा होता है, फिर भी रंगों में सुंदर और छूने में सुखद। वे घिसे-पिटे बनारस के कपड़े का इस्तेमाल गहने लपेटने के लिए करते हैं, या उसे सुगंधित संदूक में डाल देते हैं।

इसी प्रकार भिक्षुओं में बनारस के वस्त्र के समान तीन प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं, और वे तीन कौन से हैं? यदि कोई नया बौद्ध भिक्षु गुणी और सुंदर है, तो यह उसके भीतर के रंगों की सुंदरता के समान है। जैसे बनारस का वस्त्र सुंदर रंगों से रंगा होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है। जो लोग उसकी सेवा करते हैं, उसका आदर करते हैं, उसकी पूजा करते हैं, उसके साथ एक ही विचार रखते हैं, उनके लिए यह लंबे समय तक सुखदायी रहेगा। यह उसके साथ संपर्क के आनंद के कारण है। जैसे बनारस का वस्त्र स्पर्श में सुखद होता है, वैसे ही इस व्यक्ति का स्वरूप होना चाहिए। जो लोग उससे वस्त्र, भोजन, बिस्तर, आसन, चिकित्सा संबंधी सामान और दवाइयाँ स्वीकार करते हैं, उनके लिए यह बहुत लाभकारी और लाभदायक होता है। यह व्यक्ति के महान मूल्य के कारण है। जैसे बनारस का वस्त्र मूल्यवान है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है। (अगला,) यदि कोई मध्यम आयु का भिक्षु, और (अंत में,) यदि कोई वृद्ध भिक्षु गुणी और अच्छे स्वभाव का है, तो यह उसके सद्गुण के कारण है। जैसे बनारस का कपड़ा सुंदर रंगों का होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है। जो लोग उनकी सेवा करते हैं, उनका आदर करते हैं, उनकी पूजा करते हैं या उनके समान विचार रखते हैं, उनके लिए यह लंबे समय तक सुखदायी रहेगा। ऐसा उनके साथ संपर्क के आनंद के कारण है। जैसे बनारस का कपड़ा स्पर्श में सुखद होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी सौम्य स्वभाव का है। जो लोग ऐसे व्यक्ति से वस्त्र, भोजन, बिस्तर और आसन, चिकित्सा संबंधी सामान और दवाइयाँ स्वीकार करते हैं, उन्हें इससे बहुत लाभ और फायदा होता है। ऐसा इस व्यक्ति के उच्च गुणों के कारण है। जैसे बनारस का कपड़ा बहुमूल्य होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है। यदि ऐसा कोई वरिष्ठ भिक्षु भिक्षुओं की सभा में कुछ कहता है, तो भिक्षु सभा को संबोधित करते हुए कहते हैं, "आदरणीय भाइयों, कृपया शांत रहें, यह भिक्षु धर्म और अनुशासन के बारे में बात कर रहे हैं," और उनके शब्द उसी प्रकार हृदय में बस जाते हैं जैसे बनारस का कपड़ा सुगंधित संदूक में रखा जाता है।

भिक्षुओं में मौजूद तीन प्रकार के व्यक्ति बनारस के वस्त्र के समान हैं।

12. आसानी से परीक्षित होने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो अभिमानी, उद्दंड, चंचल, बातूनी, निरर्थक बातों वाला, भूलभुलैया में उलझा हुआ, लापरवाह, अस्थिर और भटकते दिमाग वाला है, जिसकी इंद्रियां अनियंत्रित हैं। ऐसे व्यक्ति का आसानी से आकलन किया जा सकता है।

एक ऐसा व्यक्ति जिसका मूल्यांकन करना कठिन हो, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?

यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो अभिमानी, उद्दंड, चंचल, बातूनी और निरर्थक नहीं है; जिसकी स्मृति सुगठित, सचेत, शांत और एकाग्र है तथा इंद्रियों पर नियंत्रण है। ऐसे व्यक्ति का आकलन करना कठिन है।

किस प्रकार के व्यक्ति का आकलन नहीं किया जा सकता?

एक ऐसा व्यक्ति है जो पापी प्रवृत्तियों के नष्ट होने पर, उनसे मुक्त होकर, स्वयं ही इस जीवन में मन और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को जान और अनुभव कर लेता है और उसी की प्राप्ति में जीवन व्यतीत करता है। ऐसा व्यक्ति अतुलनीय है।

13. किस प्रकार के व्यक्ति की सेवा, सम्मान या सेवा नहीं की जानी चाहिए?

यहां एक व्यक्ति नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि के मामले में निम्न स्तर का है। ऐसे व्यक्ति की सेवा, सम्मान या देखभाल केवल करुणावश ही की जानी चाहिए।

किस प्रकार के व्यक्ति की सेवा, सम्मान या सेवा की जानी चाहिए?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि के मामले में बिल्कुल समान है। ऐसे व्यक्ति की सेवा की जानी चाहिए, इत्यादि; और इसका क्या कारण है? "सद्गुणों के समान होने के कारण हमारे बीच सद्गुणपूर्ण चर्चा होगी जो हमारे लिए लाभकारी और हमारी उन्नति के लिए सहायक होगी; एकाग्रता के समान होने के कारण एकाग्रता पर भी सद्गुणपूर्ण चर्चा होगी; यह हमारे लिए लाभकारी और हमारी उन्नति के लिए सहायक होगी। और अंत में, अंतर्दृष्टि के समान होने के कारण हमारे बीच अंतर्दृष्टि पर सद्गुणपूर्ण चर्चा होगी; यह हमारे लिए लाभकारी और हमारी उन्नति के लिए सहायक होगी। और इसी कारण से ऐसे व्यक्ति की सेवा, संवर्धन और देखभाल की जानी चाहिए।"

जिस व्यक्ति को सम्मान और आदर प्राप्त हो, उसकी सेवा, देखभाल और सेवा करना किस प्रकार का व्यवहार है?

यहां एक व्यक्ति सद्गुण, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि में हमसे श्रेष्ठ है। ऐसे व्यक्ति का आदर करना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए और उनकी देखभाल करनी चाहिए। इसका कारण यह है कि "मैं उन अधूरे उपदेशों को पूरा करूंगा या उन अधूरे उपदेशों को सीखूंगा। या मैं एकाग्रता की उन शाखाओं को पूरा करूंगा जो अधूरी हैं, या मैं अंतर्दृष्टि की उन शाखाओं को सीखूंगा जिन्हें मैंने पूरा किया है; अंत में, क्योंकि मैं अंतर्दृष्टि के विकास के लिए भी ऐसा ही करूंगा।" इसलिए, ऐसे व्यक्ति का आदर और सम्मान करने के बाद, उनकी सेवा, विकास और देखभाल करनी चाहिए।

14. किस प्रकार के व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए, उससे संबंध नहीं रखना चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए?

यहां एक व्यक्ति अनैतिक, दुष्ट, अपवित्र आदतों और आचरण वाला, छिपे हुए कर्म करने वाला है; भिक्षु होने के अयोग्य होते हुए भी वह भिक्षु होने का दिखावा करता है; पवित्र जीवन न जीते हुए भी वह पवित्र जीवन जीने वाले का रूप धारण करता है; भीतर से भ्रष्ट, पापी इच्छाओं से भरा हुआ, वह ऐसा व्यक्ति है जिसमें गंदगी जमा हो गई है। ऐसे व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए, न ही उसका सम्मान करना चाहिए और न ही उसकी सेवा करनी चाहिए। इसका कारण क्या है? भले ही ऐसा व्यक्ति विधर्मी विचार न रखता हो, फिर भी उसकी बदनामी फैलती है; यह व्यक्ति पापी का मित्र है, पापी का साथी है और पापी से जुड़ा हुआ है। जैसे कोई सांप गंदगी में गिर जाए, तो भले ही वह काटेगा नहीं, फिर भी उस गंदगी से सना हुआ हो जाता है, उसी प्रकार भले ही ऐसा व्यक्ति विधर्मी विचार न रखता हो, आदि।

ऐसे व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए, उससे संबंध नहीं रखना चाहिए, उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए।

किस प्रकार के व्यक्ति के साथ उदासीनता का व्यवहार किया जाना चाहिए, उसकी सेवा नहीं की जानी चाहिए, उसका सम्मान नहीं किया जाना चाहिए, उसकी देखभाल नहीं की जानी चाहिए?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रोधी और चिड़चिड़ा है, जो थोड़ी सी भी बात कहे जाने पर तुरंत नाराज़, क्रोधित, परेशान और हठी हो जाता है और अपना क्रोध, शत्रुता और असंतोष प्रकट करता है। जैसे किसी सड़ी हुई पसली को लकड़ी या पत्थर से कुरेदने पर उसमें से बहुत सारा सड़ा हुआ पदार्थ निकलता है, ठीक वैसा ही एक व्यक्ति है। जैसे किसी जलते हुए अंगारे को लकड़ी या पत्थर से कुरेदने पर उसमें से सरसराहट की आवाज़ आती है, ठीक वैसा ही एक व्यक्ति है। जैसे गंदगी से भरे गड्ढे को लकड़ी या पत्थर से मथने पर उसमें से बहुत दुर्गंध आती है, ठीक वैसा ही एक व्यक्ति है। ऐसे व्यक्ति के साथ उदासीनता का व्यवहार करना चाहिए, इत्यादि, और इसका क्या कारण है? "क्योंकि क्रोध में आकर वह मेरी निंदा कर सकता है, मेरा उपहास कर सकता है और मुझे नुकसान पहुंचा सकता है।" इसलिए ऐसे व्यक्ति के साथ उदासीनता का व्यवहार किया जाना चाहिए, उसकी सेवा नहीं की जानी चाहिए, उससे संबंध नहीं रखा जाना चाहिए, उसकी देखभाल नहीं की जानी चाहिए।

किस प्रकार के व्यक्ति की सेवा, संवर्धन और देखभाल की जानी चाहिए?

यहां एक व्यक्ति गुणी और सौम्य स्वभाव का है। ऐसे व्यक्ति की सेवा, सम्मान और देखभाल करनी चाहिए; और क्यों? भले ही ऐसा व्यक्ति विधर्मी विचार रखता हो, फिर भी यह प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाएगी कि वह सौम्य व्यक्तियों का मित्र, सहयोगी और उनसे जुड़ा हुआ है। इसलिए, ऐसे व्यक्ति की सेवा, सम्मान और देखभाल करनी चाहिए।

15. वह किस प्रकार का व्यक्ति है जो नैतिक नियमों का पालन तो करता है, लेकिन एकाग्रता और अंतर्दृष्टि का अभ्यास अपूर्ण रूप से करता है?

धारा को प्राप्त करने वाला और एक बार लौटने वाला—ये वे व्यक्ति हैं जो नैतिक नियमों का पालन तो करते हैं, लेकिन एकाग्रता और अंतर्दृष्टि का अभ्यास अपूर्ण रूप से करते हैं।

वह किस प्रकार का व्यक्ति है जो नैतिक नियमों का पालन करता है और एकाग्रता के अभ्यासों को पूरा करता है, लेकिन अंतर्दृष्टि का अभ्यास अपूर्ण रूप से करता है?

जो व्यक्ति नैतिक नियमों का पालन करता है और एकाग्रता का अभ्यास पूरा करता है, लेकिन अंतर्दृष्टि का अभ्यास अपूर्ण रूप से करता है, वह कभी वापस न लौटने वाला व्यक्ति होता है।
वह व्यक्ति किस प्रकार का है जो नैतिक नियमों का पालन करता है और एकाग्रता एवं अंतर्दृष्टि का अभ्यास पूर्ण रूप से करता है?
अरहंत वह व्यक्ति होता है जो नैतिक नियमों का पालन करता है और उन प्रथाओं को पूर्ण करता है।
16. वे तीन शिक्षक कौन हैं?
यहां एक शिक्षक इंद्रिय-इच्छाओं की समझ प्रस्तुत करते हैं, लेकिन न तो इंद्रिय-संबंधी विषयों की और न ही भावनाओं की। वहीं, एक अन्य शिक्षक पहले दो की समझ प्रस्तुत करते हैं, लेकिन अंतिम की नहीं, और अंत में एक शिक्षक हैं जो तीनों की समझ प्रस्तुत करते हैं। अब, यहां प्रथम कोटि के शिक्षक से तात्पर्य उस शिक्षक से है जिसने रूप-जगत (रूप-जगत) से संबंधित परमानंद की अवस्था प्राप्त कर ली है।
फिर से, द्वितीय कोटि के शिक्षक को ऐसे शिक्षक के रूप में समझा जाना चाहिए जिसने निराकार जगत (अरूप जगत) से संबंधित परमानंदमय ध्यान की अवस्था प्राप्त कर ली हो।
अंत में, तीसरे क्रम के शिक्षक को समझना होगा।
एक पूर्णतः प्रबुद्ध शिक्षक के रूप में। ये तीन हैं।
17. अन्य तीन शिक्षक कौन हैं?
यहां एक शिक्षक आत्मा को वर्तमान जीवन और भविष्य के जीवन दोनों में वास्तविक और स्थायी मानता है। वहीं, एक अन्य शिक्षक आत्मा को इस संसार के संदर्भ में वास्तविक और स्थायी मानता है, लेकिन भविष्य के किसी भी अस्तित्व के संदर्भ में ऐसा नहीं कहता। अंत में, एक शिक्षक इसे न तो वर्तमान जीवन और न ही भविष्य के जीवन के संदर्भ में वास्तविक और स्थायी मानता है। यहां प्रथम कोटि के शिक्षक से तात्पर्य उस शिक्षक से है जो शाश्वतवाद के सिद्धांत का समर्थन करता है।
दूसरे दर्जे के शिक्षक से तात्पर्य ऐसे शिक्षक से है जो विनाशवाद के सिद्धांत का समर्थन करता है।
अंत में, तीसरे क्रम के शिक्षक से तात्पर्य उस शिक्षक से है जो पूर्णतः प्रबुद्ध हो।
ये अन्य तीन शिक्षक हैं।
तीन के आधार पर समूहीकरण का विवरण यहीं समाप्त होता है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय** 4
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय IV: मानव प्रकारों का चार भागों में विभाजन

1. किस प्रकार का व्यक्ति अच्छा पुरुष नहीं होता?
यहां एक व्यक्ति जीवन का नाश करने वाला, बिना माँगे वस्तुएँ लेने वाला, कामुक इच्छाओं में लिप्त रहने वाला, झूठा और मादक पेय पदार्थों का सेवन करने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति ही 'अच्छा मनुष्य नहीं' कहलाता है।

'बुरे आदमी' से भी ज्यादा 'बुरा आदमी' किस तरह का व्यक्ति होता है?
यहां एक व्यक्ति स्वयं जीवन का विनाशक है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है; वह स्वयं बिना हक के चीजें लेता है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं कामुक इच्छाओं के मामले में दुराचार करता है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है; वह स्वयं झूठ बोलता है और दूसरों को भी झूठ बोलने के लिए उकसाता है; वह स्वयं मादक पेय पदार्थों का सेवन करता है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है। ऐसा व्यक्ति 'बुरे आदमी' से भी अधिक 'बुरा आदमी' कहलाता है।

एक अच्छा इंसान किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां जो व्यक्ति जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, बिना दी हुई वस्तु लेने से परहेज करता है, इंद्रिय सुखों के मामले में दुराचार से परहेज करता है, और अंत में, मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज करता है, उसे ही अच्छा व्यक्ति कहा जाता है।

एक अच्छे इंसान से बेहतर इंसान कौन हो सकता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वयं जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज करता है, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं इंद्रिय सुखों में लिप्त होने से परहेज करता है, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं झूठ बोलने से परहेज करता है, और दूसरों को

भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज करता है, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। ऐसे व्यक्ति को भले व्यक्ति से भी श्रेष्ठ कहा जाता है।

2. दुष्ट व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति जीवन का संहारक, दूसरों की दी हुई वस्तुएँ लेने वाला, इंद्रिय सुखों में लिप्त, झूठा, निंदक, कठोर शब्द बोलने वाला, चुगलखोर, लालची, द्वेषपूर्ण विचारों वाला और झूठे सिद्धांतों का समर्थक है। ऐसे व्यक्ति को दुष्ट कहा जाता है।

दुष्टों से भी अधिक दुष्ट कौन हो सकता है?

यहां एक व्यक्ति स्वयं जीवन का विनाश करते हुए दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है; जो वस्तुएँ उसे नहीं मिलीं, उन्हें वह स्वयं ग्रहण करके दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है; जो स्वयं कामुक सुखों में लिप्त होकर दूसरों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता है; जो स्वयं झूठ बोलता है, वह दूसरों को भी झूठ बोलने के लिए उकसाता है; जो स्वयं निंदा करता है, वह दूसरों को भी निंदा करने के लिए उकसाता है; जो स्वयं कठोर भाषा का प्रयोग करता है, वह दूसरों को भी कठोर भाषा का प्रयोग करने के लिए उकसाता है; जो स्वयं चुगलखोर है, वह दूसरों को भी चुगलखोरी के लिए उकसाता है; जो स्वयं लालची है, वह दूसरों को भी लालची होने के लिए उकसाता है; जो स्वयं द्वेषपूर्ण स्वभाव का है, वह दूसरों को भी द्वेषपूर्ण होने के लिए उकसाता है; जो स्वयं गलत विचारों का समर्थक है, वह दूसरों को भी ऐसे विचार रखने के लिए उकसाता है। ऐसे व्यक्ति को दुष्टों से भी अधिक दुष्ट कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति सौम्य स्वभाव का होता है?
यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो जीव-जंतुओं की हत्या करने से परहेज करता है, बिना माँगे कुछ लेने से परहेज करता है, इंद्रिय सुखों में लिप्त होने से परहेज करता है, झूठ बोलने से परहेज करता है, निंदात्मक भाषा का प्रयोग करने से परहेज करता है, चुगली करने से परहेज करता है, लोभी या द्वेषी नहीं होता, और सही विचारों का समर्थक होता है। ऐसे व्यक्ति को सौम्य स्वभाव का कहा जाता है।

मनभावन स्वभाव वाले व्यक्ति से अधिक मनभावन और कौन हो सकता है?

यहां एक व्यक्ति स्वयं जीवन का विनाश करने से परहेज करता है और दूसरों को भी हत्या न करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं अनचाही वस्तुओं को लेने से परहेज करता है और दूसरों को भी अनचाही वस्तुओं को लेने से परहेज करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं इंद्रिय सुखों में लिप्त होने से परहेज करता है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है... और दूसरों को सही मार्ग की ओर प्रेरित करता है। ऐसा व्यक्ति स्वभाव से भी अधिक सुंदर होता है।

3. दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति किस प्रकार का होता है? दुष्ट व्यक्ति से भी अधिक दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति किस प्रकार का होता है? सुंदर स्वभाव का व्यक्ति किस प्रकार का होता है? सुंदर स्वभाव के व्यक्ति से भी अधिक सुंदर स्वभाव का व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
उत्तर 2 के अनुसार।

4. किस प्रकार का व्यक्ति दोषी होता है?
यहां एक व्यक्ति ने निंदनीय कर्म, वाणी और विचार किए हैं। ऐसा व्यक्ति ही निंदनीय कहलाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति अत्यधिक निंदनीय होता है?
यहां एक व्यक्ति के कर्म, वाणी और विचार निंदनीय अधिक हो गए हैं और निर्दोष कर्म, वाणी और विचार कम। ऐसे व्यक्ति को ही अत्यंत निंदनीय कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति कम दोषी होता है?
यहां एक व्यक्ति का आचरण, वाणी और विचार अधिक निंदनीय और आचरण, वाणी और विचार कम हो गया है। ऐसे व्यक्ति को कम निंदनीय कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति निर्दोष होता है?
यहां एक व्यक्ति का आचरण, वाणी और विचार निष्कलंक हैं। ऐसे व्यक्ति को निष्कलंक कहा जाता है।

5. किस प्रकार का व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने में तेज होता है?

जो व्यक्ति सिद्धांत के प्रतिपादन के समय उसे समझ लेता है, उसे शीघ्रता से सीखने वाला कहा जाता है।

किस प्रकार के व्यक्ति व्याख्या के माध्यम से सीखते हैं?
जिस व्यक्ति को संक्षेप में कही गई बात के अर्थ का विस्तार से विश्लेषण करने पर सिद्धांत की समझ आती है।

जो व्यक्ति बहकावे में आ सकता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
जो व्यक्ति पाठ करने, प्रश्न पूछने, गंभीर ध्यान देने और प्यारे मित्रों की सेवा करने, उनसे संबंध बनाने और उनकी सेवा करने से सिद्धांत को समझ पाता है, वही व्यक्ति मार्गदर्शित हो सकता है।

वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जिसके लिए शब्द ही सर्वोपरि होते हैं?
जिस व्यक्ति को इस जीवन में सिद्धांतों की समझ नहीं आती, चाहे वह कितना भी सुने, बोले, याद रखे या सुनाए, उसे ऐसा व्यक्ति कहा जाता है जिसके लिए शब्द ही सर्वोपरि है।

6. वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो गुस्सा तो करता है लेकिन तुरंत जवाब नहीं देता?
यहां एक व्यक्ति प्रश्न पूछे जाने पर सही उत्तर तो देता है, लेकिन तुरंत नहीं। ऐसे व्यक्ति को वह कहा जाता है जो तुरंत प्रतिक्रिया तो नहीं देता, लेकिन गुस्सा जरूर करता है।

वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो तुरंत जवाब तो देता है लेकिन उचित जवाब नहीं देता?
यहां एक व्यक्ति प्रश्न पूछे जाने पर तुरंत उत्तर देता है, लेकिन उचित उत्तर नहीं देता। ऐसे व्यक्ति को त्वरित उत्तर देने वाला, लेकिन अनुपयुक्त उत्तर देने वाला कहा जाता है।
जो व्यक्ति तुरंत और सटीक जवाब देता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति जो प्रश्न पूछे जाने पर तुरंत और सटीक उत्तर देता है, उसे सटीक और त्वरित उत्तर देने वाला व्यक्ति कहा जाता है।

वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो न तो उचित उत्तर देता है और न ही शीघ्र उत्तर देता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति जो किसी प्रश्न का उत्तर न तो शीघ्रता से देता है और न ही उचित तरीके से, उसे ऐसा व्यक्ति कहा जाता है जो न तो उचित उत्तर देता है और न ही तुरंत जवाब देता है।

7. धम्म के चार प्रचारक कौन हैं?
यहां एक धार्मिक शिक्षक बहुत कम और अप्रासंगिक बातें बोलता है, और श्रोतागण यह तय करने में सक्षम नहीं हो पाते कि क्या प्रासंगिक है और क्या नहीं। ऐसे शिक्षक को, इस प्रकार के श्रोतागण में, 'मानदंड' का उपदेशक माना जाता है।
यहां एक विशिष्ट धार्मिक शिक्षक कम बोलता है और जो प्रासंगिक होता है वही बोलता है, और सभा को यह निर्णय करने का अधिकार है कि क्या प्रासंगिक है और क्या नहीं। ऐसे शिक्षक को, ऐसी सभा में, 'मानदंड' का उपदेशक माना जाता है।
यहां एक धार्मिक शिक्षक बहुत कुछ बोलता है, जो कि अप्रासंगिक होता है, और श्रोतागण यह समझने में असमर्थ होते हैं कि क्या प्रासंगिक है और क्या नहीं। ऐसे व्यक्ति को, इस प्रकार के श्रोतागण में, 'मानदंड' का उपदेशक माना जाता है।
यहाँ भी एक धार्मिक शिक्षक बहुत कुछ बोलता है और प्रासंगिक बातें कहता है, और सभा को यह निर्णय करने की क्षमता है कि क्या प्रासंगिक है और क्या नहीं। इस प्रकार का शिक्षक, इस सभा में, उपदेशक के रूप में कार्य करता है।
'नॉर्म।' ये चार धार्मिक उपदेशक हैं।

8. बादल के समान चार प्रकार के व्यक्ति कौन-कौन से हैं?
बादल चार प्रकार के होते हैं: वो जो गरजते हैं लेकिन वर्षा नहीं करते, वो जो वर्षा करते हैं लेकिन गरजते नहीं, वो जो गरजते और वर्षा दोनों करते हैं, और वो जो न तो गरजते हैं और न ही वर्षा करते हैं। इसी प्रकार इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं जो इन चार प्रकार के बादलों के समान हैं। और वे कौन हैं? वो जो गरजते हैं लेकिन वर्षा नहीं करते, वो जो वर्षा करते हैं लेकिन गरजते नहीं, वो जो वर्षा और गरज दोनों करते हैं, और वो जो न तो गरजते हैं और न ही वर्षा करते हैं।

वह कैसा व्यक्ति है जो गरजता तो है लेकिन बारिश नहीं करता?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने कथनी और करनी में एकरूपता नहीं दिखाता। ऐसे व्यक्ति को गरजने वाला लेकिन बारिश न करने वाला कहा जाता है। ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है, जैसे गरजने वाला बादल बारिश न करे।

वह व्यक्ति किस प्रकार का है जो बारिश तो करवाता है लेकिन बिजली नहीं कड़कता?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो कार्य तो करता है लेकिन बोलता नहीं। ऐसे व्यक्ति को 'बारिश करने वाला लेकिन गरजने वाला नहीं' कहा जाता है। जैसे बादल बारिश करते हैं लेकिन गरजते नहीं, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो बारिश के साथ-साथ बिजली भी गरजता है?
यहां एक खास व्यक्ति बोलता और काम करता है। ऐसे व्यक्ति को गर्जना करने वाला और वर्षा लाने वाला कहा जाता है। जैसे बादल गर्जना और वर्षा लाते हैं, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

वह कैसा व्यक्ति है जो न तो गरजता है और न ही बारिश करता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो न बोलता है और न ही कार्य करता है। ऐसे व्यक्ति को गरजने वाला और न ही वर्षा करने वाला कहा जाता है। जैसे बादल न तो गरजता है और न ही वर्षा करता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।
ये चार प्रकार के पुरुष हैं जो इस संसार में बादल के समान पाए जाते हैं।

9. ऐसे कौन से चार प्रकार के व्यक्ति हैं जिनकी तुलना चूहों से की जा सकती है?
चूहे चार प्रकार के होते हैं - वे जो अपने बिल खोदते हैं लेकिन उनमें नहीं रहते; वे जो बिलों में रहते हैं लेकिन उन्हें स्वयं नहीं खोदते; वे जो अपने खोदे हुए बिलों में रहते हैं; वे जो न तो अपने लिए बिल खोदते हैं और न ही उनमें रहते हैं।
इसी प्रकार इस संसार में चार प्रकार के ऐसे व्यक्ति पाए जाते हैं जिनकी तुलना चूहों से की जा सकती है। वे चारों कौन से हैं?
वे जिन्होंने गड्ढे खोदे हैं लेकिन उनमें रहते नहीं। वे जो रहते हैं लेकिन गड्ढे नहीं खोदते। वे जो गड्ढे खोदते भी हैं और रहते भी हैं। वे जो न तो गड्ढे खोदते हैं और न ही रहते हैं।

वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो गड्ढा तो खोदता है लेकिन उसमें रहता नहीं है?
यहां एक व्यक्ति सुत्त, गेय्या, व्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अभिधम्म, वेदल्ल आदि सिद्धांतों में पारंगत तो है, पर फिर भी वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख निवारण के मार्ग को सही मायने में नहीं समझ पाता। ऐसा व्यक्ति गड्ढा खोदने वाला तो है, लेकिन उसमें रहने वाला नहीं। जैसे चूहा गड्ढा खोदकर उसमें रहता नहीं, वैसे ही यह व्यक्ति है।

वह व्यक्ति किस प्रकार का है जो गड्ढे में रहता है लेकिन उसे खोदता नहीं है?
यहां एक व्यक्ति सूत्रों आदि से युक्त किसी सिद्धांत में पारंगत नहीं होता, परन्तु वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख निवारण के मार्ग को सत्यतः भलीभांति जान लेता है। ऐसा व्यक्ति केवल रहने वाला होता है, गड्ढा खोदने वाला नहीं। जैसे चूहा बिना खोदे गड्ढे में रहता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति है।

एक ऐसा व्यक्ति जो खुदाई करने के साथ-साथ रहने का काम भी करता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक व्यक्ति सूत्र आदि के सिद्धांतों का अध्ययन करता है और दुख आदि का वास्तविक अनुभव प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति खोदने वाला और उसमें रहने वाला दोनों होता है। जैसे चूहा अपना बिल खोदकर उसमें रहता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो न तो खुदाई करने वाला है और न ही रहने वाला?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो न तो सिद्धांत सीखता है, न ही दुख आदि का वास्तविक अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति न तो गड्ढा खोदने वाला है और न ही उसमें रहने वाला। जैसे चूहा न तो गड्ढा खोदता है और न ही उसमें रहता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति है।
इस संसार में रहने वाले चार प्रकार के व्यक्ति चूहों के समान हैं।

10. आम के समान चार प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं?
चार प्रकार के आम होते हैं - कच्चे लेकिन पके रंग के; पके रंग के लेकिन कच्चे; कच्चे और कच्चे रंग के; पके और पके रंग के। इसी प्रकार, इस संसार में चार ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी तुलना आम से की जा सकती है। वे कौन से हैं? एक कच्चा लेकिन पके रंग का; एक पका लेकिन कच्चे रंग का; एक कच्चा और कच्चे रंग का; एक पका और पके रंग का।

कोई व्यक्ति अपरिपक्व होते हुए भी पके हुए रंग का कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति आगे-पीछे चलते समय, इधर-उधर देखते समय, बाहें फैलाते या मोड़ते समय, और यहां तक कि ऊपरी वस्त्र या साधारण वस्त्र पहने और भिक्षापात्र पकड़े हुए भी सुंदर दिखाई देता है। वह वास्तव में दुख आदि को नहीं समझता। वह दुख की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी नहीं समझता। ऐसा व्यक्ति अपरिपक्व होते हुए भी पका हुआ दिखता है। जैसे एक आम कच्चा होते हुए भी पका हुआ दिखता है, वैसे ही यह व्यक्ति है।

कोई व्यक्ति परिपक्व होते हुए भी अपरिपक्व रंग का कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति आगे-पीछे चलते समय, इधर-उधर देखते समय, बाहें फैलाते या मोड़ते समय, और यहां तक कि ऊपरी वस्त्र या साधारण वस्त्र पहने और भिक्षापात्र पकड़े हुए भी सुंदर नहीं दिखता, बल्कि वह वास्तव में दुःख को अनुभव करता है। ऐसा व्यक्ति परिपक्व होते हुए भी अपरिपक्व दिखता है। जैसे एक आम पका हुआ होते हुए भी अपरिपक्व दिखता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

कोई व्यक्ति अपरिपक्व और अपरिपक्व रंग का कैसे हो सकता है?
यहां किसी व्यक्ति का आगे-पीछे चलना-फिरना, भिक्षापात्र थामना आदि सुशोभनीय है। वह वास्तव में दुःख आदि को नहीं समझता। जैसे कच्चा और हरा आम होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

परिपक्व और परिपक्व रंग वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां किसी व्यक्ति की आगे-पीछे की गतिविधियां, भिक्षापात्र धारण करना आदि सभी सुंदर हैं। वह वास्तव में दुख आदि को अनुभव करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति परिपक्व और सजीव है।

और पके हुए रंग का भी। जैसे एक आम पका हुआ और पके हुए रंग का होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।
इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं जिनकी तुलना आम से की जा सकती है।

11. घड़े के समान चार प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं? चार प्रकार के घड़े होते हैं - एक जो खाली है लेकिन अच्छी तरह से ढका हुआ है; एक जो भरा हुआ है लेकिन खुला हुआ है; एक जो खाली भी है और खुला हुआ है; एक जो भरा हुआ भी है और ढका हुआ है। इसी प्रकार, इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं जिनकी तुलना घड़े से की जा सकती है।

वे चार क्या हैं? खाली लेकिन ढका हुआ; भरा हुआ और
खुला हुआ; खाली और साथ ही खुला हुआ; भरा हुआ और साथ ही ढका हुआ।

कोई व्यक्ति खाली होते हुए भी ढका हुआ कैसे हो सकता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां, आदि, अत्यंत सुंदर हैं; वह वास्तव में दुःख को नहीं समझता। ऐसा व्यक्ति खोखला है, पर आवरण से ढका हुआ है। जैसे घड़ा खोखला होता है, पर आवरण से ढका हुआ होता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

किस प्रकार का व्यक्ति पूर्ण और नग्न होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां, आदि, सुशोभनीय नहीं हैं (iv, 10 b)। वह वास्तव में दुख को उसके वास्तविक रूप में अनुभव करता है, इत्यादि। इस प्रकार वह पूर्ण और खुला हुआ है। जैसे घड़ा भरा हुआ और खुला हुआ है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

किस प्रकार का व्यक्ति खोखला और साथ ही खुला हुआ होता है?
यहां एक ऐसे व्यक्ति की बात हो रही है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां न तो सुंदर हैं और न ही वह वास्तव में दुख आदि को महसूस करता है। ऐसा व्यक्ति खाली और खुला हुआ है। जैसे घड़ा खाली और खुला होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

किस प्रकार का व्यक्ति पूर्ण होने के साथ-साथ ढका हुआ भी होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां, आदि, अत्यंत सुंदर हैं। वह वास्तव में दुःख को उसके वास्तविक स्वरूप में अनुभव करता है। इस प्रकार, एक व्यक्ति पूर्ण होने के साथ-साथ ढका हुआ भी होता है, जैसे एक घड़ा भरा होने के साथ-साथ ढका हुआ भी होता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।
इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं जिनकी तुलना एक घड़े से की जा सकती है।

12. तुलनीय चार प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं?
पानी के कुंड में?
चार प्रकार के तालाब: उथले लेकिन गहरे प्रतीत होने वाले; गहरे लेकिन उथले प्रतीत होने वाले; उथले और दिखने में उथले; अंत में, गहरे और दिखने में गहरे।
इसी प्रकार इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं जिनकी तुलना तालाबों से की जा सकती है।

चार प्रकार क्या हैं? - उथला लेकिन गहरा प्रतीत होने वाला; गहरा लेकिन उथला प्रतीत होने वाला; उथला और उथला प्रतीत होने वाला; अंत में, गहरा और गहरा प्रतीत होने वाला।
वह व्यक्ति किस प्रकार का होता है जो सतही तो होता है लेकिन अंदर से गहरा प्रतीत होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां आदि [देखें 4-10 (ए.)] वास्तव में दुख आदि को नहीं समझतीं। ऐसा व्यक्ति सतही होता है पर गहरा प्रतीत होता है। जैसे तालाब उथला होता है पर गहरा प्रतीत होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है।
किस तरह का व्यक्ति गहरा होता है लेकिन सतही प्रतीत होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की गतिविधियां, आदि, वास्तव में दुख आदि को महसूस करती हैं। ऐसा व्यक्ति गहरा होता है लेकिन सतही प्रतीत होता है। जैसे तालाब गहरा होता है लेकिन उथला प्रतीत होता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।
किस प्रकार का व्यक्ति सतही होता है और सतही प्रतीत होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी चाल-ढाल, भिक्षापात्र धारण करने का तरीका, सुशोभनीय नहीं है, और जो दु:ख को भी नहीं समझता। ऐसा व्यक्ति सतही है और सतही प्रतीत होता है। जैसे एक छोटा तालाब उथला होता है और उथला प्रतीत होता है, वैसे ही यह व्यक्ति है।
किस प्रकार का व्यक्ति गंभीर होता है और गंभीर प्रतीत होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आगे-पीछे की चाल-ढाल, भिक्षापात्र धारण करना आदि सभी कार्य सुंदर हैं, साथ ही वह दुख को उसके वास्तविक स्वरूप में भी भलीभांति जानता है। वह यह भलीभांति जानता है कि यही दुख के निवारण का मार्ग है। ऐसा व्यक्ति गहरा है और गहरा प्रतीत भी होता है। जैसे तालाब गहरा होता है और गहरा प्रतीत होता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी गहरा है।

13. वे चार व्यक्ति कौन से हैं जिनकी तुलना बैल से की जा सकती है? बैल चार प्रकार के होते हैं: - अपने झुंड के लिए उपद्रवी, परन्तु दूसरे झुंड के लिए नहीं; दूसरे झुंड के लिए उपद्रवी, परन्तु अपने झुंड के लिए नहीं; अपने और दूसरे दोनों झुंडों के लिए उपद्रवी; न अपने झुंड के लिए उपद्रवी, न दूसरे झुंड के लिए। इसी प्रकार, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति मौजूद हैं जिनकी तुलना बैल से की जा सकती है। वे चार क्या हैं? मंडली में उपद्रवी लेकिन बाहर नहीं; मंडली के बाहर उपद्रवी लेकिन अंदर नहीं; मंडली के अंदर और बाहर दोनों जगह उपद्रवी; न तो अपनी मंडली में उपद्रवी और न ही किसी दूसरी मंडली में उपद्रवी।

कोई व्यक्ति अपनी मंडली में उपद्रवी कैसे हो सकता है लेकिन उसके बाहर नहीं?
यहां एक व्यक्ति अपनी मंडली में तो उपद्रव मचाता है, लेकिन दूसरी मंडली में नहीं। ऐसा व्यक्ति अपनी मंडली में उपद्रवी होता है, लेकिन दूसरी में नहीं। जैसे एक बैल अपने झुंड में उपद्रवी होता है, लेकिन दूसरे झुंड में नहीं, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

कोई व्यक्ति बाहर तो उपद्रवी हो सकता है, लेकिन अपनी ही मंडली में नहीं?
यहां एक व्यक्ति दूसरे समुदाय में उपद्रव मचाता है, लेकिन अपने समुदाय में नहीं। ऐसा व्यक्ति बाहर तो उपद्रवी है, लेकिन अपने समुदाय में नहीं। जैसे वह बैल बाहर तो उपद्रवी है, लेकिन अपने झुंड में नहीं, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है।

कोई व्यक्ति अपनी मंडली के अंदर और बाहर दोनों जगह उपद्रवी कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति अपने समुदाय के भीतर और बाहर दोनों जगह उपद्रव पैदा करता है। ऐसा व्यक्ति अपने समुदाय के भीतर और बाहर दोनों जगह उपद्रव का कारण बनता है। जिस प्रकार वह बैल अपने झुंड के भीतर और बाहर दोनों जगह उपद्रव करता है, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।

कोई व्यक्ति न तो अपनी मंडली के लिए और न ही दूसरी मंडली के लिए उपद्रवी कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति न तो अपनी मंडली में और न ही दूसरी मंडली में उपद्रव करता है। ऐसे व्यक्ति को न तो अपनी मंडली के लिए और न ही दूसरी मंडली के लिए विपत्तिकारी कहा जाता है। जिस प्रकार वह बैल न तो अपने झुंड के लिए और न ही दूसरे झुंड के लिए विपत्तिकारी है, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।
ये चार प्रकार के व्यक्ति हैं, जो इस संसार में रहते हैं और अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं, जिनकी तुलना बैल से की जा सकती है।

14. सर्प के समान चार प्रकार के व्यक्ति कौन-कौन से हैं?
चार प्रकार के सांप:- शीघ्र विषैला लेकिन कम तीव्र विषैला; तीव्र विषैला लेकिन शीघ्र विषैला नहीं; शीघ्र और तीव्र विषैला दोनों; न शीघ्र विषैला और न तीव्र विषैला।
इसी प्रकार, इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं, जिनकी तुलना सर्प से की जा सकती है। वे चार कौन से हैं? शीघ्र लेकिन प्रबल विष वाले व्यक्ति; प्रबल लेकिन न शीघ्र विष वाले व्यक्ति; शीघ्र और प्रबल विष वाले व्यक्ति; और न शीघ्र और न प्रबल विष वाले व्यक्ति।

किस प्रकार का व्यक्ति ऐसा होता है जिसका जहर जल्दी असर करता है लेकिन ज्यादा तीव्र नहीं होता?
यहां एक व्यक्ति बार-बार क्रोधित होता है, लेकिन उसका क्रोध अधिक देर तक नहीं टिकता। ऐसा व्यक्ति शीघ्र विषाणु तो है, लेकिन तीव्र विषाणु नहीं। जिस प्रकार उस सर्प का विष शीघ्र विषाणु तो है, लेकिन तीव्र विषाणु नहीं, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।

किस प्रकार का व्यक्ति शक्तिशाली होता है लेकिन उसका विष शीघ्र प्रकट नहीं होता?
यहां एक खास तरह का व्यक्ति बार-बार क्रोधित नहीं होता, लेकिन जब वह क्रोधित होता है तो उसका क्रोध काफी लंबे समय तक बना रहता है। जिस प्रकार उस सांप का विष तीव्र होता है लेकिन तुरंत असर नहीं करता, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।

किस प्रकार का व्यक्ति त्वरित और तीव्र विष उत्पन्न कर सकता है?
यहां एक व्यक्ति बार-बार क्रोधित होता है, उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है; ऐसा व्यक्ति शीघ्र और तीव्र विष का जनक होता है। जिस प्रकार उस सर्प का विष शीघ्र और तीव्र होता है, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।

ऐसा व्यक्ति किस प्रकार का होता है जिसका विष न तो शीघ्र होता है और न ही तीव्र?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो न तो बार-बार क्रोधित होता है और न ही उसका क्रोध लंबे समय तक बना रहता है। ऐसा व्यक्ति न तो शीघ्र विषैला होता है और न ही प्रचंड विषैला। जिस प्रकार सर्प का विष न तो शीघ्र विषैला होता है और न ही प्रचंड विषैला, ठीक उसी प्रकार यह व्यक्ति भी है।
इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं, जिनकी तुलना सर्प से की जा सकती है।

15. जो व्यक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है, वह उसके स्वभाव की जांच-पड़ताल किए बिना कैसे प्रशंसा का पात्र हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति विधर्मियों या उनके शिष्यों की प्रशंसा करता है, जिनका आचरण कुटिल या अनुचित है, और कहता है कि उनका आचरण उत्तम और उचित है। ऐसा व्यक्ति प्रशंसा के अयोग्य व्यक्ति की प्रशंसा बिना उसके स्वभाव की जांच-परख किए करता है।

जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की निंदा करता है, वह बिना उसकी प्रकृति की जांच-पड़ताल किए प्रशंसा के योग्य कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति उन बुद्धों और उनके शिष्यों की निंदा करता है जो वास्तव में अपने आचरण में सुव्यवस्थित हैं, यह कहते हुए कि उनका आचरण गलत और कुप्रबंधित है। ऐसा व्यक्ति प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा बिना उसके स्वभाव की जांच-परख किए करता है।

जो व्यक्ति किसी असंतोषजनक चीज की जांच-पड़ताल किए बिना ही उससे संतुष्टि व्यक्त करता है, वह व्यक्ति कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति गलत और बुरे मार्ग में संतुष्टि पाता है, यह कहते हुए कि यही अच्छा मार्ग है, यही सही मार्ग है। ऐसा व्यक्ति वह है जो बिना जांच-पड़ताल किए किसी असंतोषजनक चीज में संतुष्टि पाता है।

जो व्यक्ति बिना पूछताछ किए, संतोषजनक चीज से असंतुष्टि व्यक्त करता है, वह कैसा व्यक्ति है?
यहां एक व्यक्ति अच्छे और सही मार्ग में भी असंतोष पाता है, यह कहते हुए कि यह बुरा मार्ग है, यह गलत मार्ग है। ऐसा व्यक्ति वह है जो असंतोष पाता है, इत्यादि।

16. किसी व्यक्ति के स्वभाव की जांच-पड़ताल करने के बाद, कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा कैसे कर सकता है जो प्रशंसा के योग्य नहीं है?
यहां एक व्यक्ति विधर्मियों या उनके शिष्यों की निंदा करते हुए उचित ही कह रहा है, जो आचरण के मामले में गलत और कुप्रथाओं का पालन करते हैं, और उनका आचरण कुरूप और अनुचित है। इस प्रकार, कोई व्यक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति की निंदा करते हुए उसके स्वभाव की जांच-परख कर रहा है।

किसी प्रशंसनीय व्यक्ति के स्वभाव की जांच-पड़ताल और छानबीन करने के बाद कोई व्यक्ति उसकी प्रशंसा में वक्ता कैसे बन सकता है?
यहां एक व्यक्ति बुद्धों और उनके शिष्यों की प्रशंसा में उचित रूप से बोलता है, जो आचरण में उत्तम और पूर्ण रूप से अनुशासित हैं, और कहता है कि उनका आचरण उत्तम और पूर्ण है। ऐसा व्यक्ति किसी प्रशंसनीय व्यक्ति की प्रशंसा में बोलने वाला वक्ता है, जिसने (उसके स्वभाव की) गहन जांच-पड़ताल की है।

जो व्यक्ति किसी असंतोषजनक चीज के बाद भी असंतुष्टि पाता है, वह ऐसा व्यक्ति कैसे हो सकता है?

यहां एक व्यक्ति गलत मार्ग पर चलकर असंतोष व्यक्त करता है और कहता है कि यह बुरा मार्ग है, यह गलत मार्ग है। ऐसा व्यक्ति ही असंतोष व्यक्त करने वाला कहलाता है।

वह व्यक्ति कैसा होता है जो किसी चीज की जांच-पड़ताल और गहन छानबीन करने के बाद उसमें संतुष्टि पाता है?
यहां एक व्यक्ति अच्छे और सही मार्ग में संतुष्टि पाता है, और कहता है, यही अच्छा मार्ग है, यही सही मार्ग है। ऐसा व्यक्ति वह है जो संतुष्टि पाने के बाद किसी संतोषजनक चीज में संतुष्टि पाता है, इत्यादि।

17. जो व्यक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति की निंदा करता है, वह प्रशंसा का पात्र कैसे हो सकता है? वह व्यक्ति सही समय पर उसके बारे में सत्य और सत्य बात कहता है, परन्तु उसी प्रकार प्रशंसनीय बातों की प्रशंसा नहीं करता।
यहां, जब किसी व्यक्ति के बारे में प्रशंसनीय और निंदनीय दोनों बातें हों, तो व्यक्ति निंदनीय बातों के बारे में सही समय पर सत्य और उचित कथन करता है, लेकिन प्रशंसनीय बातों के बारे में वह ऐसा नहीं करता। इसी प्रकार, एक व्यक्ति किसी अशोभनीय व्यक्ति की निंदा करते समय सही समय पर सत्य और उचित कथन करता है, लेकिन प्रशंसनीय बातों की प्रशंसा उसी प्रकार नहीं करता।

कोई व्यक्ति किसी प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा कैसे कर सकता है, उसके बारे में सही समय पर सत्य और उचित बातें कैसे व्यक्त कर सकता है, लेकिन उसी तरह किसी ऐसे व्यक्ति की निंदा क्यों नहीं कर सकता जो प्रशंसा के योग्य नहीं है?
यहां, जब किसी व्यक्ति के बारे में कुछ प्रशंसनीय और कुछ निंदनीय बातें हों, तो व्यक्ति प्रशंसनीय बातों के बारे में, सत्य और उचित समय पर सही बात कहते हुए, बोलता है, लेकिन निंदनीय बातों के बारे में उसी तरह नहीं बोलता। इस प्रकार, एक व्यक्ति किसी योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है।
प्रशंसा करते समय, सही समय पर उसके बारे में जो सत्य और उचित है उसे व्यक्त करना चाहिए, लेकिन उसी तरह से जो प्रशंसा के योग्य नहीं है उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए।

कोई व्यक्ति किस प्रकार किसी प्रशंसा के योग्य न होने वाले व्यक्ति की निंदा करता है और किसी प्रशंसनीय व्यक्ति की प्रशंसा करता है, और सही समय पर सत्य और उचित बात कहता है?
यहां, जब किसी व्यक्ति के बारे में प्रशंसनीय और निंदनीय दोनों बातें हों, तो व्यक्ति प्रशंसनीय और निंदनीय दोनों बातों के बारे में बोलता है, सही समय पर सत्य और सत्य को व्यक्त करता है, और पूछे गए प्रश्न का उत्तर देने के उचित समय से अवगत रहता है। इस प्रकार, व्यक्ति निंदनीय व्यक्ति की निंदा करता है और प्रशंसनीय व्यक्ति की प्रशंसा करता है, सही समय पर सत्य और सत्य को व्यक्त करता है।

कोई व्यक्ति सही समय पर सत्य और सही बात कहते हुए, न तो प्रशंसा के अयोग्य व्यक्ति की निंदा कर सकता है और न ही प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा कर सकता है?
यहां, जब किसी व्यक्ति के बारे में प्रशंसनीय और निंदनीय दोनों बातें हों, तो व्यक्ति न तो प्रशंसनीय और न ही निंदनीय बातों के बारे में बोलता है, बल्कि सही समय पर सत्य और सत्य को व्यक्त करते हुए तटस्थ भाव बनाए रखता है। इस प्रकार, व्यक्ति न तो प्रशंसा के अयोग्य व्यक्ति की निंदा करता है और न ही प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है, सही समय पर सही बात कहता है।

18. वह किस प्रकार का व्यक्ति है जो अपने परिश्रम के फल पर जीता है, न कि किसी पूर्व पुण्य कर्म पर?
यहां जिस व्यक्ति की आजीविका उसके वर्तमान प्रयासों (शाब्दिक रूप से विद्रोह), कोशिशों और परिश्रम से उत्पन्न होती है, न कि किसी पूर्व पुण्य के फल स्वरूप, उसे ऐसा व्यक्ति कहा जाता है जो अपने परिश्रम के फल पर जीता है, न कि किसी पूर्व पुण्य के फल पर।

वह कैसा व्यक्ति है जो महिलाओं की योग्यता के फल पर तो जीवन यापन करता है, लेकिन अपने परिश्रम के फल पर नहीं?
परनिम्मितवासवत्ती से लेकर उनसे ऊपर के सभी देवता:- ये अपने कर्मों के फल पर जीवन यापन करते हैं, न कि अपने परिश्रम के फल पर।

वह व्यक्ति किस प्रकार का है जो अपने परिश्रम के फल के साथ-साथ अपने गुणों के फल पर भी जीवन यापन करता है?
जिस व्यक्ति की जीविका उसके अपने परिश्रम, प्रयासों और कर्मों के साथ-साथ उसके गुणों से भी उत्पन्न होती है, वह व्यक्ति अपने परिश्रम और गुणों दोनों के फल पर ही जीवन यापन करता है।

ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो न तो अपने स्वयं के परिश्रम के फल पर और न ही अपने गुणों के फल पर जीवन यापन करता है?
नरक में कष्ट भोगने वाले व्यक्ति वे होते हैं जो न तो अपने स्वयं के प्रयासों के फल पर और न ही पुण्य कर्मों के फल पर जीवित रहते हैं।

19. कोई व्यक्ति अंधेरे में कैसे रहता है और अंधेरे की ओर कैसे प्रवृत्त होता है?
यहां एक व्यक्ति जो निम्न कुल के परिवार में जन्मा है, चाहे वह चांडाल हो, नेसादा हो, टोकरी बुनने वाला हो, रथ बनाने वाला हो या पुक्कुसा हो, गरीब, कुपोषित, तंगहाली में पला-बढ़ा, जहां भोजन मुश्किल से मिलता है, सांवला, बदसूरत, कुबड़ा, अनेक रोगों से ग्रस्त, अंधा, या टेढ़ा हाथ वाला, लंगड़ा या लकवाग्रस्त, जिसे न भोजन, न पेय, न वस्त्र, न वाहन, न माला, न इत्र, न मरहम, न बिस्तर, न घर, न प्रकाश; वह कर्म, वचन और विचार से पापी है, कर्म, वचन और विचार से पापी होने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर दुख, विपत्ति और विपत्ति में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अंधकार में रहता है और अंधकार की ओर अग्रसर होता है।

अंधेरे में रहने वाला व्यक्ति प्रकाश की ओर कैसे अग्रसर होता है?
यहां एक व्यक्ति जो निम्न कुल के परिवार में जन्मा है, चाहे वह चांडाल हो, नेसादा हो, टोकरी बुनने वाला हो, रथ बनाने वाला हो या पुक्कुसा हो, गरीब हो, कुपोषित हो, तंगहाली में पला-बढ़ा हो, जहां भोजन मुश्किल से मिलता हो, सांवला हो, कुरूप हो, कुबड़ा हो, अनेक रोगों से ग्रस्त हो, अंधा हो, या उसका हाथ टेढ़ा हो, लंगड़ा हो या लकवाग्रस्त हो, जिसे न भोजन मिलता हो, न पेय, न वस्त्र, न वाहन, न माला, न इत्र, न मरहम, न बिस्तर, न घर, न प्रकाश; वह वास्तव में, वचन और विचार से, सत्कारशील है। सत्कारशील होने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह प्रकाशमय लोकों में सुखद भाग्य के लिए पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार अंधकार में रहने वाला व्यक्ति प्रकाश की ओर अग्रसर होता है।

जो व्यक्ति प्रकाश में होता है, वह अंधकार की ओर कैसे प्रवृत्त होता है?
यहां, जो व्यक्ति उच्च कोटि के परिवार में पुनर्जन्म लेता है, चाहे वह कुलीन परिवार हो, ब्राह्मण परिवार हो, या उच्च पदस्थ गृहस्थ परिवार हो, धनी हो, अपार धन का स्वामी हो, भोग-विलास की प्रचुर वस्तुओं का मालिक हो, सोने-चांदी का भंडार रखता हो, भोग-विलास के साधनों का भरपूर धन रखता हो, धन और अनाज का भंडार रखता हो, सुंदर, आकर्षक, उत्तम रंगत वाला हो, भोजन, पेय, वस्त्र, परिवहन के साधन, पुष्पमालाएं, इत्र और मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश का प्राप्तकर्ता हो; वह वास्तव में कर्मठ है, अपने वचन और विचार से। कर्मठ होने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह दु:ख, विपत्ति और विपत्ति में पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार, प्रकाश में रहने वाला व्यक्ति अंधकार की ओर अग्रसर होता है।
जो व्यक्ति प्रकाश में होता है, वह प्रकाश की ओर कैसे प्रवृत्त होता है?
यहां एक व्यक्ति जो उच्च कोटि के परिवार में पुनर्जन्म लेता है, चाहे वह कुलीन परिवार हो, ब्राह्मण परिवार हो, या उच्च पदस्थ गृहस्थ परिवार हो, धनी हो, अपार धन का स्वामी हो, भोग-विलास की प्रचुर वस्तुओं का स्वामी हो, सोने-चांदी का भंडार रखता हो, भोग-विलास के लिए पर्याप्त साधन रखता हो, धन और अनाज का भंडार रखता हो, सुंदर, आकर्षक, उत्तम रंगत वाला हो, भोजन, पेय, वस्त्र, परिवहन के साधन, पुष्पमालाएं, इत्र, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश का प्राप्तकर्ता हो; वह वास्तव में कर्ता है, वचन और विचार दोनों से, और कर्ता होने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर प्रकाशमान लोकों में सुखमय भाग्य के लिए पुनर्जन्म लेता है। इस प्रकार प्रकाश में रहने वाला व्यक्ति प्रकाश की ओर अग्रसर होता है।

20. कोई व्यक्ति कैसे झुककर भी अप्रगतिशील रह सकता है? कोई व्यक्ति कैसे झुककर भी प्रगतिशील रह सकता है? कोई समृद्ध व्यक्ति कैसे अप्रगतिशील रह सकता है? कोई समृद्ध व्यक्ति कैसे प्रगतिशील रह सकता है?
ये चारों प्रकार क्रमशः उपरोक्त चारों प्रकारों के अनुरूप हैं।

21. वे चार व्यक्ति कौन हैं जिनकी तुलना वृक्षों से की जा सकती है?
वृक्षों के चार प्रकार इस प्रकार हैं - एक वृक्ष जो स्वयं कमजोर है लेकिन उसके चारों ओर मजबूत वृक्ष हैं; एक वृक्ष जो स्वयं मजबूत है लेकिन उसके चारों ओर कमजोर वृक्ष हैं; एक वृक्ष जो स्वयं कमजोर है और उसके चारों ओर कमजोर वृक्ष हैं; एक वृक्ष जो स्वयं मजबूत है और उसके चारों ओर मजबूत वृक्ष हैं।
इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति मौजूद हैं जिनकी तुलना क्रमशः वृक्षों की इन चार श्रेणियों से की जा सकती है - एक व्यक्ति जो स्वयं कमजोर है लेकिन बलवानों से घिरा हुआ है; एक व्यक्ति जो स्वयं बलवान है लेकिन कमजोरों से घिरा हुआ है; एक व्यक्ति जो स्वयं कमजोर है और कमजोरों से घिरा हुआ है; एक व्यक्ति जो स्वयं बलवान है और बलवानों से घिरा हुआ है।

जो व्यक्ति स्वयं कमजोर है, वह बलवानों से घिरा हुआ कैसे हो सकता है? यहाँ एक व्यक्ति दुष्ट और बुरे चरित्र का है, जबकि उसके साथी1 नैतिक और सुंदर स्वभाव के हैं। इस प्रकार, जो व्यक्ति स्वयं कमजोर है, वह बलवानों से घिरा हुआ है, ठीक उसी तरह जैसे ठीक उसी तरह जैसे कमजोर पेड़ के चारों ओर मजबूत पेड़ होते हैं।

एक बलवान व्यक्ति कमजोरों से घिरा हुआ कैसे रह सकता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो नैतिक और सुंदर स्वभाव का है, लेकिन उसके साथी अनैतिक और दुष्ट हैं। यह एक ऐसे व्यक्ति की स्थिति है जो बलवान होते हुए भी दुर्बलों से घिरा हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक बलवान वृक्ष दुर्बल वृक्षों से घिरा होता है।
जो व्यक्ति अनैतिक और दुष्ट है, उसके साथी भी वैसे ही हैं, ऐसा कैसे हो सकता है?
एक मजबूत व्यक्ति मजबूत लोगों से घिरा हुआ कैसे रह सकता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वयं नैतिक और सौम्य स्वभाव का है, और उसके साथी भी वैसे ही हैं। इस प्रकार, बलवान व्यक्ति बलवानों से घिरा रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक बलवान वृक्ष बलवान वृक्षों से घिरा रहता है।
ये चार व्यक्ति वृक्षों के समान हैं जो विद्यमान हैं।
यह दुनिया।

22. जो व्यक्ति बाहरी रूप से आकलन करता है और उसी से संतुष्ट रहता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति है?
यहां एक व्यक्ति किसी भौतिक वस्तु की ऊंचाई, चौड़ाई, आकार और परिष्करण का अवलोकन करके उसमें संतुष्टि पाता है। ऐसा व्यक्ति आकलन करने वाला आदि कहलाता है।
जो व्यक्ति दूसरों के शब्दों के आधार पर आकलन करता है और उनसे संतुष्ट हो जाता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति है?
यहां व्यक्ति दूसरों की प्रशंसा, चापलूसी, स्तुति और तारीफों के आधार पर आस्था उत्पन्न करता है, और उन्हें ही निर्णय का मानदंड मानता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों के शब्दों के आधार पर ही आकलन और सम्मान करता है।
जो व्यक्ति बाहरी सादगी के आधार पर आकलन करता है और उसे महत्व देता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति है?
यहां कोई व्यक्ति वस्त्रों, भिक्षापात्रों, पलंगों और चादरों की सादगी को देखकर या अनेक प्रकार की तपस्याओं का अवलोकन करके उनमें संतोष पाता है और उन्हें ही निर्णय का मानदंड मानता है। ऐसा व्यक्ति बाहरी तपस्या को ही आधार मानकर मूल्यांकन करता है और उसका सम्मान करता है।

जो व्यक्ति सही-गलत का आकलन करता है और उसे महत्व देता है, वह किस प्रकार का व्यक्ति है?
यहां एक व्यक्ति नैतिकता, ध्यान या अंतर्दृष्टि के अभ्यास को देखकर, इन अभ्यासों को निर्णय का मानक मानकर उनमें संतुष्टि पाता है। ऐसा व्यक्ति सही का आकलन और सम्मान करने वाला होता है।2

23. कोई व्यक्ति अपने कल्याण के लिए तो प्रयास करता है, लेकिन दूसरों के कल्याण के लिए क्यों नहीं?
यहां व्यक्ति नैतिक जीवन को प्राप्त कर लेता है, लेकिन दूसरों को इसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; स्वयं ध्यान की साधना कर लेता है, लेकिन दूसरों को इसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; स्वयं अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है, लेकिन दूसरों को इसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; स्वयं मोक्ष प्राप्त कर लेता है, लेकिन दूसरों को इसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता; स्वयं मोक्ष की चेतना की अनुभूति प्राप्त कर लेता है, लेकिन दूसरों को उस अनुभूति को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। ऐसा व्यक्ति वह है जो केवल अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है, दूसरों के कल्याण के लिए नहीं।

कोई व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए प्रयास क्यों करता है, लेकिन अपने स्वयं के कल्याण के लिए नहीं?
यहां व्यक्ति स्वयं नैतिक जीवन की प्राप्ति नहीं करता, बल्कि दूसरों को इसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है; स्वयं ध्यान की साधना की प्राप्ति नहीं करता, बल्कि दूसरों को इसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है; स्वयं अंतर्दृष्टि की प्राप्ति नहीं करता, बल्कि दूसरों को अंतर्दृष्टि की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है; स्वयं मोक्ष की साधना की प्राप्ति नहीं करता, बल्कि दूसरों को उस अवस्था की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है; स्वयं मोक्ष की चेतना की अनुभूति नहीं करता, बल्कि दूसरों को उस अनुभूति की अनुभूति करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए प्रयास करता है, न कि अपने स्वयं के कल्याण के लिए।

कोई व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है और न ही दूसरों के कल्याण के लिए, ऐसा कैसे हो सकता है?
यहां व्यक्ति न तो स्वयं नैतिक जीवन प्राप्त करता है और न ही दूसरों को नैतिक जीवन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, न तो स्वयं ध्यान की साधना करता है और न ही दूसरों को इसके लिए प्रेरित करता है, न तो स्वयं अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है और न ही दूसरों को अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, न तो स्वयं मोक्ष प्राप्त करता है और न ही दूसरों को उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, न तो स्वयं मोक्ष की चेतना की अनुभूति प्राप्त करता है और न ही दूसरों को उस अनुभूति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है और न ही दूसरों के कल्याण के लिए।

एक व्यक्ति अपने साथ-साथ दूसरों के कल्याण के लिए कैसे प्रयास करता है?
यहां व्यक्ति स्वयं नैतिक जीवन प्राप्त करता है और दूसरों को भी नैतिक जीवन प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, स्वयं भी नैतिक जीवन प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति ध्यान की साधना में निरंतर लिप्त रहता है और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है, वह स्वयं अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है और दूसरों को भी अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है; वह स्वयं मोक्ष प्राप्त करता है और दूसरों को भी उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है; वह स्वयं मोक्ष की चेतना की अनुभूति प्राप्त करता है और दूसरों को भी उस अनुभूति को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है। ऐसा व्यक्ति वह है जो अपने और दूसरों दोनों के कल्याण के लिए प्रयासरत रहता है।

कोई व्यक्ति न तो अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है और न ही दूसरों के कल्याण के लिए, ऐसा कैसे हो सकता है?
यहां कोई व्यक्ति न तो स्वयं नैतिक जीवन प्राप्त करता है और न ही दूसरों को नैतिक जीवन प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, न तो स्वयं समाधि की साधना प्राप्त करता है और न ही दूसरों को उसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, न तो स्वयं अंतर्दृष्टि प्राप्त करता है और न ही दूसरों को अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, न तो स्वयं मुक्ति प्राप्त करता है और न ही दूसरों को मुक्ति की अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, न तो स्वयं मुक्ति की चेतना की अनुभूति प्राप्त करता है और न ही दूसरों को उस अनुभूति को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

ऐसा व्यक्ति वह होता है जो न तो अपने कल्याण के लिए प्रयास करता है और न ही दूसरों के कल्याण के लिए।

24. कोई व्यक्ति आत्म-यातना का आदी कैसे हो जाता है और आत्म-यातना की ओर ले जाने वाली प्रथाओं का व्यसनी कैसे बन जाता है?
यहां एक व्यक्ति नंगा रहता है, उसके बुरे संस्कार होते हैं; वह अपने हाथ चाटकर साफ करता है, विनम्रतापूर्वक अनुरोध किए जाने पर भी पास नहीं रुकता या एक पल भी प्रतीक्षा नहीं करता, उसके लिए लाया गया भोजन स्वीकार करने से इनकार करता है, उसके लिए विशेष रूप से तैयार किया गया भोजन स्वीकार करने से इनकार करता है, कोई भी निमंत्रण स्वीकार नहीं करता, खाना पकाने के बर्तन या कड़ाही से भोजन स्वीकार नहीं करता, दहलीज के भीतर रखा भोजन स्वीकार नहीं करता, ओखली के बीच रखा भोजन स्वीकार नहीं करता, जब दो व्यक्ति एक साथ भोजन कर रहे हों तो भोजन स्वीकार नहीं करता, गर्भवती महिला से, दूध पिलाने वाली महिला से, पत्नी के रूप में रहने वाली महिला से भोजन स्वीकार नहीं करता, पवित्र स्थानों पर अर्पित भोजन स्वीकार नहीं करता, जब कोई कुत्ता पास खड़ा हो या जहां मक्खियां भिनभिना रही हों तो भोजन स्वीकार नहीं करता, मछली, मांस, तेज शराब, मादक पदार्थ या खट्टी दलिया स्वीकार नहीं करता, एक घर से भीख मांगता है तो केवल एक निवाला खाता है, या दो घरों से भीख मांगता है तो केवल दो निवाले खाता है, या सात घरों तक भीख मांगता है तो सात निवाले तक खाता है, केवल एक या केवल दो भिक्षा पर अपना गुजारा करता है। सात भिक्षाओं तक, वह दिन में केवल एक बार या हर दो दिन में एक बार, या हर सात दिन में एक बार भिक्षा लेता है, इस प्रकार नियमानुसार नियमित अंतराल पर, यहाँ तक कि आधे महीने तक भोजन ग्रहण करने की प्रथा का पालन करता है, वह जड़ी-बूटियों, जंगली चावल, निवारा चावल, दद्दूला चावल, बिना छिलके वाले अनाज, चावल के दाने या चावल की झाग, खली, घास, गोबर, जंगल के फल और जड़ों, स्वयं गिरे हुए फलों का सेवन करता है, मोटे भांग के कपड़े, मिश्रित रेशों के मोटे कपड़े, मृत शरीर से लिए गए कपड़े, कूड़े के ढेर के चिथड़ों से बने कपड़े, छाल से बने कपड़े, काले मृग की खाल, काले मृग की खाल से बने वस्त्र, कुसा घास से बने वस्त्र, छाल से बने वस्त्र, लकड़ी के टुकड़ों से बने वस्त्र, बालों के वस्त्र, घोड़ों की पूंछ से बने वस्त्र, उल्लू के पंखों से बने वस्त्र पहनता है; वह बाल और दाढ़ी नोचने वाला है, बाल और दाढ़ी नोचने का आदी है; वह बैठने से इनकार करते हुए खड़ा रहता है; वह उकड़ू बैठने का आदी है; वह कांटों की सेज पर लेटा रहता है; वह शाम तक दिन में तीन बार पानी में डुबकी लगाने का आदी है। इस प्रकार वह शरीर को कई प्रकार की यातनाएँ देता रहता है। इस प्रकार वह आत्म-यातना करने वाला और आत्म-यातना से संबंधित प्रथाओं का आदी हो जाता है।

कोई व्यक्ति दूसरों का उत्पीड़क कैसे बन जाता है और उत्पीड़न की प्रवृत्ति वाली प्रथाओं का आदी कैसे हो जाता है?
यहां व्यक्ति भेड़ काटने वाला, सूअर का शिकारी, हिरण का शिकारी, पक्षी पकड़ने वाला, फंदा लगाने वाला, मछली मारने वाला, चोर, सरकारी जल्लाद, जेलर या ऐसे ही अन्य क्रूर कृत्यों का दोषी होता है। इस प्रकार व्यक्ति दूसरों को सताने वाला बन जाता है और दूसरों पर अत्याचार करने वाली प्रथाओं का आदी हो जाता है।

किसी व्यक्ति में उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षण एक साथ कैसे आ जाते हैं?
यहां एक व्यक्ति राजा, ताजपोशी किया हुआ सम्राट या अत्यधिक धनवान और प्रभावशाली ब्राह्मण है; वह राजधानी के पूर्व में एक नया यज्ञगृह बनवाता है, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाता है, काले हिरण की खाल पहनता है, अपने शरीर पर घी और तेल लगाता है, हिरण के सींग से अपनी पीठ खुजलाता है, और अपनी रानी-पत्नी और ब्राह्मण पुरोहित के साथ यज्ञगृह में प्रवेश करता है, वहां वह पीले रंग से रंगे हुए संकरे स्थान पर लेट जाता है; राजा एक गाय के एक थन से निकाले जा सकने वाले दूध की मात्रा पर जीवित रहता है, जिसके बछड़े का रंग उससे मिलता-जुलता होता है, रानी-पत्नी दूसरे थन से निकाले जा सकने वाले दूध की मात्रा पर जीवित रहती है, ब्राह्मण पुरोहित तीसरे थन से निकाले जा सकने वाले दूध की मात्रा पर जीवित रहता है, अग्नि-यज्ञ चौथे थन से निकाले जा सकने वाले दूध की मात्रा से

किए जाते हैं, और बछड़ा शेष दूध की मात्रा पर जीवित रहता है; इस प्रकार वह आदेश देता है कि इतने बैलों का बलिदान किया जाए, इतने बछड़ों का, इतनी गायों के, इतनी बकरियों का, इतने मेढ़ों का बलिदान किया जाए, इतने पेड़ काटकर खंभे बनाए जाएं, इतनी घास काटकर बलिदान स्थल के चारों ओर बिखेरी जाए; उसके अधीन काम करने वाले दास, दूत या मजदूर कोड़े की मार और भय से विवश होकर, चेहरे पर आंसू लिए उसके आदेशों का पालन करते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति में उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षण समाहित हो जाते हैं।

कोई व्यक्ति इन दोनों प्रकारों में से किसी के भी लक्षण धारण न करने की स्थिति में कैसे आ जाता है?
वह न तो खुद को और न ही दूसरों को यातना देता है, और इस संसार में वह बिना किसी लालसा के, शांत, स्थिर, आनंदित होकर, ईश्वर समान स्वरूप में जीवन व्यतीत करता है।
यहां ऐसा घटित होता है कि तथागत इस संसार में जन्म लेते हैं, एक परम प्रबुद्ध, पूर्णतः ज्ञानी बुद्ध, अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण, सदाचारी आचरण वाले, सही मार्ग पर चलने वाले, संसार के ज्ञाता, अद्वितीय, अनुशासन के प्रति सजग व्यक्तियों के मार्गदर्शक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, बुद्ध, भगवान - उन्होंने स्वयं इस संसार को, देवताओं, मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों के संसारों सहित, देवताओं और मनुष्यों के साथ रहने वालों को जानकर और अनुभव करके, दूसरों को इसके बारे में उपदेश देते हैं; वे ऐसा उपदेश देते हैं जो आरंभ में लाभकारी, निरंतरता में लाभकारी और अंत में लाभकारी, अर्थपूर्ण, उपयुक्त शब्दों में, उचित भाषा में व्यक्त किया गया हो; वे उच्च जीवन को उसकी शुद्धता और पूर्णता में व्यक्त करते हैं। इस उपदेश को एक गृहस्थ, उसकी संतान या किसी अन्य परिवार में जन्मा व्यक्ति सुनता है; वह इस उपदेश को सुनकर तथागत में आस्था प्राप्त करता है। इस आस्था से परिपूर्ण होकर वह इस प्रकार चिंतन करता है: गृहस्थ जीवन एक धूल भरा मार्ग है! त्याग का मार्ग खुला और विस्तृत है! गृहस्थ जीवन जीते हुए उच्चतर जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है, जो पूर्ण और संपूर्ण, परम शुद्ध, उत्तम रूप से निर्मित शंख के समान शुद्ध हो।
अत: मुझे घर छोड़कर बेघर जीवन व्यतीत करना होगा, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, अपने शरीर को पीले वस्त्रों से ढकना होगा: ऐसा होता है कि कुछ समय बाद, वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, त्यागकर, अपने सारे रिश्तेदार, चाहे वे कम हों या अधिक, घर छोड़कर बेघर अवस्था में चला जाता है, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, अपने शरीर को पीले वस्त्रों से ढक लेता है।1 इस प्रकार धार्मिक दीक्षा प्राप्त करके, भिक्षुओं द्वारा अपनाए जाने वाले प्रशिक्षण और जीवन शैली को अपनाते हुए, वह जीवित प्राणियों की (जानबूझकर) हत्या का त्याग करता है, जीवन के (जानबूझकर) वध से दूर रहता है, छड़ी और तलवार को त्यागकर, क्रूरता से लज्जित होकर, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु, करुणामय और कृपालु होता है; जो उसे नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे स्वीकार करने से परहेज करता है; वह जो दिया गया है उसे स्वीकार करता है, केवल वही स्वीकार करने की अपेक्षा रखता है, वह अपना जीवन ईमानदारी से, शुद्ध आत्मा के साथ व्यतीत करता है; वह व्यभिचारी जीवन को त्यागकर पवित्र है, व्यभिचारी नहीं, यौन जीवन से, ग्रामसत्तात्मक स्वभाव से विरक्त है;2 वह झूठे शब्दों को त्यागकर झूठ बोलने से बचता है, सत्य बोलता है, सदा सत्य का लक्ष्य रखता है, विश्वसनीय है, संसार के प्रति कभी विश्वासघात नहीं करता; निंदात्मक वाणी को त्यागकर निंदा से बचता है, एक स्थान से सुनी हुई बात को दूसरे स्थान पर इस उद्देश्य से नहीं बताता कि पहले पक्ष के विरुद्ध कलह उत्पन्न हो, कहीं और से सुनी हुई बात को यहाँ इस उद्देश्य से नहीं बताता कि वहाँ के लोगों के विरुद्ध कलह उत्पन्न हो। इस प्रकार, विमुख लोगों के बीच सुलह कराने वाले के रूप में, पहले से एकजुट लोगों की एकता बढ़ाने वाले के रूप में, एकता में आनंदित, एकता पर प्रसन्न होकर, वह पुनर्मिलन की ओर अग्रसर होने वाले शब्दों का उच्चारण करने का अभ्यस्त है; कठोर शब्दों को त्यागकर अपमानजनक भाषा का प्रयोग करने से बचता है, वह ऐसे शब्द बोलता है जो निर्दोष, कानों को भाने वाले, स्नेहपूर्ण, हृदय को भाने वाले, परिष्कृत, लोगों को प्रसन्न करने वाले और अनेकों के हृदय को मोहित करने वाले हों; वह निरर्थक बातों को त्यागकर, व्यर्थ की बातों से परहेज करता है, सही समय पर बोलता है, सत्य बोलता है, अच्छाई के अनुसार, धर्म के अनुसार, आत्म-संयम के अनुसार बोलता है, संजोने योग्य बातें कहता है, कभी-कभी उदाहरणों के साथ, स्पष्ट रूप से परिभाषित, अर्थपूर्ण।
वह किसी भी जीव को, चाहे वह गर्भ में हो या वयस्क अवस्था में, हानि पहुँचाने से परहेज़ करता है; वह दिन में केवल एक बार भोजन करता है, रात में भोजन नहीं करता और असमय भोजन से परहेज़ करता है; वह नृत्य, गीत, संगीत और (ऐसे अन्य) मनोरंजनों में दर्शक बनने से परहेज़ करता है; वह माला पहनने, अपने शरीर पर सुगंध और मलहम लगाने और (ऐसे अन्य) सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करने से परहेज़ करता है; वह ऊँचे और उत्तम पलंगों का उपयोग करने से परहेज़ करता है; वह सोना और चाँदी लेने से परहेज़ करता है; वह कच्चे चावल, कच्चा मांस, स्त्रियाँ और लड़कियाँ, पुरुष और महिला दास, बकरी और भेड़, मुर्गी और सूअर, हाथी, गाय, घोड़े और खच्चर, खेत और आवास उपहार के रूप में स्वीकार करने से परहेज़ करता है; वह मध्यस्थ या संदेशवाहक के रूप में कार्य करने से परहेज़ करता है; वह खरीद-फरोख्त से परहेज़ करता है। वह तराजू, सिक्कों या नाप-तोल में धोखाधड़ी करने से परहेज करता है; वह रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी और जालसाजी के कुटिल मार्ग से परहेज करता है; वह अंग-भंग करने, हत्या करने, बंधक बनाने, राजमार्ग पर लूटपाट करने, डकैती और हिंसा के कृत्यों से परहेज करता है।
वह अपने शरीर की रक्षा के लिए पर्याप्त वस्त्रों और पेट भरने के लिए पर्याप्त दान से संतुष्ट रहता है, और जहाँ भी जाता है इन्हें अपने साथ ले जाता है। जैसे कोई पक्षी जहाँ भी उड़ता है, केवल अपने पंखों के भार के साथ ही उड़ता है, उसी प्रकार भिक्षु अपने शरीर की रक्षा

के लिए पर्याप्त वस्त्रों और पेट भरने के लिए पर्याप्त दान से संतुष्ट रहता है, और जहाँ भी जाता है इन्हें अपने साथ ले जाता है। आर्यों के इन नैतिक उपदेशों से युक्त होकर, वह अपने भीतर दोषरहित आनंद का अनुभव करता है।
किसी वस्तु को अपनी आँखों से देखने के बाद वह उसके सामान्य स्वरूप या विवरणों पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं करता, बल्कि उन चीजों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है जो उसके भीतर पापी अनैतिक प्रवृत्तियों, लोभ और निराशा को उत्पन्न करती हैं। दृष्टि के संबंध में अनियंत्रित रहते हुए वह अपनी दृष्टि शक्ति की रक्षा करता है और उस पर नियंत्रण प्राप्त करता है।

दृष्टि की इंद्रिय। इसी प्रकार, जब वह अपने कानों से ध्वनि सुनता है, अपनी नाक से गंध सूंघता है, अपनी जीभ से स्वाद चखता है, अपने शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करता है, अपने मन से किसी मानसिक विषय को समझता है, तो वह अपने मन को उसके सामान्य रूप या विवरणों पर केंद्रित नहीं करता, बल्कि उन चीजों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है जो दृष्टि और अनैतिक प्रवृत्तियों, लोभ और निराशा को उस पर हावी होने का कारण बनती हैं, जब वह अपने मन और विचार शक्ति को अनियंत्रित रूप से नियंत्रित कर रहा होता है; वह अपने मन की रक्षा करता है, वह विचार शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त करता है। इस आर्यिक इंद्रिय-नियंत्रण से संपन्न होकर, वह अपने भीतर उस आनंद का अनुभव करता है जो दोषरहित है।

बाहर जाने और वापस आने में, वह जानबूझकर कार्य करता है, और साथ ही देखने या आसपास देखने में, अपनी बांह फैलाने या उसे वापस अंदर खींचने में, संघती1 और अन्य वस्त्र पहनने में, या भिक्षापात्र ले जाने में, खाने या पीने में, चबाने या निगलने में, प्रकृति की पुकारों का पालन करने में, चलने या खड़े होने या बैठने में, सोने या जागने में, बोलने में या मौन की अवस्था में रहने में भी।

आर्यों के इस नैतिक आचरण से युक्त, सचेतनता और जागरूकता के इस उत्कृष्ट अभ्यास से युक्त, और आर्यों के संतोष के इस मार्ग से युक्त होकर, वह किसी एकांत स्थान पर शरण लेता है, चाहे वह जंगल हो, वृक्ष की तलहटी हो, पहाड़ी की ढलान हो, गुफा हो, चट्टानी कंदरा हो, कब्रिस्तान हो, वन क्षेत्र हो, खुला मैदान हो, या भूसे का ढेर हो; भिक्षा मांगने के बाद वह वहां लौटकर भोजन करने के बाद पालथी मारकर बैठ जाता है, शरीर को सीधा रखते हुए सचेतनता को आगे बढ़ाता है; संसार की लालसा को त्यागकर वह लोभ से मुक्त मन से निवास करता है, अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है; हानि पहुंचाने की बुरी प्रवृत्तियों को त्यागकर वह द्वेष से मुक्त हृदय से निवास करता है; सभी प्राणियों के प्रति दयालु और करुणामय होकर वह अपने मन को द्वेष से शुद्ध करता है; आलस्य और सुस्ती को त्यागकर वह उनसे मुक्त होकर निवास करता है। प्रकाश की उपस्थिति के प्रति सचेत, अनुभवों के प्रति सजग और जागरूक होकर वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है; चिंता और घबराहट को दूर करके वह चिंतामुक्त रहता है; अपने हृदय को शांत रखते हुए वह अपने मन को चिंता और घबराहट से शुद्ध करता है; उलझन को दूर करके वह संदेहमुक्त रहता है; अच्छाई के बारे में संदेह न करते हुए वह अपने मन को संशय से शुद्ध करता है।
हृदय को विचलित करने और अंतर्दृष्टि को कमजोर करने वाली इन पाँच बाधाओं को दूर करके, वह इंद्रिय सुखों और बुरी अवस्थाओं का त्याग करते हुए, ध्यान की पहली अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। इस अवस्था में निरंतर चिंतन, आनंद और मानसिक एकांत से उत्पन्न परमानंद का अनुभव होता है। निरंतर चिंतन के समाप्त होने पर वह ध्यान की दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और परमानंद की अवस्था है, जो निरंतर चिंतन से मुक्त होती है—मन की एकाग्रता और हृदय की आंतरिक शांति की अवस्था। आनंद की तीव्र लालसा के अभाव में वह समभाव में रहता है और अपनी मानसिक अवस्थाओं और अनुभवों के प्रति सचेत रहते हुए अपने शरीर के माध्यम से आनंद का अनुभव करता है। आर्यों ने इसका वर्णन करते हुए कहा है, "शांत और सचेत व्यक्ति सहजता से रहता है।" और इस प्रकार वह परमानंदमय ध्यान की तीसरी अवस्था में प्रवेश करते हुए लीन रहता है। फिर सुख और दुख दोनों को त्यागकर, और पहले की तरह सुख और दुखों के लुप्त हो जाने के साथ, वह सुख और दुख से रहित ध्यान की चौथी अवस्था में प्रवेश करते हुए लीन रहता है, एक ऐसी अवस्था जो समभाव और विचारशीलता से शुद्ध हो जाती है। अब जब उसका मन इस प्रकार एकाग्र हो गया है, परम शुद्ध और प्रकाशमय हो गया है, अशुद्धियों से मुक्त हो गया है, विक्षोभकारी कारकों से मुक्त हो गया है, कोमल और लचीला हो गया है, स्थिर और अविचलित हो गया है, तो वह अपने पिछले जन्मों को याद करने के लिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना मन लगाता है। वह विभिन्न रूपों में अपने पिछले जन्मों को याद करता है, यह एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पांच से दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार या एक लाख जन्म हो सकते हैं, जो ब्रह्मांडीय परिक्रमण के कई कालों में, आवरण और विकास के कई कालों में हुए हों। वह इस प्रकार अपने पिछले जन्मों को याद करता है, "वहाँ मेरा जन्म अमुक नाम से, अमुक परिवार में, अमुक जाति में हुआ, मैंने अमुक प्रकार का भोजन किया, अमुक सुख और दुख का अनुभव किया, और उस जीवन का अमुक अंत हुआ; उस अवस्था से मृत्यु के बाद मेरा पुनर्जन्म दूसरी अवस्था में हुआ, जहाँ मेरा अमुक नाम था, अमुक परिवार में, अमुक जाति में, मैंने अमुक प्रकार का भोजन किया, अमुक सुख और दुख का अनुभव किया।" "इस प्रकार का सुख और दुख, यही उस जीवन का अंत था, उस अवस्था से मृत्यु के बाद मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।" इस प्रकार वह अनेक तरीकों से अपने पूर्व निवास स्थानों और नियतियों के स्वरूपों को विस्तार से याद करता है।
और फिर से, इस प्रकार एकाग्र मन से, जो परम शुद्ध और प्रकाशमय हो चुका है, अशुद्धियों से मुक्त है, विक्षोभकारी कारकों से मुक्त है, कोमल और लचीला है, स्थिर और अविचलित है, वह अन्य प्राणियों के प्रकट होने और विलुप्त होने की अनुभूति प्राप्त करने के लिए

अपना मन लगाता है। वह साधारण मनुष्यों की दृष्टि से कहीं अधिक स्पष्ट दृष्टि से प्राणियों को एक अवस्था से मरते और दूसरी में पुनर्जन्म लेते हुए देखता है; वह निम्न या उच्च कोटि के प्राणियों को, सुंदर और कुरूप, सुखी या दुर्भाग्यशाली, अपने कर्मों के अनुसार फलते-फूलते देखता है। वह पहचानता है कि ये वास्तव में बुरे कर्मों के दोषी हैं, शब्दों और विचारों से किए गए अपराधों के दोषी हैं, आर्यों की निंदा करने वाले हैं, गलत विचारों के समर्थक हैं, गलत निर्णय से जुड़ी प्रथाओं का पालन करने वाले हैं; मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वे नरक में, घोर विनाश की स्थिति में, पीड़ा की दयनीय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं; दूसरी ओर, वे प्राणी हैं जिन्होंने अच्छे कर्मों का पूर्ण फल प्राप्त किया है, अपने शब्दों और विचारों से पुण्य अर्जित किया है; आर्यों की निंदा न करते हुए, सही विचारों के समर्थक, विवेकपूर्ण आचरण का पालन करते हुए, वे मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य के लिए पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार वह साधारण मनुष्यों की दृष्टि से परे, स्पष्ट दिव्य दृष्टि से, एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणियों को देखता है; वह निम्न या उच्च कोटि के प्राणियों को, सुंदर और कुरूप, सुखी या दुर्भाग्यशाली, अपने कर्मों के अनुसार फलते-फूलते देखता है।
अब जब उसका मन इस प्रकार एकाग्र हो जाता है, परम शुद्ध और प्रकाशमय हो जाता है, अशुद्धियों से मुक्त हो जाता है, विक्षोभकारी कारक दूर हो जाते हैं, कोमल और लचीला हो जाता है, स्थिर और अविचलित हो जाता है, तो वह अपने मन को पापी प्रवृत्तियों (आसवों) के नाश की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिए लगाता है। वह वास्तव में समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है, यही दुख के निवारण का मार्ग है: वह वास्तव में जानता है कि ये पापी प्रवृत्तियाँ हैं, यही इनका कारण है, इत्यादि। जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन इंद्रिय सुखों की प्रवृत्ति से, पुनर्जन्म की प्रवृत्ति से और अज्ञान की प्रवृत्ति से मुक्त हो जाता है। और जब मन मुक्त हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान होता है कि वह मुक्त हो गया है और वह जानता है कि जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन व्यतीत कर लिया गया है, कर्तव्य पूर्ण हो गए हैं, और अब इन अवस्थाओं का कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार मनुष्य न तो स्वयं को कष्ट देता है, न ही आत्म-यातना की ओर ले जाने वाली प्रथाओं का आदी होता है, न ही दूसरों को कष्ट देता है, और न ही दूसरों को कष्ट देने वाली प्रथाओं में संलग्न होता है। वह न तो स्वयं को और न ही दूसरों के आत्म को पीड़ा देता है, और इस संसार में वह किसी भी लालसा से मुक्त होकर, शांत, स्थिर और आनंदित होकर, ईश्वरीय स्वरूप में जीवन व्यतीत करता है।

25. किस व्यक्ति को आवेशित कहा जाता है?
जिसकी वासना शांत नहीं हुई है, उसे वासना से परिपूर्ण कहा जाता है।

किस व्यक्ति को घृणा से ग्रसित कहा जाता है?
जिसका द्वेष दूर नहीं हुआ है: ऐसे व्यक्ति को द्वेष से ग्रसित कहा जाता है।

किस व्यक्ति को भ्रमग्रस्त कहा जाता है?
जिसका भ्रम दूर नहीं हुआ है, उसे भ्रमग्रस्त कहा जाता है।

किस व्यक्ति को अभिमानी कहा जाता है?
जिसका अहंकार अभी तक दूर नहीं हुआ है :- यह व्यक्ति है
कहा जाता है कि वह व्यक्ति अभिमानी होता है।

26. कोई व्यक्ति मन की आंतरिक शांति तो प्राप्त कर लेता है, लेकिन चीजों के बारे में अंतर्दृष्टि का उच्चतर ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त कर पाता?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो रूप या निराकारता के विचार से युक्त [परमानंद ध्यान]1 प्राप्त करता है, लेकिन उसे पारलौकिक मार्ग या फल प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति मन की आंतरिक शांति तो प्राप्त करता है, लेकिन चीजों के बारे में अंतर्दृष्टि का उच्चतर ज्ञान प्राप्त नहीं करता।

कोई व्यक्ति चीजों के बारे में गहन अंतर्दृष्टि का उच्चतर ज्ञान तो प्राप्त कर लेता है, लेकिन मन की आंतरिक शांति क्यों नहीं पा लेता?
यहां एक व्यक्ति परागत मार्ग और फल का तो ज्ञाता है, पर स्वरूप या निराकारता के विचार से युक्त परमानंदमय ध्यान का न। इस प्रकार व्यक्ति को चीजों की गहरी समझ का ज्ञान तो प्राप्त होता है, पर मन की आंतरिक शांति नहीं।

कोई व्यक्ति इन दोनों चीजों को कैसे प्राप्त कर सकता है?
यहां व्यक्ति समाधि जैसी अवस्था में पहुंचता है, जिसमें उसे रूप या निराकारता का विचार तथा अलौकिक मार्ग और फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति इन दोनों को प्राप्त कर लेता है।

कोई व्यक्ति इन दोनों में से किसी को भी कैसे प्राप्त नहीं कर सकता?
यहां व्यक्ति न तो रूप-बोध या रूपहीनता के बोध से युक्त परमानंदमय ध्यान की अवस्था प्राप्त करता है, न ही अलौकिक मार्ग और फल की प्राप्ति करता है। इस प्रकार व्यक्ति को इनमें से कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

27. किसी व्यक्ति के बारे में कैसे कहा जाता है कि वह धारा के साथ बह रहा है?
यहां एक व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है और पाप कर्म करता है। यह व्यक्ति धारा के साथ बह रहा है।
किसी व्यक्ति को धारा के विपरीत जाने वाला कैसे कहा जाता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो न तो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है और न ही पाप कर्म करता है। वह पीड़ा और शोक के साथ, चेहरे पर आंसू लिए और विलाप करते हुए, पूर्ण और निष्कलंक पवित्रता का अभ्यास करता है। यह व्यक्ति धारा के विपरीत चलने वाला है।

किसी व्यक्ति को स्थापित कैसे कहा जाता है?
यहां एक व्यक्ति निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाले जीवन बंधनों के टूटने के कारण एक प्रेतवाधित प्राणी बन जाता है, जो वहां अंतिम मुक्ति प्राप्त कर लेता है और उस लोक से वापस नहीं लौट सकता। यही व्यक्ति स्थापित होता है।

वह व्यक्ति 'ब्राह्मण' कैसे कहलाता है, जिसने नदी पार कर ली है, दूसरे किनारे पर पहुँच गया है और जीवन में सफलता प्राप्त कर ली है?
यहां एक व्यक्ति अपनी पापी प्रवृत्तियों के नाश के कारण इसी जीवन में मन और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को जानकर और अनुभव करके पापी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है; इस व्यक्ति को 'ब्राह्मण' कहा जाता है, जिसने नदी पार कर दूसरे किनारे पर पहुंचकर मोक्ष की प्राप्ति कर ली है।

28. वह व्यक्ति कैसा होता है जो कम जानता है और सीखी हुई बातों पर अमल नहीं करता?
यहां एक व्यक्ति को सूत्र, गेय्या, व्याकरण, गाथा, उदाना, इतिवुत्तक, जातक, अब्भूता और वेदल्ल का अल्प ज्ञान है, परन्तु वह न तो अर्थ जानता है और न ही सत्य, और न ही वह धम्म का पूर्णतः या सूक्ष्मतः अनुसरण करता है। ऐसे व्यक्ति को अल्प ज्ञान वाला और ज्ञान के अनुसार व्यवहार न करने वाला कहा जाता है।

जो व्यक्ति कम जानता है और सीखी हुई बातों के अनुरूप व्यवहार करता है, वह कैसे ऐसा व्यक्ति हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति को सूत्रों आदि का ज्ञान कम है; वह अपने उस थोड़े से ज्ञान का अर्थ और सत्य जानकर, संपूर्ण रूप से और विस्तार से धम्म का अभ्यास करता है। इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है जो कम जानता है और अपने ज्ञान के अनुसार कार्य करता है।

जो व्यक्ति अत्यधिक ज्ञानी होते हुए भी अपने ज्ञान के अनुरूप व्यवहार नहीं करता, वह ज्ञानी कैसे हो सकता है?
यहां एक व्यक्ति को सुत्त आदि का बहुत ज्ञान है; लेकिन उस ज्ञान के अर्थ और सत्य को न जानते हुए वह धम्म का पूर्णतः या सूक्ष्मतः अनुसरण नहीं करता। इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है जो ज्ञानवान होते हुए भी अपने ज्ञान के अनुरूप व्यवहार नहीं करता।

जो व्यक्ति अत्यधिक ज्ञानी होता है और अपने ज्ञान के अनुरूप व्यवहार करता है, उसे कैसे कहा जा सकता है?
यहां एक व्यक्ति को सुत्त आदि का गहरा ज्ञान प्राप्त है; वह उस गहन ज्ञान के अर्थ और सत्य को जानकर, संपूर्ण रूप से और विस्तार से धम्म का पालन करता है। इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति को विद्वान और अपने ज्ञान के अनुरूप व्यवहार करने वाला कहा जाता है।

29. एक व्यक्ति दृढ़ आधार वाला एकांतवासी कैसे होता है?
यहां एक व्यक्ति (तीन) बंधनों के पूर्ण विनाश के माध्यम से 'धारा प्राप्ति करने वाला' बन जाता है, जो अब (दुखद अवस्था में) गिरने के लिए उत्तरदायी नहीं होता, बल्कि सफलता के लिए नियत होता है और उसका लक्ष्य और उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना होता है; इस व्यक्ति को दृढ़ आधार वाला संन्यासी कहा जाता है।

किसी व्यक्ति को लाल कमल के समान संन्यासी क्यों कहा जाता है?
यहां एक व्यक्ति तीन बंधनों के पूर्ण नाश के द्वारा और कामवासना, घृणा और भ्रम को कम करके एक बार ही इस संसार में लौटकर दुखों का अंत कर लेता है। इस व्यक्ति को लाल कमल के समान संन्यासी कहा जाता है।

कोई व्यक्ति श्वेत कमल के समान संन्यासी कैसे हो सकता है?

यहां एक व्यक्ति निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाले पांच बंधनों के पूर्ण नाश के द्वारा, एक प्रेतवाधित प्राणी बन जाता है, जो वहां अंतिम मुक्ति प्राप्त करता है और उस लोक से वापस नहीं लौट सकता। ऐसे व्यक्ति को श्वेत कमल के समान संन्यासी कहा जाता है।

किसी व्यक्ति को नाजुक एकांतवासी कैसे कहा जाता है?
यहां एक व्यक्ति अपनी पापी प्रवृत्तियों के नाश के कारण इसी जीवन में मन और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को जान और अनुभव कर लेता है, पापी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर जीता है - इस व्यक्ति को कोमल संन्यासी कहा जाता है।

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय 5**
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय V: मानव प्रकारों का पाँच भागों में विभाजन

1. यदि कोई व्यक्ति कर्म करता है और पश्चाताप करता है, जो मन की मुक्ति और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता, जिसमें उसके उत्पन्न पापी और बुरे गुण पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, तो उसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: 'आदरणीय व्यक्ति में कर्मों के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, और पश्चाताप के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। यदि आदरणीय व्यक्ति अपने कर्मों के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियों का त्याग कर पश्चाताप के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियों को दबा दे और चिंतन एवं अंतर्दृष्टि का अभ्यास करे तो यह अच्छा होगा।' इस प्रकार आदरणीय व्यक्ति इस समूह में पाँचवें व्यक्ति के समान हो जाएगा।
यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो कर्म तो करता है पर पश्चाताप नहीं करता, जो मन और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता, जिसमें उसके उत्पन्न पापी और बुरे गुण नष्ट हो जाते हैं, तो उसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: 'आदरणीय व्यक्ति में कर्मों के कारण पापी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, पश्चाताप के कारण पापी प्रवृत्तियाँ नहीं बढ़तीं। यदि आदरणीय व्यक्ति अपने कर्मों के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियों का त्याग कर चिंतन और अंतर्दृष्टि का अभ्यास करे तो यह अच्छा होगा।' इस प्रकार आदरणीय व्यक्ति इस समूह में पाँचवें व्यक्ति के समान हो जाएगा।
यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो कर्म न करे, फिर भी पश्चाताप करे, जो मन और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानता हो, जिसमें उसके उत्पन्न पापी और बुरे गुण पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, तो उसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: ‘आदरणीय व्यक्ति में कर्मों के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियाँ नहीं होतीं, परन्तु पश्चाताप के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं। यदि आदरणीय व्यक्ति पश्चाताप के कारण उत्पन्न पापी प्रवृत्तियों से प्रेम करे और चिंतन एवं अंतर्दृष्टि का अभ्यास करे तो यह अच्छा होगा।’ इस प्रकार आदरणीय व्यक्ति इस समूह के पाँचवें व्यक्ति के समान हो जाएगा।
जहाँ कोई व्यक्ति न तो कर्म करता है और न ही पश्चाताप करता है, जो विचार और अंतर्दृष्टि की मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता, जिससे उसके पापी और बुरे गुण पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं, उसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए:
'पूजनीय व्यक्ति में कर्मों के कारण उत्पन्न पाप प्रवृत्तियाँ न तो होती हैं और न ही पश्चाताप के कारण उत्पन्न पाप प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं; यदि पूज्य व्यक्ति चिंतन और अंतर्दृष्टि का अभ्यास करें तो यह अच्छा होगा।' इस प्रकार पूज्य व्यक्ति इस समूह में पाँचवें व्यक्ति के समान हो जाएगा।

इस प्रकार पांचवें व्यक्ति द्वारा उपदेश और शिक्षा दिए जाने से ये चारों व्यक्ति धीरे-धीरे पापी प्रवृत्तियों के विनाश की ओर अग्रसर होते हैं।

2. दान देने वाला व्यक्ति किस प्रकार तिरस्कार करता है?
यहां एक व्यक्ति है जिसे दूसरा व्यक्ति वस्त्र, भोजन, भिक्षापात्र, पलंग, आसन, बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएं, दवाइयां और अन्य आवश्यक वस्तुएं देता है; दूसरे व्यक्ति से वह कहता है:- मैं देता हूं; दूसरी ओर, वह व्यक्ति इसे स्वीकार करता है। उसे यह देते हुए वह उसका तिरस्कार करता है; इस प्रकार देने वाला व्यक्ति तिरस्कार करता है।

साथ रहने से कोई व्यक्ति कैसे घृणा कर सकता है?
यहां एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के साथ दो या तीन साल तक रहता है; उसके साथ रहने से वह उसका तिरस्कार करता है; इस प्रकार एक व्यक्ति साथ रहने से तिरस्कार करता है।

कोई व्यक्ति मुंह खुला रखने वाला कैसे हो सकता है?

यहां एक व्यक्ति, किसी दूसरे व्यक्ति की प्रशंसा या निंदा करते समय, तुरंत उसके प्रति आसक्त हो जाता है; इस प्रकार वह व्यक्ति मुंहफट होता है।
कोई व्यक्ति वॉबलर कैसे बन जाता है?
यहां एक निश्चित व्यक्ति में कम आस्था, कम भक्ति, कम प्रेम और कम संतोष होता है; इस प्रकार वह व्यक्ति अस्थिर हो जाता है।

कोई व्यक्ति सुस्त और मूर्ख कैसे बन जाता है?
यहां एक व्यक्ति अच्छे या बुरे गुणों को नहीं जानता, निंदनीय या निर्दोष गुणों को नहीं जानता, निम्न या उत्कृष्ट गुणों को नहीं जानता, अंधकारमय या उज्ज्वल गुणों को नहीं जानता; इस प्रकार वह व्यक्ति सुस्त और मूर्ख हो जाता है।

3. पेशेवर योद्धाओं के समान कौन-कौन हैं?
यहां पांच पेशेवर योद्धा हैं:- यहां एक पेशेवर योद्धा शत्रु के मार्च से उठी धूल के बादल को देखकर निराश हो जाता है, खुद पर काबू नहीं रख पाता और लड़ने के लिए आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है; ऐसा ही एक पेशेवर योद्धा है। यह पहला पेशेवर योद्धा है।
दुनिया में विद्यमान।
एक और उदाहरण:- यहाँ एक पेशेवर योद्धा धूल के बादल को सहन कर रहा है, लेकिन शिखर को देखकर
वह झंडा नीचे गिरा देता है, निराश हो जाता है, खुद पर काबू नहीं रख पाता, लड़ने के लिए आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है;
वह एक कुशल योद्धा भी है।

यह दुनिया का दूसरा पेशेवर योद्धा है।
एक और उदाहरण:- यहाँ एक पेशेवर योद्धा धूल के बादल को सहन करता है, ध्वज के शिखर पर खड़ा रहता है; परन्तु युद्ध की गर्जना सुनकर वह निराश हो जाता है, हताश हो जाता है, स्वयं को संभाल नहीं पाता, लड़ने के लिए आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है; ऐसा ही एक पेशेवर योद्धा है। यह विश्व में विद्यमान तीसरा पेशेवर योद्धा है।
एक और उदाहरण:- यहाँ एक पेशेवर योद्धा धूल के बादल, ध्वज की ऊँचाई और युद्धघोषों को सहता है, लेकिन अंत में युद्ध में मारा जाता है; ऐसा ही एक पेशेवर योद्धा है। यह दुनिया का चौथा पेशेवर योद्धा है।
एक और उदाहरण:- यहाँ एक कुशल योद्धा धूल के बादल, ध्वज के शिखर, युद्ध घोष और भीषण लड़ाई को सहन करता है; युद्ध में विजयी होकर वह युद्धक्षेत्र में जीवित रहता है; ऐसा ही एक कुशल योद्धा है। यह विश्व में विद्यमान पाँचवाँ कुशल योद्धा है।

ये पाँच पेशेवर योद्धा संसार में विद्यमान हैं, ठीक वैसे ही जैसे ये पाँच व्यक्ति जो भिक्षुओं के बीच रहते हैं और अपना जीवन व्यतीत करते हैं, पेशेवर योद्धाओं के समान हैं। वे पाँच कौन हैं?
यहां एक भिक्षु 'धूल के बादल' को देखकर नीचे गिर जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, खुद पर नियंत्रण नहीं रख पाता, पवित्र जीवन विकसित करने में असमर्थ हो जाता है, विद्या में कमजोरी दिखाता है, नियमों का त्याग कर देता है और निम्न गृहस्थ जीवन में लौट आता है।

उसके लिए धूल का क्या अर्थ है? यहाँ एक भिक्षु सुनता है कि ऐसे गाँव या कस्बे में एक स्त्री या कन्या रहती है जो सुंदर, मनमोहक, आकर्षक और अत्यंत सौंदर्यपूर्ण है; यह सुनकर वह निराश हो जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, आत्मसंयम खो बैठता है, पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो जाता है, विद्या में दुर्बल हो जाता है, नियमों का त्याग कर देता है और गृहस्थ जीवन में लौट आता है; यही उसके लिए धूल का अर्थ है। जैसे एक कुशल योद्धा धूल देखकर निराश हो जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, आत्मसंयम खो बैठता है और युद्ध के लिए आगे नहीं बढ़ पाता, वैसे ही यह व्यक्ति भी है; यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। यह व्यक्ति संसार में पहला ऐसा व्यक्ति है जिसकी तुलना एक कुशल योद्धा से की जा सकती है।
एक और उदाहरण:- यहाँ एक भिक्षु धूल के बादल को सहन करता है, लेकिन ध्वज का शीर्ष नीचे डूबता देखकर पश्चाताप करता है, खुद पर नियंत्रण नहीं रख पाता, पवित्र जीवन विकसित करने में असमर्थ रहता है; विद्या में कमजोरी दिखाते हुए, उपदेशों का त्याग करके, वह निम्न गृहस्थ जीवन में लौट आता है।

ध्वज के शीर्ष का उसके लिए क्या अर्थ है? यहाँ एक भिक्षु केवल यह नहीं सुनता कि ऐसे गाँव या कस्बे में कोई स्त्री या कन्या रहती है जो सुंदर, मनमोहक, आकर्षक और अत्यंत सुंदर है; वह स्वयं उस स्त्री या कन्या को देखता है; उसे देखकर वह निराश हो जाता है, पश्चाताप करता है, आत्मसंयमित हो जाता है, पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो जाता है; विद्या में दुर्बल होकर, नियमों का त्याग करके, वह गृहस्थ जीवन में लौट आता है; ध्वज के शीर्ष का उसके लिए यही अर्थ है। जिस प्रकार एक पेशेवर योद्धा धूल में गिरने के बावजूद ध्वज के शीर्ष को देखकर निराश हो जाता है, पश्चाताप करता है, आत्मसंयमित हो जाता है, और युद्ध के लिए आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है, ठीक वैसा ही यह व्यक्ति है; यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में मौजूद यह दूसरा व्यक्ति है जो एक पेशेवर योद्धा के समान है।

एक और उदाहरण:- यहाँ एक भिक्षु धूल के बादल को सहन करता है, ध्वज के शीर्ष को सहन करता है, परन्तु युद्ध की पुकार सुनकर वह निराश हो जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाता, पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो जाता है; विद्या में कमजोरी दिखाते हुए, नियमों का त्याग करके, वह निम्न गृहस्थ जीवन में लौट आता है।

उसके लिए युद्धघोषों का क्या अर्थ है? यहाँ एक स्त्री किसी भिक्षु के पास आती है, जो जंगल में, वृक्ष की गोद में या किसी खाली कमरे में गया हुआ है। वह स्त्री से हल्के-फुल्के ढंग से बात करती है, बातचीत करती है, हँसती है और मज़ाक करती है। स्त्री द्वारा हल्के-फुल्के ढंग से बात किए जाने, बातचीत या मज़ाक किए जाने या उपहास किए जाने पर वह निराश हो जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, अपना संयम खो देता है, पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो जाता है; विद्या में कमजोरी दिखाते हुए, नियमों का त्याग करके, वह निम्न गृहस्थ जीवन में लौट आता है; उसके लिए युद्धघोषों का यही अर्थ है। जिस प्रकार एक कुशल योद्धा धूल में भी खड़ा रहता है, ध्वज के शिखर पर भी खड़ा रहता है, युद्धघोष सुनकर निराश हो जाता है, पश्चाताप से भर जाता है, अपना संयम खो देता है, और युद्ध के लिए आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति भी है; यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में मौजूद यह तीसरा व्यक्ति एक कुशल योद्धा के समान है।

फिर एक और उदाहरण:- यहाँ एक भिक्षु धूल के बादल को सहता है, झंडे के शीर्ष को सहता है, युद्ध के नारों को सहता है, लेकिन अंत में हाथापाई में मारा जाता है और उसका अंत हो जाता है।

उसके लिए इस संघर्ष का क्या अर्थ है? यहाँ एक स्त्री किसी भिक्षु के पास आती है जो जंगल में, वृक्ष की गोद में या किसी एकांत स्थान पर गया हो; वह पास बैठती है, लेट जाती है, अपने अंगों को फैलाती है; वह स्त्री को अपने पास बैठा, लेटा और फैलाए देखकर, नियमों का उल्लंघन करता है और कमजोरी दिखाते हुए दुराचार करता है। उसके लिए इस संघर्ष का यही अर्थ है। जैसे वह कुशल योद्धा धूल में भी तड़पता है, ध्वज के शिखर पर खड़ा होता है, युद्ध घोष सुनता है, फिर भी मारा जाता है और उसका अंत हो जाता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी है; यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति है। भिक्षुओं में यह चौथा व्यक्ति है जो कुशल योद्धा के समान है।

एक और वर्णन:- यहाँ एक भिक्षु धूल के बादल को सहता है, ध्वज के शीर्ष को सहता है, युद्ध के नारों को सहता है और हाथापाई को सहता है; वह युद्ध जीतकर, विजयी होकर, युद्ध के मैदान में जीवित रहता है।

उसके लिए युद्ध में विजय का क्या अर्थ है? यहाँ एक स्त्री भिक्षु के पास आती है, जो जंगल में, वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कमरे में गया है, पास बैठती है, पास लेट जाती है और अपने अंगों को पूरी तरह फैला लेती है। वह स्त्री को अपने पास बैठा, लेटा और अपने अंगों को पूरी तरह फैलाए हुए पाकर, स्वयं को मुक्त करके जहाँ चाहे वहाँ चला जाता है; वह एकांत स्थान पर, जंगल में, वृक्ष की तलहटी में, पहाड़ पर, गुफा में, पर्वतीय कंदरा में, कब्रिस्तान में, वन क्षेत्र में, खुले में या भूसे के ढेर पर रहता है; वह जंगल में, वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कमरे में जाकर पालथी मारकर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है और ध्यान लगाता है; वह संसार में लोभ का त्याग करके लोभ रहित मन से जीवन व्यतीत करता है, वह लोभ से मन को शुद्ध करता है; द्वेष का त्याग करके, वह द्वेष रहित मन से जीवन व्यतीत करता है; सभी प्राणियों के प्रति दयालु होकर, वह द्वेष से मन को शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, प्रकाश के प्रति सचेत होकर, सजग और ज्ञानी होकर, वह मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है; विचलित और बेचैनी का त्याग करके, वह मन को आंतरिक रूप से शांत रखते हुए, इनसे शुद्ध करता है; संदेह का त्याग करके, वह संदेह से परे जीवन व्यतीत करता है; अच्छे गुणों के संबंध में संदेह से मुक्त होकर, वह मन को संदेह से शुद्ध करता है; मन को भ्रष्ट करने वाले, बुद्धि को कमजोर करने वाले इन पाँच अवरोधों का त्याग करके, वह इंद्रिय सुखों और बुरे गुणों से मुक्त होकर प्रथम ध्यान (परमानंदमय ध्यान) की प्राप्ति में रहता है, जो निरंतर चिंतन से युक्त होता है और एकांत के कारण आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है; निरंतर चिंतन को समाप्त करके, वह परमानंदमय ध्यान के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरणों की प्राप्ति में रहता है।
वह व्यक्ति जिसका मन एकाग्र है, जो शुद्ध है, निर्मल है, पापरहित है, कोमल है, जिस पर क्रिया की जा सकती है, स्थिर है और अविचल है, पापी प्रवृत्तियों के नाश के ज्ञान से अपने मन को एकाग्र करता है; वह सत्यतः जानता है कि यह दुख है, इत्यादि... यह दुख के निवारण का मार्ग है; वह सत्यतः जानता है कि ये पापी प्रवृत्तियाँ हैं, इत्यादि... वह सत्यतः समझता है कि यह पापी प्रवृत्तियों के निवारण का मार्ग है। इस प्रकार जानने और देखने से उसका मन इंद्रिय सुखों की प्रवृत्ति से मुक्त हो जाता है, उसका मन पुनर्जन्म की प्रवृत्ति से मुक्त हो जाता है, उसका मन अज्ञान की प्रवृत्ति से मुक्त हो जाता है; जब वह मुक्त हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह मुक्त है, वह जानता है कि जन्म का अंत हो गया है, पवित्र जीवन व्यतीत हो गया है, जो करना था वह हो गया है, और 'इन स्थितियों में आगे कुछ भी नहीं है।' युद्ध में विजय का यही अर्थ उसके लिए है। जिस प्रकार एक कुशल योद्धा धूल में भीगता है, ध्वज के शिखर पर खड़ा रहता है, युद्धघोषों को सहता है, दूर से ही लड़ाई लड़ता है, युद्ध में जीत हासिल करता है, युद्धक्षेत्र में जीवित रहता है, ठीक वैसे ही यह व्यक्ति है; यहाँ ऐसा ही एक व्यक्ति मौजूद है। यह पाँचवाँ व्यक्ति है जो भिक्षुओं में एक कुशल योद्धा के समान है।

ये वे पांच व्यक्ति हैं जो पेशेवर योद्धाओं के समान भिक्षुओं के बीच रहते हैं और अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

4. वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो भीख पर जीवन यापन करते हैं?
कोई व्यक्ति अपनी सुस्ती और मूर्खता के कारण भिक्षा पर जीवन यापन करता है, कोई व्यक्ति पापी इच्छाओं और वासनाओं से प्रेरित होकर भिक्षा पर जीवन यापन करता है, कोई व्यक्ति पागलपन और असंतुलित मन के कारण भिक्षा पर जीवन यापन करता है, कोई व्यक्ति यह सोचकर भिक्षा पर जीवन यापन करता है कि बुद्धों और उनके शिष्यों ने इसकी प्रशंसा की है; और, इसके अलावा, कोई व्यक्ति केवल इच्छा के अभाव में, केवल संतोष के कारण, केवल पाप के निवारण के कारण, और क्योंकि जीवन आवश्यक है, भिक्षा पर जीवन यापन करता है।
वहाँ वह व्यक्ति जो केवल इच्छा के अभाव, संतोष, पाप के निवारण और न्यायपूर्ण जीवन के कारण भिक्षा पर जीवन यापन करता है, वही इन पाँचों भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों में सर्वोपरि, श्रेष्ठ, प्रमुख, श्रेष्ठ और उत्तम है। जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मैल प्राप्त होता है, वैसे ही इन गुणों के कारण भिक्षा पर जीवन यापन करने वाला यह व्यक्ति पाँचों भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों में सर्वोपरि, श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम और उत्तम है। ये पाँचों व्यक्ति भिक्षा पर जीवन यापन करते हैं।

5-14. वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो निर्धारित समय के बाद भोजन ग्रहण करने से इनकार करते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो एक ही आसन का उपयोग करते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो कूड़े के ढेर से इकट्ठा किए गए चिथड़े पहनते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो तीन वस्त्र पहनते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो वनवासी हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो वृक्ष के नीचे रहते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो खुले आकाश के नीचे रहते हैं? वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो बैठकर विश्राम करते हैं? (वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो उपलब्ध कराए गए किसी भी आसन का उपयोग करते हैं?) वे पाँच व्यक्ति कौन हैं जो श्मशान में निवास करते हैं?

[ये तेरह कठोर धार्मिकों के नौ वर्ग हैं जो तेरह धुतंगों, या 'अत्यंत कठोर मार्गों' का अभ्यास करते हैं। कोष्ठक में दिया गया वाक्य इनका उल्लेख नहीं करता है। देखें। प्रत्येक के साथ 4 को दोहराया जाना है। देखें मिलिंदा, द्वितीय, पुस्तक VI; विशुद्धिमग्ग, अध्याय द्वितीय]

यहां पांच के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय 6**
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय VI: मानव प्रकारों का छह भागों में विभाजन

I. एक ऐसा व्यक्ति होता है जो उन सिद्धांतों के संबंध में, जिनके बारे में उसने पहले कभी नहीं सुना होता, अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, और उनमें सर्वज्ञता के साथ-साथ फलों पर भी प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है।
ऐसे व्यक्ति को पूर्णतः प्रबुद्ध माना जाता है।

2. एक ऐसा व्यक्ति भी है जो उन सिद्धांतों के संबंध में, जिनके बारे में उसने पहले कभी नहीं सुना है, अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, लेकिन उनमें सर्वज्ञता और साथ ही फलों पर प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर पाता है।
ऐसा व्यक्ति स्वयं ही प्रबुद्ध माना जाता है।
(paccekasambuddho).

3. एक ऐसा व्यक्ति भी है जो उन सिद्धांतों के संबंध में, जिनके बारे में उसने पहले कभी नहीं सुना है, अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, इसी जीवन में दुख का अंत कर देता है और शिष्यत्व की पूर्णता प्राप्त कर लेता है।
ऐसे व्यक्ति को सारिपुत्त और मोग्गलाना माना जाता है।

4. एक ऐसा व्यक्ति भी है जो पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के संबंध में अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, इसी जीवन में दुख का अंत कर देता है, लेकिन शिष्यत्व की पूर्णता प्राप्त नहीं करता है।
अन्य अरहंतों के बारे में भी यही विचार किया जाना चाहिए।

5. एक ऐसा व्यक्ति भी है जो पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के संबंध में अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, इसी जीवन में दुख का अंत कर देता है और अनित्य बन जाता है, उसे इन परिस्थितियों में वापस नहीं आना पड़ता।
'वापसी न करने वाले' (अनागामी) को इसी प्रकार माना जाना चाहिए।

6. एक ऐसा व्यक्ति भी है जो पहले कभी न सुने गए सिद्धांतों के संबंध में अपने स्वयं के प्रयास से सत्यों को पूरी तरह से समझ लेता है, और (चूंकि वह) इसी जीवन में दुख का अंत नहीं करता है, इसलिए वह एक बार फिर लौटकर आता है, उसे इन परिस्थितियों में वापस आना पड़ता है।
धारा तक पहुंचने वाले (सोतापन्ना) और 'एक बार लौटने वाले' को इसी प्रकार माना जाना चाहिए।

यहां छह सदस्यों का समूह समाप्त होता है।
टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय** 7
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय VII: मानव प्रकारों का सात भागों में विभाजन

1. एक बार डूब जाने वाला व्यक्ति केवल डूबा हुआ ही क्यों माना जाता है?
यहां एक व्यक्ति में घोर अनैतिक गुण व्याप्त हैं। ऐसे व्यक्ति को एक बार डुबो देने पर वह बस डूब ही जाता है।

पानी से बाहर निकलने के बाद कोई व्यक्ति कैसे डूब जाता है?
यहां एक व्यक्ति आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि जैसे अच्छे (नैतिक) गुणों के साथ प्रकट होता है, लेकिन उसकी आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा या अंतर्दृष्टि न तो बनी रहती है और न ही बढ़ती है, बल्कि घटती जाती है। ऐसा व्यक्ति प्रकट होने के बाद डूब जाता है।

किसी व्यक्ति के अस्तित्व में आने के बाद वह कैसे बना रहता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है, और उसके ये गुण, आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा या अंतर्दृष्टि न तो घटती हैं और न बढ़ती हैं, बल्कि निरंतर बनी रहती हैं। ऐसा व्यक्ति प्रकट होने के बाद भी बना रहता है।
बाहर निकलने के बाद व्यक्ति किस तरह से इधर-उधर देखता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण होता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश से वह ज्ञानोदय प्राप्त कर लेता है, दुखद अवस्था में गिरने की संभावना समाप्त हो जाती है, और अंत में उसे ज्ञानोदय (संबोधि) प्राप्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति प्रकट होने के बाद चारों ओर देखता है।

जल से बाहर निकलने के बाद कोई व्यक्ति तैरना कैसे जारी रख सकता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि जैसे अच्छे गुणों से परिपूर्ण होता है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और वासना, घृणा और भ्रम के नाश से वह एक बार लौटकर इस संसार में आता है और दुखों का अंत करता है। ऐसा व्यक्ति जन्म के बाद निरंतर प्रवाहित होता रहता है।

एक व्यक्ति उभरने के बाद स्थिर स्थिति तक कैसे पहुंचता है?
यहां एक विशेष व्यक्ति आस्था, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि जैसे अच्छे गुणों के साथ प्रकट होता है। निम्न लोकों में पुनर्जन्म का कारण बनने वाले पांच बंधनों के पूर्ण नाश से वह एक आभासी पुनर्जन्म प्राप्त करने वाला प्राणी बन जाता है, जो उस अवस्था में अंतिम मुक्ति प्राप्त करता है और उस लोक से वापस नहीं लौटता। ऐसा व्यक्ति पुनर्जन्म के बाद एक स्थिर स्थिति में पहुंच जाता है।

वह किस प्रकार का व्यक्ति है जो सच्चे ब्राह्मण के रूप में जन्म लेने के बाद दूसरे तट पर जाकर स्वयं को पूर्ण सिद्धि में स्थापित करता है?

यहां एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो आस्था, विनम्रता, विवेक, ऊर्जा और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण होता है। पापी प्रवृत्तियों का नाश करके वह इच्छाशक्ति और अंतर्दृष्टि की मुक्ति प्राप्त करता है, उन पापी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर और इस जन्म में ही अपने प्रयासों से उन्हें जानकर और अनुभव करके जीवन व्यतीत करता है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा ब्राह्मण है जो जन्म के बाद परलोक की ओर अग्रसर होकर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

2. दोनों तरह से मुक्त होने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक व्यक्ति स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है, और अंतर्दृष्टि से उन्हें देखकर उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति दोनों प्रकार से मुक्त हो जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति अंतर्दृष्टि के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है?
यहां एक व्यक्ति, स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव किए बिना, लेकिन अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें समझकर, अपनी पापी प्रवृत्तियों को पूरी तरह से नष्ट कर लेता है। ऐसा व्यक्ति अंतर्दृष्टि के माध्यम से मुक्त हो जाता है।

'प्रत्यक्षदर्शी' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां व्यक्ति स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है और अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें समझकर, उसकी कुछ पापी प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति 'प्रत्यक्षदर्शी' कहलाता है।

'दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां व्यक्ति को यह सत्य समझ आता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है, और अंतर्दृष्टि से उन्हें समझने के बाद उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियां पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति ही प्रत्यक्षदर्शी होता है।

किस प्रकार का व्यक्ति आस्था के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है?
यहां व्यक्ति को यह सत्य समझ आता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है। अंतर्दृष्टि से इन सिद्धांतों को समझने के बाद, उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियां पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं, हालांकि उस प्रकार नहीं जैसे दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति की होती हैं। ऐसा व्यक्ति आस्था के द्वारा मुक्त हो जाता है।

सामान्य मानदंडों का पालन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का इंसान होता है?
धारा-प्राप्तकर्ता की सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर व्यक्ति की अंतर्दृष्टि शक्ति अत्यधिक विकसित हो जाती है; वह तर्क से युक्त और आस्था से प्रेरित श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है। ऐसे व्यक्ति को आदर्श का पालन करने वाला कहा जाता है। धारा-प्राप्तकर्ता की सिद्ध अवस्था के लिए प्रयासरत ऐसा व्यक्ति आदर्श का पालन करने वाला होता है; जबकि सिद्ध अवस्था में स्थापित वही व्यक्ति दृष्टि प्राप्त कर चुका होता है।

धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का इंसान होता है?
धारा-प्राप्तकर्ता की सिद्धि अवस्था को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर आस्था-शक्ति का व्यापक विकास होता है। वह आस्था से परिपूर्ण और आस्था से प्रेरित श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है। ऐसे व्यक्ति को आस्था के अनुरूप चलने वाला कहा जाता है। धारा-प्राप्तकर्ता की सिद्धि अवस्था के लिए प्रयासरत ऐसा व्यक्ति आस्था के अनुरूप होता है; और सिद्धि अवस्था में स्थापित वही व्यक्ति आस्था द्वारा मुक्त हो जाता है।

यहां सात के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय 8**
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय VIII: मानव प्रकारों का आठ भागों में विभाजन

इस मार्ग से जुड़े चार व्यक्ति कौन हैं और इस मार्ग की सफलता से जुड़े चार व्यक्ति कौन हैं?
धारा का अनुसरण करने वाला और फल प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाला; एक बार लौटने वाला और फल प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाला; कभी न लौटने वाला और फल प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाला; और अरहंत (चुने हुए या योग्य) और अरहंतत्व प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने वाला - ये चार व्यक्ति मार्ग से जुड़े हुए हैं और ये चारों ही फल प्राप्ति से जुड़े हुए हैं।

यहां आठ के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय 9**
मूलतः गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय 9: मानव प्रकारों का नौ भागों में विभाजन

पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक ऐसे व्यक्ति की बात हो रही है जो उन सिद्धांतों को भी भलीभांति समझ लेता है जिनके बारे में उसने पहले कभी नहीं सुना होता, और उन सत्यों का सर्वज्ञ ज्ञान तथा उनके फल पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है।

स्वयं के लिए ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का होता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो उन सिद्धांतों के बारे में, जिनके बारे में उसने पहले कभी नहीं सुना है, स्वयं सत्यों को भलीभांति समझ लेता है, परन्तु न तो सर्वज्ञता प्राप्त करता है और न ही उन सत्यों के फल पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति को स्वयं प्रबुद्ध कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति दोनों तरह से स्वतंत्र होता है?

यहां एक व्यक्ति स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है, और अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें समझकर, उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को दोनों प्रकार से मुक्त कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति अंतर्दृष्टि के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है?
यहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसने स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव नहीं किया है, लेकिन अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें जान लिया है, जिससे उसकी पापी प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्त कहा जाता है।

'प्रत्यक्षदर्शी' किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक व्यक्ति स्वयं मुक्ति के आठ चरणों का अनुभव करता है, और अंतर्दृष्टि के माध्यम से उन्हें समझने पर, उसकी कुछ पापी प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को 'प्रत्यक्षदर्शी' कहा जाता है।

जिस व्यक्ति को दृष्टि प्राप्त हो जाती है, वह किस प्रकार का व्यक्ति होता है?
यहां एक व्यक्ति वास्तव में यह समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है; और अंतर्दृष्टि से उन्हें ग्रहण करने के कारण उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को ही ज्ञान प्राप्त करने वाला कहा जाता है।

किस प्रकार का व्यक्ति आस्था के द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है?
यहां एक व्यक्ति वास्तव में समझता है कि यही दुख है, यही दुख का कारण है, यही दुख का निवारण है और यही दुख निवारण का मार्ग है। तथागत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को वह अंतर्दृष्टि से ग्रहण करता है और उनका अभ्यास भी करता है; और अंतर्दृष्टि से ग्रहण करने पर उसकी कुछ पाप प्रवृत्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं, यद्यपि उस प्रकार नहीं जैसे किसी दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति की होती हैं। ऐसे व्यक्ति को आस्था द्वारा मुक्त कहा जाता है।

सामान्य मानदंडों का पालन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का इंसान होता है?
धारा प्राप्ति की अवस्था में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की अंतर्दृष्टि क्षमता अत्यधिक विकसित हो जाती है; वह उस श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है जो अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है और अंतर्दृष्टि से प्रेरित है। ऐसे व्यक्ति को आदर्श का पालन करने वाला कहा जाता है। धारा प्राप्ति की अवस्था के लिए प्रयासरत ऐसा व्यक्ति आदर्श का पालन करने वाला होता है; और यही व्यक्ति जब उस अवस्था में स्थापित हो जाता है, तो उसे दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति किस प्रकार का इंसान होता है?
जब आस्था की धारा प्राप्ति की पूर्णता की ओर अग्रसर होती है, तो आस्था-संपदा काफी हद तक विकसित हो जाती है। वह आस्था से परिपूर्ण और आस्था से प्रेरित श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है। ऐसे व्यक्ति को आस्था के अनुरूप चलने वाला कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति जो आस्था की धारा प्राप्ति की पूर्णता के लिए प्रयासरत है, आस्था के अनुरूप चलने वाला है; और जब वही व्यक्ति पूर्णता की अवस्था में स्थापित हो जाता है, तो वह आस्था द्वारा मुक्त हो जाता है।

यहां नौ के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

टिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पुग्गलपन्नति >> **अध्याय** 10
मूलत: गौतम बुद्ध द्वारा लगभग 550 ईसा पूर्व पाली भाषा में बोला गया।
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण।
बिमला चरण विधि द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से रूपांतरित।

अध्याय X: दस भागों में मानव प्रकारों का विभाजन

यहां किस पांच के माध्यम से संभोग की पूर्णता प्राप्त होती है?

सात जन्मों से अधिक जन्म न लेने वाला 'धारा-प्राप्तकर्ता', कुछ परिवारों (सात से कम) से होकर गुजरने वाला 'धारा-प्राप्तकर्ता', 'एकल-बीज वाला' 'धारा-प्राप्तकर्ता', 'एक बार लौटने वाला' और इसी जन्म में अरहंतत्व प्राप्त करने वाला:- इन पांचों में पूर्णता यहीं प्राप्त होती है।

किस 'पांच' से इस संसार को छोड़ने के बाद पूर्णता प्राप्त होती है?

'वह व्यक्ति जो ब्राह्मण लोक में अपने निर्धारित जीवनकाल के आधे समय से पहले ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है,' 'अवधि-समाप्त करने वाला', 'स्वयं-प्राप्त होने वाला', 'कठिन परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करने वाला', 'अकनित्थ क्षेत्र की ओर अग्रसर होने वाला'। इन पाँचों के द्वारा इस संसार को छोड़ने के बाद पूर्णता प्राप्त होती है।
अब तक मानव प्रकारों का निर्धारण किया जा चुका है।

यहां दस के आधार पर समूहीकरण का विवरण समाप्त होता है।

'मानव प्रकारों का पदनाम' यहीं समाप्त होता है।

पत्थाना

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> **पत्तन**

अंतर्वस्तु

- 1पत्थाना
  - 1.1संस्करण 1 - पथानुद्देसा दिपानी
  - 1.2संस्करण 2 - पट्ठाना धम्म
  - 1.3अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
  - 1.4मूल पाली संस्करण

पत्थाना
(संबंधों की पुस्तक)
यह अभिधम्म की अंतिम (सातवीं) पुस्तक है। यह पुस्तक कारण-कार्य संबंधों का विस्तृत अध्ययन है, जिसमें धम्मसंगनी की मतिका (तालिका) में दिए गए वर्गीकरणों के संदर्भ में 24 प्रकार के संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

पाली संस्करण: पथन-पाली-अंग्रेजी-संस्करण और पथन-पाली-देवनागरी-संस्करण

यहां पत्थाना के दो संस्करण प्रस्तुत किए गए हैं:

संस्करण 1 - पथानुद्देसा दिपानी
महाथेरा लेदी सयाडॉ द्वारा और अनुवाद सयाडॉ यू न्याना द्वारा

प्रस्तावना
अध्याय 1 - हेतु-पच्चय या मूल के माध्यम से संबंध
अध्याय 2 - अरम्मन-पच्चय या वस्तु का संबंध
अध्याय 3 - अधिपति-पच्चय या प्रभुत्व का संबंध
अध्याय 4 - अनंतर-पच्चय या निकटता का संबंध
अध्याय 5 - समनंतर-पच्चय या तत्काल निकटता का संबंध
अध्याय 6 - सहजत-पच्चय या सहअस्तित्व का संबंध
अध्याय 7 - अन्नमन्न-पच्चय या पारस्परिकता का संबंध
अध्याय 8 - निस्साय पच्चय या निर्भरता का संबंध
अध्याय 9 - उपनिस्साय-पच्चय या पर्याप्तता का संबंध
अध्याय 10 - पुरेजात-पच्चय या पूर्व-अस्तित्व का संबंध
अध्याय 11 - पच्चजात-पच्चय या उत्तर-अस्तित्व का संबंध
अध्याय 12 - असेवन-पच्चय या संबंध आदतन पुनरावृत्ति
अध्याय 13 - कर्म-पच्चया या कर्म का संबंध
अध्याय 14 - विपाक-पच्चया या प्रभाव का संबंध
अध्याय 15 - आहार-पच्चया या भोजन का संबंध
अध्याय 16 - इंद्रिय-पच्चया या नियंत्रण का संबंध
अध्याय 17 - ध्यान-पच्चया या ध्यान का संबंध
अध्याय 18 - मार्ग-पच्चया या पथ का संबंध
अध्याय 19 - सम्पायुत्त-संबंध या सहभागिता का संबंध
अध्याय 20 - विपायुत्त-पच्चया या वियोग का संबंध
अध्याय 21 - अत्ति-पच्चया या उपस्थिति का संबंध
अध्याय 22, 23, 24 - नत्थि, विगत, अविगत पच्चया, यानी स्थगन, अनुपस्थिति और निरंतरता के संबंध

अध्याय 25 - पच्चया-सभागो या संबंधों का संश्लेषण
अध्याय 26 - पच्चया-घटनानाया या संबंधों का समकालिकता
अध्याय 27 - हेतु के बिना चेतना में संबंधों का समकालिकता,
अनैतिक चेतना वर्ग में संबंधों का समकालिकता,
मन की अवस्थाओं में संबंधों का समकालिकता,
भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों का समकालिकता
फुटनोट्स

विज्ञापन

संस्करण 2 - पट्ठाना धम्म

हटू नाइंग द्वारा

परिचय
अध्याय 1 - चित्त
अध्याय 2 - सीतासिका
अध्याय 3 - रूपा
अध्याय 4 - निब्बान
अध्याय 5 - हेतु पकायो
अध्याय 6 - अरम्मना पकायो
अध्याय 7 - अधिपति पकायो
अध्याय 8 - अनंत पकायो
अध्याय 9 - समानंतरा पकायो
अध्याय 10 - सहजता पकायो
अध्याय 11 - अन्नमन्ना पकायो
अध्याय 12 - निस्साया पकायो
अध्याय 13 - उपनिस्साय पकायो
अध्याय 14 - पूरेजता पकायो
अध्याय 15 - पच्चजाता पकायो
अध्याय 16 - असेवना पकायो
अध्याय 17 - कम्मा पकायो
अध्याय 18 - विपाका पकायो
अध्याय 19 - अहारा पकायो
अध्याय 20 - इंद्रिया पकायो
अध्याय 21 - झाना पकायो
अध्याय 22 - मग्गा पकायो
अध्याय 23 - संपायुट्टा पकायो
अध्याय 24 - विप्पयुट्टा पकायो
अध्याय 25 - अट्ठी पकायो
अध्याय 26 - नत्थी पकायो और विगाता पकायो
अध्याय 27 - अविगाता पकायो
निष्कर्ष

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पत्तन >> **परिचय-पत्थनुद्देस दिपनि**

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

प्रस्तावना

'पत्थाना' शब्द का अर्थ "पधानं थानं ति पत्थानां" से जाना जाता है: पत्थाना सर्वोत्कृष्ट या प्रमुख कारण है। इस परिभाषा में 'पधान' का अर्थ 'सर्वोत्कृष्ट' और 'थान' का अर्थ 'स्थिति' या 'कारण' है। अतः संपूर्ण अभिव्यक्ति का अर्थ "सर्वोत्कृष्ट कारण", "वास्तविक कारण" या "अपरिहार्य कारण" है। यह इसके अपरिहार्य प्रभाव या परिणाम के संदर्भ में कहा गया है।[33] प्रभाव दो प्रकार के होते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। "प्रत्यक्ष" से तात्पर्य प्राथमिक या वास्तविक प्रभाव से है, और "अप्रत्यक्ष" से तात्पर्य परिणामी या आकस्मिक प्रभाव से है। इन दोनों प्रकारों में से, केवल प्रत्यक्ष प्रभाव को ही यहाँ अपरिहार्य कहा गया है, और इसका कारण यह है कि जब इसका उचित कारण स्थापित हो जाता है या क्रियाशील हो जाता है, तो यह अनिवार्य रूप से उत्पन्न होता है। और अप्रत्यक्ष प्रभाव को "अपरिहार्य" समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह अपने कारण के पूर्ण रूप से स्थापित होने पर भी उत्पन्न हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। अत: अपरिहार्य कारण को अपरिहार्य परिणाम के संदर्भ में यह नाम दिया गया है। अतः इस "महान ग्रंथ" में केवल अपरिहार्य या मुख्य कारण की ही व्याख्या की जानी है। इसी कारण चौबीस संबंधों के संपूर्ण संग्रह और "महान ग्रंथ" को 'पत्थाना' नाम दिया गया है।

अब, इस विषय को और अधिक स्पष्ट और सरल बनाने के लिए:

मान लीजिए कि धन और अनाज प्राप्त करने की इच्छा से एक व्यक्ति के मन में लोभ उत्पन्न होता है। लोभ के प्रभाव में आकर वह एक जंगल में जाता है, जहाँ वह एक ज़मीन साफ़ करके खेत, आँगन और बगीचे बनाता है और कड़ी मेहनत करने लगता है। अंततः अपनी मेहनत के फलस्वरूप वह प्रचुर धन और अनाज प्राप्त करता है। वह अपनी कमाई से अपने परिवार का पालन-पोषण करता है और अनेक पुण्य कर्म करता है, जिनका फल उसे भविष्य में भी मिलेगा। इस उदाहरण में, लोभ के साथ विद्यमान सभी मानसिक और भौतिक अवस्थाओं को प्रत्यक्ष फल कहा जाता है। इनके अतिरिक्त, भविष्य में मिलने वाले सभी परिणाम, फल और पुरस्कार अप्रत्यक्ष फल कहलाते हैं। इन दो प्रकार के फलों में से केवल पहले प्रकार के फलों का वर्णन पत्थाना में किया गया है। परन्तु दूसरे प्रकार के फल सुत्तंत प्रवचनों में मिलते हैं। यदि यह होता है, तो वह होता है; या, इसके घटित होने के कारण, वह भी घटित होता है। इस प्रकार की व्याख्या को सुत्तंत के माध्यम से व्याख्या कहा जाता है। वास्तव में, तीन अवस्थाओं (लोभ, घृणा और अज्ञान) को हेतु या परिस्थितियाँ कहा जाता है, क्योंकि ये वे मूल हैं जिनसे सजीव जगत, निर्जीव जगत और अंतरिक्ष जगत के सभी दोष उत्पन्न होते हैं। अन्य तीन विपरीत अवस्थाओं (निराकारता, मित्रता और ज्ञान) को भी हेतु या परिस्थितियाँ कहा जाता है, क्योंकि ये वे मूल हैं जिनसे शुद्धि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार शेष पथाना संबंधों को भी उनके विभिन्न अर्थों में समझा जाना चाहिए। इस प्रकार हमें यह समझना चाहिए कि जो कुछ भी घटित होता है, घटित होता है, या परिवर्तन उत्पन्न करता है, वह केवल इन चौबीस पथाना संबंधों या कारणों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव, परिणाम या उत्पाद हैं।

बौद्ध धर्म निर्वाण और परिणति को छोड़कर, संसार को क्षणभंगुर, दुखदायी और आत्मा-सार रहित मानता है। अतः बौद्ध दर्शन, शाश्वत परिवर्तन के नियम के संदर्भ में क्षणभंगुरता को स्पष्ट करने के लिए, प्रारंभ से ही सभी चीजों, सभी मानसिक और भौतिक घटनाओं को, पंचम नियम के अंतर्गत, मन और पदार्थ की अवस्थाओं (सभाव) की निरंतर श्रृंखला में विलीन कर देता है। ये घटनाएँ अपने मूल स्वरूप और अन्य घटनाओं दोनों के लिए अनेक तरीकों से निर्धारित और निर्धारक होती हैं, जिन्हें बौद्ध दर्शन 'पच्चय' या 'संबंध' शब्द से व्यक्त करता है। मानसिक और भौतिक अवस्थाओं की एक जटिल घटना, जिसमें समय के तीन चरण होते हैं - उत्पत्ति या जन्म, समाप्ति या मृत्यु और इनके बीच का स्थिर अंतराल - के बाद एक और घटना घटित होती है, जिसमें हमेशा एक कारण-कार्य संबंध श्रृंखला होती है। कुछ भी आकस्मिक या संयोगवश नहीं होता। जब एक घटना अपने उद्भव, निरंतरता, समाप्ति, प्राथमिकता और परवर्तीता के द्वारा दूसरी घटना द्वारा निर्धारित होती है और उसे उत्पन्न करने (जनक), समर्थन करने (उपतम्भक) और बनाए रखने (अनुपालन) के माध्यम से निर्धारित करती है, तो पहली घटना को संबंधकारी वस्तु (पच्चया-धम्म) और दूसरी घटना को संबंधित वस्तु (पच्चयायुप्पन्न-धम्म) कहा जाता है, और निर्धारण, प्रभाव या विशिष्ट कार्य को सहसंबंधीता (पच्चयासत्ति) कहा जाता है। जैसा कि विभिन्न प्रकार के प्रभाव स्पष्ट रूप से ज्ञात हैं, संबंधों को निम्नलिखित 24 प्रजातियों में वर्गीकृत किया गया है:

1. हेतु--स्थिति या मूल
2. अरम्मना--वस्तु
3. अधिपति--प्रभुत्व
4. अनंतरा--निकटता
5. समनंतरा--निकटता
6. सहजलि--सहअस्तित्व
7. अन्नमन्ना--पारस्परिकता
8. निस्सय--निर्भरता

9. उपनिषय--पर्याप्त स्थिति
10. पुरेजात--पूर्व-अस्तित्व
11. पच्छजात--समय में पश्चवर्ती कारण संबंध
12. असेवना--आदतन पुनरावृत्ति
13. कर्म--कर्म या क्रिया
14. विपाक--प्रभाव
15. आहार/--भोजन
16. इंद्रिय--नियंत्रण
17. झान--झान या परमानंद
18. 19. मग्गा--पथ
20. सम्पायुत्त--सहयोग 21.
विप्पयुत्त--वियोग
22. अत्ति--उपस्थिति
23. नत्थि--अनुपस्थिति
24. विगत--स्थगन
24. अवगत--निरंतरता।

बौद्ध धर्मग्रंथ अभिधम्म पिटक के सातवें और अंतिम विश्लेषणात्मक ग्रंथ, जिसे पत्थाना ('उत्कृष्टता') या महा-पकरण ('महान ग्रंथ') कहा जाता है, में इन 24 प्रकार के संबंधों की विस्तृत और पूर्ण व्याख्या की गई है।

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पथन >> **अध्याय 1.पत्थनुद्देस दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

1. हेतु-पच्चय या मूल के माध्यम से संबंध

हेतु-संबंध क्या है? लोभ, द्वेष, आलस्य और इनके विपरीत गुण, अर्थात् निस्वार्थता, प्रेम और बुद्धि, ये सभी हेतु-संबंध हैं।

इन हेतु-संबंधों से कौन सी वस्तुएँ संबंधित हैं? वे मानसिक गुण और मानसिक अवस्थाएँ जो लोभ, द्वेष, आलस्य, निस्वार्थता, प्रेम और बुद्धि के साथ सह-अस्तित्व में हैं, साथ ही वे भौतिक गुण जो इनके साथ सह-अस्तित्व में हैं, वे वस्तुएँ इस प्रकार संबंधित हैं। इन सभी को हेतुपच्चयप्पन्न धम्म कहा जाता है, क्योंकि ये हेतु-संबंध के कारण उत्पन्न होते हैं या अस्तित्व में आते हैं।

उपरोक्त व्याख्या में, "एक ही के साथ विद्यमान भौतिक गुणों के समूह" से तात्पर्य उन भौतिक गुणों से है जो किसी नए प्राणी की हेतु-युक्त गर्भाधान की प्रारंभिक अवस्था में कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं, साथ ही उन भौतिक गुणों से भी जो हेतु-युक्त मन द्वारा जीवनकाल के दौरान उत्पन्न हो सकते हैं। यहाँ "गर्भाधान का क्षण" से तात्पर्य पुनर्जन्म-गर्भाधान के प्रारंभिक क्षण से है, और "जीवनकाल" से तात्पर्य पुनर्जन्म-गर्भाधान के स्थिर क्षण से लेकर मृत्यु-विचार के क्षण तक की अवधि से है।

हेतु को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? और पच्चय को किस अर्थ में? हेतु को मूल (मूलात्थ) के अर्थ में समझा जाना चाहिए; और पच्चय को पच्चयुप्पन्न धम्म या उपकारत्थ के उद्भव या अस्तित्व में आने में सहायक के अर्थ में समझा जाना चाहिए। इन दोनों में से, मूलात्थ मूल की मूल अवस्था है, लोभ-अतः, जैसा कि मूलयमक में दर्शाया गया है। हमने मूलात्त्व को मूल-यमक-दीपनी में वृक्ष के उपमा से समझाया है। फिर भी, हम यहाँ इस पर दोबारा चर्चा करेंगे।

मान लीजिए एक पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है। जब तक वह अपने कामुक विचार को दूर नहीं करता, उस स्त्री के प्रति उसके सभी कर्म, वचन और विचार, कामवासना (या लोभ) में सहायक होंगे, जो साथ ही साथ उसी विचार से उत्पन्न भौतिक गुणों को भी अपने वश में रखती है। तब हम देखते हैं कि इन सभी मानसिक और भौतिक गुणों की जड़ उस स्त्री के प्रति कामुक लोभ में निहित है। अतः, हेतु (क्योंकि यह जड़ का काम करता है) और पच्चय (क्योंकि यह मन और शरीर की उन अवस्थाओं के उत्पन्न होने में सहायक है) होने के

कारण, लोभ हेतु-पच्चय है। शेष को भी इसी प्रकार समझाया और समझा जा सकता है - अर्थात्, वांछनीय वस्तुओं की इच्छा से लोभ का उत्पन्न होना; घृणित वस्तुओं के प्रति घृणा से घृणा का उत्पन्न होना; और नीरस वस्तुओं के विषय में ज्ञान की कमी से सुस्ती का उत्पन्न होना।

एक पेड़ का उदाहरण लीजिए—हम देखते हैं कि पेड़ की जड़ें ज़मीन में मज़बूती से जम जाती हैं और मिट्टी व पानी दोनों से रस सोखकर पेड़ के ऊपरी हिस्से तक पहुँच जाती हैं, जिससे पेड़ लंबे समय तक बढ़ता और विकसित होता रहता है। ठीक इसी तरह, लालच भी मनभावन वस्तुओं में दृढ़ हो जाता है और उनसे सुख और आनंद का सार सोखकर उसे मन के अन्य तत्वों में समाहित कर लेता है, जिससे अनैतिक कर्म और वचन उत्पन्न होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लालच नैतिक कर्म और वचन के उल्लंघन का कारण बनता है। यही बात घृणा पर भी लागू होती है, जो अरुचि के कारण अप्रसन्नता और असुविधा का सार सोख लेती है, और यही बात अज्ञानता पर भी लागू होती है, जो ज्ञान की कमी के कारण अनेक विषयों पर व्यर्थ विचारों के सार को पनपने देती है।

इस प्रकार सार तत्व का परिवहन करते हुए, लोभ, दोष और मोह तीनों तत्व, घटक भागों पर इस प्रकार कार्य करते हैं कि वे (एक प्रकार से) प्रसन्न और आनंदित हो जाते हैं, जो वांछनीय वस्तुओं आदि से प्रसन्न होते हैं। घटक भाग भी उन पर कार्य करने के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं, जबकि सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुण भी उसी प्रभाव को साझा करते हैं। यहाँ, सम्पायुत्त-धम्मे अभिहारति शब्दों से यह समझा जाना चाहिए कि लोभ सुख और आनंद के सार को सहवर्ती तत्वों तक पहुँचाता है।

अब सकारात्मक पक्ष की ओर आते हैं—मान लीजिए कि पुरुष को इंद्रिय सुख में खतरा दिखाई देता है, और वह स्त्री के प्रति उस कामुक विचार का त्याग कर देता है। ऐसा करने से, उसके भीतर स्त्री के प्रति अनासक्ति उत्पन्न होती है। इससे पहले, भ्रम को मूल मानकर अशुद्ध कर्म, शब्द और विचार थे; लेकिन वर्तमान में वे अनुपस्थित हैं और उनके स्थान पर अनासक्ति को मूल मानकर शुद्ध कर्म, शब्द और विचार उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, त्याग, आत्म-संयम, ध्यान अभ्यास या उच्चतर आनंदमय विचार भी उत्पन्न होते हैं। अत: निःसंकोच (अलोभ) को हेतु-पच्चय कहा जाता है, क्योंकि यह हेतु है, मूल तत्व के रूप में कार्य करता है, जबकि सहवर्ती तत्व के उत्पन्न होने में सहायक होने के कारण यह पच्चय है। यही व्याख्या निःसंकोच के शेष भाग पर भी लागू होती है, और साथ ही मित्रता और बुद्धि पर भी, जो क्रमशः लोभ, घृणा और अज्ञान के विपरीत हैं।

यहां, जैसे वृक्ष की जड़ पूरे तने और उसके भागों को उत्तेजित करती है, वैसे ही निःसंकोच भाव में होता है। यह वांछनीय वस्तुओं की इच्छा को दूर करता है और लोभ रहित आनंद के सार को बढ़ावा देकर, उस सार से जुड़े अन्य तत्वों का भी पोषण करता है, जिससे वे इतने सुखी और आनंदित हो जाते हैं कि वे ध्यानिक, पथिक या फलदायक आनंद की चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, मित्रता और बुद्धि क्रमशः घृणा और अज्ञान को घृणा और सुस्ती से दूर करते हैं और घृणा और सुस्ती से रहित आनंद के सार को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार तीनों तत्वों (आलोभ, अदोष और अमोह) का प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है, जिससे उनके मानसिक सहवर्ती तत्व सुखी और आनंदित होते हैं। सहवर्ती तत्व भी प्रभावित होते हैं, जबकि भौतिक गुणों के सह-अस्तित्व वाले समूह भी उसी प्रकार प्रभावित होते हैं।

यहां लोभविवेकसुखरसम् शब्द लोभ, विवेक, सुख और रस का मिश्रण है। विवेक अनुपस्थिति की अवस्था है। लोभविवेक वह है जो लोभ से रहित है, या लोभ का अभाव है। लोभविवेक-सुख लोभ के अभाव से उत्पन्न होने वाला आनंद है। अतः संपूर्ण यौगिक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: लोभविवेकसुखरासा लोभ के अभाव से प्राप्त होने वाले आनंद का सार है।

अभिधम्म में वर्णित पथाना का नियम यही है। सुत्तंत के नियम की ओर मुड़ते हुए, सुस्ती और लोभ के दो तत्व, जिन्हें क्रमशः अज्ञान और भोग कहा जाता है, तीनों चक्रों के संपूर्ण मूल हैं। घृणा, लोभ का आकस्मिक परिणाम होने के कारण, केवल बुराई का मूल है। बुद्धि और निस्वार्थता के दो तत्व, जिन्हें क्रमशः ज्ञान और त्याग कहा जाता है, दुखों के चक्रों के निवारण के संपूर्ण मूल हैं। मित्रता, निस्वार्थता का आकस्मिक परिणाम होने के कारण, केवल अच्छाई का मूल है। इस प्रकार छह मूल तत्व मन और शरीर की सभी अवस्थाओं के कारण बन जाते हैं, जो या तो सहअस्तित्व में होती हैं या गैर-सहअस्तित्व में। अब जो कहा गया है वह सुत्तंत का नियम है।

हेतु-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 2.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

2. **अरम्मना-पच्चया या वस्तु का संबंध**

अरम्मना-संबंध क्या है? चेतना के सभी वर्ग, मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं की सभी अवस्थाएँ, भौतिक गुणों के सभी प्रकार, निर्वाण की सभी अवस्थाएँ, अवधारणाओं को व्यक्त करने वाले सभी शब्द अरम्मना-संबंध हैं। वास्तव में, कोई भी ऐसी वस्तु (धम्म) नहीं है जो मन और मानसिक तत्वों की वस्तु न बन जाए। संक्षेप में, वस्तु छह प्रकार की होती है: दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु और बोधगम्य वस्तु।

वे कौन सी वस्तुएँ हैं जो अरम्मना-संबंधों से संबंधित हैं? मन के सभी वर्ग और उनके सहवर्ती वे वस्तुएँ हैं जो अरम्मना-संबंधों से संबंधित हैं। वास्तव में, चेतना का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है जो विद्यमान (भूतेन) या गैर-विद्यमान (अभूतेन) वस्तु के बिना विद्यमान हो सके। (भूतेन और अभूतेन का अनुवाद यहाँ क्रमशः 'वास्तविक' और 'अवास्तविक' या 'वर्तमान' और 'गैर-वर्तमान' के रूप में भी किया जा सकता है)।

यहाँ वर्तमान दृश्य वस्तु अरम्मन-पच्चय है, और यह दृष्टि की चेतना के दो वर्गों, अच्छे और बुरे, से कारणवश संबंधित है। इसी प्रकार, वर्तमान श्रव्य वस्तु ध्वनि की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान सुगंधित वस्तु गंध की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान स्वादयुक्त वस्तु स्वाद की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान स्पर्शनीय वस्तुओं के तीन वर्गों से, और वर्तमान पाँच इंद्रिय वस्तुओं को बोध के त्रिविध तत्व के रूप में ज्ञात चेतना के तीन वर्गों से कारणवश संबंधित है। ये सभी पाँचों इंद्रिय विषय, वर्तमान, भूतकाल या भविष्य, और विचार के सभी विषय, वर्तमान, भूतकाल, भविष्यकाल या समय से परे, अरम्मन-पच्चय हैं और चेतना के उन छिहत्तर वर्गों से कारणिक रूप से संबंधित हैं जिन्हें मन-ज्ञान (या बोध के तत्व) के रूप में जाना जाता है।

'अरम्मन' को किस अर्थ में और 'पच्चय' को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? अरम्मन को 'अलम्बितब्बा' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है वह जो मन और मानसिक तत्वों द्वारा धारण किया जाता है या जिस पर टिका रहता है। पच्चय को 'उपकारक' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है वह जो (पच्चयप्पन्नधम्म के उद्भव में) सहायता करता है।[3]

'आलंबितब्बा' शब्द के संदर्भ में, मन और उसके मानसिक कारकों के 'आलंबन' का कार्य किसी वस्तु को पकड़ना या उससे जुड़ना है। उदाहरण के लिए, इस भौतिक जगत में एक प्रकार की धातु है जिसे लोहे के प्रति उसकी स्पष्ट इच्छा के कारण 'अयोकांतक' (शाब्दिक रूप से, लोहे की इच्छा) कहा जाता है। जब वह लोहे के टुकड़े के पास आती है, तो वह मानो उसे पाने की इच्छा से कांपती है। इसके अलावा, वह आगे बढ़ती है और लोहे से दृढ़ता से जुड़ जाती है। अन्य मामलों में, वह लोहे को आकर्षित करती है, और इस प्रकार लोहा कांपता है, चुंबक के पास आता है, और उससे दृढ़ता से जुड़ जाता है। यहाँ हम चुंबक की शक्ति देखते हैं, जिसे मन और मानसिक कारकों के 'आलंबन' का एक प्रभावशाली उदाहरण माना जा सकता है।

वे (मन और उसके सहवर्ती) न केवल वस्तुओं से जुड़ते हैं, बल्कि किसी व्यक्ति के भीतर उनके अस्तित्व में आने के चरण में, हर क्षण उठते और समाप्त होते हैं, जबकि वस्तुएँ छह द्वारों के रास्तों पर विद्यमान रहती हैं[4]। इस प्रकार, यह उदय और थमना ठीक उसी प्रकार है जैसे घंटा बजता है, जो केवल उसकी सतह पर प्रहार करने पर उत्पन्न होता है और उसके तुरंत बाद मौन हो जाता है। यह वायलिन की ध्वनि के समान भी है, जो केवल उसके तारों पर धनुष से प्रहार करने पर उत्पन्न होती है और फिर तुरंत थम जाती है।

सोते हुए व्यक्ति के लिए—जब जीवन-निरंतरता (विचारों की धारा में) प्रवाहित हो रही होती है—कर्म, कर्म का चिन्ह और आने वाले जीवन में उसके भाग्य का चिन्ह—जो पिछले जन्म में मृत्यु के निकट आने पर स्पष्ट रूप से छह द्वारों के मार्ग में प्रवेश कर चुके थे—आरंभ संबंध हैं, और जीवन-निरंतरता के रूप में ज्ञात चेतना (उन्नीस श्रेणियों) से कारणिक रूप से संबंधित हैं।

आरंभ संबंध का अंत।

3: अधिपति-पच्चय या प्रभुत्व का संबंध

प्रभुत्व का संबंध दो प्रकार का होता है: वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व और सह-अस्तित्व वाला प्रभुत्व। इन दोनों में से वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का संबंध क्या है? अरम्मन-संबंध पर चर्चा किए गए खंड में जिन वस्तुओं का उल्लेख किया गया है, उनमें से कुछ वस्तुएँ अत्यंत सुखद, अत्यंत प्रेमपूर्ण, अत्यंत मनभावन और अत्यंत सम्माननीय हैं। ऐसी वस्तुएँ वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का संबंध प्रदर्शित करती हैं। यहाँ वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से सुखद या अप्रिय हो सकती हैं; लेकिन 'अत्यंत सुखद वस्तुएँ' शब्द से केवल उन्हीं वस्तुओं का तात्पर्य है जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा सबसे अधिक सम्मान दिया जाता है और जो इस संबंध को प्रदर्शित करती हैं। घृणा में निहित चेतना के दो वर्गों, अज्ञान में निहित चेतना के दो वर्गों और पीड़ा से ग्रस्त स्पर्श चेतना को छोड़कर, इन सभी के सहवर्ती तत्वों सहित, विश्लेषणात्मक रूप से[6] यह दिखाया जा सकता है कि काम-चेतना, रूप-चेतना, अरूप-चेतना और पारलौकिक चेतना के शेष सभी वर्ग, अपने-अपने सहवर्ती तत्वों और सभी सबसे सुखद भौतिक गुणों सहित, पच्चय-धम्म हैं।

इनमें से, काम-विषयों को केवल तभी वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का कारण संबंध प्रदर्शित करने वाला कहा जाता है जब उन्हें अत्यधिक सम्मान दिया जाता है, अन्यथा वे ऐसा नहीं करते। लेकिन जो लोग ध्यान अवस्थाओं तक पहुँचते हैं, वे अपने द्वारा प्राप्त उदात्त ध्यान के प्रति उच्च सम्मान में कभी कमी नहीं करते। आर्य शिष्य भी अपने द्वारा प्राप्त और आनंदित पारलौकिक धम्म[7] के प्रति अपने महान सम्मान में कभी कमी नहीं करते।

इस संबंध से कौन सी वस्तुएँ संबंधित हैं? लोभ से ग्रस्त चेतना के आठ वर्ग, कमलोक की नैतिक चेतना के आठ वर्ग, ज्ञान से जुड़ी निष्क्रिय कमलोक चेतना के चार वर्ग और पारलौकिक चेतना के आठ वर्ग—ये सभी इस संबंध से संबंधित हैं। यहाँ छह प्रकार की सांसारिक वस्तुएँ[8] इच्छा से ग्रस्त चेतना के आठ वर्गों से कारणवश संबंधित हैं। सांसारिक नैतिक चेतना के सत्रह वर्ग ज्ञान से विरक्त नैतिक काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित हैं। मार्ग और फल के पहले तीन युग्म और निर्वाण, सांसारिक नैतिक चेतना के उन सभी वर्गों के साथ, ज्ञान से जुड़ी नैतिक काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित हैं। उच्चतम—अरहंतत्व के मार्ग और फल का चौथा चरण—निर्वाण के साथ ज्ञान से जुड़ी निष्क्रिय काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित है। और निर्वाण पारलौकिक चेतना के आठ वर्गों से संबंधित है।

अरम्मना को किस अर्थ में और अधिपति को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? अरम्मना को अलम्बितब्बा (अरम्मना-पच्चय देखें) के अर्थ में और अधिपति को अधिपच्चत्त के अर्थ में समझा जाना चाहिए। तो अधिपच्चत्त क्या है? अधिपच्चत्त वस्तुओं की वह क्षमता है जो मन की उन अवस्थाओं और मानसिक गुणों को नियंत्रित करती है जिनके कारण वस्तुओं को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। यह समझा जाना चाहिए कि अरम्मनाधिपति से संबंधित वस्तुएँ (पच्चय-धम्म) अधिपति के समान हैं, जबकि संबंधित वस्तुएँ (पच्चयप्पन्न-धम्म) मानव समाज में दासों के समान हैं।

सुतसोमा जातक में, राजा पोरिसदा ने मानव मांस के प्रति अत्यधिक आकर्षण के कारण, केवल मानव मांस के स्वाद के लिए अपना राज्य त्याग दिया और वन में घुमंतू जीवन व्यतीत किया। यहाँ मानव मांस का स्वाद अरम्मनाधिपति का पच्चयधम्म है; और राजा पोरिसाद की भोग-प्रसंग में निहित चेतना ही पच्चयुप्पन-धम्म है। फिर, राजा सुतसोमा, सत्य के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते हुए[9], सत्य के लिए अपनी संप्रभुता, अपने पूरे राजपरिवार और यहाँ तक कि अपने प्राणों का भी त्याग कर पोरिसाद के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। इस स्थिति में, सत्य ही पच्चयधम्म है और राजा सुतसोमा की नैतिक चेतना ही पच्चयुप्पन-धम्म है। इसी प्रकार हमें उन सभी इंद्रिय-संबंधी विषयों को समझना चाहिए जिनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा होती है।

सह-अस्तित्व का प्रभुत्व क्या है? अभिशय या करने की इच्छा, मन[10] या संकल्प, ऊर्जा या प्रयास, और तर्क या अन्वेषण, जो प्रभुत्वशाली अवस्था में पहुँच चुके हैं, इस संबंध से संबंधित हैं।

इस संबंध से कौन सी वस्तुएँ जुड़ी हुई हैं? मन और मानसिक गुणों के वर्ग जो प्रभुत्वशाली तत्वों के सहायक हैं, और प्रभुत्वशाली विचारों द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण, वे वस्तुएँ हैं जो इस संबंध से जुड़ी हुई हैं।

सहजता को किस अर्थ में और अधिपति को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? सहजता को सहुप्पदानत्थ के अर्थ में और अधिपति को अभिभवनत्थ के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यहाँ, कोई घटना जब प्रकट होती है, तो वह न केवल अकेली प्रकट होती है, बल्कि साथ ही साथ अपने सहायक तत्वों को भी प्रकट करती है। घटना की इस कारणिक क्रिया को सहुप्पदानत्थ कहा जाता है। अभिभवनत्थ का अर्थ है विजय प्राप्त करना। उदाहरण के लिए, राजा चक्कवत्ती अपनी शक्ति या योग्यता से पूरे महाद्वीप के निवासियों पर विजय प्राप्त करते हैं और उनके स्वामी बन जाते हैं, जिनका वे अपनी इच्छा अनुसार नेतृत्व कर सकते हैं। वे भी उनके नेतृत्व के अनुसार ही व्यवहार

करते हैं। इसी प्रकार, वे चार प्रभाव जो प्रबल अवस्था में पहुँच चुके हैं, अपने-अपने सहायक तत्वों के स्वामी बन जाते हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार नेतृत्व प्रदान करते हैं। सहायक तत्व भी उनके नेतृत्व के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। एक और उदाहरण लें तो, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन सभी पिंडों में हम देखते हैं कि चार तत्व—विस्तार, संसंजन, ऊष्मा और गति—क्रमशः प्रमुख हैं, और प्रत्येक अन्य तीन घटकों पर श्रेष्ठता रखता है और उन्हें अपने आंतरिक स्वभाव के अनुरूप ढालता है[11]। चार 'तत्वों' के समूह के अन्य तीन सदस्यों को भी प्रमुख तत्व के स्वभाव का अनुसरण करना पड़ता है। इसी प्रकार, ये चार प्रमुख तत्व, जो अपनी शक्ति के बल पर प्रमुख अवस्था तक पहुँच चुके हैं, अपने सहायक तत्वों को अपने आंतरिक स्वभाव के अनुरूप ढालते हैं। और उनके सहायक तत्वों को भी प्रमुख तत्वों के स्वभाव का अनुसरण करना पड़ता है। अभिभावना का यही अर्थ है। यहाँ कुछ लोग कह सकते हैं: "यदि इन चीजों को, इरादे को छोड़कर, सहायक तत्वों पर विजय प्राप्त करने के कारण प्रमुख कहा जाता है, तो लोभ को भी प्रमुख कहा जाना चाहिए, क्योंकि स्पष्ट रूप से इसमें इरादे की तुलना में सहायक तत्वों पर कहीं अधिक प्रबल शक्ति होती है।" लेकिन इसके जवाब में हम यह कह सकते हैं: बेशक, लालच इरादे से अधिक शक्तिशाली है, लेकिन केवल साधारण और नासमझ लोगों के लिए। बुद्धिमानों के मामले में, इरादा लालच से अधिक शक्तिशाली होता है और उनके सहायक तत्वों पर हावी हो जाता है। यदि यह मान लिया जाए कि लालच अधिक शक्तिशाली है, तो लालच के चंगुल में फंसे लोग अपने सुखमय जीवन और धन की परिपूर्णता को त्यागकर, त्याग के मार्ग अपनाकर और दुख के चक्र से कैसे बाहर निकल पाएंगे? लेकिन, क्योंकि इरादा लालच से अधिक शक्तिशाली है, इसलिए लालच के चंगुल में फंसे लोग सुखमय जीवन और धन की परिपूर्णता को त्यागकर, त्याग के मार्ग अपनाकर और दुख के चक्र से बाहर निकल पाते हैं। अतः, इरादा ही सच्चा प्रवर्तक है, न कि लालच। इसी प्रकार, जब इरादे की तुलना घृणा आदि से की जाती है, तब भी यही बात ध्यान में रखनी चाहिए।

आइए इसे और स्पष्ट रूप से समझाते हैं। जब कोई महान और कठिन मानवीय कार्य सामने आता है, तो ऐसे कार्यों की सफलता के लिए इन चार प्रमुख गुणों का उत्पन्न होना आवश्यक हो जाता है। कैसे? जब बुरे इरादों वाले लोग ऐसे किसी कार्य का सामना करते हैं, तो उनका इरादा पीछे हट जाता है। वे उसे करने के लिए तैयार नहीं होते। वे उसमें कोई रुचि न होने के कारण उसे छोड़ देते हैं और यहाँ तक कहते हैं: "यह कार्य हमारी क्षमता से परे है।" वहीं अच्छे इरादों वाले लोग ऐसे महान कार्य को देखकर उत्साह से भर जाते हैं। वे उसे करने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। वे कार्य को पूरा करने का निश्चय कर लेते हैं और कहते हैं: "यह कार्य हमारी क्षमता के दायरे में है।" इस प्रकार का व्यक्ति अपने इरादे से इतना दृढ़ हो जाता है कि जब तक कार्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक वह उसे छोड़ नहीं पाता। और इसी कारण वह कार्य किसी दिन पूर्ण रूप से पूरा हो ही जाता है, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।

अब, आइए आलसी वर्ग के लोगों के मामले पर विचार करें। जब वे ऐसे किसी महान कार्य का सामना करते हैं, तो वे तुरंत उससे पीछे हट जाते हैं। वे इससे पीछे हट जाते हैं क्योंकि उन्हें पहले से ही पता होता है कि इसे पूरा करने के लिए उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और शारीरिक व मानसिक पीड़ा सहनी पड़ेगी। वहीं, कर्मठ व्यक्ति इसे देखकर ऊर्जा से भर उठता है और इसे पूरा करने की इच्छा रखता है। वह हर परिस्थिति में, चाहे कितना भी समय लगे, इस कार्य को करता रहता है। वह कभी भी अपने प्रयासों से पीछे नहीं हटता और न ही निराश होता है। वह केवल यही सोचता है कि इतना बड़ा कार्य दिन-रात अथक परिश्रम के बिना पूरा नहीं हो सकता। और ऐसा होने पर, यह बड़ा कार्य एक दिन अवश्य पूरा होगा।

अब कमजोर मन वाले व्यक्ति की बात करते हैं। वे भी ऐसे बड़े कार्य को देखकर मुंह मोड़ लेते हैं। वे निश्चित रूप से इसके बारे में फिर कभी नहीं सोचेंगे। लेकिन दृढ़ मन वाले व्यक्ति के साथ ऐसा बिल्कुल नहीं होता। जब वह ऐसा कार्य देखता है तो उसमें अत्यधिक रुचि उत्पन्न होती है। वह इसके विचार को अपने मन से निकाल ही नहीं पाता। वह हर समय कार्य के बारे में सोचता रहता है, और उसके आदेश पर लंबे समय तक उसमें लगा रहता है, शारीरिक और मानसिक पीड़ा के सभी प्रकारों को सहन करता है। शेष भाग को आगे उसी प्रकार समझाया जाएगा जैसे ऊपर प्रमुख उद्देश्य को समझाया गया है।

एक बार फिर, बुद्धिहीन लोगों के बारे में कुछ शब्द। जब उन्हें ऐसा कोई कार्य सौंपा जाता है, तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं। उन्हें न तो शुरुआत करने का तरीका पता होता है, न ही काम को आगे बढ़ाने का, और न ही उसे पूरा करने का। उन्हें ऐसा लगता है मानो वे अंधेरे में आ गए हों, जहाँ काम को पूरा करने के लिए मार्गदर्शन करने वाली कोई रोशनी भी नहीं है। दूसरी ओर—अधिक बुद्धिमान व्यक्ति की बात करें—जब ऐसे व्यक्ति को इतना बड़ा कार्य करना पड़ता है, तो वह मानो अपनी बुद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है, जहाँ से वह शुरुआत करने और अंत करने का तरीका समझ जाता है। उसे यह भी पता होता है कि इस कार्य को पूरा करने से उसे क्या लाभ और आशीर्वाद प्राप्त होंगे। वह इसे आसानी से पूरा करने के लिए कई उपाय ईजाद करता है। वह लंबे समय तक काम करता रहता है, और यह सिलसिला चलता रहता है। बाकी बातों को भी उसी तरह समझाया जा सकता है जैसे मुख्य प्रयास को समझाया गया है—बस 'अटूट प्रयासों' के स्थान पर 'अत्यधिक गहन शोध के साथ' शब्द जोड़ दें।

इस प्रकार, जब कोई महान और कठिन मानवीय कार्य उत्पन्न होते हैं, तो उनकी सिद्धि के साधनों में ये चार प्रमुख तत्व सर्वोपरि हो जाते

हैं। इन चार प्रमुख तत्वों के अस्तित्व के कारण सर्वज्ञ बुद्ध, पच्चेक बुद्ध,[12] सर्वोत्कृष्ट शिष्य, महान शिष्य और साधारण शिष्य जैसे विशिष्ट या प्रतिष्ठित व्यक्ति (पुरुष) अस्तित्व में आते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रकट होने के कारण, मानव जाति की सामान्य समृद्धि और कल्याण के लिए अनेक कलाएँ और विज्ञान, साथ ही सामान्य साज-सामान भी प्रकट होते हैं, जो सभ्यता के आवरण के अंतर्गत मानवीय आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करते हैं।[13]

अधिपति-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 4.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

4. अनंतार-पच्चय या निकटता का संबंध

अनंतार-पच्चय क्या है? चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, जो अभी-अभी (ठीक पिछले क्षण में) समाप्त हुए हैं, अनंतार-पच्चय हैं। इस पच्चय से कौन से संबंधित हैं? चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, जो अभी-अभी (ठीक अगले क्षण में) उत्पन्न हुए हैं, इस पच्चय से संबंधित हैं।

किसी प्राणी के एक जन्म में, पुनर्जन्म-चेतना प्रथम जीवन-सम्बद्धता से निकटता के माध्यम से संबंधित होती है, और प्रथम जीवन-सम्बद्धता फिर से द्वितीय जीवन-सम्बद्धता से संबंधित होती है; और इसी प्रकार शेषों के साथ भी।

अब, अभिधम्म के छठे खंड के नौवें अध्याय, धम्म-यमक में वर्णित "जब शुद्ध (शुद्ध निवास, अर्थात् शुद्धवास) में दूसरी अनैतिक चेतना उत्पन्न होती है, आदि" पाठ के संदर्भ में, हम समझते हैं कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपने नए शरीर के प्रति सचेत होता है, उसके नए जीवन में उत्पन्न होने वाली पहली विचार प्रक्रिया अनैतिक विचार की प्रक्रिया होती है, जिसके साथ नए जीवन को जीने की प्रबल इच्छा होती है, इस विचार के साथ: 'यह मेरा है; यह मैं हूँ; यह मैं ही हूँ।" जब यह प्रक्रिया शुरू होने वाली होती है, तो जीवन-संचलन पहले दो क्षणों के लिए कंपन करता है। इसके बाद मन-द्वार बोध होता है, और फिर सात बोधों की एक श्रृंखला आती है, जिसके साथ नए जीवन को जीने की तीव्र इच्छा होती है। इसके बाद, जीवन-संचलन फिर से प्रवाहित होने लगता है।

वास्तव में, यह प्राणी[14] अपने वर्तमान नए जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानता। वह पिछले जन्म में अपने अनुभवों पर चिंतन करते हुए जीता है। हालाँकि, मन का आधार इतना कमजोर होता है कि वस्तु भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित नहीं हो पाती। वस्तु के इस प्रकार अस्पष्ट होने के कारण, सामान्यतः चेतना के ऐसे वर्ग ही उत्पन्न होते हैं जो उलझन से जुड़े होते हैं।

गर्भाधान के लगभग दो महीने बाद, जिस दौरान व्यक्ति का धीरे-धीरे विकास होता है, आँख, कान आदि की नियंत्रण शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं। लेकिन माँ के गर्भ में प्रकाश आदि न होने के कारण, चारों प्रकार की अनुभूतियाँ—दृश्य, श्रवण आदि—विकसित नहीं होतीं। केवल स्पर्श और मानसिक अनुभूतियाँ ही विकसित होती हैं। माँ के शरीर की हर मुद्रा में परिवर्तन से शिशु को बहुत पीड़ा और कष्ट होता है, और जन्म के समय तो यह पीड़ा और भी बढ़ जाती है। बाह्य जगत में आने के बाद भी, जब तक उसका कोमल शरीर इतना मजबूत (परिपक्व) नहीं हो जाता कि वह स्वयं को संभाल सके, तब तक उसे बहुत दुर्बलता से पीठ के बल लेटना पड़ता है। इस दौरान वह वर्तमान वस्तुओं को नहीं देख पाता, बल्कि उसका मन सामान्यतः अपने पूर्व जन्म की वस्तुओं की ओर उन्मुख होता है। यदि वह नरकलोक से आया है, तो उसका चेहरा सामान्यतः अप्रिय होता है, क्योंकि वह अभी भी नरकलोक में अनुभव की गई अनुभूतियों को महसूस करता है। यदि वह देवलोक से आता है, तो उसका मनमोहक चेहरा न केवल मुस्कान से दमकता है, बल्कि उसकी आनंदमयी हंसी में मानो देवलोक की वस्तुओं के विचार से उत्पन्न प्रसन्नता झलकती है। इसके

अलावा, उसके शरीर के अंग धीरे-धीरे बलवान होते जाते हैं और उसकी इंद्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट होती जाती हैं। इसलिए वह शीघ्र ही अपने प्यारे छोटे-छोटे तरीकों से आनंदपूर्वक खेलने लगता है। इस प्रकार उसके लिए एक सुखी जीवन का आरंभ होता है; और वह अपने नए जीवन में रुचि लेने लगता है। वह अपनी माँ की वाणी को अपनाता है और उसकी नकल करता है। वह उससे बातें करता है। इस प्रकार उसकी इंद्रियाँ लगभग पूरी तरह से वर्तमान संसार की ओर मुड़ जाती हैं, और उसके पिछले जीवन के सभी विचार लुप्त हो जाते हैं। अर्थात्, वह अपने पिछले जन्म को भूल जाता है।

क्या सभी प्राणी अपने पिछले जन्मों को केवल इसी अवस्था में भूल जाते हैं? नहीं, सभी नहीं। कुछ जो गर्भधारण की पीड़ा से अत्यधिक पीड़ित होते हैं, वे गर्भावस्था के दौरान अपने पिछले जन्मों को भूल जाते हैं, कुछ जन्म के समय, कुछ ऊपर बताई गई अवस्था में; कुछ युवावस्था में, और कुछ वृद्धावस्था में। कुछ असाधारण पुरुष अपने पूरे जीवन भर अपने पिछले जन्मों को नहीं भूलते, और कुछ तो दो-तीन जन्मों को भी याद रख सकते हैं। इन्हें जातिसरसत्ता कहा जाता है, यानी वे लोग जिन्हें अपने पिछले जन्मों की स्मृति प्राप्त होती है।

अब, अपने विषय पर लौटते हैं। यद्यपि छह द्वार वाली विचार प्रक्रियाएँ बच्चे के जन्म के बाद ही कार्य करना शुरू कर देती हैं, फिर भी ये प्रक्रियाएँ पूर्णतः तभी क्रियाशील होती हैं जब बच्चा वर्तमान विषयों को ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक विचार प्रक्रिया में, प्रत्येक पूर्ववर्ती चेतना जो अभी-अभी समाप्त हुई है, निकटता के माध्यम से प्रत्येक आगामी चेतना से संबंधित होती है जो तुरंत उत्पन्न हुई है। और निकटता का यह संबंध व्यक्ति के आवर्ती जन्मों के संपूर्ण कालखंड में, अनाप्य आरंभ से ही, अटूट निरंतरता के साथ बना रहता है। लेकिन अरहंतत्व के मार्ग को प्राप्त करने और खन्ध-परिनिर्वाण (अर्थात पंच स्कंधों के अंतिम विनाश) में प्रवेश करने के बाद ही यह निरंतरता टूटती है, या अधिक सटीक रूप से कहें तो, हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

अनंतार को अनंतार क्यों कहा जाता है, और पश्चात क्यों? अनंतार को अनंतार इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अपने समान घटनाओं को तुरंत बाद उत्पन्न करता है। पश्चात को पश्चात इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सहायता प्रदान करता है। 'अपने समान' वाक्यांश में, 'समान' शब्द का अर्थ किसी वस्तु के प्रति सचेत होने की क्षमता के संदर्भ में समानता व्यक्त करना है। और सरम्मन्त का अर्थ है एक ऐसी घटना जो किसी वस्तु की उपस्थिति के बिना घटित नहीं होती। इसलिए इसे 'क्षमता के संदर्भ में समान' आदि के रूप में अनुवादित किया गया है।

इसी प्रकार, "धम्मन्तरस्स-उप्पदानत्थेन" वाक्यांश का अर्थ निम्नलिखित है: "यद्यपि पिछला विचार समाप्त हो जाता है, तब भी उसकी सचेत क्षमता तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि वह अगले विचार को उत्पन्न न कर दे।"

यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस संबंध के पच्चय-धम्मों की श्रृंखला पिछली माताओं की श्रृंखला के समान है, और पच्चय्युप्पन्न-धम्मों की श्रृंखला अगली पुत्रियों की श्रृंखला के समान है। ऐसा होने पर, अरहंत के अंतिम मरणविराम विचार से भी पुनर्जन्म-चेतना का उदय होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि अस्तित्व के विकास के अंत में, सभी इच्छा-संबंधी और अशुद्धियाँ (कर्म-किलेसा) पूरी तरह से समाप्त हो जाती हैं, और अंतिम मरणशील विचार अंतिम, परम शांति की अवस्था में पहुँच जाता है।

अनंतार-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 5.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

5. समनंतर-पच्चय या निकटवर्ती निकटता का संबंध:

इस संबंध के पच्चय-धम्म और पच्चयुप्पन्न-धम्म का वर्गीकरण, अनंतरपच्चय के वर्गीकरण के समान ही है।

समनंतर को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? समनंतर को 'पूर्ण निकटता' के अर्थ में समझा जाना चाहिए। कैसे? एक पत्थर के स्तंभ में, यद्यपि उसमें मौजूद पदार्थ के समूह एक पिंड में एकजुट प्रतीत होते हैं, फिर भी उनमें सीमा या स्थान का भौतिक गुण मौजूद होता है, क्योंकि पदार्थ सारगर्भित और सृजनशील होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पदार्थ की किन्हीं भी दो इकाइयों के बीच एक स्थान होता है, जिसे मध्यस्थ या गुहा कहा जाता है। परन्तु अभौतिक गुणों के साथ ऐसा नहीं है। मन और मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं के दो क्रमिक समूहों के बीच कोई स्थान, मध्यस्थ या गुहा नहीं होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वे (मन और मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं के समूह) पूरी तरह से किसी भी मध्यस्थता से रहित होते हैं, क्योंकि मानसिक अवस्था सारगर्भित और सृजनशील नहीं होती है। दो क्रमिक मानसिक समूहों और मानसिक सहवर्ती तत्वों के बीच की मध्यस्थता भी संसार को ज्ञात नहीं है। अतः यह माना जाता है कि मन स्थायी, स्थिर, गतिहीन और अपरिवर्तनीय है। अतः 'समानंतर' को 'पूर्ण तात्कालिकता' के अर्थ में समझा जाना चाहिए।

अनंतरत्थ को उपरोक्त संबंध में इस प्रकार भी समझाया गया है: अत्तनो अनंतरे अत्तसदिसस धम्मंतरस उप्पादनत्थेन; ऐसा इसलिए है क्योंकि यह अपने समान घटनाओं की अवस्थाओं को तुरंत बाद घटित होने का कारण बनता है। ऐसा होने पर, निम्नलिखित सुझाव दिया जा सकता है: 'स्थायी विराम'[15] (निरोधसमापत्ति) के समय, पूर्ववर्ती चेतना न तो चेतना है और न ही अचेतना, और अनुवर्ती चेतना आर्य फल की है। चेतना के इन दो वर्गों के बीच, विचार का पूर्ण निलंबन एक दिन, दो दिन, तीन दिन... या यहाँ तक कि सात दिनों के लिए भी होता है। अचेतन प्राणियों के निवास में, पूर्ववर्ती चेतना पिछले कमललोक से मृत्यु (चटचित्त, मरणशील विचार) की होती है; और अनुवर्ती चेतना अगले कमललोक में पुनर्जन्म (पतिसंधिचित्त) की होती है। चेतना के इन दो वर्गों के बीच, अचेतन प्राणी के विचार पूर्णतः पाँच सौ कल्पों के जीवनकाल तक निलंबित रहते हैं।

अतः, क्या यह कहना सही नहीं है कि पूर्ववर्ती चेतना के दोनों वर्गों में तुरंत बाद अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती? इसका उत्तर है: नहीं, उनमें यह क्षमता नहीं होती। कुछ गहन चिंतन और संकल्पों के कारण यह क्षमता कुछ समय के लिए बाधित हो जाती है। जब पूर्ववर्ती विचार समाप्त होते हैं, तो वे अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता के साथ समाप्त हो जाते हैं। और बाद के विचार, उस क्षण में निरंतरता में उत्पन्न होने में असमर्थ होने के कारण, उक्त समय बीतने के बाद ही उत्पन्न होते हैं। यह कहना उचित नहीं है कि उनमें (पूर्ववर्ती विचारों में) अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती, या वे अनंत-संबंध नहीं हैं, केवल इस क्षमता के निष्क्रिय होने के कारण। क्योंकि, हम राजा की सेनाओं की बात तब नहीं करते जब वे वास्तव में युद्ध में न हों या लड़ाई की क्रिया में न हों, या जब वे इधर-उधर घूम रही हों और राजा द्वारा उन्हें लड़ने के लिए न कहा गया हो, क्योंकि ऐसे समय में राजा कह सकता है, "मेरे सैनिकों, अभी तुम्हारे लड़ने का उचित समय नहीं है। लेकिन तुम अमुक समय पर लड़ोगे।" तब हम यह नहीं कहते कि वे सेनाएँ नहीं हैं या उनमें युद्ध क्षमता नहीं है। ठीक इसी प्रकार, उपरोक्त दो विचारों के बीच संबंध को समझा जाना चाहिए।

यहाँ कुछ लोग कह सकते हैं: 'इस संबंध में अभी-अभी कहा गया है कि संबंध स्थापित करने वाली और संबंधित वस्तुएँ, निराकार गुण होने के कारण जिनका कोई रूप नहीं है और जिनका बीच में आने वाली किसी भी भौतिक सीमा (स्थान) से कोई संबंध नहीं है, पूरी तरह से मध्यस्थता या रिक्ति से रहित हैं। यदि ऐसा है, तो हम चेतना के हर क्षण उत्पन्न होने और समाप्त होने पर कैसे विश्वास करेंगे, जिसे अरम्मन-पच्चय में घंटा और वायलिन की ध्वनि के उदाहरण से समझाया गया है?' हम इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य को प्रतिपादित करके दे सकते हैं, जो मनोवैज्ञानिक जगत में सर्वथा स्पष्ट है, कि चेतना के विभिन्न वर्ग निरंतर परिवर्तनशील अवस्था में हैं, अर्थात् निरंतर परिवर्तन के क्रम में हैं। चित्त यमका पर लिखे निबंधों में भी इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

समनंतर-संबंधों का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

6. सहजता-पच्चय या सहअस्तित्व का संबंध:

इस संबंध के पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्मों के वर्गीकरण पर अब चर्चा की जाएगी। चेतना के सभी सहअस्तित्व वाले वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। इसी प्रकार, पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय और मन का आधार, जो पुनर्जन्म के साथ सहअस्तित्व में रहते हैं; और इसी प्रकार, महा तत्व भी परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। पुनर्जन्म के समय कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण और जीवन के दौरान, चेतना की प्रत्येक क्षणिक अवस्था (जो भौतिक गुण उत्पन्न करने में सक्षम है) के आरंभिक क्षण में मन से उत्पन्न सभी भौतिक गुण, उस सहअस्तित्व वाली चेतना के पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। महा तत्वों से व्युत्पन्न सभी भौतिक गुणों को महा तत्वों के पच्चयुप्पन्न-धम्म कहा जाता है।

सहजता को किस अर्थ में और पच्चय को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? सहजता का अर्थ सहअस्तित्व है, और पच्चय का अर्थ सहायता प्रदान करना है। यहाँ सहअस्तित्व का अर्थ है कि जब कोई घटना उत्पन्न होती है, तो वह अपने प्रभाव के साथ उत्पन्न होती है; या दूसरे शब्दों में, अपने प्रभाव को भी साथ-साथ उत्पन्न करती है। सहअस्तित्व का यही अर्थ यहाँ निहित है। उदाहरण के लिए, जब सूर्य उदय होता है, तो वह अपनी ऊष्मा और प्रकाश के साथ उदय होता है। और जब मोमबत्ती जलती है, तो वह अपनी ऊष्मा और प्रकाश के साथ जलती है। इसी प्रकार, यह संबंधित वस्तु भी उत्पन्न होने पर संबंधित वस्तुओं के साथ उत्पन्न होती है।

इस उदाहरण में, सूर्य प्रत्येक मानसिक अवस्था के समान है; सूर्य की ऊष्मा सहअस्तित्व वाली मानसिक अवस्थाओं के समान है; और सूर्य का प्रकाश सहअस्तित्व वाले भौतिक गुणों के समान है। इसी प्रकार, सूर्य प्रत्येक महा तत्व के समान है; उसकी ऊष्मा सहअस्तित्व वाले महा तत्वों के समान है; और उसका प्रकाश उनसे उत्पन्न सहअस्तित्व वाले भौतिक गुणों के समान है। मोमबत्ती के उदाहरण में भी इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।

सहजता-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 7.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

7. अन्नमन्न-पच्चय या पारस्परिकता का संबंध

सहअस्तित्व के वर्गीकरण में जिन पच्चय-धम्मों का उल्लेख किया गया है, वे यहाँ (इस संबंध में) पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म दोनों हैं। चेतना की सभी अवस्थाएँ और उनके मानसिक सहवर्ती, परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं; इसी प्रकार सहअस्तित्व में रहने वाले महा तत्व हैं; पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय हैं; और इसी प्रकार मन का आधार या हृदय-आधार है जो पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय के साथ सहअस्तित्व में रहता है।

यहाँ निहित अर्थ को समझना आसान है। हालाँकि, एक उदाहरण देना रोचक होगा। जब तीन छड़ियों को उनके ऊपरी सिरों पर एक दूसरे के सहारे सीधा खड़ा किया जाता है, तो उनमें से प्रत्येक अन्य दो पर निर्भर होती है और अन्य दो से निर्भर होती है। जब तक उनमें से एक इस प्रकार सीधी स्थिति में रहती है, तब तक सभी उसी स्थिति में रहेंगी। और, यदि उनमें से एक भी गिर जाए, तो सभी एक साथ गिर जाएँगे। इस पारस्परिक संबंध को ठीक इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।

यहाँ, यदि कोई यह दावा करे कि चेतना के बिना मानसिक गुण उत्पन्न नहीं हो सकते, तो हम इस बात को स्वीकार करेंगे। क्यों? क्योंकि मानसिक गुणों के संपर्क आदि कार्यों में जानने का कार्य सर्वोपरि है, और सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धम्मपद में, 'मन सर्वोपरि है' (मनोपुब्बंगम धम्म, आदि)। और फिर यदि कोई यह मानता है कि मानसिक गुणों के बिना चेतना भी उत्पन्न नहीं हो सकती, तो हम इस दृष्टिकोण का समर्थन करेंगे। वे (मानसिक गुण) चेतना के सहवर्ती कारक हैं; इसलिए, चेतना भी अपने सहवर्ती मानसिक गुणों के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार चार महा तत्व भी समझे जाने चाहिए। लेकिन उनसे व्युत्पन्न मानसिक गुणों को सहवर्ती कारक नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि वे केवल व्युत्पन्न हैं। तो क्या जीवन के भौतिक गुण और भोजन से उत्पन्न गुण सहवर्ती कारक नहीं हैं, यह देखते हुए कि वे व्यक्तिगत रूप से नियंत्रण और भोजन के कारण-कार्य संबंध को क्रियान्वित कर सकते हैं? नहीं, वे नहीं हैं। उन्हें सहवर्ती कारक तभी माना जा सकता है जब विकास पूर्ण गति से चल रहा हो, न कि तब जब चीजें केवल उत्पत्ति की अवस्था में हों। इस पारस्परिकता के संबंध में, उत्पत्ति की अवस्था में सहवर्ती कारकों का उत्पन्न होना एक आवश्यक कारक है।

अन्नमन्ना-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 8.पत्थनुद्देसा दिपानी**
रिश्तों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

8. निस्साय पच्चय या आश्रितता संबंध

आश्रितता संबंध तीन प्रकार के होते हैं: सहअस्तित्वगत आश्रितता, पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता और पूर्व-वस्तुगत आधारभूत आश्रितता।

इनमें से सहअस्तित्वगत आश्रितता संबंध क्या है? सहअस्तित्वगत आश्रितता संबंध में वे सभी तत्व समाहित होते हैं जो पहले से ही सहअस्तित्व संबंध में शामिल हैं। अतः, संबंध और संबंधित वस्तुओं के वर्गीकरण को यहाँ उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसे सहअस्तित्व संबंध अनुभाग में बताया गया है।

और पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता संबंध क्या है? छह आधार हैं - आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और हृदय। ये छह आधार, जीवन के दौरान, पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता के माध्यम से, सात ज्ञान तत्वों से कारणिक रूप से संबंधित होते हैं। भौतिक आधार स्वयं पूर्व-अस्तित्व में होता है और आधार या आधारभूत तत्व के रूप में कार्य करता है, इसलिए इसे 'पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता' कहा जाता है। यहां 'आधार' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह मन और मानसिक गुणों के लिए एक आधार या आधारभूत तत्व है। 'पूर्व-अस्तित्व' का अर्थ है पहले से विद्यमान होना—अपने संबंधित विषय से एक विचार-क्षण पहले।

यहां पुनर्जन्म चेतना हृदय आधार[16] पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होती है, क्योंकि उस क्षण कोई पूर्व-अस्तित्व वाला भौतिक आधार नहीं होता। और प्रथम जीवन-सम्क्रम उसी हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो पुनर्जन्म चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है। द्वितीय जीवन-सम्क्रम भी हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो प्रथम जीवन-सम्क्रम के साथ सह-अस्तित्व में होता है, और इसी प्रकार शेष भी, अर्थात् तृतीय जीवन-सम्क्रम हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो द्वितीय जीवन-सम्क्रम के साथ सह-अस्तित्व में होता है, और इसी प्रकार मृत्यु के क्षण तक चलता रहता है। इस प्रकार 'आधारभूत पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' को समझा जाना चाहिए जो संज्ञान के दो तत्वों, बोध तत्व और समझ तत्व से संबंधित है।

जैसे वायलिन तभी बजता है जब वायलिन का धनुष उसके तारों पर चलता है, अन्यथा नहीं, उसी प्रकार पाँचों इंद्रियाँ तभी जागृत होती हैं जब पाँच प्रकार की इंद्रिय-वस्तुएँ पाँच आधारों में प्रवेश करती हैं, अन्यथा नहीं।

यह अनुभूति केवल वस्तु और आधार की स्थिर अवस्था में ही संभव है। इस अनुभूति के कारण जीवन-सम्प्रवाह दो क्षणों के लिए कंपन करता है। और जीवन-सम्प्रवाह के कंपन के कारण बोध उत्पन्न होता है। बोध के कारण पाँचों इंद्रिय-ज्ञान उत्पन्न हो पाते हैं। इसलिए, पाँच इंद्रिय-आधार (आँख, कान, आदि) जो भूतकाल की अवचेतन अवस्था के आरंभिक क्षण में उत्पन्न हुए थे, वे पाँच इंद्रिय-ज्ञान तत्वों के 'मूल पूर्व-अस्तित्व वाले आधार' हैं।

अब, मृत्यु के समय सभी छह आधार सत्रहवीं अवचेतना के आरंभिक क्षण में ही अस्तित्व में आते हैं, जिसकी गणना मरणशील चेतना से पीछे की ओर की जाती है। उस सत्रहवीं अवचेतना के बाद कोई नया आधार उत्पन्न नहीं होता। अतः, मृत्यु के समय, सभी अवचेतना, सभी छह द्वार-प्रक्रिया-ज्ञान और मृत्यु की चेतना इन पर, उनके संबंधित आधारों पर निर्भर होकर उत्पन्न होती हैं, जो उनसे पहले उत्पन्न हुई सत्रहवीं अवचेतना के साथ अस्तित्व में आए थे। यही 'आधारभूत पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारण-कार्य संबंध है।

'आधारभूत वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारण-कार्य संबंध क्या है? जब कोई चिंतन कर रहा होता है और यह विचार रखता है कि 'मेरा मन लालसा, अहंकार और त्रुटि के कारण स्वयं को उस पदार्थ पर निर्भर पाता है जो मेरा है, या मैं स्वयं, या मेरा अत्ता है'; या जब कोई इस प्रकार तर्क या चिंतन कर रहा हो: 'मेरा मन स्वयं को उस पदार्थ पर निर्भर पाता है जो अनित्य, निर्जीव और आत्माहीन है', तब निर्धारण आदि जैसी मानसिक अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। उस समय, प्रत्येक भौतिक आधार प्रत्येक मानसिक अनुभूति का आधार और वस्तु बन जाता है। अतः, अमुक हृदय-आधार अमुक चेतना और उसके सहवर्ती तत्वों से मूलभूत वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित है। यह 'बुनियादी वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारणिक संबंध है। अतः निर्भरता का संबंध तीन प्रकार का होता है।

यहाँ, सुत्तंत के माध्यम से निर्भरता का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। हम जानते हैं कि मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि पृथ्वी पर स्थित या विश्राम करते हैं; पृथ्वी बदले में, वायु के विशाल द्रव्यमान पर; और वायु, नीचे के असीम रिक्त स्थान पर। हम यह भी जानते हैं कि मनुष्य घरों में निवास करते हैं; विहारों या मठों में भिक्षु; स्वर्गलोकों में देवता; और इसी प्रकार संपूर्ण ब्रह्मांड। इस प्रकार हमें यह समझना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु किसी न किसी प्रकार से कारणवश संबंधित है।

निस्साय-संबंध का समापन।

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

9. उपनिषय-पच्चय या पर्याप्तता का संबंध

पर्याप्तता का संबंध तीन प्रकार का होता है: वस्तुनिष्ठ पर्याप्तता, निकटवर्ती पर्याप्तता और प्राकृतिक पर्याप्तता। इन तीनों में से, पहली वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व के समान है, और दूसरी निकटता के समान है।

'प्राकृतिक पर्याप्तता' क्या है? चेतना के सभी भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के वर्ग, आंतरिक और बाह्य, उनके सहवर्ती तत्वों सहित, सभी भौतिक गुण, निर्वाण और अवधारणाएँ (पन्नत्ति), प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं, जो वर्तमान चेतना के सभी वर्गों और उनके सहवर्ती तत्वों से अलग-अलग रूप से संबंधित हैं।

यहाँ, निर्वाण प्राप्त कर चुके बुद्ध, उनका धम्म, उनके पवित्र शिष्यों का समुदाय और मान्यता प्राप्त समुदाय की परंपराएँ, हम बाद की पीढ़ियों के लिए अच्छे कर्मों की खेती के लिए प्राकृतिक पर्याप्तता के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। इसी प्रकार, हमारे पूर्वज, माता-पिता, शिक्षक, ज्ञानी भिक्षु और ब्राह्मण, प्रख्यात दार्शनिक और शक्तिशाली एवं महान राजाओं के रूप में, आने वाली पीढ़ियों से स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए हैं, चाहे वह अच्छे या बुरे गुणों के विकास के लिए हो या सुख या दुख के अनुभव के लिए। इसी कारण उन्होंने आने वाली पीढ़ियों के कल्याण और अन्य लाभों के लिए विभिन्न नैतिक और अनैतिक नियम और कहावतें तथा सांसारिक संस्थाएँ स्थापित कीं या प्रतिपादित कीं। आने वाली पीढ़ियाँ भी उनके मार्ग का अनुसरण करती हैं और दान-पुण्य करके, उपदेशों का पालन करके, संसार के नैतिक और सामाजिक नियमों का अभ्यास करके, विभिन्न धार्मिक मान्यताओं का पालन करके, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय अपनाकर, कला और विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करके, गाँवों, कस्बों और शहरों का शासन करके, खेतों में कृषक बनकर, झीलें, तालाब और कुएँ खोदकर, घर बनाकर, गाड़ियाँ और रथ बनाकर, नावें, स्टीमर और जहाज बनाकर, और चाँदी, सोना, बहुमूल्य पत्थर, मोती आदि धन की खोज और संचय करके उनकी परंपराओं को अपनाती हैं। इस प्रकार संसार का निरंतर विकास हुआ है।

भविष्य के बुद्ध (मत्तेय), उनका धम्म और उनका बंधुआ समुदाय वर्तमान पीढ़ी से कारणवश संबंधित होने के कारण सद्‌गुणों की प्राप्ति और पुण्य कमाने के लिए स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं। सर्वोच्चता, धन, शक्ति, समृद्धि—जो भविष्य में प्राप्त होने वाली हैं—वे भी वर्तमान पीढ़ी के लिए सभी प्रकार के प्रयासों को करने हेतु स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं। सुखमय जीवन और धन की प्राप्ति तथा पथ, फल और निर्वाण की प्राप्ति—जो भविष्य में प्राप्त होने वाली हैं—वे भी वर्तमान पीढ़ी के लिए दान, सद्‌गुण आदि गुणों के विकास हेतु स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं।

सर्दियों में फसल काटने की उम्मीद में, लोग बरसात के मौसम में ज़मीन जोतते और बीज बोते हैं, या श्रम और बुद्धि से प्रेरित कई तरह के काम करते हैं, इस उम्मीद में कि काम पूरा होने पर उन्हें धन मिलेगा। अब, फसल काटना और धन प्राप्त करना, भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं, जो फसल और धन की प्राप्ति से संबंधित हैं। इसी प्रकार, अधिकांश लोग वर्तमान जीवन में कई अच्छे कर्म करते हैं, यह जानते हुए कि उन्हें परलोक में अपने कर्मों का फल मिलेगा। इस स्थिति में, भविष्य में प्राप्त होने वाले फल, वर्तमान जीवन में किए गए कर्मों से संबंधित भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं। अतीत में किए गए कर्म भी भविष्य में प्राप्त होने वाले फलों से संबंधित अतीत की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तता अतीत की तरह ही व्यापक और विस्तृत है।

जीवित बुद्ध, उनका धर्म, इत्यादि वर्तमान प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति हैं, क्योंकि वे वर्तमान जीवित मनुष्यों, देवताओं और ब्रह्माओं से संबंधित हैं, और इस प्रकार जीवित पुत्रों और पुत्रियों के जीवित माता-पिता हैं, इत्यादि। इस प्रकार वर्तमान प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति स्पष्ट और समझने में आसान है।

आंतरिक प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति वे हैं जो किसी सजीव व्यक्ति में विद्यमान होती हैं, जैसे बुद्ध, इत्यादि। बाह्य प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति वे स्थितियाँ हैं, जैसे भूमि, पर्वत, नदियाँ, महासागर, इत्यादि, जो जीवन (चेतन प्राणियों) के अस्तित्व के लिए विश्राम स्थल के रूप में कार्य करती हैं; या जैसे वन, वृक्ष, घास, अनाज, फलियाँ, इत्यादि; या जैसे चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, तारे, इत्यादि; या जैसे वर्षा, अग्नि, वायु, शीत, ताप, इत्यादि, जो किसी न किसी रूप में जीवन के लिए उपयोगी और लाभकारी हैं। ये सभी अधिक शक्तिशाली पर्याप्तता की स्थितियाँ हैं, चाहे अच्छे कर्मों की प्राप्ति के लिए हों या बुराई के प्रसार के लिए। या तो सुखों के भोग के लिए या दुखों के कष्ट सहने के लिए।

जो लोग वर्तमान जीवन में निर्वाण प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखते हैं, वे ज्ञानोदय के कारकों पर कार्य करते हैं। जो लोग आने वाले जन्मों में, जब बुद्ध प्रकट होंगे, निर्वाण प्राप्त करने की प्रबल आशा रखते हैं, वे पूर्णता की प्राप्ति करते हैं। यहाँ, निर्वाण इन कार्यों के अभ्यास के लिए अधिक शक्तिशाली पर्याप्त शर्त है।

बुद्ध के त्रिपिटकों में पाए जाने वाले या आमतौर पर प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के विचार या नाम-और-अवधारणाएँ भी अनेक चीजों को समझने के लिए पर्याप्त शर्तें हैं।

वास्तव में, यहाँ सभी सशर्त वस्तुएँ तभी अस्तित्व में आती हैं जब उनके लिए वर्तमान कारण या परिस्थितियाँ मौजूद हों, अन्यथा नहीं। और वे तभी स्थिर रहती हैं जब उनके अस्तित्व के लिए वर्तमान कारण हों; अन्यथा वे नहीं रहतीं। इसलिए, उनके उद्भव और उनके रखरखाव के लिए कारणों या परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। हालाँकि, निर्वाण और विचार ऐसी वस्तुएँ हैं, जो बिना शर्त, बिना जन्म और उत्पत्ति के, शाश्वत और अनंत हैं। इसलिए, उनके उद्भव और रखरखाव के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है।[17]

नैतिक, नैतिक से कारणिक रूप से संबंधित है, जो एक पर्याप्त शर्त है। इसका स्पष्ट वर्णन पट्टाना में मिलता है, जहाँ कहा गया है: "विश्वास के द्वारा दान दिया जाता है, नियमों का पालन किया जाता है, इत्यादि।" इसी प्रकार, नैतिक और अनैतिक—या अनिर्दिष्ट[18] या अनैतिक—के बीच पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक संबंध इन व्याख्याओं से स्पष्ट होता है: "वासना के कारण हत्या, चोरी इत्यादि की जाती है," और "उपयुक्त जलवायु और भोजन के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य इत्यादि प्राप्त होता है।" नैतिक, अनैतिक से भी एक अधिक सशक्त पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित है। यह निम्नलिखित व्याख्या से समझा जा सकता है: "कोई दान दे सकता है और इस प्रकार स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखा सकता है। उसी प्रकार, नियमों का पालन करके, मन की एकाग्रता प्राप्त करके और ज्ञान अर्जित करके, कोई स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखा सकता है।"

नैतिक गुण अनैतिक गुणों से भी अधिक प्रबल कारणवश संबंधित हैं। चारों लोकों (काम, रूप, अरूप और लोकउत्तर) में किए गए सभी अच्छे कर्म और अच्छे कर्मों से जुड़े सभी कार्य, अधिक प्रबल कारणवश, भविष्य में उत्पन्न होने वाले अनैतिक गुणों से संबंधित हैं। दान की सिद्धि का अभ्यास करने वाले शारीरिक और मानसिक पीड़ा सहते हैं। इसी प्रकार, नैतिकता, त्याग, ज्ञान, दृढ़ता, धैर्य, निष्ठा, संकल्प, प्रेम और त्याग जैसे अन्य गुणों (परमिता) का अभ्यास करने वाले भी यही पीड़ा सहते हैं। ध्यान और मार्ग (अलौकिक विचार और आध्यात्मिक मार्ग) का अभ्यास करने वालों के साथ भी यही स्थिति है।

अनैतिक गुण भी अधिक प्रबल कारणवश नैतिक गुणों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, इस पृथ्वी पर कुछ लोग, गलत कर्म करके, अपने कर्मों का पश्चाताप करते हैं और दान, धर्मोपदेशों का पालन, ध्यान और ध्यान जैसे नैतिक कार्यों को अपनाकर ऐसे सभी बुरे कर्मों से दूर रहने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार, उनके द्वारा किए गए बुरे कर्म, एक प्रबल कारण के रूप में, उनके द्वारा बाद में अपनाए गए नैतिक कर्मों से संबंधित हैं।

इसी प्रकार, अनैतिक कर्म, एक अधिक प्रबल कारण के रूप में, अनैतिक कर्मों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, इस संसार में बहुत से लोग, बुरे कर्मों के दोषी होने के कारण, दुख के चार लोकों में से किसी एक में गिरने और वहाँ व्याप्त कष्टों को भोगने के लिए नियत हैं। यहाँ तक कि वर्तमान जीवन में भी, कुछ लोगों को अपने या दूसरों के कुकर्मों के कारण अत्यधिक कष्ट सहना पड़ता है। वहीं, कुछ लोग अपने कुकर्मों से अर्जित धन से अनेक प्रकार के सुखों का आनंद लेते हैं। ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो काम, घृणा, त्रुटि, अहंकार आदि के कारण बहुत कष्ट भोगते हैं।

अनैतिकताएँ भी नैतिक गुणों से अधिक प्रबल पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। अपार धनवान होने पर व्यक्ति दान करता है, अच्छे नैतिक गुणों की पूर्णता के लिए अभ्यास करता है, ज्ञान का संवर्धन करता है और किसी उपयुक्त स्थान, जैसे कि मठ, एकांत स्थान, गुफा, वृक्ष, वन, पहाड़ी या गाँव में धार्मिक अनुष्ठान करता है, जहाँ की जलवायु अनुकूल हो और भोजन उपलब्ध हो।

अनैतिकताएँ भी अनैतिकता से अधिक प्रबल पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। आँखों के होने से अनेक बुराइयाँ स्वयं में दृष्टि के कारण उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार हमारे कानों आदि के संबंध में भी यही व्याख्या लागू होती है; इसी प्रकार हाथों, पैरों, तलवारों, शस्त्रों आदि के संबंध में भी। इस प्रकार पर्याप्त शर्त तीन प्रकार की होती है।

सुत्तंत[19] के अनुसार पर्याप्त शर्त का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। पिटक ग्रंथों में अनेक ऐसे अंश मिलते हैं, जैसे "पुण्य मित्रों

के साथ संगति से", "पापी साथियों के साथ संगति से", "गाँव में निवास करने से", "वन में निवास करने से", इत्यादि। संक्षेप में, पंच-नियमधम्म (पाँच ब्रह्मांडीय व्यवस्थाएँ) सजीव जगत, निर्जीव जगत और आकाश जगत - इन तीनों लोकों के लिए युगों-युगों तक निरंतर बने रहने के लिए प्रबल और पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं।

अरम्मनुपनिस्सय को ऐसा क्यों कहा जाता है? क्योंकि प्रमुख वस्तु कर्ता (अरम्मनिक) के लिए मुख्य आधार का कार्य करती है।

अनतरूपनिस्सय को ऐसा क्यों कहा जाता है? क्योंकि पूर्ववर्ती चेतना अपने तत्काल अनुवर्ती चेतना के उद्भव के लिए मुख्य आधार का कार्य करती है। पूर्ववर्ती चेतना माता के समान है, और अनुवर्ती चेतना पुत्र के समान। यहां, जैसे माता पुत्र को जन्म देती है जिसका अस्तित्व विशेष रूप से माता पर निर्भर करता है, वैसे ही पूर्ववर्ती चेतना अनुवर्ती चेतना को जन्म देती है जिसका अस्तित्व विशेष रूप से पूर्ववर्ती पर निर्भर करता है।

पकातुपानिसया को ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह स्वाभाविक रूप से बुद्धिमानों द्वारा एक विशिष्ट पर्याप्त स्थिति के रूप में जाना जाता है। यहां, कुछ और कहना आवश्यक है। निकटता में एक पर्याप्त स्थिति का प्रभाव केवल उसके तत्काल अनुवर्ती को ही प्रभावित करता है, जबकि एक प्राकृतिक पर्याप्त स्थिति का प्रभाव कई दूरस्थ स्थितियों को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, जो कुछ इस वर्तमान जीवन में दिनों, महीनों, वर्षों पहले देखा, सुना, सूंघा, चखा, छुआ और अनुभव किया गया है, वह सौ वर्षों के बाद भी मन के द्वार पर पुनः प्रकट होता है, यदि कोई पर्याप्त कारण उपलब्ध हो। और इसलिए लोग अपने अतीत को याद करते हैं, और "मैंने इसे पहले देखा था", "मैंने इसे पहले सुना था", आदि जैसे भाव व्यक्त कर सकते हैं। ये प्राणी, जिनका जन्म आभासीय[21] है, अपने पूर्व जन्मों को भी याद करते हैं; इसी प्रकार, कुछ मनुष्य, जिन्हें अपने पूर्व जन्मों की स्मृति का वरदान प्राप्त है, ऐसा कर सकते हैं। यदि पूर्व में अनुभव की गई एक लाख वस्तुओं में से एक भी वस्तु बाद में फिर से मिल जाए, तो कई या शायद,ये सभी विचार प्रक्रिया में पुनः प्रकट होते हैं।

उपनिषय संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 10.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

10. पुरेजात-पच्चय या पूर्व-अस्तित्व का संबंध

पूर्व-अस्तित्व के संबंध तीन प्रकार के होते हैं: मूल पूर्व-अस्तित्व, वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व और मूल वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व।

इनमें से पहले और अंतिम प्रकार पर निस्साय-संबंध पर पिछले खंड में निस्साय शीर्षक के अंतर्गत चर्चा की जा चुकी है।

वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व वर्तमान अठारह प्रकार के भौतिक गुणों को दिया गया नाम है जो निप्पन्न श्रेणी के हैं। इनमें से, वर्तमान पाँच वस्तुएँ (दृश्य रूप, ध्वनि, इत्यादि) वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व के माध्यम से उन विचारों से कारणिक रूप से संबंधित हैं जो पंचद्वार प्रक्रियाओं में भाग लेने में सक्षम हैं। जैसे वायलिन की ध्वनि केवल धनुष से बजाने पर ही उत्पन्न होती है, और ध्वनि उत्पन्न होने के लिए वायलिन के तारों और धनुष दोनों का पूर्व अस्तित्व आवश्यक है, उसी प्रकार वे विचार जो पंच-द्वार प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं, पाँच इंद्रियों के पाँच द्वारों पर पाँच वस्तुओं की उपस्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं, जो पाँच आधारों के अलावा और कुछ नहीं हैं। यह उपस्थिति तभी संभव है जब द्वार और वस्तु अपनी स्थिर अवस्था में हों। वे पाँच वस्तुएँ न केवल उस स्थिर अवस्था में पाँच इंद्रियों के पाँच द्वारों पर प्रकट होती हैं, बल्कि वे मन के द्वार पर भी प्रकट होती हैं। इसी कारण जीवन-संचलन दो क्षणों के लिए कंपन करता है, और फिर रुक जाता है; और जीवन-संचलन का रुकना चेतना-श्रृंखला को जन्म देता है। ऐसा होने पर, किसी भी प्रक्रिया में चेतना-श्रृंखला वस्तुओं और आधारों के पूर्व अस्तित्व के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। अठारह प्रकार के निर्धारित भौतिक गुण या तो भूतकाल के होते हैं, क्योंकि वे समाप्त हो चुके हैं; या भविष्यकाल के होते हैं, क्योंकि वे अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं; या वर्तमान काल के होते हैं, क्योंकि वे अभी विद्यमान हैं। ये सभी, बिना किसी भेद के, मन के ज्ञान के विषय हो सकते हैं। परन्तु, इनमें से केवल वर्तमान काल के विषय ही वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व के रूप में कार्य करते हैं। और यदि कोई वस्तु जो किसी दूर स्थान पर हो, या दृष्टि से छिपी हो, स्वयं विद्यमान होकर मन का विषय बन जाती है, तो उसे भी वर्तमान काल का विषय कहा जा सकता है।

पुरेजात संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

11. **पच्छाजात-पच्चया या उत्तर-अस्तित्व का संबंध:**

प्रत्येक परवर्ती चेतना जो अस्तित्व में आती है, वह चार मूलों[22] (कर्म, चित्त, उतु, आहार) से उत्पन्न पूर्ववर्ती शारीरिक गुणों के समूह से परवर्ती अस्तित्व के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होती है, और उनके विकास और संवर्धन में सहायता करती है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक वर्ष गिरने वाला वर्षाजल, पिछले वर्षों में उगी वनस्पतियों को परवर्ती अस्तित्व के माध्यम से उनकी वृद्धि और विकास में सहायता करता है।

यहाँ, "प्रत्येक परवर्ती चेतना" से तात्पर्य प्रथम जीवन-निरंतरता से लेकर अंतिम मृत्यु-विचार तक की सभी चेतनाओं से है। और, "पूर्ववर्ती शारीरिक गुणों" से तात्पर्य चार मूलों से उत्पन्न सभी शारीरिक गुणों से है, जो कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों के समूह से शुरू होते हैं, जो पुनर्जन्म की अवधारणा के साथ सह-अस्तित्व में हैं।

पुनर्जन्म-गर्भधारण के बाद उत्पन्न होने वाली पहली जीवन-गर्भधारण अवस्था से क्रमानुसार प्रारंभ होने वाली जीवन-गर्भधारण की पंद्रह अवस्थाएँ, पुनर्जन्म-गर्भधारण के साथ सह-अस्तित्व में रहने वाले कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों के समूह से उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। पुनर्जन्म-गर्भधारण के संबंध में, यह उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक संबंध नहीं हो सकता, क्योंकि यह कर्म से उत्पन्न शारीरिक गुणों के समूह के साथ सह-अस्तित्व में रहता है। इसी प्रकार, सोलहवीं जीवन-गर्भधारण अवस्था उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक संबंध नहीं बन सकती, क्योंकि यह तभी अस्तित्व में आती है जब भौतिक गुणों का वह समूह विघटन की अवस्था में पहुँच जाता है। अतः, ये "जीवन-गर्भधारण की पंद्रह अवस्थाएँ" हैं जो उपरोक्त अनुसार कारणिक रूप से संबंधित हैं।

पुनर्जन्म-गर्भधारण के स्थिर क्षण में, कर्म से उत्पन्न और ताप से उत्पन्न भौतिक गुणों के दो समूह उत्पन्न होते हैं;[23] और यही स्थिति रुके हुए क्षण में भी होती है। लेकिन जीवन की पहली निरंतरता के आरंभिक क्षण में, तीन समूह उत्पन्न होते हैं: कर्म से उत्पन्न, तापमान से उत्पन्न और मन से उत्पन्न। जब खाए गए भोजन का ओज (पोषक तत्व) पूरे शरीर में फैलता है, तो शारीरिक पोषक तत्व उत्तेजक को अवशोषित कर लेता है और भौतिक गुणों का एक समूह उत्पन्न करता है। उस समय से, चारों मूलों द्वारा उत्पन्न समूह जलते हुए दीपक की लौ की तरह निरंतर उत्पन्न होते रहते हैं। आरंभिक क्षण को छोड़कर, जब तक ये समूह अपनी स्थिर अवस्था में रहते हैं, चेतना के बाद के पंद्रह वर्ग उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से उनकी सहायता करते हैं।

वुद्धिविरुल्लाह का अर्थ है "चार मूलों से उत्पन्न शारीरिक गुणों की श्रृंखला के क्रमिक विकास और प्रगति के लिए।" इसलिए, यदि वे चारों प्रकार के शारीरिक समूह, परलोक के कारण-कार्य संबंध से बार-बार संबंधित होते हैं (शाब्दिक रूप से, बार-बार प्राप्त करते हैं), तो वे अपने भौतिक जीवन काल की समाप्ति के बाद एक शक्तिशाली ऊर्जा छोड़ जाते हैं - एक ऐसी ऊर्जा जो बाद के समूहों की श्रृंखला के विकास, प्रगति और समृद्धि को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है।

पचजाता-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

12. असेवन-पच्चय या आनुवांशिक पुनरावृत्ति का संबंध

बारह प्रकार की अनैतिक चेतना, सत्रह प्रकार की नैतिक चेतना और अठारह प्रकार की निष्क्रिय चेतना (बीस में से दो प्रकार की चेतना, जिन्हें अवज्जन कहा जाता है, को छोड़कर प्राप्त) सहित सैंतालीस प्रकार की सांसारिक अनुभूतियों को यहाँ आनुवांशिक पुनरावृत्ति का कारण-कार्य संबंध कहा गया है। जब इनमें से कोई भी अनुभूति प्रक्रिया (अर्थात, विचार प्रक्रिया में चेतना की सात समान अवस्थाओं का क्रम) तक पहुँचता है, तो प्रत्येक पूर्ववर्ती अनुभूति आनुवांशिक पुनरावृत्ति के माध्यम से प्रत्येक अनुवर्ती अनुभूति से कारण-कार्य संबंध स्थापित करती है। संबंधित वस्तुएँ, पच्चयुप्पन-धम्म, ऊपर वर्णित अनुवर्ती अनुभूतियों के साथ-साथ चार मार्गों को भी समाहित करती हैं।

असेवन शब्द को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसका अर्थ है निरंतर दोहराव से अभ्यस्त होना या अपने पच्चयुप्पन्न-धम्म में इसकी प्रेरणा को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना, ताकि वे अधिकाधिक निपुणता, ऊर्जा और बल प्राप्त कर सकें। यहाँ 'पगुणभाव' का अर्थ है बाद के बोधात्मक विचारों की बोधात्मक क्रियाओं और अवस्थाओं में निपुणता; जैसे कोई व्यक्ति किसी पाठ को कई बार पढ़ता है तो प्रत्येक बार पढ़ने पर अधिक निपुण हो जाता है।

'परिवासो' का शाब्दिक अर्थ है सुगंधित करना या प्रेरित करना। जैसे रेशमी वस्त्र को मीठी सुगंधों से सुगंधित किया जाता है, वैसे ही विचार शरीर भी, एक प्रकार से, काम, घृणा आदि से; या अनासक्ति (अरज्जन), मित्रता (अदुस्सना) आदि से सुगंधित या प्रेरित होता है। यद्यपि पूर्ववर्ती बोध समाप्त हो जाता है, उसकी बोधात्मक शक्ति समाप्त नहीं होती; अर्थात्, उसकी शक्ति बाद के विचार में व्याप्त रहती है। इसलिए, प्रत्येक आगामी बोध, अस्तित्व में आने पर, पूर्ववर्ती बोध की अभ्यस्तता के कारण अधिक प्रबल हो जाता है। इस प्रकार, तत्काल पूर्ववर्ती विचार अपने तत्काल अनुवर्ती विचार को अभ्यस्त कर देता है या उसे अपनी अभ्यस्तता स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। हालांकि, अभ्यस्त पुनरावृत्ति की प्रक्रिया आमतौर पर सातवें विचार पर रुक जाती है, जिसके बाद या तो विचार प्रतिधारण के परिणामी क्षण आते हैं, या जीवन-निरंतरता में समाहित हो जाते हैं।

यहां, सुत्तंत में वर्णित नियमित पुनरावृत्ति का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। सुत्त पिटक के विभिन्न भागों में अनेक श्लोक मिलते हैं। जैसे: सतिपथानां भवेति: "मनन में गंभीर परिश्रम का अभ्यास करना"; सम्मप्पधानं भवेति: "सर्वोच्च प्रयास का अभ्यास करना"; सति-संबोज्जंगं भवेति: "ज्ञान प्राप्ति के कारक, मनन का अभ्यास करना"; धम्मविचय-संबोज्जंगं भवेति: "ज्ञान प्राप्ति के कारक, सत्य की खोज का अभ्यास करना"; सम्मदित्तिम भवेति: "सही दृष्टिकोण का अभ्यास करना"; सम्मसंकप्पं भवेति: "सही आकांक्षा का अभ्यास करना" आदि। इन अंशों में, "भवेति" से तात्पर्य है प्रयास को एक दिन, सात दिन, एक माह, सात माह, एक वर्ष या सात वर्षों तक दोहराना।

नैतिक और अनैतिक कर्म, जो बार-बार किए गए हों या पूर्व जन्मों में अनेक बार किए गए हों, वर्तमान जन्म के नैतिक और अनैतिक कर्मों से आनुवांशिक पुनरावृत्ति के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होते हैं, जिससे उनमें क्रमशः अधिक सुधार और गिरावट आती है।

वह संबंध जो किसी दूर के समय या भविष्य के जन्म में ऐसे नैतिक और अनैतिक कर्मों में क्रमशः सुधार और गिरावट लाता है, उसे पर्याप्तता कहा जाता है, परन्तु वह संबंध जो केवल प्रत्यक्ष अनुभव के दौरान ऐसा करता है, उसे आनुवांशिक पुनरावृत्ति कहा जाता है।

इस संसार में, कला, विज्ञान, साहित्य आदि में महान उपलब्धियों के अनेक आकस्मिक परिणाम या प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं, जो विचार, वचन और कर्म द्वारा निरंतर, बार-बार और निरंतर रूप से किए गए हैं।

इस प्रकार सभी क्षणभंगुर घटनाओं में पुनरावृत्ति का ऐसा ही संबंध पाया जाता है, और लंबे समय तक किए गए पुरुष उत्साह और प्रयास से इतनी उच्च कोटि का विकास हुआ है कि अनेक महान और कठिन कार्य पूर्ण रूप से संपन्न हुए हैं और यहाँ तक कि बुद्धत्व भी प्राप्त हुआ है।

असेवन-संबंध का अंत।

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

13. कर्म-पच्चय या कर्म का संबंध (संस्कृत: कर्म)

कर्म का संबंध दो प्रकार का होता है: सह-अस्तित्व वाला कर्म और अतुल्यकालिक कर्म।

इन दोनों में से, सभी इच्छाएँ, नैतिक, अनैतिक और अनैतिक, जो तीन काल-अवस्थाओं से युक्त हैं, सह-अस्तित्व वाले कर्म के कारण-कार्य संबंध का निर्माण करती हैं। इनसे संबंधित वस्तुएँ हैं: चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती जो इच्छा के साथ सह-अस्तित्व में हैं; कर्म से उत्पन्न भौतिक गुण, जो पुनर्जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं, और जीवनकाल के दौरान मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण।

भूतकाल की नैतिक और अनैतिक इच्छाएँ अतुल्यकालिक कर्म के कारण-कार्य संबंध का निर्माण करती हैं। इनसे संबंधित वस्तुएँ सांसारिक परिणामी चेतना के सैंतीस वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, और कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण हैं।

कर्म को ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे इसके विशिष्ट कार्य के कारण ऐसा कहा जाता है। यह विशिष्ट कार्य स्वयं इच्छाशक्ति (या संकल्प) ही है, और यह प्रत्येक क्रिया पर हावी रहती है। जब भी विचार, शब्द या शरीर की कोई क्रिया होती है, तो इच्छाशक्ति (या संकल्प) ही उसके साथ होने वाली क्रियाओं को निर्धारित करती है, उन्हें आकार देती है या उन्हें एक साथ अपने-अपने कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इसी कारण, सभी क्रियाओं में इच्छाशक्ति को सर्वोपरि कहा जाता है। अतः, कर्म को उसके विशिष्ट कार्य के कारण ऐसा कहा जाता है। या, इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, कर्म वह है जिसके द्वारा प्राणी क्रिया करते हैं। तो वे क्या करते हैं? वे शारीरिक कार्य, वाक् कार्य और मानसिक कार्य करते हैं। यहाँ, "शारीरिक कार्य" से तात्पर्य खड़े होना, बैठना आदि; आगे-पीछे चलना आदि; और यहाँ तक कि पलकों का खुलना और बंद होना भी है। वाक् कार्य का अर्थ है ध्वनि उत्पन्न करना। मानसिक कार्य का अर्थ है बुद्धिमानी से या बुरी तरह सोचना, और संक्षेप में, पाँचों इंद्रियों द्वारा देखना, सुनना आदि क्रियाएँ करना। इस प्रकार, प्राणियों की सभी क्रियाएँ इसी इच्छाशक्ति द्वारा निर्धारित होती हैं। अतः इसे कर्म कहा जाता है।

सहजता वह है जो अपने संबंधित पदार्थों के साथ एक साथ अस्तित्व में आती है। सहजतकम्मा सह-अस्तित्ववान पदार्थ होने के साथ-साथ कर्म भी है। सहजतकम्मा-पच्चय सह-अस्तित्ववान कर्म के माध्यम से (अपने प्रभावों से) स्थापित एक कारण-कार्य संबंध है।

नानकणिकम् वह पदार्थ है जो अपने प्रभावों से समय के संदर्भ में भिन्न होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस समय संकल्प उत्पन्न होता है वह एक समय है और जिस समय उसके प्रभाव घटित होते हैं वह दूसरा समय है; दूसरे शब्दों में, संकल्प अतुल्यकालिक है। अतः अतुल्यकालिक संकल्प वह संकल्प है जो अपने प्रभावों से समय के संदर्भ में भिन्न होता है। इसलिए नानकणिककम्मापच्चय अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से (अपने प्रभावों से) स्थापित एक कारण-कार्य संबंध है। आर्य पथ के साथ सह-अस्तित्व में रहने वाला संकल्प, उसके समाप्त होने के क्षण में ही, तुरंत अपना प्रभाव उत्पन्न करता है, अतः वह भी अतुल्यकालिक है।

यहां, उदाहरण के लिए, दान जैसी नैतिक इच्छाशक्ति, अपने सह-अस्तित्व वाले मन और मानसिक गुणों के साथ-साथ उसी मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से सह-अस्तित्व वाले कर्म के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी होती है। यह अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से उस कर्म से उत्पन्न मन और भौतिक गुणों के परिणामी समुच्चय से भी कारणिक रूप से जुड़ी होती है, जो भविष्य में एक दूर के समय में अस्तित्व में आएगा। इस प्रकार, एक इच्छाशक्ति, जो नैतिक और अनैतिक परिणामों वाले कर्म में परिवर्तित होती है, दो अलग-अलग समयों पर दो अलग-अलग संबंधों के माध्यम से अपने संबंधित पदार्थों से कारणिक रूप से जुड़ी होती है।

इस अतुल्यकालिक कर्म संबंध में, कर्म एक विशिष्ट ऊर्जा का प्रतीक है। यह इच्छाशक्ति के समाप्त होने पर भी समाप्त नहीं होती, बल्कि मन के अनुक्रमों का अप्रत्यक्ष रूप से अनुसरण करती है। जैसे ही इसे अनुकूल अवसर मिलता है, यह मरणशील विचार के समाप्त होने के तुरंत बाद, अगले जन्म में स्वयं को एक व्यक्ति के रूप में परिवर्तित करके प्रभावी हो जाती है। लेकिन, यदि इसे कोई अनुकूल अवसर न मिले, तो यह सैकड़ों जन्मों तक उसी सुप्त अवस्था में रहता है। यदि इसे अनुकूल अवसर मिल जाए, तो ब्रह्मलोक में अगले जन्म में "उत्कृष्ट कर्म" का प्रभाव दिखाई देता है, जब यह स्वयं को ब्रह्मदेव के रूप में रूपांतरित कर लेता है, और इतना परिपक्व हो जाता है कि इस दूसरे जन्म के अंत में यह स्वयं को समाप्त कर लेता है और आगे नहीं बढ़ता।

कर्म-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

14. विपाक-पच्चय या प्रभाव का संबंध:

परिणामी चेतना के छत्तीस वर्ग और उनके सहवर्ती, प्रभाव का संबंध हैं। चूंकि वे एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं, इसलिए संबंधित वस्तुएं उन सभी को समाहित करती हैं, साथ ही गर्भाधान के समय कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों और जीवनकाल में परिणामी चेतना द्वारा उत्पन्न गुणों को भी।

विपाक किस अर्थ में लागू होता है? यह विपच्चन के अर्थ में लागू होता है, जिसका अर्थ है शैशवावस्था या युवावस्था से परिपक्वता की अवस्था में परिवर्तन। किसकी कोमलता और परिपक्वता का तात्पर्य है? पूर्व से तात्पर्य अतीत की इच्छा की शैशवावस्था से है, जिसे अतुल्यकालिक कर्म के रूप में जाना जाता है। परिपक्वता से भी उसी कर्म की परिपक्वता का तात्पर्य है।

यहां यह समझा जाना चाहिए कि प्रत्येक इच्छा की चार अवस्थाएं या समय-चरण होते हैं - चेतना अवस्था, या इच्छा की उत्पत्ति; कर्म अवस्था, या इच्छा की निरंतरता; निमित्तवत्था, यानी इच्छा का निरूपण, और विपकवत्था, यानी अंतिम परिणाम। यहाँ, यद्यपि इच्छा स्वयं समाप्त हो जाती है, उसका विशिष्ट कार्य समाप्त नहीं होता, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से विचारों की श्रृंखला का अनुसरण करता है। इसे कर्मवत्था, या इच्छा की निरंतरता कहा जाता है।

जब कर्म को फलित होने का अनुकूल अवसर मिलता है, तो वह मरने वाले व्यक्ति को स्वयं को प्रकट करता है। अर्थात्, वह स्वयं ऐसा अनुभव करता है जैसे वह दान दे रहा हो, नियमों का पालन कर रहा हो, या शायद किसी प्राणी का वध कर रहा हो। यदि यह कर्म स्वयं को प्रकट करने में विफल रहता है, तो उसका एक प्रतीक प्रकट होता है। अर्थात्, वह स्वयं ऐसा अनुभव करता है जैसे उसके पास भेंट, उपहार, शस्त्र आदि हों; या कोई भी ऐसी वस्तु जिससे उसने अतीत में ऐसा कर्म किया हो। या, कभी-कभी, उसे अगले जन्म का संकेत प्रकट होता है जहाँ उसे अपना नया जीवन प्रारंभ करना होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि देवों के निवास या महल, निरय लोक की अग्नि, या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ, जिन्हें अगले जन्म में प्राप्त करना या अनुभव करना उसके भाग्य में लिखा होगा, छह द्वारों से होकर प्रस्तुति के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। इन्हें निमित्तवत्थ कहा जाता है, जो संकल्प का निरूपण है।

अब, हम विपकवत्थ को कैसे समझें? यदि कोई व्यक्ति इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक पर ध्यान केंद्रित करते हुए मर जाता है, चाहे कर्म पर, उसके चिन्ह पर, या भाग्य के चिन्ह पर, तो कहा जाता है कि कर्म ने नए जन्म में अपना प्रभाव डाला है, या फलीभूत हुआ है। यह एक व्यक्तित्व में रूपांतरित हो जाता है, और नए जन्म में एक प्राणी के रूप में प्रकट होता है। इसे विपकवत्थ, या अंतिम परिणाम कहा जाता है। यहाँ, पहले तीन अवस्थाओं में, इच्छाशक्ति को शैशवावस्था या युवावस्था में कहा गया है।[24] अंतिम अवस्था दर्शाती है कि इच्छाशक्ति परिपक्व हो गई है, और अपना प्रभाव डाल सकती है। इसलिए, जैसा कि कहा गया है, विपच्चन का अर्थ है शैशवावस्था या युवावस्था से परिपक्वता की अवस्था में परिवर्तन। इस प्रकार विपक चेतना की अवस्थाओं और उनके सहवर्ती तत्वों का नाम है, जो इच्छाओं के परिणाम हैं, या स्वयं परिपक्व इच्छाओं का नाम है।

जैसे पके हुए आम बेहद नरम और कोमल होते हैं, वैसे ही उनसे उत्पन्न अवस्थाएँ भी अत्यंत शांत होती हैं, क्योंकि वे निष्क्रिय होती हैं और उनमें कोई उत्तेजना नहीं होती। वे इतनी शांत होती हैं कि अवचेतन मन के विषय हमेशा धुंधले और अस्पष्ट होते हैं। अवचेतन मन से जागृत होने पर व्यक्ति को यह चेतना नहीं रहती कि वह विषय क्या था। इसी कारण, ऐसी विचार प्रक्रिया का होना संभव नहीं है जो अवचेतन के विषय को इस प्रकार प्रतिबिंबित कर सके: "अमुक वस्तु का सामना पिछले जन्म में हुआ था"—यद्यपि, रात्रि के समय नींद में, अवचेतन तीन प्रकार की वस्तुओं (कर्म, कर्म के प्रतीक और भविष्य के भाग्य के प्रतीक) में से किसी एक को अपना विषय बना लेता है, जिसका अनुभव मृत्यु के निकट आने पर, ठीक पिछले जन्म में हुआ था। अतः, व्यक्ति को पिछले जन्म की किसी भी वस्तु के बारे में, चाहे नींद में हो या जागते हुए, कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार निष्क्रियता, उत्तेजनाहीनता और शांति के माध्यम से होने वाले पारस्परिक संबंध को विपाक का कार्य कहा जाता है।

विपाक-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

15. आहार-पच्चय या भोजन का संबंध

भोजन का संबंध दो प्रकार का होता है: भौतिक और अभौतिक। इनमें से, भौतिक भोजन का अर्थ पोषक तत्व (या जिसे खाद्य भोजन कहा जाता है) है, जिसे फिर से दो प्रकारों में विभाजित किया गया है: आंतरिक और बाह्य।

खाद्य भोजन पर निर्भर रहने वाले प्राणियों से संबंधित चारों कारणों से उत्पन्न सभी प्राकृतिक गुण, यहाँ भौतिक भोजन के दो प्रकारों से संबंधित पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

अभौतिक भोजन तीन प्रकार का होता है: संपर्क, मन की इच्छाशक्ति और चेतना। ये अभौतिक भोजन, या पच्चय धम्म, सह-अस्तित्व वाले मानसिक और भौतिक गुणों से कारणिक रूप से संबंधित हैं, जो उनके संबंधित पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

आहार को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? आहार को 'मजबूती से थामे रखना' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है "दृढ़ता से अस्तित्व में लाना"। कहने का तात्पर्य यह है कि एक संबंधित वस्तु दूसरी संबंधित वस्तु को पोषण प्रदान करती है ताकि वह दीर्घायु हो सके, विकसित हो सके, फल-फूल सके और समृद्ध हो सके। यद्यपि भोजन का कारण-कार्य संबंध उत्पादक शक्ति रखता है, यहाँ समर्थन शक्ति सर्वोपरि है।

यहाँ दो भौतिक खाद्य पदार्थों को आहार कहा जाता है, क्योंकि वे चार कारणों से उत्पन्न आंतरिक भौतिक गुणों के समूह को दृढ़ता से धारण करते हैं, उन्हें पोषण प्रदान करते हैं ताकि वे दृढ़ता से विद्यमान रहें, दीर्घायु हों और अपने जीवनकाल की सीमाओं तक निर्बाध रूप से पहुँचें।

स्पर्श भी एक आहार है, क्योंकि यह अपने सह-अस्तित्व वाली वस्तुओं को दृढ़ता से धारण करता है और वांछनीय और अवांछनीय वस्तुओं से प्राप्त सार से उन्हें पोषण प्रदान करके उन्हें दृढ़ता से खड़े रहने और दीर्घायु होने में सक्षम बनाता है। मन की इच्छाशक्ति, या (संक्षेप में) संकल्प, एक आहार है क्योंकि यह कर्मों, शब्दों और विचारों के निष्पादन के लिए साहस प्रदान करती है। और चेतना भी एक आहार है, क्योंकि यह किसी वस्तु के बारे में सभी चिंतन में सर्वोपरि है। ये तीनों अमूर्त खाद्य पदार्थ, सह-अस्तित्व वाले मानसिक तत्वों को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ सह-अस्तित्व वाले भौतिक तत्वों को भी प्रभावित करते हैं।

यहां आहार की व्याख्या सुत्तंत पद्धति के अनुसार भी की जा सकती है। जिस प्रकार पक्षी अपना निवास स्थान ज्ञात करके अपने पंखों से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष और एक लट्ठे से दूसरे लट्ठे तक उड़ते हैं और अपनी चोंच से फल चुगते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार प्राणी भी—चेतना के छह वर्गों के द्वारा, वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके; मन की छह प्रकार की इच्छाशक्ति से, किसी वस्तु को वस्तु के रूप में प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करके; और छह प्रकार के स्पर्शों से, वस्तुओं के सार को प्रकट करके—या तो सुख का अनुभव करते हैं या दुःख भोगते हैं। या, केवल चेतना के छह वर्गों के द्वारा, वस्तुओं को समझकर, वे शरीर और मन का निर्माण करते हैं। या, केवल स्पर्शों से, वस्तुओं को प्रकट करके, ताकि उनके द्वारा भाव उत्पन्न हों, वे तृष्णा का विकास करते हैं। या, इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर विभिन्न प्रकार के कर्म करके, वे एक जन्म से दूसरे जन्म में विचरण करते हैं। इस प्रकार विभिन्न आहारों की व्यापक कार्यप्रणाली को समझा जा सकता है।

आहार-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

16. इंद्रिय-पच्चय या नियंत्रण का संबंध

नियंत्रण का संबंध तीन प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, पूर्वअस्तित्व और भौतिक जीवन।

इनमें से, प्रथम प्रकार के पच्चय-धम्म[26] पंद्रह सहअस्तित्व वाले नियंत्रण हैं, अर्थात्, मानसिक जीवन, चेतना, सुख, दुख, आनंद, शोक, सुखवादी उदासीनता, विश्वास, ऊर्जा, सजगता, एकाग्रता, तर्क, "मैं अज्ञात को जानूंगा (निर्वाण)" का विचार, "मैं जानता हूं" का विचार और "मैं जान चुका हूं" का विचार। पच्चयुप्पन्न-धम्म इनके सहअस्तित्व वाले गुण हैं, मानसिक और भौतिक दोनों।

द्वितीय प्रकार के पच्चय-धम्म पांच संवेदी अंग हैं: आंख, कान, नाक, जीभ और शरीर। पच्चयुप्पन्न-धम्म पांच इंद्रियां और उनके सहवर्ती तत्व हैं।

तीसरे प्रकार का सिद्धय-धम्म केवल एक ही है, अर्थात् स्वयं भौतिक जीवन। और भौतिक जीवन को छोड़कर कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण इसके सिद्धयप्पन्न-धम्म हैं।

इंद्रिय को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसे "नियंत्रण रखने" के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यह किस पर नियंत्रण रखता है? यह अपने सिद्धयप्पन्न-धम्मों पर नियंत्रण रखता है। किस कार्य में? उनके संबंधित कार्यों में। मानसिक जीवन अपने सह-अस्तित्व वाले मानसिक गुणों पर जीवन प्रदान करने में, अर्थात् निरंतरता द्वारा उनके विस्तार के मामले में नियंत्रण रखता है। चेतना किसी वस्तु के बारे में चिंतन करने के मामले में नियंत्रण रखती है। शेष के कार्य को हमारी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक इंद्रिय-यमक-दीपानी में समझाया गया है।

यहाँ, कुछ लोग इस प्रकार का प्रश्न पूछ सकते हैं: "नियंत्रण की श्रेणी में शामिल दो लिंगों - स्त्री और पुरुष - को सिद्धय-धम्मों के रूप में इस संबंध में क्यों नहीं लिया जाता?" उत्तर है: क्योंकि उनमें सिद्धय के कोई कार्य नहीं होते। पच्चया के तीन प्रकार के कार्य होते हैं, अर्थात्, सृजन, पालन और रखरखाव। यहाँ, यदि A, B की उत्पत्ति में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य सृजनात्मक कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B की उत्पत्ति असंभव होती। अनंतार के कार्य का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है। फिर, यदि A, B के अस्तित्व, विकास और समृद्धि में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य पालन और समर्थन करना कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B का अस्तित्व, विकास और समृद्धि संभव नहीं होती। पच्चाजात का संबंध यहाँ एक उदाहरण के रूप में उपयुक्त होगा। और, यदि A, B की निरंतरता में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य पालन और समर्थन करना कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B की निरंतरता बाधित होती और उसकी निरंतरता भी टूट जाती। भौतिक जीवन का कार्य इसे स्पष्ट करेगा।

अब, दोनों लिंग उक्त तीनों कार्यों में से किसी का भी निष्पादन नहीं करते। इसलिए, उन्हें नियंत्रण के इस संबंध में पच्चय-धम्म के रूप में नहीं लिया जाता। यदि ऐसा है, तो क्या उन्हें अभी भी नियंत्रक कहा जाना चाहिए? हाँ, उन्हें नियंत्रक कहा जाना चाहिए। क्यों? क्योंकि उनमें कुछ हद तक नियंत्रक शक्ति होती है। वे शरीर को उसकी यौन संरचना (लिंग), उसके स्वरूप (निमित्त), उसके चरित्र (कुत्त) और उसके बाह्य स्वभाव (अकप्प) में नियंत्रित करते हैं। इसलिए, गर्भाधान के समय, यदि किसी प्राणी में स्त्री लिंग उत्पन्न होता है, तो उसका संपूर्ण व्यक्तित्व, अर्थात् चार कारणों से उत्पन्न पाँच समुच्चय (कर्म आदि), स्त्रीत्व की ओर प्रवृत्त होता है। वास्तव में, संपूर्ण शरीर केवल स्त्री संरचना, स्त्री स्वरूप, स्त्री चरित्र और स्त्री बाह्य स्वभाव को ही प्रदर्शित करता है। यहाँ, न तो स्त्री लिंग इन गुणों को उत्पन्न करता है, न उनका समर्थन करता है और न ही उन्हें बनाए रखता है। लेकिन वास्तव में, जब शरीर (अर्थात पाँचों तत्व) अस्तित्व में आ जाता है, तो लिंग उस पर इस प्रकार नियंत्रण रखता है मानो वह (लिंग) उसे ऐसा बनने का आदेश दे रहा हो। सभी तत्व भी लिंग के अनुरूप हो जाते हैं, न कि उसके विपरीत। स्त्री संरचना में स्त्री की यही नियंत्रण शक्ति है। इसी प्रकार पुरुष संरचना में पुरुष का नियंत्रण होता है। इस प्रकार दोनों लिंग संरचनाओं में नियंत्रणकारी कार्य करते हैं, इसलिए इन्हें नियंत्रक कहा जा सकता है।

हृदय-आधार के संबंध में, यद्यपि यह मन-ज्ञान के दो तत्वों का आधार है, यह उन्हें किसी भी प्रकार से नियंत्रित नहीं करता है। क्योंकि हृदय निर्मल हो या न हो, सुप्रशिक्षित मन वाले व्यक्ति में मन-ज्ञान के तत्व कभी भी इसके अनुरूप नहीं होते।

इंद्रिय-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

17. **झाना-पकाया या झाना का संबंध**

झाना के सात घटक झना के संबंध में पक्काया-धम्म हैं। वे हैं:-- वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचारा (निरंतर अनुप्रयोग), पीति (सुखद रुचि), सोमनस्सा (आनंद), डोमनस्सा (शोक), उपेक्षा (सुख संबंधी उदासीनता) और एकग्गता (व्यक्तिगतकरण की क्षमता के अर्थ में एकाग्रता)। चेतना के सभी वर्ग (पांच इंद्रियों को छोड़कर), उनके सहवर्ती और सात घटकों के साथ सह-अस्तित्व में भौतिक गुण, यहाँ पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

ध्यान को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? ध्यान को निकट से देखने या सक्रिय रूप से देखने के अर्थ में समझा जाना चाहिए; अर्थात्, वस्तु के निकट जाकर उसे मानसिक रूप से देखना। जैसे एक धनुर्धारी—जो दूर से एक छोटे लक्ष्य के मध्य बिंदु पर तीर चला सकता है—तीर को अपने हाथ में मजबूती से पकड़कर, उसे स्थिर रखते हुए, लक्ष्य की ओर निर्देशित करते हुए, लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए, और ध्यानपूर्वक देखते हुए, या बल्कि निशाना साधते हुए, तीर को मध्य बिंदु पर पहुंचा देता है। जिस प्रकार ध्यान किसी वस्तु पर केंद्रित होता है या उसे उसमें समाहित करता है, उसी प्रकार योगी या ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के बारे में बात करते समय हमें यह कहना चाहिए कि वह अपने मन को वस्तु की ओर निर्देशित करके, उसे स्थिर रखते हुए और कसिना-वस्तु को ध्यान में रखते हुए, ध्यान के इन सात घटकों के माध्यम से अपने मन को उसमें समाहित करता है। इस प्रकार, इन पर ध्यानपूर्वक ध्यान देकर, व्यक्ति अपने शरीर, वचन और मन की क्रियाओं को बिना किसी असफलता के संपन्न करता है। यहाँ, "शरीर की क्रिया" का अर्थ है आगे-पीछे चलना आदि; "वचन की क्रिया" का अर्थ है मौखिक अभिव्यक्ति करना, जैसे अक्षर, शब्द आदि की ध्वनियाँ; "मन की क्रिया" का अर्थ है किसी भी प्रकार की वस्तु के प्रति सचेत रहना। अतः दान देना या जीवन लेना जैसे किसी भी कर्म को कमजोर मन द्वारा नहीं किया जा सकता जिसमें ध्यान के आवश्यक घटक न हों। यही बात सभी नैतिक और अनैतिक कर्मों पर भी लागू होती है।

इसके अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, ध्यान के प्रत्येक घटक की प्रमुख विशेषता को अलग-अलग समझाया जाना चाहिए। वितक्का की विशेषता है सहवर्ती गुणों को वस्तु की ओर निर्देशित करना। और इसलिए यह मन को विषय पर दृढ़ता से स्थिर कर देता है। विचार की विशेषता है विषय का बार-बार पुनरावलोकन करना, और यह मन को विषय से दृढ़ता से जोड़ देता है। पीति की विशेषता है विषय में रुचि उत्पन्न करना, और मन को उससे प्रसन्न और संतुष्ट करना। वेदना के तीन प्रकार, अर्थात् आनंद, दुःख और उदासीनता, विषय को महसूस करने की विशेषता रखते हैं, और ये भी मन को वांछनीय, अवांछनीय और तटस्थ वस्तुओं के सार का अनुभव करने के लिए स्थिर कर देते हैं। एकाग्ता की विशेषता एकाग्रता है और यह भी मन को विषय पर दृढ़ता से स्थिर रखता है।

ध्यान-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

18. **मार्ग-पच्चय या पथ का संबंध:**

मार्ग के इस संबंध में बारह पथ-घटक पच्चय-धम्म हैं। वे हैं: सही विचार, सही आकांक्षा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, गलत विचार, गलत आकांक्षा, गलत प्रयास और गलत एकाग्रता। हालांकि, गलत वाणी, गलत कर्म और गलत आजीविका को अलग-अलग मानसिक गुणों से नहीं जोड़ा जा सकता। ये चार अनैतिक स्कंधों (अकुसला-खंड) के ही

अन्य नाम हैं, जो झूठ आदि के नाम से प्रकट होते हैं। इसलिए इन्हें अलग-अलग पथ-घटक नहीं माना जाता। हेतु से वातानुकूलित चेतना और मानसिक सहवर्ती सभी वर्ग, और हेतु से वातानुकूलित मन के साथ सहअस्तित्व में रहने वाले सभी भौतिक गुण पच्चयुप्पन-धम्म हैं।

मार्ग को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसे मार्ग के अर्थ में समझा जाना चाहिए, अर्थात् दुर्भाग्य के क्षेत्र या निर्वाण के क्षेत्र तक पहुँचने के साधन के रूप में। आठ मार्ग-घटक (सही दृष्टिकोण आदि) निर्वाण की ओर ले जाते हैं। चार गलत मार्ग-घटक दुर्भाग्य के क्षेत्र की ओर ले जाते हैं।

अब ध्यान का कार्य मन को विषय में सीधा, स्थिर और परमानंदित करना है।[28] "परमानंदित मन" का अर्थ है वह मन जो कसिना-विषय में इस प्रकार डूब जाता है जैसे मछली गहरे पानी में। मार्ग का कार्य कर्मिक संकल्प को अस्तित्व के चक्र में प्रवेश के मार्ग में और भावनिक संकल्प को चक्र से बाहर निकलने के मार्ग में सीधा और स्थिर करना है, जिससे एक कार्य-प्रणाली उत्पन्न हो, विकसित हो, फले-फूले और समृद्ध हो, और उच्चतर स्तर तक पहुँचे। यही इन दोनों संबंधों के बीच अंतर है।

यहां, कर्मिक इच्छाशक्ति, जो पुनर्जन्म उत्पन्न कर सकती है—क्योंकि यह नैतिक और अनैतिक कर्मों जैसे कि जीवन लेना आदि में परिणत हुई है—को कर्मपथपत्त कहा गया है। और भावनिक इच्छाशक्ति, जो उच्चतर अवस्थाओं तक पहुँचती है, अर्थात् इंद्रिय अवस्था से पारलौकिक अवस्था तक, उच्चतर अवस्थाओं के अनुक्रम से होकर, व्यवस्थित प्रशिक्षण-अभ्यासों (भावनानुकाम्मा) की शक्ति से, एक शारीरिक मुद्रा के संक्षिप्त समय में भी, आगे बढ़ती है—को भूमंतरपत्त कहा गया है।

इस संबंध को समझने के लिए, प्रत्येक मार्ग-घटक की विशिष्ट पहचान को भी ध्यान के संबंध में दर्शाए गए तरीके से अलग से समझाया जाना चाहिए।

मार्ग-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 19.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

19. सम्पायुत्त-संबंध या सहभागिता का संबंध

सहभागिता और वियोग के संबंध एक युग्म बनाते हैं। इसी प्रकार उपस्थिति और अनुपस्थिति तथा स्थगन और निरंतरता के संबंध भी युग्म बनाते हैं। ये तीनों युग्म विशेष नहीं हैं। इनका उल्लेख केवल यह दर्शाने के लिए किया गया है कि उपरोक्त संबंधों में, कुछ सिद्धय-धर्म अपने सिद्धयप्पन्न-धर्मों से सहभागिता द्वारा, और अन्य वियोग द्वारा, कारणवश संबंधित होते हैं; कुछ उपस्थिति द्वारा, अन्य अनुपस्थिति द्वारा; कुछ स्थगन द्वारा, अन्य निरंतरता द्वारा।

यहाँ भी, "अत्थि ति खो, कच्चना, अयम एको अंतो; नत्थि ति खो दुतियो अंतो ति"[29] जैसे वाक्यों में, अत्ति और नत्थि शब्द शाश्वतवाद और विनाशवाद के विधर्मी विचारों को इंगित करने के लिए हैं। अतः, ऐसी व्याख्याओं को रोकने के लिए, संबंधों के अंतिम युग्म का उल्लेख किया गया है।

चेतना और मानसिक गुणों के सभी वर्ग सहभागिता के माध्यम से एक दूसरे से परस्पर संबंधित होते हैं। संपयुत्त को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? संपयुत्त को चार साहचर्य साधनों, अर्थात् समकालिक उत्पत्ति, समकालिक समाप्ति, एकमूलत और एकवस्तु, के द्वारा सहभागिता या विलय के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यहाँ, एकिभवं गति (या विलय) से तात्पर्य है कि दृष्टि की चेतना अपने सात मानसिक गुणों के साथ इस प्रकार समाहित हो जाती है कि उन सभी को संयुक्त रूप से दृष्टि कहा जाता है। इन आठ मानसिक अवस्थाओं को अब उनके विशेष नामों से नहीं पुकारा जाता, क्योंकि वास्तव में इन्हें अलग-अलग जानना कठिन है। यही व्याख्या चेतना के अन्य वर्गों पर भी लागू होती है।

संपयुत्त संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 20.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

20. विपयुत्त-पच्चय या वियोग का संबंध:

वियोग का संबंध चार प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, मूल पूर्वअस्तित्व, मूल वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व और उत्तरअस्तित्व। इन चारों में से, सहअस्तित्व वाले वियोग के पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म सहअस्तित्व के संबंध में बताए गए अनुसार मानसिक या भौतिक हो सकते हैं। अतः सहअस्तित्व वाले वियोग के माध्यम से मानसिक, भौतिक से कारणिक रूप से संबंधित होता है, और इसके विपरीत भी। यहाँ "मानसिक" शब्द का प्रयोग पच्चय के रूप में किया जाता है, जिसका अर्थ है जीवनकाल के दौरान चार मानसिक समुच्चय, अर्थात् संवेदना, बोध, मानसिक क्रियाएँ और चेतना; और "भौतिक" शब्द का प्रयोग पच्चयुप्पन्न के रूप में किया जाता है, जिसका अर्थ है मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण। फिर से, जब "भौतिक" को पच्चया कहा जाता है, तो इसका अर्थ गर्भाधान के समय का हृदय-आधार होता है, और जब "मानसिक" को पच्चयुप्पन्ना कहा जाता है, तो इसका अर्थ पुनर्जन्म से संबंधित चार मानसिक समुच्चय होते हैं।

शेष तीन प्रकार के वियोगों की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।

विपयुत्त संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 21.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

21. अत्ति-पच्चय या उपस्थिति का संबंध

उपस्थिति का संबंध सात प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, मूल पूर्वअस्तित्व, वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व, मूल वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व, उत्तरअस्तित्व, भौतिक भोजन और भौतिक जीवन-नियंत्रण।

इनमें से सहअस्तित्व का संबंध मात्र सहअस्तित्व का है। शेष छह के लिए भी यही व्याख्या की जानी चाहिए, जिनके लिए पहले से ही वर्णित समतुल्य संबंधों का संदर्भ लिया जाना चाहिए। संबंधित और संबंधित वस्तुओं के वर्गीकरण पर प्रत्येक संबंधित संबंध में ऊपर चर्चा की जा चुकी है।

अत्ति-पच्चय क्यों कहा जाता है? अत्ति-पच्चय इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह खान नामक समय के तीन चरणों में उपस्थित होकर अपने प्रभाव से कारणिक रूप से संबंधित होता है।

अत्ति-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथन >> **अध्याय 22,23,24.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

22. नत्थी-पच्चया या स्थगन का संबंध
23. विगत-पच्चया या अनुपस्थिति का संबंध
24. अवगत-पच्चया या निरंतरता का संबंध

अनुपस्थिति का संबंध पूर्णत: निकटता का संबंध है; स्थगन का संबंध भी ऐसा ही है। निरंतरता का संबंध भी उपस्थिति के संबंध के समान ही है। "अत्थी" और "अवगत" शब्दों का अर्थ एक ही है; इसी प्रकार "नत्थी" और "विगत" शब्दों का भी।

नत्थी, विगत और अवगत संबंधों का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 25.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

25. पक्काया-सभागो या संबंधों का संश्लेषण

अब संबंधों का संश्लेषण बताया जाएगा।

सहजता (सहअस्तित्व) के संबंध को पंद्रह प्रकार के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है, यानी चार श्रेष्ठ सहजता, चार मध्यम सहजता, और सात निम्न सहजता। चार श्रेष्ठ सहजताओं में साधारण सहजता, सहजतानिसया (सह-अस्तित्व में निर्भरता), सहजतथि (सह-अस्तित्व में उपस्थिति), और सहजता-अविगत (सह-अस्तित्व में निरंतरता) शामिल हैं। चार मध्यम सहजताओं में अन्नमन्ना (पारस्परिकता), विपाक (प्रभाव), सम्पायुत्त (संघ), और सहजता-विप्पयुत्त (सहअस्तित्व पृथक्करण) शामिल हैं। सात अवर सहजता में हेतु (स्थिति), सहजता-धिपति (सहअस्तित्व प्रभुत्व), सहजता-कम्मा (सहअस्तित्व कम्मा), सहजतारा (सहअस्तित्व भोजन), सहजतंद्रिय (सहअस्तित्व नियंत्रण), झाना और मग्गा (रास्ता) शामिल हैं।

रूपाहार, या भौतिक भोजन तीन प्रकार का होता है: रूपाहार (साधारण भौतिक भोजन), रूपाहरत्ती, और रूपाहारविगत।

रूपा-जीवितिन्द्रिय, या शारीरिक जीवन-नियंत्रण तीन प्रकार का होता है: रूप-जीवितिन्द्रिय, जीवितिन्द्रियत्थि, और रूप-जीवितिन्द्रिय-अविगत।

प्योरजटा (पूर्व-अस्तित्व) के संबंध को सत्रह प्रकारों के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है: छह वत्थु-प्योरजटास (बुनियादी पूर्व-अस्तित्व), छह अरम्मना-प्यूरजटास (उद्देश्य पूर्व-अस्तित्व), और पांच वत्थरमण-प्यूरजटास (बुनियादी उद्देश्य पूर्व-अस्तित्व)। इनमें से छह वत्थु-पुरेजातस हैं वत्थु-पुरेजटा, वत्थुपुरेजातनिस्साय, वत्थु-पुरेजतनिन्द्रिय, वत्थु-पुरेजटा-विप्पयुत्त, वत्थु-पुरेजटाट्टथि, और वत्थु-पुरेजात-अविगता। छह अरम्मना-पुरेजटा हैं: अरम्मना-पुरेजटा, कुछ अरम्मना, कुछ अरम्मनाधिपति, कुछ अरम्मना-अरम्मनुपनिसया, अरम्मना-पुरेजटाथि, और अरम्मना-पुरेजटा-अविगाटा। किंची अरम्मनम आदि में "किन्सी" और "कोसी" शब्दों का उपयोग केवल वर्तमान निप्पन्न-रूप (कर्म और वातावरण द्वारा निर्धारित भौतिक गुण) को लेने के लिए किया जाता है। पांच वत्थरम्मना-पुरेजटा हैं वत्थरम्मना-पुरेजटा, वत्थरम्मना-पुरेजटा-निस्साय, वत्थरम्मना-पुरेजटा-विप्पयुत्त, वत्थरम्मना-पुरेजटाथि, और वत्थरम्मना-पुरेजटा-अविगटा।

पचजता या उत्तर-अस्तित्व के संबंध को चार प्रकारों के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है: पचजता, पचजता-विप्पयुत्त, पचजतथि, और पचजता-अविगता।

अनंतर (संपन्नता) का संबंध सात प्रकार का है: अनंतर, समानंतर, अनंतापनिसया, असेवन, अनंत-कम्मा, नत्थि और विगत। इनमें से, अनंतर कर्म वह इच्छा है जो एरियन पथ से संबंधित है। यह अपना प्रभाव अर्थात एरियन फल समाप्त होने के तुरंत बाद उत्पन्न करता है।

ऐसे पांच रिश्ते हैं जो किसी भी विशिष्टता में शामिल नहीं होते हैं। ये हैं: शेष अरम्मना, शेष अरम्मनाधिपति, शेष अरम्मनुपनिस्साय, सभी पकतुपनिस्साय, और शेष प्रकार के कर्म जो अतुल्यकालिक कम्म हैं।

इस प्रकार, महान ग्रंथ (पत्थाना) में वर्णित संबंध कुल मिलाकर चौवन प्रकार के हैं।

इन संबंधों में, सभी प्रकार के शुद्धजात, सभी प्रकार के पच्छजात, भौतिक भोजन और शारीरिक जीवन-नियंत्रण वर्तमान संबंध हैं। सभी प्रकार के अनंतार और नानकखानिक कर्म भूतकाल के संबंध हैं। निर्वाण और पद-और-अवधारणा, पन्नत्ति को छोड़कर—अरम्मन और पकातुपनिस्सय के संबंधों को तीन कालों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है: भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल। लेकिन निर्वाण और पद-और-अवधारणा हमेशा समय से परे होते हैं।

इन दो धम्मों—निर्वाण और पन्नत्ति (अवधारणा)—को अप्पच्चया (कारण संबंध से रहित) और असंखत (अप्रतिबंधित) कहा जाता है।[30] क्यों? क्योंकि वे पूर्णतः उत्पत्ति से रहित हैं। जिन वस्तुओं या घटनाओं का जन्म या उत्पत्ति होती है, उन्हें सप्पच्चया (संबंधित वस्तुएँ), संखत (प्रतिबंधित वस्तुएँ) और प्रतीत्यसमुप्पन्न (परिस्थितियों के संयोग से उत्पन्न वस्तुएँ) कहा जाता है। अत: वे दो धर्म, जो न तो उत्पन्न होते हैं और न ही घटित होते हैं, वास्तव में अप्पच्चय और असंखत कहलाते हैं।

संबंधित और परिबद्ध वस्तुओं में एक भी घटना ऐसी नहीं है जो स्थायी, स्थाई, शाश्वत और अपरिवर्तनीय हो। वास्तव में, सभी क्षणभंगुर हैं, क्योंकि वे विघटन के योग्य हैं। क्यों? क्योंकि, अस्तित्व में आने पर, वे किसी न किसी कारण से संबंधित होते हैं, और उनके कारण भी स्थायी नहीं होते।

क्या निर्वाण और अवधारणा पच्चय-धर्म या संबंधित वस्तुएँ नहीं हैं? क्या वे स्थायी और स्थाई नहीं हैं? हाँ, वे हैं, लेकिन कोई भी घटना केवल निर्वाण या अवधारणा के कारण ही पूरी तरह से घटित नहीं होती। घटनाएँ अनेक कारणों से घटित होती हैं या उत्पन्न होती हैं, जो स्थायी और स्थाई नहीं होते।

जो वस्तुएँ स्थायी नहीं होतीं, वे तीनों प्रकार के कष्टों से ग्रसित प्राणियों के लिए सदा कष्टदायी और पीड़ादायक होती हैं। अत: उन्हें उनके भयावह होने के कारण बुरा माना जाता है। यहां तीन प्रकार के कष्ट हैं: "दु:ख-दु:खता" (कष्ट के कारण), "संस्कार-दु:खता" (परिस्थितियों के कारण) और "विपरीत-दु:खता" (परिवर्तनशीलता के कारण)। सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं और प्रत्येक क्षण विलीन हो रही हैं, यहाँ तक कि एक ही स्थिति में रहते हुए भी।[31] अतः प्राणियों और व्यक्तियों में कोई मूल आत्मा या सार कैसे हो सकता है, जबकि वे अपने पूरे जीवन स्वयं को स्थायी मानते हैं? सब कुछ कष्टों के अधीन है। अतः प्राणियों और व्यक्तियों में कोई मूल आत्मा या सार कैसे हो सकता है जो कष्टों के अधीन हैं और फिर भी सुख की कामना करते हैं? अतः सभी वस्तुएँ सारहीन हैं क्योंकि उनमें कोई मूल नहीं है।

संक्षेप में कहें तो, बुद्ध ने चौबीस संबंधों की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित तथ्य प्रकट किए हैं: सभी बद्ध वस्तुएँ अपने घटित होने, बनने या अस्तित्व में आने के लिए कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर हैं, न कि केवल प्राणियों की इच्छा, संकल्प या आदेश पर। और सभी कारणों और परिस्थितियों के अधीन वस्तुओं में से कोई भी ऐसी नहीं है जो कुछ कारणों से अस्तित्व में आती हो; वे वास्तव में अनेक कारणों से ही उत्पन्न होती हैं। अतः, यह व्याख्या आत्माहीनता के सिद्धांत को प्रकट करते हुए अपने चरम पर पहुँचती है।

संबंधों का संश्लेषण समाप्त।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 26.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

26. पच्चया-घटना या संबंधों का समकालिकता:

अब संबंधों के समकालिकता का वर्णन किया जाएगा।

किसी एक संबंधित वस्तु में कारण-संबंधों की समकालिकता को संबंधों का समकालिकता या पच्चया-घटना कहते हैं। सभी घटनाओं को स-पच्चया (कारणों से संबंधित), संखता (कारणों से बद्ध) और प्रतीत्यसमुप्पन (परिस्थितियों के संयोग से उत्पन्न) कहा जाता है,

क्योंकि उत्पन्न होने और बने रहने में वे इन चौबीस कारण-संबंधों के साथ सहअस्तित्व में होती हैं, या उनसे बद्ध होती हैं। तो वे घटनाएँ क्या हैं? वे हैं: चेतना के एक सौ इक्कीस वर्ग, मानसिक गुणों के बावन प्रकार और भौतिक गुणों के अट्ठाईस प्रकार।

इनमें से, चेतना के एक सौ इक्कीस वर्गों को धातु (तत्वों) की श्रेणी के अंतर्गत सात भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. दृश्य बोध का तत्व
2. श्रवण बोध का तत्व
3. गंध बोध का तत्व
4. स्वाद बोध का तत्व
5. स्पर्श बोध का तत्व
6. बोध का तत्व
7. समझ का तत्व।

इनमें से:

1. दृष्टि-चेतना के दो वर्गों को दृश्य बोध के तत्व कहा जाता है;
2. ध्वनि-चेतना के दो वर्गों को श्रवण बोध के तत्व कहा जाता है;
3. गंध-चेतना के दो वर्गों को गंध बोध के तत्व कहा जाता है;
4. स्वाद-चेतना के दो वर्गों को स्वाद बोध के तत्व कहा जाता है;
5. स्पर्श-चेतना के दो वर्गों को स्पर्श बोध के तत्व कहा जाता है।
6. "पाँच द्वारों में से किसी एक की ओर मन का ध्यान" (पंचद्वर्वज्जन) और "अनुभूतियों की स्वीकृति" (संपच्चन) के दो वर्ग बोध के तत्व कहलाते हैं;
7. चेतना के शेष एक सौ आठ वर्ग बोध के तत्व कहलाते हैं।

बावन प्रकार के मानसिक गुणों को भी समूहों में विभाजित किया गया है:

- सात सार्वभौमिक
- छह विवरण
- चौदह अनैतिक
- पच्चीस दीप्तिमान।

चौबीस संबंधों में से

पंद्रह संबंध सभी मानसिक अवस्थाओं में समान हैं: अरम्मन, अनंतार, समानंतार, सहजता, अन्नम्मन, निस्सय, उपनिषय, कम्म, आहार, इंद्रिय, सम्पायुत्त, अत्ति, नत्थि, विगत और अविगत।

चेतना या मानसिक गुण का एक भी वर्ग ऐसा नहीं है जो अरम्मन (वस्तु) के कारण संबंध के बिना उत्पन्न होता हो। यही बात अनंतार, समानंतार, सहजता आदि के शेष कारण संबंधों पर भी लागू होती है।

केवल आठ संबंध—हेतु, अधिपति, पुरेजात, असेवन, विपाक, ध्यान, मार्ग और विपायुत्त—कुछ मानसिक अवस्थाओं में समान हैं। इनमें से, हेतु का संबंध केवल हेतु द्वारा निर्धारित चेतना के वर्गों में समान है; अधिपति का संबंध भी केवल अधिपति के साथ सह-अस्तित्व वाले बोधों (जावनों) में समान है। शुद्धजात का संबंध केवल कुछ प्रकार के मनों में ही पाया जाता है; असेवन का संबंध केवल नैतिक, अनैतिक और निष्क्रिय चेतना के बोधगम्य वर्गों में ही पाया जाता है; विपाक का संबंध भी केवल परिणामी मनों में ही पाया जाता है; ध्यान का संबंध चेतना और मानसिक सहवर्ती तत्वों के उन वर्गों में पाया जाता है जो बोध और समझ के तत्वों के अंतर्गत आते हैं; मार्ग का संबंध हेतु द्वारा नियंत्रित मनों के वर्गों में पाया जाता है; विपयुत्त का संबंध अरुपलोक में स्थित मनों के वर्गों में नहीं पाया जाता है। पच्छजात का केवल एक विशेष संबंध भौतिक गुणों में पाया जाता है।

यहाँ इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। सात सार्वभौमिक, मानसिक गुण हैं: फस्सा (संपर्क), वेदना (संवेदना), सन्ना (बोध), चेतना

(इच्छाशक्ति), एकग्गत (व्यक्तिगतकरण की क्षमता में एकाग्रता), जीवता (मानसिक जीवन) और मानसिक (ध्यान)।

इनमें से, चेतना अधिपति का संबंध हो सकती है; यह आहार का संबंध हो सकता है, और यह इंद्रिय का संबंध भी हो सकता है; संपर्क केवल आहार का संबंध है; संवेदना इंद्रिय का संबंध हो सकती है, और यह ध्यान का संबंध भी हो सकता है; इच्छाशक्ति कर्म का संबंध हो सकती है, और यह आहार का संबंध भी हो सकता है; एकाग्ता इंद्रिय का संबंध हो सकती है; यह ध्यान का संबंध हो सकती है; और यह मार्ग का संबंध भी हो सकती है; मानसिक जीवन केवल इंद्रिय का संबंध है; शेष दो अवस्थाएँ—बोध और ध्यान—किसी विशेष संबंध में नहीं बँटतीं।

दृष्टि के माध्यम से चेतना सात सार्वभौमिक मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं को प्राप्त करती है, और इस प्रकार वे आठ मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। ये सभी सात संबंधों के माध्यम से एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं: चार उच्चतर सहजता और तीन मध्यम सहजताएँ, वियोग के संबंध को छोड़कर। इन आठ मानसिक अवस्थाओं में, चेतना आहार और इंद्रियों के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होती है। स्पर्श आहार के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है; संवेदना केवल इंद्रियों के माध्यम से शेष अवस्थाओं से संबंधित होती है; संकल्प कर्म और आहार के माध्यम से; एकाग्ता केवल इंद्रियों के माध्यम से; और मानसिक जीवन इंद्रियों के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है। नेत्र का आधार छह प्रकार की वात-पुरेजात अवस्थाओं के माध्यम से इन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है। वर्तमान दृश्य वस्तुएँ, जो उस नेत्र-आधार के मार्ग में प्रवेश करती हैं, चार प्रकार की अरम्मन पुरेजात अवस्थाओं के माध्यम से उन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। चेतना, जिसे दृष्टि चेतना के उदय से ठीक पहले, समाप्ति के क्षण में पंच द्वारों की ओर मुड़ना कहा जाता है, अनंतार की पाँच प्रजातियों के माध्यम से इन आठ मानसिक अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित है। पूर्व जन्मों में किए गए नैतिक और अनैतिक कर्म, अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से क्रमशः इन आठ परिणामी अच्छे और बुरे अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित हैं। अज्ञान (अविज्जा), तृष्णा (तन्हा) और आलिंगन (उपादान) - जो पिछले जन्म में इच्छाशक्ति (कर्म) के साथ सहक्रिया करते थे, और इस वर्तमान जीवन के निवास स्थान, व्यक्ति, ऋतुएँ, भोजन आदि - पकातुपानिस्सय (प्राकृतिक पर्याप्तता) के माध्यम से इन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित हैं। छह संबंध - हेतु, अधिपति, पच्छजात, असेवन, ध्यान और मार्ग - इस प्रकार की चेतना में भाग नहीं लेते हैं, बल्कि केवल शेष अठारह संबंध ही भाग लेते हैं। जिस प्रकार छह संबंध दृष्टि के माध्यम से चेतना में भाग नहीं लेते—केवल अठारह संबंध ही भाग लेते हैं—उसी प्रकार वे श्रवण, गंध आदि के माध्यम से चेतना में भाग लेते हैं।

पांचों इंद्रियों में संबंधों की समकालिकता यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 27.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

27. हेतु के बिना चेतना में संबंधों का समकालिक होना:

छह मानसिक गुण हैं जिन्हें विशिष्ट (पकिन्नक) कहा जाता है - वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचार (निरंतर अनुप्रयोग), अधिमोक्खा (निर्णय), वीर्य (प्रयास), पीति (सुखद रुचि), चंदा (कर्म करने की इच्छा)। इनमें से, प्रारंभिक अनुप्रयोग ध्यान और मार्ग के संबंध में भाग लेता है। निरंतर अनुप्रयोग केवल ध्यान में भाग लेता है। प्रयास अधिपति, इंद्रिय और मार्ग के संबंध में भाग लेता है। सुखदद ध्यान में भाग लेता है। कर्म करने की इच्छा अधिपति में भाग लेती है। निर्णय किसी विशिष्ट संबंध में भाग नहीं लेता है।

दस सहवर्ती तत्व, अर्थात् सात सार्वभौमिक तत्व, प्रारंभिक अनुप्रयोग, निरंतर अनुप्रयोग और विशिष्ट तत्वों से निर्णय लेना—चेतना के पाँच वर्गों में पाए जाते हैं, अर्थात् पंच द्वारों की ओर उन्मुख होना, स्वीकृति का द्विगुणित वर्ग और सुखवादी उदासीनता के साथ अन्वेषण का द्विगुणित वर्ग। ये एक संयोजन में ग्यारह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इन तीनों वर्गों में ध्यान क्रिया होती है। संवेदना, एकाग्गत, प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग ध्यान संबंध का कार्य करते हैं। चेतना (पंच द्वारों की ओर उन्मुख होना) निष्क्रिय वर्ग से संबंधित है, इसलिए यह विपाक संबंध में नहीं पाई जाती। अतुल्यकालिक कर्म उपनिषय के स्थान पर कार्य करता है। अतः, ऊपर दर्शाए गए पाँच इंद्रियों में अप्राप्य संबंधों से ध्यान को हटाकर और विपाक को शामिल करके, पंच द्वारों की ओर उन्मुख चेतना में भी छह अप्राप्य और अठारह प्राप्य संबंध हैं। चेतना के शेष चार परिणामी वर्गों के संबंध में, विपाक को छोड़ने से पांच संबंध अप्राप्य हो जाते हैं,

और विपाक और ध्यान को जोड़ने से उन्नीस संबंध प्राप्त हो जाते हैं।

आनंद से परिपूर्ण अन्वेषणात्मक चेतना ग्यारह मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं को प्राप्त करती है, अर्थात् उपर्युक्त दस अवस्थाओं के साथ-साथ सुखदायक रुचि। चेतना (मन द्वार की ओर उन्मुख) में ग्यारह सहवर्ती अवस्थाएँ सह-अस्तित्व में होती हैं, और वे प्रयास के साथ होती हैं। वे चेतना के साथ मिलकर बारह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। बारह सहवर्ती अवस्थाएँ, अर्थात् उपर्युक्त दस अवस्थाएँ, सुखदायक रुचि और प्रयास के साथ, सौंदर्यबोधक आनंद की चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होती हैं। वे चेतना के साथ मिलकर तेरह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। अन्वेषणात्मक चेतना के तीन वर्गों में से, आनंद से परिपूर्ण वर्ग में अन्य दो वर्गों की तुलना में ध्यान कारकों के संबंध में एक अधिक मानसिक गुण (अर्थात सुखदायक रुचि) होता है: इसलिए, अप्राप्य पाँच और प्राप्त करने योग्य उन्नीस संबंध, सुखवादी उदासीनता से परिपूर्ण अन्वेषणात्मक चेतना के दो वर्गों के समान हैं। चेतना (मन द्वार की ओर उन्मुख) में, प्रमुख गुण केवल "प्रयास" है, जो इंद्रिय और ध्यान के कार्यों को पूरा करता है, लेकिन अधिपति और मार्ग के कार्यों को नहीं। यह चेतना, निष्क्रिय वर्ग की होने के कारण, विपाक संबंध प्राप्त नहीं करती। अतः, विपाक सहित अप्राप्य छह और ध्यान सहित प्राप्य अठारह, पाँच द्वारों की ओर उन्मुख चेतना के समान ही हैं। सौंदर्यबोध की चेतना में भी विपाक संबंध प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह निष्क्रिय वर्ग की है। परन्तु प्रत्यक्ष वर्ग होने के कारण, यह असेवन संबंध में प्राप्त होता है। अतः, विपाक सहित पाँच संबंध अप्राप्य हैं, तथा असेवन सहित उन्नीस संबंध प्राप्य हैं।

हेतु के साथ न होने वाली चेतना में संबंधों की समकालिकता का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

अनैतिक चेतना वर्ग में संबंधों का समकालिकता:

अनैतिक चेतना के बारह वर्ग हैं: दो अज्ञान में निहित, आठ इच्छा में निहित और दो घृणा में निहित। चौदह अनैतिक मानसिक गुण हैं: मोह (सुस्ती), अहिरिका (निर्लज्जता), अनोत्तप्पा (परिणामों की परवाह न करना) और उद्दच्च (विचलित होना) - इन चारों को मोह-चतुर्भुज कहा जाता है; लोभ (लालच), दिट्ठी (त्रुटि) और मन (अहंकार) - इन तीनों को लोभ-त्रुधि कहा जाता है; दोष (घृणा), इस्सा (ईर्ष्या), मच्छरिया (स्वार्थ) और कुक्कुच्च (चिंता) - इन चारों को दोष-चतुर्भुज कहा जाता है; थिना (आलस्य), मिद्धा (सुस्ती) और विचिचिच्च (भ्रमित) - इन तीनों को पकिन्नक त्रुधि कहा जाता है। इनमें से तीन मूल भाव—लोभ, घृणा और सुस्ती—हेतु संबंध हैं। त्रुटि मार्ग संबंध है। शेष दस मानसिक गुण किसी विशिष्ट संबंध में नहीं आते।

यहाँ, सुस्ती में निहित चेतना के दो वर्ग हैं: उलझन से जुड़ी चेतना और विचलितता से जुड़ी चेतना। इन दोनों में से पहले के साथ पंद्रह मानसिक सहवर्ती भाव विद्यमान होते हैं। इनमें सात सार्वभौमिक भाव, आरंभिक क्रिया, निरंतर क्रिया, प्रयास (विशिष्ट भावों से), मोह-चतुर्भुज और उलझन (अनैतिक भावों से) शामिल हैं। ये चेतना के साथ मिलकर सोलह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इस चेतना में, अर्थात् उलझन से जुड़ी चेतना में, हेतु और मार्ग संबंध भी प्राप्त होते हैं। अर्थात्, सुस्ती हेतु संबंध के रूप में कार्य करती है; आरंभिक क्रिया और प्रयास मार्ग संबंध के रूप में; और एकाग्ता के संबंध में, क्योंकि उलझन से इसके कार्य में बाधा उत्पन्न होती है, यह इंद्रिय और मार्ग के कार्यों का निष्पादन नहीं करती, बल्कि ध्यान के कार्य का निष्पादन करती है। अत: तीन संबंध (अधिपति, पच्छजात, विपाक) प्राप्त नहीं होते; और शेष इक्कीस संबंध इस व्याकुल चेतना में प्राप्त होते हैं जो दुविधा से जुड़ी हुई है।

विचलित चेतना में पंद्रह मानसिक गुण भी होते हैं—“दुविधा” को छोड़कर और “निर्णय” को जोड़कर। ये सभी मिलकर चेतना के साथ सोलह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इस चेतना में, एकग्गत इंद्रिय, ध्यान और मार्ग के कार्य करता है। अत: तीन संबंध प्राप्त नहीं होते, जबकि इक्कीस प्राप्त होते हैं।

सात सार्वभौमिक, छह विशिष्ट, मोह-चतुर्गुण, लोभ-त्रिगुण, आलस्य और सुस्ती—कुल मिलाकर बाईस, ये सभी आठ प्रकार की चेतनाओं के साथ सह-अस्तित्व में हैं, जो इच्छा पर आधारित हैं। इनमें से दो मूल—लालच और सुस्ती—हेतु संबंध हैं; और तीन मानसिक अवस्थाएँ—कर्म की इच्छा, चेतना और प्रयास—अधिपति संबंध हैं। यहाँ अरम्मनधिपति भी प्राप्त होता है। संकल्प कर्म का संबंध है। तीन खाद्य पदार्थ आहार के संबंध हैं। पाँच मानसिक अवस्थाएँ: मन, संवेदना, एकाग्गत, मानसिक जीवन और प्रयास—इंद्रिय

संबंध हैं। पाँच ध्यान कारक, अर्थात् प्रारंभिक क्रिया, निरंतर क्रिया, सुखदायक रुचि, संवेदना और एकाग्रता, ध्यान संबंध हैं। चार मार्ग घटक, अर्थात् प्रारंभिक क्रिया, एकाग्रता, त्रुटि और प्रयास, मार्ग संबंध हैं। अतः केवल दो संबंध (पच्छजात और विपाक) प्राप्त नहीं होते हैं। शेष बाईस प्राप्त होते हैं।

अनैतिक चेतना वर्ग में संबंधों की समकालिकता का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **पथनुद्देसा दीपनी-मन की अवस्थाएँ**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

मन की अवस्थाओं में संबंधों का समकालिकीकरण:

चेतना के इक्यावन "दीप्तिमान" वर्ग हैं। वे हैं: काम-चेतना के चौबीस "दीप्तिमान" वर्ग, रूप-चेतना के पंद्रह वर्ग, अरूप-चेतना के बारह वर्ग और पारलौकिक चेतना के चालीस वर्ग। इनमें से काम-चेतना के चौबीस "दीप्तिमान" वर्ग हैं: नैतिक चेतना के आठ वर्ग, परिणामी प्रकार की "दीप्तिमान" चेतना के आठ वर्ग और निष्क्रिय प्रकार की "दीप्तिमान" चेतना के अन्य आठ वर्ग।

शोभन ("उज्ज्वल") मानसिक गुण पच्चीस प्रकार के होते हैं: अलोभा (निःस्वार्थता), अदोसा (मैत्री), अमोह (बुद्धिमत्ता) - इन तीन को नैतिक हेतस कहा जाता है - सद्धा (विश्वास), सती (दिमागीपन), हिरी (विवेक), ओट्टप्पा (विवेक), तत्रमजहट्टा (मन का संतुलन), कायापसाधि (मानसिक गुणों की स्थिरता), चित्तपसाधि (मन की शांति), काया-लहुता (मानसिक गुणों की उपयुक्तता), चित्त-लहुता (मन की प्रसन्नता), कयामुदुता (मानसिक गुणों की कोमलता), चित्त-मुदाता (मन की कोमलता), कयाकम्मनता (मानसिक गुणों के कार्य की उपयुक्तता), चित्त-कम्मनता (मन के कार्य की उपयुक्तता), काया-पगुन्नता (मानसिक गुणों की दक्षता), चित्त-पगुन्नता (प्रवीणता) मन की), कयुजुकाता (शुद्धता की) । मानसिक गुण (मानसिक गुण), चित्तुजुकाता (मन की शुद्धता), सम्म-वाच (सही वाणी), सम्म-कम्मंत (सही कर्म), सम्म-अजीव (सही आजीविका) - अंतिम तीन को तीन संयम कहा जाता है; करुणा (दया) और मुदिता (सहानुभूतिपूर्ण प्रशंसा) - अंतिम दो को दो असीम कहा जाता है।

इनमें से, तीन नैतिक हेतु हेतुपच्चय हैं। बुद्धि अधिपति संबंध में विमंसा के नाम से, इंद्रिय संबंध में पन्ना के नाम से, और मार्ग संबंध में सम्मदित्ति के नाम से प्रकट होती है। श्रद्धा या विश्वास इंद्रिय संबंध है। सती या सजगता इंद्रिय संबंध में सतिन्द्रिय है, और मार्ग संबंध में सम्मसती है। तीन संयम (सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका) मार्ग संबंध हैं। शेष सत्रह मानसिक अवस्थाएँ विशिष्ट संबंध नहीं हैं।

अड़तीस मानसिक गुण काम-चेतना (काम = इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ) के आठ नैतिक वर्गों के साथ संयोजन में आते हैं। ये हैं: सात सार्वभौमिक, छह विशिष्ट और पच्चीस शोभना। इनमें से, सुखदायक रुचि केवल आनंद से युक्त चेतना के चार वर्गों के साथ संयोजन में आती है। बुद्धि भी ज्ञान से जुड़े चार वर्गों के साथ संयोजन में आती है। तीन संयम केवल नैतिक नियमों या उपदेशों का पालन करने पर ही संयोजन में आते हैं। दो असीम गुण केवल जीवों के दुख के प्रति सहानुभूति रखने या उनके सुख में भागीदार होने पर ही उत्पन्न होते हैं। चेतना के इन आठ वर्गों में, द्वैत या त्रिमूल हेतु संबंध हैं। चार प्रकार के अधिपति, अर्थात् कर्म-इच्छा, मन, प्रयास और अन्वेषण, में से प्रत्येक बारी-बारी से एक अधिपति है। संकल्प कर्म का संबंध है। तीन भोजन आहार के संबंध हैं। आठ मानसिक अवस्थाएँ, अर्थात् मन, संवेदना, एकाग्रता, मानसिक जीवन, विश्वास, सजगता, प्रयास और बुद्धि, इंद्रिय के संबंध हैं। पांच ध्यान कारक, अर्थात् आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, सुखदायक रुचि, संवेदना और एकाग्रता, ध्यान के संबंध हैं। आठ मार्ग-घटक, अर्थात् अन्वेषण, आरंभिक अभ्यास, तीन संयम, सजगता, प्रयास और एकाग्रता, मार्ग के संबंध हैं। अतः, चेतना के इन आठ वर्गों में केवल दो संबंध (पच्छाजात और विपाक) प्राप्त नहीं होते हैं, और शेष बाईस प्राप्त होते हैं। निष्क्रिय चेतना के आठ शोभना वर्गों में तीन संयम प्राप्त नहीं होते हैं। जैसे नैतिक चेतना में, दो संबंध अप्राप्य होते हैं और बाईस प्राप्त होते हैं। परिणामी चेतना के आठ सुंदर वर्गों में भी तीन संयम और दो असीम प्राप्त नहीं होते हैं। अप्राप्य संबंध तीन हैं, अर्थात् अधिपति, पच्छाजात और असेवन; और शेष इक्कीस प्राप्त होते हैं।

रूप, अरूप और पारलौकिक चेतना के उच्च वर्गों में बाईस से अधिक संबंध प्राप्त नहीं होते हैं। संबंधों की समकालिकता को ज्ञान से जुड़े काम-चेतना के चार नैतिक वर्गों में विद्यमान समझा जाना चाहिए। यदि ऐसा है, तो चेतना के वे वर्ग काम-चेतना से अधिक श्रेष्ठ और पारलौकिक क्यों हैं? इसका कारण आसेवन की महानता है। ये विशेष अभ्यासों द्वारा निर्मित होते हैं, इसलिए आसेवन इनसे श्रेष्ठ है; इसी कारण इंद्रिय, ध्यान, मार्ग और अन्य संबंध भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। जब ये संबंध श्रेष्ठ हो जाते हैं—प्रत्येक दूसरे से उच्चतर—तो चेतना

के वे वर्ग भी काम-चेतना से अधिक श्रेष्ठ और पारलौकिक हो जाते हैं।

मन की अवस्थाओं में संबंधों की समकालिकता का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **पथनुद्देसा दिपानी-गुण**

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।

मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता

अब भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता का वर्णन किया जाएगा। भौतिक गुणों के अट्ठाईस प्रकार हैं:-

अ. चार आवश्यक भौतिक गुण:
1. दृढ़ता का तत्व (पथवी)
2. संसंजन का तत्व (अपो)
3. गतिज ऊर्जा का तत्व (तेजो)
4. गति का तत्व (वायो); स्पर्शनीय (फोत्थब्बा): यह भौतिक गुण तीन आवश्यक तत्वों से बना है, अर्थात् विस्तार का तत्व, गतिज ऊर्जा का तत्व और गति का तत्व।

ब. पाँच संवेदी भौतिक गुण:

1. आँख (चक्खु)
2. कान (सोता)
3. नाक (गण)
4. जीभ (जीव)
5. शरीर (काया)।

ग. पाँच इंद्रिय-क्षेत्रों के भौतिक गुण:

1. दृश्य रूप (रूप)
2. ध्वनि (सद्दा)
3. गंध (गंध)
4. स्वाद (रस)।

D. लिंग के दो भौतिक गुण:

1. स्त्रीलिंग (इत्तिभाव)
2. पुरुषलिंग (पुम्भव)।

E. जीवन का एक भौतिक गुण (जीवित)।

F. हृदय-आधार का एक भौतिक गुण (हृदय-वत्थु)।

G. पोषण का एक भौतिक गुण (आहार)।

H. सीमितता का एक भौतिक गुण (आकाश-धातु)।

I. संचार के दो भौतिक गुण:

1. शरीर द्वारा सूचना (कयविन्नत्ति)
2. वाणी द्वारा सूचना (वाचिविन्नत्ति)।

J. लचीलेपन के तीन भौतिक गुण:

1. हल्कापन (लहुता)
2. लचीलापन (मुदुत)
3. अनुकूलनशीलता (कम्मन्नत)।

K. प्रमुख विशेषताओं के चार भौतिक गुण:

1. एकीकरण (उपचय)
2. निरंतरता (संतति)
3. क्षय (जरत)
4. अनित्यता (अनिकट)।

इनमें से छह प्रकार के भौतिक गुण—अर्थात्, चार आवश्यक तत्व, जीवन का भौतिक गुण और पोषण का भौतिक गुण—भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। यहाँ भी, चार आवश्यक तत्व पाँच संबंधों द्वारा परस्पर संबंधित हैं: सहजता, अन्नमन्न, निस्सय, अत्ति और अविगत; और वे बाद वाले से उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से चार संबंधों द्वारा संबंधित हैं (अर्थात् उपरोक्त पाँच में अन्नमन्न को छोड़कर)। जीवन का भौतिक गुण इंद्रिय के माध्यम से कर्म द्वारा उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित है। पोषण का भौतिक गुण आहार के माध्यम से सह-अस्तित्व वाले और गैर-अस्तित्व वाले दोनों भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित है।

तेरह प्रकार के भौतिक गुण कुछ विशेष संबंधों द्वारा मानसिक अवस्थाओं से कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। ये भौतिक गुण हैं: पाँच प्रकार के संवेदी भौतिक गुण, सात प्रकार के इंद्रिय क्षेत्र और हृदय। इनमें से, जिस प्रकार एक माँ अपने पुत्र से संबंधित होती है, उसी प्रकार पाँच प्रकार के संवेदी भौतिक गुण पाँच इंद्रिय-ज्ञान से वस्तु-पुरेजात, वस्तु-पुरेजातिंद्रिय और वस्तु-पुरेजात-विप्पयुत्त के द्वारा कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। और जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र से संबंधित होता है, उसी प्रकार सात इंद्रिय क्षेत्र पाँच इंद्रिय-ज्ञान और बोध के तीन तत्वों से अरम्मनपुरेजात के द्वारा कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। इसी प्रकार, जैसे एक वृक्ष उसमें निवास करने वाले देवता से संबंधित होता है, वैसे ही हृदय-आधार पुनर्जन्म के समय सहजतनिस्य के माध्यम से और जीवनकाल में वात्तुपुरेजात और वात्तुपुरेजात-विप्पयुत्त के माध्यम से बोध और बोध के दो तत्वों से कारणिक रूप से संबंधित होता है।

भौतिक गुणों के तेईस समूह हैं। इन्हें समूह इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये उत्पादन (जाति-रूप) के भौतिक गुण से समूहों में बंधे होते हैं, जैसे बाल या घास धागे से बंधे होते हैं। इनमें से आठ प्रकार के भौतिक गुण, जैसे चार आवश्यक तत्व, रंग, गंध, स्वाद और पोषक तत्व, सभी भौतिक गुणों के प्राथमिक अष्टक का निर्माण करते हैं।

कर्म द्वारा उत्पन्न नौ समूह हैं: प्राणिक नौपद, आधारभूत दसपद, देह-पद, स्त्री-पद, पुरुष-पद, नेत्र-पद, कान-पद, नाक-पद और जीभ-पद। इनमें से, प्राणिकता के भौतिक गुण सहित प्राथमिक अष्टपद को प्राणिक नौपद कहा जाता है। यह प्राथमिक नौपद, आठ भौतिक गुणों (अर्थात हृदय-आधार आदि) में से प्रत्येक के साथ मिलकर, अन्य आठ दसपदों (अर्थात आधार-पद आदि) का निर्माण करता है। यहाँ चार समूह: प्राणिक नौपद, देह-पद और द्विलिंगी यौन-पद, एक प्राणी में स्थित होते हैं और पूरे शरीर में व्याप्त होते हैं। यहाँ प्राणिक नौपद, परिपक्वता अग्नि (पचकाग्गी) और देह अग्नि (कयग्गी) का नाम है। पचकाग्गी, या परिपक्वता अग्नि, वह है जो पेट में स्थित होती है और खाए, पिए, चबाए और चाटे गए भोजन को परिपक्व या पचाती है। कायग्गल, या शारीरिक अग्नि, वह है जो पूरे शरीर में व्याप्त होकर स्वयं को स्थापित करती है और अशुद्ध पित्त, कफ और रक्त को शुद्ध करती है। इन दो तत्वों की असंगत क्रिया से जीव अस्वस्थ हो जाते हैं, और इनकी सामंजस्यपूर्ण क्रिया से वे स्वस्थ हो जाते हैं। यही द्वैत अग्नि (या वह प्राणिक अग्नि) जीवों को जीवन और उत्तम रंग प्रदान करती है।

शरीर-संबंधी काल सुखदायक और पीड़ादायक संपर्क प्रदान करता है। द्विविध यौन काल स्त्रियों को सभी स्त्रीत्व संबंधी गुण और पुरुषों

को सभी पुरुषत्व संबंधी गुण प्रदान करता है। शेष पाँच काल आंशिक काल कहलाते हैं। इनमें से हृदय-संबंधी काल, जो हृदय गुहा में स्थित होता है, अनेक प्रकार के नैतिक और अनैतिक विचारों को उत्पन्न करता है। आँख-संबंधी काल इत्यादि, जो क्रमशः आँख की पुतली, कान के भीतरी भाग, नाक के भीतरी भाग और जीभ की सतह पर स्थित होते हैं, दृष्टि, श्रवण, गंध और स्वाद की क्षमता प्रदान करते हैं।

मन द्वारा निर्मित आठ समूह हैं: प्राथमिक अष्टक, ध्वनि-अनाड, शरीर-संचार का अनाड और वाक्-संचार का ध्वनि-संबंधी काल। इन चारों को हल्कापन, लचीलापन और अनुकूलनशीलता के साथ मिलाकर चार और समूह बनते हैं: प्लास्टिसिटी का अदशक, प्लास्टिसिटी का ध्वनि-दशक, प्लास्टिसिटी के साथ शारीरिक संचार का दशक, और प्लास्टिसिटी के साथ वाक् संचार का ध्वनि-त्रुकक। अंतिम चार समूहों को प्लास्टिक समूह कहा जाता है, और पहले चार समूहों को प्राथमिक समूह कहा जाता है।

इनमें से, जब शरीर के अंग सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर रहे होते हैं, तो एक बीमार व्यक्ति में केवल चार प्राथमिक समूह ही प्रकट होते हैं, जिसके भौतिक गुण भारी, खुरदुरे और अनुकूलनीय नहीं रह जाते हैं, और परिणामस्वरूप उसके लिए अपनी इच्छानुसार शारीरिक मुद्रा बनाए रखना, शरीर के अंगों को हिलाना और यहां तक कि मौखिक प्रतिक्रिया देना भी मुश्किल हो जाता है। लेकिन जब शरीर के अंग सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य कर रहे होते हैं - एक स्वस्थ व्यक्ति में भारीपन आदि जैसे शरीर के कोई दोष नहीं होते हैं - तो चार प्लास्टिक समूह अस्तित्व में आते हैं। इन चारों में से, शारीरिक संचार के दो समूह मन के माध्यम से या शरीर के किसी भी अंग को हिलाने के द्वारा प्रकट होते हैं। बोलने की इच्छा होने पर, मन की क्रिया के कारण ही वाक्-संचार के अन्य दो समूह भी उत्पन्न होते हैं; परन्तु जब हँसने या रोने के कारण अशाब्दिक ध्वनि उत्पन्न होती है, तब केवल दो सामान्य ध्वनि समूह ही उत्पन्न होते हैं। अन्य समयों पर, परिस्थितियों के अनुसार पहले दो समूह, प्राथमिक अष्टक और अष्टक ध्वनि, उत्पन्न होते हैं।

भौतिक परिवर्तन से चार समूह उत्पन्न होते हैं: दो प्राथमिक समूह (अर्थात प्राथमिक अष्टक और ध्वनि अनाड) और दो प्लास्टिक समूह (अर्थात प्लास्टिकता का अष्टक और प्लास्टिकता का ध्वनि द्वादश)। अब हमारा यह शरीर जीवन भर, शारीरिक मुद्राओं के एक लंबे क्रम के माध्यम से, स्वयं को बनाए रखता है। अतः, प्रत्येक क्षण, इस शरीर में तत्वों की सामंजस्यपूर्ण और असामंजस्यपूर्ण क्रियाएँ होती रहती हैं, जो मुद्राओं में परिवर्तन, तापमान में परिवर्तन, भोजन, वायु और ऊष्मा में परिवर्तन, शरीर के अंगों की स्थिति में परिवर्तन के माध्यम से होती हैं। और स्वयं के और दूसरों के प्रयासों में परिवर्तन के माध्यम से। यहाँ भी, सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते समय, दो प्लास्टिक समूह उत्पन्न होते हैं; और असामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते समय, अन्य दो प्राथमिक समूह उत्पन्न होते हैं। चार समूहों में से, दो ध्वनि-समूह तब उत्पन्न होते हैं जब मन द्वारा उत्पन्न ध्वनि के अलावा विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

भोजन द्वारा दो समूह उत्पन्न होते हैं: प्राथमिक अष्टक और अष्टक। इन दो समूहों को क्रमशः उपयुक्त और अनुपयुक्त भोजन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों की सामंजस्यपूर्ण और असामंजस्यपूर्ण घटनाओं के रूप में समझा जाना चाहिए।

पाँच भौतिक गुण, अर्थात्, अंतरिक्ष तत्व और पदार्थ की चार प्रमुख विशेषताएँ, समूहीकरण से बाहर हैं। इनमें से, अंतरिक्ष तत्व समूहीकरण से बाहर है क्योंकि यह समूहों की सीमा है। प्रमुख विशेषताओं के भौतिक गुणों के संबंध में, उन्हें समूहीकरण से अलग रखा गया है, क्योंकि वे केवल सशर्त वस्तुओं के चिह्न या संकेत हैं, जिनके माध्यम से हम स्पष्ट रूप से जानते हैं कि वे वास्तव में सशर्त वस्तुएँ हैं।

ये तेईस समूह एक व्यक्ति में उपलब्ध हैं। बाहरी वस्तुओं में उपलब्ध समूह केवल दो हैं, जो भौतिक परिवर्तन द्वारा उत्पन्न समूहों के अलावा और कुछ नहीं हैं। भौतिक गुण, आंतरिक और बाह्य। इन दोनों में से, आंतरिक गुण किसी सजीव प्राणी के स्थान को दर्शाता है और बाह्य गुण पृथ्वी, पहाड़ियाँ, नदियाँ, महासागर, वृक्ष आदि को दर्शाता है। अतः हमने कहा है कि किसी व्यक्ति में तेईस समूह, या सभी अट्ठाईस प्रकार के भौतिक गुण, विद्यमान होते हैं।

पुनर्जन्म की अवधारणा और उससे संबंधित मानसिक अवस्थाएँ, गर्भाधान के समय कर्म द्वारा उत्पन्न समूहों से छह विभिन्न संबंधों के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं: चार श्रेष्ठ सहजत, विपाक और विपयुत्त। परन्तु हृदय-आधार से वे सात संबंधों के माध्यम से जुड़ी हुई हैं, अर्थात् उपरोक्त संबंधों के साथ-साथ अन्नमन्न का संबंध भी। पुनर्जन्म के समय की मानसिक अवस्थाओं में, मूल अवस्थाएँ हेतु संबंध के माध्यम से, संकल्प आहार संबंध के माध्यम से, नियंत्रण इंद्रिय संबंध के माध्यम से, ध्यान घटक ध्यान संबंध के माध्यम से और पथ घटक पथ संबंध के माध्यम से कर्म द्वारा उत्पन्न समूहों से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं। भूतकाल की नैतिक और अनैतिक संकल्पियाँ केवल कर्म के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रथम पश्चवर्ती जीवन-क्रम, द्वितीय, तृतीय, और इसी प्रकार आगे के सभी क्रम, कर्म द्वारा उत्पन्न पूर्ववर्ती भौतिक गुणों से पच्छाजात के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित हैं। पच्छाजात से तात्पर्य पच्छाजात की सभी प्रजातियों से है। भूतकाल की इच्छाएँ केवल कर्म के माध्यम से ही कारणिक रूप से संबंधित हैं। इस प्रकार, मानसिक

अवस्थाएँ कर्म द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से चौदह विभिन्न संबंधों द्वारा कारणिक रूप से संबंधित हैं। यहाँ दस संबंध प्राप्त नहीं होते हैं, अर्थात् अरम्मन, अधिपति, अनंतर, समनन्तर, उपनिषय, पुरेजात, असेवन, सम्पायुत्त, नत्थि और विगत।

जीवनकाल के दौरान, भौतिक गुणों को उत्पन्न करने में सक्षम मानसिक अवस्थाएँ, उनके द्वारा उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से पाँच विभिन्न संबंधों द्वारा कारणिक रूप से संबंधित होती हैं: चार श्रेष्ठ सहजात और विपायुत्त। इन मानसिक अवस्थाओं में, हेतु, अधिपति के द्वारा प्रभुत्व, कर्म के द्वारा संकल्प, विपाक के द्वारा परिणाम, आहार के द्वारा भोजन, इंद्रिय के द्वारा नियंत्रण, ध्यान के द्वारा ध्यान कारक और मार्ग के घटक मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। सभी परवर्ती मानसिक अवस्थाएँ पच्छाजात के द्वारा मन द्वारा उत्पन्न पूर्ववर्ती भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। इस प्रकार, मानसिक अवस्थाएँ चौदह विभिन्न संबंधों द्वारा मन द्वारा उत्पन्न भौतिक समूहों से कारणवश संबंधित हैं। यहाँ भी दस संबंध अप्राप्य हैं: अरम्मन, अनंतार, समनन्तार, अन्नम्मन, उपनिषय, पुरेजात, असेवन, सम्पायुत्त, नत्थि और विगत।

जीवनकाल के दौरान, गर्भाधान की स्थिर अवस्था से शुरू होकर, सभी मानसिक अवस्थाएँ भोजन से उत्पन्न भौतिक समूहों और शारीरिक परिवर्तन से उत्पन्न भौतिक समूहों से केवल पच्छाजात के माध्यम से ही कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। यहाँ फिर से, पच्छाजात से तात्पर्य पच्छाजात की सभी चार प्रजातियों से है। शेष बीस संबंध प्राप्त नहीं किए जा सकते।

भौतिक गुणों के तेईस समूहों में, चार आवश्यक गुण पाँच विभिन्न संबंधों से आपस में संबंधित हैं, अर्थात् चार श्रेष्ठ सहजत और एक अन्नमन्न; लेकिन सह-अस्तित्व वाले व्युत्पन्न भौतिक गुणों से केवल चार श्रेष्ठ सहजत संबंधों से ही संबंधित हैं। पोषण तत्व का भौतिक गुण आहार के माध्यम से सह-अस्तित्व वाले और गैर-सह-अस्तित्व वाले शारीरिक भौतिक गुणों से कारण संबंध रखता है। कर्म द्वारा उत्पन्न नौ समूहों में भौतिक जीवन का भौतिक गुण इंद्रिय के माध्यम से केवल सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से कारण संबंध रखता है। इस प्रकार शारीरिक भौतिक गुण सात विभिन्न संबंधों से शारीरिक पदार्थों से कारण संबंध रखते हैं। जहाँ तक बाह्य भौतिक गुणों का संबंध है, वे भौतिक परिवर्तन द्वारा उत्पन्न दो बाह्य समूहों से पाँच विभिन्न संबंधों से परस्पर संबंधित हैं।

भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **द पथनुद्देसा दीपनी-फुटनोट्स**
द बुद्धिस्ट फिलॉसफी ऑफ रिलेशंस
बाई महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट.
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

फुटनोट:

[3] इस संबंध में, "पच्चया" को आम तौर पर "अरम्मना" =
"हैंगर" (जैसे पॉट-हुक) = "ऑब्जेक्ट" के रूप में जाना जाता है; और पकायुप्पन्ना" को
"अराम्मनिका" = "हैंगर-ऑन" = "विषय" के रूप में जाना जाता है। (अनुवादक।)
[4] इंद्रियों के छह द्वार - मन, बौद्ध दर्शन में,
छठा "इंद्रिय" बनाते हैं।
[6] अनुवादक द्वारा नोट। धम्मतो वत्थुतो या सरूपतो या पाबेदातो के बराबर है
। चित्तुप्पदा के अर्थ के तीन पहलू हैं।
सबसे पहले, इसका अर्थ है "चेतना", जैसा कि:
"तेसम" चित्तवियुत्तनं यथियोगम् इतो परम,
चित्तुप्पादेसु पच्चेकम् संपायोगो पवुक्कति।"
(भाग II, संगहा देखें)।
दूसरे, इसका अर्थ है "विचार की उत्पत्ति", जैसे:
"विथिचित्तनि सत्तैव: चित्तुप्पदा कैटुद्दसा:
कैटुपन्नासा विट्ठरा पंचादवारे यथारहम्"
(भाग IV, संगहा देखें।)
तीसरा, इसका अर्थ है "मन और इसका सहवर्ती," जैसा कि:

"चित्तुप्पादानम" इक्केवम् कट्व संगहम" उत्तरम्,
भूमिपुग्गलाभेदेन पुब्बपरण्यमितम्।"
(भाग IV, संगहा देखें।)
इनमें से प्रत्येक उदाहरण में, यौगिक
"चित्तुप्पादा" के निर्माण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पहले उदाहरण में, इसका
निर्माण इस प्रकार किया गया है: उप्पज्जतिति उप्पदो। चित्तम्"एव उप्पदो
सिट्टुप्पादो; दूसरे उदाहरण में, चित्तस्सा उप्पदो चित्तुप्पदो:
तीसरे उदाहरण में, उप्पज्जति एतेनाति उप्पदो धम्मसामुहो।
सिट्टंका उप्पादो सीए सिट्टुप्पादो.
[7] अनुवादक द्वारा नोट लोकुत्तरधम्म का अर्थ यहां है, यानी,
पथ के चार चरणों से बने चार जोड़े,
उसी के फल और निब्बान के साथ।
[8] दृश्य, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद, संपर्क, विचार।
[9] यहाँ सत्य का तात्पर्य उनके द्वारा दिए गए वादे की निष्ठा से है।
[
10] यहाँ मन से तात्पर्य उन बोधों में से एक से है जो सामान्यतः
कुल पचपन होते हैं, परन्तु इस संदर्भ में हमें
मंद चेतना और सौंदर्यबोध के दो वर्गों को भी छोड़ देना चाहिए।
अन्य तीन प्रमुख तत्व अपने-अपने सहवर्ती हैं।
[11] पृथ्वी, जल, अग्नि या वायु के किसी भी पिंड में ये "तत्व"
पूर्ण शुद्धता की अवस्था में विद्यमान नहीं होते। अन्य "तत्व"
सदा उपस्थित रहते हैं, परन्तु बहुत ही गौण अनुपात में।
[12] वह है जो निब्बान को बिना किसी सहायता के प्राप्त करता है।
[13] यहाँ विज्ञान, कला और हस्तशिल्प का तात्पर्य है। [14] लेडी सयादाव यहाँ गर्भ से जन्म लेने वाले प्राणी
के जीवनकाल की व्याख्या करते प्रतीत होते हैं । [15] इसे "स्थायी समाप्ति" के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ समाप्ति का तात्पर्य न
केवल चेतना की है, बल्कि मानसिक सहवर्ती क्रियाओं की भी है।

और मन से उत्पन्न मानसिक गुण। (अनुवादक)
[16] यहाँ (हदयम) विचार का (चित्त) स्थान है।
[17] कहने का तात्पर्य यह है कि निर्वाण और अवधारणाएँ (या अधिक उचित रूप से, अवधारणा-
पद) समय में प्रवेश नहीं करते हैं, और इसलिए समय के
स्वभाव, परिवर्तन के अधीन नहीं हैं। वे "उत्पन्न" नहीं होते; इसलिए वे
"समाप्त" नहीं होते। वे समय से परे होने के अर्थ में "शाश्वत और शाश्वत" हैं , न कि समय में अनंत रूप से निरंतर
होने के सामान्य अर्थ में । [18] यहाँ अभ्यकत का अनुवाद "अनिर्दिष्ट" या "अनैतिक" के रूप में किया गया है। टीका में इसकी व्याख्या
इस प्रकार की गई है: कुसला-अक्षलभावन अकथिता, अन्नभावन अकथिता; अर्थात्, इसे नैतिक या अनैतिक नहीं कहा जाना
चाहिए, बल्कि "दोनों से अलग", अर्थात् अनैतिक या अनिर्दिष्ट कहा जाना चाहिए। अभ्यकतधम्म हैं—परिणामी और अक्रियाशील
चेतना के सभी वर्ग और सभी भौतिक गुण, साथ ही निर्वाण। [19] यह "पर्याप्त शर्त" है जैसा कि बुद्ध के सूत्रों या सामान्य प्रवचनों में
वर्णित है , शास्त्रों के अभिधम्म खंड में वर्णित तरीके से भिन्न है । [21] वे प्राणी जिनका अस्तित्व माता-पिता से जन्म लेने के सामान्य
तरीके के अलावा किसी अन्य तरीके से होता है; जिन्हें पाश्चात्य "अलौकिक प्राणी" कह सकते हैं, हालांकि उनमें से सभी को किसी भी
जीवन संबंधी पहलू में मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं समझा जाना चाहिए। कई मनुष्य से शक्ति और क्षमता में, साथ ही निर्वाण प्राप्त करने के
अवसरों में भी हीन हैं। [22] यहाँ, भौतिक गुणों की उत्पत्ति का तात्पर्य है। "उत्पत्ति" शब्द का प्रयोग डार्विन के अर्थ में किया गया है,
जैसा कि " प्रजातियों की उत्पत्ति" में है। [23] यहाँ, उतु (शाब्दिक अर्थ, ऋतु) को "तापमान" के रूप में अनुवादित किया गया है। इसे
आम तौर पर "भौतिक परिवर्तन," "कैलोरी ऊर्जा," "गर्मी और ठंड," आदि के रूप में भी अनुवादित किया जा सकता है। [24] लेडी
सयादाव ने चेतनावस्था की व्याख्या नहीं की है। लेकिन इसे समझना काफी आसान है, क्योंकि यह प्रारंभिक इच्छा या कर्म का
क्रियान्वयन है। [25] चार कारण हैं (1) कर्म, (2) चित्त (चेतना), (3) उतु (तापमान) और (4) आहार (पोषण)। [26] इनमें से, अंतिम
तीन केवल लोकउत्तरा तक ही सीमित हैं। और इन तीनों में से, पहला प्रथम मार्ग से संबंधित ज्ञान है , दूसरा अंतिम तीन मार्गों और पहले

तीन फलों से संबंधित है, और तीसरा केवल अंतिम फल से संबंधित है। [28] इनमें से अलग,या फिर, इसके सामान्य मोड से आगे बढ़कर।
[29] "निश्चित रूप से हे कच्चाना, (आत्मा) का अस्तित्व एक चरम सीमा है, और
(आत्मा) का अस्तित्व नहीं है, यह दूसरी चरम सीमा है।"
यह एक ऐसा अंश है जहाँ आत्मा, स्वयं या अहंकार की समस्या पर एक वास्तविक व्यक्तिगत सत्ता
के रूप में उसके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के संबंध में चर्चा की गई है। [30] यहाँ, अप्पचया शब्द कम्मधरय यौगिक नहीं है, बल्कि बहुबबिहि वर्ग का है - इस प्रकार: नत्थि पच्चया एतेसम ति अप्पचया। असंखता कम्मधरय यौगिक है - इस प्रकार: संकारियन्ते ति संखता; न संखता ति असंखता। [31] सभी प्राणियों के लिए चार मुद्राएँ हैं: बैठना, खड़ा होना, चलना और लेटना। [33] अन्यत्र "पच्चयुप्पना" शब्द का अनुवाद "संबंधित वस्तुएँ" के रूप में किया गया है ।

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पत्तन >> **परिचय-पत्थनुद्देस दिपनि**

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

प्रस्तावना

'पत्थाना' शब्द का अर्थ "पधानं थानं ति पत्थानां" से जाना जाता है: पत्थाना सर्वोत्कृष्ट या प्रमुख कारण है। इस परिभाषा में 'पधान' का अर्थ 'सर्वोत्कृष्ट' और 'थान' का अर्थ 'स्थिति' या 'कारण' है। अतः संपूर्ण अभिव्यक्ति का अर्थ "सर्वोत्कृष्ट कारण", "वास्तविक कारण" या "अपरिहार्य कारण" है। यह इसके अपरिहार्य प्रभाव या परिणाम के संदर्भ में कहा गया है।[33] प्रभाव दो प्रकार के होते हैं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। "प्रत्यक्ष" से तात्पर्य प्राथमिक या वास्तविक प्रभाव से है, और "अप्रत्यक्ष" से तात्पर्य परिणामी या आकस्मिक प्रभाव से है। इन दोनों प्रकारों में से, केवल प्रत्यक्ष प्रभाव को ही यहाँ अपरिहार्य कहा गया है, और इसका कारण यह है कि जब इसका उचित कारण स्थापित हो जाता है या क्रियाशील हो जाता है, तो यह अनिवार्य रूप से उत्पन्न होता है। और अप्रत्यक्ष प्रभाव को "अपरिहार्य" समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह अपने कारण के पूर्ण रूप से स्थापित होने पर भी उत्पन्न हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। अतः अपरिहार्य कारण को अपरिहार्य परिणाम के संदर्भ में यह नाम दिया गया है। अतः इस "महान ग्रंथ" में केवल अपरिहार्य या मुख्य कारण की ही व्याख्या की जानी है। इसी कारण चौबीस संबंधों के संपूर्ण संग्रह और "महान ग्रंथ" को 'पत्थाना' नाम दिया गया है।

अब, इस विषय को और अधिक स्पष्ट और सरल बनाने के लिए:

मान लीजिए कि धन और अनाज प्राप्त करने की इच्छा से एक व्यक्ति के मन में लोभ उत्पन्न होता है। लोभ के प्रभाव में आकर वह एक जंगल में जाता है, जहाँ वह एक ज़मीन साफ़ करके खेत, आँगन और बगीचे बनाता है और कड़ी मेहनत करने लगता है। अंततः अपनी मेहनत के फलस्वरूप वह प्रचुर धन और अनाज प्राप्त करता है। वह अपनी कमाई से अपने परिवार का पालन-पोषण करता है और अनेक पुण्य कर्म करता है, जिनका फल उसे भविष्य में भी मिलेगा। इस उदाहरण में, लोभ के साथ विद्यमान सभी मानसिक और भौतिक अवस्थाओं को प्रत्यक्ष फल कहा जाता है। इनके अतिरिक्त, भविष्य में मिलने वाले सभी परिणाम, फल और पुरस्कार अप्रत्यक्ष फल कहलाते हैं। इन दो प्रकार के फलों में से केवल पहले प्रकार के फलों का वर्णन पत्थाना में किया गया है। परन्तु दूसरे प्रकार के फल सुत्तंत प्रवचनों में मिलते हैं। यदि यह होता है, तो वह होता है; या, इसके घटित होने के कारण, वह भी घटित होता है। इस प्रकार की व्याख्या को सुत्तंत के माध्यम से व्याख्या कहा जाता है। वास्तव में, तीन अवस्थाओं (लोभ, घृणा और अज्ञान) को हेतु या परिस्थितियाँ कहा जाता है, क्योंकि ये वे मूल हैं जिनसे सजीव जगत, निर्जीव जगत और अंतरिक्ष जगत के सभी दोष उत्पन्न होते हैं। अन्य तीन विपरीत अवस्थाओं (निराकारता, मित्रता और ज्ञान) को भी हेतु या परिस्थितियाँ कहा जाता है, क्योंकि ये वे मूल हैं जिनसे शुद्धि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार शेष पथाना संबंधों को भी उनके विभिन्न अर्थों में समझा जाना चाहिए। इस प्रकार हमें यह समझना चाहिए कि जो कुछ भी घटित होता है, घटित होता है, या परिवर्तन उत्पन्न करता है, वह केवल इन चौबीस पथाना संबंधों या कारणों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव, परिणाम या उत्पाद हैं।

बौद्ध धर्म निर्वाण और परिणति को छोड़कर, संसार को क्षणभंगुर, दुखदायी और आत्मा-सार रहित मानता है। अतः बौद्ध दर्शन, शाश्वत परिवर्तन के नियम के संदर्भ में क्षणभंगुरता को स्पष्ट करने के लिए, प्रारंभ से ही सभी चीजों, सभी मानसिक और भौतिक घटनाओं को, पंचम नियम के अंतर्गत, मन और पदार्थ की अवस्थाओं (सभाव) की निरंतर श्रृंखला में विलीन कर देता है। ये घटनाएँ अपने मूल स्वरूप और अन्य घटनाओं दोनों के लिए अनेक तरीकों से निर्धारित और निर्धारक होती हैं, जिन्हें बौद्ध दर्शन 'पच्चय' या 'संबंध' शब्द से व्यक्त

करता है। मानसिक और भौतिक अवस्थाओं की एक जटिल घटना, जिसमें समय के तीन चरण होते हैं - उत्पत्ति या जन्म, समाप्ति या मृत्यु और इनके बीच का स्थिर अंतराल - के बाद एक और घटना घटित होती है, जिसमें हमेशा एक कारण-कार्य संबंध श्रृंखला होती है। कुछ भी आकस्मिक या संयोगवश नहीं होता। जब एक घटना अपने उद्भव, निरंतरता, समाप्ति, प्राथमिकता और परवर्तीता के द्वारा दूसरी घटना द्वारा निर्धारित होती है और उसे उत्पन्न करने (जनक), समर्थन करने (उपतम्भक) और बनाए रखने (अनुपालन) के माध्यम से निर्धारित करती है, तो पहली घटना को संबंधकारी वस्तु (पच्चया-धम्म) और दूसरी घटना को संबंधित वस्तु (पच्चयायुप्पन्न-धम्म) कहा जाता है, और निर्धारण, प्रभाव या विशिष्ट कार्य को सहसंबंधीता (पच्चयासत्ति) कहा जाता है। जैसा कि विभिन्न प्रकार के प्रभाव स्पष्ट रूप से ज्ञात हैं, संबंधों को निम्नलिखित 24 प्रजातियों में वर्गीकृत किया गया है:

1. हेतु--स्थिति या मूल
2. अरम्मना--वस्तु
3. अधिपति--प्रभुत्व
4. अनंतरा--निकटता
5. समनंतरा--निकटता
6. सहजलि--सहअस्तित्व
7. अन्नमन्ना--पारस्परिकता
8. निस्सय--निर्भरता
9. उपनिषय--पर्याप्त स्थिति
10. पुरेजात--पूर्व-अस्तित्व
11. पच्छजात--समय में पश्चवर्ती कारण संबंध
12. असेवना--आदतन पुनरावृत्ति
13. कर्म--कर्म या क्रिया
14. विपाक--प्रभाव
15. आहार/--भोजन
16. इंद्रिय--नियंत्रण
17. झान--झान या परमानंद
18. 19. मग्गा--पथ
20. सम्पायुत्त--सहयोग 21.
विप्पयुत्त--वियोग
22. अत्ति--उपस्थिति
23. नत्थि--अनुपस्थिति
24. विगत--स्थगन
24. अवगत--निरंतरता।

बौद्ध धर्मग्रंथ अभिधम्म पिटक के सातवें और अंतिम विश्लेषणात्मक ग्रंथ, जिसे पत्थाना ('उत्कृष्टता') या महा-पकरण ('महान ग्रंथ') कहा जाता है, में इन 24 प्रकार के संबंधों की विस्तृत और पूर्ण व्याख्या की गई है।

तिपिटक >> अभिधम्म पिटक >> पथन >> **अध्याय 1.पत्थनुद्देस दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

1. हेतु-पच्चय या मूल के माध्यम से संबंध

हेतु-संबंध क्या है? लोभ, द्वेष, आलस्य और इनके विपरीत गुण, अर्थात् निस्वार्थता, प्रेम और बुद्धि, ये सभी हेतु-संबंध हैं।

इन हेतु-संबंधों से कौन सी वस्तुएँ संबंधित हैं? वे मानसिक गुण और मानसिक अवस्थाएँ जो लोभ, द्वेष, आलस्य, निस्वार्थता, प्रेम और बुद्धि के साथ सह-अस्तित्व में हैं, साथ ही वे भौतिक गुण जो इनके साथ सह-अस्तित्व में हैं, वे वस्तुएँ इस प्रकार संबंधित हैं। इन सभी को

हेतुपच्चयप्पन्न धम्म कहा जाता है, क्योंकि ये हेतु-संबंध के कारण उत्पन्न होते हैं या अस्तित्व में आते हैं।

उपरोक्त व्याख्या में, "एक ही के साथ विद्यमान भौतिक गुणों के समूह" से तात्पर्य उन भौतिक गुणों से है जो किसी नए प्राणी की हेतु-युक्त गर्भाधान की प्रारंभिक अवस्था में कर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं, साथ ही उन भौतिक गुणों से भी जो हेतु-युक्त मन द्वारा जीवनकाल के दौरान उत्पन्न हो सकते हैं। यहाँ "गर्भाधान का क्षण" से तात्पर्य पुनर्जन्म-गर्भाधान के प्रारंभिक क्षण से है, और "जीवनकाल" से तात्पर्य पुनर्जन्म-गर्भाधान के स्थिर क्षण से लेकर मृत्यु-विचार के क्षण तक की अवधि से है।

हेतु को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? और पच्चय को किस अर्थ में? हेतु को मूल (मूलात्थ) के अर्थ में समझा जाना चाहिए; और पच्चय को पच्चयुप्पन्न धम्म या उपकारत्थ के उद्‌भव या अस्तित्व में आने में सहायक के अर्थ में समझा जाना चाहिए। इन दोनों में से, मूलात्थ मूल की मूल अवस्था है, लोभ-अतः, जैसा कि मूलयमक में दर्शाया गया है। हमने मूलात्त्व को मूल-यमक-दीपनी में वृक्ष के उपमा से समझाया है। फिर भी, हम यहाँ इस पर दोबारा चर्चा करेंगे।

मान लीजिए एक पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है। जब तक वह अपने कामुक विचार को दूर नहीं करता, उस स्त्री के प्रति उसके सभी कर्म, वचन और विचार, कामवासना (या लोभ) में सहायक होंगे, जो साथ ही साथ उसी विचार से उत्पन्न भौतिक गुणों को भी अपने वश में रखती है। तब हम देखते हैं कि इन सभी मानसिक और भौतिक गुणों की जड़ उस स्त्री के प्रति कामुक लोभ में निहित है। अतः, हेतु (क्योंकि यह जड़ का काम करता है) और पच्चय (क्योंकि यह मन और शरीर की उन अवस्थाओं के उत्पन्न होने में सहायक है) होने के कारण, लोभ हेतु-पच्चय है। शेष को भी इसी प्रकार समझाया और समझा जा सकता है - अर्थात्, वांछनीय वस्तुओं की इच्छा से लोभ का उत्पन्न होना; घृणित वस्तुओं के प्रति घृणा से घृणा का उत्पन्न होना; और नीरस वस्तुओं के विषय में ज्ञान की कमी से सुस्ती का उत्पन्न होना।

एक पेड़ का उदाहरण लीजिए—हम देखते हैं कि पेड़ की जड़ें ज़मीन में मज़बूती से जम जाती हैं और मिट्टी व पानी दोनों से रस सोखकर पेड़ के ऊपरी हिस्से तक पहुँच जाती हैं, जिससे पेड़ लंबे समय तक बढ़ता और विकसित होता रहता है। ठीक इसी तरह, लालच भी मनभावन वस्तुओं में दृढ़ हो जाता है और उनसे सुख और आनंद का सार सोखकर उसे मन के अन्य तत्वों में समाहित कर लेता है, जिससे अनैतिक कर्म और वचन उत्पन्न होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लालच नैतिक कर्म और वचन के उल्लंघन का कारण बनता है। यही बात घृणा पर भी लागू होती है, जो अरुचि के कारण अप्रसन्नता और असुविधा का सार सोख लेती है, और यही बात अज्ञानता पर भी लागू होती है, जो ज्ञान की कमी के कारण अनेक विषयों पर व्यर्थ विचारों के सार को पनपने देती है।

इस प्रकार सार तत्व का परिवहन करते हुए, लोभ, दोष और मोह तीनों तत्व, घटक भागों पर इस प्रकार कार्य करते हैं कि वे (एक प्रकार से) प्रसन्न और आनंदित हो जाते हैं, जो वांछनीय वस्तुओं आदि से प्रसन्न होते हैं। घटक भाग भी उन पर कार्य करने के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं, जबकि सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुण भी उसी प्रभाव को साझा करते हैं। यहाँ, सम्पायुत्त-धम्मे अभिहारति शब्दों से यह समझा जाना चाहिए कि लोभ सुख और आनंद के सार को सहवर्ती तत्वों तक पहुँचाता है।

अब सकारात्मक पक्ष की ओर आते हैं—मान लीजिए कि पुरुष को इंद्रिय सुख में खतरा दिखाई देता है, और वह स्त्री के प्रति उस कामुक विचार का त्याग कर देता है। ऐसा करने से, उसके भीतर स्त्री के प्रति अनासक्ति उत्पन्न होती है। इससे पहले, भ्रम को मूल मानकर अशुद्ध कर्म, शब्द और विचार थे; लेकिन वर्तमान में वे अनुपस्थित हैं और उनके स्थान पर अनासक्ति को मूल मानकर शुद्ध कर्म, शब्द और विचार उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, त्याग, आत्म-संयम, ध्यान अभ्यास या उच्चतर आनंदमय विचार भी उत्पन्न होते हैं। अत: निःसंकोच (अलोभ) को हेतु-पच्चय कहा जाता है, क्योंकि यह हेतु है, मूल तत्व के रूप में कार्य करता है, जबकि सहवर्ती तत्व के उत्पन्न होने में सहायक होने के कारण यह पच्चय है। यही व्याख्या निःसंकोच के शेष भाग पर भी लागू होती है, और साथ ही मित्रता और बुद्धि पर भी, जो क्रमशः लोभ, घृणा और अज्ञान के विपरीत हैं।

यहां, जैसे वृक्ष की जड़ पूरे तने और उसके भागों को उत्तेजित करती है, वैसे ही निःसंकोच भाव में होता है। यह वांछनीय वस्तुओं की इच्छा को दूर करता है और लोभ रहित आनंद के सार को बढ़ावा देकर, उस सार से जुड़े अन्य तत्वों का भी पोषण करता है, जिससे वे इतने सुखी और आनंदित हो जाते हैं कि वे ध्यानिक, पथिक या फलदायक आनंद की चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, मित्रता और बुद्धि क्रमशः घृणा और अज्ञान को घृणा और सुस्ती से दूर करते हैं और घृणा और सुस्ती से रहित आनंद के सार को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार तीनों तत्वों (आलोभ, अदोष और अमोह) का प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है, जिससे उनके मानसिक सहवर्ती तत्व सुखी और आनंदित होते हैं। सहवर्ती तत्व भी प्रभावित होते हैं, जबकि भौतिक गुणों के सह-अस्तित्व वाले समूह भी उसी प्रकार प्रभावित होते हैं।

यहां लोभविवेकसुखरसम् शब्द लोभ, विवेक, सुख और रस का मिश्रण है। विवेक अनुपस्थिति की अवस्था है। लोभविवेक वह है जो लोभ से रहित है, या लोभ का अभाव है। लोभविवेक-सुख लोभ के अभाव से उत्पन्न होने वाला आनंद है। अतः संपूर्ण यौगिक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: लोभविवेकसुखरासा लोभ के अभाव से प्राप्त होने वाले आनंद का सार है।

अभिधम्म में वर्णित पथाना का नियम यही है। सुत्तंत के नियम की ओर मुड़ते हुए, सुस्ती और लोभ के दो तत्व, जिन्हें क्रमशः अज्ञान और भोग कहा जाता है, तीनों चक्रों के संपूर्ण मूल हैं। घृणा, लोभ का आकस्मिक परिणाम होने के कारण, केवल बुराई का मूल है। बुद्धि और निस्वार्थता के दो तत्व, जिन्हें क्रमशः ज्ञान और त्याग कहा जाता है, दुखों के चक्रों के निवारण के संपूर्ण मूल हैं। मित्रता, निस्वार्थता का आकस्मिक परिणाम होने के कारण, केवल अच्छाई का मूल है। इस प्रकार छह मूल तत्व मन और शरीर की सभी अवस्थाओं के कारण बन जाते हैं, जो या तो सहअस्तित्व में होती हैं या गैर-सहअस्तित्व में। अब जो कहा गया है वह सुत्तंत का नियम है।

हेतु-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 2.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

2. **अरम्मना-पच्चया या वस्तु का संबंध**

अरम्मना-संबंध क्या है? चेतना के सभी वर्ग, मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं की सभी अवस्थाएँ, भौतिक गुणों के सभी प्रकार, निर्वाण की सभी अवस्थाएँ, अवधारणाओं को व्यक्त करने वाले सभी शब्द अरम्मना-संबंध हैं। वास्तव में, कोई भी ऐसी वस्तु (धम्म) नहीं है जो मन और मानसिक तत्वों की वस्तु न बन जाए। संक्षेप में, वस्तु छह प्रकार की होती है: दृश्य वस्तु, श्रव्य वस्तु, गंधयुक्त वस्तु, स्वादयुक्त वस्तु, स्पर्शनीय वस्तु और बोधगम्य वस्तु।

वे कौन सी वस्तुएँ हैं जो अरम्मना-संबंधों से संबंधित हैं? मन के सभी वर्ग और उनके सहवर्ती वे वस्तुएँ हैं जो अरम्मना-संबंधों से संबंधित हैं। वास्तव में, चेतना का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है जो विद्यमान (भूतेन) या गैर-विद्यमान (अभूतेन) वस्तु के बिना विद्यमान हो सके। (भूतेन और अभूतेन का अनुवाद यहाँ क्रमशः 'वास्तविक' और 'अवास्तविक' या 'वर्तमान' और 'गैर-वर्तमान' के रूप में भी किया जा सकता है)।

यहाँ वर्तमान दृश्य वस्तु अरम्मन-पच्चय है, और यह दृष्टि की चेतना के दो वर्गों, अच्छे और बुरे, से कारणवश संबंधित है। इसी प्रकार, वर्तमान श्रव्य वस्तु ध्वनि की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान सुगंधित वस्तु गंध की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान स्वादयुक्त वस्तु स्वाद की चेतना के दो वर्गों से, वर्तमान स्पर्शनीय वस्तुओं के तीन वर्गों से, और वर्तमान पाँच इंद्रिय वस्तुओं को बोध के त्रिविध तत्व के रूप में ज्ञात चेतना के तीन वर्गों से कारणवश संबंधित है। ये सभी पाँचों इंद्रिय विषय, वर्तमान, भूतकाल या भविष्य, और विचार के सभी विषय, वर्तमान, भूतकाल, भविष्यकाल या समय से परे, अरम्मन-पच्चय हैं और चेतना के उन छिहत्तर वर्गों से कारणिक रूप से संबंधित हैं जिन्हें मन-ज्ञान (या बोध के तत्व) के रूप में जाना जाता है।

'अरम्मन' को किस अर्थ में और 'पच्चय' को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? अरम्मन को 'अलम्बितब्बा' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है वह जो मन और मानसिक तत्वों द्वारा धारण किया जाता है या जिस पर टिका रहता है। पच्चय को 'उपकारक' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है वह जो (पच्चयप्पन्नधम्म के उद्भव में) सहायता करता है।[3]

'आलंबितब्बा' शब्द के संदर्भ में, मन और उसके मानसिक कारकों के 'आलंबन' का कार्य किसी वस्तु को पकड़ना या उससे जुड़ना है। उदाहरण के लिए, इस भौतिक जगत में एक प्रकार की धातु है जिसे लोहे के प्रति उसकी स्पष्ट इच्छा के कारण 'अयोकांतक' (शाब्दिक रूप से, लोहे की इच्छा) कहा जाता है। जब वह लोहे के टुकड़े के पास आती है, तो वह मानो उसे पाने की इच्छा से कांपती है। इसके अलावा, वह आगे बढ़ती है और लोहे से दृढ़ता से जुड़ जाती है। अन्य मामलों में, वह लोहे को आकर्षित करती है, और इस प्रकार लोहा कांपता है, चुंबक के पास आता है, और उससे दृढ़ता से जुड़ जाता है। यहाँ हम चुंबक की शक्ति देखते हैं, जिसे मन और मानसिक कारकों के 'आलंबन' का एक प्रभावशाली उदाहरण माना जा सकता है।

वे (मन और उसके सहवर्ती) न केवल वस्तुओं से जुड़ते हैं, बल्कि किसी व्यक्ति के भीतर उनके अस्तित्व में आने के चरण में, हर क्षण उठते और समाप्त होते हैं, जबकि वस्तुएँ छह द्वारों के रास्तों पर विद्यमान रहती हैं[4]। इस प्रकार, यह उदय और थमना ठीक उसी प्रकार है जैसे घंटा बजता है, जो केवल उसकी सतह पर प्रहार करने पर उत्पन्न होता है और उसके तुरंत बाद मौन हो जाता है। यह वायलिन की ध्वनि के समान भी है, जो केवल उसके तारों पर धनुष से प्रहार करने पर उत्पन्न होती है और फिर तुरंत थम जाती है।

सोते हुए व्यक्ति के लिए—जब जीवन-निरंतरता (विचारों की धारा में) प्रवाहित हो रही होती है—कर्म, कर्म का चिन्ह और आने वाले जीवन में उसके भाग्य का चिन्ह—जो पिछले जन्म में मृत्यु के निकट आने पर स्पष्ट रूप से छह द्वारों के मार्ग में प्रवेश कर चुके थे—आरंभ संबंध हैं, और जीवन-निरंतरता के रूप में ज्ञात चेतना (उन्नीस श्रेणियों) से कारणिक रूप से संबंधित हैं।

आरंभ संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 3.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

3: अधिपति-पच्चय या प्रभुत्व का संबंध

प्रभुत्व का संबंध दो प्रकार का होता है: वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व और सह-अस्तित्व वाला प्रभुत्व। इन दोनों में से वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का संबंध क्या है? अरम्मन-संबंध पर चर्चा किए गए खंड में जिन वस्तुओं का उल्लेख किया गया है, उनमें से कुछ वस्तुएँ अत्यंत सुखद, अत्यंत प्रेमपूर्ण, अत्यंत मनभावन और अत्यंत सम्माननीय हैं। ऐसी वस्तुएँ वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का संबंध प्रदर्शित करती हैं। यहाँ वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से सुखद या अप्रिय हो सकती हैं; लेकिन 'अत्यंत सुखद वस्तुएँ' शब्द से केवल उन्हीं वस्तुओं का तात्पर्य है जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा सबसे अधिक सम्मान दिया जाता है और जो इस संबंध को प्रदर्शित करती हैं। घृणा में निहित चेतना के दो वर्गों, अज्ञान में निहित चेतना के दो वर्गों और पीड़ा से ग्रस्त स्पर्श चेतना को छोड़कर, इन सभी के सहवर्ती तत्वों सहित, विश्लेषणात्मक रूप से[6] यह दिखाया जा सकता है कि काम-चेतना, रूप-चेतना, अरूप-चेतना और पारलौकिक चेतना के शेष सभी वर्ग, अपने-अपने सहवर्ती तत्वों और सभी सबसे सुखद भौतिक गुणों सहित, पच्चय-धम्म हैं।

इनमें से, काम-विषयों को केवल तभी वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व का कारण संबंध प्रदर्शित करने वाला कहा जाता है जब उन्हें अत्यधिक सम्मान दिया जाता है, अन्यथा वे ऐसा नहीं करते। लेकिन जो लोग ध्यान अवस्थाओं तक पहुँचते हैं, वे अपने द्वारा प्राप्त उदात्त ध्यान के प्रति उच्च सम्मान में कभी कमी नहीं करते। आर्य शिष्य भी अपने द्वारा प्राप्त और आनंदित पारलौकिक धम्म[7] के प्रति अपने महान सम्मान में कभी कमी नहीं करते।

इस संबंध से कौन सी वस्तुएँ संबंधित हैं? लोभ से ग्रस्त चेतना के आठ वर्ग, कमलोक की नैतिक चेतना के आठ वर्ग, ज्ञान से जुड़ी निष्क्रिय कमलोक चेतना के चार वर्ग और पारलौकिक चेतना के आठ वर्ग—ये सभी इस संबंध से संबंधित हैं। यहाँ छह प्रकार की सांसारिक वस्तुएँ[8] इच्छा से ग्रस्त चेतना के आठ वर्गों से कारणवश संबंधित हैं। सांसारिक नैतिक चेतना के सत्रह वर्ग ज्ञान से विरक्त नैतिक काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित हैं। मार्ग और फल के पहले तीन युग्म और निर्वाण, सांसारिक नैतिक चेतना के उन सभी वर्गों के साथ, ज्ञान से जुड़ी नैतिक काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित हैं। उच्चतम—अरहंतत्व के मार्ग और फल का चौथा चरण—निर्वाण के साथ ज्ञान से जुड़ी निष्क्रिय काम-चेतना के चार वर्गों से संबंधित है। और निर्वाण पारलौकिक चेतना के आठ वर्गों से संबंधित है।

अरम्मना को किस अर्थ में और अधिपति को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? अरम्मना को अलम्बितब्बा (अरम्मना-पच्चय देखें) के अर्थ में और अधिपति को अधिपच्चत्त के अर्थ में समझा जाना चाहिए। तो अधिपच्चत्त क्या है? अधिपच्चत्त वस्तुओं की वह क्षमता है जो मन की उन अवस्थाओं और मानसिक गुणों को नियंत्रित करती है जिनके कारण वस्तुओं को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। यह समझा जाना चाहिए कि अरम्मनाधिपति से संबंधित वस्तुएँ (पच्चय-धम्म) अधिपति के समान हैं, जबकि संबंधित वस्तुएँ (पच्चयप्पन्न-धम्म) मानव समाज में दासों के समान हैं।

सुतसोमा जातक में, राजा पोरिसदा ने मानव मांस के प्रति अत्यधिक आकर्षण के कारण, केवल मानव मांस के स्वाद के लिए अपना

राज्य त्याग दिया और वन में घुमंतू जीवन व्यतीत किया। यहाँ मानव मांस का स्वाद अरम्मनाधिपति का पच्चयधम्म है; और राजा पोरिसाद की भोग-प्रसंग में निहित चेतना ही पच्चयुप्पन-धम्म है। फिर, राजा सुतसोमा, सत्य के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते हुए[9], सत्य के लिए अपनी संप्रभुता, अपने पूरे राजपरिवार और यहाँ तक कि अपने प्राणों का भी त्याग कर पोरिसाद के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। इस स्थिति में, सत्य ही पच्चयधम्म है और राजा सुतसोमा की नैतिक चेतना ही पच्चयुप्पन-धम्म है। इसी प्रकार हमें उन सभी इंद्रिय-संबंधी विषयों को समझना चाहिए जिनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा होती है।

सह-अस्तित्व का प्रभुत्व क्या है? अभिशय या करने की इच्छा, मन[10] या संकल्प, ऊर्जा या प्रयास, और तर्क या अन्वेषण, जो प्रभुत्वशाली अवस्था में पहुँच चुके हैं, इस संबंध से संबंधित हैं।

इस संबंध से कौन सी वस्तुएँ जुड़ी हुई हैं? मन और मानसिक गुणों के वर्ग जो प्रभुत्वशाली तत्वों के सहायक हैं, और प्रभुत्वशाली विचारों द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण, वे वस्तुएँ हैं जो इस संबंध से जुड़ी हुई हैं।

सहजता को किस अर्थ में और अधिपति को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? सहजता को सहुप्पदानत्थ के अर्थ में और अधिपति को अभिभवनत्थ के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यहाँ, कोई घटना जब प्रकट होती है, तो वह न केवल अकेली प्रकट होती है, बल्कि साथ ही साथ अपने सहायक तत्वों को भी प्रकट करती है। घटना की इस कारणिक क्रिया को सहुप्पदानत्थ कहा जाता है। अभिभवनत्थ का अर्थ है विजय प्राप्त करना। उदाहरण के लिए, राजा चक्कवत्ती अपनी शक्ति या योग्यता से पूरे महाद्वीप के निवासियों पर विजय प्राप्त करते हैं और उनके स्वामी बन जाते हैं, जिनका वे अपनी इच्छा अनुसार नेतृत्व कर सकते हैं। वे भी उनके नेतृत्व के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार, वे चार प्रभाव जो प्रबल अवस्था में पहुँच चुके हैं, अपने-अपने सहायक तत्वों के स्वामी बन जाते हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार नेतृत्व प्रदान करते हैं। सहायक तत्व भी उनके नेतृत्व के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। एक और उदाहरण लें तो, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन सभी पिंडों में हम देखते हैं कि चार तत्व—विस्तार, संसंजन, ऊष्मा और गति—क्रमशः प्रमुख हैं, और प्रत्येक अन्य तीन घटकों पर श्रेष्ठता रखता है और उन्हें अपने आंतरिक स्वभाव के अनुरूप ढालता है[11]। चार 'तत्वों' के समूह के अन्य तीन सदस्यों को भी प्रमुख तत्व के स्वभाव का अनुसरण करना पड़ता है। इसी प्रकार, ये चार प्रमुख तत्व, जो अपनी शक्ति के बल पर प्रमुख अवस्था तक पहुँच चुके हैं, अपने सहायक तत्वों को अपने आंतरिक स्वभाव के अनुरूप ढालते हैं। और उनके सहायक तत्वों को भी प्रमुख तत्वों के स्वभाव का अनुसरण करना पड़ता है। अभिभावना का यही अर्थ है। यहाँ कुछ लोग कह सकते हैं: "यदि इन चीजों को, इरादे को छोड़कर, सहायक तत्वों पर विजय प्राप्त करने के कारण प्रमुख कहा जाता है, तो लोभ को भी प्रमुख कहा जाना चाहिए, क्योंकि स्पष्ट रूप से इसमें इरादे की तुलना में सहायक तत्वों पर कहीं अधिक प्रबल शक्ति होती है।" लेकिन इसके जवाब में हम यह कह सकते हैं: बेशक, लालच इरादे से अधिक शक्तिशाली है, लेकिन केवल साधारण और नासमझ लोगों के लिए। बुद्धिमानों के मामले में, इरादा लालच से अधिक शक्तिशाली होता है और उनके सहायक तत्वों पर हावी हो जाता है। यदि यह मान लिया जाए कि लालच अधिक शक्तिशाली है, तो लालच के चंगुल में फंसे लोग अपने सुखमय जीवन और धन की परिपूर्णता को त्यागकर, त्याग के मार्ग अपनाकर और दुख के चक्र से कैसे बाहर निकल पाएंगे? लेकिन, क्योंकि इरादा लालच से अधिक शक्तिशाली है, इसलिए लालच के चंगुल में फंसे लोग सुखमय जीवन और धन की परिपूर्णता को त्यागकर, त्याग के मार्ग अपनाकर और दुख के चक्र से बाहर निकल पाते हैं। अतः, इरादा ही सच्चा प्रवर्तक है, न कि लालच। इसी प्रकार, जब इरादे की तुलना घृणा आदि से की जाती है, तब भी यही बात ध्यान में रखनी चाहिए।

आइए इसे और स्पष्ट रूप से समझाते हैं। जब कोई महान और कठिन मानवीय कार्य सामने आता है, तो ऐसे कार्यों की सफलता के लिए इन चार प्रमुख गुणों का उत्पन्न होना आवश्यक हो जाता है। कैसे? जब बुरे इरादों वाले लोग ऐसे किसी कार्य का सामना करते हैं, तो उनका इरादा पीछे हट जाता है। वे उसे करने के लिए तैयार नहीं होते। वे उसमें कोई रुचि न होने के कारण उसे छोड़ देते हैं और यहाँ तक कहते हैं: "यह कार्य हमारी क्षमता से परे है।" वहीं अच्छे इरादों वाले लोग ऐसे महान कार्य को देखकर उत्साह से भर जाते हैं। वे उसे करने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। वे कार्य को पूरा करने का निश्चय कर लेते हैं और कहते हैं: "यह कार्य हमारी क्षमता के दायरे में है।" इस प्रकार का व्यक्ति अपने इरादे से इतना दृढ़ हो जाता है कि जब तक कार्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक वह उसे छोड़ नहीं पाता। और इसी कारण वह कार्य किसी दिन पूर्ण रूप से पूरा हो ही जाता है, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।

अब, आइए आलसी वर्ग के लोगों के मामले पर विचार करें। जब वे ऐसे किसी महान कार्य का सामना करते हैं, तो वे तुरंत उससे पीछे हट जाते हैं। वे इससे पीछे हट जाते हैं क्योंकि उन्हें पहले से ही पता होता है कि इसे पूरा करने के लिए उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और शारीरिक व मानसिक पीड़ा सहनी पड़ेगी। वहीं, कर्मठ व्यक्ति इसे देखकर ऊर्जा से भर उठता है और इसे पूरा करने की इच्छा रखता है। वह हर परिस्थिति में, चाहे कितना भी समय लगे, इस कार्य को करता रहता है। वह कभी भी अपने प्रयासों से पीछे नहीं हटता और न ही निराश होता है। वह केवल यही सोचता है कि इतना बड़ा कार्य दिन-रात अथक परिश्रम के बिना पूरा नहीं हो सकता। और ऐसा होने पर, यह बड़ा कार्य एक दिन अवश्य पूरा होगा।

अब कमजोर मन वाले व्यक्ति की बात करते हैं। वे भी ऐसे बड़े कार्य को देखकर मुंह मोड़ लेते हैं। वे निश्चित रूप से इसके बारे में फिर कभी नहीं सोचेंगे। लेकिन दृढ़ मन वाले व्यक्ति के साथ ऐसा बिल्कुल नहीं होता। जब वह ऐसा कार्य देखता है तो उसमें अत्यधिक रुचि उत्पन्न होती है। वह इसके विचार को अपने मन से निकाल ही नहीं पाता। वह हर समय कार्य के बारे में सोचता रहता है, और उसके आदेश पर लंबे समय तक उसमें लगा रहता है, शारीरिक और मानसिक पीड़ा के सभी प्रकारों को सहन करता है। शेष भाग को आगे उसी प्रकार समझाया जाएगा जैसे ऊपर प्रमुख उद्देश्य को समझाया गया है।

एक बार फिर, बुद्धिहीन लोगों के बारे में कुछ शब्द। जब उन्हें ऐसा कोई कार्य सौंपा जाता है, तो वे असमंजस में पड़ जाते हैं। उन्हें न तो शुरुआत करने का तरीका पता होता है, न ही काम को आगे बढ़ाने का, और न ही उसे पूरा करने का। उन्हें ऐसा लगता है मानो वे अंधेरे में आ गए हों, जहाँ काम को पूरा करने के लिए मार्गदर्शन करने वाली कोई रोशनी भी नहीं है। दूसरी ओर—अधिक बुद्धिमान व्यक्ति की बात करें—जब ऐसे व्यक्ति को इतना बड़ा कार्य करना पड़ता है, तो वह मानो अपनी बुद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है, जहाँ से वह शुरुआत करने और अंत करने का तरीका समझ जाता है। उसे यह भी पता होता है कि इस कार्य को पूरा करने से उसे क्या लाभ और आशीर्वाद प्राप्त होंगे। वह इसे आसानी से पूरा करने के लिए कई उपाय ईजाद करता है। वह लंबे समय तक काम करता रहता है, और यह सिलसिला चलता रहता है। बाकी बातों को भी उसी तरह समझाया जा सकता है जैसे मुख्य प्रयास को समझाया गया है—बस 'अटूट प्रयासों' के स्थान पर 'अत्यधिक गहन शोध के साथ' शब्द जोड़ दें।

इस प्रकार, जब कोई महान और कठिन मानवीय कार्य उत्पन्न होते हैं, तो उनकी सिद्धि के साधनों में ये चार प्रमुख तत्व सर्वोपरि हो जाते हैं। इन चार प्रमुख तत्वों के अस्तित्व के कारण सर्वज्ञ बुद्ध, पच्चेक बुद्ध,[12] सर्वोत्कृष्ट शिष्य, महान शिष्य और साधारण शिष्य जैसे विशिष्ट या प्रतिष्ठित व्यक्ति (पुरुष) अस्तित्व में आते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रकट होने के कारण, मानव जाति की सामान्य समृद्धि और कल्याण के लिए अनेक कलाएँ और विज्ञान, साथ ही सामान्य साज-सामान भी प्रकट होते हैं, जो सभ्यता के आवरण के अंतर्गत मानवीय आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करते हैं।[13]

अधिपति-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 4.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

4. अनंतार-पच्चय या निकटता का संबंध

अनंतार-पच्चय क्या है? चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, जो अभी-अभी (ठीक पिछले क्षण में) समाप्त हुए हैं, अनंतार-पच्चय हैं। इस पच्चय से कौन से संबंधित हैं? चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, जो अभी-अभी (ठीक अगले क्षण में) उत्पन्न हुए हैं, इस पच्चय से संबंधित हैं।

किसी प्राणी के एक जन्म में, पुनर्जन्म-चेतना प्रथम जीवन-सम्बद्धता से निकटता के माध्यम से संबंधित होती है, और प्रथम जीवन-सम्बद्धता फिर से द्वितीय जीवन-सम्बद्धता से संबंधित होती है; और इसी प्रकार शेषों के साथ भी।

अब, अभिधम्म के छठे खंड के नौवें अध्याय, धम्म-यमक में वर्णित "जब शुद्ध (शुद्ध निवास, अर्थात् शुद्धवास) में दूसरी अनैतिक चेतना उत्पन्न होती है, आदि" पाठ के संदर्भ में, हम समझते हैं कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपने नए शरीर के प्रति सचेत होता है, उसके नए जीवन में उत्पन्न होने वाली पहली विचार प्रक्रिया अनैतिक विचार की प्रक्रिया होती है, जिसके साथ नए जीवन को जीने की प्रबल इच्छा होती है, इस विचार के साथ: 'यह मेरा है; यह मैं हूँ; यह मैं ही हूँ।" जब यह प्रक्रिया शुरू होने वाली होती है, तो जीवन-संचलन पहले दो क्षणों के लिए कंपन करता है। इसके बाद मन-द्वार बोध होता है, और फिर सात बोधों की एक श्रृंखला आती है, जिसके साथ नए जीवन को जीने की तीव्र इच्छा होती है। इसके बाद, जीवन-संचलन फिर से प्रवाहित होने लगता है।

वास्तव में, यह प्राणी[14] अपने वर्तमान नए जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानता। वह पिछले जन्म में अपने अनुभवों पर चिंतन करते हुए जीता है। हालाँकि, मन का आधार इतना कमजोर होता है कि वस्तु भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित नहीं हो पाती। वस्तु के इस प्रकार

अस्पष्ट होने के कारण, सामान्यतः चेतना के ऐसे वर्ग ही उत्पन्न होते हैं जो उलझन से जुड़े होते हैं।

गर्भाधान के लगभग दो महीने बाद, जिस दौरान व्यक्ति का धीरे-धीरे विकास होता है, आँख, कान आदि की नियंत्रण शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं। लेकिन माँ के गर्भ में प्रकाश आदि न होने के कारण, चारों प्रकार की अनुभूतियाँ—दृश्य, श्रवण आदि—विकसित नहीं होतीं। केवल स्पर्श और मानसिक अनुभूतियाँ ही विकसित होती हैं। माँ के शरीर की हर मुद्रा में परिवर्तन से शिशु को बहुत पीड़ा और कष्ट होता है, और जन्म के समय तो यह पीड़ा और भी बढ़ जाती है। बाह्य जगत में आने के बाद भी, जब तक उसका कोमल शरीर इतना मजबूत (परिपक्व) नहीं हो जाता कि वह स्वयं को संभाल सके, तब तक उसे बहुत दुर्बलता से पीठ के बल लेटना पड़ता है। इस दौरान वह वर्तमान वस्तुओं को नहीं देख पाता, बल्कि उसका मन सामान्यतः अपने पूर्व जन्म की वस्तुओं की ओर उन्मुख होता है। यदि वह नरकलोक से आया है, तो उसका चेहरा सामान्यतः अप्रिय होता है, क्योंकि वह अभी भी नरकलोक में अनुभव की गई अनुभूतियों को महसूस करता है। यदि वह देवलोक से आता है, तो उसका मनमोहक चेहरा न केवल मुस्कान से दमकता है, बल्कि उसकी आनंदमयी हंसी में मानो देवलोक की वस्तुओं के विचार से उत्पन्न प्रसन्नता झलकती है। इसके

अलावा, उसके शरीर के अंग धीरे-धीरे बलवान होते जाते हैं और उसकी इंद्रिय अनुभूतियाँ स्पष्ट होती जाती हैं। इसलिए वह शीघ्र ही अपने प्यारे छोटे-छोटे तरीकों से आनंदपूर्वक खेलने लगता है। इस प्रकार उसके लिए एक सुखी जीवन का आरंभ होता है; और वह अपने नए जीवन में रुचि लेने लगता है। वह अपनी माँ की वाणी को अपनाता है और उसकी नकल करता है। वह उससे बातें करता है। इस प्रकार उसकी इंद्रियाँ लगभग पूरी तरह से वर्तमान संसार की ओर मुड़ जाती हैं, और उसके पिछले जीवन के सभी विचार लुप्त हो जाते हैं। अर्थात्, वह अपने पिछले जन्म को भूल जाता है।

क्या सभी प्राणी अपने पिछले जन्मों को केवल इसी अवस्था में भूल जाते हैं? नहीं, सभी नहीं। कुछ जो गर्भधारण की पीड़ा से अत्यधिक पीड़ित होते हैं, वे गर्भावस्था के दौरान अपने पिछले जन्मों को भूल जाते हैं, कुछ जन्म के समय, कुछ ऊपर बताई गई अवस्था में; कुछ युवावस्था में, और कुछ वृद्धावस्था में। कुछ असाधारण पुरुष अपने पूरे जीवन भर अपने पिछले जन्मों को नहीं भूलते, और कुछ तो दो-तीन जन्मों को भी याद रख सकते हैं। इन्हें जातिसरसत्ता कहा जाता है, यानी वे लोग जिन्हें अपने पिछले जन्मों की स्मृति प्राप्त होती है।

अब, अपने विषय पर लौटते हैं। यद्यपि छह द्वार वाली विचार प्रक्रियाएँ बच्चे के जन्म के बाद ही कार्य करना शुरू कर देती हैं, फिर भी ये प्रक्रियाएँ पूर्णतः तभी क्रियाशील होती हैं जब बच्चा वर्तमान विषयों को ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक विचार प्रक्रिया में, प्रत्येक पूर्ववर्ती चेतना जो अभी-अभी समाप्त हुई है, निकटता के माध्यम से प्रत्येक आगामी चेतना से संबंधित होती है जो तुरंत उत्पन्न हुई है। और निकटता का यह संबंध व्यक्ति के आवर्ती जन्मों के संपूर्ण कालखंड में, अनाप्य आरंभ से ही, अटूट निरंतरता के साथ बना रहता है। लेकिन अरहंतत्व के मार्ग को प्राप्त करने और खन्ध-परिनिर्वाण (अर्थात पंच स्कंधों के अंतिम विनाश) में प्रवेश करने के बाद ही यह निरंतरता टूटती है, या अधिक सटीक रूप से कहें तो, हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

अनंतार को अनंतार क्यों कहा जाता है, और पश्चात क्यों? अनंतार को अनंतार इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अपने समान घटनाओं को तुरंत बाद उत्पन्न करता है। पश्चात को पश्चात इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सहायता प्रदान करता है। 'अपने समान' वाक्यांश में, 'समान' शब्द का अर्थ किसी वस्तु के प्रति सचेत होने की क्षमता के संदर्भ में समानता व्यक्त करना है। और सरम्मन्त का अर्थ है एक ऐसी घटना जो किसी वस्तु की उपस्थिति के बिना घटित नहीं होती। इसलिए इसे 'क्षमता के संदर्भ में समान' आदि के रूप में अनुवादित किया गया है।

इसी प्रकार, "धम्मन्तरस्स-उप्पदानत्थेन" वाक्यांश का अर्थ निम्नलिखित है: "यद्यपि पिछला विचार समाप्त हो जाता है, तब भी उसकी सचेत क्षमता तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि वह अगले विचार को उत्पन्न न कर दे।"

यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस संबंध के पच्चय-धम्मों की श्रृंखला पिछली माताओं की श्रृंखला के समान है, और पच्चय्युप्पन्न-धम्मों की श्रृंखला अगली पुत्रियों की श्रृंखला के समान है। ऐसा होने पर, अरहंत के अंतिम मरणविराम विचार से भी पुनर्जन्म-चेतना का उदय होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि अस्तित्व के विकास के अंत में, सभी इच्छा-संबंधी और अशुद्धियाँ (कर्म-किलेसा) पूरी तरह से समाप्त हो जाती हैं, और अंतिम मरणशील विचार अंतिम, परम शांति की अवस्था में पहुँच जाता है।

अनंतार-संबंध का अंत।

---

5. समनंतर-पच्चय या निकटवर्ती निकटता का संबंध:

इस संबंध के पच्चय-धम्म और पच्चयुप्पन्न-धम्म का वर्गीकरण, अनंतरपच्चय के वर्गीकरण के समान ही है।

समनंतर को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? समनंतर को 'पूर्ण निकटता' के अर्थ में समझा जाना चाहिए। कैसे? एक पत्थर के स्तंभ में, यद्यपि उसमें मौजूद पदार्थ के समूह एक पिंड में एकजुट प्रतीत होते हैं, फिर भी उनमें सीमा या स्थान का भौतिक गुण मौजूद होता है, क्योंकि पदार्थ सारगर्भित और सृजनशील होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पदार्थ की किन्हीं भी दो इकाइयों के बीच एक स्थान होता है, जिसे मध्यस्थ या गुहा कहा जाता है। परन्तु अभौतिक गुणों के साथ ऐसा नहीं है। मन और मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं के दो क्रमिक समूहों के बीच कोई स्थान, मध्यस्थ या गुहा नहीं होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वे (मन और मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं के समूह) पूरी तरह से किसी भी मध्यस्थता से रहित होते हैं, क्योंकि मानसिक अवस्था सारगर्भित और सृजनशील नहीं होती है। दो क्रमिक मानसिक समूहों और मानसिक सहवर्ती तत्वों के बीच की मध्यस्थता भी संसार को ज्ञात नहीं है। अतः यह माना जाता है कि मन स्थायी, स्थिर, गतिहीन और अपरिवर्तनीय है। अतः 'समानंतर' को 'पूर्ण तात्कालिकता' के अर्थ में समझा जाना चाहिए।

अनंतरत्थ को उपरोक्त संबंध में इस प्रकार भी समझाया गया है: अत्तनो अनंतरे अत्तसदिसस धम्मंतरस उप्पादनत्थेन; ऐसा इसलिए है क्योंकि यह अपने समान घटनाओं की अवस्थाओं को तुरंत बाद घटित होने का कारण बनता है। ऐसा होने पर, निम्नलिखित सुझाव दिया जा सकता है: 'स्थायी विराम'[15] (निरोधसमापत्ति) के समय, पूर्ववर्ती चेतना न तो चेतना है और न ही अचेतना, और अनुवर्ती चेतना आर्य फल की है। चेतना के इन दो वर्गों के बीच, विचार का पूर्ण निलंबन एक दिन, दो दिन, तीन दिन... या यहाँ तक कि सात दिनों के लिए भी होता है। अचेतन प्राणियों के निवास में, पूर्ववर्ती चेतना पिछले कमललोक से मृत्यु (चटचित्त, मरणशील विचार) की होती है; और अनुवर्ती चेतना अगले कमललोक में पुनर्जन्म (पतिसंधिचित्त) की होती है। चेतना के इन दो वर्गों के बीच, अचेतन प्राणी के विचार पूर्णतः पाँच सौ कल्पों के जीवनकाल तक निलंबित रहते हैं।

अतः, क्या यह कहना सही नहीं है कि पूर्ववर्ती चेतना के दोनों वर्गों में तुरंत बाद अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती? इसका उत्तर है: नहीं, उनमें यह क्षमता नहीं होती। कुछ गहन चिंतन और संकल्पों के कारण यह क्षमता कुछ समय के लिए बाधित हो जाती है। जब पूर्ववर्ती विचार समाप्त होते हैं, तो वे अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता के साथ समाप्त हो जाते हैं। और बाद के विचार, उस क्षण में निरंतरता में उत्पन्न होने में असमर्थ होने के कारण, उक्त समय बीतने के बाद ही उत्पन्न होते हैं। यह कहना उचित नहीं है कि उनमें (पूर्ववर्ती विचारों में) अपने समान किसी चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती, या वे अनंत-संबंध नहीं हैं, केवल इस क्षमता के निष्क्रिय होने के कारण। क्योंकि, हम राजा की सेनाओं की बात तब नहीं करते जब वे वास्तव में युद्ध में न हों या लड़ाई की क्रिया में न हों, या जब वे इधर-उधर घूम रही हों और राजा द्वारा उन्हें लड़ने के लिए न कहा गया हो, क्योंकि ऐसे समय में राजा कह सकता है, "मेरे सैनिकों, अभी तुम्हारे लड़ने का उचित समय नहीं है। लेकिन तुम अमुक समय पर लड़ोगे।" तब हम यह नहीं कहते कि वे सेनाएँ नहीं हैं या उनमें युद्ध क्षमता नहीं है। ठीक इसी प्रकार, उपरोक्त दो विचारों के बीच संबंध को समझा जाना चाहिए।

यहाँ कुछ लोग कह सकते हैं: 'इस संबंध में अभी-अभी कहा गया है कि संबंध स्थापित करने वाली और संबंधित वस्तुएँ, निराकार गुण होने के कारण जिनका कोई रूप नहीं है और जिनका बीच में आने वाली किसी भी भौतिक सीमा (स्थान) से कोई संबंध नहीं है, पूरी तरह से मध्यस्थता या रिक्ति से रहित हैं। यदि ऐसा है, तो हम चेतना के हर क्षण उत्पन्न होने और समाप्त होने पर कैसे विश्वास करेंगे, जिसे अरम्मन-पच्चय में घंटा और वायलिन की ध्वनि के उदाहरण से समझाया गया है?' हम इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य को प्रतिपादित करके दे सकते हैं, जो मनोवैज्ञानिक जगत में सर्वथा स्पष्ट है, कि चेतना के विभिन्न वर्ग निरंतर परिवर्तनशील अवस्था में हैं, अर्थात् निरंतर परिवर्तन के क्रम में हैं। चित्त यमका पर लिखे निबंधों में भी इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

समनंतर-संबंधों का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 6.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

6. सहजता-पच्चय या सहअस्तित्व का संबंध:

इस संबंध के पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्मों के वर्गीकरण पर अब चर्चा की जाएगी। चेतना के सभी सहअस्तित्व वाले वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। इसी प्रकार, पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय और मन का आधार, जो पुनर्जन्म के साथ सहअस्तित्व में रहते हैं; और इसी प्रकार, महा तत्व भी परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। पुनर्जन्म के समय कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण और जीवन के दौरान, चेतना की प्रत्येक क्षणिक अवस्था (जो भौतिक गुण उत्पन्न करने में सक्षम है) के आरंभिक क्षण में मन से उत्पन्न सभी भौतिक गुण, उस सहअस्तित्व वाली चेतना के पच्चयुप्पन्न-धम्म कहलाते हैं। महा तत्वों से व्युत्पन्न सभी भौतिक गुणों को महा तत्वों के पच्चयुप्पन्न-धम्म कहा जाता है।

सहजता को किस अर्थ में और पच्चय को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? सहजता का अर्थ सहअस्तित्व है, और पच्चय का अर्थ सहायता प्रदान करना है। यहाँ सहअस्तित्व का अर्थ है कि जब कोई घटना उत्पन्न होती है, तो वह अपने प्रभाव के साथ उत्पन्न होती है; या दूसरे शब्दों में, अपने प्रभाव को भी साथ-साथ उत्पन्न करती है। सहअस्तित्व का यही अर्थ यहाँ निहित है। उदाहरण के लिए, जब सूर्य उदय होता है, तो वह अपनी ऊष्मा और प्रकाश के साथ उदय होता है। और जब मोमबत्ती जलती है, तो वह अपनी ऊष्मा और प्रकाश के साथ जलती है। इसी प्रकार, यह संबंधित वस्तु भी उत्पन्न होने पर संबंधित वस्तुओं के साथ उत्पन्न होती है।

इस उदाहरण में, सूर्य प्रत्येक मानसिक अवस्था के समान है; सूर्य की ऊष्मा सहअस्तित्व वाली मानसिक अवस्थाओं के समान है; और सूर्य का प्रकाश सहअस्तित्व वाले भौतिक गुणों के समान है। इसी प्रकार, सूर्य प्रत्येक महा तत्व के समान है; उसकी ऊष्मा सहअस्तित्व वाले महा तत्वों के समान है; और उसका प्रकाश उनसे उत्पन्न सहअस्तित्व वाले भौतिक गुणों के समान है। मोमबत्ती के उदाहरण में भी इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।

सहजता-संबंध का अंत।

7. अन्नमन्न-पच्चय या पारस्परिकता का संबंध

सहअस्तित्व के वर्गीकरण में जिन पच्चय-धम्मों का उल्लेख किया गया है, वे यहाँ (इस संबंध में) पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म दोनों हैं। चेतना की सभी अवस्थाएँ और उनके मानसिक सहवर्ती, परस्पर पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं; इसी प्रकार सहअस्तित्व में रहने वाले महा तत्व हैं; पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय हैं; और इसी प्रकार मन का आधार या हृदय-आधार है जो पुनर्जन्म के मानसिक समुच्चय के साथ सहअस्तित्व में रहता है।

यहाँ निहित अर्थ को समझना आसान है। हालाँकि, एक उदाहरण देना रोचक होगा। जब तीन छड़ियों को उनके ऊपरी सिरों पर एक दूसरे के सहारे सीधा खड़ा किया जाता है, तो उनमें से प्रत्येक अन्य दो पर निर्भर होती है और अन्य दो से निर्भर होती है। जब तक उनमें से एक इस प्रकार सीधी स्थिति में रहती है, तब तक सभी उसी स्थिति में रहेंगी। और, यदि उनमें से एक भी गिर जाए, तो सभी एक साथ गिर जाएँगे। इस पारस्परिक संबंध को ठीक इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।

यहाँ, यदि कोई यह दावा करे कि चेतना के बिना मानसिक गुण उत्पन्न नहीं हो सकते, तो हम इस बात को स्वीकार करेंगे। क्यों? क्योंकि मानसिक गुणों के संपर्क आदि कार्यों में जानने का कार्य सर्वोपरि है, और सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धम्मपद में, 'मन सर्वोपरि है' (मनोपुब्बंगम धम्म, आदि)। और फिर यदि कोई यह मानता है कि मानसिक गुणों के बिना चेतना भी उत्पन्न नहीं हो सकती, तो हम इस दृष्टिकोण का समर्थन करेंगे। वे (मानसिक गुण) चेतना के सहवर्ती कारक हैं; इसलिए, चेतना भी अपने सहवर्ती मानसिक गुणों के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार चार महा तत्व भी समझे जाने चाहिए। लेकिन उनसे व्युत्पन्न मानसिक गुणों को सहवर्ती कारक नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि वे केवल व्युत्पन्न हैं। तो क्या जीवन के भौतिक गुण और भोजन से उत्पन्न गुण सहवर्ती कारक नहीं हैं, यह

देखते हुए कि वे व्यक्तिगत रूप से नियंत्रण और भोजन के कारण-कार्य संबंध को क्रियान्वित कर सकते हैं? नहीं, वे नहीं हैं। उन्हें सहवर्ती कारक तभी माना जा सकता है जब विकास पूर्ण गति से चल रहा हो, न कि तब जब चीजें केवल उत्पत्ति की अवस्था में हों। इस पारस्परिकता के संबंध में, उत्पत्ति की अवस्था में सहवर्ती कारकों का उत्पन्न होना एक आवश्यक कारक है।

अन्नमन्ना-संबंध का अंत।

रिश्तों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

8. निस्साय पच्चय या आश्रितता संबंध

आश्रितता संबंध तीन प्रकार के होते हैं: सहअस्तित्वगत आश्रितता, पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता और पूर्व-वस्तुगत आधारभूत आश्रितता।

इनमें से सहअस्तित्वगत आश्रितता संबंध क्या है? सहअस्तित्वगत आश्रितता संबंध में वे सभी तत्व समाहित होते हैं जो पहले से ही सहअस्तित्व संबंध में शामिल हैं। अतः, संबंध और संबंधित वस्तुओं के वर्गीकरण को यहाँ उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसे सहअस्तित्व संबंध अनुभाग में बताया गया है।

और पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता संबंध क्या है? छह आधार हैं - आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और हृदय। ये छह आधार, जीवन के दौरान, पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता के माध्यम से, सात ज्ञान तत्वों से कारणिक रूप से संबंधित होते हैं। भौतिक आधार स्वयं पूर्व-अस्तित्व में होता है और आधार या आधारभूत तत्व के रूप में कार्य करता है, इसलिए इसे 'पूर्व-अस्तित्वगत आधारभूत आश्रितता' कहा जाता है। यहां 'आधार' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह मन और मानसिक गुणों के लिए एक आधार या आधारभूत तत्व है। 'पूर्व-अस्तित्व' का अर्थ है पहले से विद्यमान होना—अपने संबंधित विषय से एक विचार-क्षण पहले।

यहां पुनर्जन्म चेतना हृदय आधार[16] पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होती है, क्योंकि उस क्षण कोई पूर्व-अस्तित्व वाला भौतिक आधार नहीं होता। और प्रथम जीवन-सम्क्रम उसी हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो पुनर्जन्म चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होता है। द्वितीय जीवन-सम्क्रम भी हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो प्रथम जीवन-सम्क्रम के साथ सह-अस्तित्व में होता है, और इसी प्रकार शेष भी, अर्थात् तृतीय जीवन-सम्क्रम हृदय आधार पर निर्भरता के साथ उत्पन्न होता है जो द्वितीय जीवन-सम्क्रम के साथ सह-अस्तित्व में होता है, और इसी प्रकार मृत्यु के क्षण तक चलता रहता है। इस प्रकार 'आधारभूत पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' को समझा जाना चाहिए जो संज्ञान के दो तत्वों, बोध तत्व और समझ तत्व से संबंधित है।

जैसे वायलिन तभी बजता है जब वायलिन का धनुष उसके तारों पर चलता है, अन्यथा नहीं, उसी प्रकार पाँचों इंद्रियाँ तभी जागृत होती हैं जब पाँच प्रकार की इंद्रिय-वस्तुएँ पाँच आधारों में प्रवेश करती हैं, अन्यथा नहीं।

यह अनुभूति केवल वस्तु और आधार की स्थिर अवस्था में ही संभव है। इस अनुभूति के कारण जीवन-सम्प्रवाह दो क्षणों के लिए कंपन करता है। और जीवन-सम्प्रवाह के कंपन के कारण बोध उत्पन्न होता है। बोध के कारण पाँचों इंद्रिय-ज्ञान उत्पन्न हो पाते हैं। इसलिए, पाँच इंद्रिय-आधार (आँख, कान, आदि) जो भूतकाल की अवचेतन अवस्था के आरंभिक क्षण में उत्पन्न हुए थे, वे पाँच इंद्रिय-ज्ञान तत्वों के 'मूल पूर्व-अस्तित्व वाले आधार' हैं।

अब, मृत्यु के समय सभी छह आधार सत्रहवीं अवचेतना के आरंभिक क्षण में ही अस्तित्व में आते हैं, जिसकी गणना मरणशील चेतना से पीछे की ओर की जाती है। उस सत्रहवीं अवचेतना के बाद कोई नया आधार उत्पन्न नहीं होता। अतः, मृत्यु के समय, सभी अवचेतना, सभी छह द्वार-प्रक्रिया-ज्ञान और मृत्यु की चेतना इन पर, उनके संबंधित आधारों पर निर्भर होकर उत्पन्न होती हैं, जो उनसे पहले उत्पन्न हुई सत्रहवीं अवचेतना के साथ अस्तित्व में आए थे। यही 'आधारभूत पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारण-कार्य संबंध है।

'आधारभूत वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारण-कार्य संबंध क्या है? जब कोई चिंतन कर रहा होता है और यह विचार रखता है

कि 'मेरा मन लालसा, अहंकार और त्रुटि के कारण स्वयं को उस पदार्थ पर निर्भर पाता है जो मेरा है, या मैं स्वयं, या मेरा अत्ता है'; या जब कोई इस प्रकार तर्क या चिंतन कर रहा हो: 'मेरा मन स्वयं को उस पदार्थ पर निर्भर पाता है जो अनित्य, निर्जीव और आत्माहीन है', तब निर्धारण आदि जैसी मानसिक अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। उस समय, प्रत्येक भौतिक आधार प्रत्येक मानसिक अनुभूति का आधार और वस्तु बन जाता है। अत:, अमुक हृदय-आधार अमुक चेतना और उसके सहवर्ती तत्वों से मूलभूत वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित है। यह 'बुनियादी वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व निर्भरता' का कारणिक संबंध है। अत: निर्भरता का संबंध तीन प्रकार का होता है।

यहाँ, सुत्तंत के माध्यम से निर्भरता का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। हम जानते हैं कि मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि पृथ्वी पर स्थित या विश्राम करते हैं; पृथ्वी बदले में, वायु के विशाल द्रव्यमान पर; और वायु, नीचे के असीम रिक्त स्थान पर। हम यह भी जानते हैं कि मनुष्य घरों में निवास करते हैं; विहारों या मठों में भिक्षु; स्वर्गलोकों में देवता; और इसी प्रकार संपूर्ण ब्रह्मांड। इस प्रकार हमें यह समझना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु किसी न किसी प्रकार से कारणवश संबंधित है।

निस्साय-संबंध का समापन।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

9. उपनिषय-पच्चय या पर्याप्तता का संबंध

पर्याप्तता का संबंध तीन प्रकार का होता है: वस्तुनिष्ठ पर्याप्तता, निकटवर्ती पर्याप्तता और प्राकृतिक पर्याप्तता। इन तीनों में से, पहली वस्तुनिष्ठ प्रभुत्व के समान है, और दूसरी निकटता के समान है।

'प्राकृतिक पर्याप्तता' क्या है? चेतना के सभी भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के वर्ग, आंतरिक और बाह्य, उनके सहवर्ती तत्वों सहित, सभी भौतिक गुण, निर्वाण और अवधारणाएँ (पन्नत्ति), प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं, जो वर्तमान चेतना के सभी वर्गों और उनके सहवर्ती तत्वों से अलग-अलग रूप से संबंधित हैं।

यहाँ, निर्वाण प्राप्त कर चुके बुद्ध, उनका धम्म, उनके पवित्र शिष्यों का समुदाय और मान्यता प्राप्त समुदाय की परंपराएँ, हम बाद की पीढ़ियों के लिए अच्छे कर्मों की खेती के लिए प्राकृतिक पर्याप्तता के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। इसी प्रकार, हमारे पूर्वज, माता-पिता, शिक्षक, ज्ञानी भिक्षु और ब्राह्मण, प्रख्यात दार्शनिक और शक्तिशाली एवं महान राजाओं के रूप में, आने वाली पीढ़ियों से स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए हैं, चाहे वह अच्छे या बुरे गुणों के विकास के लिए हो या सुख या दुख के अनुभव के लिए। इसी कारण उन्होंने आने वाली पीढ़ियों के कल्याण और अन्य लाभों के लिए विभिन्न नैतिक और अनैतिक नियम और कहावतें तथा सांसारिक संस्थाएँ स्थापित कीं या प्रतिपादित कीं। आने वाली पीढ़ियाँ भी उनके मार्ग का अनुसरण करती हैं और दान-पुण्य करके, उपदेशों का पालन करके, संसार के नैतिक और सामाजिक नियमों का अभ्यास करके, विभिन्न धार्मिक मान्यताओं का पालन करके, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय अपनाकर, कला और विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करके, गाँवों, कस्बों और शहरों का शासन करके, खेतों में कृषक बनकर, झीलें, तालाब और कुएँ खोदकर, घर बनाकर, गाड़ियाँ और रथ बनाकर, नावें, स्टीमर और जहाज बनाकर, और चाँदी, सोना, बहुमूल्य पत्थर, मोती आदि धन की खोज और संचय करके उनकी परंपराओं को अपनाती हैं। इस प्रकार संसार का निरंतर विकास हुआ है।

भविष्य के बुद्ध (मत्तेय), उनका धम्म और उनका बंधुआ समुदाय वर्तमान पीढ़ी से कारणवश संबंधित होने के कारण सद्गुणों की प्राप्ति और पुण्य कमाने के लिए स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं। सर्वोच्चता, धन, शक्ति, समृद्धि—जो भविष्य में प्राप्त होने वाली हैं—वे भी वर्तमान पीढ़ी के लिए सभी प्रकार के प्रयासों को करने हेतु स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं। सुखमय जीवन और धन की प्राप्ति तथा पथ, फल और निर्वाण की प्राप्ति—जो भविष्य में प्राप्त होने वाली हैं—वे भी वर्तमान पीढ़ी के लिए दान, सद्गुण आदि गुणों के विकास हेतु स्वाभाविक रूप से पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं।

सर्दियों में फसल काटने की उम्मीद में, लोग बरसात के मौसम में ज़मीन जोतते और बीज बोते हैं, या श्रम और बुद्धि से प्रेरित कई तरह के

काम करते हैं, इस उम्मीद में कि काम पूरा होने पर उन्हें धन मिलेगा। अब, फसल काटना और धन प्राप्त करना, भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं, जो फसल और धन की प्राप्ति से संबंधित हैं। इसी प्रकार, अधिकांश लोग वर्तमान जीवन में कई अच्छे कर्म करते हैं, यह जानते हुए कि उन्हें परलोक में अपने कर्मों का फल मिलेगा। इस स्थिति में, भविष्य में प्राप्त होने वाले फल, वर्तमान जीवन में किए गए कर्मों से संबंधित भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं। अतीत में किए गए कर्म भी भविष्य में प्राप्त होने वाले फलों से संबंधित अतीत की प्राकृतिक पर्याप्तताएँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भविष्य की प्राकृतिक पर्याप्तता अतीत की तरह ही व्यापक और विस्तृत है।

जीवित बुद्ध, उनका धर्म, इत्यादि वर्तमान प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति हैं, क्योंकि वे वर्तमान जीवित मनुष्यों, देवताओं और ब्रह्माओं से संबंधित हैं, और इस प्रकार जीवित पुत्रों और पुत्रियों के जीवित माता-पिता हैं, इत्यादि। इस प्रकार वर्तमान प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति स्पष्ट और समझने में आसान है।

आंतरिक प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति वे हैं जो किसी सजीव व्यक्ति में विद्यमान होती हैं, जैसे बुद्ध, इत्यादि। बाह्य प्राकृतिक पर्याप्तता की स्थिति वे स्थितियाँ हैं, जैसे भूमि, पर्वत, नदियाँ, महासागर, इत्यादि, जो जीवन (चेतन प्राणियों) के अस्तित्व के लिए विश्राम स्थल के रूप में कार्य करती हैं; या जैसे वन, वृक्ष, घास, अनाज, फलियाँ, इत्यादि; या जैसे चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, तारे, इत्यादि; या जैसे वर्षा, अग्नि, वायु, शीत, ताप, इत्यादि, जो किसी न किसी रूप में जीवन के लिए उपयोगी और लाभकारी हैं। ये सभी अधिक शक्तिशाली पर्याप्तता की स्थितियाँ हैं, चाहे अच्छे कर्मों की प्राप्ति के लिए हों या बुराई के प्रसार के लिए। या तो सुखों के भोग के लिए या दुखों के कष्ट सहने के लिए।

जो लोग वर्तमान जीवन में निर्वाण प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखते हैं, वे ज्ञानोदय के कारकों पर कार्य करते हैं। जो लोग आने वाले जन्मों में, जब बुद्ध प्रकट होंगे, निर्वाण प्राप्त करने की प्रबल आशा रखते हैं, वे पूर्णता की प्राप्ति करते हैं। यहाँ, निर्वाण इन कार्यों के अभ्यास के लिए अधिक शक्तिशाली पर्याप्त शर्त है।

बुद्ध के त्रिपिटकों में पाए जाने वाले या आमतौर पर प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के विचार या नाम-और-अवधारणाएँ भी अनेक चीजों को समझने के लिए पर्याप्त शर्तें हैं।

वास्तव में, यहाँ सभी सशर्त वस्तुएँ तभी अस्तित्व में आती हैं जब उनके लिए वर्तमान कारण या परिस्थितियाँ मौजूद हों, अन्यथा नहीं। और वे तभी स्थिर रहती हैं जब उनके अस्तित्व के लिए वर्तमान कारण हों; अन्यथा वे नहीं रहतीं। इसलिए, उनके उद्‌भव और उनके रखरखाव के लिए कारणों या परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। हालाँकि, निर्वाण और विचार ऐसी वस्तुएँ हैं, जो बिना शर्त, बिना जन्म और उत्पत्ति के, शाश्वत और अनंत हैं। इसलिए, उनके उद्‌भव और रखरखाव के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है।[17]

नैतिक, नैतिक से कारणिक रूप से संबंधित है, जो एक पर्याप्त शर्त है। इसका स्पष्ट वर्णन पट्ठाना में मिलता है, जहाँ कहा गया है: "विश्वास के द्वारा दान दिया जाता है, नियमों का पालन किया जाता है, इत्यादि।" इसी प्रकार, नैतिक और अनैतिक—या अनिर्दिष्ट[18] या अनैतिक—के बीच पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक संबंध इन व्याख्याओं से स्पष्ट होता है: "वासना के कारण हत्या, चोरी इत्यादि की जाती है," और "उपयुक्त जलवायु और भोजन के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य इत्यादि प्राप्त होता है।" नैतिक, अनैतिक से भी एक अधिक सशक्त पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित है। यह निम्नलिखित व्याख्या से समझा जा सकता है: "कोई दान दे सकता है और इस प्रकार स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखा सकता है। उसी प्रकार, नियमों का पालन करके, मन की एकाग्रता प्राप्त करके और ज्ञान अर्जित करके, कोई स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखा सकता है।"

नैतिक गुण अनैतिक गुणों से भी अधिक प्रबल कारणवश संबंधित हैं। चारों लोकों (काम, रूप, अरूप और लोकउत्तर) में किए गए सभी अच्छे कर्म और अच्छे कर्मों से जुड़े सभी कार्य, अधिक प्रबल कारणवश, भविष्य में उत्पन्न होने वाले अनैतिक गुणों से संबंधित हैं। दान की सिद्धि का अभ्यास करने वाले शारीरिक और मानसिक पीड़ा सहते हैं। इसी प्रकार, नैतिकता, त्याग, ज्ञान, दृढ़ता, धैर्य, निष्ठा, संकल्प, प्रेम और त्याग जैसे अन्य गुणों (परमिता) का अभ्यास करने वाले भी यही पीड़ा सहते हैं। ध्यान और मार्ग (अलौकिक विचार और आध्यात्मिक मार्ग) का अभ्यास करने वालों के साथ भी यही स्थिति है।

अनैतिक गुण भी अधिक प्रबल कारणवश नैतिक गुणों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, इस पृथ्वी पर कुछ लोग, गलत कर्म करके, अपने कर्मों का पश्चाताप करते हैं और दान, धर्मोपदेशों का पालन, ध्यान और ध्यान जैसे नैतिक कार्यों को अपनाकर ऐसे सभी बुरे कर्मों से दूर रहने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार, उनके द्वारा किए गए बुरे कर्म, एक प्रबल कारण के रूप में, उनके द्वारा बाद में अपनाए गए नैतिक कर्मों से संबंधित हैं।

इसी प्रकार, अनैतिक कर्म, एक अधिक प्रबल कारण के रूप में, अनैतिक कर्मों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, इस संसार में बहुत से लोग, बुरे कर्मों के दोषी होने के कारण, दुख के चार लोकों में से किसी एक में गिरने और वहाँ व्याप्त कष्टों को भोगने के लिए नियत हैं। यहाँ तक कि वर्तमान जीवन में भी, कुछ लोगों को अपने या दूसरों के कुकर्मों के कारण अत्यधिक कष्ट सहना पड़ता है। वहीं, कुछ लोग अपने कुकर्मों से अर्जित धन से अनेक प्रकार के सुखों का आनंद लेते हैं। ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो काम, घृणा, त्रुटि, अहंकार आदि के कारण बहुत कष्ट भोगते हैं।

अनैतिकताएँ भी नैतिक गुणों से अधिक प्रबल पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। अपार धनवान होने पर व्यक्ति दान करता है, अच्छे नैतिक गुणों की पूर्णता के लिए अभ्यास करता है, ज्ञान का संवर्धन करता है और किसी उपयुक्त स्थान, जैसे कि मठ, एकांत स्थान, गुफा, वृक्ष, वन, पहाड़ी या गाँव में धार्मिक अनुष्ठान करता है, जहाँ की जलवायु अनुकूल हो और भोजन उपलब्ध हो।

अनैतिकताएँ भी अनैतिकता से अधिक प्रबल पर्याप्त शर्त के रूप में कारणिक रूप से संबंधित हैं। आँखों के होने से अनेक बुराइयाँ स्वयं में दृष्टि के कारण उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार हमारे कानों आदि के संबंध में भी यही व्याख्या लागू होती है; इसी प्रकार हाथों, पैरों, तलवारों, शस्त्रों आदि के संबंध में भी। इस प्रकार पर्याप्त शर्त तीन प्रकार की होती है।

सुत्तंत[19] के अनुसार पर्याप्त शर्त का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। पिटक ग्रंथों में अनेक ऐसे अंश मिलते हैं, जैसे "पुण्य मित्रों के साथ संगति से", "पापी साथियों के साथ संगति से", "गाँव में निवास करने से", "वन में निवास करने से", इत्यादि। संक्षेप में, पंच-नियमधम्म (पाँच ब्रह्मांडीय व्यवस्थाएँ) सजीव जगत, निर्जीव जगत और आकाश जगत - इन तीनों लोकों के लिए युगों-युगों तक निरंतर बने रहने के लिए प्रबल और पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं।

अरम्मनुपनिस्सय को ऐसा क्यों कहा जाता है? क्योंकि प्रमुख वस्तु कर्ता (अरम्मनिक) के लिए मुख्य आधार का कार्य करती है।

अनतरूपनिस्सय को ऐसा क्यों कहा जाता है? क्योंकि पूर्ववर्ती चेतना अपने तत्काल अनुवर्ती चेतना के उद्भव के लिए मुख्य आधार का कार्य करती है। पूर्ववर्ती चेतना माता के समान है, और अनुवर्ती चेतना पुत्र के समान। यहां, जैसे माता पुत्र को जन्म देती है जिसका अस्तित्व विशेष रूप से माता पर निर्भर करता है, वैसे ही पूर्ववर्ती चेतना अनुवर्ती चेतना को जन्म देती है जिसका अस्तित्व विशेष रूप से पूर्ववर्ती पर निर्भर करता है।

पकातुपानिसया को ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह स्वाभाविक रूप से बुद्धिमानों द्वारा एक विशिष्ट पर्याप्त स्थिति के रूप में जाना जाता है। यहां, कुछ और कहना आवश्यक है। निकटता में एक पर्याप्त स्थिति का प्रभाव केवल उसके तत्काल अनुवर्ती को ही प्रभावित करता है, जबकि एक प्राकृतिक पर्याप्त स्थिति का प्रभाव कई दूरस्थ स्थितियों को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, जो कुछ इस वर्तमान जीवन में दिनों, महीनों, वर्षों पहले देखा, सुना, सूंघा, चखा, छुआ और अनुभव किया गया है, वह सौ वर्षों के बाद भी मन के द्वार पर पुनः प्रकट होता है, यदि कोई पर्याप्त कारण उपलब्ध हो। और इसलिए लोग अपने अतीत को याद करते हैं, और "मैंने इसे पहले देखा था", "मैंने इसे पहले सुना था", आदि जैसे भाव व्यक्त कर सकते हैं। ये प्राणी, जिनका जन्म आभासीय[21] है, अपने पूर्व जन्मों को भी याद करते हैं; इसी प्रकार, कुछ मनुष्य, जिन्हें अपने पूर्व जन्मों की स्मृति का वरदान प्राप्त है, ऐसा कर सकते हैं। यदि पूर्व में अनुभव की गई एक लाख वस्तुओं में से एक भी वस्तु बाद में फिर से मिल जाए, तो कई या शायद,ये सभी विचार प्रक्रिया में पुनः प्रकट होते हैं।

उपनिषय संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 10.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

10. पुरेजात-पच्चय या पूर्व-अस्तित्व का संबंध

पूर्व-अस्तित्व के संबंध तीन प्रकार के होते हैं: मूल पूर्व-अस्तित्व, वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व और मूल वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व।

इनमें से पहले और अंतिम प्रकार पर निस्साय-संबंध पर पिछले खंड में निस्साय शीर्षक के अंतर्गत चर्चा की जा चुकी है।

वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व वर्तमान अठारह प्रकार के भौतिक गुणों को दिया गया नाम है जो निप्पन्न श्रेणी के हैं। इनमें से, वर्तमान पाँच वस्तुएँ (दृश्य रूप, ध्वनि, इत्यादि) वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व के माध्यम से उन विचारों से कारणिक रूप से संबंधित हैं जो पंचद्वार प्रक्रियाओं में भाग लेने में सक्षम हैं। जैसे वायलिन की ध्वनि केवल धनुष से बजाने पर ही उत्पन्न होती है, और ध्वनि उत्पन्न होने के लिए वायलिन के तारों और धनुष दोनों का पूर्व अस्तित्व आवश्यक है, उसी प्रकार वे विचार जो पंच-द्वार प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं, पाँच इंद्रियों के पाँच द्वारों पर पाँच वस्तुओं की उपस्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं, जो पाँच आधारों के अलावा और कुछ नहीं हैं। यह उपस्थिति तभी संभव है जब द्वार और वस्तु अपनी स्थिर अवस्था में हों। वे पाँच वस्तुएँ न केवल उस स्थिर अवस्था में पाँच इंद्रियों के पाँच द्वारों पर प्रकट होती हैं, बल्कि वे मन के द्वार पर भी प्रकट होती हैं। इसी कारण जीवन-संचलन दो क्षणों के लिए कंपन करता है, और फिर रुक जाता है; और जीवन-संचलन का रुकना चेतना-श्रृंखला को जन्म देता है। ऐसा होने पर, किसी भी प्रक्रिया में चेतना-श्रृंखला वस्तुओं और आधारों के पूर्व अस्तित्व के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। अठारह प्रकार के निर्धारित भौतिक गुण या तो भूतकाल के होते हैं, क्योंकि वे समाप्त हो चुके हैं; या भविष्यकाल के होते हैं, क्योंकि वे अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं; या वर्तमान काल के होते हैं, क्योंकि वे अभी विद्यमान हैं। ये सभी, बिना किसी भेद के, मन के ज्ञान के विषय हो सकते हैं। परन्तु, इनमें से केवल वर्तमान काल के विषय ही वस्तुनिष्ठ पूर्व-अस्तित्व के रूप में कार्य करते हैं। और यदि कोई वस्तु जो किसी दूर स्थान पर हो, या दृष्टि से छिपी हो, स्वयं विद्यमान होकर मन का विषय बन जाती है, तो उसे भी वर्तमान काल का विषय कहा जा सकता है।

पुरेजात संबंध का अंत।

---

11. पच्छाजात-पच्चया या उत्तर-अस्तित्व का संबंध:

प्रत्येक परवर्ती चेतना जो अस्तित्व में आती है, वह चार मूलों[22] (कर्म, चित्त, उतु, आहार) से उत्पन्न पूर्ववर्ती शारीरिक गुणों के समूह से परवर्ती अस्तित्व के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होती है, और उनके विकास और संवर्धन में सहायता करती है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक वर्ष गिरने वाला वर्षाजल, पिछले वर्षों में उगी वनस्पतियों को परवर्ती अस्तित्व के माध्यम से उनकी वृद्धि और विकास में सहायता करता है।

यहाँ, "प्रत्येक परवर्ती चेतना" से तात्पर्य प्रथम जीवन-निरंतरता से लेकर अंतिम मृत्यु-विचार तक की सभी चेतनाओं से है। और, "पूर्ववर्ती शारीरिक गुणों" से तात्पर्य चार मूलों से उत्पन्न सभी शारीरिक गुणों से है, जो कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों के समूह से शुरू होते हैं, जो पुनर्जन्म की अवधारणा के साथ सह-अस्तित्व में हैं।

पुनर्जन्म-गर्भधारण के बाद उत्पन्न होने वाली पहली जीवन-गर्भधारण अवस्था से क्रमानुसार प्रारंभ होने वाली जीवन-गर्भधारण की पंद्रह अवस्थाएँ, पुनर्जन्म-गर्भधारण के साथ सह-अस्तित्व में रहने वाले कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों के समूह से उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। पुनर्जन्म-गर्भधारण के संबंध में, यह उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक संबंध नहीं हो सकता, क्योंकि यह कर्म से उत्पन्न शारीरिक गुणों के समूह के साथ सह-अस्तित्व में रहता है। इसी प्रकार, सोलहवीं जीवन-गर्भधारण अवस्था उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से कारणिक संबंध नहीं बन सकती, क्योंकि यह तभी अस्तित्व में आती है जब भौतिक गुणों का वह समूह विघटन की अवस्था में पहुँच जाता है। अत:, ये "जीवन-गर्भधारण की पंद्रह अवस्थाएँ" हैं जो उपरोक्त अनुसार कारणिक रूप से संबंधित हैं।

पुनर्जन्म-गर्भधारण के स्थिर क्षण में, कर्म से उत्पन्न और ताप से उत्पन्न भौतिक गुणों के दो समूह उत्पन्न होते हैं;[23] और यही स्थिति रुके हुए क्षण में भी होती है। लेकिन जीवन की पहली निरंतरता के आरंभिक क्षण में, तीन समूह उत्पन्न होते हैं: कर्म से उत्पन्न, तापमान से उत्पन्न और मन से उत्पन्न। जब खाए गए भोजन का ओज (पोषक तत्व) पूरे शरीर में फैलता है, तो शारीरिक पोषक तत्व उत्तेजक को अवशोषित कर लेता है और भौतिक गुणों का एक समूह उत्पन्न करता है। उस समय से, चारों मूलों द्वारा उत्पन्न समूह जलते हुए दीपक

की लौ की तरह निरंतर उत्पन्न होते रहते हैं। आरंभिक क्षण को छोड़कर, जब तक ये समूह अपनी स्थिर अवस्था में रहते हैं, चेतना के बाद के पंद्रह वर्ग उत्तर-अस्तित्व के माध्यम से उनकी सहायता करते हैं।

वुद्धिविरुल्लाह का अर्थ है "चार मूलों से उत्पन्न शारीरिक गुणों की श्रृंखला के क्रमिक विकास और प्रगति के लिए।" इसलिए, यदि वे चारों प्रकार के शारीरिक समूह, परलोक के कारण-कार्य संबंध से बार-बार संबंधित होते हैं (शाब्दिक रूप से, बार-बार प्राप्त करते हैं), तो वे अपने भौतिक जीवन काल की समाप्ति के बाद एक शक्तिशाली ऊर्जा छोड़ जाते हैं - एक ऐसी ऊर्जा जो बाद के समूहों की श्रृंखला के विकास, प्रगति और समृद्धि को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है।

पचजाता-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 12.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

12. **असेवन-पच्चय या आनुवांशिक पुनरावृत्ति का संबंध**

बारह प्रकार की अनैतिक चेतना, सत्रह प्रकार की नैतिक चेतना और अठारह प्रकार की निष्क्रिय चेतना (बीस में से दो प्रकार की चेतना, जिन्हें अवज्जन कहा जाता है, को छोड़कर प्राप्त) सहित सैंतालीस प्रकार की सांसारिक अनुभूतियों को यहाँ आनुवांशिक पुनरावृत्ति का कारण-कार्य संबंध कहा गया है। जब इनमें से कोई भी अनुभूति प्रक्रिया (अर्थात, विचार प्रक्रिया में चेतना की सात समान अवस्थाओं का क्रम) तक पहुँचता है, तो प्रत्येक पूर्ववर्ती अनुभूति आनुवांशिक पुनरावृत्ति के माध्यम से प्रत्येक अनुवर्ती अनुभूति से कारण-कार्य संबंध स्थापित करती है। संबंधित वस्तुएँ, पच्चयुप्पन-धम्म, ऊपर वर्णित अनुवर्ती अनुभूतियों के साथ-साथ चार मार्गों को भी समाहित करती हैं।

असेवन शब्द को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसका अर्थ है निरंतर दोहराव से अभ्यस्त होना या अपने पच्चयुप्पन्न-धम्म में इसकी प्रेरणा को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना, ताकि वे अधिकाधिक निपुणता, ऊर्जा और बल प्राप्त कर सकें। यहाँ 'पगुणभाव' का अर्थ है बाद के बोधात्मक विचारों की बोधात्मक क्रियाओं और अवस्थाओं में निपुणता; जैसे कोई व्यक्ति किसी पाठ को कई बार पढ़ता है तो प्रत्येक बार पढ़ने पर अधिक निपुण हो जाता है।

'परिवासो' का शाब्दिक अर्थ है सुगंधित करना या प्रेरित करना। जैसे रेशमी वस्त्र को मीठी सुगंधों से सुगंधित किया जाता है, वैसे ही विचार शरीर भी, एक प्रकार से, काम, घृणा आदि से; या अनासक्ति (अरज्जन), मित्रता (अदुस्सना) आदि से सुगंधित या प्रेरित होता है। यद्यपि पूर्ववर्ती बोध समाप्त हो जाता है, उसकी बोधात्मक शक्ति समाप्त नहीं होती; अर्थात्, उसकी शक्ति बाद के विचार में व्याप्त रहती है। इसलिए, प्रत्येक आगामी बोध, अस्तित्व में आने पर, पूर्ववर्ती बोध की अभ्यस्तता के कारण अधिक प्रबल हो जाता है। इस प्रकार, तत्काल पूर्ववर्ती विचार अपने तत्काल अनुवर्ती विचार को अभ्यस्त कर देता है या उसे अपनी अभ्यस्तता स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। हालांकि, अभ्यस्त पुनरावृत्ति की प्रक्रिया आमतौर पर सातवें विचार पर रुक जाती है, जिसके बाद या तो विचार प्रतिधारण के परिणामी क्षण आते हैं, या जीवन-निरंतरता में समाहित हो जाते हैं।

यहां, सुत्तंत में वर्णित नियमित पुनरावृत्ति का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। सुत्त पिटक के विभिन्न भागों में अनेक श्लोक मिलते हैं। जैसे: सतिपथानां भवेति: "मनन में गंभीर परिश्रम का अभ्यास करना"; सम्मप्पधानं भवेति: "सर्वोच्च प्रयास का अभ्यास करना"; सति-संबोज्जंगं भवेति: "ज्ञान प्राप्ति के कारक, मनन का अभ्यास करना"; धम्मविचय-संबोज्जंगं भवेति: "ज्ञान प्राप्ति के कारक, सत्य की खोज का अभ्यास करना"; सम्मदित्तिम भवेति: "सही दृष्टिकोण का अभ्यास करना"; सम्मसंकप्पं भवेति: "सही आकांक्षा का अभ्यास करना" आदि। इन अंशों में, "भवेति" से तात्पर्य है प्रयास को एक दिन, सात दिन, एक माह, सात माह, एक वर्ष या सात वर्षों तक दोहराना।

नैतिक और अनैतिक कर्म, जो बार-बार किए गए हों या पूर्व जन्मों में अनेक बार किए गए हों, वर्तमान जन्म के नैतिक और अनैतिक कर्मों से आनुवांशिक पुनरावृत्ति के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित होते हैं, जिससे उनमें क्रमशः अधिक सुधार और गिरावट आती है।

वह संबंध जो किसी दूर के समय या भविष्य के जन्म में ऐसे नैतिक और अनैतिक कर्मों में क्रमशः सुधार और गिरावट लाता है, उसे पर्याप्तता कहा जाता है, परन्तु वह संबंध जो केवल प्रत्यक्ष अनुभव के दौरान ऐसा करता है, उसे आनुवांशिक पुनरावृत्ति कहा जाता है।

इस संसार में, कला, विज्ञान, साहित्य आदि में महान उपलब्धियों के अनेक आकस्मिक परिणाम या प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं, जो विचार, वचन और कर्म द्वारा निरंतर, बार-बार और निरंतर रूप से किए गए हैं।

इस प्रकार सभी क्षणभंगुर घटनाओं में पुनरावृत्ति का ऐसा ही संबंध पाया जाता है, और लंबे समय तक किए गए पुरुष उत्साह और प्रयास से इतनी उच्च कोटि का विकास हुआ है कि अनेक महान और कठिन कार्य पूर्ण रूप से संपन्न हुए हैं और यहाँ तक कि बुद्धत्व भी प्राप्त हुआ है।

असेवन-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 13.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

13. कर्म-पच्चय या कर्म का संबंध (संस्कृत: कर्म)

कर्म का संबंध दो प्रकार का होता है: सह-अस्तित्व वाला कर्म और अतुल्यकालिक कर्म।

इन दोनों में से, सभी इच्छाएँ, नैतिक, अनैतिक और अनैतिक, जो तीन काल-अवस्थाओं से युक्त हैं, सह-अस्तित्व वाले कर्म के कारण-कार्य संबंध का निर्माण करती हैं। इनसे संबंधित वस्तुएँ हैं: चेतना के सभी वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती जो इच्छा के साथ सह-अस्तित्व में हैं; कर्म से उत्पन्न भौतिक गुण, जो पुनर्जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं, और जीवनकाल के दौरान मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण।

भूतकाल की नैतिक और अनैतिक इच्छाएँ अतुल्यकालिक कर्म के कारण-कार्य संबंध का निर्माण करती हैं। इनसे संबंधित वस्तुएँ सांसारिक परिणामी चेतना के सैंतीस वर्ग और उनके मानसिक सहवर्ती, और कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण हैं।

कर्म को ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे इसके विशिष्ट कार्य के कारण ऐसा कहा जाता है। यह विशिष्ट कार्य स्वयं इच्छाशक्ति (या संकल्प) ही है, और यह प्रत्येक क्रिया पर हावी रहती है। जब भी विचार, शब्द या शरीर की कोई क्रिया होती है, तो इच्छाशक्ति (या संकल्प) ही उसके साथ होने वाली क्रियाओं को निर्धारित करती है, उन्हें आकार देती है या उन्हें एक साथ अपने-अपने कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इसी कारण, सभी क्रियाओं में इच्छाशक्ति को सर्वोपरि कहा जाता है। अतः, कर्म को उसके विशिष्ट कार्य के कारण ऐसा कहा जाता है। या, इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, कर्म वह है जिसके द्वारा प्राणी क्रिया करते हैं। तो वे क्या करते हैं? वे शारीरिक कार्य, वाक् कार्य और मानसिक कार्य करते हैं। यहाँ, "शारीरिक कार्य" से तात्पर्य खड़े होना, बैठना आदि; आगे-पीछे चलना आदि; और यहाँ तक कि पलकों का खुलना और बंद होना भी है। वाक् कार्य का अर्थ है ध्वनि उत्पन्न करना। मानसिक कार्य का अर्थ है बुद्धिमानी से या बुरी तरह सोचना, और संक्षेप में, पाँचों इंद्रियों द्वारा देखना, सुनना आदि क्रियाएँ करना। इस प्रकार, प्राणियों की सभी क्रियाएँ इसी इच्छाशक्ति द्वारा निर्धारित होती हैं। अतः इसे कर्म कहा जाता है।

सहजता वह है जो अपने संबंधित पदार्थों के साथ एक साथ अस्तित्व में आती है। सहजतकम्मा सह-अस्तित्ववान पदार्थ होने के साथ-साथ कर्म भी है। सहजतकम्मा-पच्चय सह-अस्तित्ववान कर्म के माध्यम से (अपने प्रभावों से) स्थापित एक कारण-कार्य संबंध है।

नानकणिकम् वह पदार्थ है जो अपने प्रभावों से समय के संदर्भ में भिन्न होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस समय संकल्प उत्पन्न होता है वह एक समय है और जिस समय उसके प्रभाव घटित होते हैं वह दूसरा समय है; दूसरे शब्दों में, संकल्प अतुल्यकालिक है। अतः अतुल्यकालिक संकल्प वह संकल्प है जो अपने प्रभावों से समय के संदर्भ में भिन्न होता है। इसलिए नानकणिककम्मापच्चय अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से (अपने प्रभावों से) स्थापित एक कारण-कार्य संबंध है। आर्य पथ के साथ सह-अस्तित्व में रहने वाला

संकल्प, उसके समाप्त होने के क्षण में ही, तुरंत अपना प्रभाव उत्पन्न करता है, अतः वह भी अतुल्यकालिक है।

यहां, उदाहरण के लिए, दान जैसी नैतिक इच्छाशक्ति, अपने सह-अस्तित्व वाले मन और मानसिक गुणों के साथ-साथ उसी मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से सह-अस्तित्व वाले कर्म के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी होती है। यह अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से उस कर्म से उत्पन्न मन और भौतिक गुणों के परिणामी समुच्चय से भी कारणिक रूप से जुड़ी होती है, जो भविष्य में एक दूर के समय में अस्तित्व में आएगा। इस प्रकार, एक इच्छाशक्ति, जो नैतिक और अनैतिक परिणामों वाले कर्म में परिवर्तित होती है, दो अलग-अलग समयों पर दो अलग-अलग संबंधों के माध्यम से अपने संबंधित पदार्थों से कारणिक रूप से जुड़ी होती है।

इस अतुल्यकालिक कर्म संबंध में, कर्म एक विशिष्ट ऊर्जा का प्रतीक है। यह इच्छाशक्ति के समाप्त होने पर भी समाप्त नहीं होती, बल्कि मन के अनुक्रमों का अप्रत्यक्ष रूप से अनुसरण करती है। जैसे ही इसे अनुकूल अवसर मिलता है, यह मरणशील विचार के समाप्त होने के तुरंत बाद, अगले जन्म में स्वयं को एक व्यक्ति के रूप में परिवर्तित करके प्रभावी हो जाती है। लेकिन, यदि इसे कोई अनुकूल अवसर न मिले, तो यह सैकड़ों जन्मों तक उसी सुप्त अवस्था में रहता है। यदि इसे अनुकूल अवसर मिल जाए, तो ब्रह्मलोक में अगले जन्म में "उत्कृष्ट कर्म" का प्रभाव दिखाई देता है, जब यह स्वयं को ब्रह्मदेव के रूप में रूपांतरित कर लेता है, और इतना परिपक्व हो जाता है कि इस दूसरे जन्म के अंत में यह स्वयं को समाप्त कर लेता है और आगे नहीं बढ़ता।

कर्म-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 14.पत्थनुद्देसा दीपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

14. **विपाक-पच्चय या प्रभाव का संबंध:**

परिणामी चेतना के छत्तीस वर्ग और उनके सहवर्ती, प्रभाव का संबंध हैं। चूंकि वे एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं, इसलिए संबंधित वस्तुएं उन सभी को समाहित करती हैं, साथ ही गर्भाधान के समय कर्म से उत्पन्न भौतिक गुणों और जीवनकाल में परिणामी चेतना द्वारा उत्पन्न गुणों को भी।

विपाक किस अर्थ में लागू होता है? यह विपच्चन के अर्थ में लागू होता है, जिसका अर्थ है शैशवावस्था या युवावस्था से परिपक्वता की अवस्था में परिवर्तन। किसकी कोमलता और परिपक्वता का तात्पर्य है? पूर्व से तात्पर्य अतीत की इच्छा की शैशवावस्था से है, जिसे अतुल्यकालिक कर्म के रूप में जाना जाता है। परिपक्वता से भी उसी कर्म की परिपक्वता का तात्पर्य है।

यहां यह समझा जाना चाहिए कि प्रत्येक इच्छा की चार अवस्थाएं या समय-चरण होते हैं - चेतना अवस्था, या इच्छा की उत्पत्ति; कर्म अवस्था, या इच्छा की निरंतरता; निमित्तवत्था, यानी इच्छा का निरूपण, और विपकवत्था, यानी अंतिम परिणाम। यहाँ, यद्यपि इच्छा स्वयं समाप्त हो जाती है, उसका विशिष्ट कार्य समाप्त नहीं होता, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से विचारों की श्रृंखला का अनुसरण करता है। इसे कर्मवत्था, या इच्छा की निरंतरता कहा जाता है।

जब कर्म को फलित होने का अनुकूल अवसर मिलता है, तो वह मरने वाले व्यक्ति को स्वयं को प्रकट करता है। अर्थात्, वह स्वयं ऐसा अनुभव करता है जैसे वह दान दे रहा हो, नियमों का पालन कर रहा हो, या शायद किसी प्राणी का वध कर रहा हो। यदि यह कर्म स्वयं को प्रकट करने में विफल रहता है, तो उसका एक प्रतीक प्रकट होता है। अर्थात्, वह स्वयं ऐसा अनुभव करता है जैसे उसके पास भेंट, उपहार, शस्त्र आदि हों; या कोई भी ऐसी वस्तु जिससे उसने अतीत में ऐसा कर्म किया हो। या, कभी-कभी, उसे अगले जन्म का संकेत प्रकट होता है जहाँ उसे अपना नया जीवन प्रारंभ करना होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि देवों के निवास या महल, निरय लोक की अग्नि, या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ, जिन्हें अगले जन्म में प्राप्त करना या अनुभव करना उसके भाग्य में लिखा होगा, छह द्वारों से होकर प्रस्तुति के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। इन्हें निमित्तवत्थ कहा जाता है, जो संकल्प का निरूपण है।

अब, हम विपकवत्थ को कैसे समझें? यदि कोई व्यक्ति इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक पर ध्यान केंद्रित करते हुए मर जाता है, चाहे कर्म पर, उसके चिन्ह पर, या भाग्य के चिन्ह पर, तो कहा जाता है कि कर्म ने नए जन्म में अपना प्रभाव डाला है, या फलीभूत

हुआ है। यह एक व्यक्तित्व में रूपांतरित हो जाता है, और नए जन्म में एक प्राणी के रूप में प्रकट होता है। इसे विपकवत्थ, या अंतिम परिणाम कहा जाता है। यहाँ, पहले तीन अवस्थाओं में, इच्छाशक्ति को शैशवावस्था या युवावस्था में कहा गया है।[24] अंतिम अवस्था दर्शाती है कि इच्छाशक्ति परिपक्व हो गई है, और अपना प्रभाव डाल सकती है। इसलिए, जैसा कि कहा गया है, विपच्चन का अर्थ है शैशवावस्था या युवावस्था से परिपक्वता की अवस्था में परिवर्तन। इस प्रकार विपक चेतना की अवस्थाओं और उनके सहवर्ती तत्वों का नाम है, जो इच्छाओं के परिणाम हैं, या स्वयं परिपक्व इच्छाओं का नाम है।

जैसे पके हुए आम बेहद नरम और कोमल होते हैं, वैसे ही उनसे उत्पन्न अवस्थाएँ भी अत्यंत शांत होती हैं, क्योंकि वे निष्क्रिय होती हैं और उनमें कोई उत्तेजना नहीं होती। वे इतनी शांत होती हैं कि अवचेतन मन के विषय हमेशा धुंधले और अस्पष्ट होते हैं। अवचेतन मन से जागृत होने पर व्यक्ति को यह चेतना नहीं रहती कि वह विषय क्या था। इसी कारण, ऐसी विचार प्रक्रिया का होना संभव नहीं है जो अवचेतन के विषय को इस प्रकार प्रतिबिंबित कर सके: "अमुक वस्तु का सामना पिछले जन्म में हुआ था"—यद्यपि, रात्रि के समय नींद में, अवचेतन तीन प्रकार की वस्तुओं (कर्म, कर्म के प्रतीक और भविष्य के भाग्य के प्रतीक) में से किसी एक को अपना विषय बना लेता है, जिसका अनुभव मृत्यु के निकट आने पर, ठीक पिछले जन्म में हुआ था। अत:, व्यक्ति को पिछले जन्म की किसी भी वस्तु के बारे में, चाहे नींद में हो या जागते हुए, कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार निष्क्रियता, उत्तेजनाहीनता और शांति के माध्यम से होने वाले पारस्परिक संबंध को विपाक का कार्य कहा जाता है।

विपाक-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

15. **आहार-पच्चय या भोजन का संबंध**

भोजन का संबंध दो प्रकार का होता है: भौतिक और अभौतिक। इनमें से, भौतिक भोजन का अर्थ पोषक तत्व (या जिसे खाद्य भोजन कहा जाता है) है, जिसे फिर से दो प्रकारों में विभाजित किया गया है: आंतरिक और बाह्य।

खाद्य भोजन पर निर्भर रहने वाले प्राणियों से संबंधित चारों कारणों से उत्पन्न सभी प्राकृतिक गुण, यहाँ भौतिक भोजन के दो प्रकारों से संबंधित पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

अभौतिक भोजन तीन प्रकार का होता है: संपर्क, मन की इच्छाशक्ति और चेतना। ये अभौतिक भोजन, या पच्चय धम्म, सह-अस्तित्व वाले मानसिक और भौतिक गुणों से कारणिक रूप से संबंधित हैं, जो उनके संबंधित पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

आहार को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? आहार को 'मजबूती से थामे रखना' के अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है "दृढ़ता से अस्तित्व में लाना"। कहने का तात्पर्य यह है कि एक संबंधित वस्तु दूसरी संबंधित वस्तु को पोषण प्रदान करती है ताकि वह दीर्घायु हो सके, विकसित हो सके, फल-फूल सके और समृद्ध हो सके। यद्यपि भोजन का कारण-कार्य संबंध उत्पादक शक्ति रखता है, यहाँ समर्थन शक्ति सर्वोपरि है।

यहाँ दो भौतिक खाद्य पदार्थों को आहार कहा जाता है, क्योंकि वे चार कारणों से उत्पन्न आंतरिक भौतिक गुणों के समूह को दृढ़ता से धारण करते हैं, उन्हें पोषण प्रदान करते हैं ताकि वे दृढ़ता से विद्यमान रहें, दीर्घायु हों और अपने जीवनकाल की सीमाओं तक निर्बाध रूप से पहुँचें।

स्पर्श भी एक आहार है, क्योंकि यह अपने सह-अस्तित्व वाली वस्तुओं को दृढ़ता से धारण करता है और वांछनीय और अवांछनीय वस्तुओं से प्राप्त सार से उन्हें पोषण प्रदान करके उन्हें दृढ़ता से खड़े रहने और दीर्घायु होने में सक्षम बनाता है। मन की इच्छाशक्ति, या (संक्षेप में) संकल्प, एक आहार है क्योंकि यह कर्मों, शब्दों और विचारों के निष्पादन के लिए साहस प्रदान करती है। और चेतना भी एक आहार है, क्योंकि यह किसी वस्तु के बारे में सभी चिंतन में सर्वोपरि है। ये तीनों अमूर्त खाद्य पदार्थ, सह-अस्तित्व वाले मानसिक तत्वों

को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ सह-अस्तित्व वाले भौतिक तत्वों को भी प्रभावित करते हैं।

यहां आहार की व्याख्या सुत्तंत पद्धति के अनुसार भी की जा सकती है। जिस प्रकार पक्षी अपना निवास स्थान ज्ञात करके अपने पंखों से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष और एक लट्ठे से दूसरे लट्ठे तक उड़ते हैं और अपनी चोंच से फल चुगते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार प्राणी भी—चेतना के छह वर्गों के द्वारा, वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके; मन की छह प्रकार की इच्छाशक्ति से, किसी वस्तु को वस्तु के रूप में प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करके; और छह प्रकार के स्पर्शों से, वस्तुओं के सार को प्रकट करके—या तो सुख का अनुभव करते हैं या दुःख भोगते हैं। या, केवल चेतना के छह वर्गों के द्वारा, वस्तुओं को समझकर, वे शरीर और मन का निर्माण करते हैं। या, केवल स्पर्शों से, वस्तुओं को प्रकट करके, ताकि उनके द्वारा भाव उत्पन्न हों, वे तृष्णा का विकास करते हैं। या, इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर विभिन्न प्रकार के कर्म करके, वे एक जन्म से दूसरे जन्म में विचरण करते हैं। इस प्रकार विभिन्न आहारों की व्यापक कार्यप्रणाली को समझा जा सकता है।

आहार-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 16.पत्थनुद्देसा दीपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

16. इंद्रिय-पच्चय या नियंत्रण का संबंध

नियंत्रण का संबंध तीन प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, पूर्वअस्तित्व और भौतिक जीवन।

इनमें से, प्रथम प्रकार के पच्चय-धम्म[26] पंद्रह सहअस्तित्व वाले नियंत्रण हैं, अर्थात्, मानसिक जीवन, चेतना, सुख, दुख, आनंद, शोक, सुखवादी उदासीनता, विश्वास, ऊर्जा, सजगता, एकाग्रता, तर्क, "मैं अज्ञात को जानूंगा (निर्वाण)" का विचार, "मैं जानता हूं" का विचार और "मैं जान चुका हूं" का विचार। पच्चयुप्पन्न-धम्म इनके सहअस्तित्व वाले गुण हैं, मानसिक और भौतिक दोनों।

द्वितीय प्रकार के पच्चय-धम्म पांच संवेदी अंग हैं: आंख, कान, नाक, जीभ और शरीर। पच्चयुप्पन्न-धम्म पांच इंद्रियां और उनके सहवर्ती तत्व हैं।

तीसरे प्रकार का सिद्धय-धम्म केवल एक ही है, अर्थात् स्वयं भौतिक जीवन। और भौतिक जीवन को छोड़कर कर्म से उत्पन्न सभी भौतिक गुण इसके सिद्धयप्पन्न-धम्म हैं।

इंद्रिय को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसे "नियंत्रण रखने" के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यह किस पर नियंत्रण रखता है? यह अपने सिद्धयप्पन्न-धम्मों पर नियंत्रण रखता है। किस कार्य में? उनके संबंधित कार्यों में। मानसिक जीवन अपने सह-अस्तित्व वाले मानसिक गुणों पर जीवन प्रदान करने में, अर्थात् निरंतरता द्वारा उनके विस्तार के मामले में नियंत्रण रखता है। चेतना किसी वस्तु के बारे में चिंतन करने के मामले में नियंत्रण रखती है। शेष के कार्य को हमारी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक इंद्रिय-यमक-दीपानी में समझाया गया है।

यहाँ, कुछ लोग इस प्रकार का प्रश्न पूछ सकते हैं: "नियंत्रण की श्रेणी में शामिल दो लिंगों - स्त्री और पुरुष - को सिद्धय-धम्मों के रूप में इस संबंध में क्यों नहीं लिया जाता?" उत्तर है: क्योंकि उनमें सिद्धय के कोई कार्य नहीं होते। पच्चया के तीन प्रकार के कार्य होते हैं, अर्थात्, सृजन, पालन और रखरखाव। यहाँ, यदि A, B की उत्पत्ति में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य सृजनात्मक कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B की उत्पत्ति असंभव होती। अनंतार के कार्य का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है। फिर, यदि A, B के अस्तित्व, विकास और समृद्धि में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य पालन और समर्थन करना कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B का अस्तित्व, विकास और समृद्धि संभव नहीं होती। पच्चाजात का संबंध यहाँ एक उदाहरण के रूप में उपयुक्त होगा। और, यदि A, B की निरंतरता में कारणिक रूप से संबंधित है, तो A का कार्य पालन और समर्थन करना कहलाता है, क्योंकि यदि A का अस्तित्व न होता, तो B की निरंतरता बाधित होती और उसकी निरंतरता भी टूट जाती। भौतिक जीवन का कार्य इसे स्पष्ट करेगा।

अब, दोनों लिंग उक्त तीनों कार्यों में से किसी का भी निष्पादन नहीं करते। इसलिए, उन्हें नियंत्रण के इस संबंध में पच्चय-धम्म के रूप में नहीं लिया जाता। यदि ऐसा है, तो क्या उन्हें अभी भी नियंत्रक कहा जाना चाहिए? हाँ, उन्हें नियंत्रक कहा जाना चाहिए। क्यों? क्योंकि उनमें कुछ हद तक नियंत्रक शक्ति होती है। वे शरीर को उसकी यौन संरचना (लिंग), उसके स्वरूप (निमित्त), उसके चरित्र (कुत्त) और उसके बाह्य स्वभाव (अकप्प) में नियंत्रित करते हैं। इसलिए, गर्भाधान के समय, यदि किसी प्राणी में स्त्री लिंग उत्पन्न होता है, तो उसका संपूर्ण व्यक्तित्व, अर्थात् चार कारणों से उत्पन्न पाँच समुच्चय (कर्म आदि), स्त्रीत्व की ओर प्रवृत्त होता है। वास्तव में, संपूर्ण शरीर केवल स्त्री संरचना, स्त्री स्वरूप, स्त्री चरित्र और स्त्री बाह्य स्वभाव को ही प्रदर्शित करता है। यहाँ, न तो स्त्री लिंग इन गुणों को उत्पन्न करता है, न उनका समर्थन करता है और न ही उन्हें बनाए रखता है। लेकिन वास्तव में, जब शरीर (अर्थात पाँचों तत्व) अस्तित्व में आ जाता है, तो लिंग उस पर इस प्रकार नियंत्रण रखता है मानो वह (लिंग) उसे ऐसा बनने का आदेश दे रहा हो। सभी तत्व भी लिंग के अनुरूप हो जाते हैं, न कि उसके विपरीत। स्त्री संरचना में स्त्री की यही नियंत्रण शक्ति है। इसी प्रकार पुरुष संरचना में पुरुष का नियंत्रण होता है। इस प्रकार दोनों लिंग संरचनाओं में नियंत्रणकारी कार्य करते हैं, इसलिए इन्हें नियंत्रक कहा जा सकता है।

हृदय-आधार के संबंध में, यद्यपि यह मन-ज्ञान के दो तत्वों का आधार है, यह उन्हें किसी भी प्रकार से नियंत्रित नहीं करता है। क्योंकि हृदय निर्मल हो या न हो, सुप्रशिक्षित मन वाले व्यक्ति में मन-ज्ञान के तत्व कभी भी इसके अनुरूप नहीं होते।

इंद्रिय-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 17.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

17. झाना-पकाया या झाना का संबंध

झाना के सात घटक झना के संबंध में पक्काया-धम्म हैं। वे हैं:-- वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचारा (निरंतर अनुप्रयोग), पीति (सुखद रुचि), सोमनस्सा (आनंद), डोमनस्सा (शोक), उपेक्षा (सुख संबंधी उदासीनता) और एकग्गता (व्यक्तिगतकरण की क्षमता के अर्थ में एकाग्रता)। चेतना के सभी वर्ग (पांच इंद्रियों को छोड़कर), उनके सहवर्ती और सात घटकों के साथ सह-अस्तित्व में भौतिक गुण, यहाँ पच्चयुप्पन्न-धम्म हैं।

ध्यान को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? ध्यान को निकट से देखने या सक्रिय रूप से देखने के अर्थ में समझा जाना चाहिए; अर्थात्, वस्तु के निकट जाकर उसे मानसिक रूप से देखना। जैसे एक धनुर्धारी—जो दूर से एक छोटे लक्ष्य के मध्य बिंदु पर तीर चला सकता है—तीर को अपने हाथ में मजबूती से पकड़कर, उसे स्थिर रखते हुए, लक्ष्य की ओर निर्देशित करते हुए, लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए, और ध्यानपूर्वक देखते हुए, या बल्कि निशाना साधते हुए, तीर को मध्य बिंदु पर पहुंचा देता है। जिस प्रकार ध्यान किसी वस्तु पर केंद्रित होता है या उसे उसमें समाहित करता है, उसी प्रकार योगी या ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के बारे में बात करते समय हमें यह कहना चाहिए कि वह अपने मन को वस्तु की ओर निर्देशित करके, उसे स्थिर रखते हुए और कसिना-वस्तु को ध्यान में रखते हुए, ध्यान के इन सात घटकों के माध्यम से अपने मन को उसमें समाहित करता है। इस प्रकार, इन पर ध्यानपूर्वक ध्यान देकर, व्यक्ति अपने शरीर, वचन और मन की क्रियाओं को बिना किसी असफलता के संपन्न करता है। यहाँ, "शरीर की क्रिया" का अर्थ है आगे-पीछे चलना आदि; "वचन की क्रिया" का अर्थ है मौखिक अभिव्यक्ति करना, जैसे अक्षर, शब्द आदि की ध्वनियाँ; "मन की क्रिया" का अर्थ है किसी भी प्रकार की वस्तु के प्रति सचेत रहना। अतः दान देना या जीवन लेना जैसे किसी भी कर्म को कमजोर मन द्वारा नहीं किया जा सकता जिसमें ध्यान के आवश्यक घटक न हों। यही बात सभी नैतिक और अनैतिक कर्मों पर भी लागू होती है।

इसके अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, ध्यान के प्रत्येक घटक की प्रमुख विशेषता को अलग-अलग समझाया जाना चाहिए। वितक्का की विशेषता है सहवर्ती गुणों को वस्तु की ओर निर्देशित करना। और इसलिए यह मन को विषय पर दृढ़ता से स्थिर कर देता है। विचार की विशेषता है विषय का बार-बार पुनरावलोकन करना, और यह मन को विषय से दृढ़ता से जोड़ देता है। पीति की विशेषता है विषय में रुचि उत्पन्न करना, और मन को उससे प्रसन्न और संतुष्ट करना। वेदना के तीन प्रकार, अर्थात् आनंद, दुःख और उदासीनता, विषय को महसूस करने की विशेषता रखते हैं, और ये भी मन को वांछनीय, अवांछनीय और तटस्थ वस्तुओं के सार का अनुभव करने

के लिए स्थिर कर देते हैं। एकाग्ता की विशेषता एकाग्रता है और यह भी मन को विषय पर दृढ़ता से स्थिर रखता है।ध्यान-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 18.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

18. मार्ग-पच्चय या पथ का संबंध:

मार्ग के इस संबंध में बारह पथ-घटक पच्चय-धम्म हैं। वे हैं: सही विचार, सही आकांक्षा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, गलत विचार, गलत आकांक्षा, गलत प्रयास और गलत एकाग्रता। हालांकि, गलत वाणी, गलत कर्म और गलत आजीविका को अलग-अलग मानसिक गुणों से नहीं जोड़ा जा सकता। ये चार अनैतिक स्कंधों (अकुसला-खंड) के ही अन्य नाम हैं, जो झूठ आदि के नाम से प्रकट होते हैं। इसलिए इन्हें अलग-अलग पथ-घटक नहीं माना जाता। हेतु से वातानुकूलित चेतना और मानसिक सहवर्ती सभी वर्ग, और हेतु से वातानुकूलित मन के साथ सहअस्तित्व में रहने वाले सभी भौतिक गुण पच्चयुप्पन-धम्म हैं।

मार्ग को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? इसे मार्ग के अर्थ में समझा जाना चाहिए, अर्थात् दुर्भाग्य के क्षेत्र या निर्वाण के क्षेत्र तक पहुँचने के साधन के रूप में। आठ मार्ग-घटक (सही दृष्टिकोण आदि) निर्वाण की ओर ले जाते हैं। चार गलत मार्ग-घटक दुर्भाग्य के क्षेत्र की ओर ले जाते हैं।

अब ध्यान का कार्य मन को विषय में सीधा, स्थिर और परमानंदित करना है।[28] "परमानंदित मन" का अर्थ है वह मन जो कसिना-विषय में इस प्रकार डूब जाता है जैसे मछली गहरे पानी में। मार्ग का कार्य कर्मिक संकल्प को अस्तित्व के चक्र में प्रवेश के मार्ग में और भावनिक संकल्प को चक्र से बाहर निकलने के मार्ग में सीधा और स्थिर करना है, जिससे एक कार्य-प्रणाली उत्पन्न हो, विकसित हो, फले-फूले और समृद्ध हो, और उच्चतर स्तर तक पहुँचे। यही इन दोनों संबंधों के बीच अंतर है।

यहां, कर्मिक इच्छाशक्ति, जो पुनर्जन्म उत्पन्न कर सकती है—क्योंकि यह नैतिक और अनैतिक कर्मों जैसे कि जीवन लेना आदि में परिणत हुई है—को कर्मपथपत्त कहा गया है। और भावनिक इच्छाशक्ति, जो उच्चतर अवस्थाओं तक पहुँचती है, अर्थात् इंद्रिय अवस्था से पारलौकिक अवस्था तक, उच्चतर अवस्थाओं के अनुक्रम से होकर, व्यवस्थित प्रशिक्षण-अभ्यासों (भावनानुकाम्मा) की शक्ति से, एक शारीरिक मुद्रा के संक्षिप्त समय में भी, आगे बढ़ती है—को भूमंतरपत्त कहा गया है।

इस संबंध को समझने के लिए, प्रत्येक मार्ग-घटक की विशिष्ट पहचान को भी ध्यान के संबंध में दर्शाए गए तरीके से अलग से समझाया जाना चाहिए।

मार्ग-संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 19.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

19. सम्पायुत्त-संबंध या सहभागिता का संबंध

सहभागिता और वियोग के संबंध एक युग्म बनाते हैं। इसी प्रकार उपस्थिति और अनुपस्थिति तथा स्थगन और निरंतरता के संबंध भी युग्म बनाते हैं। ये तीनों युग्म विशेष नहीं हैं। इनका उल्लेख केवल यह दर्शाने के लिए किया गया है कि उपरोक्त संबंधों में, कुछ सिद्धय-धर्म अपने सिद्धयप्पन्न-धर्मों से सहभागिता द्वारा, और अन्य वियोग द्वारा, कारणवश संबंधित होते हैं; कुछ उपस्थिति द्वारा, अन्य

अनुपस्थिति द्वारा; कुछ स्थगन द्वारा, अन्य निरंतरता द्वारा।

यहाँ भी, "अत्थि ति खो, कच्चना, अयम एको अंतो; नत्थि ति खो दुतियो अंतो ति"[29] जैसे वाक्यों में, अत्ति और नत्थि शब्द शाश्वतवाद और विनाशवाद के विधर्मी विचारों को इंगित करने के लिए हैं। अतः, ऐसी व्याख्याओं को रोकने के लिए, संबंधों के अंतिम युग्म का उल्लेख किया गया है।

चेतना और मानसिक गुणों के सभी वर्ग सहभागिता के माध्यम से एक दूसरे से परस्पर संबंधित होते हैं। संपयुत्त को किस अर्थ में समझा जाना चाहिए? संपयुत्त को चार साहचर्य साधनों, अर्थात् समकालिक उत्पत्ति, समकालिक समाप्ति, एकमूलत और एकवस्तु, के द्वारा सहभागिता या विलय के अर्थ में समझा जाना चाहिए। यहाँ, एकिभवं गति (या विलय) से तात्पर्य है कि दृष्टि की चेतना अपने सात मानसिक गुणों के साथ इस प्रकार समाहित हो जाती है कि उन सभी को संयुक्त रूप से दृष्टि कहा जाता है। इन आठ मानसिक अवस्थाओं को अब उनके विशेष नामों से नहीं पुकारा जाता, क्योंकि वास्तव में इन्हें अलग-अलग जानना कठिन है। यही व्याख्या चेतना के अन्य वर्गों पर भी लागू होती है।

संपयुत्त संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 20.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

20. विपयुत्त-पच्चय या वियोग का संबंध:

वियोग का संबंध चार प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, मूल पूर्वअस्तित्व, मूल वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व और उत्तरअस्तित्व। इन चारों में से, सहअस्तित्व वाले वियोग के पच्चय और पच्चयुप्पन्न-धम्म सहअस्तित्व के संबंध में बताए गए अनुसार मानसिक या भौतिक हो सकते हैं। अतः सहअस्तित्व वाले वियोग के माध्यम से मानसिक, भौतिक से कारणिक रूप से संबंधित होता है, और इसके विपरीत भी। यहाँ "मानसिक" शब्द का प्रयोग पच्चय के रूप में किया जाता है, जिसका अर्थ है जीवनकाल के दौरान चार मानसिक समुच्चय, अर्थात् संवेदना, बोध, मानसिक क्रियाएँ और चेतना; और "भौतिक" शब्द का प्रयोग पच्चयुप्पन्न के रूप में किया जाता है, जिसका अर्थ है मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुण। फिर से, जब "भौतिक" को पच्चया कहा जाता है, तो इसका अर्थ गर्भाधान के समय का हृदय-आधार होता है, और जब "मानसिक" को पच्चयुप्पन्ना कहा जाता है, तो इसका अर्थ पुनर्जन्म से संबंधित चार मानसिक समुच्चय होते हैं।

शेष तीन प्रकार के वियोगों की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।

विपयुत्त संबंध का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 21.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

21. अत्ति-पच्चय या उपस्थिति का संबंध

उपस्थिति का संबंध सात प्रकार का होता है, अर्थात् सहअस्तित्व, मूल पूर्वअस्तित्व, वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व, मूल वस्तुनिष्ठ पूर्वअस्तित्व, उत्तरअस्तित्व, भौतिक भोजन और भौतिक जीवन-नियंत्रण।

इनमें से सहअस्तित्व का संबंध मात्र सहअस्तित्व का है। शेष छह के लिए भी यही व्याख्या की जानी चाहिए, जिनके लिए पहले से ही वर्णित समतुल्य संबंधों का संदर्भ लिया जाना चाहिए। संबंधित और संबंधित वस्तुओं के वर्गीकरण पर प्रत्येक संबंधित संबंध में ऊपर

चर्चा की जा चुकी है।

अत्ति-पच्चय क्यों कहा जाता है? अत्ति-पच्चय इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह खान नामक समय के तीन चरणों में उपस्थित होकर अपने प्रभाव से कारणिक रूप से संबंधित होता है।

अत्ति-संबंध का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

22. **नत्थी-पच्चया या स्थगन का संबंध**
23. **विगत-पच्चया या अनुपस्थिति का संबंध**
24. **अवगत-पच्चया या निरंतरता का संबंध**

अनुपस्थिति का संबंध पूर्णतः निकटता का संबंध है; स्थगन का संबंध भी ऐसा ही है। निरंतरता का संबंध भी उपस्थिति के संबंध के समान ही है। "अत्थी" और "अवगत" शब्दों का अर्थ एक ही है; इसी प्रकार "नत्थी" और "विगत" शब्दों का भी।

नत्थी, विगत और अवगत संबंधों का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

25. **पक्काया-सभागो या संबंधों का संश्लेषण**

अब संबंधों का संश्लेषण बताया जाएगा।

सहजता (सहअस्तित्व) के संबंध को पंद्रह प्रकार के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है, यानी चार श्रेष्ठ सहजता, चार मध्यम सहजता, और सात निम्न सहजता। चार श्रेष्ठ सहजताओं में साधारण सहजता, सहजतानिसया (सह-अस्तित्व में निर्भरता), सहजतथि (सह-अस्तित्व में उपस्थिति), और सहजता-अविगत (सह-अस्तित्व में निरंतरता) शामिल हैं। चार मध्यम सहजताओं में अन्नमन्ना (पारस्परिकता), विपाक (प्रभाव), सम्पायुत्त (संघ), और सहजता-विप्पयुत्त (सहअस्तित्व पृथक्करण) शामिल हैं। सात अवर सहजता में हेतु (स्थिति), सहजता-धिपति (सहअस्तित्व प्रभुत्व), सहजता-कम्मा (सहअस्तित्व कम्मा), सहजतारा (सहअस्तित्व भोजन), सहजतंद्रिय (सहअस्तित्व नियंत्रण), झाना और मग्गा (रास्ता) शामिल हैं।

रूपाहार, या भौतिक भोजन तीन प्रकार का होता है: रूपाहार (साधारण भौतिक भोजन), रूपाहरत्ती, और रूपाहारविगत।

रूपा-जीवितिन्द्रिय, या शारीरिक जीवन-नियंत्रण तीन प्रकार का होता है: रूप-जीवितिन्द्रिय, जीवितिन्द्रियत्थि, और रूप-जीवितिन्द्रिय-अविगत।

प्योरजटा (पूर्व-अस्तित्व) के संबंध को सत्रह प्रकारों के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है: छह वत्थु-प्योरजटास (बुनियादी पूर्व-अस्तित्व), छह अरम्मना-प्यूरजटास (उद्देश्य पूर्व-अस्तित्व), और पांच वत्थरमण-प्यूरजटास (बुनियादी उद्देश्य पूर्व-अस्तित्व)। इनमें से छह वत्थु-पुरेजातस हैं वत्थु-पुरेजटा, वत्थुपुरेजातनिस्साय, वत्थु-पुरेजतनिन्द्रिय, वत्थु-पुरेजटा-विप्पयुत्त, वत्थु-पुरेजटाट्टथि, और वत्थु-पुरेजात-अविगता। छह अरम्मना-पुरेजटा हैं: अरम्मना-पुरेजटा, कुछ अरम्मना, कुछ अरम्मनाधिपति, कुछ अरम्मना-अरम्मनुपनिसया,

अरम्मना-पुरेजटाथि, और अरम्मना-पुरेजटा-अविगाटा। किंची अरम्मनम आदि में "किन्सी" और "कोसी" शब्दों का उपयोग केवल वर्तमान निप्पन्न-रूप (कर्म और वातावरण द्वारा निर्धारित भौतिक गुण) को लेने के लिए किया जाता है। पांच वत्थरम्मना-पुरेजटा हैं वत्थरम्मना-पुरेजटा, वत्थरम्मना-पुरेजटा-निस्साय, वत्थरम्मना-पुरेजटा-विप्पयुत्त, वत्थरम्मना-पुरेजटाथि, और वत्थरम्मना-पुरेजटा-अविगटा।

पचजता या उत्तर-अस्तित्व के संबंध को चार प्रकारों के रूप में निर्दिष्ट किया जा सकता है: पचजता, पचजता-विप्पयुत्त, पचजतथि, और पचजता-अविगता।

अनंतर (संपन्नता) का संबंध सात प्रकार का है: अनंतर, समानंतर, अनंतापनिसया, असेवन, अनंत-कम्मा, नत्थि और विगत। इनमें से, अनंतर कर्म वह इच्छा है जो एरियन पथ से संबंधित है। यह अपना प्रभाव अर्थात एरियन फल समाप्त होने के तुरंत बाद उत्पन्न करता है।

ऐसे पांच रिश्ते हैं जो किसी भी विशिष्टता में शामिल नहीं होते हैं। ये हैं: शेष अरम्मना, शेष अरम्मनाधिपति, शेष अरम्मनुपनिस्साय, सभी पकतुपनिस्साय, और शेष प्रकार के कर्म जो अतुल्यकालिक कम्म हैं।

इस प्रकार, महान ग्रंथ (पत्थाना) में वर्णित संबंध कुल मिलाकर चौवन प्रकार के हैं।

इन संबंधों में, सभी प्रकार के शुद्धजात, सभी प्रकार के पच्छजात, भौतिक भोजन और शारीरिक जीवन-नियंत्रण वर्तमान संबंध हैं। सभी प्रकार के अनंतार और नानकखानिक कर्म भूतकाल के संबंध हैं। निर्वाण और पद-और-अवधारणा, पन्नत्ति को छोड़कर—अरम्मन और पकातुपनिस्सय के संबंधों को तीन कालों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है: भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल। लेकिन निर्वाण और पद-और-अवधारणा हमेशा समय से परे होते हैं।

इन दो धम्मों—निर्वाण और पन्नत्ति (अवधारणा)—को अप्पच्चया (कारण संबंध से रहित) और असंखत (अप्रतिबंधित) कहा जाता है।[30] क्यों? क्योंकि वे पूर्णतः उत्पत्ति से रहित हैं। जिन वस्तुओं या घटनाओं का जन्म या उत्पत्ति होती है, उन्हें सप्पच्चया (संबंधित वस्तुएँ), संखत (प्रतिबंधित वस्तुएँ) और प्रतीत्यसमुप्पन्न (परिस्थितियों के संयोग से उत्पन्न वस्तुएँ) कहा जाता है। अत: वे दो धर्म, जो न तो उत्पन्न होते हैं और न ही घटित होते हैं, वास्तव में अप्पच्चय और असंखत कहलाते हैं।

संबंधित और परिबद्ध वस्तुओं में एक भी घटना ऐसी नहीं है जो स्थायी, स्थाई, शाश्वत और अपरिवर्तनीय हो। वास्तव में, सभी क्षणभंगुर हैं, क्योंकि वे विघटन के योग्य हैं। क्यों? क्योंकि, अस्तित्व में आने पर, वे किसी न किसी कारण से संबंधित होते हैं, और उनके कारण भी स्थायी नहीं होते।

क्या निर्वाण और अवधारणा पच्चय-धर्म या संबंधित वस्तुएँ नहीं हैं? क्या वे स्थायी और स्थाई नहीं हैं? हाँ, वे हैं, लेकिन कोई भी घटना केवल निर्वाण या अवधारणा के कारण ही पूरी तरह से घटित नहीं होती। घटनाएँ अनेक कारणों से घटित होती हैं या उत्पन्न होती हैं, जो स्थायी और स्थाई नहीं होते।

जो वस्तुएँ स्थायी नहीं होतीं, वे तीनों प्रकार के कष्टों से ग्रसित प्राणियों के लिए सदा कष्टदायी और पीड़ादायक होती हैं। अत: उन्हें उनके भयावह होने के कारण बुरा माना जाता है। यहां तीन प्रकार के कष्ट हैं: "दुःख-दुःखता" (कष्ट के कारण), "संस्कार-दुःखता" (परिस्थितियों के कारण) और "विपरीत-दुःखता" (परिवर्तनशीलता के कारण)। सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं और प्रत्येक क्षण विलीन हो रही हैं, यहाँ तक कि एक ही स्थिति में रहते हुए भी।[31] अतः प्राणियों और व्यक्तियों में कोई मूल आत्मा या सार कैसे हो सकता है, जबकि वे अपने पूरे जीवन स्वयं को स्थायी मानते हैं? सब कुछ कष्टों के अधीन है। अतः प्राणियों और व्यक्तियों में कोई मूल आत्मा या सार कैसे हो सकता है जो कष्टों के अधीन हैं और फिर भी सुख की कामना करते हैं? अतः सभी वस्तुएँ सारहीन हैं क्योंकि उनमें कोई मूल नहीं है।

संक्षेप में कहें तो, बुद्ध ने चौबीस संबंधों की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित तथ्य प्रकट किए हैं: सभी बद्ध वस्तुएँ अपने घटित होने, बनने या अस्तित्व में आने के लिए कारणों और परिस्थितियों पर निर्भर हैं, न कि केवल प्राणियों की इच्छा, संकल्प या आदेश पर। और सभी कारणों और परिस्थितियों के अधीन वस्तुओं में से कोई भी ऐसी नहीं है जो कुछ कारणों से अस्तित्व में आती हो; वे वास्तव में अनेक कारणों से ही उत्पन्न होती हैं। अतः, यह व्याख्या आत्माहीनता के सिद्धांत को प्रकट करते हुए अपने चरम पर पहुँचती है।

संबंधों का संश्लेषण समाप्त।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

---

26. पच्चया-घटना या संबंधों का समकालिकता:

अब संबंधों के समकालिकता का वर्णन किया जाएगा।

किसी एक संबंधित वस्तु में कारण-संबंधों की समकालिकता को संबंधों का समकालिकता या पच्चया-घटना कहते हैं। सभी घटनाओं को स-पच्चया (कारणों से संबंधित), संखता (कारणों से बद्ध) और प्रतीत्यसमुप्पन (परिस्थितियों के संयोग से उत्पन्न) कहा जाता है, क्योंकि उत्पन्न होने और बने रहने में वे इन चौबीस कारण-संबंधों के साथ सहअस्तित्व में होती हैं, या उनसे बद्ध होती हैं। तो वे घटनाएँ क्या हैं? वे हैं: चेतना के एक सौ इक्कीस वर्ग, मानसिक गुणों के बावन प्रकार और भौतिक गुणों के अट्ठाईस प्रकार।

इनमें से, चेतना के एक सौ इक्कीस वर्गों को धातु (तत्वों) की श्रेणी के अंतर्गत सात भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. दृश्य बोध का तत्व
2. श्रवण बोध का तत्व
3. गंध बोध का तत्व
4. स्वाद बोध का तत्व
5. स्पर्श बोध का तत्व
6. बोध का तत्व
7. समझ का तत्व।

इनमें से:

1. दृष्टि-चेतना के दो वर्गों को दृश्य बोध के तत्व कहा जाता है;
2. ध्वनि-चेतना के दो वर्गों को श्रवण बोध के तत्व कहा जाता है;
3. गंध-चेतना के दो वर्गों को गंध बोध के तत्व कहा जाता है;
4. स्वाद-चेतना के दो वर्गों को स्वाद बोध के तत्व कहा जाता है;
5. स्पर्श-चेतना के दो वर्गों को स्पर्श बोध के तत्व कहा जाता है।
6. "पाँच द्वारों में से किसी एक की ओर मन का ध्यान" (पंचद्वर्वज्जन) और "अनुभूतियों की स्वीकृति" (संपच्चन) के दो वर्ग बोध के तत्व कहलाते हैं;
7. चेतना के शेष एक सौ आठ वर्ग बोध के तत्व कहलाते हैं।

बावन प्रकार के मानसिक गुणों को भी समूहों में विभाजित किया गया है:

- सात सार्वभौमिक
- छह विवरण
- चौदह अनैतिक
- पच्चीस दीप्तिमान।

चौबीस संबंधों में से

पंद्रह संबंध सभी मानसिक अवस्थाओं में समान हैं: अरम्मन, अनंतार, समानंतार, सहजता, अन्नम्मन, निस्सय, उपनिषय, कम्म, आहार, इंद्रिय, सम्पायुत्त, अत्ति, नत्थि, विगत और अविगत।

चेतना या मानसिक गुण का एक भी वर्ग ऐसा नहीं है जो अरम्मन (वस्तु) के कारण संबंध के बिना उत्पन्न होता हो। यही बात अनंतार, समानंतार, सहजता आदि के शेष कारण संबंधों पर भी लागू होती है।

केवल आठ संबंध—हेतु, अधिपति, पुरेजात, असेवन, विपाक, ध्यान, मार्ग और विपायुत्त—कुछ मानसिक अवस्थाओं में समान हैं। इनमें से, हेतु का संबंध केवल हेतु द्वारा निर्धारित चेतना के वर्गों में समान है; अधिपति का संबंध भी केवल अधिपति के साथ सह-अस्तित्व वाले बोधों (जावनों) में समान है। शुद्धजात का संबंध केवल कुछ प्रकार के मनों में ही पाया जाता है; असेवन का संबंध केवल नैतिक, अनैतिक और निष्क्रिय चेतना के बोधगम्य वर्गों में ही पाया जाता है; विपाक का संबंध भी केवल परिणामी मनों में ही पाया जाता है; ध्यान का संबंध चेतना और मानसिक सहवर्ती तत्वों के उन वर्गों में पाया जाता है जो बोध और समझ के तत्वों के अंतर्गत आते हैं; मार्ग का संबंध हेतु द्वारा नियंत्रित मनों के वर्गों में पाया जाता है; विपयुत्त का संबंध अरुपलोक में स्थित मनों के वर्गों में नहीं पाया जाता है। पच्छजात का केवल एक विशेष संबंध भौतिक गुणों में पाया जाता है।

यहाँ इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। सात सार्वभौमिक, मानसिक गुण हैं: फस्सा (संपर्क), वेदना (संवेदना), सन्ना (बोध), चेतना (इच्छाशक्ति), एकग्गत (व्यक्तिगतकरण की क्षमता में एकाग्रता), जीवता (मानसिक जीवन) और मानसिक (ध्यान)।

इनमें से, चेतना अधिपति का संबंध हो सकती है; यह आहार का संबंध हो सकता है, और यह इंद्रिय का संबंध भी हो सकता है; संपर्क केवल आहार का संबंध है; संवेदना इंद्रिय का संबंध हो सकती है, और यह ध्यान का संबंध भी हो सकता है; इच्छाशक्ति कर्म का संबंध हो सकती है, और यह आहार का संबंध भी हो सकता है; एकाग्ता इंद्रिय का संबंध हो सकती है; यह ध्यान का संबंध हो सकती है; और यह मार्ग का संबंध भी हो सकती है; मानसिक जीवन केवल इंद्रिय का संबंध है; शेष दो अवस्थाएँ—बोध और ध्यान—किसी विशेष संबंध में नहीं बँटतीं।

दृष्टि के माध्यम से चेतना सात सार्वभौमिक मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं को प्राप्त करती है, और इस प्रकार वे आठ मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। ये सभी सात संबंधों के माध्यम से एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं: चार उच्चतर सहजता और तीन मध्यम सहजताएँ, वियोग के संबंध को छोड़कर। इन आठ मानसिक अवस्थाओं में, चेतना आहार और इंद्रियों के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होती है। स्पर्श आहार के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है; संवेदना केवल इंद्रियों के माध्यम से शेष अवस्थाओं से संबंधित होती है; संकल्प कर्म और आहार के माध्यम से; एकाग्ता केवल इंद्रियों के माध्यम से; और मानसिक जीवन इंद्रियों के माध्यम से अन्य सात अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है। नेत्र का आधार छह प्रकार की वात-पुरेजात अवस्थाओं के माध्यम से इन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होता है। वर्तमान दृश्य वस्तुएँ, जो उस नेत्र-आधार के मार्ग में प्रवेश करती हैं, चार प्रकार की अरम्मन पुरेजात अवस्थाओं के माध्यम से उन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। चेतना, जिसे दृष्टि चेतना के उदय से ठीक पहले, समाप्ति के क्षण में पंच द्वारों की ओर मुड़ना कहा जाता है, अनंतार की पाँच प्रजातियों के माध्यम से इन आठ मानसिक अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित है। पूर्व जन्मों में किए गए नैतिक और अनैतिक कर्म, अतुल्यकालिक कर्म के माध्यम से क्रमशः इन आठ परिणामी अच्छे और बुरे अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित हैं। अज्ञान (अविज्जा), तृष्णा (तन्हा) और आलिंगन (उपादान) - जो पिछले जन्म में इच्छाशक्ति (कर्म) के साथ सहक्रिया करते थे, और इस वर्तमान जीवन के निवास स्थान, व्यक्ति, ऋतुएँ, भोजन आदि - पकातुपानिस्सय (प्राकृतिक पर्याप्तता) के माध्यम से इन आठ अवस्थाओं से कारणिक रूप से संबंधित हैं। छह संबंध - हेतु, अधिपति, पच्छजात, असेवन, ध्यान और मार्ग - इस प्रकार की चेतना में भाग नहीं लेते हैं, बल्कि केवल शेष अठारह संबंध ही भाग लेते हैं। जिस प्रकार छह संबंध दृष्टि के माध्यम से चेतना में भाग नहीं लेते—केवल अठारह संबंध ही भाग लेते हैं—उसी प्रकार वे श्रवण, गंध आदि के माध्यम से चेतना में भाग लेते हैं।

पांचों इंद्रियों में संबंधों की समकालिकता यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 27.पत्थनुद्देसा दिपानी**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

27. हेतु के बिना चेतना में संबंधों का समकालिक होना:

छह मानसिक गुण हैं जिन्हें विशिष्ट (पकिन्नक) कहा जाता है - वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचार (निरंतर अनुप्रयोग), अधिमोक्खा (निर्णय), वीर्य (प्रयास), पीति (सुखद रुचि), चंदा (कर्म करने की इच्छा)। इनमें से, प्रारंभिक अनुप्रयोग ध्यान और मार्ग के संबंध में भाग लेता है। निरंतर अनुप्रयोग केवल ध्यान में भाग लेता है। प्रयास अधिपति, इंद्रिय और मार्ग के संबंध में भाग लेता है। सुखदद ध्यान में भाग लेता है। कर्म करने की इच्छा अधिपति में भाग लेती है। निर्णय किसी विशिष्ट संबंध में भाग नहीं लेता है।

दस सहवर्ती तत्व, अर्थात् सात सार्वभौमिक तत्व, प्रारंभिक अनुप्रयोग, निरंतर अनुप्रयोग और विशिष्ट तत्वों से निर्णय लेना—चेतना के पाँच वर्गों में पाए जाते हैं, अर्थात् पंच द्वारों की ओर उन्मुख होना, स्वीकृति का द्विगुणित वर्ग और सुखवादी उदासीनता के साथ अन्वेषण का द्विगुणित वर्ग। ये एक संयोजन में ग्यारह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इन तीनों वर्गों में ध्यान क्रिया होती है। संवेदना, एकाग्रता, प्रारंभिक अनुप्रयोग और निरंतर अनुप्रयोग ध्यान संबंध का कार्य करते हैं। चेतना (पंच द्वारों की ओर उन्मुख होना) निष्क्रिय वर्ग से संबंधित है, इसलिए यह विपाक संबंध में नहीं पाई जाती। अतुल्यकालिक कर्म उपनिषय के स्थान पर कार्य करता है। अतः, ऊपर दर्शाए गए पाँच इंद्रियों में अप्राप्य संबंधों से ध्यान को हटाकर और विपाक को शामिल करके, पंच द्वारों की ओर उन्मुख चेतना में भी छह अप्राप्य और अठारह प्राप्य संबंध हैं। चेतना के शेष चार परिणामी वर्गों के संबंध में, विपाक को छोड़ने से पांच संबंध अप्राप्य हो जाते हैं, और विपाक और ध्यान को जोड़ने से उन्नीस संबंध प्राप्त हो जाते हैं।

आनंद से परिपूर्ण अन्वेषणात्मक चेतना ग्यारह मानसिक सहवर्ती अवस्थाओं को प्राप्त करती है, अर्थात् उपर्युक्त दस अवस्थाओं के साथ-साथ सुखदायक रुचि। चेतना (मन द्वार की ओर उन्मुख) में ग्यारह सहवर्ती अवस्थाएँ सह-अस्तित्व में होती हैं, और वे प्रयास के साथ होती हैं। वे चेतना के साथ मिलकर बारह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। बारह सहवर्ती अवस्थाएँ, अर्थात् उपर्युक्त दस अवस्थाएँ, सुखदायक रुचि और प्रयास के साथ, सौंदर्यबोधक आनंद की चेतना के साथ सह-अस्तित्व में होती हैं। वे चेतना के साथ मिलकर तेरह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करती हैं। अन्वेषणात्मक चेतना के तीन वर्गों में से, आनंद से परिपूर्ण वर्ग में अन्य दो वर्गों की तुलना में ध्यान कारकों के संबंध में एक अधिक मानसिक गुण (अर्थात सुखदायक रुचि) होता है: इसलिए, अप्राप्य पाँच और प्राप्त करने योग्य उन्नीस संबंध, सुखवादी उदासीनता से परिपूर्ण अन्वेषणात्मक चेतना के दो वर्गों के समान हैं। चेतना (मन द्वार की ओर उन्मुख) में, प्रमुख गुण केवल "प्रयास" है, जो इंद्रिय और ध्यान के कार्यों को पूरा करता है, लेकिन अधिपति और मार्ग के कार्यों को नहीं। यह चेतना, निष्क्रिय वर्ग की होने के कारण, विपाक संबंध प्राप्त नहीं करती। अतः, विपाक सहित अप्राप्य छह और ध्यान सहित प्राप्य अठारह, पाँच द्वारों की ओर उन्मुख चेतना के समान ही हैं। सौंदर्यबोध की चेतना में भी विपाक संबंध प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह निष्क्रिय वर्ग की है। परन्तु प्रत्यक्ष वर्ग होने के कारण, यह असेवन संबंध में प्राप्त होता है। अतः, विपाक सहित पाँच संबंध अप्राप्य हैं, तथा असेवन सहित उन्नीस संबंध प्राप्य हैं।

हेतु के साथ न होने वाली चेतना में संबंधों की समकालिकता का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **पत्थनुद्देसा दिपनी-अनैतिक चेतना**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

अनैतिक चेतना वर्ग में संबंधों का समकालिकता:

अनैतिक चेतना के बारह वर्ग हैं: दो अज्ञान में निहित, आठ इच्छा में निहित और दो घृणा में निहित। चौदह अनैतिक मानसिक गुण हैं: मोह (सुस्ती), अहिरिका (निर्लज्जता), अनोत्तप्पा (परिणामों की परवाह न करना) और उद्दच्च (विचलित होना) - इन चारों को मोह-चतुर्भुज कहा जाता है; लोभ (लालच), दिट्ठी (त्रुटि) और मन (अहंकार) - इन तीनों को लोभ-त्रुधि कहा जाता है; दोष (घृणा), इस्सा (ईर्ष्या), मच्छरिया (स्वार्थ) और कुक्कुच्च (चिंता) - इन चारों को दोष-चतुर्भुज कहा जाता है; थिना (आलस्य), मिद्धा (सुस्ती) और विचिचिच्च (भ्रमित) - इन तीनों को पकिन्नक त्रुधि कहा जाता है। इनमें से तीन मूल भाव—लोभ, घृणा और सुस्ती—हेतु संबंध हैं। त्रुटि मार्ग संबंध है। शेष दस मानसिक गुण किसी विशिष्ट संबंध में नहीं आते।

यहाँ, सुस्ती में निहित चेतना के दो वर्ग हैं: उलझन से जुड़ी चेतना और विचलितता से जुड़ी चेतना। इन दोनों में से पहले के साथ पंद्रह मानसिक सहवर्ती भाव विद्यमान होते हैं। इनमें सात सार्वभौमिक भाव, आरंभिक क्रिया, निरंतर क्रिया, प्रयास (विशिष्ट भावों से), मोह-

चतुर्भुज और उलझन (अनैतिक भावों से) शामिल हैं। ये चेतना के साथ मिलकर सोलह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इस चेतना में, अर्थात् उलझन से जुड़ी चेतना में, हेतु और मार्ग संबंध भी प्राप्त होते हैं। अर्थात्, सुस्ती हेतु संबंध के रूप में कार्य करती है; आरंभिक क्रिया और प्रयास मार्ग संबंध के रूप में; और एकाग्ता के संबंध में, क्योंकि उलझन से इसके कार्य में बाधा उत्पन्न होती है, यह इंद्रिय और मार्ग के कार्यों का निष्पादन नहीं करती, बल्कि ध्यान के कार्य का निष्पादन करती है। अत: तीन संबंध (अधिपति, पच्छजात, विपाक) प्राप्त नहीं होते; और शेष इक्कीस संबंध इस व्याकुल चेतना में प्राप्त होते हैं जो दुविधा से जुड़ी हुई है।

विचलित चेतना में पंद्रह मानसिक गुण भी होते हैं—“दुविधा” को छोड़कर और “निर्णय” को जोड़कर। ये सभी मिलकर चेतना के साथ सोलह मानसिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। इस चेतना में, एकग्गत इंद्रिय, ध्यान और मार्ग के कार्य करता है। अत: तीन संबंध प्राप्त नहीं होते, जबकि इक्कीस प्राप्त होते हैं।

सात सार्वभौमिक, छह विशिष्ट, मोह-चतुर्गुण, लोभ-त्रिगुण, आलस्य और सुस्ती—कुल मिलाकर बाईस, ये सभी आठ प्रकार की चेतनाओं के साथ सह-अस्तित्व में हैं, जो इच्छा पर आधारित हैं। इनमें से दो मूल—लालच और सुस्ती—हेतु संबंध हैं; और तीन मानसिक अवस्थाएँ—कर्म की इच्छा, चेतना और प्रयास—अधिपति संबंध हैं। यहाँ अरम्मनधिपति भी प्राप्त होता है। संकल्प कर्म का संबंध है। तीन खाद्य पदार्थ आहार के संबंध हैं। पाँच मानसिक अवस्थाएँ: मन, संवेदना, एकाग्गत, मानसिक जीवन और प्रयास—इंद्रिय संबंध हैं। पाँच ध्यान कारक, अर्थात् प्रारंभिक क्रिया, निरंतर क्रिया, सुखदायक रुचि, संवेदना और एकाग्रता, ध्यान संबंध हैं। चार मार्ग घटक, अर्थात् प्रारंभिक क्रिया, एकाग्रता, त्रुटि और प्रयास, मार्ग संबंध हैं। अतः केवल दो संबंध (पच्छजात और विपाक) प्राप्त नहीं होते हैं। शेष बाईस प्राप्त होते हैं।

अनैतिक चेतना वर्ग में संबंधों की समकालिकता का अंत।

संबंधों का बौद्ध दर्शन

महाथेरा लेडी सयादाव, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

मन की अवस्थाओं में संबंधों का समकालिकीकरण:

चेतना के इक्यावन "दीप्तिमान" वर्ग हैं। वे हैं: काम-चेतना के चौबीस "दीप्तिमान" वर्ग, रूप-चेतना के पंद्रह वर्ग, अरूप-चेतना के बारह वर्ग और पारलौकिक चेतना के चालीस वर्ग। इनमें से काम-चेतना के चौबीस "दीप्तिमान" वर्ग हैं: नैतिक चेतना के आठ वर्ग, परिणामी प्रकार की "दीप्तिमान" चेतना के आठ वर्ग और निष्क्रिय प्रकार की "दीप्तिमान" चेतना के अन्य आठ वर्ग।

शोभन ("उज्ज्वल") मानसिक गुण पच्चीस प्रकार के होते हैं: अलोभा (निःस्वार्थता), अदोसा (मैत्री), अमोह (बुद्धिमत्ता) - इन तीन को नैतिक हेतस कहा जाता है - सद्धा (विश्वास), सती (दिमागीपन), हिरी (विवेक), ओट्टप्पा (विवेक), तत्रमजहट्टा (मन का संतुलन), कायापसाधि (मानसिक गुणों की स्थिरता), चित्तपसाधि (मन की शांति), काया-लहुता (मानसिक गुणों की उपयुक्तता), चित्त-लहुता (मन की प्रसन्नता), कयामुदुता (मानसिक गुणों की कोमलता), चित्त-मुदाता (मन की कोमलता), कयाकम्मनता (मानसिक गुणों के कार्य की उपयुक्तता), चित्त-कम्मनता (मन के कार्य की उपयुक्तता), काया-पगुन्नता (मानसिक गुणों की दक्षता), चित्त-पगुन्नता (प्रवीणता) मन की), कयुजुकाता (शुद्धता की)। मानसिक गुण (मानसिक गुण), चित्तुजुकाता (मन की शुद्धता), सम्म-वाच (सही वाणी), सम्म-कम्मंत (सही कर्म), सम्म-अजीव (सही आजीविका) - अंतिम तीन को तीन संयम कहा जाता है; करुणा (दया) और मुदिता (सहानुभूतिपूर्ण प्रशंसा) - अंतिम दो को दो असीम कहा जाता है।

इनमें से, तीन नैतिक हेतु हेतुपच्चय हैं। बुद्धि अधिपति संबंध में विमंसा के नाम से, इंद्रिय संबंध में पन्ना के नाम से, और मार्ग संबंध में सम्मदित्ति के नाम से प्रकट होती है। श्रद्धा या विश्वास इंद्रिय संबंध है। सती या सजगता इंद्रिय संबंध में सतिन्द्रिय है, और मार्ग संबंध में सम्मसती है। तीन संयम (सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका) मार्ग संबंध हैं। शेष सत्रह मानसिक अवस्थाएँ विशिष्ट संबंध नहीं हैं।

अड़तीस मानसिक गुण काम-चेतना (काम = इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ) के आठ नैतिक वर्गों के साथ संयोजन में आते हैं। ये हैं: सात सार्वभौमिक, छह विशिष्ट और पच्चीस शोभना। इनमें से, सुखदायक रुचि केवल आनंद से युक्त चेतना के चार वर्गों के साथ संयोजन में आती है। बुद्धि भी ज्ञान से जुड़े चार वर्गों के साथ संयोजन में आती है। तीन संयम केवल नैतिक नियमों या उपदेशों का पालन करने पर

ही संयोजन में आते हैं। दो असीम गुण केवल जीवों के दुख के प्रति सहानुभूति रखने या उनके सुख में भागीदार होने पर ही उत्पन्न होते हैं। चेतना के इन आठ वर्गों में, द्वैत या त्रिमूल हेतु संबंध हैं। चार प्रकार के अधिपति, अर्थात् कर्म-इच्छा, मन, प्रयास और अन्वेषण, में से प्रत्येक बारी-बारी से एक अधिपति है। संकल्प कर्म का संबंध है। तीन भोजन आहार के संबंध हैं। आठ मानसिक अवस्थाएँ, अर्थात् मन, संवेदना, एकाग्रता, मानसिक जीवन, विश्वास, सजगता, प्रयास और बुद्धि, इंद्रिय के संबंध हैं। पांच ध्यान कारक, अर्थात् आरंभिक अभ्यास, निरंतर अभ्यास, सुखदायक रुचि, संवेदना और एकाग्रता, ध्यान के संबंध हैं। आठ मार्ग-घटक, अर्थात् अन्वेषण, आरंभिक अभ्यास, तीन संयम, सजगता, प्रयास और एकाग्रता, मार्ग के संबंध हैं। अतः, चेतना के इन आठ वर्गों में केवल दो संबंध (पच्छाजात और विपाक) प्राप्त नहीं होते हैं, और शेष बाईस प्राप्त होते हैं। निष्क्रिय चेतना के आठ शोभना वर्गों में तीन संयम प्राप्त नहीं होते हैं। जैसे नैतिक चेतना में, दो संबंध अप्राप्य होते हैं और बाईस प्राप्त होते हैं। परिणामी चेतना के आठ सुंदर वर्गों में भी तीन संयम और दो असीम प्राप्त नहीं होते हैं। अप्राप्य संबंध तीन हैं, अर्थात् अधिपति, पच्छाजात और असेवन; और शेष इक्कीस प्राप्त होते हैं।

रूप, अरूप और पारलौकिक चेतना के उच्च वर्गों में बाईस से अधिक संबंध प्राप्त नहीं होते हैं। संबंधों की समकालिकता को ज्ञान से जुड़े काम-चेतना के चार नैतिक वर्गों में विद्यमान समझा जाना चाहिए। यदि ऐसा है, तो चेतना के वे वर्ग काम-चेतना से अधिक श्रेष्ठ और पारलौकिक क्यों हैं? इसका कारण आसेवन की महानता है। ये विशेष अभ्यासों द्वारा निर्मित होते हैं, इसलिए आसेवन इनसे श्रेष्ठ है; इसी कारण इंद्रिय, ध्यान, मार्ग और अन्य संबंध भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। जब ये संबंध श्रेष्ठ हो जाते हैं—प्रत्येक दूसरे से उच्चतर—तो चेतना के वे वर्ग भी काम-चेतना से अधिक श्रेष्ठ और पारलौकिक हो जाते हैं।

मन की अवस्थाओं में संबंधों की समकालिकता का अंत।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **पथनुद्देसा दिपानी-गुण**
संबंधों का बौद्ध दर्शन
महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट द्वारा।
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता

अब भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता का वर्णन किया जाएगा। भौतिक गुणों के अट्ठाईस प्रकार हैं:-

अ. चार आवश्यक भौतिक गुण:
1. दृढ़ता का तत्व (पथवी)
2. संसंजन का तत्व (अपो)
3. गतिज ऊर्जा का तत्व (तेजो)
4. गति का तत्व (वायो); स्पर्शनीय (फोत्थब्बा): यह भौतिक गुण तीन आवश्यक तत्वों से बना है, अर्थात् विस्तार का तत्व, गतिज ऊर्जा का तत्व और गति का तत्व।

ब. पाँच संवेदी भौतिक गुण:

1. आँख (चक्खु)
2. कान (सोता)
3. नाक (गण)
4. जीभ (जीव)
5. शरीर (काया)।

ग. पाँच इंद्रिय-क्षेत्रों के भौतिक गुण:

1. दृश्य रूप (रूप)
2. ध्वनि (सद्दा)
3. गंध (गंध)

4. स्वाद (रस)।

D. लिंग के दो भौतिक गुण:

1. स्त्रीलिंग (इत्तिभाव)
2. पुरुषलिंग (पुम्भव)।

E. जीवन का एक भौतिक गुण (जीवित)।

F. हृदय-आधार का एक भौतिक गुण (हदय-वत्थु)।

G. पोषण का एक भौतिक गुण (आहार)।

H. सीमितता का एक भौतिक गुण (आकाश-धातु)।

I. संचार के दो भौतिक गुण:

1. शरीर द्वारा सूचना (कयविन्नत्ति)
2. वाणी द्वारा सूचना (वाचिविन्नत्ति)।

J. लचीलेपन के तीन भौतिक गुण:

1. हल्कापन (लहुता)
2. लचीलापन (मुदुत)
3. अनुकूलनशीलता (कम्मन्नत)।

K. प्रमुख विशेषताओं के चार भौतिक गुण:

1. एकीकरण (उपचय)
2. निरंतरता (संतति)
3. क्षय (जरत)
4. अनित्यता (अनिकट)।

इनमें से छह प्रकार के भौतिक गुण—अर्थात्, चार आवश्यक तत्व, जीवन का भौतिक गुण और पोषण का भौतिक गुण—भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। यहाँ भी, चार आवश्यक तत्व पाँच संबंधों द्वारा परस्पर संबंधित हैं: सहजता, अन्नमन्न, निस्सय, अत्ति और अविगत; और वे बाद वाले से उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से चार संबंधों द्वारा संबंधित हैं (अर्थात् उपरोक्त पाँच में अन्नमन्न को छोड़कर)। जीवन का भौतिक गुण इंद्रिय के माध्यम से कर्म द्वारा उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित है। पोषण का भौतिक गुण आहार के माध्यम से सह-अस्तित्व वाले और गैर-अस्तित्व वाले दोनों भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित है।

तेरह प्रकार के भौतिक गुण कुछ विशेष संबंधों द्वारा मानसिक अवस्थाओं से कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। ये भौतिक गुण हैं: पाँच प्रकार के संवेदी भौतिक गुण, सात प्रकार के इंद्रिय क्षेत्र और हृदय। इनमें से, जिस प्रकार एक माँ अपने पुत्र से संबंधित होती है, उसी प्रकार पाँच प्रकार के संवेदी भौतिक गुण पाँच इंद्रिय-ज्ञान से वस्तु-पुरेजात, वस्तु-पुरेजातिंद्रिय और वस्तु-पुरेजात-विप्पयुत्त के द्वारा कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। और जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र से संबंधित होता है, उसी प्रकार सात इंद्रिय क्षेत्र पाँच इंद्रिय-ज्ञान और बोध के तीन तत्वों से अरम्मनपुरेजात के द्वारा कारणिक रूप से जुड़े होते हैं। इसी प्रकार, जैसे एक वृक्ष उसमें निवास करने वाले देवता से संबंधित होता है, वैसे ही हृदय-आधार पुनर्जन्म के समय सहजतनिस्य के माध्यम से और जीवनकाल में वात्तुपुरेजात और वात्तुपुरेजात-विप्पयुत्त के माध्यम से बोध और बोध के दो तत्वों से कारणिक रूप से संबंधित होता है।

भौतिक गुणों के तेईस समूह हैं। इन्हें समूह इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये उत्पादन (जाति-रूप) के भौतिक गुण से समूहों में बंधे होते हैं,

जैसे बाल या घास धागे से बंधे होते हैं। इनमें से आठ प्रकार के भौतिक गुण, जैसे चार आवश्यक तत्व, रंग, गंध, स्वाद और पोषक तत्व, सभी भौतिक गुणों के प्राथमिक अष्टक का निर्माण करते हैं।

कर्म द्वारा उत्पन्न नौ समूह हैं: प्राणिक नौपद, आधारभूत दसपद, देह-पद, स्त्री-पद, पुरुष-पद, नेत्र-पद, कान-पद, नाक-पद और जीभ-पद। इनमें से, प्राणिकता के भौतिक गुण सहित प्राथमिक अष्टपद को प्राणिक नौपद कहा जाता है। यह प्राथमिक नौपद, आठ भौतिक गुणों (अर्थात हृदय-आधार आदि) में से प्रत्येक के साथ मिलकर, अन्य आठ दसपदों (अर्थात आधार-पद आदि) का निर्माण करता है। यहाँ चार समूह: प्राणिक नौपद, देह-पद और द्विलिंगी यौन-पद, एक प्राणी में स्थित होते हैं और पूरे शरीर में व्याप्त होते हैं। यहाँ प्राणिक नौपद, परिपक्वता अग्नि (पचकाग्गी) और देह अग्नि (कयग्गी) का नाम है। पचकाग्गी, या परिपक्वता अग्नि, वह है जो पेट में स्थित होती है और खाए, पिए, चबाए और चाटे गए भोजन को परिपक्व या पचाती है। कायग्गल, या शारीरिक अग्नि, वह है जो पूरे शरीर में व्याप्त होकर स्वयं को स्थापित करती है और अशुद्ध पित्त, कफ और रक्त को शुद्ध करती है। इन दो तत्वों की असंगत क्रिया से जीव अस्वस्थ हो जाते हैं, और इनकी सामंजस्यपूर्ण क्रिया से वे स्वस्थ हो जाते हैं। यही द्वैत अग्नि (या वह प्राणिक अग्नि) जीवों को जीवन और उत्तम रंग प्रदान करती है।

शरीर-संबंधी काल सुखदायक और पीड़ादायक संपर्क प्रदान करता है। द्विविध यौन काल स्त्रियों को सभी स्त्रीत्व संबंधी गुण और पुरुषों को सभी पुरुषत्व संबंधी गुण प्रदान करता है। शेष पाँच काल आंशिक काल कहलाते हैं। इनमें से हृदय-संबंधी काल, जो हृदय गुहा में स्थित होता है, अनेक प्रकार के नैतिक और अनैतिक विचारों को उत्पन्न करता है। आँख-संबंधी काल इत्यादि, जो क्रमशः आँख की पुतली, कान के भीतरी भाग, नाक के भीतरी भाग और जीभ की सतह पर स्थित होते हैं, दृष्टि, श्रवण, गंध और स्वाद की क्षमता प्रदान करते हैं।

मन द्वारा निर्मित आठ समूह हैं: प्राथमिक अष्टक, ध्वनि-अनाड, शरीर-संचार का अनाड और वाक्-संचार का ध्वनि-संबंधी काल। इन चारों को हल्कापन, लचीलापन और अनुकूलनशीलता के साथ मिलाकर चार और समूह बनते हैं: प्लास्टिसिटी का अदशक, प्लास्टिसिटी का ध्वनि-दशक, प्लास्टिसिटी के साथ शारीरिक संचार का दशक, और प्लास्टिसिटी के साथ वाक् संचार का ध्वनि-त्रुकक। अंतिम चार समूहों को प्लास्टिक समूह कहा जाता है, और पहले चार समूहों को प्राथमिक समूह कहा जाता है।

इनमें से, जब शरीर के अंग सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर रहे होते हैं, तो एक बीमार व्यक्ति में केवल चार प्राथमिक समूह ही प्रकट होते हैं, जिसके भौतिक गुण भारी, खुरदुरे और अनुकूलनीय नहीं रह जाते हैं, और परिणामस्वरूप उसके लिए अपनी इच्छानुसार शारीरिक मुद्रा बनाए रखना, शरीर के अंगों को हिलाना और यहां तक कि मौखिक प्रतिक्रिया देना भी मुश्किल हो जाता है। लेकिन जब शरीर के अंग सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य कर रहे होते हैं - एक स्वस्थ व्यक्ति में भारीपन आदि जैसे शरीर के कोई दोष नहीं होते हैं - तो चार प्लास्टिक समूह अस्तित्व में आते हैं। इन चारों में से, शारीरिक संचार के दो समूह मन के माध्यम से या शरीर के किसी भी अंग को हिलाने के द्वारा प्रकट होते हैं। बोलने की इच्छा होने पर, मन की क्रिया के कारण ही वाक्-संचार के अन्य दो समूह भी उत्पन्न होते हैं; परन्तु जब हँसने या रोने के कारण अशाब्दिक ध्वनि उत्पन्न होती है, तब केवल दो सामान्य ध्वनि समूह ही उत्पन्न होते हैं। अन्य समयों पर, परिस्थितियों के अनुसार पहले दो समूह, प्राथमिक अष्टक और अष्टक ध्वनि, उत्पन्न होते हैं।

भौतिक परिवर्तन से चार समूह उत्पन्न होते हैं: दो प्राथमिक समूह (अर्थात प्राथमिक अष्टक और ध्वनि अनाड) और दो प्लास्टिक समूह (अर्थात प्लास्टिकता का अष्टक और प्लास्टिकता का ध्वनि द्वादश)। अब हमारा यह शरीर जीवन भर, शारीरिक मुद्राओं के एक लंबे क्रम के माध्यम से, स्वयं को बनाए रखता है। अतः, प्रत्येक क्षण, इस शरीर में तत्वों की सामंजस्यपूर्ण और असामंजस्यपूर्ण क्रियाएँ होती रहती हैं, जो मुद्राओं में परिवर्तन, तापमान में परिवर्तन, भोजन, वायु और ऊष्मा में परिवर्तन, शरीर के अंगों की स्थिति में परिवर्तन के माध्यम से होती हैं। और स्वयं के और दूसरों के प्रयासों में परिवर्तन के माध्यम से। यहाँ भी, सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते समय, दो प्लास्टिक समूह उत्पन्न होते हैं; और असामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते समय, अन्य दो प्राथमिक समूह उत्पन्न होते हैं। चार समूहों में से, दो ध्वनि-समूह तब उत्पन्न होते हैं जब मन द्वारा उत्पन्न ध्वनि के अलावा विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

भोजन द्वारा दो समूह उत्पन्न होते हैं: प्राथमिक अष्टक और अष्टक। इन दो समूहों को क्रमशः उपयुक्त और अनुपयुक्त भोजन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों की सामंजस्यपूर्ण और असामंजस्यपूर्ण घटनाओं के रूप में समझा जाना चाहिए।

पाँच भौतिक गुण, अर्थात्, अंतरिक्ष तत्व और पदार्थ की चार प्रमुख विशेषताएँ, समूहीकरण से बाहर हैं। इनमें से, अंतरिक्ष तत्व समूहीकरण से बाहर है क्योंकि यह समूहों की सीमा है। प्रमुख विशेषताओं के भौतिक गुणों के संबंध में, उन्हें समूहीकरण से अलग रखा गया है, क्योंकि वे केवल सशर्त वस्तुओं के चिह्न या संकेत हैं, जिनके माध्यम से हम स्पष्ट रूप से जानते हैं कि वे वास्तव में सशर्त वस्तुएँ हैं।

ये तेईस समूह एक व्यक्ति में उपलब्ध हैं। बाहरी वस्तुओं में उपलब्ध समूह केवल दो हैं, जो भौतिक परिवर्तन द्वारा उत्पन्न समूहों के अलावा और कुछ नहीं हैं। भौतिक गुण, आंतरिक और बाह्य। इन दोनों में से, आंतरिक गुण किसी सजीव प्राणी के स्थान को दर्शाता है और बाह्य गुण पृथ्वी, पहाड़ियाँ, नदियाँ, महासागर, वृक्ष आदि को दर्शाता है। अतः हमने कहा है कि किसी व्यक्ति में तेईस समूह, या सभी अट्ठाईस प्रकार के भौतिक गुण, विद्यमान होते हैं।

पुनर्जन्म की अवधारणा और उससे संबंधित मानसिक अवस्थाएँ, गर्भाधान के समय कर्म द्वारा उत्पन्न समूहों से छह विभिन्न संबंधों के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं: चार श्रेष्ठ सहजत, विपाक और विपयुत्त। परन्तु हृदय-आधार से वे सात संबंधों के माध्यम से जुड़ी हुई हैं, अर्थात् उपरोक्त संबंधों के साथ-साथ अन्नमन्न का संबंध भी। पुनर्जन्म के समय की मानसिक अवस्थाओं में, मूल अवस्थाएँ हेतु संबंध के माध्यम से, संकल्प आहार संबंध के माध्यम से, नियंत्रण इंद्रिय संबंध के माध्यम से, ध्यान घटक ध्यान संबंध के माध्यम से और पथ घटक पथ संबंध के माध्यम से कर्म द्वारा उत्पन्न समूहों से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं। भूतकाल की नैतिक और अनैतिक संकल्पियाँ केवल कर्म के माध्यम से कारणिक रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रथम पश्चवर्ती जीवन-क्रम, द्वितीय, तृतीय, और इसी प्रकार आगे के सभी क्रम, कर्म द्वारा उत्पन्न पूर्ववर्ती भौतिक गुणों से पच्छाजात के माध्यम से कारणिक रूप से संबंधित हैं। पच्छाजात से तात्पर्य पच्छाजात की सभी प्रजातियों से है। भूतकाल की इच्छाएँ केवल कर्म के माध्यम से ही कारणिक रूप से संबंधित हैं। इस प्रकार, मानसिक अवस्थाएँ कर्म द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से चौदह विभिन्न संबंधों द्वारा कारणिक रूप से संबंधित हैं। यहाँ दस संबंध प्राप्त नहीं होते हैं, अर्थात् अरम्मन, अधिपति, अनंतर, समनन्तर, उपनिषय, पुरेजात, असेवन, सम्पायुत्त, नत्थि और विगत।

जीवनकाल के दौरान, भौतिक गुणों को उत्पन्न करने में सक्षम मानसिक अवस्थाएँ, उनके द्वारा उत्पन्न सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से पाँच विभिन्न संबंधों द्वारा कारणिक रूप से संबंधित होती हैं: चार श्रेष्ठ सहजात और विपायुत्त। इन मानसिक अवस्थाओं में, हेतु, अधिपति के द्वारा प्रभुत्व, कर्म के द्वारा संकल्प, विपाक के द्वारा परिणाम, आहार के द्वारा भोजन, इंद्रिय के द्वारा नियंत्रण, ध्यान के द्वारा ध्यान कारक और मार्ग के घटक मन द्वारा उत्पन्न भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। सभी परवर्ती मानसिक अवस्थाएँ पच्छाजात के द्वारा मन द्वारा उत्पन्न पूर्ववर्ती भौतिक गुणों से कारणवश संबंधित हैं। इस प्रकार, मानसिक अवस्थाएँ चौदह विभिन्न संबंधों द्वारा मन द्वारा उत्पन्न भौतिक समूहों से कारणवश संबंधित हैं। यहाँ भी दस संबंध अप्राप्य हैं: अरम्मन, अनंतार, समनन्तार, अन्नम्मन, उपनिषय, पुरेजात, असेवन, सम्पायुत्त, नत्थि और विगत।

जीवनकाल के दौरान, गर्भाधान की स्थिर अवस्था से शुरू होकर, सभी मानसिक अवस्थाएँ भोजन से उत्पन्न भौतिक समूहों और शारीरिक परिवर्तन से उत्पन्न भौतिक समूहों से केवल पच्छाजात के माध्यम से ही कारणिक रूप से संबंधित होती हैं। यहाँ फिर से, पच्छाजात से तात्पर्य पच्छाजात की सभी चार प्रजातियों से है। शेष बीस संबंध प्राप्त नहीं किए जा सकते।

भौतिक गुणों के तेईस समूहों में, चार आवश्यक गुण पाँच विभिन्न संबंधों से आपस में संबंधित हैं, अर्थात् चार श्रेष्ठ सहजत और एक अन्नमन्न; लेकिन सह-अस्तित्व वाले व्युत्पन्न भौतिक गुणों से केवल चार श्रेष्ठ सहजत संबंधों से ही संबंधित हैं। पोषण तत्व का भौतिक गुण आहार के माध्यम से सह-अस्तित्व वाले और गैर-सह-अस्तित्व वाले शारीरिक भौतिक गुणों से कारण संबंध रखता है। कर्म द्वारा उत्पन्न नौ समूहों में भौतिक जीवन का भौतिक गुण इंद्रिय के माध्यम से केवल सह-अस्तित्व वाले भौतिक गुणों से कारण संबंध रखता है। इस प्रकार शारीरिक भौतिक गुण सात विभिन्न संबंधों से शारीरिक पदार्थों से कारण संबंध रखते हैं। जहाँ तक बाह्य भौतिक गुणों का संबंध है, वे भौतिक परिवर्तन द्वारा उत्पन्न दो बाह्य समूहों से पाँच विभिन्न संबंधों से परस्पर संबंधित हैं।

भौतिक गुणों के समूहों में संबंधों की समकालिकता यहीं समाप्त होती है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **द पथनुद्देसा दीपनी-फुटनोट्स**
द बुद्धिस्ट फिलॉसफी ऑफ रिलेशंस
बाई महाथेरा लेडी सयाडॉ, अग्गमहापंडिता, डी.लिट.
मसोयेइन मठ मांडले के सयाडॉ यू न्याना, पटामाग्याव द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

फुटनोट:

[3] इस संबंध में, "पच्चया" को आम तौर पर "अरम्मना" =
"हैंगर" (जैसे पॉट-हुक) = "ऑब्जेक्ट" के रूप में जाना जाता है; और पकायुप्पन्ना" को

"अराम्मनिका" = "हैंगर-ऑन" = "विषय" के रूप में जाना जाता है। (अनुवादक।)
[4] इंद्रियों के छह द्वार - मन, बौद्ध दर्शन में,
छठा "इंद्रिय" बनाते हैं।
[6] अनुवादक द्वारा नोट। धम्मतो वत्थुतो या सरूपतो या पाबेदातो के बराबर है
। चित्तुप्पदा के अर्थ के तीन पहलू हैं।
सबसे पहले, इसका अर्थ है "चेतना", जैसा कि:
"तेसम" चित्तवियुत्तनं यथियोगम् इतो परम,
चित्तुप्पादेसु पच्चेकम् संपायोगो पवुक्कति।"
(भाग II, संगहा देखें)।
दूसरे, इसका अर्थ है "विचार की उत्पत्ति", जैसे:
"विथिचित्तनि सत्तैव: चित्तुप्पदा कैटुद्दसा:
कैटुपन्नासा विठ्ठरा पंचादवारे यथारहम्"
(भाग IV, संगहा देखें।)
तीसरा, इसका अर्थ है "मन और इसका सहवर्ती," जैसा कि:
"चित्तुप्पादानम" इक्केवम् कट्व संगहम" उत्तरम्,
भूमिपुग्गलाभेदेन पुब्बपरण्यमितम्।"
(भाग IV, संगहा देखें।)
इनमें से प्रत्येक उदाहरण में, यौगिक
"चित्तुप्पादा" के निर्माण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पहले उदाहरण में, इसका
निर्माण इस प्रकार किया गया है: उप्पज्जतिति उप्पदो। चित्तम्"एव उप्पदो
सिट्टुप्पादो; दूसरे उदाहरण में, चित्तस्सा उप्पदो चित्तुप्पदो:
तीसरे उदाहरण में, उप्पज्जति एतेनाति उप्पदो धम्मसामुहो।
सिट्टंका उप्पादो सीए सिट्टुप्पादो.
[7] अनुवादक द्वारा नोट लोकुत्तरधम्म का अर्थ यहां है, यानी,
पथ के चार चरणों से बने चार जोड़े,
उसी के फल और निब्बान के साथ।
[8] दृश्य, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद, संपर्क, विचार।
[9] यहाँ सत्य का तात्पर्य उनके द्वारा दिए गए वादे की निष्ठा से है।
[
10] यहाँ मन से तात्पर्य उन बोधों में से एक से है जो सामान्यतः
कुल पचपन होते हैं, परन्तु इस संदर्भ में हमें
मंद चेतना और सौंदर्यबोध के दो वर्गों को भी छोड़ देना चाहिए।
अन्य तीन प्रमुख तत्व अपने-अपने सहवर्ती हैं।
[11] पृथ्वी, जल, अग्नि या वायु के किसी भी पिंड में ये "तत्व"
पूर्ण शुद्धता की अवस्था में विद्यमान नहीं होते। अन्य "तत्व"
सदा उपस्थित रहते हैं, परन्तु बहुत ही गौण अनुपात में।
[12] वह है जो निब्बान को बिना किसी सहायता के प्राप्त करता है।
[13] यहाँ विज्ञान, कला और हस्तशिल्प का तात्पर्य है। [14] लेडी सयादाव यहाँ गर्भ से जन्म लेने वाले प्राणी
के जीवनकाल की व्याख्या करते प्रतीत होते हैं । [15] इसे "स्थायी समाप्ति" के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ समाप्ति का तात्पर्य न केवल चेतना की है, बल्कि मानसिक सहवर्ती क्रियाओं की भी है।

और मन से उत्पन्न मानसिक गुण। (अनुवादक)
[16] यहाँ (हदयम) विचार का (चित्त) स्थान है।
[17] कहने का तात्पर्य यह है कि निर्वाण और अवधारणाएँ (या अधिक उचित रूप से, अवधारणा-
पद) समय में प्रवेश नहीं करते हैं, और इसलिए समय के
स्वभाव, परिवर्तन के अधीन नहीं हैं। वे "उत्पन्न" नहीं होते; इसलिए वे

"समाप्त" नहीं होते। वे समय से परे होने के अर्थ में "शाश्वत और शाश्वत" हैं , न कि समय में अनंत रूप से निरंतर होने के सामान्य अर्थ में । [18] यहाँ अभ्यकत का अनुवाद "अनिर्दिष्ट" या "अनैतिक" के रूप में किया गया है। टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है: कुसला-अक्षलभावन अकथिता, अन्नभावन अकथिता; अर्थात्, इसे नैतिक या अनैतिक नहीं कहा जाना चाहिए, बल्कि "दोनों से अलग", अर्थात् अनैतिक या अनिर्दिष्ट कहा जाना चाहिए। अभ्यकतधम्म हैं—परिणामी और अक्रियाशील चेतना के सभी वर्ग और सभी भौतिक गुण, साथ ही निर्वाण। [19] यह "पर्याप्त शर्त" है जैसा कि बुद्ध के सूत्रों या सामान्य प्रवचनों में वर्णित है , शास्त्रों के अभिधम्म खंड में वर्णित तरीके से भिन्न है । [21] वे प्राणी जिनका अस्तित्व माता-पिता से जन्म लेने के सामान्य तरीके के अलावा किसी अन्य तरीके से होता है; जिन्हें पाश्चात्य "अलौकिक प्राणी" कह सकते हैं, हालांकि उनमें से सभी को किसी भी जीवन संबंधी पहलू में मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं समझा जाना चाहिए। कई मनुष्य से शक्ति और क्षमता में, साथ ही निर्वाण प्राप्त करने के अवसरों में भी हीन हैं। [22] यहाँ, भौतिक गुणों की उत्पत्ति का तात्पर्य है। "उत्पत्ति" शब्द का प्रयोग डार्विन के अर्थ में किया गया है, जैसा कि " प्रजातियों की उत्पत्ति" में है। [23] यहाँ, उतु (शाब्दिक अर्थ, ऋतु) को "तापमान" के रूप में अनुवादित किया गया है। इसे आम तौर पर "भौतिक परिवर्तन," "कैलोरी ऊर्जा," "गर्मी और ठंड," आदि के रूप में भी अनुवादित किया जा सकता है। [24] लेडी सयादाव ने चेतनावत्था की व्याख्या नहीं की है। लेकिन इसे समझना काफी आसान है, क्योंकि यह प्रारंभिक इच्छा या कर्म का क्रियान्वयन है। [25] चार कारण हैं (1) कर्म, (2) चित्त (चेतना), (3) उतु (तापमान) और (4) आहार (पोषण)। [26] इनमें से, अंतिम तीन केवल लोकउत्तरा तक ही सीमित हैं। और इन तीनों में से, पहला प्रथम मार्ग से संबंधित ज्ञान है , दूसरा अंतिम तीन मार्गों और पहले तीन फलों से संबंधित है, और तीसरा केवल अंतिम फल से संबंधित है। [28] इनमें से अलग,या फिर, इसके सामान्य मोड से आगे बढ़कर।

[29] "निश्चित रूप से हे कच्चाना, (आत्मा) का अस्तित्व एक चरम सीमा है, और
(आत्मा) का अस्तित्व नहीं है, यह दूसरी चरम सीमा है।"
यह एक ऐसा अंश है जहाँ आत्मा, स्वयं या अहंकार की समस्या पर एक वास्तविक व्यक्तिगत सत्ता के रूप में उसके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के संबंध में चर्चा की गई है। [30] यहाँ, अप्पचया शब्द कम्मधरय यौगिक नहीं है, बल्कि बहुबबिहि वर्ग का है - इस प्रकार: नत्थि पच्चया एतेसम ति अप्पचया। असंखता कम्मधरय यौगिक है - इस प्रकार: संकारियन्ते ति संखता; न संखता ति असंखता। [31] सभी प्राणियों के लिए चार मुद्राएँ हैं: बैठना, खड़ा होना, चलना और लेटना। [33] अन्यत्र "पच्चयुप्पना" शब्द का अनुवाद "संबंधित वस्तुएँ" के रूप में किया गया है ।

हटू निंग द्वारा

परिचय

हम इस संसार में हैं। हम अपनी पाँचों इंद्रियों से संसार को महसूस कर सकते हैं। यह एक सच्चाई है, किसी की राय नहीं। हम जन्म से ही इस संसार में हैं। और जब तक हमारा जीवन हमें जीने की अनुमति देगा, हम इसी संसार में रहेंगे। और हम निश्चित रूप से इस संसार को छोड़कर जाएंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

यह मामला पूरी तरह स्पष्ट है और इस बात पर कोई विवाद नहीं है। हमारे जीवनकाल में, इस धरती पर अनेक लोग इस संसार में रह चुके हैं। अपने जीवन के दौरान वे अपने अस्तित्व और निरंतर जीवनयापन के लिए संघर्ष करते रहे। कुछ ने तो केवल अपने लिए ही ऐसा किया। लेकिन कुछ ने अपने अनुभव और ज्ञान के माध्यम से अमूल्य तथ्य छोड़े हैं।

विज्ञान और कला की अनेक शाखाएँ हैं जो अपने-अपने विषयों का अध्ययन करती हैं। प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ-साथ प्रत्येक विषय पर अनेक लिखित सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं। कुछ विषय अभी भी प्रगति के दौर से गुजर रहे हैं और उन पर शोध कार्य जारी है। ये विषय अंतहीन प्रतीत होते हैं।

लेकिन ये विषय चाहे जिस तरह से आचरण और व्यवहार करें, अंततः सब कुछ चार धर्मों में से किसी एक के अंतर्गत आ जाएगा। कोई भी तथ्य इन चार धर्मों या चार परम वास्तविकताओं में से एक होगा। इन चार परम वास्तविकताओं को परम सत्य या सार्वभौमिक सत्य के रूप में भी जाना जाता है। क्योंकि ये चार धर्म या ये चार प्रकृतियाँ किसी भी समय, किसी भी स्थान और किसी भी युग में हमेशा सत्य होती हैं।

इन चार परम सत्यों के बीच जटिल संबंध हैं। इन संबंधों का अध्ययन बुद्ध अभिधम्म में किया जा सकता है, और बुद्ध अभिधम्म में सबसे जटिल और अत्यंत आदरणीय धर्म पथाना है। पथाना को समझने के लिए, सर्वप्रथम चार परम सत्यों या परमत्थ धर्मों को विस्तार से समझना आवश्यक है।

विस्तार से चर्चा करने से पहले, इन चार परमत्थ धम्मों का संक्षिप्त अवलोकन करना उचित होगा। हम जो कुछ भी देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूंघ सकते हैं, चख सकते हैं, अपने शरीर के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं और अपने कार्यशील मन से समझ सकते हैं, वह सब चार श्रेणियों में आता है।

ये चार श्रेणियाँ हैं: 1. चित्त या चेतना या मन की अवस्था, 2. चेतसिका या मानसिक कारक, 3. रूप या पदार्थ या अचेतन प्रकृति, और 4. निर्वाण या परम शांति या लोभ (लालसा), दोष (घृणा) और मोह (अज्ञान) सहित सभी अग्नि का पूर्ण शमन। सरल शब्दों में कहें तो, संपूर्ण ब्रह्मांड में केवल यही चार चीजें हैं: चित्त, चेतसिका, रूप और निर्वाण। परम अर्थ में इन चार धर्मों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

बाय हटू निंग

अध्याय 1 - चित्त

या चेतना
चार वास्तविकताओं में से सर्वप्रथम चित्त को समझना आवश्यक है। यह वह प्रकृति है जो अपने विषय के प्रति सजग है। कोई अन्य धर्म या प्रकृति स्वयं सहित किसी भी चीज़ को नहीं जान सकती। परन्तु चित्त सभी को जान सकता है, यहाँ तक कि चित्तों को भी।

चित्त हमेशा अन्य नाम, धम्म और रूप, धम्मों का नेतृत्व करता है। एक चित्त उत्पन्न होता है और उत्पन्न होते ही तुरंत नष्ट हो जाता है। दूसरा चित्त उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है। अगला उत्पन्न होता है और तुरंत नष्ट हो जाता है। इस प्रकार की निरंतरता चित्त की अभिव्यक्ति है। चित्त के उत्पन्न होने के तात्कालिक कारण होते हैं। वे स्वयं चित्त, नाम, धम्म और रूप, धम्म हैं।

कुल मिलाकर 89 चित्त हैं।

- 81 चित्त सांसारिक चेतना हैं और
- 8 चित्त अलौकिक चेतना हैं।

किसी अन्य समय में, चित्त को कुल 121 चित्तों के रूप में गिना जा सकता है।

ऐसा तब होता है जब झाना में 8 लोकुत्तारा चित्त उत्पन्न होते हैं। इन्हें लोकुत्तारा झाना चित्तस कहा जाता है। जैसे कि 5 झाना हैं, तो 40 लोकुत्तारा झाना चित्त हैं।

लोकिया चित्त 40 और 81 के साथ मिलाकर कुल 121 चित्त होंगे।

81 लोकीय चित्त हैं

- 54 कामावकार चित्त,
- 15 रूपावचरा चित्त, और

12 अरुपावचार चित्तस.
काम का अर्थ है पांचों इंद्रियों से संबंधित कामुक वस्तुएँ। अवचार का अर्थ है बार-बार उत्पन्न होना। कामावचार का अर्थ है कामभूमि या कामुक क्षेत्र में बार-बार उत्पन्न होना।

दूसरे शब्दों में कहें तो,

रूपवकार रूप ब्रह्म भूमि है और अरुपवकार अरूप ब्रह्म भूमि या अस्तित्व के क्षेत्र या विमान में है।

कामावचर चित्तस अराई

- 12 अकुसल चित्तस,
- 30 असोभना चित्त या गैर-सुंदर चेतना, और
- 24 शोभना चित्त या सुंदर चित्त।

12 अकुशल चित्त हैं

- 8 लोभ मूल चित्त या लोभ से उत्पन्न चेतना,
- 2 दोष मूल चित्त या घृणा/विरोध से उत्पन्न चेतना, और
- 2 मोहमूल चित्त या अज्ञान/भ्रम से ग्रस्त चेतना।

8 लोभ मूल चित्त हैं

1. सोमनस्सा सहगतम् दिट्ठिगता संयुत्तम् असंखरिका चित्तम्
2. सोमनस्सा सहगतं दिट्ठिगता संयुत्तं ससंखारिका चित्तम्
3. सोमनस्सा सहगतम् दिट्ठिगता विप्पयुत्तम् असंखरिका चित्तम्
4. सोमनस्सा सहगतम् दिट्ठिगता विप्पयुत्तम् ससंखरिका चित्तम्
5. उपेक्खा सहगतं दिट्ठिगता संयुत्तं असंखरिका चित्तम्
6. उपेक्खा सहगतं दिट्ठिगता संयुत्तं ससंखरिका चित्तम्
7. उपेक्खा सहगतं दिट्ठिगता विप्पयुत्तम असंखरिका चित्तम
8. उपेक्खा सहगतं दिट्ठिगता विप्पयुत्तं ससंखरिका चित्तम्

- सोमनास्सा मन में उत्पन्न होने वाला मानसिक सुख या सुखद अनुभूति है।
- सहगतम का अर्थ है साथ-साथ चलना।
- दित्थिगता का अर्थ है दित्थी या गलत दृष्टिकोण के साथ, यानी कर्म और उसके निहितार्थों में कोई विश्वास नहीं होना।
- सम्युत्तम का अर्थ है समानांतर रूप से, जबकि
- विपयुत्तम का अर्थ है बिना।
- असंखारिका का अर्थ है बिना किसी संकेत, तैयारी या प्रोत्साहन के।
- ससंखारिका का अर्थ है पूर्व के विपरीत, यानी उत्तेजना की आवश्यकता या प्रेरणा।
- उपेक्षा का अर्थ है न तो सुखद और न ही अप्रिय भावना।

1. पहला चित्त उस बच्चे की तरह है जो खुशी-खुशी आइसक्रीम खा रहा है। वह खुश है। उसे मानसिक आनंद या सोमनस्सा प्राप्त है। एक बच्चे के रूप में, उसे कर्म का ज्ञान नहीं होता, इसलिए कर्म में कोई विश्वास नहीं होता। यह चित्त दिट्ठी या गलत दृष्टिकोण के समानांतर उत्पन्न होता है। उसे खुश रहने के लिए कोई नहीं कह रहा है। इसलिए यह पहले लोभ चित्त का उदाहरण है।

2. दूसरा लोभ चित्त ऐसे मामले में देखा जाता है जैसे किसी बच्चे को बिना यह जाने कि उसमें केक है, एक पैकेट मिलता है। उसकी माँ उससे कहती है, "जॉन, यह पैकेट तुम्हारे लिए है। पैकेट खोलो और अंदर का मीठा केक खाओ।" जब उसे पैकेट मिला, तो उसे पता नहीं था कि उसमें केक है। लेकिन जैसे ही उसकी माँ ने उसे पैकेट खोलने को कहा, वह मीठा केक खाने की इच्छा से खुश हो गया। यही प्रेरणा है।

3. तीसरे लोभ चित्त को एक ऐसे विद्वान वयस्क के उदाहरण के रूप में देखा जाता है जो इस समय प्रसन्नतापूर्वक फिल्में देख रहा है। वह खुश है। वह कर्म और उसके निहितार्थों में विश्वास रखता है। लेकिन कोई भी उसे खुश रहने के लिए प्रेरित नहीं कर रहा है।

4. चौथा लोभ चित्त एक ऐसे विद्वान वयस्क के मामले में देखा जाता है जो कोई शब्द सुनता है लेकिन उसका सटीक अर्थ पूरी तरह से नहीं समझ पाता। उसका मित्र उससे कहता है कि तुम बहुत प्रभावशाली हो। तब वह व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। वह प्रसन्न (सोमनस्स) है। वह विद्वान (दित्तिगत विप्पयुत्त) है। लेकिन उसे अपने मित्र द्वारा प्रेरित किया जाना आवश्यक है, यही शसंखारिका है।

5. पाँचवें लोभ चित्त को एक बच्चे के मामले में देखा जा सकता है, जब वह अपने माता-पिता की दिलचस्प बातें सुन रहा होता है। वह विशेष रूप से खुश नहीं होता क्योंकि वह बड़ों की बातें पूरी तरह से नहीं समझ पाता। लेकिन लोभ होने के कारण वह ध्यान से सुन रहा होता है। यह गलत धारणा है क्योंकि वह कर्म को अच्छी तरह से नहीं जानता। और कोई भी उसे सुनने के लिए प्रेरित नहीं कर रहा है।

6. छठा लोभ चित्त उस स्थिति में देखा जाता है जब एक बच्चे को उपहार मिलता है और उसे बताया जाता है कि यह उसके लिए है। वह विशेष रूप से प्रसन्न नहीं होता। यह उपेक्षा है। उसे कर्म का ज्ञान नहीं है। लेकिन उसे बताया जाता है कि उपहार उसके लिए है। यह सुनने से पहले, लोभ चित्त उत्पन्न नहीं होता। बताए जाने पर ही यह उत्पन्न होता है। यह संसंखारिक या प्रेरित किया जाना है।

7. सातवां लोभ चित्त एक वयस्क व्यक्ति में तब देखा जा सकता है जब वह कुछ नोट गिन रहा हो। वह विशेष रूप से प्रसन्न नहीं है क्योंकि यह धनराशि सोमनस्सा से संबंधित नहीं है। वह कर्म को भलीभांति जानता है। कोई भी उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित नहीं कर रहा है।

8. आठवां लोभ चित्त उस स्थिति में देखा जा सकता है जब कोई वयस्क व्यक्ति दूसरों के पैसे गिन रहा होता है और उसे बताया जाता है कि ये नोट उसी के लिए हैं। राशि बहुत अधिक नहीं होती और उसे प्रोत्साहित किया जाता है। अतः यह शसंखारिका लोभ चित्त है।

दो डोसा मूला चित्ता हैं। वे हैं:

1. डोमनस्सा सहगतं पतिघ संयुत्तं असंखरिका चित्तम्
2. डोमनस्सा सहगतं पतिघ संयुत्तं ससंखरिका चित्तम्।

डोमनास्सा का अर्थ है मन में अप्रिय भावना। पतिघा का अर्थ है विनाश करना, चोट पहुँचाना।

1. अधिकांश दोसा चित्तों में पहला दोसा चित्त देखा जा सकता है, जहाँ लोग स्पष्ट रूप से आक्रामक व्यवहार करते हैं जैसे कि हत्या करना, मारना, पीटना, लात मारना, गाली देना आदि।

2. दूसरा दोष चित्त उस स्थिति में देखा जा सकता है जब किसी व्यक्ति को कुछ कहा जाता है और वह उसे नहीं सुनता। एक मित्र ने कहा कि मूर्ख तो तुम हो। तब वह क्रोधित हो जाता है। उसे याद दिलाना पड़ता है। अतः यह संसंखारिक चित्त है।

वहाँ 2 मोहा मुला चित्तों हैं। वे हैं:

1. उपेक्खा सहगतं विकिसिच्च संयुत्त चित्तम्
2. उपेक्खा सहगतं उद्धच्च संयुत्त चित्तम्

1. पहला मोह चित्त अनिर्णय की स्थिति में देखा जाता है जब कोई व्यक्ति सही या गलत का निर्णय नहीं कर पाता है और उसे मामले पर संदेह होता है।

2. मोह चित्त का दूसरा लक्षण अधिकांश लोगों में तब देखा जा सकता है जब वे कल्पनाशील विचारों में खोए हुए होते हैं। यह विशेष रूप से शोक की स्थिति में देखा जा सकता है। किसी अपने की मृत्यु होने पर बेचैनी होती है और संबंधित लोग दुखी होते हैं।

असोभना चित्त या गैर-सुंदर चित्त की संख्या 30 है।

- पिछले पृष्ठों में 12 चित्तों का वर्णन किया गया है।
- अन्य गैर-सुंदर चित्त 18 अहेतुका चित्त हैं।

यद्यपि वे अकुशल चित्त नहीं हैं, फिर भी उन्हें सुंदर नहीं कहा जाता क्योंकि उनमें कोई हेतुका या मूल तत्व नहीं होते, जैसे कि सुंदर चेतना में द्विहेतुका शोभना चित्त और तिहेतुका शोभना चित्त में होते हैं।

फिर से, इन 18 अहेतुका चित्तों या जड़विहीन चेतना को तीन अलग-अलग समूहों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं:

- 7 अकुसल विपकचित्तस,
- 8 कुसलविपकाचित्त और
- 3 अहेतुका किरिया सिट्टास.

हेतुका या मूल इस प्रकार हैं:

1. लोभा,
2. डोसा,
3. मोहा,
4. अलोभा,
5. अडोसा, और

6. अमोहा.

कुल मिलाकर 6 हेतुका या मूल हैं। इन विषयों पर पहली पुस्तक 'पच्चया हेतु पच्चया' की चर्चा के दौरान विचार किया जाएगा।

अहेतुका का अर्थ है जड़हीन, यानी सभी छह जड़ों का अभाव। विपाक का अर्थ है परिणाम। क्रिया का अर्थ है केवल कर्मिक बल, लेकिन उस कर्मिक बल का कोई अस्तित्व नहीं।

7 अहेतुका अकुसल विपाकचित्त हैं। वे हैं

1. उपेक्खा सहगतं चक्खुविन्नान चित्त
2. उपेक्खा सहगतं सोतविन्नन चित्त
3. उपेक्खा सगागतं घनविन्नान चित्त
4. उपेक्खा सहगतं जीवविन्नन चित्त
5. दुक्ख सहागतं कायविन्नन चित्त
6. उपेक्खा सहगतं सम्पतिच्चन चित्त
7. उपेक्खा सहगतं शांतिराना चित्त

चक्खु का अर्थ है आँख से संबंधित। विन्नाना शब्द वि और नाना से मिलकर बना है। वि का अर्थ है विशिष्ट, विशेष, विशिष्ट। नाना का अर्थ है ज्ञान।

अतः विन्नना चित्त विशेष ज्ञान है। जब किसी रंग को देखते समय आँख में चित्त जागृत होता है, तो वह चित्त ही उस रंग को विशेष रूप से जानता है। कोई अन्य चित्त उस रंग को नहीं जान सकता। अतः यह विन्नना चित्त का एक रूप है।

सोता का अर्थ है कान से संबंधित, घना का अर्थ है नाक से संबंधित, जिह्वा का अर्थ है जीभ से संबंधित, काया का अर्थ है शारीरिक शरीर से संबंधित। दुख का अर्थ है असहनीय या सहन करने में कठिनाई का अनुभव।

सम्पतिच्छना शब्द 'सम' (जिसका अर्थ है 'अच्छी तरह') और 'पतिच्छना' (जिसका अर्थ है 'ग्रहण करना') से मिलकर बना है। अतः सम्पतिच्छना चित्त वह अच्छी तरह ग्रहण करने वाली चेतना है जो अपने उत्पन्न होने से ठीक पहले उत्पन्न हुई पूर्व चित्त द्वारा स्थानांतरित वस्तु को ग्रहण करती है।

संतिरना शब्द 'सान' (जिसका अर्थ है 'अच्छी तरह') और 'तिराना' (जिसका अर्थ है 'उचित रूप से जांच करना') से मिलकर बना है। अतः संतिरना चित्त एक ऐसी चेतना है जो संपतिचना के विषय में गहराई से जाकर यह समझने का प्रयास करती है कि वह क्या है।

आठ अहेतुका कुसलविपाका चित्त हैं। ये आठ जड़रहित संपूर्ण परिणामी चेतना हैं।

1. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाका चक्खुविन्नन चित्त
2. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाका सोतविन्नन चित्त
3. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाक घनविन्नन चित्त
4. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाका जीवविन्नन चित्त
5. सुख सहगतं कुसलविपाका कायाविन्नन चित्त
6. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाक सम्पतिच्चन चित्त
7. उपेक्खा सहगतं कुसलविपाका शांतिराना चित्त
8. सोमनस्सा सहगतं कुसलविपाक शांतिराना चित्त

ये चित्त कुशल कर्मों या पुण्य कर्मों से उत्पन्न होने वाले चित्त हैं। सुख का अर्थ है शारीरिक आनंद।

3 अहेतुका किरिया चित्त हैं। वे हैं

1. उपेक्खा सहगतं पञ्चद्वरवज्जन चित्त
2. उपेक्खा सहगतं मनोद्वरवज्जन चित्त
3. सोमनस्सा सहगतं हसितुप्पदा चित्त

पंच का अर्थ है पाँच। द्वार का अर्थ है दरवाजा। अवज्जना शब्द 'आ' और 'विज्जना' से मिलकर बना है। अवज्जना का अर्थ है किसी वस्तु पर चिंतन करना, उस पर ध्यान केंद्रित करना, उस वस्तु की ओर ध्यान देना।

पंचद्वारवज्जन चित्त एक चेतना है जो ध्यान को रूपरम्मन या सद्दारम्मन या गंधारम्मण या रसारम्मण या फोत्थब्बरम्मण की ओर ले जाती है।

- रूपारामना रंग या दृष्टि का विषय है।
- सद्दाराममाना ध्वनि का विषय है।
- गंधारम्मन गंध का विषय है।
- रसराममन स्वाद का विषय है।
- और फोत्थब्बरामना शारीरिक स्पर्श का विषय है।

मनोद्वारवज्जन चित्त वह चित्त है जो मनोद्वार या मन के द्वार पर उत्पन्न होता है। यह ध्यान को मन के विषय या धम्मरम्मन की ओर मोड़ता है। धम्मरम्मन में शामिल हैं:

- 89 चित्तास,
- 52 चेतसिका,
- 5 पसादा रुपा,
- 16 सुखुम रूपा,
- निर्वाण, और
- पन्नाट्टा।

पसदा वह प्रकृति है जो एकत्रित रूपाओं पर शुद्धिकरण प्रभाव डालती है। सुखुम का अर्थ है सूक्ष्म। पन्नात्त का अर्थ है अवधारणाएँ या अवधारणा निर्माण। हसीतुप्पदा शब्द हसी और उप्पाद से मिलकर बना है। हसी का अर्थ है हास्य या विनोद भाव। उप्पाद का अर्थ है उत्पत्ति।

हसीतुप्पदा का अर्थ है हास्यबोध का उत्पन्न होना।

हसितुप्पदा चित्त वह चित्त है जो अरहतों के मुस्कुराने पर उत्पन्न होता है। यह क्रिया चित्त है। इसलिए इसमें कर्मिक बल नहीं होता। यह जड़विहीन चित्त है।

54 कामावचरा चित्तों में से,

- 12 अकुसला चित्त और
- 18 अहेतुक सिट्टास

इनका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

इन 30 चित्तों को असोभना चित्त या गैर-सुंदर चेतना कहा जाता है।

12 अकुशल चित्त निःसंदेह बदसूरत होते हैं। लेकिन 18 अहेतुक चित्तों को असोभना चित्त भी कहा जाता है क्योंकि उनमें अलोभ, अदोसा और अमोहा जैसे सुंदर चेतसिकाओं का अभाव होता है।

30 असोभन चित्त के बाद, 24 कामवाकर चित्त बचे।

उन्हें 24 कामसोभन चित्त कहा जाता है।

- अलोभा का अर्थ है अनासक्ति या दान का स्रोत।
- अदोसा का अर्थ है किसी को चोट न पहुँचाने वाला स्वभाव और इसे मेट्टा या प्रेमपूर्ण दया कहा जा सकता है।
- अमोहा का अर्थ है भ्रम, अज्ञान, पन्ना या ज्ञान का अभाव।

इन 24 कामसोभना चित्तों को उनकी उत्पत्ति या जाति के अनुसार तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं:

- 8 महाकुसला चित्त,
- 8 महाविपाका चित्त, और
- 8 महाकिरिया चित्त।

काम भूमि में काम कुशल उत्पन्न होते हैं। रूप कुशल रूप ध्यान से उत्पन्न होते हैं। और अरूप कुशल अरूप ध्यान से उत्पन्न होते हैं। काम पांचों इंद्रियों से संबंधित इंद्रिय सुख हैं। कुशल का अर्थ है संपूर्णता। भूमि वह स्थान है जहाँ समान गुणों वाले सत्व उत्पन्न होते हैं और निवास करते हैं।

काम कुसल को अन्य कुसल जैसे रूपकुसल, अरुपकुसल और लोकुत्तरा कुसल से अलग करने के लिए जो मग्गा चित्त हैं, कामवकार चित्त को महाकुसल चित्त नाम दिया गया है।

महा का अर्थ है महान।

1. महाकुशल चित्त हैं जो काम भूमि में कुशल चित्त के रूप में उत्पन्न होते हैं।

2. महाविपाक चित्त केवल विपाक चित्त हैं। अहेतुका विपाका चित्त भी हैं। ये अहेतुका विपाका चित्त असोभना चित्त हैं। सोभना विपाक चित्त को सहेतुका विपाक चित्त भी कहा जाता है क्योंकि उनमें हेतुका या जड़ें होती हैं। काम को अहेतुका विपाक, रूपविपाक और अरूपविपाक से अलग करने के लिए, कामवाकर विपाक चित्त को महाविपाक चित्त कहा जाता है।

3. उसी प्रकार, कामवाकार चित्त को रूपकिरिया और अरुपकिरिया से अलग करने के लिए, कामवाकार चित्त को महाकिरिया चित्त कहा जाता है।

विपाक चित्त परिणामी चेतना हैं और इनसे किसी प्रकार की कर्मिक शक्ति या प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। सोदो क्रिया चित्त। क्रिया चित्त केवल क्रियात्मक होते हैं और इनमें कोई कर्मिक शक्ति नहीं होती।

8 महाकुशल चित्त हैं। वे हैं

1. सोमनस्सा सहगतम् नाना संयुक्तम् असंखरिका महाकुशल चित्त
2. सोमनस्सा सहगतम् नाना संयुत्तम् ससंखरिका महाकुशल चित्त
3. सोमनस्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् असंखरिका महाकुशल चित्त
4. सोमनस्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् ससंखरिका महाकुशल चित्त
5. उपेक्खा सहगतं नाना संयुक्तं असंखरिका महाकुशल चित्त
6. उपेक्खा सहगतं नाना संयुत्तं ससंखरिका महाकुशल चित्त
7. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् असंखरिका महाकुशल चित्त
8. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् ससंखरिका महाकुशल चित्त

आठों महाविपाका चित्त एक समान हैं, बस महाकुसला के स्थान पर महाविपाका शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार आठों महाक्रिया चित्तों के नाम भी एक समान हैं, बस महाक्रिया चित्त के स्थान पर महाक्रिया चित्त का प्रयोग किया गया है।

यहां नाना का अर्थ पन्ना या ज्ञान है। यह अमोहा चेतसिका है।

1. पहला महाकुशल चित्त है: सोमस्स सहगतं नाना सम्युत्तं असंखारिका चित्त। यह चित्त भिक्षुओं को वस्त्र भेंट करने वाले व्यक्ति के उदाहरण में देखा जा सकता है। वह विद्वान है और मानता है कि कुशल कर्मों से कुशल कर्म उत्पन्न होंगे, जो आगे चलकर कुशल पौधों के रूप में विकसित होंगे। वह भिक्षुओं को वस्त्र भेंट करने में प्रसन्न होता है। उसे यहाँ कोई भी इस कुशल कर्म को करने के लिए प्रेरित नहीं कर रहा है।

2. दूसरा महाकुशल चित्त उस वयस्क व्यक्ति में देखा जा सकता है जो कर्म में विश्वास रखता है और धर्म को भलीभांति जानता है। उसके पास भिक्षुओं को वस्त्र दान करने के लिए पर्याप्त संपत्ति है। लेकिन आरंभ में उसने ऐसा नहीं किया। जब उसके गुरु या माता उसे दान करने के लिए कहते हैं, तब वह कुशल चित्त का प्रयोग करता है। ऐसे में उसे प्रेरित करना आवश्यक होता है और दूसरा चित्त जागृत होना चाहिए।

3. तीसरा महाकुसला चित्त ऐसे वयस्क व्यक्ति में देखा जा सकता है जो कर्म और उसके निहितार्थों में विश्वास नहीं करता तथा उसमें गहन ज्ञान की कमी होती है। फिर भी वह स्वेच्छा से दान-पुण्य संस्थाओं को दान देता है और कोई उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित नहीं करता।

4. उपरोक्त उदाहरण में चौथा महाकुशल चित्त देखा जा सकता है, लेकिन केवल तभी जब उसे किसी के द्वारा या स्वयं उसके मन द्वारा ऐसा करने के लिए प्रेरित किया गया हो। इन सभी क्रियाओं में अर्पण शामिल है। यह अनासक्ति है और अलोभ या वैराग्य से संबंधित है। अतः चारों चित्त कुशल चित्त हैं। सभी सोमनस्सा या आनंद से संबंधित हैं। पहले दो चित्तों में ज्ञान है जबकि बाद के दो में नहीं। प्रत्येक युग्म में एक चित्त स्वतःस्फूर्त प्रतिक्रिया है जिसे प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं होती जबकि युग्म के दूसरे चित्त को प्रेरित करने की आवश्यकता होती है।

यदि इन क्रियाओं का संबंध आनंद या प्रसन्नता से नहीं है, तो केवल अप्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार की अनुभूति ही उपेक्ष होगी। इन चारों उपेक्ष चित्तों को सोमनस चित्तों के समान ही समझा जा सकता है।

जब अरहत बुद्ध को जल या फूल अर्पित करते हैं, तो उनके सभी अर्पण चित्त महाक्रिया चित्त होते हैं। कभी-कभी वरिष्ठ थेरा या भिक्षु युवा अरहत भिक्षु को बुद्ध को वस्तुएँ अर्पित करने के लिए प्रेरित करते हैं। उस समय शसंकारिका महाक्रिया चित्त उत्पन्न होता है। कभी-कभी, ज्ञान साथ नहीं देता और उस समय नाना विप्पयुत्त महाक्रिया चित्त उत्पन्न होता है।

उक्त 8 महाकुसला चित्तों के परिणामस्वरूप संबंधित महाविपाका चित्त उत्पन्न होने चाहिए।

संक्षेप में, कामवाकर चित्त 54 हैं।

- 30 असोभना चित्त हैं, यानी वे सौंदर्यहीन चेतना हैं। (12 अकुशल चित्त हैं और वे बदसूरत चित्त हैं। 18 अहेतुका चित्त सुंदर नहीं हैं क्योंकि उनमें सुंदर चेतसिका का अभाव है।)
- और 24 चित्त कमसोभन चित्त हैं।

27 महागाता चित्त या 27 मज्झिमा चित्त हैं।

इन्हें महाग्गत चित्त कहा जाता है क्योंकि ये अशुद्धियों से मुक्ति के मामले में कामवाचार चित्तों से उच्चतर होते हैं। महाग्गत का अर्थ है श्रेष्ठ। इन्हें मज्झिमा चित्त भी कहा जाता है। मज्झिमा का अर्थ है मध्य। क्योंकि ये लोकउत्तर चित्तों या अलौकिक चेतना से निम्नतर होते हैं, परन्तु कामवाचार चित्तों से श्रेष्ठ होते हैं।

इन 27 चित्तों को झान चित्त भी कहा जाता है क्योंकि ये सभी झानंगा या झान या समाधि के भागों से संबंधित हैं।

15 चित्त रूपावचार चित्त हैं। यहाँ रूप का अर्थ है 15 रूप ब्रह्म भूमि से उत्पन्न रूप ब्रह्म, जहाँ चित्त और रूप दोनों मौजूद हैं। आवकरा का अर्थ है बार-बार उत्पन्न होना। रूपावचार चित्त मुख्यतः रूप ब्रह्म भूमि में उत्पन्न होते हैं, यद्यपि वे अन्य भूमियों जैसे कामभूमि, देवभूमि और मनुष्यभूमि में भी उत्पन्न हो सकते हैं।

15 रूपावचार चित्तों या 15 रूपाझना चित्तों को उनकी उत्पत्ति या जाति या चित्त के प्रकार के आधार पर तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं:

- 5 रूपकुसला चित्त,
- 5 रूपविपाक चित्त, और
- 5 रूपाकिरिया चित्तास.

5 रूपकुसला चित्त हैं

1. विटक्का, विचारा, पिटि, सुखा, एकगगत सहितं पथमज्ज्झाना कुसल
2. विचारा, पिटि, सुखा, एकगगत सहितं दुतियाज्झाना कुसल चित्त
3. पिटि, सुखा, एकगगत सहितं ततियाज्झाना कुसल चित्त
4. सुखा, एकगगत सहितं चतुत्थज्झाना कुसल चित्त
5. उपेक्खा, एकगगत सहितं पंचमज्झाना कुसल चित्त।

या बस 5 रूपाकुसल सीता हैं 1 झना रूपाकुसल चित्त, 2रे, 3रे, 4थे और 5वें झना रूपाकुसल चित्त। यहां झाना मामले को विस्तार से बताने की जरूरत है। हालाँकि 15 रूपा झाना हैं, झाना की चर्चा रूपाकुसाला सीतास के आधार पर की जाएगी।

बौद्ध धर्म में पुण्य कर्म करने के तीन प्रकार हैं: दान करना, शील का पालन करना और भावना। ध्यान ही मानसिक साधना है।

भावना में दो प्रकार की कर्मथाना होती है। वे हैं:

- समथ भावना कम्मत्थाना और
- विपश्यना भावना कम्मत्थाना।

झाना समथ भावना कम्मत्थाना का हिस्सा है जबकि विपश्यना भावना कम्मत्थाना महासतिपत्थन का हिस्सा है।

कर्मिक कर्म करते समय, कर्म के तीन द्वार होते हैं। ये हैं कायकम्म (शारीरिक क्रिया द्वारा), वाचिकम्म (मौखिक क्रिया द्वारा), और मनोकम्म (मानसिक गतिविधियों द्वारा)।

दान या भेंट मुख्यतः निर्गम्म के माध्यम से होता है, जबकि शील का पालन या अच्छे नैतिक आचरण का पालन मुख्यतः निर्गम्म और वाचिकम्म दोनों के माध्यम से होता है। लेकिन दान और शील दोनों में मनोकम्म पहले से ही शामिल है। हालांकि, भावना पूरी तरह से मनोकम्म के माध्यम से होती है।

कम्मत्थाना का अर्थ है वह वस्तु जहाँ भावना कर्म, मनोकम्म या कुशलचित्त विद्यमान होते हैं। अतः कम्मत्थाना एक वस्तु मात्र है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, भावना कर्म की दो प्रकार की वस्तुएँ होती हैं, अर्थात् समाथा और विपश्यना। ध्यान समाथा भावना का ही एक भाग है। संक्षेप में, ध्यान की व्याख्या आगे की जाएगी।

जब ध्यान साधक ध्यान का अभ्यास करना चाहता है, तो उसे शील या नैतिक आचरण का पालन करना होता है, जो कम से कम अजीव अत्था कम्मत्थाना शील होना चाहिए। इसमें हत्या, चोरी, सभी प्रकार के यौन संबंध (विचारों सहित), झूठ बोलना, कठोर शब्द बोलना, विभाजनकारी बातें करना, निरर्थक कहानियां सुनाना और शराब पीना आदि आठ आचरणों से बचना शामिल है।

ध्यान साधक ने शुद्ध शील स्थापित किया है, जिसमें प्रकृति को कष्ट न पहुँचाना शामिल है। इसमें 40 समाथा कम्मत्थाना भावनाएँ हैं।

वे हैं

- 10 kasina kammatthana,
- 10 असुभा कम्मत्थाना,
- 10 anussati kammatthana,
- 4 ब्रह्मविहार,
- 4 aruppa kammatthana,
- 1 aharepatikulasanna, और
- 1 catudhatuvavatthana.

इन सभी 40 कम्मत्थाना से ध्यान की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

समाथा भावना के संबंध में, भावना की तीन अवस्थाएँ होती हैं। ये दर्शाती हैं कि मन कितना स्थिर है। प्रारंभिक अपरिपक्व अवस्था में, जो भावना कर्म घटित होता है, उसे परिक्कम्मा भावना कहते हैं। परिक्कम्मा का अर्थ है प्रारंभिक कुशलकम्मा।

जब साधक अधिक परिपक्व हो जाता है, तो उसका मन बहुत अधिक एकाग्र हो जाता है। इसे उपचारा भावना कहते हैं। उपचारा भावना, मन की वह अवस्था है जब मन में कोई बाधा नहीं होती।

1. कामछंद निवारण या कामुक विचार
2. बयपद निवारण या प्रतिकूल विचार
3. उड्डक्का कुक्कुक्का निवारण या पश्चाताप के विचार फैलाना
4. थिना मिड्ढा निवारण या स्लॉथ टॉरपोर टैग किए गए विचार
5. विकिचिच्चा निवारण या संदिग्ध विचार।

उपचारा भावना इतनी शुद्ध होती है कि यह धर्म में प्रवेश करने में सक्षम होती है। लेकिन यह पूर्णतः ध्यान नहीं है। ध्यान से ठीक पहले गोत्रभु चित्त उत्पन्न होता है, जो काम चित्त और ध्यान चित्त को विभाजित करता है। उपचारा भावना में उत्पन्न होने वाली एकाग्रता को उपचारा समाधि कहते हैं। यह शुद्ध होती है और यदि इसमें आर्य अष्टांगिक मार्ग के अन्य सात सही मार्ग भी शामिल हों, तो उस उपचारा समाधि को सम्मा समाधि कहते हैं। उपचारा का अर्थ है निकटता, युवराज। इसे कभी-कभी निकटवर्ती एकाग्रता भी कहा जाता है।

स्थिरता या एकाग्रता के संदर्भ में, समाथा कम्मत्थाना में सर्वोच्च भावना अप्पना भावना है। इसे अप्पना ध्यान कहते हैं। अप्पना का अर्थ है किसी वस्तु में समा जाना, उसमें लीन हो जाना और उसमें विलीन हो जाना।

समाथा भावना में निहित वस्तु को निमित्त कहते हैं। ये सभी पन्नत्त हैं। समाथा कामत्थाना का अभ्यास करते समय विभिन्न निमित्त उत्पन्न होते हैं।

वे हैं

- परिकम्मा निमित्त या प्रारंभिक छवि,
- उग्गा निमित्त या मानसिक छवि, और
- पतिभागा निमित्त या प्रति छवि।

ये सभी पन्नात्त हैं और ये सभी मन के विषय हैं और ये सभी धम्मरम्मन हैं। पन्नात्त धम्मरम्मन हैं।

जब ध्यान साधक पहली बार अभ्यास करता है, तो उत्पन्न होने वाली वस्तु को परिक्कम्मा निमित्त कहते हैं। मान लीजिए कि ध्यान साधक पथावि कसीना कर रहा है। यदि वह आरंभिक अवस्था से कहीं अधिक परिपक्व हो जाता है, तो वस्तु शुद्ध मानसिक छवि या उग्घ निमित्त के रूप में उत्पन्न होगी। आरंभ में, उसे मिट्टी से भरा एक घेरा बनाना होता है और उसे देखना होता है। जब उग्घ निमित्त उत्पन्न हो जाता है, तो उसे कसीना को देखने की आवश्यकता नहीं रहती। कसीना का अर्थ है घेरे की वह वस्तु जो उच्चतर भावना कर्मों के उत्पन्न होने का कारण है। कसीना को संपूर्ण रूप से लेना है, न कि केवल एक भाग के रूप में। अतः मन को पूर्णतः और निष्पक्ष रूप से घेरे पर केंद्रित करना होता है।

आरंभ में ध्यान साधक सीधे मिट्टी से भरे वृत्त को देखता है। जब उग्घ निमित्त या मानसिक छवि उत्पन्न होती है, तो मूल छवि मन में इस प्रकार प्रकट होती है मानो वस्तु को आँखों से देखा जा रहा हो और गड्ढे, सिलवटें, नमी, गंदगी जैसे सभी विवरण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। जब साधक निपुण हो जाता है, तो उसका मन शांत हो जाता है और तीसरी छवि, जिसे पतिभाग निमित्त कहते हैं, उत्पन्न होती है। यह उग्घ निमित्त के समान ही होती है, लेकिन उससे कहीं अधिक स्वच्छ, शुद्ध और अशुद्धियों से मुक्त होती है।

सभी 40 समथ कम्मत्था परिकम्मा निमित्त और उग्गहा निमित्त दोनों को जन्म दे सकते हैं। पतिभागा निमित्त के संबंध में, केवल 22 कम्मत्थान ही पतिभागा निमित्त को जन्म दे सकते हैं।

वे हैं

- 10 kasina kammatthana,
- 10 असुभा कम्मत्थाना,
- kayagatasati kammatthana, and
- anapanassati kammatthana.

परिक्कम्मा निमित्त का चिंतन करते समय की अवस्था को परिक्कम्मा भावना कहते हैं। जब उग्घ निमित्त उत्पन्न होता है, तब की समाधि को परिक्कम्मा समाधि कहते हैं। समाधि पतिभाग निमित्त के उत्पन्न होने से शुरू होती है और निवारण या बाधाओं के पूर्ण निवारण से लेकर अप्पना भावना के उत्पन्न होने तक की अवधि को उपचारा समाधि कहते हैं। उपचारा की इस समाधि में चित्त इतना शुद्ध होता है कि इसे चित्तविशुद्धि या मन की शुद्धि कहते हैं। मन की यह अवस्था विपश्यना नाना के उत्पन्न होने के लिए पर्याप्त है। गोत्रभु चित्त के क्षीण होने के बाद ध्यान चित्त उत्पन्न होते हैं। उस समय की एकाग्रता को अप्पना समाधि कहते हैं। इसे अप्पना भावना या अप्पना ध्यान भी कहते हैं।

अप्पना ध्यान में, ध्यान के सभी पाँच भाग, जिन्हें ध्यानांग (ध्यान + अंग) कहा जाता है, समान रूप से और अत्यंत सक्रिय रूप से कार्य करते हैं। ये ध्यान कारक हैं: वितक्का या चेतसिका जो प्रारंभ में विषय पर लागू होती है (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचार या चेतसिका जो विषय को पुनः स्थापित करती है (निरंतर अनुप्रयोग), पीति या विदारक होना, सुख या शांति या मानसिक स्थिरता, और एकागत या एकाग्रता। चूंकि ये सभी पाँच ध्यान कारक उपस्थित होते हैं, इसलिए उस समय के ध्यान को प्रथम ध्यान कहा जाता है।

ध्यान साधक निरंतर अभ्यास करता है और पाता है कि वितक्का बाधाओं के शत्रु के बहुत निकट है। वह वितक्का को दूर करने का प्रयास करता है। जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, तो वितक्का का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और वह द्वितीय ध्यान अवस्था में पहुँच जाता है। फिर से विचार वितक्का के बहुत निकट होता है, जो उसका घनिष्ठ मित्र है। इसलिए साधक विचार को दूर करने का प्रयास करता है और जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, तो तृतीय ध्यान अवस्था उत्पन्न होती है। फिर से पीति या विपथना विचार और वितक्का के बहुत निकट होती है। जब पीति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो चतुर्थ ध्यान अवस्था उत्पन्न होती है। सुख पीति के बहुत निकट होता है और साधक सुख को दूर करने का प्रयास करता है और जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, तो पंचम ध्यान अवस्था उत्पन्न होती है, जिसमें केवल एक ही बिंदु होता है, लेकिन सुख या सुख वेदना के स्थान पर उपेक्षा वेदना पंचम ध्यान अवस्था में उत्पन्न होती है।

5 झाना कारक हैं। तो वहाँ 5 झाना Cittas हैं। अधिकांश सुत्तन्त देसना या सुत्तन्त पिटक की शिक्षाओं में 4 झानों का वर्णन है। ये सही है. क्योंकि ब्रह्म भूमि हैं जिन्हें प्रथम ज्ञान भूमि, द्वितीय ज्ञान भूमि, तृतीय ज्ञान भूमि और चतुर्थ ज्ञान भूमि नाम दिया गया है। लेकिन 5वीं ज्ञान भूमि नहीं है.

इसके विपरीत, प्रथम ध्यान के बाद वितक्का और विचारा दोनों एक साथ समाप्त हो जाते हैं और साधक द्वितीय ध्यान में पहुँच जाता है जहाँ पीति, सुख और एकाग्गत मौजूद होते हैं। यही अभिधम्म और सूत्रों का अंतर है।

इन 5 झनों का अभ्यास करने पर जो चित्त उत्पन्न होते हैं उन्हें रूपाकुशल चित्त कहा जाता है। यदि अरहत झाना में रहते हैं, तो उस समय चित्त को रूपकिरिया चित्त कहा जाता है। रूपाविपाक चित्त परिणामी चित्त हैं और प्रत्येक अपने समकक्ष रूपाकुसल चित्त के अनुरूप हैं और वे केवल रूप ब्रह्म भूमि में उत्पन्न होते हैं जबकि रूपाकुसल चित्त और रूपकिरिया चित्त अन्य गैर ब्रह्म भूमि में उत्पन्न हो सकते हैं।

बारह अरूपवाचरा चित्त हैं। इन्हें इनकी उत्पत्ति या जाति के अनुसार तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं:

- 4 arupakusala cittas,
- 4 अरुपविपाक चित्त, और
- 4 arupakiriya cittas.

4 अरूपाकुसल चित्त वे चित्त हैं जो तब उत्पन्न होते हैं जब अरूप झाना का अभ्यास किया जाता है। अरूप झाना का अभ्यास भावना कुसल है। तो अरूप झाना के समय, अरुपकुसल चित्त उत्पन्न होते हैं।

यदि अभ्यासी अरहत है, तो उत्पन्न होने वाले अरूप ध्यान को अरूपक्रिया चित्त कहा जाता है। क्रिया चित्त से कर्मिक बल या बीज प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। कुशल चित्त से विपाक या परिणामी चित्त उत्पन्न होते हैं। अरूप ध्यान के अभ्यास से अरूप ब्रह्मभूमि में पुनर्जन्म हो सकता है।

4 अरूपविपाक चित्त संबंधित अरुपकुसल चित्त के कारण परिणामी चित्त हैं। ये चार चित्त केवल अरूप ब्रह्म में ही उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वे सभी अरूप ब्रह्मा के पतिसंधि चित्त, भावांग चित्त और कटि चित्त हैं। इसलिए वे अस्तित्व के अन्य स्तरों पर उत्पन्न नहीं हो सकते।

वे हैं

a) Arupakusala cittas

1. अकसाननचायतन अरूपकुशल चित्त
2. विन्ननानकायतन अरूपाकुशल चित्त
3. अकिंचिन्नायतन अरूपाकुशल चित्त
4. नेवसन्नानसन्नायतन अरुपकुशल चित्त

b) अरुपविपका चित्तस

1. आकाशानन्चायतन अरूपविपाक चित्त
2. विन्ननानचायतन अरुपविपाक चित्त
3. अकिंचिन्नायतन अरूपविपाक चित्त
4. नेवसन्नन्नासन्नयातन अरूपविपाक चित्त

c) अरुपाकिरिया चित्तस

1. अकसाननचायतन अरुपकिरिया चित्त
2. विन्ननानचायतन अरुपकिरिया चित्त
3. अकिंचिन्नायतन अरुपकिरिया चित्त
4. नेवसन्नानसन्नायतन अरूपकिरिया चित्त

ये 12 चित्त अधिकतर अरूप ब्रह्म भूमि में उत्पन्न होते हैं। इसलिए उन्हें अरुपवकार चित्त कहा जाता है। यहां अरूप का अर्थ अरूप ब्रह्म भूमि या अरूप ब्रह्म क्षेत्र या निराकार क्षेत्र है।

आकाशनंचयतना, आकाश और आयतन से मिलकर बना है। यहाँ आकाश का अर्थ है असीम अंतरिक्ष, जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। आयतन का अर्थ है वह स्थान जहाँ विषय निवास करते हैं। चक्खयतना (चक्खु + आयतन) वह स्थान है जहाँ विषय-दृष्टि चेतना या चक्खुविन्नन चित्त निवास करता है या उत्पन्न होता है। आकाशनंचयतना भी ऐसा ही है। प्रथम अरूपकुसला चित्त आकाशनंचयतना (प्रथम अरूप ध्यान चित्त का स्थान) में निवास करता है या उत्पन्न होता है। यह आकाश वास्तविक अंतरिक्ष नहीं है। यह पंचम रूप ध्यान निमित्त या विषय से उत्पन्न होता है।

विन्ननानकायतन एक अयातन या अरुपवकार चित्त या मन की एक वस्तु के लिए एक स्थान है जो अरुपझाना चित्त है। विन्नाना को सिट्टा या मनोविन्नाना के नाम से भी जाना जाता है। अयाताना एक जगह है. विन्ननानकायतन का अर्थ है एक स्थान के रूप में चित्त या एक वस्तु के रूप में चित्त।

वह चित्त पहला अरूपझाण चित्त है। संवेदनशील चित्त दूसरा अरुपझान चित्त है और संवेदनशील चित्त पहला अरुपझान चित्त है। दूसरा अरुपझान चित्त पहले अरूपझाना चित्त को अपनी वस्तु के रूप में देखता है। यह वह स्थान है जहां दूसरा अरुपझाना चित्त निवास करता है। तो यह एक आयतन है. लेकिन वह आयतन प्रथम अरुपझाना का विन्नन या चित्त है। तो, उस वस्तु को विन्ननानकायतन वस्तु कहा जाता है। जब दूसरा अरुपझाना उत्पन्न होता है, तो इसे विन्ननानकायतन अरुपकुशल चित्त कहा जाता है।

अकिंचिनयतन, अकिंचन्न और आयतन से मिलकर बना है। अकिंचन्न, अ और किंच से मिलकर बना है। अ का अर्थ है नहीं, कोई नहीं, शून्य। किंच का अर्थ है कुछ या कोई। अकिंच का अर्थ है कुछ नहीं या शून्य। अतः अकिंचिनयतन एक सूक्ष्म वस्तु है जो शून्यता है। यह विन्ननंचयतन अरुपझन से उत्पन्न होता है। भावना की शक्ति से, असीम चेतना या विन्ननंचयतन अरुपकुसला चित्त या विन्नन पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता। अतः उस वस्तु को शून्यता कहते हैं। शून्यता की ओर निर्देशित करने वाला चित्त तीसरा अरुपझन चित्त है।

नेवसन्नान्नसन्न्यातन, नेवसन्नानसन्न का आयतन है।

नेवा + सन्ना + नासन्ना। नेवा, नेवा ही है। यह ना और एवा से बना है। ना का अर्थ है नहीं, कोई नहीं, कुछ नहीं। एवा का अर्थ है ऐसा, यह, इस प्रकार।

- ईवा सन्ना का अर्थ है ऐसी धारणा
- ना का अर्थ है नहीं
- नेवा सन्ना का अर्थ है कि ऐसी धारणा, धारणा नहीं है।
- नसन्ना का अर्थ है गैर-बोध या बिना बोध के।
- नेवा नासाना का अर्थ है कि ऐसी धारणा अधारणा नहीं है।
- नेवासन्नानसन्ना का अर्थ है कि ऐसी धारणा न तो धारणा है और न ही अधारणि।

यह अत्यंत सूक्ष्म विषय है। शून्यता ही सूक्ष्मता का सार है। फिर, अरूपाझना का अभ्यासी अपना अभ्यास जारी रखता है और जैसे-जैसे वह परिपक्व होता जाता है और परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, चौथा अरूपाझना चित्त उत्पन्न होता है।

चौथा अरूपझना चित्त तीसरे अरूपझना चित्त को अपना विषय मानता है। चौथा अरूपझना चित्त तीसरे को इस दृष्टि से देखता है कि वह न तो बोध है और न ही अबोध। केवल दूसरे और चौथे अरूपझना चित्त ही परमतत्व को अपना विषय बनाते हैं। इसका अर्थ है कि वे वास्तविकताओं को अपना विषय बनाते हैं। ये वास्तविकताएँ हैं पहला अरूपझना चित्त, जो परम वास्तविकता है, और तीसरा अरूपझना चित्त, जो भी परम वास्तविकता है। लेकिन पहला अरूपझना चित्त और तीसरा अरूपझना चित्त दोनों ही स्वरूप को अपना विषय बनाते हैं। सभी 15 रूपवाचार चित्त स्वरूप को अपना विषय बनाते हैं।

सारांशतः कुल 89 चित्त हैं, या यदि लोकउत्तर चित्त या अलौकिक चेतना ध्यान चित्तों के समानांतर उत्पन्न होती है तो कुल 121 चित्त हैं। यदि 89 चित्तों का चिंतन किया जाए, तो 81 चित्त लोकीय चित्त हैं और 8 चित्त लोकउत्तर चित्त हैं। इस प्रकार 8 लोकउत्तर चित्त हैं। यदि ये 5 ध्यानों के समानांतर उत्पन्न होते हैं, तो 40 लोकउत्तर चित्त होंगे। सर्वप्रथम 8 लोकउत्तर चित्तों पर चर्चा की जाएगी।

आठ लोकउत्तर चित्त होते हैं। इनमें चार मार्ग चित्त या पथ चेतना और चार फल चित्त या फल प्राप्ति चेतना शामिल हैं। ये चारों फल चित्त विपाक चित्त या परिणामी चेतना हैं। ये प्रत्येक अपने संबंधित मार्ग चित्त के परिणामस्वरूप एक परिणामी चित्त के रूप में उत्पन्न होते हैं। इन चारों फल चित्तों को विपाक चित्त या सटीक रूप से लोकउत्तर विपाक चित्त कहा जाता है, जबकि इनके संबंधित मार्ग चित्तों को कुशल चित्त या लोकउत्तर कुशल चित्त कहा जाता है।

4 लोकुत्तारा कुसाला चित्त हैं। वे हैं

1. sotapatti magga citta
2. sakadagami magga citta
3. anagami magga citta
4. arahatta magga citta

सोतापट्टी मग्गा सिट्टा सबसे पहला सिट्टा है जो प्रारंभिक एरियनहुड के रूप में उत्पन्न होता है। सोतापट्टी शब्द पाली भाषा का शब्द है और यह सोता और अपाति से मिलकर बना है। सोता का अर्थ है बहता पानी या नदी या नाले का पानी। आप्ति का अर्थ है यथाशीघ्र पहुंचें।

जबकि निर्वाण विशाल, गहरा और विस्तृत है, निर्वाण के लिए सागर उपमा का प्रयोग किया जाता है। जब सागर निर्वाण होता है, तो धारा और नदी सबसे पहले सागर में प्रवेश करती हैं। इसी प्रकार सोतापत्ति मार्ग चित्त भी अंततः निर्वाण में समाहित हो जाता है। इसलिए सोतापत्ति मार्ग चित्त को धारा-प्रवेशित पथ चेतना भी कहा जाता है।

सकादगामी में सकिम और आगमिनो शामिल हैं। सकिम का अर्थ है एक बार। आगमिनो का अर्थ है पतिसंधि के माध्यम से मानवलोक में आना। सकादमागी का अर्थ है एक बार मानवलोक में लौटना। सकादगामी मार्ग चित्त को एक बार लौटने वाले मार्ग की चेतना के रूप में भी जाना जाता है।

अनागामी शब्द 'अ' और 'अगामी' से मिलकर बना है। अनागामी का अर्थ है मानव लोक में वापस न लौटना। अनागामी मार्ग चित्त का अर्थ है अप्रतिवर्ती पथ चेतना। जब कोई प्राणी इस चित्त को प्राप्त कर लेता है और अनागामी फल पुग्गल या व्यक्ति बन जाता है, तो मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म पाँच शुद्धवास ब्रह्म लोकों में से किसी एक में होता है। शुद्धवास का अर्थ है पवित्र निवास। इन पाँच लोकों में वे अरहत बनते हैं और मृत्यु के बाद निर्वाण प्राप्त करते हैं।

अरहत्त का अर्थ है सभी प्राणियों, मनुष्यों, देवताओं, ब्रह्मा आदि से विशेष भेंट प्राप्त करने योग्य होना, क्योंकि वे पूर्णतः शुद्ध और किसी भी दोष से मुक्त होते हैं। अरहत्त मग्ग चित्त, अरहत्त पथ चेतना है और यह वह अंतिम चित्त है जो सभी निम्न लोकउत्तर चित्तों को त्याग देता है। जैसे ही अरहत्त मग्ग चित्त उत्पन्न होता है, यह विलीन हो जाता है और तुरंत अरहत्त फल चित्त का आगमन होता है और प्राणी अरहत बन जाता है।

जब लोकुत्तरा चित्त झानों के समानांतर उत्पन्न होता है, तो 40 लोकुत्तरा चित्त होंगे क्योंकि प्रत्येक लोकुत्तरा चित्त पांच झानों में से एक में उत्पन्न हो सकता है। जैसे कि 8 लोकुत्तरा चित्त हैं, तो 40 लोकुत्तरा झना चित्त होंगे।

वे हैं

1. विटक्का, विचारा, पिति, सुखा, एकगगत सहितं पथमज्ज्झाना सोतापट्टी मग्गा चित्ता
2. विचारा, पिटि, सुखा, एकगगत सहितं दुतियाज्झाना सोतापट्टी मग्गा चित्त
3. पिटि, सुखा, एकगगत सहितं ततियाज्झाना सोतापट्टी मग्गा चित्त
4. सुखा, एकगगत सहितं चतुत्थज्झाना सोतापत्ति मग्गा चित्ता
5. उपेक्खा, एकग्गता सहितं पंचमज्ज्झाना सोतापत्ति मग्गा चित्ता

- जैसे सोतापट्टी मग्गा सिट्टा में 5 झन सिट्टा हैं,
  सोतापट्टी फला सिट्टा में भी 5 झना सिट्टा हैं।
- सकादागामी मग्गा चित्त में 5 झाना चित्त हैं, और
  सकादागामी फला चित्त में 5 झना चित्त हैं।
- अनागामी मग्गा चित्त में 5 झाना चित्त हैं, और
  अनागामी फला चित्त में भी 5 झना चित्त हैं।
- उसी प्रकार, अरहट्टा मग्गा सिट्टा, और
  अरहट्टा फला सिट्टा में प्रत्येक में 5 झाना सिट्टा हैं।

इसलिए, कुल मिलाकर 40 लोकुत्तारा झाना चित्त हैं।

लोकउत्तर चित्त अलौकिक चेतना है। लोकउत्तर पाली शब्द है जो लोक और उत्तर से मिलकर बना है। लोक का अर्थ है सांसारिक, भाव से संबंधित। लोकउत्तर का अर्थ है सांसारिक वस्तुओं से श्रेष्ठ, सांसारिक वस्तुओं से परे या अलौकिक।

ये चित्त सर्वोच्च चित्त हैं और अन्य चित्तों से श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि ये निर्वाण से संबंधित होते हैं और सर्वोच्च पन्ना या भेदक ज्ञान से जुड़े होते हैं। ये अनुत्तर चित्त हैं, यानी कोई अन्य चित्त इनसे श्रेष्ठ नहीं है।

जब 89 चित्तों का उनकी जाति, उत्पत्ति या वंश के अनुसार विश्लेषण किया जाता है, तो चित्तों के चार वर्ग प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. 12 अकुसाला चित्त (8 लोभा + 2 डोसा + 2 मोहा चित्त)
2. 21 कुसल चित्त (8 महाकुशल + 5 रूपकुसल + 4 अरुपकुसल + 4 लोकुत्तरकुसल या मग्गा चित्त)
3. 36 विपाक चित्त (7 अहेतुका अकुसल + 8 अहेतुका कुसल + 8 महाविपाक + 5 रूपविपाक + 4 अरूपविपाक + 4 लोकुत्तरविपाक या फला चित्त)
4. 20 किरिया चित्त (3 अहेतुकाकिरिया + 8 महाकिरिया + 5 रूपकिरिया + 4 अरुपकिरिया)

कुल 12 + 21 + 36 + 20 = 89 चित्त।

जब चित्तों को भूमि, स्थान या अस्तित्व के तल के आधार पर देखा जाता है, तो चित्तों के चार वर्ग होते हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. 54 कामवाकर चित्त (12 अकुसाला + 18 अहेतुका चित्त + 24 सोभना चित्त)
2. 15 रूपावकार चित्त (5 रूपाकुशल + 5 रूपविपाक + 5 रूपकिरिया)
3. 12 अरुपवकार चित्त (4 अरुपकुसल + 4 अरुपविपाक + 4 अरुपकिरिया)
4. 8 लोकुत्तरा चित्त (4 लोकुत्तरा कुसाला या मग्गा + 4 लोकुत्तरा विपाका या फला)

कुल 54 + 15 + 12 + 8 = 89 चित्त।

जब लोकउत्तर चित्त ध्यान के साथ-साथ उत्पन्न होते हैं, तो कुल 121 चित्त होंगे। फिर, जाति या उत्पत्ति या वंश के अनुसार, चित्तों को वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. 37 कुसल सीता (8 महाकुशल, 5 रूपकुसल, 4अरुपकुसल, 20 लोकुत्तरकुसल चित्त)
2. 52 विपाक चित्त (15 अहेतुकाविपाक, 8 महाविपाक, 5 रूपविपाक, 4 अरूपविपाक, 20 लोकुत्तरविपाक चित्त)
3. 20 किरिया चित्त (3 अहेतुका किरिया, 8 महाकिरिया, 5 रूपकिरिया, 4 अरुपकिरिया)
4. 12 अकुसाला सीतास (8 लोभा, 2 डोसा, 2 मोहा)

कुल 37 + 52 + 20 + 12 = 121 चित्त।

भूमि या अस्तित्व के स्थान या तल के अनुसार, चित्त के चार वर्ग होते हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. 54 कामवाकर चित्त (12 अकुसाला, 18 अहेतुका, 24 सोभना चित्त)
2. 15 रूपावकार चित्त (5 रूपाकुशल, 5 रूपविपाक, 5 रूपकिरिया)
3. 12 अरुपवकार चित्त (4 अरूपाकुशल, 4 अरुपविपाक, 4 अरुपकिरिया)
4. 40 लोकुत्तरा चित्त (20 लोकुत्तरा कुसल, 20 लोकुत्तरा विपाका)

कुल 54 + 15 + 12 + 40 = 121 चित्त।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **2.सिटासिकास**
हटू निंग द्वारा

अध्याय 2 - चेतासिकास
या मानसिक कारक
पथाना धम्म को समझने के लिए चेतसिका को समझना आवश्यक है। पिछले पृष्ठों में चित्त के बारे में लगभग सभी बातों का विस्तार से वर्णन किया गया है। चित्त एक नाम धम्म है और चेतसिका भी।

चेतसिकाएँ वे मानसिक कारक हैं जो चित्त के साथ सह-अस्तित्व में रहते हैं या चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं। वे मन को प्रभावित करते हैं और मन को विभिन्न नाम देने के लिए बाध्य करते हैं। चित्त के लुप्त होते ही वे भी लुप्त हो जाते हैं। उन्हें भी उसी वस्तु पर निर्भर रहना पड़ता है और उन्हें भी वही वस्तु ग्रहण करनी पड़ती है जो चित्त ग्रहण करता है।

कुल मिलाकर 52 चेतासिकाएं हैं। वे हैं

1. 7 sabbacittasadharana cetasikas
2. 6 pakinnaka cetasikas
3. 14 akusala cetasikas
4. 25 शोभना चेतसिका

कुल मिलाकर 7 + 6 + 14 + 25 = 52 चेतासिक।

7 Sabbacittasadharana cetasikas

सब्बा का अर्थ है सर्वस्व, चित्त का अर्थ है चेतना, साधारण का अर्थ है उपचार करना या व्यवहार करना। अतः सब्बाचित्तसाधारण चेतसिक वे चेतसिक हैं जो सभी चित्तों से संबंधित कार्य करते हैं।

वे हैं

1. फासा
2. वेदना
3. सन्ना
4. सेटाना
5. एकग्गटा
6. जीवितिन्द्रिया
7. मानसिकरा

फस्सा का अर्थ है संपर्क। चेतसिका के रूप में, यह चित्त के साथ उत्पन्न होता है और स्वयं चित्त और रूप से संपर्क स्थापित करने वाले एक परिचयकर्ता के रूप में कार्य करता है। उदाहरण के लिए, चक्खुविन्नान चित्त या नेत्र चेतना या दृष्टि चेतना को देखें।

रंग या वन्न एक रूप है जिसे रूपायतन (रंग बोध का आधार) कहा जाता है। चक्खु वस्तु या पसदा एक अन्य रूप है जिसे चक्खायतन या नेत्र बोध का आधार कहा जाता है। फस्सा, वन्न, चक्खु और चक्खुविन्नन का एक साथ परिचय कराता है। जब लोहे की सतह और लोहे की छड़ को आपस में टकराया जाता है तो चिंगारियां उत्पन्न होती हैं। सतह आंख के समान है। छड़ रंग के समान है। चिंगारियां चक्खुविन्नन चित्त के समान हैं। स्पर्श के ठीक उसी स्थान पर चिंगारियां उत्पन्न होती हैं और सभी एक दूसरे के संपर्क में होते हैं। फस्सा संपर्क के रूप में कार्य करता है।

52 चेतसिक धम्मों में से 7 चेतसिक सब्बाचित्तसाधारण चेतसिक हैं और वे हमेशा प्रत्येक चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं। फस्सा, वेदना, सन्ना, केतना, एकागता, जीवितिन्द्रिय, मानसिकारा चेतसिक हैं जो हमेशा प्रत्येक क्षण में प्रत्येक चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं। फासा संपर्क है.

वेदना अनुभूति है। यह विषय को महसूस करती है। इसके उत्पन्न होने के कारण चित्त में अनुभूति उत्पन्न होती है। अनुभूति भेद के अनुसार अनुभूति के तीन प्रकार होते हैं: सुख, सुखी, दुःख और अप्रिय। इसे उपेक्षा वेदना कहते हैं। इंद्रिय भेद के अनुसार अनुभूति के पाँच प्रकार होते हैं: शारीरिक सुख, मानसिक सुख, दुःख और अप्रिय। और उपेक्षा।

सन्ना एक प्रकार की अनुभूति है। यह वस्तु पर अंकित चिह्नों को देखती है। सन्ना की उपस्थिति के कारण चित्त वस्तु को जान पाता है। सन्ना प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ उत्पन्न होती है। यह वस्तु पर अंकित चिह्नों के माध्यम से चित्त को वस्तु को जानने का संकेत देती है और चित्त के साथ मिलकर कार्य करते हुए अपने अनुभवों को दर्ज करती है। सन्ना चार विपाक नामाखंडों में से एक है, जो नाम का परिणामी समूह है।

चेतना संकल्प है। यह चित्त और अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकों को अपना कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। चेतना सभी क्रियाओं - शारीरिक, वाणी और मानसिक - की मुख्य कर्ता है। जब यह चित्त के साथ उत्पन्न होती है, तो यह एक बीज की तरह एक क्षमता बन जाती है जो अनुकूल परिस्थितियों में अपने पूर्ण परिणाम प्रकट करती है। यह क्षमता या कर्म प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ निरंतर चलता है, जैसे हमारी आत्माएं हर समय हमारा अनुसरण करती हैं, और यह प्रक्रिया चुति चित्त या अरहत तक जारी रहती है।

एकाग्गता एकाग्रता है। यह चित्त को उस वस्तु से स्थिर करती है जब वह चित्त के साथ उत्पन्न होती है। यह चित्त और अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकों को उस विशिष्ट वस्तु पर स्थिर करती है जिसे चित्त ग्रहण करता है। यह एकाग्रता है। एकाग्गता हमेशा प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ उत्पन्न होती है और सभी को उस बिंदु पर स्थिर होने में सहायता करती है जो चित्त द्वारा ग्रहण की गई वस्तु है।

जीवितिन्द्रिय एक मानसिक अवस्था है। यह चित्त को जीवित रहने और सुचारू रूप से कार्य करने में सहायता करती है। यह अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकों को भी सहारा देती है और सभी मानसिक गतिविधियाँ जीवितिन्द्रिय चेतसिक द्वारा समर्थित होती हैं, जिसके बिना चित्त और चेतसिक कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। यह मानसिक अवस्था को बनाए रखती है और प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ उत्पन्न होती है।

मनसिकारा ध्यान है। यह चित्त और अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकों को संबंधित वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित करता है। यह एक मार्गदर्शक की तरह कार्य करता है और चित्त तथा अन्य चेतसिकों को सही वस्तु की ओर निर्देशित करता है। मनसिकारा प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ उत्पन्न होता है।

ये सात चेतसिक, अर्थात् फस्सा (संपर्क), वेदना (भावना), सन्ना (बोध), चेतना (संकल्प), एकाग्ता (एकाग्रचित्त), जीवंतिन्द्रिय (मानसिक जीवन) और मानसिक (ध्यान), प्रत्येक उत्पन्न चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं। ये सभी प्रकार के चित्त के साथ उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वह

कुशल हो या अकुशल, लोकीय हो या लोकउत्तर, काम हो या ध्यान, और संभव कोई भी चित्त इन सात चेतसिकों के साथ उत्पन्न होता है। इसलिए इन सात चेतसिकों को सब्बचित्तसाधारण चेतसिक कहा जाता है।

6 pakinnaka cetasikas

छह प्रकार की पकिन्नक चेतसिकाएँ या विशिष्ट चेतसिकाएँ होती हैं। ये चित्त के प्रति लचीली प्रतीत होती हैं और एक साथ उत्पन्न होती हैं। जब ये कुशल चित्तों के साथ उत्पन्न होती हैं, तो कुशल चेतसिकाओं के समान व्यवहार करती हैं, और जब अकुशल चित्तों के साथ उत्पन्न होती हैं, तो अकुशल चेतसिकाओं के समान व्यवहार करती हैं। यदि सह-उत्पन्न चित्त अभ्यकता चेतसिकाएँ हों, तो वे अभ्यकता का कार्य करती हैं।

अभ्यकत धर्म में कर्म की क्षमता या कर्मिक बल नहीं होता। अभ्यकत धर्म के उदाहरण क्रिया चित्त, विपाक चित्त, रूप धर्म हैं, और इन सभी का कोई कर्म प्रभाव नहीं होता। पकिन्नक चेतसिक उस चित्त के अनुरूप होते हैं जिसके साथ वे जुड़े होते हैं। छह पकिन्नक चेतसिक या छह विशिष्ट चेतसिक होते हैं। वे हैं:

1. विटाक्का
2. विकारा
3. विरिया
4. पीटी
5. चंदा
6. अधिमोक्खा

विटक्का एक मानसिक कारक है जो चित्त को वस्तु लेने में मदद करता है। यह लेने वाली वस्तु प्रारंभिक अनुप्रयोग है। विट्टक्का वस्तु के साथ चित्त लगाता है। विटक्का के विभिन्न रूप हैं जैसे काम विटक्का या कामुक विचार, ब्यापदा विटक्का प्रतिकूल विचार, झना विटक्का या झानिक कारक विटक्का, सम्मा संकप्पा आदि आदि सभी विटक्का हैं। विटक्का वस्तु पर चित्त लगाता है। यह वस्तु पर चित्त लागू करता है।

विचारा एक मानसिक कारक भी है। यह अधिकतर समय वितक्का के साथ मिलकर कार्य करता है। वितक्का विषय पर लागू होता है, जबकि विचारा चित्त को विषय से विचलित न होने में सहायता करता है, जिससे चित्त विषय में स्थिर रहता है। विचारा विषय की समीक्षा करता है। विचारा निरंतर अनुप्रयोग है।

वीर्य का अर्थ है प्रयास। वीर्य चित्त को वस्तु से विमुख होने से रोकता है और उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करने में सहायता करता है। वीर्य की उपस्थिति में अन्य सभी चेतसिकाएँ और चित्त पूर्ण ऊर्जा और प्रयास के साथ कार्य करते हैं।

पीति का अर्थ है समानता। यह चित्त को वस्तु के प्रति आकर्षित करने में सहायक होती है। पीति चित्त को ऊर्जा भी प्रदान करती है। पीति की उपस्थिति में, चित्त और उससे जुड़े चेतसिका तत्व कम थकते हैं और अक्षय हो जाते हैं, और पीति के अभाव में वे वस्तु से जुड़े रहने के कारण उससे कहीं अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकते हैं। पीति के विभिन्न स्तर होते हैं। सोमनस पीति से संबंधित है।

चंदा इच्छा है। यह मात्र अभिलाषा है। यह संकल्प है। जब चंदा प्रमुख धर्म बन जाता है, तो यह अधिपति धर्म या अग्रणी धर्म बन जाता है। यह सफलता के चार मूल सिद्धांतों में से एक है।

अधिमोक्खा एक मानसिक कारक है जो चित्त को विषय पर स्पष्ट रूप से निर्णय लेने में सहायता करता है। अधिमोक्खा की उपस्थिति में भ्रम, मतिभ्रम या संदेह नहीं हो सकता। यह एक दृढ़ निश्चय है। यह निर्णय लेने वाला है।

इन छह चेतसिकों और सात सार्वभौमिक चेतसिकों को सामूहिक रूप से अन्नसमना चेतसिक कहा जाता है। अन्न का अर्थ है व्यवहार करना या व्यवहार करना। समना का अर्थ है सहमत होना। अतः ये दोनों वर्ग किसी भी चित्त से सहमत होते हैं। जब वे कुशल चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं तो कुशल चेतसिक के रूप में व्यवहार करते हैं और जब अकुशल होते हैं तो अकुशल चेतसिक बन जाते हैं।

अपवाद यह है कि प्रत्येक चित्त के साथ, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, 7 सार्वभौमिक चेतसिकाएं हमेशा उत्पन्न होती हैं, लेकिन 6 पकिन्नक या विशिष्ट चेतसिकाएं कभी-कभी उत्पन्न होती हैं और कभी-कभी उत्पन्न नहीं होती हैं।

14 akusala cetasikas

14 अकुसला चेतसिकाएँ हैं।

वे हैं

1. मोहा टीम में 4 चेतासिक
2. लोभा टीम में 3 चेतासिक
3. डोसा टीम में 4 cetasikas
4. विविध टीम में 3 cetasikas।

मोहा टीम में 1. मोहा, 2. अहिरिका, 3. अनोटप्पा और 4. उधक्का हैं।

मोह अज्ञान है। यह भ्रम है। यह धर्म के सच्चे स्वरूप को ढक लेता है और चित्त को वास्तविकताओं और सत्यों को देखने से रोकता है। यह पन्नों के उत्पन्न होने में बाधा डालता है। चित्त में मोह और पन्न परस्पर विरोधी हैं। जब मोह उत्पन्न होता है, तो पन्न उत्पन्न नहीं हो सकता और जब पन्न उत्पन्न होता है, तो मोह समाप्त हो जाता है।

अहिरिका एक प्रकार का संकोचहीनता है। यह निर्लज्जता है। यह चित्त को बुरे या अस्वास्थ्यकर काम करने में शर्म न करने की सलाह देती है। जब यह प्रबल हो जाती है, तो यह एक प्रमुख अधिकारी की तरह व्यवहार करती है। यह अकुशल बल या नेता हो सकती है। यह कोई भी दुष्ट कार्य कर सकती है।

अनोत्तप्पा एक अलग प्रकार का अवरोधहीनता है। यह अहिरिका का घनिष्ठ मित्र है और दोनों हमेशा साथ मिलकर काम करते हैं। अहिरिका के विपरीत, अनोत्तप्पा का गुण निर्भयता है। यहाँ अवरोधहीनता का अर्थ है संभावित हानिकारक कर्मों और उनके परिणामों की आशंका न करना।

उद्धच्च मोह का घनिष्ठ मित्र है और यह अहिरिका और अनोतप्पा के साथ मिलकर कार्य करता है। उद्धच्च बेचैनी है। यह फैलता है, बिखरता है और इधर-उधर विचरण करता है। इसकी तुलना राख के ढेर में पत्थर फेंकने से की जाती है। इसकी उपस्थिति में चित्त बेचैन और व्याकुल हो जाता है। ये चारों अकुशल चेतसिक सभी अकुशल चित्त में उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन्हें सब्बाकुसलासाधारण चेतसिक कहा जाता है।

लोभ मंडल में तीन चेतसिकाएँ होती हैं, अर्थात् 1. लोभ, 2. दिठ्ठी और 3. मन। इन्हें पापंच धम्म कहा जाता है, क्योंकि ये संसार का विस्तार करते हैं।

लोभ आसक्ति है। यह लालसा है। यह लोभ है। यह आसक्ति है। इसके अनेक अन्य नाम भी हैं जैसे तन्हा, राग, समुदय, उपादान आदि। सागर भले ही जल से भर जाए, पर लोभ अपनी इच्छा से कभी नहीं भरता। लोभ या तन्हा जीवन चक्र या प्रतीत्यसमुत्पाद के दो मूलों में से एक है।

दित्थी एक गलत दृष्टिकोण है। यह चित्त को वस्तुओं को वास्तविकता के रूप में देखने के बजाय अलग तरह से देखने की सलाह देता है। चूंकि दित्थी वास्तविकताओं को नहीं देख सकता, इसलिए यह धम्म को पुरुष, स्त्री, पशु आदि के रूप में देखता है। यह गलत दृष्टिकोण लोभ को बढ़ाता जाता है और संभवतः अन्य अकुशल चित्तों में परिवर्तित हो जाता है।

माना अहंकार है। यह दिठ्ठी या लोभ का एक वैकल्पिक रूप है। यह लोभ या गलत दृष्टिकोण प्रकट करने के बजाय अहंकारपूर्ण व्यवहार करता है। माना घमंडी दिखता है। यह भी वास्तविकता को न देख पाने का एक रूप है।

डोसा समूह में चार प्रकार की व्यंजन शैलियाँ होती हैं। वे हैं डोसा, इस्सा, मच्छरिया और कुक्कुच्चा।

दोष का स्वभाव विनाशकारी होता है। यह अत्यंत कुरूप होता है। यह किसी को भी नुकसान पहुंचा सकता है। दोष अपने घर और अपने परिवेश को नष्ट कर देता है। दोष की उपस्थिति में सभी प्रकार के दुष्ट और अमानवीय कृत्य किए जा सकते हैं। दोष चेतसिका सभी दोष संबंधी चेतसिकाओं और दोष चित्तों का मुखिया है। जब ईसा होता है, तब दोष भी उत्पन्न होता है, और यही बात मच्छरिया या कुक्कुच्चा के मामले में भी सत्य है।

इस्सा, दोष से संबंधित चेतसिका है। यह ईर्ष्या है और यह नहीं चाहती कि दूसरों को स्वास्थ्य, धन, सफलता या किसी भी रूप में कोई उपलब्धि हासिल हो।

एक अन्य दोष से संबंधित चेतसिका मच्छरिया है। यह कंजूसी है। यह चेतसिका चित्त को इस प्रकार उत्पन्न करती है कि व्यक्ति अपने स्वयं के गुणों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहता। यह दोष धनी और धनी दोनों में उत्पन्न हो सकता है और मच्छरिया भी ऐसा

ही करता है। धन और गरीबी का अर्थ धन, स्वास्थ्य, सौंदर्य, निवास (घर या स्थान), उत्पत्ति (जाति), मित्रता (मित्र) और कई अन्य चीजें हो सकती हैं।

दूसरी ओर, कुक्कुच्चा भी दोष से संबंधित एक चेतसिका है। यह चेतसिका तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति को यह एहसास होता है कि उसने अच्छे कर्म नहीं किए जबकि परिस्थितियाँ अच्छे कर्म करने के अनुकूल थीं, या फिर उसे यह एहसास होता है कि उसने बुरे कर्म किए हैं और अब वह सोच रहा है कि काश उसने वे बुरे कर्म न किए होते। इस तरह सोचने से कुछ भी अच्छा नहीं होता, बल्कि केवल दोष और कुक्कुच्चा उत्पन्न होते हैं, जो अकुशल चेतसिकाएँ हैं, और जब तक व्यक्ति इस प्रकार सोचता रहेगा, अकुशल चित्त बढ़ता रहेगा।

अकुशल चेतसिकाओं में तीन विविध चेतसिकाएँ शामिल हैं। ये हैं थिना, मिद्धा और विचिचिच्चा।

थिना आलस्य है। यह चित्त की सुस्ती, चित्त की निष्क्रियता या चित्त की अनभिज्ञता है।

मिद्धा का अर्थ है सुस्ती और यह चेतसिकों की आलस्य, सुस्ती, असावधानी या निष्क्रियता है।

ये दोनों चेतसिक एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ कार्य करते हैं। ये शारीरिक थकावट यानी नींद नहीं हैं। लेकिन यह थकावट आलस्य और सुस्ती या मंदबुद्धि और मंदबुद्धि से जुड़ी हो सकती है। जब शसंखारिक चित्त उत्पन्न होता है, तो इसका अर्थ है कि बाहरी प्रोत्साहन या दूसरों द्वारा या स्वयं द्वारा भी तत्परता की आवश्यकता है।

इन 14 अकुशल चेतसिकाओं में एक और अकुशल चेतसिका है। यह विचिचिच्च चेतसिका है। यह अनिर्णय है। यह संदेह है। यह धम्म, संघ, बुद्ध, प्रतीत्यसमुत्पाद या प्रतीत्यसमुत्पाद और अभ्यास पर संदेह है।

25 शोभना चेतसिका

कुल 25 शोभना चेतसिक या सुंदर मानसिक कारक हैं। इनमें से 19 चेतसिक सभी सुंदर चित्तों के लिए सार्वभौमिक हैं, अर्थात् 89 चित्तों में 59 शोभना चित्त या 121 चित्तों में 91 शोभना चित्त। इन्हें शोभनाचित्तसाधारण चेतसिक कहा जाता है। वे इस प्रकार हैं:

1. सद्धा
2. सती
3. हिरी
4. ओट्टाप्पा
5. अलोभा
6. एडोसा
7. tatramajjattata

और, कुल मिलाकर 19 सेटासिकाओं के 6 जोड़े हैं। ये 6 जोड़े हैं

1. पस्सद्धि, चित्तपस्सद्धि और कायापासद्धि
2. लाहुता, सीतालहुता और कयालहुता
3. मुदुता, चित्तमुदुता और कयामुदुता
4. कम्मन्नता, चित्तकम्मन्नता और काया कम्मन्नता
5. पगुन्नाटा, चित्तपगुन्नाटा और कयापगुन्नाटा और
6. जुकाता, सिट्टुजुकाटा और कायुजुकाटा।

1. सद्धा जागृत होने पर चित्त बुद्ध, धम्म, संघ, प्रतीत्यसमुत्पाद, आर्य अष्टांगिक मार्ग और अभ्यास में विश्वास करता है। यह विश्वास अंधविश्वास नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक ठोस कारण है। पूर्ण विश्वास के प्रमाण मौजूद हैं। यह आत्मविश्वास के समान है। जब सद्धा जागृत होती है, तो चित्त और अन्य सभी चेतसिक शुद्ध, सक्रिय, सजग और शांत हो जाते हैं।

2. सती चित्त को सक्रिय रूप से चीजों पर ध्यान देने और सचेत रहने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार चित्त को समय पर कार्य करना याद रहता है। सती की उपस्थिति में चित्त अपनी इच्छा अनुसार कार्य कर सकता है क्योंकि सती उसे कार्य करने की याद दिलाती रहती है। यह एक अनुस्मारक का काम करती है। सती अन्य चेतसिकों को भी उनके कार्य करने की याद दिलाने में सहायता करती है।

3. हिरी चित्त को बुरे कर्म करने से रोकता है, क्योंकि ऐसा करने से संभवतः अपमानजनक परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। हिरी की उपस्थिति में, क्योंकि यह कर्मों के परिणामों पर विचार करने की याद दिलाता है, चित्त इस अवरोध के कारण बुरे कर्म नहीं करता है। यह हमेशा अपने मित्र ओत्तप्पा चेतसिका के साथ सहचर के रूप में प्रकट होता है।

4. ओत्तप्पा चित्त को बुरे कर्म करने से रोकता है, क्योंकि बुरे कर्म करने से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और चित्त उस परिणाम से भयभीत रहता है। यह चेतसिका, हिरी की तरह, कर्मों के संभावित परिणामों को देखती है और उनसे भयभीत हो जाती है। इसलिए इसकी उपस्थिति में चित्त बुरे कर्म नहीं करता। यह भी एक प्रकार का अवरोध है, लेकिन स्वभाव से यह शर्म से अधिक भय के पक्ष में है।

हिरी के साथ मिलकर, ये दोनों चेतसिक अनुकूल सामाजिक परिस्थितियों में संसार की रक्षा करते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं और अंततः यह यौन संबंध की ओर ले जाता है। लेकिन हिरी और ओत्तप्पा अनावश्यक घटनाओं को रोकते हैं। इन दोनों चेतसिकों को लोकपाल धर्म कहा जाता है। वे न केवल अनुचित संबंधों में यौन मामलों से बचाव करते हैं, बल्कि सभी अकुशल धर्मों से भी बचाव करते हैं।

5. अलोभा चित्त को सत्तों को वस्तुएँ अर्पित करने के लिए प्रेरित करता है, क्योंकि अलोभा के मार्गदर्शन से चित्त उन वस्तुओं से अनासक्त हो जाता है। अलोभा अनासक्ति या विरक्ति से कहीं अधिक है। यह सीधे सत्त के रूप में प्राप्तकर्ताओं को देखता है और उन्हें निर्देशित करता है। साथ ही, यह अपने स्वयं के गुणों को सत्त के गुणों के रूप में नहीं देखता। गुणों से विरक्त होकर प्राप्तकर्ताओं की ओर झुकें, तो प्राप्तकर्ता को ऊर्जा का एक अगोचर प्रवाह प्राप्त होता है। यह विशेष रूप से सद्ध सहित अन्य 18 चेतसिकों के साथ कार्य करता है।

6. अदोसा का प्रभाव विनाशकारी नहीं होता। यह चित्त को प्रसन्न और दयालु बनाता है। अदोसा की उपस्थिति में दूसरों का कल्याण हमेशा ध्यान में रखा जाता है। इसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और अन्य सभी पहलू शामिल हैं। इसका स्वभाव हानि न पहुँचाने वाला होता है। यह सच्ची मित्रता है। यह प्रेमपूर्ण दयालुता है।

7. तत्रमज्जत्तत संतुलनकर्ता है। यह समतुल्य है। यह सभी साथ-साथ मौजूद चेतसिकाओं की शक्ति को समतुल्य करता है और इस प्रकार चित्त को भी संतुलन की स्थिति में कार्य करने का निर्देश देता है, जिसका अर्थ है कि यह अतिवाद के बिना कार्य करता है। यह चेतसिका सारथी के समान है। जब दो घोड़े गाड़ी खींचते हैं, तो उन्हें समान शक्ति से खींचना पड़ता है। ऐसा करने के लिए सारथी ही काम करता है। सारथी के बिना वांछित दिशा कभी नहीं प्राप्त की जा सकती।

सुंदर चेतना के साथ हमेशा उत्पन्न होने वाले सुंदर मानसिक कारकों के 6 समूह हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. पासद्धि,
2. लाहुता,
3. मुदुता,
4. कम्मन्नता,
5. पगुन्नाटा, और
6. ujukata

चित्त और चेतसिका दोनों के लिए।

1. पहला समूह चित्तपसद्धि और कायपसद्धि चेतसिकों का है। चित्तपसद्धि एक चेतसिक है जो चित्त की शीतलता, शांति और स्थिरता का प्रतीक है। इसका चित्त पर सुखदायक प्रभाव होता है। यह मन को शांत करता है और चित्त को सभी चिंताओं से मुक्त करता है। चित्तपसद्धि के उत्पन्न होने पर कायपसद्धि भी उत्पन्न होती है। ये दोनों चेतसिक हमेशा एक साथ उत्पन्न होती हैं और एक ही चित्त के साथ मिलकर कार्य करती हैं।

2. दूसरा समूह लहुता है। ये चित्तलहुता और कायलहुता हैं। चित्तलहुता चित्त की हल्कापन है और कायलहुता चेतसिकाओं की हल्कापन है। ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही चित्त के साथ मिलकर कार्य करते हैं। चेतसिकाओं का यह जोड़ा मन को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए तैयार करता है। इन दोनों चेतसिकाओं को मन में तब देखा जा सकता है जब मन अच्छी मनोदशा में हो, जैसे कि कुशल क्रियाएं करते समय।

3. तीसरा सेट मुदुता है। वे चित्तमुदुता और कयामुदुता हैं। मुदुता कोमलता या कोमलता है। चित्तमुदुता चित्त की कोमलता है और कयामुदुता सीतासिका की कोमलता है। वे एक ही समय में एक ही चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ काम करते हैं।

4. चौथा समूह कम्मन्नता है। इसमें चित्तकम्मन्नता और कायकम्मन्नता शामिल हैं। चित्तकम्मन्नता चित्त की अनुकूलनशीलता या सुगमता है, जबकि कायकम्मन्नता चेतसिकों के लिए है। ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही चित्त में एक ही अरम्मन के साथ मिलकर कार्य करते हैं। ये चित्त और चेतसिकों को अन्य चेतसिकों के साथ सामंजस्य स्थापित करने और सभी के अनुकूल ढलने में सहायता करते हैं।

5. पाँचवाँ समूह पगुणता है। इसमें चित्तपगुणता और कायपगुणता शामिल हैं। चित्तपगुणता चित्त की निपुणता है और कायपगुणता चेतसिकाओं की निपुणता है। ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ कार्य करते हैं। चित्तपगुणता चित्त को सही ढंग से कार्य करने में सहायता करती है और कायपगुणता सभी चेतसिकाओं को उचित रूप से कार्य करने में सहायता करती है।

6. छठा समूह उजुकाता है। ये चित्तुजुकाता और कायुजुकाता चेतसिक हैं। ये एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही चित्त में एक ही अरम्मन को अपनाते हुए एक साथ कार्य करते हैं। चित्तुजुकाता चित्त की सत्यता या चित्त की ईमानदारी है और कायुजुकाता चेतसिकों के लिए है। ये चित्त और चेतसिकों को सत्यनिष्ठ बनाते हैं और इन दोनों चेतसिकों की उपस्थिति में सभी सीधे-सादे तरीके से कार्य करते हैं।

तीन प्रकार के विराटी चेतसिका होते हैं। विराटी का अर्थ है बचाव। वे हैं:

1. सम्मा कम्मंता,
2. सम्मा वका, और
3. सम्मा अजीवा.

1. सम्मा कम्मन्त सही कर्म है। यह चेतसिका चित्त को बुरे कर्म न करने बल्कि सही कर्म करने में सहायता करती है। यह बुरे कर्मों से बचाव करती है। यह एक प्रकार का संयम है। यह संयम द्वारा बुरे कर्मों को रोकता है। यह हिरि और ओत्तप्पा के समान है। लेकिन इसका संयम काय कर्म द्वार या शारीरिक क्रियाओं पर होता है, जबकि हिरि और ओत्तप्पा संभावित परिणामों पर विचार करते हैं। सम्मा कम्मन्त शारीरिक क्रियाओं में ही कर्मों की दुष्टता और बुराई पर विचार करता है।

2. सम्मा वाच सही वाणी है। यह चित्त को झूठ बोलने, अपशब्द बोलने, कठोर या अभद्र शब्द बोलने, निरर्थक कहानियां सुनाने और फूट डालने वाली बातें करने जैसी बुरी वाणी बोलने से रोकती है। यह एक प्रकार का निषेध है। सम्मा कम्मंत के विपरीत, यह मौखिक क्रियाओं या वाणी पर ध्यान केंद्रित करती है।

3. सम्मा अजीव सही आजीविका है, जो सम्मा कम्मन्त या सम्मा वाच या दोनों के फलस्वरूप प्राप्त आजीविका पर निर्भर है। यह एक प्रकार का अवरोध भी है। अन्य दो विरति चेतसिकों के विपरीत, सम्मा अजीव आजीविका से संबंधित है। आजीविका के संदर्भ में, यह उत्पन्न होता है और चित्त को आजीविका से संबंधित बुरे शारीरिक कार्यों या बुरी वाणी से बचने में सहायता करता है।

अप्पमन्ना सिटासिका दो हैं, अर्थात्:

1. अप्पामन,
2. करुणा

1. अप्पमन्ना असीम, अनंत और अनंत है। यह सत्ता पन्नत्ता पर सद्भावना रखना है, जैसे सत्ता, पुरुष, स्त्री, देव, देवी, ब्रह्मा आदि। वे करुणा और मुदिता हैं।

2. करुणा तब उत्पन्न होती है जब निर्धन अवस्थाओं का सामना होता है और मुदिता तब उत्पन्न होती है जब परिपूर्ण अवस्थाओं का सामना होता है। करुणा सहानुभूति है जबकि मुदिता सहानुभूतिपूर्ण आनंद है।

पच्चीस शोभना चेतसिकों या सुंदर मानसिक कारकों में, अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण पन्ना या पन्निन्द्रिय चेतसिक हैं। वे राजा चित्त के प्रधान मंत्री के समान हैं। यह चित्त को चीजों को गहराई से देखने और समझने में सहायता करता है। इसमें ज्ञानोदय की शक्ति होती है। इसमें विश्लेषण और अंतर्दृष्टि की शक्ति होती है। यह विषय वस्तु की अच्छी समझ रखता है। यदि यह चेतसिक मौजूद है और सुचारू रूप से कार्य कर रहा है, तो अन्य सभी सहायक चेतसिक भी सुचारू रूप से कार्य करते हैं और सभी सुव्यवस्थित होते हैं। यह चेतसिक एक बुद्धिमान व्यक्ति या बुद्धिमान मंत्री के समान है जो राजा चित्त को हर बात के गुण-दोष प्रस्तुत करता है।

यह सीतासिका रूपा और अरूपा झाना सीतास, मग्गा सीतास और फला सीतास में सभी सीतासिका का प्रमुख है। इस पन्ना सिटासिका के बिना कोई भी झाना या मग्गा या फला सीता नहीं होगा।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथ्ना >> **3.रूपा**

बाय हटू निंग

अध्याय 3 - रूप
या भौतिक मामले
चित्त और चेतसिका जो वास्तविकताएं हैं, उनके अलावा एक और वास्तविकता है। वह है रूप। रूप वह प्रकृति है जो हमेशा कर्म, चित्त, उतु और आहार नामक चार कारणों में से एक या अधिक से प्रभावित होती है।

रूपा निरंतर परिवर्तनशील होते हैं, जैसे चित्त और चेतसिका निरंतर परिवर्तनशील होते हैं, भले ही वे नाम धम्म की तुलना में अपेक्षाकृत धीमी गति से बदलते हों। नाम धम्म के विपरीत, रूपा में स्वयं और अपने परिवेश के प्रति सजग रहने की प्रकृति नहीं होती है।

रूपा कभी कुछ जान नहीं सकता। लेकिन रूपा नाम, धम्म, चित्त और चेतसिका से संबंधित विभिन्न कार्य करता है। अपने मूल स्वरूप के अनुसार, 28 अलग-अलग परमत्थ रूपा होते हैं।

1. 4 महाभूत रूप
2. 5 pasada rupas
3. 4 गोकारा रूप या विसया रूपा (या 7 गोकारा या 7 विसया रूपा)
4. 2 भाव रूप
5. 1 hadaya rupa
6. 1 जीवित रूप
7. 1 आहार रूप या 1 ओज रूप (कुल मिलाकर ये 18 रूप निप्पन्न रूप हैं)

1. 1 परिच्छेड़ा रूपा या अकासा रूपा
2. 2 vinatti rupas
3. 3 लहुतादि रूप (2 विनत्ती रूप को मिलाकर ये 5 विकार रूप हैं)
4. 4 लक्खना रूप (ये अंतिम 10 रूप अनिप्पन्न रूप हैं)।

परमत्था रूप 28 प्रकार के होते हैं। इनके वर्ग के अनुसार, रूप के 11 वर्ग हैं, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

इनमें से चार महाभूत रूप उपदा रूप कहलाते हैं। अन्य सभी 24 रूप इन्हीं चार महाभूत रूपों पर निर्भर करते हैं। महाभूत रूप स्वयं सहित सभी रूपों का आधार हैं।

ये चारों रूप अन्य चार रूपों से भी जुड़े हुए हैं, और ये सभी रूप पूरी तरह से इन चार महाभूत रूपों पर निर्भर हैं। इन चार रूपों - वन्न, गंध, रस और ओज - के साथ मिलकर, ये सभी आठ तत्व अविनिभाग रूप कहलाते हैं, जिसका अर्थ है अविभाज्य तत्व।

महाभूत रूप चार महान तत्व हैं। वे हैं पथवी या दृढ़ता, तेजो या तापमान, आपो या तरलता और वायो या गति या प्रतिरोध।

पथवी पृथ्वी तत्व है। यह वह प्रकृति है जो दृढ़ता, कठोरता या कोमलता को दर्शाती है, जो विज्ञान के दृष्टिकोण से परमाणुओं, अणुओं, यौगिकों और पदार्थों के अंतर्संबंधों के घनत्व और संगठन पर निर्भर करती है। शरीर में विद्यमान काया पसदा रूप के माध्यम से इसकी प्रकृति का अनुभव किया जा सकता है और पथवी को पदार्थों की कठोरता या कोमलता के रूप में अनुभव किया जा सकता है।

तेजो वह प्रकृति है जिसे शरीर द्वारा गर्माहट, ठंडक या तापमान के रूप में महसूस किया जा सकता है। यद्यपि तापमान एक शब्द है, तेजो की वास्तविक प्रकृति को शरीर द्वारा स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। पारंपरिक अर्थों में, प्रत्येक पदार्थ का एक तापमान होता है जिसे शरीर द्वारा महसूस किया जा सकता है।

एपो वह प्रकृति है जो पदार्थों को एकजुट करती है।

- यह सामंजस्य है।
- यह प्रवाह क्षमता है,
- यह प्रसार क्षमता है,
- यह चिपचिपाहट है।
- यह परंपरागत अर्थों में पदार्थों की शुष्कता-गीली अवस्था है।

लेकिन अपो के वास्तविक स्वरूप को शरीर के माध्यम से अनुभव नहीं किया जा सकता। इसे केवल मन की इंद्रियों के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकता है।

वायो वह प्रकृति है जो पदार्थों को एक साथ धकेलती या खींचती है।

- यह संपीड्यता दमनशीलता है।
- यह दबाव के बीच भी सहयोग प्रदान करना है।
- यह गति है।
- यह गति है।
- यह लचीलापन है।

वायो की वास्तविक प्रकृति को शरीर के माध्यम से महसूस किया जा सकता है।

यहां 5 पासाडा रूपा हैं।

1. चक्खुप्पासाद या आँख
2. sotappasada or ear
3. घनप्पसादा या नाक
4. जीवहप्पसाद या जीभ
5. कायप्पसाद या शरीर

इन पांच रूपों को पसदा रूप कहा जाता है। ये महाभूत रूपों का संग्रह हैं, जिनमें से प्रत्येक में अतिरिक्त गुण होते हैं। प्रत्येक रूप स्पष्ट रूप से अपना कार्य करता है।

चक्खुप्पसाद आँख है। लेकिन पारंपरिक अर्थों में आँख चक्खुप्पसाद नहीं है। चक्खुप्पसाद एक ऐसा रूप है जो दृश्य वस्तु को ग्रहण करने में सक्षम है। महाभूत रूप सहित कोई अन्य रूप दृश्य वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि महाभूत रूप चक्खुप्पसाद नहीं है। चक्खुप्पसाद को हमारी आँखों से देखा नहीं जा सकता और न ही पाँचों इंद्रियों द्वारा इसका अनुभव किया जा सकता है। लेकिन यह एक वास्तविकता है और इसका अनुभव केवल मनोद्वार के माध्यम से ही किया जा सकता है। यही बात अन्य पसाद रूपों पर भी लागू होती है।

ये 5 रूप पसदा, आधार या वत्थु और द्वार का काम करते हैं।

7 गोकर रूप या विसय रूप हैं।

वे हैं

1. रूपा (वन्ना) या रंग
2. सद्दा या ध्वनि
3. गंध या महक
4. रस या स्वाद
5. फोथब्बा या स्पर्श इंद्रिय
6. पथवी या कठोरता कोमलता
7. तेजो या गर्माहट ठंडक
8. वायो या दबाव या गति

ये 7 रूप अरम्मन या वस्तु के रूप में कार्य करते हैं।

अब तक, 4 महाभूत रूप, 5 पसदा रूप और 7 गोचर रूप या 7 विषय रूप (पाथवी, तेजो और वायो नामक तीन रूपों को छोड़कर, 7 में से 4 गोचर रूप शेष हैं) कुल मिलाकर 13 परमत्थ रूप निर्धारित किए गए हैं।

दो भाव रूप हैं। वे हैं

1. itthattha bhava rupa and
2. purisatta bhava rupa.

ये स्त्रीत्व और पुरुषत्व हैं। ये रूप वास्तविकता हैं। लेकिन इन्हें केवल मनोद्वार से ही जाना जा सकता है, पंचद्वार से नहीं। ये दोनों कर्मजा एकम रूप हैं। अर्थात् इनका उद्‌भव केवल कर्मों से होता है, अन्य किसी कारण से नहीं। अतः अब तक 15 रूप हो चुके हैं।

एक रूप है जिसे हदय रूप कहते हैं। यह हदय वात का कार्य करता है। पंचविन्नन चित्त को छोड़कर सभी विन्नन चित्तों का आधार है, जब संबंधित सत्ता पंचवोकर भूमि में हो, यानी जहाँ सभी पाँच समुच्चय मौजूद हों। यह रूप भी केवल कर्म के कारण ही उत्पन्न होता है। अब तक 16 रूपों की व्याख्या हो चुकी है।

एक ऐसा रूप है जो सभी सह-अस्तित्ववान रूपों को सहारा देता है। इस रूप को जीवित रूप कहते हैं। इस जीवित रूप के बिना अन्य सभी रूप सजीवों के रूप में अस्तित्व में नहीं रह सकते। यह भी कर्म से ही उत्पन्न होता है। अब तक 17 रूप हो चुके हैं।

आहार रूप नामक एक रूप होता है। यह रूप-कालप नामक रूपों के समूह में सह-अस्तित्व में रहते हुए अन्य रूपों को सहारा देता है। इसे ओज भी कहा जाता है। अब तक 18 रूपों का वर्णन किया जा चुका है। इन सभी 18 रूपों को निप्पन्ना रूप कहा जाता है। ये चार कारणों में से एक या अधिक के प्रभाव में होते हैं, जिन्हें इस प्रकार कहा जाता है:

1. कम्मा,
2. चित्त,
3. उतु, और
4. अहारा.

दस परमत्थ रूप हैं। ये सभी किसी भी चीज़ के प्रभाव में नहीं हैं, बल्कि स्वयं अपने आप में विद्यमान हैं और ये सभी परमत्थ रूप हैं। वे विद्यमान हैं और सभी परमत्थ रूप हैं। वे इस प्रकार हैं:

- 1 pariccheda rupa,
- 2 vinatti rupas,
- 3 लाहुतादि रूपा, और
- 4 लाख रूपा।

परिच्छेद रूप वह रूप है जो महाभूत रूप को अलग करता है ताकि कालपों में महाभूत रूप आपस में न मिलें। यह एक खाली स्थान की तरह है। यह एक रिक्त अंतराल की तरह है। इसे कभी-कभी आकाश भी कहा जाता है। यह वास्तव में विद्यमान है और यह परमत्थ रूप है, लेकिन यह किसी भी बाहरी कारण से प्रभावित नहीं होता है।

दो प्रकार के विनाति रूप हैं: कायविनाति रूप और वाचिविनति रूप। कायविनाति रूप किसी सजीव प्राणी का वह हावभाव या क्रिया है जिसका कोई निश्चित अर्थ होता है, जबकि वाचिविनति एक ध्वनि है जो किसी सजीव प्राणी द्वारा उत्पन्न की जाती है और जिसका कोई निश्चित अर्थ होता है। यह केवल वाणी ही नहीं, बल्कि चेतना द्वारा उत्पन्न कोई भी ध्वनि हो सकती है। कायविनाति और वाचिविनति दोनों को चित्तज रूप कहा जाता है और ये विशुद्ध रूप से केवल चित्त द्वारा ही उत्पन्न होते हैं।

तीन प्रकार के लाहुतादि रूप होते हैं। ये रूपालहुता, रूपामुदुत और रूपकम्मन्नत रूप हैं। ये रूप की हल्कापन, कोमलता और अनुकूलनशीलता का प्रतीक हैं। ये चित्त, उतु और आहार के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। ये कर्म के कारण कभी उत्पन्न नहीं होते। जब ये तीनों रूप रूपकलाप में मौजूद होते हैं, तो इनके साथ मौजूद सभी रूप हल्के, अधिक कोमल और अधिक अनुकूलनशील हो जाते हैं।

चार प्रकार के लक्खना रूप होते हैं। ये हैं उपचय रूप (प्रारंभिक अवस्था), सन्ति रूप (निरंतर अवस्था), जरात रूप (क्षय अवस्था) और अनिच्छुत रूप (अतिरिक्त अवस्था)। ये चारों लक्खना रूप अन्य रूपों के लक्षण हैं और कर्म, चित्त, उतु और आहार से अप्रभावित रहते हैं। इन दस रूपों को सामूहिक रूप से अनिप्पण रूप कहा जाता है, जबकि पूर्व के अठारह रूपों को निप्पण रूप कहा जाता है।

इसलिए, कुल मिलाकर 28 परमात्मा रूप हैं जो सभी वास्तविकताएं हैं और हमारी 6 इंद्रियों में से किसी एक द्वारा अनुभव की जा सकती हैं।

- रूपा या वन्ना का अनुभव केवल आंखों से ही होता है।
- सद्दा का अनुभव केवल कानों से ही होता है।
- गंध का अनुभव केवल नाक से ही होता है।
- रस का अनुभव केवल जीभ द्वारा ही होता है और
- महाभूत रूप के पथवि, तेजो, वायो तीन का बोध शरीर से ही होता है।

अन्य सभी रूप, अर्थात् 5 पसदा रूप और 16 सुखुम रूप या सूक्ष्म पदार्थ, केवल मन द्वारा ही अनुभव किए जा सकते हैं; अर्थात् 5 पसदा रूप और 16 सुखुम रूप को आंख, कान, नाक, जीभ और शरीर में से किसी के द्वारा भी कभी अनुभव नहीं किया जा सकता है।

सभी रूप लोभ, दोष, मोह, अलोभ, अदोष और अमोह जैसे हेतुओं से रहित होते हैं और इन्हें अहेतुक कहा जाता है। रूप अपने कारणों या पच्चयों के साथ उत्पन्न होते हैं और इन्हें सप्पच्चय कहा जाता है। रूप चार आसव धर्मों के विषय हैं और इन्हें ससव कहा जाता है।

कर्म, चित्त, उतु और आहार, ये सभी रूप से उत्पन्न होने वाले गुणों को प्रभावित करते हैं, इसलिए रूप संखता कहलाते हैं। रूप संखरा लोक का हिस्सा हैं और ये उपादान या आसक्ति के विषय हैं, इसलिए रूप लोकीय कहलाते हैं। रूप वे स्थान हैं जहाँ काम तन्हा हमेशा निवास करता है और आसक्त होता है, इसलिए इन्हें कामवाचारा कहा जाता है।

रूप केवल वस्तुएँ हैं, वे किसी वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकतीं और न ही वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। इन्हें अनारम्मन कहा जाता है। रूप न तो हटाए जा सकते हैं और न ही मिटाए जा सकते हैं, इसलिए इन्हें अप्पहतब्बा कहा जाता है। यद्यपि स्वरूप एक ही है, फिर भी रूप अनेक प्रकार के होते हैं।

5 पसादा रूप प्राणियों के अंदर रहते हैं और उन्हें अज्जत्तिका रूप कहा जाता है। अन्य 23 रूप को बहिरा रूप कहा जाता है। 5 पसादा रूप पंच वत्थु हैं और हदय रूप हदय वत्थु हैं। ये 6 रूप वत्थु रूप हैं। अन्य 22 रूप अवत्थु रूप हैं।

5 पसादा रूप वस्तुओं या अराममानों के लिए द्वार हैं और इसी तरह 2 विनत्ती रूप भी हैं और इन 7 रूपों को द्वार रूप कहा जाता है। अन्य 21 रूप को अदवारा रूप कहा जाता है। 5 पसादा रूप इन्द्रिय रूप हैं। 2 भाव रूप इंद्रिय रूप भी हैं और जीवित रूप भी इंद्रिय रूप हैं। इन 8 रूपों को इंद्रिय रूप कहा जाता है और अन्य 20 रूपों को अनिंद्रिय रूप कहा जाता है।

5 पसदा रूप और 7 विषय रूप या 7 गोचरा रूप गूढ़ रूप हैं और इन्हें ओलारिका रूप कहा जाता है। ये लगभग समझने योग्य और समझने के करीब होते हैं। इन्हें शांतिके रूप भी कहा जाता है। ये 12 रूप स्पर्श से संबंधित हैं और इन्हें सप्पतिघा रूप कहा जाता है। अन्य 16 रूप सुखुम रूप या सूक्ष्म पदार्थ कहलाते हैं। इन्हें दूर रूप भी कहा जाता है क्योंकि ये आसानी से समझने योग्य नहीं होते हैं। और इन्हें अस्पृश्य रूप कहा जाता है क्योंकि इन्हें छुआ नहीं जाता है।

कर्मों के कारण उत्पन्न होने वाले रूप जैसे:

- 4 महाभूत रूप,
- 5 pasada rupas,
- 4 (7) gocara rupas,
- 2 भाव रूप,
- 1 जीवित रूप,
- 1 हदाया रूपा, और
- 1 आहार रूप को उपदिन्न रूप कहा जाता है।

अन्य 10 रूप कर्म से उत्पन्न नहीं होते और इन्हें अनुपदिन्न रूप कहा जाता है। केवल रूपारम्मन या वन्न/रूप ही प्रत्यक्ष रूप है और इसे सानिदासन रूप कहा जाता है, जबकि अन्य 27 रूप अनिदासन रूप कहलाते हैं। 5 पाषाण रूप गोचरग्गाहिक रूप कहलाते हैं क्योंकि वे अरम्मन का संचार कर सकते हैं। अन्य 23 रूप अगोरग्गाहिक रूप कहलाते हैं।

वन्ना, गंध, रस, ओज या आहार, पथवि, तेजो, वायो और अपो हमेशा एक साथ मौजूद रहते हैं और उन्हें अविनिभोग रूप कहा जाता है और अन्य 20 रूपों को विनिभोग रूप कहा जाता है।

कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो कर्मज रूप उत्पन्न कर सकते हैं। ये कर्म इस प्रकार हैं:

- 12 अकुसला कम्मा,
- 8 कामवचरा कुसल कम्म, और
- 5 rupavacara kusala kamma.

कुल मिलाकर 25 कर्म, कर्मज रूप उत्पन्न कर सकते हैं। 89 चित्तों में से 10 पंचविन्नन चित्त और 4 अरूप विपाक चित्त रूप उत्पन्न नहीं करते। शेष 75 चित्त हैं जो रूप उत्पन्न कर सकते हैं। सभी सत्तों में पतिसंधि चित्त और सभी अरहतों में चुतिचित्त रूप उत्पन्न नहीं करते। अन्य 75 चित्त चित्तज रूप उत्पन्न करते हैं। कुछ चित्त इरियपथ या शारीरिक मुद्राओं को सहारा देने वाले रूप उत्पन्न करते हैं। कुछ चित्त विनत्ती रूप उत्पन्न करते हैं और कुछ मुस्कुराने का कारण बनते हैं।

अज्जत्तिका उत्तु है जो सीता तेजो और उन्नहा तेजो पतिसंधि के साथ उत्पन्न होती है। ये यूटू या तेजो जब बहिद्धका तेजो के संपर्क में होते हैं तो पतिसंधि के ठिकाने या चेतना को जोड़ने से शुरू होने वाले यूटू या तेजो के उत्पन्न होने का कारण बन सकते हैं। रूप कल्प हैं। सबसे

सरल रूप शुद्धत्थ रूप कल्प है। ये अविभाज्य रूप या अविनिभोग रूप का संग्रह हैं। उस कल्प में आहार या ओज, आहार रूप के उत्पन्न होने का मुख्य कारण है। इस अज्जत्तिका आहार को बहिद्धिका आहार के साथ संयोजित होना पड़ता है और ये दोनों अहाराजा रूप की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

28 रूप में से चक्खु, सोता, घाना, जिव्हा, काया, इत्थि भाव, पुन्भव, हदय और जीवित रूप कुल मिलाकर 9 रूप केवल कर्म के कारण होते हैं। कायाविनत्ती और वासिविनात्ती रूप पूरी तरह से चित्त के कारण होते हैं। सददा यूटू या सिट्टा के कारण हो सकता है। रूपलहुता, रूपमुदुता, और रूपकम्मन्नता कर्म के कारण नहीं होते हैं। ये तीनों सिट्टा, यूटू और अहारा के कारण हो सकते हैं। पथवि, तेजो, वायो, अपो, वन्ना, गंध, रस, आहार और परिच्छेद कम्म, चित्त, उत्तु या आहार में से किसी के कारण हो सकते हैं। 4 लक्खना रूप कम्म, चित्त, उत्तु और आहार में से किसी के कारण नहीं होते हैं। इन चार रूपों को ना कुतोची रूपा कहा जाता है।

यद्यपि 28 परमत्थ रूप हैं, वे एकाकी रूप से प्रकट नहीं होते। कम से कम कुछ रूप एक साथ प्रकट होते हैं और एक साथ ही लुप्त हो जाते हैं। वे महाभूत रूपों में प्रकट होते हैं और रूपकलाप नामक एक रूप में सह-अस्तित्व में रहते हैं। 21 रूपकलाप हैं। इनमें से 9 कम्मज रूपकलाप हैं, 6 चित्तज, 4 उत्तज और 2 आहारज रूपकलाप हैं।

Kammaja rupa kalapas are:

1. चक्खुदासक,
2. sotadassaka,
3. घनदास्सका,
4. जीवहदस्सका,
5. kayadassaka,
6. ithibhavadassaka,
7. पुन्भवदस्सका,
8. वत्थुदासक, और
9. जीवितनव कलाप।

चक्खुदासका कल्प में, 8 अविनिभोग रूप, जीवित रूप और चक्खु पसादा रूप कुल मिलाकर 10 रूप एक साथ उत्पन्न होते हैं। अन्य कम्माजा कल्पस समान हैं और केवल कक्खू को उनके संवाददाता रूपा से बदलने के लिए हैं। जीवितानव कल्प 8 अविनिभोग रूप और जीवित रूप का एक संयोजन है।

6 चित्तजा रूप कलाप इस प्रकार हैं:

1. शुद्धत्थ कल्प जिसमें केवल 8 अविनिभोग रूप शामिल हैं,
2. कायाविनत्तिनव कल्प जिसमें 8 रूप और कायाविनत्ती रूप शामिल हैं,
3. वासिविनात्ती सद्दादस्साका कल्प जो 8 रूप से बना है, वासिविनाट्टी और साड्डा,
4. लहुतादि एकादशका कल्प जो 8 रूप और 3 लहुतादि रूप का संयोजन है।
5. कायविनत्ति लहुतादि द्वादस्सा कल्प जिसमें 8 रूप, 3 लहुतादि और कायविनत्ति रूप शामिल हैं।
6. वासिविनात्ती सद लाहुतादि तेरसका कल्प जिसमें 8 रूप, 3 लाहुतादि, वासिविनात्ती और साड्डा रूप शामिल हैं।

4 उत्तुजा कलाप इस प्रकार हैं:

1. शुद्धत्था कलापा,
2. सद्दनव कलापा,
3. लहुतादिएकदस्साक कल्प जिसमें 8 रूप और 3 लहुतादि रूप शामिल हैं, और
4. सद्दा लहुतादि द्वादस्साक कल्प जिसमें 8 रूप, 3 लहुतादि रूप और सद्दा रूप शामिल हैं।

दो अहाराजा रूप कलाप इस प्रकार हैं:

1. सुद्धत्थ रूप लकापा और
2. लहुतादिएकदस्साक रूप कल्प जिसमें 8 अविभाज्य रूप और 3 लहुतादि रूप शामिल हैं।

4 उतुजा रूप कल्पों से, शुद्धत्थ रूप कल्प और सद्दानव रूप कल्प प्राणियों या सत्त्वों के बाहर उत्पन्न हो सकते हैं। अन्य सभी रूप कल्प केवल अज्जत्तिका के रूप में उत्पन्न होते हैं।

अध्याय 4 - निर्वाण
या पूर्ण शांति
चित्त, चेतसिका, रूप और निर्वाण परम सत्य हैं। इनके अलावा कोई और चीज सत्य नहीं है। केवल ये चार ही अपने परम अर्थ में सत्य हैं और किसी भी समय और किसी भी स्थान पर ये सदा सत्य रहते हैं। पिछले पृष्ठों में चित्त, चेतसिका और रूप पर विस्तार से चर्चा की गई है। एक चौथा परम सत्य भी है, जो है निर्वाण।

निब्बाना शब्द निर्वाण से लिया गया है। नि का अर्थ है निक्खान्त, यानी वान या बंधन से मुक्त होना। वान वह धर्म है जो संसार में विभिन्न जीवों को बांधता है। अतः निब्बाना का अर्थ है संसार के बंधन से मुक्त होना। यह बंधन तन्हा है।

यद्यपि निर्वाण का स्वरूप एक ही है, फिर भी इसके दो रूप माने जाते हैं: सौपदिशेष निर्वाण और अनुपदिशेष निर्वाण। सौपदिशेष निर्वाण वह अवस्था है जब सत्त अभी संसार में होते हैं और जीवित होते हैं। यह निर्वाण केवल अरहतों या अनागमों में निरोध समापत्ति की अवस्था में ही विद्यमान होता है। निरोध का अर्थ है विलीन होना और समापत्ति का अर्थ है किसी अवस्था में होना। अनुपदिशेष निर्वाण अरहतों की चुति चित्त के ठीक बाद की अवस्था है।

अरहतों के चुति चित्त के तुरंत बाद, कम्मज रूप, चित्तज रूप और आहारज रूप का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सत्ताओं से निर्वाण की ओर अग्रसर उस अवस्था को अनुपदिशेष निर्वाण कहा जाता है, क्योंकि उसमें तथाकथित सत्ता का कोई अंश नहीं होता, अर्थात् चित्त, चेतसिका, कम्मज रूप, चित्त रूप और आहारज रूप का कोई अस्तित्व नहीं होता। जो उत्तुज रूप शेष रह जाता है, वह अन्य बहिद्धिक रूपों के समान होता है और किसी भी सत्ता से जुड़ा नहीं होता। अतः ऐसा निर्वाण पूर्ण और परम शांति का प्रतीक है। यह वह अवस्था है जिसे सभी बौद्ध अपने पच्चीम भाव या अंतिम जीवन के बाद प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

चिंतन के दृष्टिकोण से, निर्वाण तीन प्रकार के होते हैं: सुन्नत निर्वाण, अनिमित्त निर्वाण और अप्पनिहित निर्वाण।

सुन्नत निर्वाण का अर्थ है वह निर्वाण जो तन्हा उत्पन्न होने के लिए अरम्मना से मुक्त हो। परम अर्थ में वहाँ कोई अत्ता या अहंकार नहीं होता। निर्वाण अत्तजीव, किसी भी आत्मा या किसी भी जीव से मुक्त होता है। अतः, क्योंकि वह जीव, आत्मा या किसी भी चीज से मुक्त है, निर्वाण को सुन्नत निर्वाण या शांति की शून्यता कहा जाता है। जब आर्य ने अनात्म के रूप में धम्म का चिंतन किया, तब उन्होंने मार्ग चित्त उत्पन्न होने पर जो निर्वाण देखा, उसे सुन्नत निर्वाण कहा जाता है। क्योंकि उन्होंने अनात्म के रूप में देखा, और क्योंकि वहाँ कोई अत्ता नहीं है और वह अत्ता से मुक्त है, इसलिए उन्होंने जो निर्वाण देखा, उसे सुन्नत निर्वाण कहा जाता है।

अनिमित्त निर्वाण का अर्थ है राग, क्लेश और आधारों एवं कारणों से मुक्त निर्वाण। जब आर्य टोबे मार्ग चित्त में धम्म का अवलोकन कर रहे थे, यदि उन्होंने धम्म को अनित्या के रूप में देखा, तो उन्होंने जो निर्वाण देखा, उसे अनिमित्त निर्वाण कहा जाता है। क्योंकि धम्म में कोई नित्या या स्थायी निमित्त नहीं है। अतः उनका निर्वाण अनिमित्त निर्वाण है।

अप्पनिहित निर्वाण का अर्थ है निर्वाण के लिए तन्हा, राग, क्लेश आदि की तरह लालसा न करना। जब आर्य चित्त भाव से धम्म का अवलोकन कर रहे हों, और यदि वे धम्म को दुःख या पीड़ा के रूप में देखें, तो उन्हें जो निर्वाण प्राप्त होता है, उसे अप्पनिहित निर्वाण कहते हैं। क्योंकि निर्वाण तन्हा, राग और किसी भी प्रकार के दोषों से मुक्त होता है। यद्यपि इन पर चिंतन किया जाता है, फिर भी अपने स्वरूप और परम अर्थ में केवल एक ही निर्वाण होता है।

निर्वाण परम शांति है। इस शांति को अग्नि या पीड़ा की अनुपस्थिति से समझा जा सकता है। जब निर्वाण की अवस्था में न हों, तब सत्त संखत धम्म के क्षेत्र में होते हैं। इसका अर्थ है कि वे सभी कामलोक, रूपलोक और अरूपलोक में विलीन हो जाते हैं।

जब तक सत्ताएं इन 31 लोकों में विद्यमान रहेंगी, तब तक वे अपने संसार में रहेंगी और विभिन्न प्रकार के कष्टों से ग्रस्त रहेंगी। इन कष्टों को अग्नि कहा जाता है। जब सभी अग्नियां पूर्णतः बुझ जाएंगी, यानी अग्नि की अनुपस्थिति, जो कि गर्म और अप्रिय होती है, पूर्ण शांति और कष्ट से मुक्ति प्रदान करेगी। इसके विपरीत, इसकी अनुपस्थिति को परम शांति के रूप में अनुभव किया जा सकता है, जबकि इसकी उपस्थिति गर्म होती है, जो बेचैनी और अशांति उत्पन्न करती है।

निब्बाना रूप धम्म नहीं है. यह नाम धम्म है. निब्बान कोई खंड या समुच्चय नहीं है। लेकिन निब्बान अरम्मना या मन की वस्तु हो सकता है। निब्बाना धम्मरम्मना है। निब्बाण आयतन हो सकता है। यह धम्मायतन है. आयतन धम्म या प्रकृति हैं जो अराम्मन या वस्तु या द्वार

या द्वार होने के कारण चित्त की उत्पत्ति का कारण हैं। चित्त, सीतासिका और रूप 18 प्रकार के धातु या धम्म तत्वों से बने हैं। निब्बाण धम्म धातु हो सकता है। लेकिन निब्बान संखत धातु नहीं है जैसा कि चित्त, सीतासिका और रूप के मामलों में होता है। निब्बाण असंखत् धातु है।

संखता धातु वे हैं जिनका उद्भव और अस्तित्व चार कारणों में से किसी एक से प्रभावित होता है, अर्थात् कर्म, चित्त, उतु और आहार। निर्वाण इन चारों कारणों से प्रभावित नहीं होता। निर्वाण असंखता धातु है। यह परम शांति है और किसी भी प्रकार के दुख या अग्नि से मुक्त है। अतः निर्वाण ही सभी बौद्धों का लक्ष्य है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय 5**
हटू निंग द्वारा

अध्याय 5 - हेतु पच्चयो

या मूल स्थिति
हेतु पच्चया या मूल अवस्थाएँ पत्थाना पच्चया का हिस्सा हैं। ये पत्थाना धम्म में पाई जाने वाली 24 अवस्थाओं में से एक हैं। छह मूल या छह हेतु हैं। ये सभी छह मूल या हेतु चेतसिका धम्म हैं। ये हैं लोभ, दोष, मोह, अलोभ, अदोसा और अमोह।

लोभ, दोष और मोह को अकुशल हेतु कहा जाता है, और अलोभ, दोष और मोह को कुशल हेतु कहा जाता है। ये तीनों हेतु, यदि अभ्यकत धम्म के साथ उत्पन्न होते हैं, तो अभ्यकत हेतु कहलाते हैं। लोभ को तन्हा, उपादान, समुदय आदि नामों से भी जाना जाता है। मोह को कभी-कभी अविज भी कहा जाता है। अलोभ को कभी-कभी दान या अर्पण के रूप में संदर्भित किया जाता है, लेकिन यह अनासक्ति है। दोष का अर्थ है करुणा या प्रेमपूर्ण दया। मोह, पन्निन्द्रिय चेतसिका है और इसे केवल पन्ना कहा जाता है, और कभी-कभी इसे विज भी कहा जाता है।

चेतना की 89 अवस्थाएँ होती हैं। इन 89 चित्तों में से 18 चित्तों का कोई हेतु या मूल तत्व नहीं होता। इन्हें अहेतुका चित्त कहा जाता है और ये मूल तत्व से अप्रभावित होते हैं। ये 18 चित्त हैं: 10 पंचविन्नन चित्त (जिनमें से 5 अकुशल और 5 कुशल मूल के हैं), 2 सम्पातिचना चित्त (जिनमें अकुशल और कुशल मूल की चेतना पुनः ग्रहण होती है), 2 उपेक्षा सन्तिरण चित्त (जिनमें अकुशल और कुशल मूल की चेतना होती है), और 1 कुशल सोमनस्सा सन्तिरण चित्त। ये 15 चित्त विपाक चित्त हैं और इन्हें अहेतुका विपाक चित्त कहा जाता है।

3 अहेतुका किरिया चित्त हैं। वे हैं पंचद्वारवज्जन चित्त, मनोद्वारवज्जन चित्त, और सोमनस्सा हसीतुप्पदा चित्त। 15 अहेतुका विपाका सीतास और 3 अहेतुका किरिया सीतास मूल स्थिति द्वारा समर्थित नहीं हैं। ये 18 चित्त अहेतुका चित्त हैं जबकि अन्य सभी चित्त सहेतुका चित्त कहलाते हैं। 71 सहेतुका चित्त हैं। वे 2 एकहेतुका चित्त, 22 द्विहेतुका चित्त, और 47 तिहेतुका चित्त हैं।

ये सभी 71 सहेतुका चित्त जड़ अवस्था द्वारा समर्थित हैं और इस अवस्था को हेतु पच्चया कहा जाता है। हेतु पूरे वृक्ष की जड़ का काम करता है। वृक्ष की जड़ पूरे वृक्ष को जल प्रदान करती है और उसे पोषण देती है। वृक्ष की तरह, नाम रूप का संपूर्ण वृक्ष उक्त 6 हेतुओं द्वारा समर्थित है। इन 6 हेतुओं की उपस्थिति से तना (चित्त), सभी शाखाएँ (चेतसिका) और सभी पत्तियाँ (रूप धम्म) को सहारा मिलता है।

एकाहेटुका सिट्टा 2 मोहा मुला सिट्टा हैं। इन 2 चित्तों में, कोई अन्य हेतु नहीं बल्कि केवल मोह हेतु है। इसलिए इन चित्तों को एकाहेतुका चित्त कहा जाता है। एक का अर्थ है एक और वह एक हेतु मोह है। 2 मोहा मूल चित्त हैं उपेक्खा समागतम् उद्धाच्च संपायुत्त चित्त और उपेक्खा सहगतम् विकिसिच्च संपायुत्त चित्त। जड़ मोह हेतु है। तना उधक्का चित्त और विकिसिचा चित्त है।

नाम रूप के संपूर्ण वृक्ष में चेतसिका शाखाएँ हैं। उद्दच्च चित्त में 1. फस्सा (संपर्क), 2. वेदना (भावना), 3. चेतना (संकल्प), 4. सन्ना (बोध), 5. एकाग्गत (एकाग्रचित्तता), 6. जीवंतिन्द्रिय (मानसिक जीवन), 7. मानसिक (ध्यान), 8. वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), 9. विचार (निरंतर अनुप्रयोग), 10. वीर्य (प्रयास), 11. अधिमोक्ख (निर्णयशीलता), 12. अहिरिका (निर्लज्जता), 13. अनोत्तप्पा (निडरता),

14. उद्दच्च (प्रसार) शामिल हैं। उद्दच्च वृक्ष में मूल मोह सहित कुल 15 चेतसिकाएँ हैं। पत्तियाँ चित्तज रूप, कम्मज रूप हैं जहाँ उद्दच्च चित्त को निर्भर रहना पड़ता है, जो कि हदय वस्तु है, और उत्तज रूप और आहारज रूप भी वहाँ मौजूद हैं।

विचिच्च वृक्ष में, एकल जड़ मोह है। तना विचिच्च चित्त है। इसमें चेतसिका शाखाएँ हैं। विचिच्च चित्त में, क्योंकि यह किसी भी चीज़ का निर्णय नहीं कर सकता, अधिमोक्खा उत्पन्न नहीं होता। इसलिए उद्धच्च चित्त में 14 चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं। लेकिन विचिच्च चित्त में एक अतिरिक्त चेतसिका विचिच्च चेतसिका होती है। इस प्रकार विचिच्च वृक्ष में कुल 15 चेतसिकाएँ होती हैं। जड़ मोह है। तना विचिच्च चित्त है। शाखाएँ 14 चेतसिकाएँ हैं (मोह सहित 15 चेतसिकाएँ होंगी)। पत्तियाँ चित्तज रूप, कम्मज रूप, हृद्य वस्तु, उत्तुज रूप और आहारज रूप हैं। दोनों वृक्षों में मोह प्रमुख है। मोह उन सभी धर्मों के मूल सिद्धांतों का समर्थन करता है जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इस सिद्धांत को मूल सिद्धांत कहा जाता है। यही हेतु पच्चया है।

द्विहेतुका चित्त में, यानी दो मूल चेतना में, छह हेतुओं (लोभ, दोष, मोह, अलोभ, अदोसा और अमोह चेतसिका) से तीन संभावित मूल संयोजन होते हैं। यद्यपि छह हेतु होते हैं, वे यादृच्छिक रूप से उत्पन्न नहीं होते, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार उत्पन्न होते हैं, इसलिए द्विहेतुका चित्त में हेतुओं के केवल तीन ही संभावित संयोजन होते हैं।

पहला संयोजन लोभ चित्तों में देखा जाता है। चूंकि सभी अकुशल चित्त मोह चेतसिका द्वारा निर्देशित होते हैं, इसलिए सभी लोभ चित्तों का मूल मोह होता है। लोभ चित्त होने के कारण इनका दूसरा मूल लोभ होता है। इसी प्रकार द्विहेतुक चित्तों में दो मूल या हेतु होते हैं: लोभ चेतसिका और मोह चेतसिका। आठ लोभ चित्त हैं और इन सभी के बारे में विस्तृत जानकारी उन पृष्ठों में पहले दिए गए चित्त खंड में दी गई है। आठों लोभ मूल चित्त द्विहेतुक चित्त या दोहरी मूल चेतना हैं।

दूसरा संयोजन पतिघा सम्पायुत्त चित्तों के मामले में देखा जा सकता है, यानी सरल शब्दों में कहें तो दो दोष चित्त। चूंकि सभी अकुशल चित्त मोह चेतसिका द्वारा निर्देशित होते हैं, इसलिए ये दो दोष मूल चित्त भी मोह चेतसिका द्वारा निर्देशित होते हैं। अतः इन दो चित्तों में मोह चेतसिका और दोष चेतसिका मूल धम्म या हेतु के रूप में विद्यमान हैं। ये दोनों दोष मूल चित्त द्विहेतुक चित्त हैं, अर्थात् दोहरी जड़ वाली चेतना। इस अनुच्छेद और उससे ऊपर के अनुच्छेद की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि किसी भी अकुशल चित्त में लोभ चेतसिका और दोष चेतसिका कभी भी एक ही चित्त में एक साथ उत्पन्न नहीं हो सकते।

अकुशल चित्तों में, 8 लोभ मूल चित्त और 2 दोष मूल चित्त द्विहेतुक चित्त होते हैं। अतः कुल 10 अकुशल द्विहेतुक चित्त होते हैं। यदि इनमें से कोई एक चित्त मरण काल में उत्पन्न होता है, तो वह मरण काल में उत्पन्न होने वाले जवन चित्त के रूप में कार्य करता है। जैसे ही वह इस रूप में कार्य करता है, उसके साथ चेतना चेतसिका भी उत्पन्न हो जाती है। वह चेतना चेतसिका भविष्य के लिए कर्म बन जाती है। मृत्यु चित्त या मरण चेतना के बाद, क्योंकि अभी भी दोष मौजूद होते हैं और मरण काल में उत्पन्न होने वाले जवन जो क्रियात्मक नहीं थे और जो अकुशल थे, अर्थात् द्विहेतुक चित्त, मृत्यु चित्त के तुरंत बाद संपर्क चेतना या पतिसंधि चित्त उत्पन्न होती है।

वह पतिसंधि चित्त, उन दस अकुशल चित्तों का परिणाम स्वरूप प्राप्त होने वाला संगत विपाक चित्त होगा। यह निश्चित रूप से उपेक्षा सहा गतम अकुशल सन्तिरण चित्त होगा। इस पतिसंधि या पुनर्जन्म को अहेतुक पतिसंधि कहा जाता है और यह अपय भूमियों के सत्तों का चित्त है, अर्थात् निरय या नरक लोक, तिरच्छन्न या पशु लोक, पितृ लोक या भोगी लोक और असुरकाय या राक्षस लोक। अकुशल प्रतिबद्धता निश्चित रूप से अकुशल परिणाम या अकुशल विपाक देती है।

तीसरा संयोजन अलोभ चेतसिका और आदोसा चेतसिका है। यह संयोजन 12 नाना विपयुत्त कामवाचार सहेतुका महाकुसला चित्तों में देखा जा सकता है। चूंकि ये कुसला चित्त हैं, इसलिए आदोसा चेतसिका द्वारा जड़ित होने के कारण इनमें आघात पहुंचाने वाला स्वभाव नहीं होता है और न ही इनमें लोभ चेतसिका की तरह प्रबल आसक्ति होती है। इसका कारण यह है कि ये अलोभ चेतसिका द्वारा जड़ित होते हैं। लेकिन सभी 12 द्विहेतुका चित्तों में मोह या पन्निन्द्रिय चेतसिका उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि पन्ना के उत्पन्न होने की कोई शर्त नहीं होती है। इसलिए सभी 12 कुसला नाना विपयुत्त चित्त द्विहेतुका चित्त हैं।

मृत्युकाल में, यदि इन बारह नाना सम्पायुत्त चित्त में से कोई एक मरण असन्न जवान चित्त के रूप में कार्य करता है, तो वह कर्म विपाक चित्त को जन्म देगा, जो मृत्युकाल में उत्पन्न होने वाले द्विहेतुक कुशल चित्त के अनुरूप विपाक चित्त होगा। तब अगला जीवन द्विहेतुक पतिसंधि चित्त से शुरू होगा। यह चार महाविपाक चित्त में से एक होगा। यदि यह पतिसंधि है, तो संपूर्ण जीवन द्विहेतुक भावांग चित्त होगा। ऐसे व्यक्ति में, ध्यान चित्त, मार्ग चित्त और फल चित्त कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, चाहे वे जीवन भर, चाहे 30 वर्ष या उससे अधिक समय तक, कितना भी प्रयास करें।

इस प्रकार, 10 अकुशल द्विहेतुक चित्त और 12 कुशल द्विहेतुक चित्त हैं, कुल मिलाकर 22 द्विहेतुक चित्त हैं। ये सभी 6 हेतुओं या जड़ों में से 2 द्वारा जड़ित हैं। हम यहाँ हेतुओं या जड़ों (चेतसिका), तने (द्विहेतुक चित्त), शाखाओं (संबद्ध चेतसिका) और पत्तियों (चित्तज रूप, कम्मज रूप, आहारज रूप और उत्तुज रूप) से निर्मित तीन अलग-अलग प्रकार के धम्म वृक्ष देख सकते हैं।

लोभ वृक्ष में, जड़ें मोह और लोभ चेतसिक होती हैं। तना आठ लोभ मूल चित्तों में से एक है और शाखाएँ उनसे संबंधित चेतसिक होती हैं, तथा पत्तियाँ रूप होती हैं जो इन सभी से जुड़ी होती हैं।

तने वाला वृक्ष 1. सोमनास्सा सह गतं दिट्ठि गता संपयुत्तम असंखरिका चित्त, जड़ें मोह और लोभा सीतासिका हैं। शाखाएँ 13 अन्नसामना चेतसिक हैं अर्थात् 1)फस्सा, 2) वेदना, 3) सीतान, 4) सन्ना, 5) एकगगत, 6) जीवितिन्द्रिय, 7) मनसिररा, 8) विटक्का, 9) विकार, 10) वीर्य, 11) चंदा, 12) अधिमोक्खा, और 13) पिति और 4 अकुसाला साधरण चेतसिका यानी मोहा, अहिरिका, अनोत्पा, और उधक्का और 3 में से 2 लोटारी यानी लोभा सिटासिका और दिट्ठी सिटासिका। कुल 19 चेतसिकाएँ हैं (13 अन्नसमना, 4 अकुशल साधारण और 2 लोटारी)। मोह और लोभ जड़ हैं, अन्य 17 चेतसिकाएँ उसी लोभ वृक्ष की शाखाएँ हैं। पत्तियाँ विभिन्न रूप हैं जिनसे ये उत्पन्न होती हैं।

तने वाले लोभा वृक्ष में 2. सोमनासा सह गतम् दिट्ठि गता संपायुत्त ससंखारिका चित्त, 2 अतिरिक्त शाखाएँ होंगी जो थिन सीतासिका और मिद्धा सीतासिका हैं क्योंकि चित्त को बाहरी प्रभावों से प्रेरित करने की आवश्यकता होती है। इस चित्त में 21 सीतासिक होंगे। चूँकि 2 जड़ें हैं, 19 शाखाएँ के रूप में काम करेंगी। तने वाले लोभ वृक्ष में 3. सोमनास्सा सह गतम् दिट्ठि गता विप्पयुत्त असंखरिका चित्त, दिठ्थि चेतसिका को मन चेतसिका से बदल दिया जाता है। तने वाले लोभ वृक्ष में 4. सोमनास्सा सह गतं दिट्ठि गता विपयुत्त ससंखारिका चित्त, दिट्ठी को मन से बदल दिया जाता है और थिना और मिद्धि को जोड़ा जाता है।

तने वाले लोभ वृक्ष में 5. उपेक्ख सहा गतं दिट्ठि गता संपयुत्तम असंखरिका चित्त, मोहा और लोभा सीतासिका सहित कुल 18 सीतासिकाएं उत्पन्न होती हैं। चूंकि यह चित्त उपेक्खा वेदना या समभाव भावना से जुड़ा है, इसलिए 13 अन्नसमाना चेतसिका की पिटी उत्पन्न नहीं होती है। 12 अन्नसमाना सीतासिकाएं होंगी। 4 अकुसाला साधरण चित्त और लोभा और दिट्ठी को मिलाकर कुल 18 सीतासिकाएं होंगी। लोभा और मोह यहां जड़ों के रूप में काम करते हैं। अत: अन्य 16 चेतसिकों को शाखाएँ माना जा सकता है।

तने वाले लोभ वृक्ष में 6. उपेक्खा सहा गतम् दिट्ठि गता संपायुत्त ससंखारिका चित्त, थिना सिटासिका और मिद्धा सिटासिका भी उत्पन्न होती हैं और कुल 20 सिटासिकाएँ होंगी। 2 जड़ के रूप में जबकि 18 शाखाओं के रूप में कार्य करते हैं।

लोभ वृक्ष में, जिसके तने का नाम 7. उपेक्खा सहा गतम दित्थी गता विप्पयुत्त असंखारिका चित्त है, दित्थी चेतसिका को मन चेतसिका से प्रतिस्थापित किया गया है। अतः दित्थी और मन सह-अस्तित्व में नहीं रह सकते। इस वृक्ष में 18 चेतसिकाएँ होंगी, जिनमें से 2 मूल और 16 शाखाएँ हैं।

तने वाले लोभ वृक्ष में 8. उपेक्खा सह गतं दिट्ठि गता विप्पयुत्त ससंखरिका चित्त, थिन सिटासिका और मिद्धा सिटासिका के उत्पन्न होने के कारण कुल 20 सिटासिकाएँ होंगी, 2 जड़ें हैं और 18 उस लोभ वृक्ष की शाखाओं के रूप में काम करती हैं।

डोसा के पेड़ में तने 1.डोमनस्सा सह गतं पतिघा संपयुत्तम असंखरिका चित्त के साथ, 12 अन्नसामना सीतासिका उत्पन्न होती हैं। दोसा चित्त में पिटि कभी उत्पन्न नहीं होती। 4 अकुसाला साधरण चेतसिका मोह, अहिरिका, अनोत्पा, और उधक्का भी उत्पन्न होते हैं। 16 सीतासिका होंगी। दोसा सीतासिका के साथ कुल 17 सीतासिका होंगी। उनमें से 2 मोहा और डोसा जड़ के रूप में काम करते हैं जबकि अन्य 15 सीतासिक शाखा के रूप में काम करते हैं।

दोसा वृक्ष में, जिसके तने का सूत्र है (2. domanassa saha gatam patigha sampayuttam sasankharika citta), दो अतिरिक्त चेतसिकाएं उत्पन्न होती हैं जिन्हें थिना और मिद्धा कहा जाता है। इस प्रकार कुल 19 चेतसिकाएं होंगी, जिनमें से 2 जड़ के रूप में तथा अन्य 17 चेतसिकाएं उस दोसा वृक्ष की शाखाओं के रूप में कार्य करती हैं।

यदि दोष वृक्ष ईर्ष्या का एक प्रकार है, तो एक अतिरिक्त चेतसिका उत्पन्न होती है। यह चेतसिका ईर्ष्या या जलन है। उस दोष वृक्ष में कुल 18 चेतसिकाएँ होंगी, जिनमें से 2 जड़ें और 16 शाखाएँ होंगी। यदि दोष वृक्ष में ससंखारिका तना है, तो चित्त, थिन और मिद्धा भी उत्पन्न होते हैं और कुल 20 चेतसिकाएँ होंगी, जिनमें से 2 जड़ें और 18 शाखाएँ होंगी।

यदि दोष वृक्ष कंजूसी का प्रतीक है, तो एक अतिरिक्त चेतसिका उत्पन्न होती है। यह चेतसिका मच्छरीय या कंजूसी कहलाती है। इस मच्छरीय दोष वृक्ष में कुल 18 चेतसिकाएँ होती हैं, जिनमें मोह और दोष चेतसिकाएँ जड़ का काम करती हैं और अन्य 16 चेतसिकाएँ शाखाओं का काम करती हैं। यदि मच्छरीय दोष वृक्ष का तना संसंखरिका है, तो उसमें 20 चेतसिकाएँ होती हैं, जिनमें 2 जड़ और 18 शाखाएँ होती हैं।

यदि दोष वृक्ष पश्चाताप का एक प्रकार है, तो एक अतिरिक्त चेतसिका उत्पन्न होती है। यह चेतसिका कुक्कुच्च या पश्चाताप कहलाती है। इस कुक्कुच्च दोष वृक्ष में कुल 18 चेतसिकाएँ होती हैं, जिनमें से 2 जड़ और 16 शाखाएँ होती हैं। यदि कुक्कुच्च दोष वृक्ष में

शसंखरिका चित्त का तना हो, तो 2 अतिरिक्त चेतसिकाएँ थिना और मिद्धा उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कुल 20 चेतसिकाएँ होती हैं, जिनमें से 2 जड़ और अन्य 18 शाखाएँ होती हैं।

द्विहेतुका वृक्षों में 12 धम्म वृक्ष हैं। 4 कुसल वृक्ष, 4 विपाक वृक्ष, और 4 किरिया वृक्ष।

कुसल वृक्ष में 1. सोमनास्सा सह गतं नाना विप्पयुत्तम असंखरिका चित्त के साथ, अधिकतम 37 चैतसिक उत्पन्न होते हैं। वे 13 अन्नसामना चेतसिक हैं 1.फस्सा, 2.वेदन, 3.चेतन, 4.सन्न, 5.एकगगत, 6.जीवितंद्रिय, 7.मानसिकारा, 8.विटक्क, 9.विचार, 10.वीर्य, 11.पिति, 12.चंदा, 13.अधिमोक्ख; 19 शोभन साधरण सीतासिका 1.सद्ध, 2.सति, 3.हिरी, 4.ओट्टप्पा, 5.अलोभा, 6.अदोसा या मेट्टा, 7. तत्रमज्जत्था, 8.कायपसाद्धि, 9.चित्तपसाधि, 10.कायालाहुता, 11.चित्तलाहुता, 12.कायमुदुता, 13.चित्तमुदुता, 14.कायाकम्मनता, 15.चित्तकमन्नाता, 16.कायापगुन्नाता, 17.चित्तपगुन्नाता, 18.कायुजुकटा, 19.चित्तुजुकटा; 3 विरति चेतसिक 1.सम्मा कम्मंता, 2.सम्मा वाचा, 3.सम्मा अजिव; और 2 अप्पमन्ना चेतसिकाएँ 1. करुणा और 2. मुदिता। अधिकतम 13 + 19 + 3 + 2 = 37 चेतसिकाएँ होंगी। इस वृक्ष में पन्निन्द्रित चेतसिका उत्पन्न नहीं होती क्योंकि यह चित्त नाना विप्पयुत्त चित्त है। इस वृक्ष की जड़ें अलोभ और अदोसा चेतसिकाएँ हैं। अन्य 35 चेतसिकाएँ शाखाओं का कार्य करती हैं।

यह तो सिर्फ अधिकतम संख्या की बात है। करुणा और मुदिता हमेशा उत्पन्न नहीं होते। इसलिए 35 चेतसिक बचेंगे। इसी प्रकार, 3 विरति चेतसिक भी हमेशा उत्पन्न नहीं होते। इसलिए 32 चेतसिक बचेंगे।

यदि कुशल वृक्ष मुदिता वृक्ष है, तो उसमें 33 चेतसिकाएँ होंगी। यदि करुणा वृक्ष है, तो उसमें भी 33 चेतसिकाएँ होंगी। करुणा और मुदिता कभी एक साथ उत्पन्न नहीं होते क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ पूर्णतः भिन्न हैं, अर्थात् करुणा निम्न सत्तों पर बल लगाती है, जबकि मुदिता लाभप्रद सत्तों पर बल लगाती है।

यदि कुसल वृक्ष सम्मा कम्मंता है, तो 33 चेतासिक होंगे। यदि कुसल वृक्ष सम्मा वाका है, तो 33 चेतासिक भी होंगे। जब कुसल वृक्ष सम्मा अजिव होता है तो 32 सीतासिकों के साथ 2 अतिरिक्त सीतासिक उत्पन्न होते हैं। वे सम्मा कम्मंता और सम्मा अजीवा या सम्मा वाका और सम्मा अजीवा हो सकते हैं। तो सम्मा अजिव वृक्ष में 34 चेतसिकाएँ होंगी। यदि कुसल वृक्ष में तना ससंखारिका चित्त है, तो सभी असांखारिका चित्त तने के समान होंगे। लेकिन परिणाम समान नहीं होंगे. असंखरिका कुसल उक्कत्थ कुसल या सबसे बड़ा कुसल बन जाता है जबकि सासनखरिका चित्त ओमका कुसल या कम कुसल बन जाता है।

3. उपेक्खा सहा गतम् नाना विप्पयुत्त असंखरिका चित्त वाले कुसल वृक्ष में, अधिकतम 36 सिटासिकाएँ होंगी क्योंकि उपेक्खा सीतास में पिति सिटासिका नहीं है। अन्यथा अन्य संगतियाँ सोमनास्सा सिट्टा के साथ समान हैं।

क्रिया वृक्ष में 3 विरति चेतसिकाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। कुल 34 चेतसिकाएँ होंगी। इनमें 13 अन्नसमना चेतसिकाएँ, 19 शोभना साधारण चेतसिकाएँ और 2 अप्पमन्ना चेतसिकाएँ शामिल हैं, कुल मिलाकर 34 चेतसिकाएँ। ये अरहतों की चेतसिकाएँ हैं। 2 अप्पमन्ना हमेशा उत्पन्न नहीं होते। इसलिए कुल 32 चेतसिकाएँ होंगी। यदि क्रिया वृक्ष करुणा है, तो 33 चेतसिकाएँ होंगी और यदि मुदिता है, तो भी 33 चेतसिकाएँ होंगी। यदि तना असंखारिक चित्त है, तो सभी चेतसिकाएँ समान रहेंगी। यदि तना उपेक्ख चित्त है, तो पीति उत्पन्न नहीं होती और कुल 33 चेतसिकाएँ होंगी, लेकिन अप्पमन्ना के बिना 31 चेतसिकाएँ होंगी। लेकिन यदि क्रिया वृक्ष करुणा है तो 32 चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं और यदि मुदिता है तो भी 32 चेतसिकाएँ होती हैं। इन क्रिया वृक्षों में, जड़ें अलोभ और अदोष हेतु होती हैं। इनमें न तो अमोह हेतु होता है और न ही पन्निन्द्रिय चेतसिका।

द्विहेतुका के 22 चित्तों में से कुल 18 चित्तों पर पिछले पृष्ठ पर चर्चा की जा चुकी है। द्विहेतुका में अब 4 चित्त शेष हैं। ये 4 कामवाचार सहेतुख महाविपाक चित्त हैं। ये महाविपाक चित्त काम सुगति भूमि के पतिसंधि चित्त, भावांग चित्त और चुति चित्त हैं। अर्थात् ये 4 चित्त छह देवलोकों के मनुष्यों और देवताओं की चेतना, जीवन की निरंतरता और मृत्यु की चेतना को जोड़ते हैं, जिनमें से कोई भी अपने वर्तमान जीवन में ध्यान या मार्ग नाना प्राप्त नहीं कर सकता।

इन चार विपाक पेड़ों में चार अलग-अलग तने होते हैं जिन्हें महाविपाक चित्त कहा जाता है। वे हैं 1. समानस्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्त असंखरिका चित्त, 2. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्त सासंखारिका चित्त, 3. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्त असंखरिका चित्त, और 4. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्त सासंखारिका चित्त।

पहले विपाक वृक्ष में, वृक्ष का तना सोमनस्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्त असंखरिका चित्त है। उस तने में अनेक चैतसिक शाखाएँ निकलती हैं। 13 अन्नसामना चेतसिका फस्सा, वेदना, केतना, सन्ना, एकगगत, जीवितिन्द्रिय, मानसिकारा, विटक्का, विचारा, पिटी, वीर्य, चंदा और अधिमोक्खा और 19 शोभनसाधारण चेतसिका सद्ध, सती, हिरी, ओट्टप्पा, अलोभा, अडोसा, तत्रमज्जहत्ता, कायापासद्धि हैं। चित्तपसाधि, कयालहुता, चित्तलहुता, कयामुदुता, चित्तमुदुता, कयाकम्मनता, चित्तकम्मनता, कयापगुन्नता, चित्तपगुन्नाता, कायुजुकटा

और चित्तुजुकटा। 32 सिटासिकाएँ हैं। उनमें से अलोभा और अडोसा सिटासिका जड़ धम्म के रूप में काम करते हैं और अन्य पेड़ की शाखाएं बन जाएंगे। इसमें कोई पन्ना नहीं है, इसलिए यह चित्त द्विहेतुक चित्त है, यानी मोह रहित है।

तने ससंखारिका चित्त में, शाखाएँ और जड़ें सभी एक समान हैं। असंखारिका चित्त और सासंखारिका चित्त में कुछ अंतर है। असंखरिका चित्त उक्कत्थ कुसल के रूप में काम करता है और इसका परिणाम असंखरिका विपाक चित्त होता है जो सासंखरिका चित्त से कहीं अधिक बेहतर है।

उपेक्खा सहगतं नाना विप्पयुत्त चित्त के मूल में पीति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि यह उपेक्खा चित्त है। अतः कुल 31 चेतसिकाएँ होंगी। मूल में आलोभ और अदोष चेतसिकाएँ हैं और अन्य 29 चेतसिकाएँ वृक्ष की शाखाएँ बनेंगी। असंखारिका और ससंखारिका के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं, क्योंकि जब कुशल कर्म किए जाते हैं तो असंखारिका कुशल कर्म को उक्कत्थ कुशल या सबसे उत्तम पुण्य कर्म माना जाता है, जबकि ससंखारिका कुशल कर्म को ओमक कुशल या कम पुण्य कर्म माना जाता है।

अतः दो एककहेतुका चित्त हैं जिन्हें मूल अवस्था के रूप में केवल मोह चेतसिका द्वारा ही सहारा मिलता है। 22 द्विहेतुका चित्त हैं जिन्हें 8 लोभ चित्तों के मामले में मोह और लोभ द्वारा, 2 दोष चित्तों के मामले में मोह और दोष द्वारा, और 12 नाना विप्पयुत्त काम शोभना चित्तों के मामले में आलोभ और दोष द्वारा सहारा मिलता है। मूल चेतसिकाएँ मूल अवस्था के रूप में कार्य करती हैं और वे संपूर्ण व्यवस्था में प्रमुख होती हैं।

वहाँ 47 Cittas हैं जो Tihetuka Cittas हैं। वे 12 कामवकार नाना सम्पायुत्त चित्त, 15 रूपवकार चित्त, 12 अरुपवकार चित्त, और 8 लोकुत्तर चित्त हैं।

12 नाना सम्पायुत्त कामवाकर चित्त के मामले में, पन्ना उत्पन्न होता है क्योंकि वे सभी नाना सम्पायुत्त चित्त हैं। यहां पन्ना अमोह सीतासिका है और यह एक जड़ है। यह द्विहेतुका सीतास के मौजूदा एलोभा और अडोसा सीतासिका में जुड़ जाता है और चित्ता तिहेतुका सीतास बन जाता है।

कुशल वृक्ष में, जिसका तना सोमनस्स सहगतम नाना सम्पायुत्त असंखारिका चित्त है, कुल 38 चेतसिकाएँ होती हैं। इनमें से 3 जड़ें और 35 शाखाएँ हैं। असंखारिका चित्त में असंखारिका चित्त की तुलना में इसका प्रभाव कम होता है, लेकिन चेतसिकाओं की संख्या समान होती है। उपेक्षा तने में पीति उत्पन्न नहीं होती और इसमें 37 चेतसिकाएँ होती हैं, जिनमें से 3 जड़ें और 34 शाखाएँ हैं। असंखारिका और असंखारिका दोनों में चेतसिकाएँ समान होती हैं। लेकिन करुक और मुदिता हमेशा उत्पन्न नहीं होतीं और न ही एक साथ उत्पन्न होती हैं। इसलिए कुल 36 चेतसिकाएँ और 33 शाखाएँ होती हैं, जबकि उपेक्षा चित्त में कुल 35 चेतसिकाएँ और 32 शाखाएँ होती हैं। फिर से, 3 विरति चेतसिकाएँ हमेशा उत्पन्न नहीं होतीं और यदि उत्पन्न होती हैं तो सम्म कम्मंत और सम्म वाच एक साथ उत्पन्न नहीं होतीं। जब ये उत्पन्न नहीं होते हैं, तो सोमनस्सा में 33/30 और उपेक्खा चित्त में 32/29 होंगे। यदि सम्मा कम्मंत उत्पन्न होता है, तो क्रमशः 34/31 और 33/30 उत्पन्न होंगे, और सम्मा वाच के मामले में भी ऐसा ही होता है। जब सम्मा अजीव उत्पन्न होता है, तो यह सम्मा कम्मंत या सम्मा वाच से संबंधित हो सकता है, और तब यह क्रमशः 35/32 और 34/31 होगा।

किरिया वृक्ष में कुल मिलाकर 35 सीतासिक उत्पन्न हो सकते हैं। किरिया चित्त में 3 विरति चेतसिका उत्पन्न नहीं होती क्योंकि ये चित्त अरहतों के कामवाकर चित्त हैं। वे केवल तभी उत्पन्न होते हैं जब मैग्गा और फाला सीतास में होते हैं।

नाना सम्पायुत्त में पहले क्रिया वृक्ष में 35/32 (कुल शाखाएँ, जिनमें से 3 जड़ें हैं) होंगी। करुणा और मुदिता हमेशा उत्पन्न नहीं होते। इसलिए 33/30 चेतसिका होंगी। करुणा उत्पन्न होने पर 34/31 उत्पन्न होंगी। शसंखारिका भी ऐसा ही करती है। यदि उपेक्षा चित्त हो, तो पीति उत्पन्न नहीं होगी और 34/31 होंगी। यदि करुणा और मुदिता हटा दी जाएं, तो 32/29 शेष रहेंगी। यदि करुणा या मुदिता उत्पन्न हों, तो 33/30 चेतसिकाएँ उत्पन्न होंगी।

नाना सम्पायुत्त के विपाक वृक्ष में 33/30 चेतसिकाएँ होती हैं। यदि करुणा या मुदिता उत्पन्न न हों, तो 31/28 चेतसिकाएँ शेष रह जाती हैं, और यदि वे उत्पन्न हों, तो 32/29 चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं। शसंखारिक चित्त में असंखारिक चित्तों के समान ही चेतसिकाओं की संख्या होती है। उपेक्षा विपाक चित्त में, यदि पीति उत्पन्न न हो, तो 32/29 चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि 2 अप्पमन्न चेतसिकाएँ शामिल न हों, तो 30/27 चेतसिकाएँ होती हैं। यदि करुणा या मुदिता उत्पन्न हों, तो 31/28 चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं। ये सभी 12 नाना सम्पायुत्त चित्त तिहेतुक चित्त हैं। जब ये उत्पन्न होते हैं, तो अलोभ, आदोसा और अमोह इनकी जड़ों के रूप में इन्हें सहारा देते हैं। चित्त के तने में विभिन्न चेतसिका शाखाएँ होती हैं। तने या शाखाओं से जुड़ी हुई चित्तज रूप, कम्मज रूप, उत्तज रूप और आहारज रूप जैसी विभिन्न प्रकार की रूपा पत्तियाँ होती हैं।

47 तिहेतुका चित्त या त्रिगुण जड़ चेतना हैं। वे 12 कामवकार नाना सम्पायुत्त चित्त, 15 रूपवकार चित्त, 12 अरुपवकार चित्त, और 8 लोकुत्तर चित्त हैं। पिछले पृष्ठ में 12 कामवकार नाना सम्पायुत्त चित्त की व्याख्या की गई है।

रूपावचार चित्त पंद्रह प्रकार के होते हैं। रूपावचार चित्त वे चित्त हैं जो अधिकतर रूपब्रह्म भूमियों में उत्पन्न होते हैं। लेकिन अनुकूल परिस्थितियों में ये अन्य लोकों में भी उत्पन्न हो सकते हैं। मनुष्य भूमि और छह देव लोकों में जन्म से ही तिहेतुक चित्त वाले जातकों में रूपावचार चित्त उत्पन्न हो सकते हैं। हालांकि, गैर-रूपब्रह्म लोकों में रूपावचार चित्त लगभग हमेशा रूपकूसल चित्त होते हैं, सिवाय मनुष्य अरहतों और देव अरहतों के मामले में।

15 रूपावकार चित्त में से 5 चित्त रूपाकुशल चित्त हैं, 5 कुपकिरिया चित्त हैं, और 5 रूपविपाक चित्त हैं। रूपकुसल चित्त तब उत्पन्न होते हैं जब रूप ब्रह्मा विथि वर में रहते हैं, अर्थात जब वे भावांग चित्त में नहीं होते हैं। मानव और देव जैसे अन्य लोकों में, रूपा झाना में रूपाकुसल चित्त उत्पन्न होते हैं। रूपकिरिया चित्त अरहतों के रूपा झना चित्त हैं। जब अरहत रूप झाना में रहते हैं, तो रूपकिरिया चित्त उत्पन्न होते हैं। यदि रूप ब्रह्मा अरहत बन जाते हैं, तो उनके चित्त भावांग चित्त में न होने पर रूपकिरिया चित्त बन जाएंगे। रूपविपाक चित्त वे चित्त हैं जो केवल रूप ब्रह्म में उत्पन्न होते हैं क्योंकि वे रूप ब्रह्म के पतिसंधि, भावांग और कटि चित्त हैं। यहां तक कि बुद्ध के पास भी रूपविपाक चित्त नहीं थे।

रूपकुसला वृक्षों में तीन जड़ें होती हैं: अलोभ, अदोसा और अमोहा। तने रूप झान चित्त होते हैं। शाखाएँ चेतसिका होती हैं और पत्तियाँ और फूल रूप होते हैं।

प्रथम रूप झाना सीतास वृक्षों में, जो सभी कुसाला, किरिया और विपाक चित्त में हैं, जड़ें अलोभा, अडोसा, और अमोहा या पन्ना हैं। तने हैं प्रथम झाना रूपाकुसाला चित्त, प्रथम झाना रूपाकिरिया चित्त, प्रथम झाना रूपाविपाका चित्त। इन तीनों वृक्षों में, सिटासिका कुल मिलाकर 35 सिटासिकाएँ हैं। वे चरण या संपर्क, वेदना या भावना, चेतना या इच्छा, सन्ना या धारणा, एकगता या एक बिंदु, जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन, मानसिकारा या ध्यान, विटक्का या प्रारंभिक अनुप्रयोग, विचार या निरंतर अनुप्रयोग, वीर्य या प्रयास, चंदा या इच्छा, पिटी या खुशी, अधिमोक्खा या निर्णय, 19 शोभनसाधारण सीतासिका, 2 के 13 अन्नसामना चेतसिका हैं। करुणा और मुदिता का अप्पमन्ना और अंत में पन्ना या पन्निन्द्रिय चेतसिका। तो 13 + 19 + 2 + 1 = 35 सिटासिकाएँ हैं।

लेकिन करुणा और मुदिता एक साथ उत्पन्न नहीं होते। इसलिए 34 चेतसिक होंगे। चूंकि तीन मूल हैं, इसलिए 31 चेतसिक शाखाएँ होंगी। रूप चित्तज रूप हैं जिनमें इरियपथ या शरीर की मुद्राएँ, कम्मजरूप, आहारज रूप और उत्तज रूप शामिल हैं। कुशल, क्रिया और विपाक के द्वितीय रूप ध्यान वृक्षों में वितक्का चेतसिक उत्पन्न नहीं होता। इसलिए 34 होंगे। तृतीय रूप ध्यान में वितक्का और विचार उत्पन्न नहीं होते और 33 चेतसिक होंगे। चतुर्थ रूप ध्यान में वितक्का, विचार और पीति उत्पन्न नहीं होते और 32 चेतसिक होंगे। 5वें रूप में झन विटक्का, विकार, पिटि, करुणा और मुदिता उत्पन्न नहीं होते हैं और 30 चेतसिक होंगे।

इसी प्रकार, सभी अरुपवकारा चित्तों में 5वें रूपा झाना के समान सीतासिकों की संख्या होगी। क्योंकि सभी अरूप झाना उपेक्खा हैं और झनंगा के संदर्भ में उन सभी के पास झनंगा के रूप में केवल उपेक्खा और एकगगाटा हैं।

12 अरुपवकार चित्त हैं। वे 4 अरूपकुसल चित्त, 4 अरुपकिरिया चित्त, और 4 अरूपविपाक चित्त हैं। 4 अरूप झाना हैं अकासाननचायतन अरूप झाना, विन्ननानकायतन अरूप झाना, अकिनसिनायतन अरूप झाना, और नेवसन्नानचायतन अरूप झाना। प्रत्येक में तीन चित्त हैं, वे हैं अरुपकुसल चित्त, अरुपकिरिया चित्त और अरुपविपाक चित्त। जब वे विथि वर में होते हैं तो अरूप कुसल चित्त अरूप ब्रह्मा के चित्त होते हैं। ये चित्त मनुसा भूमि और देवभूमि में भी उत्पन्न हो सकते हैं यदि संबंधित सत्ता के पास तिहेटुका चित्त है और अरूप झाना प्राप्त है।

अरूपकिरिया चित्त अरहट्टा अरूप ब्रह्मा के विथि चित्त हैं। ये चित्त मनुस्सा अरहतों में उत्पन्न हो सकते हैं जो अरूपा झाना में हैं, देव अरहतों में जो अरूपा झाना में हैं। अरूपविपाक चित्त अरूप ब्रह्मा के पतिसंधि, भावांग और कटि चित्त हैं और वे कभी भी अन्य लोकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

8 लोकुत्तरा चित्त हैं और वे सभी तिहेतुका चित्त हैं। ये 8 लोकुत्तरा चित्त हैं सोतापट्टी मग्गा कुसल चित्त, सकादगामी मग्गा कुसल चित्त, अनागामी मग्गा कुसल चित्त, अरहट्टा मग्गा कुसल चित्त, सोतापट्टी फला विपाक चित्त, सकादगामी फला विपाक चित्त, अनागामी फला विपाक चित्त, और अरहट्टा फला विपाका। Citta.

लोकुत्तरा वृक्षों में अधिकतम 36 सिटासिकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। वे 13 अन्नसामना चेतसिका, 19 शोभनसाधारण चेतसिका, 3 विरति चेतसिका और 1 पणिन्द्रिय चेतसिका हैं। 13 + 19 + 3 + 1 = 36 सिटासिकाएँ। ये सभी 36 चेतसिक 8 पथमज्जन लोकुत्तर चित्त में उत्पन्न होते हैं। 8 दुथियाज्झाना लोकुत्तारा चित्त में 35 चेतासिक उत्पन्न होते हैं क्योंकि दूसरे झाना में विटक्का उत्पन्न नहीं होता है। तीसरे

लोकुत्तारा झाना चित्तस में, विटक्का और विकारा को छोड़कर 34 सीतासिक हैं। चौथे लोकुत्तारा झन चित्त में 33 सिटासिकाएँ उत्पन्न होती हैं। 5वें लोकुत्तारा झन चित्त में भी 33 सीतासिकाएँ उत्पन्न होती हैं, लेकिन सोमनस्सा वेदना के बजाय उपेक्खा वेदना के साथ।

लोकुत्तारा के पेड़ों में तीन जड़ें होती हैं - एलोभा, अडोसा और अमोहा सिटासिका। सभी 47 टिहेटुका सीतास में, अलोभा, अडोसा और अमोहा सीटासिका जड़ स्थिति के रूप में सीता का समर्थन करते हैं। 22 द्विहेतुका चित्त में यानी 10 लोभा चित्त, 2 दोसा चित्त, और 12 नाना विप्पयुत्त चित्त, 10 लोभा चित्त के लिए दो जड़ें लोभा और मोह, 2 दोसा चित्त के लिए दोसा और मोह और 12 नाना विप्पयुत्त कामवाकर चित्त के लिए अलोभा और अडोसा हैं। विकिसिच्चा चित्त और उधक्का चित्त के 2 मोहा चित्त केवल मूल स्थिति के रूप में मोह हेतु द्वारा समर्थित हैं। तो कुल मिलाकर ये 71 सहेतुका चित्त मूल स्थिति के रूप में 6 जड़ों द्वारा समर्थित हैं।

परम अर्थ में केवल चित्त, चेतसिका, रूप और निर्वाण ही हैं। परन्तु वे किसी न किसी रूप में आपस में संबंध रखते हैं। किसी भी समय, किसी भी स्थान और किसी भी स्थिति में सभी चित्त किसी न किसी वस्तु पर निर्भर होते हैं। चित्त हमेशा किसी वस्तु को ग्रहण करता है। चित्त हमेशा किसी वस्तु पर निर्भर करता है।

बिना किसी वस्तु के चित्त का उद्भव नहीं हो सकता। जब कोई वस्तु नहीं होती, तब चित्त भी नहीं होता। प्रत्येक चित्त की अपनी एक वस्तु होती है। चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, प्रत्येक की अपनी एक वस्तु होती है। वस्तु के बिना चित्त का अस्तित्व नहीं होता। पाली भाषा में इंद्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं को अरम्मना कहते हैं।

अरम्मन छह प्रकार के होते हैं: रूपारम्मन, सद्दरामम्मन, गंधारम्मन, रसारम्मन, फोत्थब्बरम्मन और धम्मरम्मन। पाली भाषा के इन छह कठिन शब्दों को देखकर, जो लोग पाली भाषा से परिचित नहीं हैं, उन्हें थोड़ी असहजता हो सकती है। लेकिन उन्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। इन शब्दों की व्याख्या आगे के संदेशों के साथ की जाएगी। बार-बार अभ्यास और पढ़ने से अंततः ये शब्द आसानी से समझ में आ जाएँगे।

रूपारम्मन पाली भाषा का शब्द है जो रूपा और अरम्मन से मिलकर बना है। यहाँ रूपा शब्द का अर्थ चार परमात्मा धर्मों या चार परम वास्तविकताओं में वर्णित रूपा से नहीं है। बल्कि रूपारम्मन में रूपा का अर्थ वह दृष्टि है जिसे हम अपनी आँखों से देख सकते हैं। जब आँखें बंद होती हैं, तो दृष्टि चेतना या कहें कि नेत्र चेतना नहीं होती। जैसे ही आँखें खुलती हैं और दृष्टि वस्तु पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, हम देखते हैं कि विभिन्न रंगों की चमक अलग-अलग होती है। पाली भाषा में उस रंग को वन्न कहते हैं। सभी वन्न या रंग रूपारम्मन या दृष्टि वस्तु का निर्माण करते हैं।

हमारे सामने अनेक वस्तुएँ दिखाई दे रही हैं। विभिन्न मोटाई और रंगीन आवरण वाली कई पुस्तकें हैं। और हमारे चारों ओर भी अनेक वस्तुएँ हैं। उनके आकार और रूप गोलाकार, वर्गाकार, आयताकार, त्रिभुजाकार, गोलाकार, पिरामिडनुमा, बेलनाकार, शंकुनुमा और अनियमित हैं। उन पर अंकित रंगों के आधार पर उनकी चमक भिन्न-भिन्न होती है। विज्ञान में हम जो कुछ भी सोचते हैं, ये सब केवल वर्गीकरण हैं और अंततः हम जो देखते हैं वह रंगों के विभिन्न संयोजनों का ही परिणाम है।

इसे कंप्यूटर स्क्रीन पर चित्रों के डिजिटल निर्माण के रूप में समझा जा सकता है। इसमें असंख्य छोटे-छोटे बिंदु होते हैं। प्रत्येक बिंदु की चमक शून्य से अनंत तक होती है। शून्य पूर्ण अंधकार है। इन छोटे-छोटे बिंदुओं के अलग-अलग रंग होते हैं। इन विभिन्न संयोजनों से एक भ्रम पैदा होता है, जिससे हमें किसी वस्तु, जानवर या अन्य वस्तु की छवियाँ दिखाई देती हैं।

यह भ्रम है। भ्रम वास्तविक छवियों या वास्तविक वस्तुओं की गलत व्याख्या है। यहाँ वास्तविक वस्तु केवल रंग है। रंग ही वन हैं। और ये वन या रंग ही रूपारम्मन या दृष्टि वस्तु का निर्माण करते हैं। चक्खुविन्नन चित्त हमेशा रूपारम्मन या दृष्टि वस्तु पर निर्भर होते हैं। दृष्टि के बिना चक्खुविन्नन चित्त का अस्तित्व नहीं होता।

इसका अर्थ है कि चित्त की उत्पत्ति के लिए हमेशा उसके विषय पर निर्भर रहना पड़ता है। इसे अरम्मन पच्चया कहते हैं। पच्चया ही कारण है। चित्त का कारण, जो इस संदर्भ में चक्खुविन्नन चित्त का कारण है, अरम्मन रूपारम्मन या दृष्टि वस्तु है।

चित्त को अरम्मनों पर निर्भर रहना पड़ता है। चित्त को अरम्मनों या वस्तुओं से जुड़ना पड़ता है। अरम्मन या वस्तु के बिना कोई चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। चित्त पूरी तरह से अरम्मनों पर निर्भर होते हैं। जब लोग बूढ़े हो जाते हैं, तो उन्हें चलने में सहायता और सहारे के लिए छड़ी का उपयोग करना पड़ता है। छड़ी के बिना वे चल नहीं सकते और खड़े भी नहीं हो सकते।

कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें हम पाँच इंद्रियों के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं। पाली भाषा में इन पाँच प्रकार की वस्तुओं को अरम्मना कहते हैं। धम्म में छह अरम्मनाएँ या छह वस्तुएँ हैं। ये हैं: दृष्टियाँ जिन्हें हम अपनी आँखों से देख सकते हैं, जिन्हें रूपारम्मना कहते हैं; ध्वनियाँ जिन्हें हम अपने कानों से सुन सकते हैं, जिन्हें सद्धारम्मना कहते हैं; गंधें जिन्हें हम अपनी नाक से सूंघ सकते हैं, जिन्हें गंधारम्मना

कहते हैं; स्वाद जिन्हें हम अपनी जीभ से चख सकते हैं, जिन्हें रसारम्मना कहते हैं; स्पर्श इंद्रियाँ जिन्हें हम अपने शरीर या शरीर के अंगों के माध्यम से स्पर्श कर सकते हैं। इन छह इंद्रियों पर आगे के पृष्ठों में अलग से चर्चा की जाएगी।

अतः पाँच इंद्रियाँ या पाँच विषय हैं: 1. दृष्टि या रूपारम्मन, 2. ध्वनि या सद्धारम्मन, 3. गंध या गंधारम्मन, 4. स्वाद या रसारम्मन, 5. स्पर्श या फोत्थब्बरम्मन। ये सभी परम वास्तविकता के रूप हैं। दृष्टि या रूपारम्मन एक रूप है।

रूपारम्मन, रूप और अरम्मन से मिलकर बना है। यहाँ रूप से तात्पर्य रंग से है। हम जो देखते हैं, वे केवल रंग और उनकी अलग-अलग चमक या प्रकाश की तीव्रता हैं। इसे प्रसारण के संदर्भ में देखा जा सकता है। टेलीविजन की स्क्रीन पर अनगिनत छोटे-छोटे धब्बे होते हैं। इन धब्बों के अलग-अलग रंग और चमक होती है। जो चित्र हम देखते हैं, वह एक भ्रम है। भ्रम वास्तविक वस्तु की गलत व्याख्या है। भ्रम के कारण, रंग और उनकी चमक के विभिन्न संयोजन पुरुष, स्त्री, पशु आदि के रूप में दिखाई देते हैं। वास्तव में, हम जो देखते हैं वह रंग या वन्न है। यही वास्तविक रूप है, जो परम वास्तविकता है।

रूपारम्मन वन्न है और यह चक्खुविन्नन चित्त के लिए अरम्मन या वस्तु का काम करता है। चक्खु का अर्थ है आँख से संबंधित। विन्नन में वि और नन शामिल हैं। वि का अर्थ है विशेष या विशिष्ट और नन का अर्थ है ज्ञान। विन्नन का अर्थ है विशेष ज्ञान। चक्खुविन्नन चित्त आँख में विशेष ज्ञान की चेतना है। यह वह स्थिति है जब हम किसी दृश्य वस्तु को ठीक से देखते हैं। चक्खुविन्नन चित्त रूपारम्मन या वन्न पर निर्भर करता है। रूपारम्मन के बिना, चक्खुविन्नन कभी उत्पन्न नहीं होगा। पच्चय धम्म या कारण धम्म अरम्मन है और इस मामले में यह रूपारम्मन है जो एक रूप है। पच्चयुप्पन्न धम्म या परिणामी धम्म चक्खुविन्नन चित्त है। रूप (वन्न) और नाम (चक्खुविन्नन चित्त और 7 सार्वभौमिक चेतसिक) के बीच का संबंध अरम्मन है। चक्खुविन्नन चित्त से चित्तज रूप उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि दस द्विपंचविन्नन चित्त रूप उत्पन्न नहीं करते। चक्खुविन्नन चित्त रूपारम्मन या वन्न के बिना कभी उत्पन्न नहीं होगा। यही अरम्मन पच्चया और इसका निहितार्थ है।

सद्धा या ध्वनि, सोतविन्नन चित्त के लिए विषय का काम करती है। इन्हें सद्धरम्मन या ध्वनि विषय कहा जाता है। यदि ध्वनि न हो, तो सोतविन्नन चित्त या श्रवण चेतना (प्रत्यक्ष अनुवाद) या ध्वनि चेतना भी नहीं होगी। अतः सोतविन्नन चित्त पूरी तरह से सद्धरम्मन या सद्धा या ध्वनि पर निर्भर करता है।

सद्दा या ध्वनि एक रूप है। यह परम वास्तविकताओं में से एक है। सद्दा एक परमार्थ रूप है। यह रूप चित्त के लिए अरम्मन का काम करता है, जिसे सोतविन्नन चित्त कहा जाता है। अतः सद्दा या ध्वनि रूप, सोतविन्नन चित्त और उससे संबंधित सात सार्वभौमिक चेतसिकाओं जैसे कि स्पर्श, वेदना, चेतना, अनुभूति, एकाग्रता, जीवंतिन्द्रिय और मानसिक ध्यान आदि के लिए अरम्मन का काम करता है।

यहां कारण धम्म या पकाया धम्म ध्वनि या सद है जो सद्दारम्मन या ध्वनि वस्तु के रूप में कार्य करता है। इस कारण धम्म के कारण, परिणामी धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म का उदय होना चाहिए, चित्त जिसे सोताविन्नन चित्त कहा जाता है और इसके साथ 7 चेतासिक हैं। यहां कारण धम्म परमत्थ रूप सद या ध्वनि है और परिणामी धम्म यहां नाम धम्म (सोतविन्नन चित्त और 7 सार्वभौमिक सीतासिका) है। यहाँ रूप धम्म और नाम धम्म के बीच का संबंध अरम्मना है। यह अरम्माना पकाया है।

गंध, घनविन्नन चित्त का विषय है। जब गंध एक विषय बन जाती है, तो उसे अरम्मन कहा जाता है और इस अरम्मन को गंधारम्मन या गंध विषय कहते हैं। घन का अर्थ है नाक से संबंधित। घनविन्नन का अर्थ है नाक पर विशेष चेतना। यदि गंध न हो, तो घनविन्नन चित्त उत्पन्न नहीं होगा। गंध एक परमत्थ रूप है और यहाँ विषय के रूप में कार्य करती है। घनविन्नन चित्त और उससे संबंधित 7 चेतसिकाएँ नाम धम्म हैं और वे परिणामी धम्म हैं। कारण गंध है और परिणाम घनविन्नन चित्त या नाक चेतना (प्रत्यक्ष अनुवाद) है। यहाँ रूप रूपी कारण और नाम धम्म रूपी परिणाम के बीच का संबंध अरम्मन है। यही अरम्मन पच्चया है। या विषय स्थिति।

रस या स्वाद एक विषय के रूप में कार्य करता है और यह अरम्मन बन जाता है। इसे रसरम्मन या स्वाद विषय कहा जाता है। इस स्वाद के कारण जीव्विन्नन चित्त उत्पन्न होता है। जीव् का अर्थ है जीभ से संबंधित। जीव्विन्नन चित्त जीभ चेतना (प्रत्यक्ष) या स्वाद चेतना है। यहाँ कारण परमत्थ रूप स्वाद या रस है और प्रभाव या परिणाम जीव्विन्नन चित्त और उससे संबंधित 7 चेतसिक हैं। यहाँ कारण और परिणामी धम्म के बीच का संबंध अरम्मन है। यही अरम्मन पच्चय है।

फोत्थब्बा या स्पर्श इंद्रिय वस्तु के रूप में कार्य करती है और अरम्मन बन जाती है। इस अरम्मन को फोत्थब्बारम्मन या स्पर्श वस्तु कहा जाता है। जब फोत्थब्बा या स्पर्श इंद्रिय उत्पन्न होती है, तो कायविन्नन चित्त उत्पन्न होता है। काय का अर्थ है शरीर से संबंधित। कायविन्नन चित्त शरीर चेतना (प्रत्यक्ष) या स्पर्श इंद्रिय चेतना है। फोत्थब्बा या स्पर्श तीन प्रकार का हो सकता है।

ये तीन रूप हैं पथवी फोथब्बा, तेजो फोथब्बा और वायो फोथब्बा। पथवी फोथब्बा स्पर्श इंद्रिय है जिसमें कठोरता, कोमलता, ठोसता, चिकनाई और खुरदरापन जैसे गुण होते हैं। यह वह अवस्था है जिसे हम अपने उन अंगों से छूकर अनुभव कर सकते हैं जो स्पर्श इंद्रिय को जानते हैं। तेजो फोथब्बा एक रूप है जिसमें शीतलता और गर्माहट के गुण होते हैं और वायो फोथब्बा एक परमत्थ रूप है जिसमें प्रणोदन, प्रतिकर्षण, दमन, संकुचन, पीछे हटना, धक्का देना, खींचना, आकर्षण, विचलित करना, गति और समर्थन जैसे गुण होते हैं। ये तीन रूप चार महाभूत रूपों में से तीन हैं, अर्थात् पथवी, तेजो, आपो और वायो।

रूपा फोत्थब्बा (पथवी, तेजो, वायो) अरम्मना या वस्तु के रूप में कार्य करता है और यह फोत्थब्बारमन्ना है। इसके कारण कायाविन्नान चित्त का उदय होना है। कारण धम्म रूप है और परिणामी धम्म नाम धम्म है जो कि कायविन्नन चित्त है और इस मामले में यहां 7 सार्वभौमिक चेतासिक हैं। कारण रूप और परिणाम नाम धम्म के बीच के संबंध को अराम्मन कहा जाता है। यह अरम्मना पकाया या वस्तु स्थिति है।

छठा कर्म या छठा अरम्मन विद्यमान है। इस कर्म स्थिति पर आगामी पृष्ठों में चर्चा की जाएगी। अब तक पाँच इंद्रियों का वर्णन किया जा चुका है। इन धर्मों में सत्त या अत्त का कोई अस्तित्व नहीं है। कारण धर्म या पच्चय धर्म परमत्त रूप धर्म हैं और परिणाम धर्म या पच्चयुप्पन्न धर्म नाम धर्म या चित्त और चेतसिका हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म के विपरीत, जो केवल कारण और परिणाम को दर्शाता है, पथाना धर्म में एक अतिरिक्त विशेषता है जिसे प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म प्रकट नहीं कर सकता। यह उनके बीच का संबंध है। पथाना धर्म के इस भाग में, कारण रूप है और परिणाम नाम है। इन दोनों के बीच का संबंध अरम्मन या कर्म स्थिति है।

पिछले पृष्ठ पर पाँच इंद्रियों से संबंधित पाँच वस्तुओं या पाँच अरम्मनों पर चर्चा की गई है। ये हैं रूपरम्मन (दृष्टि), सद्धरम्मन (ध्वनि), गंधरम्मन (सूंघना), रसरम्मन (स्वाद) और फोत्तबबरम्मन (स्पर्श इंद्रिय)।

ये पाँचों वस्तुएँ, जो कि परमत्थ रूप हैं, विशिष्ट चित्त के लिए विशिष्ट वस्तु के रूप में कार्य करती हैं। इसका अर्थ यह है कि रूपारम्मन, जो कि वन्न है, एक परमत्थ रूप है और यह चक्खुविन्नन चित्त या दृष्टि चेतना या नेत्र चेतना के लिए अरम्मन के रूप में कार्य करता है। सद्दरामम्मन, जो कि एक परमत्थ रूप है, विशिष्ट चित्त सोतविन्नन चित्त या ध्वनि चेतना या कान चेतना के लिए वस्तु के रूप में कार्य करता है। गंधारम्मन, जो कि एक परमत्थ रूप है, विशिष्ट चित्त घनाविन्नन चित्त या गंध चेतना या नाक चेतना के लिए वस्तु के रूप में कार्य करता है। रसारम्मन, जो कि एक परमत्थ रूप है, विशिष्ट चित्त जीवविन्नन चित्त या स्वाद चेतना या जीभ चेतना के लिए वस्तु के रूप में कार्य करता है। फोथब्बरम्मन, जो कि स्पर्श इंद्रिय चेतना या शरीर चेतना के लिए वस्तु के रूप में कार्य करता है।

फोत्थब्बरम्मन तीन परमत्थ रूपों में से एक हो सकता है, अर्थात् पथवी (ठोसता का बोध), तेज (तापमान का बोध) और वायु (गति का बोध)। ये पाँच अरम्मन या पाँच वस्तुएँ सात परमत्थ रूप हैं, अर्थात् 1. वन्न, 2. सद्दा, 3. गंध, 4. रस, 5. पथवी, 6. तेज और 7. वायु, जो अपने-अपने चित्त के लिए वस्तु का काम करते हैं। यदि ये सात परमत्थ रूप अस्तित्व में नहीं हैं, तो दस द्विपंचविन्नन चित्त कभी उत्पन्न नहीं होंगे। वृद्ध लोगों को खड़े होने और चलने के लिए छड़ी पर निर्भर रहना पड़ता है। जब छड़ी नहीं होती, तो वे खड़े या चल नहीं पाते। अरम्मन (उल्लेखित पाँच अरम्मन या परमत्थ रूपों के संदर्भ में सात) वृद्ध लोगों के चित्त के लिए छड़ी का काम करते हैं। अब तक केवल 10 पंचविन्नना चित्त और 7 परमात्थ रूप तथा उनके संबंधों पर ही चर्चा की गई है।

पहले के पन्नों में वर्णित 89 चित्तों में से 3 चित्त मनोधातु के नाम से जाने जाते हैं। वे हैं पंचद्वारवज्जन चित्त, अकुसल संपतिच्छन चित्त, और कुसल संपतिच्छन चित्त। पंचविन्नान चित्त अपने संबंधित अरम्मना को जानते हैं और उन्हें पंचविन्नान धातु कहा जाता है। पंचविन्नन धातु पंचधातु को जानता है। पंचविन्नन धातु सभी चित्त हैं और पंचधातु सभी रूप हैं। मनोविन्नन धातु वे चित्त हैं जो अपनी वस्तुओं को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। लेकिन उपरोक्त तीन चित्त जो केवल अपना कार्य करते हैं, अन्य मनोविन्नन चित्त की तरह नहीं हैं और उन्हें केवल मनोधातु कहा जाता है। पंचद्वारवज्जन चित्त केवल यह जांचता है कि अराम्मन किस दरवाजे से अंदर आता है। यह चित्त विथि वर में पहला चित्त है। यह भूतकाल के चित्त भावंगा चित्त का स्थान लेता है।

अरम्मना के आधार पर, पंचद्वरवज्जन चित्त विशिष्ट अरम्मना पर निर्भर करता है। यदि पंचरम्मना के मामले में रूपा अरम्मना रूपारम्मना है, तो पंचद्वरवज्जन चित्त रूपारम्मना पर चिंतन करेगा और इस चित्त को चक्खुद्वरवज्जन चित्त या नेत्र द्वार से ध्यान केंद्रित करने वाली चेतना कहा जा सकता है। यदि अरम्मना सद्दाराममन है, तो पंचद्वरवज्जन चित्त रूपा ध्वनि या सद्दा पर निर्भर करेगा और इस पंचद्वरवज्जन चित्त को शोतद्वरवज्जन चित्त या कान द्वार से ध्यान केंद्रित करने वाली चेतना कहा जा सकता है। यदि अरम्मना गंध है, तो पंचद्वरवज्जन चित्त गंध पर निर्भर करेगा और इसे घनाद्वरवज्जन चित्त या नाक द्वार से ध्यान केंद्रित करने वाली चेतना कहा जा सकता है। यदि स्वाद की बात हो, तो पंचद्वरवज्जन स्वाद पर निर्भर करेगा और इसे जीवद्वरवज्जन चित्त या जीभ द्वारा चेतना का विज्ञापन कहा जा सकता है। यदि स्पर्श की बात हो, तो पंचद्वरवज्जन चित्त स्पर्श को अपना विषय मानेगा और इसे कायद्वरवज्जन चित्त या शरीर द्वारा चेतना का विज्ञापन कहा जा सकता है।

किसी विथी वर में पंचद्वरावज्जन चित्त के नष्ट होने के बाद, पंचविन्नन चित्त उत्पन्न होता है, जो पाँच अरम्मनों का संगत चित्त होता है। यह चित्त नष्ट हो जाता है और अगला चित्त उत्पन्न होता है। इस चित्त को सम्पतीच्छन चित्त कहते हैं। यह पंचविन्नन चित्त की तरह ही वस्तु को ग्रहण करता है, लेकिन वस्तु के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं रखता। इसलिए इसे पंचद्वरावज्जन की तरह मनोधातु भी कहा जाता है। सम्पतीच्छन चित्त अकुशलता का परिणाम हो सकता है यदि अरम्मन अप्रिय हो, और कुशलता का परिणाम हो सकता है यदि अरम्मन सुखद हो। और सभी तीन मनोधातु जो कि पंचद्ववज्जन चित्त और 2 संपतिच्चन चित्त हैं, 5 इंद्रियों के अपने संवाददाता अराम्मन को लेंगे जो कि रूपरम्मन, सद्दारम्मन, गंधारम्मण, रसारम्मण, फोत्थब्बरम्मण हैं।

इसमें, 5 अरम्मना या 7 परमत्थ रूप चित्तों (इस उदाहरण में, 3 मनोधातु) के लिए कर्म का कार्य करते हैं और ये 7 रूप अन्य धर्मों से संबंधित नहीं हैं, बल्कि बताए गए संबंधित चित्तों से संबंधित हैं। यही अरम्मना पच्चय है। या यही कर्म अवस्था है। यहाँ कारण धर्म या पच्चय धर्म 7 परमत्थ रूप या 5 अरम्मना हैं। यहाँ परिणामी धर्म या पच्चयुप्पन्न धर्म पंचविन्नना चित्त और 3 मनोधातु हैं, जो सभी नाम धर्म हैं। इन उदाहरणों में रूप (अरम्मना) और नाम (चित्त और संबंधित चेतसिक) के बीच का संबंध अरम्मना है। ऐसा संबंध प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म में नहीं देखा जा सकता। यह पथाना धर्म की विशिष्ट विशेषता है। पथाना धर्म को हमारे दैनिक जीवन में लागू किया जा सकता है। ये पांच इंद्रियां हमारे दैनिक जीवन के अनुभव हैं।

बिना किसी वस्तु या बिना किसी अरम्मन के चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। अब तक, अरम्मन या वस्तु की स्थिति, रूपारम्मन या दृष्टि की वस्तु, सद्धारम्मन या ध्वनि की वस्तु, गंधारम्मन या गंध की वस्तु, रसारम्मन या स्वाद की वस्तु, फोत्तबबरम्मन या स्पर्श की वस्तु के संबंध में पिछले पृष्ठों में चर्चा की जा चुकी है।

ये सभी अराम्मन या वस्तुएं रूप धम्म हैं और इन्हें पंचरामण या 5-इंद्रिय वस्तुएं भी कहा जाता है। वे अपने संबंधित चित्त के लिए वस्तु के रूप में कार्य करते हैं। वन्ना या कूलोर जो कि एक परमत्था रूप है, चित्त, चक्कुविन्नाना के लिए रूपरम्मना या देखने की वस्तु के रूप में कार्य करता है। सद्दा या ध्वनि जो एक परमत्था रूप है, चित्त, सोताविन्नन के लिए सद्दारम्मन या ध्वनि की वस्तु के रूप में कार्य करती है। तो अन्य रूप गंध के रूप में काम करते हैं, जो कि चित्त के लिए गंधारम्मन या गंध की वस्तु के रूप में कार्य करते हैं, घनाविन्नन और रस, चित्त के लिए रसरर्मण या स्वाद की वस्तु के रूप में कार्य करते हैं, जीवविन्नन और चार में से तीन महाभूत रूप अर्थात् पथवी, तेजो, और वायो चित्त, कायाविन्नन के लिए फोथब्बारमण या स्पर्श की वस्तु के रूप में कार्य करते हैं।

फिर से ये सभी 5 अराम्मन या पंचरम्मना तीन चित्तों के लिए वस्तु के रूप में काम करते हैं, जिन्हें मनोधातु के रूप में भी जाना जाता है। वे हैं पंचद्वारवज्जन चित्त, कुसल संपतिच्छन चित्त और अकुसल संपतिच्छन चित्त। इन 5 अराम्मनों के बिना, जो सभी परमत्थ रूप हैं, उपरोक्त चित्त अर्थात् चक्खुविन्नन, सोताविन्नान, घनविन्नान, जीवविन्नान, कायाविन्नान, पंचद्वारवज्जना, कुसल संपतिच्छन, और अकुसल संपतिच्छन चित्त कभी उत्पन्न नहीं होंगे। रूप धम्म और नाम धम्म के बीच इस प्रकार के समर्थन या संबंध को अरम्मना कहा जाता है। पकाया अरम्माना पकाया या वस्तु स्थिति है।

धम्मरम्मना हैं जो मनोविन्नन की वस्तु हैं। धम्मरम्मना मन की वस्तु को संदर्भित करता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुएं हैं जो धम्मरम्मना के रूप में काम करती हैं। वे 5 पसादा रूप, 16 सुखुमा रूप, 89 सीता, 52 सीतासिका, निब्बान और पन्नट्टा हैं। पन्नाट्ट परमत्था धम्म नहीं है। लेकिन परमत्था धम्म होने का दिखावा करके परमत्था धम्म चित्तस और सिटासिका के लिए अरम्मना के रूप में काम कर सकते हैं

पांच पसदा रूप परमत्थ रूप हैं। ये हैं चक्खुप्पसाद, सोतप्पसाद, घनप्पसाद, जीव्हप्पसाद और कायप्पसाद। ये सभी पांच रूप रंगहीन हैं, इसलिए इन्हें न तो आंखों से देखा जा सकता है और न ही चक्खुविन्नान चित्त से जाना जा सकता है। ये सभी पांच रूप ध्वनिहीन हैं और सोतविन्नान चित्त से नहीं जाने जाते। ये गंधहीन हैं और घनविन्नान चित्त से नहीं जाने जाते। ये रसहीन हैं और जीव्हविन्नान चित्त से नहीं जाने जाते, और ये स्पर्शनीय वस्तु नहीं हैं और कायविन्नान चित्त से नहीं जाने जाते। ये पांच पसदा रूप पंचविन्नान चित्त से तो नहीं जाने जाते ही हैं, साथ ही पंचद्वरावज्जन चित्त और संपतिचना चित्त से भी नहीं जाने जाते। लेकिन इन्हें अन्य सभी मनोविन्नन चित्तों द्वारा जाना जा सकता है। अतः ये पाँच पसदा रूप मनोविन्नन धातु के लिए मन के विषय के रूप में कार्य करते हैं और इन्हें धम्मरम्मन या मन का विषय कहा जाता है।

16 सुखुमा रूप परमत्थ रूप हैं और वे पंचविन्नन चित्त की वस्तु नहीं हैं और इसलिए वे 3 मनो धातु की वस्तु भी नहीं हैं। अत: वे मनोविन्नन धातु की वस्तु हैं।

16 सुखुम रूप इस प्रकार हैं:

1. itthatta bhava rupa (female faculty)
2. पुरीसत्ता भव रूप (पुरुष संकाय)
3. हृदय रूप (हृदय आधार)

4. जीवित रूप (भौतिक जीवन)
5. आहार रूपा (पोषक तत्व)
6. परिच्छेद रूप (आकाश या अंतरिक्ष)
7. kayavinatti rupa (gesture formation)
8. vacivinatti rupa (speech character)
9. रूपा लाहुता रूपा (अन्य रूपाओं की हल्कापन)
10. रूप मुदुता रूप (अन्य रूप की कोमलता)
11. रूपा कम्मन्नाता रूपा (अन्य रूपाओं की प्रबलता)
12. उपचय रूप (अन्य रूपों का प्रारंभिक निर्माण)
13. संतति रूप (अन्य रूप का निरंतर निर्माण)
14. जराता रूप (अन्य रूप की पुरानीता)
15. aniccata rupa (अन्य रूपों का लुप्त होना)
16. अपो महाभूत रूप (जल तत्व या अन्य रूपों का सामंजस्य)

इन सूक्ष्म पदार्थों या सुखुम रूपों को पांचों भौतिक इंद्रियों द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता है और यदि इन्हें चित्तों द्वारा जाना जाए, जो मनोविन्नन धातु हैं, तो इन्हें धम्मरम्मन कहा जाता है।

चेतना की 89 अवस्थाएँ होती हैं। मानसिक अवस्थाओं की 89 अवस्थाएँ होती हैं। मन की 89 अवस्थाएँ होती हैं। मन की इन 89 अवस्थाओं को चित्त कहा जाता है। ये चित्त ही वास्तविक अस्तित्व हैं। लेकिन जब इन 89 चित्तों की बात की जाती है, तो वे केवल वास्तविकताओं, चित्तों या चेतना के प्रतिनिधि होते हैं।

चित्त निरंतर उत्पन्न होते और लुप्त होते रहते हैं, क्योंकि प्रत्येक चित्तक्खाना नामक एक क्षण के लिए ही विद्यमान रहता है। ये चित्त अभी आपके मन में उत्पन्न हो रहे हैं और कामलोक (4 अपय भूमियाँ, 1 मनुष्यलोक, 6 देवभूमियाँ), रूपलोक (16 रूप ब्रह्मभूमियाँ) और अरूपलोक (4 अरूप ब्रह्मभूमियाँ) सहित सभी लोकों में अन्य सत्तों में भी उत्पन्न हो रहे हैं। ये चित्त जो आपकी चेतना से परे उत्पन्न होते हैं, बहिद्ध चित्त कहलाते हैं।

आपके मन में चित्त हैं, 31 लोकों में विराजमान अन्य प्राणियों के चित्त हैं, आपके क्षेत्र में चित्त हैं और आपसे लाखों-करोड़ों मील दूर अन्य क्षेत्रों में चित्त हैं, और आपकी उपस्थिति में चित्त हैं, और वे तब भी थे जब आप वर्तमान अवस्था में नहीं थे, और जब आप वर्तमान अवस्था में नहीं होंगे तब भी चित्त यहाँ-वहाँ मौजूद रहेंगे। इस संसार में अनंत चित्त हैं और वे निरंतर उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, और सम्मसंबुद्ध सहित कोई भी उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने को नियंत्रित नहीं कर सकता। यही धर्म है और वे धर्म नियम और चित्त नियम के अनुसार व्यवहार करते हैं। यद्यपि असंख्य और अनंत चित्त हैं, फिर भी उनकी विशेषताओं के आधार पर उन्हें 89 चित्तों में संक्षेपित किया जा सकता है।

संक्षेप में, ये 89 चित्त वास्तविक अस्तित्व हैं और आप स्वयं इनके अस्तित्व का परीक्षण और पुष्टि कर सकते हैं, यदि आप सभी 89 चित्तों को जानने के लिए विशेष ज्ञान विकसित करने में सक्षम हों। लेकिन कुछ चित्त आप स्वयं समझ सकते हैं क्योंकि वे इंद्रिय-स्तरों में बार-बार उत्पन्न होते हैं, जो इस समय आपके भीतर उत्पन्न हो रहे हैं जब आप यह संदेश पढ़ रहे हैं। इन 89 चित्तों को कैसे अनुभव किया जा सकता है? आँख से? कान से? नाक से? जीभ से? शरीर से? बिलकुल नहीं। इन सभी 89 चित्तों को नाम धम्म कहा जाता है, ये रूप धम्म नहीं हैं। ये भौतिक वस्तुएँ नहीं हैं। इसलिए इन्हें किसी भी भौतिक उपकरण द्वारा नहीं पहचाना जा सकता, भले ही कुछ विचित्र भौतिकवादी वैज्ञानिक ईईजी नामक इलेक्ट्रोएन्सेफेलोग्राम और अन्य संबंधित मशीनों द्वारा चित्तों के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास करें। लेकिन ये वे वास्तविक इंद्रियाँ नहीं हैं जिन्हें आप जानते हैं।

इन 89 चित्तों को कैसे अनुभव किया जा सकता है? ये सभी चित्त द्वारा ही ज्ञात हैं। इन्हें मन के माध्यम से अनुभव किया जाता है और ये मनोवर्ण चित्तों द्वारा ज्ञात होते हैं। चूंकि इन्हें चित्त द्वारा अनुभव किया जाता है और ये अरम्मना (ज्ञान के विषय) के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए ये सभी 89 चित्त धम्मरम्मना या मन के विषय हैं। ये नाम हैं, लेकिन ये अरम्मना के रूप में भी कार्य कर सकते हैं। अरम्मना या विषय के रूप में कार्य करने से ये रूप नहीं बन जाते, जो कि पूरी तरह से गलत है। मैंने दो लोगों को इस तरह सोचते हुए पाया है। एक धम्म चर्चा समूह में, और ऐसा प्रतीत होता था कि वह ऐसा मानता है। दूसरे व्यक्ति ने अनजाने में गलत तरीके से यह बात कही। लेकिन 89 चित्त हमेशा नाम धम्म होते हैं, वे कभी भी रूप धम्म नहीं होते। चूंकि इन्हें मन द्वारा जाना जा सकता है, इसलिए मन द्वारा अनुभव किए जाने पर ये धम्मरम्मना या मन के विषय होते हैं।

अरम्मन पच्चया नाम धम्म और नाम धम्म सहित अन्य सभी धम्मों के बीच संबंध को दर्शाता है। धम्म, अरम्मन या कर्ता के रूप में, नाम धम्म चित्त और चेतसिकों का आधार बनता है। अरम्मन या कर्ता के बिना, चित्त और चेतसिकों का अस्तित्व ही नहीं होता। पिछले पृष्ठों

में, पाँच भौतिक इंद्रियों पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसके बाद, छठी इंद्रिय, यानी मन का विषय या धम्मरम्मन, पर चर्चा शुरू की गई है।

धम्मरम्मन में छह प्रकार के विषय होते हैं जिन पर मन ध्यान केंद्रित किया जा सकता है। ये हैं: पाँच पसद रूप, सोलह सुखुम रूप, उन्नीस चित्त, पन्नतीस चेतसिक, निर्वाण और पन्नात्त। पन्नात्त को छोड़कर अन्य सभी धम्मरम्मन परमत्त्व धम्म हैं। पन्नात्त परमत्त्व धम्म के स्थान पर अरम्मन के रूप में कार्य कर सकता है। चित्तों के विषय में कुछ सामान्य बातें बताई गई हैं। उन्नीस चित्त हैं जिन पर मन ध्यान केंद्रित किया जा सकता है। वे हैं:

1. सोमनास्सा सहगतम् दिट्ठिगता संपायुत्त असंखरिका लोभा मूला अकुसाला चित्त 2. सोमनास्सा सहगतम् दिट्ठिगता संपायुत्त सासंखारिका लोभा मूला अकुसाला चित्त 3. सोमनास्सा सहगतम् दिट्ठिगता विप्पयुत्त असंखरिका लोभा मूला अकुसाला चित्त 4. सोमनास्सा सहगतम् दिट्ठिगता विप्पयुत्त ससंखारिका लोभ मुला अकुसल चित्त 5. उपेक्खा सहगतम् दिट्ठिगता संपायुत्त असंखरिका लोभा मूला अकुसला चित्त 6. उपेक्खा सहगतम् दिट्ठिगता संपायुत्त ससंखरिका लोभा मूला अकुसाला चित्त 7. उपेक्खा सहगतम् दिट्ठिगता vippayutta असंखरिका लोभा मुला अकुसल चित्त 8. उपेक्खा सहगतम दिट्ठिगता विप्पयुत्त ससंखरिका लोभा मूला अकुसल चित्त

ये आठ लोभ मूल अकुशल चित्त हैं। सो का अर्थ है सुखद, आनंदमय, मनभावन। मनस्स [मन + अस्स] का अर्थ है मन का। सोमनस्स का अर्थ है मानसिक सुख या मानसिक आनंद। सहा का अर्थ है साथ में और गत का अर्थ है जाना। सहगत का अर्थ है साथ में जाना। दित्थी का अर्थ है गलत दृष्टिकोण जो कर्म और कर्म के परिणामों में विश्वास नहीं करता। सम का अर्थ है सही, सत्य। युत्त का अर्थ है मिलाना, समानांतर, सामान्य। सम्पायुत्त का अर्थ है अच्छी तरह मिला हुआ। संखार का अर्थ है तैयार करना, प्रभावित करना, प्रयास करना। संखारिका का अर्थ है प्रेरित, प्रोत्साहित। असंखारिका का अर्थ है बिना प्रेरित।

आठ लोभ मूल चित्त होते हैं। इनमें से चार चित्त मानसिक सुख से उत्पन्न होते हैं और चार चित्त उदासीन भाव से। इनमें से आधे गलत दृष्टिकोण से उत्पन्न होते हैं और प्रत्येक युग्म में एक प्रेरित और एक अनप्रेरित चित्त होता है। इस प्रकार आठ लोभ मूल चित्त होते हैं।

9. डोमानास्सा सहगतम पतिघा संपायुत्त असंखरिका दोसा मूला अकुसाला चित्त

यहां 'दो' या 'दु' का अर्थ है अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय। 'दोमनस्स' का अर्थ है मानसिक असंतोष। 'पतिघा' का अर्थ है प्रहार, विनाश, आक्रमण। ये दोनों चित्त दोषमूल चित्त हैं और दोष चित्त हैं। दोष का अर्थ है घृणा, क्रोध, अरुचि।

11. उपेक्खा सहगतम् विकिसिच्च संपायुत्त मोहा मूल चित्त 12. उपेक्खा सहगतम् उद्धच्चा संपायुत्त मोहा मूल चित्त

विकिचिच्चा का अर्थ है संदेह, अनिर्णय, शंका और उद्धच्चा का अर्थ है बेचैनी, अशांति।

13. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका चक्खुविन्नन चित्त 14. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका सोतविन्नना चित्त 15. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका घनाविन्नाना चित्त 16. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसाला विपाका जीवविन्नान चित्त 17. दुक्ख सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका कायविन्नन चित्त 18. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका संपतिच्चन चित्त 19. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका अकुसल विपाका शांतिराना चित्त

20. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका कुसाला विपाका चक्खुविन्नान चित्त 21. उपेक्खा सहागतम् अहेतुका कुसाला विपाका सोतविन्नाना चित्ता 22. उपेक्खा सहागतम् अहेतुका कुसाला विपाका घनाविन्नाना चित्ता 23. उपेक्खा सहागतम् अहेतुका कुसाला विपाका जीवविन्नन चित्त 24. सुख सहगतम् अहेतुका कुसल विपाका कायाविन्नन चित्त 25. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका कुसल विपाका संपतिच्छन चित्त 26. सोमनास्सा सहगतम् अहेतुका कुसल विपाका शांतिराना चित्त 27. उपेक्खा सहगतम् अहेतुका कुसल विपाका संतिरण चित्त

इनमें से 13 से 27 चित्त विपाक चित्त हैं। ये परिणामी चेतना हैं। परिणामी होने के कारण ये अप्रभावी हैं। अतः इनके उत्पन्न होने से कोई कर्म उत्पन्न नहीं होता। अहेतुक का अर्थ है हेतु रहित। हेतु एक कारण या मूल है। छह हेतु हैं: लोभ, दोष, मोह, अलोभ, अदोष और अमोह। अहेतुक चित्तों में इनमें से कोई भी हेतु नहीं होता। चक्खु का अर्थ है नेत्र संबंधी। विन्नाना, वि और नाना से मिलकर बना है। नाना का अर्थ है ज्ञान और वि का अर्थ है विशिष्ट या भेद करने वाला। चक्खुविन्नाना का अर्थ है विशेष रूप से नेत्र से जानना। सोत का अर्थ है कान संबंधी, घना का अर्थ है नाक संबंधी, जिह्वा का अर्थ है जीभ संबंधी और काया का अर्थ है शरीर संबंधी।

सम्पतिच्छना शब्द 'सम' और 'पतिच्छना' से मिलकर बना है। 'सम' का अर्थ है अच्छी तरह से ग्रहण करना। 'पतिच्छना' का अर्थ है ग्रहण करना। 'संपतिच्छना' का अर्थ है अच्छी तरह ग्रहण करना। 'संतिराना' का अर्थ है अच्छी तरह से जांच करना। 'दुक्खा' का अर्थ है असहनीय अनुभूति और 'सुक्खा' का अर्थ है सुखद शारीरिक अनुभूति।

कोई भी वस्तु धम्मरम्मन का विषय हो सकती है। पिछले पृष्ठों में 5 पसदा रूप और 16 सुखुम रूप धम्मरम्मन के रूप में बताए गए हैं। इसके बाद चित्त को मन का विषय या धम्मरम्मन के रूप में चर्चा में रखा गया है। अब तक हमने 89 चित्तों में से 27 चित्तों के बारे में बात की है।

28. उपेक्खा सहगतम पंचदवरवज्जन अहेतुका किरिया चित्त 29. उपेक्खा सहगतम मनोद्वारवज्जना अहेतुका किरिया चित्त 30. सोमनस्सा सहगतम हसितुप्पदा अहेतुका किरिया चित्ता

ये तीनों चित्त क्रिया चित्त हैं। क्रिया चित्त निष्क्रिय चित्त होते हैं। इसका अर्थ है कि वे किसी भी कर्म का उत्पादन नहीं करते और उनका उद्भव निष्पाप होता है। वे किसी भी प्रकार के परिणाम या प्रभाव उत्पन्न नहीं करते। ये तीनों चित्त अहेतुक चित्त हैं। अहेतुक का अर्थ है कि इनमें हेतु या कारण नहीं होता। हेतु या कारण हैं लोभ (आसक्ति), दोष (विरोध), मोह (अज्ञान), अलोभ (दान) या अनासक्ति, अदोष (घृणा) या मेत्त और अमोह (पन्न)।

पंचद्वर का अर्थ है पाँच द्वार। इसका तात्पर्य आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर की पाँच इंद्रिय द्वारों से है। अवज्जन का अर्थ है ध्यान देना या चिंतन करना। पंचद्वरवज्जन चित्त इस बात का चिंतन करता है कि अरम्मन कहाँ उत्पन्न होता है, चाहे वह आँख, कान, नाक, जीभ या शरीर में हो। मनो का अर्थ है मन। मनोद्वर का अर्थ है मन का द्वार। मनोद्वरवज्जन चित्त वह चित्त है जो मन के द्वार पर उत्पन्न होने वाले अरम्मन या उसके स्वरूप का चिंतन करता है। तीसवाँ चित्त सोमनस्सा या आनंद से संबंधित है। सोम का अर्थ है अच्छा, सुखद, मनभावन आदि। मन या मनो का अर्थ है मन। अस्स एक ऐसा शब्द है जो स्वामित्व को दर्शाता है। मनस्स का अर्थ है मन का। यहाँ सोमनस्सा का अर्थ आनंद है। हस का अर्थ है स्वभाव। उप्पदा का अर्थ है उत्पन्न होना। हसितुप्पदा का अर्थ है स्वभाव का उत्पन्न होना। हसितुप्पदा चित्त अरहतों का अहेतुका किरिया चित्त है और यह तब उत्पन्न होता है जब अरहत सिर्फ मुस्कुराते हैं..

वर्णित ये सभी 30 चित्त अशोभन चित्त कहलाते हैं। शोभन का अर्थ है सुंदर। ये 30 चित्त अशोभन हैं, यानी सुंदर नहीं हैं। ये सौंदर्यहीन चेतनाएँ हैं, क्योंकि इनमें श्रद्धा, सती, हिरी, भय, अलोभ, क्रोध आदि जैसे सुंदर चेतसिका गुण नहीं हैं।

कुल 24 काम शोभना चित्त हैं। ये 24 चित्त सुंदर चेतनाएं हैं। ये कामवाचार चित्त हैं और काम भूमि में अक्सर प्रकट होते हैं, जैसे कि 4 अपाय भूमियां, मनुष्य भूमि (मानव लोक) और 6 देव भूमियां।

31. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम असंखरिका कामवचर महाकुशल चित्त 32. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम सासंखारिका कामवाचर महाकुशल चित्त 33. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखरिका कामवाचर महाकुशल चित्त 34. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम ससंखारिका कामवाचर महाकुसला चित्त 35. उपेक्खा सहगतम् नाना सम्पायुत्तम असंखरिका कामवाचर महाकुसला चित्त 36. उपेक्खा सहगतम् नाना संपयुत्तम ससंखारिका कामवाचर महाकुसला चित्त 37. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखारिका कामवाचर महाकुसला Citta 38. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् ससंखरिका कामवचरा महाकुशल चित्त

39. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम असंखरिका कामवचर महाविपाक चित्त 40. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम सासंखारिका कामवाचर महाविपाक चित्त 41. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखरिका कामवाचर महाविपाक चित्त 42. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम ससंखारिका कामवाचर महाविपाक चित्त 43. उपेक्खा सहगतम् नाना संपायुत्तम असंखरिका कामवाचर महाविपाक चित्त 44. उपेक्खा सहगतम् नाना संपायुत्तम ससंखारिका कामवाचर महाविपाक चित्त 45. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखरिका कामवाचर महाविपाक चित्त Citta 46. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् ससंखरिका कामवचर महाविपाक चित्त

47. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम असंखरिका कामवचरा महाकिरिय चित्त 48. सोमनास्सा सहगतम् नाना संपायुत्तम सासंखारिका कामवाकर महाकिरिया चित्त 49. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखरिका कामवाचर महाकिरिया चित्त 50. सोमनास्सा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम ससंखारिका कामवाचर महाकिरिय चित्त 51. उपेक्ख सहगतम् नाना संपायुत्तम असंखरिका कामवचरा महाकिरिय चित्त 52. उपेक्ख सहगतम् नाना संपयुत्तम ससंखरिका कामवाचर महाकिरिय चित्त 53. उपेक्ख सहगतम् नाना विप्पयुत्तम असंखरिका कामवचरा महाकिरिया Citta 54. उपेक्खा सहगतम् नाना विप्पयुत्तम् ससंखरिका कामवचरा महाकिरिय चित्त

सोमनस्सा का अर्थ है आनंद। सहगत का अर्थ है साथ उत्पन्न होना या साथ चलना। यहाँ नाना का अर्थ है पन्ना या पन्निन्द्रिय चेतसिका, जो ज्ञान है और कर्मों और उनके प्रभावों एवं परिणामों का ज्ञान है। सम्पायुत्तम का अर्थ है मिश्रण। असंखारिका का अर्थ है अप्रेरित और ससंखारिका का अर्थ है प्रेरित, यानी कार्य करने के लिए प्रेरित होना। काम + अवचार का अर्थ है कामभूमियों में बार-बार उत्पन्न होना। महा का अर्थ है महान। यहाँ महा का प्रयोग केवल अन्य कुशल चित्तों, जैसे रूपकुशल चित्तों और अरूपकुशल चित्तों से भिन्न करने के लिए किया गया है। कामावचार कुशल चित्तों को महाकुशल चित्त कहा जाता है। कुशल का अर्थ है संपूर्ण और वे अच्छे कर्म उत्पन्न करते हैं। विपाक का अर्थ है परिणामी और क्रिया का अर्थ है निष्क्रिय या अप्रभावी। यहाँ उपेक्षा का अर्थ है वह भावना जो दुःख, सुख या सोमनस्सा नहीं है। यह केवल समभाव की भावना है। वर्ग के अनुसार, काम शोभना चित्त में तीन प्रकार के चित्त होते हैं: महाकुशाल,

महाविपाक और महाक्रिया चित्त। प्रत्येक वर्ग में 8 चित्त होते हैं। इनमें से 4 आनंदमय और 4 आनंदहीन होते हैं। प्रत्येक वर्ग में 2 चित्त ज्ञानमय होते हैं। इन चारों युग्मों में प्रेरणा और अनावेग दोनों प्रकार के चित्त होते हैं। इस प्रकार कुल 24 काम शोभना चित्त होते हैं। 30 अशोभना चित्तों के साथ मिलकर कुल 54 कामवाचार चित्त होते हैं।

चर्चा के लिए 35 सीट्स बाकी हैं। वे सभी शोभना चित्त हैं। वे 15 रूपवकार चित्त, 12 अरुपवकार चित्त और 8 लोकुत्तर चित्त हैं। रूपावकार चित्त वे चित्त हैं जो अक्सर रूप ब्रह्म भूमि में उत्पन्न होते हैं। वहाँ 15 रूप ब्रह्म भूमियाँ हैं जहाँ रूपवकार चित्त अक्सर उत्पन्न होते हैं। असन्निसत्ता चतुत्थ झाना रूपा ब्रह्म भूमि में कोई चित्त नहीं है। अरुपवकार चित्त चेतना हैं जो अक्सर अरूप ब्रह्म भूमि में उत्पन्न होती हैं। लोकुत्तर चित्त वह चेतना है जो लोक से परे है अर्थात काम लोक, रूप लोक और अरूप लोक। लोकुत्तर (लोक + उत्तर) चित्त निब्बान को देखता है जो सभी लोकों से परे है और किसी भी रूप या चित्त या सीतासिका से संबंधित नहीं है।

छह ऐसी वस्तुएँ हैं जो हमें इंद्रियों से परिपूर्ण बनाती हैं। इन छह वस्तुओं को अरम्मना कहा जाता है। ये चित्त को इंद्रियों को वस्तुओं के रूप में जानने में सहायता करती हैं। पाँच भौतिक इंद्रिय वस्तुएँ हैं, जिन पर चर्चा की जा चुकी है। छठी इंद्रिय मन की वस्तु है। इन्हें धम्म अरम्मना या धम्मरम्मना कहा जाता है। धम्म के छह वर्ग हैं जो धम्म अरम्मना के रूप में कार्य करते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। अब तक पाँच पसदा रूप, 16 सुखम रूप और चित्त के कुछ भाग पर चर्चा की जा चुकी है। 54 कामवाचरा चित्तों का वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त 35 चित्त हैं जो मन या धम्मरम्मन का विषय हो सकते हैं। इनमें 15 रूपावचर चित्त, 12 अरूपावचर चित्त और 8 लोकउत्तर चित्त शामिल हैं। रूपावचर चित्त वे चित्त हैं जो रूपब्रह्म भूमि में बार-बार उत्पन्न होते हैं, भले ही वे मनुष्य और देवता जैसे गैर-ब्रह्मों में भी उत्पन्न हों। रूप का अर्थ है रूपब्रह्म और अवचर का अर्थ है बार-बार उत्पन्न होना। अरूपावचर चित्त का भी यही अर्थ है। लोकउत्तर चित्त वे चित्त हैं जो लोक से पूर्णतः भिन्न और लोकों से परे, जैसे कामलोक, रूपलोक और अरूपलोक, विषय को ग्रहण करते हैं। लोकउत्तर लोक + उत्तर से मिलकर बना है। उत्तर का अर्थ है श्रेष्ठ, उच्चतर, श्रेष्ठ। अतः लोकउत्तर चित्त लोकों से संबंधित नहीं हैं और वे लोकों से परे हैं क्योंकि ये चित्त निर्वाण को अपना आधार मानते हैं।

रूपावचार चित्त में तीन प्रकार के चित्त होते हैं जिन्हें कुशल, विपाक और क्रिया चित्त कहा जाता है। कुशल चित्त कर्म उत्पन्न करने वाले होते हैं। क्रिया चित्त कर्म उत्पन्न न करने वाले होते हैं, जैसे कि विपाक चित्त भी कर्म उत्पन्न न करने वाले होते हैं। लेकिन क्रिया चित्त निष्क्रिय या अप्रभावी होते हैं, जबकि विपाक चित्त कुशल चित्तों के फलस्वरूप होते हैं।

55. वितक्क, विचारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावकार पथमज्जना रूपाकुसल चित्त 56. विकारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहिता रूपावाचार दुतियाज्झाना रूपाकुशल चित्त 57. पिति, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा पथमज्झाना रूपाकुसल चित्त 58. सुखेकागगता सहितं रूपावचारा चतुत्थज्झाना रूपाकुसल चित्त 59. उपेक्खेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा पंचमज्झाना रूपाकुशल चित्ता

60. वितक्क, विचारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावकारा पथमज्जना रूपविपाक चित्त 61. विचारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावाचार दुतियाज्झाना रूपाविपाक चित्त 62. पिति, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा पथमज्झाना रूपाविपाक चित्त 63। सुखेकागगत सहितं रूपवचार चतुत्थज्जहना रूपविपक चित्त 64. उपेक्खेकागगत सहितं रूपवचारा पंचमज्झाना रूपविपक चित्त

65. विटक्का, विचारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं रूपवकारा पथमज्झाना रूपकिरिया चित्त 66. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा दुतियाज्झाना रूपकिरिया चित्त 67. पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा पथमज्झाना रूपकिरिया चित्त 68। सुखेकागगता सहितं रूपवचार चतुत्थज्झाना रूपकिरिया चित्त 69. उपेक्खेकाग्गाता सहितं रूपावाचारा पंचमज्झाना रूपकिरिया चित्ता

ध्यान चित्त में पाँच ध्यान कारक होते हैं जिन्हें वितक्का, विचारा, पीति, सुखा और एकग्गता कहते हैं। सहितम् का अर्थ है साथ-साथ। पथमा का अर्थ है प्रथम, दुतिया का अर्थ है द्वितीय, ततिया का अर्थ है तृतीय, चतुत्थ का अर्थ है चतुर्थ और पंचम का अर्थ है पंचम। ध्यान मन की तल्लीन अवस्थाएँ हैं और ध्यान चित्त अपने विषय में विलीन हो जाते हैं। ध्यान का अर्थ है बहुत ध्यान से देखना। ध्यान इतने निकट होते हैं कि वे विषय में विलीन हो जाते हैं।

12 अरुपवकार चित्त हैं और वे अरूप झाना चित्त हैं। अरूपा झाना वे झाना हैं जो रूपा के साथ बिल्कुल भी व्यवहार नहीं करती हैं। वे हैं

70. आकाशाननचायतन अरूपावकार अरूपकुसल चित्त 71. विन्ननानचायतन अरूपावकार अरूपकुशल चित्त 72. अकिंचन्नायतन अरुपवकार अरूपकुशल चित्त 73. नेवसन्ननसंन्यातन अरूपावकार अरूपकुसल चित्त

74. आकाशाननचायतन अरूपावकार अरुपविपाक चित्त 75. विन्ननानचायतन अरूपावकार अरुपविपाक चित्त 76. अकिंचन्नायतन अरूपावकार अरुपविपाक चित्त 77. नेवसन्नानशन्यातन अरूपावकार अरुपविपक चित्त

78. आकाशाननचायतन अरूपावकार अरुपकिरिया चित्त 79. विन्ननानचायतन अरूपवकार अरूपकिरिया चित्त 80. अकिंचन्नायतन अरूपवकार अरुपकिरिया चित्त 81. नेवसन्ननसंन्यातन अरूपवकार अरूपकिरिया चित्त।

प्रथम ध्यान चित्त तब उत्पन्न होता है जब कामच्छंद निवारण (इंद्रिय सुखदायक विचार), ब्यापाद निवारण (विनाशकारी विचार या दुर्भावना), तीन् मिद्ध निवारण (चित्त और चेतसिकाओं की सुस्ती), उद्धच्च कुक्कुच्च निवारण (पश्चाताप/चिंताजनक विचारों का प्रसार) और विचिच्च निवारण (संदेहपूर्ण विचार) जैसी कोई निवारण धम्म या बाधाएँ न हों। जब ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं और पाँचों ध्यान कारक अपनी पूर्ण शक्ति से कार्य कर रहे होते हैं और चित्त विषय में समाहित हो जाता है, तब प्रथम ध्यान चित्त उत्पन्न होता है। जब प्रत्येक निम्न ध्यान कारक विरक्त हो जाता है, तब उच्च ध्यान उत्पन्न होता है। दूसरे ध्यान में विचार विरक्त होता है, तीसरे ध्यान में पीति विरक्त होती है, चौथे ध्यान में सुख विरक्त होता है और पाँचवाँ ध्यान केवल एकग्गत चेतसिका के साथ होता है, जो ध्यान विषय पर एकाग्रता है, लेकिन उपेक्षा वेदन या समभाव की भावना के साथ।

पंचम रूप ध्यान में, विषय का विस्तार पूरे ब्रह्मांड को भर देता है। लेकिन जब रूप की कमजोरी दिखाई देती है, तो उच्चतर ध्यान रूप से विमुख हो जाता है और जब रूप से भरा स्थान खाली हो जाता है, तो केवल असीम स्थान ही शेष रह जाता है। यह स्थान वैसा स्थान नहीं है जैसा आप सोचते हैं। बल्कि यह असीम स्थान का एक आयाम या विचार है जो पंचम ध्यान के विषय के विमोचन से उत्पन्न होता है। जब ऐसा होता है और केवल एकाग्रता और उपेक्षा होती है, तो प्रथम रूप ध्यान उत्पन्न होता है। यह आकाशनंचयतना ध्यान है। आकाश का अर्थ है स्थान। यहाँ असीम स्थान या अनंत स्थान है जो पंचम रूप ध्यान के विषय के विमोचन से उत्पन्न होता है। आयतन का अर्थ है जहाँ चित्त और चेतसिका निवास करते हैं या निर्भर करते हैं। जब कोई ध्यान प्रथम रूप ध्यान चित्त को अपना विषय मानता है, तो उसे द्वितीय रूप ध्यान चित्त कहा जाता है। यह विन्ननंचयतना चित्त है। आकाशनचयतनब चित्त नामक चित्त द्वारा पूर्व में असीम स्थान देखा जाता है। जिस प्रकार आकाश, जो कि स्थान है, असीम है, उसी प्रकार चित्त, जो कि स्थानी है, भी असीम है। जब इस असीम चेतना को देखा जाता है, तब द्वितीय अरूप ध्यान चित्त उत्पन्न होता है।

जब वे चित्त मुक्त हो जाते हैं और जब मन उन चित्तों की अनुपस्थिति, यानी शून्यता या नत्थिभो पन्नत्त पर ध्यान केंद्रित करता है, तब तीसरा अरूप ध्यान उत्पन्न होता है और इसे अकिंचनयतन चित्त कहते हैं। किंच का अर्थ है कुछ, अकिंच का अर्थ है कुछ नहीं या शून्य। अगला चित्त इस चित्त को देखता है और चूंकि यह कहना कठिन है कि सन्ना है या नासन्न, इसलिए इसे नेवसन्ननसन्नयतन चित्त कहते हैं और यह चौथा अरूप ध्यान चित्त है।

नेवासन्नानसन्नयतन ना, एव, सन्ना, नसन्ना और आयतन से मिलकर बना है। ना का अर्थ है नहीं और एव का अर्थ है ऐसा। सन्ना का अर्थ है बोध और नसन्ना का अर्थ है अबोध। आयतन का अर्थ है जहाँ चित्त और चेतसिका निवास करते हैं या निर्भर करते हैं। यह विषय चौथे अरूप ध्यान का विषय है। यह परमत्थ धम्म है और चित्त है। यह तीसरा अरूप ध्यान है।

वह अरूपा झान चित्त वस्तु को शून्यता के रूप में ग्रहण करता है। इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि इस चित्त में सन्नाटा है या बोध, और यह कहना भी उतना ही कठिन है कि इस चित्त में बोध नहीं है। अतः इसे न तो बोध और न ही अबोध कहा जाता है।

जब मन चित्त और ध्यान की अवस्था में होता है, तो वह पूर्णतः शांत और पाप-वंचनाओं से मुक्त होता है। परन्तु यह रूपा ध्यान वास्तव में पूर्णतः शांत नहीं होता, क्योंकि यह किसी भी क्षण रूपा ध्यान में और फिर कामभूमि में वापस जा सकता है। ऐसी अस्थिरता या इस प्रकार के परिवर्तन को दूर करने का कोई उपाय अवश्य होना चाहिए। परन्तु इन आठ ध्यानों का प्रयोग करके धर्मों का पुनः चिंतन किया जाता है।

धम्म का अभ्यास करने वाला व्यक्ति आंतरिक और बाह्य रूप से धम्म का चिंतन करता है और धम्म को उसकी समग्रता में देखता रहता है। वह चित्त के उत्पन्न होने पर उत्पन्न होने वाली भावनाओं का चिंतन करता है। वह चित्त का चिंतन करता है और देखता है कि वे किस प्रकार के चित्त हैं। वह निवारण की अनुपस्थिति आदि जैसे उत्पन्न होने वाले धम्मों का चिंतन करता है। जैसे-जैसे वह पुराने उत्पन्न अस्वास्थ्यकर तत्वों से बचने, अविकसित अस्वास्थ्यकर तत्वों के उत्पन्न होने को रोकने, नए उत्पन्न होने वाले स्वास्थ्यकर तत्वों को विकसित करने और विद्यमान स्वास्थ्यकर तत्वों को बढ़ाने का अभ्यास करता है, उसका प्रयास उसकी जागरूकता को सुदृढ़ करता है।

उन्हें पूर्ण स्थिरता और शांति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा है। उनका मन सद्भावना से प्रेरित है। वे सभी आठ ध्यान अवस्थाओं से गुजर चुके हैं, लेकिन वे जानते हैं कि ये अभी तक पूर्ण शांति नहीं हैं और ये ध्यान अवस्थाएँ अंततः स्थिर नहीं हैं। परन्तु वे शांत हैं और अनेक धर्मों का अनुभव होने के कारण वे सही और गलत का ज्ञान रखते हैं। इसीलिए वे चौथी रूपा ध्यान अवस्था में नहीं ठहरते। उन्हें पूर्ण स्थिरता और पूर्ण शांति की ओर ले जाने वाले नए मार्ग की खोज में दृढ़ विश्वास है। उनकी जागरूकता और ज्ञान उन्हें मार्ग दिखाते हैं। उनका वीर्य या प्रयास अथक है और वे पूर्ण रूप से स्थिर हैं।

जब वह धर्मों का अध्ययन करता है, और जब वह पूर्ण परिपक्व हो जाता है, तब उसे शांति और सुकून मिलता है, और ज्ञानोदय के सभी तत्व प्रकट होते हैं। ये तब होता है जब अष्टांगिक मार्ग प्रकट होता है। इन सब से ठीक पहले उसे रूप और नाम का ज्ञान होता है। ये बिना किसी कारण के उत्पन्न नहीं होते। और वह यह पहचान लेता है कि ये धर्म स्थायी नहीं हैं। इससे उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि ये दुःख हैं और किसी के भी वश में नहीं हैं। ये निस्वार्थ हैं।

वह चीजों को उत्पन्न होते और लुप्त होते देखता है। ये क्षणिक हैं, जिन्हें वह बाद में बस गुजरते हुए ही देख पाता है। जैसे ही वह उन्हें देखता है, वे गायब हो जाते हैं और वह भयभीत हो जाता है। क्योंकि वे सही चीजें नहीं हैं, इसलिए वह वैराग्य धारण कर लेता है। जैसे-जैसे उसका आसक्ति कम होती जाती है, वह मुक्ति पाने का प्रयास करता है और फिर से उन धर्मों पर चिंतन करने का प्रयास करता है जो उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं। तब वह संतुलन देखता है और किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता और उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में स्वीकार करता है।

जब व्यक्ति अच्छे अनुभव प्राप्त करता है, तो उसे क्रमिक ज्ञान प्राप्त होता है जो उसे मोक्ष की ओर ले जाता है। समस्त संसार में अनेक क्लेश हैं, इसलिए क्लेशों को दूर करने के लिए चार अलग-अलग चरण होते हैं। परिपक्व और पूर्ण ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों के मामले में ये चरण क्रमिक रूप से घटित हो सकते हैं, लगभग कुछ मिनटों से लेकर घंटों के भीतर। लेकिन परिस्थितियों के आधार पर, इन चार चरणों के घटित होने के विभिन्न तरीके हो सकते हैं।

जब चित्त को पहली बार पूर्ण स्थिरता और परम शांति या निर्वाण का अनुभव होता है, तो उस चित्त को सोतापत्ति मार्ग कुशल चित्त कहा जाता है। सोतापत्ति शब्द सोता और आपापत्ति से मिलकर बना है। सोता का अर्थ है नदी का प्रवाह और आपापत्ति का अर्थ है पहुंचना, प्राप्त करना, पहुंच पाना। मार्ग का अर्थ है पथ, सड़क, रास्ता। यह सोतापत्ति मार्ग कुशल चित्त कुल 89 चित्तों में से 82वां चित्त है। इस अवस्था को पार करने के बाद, मन में कोई गलत धारणा नहीं रह जाती और यह विचार भी समाप्त हो जाता है कि निर्वाण का अस्तित्व अटल और अपरिवर्तनीय है, यहां तक कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी। इसका अर्थ है कि उसने सभी संदेहों और गलत धारणाओं को दूर कर दिया है।

अगली बार जब वह निर्वाण का निःसंकोच करता है और निर्वाण को देखता है, तो प्रवाह में रहने के कारण उसका मौजूदा क्लेश कम हो जाता है। जब निर्वाण को देखने वाला यह नया चित्त उत्पन्न होता है, तो इसे निर्वाण दर्शन की दूसरी अवस्था कहा जाता है। इस नए चित्त को सकदागामी मार्ग कुशल चित्त कहा जाता है। यह 89 चित्तों में से 83वां चित्त है। सकदागामी शब्द 'सक' या 'सक्किम' से बना है जिसका अर्थ है एक बार और 'आगामी' का अर्थ है गम या मानव गांव या कामभूमि में आना। इसलिए जब उनकी मृत्यु होती है तो कामभूमि में वापस आने का केवल एक ही मौका होता है, यानी कामभूमि में एक बार पुनर्जन्म। इसका अर्थ है कि उसके बाद वे कभी कामभूमि में वापस नहीं आएंगे, बल्कि रूप ब्रह्मभूमि में जाएंगे यदि वे अभी भी अरहत नहीं हैं।

जब वह तीसरे चरण को पार कर लेता है और निर्वाण को देखता है, जैसा कि वह दो बार देख चुका होता है, यानी सोतापत्ति मार्ग चित्त और सकदागामी मार्ग चित्त में, तब वह क्लेशों को दूर करने के मामले में अधिक परिपक्व हो जाता है। इस बार, वह सभी काम राग और सभी घृणा या दोष को मिटा देता है। जब इस प्रकार का चित्त उत्पन्न होता है, तो इसे अनागामी मार्ग कुशल चित्त कहा जाता है। यह 89 चित्तों में से 84वां चित्त है। अनागामी, अना और आगमी से मिलकर बना है। इसलिए वह काम भूमि में वापस नहीं लौटेगा। जैसे ही ये अनागम मरते हैं, वे 5 शुद्धवास चतुत्थ ध्यान रूप ब्रह्म भूमियों में पुनर्जन्म लेंगे।

जब ये अनागम निर्वाण को फटकारते हैं और निर्वाण को देखते हैं, क्योंकि वे पहले ही तीन बार निर्वाण का दर्शन कर चुके हैं और परिपक्व एवं परिपूर्ण हो चुके हैं, तो वे शेष सभी क्लेशों का पूर्णतया उन्मूलन कर देते हैं। उनका सारा कार्य पूर्ण हो चुका होता है। उनका कार्य क्लेशों का निवारण करना है। जब यह निकटवर्ती चित्त निर्वाण के पास पहुँचता है और उसे देखता है, तो इसे अरहत मार्ग कुशल चित्त कहा जाता है। जैसे ही यह चित्त उत्पन्न होता है, जिस पुग्गला में यह चित्त उत्पन्न होता है, वह अरहत बन जाता है। यह अरहत मार्ग कुशल चित्त 89 चित्तों में से 85वाँ चित्त है।

जैसे ही मग्गा चित्त उत्पन्न होता है, वह लुप्त हो जाता है और उसके तुरंत बाद उसी स्तर का फल चित्त उत्पन्न होता है। इस प्रकार चार संगत चित्त होते हैं जो मग्गा कुशल चित्तों के परिणाम हैं और इन सभी को विपाक चित्त कहा जाता है। ये लोकउत्तरा विपाक चित्त हैं। अन्य विपाक चित्तों के विपरीत, ये पूर्णतः चेतन होते हैं और निर्वाण के प्रति अत्यंत आनंदमयी होते हैं क्योंकि निर्वाण किसी भी प्रकार के दुख से मुक्त होता है। ये चार चित्त हैं:

86. सोतापट्टी फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 87. सकादगामी फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 88. अनागामी फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 89. अरहट्टा फला लोकुत्तरा विपाक चित्त।

ये 89 चित्त, चित्त ही हैं और ये सभी मन के विषय हो सकते हैं तथा ये धम्मरम्मन हैं। इन 89 चित्तों से अधिक कुछ नहीं है। परन्तु विख्यात या ज्ञानी इन अंतिम 8 लोकउत्तर चित्तों को ध्यान चित्तों के संदर्भ में भी देखते हैं। यद्यपि 8 ध्यान हैं, ध्यान के अनुसार 5 स्तर हैं। अतः कुल 40 लोकउत्तर चित्त हैं (8 > 5 = 40)। इस प्रकार 81 + 40 = कुल 121 चित्त हैं।

81 लोकी चित्त हैं। 8 लोकुत्तारा चित्त हैं। लोकुत्तारा चित्त या अलौकिक चेतना को कभी-कभी झानों के संबंध में माना जाता है। यही कारण है कि जब ये लोकुत्तरा चित्त झाना के आसपास उत्पन्न होते हैं तो उन्हें लोकुत्तरा झाना चित्त कहा जाता है। 5 झान हैं. सभी अरूप झानों में झाना कारक के रूप में एकगाटा होता है और वे 5वें झाना में शामिल होते हैं। तो जैसे 8 लोकुत्तरा चित्त हैं, 40 लोकुत्तरा झना चित्त होंगे।

1. विटक्का, विचारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं सोतापट्टी मग्गा पथमज्जना लोकुत्तरा कुसल चित्त 2. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं सोतापत्ति मग्गा दुतियाज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता 3. पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं सोतापट्टी मग्गा पथमज्जना लोकुत्तरा कुसल चित्ता चित्त 4. सुखेकाग्गाता सहितं सोतापट्टी मग्गा कटुत्थज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता 5. उपेक्खेकाग्गाता सहितम् सोतापट्टी मग्गा पंचमज्झाना लोकुत्तरा कुसाला चित्ता

6. विटक्का, विचारा, पिटि, सुखेकागगता सहितं सोतापट्टी फल पथमज्जना लोकुत्तरा विपाक चित्त 7. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं सोतापत्ति फला दुतियाज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त 8. पिटी, सुखेकाग्गाता सहितं सोतापट्टी फला पथमज्जना लोकुत्तरा विपाका चित्ता 9. सुखेकागगता सहितं सोतापट्टी फल चतुत्थज्झाना लोकुत्तर विपाक चित्त 10. उपेक्खेकाग्गाता सहितं सोतापट्टी फला पंचमज्झाना लोकुत्तरा विपाक चित्त

11. वितक्क, विचारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितं सकादगामी मग्गा पथमज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्त 12. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं सकादागामी मग्गा दुतियाज्झाना लोकुत्तरा कुसाला चित्त 13. पिति, सुखेकाग्गाता सहितम् सकादागामी मग्गा ततियाज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता 14. सुखेकाग्गाता सहितं सकादगामी मग्गा चतुत्थाज्हाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता 15. उपेक्खेकाग्गाता सहितं सकदागामी मग्गा पंचमज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता

16. वितक्क, विचारा, पिति, सुखेकागगता सहितं सकादगामी फल पथमज्झाना लोकुत्तरा विपाक चित्त 17. विकारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितं सकादागामी फल दुतियाज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त 18. पिति, सुखेकाग्गाता सहिताम् सकादागामी फला ततियाज्झाना लोकुत्तरा विपाक चित्त 19. सुखेकागगत सहितं सकादगामी फल चतुत्थज्झाना लोकुत्तरा विपाक चित्त 20.उपेक्खेकागगत सहितं सकड़गामी फल पंचमज्झाना लोकुत्तरा विपाक चित्त

21. विटक्का, विचारा, पिति, सुखेकाग्गाता सहितम् अनागामी मग्गा पथमज्जना लोकुत्तरा कुसल चित्त 22. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितम् अनागामी मग्गा दुतियाज्झाना लोकुत्तरा कुसाला चित्त 23. पिति, सुखेकाग्गाता सहितम् अनागामी मग्गा ततियाज्हाना लोकुत्तरा कुसाला चित्त 24. सुखेकागगत सहितम् अनागामी मग्गा चतुत्थज्झाना लोकुत्तरा कुसाला चित्ता 25. उपेक्खेकाग्गाता सहितम् अनागामी मग्गा पंचमज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता

26. विटक्का, विचारा, पिति, सुखेकागगत सहितं अनागामी फल पथमज्जना लोकुत्तरा विपाक चित्त 27. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितम् अनागामी फल दुतियाज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त 28. पिटि, सुखेकाग्गाता सहितम् अनागामी फल ततियाज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त 29. सुखेकागगता सहितं अनागामी फल चतुत्थज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त 30.उपेक्खेकाग्गाता सहितम् अनागामी फल पंचमज्झाना लोकुत्तरा विपाका चित्त

31। कुसल चित्त 34. सुखेकागगत सहितम् अरहट्टा मग्गा चतुत्थज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्त 35. उपेक्खेकाग्गता सहितम् अरहट्टा मग्गा पंचमज्झाना लोकुत्तरा कुसल चित्ता

36. विटक्क, विचारा, पिटि, सुखेकागगता सहितं अरहट्टा फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 37. विकारा, पिटि, सुखेकाग्गाता सहितं अरहट्टा फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 38. पिटी, सुखेकाग्गाता सहितं अरहट्टा फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 39. सुखेकागगाता सहितं अरहट्टा फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 39. फला लोकुत्तरा विपाक चित्त 40.उपेक्खेकागगत सहितं अरहत्ता फला लोकुत्तरा विपाक चित्त।

81 लोकी चित्तों के साथ कुल मिलाकर 121 चित्त होते हैं। चित्त इन चित्तों को अपना विषय बना सकता है। अतः सभी 121 चित्त, चित्त के अरम्मन या विषय हो सकते हैं और इन्हें मन का विषय या धम्मरम्मन कहा जाता है।

कुछ अरम्मनाएँ या वस्तुएँ विशिष्ट चित्तों के लिए होती हैं। पाँच वस्तुएँ भौतिक वस्तुएँ हैं और इन्हें पाँच इंद्रियाँ कहा जाता है। ये हैं रूपारम्मना (दृष्टि), सद्दारम्मना (ध्वनि), गंधारम्मना (सूंघना), रसारम्मना (स्वाद) और फोत्तब्बारम्मना (स्पर्श)। छठी अरम्मना या छठी वस्तु मन की वस्तु है। इसे धम्मरम्मना या मन की वस्तु कहा जाता है।

पिछले पृष्ठों में 5 पसदा रूप, 16 सुखुम रूप या 16 सूक्ष्म पदार्थ और 89 चित्तों पर अरम्मन के रूप में चर्चा की गई है। अन्य धर्म भी हैं जो धम्मरम्मन या मन के विषय के रूप में कार्य करते हैं। ये चेतसिक या मानसिक कारक हैं। हमारे दैनिक जीवन में, हम इन चेतसिकों के संपर्क में आते हैं। उदाहरण के लिए क्रोध, प्रसन्नता, अहंकार, लोभ आदि।

चेतसिकाएँ चित्त से संबंधित होती हैं, इसलिए इन्हें चेतसिकाएँ कहा जाता है। ये मानसिक कारक अपने संबंधित चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं और चित्त के विलुप्त होने पर विलुप्त हो जाते हैं। ये मानसिक कारक उसी वस्तु को ग्रहण करते हैं जिसे चित्त ग्रहण करता है। ये सभी उसी वस्तु पर आधारित होते हैं जिस पर चित्त निर्भर करता है या जिसमें चित्त निवास करता है।

ये चेतसिक पृथक सत्ताएँ नहीं हैं। वे हमेशा चित्त में विलीन हो जाते हैं, जिसके साथ वे उत्पन्न होते हैं। वे अविभाज्य हैं। यद्यपि वे अविभाज्य हैं, फिर भी चित्त के कार्य करते समय उन सभी की अपनी-अपनी विशेषताएँ और विशिष्ट कार्य होते हैं। इसलिए इन चेतसिकों या मानसिक कारकों का अलग से अध्ययन करना आवश्यक है। यद्यपि वे चित्त के मिश्रण से अविभाज्य हैं जो मानसिक क्षमताओं की एक सेना का निर्माण करते हैं, फिर भी वे पृथक परमत्थ धम्म हैं क्योंकि उनके अपने लक्षण और कार्य होते हैं।

कुल मिलाकर 52 चेतसिकाएँ हैं। यद्यपि 52 चेतसिकाएँ हैं, वे सभी कभी एक साथ प्रकट नहीं होतीं। चेतसिकाओं के विभिन्न वर्ग हैं और ये वर्ग कभी-कभी एक साथ कार्य करते हैं। चेतसिकाएँ या मानसिक कारक वे धम्म हैं जो चित्त को अपना कार्य करने में सहायता करते हैं। वे चित्त को उनके कार्यों के बारे में सलाह देते हैं और चित्त को उनका वर्णन करते हैं, जो सभी मानसिक शक्तियों का राजा या नेता है।

52 चेतसिकों में से 7 चेतसिक ऐसे हैं जो किसी भी चित्त के लिए सार्वभौमिक हैं और सभी चित्तों में पाए जाते हैं, चाहे वे अकुशल हों, कुशल हों, विपाक हों या क्रियाशील हों। चेतसिक यहाँ राजा चित्त के सेवकों के समान हैं। अतः इन 7 सार्वभौमिक चेतसिकों या सार्वभौमिक मानसिक कारकों को राजा चित्त के स्थायी सेवक कहा जा सकता है। यहाँ मैं इन्हें स्थायी इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि ये चेतसिक प्रत्येक क्षणिक रूप से विद्यमान होकर क्षणभंगुर हो जाते हैं, फिर भी एक ही कार्य को निरंतर करते हैं। स्थायी कहना शायद उपयुक्त न हो, लेकिन प्रत्येक चित्त के साथ इनका उद्भव इन्हें राजा चित्त के स्थायी सेवक बना देता है।

इन्हें सब्बाचित्तसाधारण चेतसिक कहा जाता है। सब्बा का अर्थ है सभी, और साधारण का अर्थ है हमेशा। ये 7 चेतसिक हैं

1. फस्सा या संपर्क 2. वेदना या भावना 3. चेतना या इच्छाशक्ति 4. सन्ना या बोध 5. एकाग्गता या एकाग्रता 6. जीवंतिन्द्रिय या मानसिक जीवन 7. मानसिक या ध्यान

संपर्क या फास्सा एक चेतसिका है। यह किसी भी चित्त के साथ उत्पन्न होता है। इसका कार्य चित्त के साथ अरम्मन और अन्य संबंधित चेतसिकाओं को जोड़ना है। यह संपर्क स्थापित करता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण लोहे की छड़ से पत्थर पर प्रहार करने में देखा जा सकता है। यहाँ पत्थर चक्खुप्पसाद रूप का प्रतिनिधित्व करता है। लोहे की छड़ रूपारम्मन का प्रतिनिधित्व करती है। जब लोहे पर पत्थर से प्रहार किया जाता है तो चिंगारियाँ उत्पन्न होती हैं। जब चक्खुप्पसाद रूप पर रूपारम्मन से प्रहार किया जाता है तो चक्खुविन्नन चित्त चिंगारियों के रूप में उत्पन्न होता है। चिंगारियाँ लोहे की छड़ और पत्थर की सतह के मिलन बिंदु पर उत्पन्न होती हैं। ये तीनों चीजें आपस में मिलती हैं। चक्खुविन्नन चित्त के उत्पन्न होने पर भी ऐसा ही होता है। रूपारम्मन, चक्खु पसदा और चक्खुविन्नन चित्त सभी एक ही बिंदु पर मिलते हैं। यह मिलन फास्सा या संपर्क द्वारा होता है।

किसी भी चित्त में जब फस्सा उत्पन्न होता है, तो हमेशा संपर्क स्थापित होता है। पतिसंधि चित्त के उत्पन्न होते ही फस्सा उत्पन्न हो जाता है। यह फस्सा या संपर्क, पतिसंधि चित्त और अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकाओं के साथ पिछले जन्म के मरण असन्न जावना चित्तों के अरम्मन से मिलने की विशेष व्यवस्था करता है। जब भावांग चित्त उत्पन्न होते हैं, तो फस्सा उत्पन्न होता है और भावांग चित्त और उनके साथ मौजूद चेतसिकाओं के साथ उसी अरम्मन से संपर्क स्थापित करता है। जब कोई प्राणी अस्तित्वहीन हो जाता है, तो मृत्यु से ठीक पहले एक चित्त उत्पन्न होता है जिसे चुति चित्त कहते हैं। उस समय, फस्सा उसी अरम्मन से संपर्क स्थापित करता है जैसा कि पतिसंधि चित्त और भावांग चित्तों के मामले में होता है। जब विति चित्त उत्पन्न होते हैं, तो प्रत्येक विति चित्त में चेतसिका के रूप में फस्सा होता है। फस्सा या संपर्क के बिना, चित्त कभी उत्पन्न नहीं होगा और चित्त द्वारा अरम्मन का कभी पता नहीं चलेगा।

वेदना एक अन्य चेतसिक है। यह भावना है। यह चित्त को अरम्मन का अनुभव करते समय उसे महसूस करने का निर्देश देती है। अरम्मन का ज्ञान या अरम्मन की जागरूकता चित्त का कार्य है। जब चित्त अरम्मन के प्रति जागरूक होता है, तब वेदना या भावनात्मक

मानसिक कारक राजा चित्त को अरम्मन का अनुभव करते समय महसूस करने का निर्देश देते हैं। वेदना अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकों को भी चित्त के साथ महसूस करने में सहायता करती है। भावना के बारे में सभी जानते हैं। भावना एक चेतसिक है। यह वेदना की विशेषता है और कोई अन्य चेतसिक यह कार्य नहीं कर सकती। अन्य चेतसिकों के साथ कुछ भ्रम हो सकता है जो भावना का कार्य नहीं करते हैं। लेकिन इन पर चर्चा तब की जाएगी जब हम आगे बढ़ेंगे। उदाहरण के लिए, मुदिता या सहानुभूतिपूर्ण आनंद, मेट्टा या प्रेमपूर्ण दया, करुणा या करुणा, पीति या आनंद आदि।

चेतना एक चेतसिका है। यह संकल्प है। यह राजा चित्त को अपना कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और साथ ही अन्य सह-उत्पन्न चेतसिकाओं को भी अपना कार्य करने का निर्देश देती है। इसका प्रेरक प्रभाव होता है। चेतना राजा चित्त को याद दिलाती है कि उसे अपना कार्य करना है, अर्थात् वस्तु को ग्रहण करना, वस्तु को जानना और उसके आरंभिक या विषय के प्रति सजग रहना। चेतना के बिना चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। चेतना ही सभी क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है क्योंकि वह निरंतर प्रेरित और प्रोत्साहित करती है। इसके प्रोत्साहन के बिना चित्त और अन्य संबंधित चेतसिकाएँ कुछ भी नहीं करेंगी और चेतना चेतसिका के बिना वे उत्पन्न भी नहीं होंगी। यह चेतना वास्तव में चित्त और अन्य चेतसिकाओं तथा चित्तज रूपों के लिए सहज कर्म पच्चया या सह-उत्पन्न कर्म स्थितियों के रूप में कार्य करती है।

सन्ना एक अन्य चेतसिका है। उसका कर्तव्य अरम्मना को चिह्नित करना है। वह राजा चित्त को भी सलाह देता है कि वे साथ में अनुभव की गई अरम्मना को चिह्नित करें। सन्ना बोध है। यह अरम्मना को देखता है और उस पर अंकित चिह्नों को जानता है। जब वह राजा चित्त को देखने की सलाह देता है, तो चित्त अरम्मना के प्रति सजग रहते हुए उस चिह्न को भी देखता है। बार-बार होने वाले इस बोध से स्मृतियाँ बनती हैं। सन्ना हमेशा किसी भी चित्त के साथ उत्पन्न होता है। सन्ना के बिना चित्त अलग से उत्पन्न नहीं हो सकता। अरम्मना या वस्तु पर अंकित चिह्नों के माध्यम से सन्ना उत्पन्न होता है। यह सन्ना चित्त के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे ही चित्त उत्पन्न होता है, वह अरम्मना पर अंकित चिह्नों को देखते हुए उत्पन्न होता है। इन चिह्नों के माध्यम से सन्ना का अतीत के सन्नाओं से संबंध बनता है और ये सभी अरम्मना पर विशिष्ट चिह्नों के आधार पर स्मृति का एक खंड बनाते हैं।

एकाग्रता या एकाग्रचित्तता, चित्त के राजा के सार्वभौमिक मानसिक कारकों या स्थायी सेवकों के समूह में एक अन्य चेतसिका है। एकाग्रता चित्त नहीं है। यह चित्त के साथ उत्पन्न होने वाली चेतसिका है। यह चित्त को स्थिर रहने का निर्देश देती है। यह चित्त को एक बिंदु पर स्थिर होने का निर्देश देती है। जब चित्त कामवाचार महाकुशल चित्त होते हैं, तो उन चित्तों में एकाग्रता चेतसिकाएं अच्छे मानसिक कारक होती हैं। जब वे महाकुशल चित्त एक ही विषय को बार-बार ग्रहण करते हैं, तो उन चित्तों में एकाग्रता को समाधि कहा जाता है।

जीवितेंद्रिय सात सार्वभौमिक मानसिक कारकों में से एक है, जो चित्त राजा के सात स्थायी सेवकों में से एक है। यह मानसिक जीवन है। यह चित्त और उससे संबंधित मानसिक चेतसिकाओं को जीवन शक्ति के रूप में सहारा देता है। जीवितेंद्रिय के बिना चित्त और अन्य चेतसिकाएँ उत्पन्न नहीं हो सकतीं। जीवितेंद्रिय सभी 89 चित्तों या 89 प्रकार की चेतनाओं में से प्रत्येक के साथ हमेशा उत्पन्न होता है।

मनसिकारा एक चेतसिका है और यह ध्यान का प्रतीक है। यह एक वस्तु पर केंद्रित रहता है। यह मार्गदर्शक है। जब यह उत्पन्न होता है, तो यह एक वस्तु पर ही केंद्रित रहता है और किसी अन्य वस्तु की ओर विचलित नहीं होता। यह 89 चित्तों में से प्रत्येक के साथ उत्पन्न होता है। मनसिकारा चित्त को निर्देशित करता है कि वह सीधे उस वस्तु की ओर जाए, न कि उस वस्तु के अलावा किसी अन्य वस्तु की ओर। यह एक मार्गदर्शक की तरह है। इस चेतसिका मनसिकारा द्वारा ही ध्यान उत्पन्न होता है।

छह चेतसिकाएं हैं जो अनेक चित्तों के साथ लचीले ढंग से कार्य करती हैं। ये विशेष मानसिक कारक या राजा चित्तों के लचीले सेवक हैं। ये हैं: वितक्का (प्रारंभिक क्रिया), विचार (निरंतर क्रिया), पीति (आनंद), वीर्य (प्रयास), चंदा (इच्छा) और अधिमोक्खा (निर्णय)। जब ये कुशल चित्तों के साथ उत्पन्न होती हैं, तो कुशल चेतसिकाएं बन जाती हैं। लेकिन जब ये अकुशल चित्तों के साथ उत्पन्न होती हैं, तो अकुशल चेतसिकाएं बन जाती हैं। इसलिए इन्हें राजा चित्त के लचीले सेवक कहा जाता है।

विटक्का एक सिटासिका है और यह प्रारंभिक अनुप्रयोग है। यह वस्तु पर चित्त लगाता है। यह चित्त को वस्तु पर लगाने की सलाह देता है। यह चित्त को धकेलता है और चित्त को वस्तु की ओर जाना पड़ता है जैसा कि विटक्का सलाह देता है। विटक्का विभिन्न प्रकार के होते हैं। काम विटक्का या कामुक विचार, ब्यापदा विटक्का या विनाशकारी विचार, विहिंसा विटक्का या यातना देने वाले विचार, झना विटक्का जो झाना का एक हिस्सा है और यह झाना वस्तुओं पर कुसल चित्त लागू करता है। और अभी भी मग्गा विटक्का और फला विटक्का हैं और उन्हें नोबल अष्टांगिक पथ का सम्मा संकप्पा कहा जाता है।

विचार, वितक्का का मित्र है। विचार निरंतर क्रिया है। जब किसी वस्तु पर क्रिया निरंतर बनी रहती है, तो चित्त उससे दूर नहीं होता। वितक्का किसी वस्तु को पीछे से धक्का देने के समान है, जबकि विचार वस्तु के केंद्र से खींचने के समान है और बल को बनाए रखते

हुए चित्त को वस्तु की ओर आकर्षित करता है। वितक्का और विचार एक साथ काम करते हैं। इन दो चेतसिक गुणों के लिए अनेक उपमाएँ हैं। जब घंटी बजाई जाती है, तो प्रारंभिक ध्वनि वितक्का के समान होती है और घंटी का बजना विचार के समान होता है। विचार बार-बार वस्तु को ग्रहण करता है और उसकी समीक्षा करता है। जब कोई पक्षी जमीन पर विश्राम करते हुए आकाश में उड़ता है, तो पंखों का प्रारंभिक फड़फड़ाना वितक्का के समान होता है और आकाश में निरंतर फड़फड़ाना विचार के समान होता है। इसके अलावा भी अनेक उपमाएँ हैं।

पीति एक चेतसिका है। यह आनंद है। यह समानता है। यह रुचि है। यह चित्त को विषय का आनंद लेने का सुझाव देती है और पीति के कारण चित्त विषय को पसंद करता है। पीति चित्त और अन्य सभी मानसिक शक्तियों को तरोताज़ा करती है। यह चित्त और चेतसिकाओं को ऊर्जा प्रदान करती है। पीति की उपस्थिति में, चित्त और चेतसिकाओं सहित सभी मानसिक शक्तियां प्रसन्न और आनंदित हो जाती हैं। पीति की सबसे निम्न अवस्था समानता है। पीति की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। ये हैं: थोड़ी रुचि या कुद्दिका पीति, क्षणिक आनंद या खानिका पीति, आनंद का उतार-चढ़ाव या ओकांतिका पीति, रोमांचकारी भावना या परमानंद या उब्बेगा पीति, और व्याप्त आनंद या परमानंद या फराना पीति।

वीरय एक मानसिक कारक है। यह चित्त को प्रयास करने का निर्देश देता है। वीरय वह प्रयास है जो वस्तु से हटे बिना उस पर केंद्रित रहता है। जब वीरय उत्पन्न होता है, तो चित्त और उससे संबंधित सभी चेतसिकाओं में पूर्ण शक्ति आ जाती है और वे सभी वस्तु से हटे बिना एक साथ कार्य करते हैं। वीरय अधिकांश 89 चित्तों में उत्पन्न होता है। अपवाद 10 पंचविन्नन चित्त हैं, जहाँ वीरय की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वहाँ पहले से ही तीन चीजों, अर्थात् रूपरामन्न या दृश्य वस्तु, चक्खुप्पसाद या आँख और चक्खुविन्नन चित्त, पर प्रभाव पड़ता है। ये बिना किसी प्रयास के होते हैं। चक्खुविन्नन चित्त से पहले आने वाले पंचद्वरवज्जन चित्त को भी इसी कारण से वीरय की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार 2 सम्पतीच्छन चित्त और 3 सन्तिरण चित्त को भी। अतः वीरय 73 या 89 चित्तों में उत्पन्न होना आवश्यक है। मनोद्वरवज्जन चित्त को वीरय की आवश्यकता होती है क्योंकि उसे वस्तु का चयन करना होता है। अन्य चित्त भी ऐसा ही करते हैं।

चंदा एक चेतसिका है और यह चित्त को लक्ष्य की कामना करने का निर्देश देती है। चंदा में प्रेरक शक्ति होती है। चंदा या कामना चार अधिपति धर्मों में से एक है, अर्थात् चंदा अधिपति, चित्त अधिपति, वीर्य अधिपति और विमांश अधिपति या पन्ना। अधिपति धर्म एक सम्राट की तरह व्यवहार करता है। इसका अर्थ है कि जब वे प्रबल होते हैं, तो वे किसी भी अन्य धर्म का नेतृत्व करते हैं। चंदा चार इद्धिपादों या सफलता के आधारों में से एक है। धर्म की विषयवस्तु अधिपति धर्म के समान ही होती है। चंदा के बिना कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह चेतसिका चंदा लोभ नहीं है। यद्यपि लोभ हमेशा चंदा के साथ उत्पन्न होता है, चंदा हमेशा लोभ के साथ उत्पन्न नहीं होता। जब चंदा अलोभ के साथ उत्पन्न होता है, तो वह सम्म चंदा बन जाता है।

अधिमोक्खा, राजा चित्त के छह विशिष्ट मानसिक कारकों या छह लचीले मंत्रियों में से एक चेतसिका है। यह राजा चित्त को विषय पर निर्णय लेने में मार्गदर्शन करता है। अधिमोक्खा की उपस्थिति में, चित्त स्पष्ट रूप से विषय पर निर्णय लेता है। अधिमोक्खा की अनुपस्थिति में, चित्त विषय पर निर्णय नहीं ले पाता और इस प्रकार के चित्त जिनमें अधिमोक्खा नहीं होता, अनिर्णय की स्थिति में आ जाते हैं। दस पंचविन्नन चित्तों में अधिमोक्खा की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि निर्णय लेने के लिए कुछ होता ही नहीं। विचित्र चित्त में, अधिमोक्खा नहीं होता और तब चित्त को यह ज्ञात नहीं होता कि विषय सही है या गलत, और चित्त डगमगाने लगता है।

वस्तुएँ मौजूद हैं। चित्त या चेतना इन वस्तुओं को जानती हैं। लेकिन प्रत्येक विशिष्ट चित्त की अपनी उपयुक्त वस्तु होती है। वस्तुएँ छह प्रकार की होती हैं। पहली पाँच वस्तुओं का वर्णन किया जा चुका है। छठी प्रकार की वस्तु मन की वस्तु है। इन्हें सामूहिक रूप से धम्मरम्मन कहा जाता है। इनमें शामिल हैं: 1. पाँच पसद रूप, 2. 16 सुखुम रूप, 3. 89 चित्त या 89 चेतनाएँ, 4. 52 चेतसिक, 5. निर्वाण और 6. पन्नत्ति।

52 चेतसिकों में से, 7 सार्वभौमिक मानसिक कारकों और 6 विशिष्ट मानसिक कारकों की व्याख्या पिछले पृष्ठ पर की जा चुकी है। इन 13 चेतसिकों को सामूहिक रूप से अन्नसमना चेतसिक कहा जाता है। अन्न या अनेहि का अर्थ है व्यवहार करना। समना का अर्थ है सहमत होना, बराबर होना, उपयुक्त होना या अनुकूलित होना। अतः दोनों ही अकुशल या कुशल चेतसिकों के अनुकूल हैं। 14 मानसिक कारक ऐसे हैं जो पूरी तरह से अकुशल हैं।

वे हैं

ए) 4 मोह जड़ वाले चेतसिका

1. मोह (अकुशल राजा) 2. अहिरिका (अकुशल राजा का दाहिना हाथ) 3. अनोत्तप्पा (अकुशल राजा का बायां हाथ) 4. उद्धच्च (अकुशल राजा का सचिव)

बी) 3 लोभ जड़ वाले चेतसिका

1. लोभ (लोभ चित्तों का राजा) 2. माना (लोभ राजा की रानी) 3. दिठ्थी (लोभ राजा की एक अन्य रानी)

सी) 4 डोसा जड़युक्त सेतासिका

1. डोसा (डोसा चित्तों का राजा) 2. इस्सा (डोसा राजा की पहली जुड़वां रानी) 3. मच्छरिया (डोसा राजा की दूसरी जुड़वां रानी) 4. कुक्कुच्चा (जुड़वां रानियों की बहन)

D) 3 अनिर्दिष्ट अकुशल चेतसिका (इनमें मोह मूल के रूप में मौजूद है)

1. थिना (मिद्धा का मित्र) 2. मिद्धा (थिना का मित्र) 3. विसीकिच्चा (डाउनटोनर)

मोह एक चेतसिका या मानसिक कारक है। मोह स्वयं चेतना नहीं है। परन्तु जब यह चित्त के साथ उत्पन्न होता है, तो यह वास्तविकताओं और सत्यों को इस प्रकार ढक लेता है कि चित्त उन्हें देख न सके। मोह चित्त को भ्रमित होने की सलाह देता है। मोह अंधकार के समान है। इसकी उपस्थिति में सत्य कभी प्रकट नहीं हो सकता।

अहिरिका एक मानसिक कारक है। यह एक प्रकार का अवरोधहीनता है। यह अनैतिकता है। अहिरिका राजा चित्त को लज्जित न होने की सलाह देती है। यह अवरोध को दूर करती है। अवरोध संभावित लज्जाजनक परिणामों का कारण बनता है। लेकिन अहिरिका की उपस्थिति में, क्योंकि अब कोई लज्जा नहीं रहती, सभी अकुशल कार्य बिना किसी अवरोध के किए जा सकते हैं।

अनोत्तप्पा एक मानसिक शक्ति है और यह अकुशल राजा मोह का वामपंथी पक्ष है। यह अहिरिका की तरह ही एक प्रकार का अवरोध-मुक्ति है। यह अवरोध को दूर करता है। वह अवरोध संभावित भयानक परिणामों का कारण बन सकता है। लेकिन अनोत्तप्पा की उपस्थिति में, भय का अभाव होने के कारण, सभी अकुशल क्रियाएं बिना किसी अवरोध के की जा सकती हैं।

उद्धच्चा एक मानसिक तत्व है और जब यह उत्पन्न होती है, तो यह राजा चित्त को विचलित होने की सलाह देती है। उद्धच्चा एक सचिव की तरह है और वह हमेशा अकुशल राजा मोह का अनुसरण करती है। उद्धच्चा, मोह, अहिरिका और अनोत्तप्पा के साथ मिलकर सार्वभौमिक अकुशल चेतसिकों का कार्य करती है। वे प्रत्येक अकुशल चित्त के साथ उत्पन्न होती हैं।

लोभ राज्य के चित्तों में, इन लोभ मूल चित्तों के चेतसिकाओं में, लोभ चेतसिका राजा होता है और वह अन्य संबंधित मानसिक कारकों का नेतृत्व करता है। इस लोभ राजा की दो रानियाँ होती हैं, जिनका नाम है मन चेतसिका और दिठ्ठी चेतसिका। राजा कभी भी दोनों रानियों के साथ एक ही समय में नहीं रहता।

लोभ एक चेतसिका या मानसिक कारक है। जब यह उत्पन्न होता है, तो यह महान राजा चित्त को सलाह देता है, जो इस विषय में सभी मानसिक शक्तियों का नेतृत्व करता है, कि राजा चित्त को उस वस्तु से लगाव रखना चाहिए जिसका वे सामना कर रहे हैं या जिसे वे ग्रहण कर रहे हैं। लोभ आसक्ति है और यह बहुत शक्तिशाली है तथा वस्तु की ओर आकर्षित करती है। जब यह मोह चेतसिका के साथ कार्य करता है, जो सत्य के प्रकाश को आवरण प्रदान करता है, तो लगभग सभी प्राणी उन वस्तुओं की ओर आकर्षित होते हैं जिनसे लोभ को अत्यधिक लगाव होता है।

जब लोभ राजा किसी रुचि की वस्तु की खोज में जाता है, तो उसकी एक रानी उसके पीछे-पीछे जाती है। मन एक चेतसिका या मानसिक कारक है और जब यह जागृत होती है, तो यह महान राजा चित्त को अभिमानी होने की सलाह देती है। मन अहंकार है। मन घमंड है। मन अभिमान है। मन उच्चता है। मन मोह चेतसिका और लोभ चेतसिका के साथ कार्य करती है। जबकि मोह सत्य के प्रकाश को ढक लेता है और लोभ मन सहित सभी मानसिक कारकों को वस्तु की ओर आकर्षित करता है, मन ऐसा व्यवहार करती है मानो वह सबसे शक्तिशाली हो।

जब मन की अनुपस्थिति में लोभ राजा किसी रुचि की वस्तु की खोज में जाता है, तो रानी दिठ्ठी राजा लोभ का अनुसरण करती है। दिठ्ठी एक चेतसिका या मानसिक कारक है। जब यह उत्पन्न होती है, तो यह महान राजा चित्त को गलत दृष्टिकोण से चीजों को देखने की सलाह देती है। दिठ्ठी के कारण, चित्त उस वस्तु को गलत तरीके से समझ लेता है जो वास्तव में उसके अनुमान के अनुरूप नहीं होती। यह चेतसिका दिठ्ठी मोह चेतसिका और लोभ चेतसिका के साथ मिलकर कार्य करती है।

दोष राज्य के चित्तों में, इन दोष मूल चित्तों में स्थित चेतसिकाओं में, दोष चेतसिका राजा हैं और वे अन्य संबद्ध चेतसिकाओं का नेतृत्व करते हैं। इस दोष राज्य में, राजा दोष की तीन रानियाँ हैं। लेकिन ये तीनों रानियाँ कभी भी राजा दोष के साथ एक साथ प्रकट नहीं होतीं।

राजा दोष इनमें से किसी भी रानी के बिना जा सकते हैं। ये तीनों रानियाँ जुड़वाँ बहनें ईसा चेतसिका और मच्छरिया चेतसिका और उनकी छोटी बहन उद्दच्च चेतसिका हैं।

दोष एक चेतसिका है और जब यह उत्पन्न होता है तो महान राजा चित्त को आक्रामक होने की सलाह देता है। दोष की सलाह से राजा चित्त व्याकुल और उत्तेजित हो जाते हैं। इस प्रकार दोष राजा चित्त के विनाशकारी मंत्रियों की सेना का नेता भी है। दोष घृणा, नफरत, अस्वीकार्यता, अधीरता का प्रतीक है और इसमें अनेक गुण समाहित हैं। संक्षेप में, यह घृणा और नापसंदगी से भरा एक उपद्रव है।

ईसा एक चेतसिका है और जब यह उत्पन्न होती है, तो यह महान राजा चित्त को उन लोगों से घृणा करने की सलाह देती है जिन्हें वह धन, सफलता, पद, प्रतिष्ठा, संपत्ति आदि अनेक गुणों में अपने से श्रेष्ठ समझता है। ईसा ईर्ष्या है। यह जलन है। यह नहीं चाहती कि दूसरों के पास बेहतर गुण, बेहतर उपलब्धि, बेहतर पद या बेहतर संपत्ति हो।

दूसरी ओर, मच्छरिया अपने गुणों को छुपाता है। वह नहीं चाहता कि कोई और उसकी संपत्ति और धन का उपयोग करे। मच्छरिया एक चेतसिका है, जो कंजूसी का प्रतीक है, और जब मच्छरिया चेतसिका जागृत होती है, तो वह महान राजा चित्त को भी कंजूस होने की सलाह देती है। मच्छरिया अपनी संपत्ति के उपयोग में दूसरों को शामिल नहीं होने देता।

राजा दोसा की तीसरी रानी कुक्कुच्चा है। कुक्कुच्चा एक चेतसिका है और चिंता का प्रतीक है। जब यह उत्पन्न होती है, तो कुक्कुच्चा चेतसिका महान राजा चित्त को चिंतित होने की सलाह देती है। कुक्कुच्चा उन कार्यों के बारे में चिंतित होती है जो नहीं किए गए हैं जबकि वास्तव में किए जाने चाहिए थे। कुक्कुच्चा उन कार्यों के बारे में भी चिंतित होती है जो किए गए हैं जबकि वास्तव में नहीं किए जाने चाहिए थे। चूंकि सब कुछ हो चुका है, इसलिए इस प्रकार की चिंता को बढ़ाना अच्छा नहीं है और कुक्कुच्चा या चिंता को बढ़ाना एक अकुशल चेतसिका है।

तीन अन्य चेतसिका भी हैं जो महान राजा चित्त के विनाशकारी मंत्री हैं। इनमें दो घनिष्ठ मित्र थिना और मिद्धा तथा एक विचिकिच्च चेतसिका शामिल हैं। थिना आलस्य का प्रतीक है। यह चित्त की सुस्ती है और जब यह उत्पन्न होती है, तो राजा चित्त को भी सुस्त और अपेक्षाकृत कम सक्रिय होने की सलाह देती है। मिद्धा एक चेतसिका है जो मानसिक सुस्ती का प्रतीक है और जब यह उत्पन्न होती है तो आलस्य का कारण बनती है। मिद्धा हमेशा अपने मित्र थिना के साथ ही प्रकट होता है।

वहाँ राजा चित्त का एक विनाशकारी मंत्री रह गया था। यह विचिचिच्च चेतसिका है। विचिचिच्च एक ऐसी चेतसिका है जो अनिर्णय का प्रतीक है। यह किसी विषय पर निर्णय लेने में असमर्थता है। यह संदेह और शंका है। अन्य अकुशल चेतसिकाओं के विपरीत, जो बहुतायत में पाई जाती हैं, विचिचिच्च हमेशा उत्पन्न नहीं होती और न ही बार-बार उत्पन्न होती है। लेकिन जब यह उत्पन्न होती है, तो यह महान राजा चित्त को निर्णय लेने में थका देती है, क्योंकि इस विनाशकारी मंत्री के कारण राजा चित्त किसी विषय पर निर्णय नहीं ले पाते।

वस्तुओं या अरम्मन धम्म में, पहले पांच रूप धम्म हैं और वे 5 भौतिक इंद्रियां हैं जैसे प्रकाश, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श। 6वीं वस्तु या 6ठी इंद्रिय या 6ठी अरम्मना को धम्मरम्मना कहा जाता है और उनमें 5 पसादा रूप, 16 सुखुमा रूप, 89 चित्त, 1 निब्बान, 1 पन्नत्ती और 52 सीतासिका शामिल हैं। 52 चेतसिकों में से जो धम्मरम्मना के रूप में काम कर सकते हैं, 7 सार्वभौमिक मानसिक कारक, 6 विशेष मानसिक कारक और 14 अकुसाला चेतसिक या अस्वास्थ्यकर मानसिक कारकों पर पिछले पृष्ठों में चर्चा की गई है।

इसके अलावा 25 और चेतसिक या 25 मानसिक कारक हैं जो धम्मरम्मन के रूप में कार्य कर सकते हैं। इन 25 चेतसिकों में से 19 चेतसिक सभी प्रकार के शोभन चित्तों या सभी प्रकार की सुंदर चेतना के लिए सार्वभौमिक हैं। यदि किसी चित्त में ये 19 चेतसिक नहीं हैं, तो वह चित्त सुंदर चेतना नहीं है, जिसमें अरहतों का प्रसन्न मन भी शामिल है। इन 19 सार्वभौमिक शोभन चेतसिकों का नेतृत्व सद्ध चेतसिक करते हैं। आसान पहचान और स्मरण के लिए, इन 19 चेतसिकों को 2 समूहों में बांटा जा सकता है। दोनों समूहों में सद्ध चेतसिक शामिल होंगे, क्योंकि वे ही नेतृत्व करते हैं।

वास्तव में ये 19 चेतसिक कभी अलग नहीं हो सकते क्योंकि वे हमेशा एक शोभना चित्त में मिलकर काम करते हैं। ये दो समूह महान राजा चित्त की सेना और नौसेना हैं। सेना में सद्ध चेतसिक सेनापति और नेता होते हैं। नौसेना में भी सद्ध नौसेना के एडमिरल और नेता होते हैं। इस प्रकार चेतसिकों के दोनों समूहों में कुल 10 चेतसिक होते हैं। प्रत्येक समूह में 2 चेतसिक उप-नेता होते हैं और वे नेता सद्ध के बाद दूसरे स्थान पर होते हैं। यह स्मरण में आसानी के लिए है। प्रत्येक समूह में 2 सचिव होते हैं। इस प्रकार नेता, सचिव और 2 उप-नेताओं के बाद 6 अनुयायी बचते हैं। प्रत्येक समूह में 6 अनुयायी होते हैं। फिर से, प्रत्येक समूह में ये 6 अनुयायी एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते और वे अलग-अलग समूह में नहीं हो सकते। लेकिन सरलता के लिए उन्हें ऐसा कहा जा सकता है। प्रत्येक समूह में 6 अनुयायी कुल मिलाकर 12 चेतसिक या चेतसिकों के 6 जोड़े बनाते हैं।

सद्धा एक मानसिक तत्व है और यह प्रत्येक सुंदर चेतना के साथ उत्पन्न होती है। जब यह उत्पन्न होती है, तो यह महान राजा चित्त को आत्मविश्वास से भरपूर रहने और अपने सामने आने वाली वस्तु पर भरोसा करने का परामर्श देती है। सद्धा आत्मविश्वास है। यह आस्था है। यह विश्वास है। यह आस्था है। सद्धा आकाश को साफ कर देती है जिससे आकाश में दिखाई देने वाली हर चीज स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। सद्धा एक रत्न के समान है। जब इस रत्न को गंदे पानी में डाला जाता है, तो सारी गंदगी नीचे बैठ जाती है और पानी साफ हो जाता है।

सती, सद्ध की सचिव हैं। सती हमेशा सद्ध के साथ चलती हैं। जब भी सद्ध उठते हैं, सती भी उठ खड़ी होती हैं। सती एक चेतसिका हैं। यह सजगता है। यह सतर्कता है। यह जागरूकता है। यह कार्यों का स्मरण है। यह विस्मृति नहीं है। इसलिए यह नेता सद्ध के सचिव की तरह व्यवहार करती हैं और सद्ध द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य को लिखती हैं। जब सती किसी चित्त में उठ खड़ी होती हैं, तो वह उस चित्त को सचेत रहने और विषय पर ध्यान केंद्रित करने की सलाह देती हैं।

सद्धा चेतसिका नेता के दो प्रतिनिधि होते हैं। वे राजा सद्धा के दाएं और बाएं हाथ के प्रतिनिधि हैं। ये हिरि और ओत्तप्पा चेतसिका हैं। हिरि और ओत्तप्पा चेतसिका हमेशा साथ मिलकर काम करते हैं और एक दूसरे से अविभाज्य हैं। दोनों में समान विशेषताएं हैं: संयम। हिरि और ओत्तप्पा दोनों ही चित्त को बुरे कर्म करने से रोकते हैं। लेकिन हिरि इस विचार से रोकता है कि संभावित भविष्य के परिणामों के कारण, जो शर्मनाक हो सकते हैं, बचना बेहतर है, इसलिए हिरि एक अलग चेतसिका बन जाता है। दूसरी ओर, ओत्तप्पा राजा चित्त को बुरे कर्म करने से रोकता है क्योंकि यह संभावित भविष्य के परिणामों का पूर्वाभास करता है, जो भयावह हो सकते हैं।

ये दो चेतसिकाएँ अत्यंत शक्तिशाली हैं और इन्हें लोकपाल धर्म कहा जाता है। लोक का अर्थ है काम लोक, रूप लोक और अरूप लोक। पाल का अर्थ है रक्षा करना। एक परिवार में पिता और पुत्री, माता और पुत्र होते हैं। माता-पिता को छोड़कर, जिनके दो बच्चे हैं पुत्र और पुत्री, परिवार के अन्य सदस्यों के बीच यौन संबंध नहीं होते। इसकी रक्षा हिरि और ओत्तप्पा चेतसिकाएँ करती हैं। लेकिन जब हिरि और ओत्तप्पा नष्ट हो जाते हैं और जब अहिरिका और अनोत्तप्पा चेतसिकाएँ मोह के साथ आ जाती हैं, तो सब कुछ संभव हो सकता है और वे सुंदर संसार को नष्ट कर देते हैं।

सद्धा चेतसिका (नौसेना में) के एक अन्य सचिव तत्रमज्जतत चेतसिका हैं। यह तत्रमज्जतत चेतसिका एक मानसिक कारक है। यह प्रत्येक सुंदर चेतना के साथ उत्पन्न होती है। यह संतुलनकारी है। यह संबंधित चित्त और अन्य मानसिक कारकों को संतुलित करती है। जब यह किसी चित्त में उत्पन्न होती है, तो यह महान राजा चित्त को संतुलन बनाए रखने का सुझाव देती है। तत्रमज्जतत चेतसिका एक सारथी की तरह व्यवहार करती है जो दो घोड़ों को खींचती गाड़ी चलाता है। यदि सारथी काम न करे, तो एक घोड़ा एक तरफ और दूसरा दूसरी तरफ खिंच सकता है, और इस प्रकार सारथी के काम न करने पर यात्रा लक्ष्यहीन हो जाएगी। लेकिन संतुलनकारी तत्रमज्जतत चेतसिका संतुलन बनाए रखती है और यात्रा को इच्छित मार्ग पर ले जाती है।

फिर भी, नेता सद्ध चेतसिकों के दो उप-प्रतिनिधि होते हैं। ये नौसेना समूह के चेतसिकों में होते हैं और ये अलोभ चेतसिक और आदोसा चेतसिक होते हैं। अलोभ सद्ध एडमिरल के दाहिने विंग के रियर एडमिरल होते हैं और आदोसा बाएं विंग के रियर एडमिरल होते हैं। अलोभ का अर्थ है अनासक्ति। अनासक्ति होने के कारण, यह हमेशा दान करते समय उत्पन्न होती है। इसलिए कभी-कभी इसे दान भी कहा जाता है। लेकिन अलोभ चेतसिक अन्य कुशल और अभ्यक्त चेतसिकों में भी उत्पन्न होते हैं। आदोसा का अर्थ है घृणा न करना। इसे मैत्री के नाम से भी जाना जाता है। इन दोनों चेतसिकों को अलग नहीं किया जा सकता और वे हमेशा साथ मिलकर काम करते हैं।

मुख्य साधक, उनके दो-दो उप-साझीदारों और सचिवों के बारे में व्याख्या के बाद, प्रत्येक समूह में छह अनुयायी शेष रह जाते हैं। इन सभी को यहाँ एक साथ माना जाएगा। चेतसिकों के ये छह जोड़े हमेशा एक साथ उत्पन्न होते हैं और इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। लेकिन चरित्र के अनुसार, प्रत्येक अनुयायी की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। इन बारह चेतसिकों या चेतसिकों के छह जोड़ों की व्याख्या अगले पृष्ठ पर की जाएगी। यहाँ सरल संदर्भ के लिए 19 चेतसिकों की सूची नीचे पुनः दी गई है। साधक दोनों समूहों में शामिल हैं।

चित्त राजा की सेना में शामिल हैं:

1. श्रद्धा या विश्वास (सामान्य)
2. सती या सचेतनता (सचिव)
3. शर्मिंदगी या लज्जा (दक्षिणपंथी लेफ्टिनेंट जनरल या डिप्टी)
4. ओट्टाप्पा या भय (वामपंथी लेफ्टिनेंट जनरल या डिप्टी)
5. चित्तपसद्धि या मन की शांति
6. चित्तलहुता या मन की हल्कापन या प्रसन्नता

7. चित्तमुदुता या मन की लचीलापन
8. चित्तकम्मन्नत या मन की कार्यक्षमता
9. चित्तपगुणत या मन की प्रवीणता
10. चित्तुज्जुकता या मन की सच्चाई

राजा चित्त की नौसेना में शामिल हैं:

1. सद्धा
2. tatramajjhattata या संतुलन
3. अलोभा या अनासक्ति या दान
4. adosa or non aversion or metta
5. कायपसद्धि या मानसिक कारकों की शांति
6. मानसिक कारकों की कायलहुता या उत्प्लावन क्षमता
7. कयामुदुता या मानसिक कारकों की प्लास्टिसिटी
8. कयापगुन्नता या सीतासिका की प्रवीणता
9. चेतसिकाओं की कायुज्जुकता या सीधापन

छह चेतसिकाओं के जोड़े हैं जो हमेशा जोड़े में ही प्रकट होते हैं और अन्य सार्वभौमिक शोभना चेतसिकाओं के साथ समान रूप से पाए जाते हैं। जब मैंने उन्हें राजा चित्त की सेना और नौसेना के रूप में दो समूहों में उल्लेख किया, तो चित्त से संबंधित छह चेतसिकाएं राजा चित्त की सेना में शामिल थीं। अन्य छह चेतसिकाएं राजा चित्त की नौसेना में शामिल थीं। लेकिन वास्तव में कोई सेना या नौसेना नहीं है, बल्कि वे सभी मिलकर काम करते हैं।

ये 6 जोड़े या 12 सेटासिकाएं हैं

1. चित्तपसाद्धि और कायापसाद्धि
2. चित्तलहुता और कायलहुता
3. चित्तमुदुत और कायमुदुत
4. चित्तकम्मनता और कयाकम्मनता
5. चित्तपगुन्नाटा और कयापगुन्नाटा
6. cittujjukata and kayujjukata

ए) चित्तपसाधि और कायापसाधि

चित्तपसद्धि एक चेतसिका है। चित्तपसद्धि, चित्त और पसद्धि से मिलकर बना है। चित्त चेतना है और पसद्धि का अर्थ है शांति, स्थिरता और निर्मलता। जब यह चेतसिका उत्पन्न होती है, तो चित्त को शांत, स्थिर और निर्मल रहने की सलाह दी जाती है। जब आप दान-पुण्य जैसे कार्य करते हैं, तो आप अपने मन में शांति का अनुभव कर सकते हैं। यह चित्तपसद्धि के कारण होता है। यह चेतसिका चित्त को शांत और निर्मल बनाती है।

कायपसद्धि चित्तपसद्धि से बहुत मिलती-जुलती है और इन दोनों में अंतर करना बहुत कठिन है, इन्हें अलग करना तो बिल्कुल असंभव है। लेकिन कायपसद्धि नाम से ही दो पाली शब्द मिलकर बना है: काया और पसद्धि। यहाँ काया का अर्थ है चेतसिकों का समूह या चेतसिकों का समुच्चय, और पसद्धि का अर्थ है शांति और स्थिरता। जैसे चित्तपसद्धि के कारण चित्त शांत हो जाता है, वैसे ही कायपसद्धि चेतसिक के कारण उससे जुड़े चेतसिक भी शांत हो जाते हैं। ये दोनों चेतसिक जुड़वां भाई हैं।

b) चित्तलहुता और कायलहुता

चित्तलहुता एक चेतसिका है और जब यह उत्पन्न होती है, तो यह चेतसिका राजा चित्त को शीघ्र, प्रतिक्रियाशील और हल्का होने का सुझाव देती है। चित्तलहुता चित्त का उत्प्लावन है। इस चेतसिका के कारण, चित्त उन अकुशल चित्तों, अहेतुक विपाक चित्तों या अहेतुक क्रिया चित्तों की तुलना में हल्का हो जाता है, जिनमें चित्तलहुता सहवर्ती चेतसिका नहीं होती। यह चित्तपसद्धि के समान है, जो दान जैसे अच्छे कर्म करने, शील का निर्माण करने या मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने पर उत्पन्न होती है।

कायलहुता चित्तलहुता का जुड़वां भाई है। चित्तलहुता के कार्य करने पर चित्त हल्का हो जाता है, और कायलहुता के कार्य करने से सभी चेतसिक हल्के हो जाते हैं। कायलहुता संबद्ध चेतसिकों का उत्प्लावन बल है। यह चेतसिकों का हल्कापन है। चित्तलहुता और कायलहुता चेतसिक हमेशा एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ कार्य करते हैं। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। और वे अपने दूसरे

जुड़वां भाई के बिना अकेले उत्पन्न नहीं हो सकते। ये दोनों चेतसिक अन्य 5 युग्मों के चेतसिकों के साथ और सर्वव्यापी शोभा चेतसिकों के साथ, जिनमें नेता सद्ध चेतसिक भी शामिल है, एक साथ उत्पन्न होते हैं।

ग) चित्तमुदुत और कायमुदुत

चित्तमुदुत चित्त की कोमलता है। यह एक चेतसिका है। यह लचीलापन है। यह तन्यता है। यह प्रत्यास्थता है। यह अनुकूलनशीलता है। यह प्रभावशीलता है। चित्तमुदुत आसानी से राजा चित्त को विनम्र, कोमल, लचीला और कोमल बना देता है। चित्तमुदुत की उपस्थिति में राजा चित्त मोमबत्ती के समान होता है, जो आग या गर्मी के पास रखी हो और किसी भी रूप में ढल सकती है।

कायमुदूत, चित्तमुदूत का जुड़वां भाई है और यह चेतसिकों की कोमलता या लचीलापन है। कायमुदूत चेतसिक की उपस्थिति में सभी चेतसिक लचीले हो जाते हैं। ये दोनों जुड़वां भाई एक चित्त में एक साथ कार्य करते हैं और अन्य 5 जोड़ी चेतसिकों और अन्य सार्वभौमिक शोभना चेतसिकों के साथ भी इनका उद्भव होता है।

d) चित्तकम्मन्नता और कयाकम्मनता

चित्तकम्मन्नत एक चेतसिका है। यह कार्यक्षमता है। यह अनुकूलनशीलता है। यह प्रतिक्रिया देने या काम करने की तत्परता है। जब शोभना चित्त उत्पन्न होता है, तो चित्तकम्मन्नत नामक एक चेतसिका भी उत्पन्न होती है और यह चेतसिका राजा चित्त को काम करने या प्रतिक्रिया देने के लिए तैयार रहने की सलाह देती है। यह एक प्रकार की सतर्कता है। यह कार्यक्षमता है।

कायकम्मन्नत, चित्तकम्मन्नत चेतसिका का जुड़वां भाई है। कायकम्मन्नत चेतसिकाओं की कार्यक्षमता, अनुकूलनशीलता और तत्परता का प्रतीक है। ये दोनों जुड़वां भाई अन्य 5 युग्मों और अन्य सार्वभौमिक शोभना चेतसिकाओं के साथ हमेशा एक साथ प्रकट होते हैं। ये दोनों चेतसिकाएं त्वरित प्रतिक्रिया देने वाली होती हैं।

ई) चित्तपगुन्नाटा और कयापगुन्नाटा

चित्तपगुण्नता एक चेतसिका है और यह चित्त राजा को विषय से परिचित होने की सलाह देती है। यह चित्त की निपुणता है। यह अनुभव की शक्ति है। जब यह उत्पन्न होती है, तो चित्तपगुण्नता एक कुशल कार्यकर्ता के रूप में कार्य करती है और चित्त राजा को कार्य में निपुण होने की सलाह देती है।

कायपगुणत, चित्तपगुणत चेतसिका का जुड़वां भाई है। यह चेतसिकाओं की निपुणता है। यह संबंधित चेतसिकाओं की परिचितता है। ये दोनों जुड़वां भाई एक साथ उत्पन्न होते हैं और अन्य 5 जोड़ियों तथा अन्य सार्वभौमिक शोभना चेतसिकाओं के साथ भी उत्पन्न होते हैं।

च) सिट्टुज्जुकाता और कायुज्जुकाता

चित्तुज्जुकता चित्त की सत्यता है। यह चित्त का सत्यनिष्ठा है। जब चित्तुज्जुकता चेतसिका उत्पन्न होती है, तो यह राजा चित्त को सलाह देती है और चित्त सत्यनिष्ठा अपनाकर सीधा व्यवहार करता है। चित्तुज्जुकता की उपस्थिति में चित्त कभी झूठ नहीं बोलता। यही चित्त की सत्यनिष्ठा है।

कयुज्जुकता चित्तुज्जुकता का जुड़वां भाई है और यह उससे संबद्ध चेतसिकों की सत्यता है। यह चेतसिकों का सद्गुण है। जब यह प्रकट होता है, तो यह संबद्ध चेतसिकों को सीधे मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। ये दोनों जुड़वां भाई हमेशा एक साथ प्रकट होते हैं और इनके साथ अन्य 5 जोड़े और अन्य सार्वभौमिक शोभना चेतसिक भी होते हैं, जिनमें सद्ध चेतसिक भी शामिल हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 6
हटू निंग द्वारा

अध्याय 6 - आरम्मना पच्चयो
या वस्तु की स्थिति
Ārammana paccayo ti

रूपायतनं चक्खुविन्ननधातुयं, तं सम्पायुत्तकननच धम्मणं अरम्मना पकायेन पकायो। सद्दयातनं सोतविन्ननधातुयं, तम् सम्पायुत्तकनञ्च धम्मणं अरम्मना पकायेन पकायो। गंधायतनं घनविन्नानधातुयं, तं सम्पायुत्तकनञ्च धम्मणं अरम्मना पकायेन पकायो। रसायतनं

जीवविन्ननधातुयं, तं सम्पायुत्तकनञ्च धम्मणं अरम्मना पकायेन पकायो। फोत्थबबायतानं कायविन्ननधातुयं, तं सम्पायुत्तकाननच धम्मणं अरम्मना पकायेना पकायो।

रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोत्थबबायतनं मनोधातुया, तम् सम्पायुत्तकनञ्च धम्मणं अरम्मना पकायेन पकायो। सब्बे धम्म मनोविन्नान धतुया, तम् संपयुत्तकननच धम्मनं अरम्मना पकायेना पकायो। यम यम धम्मम अरब्भा ये ये धम्म उप्पज्जन्ति चित्त चेतसिका धम्म ते ते धम्म तेसम तेसम धम्मनम अरम्मना पकायेना पकायो।

अरम्मना पकाया या वस्तु स्थिति विभिन्न धम्मों के बीच का संबंध है। ये धम्म हैं नाम धम्म, रूप धम्म और पन्नति धम्म। यहां पन्नाति धम्म एक वस्तु के रूप में काम कर सकता है, भले ही यह परमथ्थ धम्म न हो। एक रूपा धम्म जिसे रूपा कहा जाता है जो कि वन्नो या रंग है, नेत्र चेतना के लिए एक वस्तु के रूप में कार्य करता है। नेत्र चेतना या चक्खु विन्नन धातु को रूप या वन्नो या रंग या दृष्टि या दृश्य वस्तुओं पर निर्भर होना पड़ता है। चक्खु विन्नान चित्त (चक्कुविन्नन धातु) से जुड़े सभी मानसिक कारकों को भी रूपरमण पर निर्भर रहना पड़ता है। पकाया धम्म या कारण धम्म वन्नो है। पक्कयुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म चक्खु विन्नान चित्त और संबंधित सिटासिका हैं। पकाया सत्ती या रूप धम्म रूप या वन्नो और नामा धम्म चक्कुविन्नन और संबद्ध सीटासिका के बीच के कारण संबंध को अरम्मना कहा जाता है। यह अरम्मना पकायो या वस्तु स्थिति है।

अन्य वस्तुगत स्थितियों जैसे सद्दा (ध्वनि) जो सद्दारम्मन (श्रव्य वस्तु) के रूप में कार्य करती है, गंध (सुगंध) जो सुगंधित वस्तु) के रूप में कार्य करती है, रस (स्वाद) जो रसारममन (स्वाद वस्तु) के रूप में कार्य करती है, और स्पर्श (स्पर्शी वस्तु) जो स्पर्शनीय वस्तु) के रूप में कार्य करती है, के मामलों में भी इसी प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। लेकिन मन के लिए वस्तुओं के मामले में, वस्तुएं थोड़ी जटिल हैं। मन के लिए वस्तुओं के 6 संभावित प्रकार हैं और इन्हें सामूहिक रूप से धम्मारम्मन या मन की वस्तुएं कहा जाता है।

मन की वस्तु या धम्मरम्मना इन 6 प्रकार के धम्म में से एक हो सकता है। वे (ए) 5 पसादा रूप में से एक हैं जो हैं 1.चक्खु पसादा रूप, 2. सोता पसादा रूप, 3. घना पसादा रूप, 4. जीव पसादा रूप, और 5. काया पसादा रूप; (बी) 16 सुखुमा रूपों में से एक अर्थात् 1.इथि अत्ता भव रूप या इत्थट्टा भव रूप, 2. पुरीसत्ता भव रूप, 3. हदय रूप, 4. जीवित रूप, 5. आहार रूप, 6. परिच्छेद रूप या आकाश रूप, 7. काया विनति रूप, 8। वसी विनति रूप, 9. रूप लहुता रूप, 10. रूप मुदुता रूप, 11. रूप कम्मन्नता रूप, 12. उपाचय रूप, 13. संतति रूप, 14. जराता रूप, 15. अनिच्चता रूप, और 16. आपो रूप जो अपो धातु है; (सी) 89 सिट्टा में से एक; (डी) 52 सीतासिकों में से एक; (ई) निब्बाना; और (च) पन्नति धम्म। तो धम्मरम्मना या मन की वस्तु इन 6 प्रकारों में से एक हो सकती है। (ए) से (सी) तक के विषयों को पिछले पृष्ठों में समझाया गया है। (डी) सीतासिकों के संबंध में 7 सार्वभौमिक सीतासिक, 6 विशेष सीतासिक, 14 अकुसल सीतासिक, और 19 शोभन चित्त साधरण सीतासिक सभी पर चर्चा की गई है। वहाँ 6 शोभन चेतसिकाएँ रह गईं। वे 3 विरति सीतासिक, 2 अप्पमन्ना सीतासिक और 1 पणिन्द्रिय सीतासिक हैं।

तीन विरति चेतसिकाएँ हैं। विरति का अर्थ है परिहार। यह विशेष रूप से तब टालना है जब ऐसी स्थितियाँ हों जो ऐसे कार्यों को करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं जिनसे बचना चाहिए। वे हैं 1. काया दुकारिता विरति या सम्मा कम्मंता, 2. वैसी दुकारिता विरति या सम्मा वका, और 3. दुजिवा विरति या सम्मा अजीवा। ये सिटासिकाएँ भी एक प्रकार के निषेध हैं। लेकिन हिरी और ओट्टप्पा के विपरीत, वे संभावित भविष्य के प्रभावों या परिणामों पर विचार करने के बजाय विशेष कार्रवाई पर निर्देशित होते हैं। जब उस कृत्य पर चिंतन किया जाता है जो काया दुकारिता है, तो यह परिहार सम्मा कम्मंता है। यदि कृत्य वैसी दुकारिता है, तो चेतसिका सम्मा वाचा बन जाती है और जब यह दुजीव कृत्य का परिहार है, तो यह सम्मा अजीव चेतसिका है। मार्ग और फल के समय आर्य अष्टांगिक मार्ग को छोड़कर, ये तीनों चेतसिक कभी एक साथ उत्पन्न नहीं होते और न ही दो चेतसिक एक साथ उत्पन्न होते हैं।

अन्य 2 सीतासिकाएँ हैं जिन्हें अप्पमन्ना सीतासिकाएँ कहा जाता है। इन्हें अप्पमन्ना इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये दोनों चेतसिक उन वस्तुओं को ग्रहण करते हैं जो असीम या असीम हैं। ये दो चेतसिकाएँ करुणा चेतसिका और मुदिता चेतसिका हैं। दोनों चेतसिकों को उस वस्तु की ओर निर्देशित किया जाता है जो पन्नत्ती है अर्थात सत्त पन्नत्ती है। इसका मतलब यह है कि वे उन वस्तुओं को लेते हैं जो परमार्थ धम्म या अंतिम वास्तविकताएं नहीं हैं। सट्टा पन्नत्ती पर 2 अलग-अलग सीटासिकाएं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वस्तुओं के चरित्र एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। जबकि करुणा सत्त्व पन्नत्ती का उद्देश्य लेती है जो दोषपूर्ण परिस्थितियों में हैं, मुदिता सत्त पन्नत्ती का उद्देश्य लेती है जो समृद्ध परिस्थितियों में हैं।

एक चेतसिका शेष रह गई जिसे पन्निन्द्रिय चेतसिका कहते हैं। यह सबसे महत्वपूर्ण चेतसिका है। क्योंकि यही एकमात्र चेतसिका है जो हमें अरहत्त मार्ग नाना की प्राप्ति की ओर ले जाती है। इस चेतसिका के बिना, चाहे अन्य चेतसिकाएँ कितनी भी अच्छी क्यों न हों, अरहत्त मार्ग नाना की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

पन्निन्द्रिय चेतसिका या पन्ना एक चेतसिका है। यह राजा चित्त का रचनात्मक सेवक है। लेकिन पन्निन्द्रिय चेतसिका स्वयं चित्त नहीं है। यह राजा चित्त को वास्तविक चीजों को देखने का मार्गदर्शन करती है। यह चीजों पर सकारात्मक प्रकाश डालती है। पन्ना धर्म पर प्रकाश डालती है। अन्य चेतसिकाओं में पन्ना सबसे शक्तिशाली चेतसिका है। पन्ना चेतसिका बोधिपक्खीय धर्मों के विभिन्न स्थानों पर सेवा करती है, जैसे कि इद्धिपाद धर्म (सफलता का आधार), बल धर्म (शक्ति का बल), इंद्रिय धर्म (संपन्नता), ज्ञान का कारक (बोझ्झंग धर्म) और मार्ग धर्म (मार्ग कारक)। पन्ना चार अधिपति धर्मों में से एक अधिपति धर्म के रूप में भी शामिल है। पन्ना को विज्या के नाम से भी जाना जाता है। कभी-कभी इसे नाना भी कहा जाता है।

छह विषय या छह अरम्मन हैं। पहले पाँच विषय पाँच भौतिक इंद्रियाँ हैं, अर्थात् दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श। छठी इंद्रिय मन का विषय है। इसे धम्मरम्मन कहते हैं। छह प्रकार के धम्म हैं जो मन के विषय के रूप में कार्य कर सकते हैं। ये हैं पाँच पसद रूप, 16 सुखुम रूप, 89 चित्त, 52 चेतसिक, 1 निर्वाण और 1 पन्नात्ति। पहले चार प्रकारों का विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में किया गया है। दो और प्रकार हैं जो मन के विषय के रूप में कार्य कर सकते हैं। ये हैं निर्वाण और पन्नात्ति।

निब्बाना पाली भाषा का शब्द है और यह निर्वाण से बना है, जो नि और वना से मिलकर बना है। नि का अर्थ है निक्खंत, यानी वना के बंधन से मुक्त होना। वना वे धर्म हैं जो संसार में विभिन्न जीवों को बांधते हैं। अतः निब्बाना का अर्थ है संसार के बंधन से मुक्त होना। यह बंधन तन्हा है।

यद्यपि परम सत्य के रूप में केवल एक ही निर्वाण है, फिर भी निर्वाण के दो रूप बताए जाते हैं। परन्तु दोनों एक ही हैं और एक ही प्रकार के हैं। संसार में रहने वाले या यात्रा करने वाले के दृष्टिकोण से इन्हें दो प्रकार का माना जाता है: सौपादीशेष निर्वाण और अनुपादीशेष निर्वाण। सौपादीशेष निर्वाण वह निर्वाण है जब संसार में अरहत निरोध समाधि में रहते हैं। अरहत जिस अवस्था में रहते हैं उसे सौपादीशेष निर्वाण कहते हैं। क्योंकि निर्वाण तब प्राप्त होता है जब अरहत संसार में पंचखंड के साथ होते हैं।

एक अन्य निर्वाण वह अवस्था है जब अरहत खंड परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं। यानी जब अरहतों की मृत्यु होती है, तब कुछ भी शेष नहीं रहता और न ही कुछ निरंतर बना रहता है। यही अनुपदिशेष निर्वाण है। अरहतों के चुति चित्त के तुरंत बाद, न तो कर्मज रूप रहता है, न चित्तज रूप और न ही आहारज रूप। केवल उत्तुज रूप ही शेष रह जाता है। उत्तुज रूप इस संसार के अन्य निर्जीव रूपों के समान ही जीवन से रहित होते हैं। यही वह अवस्था है जिसे सभी बौद्ध अपने पच्चीम भाव या अंतिम जीवन के बाद प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

फिर भी तीन प्रकार के निर्वाण माने जाते हैं। वास्तव में ये सभी एक ही अवस्था हैं, और यही निर्वाण है, इससे अधिक कुछ नहीं। लेकिन संसार में रहने वालों के दृष्टिकोण से, निर्वाण के तीन प्रकार माने जाते हैं: सुन्नत निर्वाण, अनिमित्त निर्वाण और अप्पनिहित निर्वाण।

सुन्नत निर्वाण पूर्णतया अरम्मना या तन्हा के उत्पन्न होने के किसी भी कारण से मुक्त है। परम अर्थ में इसमें अत्त्व या अहंकार नहीं होता। निर्वाण अत्जीव या किसी भी आत्मा या किसी भी जीवन से मुक्त है। अतः, जब कोई जीवन, आत्मा या ऐसी किसी भी चीज से मुक्त होता है, तो उस निर्वाण को सुन्नत निर्वाण या शांति की शून्यता कहा जाता है। जब आर्य होने वाले धर्म का अनात्म के रूप में चिंतन कर रहे थे, तब उन्होंने मार्ग काल में जो निर्वाण देखा, उसे सुन्नत निर्वाण कहा जाता है। यह अनात्म है, न अत्त्व, न जीव, न जीवन, कुछ भी नहीं है, केवल सुन्नता है। अतः यह सुन्नत निर्वाण है।

अनिमित्त निर्वाण का अर्थ है राग, क्लेश और आधारों से मुक्त निर्वाण। जब आर्य चित्त के उत्पन्न होने से ठीक पहले अनित्य अवस्था में धम्म का अवलोकन कर रहे थे और उन्होंने निर्वाण को अनित्य अवस्था में देखा, तो इस निर्वाण को अनिमित्त निर्वाण कहा जाता है। क्योंकि इसमें कोई निच्च निमित्त या स्थायी निमित्त नहीं होता। इसलिए इस निर्वाण को अनिमित्त निर्वाण कहते हैं।

अप्पनिहित निर्वाण का अर्थ है निर्वाण वह नहीं है जिसके लिए तन्हा, राग, क्लेश आदि जैसी सांसारिक या इंद्रिय सुखदायक चीजों की लालसा करनी पड़ती है। जब आर्य दुख के रूप में धर्म का चिंतन कर रहे हों, और उन्हें मार्ग काल में निर्वाण दिखाई दे, तो उस निर्वाण को अप्पनिहित निर्वाण कहा जाता है। क्योंकि निर्वाण तन्हा, राग, क्लेश आदि से मुक्त होता है, जिनके उपस्थित होने पर लालसा उत्पन्न होती है। लेकिन ऐसी कोई लालसा न होने के कारण ही इस निर्वाण को अप्पनिहित निर्वाण कहते हैं। यद्यपि निर्वाण को तीन प्रकारों में माना जाता है, फिर भी सार और परम अर्थ में केवल एक ही निर्वाण है।

निर्वाण अन्य धर्मों के समान नहीं है। यह रूप धर्म नहीं है। निर्वाण को नाम धर्म के माध्यम से जाना जा सकता है, इसलिए निर्वाण नाम धर्म में समाहित है। परन्तु परम वास्तविकता का निर्वाण केवल मंगल चित्त और फल चित्त द्वारा ही देखा जा सकता है। जब हम निर्वाण पर चर्चा कर रहे होते हैं, तब कोई भी निर्वाण को देख नहीं रहा होता। हम सब निर्वाण की तुलना अपने कष्टों के अनुभवों से कर रहे होते हैं। हम इसे केवल अग्नि की अनुपस्थिति के रूप में देखते हैं। वास्तव में, निर्वाण केवल मंगल चित्त और फल चित्त द्वारा ही देखा जा सकता है।

जब ऐसे लोकुत्तर चित्त उत्पन्न होते हैं, तो निब्बाण मग्गा के चित्त और फला धम्म के चित्त के लिए वस्तु के रूप में काम करता है। तो निब्बान भी एक प्रकार का अराम्मन है और यह धम्मरम्मन है। यह धम्मरम्मना निब्बाना नाम धम्म मग्गा चित्तस और फला चित्तस द्वारा देखा जाता है। तो यहाँ पकाया धम्म निर्वाण है। पक्कयुप्पन्ना धम्म यहां मग्गा चित्तस और फला चित्तस है। कारण धम्म निब्बान और परिणामी धम्म मग्गा चित्त और फला चित्त के बीच के संबंध को अरम्मना कहा जाता है। तो यह पकाया सत्ती अरम्मना है। यह वस्तु स्थिति है. यह अरम्माना पकायो है।

कुछ धर्म ऐसे होते हैं जो विभिन्न चित्तों के लिए वस्तु या अरम्मन का काम करते हैं। इन धर्मों में पंच अरम्मन या पांच इंद्रिय विषय शामिल हैं, जैसे विभिन्न रंगों और चमक का प्रकाश, ध्वनि और आवाज, गंध और सुगंध, स्वाद और विभिन्न स्पर्श। ये पंच अरम्मन द्वि पंच विन्नन चित्तों के लिए अरम्मन का काम करते हैं।

ये छठी इंद्रिय या छठी वस्तु है। इसे सामूहिक रूप से धम्मरम्मना कहा जाता है। क्योंकि इस 6वीं वस्तुओं में जो कुछ भी शामिल है वह सभी धम्म हैं। धम्मरम्मना में 5 पसादा रूप, 16 सुखुमा रूप, 89 चित्त, 52 सीतासिका, 1 निब्बान और 1 पन्नत्ती धम्म शामिल हैं। अब तक 5 पसादा, 16 सुखुमा, 89 चित्त, 52 सीतासिका और 1 निब्बाना सभी पर पिछले पृष्ठों में चर्चा की गई है।

पन्नत्ती एक अरम्मन के रूप में कार्य करता है और यह छठी इंद्रिय है। यह धम्मरम्मन है। पन्नत्ती का अनुभव केवल मन द्वारा ही किया जा सकता है। अन्य कोई इंद्रिय पन्नत्ती धम्म का अनुभव नहीं कर सकती। पन्नत्ती का ज्ञान और अनुभव केवल चित्त द्वारा ही किया जा सकता है, जो नाम धम्म है। पन्नत्ती एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अधिकांश लोग, या लगभग सभी लोग और सभी प्राणी भ्रमित हो जाते हैं। यहां तक कि धम्म के ज्ञाता भी पन्नत्ती धम्म को लेकर कुछ हद तक भ्रमित रहते हैं।

पन्नत्ती एक धर्म है। इसे अनुभव किया जा सकता है। इसे जाना जा सकता है। लेकिन जब धर्मों को परम इंद्रिय से देखा जाता है, तो पन्नत्ती धर्म परम वास्तविकता नहीं रह जाता। पन्नत्ती का कभी उदय नहीं होता। क्योंकि यह परम धर्म के रूप में कभी विद्यमान नहीं होता। यह परम वास्तविकता के रूप में कभी विद्यमान नहीं होता। चूंकि पन्नत्ती का उदय नहीं होता, क्योंकि यह वास्तविकता नहीं है, इसलिए यह नष्ट भी नहीं होता।

पन्नत्ती धम्म को समझने में असमर्थता के कारण इस पर बहुत बहस हुई है। पन्नत्ती न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट होती है। कुछ लोग कहते हैं कि पन्नत्ती उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। उनका तर्क है कि पन्नत्ती, अरम्मन के रूप में, उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। यह गलत है। पन्नत्ती न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट होती है क्योंकि यह परम अर्थ में विद्यमान नहीं है। यह परम सत्य नहीं है, यह परम वास्तविकता नहीं है।

वे तर्क दे सकते हैं कि परिणत्ती अरम्मना के रूप में क्यों उत्पन्न होती है और नष्ट हो जाती है। यह एक गलत धारणा है। वास्तव में जो उत्पन्न होता है वह चित्त है। वास्तव में जो नष्ट होता है वह चित्त है। परिणत्ती न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट होती है। मैं इन्हें दोहरा रहा हूँ क्योंकि यह महत्वपूर्ण है। जब कोई चित्त, जो परिणत्ती धारण करता है, उत्पन्न होता है, तो वह तुरंत नष्ट हो जाता है। चित्तों के कार्यों के अनुसार, आगे उत्पन्न होने वाले चित्त अपने कार्य करते हैं। चित्त उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

उदाहरण: जब हम किसी वृक्ष के बारे में सोचते हैं, तो हमारे मन में कोई वृक्ष परम वास्तविकता के रूप में नहीं होता। लेकिन एक चित्त उत्पन्न होता है जो वृक्ष को अपना विषय मानता है। क्योंकि वह चित्त अनित्य और क्षणभंगुर है, इसलिए वह विलीन हो जाता है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि चित्त उत्पन्न होता है और विलीन हो जाता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। वृक्ष के विचार के उत्पन्न होने से ठीक पहले, कई चित्त उत्पन्न हो सकते हैं जो वास्तविकताओं को अपना विषय बनाते हैं। वृक्ष को अपना विषय मानने वाले चित्त के उत्पन्न होने से पहले, हम अपने मन में रंग, रूप और आकार के बारे में सोच सकते हैं।

वास्तव में, पन्नत्ती न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट होती है। पन्नत्ती मन के लिए एक विषय के रूप में कार्य करती है। अरम्मना या विषय की इस स्थिति में, पन्नत्ती धम्म परमत्थ धम्म का रूप धारण कर लेती है, मानो वह परमत्थ धम्म हो, जबकि वास्तव में वह ऐसा नहीं है। इसीलिए पन्नत्ती धम्म धम्मायतन नहीं है।

क्योंकि पन्नति न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट होती है, इसलिए पन्नति धम्म में अनित्यता, दुःख या अनात्म का कोई प्रमाण नहीं है। इसका कारण यह है कि पन्नति धम्म आरंभ से ही परम वास्तविकता के रूप में विद्यमान नहीं है। कुछ उच्च चित्त ऐसे हैं जो पन्नति धम्म को अपना विषय मानते हैं। ये सभी चित्त रूपावचर चित्त हैं। कुछ कामावचर चित्त पन्नति धम्म को अपना विषय मानते हैं। कुछ अरूपावचर चित्त भी पन्नति धम्म को अपना विषय मानते हैं।

लेकिन यह निश्चित है कि सभी 8 लोकुत्तरा चित्त कभी भी पन्नत्ती धम्म को अपने उद्देश्य के रूप में नहीं लेते हैं। सभी लोकुत्तरा चित्तों का अरम्मना केवल निब्बाना है जो एक अंतिम वास्तविकता है। सभी लोकुत्तरा चित्त केवल निब्बाना को अपनी वस्तु के रूप में लेते हैं। कोई

अन्य वस्तु लोकुत्तारा चित्त की वस्तु नहीं हो सकती। केवल निब्बाना सोतापट्टी मग्गा सीता और फला सीता, सकादागामी मग्गा और फला चित्त, अनागामी मग्गा और फला चित्त, और अरहट्टा मग्गा और फला चित्त के अरम्मना या वस्तु के रूप में काम कर सकता है।

सभी रूपवकार चित्त यानि कि सभी 5 रूपाकुसल चित्त (जो कि 1 झाना, 2रा झाना, 3रा झाना, 4था झाना और 5वा झाना हैं), सभी 5 रूपविपाक चित्त (जो पूर्व 5 चित्त के परिणामी चित्त हैं), और सभी 5 रूपाकिरिया चित्त (जो 1 झाना, 2रा झाना, 3रा हैं) झाना, 4थे झाना और अरहतों के 5वें झाना चित्त) पन्नत्ती धम्म को अपनी वस्तु के रूप में लेते हैं। रूपवाकर चित्त कभी भी पन्नत्ती धम्म के अलावा किसी अन्य वस्तु को अपने अरम्मन या वस्तु के रूप में नहीं लेते हैं।

पन्नत्ती धम्म एक रोचक विषय है। यह न तो उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है। यह कोई घटना नहीं है, बल्कि एक घटना मात्र है। इसमें अनित्यता, दुःख और अनात्म जैसे किसी भी प्रकार के तिलक्खना नहीं समाहित हैं। पन्नत्ती परम वास्तविकता नहीं है, न ही परम सत्य है, परन्तु यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण धम्म है। पन्नत्ती के बिना हम कुछ भी नहीं समझ सकते।

इसीलिए धर्म अध्ययन में हमें पन्नात्ति धर्म का अध्ययन करना आवश्यक है। यदि पन्नात्ति को नहीं समझा गया, तो परमत्था धर्म भी नहीं समझा जा सकेगा। जब धर्मों को नहीं समझा जाता, तो इस संसार या जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाना कठिन हो जाता है, जो कि एक अनंत, आरंभहीन चक्र है। तो पन्नात्ति का अर्थ क्या है?

पन्नात्ती का अर्थ है नाम, विचार, धारणा, अवधारणा, पदनाम, वर्णन, अभिव्यक्ति या प्रकट करना। पन्नात्ती एक ऐसा धर्म है जो हमें परमत्थ धर्म और पन्नात्ती धर्म दोनों से परिचित कराता है। अतः यह स्पष्ट है कि पन्नात्ती हमें पन्नात्ती सहित सब कुछ समझने में सहायता करता है।

हालांकि दोनों ही परम वास्तविकता या परम सत्य के रूप में विद्यमान नहीं हैं, फिर भी पन्नत्ति धम्म के दो रूप हैं। ये दो प्रकार हैं अत्थपन्नत्ति और सद्दपन्नत्ति। सद्दपन्नत्ति ध्वनि या वाणी पर आधारित है जो अत्थपन्नत्ति का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि अत्थपन्नत्ति किसी भी पन्नत्ति धम्म का आंतरिक अर्थ है।

सद्दपन्नति का उदाहरण जल है। परमत्थ दृष्टि से देखने पर जल का कोई अंश दिखाई नहीं देता। निःसंदेह जल पन्नति धर्म है। परन्तु जब भी इस संसार में किसी को जल दिखाया जाता है, तो वे उसे जल ही समझते हैं। जल का यही मूल स्वरूप है जो परम वास्तविकता के रूप में विद्यमान नहीं है। इसके मूल स्वरूप में निहित इस अर्थ को अत्थपन्नति कहते हैं। कोई अन्य पदार्थ जल का स्थान नहीं ले सकता। यही अत्थपन्नति है।

दूसरी ओर, सद्दापन्नत्ती ध्वनि या स्वर पर आधारित है जिसका उपयोग मनुष्य जल के अर्थ को व्यक्त करने के लिए करते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई ध्वनि जल का उच्चारण करती है, तो जो लोग इसे पहले कभी नहीं सुनते और न ही यह जानते हैं कि जल ही जल है, उन्हें यह समझ में नहीं आएगा। जब कोई वक्ता जल का उच्चारण करता है और श्रोता अंग्रेजी नहीं जानते और न ही उन्हें अंग्रेजी का ज्ञान है, तो वे यह नहीं समझ पाएंगे कि उन्हें जल के बारे में बताया जा रहा है। लेकिन जब उन्हें जल दिखाया जाता है, तो वे निश्चित रूप से समझ जाएंगे कि उन्होंने जो सुना वह वास्तव में जल के बारे में था, जिसे वे पहले से जानते हैं।

पानी को अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं में भी ध्वनि या उच्चारण के आधार पर अलग-अलग तरह से व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पानी, उदाका, आपा, यय, सुई, मित्सु आदि। ये सभी शब्द अपने आप में विशिष्ट हैं और प्रत्येक शब्द अपने-अपने भाषा-भाषी को पहचान प्रदान करता है। लेकिन सार रूप में, ये सभी एक ही हैं, और वह है पानी। पानी के रूप में पहचाने जाने वाले इस अंतर्निहित स्वभाव को अत्थपन्नत्ती कहते हैं। इसी अर्थ को व्यक्त करने वाली अन्य सभी ध्वनियाँ सद्दपन्नत्ती कहलाती हैं।

पन्नत्ती अत्यंत आवश्यक है। पन्नत्ती के बिना हम किसी भी विषय पर चर्चा नहीं कर सकते। हमें यह जानना अनिवार्य है कि पन्नत्ती धर्म क्या है और परमार्थ धर्म क्या है। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हमने कितना गहन ज्ञान प्राप्त किया है। अन्यथा पन्नत्ती धर्म और परमार्थ धर्म में अंतर करना बहुत कठिन है और इसके लिए व्यावहारिक अनुभव की भी आवश्यकता होती है।

6 अलग-अलग अट्ठापन्नट्ट हैं। वे हैं 1.विज्जमना पन्नट्टा, 2.विज्जमना पन्नट्टा, 3.विज्जमनेनाविज्जा पन्नट्टा, 4.विज्जमनेनाविज्जा पन्नट्टा, 5.विज्जमनेनाविज्जा पन्नट्टा, 6.विज्जमनेनेविज्जा पन्नट्टा।

इन पन्नाट्ट धम्मों के उदाहरण हैं

1. विजयमाना पन्नात्ता

सद्दा। यह ध्वनि है। इसका मूल स्वरूप या मूल अर्थ वह ध्वनि है जिसे हम अपने कानों से सुन सकते हैं। हम चाहे जिस भी भाषा का प्रयोग कर रहे हों, वे शब्द जो ध्वनि को उसके आठपन्नत्त रूप में दर्शाते हैं, वह यह है कि ध्वनि एक वास्तविकता है और परम सत्य है। यह सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि ध्वनि का अस्तित्व है। अतः इस प्रकार के आठपन्नत्त को विज्यामन आठपन्नत्त कहते हैं। विज्या का अर्थ है भेदक ज्ञान। यहाँ मन का अर्थ है निर्माण माप। अतः विज्यामन का अर्थ है ज्ञान का निर्माण। यद्यपि ध्वनि शब्द का कोई अस्तित्व नहीं है, जो एक आठपन्नत्त है, परम वास्तविकता नहीं, फिर भी यह ज्ञान निर्माण के विचार को सामने लाता है। अतः यहाँ उदाहरण के रूप में सद्दा को विज्यामन आठपन्नत्त कहा जाता है।

2. अविज्जामना पन्नात्ता

जल। यह एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग जल के अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। परन्तु परम अर्थ में जल का कोई अस्तित्व नहीं है। जल कोई परम वास्तविकता नहीं है। जब लोग इस परिणत विषय को नहीं समझते, तो वे विभिन्न युगों और पृष्ठभूमियों के दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित पुरानी ज्ञान की बातों का हवाला देते हुए अंतहीन बहस करने का प्रयास करते हैं। वास्तव में परम अर्थ में जल का कोई अस्तित्व ही नहीं है। जिसे हम जल समझते हैं, वह जल नहीं है। यह एक स्पष्ट, रंगहीन पदार्थ है जो परिवेश के तापमान और मौसम के अनुसार अलग-अलग तीव्रता के प्रकाश के रूप में हमारी आँखों में प्रतिबिंबित होता है। जिसे हम सुनते हैं, वह जल नहीं है। यहाँ तक कि मनोद्वार द्वारा अनुभव किया जाने वाला अपो रूप भी जल नहीं है। अतः परम अर्थ में जल का कोई अस्तित्व ही नहीं है। अतः यह शब्द जल, जो परिणत, अत्थपरिणत है, किसी परम अर्थ को प्रकट नहीं करता और न ही ज्ञान का निर्माण करता है। अतः यह अविज्माना परिणत है।

3. vijjamanenavijja pannatta

चक्खु विन्नना। चक्खु एक विज्मण पन्नत्त है। विन्नना भी विज्मण पन्नत्त है। दोनों ही ज्ञान का निर्माण करते हैं और इन दोनों के संयोजन से बना नया शब्द चक्खु विन्नना भी ज्ञान का निर्माण करता है। चक्खु विन्नना परम सत्य के रूप में विद्यमान है और इसका परम अर्थ, परम भाव है। अतः यह परम सत्य, परममत्त धम्म की समझ उत्पन्न करता है। इसलिए इस प्रकार के पन्नत्त को विज्मण विज्मण पन्नत्त कहा जाता है।

4. अविज्जमनेणविज्जा पन्नट्ट

राजा पुत्र। परम अर्थ में कोई राजा नहीं होता। परम अर्थ में कोई पुत्र नहीं होता। इसलिए राजा पुत्र को अविज्मानेनाविज्जा पन्नत्त कहा जाता है।

5. avijjamanenavijja pannatta

इत्थी सद्दो। स्त्री की आवाज़। परम अर्थ में स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन आवाज़ या ध्वनि है जो परम वास्तविकता है और ज्ञान का निर्माण करती है। इसलिए इत्थी सद्दो या स्त्री की आवाज़ को अविज्मानेनाविज्जा पन्नात्ता कहा जाता है।

6. vijjamanenāvijja pannatta

चक्खु द्वार। चक्खु विद्यमान है, जो परम वास्तविकता है। लेकिन कोई द्वार नहीं है। यह शब्द एक परिच्छेद है और इसे विजयमनेनाविज्ज परिच्छेद कहा जाता है।

धम्म महासमुद्र या विशाल महासागरों से भी व्यापक है। धम्म इन महासागरों से भी बड़ा है। धम्म इन महासागरों से भी गहरा है। धम्म अनंत है। धम्म असीम है। धम्म अनंत है। एक बार बुद्ध ने कहा, हे भिक्षुओं, जो धम्म मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, वह मेरे हाथ में रखे इन पत्तों के समान है। जो धम्म मैं जानता हूँ, वह इस पूरे जंगल के पत्तों से भी अधिक है। लेकिन बुद्ध ने संसार से ऊपर उठने के लिए आवश्यक सभी धम्मों का उपदेश दिया।

धम्म जटिल और पेचीदा होते हैं। धम्म और उनके संबंध प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म में प्रस्तुत किए जाते हैं, जो कि आश्रित उत्पत्ति या आश्रित सह-उत्पत्ति का सिद्धांत है। प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म इतना व्यापक और गहरा है कि बुद्ध ने एक बार पूज्य आनंद से कहा था, "भंते, प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म मुझे इतना स्पष्ट है कि आनंद, ऐसा मत कहो, प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म तुम्हारी समझ से कहीं अधिक व्यापक है।"

अधिक सूक्ष्म, अधिक जटिल और अधिक पेचीदा धम्म पत्थाना धम्म कहलाता है। बुद्ध अरहत्त फल समापत्ति में 49 दिनों तक रहे, जो कि 7 सप्ताह के बराबर है और इसे शास्त्रीय रूप से सत्तासत्ता कहा जाता है। पहले सप्ताह में, बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म का चिंतन किया। दूसरे सप्ताह में, बुद्ध बरगद के वृक्ष (बोधि वृक्ष) के उत्तर-पूर्व में गए, जहाँ उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने सम्मासम्बोधि नाना

तथा सब्बन्नुत नाना प्राप्त किया। वहाँ से बुद्ध ने लगभग 7 दिनों तक सिंहासन (घास से बना आसन) को देखा। अगले सप्ताह, यानी तीसरे सप्ताह में, बुद्ध ने बोधि वृक्ष के उत्तर में रत्न से बने चबूतरे पर विचरण किया। चौथे सप्ताह में, उन्होंने पत्थाना धम्म का चिंतन किया।

पथाना धम्म पर चिंतन करने से पहले, बुद्धत्व की किरणें नहीं थीं। जब उन्होंने पथाना धम्म पर चिंतन किया, तो उनके शरीर से छह प्रकार की बुद्धत्व किरणें उत्पन्न हुईं जो पूरे ब्रह्मांड में फैल गईं। पथाना धम्म सर्वत्र सबसे कठिन धम्म है। पथाना धम्म सबसे गहरा, सबसे व्यापक और सबसे विशाल है। पथाना धम्म, प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म से कहीं अधिक विस्तृत है।

विभिन्न प्रकार के धर्मों के बीच अनगिनत संबंध हैं और वे सभी किसी न किसी रूप में परस्पर जुड़े हुए हैं। पथाना धर्म को समझना कठिन है। फिर भी, पथाना धर्म वास्तव में हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं को प्रतिबिंबित करता है और पथाना धर्म से परे कुछ भी नहीं है। यदि लोग इस बात को समझें तो वे प्रसन्नतापूर्वक पथाना धर्म का अध्ययन करेंगे और इसे अपने दैनिक जीवन में लागू करेंगे। लेकिन पथाना धर्म को समझना कठिन है। इसके लिए, सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि धर्म क्या हैं। इनके बारे में परिचय पृष्ठ में चर्चा की गई है।

कुछ धर्म ऐसे हैं जो सदा सत्य हैं और जिनका वास्तविक अस्तित्व है, और इन सभी को परम सत्य या परम वास्तविकता कहा जाता है। इन सत्यों या वास्तविकताओं को परमार्थ धर्म कहते हैं। परमार्थ, परम और अत्थ से मिलकर बना है। अत्थ का अर्थ है सार और परम का अर्थ है उच्चतर, श्रेष्ठ, उच्चतर। अतः परमार्थ का अर्थ है वह सार जो असामार्थ धर्मों से सदा उच्चतर और श्रेष्ठ होता है। ये उच्चतर धर्म हैं। असामार्थ धर्म पन्नत्ति धर्म हैं। परम अर्थ में, इन धर्मों का अस्तित्व नहीं है। परन्तु पत्तना धर्म में सभी धर्म, उनके अंतर्संबंध और अंतर्संबंध, जिनमें पन्नत्ति धर्म भी शामिल हैं, समाहित हैं।

परमत्था धम्मों की व्याख्या पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। इसके बाद हम पहले सिद्ध धर्म, हेतु सिद्ध धर्म पर विचार करेंगे। हेतु का अर्थ है मूल या कारण। छह हेतु या छह मूल हैं: लोभ, दोष, मोह, अलोभ, अदोष और अमोह। इन्हें मूल इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये सभी अपने संबंधित धम्मों के विकास में सहायक होते हैं, इसलिए इन्हें धर्म की मूल अवस्थाएँ या हेतु सिद्ध कहा जाता है।

हेतु या मूल स्थिति के इस पकाया में, जो 24 स्थितियों में से एक है, कारण धम्म या पकाया धम्म लोभ, दोसा, मोह, अलोभा, अडोसा और अमोहा सिटासिका हैं। इन 6 धम्मों के कारण पकायुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म हैं 2 एकहेतुका चित्त और उनके साथ सीतासिक, 22 द्विहेतुका चित्त और उनके साथ सीतासिक, और 47 तिहेतुका चित्त और उनके साथ सीतासिक। और इसमें चित्तज रूप भी शामिल हैं जो इन सहेतुका चित्तों से उत्पन्न हुए हैं। अतः छह धर्म अन्य धर्मों के लिए मूल अवस्थाएँ हैं, जो उन पर निर्भर करते हैं, जैसे कि पेड़ की जड़ें पूरे पेड़ को पानी, खनिज, पोषक तत्व आदि प्रदान करके सहारा देती हैं। कारण धर्म पच्चय धर्म और परिणामी धर्मों या पच्चयुप्पन्न धर्म के बीच के संबंध को हेतु पच्चय कहा जाता है।

अरम्मन पच्चया में, विभिन्न धर्म अरम्मन या विषय के रूप में कार्य करते हैं। इन्हें विषय अवस्था कहा जाता है। लगभग सभी धर्म अरम्मन या विषय के रूप में कार्य कर सकते हैं। विभिन्न चमक वाले रूप या रंग को रूपारम्मन या दृष्टि का विषय या नेत्र चेतना का विषय कहा जाता है, या इन्हें दृश्य विषय भी कहा जाता है। यह रूप जो अरम्मन के रूप में कार्य करता है, रूपारम्मन कहलाता है। यह पहले चक्खुविन्नन चित्त के लिए और बाद में मनोविन्नन चित्त के लिए कार्य करता है। ध्वनियाँ षटविन्नन चित्त या कान चेतना के लिए विषय या अरम्मन के रूप में कार्य करती हैं और इसे सद्दराममन या श्रवण विषय कहा जाता है। गंध घनाविन्नन चित्त के लिए विषय के रूप में कार्य करती है और इसे गंधराममन या सुगंधित विषय कहा जाता है। रस जीवविन्नन चित्त के लिए विषय के रूप में कार्य करता है और इसे रसराममन कहा जाता है। पथवी या तेजो या वायो जो कि फोत्थब्बा धातु हैं, कायाविन्नन चित्त के लिए वस्तु के रूप में काम करते हैं और उन्हें फोत्थब्बारमण कहा जाता है।

कारण धम्म या पकाया धम्म हैं रूपरम्मन, सद्दारम्मन, गंधारम्मण, रसारम्मण और फोत्थब्बारमण। उनके परिणामी धम्म या पचायुप्पन्ना धम्म हैं चक्खुविन्नान चित्त, सोताविन्नान चित्त, घनविन्नान चित्त, जीवविन्नान चित्त, और कायविन्नान चित्त और उनसे जुड़े सीतासिका। लेकिन ये 5 अराम्मन रूप धम्म का समर्थन नहीं करते हैं, भले ही वे रूप धम्म हों। इन कारण धम्म और परिणामी धम्म के बीच के संबंध को वस्तु स्थिति या अरम्मना पकायो कहा जाता है।

छठा विषय या छठा अरम्मन है। इसे सामूहिक रूप से धम्मरम्मन कहा जाता है, क्योंकि यह विभिन्न धम्मों का संग्रह है। चित्तों के लिए विषय बनने वाले धम्म छह प्रकार के होते हैं: 1. पसद रूप, 2. सुखुम रूप, 3. चित्त, 4. चेतसिक, 5. निर्वाण और 6. पन्नत्त धम्म। ये सभी मन के लिए विषय बन सकते हैं और ये सभी कारण धम्म या पच्चय धम्म हो सकते हैं, और इनसे उत्पन्न चित्त पच्चयुप्पन्न धम्म कहलाते हैं। धम्मरम्मन के इन कारण धम्मों और उनसे उत्पन्न धम्म चित्तों और चेतसिकों के बीच के संबंध को अरम्मन पच्चय कहा जाता है।

जबकि हेतु पकायो नाम धम्म को नाम धम्म और रूप धम्म दोनों से जोड़ता है, अरम्मना पचायो रूप धम्म, नाम धम्म और पन्नत्त धम्म को केवल नाम धम्म से जोड़ता है। 7 रूप हैं जो 5 अराममानों के रूप में काम करते हैं, अर्थात् रूप या वन्नो, सददा, गंध, रस, पथवी, तेजो

और वायो। लेकिन छठे भाव में, सभी रूप धम्म, निब्बान और पन्नट्टा धम्म सहित सभी नाम धम्म चित्त के लिए वस्तु के रूप में काम कर सकते हैं। तो वस्तु स्थिति या अरम्मना पकायो रूप के लिए नहीं है बल्कि केवल नाम धम्म के लिए है। अगला पकायो है अधिपति पचायो।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 7
हटू निंग द्वारा

अध्याय 7 - अधिपति पच्चयो
या प्रमुखता की स्थिति
चार अधिपति धर्म हैं: चंद अधिपति, चित्त अधिपति, वीर्य अधिपति और विमंसा अधिपति। चंद, चंद चेतसिका है और यह इच्छा या संकल्प है, जिसे कभी-कभी इच्छाशक्ति भी कहा जाता है। चित्त सभी चेतसिकाओं का नेतृत्व करता है और जब यह अधिपति धर्म बन जाता है, तो यह सब कुछ व्यवस्थित करता है। वीर्य, वीर्य चेतसिका है और यह प्रयास है। विमंसा अधिपति, पान्निन्द्रिय चेतसिका है और यह ज्ञान है।

लेकिन अधिपति पकाय में चित्त, सीतासिका, रूप और निब्बान के बीच जटिल संबंध हैं जो एक नाम धम्म भी है। अधिपति पकायो नाम धम्म और रूप धम्म को नाम धम्म और रूप धम्म से जोड़ता है। ऐसे जटिल धम्मों के बीच दो प्रकार के सहसंबंध हैं। वे अरम्मना अधिपति और सहजता अधिपति पकायो हैं।

अरम्मनाधिपति पकायो से पता चलता है कि रूप धम्म और नामा धम्म कारणों के रूप में या पकाया धम्म अन्य नाम धम्मों का समर्थन करते हैं जो परिणामी धम्म या पचायुप्पन्ना धम्म हैं। धम्मों के बीच इस प्रकार के समर्थन और संबंध को अरम्मना अधिपति पकायो कहा जाता है।

सहजता अधिपति पकायो के मामले में, नाम धम्म पकाया धम्म या कारण धम्म के रूप में कार्य करते हैं और नाम धम्म और रूप धम्म को नाम धम्म के कारण उत्पन्न होना पड़ता है और इन परिणामी धम्मों को पकायुप्पन्न धम्म कहा जाता है जबकि कारण नाम धम्म को पकाया धम्म कहा जाता है।

अट्ठाईस रूप हैं जो सभी निप्पन्न रूप हैं। जब ये सभी रूप इत्थारम्मन यानी सुखद या आनंददायी वस्तुएँ होती हैं, तो वे नाम धम्म चित्तों के लिए अरम्मन या वस्तुएँ बन जाती हैं, जो अष्ट लोभ मूल चित्तों में से एक हो सकती हैं, या अष्ट कामावकार महाकुशल चित्तों में से एक हो सकती हैं। यदि इनमें ज्ञानपूर्ण ध्यान हो, यानी पन्ना और मानसिक चेतसिका हो, तो ये अष्ट कामावकार महाक्रिया चित्तों में से एक हो सकती हैं। जब ये अट्ठाईस रूप सुखद होते हैं और इन चित्तों के लिए अरम्मन के रूप में कार्य करते हैं, तो ये अट्ठाईस रूप प्रमुख धम्म बन जाते हैं और इन्हें अरम्मन अधिपति पच्चया कहा जाता है।

क्योंकि वे अरम्माना के रूप में काम करते हैं और वे उल्लेखित सीताओं के उद्भव के लिए अग्रणी हैं। इस प्रकार रूपा धम्म ऊपर उल्लिखित नामा धम्म चित्तों के लिए अरम्मना अधिपति के रूप में कार्य करता है। अन्य अरम्मना अधिपति धम्म हैं जो नामा धम्म के लिए अरम्मना के रूप में काम करते हैं। कुल 89 चित्तों में से 2 मोहा मुला चित्त, 2 दोसा मुला चित्त और 1 दुक्खा सहगाता कायविन्नन चित्त को बाहर करने के बाद वे 84 चित्त हैं। दोसा चित्त, मोह चित्त और वह दुक्ख सहगतम कायविन्नन चित्त, नाम धम्म के लिए अधिपति धम्म के रूप में काम नहीं कर सकते। तो इन 5 Cittas को 89 Cittas से बाहर रखा गया है। जब ये 84 चित्त उत्पन्न होते हैं और फिर से ये मन का विषय बन जाते हैं, तो वे अधिपति धम्म के रूप में काम करते हैं और इस प्रकार के अधिपति को अरामम्मा अधिपति कहा जाता है। ये 84 चित्त 8 महाकुशल चित्त और 8 महाकिरिया चित्त के उत्पन्न होने का कारण बन सकते हैं।

52 चेतसिकों में से 5 चेतसिक अरम्मन अधिपति धम्म के रूप में कार्य नहीं करते हैं। ये हैं दोष (विरोध), इस्सा (ईर्ष्या), मच्छरिया (कंजूसी), कुक्कुच्चा (चिंता) और मोह (अज्ञान) या भ्रम। ये 5 चेतसिक नाम धम्म के लिए अरम्मन अधिपति के रूप में कार्य नहीं करते हैं। अन्य 47 चेतसिक जब उत्पन्न होते हैं और मन द्वारा निर्देशित या ध्यान में लाए जाते हैं, तो ध्यान देने वाला मन आठ कामवाचार महाकुशल चित्तों में से एक हो सकता है, आठ कामवाचार महाक्रिया चित्तों में से एक हो सकता है। इसलिए ये 47 चेतसिक अरम्मन या विषय के रूप में कार्य करते हैं और ऐसा करने पर वे उन 16 चित्तों को धम्म का मार्गदर्शन करते हैं और ये 47 चेतसिक अरम्मन अधिपति धम्म हैं।

एक अन्य धर्म है जिसे नाम धर्म कहा जाता है और यह मन के सार या विषय के रूप में कार्य कर सकता है। जब यह मन के विषय के रूप में कार्य करता है, तो यह अन्य नाम धर्मों का मार्गदर्शक भी बन जाता है। उस नाम धर्म को निर्वाण कहा जाता है। निर्वाण मन का सार या विषय हो सकता है, लेकिन यह सख्ती से सीमित है और सच्चा निर्वाण केवल आठ लोकउत्तर चित्तों द्वारा ही देखा जा सकता है।

जब आठ लोकउत्तर चित्त उत्पन्न होते हैं और वे निर्वाण को देखते हैं, तो वह निर्वाण वास्तव में उन मार्ग चित्तों और फल चित्तों का सार या विषय बन जाता है। उसी समय निर्वाण प्रमुख धर्म या अधिपति धर्म बन जाता है। नाम धर्म निर्वाण उन चार मार्ग चित्तों और चार फल चित्तों का सार या विषय बन जाता है जो नाम धर्म हैं।

18 इथरम्मन निप्पन्ना रूप बनाते हैं (28 परमत्था रूप में 10 रूप शामिल नहीं हैं और केवल 18 रूप निप्पन्ना रूप हैं), 2 डोसा मूला सीता, 2 मोहा मूला सीता, और 1 दुक्खा सहगत कायाविन्नन सीता को हटाने के बाद 89 सीता में से 84 सीता, 47 डोसा, इस्सा, मैकचरिया, कुक्कुक्का और मोहा के बहिष्कार के बाद 52 सीतासिकों में से सीतासिक और 1 नाम धम्म निब्बाना उनके संबंधित नाम धम्म के लिए अरम्मना के रूप में काम कर सकते हैं। ये धम्म पकाया धम्म या कारण धम्म या कंडीशनिंग धम्म हैं।

पक्कयुप्पन्ना धम्म या उपर्युक्त धम्मों के परिणामी धम्म हैं 8 लोभा मूल चित्त, 8 कामवकार महाकुशल चित्त, 8 कामवकार महाकिरिया चित्त और 8 लोकुत्तर चित्त अर्थात 4 मग्गा चित्त और 4 फला चित्त। ये धम्म, जो कि सभी नाम धम्म हैं, पकाया धम्म से उत्पन्न हुए हैं। इन उपर्युक्त पकाय धम्मों और पचायुप्पन्न धम्म के बीच के संबंध को अधिपति पकाय कहा जाता है। पुनः यह अधिपति पकाय अरम्मना है और इसलिए इस पृष्ठ की पूरी स्थिति को अरम्मना अधिपति पकायो कहा जाता है।

आदिपति पकायो में दो प्रकार के पकाय होते हैं। वे अरम्मानाधिपति पकाया और सहजाताधिपति पकाया हैं। अरम्मनाधिपति पकाया में, पकाया धम्म या कारण कंडीशनिंग धम्म 18 निप्पन्न रूप हैं, जो सभी इत्थारम्मना या सहमत वस्तुओं के रूप में काम करते हैं, 2 डोसा सीता, 2 मोहा चित्त और 1 दुक्खा सहगत कायाविन्नान चित्त के बहिष्कार के बाद 89 कुल चित्त में से 84 चित्त, 47 सीतासिक के बहिष्कार के बाद डोसा, इस्सा, मैकचरिया और कुक्कुक्का के 4 डोसा जड़ित सीतासिका और 1 मोहा सीतासिका, और 1 निब्बाना।

जब ये धम्म अरम्मना के रूप में काम करते हैं, तो वे सभी प्रमुख धम्म बन जाते हैं जिन्हें अधिपति कहा जाता है। निब्बाना 8 लोकुत्तारा चित्तों के लिए धम्म का नेतृत्व कर रहा है। 18 निप्पन्न रूप का इत्तारम्मन 8 लोभा मूल चित्त, 8 महाकुशल चित्त और 8 महाकिरिया चित्त के लिए प्रमुख धम्म के रूप में काम करता है। 84 चित्त और 47 सीतासिका नाना सम्पायुत्त महाकुशल चित्त और महाकिरिया चित्त के लिए अग्रणी धम्म हो सकते हैं। तो ये सभी अरम्मानाधिपति पकाया हैं।

मोहा चित्त और दोसा चित्त और दुक्खा सहगत कायविन्नन चित्त अधिपति धम्म के रूप में धम्म का नेतृत्व नहीं कर सकते। वे अन्य पकाय में व्यवहार करेंगे लेकिन अधिपति पचाय में नहीं। चूंकि मोहा सीतास और दोसा सीतास अरम्मानाधिपति के रूप में काम नहीं कर सकते हैं, उनके संबंधित सीतासिका दोसा, इस्सा, मैकचरिया, कुक्कुक्का और मोहा सीतासिका अरम्मानाधिपति पकाया के रूप में काम नहीं कर सकते हैं।

इन कारणात्मक सशर्त धम्मों के कारण पक्कयुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म 8 लोभा मूल चित्त, 8 महाकुशल चित्त, 8 महाकिरिया चित्त और 8 लोकुत्तर चित्त, दोसा, इस्सा, मैकचरिया, कुक्कुक्का और मोह सीतासिका को छोड़कर 47 सीतासिका हैं। तो यहाँ कारणात्मक कंडीशनिंग धम्म रूप धम्म या 18 निप्पन्न रूप, 84 चित्त का नाम धम्म, 47 सीतासिका और 1 निब्बान हैं। अतः कारणात्मक धम्म रूप और नाम हैं। लेकिन इन कंडीशनिंग धम्मों के कारण परिणामी धम्म डोसा, इस्सा, मैकचरिया, कुक्कुक्का और मोहा के बहिष्कार के बाद सभी चित्त (8 लोभा मूल चित्त, 8 महाकुशल चित्त, 8 महाकिरिया चित्त, और 8 लोकुत्तर चित्त) और सीतासिका 47 के नाम धम्म हैं।

तो अरम्मानाधिपति पकाया में, रूप धम्म और नाम धम्म कारणात्मक अनुकूलन धम्म के रूप में काम करते हैं और वे परिणामी धम्म के उद्भव का कारण बनते हैं जो सभी नाम धम्म हैं। अरम्मानाधिपति पकाया धम्म में कोई भी परिणामी रूप धम्म नहीं है।

अधिपति पकाय में, अधिपति पकाय दो प्रकार के होते हैं। वे अरम्मना अधिपति पकाया और सहजता अधिपति पकाया हैं। अरम्मानाधिपति पकाया को पिछले पृष्ठों में समझाया गया है। इस पृष्ठ में, सहजता अधिपति पकाया पर कुछ विवरणों पर चर्चा की जाएगी।

ऐसे धम्म हैं जो अग्रणी भूमिका निभाते हैं। इन्हें अधिपति धम्म कहा जाता है। वे सभी नाम धम्म हैं। वे हैं चित्त, चंदा चेतसिका, वीर्य चेतसिका और पन्निंद्रिय चेतसिका। अधिपति धम्मों के रूप में उन्हें 1. चंदाधिपति, 2. चित्ताधिपति, 3. वीर्याधिपति, और 4. विमंसाधिपति कहा जाता है।

ये सभी नाम धम्म हैं और ये अधिपति धम्म तभी बनते हैं जब चित्त अपना जावना कार्य कर रहे होते हैं। अन्य समय में, वे बिल्कुल भी अधिपति धम्म नहीं हैं। ऐसे धम्मों के उदाहरण जो अधिपति धम्म नहीं हो सकते, वे गैर जावना चित्त हैं और इन गैर जावना चित्तों के चंदा, वीर्य और पन्निन्द्रिय चेतसिका बिल्कुल भी अधिपति धम्म नहीं हैं। अत: अधिपति धम्म केवल जवना चित्त में ही देखे जाते हैं।

कुल 89 चित्त हैं। यद्यपि 89 चित्त हैं, वे अपना-अपना कार्य करते हैं और दूसरों का कार्य नहीं करते। कार्य के अनुसार, चित्तों के 14 कार्य हैं।

1. पतिसंधि किक्का या लिंकिंग फ़ंक्शन
2. भावंगा किच्चा या जीवन निरंतर कार्य
3. अवज्जना किक्का या विज्ञापन फ़ंक्शन
4. दस्सना किक्का या देखने का कार्य
5. सवाना किक्का या श्रवण क्रिया
6. घयाना किच्चा या सूंघने का कार्य
7. sayana kicca or tasting function
8. फुसाना किक्का या स्पर्श क्रिया
9. संपच्चना किक्का या प्राप्त करने का कार्य
10. संतिराना किक्का या जांच कार्य
11. वोत्थापना किच्चा या निर्धारण कार्य
12. जवाना किक्का या मानसिक आवेग कार्य
13. तदारम्मना किक्का या प्रतिधारण कार्य
14. cuti kicca or dying function

इन कार्यों में से केवल जवान किच्चा या मानसिक आवेग ही अधिपति धम्म हो सकता है। जवान चित्त के 55 प्रकार हैं।

वे 29 कामवाकर जवना चित्त और 26 महागाता चित्त हैं। महागत का अर्थ है श्रेष्ठ। वे झाना सीतास या मग्गा सीतास या फला सीतास हैं।

29 कामवाकर जवना चित्त हैं

- 12 akusala cittas
- 1 ahetuka hasituppada citta
- 8 महाकुसला चित्त
- 8 महाकिरिया चित्त

26 महाग्गता चित्त हैं। वे हैं:

- 5 rupakusala cittas
- 5 rupakiriya cittas
- 4 arupakusala cittas
- 4 arupakiriya cittas
- 4 magga cittas
- 4 फला चित्त

29 कामवचरा जवना चित्त में, 2 मोह चित्त और 1 हसितुप्पा चित्त अधिपति धम्म के रूप में काम नहीं कर सकते। तो 55 जावना सिट्टा में से 3 सिट्टा बचे हैं और 52 जावना सिट्टा होंगे।

इन 52 जवान चित्तों में चित्त और चेतसिका दोनों भाग होते हैं। जब चित्त प्रबल होता है, तब इन सभी 52 चित्तों को चित्तधिपति धर्म कहा जाता है। चित्त प्रधान होने के कारण, इन 52 चित्तों में चंदा, वीर्य और पन्ना को अपने-अपने चित्तों की इच्छा का पालन करना पड़ता है।

इन 52 चित्तों में से यदि चंद प्रमुख धर्म बन जाए, तो चंद अन्य सभी चेतसिकों और इन 52 चित्तों के चित्त के लिए अधिपति पच्चय धर्म का कार्य करता है। यही चंदाधिपति धर्म है। यदि इन 52 चित्तों में वीर्य प्रमुख धर्म बन जाए, तो इन 52 चित्तों के सभी चेतसिकों को वीर्य धर्म की इच्छा का पालन करना होगा। इसी प्रकार, जब इन 52 चित्तों में पन्ना प्रमुख धर्म बन जाए, तो इन 52 चित्तों के सभी चेतसिकों को उस पन्ना की इच्छा का पालन करना होगा।

प्रत्येक जवान चित्त में, चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाएँ एक ही समय में एक ही क्षण में उत्पन्न होती हैं, जैसे मोमबत्ती की रोशनी एक ही समय में ऊष्मा और प्रकाश दोनों प्रदान करती है। ये चेतसिकाएँ चित्त के साथ ही उत्पन्न होती हैं और इन्हें सहजता पच्चया कहा जाता है। लेकिन जब ये, अर्थात् चंद, वीर्य और पन्ना, अलग-अलग चित्त का नेतृत्व करते हैं, तो इन्हें सहजताधिपति पच्चया कहा जाता है।

जब 52 चित्त उत्पन्न होते हैं, तो उनके चेतसिका भी उत्पन्न होते हैं, और जब चित्त अत्यंत शक्तिशाली होकर नेतृत्व करता है, तब वह चित्तधिपति धम्म कहलाता है। प्रत्येक 52 चित्तों के मामले में सहजताधिपति पच्चय धम्म चित्त होता है, और सहजताधिपति पच्चयुप्पन्न धम्म या परिणामी धम्म उनके संबंधित चेतसिका होते हैं। परिणाम कारणों के साथ उत्पन्न होते हैं, और इसे सहजता पच्चय कहा जाता है। लेकिन चूंकि 52 चित्त प्रमुख धम्म हैं, इसलिए यह केवल सहजता पच्चय नहीं बल्कि सहजताधिपति पच्चय है।

उसी प्रकार जब चंदा या वीर्य या पन्ना प्रमुख धम्म या अधिपति धम्म बन जाते हैं, तो वे सहजाधिपति पकाया धम्म या कारण कंडीशनिंग धम्म के रूप में कार्य करते हैं और चंदा, वीर्य और पन्ना को छोड़कर सभी 52 चित्त और उनके संबंधित सीतासिका जब वे धम्म का नेतृत्व कर रहे होते हैं तो पकायुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म बन जाते हैं। चूंकि कारणात्मक कंडीशनिंग धम्म और परिणामी धम्म एक साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन्हें सहजता कहा जाता है और पकाया या स्थिति को सहजताधिपति पकायो कहा जाता है।

अध्याय 8 - अनंतारा पच्चयो
या निकटता की स्थिति
कुल 89 चित्त होते हैं। किसी भी समय एक चित्त विद्यमान रहता है और जैसे ही वह चित्त क्षीण होता है, चित्त नियम के अनुसार अगला चित्त उत्पन्न हो जाता है। लेकिन यदि क्षीण हो रहा चित्त किसी अरहत का चुति चित्त है, तो वह आगे कुछ भी उत्पन्न नहीं करेगा, यानी अरहत के चुति चित्त के बाद कोई और चित्त नहीं रह जाता।

अरहत चुति चित्तों के अलावा, अन्य सभी 89 चित्त, चाहे वे चुति हों या नहीं, पूर्ववर्ती चित्त के समाप्त होने के तुरंत बाद एक नया चित्त उत्पन्न होता है। राजा की मृत्यु के समय युवराज स्वतः ही राजा बन जाता है। इसी उपमा के अनुसार, पूर्ववर्ती चित्त (अरहतों के चुति चित्त को छोड़कर सभी 89 चित्त) का समाप्त होना या पूर्ववर्ती चित्त का समाप्त होना, नए चित्त के उत्पन्न होने का कारण बनता है।

अतीत के चित्त में उसके चेतसिका होते हैं। अतः चित्त और चेतसिका दोनों के देहत्याप से अगले उत्पन्न होने वाले चित्त और उसके चेतसिका प्रभावित होते हैं। इस स्थिति को निकटता या अनंतर पच्चया कहते हैं। अनंतर शब्द अना और अंतर से मिलकर बना है। अना का अर्थ है 'नहीं', 'कुछ नहीं'। अंतर का अर्थ है अंतराल, रिक्त स्थान। अतः अनंतर का अर्थ है कोई अंतराल नहीं, या इसका अर्थ है निकटता।

चक्खु विन्नन धातु तम संपयुत्तका च धम्म मनोधातुया तम संपायुत्तकाननच धम्मनं अनंतरा पकायेन पकायो।

चक्कु विन्नान धातु चक्कु विन्नान चित्त है। इससे जुड़े धम्म 7 सार्वभौमिक चैतसिक हैं जिन्हें चरण या संपर्क, वेदना या भावना, चेतना या इच्छा, सन्ना या धारणा, एकागता या एक बिंदु, जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन, और मनसिकारा या ध्यान कहा जाता है। जब लुप्त हो जाते हैं, तो ये 8 धम्म अर्थात चित्त और 7 सीतासिका अगले उत्पन्न होने वाले नाम धम्म के निकटता नामक स्थिति की सेवा करते हैं, जिसे मनोधातु कहा जाता है, जो संपतिच्चन चित्त है।

इस सम्पतिच्चन चित्त में 10 सिटासिकाएँ हैं। वे 7 सार्वभौमिक चेतसिक, विटक्क, विकार और अधिमोक्ख कुल मिलाकर 10 चेतसिक हैं। उपरोक्त नाम धम्म जो कि चक्खु विन्नान चित्त है और इसके सिटासिका 7 सभी पकाया धम्म के रूप में काम करते हैं और इस पकाया को अनंत पकाया कहा जाता है। सम्पतिच्चन चित्त और इसके सह-उत्पन्न होने वाले 10 सिटासिका पच्चयुप्पन्ना धम्म हैं।

पच्चया धम्म और पच्चयुप्पन्ना धम्म के बीच के संबंध को अनंतरा कहा जाता है। यही अनंतरा पच्चयो है। चक्खुविन्नाना चित्त के देहांत होते ही संपच्चना चित्त का तत्काल उद्भव हो जाता है, और यह ऐसा प्रतीत होता है मानो राजा के देहांत होने पर संपच्चना चित्त सिंहासन पर आसीन हो जाता है।

चक्खुविन्नान चित्त या नेत्र चेतना के समाप्त होने के बाद, संपत्चना चित्त नामक एक अन्य चित्त उत्पन्न होता है, जो चक्खुविन्नान चित्त द्वारा ग्रहण की गई वस्तु को ग्रहण करता है। यह नया चित्त, संपत्चना चित्त भी तुरंत ही समाप्त हो जाता है, क्योंकि यह केवल एक क्षण तक ही रह सकता है।

इसके बाद उत्पन्न होने वाले चित्त को सन्तिरण चित्त या खोजी चेतना कहा जाता है। सम्पतीच्छना चित्त को मनो धातु भी कहा जाता है क्योंकि यह केवल वस्तु को जानता है, उसके सभी गुणों और निहितार्थों को उसके पूर्ण सार में नहीं जानता। पंचद्वरवज्जना चित्त या पंच

इंद्रिय-प्रवेश चेतना भी इसी प्रकार है। दो सम्पतीच्छना चित्त (कुशल विपाक और अकुशल विपाक) और पंचद्वरवज्जना चित्त को मनो धातु कहा जाता है।

मनो धातु केवल वस्तु को जानो। लेकिन मनो विन्नना धातु मनो धातु से कहीं अधिक जानते हैं। शांतिराना चित्त मनो विन्ना धातु हैं।

मनो धातु त.म संपयुत्तका च धम्म मनो विन्नन धातुया त.म संपयुत्तकाननच धम्मन.म अनंतरा पकायेन पकायो.

सम्पतिच्चन चित्त जो चक्खुविन्नन चित्त का अनुसरण करता है एक मनो धातु है। उस मनो धातु में 10 चेतसिकाएँ होती हैं। वे 7 सार्वभौमिक सीतासिका, विटक्का, विचारा, और अधिमोक्खा सीतासिका हैं। ये 10 धम्म सम्पायुत्तका च धम्म या सहवर्ती धम्म हैं।

संपच्चना चित्त के नष्ट होते ही, इसके साथ मौजूद ये दस चेतसिकाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। इनके नष्ट होने से सन्तिरण चित्त नामक अगले चित्त के उत्पन्न होने की स्थिति उत्पन्न होती है, जो मनो विन्नन धातु का एक प्रकार है। यदि यह चित्त उपेक्ख चित्त है, तो इसके साथ दस चेतसिकाएँ होती हैं। ये दस चेतसिकाएँ उसी प्रकार की होती हैं जो संपच्चना चित्त में उत्पन्न होती हैं।

पिछला चित्त संपच्चना चित्त कहलाता है। यह मनो धातु है। इसके बाद उत्पन्न होने वाला चित्त सन्तिरण चित्त कहलाता है। यह मनो विन्नना धातु है। संपच्चना चित्त का लुप्त होना राजा की मृत्यु के समान है। राजा की मृत्यु होते ही युवराज स्वतः ही राजा बन जाता है। संपच्चना चित्त के लुप्त होने से सन्तिरण चित्त का उदय होता है।

इस संदर्भ में सिद्धया धर्म संपत्चना और उससे संबंधित दस चेतसिकाएँ हैं। उनका निष्फल होना सन्तिरण चित्त के पुनरुद्भव का कारण है। अतः वे सिद्धया धर्म हैं। सन्तिरण और उससे संबंधित दस चेतसिकाएँ परिणामी धर्म हैं और उन्हें सिद्धायुप्पन्न धर्म कहा जाता है।

कारण-प्रेरित धम्म और परिणाम-प्रेरित धम्म के बीच के संबंध को अनंतार सिद्धाय कहते हैं। अनंतार, अना और अंतरा से मिलकर बना है। अना का अर्थ है 'नहीं', 'कुछ नहीं'। अंतरा का अर्थ है अंतराल, रिक्त स्थान। अनंतार का अर्थ है कोई अंतराल नहीं, कोई रिक्त स्थान नहीं। अतः कारण-प्रेरित धम्म और परिणाम-प्रेरित धम्म के बीच कोई अंतर नहीं होता, और इसी को अनंतार कहते हैं। यही अनंतार सिद्धाय है।

सोतविन्नान धातु त.म संपयुत्तका च धम्म मनो धातुय त.म संपयुत्तकाणच धम्मना.म अनंतरा पकायेन पकायो. धम्मों के बीच का यह संबंध भी चक्कुविन्नान चित्त और संपतिच्चन चित्त के समान है।

मनो धातु त.म संपयुत्तका च धम्म मनो विन्नान धातुया त.म संपयुत्तकाननच धम्मना.म अनंतर पकायेन पकायो. सोतविन्नन धातु का पालन करने वाला संपतिच्चन चित्त भी समाप्त हो जाता है और इसके बाद शांतिरण चित्त आता है जो ध्वनि वस्तु की जांच करता है। यह मामला भी चक्कुविन्नाना चित्त और निम्नलिखित चित्त के समान है।

पुनः घनविन्नन धातु के बाद मनो धातु सम्पतिच्चन चित्त आता है। और इसके बाद फिर से मनो विन्नना धातु शांतिराना चित्त आता है। इन घटनाओं की तरह, जीवविन्नान चित्त और निम्नलिखित चित्त, कायाविन्नान चित्त और निम्नलिखित चित्त भी चक्कुविन्नान चित्त और सोतविन्नान चित्त की तरह ही करते हैं।

पुनः प्रत्येक मनो विन्नन धातु के बाद अन्य मनो विन्नन धातु भी आती है। चित्त की सभी प्रक्रियाओं में, जो एक के बाद एक चित्त की एक श्रृंखला बनाती हैं, जिसे विथि वर कहा जाता है, वे बिल्कुल चित्त नियम या चित्त के नियम के नियमों का पालन करती हैं।

यदि पूर्वगामी चित्त कुसल धम्म है, तो निम्नलिखित चित्त भी कुसल धम्म है। पूर्वगामी कुसल धम्म समाप्त हो जाता है और अगले उत्पन्न होने वाले कुसल धम्म के लिए स्थिति पैदा करता है। तो यह अनन्तर पकाया है। यदि पूर्वगामी चित्त कुसल धम्म है, तो निम्नलिखित चित्त अभ्यक्त धम्म भी हो सकता है। रिश्ता अनंतर पकाया है। अव्यक्त धम्म गैर कर्म सृजनात्मक धम्म हैं।

यदि अग्रदूत अकुसाला धम्म है, तो अगला चित्त अकुसाला धम्म होगा और वे अनंत पकाया द्वारा वातानुकूलित हैं। यदि यह अकुसाला धम्म है, तो अगला चित्त अभी भी अभ्यक्त धम्म हो सकता है। यह रिश्ता भी अनन्तर पकाया है।

यदि अभ्यकता धम्म चित्त से पहले आता है, तो अगला उत्पन्न होने वाला चित्त अभ्यकता धम्म हो सकता है। यह भी अनंतर पच्चय है। इस अभ्यकता धम्म के बाद कुशल धम्म भी आ सकता है। यह अनंतर पच्चय है। इसी प्रकार, अभ्यकता धम्म के बाद अकुशल धम्म भी आ सकता है। और इस संबंध को अनंतर पच्चय कहते हैं।

पच्चया धम्म चित्त और चेतसिका का त्याग है। पच्चयुप्पन्न धम्म चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाओं का अनुसरण करता है। पच्चया धम्म और पच्चयुप्पन्न धम्म के बीच के संबंध को अनंतार पच्चयो कहा जाता है।

अध्याय 9 - समानान्तरा पकायो
या निकटता की स्थिति
समनन्तरा पचायोति- चक्खु विन्नन धातु तम संपयुत्तका च धम्म मनो धातुया तम संपयुत्तकाननच धम्मनं समानान्तरा पचायेन पचयो।

राजा की मृत्यु होने पर युवराज स्वतः ही उस देश का राजा बन जाता है जहाँ दिवंगत राजा का शासन था। राजत्व की निरंतरता और तर्कसंगतता तब अधिक होती है जब राजा की मृत्यु नहीं होती, बल्कि वह संन्यास लेकर उच्चतर मानसिक साधना के लिए वनवास जाने पर अपना राजत्व युवराज को सौंप देता है। पहले उदाहरण को अनंतार पच्चया और दूसरे उदाहरण को समनंतार पच्चया कहा जाता है।

अन्यथा समनंतर पच्चया में पच्चया का लगभग सारा वर्णन अनंतर पच्चया के समान ही है। लेकिन कुछ अपवाद हैं जहाँ समनंतर पच्चया अनंतर पच्चया के समान नहीं है। उपरोक्त पाली संदेश केवल यह उद्धृत करने के लिए है कि यह पट्टाना धम्म में व्यक्त किया गया है। इसका अर्थ यह है कि...

समनंतरा पकाय या सन्निहित स्थिति में --- कक्खु विन्नन धातु या चक्कु विन्नन चित्त और उससे संबंधित धम्म जो कि सीतासिका हैं [संपयुत्तका च धम्म] मनो धातु (1 पंचद्वार अवज्जन चित्त या 5-द्वार विज्ञापन चेतना, और 2 संपतिच्छन चित्त या चेतना प्राप्त करना) और इसके उत्पन्न होने की स्थिति देता है। धम्म के साथ [अर्थात सीतासिका]।

दोबारा

मनो धातु तम संपयुत्तका च धम्म मनो विन्नन धातुय तम संपयुत्तकननच धम्मनं समानान्तर पचायेन पचयो।

मनो धातु (3 चित्तों में से एक, 1 पंचद्वार अवज्जन चित्त और 2 संपतिच्छन चित्त) और उससे जुड़े धम्म [सिटासिका] मनो विन्नन धातु के लिए सन्निहित स्थिति देते हैं [10 पंच विन्नान चित्त और 3 मनोधातु को घटाने के बाद 89 चित्तों में से 76 चित्त] और उनसे जुड़े धम्म [cetasikas]।

यह भी सही है

1. सोताविन्नन धातु से मनो धातु और मनो धातु से मनो विन्नन धातु
2. घनाविन्न धातु से मनो धातु और मनो धातु से मनो विन्नन धातु
3. जीवविन्नन धातु से मनो धातु और मनो धातु से मनो विन्नन धातु
4. कायविन्नन धातु से मनो धातु और मानो धातु से मानो विन्नन धातु

पुरिमा पुरिमा कुसल धम्म पछिमानं पछिमानं कुसलनं धम्मनं समानान्तरा पक्केयेन पकायो।

पुरिमा का अर्थ है आगे या आगे जाना और पछिमा का अर्थ है पीछे या आखिरी या वह जो किसी या किसी चीज़ के पीछे है। पुरिमा पुरिमा का अर्थ है वह धम्म जो अन्य धम्मों के सामने जाता है या वह धम्म जो उसके बाद आने वाले धम्मों से पहले उत्पन्न होता है। यदि पूर्वगामी धम्म कुसल धम्म हैं (8 कामकुसल चित्त, 5 रूपकुसल चित्त, 4 अरूपकुसल चित्त और 4 लोकुत्तरा कुसल चित्त हैं) तो निम्नलिखित धम्म कुसल धम्म होंगे [8 काम कुसल, 5 रूप कुसल, 4 अरूप कुसल, और 4 लोकुत्तारा कुसाला]।

पुरिमा पूरिमा कुसल धम्म पच्छिमानं पछिमानं अभ्यक्तनं धम्मणं समानंतरा पकायेन पकायो। जब पूर्ववर्ती धम्म कुसल धम्म हैं, तो अगले निम्नलिखित धम्म अभ्यक्त धम्म भी हो सकते हैं। अभ्यक्त धम्म कुसल धम्म नहीं हैं और वे अकुसल धम्म नहीं हैं। वे विपाक धम्म या किरिय धम्म हैं और उनमें कोई कर्म बल नहीं है।

यह उद्धरण कहता है कि कुसल धम्म का अनुसरण अभ्यक्त धम्म द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण हैं

7वें महाकुशल जवना चित्त के अंत में 1 तदारम्मन चित्त या प्रतिधारण चेतना का अनुसरण होता है, जो विपाक चित्त में से एक है। तदारम्मना चित्त 3 शांतिराना चित्त और 8 महाविपाक चित्त हैं। सभी विपाक चित्त हैं जबकि महाविपाक चित्त सहेतुका विपाक हैं, 3 शांतिराना चित्त अहेतुका विपाक चित्त हैं।

पुरिमा पुरिमा अकुसल धम्म पच्छिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं समानान्तरा पक्केयेन पचायो।

यदि पूर्ववर्ती धम्म अकुसाला हैं, तो अगले निम्नलिखित धम्म अकुसाला धम्म हो सकते हैं। अकुसाला जावना में, लगातार 7 चित्त हैं। सभी अकुसाला चित्ता हैं। पहले अकुसाला के बाद अगला अकुसाला धम्म होता है और यह 6वें अकुसाला जवना चित्त तक होता है।

पुरिमा पुरिमा अकुशल धम्म पच्छिमानं पछिमानं अभ्यकतानं धम्मनं समानान्तरा पक्केयेन पचायो।

फिर जब पूर्ववर्ती धम्म अकुसाला धम्म हैं, तो अगला निम्नलिखित धम्म अभ्यक्त धम्म भी हो सकता है। उदाहरण है 7वां अकुसाला जवना चित्त, उसके बाद विपाक चित्त का पहला तदारम्मन चित्त है जो एक अभ्यक्त धम्म है।

पुरिमा पुरिमा अभ्यक्ता धम्म पछिमानं पछिमानं अभ्यक्तानं धम्मणं समानान्तरा पक्केयेन पचायो।

जब पूर्ववर्ती धम्म अव्यक्त धम्म हैं, तो अगले निम्नलिखित धम्म भी अव्यक्त धम्म हो सकते हैं। सम्पतिच्चन चित्त या मनो धातु एक विपाक चित्त है और यह अभ्यक्त धम्म है और इसके बाद शांतिराना चित्त आता है जो एक विपाक चित्त और अभ्यक्त धम्म है।

पुरिमा पुरिमा अभ्यक्ता धम्म पच्छिमानं पछिमानं कुसलनं धम्मनं समानान्तरा पकायेन पकायो।

जब पूर्ववर्ती धम्म अभ्यक्त धम्म हैं, तो अगला धम्म कुसल धम्म हो सकता है। यह वोत्थापना चित्त में देखा जाता है जो मनो द्वार अवज्जना चित्त है और यह किरिया चित्त है। तो यह अभ्यक्त धम्म है। इसके बाद कुसाला जवना सिट्टास आता है।

पुरिमा पुरिमा अभ्यक्ता धम्म पच्छिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं समानान्तरा पक्केयेन पचायो।

येसं येसं धम्मनं समनन्तरा ये ये धम्म उप्पज्जन्ति चित्त चेतसिका धम्म ते ते धम्म तेसम तेसम धम्मनम समानान्तरा पचायेन पकायो।

पुरीमा का अर्थ है, जो पूर्व दिशा से पहले आता है या जो सबसे पहले घटित हुआ है। पुरीमा का अर्थ है वे धर्म जो अन्य धर्मों से पहले घटित हुए हैं। इस वाक्य में यदि ये धर्म अभ्यकता धर्म हैं, तो पच्चिमा या अनुवर्ती धर्म अकुशल धर्म हो सकते हैं। और यह संबंध समनंतर पच्चया है।

अकुशल जवान विथी वर में या अकुशल तरीके से प्रतिक्रिया करते हुए चित्तों की प्रक्रिया में, यदि विथी वर अति महंत अरम्मन है या यदि वस्तु अत्यंत स्पष्ट है, तो 14 विथी चित्त होते हैं। 1. अतित भावांग चित्त (पूर्व जीवन निरंतरता), 2. भावांग चलन (स्पंदित जीवन निरंतरता) और 3. भावांगुप्पच्छेद (अवरोधित जीवन निरंतरता) के नाम पर 3 भावांग चित्तों के समाप्त होने के बाद, उपरोक्त 3 भावांग चित्तों के साथ कुल 17 चित्तों का निर्माण होता है।

14वें विथि चित्त के अंत में या 17वें चित्त के अंत में अराम्मन या वस्तु के रूप में काम करने वाला मूल रूप भी 14वें विथि चित्त या 17वें चित्त के साथ गायब हो जाता है। 3 भावांग चित्त के बाद, अकुसाला जावना वीथि में पहला विथि चित्त पंचद्वार अवज्जना चित्त है। यह चित्त किरिया चित्त है। यह अहेतुका किरिया चित्त है। यह एक किरिया चित्त है जो जावना किक्का या मानसिक आवेग कार्य का काम नहीं कर सकता है। लेकिन यह अवाजना का काम या विज्ञापन का काम करता है। चूँकि यह एक किरिय चित्त है इसलिए यह एक अभ्यक्त धम्म है।

पंच द्वार अवज्जन चित्त के बाद पंच विन्नान चित्त या 5-इंद्रिय चेतना आती है। यह चित्त विपाक चित्त है। यह अहेतुका चित्त है। यह देखने का काम कर रहा है कि क्या चित्त चक्खु विन्नान है, अगर सोता विन्नना है तो सुन रहा है, अगर घना विन्नना है तो सूंघ रहा है, अगर जीव विन्नना है तो चख रहा है, अगर काया विन्नना है तो उसे छू रहा है। चूँकि यह विपाक चित्त है इसलिए यह अव्यक्त धम्म भी है। पूर्वगामी पंचद्वारवज्जन चित्त है जो एक अभ्यक्त धम्म है और इसके बाद पंच विन्नान चित्त है जो एक अभ्यक्त धम्म भी है। यह भी समानान्तर पकाया है।

पंच विन्नाना चित्त के समाप्त होने के बाद सम्पचित्छना चित्त या ग्रहणशील चेतना उत्पन्न होती है। यह अहेतुका चित्त है। यह एक विपाक चित्त है। क्योंकि यह एक विपाक चित्त है, इसलिए यह अभ्यक धम्म है। पूर्वोक्त चित्त पंच विन्नाना चित्त भी अभ्यक धम्म है और इसके बाद सम्पचित्छना चित्त आता है, जो भी अभ्यक धम्म है। फिर सम्पचित्छना चित्त या ग्रहणशील चेतना के बाद सन्तिरण चित्त या अन्वेषणशील चेतना आती है। सन्तिरण चित्त एक अहेतुका चित्त है। यह एक विपाक चित्त है। इसलिए यह भी अभ्यक धम्म है। पूर्वोक्त चित्त सम्पचित्छना चित्त है, जो अभ्यक धम्म है और इसके बाद सन्तिरण चित्त आता है, जो भी अभ्यक धम्म है।

जब सन्तिरण चित्त या अन्वेषण चेतना समाप्त हो जाती है, तब वोत्थपन चित्त या निर्धारण चेतना उत्पन्न होती है। यह चित्त मनोद्वरवज्जन चित्त है, जो निर्धारण का कार्य करता है या वोत्थपन किच्चा करता है। मनोद्वरवज्जन चित्त क्रिया चित्त है, इसलिए यह अभ्यकत धर्म भी

है। इससे पहले वाला चित्त सन्तिरण चित्त है, जो अभ्यकत धर्म है, और इसके बाद मनोद्विरवज्जन चित्त आता है, जो निर्धारण का कार्य करता है या वोत्थपन किच्चा करता है, जो फिर से अभ्यकत धर्म है। और यह समननातर पच्चया के अनुरूप है।

जैसे ही विथि वर अकुसाला विथि वर है, जैसे ही वोत्थापना चित्त [मनोद्वारवज्जन चित्त] का निधन हो जाता है, वहां पहला अकुसाला जवना चित्त का अनुसरण होता है। तो पूर्वगामी चित्त मनोद्वारवज्जन चित्त है जो एक अभ्यक्त धम्म है और इस अभ्यक्त धम्म के बाद पहला अकुसाला जवना चित्त है जो एक अकुशल धम्म है। तो यह इंगित करता है कि पुरिमा पुरिमा अभ्यक्ता धम्म पछिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं समाननतारा पकायेना पचायो।

यहां कारण धर्म या सहायक धर्म या पच्चय धर्म, वोत्थापन चित्त या मनोद्वर अवज्जन चित्त है, जो अभ्यकत धर्म है, और परिणामी धर्म या पच्चयुप्पन धर्म या सशर्त धर्म, प्रथम अकुशल जवान चित्त है [यह बारह अकुशल चित्तों में से एक हो सकता है]। कारण धर्म और परिणामी धर्म के बीच के संबंध को समनंतर पच्चय कहा जाता है, क्योंकि इनके बीच कोई अंतराल नहीं होता। पच्चयुप्पन, पच्चय और उप्पन से मिलकर बना है। पच्चय का अर्थ है आधार और उप्पन का अर्थ है उत्पन्न। पच्चयुप्पन का अर्थ है वे उत्पन्न वस्तुएँ जिन्हें आधार या सशर्त बनाया गया है।

प्रतीत्यसमुप्प धर्म या आश्रित उत्पत्ति, कारण और परिणाम के बीच ऐसा कोई विशेष संबंध नहीं दर्शाता है। प्रतीत्यसमुप्प धर्म केवल कारण और परिणाम को क्रमबद्ध रूप से प्रकट करता है, यह बताए बिना कि इन दोनों धर्मों के बीच संबंध कैसे स्थापित होता है। जबकि पथाना धर्म निश्चित रूप से उनके बीच संबंध को प्रकट करता है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 10
हटू निंग द्वारा

अध्याय 10 - सहजता पकायो

या चेतना की स्थिति
सहजता पकायो ती - कत्तारो खांधा अरूपिनो अन्नमन्नम सहजता पकायेना पकायो।

सहा का अर्थ है साथ में, समानांतर, एक ही समय में, एक साथ आना। जाति या जाता का अर्थ है उत्पन्न होना या ऊपर आना। सहजता का अर्थ है एक साथ ऊपर आना। पच्चया का अर्थ है आधार, स्थिति, समर्थित स्थिति, कारण। अतः सहजता पच्चया का अर्थ है वह स्थिति जो परिणाम के साथ आती है। ति या इति का अर्थ है इस प्रकार, जैसा कि। अतः सहजता पच्चयो आरे कत्तरो खान पच्चयो।

चट्टारो का अर्थ है ये चार धम्म। खंधा का अर्थ है समूह। अरूपिनो का अर्थ है निराकार। अतः चट्टारो खंधा अरूपिनो का अर्थ है ये चार निराकार समूह। अन्नमन्नम, अन्न और अन्नम से मिलकर बना है। इसका अर्थ है एक दूसरे से। यानी एक दूसरे से संबंधित है और दूसरा पहले से, और यही एक दूसरे से संबंधित है। यह कहा जा सकता है कि वे एक दूसरे के साथ क्रिया कर रहे हैं। ये चार खंधा अन्नमन्न सहजता पच्चया के रूप में कार्य करते हैं।

इसका अर्थ यह है कि एक खंध अन्य तीन खंधों के लिए पच्चय धम्म का कार्य करता है। इसी प्रकार, अन्य तीन खंध भी अन्य तीन खंधों के लिए पच्चय धम्म का कार्य करते हैं। इसे समझने के लिए पांच खंधों या पांच स्कंधों का ज्ञान होना आवश्यक है; इन पांच खंधों के ज्ञान के बिना सहजत पच्चय, विशेषकर अन्नमन्न सहजत पच्चय, को नहीं समझा जा सकता।

पांच खंड या पंच खंड हैं

1. रूपा खंडा या सामग्री समुच्चय
2. वेदना क्षन्ध या भावना समूह

3. सन्ना खंडा या धारणा समूह
4. संखारा खंड या गठन समुच्चय
5. विन्नाना क्खंध या चेतना समूह

सरल अंग्रेजी में लिखना आसान है। लेकिन उन्हें और स्पष्टीकरण की आवश्यकता होगी। यदि भौतिक तत्वों के समूह को स्पष्ट न किया जाए तो गैर-बौद्धों के लिए उनका कोई अर्थ नहीं होगा। नाम-रूप अंतःक्रिया के क्षेत्र में रूप की भी स्पष्ट भूमिका होती है। रूप के बिना, चित्त और चेतसिका उत्पन्न नहीं हो सकते, सिवाय कुछ अपवादों के जब वे अरूप ब्रह्म लोकों में हों।

नाम-रूप के परस्पर संबंध के संदर्भ में, हमें एक उदाहरण की आवश्यकता है। आइए देखने की घटना का उदाहरण लें। आप कुछ देखते हैं या कोई और कुछ देखता है। धम्मों का उद्भव और विनाश होता है। ये विभिन्न आकृतियों और रूपों के वन्न या रंग हैं जो दृष्टि चेतना या चक्खु विन्नन चित्त के लिए रूपारम्मन या विषय के रूप में कार्य करते हैं। वह वन्न एक रूप है और यह रूपखंड या भौतिक समुच्चय है। इसी प्रक्रिया में चक्खु पसद या चक्खुप्पसद या दृष्टि इंद्रिय आधार का उद्भव होता है। यह एक अन्य रूप या पदार्थ है और यह भी भौतिक समुच्चय या रूपखंड है।

जबकि वन्नो या रंग आरम्मन या वस्तु का कार्य करता है, वहीं चक्खु पसदा रूप चित्तों की संपूर्ण श्रृंखला के लिए द्वार का कार्य करता है। चक्खु पसदा रूप संबंधित चित्तों और चेतसिकाओं के लिए आधार का भी कार्य करता है। इस पूरी प्रक्रिया में 14 विथी चित्त होते हैं।

1. पंचद्वरवज्जन चित्त में उपेक्खा वेदना या उदासीन भावना है। 2. पंचविन्नान चित्त या चक्कुविन्नान चित्त में यहाँ उपेक्खा वेदना या उदासीन भावना है। 3. सम्पतिच्चन चित्त या चेतना प्राप्त करने में उपेक्खा वेदना या उदासीन भावना भी होती है। 4. शांतिराना चित्त या जांच चेतना में उपेक्खा वेदना या उदासीन भावना हो सकती है या सोमनास्सा वेदना या मानसिक आनंद हो सकता है। 3 शांतिराना चित्त या 3 जांच चेतना हैं। एक है अकुसल विपाक का उपेक्खा शांतिराना और दूसरा है कुसल विपाका का उपेक्खा शांतिराना और फिर भी एक तीसरा शांतिराना है और यह कुसल विपाका है और इसमें सोमनासा वेदना या मानसिक आनंद है।

5. वोत्थापन चित्त या निर्धारण चेतना, जो मनोद्वार वज्जन चित्त या मन द्वार विमुख चेतना है। इसमें उपेक्षा वेदना या उदासीन भाव होता है। इस पाँचवें विथी चित्त के बाद लगातार सात जावना चित्त आते हैं।

6 से 12. जावना चित्त या मानसिक आवेगी चेतना। जैसा कि यह उदाहरण पंचद्वार विथि वर जावना चित्त है, पंचद्वार विथि वर के होंगे। 5 इंद्रिय द्वार पर 29 जवना चित्त हैं। ये 29 जवना चित्त हैं 12 अकुसाला चित्त, 1 हसीतुप्पदा चित्त, 8 महाकुशल चित्त, और 8 महाकिरिया चित्त।

उनमें से 4 लोभ चित्त सोमनस्सा चित्त या मानसिक आनंद के साथ चेतना हैं, 1 हसीतुप्पा चित्त एक सोमनस्सा चित्त है, 4 महाकुशल चित्त सोमनस्सा चित्त हैं और 4 महाकिरिया चित्त सोमनस्सा चित्त हैं। तो 13 सोमनासा काम जवना चित्त होंगे। 2 डोसा सिट्टा डोमानासा सिट्टा हैं और उनमें मानसिक नाराजगी है। 29 चित्तों में शेष सभी चित्त उपेक्खा चित्त हैं और वे 4 उपेक्खा लोभा चित्त, 2 उपेक्खा मोहा चित्त, 4 उपेक्खा महाकुशल चित्त और 4 उपेक्खा महाकिरिया चित्त हैं।

तो 13 सोमनासा चित्त (4 लोभा, 1 हसीतुप्पदा, 4 महाकौशल, 4 महाकिरिया), 2 डोमनस्सा चित्त (2 दोसा मूल चित्त, और 14 उपेक्खा चित्त (4 लोभा, 2 मोह, 4 महाकुशल, 4 महाकिरिया) हैं। इन चित्तों में वेदना चेतसिका वेदना खखंड या हैं। समुच्चय महसूस करना.

7वें जवना चित्त के बाद 2 क्रमिक तदारम्मन चित्त या 2 प्रतिधारण चेतना आती है। ये 2 चित्त मौजूदा अरम्मना को तब तक बरकरार रखते हैं जब तक कि दूसरा तदारम्मना चित्त समाप्त नहीं हो जाता। ये तदारम्मन चित्त 11 चित्त (3 शांतिराना चित्त और 8 महाविपाक चित्त) हैं। फिर उनके पास वेदना या भावना तो है ही। एक शांतिराना सोमनास्सा चित्त है और अन्य 2 शांतिराना चित्त उपेक्खा चित्त हैं। महाविपाक चित्त में से 4 सोमनस्सा चित्त हैं और अन्य 4 उपेक्खा चित्त हैं। तो 11 तदारम्मन चित्त में 5 सोमनस्सा चित्त और 6 उपेक्खा चित्त हैं। इन 11 चित्तों में से प्रत्येक में वेदना वेदना खंड या भावना समुच्चय हैं।

ऊपर दिए गए उदाहरण में प्रत्येक चित्त में सन्ना या बोध होता है और इन्हें सन्ना खंड या बोध समूह कहा जाता है। कुल मिलाकर 52 चेतसिकाएँ हैं। एक वेदना है और दूसरी सन्ना, जिनमें से प्रत्येक का अलग-अलग खंड होता है, इस प्रकार शेष 50 चेतसिकाएँ बचती हैं। ऊपर दिए गए उदाहरण विथी वर में 14 विथी चित्त हैं। वेदना और सन्ना को हटाने के बाद जो बचता है वह संखार खंड या निर्माण समूह है। निर्माण जैसे वीर्य या प्रयास, मानसिका या ध्यान, दोष या घृणा आदि, अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ निभाते हैं, इसलिए इन्हें निर्माण या संखार खंड कहा जाता है। इस उदाहरण में सभी 14 विथी चित्त चेतना हैं और इन्हें चेतना समूह के रूप में जाना जाता है।

रूप खंड के बहिष्कार के बाद अन्य सभी 4 खंड जिन्हें नाम खंड के नाम से जाना जाता है, एक दूसरे के लिए अन्नमन्ना सहजता पकाय के रूप में काम करते हैं।

रूपा क्षन्ध या भौतिक समुच्चयों को बाहर करने के बाद, अन्य सभी चार नाम क्षन्ध या अभौतिक समुच्चय एक दूसरे के लिए अन्नमन्ना सहजता पच्चया या पारस्परिकता की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

वह है विन्नन खंड या चेतना समुच्चय, वेदना खंड या भावना समुच्चय के लिए अन्नमन्ना सहजता पकाया या परस्पर सहमति की स्थिति के रूप में कार्य करता है। यहां विन्नन कखंड का अर्थ है अति महंत अरम्मना में 14 विथि चित्त या बहुत स्पष्ट वस्तु विथि वर चित्त। उनमें से प्रत्येक के पास सन्ना या धारणा भी है और वे सन्ना खंड या धारणा समुच्चय हैं और विन्नन खंड फिर से वेदना खंड के अलावा सन्ना खंड के लिए पारस्परिक सहमति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

इन 14 विथी चित्तों में से प्रत्येक में चेतसिकाएँ होती हैं और इन्हें संखार खंड या निर्माण समूह के रूप में जाना जाता है। यहाँ 14 विथी चित्तों में संखार या निर्माण समूह हैं, जैसे कि चेतना (इच्छाशक्ति), वीर्य (प्रयास), मानसिक (ध्यान) आदि, और ये सभी अपनी-अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ निभाते हैं। वेदना और सन्ना को छोड़कर, जो अलग-अलग खंड या समूह हैं, अन्य सभी चेतसिकाओं को सामूहिक रूप से संखार खंड के रूप में जाना जाता है। वेदना खंड और सन्ना खंड की तरह, विन्नाना खंड भी संखार खंड या निर्माण समूहों के लिए पारस्परिक सामंजस्य की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

विन्नाना क्षन्ध अन्य तीन नाम क्षन्धों के लिए कारण कारक के रूप में कार्य करता है, जो पारस्परिकता और चेतना का संयोजन है। इसी प्रकार, सन्ना क्षन्ध या बोध समूह अन्य तीन नाम क्षन्धों (विन्नाना क्षन्ध या चेतना समूह, वेदना क्षन्ध या भावना समूह और संस्कार क्षन्ध या निर्माण समूह) के लिए अन्नमन्ना सहजता और चेतना समूह के संयोजन के रूप में कार्य करता है।

इसी प्रकार, वेदना क्षन्ध या भाव समूह, चेतना समूह, अनुभूति समूह और निर्माण समूह के लिए पारस्परिकता की शर्त के रूप में कार्य करता है। संस्कार समूह भी चेतना समूह, अनुभूति समूह और वेदना क्षन्ध या भाव समूह के लिए पारस्परिकता की शर्त के रूप में कार्य करता है।

ये चारों नाम क्षन्ध एक दूसरे के लिए नन्नमन्ना सहजता पच्चया या पारस्परिकता का सूत्रपात करते हैं। किसी भी क्षण वे एक साथ उत्पन्न होते हैं और उसी समय एक दूसरे के लिए अन्नमन्ना सहजता पच्चया या पारस्परिकता का सूत्रपात करते हैं। अन्नमन्ना शब्द 'अन्न' और 'अन्न' से मिलकर बना है। अन्न का अर्थ है जानना, अनुभव करना, बोध करना। अन्नमन्ना का अर्थ है एक दूसरे को जानता है। यहाँ अन्नमन्ना का अर्थ है एक दूसरे का सहारा है और इसके विपरीत भी, और जब एक अनुपस्थित होता है तो संपूर्ण अस्तित्व संभव नहीं होता।

तिदंत या तीन पैरों वाली मेज एक या दो पैरों पर नहीं टिक सकती, बल्कि तीनों पैरों पर ही टिक सकती है। इसी प्रकार, चार नाम क्षन्ध अन्य तीन क्षन्धों के बिना विद्यमान नहीं हो सकते। यही परस्पर संबंध है। वे एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। इसलिए इस सशर्त संबंध को अन्नमन्ना सहजता पच्चया कहा जाता है।

जब मोमबत्ती जलाई जाती है, तो उसमें प्रकाश और ऊष्मा दोनों उत्पन्न होते हैं। इन्हें अलग नहीं किया जा सकता और ये साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। ऊष्मा उत्पन्न होने पर प्रकाश भी उत्पन्न होता है और यह ठीक उसी समय होता है। अतः, जो स्थिति किसी दूसरी चीज़ को प्रभावित करती है, वह उसके परिणाम के उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होती है। इसे सहजता पच्चय कहते हैं।

कारण धम्म या कंडीशनिंग धम्म या पकाया धम्म वेदना खंड या सन्ना खंड या संखा खंड या विन्नन खंड है और परिणामी धम्म या वातानुकूलित धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म फिर से कंडीशनिंग खंड को छोड़कर 4 खंडों में से एक है। कारण धम्म और परिणामी धम्म के बीच के संबंध को सहजता पकाया के रूप में जाना जाता है और इस उदाहरण में यह अन्नमन्ना सहजता पकाया है।

कत्तारो महा भूत अन्नमन्नं सहजता पकायेन पकायो।

चतुरो महा भूता का अर्थ है चार महाभूत रूप या चार महान तत्व। पदार्थ के संदर्भ में, केवल ये चार रूप ही पदार्थ के रूप में मौजूद हैं: 1. पथवी (ठोसता या द्रव्यमान), 2. तेज (तापमान), 3. वायु (संयोजकता या दबाव या गति), और 4. आपो (संसंजन या चिपचिपाहट या प्रवाह)। अन्य सभी रूप इन चार महाभूत रूपों पर निर्भर होते हैं। इन्हें महाभूत रूप इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये वह स्थान हैं जहाँ अन्य सभी रूप निवास करते हैं या निर्भर होते हैं, और ये सभी रूपों की भूमि हैं।

उदाहरण के लिए, एक द्रव्यमान है। उस द्रव्यमान में अणु, परमाणु आदि होते हैं। इसमें एक ठोस घटक भी होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह ठोस, द्रव या गैस है। उस ठोसपन को काया द्वार (काया पसदा रूप) के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है, और काया विन्नाना उस ठोसपन को जानती है, और यह पथवी रूप का गुण है। उस द्रव्यमान का एक निश्चित तापमान होता है। इसे भी काया द्वार (काया पसदा रूप) के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है, और काया विन्नाना या शरीर में मौजूद चेतना उस तापमान को जानती है।

उस द्रव्यमान में उप-परमाणु कण गतिमान होते हैं, अणु में परमाणु गतिमान होते हैं और यौगिक में अणु गतिमान होते हैं, और इन सभी का तापमान एक समान होता है। द्रव्यमान में ये कण एक दूसरे को आकर्षित करते हैं और एक दूसरे का समर्थन करते हैं, और इस समर्थन को काया द्वार (काया पसदा रूप) के माध्यम से महसूस किया जा सकता है, और इस समर्थन या वायु को काया विन्नन चित्त के माध्यम से महसूस किया जाता है। उस द्रव्यमान में संसंजन भी होता है। लेकिन इस संसंजन को केवल तर्क से ही समझा जा सकता है, यह भौतिक इंद्रिय नहीं है, बल्कि मन की उपज है। लेकिन एक रूप के रूप में यह विद्यमान है और यह आपो या संसंजन है।

यदि कोई पिंड है, तो उसमें चारों महाभूत रूप विद्यमान होते हैं। इन चारों महाभूत रूपों में से केवल एक, दो या तीन का प्रकट होना संभव नहीं है। ये तिदंत या त्रिपाटी के समान हैं। त्रिपाटी दो या एक पैर पर नहीं, बल्कि तीनों पैरों पर खड़ी हो सकती है। यही अन्नमान या परस्पर संबंध का नियम है। और क्योंकि ये एक ही समय में प्रकट होते हैं, इसलिए ये एक दूसरे को परस्पर संबंध के नियम से सहारा देते हैं। अतः चारों महाभूत रूप परस्पर संबंध के नियम से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

ओक्कंटिक्खाने नाम रूपं अन्नमन्नं सहजता पकायेना पकायो।

ओक्कंटिका का अर्थ है अस्तित्व में आना, जन्म लेना, पुनर्जन्म होना, पतिसंधि। खाना का अर्थ है एक क्षण। ओक्कंटिकखाना का अर्थ है अस्तित्व में आने का ठीक क्षण, पुनर्जन्म का ठीक समय, या जीवन का पहला क्षण।

पुनर्जन्म के समय ओक्कंटिकखाना नाम और रूप 4 नाम खंड और 1 रूप खंड हैं। रूप के संबंध में रूप कलाप या कई रूप का समुच्चय है। रूप अकेले नहीं बल्कि कलाप या समग्र रूप से उत्पन्न होता है। मनुष्य या मनुस्सा के लिए पतिसंधि के समय तीन रूप कल्प होते हैं।

ये तीन रूप कल्प या भौतिक समुच्चय हैं

1. काया दशक रूप कल्प 2. भव दशक रूप कल्प 3. वत्थु दशक रूप कल्प

यहां काया का अर्थ है काया पपासदा रूप। दशक का अर्थ है दस रूप से युक्त। तो इस रूप कल्प में 10 रूप हैं। वे 8 अविनिभोग रूप या 8 अविभाज्य सामग्री हैं, 1 काया पपासदा रूप और 1 जीवित रूप कुल मिलाकर 10 रूप को दसक रूप कल्प कहा जाता है। भाव दसका रूप कल्प में काया पपासदा रूप को 2 भाव रूप में से एक या दूसरे द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है जिन्हें इत्थट्टा भाव रूप [स्त्रीत्व] और पुरीसत्ता भाव रूप [पुरुषत्व] कहा जाता है और अन्य रूप काया दसक रूप कल्प के मामले में समान हैं। उसी प्रतीक के द्वारा वत्थु दसका रूप कल्प काया पपासदा रूप को हदय वत्थु या हदय रूप से प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

उपरोक्त पाली वाक्य में Okkantikkhana nāma rūpam का अर्थ है

1. पतिसंधि चित्त और उससे संबंधित चेतसिका [नाम]
2. hadaya vatthu [rupa]

जैसे ही पतिसंधि चित्त उत्पन्न होता है, उससे संबंधित चेतसिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः ये चेतसिकाएँ और वह पतिसंधि चित्त एक दूसरे के लिए परस्पर संबंध की स्थिति का कार्य करते हैं। पतिसंधि चित्त पतिसंधि चेतसिकाओं के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता और इसके विपरीत भी सत्य है। यह परस्पर संबंध को प्रकट करता है। और फिर वे एक साथ और एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। यह सह-उत्पत्ति या सह-संबंध की स्थिति को प्रकट करता है, इसलिए यह अन्नमन्ना सहजता पच्चया या परस्पर संबंध की स्थिति है।

कारणवाचक धर्म चित्त है और परिणामी धर्म चेतसिक हैं। इनके बीच का संबंध अन्नमन्ना सहजता पच्चया है, जो पारस्परिकता और सहानुभूति की स्थिति है।

पतिसंधि कम्मजा रूपा यहां हदया वत्थु है। हदय वत्थु को कर्म के कारण उत्पन्न होना पड़ता है। यह पतिसंधि हदय वत्थु भी पतिसंधि चित्त के आधार पर उत्पन्न होता है और पतिसंधि चित्त को भी हदय वत्थु पर निर्भर रहना पड़ता है और वे पारस्परिकता की स्थिति के रूप में एक दूसरे के प्रति कार्य करते हैं। फिर वे एक साथ उठते हैं और एक ही समय में उठते हैं। जैसे ही वे एक साथ उत्पन्न होते हैं वे एक दूसरे के लिए सहमति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं। तो पतिसंधि चित्त और पतिसंधि कम्मजा रूप हदया वत्थु अन्नमन्ना सहजता पकाया या परस्पर सहमति की स्थिति की सेवा करते हैं। यह हदय वत्थु और पतिसंधि सीतासिका के समान है। तो पतिसंधि चित्त, पतिसंधि सीतासिका, पतिसंधि कम्मजा रूप हदया वत्थु सभी एक दूसरे के लिए अन्नमन्ना सहजता पकाया या पारस्परिक सहमति की स्थिति की सेवा करते हैं।

चित्त चेतसिका धम्म चित्त समुत्थानां रूपणं सहजता पकायेन पकायो।

चित्त और चेतसिका रूपाओं के लिए चेतना की स्थिति का काम करते हैं। कौन से रूपा? वे रूपाएँ जो चित्त से उत्पन्न होती हैं। इन रूपों को चित्तज रूपा या चेतना से उत्पन्न सामग्री कहा जाता है। समुत्थान का अर्थ है 'के कारण'। इसलिए चेतना से उत्पन्न रूपाओं को चित्त समुत्थान रूपा या चित्तज रूपा भी कहा जाता है।

चेतना के कारण उत्पन्न होने वाले 15 रूप हैं, जिन्हें चित्तज रूप कहा जाता है। ये 15 रूप इस प्रकार हैं:

1. kaya vinatti rupa (gesture)
2. vaci vinatti rupa (भाषण)
3. sadda rupa (ध्वनि, आवाज)
4. रूपलहुता रूप (रूप की हल्कापन)
5. रूपमुदुता रूप (रूप का लचीलापन)
6. रूपकम्मन्नता रूप (रूप की व्यावहारिकता)
7. पथवी (ठोसता)
8. तेजो (तापमान)
9. वायो (सहयोगशीलता)
10. एपो (सामंजस्य)
11. वन्ना (रंग)
12. गंध (सूंघना)
13. रस (स्वाद)
14. ओजा या आहार रूपा (पोषण)
15. आकाश रूप या परिच्छेद रूप (अंतरिक्ष)

कुल 89 चित्त या 89 चेतना अवस्थाएँ या 89 मानसिक अवस्थाएँ हैं। वे हैं:

1. 12 akusala cittas
2. 10 panca vinnana cittas
3. 5 अहेतुका विपाका चित्त (2 संपतिच्चन और 3 शांतिराना चित्त)
4. 3 ahetuka kiriya cittas
5. 8 महाकुसला चित्त
6. 8 महाविपाका चित्त
7. 8 महाकिरिया चित्त
8. 5 rupakusala cittas
9. 5 rupavipaka cittas
10. 5 rupakiriya cittas
11. 4 arupakusala cittas
12. 4 arupavipaka cittas
13. 4 arupakiriya cittas
14. 4 lokuttara kusala cittas
15. 4 लोकुत्तरा विपका चित्तस

कुल 89 शहर

इन 89 चित्तों में से 10 पंच विन्ना चित्त किसी भी चित्तजा रूपा का उत्पादन नहीं कर सकते हैं। 4 अरूपविपाक चित्त पतिसंधि चित्त, भावंगा चित्त और कटि चित्त या अरूप ब्रह्मा हैं और वे किसी भी प्रकार का रूप उत्पन्न या उत्पन्न नहीं करते हैं। तो 89 चित्तों (89 - 10 - 4 = 75) में से 75 चित्त चित्तज रूप या चेतना व्युत्पन्न सामग्रियों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। इन 75 चित्तों में से विपाक चित्त हैं जो अरहतों के क्यूटी चित्त के रूप में काम कर सकते हैं और जब यह क्यूटी चित्त या अरहत होता है तो अरहत क्यूटी चित्त कुछ भी उत्पन्न नहीं करता है।

अन्यथा, प्रत्येक क्षण जब भी चित्त उत्पन्न होता है, उसी समय उससे संबंधित चेतसिकाएँ और चित्तज रूप भी उत्पन्न होते हैं। वे एक ही समय में और साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार वे एक दूसरे के लिए अंतर्संबंध की स्थिति का कार्य करते हैं। चित्तज रूप उस चित्त के

उत्पन्न होने के ठीक उसी समय उत्पन्न होते हैं। परन्तु ये रूप उस प्रकार अंतर्संबंध की स्थिति का कार्य नहीं करते जैसे पतिसंधि कामज रूप हदय वस्तु के मामले में होता है। अतः इस स्थिति में यह केवल सहजता पच्चय या अंतर्संबंध की स्थिति है।

पच्चया धम्म, या कारण धम्म, या सहायक धम्म, इन तीन धम्मों में से एक है।

1. चित्त
2. cetasikas
3. cittaja rupas

और पच्चयुप्पन धर्म, या परिणामी धर्म, या सशर्त धर्म भी इन्हीं तीन धर्मों में से एक है। परिणाम कारण के उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होता है और इसे सहजता पच्चय कहते हैं। यह मोमबत्ती में प्रकाश के समान है, जहाँ ऊष्मा के उत्पन्न होने के साथ ही प्रकाश उत्पन्न होता है और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

महाभूत उपादा रूपाणं सहजता पकायेन पकायो।

चार महाभूत रूप होते हैं। ये हैं पथवी रूप, तेजो रूप, वायो रूप और अपो रूप। पथवी रूप ठोस अवस्था है और यह कोमल, कठोर या सख्त हो सकती है। यह इतनी कोमल हो सकती है जैसे हथेली से हवा को छूना या लोहे की दीवार जितनी कठोर। तेजो रूप तापन, शीतलता या तापमान की अवस्था है। हमारे आसपास की हर भौतिक वस्तु का तापमान होता है और यह हल्का गर्म, गर्म या ठंडा हो सकता है। वायो रूप दबाव, खिंचाव या गति द्वारा सहारा देने की अवस्था है। हम इस वायो रूप को जल में देख सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि जल में वायु समाहित है और वायु में जल समाहित है। यहाँ जल का तात्पर्य सामान्य जल से है और वायु का तात्पर्य सामान्य वायु या हवा (यदि वह गतिमान हो) से है। परन्तु तत्वीय दृष्टि से वायु या वायुमंडलीय वायु में चारों महाभूत रूप समाहित हैं। इसी प्रकार जल में भी चारों महाभूत रूप समाहित हैं। आपो एक संसंजन की अवस्था है और इसमें चिपचिपाहट, प्रवाह और संसंजन के गुण होते हैं। इसकी उपस्थिति का अनुभव करना कठिन है। हम सामान्य जल में भी आपो का पता नहीं लगा सकते। आपो इतना सूक्ष्म है कि पाँचों इंद्रियाँ इसका अनुभव नहीं कर सकतीं। अतः यह मन का विषय बन जाता है।

चार महाभूत रूप सभी अन्य रूपों का आधार हैं। महाभूत रूपों के बिना अन्य व्युत्पन्न रूप कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। कुल 24 व्युत्पन्न रूप हैं और वे सभी चार महाभूत रूपों से उत्पन्न होते हैं। चार महाभूत रूपों के साथ मिलकर ये 24 व्युत्पन्न रूप 28 परमत्थ रूपों का निर्माण करते हैं, जो परमत्थ धर्म कहलाता है। इन 28 रूपों के अतिरिक्त कोई अन्य रूप नहीं हैं और वे परम वास्तविकताएं हैं। वे उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। वे बद्ध धर्म हैं और परिस्थितियों के कारण निरंतर परिवर्तनशील रहते हैं।

ये 24 व्युत्पन्न रूप हैं

1. कक्खु पसादा रूपा (नेत्र संवेदनशीलता)
2. सोता पसादा रूपा (कान संवेदनशीलता)
3. घना पसादा रूपा (नाक संवेदनशीलता)
4. जिव्हा पसादा रूपा (जीभ संवेदनशीलता)
5. काया पसंद रूपा (शरीर की संवेदनशीलता)

ये सभी पाँच पसदा रूप चार महाभूत रूपों पर निर्भर करते हैं। महाभूत रूपों के बिना इनका अस्तित्व संभव नहीं है। लेकिन जब चार महाभूत रूप मौजूद होते हैं, तो इनका अस्तित्व हो भी सकता है और नहीं भी।

1. रूपा (दृश्य वस्तु) जो विभिन्न चमक, विभिन्न रूपों और आकृतियों के रंगों से बनी होती है।
2. सद्दा या ध्वनि
3. गंध या महक
4. रस या स्वाद (9.ए) फोथब्बा या पथवी या तेजो या वायो की शारीरिक भावना)
5. इत्थत्ता भाव रूप (नारीत्व) [इत्थी का अर्थ है स्त्री, अत का अर्थ है शरीर, भाव का अर्थ है अस्तित्व]
6. पुरिसत्ता भाव रूप (पुरुषत्व) [पुरिसा का अर्थ है पुरुष, अत्ता का अर्थ है शरीर, भाव का अर्थ है अस्तित्व]
7. हृदय रूप या हृदय वस्तु। यह शारीरिक हृदय नहीं है। यह मन का केंद्र है।
8. जीवित रूप या जीवन शक्ति
9. आहार रूप या ओज या पोषक तत्व
10. pariccheda rupa or ākāsa or space
11. kaya vinatti rupa or gesture (specific body movement and position showing thoughts)

12. vaci vinatti rupa or speech (specific voice indicates specific thoughts)
13. रूपलहुता, रूपा या पदार्थ की हल्कापन
14. रूपमुदुता रूपा या सामग्री का लचीलापन
15. रूपकम्मन्नता रूपा या सामग्री की व्यावहारिकता
16. उपचय रूपा या पदार्थ का प्रारंभिक निर्माण
17. संतति रूपा या सामग्री का निरंतर निर्माण
18. jaratā rupa or wearing away of material or getting old
19. aniccatā rupa or vanishing of material or disappearance of material

जब इन 24 रूपों में से कोई भी उत्पन्न होता है तो उन्हें उत्पन्न होना पड़ता है क्योंकि वहां 4 महाभूत रूप भी उत्पन्न होते हैं। वे एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। इस स्थिति में धम्म एक ही समय में उत्पन्न होते हैं और एक साथ उत्पन्न होते हैं। कारण धम्म या पक्काया धम्म या कंडीशनिंग धम्म परिणामी धम्म या पकायुप्पन्न धम्म या कंडीशनिंग धम्म के साथ उत्पन्न होते हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 11
हटू निंग द्वारा

अध्याय 11 - अन्नामन्ना पैकायो
या पारस्परिकता की स्थिति
अन्नमन्ना पकायो ति- कत्तारो खांधा अरूपिनो अन्नमन्ना पकायना पकायो।

वहाँ चार अरूप खंड या चार नाम खंड हैं। ये चार खंड हैं वेदना खंड या भावना समुच्चय, सन्ना खंड खंड या धारणा समुच्चय, संखा खंड खंड या गठन समुच्चय, और विन्ना खंड खंड या चेतना समुच्चय।

ये चारों धर्म एक दूसरे के लिए अन्नमन्ना पच्चया या पारस्परिकता की स्थिति का काम करते हैं। ये फोटोग्राफी में तिपाई की तरह हैं। तिपाई के तीन पैर होते हैं। ये तीनों पैर तिपाई को खड़ा रखते हैं। जब एक पैर जमीन से हट जाता है तो पूरी तिपाई गिर जाती है। एक पैर या एक फलक पूरी तिपाई को नहीं संभाल सकता और इसी तरह दो पैर या दो फलक पूरी तिपाई को नहीं संभाल सकते। तिपाई को खड़ा रखना तभी संभव है जब उसके सभी पैर सही जगह पर हों।

इसी प्रकार, चार नाम क्षन्ध या अरूप क्षन्ध इन चारों स्कन्धों के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते। यही परस्पर संबंध की शर्त है और प्रत्येक घटक दूसरे घटक पर निर्भर करता है, और इसी प्रकार आगे भी।

कत्तारो महाभूत अन्नमन्न पचायेन पचयो।

किसी भी पदार्थ में चार महाभूत रूप होते हैं। ये चार महाभूत रूप हैं पथवी (ठोसता), तेज (तापमान), वायु (गति) और आसंजन (चिपचिपाहट)। ये चारों रूप एक दूसरे को सहारा देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे ऊपर बताए गए तिपाई में होता है। पथवी के अभाव में, अन्य तीन घटक - तेज, वायु और आसंजन - उत्पन्न नहीं हो सकते। तेज के अभाव में पथवी, वायु और आसंजन उत्पन्न नहीं हो सकते। वायु के अभाव में पथवी, तेज और आसंजन उत्पन्न नहीं हो सकते। और आसंजन के अभाव में पथवी, तेज और वायु उत्पन्न नहीं हो सकते। ये सभी एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

ओक्कंटिक्खाने नाम रूपं अन्नमन्न पचायेन पचयो।

ओक्कंटिकखाना ओक्कंटिका और खाना से बना है। ओक्कंटिका का अर्थ है अस्तित्व में आना और खाना का अर्थ है एक क्षण। तो ओक्कंटिकखाना का अर्थ है उस समय जब अस्तित्व में आए या पतिसंध के समय। उस विशेष समय में नाम और रूप होते हैं । ये पतिसंधि नाम और पतिसंधि रूप यानी हदय वत्थु एक दूसरे के लिए पारस्परिकता की स्थिति के रूप में काम कर रहे हैं। अर्थात हदय वत्थु, पतिसंधि चित्त के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता है और पतिसंधि चित्त, हदय वत्थु के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता है और पतिसंधि चित्त के साथ जुड़े पतिसंधि सीतासिकों के लिए भी यही सच है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 12
हटू निंग द्वारा

अध्याय 12 - निस्साया पक्कायो
या निर्भरता की स्थिति
निस्साय पकायो ति- कटारो खांधा अरुपिनो अन्नमन्नम निस्साया पकायेना पकायो। कत्तारो महा भूत अन्नमन्नं निस्सया पकायेन पकायो। ओक्कंटिक्खाने नाम रूपं अन्नमन्नं निस्सया पकायेना पकायो।

निस्साया पच्चया का अर्थ है आश्रित स्थिति। आश्रित स्थिति के उदाहरण हैं:

1. पेड़ों को धरती या जमीन पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसके बिना कोई पेड़ नहीं हो सकता।
2. चित्रकला उस कपड़े पर निर्भर करती है जिस पर उसे चित्रित किया जाता है, जिसके बिना कोई चित्रकला नहीं हो सकती।
3. मिट्टी के बर्तन मिट्टी पर निर्भर करते हैं, इसके बिना मिट्टी का कोई बर्तन बन ही नहीं सकता।

उपरोक्त पाली के पहले वाक्य में कहा गया है कि चार नामखंड या चार अभौतिक समुच्चय हैं। ये चारों समुच्चय एक दूसरे पर निर्भर हैं और इसे अन्नमन्न निस्सय पच्चय या परस्पर निर्भरता कहा जाता है। चूंकि ये चारों नामखंड एक ही समय में उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे सहज निस्सय पच्चय या अंतर्संबंधी निर्भरता में आ सकते हैं। इसका अर्थ है कि एक दूसरे के बिना कोई भी उत्पन्न नहीं हो सकता और प्रत्येक को दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। चूंकि वे एक ही समय में उत्पन्न होते हैं और परस्पर निर्भर होते हैं, इसलिए उन्हें अन्नमन्न निस्सय पच्चय या परस्पर निर्भरता और सहज निस्सय या अंतर्संबंधी निर्भरता दोनों कहा जाता है।

इसी प्रकार चारों महाभूत रूप एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। जब पथवी होता है, तब तेजो, वायो और आपो भी होते हैं, और यही बात अन्य तीनों महाभूत रूपों के लिए भी लागू होती है। एक तत्व के बिना दूसरा तत्व या अन्य तत्व उत्पन्न नहीं हो सकते, और यही परस्पर निर्भर अवस्था है जिसे अन्नमन्न निस्सय पच्चया कहा जाता है। चूंकि ये सभी एक ही समय में उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें सहजता निस्सय पच्चया या परस्पर निर्भर अवस्था भी कहा जा सकता है।

इसी प्रकार, गर्भाधान के समय, या पतिसंधि के समय, या पुनर्जन्म के समय, या भूतकाल और वर्तमान जीवन के बीच संबंध स्थापित होने पर, पतिसंधि चित्त और चेतसिका के चार नामक्खंध होते हैं, और नए जीवन में रूपक्खंध के रूप में हद्य तत्व भी होता है। पतिसंधि चित्त के उत्पन्न होते ही, हद्य रूप नामक पतिसंधि कर्मज रूप भी उसी समय उत्पन्न हो जाता है, और ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। पंचवोकर भूमि में, या उन लोकों में जहाँ सभी पाँच खंध मौजूद होते हैं, पतिसंधि चित्त, मन के केंद्र हद्य तत्व (पतिसंधि कर्मज रूप) के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः ये धर्म भी एक दूसरे के पूरक होते हैं, जिन्हें अन्नमन्न निस्सय पच्चय या परस्पर निर्भरता की स्थिति कहा जा सकता है, और इन्हें सहजता निस्सय पच्चय या एकाग्रता निर्भरता की स्थिति भी कहा जा सकता है।

उपरोक्त तीनों उदाहरणों में सिद्ध धर्म, कारण धर्म, परिस्थितिजन्य धर्म या सहायक धर्म निम्नलिखित हैं:

1. प्रत्येक 4 नमक्खंडों या 4 गैर-भौतिक समुच्चयों में से
2. प्रत्येक 4 महा भूत रूप या 4 महान तत्व
3. प्रत्येक 4 पतिसंधि नमकखंड, और पतिसंधि कम्मज हदय वत्थु रूपा

परिणामी धम्म या पच्चयुप्पन्न धम्म या सदृश धम्म या समर्थित धम्म वे सभी धम्म हैं जो कारण धम्म में सूचीबद्ध हैं। कारण और प्रभाव के बीच का संबंध निस्सय पच्चय या आश्रित स्थिति है।

चित्त चेतसिका धम्म चित्त समुत्थानां रूपाणं निस्साय पकायेन पकायो।

धम्म के रूप में चित्त और चैतसिक हैं और चित्त समुत्थान रूप या चित्त व्युत्पन्न रूप या चित्त उत्पन्न रूप भी हैं।

यहां चित्त और चेतसिका के नाम धम्म कारण धम्म के रूप में कार्य कर रहे हैं, जबकि चित्त समुत्थान रूप या चित्त से उत्पन्न रूप अपने कारण चित्त और चेतसिका के लिए आश्रित स्थिति नहीं हैं। अतः यह एकतरफा संबंध है। अर्थात् कारण या कारण धम्म या सहायक धम्म या अभिधारणा धम्म चित्त और चेतसिका हैं, और परिणामी धम्म या अभिधारणा धम्म या सहायक धम्म या सिद्ध धम्म यहां केवल चित्त समुत्थान रूप या चित्तज रूप या चित्त से उत्पन्न रूप हैं। कारण और प्रभाव के बीच के संबंध को निस्सय सिद्धय या आश्रित स्थिति कहा जाता है।

इसका अर्थ यह है कि चित्त और चेतसिका धर्म के बिना ये रूप कभी उत्पन्न ही नहीं होंगे। परन्तु चित्त और चेतसिका अपने बद्ध धर्म चित्तज रूप पर निर्भर नहीं होते।

महा भूता उपादा रूपनं निस्साय पच्चयेन पच्चयो। चार महा भूता रूप या चार महान तत्व 24 उपादा रूपों के लिए आश्रित अवस्था के रूप में कार्य करते हैं। लेकिन चार महा भूता रूप 24 उपादा रूपों पर आश्रित नहीं होते और यह भी एकतरफा संबंध है। कारण या

कारणात्मक धम्म, सहायक धम्म, अभिकारक धम्म, पच्चय धम्म चार महा भूता रूप हैं। सहायक धम्म, परिणामी धम्म, अभिकारक धम्म, पच्चयुप्पन्न धम्म 24 उपादा रूप हैं। कारण और प्रभाव के बीच के संबंध को निस्साय पच्चय या आश्रित अवस्था कहते हैं।

दोहराने के लिए कि क्या 4 महाभूत रूप और क्या 24 उपाद रूप

a) 4 महा भूत रूप (चूंकि अन्य रूप उपादा रूप हैं, इसलिए इन 4 रूपों को अनुपादा रूप कहा जाता है)

1. पथवी या पृथ्वी तत्व
2. तेजो या अग्नि तत्व
3. वायो या वायु तत्व
4. एपो या जल तत्व

b) 24 उपादा रूप

1. कक्खुप्पसदा या कक्खु पसादा या आंखों की संवेदनशीलता
2. कान की संवेदनशीलता या कान की संवेदनशीलता
3. घाना पासाडा या नाक की संवेदनशीलता
4. जिह्वा पसदा या जीभ की संवेदनशीलता
5. काया पसंद या शरीर की संवेदनशीलता
6. रूपा (रंग) या रूप, आकार, आकृति
7. सद्दा या ध्वनि
8. गंध या महक
9. रस या स्वाद (और फोथब्बा या पथवी, तेजो, वायो का स्पर्श)
10. पुरीसत्ता भव रूप या पुरुषत्व
11. itthatta bhava rupa or feminineness
12. हदय रूप जो हदय वत्थु या हृदय है
13. जीवित रूप या जीवन शक्ति
14. आहार रूप या ओज या पोषक तत्व
15. pariccheda rupa or akāsa or space
16. kaya vinatti rupa or gesture
17. vaci vinatti rupa or speech
18. रूपा लहुता रूपा या रूपा का हल्कापन
19. रूपा मुदुता रूपा या रूपा का लचीलापन
20. रूपा कामनान्नता रूपा या रूपा की व्यावहारिकता
21. उपाचय रूपा या रूपा का प्रारंभिक गठन
22. संतति रूप या रूप का निरंतर गठन
23. जराता रूपा या रूपा का बूढ़ा होना
24. एनिकटाटा रूपा या रूपा का निधन

चक्कायतनं चक्कु विन्नान धातुया तम सम्पयुत्तकाणंच धम्मणं निस्साय पकायेन पकायो।

यहां चक्खायतनम का अर्थ है चक्खायतन या चक्खु आयतन या नेत्र संवेदनशीलता या नेत्र आधार या चक्खु पसादा रूप। यह धम्म जो कि चक्खु पसादा रूप है, अब एक कारण धम्म के रूप में काम कर रहा है या धम्म का समर्थन कर रहा है या कंडीशनिंग धम्म या पकाया धम्म कर रहा है।

परिणामी धम्म या वातानुकूलित धम्म या समर्थित धम्म या पच्चायुप्पन्ना धम्म यहां कक्खु विन्नन धातु या चक्कु विन्नन चित्त और चरण या संपर्क, वेदना या भावना, सन्ना या धारणा, चेतना या इच्छा, एकागता या एक बिंदु, जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन, और मानसिकारा या ध्यान के 7 सार्वभौमिक मानसिक कारकों के चेतसिक हैं।

यहां भी एकतरफा संबंध है। यानी चक्खु पसदा रूप, चक्खु विन्नन चित्त और उससे संबंधित चेतसिकों के लिए आश्रित अवस्था का कार्य करता है। लेकिन चक्खु पसदा रूप चक्खु विन्नन चित्त या अन्य चेतसिकों पर आश्रित नहीं है। अतः कारण और परिणाम को धम्म कहा जाता है और कारण और परिणाम के बीच के संबंध को निस्सय पच्चय या आश्रित अवस्था कहते हैं।

सोतायतनं सोता विन्नन धातुया तम सम्पयुतकानंच धम्मणं निस्साय पकायेन पकायो। घनायतनं घन विन्नन धातुता तम संपयुत्तकाणंच धम्मणं निस्साय पकायेन पकायो। जिव्हायतनं जिव्हा विन्नन धातुया तम संपयुत्तकाणंच धमानं निस्साय पकायेन पकायो। कायायतनं काया विन्नन धातुया तम संपयुत्तकाणंच धम्मनं निस्साय पकायेन पकायो।

इसी प्रकार, अन्य सभी 4 पसदा रूप अपने संबंधित विन्नाना चित्तों और उनसे जुड़े 7 सार्वभौमिक मानसिक कारकों (फस्सा, वेदना, चेतना, सन्ना, एकग्गता, जीवितेंद्रिय और मानसिक) के चेतसिकों के लिए आश्रित अवस्था के रूप में कार्य करते हैं। लेकिन नाम धम्म पसदा रूपों के लिए आश्रित अवस्था के रूप में कार्य नहीं करते हैं। इसलिए यह भी एकतरफा संबंध है। 5 पसदा रूपों के बिना 10 पंचविन्नाना चित्तों में से कोई भी उत्पन्न नहीं होगा और इसलिए उनसे संबंधित चित्त, चेतसिक आदि भी उत्पन्न नहीं होंगे, और इस प्रकार कोई काम विषय और काम चित्त नहीं होंगे। यह स्थिति अरूप ब्रह्माओं के मामले में देखी जा सकती है, जिनमें 28 रूपों में से कोई भी नहीं होता है। पसदा रूप अपने संबंधित विन्नाना चित्तों के उत्पन्न होने पर उनके लिए निस्से पच्चय या आश्रित अवस्था के रूप में कार्य करते हैं।

यम रूपम निस्साय मनो धातु च मनो विन्नन धातु च वट्टन्ति, तम् रूपम मनो धातु च मनो विन्नन धातु च तम सम्पायुत्तकानन्च धम्मनं निस्साय पकायेन पकायो।

मनो धातु 3 चित्त हैं। वे अकुसाला और कुसल मूल के 2 संपतिच्चन चित्त और पंच द्वार अवज्जना चित्त हैं। कक्खु विन्नान चित्त या किसी भी पंच विन्नान चित्त के बाद हमेशा मनो धातु का पालन किया जाता है जिसे संपतिच्चन चित्त या चेतना प्राप्त करना कहा जाता है। इस मनो धातु को हदय वत्थु पर निर्भर रहना पड़ता है और हदय वत्थु आश्रित स्थिति के रूप में कार्य करता है। तो अन्य निम्नलिखित मनो विन्नन धातु जैसे कि शांतिराना चित्त या चेतना की जांच करना, वोत्थापना चित्त या चेतना का निर्धारण करना, जावना चित्त या मानसिक आवेगी चेतना, तदारम्मन चित्त या चेतना बनाए रखना सभी को हदय वत्थु पर निर्भर रहना पड़ता है।

यहां हदय वत्थु मनो धातु और मनो विन्नन धातु के लिए कंडीशनिंग धम्म के रूप में कार्य करता है। लेकिन यहां हदय वत्थु, पतिसंधि कम्मजा हदय वत्थु के विपरीत, मनो धातु या मनो विन्नन धातु पर निर्भर नहीं है, जिसे पतिसंधि चित्त पर निर्भर रहना पड़ता है। इस उदाहरण में कारण या कारण धम्म या सहायक धम्म या कंडीशनिंग धम्म या पकाया धम्म हदय वत्थु है और परिणाम या परिणामी धम्म या वातानुकूलित धम्म या समर्थित धम्म या पचायुप्पन्ना धम्म मनो धातु हैं और इससे जुड़े 10 चेतसिक और चित्तज रूप, मनो विन्नन धातु और उनसे जुड़े चेतसिक और उनसे जुड़े हैं। चित्तजा रूपस।

इन उदाहरणों में कारण और परिणाम के बीच के संबंध को निस्सय पच्चय या आश्रित अवस्था कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि जब आश्रित अवस्था नहीं होती, तो आश्रित धर्म उत्पन्न नहीं हो सकते, और इसका अर्थ यह है कि यदि कोई कारण नहीं है, तो कोई परिणाम नहीं होगा। यदि कोई कारण नहीं है, तो कोई परिणाम नहीं होगा।

निस्साया पच्चया या आश्रित स्थिति सहजता निस्साया या संयोजी आश्रित स्थिति हो सकती है, या वस्तु पुरेजाता निस्साया या आधार पूर्व-जन्म आश्रित स्थिति हो सकती है, या वस्तु पुरेजाता निस्साया या आधार पूर्व-जन्म आश्रित स्थिति हो सकती है।

सहजता निस्सय या सहजता पर निर्भर स्थिति को 4 नाम खण्डों अर्थात 89 चित्तों और 52 सीतासिकों (वेदना खंड या वेदाना, सन्ना खंड या सन्ना, संखा खंड या संख या अन्य 50 सीतासिकों के बीच वेदना और सन्ना को 52 सीतासिकाओं से निकालने के बाद, और विन्नन खंड या 89) के बीच परस्पर क्रिया में देखा जा सकता है। Cittas) और अन्य धम्म।

यहां अन्य धम्म वातानुकूलित धम्म या समर्थित धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म हैं और वे 4 नाम खंड (89 चित्त और 52 सीतासिका), चित्तज रूप या चेतना व्युत्पन्न सामग्री, और पतिसंधि कम्मज रूप जो हदय वत्थु हैं। इस उदाहरण में 4 नमकखंडों की स्थिति 4 नमकखंडों और चित्तज रूप और पतिसंधि कम्मज रूप के संबंधित रूपखंडों की है। जैसे ही वे एक साथ उत्पन्न होते हैं, यह सहमति की स्थिति है और चूंकि 4 नमकखंडों को एक-दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है, चित्तज रूप को 4 नमकखंडों पर निर्भर रहना पड़ता है, और पतिसंधि कम्मजा रूप जो हदय वत्थु है, उन्हें भी 4 नमकखंडों पर निर्भर रहना पड़ता है, उन्हें सहमति पर निर्भर स्थिति द्वारा परोसा जा रहा है।

चार महाभूत रूप या चार महान तत्व, चार महाभूत रूपों और अन्य सभी 24 उपाद रूपों के लिए संगति पर निर्भर अवस्था के रूप में कार्य करते हैं। यह पारस्परिकता या अन्नमान्य नहीं है। अतः यह एक मार्ग है और दिशा चार महाभूत रूपों से चार महाभूत रूपों और अन्य 24 उपाद रूपों की ओर है। अर्थात् दिशा 24 उपाद रूपों से चार महाभूत रूपों की ओर नहीं है। इसका अर्थ यह है कि 24 उपाद रूप चार महाभूत रूपों के लिए आश्रित अवस्था के रूप में कार्य नहीं करते हैं। या चार महाभूत रूप 24 उपाद रूपों पर निर्भर नहीं हैं। चार महाभूत रूप और चार महाभूत रूप तथा 24 उपाद रूप एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। अतः वे सहज पच्चय या संगति अवस्था हैं। 24 उपदा रूप 4 महाभूत रूपों पर निर्भर होते हैं, इसलिए यह सहजत निस्य या संगति पर निर्भर अवस्था है। 4 महाभूत रूप एक दूसरे के लिए संगति पर निर्भर अवस्था का काम करते हैं।

एक और आश्रित स्थिति है. यह वत्थुपुरेजाता निस्सया या आधार उपस्थिति पर निर्भर स्थिति है। पकाय धम्म या कंडीशनिंग धम्म या सहायक धम्म 6 वत्थु हैं, अर्थात् कक्खु वत्थु या कक्खु पसादा, सोता वत्थु या सोता पसादा, घाना वत्थु या घाना पसादा, जीव वत्थु या जीव पसादा, काया वत्थु या काया पसादा, और हदया वत्थु। वे संबंधित नाम धम्म के लिए शुद्धजता निस्साया पकाया या प्रीनेसेंस निर्भर स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

उदाहरण हैं चक्कु वत्थु रूपा रूपा के उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होता है जो वस्तु या अरम्मना के रूप में कार्य कर रहा है। कक्खु वत्थु या चक्खु पसादा पिछले 17 चित्तकखान या 17 क्षण। तो रूपा रूपा या वस्तु या अराम्मन भी करता है। लेकिन जैसे ही चक्खु वत्थु उठता है वहां कोई चक्खु विन्नान चित्त या नेत्र चेतना नहीं होती, बल्कि अतिता भावंगा चित्त होता है। दूसरे क्षण में अभी भी कक्खु विन्नान चित्त नहीं है, बल्कि भावंगा कलना चित्त है। तीसरे क्षण में कोई चक्खु विन्नान चित्त नहीं उठता, बल्कि भवनगुप्पचेड़ा चित्त उत्पन्न होता है। और चौथे क्षण में अभी भी कोई कक्खु विन्नान चित्त नहीं है, बल्कि पंच द्वार अवज्जना चित्त है। चक्खु विन्नन चित्त पाँचवें क्षण में ही उत्पन्न होता है, जब चक्खु वात्थु या चक्खु पसदा रूप पाँच क्षण पहले ही बन चुका होता है। अतः चक्खु पसदा रूप चक्खु विन्नन चित्त से पहले उत्पन्न हुआ, जो उस पर निर्भर करता है। क्योंकि चक्खु वात्थु चक्खु विन्नन चित्त से पहले उत्पन्न हुआ, यह पूर्व-जन्म की स्थिति है। क्योंकि चक्खु विन्नन चित्त को चक्खु वात्थु पर निर्भर होना पड़ता है, यह आश्रित स्थिति है। अतः उनका संबंध पुरेजात निस्सय पच्चया या पूर्व-जन्म आश्रित स्थिति है। लेकिन क्योंकि अभिधारणात्मक धर्म एक रूप [चक्खु पसदाहेरे] है और यह वात्थु धर्म है, इसलिए इस स्थिति को वात्थु पुरेजात निस्सय पच्चया या आधार पूर्व-जन्म आश्रित स्थिति कहा जाता है।

5 पंच पसादा रूप हैं और वे वत्थु धम्म के रूप में काम करते हैं। तो ये 5 धम्म चक्खु पसादा रूप, सोता पसादा रूप, घना पसादा रूप, जिव्हा पसादा रूप, काया पसादा रूपा कंडीशनिंग धम्म के रूप में काम कर सकते हैं जिन्हें वत्थु शुद्धजाता निस्साया या आधार पूर्वाभास निर्भर स्थिति कहा जाता है। कंडीशनिंग धम्म या सहायक धम्म या पकाया धम्म यहां 5 पसादा रूप हैं जिन्हें पंच वत्थु कहा जाता है और वातानुकूलित धम्म या समर्थित धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म संबंधित वत्थु के आधार पर संबंधित अरम्मना के पंच विन्नन चित्त हैं। यह वत्थु शुद्धजाता निस्साया पकाय पंच विन्नान चित्त में अन्य धम्म की स्थिति नहीं बनाता है।

एक और वस्तु पुरेजाता निस्साया या आधारभूत पूर्व-जन्मजात आश्रित अवस्था है। इसका आधार धम्म या पच्चया धम्म या सहायक धम्म हृद्य वस्तु है। यह अरम्मना के उत्पन्न होते ही उत्पन्न हो जाता है। लेकिन बाद में आने वाले चित्त जैसे पंच द्वार अवज्जना चित्त या पंच द्वार विज्ञापित चेतना, सम्पतीच्छना चित्त या ग्रहणशील चेतना, सन्तिरण चित्त या अन्वेषी चेतना, बोधपना चित्त या निर्धारक चेतना, जवन चित्त या आवेगी चेतना, तदरामना चित्त या धारण करने वाली चेतना हैं, और इन सभी चेतनाओं को पहले से उत्पन्न हृद्य वस्तु पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः हृद्य वस्तु इन चित्तों से पहले उत्पन्न होती है और पूर्व-जन्मजात अवस्था या पुरेजाता पच्चया के रूप में कार्य करती है, और चूंकि इन चित्तों को हृद्य वस्तु पर निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए हृद्य वस्तु निस्साया पच्चया या आश्रित अवस्था के रूप में भी कार्य करती है। तो हदया वत्थु प्योरजटा निस्साया पकाया या प्रीनेसेंस आश्रित स्थिति के रूप में कार्य कर रहा है। चूँकि यह एक वत्थु है, यह वत्थु शुद्धजता निस्साया पकाया या बेसप्रेनसेंस पर निर्भर स्थिति है।

एक और निस्साय पच्चय या आश्रित अवस्था होती है जिसे वत्तारम्मन पुरेजात निस्साय पच्चय या मूल वस्तु-प्रजनन आश्रित अवस्था कहते हैं। रूप 17 क्षणों तक रहता है जबकि चित्त केवल 1 क्षण तक रहता है। अतः जब रूप अरम्मन या वस्तु के रूप में उत्पन्न होता है, तो यह चेतना के क्रम में बाद के चित्तों से पहले उत्पन्न होता है।

उदाहरण के लिए, सद्दा या ध्वनि। यह उत्पन्न होती है और जब यह अरम्मन या कर्म के रूप में कार्य कर रही होती है, तो इसका सह-उत्पन्न चित्त, जिसे अतित भावंग चित्त कहते हैं, लुप्त हो जाता है और चेतना के उस क्रम में बाद के चित्त उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, बाद के चित्त जवन चित्त या आवेगी चेतना हैं। सद्दा या ध्वनि इन जवन चित्तों से पहले उत्पन्न होती है।

अतः सद्दा रूप या ध्वनि पूर्वजनन अवस्था या पुरेजात पच्चया का कार्य करती है। यह ध्वनि आश्रित अवस्था का कार्य करती है। अर्थात् जवान चित्त इस ध्वनि पर निर्भर होते हैं, जिसके बिना ये जवान चित्त कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। अतः यह पुरेजात निस्सया पच्चया या पूर्वजनन आश्रित अवस्था है।

चूँकि सद्दा या ध्वनि उसी समय उत्पन्न होती है जब वत्थ जैसे सोता वत्थु या सोता पसादा रूप और हदय वत्थु उत्पन्न होते हैं, नाम धम्म (जावना चित्त और अन्य मनो विन्नान चित्त) और रूप धम्म के इस संबंध को वत्थारम्मना शुद्धजता निस्स्य पकाया या आधार वस्तु उपस्थिति पर निर्भर स्थिति कहा जाता है।

मृत्यु से ठीक पहले अंतिम हदय वत्थु उत्पन्न होता है। यह चुति चित्त या मरणासन्न चेतना से 16 क्षण पहले उत्पन्न होता है। अतः जब हदय वत्थु 17 क्षण पुराना होता है, यानी जब चुति चित्त उत्पन्न होता है, तब हदय वत्थु और चुति चित्त दोनों एक साथ समाप्त हो जाते हैं।

यदि अंतिम वस्तु के रूप में पंच अरम्मना है तो यह अरम्मना या वस्तु जावना सीतास और अन्य मनो विन्नना चित्ता के लिए प्योरजटा निस्साया पकाया के रूप में काम करेगी। चूँकि यह अरम्मना या वस्तु हदय वत्थु के साथ उत्पन्न होती है और प्योरजटा निस्साया पकाय के रूप में कार्य करती है, जावना चित्तस और अन्य मनो विन्नान सीट्टस के नाम धम्म और रूपा धम्म हडया वत्थू और अरम्मना के बीच का यह संबंध, जो पंच अरम्मना होने पर एक रूप भी है, को वत्थारम्मन प्योरजटा निस्साय पचाया या आधार वस्तु उपस्थिति पर निर्भर स्थिति कहा जाता है।

अध्याय 13 - उपनिषय पच्चयो
या निर्णायक समर्थन की स्थिति
उपनिस्साय पकायो ति- पूरिमा पुरिमा कुसल धम्म पच्चिमानं पच्चिमानं कुसलनं धम्मनं उपनिस्साय पचायेन पकायो।

उपनिषय पच्चयो या निर्णायक समर्थन की स्थिति में, पुरिमा कुसला धम्म जैसे धर्म होते हैं, जिनका अर्थ है लाभकारी धर्मों का त्याग करना। जब ऐसे धर्म अपने बाद आने वाले धर्मों का त्याग करते हैं, तो उसे पच्चिमानं धम्मनं कहा जाता है, जिसका अर्थ है धर्म के बाद आने वाला धर्म। यदि पूर्वोक्त धर्म कुसला धर्म हैं, तो बाद के धर्म भी कुसला धर्म होंगे।

उपरोक्त कुशल धर्म, आगामी कुशल धर्म के लिए उपनिषय पच्चय या निर्णायक आधार का कार्य करता है। उपरोक्त धर्म पच्चय धर्म है, जो सहायक धर्म, कारण धर्म या कारण धर्म है, और आगामी धर्म पच्चयप्पन्न धर्म है, जो सहायक धर्म, परिस्थितिजन्य धर्म या परिणामी धर्म है। उपरोक्त कुशल धर्म और आगामी कुशल धर्म के बीच के संबंध को उपनिषय पच्चय या निर्णायक आधार कहा जाता है।

इस प्रकार का समर्थन प्रथम और द्वितीय, द्वितीय और तृतीय, तृतीय और चतुर्थ, चतुर्थ और पंचम, पंचम और षष्ठम तथा षष्ठम और षष्ठम कुशल जवान चित्तों या संपूर्ण मानसिक आवेगी चेतना के संगम पर सीखा जा सकता है। यह कामवाचार धर्म में कुशल धम्म में निहित है। यह रूपकुशल या अरूपकुशल में निहित नहीं है क्योंकि उनमें ध्यान अवस्था होती है। कुशल जवान चित्तों में, दो कुशल चित्तों के बीच निर्णायक समर्थन की स्थिति होती है।

पुरिमा पूरिमा कुसल धम्म पच्छिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं केसंचि उपनिस्साया पकायेना पचायो।

ऐसे कई उदाहरण हैं जब कुशल धर्मों का विकास अच्छे कर्म, लाभकारी कर्म या पुण्य कर्म के रूप में होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आरंभ लाभकारी कर्मों से होता है। यह तब देखा जा सकता है जब हम दूसरों को दान देते हैं। दान देते समय हम प्रसन्न होते हैं और ईमानदारी से दूसरों के लिए अच्छा कार्य करते हैं।

लेकिन कभी-कभी उन पुण्य कर्मों के दौरान या उनके आस-पास ऐसे विचार उत्पन्न हो जाते हैं जो कुशल धर्म के अनुरूप नहीं होते और अंततः अकुशल धर्म की ओर ले जाते हैं। जब शुरुआत अच्छी हो लेकिन अंत बुरा हो। ऐसा कभी-कभी होता है और पहले किए गए पुण्य कर्म या कुशल धर्म बाद में होने वाले अकुशल कर्मों के लिए निर्णायक आधार या उपनिषय पच्चय का काम करते हैं।

पुरीमा का अर्थ है आगे आना, पहले जाना। यहाँ कुशल धम्म, जैसे अर्पण करना और कुशल चित्त जो अर्पण करते हैं, आगे आने वाले धम्म या पुरीमा धम्म हैं। जब वे आगे आते हैं, तो उनके बाद आने वाले धम्म पच्छिमा धम्म कहलाते हैं। पच्छिमा का अर्थ है पीछे, अंत में आने वाला। यहाँ पच्छिमा धम्म अकुशल धम्म हैं। इसलिए कुशल धम्म किसी न किसी रूप में अकुशल धम्म के लिए उपनिषय पच्छय का काम कर सकते हैं (केसांची)।

यहां स्थिति न तो निकटता की है और न ही समनंतर पच्चय की। अतः यह आवश्यक नहीं है कि पूर्वोक्त कुशल धम्म के तुरंत बाद अकुशल धम्म आए। ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि कुशल धम्म और अकुशल धम्म पड़ोसी नहीं हो सकते और वे कभी भी निकटता या निकटता की स्थिति में उत्पन्न नहीं होते।

लेकिन जैसा कि ऊपर बताया गया है, कुशल धर्म किसी न किसी रूप में अकुशल धर्म का समर्थन कर सकता है और ऐसा कभी-कभी होता है। जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरण में, जब अर्पण किया जाता है तो कुशल धर्म मौजूद होता है। लेकिन पुण्य कर्म करने वालों के मन में अपने कर्मों के प्रति अनुचित विचार हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, उनमें अपने कर्मों के प्रति लोभ या आसक्ति विकसित हो सकती है और यह आसक्ति आगे चलकर अन्य अकुशल धर्मों को जन्म दे सकती है।

पुरिमा पूरिमा कुसाला धम्म पच्छिमानं पछिमानं अभ्यक्तानं धमानां उपनिस्साया पकायेन पचायो।

पुरिमा का अर्थ है पूर्व की ओर जाने से पहले। अतः पुरिमा पुरिमा कुसला धम्म का अर्थ है यदि पूर्वोक्त धम्म लाभकारी हों। पच्चिमा का अर्थ है पश्चिम की ओर वापस आना। पच्चिमानम् पच्चिमानम् अभ्याकतनम् धम्मनम् का अर्थ है अनुसरण किए जाने वाले धम्म अभ्याकत धम्म होंगे।

तो उपरोक्त पाली वाक्य का अर्थ है कि यदि पूर्वगामी धम्म संपूर्ण धम्म है तो अगला धम्म अव्यक्त धम्म होगा। कुसल धम्म कुसल चित्त हैं। 8 महाकुसल चित्त, 5 रूपकुसल चित्त, 4 अरुपकुसल चित्त और 4 लोकुत्तरा कुसल चित्त कुल मिलाकर 21 कुसल चित्त हैं। 17 चित्त लोकी कुसल चित्त या सांसारिक स्वस्थ चेतना हैं और 4 चित्त लोकुतारा कुसल चित्त या सुपरमुंडेन संपूर्ण चेतना हैं।

अभ्याकत धर्म वे धर्म हैं जो न तो कुशल हैं और न ही अकुशल। दो धर्म अभ्याकत धर्म हैं: विपाक धर्म (परिणामस्वरूप) और क्रियात्मक धर्म (निष्क्रिय धर्म)। क्योंकि विपाक धर्म परिणामस्वरूप होते हैं, इसलिए उनसे कोई और परिणाम उत्पन्न नहीं होते। अतः विपाक धर्म अभ्याकत धर्म हैं।

क्रिया चित्त वे जवान चित्त या अरहत होते हैं। अरहत किसी भी प्रकार के कुशल या अकुशल कर्म से पूरी तरह मुक्त होते हैं। इसलिए वे किसी भी समय कोई कर्म उत्पन्न नहीं करते। अरहत बनने के बाद से उन्होंने कभी भी कोई अच्छा या बुरा कर्म नहीं किया है। उनके जवान चित्त या मानसिक आवेगी चेतना, जो कर्मों की ओर ले जाती है, केवल कर्म हैं और वे निष्क्रिय हैं। अर्थात् वे किसी भी प्रकार का कर्म नहीं करते। या उन्हें क्रियाशील भी कहा जा सकता है, क्योंकि उनके जवान चित्त केवल उनके कर्मों का निष्पादन करते हैं और कोई कर्म उत्पन्न नहीं करते। अतः सभी क्रिया जवान चित्त अभ्याक्त धर्म हैं। इसी प्रकार गैर-जवान क्रिया चित्त भी अभ्याक्त धर्म हैं।

जब पूर्वगामी धम्म कुसल धम्म है तो निम्नलिखित धम्म अव्यक्त धम्म हो सकता है। उदाहरण संबंध को 7वें जावना चित्त और प्रथम तदारम्मन चित्त के बीच संबंध के मामले में देखा जा सकता है। 7वाँ जवना चित्त कुसल चित्त हो सकता है जब विथि वर कुसल जवना हो। तो पूर्वगामी धम्म कुसल धम्म है। तदारम्मन चित्त सभी अव्यक्त धम्म हैं। क्योंकि 11 तदारम्मन चित्त हैं और वे सभी विपाक चित्त हैं। 3 शांतिराना चित्त अहेतुका विपाक चित्त हैं और 8 महाविपाक चित्त सहेतुका विपाक चित्त हैं। चूँकि ये सभी 11 चित्त विपाक चित्त हैं, ये सभी अव्यक्त धम्म हैं।

सातवां कुशल जवन चित्त पच्चय धम्म है, जो कारण, सहायक या अभिकल्पित धम्म है। पहला तदारम्मन चित्त परिणामी धम्म है, जो पच्चयुप्पन्न, सहायक या अभिकल्पित धम्म है। ये दोनों उपनिषय पच्चय के द्वारा अभिकल्पित होते हैं। अतः कुशल धम्म और अभ्याकत धम्म के बीच के संबंध को उपनिषय पच्चय या अभिनिषय अपच्चय कहा जाता है।

पुरिमा पूरिमा अकुशला धम्म पच्छिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं उपनिस्साया पकायेन पचायो।

जब पूर्वोक्त धर्म (पुरिमा) अकुशल धर्म हो और पश्चात धर्म भी अकुशल हो, तो पश्चात धर्म पूर्वोक्त धर्म पर निर्भर करता है। पूर्वोक्त धर्म पश्चात धर्म कहलाता है।

निम्नलिखित धर्म परिणामी धर्म, समर्थित धर्म, सशर्त धर्म या पाच्चुप्पन्न धर्म कहलाता है। पूर्ववर्ती धर्म और अनुवर्ती धर्म के बीच के संबंध को उपनिषय पच्चय या निर्णायक समर्थन शर्त कहा जाता है।

जब जावना या मानसिक आवेग की अवस्था में होते हैं, तो सात क्रमिक चित्त अवस्थाएँ होती हैं और चित्त अवस्था के ठीक बाद वही चित्त अवस्थाएँ आती हैं। कुछ अन्य परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनमें अकुशल अवस्थाएँ सहायक होती हैं, भले ही वे अकुशल अवस्थाएँ तुरंत आसपास न हों।

पुरिमा पुरिमा अकुशला धम्म पच्छिमानं पछिमानं कुसलनं धम्मन केसंचि उपनिस्साया पकायेना पचायो।

पूर्वोक्त अकुशल धम्म एक प्रकार से आगामी कुशल धम्म को प्रभावित कर सकता है। यह उपनिषय पच्चय है और चूंकि यह अनंत पच्चय नहीं है, इसलिए इन अकुशल धम्म और कुशल धम्म का एक दूसरे के निकट होना आवश्यक नहीं है। इसका उदाहरण निम्नलिखित मामले में देखा जा सकता है।

उपरोक्त चित्त दोष चित्त या लोभ चित्त हो सकते हैं। लेकिन कुछ समय बाद जब अगले चित्त कुशल चित्त बन जाते हैं, जैसे कि भेंट, तो यह उपनिषय पच्चय हो सकता है। व्यक्ति किसी चीज की अपेक्षा रख सकता है। अपेक्षा के साथ वह किसी को कुछ भेंट कर सकता है। लेकिन जब वह वास्तव में कुछ भेंट करता है, तो वास्तविक कुशल धम्म उत्पन्न हो सकता है। इस स्थिति में, उपरोक्त लोभ अगले कुशल धम्म को निर्धारित करता है।

पुरिमा पुरिमा अकुशला धम्म पच्छिमानं पछिमानं अभ्यकतानं धम्मनं उपनिस्साय पचायेन पचयो। अकुसल धम्म का अनुसरण विपाक चित्त की तरह अभ्यक्त धम्म द्वारा किया जा सकता है, जैसा कि 7वें जावना अकुसल चित्त और प्रथम तदारम्मन चित्त के मामले में है। लेकिन यह अभ्यक्त किरिय धम्म नहीं है। जैसे अरहतों में कोई अकुसाला या कुसल नहीं है, जिनके जवना चित्त सभी किरिया जवना चित्त हैं।

पुरिमा पुरिमा अभ्यक्ता धम्म पच्चिमानं पछिमानं अभ्यक्तानं धम्मनं उपनिस्साय पचायेन पचाययो। अव्यक्त धम्म का अनुसरण अव्यक्त धम्म द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण हैं पंचद्वारवज्जन चित्त और पंचविन्नन चित्त और फिर पंचविन्नन चित्त और संपतिच्चन चित्त इत्यादि के बीच।

इसी प्रकार, जब पूर्ववर्ती धर्म अभ्यक धर्म हो, तो अगला धर्म कुशल धर्म हो सकता है, और यह अकुशल धर्म भी हो सकता है। उपनिषय पच्चय या निर्णायक समर्थन की स्थिति को कवर करने वाले धर्मों की एक विस्तृत श्रृंखला है।

utubhojanampi upanissaya paccayena paccayo.

अनुकूल मौसम धर्म के उद्भव के लिए एक अच्छा सहायक होता है और उत्तु धर्म का निर्णायक समर्थन करते हैं। इसी प्रकार आहार या भोजन भी निर्णायक समर्थन की स्थिति के रूप में धर्म का समर्थन करते हैं।

पुग्गलोपि उपनिषय पच्चयेन पच्चयो। उपयुक्त व्यक्ति धर्म की उत्पत्ति के लिए निर्णायक सहायक कारक हो सकते हैं। इसी प्रकार उपयुक्त भवन, वस्त्र, भोजन, औषधि आदि सभी धर्म की उत्पत्ति के लिए निर्णायक सहायक कारक हैं। उपनिषय पच्चय का व्यापक अर्थ है और ये अनंत हैं।

उपनिस्साया पचायो पण तिविधो होति। अरामानुपनिस्सायो, अनन्तरूपनिस्सायो, पकतुपनिस्सायो सेति।

निर्णायक समर्थन की स्थिति या उपनिषय पच्चयो के अंतर्गत 3 उप-स्थितियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. ārammanupanissaya paccayo or object decisive support condition
2. anantarupanissaya paccayo or proximity decisive support condition
3. pakatupanissaya paccayo or natural decisive support condition

Tattha ārammanameva garukana.m ārammanupanissayo. कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका अत्यधिक सम्मान किया जाना चाहिए और वे हैं

1. 18 इत्थ निप्पन्न रूप या 18 वांछनीय वातानुकूलित रूप
2. 84 चित्त (2 दोष मूल चित्त या 2 अप्रिय चेतना, 2 मोह मूल चित्त या अज्ञानी चेतना, 1 दुःख कायविन्नान चित्त को छोड़कर; 89 - 5 = 84 चित्त) ये 5 चित्त वांछनीय नहीं हैं और वास्तव में अवांछनीय चेतना हैं।
3. 47 सिटासिका (52 - 5 अर्थात डोसा, इस्सा, मैकचरिया, कुक्कुक्का, मोहा = 47)
4. 1 निब्बाना

ये चार धर्म, आरम्मनाधिपति या वस्तु प्रधान धर्म हैं और ये आरम्मनुपनिस्सय पच्चयो या वस्तु निर्णायक समर्थन स्थिति के रूप में भी कार्य करते हैं।

Anantara niruddhā citta cetasikā dhammā anantarupanissayo.

अरहतों के लुप्त हो रहे चुति चित्त को छोड़कर, 89 चित्तों के अन्य सभी चित्त और उनके 52 सहयोगी नमक्खंड या मानसिक समूह, अगले उत्पन्न होने वाले 89 चित्तों और 52 चेतसिकों के लिए अनंतरूपनिस्साय पच्चयो के रूप में कार्य करते हैं। यही कारण है कि लुप्त हो रही चेतना और अगली उत्पन्न होने वाली चेतना के बीच कोई अंतर नहीं है, वे एक दूसरे के संपर्क में हैं और निकटता से जुड़े हुए हैं।

रागादयो पण धम्म सद्धादयो च सुखा.म दुक्खा.म पुग्गल्लो भोजन.म उत्तु सेनानांच यथा रहम अज्झत्तनचा बहिद्धा च कुसलधि धम्मना.म, कम्म.म विपाकानन्ति च बहुधा होति पकतुपनिस्सयो।

1. राग, दोष, मोह, मान, दिठ्ठी, पट्टाना
   (इंद्रिय सुख, घृणा, अज्ञान, अहंकार, गलत दृष्टिकोण, अपेक्षा, आसक्ति)
2. saddhā, sīla, suta, cāga, panna
   (विश्वास, नैतिक आचरण, ज्ञान, भेंट, बुद्धिमत्ता)

3. कायिका सुख या शारीरिक सुख
4. कायिका दु:ख या शारीरिक दर्द
5. पुग्गला पर निर्भर रहना
6. भोजन या खाने योग्य खाद्य पदार्थ
7. मौसम की उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियाँ
8. उपयुक्त निवास, बिस्तर, स्थान

ये सभी धम्म 21 कुसल धम्म, 12 अकुसल धम्म, 36 विपाक धम्म, 20 किरिय धम्म के अज्झट्टा या आंतरिक और बहिद्ध या बाहरी धम्म के लिए प्राकृतिक निर्णायक समर्थन स्थिति या पकाटुपनिसया पकायो के रूप में काम करते हैं।

21 कुशल धम्म हैं

1. 8 महाकुसला चित्त
2. 5 रूपाकुसल चित्त या 5 रूपा झानस
3. 4 अरूपाकुशल चित्त या 4 अरूप झाना
4. 4 लोकउत्तरा कुसला चित्त या 4 मार्ग चित्त या 4 पथ चेतना

12 अकुसाला धम्म 12 अकुसाला चित्त हैं और वे 8 लोभा चित्त, 2 डोसा चित्त, और 2 मोहा चित्त हैं।

36 विपाक धम्म हैं

1. 7 अहेतुका अकुशलविपाक चित्तस
2. 8 अहेतुका कुसलविपाक चित्तस
3. 8 sahetuka mahavipāka cittas
4. 5 rupavipāka cittas
5. 4 arupavipāka cittas
6. 4 लोकुत्तर विपाक चित्त या 4 फल चित्त या 4 फल चेतना

20 क्रिया धम्म हैं

1. 3 ahetuka kiriya cittas
2. 8 sahetuka mahakiriya cittas
3. 5 rupakiriya cittas
4. 4 arupavipaka cittas

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 14
हटू निंग द्वारा

अध्याय 14 - पुरेजाता पच्चयो
या पूर्व-जन्म की स्थिति
Purejāta paccayo:

पूरेजटा पकायोति चक्खायतनं चक्खुविन्नान धातुया तम सम्पयुत्तकानन्च धम्मणं पूरेजटा पक्केयेन पकायो।

पुरेजात पच्चयो या पूर्वजात अवस्था, रूप धम्म (अचेतन) और नाम धम्म (चेतन) के बीच एक प्रकार का संबंध है। इस प्रकार के संबंध में सहायक धम्म या कारक धम्म या पच्चय धम्म या कारण धम्म, रूप धम्म या अचेतन वस्तुएं हैं।

यहां समर्थित धम्म या बद्ध धम्म या पच्चयुप्पन्न धम्म या परिणामी धम्म नाम धम्म या चेतन तत्व हैं। यहां उदाहरण एक धम्म के उत्पन्न होने से पहले दूसरे धम्म के उत्पन्न होने का है। आइए हम चक्खुविन्नान चित्त या दृष्टि चेतना का उदाहरण लें।

इस चित्त को हमेशा चक्कायतन या चक्कु पसादा रूप पर निर्भर रहना पड़ता है। लेकिन चक्खु पसादा रूप चक्खुविन्नान चित्त के उत्पन्न होने से पहले उत्पन्न होता है।

एक प्राणी या सत्ता भावांग चित्त के प्रवाह में होती है। एक समय रूपा (दृष्टि) का अरम्मन उत्पन्न होता है और उसी समय चक्खु पसदा रूप भी उत्पन्न होता है। परन्तु उस समय चक्खु विन्नन चित्त नहीं होता, क्योंकि भावांग चित्त का प्रवाह होता रहता है। जैसे ही चक्खु पसदा और रूपारम्मन उत्पन्न होते हैं, भावांग चित्त समाप्त हो जाता है और इसे अतीत भावांग चित्त या भूतकाल भावांग चेतना कहा जाता है।

चक्खु पसदा रूप के द्वितीय क्षण में चक्खुविन्नान चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। क्योंकि रूपारम्मन चक्खुविन्नान चित्त को सहारा देने में इतना दुर्बल होता है कि भावनग चित्त अभी भी विद्यमान रहता है। वह भावनग चित्त अतीत भावनग से संदेश प्राप्त करता है कि कुछ आ रहा है। अतः द्वितीय क्षण में चित्त भावनग चित्त होता है जो हिल गया है या पुनर्जीवित हो गया है और भावनग चलन चित्त कहलाता है।

चक्खु पसदा रूप के तीसरे क्षण और रूपारम्मन के तीसरे क्षण में भी भावांग चित्त मौजूद रहता है। लेकिन यह अंतिम क्षण होता है और इसे अवरुद्ध भावांग या भावांगुप्पच्छेद चित्त कहा जाता है। रूपारम्मन, चक्खुविन्नान चित्त के लिए रूपारम्मन के रूप में कार्य करने के लिए तैयार होता है।

लेकिन चूंकि विथी चित्त या चेतन मन चक्खुविन्नान चित्त भावांग चित्त के तुरंत बाद उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि अरम्मन का स्वरूप ज्ञात नहीं है। इसका आकलन पंचद्वर अवज्जन चित्त या पंच इंद्रिय-प्रवेश चेतना द्वारा किया जाता है। इस चित्त के बाद ही चक्खु पसदा रूप के पंचवें क्षण में चक्खुविन्नान चित्त उत्पन्न होता है।

तो यहाँ तीन बातें हैं।

1. rūpa arammana (vanno or sightor colour of a form or shape)
2. कक्खु पसादा (नेत्र संवेदनशीलता)
3. चक्खुविन्नान चित्त (नेत्र चेतना)

पहले दो धम्म रूप धम्म हैं और अंतिम धम्म नाम धम्म है। यहां नाम धम्म दोनों रूप धम्म अस्तित्व के 5वें क्षण में उत्पन्न होता है। तो रूप धम्म नाम धम्म से पहले उत्पन्न होता है। और नाम धम्म रूप धम्म के उत्पन्न होने के कुछ देर बाद उत्पन्न होता है।

अतः रूपा जन्म से पूर्व या अविकसित अवस्था में होते हैं। वे सबसे पहले उत्पन्न होते हैं और बाद में उत्पन्न होने वाले चक्खुविन्नन चित्त (नाम धम्म) की स्थिति का समर्थन करते हैं। पच्चय धम्म या अभिधारणकारी धम्म चक्खु पसदा रूपा है और पच्चयुप्पन्नन धम्म या अभिधारणकारी धम्म चक्खुविन्नन चित्त या नेत्र चेतना है।

यह संबंध purejāta paccayo या पूर्व-जन्मजात अवस्था है। यह पहला उदाहरण है। purejāta paccaya या पूर्व-जन्मजात अवस्थाओं के अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. सोतायतन या कान की संवेदनशीलता (सोटा पसदा रूपा) और सोताविन्नान चित्त या कान की चेतना
2. घनायतन या नाक की संवेदनशीलता (घना पसदा) और घनाविनना चित्त या नाक की चेतना
3. जिव्हायतन या जीभ की संवेदनशीलता (जिव्हा पसादा) और जिव्हाविनन चित्त या जीभ की चेतना
4. कायायतन या देह संवेदनशीलता (काया पसदा) और कायाविन्नान चित्त या देह चेतना
5. रूपायतन या रूप अरम्मन (रूप/आकार/रंग) और चक्खुविन्नन चित्त या नेत्र चेतना
6. सददायतन या सद अरम्मना (ध्वनि) और सोतविन्नान चित्त या कान चेतना
7. गंधायतन या गंध अरम्मन (सूंघना) और घनविन्नान चित्त या नाक चेतना
8. रसायतन या रस अरम्मन (स्वाद) और जीवविन्नन चित्त या जीभ चेतना
9. फोत्थबायतन या फोत्थब्बा अरम्मना (पथवि ठोसता/तेजो तापमान/वायो दबाव) और कायाविन्नान चित्त या शरीर चेतना।

दस आयतन या दस इंद्रिय आधार हैं जो सभी रूप धम्म या अचेतन अवस्थाएं हैं। इनमें से किसी में भी चेतना की क्षमता नहीं होती। इनमें से पांच अरम्मन या विषय के रूप में कार्य करते हैं और अन्य पांच वस्तु या चेतना के उद्भव के आधार के रूप में कार्य करते हैं और इन्हें पसदा रूप या संवेदनशीलता भी कहा जाता है।

5 आयतन जो अरम्मन या वस्तु के रूप में कार्य करते हैं, वे हैं:

1. रूपायतन (रूप/आकार/रंग)
2. सद्दयातना (ध्वनि)
3. गंधयातन (सूंघना)
4. रसायतन (स्वाद)
5. फोत्थबायतन (स्पर्श_पथवी/ठोसता, तेजो/तापमान, वायु/दबाव)।

ये सभी चक्खुविन्नान चित्त (नेत्र चेतना), सोतविन्नान चित्त (कान चेतना), घनविन्नान चित्त (नाक चेतना), जीवविन्नान चित्त (जीभ चेतना) और कायविन्नान चित्त (शरीर चेतना) की पूर्व-अवस्था के रूप में कार्य करते हैं। क्योंकि ये पाँच रूप अपनी-अपनी इंद्रिय चेतना से पहले उत्पन्न होते हैं।

वे 5 आयतन जो इंद्रिय आधार, वस्तु या चेतना के आधार के रूप में कार्य करते हैं, वे हैं:

1. चक्खायतन या चक्खु पसादा रूप या आँख की संवेदनशीलता
2. सोतायतन या सोता पसादा रूपा या कान की संवेदनशीलता
3. घनायतन या घन पसादा रूप या नाक की संवेदनशीलता
4. जिव्हायतन या जिव्हा पसदा या जीभ की संवेदनशीलता
5. कायायतन या काया पसदा या शारीरिक संवेदनशीलता।

ये 5 रूप अपनी संबंधित इंद्रिय चेतना या विन्नन चित्त से पहले उत्पन्न होते हैं और वे अपने संबंधित विन्नन चित्त के लिए पूर्वजात अवस्था या पुरेजात पच्चयो के रूप में कार्य करते हैं।

रूपायतनं गंधायतनं रसायतनं फोत्थबायतनं मनोधातुया तम संपयुत्तकानन्च धम्मणं पूरेजता पकायेन पकायो।

रूपायतन (रूप/आकार/रंग/प्रकाश), सद्दायतन (ध्वनि), गंधायतन (गंध), रसायतन (स्वाद), और फोत्थबायतन (स्पर्श_ठोसता, तापमान, दबाव) के ये 5 आयतन मनोधातु और मनोधातु के धम्म के लिए प्रारंभिक स्थिति या प्योरजात पकायो के रूप में भी काम करते हैं।

मनोधातु तीन हैं। इनमें पंचद्दरवज्जन चित्त या पांच इंद्रियों से संबंधित चेतना और दो सम्पचित्चन चित्त या ग्रहणशील चेतना शामिल हैं। ये तीन मनोधातु पांच अरम्मना के बाद उत्पन्न होते हैं। इसलिए पांच अरम्मना इन तीन मनोधातुओं के लिए पूर्वज अवस्था या पुरेजात पच्चय का कार्य करते हैं।

5 विन्नान चित्तों के विपरीत, ये 3 मनोधातु पंच वत्थु पर नहीं हैं, अर्थात् कक्कु पसादा, सोता पसादा, घाना पसादा, जिव्हा पसादा, काया पसादा। इसके बजाय सभी 3 मनोधातु को हदय वत्थु या हृदय आधार पर निर्भर या जमीन या खड़ा होना या घर करना होगा।

अति महंत अरम्मन के संदर्भ में, विथी वर में कुल 14 विथी चित्त होते हैं। विथी वर का अर्थ है चेतनाओं की एक श्रृंखला का चक्र, जिनमें से सभी वर्तमान वस्तुओं के प्रति सचेत होती हैं। विथी चित्त वे चेतनाएँ हैं जो वर्तमान वस्तुओं के प्रति सचेत होती हैं। अति का अर्थ है अत्यंत। महंत का अर्थ है महान। अति महंत का अर्थ है बहुत महान। अरम्मन का अर्थ है मानसिक ध्यान का विषय। अति महंत अरम्मन की इस श्रृंखला में कुल 14 विथी चित्त होते हैं। इस श्रृंखला से ठीक पहले कई भावांग चित्त या जीवन निरंतरता चेतनाएँ होती हैं।

जब भी पंचारम्मन का कोई विषय उत्पन्न होता है, अर्थात् दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, तो उस विषय पर प्रत्यक्ष चेतना उत्पन्न नहीं हो सकती। क्यों? क्योंकि विषय के उत्पन्न होने के समय मन अभी उसे ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता, क्योंकि वह पिछले जन्म के मारण-आसन-जावण चित्तों में लीन होता है। तीन भावांग चित्तों के टल जाने के बाद ही प्रथम विथी चित्त उत्पन्न होता है।

रूप एक वस्तु के रूप में और रूप एक वस्तु या बोध के आधार के रूप में, प्रथम भावांग चित्त जिसे अतित भावांग चित्त कहते हैं, से उत्पन्न होते हैं। जब ये दोनों रूप तीन क्षणों के हो जाते हैं, तब अंतिम भावांग चित्त उत्पन्न होता है और विलुप्त हो जाता है। जब रूप अपने जीवन के चौथे क्षण में प्रवेश करते हैं, तब पंचद्दर अवज्जन चित्त (जिसे मनो धातु भी कहते हैं) उत्पन्न होता है और इसके बाद पंच विन्नन चित्त आते हैं।

अतः रूप पंच विन्नना चित्त के लिए पूर्व-प्राणकालीन परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं। पंच विन्नना चित्त के बाद दो संपत्चना चित्तों में से एक आता है, जिसे ग्रहणशील चेतना कहा जाता है। ये दोनों मनो धातु हैं। प्रथम विथी चित्त भी मनो धातु है।

इसलिए रूप पंचविन्नन चित्त और मनोधातु के लिए पूर्व-प्राण अवस्था का काम करते हैं, और वे मनोधातु के बाद आने वाले मनोविन्नन धातु के लिए भी सहायक होते हैं। मनोधातु और पूर्व-प्रसिद्ध रूप से संबंधित सभी धर्म आपस में जुड़े हुए हैं। रूप उनके लिए पूर्व-प्राण अवस्था का काम करते हैं।

मनो विन्नन धातुया तम संपयुत्तकाननच धम्मणं किंचि काले पुर्जाता पकायेना पकायो, किंची काले न पुर्जाता पकायेना पकायो।

मनो विन्नन धातुएँ और उनके साथ की अवस्थाएँ मौजूद हैं। ये विथी वर में मनोधातु के बाद की चेतनाएँ हैं। कभी-कभी पूर्व-जन्म की अवस्था होती है और कभी-कभी पूर्व-जन्म की अवस्था नहीं होती।

चवत्थुनि पवत्तियं सत्तन्नं विन्नाधातुनं, पंचराम्मननि च पंचविन्नाविथिया शुद्धजात वसनेति एकाधव रूपं नमस्सा पकायो होति।

चवत्तुनि = च वत्थु + नि. वत्थु एक आधार है. वत्थु आधार हैं। चा का अर्थ है छह. चवत्थु का अर्थ है 6 आधार। चवत्तुनि का अर्थ है 6 आधारों पर।

सत्तन्नम का अर्थ है सात होना और विन्नाना धातुनम का अर्थ है चेतना के तत्व। सत्तन्नम विन्नानाधातु का अर्थ है 7 विन्नाना धातु या 7 चेतना तत्व।

ये 7 विन्नाना धातुएँ हैं

1. चक्खुविन्नाना धातु या नेत्र चेतना तत्व
2. sotavinnāna dhātu or ear consciousness element
3. घानाविन्नाना धातु या नाक चेतना तत्व
4. jivhāvinnāna dhātu or tongue consciousness element
5. कायविन्नाना धातु या शरीर चेतना तत्व
6. मनो धातु या मन तत्व
7. mano vinnāna dhātu or mind consciousness elements.

पहली पाँच चेतनाएँ इतनी विशिष्ट होती हैं कि वे अपने-अपने विषय के प्रति विशेष रूप से सचेत होती हैं। इसलिए इन्हें चेतना तत्व या विन्नाना धातु कहा जाता है। अंतिम चेतना मनोविन्नाना धातु है और ये सभी चेतनाएँ मन से उत्पन्न होती हैं और हृदय आधार पर निर्भर करती हैं। ये पूर्व की चेतनाओं द्वारा संसाधित अपने विशिष्ट विषय के प्रति विशेष रूप से सचेत होती हैं।

इन छह प्रकार के विन्नान धातु या चेतना तत्वों के विपरीत, तीन चेतनाएँ ऐसी हैं जो पंच विन्नान चित्त या मनो विन्नान धातु नहीं हैं। ये हैं पंच द्वारवज्जन चित्त या पाँच इंद्रियों को ग्रहण करने वाली चेतना और दो सम्पातिचना चित्त या दो ग्रहणशील चेतनाएँ। अन्य चेतनाओं के विपरीत, ये तीन चित्त केवल अपना कार्य करते हैं और किसी विशिष्ट वस्तु के प्रति पूर्णतः सचेत नहीं हो सकते। इसलिए, क्योंकि वे केवल अपना कार्य करते हैं, उन्हें मनो धातु कहा जाता है। उनमें कोई विन्नान तत्व नहीं होता।

पावत्ति का अर्थ है घटित होना, विद्यमान होना, स्थापित होना। चवत्तुनी पावत्तियम का अर्थ है छह आधारों के माध्यम से स्थापित होना, घटित होना या उत्पन्न होना। इस पच्चयो या स्थिति में, इस स्थिति को पूर्व-जन्मा अवस्था कहा जाता है और यह छह आधारों के माध्यम से होती है तथा यह ऊपर वर्णित सात विन्नान धातुओं का समर्थन करती है या उन्हें प्रभावित करती है।

Ca का अर्थ है और फिर। अतः 6 आधार 7 विन्नाना धातु को पूर्व-जन्म स्थिति के साथ शर्त बनाते हैं और फिर पंचारम्मनानि च पंचविन्नानावीथिया या 5 वस्तुएँ 5-चेतना प्रक्रिया को शर्त बनाती हैं। इस दूसरे भाग का अर्थ है कि 5 वस्तुएँ हैं, अर्थात् रूप अरम्मना या दृष्टि, सद्दारम्मना या ध्वनि, गंधरममन या गंध, रसरममन या स्वाद और फोत्थब्बरम्मना या स्पर्श, और ये पंचविन्नाना विथी चित्तों के लिए शर्त के रूप में कार्य करती हैं।

वसेनेति का अर्थ है 'के माध्यम से'। एकधा व का अर्थ है 'केवल एक ही मार्ग', 'एकल साधन'।

Rūpam namassa paccayo hoti का अर्थ है रूप या अचेतन अवस्था, नाम या चेतन अवस्था।

इसलिए केवल एक ही पच्चयो है जो रूपा स्थिति नामा को परिभाषित करता है और वह पच्चयो या स्थिति पुरेजाता पच्चयो या पूर्व-जन्म स्थिति है।

वहाँ 2 शुद्धजाता पकाया हैं। वे वट्ठु पूर्जाता पकायो और अरम्मना पूर्जाता पकायो हैं।

Vatthu purejāta paccaya are 6 vatthus.

1. चक्कुवत्थु ; यह रूप उसी समय उत्पन्न होता है जब रूप अरम्मना या रूप आकार प्रकाश उत्पन्न होता है। यह चक्खुविन्नन चित्त की स्थिति बनाता है। लेकिन यह चक्कुविन्नन चित्त से पहले उत्पन्न होता है। तो यह वत्थु शुद्धजात पकाया या बेस प्रीनेसेंट स्थिति के रूप में कार्य करता है।

2. सोतावत्थु ; यह रूप उसी समय उत्पन्न होता है जब साद्दा या ध्वनि उत्पन्न होती है। यह सोताविन्नान चित्त की स्थिति बनाता है। लेकिन यह सोताविन्नान चित्त से पहले उत्पन्न होता है।

3. घनवत्थु ; यह रूप घनविन्नान चित्त से पहले उत्पन्न होता है लेकिन यह घनविन्नान चित्त की स्थिति बनाता है। इसलिए इस स्थिति को प्योरजटा या प्रीनेसेंट स्थिति कहा जाता है।

4. जीववत्थु ; यह रूप पहले उत्पन्न होता है और स्थितियां बाद में जीवविन्नन चित्त उत्पन्न होती हैं और इस स्थिति को वत्थु शुद्धजात पकायो या बेस प्रीनेसेंट स्थिति कहा जाता है।

5. कायवत्थु; यह रूप पहले उत्पन्न होता है और बाद में उत्पन्न होने वाली स्थितियों को कायविन्नान चित्त कहा जाता है और इस स्थिति को पूर्व-जन्म स्थिति कहा जाता है।

6. हृदयवत्थु ;

पतिसंधि में, यानी जीवन के प्रारंभ होते ही, हृदय आधार उत्पन्न होता है। यह रूप बाद में उत्पन्न होने वाले मनो विन्नाना धातु को प्रभावित करता है।

पावत्ति अवस्था में, यानी जीवन में जब रूप और नाम का निरंतर उद्भव होता है और चेतना की प्रक्रिया में, या विथि वार अवस्था में, या जीवन के निरंतर प्रवाह में, नाम या चेतना और उनके सहयोगी विद्यमान होते हैं। ये सभी मूल तत्व से बद्ध होते हैं, क्योंकि मूल तत्व शुद्धिजात पच्चया होता है।

वत्तु पुरेजात पच्चया या आधारभूत पूर्व-जन्मजात अवस्था में 6 आधार या 6 वातस होते हैं जो 7 विन्नान धातुओं को प्रभावित करते हैं। आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर के 5 वातस या 5 इंद्रिय आधार अपनी-अपनी इंद्रिय चेतना को प्रभावित करते हैं।

लेकिन हृदय या हडया वात इन पांच इंद्रिय आधारों से थोड़ा अलग व्यवहार करता है।

जीवन की शुरुआत होते ही हृदय आधार या हृदय तत्व उत्पन्न होता है। यह रूप अंतिम रूप से कुति चित्त या मरणासन्न चेतना से 17 क्षण पहले उत्पन्न होता है और कुति चित्त के साथ ही इसका भी अंत हो जाता है। जब तक जीवित रहता है, हृदय आधार या हृदय तत्व बाद में उत्पन्न होने वाली चेतना के लिए पूर्व-जन्मा अवस्था के रूप में कार्य करता है, जिसे बाद में उत्पन्न होने वाली अवस्था (वत् पुरेजात) कहा जाता है।

पंच स्वरभूमि में, या उन लोकों में जहाँ सभी पाँच खंध विद्यमान होते हैं, हृदय आधार सभी मानसिक तत्वों का केंद्र होता है, सिवाय दस पंच विन्नान चित्तों के। दस इंद्रिय चेतनाएँ पंच आधार पर स्थित होती हैं, अर्थात् आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर।

एक अन्य पुरेजात पच्चयो अरम्मन पुरेजात पच्चयो है। इस अवस्था को कर्म पूर्व-जन्म अवस्था कहा जाता है। पंच अरम्मन पाँच प्रकार के होते हैं और वे उस धर्म से पहले उत्पन्न होते हैं जिस पर वे आधारित होते हैं। रूप और नाम के बीच इस संबंध को प्रकट करने वाले अनेक उदाहरण हैं।

पंच विन्नाना विथिस हैं। इन्हें पंच द्वार विथिस भी कहा जा सकता है।

विथियाँ चेतना की ऐसी श्रृंखलाएँ हैं जो एक निश्चित क्रम में प्रकट होती हैं और उत्पन्न होते समय कभी कुछ चूकती नहीं हैं। यानी वे बिल्कुल सही क्रम में उत्पन्न होती हैं और इसमें कभी कोई गड़बड़ी नहीं होती।

देखने, सुनने, सूंघने, चखने या छूने के लिए चेतना की एक प्रारंभिक अवस्था का होना आवश्यक है। यही पहला विथी वर है। चेतना की मात्रा के आधार पर विथी को नाम दिए जाते हैं।

1. अति महंत अरम्मना विथि वर या तदारम्मन विथि वर
2. महंत अरम्मना विथि वर या जावना विथि वर
3. परिता अरम्मना विथि वर या वोत्थब्बाना विथि वर
4. अति परित्ता अरम्मना विथि वर या मोघ विथि वर

महंत का अर्थ है महान. अति का अर्थ है बहुत अधिक या अत्यधिक। परित्त का अर्थ है छोटा थोड़ा हीन। अति महंत अरम्मना विथि वर में 14 चेतनाएं हैं, महंत अरम्मना विथि वर में 12 चेतनाएं हैं, परित्ता अरम्मना में 6 चेतनाएं हैं और अति महंत अरम्मना वीथि वारा में 0 या कोई वीथि चित्त नहीं हैं। अंतिम वीथी वर को मोघा वीथी वर कहा जाता है। मोघा का अर्थ है खाली व्यर्थ बेकार। इसमें कोई विथि चित्त नहीं है और यह विथि चित्त से खाली या शून्य है। लेकिन केवल भावांग चित्त हैं और केवल 2 भावांग कलना चित्त हैं।

इन सभी शृंखलाओं में एक वस्तु उत्पन्न होती है। वह वस्तु उसी वीथि वर में बाद में उत्पन्न होने वाली चेतना के लिए प्रारंभिक स्थिति के रूप में कार्य करती है। तो ये सभी 5 अरम्मना अरम्मना शुद्धजात पक्कया या वस्तु पूर्ववर्ती स्थिति हैं। इस संबंध में संस्कारित धम्म रूप हैं और संस्कारित धम्म सभी नाम धम्म हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 15
हटू निंग द्वारा

अध्याय 15 - पच्चजाता पकायो
या प्रसवोत्तर स्थिति
पच्चजाता पचायोति_ पच्चजाता चित्त चेतसिका धामा शुद्धजातस्स इमास्सा कायस्सा पच्चाजाता पकायेना पचायो।

पच्छा का अर्थ है बाद में पीछे की ओर आना। पच्छिमा का अर्थ है पश्चिम की ओर पीछे जाना। जाति का अर्थ है उत्पन्न होना। पच्छाजात का अर्थ है बाद में जन्म लेना या बाद में उत्पन्न होना।

पच्छाजात चित्त चेतसिका धम्म का अर्थ है चित्तों और चेतसिकाओं का धम्म जो बाद में उत्पन्न होते हैं।

पुरेजातस्स का अर्थ है जन्म से पूर्व का धर्म, या जन्म से पूर्व का धर्म, या उत्पत्ति से पूर्व का धर्म। इमास्स का अर्थ है यह। इमास्स कायस्स का अर्थ है यह शरीर, यह संयोजन, यह रूप।

इस पच्छाजात पच्चया या जन्मोत्तर अवस्था में, अभिकल्पित धर्म सभी नाम धर्म होते हैं। वे चित्त और चेतसिका होते हैं। अभिकल्पित धर्म सभी रूप होते हैं।

पंचवकार भूमि में या उन लोकों में जहाँ सभी पाँच खंध विद्यमान हैं, नाम धम्म मौजूद होते हैं जो रूप धम्म को जन्मोत्तर अवस्था से प्रभावित कर सकते हैं। इन नाम धम्मों में चार अरूप विपाक चित्त शामिल नहीं हैं। क्योंकि अरूप लोकों में कोई रूप नहीं होता। उदाहरण के लिए, अरूप ब्रह्म भूमि में जन्मोत्तर अवस्था नहीं होती।

इस नवजात अवस्था या पच्चाजात पच्चया की स्थिति में, अभिकारक धम्म हैं

1. कुल 89 चित्तों में से 85 चित्त (4 अरूप विपाक चित्तों को छोड़कर)
2. 52 cetasikas.

और बद्ध धम्म वे रूप हैं जो पतिसंधि चित्त और अन्य चित्तों की उत्पत्ति के समय उत्पन्न होते हैं और जब ये रूप अपनी तिथि काल में होते हैं। इन रूपों में शामिल हैं:

1. ekaja kāya rūpa
2. dvija kāya rūpa
3. tija kāya rūpa
4. catuja kāya rūpa

एकजा का अर्थ है एक कारण से उत्पन्न रूप, द्विज का अर्थ है दो कारणों से उत्पन्न रूप, तिज का अर्थ है तीन कारणों से उत्पन्न रूप और चतुज का अर्थ है चार कारणों से उत्पन्न रूप।

रूपा के उत्पन्न होने के 4 कारण हैं

1. कम्मा
2. चित्त
3. उटु
4. āhāra

ग्यारह एकज रूप हैं। ये सभी केवल कर्म के कारण (नौ रूपों के लिए) या केवल चित्त के कारण (दो रूपों के लिए) उत्पन्न होते हैं। यानी इन नौ रूप धम्मों या दो रूप धम्मों के उत्पन्न होने में किसी अन्य कारण का योगदान नहीं हो सकता। नौ एकज काय रूप सभी कर्मज काय रूप हैं।

1. चक्खुप्पासाद या आंखों की संवेदनशीलता

2. सोतप्पसाद या कान की संवेदनशीलता
3. घनप्पसाद या नाक की संवेदनशीलता
4. जिहप्पसाद या जीभ की संवेदनशीलता
5. कायप्पसाद या शारीरिक संवेदनशीलता
6. पुरिसत्त भाव रूप या पुरुष संकाय
7. इत्थत्ता भाव रूपा या महिला संकाय
8. हदया रूपा या हृदय आधार
9. जीवित रूप या जीवन शक्ति

एक अन्य एकज रूप चित्तज रूप है। ये केवल चित्त के कारण उत्पन्न होते हैं। ये काय विनत्ति रूप और वाचि विनत्ति रूप हैं। काय विनत्ति रूप हावभाव है और वाचि विनत्ति रूप प्राणियों का मौखिक हावभाव, वाणी या आवाज है।

केवल एक ही द्विज रूप है और वह है ध्वनि। ध्वनि चित्त (जैसे आवाज) या उतु (जैसे तापमान में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक ध्वनि) के कारण उत्पन्न हो सकती है।

तिजा रूप तीन लहुतादि रूप हैं और ये आहार, चित्त या उतु के कारण उत्पन्न होते हैं। ये कर्म के कारण उत्पन्न नहीं होते। ये तीन रूप हैं रूप लहुता (रूप का हल्कापन), रूप मुदुता (रूप की ढलाईशीलता) और रूप कम्मन्नता (रूप की कार्यक्षमता)।

चतुज रूप नौ होते हैं, जिनमें से आठ अविनिभोग रूप या अविभाज्य रूप तथा एक परिच्छेद रूप या आकाश रूप हैं। आठ अविभाज्य रूप ये हैं:

1. पथवी
2. तेजो
3. वायो
4. एपो
5. वन्ना
6. गंधा
7. रासा
8. āhāra rūpa or oja

रूप पहले उत्पन्न होता है और बाद में उत्पन्न होता है नाम धम्म स्थिति, पहले से ही उत्पन्न रूप धम्म के साथ नवजात अवस्था या पच्चाजता पकायो।

हटू निंग द्वारा

अध्याय 16 - आसेवना पच्चया
या पुनरावृत्ति की स्थिति
Āsevana paccayoti

पुरिमा पुरिमा कुसल धम्म पछिमानं पछिमानं कुसलनं धम्मनं असेवना पकायेन पकायो।

पुरिमा पुरिमा अकुशला धम्म पछिमानं पछिमानं अकुशलानं धम्मनं असेवना पकायेन पकायो।

पुरिमा पूरिमा किरियाब्यकाता धमा पच्चिमानं पच्चिमानं किरियाब्यकातानं धम्मनं असेवना पकायेन पकायो।

In asevana paccayo or repeatition condition_

जब पूर्वगामी (पुरिमा) धम्म कुसल धम्म (संपूर्ण धम्म) हैं तो निम्नलिखित धम्म (पच्चिमानम्) भी कुसल धम्म हैं। पूर्वगामी धम्म कंडीशनिंग धम्म या पकाया धम्म या सहायक धम्म या कारण धम्म के रूप में कार्य करते हैं और निम्नलिखित धम्म पचयुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म या समर्थित धम्म या वातानुकूलित धम्म हैं।

पूर्ववर्ती धर्म और अनुवर्ती धर्म के बीच के संबंध को आसेवन पच्चय या पुनरावृत्ति की स्थिति कहा जाता है। क्योंकि दोनों धर्म बिल्कुल समान हैं। लेकिन पूर्ववर्ती धर्म अनुवर्ती धर्म का समर्थन करता है, इसलिए अनुवर्ती धर्म पूर्ववर्ती धर्म की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं।

जब पूर्ववर्ती धर्म अकुशल होते हैं तो अगला धर्म भी अकुशल धर्म होगा और संबंध असेवन पच्चयो होता है, और जब पूर्ववर्ती धर्म क्रियाभ्याक धर्म होते हैं तो अगला धर्म भी क्रियाभ्याक धर्म होगा।

इसके उदाहरण विथी वर जवान चित्त में देखे जा सकते हैं। लेकिन कुछ अपवाद भी हैं, जैसे कि सभी जवान चित्तों में असेवन पच्चय संबंध नहीं होता।

असेवन पच्चया में गैर-समावेशी धम्म हैं

ए. धम्म को नियंत्रित करने के लिए नहीं हैं

1. अंतिम जवाना चित्त;

ऐसा इसलिए है क्योंकि अंतिम जवान चित्त अगले चित्त को प्रभावित नहीं कर सकता, जो पुनरावृत्ति की स्थिति में अब जवान चित्त नहीं रह जाता है।

2. magga javana citta ;

इसका कारण यह है कि मग्गा चित्त और उसके बाद आने वाला चित्त एक समान नहीं होते। मग्गा चित्त लोकउत्तरा कुशल चित्त होता है और इसके बाद हमेशा लोकउत्तरा फल चित्त आता है। इसलिए यह पुनरावृत्ति की स्थिति नहीं है।

3. फला जवाना चित्त ;

फल प्राप्ति या फल समापत्ति की स्थिति में फल चित्तों की एक श्रृंखला हो सकती है। लेकिन यह क्रम आसेवन पच्चयो या पुनरावृत्ति की स्थिति नहीं है, बल्कि विपाक पच्चयो नामक एक अन्य स्थिति है।

इसलिए 4 मग्गा चित्त, 4 फल चित्त और अंतिम जवान चित्त, कुल मिलाकर 9 जवान चित्त, असेवन पच्चया के रूप में कार्य नहीं करते। अतः 55 जवान चित्तों में से 9 को हटाने पर 46 जवान चित्त शेष बचते हैं, जो पुनरावृत्ति की शर्त के साथ निम्नलिखित जवान चित्तों के कार्य में आ सकते हैं। इस शर्त में इन 46 चित्तों के साथ आने वाले 52 चेतसिक भी शामिल हैं।

बी. असेवन पच्चया या पुनरावृत्ति की शर्त से बद्ध धम्म नहीं

1. पहला जवाना चित्त

ऐसा इसलिए है क्योंकि चित्त भिन्न होंगे और पुनरावृत्ति की स्थिति यहां काम नहीं आएगी।

2. phala javana cittas

इसका कारण यह है कि मैग्गा सीतास असेवना पकाया से फला जवना सीतास के साथ कंडीशन नहीं होता है।

अतः 55 जवान चित्तों में से 4 फल चित्तों को बाहर रखा गया है और केवल 51 जवान चित्त और उनके साथ आने वाले 52 चेतसिका ही असेवन पच्चया में सशर्त धम्म हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 17
हटू निंग द्वारा

अध्याय 17 - कम्मा पच्चयो
या कम्मा की स्थिति
Kamma paccayoti

कुसल कुसलम कम्म विपकाणं खंडनं कत्त च रूपणं कम्म पकायेन पकायो।

चेताना संपयुत्तकाणं धम्मणं तम समुत्थानांच रूपाणं कम्म पकायेन पकायो।

कुशल का अर्थ है लाभकारी कर्म, और ये लाभकारी कर्म विपाकानम खन्धानम या लाभकारी कर्मों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले समुच्चयों को प्रभावित करते हैं या उनका समर्थन करते हैं। ये परिणाम चार विपाक नमक्खंड हैं, अर्थात्

1. वेदना खण्ड या भावना समुच्चय
2. सन्ना खंड या धारणा समुच्चय
3. संखारा खंड या गठन समुच्चय
4. विन्नाना खन्ध या चेतना समूह।

तो सभी दर्द (दुक्ख वेदना), सभी मानसिक दर्द (दोमानस्सा वेदना), सभी वांछनीय स्पर्श (सुख वेदना), सभी वांछनीय मानसिक भावना (सोमनस्सा वेदना) और सभी अस्थिर भावनाएँ जो दुक्ख नहीं हैं, दोमानस्सा नहीं, सुखा नहीं, सोमनस्सा नहीं (उपेक्ख वेदना) सभी पक्कयुप्पन्ना धम्म या परिणामी धम्म या वातानुकूलित धम्म या समर्थित हैं कुसाला या संपूर्ण कृत्यों का धम्म।

क्योंकि ये सभी परिणामी धर्म हैं, इसलिए इन सभी का विपाक धर्म से संबंध है। इन चार विपाक नामक्खन्धों से संबंधित भौतिक विषय भी हैं, जिन्हें कतत्ता रूप कहा जाता है, और ये भी भूतकाल के लाभकारी कर्मों या कुशल कर्मों से प्रभावित होते हैं।

यह बात अकुशल या अस्वास्थ्यकर कार्यों पर भी लागू होती है और ये कार्य अकुशल कर्म बन जाते हैं और बाद में अकुशल विपाक नमक्खंडों का कारण बनते हैं।

किसी भी प्रकार की चेतना या चित्त में चेतना, चेतसिका या इच्छाशक्ति विद्यमान होती है और जब चेतना होती है, तो वह चेतना चित्त के संबंधित धम्म और अन्य चेतसिकाओं और चित्तज या चेतना से उत्पन्न रूप को प्रभावित करती है।

कर्म पच्चया में, पूर्व चेतना और वर्तमान चेतना ही अभिकारक धर्म हैं। जबकि पूर्व चेतनाएँ अपने सम्पायुत्त धर्म या संबंधित धर्म के अनुसार कुशल या अकुशल हो जाती हैं, वर्तमान चेतना को सहज कर्म कहा जाता है और यह चित्तज रूप या कर्म अवस्था वाले चेतनाजनित रूपों का समर्थन करती है।

सहजता चेतन सहजतानं नामरूपणं, नानाक्खनिका चेतना कम्माभिनिब्बत्तनं नामरूपणं कम्म वसेना नामम नामरूपणं पकायो होति।

कुल 89 चित्त हैं। इन 89 चित्तों में से प्रत्येक के साथ चेतना एक संगत चेतसिका के रूप में मौजूद है। यह चेतना चेतसिका इन सभी 89 चित्तों और 52 चेतसिकाओं में से चेतना चेतसिका को अलग करने के बाद प्राप्त होने वाली अन्य 51 चेतसिकाओं के लिए आधारभूत धम्म का कार्य करती है।

इन 89 चित्तों और उनसे संबंधित चेतसिकाओं में पाया जाने वाला पच्चया धम्म या कारण धम्म या सहायक धम्म या कंडीशनिंग धम्म, चेतना चेतसका कहलाता है।

इस प्रकार के संबंध में पचयुप्पन्न धम्म या परिणामी धम्म या समर्थित धम्म या सशर्त धम्म अन्य सभी 51 चेतसिक और 89 चित्त हैं।

इन धर्मों के बीच के संबंध को कर्म परिच्छेद या कर्म परिच्छेद कहा जाता है। और इस कर्म परिच्छेद को सहज कर्म परिच्छेद कहा जाता है क्योंकि अभिकारक धर्म, परिणामी धर्म के साथ ही उत्पन्न होता है। फिर भी, अन्य कर्म परिच्छेद भी होते हैं।

अतीत में, जब अच्छे या बुरे कर्म किए जाते थे, तब विभिन्न चेतनाएँ उत्पन्न होती थीं। इन कर्मों के फलस्वरूप चेतनाएँ उत्पन्न होती थीं। कुशल कर्मों में 19 सार्वभौमिक शुभ चेतनाएँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. श्रद्धा या विश्वास (आस्था)
2. सती या सचेतनता
3. हीरी या नैतिक शर्म
4. ओट्टाप्पा या नैतिक भय

5. अलोभा या अनासक्ति
6. adosa or non aversion
7. tatramajjhattata या संतुलन
8. काया पासद्धि या मानसिक शांति
9. चित्त पसद्धि या मन की शांति
10. काया लाहुता या मानसिक हल्कापन
11. चित्त लहुता या मन की हल्कापन
12. काया मुदुता या मानसिक मोल्डेबिलिटी
13. चित्त मुदुता या मन की ढलाईशीलता
14. काया कामनाता या मानसिक कार्यशीलता
15. चित्त कम्मन्नता या मन की कार्यशीलता
16. काया पगुन्नता या मानसिक प्रवीणता
17. चित्त पगुणत या मन की दक्षता
18. कायुजुकाटा या मानसिक शुद्धता
19. चित्तुजुकाता या मन की सत्यता

अकुशल कर्मों या अशुभ कर्मों में 14 अकुशल चेतसिकाएँ होती हैं और वे इस प्रकार हैं:

1. मोह या अज्ञान]
2. अंतिरिका या निर्लज्जता
3. अनोत्ताप्पा या निर्भीकता
4. उद्दच्च या अपंगता
5. लोभ या आसक्ति
6. माना या अभिमान
7. गलत दृष्टिकोण
8. डोसा या अरुचि
9. ईर्ष्या या जलन
10. मच्छरिया या कंजूसी
11. कुक्कुक्का या चिंता
12. थिना या आलस्य
13. मिद्धा या सुस्ती
14. vicikiccha या संदेह

19 चेतसिका कुसल चेतना के साथ काम करते हैं और वे सभी नानकखानिका कुसल कम्म बन जाते हैं। 14 चेतसिका अकुसल चेताना के साथ काम करते हैं और वे सभी नानकखानिका अकुसल कम्म बन जाते हैं। कुल मिलाकर ये 33 (19 + 14) केतना के साथ मिलकर उनके वातानुकूलित धम्म के लिए नानकखानिका कम्म के रूप में काम करते हैं।

उनके वातानुकूलित धम्म हैं विपाक छत्तिम्स नमकखंड या 36 विपाक चित्त, पतिसंधि कम्मज रूप या नवजात कम्म से जन्मे रूप या जन्म के समय रूप, आसन सत्त कम्मज रूप या असन्नसत्ता ब्रह्मा के रूप और पावत्ती कम्मज रूप या वर्तमान कम्म से जन्मे रूप।

नाना का अर्थ है अनेक रूपों में, विभिन्न रूपों में, विविध रूपों में। खाना का अर्थ है क्षण और खानिका का अर्थ है क्षण से संबंधित या क्षण लेना। नानाखानिका कर्म वे कर्म हैं जो अतीत में किए गए थे और जिनका प्रभाव किसी भी क्षण, अलग-अलग समय अवधि में या विभिन्न अवसरों पर उत्पन्न हो सकता है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 18
हटू निंग द्वारा

अध्याय 18 - विपाका पच्चयो
या विपाक स्थिति या पके हुए परिणाम की स्थिति
विपाक पकायोति विपाका कटारो खंड अरूपिनो अन्नमन्नम विपाक पकायेना पकायो।

विपाका पच्चयो या विपाका अवस्था या पकी हुई अवस्था में चार विपाका नमक्खंड या चार मानसिक समूह होते हैं, अर्थात्

1. वेदना खण्ड या भावना समुच्चय
2. सन्ना खंड या धारणा समुच्चय
3. संखारा खंड या गठन समुच्चय
4. विन्नाना खंडा या चेतना समूह।

ये चार समुच्चय या नाम खंड एक दूसरे के लिए और साथ ही संबंधित चित्तज रूप या चेतना से उत्पन्न रूप के लिए विपाक स्थिति या विपाक पच्चयो के रूप में कार्य करते हैं, सिवाय दो विनत्ती रूपों के, अर्थात् काया विनत्ती और वाचि विनत्ती रूप।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 19
हटू निंग द्वारा

अध्याय 19 - आहारा पच्चयो
या पोषण की स्थिति
Āhāra paccayoti

कबाल्लिकारो अहारो इमास्सा कायस्सा आहार पकायेना पकायो। अरूपिनो आहार संपयुत्तकाणं धम्मणं तम समुत्थानांच रूपाणं आहार पकायेना पकायो।

कबालिनकारा का अर्थ है किसी भी प्रकार के भोजन में निहित भौतिक भोजन या पोषक तत्व। यह आहार रूप या ओज है। आठ अविभाज्य रूप हैं जिन्हें सामूहिक रूप से अविनिभोग रूप कहा जाता है। यह मूल रूप कालप है और सभी कालपों में समाहित है।

कोई भी भौतिक भोजन शरीर के लिए आहार पच्चयो का काम करता है। मानव शरीर में कई रूप होते हैं जैसे पथवी, तेजो, वायो और अपो आदि। ये रूप चार मूल तत्वों द्वारा समर्थित होते हैं और इनके कारण भी होते हैं। भौतिक भोजन, ओज या आहार इनमें से एक कारण है।

तीन अरूप आहार या तीन गैर-भौतिक पोषक तत्व हैं। वे हैं:

1. फासा आहार या संपर्क पोषक तत्व
2. मनोसंचेतना आहार या इच्छा पोषक तत्व
3. विन्ना आहार या चेतना पोषक तत्व

फस्सा या संपर्क चेतसिका का प्रमुख घटक है जो चित्त को वस्तु या अरम्मन से पोषित करता है। फस्सा या संपर्क के बिना चेतना का अस्तित्व नहीं हो सकता। इस प्रकार फस्सा या संपर्क नाम धम्म का पोषण है और इसे नाम आहार या अरूप आहार के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि यह चेतना या चित्त और अन्य संबंधित चेतसिकाओं को अरम्मन प्रदान करता है।

अतीत में कर्म किए जाने पर 29 चेतना-चेतसिकाएँ उत्पन्न हुई थीं। ये चेतनाएँ कर्म बन जाती हैं और भविष्य में इनके फल उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं। ये 29 चेतनाएँ हैं:

1. एल2 अकुसाला सीतास में 12 अकुसाला सीताना या सीताना
2. 8 महाकुशल चित्त में 8 कुसल सीताना या सीताना
3. 5 रूपाकुसल चित्त में 5 रूपा सीताना या सीताना
4. 4 अरूपाकुसल चित्त में 4 अरूप सीताना या सीताना

जब ये 29 चेतना आहार मौजूद होते हैं, तो वे नाम धम्म को पोषण प्रदान कर सकते हैं। चेतना किसी भी चित्त में भी समाहित होती है और वहाँ यह सहज आहार पच्चय या पोषण की स्थिति के रूप में कार्य करती है।

एक तीसरा नाम आहार या तीसरा रूप आहार या चौथा आहार है। यह विन्नान आहार है। यह चेतना है। यहाँ यह भावांग चित्त या जीवन को निरंतर बनाए रखने वाली चेतना है।

कुछ मामलों में, भौतिक शरीर को सहारा देने के लिए आहार शेष नहीं रह जाता और प्राणी मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। लेकिन जब तक विन्नाना आहार शेष रहता है, तब तक प्राणी को कुछ और समय तक जीवित रहना पड़ता है, जब तक कि मृत्यु से ठीक पहले अंतिम चेतना जागृत न हो जाए।

अध्याय 20 - इंद्रिय पच्चयो
या संकाय की स्थिति
इंद्रिया पच्चयोति

चक्कुन्द्रियं चक्खु विन्नधातुया तम संपयुत्तकाणंच धम्मणं इंद्रिय पचायेन पचयो।

इंद्रिय पच्चयोति का अर्थ है इंद्रिय पच्चयो इति, यानी यह इंद्रिय पच्चयो है, या यह इंद्रिय अवस्था है। चक्खुन्द्रिय, यानी नेत्र शक्ति, चक्खुविन्नान धातु, यानी नेत्र चेतना तत्व और उससे संबंधित धर्म के लिए अवस्था का कार्य करती है। चक्खुविन्नान धातु, यानी नेत्र चेतना तत्व में सात संबंधित धर्म होते हैं।

वे हैं चरण या संपर्क, वेदना या भावना, चेतना या इच्छा, सन्ना या धारणा, एकगता या एक बिंदु, जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन, और मानसिकारा या ध्यान, चक्खुविन्नन चित्त या चक्कुविन्ना धातु से जुड़े 7 धम्म हैं। वे एक साथ उठते हैं और आंख या चक्खु पसादा रूप या चक्कुंद्रिय इन धम्म के लिए संकाय स्थिति के रूप में कार्य करता है।

कंडीशनिंग धम्म या सहायक धम्म या कारण धम्म या पकाया धम्म चक्खु पसादा रूप है और इसके परिणामी धम्म या समर्थित धम्म या वातानुकूलित धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म हैं

1. cakkhu vinnāna citta
2. चक्खु सम्पहस्सा या नेत्र संपर्क
3. चक्खु सम्फस्सज वेदना या आंखों के संपर्क से उत्पन्न भावना
4. चक्खु संसेंताना या आँख पर इच्छाशक्ति
5. सन्ना या धारणा
6. रूपारम्मन या दृश्य वस्तु के प्रति एकाग्रता या एकाग्रता
7. जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन
8. मनसिकारा या ध्यान

रूप (चक्खु पसदा रूप) और नाम (चक्खुविन्नान चित्त और इसके साथ ऊपर उल्लिखित 7 चेतसिक) के बीच के संबंध को इंद्रिय पच्चयो या संकाय स्थिति कहा जाता है।

वैसे ही

2. सोतिन्द्रियम या सोता इंद्रिया या कान का संकाय सोताविन्नान धातु और उसके सहयोगियों के लिए संकाय स्थिति के रूप में कार्य करता है।

3. घनिन्द्रियम् या घन इन्द्रिय या नाक का संकाय घनविन्न धातु और उसके सहयोगियों के लिए संकाय स्थिति के रूप में कार्य करता है।

4. जिविन्द्रियम या जिव्ह इंद्रिय या जीभ की शक्ति, जिव्हविन्नान धातु और उसके सहयोगियों के लिए एक शक्ति स्थिति के रूप में कार्य करती है।

5. कायिन्द्रियम या काया इंद्रिय या शरीर की शक्ति कायवीनाना धातु और उसके सहयोगियों के लिए शक्ति स्थिति के रूप में कार्य करती है।

रूपजीवितिन्द्रियं कटत्ता रूपाणं इन्द्रिय पकायेन पकायो।

रूप जीवित 28 परमत्थ रूपों में से एक है। इन 28 परमत्थ रूपों की व्याख्या पट्टाना धम्म के पूर्ववर्ती पृष्ठों में की गई है।

काटा का अर्थ है किया हुआ। कटात्ता का अर्थ है जो किया जा चुका है। कटात्ता रूप का अर्थ है वे रूप जो अतीत में किए गए कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। अतः कटात्ता रूप विपाक चित्त के भौतिक समतुल्य हैं। इन कटात्ता रूपों में रूपजीवित रूप, रूप कलाप या

भौतिक समुच्चय में मौजूद अन्य सभी सह-अस्तित्व वाले रूपों जैसे पथवी, तेजो, वायो, आपो और अन्य सभी रूपों के लिए आधारभूत तत्व का कार्य करता है।

अरूपिनो इंद्रिय संपयुत्तकाणं धम्मणं तम् समुत्थानांच रूपाणं इंद्रिय पकायेन पकायो।

अरुपिनो इंद्रिया का अर्थ है गैर-भौतिक क्षमताएं। संपयुत्तकाणं धम्मणं का अर्थ है संबद्ध धम्म। धम्म के इस सेट में सेवारत धम्म अरूप इंद्रिय या नाम इंद्रिय या गैर भौतिक संकाय और उनसे संबंधित नाम धम्म हैं।

तम समुत्थाननच रूप का अर्थ है उन धम्म द्वारा उत्पन्न या उत्पन्न हुआ रूप। ये चित्तज रूप या चेतना से जन्मे रूप हैं और इन रूपों को इंद्रिय के नाम धम्म या नाम इंद्रिय धम्म पर निर्भर रहना पड़ता है।

नाम इंद्रिय हैं

1. मानिन्द्रिय (चेतना या चित्त)
2. जीवितिन्द्रिय (नाम जीवित या नाम जीवन या मानसिक जीवन)
3. satindriya or sati cetasika
4. सद्धिन्द्रिय या सद्ध चेतसिका
5. वीर्यइंद्रिय या वीर्य चेतसिका
6. समदिन्रिया या एकगगाटा सिटासिका
7. पन्निन्द्रिया या पन्ना चेतसिका
8. सोमनसिन्द्रिय या सोमनस्सा वेदना चेतसिका
9. डोमानासिन्द्रिया या डोमानासा वेदना सिटासिका
10. सुखिन्द्रिय या सुख वेदना चेतसिका
11. दुक्खिन्द्रिय या दुक्ख वेदना चेतसिका
12. उपेखिन्द्रिय या उपेक्ख वेदना चेतसिका

ये नाम धम्म और उनसे संबंधित नाम धम्म उनकी चेतना के जन्म या चित्तज रूप के लिए संकाय स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

इंद्रिय पकाया 3 प्रकार के होते हैं।

1. purejātindriya paccaya or prenasent faculty condition
2. रूपजीवितिन्द्रिय पच्चया या भौतिक जीवन संकाय की स्थिति
3. सहजतिन्द्रिय पच्चया या संवेदनशील संकाय स्थिति।

पूर्वजातिन्द्रिय पच्चया अवस्था में, अभिकल्पित धम्म पाँच पसदा रूप हैं, अर्थात् आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर, और अभिकल्पित धम्म पंच विन्नाना चित्त और उनके सहयोगी हैं।

रूपजीवितेन्द्रिय पचाया या भौतिक जीवन संकाय स्थिति में कंडीशनिंग धम्म 28 परमार्थ धम्म का जीवित रूप है। वातानुकूलित धम्म हैं पतिसंधि कम्मज रूप या कम्म से जन्मे पुनर्जन्म रूप, असन्नी कम्मज रूप या असन्नसत्ता ब्रह्मा के कम्म से जन्मे रूप, और पावत्ती कम्मज रूप या जीवन क्रम कम्म से जन्मे रूप।

यह थोड़ा जटिल है। पतिसंधि में, यानी जैसे ही एक नए जीवन का आरंभ होता है, रूप उत्पन्न होते हैं और इन सभी रूपों की सेवा जीवित रूप द्वारा रूपजीवितिन्द्रिय पच्चया या भौतिक जीवन शक्ति की स्थिति के साथ की जाती है।

असन्निसत्त चेतनाहीन और अबोधशील प्राणी हैं। परन्तु वे सभी प्राणी हैं और उनका रूप सजीव है। उनके लगभग सभी रूप कर्मज रूप हैं और इन रूपों की सेवा सजीव रूप द्वारा रूपजीवितेंद्रिय पच्चय से की जाती है।

पावत्ती कम्मज रूप या जीवन पथ कर्म से जन्मे रूप हैं। उदाहरण हम अभी देख रहे हैं। जब हम देखते हैं तो चक्खुविन्नन चित्त उत्पन्न होते हैं। इस चक्कुविन्नन चित्त को कक्खु वत्थू या चक्कु पसादा द्वारा कक्खुंद्रिया के रूप में परोसा जाता है। वह चक्कुंद्रिय, चक्खु दसक रूप कल्प में से एक रूप है और वह कल्प सभी रूपजीविता द्वारा संकाय शर्त के रूप में परोसा जाता है। तो सभी पावत्ती कामज रूप को रूपजीवित रूप द्वारा रूपजीवितंद्रिय पकाया के रूप में परोसा जाता है।

नाम इंद्रिय हैं. जैसा कि ऊपर वर्णित है, वे 12 हैं। वे हैं मन या चित्त, जीवितिन्द्रिय चेतसिका, 5 वेदना चेतसिका, सद्धा, वीर्य, सती, एकगता और पन्ना। ये सभी नाम इंद्रियां 89 चेतना या 89 चित्त, 52 सीतासिका या 52 मानसिक कारकों और संबंधित चित्तज रूप या

चेतना से जन्मे रूप और पतिसंधि कम्मज रूप या पुनर्जन्म कम्म से जन्मे रूप के लिए सहजेंद्रिय पचाय या कॉन्सेंट फैकल्टी स्थिति के रूप में काम करते हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 21
हटू निंग द्वारा

अध्याय 21 - झाना पच्चयो
या झान अवस्था या अवशोषण अवस्था
Jhāna paccayoti

झनंगानि झन संपयुत्तकाणं धम्मणं तम समुत्थाननच रूपाणं झण पकायेन पकायो।

झानंगानी का अर्थ है झानंगा या झान अंग या झान के अंग या झान कारक। यहाँ झान कारक या झानंगा अपने संबंधित नाम धम्म और सह-उत्पन्न चित्तज रूपों या चेतना से उत्पन्न रूप के लिए झान पच्चय या झान अवस्था के रूप में कार्य करते हैं।

पाँच झानंग या पाँच झान कारक हैं और वे सभी नाम धम्म और चेतसिका धम्म हैं। ये पाँच झान कारक हैं:

1. विटाक्का या प्रारंभिक आवेदन
2. विचारा या निरंतर अनुप्रयोग
3. पीटी या परमानंद
4. सुखा या सुखा वेदना
5. एकग्गता या एकाग्रता

ये झना पकाया के रूप में कंडीशनिंग धम्म हैं। उनका वातानुकूलित धम्म या धम्म जो इन 5 झन कारकों द्वारा वातानुकूलित है, वे हैं झन चित्त और उनसे जुड़े 35 चेतासिक, सबसे अधिक और सह-उत्पन्न होने वाले चित्तज रूप या झन चेतना से जन्मे रूप जैसे इरिया या मुद्रा के काया विनत्ती रूप।

इन ध्यान कारकों द्वारा किसी भी मुद्रा को ध्यान पच्चय या ध्यान अवस्था के रूप में बनाए रखा जा सकता है। अत: ध्यान में लीन प्राणी लंबे समय तक बैठ, खड़ा या लेट सकता है, जब तक वह ध्यान की अवस्था में रहता है। इस प्रकार नाम धम्म और ध्यान कारक नाम धम्म और रूप धम्म को ध्यान पच्चय या ध्यान अवस्था से जोड़ते हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 22
हटू निंग द्वारा

अध्याय 22 - मग्गा पक्कायो
या पथ की स्थिति
Magga paccayoti_

मग्गंगनि मग्गा संपयुत्तकाणं धम्मणं तम् समुत्थाननच रूपाणं मग्गा पकायेना पकायो।

मग्गा पकायो यह है. मग्गंग या मग्गा के अंग या मग्गा के अंग या पथ चेतना के भाग हैं। ये सभी 8 धम्म चैतसिक धम्म हैं। ये 8 मग्गंग या मग्गा कारक या पथ कारक हैं

1. samma ditthi or pannindriya cetasika of path consciousness
2. सम्मा संकप्पा या मग्गा विटक्का सीतासिका या पथ चेतना का प्रारंभिक अनुप्रयोग

ये उपर्युक्त 2 चेतसिकाएं पन्ना मगगंग या पथ कारकों का ज्ञान समूह हैं।

1. samma vāca or samma vaca cetasika or vaci ducarita virati cetasika or right speech of path consciousness
2. सम्मा कम्मंता या काया दुकारिता विरति चेतसिका या पथ चेतना की सही क्रिया
3. samma ajiva or micchā jiva viratī cetasika or right livelihood of path consciousness

उपरोक्त तीनों चेतसिकाएं सीला मगंगस या नैतिक आचरण के पथ कारकों का समूह हैं।

1. सम्मा वायामा या विरिया चेतसिका या पथ चेतना का सही प्रयास
2. सम्मा सती या सती चेतसिका या पथ चेतना की सही जागरूकता
3. सम्मा समाधि या एकग्गता चेतसिका या पथ चेतना की सही एकाग्रता

ये उपर्युक्त 3 चेतसिकाएं समाधि मगंग या शांति के पथ कारकों का समूह हैं।

ये 8 पथ कारक, मग्गा पच्चया या मग्गा चित्त या पथ चेतना और उनसे जुड़े 36 चेतसिकाओं के नाम धम्म से लेकर चित्तज रूप या पथ चेतना से उत्पन्न रूपों तक, जिनमें इरिय या मुद्रा के कायविनत्ती रूप भी शामिल हैं, के लिए पथ स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 23
हटू निंग द्वारा

अध्याय 23 - सम्पायुत्ता पकायो
या एसोसिएशन की स्थिति
संपायुत्त पच्चयोति

कत्तारो खंडा अरूपिनो अन्नमन्नम संपायुत्त पकायेना पचायो।

संपायुत्त पच्चयो या सहभागिता की स्थिति यह है। चट्टारो का अर्थ है चार। खंधा का अर्थ है समुच्चय। चट्टारो खंधा का अर्थ है 4 समुच्चय। अरूपिनो का अर्थ है गैर-भौतिक या नाम।

4 अरूप खंड या 4 अभौतिक समुच्चय हैं। इन्हें नमकखंडों के नाम से भी जाना जाता है। ये 4 नमकखंड हैं

1. वेदनाकखंड या भावना समुच्चय
2. सन्नक्खन्ध या धारणा समूह
3. शंखरक्खंधा या गठन समुच्चय
4. विन्नानक्खन्ध या चेतना का समूह।

अन्नमन्नम शब्द अन्न + अन्न से मिलकर बना है। इसका अर्थ है एक दूसरे के साथ। अतः अन्नमना का अर्थ है पारस्परिक। ये चारों नमक्खंड एक दूसरे के साथ अन्नमना सम्पायुत्त पच्चया या पारस्परिक संबंध की स्थिति का कार्य करते हैं।

इसका मतलब यह है कि वेदना सन्ना, संखारा और विन्नाना के अन्य 3 नमकखंडों के लिए सहयोगी स्थिति के रूप में कार्य करता है; सन्ना वेदना, संखारा, और विन्नाना के अन्य 3 नमकखंडों के लिए सहयोगी स्थिति के रूप में कार्य करता है; संखारा वेदना, सन्ना और विन्नाना के अन्य 3 नमकखंडों के लिए सहयोगी स्थिति के रूप में कार्य करता है; और विन्ना वेदना, सन्ना और संखारा के अन्य 3 नमकखंडों के लिए सहयोगी स्थिति के रूप में कार्य करता है।

मूल धर्म इन चार नमक्खंडों में से एक है। और अभिकृत धर्म अन्य तीन नमक्खंड हैं। मूल धर्म और अभिकृत धर्म के बीच के संबंध को सम्पायुत्त पच्चयो या सहभागिता कहा जाता है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 24
हटू निंग द्वारा

अध्याय 24 - विप्पयुत्त पच्चयो
या वियोजन की स्थिति
विप्पयुत्त पच्चयोति

रुपिनो धम्म अरुपिनं धम्मणं विप्पयुत्त पकायेन पकायो।

विपयुत्त पचायो या पृथक्करण स्थिति यह है। रूपिनो धम्म का अर्थ है भौतिक पदार्थ या भौतिक धम्म या रूप धम्म। ऐसे रूप हैं जो अरूपिनम धम्म नाम या अरूप धम्म या नाम धम्म के लिए पृथक्करण की स्थिति के रूप में काम करते हैं।

अरुपिनो धम्म रूपिनं धम्मणं विप्पयुत्त पकायेन पकायो।

इसी प्रकार, अरूपिनो धम्म, धम्म, अरूपा या नाम धम्म, रूपीनम धम्मनम या रूपा धम्म या भौतिक धम्म के लिए आधारभूत धम्म, पृथक्करण की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं। रूपा और अरूपा या नाम धम्म एक साथ उत्पन्न होते हैं। लेकिन वे एक दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकते। रूपा नामा को स्पर्श नहीं कर सकता और नामा रूपा को स्पर्श नहीं कर सकता, और इसके विपरीत भी।

इन्हें पानी और दूध की तरह मिलाया नहीं जा सकता। ये पत्थर और पानी के मिश्रण के समान हैं। यद्यपि ये एक साथ विद्यमान हैं, फिर भी ये अपने आप में अविभाज्य हैं। अतः प्रत्येक धम्म, यानी जब रूप किसी धम्म को अभिधारण करता है, तो वह रूप नाम धम्म के लिए वियोजन का कार्य करता है और नाम धम्म अभिधारणित धम्म बन जाता है।

जब रूपा धम्म या नाम धम्म, अभिधारणाकारी धम्म बन जाते हैं, तो नाम, रूपा धम्म के लिए वियोजनकारी शर्त के रूप में कार्य करता है और रूपा धम्म अभिधारणकारी धम्म बन जाता है।

विपयुत्त पचयो या वियोग की स्थिति तीन प्रकार की होती है। वे हैं:

1. सहजता विपयुत्त पच्चयो या संकेंद्रित वियोजन स्थिति
2. pacchājāta vipayutta paccayo or postnascent dissociation condition
3. वत्थु शुद्धजात विपयुत्त पैकायो या बेस प्रीनेसेंट डिसोसिएटन स्थिति

1. सहजता विपयुत्त पकाया

पतिसंधि हदय वत्थु 4 पतिसंधि नमकखंड अर्थात् वेदनाखंड, सन्नक्खखंड, शंखखंड और पतिसंधि विन्नकखंड या पतिसंधि चित्त के लिए कंडीशनिंग धम्म के रूप में कार्य करता है। वे दोनों हदय रूप और ये सभी 4 नमकखंड एक साथ उत्पन्न होते हैं और वे एक दूसरे के साथ मिश्रित नहीं होते हैं और वे अलग हो जाते हैं। तो वे सहजता विपयुत्त या चेतना पृथक्करण स्थिति हैं ।

89 चित्तों में से 75 चित्त (पंचविन्नन के 10 विन्नान चित्तों और 4 अरुपविपाक चित्तों को छोड़कर, जिनमें से कोई भी चित्तज रूप या चेतना से उत्पन्न रूप उत्पन्न नहीं करता है) और 52 चेतसिका चित्तज रूप और पतिसंधि कम्मज रूप के लिए सहजता विपयुत्त पच्चय के रूप में कार्य करते हैं।

2. पच्चजाता विपयुत्त पकाया

85 चित्त (4 अरूपविपाक चित्त को बाहर रखा गया है क्योंकि वे चित्तज रूप उत्पन्न नहीं करते हैं) एकज काया, द्विज काया, तिज काया और चतुज काया रूप के लिए पच्छाजात विपयुत्त पच्चया या जन्मोत्तर पृथक्करण स्थिति के रूप में कार्य करता है जब ये रूप अपने थी खान में होते हैं।

एकजा का अर्थ है एक कारण से उत्पन्न, द्विजा का अर्थ है दो कारणों से उत्पन्न, तिजा का अर्थ है तीन कारणों से और चतुजा का अर्थ है चार कारणों से उत्पन्न। रूप 51 अनुखानों या 51 उप-क्षणों या 17 चित्तक्खनाओं या 17 क्षणों तक उत्पन्न होते हैं और बने रहते हैं। रूप की उपादा दुर्बल होती है। लेकिन जब रूप अपने तृतीय खान में पहुँच जाते हैं, तो वे चित्तों या नाम धम्म के साथ अंतःक्रिया कर सकते हैं। जब रूप पहले उत्पन्न होते हैं और 85 चित्त बाद में उत्पन्न होते हैं, तो वे पहले से उत्पन्न रूप को जन्मोत्तर वियोग की स्थिति या पच्छाजात विपयुत्त पच्चया से प्रभावित करते हैं। क्योंकि रूप और नाम आपस में मिश्रित नहीं हो सकते, वे विपयुत्त हैं और क्योंकि 85 चित्त रूप के बाद उत्पन्न होते हैं, वे जन्मोत्तर स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

3. वत्थु शुद्धजात विपयुत्त पकाया

6 वत्थु हैं. वे हैं चक्खु वत्थु, सोता वत्थु, घन वत्थु, जिव्हा वत्थु, काया वत्थु और हदय वत्थु। ये सभी 6 वत्थु रूप 4 अरूपविपाक चित्तों को छोड़कर 7 विन्नों के लिए वत्थु शुद्धजात विपयुत्त पकाय या आधार प्रीनेसेंस पृथक्करण स्थिति के रूप में काम करते हैं क्योंकि ये 4 अरुपविपाक चित्त रूपा के साथ बिल्कुल भी बातचीत नहीं करते हैं। 7 विन्ना चक्खुविन्ना, सोताविन्ना, घनविन्ना, जीवविन्ना, पंचविन्ना चित्त के कायविन्ना और मनोधातु और मनोविन्नाधातु हैं, कुल मिलाकर 7 विन्ना को 6 वत्थु रूप द्वारा वत्थु शुद्धजाता के साथ वातानुकूलित किया जाता है। विपायुत्ता पकाया।

हटू निंग द्वारा

अध्याय 25 - अत्थी पच्चयो

या उपस्थिति की स्थिति
अत्थी पच्चयोटी

कत्तारो खंडा अरूपिनो अन्नमन्नम अत्थि पकायेना पकायो।

चार नामक्खंध होते हैं, जो एक दूसरे के लिए अत्थि पच्चय का काम करते हैं। जब वे एक साथ उत्पन्न होते हैं, तो वे एक दूसरे के लिए सहजतत्थि पच्चय या चेतना की उपस्थिति की स्थिति का काम करते हैं। ये चार नामक्खंध वेदना, सन्ना, संखार और विन्नाना हैं। उदाहरण के लिए, एक दोष चित्त। यह एक क्रोधित चित्त है। वह चित्त विन्नाक्खंध है। चूंकि वह चित्त दोष चित्त है और क्रोधित है, इसलिए उसमें क्रोध की वेदना है और वह वेदनाक्खंध है। घृणाशील मन क्रोधित होने का ज्ञान प्राप्त करता है और वह सन्ना है और वह सन्नाक्खंध है। स्थिति के अनुसार, अन्य चेतसिकाएँ भी होती हैं जैसे चेतना आदि और वे संखारक्खंध हैं। चूंकि वे एक ही समय में एक साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे (4 नमक्खंड) एक दूसरे के लिए उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं और यह एक दूसरे के लिए सहजाता अत्ति पच्चया या चेतना उपस्थिति की स्थिति है।

कत्तारो महाभूत अन्नमन्नम अत्थि पकायेन पकायो।

जैसे कि 4 नमकखंड के मामले में ये 4 महाभूत रूप एक दूसरे रूप के लिए अतिथि पकाया के रूप में काम करते हैं। 4 महाभूत रूप हैं और वे पथवि, तेजो, वायो और आपो हैं। प्रत्येक महाभूत रूप अन्य तीन सह-मौजूदा रूप के लिए उपस्थिति शर्त के रूप में कार्य करता है। जैसे ही वे एक साथ उठते हैं, वे सहजता अथि पकाया या एक-दूसरे के प्रति समस्वर उपस्थिति की स्थिति में होते हैं, जैसा कि 4 नमकखंडों के नामा मामले में होता है।

ओक्कंटिक्खाने नाम रूपम अन्नमन्नम अत्थि पकायेना पकायो।

ओक्कंतीखाना = ओकांति + खाना; पुनर्जन्म के समय या पतिसंधि के समय पतिसंधि रूप और पतिसंधि नाम होते हैं। ये हदय वत्थु के 4 पतिसंधि नमकखंड और कट्टा पतिसंधि रूप हैं। प्रत्येक दूसरे के लिए अथि पचायो या उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करता है। जैसे ही वे एक ही समय में उत्पन्न होते हैं, वे एक-दूसरे के लिए सहजता अतिथि पकाया या सहज उपस्थिति की स्थिति के रूप में काम कर रहे होते हैं।

चित्त चेतसिका धम्म चित्त समुत्थानां रूपाणं अत्थि पकायेन पकायो।

चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाएं मौजूद हैं। ये चित्तज रूप या चेतना से उत्पन्न रूप के लिए अत्थि पच्चय का कार्य करती हैं। इस उपस्थिति की स्थिति का अर्थ यह है कि जब उपस्थिति की स्थिति नहीं होती, तो इस उपस्थिति की स्थिति से संबंधित कोई धम्म भी नहीं होता। अतः यदि चित्त और चेतसिकाएं नहीं हैं, तो चित्तज रूप का अस्तित्व ही नहीं होगा।

महाभूत उपादरुपणं अत्थि पकायेन पकायो।

चार महाभूत रूप और चौंतीस उपाद रूप होते हैं। चार महाभूत रूप चौंतीस उपाद रूपों के लिए प्रत्यक्ष सिद्धि या उपस्थिति की स्थिति का कार्य करते हैं। इसका अर्थ यह है कि जब चार महाभूत रूप नहीं होते, तब ये चौंतीस उपाद रूप भी नहीं होते। चार महाभूत रूप इन धर्मों के लिए अभिधारणकारी धर्म हैं और चौंतीस उपाद रूप अभिधारणकारी धर्म हैं। चार महाभूत रूप और चौंतीस उपाद रूपों की व्याख्या रूप खंड में की गई है।

चक्खायतनं चक्खुविन्नान धातुया तम सम्पयुत्तकानन्च धमानां अत्थि पकायेन पकायो।

चक्खायतन या चक्खु पसदा रूप या चक्खु वत्थु, चक्खुविन्नान चित्त और उससे संबंधित 7 चेतसिकों के लिए उपस्थिति की स्थिति या अत्ति पच्चयो का कार्य करता है। इसका अर्थ यह है कि जब चक्खु पसदा रूप नहीं होता है, तब चक्खुविन्नान चित्त और संपर्क, भावना, बोध, संकल्प, एकाग्रता, मानसिक जीवन और ध्यान के 7 चेतसिक भी मौजूद नहीं होते हैं।

वैसे ही

1. सोतायतनम् से सोताविन्नन धातु और सहयोगी
2. घनायतन से घनविन्नान धातु और सहयोगी
3. जीवायतन से जीवविन्नान धातु और सहयोगी
4. काययतन से कायविन्नन धातु और सहयोगी अत्ति पकाया या उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

कंडीशनिंग धम्म आयतन धम्म हैं और कंडीशनिंग धम्म पंचविन्नान धातु और उनसे जुड़े धम्म चेतासिक हैं।

रूपायतनं चक्खुविन्नान धातुया तम संपयुत्तकाणंच धम्मणं अत्थि पकायेन पकायो।

रूपायतन या रूप जो कि वन्नो या रंग या रूप या आकृति है, चक्खुविन्नन चित्त और उससे जुड़े 7 सीतासिकों के लिए अथि पकाया या उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करता है।

वैसे ही

1. सददायतन से सोतविनाना धातु और सहयोगी
2. gandhāyatana to ghanavinnāna dhātu and associates
3. rasāyatana to jivhavinnana dhātu and associates
4. photthabbāyatana to kāyavinnāna dhātu and associates

कंडीशनिंग धम्म हैं पंचायतन रूप यानी रूप या रूप, सद या ध्वनि, गंध या गंध, रस या स्वाद, फोथब्बा या स्पर्श इंद्रिय (पथवी, तेजो, वायो) और कंडीशनिंग धम्म पंचविन्नान चित्त और उनसे जुड़े चेतसिक हैं। कारण धम्म या पकाय धम्म और परिणामी धम्म या पकायुप्पन्ना धम्म के बीच के संबंध को अथि पकाया या उपस्थिति स्थिति कहा जाता है।

पटिच्चसमुप्पादा में पत्थाना धम्म की तरह ऐसा संबंध नहीं दिखाया जाता। पटिच्चसमुप्पादा केवल यह बताता है कि यह कारण है और यह परिणाम है।

रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोत्थबायतनं मनोधातुया तम संपयुत्तकाणंच धम्मणं अत्थि पकायेन पकायो।

कुल पाँच आयतन हैं, जिनमें से सभी रूप धम्म हैं और वे इस प्रकार हैं:

1. रूपायतन या रूपा रूपा या आकार, आकृति, रंग
2. सद्दायतना या ध्वनि
3. गंधायतन या गंध
4. रसायतन या स्वाद
5. फोत्थबायतन या स्पर्श (पथवी, तेजो, वायो)।

ये सभी 7 रूप (4 प्रथम अयातन रूप और पथवी, तेजो, वायो) मनोधातु और उससे जुड़े धम्म के लिए अथि पकायो या उपस्थिति की स्थिति के रूप में काम करते हैं।

मनोधातु हैं

1. पंच द्वार अवज्जन चित्त या 5-इंद्रिय द्वार विज्ञापन चेतना
2. अहेतुका अकुसलविपाक संपतिच्चन चित्त या अकुसलविपाक की चेतना प्राप्त करना
3. अहेतुका कुसलविपाक संपतिच्चन चित्त या कुसलविपाक की चेतना प्राप्त करना

अन्य मनोविन्नान चित्तों के विपरीत, ये 3 चित्त विषय के बारे में पूर्णतः ज्ञात नहीं होते। उदाहरण के लिए, पंचद्वरवज्जन चित्त केवल सूचना देता है और विषय क्या है, यह नहीं जानता। संपत्चना चित्त भी केवल विषय को ग्रहण करते हैं और उसे सन्तिरण चित्तों या अन्वेषी चेतना को हस्तांतरित कर देते हैं, तथा वे विषय को पूर्णतः ज्ञात नहीं होते। इसलिए इन 3 चित्तों को मनोविन्नान चित्त नहीं बल्कि मनोधातु कहा जाता है।

किसी विथी वार या किसी वस्तु के प्रत्यक्ष दर्शन की घटना में 17 चित्तक्खनाएँ होती हैं। पंचायतन या पंचरम्मन उत्पन्न होते ही वे 51 अनुखानों में से 1 उप-क्षण के उपादाखान में विषय के रूप में कार्य नहीं कर सकते। अतः उस प्रथम उप-क्षण अनुखान में विथी चित्त उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए उस स्थान पर उस समय भावांग चित्त का उत्पन्न होना आवश्यक है। उस चित्त को अतित भावांग चित्त कहते हैं।

भावांग चित्त अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और नदी के जल के निरंतर प्रवाह के समान होते हैं। दौड़ते हुए व्यक्ति की तरह, भावांग चित्त चेतना को संकेत देने वाली वस्तु के प्रकट होते ही तुरंत नहीं रुकते। इसके बजाय, व्यक्ति को एक या दो कदम और आगे बढ़ना पड़ता है। अतित भावांग चित्त क्षीण हो जाता है। जब रूप के पहले सत्रहवें भाग के तीसरे अनुखान में से दूसरे में अतित भावांग चित्त प्रकट होता है, तो यह संकेत देता है कि यहाँ एक वस्तु है और आपकी चेतना जागृत होती है। लेकिन यह संकेत अतित भावांग चित्त के साथ ही क्षीण हो जाता है। संकेत प्राप्त होते ही भावांग चित्त का प्रवाह रुक जाता है, लेकिन इसमें दो अतिरिक्त कदम होते हैं।

संकेत प्रवाह को हिला देता है और पहले अतिरिक्त चरण को भावंग चलन चित्त या कंपनशील भावंग चित्त कहा जाता है। इसके बाद अंतिम भावंग चित्त आता है जिसे भावंगुप्पच्छेद चित्त या अवरोधक भावंग चित्त कहा जाता है। ये तीनों भावंग चित्त विथी चित्त नहीं हैं और अभी भी क्रम में नहीं हैं। उस समय 14 चित्तक्खना या 14 क्षण रूप (अरम्मन/वस्तु) के रूप में शेष रह जाते हैं।

प्रथम विथी चित्त पंचद्वरवज्जन चित्त या पंच इंद्रिय-द्वार से संबंधित चेतना है, जिसे मनोधातु कहते हैं। इससे संबंधित दस चेतसिकाएँ हैं: फस्सा (संपर्क), वेदना (भावना), चेतना (संकल्प), सन्ना (बोध), एकाग्ता (एकाग्रचित्तता), जीवंतिन्द्रिय (मानसिक जीवन), मानसिक (ध्यान), वितक्का (प्रारंभिक अनुप्रयोग), विचार (निरंतर अनुप्रयोग) और अधिमोक्खा (निर्णय)। पंचायतन, पंचरम्मन के रूप में कार्य करते हुए, मनोधातु और उससे संबंधित दस चेतसिकाओं के लिए अत्थि पच्चयो या उपस्थिति की स्थिति के रूप में धम्म को अभिव्यक्त करने का कार्य करते हैं।

इस पंचद्वारवज्जन चित्त के बाद पंचविन्नान चित्त आता है और पंचविन्नान चित्त को भी पंचरामण द्वारा अथि पकाया या उपस्थिति की स्थिति के रूप में वातानुकूलित किया जाता है। इसके बाद संपतिच्चन चित्त उत्पन्न होता है। और वे मनोधातु हैं । पंचायतन, पंचरम्मना के रूप में कार्य करते हुए, धम्म को अथि पकाया या संपतिच्चन चित्त की मनोधातु की उपस्थिति की स्थिति के रूप में कंडीशनिंग करने का काम करते हैं। इसका मतलब यह है कि पंचायतन या पंचरम्मना के बिना संपतिच्चन चित्त उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं है।

यम रूपं निस्साय मनोधातु च मनोविन्नान धातु च वट्टन्ति, तम रूपम मनोधातुया च मनोविन्नान धातुय च तम सम्पायुत्तकाननच धम्मनम् अत्थि पकायेन पकायो।

इसमें 5 रूप आयतन या 7 रूप हैं जो आराम्मन के रूप में कार्य करते हैं। जब वे उपस्थिति की स्थिति के रूप में सेवा कर रहे होते हैं तो वे मनोधातु (पंचद्वारवज्जन चित्त) और उससे जुड़े 10 सीतासिका, पंचाविनन चित्त और उनसे जुड़े 7 सीतासिका, मनोधातु (संपतिच्चन चित्त) और उसके 10 सहयोगी, और मनोविन्नान धातु (शांतिराना चित्त और 10 या यदि) की सेवा कर रहे होते हैं। सोमनस्सा शांतिराना 11 सीतासिका, वोत्थापना चित्त या मनोद्वारवज्जन चित्त और उसके 11 सहयोगी अर्थात् फस्सा, वेदना, सीताना, सन्ना, एकगगाटा, जीवितिन्द्रिय, मनसिकरा, विटक्का, विचारा, विरिया, और अधिमोक्खा, 29 काम जावना चित्त और उनके सहयोगी, और 11 तदारम्मना Cittas और उनके सहयोगी) उपस्थिति की स्थिति या अत्थी पक्कायो के साथ।

पांच अत्ति पच्चया हैं। वे हैं:

1. sahajāta atthi paccayo
2. purejāta atthi paccayo
3. pacchājāta atthi paccayo
4. āhāra atthi paccayo
5. indriya atthi paccayo

1. sahajātatthi paccayo

इस सिद्धि या स्थिति में ऐसे 3 उदाहरण हैं जिनमें धम्म इस तरह व्यवहार करता है।

2. purejātatthi paccayo

purejātatthi paccayo या prenascence presence condition के 2 उदाहरण हैं।

3. pacchājātatthi paccayo

इस स्थिति में, 4 अरूपविपाक चित्त (जो रूप से संबंधित नहीं हैं) को छोड़कर शेष 85 चित्त शेष रहते हैं। ये 85 चित्त और उनसे संबंधित 52 चेतसिक पूर्व-मौजूद रूपों जैसे पतिसंधि, हदय, वत्थु और हदय, वत्थु (जो चुति चित्त से 17 चित्तक्खना दूर उत्पन्न होते हैं) और जीवन चक्र में उत्पन्न होने वाले अन्य वत्थु रूपों के लिए अभिधारणात्मक धम्म का कार्य करते हैं। ये पच्छाजातथि पच्चयो या जन्मोत्तर उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि नाम धम्म, रूप धम्म से कुछ समय बाद उत्पन्न होते हैं। अतः वे जन्मपूर्व और जन्मपूर्व अवस्था में होते हैं। उनकी उपस्थिति के कारण वे जन्मपूर्व उपस्थिति की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं। इसका अर्थ यह है कि इन स्थितियों के बिना अभिधारणात्मक धम्म उत्पन्न नहीं हो सकते।

4. āhāratthi paccayo

फासा या संपर्क अरम्मना के साथ सभी नाम धम्म को खिलाता है। फ़स्सा के बिना कोई भी नाम धम्म उत्पन्न नहीं हो सकता है और फ़स्सा सभी नाम धम्म के लिए अराहा पकाय के रूप में कार्य करता है।

अतीत में 29 चेतनाएँ हैं जब कुशल या अकुशल धर्म का पालन किया गया था। ये चेतनाएँ नाम धर्म के लिए आहार पच्चय या पोषण की स्थिति का काम करती हैं। इनके बिना आहार नाम धर्म उत्पन्न नहीं हो सकता।

यहाँ विन्नाना आहार हैं। ये विन्नाना, नाम धम्म से जुड़े आहार पच्चय के रूप में कार्य करते हैं और जब ये विन्नाना धम्म नहीं होते हैं, तो उनसे संबंधित धम्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

5. indriyatthi paccayo

इस अवस्था में इंद्रियां, अभिशाप धम्म के रूप में विद्यमान होती हैं। वे हैं

1. मानिन्द्रिय या 89 चित्त
2. जीवितिन्द्रिय या मानसिक जीवन (चेतसिका)
3. वेदना चेतसिका (सुखिन्द्रिय, दुक्खिन्द्रिय, सोमनसिन्द्रिय, दोमानसिन्द्रिय, उपेखिन्द्रिय के रूप में)
4. सद्ध चेतसिका सद्धिन्द्रिय के रूप में
5. वीर्य चेतसिक वीर्यइंद्रिय के रूप में
6. sati cetasika as satindriya
7. समाधिन्द्रिय के रूप में एकगता चेतसिका
8. पणिन्द्रिय चेतसिका पणिन्द्रिय के रूप में
9. रूपजीवितिन्द्रिया
10. 5 pasada rūpa as pancindriya

वे उदाहरणों में मौजूद धम्म के अनुसार 89 चित्तों, 52 चेतसिकाओं, चित्तज रूपों या चेतना से उत्पन्न रूप और पतिसंधि कम्मज रूप के लिए कंडीशनिंग धम्म के रूप में कार्य करते हैं।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 26
हटू निंग द्वारा

अध्याय 26 - नत्थी पकायो और विगाटा पकायो
या अनुपस्थिति और गायब होना
नत्थी पच्चायोटी

समानान्तर निरुद्ध चित्त चेतसिका धम्म पतुप्पन्नं चित्त चेतसिकानं धम्मणं नत्थि पकायेन पकायो।

उन्नीस चित्त और उनसे संबंधित पच्चीस चेतसिकाएँ होती हैं। जब एक चित्त अपने संबंधित चेतसिका के साथ नष्ट हो जाता है, तो वे दोनों अस्तित्व में नहीं रहते और इससे अगले चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाओं की उत्पत्ति निर्धारित होती है। चूंकि उन्नीस चित्त हैं, इसलिए प्रत्येक चित्त के नष्ट होने के बाद, विथी वर के अनुसार, बिना किसी रुकावट के अगले चित्त की उत्पत्ति हो जाती है।

उस दिवंगत चित्त की अनुपस्थिति अगले चित्त के उद्भव का कारण बनती है। अभिकारक धम्म अट्ठाईस चित्त और उनसे संबंधित चेतसिकाएँ हैं, और अभिकारक धम्म या समर्थित धम्म या पच्चयुप्पन्न धम्म या परिणामी धम्म भी अट्ठाईस चित्त और उनसे संबंधित 52 चेतसिकाएँ हैं। लेकिन विथी वर के आधार पर, चित्त नियम या चेतना के नियम के अनुसार, किस चित्त के बाद कौन सा चित्त उत्पन्न होना चाहिए, इसका एक निश्चित क्रम होता है।

एक और पच्चया या एक और स्थिति है, जिसका सार लगभग नत्थी पच्चयो या अनुपस्थिति की स्थिति के समान है। लेकिन चूंकि इसके निहितार्थ थोड़े भिन्न हैं और यह एक अलग स्थिति भी है, इसलिए इसका अलग से उल्लेख किया जाना चाहिए। वह पच्चया विगत पच्चया या लुप्त होने की स्थिति है।

Vigata paccayoti

समानान्तर विगता चित्त चेतसिका धम्म पतुप्पन्नं चित्त चेतसिकानं धम्मणं विगत पकायेना पकायो।

विगत का अर्थ है लुप्त होना। विगत पच्चया का शाब्दिक अर्थ है लुप्त होने की अवस्था। यह अवस्था धर्म को उनके अस्तित्व या उपस्थिति से लुप्त होकर उत्पन्न होने में सहायक होती है। इसका अर्थ यह है कि वे पहले विद्यमान थे और अब विद्यमान नहीं हैं, वे लुप्त हो गए हैं। यह लुप्त होना अन्य धर्मों को उत्पन्न होने में सहायता करता है।

उदाहरण हैं

जीवन का पहला चित्त पतिसंधि चित्त या पुनर्जन्म चेतना या सह-चेतना होता है। जब यह अस्तित्व में होता है, तब कोई दूसरा चित्त नहीं होता। लेकिन क्योंकि यह केवल एक क्षण के लिए ही रहता है, इसलिए इसका अंत निश्चित है। यह अंत अगले चित्त के उदय में सहायक होता है। वह अगला चित्त उस जीवन का पहला भावांग चित्त होता है। इसमें अभिधारणा संबंधी धम्म नहीं होता। वह लुप्त हो चुका होता है। उस लुप्त धम्म के लुप्त होने से पतिसंधि चित्त पहले भावांग चित्त के उदय का मार्ग प्रशस्त करता है।

इस प्रक्रिया में प्रयुक्त धर्म पतिसंधि चित्त है और जिस धर्म पर धर्म का प्रभाव है वह प्रथम भावांग चित्त है। इसका अर्थ यह भी है कि पतिसंधि चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाएं प्रथम भावांग चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाओं को प्रभावित करती हैं। यह प्रक्रिया नाम धर्म द्वारा नाम धर्म को प्रभावित करने के लिए है। इस प्रक्रिया में कोई रूप धर्म शामिल नहीं है।

प्रथम भावनगा चित्त के लुप्त होने पर, या किसी भी स्थिति में जब विथी चित्त के उत्पन्न होने की कोई स्थिति न हो, तब भावनगा चित्त का उत्पन्न होना आवश्यक हो जाता है। भावनगा चित्त के लुप्त होने से अगले भावनगा चित्त और उससे संबंधित चेतसिकाओं का उत्पन्न होना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार कार्य करने वाली स्थिति को विगत पच्चय या लुप्त होने की स्थिति कहा जाता है। सूर्य का प्रकाश लुप्त हो जाने पर सूर्यास्त चंद्रमा को प्रकाशमान होने में सहायक होता है।

जब पूर्व भावांग चित्त नष्ट हो जाता है, तो इस नष्ट होने या लुप्त होने की स्थिति में अगले भावांग चित्त का उदय होता है, यदि विथी चित्त या चुति चित्त के उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है। यदि अरम्मन उत्पन्न हुआ है, तो पंचद्वरवज्जन चित्त उत्पन्न हो सकता है, या यदि धम्मरम्मन है, तो मनोद्वारवज्जन चित्त उत्पन्न हो सकता है। अवज्जन चित्त के उत्पन्न होने की यह संभावना लुप्त हो चुके पूर्व चित्त की स्थिति के कारण होती है।

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **अध्याय** 27
हटू निंग द्वारा

अध्याय 27 - अविगाता पैकायो
या गैर-लुप्त होने की स्थिति
Avigata paccayoti

कत्तारो खंडा अरूपिनो अन्नमन्नम अविगाता पकायेना पकायो।

अविगाता शब्द 'अ' और 'विगाता' से मिलकर बना है, जहाँ 'अ' का अर्थ है 'नहीं' और 'विगाता' का अर्थ है लुप्त होना। अतः अविगाता का अर्थ है 'अलुप्त न होना'। उदाहरण के लिए, सागर। सागर हमेशा मौजूद है, वह कभी लुप्त नहीं होता, उसका अस्तित्व बना रहता है। इसी 'अलुप्त न होने' के कारण सागर उसमें रहने वाले सभी जीवों का भरण-पोषण करता है।

कत्तारो खंड अरूपिनो हैं या 4 अरूप खंड हैं या 4 नमकखंड हैं। वे हैं वेदनाक्खंधा या अनुभूति समुच्चय, सन्नक्खाखंड या बोध समुच्चय, संखारखंड या गठन समुच्चय, और विन्नानखंड या चेतना समुच्चय।

वे अपने चारों नमक्खंडों में एक दूसरे के लिए अविगता पच्चया के रूप में कार्य करते हैं। जब एक नमक्खंड मौजूद रहता है और लुप्त नहीं होता, तो उसका न लुप्त होना अन्य तीन नमक्खंडों को सहज अविगता पच्चया या निरंतर न लुप्त होने की स्थिति के रूप में सहायता करता है।

चार महाभूता रूप हैं। वे आपस में एक दूसरे के लिए अविगत पच्चायण या अविलुप्त होने की स्थिति का कार्य करते हैं।

ओक्कंटिक्खाने नाम रूपं अन्नमन्नं अविगत पकायेना पकायो।

पतिसंधि पर या जैसे ही एक नया जीवन शुरू होता है, पतिसंधि नाम और रूप उत्पन्न होते हैं। वे 4 विपाक नमकखंड और हदय वत्थु हैं। वे प्रत्येक एक-दूसरे के नाम या रूप के लिए गैर-गायब होने की स्थिति या अविगत पकाय के रूप में कार्य करते हैं। अर्थात हदय वत्थु

रूप 4 विपाक नमकखंडों के लिए अविगत पकाया या गैर-गायब होने की स्थिति के रूप में कार्य करता है और 4 विपाक नमकखंड भी हदय वत्थु के लिए गैर-लुप्त होने की स्थिति के रूप में काम करता है और वे 4 नमकखंडों के बीच एक दूसरे के लिए अविगत पकाया के रूप में भी काम करते हैं।

चित्त चेतसिका धम्म चित्त समुत्थानां रूपणं अविगत पकायेन पकायो।

चित्त और उनसे संबंधित चेतसिकाएँ चित्तज रूप या चेतना से उत्पन्न रूप के लिए आधारभूत धर्म का कार्य करती हैं। इसका अर्थ यह है कि चित्त और चेतसिकाओं के बिना ये चित्तज रूप कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। चित्त और चेतसिकाएँ उत्पन्न होती हैं और यद्यपि वे लुप्त नहीं होतीं, फिर भी चित्तज रूप को अविगत पच्चय या अविलुप्त होने की स्थिति से युक्त करती हैं।

महाभूत उपादरूपणं अविगत पकायेन पकायो।

चार महाभूत रूप होते हैं और वे 24 उपाद रूपों के लिए अविगता पच्चया या अविलुप्त होने की शर्त का काम करते हैं। चार महाभूत रूपों के बिना ये 24 उपाद रूप कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। चार महाभूत रूप उत्पन्न होते हैं और यद्यपि वे लुप्त नहीं होते, वे 24 उपाद रूपों के लिए अविगता पच्चया या अविलुप्त होने की शर्त का काम करते हैं।

चक्खायतनं चक्खुविन्नान धातुया तम सम्पयुत्तकानन्च धम्मणं अविगत पकायेन पकायो।

चक्खायतनम् या चक्खु पसदा रूप, चक्खुविन्नान चित्त और उससे संबंधित चेतसिका के लिए अविलुप्त न होने के कारण आधारभूत धर्म का कार्य करते हैं। चक्खु पसदा रूप के बिना चक्खुविन्नान चित्त का अस्तित्व ही नहीं होगा। चक्खु पसदा रूप और नाम या चक्खुविन्नान चित्त के बीच इस संबंध को अविगत पच्चया या अविलुप्त होने की स्थिति कहा जाता है। प्रतीत्यसमुप्पाद केवल कारण और परिणाम को प्रकट करते हैं, लेकिन यह नहीं बताते कि कारण और परिणाम आपस में कैसे संबंधित हैं। जबकि पथाना धर्म कारण और परिणाम दोनों को प्रकट करते हैं और एक अतिरिक्त धर्म के रूप में यह भी प्रकट करते हैं कि ये कारण और परिणाम पच्चया से कैसे संबंधित हैं।
Cakkha pasada rūpa conditions cakkhuvinnāna citta and its associates with non disappearane condition or avigata paccaya.

वैसे ही

1. सोतायतन से सोतविन्नान धातु
2. ghānayatana to ghāna dhātu
3. jibhāyatana to jivhā dhātu
4. कायायतन से कायविन्ना धातु।

रूपायतनं चक्खुविन्नान धातुया तम सम्पयुत्तकानन्च धम्मणं अविगत पकायेन पकायो।

रूपायतन या रूप रूप या रूप रूप आकार रूप रंग रूप चक्खुविनन धातु और उसके सहयोगियों के लिए कंडीशनिंग धम्म के रूप में कार्य करता है। इस रिश्ते को अविगाता पकाया या गैर गायब होने की स्थिति कहा जाता है।

वैसे ही

1. सद्दायतन से सोतविन्नान धातु
2. गंधायतन से घनविन्न धातु
3. रसायतन से जीवविन्नान धातु
4. फोत्थबायतन से कायविन्नन धातु।

रूपायतनं सद्दायतनं गंधायतनं रसायतनं फोत्थबायतनं मनोधातुया तम संपयुत्तकाणंच धमानां अविगत पकायेन पकायो।

रूपायतन या रूप/आकार, सद्दायतन या ध्वनि, गंधायतन या गंध, रसायतन या स्वाद, फोत्थबायतन या स्पर्श इंद्रिय (पथवी, तेजो, वायो) मनोधातु के लिए गैर-लुप्त होने की स्थिति के रूप में काम करते हैं। मनोधातु 3 हैं. वे पंचद्वारवज्जन चित्त और 2 सम्पतिच्चन चित्त हैं। 5 रूप आयतन 5 पंच अराम्मन होने के कारण मनोधातु या उन 3 चित्त के लिए अविगत पकाया या गैर-गायब होने की स्थिति के रूप में कार्य करते हैं।

यं रूपं निस्साय मनोधातु च मनोविन्नान धातु च वत्तन्ति, तम रूपम मनोधातुया च मनोविन्नान धातु च तम संपयुत्तकाणं धमाणं अविगत पकायेन पकायो।

जब कोई आयतन अरम्मन के रूप में प्रकट होता है, तो चित्तों की एक श्रृंखला क्रमिक रूप से प्रकट होती है, और इन क्रमिक चित्तों को विथी चित्त कहा जाता है। पंचआयतन के अरम्मन के प्रकट होने पर अधिकतम 14 विथी चित्त होते हैं। जब पंचआयतन, जो एक रूप है, विद्यमान और अविनाशी रहता है, तब चित्तों की एक श्रृंखला प्रकट होती है।

1. अतित भावंग चित्त या पूर्व जीवन की निरंतर चेतना
2. भावंगा चल चित्त या स्पंदित जीवन निरंतर चेतना
3. भावंगुप्पच्छेद चित्त या जीवन को निरंतर बनाए रखने वाली चेतना
4. पंच द्वार अवज्जन चित्त या 5-इंद्रिय द्वार विज्ञापन चेतना
5. पंच विन्नान चित्त या 5-इंद्रिय चेतना
6. संपच्चना चित्त या ग्रहणशील चेतना
7. संतिरानबा चित्त या चेतना की जांच
8. वोत्थापना चित्त या चेतना का निर्धारण (मनोद्वारा अवज्जना चित्त द्वारा किया जाता है)
9. जवन चित्त या मानसिक आवेगी चेतना (29 काम जवन चित्तों द्वारा किया गया)
10. javana citta 2
11. javana citta 3
12. javana citta 4
13. javana citta 5
14. javana citta 6
15. javana citta 7
16. तदारम्मन चित्त या चेतना बनाए रखना (8 महाविपाक चित्त और 3 शांतिराना चित्त द्वारा किया गया)
17. tadarammana citta 2.

जब तक रूप (17 चित्तक्खना जीवन) विद्यमान है और यह लुप्त नहीं हो रहा है, तब तक यह इन सभी 14 विथी चित्तों के लिए आधारभूत धर्म का कार्य करता है। 3 भावनगा चित्त वर्तमान अरम्मना से संबंधित नहीं हैं, बल्कि वे अपने स्वयं के विषय से संबंधित हैं, जो उनके लिए वर्तमान विषय है। रूप के अविलुप्त होने से आयतन और अरम्मना इन 14 विथी चित्तों के लिए आधारभूत धर्म का कार्य करते हैं।

रूपा पंचद्वार अवज्जन चित्त की पहली मनोधातु, फिर पंच विन्नान चित्त, फिर संपतिच्छन चित्त की मनोधातु और फिर शांतिराना, वोत्थापना या मनोद्वार अवज्जना चित्त की मनोविन्ना धातु, 29 जावना के लिए अविगत पकाया या गैर-गायब होने की स्थिति के रूप में कार्य करता है। चित्त, और 11 तदारम्मना चित्त।

5 अविगता पकाया हैं। वे हैं

1. सहजताविगत पच्चया या कोनैसेंस गैर-लुप्त होने की स्थिति
2. purejātāvigata paccaya or prenascence non disappearance condition
3. pacchājātāvigata paccaya or post nascence non disappearance condition
4. आहारविगत पकाया या पोषक तत्व गायब न होने की स्थिति
5. इंद्रियाविगत पकाया या संकाय गैर गायब होने की स्थिति।

धर्म उत्पन्न होते हैं और उनके न मिटने से अन्य धर्म भी न मिटते हैं, या यूं कहें कि अविगत पच्चया। सागर हैं और उनके न मिटने से उनमें रहने वाले सभी जीव-जंतुओं के लिए एक शर्त का काम करते हैं।

1. sahajātāvigata paccaya

2. purejātāvigata paccaya or prenascence non disappearance condition

3. pacchājātāvigata paccaya or postnascence non disappearance condition

4. आहारविगत पकाया या पोषक तत्व गायब न होने की स्थिति

5. इंद्रियाविगत पकाया या संकाय गैर गायब होने की स्थिति

टिपिटका >> अभिधम्म पिटक >> पथना >> **हटू निंग द्वारा निष्कर्ष**

निष्कर्ष
जो भी प्राणी सोच रहे हैं, जो भी अनुभव कर रहे हैं, जो भी सांसारिक लोग लिख रहे हैं, कह रहे हैं, बोल रहे हैं, चर्चा कर रहे हैं, उन सब में सार रूप में केवल चार धर्म ही समाहित हैं। इन चार धर्मों से बढ़कर कुछ भी नहीं है। इन चार धर्मों को परम धर्म या अंतिम वास्तविकताएँ कहा जाता है क्योंकि जब इनका अंतिम रूप से अवलोकन किया जाता है, तो विश्लेषण करने पर इन चार वास्तविकताओं में से केवल एक ही वास्तविकता दिखाई देती है।

परमत्थ पाली भाषा का शब्द है। यह परम और अत्थ से मिलकर बना है। अत्थ का अर्थ है सार, आंतरिक अस्तित्व। परम का अर्थ है सर्वोच्च, सर्वोच्च, उत्कृष्ट, सर्वोत्तम। अतः परमत्थ धम्म का अर्थ है सर्वोच्च आंतरिक सार या परम वास्तविकता।

जो कुछ भी हो, जहाँ भी हो और जब भी हो, ये परमार्थ धर्म घटित होते हैं। परन्तु निर्वाण संखत धर्म नहीं है, न ही यह उत्पन्न होता है, न ही नष्ट होता है, और न ही यह घटित होता है। अतः इस संसार में, इस पृथ्वी पर, इन 31 लोकों में जो कुछ भी घटित होता है, वह सब रूप धर्म और नाम धर्म के कारण घटित होता है, इससे अधिक कुछ नहीं।

4 परमार्थ धम्म हैं। वे हैं चित्त, सीतासिका, रूप और निब्बान। चित्त और चेतसिका नाम धम्म हैं और रूप रूप धम्म हैं। नाम धम्म और रूप धम्म संखत धम्म या सशर्त धम्म हैं। निब्बाण असंखत् धम्म है और निब्बान कोई सशर्त धम्म नहीं है। सब्बे संखारा अनिच्चति सभी वातानुकूलित धम्म अनित्य हैं। सब्बे संखारा दुक्खति; सभी वातानुकूलित धम्म दुखदायी और अवांछनीय हैं। चित्त और चैतसिक या नाम धम्म और रूप धम्म संखार धम्म हैं। सभी धम्म जो कि चित्त, चेतसिका, रूप और निब्बान हैं, अनत्ता हैं; sabbe dhammā anattati.

अनात्ता पाली भाषा का शब्द है और यह अना और अत्ता से मिलकर बना है। अना का अर्थ है 'नहीं', 'कुछ नहीं' और अत्ता का अर्थ है 'स्वयं'। अनात्ता का अर्थ है 'अनात्म' या 'अहंकार का अभाव'। अतः कोई भी धर्म 'अनात्म' है। किसी भी धर्म को किसी बाहरी शक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता, बल्कि धर्म स्वतः घटित होते हैं, अपनी राह पर चलते हैं और कोई भी धर्म को प्रभावित नहीं कर सकता।

जब ये धर्म, नाम और रूप घटित होते हैं, तो वे अकेले नहीं घटित होते। बल्कि वे अन्य धर्मों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं और प्रत्येक धर्म दूसरे पर निर्भर करता है, और अन्य धर्म भी स्थिति पर निर्भर करते हैं। बुद्ध के दो उपदेश हैं जो सशर्त संबंध को प्रकट करते हैं। ये हैं प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म और पथाना धर्म। प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म केवल यह दर्शाता है कि एक धर्म उस धर्म को उत्पन्न करता है और वह धर्म इस धर्म को उत्पन्न करता है। लेकिन प्रतीत्यसमुत्पाद कारण और परिणाम के बीच संबंध को नहीं दर्शाता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद धम्म के विपरीत, पट्टाना धम्म धम्म और पट्टाना के बीच सभी सशर्त संबंधों को प्रकट करता है और यह भी दर्शाता है कि वे एक दूसरे से कैसे संबंधित हैं। पट्टाना धम्म को बुद्ध की शिक्षाओं के 7 अभिधम्म ग्रंथों में अंतिम ग्रंथ के रूप में उद्धृत किया गया है और यह अब तक का सबसे गहन, सबसे कठिन और सबसे सारगर्भित धम्म है। यदि धम्म को देखा जा सकता है, तो ये पट्टाना धम्म वास्तव में हमारे दैनिक जीवन में घटित हो रहे हैं।

संक्षेप में, 24 पच्चया या 24 स्थितियाँ हैं जिनके द्वारा धर्म एक दूसरे से संबंधित होते हैं या धर्म अन्य धर्मों को 24 स्थितियों से जोड़ते हैं। सभी 24 पच्चया धर्मों की व्याख्या पत्थाना धर्म के इस धारावाहिक पृष्ठ में की गई है। पत्थाना धर्म के 24 ग्रंथों में अधिक विस्तृत जानकारी दी गई है। ये 24 ग्रंथ प्रत्येक पच्चया के लिए एक ग्रंथ नहीं हैं। 24 ग्रंथ पत्थाना धर्म का विस्तृत विवरण हैं। संक्षेप में, 24 पच्चया या 24 स्थितियाँ हैं, हालाँकि इन 24 स्थितियों के अतिरिक्त कई और उप-स्थितियाँ भी हैं।

24 paccaya या 24 स्थितियाँ हैं

1. hetu paccayo या जड़ स्थिति
2. ārammana paccayo or object condition
3. अधिपति पचायो या प्रबलता स्थिति
4. anantara paccayo or proximity condition
5. samanantara paccayo or contiguity condition
6. सहजता पच्चयो या कोनैसेंस कंडीशन
7. annamanna paccayo or mutuality condition
8. nissaya paccayo or dependence condition
9. उपनिस्साय पच्चयो या निर्णायक समर्थन की स्थिति

10. purejāta paccayo or prenascence condition
11. pacchājāta paccayo or postnasence condition
12. āsevana paccayo or repeatition condition
13. कम्मा पकायो या कम्मा स्थिति
14. vipāka paccayo or vipāka condition or cooked result condition
15. आहार पकायो या पोषण की स्थिति
16. इंद्रिय पच्चयो या संकाय स्थिति
17. झाना पच्चयो या झाना स्थिति या अवशोषण स्थिति
18. मैग्गा पैकायो या पथ स्थिति
19. संपायुत्ता पचायो या एसोसिएशन की स्थिति
20. विप्पयुत्त पच्चयो या वियोग की स्थिति
21. अत्थी पक्कायो या उपस्थिति की स्थिति
22. नत्थि पकायो या अनुपस्थिति की स्थिति
23. विगाटा पैकायो या गायब होने की स्थिति
24. avigata paccayo or non disappearance condition